कविकुलगुरु - कालिदास - संस्कृत - विश्वविद्यालयः

This PDF you are browsing now is a digitized copy of rare books and manuscripts from the Jnanayogi Dr. Shrikant Jichkar Knowledge Resource Center Library located in Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University Ramtek, Maharashtra.

KKSU University (1997- Present) in Ramtek, Maharashtra is an institution dedicated to the advanced learning of Sanskrit.
The University Collection is offered freely to the Community of Scholars with the intent to promote Sanskrit Learning.

Website
https://kksu.co.in/

Digitization was executed by NMM

https://www.namami.gov.in/

Sincerely,

Prof. Shrinivasa Varkhedi
Hon'ble Vice-Chancellor

Dr. Deepak Kapade
Librarian

Digital Uploaded by eGangotri Digital Preservation Trust, New Delhi
https://egangotri.wordpress.com/

3
११

Checked 2012

शिर

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक
हस्तलिखित संग्रह

दाखल क्र. M 397 विषय पुराण

नाव. श्रीशिवमहापुराण

लेखक/लिपीकार —

पृष्ठ 1208 काळ — पूर्ण/~~अपूर्ण~~

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ ॥ अथ श्रीशिवमहापुराण—विद्येश्वरसंहिता भाषाटीका प्रारभ्यते ।

दोहा—गौरीशंकर पदकमल, प्रेमसहित हिय लाय । श्रीमच्छंभुपुराणकी, भाषा रचहुँ सुभाय ॥ १ ॥
श्रुतिसम्वेद्य अनादि शिव, साम्ब सच्चिदानंद । निर्गुण ब्रह्म विलक्षइक, ध्यायामि सुखकंद ॥ २ ॥
जेहिकी माया पाय जग, भव पालन लय होय । स्वभू स्वयम्भुजासु बल, पावत गौरव दोय ॥ ३ ॥
तिनको माधव रविगणाधीश शिवायुत ध्याय । जो निजजनके अघ सकल, छिनमें देत बहाय ॥ ४ ॥
मात पिता गुरु भारती, वेदव्यास मुनीश । प्रेमसहित कर जोरकर, सबहिं नवाऊं शीश ॥ ५ ॥
सप्तसंहिता सहित श्री,—शिवपुराण सुखदान । भुक्तिमुक्तिदायक सुगम, भक्तन जीवन प्रान ॥ ६ ॥
काशीपालक शिव सुमरि, गिरिजा गणपति ध्याय । शुभ विद्येश्वरसंहिता, टीका लिखत बनाय ॥ ७ ॥

श्रीभगवान् वेदव्यासजी शिवजीके ब्रह्मत्वप्राप्तिके निमित्त उपायभूत विद्यायुक्त 'विद्येश्वरसंहिता' वर्णन करनेके निमित्त मङ्गलविधान करते हैं, जो सृष्टिके आदि

श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ अथप्रथमाविद्येश्वरसंहिताप्रारभ्यते ॥ आद्यन्तमंगलमजातसमानभावमार्यंतमीशमजरामरमात्मदेवम् ॥ पंचाननंप्रबलपंचविनोदशीलंसंभावयेमनसिशंकरमम्बिकेशम् ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ धर्मक्षेत्रेमहाक्षेत्रेगंगाकालिन्दिसंगमे ॥ प्रयागे
पण्येब्रह्मलोकस्यवर्त्मनि ॥ १ ॥ मुनयःशंसितात्मानस्सत्यव्रतपरायणाः ॥ महौजसोमहाभागामहासत्रंवितेनिरे ॥ २ ॥

मङ्गलरूप हैं. जिनके समान किसीमें भी समान भाव नहीं है अर्थात् भक्तजनोंके कल्याण करनेमें सबसे अधिक हैं. आद्यन्तमें भी कारणात्मासे
है; जो जरा मरण रहित है, स्वप्रकाशस्वरूप पञ्चमुख प्रबल पञ्चमहापातकके दूर करनेवाले अथवा प्रबल भक्तोंकी मुक्तिके प्रतिबन्धक
रनेवाले तथा भक्तोंके कल्याण करनेवाले अम्बिकापति शंकरको मैं हृदयमें ध्यान करताहूँ ॥ १ ॥ व्यासजी बोले उस धर्मके
र कालिन्दीका सङ्गम हुआ है; उस ब्रह्मलोकके मार्गभूत परम पुण्य प्रयाग देशमें ॥ १ ॥ सत्यव्रतमें परायण ज्ञानी बड़े व्रती बड़े

षि दीर्घयज्ञ करने लगे ॥ २ ॥ व्यासके शिष्य महामुनि उस यज्ञको श्रवणकरके वह पुराणजान्नेवालोंमें श्रेष्ठ सूतजी उस स्थानमें सूतजीको आया देख मुनि बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्न चित्तसे उनकी विधिपूर्वक पूजा करने लगे ॥ ४ ॥ तब विनयसे संयुक्तहो ाड़कर कहने लगे और प्रसन्न हुए उन महात्माकी विधिपूर्वक स्तुति करनेलगे ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ रोमहर्षण आप भाग्यके गौरवसे ूण पुराणविद्याको अर्थ सहित जान चुके हो ॥ ६ ॥ इस कारण आश्चर्यभूत कथाओंके आप पात्र हैं जैसे श्रेष्ठ रत्नोंका स्थान सागर है ॥७॥

त्रसमाकर्ण्यव्यासशिष्योमहामुनिः ॥ आजगाममुनीन्द्रष्टुंसूतःपौराणिकोत्तमः ॥ ३ ॥ तंदृष्ट्वासूतमायांतंहर्षितामुनयस्तदा ॥ वतसासुप्रसन्नेनपूजांचक्रुर्यथाविधि ॥ ४ ॥ ततोविनयसंयुक्ताःप्रोचुस्सांजलयश्चते ॥ सुप्रसन्नामहात्मानःस्तुतिंकृत्वायथाविधि ॥ ५ ॥ रोमहर्षणसर्वज्ञभवान्वैभाग्यगौरवात् ॥ पुराणविद्यामखिलांव्यासात्प्रत्यर्थमीयिवान् ॥ ६ ॥ तस्मादाश्चर्य्यभूतानांकथानांत्वंहिभाजनम् ॥ रत्नानामुरुसाराणांरत्नाकरइवार्णवः ॥ ७॥ यच्चभूतंचभव्यंचयच्चान्यद्वस्तुवर्तते ॥ नत्वयाऽविदितंकिंचित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ ८ ॥ त्वंमद्दिष्टवशादस्यदर्शनार्थमिहागतः ॥ कुर्वन्किमपिनः श्रेयोनवृथागंतुमर्हसि ॥ ९ ॥ तत्त्वंश्रुतंस्मनःसर्वंपूर्वमेवशुभाशुभम् ॥ नतृप्तिमधिगच्छामःश्रवणेच्छामुहुर्मुहुः ॥ १० ॥ इदानीमेकमेवास्तिश्रोतव्यंसूतसन्मते ॥ तद्रहस्यमपिब्रूहियदितेऽनुग्रहोभवेत् ॥ ११ ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरेनराः पुण्यविवर्जिताः ॥ दुराचाररताःसर्वेसत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥ १२ ॥ परापवादनिरताःपरद्रव्याभिलाषिणः ॥ परस्त्रीसक्तमनसःपरहिंसापरायणाः ॥ १३ ॥

जो कुछ भूत भविष्य वर्तमान वस्तु है वह त्रिलोकीमें आपको कुछ भी अविदित नहीं ॥ ८ ॥ आप हमारे भाग्यसेही इस स्थानमें प्राप्त हुए हैं; हमारे कुछ भी मङ्गल किये बिना आप वृथा जानेको योग्य नहीं हैं ॥ ९ ॥ हमने पूर्वमेंभी आपसे अनेक शुभाशुभ वार्ता श्रवण की हैं; सो हम तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं वारम्वार सुन्नेकी इच्छा होती है ॥ १० ॥ हे महाबुद्धिमान् ! इस समय जो रहस्य बात सुन्नेके योग्य रहीहै वह कृपाकर आप हमसे कहिये ॥ ११ ॥ इस घोर कलियुगके प्राप्त होनेमें पुण्यहीन मनुष्य प्राप्त हुए हैं सब दुराचारमें प्रीति करते और पुण्यसे तथा सत्य बातसे हीन हैं ॥ १२ ॥ पराई बुराई करनेमें

निरत पराये द्रव्यकी अभिलाषा करनेवाले पराई स्त्रियोंमें मन लगानेवाले पराई हिंसा करनेमें तत्पर ॥ १३ ॥ देहमें आत्माकी दृष्टि करनेवाले मूर्ख नास्तिक बुद्धिवाले माता पिताका द्वेष करनेवाले स्त्रीकोही मान्नेवाले कामके किंकर हैं ॥ १४ ॥ ब्राह्मण लोभमें ग्रस्त हैं वेदोंको बेंचके जीनेवाले धनकेवास्ते विद्या पढ़नेवाले विद्याके मदसे मोहित ॥ १५ ॥ अपनी जातिके कर्मोंको त्यागेहुए बहुधा दूसरोंको ठगनेवाले त्रिकालसन्ध्यासे हीन ब्रह्मके बोधसे वर्जित ॥ १६ ॥ दयारहित अपने आपको पंडित माननेवाले अपने आचार और व्रतके लोप करनेवाले कृषीके उद्यममें रत क्रूरस्वभाव मलीनमनवाले हैं ॥ १७ ॥ इसीप्रकार

देहात्मदृष्टयोमूढानास्तिकाःपशुबुद्धयः ॥ मातृपितृकृतद्वेषाःस्त्रीदेवाःकामकिंकराः ॥ १४ ॥ विप्रालोभग्रहग्रस्तावेदविक्रयजीविनः ॥
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्यामदविमोहिताः ॥ १५ ॥ त्यक्तस्वजातिकर्माणःप्रायशःपरवंचकाः ॥ त्रिकालसंध्ययाहीनाब्रह्मबोधविव
र्जिताः ॥ १६ ॥ अदयाःपंडितंमन्यास्स्वाचारव्रतलोपकाः ॥ कृष्युद्यमरताःक्रूरस्वभावामलिनाशयाः ॥ १७ ॥ क्षत्रियाश्चतथासर्वे
स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥ असत्संगाःपापरताव्यभिचारपरायणाः ॥ १८ ॥ अशूराअरणप्रीताःपलायनपरायणाः ॥ कुचौरवृत्तयःशूद्राः
कामकिंकरचेतसः ॥ १९ ॥ शस्त्रास्त्रविद्ययाहीनाधेनुविप्रावनोज्झिताः ॥ शरण्यावनहीनाश्चकामिन्यूतिमृगास्सदा ॥ २० ॥ प्रजापाल
नसद्धर्मविहीनाभोगतत्पराः ॥ प्रजासंहारकादुष्टाजीवहिंसाकरामुदा ॥ २१ ॥ वैश्याःसंस्कारहीनास्तेस्वधर्मत्यागशीलिनः ॥
कुपथाःस्वार्जनरतास्तुलाकर्मकुवृत्तयः ॥ २२ ॥

सब क्षत्रिय अपने धर्मको त्यागनेवाले कुसंगतमें रत पापी व्यभिचारमें परायण ॥ १८ ॥ कायर शूद्रोंसे प्रीति करनेवाले पलायनमें तत्पर कुत्सित चोरोंकी वृत्ति करनेवाले शूद्र कामके किंकर ॥ १९ ॥ शस्त्र अस्त्रकी विद्यासे हीन धेनु और ब्राह्मणोंको न पालनेवाले शरणागतोंकी रक्षा नहीं करनेवाले और धनसे हीन कामिनीके लीलाके हरिण ॥ २० ॥ प्रजापालनके सद्धर्मसे हीन भोगोंमें तत्पर प्रजाके नष्ट करनेवाले दुष्टजीव हिंसा करनेमें प्रसन्न होनेवाले ॥ २१ ॥ इसी प्रकार संस्कारहीन वैश्य होकर अपने धर्मको त्यागेहुए कुमार्गसे द्रव्य लेनेमें तत्पर तराजूका कर्म और कुत्सित आजीविका करनेवाले ॥ २२ ॥

गुरुदेव ब्राह्मणादिकी भक्तिसे हीन कुबुद्धि ब्राह्मणोंको न जिमानेवाले प्रायःकृपण मूठी बांधनेवाले ॥२३॥ जारभावसे स्त्रियोंमें रमण करनेवाले मलीनमन लोभ
मोहसे विचेत पूर्तादिमें धर्मको त्यागनेवाले ॥२४॥ इसी प्रकारसे जो शूद्रहैं वह ब्राह्मणोंकेसे आचार करते हैं उज्ज्वल आकृतिवाले मूढ़ अपने धर्मके त्यागने
वाले ॥ २५ ॥ तप करने और ब्राह्मणोंके तेज हरनेवाले बालककी अल्पमृत्युमें मारणादि मन्त्रके उच्चारण करनेमें परायण ॥२६॥ शालिग्रामादिके पूजन
करके होम करनेवाले प्रतिकूल विचारवाले, कुटिल, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले ॥ २७ ॥ धनवान् कुकर्मी विद्यावान् विवादी कथा और धर्म उपासनाके कहनेवाले

गुरुदेवद्विजातीनांभक्तिहीनाःकुबुद्धयः ॥ अभोजितद्विजाःप्रायःकृपणाबद्धमुष्टयः ॥ २३ ॥ कामिनीजारभावेषुसुरतामलिनाशयाः ॥
लोभमोहविचेतस्काःपूर्तादिसुवृषोज्झिताः ॥ २४ ॥ तद्वच्छूद्राश्चयेकेचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः ॥ उज्ज्वलाकृतयोमूढाःस्वधर्मत्यागशी
लिनः ॥ २५ ॥ कर्तारस्तपसांभूयोद्विजतेजोपहारकाः ॥ शिश्वल्पमृत्युकाराश्चमंत्रोच्चारपरायणाः ॥ २६ ॥ शालिग्रामशिलादीनां
पूजकाहोमतत्पराः ॥ प्रतिकूलविचाराश्चकुटिलाद्विजदूषकाः ॥ २७ ॥ धनवंतःकुकर्म्माणोविद्यावन्तोविवादिनः ॥ आख्यायोपासना
धर्मवक्तारोधर्मलोपकाः ॥ २८ ॥ सुभूपाकृतयोदंभाःसुदातारोमहामदाः ॥ विप्रादीन्सेवकान्मत्वामन्यमानानिजंप्रभुम् ॥ २९ ॥
स्वधर्मरहितामूढाःसंकराःक्रूरबुद्धयः ॥ महाभिमानिनोनित्यंचतुर्वर्णविलोपकाः ॥ ३० ॥ सुकुलीनान्निजान्मत्वाचतुर्वर्णैर्विवर्तनाः ॥
सर्ववर्णभ्रष्टकरामूढास्सत्कर्मकारिणः ॥३१॥ स्त्रियश्चप्रायशोभ्रष्टाभर्त्रवज्ञानकारिकाः॥ श्वशुरद्रोहकारिण्योनिर्भयामलिनाशनाः ॥ ३२ ॥

धर्मका लोप करनेवाले ॥ २८ ॥ राजोंकेसी चेष्टा बनानेवाले पाखण्डी दाताके समान रहनेवाले महामदसे युक्त ब्राह्मणोंको सेवक और अपनेको प्रभु माननेवाले
॥ २९ ॥ अपने धर्मसे रहित मूढ़ वर्णसंकर क्रूरबुद्धि नित्य महाअभिमान करनेवाले चारों वर्णके लोप करनेवाले ॥ ३० ॥ अपनेको कुलीन मानकर चारों
वर्णोंके वृत्तिवाले सब वर्णोंको भ्रष्ट करनेवाले मूढ सत्कर्मके करनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ विशेषकर स्त्रियें अपने स्वामीकी आज्ञा नहीं मानती सास श्वशुरसे द्रोह

करनेवाली, निर्भय मलीन भोजन करनेवाली ॥ ३२ ॥ कुहावभावमें निरत, कुत्सित स्वभाववाली, कामसे विह्वला, नित्य राजाके संगमें रत अपने स्वामीसे
विमुख ॥ ३३ ॥ कन्या माता पिताकी भक्तिसे हीन दुराशयसे युक्त नित्य अविद्याके पाठ करनेवाली रोगसे ग्रथित देहवाली ॥ ३४ ॥ हे सूतजी इन
नष्टबुद्धि, अपने धर्मके त्यागनेवालोंकी इस लोक और परलोकमें कैसे गति होगी ? ॥ ३५ ॥ इस चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है पराये
उपकारके समान और कोई धर्म नहीं है ॥ ३६ ॥ जिस छोटे उपायसे इनका पाप शीघ्र शान्त हो वह तुम कृपाकर कहो. कारण कि, तुम सब सिद्धान्तके

कुहावभावनिरताःकुशीलास्स्मरविह्वलाः ॥ राजसंगरतानित्यंस्वस्वामिविमुखास्तथा ॥३३॥ तनयामातृपित्रोश्चभक्तिहीनादुराशयाः ॥
अविद्यापाठकानित्यंरोगग्रसितदेहकाः ॥३४॥ एतेषांनष्टबुद्धीनांस्वधर्मत्यागशीलिनाम् ॥ परलोकेपीहलोकेकथंसूतगतिर्भवेत् ॥३५॥
इतिचिंताकुलंचित्तंजायतेसततंहिनः ॥ परोपकारसदृशोनास्तिधर्मोपरः खलु ॥ ३६ ॥ लघूपायेनयेनैषांभवेत्सद्योघनाशनम् ॥ सर्व्व
सिद्धान्तवित्त्वंहिकृपयातद्वदाधुना ॥ ३७ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषांमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ मनसाशंकरंस्मृत्वा
सूतःप्रोवाचतान्मुनीन् ॥ ३८ ॥ इतिश्रीशैवेमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांमुनिप्रश्नवर्णनोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ सूतउवाच ॥
साधुपृष्टंसाधवोवस्त्रैलोक्यहितकारकम् ॥ गुरुंस्मृत्वाभवत्स्नेहाद्वक्ष्येतच्छृणुतादरात् ॥ १ ॥ वेदांतसारसर्वस्वंपुराणंशैवमुत्तमम् ॥
सर्वाघौघोद्धारकरंपरत्रपरमार्थदम् ॥ २ ॥ कलिकल्मषविध्वंसियस्मिञ्छिवयशःपरम् ॥ विजृम्भतेसदाविप्राश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३ ॥

जाननेवाले हो ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले ज्ञानात्मावाले उन मुनियोंके यह वचन सुन सूतजी मनसे शिवजीको स्मरणकर उन मुनियोंसे बोले ॥ ३८ ॥
॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां मुनिप्रश्नवर्णनोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे महात्माओ ! आपने अच्छा पूछा है
इसमें जगत्का मङ्गल होगा मैं गुरुको स्मरणकर तुम्हारे स्नेहसे कहताहूँ आदरसे सुनो ॥ १ ॥ जो वेदान्तसारका सर्वस्व शिवपुराण है वह सब पापके
समूहका उद्धार करनेवाला दूसरे लोकोंमें परमार्थका देनेवाला है ॥ २ ॥ जिसमें शिवका यश है वह कलिके पापोंका नष्ट करनेवाला है । हे ब्राह्मणो ! यह

पुराण सदा चारों वर्गका फल देनेवाला स्थित है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस पुराणके अध्ययनमात्रसे अन्तमें प्राणी सबसे उत्तम सद्गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ॥ ४ ॥ तबहींतक ब्रह्महत्यादि पाप विद्यमान रहते हैं जबतक जगत्में आश्चर्यरूप शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ ५ ॥ तभीतक कलिके महाउत्पात निर्भय चलतेहैं अहो जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होता है ॥ ६ ॥ तभीतक सब शास्त्र परस्पर विवाद करतेहैं जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होताहै ॥ ७ ॥ तभीतक शिवका स्वरूप महान् पुरुषोंकोभी दुर्बोध दीखता है जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ ८ ॥ तभीतक

तस्याध्ययनमात्रेणपुराणस्यद्विजोत्तमाः ॥ सर्वोत्तमस्यशैवस्ययास्यंतितेसुसद्गतिम् ॥ ४ ॥ तावद्विजृंभतेपापंब्रह्महत्यापुरस्सरम् ॥ याव
च्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥५॥ तावत्कलिमहोत्पाताः संचरिष्यंतिनिर्भयाः ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ६ ॥
तावत्सर्वाणिशास्त्राणिविवदंतिपरस्परम् ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ७ ॥ तावत्स्वरूपंदुर्बोधंशिवस्यमहतामपि ॥ याव
च्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ८ ॥ तावद्यमभटाःक्रूराःसंचारिष्यंतिनिर्भयाः ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ९ ॥
तावत्सर्वपुराणानिप्रगर्जंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ १० ॥ तावत्सर्वाणितीर्थानिविवदंतिमहीतले ॥ याव
च्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ११ ॥ तावत्सर्वाणिमंत्राणिविवदंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १२ ॥
तावत्सर्वाणिक्षेत्राणिविवदंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १३ ॥ तावत्सर्वाणिपीठानिविवदंतिमहीतले ॥ याव
च्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १४ ॥ तावत्सर्वाणिदानानिविवदंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १५ ॥

यमराजके क्रूर योद्धा निर्भय विचरते हैं जबतक आश्चर्यरूप शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ ९ ॥ तभीतक दूसरे पुराण पृथ्वीमें गर्जतेहैं जबतक आश्चर्यरूप शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ १० ॥ तभीतक सब तीर्थ पृथ्वीमें विवाद करते हैं जबतक शिवपुराणका उदय नहीं होता है ॥ ११ ॥ तभीतक सब मन्त्र पृथ्वीमें विवाद करते हैं, जबतक शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ १२ ॥ तभीतक सब क्षेत्र पृथ्वीमें विवाद करते हैं, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीमें उदय नहीं होता ॥ १३ ॥ तभीतक सब पीठ पृथ्वीमें विवाद करते हैं जबतक शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ १४ ॥ तभीतक सब दान पृथ्वीमें

विवाद करते हैं जबतक आश्चर्यरूप शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ १५ ॥ तभीतक यह देवता पृथ्वीमें विवाद करतेहैं जबतक शिवपुराणका उदय नहीं होता ॥ १६ ॥ तभीतक सब सिद्धान्त पृथ्वीमें विवाद करते हैं जबतक शिवपुराणका पृथ्वीमें उदय नहीं होता ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस शिवपुराणके श्रवण कीर्तनसे जो फल होता है वह मैं सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सक्ता ॥ १८ ॥ हे पापरहित तौ भी मैं उसका कुछ माहात्म्य कहताहूं चित्तसे सावधान होकर सुनो जो मुझसे व्यासजीने कहा है ॥ १९ ॥ इस शिवपुराणका एक श्लोक अथवा आधा श्लोक जो भक्तिसे सुनते हैं वह उसी समय सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥२०॥ जो इस शिवपुराणको प्रतिदिन आलस्य रहित होकर यथाशक्ति भक्तिसे पढ़तेहैं वह जीवन्मुक्त होतेहैं ॥ २१ ॥ इस शिवपुराणकी जो सदा भक्तिसे पूजा करते हैं वे दिन दिन अश्वमेधके फलको प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ यह जो शिवपुराणहै इसके साधारण पद अक्षर जोकि दूसरेसे श्रवण करताहै वह मत्त भी पातकसे छूटजाता है ॥ २३ ॥ जो इस शिवपुराणके निकट हो नमस्कार करते हैं वह सब देवताओंके अर्चनको प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ २४ ॥ यह शिवपुराण लिखकर जो शिवभक्तोंके निमित्त देताहै उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २५ ॥ शास्त्रोंके अध्ययन करने आप वेदोंके व्याख्यान

तावत्सर्वेंचतेदेवाविवदंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १६ ॥ तावत्सर्वेंचसिद्धान्ताविवदंतिमहीतले ॥ यावच्छिवपुराणंहिनोदेष्यतिमहीतले ॥ १७ ॥ अस्यशैवपुराणस्यकीर्तनश्रवणाद्द्विजाः ॥ फलंवक्तुंनशक्नोमिकात्स्न्र्येनमुनिसत्तमाः ॥१८॥ तथापितस्यमाहात्म्यंवक्ष्येकिंचित्तुवोनघाः ॥ चित्तमाधायशृणुतव्यासेनोक्तंपुरामम ॥ १९ ॥ एतच्छिवपुराणंहिश्लोकंश्लोकार्द्धमेवच ॥ यःपठेद्भक्तिसंयुक्तस्सपापान्मुच्यतेक्षणात् ॥ २० ॥ एतच्छिवपुराणंहियःप्रत्यहमतंद्रितः ॥ यथाशक्तिपठेद्भक्त्यासजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ॥ २१ ॥ एतच्छिवपुराणंहियोभक्त्यार्चयतेसदा ॥ दिनेदिनेश्वमेधस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २२ ॥ एतच्छिवपुराणंयस्साधारणपदेच्छया ॥ अन्यतःशृणुयात्सोपिमत्तोमुच्येतपातकात् ॥ २३ ॥ एतच्छिवपुराणंयोनमस्कुर्याददूरतः ॥ सर्वदेवार्चनफलंसप्राप्नोतिनसंशयः ॥ २४ ॥ एतच्छिवपुराणंवैलिखित्वापुस्तकंस्वयम् ॥ योदद्याच्छिवभक्तेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २५ ॥ अधीतेषुचशास्त्रेषुवेदेषुव्याकृतेषुच ॥ यत्फलंदुर्लभंलोकेतत्फलंतस्यसंभवेत् ॥ २६ ॥

करनेपर जो फल लोकमें दुर्लभ है उसका फल उसको होता है ॥ २६ ॥ इस शिवपुराणको चतुर्दशीके दिन व्रत रहकर जो सभामें व्याख्यान करते हैं वह उत्तम हैं ॥ २७ ॥ जो गायत्रीके प्रत्येक अक्षरके पुरश्चरणका फल है वह इससे मिलता है उससे यहां सब भोगोंको भोग अन्तमें मुक्त होजाताहै ॥ २८ ॥ जो चौदशके दिन व्रती होकर रात्रिमें जागरण करते हैं जो इसे पढ़ते और सुनते हैं मैं उनके पुण्यका फल कहताहूं ॥ २९ ॥ कुरुक्षेत्रादि अनेक पुण्यस्थानोंमें सूर्यग्रहणमें अपने तुल्य धन ॥ ३० ॥ कथा कहनेवाले ब्राह्मणोंको देनेसे जो फल होताहै वह फल उसे अवश्य प्राप्त होताहै जो कथा सुन्तेहैं इसमें

एतच्छिवपुराणंहिचतुर्दश्यामुपोषितः ॥ शिवभक्तसभायांयोव्याकरोतिसउत्तमः ॥ २७ ॥ प्रत्यक्षरंतुगायत्रीपुरश्चर्य्याफलंलभेत् ॥
इहभुक्त्वाखिलान्कामानंतेनिर्वाणतांव्रजेत् ॥२८॥ उपोषितश्चतुर्दश्यांरात्रौजागरणान्वितः ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापितस्यपुण्यंवदाम्यहम् ॥
॥ २९ ॥ कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ॥ आत्मतुल्यधनंसूर्य्यग्रहणेसर्वतोमुखे ॥ ३० ॥ विप्रेभ्योव्यासमुख्येभ्योदत्त्वायत्फ
लमश्नुते ॥ तत्फलंसभवेत्तस्यसत्यंसत्यंनसंशयः ॥ ३१ ॥ एतच्छिवपुराणंहिगायतेयोप्यहर्निशम् ॥ आज्ञांतस्यप्रतीक्षेरन्देवाइन्द्रपुरो
गमाः ॥ ३२ ॥ एतच्छिवपुराणंयःपठञ्छृण्वन्हिनित्यशः ॥ यद्यत्करोतिसत्कर्मतत्कोटिगुणितंभवेत् ॥३३॥ समाहितःपठेद्यस्तुतत्रश्री
रुद्रसंहिताम् ॥ सब्रह्मघ्नोपिपूतात्मात्रिभिरेवदिनैर्भवेत् ॥ ३४ ॥ तांरुद्रसंहितांयस्तुभैरवप्रतिमांतिके ॥ त्रिःपठेत्प्रत्यहंमौनीसकामान
खिलाँल्लभेत् ॥ ३५ ॥ तांरुद्रसंहितांयस्तुसपठेद्वटबिल्वयोः ॥ प्रदक्षिणांप्रकुर्वाणोब्रह्महत्यानिवर्तते ॥ ३६ ॥ कैलाससंहितातत्रततो
पिपरमास्मृता ॥ ब्रह्मस्वरूपिणीसाक्षात्प्रणवार्थप्रकाशिका ॥ ३७ ॥

सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥ इस पुराणको जो दिन और रात पढ़तेहैं उनकी आज्ञाकी इंद्रादिदेवता प्रतीक्षा करतेहैं ॥ ३२ ॥ जो इस शिवपुराणको नित्य पढ़ते सुन्तेहैं वे जो सत्कर्म करतेहैं उसका कोटिगुणा फल होताहै ॥ ३३ ॥ इसकी रुद्रसंहिताको जो सावधान होकर पढ़ताहै वह तीन दिनमें ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ ३४ ॥ इसकी रुद्रसंहिताको जो भैरवजीकी प्रतिमाके निकट प्रतिदिन तीनबार मौन होकर पढ़ताहै वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होजाताहै ॥ ॥ ३५ ॥ अथवा रुद्रसंहिताको जो वट और बिल्वकी प्रदक्षिणाकरके पढ़ताहै उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त होतीहै ॥ ३६ ॥ इससे परे कैलाससंहिताका

और भी अधिक माहात्म्यहै जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी ॐकारके अर्थकी प्रकाश करनेवाली है ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! कैलाससंहिताका सम्पूर्ण माहात्म्य शिवजी, आधा व्यासजी और उससे आधा मैं जान्ताहूँ ॥ ३८ ॥ सब तौ कह नहीं सकता उसमेंसे कुछ कहताहूँ जिसके जान्नेसे तत्काल चित्तशुद्धि होती है ॥ ३९ ॥ हे मुनियो ! रुद्रसंहिता लोकमें जिस पापको नाश नहीं करती वह तौ ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलता ॥ ४० ॥ शिवने जो उपनिषद्रूपी समुद्रसे मथकर निकाली वह कुमारको अर्पण की जिसका ज्ञानामृत पान करनेसे प्राणी अमर होजाताहै ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्यादि पापोंकी निष्कृति करनेको उद्यत होकर इस संहिताको एक महीना पढ़कर प्राणी पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥ दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोजन, दुर्वचन आदिसे उत्पन्न हुआ पाप इस संहिताके पाठ करनेसे नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥ शिवालय, वा बेलपत्रके वनमें इस संहिताको जो भक्तिसे पढ़ताहै वह ऐसे फलको प्राप्त होता है जो कहा नहीं जाता ॥ ४४ ॥ भक्तिसे उस संहिताको पढ़ता हुआ श्राद्धमें ब्राह्मणोंको जिमावै तौ उसके सब पितर शिवके लोकको चले जातेहैं ॥ ४५ ॥ जो चतुर्दशीके दिन निराहार होकर इस संहिताको पढ़ता है और जो बिल्वमूलमें पढ़ता है वह साक्षात् शिवरूप होकर पूजित होता है और देवता उसकी पूजा करतेहैं ॥ ४६ ॥ और दूसरी संहिता भी सब कामना और फलकी देनेहारी है दोनों श्रेष्ठ हैं जिसमें शिवजीकी श्रेष्ठ लीलाका वर्णन है ॥ ४७ ॥

कैलाससंहितायास्तुमाहात्म्यंवेत्तिशंकरः ॥ कृत्स्नंतदर्द्धंव्यासश्चतदर्द्धंवेद्म्यहंद्विजाः ॥ ३८ ॥ तत्रकिंचित्प्रवक्ष्यामिकृत्स्नंवक्तुंनशक्यते ॥
यज्ज्ञात्वातत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥३९॥ ननाशयतियत्पापंसारौद्रीसंहिताद्विजाः ॥ तन्नपश्याम्यहंलोकेमार्गमाणोपिसर्वदा ॥
॥ ४० ॥ शिवेनोपनिषत्सिंधुमन्थनोत्पादितांमुदा ॥ कुमारायार्पितांतांवैसुधांपीत्वाऽमरोभवेत् ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानांनिष्कृतिंकर्तु
मुद्यतः ॥ मासमात्रंसंहितांतांपठित्वामुच्यतेततः ॥ ४२ ॥ दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसंभवम् ॥ पापंसकृत्कीर्तनेनसंहितासावि
नाशयेत् ॥ ४३ ॥ शिवालयेबिल्ववनेसंहितांतांपठेत्तुयः ॥ सतत्फलमवाप्नोतियद्वाचोपिनगोचरे ॥ ४४ ॥ संहितांतांपठन्भक्त्यायः
श्राद्धेभोजयेद्द्विजान् ॥ तस्ययेपितरःसर्वेयांतिशंभोःपरंपदम् ॥ ४५ ॥ चतुर्दश्यांनिराहारोयःपठेत्संहितांचताम् ॥ बिल्वमूलेशिवः
साक्षात्सदेवैश्चप्रपूज्यते ॥ ४६ ॥ अन्यापिसंहितातत्रसर्वकामफलप्रदा ॥ उभेविशिष्टेविज्ञेयेलीलाविज्ञानपूरिते ॥ ४७ ॥

यह शिवपुराण वेदसम्मत कहागयाहै यह ब्रह्मसंमित पुराण पहले शिवजीने बनायाथा ॥ ४८ ॥ विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता,
मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता ॥ ४९ ॥ कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता, धर्मसंहिता इतनी संहिता इस
पुराणमेंहैं ॥ ५० ॥ यह बारह संहिता महापुण्यरूपहैं हे ब्राह्मणो ! सुनो हम उनकी संख्या कहतेहैं ॥ ५१ ॥ विद्येश्वरसंहिता १०००० इतनीही विनाय
कसंहिताहै, उमासंहिता ८००० मातृसंहिता ८००० ॥ ५२ ॥ एकादशरुद्रसंहिता १३००० कैलाससंहिता ६००० शतरुद्रसंहिता ३००० ॥ ५३ ॥

तदिदंशैवमाख्यातंपुराणंवेदसंमितम् ॥ निर्मितंतच्छिवेनैवप्रथमंब्रह्मसंमितम् ॥ ४८ ॥ विद्येशंचतथारौद्रंवैनायकमथौमिकम् ॥ मात्रंरुद्रै
कादशकंकैलासंशतरुद्रकम् ॥ ४९ ॥ कोटिरुद्रसहस्राद्यंकोटिरुद्रंतथैवच ॥ वायवीयंधर्मसंज्ञंपुराणमितिभेदतः ॥ ५० ॥ संहिताद्वादश
मितामहापुण्यतरामता ॥ तासांसंख्यांब्रुवेविप्राःशृणुतादरतोखिलम् ॥ ५१ ॥ विद्येशंदशसाहस्रंरुद्रंवैनायकंतथा ॥ औमंमातृपुराणाख्यं
प्रत्येकाष्टसहस्रकम् ॥ ५२ ॥ त्रयोदशसहस्रंहिरुद्रैकादशकंद्विजाः ॥ षट्सहस्रंचकैलासंशतरुद्रंतदर्द्धकम् ॥ ५३ ॥ कोटिरुद्रंत्रिगुणितमे
कादशसहस्रकम् ॥ सहस्रकोटिरुद्राख्यमुदितंग्रन्थसंख्यया ॥ ५४ ॥ वायवीयंखाब्धिशतंधर्मंरविसहस्रकम् ॥ तदेवंलक्षसंख्याकंशैवसं
ख्याविभेदतः ॥ ५५ ॥ व्यासेनतत्तुसंक्षिप्तंचतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ शैवंतत्रचतुर्थंवैपुराणंसप्तसंहितम् ॥ ५६ ॥ शिवेसंकल्पितंपूर्वंपुराणं
ग्रन्थसंख्यया ॥ शतकोटिप्रमाणंहिपुरासृष्टौसुविस्मृतम् ॥ ५७ ॥ व्यस्तेष्टादशधाचैवपुराणेद्वापरादिषु ॥ चतुर्लक्षेणसंक्षिप्तेकृतेद्वैपायना
दिभिः ॥ ५८ ॥ प्रोक्तंशिवपुराणंहिचतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ श्लोकानांसंख्ययासप्तसंहितंब्रह्मसंमितम् ॥ ५९ ॥

कोटिरुद्रसंहिता ९००० सहस्रकोटिरुद्रसंहिता ११००० वायवीयसंहिता १०००० धर्मसंहिता १२००० बारहसहस्र इस संख्यासे यह शिवपुराण एकलक्ष
श्लोक था तब व्यासजीने संक्षेपकर इसे चौवीससहस्र किया. यह सातसंहितायुक्त व्यासजीने चौथा शिवपुराण बनाया इससे पूर्व तीन दूसरे पुराण हैं ॥ ५४ ॥
॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और सृष्टिके प्रारम्भमें यह पुराण शिवने सौकोटि श्लोकोंमें कहाथा परन्तु वह विस्मृत होगया ॥ ५७ ॥ फिर व्यासादिने द्वापरकी आदिमें
उनके अठारह भेदकरके चारलक्ष श्लोकोंमें संक्षिप्त किये ॥ ५८ ॥ उसमें शिवपुराणमें चौवीस सहस्र श्लोक हैं और ब्रह्मसम्मित इसमें सात संहिता हैं ॥ ५९ ॥

विद्येश्वराख्यातत्राद्यारौद्रीज्ञेयाद्वितीयिका ॥ तृतीयाशतरुद्राख्याकोटिरुद्राचतुर्थिका ॥६०॥ पंचमीचैवमौमाख्यापष्ठीकैलाससंज्ञिका ॥ सप्तमीवायवीयाख्यासप्तैवंसंहितामताः ॥ ६१ ॥ ससप्तसंहितंदिव्यंपुराणंशिवसंज्ञकम् ॥ वरीवर्तिब्रह्मतुल्यंसर्वोपरिगतिप्रदम् ॥ ६२ ॥ एतच्छिवपुराणंहिसप्तसंहितमादरात् ॥ परिपूर्णंपठेद्यस्तुसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ६३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानिच ॥ एतच्छिवपुराणस्यनार्हंत्यल्पांकलामपि ॥ ६४ ॥ शैवंपुराणममलंशिवकीर्तितंतद्व्यासेनशैवप्रवणेनचसंगृहीतम् ॥ संक्षेपतस्सकलजीवगुणोपकारंतापत्रयघ्नमतुलंशिवदंसतांहि ॥ ६५ ॥ विकैतवोधर्मइहप्रगीतोवेदान्तविज्ञानमयःप्रधानः ॥ अमत्सरांतर्बुधवेद्यवस्तुसत्क्लप्तमत्रेवत्रिवर्गयुक्तम् ॥ ६६ ॥ शैवंपुराणतिलकंखलुसत्पुराणं वेदांतवेदविलसत्परवस्तुगीतम् ॥ योवैपठेच्चशृणुयात्परमादरेणशंभुप्रियस्सहिलभेत्परमांगतिंवै ॥ ६७ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

उनका क्रम यह है—विद्येश्वर पहली, रुद्र दूसरी, शतरुद्र तीसरी, कोटिरुद्र चौथी संहिता है ॥ ६० ॥ पाँचवी उमा, छठी कैलास, और सातवीं वायवीय संहिता इसप्रकार सात संहिता हैं ॥ ६१ ॥ यह दिव्य शिवपुराण सात संहितायुक्त सर्वोपरि विराजितहै, सबसे सुन्दर गति देता है और ब्रह्मतुल्यहै ॥ ६२ ॥ इस शिवपुराणकी सातसंहिता जो पूरी आदरसे पढ़ताहै वह जीवन्मुक्त होताहै ॥ ६३ ॥ श्रुति स्मृति पुराण इतिहास अनेक शास्त्र इस शिवपुराणकी अल्प कलाको भी प्राप्त नहीं होते ॥ ६४ ॥ यह निर्मल पुराण शिवजीने कहा है और शिवधर्ममें चतुर व्यासजीने इसे संग्रह किया है, सम्पूर्ण जीवोंके उपकारके निमित्त संक्षेप किया है. यह तीनों तापका दूर करनेवाला और सत्पुरुषोंको मङ्गल देनेवाला है ॥ ६५ ॥ इसमें छल रहित धर्मका कीर्तन किया है, यह वेदान्तके विज्ञानसे युक्त और प्रधान है. यह मत्सरहीन विद्वानोंकी जानने योग्य वस्तु है और सत्पुरुषोंके कृत्यसे युक्त त्रिवर्गका देनेवाला है ॥६६॥ यह शिवपुराण सत्पुराणोंका तिलकरूप है इसमें वेदान्त और वेदमें होनेवाली सद्वस्तुका वर्णन किया है जो इसको आदरसे पढ़ता सुनता है वह शिवका प्रिय हो परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूतजीके वचन सुन वे परमऋषि बोले आप हमको वेदान्तसारका सर्वस्वरूप पुराण सुनाइये ॥ १ ॥ यह श्रेष्ठ मुनियोंके वचन सुन सूतजी महाप्रसन्नहो
शिवजीका स्मरण करतेहुए कहने लगे ॥२॥ सूतजी बोले हे सम्पूर्ण ऋषियो ! सुनो मैं अनामय शिवजीको प्रणाम कर वेदोंका सार पुराणोंमें श्रेष्ठ शिवपुराण
कहताहूं ॥ ३ ॥ जिसमें प्रीतिसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य वर्णन कियाहै ॥ ४ ॥ और विशेषकरकै वेदान्तसे जान्ने योग्य सद्वस्तुवर्णन कीहै ॥ ५ ॥ सूतजी
बोले हे ऋषियो ! वेदका साररूप पुराण सुनो—पूर्व समयमें महान् इस कल्पके वारंवार बीतनेपर ॥ ६ ॥ इस श्वेतवाराह कल्पके होने और सृष्टि उत्पन्न

व्यासउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्सौतंप्रोचुस्तेपरमर्षयः ॥ वेदान्तसारसर्वस्वंपुराणंश्रावयाद्भुतम् ॥१॥ इतिश्रुत्वामुनीनांसवचनंसुप्रहर्षितः ॥
संस्मरञ्छंकरंसूतःप्रोवाचमुनिसत्तमान् ॥२॥ सूतउवाच ॥ शृण्वंतुऋषयःसर्वेस्मृत्वाशिवमनामयम् ॥ पुराणप्रवणंशैवंपुराणंवेदसारजम् ॥
॥ ३ ॥ यत्रगीतंत्रिकंप्रीत्याभक्तिज्ञानविरागकम् ॥ ४ ॥ वेदांतवेद्यंसद्वस्तुविशेषेणप्रवर्णितम् ॥५॥ सूतउवाच ॥ शृण्वंतुऋषयःसर्वेपुराणं
वेदसारजम् ॥ पुराकालेनमहताकल्पेऽतीतेपुनःपुनः ॥ ६ ॥ अस्मिन्नुपस्थितेकल्पेप्रवृत्तेसृष्टिकर्मणि ॥ मुनीनांषट्कुलीनानांब्रुवतामितरे
तरम् ॥ ७ ॥ इदंपरमिदंनेतिविवादःसुमहानभूत् ॥ तेऽभिजग्मुर्विधातारंब्रह्माणंप्रष्टुमव्ययम् ॥ ८ ॥ वाग्भिर्विनयगर्भाभिःसर्वेप्रांजलयो
ऽब्रुवन् ॥ त्वंहिसर्वजगद्धातासर्वकारणकारणम् ॥ ९ ॥ कःपुमान्सर्वतत्त्वेभ्यःपुराणःपरतःपरः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यतोवाचोनिवर्तंतेअप्रा
प्यमनसासह ॥ १० ॥ यस्मात्सर्वमिदंब्रह्मविष्णुरुद्रेंद्रपूर्वकम् ॥ सहभूतेंद्रियैःसर्वैःप्रथमंसप्रसूयते ॥ ११ ॥

होनेमें और त्रिवेणीके निकट षट्कुलमें उत्पन्न हुए मुनियोंके परस्पर वार्ता करनेसे ॥७॥ यही परहै यही ब्रह्महै ऐसा नहीं इसप्रकार महाविवाद होने लगा
तब वे सब अविनाशी ब्रह्माके निकट यह प्रश्न पूछनेको गये ॥ ८ ॥ विनययुक्त वाणीसे वे सब हाथ जोड़कर बोले तुमही सब जगतके विधाता सबकारणके
कारण हो ॥ ९ ॥ वह कौन है जो पुराण है और प्रकृति तथा महत्से उत्पन्न हुए तत्त्वोंसे परे है जिसको मन वाणी नहीं पहुँच सक्तीं. ब्रह्माजी बोले
जिसको प्राप्त न होकर मन सहित वाणी निवृत्त होजातीहै ॥ १० ॥ जिससे यह सब ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र भूतेन्द्रियोंके सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥

एषदेवोमहादेवःसर्वज्ञोजगदीश्वरः ॥ अयंतुपरयाभक्त्यादृश्यतेनाऽन्यथाक्वचित् ॥ १२ ॥ रुद्रोहरिर्हरश्चैवतथान्येचसुरेश्वराः ॥ भक्त्यापरमयातस्यनित्यंदर्शनकांक्षिणः ॥ १३ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनशिवेभक्त्याविमुच्यते ॥ प्रसादाद्देवताभक्तिःप्रसादोभक्तिसंभवः ॥ यथेहांकुरतोबीजंबीजतोवायथांकुरः ॥ १४ ॥ तस्मादीशप्रसादार्थंयूयंगत्वाभुवंद्विजाः ॥ दीर्घसत्रंसमाकृध्वंयूयंवर्षसहस्रकम् ॥ १५ ॥ अमुष्यैवाध्वरेशस्यशिवस्यैवप्रसादतः ॥ वेदोक्तविद्यासारंतुज्ञायतेसाध्यसाधनम् ॥ १६ ॥ मुनयऊचुः ॥ अथकिंपरमंसाध्यंकिंवातत्साधनंपरम् ॥ साधकःकीदृशस्तत्रतदिदंब्रूहितत्त्वतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साध्यंशिवपदप्राप्तिःसाधनंतस्यसेवनम् ॥ साधकस्तत्प्रसादाद्योऽनित्यादिफलनिःस्पृहः ॥ १८ ॥ कर्मकृत्वातुवेदोक्तंतदर्पितमहाफलम् ॥ परमेशपदप्राप्तिःसालोक्यादिक्रमात्ततः ॥ १९ ॥ तत्तद्भक्त्यनुसारेणसर्वेषांपरमंफलम् ॥ तत्साधनंबहुविधंसाक्षादीशेनबोधितम् ॥ २० ॥

वही देव महादेव सर्वज्ञ और जगत्के ईश्वर हैं. यह शंकर परमभक्तिसे दीखते हैं अन्यथा इनका दर्शन नहीं होता ॥ १२ ॥ रुद्र हरि हर और भी देवेश्वर परमभक्तिसे उनके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ १३ ॥ बहुत कहनेसे क्या है ।शिवमें भक्ति करनेसे यह प्राणी मुक्त होजाता है प्रसादसे देवताकी भक्ति और भक्तिसे प्रसादकी प्राप्ति होती है. जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस कारण तुम शिवजीके प्रसन्न करनेको पृथिवीमें जाकर सहस्रवर्षके दीर्घ सत्रका अनुष्ठान करो ॥ १५ ॥ इसही यज्ञमें प्रभु शिवजीकी प्रसन्नतासे वेदोक्त विद्याका सार साध्यका साधक विदित होजायगा ॥ १६ ॥ मुनि बोले परम साध्य क्या है और उसका साधन क्या है और उसका साधक किस प्रकारका होना चाहिये सो आप हमसे तत्त्वरूप वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले साध्य ।शिवपदकी प्राप्ति और उनकी सेवा करना साधन है, और नित्य नैमित्तिक आदि कर्मोंके फल स्वर्गादिकी स्पृहा न करनेवाला उनके प्रसादसे साधक होताहै ॥ १८ ॥ वेदोक्त कर्म करकै उसका फल जो परमपदकी प्राप्तिके निमित्त शिवको समर्पण कियाजाता है उसके क्रमसे सायुज्यादि मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ उस उस भक्तिके अनुसार सबको वह परमफल प्राप्त होता है, बहुत प्रकारसे उसके साधन साक्षात्

शिवजीने कथन किये हैं ॥ २० ॥ उसका संक्षप करकै सारमात्र मैं तुमसे वर्णन करताहूँ कानोंसे उनके गुण सुनने, वाणीसे कीर्तन करनें ॥ २१ ॥ और मनसे उनका मनन करना यही महासाधन कहलाता है, महेश्वरका श्रवण कीर्तन और मनन करना चाहिये ॥ २२ ॥ "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः" इति । यह श्रुति इसमें प्रमाण है इससे परे और साधन नहीं. इसकारण सब प्रकार एक शिवपरायणताके साध्यको प्राप्त हो ॥ २३ ॥ और वेदमें जो आत्माको देखे और सुने ऐसा प्रथम देखकर पीछे श्रवण करनेको कहा तौ बिना प्रथम देखे कैसे सुने? इसपर कहते हैं कि, लोककी प्रवृत्ति नेत्रोंसे देखकर उस पदार्थमें होती है परन्तु वह सर्वत्र अप्रत्यक्षहै इसकारण श्रवणसेही प्रथम आरम्भ करै ॥ २४ ॥ और बुद्धिमान् को उचित है कि, प्रथम गुरुमुखसे उसका श्रवण करकै पीछे कीर्तन और मननको साधन करै ॥ २५ ॥ क्रमसे जब मननका साधन होगा तब शिवयोगकी प्राप्ति होनेसे क्रमसे शिवकी सालोक्यादिमुक्ति प्राप्त होगी ॥ २६ ॥ प्रथम सम्पूर्ण अंगकी व्याधि और पश्चात् सर्वानन्दभी ब्रह्ममें लय होजाता है जबतक अभ्यास नहीं तबतक साधनमें कष्ट है पीछे सब प्रकार आदि अन्तमें मंगल होता है ॥ २७ ॥ ॥ इति शिवमहापुराणे वियेश्वरसंहिताभाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनि बोले हे ब्रह्माजी ! मनन और श्रवण किस प्रकारसे होताहै और कीर्तन किसप्रकार कियाजाता है सो आप यथार्थ कीर्तन

संक्षिप्यतत्रवःसारंसाधनंप्रब्रवीम्यहम् ॥ श्रोत्रेणश्रवणंतस्यवचसाकीर्तनंतथा ॥ २१ ॥ मनसामननंतस्यमहासाधनमुच्यते ॥ श्रोतव्यः
कीर्तितव्यश्चमन्तव्यश्चमहेश्वरः ॥ २२ ॥ इतिश्रुतिप्रमाणंनःसाधनेनाऽमुनापरम् ॥ साध्यंव्रजतसर्वार्थसाधनैकपरायणाः ॥ २३ ॥
प्रत्यक्षंचक्षुषादृष्ट्वातत्रलोकःप्रवर्तते ॥ अप्रत्यक्षंहिसर्वत्रज्ञात्वाश्रोत्रेणचेष्टते ॥ २४ ॥ तस्माच्छ्रवणमेवादौश्रुत्वागुरुमुखाद् बुधः ॥ ततः
संसाधयेदन्यत्कीर्तनंमननंसुधीः ॥ २५ ॥ क्रमान्मननपर्यंतेसाधनेऽस्मिन्सुसाधिते ॥ शिवयोगोभवेत्तेनसालोक्यादिक्रमाच्छनैः ॥
॥ २६ ॥ सर्वांगव्याधयःपश्चात्सर्वानंदश्चलीयते ॥ अभ्यासात्क्लेशमेतद्वैपश्चादाद्यंतमंगलम् ॥ २७ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे विद्ये
श्वरसंहितायांसाध्यसाधनखंडेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनयऊचुः ॥ मननंकीदृशंब्रह्मञ्छ्रवणंचापिकीदृशम् ॥ कीर्तनंवाकथंतस्यकी
र्तयैतद्यथायथम् ॥ १ ॥

करिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले पूजा जप ईश्वरके गुणरूप विलास और नामोंसे तथा युक्तिसे जो मनका शुद्ध करना है वही मनन ईश्वरकी कृपादृष्टिसे प्राप्त होता है,
यही सब श्रेष्ठ साधनोंमें मुख्य है॥ २॥गान करकै वैदिक शब्दकरकै और भाषामें शंभुके प्रताप गुणरूप और नामोंका विलास और मनोहर रसीली वाणीसे जो
इनकी स्तुति करीजाती है इसका नाम कीर्तन है, यह मध्यसाधन है ॥ ३ ॥ जिस किसी कारणसे शिवमाहात्म्यसूचक शब्दसमूह जहां कहीं श्रवणेन्द्रियगोचर
होता है, और जो स्त्रीक्रीड़ाके समान शिवचारित्र श्रवणमेंही नित्य दृढ़ रमण करता है, उसको पंडितोंने श्रवण कहा है, यह जगत्प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ सत्संगतिसे

ब्रह्मोवाच ॥ पूजाजपेशगुणरूपविलासनाम्नांयुक्तिप्रियेणमनसापरिशोधनंयत् ॥ तत्संततंमननमीश्वरदृष्टिलभ्यंसर्वेषुसाधनवरेष्वपिमुख्य
मुख्यम् ॥ २ ॥ गीतात्मनाश्रुतिपदेनचभाषयावाशंभुप्रतापगुणरूपविलासनाम्नाम् ॥ वाचास्फुटंतुरसवत्स्तवनंयदस्यतत्कीर्तनंभवतिसा
धनमत्रमध्यम् ॥ ३ ॥ येनापिकेनकरणेनचशब्दपुंजंयत्रक्वचिच्छिवपरंश्रवणेंद्रियेण ॥ स्त्रीकेलिवद्दृढतरंप्रणिधीयतेयत्तद्वैबुधाःश्रवणमत्र
जगत्प्रसिद्धम् ॥ ४ ॥ सत्संगमेनभवतिश्रवणंपुरस्तात्संकीर्तनंपशुपतेरथतद्दृढंस्यात् ॥ सर्वोत्तमंभवतितन्मननंतदंतेसर्वंहिसंभवतिशंकर
दृष्टिपाते ॥ ५ ॥ सूतउवाच ॥ अस्मिन्साधनमाहात्म्येपुरावृत्तंमुनीश्वराः ॥ युष्मदर्थंप्रवक्ष्यामिशृणुध्वमवधानतः ॥ ६ ॥ पुराममगुरु
र्व्यासःपराशरमुनेःसुतः ॥ तपश्चचारसंभ्रांतःसरस्वत्यास्तटेशुभे ॥७॥ गच्छन्यदृच्छयातत्रविमानेनार्करोचिषा ॥ सनत्कुमारोभगवान्द
दर्शममदेशिकम् ॥ ८ ॥ ध्यानारूढःप्रबुद्धोसौददर्शतमजात्मजम् ॥ प्रणिपत्याहसंभ्रांतःपरंकौतूहलंमुनिः ॥ ९ ॥ दत्त्वार्घ्यमस्मैप्रददौ
देवयोग्यंचविष्टरम् ॥ प्रसन्नःप्राहतंप्रह्वंप्रभुर्गंभीरयागिरा ॥ १० ॥

प्रथम तौ श्रवण फिर पशुपतिके गुणोंका दृढ़तर कीर्तन होता है पीछे सर्वोत्तम मनन होता है परन्तु यह सब कुछ शिवजीकी कृपादृष्टिसेही होताहै ॥ ५ ॥
सूतजी बोले इस साधनमें हम एक पुराना इतिहास कहते हैं हे ऋषियो ! तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥ प्रथम पराशर मुनिके पुत्र हमारे गुरु व्यासजी
संभ्रान्त हो सरस्वतीके सुन्दर किनारेपर तप करने लगे ॥ ७ ॥ वहां अपनी इच्छासे सूर्यके समान कान्तिमान् विमानपर बैठे भगवान् सनत्कुमारजीको हमारे
गुरुने देखा ॥ ८ ॥ हमारे गुरुजीने ध्यानसे जागकर इन ब्रह्माजीके पुत्रकोभेजा और प्रणामकर परमकौतूहलसे मुनिने पूछा ॥ ९ ॥ अर्घ्य प्रदानकर देवता

ओंके योग्य आसन दिया और प्रसन्नहो सनत्कुमारजीने गंभीरवाणीसे कहा ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! क्या तुम सत्य वस्तु शिवतत्त्वका ध्यान करते हो जो ध्यान करनेवालेके कर्णगोचर (प्रत्यक्ष) होते हैं वह शिव तुम्हारे सहायक हैं फिर तुम किनके निमित्त तप करतेहौ ॥ ११ ॥ जब कुमारने ऐसा कहा तब मुनि अपने आशयको प्रगट करने लगे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; इनका वेदमार्गमें आदर है ॥ १२ ॥ और आपकी कृपासे मैंने लोकमें अनेकप्रकारसे इनकी स्थापना की है इसप्रकार मैं सबका गुरु भी हूं परन्तु ॥ १३ ॥ परमअद्वैत मुक्तिका ज्ञान मुझे उदय नहीं होता, मैं उसका कारण नहीं

सनत्कुमारउवाच ॥ सत्यंवस्तुमुनेदध्याःसाक्षात्करणगोचरः ॥ सशिवोथासहायोत्रतपश्चरसिकिंकृते ॥ ११ ॥ एवमुक्तःकुमारेणप्रोवाचस्वाशयंमुनिः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाश्चवेदमार्गेकृतादराः ॥ १२ ॥ बहुधास्थापितालोकेमयात्वत्कृपयातथा ॥ एवंभूतस्यमेप्येवंगुरुभूतस्यसर्वतः ॥ १३ ॥ मुक्तिसाधनकंज्ञानंनोदेतिपरमाद्भुतम् ॥ तपश्चरामिमुक्त्यर्थंनजानेतत्रकारणम् ॥ १४ ॥ इत्थंकुमारोभगवान्व्यासेनमुनिनार्थितः ॥ समर्थःप्राहविप्रेंद्रानिश्चयंमुक्तिकारणम् ॥ १५ ॥ श्रवणंकीर्तनंशंभोर्मननंचमहत्तरम् ॥ त्रयंसाधनमुक्तंचविद्यतेवेदसंमतम् ॥ १६ ॥ पुराहमथसंभ्रांतोह्यन्यसाधनसंभ्रमः ॥ अचलेमंदरेशैलेतपश्चरणमाचरम् ॥ १७ ॥ शिवाज्ञयाततःप्राप्तोभगवान्नंदिकेश्वरः ॥ समेदयालुर्भगवान्सर्वसाक्षीगणेश्वरः ॥ १८ ॥ उवाचमह्यंसस्नेहंमुक्तिसाधनमुत्तमम् ॥ श्रवणंकीर्तनंशंभोर्मननंवेदसंमतम् ॥ ॥ १९ ॥ त्रिकंचसाधनंमुक्तौशिवेनममभाषितम् ॥ श्रवणादित्रिकंब्रह्मन्कुरुष्वेतिमुहुर्मुहुः ॥ २० ॥

जानता इसकारण मुक्तिके निमित्त तप करताहूं ॥ १४ ॥ इसप्रकार जब व्यासजीने भगवान् सनत्कुमारसे कहा तब हे मुनियो ! उन समर्थने मुक्तिका कारण वर्णन किया कि ॥ १५ ॥ शिवजीका श्रवण कीर्तन मनन यह तीन महान् साधन मुक्तिके वेदसम्मत हैं ॥ १६ ॥ प्रथम मुझे भी अन्य साधनमें संभ्रम हुआथा तब मैं मन्दराचल पर्वतपर तप करने लगा ॥ १७ ॥ तब शिवजीकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वरजी वहां आये वह सबके साक्षी गणेश्वर महादयालु ॥ १८ ॥ मुझसे स्नेहपूर्वक मुक्तिके साधन कहने लगे. शिवजीका श्रवण कीर्तन और मनन ही वेदसम्मत है ॥ १९ ॥ यही तीन मुक्तिके साधन शिवजीने

मुझसे कहे हैं इसकारण हे ब्रह्मन् ! तुम यही तीनों साधन वारंवार करो ॥ २० ॥ इसप्रकार विधिसे सनत्कुमारजी कहकर विमानमें स्थित हुए परमस्थानको
चले गये ॥ २१ ॥ हे ऋषियो ! संक्षेपसे हमने यह तुम्हारे प्रति पहला वृत्तान्त वर्णन किया. ऋषिबोले हे सूतजी ! आपने मुक्तिके श्रवणादि तीन उपाय
हमसे कहे ॥ २२ ॥ जो इन तीनोंके करनेमें असमर्थहो वह किसप्रकार पापसे छूट सकता है किस कर्मसे बिना यत्नके मुक्ति होजातीहै ॥ २३ ॥
॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूतजी कहते हैं जो श्रवणादि तीनों कार्योंमें अशक्तहो वह शिवजीके

एवमुक्त्वाततोव्यासंसानुगोविधिनंदनः ॥ जगामस्वविमानेनपदंपरमशोभनम् ॥२१॥ एवमुक्तंसमासेनपूर्ववृत्तांतमुत्तमम् ॥ ऋषयऊचुः ॥
श्रवणादित्रयंसूतमुक्त्युपायस्त्वयेरितः ॥ २२ ॥ श्रवणादित्रिकेऽशक्तःकिंकृत्वामुच्यतेजनः ॥ अयत्नेनैवमुक्तिःस्यात्कर्मणाकेनहेतुना ॥
॥ २३ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखण्डेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतउवाच ॥ श्रवणादित्रिकेऽशक्तोलिंगबेरं
चशांकरम् ॥ संस्थाप्यनित्यमभ्यर्च्यतरेत्संसारसागरम् ॥ १ ॥ अपिद्रव्यंवहेद्देवयथाबलमवंचयन् ॥ अर्पयेल्लिंगबेरार्थमर्चयेदपिसं
ततम् ॥ २ ॥ मंडपंगोपुरंतीर्थमठंक्षेत्रंतथोत्सवम् ॥ वस्त्रंगंधंचमाल्यंचधूपंदीपंचभक्तितः ॥ ३ ॥ विविधान्नंचनैवेद्यमपूपव्यंजनैर्युतम् ॥
छत्रंध्वजंचव्यजनंचामरंचापिसांगकम् ॥ ४ ॥ राजोपचारवत्सर्वंधारयेल्लिंगबेरयोः ॥ प्रदक्षिणांनमस्कारंयथाशक्तिजपंतथा ॥ ५ ॥
आवाहनादिसर्गांतंनित्यंकुर्यात्सुभक्तितः ॥ इत्थमभ्यर्च्ययन्देवंलिंगेबेरेचशांकरे ॥ ६ ॥

लिंगबेरकी ही पूजा करै जो कोई शंकरकी मूर्ति बना स्थापन कर पूजन करै वह भी संसारके पार होजाता है ॥ १ ॥ वंचनारहित शिवजीके ऊपर शक्तिअनु
सार द्रव्य चढ़ावै और वे सब वस्तु बेरलिंगके ऊपर चढ़ाकर निरन्तर पूजा करै ॥ २ ॥ मण्डप निर्माण गोपुर तीर्थ मठ क्षेत्रमें गमन उत्सव वस्त्र गन्ध माला
धूप दीपसे भक्तिपूर्वक प्रसन्न करै ॥ ३ ॥ मालपुए सहित शिवजीको अनेक प्रकारके अन्न चढ़ावै छत्र ध्वजा व्यजन चमर आदिसे सांग पूजा करै ॥ ४ ॥
सब उपचार बेरलिंगके राजाके समान करै प्रदक्षिणा नमस्कार यथाशक्ति जप ॥ ५ ॥ आवाहनादि विसर्जनतक नित्य भक्तिपूर्वक करै. इसप्रकार लिंगबेरमें

देवदेव शंकरका पूजन करै ॥ ६ ॥ श्रवणादि छोड़कर जो भक्तिपूर्वक इस प्रकार शिवजीका पूजन करता है वह सिद्ध होजाताहै. लिंगबेरकी अर्चनासेही पहले महाजन मुक्त होगये हैं ॥ ७ ॥ मुनि बोले बेरमात्रमें तो सर्वत्र देवतागण पूजित होते हैं परन्तु लिंगबेरमें सर्वत्र शिवजी कैसे पूजित होते हैं ॥ ८ ॥ सूतजी बोले अहो मुनीश्वरो ! यह तुम्हारा प्रश्न महापवित्रहै और अद्भुत है इसके वक्ता महादेवही हैं दूसरा कोई नहीं ॥ ९ ॥ मैं शिवजीका कथन कहता हूं जो क्रमसे गुरुमुखसे सुना है. शिवही एक ब्रह्मरूप होनेसे निष्कल कहलाते हैं ॥ १० ॥ रूपी होनेसे वह सगुण होजाताहै इसकारण वह सगुण निर्गुण

सिद्धिमेतिशिवप्रीत्याहित्वापिश्रवणादिकम् ॥ लिंगबेरार्चनामात्रान्मुक्ताःपूर्वेमहाजनाः ॥ ७ ॥ मुनयऊचुः ॥ बेरमात्रेतुसर्वत्रपूज्यंतेदेवतागणाः ॥ लिंगेबेरेचसर्वत्रकथंसंपूज्यतेशिवः ॥ ८ ॥ सूतउवाच ॥ अहोमुनीश्वराःपुण्यंप्रश्नमेतन्महाद्भुतम् ॥ अत्रवक्तामहादेवोनान्योऽस्तिपुरुषःक्वचित् ॥ ९ ॥ शिवेनोक्तंप्रवक्ष्यामिक्रमाद्गुरुमुखाच्छ्रुतम् ॥ शिवैकोब्रह्मरूपत्वान्निष्कलःपरिकीर्तितः ॥ १० ॥ रूपित्वात्सकलस्तद्वत्तस्मात्सकलनिष्कलः ॥ निष्कलत्वान्निराकारंलिंगंतस्यसमागतम् ॥११॥ सकलत्वात्तथाबेरंसाकारंतस्यसंगतम् ॥ सकलाकलरूपत्वाद्ब्रह्मशब्दाभिधःपरः ॥ १२ ॥ अपिलिंगेचबेरेचनित्यमभ्यर्च्यतेजनैः ॥ अब्रह्मत्वात्तदन्येषांनिष्कलत्वंनहिक्वचित् ॥ १३ ॥ तस्मात्तेनिष्कलेलिंगेनाराध्यंतेसुरेश्वराः ॥ अब्रह्मत्वाच्चजीवत्वात्तथान्येदेवतागणाः ॥ १४ ॥ तूष्णींसकलमात्रत्वादर्च्यंतेबेरमात्रके ॥ जीवत्वंशंकरान्येषांब्रह्मत्वंशंकरस्यच ॥ १५ ॥ वेदांतसारसंसिद्धंप्रणवार्थेप्रकाशनात् ॥ एवमेवपुरापृष्टोमंदरेनंदिकेश्वरः ॥ १६ ॥

कहाते हैं. निष्कल होनेसे वह निराकार है लिंगमें उनकी प्राप्ति है ॥ ११ ॥ और सगुण होनेसे साकार बेररूप हैं यह सगुण निर्गुणरूप होनेसे शब्द ब्रह्म नामसे सबसे परे हैं ॥ १२ ॥ लिंग और बेरमें प्राणी इनकी सदा पूजा करते हैं और शिवजीको छोड़कर और देवता ब्रह्म नहीं इससे वे निष्कल नहीं होसक्ते ॥ १३ ॥ इस कारण वे दूसरे देवता निर्गुणलिंगमें आराधना नहीं किये जाते. कारण कि, वे ब्रह्म नहीं जीव हैं इसीप्रकार और देवता ॥ १४ ॥ मौनरूप कलामात्र होनेसे बेरमें अर्चन करते हैं शंकरके सिवाय औरोंमें जीवत्व है और शंकरमें ब्रह्मत्व है ॥ १५ ॥ ॐकारके निमित्त ब्रह्मस्वरूपसे शंकरत्व प्रकाश

करनेसे उपनिषद् सिद्धहै. यही वार्ता मन्दरपर्वतपर नन्दिकेश्वरको ॥ १६ ॥ ब्रह्मपुत्र बुद्धिमान् सनत्कुमारमुनिने पूंछी थी. सनत्कुमार बोले शिवजीसे अन्य देवता अपने सब भक्तोंके सब प्रकारसे अधीन होजातेहैं ॥ १७ ॥ केवल बेरमात्रमें पूजा अनेक प्रकार सुनी और देखीहै परन्तु शिवजीकी पूजामें बेरलिंग देखागया है ॥ १८ ॥ इसकारण आप सुगमतासे मुझे कल्याण तत्त्व श्रवण कराइये. नन्दिकेश्वर बोले आपका यह प्रश्न ब्रह्मस्वरूपविषयक है और कहनेमें अशक्य है ॥ १९ ॥ परन्तु आप पापरहित और भक्तियुक्त हो इसकारण जैसा शिवजीसे सुना है वह मैं कहताहूं. शिव ब्रह्मरूप और कलारहित होनेसे निर्गुण

सनत्कुमारमुनिनाब्रह्मपुत्रेणधीमता ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शिवान्यदेववश्यानांसर्वेषामपिसर्वतः ॥ १७ ॥ बेरमात्रंचपूजार्थंश्रुतंदृष्टंचभू
रिशः ॥ शिवमात्रस्यपूजायांलिंगंबेरंचदृश्यते ॥ १८ ॥ अतस्तद्ब्रूहिकल्याणतत्त्वंमेसाधुबोधनम् ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ अनुत्तरमिमं
प्रश्नंरहस्यंब्रह्मलक्षणम् ॥ १९ ॥ कथयामिशिवेनोक्तंभक्तियुक्तस्यतेऽनघ ॥ शिवस्यब्रह्मरूपत्वान्निष्कलत्वाच्चनिष्कलम् ॥ २० ॥ लिंगं
तस्यैवपूजायांसर्ववेदेषुसंमतम् ॥ तस्यैवसकलत्वाच्चतथासकलनिष्कलम् ॥ २१ ॥ सकलंचतथाबेरंपूजायांलोकसंमतम् ॥ शिवान्येषां
चजीवत्वात्सकलत्वाच्चसर्वतः ॥ २२ ॥ बेरमात्रंचपूजायांसंमतंवेदनिर्णये ॥ स्वाविर्भावेचदेवानांसकलंरूपमेवहि ॥ २३ ॥ शिवस्य
लिंगंबेरंचदर्शनेदृश्यतेखलु ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ उक्तंत्वयामहाभागलिंगबेरप्रचारणम् ॥२४॥ शिवस्यचतदन्येषांविभज्यपरमार्थतः ॥
तस्मात्तदेवपरमंलिंगबेरादिसंभवम् ॥ २५ ॥

कहलाते हैं ॥ २० ॥ पूजा करनेमें सब वेदसम्मत लिंगपूजा है और वही निर्गुण है, कलायुक्त होनेसे सकल (सगुण) कहाता है ॥ २१ ॥ सगुण पूजामें लोकसम्मत बेरमें पूजन करना और शिवसे अन्य देवता जीवरूप होनेसे सब प्रकार कलायुक्तही है ॥ २२ ॥ वेदमें निर्णय करकै पूजनमें बेरमात्रका परिणाम कहा है कारण कि, देवताके आविर्भाव होनेसे उनका सकलरूप दीखता है ॥ २३ ॥ शिवका लिंग बेर शिवशास्त्रमें दीखता तौ है परन्तु वह निर्गुण होनेसे प्रमाणरहित भी है; सनत्कुमार बोले हे महाभाग आपने लिंग बेरका अर्चन कहा ॥ २४ ॥ शिवका तथा दूसरे देवताओंका भी विभागपूर्वक परमा

र्थसे वर्णन किया इसकारण उस परमात्माके लिंगका बेरादिमें जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ है ॥ २५ ॥ हे योगीन्द्र ! मैं उस लिंगाविर्भावका. लक्षण सुना
चाहताहूं ॥ नन्दिकेश्वर बोले हे वत्स! सुनो मैं तुम्हारी प्रीतिसे कहताहूं ॥ २६ ॥ पूर्वकालमें जो पहला कल्प था जो लोकमें विख्यात है उस समय
महात्मा ब्रह्मा और विष्णुका परस्पर युद्ध हुआथा ॥ २७ ॥ उनके मान दूर करनेको उनके बीचमें उन निष्कल परमात्माने स्तम्भरूप अपना स्वरूप
दिखाया ॥ २८ ॥ तब जगत्के हितकी इच्छासे निर्गुण शिवने उस तेजोमयस्तंभसे अपने लिंगाकारका स्वरूप दिखाया ॥ २९ ॥ उसीदिनसे लोकमें

श्रोतुमिच्छामियोगींद्रलिंगाविर्भावलक्षणम् ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ शृणुवत्सभवत्प्रीत्यावक्ष्यामिपरमार्थतः ॥ २६ ॥ पुराकल्पेमहाकाले
प्रपन्नेलोकविश्रुते ॥ अयुध्येतांमहात्मानौब्रह्मविष्णूपरस्परम् ॥ २७॥ तयोर्माननिराकर्तुंतन्मध्येपरमेश्वरः ॥ निष्कलस्तंभरूपेणस्वरूपं
समदर्शयत् ॥ २८॥ ततःस्वलिंगचिह्नत्वात्स्तंभतोनिष्कलंशिवः ॥ स्वलिंगंदर्शयामासजगतांहितकाम्यया ॥ २९॥ तदाप्रभृतिलोकेषु
निष्कलंलिंगमैश्वरम् ॥ सकलंचतथाबेरंशिवस्यैवप्रकल्पितम् ॥ ३० ॥ शिवान्येषांतुदेवानांबेरमात्रंप्रकल्पितम् ॥ तत्तद्बेरंतुदेवानां
तत्तद्भोगप्रदंशुभम् ॥ शिवस्यलिंगबेरत्वंभोगमोक्षप्रदंशुभम् ॥ ३१ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
नंदिकेश्वरउवाच ॥ पुराकदाचिद्योगींद्रविष्णुर्विषधरासनः ॥ सुष्वापपरयाभूत्यास्वानुगैरपिसंबृतः ॥ १ ॥ यदृच्छयागतस्तत्रब्रह्माब्रह्म
विदांवरः ॥ अपृच्छत्पुंडरीकाक्षंशयानंसर्वसुंदरम् ॥ २ ॥

वह निष्कल शिवजीका लिंग विख्यात हुआ, और सगुणरूपमें बेररूप की कल्पना की गई ॥ ३० ॥ देवताओंकी वह बेर पूजा इच्छानुसार भोगोंको देने
हारी है परन्तु शिवका लिंगबेर भोग और मोक्ष दोनोंका देनेहारा है ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
नन्दिकेश्वर बोले हे योगींद्र ! आगे एक समय विष्णु भगवान् शेषशय्यापर अपने गरुड़ादि पार्षदोंसे संयुक्त लक्ष्मीसहित शयन करते थे ॥ १ ॥ उस
समय ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपनी इच्छासेही वहाँ आये सब प्रकार सुन्दर सेजपर शयन करते हुए कमललोचन विष्णुजीसे पूछने लगे ॥ २ ॥

तुम कौन हौ जो मुझे देखकर अभिमानी पुरुषके समान शयन करते हो. हे वत्स ! उठो देखो मैं तुम्हारा स्वामी आया हूँ ॥ ३ ॥ आये हुए गुरुको देखकर जो अभिमान करताहै उस द्रोही मूढका प्रायश्चित्त होना उचित है ॥ ४ ॥ यह सुनकर विष्णुजीके अन्तरमें तौ क्रोध हुआ परन्तु बाहरसे शान्त रहे, और बोले हेवत्स ! तुम्हारा मंगल हो बैठो इस आसनपर विराजो ॥ ५ ॥ इस समय तुम्हारा नेत्र कुटिल और मुख वक्र क्यों होरहा है ? ब्रह्माजी बोले हे वत्स विष्णु ! तुमको समयके प्रभावसे अभिमान है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारा रक्षक और जगत्का पितामह हूँ विष्णुजी बोले यह तौ सब जगत् मुझमें स्थित है

कस्त्वंपुरुषवच्छेषेदृष्ट्वामामपिदृप्तवत् ॥ उत्तिष्ठवत्समांपश्यतत्रनाथमिहागतम् ॥ ३ ॥ आगतंगुरुमाराध्यंदृष्ट्वायोदृप्तवच्चरेत् ॥ द्रोहिण
स्तस्यमूढस्यप्रायश्चित्तंविधीयते ॥ ४ ॥ इतिश्रुत्वावचःक्रुद्धोबहिःशांतवदाचरत् ॥ स्वस्तितेस्वागतंवत्सतिष्ठपीठमितोविश ॥ ५ ॥
किमुतेव्यग्रवद्वक्रंविभातिविषमेक्षणम् ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वत्सविष्णोमहामानमागतंकालवेगतः ॥ ६ ॥ पितामहश्चजगतःपाताचत
ववत्सक ॥ विष्णुरुवाच ॥ मत्स्थंजगदिदंवत्समनुषेत्वंहिचोरवत् ॥ ७ ॥ मन्नाभिकमलाज्जातःपुत्रस्त्वंभाषसेवृथा ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥
एवंहिवदतोस्तत्रमुग्धयोरजयोस्तदा ॥ ८ ॥ अहमेववरोनत्वमहंप्रभुरहंप्रभुः ॥ परस्परंहंतुकामौचक्रतुःसमरोद्यमम् ॥ ९ ॥ युयुधातेऽमरौ
वीरौहंसपक्षींद्रवाहनौ ॥ वैरंच्यावैष्णवाश्चैवमिथोयुयुधिरेतदा ॥ १० ॥ तावद्विमानगतयःसर्वावैदेवजातयः ॥ दिदृक्षवःसमाजग्मुःसमरं
तंमहाद्भुतम् ॥ ११ ॥ क्षिपंतःपुष्पवर्षाणिपश्यंतःस्वैरमंबरे ॥ सुपर्णवाहनस्तत्रक्रुद्धोवैब्रह्मवक्षसि ॥ १२ ॥

तुम चोरके समान किसप्रकार अपना कहते हो ॥ ७ ॥ तुम मेरी नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हो इससे मेरे पुत्र हो मुझे पुत्र कहना वृथा है. नंदिकेश्वर बोले इस प्रकार ब्रह्मा विष्णु दोनों ही रजोगुणसे मुग्ध होकर विवाद करने लगे ॥ ८ ॥ मैं श्रेष्ठहूँ मैं स्वामीहूँ ऐसा कहकर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेमें उत्सुक हुए ॥ ९ ॥ और हंस और गरुड़ वाहनपर स्थित हो यह दोनों देव युद्ध करने लगे जब ब्रह्मा और विष्णुके वाहन गण भी युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ तब सम्पूर्ण देवता विमानोंमें बैठकर उस महाअद्भुत युद्ध देखनेको चले आये ॥ ११ ॥ और आकाशमेंसे उनके ऊपर फूल वर्षाने लगे । तब

विष्णुजीने क्रोध कर ब्रह्माजीकी छातीमें ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारके बाण और अस्त्र मारे और ब्रह्माजीने भी महाक्रोधकर विष्णुजीके हृदयमें दुःसह ॥ १३ ॥
अग्निके समान बाण और अनेक शस्त्र मारे उस युद्धमें यह बड़े आश्चर्यका व्यापार होने लगा ॥ १४ ॥ और उनका युद्ध देखकर देवता अत्यन्त व्याकुलहो
कहने लगे तब विष्णुजीने श्वास लेते हुए युद्धसे कुछ श्रान्तहो क्रोधकर ॥ १५ ॥ बुद्धिमानीसे ब्रह्माजीके ऊपर माहेश्वर अस्त्रका प्रयोग किया तब
ब्रह्माजीने महाक्रोधकर विश्वको कम्पित करते हुए ॥ १६ ॥ घोर पाशुपतास्त्र विष्णुजीकी छाती पर चलाया तब आकाशमें दशसहस्त्र सूर्य्यके समान तेज उठा

मुमोचबाणानसहानस्त्रांश्चविविधान्बहून् ॥ मुमोचाऽथविधिःक्रुद्धोविष्णोरुरसिदुःसहान् ॥ १३ ॥ बाणाननलसंकाशानस्त्रांश्चबहुश
स्तदा ॥ तदाश्चर्यमितिस्पष्टंतयोःसमरगोचरम् ॥ १४ ॥ समीक्ष्यदैवतगणाःशशंसुर्भृशमाकुलाः ॥ ततोविष्णुःसुसंक्रुद्धःश्वसन्व्यस
नकर्शितः ॥ १५ ॥ माहेश्वरास्त्रंमतिमान्संदधेब्रह्मणोपरि ॥ ततोब्रह्माभृशंक्रुद्धःकंपयन्विश्वमेवहि ॥ १६ ॥ अस्त्रंपाशुपतंघोरंसंदधे
विष्णुवक्षसि ॥ ततस्तदुत्थितंव्योम्नितपनायुतसन्निभम् ॥ १७ ॥ सहस्त्रमुखमत्युग्रंचंडवातभयंकरम् ॥ अस्त्रद्वयमिदंतत्रब्रह्मविष्णवोर्भयं
करम् ॥ १८ ॥ इत्थंबभूवसमरोब्रह्मविष्णवोःपरस्परम् ॥ ततोदेवगणाःसर्वेविषण्णाभृशमाकुलाः ॥ १९ ॥ ऊचुःपरस्परंतातराजक्षोभेयथा
द्विजाः ॥ सृष्टिःस्थितिश्चसंहारस्तिरोभावोप्यनुग्रहः ॥ २० ॥ यस्मात्प्रवर्ततेतस्मैब्रह्मणेचत्रिशूलिने ॥ अशक्यमन्यैर्यदनुग्रहंविनातृण
क्षयोप्यत्रयदृच्छयाक्वचित् ॥ २१ ॥ इतिदेवाभयंकृत्वाविचिन्वंतःशिवक्षयम ॥ जग्मुःकैलासशिखरंयत्रास्तेचंद्रशेखरः ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ जिसके सहस्त्र मुख जो अति उग्र, तीक्ष्ण था उस समय महाभयंकर तीक्ष्ण पवन चलने लगी, ब्रह्मा और विष्णुजीके जब दोनों भयंकर अस्त्र
उदय हुए तब घोर उपद्रव हुए जब इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुजीका परस्पर युद्ध हुआ तब ॥ १८ ॥ सब देवता अत्यन्त व्याकुल और उद्विग्न होगये
॥ १९ ॥ हे तात! जैसे राजविग्रहमें ब्राह्मण क्षुभित होते हैं इसप्रकार वे व्याकुल होकर बोले सृष्टिकी स्थिति संहार तिरोभाव और अनुग्रह ॥ २० ॥
जिनसे होता है उन ब्रह्मा त्रिशूलधारीके अनुग्रह बिना अपनी इच्छासे कोई एक तृणके भी नाश करनेको समर्थ नहीं है ॥ २१ ॥ इसप्रकार भयभीत हो

सब देवता शिवजीके स्थानकी खोज करते कैलासके शिखरपर शिवजीके निकट गये ॥ २२ ॥ देखतेही देवता प्रसन्न हो उस परमेश्वरपद प्रणवाकारको देख प्रणाम कर स्थित हुए और उस स्थानमें प्रवेश कर ॥ २३ ॥ उस सभामण्डलमें मणिके विस्तरपर पार्वतीसहित विराजमान देवश्रेष्ठको देखा ॥ २४ ॥ वामके ऊपर दक्षिण पद रक्खे शिवके निमित्त अपना करकमल अर्पण किये अपने गणोंसे सब प्रकार वेष्टित सम्पूर्ण लक्षणसे लक्षित ॥ २५ ॥ महाभक्तियुक्त स्त्रीजन जो विशेष उपचार जान्ती थीं वे पंखाकर रहीं थीं, वेद स्तुति करते थे और अनुग्रहकी दृष्टिसे सबको देखते थे ॥ २६ ॥ हे कुमार ! दूरसेही

दृष्ट्वैवममराहृष्टाःपदंतत्पारमेश्वरम् ॥ प्रणेमुःप्रणवाकारंप्रविष्टास्तत्रसद्मनि ॥ २३ ॥ तेपितत्रसभामध्येमंडपेमणिविष्टरे ॥ विराजमानमुमयाददृशुर्देवपुंगवम् ॥ २४ ॥ सव्योत्तरेतरपदंतदर्पितकरांबुजम् ॥ स्वगणैःसर्वतोजुष्टंसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ २५ ॥ वीज्यमानंविशेषज्ञैः स्त्रीजनैस्तीव्रभावनैः ॥ शस्यमानंसदावेदैरनुगृह्णंतमीश्वरम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वैवमीशममराःसंतोषसलिलेक्षणाः ॥ दंडवद्दूरतोवत्सनमश्चक्रुर्महागणाः ॥ २७ ॥ तानवेक्ष्यपतिर्देवान्समीपेचाह्वयद्गणैः ॥ अथसंह्लादयन्देवान्देवोदेवशिखामणिः ॥ अवोचदर्थगंभीरंवचनंमधुमंगलम् ॥ २८ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वत्सकाःस्वास्तिवःकच्चिद्वर्ततेममशासनात् ॥ जगच्चदेवतावंशःस्वस्वकर्मणिकिंनवा ॥ १ ॥ प्रागेवविदितंयुद्धंब्रह्मविष्णवोर्मयासुराः ॥ भवतामभितापेनपौनरुक्त्येनभाषितम् ॥ २ ॥

शिवका दर्शन कर सन्तोषका जल नेत्रोंमें भरे वे देवताओंके महासमूह दूरसे नमस्कार करने लगे ॥ २७ ॥ उन देवताओंको देखकर गणों द्वारा उन्हैं बुलाय देवदेव महादेव उन देवताओंको प्रसन्न करते हुए मधुर और मंगल युक्त वचन गंभीर वाणीसे बोले ॥ २८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ईश्वर बोले हे पुत्रो ! हमारी आज्ञामें वर्तनेहारे तुम्हारा मङ्गल है जगत् और सब देवता अपने अपने कर्म्म करनेमें प्रवृत्त हैं या नहीं ॥ १ ॥ पहलेही मैंने ब्रह्मा और विष्णुके युद्धको जान लिया है तुमने अपने दुःखके साथ पुनरुक्ततासे प्रकाश किया है ॥ २ ॥

हे कुमार ! इसप्रकार मधुरवाणीसे पार्वतीपति शंकरने उन सब देवताओंको सन्तुष्ट किया ॥ ३ ॥ तब शिवने अपने सौ गणोंको उस समरस्थानमें जानेकी
आज्ञा दी जहां ब्रह्मा और विष्णु थे ॥ ४ ॥तब शंकरके पयानसमयमें अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे अनेक प्रकारके वाहनोंपर चढ विविध भूषण पहरे
गणेश्वर चलनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ प्रणवके समान आकारसे सर्वत्र व्याप्त पंचमंडलसे मंडित भद्ररथमें अम्बिकापति गिरीश चढे और पुत्र तथा गण भी
संग हुए उस समय इन्द्रादि देवता उनके पीछे चलने लगे ॥ ६ ॥ सुन्दर ध्वजा व्यजन चमर पुष्प वर्षा संगीत नृत्य बाजोंसे सम्मानित हो शिवजी पार्वती

इतिसस्मितयामाध्व्याकुमारपरिभाषया ॥ समतोषयदंबायाःसपतिस्तत्सुरव्रजम् ॥ ३ ॥ अथयुद्धांगणंगंतुंहरिधात्रोरधीश्वरः ॥ आज्ञाप
यद्गणेशानांशतंतत्रैवसंसदि ॥ ४ ॥ ततोवाद्यंबहुविधंप्रयाणायपरेशितुः ॥ गणेश्वराश्चसंनद्धानानावाहनभूषणाः ॥ ५ ॥ प्रणवाकारमाद्यं
तंपंचमंडलमंडितम् ॥ आरुरोहरथंभद्रमंबिकापतिरीश्वरः ॥ ससूनुगणमिंद्राद्याःसर्वेप्यनुययुःसुराः ॥ ६ ॥ चित्रध्वजव्यजनचामरपुष्प
वर्षसंगीतनृत्यनिवहैरपिवाद्यवर्गैः ॥ संमानितःपशुपतिःपरयाचदेव्यासाकंतयोःसमरभूमिमगात्ससैन्यः ॥ ७ ॥ समीक्ष्यतुतयोर्युद्धंनि
गूढोऽभ्रंसमास्थितः ॥ समाप्तवाद्यनिर्घोषःशांतोरुगणनिःस्वनः ॥ ८ ॥ अथब्रह्माच्युतौवीरौहंतुकामौपरस्परम् ॥ माहेश्वरेणचाऽस्त्रेणतथा
पाशुपतेनच ॥ ९ ॥ अस्त्रज्वालैरथोदग्धंब्रह्मविष्ण्वोर्जगत्रयम् ॥ ईशोपितंनिरीक्ष्याथह्यकालप्रलयंभृशम् ॥ १० ॥ महानलस्तंभविभी
षणाकृतिर्बभूवतन्मध्यतलेसनिष्कलः ॥ ११ ॥ तेअस्त्रेचापिसज्वालेलोकसंहरणक्षमे ॥ निपेततुःक्षणेनैवह्याविर्भूतेमहानले ॥ १२ ॥

सहित ब्रह्मा विष्णुके निकट समरभूमिमें सेनासहित गये ॥ ७ ॥ जाकर मेघोंके मध्यमें छिपकर उनका निरन्तर होनेवाला युद्ध देखा, उस समय बाजोंकी
ध्वनि नहीं होती थी और बड़ा गणोंका भी शब्द शान्त होगया था ॥ ८ ॥ उस समय ब्रह्मा और विष्णु परस्पर एक दूसरेके मारनेकी इच्छासे माहेश्वर
और पाशुपतास्त्रसे ॥ ९ ॥ तथा अस्त्रोंकी ज्वालासे मानों त्रिलोकी भस्म करने लगे तब शिवजीने वह अकाल प्रलय देखकर ॥ १० ॥ महाअग्निके
स्तम्भके समान महाभयंकर आकृतिके समान उन दोनोंके बीचमें वह निर्गुणब्रह्म स्थित हुए ॥ ११ ॥ वह लोक क्षय करनेमें समर्थ अस्त्र उस महाअग्निके

प्रगट होतेही क्षणमात्रमें निपतित होगये ॥ १२ ॥ यह अस्त्र शान्त होनेका अद्भुत चित्र देख यह अद्भुत आकार क्या है ऐसा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह इन्द्रिय अगोचर स्तम्भ अग्निरूपसा क्या उठा है हम दोनोंका इसका ऊपर और नीचेका भाग देखना चाहिये कि यह कहांसे हुआ है ॥ १४ ॥[१]इसप्रकार कह वह दोनों वीर मानी परस्पर मिलकर उसकी परीक्षा करनेको बहुत शीघ्रतासे गये ॥ १५ ॥ हम दोनोंके मिलनेसे यह कार्य नहीं होगा ऐसा कहकर विष्णु शूकर शरीर धारण कर उसके मूल भाग देखनेको नीचे चलेगये ॥ १६ ॥ और ब्रह्माजी हंसका रूप धार उसके

दृष्ट्वातदद्भुतंचित्रमस्त्रशांतिकरंशुभम् ॥ किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्चपरस्परम् ॥ १३ ॥ अतींद्रियमिदंस्तंभमग्निरूपंकिमुत्थितम् ॥
अस्योर्ध्वमपिचाधश्चआवयोर्लक्ष्यमेवहि ॥ १४ ॥ इतिव्यवसितौवीरौमिलितौवीरमानिनौ ॥ तत्परौतत्परीक्षार्थंप्रतस्थातेऽथसत्वरम् ॥
॥ १५ ॥ आवयोर्मिश्रयोस्तत्रकार्यमेकंनसंभवेत् ॥ इत्युक्त्वासूकरतनुर्विष्णुस्तस्यादिमीयिवान् ॥ १६ ॥ तथाब्रह्माहंसतनुस्तदंतंवी
क्षितुंययौ ॥ भित्त्वापातालनिलयंगत्वादूरतरंहरिः ॥ १७ ॥ नाऽपश्यत्तस्यसंस्थानंस्तंभस्यानलवर्चसः ॥ श्रांतःससूकरहरिःप्रापपूर्वं
रणांगणम् ॥ १८ ॥ अथगच्छंस्तुव्योम्नाचविधिस्तातपितातव ॥ ददर्शकेतकीपुष्पंकिंचिद्विच्युतमद्भुतम् ॥ १९ ॥ अतिसौरभ्यम
म्लानंबहुवर्षच्युतंतथा ॥ अन्वीक्ष्यचतयोःकृत्यंभगवान्परमेश्वरः ॥ २० ॥

ऊपरका भागदेखनेको गये हारि पाताल स्थानको भेदकर दूरतक चलेगये ॥ १७ ॥ परन्तु उस अग्निके समान प्रज्वलित स्तम्भका पार नहीं पाया और शान्त होकर हारि उस युद्ध स्थानमें चले आये ॥ १८ ॥ और ब्रह्माजी आकाशमार्गमें चले गये उन्होंने वहां केतकीका किंचित् च्युत होना अद्भुत पुष्प देखा ॥ १९ ॥ यद्यपि वो बहुत वर्षोंसे टूटाथा परन्तु उसमें बड़ी सुगन्ध थी और मलीन न था ब्रह्मा और विष्णुके कृत्यको देखकर भगवान्

---

[१] यह ब्रह्मा और विष्णुजीका युद्ध एक अलंकार हैं कि सत् रज प्रबल होकर जब अपनेसे भिन्न ब्रह्मको नहीं जानते तब उनके संघर्षणरूप युद्धसे शिवतत्त्व प्रगट होता है, जिससे वह अपनी पूर्व अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

परमेश्वरने ॥ २० ॥ परिहास किया औरं कंपित होनेसे उनका शिर चलायमान हुआ उसीसे वह पुष्प गिरा तब उस केतकीके गिरेहुए उत्तम फूलको ग्रहण करनेकी इच्छासे कहा ॥ २१ ॥ हे पुष्पोंकेराजा पुष्पपति ! तू क्यों गिरताहै तुझे किसने धारण किया है तब पुष्पने कहा इस सबके प्रथम प्रादुर्भूतहुए प्रमारहित स्तंभके मध्य स्थानसे गिराहूं (आदिमस्यके स्थान अहमस्यभी पाठ है जिसके अर्थमें इस स्तंभके होते हैं) और मुझे बहुत समय बीतगया ॥ २२ ॥ परन्तु आजतक मुझे इसका अन्त नहीं मिला गिराही चलाजाता हूं इससे तुम इसके अन्त देखनेकी आशा छोड़दो. ब्रह्माजी बोले इसका अन्त देखनेको मैं हंसरूप धारण करके आयाहूं ॥ २३ ॥ अब हे सखा ! तुम्हैं हमारा मनोरथ पूरा करना चाहिये मेरे संग चलकर विष्णुके निकट तुमको यह कहना चाहिये ॥ २४ ॥ कि ब्रह्माजीने इस स्तंभका अन्त देखलिया इसमें मैं साक्षी हूं ऐसा कह ब्रह्माजीने वारंवार केतकीके पुष्पको प्रणाम किया और कहा यह आज्ञाहै कि आपदामें झूंठ बोलनेमें दोष नहीं होता ॥ २५ ॥ जाकर ब्रह्माजीने जब विष्णुजीको थकित देखा कि, उनमें प्रसन्नता नहीं है तब हर्षितहो नृत्य करनेलगे और षंढ़के समान, वाद करतेहुए अच्युतसे ब्रह्माजी बोले ॥ २६ ॥ हे विष्णु ! हमने स्तंभका अन्त देखलिया उसमें यह केतकीका फूल साक्षी है और ब्रह्माके कहे अनुसार उस केतकीके पुष्पनेभी असत्य भाषण किया ॥ २७ ॥ हरिने उनका कहा सत्य मानकर स्वयं ब्रह्माजीको प्रणाम किया

परिहासंतुकृतवान्कंपनाच्चलितंशिरः ॥ तस्मात्तावनुगृह्णातुच्युतंकेतकमुत्तमम् ॥ २१ ॥ किंत्वंपतसिपुष्पेशपुष्पराट्केनवाधृतम् ॥
आदिमस्याप्रमेयस्यस्तंभमध्याच्च्युतश्चिरम् ॥२२॥ नसंपश्यामितस्मात्त्वंजह्याशामंतदर्शने ॥ अस्यांतस्यचसेवार्थंहंसमूर्तिरिहागतः ॥
॥ २३ ॥ इतःपरंसखेमेऽद्यत्वयाकर्तव्यमीप्सितम् ॥ मयासहत्वयावाच्यमेतद्विष्णोश्चसन्निधौ ॥ २४ ॥ स्तंभांतोवीक्षितोधात्रातत्रसा
क्ष्यहमच्युत ॥ इत्युक्त्वाकेतकंतत्रप्रणनामपुनःपुनः ॥ असत्यमपिशस्तंस्यादापदीत्यनुशासनम् ॥ २५ ॥ समीक्ष्यतत्राऽच्युतमायतश्रमं
प्रनष्टहर्षंतुननर्तहर्षात् ॥ उवाचचैनंपरमार्थमच्युतंषंढात्तवादःसविधिस्ततोऽच्युतम् ॥ २६ ॥ स्तंभाग्रमेतत्समुदीक्षितंहरेतत्रैवसाक्षी
ननुकेतकेस्त्वयम् ॥ ततोऽवदत्तत्रहिकेतकंमृषातथेतितद्धातृवचस्तदंतिके ॥ २७ ॥ हरिश्चतत्सत्यमितीवचिंतयंश्चकारतस्मैविधयेनमः
स्वयम् ॥ षोडशैरुपचारैश्चपूजयामासतंविधिम् ॥ २८ ॥

और षोडश उपचारसे ब्रह्माजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ तब ब्रह्माका कपट देख उसके प्रहार करनेको उसी अग्निरूप स्तंभसे वह ईश्वर साकार होकर प्रादुर्भूतहुए स्वामीको देखतेही कांपतेहुए हाथोंसे विष्णुने उनके चरण पकड़लिये ॥ २९ ॥ और बोले आद्यन्तहीन शरीरवाले तुमको अज्ञानबुद्धिसे कामना पूर्वक ढूँढकरभी नहीं प्राप्त होते हैं हे करुणाकर ! इससे तुम हमारे ऊपर प्रसन्नहो और हमारे कश्मल (पाप) नष्ट करो और क्षमा करो आपकी क्रीड़ा हमने जानी ॥ ३० ॥ ईश्वर बोले हे वत्स ! विष्णु ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं कारण कि तुम ईशत्वकी इच्छा करकैभी सत्यवक्ता हो इसीकारणसे संसारमें ईशत्वको प्राप्तहो साम्यता और मुझसे सत्कारकोभी प्राप्त होगे ॥ ३१ ॥ और आजसे तुम्हारी पृथक्मूर्तिकी क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा और उत्सव पूजन होगा ॥ ३२ ॥

विधिंप्रहर्तुंशठमग्निलिंगतःसईश्वरस्तत्रबभूवसाकृतिः ॥ समुत्थितःस्वामिविलोकनात्पुनःप्रकंपपाणिःपरिगृह्यतत्पदम् ॥ २९ ॥ आद्यंतहीनवपुषित्वयिमोहबुद्ध्याभूयाद्विमर्शइहनावतिकामनोत्थः ॥ सत्वंप्रसीदकरुणाकरकश्मलंनौमृष्टंक्षमस्वविहितंभवतैवकेल्या ॥ ३० ॥ ईश्वरउवाच ॥ वत्सप्रसन्नोऽस्मिहरेयतस्त्वमीशत्वमिच्छन्नपिसत्यवाक्यम् ॥ ब्रूयास्ततस्तेभविताजनेषुसाम्यंमयासत्कृतिरप्यलप्स्थाः ॥ ॥ ३१ ॥ इतःपरंतेपृथगात्मनश्चक्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनंच ॥ ३२ ॥ इतिदेवःपुराप्रीतःसत्येनहरयेपरम् ॥ ददौस्वसाम्यमत्यर्थंदेवसंघेचपश्यति ॥ ३३ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नंदिकेश्वर उवाच ॥ ससर्जाथमहादेवःपुरुषंकंचिदद्भुतम् ॥ भैरवाख्यंभ्रुवोर्मध्याद्ब्रह्मदर्पजिघांसया ॥ १ ॥ सवैतदातत्रपतिंप्रणम्यशिवमंगणे॥ किंकार्यंकरवाण्यत्रशीघ्रमाज्ञापयप्रभो ॥ २ ॥ वत्सयोऽयंविधिःसाक्षाज्जगतामाद्यदैवतम् ॥ नूनमर्चयखड्गेनातिग्मेनजवसापरम् ॥ ३ ॥

इसप्रकार सत्य कहनेसे शिव विष्णुपर बहुत प्रसन्नहुए और देवसमूहके देखते २ उन्होंने अपनी समानता विष्णुजीको दी ॥ ३३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नंदिकेश्वर बोले, तब महादेवजीने ब्रह्माजीका मद दूर करनेके निमित्त अपनी भ्रुकुटीके मध्यसे एक अद्भुत पुरुष भैरवजीकी रचना की ॥ १ ॥ उत्पन्न होतेही समरांगणमें उस पुरुषने शिवजीको प्रणाम किया, और कहा भगवन् ! मैं क्या करूं शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ २ ॥ शिवजीने कहा हे वत्स ! यह जो जगत्के आदि देवता ब्रह्मा हैं इनकी तीक्ष्ण धारवाले वेगवान् खड्गसे अर्चाकरो अर्थात् प्रहार

करो ॥ ३ ॥ सो सुन्तेही भैरवने एक हाथसे केश पकड वह ब्रह्माजीका पाँचवां असत्य भाषी शिर काटकर हाथसे स्फुरायमान होते हुए खड्गसे उनके और
भी शिरकाटनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ तब तुम्हारे पिता ब्रह्माजी गहने माला और उत्तरीय वस्त्र त्याग केशखोले हुए हवा चलनेसे केले और वेलके समान
कम्पित हो भैरवजीके चरणकमलमें गिरपड़े ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीकी यह दशा देखतेही विष्णुजीने हमारे स्वामीके चरणकमलोंमें अश्रुमोचन करते २ हाथ
जोडकर कहा जैसे बालक पितासे कहते हैं ॥ ६ ॥ विष्णु बोले हे भगवन् ! प्रथम आपने कृपा करके इनको पाँच शिरदिये थे अब एक जाता रहा

सवैगृहीत्वैककरेणकेशंतत्पंचमंदृप्तमसत्यभाषणम् ॥ छित्त्वाशिरांस्यस्यनिहंतुमुद्यतःप्रकंपयन्खड्गमतिस्फुटंकरैः ॥ ४ ॥ पितातवो
त्सृष्टविभूषणांबरस्रगुत्तरीयामलकेशसंहतिः ॥ प्रवातरंभेवलतेवचंचलःपपातवैभैरवपादपंकजे ॥ ५ ॥ तावद्विधिंतातदिदृक्षुरच्युतःकृपा
लुरस्मत्पतिपादपल्लवम् ॥ निषिच्यबाष्पैरवदत्कृतांजलिर्यथाशिशुःस्वंपितरंकलाक्षरम् ॥ ६ ॥ अच्युतउवाच ॥ त्वयाप्रयत्नेनपुराहि
दत्तंयदस्यपंचाननमीशचिह्नम् ॥ तस्मात्क्षमस्वाद्यमनुग्रहार्हंकुरुप्रसादंविधयेह्यमुष्मै ॥ ७ ॥ इत्यर्थितोऽच्युतेनेशस्तुष्टःसुरगणांगणे ॥
निवर्तयामासतदाभैरवंब्रह्मदंडतः ॥ ८ ॥ अथाहदेवःकितवंविधिंविगतकंधरम् ॥ ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षीशठमीशत्वमास्थितः ॥ ९ ॥
नातस्तेसत्कृतिर्लोकेभूयात्स्थानोत्सवादिकम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्वामिन्प्रसीदाद्यमहाविभूतेमन्येवरंवरदमेशिरसःप्रमोक्षम् ॥ १० ॥ नम
स्तुभ्यंभगवतेबंधवेविश्वयोनये ॥ सहिष्णवेसर्वदोषाणांशंभवेशैलधन्वने ॥ ११ ॥

इसकारण क्षमा करके अब ब्रह्माजीपर प्रसन्नता करो ॥ ७ ॥ जब विष्णुजीने इसप्रकार कहा तब शिवजी देवतोंसे सेवित हुए गणोंके मध्यमें स्थित हुए और
ब्रह्माजीके दण्ड देनेसे भैरवजीको निवृत्त किया ॥ ८ ॥ तब एक कन्धराराहित ब्रह्माजीसे शिवजी बोले कि, तुमने कपट किया और अपनी पूजा और ईश्वर
होनेकी इच्छासे छलकिया ॥ ९ ॥ इस कारण लोकमें तुम्हारा सत्कार न होगा तुम्हारा स्थान और उत्सवादिक न होगा. ब्रह्माजी बोले हे स्वामी ! हे महावि
भूतियुक्त प्रसन्न हो और हे वरदेनेहारे ! मेरा शिर मोक्ष हो यही वर दीजिये ॥ १० ॥ हे भगवन् ! जगद्बन्धु संसारके कारण सब दोषोंके सहनेहारे शम्भु

---

१ रजोगुणमें जितना तमका अंश था वही पञ्चमशिर है जो शिवजीने हर लिया।

शैलधनुषधारी आपको नमस्कार है ॥ ११ ॥ शिवजी बोले अराजके भयसे यह सब जगत् स्थिर न रहैगा इस कारणसे तुम जो दण्डके योग्य हैं उनको दण्ड दो और लोककी धुरी धारण करो हे पुत्र ! ॥ १२ ॥ मैं तुमको दुर्लभ वर देताहूँ सो ग्रहण करो. अग्निहोत्र स्मार्तकर्म और यज्ञोंके गुरु तुमही होंगे उसमें तुम्हारा सत्कार होगा ॥ १३ ॥ सांग और दक्षिणा सहित भी यज्ञ तुम्हारे बिना पूर्ण न होगा किन्तु निष्फल होजायगा यह कहकर देवने असत्य भाषी केतकीपुष्पसे कहा ॥ १४ ॥ अरे असत्यभाषी केतक दुष्ट ! तू यहांसे दूर हो आजसे मेरा प्रेम तुझमें नहीं और मेरी पूजामें तू न होगा ॥ १५ ॥

ईश्वरउवाच ॥ अराजभयमेतद्वैजगत्सर्वंनशिष्यति ॥ ततस्त्वंजहिदंडार्हंवहलोकधुरंशिशो ॥ १२॥ वरंददामितेतत्रगृहाणदुर्लभंपरम् ॥ वैतानिकेषुगृह्येषुयज्ञेषुचभवान्गुरुः ॥ १३ ॥ निष्फलस्त्वदृतेयज्ञःसांगश्चसहदक्षिणः ॥ अथाहदेवःकितवंकेतकंकूटसाक्षिणम् ॥ १४ ॥ रेरेकेतकदुष्टस्त्वंशठदूरमितोव्रज ॥ ममापिप्रेमतेपुष्पेमाभूत्पूजास्वितःपरम् ॥ १५ ॥ इत्युक्तेतत्रदेवेनकेतकंदेवजातयः ॥ सर्वानिवारयामासुस्तत्पार्श्वादन्यतस्तदा ॥ १६ ॥ केतकउवाच ॥ नमस्तेनाथमेजन्मनिष्फलंभवदाज्ञया ॥ सफलंक्रियतांतातक्षम्यतांममकिल्बिषम् ॥ १७ ॥ ज्ञानाज्ञानकृतंपापंनाशयत्येवतेस्मृतिः ॥ तादृशेत्वयिदृष्टेमेमिथ्यादोषःकुतोभवेत् ॥ १८ ॥ तथास्तुतस्तुभगवान्केतकेनसभातले ॥ नमेत्वद्धारणंयोग्यंसत्यवागहमीश्वरः ॥ १९ ॥ मदीयास्त्वांधरिष्यंतिजन्मतेसफलंततः ॥ त्वंवैवितानव्याजेनममोपरिभविष्यसि ॥ २० ॥

देवके ऐसा कहतेही शिवके निकटवर्त्ती देवजाती केतकको वहांसे दूर करने लगीं तब ॥ १६ ॥ केतक बोला हे नाथ ! नमस्कार है आजसे आपकी आज्ञासे मेरा जन्म निष्फल हुआ, हे स्वामिन् ! कुछ तौ सफल करिये, अब मेरा पाप दूर कीजिये ॥ १७ ॥ आपके तौ स्मरणसेही ज्ञान होता और अज्ञानकृत पाप नष्ट होजाते हैं फिर आपके दर्शन करनेसे मेरा मिथ्याभाषण दोष क्यों न नष्ट होगा ॥ १८ ॥ जब केतकने सभामें भगवान्की इसप्रकार प्रार्थना करी तब शिवजीने कहा हमारी वाणी असत्य नहीं होती हम तेरा धारण नहीं करेंगे ॥ १९ ॥ परन्तु विष्णु आदि हमारे भक्त देवता तुझे धारण करेंगे इससे तेरा जन्म सफल

होगा और मंडप रचनाके निमित्तसे मेरे ऊपरभी तू होगा ॥ २० ॥ इसप्रकार भगवान् केतक ब्रह्मा और विष्णुपर अनुग्रह करके सब देवतोंसे पूजितहो सभामें विराजे ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ इस समयमें ब्रह्मा और विष्णु शिवजीको प्रणाम कर हाथ जोड़ मौनहो क्रमसे शिवजीके दक्षिण और वामभागमें स्थित हुए ॥ १ ॥ उन दोनोंने कुटुम्बसहित देवको सुन्दर आसनपर बैठाय पवित्र और पुरुषोंके योग्य पदार्थसे उन पूज्यकी पूजा की ॥ २ ॥ और पुरुषके संकल्पसे उत्पन्नहुई वस्तु कोई दीर्घ कोई अल्पकालमें जानी जाती है, वह भी देनेयोग्य सब

इत्यनुगृह्यभगवान्केतकंविधिमाधवौ ॥ विरराजसभामध्येसर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ २१ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ तत्रांतरेतौचनाथंप्रणम्यविधिमाधवौ ॥ बद्धांजलिपुटौतूष्णींतस्थतुर्दक्षवामगौ ॥ १ ॥ तत्रसंस्थाप्यतौदेवंसकुटुंबंवरासने ॥ पूजयामासतुःपूज्यंपुण्यैःपुरुषवस्तुभिः ॥ २ ॥ पौरुषंप्राक्रुतंवस्तुज्ञेयंदीर्घल्पकालिकम् ॥ हारनूपुरकेयूरकिरीटमणिकुंडलैः ॥ ३ ॥ यज्ञसूत्रोत्तरीयस्त्रक्क्षौममाल्यांगुलीयकैः ॥ पुष्पतांबूलकर्पूरचंदनागुरुलेपनैः ॥ ४ ॥ धूपदीपसितच्छत्रव्यजनध्वजचामरैः ॥ अन्यैर्दिव्योपहारैश्चवाङ्मनोतीतवैभवैः ॥ ५ ॥ पतियोग्यैःपश्वलभ्यैस्तौसमर्चयतांपतिम् ॥ यद्यच्छ्रेष्ठतमंवस्तु पतियोग्यंहितद्धजे ॥ ६ ॥ तद्वस्त्वखिलमीशोपिपारंपर्यचिकीर्षया ॥ सभ्यानांप्रददौहृष्टःपृथक्तत्रयथाक्रमम् ॥ ७ ॥ कोलाहलोमहानासीत्तत्रतद्वस्तुगृह्णताम् ॥ तत्रैवब्रह्मविष्णुभ्यांचार्चितःशंकरःपुरा ॥ ८ ॥

वस्तु हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिकुंडल ॥ ३ ॥ यज्ञसूत्र उत्तरीयवस्त्र, माला, रेशमीनवस्त्र, पुष्पमाला, अँगूठी, चंदन, फूल, ताम्बूल, कपूर, अगर लेपन ॥ ४ ॥ धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चमर, और भी दिव्यउपहार वाणी मनसे परे ऐश्वर्य्य ॥ ५ ॥ स्वामीकी पूजाके योग्य और जीवोंसे अप्राप्त वस्तुओंसे उन दोनोंने शंकरकी पूजा की. हे श्रेष्ठ सनत्कुमार ! जो जो जगत्में श्रेष्ठ वस्तुहैं वह वह सब शंकरके योग्यहैं ॥ ६ ॥ इससे परंपरासे चले आये क्रमको करनेकी इच्छासे उन सबके स्वामीनेभी प्रसन्नतापूर्वक सबके निमित्त पृथक् पृथक् वस्तु प्रदान करीं ॥ ७ ॥ तब वहां उन वस्तु ग्रहण करने

वालेका बड़ा भारी कोलाहल हुआ, प्रथम ब्रह्मा और विष्णुसे पूजितहो शंकर ॥ ८ ॥ भक्ति बढ़ानेहारे शिवजीने नम्रहुए उन ब्रह्मा और विष्णुसे प्रसन्नहो
कहा। ईश्वर बोले हे वत्स ! आज हम तुम्हारे पूजन और उत्सवसे इस महादिनमें प्रसन्नहुए ॥ ९ ॥ यह दिन महापवित्र होगा, यह हमारी प्यारी शिवरात्रि
तिथि होगी ॥ १० ॥ इससमय जो हमारी लिंग वा बेरबेरकी पूजा करैगा, वह पुरुष जगत्‌स्थिति और सर्गादि क्रम कर सकैगा ॥ ११ ॥ जो जो जिते
न्द्रिय होकर निराहार एक रात दिन यथान्याय यथाशक्ति प्रपंचरहित पूजन करैगा ॥ १२ ॥ जो मेरा पूजन निरन्तर एकवर्ष करनेका फल मिलता है
वह एक शिवरात्रिके दिन मेरा अर्चन करनेसे मिलता है ॥ १३ ॥ जैसे चंद्रमाको देखकर सागर बढ़ता है इसी प्रकार यह मेरी वृद्धिका समय है जहां जहां

प्रसन्नःप्राहतौनम्रौसस्मितंभक्तिवर्धनः ॥ ईश्वरउवाच ॥ तुष्टोऽहमद्यवांवत्सौपूजयाऽस्मिन्महादिने ॥९॥ दिनमेतत्ततःपुण्यंभविष्यतिमहत्त
रम् ॥ शिवरात्रिरितिख्यातातिथिरेषाममप्रिया॥१०॥एतत्कालेतुयःकुर्यात्पूजांमल्लिंगबेरयोः॥कुर्यात्तुजगतःकृत्यंस्थितिसर्गादिकंपुमान्
॥११॥शिवरात्रावहोरात्रंनिराहारोजितेंद्रियः॥अर्चयेद्वायथान्यायंयथाबलमवंचकः॥१२॥ यत्फलंममपूजायांवर्षमेकंनिरंतरम्॥तत्फलंल
भतेसद्यःशिवरात्रौमदर्चनात्॥१३॥मद्धर्मवृद्धिकालोऽयंचंद्रकालइवांबुधेः ॥ प्रतिष्ठाद्युत्सवोयत्रमामकोमंगलायनः॥१४॥यत्पुनःस्तंभरूपे
णस्वाविरासमहंपुरा॥सकालोमार्गशीर्षेतुस्यादार्द्राऋक्षमर्भकौ॥१५॥आर्द्रायांमार्गशीर्षेतुयःपश्येन्मामुमासखम्॥मद्बेरमपिवालिंगंसगुहाद
पिमेप्रियः॥१६॥अलंदर्शनमात्रेणफलंतस्मिन्दिनेशुभे॥अभ्यर्चनंचेदधिकंफलंवाचामगोचरम्॥१७॥रणरंगतलेऽमुष्मिन्यदहंलिंगवर्ष्म
णा॥जृंभितोलिंगवत्तस्माल्लिंगस्थानमिदंभवेत्॥१८॥अनाद्यंतमिदंस्तंभमणुमात्रंभविष्यति॥दर्शनार्थंहिजगतांपूजनार्थंहिपुत्रकौ ॥१९॥

मंगलदायक मेरा प्रतिष्ठादि उत्सव होताहै ॥ १४ ॥ और जो मैं पूर्वमें स्तंभरूपसे आविर्भूत हुआहूँ वह समय मार्गशीर्षमें आर्द्रा नक्षत्र युक्त है सो जानना ॥
॥ १५ ॥ मार्गशीर्षमें जो आर्द्रा नक्षत्रके समय पार्वतीसहित मेरा दर्शन करताहै अथवा बेरलिंगका दर्शन करता है वह मुझे कार्तिकेयसेभी अधिक प्यारा है
॥ १६ ॥ उस श्रेष्ठ दिनमें दर्शनसे ही महाफल होता है और जो उस दिन पूजन करते हैं वह फल वाणीसे कथन नहीं किया जासक्ता ॥ १७ ॥ इस रण
भूमिमें जो मैं लिंग देहसे प्रादुर्भूत हुआहूं इससे यह लिंगस्थान कहावैगा ॥ १८ ॥ हे पुत्रो ! जो यह आदि अन्त रहित स्तम्भ है सो जगत्के दर्शन

और पूजनके निमित्त अणुमात्र (बहुत छोटा) होजायगा ॥ १९ ॥ यह लिंग भुक्ति और मुक्तिका साधक होगा, इसके दर्शन स्पर्शन और ध्यानसेही
प्राणियोंके जन्म मरण छूट जायँगे ॥ २० ॥ जो अग्निपर्वतके समान प्रादुर्भूत हुआ है सो यह अरुणाचल नामसे जगत्में विख्यात होगा ॥ २१ ॥ यहां
बड़ा भारी तीर्थ होगा यहां प्राणियोंके निवास करने या तनु त्यागनेसे मुक्ति हो जायगी ॥ २२ ॥ रथयात्रा उत्सव कल्याण और जनोंके निवास योग्य
यह स्थान होगा. यहां किया हुआ जप तप हवन करोड़ गुणा होजायगा ॥ २३ ॥ हमारे सब क्षेत्रोंसे यह श्रेष्ठ होगा, यहां मेरा स्मरण करतेही प्राणी मुक्त

भोगावहमिदंलिंगंभुक्तिमुक्त्येकसाधनम् ॥ दर्शनस्पर्शनध्यानाज्जंतूनांजन्ममोचनम् ॥ २० ॥ अनलाचलसंकाशंयदिदंलिंगमुत्थि
तम् ॥ अरुणाचलमित्येवतदिदंख्यातिमेष्यति ॥ २१ ॥ अत्रतीर्थंचबहुधाभविष्यतिमहत्तरम् ॥ मुक्तिरप्यत्रजंतूनांवासेनमरणेनच ॥
॥ २२ ॥ रथोत्सवादिकल्याणंजनावासंतुसर्वतः ॥ अत्रदत्तंहुतंजप्तंसर्वंकोटिगुणंभवेत् ॥२३॥ मत्क्षेत्रादपिसर्वस्मात्क्षेत्रमेतन्महत्तरम् ॥
अत्रसंस्मृतिमात्रेणमुक्तिर्भवतिदेहिनाम् ॥ २४ ॥ तस्मान्महत्तरमिदंक्षेत्रमत्यंतशोभनम् ॥ सर्वकल्याणसंपूर्णंसर्वमुक्तिकरंशुभम् ॥२५॥
अर्चयित्वाऽत्रमामेवलिंगेलिंगिनमीश्वरम् ॥ सालोक्यंचैवसामीप्यंसारूप्यंसार्ष्टिरेवच ॥ २६ ॥ सायुज्यमितिपंचैतेक्रियादीनांफलं
मतम् ॥ सर्वेपियूयंसकलंप्राप्स्यथाशुमनोरथम् ॥२७॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ इत्यनुगृह्यभगवान्विनीतौविधिमाधवौ ॥ यत्पूर्वंप्रहतंयुद्धे
तयोःसैन्यंपरस्परम् ॥ २८ ॥ तदुत्थापयदत्यर्थंस्वशक्त्याऽमृतधारया ॥ तयोर्मौढ्यंचवैरंचव्यपनेतुमुवाचतौ ॥ २९ ॥

हो जाँयगे ॥ २४ ॥ इस कारण यह क्षेत्र महान् और अत्यन्त शोभित होगा सब प्रकारके कल्याणदायक और सबप्रकार मुक्तिदायक होगा ॥ २५ ॥
जो यहां लिंगमें मुझ लिंगेश्वरकी पूजा करैंगे उन्हैं सालोक्य सामीप्य सारूप्य सार्ष्टि ॥ २६ ॥ सायुज्य यह पाचों मुक्ति क्रियाके फलको प्राप्त होजाँयगी
और यहां पूजन करनेसे तुमभी सब मनोरथोंको प्राप्त होगे ॥ २७ ॥ नंदिकेश्वर बोले इस प्रकार भगवानने उन नम्रहुए ब्रह्मा और विष्णुपर अनुग्रह करके
उनके युद्धमें जो परस्पर उनकी सेना मारी गईथी ॥ २८ ॥ उस सबको अपनी शक्तिसे जिवाकर उठाया जिस शक्तिमें अमृतकी धारा रहती है और उन

दोनोंकी अज्ञानता और वैरको दूर करनेके अर्थ दोनोंसे कहा ॥ २९ ॥ मर सकल और निष्कल भेदसे दोस्वरूपहैं परन्तु और ईश्वर नहीं इस कारण उनके दो रूप नहीं होसक्के ॥ ३० ॥ पहला स्तम्भरूप और पीछे मूर्तिमान् रूप धारण किया इसमें ब्रह्मरूप निष्कल है और ईशरूप सगुण है ॥ ३१ ॥ मेरे यह दोनों रूप सिद्ध हैं दूसरे किसीके नहीं होसक्के. इसकारण तुम दोनोंको अथवा दूसरोंको ईश्वरत्वकी प्राप्ति नहीं होसक्की ॥ ३२ ॥ तुमने जो अज्ञानसे अपनेको ईश माना यह बड़ा अद्भुत हुआ उसके दूर करनेकोही मैं रणस्थानमें आया ॥ ३३ ॥ अब तुम अपना अभिमान त्यागकर मुझ ईश्वरमें अपनी

सकलंनिष्कलंचेतिस्वरूपद्वयमस्तिमे ॥ नान्यस्यकस्यचित्तस्मादन्यःसर्वोऽप्यनीश्वरः ॥ ३० ॥ पुरस्तात्स्तंभरूपेणपश्चाद्रूपेणचार्भकौ ॥
ब्रह्मत्वंनिष्कलंप्रोक्तमीशत्वंसकलंतथा ॥ ३१ ॥ द्वयंममैवसंसिद्धंनमदन्यस्यकस्यचित् ॥ तस्मादीशत्वमन्येषांयुवयोरपिनक्कचित् ॥
॥ ३२ ॥ तदज्ञानेनवांवृत्तमीशमानंमहाद्भुतम् ॥ तन्निराकर्तुमत्रैवमुत्थितोऽहंरणक्षितौ ॥३३॥ त्यक्त्वंमानमात्मीयंमयीशेकुरुतंमतिम् ॥
मत्प्रसादेनलोकेषुसर्वोऽप्यर्थःप्रकाशते ॥ ३४ ॥ गुरूक्तिर्व्यंजकंतत्रप्रमाणंवापुनःपुनः ॥ ब्रह्मतत्त्वमिदंगूढंभवत्प्रीत्याभणाम्यहम् ॥ ३५ ॥
अहमेवपरंब्रह्ममत्स्वरूपंकलाकलम् ॥ ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाहंकृत्यंमेनुग्रहादिकम् ॥ ३६ ॥ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्चब्रह्माहंब्रह्मकेशवौ ॥ समत्वाद्व्या
पकत्वाच्चतथैवात्माहमर्भकौ ॥ ३७ ॥ अनात्मानःपरेसर्वेजीवाएवनसंशयः ॥ अनुग्रहाद्यंसर्गांतंजगत्कृत्यंचपंकजम् ॥ ३८ ॥ ईशत्वादे
वमेनित्यंनमदन्यस्यकस्यचित् ॥ आदौब्रह्मत्त्वबुद्ध्यर्थंनिष्कलंलिंगमुत्थितम् ॥ ३९ ॥

बुद्धि लगाओ मेरे प्रसादसे लोकमें सब अर्थ प्रकाश करते हैं ॥ ३४ ॥ मुझ गुरुके वचनही तुमको वारंवार प्रमाण हैं, तुम्हारी प्रीतिसेही यह गूढ ब्रह्मत्व मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३५ ॥ मैंही परब्रह्महूं और मेराही कल अकलरूप है ब्रह्म होनेसे मैं ईश्वरहूं अनुग्रहादिकही मेरा कृत्य है ॥ ३६ ॥ सर्वव्यापी होनेसे और जगतके वर्द्धक होनेसे मैं ब्रह्माहूं, हे ब्रह्मकेशव ! समत्व और व्यापक होनेसे मैं आत्माहूं ॥ ३७ ॥ और सम्पूर्ण जीव आत्मा नहींहैं इसमें सन्देह नहीं. अनुग्रहसेही यह सर्गके अन्ततक जो जगतका कृत्य और पंचक है ॥ ३८ ॥ मैं इस सबका ईश हूं यह मेरा है मेरे सिवाय किसी

दूसरेका नहीं है. प्रथम तौ ब्रह्मत्वज्ञानके निमित्त निष्कलब्रह्मका प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ३९ ॥ इसीसे मैं अज्ञातस्वरूप हूं पीछे तुम्हें प्रगट दर्शन देनेके निमित्त साक्षात् ईश्वर तत्क्षणही मैं सगुणरूप हुआ हूं ॥ ४० ॥ मेरे ईशत्वरूपको सकलत्व जानो और यह निष्कलत्व स्तंभ ब्रह्मका बोधक है ॥ ४१ ॥ लिंगलक्षण होनेसे यह मेरा लिंगस्वरूप निर्गुण होगा इसकारण हे पुत्रो ! तुम नित्य इनकी अर्चना करना ॥ ४२ ॥ यह सदा मेरी आत्मारूप है और मेरी निकटताका कारण है लिंग और लिंगीके अभेदसे यह महत्व नित्य पूजनीय है ॥ ४३ ॥ जहां कहीं किसीने मेरे इस लिंगकी प्रतिष्ठा कीहै

तस्मादज्ञातमीशत्वंव्यक्तंद्योतयितुंहिवाम् ॥ सकलोहमतोजातःसाक्षादीशस्तुतत्क्षणात् ॥४०॥ सकलत्वमतोज्ञेयमीशत्वंमयिसत्वरम् ॥ यदिदंनिष्कलंस्तंभंममब्रह्मत्वबोधकम् ॥ ४१ ॥ लिंगलक्षणयुक्तत्वान्ममलिंगंभवेदिदम् ॥ तदिदंनित्यमभ्यर्च्यंयुवाभ्यामत्रपुत्रकौ ॥ ॥ ४२ ॥ मदात्मकमिदंनित्यंममसान्निध्यकारणम् ॥ महत्पूज्यमिदंनित्यमभेदाल्लिंगलिंगिनोः ॥ ४३ ॥ यत्रप्रतिष्ठितंयेनमदीयंलिंगमीदृशम् ॥ तत्रप्रतिष्ठितःसोहमप्रतिष्ठोपिवत्सकौ ॥ ४४ ॥ मत्साम्यमेकलिंगस्यस्थापनेफलमीरितम् ॥ द्वितीयेस्थापितेलिंगेमदैक्यंफलमेवहि ॥ ४५ ॥ लिंगंप्राधान्यतःस्थाप्यंतथाबेरंतुगौणकम् ॥ लिंगाभावेनतत्क्षेत्रंसबेरमपिसर्वतः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायांनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ब्रह्मविष्णूऊचतुः ॥ सर्गादिपंचकृत्यस्यलक्षणंब्रूहिनौप्रभो ॥ शिवउवाच ॥ मत्कृत्यबोधनंगुह्यंकृपयाप्रब्रवीमिवाम् ॥ १ ॥ सृष्टिःस्थितिश्चसंहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः ॥ पंचैवमेजगत्कृत्यंनित्यसिद्धमजाच्युतौ ॥ २ ॥

हे पुत्र ! वहां मैं अप्रतिष्ठित भी स्थित हूं ॥ ४४ ॥ एक लिंगके स्थापनसे मेरे समान रूपकी प्राप्ति यह फल होता है, और दूसरे लिंगके स्थापन करनेमें मेरी एकताकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४५ ॥ वह लिंग प्रधान है और बेरलिंग गौण है लिंगके अभावसे बेर सहित भी वह स्थान क्षेत्र नहीं होता है ॥ ४६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मा और विष्णु बोले हे प्रभो ! आप हमसे सर्गादि पंचकृत्यका लक्षण कहिये शिवजी बोले हमारा कृत्य और ज्ञान दुर्लभहै मैं कृपासे तुमको कहताहूं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मा, विष्णु सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव

अनुग्रह यह पांच हमारे जगतके कृत्य नित्यसिद्धहैं ॥ २ ॥ संसारके आरंभका नाम सर्ग, उसकी वृद्धिका नाम स्थितिहै, उसके नष्ट करनेका नाम संहार
उद्धारका नाम उत्क्रमहै ॥ ३ ॥ उस संसारसे मोक्ष करनेका नाम अनुग्रह है बस यही मेरे पांच कृत्यहैं और पृथ्वी आदि इस मेरे कृत्यको गोपुरके बिंबके
समान मौन होकर धारण करतेहैं ॥ ४ ॥ यह सर्गादि चार कृत्य तौ सृष्टिके कर्म्ममें प्रवेश करतेहैं और पांचवाँ मुक्तिका कारण सदा मुझमेंही स्थित रहताहै
॥ ५ ॥ सो यह पंचभूतोंमें मेरे जनोंद्वारा दीखताहै. पृथ्वीमें सृष्टि जलमें स्थिति अग्निमें संहार ॥ ६ ॥ पवनमें तिरोभाव आकाशमें अनुग्रहहै सब कुछ पृथ्वी

सर्गःसंसारसंरंभस्तत्प्रतिष्ठास्थितिर्मता ॥ संहारोमर्दनंतस्यतिरोभावस्तदुत्क्रमः ॥ ३ ॥ तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मेकृत्यमेवंहिपंचकम् ॥
कृत्यमेतद्वहत्यन्यस्तूर्ष्णींगोपुरबिंबवत् ॥ ४ ॥ सर्गादियच्चतुष्कृत्यंसंसारपरिजृंभणम् ॥ पंचमंमुक्तिहेतुर्वैनित्यंमयिचसुस्थिरम् ॥ ५ ॥
तदिदंपंचभूतेषुदृश्यतेमामकैर्जनैः ॥ सृष्टिर्भूमौस्थितिस्तोयेसंहारःपावकेतथा ॥ ६ ॥ तिरोभावोऽनिलेतद्वदनुग्रहइहाम्बरे ॥ सृज्यते
धरयासर्वमद्भिःसर्वंप्रवर्द्धते ॥ ७ ॥ अर्द्यतेतेजसासर्वंवायुनाचापनीयते ॥ व्योम्नानुगृह्यतेसर्वंज्ञेयमेवंहिसूरिभिः ॥ ८ ॥ पंचकृत्यमिदंवो
ढुंममास्तिमुखपंचकम् ॥ चतुर्दिक्षुचतुर्वक्त्रंतन्मध्येपंचमंमुखम् ॥ ९ ॥ युवाभ्यांतपसालब्धमेतत्कृत्यद्वयंसुतौ ॥ सृष्टिस्थित्यभिधंभाग्यं
मत्तःप्रीतादतिप्रियम् ॥ १० ॥ तथारुद्रमहेशाभ्यामन्यत्कृत्यद्वयंपरम् ॥ अनुग्रहाख्यंकेनापिलब्धुंनैवहिशक्यते ॥ ११ ॥ तत्सर्वंपौ
र्विकंकर्मयुवाभ्यांकालविस्मृतम् ॥ नतद्रुद्रमहेशाभ्यांविस्मृतंकर्मतादृशम् ॥ १२ ॥

उत्पन्न करतीहै जलसे सबकी वृद्धि होतीहै ॥ ७ ॥ तेजसे सब नष्ट होते वायुमें सब लय होते और आकाशद्वारा सबपर अनुग्रह होताहै ऐसा प्राचीन कवि
योंको जानना चाहिये ॥ ८ ॥ इसी पांच कृत्यके धारण करनेको मेरे पांच मुखहैं चार दिशाओंमें चार और मध्यमें पांचवाँ मुखहै ॥ ९ ॥ हे पुत्रो ! यह
कृत्य आपने तपसे प्राप्त कियाहै जोकि सृष्टिकी उत्पत्ति और पालन कहाताहै सो मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दियाहै ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे दूसरे दो कृत्य रुद्र
और महेशको प्रदानकिये हैं परन्तु अनुग्रह कृत्य कोईभी पानेको समर्थ नहींहै ॥ ११ ॥ सो पूर्वके कर्म्म तुमने समयसे बिसार दिये रुद्र और महेशने उनको

४

नहीं भुलायाहै ॥ १२ ॥ रूपवेश कृत्य आसन वाहन और आयुधादिमें हमारी साम्यताथी ॥ १३ ॥ हे सौम्य ! मेरे ज्ञानके विमुख होनेसे तुम्हैं अज्ञानता आगई मेरा ज्ञान होनेसे ऐसा नहीं होता ज्ञान और रूप महेशके तुल्य होजाताहै ॥ १४ ॥ इसकारण उस ज्ञानकी सिद्धिके निमित्त ॐकार नामक मंत्र जप करो यह अभिमानका दूर करनेवालाहै ॥ १५ ॥ सोई निज मंत्र उपदेश करतेहैं यह ॐकार मेरे मुखसे उत्पन्न होनेसे मेरेही रूपका बोधक है और महामंगल करनेवालाहै ॥ १६ ॥ यह वाचकहै और मैं वाच्यहूं. यह मंत्र मेरा आत्माहै उसके स्मरण करनेसे मेराही स्मरण होताहै ॥ १७ ॥

रूपेवेशेचकृत्येचवाहनेचासनेतथा ॥ आयुधादौचमत्साम्यमस्माभिस्तत्कृतेकृतम् ॥ १३ ॥ मद्ध्यानविरहाद्वत्सौमौढ्यंवामेवमागतम् ॥ मज्ज्ञानेसतिनैवंस्यान्मानंरूपेमहेशवत् ॥ १४ ॥ तस्मान्मज्ज्ञानसिद्ध्यर्थंमंत्रमोंकारनामकम् ॥ इतःपरंप्रजपतंमामकंमानभंजनम् ॥ ॥ १५ ॥ उपादिशंनिजंमंत्रमोंकारमुरुमंगलम् ॥ ओंकारोमन्मुखाज्जज्ञेप्रथमंमत्प्रबोधकः ॥ १६ ॥ वाचकोऽयमहंवाच्योमंत्रोऽयंहि मदात्मकः ॥ तदनुस्मरणंनित्यंममानुस्मरणंभवेत् ॥ १७ ॥ अकारउत्तरात्पूर्वमुकारःपश्चिमाननात् ॥ मकारोदक्षिणमुखाद्बिंदुःप्राङ्मुखतस्तथा ॥ १८ ॥ नादोमध्यमुखादेवंपंचधाऽसौविजृंभितः ॥ एकीभूतःपुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरोभवत् ॥ १९ ॥ नामरूपात्मकंसर्वंवेदभूतकुलद्वयम् ॥ व्याप्तमेतेनमंत्रेणशिवशक्त्योश्चबोधकः ॥ २० ॥ अस्मात्पंचाक्षरंजज्ञेबोधकंसकलस्यतत् ॥ अकारादिक्रमेणैवनकारादियथाक्रमम् ॥ २१ ॥

उत्तरकी ओरके मुखसे अकार, पश्चिमके मुखसे उकार, दक्षिणके मुखसे मकार, पूर्वके मुखसे बिन्दु ॥ १८ ॥ मध्यके मुखसे नाद उत्पन्न हुआ. इस प्रकार पांच प्रकारसे वह निर्गत हुआ वह सब एक होकर 'ॐ' ऐसा एकाक्षर होजाताहै ॥ १९ ॥ यह सब नाम रूपात्मक वेदभूत दोनों कुल अर्थात् स्त्रीपुरुष भेदसे भौतिक शरीर वर्ग दोका भेदवालाहै वह इसी मंत्रसे व्याप्त है और शिवशक्तिका बोधक है ॥ २० ॥ इसी ॐकारसे सब जगत्का बोधक प्रणव उत्पन्न हुआहै अकारादिक्रमसे अर्थात् अकारसे नकार उकारसे मकार मकारसे 'शि' बिन्दुसे 'वा' नादसे 'य' प्रगट हुआ है ॥ २१ ॥

और इसी पंचाक्षरसे पांच भेदसे मातृका अकारसे ऌकारपर्यन्त हुईं उससे शिरोमंत्र और चार मुखोंसे त्रिपदा गायत्री हुई ॥ २२ ॥ उससे सब वेद उत्पन्न हुए उससे करोड मंत्र उत्पन्न हुए, उस मंत्रसे उसके कथनानुसार सिद्धि होतीहै परन्तु पंचाक्षरमंत्रसे सब सिद्धि होतीहैं ॥ २३ ॥ इस श्रेष्ठ मूलमंत्रसे सब सिद्ध भोग और मोक्षकी सिद्धि होतीहै, कलासहित सब राजमंत्र साक्षात् भोग देनेवाले हैं ॥ २४ ॥ नंदिकेश्वर बोले तब उन दोनोंके गुरु शिव जीने उन दोनोंके शिरपर वस्त्र रख और अपना करकमल धारणकर पार्वतीसहित उत्तरकी ओरको मुख कल्पना कर उन दोनोंको मंत्र दिया ॥ २५ ॥

अस्मात्पंचाक्षराज्जातामातृकाःपंचभेदतः ॥ तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रात्त्रिपाद्गायत्रिरेवहि ॥ २२ ॥ वेदःसर्वस्ततोजज्ञेततोवैमंत्रकोटयः ॥
तत्तन्मंत्रेणतत्सिद्धिःसर्वसिद्धिरितोभवेत् ॥ २३ ॥ अनेनमंत्रकंदेनभोगोमोक्षश्चसिद्ध्यति ॥ सकलामंत्रराजानःसाक्षाद्भोगप्रदाः
शुभाः ॥ २४ ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ पुनस्तयोस्तत्रतिरःपटंगुरुःप्रकल्प्यमंत्रंचसमादिशत्परम् ॥ निधायतच्छीर्ष्णिकरांबुजंशनैरुद
ङ्मुखंसंस्थितयोःसहांबिकः ॥ २५ ॥ त्रिरुच्चार्याग्रहीन्मंत्रंयंत्रतंत्रोक्तिपूर्वकम् ॥ शिष्यौचतौदक्षिणायामात्मानंचसमर्पयत् ॥ २६ ॥
प्रबद्धहस्तौकिलतौतदंतिकेतमेवदेवंजगतुर्जगद्गुरुम् ॥ २७ ॥ ब्रह्माच्युतावूचतुः ॥ नमोनिष्कलरूपायनमोनिष्कलतेजसे ॥ नमः
सकलनाथायनमस्तेसकलात्मने ॥ २८ ॥ नमःप्रणववाच्यायनमःप्रणवलिंगिने ॥ नमःसृष्ट्यादिकर्त्रेचनमःपंचमुखायते ॥ २९ ॥
पंचब्रह्मस्वरूपायपंचकृत्यायतेनमः ॥ आत्मनेब्रह्मणेतुभ्यमनंतगुणशक्तये ॥ ३० ॥

यंत्र तंत्र और युक्तिपूर्वक तीनबार उस मंत्रको उच्चारण कराकर मंत्र प्रदान किया तब उन दोनोंने दक्षिणामें उनको अपनी आत्मा निवेदन करदी ॥ २६ ॥ और हाथ जोडकर उन दोनोंने देवदेव जगत्के गुरुसे यह वचन कहे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और अच्युत बोले निष्कलरूप और निष्कल तेजस्वी सबके स्वामी सम्पूर्ण के आत्माके निमित्त नमस्कार है ॥ २८ ॥ ॐकार वाच्य तथा ॐकारहै लिंग जिसका तिसके निमित्त नमस्कार है; तथा सृष्टिके करता पञ्चमुखवाले आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ पंच ब्रह्मस्वरूप पंचकृत्य आत्मा स्वरूप ब्रह्म अनन्त गुण शक्तिमान्के निमित्त नमस्कार है ॥ ३० ॥

सकल अकलरूप शम्भु गुरुके निमित्त नमस्कार है. इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्मा विष्णुने शिवको नमस्कार किया ॥ ३१ ॥ ईश्वर बोले हे पुत्र ! तुमको सब तत्त्व कहा और दिखायाभी इस दिव्य पवित्र मंत्रको जपो यह साक्षात् मेरा स्वरूप है ॥ ३२ ॥ इससे ज्ञान सुस्थिर होता तथा सर्वत्र श्रेष्ठ भाग्य होता है. आर्द्रायुक्त चौदशमें जप करनेसे अक्षय पुण्य होताहै ॥ ३३ ॥ आर्द्रामें सूर्यहो तौ एक मंत्र जपनेसे कोटि गुणा फल होता है, मृगशीर्षका अन्तिम और पुनर्वसुका आदिका भाग ॥ ३४ ॥ यह पूजा होम तर्पण करनेमें आदिहीके समान सदा फलदायक है, प्रातःकालमें दर्शन और प्रभातकी सन्धिमें दर्शनका महाफल है ॥ ३५ ॥ और अर्द्धरात्रिव्यापिनी चतुर्दशी लेनी कोई प्रदोषव्यापिनीभी कहतेहैं यहभी श्रेष्ठ है. कोई परतिथिसे युक्त लेतहैं ॥ ३६ ॥ मेरे

सकलाकलरूपायशंभवेगुरवेनमः ॥ इतिस्तुत्वागुरुंपद्यैर्ब्रह्माविष्णुश्चनेमतुः ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वत्सकौसर्वतत्त्वंचकथितंदर्शितं चवाम् ॥ जपतंप्रणवंमंत्रंदेवीदिष्टंमदात्मकम् ॥ ३२ ॥ ज्ञानंचसुस्थिरंभाग्यंसर्वंभवतिशाश्वतम् ॥ आर्द्रायांचचतुर्दश्यांतज्जाप्यंत्वक्षयं भवेत् ॥ ३३ ॥ सूर्यगत्यामहार्द्रायामेकंकोटिगुणंभवेत् ॥ मृगशीर्षांतिमोभागःपुनर्वस्वादिमस्तथा ॥ ३४ ॥ आर्द्रासमःसदाज्ञेयःपूजाहोमादितर्पणे ॥ दर्शनंतुप्रभातेचप्रातःसंगवकालयोः ॥ ३५ ॥ चतुर्दशीतथाग्राह्यानिशीथव्यापिनीभवेत् ॥ प्रदोषव्यापिनीचैवपरयुक्ताप्रशस्यते ॥ ३६ ॥ लिंगंबेरंचमेतुल्यंयजतांलिंगमुत्तमम् ॥ तस्माल्लिंगंपरंपूज्यंबेरादपिमुमुक्षुभिः ॥ ३७ ॥ लिंगमोंकारमंत्रेणबेरंपंचाक्षरेणतु ॥ स्वयमेवहिसद्द्रव्यैःप्रतिष्ठाप्यंपरैरपि ॥ ३८ ॥ पूजयेदुपचारैश्चमत्पदंसुलभंभवेत् ॥ इतिशास्यतदाशिष्यौतत्रैवांऽतर्हितः शिवः ॥ ३९ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ॥ कथंलिंगंप्रतिष्ठाप्यंकथं वातस्यलक्षणम् ॥ कथंवातत्समभ्यर्च्यंदेशेकालेचकेनहि ॥ १ ॥

तुल्य सुन्दर लिंगबेरका यजन करना चाहिये इसकारण मुक्तिकी इच्छा करनेवालेको बेरसेभी परलिंगका पूजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ लिंगको ॐकार मंत्रसे बेरको पंचाक्षर मंत्रसे पूजै स्वयं लिंगको श्रेष्ठ द्रव्यसे पूजै और दूसरे लिंगकी प्रतिष्ठा करके ॥ ३८ ॥ उपचारादिद्वारा पूजन करै तो मेरा पद सुलभ होजाता है. इसप्रकार शिष्योंको उपदेश दे शिवजी वहांही अन्तर्धान होगये ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां पंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृतभाषायां साध्यसाधनखण्डे पंचकृत्यादिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले लिंगकी प्रतिष्ठा किसप्रकार करनी चाहिये, उसका क्या

लक्षण है, किस देशकालमें किसप्रकार उसकी अर्चना करनी चाहिये ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले मैं तुम्हारे निमित्त कहताहूं सावधान होकर सुनो सुन्दर समय पुण्य तीर्थ अथवा तटमें ॥ २ ॥ जहां नित्य पूजाका सम्भव हो ऐसे स्थानमें नित्य अर्चन करै, पृथ्वीसम्बन्धी द्रव्य, जलमय अथवा किसी धातुसे जैसी इच्छाहो लिंग निर्माण करै ॥ ३ ॥ शैवशास्त्रोंमें जो उसका विधान लिखा है उसके अनुसार करके लिंग पूजाका फल ग्रहण करै. कारण कि, सब लक्षण सामान्य होनेसे पूजा फलकी देनेहारी है ॥ ४ ॥ चरमूर्त्ति हो तो छोटी बनावै स्थावर अचर हो तो स्थूल निर्माण करै लक्षण और सिंहासन सहित शिवका स्थापन करै ॥ ५ ॥ चरका मंडल अथवा त्रिकोण बनाकर खट्वांग (दंडमें आरोपिताशिरकपालात्मक ध्वज) के समान

सूतउवाच ॥ युष्मदर्थंप्रवक्ष्यामिबुद्धयंतामवधानतः ॥ अनुकूलेशुभेकालेपुण्येतीर्थेतटेतथा ॥ २ ॥ यथेष्टंलिंगमारोप्यंयत्रस्यान्नित्यमर्चनम् ॥ पार्थिवेनतथाप्येनतैजसेनयथारुचि ॥ ३ ॥ कल्पलक्षणसंयुक्तंलिंगंपूजाफलंलभेत् ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तंसद्यःपूजाफलप्रदम् ॥४॥ चरेविशिष्यतेसूक्ष्मंस्थावरेस्थूलमेवहि ॥ सलक्षणंसपीठंचस्थापयेच्छिवनिर्मितम् ॥ ५ ॥ मंडलंचतुरस्त्रंवात्रिकोणमथवातथा ॥ खट्वांगवन्मध्यसूक्ष्मंलिंगपीठंमहाफलम् ॥ ६ ॥ प्रथमंमृच्छिलादिभ्योलिंगंलोहादिभिःकृतम् ॥ येनलिंगंतेनपीठंस्थावरेहिविशिष्यते ॥ ७ ॥ लिंगंपीठंचरेत्वेकंलिंगंबाणकृतंविना॥ लिंगप्रमाणंकर्तृणांद्वादशांगुलमुत्तमम् ॥ ८ ॥ न्यूनंचेत्फलमल्पंस्यादधिकंनैवदूष्यते॥ कर्तुरेकांगुलन्यूनंचरेपिचतथैवहि ॥ ९ ॥ आदौविमानंशिल्पेनकार्यंदेवगणैर्युतम् ॥ तत्रगर्भगृहेरम्येदृढेदर्पणसंनिभे ॥ १० ॥ भूषितेनवरत्नैश्चदिग्द्वारेचप्रधानकैः ॥ नीलंरक्तंचवैदूर्यंश्यामंमारकतंतथा ॥ ११ ॥

मध्यमें सूक्ष्मलिंग की चौकी (जिसपर स्थापना होतीहै) महाफल देनेहारीहै ॥ ६ ॥ प्रथमलिंग मिट्टी शिला और लोहादिधातुओंसे करै जिस वस्तुका लिंगहो उसीका पीठ बनावै केवल स्थावरमें विशेषता है ॥ ७ ॥ केवल बाणलिंगको छोडकर लिंगपीठ एकहीमें निर्माण करै, लिंगका प्रमाण बारह अंगुलका करै ॥ ८ ॥ न्यून होनेसे फलभी थोडाहोगा, अधिक होनेमें कोई दोष नहीं अथवा ग्यारह अंगुलभी द्वादशकेही समान है ॥ ९ ॥ प्रथम शिल्पविद्यासे देवताओंके गणोंसहित विमान करावै उसके भीतरके सुन्दर स्थानोंमें जो दृढ और दर्पणके समान प्रकाशितहो ॥ १० ॥ उन्हैं नवरत्नोंसे

भूषितकरै, पूर्व और पश्चिमकी ओर उसका मुख्य गृहद्वार बनावै, नीलरत्न वैडूर्य्यमणि श्याममरकतमणि ॥ ११ ॥ मोती मूँगा प्रवाल ~~गोमेद~~ हीरा यह नौ रत्न हैं; लिंगके स्थापनके मध्यदेशमें यह नवरत्न वस्तु स्थापन करदे ॥ १२ ॥ फिर सद्योजातादि मंत्रोंसे लिंगको पूजन कर और पूर्वादिदिशाओंके मध्यमें अर्चन कर अग्निमें अनेकप्रकार आहुति देकर और परिवार सहित मेरा ॥ १३ ॥ पूजनकर गुरु और आचार्य्यकाभी पूजनकर अर्थ और कामसे बन्धुजनोंका सत्कारकर अर्थियोंके निमित्त घर बगीचा और गोदानादि देना चाहिये ॥ १४ ॥ फिर यत्नपूर्वक स्थावर जंगमादि सब जीवोंको संतुष्टकर सुवर्ण और नवरत्नसे पूरित उस गर्तमें ॥ १५ ॥ सद्योजातादि पांच मंत्रोंको उच्चारण कर और परमसुभगदेवका ध्यानकर ॐकारके नादसे शोधितकर

मुक्ताप्रवालगोमेदवज्राणिनवरत्नकम् ॥ मध्येलिंगंमहद्द्रव्यंनिक्षिपेत्सहवेदिके ॥ १२ ॥ संपूज्यलिंगंसद्याद्यैःपंचस्थानेयथाक्रमम् ॥
अग्नौचहुत्वाबहुधाहविषासकलंचमाम् ॥ १३ ॥ अभ्यर्च्यगुरुमाचार्यमर्थैःकामैश्चबांधवम् ॥ दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्योजडमप्यजडंतथा ॥
॥ १४ ॥ स्थावरंजंगमंजीवंसर्वंसंतोष्ययत्नतः ॥ सुवर्णपूरितेश्वभ्रेनवरत्नैश्चपूरिते ॥ १५ ॥ सद्यादिब्रह्मचोच्चार्यध्यात्वादेवंपरंशुभम् ॥
उदीर्यचमहामंत्रमोंकारंनादघोषितम् ॥ १६ ॥ लिंगंतत्रप्रतिष्ठाप्यालिंगंपीठेनयोजयेत् ॥ लिंगंसपीठंनिक्षिप्यनित्यलेपेनबंधयेत् ॥१७॥
एवंबेरंचसंस्थाप्यंतत्रैवपरमंशुभम् ॥ पंचाक्षरेणबेरंतुउत्सवार्थंबहिस्तथा ॥ १८ ॥ बेरंगुरुभ्योगृह्णीयात्साधुभिःपूजितंतुवा ॥ एवंलिंगे
चबेरेचपूजाशिवपदप्रदा ॥ १९ ॥ पुनश्चद्विविधंप्रोक्तंस्थावरंजंगमंतथा ॥ स्थावरंलिंगमित्याहुस्तरुगुल्मादिकंतथा ॥ २० ॥ जंगमं
लिंगमित्याहुःक्रिमिकीटादिकंतथा ॥ स्थावरस्यचशुश्रूषाजंगमस्यचतर्पणम् ॥ २१ ॥

महामंत्रोंका उच्चारणकर ॥ १६ ॥ उसमें लिंग स्थापनकर फिर लिंग और पीठको जोडकर और उस लिंग और पीठको दृढ जोडनेवाले द्रव्यसे जोडदे ॥ १७ ॥ इसी विधिसे बेरलिंगकीभी वहां स्थापना करै. पंचाक्षरमंत्रसे बेरको उत्सवादिके निमित्त बाहर रक्खै ॥ १८ ॥ बेरलिंगको महात्मा अथवा साधुसे ग्रहण करना चाहिये अथवा गुरुसे ग्रहण करै इस प्रकार लिंग और बेरमें महादेवकी पूजा शिवके पदकी देनेहारी है ॥ १९ ॥ फिरभी स्थावर जंगमके भेदसे यह दो प्रकारकेहैं, तरु गुल्मादिके लिंगको स्थावर कहतेहैं ॥ २० ॥ कृमि कीटादि जंगम लिंगहैं, स्थावरकी शुश्रूषा अर्थात्

जलादिसेचन और उनका तर्पणअर्थात् जल अन्नादिसे संतुष्ट करनाहै ॥ २१ ॥ उस उस सुखके अनुरागसे शिवकी पूजा पंडितोंने कहीहै, पीठ प्रकृतिमय है और शिवलिंग ज्ञानस्वरूप है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार शिवजी पार्वतीदेवीको अंकमें लेकर स्थित रहतेहैं इसी प्रकारसे लिंग इस पीठको धारे स्थित रहताहै ॥ २३ ॥ इसप्रकार लिंगको स्थापनकर उपचारसे पूजा करै यथाशक्ति नित्य पूजा और ध्वजादिका उत्सव करै ॥ २४ ॥ इस प्रकार शिवपदके देनेहारे लिंगकी नित्य पूजा करै अथवा चरलिंगकी षोडश उपचारसे पूजा करै ॥ २५ ॥ यथायोग्य पूजै तौ शिवजीके पदकी प्राप्ति होतीहै, आवाहन आसन

तत्तत्सुखानुरागेणशिवपूजांविदुर्बुधाः ॥ पीठमंबामयंसर्वंशिवलिंगंचचिन्मयम् ॥ २२ ॥ यथादेवीमुमामंकेधृत्वातिष्ठतिशंकरः ॥ तथालिंगमिदंपीठंधृत्वातिष्ठतिसंततम् ॥ २३ ॥ एवंस्थाप्यमहालिंगंपूजयेदुपचारकैः ॥ नित्यपूजायथाशक्तिध्वजादिकरणंतथा ॥ २४ ॥ इतिसंस्थापयेल्लिंगंसाक्षाच्छिवपदप्रदम् ॥ अथवाचरलिंगंतुषोडशैरुपचारकैः ॥ २५ ॥ पूजयेच्चयथान्यायंक्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥ आवाहनंचासनंचअर्घ्यंपाद्यंतथैवच ॥ २६ ॥ तदंगाचमनंचैवस्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥ वस्त्रंगंधंतथापुष्पंधूपंदीपंनिवेदनम् ॥ २७ ॥ नीराजनंचतांबूलंनमस्कारोविसर्जनम् ॥ अथवाऽर्घ्यादिकंकृत्वानैवेद्यांतंयथाविधि ॥ २८ ॥ अथाभिषेकंनैवेद्यंनमस्कारंचतर्पणम् ॥ यथाशक्तिसदाकुर्यात्क्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥ २९ ॥ अथवामानुषेलिंगेप्यार्षेदैवेस्वयंभुवि ॥ स्थापितेऽपूर्वकेलिंगेसोपचारंयथातथा ॥ ३० ॥ पूजोपकरणेदत्तेयत्किंचित्फलमश्नुते ॥ प्रदक्षिणानमस्कारैःक्रमाच्छिवपदप्रदम् ॥ ३१ ॥

अर्घ्य पाद्य ॥ २६ ॥ अंग आचमन तैलाभ्यंगपूर्वक आचमन वस्त्र गंध पुष्प धूप दीप निवेदन करना ॥ २७ ॥ नीराजन ताम्बूल नमस्कार विसर्जन अथवा नैवेद्यके अन्ततक यथावत् अर्घ्यादि करके ॥ २८ ॥ अभिषेक नैवेद्य नमस्कार तर्पण यथाशक्ति सदा करै तो क्रमसे शिवपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ॥ २९ ॥ अथवा मनुष्यके स्थापित किये अथवा ऋषियोंके स्थापित किये अथवा स्वयं प्रादुर्भूत हुए अथवा नये स्थापन किये लिंगमें यथा तथा उपचार ॥ ३० ॥ और पूजासामग्री निवेदन करनेसे जो कुछ फलकी प्राप्ति होती है यहां प्रदक्षिणा नमस्कारसेही क्रमसे शिवपदकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥

नियमसे शिवदर्शन करनेसेभी शिवलोककी प्राप्ति होतीहै.:पिसी मिट्टीमें गोबरमिलाकर वा कनेरके फूल अथवा अनेक प्रकारके फल ॥ ३२ ॥ गुड
नवनीत भस्म अन्न अथवा जैसी रुचि हो उसीप्रकार लिंगको यत्नपूर्वक निर्मित करकै उसीके अनुसार यजन करै ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार कोई
अंगुष्ठमेंही शिवजीकी पूजा करते हैं. लिंग पूजा चाहै जहां करै इसका निषेध नहीं है ॥ ३४ ॥ श्रमके अनुसार शिव सर्वत्रही फल देते हैं अथवा
लिंगदान और लिंगका मूल्य ॥ ३५ ॥ अथवा श्रद्धापूर्वक शिवके भक्तको देनेसेभी महाफलकी प्राप्ति होती है शिवका पदही मिलजाता है, अथवा नित्य प्रति

लिंगदर्शनमात्रंवानियमेनशिवप्रदम् ॥ मृत्पिष्टगोशकृत्पुष्पैःकरवीरेणवाफलैः ॥ ३२ ॥ गुडेननवनीतेनभस्मनान्नैर्यथारुचि ॥ लिंगंयत्ने
नकृत्वातंयजेत्तदनुसारतः ॥ ३३ ॥ अंगुष्ठादावपितथापूजामिच्छंतिकेचन ॥ लिंगकर्मणिसर्वत्रनिषेधोऽस्तिनकर्हिचित् ॥ ३४ ॥ सर्वत्र
फलदाताहिप्रयासानुगुणंशिवः ॥ अथवालिंगदानंवालिंगमौल्यमथापिवा ॥ ३५ ॥ श्रद्धयाशिवभक्तायदत्तंशिवपदप्रदम् ॥ अथवाप्रणवं
नित्यंजपेद्दशसहस्रकम् ॥ ३६ ॥ संध्ययोश्चसहस्रंवाज्ञेयंशिवपदप्रदम् ॥ जपकालेमकारांतंमनःशुद्धिकरंभजेत् ॥ ३७ ॥ समाधौमानसं
प्रोक्तमुपांशुसार्वकालिकम् ॥ समानप्रणवंचेमंबिंदुनादयुतंविदुः ॥ ३८ ॥ अथपंचाक्षरंनित्यंजपेदयुतमादरात् ॥ संध्ययोश्चसहस्रंवाज्ञे
यंशिवपदप्रदम् ॥ ३९ ॥ प्रणवेनादिसंयुक्तंब्राह्मणानांविशिष्यते ॥ दीक्षायुक्तंगुरोर्ग्राह्यंमंत्रंह्यथफलाप्तये ॥ ४० ॥

दशसहस्र ॐकारका जप करै ॥ ३६ ॥ अथवा दोनों संध्याओंमें सहस्र २ वार जप करनेसेभी शिवपदकी प्राप्ति होती है जपकालमें मकारान्तही (ओम्)
मनशुद्धि करनेवाला होताहै ॥ ३७ ॥ समाधिमें मानसिक जप कहाहै उपांशु अर्थात् दूसरेको न सुन पडै ऐसा जप सर्वकालमें कहा है और बिंदुनाद
युक्त प्रणव सर्वकाममें एकहीहै ॥ ३८ ॥ अथवा प्रेमसे नित्य दशसहस्र पंचाक्षर जपै अथवा दोनों सन्ध्याओंमें सहस्र २ वार जपनेसे शिवपदकी प्राप्ति
होतीहै ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंको पंचाक्षरके जपमें ॐ लगाना उचित है और फलकी प्राप्तिके निमित्त गुरुसे दीक्षापूर्वक मंत्र ग्रहण करना चाहिये ॥ ४० ॥

घटस्नान मंत्रदीक्षा मातृका न्यास करना और सत्य बोलनेसे पवित्र आत्मा ज्ञानी गुरुहोना चाहिये ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणोंको नमः पहले और दूसरे वर्णोंको
नमः पीछे विधिपूर्वक लगाना चाहिये स्त्रियोंको अन्तमें नमः लगाना चाहिये ॥ ४२ ॥ कोई कहते हैं; ब्राह्मणोंकी स्त्रीकोभी नमः पहलेही मंत्रमें उच्चारण
करना चाहिये, (ॐनमः शिवाय) यह पंचाक्षरका पांचकरोड जप करकै सदाशिवके समान होजाताहै ॥ ४३ ॥ एक दो तीन चार करोड जप करके
ब्रह्मा विष्णु रुद्र महेशके पदको प्राप्तहोता है, अथवा मंत्राक्षरोंमेंसे एक २ अक्षरका एक २ लाख जप करै ॥ ४४ ॥ अथवा जितने मंत्रके अक्षरहों

कुंभस्नानंमंत्रदीक्षांमातृकान्यासमेवच ॥ ब्राह्मणःसत्यपूतात्मागुरुर्ज्ञानीविशिष्यते ॥ ४१ ॥ द्विजानांचनमःपूर्वमन्येषांचनमोन्तकम् ॥
स्त्रीणांचक्वचिदिच्छंतिनमोंतंचयथाविधि ॥ ४२ ॥ विप्रस्त्रीणांनमःपूर्वमिदमिच्छंतिकेचन ॥ पंचकोटिजपंकृत्वासदाशिवसमोभवेत् ॥
॥ ४३ ॥ एकद्वित्रिचतुःकोट्याब्रह्मादीनांपदंव्रजेत् ॥ जपेदक्षरलक्षंवाअक्षराणांपृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ अथवाक्षरलक्षंवाज्ञेयंशिवपद
प्रदम् ॥ सहस्रंतुसहस्राणांसहस्रेणदिनेनहि ॥ ४५ ॥ जपेन्मंत्रादिष्टसिद्धिर्नित्यंब्राह्मणभोजनात् ॥ अष्टोत्तरसहस्रंवैगायत्रींप्रातरेवहि ॥
॥ ४६ ॥ ब्राह्मणस्तुजपेन्नित्यंक्रमाच्छिवपदप्रदान् ॥ वेदमंत्रांस्तुसूक्तानिजपेन्नियममास्थितः ॥ ४७ ॥ एकंदशार्णंमंत्रंचशतोनंचतदूर्ध्व
कम् ॥ अयुतंचसहस्रंचशतमेकंविनाभवेत् ॥ ४८ ॥ वेदपारायणंचैवज्ञेयंशिवपदप्रदम् ॥ अन्यान्बहुतरान्मंत्राञ्जपेदक्षरलक्षतः ॥ ४९ ॥

उतनाही लक्षजप करनेसे शिवपदकी प्राप्ति होतीहै, अथवा सहस्र दिनमें दशलक्ष जपकरै ॥ ४५ ॥ नित्यब्राह्मणभोजन करावै, मंत्रजपै, इष्टकी सिद्धि होगी
और १००८ एकसहस्र और आठ गायत्री प्रातःकालही नित्य जप ॥ ४६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मण जप करनेसे क्रमसे शिवपदको प्राप्तहोजाताहै, वेदके
मंत्र और सूक्त नियमसे जपै ॥ ४७ ॥ एक दशार्ण अर्थात् दश अक्षर मन्त्र सौसे अधिक सहस्रादि जपै सौसे कमती न करै, दशसहस्र अथवा सहस्र
एकसौके बिना करै ॥ ४८ ॥ वेद पारायणसेभी शिवपदकी प्राप्ति होती है और भी बहुत मंत्रहैं उनके जितने अक्षरहों उतनेही लाख जपै ॥ ४९ ॥

एकाक्षरमंत्रको एक करोड जपै इसके उपरान्त भक्तिपूर्वक सहस्र ॐकारका जप करै ॥ ५० ॥ इसप्रकार यथाशक्ति करनेसे क्रमसे शिवके पदको प्राप्त होजाता है, नित्य प्रति जीवनपर्यन्त एक मंत्रका जप ॥ ५१ ॥ (ॐ) ऐसा सहस्रवार करता रहै तौ शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति होजाती है. पुष्प बाग तथा संमार्जन ॥ ५२ ॥ शिवके निमित्त करनेसे कल्याण और शिवपदकी प्राप्ति होती है, नित्य भक्तिपूर्वक शिवक्षेत्रमें निवास करै ॥ ५३ ॥ यह जड अजड सबकोही मुक्ति देते हैं इसकारण बुद्धिमान्को उचित है कि, शिवक्षेत्रमें मरणपर्यन्त वास करै ॥ ५४ ॥ जहां मनुष्योंने लिंग स्थापित किया है वहां सौ हाथतक पुण्यजनक स्थान है और पुण्य क्षेत्रमें जहां ऋषियोंने स्थापित किया है वहां सहस्र अरत्नि (हाथभर) तक स्थान पवित्र होता है ॥ ५५ ॥ देवताओंके स्थापित लिंगके चारों ओर सहस्र अरत्नि स्थान पवित्र होताहै, और स्वयंभूलिंग अर्थात् जहां लिंग स्वयं प्रादुर्भूत हुआ है वहां सहस्र धनुषतक स्थान पवित्र होजाताहै, चार हाथका एक धनुष होता है ॥ ५६ ॥ पुण्यक्षेत्रके कुए बावडी पुष्कर (सरोवर) वे सब शिवगंगास्वरूप हैं. यह शिवजीका वचनहै ॥ ५७ ॥ वहां स्नान दान और जप करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है, शिवक्षेत्रको प्राप्तहो मरणपर्यन्त वहां निवास करना उचित है ॥ ५८ ॥ दाह दशाह मासिककर्म सपिंडीकरण श्राद्ध सांवत्सरिककर्म क्षेत्रपिंड जो कुछ शिवक्षेत्रमें किया जाता है ॥ ५९ ॥

एकाक्षरांस्तथामंत्राञ्जपेदक्षरकोटितः ॥ ततःपरंजपेच्चैवसहस्रंभक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ एवंकुर्याद्यथाशक्तिक्रमाच्छिवपदंलभेत् ॥ नित्यं
रुचिकरंत्वेकंमंत्रमामरणांतिकम् ॥ ५१ ॥ जपेत्सहस्रमोमितिसर्वाभीष्टंशिवाज्ञया ॥ पुष्पारामादिकंवापितथासंमार्जनादिकम् ॥ ५२ ॥
शिवायशिवकार्यार्थेकृत्वाशिवपदंलभेत् ॥ शिवक्षेत्रेतथावासंनित्यंकुर्याच्चभक्तितः ॥ ५३ ॥ जडानामजडानांचसर्वेषांभुक्तिमुक्तिदम् ॥
तस्माद्वासंशिवक्षेत्रेकुर्यादामरणंबुधः ॥ ५४ ॥ लिंगाद्धस्तशतंपुण्यंक्षेत्रेमानुषकेविदुः ॥ सहस्रारत्निमात्रंतुपुण्यक्षेत्रेतथार्षके ॥ ५५ ॥ दैव
लिंगेतथाज्ञेयंसहस्रारत्निमानतः ॥ धनुष्प्रमाणसाहस्रंपुण्यंक्षेत्रेस्वयंभुवि ॥ ५६ ॥ पुण्यक्षेत्रेस्थितावापीकूपाद्यपुष्कराणिच ॥ शिवगंगेति
विज्ञेयंशिवस्यवचनंयथा ॥ ५७ ॥ तत्रस्नात्वातथादत्त्वाजपित्वाहिशिवंव्रजेत् ॥ शिवक्षेत्रंसमाश्रित्यवसेदामरणंतथा ॥ ५८ ॥ दाहं
दशाहंमास्यंवासपिंडीकरणंतुवा ॥ आब्दिकंवाशिवक्षेत्रेक्षेत्रेपिंडमथापिवा ॥ ५९ ॥

उसके सब पाप दूर होकर शीघ्र वह शिवपदको प्राप्त होता है. अथवा जो कोई सात रात वा पांच राततक निवास करै ॥ ६० ॥ तीन रात वा एक रात
निवास करै तौ भी क्रमसे शिवपदकी प्राप्ति होतीहै ब्राह्मणादि अपने २ वर्णके अनुरूप उसके फलकी अधिकता सुन्दर आचरणसे प्राप्त करतेहैं ॥ ६१ ॥
और भक्तिपूर्वक करनेसे मनुष्यको महाफल मिल जाताहै जिस्से उसका वर्णोद्धार होताहै जो कुछ कामना करै शीघ्रही उसका फल प्राप्त होताहै ॥ ६२ ॥
सब प्रकार कामनारहित हो पूजन करनेसे साक्षात् शिवफलकी प्राप्ति होतीहै प्रातःकाल मध्याह्न और सन्ध्या समय प्रतिदिन जो शिवाराधन प्रत्येक
समयमें करै ॥ ६३ ॥ प्रातःकालका जप नित्यविधि संपादन करनाहै मध्याह्नका कामनाका और संध्याका शांतिदायक और रात्रिका भी इसी प्रकारका
है ॥ ६४ ॥ दो पहर रात बीतनेपर आधीरात होतीहै उस समय शिवजीका पूजन विशेष फलका देनेवालाहै, सब सिद्धि होतीहैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार
जानकर करनेसे मनुष्य यथोक्तफलभागी होताहै, विशेष कर कलियुगमें फलसिद्धि कर्मसे होतीहै ॥ ६६ ॥ वर्णन किये हुए किसी अधिकारके भेदसे
श्रेष्ठ आचरणी और पापसे डरे तौ उपरोक्त सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है ॥ ६७ ॥ ऋषि बोले सूतजी ! संक्षेपसे आप हमसे पवित्र क्षेत्रोंका वर्णन

सर्वपापविनिर्मुक्तःसद्यःशिवपदंलभेत् ॥ अथवासप्तरात्रंवावसेद्वापंचरात्रकम् ॥ ६० ॥ त्रिरात्रमेकरात्रंवाक्रमाच्छिवपदंलभेत् ॥ स्ववर्णा
नुगुणंलोकेस्वाचारात्प्राप्नुतेनरः ॥ ६१ ॥ वर्णोद्धारेणभक्त्याचतत्फलातिशयंनरः ॥ सर्वंकृतंकामनयासद्यःफलमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥
सर्वंकृतमकामेनसाक्षाच्छिवपदप्रदम् ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतःक्रमात् ॥ ६३ ॥ प्रातर्विधिकरंज्ञेयंमध्याह्नंकामिकंतथा ॥
सायाह्नंशांतिकंज्ञेयंरात्रावपितथैवहि ॥ ६४ ॥ कालोनिशीथोवैप्रोक्तोमध्ययामद्वयंनिशि ॥ शिवपूजाविशेषेणतत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा ॥
॥ ६५ ॥ एवंज्ञात्वानरःकुर्वन्यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥ कलौयुगेविशेषेणफलसिद्धिस्तुकर्मणा ॥ ६६ ॥ उक्तेनकेनचिद्वापिअधिकार
विभेदतः ॥ सद्वृत्तिःपापभीरुश्चेत्तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अथक्षेत्राणिपुण्यानिसमासात्कथयस्वनः ॥ सर्वाःस्त्रियश्च
पुरुषायान्याश्रित्यपदंलभेत् ॥ ६८ ॥

कीजिये. सब स्त्री पुरुष जिनका आश्रय कर शिवके पदको प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ हे सूत ! तुम योगी श्रेष्ठ हो और शिवके क्षेत्रोंके जाननेवाले हो.
सूतजी बोले आप श्रद्धासे सब क्षेत्र और उनके माहात्म्यप्रतिपादक वेदविभागको श्रवण कीजिये ॥ ६९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहि
ताभाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! मुक्ति देनेहारे शिवके क्षेत्रोंको श्रवण करो, हे महापंडितो ! लोकरक्षाके निमित्त उनके
माहात्म्यकोभी कहते हैं ॥ १ ॥ यह पृथ्वी पचास करोड योजन शैल वन काननसहित शिवजीकी आज्ञासे लोकोंको धारण करती है ॥ २ ॥ तहां

सूतयोगिवरश्रेष्ठशिवक्षेत्रागमांस्तथा ॥ सूतउवाच ॥ शृणुतश्रद्धयासर्वक्षेत्राणिचतदागमान् ॥ ६९ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसं
हितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूतउवाच ॥ शृणुध्वमृषयःप्राज्ञाःशिवक्षेत्रंविमुक्तिदम् ॥ तदागमांस्ततोवक्ष्येलोकरक्षार्थमेवहि ॥
॥ १ ॥ पंचाशत्कोटिविस्तीर्णासशैलवनकानना ॥ शिवाज्ञयाहिपृथिवीलोकंधृत्वाचतिष्ठति ॥ २ ॥ तत्रतत्रशिवक्षेत्रंतत्रतत्रनिवा
सिनाम् ॥ मोक्षार्थंकृपयादेवःक्षेत्रंकल्पितवान्प्रभुः ॥ ३ ॥ परिग्रहादृषीणांचदेवानांचपरिग्रहात् ॥ स्वयंभूतान्यथान्यानिलोकरक्षार्थ
मेवहि ॥ ४ ॥ तीर्थेक्षेत्रेसदाकार्यंस्नानदानजपादिकम् ॥ अन्यथारोगदारिद्र्यमूकत्वाद्याप्नुयान्नरः ॥ ५ ॥ अथास्मिन्भारतेवर्षेप्राप्नो
तिमरणंनरः ॥ स्वयंभूस्थानवासेनपुनर्मानुष्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ क्षेत्रेपापस्यकरणंदृढंभवतिभूसुराः ॥ पुण्यक्षेत्रेनिवासेहिपापमण्व
पिनाचरेत् ॥ ७ ॥

तहांके शिवक्षेत्र और वहांके निवासियोंके मोक्षके निमित्त कृपा करके प्रभुने क्षेत्रोंकी कल्पना की है ॥ ३ ॥ ऋषि और देवताओंके परिग्रहसे लोकरक्षाके
निमित्त जो स्वयंभूत क्षेत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥ उन तीर्थ और क्षेत्रोंमें स्नान जपादिक सदा करना चाहिये न करनेसे मनुष्य रोगी दरिद्री होता है और
उसे जडताकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य इस भारतवर्षमें मरणको प्राप्त होताहै वह स्वयंभूके स्थानमें निवास करके फिर मनुष्यलोकमें आताहै ॥
॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो क्षेत्रमें पाप करताहै वह दृढ होजाता है इसकारण पवित्र क्षेत्रमें निवास करके अणुमात्रभी पाप न करै ॥ ७ ॥

जिस किसी उपायसे मनुष्य पुण्यक्षेत्रमें वसै सिन्धु और गंगाके किनारे अनेक तीर्थ हैं ॥ ८ ॥ और पवित्र नदी सरस्वती साठ मुखवाली कहलाती है उसके निकट वास करनेसे मनुष्योंको शिवपदकी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ हिमालयसे निकली हुई पवित्र गंगा सौ मुखोंवाली है उसके किनारेभी काशी आदि अनेक क्षेत्र हैं ॥ १० ॥ मकरके सूर्य्य और मकरके बृहस्पति होनेमें दशमुखवाला शोणभद्रभी महापवित्र और अभीष्टका देनेवाला है ॥ ११ ॥ वहां स्नान और उपवास करनेसे विनायकके पदकी प्राप्ति होती है और नर्मदा नदी महापवित्र और चौवीस मुखवाली है. ॥ १२ ॥ उसमें स्नान और उपवास

येनकेनाप्युपायेनपुण्यक्षेत्रेवसेन्नरः ॥ सिंधोःशतनदीतीरेसंतिक्षेत्राण्यनेकशः ॥ ८ ॥ सरस्वतीनदीपुण्याप्रोक्ताषष्टिमुखातथा ॥ तत्तत्तीरे
वसेत्प्राज्ञःक्रमाद्ब्रह्मपदंलभेत् ॥ ९ ॥ हिमवद्गिरिजागंगापुण्याशतमुखानदी ॥ तत्तीरेचैवकाश्यादिपुण्यक्षेत्राण्यनेकशः ॥ १० ॥ तत्रतीरं
प्रशस्तंहिमृगेमृगबृहस्पतौ ॥ शोणभद्रोदशमुखःपुण्योभीष्टफलप्रदः ॥ ११ ॥ तत्रस्नानोपवासेनपदंवैनायकंलभेत् ॥ चतुर्विंशमुखापुण्या
नर्मदाचमहानदी ॥ १२ ॥ तस्यांस्नानेनवासेनपदंवैष्णवमाप्नुयात् ॥ तमसाद्वादशमुखारेवादशमुखानदी ॥ १३ ॥ गोदावरीमहापुण्या
ब्रह्मगोवधनाशिनी ॥ एकविंशमुखाप्रोक्तारुद्रलोकप्रदायिनी ॥ १४ ॥ कृष्णवेणापुण्यनदीसर्वपापक्षयावहा ॥ साष्टादशमुखाप्रोक्तावि
ष्णुलोकप्रदायिनी ॥ १५ ॥ तुंगभद्रादशमुखाब्रह्मलोकप्रदायिनी ॥ सुवर्णमुखरीपुण्याप्रोक्तानवमुखातथा ॥ १६ ॥ तत्रैवसुप्रजायंते
ब्रह्मलोकच्युतास्तथा ॥ सरस्वतीचपंपाचकन्याश्वेतनदीशुभा ॥ १७ ॥ एतासांतीरवासेनइंद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ सह्याद्रिजामहापुण्या
कावेरीतिमहानदी ॥ १८ ॥

करनेसे वैष्णव पदकी प्राप्ति होजाती है, तमसा द्वादशमुखी और रेवा दशमुखी नदी है ॥ १३ ॥ गोदावरी महापवित्र ब्रह्म और गोवधहत्या दूर करनेहारी है, यह इक्कीस मुखवाली और रुद्रलोककी देनेहारी है ॥ १४ ॥ कृष्णा वेणी पवित्र नदी सब पापोंको दूर करने हारी है वह अठारहमुखी है और विष्णुलोककी देनेहारी है ॥ १५ ॥ तुंगभद्रा दशमुखी ब्रह्मलोककी देनेहारी है सुवर्णमुखरी महापवित्र नवमुखी कहीहै ॥ १६ ॥ ब्रह्मलोकसे च्युत होकर प्राणी इसीस्थानमें जन्म लेतेहैं. सरस्वती कन्या पंपा श्वेतनदी ॥ १७ ॥ इनके तीर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होतीहै. सह्यपर्वतसे उत्पन्न

हुई महापवित्र कावेरी महानदी ॥ १८ ॥ यह सप्तविंशमुखी महानदी सम्पूर्ण अभीष्ट देनेहारी है, उसके किनारे महापवित्र स्वर्गदाता ब्रह्मा विष्णुके पदके देनेवालेहैं ॥ १९ ॥ शैवस्थान शिवलोक और सम्पूर्ण इष्टकी प्राप्ति करने वाले हैं. नैमिषारण्यमें बद्रिकाश्रममें मेषके बृहस्पति और मेषके सूर्य्यमें स्नान करना उचितहै ॥ २० ॥ सिन्धुनदीमें सिंह और वृश्चिकके सूर्य्यमें स्नान करनेसे और वहां तप पूजन करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ केदारका जलपान आर स्नान ज्ञानका देनेवाला है गोदावरीमें सिंहके सूर्य्य आर सिंहके बृहस्पति में वहां स्नान करनेसे ॥ २२ ॥ शिवलोककी प्राप्ति

सप्तविंशमुखाप्रोक्तासर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥ तत्तीराःस्वर्गदाश्चैवब्रह्मविष्णुपदप्रदाः ॥ १९ ॥ शिवलोकप्रदाःशैवास्तथाऽभीष्टफलप्रदाः ॥
नैमिषेबदरेस्नायान्मेषगेचगुरौरवौ ॥ २० ॥ ब्रह्मलोकप्रदंविद्यात्ततःपूजादिकंतथा ॥ सिंधुनद्यांतथास्नानंसिंहेकर्कटगेरवौ ॥ २१ ॥
केदारोदकपानंचस्नानंचज्ञानदंविदुः ॥ गोदावर्य्यांसिंहमासेस्नायात्सिंहबृहस्पतौ ॥ २२ ॥ शिवलोकप्रदमितिशिवेनोक्तंतथापुरा ॥ यमुना
शोणयोःस्नायाद्गुरौकन्यागतेरवौ ॥ २३ ॥ धर्मलोकेदंतिलोकेमहाभोगप्रदंविदुः ॥ कावेर्य्यांचतथास्नायात्तुलागेतुरवौगुरौ ॥ २४ ॥ विष्णो
र्वचनमाहात्म्यात्सर्वाभीष्टप्रदंविदुः ॥ वृश्चिकेमासिसंप्राप्तेतथार्केगुरुवृश्चिके ॥ २५ ॥ नर्मदायांनदीस्नानाद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ सुवर्ण
मुखरीस्नानंचापगेचगुरौरवौ ॥ २६ ॥ शिवलोकप्रदमितिब्रह्मणोवचनंयथा ॥ मृगमासितथास्नायाज्जाह्नव्यांमृगगेगुरौ ॥ २७ ॥ शिवलो
कप्रदमितिब्रह्मणोवचनंयथा ॥ ब्रह्मविष्ण्वोःपदेभुक्त्वातदंतेज्ञानमाप्नुयात् ॥ २८ ॥

होती है, यह स्वयं शिवजीने कहा है. कन्याके गुरु और सूर्य्य होनेसे यमुना और शोणभद्रमें स्नान करै तौ ॥ २३ ॥ धर्मलोक गणेशलोकमें महाभोगकी प्राप्ति होतीहै तुलाके गुरु सूर्य्यमें जो कावेरीमें स्नान करता है ॥ २४ ॥ वह विष्णु वचनके माहात्म्यसे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होताहै. वृश्चिकके गुरु और सूर्य्यमें ॥ २५ ॥ नर्मदा नदीमें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है. धनके गुरु और सूर्य हो तौ सुवर्णमुखीमें स्नान करनेसे ॥ २६ ॥ शिवलोककी प्राप्ति होतीहै, ऐसा ब्रह्माजीका वचन है. मकरके सूर्य और गुरु होनेसे माघमें गंगाजीमें स्नान करे तौ ॥ २७ ॥ शिवलोककी प्राप्ति होती है

ऐसा ब्रह्माजीका वचन है. फिर वह ब्रह्मा तथा विष्णुके पदका उपभोगकर तिसके उपरांत ज्ञानको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ माघके महीनेमें गंगामें स्नान करनेसे कुंभके सूर्यमें श्राद्ध पिण्डदान अथवा तिलोदक देनेसे ॥ २९ ॥ अपने दोनों वंश और पितरोंके असंख्यकुलका उद्धार करता है. मीनके गुरु और सूर्य्य होनेमें ॥ ३० ॥ उन उन तीर्थोंमें उन २ महीनोंमें स्नान करनेसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है, गंगा वा कावेरीके निकट बुद्धिमान् निवास करै ॥ ३१ ॥ तौ तत्कालका किया पाप अवश्य नष्ट हो जाता है, रुद्रलोक देनेहारे भी अनेक क्षेत्रहैं ॥ ३२ ॥ ताम्रपर्णी और वेगवती ब्रह्मलोकका

गंगायांमाघमासेतुतथाकुंभगतेरवौ ॥ श्राद्धंवापिंडदानंवातिलोदकमथापिवा ॥ २९ ॥ वंशद्वयपितॄणांचकुलकोटयुद्धरंविदुः ॥ कृष्णवे
ण्यांप्रशंसंतिमीनगेचगुरौरवौ ॥ ३० ॥ तत्तंत्तीर्थेचतन्मासिस्नानमिंद्रपदप्रदम् ॥ गंगांवासह्यजांवापिसमाश्रित्यवसेद्बुधः ॥ ३१ ॥
तत्कालकृतपापस्यक्षयोभवतिनिश्चितम् ॥ रुद्रलोकप्रदान्येवसंतिक्षेत्राण्यनेकशः ॥ ३२ ॥ ताम्रपर्णीवेगवतीब्रह्मलोकफलप्रदे ॥ तयो
स्तीरेहिसंत्येवंक्षेत्राणिस्वर्गदानिच ॥ ३३ ॥ संतिक्षेत्राणितन्मध्येपुण्यदानिचभूरिशः ॥ तत्रतत्रवसन्प्राज्ञस्तादृशंचफलंलभेत् ॥ ३४ ॥
सदाचारेणसद्वृत्त्यासदाभावनयापिच ॥ वसेद्दयालुःप्राज्ञोवैनान्यथातत्फलंलभेत् ॥ ३५ ॥ पुण्यक्षेत्रेकृतंपुण्यंबहुधाऋद्धिमृच्छति ॥
पुण्यक्षेत्रेकृतंपापंमहदण्वपिजायते ॥ ३६ ॥ तत्कालंजीवनार्थश्चेत्पुण्येनक्षयमेष्यति ॥ पुण्यमैश्वर्यदंप्राहुःकायिकंवाचिकंतथा ॥ ३७ ॥
मानसंचतथापापंतादृशंनाशयेद्द्विजाः ॥ मानसंवज्रलेपंतुकल्पकल्पानुगंतथा ॥ ३८ ॥

फल देनेवाली है इनके किनारे स्वर्गदायक बहुतसे क्षेत्र हैं॥ ३३ ॥ और इनके बीचमें पुण्यदायक अनेक क्षेत्रहैं वहां वहां निवास कर बुद्धिमान् उनके अनुसार फल पाता है ॥ ३४ ॥ सदाचार सद्व्रत और श्रेष्ठभावनासे बुद्धिमान् दयायुक्त रहै अन्यथा फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३५ ॥ पुण्यक्षेत्रमें किये पुण्य अनेक प्रकारकी ऋद्धि प्रदान करते हैं इसीप्रकार पुण्यक्षेत्रमें किया अणुमात्र भी पाप महान् होजाता है ॥ ३६ ॥ उसके प्रायश्चित्तके निमित्त उतनेही कालतक पुण्य करे तौ क्षय हो जाता है कारण कि, पुण्यही ऐश्वर्यका देनेहारा है तथा कायिक वाचिक ॥ ३७ ॥ और मानसिक ये पाप उसके

नाश होजाते हैं. मानसिक पाप वज्रलेपके समान हैं और कल्पकल्पान्तके किये पाप ॥ ३८ ॥ वह केवल ध्यान मात्रसेही नष्ट होतेहैं दूसरे प्रकारसे नहीं. वाचिक पाप जपसमूह करने और कायिक पाप कायाशोषणसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ धनका पाप दान करनेसे नष्ट होता है अन्यथा सौ करोड वर्षमें भी नष्ट नहीं होता कहीं बढे हुए पापसे पुण्य नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ बीजअंश वृद्धिअंश और भोगअंश यह पुण्य पापसे होता है, बीजांशसे ज्ञानकी नष्टता और पूर्वोक्त प्रकारसे वृद्धि होतीहै ॥ ४१ ॥ भोगांशका भोगसेही नाश होताहै और कोटिविधि पुण्य करनेसेभी नष्ट नहीं होता. बीजांकुर नष्ट होजानेसे शेष भोग करनेसे मिट जाताहै ॥ ४२ ॥ देवताओंकीपूजा और ब्राह्मणोंको दान और अधिक तप करनेसे समय पाकर मनुष्य भोगमें सह्य

ध्यानादेवहितन्नश्येन्नान्यथानाशमृच्छति ॥ वाचिकंजपजालेनकायिकंकायशोषणात् ॥ ३९ ॥ दानाद्धनकृतंनश्येन्नाऽन्यथाकल्पकोटिभिः ॥ क्वचित्पापेनपुण्यंचवृद्धिपूर्वेणनश्यति ॥ ४० ॥ बीजांशश्चैववृद्ध्यंशोभोगांशःपुण्यपापयोः ॥ ज्ञाननाश्योहिबीजांशोवृद्धिरुक्तप्रकारतः ॥ ४१ ॥ भोगांशोभोगनाश्यस्तुनान्यथापुण्यकोटिभिः ॥ बीजप्ररोहेनष्टेतुशेषोभोगायकल्पते ॥ ४२ ॥ देवानांपूजयाचैवब्राह्मणानांचदानतः ॥ तपोधिक्याच्चकालेनभोगःसह्योभवेन्नृणाम् ॥ तस्मात्पापमकृत्वैववस्तव्यंसुखमिच्छता ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सदाचारंश्रावयाशुयेनलोकाञ्जयेद्बुधः ॥ धर्माधर्ममयान्ब्रूहिस्वर्गनारकदांस्तथा ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ सदाचारयुतोविद्वान्ब्राह्मणोनामनामतः ॥ वेदाचारयुतोविप्रोह्येतैरेकैकवान्द्विजः ॥ २ ॥ अल्पाचारोल्पवेदश्चक्षत्रियोराजसेवकः ॥ किंचिदाचारवान्वैश्यःकृषिवाणिज्यकृत्तथा ॥ ३ ॥

होजाताहै कहीं (भोगनाशो) ऐसा पाठहै कि भोग नष्टहोजाते हैं इसकारण सुखकी इच्छा करनेवालोंको क्षेत्रमें पापरहित निवास करना चाहिये ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! अब आप हमको सदाचार श्रवण कराइये जिससे यह प्राणी लोकोंको जय करताहै वह धर्म्म और अधर्म्म कौनसे आचरणोंसे होताहै कौनसे स्वर्ग और कौनसे नरक देनेवालेहैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले सदाचारयुक्त विद्वान् ब्राह्मण वेदाचारयुक्त होनेसे आगे कहेहुए एक एक गुणोंसे द्विज कहलाता है ॥ २ ॥ अल्पाचार थोडा वेद पढा हुआ राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रिय

ब्राह्मण है और कुछ आचारवाला खेती वाणिज्य करनेवाला वैश्यब्राह्मण कहाता है ॥ ३ ॥ और जो स्वयं हल जोते वह शूद्रब्राह्मणहै निन्दा करनेवाला पराया द्रोह करनेवाला चंडालब्राह्मणहै ॥४॥ अब राजा क्षत्रियोंका विवेक कहतेहैं. पृथ्वीकी पालना करनेवाला राजा और दूसरे क्षत्रिय कहलातेहैं, धान्यादि बेंचनेवाले वैश्य और मणिमुक्तादि बेंचने वाले वणिक् कहलातेहैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी सेवा करनेवाला शूद्रहै. खेती करनेवाला वृषल और दूसरे शूद्र दस्यु कहातेहैं ॥ ६ ॥ सब वर्णोंको उचितहै कि, उषःकालमें उठकर पूर्वको मुखकर देवताओंका ध्यानकर धर्म अर्थ उनके क्लेश प्राप्ति और व्ययको विचारै ॥ ७ ॥ क्रमसे पूर्वादिदिशाओंकी ओर मुखकर उठनेका फल कहतेहैं. आयु, द्वेष, मरण, पाप, शुभाशुभकर्म, व्याधि, पुष्टि, शक्ति यह पूर्वादि

शूद्रब्राह्मणइत्युक्तःस्वयमेवहिकर्षकः ॥ असूयालुःपरद्रोहीचंडालद्विजउच्यते ॥ ४ ॥ पृथिवीपालकोराजाइतरेक्षत्रियामताः ॥ धान्यादि
क्रयवान्वैश्यइतरोवाणिगुच्यते ॥ ५ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानांशूश्रूषुःशूद्रउच्यते ॥ कर्षकोवृषलोज्ञेयइतरेचैवदस्यवः ॥ ६ ॥ सर्वोह्युषःप्राची
मुखश्चिन्तयेद्देवपूर्वकान् ॥ धर्मानर्थांश्चतत्क्लेशानायंचव्ययमेवच ॥ ७ ॥ आयुर्द्वेषश्चमरणंपापंभाग्यंतथैवच ॥ व्याधिःपुष्टिस्तथाशक्तिः
प्रातरुत्थानदिक्फलम् ॥ ८ ॥ निशांत्ययामोषाज्ञेयायामार्धसंधिरुच्यते ॥ तत्कालेतुसमुत्थायविण्मूत्रेविसृजेद्द्विजः ॥ ९ ॥ गृहाद्दूरं
ततोगत्वाबाह्यतःप्रावृतस्तथा ॥ उदङ्मुखःसमाविश्यप्रतिबंधेऽन्यदिङ्मुखः ॥ १० ॥ जलाग्निब्राह्मणादीनांदेवानांनाभिमुख्यतः ॥
लिंगंपिधायवामेनमुखमन्येनपाणिना ॥ ११ ॥ मलमुत्सृज्यचोत्थायनपश्येच्चैवतन्मलम् ॥ उद्धृतेनजलेनैवशौचंकुर्याज्जलाद्बहिः ॥
॥ १२ ॥ अथवादेवपित्रार्षतीर्थावतरणंविना ॥ सप्तवापंचवात्रीन्वागुदंसंशोधयेन्मृदा ॥ १३ ॥

आठ दिशाओंकी ओर मुखकर उठनेसे होतीहैं ॥८॥ निशाका अन्त उषःकाल है उसमें आधे पहरकी संधि कहलातीहै उसी समय उठकर ब्राह्मण शौचादि कर्म करै ॥ ९ ॥ घरसे दूर जाकर और शिरसे कपडा लपेटकर उत्तरको मुखकर बैठे और दिशाओंको न देखै ॥ १० ॥ जल अग्नि ब्राह्मण और देवताओंके सन्मुखको न बैठे बांये हाथसे लिंग और दहिने हाथसे मुख ढककर ॥ ११ ॥ मल त्यागन करे और मल त्यागनकरनेके उपरान्त फिर उस मलको न देखै, फिर जलसे पृथक् स्थानमें पात्रके जलसे शौच करै ॥ १२ ॥ अथवा देवता पितर ऋषिके तीर्थोंके सिवाय और जलस्थान अल्प सरोवर

(डहर) के जलसे सातवार पांचवार वा तीनवार पहले मिट्टीसे गुदाको पवित्र करै ॥ १३ ॥ लिंगकी शुद्धतामें ककोंटकके फलमात्र मिट्टी और गुदाके निमित्त आधी अंजली मृत्तिका ले इसके उपरान्त उठकर हाथ पैर धोवै; और आठ कुल्ले करै ॥ १४ ॥ किसी वृक्षके पत्र अथवा काष्ठसे जलके बाहर बैठकर तर्जनी अंगुलीको त्यागकर दन्तधावन करना चाहिये ॥ १५ ॥ फिर जलदेवताओंको नमस्कार कर मंत्रपूर्वक स्नानं करै, जो कंठपर्यन्त अथवा कमरपर्यन्त जलमें स्नान करनेकी शक्ति न हो तौ ॥ १६ ॥ जानुपर्यन्त जलमें स्थितहो समंत्र स्नान करै और विद्वान्को उचित है कि, उस तीर्थके जलसे देवादिकोंका तर्पण करै ॥ १७ ॥ फिर धोती लेकर पंचकच्छ (अर्थात् आगे दो बायें दक्षिणमें दो और एक पीठमें धारण करै) उत्तरीय डुपट्टा

लिंगेककोंटमात्रंतुगुदेप्रसृतिरिष्यते ॥ ततउत्थायपद्धस्तशौचंगण्डूषमष्टकम् ॥ १४ ॥ येनकेनचपत्रेणकाष्ठेनचजलाद्बहिः ॥ कार्यंसं
तर्ज्जनींत्यज्यदंतधावनमीरितम् ॥ १५ ॥ जलदेवान्नमस्कृत्यमंत्रेणस्नानमाचरेत् ॥ अशक्तःकंठदघ्नंवाकटिदघ्नमथापिवा ॥ १६ ॥
आजानुजलमाविश्यमंत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ देवादींस्तर्पयेद्विद्वांस्तत्रतीर्थजलेनच ॥ १७ ॥ धौतवस्त्रंसमादायपंचकच्छेनधारयेत् ॥ उत्तरी
यंचकिंचैवधार्यंसर्वेषुकर्मसु ॥ १८ ॥ नद्यादितीर्थस्नानेतुस्नानवस्त्रंनशोधयेत् ॥ वापीकूपगृहादौतुस्नानादूर्ध्वंनयेद्बुधः ॥ १९ ॥ शिलादार्वा
दिकेवापिजलेवापिस्थलेपिवा ॥ संशोध्यपीडयेद्वस्त्रंपितृणांतृप्तयेद्विजाः ॥ २० ॥ जावालकोक्तमंत्रेणभस्मनाचत्रिपुंड्रकम् ॥ अन्यथाचे
ज्जलेपातइतस्तन्नरकमृच्छति ॥ २१ ॥ आपोहिष्ठेतिशिरसिप्रोक्षयेत्पापशांतये ॥ यस्येतिमंत्रंपादेतुसंधिप्रोक्षणमुच्यते ॥ २२ ॥

वस्त्र हो सब कर्म्ममें धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥ नदीआदि तीर्थमें स्नान करके वस्त्रशुद्धि न करै और वापी कूप तडागादिमें स्नान कर वस्त्र शुद्धि करै ॥ १९ ॥ शिला काठ जल वा स्थलमें धोती अँगोछेको पवित्र करकै वस्त्र निचोडकर पितरोंकी तृप्ति करे ॥ २० ॥ और जाबालकोपनिषद्में कहाहै (अग्निरिति भस्म० मंत्रसे भस्मका त्रिपुण्ड्र लगावै) इस विधिको बिना किये जो वृथाही भस्मको जलमें डालता है वह नरकमें जाता है ॥ २१ ॥ (आपोहिष्ठेति) इस मंत्रसे पापशान्तिके निमित्त शिरपर जल छिडकै इसी मंत्रसे एक २ चरणसे चरणादि नौ स्थानोंमें क्रमसे प्रोक्षण कर मंत्रस्नान करै

(यस्येति) यही उसका मन्त्र है यही सन्धिप्रोक्षण कहाहै ॥ २२ ॥ पांव शिर हृदय शिर हृदय चरण हृदय चरण शिर इस क्रमसे प्रोक्षण कर मंत्र स्नान करै ॥ २३ ॥ शरीरके रोगग्रस्त होनेमें तथा राजाराष्ट्रके भय तथा मार्गके गमनमें तथा अपवित्र वस्तुके स्पर्शमें मन्त्रस्नानही करे ॥ २४ ॥ (सूर्य्यश्चमामन्युश्चेति) प्रातःकाल इस सूर्य्य अनुवाकसे और संध्याको (अग्निश्चमामन्युश्चेति) इस अग्निके अनुवाकसे मध्यमें जल पानकर फिर पूर्ववत् मार्जन करे ॥ २५ ॥ गायत्री मंत्रके जप करने उपरान्त फिर तीन वार ऊपरको जल फेंकै. मध्याह्नसंध्याकी विधि कहते हैं और मंत्र सहित मध्यमें सूर्यको अर्घ्य दे ॥ २६ ॥ इस प्रकार कर चुकनेपर जब संध्या हो तब पश्चिमकी ओरको मुख करके बैठे प्रातः और मध्याह्नके जलको देवतीर्थसे

पादेमूर्ध्निहृदिचैवमूर्ध्निहृत्पादएवच ॥ हृत्पादमूर्ध्निसंप्रोक्ष्यमंत्रस्नानंविदुर्बुधाः ॥ २३ ॥ ईषत्स्पर्शेचदौःस्वास्थ्येराजराष्ट्रभयेपिच ॥ अग
त्यागतिकालेचमंत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ २४ ॥ प्रातःसूर्यानुवाकेनसायमग्न्यनुवाकतः ॥ अपःपीत्वातथामध्येपुनःप्रोक्षणमाचरेत् ॥ २५ ॥
गायत्र्याजपमंत्रांतेत्रिरूर्ध्वंप्राग्विनिक्षिपेत् ॥ मंत्रेणसहचैकंवैमध्येऽर्घ्यंतुरवेर्द्विजाः ॥ २६ ॥ अथजातेचसायाह्नेभुविपश्चिमदिङ्मुखः ॥
उद्धृत्यदद्यात्प्रातस्तुमध्याह्नेंगुलिभिस्तथा ॥ २७ ॥ अंगुलीनांचरंध्रेणलंबंपश्येद्दिवाकरम् ॥ आत्मप्रदक्षिणंकृत्वाशुद्धाचमनमाचरेत् ॥
॥ २८ ॥ सायंमुहूर्तादर्वाक्तुकृतासंध्यावृथाभवेत् ॥ अकालात्कालइत्युक्तोदिनेऽतीतेयथाक्रमम् ॥ २९ ॥ दिवाऽतीतेचगायत्रींशतंनित्ये
क्रमाज्जपेत् ॥ आदशाहात्पराऽतीतेगायत्रींलक्षमभ्यसेत् ॥ ३० ॥ मासातीतेतुनित्येहिपुनश्चोपनयंचरेत् ॥ ईशोगौरीगुहोविष्णुर्ब्रह्माचें
द्रश्चवैयमः ॥ ३१ ॥ एवंरूपांश्चवैदेवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये ॥ ब्रह्मार्पणंततःकृत्वाशुद्धाचमनमाचरेत् ॥ ३२ ॥

अंगुलियोंसे जल देना उचित है ॥२७॥ पीछे अंगुलियोंके छिद्रसे दिवाकरको अस्त होता देखै और अपनी प्रदक्षिणा करकै शुद्ध आचमन करे ॥ २८ ॥ जो सन्ध्याके मुहूर्तसे पहले सन्ध्या करे ता उसकी सन्ध्या वृथा हो जाता है, इस सन्ध्याको असमयमें न करके समयमें करे और दिन व्यतीत होनेपर यदि संध्या न करे तौ उसका यह प्रायश्चित्त है कि ॥२९॥ नित्य जपसे सौ गायत्री अधिक जपै और जो दश दिन बीत जाँय तौ लाख गायत्री जपै ॥ ३० ॥ महीना बीत जाय तौ फिर उपनयन करे ईश गौरी स्कंद विष्णु ब्रह्मा इन्द्र यम ॥ ३१ ॥ इन सब देवताओंको एकरूप जानकर अर्थसिद्धिके निमित्त

तृप्त करे फिर ब्रह्मार्पण करकै शुद्ध आचमन करे ॥ ३२ ॥ तीर्थके दक्षिणस्थान अथवा मठमें मंत्रालयमें देवालयमें अपने घरमें नियतस्थलमें ॥ ३३॥
सब देवताओंको नमस्कारकर स्थिर बुद्धि और स्थिर आसनसे प्रथम ओंकार और फिर गायत्रीका अभ्यास करै ॥ ३४ ॥ जीव और ब्रह्मकी एकता
देखकर ॐकारका जपकरै, त्रिलोकीके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और स्थितिकर्ता नारायण ॥ ३५ ॥ और संहारकर्ता भगवान् रुद्रकी हम उपासना करते हैं.
ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मनकी वृत्ति और बुद्धिको ॥ ३६ ॥ वह परमात्मा भोग और मोक्ष देनेवाले धर्ममें सदा लगावै, इसप्रकार अर्थविधिसे ध्यान करता

तीर्थदक्षिणतःशस्तेमठेमंत्रालयेबुधः ॥ तत्रदेवालयेवापिगृहेवानियतस्थले ॥ ३३ ॥ सर्वान्देवान्नमस्कृत्यस्थिरबुद्धिःस्थिरासनः ॥ प्रणवं
पूर्वमभ्यस्यगायत्रीमभ्यसेत्ततः ॥ ३४ ॥ जीवब्रह्मैक्यविषयंबुद्धाप्रणवमभ्यसेत् ॥ त्रैलोक्यसृष्टिकर्त्तारंस्थितिकर्तारमच्युतम् ॥ ३५ ॥
संहर्तारंतथारुद्रंस्वप्रकाशमुपास्महे ॥ ज्ञानकर्मेंद्रियाणांचमनोवृत्तीर्धियस्तथा ॥ ३६ ॥ भोगमोक्षप्रदेधर्मेज्ञानेचप्रेरयेत्सदा ॥ इत्थमर्थ
धियाध्यायन्ब्रह्मप्राप्नोतिनिश्चयः ॥ ३७ ॥ केवलंवाजपेन्नित्यंब्राह्मण्यस्यचपूर्तये ॥ सहस्रमभ्यसेन्नित्यंप्रातर्ब्राह्मणपुंगवः ॥ ३८ ॥ अन्ये
षांचयथाशक्तिमध्याह्नेचशतंजपेत् ॥ सायंद्विदशकंज्ञेयंशिखाष्टकसमन्वितम् ॥ ३९ ॥ मूलाधारंसमारभ्यद्वादशांतस्थितांस्तथा ॥ विद्ये
शब्रह्मविष्ण्वीशजीवात्मपरमेश्वरान् ॥ ४० ॥ ब्रह्मबुद्ध्यातदैक्यंचसोहंभावनयाजपेत् ॥ तानेवब्रह्मरंध्रादौकायाद्बाह्येचभावयेत् ॥ ४१ ॥
महत्तत्त्वंसमारभ्यशरीरंतुसहस्रकम् ॥ एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्यशनैःशनैः ॥ ४२ ॥

हुआ निश्चय ब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ अर्थज्ञानके विनाभी ब्राह्मणत्वपूर्तिके निमित्त भी नित्य उठकर श्रेष्ठ ब्राह्मण इसका सहस्रवार जपकरै ॥३८॥
और दूसरे क्षत्रिय वैश्य मध्याह्न में सौवार जप करैं, और सन्ध्यामें एकसहस्र और आठ अथवा वीसवार जपकरै ॥ ३९ ॥ मूलाधार चक्रसे प्रारंभ करके
ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त स्थित चक्रोंमें विद्येश ब्रह्मा विष्णु ईश जीवात्मा परमेश्वरोंको ॥ ४० ॥ ब्रह्मबुद्धिसे एकही जानकर सोहंभावनासे जप करै उन्हीं विद्येशा
दिको ब्रह्मरन्ध्रादिमें कायासे बाहर ध्यान करै ॥ ४१ ॥ महत्तत्त्व (प्रकृति) से आरम्भ करके प्रारब्धभोगवशसेहुए सहस्रों शरीरोंके समूहकी प्राप्तिको

एक जपसे एक एक शरीरको अतिक्रमण कर शनैः शनैः ॥ ४२ ॥ जीवको परब्रह्ममें लगावै, यह जपतत्त्वहै यह जप दो सहस्र संख्यातक और उससे
आठ अधिक करना चाहिये ॥ ४३ ॥ मंत्रोंके जपमें प्रथम क्रम यहीहै सहस्रजपसे ब्रह्मपद और सौसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ और
इससे न्यूनादि करनेमें ब्राह्मणके कुलमें जन्म होताहै, सूर्य्यके सन्मुख स्थितहो नित्यप्रति ऐसाही करै ॥ ४५ ॥ बारहलाख जप करनेसे पूर्ण ब्राह्मण होताहै,
जिसने लाख गायत्री न पढीहो उसे वेद कार्य्यमें न लगावै ॥ ४६ ॥ सत्तर वर्षतक नियमसे रहै, पीछे संन्यासी होजाय. संन्यासीको उचितहै कि,
प्रातःकाल बारह सहस्र ॐकारका जप करै ॥ ४७ ॥ इसप्रकार नियमसे प्रतिदिन जपता रहै जब क्रमसे महीना बीतजाय तब उसका डेढलक्ष जप हो

परस्मिन्योजयेज्जीवंजपतत्त्वमुदाहृतम् ॥ शतद्विदशकंदेहंशिखाष्टकसमन्वितम् ॥ ४३ ॥ मंत्राणांजपएवंहिजपमादिक्रमाद्विदुः ॥ सहस्रं
ब्राह्मदंविद्याच्छतमैंद्रप्रदंविदुः ॥ ४४ ॥ इतरत्त्वात्मरक्षार्थंब्रह्मयोनिषुजायते ॥ दिवाकरमुपस्थायनित्यमित्थंसमाचरेत् ॥ ४५ ॥ लक्ष
द्वादशयुक्तस्तुपूर्णब्राह्मणईरितः ॥ गायत्र्यालक्षहीनंतुवेदकार्येनयोजयेत् ॥ ४६ ॥ आसप्ततेस्तुनियमंपश्चात्प्रव्राजनंचरेत् ॥ प्रातर्द्वा
दशसाहस्रंप्रव्राजीप्रणवंजपेत् ॥ ४७ ॥ दिनेदिनेत्वतिक्रांतेनित्यमेवंक्रमाज्जपेत् ॥ मासादौक्रमशोऽतीतेसार्धलक्षजपेनहि ॥ ४८ ॥
अतऊर्ध्वमतिक्रांतिपुनःप्रैषंसमाचरेत् ॥ एवंकृत्वादोषशांतिरन्यथारौरवंव्रजेत् ॥ ४९ ॥ धर्मार्थयोस्ततोयत्नंकुर्यात्कामीनचेतरः ॥
ब्राह्मणोमुक्तिकामःस्याद्ब्रह्मज्ञानंसदाभ्यसेत् ॥ ५० ॥ धर्मादर्थोऽर्थतोभोगोभोगाद्वैराग्यसंभवः ॥ धर्मार्जितार्थभोगेनवैराग्यमुपजायते ॥
॥ ५१ ॥ विपरीतार्थभोगेनरागएवप्रजायते ॥ धर्मश्चद्विविधःप्रोक्तोद्रव्यदेहद्वयेनच ॥ ५२ ॥

जाताहै ॥ ४८ ॥ इससे दोषशान्ति होजातीहै जप इससे अधिक होजाय तब संन्यास मंत्रका ग्रहणकरै, इसप्रकार करनेसे दोषकी शान्ति होतीहै, अन्यथा
रौरवमें जाताहै ॥ ४९ ॥ और संन्यासीसे इतर वर्ण धर्म्म अर्थ आदिमें यत्न करैं और यदि ब्राह्मणको मुक्तिहीकी इच्छा हो तौ सदा ब्रह्मज्ञानका
अभ्यास करै ॥ ५० ॥ जहां धर्मसे अर्थ उपार्जन किया जाताहै वह कामनाके निमित्त नहीं होता किन्तु वैराग्यही उत्पन्न करताहै, उस धर्मसे अर्थ
अर्थसे भोग और भोगसे वैराग्यका सम्भव अर्थात् धर्म्मसे उत्पन्न हुए भोगसे वैराग्य होताहै ॥ ५१ ॥ और विपरीत अर्थ के भोगसे रागही हो जाताहै.

धर्म दो प्रकारका है एक देहसे दूसरा धनसे ॥ ५२ ॥ द्रव्यसे यज्ञादिरूप धर्म होताहै और शरीरसे तीर्थस्नानादिरूपधर्म होताहै, धनसे धन और
तपसे दिव्यरूपता प्राप्त होती है ॥ ५३ ॥ निष्कामकर्मसे शुद्धि शुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं, सतयुगआदिमें तपही साध्य था कलियुगमें
द्रव्यधर्म है ॥ ५४ ॥ सतयुगमें ध्यानसेही ज्ञानकी सिद्धि होतीथी त्रेतामें तपसे द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञान होता था और कलियुगमें प्रतिमा पूजासेही
ज्ञान होताहै ॥ ५५ ॥ जैसा कोई पुण्य पाप करताहै उसको वैसाही फल मिलताहै द्रव्य और देहके भेदसे पुण्य पापकी न्यूनता वृद्धि और क्षयादिता
होतीहै ॥ ५६ ॥ विधिबिना जो कुत्सित हिंसा कीजातीह वही महा अधर्म है और विधियुक्त कार्य सुखरूप धर्महै. अधर्मसे दुःख धर्मसे सुख मिलताहै

द्रव्यमिज्यादिरूपंस्यात्तीर्थस्नानादिदैहिकम् ॥ धनेनधनमाप्नोतितपसादिव्यरूपताम् ॥ ५३ ॥ निष्कामःशुद्धिमाप्नोतिशुद्ध्याज्ञानंनसं
शयः ॥ कृतादौहितपःश्लाघ्यंद्रव्यधर्मःकलौयुगे ॥ ५४ ॥ कृतेध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायांतपसातथा ॥ द्वापरेयजनाज्ज्ञानंप्रतिमापूजया
कलौ ॥ ५५ ॥ यादृशंपुण्यंपापंवातादृशंफलमेवहि ॥ द्रव्यदेहांगभेदेनन्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ॥ ५६ ॥ अधर्मोहिंसिकारूपोधर्मस्तुसुख
रूपकः ॥ अधर्माद्दुःखमाप्नोतिधर्माद्वैसुखमेधते ॥ ५७ ॥ विद्याद्दुर्वृत्तितोदुःखंसुखंविद्यात्सुवृत्तितः ॥ धर्मार्जनमतःकुर्याद्भोगमोक्षप्रसि
द्धये ॥ ५८ ॥ सकुटुंबस्यविप्रस्यचतुर्जनयुतस्यच ॥ शतवर्षस्यवृत्तिंतुदद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम् ॥ ५९ ॥ चांद्रायणसहस्रंतुब्रह्मलोकप्रदं
विदुः ॥ सहस्रस्यकुटुंबस्यप्रतिष्ठांक्षत्रियश्चरेत् ॥ ६० ॥ इंद्रलोकप्रदंविद्यादयुतंब्रह्मलोकदम् ॥ यांदेवतांपुरस्कृत्यदानमाचरतेनरः ॥
॥ ६१ ॥ तत्तल्लोकमवाप्नोतिइतिवेदविदोविदुः ॥ अर्थहीनःसदाकुर्यात्तपसामार्जनंतथा ॥ ६२ ॥

॥ ५७ ॥ दुर्वृत्तिसे दुःख सुवृत्तिसे सुख प्राप्त होताहै इस कारण भोग और मोक्षकी सिद्धिके निमित्त धर्मसेही अर्चन करना चाहिये ॥ ५८ ॥
कुलपरिवारयुक्त ब्राह्मण सौ वर्षतक श्रेष्ठआचार युक्त रहै इतनी वृत्ति (जीविका) उसको देवे तो उसको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ५९ ॥ सहस्र चान्द्रायण
व्रत करनेसेभी ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै. जो क्षत्रिय सहस्र कुटुंबकी आजीविका करताहै ॥ ६० ॥ उसे इन्द्रलोक और दशसहस्रकी आजीविका करै
तौ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है. मनुष्य जिस देवताके उद्देशसे दान करताहै ॥ ६१ ॥ उसी उसी लोकको वह जाताहै ऐसा वेदके जाननेवाले कहतेहैं, जो

धनहीनहैं उन्हें सदा तपरूपी धन एकत्र करना चाहिये ॥ ६२ ॥ जो धर्म तीर्थ और तपसे मिलताहै, उससेभी अक्षय सुख मिलताहै और धनकोभी न्यायपूर्वक सावधानीसे संग्रह करना चाहिये ॥ ६३ ॥ यज्ञ प्रतिग्रह (दानलेना) यजन, शुद्धिसे और दीनतारहित क्लेशरहित वृत्तिपूर्वक ब्राह्मण धनसंग्रह करै ॥ ६४ ॥ क्षत्रिय बाहुबलसे वैश्य कृषिवाणिज्यसे धनसंग्रह करै न्यायसे उपार्जन किये दानसे सिद्धिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६५ ॥ ज्ञानसिद्धिसे मोक्ष होताहै और सब किसीको गुरुकी कृपासे मोक्ष होकर मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि होकर परानन्दकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह सब

तीर्थाच्चतपसाप्राप्यंसुखमक्षय्यमश्नुते ॥ अर्थार्जनमथोवक्ष्येन्यायतःसुसमाहितः ॥ ६३ ॥ कृतात्प्रतिग्रहाच्चैवयाजनाच्चविशुद्धितः ॥ अदैन्यादनतिक्लेशाद्ब्राह्मणोधनमर्जयेत् ॥ ६४ ॥ क्षत्रियोबाहुवीर्येणकृषिगोरक्षणाद्विशः ॥ न्यायार्जितस्यवित्तस्यदानात्सिद्धिंसमश्नुते ॥ ६५ ॥ ज्ञानसिद्ध्यामोक्षसिद्धिःसर्वेषांगुर्वनुग्रहात् ॥ मोक्षात्स्वरूपसिद्धिःस्यात्परानन्दसमश्नुते ॥ ६६ ॥ सत्संगात्सर्वमेतद्धैनराणांजायतेद्विजाः ॥ धनधान्यादिकंसर्वं देयंवैगृहमेधिना ॥ ६७ ॥ यद्यत्कालेवस्तुजातंफलंवाधान्यमेवच ॥ तत्तत्सर्वंब्राह्मणेभ्योदेयंवैहितमिच्छता ॥ ६८ ॥ जलंचैवसदादेयमन्नंक्षुद्व्याधिशांतये ॥ क्षेत्रंधान्यंतथाऽऽमान्नमन्नमेवंचतुर्विधम् ॥ ६९ ॥ यावत्कालंयदन्नंवैभुक्त्वाश्रवणमेधते ॥ तावत्कृतस्यपुण्यस्यत्वर्धंदातुर्नसंशयः ॥ ७० ॥ ग्रहीताहिगृहीतस्यदानाद्वैतपसातथा ॥ पापसंशोधनंकुर्यादन्यथारौरवंव्रजेत् ॥ ७१ ॥

कुछ सत्संगसेही प्राप्त होताहै गृहस्थीको धनधान्य आदि अनेक पदार्थ दान करने चाहियें ॥ ६७ ॥ जिसकाल जो वस्तु फल धान्य होतेहों वह सब हितकी इच्छासे ब्राह्मणोंको देना चाहिये ॥ ६८ ॥ जल और अन्न भूंख प्यासकी शान्तिके निमित्त सदा देना चाहिये, क्षेत्र धान्य कच्चा अन्न तथा और भी अन्न लेह्य चोष्यादि चारप्रकारके भोजन ॥६९॥ जिसका अन्न भोजन करके वह प्राणी जो कुछ आत्मविचार श्रवणादि करताहै उसके पुण्यका आधा फल दाताको होताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७० ॥ दानग्रहण करनेवालेको उचितहै कि, ग्रहण कियेहुएके दानसे अथवा तपसे उसका पाप मार्जन

करै, नहीं तौ रौरवमें जाताहै ॥७१॥ अपने धनके तीन भाग करै एक धर्म दूसरा वृद्धि तीसरा भोगके निमित्त नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मभी धर्मपूर्वक
करै ॥७२॥ साधकको उचितहै कि, वृद्धिके अंशव्याजसे धनकी वृद्धि करै और किसीको पीडा न दे और निषिद्ध व्यापारसे न बढावै और भोगके अंशसे
स्वल्प भोग भोगै ॥ ७३ ॥ कृषिसे उत्पन्न हुए धनके दशवें अंशको पापशुद्धिके निमित्त दान करै, शेषद्रव्यसे धर्म्मादि करै, नहीं तौ रौरवको जाता है ॥
॥ ७४ ॥ और जो पापसे वृद्धि करैगा तौ खेतीका क्षय होगा, छठा अंश वाणिज्य व्यापारकी वृद्धिमें बुद्धिमान्‌को लगाना चाहिये ॥ ७५ ॥ चतुर्थांशमें
शुद्ध प्रतिग्रह ब्राह्मणादि को देना चाहिये, और अकस्मात् कहींसे धन मिलजाय तौ उसमेंसे आधा दान करदे ॥ ७६ ॥ और असत्प्रतिग्रह कियाहो

आत्मवित्तंत्रिधाकुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यंकर्मकुर्यात्तुधर्मतः ॥ ७२ ॥ वित्तस्यवर्धनंकुर्याद्वृद्ध्यंशेनाहिंसा
धकः ॥ हितेनमितमेध्येनभोगंभोगांशतश्चरेत् ॥ ७३ ॥ कृष्यर्जितेदशांशंहिदेयंपापस्यशुद्धये ॥ शेषेणकुर्याद्धर्मादिअन्यथारौरवं
व्रजेत् ॥ ७४ ॥ अथवापापबुद्धिःस्यात्क्षयंवासस्यमेष्यति ॥ वृद्धिवाणिज्यकेदेयषडंशोहिविचक्षणैः॥ ७५ ॥ शुद्धप्रतिग्रहेदेयश्चतुर्थां
शोद्विजोत्तमैः ॥ अकस्मादुत्थितेऽर्थेहिदेयमर्धंद्विजोत्तमैः ॥ ७६ ॥ असत्प्रतिग्रहेसर्वंदुर्दानंसागरेक्षिपेत् ॥ आहूयदानंकर्तव्यमात्मभो
गसमृद्धये ॥ ७७ ॥ पृष्टंसर्वंसदादेयमात्मशक्त्यनुसारतः ॥ जन्मांतरेऋणीहिस्याददत्तेपृष्टवस्तुनि ॥ ७८ ॥ परेषांचतथादोषंनप्रशंसे
द्विचक्षणः ॥ विशेषेणतथाब्रह्मञ्छ्रुतंदृष्टंचनोवदेत् ॥ ७९ ॥ नवदेत्सर्वजंतूनांहृदिरोषकरंबुधः ॥ संध्ययोरग्निकार्यंचकुर्यादैश्वर्यसिद्धये॥
॥ ८० ॥ अशक्तस्त्वेककालेवासूर्याग्नीचयथाविधि ॥ तंडुलंधान्यमाज्यंवाफलंकंदंहविस्तथा ॥ ८१ ॥

तौ वह सब दुर्दान समुद्रमें डालदे, अपनी भोगसमृद्धिके निमित्त बुलाकर दानकरना चाहिये ॥७७॥ और याचना करनेवालेको अपनी शक्तिके अनुसार
सदा दान करना चाहिये, कहकर जो फिर नहीं दे तौ वो जन्मान्तरमें ऋणी होताहै ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान्‌को उचित है कि, दूसरोंका दोष कथन न करै,
विशेष करके सुने और देखे दोषकोभी न कहै ॥ ७९ ॥ ऐसी वार्ता कभी न कहै जो सब प्राणियोंके हृदयमें क्रोध उत्पन्न करै, और ऐश्वर्यसिद्धिके
निमित्त दोनों संध्याओंमें अग्निहोत्र करै ॥ ८० ॥ और जो दो समय न करसके तौ यथाविधि एकही समय सूर्य अग्निकी उपासना तर्पण करै, चावल

धान्य घृत कंद हवि ॥ ८१ ॥ आदि विधिपूर्वक स्थालीपाक करके जो हव्य न हो तौ प्रधान होममात्रही करै ॥ ८२ ॥ नित्य स्थापित अग्निको पण्डित अजस्र कहते हैं, अथवा केवल जपमात्र और सूर्यका वंदनही करै ॥ ८३ ॥ इस प्रकार आत्माकी प्राप्तिकी इच्छावाले, विधिपूर्वक सदा करैं, सदा ब्रह्मयज्ञमें प्रीति करनेवाले, और देवताओंकी पूजा करनेवाले ॥ ८४ ॥ नित्य अग्नि और गुरुपूजा प्रेमसे करनेवाले तथा ब्राह्मणोंके तृप्त करनेवाले सब स्वर्गमें जाते हैं ॥ ८५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषि बोले अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ,

स्थालीपाकंतथाकुर्याद्यथान्यायंयथाविधि ॥ प्रधानहोममात्रंवाहव्याभावेसमाचरेत् ॥ ८२ ॥ नित्यसंधानमित्युक्तंतमजस्रंविदुर्बुधाः ॥ अथवाजपमात्रंवासूर्यवंदनमेवच ॥ ८३ ॥ एवमात्मार्थिनःकुर्युरर्थार्थींचयथाविधि ॥ ब्रह्मयज्ञरतानित्यंदेवपूजारतास्तथा ॥ ८४ ॥ अग्निपूजापरानित्यंगुरुपूजारतास्तथा ॥ ब्राह्मणानांतृप्तिकराःसर्वेस्वर्गस्यभागिनः ॥ ८५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अग्नियज्ञंदेवयज्ञंब्रह्मयज्ञंतथैवच ॥ गुरुपूजांब्रह्मतृप्तिंक्रमेणब्रूहिनःप्रभो ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ अग्नौजुहोतियद्द्रव्यमग्नियज्ञःसउच्यते ॥ ब्रह्मचर्याश्रमस्थानांसमिदाधानमेवहि ॥ २ ॥ समिदग्नौव्रताद्यंचविशेषयजनादिकम् ॥ प्रथमाश्रमिणामेवंयावदौपासनंद्विजाः ॥ ३ ॥ आत्मन्यारोपिताग्नीनांवनिनांयतिनांद्विजाः ॥ हितंचमितमेध्यान्नंस्वकालेभोजनंहुतिः ॥ ४ ॥ औपासनाग्निसंधानंसमारभ्यसुरक्षितम् ॥ कुंडेवाप्यथभांडेवातदजस्रंसमीरितम् ॥ ५ ॥

गुरुपूजा, ब्रह्मतृप्ति यह क्रमसे आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले जो द्रव्य अग्निमें हवन किया जांता है उसे द्रव्ययज्ञ कहते हैं, ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित पुरुषोंको समिधा आहरणपूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिये ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! जहां समिधा अग्निमें हवन की जातीहैं वही ब्रह्मचर्याग्नि है, यह ब्रह्मचर्य व्रतादिमें होतहैं और यह विशेष यजन जबतक विवाह न हो ब्रह्मचारियोंको कर्तव्य है ॥ ३ ॥ विवाह होनेपर दोसमय करै और जिन्होंने आत्मामें अग्नि आरोपण कीहै, ऐसे वनवासी यतियोंको हेब्राह्मणो ! पवित्र थोडा अन्न भोजन करनाही अग्निहोत्र है ॥ ४ ॥ (यन्मुखं तदाहवनीयम् ।

इत्यादिश्रुतेः) उपासना अग्निसंधान इनकी रक्षा सम्यक् प्रकारसे करनी चाहिये. कुंडमें अथवा बर्तनमें (अँगीठीमें) सदा उस अग्निको रखना चाहिये ॥
॥ ५ ॥ अग्निको आत्मामें वा राज और दैवके भयवशसे समिधामें धारण करना, अग्नित्याग भयसेही उसका समारोपण कहाहै ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंकी
संध्याकालमें दीहुई आहुति सम्पत्तिकी करनेवालीहै और प्रातःकालमें सूर्यआहुति आयुकी बढानेहारीहै ॥ ७ ॥ दिनमें सूर्यके अग्निमें प्रवेश करनेसे यह
अग्नियज्ञ कहाहै, इन्द्रादि संपूर्ण देवताओंके उद्देशसे जो अग्निमें हवन करताहै ॥८॥ दर्श पूर्णमास स्थालीपाकादि संसारके यज्ञ, देवयज्ञ और गर्भाधानादि
उपासना लौकिकाग्निकी प्रतिष्ठा है ॥ ९ ॥ और देवताओंकी प्रीतिके निमित्त ब्राह्मणोंको ब्रह्मयज्ञ सदा करना चाहिये, उसमें वेदपाठ होताहै, इसीसे वह

अग्निमात्मन्यरण्यांवाराजदैववशाद्ध्रुवम् ॥ अग्नित्यागभयादुक्तंसमारोपितमुच्यते ॥ ६ ॥ संपत्करीतथाज्ञेयासायमग्न्याहुतिर्द्विजाः ॥
आयुष्करीतिविज्ञेयाप्रातःसूर्याहुतिस्तथा ॥ ७ ॥ अग्नियज्ञोह्ययंप्रोक्तोदिवासूर्यनिवेशनात् ॥ इंद्रादीन्सकलान्देवानुद्दिश्याग्नौजुहो
तियत् ॥ ८ ॥ देवयज्ञंहितंविद्यात्स्थालीपाकादिकान्क्रतून् ॥ चौलादिकंतथाज्ञेयंलौकिकाग्नौप्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मयज्ञंद्विजःकुर्याद्दे
वानांतृप्तयेसकृत् ॥ ब्रह्मयज्ञइतिप्रोक्तोवेदस्याऽध्ययनंभवेत् ॥ १० ॥ नित्यानंतरमासायंततस्तुनविधीयते ॥ अनग्नौदेवयजनंशृणुतश्रद्ध
यादरात् ॥ ११ ॥ आदिसृष्टौमहादेवःसर्वज्ञःकरुणाकरः ॥ सर्वलोकोपकारार्थंवारान्कल्पितवान्प्रभुः ॥ १२ ॥ संसारवैद्यःसर्वज्ञःसर्वभे
षजभेषजम् ॥ आदावारोग्यदंवारंस्ववारंकृतवान्प्रभुः ॥ १३ ॥ संपत्करंस्वमायायावारंचकृतवांस्ततः ॥ जननेदुर्गतिक्रांतेकुमारस्यततः
परम् ॥ १४ ॥ आलस्यदुरितक्रांत्यैवारंकल्पितवान्प्रभुः ॥ रक्षकस्यतथाविष्णोर्लोकानांहितकाम्यया ॥ १५ ॥

ब्रह्मयज्ञ कहाताहै ॥ १० ॥ नित्यकर्मके अनन्तर सायंकाल पर्यन्त और संध्याके उपरान्त रात्रिमें उसका विधान नहींहै, जिस प्रकार अग्नि बिना
देवयजन होताहै, वह आदरसे सुनो ॥ ११ ॥ सृष्टिकी आदिमें करुणाकर महादेवजीने सब लोकोंके निमित्त वारोंकी कल्पना कीहै ॥ १२ ॥ संसारके
वैद्य सर्वज्ञ सब औषधियोंके औषधीस्वरूप पहिले आरोग्यदायक वारको प्रभुने अपना किया (आदित्यवार) ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त संम्पत्ति करने
हारा अपनी मायाका वार किया इसके पीछे पुत्रादिजन्ममें कष्ट युक्त स्कंदका वार किया ॥ १४ ॥ आलस्यादिके नाशका करनेहारा वार कल्पना

किया, फिर लोकके हितकी इच्छासे रक्षा करनेहारे विष्णुका वार बनाया ॥ १५ ॥ पुष्टि और रक्षाके निमित्त प्रभुने वारकी कल्पना की, इसके उपरान्त आयुष करनेवाले वारकी आयुवृद्धिकी इच्छावालोंके निमित्त कल्पनाकी ॥ १६ ॥ पीछे त्रिलोकीकी सृष्टि करनेवाले परमेष्ठी ब्रह्माका जगत्की आयुके निमित्त प्रभुने वार बनाया ॥ १७ ॥ प्रथम त्रिलोककी वृद्धिके निमित्त प्रभुने पुण्य और पापके उत्पन्नकरनेवाले इन्द्र और यमके वारकी कल्पना की ॥ १८ ॥ इसप्रकार यह सुख दुःखके सूचक आदित्यादि वार भोग देनवाले और लोकोंकी मृत्यु हरनेवाले कल्पित कियेहैं आदित्यवारके शिव, चंद्रवारके दुर्गा, मंगलवारके स्कंद, बुधके विष्णु, बृहस्पतिके यम, शुक्रके ब्रह्मा, शनिके इन्द्र स्वामीहैं ॥ १९ ॥ नक्षत्रके चक्रमें प्रतिष्ठितकर इन वारोंके ईशोंकी कल्पना कर

पुष्ट्यर्थंचैवरक्षार्थंवारंकल्पितवान्प्रभुः ॥ आयुष्करंततोवारमायुषांकर्तुरेवहि ॥ १६ ॥ त्रैलोक्यसृष्टिकर्त्तुर्हिब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ जगदायुष्यसिद्धचर्थंवारंकल्पितवान्प्रभुः ॥ १७ ॥ आदौत्रैलोक्यवृद्धचर्थंपुण्यपापेप्रकल्पिते ॥ तयोः कर्त्रोस्ततोवारमिंद्रस्यचयमस्यच ॥ ॥ १८ ॥ भोगप्रदंमृत्युहरंलोकानांचप्रकल्पितम् ॥ आदित्यादीन्स्वस्वरूपान्सुखदुःखस्यसूचकान् ॥ १९ ॥ वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्योतिश्चक्रेप्रतिष्ठितान् ॥ स्वस्ववारेतुतेषांतुपूजास्वस्वफलप्रदा ॥ २० ॥ आरोग्यंसंपदश्चैवव्याधीनांशांतिरेवच ॥ पुष्टिरायुस्तथाभोगोमृतेर्हानिर्यथाक्रमम् ॥ २१ ॥ वारक्रमफलंप्राहुर्देवप्रीतिपुरःसरम् ॥ अन्येषामपिदेवानांपूजायाःफलदःशिवः ॥ २२ ॥ देवानांप्रीतये पूजापंचधैवप्रकल्पिता ॥ तत्तन्मंत्रजपोहोमोदानंचैवतपस्तथा ॥ २३ ॥ स्थंडिलेप्रतिमायांचह्यग्नौब्राह्मणविग्रहे ॥ समाराधनमित्येवं षोडशैरुपचारकैः ॥ २४ ॥ उत्तरोत्तरवैशिष्टयात्पूर्वाभावेतथोत्तरम् ॥ नेत्रयोःशिरसोरोगेतथाकुष्ठस्यशांतये ॥ २५ ॥

अपने२वारोंमें उन उन देवताओंकी पूजा करै तौ उसके अनुसार फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ २० ॥ आरोग्य, सम्पत्ति, व्याधियोंकी शान्ति, पुष्टि, आयु, भोग, मृत्युकी हानि, ये यथाक्रमसे मनुष्यको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥ उन २ देवताओंके वार उन २ देवताओंकी प्रीति करनेवाले हैं और देवताओंकीभी पूजाके फल देनेवाले शिवही हैं ॥ २२ ॥ देवताओंकी प्रीतिकेनिमित्त पांच प्रकारकी पूजा कहीहै, उनका मंत्र जप होम दान तप ॥ २३ ॥ स्थलमें स्थापित प्रतिमा; अग्नि और ब्राह्मणके शरीरमें षोडश उपचार सहित पूजन करना चाहिये ॥ २४ ॥ इन तीनोंमें उत्तरोत्तर पूजनश्रेष्ठहै, नेत्ररोग शिररोग और कुष्ठरोगकी

शान्तिके निमित्त जो ॥ २५ ॥ आदित्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै इस प्रकार दिन महीने वर्ष और तीन वर्षतक करता रहै ॥ २६ ॥
जब प्रारब्ध प्रबल होजायगा तो ज्वरादिक रोग शांत होजाँयगे, जप होम दानादि इष्टदेवताका करनेसे उनके वार अनुसार वे फल देते हैं ॥ २७ ॥
विशेषकर रविवारके दिन पापशांति करनेके निमित्त पूजा करै, और उस देवताके प्रीतिकारक द्रव्य निवेदन करै आदित्यवारही देवता और ब्राह्मणोंको विशेष
फल देनेवाला है ॥ २८ ॥ सोमवारके दिन विद्वानको लक्ष्मी आदिकी पूजा करनी चाहिये, इस दिन घृत अन्नादिसे स्त्रीसहित ब्राह्मणोंको जिमावै ॥ २९ ॥
मंगलके दिन रोगशान्तिके निमित्त काली आदिका यजन पूजन करै, उर्द मूँग एक आढक (चारसेर) लेकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ३० ॥ बुधवारके

आदित्यंपूजयित्वातुब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ दिनंमासंतथावर्षंवर्षत्रयमथापिवा ॥ २६ ॥ प्रारब्धंप्रबलंचेत्स्यान्नश्येद्रोगजरादिकम् ॥
जपाद्यमिष्टदेवस्यवारादीनांफलंविदुः ॥ २७ ॥ पापशांतिर्विशेषेणह्यादिवारेनिवेदयेत् ॥ आदित्यस्यैवदेवानांब्राह्मणानांविशिष्टदम् ॥
॥ २८ ॥ सोमवारेचलक्ष्म्यादीन्संपदर्थंयजेद्बुधः ॥ आज्यान्नेनतथाविप्रान्सपत्नीकांश्चभोजयेत् ॥ २९ ॥ काल्यादीन्भौमवारेतुयजेद्रो
गप्रशांतये ॥ माषमुद्गाढकान्नेनब्राह्मणांश्चैवभोजयेत् ॥ ३० ॥ सौम्यवारेतथाविष्णुंदध्यन्नेनयजेद्बुधः ॥ पुत्रमित्रकलत्रादिपुष्टिर्भव
तिसर्वदा ॥ ३१ ॥ आयुष्कामोगुरोर्वारेदेवानांपुष्टिसिद्धये ॥ उपवीतेनवस्त्रेणक्षीराज्येनयजेद्बुधः ॥ ३२ ॥ भोगार्थंभृगुवारेतुयजेद्देवान्स
माहितः ॥ षड्रसोपेतमन्नंचदद्याद्ब्राह्मणतृप्तये ॥ ३३ ॥ स्त्रीणांचतृप्तयेतद्वद्देयंवस्त्रादिकंशुभम् ॥ अपमृत्युहरेमंदेरुद्रादींश्चयजेद्बुधः ॥
॥ ३४ ॥ तिलहोमेनदानेनतिलान्नेनचभोजयेत ॥ इत्थंयजेच्चविबुधानारोग्यादिफलंलभेत् ॥ ३५ ॥

दिन विष्णुको दही अन्नसे पूजन करै तौ सर्वदा पुत्र मित्र कलत्रादिकी पुष्टि होती है ॥ ३१ ॥ आयुकी इच्छा करनेहारा देवताओंकी पुष्टिकी सिद्धिके
निमित्त गुरुवारके दिन उपवीत वस्त्र दूध और घीसे यजन करै ॥ ३२ ॥ भोगकी इच्छा हो तौ शुक्रवारके दिन सावधान हो देवताओंका यजन करै, और
ब्राह्मणोंको तृप्ति करनेके लिये षट्रस भोजन करावै ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंकी तृप्तिके लिये वस्त्रादिक प्रदान करै, अपमृत्यु दूर करनेके लिये शनिवारके दिन
रुद्रादिकोंका यजन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ तिलहोम दान और तिलमिश्रित अन्नका भोजन करावै, इसप्रकार देवताओंका यजन करनेसे आरोग्यादिकी

प्राप्ति होती है ॥३५॥ देवताओंको नित्य यजन तथा विशेष यजनमेंभी स्नान दान जप होम और ब्राह्मणोंके तर्पणमें ॥ ३६ ॥ तिथिनक्षत्रके योगमें उन उन देवताओंके पूजन करनेसे सब वारोंके प्रथम दिनमें सर्वज्ञ जगदीश्वरही ॥ ३७ ॥ उन उन देवताओंके रूपसे सबको आरोग्यादि दान करते हैं, देश काल और पात्रके अनुसार ॥ ३८ ॥ द्रव्यकी श्रद्धाके अनुसार तथा लोकानुसार तारतम्यके क्रमसे शिवजी सबको फलप्रदान करते हैं ॥ ३९ ॥ मंगलकार्यके आरम्भमें और अन्तमें तथा जन्मनक्षत्रमें गृहस्थीको आरोग्यादि प्राप्तिके निमित्त आदित्यादि ग्रहोंका यजन करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस कारणसे

देवानांनित्ययजनेविशेषयजनेपिच ॥ स्नानेंदानेजपेहोमेंब्राह्मणानांचतर्पणे ॥ ३६ ॥ तिथिनक्षत्रयोगेचतत्तद्देवप्रपूजने ॥ आदिवारा
दिवारेषुसर्वज्ञोजगदीश्वरः ॥ ३७ ॥ तत्तद्रूपेणसर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः ॥ देशकालानुसारेणतथापात्रानुसारतः ॥ ३८ ॥ द्रव्यश्रद्धानु
सारेणतथालोकानुसारतः ॥ तारतम्यक्रमाद्देवस्त्वारोग्यादीन्प्रयच्छति ॥ ३९ ॥ शुभादावशुभांतेचजन्मर्क्षेषुगृहेगृही ॥ आरोग्यादि
समृद्ध्यर्थमादित्यादीन्ग्रहान्यजेत् ॥ ४० ॥ तस्माद्दैवंदेवयजनंसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ समंत्रकंब्राह्मणानामन्येषांचैवतांत्रिकम् ॥ ४१ ॥
यथाशक्त्यनुरूपेणकर्तव्यंसर्वदानरैः ॥ सप्तस्वपिचवारेषुनरैःशुभफलेप्सुभिः ॥ ४२ ॥ दरिद्रस्तपसादेवान्यजेदाढ्योधनेनहि ॥ पुनश्चैवं
विधंधर्मंकुरुतेश्रद्धयासह ॥ ४३ ॥ पुनश्चभोगान्विविधान्भुक्त्वाभूमौप्रजायते ॥ छायांजलाशयंब्रह्मप्रतिष्ठांधर्मसंचयम् ॥ ४४ ॥
सर्वंचवित्तवान्कुर्यात्सदाभोगप्रसिद्धये ॥ कालाच्चपुण्यपाकेनज्ञानसिद्धिःप्रजायते ॥ ४५ ॥

देवयजन सम्पूर्ण इच्छितफलका देनेहारा है, मंत्रपूर्वक ब्राह्मणोंको और इतर शूद्रादिकोंको तंत्रोक्त पूजन करावै ॥ ४१ ॥ मनुष्योंको यथाशक्ति सातों वारोंमें शुभ फलकी इच्छासे सदा पूजन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ दरिद्रोंको तपसे देवताओंका यजन करना चाहिये, धनीको धनसे पूजन करना चाहिये इसप्रकार जो श्रद्धासे धर्म करताहै ॥ ४३ ॥ वह स्वर्गमें अनेकभोग भोगकर पृथ्वीमें उत्पन्न होताहै. वृक्षारोपण, सरोवरनिर्माण, पाठशाला बनाना, धर्मबोधक पुस्तकादिका संग्रह ॥ ४४ ॥ यह धनीको भोगसिद्धिके निमित्त सदा करना चाहिये. इस प्रकार जब पुण्यका परिपाक होजायगा तब

समयपर ज्ञानकी सिद्धि होजायगी ॥ ४५ ॥ जो ब्राह्मण इस अध्यायको पढते वा सुनते हैं अथवा जो सुनाते हैं वे देवयज्ञका फल पाते हैं ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! आप पूजाके योग्य देश और कालका वर्णन कीजिये कारण कि, आप सब कुछ जानते हैं, सूतजी बोले देवयज्ञादि कर्ममें शुद्ध घर कहे मात्रफलको देताहै ॥ १ ॥ उससे दशगुण गौओंके स्थानमें, उससे दशगुण जलके स्थानमें; उससे दशगुण बेल तुलसी और पीपलके वृक्षके नीचे ॥ २ ॥ उससे दशगुणा देवालयमें, उससे दशगुण तीर्थके

यइमंश्शृणुतेऽध्यायंपठतेवानरोद्विजाः ॥ श्रवणस्योपकर्त्ताचदेवयज्ञफलंलभेत् ॥ ४६ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ देशादीन्क्रमशोब्रूहिसूतसर्वार्थवित्तम ॥ सूतउवाच ॥ शुद्धंगृहंसमफलंदेवयज्ञादिकर्मसु ॥ १ ॥ ततोदशगुणंगोष्टंजलतीरंततोदश ॥ ततोदशगुणंबिल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम् ॥ २ ॥ ततोदेवालयंविद्यात्तीर्थतीरंततोदश ॥ ततोदशगुणं नद्यास्तीर्थनद्यास्ततोदश ॥ ३ ॥ सप्तगंगानदीतीरंतस्यादशगुणंभवेत् ॥ गंगागोदावरीचैवकावेरीताम्रपर्णिका ॥ ४ ॥ सिंधुश्चसरयूरेवा सप्तगंगाःप्रकीर्तिताः ॥ ततोऽब्धितीरंदशचपर्वताग्रेततोदश ॥ ५ ॥ सर्वस्मादधिकंज्ञेयंयत्रवारोचतेमनः ॥ कृतेपूर्णफलंज्ञेयंयज्ञदानादिकंतथा ॥ ६ ॥ त्रेतायुगेत्रिपादंचद्वापरेऽर्धंसदास्मृतम् ॥ कलौपादंतुविज्ञेयंतत्पादोनंततोर्द्धके ॥ ७ ॥ शुद्धात्मनःशुद्धदिनंपुण्यंसमफलंविदुः ॥ तस्माद्दशगुणंज्ञेयंरविसंक्रमणेबुधाः ॥ ८ ॥

किनारे, उससे दशगुण नदी, और उससे दश गुणा फल तीर्थनदीके किनारे ॥ ३ ॥ उससे दशगुण फल सप्तगंगा नदीके किनारे, और गंगा गोदावरी कावेरी ताम्रपर्णी ॥ ४ ॥ सिन्धु सरयू यह नदी सप्तगंगा कहलातीहैं उससे दशगुण फल सागर और उससे दश गुण फल पर्वताग्रमें पूजन करनेसे होताहै ॥ ५ ॥ और जहां मन रमें वहां सबसे अधिक पूजनका फल होताहै. यज्ञदानादिका सतयुगमें पूर्ण फल होताहै ॥ ६ ॥ त्रेतायुगमें तिहाई द्वापरमें आधा, कलियुगमें चौथाई, और अधिक आधा कलियुग बीतनेपर इससेभी न्यून फल होगा ॥ ७ ॥ शुद्धात्मा हो पवित्रदिनमें पुण्यसमान फल

देनेहाराहै इससे दशगुण फल संक्रान्तिके दिन ॥ ८ ॥ तुला और मेषकी संक्रान्तिमें उससे दशगुण, अयनमें उससे दशगुण, चन्द्रग्रहणमें उससे दशगुण ॥ ९ ॥ उससे दश गुण फल सूर्यकेग्रहणमें होताहै, यह उत्तम और पूर्णकालहै. जगत्रूप सूर्य अंधकाररूप होजानेसे तथा विषयका योग होनेसे यह समय रोगदायकहै ॥ १० ॥ इसप्रकारण इस विषशान्तिके निमित्त स्नान और दान करना चाहिये, विषशान्ति करनेवाला होनेसेही यह समय पुण्य देनेवाला कहा है ॥ ११ ॥ जन्मनक्षत्र और व्रतके अन्तमें दानका फल सूर्यग्रहणकी तुल्यही है, और सत्पुरुषोंकी संगतिका फल करोड सूर्यके समान है ॥ १२ ॥ तपोनिष्ठज्ञानमें

विषुवेतद्दशगुणमयनेतद्दशस्मृतम् ॥ तद्दशमृगसंक्रांतौतच्चंद्रग्रहणेदश ॥ ९ ॥ ततश्चसूर्यग्रहणेपूर्णकालोत्तमेविदुः ॥ जगद्रूपस्यसूर्यस्यविषयोगाच्चरोगदम् ॥ १० ॥ अतस्तद्विषशांत्यर्थंस्नानदानजपांश्चरेत् ॥ विषशांत्यर्थकालत्वात्सकालःपुण्यदःस्मृतः ॥ ११ ॥ जन्मर्क्षेचव्रतांतेचसूर्यरागोपमंविदुः ॥ महतांसंगकालश्चकोट्यर्कग्रहणंविदुः ॥ १२ ॥ तपोनिष्ठाज्ञाननिष्ठायोगिनोयतयस्तथा ॥ पूजायाःपात्रमेतेहिपापसंक्षयकारणम् ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतिलक्षंवागायत्र्याजपसंयुतः ॥ ब्राह्मणस्तुभवेत्पात्रंसंपूर्णफलभोगदम् ॥ १४ ॥ पतनात्त्रायतइतिपात्रंशास्त्रेप्रयुज्यते ॥ दातुश्चपातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते ॥ १५ ॥ गायकंत्रायतेपाताद्गायत्रीत्युच्यतेहिसा ॥ यथाऽर्थहीनोलोकेऽस्मिन्परस्यार्थंनयच्छति ॥ १६ ॥ अर्थवानिहयोलोकेपरस्यार्थंप्रयच्छति ॥ स्वयंशुद्धोहिपूतात्मानरान्स्त्रातुमर्हति ॥ १७ ॥

निष्ठावाले योगी और यती यह पूजाके पात्रहैं इनका सत्कार करनेसे पापक्षय होताहै ॥ १३ ॥ अथवा जिसने चौवीस लाख गायत्री का जप कियाहै वह ब्राह्मण पूर्ण फलका देनेहाराहै, वह यथार्थ पात्रहै ॥ १४ ॥ पतनसे रक्षा करनेवालेका नाम शास्त्रमें पात्र कहाहै, दाताकी पातकोंसे रक्षा करताहै इसीसे वह पात्र है ॥ १५ ॥ और अपने गानेवालेकी पापसे रक्षा करती है इसीसे गायत्री कहलाती है. जिसप्रकार धनहीन इसलोकमें किसीको धन नहीं देसक्ता ॥ १६ ॥ और जो इस लोकमें अर्थवानहै वह धन देसक्ता है इसी प्रकारसे जो स्वयं पवित्र है वही इस लोकमें दूसरोंकी रक्षा कर सक्ता है ॥ १७ ॥

गायत्रीजपसे शुद्ध हुआही ब्राह्मण शुद्ध है, इस कारण दान जप होम और पूजा सब काममें ॥ १८ ॥ दान और रक्षा करनेमें एक ब्राह्मणही पात्र है और अन्नदानका नारी नर कोईभी हो जो भूखाहो वही पात्र॥ १९ ॥ है जिस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलावै, और सावधान होकर उसे दान दे उसका शब्द और अर्थ सत् वस्तुका बोधक और इष्ट देनेवाला है ॥ २० ॥ इच्छावालेको उसको देना सम्पूर्ण फलका देनेहारा है और जो माँगनेके पीछे दिया जाता है वह आधे फलका देनेहारा है ॥ २१ ॥ और जो सेवकको दिया जाता है उसका चौथाई फल होता है. हे ब्राह्मणो ! जो जातिमात्र ब्राह्मण दीनहोय तौ ॥ २२ ॥ उसको दान देनेसे भूर्लोकमें दशवर्ष फल होता है, तप शास्त्र विद्यासे हीन ब्राह्मण जाति ब्राह्मण है यथा (पातञ्जलभाष्ये तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः) वेदयुक्त ब्राह्मणको दान देनेमें दशवर्ष स्वर्गमें फल होता है ॥ २३ ॥ जो गायत्रीके जपसे युक्त है, उसे सत्यलोकमें दशवर्ष फल होता है, और विष्णुभक्त ब्राह्मणको दान देनेमें वैकुंठकी प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥ शिवभक्तको दान करनेसे कैलासकी प्राप्ति होती है, सब प्रकारके दान जिस उद्देशसे दिये जाँय उसी प्रकार उन लोकोंको फल मिलता है ॥ २५ ॥ जो रविवारके दिन ब्राह्मणको दशांगयुक्त दानकरता है वह दूसरे जन्ममें आरोग्यताको दशवर्ष तक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ दशांग कहतेहैं बहुत सन्मान करना, बुलाना,

गायत्रीजपशुद्धोहिशुद्धब्राह्मणउच्यते ॥ तस्माद्दानेजपेहोमेपूजायांसर्वकर्मणि ॥ १८ ॥ दानंकर्तुंतथात्रातुंपात्रंतुब्राह्मणोर्हति ॥ अन्नस्य
क्षुधितंपात्रंनारीनरमयात्मकम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणंश्रेष्ठमाहूययत्कालेसुसमाहितम् ॥ तदर्थंशब्दमर्थंवासद्बोधकमभीष्टदम् ॥ २० ॥ इच्छा
वतःप्रदानंचसंपूर्णफलदंविदुः ॥ यत्प्रश्नानंतरंदत्तंतदर्धफलदंविदुः ॥ २१ ॥ यत्सेवकायदत्तंस्यात्तत्पादफलदंविदुः ॥ जातिमात्रस्य
विप्रस्यदीनवृत्तेर्द्विजर्षभाः ॥ २२ ॥ दत्तमर्थंहिभोगायभूर्लोकेदशवार्षिकम् ॥ वेदयुक्तस्यविप्रस्यस्वर्गेहिदशवार्षिकम् ॥ २३ ॥
गायत्रीजपयुक्तस्यसत्येहिदशवार्षिकम् ॥ विष्णुभक्तस्यविप्रस्यदत्तंवैकुंठदंविदुः ॥ २४ ॥ शिवभक्तस्यविप्रस्यदत्तंकैलासदंविदुः ॥
तत्तल्लोकोपभोगार्थंसर्वेषांदानमिष्यते ॥ २५ ॥ दशांगमन्नंविप्रस्यभानुवारेददन्नरः ॥ परजन्मनिचारोग्यंदशवर्षंसमश्नुते ॥ २६ ॥ बहुमा
नमथाह्वानमभ्यंगंपादसेवनम् ॥ वासोगंधाद्यर्चनंचाघृतापूपरसोत्तरम् ॥ २७ ॥

उबटना करना, चरणसेवन, वस्त्र, गंधादिसे अर्चन, घृत, मालपुए, रस ॥ २७ ॥ षट्रस व्यंजन, ताम्बूल दक्षिणा नमस्कार कुछ दूर संग जाना, यह दशांग अन्नदान है ॥ २८ ॥ जो रविवारके दिन दशब्राह्मणोंको दशांग अन्नदान करता है वह सौवर्षतक आरोग्यता पाताहै ॥ २९ ॥ सोमवार आदि वारोंमें उनके गुणके अनुसार फल है, अन्नदानसे दूसरे जन्ममें भूर्लोककी प्राप्ति होती है ॥ ३०॥ सातौं वारोंमें दशब्राह्मणको दशांग अन्न देकर सौवर्ष आरोग्यादिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सौ ब्राह्मणोंको सूर्यवारकेदिन अन्नदान करनेसे सहस्रवर्ष शिवलोकमें आरोग्य रहताहै ॥ ३२ ॥ सहस्र ब्राह्मणोंको देनेसे

षड्रसंव्यंजनंचैवतांबूलंदक्षिणोत्तरम् ॥ नमश्चानुगमश्चैवस्वन्नदानंदशांगकम् ॥ २८ ॥ दशांगमन्नंविप्रेभ्योदशभ्योवैददन्नरः ॥ अर्कवारे तथाऽऽरोग्यंशत्तवर्षंसमश्नुते ॥ २९ ॥ सोमवारादिवारेषुतत्तद्वारगुणंफलम् ॥ अन्नदानस्यविज्ञेयंभूर्लोकेपरजन्मनि ॥ ३० ॥ सप्तस्वपिचवारेषुदशभ्यश्चदशांगकम् ॥ अन्नंदत्त्वाशतंवर्षमारोग्यादिकमश्नुते ॥ ३१ ॥ एवंशतेभ्योविप्रेभ्योभानुवारेददन्नरः ॥ सहस्रवर्षमारोग्यंशर्वलोकेसमश्नुते ॥ ३२ ॥ सहस्रेभ्यस्तथादत्त्वाऽयुतवर्षंसमश्नुते ॥ एवंसोमादिवारेषुविज्ञेयंहिविपश्चिता ॥ ३३ ॥ भानुवारेसहस्राणांगायत्रीपूतचेतसाम् ॥ अन्नंदत्त्वासत्यलोकेह्यारोग्यादिसमश्नुते ॥ ३४ ॥ अयुतानांतथादत्त्वाविष्णुलोकेसमश्नुते ॥ अन्नंदत्त्वातुलक्षाणांरुद्रलोकेसमश्नुते ॥ ३५ ॥ बालानांब्रह्मबुद्ध्याहिदेयंविद्यार्थिभिर्नरैः ॥ यूनांचविष्णुबुद्ध्याहिपुत्रकामार्थिभिर्नरैः ॥ ३६ ॥ वृद्धानांरुद्रबुद्ध्याहिदेयंज्ञानार्थिभिर्नरैः ॥ बालस्त्रीभारतीबुद्ध्याबुद्धिकामैर्नरोत्तमैः ॥३७॥ लक्ष्मीबुद्ध्यायुवस्त्रीषुभोगकामैर्नरोत्तमैः ॥ वृद्धासुपार्वतीबुद्ध्यादेयमात्मार्थिभिर्जनैः ॥ ३८ ॥

दशसहस्रवर्ष सुखभोग करता है इसीप्रकार सोमवारादि वारोंकाभी फल जानना ॥ ३३ ॥ रविवारके दिन गायत्रीसे पवित्रचित्त सहस्र ब्राह्मणोंको अन्न देनेसे सत्यलोकमें आरोग्यादिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३४ ॥ दशसहस्रको देकर विष्णुलोक और लक्षको अन्नदान करनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होतीहै ॥ ३५ ॥ बालक विद्यार्थियोंको ब्रह्मबुद्धिसे अन्नदान करना, युवाओंको विष्णुबुद्धिसे पुत्रकी इच्छावाले मनुष्योंको दानकरना चाहिये ॥ ३६ ॥ ज्ञानकी इच्छावालोंको वृद्धोंके निमित्त रुद्रबुद्धिसे दान करना चाहिये, और बालक स्त्रियोंको सरस्वतीकी बुद्धिसे बुद्धिकी इच्छावाले मनुष्योंको पूजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ और ऐश्वर्यकी

इच्छावाले मनुष्योंको युवा स्त्रीमें लक्ष्मीकी बुद्धिसे पूजा करनी चाहिये और आत्माकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको वृद्धा स्त्रियोंको पार्वतीबुद्धिसे दान करना चाहिये ॥ ३८ ॥ उञ्छशिलवृत्ति कणचुनना और गुरुदक्षिणासे बचाहुआ दशांश द्रव्य शुद्ध है, और वह पूर्ण फलका देनेवाला है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंसे दान लिया द्रव्य मध्यम है, कृषि वाणिज्यसे प्राप्त धन अधम द्रव्य कहलाता है ॥ ४० ॥ क्षत्रिय वैश्यका शूरता और वाणिज्यका उत्पन्न किया द्रव्य उत्तम है, और शूद्रका सेवासे अर्जन किया द्रव्य उत्तम है ॥ ४१ ॥ स्त्रियोंको स्वामी और उनके पिताका दियाहुआद्रव्य धर्मवालाहै और चैत्रादि मासोंमें

शिलवृत्त्योञ्छवृत्त्याचगुरुदक्षिणयार्जितम् ॥ शुद्धद्रव्यमितिप्राहुस्तत्पूर्णफलदंविदुः ॥ ३९ ॥ शुक्लप्रतिग्रहाद्दत्तंमध्यमंद्रव्यमुच्यते ॥
कृषिवाणिज्यकोपेतमधमंद्रव्यमुच्यते ॥ ४० ॥ क्षत्रियाणांविशांचैवशौर्यवाणिज्यकार्जितम् ॥ उत्तमंद्रव्यमित्याहुःशूद्राणांभृतकार्जितम् ॥ ४१ ॥
स्त्रीणांधर्मार्थिनांद्रव्यंपैतृकंभर्तृकंतथा ॥ गवादीनांद्वादशादीनांचैत्रादिषुयथाक्रमम् ॥ ४२ ॥ संभूयवापुण्यकाले
दद्यादिष्टसमृद्धये ॥ गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानिच ॥ ४३ ॥ रौप्यंलवणकूष्मांडकन्याद्वादशकंतथा ॥ गोदानाद्दत्तगव्येन
गोमयेनोपकारिणा ॥ ४४ ॥ धनधान्याद्याश्रितानांदुरितानांनिवारणम् ॥ जलस्नेहाद्याश्रितानांदुरितानांतुगोजलैः ॥ ४५ ॥
कायिकादित्रयाणांतुक्षीरदध्याज्यकैस्तथा ॥ तथातेषांचपुष्टिश्चविज्ञेयाहिविपश्चिता ॥ ४६ ॥ भूदानंतुप्रतिष्ठार्थमिहचाऽमुत्रचद्विजाः ॥
तिलदानंबलार्थंहिसदामृत्युजयंविदुः ॥ ४७ ॥

गौको आदिले बारह वस्तुका यथाक्रम दान दे ॥ ४२ ॥ यह सब पुण्यकालमें इष्ट सिद्धिके निमित्त दान करै, गौ पृथ्वी तिल सुवर्ण घृत वस्त्र धान्य गुड ॥ ४३ ॥ चाँदी लवण पेठा और कन्या यह बारह वस्तु हैं; गोदानसे गव्यसे और उपकारी गोबरसे ॥ ४४ ॥ और धन धान्यसे आश्रितोंके कष्टका निवारण करना जल स्नेहसे तथा गोमूत्रसे आश्रितोंके दुःख निवारणहोते हैं ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार क्षीर दधि और घृतसे कायिक वाचिक मानसिक तीनप्रकारके पाप दूर होते हैं, इस प्रकार गोदानसे तथा गव्यसे पुष्टि होती है; सो विद्वानोंको जाननी उचित है ॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! भूदान

करनेसे दोनोंलोकमें प्रतिष्ठा होती है, तिलदानसे बल और मृत्युका जय होता है ॥ ४७ ॥ हिरण्यदानसे जठराग्निकी प्रबलता और वीर्यकी वृद्धि होती है, घृतसे पुष्टि और वस्त्रदानसे आयुष्यकी वृद्धि होती है ॥ ४८ ॥ धान्यदानसे ऐश्वर्यकी वृद्धि गुडदानसे मधुर आहारकी प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥ सब ऐश्वर्य और पुष्टिका देनेवाला पेठा है, हे ब्राह्मणो ! यह दोनोंलोकमें सब भोगोंकी प्राप्तिकरनेवाला है ॥ ५० ॥ कन्यादानसे जन्मपर्यन्त भोगकी प्राप्ति होती है, पनस आम कैथ वृक्षोंके फल ॥ ५१ ॥ कदली (केला) औषधी फल जो लता गुल्मसे उत्पन्न हुए हैं उर्द मूँग

हिरण्यंजाठरोग्नस्तुवृद्धिदंवीर्यदंतथा ॥ आज्यंपुष्टिकरंविद्याद्वस्त्रमायुष्करंविदुः ॥ ४८ ॥ धान्यमन्नंसमृद्ध्यर्थंमधुराहारदंगुडम् ॥ रौप्यं
रेतोभिवृद्ध्यर्थंषड्रसार्थंतुलावणम् ॥ ४९ ॥ सर्वंसर्वसमृद्ध्यर्थंकूष्मांडंपुष्टिदंविदुः ॥ प्राप्तिदंसर्वभोगानामिहचाऽमुत्रचद्विजाः ॥ ५० ॥
यावज्जीवनमुक्तंहिकन्यादानंतुभोगदम् ॥ पनसाम्रकपित्थानांवृक्षाणांफलमेवच ॥ ५१ ॥ कदल्याद्यौषधीनांचफलंगुल्मोद्भवंतथा ॥
माषादीनांचमुद्गानांफलंशाकादिकंतथा ॥ ५२ ॥ मरीचिसर्षपाद्यानांशाकोपकरणंतथा ॥ यदृतौयत्फलंसिद्धंतद्देयंहिविपश्चिता ॥ ५३ ॥
श्रोत्रादींद्रियतृप्तिश्चसदादेयाविपश्चिता ॥ शब्दादिदशभोगार्थंदिगादीनांचतुष्टिदा ॥ ५४ ॥ वेदशास्त्रंसमादायबुद्ध्वागुरुमुखात्स्वयम् ॥
कर्मणांफलमस्तीतिबुद्धिरास्तिक्यमुच्यते ॥ ५५ ॥ बंधुराजभयाद्बुद्धिश्रद्धासाचकनीयसी ॥ सर्वाभावेदरिद्रस्तुवाचावाकर्मणायजेत् ॥
॥ ५६ ॥ वाचिकंयजनंविद्यान्मंत्रस्तोत्रजपादिकम् ॥ तीर्थयात्राव्रताद्यंहिकायिकंयजनंविदुः ॥ ५७ ॥

फली शाकादि ॥ ५२ ॥ मिरच सरसों तथा और शाककी सामग्री जिस ऋतुमें जो फलहो वही वही बुद्धिमान्को देना चाहिये ॥ ५३ ॥ और बुद्धिमानको उचित है कि श्रोत्रादि इंद्रियतृप्तिकारक भोगभी प्रदान करै; शब्द स्पर्शादिकी दशविधि वस्तु देनेसे दशों दिशाओंकी तुष्टि होतीहै ॥ ५४ ॥ वेदशास्त्रको लेकर और स्वयं गुरुके मुखसे सुन उन्हैं जानकर (कर्मोंका फलहै) इस प्रकारकी बुद्धिका नाम आस्तिक्य है ॥ ५५ ॥ और बन्धु तथा राजभयसे आस्तिक्यबुद्धि होनी यह कनिष्ठ श्रद्धा है, सब प्रकार द्रव्यका अभाव हो तो वाणी अथवा कर्मसेही यजन करै ॥५६॥ मंत्र और स्तोत्रा

दिजपका नाम वाचिक यजन है, तीर्थयात्रा व्रत इत्यादि कायिक यजन है ॥ ५७ ॥ जिस प्रकारसे होसके उसी प्रकारसे देवताके अर्पण बुद्धिसे कर्म करै, तौ महाभोगकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५८ ॥ तपश्चर्या और दान ये दोनों सदा करने चाहियें अपने वर्ण और गुणसे शोभित गृह दान करना चाहिये ॥५९॥ देवताओंकी तृप्तिके निमित्त दान करनेसे सब भोगकी प्राप्ति होतीहै, इस कर्मसे इस लोक परलोकके जन्मसे सदा भोगकी प्राप्ति होतीहै, और ईश्वरार्पणबुद्धिसे करनेसे मुक्ति होजातीहै ॥६०॥ जो मनुष्य इस अध्यायको पढते और सदा सुनतेहैं उनको धर्मबुद्धि और ज्ञानकी सिद्धि होतीहै॥६१॥

येनकेनाप्युपायेनह्यल्पंवायदिवाबहु ॥ देवतार्पणबुद्ध्याचकृतंभोगायकल्पते ॥ ५८ ॥ तपश्चर्याचदानंचकर्तव्यमुभयंसदा ॥ प्रतिश्रयं प्रदातव्यंस्ववर्णगुणशोभितम् ॥ ५९ ॥ देवानांतृप्तयेऽत्यर्थंसर्वंभोगप्रदंबुधैः ॥ इहाऽमुत्रोत्तमंजन्मसदाभोगंलभेद्बुधः ॥ ईश्वरार्पणबुद्ध्या हिकृत्वामोक्षफलंलभेत् ॥ ६० ॥ यइमंपठतेऽध्यायंयःशृणोतिसदानरः ॥ तस्यैवधर्मबुद्धिश्चज्ञानसिद्धिःप्रजायते ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांपञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ पार्थिवप्रतिमापूजाविधानंब्रूहिसत्तम ॥ येनपूजाविधानेनसर्वाभीष्टमवाप्यते ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ सुसाधुपृष्टंयुष्माभिःसदासर्वार्थदायकम् ॥ सद्योदुःखस्यशमनंशृणुतप्रब्रवीमिवः ॥ २ ॥ अपमृत्युहरं कालमृत्योश्चापिविनाशनम् ॥ सद्यःकलत्रपुत्रादिधनधान्यप्रदंद्विजाः ॥ ३ ॥ अन्नादिभोज्यंवस्त्रादिसर्वमुत्पद्यतेयतः ॥ ततोमृदादिप्रतिमापूजाभीष्टप्रदाभुवि ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! आप हमसे पार्थिवपूजाका विधान कहिये, जिस पूजा विधानसे सम्पूर्ण इष्टसिद्धि होतीहै ॥१॥ सूतजी बोले आपने बहुत श्रेष्ठ बात पूछी यह सदा सब अर्थोंकी सिद्धि करनेहारी है; इसके कहतेही शीघ्र दुःखकी शान्ति होजातीहै, मैं कहताहूं आप सुनिये॥२॥अपमृत्यु (अकालमृत्यु) काभी हरनेहारा सदा धन धान्य स्त्री पुत्रोंका देनेवाला विधानहै हे ब्राह्मणो ! ॥ ३ ॥ जिससे अन्नादि भोजन वस्त्र सब कुछ उत्पन्न होतेहैं, इसी कारण वह मृत्तिकाआदिकी प्रतिमा पृथ्वीमें मनुष्योंको अभीष्टकी देनेवाली है ॥४॥

इसमें स्त्री पुरुष दोनोंका अधिकार है नदी तडाग कूप अथवा जलके नीचेकी मृत्तिका लावै ॥ ५ ॥ पीछे सुगंधित द्रव्यके चूर्णसे शोधित करके उस मृत्तिकाको अच्छे मंडपमें मर्दित करै। तिसके पश्चात् दूध डालकर हाथसे प्रतिमा बनावै ॥६॥ अंग प्रत्यंग सब बनाकर आयुधोंसहित कल्पना कर पद्मासनसे बैठाय आदरसे पूजा करै ॥ ७ ॥ गणेश आदित्य विष्णु पार्वती शिव और शिवलिंगकी मूर्त्तिकी सदा ब्राह्मण पूजाकरै ॥ ८ ॥ फलसिद्धिके निमित्त षोडशोपचारसे पूजा करै पुष्पसे प्रोक्षणकर मंत्रपूर्वक अभिषेक करै; ॥ ९ ॥ शालि अन्न नैवेद्य संग्रह कर एक कुडव अर्थात् पावभर ले घरमें स्थापित लिंगकी पावभर नैवेद्यसे और मनुष्योंके स्थापित लिंगकी एक प्रस्थ (एकसेर) नैवेद्यसे पूजा करै ॥ १० ॥ देवताके स्थापित किये लिंगपर तीन प्रस्थ और प्रादुर्भूत हुए लिंगपर पांच प्रस्थ चढावे इस प्रकार छःसात प्रस्थ (सेर) नैवेद्य चढानेसे पूर्ण फल होता है ॥ ११ ॥ और सहस्र प्रस्थ नैवेद्यसे पूजा करनेसे ब्राह्मणको सत्यलोककी प्राप्ति होती है, बारह अंगुल चौडा, चौवीस अंगुल लम्बा ॥ १२ ॥ और एक अंगुल अधिक इस प्रकार पच्चीस अंगुल लम्बा पंद्रह अंगुल ऊंचा लोहे वा काष्ठके पात्रका नाम शिव है ॥ १३ ॥ उसके आठवें भागका नाम प्रस्थ चौथे

पुरुषाणांचनारीणामधिकारोत्रनिश्चितम् ॥ नद्यांतडागेकूपेवाजलांतर्मृदमाहरेत् ॥ ५ ॥ संशोध्यगंधचूर्णेनपेषयित्वासुमंडपे ॥ हस्तेनप्रतिमांकुर्यात्क्षीरेणचसुसंस्कृताम् ॥ ६ ॥ अंगप्रत्यंगकोपेतामायुधैश्चसमन्विताम् ॥ पद्मासनस्थितांकृत्वापूजयेदादरेणहि ॥ ७ ॥ विघ्नेशादित्यविष्णूनामंबायाश्चशिवस्यच ॥ शिवस्यशिवलिंगंचसर्वदापूजयेद्द्विजः ॥ ८ ॥ षोडशैरुपचारैश्चकुर्यात्तत्फलसिद्धये ॥ पुष्पेणप्रोक्षणंकुर्यादभिषेकंसमंत्रकम् ॥९॥ शाल्यन्नेनैवनैवेद्यंसर्वंकुडवमानतः ॥ गृहेतुकुडवंज्ञेयंमानुषेप्रस्थमिष्यते ॥ १० ॥ दैवेप्रस्थत्रयंयोग्यंस्वयंभोःप्रस्थपंचकम् ॥ एवंपूर्णफलंविद्यादधिकंवैद्वयंत्रयम् ॥ ११ ॥ सहस्रपूजयासत्यंसत्यलोकंलभेद्द्विजः ॥ द्वादशांगुलमायामंद्विगुणंचततोऽधिकम् ॥ १२ ॥ प्रमाणमंगुलस्यैकंतदूर्ध्वंपंचकत्रयम् ॥ अयोदारुकृतंपात्रंशिवमित्युच्यतेबुधैः ॥ : १३ ॥ तदष्टभागःप्रस्थःस्यात्तच्चतुःकुडवंमतम् ॥ दशप्रस्थंशतप्रस्थंसहस्रप्रस्थमेवच ॥ १४ ॥

भागका नाम कुडव है दशःप्रस्थ शतप्रस्थ सहस्रप्रस्थ ॥ १४ ॥ जल तैल गधसे यथोक्त प्रमाण द्वारा मनुष्यके स्थापन किये लिंगकी पूजा दशप्रस्थ नैवेद्यादिसे, ऋषिके स्थापित कियेकी सौ, और स्वयं उत्पन्न हुएकी सहस्रप्रस्थ नैवेद्यादिसे करै यह महापूजा कहलातीहै ॥ १५ ॥ अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि गन्ध चढानेसे पुण्यप्राप्ति नैवेद्यसे आयु और तृप्ति और धूपसे पुण्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ १६ ॥ दीपकसे ज्ञान, ताम्बूलसे भोगकी प्राप्ति होतीहै, इस कारण स्नानादि छः वस्तु यत्नपूर्वक कल्पना करै ॥ १७ ॥ नमस्कार और जप यह दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध करनेवाले हैं, भोग और मोक्षकी इच्छावालेको पूजाके अन्तमें सदा करने चाहियें ॥ १८ ॥ मानसिकपूजनमेंभी वह सब उपचार करने चाहिये देवताओंकीभी इसी प्रकार पूजा करनेसे

जलतैलादिगंधानांयथायोग्यंचमानतः ॥ मानुषार्षस्वयंभूनांमहापूजेतिकथ्यते ॥ १५ ॥ अभिषेकादात्मशुद्धिर्गंधात्पुण्यमवाप्यते ॥ आयुस्तृप्तिश्चनैवेद्याद्धूपादर्थमवाप्यते ॥ १६ ॥ दीपाज्ज्ञानमवाप्नोतितांबूलाद्भोगमाप्नुयात् ॥ तस्मात्स्नानादिकंषट्कंप्रयत्नेनप्रसाधयेत् ॥ १७ ॥ नमस्कारोजपश्चैवसर्वाभीष्टप्रदावुभौ ॥ पूजान्तेचसदाकार्यौभोगमोक्षार्थिभिर्नरैः ॥ १८ ॥ संपूज्यमनसापूर्वंकुर्यात्तत्तत्सदा नरः ॥ देवानांपूजयाचैवतत्तल्लोकमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ तदवांतरलोकेचयथेष्टंभोग्यमाप्यते ॥ तद्विशेषान्प्रवक्ष्यामिशृणुतश्रद्धयाद्विजाः ॥ २० ॥ विघ्नेशपूजयासम्यग्भूर्लोकेऽभीष्टमाप्नुयात् ॥ शुक्रवारेचतुर्थ्यांचसितेश्रावणभाद्रके ॥ २१ ॥ भिषगृक्षेधनुर्मासेविघ्नेशांविधिवद्यजेत् ॥ शतंपूजासहस्रंवातत्संख्याकादिनैर्व्रजेत् ॥ २२ ॥ देवाग्निश्रद्धयानित्यंपुत्रदंचेष्टदंनृणाम् ॥ सर्वपापप्रशमनंतत्तद्दुरितनाशनम् ॥ २३ ॥

उन उनके लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ और उनके बीचके लोकोंमेंभी यथेष्ट भोगकी प्राप्ति होती है, हे ब्राह्मणो ! आप सुनिये मैं इसमें विशेष कहताहूं ॥ २० ॥ गणेशजीकी सम्यक् प्रकार पूजा करनेसे भूलोकमें इष्टकी प्राप्ति होतीहै, शुक्रवारके दिन भाद्रमास वा श्रावणमासकी शुक्ल चतुर्थीके दिन ॥ २१ ॥ शतभिषा नक्षत्रमें और धनके सूर्यमें गणेशजीकी विधिपूर्वक पूजा करै, शतवार पूजा करनेसे तथा सहस्रवार पूजन करनेसे उसी संख्यायुक्त दिनतक भोगकी प्राप्ति होतीहै ॥ २२ ॥ देवता अग्निकी श्रद्धासे पूजा करै तौ मनुष्योंको पुत्र और मनोरथकी प्राप्ति होती है, सब पाप और दुःखोंका

नाश हो जाताहै ॥ २३ ॥ शिवादिके वारकी पूजा करनेसे आत्मशुद्धि होतीहै, तिथि और नक्षत्र योगोंका आधार, श्रेष्ठ दिन सबकामनाका देनेहारा है ॥ २४ ॥ इस प्रकार ब्रह्मका साधर्म्यसे वृद्धि क्षयदोषरहित दिन ग्रहण करना चाहिये, वह पूर्णफल देनेहारा है और ब्राह्मणादिकर्मोंमें वार और तिथि उदयमें ग्रहण करी है ॥ २५ ॥ उस तिथिके आदिमें पूजा मनुष्योंको पूर्ण भोगकी देनेहारीहै, और जो मध्याह्नके अनन्तरभी तिथि हो तौ रात्रीयुक्त उस तिथिका पूर्वभाग प्रतिकर्ममें लेना चाहिये ॥ २६ ॥ और परदिनयुक्त तिथि का दिवस देवताओंके कार्यमें श्रेष्ठहै "पूर्वाह्णे वै देवानामपराह्णे पितॄणामिति श्रुतेः" देवकार्य पूर्वतिथिमें और मध्याह्नव्यापिनी तिथिमें पितृकार्य करै यह भाव है, यदि उदयातिथि मध्याह्न व्यापिनी हो तो उसे ग्रहण करना

वारपूजांशिवादीनामात्मशुद्धिप्रदांविदुः ॥ तिथिनक्षत्रयोगानामाधारंसार्वकामिकम् ॥ २४ ॥ तथावृद्धिक्षयाभावात्पूर्णंब्रह्मात्मकंविदुः ॥
उदयादुदयंवारोब्रह्मप्रभृतिकर्मणाम् ॥ २५ ॥ तिथ्यादौदेवपूजाहिपूर्णभोगप्रदानृणाम् ॥ पूर्वभागःपितॄणांतुनिशियुक्तःप्रशस्यते ॥ २६ ॥
परभागस्तुदेवानांदिवायुक्तःप्रशस्यते ॥ उदयव्यापिनीग्राह्यामध्याह्नेयदिसातिथिः ॥२७॥ देवकार्येतथाग्राह्यास्थितिऋक्षादिकाःशुभाः ॥
सम्यग्विचार्यवारादीन्कुर्यात्पूजाजपादिकम् ॥२८॥ पूजार्यतेह्यनेनेतिवेदेष्वर्थस्ययोजना ॥ पूर्भोगफलसिद्धिश्चजायतेतेनकर्मणा ॥२९॥
मनोभावांस्तथाज्ञानमिष्टभोगार्थयोजनात् ॥ पूजाशब्दार्थएवंहिविश्रुतोलोकवेदयोः ॥ ३० ॥ नित्यनैमित्तिकंकालात्सद्यःकाम्येस्वनुष्ठिते ॥ नित्यंमासंचपक्षंचवर्षंचैवयथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

चाहिये ॥ २७ ॥ वह शुभनक्षत्रयुक्त तिथि देवकार्यमें ग्रहण करनी चाहिये, वारको सम्यक् विचारकर पूजा और जप करै, जो उदयतिथि मध्याह्नव्यापिनी न हो वह खण्ड तिथि है व्रतके निमित्त ठीक नहीं ॥ २८ ॥ इसप्रकार पूजा करनेसे वेदार्थका पूर्णफल होता है, और इसप्रकारके कर्मसे भोगसिद्धि और पूर्ण फल मिलता है ॥ २९ ॥ मनसे इच्छित अर्थ और ज्ञान जिसके द्वारा प्राप्त होकर इष्टभोग मिलते हैं, उसकोही पूजा कहते हैं यह पूजाका अर्थ लोक और वेदविदित है ॥ ३० ॥ नित्यनैमित्तिक पूजादिकर्म कालान्तरमें फल देते हैं, और काम्यफल शीघ्रफल देते हैं, नित्य मास पक्ष वर्षमें

क्रमानुसार ॥ ३१ ॥ पूजासे उसी उसी कर्मसे फलकी प्राप्ति और इच्छानुसार पापक्षय होता है कृष्णपक्षकी चौथको महागणपतिकी पूजा करनी
चाहिये ॥ ३२ ॥ यह पूजा पक्षके पापक्षय करनेहारी, और पक्षके भोग और फल देनेहारी है, चैत्रमें चतुर्थीके दिन पूजा करै तौ एकमासका फल
मिलताहै ॥ ३३ ॥ और भादौं मासमें सिंहके सूर्यमें पूजा करै तौ वर्ष दिनका पाप दूर होकर भोगकी प्राप्ति होती है, श्रावणमें आदित्यवार और
हस्तनक्षत्रयुक्त सप्तमीके दिन ॥ ३४ ॥ और माघ शुक्ला सप्तमीके दिन आदित्यका यजन करै, ज्येष्ठ और भादौंमें बुधवार श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशीमें
॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान्का यजन संपूर्ण सम्पत्तिका करनेहारा है श्रावणमें विष्णु भगवान्का पूजन इष्टफल और आरोग्यका देनेहारा है ॥ ३६ ॥

तत्तत्कर्मफलप्राप्तिस्तादृक्पापक्षयःक्रमात् ॥ महागणपतेःपूजाचतुर्थ्यांकृष्णपक्षके ॥ ३२ ॥ पक्षपापक्षयकरीपक्षभोगफलप्रदा ॥
चैत्रेचतुर्थ्यांपूजाचकृतामासफलप्रदा ॥३३॥ वर्षभोगप्रदाज्ञेयाकृतावैसिंहभाद्रके ॥ श्रावण्यादित्यवारेचसप्तम्यांहस्तभेदिने ॥ ३४ ॥
माघशुक्लेचसप्तम्यामादित्ययजनंचरेत् ॥ ज्येष्ठभाद्रकसौम्येचद्वादश्यांश्रवर्णक्षके ॥ ३५ ॥ द्वादश्यांविष्णुयजनमिष्टंसंपत्करंविदुः ॥
श्रावणेविष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदंभवेत् ॥३६॥ गवादीन्द्वादशानर्थान्सांगान्दत्वातुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोतिद्वादश्यांविष्णुतर्पणात्॥
॥ ३७ ॥ द्वादश्यांद्वादशान्विप्रान्विष्णोर्द्वादशनामतः ॥ षोडशैरुपचारैश्चयजेत्तत्प्रीतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ एवंचसर्वदेवानांतत्तद्द्वा
दशनामकैः ॥ द्वादशब्रह्मयजनंतत्तत्प्रीतिकरंभवेत् ॥ ३९ ॥ कर्कटेसोमवारेचनवम्यांमृगशीर्षके ॥ अंबांयजेद्भूतिकामःसर्वभोगफलप्रदाम्
॥ ४० ॥ आश्वयुक्छुक्लनवमीसर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ आदिवारेचतुर्दश्यांकृष्णपक्षेविशेषतः ॥ ४१ ॥

गौआदि बारह अर्थोंको सांग देनेका जो फल द्वादशीके दिन विष्णुका पूजन करनेसे प्राप्त होजाता है ॥ ३७ ॥ जो द्वादशीके दिन बारह ब्राह्मणोंको विष्णुके
बारह नामोंसे षोडश उपचारोंसे पूजन कर भोजन कराता है वह भगवान्की शक्तिको प्राप्त होता है ॥३८॥ इसीप्रकार द्वादश नामसे सम्पूर्ण देवतोंके निमित्त
बारह ब्राह्मण भोजन करानेसे उन २ देवताओंकी प्रसन्नता होती है ॥ ३९ ॥ कर्कके सूर्यमें मृगशिरनक्षत्रयुक्त नौमीके दिन ऐश्वर्यकी इच्छासे पार्वतीका
पूजन करनेसे सब भोग और फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४० ॥ आश्विनशुक्ला नवमीमें देवीकी पूजा सम्पूर्ण इष्टफलकी देनेहारी है, अथवा आदित्यवारको

कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें ॥ ४१ ॥ आर्द्रानक्षत्रमें तथा महाआर्द्रामें शिवपूजा विशेषफलदायक है। और माघकृष्णचतुर्दशीको शिवपूजा सब मनोरथोंके फलकी देनेहारी है ॥ ४२ ॥ आयु करनेहारी मृत्यु हरनेहारी मनुष्योंको सब सिद्धि देनेहारी है ज्येष्ठमासमें भी सूर्यसंयुक्त आर्द्रामें चतुर्दशीके दिन शिवपूजा करे ॥ ४३ ॥ अथवा मार्गशीर्षमें आर्द्रा नक्षत्रमें षोडशउपचारसे उन उनमूर्तियोंमें जो शिवका पूजन करते हैं उनके चरणोंको देखै ॥ ४४ ॥ शिवजीका यजन भोग और मोक्षका देनेहारा है, और वारादिके देवताओंका कार्त्तिकमें यजन करनेसे बडा फल होता है ॥ ४५ ॥ कार्तिकमासमें विद्वानोंको

आर्द्रायांचमहार्द्रायांशिवपूजाविशिष्यते ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यांसर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ४२ ॥ आयुष्करीमृत्युहरासर्वसिद्धिकरीनृणाम् ॥
ज्येष्ठमासेमहार्द्रायांचतुर्दशीदिनेपिच ॥ ४३ ॥ मार्गशीर्षार्द्रकायांवाषोडशैरुपचारकैः ॥ तत्तन्मूर्तिंशिवंपूज्यतस्यवैपाददर्शनम् ॥४४॥
शिवस्ययजनंज्ञेयंभोगमोक्षप्रदंनृणाम् ॥ वारादिदेवयजनंकार्तिकेहिविशिष्यते ॥ ४५ ॥ कार्तिकेमासिसंप्रातेसर्वान्देवान्यजेद्बुधः ॥
दानेनतपसाहोमैर्जपेननियमेनच ॥ ४६ ॥ षोडशैरुपचारैश्चप्रतिमाविप्रमंत्रकैः ॥ ब्राह्मणानांभोजनेननिष्कामार्तिककोभवेत् ॥ ४७ ॥
कार्तिकेदेवयजनंसर्वभोगप्रदंभवेत् ॥ व्याधीनांहरणंचैवभवेद्भूतग्रहक्षयः ॥ ४८ ॥ कार्तिकादित्यवारेषुनृणामादित्यपूजनात् ॥
तैलकार्पासदानात्तुभवेत्कुष्ठादिसंक्षयः ॥ ४९ ॥ हरीतकीमरीचीनांवस्त्रक्षीरादिदानतः ॥ ब्रह्मप्रतिष्ठयाचैवक्षयरोगक्षयोभवेत् ॥ ५० ॥

उचित है कि सब देवताओंका यजन करैं, दान तप जप होम ॥ ४६ ॥ षोडश उपचार आर प्रतिमाके मंत्रोंसे पूजन कर निष्काम कामक्रोधादिरहित ब्राह्मणोंको भोजन करावै तौ सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ कार्तिकमें देवपूजन सम्पूर्ण भोगोंका देनेहारा है, व्याधियोंका नाश और भूत ग्रहका क्षय पूजनसे होता है ॥ ४८ ॥ कार्त्तिकमासमें आदित्यवारके दिन जो मनुष्य आदित्यका पूजन करते हैं तिल और कपास आदिका दान करते हैं, उनका कुष्ठरोगभी नाश होजाता है ॥ ४९ ॥ हरीतकी (हरडै) मिरच वस्त्र और दूधके दानसे और ब्रह्मप्रतिष्ठासे क्षयरोगकाभी नाश होजाता है ॥ ५० ॥

दीप और सरसोंके दानसे अपस्मार रोग क्षय होजाता है जो कृत्तिका नक्षत्र युक्त सोमवारके दिन शिवका पूजन करते हैं ॥ ५१ ॥ उनके महादारिद्यभी नष्ट होतेहैं और सब सम्पत्ति मिलती है गृह क्षेत्रादिका दान और गृहकी सामग्री आदि दान करनेसे सब सम्पत्ति होती है ॥ ५२ ॥ कृत्तिका नक्षत्र युक्त मंगलवारके दिन स्कंदका पूजन करनेसे और दीप घंटादिके दानसे मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि होती है, और वाक्‌सिद्धि शीघ्र होती है ॥ ५३ ॥ कृत्तिकानक्षत्रयुक्त बुधवारके दिन विष्णुका पूजन करनेसे और दही चावलका दान करनेसे संतानकी प्राप्ति होती है ॥ ५४ ॥ जो कृत्तिकायुक्त गुरुवारके दिन धनसे ब्रह्माजीका पूजन करते हैं और शहद सुवर्ण घृतका दान करते हैं, उनको भोगासिद्धि होतीहै ॥ ५५ ॥ कृत्तिका शुक्रवारके दिन गणेशजीका यजन करने और गन्ध पुष्प अन्नदानसे मनुष्योंको भोगकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥ सुवर्ण और चाँदीके दान करनेसे वंध्याकेभी पुत्र होताहै, कृत्तिकानक्षत्रयुक्त शनिवारके दिन दिक्पालोंका वंदन पूजन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ दिग्गज नाग और मर्यादा पालकोंका पूजन करना चाहिये; त्र्यम्बकरुद्र और पापहारी विष्णुका ॥ ५८ ॥ ज्ञान देनेहारे ब्रह्माका धन्वंतारि अश्विनीकुमारका पूजन रोग और अपमृत्युका हरनेहारा है; और व्याधिको तत्काल शांत

दीपसर्षपदानाच्चअपस्मारक्षयोभवेत् ॥ कृत्तिकासोमवारेषुशिवस्ययजनंनृणाम् ॥ ५१ ॥ महादारिद्र्यशमनंसर्वसंपत्करंभवेत् ॥ गृहक्षेत्रादिदानाच्चगृहोपकरणादिना ॥ ५२ ॥ कृत्तिकाभौमवारेषुस्कंदस्ययजनान्नृणाम् ॥ दीपघंटादिदानाद्वैवाक्सिद्धिरचिराद्भवेत् ॥ ५३ ॥ कृत्तिकासौम्यवारेषुविष्णोर्वैयजनंनृणाम् ॥ दध्योदनस्यदानंचसत्संतानकरंभवेत् ॥ ५४ ॥ कृत्तिकागुरुवारेषुब्रह्मणोयजनाद्धनैः ॥ मधुस्वर्णाज्यदानेनभोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ५५ ॥ कृत्तिकाशुक्रवारेषुगजकोमेडयाजनात् ॥ गंधपुष्पान्नदानेनभोग्यवृद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ॥ ५६ ॥ वंध्यासुपुत्रंलभतेस्वर्णरौप्यादिदानतः ॥ कृत्तिकाशनिवारेषुदिक्पालानांचवंदनम् ॥ ५७ ॥ दिग्गजानांचनागानांसेतुपानांचपूजनम् ॥ त्र्यंबकस्यचरुद्रस्यविष्णोःपापहरस्यच ॥ ५८ ॥ ज्ञानदब्रह्मणश्चैवधन्वंतर्यश्विनोस्तथा ॥ रोगापमृत्युहरणंतत्कालव्याधिशांतिदम् ॥ ५९ ॥

करताहै ॥ ५९ ॥ सुवर्ण लोहा तेल उर्दके दानसे सोंठ मिरच पीपल गंध और जलदानसे ॥ ६० ॥ दुग्धादि धान्यादिको सोलह पलात्मक एक प्रस्थ धनके सूर्यमें दान करने और उषःकालमें पूजन करनेसे ॥ ६१ ॥ शिवादि किसी देवताका पूजन करे तौ क्रमसे सिद्धि प्राप्त होजाती है शालि अन्न और नैवेद्य यह हविके श्रेष्ठ पदार्थ हैं ॥ ६२ ॥ और अनेक प्रकारका नैवेद्य धनके सूर्यमें देनेसे महाफल होता है मार्गशीर्षमें अन्नदान करनेसे सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ६३ ॥ पापक्षय इष्टसिद्धि आरोग्य धर्म्म सम्यक् प्रकार वेदार्थका ज्ञान सत् अनुष्ठान ॥ ६४ ॥ दोनों लोकमें अनेक प्रकारके योग्य और

लवणायसतैलानांमाषादीनांचदानतः ॥ त्रिकटुफलगंधानांजलादीनांचदानतः ॥ ६० ॥ द्रवाणांकठिनानांचप्रस्थेनपलमानतः ॥
स्वर्गप्राप्तिर्धनुर्मासेह्युषःकालेचपूजनम् ॥ ६१ ॥ शिवादीनांचसर्वेषांक्रमाद्वैसर्वसिद्धये ॥ शाल्यन्नस्यहविष्यस्यनैवेद्यंशस्तमु
च्यते ॥ ६२ ॥ विविधान्नस्यनैवेद्यंधनुर्मासेविशिष्यते ॥ मार्गशीर्षेऽन्नदस्यैवसर्वमिष्टफलंभवेत् ॥ ६३ ॥ पापक्षयंचेष्टसिद्धिंचारोग्यंध
र्ममेवच ॥ सम्यग्वेदपरिज्ञानंसदनुष्ठानमेवच ॥ ६४ ॥ इहामुत्रमहाभोगानंतेयोगंचशाश्वतम् ॥ वेदांतज्ञानसिद्धिंचमार्गशीर्षान्नदोलभेत्
॥ ६५ ॥ मार्गशीर्षेह्युषःकालेदिनत्रयमथापिवा ॥ यजेद्देवान्भोगकामोनाधनुर्मासिकोभवेत् ॥ ६६ ॥ यावत्संगवकालंतुधनुर्मासोवि
धीयते ॥ धनुर्मासेनिराहारोमासमात्रंजितेंद्रियः ॥ ६७ ॥ आमध्याह्नंजपेद्विप्रोगायत्रींवेदमातरम् ॥ पंचाक्षरादिकान्मंत्रान्पश्चादासुप्तिकं
जपेत् ॥ ६८ ॥ ज्ञानंलब्ध्वाचदेहांतेविप्रोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ अन्येषांनरनारीणांत्रिःस्नानेनजपेनच ॥ ६९ ॥

अन्तमें शाश्वत योग वेदान्त ज्ञानकी सिद्धि मार्गशीर्षमें अन्नदानसे होती है ॥ ६५ ॥ मार्गशीर्ष महीनेमें तीन दिन उषःकालमेंही भोगकी इच्छावाला देवताओंका पूजन करे परन्तु धनकी संक्रान्ति न बीतने दे ॥ ६६ ॥ जबतक दूसरी संक्रान्ति न आवै तबतक धन मास रहता है, धनकी संक्रान्ति महीनेमें निराहार जितेन्द्रिय होकर ॥ ६७ ॥ एक मासपर्यंत मध्याह्नतक गायत्रीजप करता रहै ब्राह्मणको यही गायत्री जपनी चाहिये, यह वेदोंकी माता है, पीछे निद्रा आनेतक पंचाक्षरादि मंत्रोंका जप करता रहै ॥ ६८ ॥ ऐसा करनेसे ब्राह्मण ज्ञानको प्राप्त हो देहान्तमें मुक्त होजायगा, और नर

तथा नारियोंको तीनकाल स्नान और जप करनेसे ॥ ६९ ॥ सदा पंचाक्षर मंत्रकाही जप करना चाहिये, इससे विशुद्धज्ञान प्राप्त होजाता है, अपने इष्टमंत्रोंका जप करे तौ महापातक क्षय होजातेहैं ॥ ७० ॥ धनके सूर्य होनेमें विशेष कर उसमासमें महानैवेद्य पूजन करे, धान्य तंडुल एक[१]भार, मिरच काली एक प्रस्थ ॥ ७१ ॥ और आगे कहे हुए सब गुणनमें बारह गुणा करने चाहियें, शहद और घी पावभर मूँग द्रोण (१६ सेर) भर और बारह व्यंजन ॥ ७२ ॥ घृतमें उतारे पुए मोदक शाली आदि बारह अन्न दही और दूध बारह सेर ॥ ७३ ॥ तथा नारियल फलोंकी गणना करके

सदापंचाक्षरस्यैवविशुद्धंज्ञानमाप्यते ॥ इष्टमंत्रान्सदाजप्त्वामहापापक्षयंलभेत् ॥ ७० ॥ धनुर्मासेविशेषेणमहानैवेद्यमाचरेत् ॥ शालितंडुलभारेणमरीचप्रस्थकेनच ॥ ७१ ॥ गणनाद्द्वादशंसर्वंमध्वाज्यकुडवेनहि ॥ द्रोणयुक्तेनमुद्गेनद्वादशव्यंजनेनच ॥ ७२ ॥ घृतपक्वैरपूपैश्चमोदकैःशालिकादिभिः ॥ द्वादशैश्चदधिक्षीरैर्द्वादशप्रस्थकेनच ॥ ७३ ॥ नारिकेलफलादीनांतथागणनयासह ॥ द्वादशक्रमुकैर्युक्तंषट्त्रिंशत्पत्रकैर्युतम् ॥ ७४ ॥ कर्पूरखुरचूर्णेनपंचसौगंधिकैर्युतम् ॥ तांबूलयुक्तंतुयदामहानैवेद्यलक्षणम् ॥ ७५ ॥ महानैवेद्यमेतद्वैदेवतार्पणपूर्वकम् ॥ वर्णानुक्रमपूर्वेणतद्भक्तेभ्यःप्रदापयेत् ॥ ७६ ॥ एवंचौदननैवेद्याद्भूमौराष्ट्रपतिर्भवेत् ॥ महानैवेद्यदानेननरःस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ महानैवेद्यदानेनसहस्रेणद्विजर्षभाः ॥ सत्यलोकेचतल्लोकेपूर्णमायुरवाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ सहस्राणांचत्रिंशत्यामहानैवेद्यदानतः ॥ तदूर्ध्वलोकमाप्यैवनपुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥ ७९ ॥

बारह क्रमुक (सुपारी) से युक्त ३६ छत्तीस ताम्बूलके पत्र ॥ ७४ ॥ कपूर और खुर[२]नामवृक्षका चूर्ण और इलायची कंकोल लवंगपुष्प जायफल यह पाँच सुगन्धि और ताम्बूल यह महा नैवेद्यका लक्षण है ॥ ७५ ॥ यह महानैवेद्य देवताको अर्पण करके वर्णके अनुसार क्रमसे उन देवताओंके भक्तोंको इसका प्रसाद बाँटना चाहिये ॥ ७६ ॥ इसप्रकार भात और नैवेद्यके दानसे पृथ्वीके राज्यकी प्राप्ति होतीहै, महानैवेद्यके दानसे मनुष्य स्वर्गलोकको जाताहै ॥ ७७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सहस्र महानैवेद्यके दानसे सत्यलोकमें निवास और पूर्ण आयुकी प्राप्ति होतीहै ॥ ७८ ॥ जो तीससहस्र महानैवेद्यदान करतेहैं वह

---

(१) २ तोलेका एक कर्ष चार कर्षका १ पल १०० पलकी १ तुला २० तुलाका १ भार। २ ककून्दनि व नखगंधद्रव्य।

ऊर्ध्वलोकको प्राप्त होकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेते ॥ ७९ ॥ छत्तीस सहस्र महानैवेद्यको जन्मनैवेद्य कहतेहैं, उतने नैवेद्यका दान महापूर्ण
॥ ८० ॥ महापूर्ण शिवका नैवेद्य जन्मनैवेद्य कहाताहै, जन्मनैवेद्यके दानसे पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ८१ ॥ कार्त्तिकमासके पवित्र दिनमें ज
विधान करै उस दिन संक्रांति व्यतीपात जन्मनक्षत्र अथवा पूर्णमासी हो ॥ ८२ ॥ अथवा वर्ष जन्मदिनमें जन्मनैवेद्य करै अथवा दूसरे महीन
जन्मनक्षत्र और पूर्णयोगदिनमें ॥ ८३ ॥ अथवा पुण्य योगोंके संयोगमें अथवा शनिके योग होनेमें उतनेही सहस्र नैवेद्य दे जन्मनैवेद्यके दानसे ज

सहस्राणांचषट्त्रिंशज्जन्मनैवेद्यमीरितम् ॥ तावन्नैवेद्यदानंतुमहापूर्णंतदुच्यते ॥ ८० ॥ महापूर्णस्यनैवेद्यंजन्मनैवेद्यमिष्यते ॥ ज
द्यदानेनपुनर्जन्मनविद्यते ॥८१॥ ऊर्जेमासिदिनेपुण्येजन्मनैवेद्यमाचरेत् ॥ संक्रांतिपातजन्मर्क्षपौर्णमास्यादिसंयुते ॥ ८२ ॥
न्मदिनेकुर्याज्जन्मनैवेद्यमुत्तमम् ॥ मासांतरेषुजन्मर्क्षपूर्णयोगदिनेपिच ॥ ८३ ॥ मेलनेचशनेर्वापितावत्साहस्रमाचरेत् ॥
द्यदानेनजन्मार्पणफलंलभेत् ॥ ८४ ॥ जन्मार्पणाच्छिवःप्रीतःस्वसायुज्यंददातिहि ॥ इदंतज्जन्मनैवेद्यंशिवस्यैवप्रदापये
योनिलिंगस्वरूपेणशिवोजन्मनिरूपकः ॥ तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थंजन्मपूजाशिवस्यहि ॥ ८६ ॥ बिंदुनादात्मकंस
गमम् ॥ बिंदुःशक्तिःशिवोनादःशिवशक्त्यात्मकंजगत् ॥ ८७ ॥ नादाधारमिदंबिंदुर्बिंद्वाधारमिदंजगत् ॥ ज
दुनादौव्यवस्थितौ ॥ ८८ ॥ बिंदुनादयुतंसर्वंसकलीकरणंभवेत् ॥ सकलीकरणाज्जन्मजगत्प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ८९ ॥

फलकी प्राप्ति होती है ॥ ८४ ॥ जन्मार्पणसे प्रसन्न हो शिवजी अपनी सायुज्यमुक्ति प्रदान करतेहैं यह जन्मनैवेद्य शिवको
योनि और लिंगके स्वरूपसे शिवही जन्मके देनेहारे हैं इसकारण जन्मनिवृत्तिके निमित्त जन्म नैवेद्यसे शिवकीही पूजा क
जंगमात्मक संसार बिंदु और नादरूप है, बिंदु शक्ति, शिव नाद रूपहै इस प्रकार यह जगत् शिव और शक्तिआत्मक है ॥
बिंदुके आधार जगत् और जगत्के आधार बिंदु और नाद स्थित है ॥ ८८ ॥ और बिन्दु नादसे युक्त होकर यह

निःसन्देह इस जगत्की उत्पत्ति होतीहै ॥ ८९ ॥ यह बिन्दुनादात्मक लिंगही जगत्का कारणहै, बिन्दु देवी शिव
॥ ९० ॥ इसी कारण जन्म निवृत्तिके अर्थ शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये, बिन्दुरूप देवी माता और लिंगरूप शि
पिताके पूजन करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति होतीहै, परमानन्दकी प्राप्तिके निमित्त शिवलिंगका पूजन करना चाहिये ॥ ९२
और शिव जगत्के पिताहैं, जो इन माता पिताका पूजन करतेहैं, उनके ऊपर पार्वतीपरमेश्वर बडी कृपा करतेहैं ॥ ९३ ॥
पूजन करनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करतेहैं इस कारण ऐश्वर्य और ज्ञानके निमित्त उनका पूजन करै ॥ ९४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो !

बिंदुनादात्मकंलिंगंजगत्कारणमुच्यते ॥ बिंदुर्देवीशिवोनादःशिवलिंगंतुकथ्यते ॥ ९० ॥ तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थंशिवा
मातादेवीबिंदुरूपानादरूपःशिवःपिता ॥ ९१ ॥ पूजिताभ्यांपितृभ्यांतुपरमानंदएवहि ॥ परमानंदलाभार्थंशिवलिंगंप्रपू
सादेवीजगतांमातासशिवोजगतःपिता ॥ पित्रोःशुश्रूषकेनित्यंकृपाधिक्यंहिवर्धते ॥ ९३ ॥ कृपयांतर्गतैश्वर्यंपूजकस्य
तस्मादंतर्गतानंदलाभार्थंमुनिपुंगवाः ॥ ९४ ॥ पितृमातृस्वरूपेणशिवलिंगंप्रपूजयेत् ॥ भर्गःपुरुषरूपोहिभर्गाप्रकृतिरुच्यते
अव्यक्तांतरधिष्ठानंगर्भःपुरुषउच्यते ॥ सुव्यक्तांतरधिष्ठानंगर्भःप्रकृतिरुच्यते ॥ ९६ ॥ पुरुषस्त्वादिगर्भोहिगर्भवाञ्जनको
पुरुषात्प्रकृतौयुक्तंप्रथमंजन्मकथ्यते ॥ ९७ ॥ प्रकृतेर्व्यक्ततांयातंद्वितीयंजन्मकथ्यते ॥ जन्मजंतुर्मृत्युजन्मपुरुषात्प्रतिपद्यते ॥
अन्यतोभाव्यतेऽवश्यंमाययाजन्मकथ्यते ॥ जीर्यतेजन्मकालाद्यत्तस्माज्जीवइतिस्मृतः ॥ ९९ ॥

लिंगकी नित्य पूजा करै, भर्ग पुरुषरूप और भर्गा प्रकृति कहलातीहै ॥ ९५ ॥ उनके अन्तर रहनेवाले सूक्ष्म उपादन गर्भको पुरुष कहतेहैं औ
महत्तत्त्वादिके अन्तर रहने वाले गर्भको प्रकृति कहतेहैं ॥ ९६ ॥ आदिगर्भ पुरुषही प्रकृतिरूप गर्भ सम्बन्धसे गर्भवाला होताहै, इसीसे व
करनेवालाहै पुरुषसे प्रकृतिमें प्रथम जन्म होताहै ॥ ९७ ॥ प्रकृतिसे प्रगट रूप होनेसे दूसरा जन्म होताहै यह जीव पुरुषसेही मृत्यु और जन्
होताहै ॥ ९८ ॥ प्रगट कियाजाताहै उत्पन्न किया जाताहै और मायासे जन्म प्राप्त किया जाताहै, जो जन्म और कालादिसे जीर्ण हो

कहतेहैं ॥ ९९ ॥ जन्म होतेही पाशोंसे बंध जाताहै इससे जीव कहलाताहै, जन्म और पाशसे निवृत्त होनेके निमित्त शिवलिंगकी पूजा करै ।
(भं) वृद्धिको (गच्छति) प्राप्त होताहै जिसमें इस कारण उसे प्रकृति कहतेहैं, प्रकृत शब्द मात्रादिकोंसे इन्द्रिय भोग कारणसे ॥ १०१ ॥
(भग) प्रकृतिका है, इसीसे भोग कहाताहै, यही भग शब्दका शब्दार्थहै मुख्य भगरूप प्रकृतीसे है, और भगवान् शिव कहलातेहैं ॥
भोगदाता भगवानहीहै, और भोग देनेवाला दूसरा कोई नहीं है, भगवान् भगके स्वामीहैं भर्ग कहलातेहैं ॥ १०३ ॥ भगसहित लिंग और लिंगस

जन्यतेतन्यतेपाशैर्जीवशब्दार्थएवहि ॥ जन्मपाशनिवृत्त्यर्थंजन्मलिंगंप्रपूजयेत् ॥ १०० ॥ भंवृद्धिंगच्छतीत्यर्थाद्भगःप्रकृतिरुच्य
प्राकृतैःशब्दमात्राद्यैःप्राकृतेंद्रियभोजनात् ॥ १०१ ॥ भगस्येदंभोगमितिशब्दार्थोमुख्यतःश्रुतः ॥ मुख्योभगस्तुप्रकृतिर्भगवा
च्यते ॥ १०२ ॥ भगवान्भोगदाताहिनाऽन्योभोगप्रदायकः ॥ भगस्वामीचभगवान्भर्गइत्युच्यतेबुधैः ॥ १०३ ॥ भगेनस
भर्गंलिंगेनसंयुतम् ॥ इहामुत्रचभोगार्थंनित्यभोगार्थमेवच ॥ १०४ ॥ भगवंतंमहादेवंशिवलिंगंप्रपूजयेत् ॥ लोकप्रसविता
प्रसवाद्भवेत् ॥ १०५ ॥ लिंगेप्रसूतिकर्तारंलिंगिनंपुरुषोयजेत् ॥ लिंगार्थगमकंचिह्नंलिंगमित्यभिधीयते ॥ १०६ ॥ लिं
शिवंगमयतीत्यदः ॥ शिवशक्त्योश्चचिह्नस्यमेलनंलिंगमुच्यते ॥ १०७ ॥ स्वचिह्नपूजनात्प्रीतश्चिह्नकार्यंनवीयते ॥
न्मादिजन्माद्यंविनिवर्तते ॥ १०८ ॥

यही दोनों भोगके निमित्त और नित्य भोगके निमित्तहैं ॥ १०४ ॥ लिंगरूप भगवान् शिवका पूजन करै, उसलोकम उत्पन्न कर
लोक उत्पन्न करनेसे सूर्यका नामभी भग है ॥ १०५ ॥ लिंगरूपमें जगत्के उत्पन्न करनेवाले शिवजीका यजन करै लिंग
कहलाता है ॥ १०६ ॥ और लिंगअर्थमें पुरुष शिवमें जानेवाला है शिवशक्तिके चिह्नके मेलनका नाम लिंगहै ॥
पूजन करनेसे प्रसन्न होजाते हैं इससे चिह्नकार्य नहीं प्राप्त होता. किन्तु चिह्नकार्य जन्मादि है इस चिह्नके पूजन करनेसे ज

प्राकृत्य पुरुषोंकोभी बाह्य और आभ्यन्तर लिंगको षोडश उपचारसे पूजन करना चाहिये ॥ १०९ ॥
पूजा करनेसे फिर जन्म नहीं होता, आदित्यवारके दिन महालिंगका ॐकारपूर्वक पूजन करै ॥ ११० ॥ आदित्य
स्नान करावै गोबर गोमूत्र क्षीर दही घृत यह पाँच वस्तु पंचगव्य कहलाती हैं ॥ १११ ॥ क्षीरादिसे पृथक् स्नान करावै श
अन्ननैवेद्य बनाकर ओंकारपूर्वक चढावे ॥ ११२ ॥ प्रणवकी ध्वनि लिंग है, बिंदुलिंग यंत्र है नादलिंग स्वयंभू है उसमें मव

प्राक्तैः पुरुषैश्चापिबाह्याभ्यंतरसंभवैः ॥ षोडशैरुपचारैश्चशिवलिंगंप्रपूजयेत् ॥ १०९ ॥ एवमादित्यवारेहिपूजाजन्म
वारेमहालिंगंप्रणवेनैवपूजयेत् ॥ ११० ॥ आदिवारेपंचगव्यैरभिषेकोविशिष्यते ॥ गोमयंगोजलंक्षीरंदध्याज्यंपंचगव्
क्षीराद्यंचपृथक्चैवमधुनाचेक्षुसारकैः ॥ गव्यक्षीरान्ननैवेद्यंप्रणवेनैवकारयेत् ॥ ११२ ॥ प्रणवंध्वनिलिंगंतुनादलिंगंस्वयंभु
तुयंत्रंस्यान्मकारंतुप्रतिष्ठितम् ॥ ११३ ॥ उकारंचरलिंगंस्यादकारंगुरुविग्रहम् ॥ षड्लिंगपूजयानित्यंजीवन्मुक्तोनसंशयः
शिवस्यभक्त्यापूजाहिजन्ममुक्तिकरीनृणाम् ॥ रुद्राक्षधारणात्पादमर्धंवैभूतिधारणात् ॥ ११५ ॥ त्रिपादंमंत्रजाप्याच्चपूज
मान् ॥ शिवलिंगंचभक्तंचपूज्यमोक्षंलभेन्नरः ॥ ११६ ॥ यइमंपठतेऽध्यायंशृणुयाद्वासमाहितः ॥ तस्यैवशिवभक्तिश्चव
द्विजाः ॥ ११७ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उकार चरलिंग है, अकार गुरु शरीर है, इसप्रकार षट् लिंगकी पूजा करनेसे निःसन्देह यह प्राणी जीवन्मुक्त होजाताहै ॥ ११४ ॥ भक्तिपूर्व
पूजा करनेसे मनुष्य जन्ममरणसे मुक्त होजाताहै, रुद्राक्ष धारण करनेसे चौथाई, विभूति धारण करनेसे आधी ॥ ११५ ॥ मंत्र जपनेसे पौन,
पूर्ण भक्तिमान् होताहै, शिवलिंग और उनके भक्तको पूजकर मनुष्य मुक्त होजाताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ११६ ॥ जो इस अध्यायको पढ़ते व
होकर सुनतेहैं हे ब्राह्मणो! उसकी शिवमें दृढ़भक्ति होतीहै ॥ ११७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः

ऋषि बोले हे मुने ! प्रणवका माहात्म्य और षड्लिंगका माहात्म्य और शिवभक्तकी पूजाका विधान क्रमसे आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले आपमहात्मा तपस्वियोंने अच्छा प्रश्न कियाहै इसका उत्तर एक महादेवजी जानते हैं दूसरा नहीं ॥ २ ॥ तौभी मैं शिवजीकी कृपासे कहताहूं शिव हमारी और तुम्हारी सब प्रकारसे रक्षा करैं ॥ ३ ॥ प्रणवका अर्थ कहते हैं (प्र) प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संसारसागरको (नवम्) नौकारूपहै इसीकारण पंडित इसको प्रणव कहतेहैं ॥ ४ ॥ अथवा (प्र) प्रपंच (न) नहीं है (व) तुममें अर्थात् आत्मामें कुछ प्रपंच नहीं है, यह प्रणवका अर्थहै, अथवा प्रकृष्टतासे जपने

ऋषयऊचुः ॥ प्रणवस्यचमाहात्म्यंषड्लिंगस्यमहामुने ॥ शिवभक्तस्यपूजांचक्रमशोब्रूहिनःप्रभो ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ तपोधनैर्भवद्भिश्चसम्यक्प्रश्नमिदंकृतम् ॥ अस्योत्तरंमहादेवोजानातिस्मनचापर ॥ २ ॥ अथापिवक्ष्येतमहंशिवस्यकृपयैवहि ॥ शिवोऽस्माकंचयुष्माकंरक्षांगृह्णातुभूरिशः ॥ ३ ॥ प्रोहिप्रकृतिजातस्यसंसारस्यमहोदधेः ॥ नवंनावांतरमितिप्रणवंवैविदुर्बुधाः ॥ ४ ॥ प्रःप्रपंचोननास्तिवोयुष्माकंप्रणवंविदुः ॥ प्रकर्षेणनयेद्यस्मान्मोक्षंवाप्रणवंविदुः ॥ ५ ॥ स्वजापकानांयोगिनांस्वमंत्रपूजकस्यच ॥ सर्वकर्मक्षयंकृत्वादिव्यज्ञानंतुनूतनम् ॥ ६ ॥ तमेवमायारहितंनूतनंपरिचक्षते ॥ प्रकर्षेणमहात्मानंनवंशुद्धस्वरूपकम् ॥ ७ ॥ नूतनंवैकरोतीतिप्रणवंतंविदुर्बुधाः ॥ प्रणवंद्विविधंप्रोक्तंसूक्ष्मस्थूलविभेदतः ॥ ८ ॥ सूक्ष्ममेकाक्षरंविद्यात्स्थूलंपंचाक्षरंविदुः ॥ सूक्ष्ममव्यक्तपंचार्णंसुव्यक्तार्णंतथेतरत् ॥ ९ ॥ जीवन्मुक्तस्यसूक्ष्मंहिसर्वसारंहितस्यहि ॥ मंत्रेणार्थानुसंधानंस्वदेहविलयावधि ॥ १० ॥

वालेको मोक्ष देता है, इसकारण इसे प्रणव कहते हैं ॥ ५ ॥ अपने जप करनेवाले योगियोंको और अपने मंत्र पूजन करनेवालोंको सब कर्म क्षय करके दिव्यज्ञान देनेसे प्रणव कहलाता है ॥ ६ ॥ मायारहित होनेसे प्रणवको नूतन कहते हैं, प्रकर्षतासे महात्मा और नया शुद्ध स्वरूप करदेता है ॥ ७ ॥ और नूतन कर देनेसेही पंडित इसको प्रणव कहते हैं स्थूल सूक्ष्म भेदसे प्रणव दोप्रकारका है ॥ ८ ॥ एकाक्षर सूक्ष्म और पंचाक्षर स्थूल है सूक्ष्मरूप अव्यक्त अर्थात् प्रगट पंचाक्षरवाला है और स्थूल प्रगट पंचाक्षर युक्त है ॥ ९ ॥ जीवन्मुक्तके निमित्त सबका सार सूक्ष्मरूप है यही उसका हित करनेवाला है

८

मंत्रके अनुसंधान और अपने देहान्तमें देहमेंही लयकरना सूक्ष्म उपासना है ॥ १० ॥ इसप्रकार उपासना करनेसे देहान्तमें शिवरूप होजाताहै इसमें सन्देह नहीं और केवल मंत्रका जपनेवाला योगको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ छत्तीसकरोड मंत्र जपनेवाला योगी होजाताहै इसमें सन्देह नहीं, सूक्ष्मभी ह्रस्व दीर्घके भेदसे दो प्रकार है ॥ १२ ॥ अकार उकार मकार बिन्दुनाद साहित (अर्धचन्द्र बिन्दुसाहित वर्ण और मात्रारहित) और शब्दकालकलासे युक्त ॥ १३ ॥ (अउम्) इन तीन अक्षर मात्र दीर्घ प्रणव कहलाता है यह योगियोंके हृदयमें निवास करताहै और आ उ म् इन तीन अक्षरमात्रका ह्रस्वप्रणव कहाताहै ॥ १४ ॥ शिव और शक्तिकी एकता होनेसे मकार त्रितात्मक अर्थात् तीनों तत्त्व स्वरूप है, सब पाप दूर होनेकी इच्छा करनेवालोंको ह्रस्व प्रणवका जप करना चाहिये ॥ १५ ॥ पृथ्वी वायु तेज जल आकाश और शब्दादि और दशादिशाके सम्बन्ध होनेसे दश पुरुष प्रवृत्तिमार्गमें प्रवृत्तहैं ऐसा कहाजाताहै शब्द स्पर्शादि विषययुक्त प्राणी संसारमें पड़ते हैं इससे भिन्न निवृत्त होतेहैं ॥ १६ ॥ जिनकी संसारमें प्रवृत्ति है उनको ह्रस्व ओंकारका जप करनाचाहिये निवृत्तिकी इच्छावालोंको दीर्घका जप करना चाहिये जो यथेच्छशब्दकलायुक्त प्रथम वर्णन करचुकेहैं ॥ १७ ॥ वेदकी आदिमें प्रथम ॐकारकाही प्रयोग करना चाहिये दोनों संध्यावंदनमेंभी ॐकारका प्रयोग करना, नौकरोड जप करनेसे पुरुष शुद्ध होजाताहै ॥ १८ ॥ फिर नवकरोड़का जप करनेसे पृथ्वीका जय

स्वदेहेगलितेपूर्णंशिवंप्राप्नोतिनिश्चयः ॥ केवलंमंत्रजापीतुयोगंप्राप्नोतिनिश्चयः ॥ ११ ॥ षट्त्रिंशत्कोटिजापीतुनिश्चयंयोगमाप्नुयात् ॥
सूक्ष्मंचद्विविधंज्ञेयंह्रस्वदीर्घविभेदतः ॥ १२ ॥ अकारश्चउकारश्चमकारश्चततःपरम् ॥ बिंदुनादयुतंतद्धिशब्दकालकलान्वितम् ॥ १३ ॥
दीर्घप्रणवमेवंहियोगिनामेवहृद्गतम् ॥ मकारंतंत्रितत्त्वंहिह्रस्वप्रणवउच्यते ॥ १४ ॥ शिवःशक्तिस्तयोरैक्यंमकारंतुत्रिकात्मकम् ॥ ह्रस्व
मेवंहिजाप्यंस्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम् ॥ १५ ॥ भूवायुकनकार्णाद्याःशब्दाद्याश्चतथादश ॥ आशान्वयेदशपुनःप्रवृत्ताइतिकथ्यते ॥ १६ ॥
ह्रस्वमेवप्रवृत्तानांनिवृत्तानांतुदीर्घकम् ॥ व्याहृत्यादौचमंत्रादौकामंशब्दकलायुतम् ॥ १७ ॥ वेदादौचप्रयोज्यंस्याद्वंदनेसंध्ययोरपि ॥
नवकोटिजपाञ्जप्त्वासंशुद्धःपुरुषोभवेत् ॥ १८ ॥ पुनश्चनवकोट्यातुपृथिवीजयमाप्नुयात् ॥ पुनश्चनवकोट्यातुह्यपांजयमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

होताहै फिर नौकरोड़ जपसे जलका ॥ १९ ॥ पीछे नौकरोड़से तेजका फिर नौकरोड़से वायुका फिर नौकरोड जपसे आकाशका जय होताहै ॥ २० ॥
फिर क्रमसे नौ नौ करोड़ जपसे गन्धादिका फिर नौकरोड जपसे अहंकारका जय होताहै ॥ २१ ॥ नित्य सहस्र मंत्र जपनेसे पुरुष नित्य शुद्ध रहताहै,
इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो ! फिर आत्मज्ञानकी सिद्धिके निमित्त जप होताहै ॥ २२ ॥ इसप्रकार एकसौ आठ करोड़ जप करनेसे ॐकारसे प्रबुद्धहो
शुद्ध योगको प्रात होताहै ॥ २३ ॥ शुद्ध योगसे जीवन्मुक्त होजाताहै, इसमें संदेह नहीं प्रणवरूप शिवको सदा जपै सदा ध्यान करै ॥ २४ ॥ समाधिमें

पुनश्चनवकोट्यातुतेजसांजयमाप्नुयात् ॥ पुनश्चनवकोट्यातुवायोर्जयमवाप्नुयात् ॥ आकाशजयमाप्नोतिनवकोटिजपेनवै ॥ २० ॥
गंधादीनांक्रमेणैवनवकोटिजपेनवै ॥ अहंकारस्यचपुनर्नवकोटिजपेनवै ॥ २१ ॥ सहस्रमंत्रजप्तेननित्यशुद्धोभवेत्पुमान् ॥ ततःपरंस्व
सिद्ध्यर्थंजपोभवतिहिद्विजाः ॥ २२ ॥ एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेनवैपुनः ॥ प्रणवेनप्रबुद्धस्तुशुद्धयोगमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥ शुद्धयोगेनसं
युक्तोजीवन्मुक्तोनसंशयः ॥ सदाजपन्सदाध्यायञ्छिवंप्रणवरूपिणम् ॥ २४ ॥ समाधिस्थोमहायोगीशिवएवनसंशयः ॥ ऋषिच्छंदोदे
वतादिन्यस्यदेहेपुनर्जपेत् ॥ २५ ॥ प्रणवंमातृकायुक्तंदेहेन्यस्यऋषिर्भवेत् ॥ दशमातृषडध्वादिसर्वंन्यासफलंलभेत् ॥ २६ ॥ प्रवृत्तानां
चमिश्राणांस्थूलप्रणवमिष्यते ॥ क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाःशिवयोगिनः ॥ २७ ॥ धनादिविभवैश्चैवकराद्यंगैर्नमादिभिः ॥ क्रियया
पूजयायुक्तःक्रियायोगीतिकथ्यते ॥ २८ ॥ पूजायुक्तश्चमितभुग्बाह्येंद्रियजयान्वितः ॥ परद्रोहादिरहितस्तपोयोगीतिकथ्यते ॥ २९ ॥

स्थित हो महायोगी शिवरूपही होजाताहै इसमें सन्देह नहीं, ऋषि छन्द और देवतादिका देहमें प्रथम न्यास करके जप करना प्रारम्भ करै ॥ २५ ॥
अइउ मात्रायुक्त प्रणवको देहमें न्यास करके ऋषि होताहै अइउ आदि दशमात्रा और छः अध्वमार्ग आदि करनेसे सम्पूर्ण न्यासका फल होताहै ॥ २६ ॥
संसारमें प्रवृत्त अथवा प्रवृत्ति निवृत्ति दोनोंको स्थूल प्रणवका जप करना चाहिये क्रिया तप और जपसे शिवके योगी तीन प्रकारके हैं ॥ २७ ॥ धनादि
ऐश्वर्य और करादि अंगोंसे सेवा नमस्कारादि क्रियापूर्वक पूजा करनेवाले क्रियायोगी कहातेहैं ॥ २८ ॥ पूजायुक्त भोजन करनेवाले बाह्येन्द्रिय जीतनेवाले

परद्रोहआदिसे रहित तपयोगी कहलाते हैं ॥ २९ ॥ और इन सब बातोंसे युक्त सदाशुद्ध सब कामनारहित सदा जपमें तत्पर शान्त चित्त जपयोगी कहलाता हैं ॥ ३० ॥ षोडश उपचारसे शिवयोगियोंकी जो पूजा करै वह मनुष्य क्रमसे सालोक्यादि मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! अब जप योग्य कहते हैं आप सुनो; तप करनेवालेको जपका विधानहै, जिस जपसे इसके पाप दूर हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ 'नमःशिवाय' इस प्रकार यह चतुर्थ्यन्तपदयुक्त पंचतत्त्वात्मक मंत्र जपै स्थूल प्रणवरूपही शिवका पंचाक्षररूप है ॥ ३३ ॥ पंचाक्षरके जपसेही मनुष्यको सब प्रकारकी सिद्धि

एतैर्युक्तः सदाशुद्धः सर्वकामादिवर्जितः ॥ सदाजपपरः शांतोजपयोगीतितंविदुः ॥ ३० ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजयाशिवयोगिनाम् ॥
सालोक्यादिक्रमेणैवशुद्धोमुक्तिंलभेन्नरः ॥३१॥ जपयोगमथोवक्ष्येगदतःशृणुताद्विजाः ॥ तपःकर्तुर्जपःप्रोक्तोयज्जपन्परिमार्जते ॥ ३२ ॥
शिवनामनमःपूर्वंचतुर्थ्यांपंचतत्त्वकम् ॥ स्थूलप्रणवरूपंहिशिवपंचाक्षरंद्विजाः ॥ ३३ ॥ पंचाक्षरजपेनैवसर्वसिद्धिंलभेन्नरः ॥ प्रणवेना
दिसंयुक्तंसदापंचाक्षरंजपेत् ॥ ३४ ॥ गुरूपदेशंसंगम्यसुखवासेसुभूतले ॥ पूर्वपक्षेसमारभ्यकृष्णभूतावधिद्विजाः ॥ ३५ ॥ माघंभाद्रं
विशिष्टंतुसर्वकालोत्तमोत्तमम् ॥ एकवारंमिताशीतुवाग्यतोनियतेंद्रियः ॥ ३६ ॥ स्वस्यराजपितॄणांचशुश्रूषणंचनित्यशः ॥ सहस्रजपमा
त्रेणभवेच्छुद्धोऽन्यथाऋणी ॥ ३७ ॥ पंचाक्षरंपंचलक्षंजपेच्छिवमनुस्मरन् ॥ पद्मासनस्थंशिवदंगंगाचंद्रकलान्वितम् ॥ ३८ ॥ वामोरु
स्थितशक्त्याचविराजंतंमहागणैः ॥ मृगटंकधरंदेवंवरदाभयपाणिकम् ॥ ३९ ॥

प्राप्त होती हैं ओंकार आदिमें लगाकर सदा पंचाक्षरमंत्र जप करै ॥ ३४ ॥ गुरुके आदेशको प्राप्तहो सुन्दर वस्त्र पहर पृथ्वीमें बैठकर शुक्लपक्षकी चतुर्दशीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीपर्यंत जप करै ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणो ! माघ और भादौंका महीना सबसे श्रेष्ठ है एक वार भोजन करे वाणीको रोकै जितेन्द्रिय रहै ॥ ३६ ॥ अपने पालन करनेवाले और पितरोंकी नित्य सुश्रूषा करनी चाहिये सहस्र जप करनेसे शुद्धि होती है अन्यथा ऋणी रहता है ॥ ३७ ॥ पांचलाख पंचाक्षर मंत्र शिवका स्मरण करता हुआ जपै पद्मासनपर स्थित कल्याणके देनेवाले गंगा और चन्द्रकलासे युक्त ॥ ३८ ॥ वाम ऊरुके ऊपर

स्थित शक्ति और गणोंसे विराजित मृगटंक धारण किये देव वरदायक तथा अभयदान देनेवाले हाथ युक्त ॥ ३९ ॥ सदा अनुग्रह करने वाले सदाशिवको स्मरण करता हुआ पहले मनसे शिवका पूजन कर हृदय अथवा सूर्यमंडलमें पूजन कर ॥ ४० ॥ पूर्वको मुखकर शुद्ध कर्मकी इच्छासे पंचाक्षरी विद्याका जप करै, प्रातःकाल कृष्णचतुर्दशीके दिन नित्य कर्म समाप्त करके ॥ ४१ ॥ मनोरमपवित्र देशमें नियमसे शुद्धमन करके पंचाक्षर मंत्रका बारह सहस्रजप करै ॥ ४२ ॥ और पत्नीसहित शैवब्राह्मणोंका वरण करै और अपने श्रेष्ठगुरु शिव पार्वती स्वरूपका वरण करै ॥ ४३ ॥ ईशान, पुरुष, अघोर, वाम,

सदानुग्रहकर्त्तारंसदाशिवमनुस्मरन् ॥ संपूज्यमनसापूर्वंहृदिवासूर्यमंडले ॥ ४० ॥ जपेत्पंचाक्षरींविद्यांप्राङ्मुखःशुद्धकर्मकृत् ॥ प्रातः कृष्णचतुर्दश्यांनित्यकर्मसमाप्यच ॥ ४१ ॥ मनोरमेशुचौदेशेनियतःशुद्धमानसः ॥ पंचाक्षरस्यमंत्रस्यसहस्रंद्वादशंजपेत् ॥ ४२ ॥ वरयेच्चसपत्नीकाञ्छैवान्वैब्राह्मणोत्तमान् ॥ एकंगुरुवरंशिष्टंवरयेत्सांबमूर्तिकम् ॥ ४३ ॥ ईशानंचाथपुरुषमघोरंवाममेवच ॥ सद्योजातंचपंचैवशिवभक्तान्द्विजोत्तमान् ॥ ४४ ॥ पूजाद्रव्याणिसंपाद्यशिवपूजांसमारभेत् ॥ शिवपूजांचविधिवत्कृत्वाहोमंसमारभेत् ॥ ४५ ॥ मुखांतंचस्वसूत्रेणकृत्वाहोमंसमारभेत् ॥ दशैकंवाशतैकंवासहस्रैकमथापिवा ॥ ४६ ॥ कापिलेनघृतेनैवजुहुयात्स्वयमेवहि ॥ कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतंबुधः ॥ ४७ ॥ होमान्तेदक्षिणादेयागुरोर्गोमिथुनंतथा ॥ ईशानादिस्वरूपांस्तान्गुरुंसांबंविभाव्यच ॥ ४८ ॥ तेषांपत्सिक्ततोयेनस्वशिरःस्नानमाचरेत् ॥ षट्त्रिंशत्कोटितीर्थेषुसद्यःस्नानफलंलभेत् ॥ ४९ ॥

सद्योजातरूप पांच शिवभक्त ब्राह्मणोंकी पूजाकर ॥ ४४ ॥ और उन्हैं सत्कार कर शिवजीकी पूजाका प्रारंभ करै विधिपूर्वक शिवजीकी पूजाकर हवन करै ॥ ४५ ॥ अग्निमुखपर्यंत अपने सूत्रोंके अनुसार हवन करै दश, सौ अथवा सहस्र ॥ ४६ ॥ आहुति कपिलागौके घृतकी स्वयं अग्निमें प्रदान करे अथवा शिवभक्तोंसे १०८ आहुति दिवावै ॥ ४७ ॥ होमके अन्तमें पूर्वोक्त गुरुको दक्षिणादे; अथवा एक गौ एक बैल दे और वह पूर्वोक्त ईशानादि स्वरूपके ब्राह्मण है उनको तथा सांबगुरुको स्नानादिसे सत्कार करै ॥ ४८ ॥ उनके अभिषेकसे बचे जलसे आप स्नान करै, तौ छत्तीस करोड़ तीर्थोंमें

स्नान करनेका फल मिलताहै ॥ ४९ ॥ उन्हींको भक्तिपूर्वक दशांग अन्न दे परमेश्वरकी शक्तिकी बुद्धिसे गुरुपत्नीका पूजन करै, ईशानादि ब्राह्मणोंको शिवभावनासे पूजन करै ॥ ५० ॥ शक्तिअनुसार परमान्नसे उनका पूजनकर रुद्राक्ष वस्त्र वटक पुए आदिसे युक्त ॥ ५१ ॥ बलिदान करके बहुत भोजनका भोग लगावै फिर देवेशकी प्रार्थना करके जपको समाप्त करै ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य मंत्रसिद्ध होताहै, फिर पांच लाख जप करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षय होजातेहैं ॥५३॥ अतल लोकसे प्रारम्भ कर सत्यलोकपर्यन्त पांचलाखके जपसे क्रमसे उस उस लोकके ऐश्वर्य्यको प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥

दशांगमन्नंतेषां वैदद्याद्वैभक्तिपूर्वकम् ॥ पराबुद्धयागुरोःपत्नीमीशानादिक्रमेणतु ॥ ५० ॥ परमान्नेनसंपूज्ययथाविभवविस्तरम् ॥ रुद्राक्ष
वस्त्रपूर्वंचवटकापूपकैर्युतम् ॥ ५१ ॥ बलिदानंततःकृत्वाभूरिभोजनमाचरेत् ॥ ततःसंप्रार्थ्यदेवेशंजपंतावत्समापयेत् ॥ ५२ ॥ पुरश्च
रणमेवंतुकृत्वामंत्रीभवेन्नरः ॥ पुनश्चपंचलक्षेणसर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ५३ ॥ अतलादिसमारभ्यसत्यलोकावधिक्रमात् ॥ पंचलक्षजपात्त
त्तल्लोकैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ मध्येमृतश्चेद्भोगांतेभूमौतज्जापकोभवेत् ॥ पुनश्चपंचलक्षेणब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ पुनश्चपं
चलक्षेणसारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ आहत्यशतलक्षेणसाक्षाद्ब्रह्मसमोभवेत् ॥ ५६ ॥ कार्यब्रह्मणएवंहिसायुज्यंप्रतिपद्यवै ॥ यथेष्टंभोगमा
प्नोतितद्ब्रह्मप्रलयावधि ॥ ५७ ॥ पुनःकल्पांतरेवृत्तेब्रह्मपुत्रःसजायते ॥ पुनश्चतपसादीप्तःक्रमान्मुक्तोभविष्यति ॥ ५८ ॥ पृथ्व्यादि
कार्यभूतेभ्योलोकावैनिर्मिताःक्रमात् ॥ पातालादिचसत्यांतंब्रह्मलोकाश्चतुर्दश ॥ ५९ ॥

और जो मध्यमेंही मृतक होजाय तौ पुण्यभोगके अन्तमें पृथ्वीमें जन्म होजाताह, और जापक होताहै फिर पांच लाखका जप करनेसे ब्रह्मकी समीपता प्राप्त होतीहै ॥ ५५ ॥ फिर पांचलाखके जपसे सारूप्यके ऐश्वर्यकी प्राप्ति होतीहै एक करोड मंत्र जपनेसे साक्षात् ब्रह्मतुल्य होजाता है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार हिरण्यगर्भके सायुज्यको प्राप्त होके ब्रह्माकी प्रलयतक यथेष्ट भोगको प्राप्त करताहै ॥ ५७ ॥ पुनः कल्पान्तर होनेमें ब्रह्माका पुत्र होता है, फिर महातपसे दीप्तिमान् हो क्रमसे मुक्त हो जायगा ॥ ५८ ॥ पृथ्वी आदि कार्य पंचभूतोंसे यह लोक क्रमसे निर्मित हुए हैं पातालसे लेकर सत्यलोकतक सब

चौदह लोक हैं ॥ ५९ ॥ सत्यसे आगे वैकुंठलोकतक चौदह लोक विष्णुके हैं, क्षमालोक जहां सुन्दर वैकुंठमें कार्य विष्णु है ॥ ६० ॥ वहां यह
महाभोगी लक्ष्मीसहित रक्षा करके स्थित है, इससे ऊपर शुचिलोक पर्यन्त अट्ठाईस लोक हैं ॥ ६१ ॥ शुचिलोकमें कैलासके ऊपर प्राणियोंके हरनेहारे
रुद्र स्थित हैं उससे आगे अहिंसा लोकतक ५६ छप्पन लोक स्थित हैं ॥ ६२ ॥ अहिंसा लोकमें स्थित हो ज्ञानकैलासपुरमें कार्येश्वर सबका तिरोभाव
करके स्थित हैं ॥ ६३ ॥ अहिंसालोकसे ऊपर कालचक्र इसके उपरान्त कालातीत हैं, वहां कालचक्रेश्वर नामसे शिव स्थित रहते हैं ॥ ६४ ॥ और

सत्यादूर्ध्वंक्षमांतंवैविष्णुलोकाश्चतुर्दश ॥ क्षमालोकेकार्यविष्णुर्वैकुंठेवरपत्तने ॥ ६० ॥ कार्यलक्ष्म्यामहाभोगिरक्षांकृत्वाऽधितिष्ठति ॥
तदूर्ध्वगाश्चशुच्यंतालोकाष्टाविंशतिःस्थिताः ॥ ६१ ॥ शुचौलोकेतुकैलासेरुद्रोवैभूतहृत्स्थितः ॥ षडुत्तराश्चपंचाशदहिंसांतास्तदूर्ध्वगाः
॥ ६२ ॥ अहिंसालोकमास्थायज्ञानकैलासकेपुरे ॥ कार्येश्वरस्तिरोभावंसर्वान्कृत्वाधितिष्ठति ॥ ६३ ॥ तदंतेकालचक्रंहिकालाती
तस्ततःपरम् ॥ शिवेनाधिष्ठितस्तत्रकालश्चक्रेश्वराह्वयः ॥ ६४ ॥ माहिषंधर्ममास्थायसर्वान्कालेनयुंजति ॥ असत्यश्चाशुचिश्चैवहिंसाचै
वाथनिर्घृणा ॥ ६५ ॥ असत्यादिचतुष्पादःसर्वांशःकामरूपधृक् ॥ नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसंगोवेदबाह्यध्वनिःसदा ॥ ६६ ॥ क्रोधसंगः
कृष्णवर्णोमहामहिषवेषवान् ॥ तावान्महेश्वरःप्रोक्तस्तिरोधास्तावदेवहि ॥ ६७ ॥ तदर्वाक्कर्मभोगोहितदूर्ध्वंज्ञानभोगकम् ॥ तदर्वाक्कर्म
मायाहिज्ञानमायातदूर्ध्वकम् ॥ ६८ ॥ मालक्ष्मीःकर्मभोगोवैयातिमायेतिकथ्यते ॥ मालक्ष्मीर्ज्ञानभोगोवैयातिमायेतिकथ्यते ॥ ६९ ॥

धर्ममें स्थित हो सबको कालसे संयुक्त करते हैं असत्य अशुचि हिंसा निर्घृण ॥ ६५ ॥ यह असत्यादि चतुष्पाद कामरूपधारी शिवका अंश है
नास्तिक्यमयी लक्ष्मी दुःसंग और वेदबाह्य शब्द ॥ ६६ ॥ क्रोधका संग कृष्णवर्ण यह महामहिषके रूपवाले हैं इनके अधिपति महेश्वर हैं इन्हींकी
कृपासे इनका तिरोधान होता है ॥ ६७ ॥ इसके आगे कर्मभोग, उससे आगे ज्ञानभोग, उसके आगे कर्ममाया, उससे आगे ज्ञानमाया ॥ ६८ ॥
मायाशब्दका अर्थ कहते हैं (मा) लक्षी ज्ञान भोगको (या) प्राप्त होती है अर्थात् जो कर्म्मभोग अनुसार लक्ष्मीको प्राप्त कराके मोहित करती है, इसीसे

उसे माया कहते हैं अथवा (मा) लक्ष्मी (या) ज्ञान भोग करनेके निमित्त प्राणियोंको प्राप्त होती है इस कारण उसे माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ उसके आगे नित्य भोग, उसके पहले नश्वर, उससे पहले तिरोधान, उसके आगे तिरोधान नहीं है ॥ ७० ॥ उसके पहले पाशबन्ध, उसके आगे फिर बन्धन नहीं है ॥ उसके पहले २ ही काम्यकर्मके अनुसार प्राणी लौटतेहैं ॥ ७१ ॥ उसके आगे निष्काम कर्मका भोग है, उसके पहले बिन्दुपूजा करनेवालोंके लोक हैं ॥ ७२ ॥ उसके ऊपर निष्काम लिंगपूजाकरनेवाले प्राप्त होतेहैं, उसके पहले २ शिवसे अन्य देवताओंके पूजन करनेवाले रहतेहैं ॥ ७३ ॥

तदूर्ध्वंनित्यभोगोहितदर्वाङ्नश्वरंविदुः ॥ तदर्वाक्चतिरोधानंतदूर्ध्वंनतिरोधनम् ॥ ७० ॥ तदर्वाक्पाशबंधोहितदूर्ध्वंनहिबंधनम् ॥
तदर्वाक्परिवर्ततेकाम्यकर्मानुसारिणः ॥ ७१ ॥ निष्कामकर्मभोगस्तुतदूर्ध्वंपरिकीर्तितः ॥ तदर्वाक्परिवर्ततेबिंदुपूजापरायणाः ॥ ७२ ॥
तदूर्ध्वंहिव्रजंत्येवनिष्कामालिंगपूजकाः ॥ तदर्वाक्परिवर्ततेशिवान्यसुरपूजकाः ॥ ७३ ॥ शिवैकनिरतायेचतदूर्ध्वंसंप्रयांतिते ॥ तदर्वा
ग्जीवकोटिःस्यात्तदूर्ध्वंपरकोटिका ॥ ७४ ॥ सांसारिकास्तदर्वाक्चमुक्ताःखलुतदूर्ध्वगाः ॥ तदर्वाक्परिवर्ततेप्राकृतद्रव्यपूजकाः ॥ ७५ ॥
तदूर्ध्वंहिव्रजंत्येतेपौरुषद्रव्यपूजकाः ॥ तदर्वाक्छक्तिलिंगंतुशिवलिंगंतदूर्ध्वकम् ॥ ७६ ॥ तदर्वागावृतंलिंगंतदूर्ध्वंहिनिरावृति ॥ तदर्वाक्क
ल्पितंलिंगंतदूर्ध्वं वैनकल्पितम् ॥ ७७ ॥ तदर्वाग्बाह्यलिंगंस्यादंतरंगंतदूर्ध्वकम् ॥ तदर्वाक्छक्तिलोकाहिशतंवैद्वादशाधिकम् ॥ ७८ ॥
तदर्वाग्बिंदुरूपंहिनादरूपंतदुत्तरम् ॥ तदर्वाक्कर्मलोकस्तुतदूर्ध्वंज्ञानलोककः ॥ ७९ ॥

जो केवल एक शिवपूजामेंही निरत हैं, वे उसके ऊपर लोकमें जातेहैं, उससे पहले जीवकोटी और उसके आगे ईश्वरकोटी है ॥ ७४ ॥ उसके पहले सांसारिक और उसके पीछे मुक्त स्थित हैं उसके पहले प्राकृत द्रव्योंके पूजक ॥ ७५ ॥ उसके आगे पौरुषःद्रव्यके पूजक जातेहैं उसके पहले शक्तिलिंग उसके पीछे शिवलिंग ॥ ७६ ॥ उसके पहले सगुणलिंग उसके आगे निर्गुणलिंग उसके आगे कल्पितलिंग उसके आगे अकल्पित लिंग ॥ ७७ ॥ उसके आगे आधिभौतिक बाह्यलिंग उसके आगे आध्यात्मिक अन्तरंगलिंग उसके आगे ११२ एकसौ बारह शक्ति लोक ॥ ७८ ॥ उसके आगे बिन्दु

रूप उसके आगे नादरूप उसके आगे कर्मलोक उसके आगे ज्ञानलोक ॥ ७९ ॥ उसके आगे नमस्कारलोक मद और अहंकारका नाशक है उसके आगे जन उसके आगे तिरोधान जहांसे फिर आगमन नहीं होता है ॥ ८० ॥ ज्ञानशब्दका अर्थ यही है कि तिरोधान (अहंकार) का निवारण करना, उसके आगे आधिभौतिक पूजावाले रहतेहैं ॥ ८१ ॥ आध्यात्मिक पूजावाले इससे ऊपर जाते हैं, वे आत्मलिंग महालोकमें तबतक सुख भोगतेहैं ॥ ८२ ॥ प्रकृती महत्तत्व अहंकार पंचतन्मात्रा इन आठ बन्धनको वहां स्थित होनेवाले जानतेहैं, इस प्रकारसे यह सम्पूर्ण लौकिक और वैदिक जानना ॥ ८३ ॥ जो सत्यधर्म्मयुक्त शिवजीकी पूजा करतेहैं वह अधर्मरूपी महिषपर आरूढ हुए काल चक्रसे तर जातेहैं ॥ ८४ ॥ इसके

नमस्कारस्तदूर्ध्वंहिमदाहंकारनाशनः ॥ जनिजंवैतिरोधानंनविसिद्ध्यातततेइति ॥ ८० ॥ ज्ञानशब्दार्थएवंहितिरोधाननिवारणात् ॥
तदर्वाक्परिवर्त्तंतेह्याधिभौतिकपूजकाः ॥ ८१ ॥ आध्यात्मिकार्चकाएवतदूर्ध्वंसंप्रयांतिवै ॥ तावद्वैवेदिभागंतन्महालोकात्मलिंगके ॥
॥ ८२ ॥ प्रकृत्याद्यष्टबंधोपिवेद्यंतेसंप्रतिष्ठितः ॥ एवमेतादृशंज्ञेयंसर्वंलौकिकवैदिकम् ॥ ८३ ॥ अधर्ममहिषारूढंकालचक्रंतरंतिते ॥
सत्यादिधर्मयुक्तायेशिवपूजापराश्चये ॥ ८४ ॥ तदूर्ध्वंवृषभोधर्मोब्रह्मचर्यस्वरूपधृक् ॥ सत्यादिपादयुक्तस्तुशिवलोकाग्रतःस्थितः ॥८५॥
क्षमाशृंगःशमश्रोत्रोवेदध्वनिविभूषितः ॥ आस्तिक्यचक्षुर्निश्वासगुरुबुद्धिमनावृषः ॥ ८६ ॥ क्रियादिवृषभाज्ञेयाःकारणादिषुसर्वदा ॥
तंक्रियावृषभंधर्मंकालातीतोधितिष्ठति ॥ ८७ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानांस्वस्वायुर्दिनमुच्यते ॥ तदूर्ध्वंनदिनंरात्रिर्नजन्ममरणादिकम् ॥
॥ ८८ ॥ पुनःकारणसत्यांताःकारणब्रह्मणस्तथा ॥ गंधादिभ्यस्तुभूतेभ्यस्तदूर्ध्वंनिर्मिताःसदा ॥ ८९ ॥

ऊपर वृषभरूपी धर्म ब्रह्मचर्यके रूप धारण किये स्थित है वह सत्यादि चार पाद युक्त शिवलोकके आगे स्थित है ॥ ८५ ॥ उस वृषका वर्णन करतेहैं क्षमाशृंग शमश्रोत्र वेदरूपी ध्वनिसे विभूषित आस्तिक्य रूपी नेत्र वेदाक्षरमय निश्वास रूप उदार मन बुद्धिसे युक्त सबसे श्रेष्ठ वृष ॥ ८६ ॥ पूजन, क्रिया, तप, ज्ञान, ध्यान रूपादि धर्म कारण ब्रह्ममें स्थितहै उस क्रियारूप वृषभ धर्ममें कालातीत स्थित रहताहै यह वृष शिवलोकके अग्रभागमें स्थितहै ॥ ८७ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महेशकी आयु शिवजीका दिन कहलाताहै, उसके आगे न दिनहै न रात्रिहै न जन्म है न मरण है ॥ ८८ ॥ फिर कारण सत्यलोकतक और कारण

ब्रह्माका लोक गन्धादिभूतोंसे ऊपर रहताहै ॥ ८९ ॥ चौदह लोक सूक्ष्म गंधरूपसे स्थितहैं, फिर कारण विष्णुके चौदह लोक स्थितहैं ॥ ९० ॥ फिर कारण रुद्रके २८ अट्ठाईस लोक हैं, फिर उसके ऊपर कारणईशके ५६ लोक हैं ॥ ९१ ॥ उसके आगे शिवसंमत ब्रह्मचर्यलोक है, वहीं पंचावरण संयुक्त ज्ञान कैलास है ॥ ९२ ॥ उसमें पांचमण्डलसंयुक्त पंचब्रह्म कलासहित आदि शक्तिसे शोभित आदिलिंग विराजताहै ॥ ९३ ॥ यही परमात्मा शिवका शिवालय है; परशक्तिके सहित यहांही परमेश्वर स्थित रहतेहैं ॥ ९४ ॥ सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव अनुग्रह इन पांच कार्योंमें यह सच्चिदानन्दस्वरूप

सूक्ष्मगंधस्वरूपाहिस्थितालोकाश्चतुर्दश ॥ पुनःकारणविष्णोर्वैस्थितालोकाश्चतुर्दश ॥ ९० ॥ पुनःकारणरुद्रस्यलोकाष्टाविंशकामताः ॥
पुनश्चकारणेशस्यषट्पंचाशत्तदूर्ध्वगाः ॥ ९१ ॥ ततःपरंब्रह्मचर्यलोकाख्यंशिवसंमतम् ॥ तत्रैवज्ञानकैलासेपंचावरणसंयुते ॥ ९२ ॥
पंचमंडलसंयुक्तंपंचब्रह्मकलान्वितम् ॥ आदिशक्तिसमायुक्तमादिलिंगंतुतत्रवै ॥ ९३ ॥ शिवालयमिदंप्रोक्तंशिवस्यपरमात्मनः ॥ परश
त्त्यासमायुक्तस्तत्रैवपरमेश्वरः ॥ ९४ ॥ सृष्टिःस्थितिश्चसंहारस्तिरोभावोप्यनुग्रहः ॥ पंचकृत्यप्रवीणोऽसौसच्चिदानंदविग्रहः ॥ ९५ ॥
ध्यानधर्मःसदायस्यसदानुग्रहतत्परः ॥ समाध्यासनमासीनःस्वात्मारामोविराजते ॥९६॥ तस्यसंदर्शनंसाध्यंकर्मध्यानादिभिःक्रमात् ॥
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिर्भवेत् ॥ ९७ ॥ क्रियादिशिवकर्मभ्यःशिवज्ञानंप्रसाधयेत् ॥ तद्दर्शनगताःसर्वेमुक्ताएवनसंशयः ॥
॥ ९८ ॥ मुक्तिरात्मस्वरूपेणस्वात्मारामत्वमेवहि ॥ क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषुसुस्थितः ॥ ९९ ॥ शिवस्यदर्शनंलब्ध्वास्वात्मारा
मत्वमेवहि ॥ यथारविःस्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति ॥ १०० ॥

सदा प्रवीण है ॥ ९५ ॥ जो दान धर्म आचरण करता है उसके ऊपर सदा अनुग्रह करते हैं, वह समाधि आसनमें स्थित स्वात्माराम (अत्यानन्द आनंदस्वरूप) विराजते हैं ॥ ९६ ॥ उनका दर्शन कर्म और ध्यानादि क्रमसे होताहै, नित्यकर्ममें यजन करनेसे शिवकर्ममें प्रीति होतीहै ॥ ९७ ॥ क्रियादि शिवकर्मोंसे शिवका ज्ञान सिद्धकरना चाहिये, उनके दर्शन करतेही सब मुक्त होजातेहैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ९८ ॥ आत्मस्वरूपका जो अतिशय आनंद है उसीको मुक्ति कहतेहैं वह क्रिया तप जप ज्ञान ध्यान धर्मोंमें स्थित है ॥ ९९ ॥ शिवके दर्शन करनेसे स्वात्मारामत्वकी प्राप्ति होती है जैसे सूर्य

अपनी किरणोंसे, अशुद्धि दूर करते हैं ॥ १०० ॥ इसी प्रकार कृपा करनेमें विचक्षण शिवजी अज्ञान दूर करते हैं, अज्ञान निवृत्त होनेसे शिवज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ १०१ ॥ शिवके ज्ञानसे अपने स्वरूप आत्मारामको प्राप्त होजाता है, आत्मारामकी प्राप्तिमें यह मनुष्य कृतकृत्य होजाता है ॥ १०२ ॥ सौ लाख जपनेसे ब्रह्मपद और फिर सौ लाख जपनेसे विष्णुके पदकी प्राप्ति होती है इसमें संदेह नहीं ॥ १०३ ॥ फिर सौ लाख जपनेसे रुद्रपद और फिर सौ लाख जपनेसे ऐश्वर्यपदकी प्राप्ति होती है ॥ १०४ ॥ फिर सावधान होकर इसी प्रकारका जप करनेसे शिवलोकादिसे प्रादुर्भूत हुए कालचक्रको ॥ १०५ ॥ फिर काल पञ्चचक्रको क्रमसे प्राप्त होता है सृष्टि, मोह, ब्रह्मचक्र भोग, मोह, वैष्णवचक्र ॥ १०६ ॥ कोप और मोह रौद्रचक्र और भ्रमण नाम ईश्वरचक्र ज्ञान और मोह शिवचक्र इसप्रकार यह पांच चक्र कहलाते हैं ऐसा पंडितजन कहते हैं ॥ १०७ ॥ फिर दशकरोड़ जपसे कारण ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, फिर दशकरोड़से तत्पद ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है ॥ १०८ ॥ इसप्रकार क्रमसे विष्णु आदिके पदको प्राप्त हो क्रमसे उन महात्माके ऐश्वर्य पदको प्राप्त होता है ॥ १०९ ॥ फिर जितेन्द्रिय हो एकसौ पांच करोड़ जप कर पांच आवरणसे बाहर शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ११० ॥

कृपाविचक्षणःशंभुरज्ञानमपनेष्यति ॥ अज्ञानविनिवृत्तौतुशिवज्ञानंप्रवर्तते ॥ १०१ ॥ शिवज्ञानात्स्वस्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति ॥
आत्मारामत्वसंसिद्धौकृतकृत्योभवेन्नरः ॥ १०२ ॥ पुनश्चशतलक्षेणब्रह्मणःपदमाप्नुयात् ॥ पुनश्चशतलक्षेणविष्णोःपदमवाप्नुयात् ॥
॥ १०३ ॥ पुनश्चशतलक्षेणरुद्रस्यपदमाप्नुयात् ॥ पुनश्चशतलक्षेणऐश्वर्यपदमाप्नुयात् ॥ १०४ ॥ पुनश्चैवंविधेनैवजपेनसुसमाहितः ॥
शिवलोकादिभूतंहिकालचक्रमवाप्नुयात् ॥ १०५ ॥ कालचक्रंपंचचक्रमेकैकेनक्रमोत्तरे ॥ सृष्टिमोहौब्रह्मचक्रेभोगमोहौतुवैष्णवम्॥१०६॥
कोपमोहौरौद्रचक्रंभ्रमणंचैश्वरंविदुः ॥ शिवचक्रंज्ञानमोहौपंचचक्रंविदुर्बुधाः ॥ १०७ ॥ पुनश्चदशकोटयाहिकारणब्रह्मणःपदम् ॥ पुनश्च
दशकोटयाहितत्पदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ १०८ ॥ एवंक्रमेणविष्ण्वादेःपदंलब्ध्वामहौजसः ॥ क्रमेणतत्पदैश्वर्यंलब्ध्वाचैवमहात्मनः ॥१०९॥
शतकोटिमनुंजप्त्वापंचोत्तरमतंद्रितः ॥ शिवलोकमवाप्नोतिपंचमावरणाद्बहिः ॥ ११० ॥

वहाँ राजसमंडप है, और उत्तम नंदीस्थान है, और तपरूप वृषभभी वहीं दीखताहै ॥ १११ ॥ वह पांच आवरणसे परे सद्योजातका स्थान है, चौथे आवरणमें वामदेवका स्थान है ॥ ११२ ॥ पीछे तीसरे आवरणसे परे अघोरका स्थान है साम्ब पुरुषका स्थान दूसरे आवरणमें है ॥ ११३ ॥ ईशान परका स्थान प्रथमावरण कहलाता है, पीछे ध्यान धर्मका स्थान पांचवां मंडप है ॥ ११४ ॥ बलिनाथ शिवका स्थान पूर्ण अमृतका देनेहारा है यह पांचवां मंडप है पीछे चौथा मण्डप चन्द्रशेखरकी मूर्त्तियुक्त है ॥ ११५ ॥ सोमस्कंदका स्थान तृतीय मण्डप और दूसरा नृत्यमण्डप आस्तिकपुरुषोंद्वारा कहागया है

राजसंमंडपंतत्रनंदीसंस्थानमुत्तमम् ॥ तपोरूपश्चवृषभस्तत्रैवपरिदृश्यते ॥ १११ ॥ सद्योजातस्यतत्स्थानंपंचमावरणंपरम् ॥ वामदेवस्यचस्थानंचतुर्थावरणंपुनः ॥ ११२ ॥ अघोरनिलयंपश्चात्तृतीयावरणंपरम् ॥ पुरुषस्यैवसांबस्यद्वितीयावरणंशुभम् ॥ ११३ ॥ ईशानस्यपरस्यैवप्रथमावरणंततः ॥ ध्यानधर्मस्यचस्थानंपंचमंमंडपंततः ॥ ११४ ॥ बलिनाथस्यसंस्थानंतत्रपूर्णामृतप्रदम् ॥ चतुर्थंमंडपंपश्चाच्चंद्रशेखरमूर्तिमत् ॥ ११५ ॥ सोमस्कंदस्यचस्थानंतृतीयंमंडपंपरम् ॥ द्वितीयंमंडपंनृत्यमंडपंप्राहुरास्तिकाः ॥ ११६ ॥ प्रथमंमूलमायायाःस्थानंतत्रैवशोभनम् ॥ ततःपरंगर्भगृहंलिंगस्थानंपरंशुभम् ॥ ११७ ॥ नंदीसंस्थानतःपश्चान्नविदुःशिववैभवम् ॥ नंदीश्वरोबहिस्तिष्ठन्पंचाक्षरमुपासते ॥ ११८ ॥ एवंगुरुक्रमाल्लब्धंनंदीशाच्चमयापुनः ॥ ततःपरंस्वसंवेद्यंशिवेनैवानुभावितम् ॥ ११९ ॥ शिवस्यकृपयासाक्षाच्छिवलोकस्यवैभवम् ॥ विज्ञातुंशक्यतेसर्वैर्नान्यथेत्याहुरास्तिकाः ॥ १२० ॥ एवंक्रमेणमुक्ताःस्युर्ब्राह्मणावैजितेंद्रियाः ॥ अन्येषांचक्रमंवक्ष्येगदतःशृणुतादरात् ॥ १२१ ॥

॥ ११६ ॥ प्रथम मंडपमें मूलमायाका सुन्दर स्थान है, उसके परे गर्भगृह पीछे लिंगका स्थान है ॥ ११७ ॥ उसके पीछे नंदिका स्थान है, नंदिस्थानके आगे शिववैभवको कोई नहीं जान्ता वहां नंदिकेश्वर बाहर स्थित होकर शिवपंचाक्षर मंत्रकी उपासना करते हैं ॥ ११८ ॥ इस प्रकार सनत्कुमार नंदीश्वरके सम्वादको गुरुक्रमसे मैंने जानाहै इसके आगे शिवसे अनुभावित परमस्थान परमानन्दरूप होकर स्वयं जाना जाता है ॥ ११९ ॥ ऐसा महात्माओंने कहाहै, कि शिवलोकका साक्षात् वैभव शिवकी कृपासेही जाना जाताहै और किसीप्रकारसे नहीं ॥ १२० ॥ इसप्रकार जितेन्द्रिय ब्राह्मण

क्रमसे मुक्त होजाते हैं, अब आप दूसरे क्षत्रियादिकोंका क्रम सुनिये ॥ १२१ ॥ ब्राह्मणोंको गुरुके उपदेशसे अन्तमें नमः लगाकर पांचलाख जप करना चाहिये इस प्रकार करनेसे मनुष्यकी आयु बढती है ॥ १२२ ॥ स्त्री इसको पांचलाख जपकर पुरुषरूपको प्राप्तहो क्रमसे मुक्त होजाती है, अर्थात् पांचलाख जपनेसे स्त्रीभाव दूर हो जाताहै ॥ १२३ ॥ पांचलाखसे क्षत्रियका क्षत्रीपन दूर होकर फिर पांचलाख जपनेसे वह ब्राह्मणकी तुल्य होजाताहै वा परजन्ममें ब्राह्मण होजाताहै ॥ १२४ ॥ फिर जप करनेसे मंत्रसिद्धि और क्रमसे यह पुरुष मुक्त होजाता है, पांचलाख जपसे वैश्य वैश्यत्वसे छूटता है ॥ १२५ ॥ फिर पांचलाख मंत्र जपनेसे वह मंत्र क्षत्रिय कहलाता है फिर पांचलाख जपनेसे क्षत्रियत्वसे छूटता है ॥ १२६ ॥ फिर

गुरूपदेशाज्जाप्यंवैब्राह्मणानांनमोंऽतकम् ॥ पंचाक्षरंपंचलक्षमायुष्यंप्रजपेद्विधिः ॥ १२२ ॥ स्त्रीत्वापनयनार्थंतुपंचलक्षंजपेत्पुनः ॥ मंत्रेणपुरुषेभूत्वाक्रमान्मुक्तोभवेद्बुधः ॥१२३॥ क्षत्रियःपंचलक्षेणक्षत्रत्वमपनेष्यति॥ पुनश्चपंचलक्षेणक्षत्रियोब्राह्मणोभवेत्॥१२४॥ मंत्रासिद्धिर्जपाच्चैवक्रमान्मुक्तोभवेन्नरः ॥ वैश्यस्तुपंचलक्षेणवैश्यत्वमपनेष्यति ॥ १२५ ॥ पुनश्चपंचलक्षेणमंत्रक्षत्रियउच्यते ॥ पुनश्चपंचलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ॥ १२६ ॥ पुनश्चपंचलक्षेणमंत्रब्राह्मणउच्यते ॥ शूद्रश्चैवंनमोंतेनपंचविंशतिलक्षतः ॥ १२७॥ मंत्रविप्रत्वमापद्यपश्चाच्छुद्धोभवेद्द्विजः ॥ नारीवाथनरोवाथब्राह्मणोवान्यएववा ॥ १२८ ॥ नमोन्तंवानमःपूर्वमातुरःसर्वदाजपेत् ॥ ततःस्त्रीणांतथैवोह्य गुरुर्निर्दर्शयेत्क्रमात् ॥ १२९ ॥ साधकःपंचलक्षान्तेशिवप्रीत्यर्थमेवहि ॥ महाभिषेकनैवेद्यंकृत्वाभक्तांश्चपूजयेत् ॥ १३० ॥ पूजयाशिवभक्तस्यशिवःप्रीततरोभवेत् ॥ शिवस्यशिवभक्तस्यभेदोनास्तिशिवोहिसः ॥ १३१ ॥

पांचलाख जपनेसे वह मंत्र ब्राह्मण कहलाता है इसी प्रकार शूद्र अन्तमें नमः लगाकर पच्चीस लाख मंत्र जपै ॥ १२७ ॥ तौ मंत्र ब्राह्मणताको प्राप्त होकर शुद्ध होजाता है, स्त्री पुरुष ब्राह्मण अथवा और कोई हो सब शुद्ध होजाते हैं ॥ १२८ ॥ आतुर पुरुष नमः चाहै आदिमें लगाकर जप करैं गुरुको उचितहै कि स्त्री और शूद्रको प्रणवरहित मंत्रका उपदेश करै ॥ १२९ ॥ साधक जब पांच लक्ष जप कर चुकै तौ शिवजीकी प्रीतिके निमित्त महा अभिषेक और नैवेद्य करके शिवके भक्तोंका पूजन करै ॥ १३० ॥ शिवभक्तकी पूजा करनेसे शिवजी महाप्रसन्न होते हैं, शिवमें और शिवभक्तमें कुछ भेद नहीं है, वह साक्षात्

शिवस्वरूपहीहै ॥ १३१ ॥ शिवस्वरूप मंत्रकी धारणा करनेसे शिवरूप ही होजाताहै शरीरमें शिवभक्ति होनेसेही वह शिवभक्त प्रधान शिवस्वरूप होजाता है ॥ १३२ ॥ वेदोक्त सम्पूर्ण क्रियासे युक्त शिवभक्त सब क्रियाओंको जान्तेहैं, जितना २ जिसने क्रमसे शिवजीका मंत्र जप कियाहै ॥ १३३ ॥ उतनीही उसकी देहमें शिवजीकी सन्निकटता प्राप्त होतीहै, इसमें सन्देह नहीं और शिवभक्त स्त्रियें देवीलिंगरूप होजातीहैं ॥ १३४ ॥ वे जितना मंत्र जपतीहैं उतनीही उनके देहमें भगवतीकी निकटता प्राप्त होतीहै, जो बुद्धिमान् शिवका पूजन करतेहैं वे स्वयं शब्दरूपके भागी होजातेहैं ॥ १३५ ॥ स्वयं शिवरूप होकर

शिवस्वरूपमंत्रस्यधारणाच्छिवएवहि ॥ शिवभक्तशरीरेहिशिवेतत्परमोभवेत् ॥ १३२ ॥ शिवभक्ताःक्रियाःसर्वा वेदसर्वक्रियाविदुः ॥
यावद्यावच्छिवमंत्रंयेनजप्तंभवेत्क्रमात् ॥ १३३ ॥ तावद्वैशिवसान्निध्यंतस्मिन्देहेनसंशयः ॥ देवीलिंगंभवेद्रूपंशिवभक्तस्त्रियास्तथा ॥
॥ १३४ ॥ यावन्मंत्रंजपेद्देव्यास्तावत्सान्निध्यमस्तिहि ॥ शिवंसंपूजयेद्धीमान्स्वयंवैशब्दरूपभाक् ॥ १३५ ॥ स्वयंचैवशिवोभूत्वापरां
शक्तिंप्रपूजयेत् ॥ शक्तिंबेरंचलिंगंचद्यालेख्यामाययायजेत् ॥ १३६ ॥ शिवलिंगंशिवंमत्वास्वात्मानंशक्तिरूपकम् ॥ शिवलिंगंचदेवीं
चमत्वास्वंशिवरूपकम् ॥ १३७ ॥ शिवलिंगंनादरूपंबिंदुरूपंतुशक्तिकम् ॥ उपप्रधानभावेनअन्योन्यासक्तलिंगकम् ॥ १३८ ॥ पूजये
च्चशिवंशक्तिंसशिवोमूलभावनात् ॥ शिवभक्ताञ्छिवमंत्ररूपकाञ्छिवरूपकान् ॥१३९॥ षोडशैरुपचारैश्चपूजयेदिष्टमाप्नुयात् ॥ येनशुश्रू
षणाद्यैश्चशिवभक्तस्यलिंगिनः ॥१४०॥ आनंदंजनयेद्विद्वाञ्छिवःप्रीततरोभवेत् ॥ शिवभक्तान्सपत्नीकान्पत्न्यासहसदैवतत् ॥१४१॥

पराशक्तिका पूजन करै शक्ति और बेरलिंगको लिंगकर मायारहित पूजन करै॥ १३६ ॥ शिवलिंगको शिवस्वरूप और आत्माको शक्तिरूप और शक्तिलिंगको देवी और अपनेको शिवस्वरूप मानकर ॥ १३७ ॥ शिवलिंगको नामरूप और शक्तिको बिन्दुरूप आकारायात्मक प्रधानभूत ॐकारके समीपभावसे परस्पर लिंगशक्ति जानकर ॥ १३८ ॥ शिवकीही चिन्ता करताहुआ शिव और शक्तिका ध्यान करै शिव मंत्ररूप शिवमंत्रात्मक शिवभक्तोंको ॥ १३९ ॥ सोलह प्रकारसे पूजन करै तो इष्टकी प्राप्ति होतीहै शिवभक्त और लिंगधारियोंके पूजन करनेसेही ॥ १४० ॥ विद्वान्को आनन्दकी प्राप्ति होतीहै, और शिवजी

प्रसन्न होतेहैं, शिवके भक्तोंको सदा स्त्रीसहित ॥ १४१ ॥ भोजन आदिसे पूजन करै, वे पांच दश अथवा सौ हों धन देह और मंत्रमें शिवभावना
कपटरहित करै ॥ १४२ ॥ तब वह शिवशक्तिस्वरूप होकर फिर पृथ्वीमें जन्म नहीं लेता नाभीसे नीचे ब्रह्माका और नाभीसे कण्ठपर्यन्त विष्णुका॥ १४३॥
स्थान है और शिवभक्तका मुख शिवलिंगस्वरूप है इसप्रकार शिवभक्तका शरीर शिवस्वरूप है मृतहुए दाहादियुक्त अथवा दाहादिरहित मृतक हुए
॥ १४४ ॥ पितरोंके उद्देशसे आदि पितर शिवजीका पूजन करै पीछे आदिमाता शिवशक्तिका पूजन करके॥ १४५ ॥ पितर लोकको प्राप्त होकर मरकर

पूजयेद्भोजनाद्यैश्चपंचवादशवाशतम् ॥ धनेदेहेचमंत्रेचभावनायामवंचकः ॥ १४२ ॥ शिवशक्तिस्वरूपेणनपुनर्जायतेभुवि ॥ नाभेरधो
ब्रह्मभागमाकंठंविष्णुभागकम् ॥१४३॥ मुखांलिंगमितिप्रोक्तंशिवभक्तशरीरकम् ॥ मृतान्दाहादियुक्तान्वादाहादिरहितान्मृतान् ॥१४४॥
उद्दिश्यपूजयेदादिपितरंशिवमेवहि ॥ पूजांकृत्वादिमातुश्चशिवभक्तांश्चपूजयेत् ॥ १४५ ॥ पितृलोकंसमासाद्यक्रमान्मुक्तोभवेन्मृतः ॥
क्रियायुक्तदशभ्यश्चतपोयुक्तोविशिष्यते ॥ १४६ ॥ तपोयुक्तशतेभ्यश्चजपयुक्तोविशिष्यते ॥ जपयुक्तसहस्रेभ्यःशिवज्ञानीविशिष्यते ॥
॥ १४७ ॥ शिवज्ञानिषुलक्षेभ्योध्यानयुक्तोविशिष्यते ॥ ध्यानयुक्तेषुकोटिभ्यःसमाधिस्थोविशिष्यते ॥ १४८ ॥ उत्तरोत्तरवैशिष्ट्या
त्पूजायामुत्तरोत्तरम् ॥ फलंवैशिष्ट्यरूपंचदुर्विज्ञेयंमनीषिभिः ॥ १४९ ॥ तस्माद्वैशिवभक्तस्यमहिमानंवेत्तिकोनरः ॥ शिवशक्त्योःपू
जनंचशिवभक्तस्यपूजनम् ॥ १५० ॥ कुरुतेयोनरोभक्त्यासाशिवःशिवमेधते ॥ यइमंपठतेध्यायमर्थवद्वेदसंमतम् ॥ १५१ ॥

क्रमसे मुक्त होजाता है, क्रपायुक्त दश ब्राह्मणोंसे एक अधिक तप करनेवाला विशेष है ॥ १४६ ॥ सौ तपस्वियोंसे एक जप करनेवाला श्रेष्ठ है सहस्र जप
करनेवालोंसे एक शिवज्ञानी अधिक है ॥ १४७ ॥ लाख शिवज्ञानियोंसे ध्यानयोगी अधिक है करोड़ ध्यानयोगियोंसे समाधीवाला अधिक है ॥ १४८ ॥
इनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठतासे और उत्तरोत्तर पूजासे जो श्रेष्ठ फल मिलता है उसे विद्वान्‌भी नहीं जानसक्ते ॥ १४९ ॥ इस कारण शिवभक्तकी महि
माको कौन मनुष्य जानसक्ता है शिवभक्तका पूजनही शिव और शक्तिका पूजन है ॥ १५० ॥ जो मनुष्य भक्तिसे करता है वह शिवरूप होकर

शिवको प्राप्त होता है जो इस वेदसम्मत अध्यायको अर्थसहित पढ़ता है ॥ १५१ ॥ वह ब्राह्मण शिवज्ञानी हो शिवके संग आनन्द करता है, हे मुनीश्वरो ! विशेष जाननेवालेको यह अध्याय शिवभक्तोंको सुनाना चाहिए ॥ १५२ ॥ हे ब्राह्मणों ! उसे शिवके प्रसाद और कृपासे सिद्धि होजाती है ॥ १५३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ऋषि बोले हे सर्वार्थ जाननेवाले सूतजी ! आप हमसे बंध और मोक्षका स्वरूप कहिये सूतजी बोले बंध और मोक्षके उपायको कहते हैं तुम आदरसे सुनो ॥ १ ॥ प्रकृति आदि आठ बन्धनसे बंधनके कारण आत्माकी जीव संज्ञा है,

शिवज्ञानीभवेद्विप्रःशिवेनसहमोदते ॥ श्रावयेच्छिवभक्तांश्चविशेषज्ञोमुनीश्वराः ॥ १५२ ॥ शिवप्रसादसिद्धिःस्याच्छिवस्यकृपया बुधाः ॥ १५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ बंधमोक्षस्वरूपंहिब्रूहिसर्वार्थवित्तम ॥ सूतउवाच ॥ बंधमोक्षंतथोपायंवक्ष्येऽहंशृणुतादरात् ॥ १ ॥ प्रकृत्याद्यष्टबंधेनबद्धोजीवःसउच्यते ॥ प्रकृत्याद्यष्टबंधेननिर्मुक्तोमुक्तउच्यते ॥ २ ॥ प्रकृत्यादिवशीकारोमोक्षइत्युच्यतेस्वतः ॥ बद्धजीवस्तुनिर्मुक्तोमुक्तजीवःसकथ्यते ॥ ३ ॥ प्रकृत्यग्रेततोबुद्धिरहंकारोगुणात्मकः ॥ पञ्चतन्मात्रमित्येतेप्रकृत्याद्यष्टकंविदुः ॥ ४ ॥ प्रकृत्याद्यष्टजोदेहोदेहजंकर्मउच्यते ॥ पुनश्चकर्मजोदेहोजन्मकर्मपुनःपुनः ॥५॥ शरीरंत्रिविधंज्ञेयंस्थूलंसूक्ष्मंचकारणम् ॥ स्थूलंव्यापारदंप्रोक्तंसूक्ष्मामिंद्रियभोगदम् ॥ ६ ॥ कारणंत्वात्मभोगार्थंजीवकर्मानुरूपतः ॥ सुखंदुःखंपुण्यपापैःकर्मभिःफलमश्नुते ॥ ७ ॥

और इन प्रकृति आदि आठ बंधनसे छूटनेसे मुक्त होजाता है ॥ २ ॥ प्रकृतिआदिका वशमें करनेका नाम मोक्ष है, बँधाहुआ जीव और निमुक्तहुवा मुक्त होता है ॥ ३ ॥ प्रकृतिके आगे बुद्धि और, बुद्धिके आगे गुणात्मक अहंकार और पञ्चतन्मात्रा यह सब आठ प्रकृति कहलाती हैं ॥ ४ ॥ इन्हीं प्रकृतिआदि आठसे यह देह और देहसे कियेजानेके नाम कर्म हैं फिर कर्मसे देह है इस प्रकार जन्म कर्म वारंवार होते हैं ॥ ५ ॥ स्थूल सूक्ष्म और कारण यह तीन प्रकारके शरीर हैं स्थूल व्यापार देनेहारा और सूक्ष्म इन्द्रियका भोग देनेहारा ॥ ६ ॥ और कारण शरीर जीवके कर्मानुसार आत्माके

भोगके निमित्त है, कर्म्मोंसेही सुख दुःख पाप पुण्योंके द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ इस कारण यह जीव कर्मरूपा रस्सीसे वारंवार बंधकर कर्म्मोंसे तीनों शरीरसहित चक्रके समान वारंवार सदा भ्रमण करता है ॥ ८ ॥ चक्रभ्रमणके दूर करनेको चक्रकर्ताका पूजन करै प्रकृतिआदि यह आठ महाचक्र हैं इनसे परे शिव हैं ॥ ९ ॥ वे प्रकृतिसे महेशही चक्रके कर्ता हैं जिसप्रकार वृक्षोंके थाओंले जलको पानकर उसे वृक्षोंमें उगलते हैं ॥ १० ॥ इसीप्रकार शिव प्रकृतिआदिको वशमें किये स्थित हैं; सबके वशीभूत करनेसे वह शिव कहलाता है, शिवही सर्वज्ञ पारिपूर्ण और निःस्पृह है ॥ ११ ॥ वह अपनी सर्वज्ञतासे तृप्त अनादिबोध है, और स्वतंत्रतासे नित्य जागरित शक्ति है, उन महेशकी अनन्त शक्ति हैं उनके मनके षड्गुणैश्वर्यको वेद जानता है ॥ १२ ॥

तस्माद्धिकर्मरज्ज्वाहिबद्धोजीवःपुनःपुनः ॥ शरीरत्रयकर्मभ्यांचक्रवद्भ्राम्यतेसदा ॥८॥ चक्रभ्रमनिवृत्त्यर्थंचक्रकर्तारमीडयेत् ॥ प्रकृत्यादिमहाचक्रंप्रकृतेःपरतःशिवः ॥ ९ ॥ चक्रकर्तामहेशोहिप्रकृतेःपरतोयतः ॥ पिबतिवाथवमतिजीवावालोजलंयथा ॥ १० ॥ शिवस्तथा प्रकृत्यादिवशीकृत्याधितिष्ठति ॥ सर्ववशीकृतंयस्मात्तस्माच्छिवइतिस्मृतः ॥ शिवएवहिसर्वज्ञःपरिपूर्णश्चनिःस्पृहः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञतातृप्तिरनादिबोधःस्वतंत्रतानित्यमलुप्तशक्तिः ॥ अनंतशक्तिश्चमहेश्वरस्ययन्मानसैश्वर्यमवैतिवेदः ॥ १२ ॥ अतःशिवप्रसादेनप्रकृत्यादिवशंभवेत् ॥ शिवप्रसादलाभार्थंशिवमेवप्रपूजयेत् ॥ १३ ॥ निःस्पृहस्यचपूर्णस्यतस्यपूजाकथंभवेत् ॥ शिवोद्देशकृतंकर्मप्रसादजनकंभवेत् ॥ १४ ॥ लिंगेबेरेभक्तजनेशिवमुद्दिश्यपूजयेत् ॥ कायेनमनसावाचाधनेनापिप्रपूजयेत् ॥ १५ ॥ पूजयातुमहेशोहिप्रकृतेःपरमःशिवः ॥ प्रसादंकुरुतेसत्यंपूजकस्यविशेषतः ॥१६॥ शिवप्रसादात्कर्माद्यंक्रमेणस्ववशंभवेत् ॥ कर्मारभ्यप्रकृत्यंतंयदासर्ववशंभवेत् ॥१७॥

इसकारण शिवकेही प्रसादसे प्रकृतिआदि वशमें तोही हैं, शिवकी प्रसन्नता प्राप्त होनेके लिये शिवकाही पूजन करना चाहिये ॥ १३ ॥ इच्छारहित और पारिपूर्णकी पूजा किसप्रकार होसक्ती है, इस कारण शिवके उद्देशसे जो कर्म कियाजाता है वही शिवकी प्रसन्नता करनेवाला होता है ॥ १४ ॥ बेरलिंगमें वा भक्तजनमें शिवभावना करके पूजा करना चाहिये, काय मन वचन और धनसे भी पूजा करै ॥ १५ ॥ पूजा करनेसे वह महेश प्रकृतिसे परे परमशिव अवश्य पूजा कर नेवालेके ऊपर प्रसन्न होते हैं सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ शिवके प्रसादसे कर्मादिक क्रमसे अपने वशमें होजाते हैं, जिस समय कर्मसे प्रकृतिपर्यंत

सम्पूर्ण अपने वशमें होजायँ ॥ १७ ॥ उसीसमय वह मुक्त और आत्माराम कहाजाता है; परमेश्वरके प्रसादसे जिससमय कर्म देह अपने वशमें होजाता है ॥ १८ ॥
उसीसमय शिवलोकमें वास होता है अर्थात् सालोक्यकी प्राप्ति होती है और तन्मात्राको वशमें करनेसे साम्बकी सामीप्यताको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥
पीछे क्रिया आयुधोंसे शिवकी सायुज्यताको प्राप्त होता है अर्थात् त्रिशूलादिसे शिवकी समानताको प्राप्त होता है, महाप्रसादके लाभसे बुद्धि भी अपने
वशमें होती है ॥ २० ॥ प्रकृतिका कार्य्य बुद्धि है वह सार्ष्टि कहलाती है, फिर महाप्रसादसे प्रकृति वशमें होजाती है ॥ २१ ॥ ऐसा होनेसे शिवजीका
मानस ऐश्वर्य विनाही यत्नके प्राप्त होजाता है, सर्वज्ञताआदि शिवका ऐश्वर्य प्राप्त करके अपने आत्मामें विराजमान होता है ॥ २२ ॥ वेदशास्त्रके जाननेवाले

तदामुक्तइतिप्रोक्तःस्वात्मारामोविराजते ॥ प्रसादात्परमेशस्यकर्म देहोयदावशः ॥ १८ ॥ तदावैशिवलोकेतुवासःसालोक्यमुच्यते ॥
सामीप्यंयातिसांबस्यतन्मात्रेचवशंगते ॥ १९ ॥ तदातुशिवसायुज्यमायुधाद्यैःक्रियादिभिः ॥ महाप्रसादलाभेचबुद्धिश्चापिवशाभवेत् ॥
॥ २० ॥ बुद्धिस्तुकार्यंप्रकृतेस्तत्सार्ष्टिरितिकथ्यते ॥ पुनर्महाप्रसादेनप्रकृतिर्वशमेष्यति ॥ २१ ॥ शिवस्यमानसैश्वर्यंतदाऽयत्नंभवि
ष्यति ॥ सार्वज्ञाद्यंशिवैश्वर्यंलब्ध्वास्वात्मनिराजते ॥ २२ ॥ तत्सायुज्यमितिप्राहुर्वेदागमपरायणाः ॥ एवंक्रमेणमुक्तिःस्याल्लिंगादौपूज
यास्वतः ॥ २३ ॥ अतःशिवप्रसादार्थंक्रियाद्यैःपूजयेच्छिवम् ॥ शिवक्रियाशिवतपःशिवमंत्रजपःसदा ॥ २४ ॥ शिवज्ञानंशिवध्यानमु
त्तरोत्तरमभ्यसेत् ॥ आसुप्तेरामृतेःकालंनयेद्वैशिवचिंतया ॥ २५ ॥ सद्यादिभिश्चकुसुमैरर्चयेच्छिवमेष्यति ॥ ऋषयऊचुः ॥ लिंगादौशिव
पूजायाविधानंब्रूहिसर्वतः ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ लिंगानांचक्रमंवक्ष्येयथावच्छृणुतद्विजाः ॥ तदेवलिंगंप्रथमंप्रणवंसार्वकामिकम् ॥ २७ ॥

इसीको सायुज्यमुक्ति कहते हैं इसप्रकार ।लिंगादि पूजा करनेवालोंको क्रमसे स्वयं मुक्ति होजाती है ॥ २३ ॥ इस कारण शिवकी प्रसन्नता प्राप्त करनेको
क्रियादिसे शिवकी पूजा करै शिवकी क्रिया शिवका तप शिवमन्त्रका जप ॥ २४ ॥ शिवज्ञान शिवध्यान यह उत्तरोत्तर अभ्यास करतारहै जबतक
शयन करै तबतक शिवकाही ध्यान करता रहै, इस प्रकार मरणपर्यन्त समय बितावै ॥ २५ ॥ और पूर्वोक्त मंत्रोंद्वारा फूल चढाकर शिवजीका अर्चन
करै तौ मंगल होता है, ऋषि बोले हे सुव्रत ! ।लिंगादिमें शिव पूजाका विधान वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ सूतजी बोले हे ब्राह्मणो ! सुनो हम लिंगादिका

क्रमसे पूजाविधान कहते हैं, प्रथम सब कामनाओंका देनेहारा प्रणवलिंग है ॥ २७ ॥ वह सूक्ष्म प्रणवरूप सूक्ष्मरूप निष्फल है, और स्थूल लिंग कलायुक्त है, उसीको पञ्चाक्षर कहते हैं ॥ २८ ॥ उन्हींकी पूजाका नाम तप है यह दोनों साक्षात् मोक्षके देनेहारे हैं, और पुरुषार्थसे प्रकृतिके बनायेहुए बहुतसे लिंगहैं ॥ २९ ॥ उनको विस्तारसे शिवजीही जान्ते हैं दूसरा नहीं परन्तु पृथ्वीविकारके लिंग मैं मतिअनुसार तुमसे कहताहूं ॥ ३० ॥ स्वयंभूलिंग १ विन्दुलिंग २ प्रतिष्ठा किये लिंग ३ चरलिंग ४ गुरुलिंग ५ ॥ ३१ ॥ देवता और ऋषियोंके तपसे सन्तुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होनेको पृथ्वीके अन्तर्गत बीज

सूक्ष्मप्रणवरूपंहिसूक्ष्मरूपंतुनिष्कलम् ॥ स्थूललिंगंहिसकलंतत्पंचाक्षरमुच्यते ॥ २८ ॥ तयोःपूजातपःप्रोक्तंसाक्षान्मोक्षप्रदेउभे ॥
पौरुषप्रकृतिभूतानिलिंगानिसुबहूनिच ॥ २९ ॥ तानिविस्तरतोवक्तुंशिवोवेत्तिनचापरः ॥ भूविकाराणिलिंगानिज्ञातानिप्रब्रवीमिवः ॥
॥ ३० ॥ स्वयंभूलिंगंप्रथमंबिंदुलिंगंद्वितीयकम् ॥ प्रतिष्ठितंचरंचैवगुरुलिंगंतुपंचमम् ॥ ३१ ॥ देवर्षितपसातुष्टःसान्निध्यार्थंतुतत्रवै ॥
पृथिव्यन्तर्गतःशर्वोबीजंवैनादरूपतः ॥ ३२ ॥ स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्यव्यक्तएवसः ॥ स्वयंभूतंजातमितिस्वयंभूरितितंविदुः ॥ ३३ ॥
तल्लिंगपूजयाज्ञानंस्वयमेवप्रवर्द्धते ॥ सुवर्णरजतादौवापृथिव्यांस्थंडिलेपिवा ॥ ३४ ॥ स्वहस्ताल्लिखितंलिंगंशुद्धप्रणवमंत्रकम् ॥ यंत्र
लिंगंसमालिख्यप्रतिष्ठावाहनंचरेत ॥ ३५ ॥ बिंदुनादमयंलिंगंस्थावरंजंगमंचयत् ॥ भावनामयमेतद्धिशिवदृष्टंनसंशयः ॥ ३६ ॥ यत्र
विश्वस्यतेशंभुस्तत्रतस्मैफलप्रदः ॥ स्वहस्ताल्लिखितेयंत्रेस्थावरादावकृत्रिमे ॥ ३७ ॥

और नादरूपसे रहनेहारे शिवजी ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार अंकुर पृथ्वीको भेदकर निकलतेहैं इसीप्रकार पृथ्वीके अन्तरसे निकलेहुए लिंगको स्वयंभूलिंग कहते हैं ॥ ३३ ॥ उस लिंगकी पूजा करनेसे स्वयं ज्ञानकी वृद्धि होती है; सुवर्ण चांदी पृथ्वी अथवा वेदिकामें ॥ ३४ ॥ अपने हाथसे लिखेहुए शुद्ध प्रणवयुक्त मंत्रको और लिंगको यंत्रपर लिखकर उसकी प्रतिष्ठा और आवाहन करै ॥ ३५ ॥ यही बिन्दुनादमयलिंग स्थावर और जंगमरूप है भावनासेही इसमें निःसन्देह शिवका दर्शन होताहै ॥ ३६ ॥ जिसमें शिवजीका विश्वास करै, उसमेंही वह निःसन्देह फल देते हैं अपनेहाथसे लिखे हुए यंत्र स्थावरादि

अथवा कृत्रिम स्थानमें लिखकर ॥ ३७ ॥ आवाहन कर सोलह प्रकारसे शिवजीका पूजन कर ता ऐश्वर्यकी प्राप्ति और अभ्यास करनेसे ज्ञानभी होताहै ॥ ३८ ॥ जो देवता और ऋषियोंने अपनी आत्मसिद्धि करनेको अपने हाथसे शुभ क्षेत्रमें जो ॥ ३९ ॥ शुभ भावनासे मंत्रपूर्वक स्थापित कियाहै वही लिंग पौरुष अर्थात् प्रतिष्ठित कहलाताहै ॥ ४० ॥ उस लिंगकी नित्य पूजासे पौरुष ऐश्वर्य मिलताहै, बडे ब्राह्मणों और राजोंने महाधनोंसे ॥ ४१ ॥ शिल्पविद्यासे लिंगकी कल्पनाकर जो मंत्रद्वारा स्थापित कियाहै, जो मनुष्योंने प्रतिष्ठित किया है वह प्राकृत है, उसके पूजन करनेसे प्राकृत ऐश्वर्य प्राप्त

आवाह्यपूजयेच्छंभुंषोडशैरुपचारकैः ॥ स्वयमैश्वर्यमाप्नोतिज्ञानमभ्यासतोभवेत् ॥ ३८ ॥ देवैश्चऋषिभिश्चापिस्वात्मसिद्ध्यर्थमेवहि ॥
समंत्रेणात्महस्तेनकृतंयच्छुद्धमंडले ॥ ३९ ॥ शुद्धभावनयाचैवस्थापितंलिंगमुत्तमम् ॥ तल्लिंगंपौरुषंप्राहुस्तत्प्रतिष्ठितमुच्यते ॥ ४० ॥
तल्लिंगपूजयानित्यंपौरुषैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ महद्भिर्ब्राह्मणैश्चापिराजभिश्चमहाधनैः ॥ ४१ ॥ शिल्पिनाकल्पितंलिंगंमंत्रेणस्थापितंचयत् ॥
प्रतिष्ठितंप्राकृतंहिप्राकृतैश्वर्यभोगदम् ॥ ४२ ॥ यदूर्जितंचनित्यंचताद्धिपौरुषमुच्यते ॥ यद्दुर्बलमनित्यंचताद्धिप्राकृतमुच्यते ॥ ४३ ॥
लिंगंनाभिस्तथाजिह्वानासाग्रश्चाशिखाक्रमात् ॥ कट्यादिषुत्रिलोकेषुलिंगमाध्यात्मिकंचरम् ॥ ४४ ॥ पर्वतंपौरुषंप्रोक्तंभूतलंप्राकृतं
विदुः ॥ वृक्षादिपौरुषंज्ञेयंगुल्मादिप्राकृतंविदुः ॥ ४५ ॥ षाष्टिकंप्राकृतंज्ञेयंशालिगोधूमपौरुषम् ॥ ऐश्वर्यंपौरुषंविद्यादणिमाद्यष्टसिद्धि
दम् ॥ ४६ ॥ सुस्त्रीधनादिविषयंप्राकृतंप्राहुरास्तिकाः ॥ प्रथमंचरलिंगेषुरसलिंगंप्रकथ्यते ॥ ४७ ॥

होताहै ॥ ४२ ॥ प्राकृत लिंगसे पौरुषलिंग श्रेष्ठ है कारण कि जो बलयुक्त और नित्य है, उसे पौरुषलिंग कहतेहैं, जो दुर्बल और अनित्य है वह प्राकृत लिंग है ॥ ४३ ॥ चरलिंगका वर्णन करतेहैं, लिंग, नाभि, जिह्वा, नासाग्र, शिखाके क्रमसे कटिसे आदिले हृदय, आनन तीनों स्थानोंमें आध्यात्मिक लिंगकी कल्पना चरलिंग है ॥ ४४ ॥ पर्वतमें पौरुषलिंग और पृथ्वीमें प्राकृतलिंग है वृक्षादि पौरुष और गुल्मादिमें प्राकृतलिंग जानना ॥ ४५ ॥ साठि धान्यात्मक प्राकृत और शालि तथा गेहूं पौरुषसे जानो पौरुषसे ऐश्वर्य और अणिमादि अष्टसिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ और अच्छी स्त्री तथा धनादि

देनेहारा प्राकृतलिंग है प्रथम चरलिंगोंमें रसलिंग कहाहै ॥ ४७ ॥ रसलिंग ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण मनोरथोंका देनेहारा है, और बाणलिंग क्षत्रियोंको महाराज्यपदका देनेहारा है ॥ ४८ ॥ सुवर्णलिंग वैश्योंको महाधनका स्वामी करता है, शिवलिंग शूद्रोंको शुद्ध करनेहारा है ॥ ४९ ॥ स्फटिक और बाणलिंग सबको सब कामना देनेहाराहै, जो अपने निमित्त कहा हुआ लिंगहै उसके अभावमें दूसरेका लिंगपूजनमें दोष नहीं ॥ ५० ॥ सधवा स्त्रियोंको पार्थिव लिंगकी पूजा करनी चाहिये विशेष करके प्रवृत्ति मार्गरत सधवा और विधवा स्त्रियोंको स्फटिक लिंगकी पूजा करनी चाहिये परन्तु यह भोगकी

रसलिंगंब्राह्मणानांसर्वाभीष्टप्रदंभवेत् ॥ बाणलिंगंक्षत्रियाणांमहाराज्यप्रदंशुभम् ॥ ४८ ॥ स्वर्णलिंगंतुवैश्यानांमहाधनपतित्वदम् ॥ शिलालिंगंतुशूद्राणांमहाशुद्धिकरंशुभम् ॥ ४९ ॥ स्फाटिकंबाणलिंगंचसर्वेषांसर्वकामदम् ॥ स्वीयाभावेऽन्यदीयंतुपूजायांननिषिद्ध्यते ॥ ५० ॥ स्त्रीणांतुपार्थिवंलिंगंसभर्तृणांविशेषतः ॥ विधवानांप्रवृत्तानांस्फाटिकंपरिकीर्तितम् ॥ ५१ ॥ विधवानांनिवृत्तानांरसलिंगंविशिष्यते ॥ बाल्येवायौवनेवापिवार्द्धकेवापिसुव्रताः ॥ ५२ ॥ शुद्धस्फटिकलिंगंतुस्त्रीणांतत्सर्वभोगदम् ॥ प्रवृत्तानांपीठपूजासर्वाभीष्टप्रदाभुवि ॥ ५३ ॥ पात्रेणैवप्रवृत्तस्तुसर्वपूजांसमाचरेत् ॥ अभिषेकांतेनैवेद्यंशाल्यन्नेनसमाचरेत् ॥ ५४ ॥ पूजांतेस्थापयेल्लिंगं संपुटेषुपृथग्गृहे ॥ करपूजानिवृत्तानांस्वभोज्यंतुनिवेदयेत् ॥ ५५ ॥ निवृत्तानांपरंसूक्ष्मंलिंगमेवविशिष्यते ॥ विभूत्यभ्यर्चनंकुर्याद्विभूतिंचनिवेदयेत् ॥ ५६ ॥

इच्छावालियोंको विधान है ॥ ५१ ॥ और जो संसारकी कामनासे निवृत्तहैं उनको रसलिंगका पूजन करना चाहिये, बालक युवा वृद्धावस्थामें हे सुव्रत ॥ ५२ ॥ स्त्रियोंको स्फटिक लिंग सम्पूर्ण कामनाओंका देनेहाराहै, संसारभोगकी इच्छावालियोंको पीठपूजा सदा मंगल देनेहारी है ॥ ५३ ॥ योग्य गुरुके सहित संसारसुखवालोंको सब प्रकार पूजा करनी चाहिये अभिषेकके अन्तमें नैवेद्य शाली अन्न सहित देनी चाहिये ॥ ५४ ॥ पूजाके अन्तमें लिंगको सम्पुट पात्रमें रखकर घरमें एकान्त स्थापन करै, हाथकी पूजासे निवृत्त हुये उपासकोंको भोजन निवेदन करना चाहिये ॥ ५५ ॥ निवृत्तोंके निमित्त

सूक्ष्मलिंगकी पूजा कही है, विभूतिसे अर्चनकर विभूतिही निवेदन करै ॥ ५६ ॥ पूजाकरके सदा लिंगको शिरपर धारण करै, लोक वेद और शिव अग्निसे उत्पन्न हुई, विभूति तीन प्रकारकी है ॥ ५७ ॥ लौकिक अग्निकी भस्म द्रव्यशुद्धिके निमित्त लेनी, मृत्तिका काठ लोहरूप धान्य ॥५८॥ तिलादि द्रव्य वस्त्रादि तथा बासी वस्तुकी शुद्धि लौकिकाग्निसे होती है ॥ ५९ ॥ कुत्तेआदिकी दूषित हुई वस्तुकीभी भस्मसे शुद्धि हो जातीहै, सजल निर्जल भस्मसे यथायोग्य शुद्धि करै, जैसी वस्तु हो उसके अनुसारही भस्मसे शुद्धि करै ॥ ६० ॥ गार्हपत्य अग्निकी भस्म वेद अग्निकी भस्म है, कर्मान्तमें उसको धारण करना चाहिये मंत्र और

पूजांकृत्वाथतल्लिंगंशिरसाधारयेत्सदा ॥ विभूतिस्त्रिविधाप्रोक्तालोकवेदशिवाग्निभिः ॥ ५७ ॥ लोकाग्निजमथोभस्मद्रव्यशुद्ध्यर्थमावहेत् ॥ मृद्दारुलोहरूपाणांधान्यानांचतथैवच ॥ ५८ ॥ तिलादीनांचद्रव्याणांवस्त्रादीनांतथैवच ॥ तथापर्युषितानांचभस्मनाशुद्धिरिष्यते ॥ ५९ ॥ श्वादिभिर्दूषितानांचभस्मनाशुद्धिरिष्यते ॥ सजलंनिर्जलंभस्मयथायोग्यंतुयोजयेत् ॥ ६० ॥ वेदाग्निजंतथाभस्मतत्कर्मांतेषुधारयेत् ॥ मंत्रेणक्रिययाजन्यंकर्माग्नौभस्मरूपधृक् ॥ ६१ ॥ तद्भस्मधारणात्कर्मस्वात्मन्यारोपितंभवेत् ॥ अघोरेणात्ममंत्रेण बिल्वकाष्ठंप्रदाहयेत् ॥ ६२ ॥ शिवाग्निरितिसंप्रोक्तस्तेनदग्धंशिवाग्निजम् ॥ कपिलागोमयंपूर्वंकेवलंगव्यमेववा ॥ ६३ ॥ शम्यश्वत्थपलाशान्वावटारग्वधबिल्वकान् ॥ शिवाग्निनादहेच्छुद्धंतद्वैभस्मशिवाग्निजम् ॥ ६४ ॥ दर्भाग्नौवादहेत्काष्ठंशिवमंत्रंसमुच्चरन् ॥ सम्यक्संशोध्यवस्त्रेणनवकुंभेनिधापयेत् ॥ ६५ ॥ दीप्त्यर्थंतत्तुसंग्राह्यंमन्यतेपूज्यतेपिच ॥ भस्मशब्दार्थएवंहिशिवःपूर्वंतथाऽकरोत् ॥ ६६ ॥

क्रियासे उत्पन्न हुई कर्माग्निही भस्मरूप धारण कियेहैं ॥ ६१ ॥ उस भस्मके धारण करनेसे वे कर्म अपनी आत्मामें आरोपित होतेहैं, अघोर मंत्रसे बेल काष्ठकी भस्म करै ॥ ६२ ॥ उसीका नाम शिवाग्नि है; उससे जलाये हुएसे शिवाग्नि भस्म होती है, कपिलाके गोबरसे अथवा किसी गौके गोबरसे ॥ ६३ ॥ शमी पीपल ढाक वट आरग्वध (अमलतास) बेल इनकी शिवाग्निसे जलानेसे शिवाग्निसे उत्पन्नहुई शुद्ध भस्म होतीहै ॥६४॥ अथवा शिवमन्त्र उच्चारणकर दर्भाग्निसे काठको जलाय वस्त्रसे अच्छी प्रकार छान घडेमें भर रक्खे ॥ ६५ ॥ दीप्तिके निमित्त भस्म ग्रहण करनी चाहिये, उससे मान्य और पूजनीय

होताहै, शिवजीने पूर्वकालमें भस्म शब्दका अर्थ इसप्रकार कियाहै ॥ ६६ ॥ जिसप्रकारसे राजा अपने राज्यसे साररूप करके ग्रहण करता है जैसे मनुष्य
धान्यादिको जलाकर सारग्रहण करतेहैं ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार जठराग्नि भक्ष्यादि अनेक प्रकारके पदार्थोंको भस्मकर उसके सारसे देहपुष्ट करती है ॥ ६८ ॥
इसी प्रकार प्रपंचकर्ता परमेश्वर शिवजी अपने अधीन प्रपंचको जलाकर अपने अधिष्ठान प्रपंचको ग्रहणकर सारग्रहण करतेहैं ॥ ६९ ॥ प्रपंचको भस्म
करके उस भस्मको शिवजी अपनेमें आरोपण करतेहैं उद्धूलन विभूति मलनेके बहानेसेही उन्होंने जगत्का सार ग्रहण कियाहै ॥ ७० ॥ अपने शरीरमेंही

यथास्वविषयेराजासारंगृह्णातियत्करम् ॥ यथामनुष्याःसस्यादीन्दग्ध्वासारंभजंतिवै ॥ ६७ ॥ यथाहिजाठराग्निश्चभक्ष्यादीन्विविधा
न्बहून् ॥ दग्ध्वासारतरंसारात्स्वदेहंपरिपुष्यति ॥ ६८ ॥ तथाप्रपंचकर्तापिसशिवःपरमेश्वरः ॥ स्वाधिष्ठेयप्रपंचस्यदग्ध्वासारंगृही
तवान् ॥ ६९ ॥ दग्ध्वाप्रपंचंतद्भस्मस्वात्मन्यारोपयच्छिवः ॥ उद्धूलनेनव्याजेनजगत्सारंगृहीतवान् ॥ ७० ॥ स्वरत्नंस्थापयामास
स्वकीयेहिशरीरके ॥ केशमाकाशसारेणवायुसारेणवैमुखम् ॥ ७१ ॥ हृदयंचाग्निसारेणत्वपांसारेणवैकटिम् ॥ जानुचावनिसारेणतद्वत्सर्वं
तदंगकम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मविष्णवोश्चरुद्राणांसारंचैवत्रिपुंड्रकम् ॥ तथातिलकरूपेणललाटान्तेमहेश्वरः ॥ ७३ ॥ भवृद्ध्यासर्वमेतद्धिमन्य
तेस्वयमित्यसौ ॥ प्रपंचसारसर्वस्वमनेनैववशीकृतम् ॥ ७४ ॥ तस्मादस्यवशीकर्तानास्तीतिसशिवःस्मृतः ॥ यथासर्वमृगाणांचहिंसको
मृगहिंसकः ॥ ७५ ॥ अस्यहिंसामृगोनास्तितस्मात्सिंहइतीरितः ॥ शंनित्यंसुखमानंदमिकारःपुरुषःस्मृतः ॥ ७६ ॥

उन्होंने अपना रत्न स्थापित किया है, आकाशके सारसे केश, वायुके सारसे मुख ॥ ७१ ॥ अग्निके सारसे हृदय, जलोंके सारसे कटि, पृथ्वीके सारसे जानु
इसीप्रकार उनका सब अंग है ॥ ७२ ॥ यह त्रिपुण्ड्र ब्रह्मा विष्णु और रुद्रका सार है, और तिलकरूपसे ललाटके अन्तमें महेश्वर हैं ॥ ७३ ॥ जिसकारणसे
यह महेश्वर (भं) जगत्की वृद्धिके निमित्त शोभित होतेहैं, और इस सब सारको स्वयं समर्थ मान्ते हैं इस्से इन्हीने सब प्रपंचका सार वशीभूत करलियाहै
॥७४॥ इसकारण इसका वश करनेवाला और कोई नहीं केवल शिवही है जिस प्रकार सब मृगोंको हिंसकसिंह हिंसा करता है ॥७५॥ इसका कोई हिंसामृग

(मारनेहारा) नहीं है इसीसे यह सिंह कहलाताहै, इसीप्रकार (शं) नित्यसुख आनंदरूप (इ) पुरुष (व) शक्ति अमृत स्वरूप इन तीनोंको मिलकर शिव शब्द होताहै, अर्थात् नित्य आनन्दस्वरूप शक्तिमान् अमृतमय पुरुषको शिव कहतेहैं, यह शिव शब्दका अर्थ हुआ, इस कारण इसी लक्षणसे अपनी आत्माको शिवरूप करके शिवकी पूजा करै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उससे पहले भस्म लगावै त्रिपुण्ड्र धारण करै, पूजा समयमें जलसहित धारण करै और शुद्धिके निमित्त निर्जल धारण करै ॥ ७८ ॥ दिनमें रातमें स्त्री या पुरुष कोई हो पूजाके निमित्त सजल भस्मकर त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ ७९ ॥ जो सजल भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण कर पूजा करता है उसको शिवपूजा करनेका पूर्ण फल मिलता है यह निश्चय है ॥ ८० ॥ शिवमंत्रसे भस्म धारण करकै

वकारःशक्तिरमृतंमेलनंशिवउच्यते ॥ तस्मादेवंस्वमात्मानंशिवंकृत्वार्चयेच्छिवम् ॥ ७७ ॥ तस्मादुद्धूलनंपूर्वंत्रिपुंड्रंधारयेत्परम् ॥
पूजाकालेहिसजलंशुद्ध्यर्थंनिर्जलंभवेत् ॥ ७८ ॥ दिवावायदिवारात्रौनारीवाथनरोपिवा ॥ पूजार्थंसजलंभस्मत्रिपुंड्रेणैवधारयेत् ॥ ७९ ॥
त्रिपुंड्रंसजलंभस्मधृत्वापूजांकरोतियः ॥ शिवपूजाफलंसांगंतस्यैवहिसुनिश्चितम् ॥ ८० ॥ भस्मवैशिवमंत्रेणधृत्वाह्यत्याश्रमीभवेत् ॥
शिवाश्रमीतिसंप्रोक्तःशिवैकपरमोयतः ॥ ८१ ॥ शिवव्रतैकनिष्ठस्यनाशौचंनचसूतकम् ॥ ललाटेऽग्रेसितंभस्मतिलकंधारयेन्मृदा ॥८२॥
स्वहस्ताद्गुरुहस्ताद्वाशिवभक्तस्यलक्षणम् ॥ गुणान्रुंधइतिप्रोक्तोगुरुशब्दस्यविग्रहः ॥ ८३ ॥ सविकारान्राजसादीन्गुणान्रुंधेव्यपोहति ॥
गुणातीतःपरशिवोगुरुरूपंसमाश्रितः ॥ ८४ ॥ गुणत्रयंव्यपोह्याग्रेशिवंबोधयतीतिसः ॥ विश्वस्तानांतुशिष्याणांगुरुरित्यभिधीयते ॥८५॥

उत्तम आश्रमी होता है शिवका परायण होनेसे शिवाश्रमी कहलाता है ॥ ८१ ॥ जिसकी शिवव्रतमें निष्ठा है उसे अशौच और सूतक नहीं लगता ललाटके अग्रभागमें सफेद भस्म और मृत्तिकाका तिलक धारण करे ॥ ८२ ॥ तिलक अपने हाथसे वा गुरुके हाथसे धारण करे यह शिवभक्तका लक्षण है जो (गु) गुणोंको शिष्यमें (रु) आरोपण करता है उसका नाम गुरु है यही गुरुशब्दका अर्थ है ॥ ८३ ॥ अथवा जो विकाररहित राजस गुणोंको दूर करता है वह गुणातीत परमशिव गुरुरूप कहा गया है गुरु शिवरूप है ॥ ८४ ॥ अथवा जो विश्वस्त शिष्योंके तीनों गुण दूर कर शिवका बोधन करता है उसीका

नाम गुरु है ॥ ८५ ॥ इसकारण पंडित गुरुका शरीर पूज्य लिंग है गुरु लिंगकी पूजाही गुरुशुश्रूषा है ॥ ८६ ॥ मन वचन कर्मसे गुरुकी सेवा करे तौ शास्त्रकी प्राप्ति होती है जो कुछ गुरुने आदेश किया है वह शक्य हो वा अशक्य हो ॥ ८७ ॥ प्राण या धनके द्वारा सम्पादन करनेसे पवित्र आत्मा होजाता है; इसी कारण जो शासनके योग्य हो उसीका नाम शिष्य है ॥ ८८ ॥ सुशिष्य शरीरादि अर्थ सब गुरुके निकट प्रदान करके भोजनकी सामग्री पहले उनके निवेदन कर पीछे उनकी आज्ञासे आप भोजन करै ॥ ८९ ॥ शिष्य सदा शिष्यत्वके योग्य होनेसे पुत्रही है; इसकारण प्रमाण यह है कि जिह्वारूपी

तस्माद्गुरुशरीरंतुगुरुलिंगंभवेद् बुधः ॥ गुरुलिंगस्यपूजातुगुरुशुश्रूषणंभवेत् ॥ ८६ ॥ श्रुतंकरोतिशुश्रूषाकायेनमनसागिरा ॥ उक्तंयद्गुरु
णापूर्वंशक्यंवाऽशक्यमेववा ॥ ८७ ॥ करोत्येवहिपूतात्माप्राणैरपिधनैरपि ॥ तस्माद्वैशासनेयोग्यःशिष्यइत्यभिधीयते ॥ ८८ ॥ शरी
राद्यर्थकंसर्वंगुरोर्दत्त्वासुशिष्यकः ॥ अग्रपाकंनिवेद्याग्रेभुंजीयाद्गुर्वनुज्ञया ॥ ८९ ॥ शिष्यःपुत्रइतिप्रोक्तःसदाशिष्यत्वयोगतः ॥ जिह्वा
लिंगान्मंत्रशुक्रंकर्णयोनौनिषिच्यवै ॥ ९० ॥ जातःपुत्रोमंत्रपुत्रःपितरंपूजयेद्गुरुम् ॥ निमज्जयतिपुत्रंवैसंसारेजनकःपिता ॥ ९१ ॥
संतारयतिसंसाराद्गुरुर्वैबोधकःपिता ॥ उभयोरंतरंज्ञात्वापितरंगुरुमर्चयेत् ॥ ९२ ॥ अंगशुश्रूषयाचापिधनाद्यैःस्वार्जितैर्गुरुम् ॥ पादा
दिकेशपर्यंतंलिंगान्यंगानियद्गुरोः ॥ ९३ ॥ धनरूपैःपादुकाद्यैःपादसंग्रहणादिभिः ॥ स्नानाभिषेकनैवेद्यैर्भोजनैश्चप्रपूजयेत् ॥ ९४ ॥

लिंगसे मंत्ररूपी वीर्य कर्णरूप योनिमें प्रवेश करनेसे ॥ ९० ॥ यह उत्पन्न होता है, इसीकारण यह मंत्र पुत्र कहलाता है, इसको उचित है कि गुरुरूप पिताका सदा पूजनकरै, उत्पन्नकरनेवाला पिता पुत्रको संसारमें डालता है ॥ ९१ ॥ और ज्ञानदाता पिता गुरु संसारसे तार देताहै, इस प्रकार दोनोंका अन्तर जानकर गुरुरूप पिताका विशेष पूजन करै ॥ ९२ ॥ और अपने उत्पन्न हुए धनोंसे गुरुकी अंगशुश्रूषा करै पाँओंसे लेकर शिर केश पर्यन्त गुरुके सब शरीर शिवलिंगस्वरूप हैं ॥ ९३ ॥ उनको धनरूप, पादुकादि, चरण दाबनेसे व अभिषेक नैवेद्य और भोजनसे सत्कार करै ॥ ९४ ॥

गुरुकी पूजासेही परमात्मा शिवकी पूजा होजाती है गुरुकी पूजासे बचाहुआ सब द्रव्य आत्मशुद्धि करनेहारा है ॥ ९५ ॥ जल और अन्नादिसे बनेहुये पदार्थ गुरुपूजासे अवशेष रहनेसे शिवकी उच्छिष्टताके समान हैं, वह शिष्यों तथा शिवभक्तोंको ग्रहण करना चाहिये, हे ब्राह्मण ! वह भोजनके योग्य है ॥ ९६ ॥ और जो द्रव्य गुरुकी आज्ञा बिना ग्रहण की गई है, वह सब चौरवस्तुके समान है गुरुभी विशेष ज्ञाता होना चाहिये, उसको यत्नपूर्वक ग्रहण करै ॥ ९७ ॥ अज्ञानका दूर करनाही गुरुका साध्य है सो विशेष ज्ञानी गुरुही अज्ञान दूर करसक्ताहै, प्रथम कर्मपूर्तिके निमित्त विघ्न शान्त करना चाहिये ॥ ९८ ॥ निर्विघ्न और पूर्ण अंगसे कियाहुआही कर्म सफल होताहै, इसकारण सबकर्मकी आदिमें गणेशजीका पूजन करना चाहिये ॥ ९९ ॥

गुरुपूजैवपूजास्याच्छिवस्यपरमात्मनः ॥ गुरुशेषंतुयत्सर्वमात्मशुद्धिकरंभवेत् ॥ ९५ ॥ गुरोःशेषःशिवोच्छिष्टंजलमन्नादिनिर्मितम् ॥
शिष्याणांशिवभक्तानांग्राह्यंभोज्यंभवेद्द्विजाः ॥ ९६ ॥ गुर्वनुज्ञाविरहितंचोरवत्सकलंभवेत् ॥ गुरोरपिविशेषज्ञंयत्नाद्गृह्णीतवैगुरुम्॥९७॥
अज्ञानमोचनंसाध्यंविशेषज्ञोहिमोचकः ॥ आदौचविघ्नशमनंकर्तव्यंकर्मपूर्तये ॥ ९८ ॥ निर्विघ्नेनकृतंसांगंकर्मवैसफलंभवेत् ॥ तस्मा
त्सकलकर्मादौविघ्नेशंपूजयेद् बुधः ॥ ९९ ॥ सर्वबाधानिवृत्त्यर्थंसर्वान्देवान्यजेद् बुधः ॥ ज्वरादिग्रंथिरोगाश्चबाधाह्याध्यात्मिकामता ॥
॥ १०० ॥ पिशाचजंबुकादीनांवल्मीकाद्युद्भवेतथा ॥ अकस्मादेवगोधादिजंतूनांपतनेपिच ॥ १०१ ॥ गृहेकच्छपसर्पस्त्रीदुर्जनादर्श
नेपिच ॥ वृक्षनारीगवादीनांप्रसूतिविषयेपिच ॥ १०२ ॥ भाविदुःखंसमायातितस्मात्तेभौतिकामताः ॥ अमेध्याशनिपातश्चमहामारी
तथैवच ॥ १०३ ॥ ज्वरमारीविषूचिश्चगोमारीचमसूरिका ॥ जन्मर्क्षग्रहसंक्रांतिग्रहयोगाःस्वराशिके ॥ १०४ ॥

सब बाधा शान्त करनेको पण्डित सब देवताओंका यजन करै, ज्वरादिक और ग्रंथिरोग बाह्य और आध्यात्मकादि सम्पूर्ण बाधाके निवृत्त करनेहारा है ॥ १०० ॥ पिशाच जम्बुकादि वाल्मीकादिका उपद्रव और अकस्मातही गोधादि जन्तुओंका पात ॥ १०१ ॥ घरमें कच्छप सर्प स्त्री दुर्जनोंका दर्शन वृक्ष नारी और गवादिका प्रसव देखना ॥ १०२ ॥ इनके दर्शनसे आगेको दुःख होना जानाजाता है, इस्से यह भौतिक पातक होते हैं अपवित्र वस्तु वज्रपात महामारी ॥ १०३ ॥ ज्वरमारी विषूचिका (हैजा) गौमारी वस न्तरोग जन्म नक्षत्रपर ग्रहोंका आगमन संक्रान्ति ग्रहयोग अपनी

राशिपर होना ॥ १०४ ॥ और स्वप्नका देखना यह सब आधिदैविक कहलातेहैं, मृतक चांडाल पतितका स्पर्श होना अथवा चांडालादि अन्तर गृहमें प्रवेश करैं ॥ १०५ ॥ ऐसे अरिष्ट होनेसे भी होनहार दुःख सूचित होता है, बुद्धिमानको उचित है उस दोषकी शान्तिके लिये शान्तियज्ञका अनुष्ठान करै ॥ १०६ ॥ देवालय गोठ यज्ञस्थान गृहांगण ऊँचे स्थानमें दो हाथ परिमाणकी वेदी कर उसे अलंकार कर ॥ १०७ ॥ भार (आठहजारतोले) मात्र व्रीही (जौ) धान्य स्थापन कर फैलावै बीचमें कमल लिखै, और फिर दिशाओंमें कमल लिख ॥ १०८ ॥ सूतसे लपेटै नयेघडेको धूप देकर बीचमें उस महाकुम्भको स्थापन कर दिशाओंके स्थानमें भी कुम्भ स्थापन करै ॥ १०९ ॥ नालसहित आमकी कूची आदिको आठ कलसोंमें पञ्चद्रव्य (लौंग कंकोल अगर जायफल कपूर) सहित मंत्र पढकर जलसे पूर्ण करै ॥ ११० ॥ और क्रमसे नीलादिनवरत्नोंको भी उसमें डालै, और कर्मके जाननेवाले आचार्यको स्त्रीसहित वरण कर ॥ १११ ॥ उस घटमें विष्णुकी और इन्द्रादिकी सुवर्णकी प्रतिमाको डालै पूर्णपात्रयुक्त उस मध्यम कुम्भमें विष्णुका आवाहन कर पूजा करै ॥ ११२ ॥ पूर्वादि दिशाओंमें मंत्रपूर्वक इन्द्रादि देवताओंका क्रमसे पूजन करे, उन उन देवताओंके नाम चतुर्थी विभक्तियुक्त लेकर अन्तमें नमः लगावै ॥ ११३ ॥ आचार्यसे आवाहनादि सब कृत्य करावै आचार्य उन विष्णुआदिके मंत्रोंको ऋत्विजोंके सहित सौ वार जपै ॥ ११४ ॥

दुःस्वप्नदर्शनाद्याश्चमतावैह्यधिदैविकाः ॥ शवचांडालपतितस्पर्शाद्येंतर्गृहेगते ॥ १०५ ॥ एतादृशेसमुत्पन्नेभाविदुःखस्यसूचके ॥ शांति
यज्ञंतुमतिमान्कुर्यात्तद्दोषशांतये ॥ १०६ ॥ देवालयेऽथगोष्ठेवाचैत्येवापिगृहांगणे ॥ प्रादेशोन्नतधिष्ण्येवैद्विहस्तेचस्वलंकृते ॥ १०७ ॥
भारमात्रव्रीहिधान्यंप्रस्थाप्यपरिसृत्यच ॥ मध्येविलिख्यकमलंतथादिक्षुविलिख्यवै ॥ १०८ ॥ तंतुनावेष्टितंकुंभंनवगुग्गुलधूपितम् ॥
मध्येस्थाप्यमहाकुंभंतथादिक्ष्वपिविन्यसेत् ॥ १०९ ॥ सनालाम्रककूर्चादीन्कलशांश्चतथाष्टसु ॥ पूरयेन्मंत्रपूतेनपंचद्रव्ययुतेनहि ॥
॥ ११० ॥ प्रक्षिपेन्नवरत्नानिनीलादीन्क्रमशस्तथा ॥ कर्मज्ञंचसपत्नीकमाचार्यंवरयेद् बुधः ॥ १११ ॥ सुवर्णप्रतिमांविष्णोरिंद्रादीनांच
निक्षिपेत् ॥ सशिरस्केमध्यकुंभेविष्णुमावाह्यपूजयेत् ॥ ११२ ॥ प्रागादिषुयथामंत्रमिंद्रादीन्क्रमशोयजेत् ॥ तत्तन्नाम्नाचतुर्थ्याचनमोन्ते
नयथाक्रमम् ॥ ११३ ॥ आवाहनादिकंसर्वमाचार्येणैवकारयेत् ॥ आचार्यऋत्विजासार्धंतन्मन्त्रान्प्रजपेच्छतम् ॥ ११४ ॥

जपके अन्तमें कुम्भके पश्चिमभागमें हवन करै, करोड, लाख, सहस्र, अथवा १०८ एकसौ आठ आहुतिदे ॥११५॥ एक दिन वा नौदिन अथवा चालीस दिन काल देशके अनुसार यथायोग्य जप होमकर ॥ ११६ ॥ शान्तिके निमित्त शमीका होम वृद्धिके निमित्त पलाशका होम और समिध अन्न घृतके, पदार्थ नाममंत्र उच्चारण कर हवन करै ॥ ११७ ॥ जो द्रव्य प्रारम्भमें किया है वह क्रियाके अन्ततक करे और पुण्याहवाचन कराकर अन्तमें कलशोंके जलसे प्रोक्षण करै ॥११८॥ ब्राह्मणोंको आहुतिकी संख्याके अनुसार भोजन करावै, जितनी आहुति दी हों उतनेही ब्राह्मणोंको भोजन करावै, आचार्य और ऋत्विज

कुंभस्यपश्चिमेभागेजपांतेहोममाचरेत् ॥ कोटिंलक्षंसहस्रंवाशतमष्टोत्तरंबुधाः ॥ ११५ ॥ एकाहंवानवाहंवातथामंडलमेववा ॥ यथायोग्यंप्रकुर्वीतकालदेशानुसारतः ॥ ११६ ॥ शमीहोमश्चशांत्यर्थेवृत्त्यर्थेचपलाशकम् ॥ समिदन्नाज्यकैर्द्रव्यैर्नाम्नामंत्रेणवाहुनेत् ॥ ११७ ॥ प्रारंभेयत्कृतंद्रव्यंतत्क्रियांतंसमाचरेत् ॥ पुण्याहंवाचयित्वांतेदिनेसंप्रोक्षयेज्जलैः ॥ ११८ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यावदाहुतिसंख्यया ॥ आचार्यश्चहविष्याशीऋत्विजश्चभवेद् बुधाः ॥ ११९ ॥ आदित्यादीन्ग्रहानिष्ट्वासर्वहोमांतएवहि ॥ ऋत्विग्भ्योदक्षिणांदद्यान्नवरत्नंयथाक्रमम् ॥ १२० ॥ दशदानंततःकुर्याद्भूरिदानंततःपरम् ॥ बालानामुपनीतानांगृहिणांवनिनांधनम् ॥ १२१ ॥ कन्यानांचसभर्तृणांविधवानांततःपरम् ॥ तंत्रोपकरणंसर्वमाचार्यायनिवेदयेत् ॥ १२२ ॥ उत्पातानांचमारीणांदुःखस्वामीयमःस्मृतः ॥ तस्माद्यमस्यप्रीत्यर्थंकालदानंप्रदापयेत् ॥ १२३ ॥ शतनिष्केणवाकुर्याद्दशनिष्केणवापुनः ॥ पाशांकुशधरंकालंकुर्यात्पुरुषरूपिणम् ॥ १२४ ॥

हविष अन्न भोजन करै ॥ ११९ ॥ होमान्तमें आदित्यादि सब देवताओंकी पूजा करै, ऋत्विजोंको यथाक्रमसे नवरत्नादि दक्षिणा दे ॥ १२० ॥ दश दान करै, अथवा बहुतदान करै, वा सुवर्ण दानकरै, यज्ञोपवीत हुए बालकोंको गृहस्थियोंको वनवासियोंको ॥१२१॥ सौभाग्यवती स्त्रियोंको कन्याओंको इसके पीछे विधवाओंको दानदे और तंत्रोपकरण पूजनादिकी सामग्री सम्पूर्ण आचार्यको देदे ॥ १२२ ॥ उत्पात मारी और दुःखके स्वामी यमराज हैं, इसकारण यमराजकी प्रीतिके निमित्त कालप्रतिमाका दान करै ॥ १२३ ॥ सौ निष्ककी अथवा दशनिष्ककी मूर्त्ति बनावै (अस्सी चोटलीका एक कर्ष

१०८ कर्षका एक निष्क होता है) कालको पाश अंकुशधारी पुरुषरूप बनावै ॥१२४॥ उस सुवर्णकी प्रतिमाका दान दक्षिणाके सहित करै, फिर पूर्णायुकी सिद्धिके निमित्त तिलका दान करै ॥ १२५ ॥ फिर घृतपात्रको शोधकर व्याधि दूर करनेके निमित्त दानदे, सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावै, दरिद्र हो तौ सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १२६ ॥ अथवा धन न होनेसे यथाशक्ति जिमावै; भूतादिकी शान्तिके निमित्त भैरवकी महापूजा करै ॥ १२७ ॥ अंतमें शिवका महाभिषेककर नैवेद्य समर्पण करै, पीछे अनेक प्रकारके व्यञ्जनोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १२८ ॥ इस प्रकार यज्ञ करनेसे दोष शान्त होजाताहै

तत्स्वर्णप्रतिमांदानंकुर्याद्दक्षिणयासह ॥ तिलदानंततःकुर्यात्पूर्णायुष्यप्रसिद्धये ॥ १२५ ॥ आज्यावेक्षणदानंचकुर्याद्व्याधिनिवृत्तये ॥
सहस्रंभोजयेद्विप्रान्दरिद्रःशतमेववा ॥ १२६ ॥ वित्ताभावेदरिद्रस्तुयथाशक्तिसमाचरेत् ॥ भैरवस्यमहापूजांकुर्याद्भूतादिशांतये ॥ १२७ ॥
महाभिषेकंनैवेद्यंशिवस्यान्तेतुकारयेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भूरिभोजनरूपतः ॥ १२८ ॥ एवंकृतेनयज्ञेनदोषशांतिमवाप्नुयात् ॥
शांतियज्ञमिमंकुर्याद्वर्षेवर्षेतुफाल्गुने ॥ १२९ ॥ दुर्दर्शनादौसद्योवैमासमात्रेसमाचरेत् ॥ महापापादिसंप्राप्तौकुर्याद्भैरवपूजनम् ॥
॥ १३० ॥ महाव्याधिसमुत्पत्तौसंकल्पंपुनराचरेत् ॥ सर्वाभावेदरिद्रस्तुदीपदानमथाचरेत् ॥ १३१ ॥ तदप्यशक्तःस्नात्वावैय
त्किंचिद्दानमाचरेत् ॥ दिवाकरंनमस्कुर्यान्मन्त्रेणाष्टोत्तरंशतम् ॥ १३२ ॥ सहस्रमयुतंलक्षंकोटिंवाकारयेद् बुधः ॥ नमस्कारात्मयज्ञेनतु
ष्टाःस्युःसर्वदेवताः ॥ १३३ ॥ त्वत्स्वरूपेर्पिताबुद्धिर्नतेऽशून्येचरोचति ॥ याचास्त्यस्मदहंतेतित्वयिदृष्टेविवर्जिता ॥ १३४ ॥

यह शान्तियज्ञ प्रतिवर्ष फाल्गुनमें करना चाहिये ॥ १२९ ॥ और दुर्दर्शनादिमें एक मास पर्यन्त अनुष्ठान करै और महापाप होजानेपर भैरवका पूजनकरै॥ ॥ १३० ॥ महाव्याधि और उत्पातमें संकल्प करके फिर आचमन करै और सब वस्तुका अभाव हो तौ दरिद्री दीपदान करै ॥ १३१ ॥ इसमेंभी असमर्थ हो तौ स्नान करके कुछ दानकरै और एकसौ आठ मंत्र जपकर सूर्यको नमस्कार करै ॥ १३२ ॥ अथवा दश सहस्र लक्ष अथवा करोड नमस्कार करै इस नमस्कारात्मक यज्ञसेभी सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होजातेहैं ॥ १३३ ॥ शिवजीसे यों प्रार्थना करै हे शिव! सगुण और दीप्यमान आपके स्वरूपमें

नम्र मैंने अपनी बुद्धि अर्पण करदी है, जो कुछभी हमाराहै वह मुझ सहित आपकाहै, आपके देखनेसे कोई वर्जित नहीं है ॥ १३४ ॥ मैं अपनी देहसे नम्रहूं, हे प्रभो ! आप महान्हो आपहीका होनेसे मेरा स्वरूप शून्य नहीं है मैं तुम्हारा दास हूं ॥ १३५ ॥ ऐसा कहकर आत्मयज्ञ नमस्कार पूर्वक करै फिर शिवजीको नैवेद्य समर्पणकर ताम्बूल दे ॥ १३६ ॥ एकसौ आठ शिवकी प्रदक्षिणा करै अथवा सहस्र दशसहस्र वा लक्ष वा करोड प्रदक्षिणा करै ॥ १३७ ॥ शिवकी प्रदक्षिणा करनेसे क्षणमात्रमें सब पाप नष्ट होजातेहैं, दुःखका मूल व्याधि और व्याधिका मूल पातक है ॥ १३८ ॥ धर्मसेही पाप दूर होतेहैं, यह

नम्रोऽहंहिस्वदेहेनभोमहांस्त्वमसिप्रभो ॥ नशून्योमत्स्वरूपोवैतवदासोऽस्मिसांप्रतम्॥ १३५॥यथायोग्यंस्वात्मयज्ञंनमस्कारंप्रकल्पयेत् ॥
अथात्रशिवनैवेद्यंदत्त्वातांबूलमाहरेत् ॥ १३६ ॥ शिवप्रदक्षिणंकुर्यात्स्वयमष्टोत्तरंशतम् ॥ सहस्रमयुतंलक्षंकोटिमन्येनकारयेत् ॥१३७॥
शिवप्रदक्षिणात्सर्वंपातकंनश्यतिक्षणात् ॥ दुःखस्यमूलंव्याधिर्हिव्याधेर्मूलंहिपातकम् ॥ १३८ ॥ धर्मेणैवहिपापानामपनोदनमीरितम् ॥
शिवोद्देशकृतोधर्मःक्षमःपापविनोदने ॥ १३९ ॥ अध्यक्षंशिवधर्मेषुप्रदक्षिणमितीरितम् ॥ क्रिययाजपरूपंहिप्रणवंतुप्रदक्षिणम्॥१४०॥
जननंमरणंद्वंद्वंमायाचक्रमितीरितम् ॥ शिवस्यमायाचक्रंहिबलिपीठंतदुच्यते ॥ १४१ ॥ बलिपीठंसमारभ्यप्रादक्षिण्यक्रमेणवै ॥ पदेप
दांतरंगत्वाबलिपीठंसमाविशेत् ॥ १४२ ॥ नमस्कारंततःकुर्यात्प्रदक्षिणामितीरितम् ॥ निर्गमाज्जननंप्राप्तंनमस्त्वात्मसमर्पणम् ॥१४३॥
जननंमरणंद्वंद्वंशिवमायासमर्पितम् ॥ शिवमायार्पितद्वंद्वोनपुनस्त्वात्मभाग्भवेत् ॥ १४४ ॥

शास्त्रने कहाहै, शिवके उद्देशसे जो धर्म किया जाताहै वही पाप दूरकरनेमें समर्थहै ॥ १३९ ॥ शिवधर्मोंमें प्रदक्षिणा सबसे अधिकहै, क्रियायुक्त जपरूप ॐकारही प्रदक्षिणा है ॥ १४० ॥ जन्म मरण यह दोनों मायाचक्र कहाहै, शिवका मायाचक्र बलिपीठ कहलाताहै ॥ १४१ ॥ बलिपीठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणाके क्रमसे दोचरण चलकर बलि पीठके निकट जाय ॥ १४२ ॥ नमस्कार करै इसीका नाम प्रदक्षिणाहै, प्रदक्षिणा गमनसे जन्म और नमस्कार करनेसे आत्मसमर्पण होताहै ॥ १४३ ॥ जन्ममरण यह दोनों शिवकी मायामें समर्पण करै शिवकी मायामें समर्पण करनेसे फिर आत्माको

यह दोनों नहीं होते ॥ १४४ ॥ जबतक यह देह क्रियाके अधीन है तबतक और बद्ध होनेसे जीव कहलाताहै और स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों देहोंको वश करनेको यही मुक्त होजाताहै ॥ १४५ ॥ मायाचक्रके प्रणेता शिवही परम कारणहैं, शिवकी मायासे अर्पण किये द्वंद्वको शिवही दूर करतेहैं ॥ १४६ ॥ शिवके कल्पित हृदयको शिवमें समर्पण करदे, हे ब्राह्मणों ! शिवको प्रदक्षिणा और नमस्कार बहुत प्रियहैं ॥ १४७ ॥ शिव परमात्माके निमित्त प्रदक्षिणा और नमस्कार और सोलह उपचारसे पूजा करनेका महाफल होताहै ॥ १४८ ॥ ऐसा कोई पातक नहीं जो प्रदक्षिणा करनेसे नाश न हो जाय; इस

यावद्देहंक्रियाधीनःसजीवोबद्धउच्यते॥ देहत्रयवशीकारेमोक्षइत्युच्यतेबुधैः ॥१४५॥ मायाचक्रप्रणेताहिशिवःपरमकारणम् ॥ शिवमायार्पितद्वंद्वंशिवस्तुपरिमार्जति ॥१४६॥ शिवेनकल्पितंद्वंद्वंतस्मिन्नेवसमर्पयेत् ॥ शिवस्यातिप्रियंविद्यात्प्रदक्षिणंनमोबुधाः ॥ १४७ ॥ प्रदक्षिणनमस्काराःशिवस्यपरमात्मनः ॥ षोडशैरुपचारैश्चकृतपूजाफलप्रदा ॥ १४८ ॥ प्रदक्षिणाऽविनाश्यंहिपातकंनास्तिभूतले ॥ तस्मात्प्रदक्षिणेनैवसर्वपापंविनाशयेत् ॥ १४९ ॥ शिवपूजापरोमौनीसत्यादिगुणसंयुतः ॥ क्रियातपोजपज्ञानध्यानेष्वेकैकमाचरेत् ॥ ॥ १५० ॥ ऐश्वर्यंदिव्यदेहश्चज्ञानमज्ञानसंशयः ॥ शिवसान्निध्यमित्येतेक्रियादीनांफलंभवेत् ॥ १५१ ॥ करणेनफलंयातितमसःपरिहापनात् ॥ जन्मनःपरिमार्जित्वाज्ज्ञबुद्ध्याजनितानिच ॥ १५२ ॥ यथादेशंयथाकालंयथादेहंयथाधनम् ॥ यथायोग्यंप्रकुर्वीतक्रियादीञ्छिवभक्तिमान् ॥ १५३ ॥ न्यायार्जितसुवित्तेनवसेत्प्राज्ञःशिवस्थले ॥ जीवहिंसादिरहितमतिक्लेशविवर्जितम् ॥ १५४ ॥

कारण प्रदक्षिणासेही सब पापोंका नाश करै ॥ १४९ ॥ शिवपूजाकरनेमें तत्पर मौनी सत्यादि गुणसे संयुक्त क्रिया जप तप ज्ञान ध्यानमें सम्पूर्ण वस्तु क्रमसे करै ॥ १५० ॥ ऐश्वर्य, दिव्यदेह, ज्ञानकी प्राप्ति, अज्ञानका संक्षय शिवकी निकटता यह क्रियादिका फलहै ॥ १५१ ॥ क्रियादि आचरण करनेसे अज्ञानका नाश होताहै और ब्रह्मद्वारा प्रेरित हुई बुद्धिसे जन्मके पाप दूर कर ॥ १५२ ॥ देशकाल शक्ति धनके अनुसार शिवका भक्त यथायोग्य क्रियाओंको करै ॥ १५३ ॥ बुद्धिमानको उचितहै कि शिवक्षेत्रमें न्यायसे अर्जित हुए धनसे वास करै, अर्थात् न्यायके धनसे आजीविका करै; जीवहिंसा और

क्लेशको न करै ॥ १५४ ॥ पञ्चाक्षर मंत्रसे जप करनेसे जल और अन्न सुखदायक है अथवा दरिद्रको भिक्षाका अन्नही ज्ञान देनेवाला है ॥ १५५ ॥
शिवभक्तको भिक्षाका अन्न शिवमें भक्ति बढानेहारा है; शिवयोगियोंको भिक्षान्न शिवयज्ञके समान कहा है ॥ १५६ ॥ जिस किसी उपायसे जहां कहींभी
पृथ्वीमें शुद्ध अन्न भक्षण कर मौन साधे रहै और शिवका गूढ़ रहस्य प्रकाश न करै ॥ १५७ ॥ शिवके भक्तोंकोही शिवका माहात्म्य प्रकाश करके सुनावै;
शिवमंत्रका रहस्य शिवही जानते हैं दूसरा कोई नहीं ॥ १५८ ॥ शिवका भक्त नित्य शिवलिंगके समीप वास करै; हे ब्राह्मणों ! स्थाणुलिंगके आश्रय
करनेसे शिवरूपही अचल समाधियुक्त हो जाते हैं ॥ १५९ ॥ चरलिंगकी पूजा करनेसे विद्वान् क्रमसे मुक्त होजाता है इस संहितामें शिवपद प्राप्तिके

पंचाक्षरेणजप्तंचतोयमन्नंविदुःसुखम् ॥ अथवाऽऽहुर्दरिद्रस्यभिक्षान्नंज्ञानदंभवेत् ॥ १५५ ॥ शिवभक्तस्यभिक्षान्नंशिवभक्तिविवर्धनम् ॥
शंभुसत्रमितिप्राहुर्भिक्षान्नंशिवयोगिनः ॥१५६॥ येनकेनाप्युपायेनयत्रकुत्रापिभूतले॥ शुद्धान्नभुक्सदामौनीरहस्यंनप्रकाशयेत् ॥१५७॥
प्रकाशयेत्तुभक्तानांशिवमाहात्म्यमेवहि ॥ रहस्यंशिवमंत्रस्याशिवोजानातिनापरः ॥ १५८ ॥ शिवभक्तोवसेन्नित्यंशिवलिंगंसमाश्रितः ॥
स्थाणुलिंगाश्रयेणैवस्थाणुर्भवतिभूसुराः॥१५९॥पूजयाचरलिंगस्यक्रमान्मुक्तोभवेद्ध्रुवम् ॥ सर्वमुक्तंसमासेनसाध्यसाधनमुत्तमम् ॥१६०॥
व्यासेनयत्पुराप्रोक्तंयच्छ्रुतंहिमयापुरा ॥ भद्रमस्तुहिवोऽस्माकंशिवभक्तिर्दृढाऽस्तुसा ॥ १६१ ॥ यइमंपठतेऽध्यायंयःशृणोतिनरःसदा ॥
शिवज्ञानंसलभतेशिवस्यकृपयाबुधाः ॥ १६२ ॥ ॥ इतिश्रीशैवेमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखंडेशिवलिंगमहिमवर्णनं
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सूतसूतचिरंजीवधन्यस्त्वंशिवभक्तिमान् ॥ सम्यगुक्तस्त्वयालिंगमहिमासत्फलप्रदः ॥१॥

साधन उत्तम रीतिसे संक्षेपसे वर्णन किये हैं; यह सब साधनोंमें मुख्य है इसीसे इसका नाम विद्येश्वर संहिताहै ॥ १६० ॥ जो कुछ पूर्वकालमें व्यासजीने
कहा है जो मैंने उनसे सुना है सो तुमको सुनाया. आपका और हमारा मंगल हो और आपमें शिवकी वह भक्ति दृढ हो ॥ १६१ ॥ जो मनुष्य सदा इस
अध्यायको सुनते और पढते हैं; हे महात्माओ ! वह शिवकी कृपासे शिवके ज्ञानको प्राप्त होतेहैं ॥ १६२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता
भाषाटीकायां साध्यसाधनखंडे शिवलिंगमहिमवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! चिरकालतक जिओ तुम धन्य और

शिवके भक्त हो आपने लिंगकी महिमा और फलका विषय सम्यक् प्रकारसे कहा ॥ १ ॥ पार्थिव महेश्वरकी महिमा आपने सर्वोत्कृष्ट कही है वह आपने व्यासजीसे सुनी है वह हमारे सुन्नेकी इच्छा है ॥ २ ॥ सूतजी बोले हे सम्पूर्ण ऋषियो ! आप सुनो मैं तुम्हारी भक्ति और आदरसे प्रसन्न होकर कहताहूं मैं शिवके पार्थिवलिंगकी महिमा कहताहूं ॥ ३ ॥ सब कहे हुए लिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है हे ब्राह्मणों ! उनके पूजनसे बहुत सिद्धिको प्राप्त होगये हैं ॥ ४ ॥ हरि ब्रह्मा ऋषि प्रजापति पार्थिवलिंगको पूजन करके सब अपने मनोरथको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ देवता असुर मनुष्य गंधर्व उरग

यत्रपार्थिवमाहेशलिंगस्यमहिमाधुना ॥ सर्वोत्कृष्टश्चकथितोव्यासतोब्रूहितंपुनः ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ शृणुध्वमृषयःसर्वेसद्भक्त्यादरतोखिलः ॥ शिवपार्थिवलिंगस्यमहिमाप्रोच्यतेमया ॥ ३ ॥ उक्तेष्वेतेषुलिंगेषुपार्थिवंलिंगमुत्तमम् ॥ तस्यपूजनतोविप्राबहवःसिद्धिमागताः ॥ ४ ॥ हरिर्ब्रह्माचऋषयःसप्रजापतयस्तथा ॥ संपूज्यपार्थिवंलिंगंप्रापुःसर्वेप्सितंद्विजाः ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याश्चगंधर्वोरगराक्षसाः ॥ अन्येपिबहवस्तंसंपूज्यसिद्धिंगताःपरम् ॥ ६ ॥ कृतेरत्नमयंलिंगंत्रेतायांहेमसंभवम् ॥ द्वापरेपारदंश्रेष्ठंपार्थिवंतुकलौयुगे ॥ ॥ ७ ॥ अष्टमूर्तिषुसर्वासुमूर्तिर्वैपार्थिवीवरा ॥ अनन्यपूजिताविप्रास्तपस्तस्मान्महत्फलम् ॥ ८ ॥ यथासर्वेषुदेवेषुज्येष्ठःश्रेष्ठोमहेश्वरः ॥ एवंसर्वेषुलिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ ९ ॥ यथानदीषुसर्वासुज्येष्ठाश्रेष्ठासुरापगा ॥ तथासर्वेषुलिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ १० ॥ यथासर्वेषुमंत्रेषुप्रणवोहिमहान्स्मृतः ॥ तथेदंपार्थिवंश्रेष्ठमाराध्यंपूज्यमेवहि ॥ ११ ॥ यथासर्वेषुवर्णेषुब्राह्मणःश्रेष्ठउच्यते ॥ तथासर्वेषु लिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ १२ ॥

राक्षस औरभी बहुत उनका पूजनकर परम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ सत्ययुगमें रत्नका लिंग, त्रेतामें सुवर्णका लिंग, द्वापरमें पारेका और कलियुगमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ सब आठ मूर्तियोंमें पार्थिव मूर्त्ति श्रेष्ठ हैं हे ब्राह्मणों ! उसका अनन्य पूजन करनेसे तपसे भी अधिक फल है ॥ ८ ॥ जैसे सब देवताओंमें महेश्वर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार सब लिंगोंमें पार्थिव लिंग श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥ जैसे सब नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ है इसीप्रकार सब लिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ जैसे सब मंत्रोंमें ॐकार श्रेष्ठ है इसी प्रकार पार्थिवलिंग श्रेष्ठ और पूजनीय है ॥ ११ ॥ जैसे सब वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है

इसीप्रकार सबलिंगोंमें पार्थिव श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जैसे सब पुरियोंमें काशी श्रेष्ठ है इसीप्रकार सबलिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ जैसे सब व्रतोंमें शिवरात्रिव्रत श्रेष्ठ है ऐसेही सब लिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ जिसप्रकार सब शक्तियोमें शैवी परा शक्ति है इसीप्रकार सब लिङ्गोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठहै ॥ १५ ॥ पार्थिव लिंगको करके जो और देवताकी पूजा करताहै वह पूजा और स्नानदानादिक वृथा होताहै ॥ १६ ॥ पार्थिव आराधन पवित्र और पुण्यरूप धन, आयुका बढानेवालाहै तुष्टि पुष्टि लक्ष्मीका देनेवाला और कार्यका साधन करनेवाला है ॥ १७ ॥ जो अच्छे उपचार और भक्ति

यथापुरीषुसर्वासुकाशीश्रेष्ठतमास्मृता ॥ तथासर्वेषुलिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ १३ ॥ यथाव्रतेषुसर्वेषुशिवरात्रिव्रतंपरम् ॥ तथासर्वे
षुलिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ १४ ॥ यथादेवीषुसर्वासुशैवीशक्तिःपरास्मृता ॥ तथासर्वेषुलिंगेषुपार्थिवंश्रेष्ठमुच्यते ॥ १५ ॥ प्रकृत्यपा
र्थिवंलिंगंयोन्यदेवंप्रपूजयेत् ॥ वृथाभवतिसापूजास्नानदानादिकंवृथा ॥ १६ ॥ पार्थिवाराधनंपुण्यंधन्यमायुर्विवर्धनम् ॥ तुष्टिदंपुष्टिदं
श्रीदंकार्यंसाधकसत्तमैः ॥ १७ ॥ यथालब्धोपचारैश्चभक्त्याश्रद्धासमन्वितः ॥ पूजयेत्पार्थिवंलिंगंसर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ १८ ॥
यःकृत्वापार्थिवंलिंगंपूजयेच्छुभवेदिकम् ॥ इहैवधनवाञ्च्छ्रीमानंतेरुद्रोभिजायते ॥ १९ ॥ त्रिसंध्यंयोर्चयेल्लिंगंकृत्वाबिल्वेनपार्थिवम् ॥
दशैकादशकंयावत्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २० ॥ अनेनैवस्वदेहेनरुद्रलोकेमहीयते ॥ पापहंसर्वमर्त्यानांदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ २१ ॥
जीवन्मुक्तःसवैज्ञानीशिवएवनसंशयः ॥ तस्यदर्शनमात्रेणभुक्तिर्मुक्तिश्चजायते ॥ २२ ॥ शिवंयःपूजयेन्नित्यंकृत्वालिंगंतुपार्थिवम् ॥
यावज्जीवनपर्यंतंसयातिशिवमन्दिरम् ॥ २३ ॥

श्रद्धाके सहित सब कामनाके देनेवाले पार्थिवलिंगका पूजन करताहै ॥ १८ ॥ और जो पार्थिव लिंग करके वेदीका पूजन करताहै, यहीं धनवान् लक्ष्मीवान् होकर अन्तमें रुद्रलोकको जाताहै ॥ १९ ॥ जो बिल्वपत्रसे तीनों संध्याओंमें दस ग्यारह बारह बार पूजन करताहै उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २० ॥ इसी देहसे वह रुद्रलोकको प्राप्त होताहै सब मनुष्योंके पाप उसके दर्शन और स्पर्शसे जाते रहतेहैं ॥ २१ ॥ वह ज्ञानी जीवन्मुक्त हुआ शिवरूपही है इसमें संदेह नहीं उसके दर्शनमात्रसे भुक्ति मुक्ति होजाती है ॥ २२ ॥ जो पार्थिवलिंग बनाकर नित्य शिवका पूजनकरता है और जीवनपर्यन्त

पूजन करनेवाला शिवके लोकमें जाता है ॥ २३ ॥ वह शिवपूजनसे अनन्त वर्षोंतक शिवलोकमें स्थित होता है और सकाम पूजन करनेसे भरतखण्डका राजा होता है ॥२४॥ और जो नित्य पार्थिव लिंगको कामनारहित पूजन करता है वह सदा शिवलोकमें स्थित हुआ सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होताहै॥२५॥ यदि ब्राह्मण शिवके पार्थिवलिंगका पूजन न करै तो वह शूलनामक घोर नरकको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ जिस किसी विधिसे हो लिंगको मनोहर बनावै पंचसूत्रका विचार पार्थिव लिंगमें न करै ॥ २७ ॥ अखण्डलिंग करना चाहिये खण्डयुक्त न करै, दो खण्डका करनेसे पूजा फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥

मृडेनाप्रमितान्वर्षाञ्छिवलोकेहितिष्ठति ॥ सकामःपुनरागत्यराजेन्द्रोभारतेभवेत् ॥ २४ ॥ निष्कामःपूजयेन्नित्यंपार्थिवंलिंगमुत्तमम् ॥
शिवलोकेसदातिष्ठेत्ततःसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ पार्थिवंशिवलिंगंचविप्रोयदिनपूजयेत् ॥ सयातिनरकंघोरंशूलप्रोतंसुदारुणम् ॥२६॥
यथाकथंचिद्विधिनारम्यंलिंगंप्रकारयेत् ॥ पंचसूत्रविधानंचपार्थिवेनविचारयेत् ॥ २७ ॥ अखण्डंतद्धिकर्तव्यंनविखण्डंप्रकारयेत् ॥
द्विखण्डंतुप्रकुर्वाणोनैवपूजाफलंलभेत् ॥ २८ ॥ रत्नजंहेमजंलिंगंपारदंस्फाटिकंतथा ॥ पार्थिवंपुष्परागोत्थमखंडंतुप्रकारयेत् ॥ २९ ॥
अखंडंतुचरंलिंगंद्विखंडमचरंस्मृतम् ॥ खंडाखंडविचारोयंसचराचरयोःस्मृतः ॥ ३० ॥ वेदिकातुमहाविद्यालिंगंदेवोमहेश्वरः ॥ अतोहि
स्थावरेलिंगेस्मृताश्रेष्ठादिखंडिता ॥ ३१ ॥ द्विखंडंस्थावरंलिंगंकर्तव्यंहिविधानतः ॥ अखंडंजंगमंप्रोक्तंशैवसिद्धान्तवेदिभिः ॥ ३२ ॥
द्विखंडंतुचरंलिंगंकुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः ॥ नैवसिद्धान्तवेत्तारोमुनयःशास्त्रकोविदाः ॥ ३३ ॥ अंखंडंस्थावरंलिंगंद्विखंडंचरमेवच ॥
येकुर्वन्तिनरामूढानपूजाफलभागिनः ॥ ३४ ॥

॥ २८ ॥ रत्न सुवर्ण पारद स्फटिक पार्थिव पुष्परागसे उत्पन्न अखण्ड लिंगकी कल्पना करै ॥ २९ ॥ चरलिंग अखण्ड और अचर द्विखण्ड कहलाता है यह खण्ड अखण्डका विचार चराचरमें होताहै ॥ ३० ॥ वेदिका महाविद्या है महेश्वरदेव लिंगरूपहैं इसकारण स्थावर लिंगमें द्विखण्डता कही है ॥ ३१ ॥ विधानसे स्थावर लिंग दोखण्डका करना चाहिये शैव सिद्धान्तके जाननेवालोंने जंगमको अखण्ड कहा है ॥ ३२ ॥ चरलिंगको अज्ञानसे मोहित हुए दोखण्डका करतेहैं वे मुनि शास्त्रमें पण्डित और सिद्धान्तके जाननेवाले नहीं हैं ॥ ३३ ॥ स्थावर लिंग अखण्ड और चर द्विखण्ड है जो विधिका उल्लंघन करते

हैं वे पूजाके फलभागी नहीं हैं ॥ ३४ ॥ इसकारण शास्त्रोक्त विधानसे अखण्ड और चरसंज्ञक लिंगको और दोखण्डयुक्त स्थावर लिंगको निर्माण करै ॥ ३५ ॥ अखण्डरूप चरलिंगमें करीहुई पूजा सम्पूर्णतः फलकी देनेहारीहै दोखण्डयुक्तचरमें पूजा महाहानि देतीहै ॥ ३६ ॥ अखण्ड स्थावरमें कीहुई पूजा कामयुक्त फलको नहीं देती है और विघ्न करनेवाली है ऐसा शास्त्र जानने वालोंने कहाहै ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमाविद्ये० भाषाटीकायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिंगपूजनमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ सूतजी बोले वेदज्ञाता भक्तोंको पार्थिवपूजा

तस्माच्छास्त्रोक्तविधिनाअंखंडंचरसंज्ञकम् ॥ द्विखंडंस्थावरंलिंगंकर्तव्यंपरयामुदा ॥ ३५ ॥ अखंडेतुचरेपूजासम्पूर्णफलदायिनी ॥
द्विखंडेतुचरेपूजामहाहानिप्रदास्मृता ॥ ३६ ॥ अखंडेस्थावरेपूजानकामफलदायिनी ॥ प्रत्यवायकरीनित्यमित्युक्तंशास्त्रवेदिभिः ॥
॥३७॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखण्डेपार्थिवशिवलिंगपूजनमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥
सूतउवाच ॥ अथवैदिकभक्तानांपार्थिवार्चानिगद्यते ॥ वैदिकेनैवमार्गेणभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १ ॥ सूत्रोक्तविधिनास्नात्वासंध्यां
कृत्वायथाविधि ॥ ब्रह्मयज्ञंविधायादौततस्तर्प्पणमाचरेत् ॥ २ ॥ नैत्यिकंसकलंकामंविधायानंतरंपुमान् ॥ शिवस्मरणपूर्वंहिभस्मरुद्रा
क्षधारकः ॥ ३ ॥ वेदोक्तविधिनासम्यक्संपूर्णफलसिद्धये ॥ पूजयेत्परयाभक्त्यापार्थिवंलिंगमुत्तमम् ॥ ४ ॥ नदीतीरेतडागेचपर्वते
काननेऽपिच ॥ शिवालयेशुचौदेशेपार्थिवार्चाविधीयते ॥ ५ ॥ शुद्धप्रदेशसंभूतांमृदमाहृत्ययत्नतः ॥ शिवलिंगंप्रकल्पेतसावधानतया
द्विजाः ॥ ६ ॥ विप्रेगौरास्मृताशोणाबाहुजेपीतवर्णका ॥ वैश्येकृष्णापादजातेह्यथवायत्रयाभवेत् ॥ ७ ॥

कहतेहैं जो वैदिक मार्गसे भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है ॥ १ ॥ अपने कहे सूत्रकी विधिसे स्नान करके विधिपूर्वक संध्या करके प्रथम ब्रह्मयज्ञ करके फिर तर्पण करै ॥ २ ॥ फिर यह पुरुष सम्पूर्ण नित्य कर्म करके शिवका स्मरण कर भस्म और रुद्राक्षको धारण करै ॥ ३ ॥ वेदकी विधिसे सम्पूर्ण फलकी सिद्धिके निमित्त परमभक्तिसे पार्थिवलिंगका पूजन करै ॥ ४ ॥ नदीके किनारे सरोवरके तटपर पर्वत वा वनमें शिवालय वा पवित्र देशमें पार्थिवपूजा करनी कहीहै ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! शुद्ध देशमें उत्पन्न हुई मृत्तिका यत्नसे लाकर सावधान हो शिवलिंगकी पूजा करै ॥ ६ ॥ ब्राह्मणमें गौर, रक्त

क्षत्रियमें, पीतवर्ण वैश्यमें, और शूद्रमें कृष्ण अथवा जैसीहो ॥ ७ ॥ मृत्तिका लेकर यत्नसे लिंग बनावै उस मृत्तिकाको बहुत पवित्र देशमें स्थापन करै ॥ ८ ॥ उसको जलसे संशोधन कर शनैः २ उसके पिण्ड बनाकर वेदमार्गसे सुन्दर लिंगको बनावै ॥ ९ ॥ फिर भुक्ति मुक्ति फलकी प्राप्तिके निमित्त उसका पूजन करै उसका प्रकार मैं कहताहूं तुम सावधान होकर सुनो ॥ १० ॥ ‘नमः शिवाय’ इस मंत्रसे पूजाके द्रव्यको प्रोक्षण करै ‘भूरसि’ इस मंत्रसे क्षेत्रसिद्धि करै ॥ ११ ॥ ‘आपोस्मान्’ इस मंत्रसे जलका संस्कार करै ‘नमस्तेरुद्र’ इस मंत्रसे

संगृह्यमृत्तिकांलिंगनिर्माणार्थंप्रयत्नतः ॥ अतीवशुभदेशेचस्थापयेत्तांमृदंशुभाम् ॥ ८ ॥ संशोध्यचजलेनापिपिंडीकृत्यशनैःशनैः ॥ विधीयेतशुभंलिंगंपार्थिवंवेदमार्गतः ॥ ९ ॥ ततःसंपूजयेद्भक्त्याभुक्तिमुक्तिफलाप्तये ॥ तत्प्रकारमहंवच्मिशृणुध्वंसंविधानतः ॥ १० ॥ नमःशिवायमंत्रेणार्चनंद्रव्यंचप्रोक्षयेत् ॥ भूरसीतिचमंत्रेणक्षेत्रसिद्धिंप्रकारयेत् ॥ ११ ॥ आपोस्मानितिमंत्रेणजलसंस्कारमाचरेत् ॥ नमस्तेरुद्रमंत्रेणफाटिकाबंधमुच्यते ॥ १२ ॥ शंभवायेतिमंत्रेणक्षेत्रशुद्धिंप्रकारयेत् ॥ नमःपूर्वेणकुर्यात्पंचामृतस्यापिप्रोक्षणम् ॥ १३ ॥ नीलग्रीवायमंत्रेणनमःपूर्वेणभक्तिमान् ॥ चरेच्छंकरलिंगस्यप्रतिष्ठापनमुत्तमम् ॥ १४ ॥ भक्तितस्ततएतत्तेरुद्रायेतिचमंत्रतः ॥ आसनंरमणीयंवैदद्याद्वैदिकमार्गकृत् ॥ १५ ॥ मानोमहान्तमितिचमंत्रेणावाहनंचरेत् ॥ यातेरुद्रेणमंत्रेणसंचरेदुपवेशनम् ॥ १६ ॥ मंत्रेणयामिषुमितिन्यासंकुर्य्याच्छिवस्यच ॥ अध्यवोचदितिप्रेम्णाधिवासंमनुनाचरेत् ॥ १७ ॥ मनुनासौजीवइतिदेवतान्यासमाचरेत् ॥ असौयोवसर्पतीतिचाचरेदुपसर्पणम् ॥ १८ ॥ नमोस्तुनीलग्रीवायेतिपाद्यंमनुनाहरेत् ॥ अर्घ्यंचरुद्रगायत्र्याचमनंत्र्यंबकेणच ॥ १९ ॥

स्फाटिकबंध करै ॥ १२ ॥ ‘नमः शंभवाय’ इस मंत्रसे क्षेत्रशुद्धि करै और नमः पूर्वक पंचामृतका प्रोक्षण करै ॥ १३ ॥ ‘नमो नीलग्रीवाय’ इस मंत्रसे भक्तिमान् मनुष्य शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करै ॥ १४ ॥ ‘एतत्ते रुद्राय’ इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक वेदमार्गसे रमणीय आसनदे ॥ १५ ॥ ‘मानो महान्त’ इस मंत्रसे आवाहन करै ‘याते रुद्र’ इस मंत्रसे उपवेश करै ॥ १६ ॥ ‘यामिषुम्’ इस मंत्रसे शिवका न्यास करके ‘अवोचदिति’ मंत्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करै ॥ १७ ॥ ‘असौ जीव’ इति इस मंत्रसे देवतान्यास करै ‘असौयोऽवसर्पतीति’ इससे उपसर्पण करै ॥ १८ ॥ ‘नमोस्तु नीलग्रीवाय’ इस मंत्रसे

पाद्यस्नान करै रुद्रगायत्रीसे अर्घ्य दे त्र्यम्बक मंत्रसे आचमन करावै ॥ १९ ॥ 'दधिक्राव्ण' इस मंत्रसे दधि स्नान करावै 'घृतंयाव' इस मंत्रसे घृत स्नान करावै 'पयः पृथिव्याम्' इस मंत्रसे दूधसे स्नान करावै ॥ २० ॥ 'मधुवाता, मधुनक्तं, मधुमान्' इन मंत्रोंसे ॥ २१ ॥ मधु और खांडसे स्नान करावै यह पंचामृतहै अथवा पाद्य मंत्रोंसे और पंचामृतसे स्नान करावै ॥ २२ ॥ 'मानस्तोके' इस मंत्रसे कटिबंधन करै 'नमो धृष्णवे' इससे उत्तरीय वस्त्र धारण करावै ॥ २३ ॥ 'याते हेति' इन चार मंत्रोंसे प्रेमपूर्वक भक्त जन वस्त्र समर्पण करै ॥ २४ ॥ 'नमः श्वभ्यः' इस मंत्रसे प्रेमपूर्वक गंध समर्पणकरै

पयःपृथिव्यामितिचपयसास्नानमाचरेत् ॥ दधिक्राव्णेतिमंत्रेणदधिस्नानंचकारयेत् ॥ २० ॥ घृतंस्नानेखलुघृतंघृतंयावेतिमंत्रतः ॥
मधुवातामधुनक्तंमधुमान्नइतित्र्यृचा ॥ २१ ॥ मधुखंडस्नपनंप्रोक्तमितिपंचामृतंस्मृतम् ॥ अथवापाद्यमंत्रेणस्नानंपंचामृतेनच ॥
॥ २२ ॥ मानस्तोकेइतिप्रेम्णामंत्रेणकटिबंधनम् ॥ नमोधृष्णवेइतिवाउत्तरीयंचधापयेत् ॥ २३ ॥ यातेहेतिरितिप्रेम्णाऋक्चतुष्के
णवैदिकः ॥ शिवायविधिनाभक्तश्चरेद्वस्त्रसमर्पणम् ॥ २४ ॥ नमःश्वभ्यइतिप्रेम्णागंधंदद्यादृचासुधीः ॥ नमस्तक्षभ्यइतिचाक्षतान्मंत्रे
णचार्पयेत् ॥ २५ ॥ नमःपार्यायइतिवापुष्पमंत्रेणचार्पयेत् ॥ नमःपर्ण्यायइतिवाबिल्वपत्रसमर्पणम् ॥ २६ ॥ नमःकपर्दिनेचेतिधूपंद
द्याद्यथाविधि ॥ दीपंदद्याद्यथोक्तंतुनमआशवइत्यृचा ॥ २७ ॥ नमोज्येष्ठायमंत्रेणदद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥ मनुनात्र्यम्बकमितिपुनराचम
नंस्मृतम् ॥ २८ ॥ इमारुद्रायेतिऋचाकुर्य्यात्फलसमर्पणम् ॥ नमोव्रज्यायेतिऋचासकलंशंभवेर्पयेत् ॥ २९ ॥ मानोमहांतमितिचमा
नस्तोकेइतिततः ॥ मंत्रद्वयेनैकदशाक्षतैरुद्रान्प्रपूजयेत् ॥ ३० ॥

'नमस्तक्षभ्यः' इस मंत्रसे अक्षत दे ॥ २५ ॥ 'नमः पार्याय' इसमंत्रसे पुष्पचढावै 'नमः पर्ण्याय' इसमंत्रसे बिल्वपत्र समर्पण करै ॥ २६ ॥ 'नमःकपर्दिने' इस मंत्रसे यथाविधि धूप दे 'नम आशवे' इसमंत्रसे दीप दे ॥ २७ ॥ 'नमोज्येष्ठाय' इस मंत्रसे नैवेद्य दे 'त्र्यम्बकम्' इससे फिर आचमन करावै ॥ २८ ॥ 'इमा रुद्राय' इसमंत्रसे फलसमर्पण करै नमो 'व्रज्याय' इसमंत्रसे कलश अर्पण करै ॥ २९ ॥ 'मानो महान्त और मानस्तोके' इन दो मंत्रोंसे रुद्रोंको अक्षत चढावै ॥ ३० ॥

'हिरण्यगर्भ' इस मंत्रसे दक्षिणा दे 'देवस्यत्वो' इसमंत्रसे अभिषेक करै ॥ ३१ ॥ दीपमंत्रसे शिवका नीराजन करै और 'इमारुद्राय' इसमंत्रसे पुष्पांजलि दे ॥ ३२ ॥ 'मानो महान्त' इसमंत्रसे प्रदक्षिणाकरै और 'मानस्तोके' इसमंत्रसे साष्टांग प्रणाम करै ॥ ३३ ॥ 'एषते' इसमंत्रसे शिवको मुद्रा दिखावै, यतोयतः' इसमंत्रसे 'त्र्यम्बकं' इसमंत्रसे ॥ ३४ ॥ 'नमः सेनान्ये' इसमंत्रसे महामुद्रा दिखावै ॥ 'नमोगोभ्यः' इसमंत्रसे धेनुमुद्रा दिखावै ॥ ३५ ॥ फिर पांच मुद्रा दिखाकर शिवमंत्रका जपकरै वेदज्ञाता शतरुद्रिय मंत्रका जपकरै ॥ ३६ ॥ फिर वेदज्ञाता पञ्चांगका पाठकरै 'देवागातु' इसमंत्रसे शिवका विसर्जन

हिरण्यगर्भइतित्र्यृचादक्षिणांहिसमर्पयेत् ॥ देवस्यत्वेतिमंत्रेणह्यभिषेकंचरेद्बुधः ॥ ३१ ॥ दीपमंत्रेणवाशंभोर्नीराजनविधिंचरेत् ॥ पुष्पांजलिंचरेद्भक्त्याइमारुद्रायचत्र्यृचा ॥ ३२ ॥ मानोमहान्तमितिचचरेत्प्राज्ञःप्रदक्षिणाम् ॥ मानस्तोकेतिमंत्रेणसाष्टाङ्गंप्रणमेत्सुधीः ॥ ॥ ३३ ॥ एषतेइतिमंत्रेणशिवमुद्रांप्रदर्शयेत् ॥ यतोयतइत्यभयांज्ञानाख्यांत्र्यंबकेणच ॥ ३४ ॥ नमःसेनेतिमंत्रेप्पमहामुद्रांप्रदर्शयेत् ॥ दर्शयेद्धेनुमुद्रांचनमोगोभ्यऋचानया ॥ ३५ ॥ पंचमुद्राःप्रदर्श्याथशिवमंत्रजपंचरेत् ॥ शतरुद्रियमंत्रेणजपेद्वेदविचक्षणः ॥ ३६ ॥ ततः पंचाङ्गपाठंचकुर्य्याद्वेदविचक्षणः ॥ देवागात्वितिमंत्रेणकुर्याच्छंभोर्विसर्जनम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्तःशिवपूजायाव्यासतोवैदिकोविधिः ॥ समासतश्चशृणुतवैदिकंविधिमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ ऋचासद्योजातमितिमृदाहरणमाचरेत् ॥ वामदेवायइतिचजलप्रक्षेपमाचरेत् ॥ ३९ ॥ अघोरेणचमंत्रेणलिंगनिर्माणमाचरेत् ॥ तत्पुरुषायमंत्रेणाह्वानंकुर्याद्यथाविधि ॥ ४० ॥ संयोजयेद्वेदिकायामीशानमनुनाहरम् ॥ अन्यत्सर्वंविधानंचकुर्य्यात्संक्षेपतःसुधीः ॥ ४१ ॥ पंचाक्षरेणमंत्रेणगुरुदत्तेनवातथा ॥ कुर्य्यात्पूजांषोडशोपचारेणविधिवत्सुधीः ॥ ४२ ॥

करै ॥ ३७ ॥ यह विस्तारसे शिवपूजनकी वैदिकविधि कही है अब इस वैदिक श्रेष्ठ विधिको तुम संक्षेपसे सुनो ॥ ३८ ॥ 'सद्योजात' मंत्रसे मृत्तिका लावै 'वामदेवाय' इसमंत्रसे उसमें जलडालै ॥ ३९ ॥ 'अघो' इसमंत्रसे लिंगनिर्माण करै 'तत्पुरुषायविद्महे' इस मंत्रसे विधिपूर्वक आह्वान करै ॥ ४० ॥ 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इसमंत्रसे वेदिकामें शिवको स्थापन करै औरभी सब विधान संक्षेपसे करै ॥ ४१ ॥ पञ्चाक्षर मंत्र वा गुरुके दियेहुए मंत्रसे बुद्धिमान् विधिपूर्वक

---

१ प्रायः ये सब मंत्र रुद्राध्यायके हैं जो यजुर्वेदमें सोलहवां हैं ।

षोडशोपचारपूर्वक पूजा करै ॥ ४२ ॥ भव भवनाशक महादेवका हम ध्यान करतेहैं उग्र स्वरूप उग्रोंके नाश करनेवाले शर्व शशिमौलिके निमित्त नमस्कार है ॥ ४३ ॥ इस मंत्रसे शंकरका पूजन करै अपनी भक्तिसे भ्रमको त्याग पूजै भक्तिसेही शिव फलके देनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ यह आदरसे वैदिक पूजन वर्णन किया है हे ब्राह्मणो ! दूसरी साधारण विधिभी वर्णन करते हैं ॥ ४५ ॥ शिवके नामोंसेभी पार्थिवलिंगकी पूजा कही है हे मुनिश्रेष्ठो ! उस सबकामना देनेवालीको सुनो ॥ ४६ ॥ हर महेश्वर शंभु शूलपाणि पिनाकधारी शिव पशुपति महादेव इस क्रमसे ॥ ४७ ॥ मृत्तिकाका आहरण कर मिलाय प्रतिष्ठा

भवायभवनाशायमहादेवायधीमहि ॥ उग्रायउग्रनाशायशर्वायशशिमौलिने ॥ ४३ ॥ अनेनमनुनावापिपूजयेच्छंकरंसुधीः ॥ सुभक्त्या
चभ्रमंत्यक्काभक्त्यैवफलदःशिवः ॥ ४४ ॥ इत्यपिप्रोक्तमादृत्यवैदिकक्रमपूजनम् ॥ प्रोच्यतेन्यविधिःसम्यक्साधारणतयाद्विजाः ॥
॥ ४५ ॥ पूजापार्थिवलिंगस्यसंप्रोक्ताशिवनामभिः ॥ तांशृणुध्वंमुनिश्रेष्ठाःसर्वकामप्रदायिनीम् ॥ ४६ ॥ हरोमहेश्वरःशंभुःशूलपाणिः
पिनाकधृक् ॥ शिवःपशुपतिश्चैवमहादेवइतिक्रमात् ॥ ४७ ॥ मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेवच ॥ स्नपनंपूजनंचैवक्षमस्वेतिविसर्जनम् ॥
॥ ४८ ॥ ॐकारादिचतुर्थ्यंतैर्नमोन्तैर्नामभिःक्रमात् ॥ कर्तव्याचक्रियासर्वाभक्त्यापरमयामुदा ॥ ४९ ॥ कृत्वान्यासविधिंसम्यक्षडङ्ग
करयोस्तथा ॥ षडक्षरेणमंत्रेणततोध्यानंसमाचरेत् ॥ ५० ॥ कैलासपीठासनमध्यसंस्थंभक्तैःसनंदादिभिरर्च्यमानम् ॥ भक्तार्तिदावा
नलमप्रमेयंध्यायेदुमालिंगितविश्वभूषणम् ॥ ५१ ॥ ध्यायेन्नित्यंमहेशंरजतगिरिनिभंचारुचन्द्रावतंसंरत्नाकल्पोज्ज्वलांगंपरशुमृगवराभी
तिहस्तंप्रसन्नम् ॥ पद्मासीनंसमंतात्स्थितममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिंवसानंविश्वाद्यंविश्वबीजंनिखिलभयहरंपंचवक्त्रंत्रिनेत्रम् ॥ ५२ ॥

और आह्वानकर स्नान पूजन और क्षमा कराकर विसर्जन करै ॥ ४८ ॥ ॐकार आदिमें करके अन्तमें नमः लगाय चतुर्थ्यन्तपूर्वक नामले सब क्रिया परमभक्तिसे करनी चाहियें ॥ ४९ ॥ सम्यक् षडङ्गविधिसे न्यास करै फिर षडक्षर मंत्रसे ध्यान करै ॥ ५० ॥ कैलासमें सिंहासनके ऊपर स्थित भक्तिपूर्वक नंदिआदिसे तथा भक्तिपूर्वक भक्तोंसे पूजित हो उनके दुःख दूर करनेवाले अप्रमेय उमाको आलिंगन करतेहुए शिवका ध्यान करताहूं जो विश्वके भूषण हैं ॥ ५१ ॥ नित्य महेश्वरका ध्यान करताहूं जो चांदीके पर्वतके समान सुन्दर, चन्द्रमाके धारण करनेवाले, रत्नोंके समान उज्ज्वलशरीर, परशु और मृग

हाथमें लिये, प्रसन्नमूर्त्ति पद्मासनपर बैठे चारोंओर अमरगणोंसे सेवित, व्याघ्रका चर्म धारणकिये विश्वके पापहारी विश्वके बीज सम्पूर्णभयहारी पंचवक्र
त्रिनेत्र हैं ॥ ५२ ॥ इसप्रकार ध्यान कर पार्थिवलिंगका पूजन करै गुरुके दियेहुए पंचाक्षर मंत्रका विधिपूर्वक जप करे ॥ ५३ ॥ और स्तुतियोंसे देवेशको
प्रणाम करै और अनेक प्रकारसे शतरुद्रिय मंत्र जपै ॥ ५४ ॥ फिर हाथमें अक्षत और पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक इनमंत्रोंसे शिवजीकी प्रार्थना करै ॥ ५५ ॥
हे शिव ! आपके गुणानुवादका गानेवाला मैं आपमें मन लगायेहूं हे कृपानिधि भूतनाथ ! ऐसा जान आप हमपर प्रसन्न हो ॥ ५६ ॥ अज्ञानसे वा ज्ञानसे जो

इतिध्यात्वाचसंपूज्यपार्थिवंलिंगमुत्तमम् ॥ जपेत्पंचाक्षरंमंत्रंगुरुदत्तंयथाविधि ॥ ५३ ॥ स्तुतिभिश्चैवदेवेशंस्तुवीतप्रणमन्सुधीः ॥
नानाभिधाभिर्विप्रेन्द्राःपठेद्वैशतरुद्रियम् ॥ ५४ ॥ ततःसाक्षतपुष्पाणिगृहीत्वांजलिनामुदा ॥ प्रार्थयेच्छंकरंभक्त्यामंत्रैरेभिःसुभक्तितः ॥
॥ ५५ ॥ तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोहंसदामृड ॥ कृपानिधइतिज्ञात्वाभूतनाथप्रसीदमे ॥ ५६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानाज्जपपूजादिकं
मया ॥ कृतंतदस्तुसफलंकृपयातवशंकर ॥ ५७ ॥ अहंपापीमहानद्यपावनश्चभवान्महान् ॥ इतिविज्ञायगौरीशयदिच्छसितथाकुरु ॥
॥ ५८ ॥ वेदैःपुराणैःसिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि ॥ नज्ञातोसिमहादेवकुतोहंत्वंसदाशिव ॥ ५९ ॥ यथातथात्वदीयोस्मिसर्वभावैर्महे
श्वर ॥ रक्षणीयस्त्वयाहंवैप्रसीदपरमेश्वर ॥ ६० ॥ इत्येवंचाक्षतान्पुष्पानारोप्यचशिवोपरि ॥ प्रणमेद्भक्तितश्शंभुंसाष्टांगंविधिवन्मुने ॥
॥ ६१ ॥ ततःप्रदक्षिणांकुर्याद्यथोक्तविधिनासुधीः ॥ पुनःस्तुवीतदेवेशंस्तुतिभिःश्रद्धयान्वितः ॥ ६२ ॥

हमने जप और पूजा आदि की है हे शंकर ! वह आपकी कृपासे सफल हो ॥ ५७ ॥ मैं महापापी और आप महापवित्र करनेवाले हैं ऐसा जानकर हे
गौरीश ! जो आपकी इच्छा हो तैसा करो ॥ ५८ ॥ वेद पुराण और सिद्धान्तोंमें अनेक ऋषियोंने भी आपको नहीं जाना हे महादेव ! फिर मैं कैसे
जानसक्ताहूं ॥ ५९ ॥ जैसे हो वैसे मैं सबभावसे तुम्हाराही हूं हे परमेश्वर ! प्रसन्न होकर आप हमारी रक्षा करिये ॥ ६० ॥ इसप्रकार शिवके ऊपर अक्षत
और पुष्पोंको आरोपणकर हे मुने ! विधिपूर्वक शिवको साष्टांग प्रणाम करै ॥ ६१ ॥ फिर विधिपूर्वक प्रदक्षिणा करै फिर स्तुतिसे श्रद्धापूर्वक देवेशकी

स्तुति करै ॥ ६२ ॥ फिर गलेसे शब्द करके नम्रतापूर्वक शब्द करै फिर विज्ञप्ति कर विसर्जन करै ॥ ६३ ॥ हे मुनिशार्दूलो ! इसप्रकार यह तुमसे
पार्थिवपूजा कहीहै यह भुक्ति मुक्ति तथा शिवकी भक्ति बढानेवाली है ॥ ६४ ॥ जो इस अध्यायको अच्छे मनसे प्रसन्नतापूर्वक पढताहै वह सब पापसे
विशुद्ध हो सब कामनाओंको प्राप्त होजाताहै ॥६५॥ आयु आरोग्य यश और स्वर्गका देनेवालाहै यह उत्तम आख्यान पुत्र पौत्रका सुख देनेवाला है ॥६६॥
इति श्रीशैवे महापुराणे विद्ये० भाषाटीकायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवालिंगपूजाविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ऋषि बोले हे महाभाग

ततोगलरवंकृत्वाप्रणमेच्छुचिनम्रधीः ॥ कुर्याद्विज्ञप्तिमाहृत्यविसर्जनमथाचरेत् ॥ ६३ ॥ इत्युक्तामुनिशार्दूलाःपार्थिवार्चाविधानतः ॥
भुक्तिदामुक्तिदाचैवशिवभक्तिविवर्धनी ॥ ६४ ॥ इत्यध्यायंसुचित्तेनयःपठेच्छृणुयादपि ॥ सर्वपापविशुद्धात्मासर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
॥ ६५ ॥ आयुरारोग्यदंचैवयशस्यंस्वर्ग्यमेवच ॥ पुत्रपौत्रादिसुखदमाख्यानमिदमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसं
हितायांसाध्यसाधनखण्डेपार्थिवशिवलिंगपूजाविधिवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ सूतसूतमहाभागव्यास
शिष्यनमोस्तुते ॥ सम्यगुक्तंत्वयातातपार्थिवार्चाविधानकम् ॥ १ ॥ कामनाभेदमाश्रित्यसंख्यांब्रूहिविधानतः ॥ शिवपार्थिवलिंगानां
कृपयादीनवत्सल ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ शृणुध्वमृषयःसर्वेपार्थिवार्चाविधानकम् ॥ यस्यानुष्ठानमात्रेणकृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ३ ॥
अकृत्वापार्थिवंलिंगंयोन्यदेवंप्रपूजयेत् ॥ वृथाभवतिसापूजादमदानादिकंवृथा ॥ ४ ॥ संख्यापार्थिवलिंगानांयथाकामंनिगद्यते ॥
संख्यासद्योमुनिश्रेष्ठनिश्चयेनफलप्रदा ॥ ५ ॥

सूत ! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कारहै आपने भली प्रकार पार्थिवपूजाका विधान कहा ॥ १ ॥ अब आप कामनाभेदके अनुसार शिवके पार्थिवलिंगकी
पूजा वर्णन करो हे दीनवत्सल ! आप हमारे ऊपर कृपा करो ॥ २ ॥ सूतजी बोले हे सम्पूर्ण ऋषियो ! पार्थिव पूजाका विधान सुनो जिसके अनुष्ठानसे यह
प्राणी कृतकृत्य होजाताहै ॥ ३ ॥ विना पार्थिवलिंगकी पूजा किये जो दूसरे देवताकी पूजा करताहै उसकी वह पूजा और दम दानादिक वृथा होजातेहैं ॥
॥ ४ ॥ पार्थिवलिंगकी संख्या कामनाके अनुसार कहीहै हे मुनिश्रेष्ठो ! विशेष कर यह संख्या निश्चयसे अधिक फलकी देनेवाली है ॥ ५ ॥

पहले आवाहन फिर प्रतिमापूजन प्रतिष्ठा करनी चाहिये लिंगाकारके समान यह सब पृथक् पृथक् करना चाहिये ॥ ६ ॥ विद्यार्थी पुरुष प्रसन्न होकर सहस्र पार्थिवलिंग बनाकर पूजे तौ निश्चय वह पूजन फल देनेवाला होगा ॥ ७ ॥ धनकी इच्छा करनेवाला ५०० पांचसौ, पुत्रार्थी डेढहजार, और वस्त्रार्थी पांचसौ शिवलिंगका पूजन करै ॥ ८ ॥ मोक्षकी इच्छावाला एक करोड पृथ्वीकी कामनावाला एक सहस्र, दयाकी इच्छावाला तीन सहस्र, तीर्थकी इच्छावाला दो सहस्र ॥ ९ ॥ सुहृदकी इच्छावाला तीन सहस्र, वशीकरणकी इच्छावाला आठ सौ, मारणकी इच्छावाला सातसौ; मोहनकी इच्छावाला

प्रथमावाहनंतत्रप्रतिष्ठापूजनंपृथक् ॥ लिंगाकारंसमंतत्रसर्वंज्ञेयंपृथक्पृथक् ॥ ६ ॥ विद्यार्थीपुरुषःप्रीत्यासहस्रमितपार्थिवम् ॥ पूजये
च्छिवलिंगंहिनिश्चयात्तत्फलप्रदम् ॥ ७ ॥ नरःपार्थिवलिंगानांधनार्थीचतदर्द्धकम् ॥ पुत्रार्थीसार्द्धसाहस्रंवस्त्रार्थीशतपंचकम् ॥ ८ ॥
मोक्षार्थीकोटिगुणितंभूकामश्चसहस्रकम् ॥ दयार्थीचत्रिसाहस्रंतीर्थार्थीद्विसहस्रकम् ॥ ९ ॥ सुहृत्कामीत्रिसाहस्रंवश्यार्थीशतमष्टकम् ॥
मारणार्थीसप्तशतंमोहनार्थीशताष्टकम् ॥ १० ॥ उच्चाटनपरश्चैवसहस्रंचयथोक्ततः ॥ स्तंभनार्थीसहस्रंतुद्वेषणार्थीतदर्द्धकम् ॥ ११ ॥
निगडान्मुक्तिकामस्तुसहस्रंसार्द्धमुत्तमम् ॥ महाराजभयेपंचशतंज्ञेयंविचक्षणैः ॥ १२ ॥ चौरादिसंकटेज्ञेयंपार्थिवानांशतद्वयम् ॥ डाकि
न्यादिभयेपंचशतमुक्तंचपार्थिवम् ॥ १३ ॥ दारिद्र्येपंचसाहस्रमयुतंसर्वकामदम् ॥ अथनित्यविधिंवक्ष्येशृणुध्वंमुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥
एकंपापहरंप्रोक्तंद्विलिंगंचार्थसिद्धिदम् ॥ त्रिलिंगंसर्वकामानांकारणंपरमीरितम् ॥ १५ ॥ उत्तरोत्तरमेवंस्यात्पूर्वोक्तगणनावधि ॥ मतां
तरमथोवक्ष्येसंख्यायांमुनिभेदतः ॥ १६ ॥ लिंगानामयुतंकृत्वापार्थिवानांसुबुद्धिमान् ॥ निर्भयोहिभवेन्नूनंमहाराजभयंहरेत् ॥ १७ ॥

आठसौ ॥ १० ॥ उच्चाटनमें एकसहस्र, स्तंभनमें एकसहस्र, द्वेषमें पांचसौ ॥ ११ ॥ बंधनसे छूटनेकी इच्छावाला डेढसहस्र महाराजसे भय होनेमें पांचसौ ॥ १२ ॥ चोर और राजाके भयमें २०० डाकिनी आदिके भयमें ५०० सौ ॥ १३ ॥ दरिद्रतामें ५००० सहस्र, सब काममें दशसहस्र पूजै । हे मुनिश्रेष्ठो ! सुनो अब मैं नित्यविधिको कहताहूं ॥ १४ ॥ एकलिंग पापहारी दो अर्थसिद्धि करनेवाले तीनलिंग सब कामनाओंके परमकारण कहे हैं ॥ १५ ॥ यह पूर्वोक्त गणनाकी विधि उत्तरोत्तर जाननी । संख्यामें मुनियोंके भेदसे मतान्तरका वर्णन करतेहैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् दशसहस्र पार्थिवलिंग

बनाकर निर्भय होकर महाराजके भयसे दूरहोताहै ॥ १७ ॥ कारागृहसे छूटनेके निमित्त दशसहस्रका पूजनकरै, डाकिनी आदिके भयमें सातसहस्र बनावै
॥ १८ ॥ पुत्रके निमित्त ५५ पचपनसहस्रका पूजनकरै दशसहस्र लिंगके पूजनसे कन्या संतान होतीहै ॥ १९ ॥ दशसहस्र लिंगके पूजनमें विष्णुके
ऐश्वर्यकी प्राप्ति होतीहै तथा दशसहस्र लिंगके पूजनसे अतुल ऐश्वर्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ २० ॥ जो मनुष्य एककोटि लिंगका पूजन करताहै वह शिवरूप
होजाताहै इसमें संदेह नहीं ॥ २१ ॥ पार्थिवलिंगकी पूजा कोटियज्ञके फल देनेवाली है कामार्थी मनुष्योंको नित्य भुक्ति मुक्तिकी देनेवालीहै ॥ २२ ॥

कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतंकारयेद्बुधः ॥ डाकिन्यादिभयेसप्तसहस्रंकारयेत्तथा ॥ १८ ॥ सहस्राणिपंचपंचाशदपुत्रःप्रकारयेत् ॥ लिंगाना
मयुतेनैवकन्यकासंततिंलभेत् ॥ १९ ॥ लिंगानामयुतेनैवविष्णवाद्यैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ लिंगानांप्रयुतेनैवह्यतुलांश्रियमाप्नुयात् ॥ २० ॥
कोटिमेकांतुलिंगानांयःकरोतिनरोभुवि ॥ शिवएवभवेत्सोपिनात्रकार्य्याविचारणा ॥ २१ ॥ अर्चापार्थिवलिंगानांकोटियज्ञफलप्रदा ॥
भुक्तिदामुक्तिदानित्यंततःकामार्थिनांनृणाम् ॥ २२ ॥ विनालिंगार्चनंयस्यकालोगच्छतिनित्यशः ॥ महाहानिर्भवेत्तस्यदुर्वृत्तस्यदुरा
त्मनः ॥ २३ ॥ एकतःसर्वदानानिव्रतानिविविधानिच ॥ तीर्थानिनियमायज्ञालिंगार्चाचैकतःस्मृता ॥ २४ ॥ कलौलिंगार्चनंश्रेष्ठं
तथालोकेप्रदृश्यते ॥ तथानास्तीतिशास्त्राणामेषसिद्धान्तनिश्चयः ॥ २५ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंलिंगंविविधापन्निवारणम् ॥ पूजयित्वानरो
नित्यंशिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ शिवनाममयंलिंगंनित्यंपूज्यंमहर्षिभिः ॥ यतश्चसर्वलिंगेषुतस्मात्पूज्यंविधानतः ॥ २७ ॥ उत्तमं
मध्यमंनीचंत्रिविधंलिंगमीरितम् ॥ मानतोमुनिशार्दूलास्तच्छृणुध्वंवदाम्यहम् ॥ २८ ॥

जिसका समय लिंगार्चनके विना व्यतीत होताहै उस दुरात्मा दुर्वृत्तकी महाहानि होतीहै ॥ २३ ॥ एक ओर तो सब दान और व्रत हैं तथा तीर्थ नियम
और यज्ञ हैं और एक ओर लिंगकी पूजा है ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोकमें लिंगार्चनही श्रेष्ठ कहाहै और दूसरा ऐसा पदार्थ नहीं है यह शास्त्रका निश्चयहै
॥ २५ ॥ भुक्ति मुक्तिका देनेवाला लिंग अनेक आपत्ति निवारण करताहै मनुष्य नित्य पूजनकरके शिवके सायुज्यको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ शिवनाममय
लिंगकी पूजा महर्षियोंको नित्य करनी चाहिये जिससे कि सब लिंगोंमें विधानसे पूजन कहाहै ॥ २७ ॥ उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन प्रकारका लिंग कहाहै

यह इसका मानहै हे मुनिजनो ! उसका प्रमाण श्रवण करो ॥ २८ ॥ चार अंगुल ऊंचा मनोहर वेदीसे युक्त शास्त्र जाननेवालोंने उत्तम लिंग कहाहै ॥२९॥
उससे ऊंचा मध्यम और उससे आधा अधम है इसप्रकार उत्तरोत्तर लिंग तीन प्रकारका कहा है ॥ ३० ॥ जो भक्ति श्रद्धासे युक्त होकर अनेकलिंगोंका
पूजन करताहै वह सम्पूर्ण मनोकामनाओंको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ लिंगकी आराधना करनेके समान चारों वेदोंमें कोई दूसरा पुण्य नहीं है यह सब
शास्त्रोंका निश्चय है ॥ ३२ ॥ यह सब कर्मजाल छोड़कर पण्डित परमभक्तिसे एकलिंगकाही आराधन करै ॥ ३३ ॥ लिंगके अर्चन करनेसे स्थावर
जंगमात्मक सब जगत् पूजित होजाताहै, जो संसार सागरमें मग्नहुओंको तारनेका साधन है ॥ ३४ ॥ अज्ञानतिमिरसे अंधेहुओंको तथा विषयासक्त
चित्तवालोंको लिंगाराधनके सिवाय और कोई उपाय नहीं है ॥ ३५ ॥ हरि ब्रह्मादिक देवता मुनि यक्ष राक्षस गंधर्व चारण सिद्ध दैत्य दानव ॥ ३६ ॥
नाग शेष गरुड़ पक्षी प्रजापति मनु किन्नर नर ॥ ३७ ॥ महाभक्तिसे सर्वार्थसाधकलिंगको पूजनकर अपने हृदयमें स्थित कामनाओंको प्राप्त होते हैं ॥३८॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा दूसरी जाति उस उस मंत्रसे आदरपूर्वक लिंगको पूजन करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे मुनियो ! बहुत कहनेसे क्या है स्त्री तथा अन्य जाति

चतुरंगुलमुच्छ्रायंरम्यंवेदिकयायुतम् ॥ उत्तमंलिंगमाख्यातंमुनिभिःशास्त्रकोविदैः ॥२९॥ तदर्द्धंमध्यमंप्रोक्तंतदर्द्धमधमंस्मृतम् ॥ इत्थंत्रि
विधमाख्यातमुत्तरोत्तरतःपरम् ॥३०॥ अनेकलिंगंयोनित्यंभक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ पूजयेत्सलभेत्कामान्मनसामानसेप्सितान् ॥३१॥
नालिंगाराधनादन्यत्पुण्यंवेदचतुष्टये ॥ विद्यतेसर्वशास्त्राणामेषएवविनिश्चयः॥३२॥सर्वमेतत्परित्यज्यकर्मजालमशेषतः ॥ भक्त्यापरमया
विद्वाँल्लिंगमेकंप्रपूजयेत् ॥ ३३ ॥ लिंगेर्चितेर्चितंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ संसारांबुधिमग्नानांनान्यत्तारणसाधनम् ॥ ३४ ॥ अज्ञानति
मिरांधानांविषयासक्तचेतसाम् ॥ ध्रुवोनान्योस्तिजगतिलिंगाराधनमंतरा॥३५॥हरिब्रह्मादयोदेवामुनयोयक्षराक्षसाः ॥ गंधर्वाश्चारणास्सि
द्धादैतेयादानवास्तथा ॥३६॥ नागाःशेषप्रभृतयोगरुडाद्याःखगास्तथा ॥ सप्रजापतयश्चान्येमनवःकिन्नरानराः ॥३७॥ पूजयित्वामहाभ
क्त्यालिंगंसर्वार्थसिद्धिदम् ॥ प्राप्ताःकामानभीष्टांश्चतांस्तान्सर्वान्हृदिस्थितान् ॥३८॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रोवाप्रतिलोमजः ॥ पूजये
त्सततंलिंगंतत्तन्मंत्रेणसादरम् ॥ ३९ ॥ किंबहूक्तेनमुनयःस्त्रीणामपितथान्यतः ॥ अधिकारोस्तिसर्वेषांशिवलिंगार्चनेद्विजाः ॥ ४० ॥

शिवके पूजनमें सबका अधिकार है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंको वैदिक मार्गसे पूजन करना श्रेष्ठ है दूसरे प्राणियोंको वेदसे पूजनका अधिकार नहीं है ॥ ४१ ॥ वैदिक
ब्राह्मणोंको वैदिकमार्गसे पूजा कहीहै उन्होंको और मार्गसे न करनी चाहिये यह भगवान् शिवने कहा है ॥ ४२ ॥ दधीचि गौतम आदि ब्राह्मणोंके शापसे
दग्धचित्तवालोंकी वैदिककर्ममें श्रद्धा नहीं होती वा शापसे दग्धचित्त दधीच गौतमादि के वंशोत्पन्नोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती. ॥ ४३ ॥ जो कोई
वेद और स्मृतिके कर्मको अनादरकर दूसरे कर्म करता है उसको उसका फल नहीं होता ॥ ४४ ॥ इसप्रकार शिवजीका विधिपूर्वक नैवेद्यपर्यन्त अर्चन

द्विजानां वैदिकेनापिमार्गेणाराधनंवरम् ॥ अन्येषामपिजंतूनां वैदिकेननसंमतम् ॥ ४१ ॥ वैदिकानांद्विजानांचपूजावैदिकमार्गतः ॥
कर्तव्यानान्यमार्गेणइत्याहभगवाञ्छिवः ॥ ४२ ॥ दधीचिगौतमादीनांशापेनादग्धचेतसाम् ॥ द्विजानांजायतेश्रद्धानैववैदिकक
र्मणि ॥ ४३ ॥ योवैदिकमनादृत्यकर्मस्मार्तमथापिवा ॥ अन्यत्समाचरेन्मर्त्योनसंकल्पफलंलभेत् ॥ ४४ ॥ इत्थंकृत्वार्चनंशं
भोर्नैवेद्यांतंविधानतः ॥ पूजयेदष्टमूर्तीश्चतत्रैवत्रिजगन्मयीः ॥ ४५ ॥ क्षितिरापोनलोवायुराकाशःसूर्य्यसोमकौ ॥ यजमानइति
त्वष्टौमूर्तयःपरिकीर्तिताः ॥ ४६ ॥ शर्वोभवश्चरुद्रश्चउग्रोभीमइतीश्वरः ॥ महादेवःपशुपतिरेतान्मूर्तिभिरर्चयेत् ॥ ४७ ॥ पूजयेत्परिवारं
चततःशंभोःसुभक्तितः ॥ ईशानादिक्रमात्तत्रचंदनाक्षतपत्रकैः ॥ ४८ ॥ ईशानंनंदिनंचंडंमहाकालंचभृंगिणम् ॥ वृषंस्कंदंकपर्दीशंसोमं
शुक्रंचतत्क्रमात् ॥ ४९ ॥ अग्रतोवीरभद्रंचपृष्ठेकीर्तिमुखंतथा ॥ ततएकादशान्रुद्रान्पूजयेद्विधिनाततः ॥ ५० ॥ ततःपंचाक्षरंजप्त्वाशत
रुद्रियमेवच ॥ स्तुतीर्नानाविधाःकृत्वापंचांगपठनंतथा ॥ ५१ ॥

करके त्रिजगन्मयी आठ मूर्त्तिका पूजन करै ॥ ४५ ॥ पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश चन्द्र सूर्य और यजमान ये इनकी आठ मूर्त्तियां पूज्यमान हैं॥ ४६ ॥
शर्व भव रुद्र उग्र भीम ईश्वर महादेव पशुपति इनका मूर्त्तिद्वारा अर्चन करै ॥ ४७ ॥ फिर भक्तिसे शिवके परिवारकी पूजा करै ईशानादिके क्रमसे चन्दन
अक्षत पत्र चढ़ावै ॥ ४८ ॥ ईशान नंदि चण्ड महाकाल भृंगि वृष स्कंद कपर्दी सोम शुक्र इनको क्रमसे पूजै ॥ ४९ ॥ आगे वीरभद्रका, पीठकी ओर
कीर्त्तिमुखका पूजन कर फिर ग्यारह रुद्रोंको विधिपूर्वक पूजै ॥ ५० ॥ फिर पंचाक्षरको जपकर शतरुद्रिय पाठकर अनेक प्रकारकी स्तुति कर पंचांगपाठ

करै ॥ ५१ ॥ फिर प्रदक्षिणा कर लिंगको प्रणामकर विसर्जन करै यह आदरसे सम्पूर्ण शिवका पूजन कथन किया ॥ ५२ ॥ यह कर्म रात्रिमें सदा उत्तरको मुखकर करना चाहिये इसी प्रकार उत्तरको मुख कर सदाशिवका पूजन करे ॥ ५३ ॥ शिवजीके आगे पूर्वको न बैठै न शक्तिसहित उत्तरको न प्रतीची (पश्चिम) को बैठे उत्तरको बैठे ॥ ५४ ॥ भस्म त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्षकी माला बिना तथा बिल्वपत्रके बिना शंकरका पूजन न करै ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यदि शिवपूजनमें भस्म न मिलै तौ मृत्तिकाकाही त्रिपुण्ड्र मस्तकपर धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ॥ इति श्रीशैवे महापुराणे

ततःप्रदक्षिणांकृत्वानत्वालिंगंविसर्जयेत् ॥ इतिप्रोक्तमशेषंचशिवपूजनमादरात् ॥ ५२ ॥ रात्रावुदङ्मुखःकुर्याद्देवकार्य्यंसदैवहि ॥ शिवार्चनंसदाप्येवंशुचिःकुर्यादुदङ्मुखः ॥ ५३ ॥ नप्राचीमग्रतःशंभोर्नोदीचींशक्तिसंहिताम् ॥ नप्रतीचींयतःपृष्ठमतोग्राह्यंसमाश्रयेत् ॥ ५४ ॥ विनाभस्मत्रिपुंड्रेणविनारुद्राक्षमालया ॥ बिल्वपत्रंविनानैवपूजयेच्छंकरंबुधः ॥ ५५ ॥ भस्माप्राप्तौमुनिश्रेष्ठाःप्रवृत्तेशिवपूजने ॥ तस्मान्मृदापिकर्तव्यंललाटेचत्रिपुंड्रकम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखण्डेपार्थिवपूजनवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अग्राह्यंशिवनैवेद्यमितिपूर्वंश्रुतंवचः ॥ ब्रूहितन्निर्णयंबिल्वमाहात्म्यमपिसन्मुने ॥ १ ॥ सूतउवाच ॥ शृणुध्वंमुनयःसर्वेसावधानतयाधुना ॥ सर्वंवदामिसंप्रीत्याधन्यायूयंशिवव्रताः ॥ २ ॥ शिवभक्तःशुचिःशुद्धःसद्व्रतीदृढनिश्चयः ॥ भक्षयेच्छिवनैवेद्यंत्यजेदग्राह्यभावनाम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वापिशिवनैवेद्यंयांतिपापानिदूरतः ॥ भुक्तेतुशिवनैवेद्येपुण्यान्यायांतिकोटिशः ॥ ४ ॥ अलंयागसहस्रेणाप्यलंयागार्बुदैरपि ॥ भक्षितेशिवनैवेद्येशिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥

विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ऋषि बोले हमने सुनाहै कि शिवनैवेद्य अग्राह्य है सो वह और बिल्वका माहात्म्य भी वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे मुनियो ! सावधान होकर सुनो मैं सब प्रीतिसे कहताहूं तुम शिवके भक्त धन्य हो ॥ २ ॥ शिवका भक्त पवित्र शुद्ध सद्व्रती दृढ़निश्चय शिवजीका नैवेद्य भक्षण करले अग्राह्य भावनाको छोडदे ॥ ३ ॥ शिवनैवेद्यको देखतेही पाप दूरसे भागजाते हैं और उसके भक्षणकरनेसे अनेक पुण्य प्राप्त होतेहैं ॥ ४ ॥ सहस्र और अरब यज्ञ करनेसे क्या है, शिवका नैवेद्य भक्षण करनेसे शिवके सायुज्यकी

प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ जिसके घरमें शिवके नैवेद्यका प्रचार है वह घर महापवित्र है दूसरे घरोंको भी पवित्र करता है ॥ ६ ॥ शिवका नैवेद्य आया
देख शिरसे ग्रहणकरै और शिवका स्मरणकर प्रयत्नसे भक्षणकरै ॥ ७ ॥ और आएहुए शिवके नैवेद्यको अग्राह्य मानकर भक्षणकरनेमें देरकरनेसे
मनुष्यको पाप लगता है ॥ ८ ॥ जिसकी शिवके नैवेद्य ग्रहणमें इच्छा नहीं होती वह महापापी अवश्य नरकमें पडेगा ॥ ९ ॥ हृदयमें सुवर्ण चांदीआ
दिकी बनीहुई चन्द्रकान्तवाले शिवभक्तसे यह भक्षणके योग्य है ऐसा कहाजाता है ॥ १० ॥ शिवदीक्षासे युक्त भक्त महाप्रसादसंज्ञक सब लिंगोंकी नैवेद्य

यद्गृहेशिवनैवेद्यप्रचारोपिप्रजायते ॥ तद्गृहंपावनंसर्वमन्यपावनकारणम् ॥ ६ ॥ आगतंशिवनैवेद्यंगृहीत्वाशिरसामुदा ॥ भक्षणीयंप्रयत्ने
नशिवस्मरणपूर्वकम् ॥ ७ ॥ आगतंशिवनैवेद्यमन्यदाग्राह्यमित्यपि ॥ विलंबेपापसंबंधोभवत्येवहिमानवे ॥ ८ ॥ नयस्यशिवनैवेद्यग्र
हणेच्छाप्रजायते ॥ सपापिष्ठोगरिष्ठःस्यान्नरकंयात्यपिध्रुवम् ॥ ९ ॥ हृदयेचन्द्रकान्तेचस्वर्णरूप्यादिनिर्मिते ॥ शिवदीक्षावताभक्तेने
दंभक्ष्यमितीर्य्यते ॥ १० ॥ शिवदीक्षान्वितोभक्तोमहाप्रसादसंज्ञकम् ॥ सर्वेषामपिलिंगानांनैवेद्यंभक्षयेच्छुभम् ॥ ११ ॥ अन्यदी
क्षायुजांनृणांशिवभक्तिरतात्मनाम् ॥ शृणुध्वंनिर्णयंप्रीत्याशिवनैवेद्यभक्षणे ॥ १२ ॥ शालग्रामोद्भवेलिंगेरसलिंगेतथाद्विजाः ॥ पाषाणे
राजतेस्वर्णेसुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ १३ ॥ काश्मीरेस्फाटिकेरात्नेज्योतिर्लिंगेषुसर्वशः ॥ चान्द्रायणसमंप्रोक्तंशंभोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥ १४ ॥
ब्रह्महापिशुचिर्भूत्वानिर्माल्यंयस्तुधारयेत् ॥ भक्षयित्वाद्रुतंतस्यसर्वपापंप्रणश्यति ॥ १५ ॥ चंडाधिकारोयत्रास्तितद्भोक्तव्यंनमानवैः ॥
चंडाधिकारोनोयत्रभोक्तव्यंतच्चभक्तितः ॥ १६ ॥

भक्षण करै वह शुभ है ॥ ११ ॥ औरभी दीक्षासे युक्त शिवभक्तिमें प्रीति करनेवाले मनुष्योंका शिवनैवेद्यके भक्षणमें निर्णय सुनो ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो !
शालिग्रामसे उद्भवलिंगमें तथा रसलिंगमें पाषाण रजत सुवर्णके बने देवताओंकी सिद्धिसे प्रतिष्ठितमें ॥ १३ ॥ काश्मीरमें स्फटिक रत्नज्योतिर्लिंगोंमें शिवनै
वेद्य भक्षण करना चान्द्रायण व्रतके समान फल देनेवाला है ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्याराभी पवित्र होकर जो निर्माल्य धारण करै उसके भक्षणकरनेसे सब
पाप नष्ट होजातेहैं ॥ १५ ॥ जहां चण्डाधिकार है वहां मनुष्योंको भक्षण करना उचित नहीं है, जहां चण्डका अधिकार नहीं है उसे भक्तिसे भोजन करना

चाहिये ॥ १६ ॥ बाणलिंग लोहलिंग सिद्धलिंगमें स्वयंभूलिंगमें तथा सम्पूर्ण प्रतिमाओंमें चण्डका अधिकार नहींहै ॥ १७ ॥ विधानपूर्वक स्नान करायेहुए लिंगका जो जल है उसे तीनवार पान करनेसे तीनों ताप शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥ १८ ॥ अग्राह्य शिवका नैवेद्य पत्र पुष्प फल जल यह शालिग्रामशिलाके संगसे सब पवित्र होजाताहै ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो लिंगके ऊपरका द्रव्यहै वह अग्राह्यहै और जो लिंगके स्पर्शसे पृथक् है उसे पवित्र जान्ना चाहिये ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इसप्रकार तुमसे नैवेद्यका निर्णय कहाहै अब आप सावधान हो आदरसे बिल्वपत्रका माहात्म्य सुनो ॥ २१ ॥ यह

बाणलिंगेचलौहेचसिद्धेलिंगेस्वयंभुवि ॥ प्रतिमासुचसर्वासुनचंडोधिकृतोभवेत् ॥ १७ ॥ स्नापयित्वाविधानेनयोलिंगस्नपनोदकम् ॥ त्रिःपिबेत्त्रिविधंपापंतस्येहाशुविनश्यति ॥ १८ ॥ अग्राह्यंशिवनैवेद्यंपत्रंपुष्पंफलंजलम् ॥ शालग्रामशिलासंगात्सर्वंयातिपवित्रताम् ॥ ॥ १९ ॥ लिंगोपरिचयद्द्रव्यंतदग्राह्यंमुनीश्वराः ॥ सुपवित्रंचतज्ज्ञेयंयल्लिंगस्पर्शबाह्यतः ॥ २० ॥ नैवेद्यनिर्णयःप्रोक्तइत्थंवोमुनिसत्तमाः ॥ शृणुध्वंबिल्वमाहात्म्यंसावधानतयाऽऽदरात् ॥ २१ ॥ महादेवस्वरूपोयंबिल्वोदेवैरपिस्तुतः ॥ यथाकथंचिदेतस्यमहिमाज्ञायतेकथम् ॥ २२ ॥ पुण्यतीर्थानियावंतिलोकेषुप्रथितान्यपि ॥ तानिसर्वाणितीर्थानिबिल्वमूलेवसंतिहि ॥ बिल्वमूलेमहादेवंलिंगरूपिणमव्ययम् ॥ यःपूजयतिपुण्यात्मासशिवंप्राप्नुयाद्ध्रुवम् ॥ २४ ॥ बिल्वमूलेजलैर्यस्तुमूर्द्धानमभिषिंचति ॥ ससर्वतीर्थस्नातःस्यात्सएवभुविपावनः ॥ २५ ॥ एतस्यबिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम् ॥ जलाकुलंमहादेवोदृष्ट्वातुष्टोभवत्यलम् ॥ २६ ॥ पूजयेद्बिल्वमूलंयोगंधपुष्पादिभिर्नरः ॥ शिवलोकमवाप्नोतिसंततिर्वर्द्धतेसुखम् ॥ २७ ॥

बिल्व देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हुआ महादेवका स्वरूप है इसकी महिमा कठिनतासे जानीजातीहै ॥ २२ ॥ जितने लोकमें पवित्र प्रसिद्ध तीर्थ हैं वे सब तीर्थ बिल्वमूलमें निवास करतेहैं ॥ २३ ॥ लिंगके मूलमें लिंगरूपी महादेव अविनाशीको जो पुण्यात्मा पूजन करताहै वह ध्रुव कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ ॥ २४ ॥ जो बिल्वके मूलमें शिवके ऊपर जल चढ़ाता है वह सब तीर्थमें स्नान करचुका और वह पृथ्वीमें पवित्ररूपहै ॥ २५ ॥ इस बिल्वमूलके चारोंओर जलसे भराहुआ आलवाल देखकर महादेव प्रसन्न होजातेहैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य बिल्वमूलमें गंधपुष्पादिसे पूजन करताहै वह शिवलोकको

प्राप्त होताहै उसकी संतान और सुखकी वृद्धि होतीहै ॥ २७ ॥ जो आदरसे बिल्वके मूलमें दीपमालाकी कल्पना करतेहैं वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न हो महेशके अन्तर्गत होताहै ॥ २८ ॥ बिल्वकी शाखाको ले हाथसे नये पत्ते ग्रहणकर जो बिल्वको पूजताहै वह सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ २९ ॥ बिल्वमूलमें जो शिवभक्तको भक्तिसे भोजन कराता है उसे एकके जिमानेमें करोड़गुणा फल होताहै ॥ ३० ॥ बिल्वके मूलमें दुग्धसे युक्त घृत और अन्न जो शिवभक्तके निमित्त देताहै वह दरिद्री नहीं होता ॥ ३१ ॥ शिवलिंगका पूजन सांगोपांग कहाहै हे ब्राह्मणो ! यह प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्मवालोंका

बिल्वमूलेदीपमालांयःकल्पयतिसादरम् ॥ सतत्त्वज्ञानसंपन्नोमहेशांतर्गतोभवेत् ॥ २८ ॥ बिल्वशाखांसमादायहस्तेननवपल्लवम् ॥ गृहीत्वापूजयेद्बिल्वंसचपापैःप्रमुच्यते ॥ २९ ॥ बिल्वमूलेशिवरतंभोजयेद्यस्तुभक्तितः ॥ एकंवाकोटिगुणितंतस्यपुण्यंप्रजायते ॥ ॥ ३० ॥ बिल्वमूलेक्षीरयुक्तमन्नमाज्येनसंयुतम् ॥ योदद्याच्छिवभक्तायसदरिद्रोनजायते ॥ ३१ ॥ सांगोपांगमितिप्रोक्तंशिवलिंगप्रपूजनम् ॥ प्रवृत्तानांनिवृत्तानांभेदतोद्विविधंद्विजाः ॥ ३२ ॥ प्रवृत्तानांपीठपूजासर्वपूजांसमाचरेत् ॥ ३३ ॥ अभिषेकान्तेनैवेद्यंशाल्यन्नेन समाचरेत् ॥ पूजान्तेस्थापयेल्लिंगंपुटेशुद्धेपृथग्गृहे ॥ ३४ ॥ करपूजानिवृत्तानांस्वभोज्यंतुनिवेदयेत् ॥ निवृत्तानांपरंसूक्ष्मंलिंगमेवविशिष्यते ॥ ३५ ॥ विभूत्यभ्यर्चनंकुर्याद्विभूतिंचनिवेदयेत् ॥ पूजांकृत्वातथालिंगंशिरसाधारयेत्सदा ॥ ३६ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखण्डेशिवनैवेद्यवर्णनोनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दो भेदसे कहांहै ॥ ३२ ॥ प्रवृत्तोंको पीठपूजा पृथ्वीमें सम्पूर्ण अभीष्टफलकी देनेवाली है, पात्रद्वारा प्रवृत्त हो सब पूजाको आचरण करै ॥ ३३ ॥ पूजाके अन्तमें लिंगको शुद्धस्थानमें घरमें स्थापन करे अभिषेकके अन्त नैवेद्य और शाली अन्नको दे ॥ ३४ ॥ पूजाके उपरान्त भोजन निवेदन करे निवृत्त मार्गोंको सूक्ष्मलिंग पूजन कहा है ॥ ३५ ॥ विभूतिसे अर्चनकर विभूति निवेदनकरे पूजा करके लिंगको सदा शिरपर धारण करे ॥ ३६ ॥
इति श्रीशैवे महापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां साध्यसाधनखण्डे शिवनैवेद्यबिल्वमाहात्म्यवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ ऋषयऊचुः ॥ सूतसूतमहाभागव्यासशिष्यनमोस्तुते ॥ तदेवव्यासतोब्रूहिभस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ तथारुद्राक्षमाहात्म्यंनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ त्रितयंब्रूहिसुप्रीत्याममानंदयचेतसम् ॥ २ ॥ सूतउवाच ॥ साधुपृष्टंभवद्भिश्चलोकानांहितकारकम् ॥ भवंतोवैमहाधन्याःपवित्राःकुलभूषणाः ॥ ३ ॥ येषांचैवशिवःसाक्षाद्दैवतंपरमंशुभम् ॥ सदाशिवकथालोकेवल्लभाभवतांसदा ॥ ४ ॥ तेधन्याश्चकृतार्थाश्चसफलंदेहधारणम् ॥ उद्धृतश्चकुलंतेषांयेशिवंसमुपासते ॥ ५ ॥ मुखेयस्यशिवनामसदाशिवशिवेतिच ॥ पापानिनस्पृशंत्येवखदिरांगारकंयथा ॥ ६ ॥ श्रीशिवायनमस्तुभ्यंमुखंव्याहरतेयदा ॥ तन्मुखंपावनंतीर्थंसर्वपापविनाशनम् ॥ ७ ॥ तन्मुखञ्चतथायोवैपश्यतिप्रीतिमान्नरः ॥ तीर्थजन्यंफलंतस्यभवतीतिसुनिश्चितम् ॥ ८ ॥ यत्रत्रयंसदातिष्ठेदेतच्छुभतरंद्विजाः ॥ तस्यदर्शनमात्रेणवेणीस्नानफलंलभेत् ॥ ९ ॥ शिवनामविभूतिश्चतथारुद्राक्षएवच ॥ एतत्त्रयंमहापुण्यंत्रिवेणीसदृशंस्मृतम् ॥ १० ॥ एतत्त्रयंशरीरेचयस्यतिष्ठतिनित्यशः ॥ तस्यैवदर्शनंलोकेदुर्लभंपापहारकम् ॥ ११ ॥

ऋषि बोले हे महाभाग सूत ! व्यासजीके शिष्य आपको नमस्कार है आप हमको भस्मका माहात्म्य ॥ १ ॥ तथा रुद्राक्षमाहात्म्य नाममाहात्म्य वर्णन कीजिये यह तीन वार्ता हमारे प्रसन्न करनेको कहिये ॥२॥ सूतजी बोले लोकोंके हितके निमित्त आपने भली वार्ता पूछी तुम धन्य पवित्र और कुलके भूषण हो ॥ ३ ॥ जिनको साक्षात् शिवही परमदेवता हैं उनको सदैव लोकमें शिवकी कथा प्यारीहै ॥ ४ ॥ वे धन्य और कृतार्थ हैं उनका देहधारण करना सफल है उन्होंने अपने कुलका उद्धार करदिया है जो शिवकी उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ जिसके मुखमें सदा शिव शिव ऐसा नाम है उसको पाप ऐसे स्पर्श नहीं करते हैं जैसे खैरअंगारको स्पर्श नहीं कर सकते ॥६॥ श्रीशिवके निमित्त नमस्कार है ऐसा जो कोई कहता है उसका मुख पावन तीर्थ सब पापका नाश करनेवाला है ॥ ७ ॥ प्रीतिमान् मनुष्य जो उसके मुखको देखता है उसको तीर्थका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह शुभ प्राणी जहां जहां स्थित होता है उसके दर्शनमात्रसे वेणीके स्नानका फल होता है ॥ ९ ॥ शिवनाम, विभूति, रुद्राक्ष यह तीनों महापवित्र वेणीके फलके समान हैं ॥ १० ॥ इन तीनोंको जो शरीरमें स्थित नित्य देखता है उस पापहारीका दर्शन लोकमें दुर्लभ है ॥ ११ ॥

उसका दर्शन वेणीके समान है इसमें कुछ भी अन्तर नहीं है जो ऐसा नहीं जान्ता वह पापिष्ठी है इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ जिसके मस्तकपर
विभूति नहीं अंगमें रुद्राक्ष नहीं मुखमें शिवमयी वाणी नहीं उसे अधमके समान त्यागन करदे ॥ १३ ॥ शिवनाम गंगा विभूति यमुना और रुद्राक्ष
पापनाशिनी सरस्वती है ॥ १४ ॥ जिसके शरीरमें यह तीनों हैं उसका फल एकमें स्थित है एकसेही वेणीके स्नानका फल पंडितोंने कहा है ॥ १५ ॥
ब्रह्माजीने जगत्के हितके निमित्त इसकी तौलकीहै तौ बराबरही हुआथा इसकारण पंडितोंको सदा विभूति धारण करनी चाहिये ॥ १६ ॥ उस दिनसे

तद्दर्शनंयथावेणीनोभयोरंतरंमनाक् ॥ एवंयोनविजानातिसपापिष्ठोनसंशयः ॥ १२ ॥ विभूतिर्यस्यनोभालेनांगेरुद्राक्षधारणम् ॥ नास्ये
शिवमयीवाणीतंत्यजेदधमंयथा ॥ १३ ॥ शैवंनामयथागंगाविभूतिर्यमुनामता ॥ रुद्राक्षंविधिजाप्रोक्तासर्वपापविनाशिनी ॥ १४ ॥
शरीरेचत्रयंयस्यतत्फलंचैकतःस्थितम् ॥ एकतोवेणिकायाश्चस्नानजंतुफलंबुधैः ॥ १५ ॥ तदेवंतुलितंपूर्वंब्रह्मणाहितकारिणा ॥ समानंचै
वतज्जातंतस्माद्धार्यंसदाबुधैः ॥ १६ ॥ तद्दिनंहिसमारभ्यब्रह्मविष्णवादिभिःसुरैः ॥ धार्यतेत्रितयंतच्चदर्शनात्पापहारकम् ॥ १७ ॥
ऋषयऊचुः ॥ ईदृशंहिफलंप्रोक्तंनामादित्रितयोद्भवम् ॥ तन्माहात्म्यंविशेषेणवक्तुमर्हसिसुव्रत ॥ १८ ॥ सूतउवाच ॥ ऋषयोहिमहाप्राज्ञाः
सच्छैवाज्ञानिनांवराः ॥ तन्माहात्म्यंहिसद्भक्त्याशृणुतादरतोद्विजाः ॥ १९ ॥ सुगूढमपिशास्त्रेषुपुराणेषुश्रुतिष्वपि ॥ भवत्स्नेहान्मया
विप्राःप्रकाशःक्रियतेऽधुना ॥ २० ॥ कस्तत्रितयमाहात्म्यंसंजानातिद्विजोत्तमाः ॥ महेश्वरंविनासर्वंब्रह्माण्डेसदसत्परम् ॥ २१ ॥ वच्म्यहं
नाममाहात्म्यंयथाभक्तिसमासतः ॥ शृणुतप्रीतितोविप्राःसर्वपापहरंपरम् ॥ २२ ॥

लेकर ब्रह्मा विष्णु आदि देवतोंने इन तीनोंके धारणका नियम कियाहै जो दर्शनसेही पाप हरनेवाली है ॥ १७ ॥ ऋषि बोले जब तीनोंके नामका ऐसा
फल कहाहै हे सुव्रत ! तौ विशेष करके उनका माहात्म्य हमसे कहो ॥ १८ ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो ! तुम महापंडित ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शिवके भक्त
हो आप आदरसे इनका माहात्म्य श्रवण कीजिये ॥ १९ ॥ यह शास्त्र पुराण और श्रुतियोंमें गूढ हैं हे ब्रह्माणो ! तुम्हारे स्नेहसे मैं अब प्रगट करताहूं ॥ २० ॥
हे ब्राह्मणो ! कौन सम्पूर्णतासे इनतीनोंका माहात्म्य जान सक्ता है केवल इस ब्रह्माण्डमें सत् असत्से परे शिवही जानतेहैं ॥ २१ ॥ यथाशक्ति संक्षेपसे

नाममाहात्म्य कहताहूं हे ब्राह्मणो ! उस सब पाप हरनेवाले नामकी महिमा प्रीतिसे सुनो ॥ २२ ॥ 'शिव' इतना नामही पापरूपी महापर्वतोंके जलानेको
दावाग्नि है नामलेतेही पाप अनायास दग्ध होजातेहैं यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ हे शौनक ! पापसे उत्पन्न हुये अनेक प्रकारके दुःख
हैं वे एक शिवके नामसे नष्ट होजातेहैं इसमें संदेह नहीं ॥ २४ ॥ वही वैदिक वही पुण्यात्मा वही धन्य और पण्डित है जो नित्य पृथ्वीमें शिवनामका
जप करताहै ॥ २५ ॥ उसको शीघ्र फलके देनेवाले अनेक धर्म होतेहैं हे मने ! जिसको शिवनामके जपमें विश्वास होताहै ॥ २६ ॥ शिवके नामसे

शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः ॥ भस्मीभवंत्यनायासात्सत्यंसत्यंनसंशयः ॥ २३ ॥ पापमूलानिदुःखानिविविधान्यपिशौनक ॥
शिवनामैकनश्यानिनान्यनश्यानिसर्वथा ॥२४॥ सवैदिकस्सपुण्यात्मासधन्यस्सबुधोमतः ॥ शिवनामजपासक्तोयोनित्यंभुविमानवः ॥
॥२५॥ भवंतिविविधाधर्मास्तेषांसद्यःफलोन्मुखाः ॥ येषांभवतिविश्वासःशिवनामजपेमुने ॥ २६ ॥ पातकानिविनश्यंतियावंतिशिवना
मतः ॥ भुवितावंतिपापानिक्रियंतेननरैर्मुने ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानांराशीनप्रमितान्मुने ॥ शिवनामद्रुतंप्रोक्तंनाशयत्यखिलान्नरैः ॥
॥२८॥ शिवनामतरींप्राप्यसंसाराब्धितरंतिये ॥ संसारमूलपापानितानिनश्यंत्यसंशयम् ॥ २९ ॥ संसारमूलभूतानांपातकानांमहामुने ॥
शिवनामकुठारेणविनाशोजायतेध्रुवम् ॥ ३० ॥ शिवनामामृतंपेयंपापदावानलार्दितैः ॥ पापदावाग्नितप्तानांशांतिस्तेनविनानहि ॥३१॥

पातक नष्ट होते और पवित्रता होतीहै हे मुने ! इतने तौ पापभी पृथ्वीमें नहीं हैं न इतने पाप मनुष्य करते हैं जितने नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ हे मुने !
ब्रह्महत्यादि पापोंके ढेर शिवनामके लेतेही नष्ट होजातेहैं ॥ २८ ॥ शिवनामकी नौकाको प्राप्तहो जो संसारसागरको तरजातेहैं उनके संसारमूलके
पाप नष्ट होजातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हे महामुने ! संसारके मूलभूत पातकोंका शिवनामके कुठारसे नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ पापरूपी
दावानलसे अर्दित हुओंको शिवनामरूपी अमृत पान करना चाहिये उसके विना पापरूपी दावाग्निसे दग्ध हुओंकी शान्ति नहीं होतीहै ॥ ३१ ॥

शिव इस नामकी अमृतधारासे प्लुत हुये; संसारअग्निके मध्यमें स्थितहुयेभी कभी शोच नहींकरते ॥ ३२ ॥ जिन महात्माओंको शिवनामकी महाभक्ति है
उनकी तत्काल मुक्ति होजातीहै ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वरो ! जिन्होंने अनेक जन्मतक तप कियाहै उनको सब पाप हरनेवाली शिवनामकी भक्ति होतीहै ॥
॥ ३४ ॥ जिसको शिवके साधारण नामकी अखण्ड भक्ति है उसीको मोक्ष सुलभहै औरको नहीं यह मेरा निश्चय है ॥ ३५ ॥ अनेक पाप करके भी
जो आदरसे शिवनाम जपताहै वह निःसंदेह सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ३६ ॥ जैसे वनमें दावाग्निसे वृक्ष भस्म होजातेहैं इसीप्रकार शिवनामसे सब पाप

शिवेतिनामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः ॥ संसारदवमध्येपिनशोचंतिकदाचन ॥ ३२ ॥ शिवनाम्निमहद्भक्तिर्जातायेषांमहात्मनाम् ॥ तद्वि
धानांतुसहसामुक्तिर्भवतिसर्वथा ॥ ३३ ॥ अनेकजन्मभिर्येनतपस्तप्तंमुनीश्वर ॥ शिवनाम्निभवेद्भक्तिःसर्वपापापहारिणी ॥ ३४ ॥ यस्या
साधारणंशंभुनाम्निभक्तिरखंडिता ॥ तस्यैवमोक्षःसुलभोनान्यस्येतिमतिर्मम ॥ ३५ ॥ कृत्वाप्यनेकपापानिशिवनामजपादरः ॥ सर्वपा
पविनिर्मुक्तोभवत्येवनसंशयः ॥ ३६ ॥ भवंतिभस्मसाद्वृक्षादवदग्धायथावने ॥ तथातावंतिदग्धानिपापानिशिवनामतः ॥ ३७ ॥ योनि
त्यंभस्मपूतांगःशिवनामजपादरः ॥ संतरत्येवसंसारंसघोरमपिशौनक ॥ ३८ ॥ ब्रह्मस्वहरणंकृत्वाहत्वापिब्राह्मणान्बहून् ॥ नलिप्यतेनरः
पापैःशिवनामजपादरः ॥ ३९ ॥ विलोक्यवेदानखिलाञ्छिवनामजपःपरम् ॥ संसारतारणोपायइतिपूर्वैर्विनिश्चितः ॥ ४० ॥ किंबहू
क्त्यामुनिश्रेष्ठाःश्लोकेनैकेनवच्म्यहम् ॥ शिवनाम्नोमहिमानंसर्वपापापहारिणम् ॥ ४१ ॥ पापानांहरणेशंभोर्नामःशक्तिर्हिपावनी ॥
शक्नोतिपातकंतावत्कर्तुंनापिनरःक्वचित् ॥ ४२ ॥ शिवनामप्रभावेणलेभेसद्गतिमुत्तमाम् ॥ इन्द्रद्युम्ननृपःपूर्वंमहापापःपुरामुने ॥ ४३ ॥

दूर होजातेहैं ॥ ३७ ॥ जो नित्य शरीरमें भस्म लगाये आदरसे शिवका नाम जपताहै हे शौनक ! वह घोर संसारसे तरजाता है ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणोंका
द्रव्य हरण करके ब्राह्मणोंको मारकरभी शिवनाम भक्तिसे जपनेवाला पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण वेदोंको देखकर शिवनामही परम जपहै संसारतारने
का उपाय है यही पूर्वजोंने निश्चय किया है ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वरो ! बहुत कहनेसे क्या है एकही श्लोकसे मैं कहताहूं शिवनामकी महिमा सब पापको हरने
वाली है ॥ ४१ ॥ पापोंके हरनेमें शिवकी शक्ति महापावनी है मनुष्य इतना तौ पापभी नहीं कर सक्ता ॥ ४२ ॥ शिवनामके प्रभावसे उत्तम सद्गति प्राप्त

होतीहै हे मुने ! पूर्वकालमें इन्द्रद्युम्न राजा बडा पापी था ॥ ४३ ॥ और एक ब्राह्मणकी स्त्री महापापिनी थी इनकीभी शिवनामके प्रतापसे पवित्रगंति
होगई ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमसे नामका उत्तम माहात्म्य कहा है अब सब पाप दूर करनेवाला भस्ममाहात्म्य सुनो ॥ ४५ ॥ इति श्रीशैवे
महा० विद्ये० भाषाटीकायां साध्यसाधनखंडे नाममाहात्म्यवर्णनो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूतजी बोले सब मंगलके देनेवाली दोप्रकारकी भस्म कहीहै
उसका प्रकार मैं कहताहूं सावधान होकर सुनो ॥१॥ एक महाभस्म दूसरी स्वल्पसंज्ञक है महाभस्म नानाप्रकारकी भस्म कही है ॥२॥ श्रौत स्मार्त लौकिक

तथाकाचिद्द्विजायोषासौमुनेबहुपापिनी ॥ शिवनामप्रभावेणलेभेसद्गतिमुत्तमाम् ॥ ४४ ॥ इत्युक्तंवोद्विजश्रेष्ठानाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥
शृणुध्वंभस्ममाहात्म्यंसर्वपावनपावनम् ॥ ४५ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायांसाध्यसाधनखण्डेशिवनाममाहात्म्यवर्णनोना
मत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूतउवाच ॥ द्विविधंभस्मसंप्रोक्तंसर्वमंगलदंपरम् ॥ तत्प्रकारमहंवक्ष्येसावधानतयाशृणु ॥ १ ॥ एकंज्ञेयं
महाभस्मद्वितीयंस्वल्पसंज्ञकम् ॥ महाभस्मइतिप्रोक्तंभस्मनानाविधंपरम् ॥ २ ॥ तद्भस्मत्रिविधंप्रोक्तंश्रौतंस्मार्तंचलौकिकम् ॥ भस्मैव
स्वल्पसंज्ञंहिबहुधापरिकीर्तितम् ॥ ३ ॥ श्रौतंभस्मतथास्मार्तंद्विजानामेवकीर्तितम् ॥ अन्येषामपिसर्वेषामपरंभस्मलौकिकम् ॥ ४ ॥
धारणंमंत्रतःप्रोक्तंद्विजानांमुनिपुंगवैः ॥ केवलंधारणंज्ञेयमन्येषांमंत्रवर्जितम् ॥ ५ ॥ आग्नेयमुच्यतेभस्मदग्धगोमयसंभवम् ॥ तदपिद्र
व्यमित्युक्तंत्रिपुंड्रस्यमहामुने ॥ ६ ॥ अग्निहोत्रोत्थितंभस्मसंग्राह्यंवामनीषिभिः ॥ अन्ययज्ञोत्थितंवापित्रिपुण्ड्रस्यचधारणे ॥ ७ ॥

तीनप्रकारकी भस्म कही है स्वल्पसंज्ञक भस्म भी बहुधा कही है ॥ ३ ॥ श्रौत स्मार्त भस्म ब्राह्मणोंको कही है और दूसरोंको लौकिक भस्म कहीहै॥ ४ ॥
ब्राह्मणोंको मंत्रोंसे भस्मधारण करना कहा है दूसरोंको मंत्रवर्जित धारण करना कहाहै ॥ ५ ॥ गोबरसे बनीहुई भस्म आग्नेय है हे महामुने ! त्रिपुण्ड्रका
यही द्रव्य है ॥ ६ ॥ अथवा विद्वानोंको अग्निहोत्रकी भस्म धारण करनी चाहिये तथा दूसरे यज्ञसे प्रादुर्भूत भस्म त्रिपुण्ड्र धारणमें युक्त है ॥ ७ ॥

जाबालउपनिषदमें लिखेहुए अग्निरित्यादि मंत्रोंसे सातवार भस्म जलसे उद्धूलन[1] करनी चाहिये ॥ ८ ॥ वर्णोंको आश्रमोंको मंत्रोंसे आदरसे जाबालिने मंत्रपूर्वक त्रिपुण्ड्र औरं उद्धूलन करना कहा है ॥ ९ ॥ भस्मसे उद्धूलन और तिरछा त्रिपुण्ड्र प्रमादसे मोक्षार्थी न त्यागन करै ऐसी श्रुति है ॥ १० ॥ शिव विष्णुसे तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया हुआ उमादेवी और लक्ष्मीसे नित्य प्रशंसित होता है ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र संकरजाति तथा अपभ्रंशोंसे भी त्रिपुण्ड्रद्वारा भस्म और उद्धूलन धारण कियागया है ॥ १२ ॥ भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धासे नहीं लगाते उनका वर्णाश्रमयुक्त समाचार नहीं है ॥ १३ ॥ उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धासे नहीं करते हैं वह संसारसागरसे कोटिजन्मोंमें भी मुक्त नहीं होते ॥ १४ ॥ उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धासे नहीं करते हैं उनको सौ करोड कल्पमें भी शिवज्ञान नहीं होता है ॥ १५ ॥ उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धासे नहीं करते वे महापातकी हैं यह शास्त्रीय निर्णय है ॥ १६ ॥ उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धासे नहीं करते हैं उनका सब आचरण विपरीत फलके निमित्त है ॥ १७ ॥ हे मुने !

अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्जाबालोपनिषद्गतैः ॥ सप्तभिर्धूलनंकार्यंभस्मनासजलेनच ॥ ८ ॥ वर्णानामाश्रमाणांचमंत्रतोमंत्रतोपिच ॥ त्रिपुंड्रो
द्धूलनंप्रोक्तंजाबालैरादरेणच ॥ ९ ॥ भस्मनोद्धूलनंचैवयथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ प्रमादादपिमोक्षार्थीनत्यजेदितिविश्रुतिः ॥ १० ॥
शिवेनविष्णुनाचैवतथातिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ उमादेवीचलक्ष्मीश्चवाचान्याभिश्चनित्यशः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैःशूद्रैरपिचसंकरैः ॥
अपभ्रंशैर्धृतंभस्मत्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १२ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरंतिये ॥ तेषांनास्तिसमाचारोवर्णाश्रमसमन्वितः ॥ १३ ॥
उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरंतिये ॥ तेषांनास्तिविनिर्मुक्तिस्संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ १४ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरन्तिये ॥
तेषांनास्तिशिवज्ञानंकल्पकोटिशतैरपि ॥ १५ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरन्तिये ॥ तेमहापातकैर्युक्ताइतिशास्त्रीयनिर्णयः ॥
॥ १६ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचश्रद्धयानाचरन्तिये ॥ तेषामाचारितंसर्वंविपरीतफलायहि ॥ १७ ॥ महापातकयुक्तानांजंतूनांशर्वविद्विषाम् ॥
त्रिपुण्ड्रोद्धूलनद्वेषोजायतेसुदृढंमुने ॥ १८ ॥

---

[1] उद्धूलन नाम शरीरमें भस्म लगानेका है ।

महापातकोंसे युक्त सब प्राणियोंका द्वेष करनेवाले जो प्राणी हैं उन्हींका त्रिपुण्ड्र और भस्मसे द्वेष है ॥ १८ ॥ जो ज्ञानी शिवाग्निसे 'त्र्यायुषेति' मंत्रसे भस्म लेकर
लगाता है वह भस्मके स्पर्श करतेही सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १९ ॥ जो श्वेत भस्मसे तीनों संध्याओंमें त्रिपुण्ड्र लगाता है वह सब पापोंसे मुक्त हो
शिवके संग प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ जो श्वेत भस्मसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाता है वह अनादिभूतलोकोंमें अमृत होता है ॥ २१ ॥ जो भस्मसे स्नान
नहीं किया हो तौ षडक्षरका जप न करै भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाकर विधिसे जपकरै ॥ २२ ॥ दयारहित या अधम वा जो सब पापोंसे युक्त है वधसे युक्त मूर्ख वा

शिवाग्निकार्यंयःकृत्वाकुर्यात्त्रियायुषात्मवित् ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तुस्पृष्टेनभस्मनानरः ॥ १९ ॥ सितेनभस्भनाकुर्य्यात्त्रिसन्ध्यंयस्त्रिपुण्ड्र
कम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःशिवेनसहमोदते ॥ २० ॥ सितेनभस्मनाकुर्याल्ललाटेतुत्रिपुण्ड्रकम् ॥ योसावनादिभूतान्हिलोकानात्तोमृतो
भवेत् ॥ २१ ॥ अकृत्वाभस्मनास्नानं नजपेद्वैषडक्षरम् ॥ त्रिपुंड्रंचरचित्वातुविधिनाभस्मनाजपेत् ॥ २२ ॥ अदयोवाधमोवापिसर्वपापा
न्वितोपिवा ॥ उषःपापान्वितोवापिमूर्खोवापतितोपिवा ॥२३॥ यस्मिन्देशेवसेन्नित्यंभूतिशासनसंयुतः ॥ सर्वतीर्थैश्चक्रतुभिःसांनिध्यंक्रि
यतेसदा ॥ २४ ॥ त्रिपुंड्रसहितोजीवःपूज्यःसर्वैःसुरासुरैः ॥ पापान्वितोपिशुद्धात्माकिंपुनःश्रद्धयायुतः ॥ २५ ॥ यस्मिन्देशेशिवज्ञानी
भूतिशासनसंयुतः ॥ गतोयदृच्छयाद्यापितस्मिंस्तीर्थाःसमागताः ॥ २६ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनधार्यंभस्मसदाबुधैः ॥ लिंगार्चनंसदाकार्यं
जप्योमंत्रःषडक्षरः ॥ २७ ॥ ब्रह्मणाविष्णुनावापिरुद्रेणमुनिभिः सुरैः ॥ भस्मधारणमाहात्म्यंनशक्यंपरिभाषितुम् ॥ २८ ॥ इति
वर्णाश्रमाचारोलुप्तवर्णक्रियोपिच ॥ पापात्सकृत्त्रिपुंड्रस्यधारणात्सोपिमुच्यते ॥ २९ ॥

पतित कैसाही हो ॥ २३ ॥ भस्म धारणकिये जिस देशमें निवास करता है वहां सर्व तीर्थ और यज्ञोंका निवास है ॥ २४ ॥ त्रिपुण्ड्रसहित जीव सुर असुर
प्राणियोंसे पूजित होता है वह पापी होकर भी शुद्धात्मा होजाता है फिर श्रद्धायुक्त करनेवालेकी तो बातही क्या है ॥ २५ ॥ जिस देशमें शिवज्ञानी
भूति शासनसे युक्त रहता है वह आते जाते सम्पूर्ण तीर्थोंका स्थान है ॥ २६ ॥ बहुत कहनेसे क्या है विद्वानोंको सदा भस्मधारण करनी चाहिये सदा लिंगार्चन
कर षडक्षर मंत्रका जप करना चाहिये ॥ २७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र मुनि देवता भी भस्मधारणके माहात्म्यको नहीं कह सक्तेहैं ॥ २८ ॥ इसप्रकार वर्ण आचार

और वर्णकी क्रिया जिसने लुप्त करदीहै वह एकवार त्रिपुण्ड्रके धारणसे सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य भस्मधारीको त्यागकर कर्म करते हैं उनकी संसारमें करोड जन्मसे भी मुक्ति नहीं होती ॥ ३० ॥ उसने गुरुके पास सब पढा और सब अनुष्ठान किया जिस ब्राह्मणने शिरपर त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य भस्मधारीको देख ताड़ना करतेहैं उनका जन्म चांडालसे उत्पन्न जानना ॥ ३२ ॥ 'मानस्तोके' इस मंत्रसे अभिमंत्रित कर भस्म धारण करै ब्राह्मण क्षत्रिय भक्तियुक्त शरीरमें लगावै ॥ ३३ ॥ 'त्र्यंबकमंत्र'से वैश्य और पंचाक्षरमंत्रसे शूद्र लगावै तथा दूसरी विधवा स्त्री भी पंचाक्षर

येभस्मधारिणंत्यक्त्वाकर्मकुर्वंतिमानवाः ॥ तेषांनास्तिविनिर्मोक्षःसंसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ ३० ॥ तेनाधीतंगुरोःसर्वंतेनसर्वमनुष्ठितम् ॥ येनविप्रेणशिरसित्रिपुंड्रंभस्मनाकृतम् ॥ ३१ ॥ येभस्मधारिणंदृष्ट्वानराःकुर्वंतिताडनम् ॥ तेषांचंडालतोजन्मब्रह्मन्नूह्यंविपश्चिता ॥ ३२ ॥ मानस्तोकेनमंत्रेणमंत्रितंभस्मधारयेत् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियश्चैवप्रोक्तेष्वंगेषुभक्तिमान् ॥ ३३ ॥ वैश्यस्त्रियंबकेनैवशूद्रःपंचाक्षरेणतु ॥ अन्येषांविधवास्त्रीणांविधिःप्रोक्तश्चशूद्रवत् ॥ ३४ ॥ पंचब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्यविधीयते ॥ त्रियंबकेनमनुनाविधिर्वैब्रह्मचारिणः ॥ ३५ ॥ अघोरेणाथमनुनाविपिनस्थविधिःस्मृतः ॥ यतिस्तुप्रणवेनैवत्रिपुंड्रादीनिकारयेत् ॥ ३६ ॥ अतिवर्णाश्रमीनित्यंशिवोहंभावनात्परात् ॥ शिवयोगीचनियतमीशानेनापिधारयेत् ॥ ३७ ॥ नत्याज्यंसर्ववर्णैश्चभस्मधारणमुत्तमम् ॥ अन्यैरपियथाजीवैस्सदेतिशिवशासनम् ॥ ॥ ३८ ॥ भस्मस्नानेनयावंतःकणाःस्वाङ्गेप्रतिष्ठिताः ॥ तावंतिशिवलिंगानितनौधत्तेहिधारकः ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चापिचसंकराः ॥ स्त्रियोथविधवाबालाःप्राप्ताःपाखंडिकास्तथा ॥ ४० ॥

मंत्रसे लगावै ॥ ३४ ॥ मनुने गृहस्थको पंचब्रह्मके मंत्रोंको कहा है और 'त्र्यंबकं' इसमंत्रसे ब्रह्मचारीको विधि कही है ॥ ३५ ॥ अघोर मंत्रसे वनमें स्थितोंकी विधि कही है यति प्रणवसेही त्रिपुण्ड्रादि लगावै॥ ३६ ॥अतिवर्णाश्रमी नित्य 'शिवोहं' ऐसी भावनासे धारै शिवयोगी ईशानमंत्रसे धारण करै॥ ३७ ॥ किसी वर्णको भी भस्म धारण त्यागना उचित नहीं है और जीवोंको भी धारनी उचित है यह शिवकी आज्ञा है ॥ ३८ ॥ भस्म स्नानसे जितने कण अपने अंगमें प्रविष्ट होते हैं उतनेही वह अपने शरीरमें शिवलिंग धारण करते हैं॥ ३९ ॥ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र संकरजाति स्त्री या विधवा बालक पाखंडी ॥ ४० ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थी वनी संन्यासी व्रती नारी यह भस्म धारण करनेसे मुक्त होतेहैं संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ ज्ञान अज्ञानसे धारण कीहुई अग्नि दाहके समान है ज्ञान अज्ञानसे धारण कीहुई भस्म सर्वथा मनुष्यको पवित्र करदेती है ॥ ४२ ॥ जो भस्म और रुद्राक्ष नहीं धारण करते उनका अन्न और जल थोड़ाभी ग्रहण न करै गृहस्थी वनी यती वर्णी अथवा संकर जाति इन्होंके यहांका भोजन करके पाप खानेवाला होताहै और नरकको जाताहै उनके यहांका भोजन कर तीन वर्ण गायत्री जपसे और संन्यासी प्रणवके जपसे पवित्र होताहै ॥ ४३ ॥ जो त्रिपुंड्रकी निन्दा करते हैं मानो वे शिवकी निन्दा

ब्रह्मचारीगृहीवन्यःसंन्यासीवाव्रतीतथा ॥ नार्योभस्मत्रिपुंड्रांकामुक्ताएवनसंशयः ॥ ४१ ॥ ज्ञानाज्ञानधृतोवापिवह्निदाहसमोयथा ॥
ज्ञानाज्ञानधृतंभस्मपावयेत्सकलंनरम् ॥ ४२ ॥ नाश्नीयाज्जलमन्नमल्पमपिवाभस्माक्षधृत्याविनाभुक्त्वावाथगृहीवनीपतियतिर्वर्णीतथासं
करः ॥ एनोभुङ्नरकंप्रयातिसतदागायत्रिजापेनतद्वर्णानांतुयतेस्तुमुख्यप्रणवाजापेनमुक्तंभवेत् ॥ ४३ ॥ त्रिपुण्ड्रंयेविनिन्दंतिनि
न्दन्तिशिवमेवते ॥ धारयंतिचयेभक्त्याधारयन्तितमेवते ॥ ४४ ॥ धिग्भस्मरहितंभालंधिग्ग्राममशिवालयम् ॥ धिगनीशार्चनं
जन्मधिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ॥ ४५ ॥ येनिंदंतिमहेश्वरंत्रिजगतामाधारभूतंहरंयेनिन्दंतित्रिपुंड्रधारणकरंदोषस्तुतद्दर्शने ॥ तेवैसंकरसूक
रासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमाजाताएवभवंतिपापपरमास्तेनारकाःकेवलम् ॥ ४६ ॥ तेदृष्ट्वाशशिभास्करौनिशिदिनेस्वप्नेपिनोकेवलंपश्यंतुश्रु
तिरुद्रसूक्तजपतोमुच्येततेनादृताः ॥ तत्संभाषणतोभवेद्धिनरकंनिस्तारवानास्थितं येभस्मादिविधारणंहिपुरुषंनिंदंतिमंदाहिते ॥ ४७ ॥

करते हैं जो उसे धारण करतेहैं वे शिवको धारण करतेहैं ॥ ४४ ॥ भस्मरहित मस्तक, शिवालयरहित ग्राम, ईश्वरके अर्चनरहित जन्म, शिवाश्रय हीन विद्याको धिक्कार है ॥ ४५ ॥ जो तीनों जगत्के आधारभूत हरकी निन्दा करतेहैं और जो त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेकी निन्दा करतेहैं उनके दर्शनमें दोषहै वे निश्चय वर्णसंकर शूकर असुर खर श्वान गीदड़ कीटके समान हैं वे पापरूप उत्पन्न हुएहैं केवल नरकहीके जानेको जन्म लेआयेहैं ॥ ४६ ॥ वे रात दिन चन्द्र सूर्यको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं देखतेहैं तहां वे आदरसे रुद्रसूक्तका जप करनेसे मुक्त होसकतेहैं उन प्रायश्चित्तियोंसे वार्ता नहीं करनी चाहिये

ऐसा करनेसे नरक होताहै जिससे फिर निस्तार नहीं है जो भस्मधारी पुरुषकी निंदा करते हैं वे महामंद हैं ॥ ४७ ॥ इस शिवयज्ञमें तांत्रिकका जो ऊर्ध्वपुण्ड्र धारी हैं उनका तथा तप्त शंखचक्र बाहोंमें लगानेवालोंका अधिकार नहीं है ॥ ४८ ॥ बृहज्जाबालके प्रेरे हुए बहुतसे लोकहैं उनको विचार कर प्रयत्नसे भस्मधारण करै ॥ ४९ ॥ जो चंदनमें मिलाकर विभूति धारण करतेहैं वहभी उचित है कुछ हो बुद्धिमान्को माथेपर विभूति अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ५० ॥ स्त्रियोंको त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये ब्राह्मणोंको तथा विधवाओंकोभी धारण करना चाहिये इसप्रकार सम्पूर्ण आश्रमवालोंको अपवर्गकी

नतांत्रिकस्त्वधिकृतोनोर्द्ध्वपुंड्रधरोमुने ॥ संततप्तचक्रचिह्नोत्रशिवयज्ञेबहिष्कृतः ॥ ४८ ॥ तत्रैतेबहवोलोकाबृहज्जाबालचोदिताः ॥ तेविचार्यांःप्रयत्नेनततोभस्मरतोभवेत् ॥ ४९ ॥ यच्चंदनैश्चंदनकेपिमिश्रंधार्यंहिभस्मैवत्रिपुंड्रभस्मना ॥ विभूतिभालोपरिकिंचनापिधार्यंसदानोयदिसंतिबुद्धयः ॥ ५० ॥ स्त्रीभिस्त्रिपुंड्रमलकावधिधारणीयंभस्मद्विजादिभिरथोविधवाभिरेवम् ॥ तद्वत्सदाश्रमवतांविशदाविभूतिर्धार्यापवर्गफलदासकलाघहन्त्री ॥ ५१ ॥ त्रिपुंड्रंकुरुतेयस्तुभस्मनाविधिपूर्वकम् ॥ महापातकसंघातैर्मुच्यतेचोपपातकैः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचारीगृहस्थोवावानप्रस्थोथवायतिः ॥ ब्रह्मक्षत्राश्चविट्शूद्रास्तथान्येपतिताधमाः ॥ ५३ ॥ उद्धूलनंत्रिपुंड्रंचधृत्वाशुद्धाभवंतिच ॥ भस्मनोविधिनासम्यक्पापराशिंविहायच ॥ ५४ ॥ भस्मधारीविशेषेणस्त्रीगोहत्यादिपातकैः ॥ वीरहत्याश्वहत्याभ्यांमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ५५ ॥ परद्रव्यापहरणंपरदाराभिमर्शनम् ॥ परनिन्दापरक्षेत्रहरणंपरपीडनम् ॥ ५६ ॥

देनेवाली और सब पाप दूर करनेवाली विभूति सदा धारण करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ जो भस्मसे विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र लगाता है वह महापातक और उपपातकोंसे भी छूट जाता है ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थी अथवा यती ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा दूसरे पतित और अधम ॥ ५३ ॥ यह भस्म और त्रिपुण्ड्र धारणसे शुद्ध होजाते हैं भस्मसे विधिपूर्वक पापराशिको छोडकर शुद्ध होजाता है ॥ ५४ ॥ भस्मका धारण करनेवाला विशेषकर स्त्री और गोहत्यादिपातक तथा वीरघोरहत्यासे मुक्त होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ पराये द्रव्यका हरना पराई स्त्रियोंका धर्षण करना पराई निन्दा करना पराया

क्षेत्रहरना दूसरोंको पीडादेनी ।।५६।। खेती और बगीचोंका हरणकरना घरोंमें अग्नि लगाना गो सुवर्ण महिषी आदिका हरणकरना तिल कंबल वस्त्र ।।५७।। नीचोंसे अन्यधान्य और जलादिका लेना दशवेश्या चाण्डाली शूद्री नटी ।। ५८ ।। रजस्वला कन्या विधवासे मैथुन करना मांस चर्म रस और लवणका विक्रय करना ।। ५९ ।। चुगली कूट वाद झूँठी साक्षी देनी इस प्रकारके अनेक पाप त्रिपुण्ड्रके धाररण करनेसे नष्ट होजाते हैं ।। ६० ।। शिवके द्रव्यका हरना शिवकी निंदा करना शिवभक्तोंकी निन्दा करना यह पाप प्रायश्चित्तसे भी नहीं जाते ॥ ६१ ॥ जिसके शरीरमें रुद्राक्ष और माथेपर त्रिपुण्ड्र है वह

सस्यारामादिहरणंगृहदाहादिकर्मच ॥ गोहिरण्यमहिष्यादितिलकम्बलवाससाम् ॥ ५७ ॥ अन्नधान्यजलादीनांनीचेभ्यश्चपरिग्रहः ॥
दशवेश्यामतंगीषुवृषलीषुनटीषुच ॥ ५८ ॥ रजस्वलासुकन्यासुविधवासुचमैथुनम् ॥ मांसचर्मरसादीनांलवणस्यचविक्रयः ॥ ५९ ॥
पैशुन्यंकूटवादश्चसाक्षिमिथ्याभिलाषिणाम् ॥ एवमादीन्यसंख्यानिपापानिविधानिच ॥ सद्यएवविनश्यंतितित्रिपुंड्रस्यचधारणात् ॥ ६० ॥
शिवद्रव्यापहरणंशिवनिंदाचकुत्रचित् ॥ निंदाचशिवभक्तानांप्रायश्चित्तैर्नशुद्ध्यति ॥ ६१ ॥ रुद्राक्षंयस्यगात्रेषुललाटेतुत्रिपुंड्रकम् ॥
सचांडालोपिसंपूज्यस्सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ॥ ६२ ॥ यानितीर्थानिलोकेस्मिन्गंगाद्यास्सरितश्चयाः ॥ स्नातोभवतिसर्वत्रललाटेयस्त्रिपुंड्रकम्
॥ ६३ ॥ सप्तकोटिमहामंत्राःपंचाक्षरपुरस्सराः ॥ तथान्येकोटिशोमंत्राःशैवकैवल्यहेतवः ॥ ६४ ॥ अन्येमंत्राश्चदेवानांसर्वसौख्यकरा
मुने ॥ तेसर्वेतस्यवश्याःस्युर्योबिभर्तित्रिपुंड्रकम् ॥ ६५ ॥ सहस्रंपूर्वजातानांसहस्रंजनयिष्यताम् ॥ स्ववंशजानांज्ञातीनामुद्धरेद्यस्त्रिपुं
ड्रकृत् ॥ ६६ ॥ इहभुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः ॥ जीवितांतेचमरणंसुखेनैवप्रपद्यते ॥ ६७ ॥

चाण्डाल होनेपर भी पूजनीय और वर्णोंमें उत्तमहै ।। ६२ ।। इसलोकमें जितने तीर्थ और गंगादि नदी हैं जिसके माथेपर त्रिपुण्ड्र है वह सब स्थानोंमें स्नान करचुका ॥ ६३ ॥ सातकरोड महामंत्र पञ्चाक्षरादि तथा औरभी करोडों मंत्र शिवमुक्तिके दाता हैं ॥ ६४ ॥ हे मुने ! औरभी दूसरे देवताओंके मंत्र सुख देनेवाले हैं परन्तु वे सब त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेके वशमें हैं ॥६५॥ सहस्रों पहले हुए और सहस्रों आगे होनेवाले अपने जातिवालोंको उद्धार करदेता है जो त्रिपुण्ड्रका धारण करनेवाला है ॥ ६६ ॥ यहां सम्पूर्ण भोगोंको भोग दीर्घआयु व्याधिसे वर्जित होकर सुखसे शरीर त्यागनकर ॥ ६७ ॥

आठ ऐश्वर्यसे युक्त दिव्य कल्याणयुक्त शरीरको प्राप्त होकर दिव्य विमानपर आरोहण कर दिव्य स्त्रियोंसे सेवितहो ॥ ६८ ॥ सम्पूर्ण विद्याधर महापराक्रमी गन्धर्व इन्द्रादि लोकपालोंके लोकमें यथाक्रमसे ॥ ६९ ॥ अनेक भोगोंको भोगकर प्रजापतियोंके लोकमें तथा ब्रह्माके पदको प्राप्त होकर सौ कन्याओंसे रमता हुआ ॥ ७० ॥ वहां ब्रह्माकी आयुपर्यन्त अनेक भोगोंको भोगकर सौ ब्रह्माकी आयुतक वहां रहताहै ॥ ७१ ॥ फिर शिवलोकको प्राप्तहो अक्षय कामनाको लेताहै फिर शिवके सायुज्यको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७२ ॥ वारंवार सम्पूर्ण उपनिषदोंके सारको देखकर यही निर्णय कियाहै

अष्टैश्वर्यगुणोपेतंप्राप्यदिव्यवपुःशिवम् ॥ दिव्यंविमानमारुह्यदिव्यत्रिदशसेवितम् ॥ ६८ ॥ विद्याधराणांसर्वेषांगंधर्वाणांमहौजसाम् ॥ इंद्रादिलोकपालानांलोकेषुचयथाक्रमम् ॥ ६९ ॥ भुक्त्वाभोगान्सुविपुलान्प्रजेशानांपदेषुच ॥ ब्रह्मणःपदमासाद्यतत्रकन्याशतंरमेत् ॥ ॥ ७० ॥ तत्रब्रह्मायुषोमानंभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ विष्णोर्लोकेलभेद्भोगंयावद्ब्रह्मशतात्ययः ॥ ७१ ॥ शिवलोकंततःप्राप्यलब्ध्वेष्टं काममक्षयम् ॥ शिवसायुज्यमाप्नोतिसंशयोनात्रजायते ॥ ७२ ॥ सर्वोपनिषदांसारंसमालोक्यमुहुर्मुहुः ॥ इदमेवहिनिर्णीतंपरंश्रेयस्त्रिपुंड्रकम् ॥७३॥ विभूतिंनिंदतेयोवैब्राह्मणःसोन्यजातकः ॥ यातिचनरकेघोरेयावद्ब्रह्माचतुर्मुखः ॥७४॥ श्राद्धेयज्ञेजपेहोमेवैश्वदेवेसुरार्चने ॥ धृतत्रिपुंड्रःपूतात्मामृत्युंजयतिमानवः ॥ ७५ ॥ जलस्नानंमलत्यागेभस्मस्नानंसदाशुचि ॥ मंत्रस्नानंहरेत्पापंज्ञानस्नानेपरंपदम् ॥ ७६ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोतिभस्मस्नानकरोनरः ॥ ७७ ॥ भस्मस्नानंपरंतीर्थंगंगास्नानंदिनेदिने ॥ भस्मरूपीशिवःसाक्षाद्भस्मत्रैलोक्यपावनम् ॥ ७८ ॥ नतत्स्नानंनतद्ध्यानंनतद्दानंजपोनसः ॥ त्रिपुंड्रेणविनायेनाविप्रेणयदनुष्ठितम् ॥ ७९ ॥

कि त्रिपुण्ड्र धारण करना श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ जो विभूतिकी निन्दा करताहै वह ब्राह्मण नहीं है अन्यजाति है वह ब्रह्माकी आयुपर्यंत नरकको जाताहै ॥ ७४ ॥ श्राद्ध यज्ञ जप होम वैश्वदेव देवार्चनमें त्रिपुण्ड्रका धारण करनेवाला मृत्युको जीतता है ॥ ७५ ॥ मलत्यागमें जलस्नान है, भस्मस्नान सदा पवित्र है, मंत्रस्नान पाप हरता है ज्ञानस्नानसे परमपद होता है ॥ ७६ ॥ सब तीर्थोंमें स्नानका जो पुण्य और फल है वह फल भस्मसे स्नान करनेवाले मनुष्यको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ भस्मस्नान परमतीर्थ है दिन दिन गंगास्नान है भस्मरूपी साक्षात् शिवहै भस्म त्रिलोकीको पवित्र करती है ॥ ७८ ॥ वह स्नान दान ध्यान

जप नहीं है जो ब्राह्मण त्रिपुण्ड्रके विना अनुष्ठान करता है ॥ ७९ ॥ वानप्रस्थको कन्याको दीक्षाहीन मनुष्योंको मध्याह्नसे पहले जलसे स्नान कर्तव्य है फिर जलवर्जित है ॥ ८० ॥ जो नित्य नियमित मनसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह शिवभक्त है भुक्ति मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥ जिसके अंगमें अनेक पुण्यका देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है और त्रिपुण्ड्रसेभी रहित है तौ उसका जन्म निरर्थक है ॥ ८२ ॥ यह त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य मैंने संक्षेपसे कहा है यह सब प्राणियोंका रहस्य तुमको गुप्त रखना उचित है ॥ ८३ ॥ हे मुने ! ललाटादि अंगोंमें त्रिपुण्ड्रकी तीन रेखा होती हैं यह पंडितोंने

वानप्रस्थस्यकन्यानांदीक्षाहीननृणांतथा ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तंपरतोजलवर्जितम् ॥ ८० ॥ एवंत्रिपुंड्रंयःकुर्य्यान्नित्यंनियतमानसः ॥ शिवभक्तःसविज्ञेयोभुक्तिमुक्तिंचविंदति ॥ ८१ ॥ यस्यांगेनैवरुद्राक्षएकोपिबहुपुण्यदः ॥ तस्यजन्मनिरर्थंस्यात्त्रिपुंड्ररहितोयदि ॥ ८२ ॥ एवंत्रिपुंड्रमाहात्म्यंसमासात्कथितंमया ॥ रहस्यंसर्वजंतूनांगोपनीयमिदंत्वया ॥ ८३ ॥ तिस्रोरेखाभवंत्येवस्थानेषुमुनिपुंगवाः ॥ ललाटादिषुसर्वेषुयथोक्तेषुबुधैर्मुने ॥ ८४ ॥ भ्रुवोर्मध्यंसमारभ्ययावदंतोभवेद्भ्रुवोः ॥ तावत्प्रमाणंसंधार्यंललाटेचत्रिपुंड्रकम् ॥ ८५ ॥ मध्यमानामिकांगुल्यामध्येतुप्रतिलोमतः ॥ अंगुष्ठेनकृतारेखात्रिपुण्ड्राख्याभिधीयते ॥ ८६ ॥ मध्येंगुलिभिरादायतिसृभिर्भस्मयत्नतः ॥ त्रिपुण्ड्रंधारयेद्भक्त्याभुक्तिमुक्तिप्रदंपरम् ॥ ८७ ॥ तिसृणामपिरेखानांप्रत्येकंनवदेवताः ॥ सर्वत्रांगेषुतावक्ष्येसावधानतयाशृणु ॥ ८८ ॥ अकारोगार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्चरजोगुणः ॥ ऋग्वेदश्चक्रियाशक्तिःप्रातःसवनमेवच ॥ ८९ ॥ महादेवश्चरेखायाःप्रथमायाश्चदेवता ॥ विज्ञेयामुनिशार्दूलाःशिवदीक्षापरायणैः ॥ ९० ॥

कहा है ॥ ८४ ॥ भौंके मध्यसे प्रारंभ कर जहांतक भौंका अन्त हो उतने प्रमाणका माथेमें त्रिपुण्ड्र धारण करै ॥ ८५ ॥ मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे मध्यमें प्रतिलोमसे अंगुष्ठसे करी हुई रेखा त्रिपुण्ड्र कहाती है ॥ ८६ ॥ तीन अंगुलियोंके मध्यसे भस्मको यत्नपूर्वक ग्रहण करके भक्तिसे त्रिपुण्ड्र धारण करे यह भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है ॥ ८७ ॥ तीनों रेखाओंके क्रमसे नौ देवता हैं वह सब अंगोंमें हैं सावधान हो सुनो मैं उनको कहता हूं ॥ ८८ ॥ अकार गार्हपत्य अग्नि है भू रजोगुण है ऋग्वेद क्रियाशक्ति और प्रातः सवनहै ॥ ८९ ॥प्रथम रेखाके महादेव देवताहैं हे मुनिश्रेष्ठ ! शिवदी

क्षामें परायणोंको यह जानना उचित है ॥ ९० ॥ उकार दक्षिणाग्नि आकाश सत्त्वगुण यजुर्वेद है मध्यदिनका सवन इच्छा शक्ति अन्तरात्मा है॥ ९१ ॥ दूसरी रेखाके महेश्वर देवता हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! यह शिवदीक्षावाले लोगोंको जानना उचित है ॥ ९२ ॥ मकार आहवनीय परमात्मारूप तमोगुण स्वर्गस्वरूप ज्ञानशक्ति सामवेद तृतीय सवनस्वरूप है ॥ ९३ ॥ तीसरी रेखाके शिव देवता हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! यह शिवदीक्षावालोंको जानना चाहिये ॥ ९४ ॥ इसप्रकार सद्भक्तिसे स्थानके देवताओंको नमस्कार करके शुद्ध हो त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे भुक्ति मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार

उकारोदक्षिणाग्निश्चनभस्तत्त्वंयजुस्तथा ॥ मध्यंदिनंचसवनमिच्छाशक्त्यंतरात्मकौ ॥ ९१ ॥ महेश्वरश्चरेखायांद्वितीयायाश्चदेवता ॥
विज्ञेयामुनिशार्दूलशिवदीक्षापरायणैः ॥ ९२ ॥ मकाराहवनीयौचपरमात्मातमोदिवौ ॥ ज्ञानशक्तिःसामवेदस्तृतीयंसवनंतथा ॥ ९३ ॥
शिवश्चैवचरेखायास्तृतीयायाश्चदेवता ॥ विज्ञेयामुनिशार्दूलशिवदीक्षापरायणैः ॥ ९४ ॥ एवंनित्यंनमस्कृत्यसद्भक्त्यास्थानदेवताः ॥
त्रिपुंड्रंधारयेच्छुद्धोभुक्तिंमुक्तिंचविंदति ॥ ९५ ॥ इत्युक्ताःस्थानदेवाश्चसर्वांगेषुमुनीश्वर ॥ तेषांसंबंधिनोभक्त्यास्थानानिशृणुसांप्रतम् ॥
॥ ९६ ॥ द्वात्रिंशत्स्थानकेवार्द्धषोडशस्थानकेपिच ॥ अष्टस्थानेतथाचैवपंचस्थानेपिनान्यसेत् ॥ ९७ ॥ उत्तमांगेललाटेचकर्णयोर्नें
त्रयोस्तथाः ॥ नासावक्त्रगलेष्वेवंहस्तद्वयअतःपरम् ॥ ९८ ॥ कूर्परेमणिबंधेचहृदयेपार्श्वयोर्द्वयोः ॥ नाभौमुष्कद्वयेचैवमूर्वोर्गुल्फेचजा
नुनि ॥ ९९ ॥ जंघाद्वयेपदद्वन्द्वेद्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् ॥ अग्न्यब्भूवायुदिग्देशदिक्पालान्वसुभिःसह ॥ १०० ॥ धराध्रुवश्चसोमश्चअप
श्चैवानिलोनलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्चवसवोष्टप्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

सब अंगके स्थान देवता कीर्तन कियेहैं अब उनके सम्बन्धी स्थान सुनो ॥ ९६ ॥ बत्तीस स्थानमें, सोलह स्थानमें, आठस्थानमें तथा पांचस्थानमें न्यास न करै ॥ ९७ ॥ शिर मस्तक ललाट कान नेत्र नासिका मुख गला दोनों हाथ ॥ ९८ ॥ कूर्पर मणिबंध हृदय दोनों पार्श्व नाभि मुष्कदेश ऊरू गुल्फ जानु ॥ ९९ ॥ दोनों जंघा दोनों पैर यह ३२ स्थान श्रेष्ठहैं अग्नि भू वायु दिग्देश वसुओंके सहित दिक्पाल ॥ १०० ॥ धरा ध्रुव सोम जल पवन अग्नि

प्रत्यूष प्रभास आठों वसु ॥ १ ॥ इनके नाममात्रसे पण्डितजन त्रिपुण्ड्र धारण करैं अथवा सोलह स्थानमें त्रिपुण्ड्र धारणकरैं ॥ २ ॥ शिर ललाट कंठ दोनों कंधे दोनों भुजा कूर्पर मणिबंध हृदय नाभि दोनों पार्श्व ॥ ३ ॥ तथा पीठमें स्थापितकर अश्विनीकुमारका यजनकरै शिव शक्ति रुद्र ईश नारद ॥४॥ और वामादि नौ शक्ति यह सोलह देवता नासत्य और दस्र ये दो अश्विनीकुमार ॥ ५ ॥ अथवा शिर केश कान मुख बाहु हृदय नाभि दोनों ऊरु ॥६॥ दोनों जानु चरण पृष्ठभाग इन सोलह स्थानोंमें लगावै, शिव चन्द्र रुद्र ब्रह्मा विघ्नेश विष्णु ॥ ७ ॥ श्री हृदयमें शिव नाभिमें प्रजापति नाग नागकन्या

एतेषांनाममात्रेणत्रिपुंड्रंधारयेद्बुधाः ॥ कुर्याद्वाषोडशस्थानेत्रिपुंड्रंतुसमाहितः ॥ २ ॥ शीर्षकेचललाटेचकंठेचांसद्वयेभुजे ॥ कूर्परेमणिबंधेचहृदयेनाभिपार्श्वके ॥ ३ ॥ पृष्ठेचैवंप्रतिष्ठाययजेत्तत्राश्विदैवते ॥ शिवंशक्तिंतथारुद्रमीशंनारदमेवच ॥ ४ ॥ वामादिनवशक्तीश्चएताः षोडशदेवताः ॥ नासत्योदस्रकश्चैवअश्विनौद्वौप्रकीर्तितौ ॥ ५ ॥ अथवामूर्ध्निकेशेचकर्णयोर्वदनेतथा ॥ बाहुद्वयेचहृदयेनाभ्यामूरुयुगेतथा ॥ ६ ॥ जानुद्वयेचपदयोःपृष्ठभागेचषोडश ॥ शिवश्चन्द्रश्चरुद्रःकोविघ्नेशोविष्णुरेववा ॥ ७ ॥ श्रीश्चैवहृदयेशम्भुस्तथानाभौप्रजापतिः ॥ नागश्चनागकन्याश्चउभयोर्ऋषिकन्यकाः ॥ ८ ॥ पादयोश्चसमुद्राश्चतीर्थाःपृष्ठेविशालतः ॥ इत्येवषोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते ॥ ९ ॥ गुह्यस्थानंललाटश्चकर्णद्वयमनुत्तमम् ॥ अंसयुग्मंचहृदयंनाभिरित्येवमष्टकम् ॥ ११० ॥ ब्रह्माचऋषयःसप्तदेवताश्चप्रकीर्तिताः ॥ इत्येवंतुसमुद्दिष्टंभस्मविद्भिर्मुनीश्वराः ॥ ११ ॥ अथवामस्तकंबाहूहृदयंनाभिरेवच ॥ पंचस्थानान्यमून्याहुर्धारणेभस्मविज्जनाः ॥ १२ ॥ यथासंभवनंकुर्य्याद्देशकालाद्यपेक्षया ॥ उद्धूलनेप्यशक्तश्चेत्त्रिपुंड्रादीनिकारयेत् ॥ १३ ॥

दोनों ऋषिकन्या ॥ ८ ॥ चरणोंके समुद्र पृष्ठमें तीर्थ यह सोलह स्थान हैं अब आठस्थान कहतेहैं ॥ ९ ॥ गुह्यस्थान ललाट दोनों कान दोनों कंधे हृदय और नाभि यह आठस्थान हैं ॥ ११० ॥ ब्रह्मा और सातऋषि इनके देवताहैं हे मुनीश्वरो ! भस्मके जाननेवालोंने यह विधान कहा है ॥ ११ ॥ अथवा मस्तक हृदय नाभि इन पांच स्थानोंमें भस्म धारण करै ऐसा मुनिजन कहते हैं ॥ १२ ॥ देशकालकी अपेक्षासे यथासंभव कार्य करे उद्धूलनमें

असमर्थ हो तौ त्रिपुण्ड्रआदिक धारण करे ॥१३॥ तीन नेत्र त्रिगुणाधार त्रिदेव उत्पादक शिवको स्मरण करता हुआ "नमः शिवाय" इसमंत्रसे त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥१४॥ "ईशाभ्यां नमः" ऐसा कहकर दोनों पार्श्वोंमें त्रिपुण्ड्र लगावै "बीजाभ्यां नमः" यह मंत्र पढ प्रकोष्ठमें लगावै ॥ १५ ॥ "कूर्पराय नमः" इससे नीचे "पितृभ्यां नमः" दोनों ओर "ईशाभ्यां नमः" इससे ऊपर "भीमाय नमः" कहकर पृष्ठमें और शिरके पश्चिमभागमें लगावै ॥ ११६ ॥ इति श्रीशैव महापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषाटीकायां भस्मधारणवर्णनोनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ सूतजी बोले हे महाभाग शौनकजी ! महाबुद्धिमान्

त्रिनेत्रंत्रिगुणाधारंत्रिदेवजनकंशिवम् ॥ स्मरन्नमःशिवायेतिललाटेतुत्रिपुंड्रकम् ॥ १४ ॥ ईशाभ्यांनमइत्युक्त्वापार्श्वयोश्चत्रिपुंड्रकम् ॥ बीजाभ्यांनमइत्युक्त्वाधारयेत्तुप्रकोष्ठयोः ॥ १५ ॥ कुर्य्यादधःपितृभ्यांचउमेशाभ्यांतथोपरि ॥ भीमायेतिततःपृष्ठेशिरसःपश्चिमेतथा ॥ ॥ ११६ ॥ इति श्रीशैवेमहापुराणेविद्येश्वरसंहितायां भस्मधारणवर्णनोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ शौनकर्षे महाप्राज्ञशिवरूपमहामते ॥ शृणुरुद्राक्षमाहात्म्यंसमासात्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥ शिवप्रियतमोज्ञेयोरुद्राक्षःपरपावनः ॥ दर्शनात्स्पर्शनाज्जाप्यात्सर्वपापहरःस्मृतः ॥ २ ॥ पुरारुद्राक्षमहिमादेव्यग्रेकथितोमुने ॥ लोकोपकरणार्थायशिवेनपरमात्मना ॥ ३ ॥ शिवउवाच ॥ शृणुदेविमहेशानिरुद्राक्षमहिमाशिवे ॥ कथयामितवप्रीत्याभक्तानांहितकाम्यया ॥ ४ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणिमहेशानिपुनःपुरा ॥ तपःप्रकुर्वतस्त्रस्तंमनःसंयम्यवैमम ॥ ५ ॥ स्वतंत्रेणपरेशेनलोकोपकृतिकारिणा ॥ लीलयापरमेशानिचक्षुरुन्मीलितंमया ॥ ६ ॥

शिवरूप रुद्राक्षका माहात्म्य सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं ॥ १ ॥ परमपावन रुद्राक्ष शिवका अत्यन्त प्यारा है दर्शन स्पर्शन और जपसे सब पाप हरनेवाला है ॥ २ ॥ हे मुने ! पहले परमात्मा शिवने लोकके उपकारके निमित्त देवीके आगे रुद्राक्षकी महिमा कही थी ॥ ३ ॥ शिवजी बोलें हे देवि ! महेशानि रुद्राक्षकी महिमा सुनो भक्तोंके हितकी इच्छा कर तुम्हारी प्रीतिके कारण कहता हूं ॥ ४ ॥ हे महेशानि ! पहले दिव्य सहस्र वर्षतक तप करते हुए और एकाग्र मन करते हुए मेरा मन क्षुभित हुवा ॥५॥ स्वतंत्रपरमेश्वर लोकके उपकारके निमित्त हे परमेशानि ! मैंने लीलासे ही नेत्र मीचलिये ॥६ ॥

तब मेरे नेत्रपुटसे जलके बिंदु गिरे उन आंसुओंसे रुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ वे भक्तोंके अनुग्रह करनेको स्थावरपनेको प्राप्त होगये यह
विष्णुके भक्त और चारों वर्णोंके निमित्त देने ॥ ८ ॥ वे गौडदेशमें रुद्राक्षके वृक्ष हुए यह शिवके प्रिय मथुरा अयोध्या लंका मलयाचल ॥ ९ ॥
सह्यपर्वत काशी तथा दूसरे देशोंमें पापसमूहके नाशकरनेको बलात्कारसे हुए हैं ॥ १० ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्णवाले मेरी आज्ञासे हुए हैं
पृथ्वीमें रुद्राक्षोंके यह भेद हैं शुभाक्ष (भद्राक्ष) उनकी जातकेही हैं ॥ ११ ॥ क्रमसे विद्वानोंको इनके श्वेत रक्त पीत कृष्ण भेद जानने उचितहैं

पुटाभ्यांचारुचक्षुर्भ्यांपतिताजलबिंदवः ॥ तत्राश्रुबिन्दवोजातावृक्षारुद्राक्षसंज्ञकाः ॥ ७ ॥ स्थावरत्वमनुप्राप्यभक्तानुग्रहकारणात् ॥ तेद
त्ताविष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्यएवच ॥ ८ ॥ भूमौगौडोद्भवांश्चक्रेरुद्राक्षाञ्छिववल्लभान् ॥ मथुरायामयोध्यायांलंकायांमलयेतथा ॥ ९ ॥
सह्याद्रौचतथाकाश्यांदेशेष्वन्येषुवातथा ॥ परानसह्यपापौघभेदनाञ्छ्रुतिनोदनात् ॥ १० ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राजाताममाज्ञया ॥
रुद्राक्षास्तेपृथिव्यांतुतज्जातीयाःशुभाक्षकाः ॥ ११ ॥ श्वेतरक्ताःपीतकृष्णावर्णाज्ञेयाःक्रमाद्बुधैः ॥ स्वजातीयंनृभिर्धार्यंरुद्राक्षंवर्णतः
क्रमात् ॥ १२ ॥ वर्णैस्तुतत्फलंधार्यंभुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥ शिवभक्तैर्विशेषेणशिवयोःप्रीतयेसदा ॥ १३ ॥ धात्रीफलप्रमाणंयच्छ्रेष्ठमे
तदुदाहृतम् ॥ बदरीफलमात्रंतुमध्यमंसंप्रकीर्त्तितम् ॥ १४ ॥ अधमंचणमात्रंस्यात्प्रक्रियैषापरोच्यते ॥ शृणुपार्वतिसुप्रीत्याभक्तानांहित
काम्यया ॥ १५ ॥ बदरीफलमात्रंचयत्स्यात्किलमहेश्वरि ॥ तथापिफलदंलोकेसुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ १६ ॥ धात्रीफलसमंयत्स्यात्सर्वा
रिष्टविनाशनम् ॥ गुंजयासदृशंयत्स्यात्सर्वार्थफलसाधनम् ॥ १७ ॥

वर्णोंके अनुसार प्राणियों को अपनी जातिके रुद्राक्ष धारण करने उचित हैं ॥ १२ ॥ भुक्ति मुक्तिकी इच्छा करनेवालोंको इसका फल अवश्य
धारण करना चाहिये विशेष कर शिवके भक्तोंको शिवा शिवकी प्रीतिके निमित्त यह धारण करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो आमलेके फलकी समानहै
वह श्रेष्ठ है बदरीफलके समान मध्यम है ॥ १४ ॥ चनेमात्रका अधम है इनकी प्रक्रिया कहते हैं हे पार्वति ! मन लगाकर सुनो भक्तोंके हितकी
कामनासे कहताहूँ ॥ १५ ॥ हे महेश्वरि! बेरके बराबर भी रुद्राक्ष हो तौ भी लोकमें सुख सौभाग्यका बढानेवाला है ॥ १६ ॥ जो धात्रीफलके

समान है वह सम्पूर्ण अरिष्टका शान्त करता है जो चौंटलीके फलके समान है वह सम्पूर्ण अर्थका साधनेवाला है ॥ १७ ॥ जैसा जैसा छोटा होता है
वैसा वैसा अधिक फलका देनेवाला है एक दूसरेसे एक एक दशांश फल अधिक देता है ॥ १८ ॥ रुद्राक्षका धारण पापनाशनके निमित्त है इसकारण
इसे सम्पूर्ण अर्थके साधनेवालोंको धारण करना चाहिये ॥ १९ ॥ जैसा लोकमें फलदेनेवाला रुद्राक्ष है हे परमेश्वरि ! वैसी और माला नहीं है॥ २०॥
सम स्निग्ध दृढ स्थूल कंटकोंसे युक्त शुभ रुद्राक्ष कामनाके देनेवाले हैं हे देवि ! यह सदा भुक्ति मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ २१ ॥ कृमिसे खाये हुए छिन्न

यथायथालघुःस्याद्वैतथाधिकफलप्रदम् ॥ एकैकतःफलंप्रोक्तंदशांशैरधिकंबुधैः ॥ १८ ॥ रुद्राक्षधारणंप्रोक्तंपापनाशनहेतवे ॥ तस्माच्च
धारणीयोवैसर्वार्थसाधनोध्रुवम् ॥ १९ ॥ यथाचदृश्यतेलोकेरुद्राक्षःफलदःशुभः ॥ नतथादृश्यतेन्याचमालिकापरमेश्वरि ॥ २० ॥
समाःस्निग्धादृढाःस्थूलाःकंटकैःसंयुताःशुभाः ॥ रुद्राक्षाःकामदादेविभुक्तिमुक्तिप्रदाःसदा ॥ २१ ॥ क्रिमिदुष्टंछिन्नभिन्नंकंटकैर्हीनमेवच ॥
व्रणयुक्तमवृत्तंचरुद्राक्षान्षड्विवर्जयेत् ॥ २२ ॥ स्वयमेवकृतद्वारंरुद्राक्षंस्यादिहोत्तमम् ॥ यत्तुपौरुषयत्नेनकृतंतन्मध्यमंभवेत् ॥ २३ ॥
रुद्राक्षधारणंप्राप्तंमहापातकनाशनम् ॥ रुद्रसंख्याशतंधृत्वारुद्ररूपोभवेन्नरः ॥ २४ ॥ एकादशशतानीहधृत्वायत्फलमाप्यते ॥ तत्फलं
शक्यतेनैववक्तुंवर्षशतैरपि ॥ २५ ॥ शतार्द्धेनयुतैःपंचशतैर्वैमुकुटंमतम् ॥ रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषोवरः ॥ २६ ॥ त्रिभिःशतैः
षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्त्यातथापुनः ॥ रुद्राक्षैरुपवीतंचनिर्मीयाद्भक्तितत्परः ॥ २७ ॥

भिन्न कंटकोंसे हीन व्रणयुक्त गोलाईसे हीन ऐसे छः दोषोंसे युक्त रुद्राक्षोंको त्यागन करदे ॥ २२ ॥ जिसमें स्वयं छिद्रहो वही उत्तम रुद्राक्षहै पुरुषद्वारा
छिद्र कियाहुआ मध्यम है ॥ २३ ॥ रुद्राक्षके धारणसे महापातक नष्ट होतेहैं एकादश सौ रुद्राक्ष धारणकरनेसे मनुष्य रुद्ररूप होजाता है ॥ २४ ॥
ग्यारहसौ रुद्राक्ष धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह सौ वर्षमें भी नहीं कह सकते ॥ २५ ॥ जो ५५० साडेपांच सौ रुद्राक्षोंका भक्तिपूर्वक
मुकुट धारण करता है, वह भक्तिवान् पुरुषश्रेष्ठ होता है ॥ २६ ॥ जो तीनसौ साठ रुद्राक्षोंकी तीन लडी करके यज्ञोपवीत धारण करता है और

भक्ति करता है ॥ २७ ॥ शिखामें तीन कानोंमें छः २ बायें और दक्षिण दोनोंमें पहरे ॥ २८ ॥ कंठमें एकसौ एक बाहोंमें ग्यारह कूर्पर और मणिबं-
धमें इसी प्रकार ॥ २९ ॥ शिवभक्त मनुष्यको यज्ञोपवीतमें तीन धारण करने चाहिये पांच कटिमें धारण करे ॥ ३० ॥ हे परमेश्वरि ! इसप्रकार
यह रुद्राक्ष जिसने धारण किये हैं उसका रूप शिवके समान होता है वह स्तुतिके योग्य होता है ॥ ३१ ॥ इसप्रकार रूप कर ध्यानमें स्थित हुए आसनपर
स्थित शिवका उच्चारण करते हुए मनुष्यको देखकर यह प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३२ ॥ यह ग्यारहसौकी विधि कही है इसके अभावमें

शिखायांचत्रयंप्रोक्तंरुद्राक्षाणांमहेश्वरि ॥ कर्णयोःषट्चषट्चैववामदक्षिणयोस्तथा ॥ २८ ॥ शतमेकोत्तरंकंठेबाह्वोर्वैरुद्रसंख्यया ॥
कूर्परद्वारयोस्तत्रमणिबंधेतथापुनः ॥ २९ ॥ उपवीतेत्रयंधार्यंशिवभक्तिरतैर्नरैः ॥ शेषानुर्वरितान्पंचसम्मितान्धारयेत्कटौ ॥ ३० ॥
एतत्संख्याधृतायेनरुद्राक्षाःपरमेश्वरि ॥ तद्रूपंतुप्रणम्यंहिस्तुत्यंसर्वैर्महेशवत् ॥ ३१ ॥ एवंभूतंस्थितंध्यानेयदाकृत्वासनैर्जनम् ॥
शिवेतिव्याहरंश्चैवदृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ शताधिकसहस्रस्यविधिरेषप्रकीर्त्तितः ॥ तदभावेप्रकारोन्यःशुभःसंप्रोच्यतेमया ॥
॥३३॥ शिखायामेकरुद्राक्षंशिरसात्रिंशतंवहेत् ॥ पंचाशच्चगलेदध्याद्बाह्वोःषोडशषोडश ॥३४॥ मणिबंधेद्वादशद्विस्कंधेपंचशतंवहेत् ॥
अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतंप्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ एवंसहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्योदृढव्रतः ॥ तंनमंतिसुराःसर्वेयथारुद्रस्तथैवसः ॥ ३६ ॥
एकंशिखायांरुद्राक्षंचत्वारिंशत्तुमस्तके ॥ द्वात्रिंशत्कण्ठदेशेतुवक्षस्यष्टोत्तरंशतम् ॥ ३७ ॥ एकैकंकर्णयोःषट्षड्बाह्वोःषोडशषोडश ॥
करयोरविमानेनद्विगुणेनमुनीश्वर ॥ ३८ ॥ संख्याप्रीतिर्धृतायेनसोऽपिशैवजनःपरः ॥ शिववत्पूजनीयोहिवंद्यस्सर्वैरभीक्ष्णशः ॥ ३९ ॥

दूसरा प्रकार है वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ ३३ ॥ शिखामें एक रुद्राक्ष शिरमें तीस धारण करे पचास गलेमें और भुजाओंमें सोलह २ धारण
करे ॥ ३४ ॥ मणिबंधमें बारह स्कंधमें पांचसौ एकसौ आठका यज्ञोपवीत कल्पित करे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार जो दृढव्रत हो सहस्र रुद्राक्षोंको धारण
करता है उसे सब देवता नमस्कार करते हैं वह रुद्रके समान है ॥ ३६ ॥ शिखामें एक रुद्राक्ष, मस्तकमें चालीस, कंठमें बत्तीस, हृदयमें एकसौ
आठ ॥ ३७ ॥ एक एक कानोंमें छः छः भुजाओंमें सोलह सोलह हाथमें बारह बारह अथवा २४ चौविस चौविस ॥ ३८ ॥ इतने जिसने प्रीतिसे

धारण किये हैं वह भी शिवका भक्तहै वह भी निरंतर सबसे पूजनीय और वन्दनीय है ॥ ३९ ॥ ईशान मंत्रसे शिरमें, तत्पुरुष मंत्रसे कानोंमें, अघोर मंत्रसे गले और हृदयमें धारण करने चाहिये ॥ ४० ॥ अघोर और बीजमंत्रसे हाथोंमें धारण करे पन्द्रह रुद्राक्ष वामदेव मंत्रसे उदरमें धारण करे ॥ ४१ ॥ सद्यो जातादि पंचब्रह्ममंत्रोंसे दूसरे अंगोंमें तीन माला पांच वा सात धारै अथवा मूलमंत्रसे सम्पूर्ण रुद्राक्षोंको धारण करै ॥ ४२ ॥ मद्य मांस लशुन पलांडु (प्याज) शिग्रु (सैंजना) श्लेष्मान्तक (बहुयारवृक्ष) विड्वराह (ल्हसन) इनको न खाय ॥ ४३ ॥ श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मणोंको

शिरसीशानमंत्रेणकर्णेतत्पुरुषेणच ॥ अघोरेणगलेधार्यंतेनैवहृदयेपि च ॥ ४० ॥ अघोरबीजमंत्रेणकरयोर्धारयेत्सुधीः ॥ पंचदशाक्षग्र
थितांवामदेवेनचोदरे ॥ ४१ ॥ पंचब्रह्मभिरंगैश्चत्रिमालांपंचसप्तच ॥ अथवामूलमंत्रेणसर्वानक्षांस्तुधारयेत् ॥ ४२ ॥ मद्यंमांसंतुलशुनं
पलाण्डुंशिग्रुमेवच ॥ श्लेष्मांतकंविड्वराहंभक्षणेवर्जयेत्ततः ॥ ४३ ॥ वलक्षंरुद्राक्षंद्विजतनुभिरेवेहविहितंसुरक्तंक्षत्राणांप्रमुदितमुमेपीतम
सकृत् ॥ ततोवैश्यैर्धार्यंप्रतिदिवसमावश्यकमहोतथाकृष्णंशूद्रैःश्रुतिगदितमार्गोयमगजे ॥ ४४ ॥ वर्णीवनीगृहयतीनियमेनदध्यादे
तद्रहस्यपरमोनहिजातुतिष्ठेत् ॥ रुद्राक्षधारणमिदंसुकृतैश्चलभ्यंत्यक्त्वेदमेतदखिलान्नरकान्प्रयांति ॥ ४५ ॥ आदावामलकात्स्वतोलघु
तरारुग्णास्ततःकंटकैःसंदष्टाःक्रिमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेणहीनास्तथा ॥ धार्यानैवशुभेप्सुभिश्चणकवद्रुद्राक्षमप्यंततोरुद्राक्षोममलिंगमं
गलमुमेसूक्ष्मंप्रशस्तंसदा ॥ ४६ ॥ सर्वाश्रमाणांवर्णानांस्त्रीशूद्राणांशिवाज्ञया ॥ धार्याःसदैवरुद्राक्षायतीनांप्रणवेनहि ॥ ४७ ॥

हितकारी है, क्षत्रियोंको लाल, वैश्योंको पीले, और शूद्रोंको कृष्णवर्णके धारण करने चाहिये यह वेदमार्गकी विधि है ॥ ४४ ॥ सब वर्णोंको और यतियोंको भी धारण करने चाहिये यह परमरहस्य है यह रुद्राक्ष बडे पुण्यसे प्राप्त होता है इसके त्यागन करनेसे नरककी प्राप्ति होती है ॥४५॥ आमलेसे छोटे अत्यन्त लघु भग्न या और किसीप्रकारसे हीन हुए कंटकहीन कृमिके खाये हुए छिद्रहीन ऐसे रुद्राक्षोंको मंगलकी इच्छावाला न धारण करै और चनेके समान सूक्ष्मकी प्रशंसा की गई है। शिवजी कहते हैं यह हमारा चिह्न स्वरूप सदा धारण करना चाहिये ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण आश्रम और वर्णोंको

स्त्री शूद्रोंको शिवकी आज्ञासे सदा रुद्राक्ष धारण करने चाहिये और यतियोंको ॐकार पूर्वक धारण करने चाहिये ॥ ४७ ॥ दिनमें धारण करनेसे रात्रिके, रात्रिमें धारण करनेसे दिनके इसीप्रकार प्रभात मध्याह्न और संध्याकालके सब पातक दूर हो जातेहैं ॥४८॥ जो त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं अथवा जो जटा धारण करनेवालेहैं रुद्राक्षके धारण करनेवाले जो हैं वे यमलोकको नहीं जाते ॥ ४९ ॥ एकरुद्राक्ष शिरमें और माथेपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है और जो पञ्चाक्षरमंत्रका जप करते हैं वे महात्मा पूज्य हैं ॥ ५० ॥ जिसके अंगमें रुद्राक्ष, माथेपर त्रिपुण्ड्र तिलक, मुखमें पञ्चाक्षरमंत्र नहीं है उनको मेरे यमलोकको लावो ॥ ५१ ॥ भस्मरुद्राक्ष धारण करनेवालोंके उन उन प्रभावोंको जानकर पूजनीय जानो उन्हैं हमारे लोकको मत लाओ ॥ ५२ ॥ वह यमराजने अपने किंकरोंसे कहा है यह सुन वे विस्मयको प्राप्तहो मौन हुए ॥५३॥ हे महादेवि ! इसप्रकार रुद्राक्ष महापाप नाश करनेंवाला है हे पार्वति ! उनका धारण करनेवाला अधिक पापी भी हो तथापि ॥ ५४ ॥ हाथ बाहु शिरमें जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब प्राणियोंसे अवध्य रुद्ररूपहो पृथ्वीमें विचरण करताहै ॥ ५५ ॥ वह सुर असुर सदा सबका वन्दनीय है वह देखतेही पूजनीय है शिवके समान पापोंका दूर करनेवाला है ॥५६ ॥ ध्यान ज्ञानसे

दिवाबिभ्रद्रात्रिकृतैरात्रौबिभ्रद्दिवाकृतैः ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेमुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ४८ ॥ येत्रिपुण्ड्रधरालोकेजटाधारिणएवये ॥
येरुद्राक्षधरास्तेवैयमलोकंप्रयांतिन ॥ ४९ ॥ रुद्राक्षमेकंशिरसाबिभर्तितथात्रिपुण्ड्रंचललाटमध्ये ॥ पंचाक्षरंयेहिजपंतिमंत्रंपूज्याभवद्भिः
खलुतेहिसाधवः ॥ ५० ॥ यस्याङ्गेनास्तिरुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रंभालपट्टके ॥ मुखेपंचाक्षरंनास्तितमानयममालयम् ॥ ५१ ॥ ज्ञात्वाज्ञात्वातत्प्र
भावंभस्मरुद्राक्षधारिणः ॥ तेपूज्याःसर्वदास्माकंनोनेतव्याः कदाचन ॥ ५२ ॥ एवमाज्ञापयामासकालोपिनिजकिङ्करान् ॥ तथेतिम
त्वातेसर्वेतूष्णीमासन्सुविस्मिताः ॥ ५३ ॥ अतएवमहादेविरुद्राक्षोत्यघनाशनः ॥ तद्धरोमत्प्रियःशुद्धोऽत्यघवानपिपार्वति ॥ ५४ ॥
हस्तेबाहौतथामूर्ध्निरुद्राक्षंधारयेत्तुयः ॥ अवध्यःसर्वभूतानांरुद्ररूपीचरेद्भुवि ॥ ५५ ॥ सुरासुराणांसर्वेषांवंदनीयःसदासवै ॥ पूजनीयोहि
दृष्टस्यपापहाचयथाशिवः ॥ ५६ ॥ ध्यानज्ञानावमुक्तोपिरुद्राक्षंधारयेत्तुयः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःसयातिपरमांगतिम् ॥ ५७ ॥

अदमुक्त हुआभी जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब पापोंसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ रुद्राक्षसे मंत्र जपनेसे करोडगुणा पुण्य होता है उसके धारण करनेसे दशकरोड गुणा पुण्य मनुष्य पाता है ॥५८॥ जबतक जीता है तबतक स्वस्थ हे देवि ! उसको कभी अकालमृत्यु नहीं होती॥५९॥ त्रिपुण्ड्रके सहित जिसके अंगमें रुद्राक्ष शोभित होता है और जो मृत्युंजयका जप करता है उसके दर्शनसे रुद्रदर्शनका फल है ॥ ६० ॥ हे प्रिये पांच देवताओंकी उपासना करनेवाला सब देवताओंका प्रिय रुद्राक्षमालासे सब देवताओंका जपकरै ॥ ६१ ॥ इसको विष्णु आदि देवताओंके भक्तभी

रुद्राक्षेणजपन्मन्त्रंपुण्यंकोटिगुणंभवेत् ॥ दशकोटिगुणंपुण्यंधारणाल्लभतेनरः ॥ ५८ ॥ यावत्कालंहिजीवस्यशरीरस्थोभवेत्सवै ॥ तावत्कालंस्वल्पमृत्युर्नतंदेविविबाधते ॥ ५९ ॥ त्रिपुंड्रेणचसंयुक्तंरुद्राक्षाविलसांगकम् ॥ मृत्युंजयंजपंतंचदृष्ट्वारुद्रफलंलभेत् ॥ ६० ॥ पंचदेवप्रियश्चैवसर्वदेवप्रियस्तथा ॥ सर्वमन्त्राञ्जपेद्भक्तोरुद्राक्षमालयाप्रिये ॥ ६१ ॥ विष्ण्वादिदेवभक्ताश्चधारयेयुर्नसंशयः ॥ रुद्रभक्तोविशेषेणरुद्राक्षान्धारयेत्सदा ॥ ६२ ॥ रुद्राक्षाविविधाःप्रोक्तास्तेषांभेदान्वदाम्यहम् ॥ शृणुपार्वतिसद्भक्त्याभुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥६३॥ एकवक्त्रःशिवःसाक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ तस्यदर्शनमात्रेणब्रह्महत्याव्यपोहति ॥ ६४ ॥ यत्रसंपूजितस्तत्रलक्ष्मीदूरतरानहि ॥ नश्यंत्युपद्रवाःसर्वेसर्वकामाभवंतिहि ॥ ६५ ॥ द्विवक्त्रोदेवदेवेशस्सर्वकामफलप्रदः ॥ विशेषतःसरुद्राक्षोगोवधंनाशयेद्द्रुतम् ॥ ६६ ॥ त्रिवक्त्रोयोहिरुद्राक्षःसाक्षात्साधनदस्सदा ॥ तत्प्रभावाद्भवेयुर्वैविद्याःसर्वाःप्रतिष्ठिताः ॥ ६७ ॥

धारणकरैं इसमें सन्देह नहीं रुद्रके भक्त तौ विशेषकर रुद्राक्षको धारण करै ॥ ६२ ॥ रुद्राक्ष बहुत प्रकारके होत हैं मैं उनके भेद कहताहूं हे पार्वति ! सद्भक्तिसे उन भुक्ति मुक्ति देनेवालोंका चरित्र सुनो ॥ ६३ ॥ एकमुखी साक्षात् भुक्तिमुक्तिका देनेवाला शिवरूप है उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या नष्ट होती है ॥ ६४ ॥ जहां वह पूजित होताहै वहांसे लक्ष्मी दूर नहीं है सब उपद्रव शांत होकर सब कामना सिद्ध होतीहै ॥ ६५ ॥ दोमुखवाला देवदेवेश सब काम और फलका देनेवालाहै विशेषकर यह रुद्राक्ष गोवध हत्याको दूर करताहै ॥ ६६ ॥ तीनमुखी रुद्राक्ष सदा साधन देनेवालाहै उसके प्रभावसे

सब विद्या प्रतिष्ठित होतीहैं ॥ ६७ ॥ चारमुखी ब्रह्मारूप है नरहत्या दूर क[illegible]वाला है वह दर्शन स्पर्शनसे चारों वर्गका देनेवाला है ॥ ६८ ॥ पांचमुखी स्वयं रुद्ररूपहै उसीका नाम कालाग्नि है सब मुक्ति और सब कामनाका देनेवालाहै ॥ ६९ ॥ अगम्यामें गमन करने अभक्ष्य भक्षणकरनेसे जो पापहै इत्यादि और भी पाप पंचमुखी रुद्राक्ष दूर करताहै ॥ ७० ॥ छःमुखी कार्तिकेय स्वरूपहै उसको दक्षिण भुजामें धारणकरै तौ वह ब्रह्महत्यादिके पापोंसे छूटजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ हे महेशानि ! सातमुखका अनंग होताहै उसके धारण करनेसे दरिद्रभी ईश्वर होजाताहै

चतुर्वक्त्रःस्वयंब्रह्मानरहत्यांव्यपोहति ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ६८ ॥ पंचवक्त्रःस्वयंरुद्रःकालाग्निर्नामतःप्रभुः ॥
सर्वमुक्तिप्रदश्चैवसर्वकामफलप्रदः ॥ ६९ ॥ अगम्यागमनंपापमभक्ष्यस्यचभक्षणम् ॥ इत्यादिसर्वपापानिपंचवक्त्रोव्यपोहति ॥ ७० ॥
षड्वक्त्रःकार्तिकेयस्तुधारणाद्दक्षिणेभुजे ॥ ब्रह्महत्यादिकैःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ सप्तवक्त्रोमहेशानिह्यनंगोनामनामतः ॥
धारणात्तस्यदेवेशिदरिद्रोपीश्वरोभवेत् ॥ ७२ ॥ रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्चवसुमूर्तिश्चभैरवः ॥ धारणात्तस्यपूर्णायुर्मृतोभवतिशूलभृत् ॥ ७३ ॥
भैरवोनववक्त्रश्चकपिलश्चमुनिःस्मृतः ॥ दुर्गावातदधिष्ठात्रीनवरूपामहेश्वरी ॥ ७४ ॥ तंधारयेद्वामहस्तेरुद्राक्षंभक्तितत्परः ॥ सर्वेश्वरो
भवेन्नूनंममतुल्योनसंशयः ॥ ७५ ॥ दशवक्त्रोमहेशानिस्वयंदेवोजनार्दनः ॥ धारणात्तस्यदेवेशिसर्वान्कामानवाप्नुयात ॥ ७६ ॥
एकादशमुखोयस्तुरुद्राक्षःपरमेश्वरि ॥ सरुद्रोधारणात्तस्यसर्वत्रविजयीभवेत् ॥ ७७ ॥ द्वादशास्यंतुरुद्राक्षंधारयेत्केशदेशके ॥ आदि
त्याश्चैवतेसर्वेद्वादशैवस्थितास्तथा ॥ ७८ ॥

॥ ७२ ॥ आठमुखका रुद्राक्ष वसुमूर्ति भैरवरूप है उसके धारणसे पूर्णायु होतीहै और शरीरके अन्तमें शिवरूप होताहै ॥ ७३ ॥ नौमुखका भैरव और कपिलमुनि हैं, या उसकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा महेश्वरी है ॥ ७४ ॥ उस रुद्राक्षको भक्तिमें तत्परहो बायेंहाथमें धारणकरै, वह सर्वेश्वर तथा मेरी तुल्य होजाताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७५ ॥ हे महेशानि ! दशमुखी रुद्राक्ष स्वयं जनार्दन देव है, हे देवेशि ! उसके धारण करनेसे सब कामनाको प्राप्त होताहै ॥ ७६ ॥ ग्यारहमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे रुद्ररूपी हो सर्वत्र विजयी होताहै ॥ ७७ ॥ जो बारह मुखका रुद्राक्ष केशदेशमें धारण करताहै, वह बारह

आदित्यके समानहै ॥७८॥ तेरह मुखका रुद्राक्ष धारण करनेसे विश्वेदेवकी तुल्य होताहै, वह सब कामनाको प्राप्त हो सौभाग्य और मंगलको प्रातकरता॥ है ॥ ७९ ॥ चौदहमुखी रुद्राक्ष परमशिवरूप उसको भक्तिसे शिरपर धारण करनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ८० ॥ मुखभेदसे इतने रुद्राक्षोंके भेद वर्णन कियेहैं हे पर्वतराजपुत्रि! अब क्रमसे प्रीतिपूर्वक उनके मंत्रोंको सुनो ॥ ८१ ॥ "ओंह्रींनमः । १ । ओंनमः । २ । क्लींनमः । ३ । ओंह्रींनमः । ४ । ओंह्रींनमः । ५ । ओंह्रींहूं नमः । ६ । ओंहूंनमः । ७ । ओंहूंनमः । ८ । ओंह्रींहूंनम । ९ । ओंह्रींनमः । १० । ओंह्रींहूंनमः । ११ । ओंक्रौंक्षौंरौंनमः । १२ । ओंह्रींनमो नमः । १३ । ओंनमः । १४ ।" भक्ति और श्रद्धाके सहित सम्पूर्ण काम अर्थकी सिद्धिके निमित्त इन मंत्रोंसे रुद्राक्षोंको धारण करै

त्रयोदशमुखोविश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिसौभाग्यंमंगलंलभेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्दशमुखोयोहिरुद्राक्षःपरमःशिवः ॥ धारयेन्मूर्द्ध्नितंभक्त्यासर्वपापंप्रणश्यति ॥ ८० ॥ इतिरुद्राक्षभेदाहिप्रोक्तावैमुखभेदतः ॥ तत्तन्मंत्राञ्छृणुप्रीत्याक्रमाच्छैलेश्वरात्मजे ॥ ८१ ॥ ॐ ह्रींनमः १ ॐनमः २ क्लींनमः ३ ॐह्रींनमः ४ ॐह्रींनमः ५ ॐह्रींहुंनमः ६ ॐहुंनमः ७ ॐहुंनमः ८ ॐह्रींहुंनमः ९ ॐह्रींनमः १० ॐह्रींहुंनमः ११ ॐक्रौंक्षौंरौंनमः १२ ॐह्रींनमः १३ ॐनमः १४ भक्तिश्रद्धायुतश्चैवसर्वकामार्थसिद्धये ॥ रुद्राक्षान्धारयेन्मंत्रैर्देवनालस्यवर्जितः ॥ ८२ ॥ विनामंत्रेणयोधत्तेरुद्राक्षंभुविमानवः ॥ सयातिनरकंघोरंयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८३ ॥ रुद्राक्षमालिनंदृष्ट्वाभूतप्रेतपिशाचकाः ॥ डाकिनीशाकिनी चैवयेचान्येद्रोहकारकाः ॥ ८४ ॥ कृत्रिमंचैवयत्किंचिदभिचारादिकंचयत् ॥ तत्सर्वंदूरतोयातिदृष्ट्वाशंकितविग्रहम् ॥८५॥ रुद्राक्षमालिनंदृष्ट्वाशिवोविष्णुःप्रसीदति ॥ देवीगणपतिस्सूर्यःसुराश्चान्येपिपार्वति ॥८६॥ एवंज्ञात्वातुमाहात्म्यंरुद्राक्षस्यमहेश्वरि ॥ सम्यग्धार्यास्समंत्राश्चभक्त्याधर्मविवृद्धये ॥ ८७ ॥

आलस्य न करै चौदहमुखी रुद्राक्षोंतकके चौदह मंत्रहैं पहले मंत्रसे एकमुखी दूसरेसे दोमुखी इसीक्रमसे धारणकरै ॥८२॥ पृथ्वीमें जो मनुष्य बिना मंत्रके रुद्राक्षको धारण करताहै वह चौदह इंद्रकी आयु अर्थात् एक कल्पतक घोर नरकमें पडताहै ॥८३॥ रुद्राक्षकी मालावालेको देखकर भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी अथवा जो दूसरे द्रोह करनेवाले जीव हैं ॥८४॥ और जो कुछ कृत्रिम अभिचारादिक हैं वह दूरसेही रुद्राक्षधारीको देख पलायन करतेहैं॥८५॥ रुद्राक्ष मालाधारीको देखकर शिव और विष्णु प्रसन्न होते हैं हे पार्वति! देवी गणपति सूर्य तथा और दूसरे देवता प्रसन्न होतेहैं ॥८६॥ हे महेश्वरि! इसप्रकार

इति शिवमहापुराणे भाषाटीकासमेते प्रथमा विद्येश्वरमंहि [illegible] ०

रुद्राक्षका माहात्म्य जानकर मंत्र और भक्तिसे धर्मवृद्धिके निमित्त सम्यक् प्रकारसे रुद्राक्ष धारण करने चाहिये॥८७॥ इसप्रकार पार्वतीके आगे परमात्मा शि
वर्णन कियाथा भस्म और रुद्राक्षका माहात्म्य भुक्ति मुक्तिके फलका देनेवाला है ॥ ८८ ॥ भस्म और रुद्राक्षके धारण करनेवाले शिवके अतिप्रिय जो
उसके धारणके प्रभावसे भुक्ति मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ८९ ॥ हे गौरि ! भस्म रुद्राक्षका धारण करनेवाला शिवभक्त कहाता है जो पञ्चाक्ष
जपमें आसक्त है वह परिपूर्ण है ॥ ९० ॥ विना भस्म और त्रिपुण्ड्रके विना रुद्राक्षमालाके पूजित हुए महादेव अभीष्ट फल नहीं देते ॥९१॥ हे मुनीश्वरो
जो तुमने पूँछा वह सब तुमसे वर्णन किया भस्म रुद्राक्षका माहात्म्य सब कामना और समृद्धिका देनेवाला है ॥ ९२ ॥ जो इस परम शुभ माहात्म्य

इत्युक्तंगिरिजाग्रेहिशिवेनपरमात्मना ॥ भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ८८ ॥ शिवस्यातिप्रियौज्ञेयौभस्मरुद्राक्षधारि
तद्धारणप्रभावाद्धिभुक्तिर्मुक्तिर्नसंशयः ॥ ८९ ॥ भस्मरुद्राक्षधारीयःशिवभक्तस्सउच्यते ॥ पंचाक्षरजपासक्तःपरिपूर्णश्चसन्मुखे ॥ ९
विनाभस्मत्रिपुंड्रेणविनारुद्राक्षमालया ॥ पूजितोपिमहादेवोनाभीष्टफलदायकः ॥ ९१ ॥ तत्सर्वंचसमाख्यातंयत्पृष्टंहिमुनीश्वर ॥ भस्म
रुद्राक्षमाहात्म्यंसर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ९२ ॥ एतद्यःशृणुयान्नित्यंमाहात्म्यंपरमंशुभम् ॥ रुद्राक्षभस्मनोर्भक्त्यासर्वान्कामा[illegible]यकांथेतावोमुना
॥ ९३ ॥ इहसर्वसुखंभुक्त्वापुत्रपौत्रादिसंयुतः ॥ लभेत्परत्रसन्मोक्षंशिवस्यातिप्रियोभवेत् ॥ [illegible]यांसाध्यसाधनंखण्डेरुद्राक्षमा
श्वराः॥ सर्वसिद्धिप्रदानित्यंमुक्तिदाशिवशासनात् ॥ ९६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेविद्येश्वरसंहित
वर्णनोनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ विद्येश्वरसंहिता समाप्ता ॥

॥ यहां सब सुखभाग पुत्र पौत्रादिसे संयुक्तह
नित्यप्रति श्रवण करते हैं रुद्राक्ष और भस्ममें भक्ति करते हैं वह सब कामनाओंको प्राप्त होते हैं ॥ ९३ [illegible] आज्ञासे यह सब सिद्धि और मुक्तिकी देनेवाली
फिर मुक्तिमें शिवके सायुज्यको प्राप्तहोता है ॥९४॥ हे मुनीश्वरो यह तुमसे विद्येश्वरसंहिता कही है शि[illegible] रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनोनाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
है ॥९५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषार्थो [illegible] ॥

॥ इति श्रीविद्येश्वरसंहिता समाप्ता ॥ पूर्त्तिमुपागमत् ॥ १ ॥

श्लोकः—भूमिबाणांकचन्द्रेब्दे मांगल्ये भृगुवासरे ॥ भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां टीका

क

को

॥ अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायते द्वितीया रुद्रसंहिता (पंचखंडात्मिका) प्रारभ्यते ॥

शिवमहापुराण-रुद्रसंहिता २

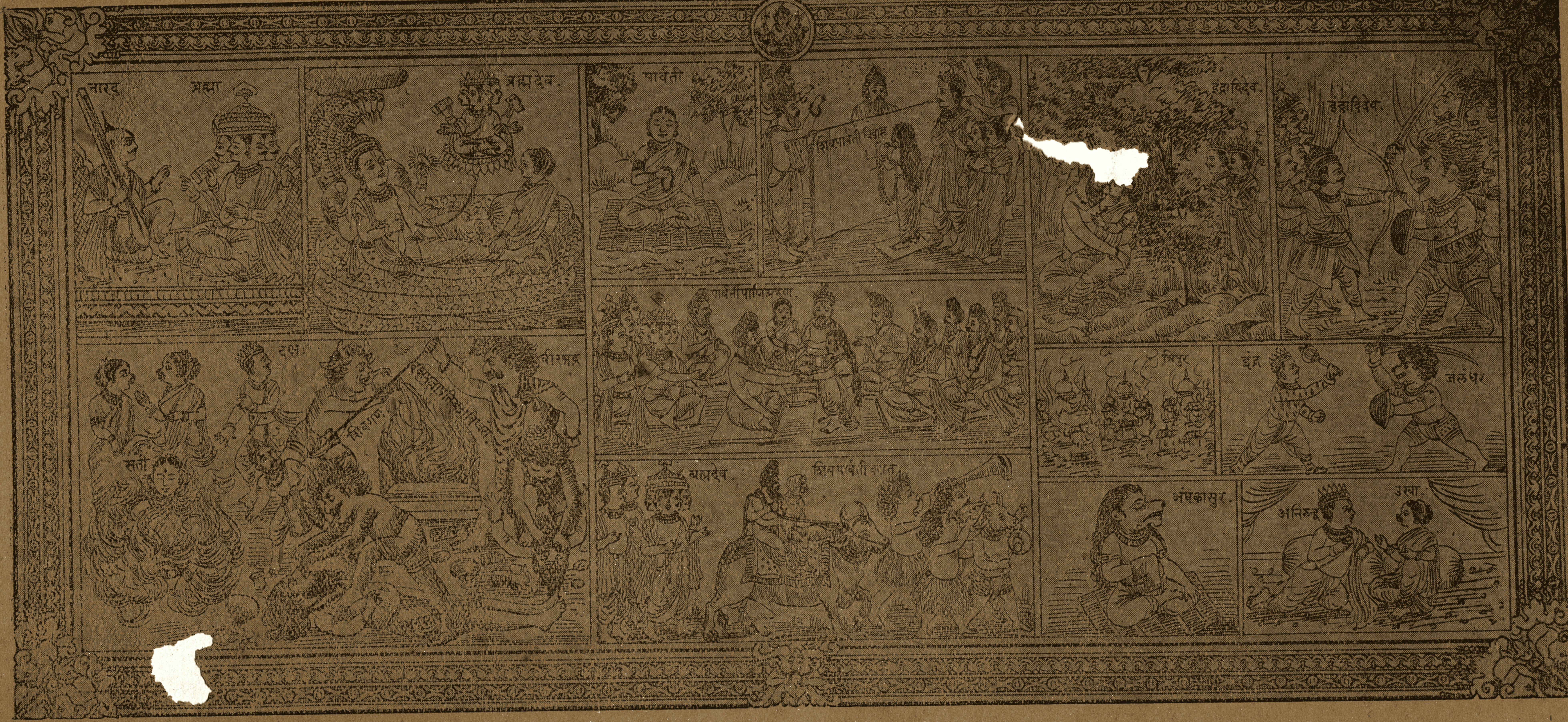
नारद
ब्रह्मा
ब्रह्मदेव
पार्वती
शिवपार्वती विवाह
इंद्रादिदेव
इंद्रादिदेव
पार्वतीपाणिग्रहण
दक्ष
वीरभद्र
सती
ब्रह्मदेव
शिवपार्वती वरात
त्रिपुर
इंद्र
जलंधर
अंधकासुर
अनिरुद्ध
उषा

दोहा–शंकर गुणनिधि ज्ञाननिधि, मंगल नित दातार । तिनके पग वंदन करू, टीका लिखूं विचार ॥ १ ॥

ंसारकी उत्पत्ति, पालन और लयके एक हेतुहैं सब तत्त्वोंके जाननेवाले गौरीपति अनन्तकीर्तिमानं, मायाके आश्रित और मायासे रहितहैं अचिन्त्यरूप बोधस्वरूप निर्मल शंकरको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ प्रकृतिसे परे अनादि प्रशान्त एकही पुरुषोत्तम, अपनी मायासे इस सब जगत्को र्माण करके अन्तर बाहरमें स्थितहुए शंकरको नित्य प्रणाम करताहूं ॥ २ ॥ सबके अन्तरमें स्थित अपने गूढरूपमें विराजमान जो विना किसीकी

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ ॥ अथ द्वितीया रुद्रसंहिता प्रारभ्यते ॥ ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं गौरीपतिम्विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम् ॥ मायाश्रयम्विगतमायमचिंत्यरूपम्बोधस्वरूपममलं हि शिवन्नमामि ॥ १ ॥ वन्दे शिवन्तम्प्रकृतेरनादिम्प्रशान्तमेकम्पुरुषोत्तमं हि ॥ स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥ २ ॥ वन्देंतरस्थं निजगूढरूपं शिवं स्वतस्स्रष्टुमिदम्विचष्टे ॥ जगन्ति नित्यम्परितो भ्रमंति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम् ॥ ३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ जगतः पितरं शम्भुञ्जगतो मातरं शिवाम् ॥ तत्पुत्रञ्च गणाधीशन्नत्वैतद्वर्णयामहे ॥ ४ ॥ एकदा मुनयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ पप्रच्छुर्वरया भक्त्या सूतन्ते शौनकादयः ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विद्येश्वरसंहितायाः श्रुता सा सत्कथा शुभा ॥ साध्यसाधनखंडाख्या रम्याद्या भक्तवत्सला ॥ ६ ॥

सहायताके इस जगत्को निर्माण करके चेष्टा कररहेहैं, और जिनकी निकटतासे सारा संसार इसप्रकारसे भ्रमण करताहै जैसे चुम्बककी सन्निधिसे लोहा चेष्टा करताहै ऐसे शंकरको प्रणाम करताहूं ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले जगतके पिता शिवजी, जगतकी माता पार्वतीजी और उनके पुत्र गणेशजीको प्रणाम करके हम " रुद्रसंहिता" वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥ एक समय नैमिषारण्यके रहनेवाले सब मुनीश्वर शौनकादि परमभक्तिसे सूतजीसे पूछने लगे ॥ ५ ॥ मुनीश्वर बोले विद्येश्वर संहिताकी तो सुन्दर कथा हमने सुनी, जो साध्यसाधन खण्ड नामवाली अतिमनोहर भक्तोंको अत्यन्त प्रियहै ॥ ६ ॥

हे सूतजी ! महाभाग तुम बहुतकालतक जियो और सुखी रहो, जो आप हमको श्रीशिवजीकी सुन्दर कथा सुनातेहो ॥७॥ तुम्हारे मुखसे निकलेहुए ज्ञानरूपी
अमृतको पान करतेहुए हम तृप्त नहीं होते इससे हे तात ! तुमसे फिर पूछतेहैं ॥ ८ ॥ तुम व्यासजीके प्रसादसे सर्वज्ञ और कृतकृत्य हो इस्से तुमको
भूत भविष्य वर्तमानमें कुछभी अविदित नहीं है ॥ ९ ॥ व्यासजीकी सद्भक्तिसे उनकी परम कृपाको प्राप्त करके सबको आपने भलीप्रकार जानलियाहै,
और सब मनुष्योंको कृतार्थ किया है ॥ १० ॥ हे प्राज्ञ ! अब इससमय शिवजीका श्रेष्ठ रूप कहिये, और पार्वती तथा शिवजीके दिव्यचरित्र हमको

सूत सूत महाभाग चिरञ्जीव सुखी भव ॥ यच्छ्रावयसि नस्तात शांकरीं परमां कथाम् ॥ ७ ॥ पिबन्तस्त्वन्मुखाम्भोजच्युतं ज्ञानामृत
म्वयम् ॥ अवितृप्ताः पुनः किंचित्प्रष्टुमिच्छामहेऽनघ ॥८॥ व्यासप्रसादात्सर्वज्ञो प्राप्तोऽसि कृतकृत्यताम् ॥ नाज्ञाताम्विद्यते किंचिद्भूतं
भव्यं भवच्च यत् ॥ ९ ॥ गुरोर्व्यासस्य सद्भक्त्या समासाद्य कृपां पराम् ॥ सर्वं ज्ञातं विशेषेण सर्वं सार्थं कृतं जनुः ॥ १० ॥ इदानीं
कथय प्राज्ञ शिवरूपमनुत्तमम् ॥ दिव्यानि वै चरित्राणि शिवयोरप्यशेषतः ॥ ११ ॥ अगुणो गुणतां याति कथं लोके महेश्वरः ॥
शिवतत्त्वं वयं सर्वे न जानीमो विचारतः ॥ १२ ॥ सृष्टेः पूर्वं कथं शंभुस्स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते
प्रभुः ॥ १३ ॥ तदन्ते च कथन्देवस्स तिष्ठति महेश्वरः ॥ कथम्प्रसन्नतां याति शंकरो लोकशंकरः ॥ १४ ॥ स प्रसन्नो महेशानः किं
प्रयच्छति सत्फलम् ॥ स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च तत्सर्वं कथयस्व नः ॥ १५ ॥ सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ भक्तप्रयासं स
महान्न पश्यति दयापरः ॥ १६ ॥

नाइये ॥ ११ ॥ लोकमें निर्गुण महेश्वर सगुण कैसे होजातेहैं. हम विचारकरभी शिवका तत्त्व नहीं जानसकते ॥ १२ ॥ सृष्टिके पहले शिवजी
ने स्वरूपमें किसप्रकार स्थित रहते हैं और वह प्रभु सृष्टिके मध्यमें किसप्रकार क्रीडा करते हैं ॥ १३ ॥ और वह देव सृष्टिके अन्तमें किसप्रकार स्थित
हैं, लोकोंके कल्याणकरनेवाले शंकर किसप्रकार प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ और प्रसन्न होकर वह शंकर क्या फल देते हैं अपने भक्तों और दूसरोंको
फल देतेहैं सो हमसे कहो ॥ १५ ॥ हमने सुना है वह भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं, और भक्तिका महाप्रयास दयाके कारण नहीं देखते

हैं ॥ १६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह तीनों देवता शिवके अंगसे प्रगट हैं महेश उनमें पूर्णांश स्वयं शिवही हैं ॥ १७ ॥ उनका आविर्भाव और चरित्र विशेषरूपसे हमसे कहो उमाका आविर्भाव और विवाह हमसे कहो ॥ १८ ॥ विशेषकरके शिवजीका गृहस्थपना आर लीलाभी हमसे कहिये हे पापरहित! यह तथा औरभी दूसरे चरित्र कहिये ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले जब इसप्रकारसे पूछा तब सूतजी बडे प्रसन्न हुए, और शिवजीके चरणकमलोंका स्मरणकर मुनीश्वरोंसे बोले ॥ २० ॥ सूतजी बोले आपने बहुत अच्छी बात पूछी हे मुनीश्वरो! तुम धन्य हो जो सदा शिवकी कथामें तुम्हारी

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाश्शिवांगजाः ॥ महेशस्तत्र पूर्णांशस्स्वयमेव शिवोऽपरः ॥ १७ ॥ तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः ॥ उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा प्रभो ॥ १८ ॥ तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि ॥ एतत्सर्वं तदन्यच्च कथनीयं त्वयाऽनघ ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तैस्तु सूतो हर्षसमान्वितः ॥ स्मृत्वा शंभुपदांभोजम्प्रत्युवाच मुनीश्वरान् ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च धन्या यूयं मुनीश्वराः ॥ सदाशिवकथायां वो यज्जाता नैष्ठिकी मतिः ॥२१॥ सदाशिवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतृञ्जाह्नवीसलिलं यथा ॥ २२ ॥ शंभोर्गुणानुवादात्को विरज्येत पुमान्द्विजाः ॥ विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात्सदा ॥ २३ ॥ गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि ॥ मनःश्रोत्राभिरामश्च यतस्सर्वार्थदस्स वै ॥ ॥ २४ ॥ कथयामि यथाबुद्धि भवत्प्रश्नानुसारतः ॥ शिवलीलां प्रयत्नेन द्विजास्तां शृणुतादरात् ॥ २५ ॥ भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तत्तथा नारदेन वै ॥ पृष्टं पित्रे प्रेरितेन हरिणा शिवरूपिणा ॥ २६ ॥

निष्ठावाली मति है ॥ २१ ॥ सदाशिवकी कथाके प्रश्न तीन पुरुषोंको पवित्र करते हैं कहनेवाले पूछनेवाले और सुननेवालोंको पवित्र करते हैं जैसे गंगाजल ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो! बिना पशुघ्नके तीनप्रकारसे जनोंको आनन्द करनेवाले शिवजीके गुणानुवादोंसे कौन पुरुष विरक्त होसकता है? ॥ २३ ॥ तृष्णारहित पुरुषोंसे गायमान शिवचरित्र संसाररोगकी ओषधी है, मन और कानोंको आनन्ददायक और सब अर्थका देनेवाला है ॥ २४ ॥ आपके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि कहताहूं हे ब्राह्मणों प्रयत्नसे सादर शिवलीला सुनो ॥ २५ ॥ जिसप्रकारसे आपने प्रश्न पूछाहै इसी प्रकारसे शिवरूप हरिसे

प्रेरित होकर नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे यही बात पूँछीथी ॥ २६ ॥ शिवभक्त ब्रह्माजी अपने पुत्रके यह वचन सुन प्रसन्न हो प्रीतिपूर्वक मुनिश्रेष्ठको प्रसन्न करतेहुए शिवजीका यश कथन करनेलगे ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले वह श्रेष्ठ ब्राह्मण इसप्रकारसे सूतजीके कहे वचनोंको सुनकर कुतूहलपूर्वक उस सम्वादको पूछने लगे ॥ २८ ॥ ऋषि बोले हे महाभाग सूतजी हे शिवके भक्तोंमें उत्तम, हे महामते, आपके मनोहर वचन सुनकर हमारे चित्तमें बडा कुतूहल हुआ है ॥ २९ ॥ यह सुखदाई ब्रह्मा और नारदजीका सम्वाद कब हुआहै जिसमें संसारके भय मुक्तकरनेवाली शंकरकी लीला कही गई है ॥ ३० ॥

ब्रह्मा श्रुत्वा सुतवचाश्शिवभक्तः प्रसन्नधीः ॥ जगौ शिवयशः प्रीत्या हर्षयन्मुनिसत्तमम् ॥ २७ ॥ व्यास उवाच ॥ सूतोक्तमिति तद्वाक्यमाकर्ण्य
द्विजसत्तमाः ॥ पप्रच्छुस्तत्सुसंवादं कुतूहलसमन्विताः ॥ २८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग शैवोत्तम महामते ॥
श्रुत्वा तव वचो रम्यं चेतो नस्सकुतूहलम् ॥ २९ ॥ कदा बभूव सुखकृद्विधिनारदयोर्महान् ॥ संवादो यत्र गिरिशसुलीला भवमोचिनी
॥ ३० ॥ विधिनारदसंवादपूर्वकं शांकरं यशः ॥ ब्रूहि नस्तात तत्प्रीत्या तत्तत्प्रश्नानुसारतः ॥ ३१ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां
मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ सूतः प्रोवाच सुप्रीतस्तत्संवादानुसारतः ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां
प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने मुनिप्रश्नवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ एकस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ॥
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोर्थं मन आदधे ॥ १ ॥ हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना ॥ यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ॥२॥

विधि और नारदजीके सम्वादपूर्वक जो शंकरका यश है हे तात ! उनके प्रश्नके अनुसार आप हमसे कहिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उन भावितात्मा मुनियोंके वचन सुनकर उस सम्वादके अनुसार प्रसन्न हो सूतजी कहने लगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां प्रथमसृष्टिखण्डे मुनिप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे ब्राह्मणो एकसमय मुनिश्रेष्ठ नारदजी ब्रह्माजीके पुत्र विनीतआत्मा तपकरनेकी इच्छा करतेहुए ॥ १ ॥ हिमालय पर्वतकी एक परमशोभायमान गुफा थी, जिसके किनारे बडे वेगसे गंगानदी बहती है ॥ २ ॥

वहां एक दिव्य आश्रम अनेक शोभाओंसे शोभायमान है वह दिव्यदर्शन नारदजी तपके लिये वहां गये ॥ ३॥ उस स्थानको देखकर मुनिशार्दूल बहुतकालतक तप करते रहे, और मौन हो आसन लगाय प्राणायामकर शुद्धमनसे ॥ ४॥ मुनिने समाधि लगादी जिसमें 'अहम् ब्रह्म' यह ब्रह्मसाक्षात्कार करनेवाला. विज्ञान होता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार जब मुनिश्रेष्ठ नारदजीने तपकरना आरंभ किया तब इन्द्र कंपायमान होगया और मनके संतापसे विह्वल होगया ॥ ६ ॥ और यह विचार किया कि कदाचित् मुनिराज मेरा राज्य चाहते हों तब उनके विघ्नकरनेके लिये इन्द्रने इच्छा की ॥ ७ ॥ तब देवनायक इन्द्रने

तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः ॥ तपोर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ३ ॥ तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः ॥ बध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ॥ ४ ॥ चक्रे मुनिस्समाधिं तमहम्ब्रह्मेति यत्र ह ॥ विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ॥ ५ ॥ इत्थं तपति तस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे ॥ चकंपेऽथ शुनासीरो मनस्संतापविह्वलः ॥ ६ ॥ मनसीति विचिंत्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति ॥ तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः ॥ ७ ॥ सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः ॥ आजगाम द्रुतं कामस्समधीर्महिषीसुतः ॥ ८ ॥ अथागतं स्मरं दृष्ट्वा संबोध्य सुरराट् प्रभुः ॥ उवाच तं प्रपश्याशु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः ॥ ९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ ॥ मित्रवर्य्य महावीर सर्वदा हितकारक ॥ शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना ॥ १० ॥ त्वद्बलान्मे बहूनाञ्च तपोगर्वो विनाशितः ॥ मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहतस्सदा ॥ ११ ॥ हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः ॥ मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासंयमवान्दृढः ॥ १२ ॥

मनसे कामदेवका स्मरण किया, उससमय समानबुद्धिवाला काम वहां आकर स्थित हुआ ॥ ८॥ कामदेवको आयाहुआ देखकर प्रभु देवराज स्वार्थसे कुटिल बुद्धि होनेके कारण शीघ्रतासे बोले ॥ ९ ॥ इन्द्र बोले हे मित्रवर्य हे महावीर ! सदा हितकरनेवाले प्रीतिसे तुम मेरे वचन सुनकर मेरी सहायता करो ॥ १० ॥ तुम्हारेही बलसे मैंने बहुतोंका तपका गर्व नष्ट करदिया है हे मित्र ! तुम्हारेही अनुग्रहसे मेरे राज्यमें स्थिरता है ॥ ११ ॥ हिमालयपर्वतकी गुफामें मुनिश्रेष्ठ

नारदजी तपकरते हैं, मनमें शंकरका उद्देश धारणकर महासंयमी हो रहेहैं, दृढतासे स्थित हैं ॥ १२ ॥ कहीं ब्रह्माजीसे वह मेरा राज्य तो न मांगें, यही मुझे शंका है तुम अभी जाओ और उनके तपमें विघ्न करो ॥ १३ ॥ महेन्द्रसे यह वचन सुनतेही मधुप्रिय काम उस स्थलमें बडे गर्वसे गया, और अपना उपाय करनेलगा ॥ १४ ॥ और यहां सम्पूर्ण अपनी कला उसने रची, और वसन्तने भी मदसे अपना अनेक प्रकारका प्रभाव दिखाया ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पर नारदजीके मनमें कुछभी विकार नहीं आया और शंकरके अनुग्रहसे इन्द्रका गर्व भ्रष्ट होगया ॥ १६ ॥ हे शौनकादि मुनियो ! आदरसे

याचेन्न विधितो राज्यं स ममेति विशंकितः ॥ अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर ॥ १३ ॥ इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामस्समधुप्रियः ॥ जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वश्चकार ह ॥ १४ ॥ रचयामास तत्राशु स्वकलास्सकला अपि ॥ वसंतोपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात् ॥ १५ ॥ न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः ॥ भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह ॥ १६ ॥ शृणुतादरतस्तत्र कारणं शौनकादयः ॥ ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि ॥ १७ ॥ अत्रैव शम्भुनाऽकारि सुतपश्च स्मरारिणा ॥ अत्रैव दग्धस्ते नाशु कामो मुनितपोपहः ॥ १८ ॥ कामजीवनहेतोर्हि रत्या संप्रार्थितैस्सुरैः ॥ सम्प्रार्थित उवाचेदं शंकरो लोकशंकरः ॥ १९ ॥ कंचित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः ॥ परंत्विह स्मरोपायश्चरिष्यति न कश्चन ॥ २० ॥ इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमरास्सदा ॥ कामबाणप्रभावोत्र न चलिष्यत्यसंशयम् ॥ २१ ॥

इसका कारण सुनो यह सब ईश्वरका अनुग्रह है कामदेवका प्रभाव नहीं ॥ १७ ॥ यहीं कामारि शंकरने बडा तप कियाथा और यहीं मुनिके तपमें विघ्नकर्ता काम दग्ध कियागयाथा ॥ १८ ॥ तब रतिने और सब देवताओंने कामदेवके जीवनकेलिये शिवजीसे प्रार्थना की तब लोकके कल्याणकर्ता शिवजी कहने लगे ॥ १९ ॥ हे देवाताओ ! कुछ समयके पीछे कामदेव जीवित होजायगा परन्तु इस स्थलमें कामदेवका प्रभाव कभीभी कुछ नचलेगा ॥ २० ॥ यहांकी जो भूमि आपको दिखाई देतीहै हे देवताओ ! यहां स्थित होनेसे किसीप्रकारभी कामदेवका प्रभाव न चलसकैगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

इसप्रकार शिवजीकी उक्तिसे काम अपनी मिथ्यागति समझकर नारदजीके समीपसे इन्द्रकेपास स्वर्गलोकमें गया ॥ २२ ॥ और वहां सब वृत्तान्त कामदेवनं
नारदजीका सुनाया और उनकी आज्ञासे वसन्तके सहित अपने स्थानको चलागया ॥ २३ ॥ तब इन्द्र यह सुनकर बडा विस्मित हुआ, और नारदजीकी
प्रशंसाकी, कारण कि शिवजीकी मायासे मोहित होनेके कारण वह इनके वृत्तान्तको न जानसका ॥ २४ ॥ सब प्राणियोंको शिवजीकी माया दुर्ज्ञेय है
भक्तके बिना अर्पित आत्मा होनेसे वह सबजगतको मोहित करतेहैं ॥ २५ ॥ और शिवजीके अनुग्रहसे नारदजी वहां बहुतकालतक स्थित रहे, और

इति शंभूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा ॥ नारदे स जगामाशु दिवमिन्द्रसमीपतः ॥ २२ ॥ आचख्यौ सर्ववृत्तांतं प्रभावं
च मुनेः स्मरः ॥ तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं स मधुप्रियः ॥ २३ ॥ विस्मितोभूत्सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम् ॥ तद्वृत्तां
तानभिज्ञो हि मोहितश्शिवमायया ॥ २४ ॥ दुर्ज्ञेया शांभवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ भक्तं विनार्पितात्मानं तया संमोह्यते
जगत् ॥ २५ ॥ नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह ॥ पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः ॥ २६ ॥ कामाज्जयं निजं
मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः ॥ वृथैव विगतज्ञानश्शिवमायाविमोहितः ॥ २७ ॥ धन्या धन्या महामाया शांभवी मुनिसत्तमाः ॥
तद्गतिं न हि पश्यंति विष्णुब्रह्मादयोपि हि ॥ २८ ॥ तया संमोहितोतीव नारदो मुनिसत्तमः ॥ कैलासं प्रययौ. शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं
मदी ॥ २९ ॥ रुद्रं नत्वाब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तङ्गर्ववान्मुनिः ॥ मत्वात्मानं महात्मानं स्वप्रभुञ्च स्मरञ्जयम् ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वा शंकरः प्राह
नारदं भक्तवत्सलः ॥ स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ॥ ३१ ॥

फिर अपना पूर्ण तप समझकर तपस्यासे विराम किया ॥ २६ ॥ हमने काम जीता इस बातका मुनिराजको गर्व हुआ, और शिवकी मायासे मोहित होनेके
कारण ज्ञानसे रहित होगये ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरो शांकरी महामायाको धन्यहै, विष्णुब्रह्मादिक कोईभी उनकी गतिको नहीं जानसकते ॥ २८ ॥ उस
समय उस मायाने नारदजीको अत्यन्त मोहित करादियाथा, और अभिमानसे अपना वृत्तान्त कहनेकेलिये कैलासको गये ॥ २९ ॥ और वहां शंकरको
प्रणामकर गर्वसे अपना सब वृत्तान्त सुनाया, और अपनेको महात्मा मानकर तथा कामजयमें आपनेको प्रभु मान्तेहुए ॥ ३० ॥ यह सुनकर भक्तवत्सल

शिवजीने नारदजीसे कहा जो नारदजी भगवानकी मायासे मोहित होकर भ्रष्टचित्त होगयेथे ॥ ३१ ॥ रुद्रबोले हे तात ! नारद आप धन्य हो मेरे वचन सुनो यह बात जो तुमने मुझसे कही सो नारायणके आगे मत कहना॥ ३२॥ और यदि पूछैं तो भी उनसे यह वृत्तान्त न कहना, सर्वथा इसको गुप्त रखकर किसीप्रकार भी प्रकाशित न करना ॥ ३३ ॥ मैं तुमको विशेष रूपसे कहताहूं कारण कि तुम मेरे प्यारेहो। तुम विष्णुके भक्तहो और विष्णुभक्त मेरे अनुगामी होतेहैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार बहुत भाँतिसे उन्होंने समझाया कारण कि सबको स्मृति करनेवाले वही प्रभुहैं, शिवकी मायासे मोहित होनेके

रुद्र उवाच ॥ ॥ हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः ॥ वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः ॥ ३२ ॥ पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान् ॥ गोप्यंगोप्यं सर्वथाहि नैव वाच्यं कदाचन ॥ ३३ ॥ शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान् ॥ विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तोतीव मेऽनुगः ॥ ३४ ॥ शास्ति स्मेत्थश्च बहुशो रुद्रस्सूतिकरः प्रभुः ॥ नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः ॥ ३५ ॥ प्रबला भाविनी कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः ॥ न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शांकरी ॥ ३६ ॥ ततस्स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगामह ॥ विधिं नत्वाऽब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात् ॥ ३७॥ तदाकर्ण्य विधिस्सोथ स्मृत्वा शम्भुपदाम्बुजम् ॥ ज्ञात्वा सर्वं कारणं तन्निषिषेध सुतं तदा ॥ ३८ ॥ मेने हितन्न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः ॥ शिवमायामोहितश्च रूढचित्तमदांकुरः ॥ ३९ ॥ शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा ॥ तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तंत्यां स्थितं यतः ॥ ४० ॥

कारण नारदजीने इस बातको हितकर न माना ॥ ३५ ॥ भाविनी कर्मगति चतुर जन ही जानसकतेहैं उस शांकरी इच्छाको कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहींहै ॥ ३६ ॥ तब मुनिराज ब्रह्मलोकको चलेगये और ब्रह्माजीको प्रणामकर अपने तपोबलसे कामका जय वर्णन किया ॥ ३७ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजी शिवजीके चरणकमलको प्रणामकर और सब कारण जानकर निजपुत्रसे निषेध करनेलगे ॥ ३८ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारदजीने इस बातको हितकर नहींजाना, शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उनके मनमें मदका अंकुर जानना ॥ ३९ ॥ जैसी लोकमें शिवकी इच्छा होतीहै वैसाही

हुआकरताहै उनके अधीन सब जगत है कारण कि उनके वचनमें सब स्थितहैं ॥ ४० ॥ बुद्धि नष्ट होगई तब नारदजी विष्णुलोकको चले जो कामके जयका अहंकार था उसके कहनेके निमित्त नारदजी चले ॥ ४१ ॥ नारदजीको आयाहुआ देखकर आदरसे विष्णुजीने शीघ्रतासे उठकर इनका सत्कार किया कारण कि सबहेतु जानते थे ॥ ४२ ॥ अपने आसनपर बैठाकर शिवके चरणकमलको स्मरणकर नारदजीके मदनाशक वचन भगवानने कहे ॥ ४३ ॥ विष्णुजी बोले हे तात ! तुम कहांसे किस अर्थ इधर आये हो हे मुनिशार्दूल ! आप धन्यहो मैं आपके आनेसे पवित्र होगया हूं ॥ ४४ ॥

नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः ॥ मदांकुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः ॥ ४१ ॥ आगच्छंतं मुनिन्दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात् ॥ उत्थित्वाग्रे गंतोऽरं तं शिश्लेषज्ञातहेतुकः ॥ ४२ ॥ स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ॥ ४३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कुत आगम्यते तातं किमर्थमिह चागतः ॥ धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽहं तु तवागमात् ॥ ॥ ४४ ॥ विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः ॥ स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुस्समदं कारणं ततः ॥ ज्ञातवानखिलं स्मृत्त्वा शिवपादाम्बुजं हृदि ॥ ४६ ॥ तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराड् हरिः ॥ सांजलिर्विसुधीर्नम्रमस्तकः परमेश्वरम् ॥ ४७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ देवदेव महादेव प्रसीद परमेश्वर ॥ धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्व विमोहिनी ॥ ४८ ॥ इत्यादि स स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम् ॥ ४९ ॥

विष्णुजीके यह वचन सुन नारदमुनि बडे गर्वितहुए मदसे मोहित हो अहंकार सहित सब अपना वृत्तान्त सुनाया ॥ ४५ ॥ नारदजीके मदपूर्वक तथा सहेतुक वचन सुनकर भगवान सब कारण जानलेतेहुए और शिवभगवानको हृदयमें स्मरण कर ॥ ४६ ॥ बडी भक्तिसे शिवात्मा शैवोंके अधिपति भगवान विष्णु शिवकी स्तुति करनेलगे, और अञ्जालिपूर्वक परमेश्वरको मस्तक झुकाय बोले ॥ ४७ ॥ विष्णुजी बोले हे देवदेव महादेव ! परमेश्वर हमपर प्रसन्न हो तुम धन्य हो और सबकी मोहनेवाली आपकी माया भी धन्यहै ॥ ४८ ॥ इत्यादि परमात्मा शिवकी स्तुतिकरके नेत्र मीच शिवजीके पदाम्बुजका

---

१ लघुक्षिप्रमरन्द्रुतमित्यमरः ।

ध्यान करके मौन हुए ॥ ४९ ॥ जो कुछ शिवजी करना चाहतेहैं, विश्वपालक वह सब जानकर शिवकी आज्ञासे मुनिश्रेष्ठसे कहनेलगे ॥ ५०॥ विष्णुजी
बोले हे मुनिशार्दूल ! तपोनिधि उदारबुद्धि आप धन्य हो, हे मुनिराज ! जिसके हृदयमें तीन देवताओंकी भक्ति नहीं होती, उसको काम मोहादिक सताते
हैं ॥ ५१ ॥ उसीको यह विकार दुखदाई होते हैं आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी सदा ज्ञानविज्ञानवालेहो ॥ ५२ ॥ आपको किसप्रकार कामका विकार होसकताहै
आप जन्मसेही विकाररहित सुन्दरबुद्धिवालेहो इसप्रकारसे वह मुनिश्रेष्ठ यह वचन सुनकर ॥ ५३ ॥ हृदयमें नमस्कार कर हँसे और भगवानसे बोले

यत्कर्तव्यं शंकरस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः ॥ शिवशासनतः प्राह हृदाथ मुनिसत्तमम् ॥ ५० ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ धन्यस्त्वं मुनि
शार्दूल तपोनिधिरुदारधीः ॥ भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ॥ ५१ ॥ विकारास्तस्य सद्यो वै भवंत्यखिलदुःखदाः ॥
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान्सदा ॥ ५२ ॥ कथं कामविकारी स्या जन्मनाविकृतस्सुधीः ॥ इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनि
सत्तमः ॥ ५३ ॥ विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम् ॥ नारद उवाच ॥ किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि ॥
॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ याद्दच्छिको मुनिः ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ सूतसूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥
अद्भुतेयं कथा तात वर्णिता कृपया हि नः ॥ १ ॥ मुनौ गते हरिस्तात किं चकार ततः परम् ॥ नारदोपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्या
तुमर्हसि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः ॥ ३ ॥

नारदजी बोले हे भगवन् ! यदि आपकी कृपा मेरे ऊपर है तो कामदेव क्या करसकताहै ॥ ५४ ॥ यह कह नारायणको प्रणामकर मुनि यथेच्छस्थानको
गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीशि० द्वि० रुद्र० भाषाटीकायां प्र०सृ० नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी महाभाग ! हे व्यासशिष्य !
आपको प्रणामहै हे तात ! आपने कृपाकरके यह अद्भुत कथा वर्णन की ॥ १ ॥ हे तात ! मुनिके जानेपर फिर भगवानने क्या किया, और नारदजी फिर
कहांगये सो आप हमसे कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले पौराणिकोंमें उत्तम सूतजी उनके ये वचन सुनकर शिवजीको स्तुतिवाक्योंसे प्रणामकर बोले ॥ ३ ॥

नारदजी जब यदृच्छासे चलेगये तब विष्णुजीने शिवकी इच्छासे मायाकी प्रेरणाकी ॥ ४ ॥ उसने मुनिकेमार्गमें नगर रचा जो सौ योजन
विस्तारवाला मनोहर था ॥ ५ ॥ अपने लोकसेभी अधिक मनोहर अनेकवस्तुओंसे विराजित नरनारियोंके विहारोंसे युक्त चारों वर्णोंसे आकुल ॥ ६ ॥
वहां का शीलनिधि नाम राजा अनेक ऐश्वर्यसे संयुक्त था सुताके स्वयम्वरमें उद्युक्त महोत्सवसे युक्त ॥ ७ ॥ चारों ओरसे राजालोग आयेहुए थे और
कन्याके वरणमें उत्कंठितहुए अनेक वेशोंसे शोभित थे ॥ ८ ॥ ऐसे पुरको देखकर नारदजीको मोह होगया और काममदसे नृपद्वारको कौतुकाक्रान्त

सूत उवाच ॥ मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे ॥ शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः ॥ ४ ॥ मुनिमार्गस्य मध्ये
तु विरेचे नगरं महत् ॥ शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥ स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तुविराजितम् ॥ नरनारीविहाराढ्यं
चतुर्वर्णाकुलं परम् ॥ ६ ॥ तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः ॥ सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः ॥ ७ ॥ चतुर्दिग्भ्यः
समायातैस्संयुतं नृपनन्दनैः ॥ नानावेषैस्सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः ॥ ८ ॥ एतादृशम्पुरं दृष्ट्वा मोहम्प्राप्तोऽथ नारदः ॥ कौतुकी
तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः ॥ ९ ॥ आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः ॥ उपवेश्यार्चयांचक्रे रत्नसिंहासने वरे ॥ १० ॥ अथ
राजा स्वतनयां नामतश्श्रीमतीं वराम् ॥ समानीय नारदस्य पादयोस्समपातयत् ॥ ११ ॥ तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह
विस्मितः ॥ केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ॥ १२ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृतांजलिः ॥ दुहितेयं मम मुने
श्रीमती नाम नामतः ॥ १३ ॥

होकर गये ॥ ९ ॥ शीलनिधि राजाने मुनिश्रेष्ठको आयाहुआ देखकर उनको बैठाय रत्नसिंहासनपर पूजा की ॥ १० ॥ तब राजाने अपनी श्रीमतीनामवाली
कन्याको लाकर नारदजीके चरणोंमें डाला ॥ ११ ॥ उस कन्याको देख मुनिश्रेष्ठ नारदजी विस्मितहो बोले हे राजन् ! यह महाभागा कन्या देवताओंकी
कन्याकी समान कौन है ॥ १२ ॥ उनके यह वचन सुनकर राजा हाथ जोडकर बोले हे मुनि ! यह मेरी श्रीमतीनामवाली कन्या है ॥ १३ ॥

अब इसके प्रदानका समयहै यह वरकी खोजमें है वह सम्पूर्ण लक्षणोंसे लक्षित स्वयम्वरमें प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ हे मुनिराज! इसका जातक और भाग्य आप कहिये यह मेरी कन्या कैसे वरको प्राप्त होगी सो कहो ॥ १५ ॥ यह सुनतेही कामसे व्याकुल हो नारदजीने उसके पानेकी इच्छाकी राजासे सम्भाषण करके नारदजी बोले ॥ १६ ॥ हे राजन्! यह तुम्हारी कन्या सब लक्षणोंसे लक्षित है यह महाभाग्यवती धन्य सब लक्षणोंसे लक्षित है ॥ १७ ॥ सर्वेश्वर अजित बीर शिवजीकी सदृश विभु कामका जीतनेवाला देवताओंमें श्रेष्ठ अवश्य इसका पति होगा ॥ १८ ॥ ऐसा कह नारदजी राजाको

प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम् ॥ सा स्वयंवरसंप्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ १४ ॥ अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात् ॥ कीदृशं तनयेयं मे वरमाप्स्यति तद्वद ॥ १५ ॥ इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः ॥ समाभाष्य स राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ सुतेयं तव भूपाल सर्वलक्षणलक्षिता ॥ महाभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया ॥ १७ ॥ सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः ॥ अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा नृपमामंत्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ बभूव कामविवशश्शिवमायाविमोहितः ॥ १९ ॥ चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कथमेनकाम् ॥ स्वयंवरे नृपालानामेकं मां वृणुयात्कथम् ॥ २० ॥ सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा ॥ तद्दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नात्र संशयः ॥ २१ ॥ विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः ॥ विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मरविह्वलः ॥ २२ ॥ प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तांतमशेषतः ॥ २३ ॥

आमंत्रण कर अपनी इच्छासे चलेगये, और शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण कामके वशीभूत होगये ॥ १९ ॥ नारदजी मनमें सोचनेलगे कि मैं इसको कैसे प्राप्त करूं, स्वयम्वरमें आयेहुए राजोंमेंसे यह एक मुझहीको किस प्रकार वरण करेगी ॥ २० ॥ स्त्रियोंको प्रायः सुन्दरता बहुत प्यारी होतीहै सो वह सुन्दरता देखतेही मुझपर अप्रसन्न होजायगी इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ यह मनमें विचार मुनिश्रेष्ठ नारदजी विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये कामसे व्याकुल हो शीघ्रही विष्णुके लोकको गये ॥ २२ ॥ और भगवानको प्रणाम कर यह वचन बोले. मैं एकान्तमें आपसे सब अपना वृत्तान्त कहताहूँ ॥ २३ ॥

इसप्रकार शिवकी इच्छा कार्यकर्तामें होनेसे भगवान विष्णुने नारदजीसे कहा कहिये तब मुनि केशवसे कहने लगे ॥ २४ ॥ नारदजी बोले
शीलनिधि राजा आपहीके धर्ममें तत्पर हुआ है, कमललोचनी उसकी कन्या श्रीमती वरग्रहणकी इच्छा कियेहै ॥ २५ ॥ वह जगतके मोहनेमें विख्यात
और त्रिलोकीमें सबसे अधिक सुन्दरी है, हे विष्णु मैं आज शीघ्रही उसको वरण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ २६ ॥ वह राजा अपनी कन्याका स्वय
म्वर कररहा है सहस्रों राजपुत्र चारोंदिशाओंसे आरहे हैं ॥ २७ ॥ जो आप अपना रूप मुझे दें तो वह कन्या अवश्य मुझको प्राप्त होसकती है आपके

तथेत्युक्ते तथा भूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि ॥ ब्रूहीत्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम् ॥ २४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ त्वदीयो भूपतिः
शीलनिधिस्स वृषतत्परः ॥ तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ॥ २५ ॥ जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येप्यतिसुन्दरी ॥
परिणेतुमहं विष्णो तामिच्छाम्यद्य माचिरम् ॥ २६ ॥ स्वयंवरं चकरासौ भूपतिस्तनयेच्छया ॥ चतुर्दिग्भ्यस्समायाता राजपुत्रास्सह
स्रशः ॥ २७ ॥ यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् ॥ त्वद्रूपं सा विना कंठे जयमालां न धास्यति ॥ २८ ॥ स्वरूपं देहि मे
नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव ॥ वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा ॥२९॥ सूत उवाच ॥ वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसू
दनः ॥ शांकरीं प्रभुतां बुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ॥३०॥ विष्णुरुवाच ॥ स्वेष्टदेशं मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव ॥ भिषग्वरो यथार्त्त
स्य यतः प्रियतरोऽसि मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरेः ॥ स्वरूपमनुगृह्यास्य तिरोधानं जगाम सः ॥ ३२ ॥

स्वरूपको पाये बिना वह कंठमें जयमाला न डालैगी ॥ २८ ॥ हे नाथ ! आप मुझे अपना स्वरूप दीजिये मैं आपका प्रियसेवक हूं, जैसे वह श्रीमती
राजाकी कन्या मुझे वरण करले सो करो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले मुनिराजके यह वचन सुन हँसतेहुए भगवान शिवजीकी प्रभुताको जानकर दयासे यह
वचन बोले ॥ ३० ॥ विष्णुजी बोले हे मुनि राज ! आप अपने अभिलषित देशको जाओ मैं तुम्हारा प्रियकार्य करूंगा जैसे सद्वैद्य रोगीका हित करता
है कारण कि तुम मेरे प्यारे हो ॥ ३१ ॥ यह कहकर मुनिको विष्णुजीने बन्दरका मुख देदिया, और इनपर अनुग्रह करनेके निमित्त अन्तर्धान

होगये ॥ ३२ ॥ ऐसा कहनेपर मुनि हरिका स्वरूप प्राप्तकर बडे प्रसन्न हुए और अपने आपको कृतार्थ मानकर उनके यत्नको न जाना, ॥ ३३ ॥
तब शीघ्रही नारदजी उस स्थानमें आये जहां राजपुत्रोंके मध्यमें स्वयम्बर होरहा था ॥ ३४ ॥ वह स्वयम्बरकी दिव्यसभा राजपुत्रोंसे व्याप्त थी हे
ब्राह्मणो ! वह सभा उस समय इन्द्रसभाकी समान दीप्तिमान थी ॥ ३५ ॥ उस सभामें नारदजी जाकर प्राप्त हुए और वहां जाकर प्रीतियुक्त चित्तसे
विचार करनेलगे ॥ ३६ ॥ विष्णुरूपधारी मुझे वह अवश्य वरण करैगी मुनिश्रेष्ठने अपने मुखका कुरूपत्व न जाना ॥ ३७ ॥ सब मनुष्योंने मुनिका

एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः ॥ मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः ॥ ३३ ॥ अथ तत्र गतः शीघ्रन्नारदो मुनिसत्तमः ॥
चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैस्समाकुलम् ॥ ३४ ॥ स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता ॥ शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभापरा ॥
॥ ३५ ॥ तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत् ॥ स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥ ३६ ॥ मां वरिष्यति नान्यं
सा विष्णुरूपधरन्ध्रुवम् ॥ आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः ॥ ३७ ॥ पूर्वरूपं मुनिं सर्वें ददृशुस्तत्र मानवाः ॥ तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादयो द्विजाः ॥ ३८ ॥ तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थं समागतौ ॥ विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेदं जज्ञतुः परम् ॥ ३९ ॥
मूढं मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ ॥ कुरुतस्तत्प्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम् ॥ ४० ॥ पश्य नारद रूपं हि विष्णोरिव
महोत्तमम् ॥ मुखं तु वानरस्येव विकटं च भयंकरम् ॥ ४१ ॥ इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः ॥ इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ॥ ४२ ॥ न शुश्राव यथार्थं तु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः ॥ पर्यैक्षच्छ्रीमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः ॥ ४३ ॥

पूर्वरूपही देखा, वह राजपुत्रादि उस भेदको न जानतेहुए ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणका रूप गूढतासे धारेहुए दो रुद्रगण यह भेद जानतेथे यह दोनों गण नारदजी
की रक्षाकेलिये आयेथे ॥ ३९ ॥ वह दोनों गण मुनिको मूढहुआ जानकर उनके समीप गये, और परस्पर संभाषण करते नारदजीका परिहास करने
लगे ॥ ४० ॥ देखो तो नारदजीका रूप साक्षात् विष्णुकी समान होरहाहै, और मुख वानरकी समान बडा भयंकर है ॥ ४१ ॥ यह कामसे मोहित
हुए वृथाही नृपकन्याको चाहतेहैं, इसप्रकार छलके वाक्योंसे उपहास करनेलगे ॥ ४२ ॥ कामसे व्याकुल होनेके कारण नारदजीने यथार्थरूपसे वह

वाक्य नहीं सुना और उस श्रीमतीको देखते हुए उसीके रूपसे मोहित होगये ॥ ४३ ॥ इसी अवसरमें वह श्रेष्ठ राजकन्या अन्तःपुरसे स्त्रियोंके साथ वर वरनेकी इच्छासे चली ॥४४॥ वह शुभलक्षणवाली सोनेकी माला हाथमें धारणकर उस स्वयम्बरके मध्यमें साक्षात् लक्ष्मीकी समान स्थित हुई ॥४५॥ वह सुव्रता माला हाथमें ले सारी सभामें घूमी, और वह नृपसुता अपने अनुरूप वर खोजने लगी ॥ ४६ ॥ विष्णुका सब शरीर मुख वानरकासा ऐसा मुनिको देख वह बडी क्रुद्ध हुई, और वहांसे दृष्टिबचाकर फिर प्रसन्नमनसे चली ॥ ४७ ॥ जब स्वयम्बरमें अपने मनका अभिलषित नहीं पाया

एतस्मिन्नंतरे भूपकन्या चांतःपुरात्तु सा ॥ स्त्रीभिस्समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी ॥४४॥ मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा ॥
तत्र स्वयम्वरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा ॥ ४५ ॥ बभ्राम सा सभां सर्वां मालामादाय सुव्रता ॥ वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं
नृपात्मजा ॥ ४६ ॥ वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा ॥ दृष्टिं निवार्य च ततः प्रस्थिता प्रीतमानसा ॥ ४७ ॥ न दृष्ट्वा
स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनसेप्सितम् ॥ अंतस्सभास्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम् ॥४८॥ एतस्मिन्नंतरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः ॥
न दृष्टः कैश्चिदपरैः केवलं सा ददर्श हि ॥ ४९ ॥ अथ सा तं समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा ॥ अर्पयामास तत्कंठे तां मालां वर
वर्णिनी ॥ ५० ॥ तामादाय ततो विष्णू राजरूपधरः प्रभुः ॥ अंतर्धानमगात्सद्यस्स्वस्थानं प्रययौ किल ॥ ५१ ॥ सर्वे राजकुमा
राश्च निराशाः श्रीमतीम्प्रति ॥ मुनिस्तु विह्वलोऽतीव बभूव मदनातुरः ॥ ५२ ॥ तदा तावूचतुस्सद्यो नारदं स्मरविह्वलम् ॥ विप्ररूप
धरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ ॥ ५३ ॥

तब बडी व्याकुल हुई और सभाके बीचमें खडी होगई वह माला किसीको न पहराई ॥ ४८ ॥ उसी समय मनुष्यका रूप धारणकर विष्णुजी तहां आये, इनको राजकन्याके सिवाय और किसीने नहीं देखा ॥ ४९ ॥ भगवानको देखतेही उसका मुखकमल खिलगया और उस वरवर्णिनीने वह माला विष्णुभगवानके गलेमें डालदी ॥ ५० ॥ राजरूपधारी समर्थ विष्णु उस कन्याको लेकर तुरत अन्तर्धान होकर अपने स्थानको चले ॥ ५१ ॥ तब उस श्रीमतीके प्रति सब राजकुमार निराश होगये, और नारदजी कामातुर होनेके कारण बडे विह्वल होगये ॥५२॥ तब कामसे व्याकुल हुए नारदजीसे

ब्राह्मणरूपधारी ज्ञानविशारद वे दोनों रुद्रगण बोले ॥ ५३ ॥ गणबोले हे नारदजी! आप तो वृथा कामदेवसे मोहित होरहे हो उसके लेनेकी इच्छा करते हो पर अपना मुखतो देखो जो वानरकी समान गर्वित है ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार दोनोंके वचन सुन नारदजी बडे विस्मित हुए, और शिवकी मायोस मोहित होकर दर्पणमें अपना मुख देखा ॥ ५५ ॥ वानरकी समान अपना मुख देखकर बडे क्रुद्धहुए,और मोहितहुए मुनिने उन गणोंको शाप दिया ॥ ५६ ॥ जिसकारण कि तुमने मुझ ब्राह्मणका उपहास कियाहैं इसकारण तुम ब्राह्मणके बीजसे उत्पन्न होकर भी राक्षसहोगे ॥ ५७ ॥

गणावूचतुः ॥ हे नारद मुने त्वं हि वृथा मदनमोहितः ॥ तल्लिप्सुस्स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम् ॥५४॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत् ॥ मुखं ददर्श मुकुरे शिवमायाविमोहितः ॥ ५५ ॥ स्वमुखं वानरस्येव दृष्ट्वा चुक्रोध सत्वरम् ॥ शापन्ददौ तयोस्तत्र गणयोर्मोहितो मुनिः ॥५६॥ युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मणस्य हि ॥ भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती॥ ॥ ५७ ॥ श्रुत्वा हरगणावित्थं स्वशापं ज्ञानिसत्तमौ ॥ न किंचिदूचतुस्तौ हि मुनिमाज्ञाय मोहितम् ॥ ५८ ॥ स्वस्थानं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम्॥ चक्रतुर्मन्यमानौ वै शिवेच्छां सकलां सदा ॥५९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने नारदमोहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ ऋषयऊचुः॥ सूत सूत महाप्राज्ञ वर्णिताह्यद्भुता कथा ॥ धन्या तु शांभवी माया तदधीनं चराचरम् ॥ १ ॥ गतयोर्गणयोश्शंभोस्स्वय मात्मेच्छया विभोः ॥ किं चकार मुनिः क्रुद्धो नारदः स्मरविह्वलः ॥२॥

ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शिवजीके गण इसप्रकारसे शापसुनकर मुनिको मोहित हुआ जानकर कुछ भी न बोले ॥ ५८ ॥ और उदासीन हुए शिवजीकी स्तुति करतेहुए अपने स्थानको गये और उन्होंने यही माना कि यह सब कुछ शिवजीकी इच्छा है ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवम० द्वि० रुद्र० भाषाटीकायां प्र० सृ० नारदमोहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ऋषि बोले हे महापंडित सूतजी ! आपने यह सुन्दर कथा कही शिवजीकी माया धन्य है जिसके अधीन चर अचर हैं ॥ १ ॥ हे सूतजी ! जब वह शिवजीके गण अपनी इच्छासे चलेगये तब कामसे व्याकुल क्रुद्धहुए नारदजीने क्या किया ॥ २ ॥

सूतजी बोले मोहितहुए मुनिराजने उनको यथोचित शाप देकर जलमें अपना मुख देखा, शिवजीकी इच्छासे मन व्याकुल होगया ॥ ३ ॥ और शिवकी
इच्छासे ही उनको उससमय बोध न रहा यही समझे कि भगवान विष्णुने छलकिया और महाक्रोध करके विष्णुके लोकको गये ॥ ४ ॥ और जलतीहुई
अग्निकी समान क्रोधकर यह वचन बोले उससमय शिवकी इच्छासे नारदजीका ज्ञान नष्ट होगया, इससे दुरुक्तिसे, गर्वित व्यंग वचन बोले ॥ ५ ॥ नारदजी
बोले हे विष्णुजी ! आप महाकुटिल कपटी संसारके मोहनेवाले हो, आप मायावी मलीन आशयवाले किसीके उत्साहको नहीं सहते हो ॥ ६ ॥ पहले

सूत उवाच ॥ विमोहितो मुनिर्दत्त्वा तयोश्शापं यथोचितम् ॥ जले मुखं निरीक्ष्याथ स्वरूपं गिरिशेच्छया ॥ ३ ॥ शिवेच्छया
न प्रबुद्धः स्मृत्वा हरिकृतच्छलम् ॥ क्रोधं दुर्विषहं कृत्वा विष्णुलोकं जगाम ह ॥ ४ ॥ उवाच वचनं क्रुद्धस्समिद्ध इव पावकः ॥ दुरु
क्तिगर्भितं व्यङ्गं नष्टज्ञानश्शिवेच्छया ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ हे हरे त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः ॥ परोत्साहं न सहसे मायावी
मलिनाशयः ॥ ६ ॥ मोहिनीरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा ॥ असुरेभ्योऽपाययस्त्वं वारुणीममृतं न हि ॥ ७ ॥ चेत्पिबेन्न विषं रुद्रो
दयां कृत्वा महेश्वरः ॥ भवेन्नष्टाऽखिला माया तव व्याजरते हरे ॥ ८ ॥ गतिस्सकपटा तेऽतिप्रिया विष्णो विशेषतः ॥ साधुस्वभावो न
भवान्स्वतंत्रः प्रभुणा कृतः ॥ ९ ॥ कृतं समुचितन्नैव शिवेन परमात्मना ॥ तत्प्रभावबलं ध्यात्वा स्वतंत्रकृतिकारकः ॥ १० ॥ त्वद्गतिं
सुसमाज्ञाय पश्चात्तापमवाप सः ॥ विप्रं सर्वोपरि प्राह स्वोक्तवेदप्रमाणकृत् ॥ ११ ॥ तज्ज्ञात्वाहं हरे त्वाद्य शिक्षयिष्यामि तद्बलात् ॥
यथा न कुर्याः कुत्रापीदृशं कर्म कदाचन ॥ १२ ॥

मोहिनीरूप धारण कर तुमनें कपट किया, असुरोंको तुमने वारुणी पियायी अमृत नहीं दिया ॥ ७ ॥ यदि दयाकरके महादेवजी विषपान नहीं करते, तब हे
व्याजरत नारायण ! आपकी सब माया नष्ट होजाती ॥ ८ ॥ हे विष्णुजी ! विशेषकर आपको कपटगति प्रियहै तुम साधुस्वभाव नहीं हो तुमको प्रभुने
स्वतंत्र कियाहै ॥ ९ ॥ यह परमात्मा शिवने उचित नहीं किया, उनके प्रभाव और बलका ध्यान करके स्वतंत्र कृति करनेवाले भगवान ॥ १० ॥
आपकी गतिको जानकर बहुत पछतातेहैं उन्होंने अपने वेदके प्रमाणसे ब्राह्मणको सर्वोपरि कहाहै ॥ ११ ॥ यह जानकर उनहींके वससे हे हरी ! मैं आपको

शिक्षा देताहूं जिस्से आगेको फिर तुम ऐसा कर्म न करो ॥ १२ ॥ अबतक भी तुम निर्भय हो, कभी वेगवालोंसे पाला नहीं पडाहै हे विष्णो ! इस समय
तुम अपने कर्मका फल पाओगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार विष्णुजीसे कहकर मायासे मोहितहुए नारदजी अपना ब्रह्मतेज दिखाते हुए दुःखीहो भगवानको
शाप देनेलगे॥ १४ ॥ हे विष्णो ! स्त्रीके निमित्त तुमने मुझको मोहित और व्याकुल कियाहै, और जिस स्वरूपसे तुमने मेरे साथ कपट किया है ॥ १५ ॥
उसीरूपसे तुम मनुष्य होकर दुःखपाओ जैसा तुमने मेरा मुख किया है, इस मुखवालेही तुम्हारी सहाय करेंगे ॥ १६ ॥ दूसरोंको दुःखदेनेवाले तुम

अद्यापि निर्भयस्त्वं हि संगं नापस्तरस्विना ॥ इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः ॥ १३ ॥ इत्थमुक्त्वा हरिं सोथ मुनिर्माया
विमोहितः ॥ शशाप क्रोधनिर्विण्णो ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन् ॥१४॥ स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो मामकार्षीर्विमोहकः ॥ अन्वकार्षीस्स्वरूपेण
येन कापट्यकार्यकृत् ॥ १५ ॥ तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भव तद्दुःखभुग्घरे ॥ यन्मुखं कृतवान्मेत्वं ते भवंतु सहायिनः ॥ १६ ॥ त्वं
स्त्रीवियोगजं दुःखं लभस्व परदुःखदः ॥ मनुष्यगतिकः प्रायो भवाज्ञानविमोहितः ॥ १७ ॥ इति शप्त्वा हरिं मोहान्नारदोऽज्ञानमो
हितः ॥ विष्णुर्जग्राह तं शापं प्रशंसञ्शांभवीमजाम् ॥ १८॥ अथ शंभुर्महालीलो निश्चकर्ष विमोहिनीम् ॥ स्वमायां मोहितो ज्ञानी
नारदोप्यभवद्यया ॥ १९ ॥ अंतर्हितायां मायायां पूर्ववन्मतिमानभूत् ॥ नारदो विस्मितमनाः प्राप्तबोधो निराकुलः ॥ २० ॥
पश्चात्तापमवाप्याति निनिन्द स्वं मुहुर्मुहुः ॥ प्रशशंस तदा मायां शांभवीं ज्ञानिमोहिनीम् ॥ २१ ॥

स्त्रीके वियोगका दुःख पाओ, और अज्ञानसे मोहितहो तुमको मानुषीलीला करनी पडैगी ॥ १७ ॥ इस प्रकार अज्ञानसे मोहित हुए नारदजी इसप्रकार
भगवानको शापदे चुपहुए, और विष्णुजीने शिवकी माया ऐसाही करना चाहतीहै यह जानकर उस शापको स्वीकार किया ॥ १८ ॥ तब शिवजीने
विश्वकी मोहनेवाली अपनी माया खैंचली. जिस मोहिनी मायासे ज्ञानी मुनि नारदजी मोहित होरहेथे ॥ १९ ॥ ज्योंहीं माया हटी कि नारदजी पूर्वकी
समान मतिमान होगये और ज्ञानहोनेसे बडे विस्मित तथा व्याकुलता रहित होगये ॥ २० ॥ बडा पछतावा करतेहुए वारंवार अपनी निन्दा करनेलगे और

ज्ञानियोंको मोहनेवाली शिवजीकी मायाकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २१ ॥ तब मुनिने यह सब मायाका विभ्रम समझकर वैष्णवोंमें उत्तम मुनिजी विष्णुभगवानके
चरणोंमें पडगये ॥ २२ ॥ जब भगवानने उठाया तब नारदजी बोले मैं बडा नष्ट दुर्मतिहूं मुझ कुबुद्धिने मोहित होकर बहुत बुरे वचन कहे ॥ २३ ॥
हे नाथ! आपको जो शाप दियाहै उसको आप मिथ्या कीजियेगा, मैंने महापाप कियाहै इससे अवश्य मैं नरकको जाऊंगा ॥ २४ ॥ हे भगवन्!
मैं क्य उपाय करूं आप वह मुझे आदेश कीजिये जिससे मेरे पाप नष्ट होजायँ और मुझे नरक न हो ॥ २५ ॥ यह कहकर मुनिश्रेष्ठ फिर विष्णुजीके

अथ ज्ञात्वा मुनिस्सर्वं मायाविभ्रममात्मनः ॥ अपतत्पादयोर्विष्णोर्नारदो वैष्णवोत्तमः ॥ २२ ॥ हर्य्युपस्थापितः प्राह वचनं नष्टदु
र्मतिः ॥ मया दुरुक्तयः प्रोक्ता मोहितेन कुबुद्धिना ॥ २३ ॥ दत्तश्शापोऽपि तेनाथ वितथं कुरु तं प्रभो ॥ महत्पापमकार्षं हि यास्या
मि निरयं ध्रुवम् ॥ २४ ॥ कमुपायं हरे कुर्यां दाऽसोहं ते तमादिश ॥ येन पापकुलं नश्येन्निरयो न भवेन्मम ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा स
पुनर्विष्णोः पादयोर्मुनिसत्तमः ॥ पपात सुमतिर्भक्त्या पश्चात्तापमुपागतः ॥ २६ ॥ अथ विष्णुस्तमुत्थाप्य बभाषे सूनृतं वचः ॥
विष्णुरुवाच ॥ न खेदं कुरु मे भक्त वरस्त्वं नात्र संशयः ॥ २७ ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि सुहितं तव निश्चयात् ॥ निरयस्ते न भविता
शिवश्शं ते विधास्यति ॥ २८ ॥ यदकार्षीश्शिववचो वितथं मदमोहितः ॥ स दत्तवानीदृशं ते फलं कर्मफलप्रदः ॥ २९ ॥ शिवेच्छया
ऽखिलं जातं कुर्वित्थं निश्चितां मतिम् ॥ गर्वापहर्ता स स्वामी शंकरः परमेश्वरः ॥ ३० ॥

चरणोंमें गिरे, और सुमति भक्तिसे बडा पछतावा करने लगे ॥ २६ ॥ तब विष्णुभगवान् नारदजीको उठाकर सत्यवाणी बोले हे मेरे भक्त! खेद
मतकरो इसमें सन्देह नहीं कि तुम मेरे भक्त और श्रेष्ठहो ॥ २७ ॥ हे तात! सुनो तुम्हारा निश्चयसे हितकर वाक्य कहताहूं तुमको नरक न होगा और
शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ २८ ॥ जो कि तुमने मदसे मोहित हो शिवजीके वचन उल्लंघन किये, इसीसे कर्मफलके देनेवाले शिवजीने तुमको
यह फल दियाहै ॥ २९ ॥ शिवकी इच्छासेही यह सब कुछ हुआ है ऐसी निर्मल मति रक्खो यही परमेश्वर शंकर स्वामी गर्वके हरनेवाले हैं ॥ ३० ॥

वह परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द बोधस्वरूप हैं, निर्गुण निर्विकार सत रज तमसे परे हैं ॥ ३१ ॥ वही अपनी मायाको स्वीकार करके ब्रह्मा विष्णु महेश तीनरूपसे होते हैं वही निर्गुण सगुण होतेहैं ॥ ३२ ॥ निर्गुणमें शिवरूप वही परमात्मा महेश्वर होताहै, परब्रह्म अविनाशी अनन्त महादेव उन्हींको कहते हैं ॥ ३३ ॥ उनकी सेवा करनेके लिये जगत्का विधाता मुझको कियाहै, और रुद्ररूपसे वह सब जगत्का संहार करतेहैं ॥ ३४ ॥ वह साक्षी शिवस्वरूप निर्गुण मायांसे भिन्न है, वह स्वेच्छाचारी समान विहारी भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवालेहैं ॥ ३५ ॥ हे नारदजी ! तुम सुखदाई श्रेष्ठउपायको सुनो, जो

परं ब्रह्म परात्मा स सच्चिदानंदबोधनः ॥ निर्गुणो निर्विकारी च रजस्सत्वतमःपरः ॥ ३१ ॥ स एवादाय मायां स्वां त्रिधा
भवति रूपतः ॥ ब्रह्माविष्णुमहेशात्मा निर्गुणोऽनिर्गुणोऽपि सः ॥ ३२ ॥ निर्गुणत्वे शिवाह्वो हि परमात्मा महेश्वरः ॥ परं
ब्रह्माव्ययोऽनंतो महादेवेति गीयते ॥ ३३ ॥ तत्सेवया विधिस्स्रष्टा पालको जगतामहम् ॥ स्वयं सर्वस्य संहारी रुद्ररूपेण सर्वदा ॥
॥ ३४ ॥ साक्षी शिवस्वरूपेण मायाभिन्नस्स निर्गुणः ॥ स्वेच्छाचारी संविहारी भक्तानुग्रहकारकः ॥ ३५ ॥ शृणु त्वं नारद मुने
सदुपायं सुखप्रदम् ॥ सर्वपापापहर्त्तारं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ ३६ ॥ त्यक्त्वा स्वसंशयं सर्वं गाय शंकरसद्यशः ॥ शतनामशिवस्तोत्रं
सदानन्यमतिर्जप ॥ ३७॥ यज्जपित्वा द्रुतं सव तव पापं विनश्यति ॥ इत्युक्त्वा नारदं विष्णुः पुनः प्राह दयान्वितः ॥ ३८ ॥
मुने न कुरु शोकं त्वं त्वया किंचित्कृतं न हि ॥ स्वेच्छया कृतवान्शंभुरिदं सर्वं न संशयः ॥ ३९ ॥

सब पापका हरनेवाला भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण संदेहको त्यागन करके शिवजीका श्रेष्ठ यश गान करो, और अनन्यमतिसे शिवजीके शतनाम स्तोत्रको सदा जपो ॥ ३७ ॥ जिसके जपनेसे शीघ्रही तुम्हारे सब पाप नष्ट होजायँगे, नारदजीसे यह कहकर फिरभी दयाकरके विष्णुजी बोले ॥ ३८ ॥ हे मुनिराज ! तुम शोक मतकरो तुमने कुछ नहीं किया है, इसमें सन्देह नहीं यह सब शिवजीने अपनी इच्छासे किया है ॥ ३९ ॥

तुम्हारे काम क्लेश मदसे उन्होंने तुम्हारी मति हरली; और उन्हा महेश्वरने तुम्हारे मुखसे मुझे शाप दिलवाया ॥ ४० ॥ इसप्रकार लोकमें स्वयं यह अपना चरित्र प्रगट किया, वह मृत्युंजय कालके काल भक्तोंके उद्धार करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ शिवके समान कोई सुखदायक प्रियस्वामी मेरा नहींहै, वही परमेश्वर मुझे सब शक्तिके देनेवालेहैं ॥४२॥ हे मुने! उन्हींकी उपासना करो उन्हींका सदा भजन करो उनका यश सुनो और गावो और उन्हींका नित्य अर्चन करो ॥ ४३ ॥ जो मन वचन कर्मसे शंकरके यशको प्राप्त होताहै, वही पंडित और जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ४४ ॥ शिवनामकी दावाग्निसे महापातकरूपी पर्वत

अहार्षीत्त्वन्मतिं दिव्यां काम क्लेशमदात्स ते ॥ त्वन्मुखाद्दापयांचक्रे शापं मे स महेश्वरः ॥ ४० ॥ इत्थं स्वचरितं लोके प्रकटीकृतवान् स्वयम् ॥ मृत्युंजयः कालकालो भक्तोद्धारपरायणः ॥ ४१ ॥ न मे शिवसमानोस्ति प्रियः स्वामी सुखप्रदः ॥ सर्वशक्तिप्रदो मेऽस्ति स एव परमेश्वरः ॥ ४२ ॥ तस्योपास्यां कुरु मुने तमेव सततं भज ॥ तद्यशः शृणु गाय त्वं कुरु नित्यं तदर्चनम् ॥ ४३ ॥ कायेन मनसा वाचा यश्शंकरमुपैति भो ॥ स पण्डित इति ज्ञेयस्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४४ ॥ शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः ॥ भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४५ ॥ पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि तान्यतः ॥ शिवार्चनैकनश्यानि नान्य नश्यानि सर्वथा ॥ ४६ ॥ स वैदिकस्स पुण्यात्मा स धन्यस्स बुधो मुने ॥ यस्सदा कायवाक्चित्तैश्शरणं याति शंकरम् ॥ ४७ ॥ भवंति विविधा धर्मा येषां सद्यःफलोन्मुखाः ॥ तेषां भवति विश्वासस्त्रिपुरांतकपूजने ॥ ४८ ॥ पातकानि विनश्यंति यावंति शिवपूजया ॥ भुवि तावंति पापानि न संत्येव महामुने ॥ ४९ ॥

अनायास भस्म होजातेहैं यह बात सत्यहै २ इसमें सन्देह नहीं ॥४५॥ पापमूलवाले दुःख अनेकप्रकारके हैं पर वे शिवकीही पूजासे नष्ट होतेहैं कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ ४६ ॥ हे मुने! वही वैदिक वही पुण्यात्मा वही पंडित वही धन्यहै जो सदा मन वचन कर्मसे शिवजीकी शरणमें जाताहै ॥ ४७ ॥ यद्यपि अनेक धर्म हैं पर उनमें शीघ्रही फलका देनेवाला धर्म शिवका पूजन है जो ऐसा जानतेहैं वह शिवका पूजन करतेहैं और शंकरके पूजनमें उनका विश्वास होताहै ॥४८॥ शिवके पूजनसे सबही पाप नष्ट होजाते हैं हे महामुने! इतने तो पृथिवीपर पाप हैं नहीं जितने शिवपूजनसे नष्ट होजातेहैं ॥४९॥

हे मुने ! ब्रह्महत्या आदि सहस्रों पाप हैं वह सब शिवके स्मरणसे नष्ट होजातेहैं यह मैं सत्य २ ही कहताहूं ॥ ५० ॥ जो शिवनामकी नौकाको
प्राप्त होकर संसारसागरको पार होतेहैं, संसारमूलके उनके पाप अवश्य नष्ट होजातेहैं ॥ ५१ ॥ हे मुने ! संसारके मूलभूत पातकोंका शिवनामके
कुठारसे अवश्यही नाश होजाताहै ॥ ५२ ॥ पापरूपी दावानलसे घबराये हुओंको शिवनामरूप अमृतपान करना चाहिये, पापरूपी दावाग्निसे तप्त हुओंको
इसके विना शांति नहीं होतीहै ॥ ५३ ॥ शिवनामरूपी अमृतकी वर्षाधारासे गीले होकर संसाररूपी अग्निमें पडे हुए शोच नहीं करतेहैं, इसमें सन्देह नहीं

ब्रह्महत्यादिपापानां राशयोप्यमिता मुने ॥ शिवस्मृत्या विनश्यंति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ५० ॥ शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं
तरंति ते ॥ संसारमूलपापानि तस्य नश्यंत्यसंशयम् ॥ ५१ ॥ संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ॥ शिवनामकुठारेण विनाशो
जायते ध्रुवम् ॥ ५२ ॥ शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः ॥ पापदावाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि ॥ ५३ ॥ शिवेति नामपी
यूषवर्षधारापरिप्लुताः ॥ संसारदवमध्येपि न शोचंति न संशयः ॥ ५४ ॥ न भक्तिश्शंकरे पुंसां रागद्वेषरतात्मनाम् ॥ तद्विधानां
हि सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥ ५५ ॥ अनंतजन्मभिर्येन तपस्तप्तं भविष्यति ॥ तस्यैव भक्तिर्भवति भवानीप्राणवल्लभे ॥ ५६ ॥
जातापि शंकरे भक्तिरन्यसाधारणी वृथा ॥ परंत्वव्यभिचारेण शिवभक्तिरपेक्षिता ॥ ५७ ॥ यस्यासाधारणी शंभौ भक्तिरव्यभिचा
रिणी ॥ तस्यैव मोक्षस्सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम ॥ ५८ ॥ कृत्वाप्यनंतपापानि यदि भक्तिर्महेश्वरे ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव
न संशयः ॥ ५९ ॥ भवंति भस्मसाद्वृक्षा दवदग्धा यथा वने ॥ तथा भवंति दग्धानि शांकराणामघान्यपि ॥ ६० ॥

॥ ५४ ॥ रागद्वेषमें प्रीति करनेवालोंकी शंकरके चरणोंमें भक्ति नहीं होती, और उस द्वेषादिसे रहितोंकी सहसा मुक्ति होती है ॥ ५५ ॥ जिसने
अनन्तजन्मतक तपस्या की होगी उसीकी भक्ति भवानीपतिमें होती है ॥५६॥ यदि शंकरमें अन्यसाधारणी भक्ति हो तो वह वृथाहै, शिवमें अव्यभिचारिणी
भक्ति होनी चाहिये ॥ ५७ ॥ जिसकी शिवजीमें अनन्य साधारणी अव्यभिचारिणी भक्तिहै उसीको मोक्ष सुलभ है, औरको नहीं ऐसा मेरा मत है ॥५८॥
अनन्त पापकरके भी यदि शंकरमें प्रीति हो तो निःसन्देह उसके सब पाप दूर होजाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥५९॥ जैसे वनमें दावाग्निसे वृक्ष भस्म होजाते

हैं इसीप्रकार शंकरके नामसे पाप दग्ध होजातेहैं ॥ ६० ॥ जो नित्य भस्म लगानेसे पवित्रअंग हुआ : शिवपूजनमें रत होताहै, वह अतिदारुण संसार
सागरके पार होजाताहै ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणका द्रव्य हरणकर तथा अनेक ब्राह्मणोंको मारकर भी शंकरका सेवक पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ६२ ॥ सब
वेदोंको देखकर शिवका पूजनही संसारभयका छुडानेवाला है यह पूर्वपुरुषोंने निश्चय कियाहै ॥ ६३ ॥ आजसे लेकर यत्नपूर्वक यथाविधि भक्तिसे
साम्बसदाशिव महेश्वरका नित्य भजन करो ॥ ६४ ॥ चरणोंसे लेकर मस्तकतक भस्म लगाकर सब वेदोंमें प्रसिद्ध "ॐ नमः शिवाय" शिवके इस षडक्षर

यो नित्यं भस्मपूतांगो शिवपूजोन्मुखो भवेत् ॥ स तरत्येव संसारमपारमतिदारुणम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्ब
हून् ॥ न लिप्यते नरः पापैर्विरूपाक्षस्य सेवकः ॥ ६२ ॥ विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवस्यैवार्चनम्परम् ॥ संसारनाशनोपाय इति
पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥६३॥ अद्यप्रभृति यत्नेन सावधानो यथाविधि ॥ साम्बं सदाशिवं भक्त्या भज नित्यं महेश्वरम् ॥ ६४ ॥ आपाद
मस्तकं सम्यक् भस्मनोद्धूल्य सादरम् ॥ सर्वश्रुतिश्रुतं शैवम्मंत्रञ्जप षडक्षरम् ॥ ६५ ॥ सर्वाङ्गेषु प्रयत्नेन रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान् ॥
धारयस्वातिसद्भक्त्या समन्त्रम्विधिपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ शृणु शैवीं कथां नित्यं वद शैवीं कथां सदा ॥ पूजयस्वातियत्नेन शिवभक्ता
न्पुनः पुनः ॥ ६७ ॥ अप्रमादेन सततं शिवैकशरणो भव ॥ शिवार्चनेन सततमानन्दः प्राप्यते यतः ॥ ६८ ॥ उरस्याधाय विशदे
शिवस्य चरणाम्बुजौ ॥ शिवतीर्थानि विचर प्रथमं मुनिसत्तम ॥ ६९ ॥ पश्यन्माहात्म्यमतुलं शंकरस्य परात्मनः ॥ गच्छानन्दवनं
पश्चाच्छंभुप्रियतमं मुने ॥ ७० ॥ तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा पूजनं कुरु भक्तितः ॥ नत्वा स्तुत्वा विशेषेण निर्विकल्पो भविष्यसि ॥ ७१ ॥

मंत्रका जपकरो ॥ ६५ ॥ और शिवके प्रिय रुद्राक्षोंको सर्वांगमें यत्नपूर्वक धारण करो यह भक्ति और मंत्रोंसे धारण करने चाहिये ॥६६॥ यहां शैवी
कथा सुनो और जपो और वारंवार शिवभक्तोंका प्रेमपूर्वक यत्नसे पूजन करो ॥ ६७ ॥ और अप्रमादसे नित्य एक शिवकीही शरणमें हो कारण कि
शिवार्चनसेही नित्य आनन्दकी प्राप्ति होतीहै ॥ ६८ ॥ शिवजीके चरणकमल अपने हृदयमें धारण करके हे मुनिसत्तम शिवजीके तीर्थोंमें विचरण करो
॥ ६९ ॥ और परमात्मा शंकरके निर्मलमाहात्म्यको देखतेहुए हे मुने शिवजीके आनन्दवनमें जाओ ॥ ७० ॥ वहां विश्वेश्वरको देखकर भक्तिसे पूजन

करो, उनको विशेषरूपसे नमस्कार और भक्तिकरके निर्विकल्प होजाओगे ॥ ७१ ॥ हे मुने फिर आप चाहैं जहां गमन करना और फि मेरे शासनसे भक्तिपूर्वक ब्रह्मलोकमें जाना ॥ ७२ ॥ हे मुने अपने स्वामीकी विशेषरूपसे भक्ति और नमस्कार करनेसे बडी प्रीतिसे जहां तहां शिवजीका माहात्म्य अनेक प्रकारसे पूछना चाहिये ॥ ७३ ॥ वह शिवजीके भक्तोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी तुमको शंकरका माहात्म्य सुनावैंगे, और प्रीतिसे शंकरके शतनामोंका स्तोत्रभी कहेंगे ॥७४॥ हे मुने! आजसे तुम शिवके भक्त शैव होजाओ, शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे, और तुम विशेषरूपसे मुक्तिके भागी होंगे ॥७५॥

ततश्च भवता नूनं विधेयं गमनं मुने ॥ ब्रह्मलोके स्वकामाथ शासनान्मम भक्तितः ॥ ७२ ॥ नत्वा स्तुत्वा विशेषेण विधिं स्वजनकं मुने ॥ प्रष्टव्यं शिवमाहात्म्यं बहुशः प्रीतचेतसा ॥ ७३ ॥ स शवप्रवरो ब्रह्मा माहात्म्यं शंकरस्य ते ॥ श्रावयिष्यति सुप्रीत्या शतनामस्तवं च हि ॥ ७४ ॥ अद्यतस्त्वं भव मुने शैवश्शिवपरायणः ॥ मुक्तिभागी विशेषण शिवस्ते शं विधास्यति ॥ ७५ ॥ इत्थं विष्णुर्मुनिं प्रीत्या ह्युपदिश्य प्रसन्नधीः ॥ स्मृत्वा नुत्वा शिवं स्तुत्वा ततस्त्वंतरधीयत ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने नारदस्य विष्णूपदेशवर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ अंतर्हिते हरौ विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ॥ विचचार महीं पश्यञ्छिवलिंगानि भक्तितः ॥ १॥ पृथिव्या अटनं कृत्वा शिवरूपाण्यनेकशः ॥ ददर्श प्रीतितो विप्रा भुक्तिमुक्तिप्रदानि सः ॥ २ ॥ अथ तं विचरंतं कौ नारदं दिव्यदर्शनम् ॥ ज्ञात्वा शंभुगणौ तौ तु सुचित्तमुपजग्मतुः ॥ ३ ॥ शिरसा सुप्रणम्याशु गणावूचतुरादरात् ॥ गृहीत्वा चरणौ तस्य शापोद्धारेच्छया च तौ ॥ ४ ॥

इसप्रकार प्रसन्नात्मा विष्णुजी मुनिको उपदेश देकर शिवकी स्तुति और स्मरण कर अन्तर्धान होगये ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवम० रुद्र० भाषाटीकायां प्र० सृ० विष्णूपदेशवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले हे ब्राह्मणो ! जब विष्णुजी अन्तर्धान होगये तब मुनिश्रेष्ठ नारदजी भक्तिसे शिवलिंगोंका दर्शन करतेहुए पृथिवीमें विचरण करनेलगे ॥ १ ॥ पृथिवीमें विचरण करतेहुए अनेक भुक्तिमुक्ति देनेवाले शिवलिंगोंका प्रेमसे दर्शन किया ॥ २ ॥ जब इसप्रकारसे दिव्यदर्शन नारदजी पृथिवीमें विचरने लगे तब रुद्रगणोंने उनको शांत जानकर उनके समीप गमन किया ॥ ३ ॥ और शिरसे प्रणामकर आदरसे वह

गण बोले और चरण पकडकर शापोद्धारकी इच्छा की ॥ ४ ॥ शिवगण बोले हे ब्रह्मपुत्र ! नारदजी प्रेमसे हमारा वचन सुनो, आपका अपराध करनेवाले वास्तवमें हम दोनों ब्राह्मण नहीं है ॥ ५ ॥ हे मुने ! आपके अपराधी हम दोनों शिवजीके गणहैं, राजपुत्रीके स्वयम्वरमें मायासे मोहितचित्त होकर ॥ ६ ॥ परेशकी प्रेरणासे आपने हमको शाप दिया, कुसमय जानकर उस समय हमने मौनरहनाही उत्तम जाना ॥ ७ ॥ हमने अपने कर्मका फल पाया इसमें किसीका दोष नहीं है हे विभो ! अब प्रसन्न होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करो ॥ ८ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार भक्तिसे भरे आदरपूर्वक उन गणोंके वचन

शिवगणावूचतुः ॥ ब्रह्मपुत्र सुरर्षे हि शृणु प्रीत्यावयोर्वचः ॥ तवापराधकर्तारावावां विप्रौ न वस्तुतः ॥ ५ ॥ आवां हर
गणौ विप्र तवागस्कारिणौ मुने ॥ स्वयम्वरे राजपुत्र्या मायामोहितचेतसा ॥ ६ ॥ त्वया दत्तश्च नौ शापः परेशप्रेरितेन ह ॥ ज्ञात्वा
कुसमयं तत्र मौनमेव हि जीवनम् ॥ ७ ॥ स्वकर्मणः फलं प्राप्तं कस्यापि न हि दूषणम् ॥ सुप्रसन्नो भव विभो कुर्वनुग्रहमद्य नौ ॥ ८ ॥
सूत उवाच ॥ वच आकर्ण्य गणयोरिति भक्त्युक्तमादरात् ॥ प्रत्युवाच मुनिः प्रीत्या पश्चात्तापमवाप्य सः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥
शृणुतं मे महादेव गणौ मान्यतमौ सताम् ॥ वचनं सुखदं मोहनिर्मुक्तं च यथार्थकम् ॥ १० ॥ पुरा मम मतिर्भ्रष्टासीच्छिवेच्छावशात्
ध्रुवम् ॥ सर्वथा मोहमापन्नश्शप्तवान्वां कुशेमुषिः ॥ ११ ॥ यदुक्तं तत्तथा भावि तथापि शृणुतां गणौ ॥ शापोद्धारमहं वच्मि क्षमेथा
मघमद्य मे ॥ १२ ॥ वीर्यान्मुनिवरस्याप्त्वा राक्षसेशत्वमादिशम् ॥ स्यातां विभवसंयुक्तौ बलिनौ सुप्रतापिनौ ॥ १३ ॥ सर्वब्रह्मांडरा
जानौ शिवभक्तौ जितेन्द्रियौ ॥ शिवापरतनोर्मृत्युं प्राप्य स्वं पदमाप्स्यथः ॥ १४ ॥

सुन पछतावा करतेहुए मुनि प्रेमसे उनसे बोले ॥ ९ ॥ नारदजी बोले सत्पुरुषोंमें मानपानेयोग्य महादेवजीके गणो सुनो, मेरा सुखदायक वचन मोहसे निर्मुक्त और यथार्थहै ॥ १० ॥ निश्चय शिवेच्छासेही पहले मेरी मति भ्रष्ट होगई थी, सर्वथा मोहके वशमें होकर ही मुझ कुबुद्धिने तुमको शाप दिया ॥ ११ ॥ जो कुछ कहदियाहै वैसा तो होनाहीहै पर तुम मेरे वचन सुनो मेरा अपराध क्षमा करो मैं तुम्हारे शापोद्धारका उपाय कहता हूं ॥ १२ ॥ तुम मुनिराजके वीर्यसे जन्म लेकर राक्षस होंगे बडे ऐश्वर्य संयुक्त और प्रतापशाली होंगे ॥ १३ ॥ सब ब्रह्माण्डके राजा शिवभक्त जितेन्द्रिय होंगे, शिवके दूसरे शरी

रसेही मृत्युको प्राप्त होकर अपने पदको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ सूतजी बोले महात्मा नारदजीके इस प्रकारके वचन सुनकर दोनों शिवजीके गण प्रसन्न हो
अपने स्थानको चलेगये ॥ १५ ॥ नारदजी भी परमप्रसन्न हो अनन्यमनसे शिवजीका ध्यान करतेहुए वारंवार शिवतीर्थोंका दर्शनकरते पृथिवीमें विचरने
लगे ॥ १६ ॥ तब वह मुनि सबसे ऊपर शोभामें विराजमान शिवकी प्रिया शिवको सुखदेनेवाली शिवस्वरूपिणी काशीपुरीमें प्राप्त होकर ॥ १७ ॥
वहां काशीनाथका दर्शन करके कृतार्थ होगये परमप्रीति और परमआनन्दसे उनका पूजन किया ॥ १८ ॥ आनन्दसे काशीपुरीका सेवन करतेहुए

सूत उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नारदस्य महात्मनः ॥ उभौ हरगणौ प्रीतौ स्वं पदं जग्मतुर्मुदा ॥ १५ ॥ नारदोऽपि परं प्रीतो
ध्यायञ्छिवमनन्यधीः ॥ विचचार महीं पश्यञ्छिवतीर्थान्यभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ काशीं प्राप्याथ स मुनिः सर्वोपरि विराजिताम् ॥
शिवप्रियां शम्भुसुखप्रदां शंभुस्वरूपिणीम् ॥१७॥ दृष्ट्वा काशीं कृताऽर्थोभूत्काशीनाथं ददर्श ह ॥ आनर्च परमप्रीत्या परमानन्दसंयुतः
॥ १८ ॥ स मुदः सेव्यतां काशीं कृतार्थो मुनिसत्तमः ॥ नमन्संवर्णयन्भक्त्या संस्मरन्प्रेमविह्वलः ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकं जगामाथ
शिवस्मरणसन्मतिः ॥ शिवतत्त्वं विशेषेण ज्ञातुमिच्छुस्स नारदः ॥ २० ॥ नत्वा तत्र विधिं भक्त्या स्तुत्वा च विविधैस्तवैः ॥
पप्रच्छ शिवसत्तत्वं शिवसंभक्तमानसः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मस्वरूपज्ञ पितामह जगत्प्रभो ॥ त्वत्प्रसादान्मया सर्वं
विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २२ ॥ भक्तिमार्गं ज्ञानमार्गं तपोमार्गं सुदुस्तरम् ॥ दानमार्गश्च तीर्थानां मार्गं च श्रुतवानहम् ॥ २३ ॥
न ज्ञातं शिवतत्त्वं च पूजाविधिमतः क्रमात् ॥ चरित्रं विविधं तस्य निवेदय मम प्रभो ॥ २४ ॥

मुनिश्रेष्ठ कृतार्थ होगये, भक्तिसे नम्र हो महिमा वर्णन करते और स्मरण करते प्रेमसे विह्वल होगये ॥ १९ ॥ और शिवजीके स्मरणसे निर्मलमति होकर
ब्रह्मलोकको गये, वह नारदजी विशेषरूपसे शिवतत्त्व जाननेकी इच्छासे ॥२०॥ भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीको प्रणाम और स्तुतिकरके शिवमें मनलगायेहुए नारदजी
शिवका तत्त्व पूछने लगे ॥ २१ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ब्रह्मके स्वरूप जाननेवाले हे विभो ! सब जगत्के पितामह आपके प्रसादसे मैंने विष्णुजीका
समस्त माहात्म्य ॥ २२ ॥ भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग और दुस्तर तपोमार्ग दानमार्ग तथा तीर्थोंका मार्गभी मैंने सुनाहै ॥ २३ ॥ मैंने शिवतत्त्व और क्रमसे

पूजाका मार्ग अभी नहीं जाना है, हे प्रभो! उनके अनेक प्रकारके चारित्र मुझसे आप कहिये ॥ २४ ॥ हे तात! वह निर्गुणपुरुष सगुणब्रह्म किसप्रकारसे हुए हैं मैं शिवकी मायासे मोहित हुआ शिवतत्त्व नहीं जानताहूं ॥ २५ ॥ सृष्टिके पूर्वमें किस प्रकार शंकर अपने स्वरूपमें अवस्थान करते हैं, और वह प्रभु सृष्टिके मध्यमें किसप्रकारसे क्रीडा करते हैं ॥ २६ ॥ और अन्तमें किसप्रकारसे वह महेश्वर स्थित होतेहैं लोकके कल्याणकर्ता शंकर किस प्रकारसे प्रसन्न होतेहैं ॥ २७ ॥ और वह महेश्वर संतुष्ट होकर अपने भक्त तथा दूसरोंको क्या फल देतेहैं हे ब्रह्माजी! सो मुझसे कहिये ॥ २८ ॥ हमने सुनाहै

निर्गुणोऽपि शिवस्तात सगुणश्शंकरः कथम् ॥ शिवतत्वं न जानामि मोहितश्शिवमायया ॥ २५ ॥ सृष्टेः पूर्वं कथं शंभुस्स्वरूपेण
प्रतिष्ठितः ॥ सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते प्रभुः ॥ २६ ॥ तदन्ते च कथं देवस्स तिष्ठति महेश्वरः ॥ कथं प्रसन्नतां याति
शंकरो लोकशंकरः ॥ २७ ॥ संतुष्टश्च स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च महेश्वरः ॥ किं फलं यच्छति विधे तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ २८ ॥
सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुसंश्रुतम् ॥ भक्तप्रयासं स महान्न पश्यति दयापरः ॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाश्शिवां
शजाः ॥ महेशस्तत्र पूर्णांशस्स्वयमेव शिवः परः ॥ ३० ॥ तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः ॥ उमाविर्भावमाख्याहि
तद्विवाहं तथा विभो ॥ ३१ ॥ तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि ॥ एतत्सर्वं तथान्यच्च कथनीयं त्वयानघ ॥ ३२ ॥
तदुत्पत्तिं विवाहं च शिवायास्तु विशेषतः ॥ प्रब्रूहि मे प्रजानाथ गुहजन्म तथैवच ॥३३॥ बहुभ्यश्च श्रुतं पूर्वं न तृप्तोऽस्मि जगत्प्रभो ॥
अतस्त्वां शरणं प्राप्तः कृपां कुरु ममोपरि ॥ ३४ ॥

कि भगवान शीघ्रही प्रसन्न होजातेहैं, वह दयापरायण भक्तके प्रयासको नहीं देखतेहैं ॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देवता शिवके अंशसे प्रगटहैं, उनमें महेशही पूर्णांशहैं और शिवही स्वयं परमतत्त्वहैं ॥ ३० ॥ उन शिवके आविर्भाव और चरित्र हमसे कहिये, उमाका आविर्भाव और उनका शंकरके साथ विवाह कहिये ॥ ३१ ॥ विशेषकर उनका गृहस्थ तथा दूसरी लीलाभी कहिये, हे पापरहित यह सब तथा और भी दूसरे चरित्र कहिये ॥ ३२ ॥ उनकी उत्पत्ति और पार्वतीका विवाह विशेषरूपसे कहिये, हे प्रजानाथ! और साथमें स्कन्दका जन्मभी कहिये ॥ ३३ ॥ यद्यपि मैंने पहले बहुतकुछ

सुनाहै पर हे प्रभो ! मैं अभीतक संतुष्ट नहीं हूं इससे मैं आपकी शरणको प्राप्त हुआहूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अपने पुत्र
नारदजीके वचन सुन लोकपितामह ब्रह्माजी उनसे कहने लगे॥ ३५॥ इति श्रीशिवम०रुद्र० भाषाटीकायां प्र०सृ० नारदप्रश्नवर्णनो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥
ब्रह्माजी बोले हे ब्रह्मन् ! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, तुम लोकोपकारीने लोकके हितकी कामनासे यह पूछाहै ॥ १ ॥ जिसको सुनकर
लोकोंके सब पाप क्षय होजातेहैं, वह मैं तुमको अनामय शिवतत्त्व सुनाताहूं ॥ २ ॥ यथार्थरूपसे तो मैं शिवतत्त्व नहीं जानसकता तथा विष्णुजी

इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्यांगजस्य हि ॥ उवाच वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां
रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने नारदप्रश्नवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भो ब्रह्मन्साधु पृष्टोऽहं त्वया
विबुधसत्तम ॥ लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥१॥ यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ तदहं ते प्रवक्ष्यामि
शिवतत्त्वमनामयम् ॥ २ ॥ शिवतत्त्वं मया नैव विष्णुनापि यथार्थतः ॥ ज्ञातश्च परमं रूपमद्भुतं च परेण न ॥ ३ ॥ महाप्रलयकाले
च नष्टे स्थावरजंगमे ॥ आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥ ४ ॥ अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम् ॥ अप्रधानं वियच्छून्यम
न्यतेजोविवर्जितम् ॥ ५ ॥ अदृष्टत्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ॥ अव्यक्तगंधरूपं च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥ ६ ॥ इत्थं सत्यं
घतमसे सूचीभेद्ये निरंतरे ॥ तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम् ॥ योगिनों
तर्हिताकाशे यत्पश्यंति निरंतरम् ॥ ८ ॥ अमनोगोचरम्वाचां विषयन्न कदाचन ॥ अनामरूपवर्णं च न च स्थूलं न यत्कृशम् ॥ ९ ॥

परमअद्भुतरूपको कुछ जानतेहैं ॥ ३ ॥ जब महाप्रलयकालमें स्थावरजंगम सब नष्ट होगया, जिस समय ग्रह नक्षत्र तारा सूर्य न होनेसे सब अंधकाररूप
था ॥ ४ ॥ चंद्रमा दिनरात अग्नि वायु पृथिवी जल कुछ नहीं था, तथा प्रधान आकाश तथा दूसरा तेज भी नहीं था ॥ ५ ॥ शब्द स्पर्श तथा दृष्टपदार्थ
कुछभी नहीं था, गंध रूप रस दिशा आदि सब अव्यक्त (अप्रगट) था ॥ ६ ॥ इसप्रकार सूचीभेद्यनिरन्तर अंधकारमें वह सद्ब्रह्मही था, जिसको सत् कहते
हैं ॥ ७ ॥ जब इसप्रकारसे सत् असदात्मक कुछ नहींथा जिसको योगी अपने हृदयाकाशमें निरंतर अवलोकन करतेहैं ॥ ८ ॥ जो मनवाणीके अगोचर हैं

किसी इन्द्रियका विषय नहीं है, जो नामरूप वर्णसे रहित स्थूल तथा सूक्ष्म नहीं है ॥ ९ ॥ ह्रस्व दीर्घ लघु गुरुत्वसे वर्जित है, जिसमें उपचय और अपचय
नहीं है ॥ १० ॥ श्रुतिभी जिसको चकित होकर कहती है कि वह सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्तस्वरूप परानन्द परमपुरुष है ॥ ११ ॥ प्रभारहित आधाररहित,
विकाररहित और आकृतिरहित है, निर्गुण योगिगम्य सर्व व्यापक एकाकारहै ॥ १२ ॥ निर्विकल्प निरारंभ मायारहित उपद्रवरहित अद्वितीय आद्यन्त
रहित विकाररहित चिदात्मक ॥ १३ ॥ जिसके इसप्रकार संज्ञा संज्ञोक्ति विकल्प करके होते हैं उसको कितनेकालमें दूसरेकी इच्छा हुई ॥ १४ ॥ तब

अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् ॥ न यत्रोपचयः कश्चित्तथा नापचयोऽपि च ॥ १० ॥ अभिधत्ते स चकितं यदस्तीति श्रुतिः
पुनः ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं च परानंदम्परम्महः ॥ ११ ॥ अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति ॥ निर्गुणं योगिगम्यश्च सर्वव्याप्येकका
रकम् ॥ १२ ॥ निर्विकल्पं निरारंभं निर्मायं निरुपद्रवम् ॥ अद्वितीयमनाद्यन्तमविकाशं चिदात्मकम् ॥ १३ ॥ यस्येत्थं संविकल्पंते
संज्ञासंज्ञोक्तितः स्म वै ॥ कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत्किल ॥ १४ ॥ अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया ॥ सर्वै
श्वर्यगुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा ॥ १९ ॥ सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्वकारिणी ॥ सर्वैकवंद्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः ॥ १६ ॥
परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणीम् ॥ अद्वितीयमनाद्यंतं सर्वाभासं चिदात्मकम् ॥ अंतर्दधे पराख्यं यद्ब्रह्म सर्वगमव्ययम्
॥ १७ ॥ अमूर्तें यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिस्सदाशिवः ॥ अर्वाचीनाः पराचीना ईश्वरं तं जगुर्बुधाः ॥ १८ ॥ शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैरं
विहरता तनुः ॥ स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टा स्वशरीरानपायिनी ॥ १९ ॥

उस अमूर्तने इच्छासेही अपनी मूर्ति कल्पित की, जो सब ऐश्वर्यगुणोंसे युक्त सर्वज्ञानमयी शोभायमानहै ॥ १५ ॥ जो सर्वगामिनी सर्वरूपा, सबको देखने
वाली सबकी करनेवाली है; सबकी एकही वंदनीया सबकी आद्या सर्वदा सबकी संस्कारकरनेवाली है ॥ १६ ॥ इस ऐश्वर्यसम्बन्धी शुद्धरूपवाली मूर्त्तिको
कल्पना करके वह अद्वितीय अनादि अनन्त सर्वाभास चिदात्मा सर्वगामी अविनाशी पराख्य ब्रह्मअन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥ जो अमूर्त्ति परतत्त्वहै उसीकी
मूर्त्ति सदा शिवहैं यही अर्वाचीन पराधीन मूर्त्ति पंडित उसको ईश्वर कहतेहैं ॥ १८ ॥ उसने अपने शरीरसेही स्वच्छन्दशरीरवाली अनपायिनी शक्ति

प्रगट की है ॥ १९ ॥ वही प्रधानप्रकृति गुणवती परा माया है वही बुद्धितत्त्वकी जननी है इसीको विकाररहित कहते हैं ॥ २० ॥ वही शाक्त
अम्बिकाप्रकृति सबलोकोंकी ईश्वरी तीनों देवताओंकी जननी नित्या और मूल कारण कही जाती है ॥ २१ ॥ इसकी आठ भुजा हैं, यह विचित्र मुखवाली
शुभा है पूर्णमासीके सहस्रचन्द्रकी समान इसकी कान्ति है ॥ २२ ॥ अनेक आभरण और अनेक गतिसे संयुक्त है अनेक प्रकारके आयुध धारण किये
फूलेकमलकी समान नेत्रवाली ॥ २३ ॥ अचिन्त्यतेजसे युक्त सबकी उत्पन्न करनेवाली वह एकाकिनी माया जब संयोगसे अनेकप्रकारकी होतीहै ॥ २४ ॥

प्रधानं प्रकृतिं तां च मायां गुणवतीं पराम् ॥ बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥ २० ॥ सा शक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृति
स्सकलेश्वरी ॥ त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत ॥ २१ ॥ अस्या अष्टौ भुजाश्चासन्विचित्रवदना शुभा ॥ राकाचन्द्रसहस्रस्य
वदने भाश्च नित्यशः ॥ २२ ॥ नानाभरणसंयुक्ता नानागतिसमन्विता ॥ नानायुधधरा देवी फुल्लपंकजलोचना ॥ २३ ॥ अचिंत्यते
जसा युक्ता सर्वयोनिस्समुद्यता ॥ एकाकिनी यदा माया संयोगाच्चाप्यनेकिका ॥ २४ ॥ परः पुमानीश्वरस्स शिवश्शंभुरनीश्वरः ॥
शीर्षे मन्दाकिनीधारी भालचन्द्रस्त्रिलोचनः ॥ २५ ॥ पंचवक्त्रः प्रसन्नात्मा दशबाहुस्त्रिशूलधृक् ॥ कर्पूरगौरसुसितो भस्मोद्धूलितविग्रहः
॥ २६ ॥ युगपच्च तया शक्त्या साकं कालस्वरूपिणा ॥ शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा ॥ २७ ॥ तदेव काशिकेत्येतत्प्रो
च्यते क्षेत्रमुत्तमम् ॥ परं निर्वाणसंख्यानं सर्वोपरि विराजितम् ॥ २८ ॥ ताभ्यां च रमणाभ्यां च तस्मिन्क्षेत्रे मनोरमे ॥ परमानं
दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणी ॥ २९ ॥ मुने प्रलयकालेपि न तत्क्षेत्रं कदाचन ॥ विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः ॥ ३० ॥

तब परमपुरुष ईश्वर शिवशंकर जिनका कोई ईश्वर नहीं शिरपर गंगा धारण करनेवाले माथेपर चन्द्र तीन नेत्र ॥ २५ ॥ पांच मुख प्रसन्नात्मा दशभुजा
त्रिशूलधारी कर्पूरगौरांग, भस्म शरीरमें लगाये हुए ॥ २६ ॥ भगवानने उस कालरूपिणी शक्तिको लेकर एकसाथही शिवलोकनामक क्षेत्र निर्माण किया ॥ २७ ॥
उसी उत्तमक्षेत्रको काशीक्षेत्र कहतेहैं, वह परम निर्वाणका देनेवाला सबके ऊपर विराजमान है ॥ २८ ॥ उस क्षेत्रमें जो कि सबका मन रमानेवालाहै
उन परमानन्दरूप शिवा शिव द्वारा परमानन्दरूपिणी ॥ २९ ॥ शक्तिके सहित निवास करतेहैं, हे मुने ! प्रलयकालमें भी कभी वह क्षेत्र शिवाशिवसे रहित

नहीं होता इससे वह क्षेत्र अविमुक्त कहाताहै ॥ ३० ॥ शिवजीने पहले इसमें एक आनंद नाम वन निर्माण किया था, क्षेत्र आनंदका हेतु होनेसे आनन्दकानन और पीछे अविमुक्त कहाया ॥ ३१ ॥ शिवाशिवके उस आनंदवनमें रमणकरनेपर हे नारदजी! यह इच्छा हुई कि कोई दूसरा पुरुष निर्माण कियाजाय ॥ ३२ ॥ जिसपर स्वच्छन्द विहारकरनेवाले हम यह महाभार अर्पण करके निर्वाणशान्तिको धारण कर केवल काशीमें शयन करैं ॥ ३३॥ वही सब करै और रक्षा करै जो हमारे अनुग्रहसे वह सब विवृत करै ॥ ३४ ॥ चित्तरूपी समुद्रको आकुंचन कर चिंतारूपी तरंगोंसे दोलायमान

अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना ॥ क्षेत्रस्यानंदहेतुत्वादविमुक्तमनंतरम् ॥३१॥ अथानन्दवने तस्मिञ्छिवयो रममाणयोः ॥
इच्छेत्यभूत्सुरर्षे हि सृज्यः कोप्यपरः किल ॥ ३२ ॥ यस्मिन्यस्य महाभारमावां स्वस्वैरचारिणौ ॥ निर्वाणधारणं कुर्वः केवलं
काशिशायिनौ ॥ ३३ ॥ स एव सर्वं कुरुतां स एव परिपातु च ॥ स एव संवृणोत्वं ते मदनुग्रहतस्सदा ॥ ३४ ॥ चेतस्समुद्रमाकुंच्य
चिंताकल्लोललोलितम् ॥ सत्त्वरत्नं तमोग्राहं रजोविद्रुमवल्लितम् ॥ ३५ ॥ यस्य प्रसादात्तिष्ठावस्सुखमानंदकानने ॥ परिक्षिप्तमनोवृत्तौ
बहिश्चितातुरे सुखम् ॥ ३६ ॥ संप्रधार्य्यैति स विभुस्तया शक्त्या परेश्वरः ॥ सव्ये व्यापारयांचक्रे दशमेऽगे सुधासवम् ॥ ३७ ॥
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुंदरः ॥ शांतस्सत्त्वगुणोद्रिक्तो गांभीर्य्यामितसागरः ॥ ३८ ॥ तथा च क्षमया युक्तो मुनेऽलब्धोपमो
ऽभवत् ॥ इन्द्रनीलद्युतिः श्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ॥ ३९ ॥

सत्त्वरूपी रत्न तमोरूप ग्राह रजोगुणरूपी विद्रुमसे विस्तारित ॥ ३५ ॥ जिसके प्रसादसे हम सुखरूप आनंदकाननमें विहार करैं मनकी वृत्ति भी उसमें आरोपण कर बाहिरी चिन्ता छोड शान्तिको प्राप्त हों ॥ ३६ ॥ वह प्रभु इसप्रकार निश्चय कर उस पराशक्तिके दशवें अंगमें सुधारूपी आसव सत्यभागसे व्यापार करतेहुए ॥ ३७ ॥ तब उससे त्रिलोकीमें एक अतिसुन्दर पुरुष प्रगट हुआ जो शांत सत्त्वगुणसे युक्त गंभीरतामें सागरकी समान था ॥ ३८ ॥ पृथिवीकी समान क्षमासे युक्त हे मुने! जिनकी उपमा किसीसे नहीं देसकते, इन्द्रनीलमणिकी समान कान्तिमान उत्तम कमलके समान नेत्र ॥ ३९ ॥

सुवर्णके समान कान्तिधारणकिये दो दुकूलोंसे आवृत प्रचण्डभुजाओंसे शोभायमान जो दोनों भुजा कहीं पराजित होनेवालीं न थीं ॥ ४० ॥ तब वह पुरुष परमेश्वर शिवको प्रणाम कर बोले हे स्वामिन्! मेरा नाम रखकर मेरे कर्मभी कहिये ॥ ४१ ॥ यह वचन सुनकर समर्थ प्रभु शंकर हँसतेहुए मेघकी समान गंभीरवाणीसे बोले॥४२॥ शिवजी बोले व्यापक होनेसे जगत्में तुम्हारा विष्णु नाम होगा और भी भक्तोंके सुखकरनेवाले तुम्हारे बहुतसे नाम हैं ॥४३॥ तुम दृढतापूर्वक परमकार्य साधक तपस्या करो यह कहकर शंकरने अपने श्वासमार्गसे उनको वेदप्रदान किये ॥ ४४ ॥ तब अच्युतने शिवको नमस्कार कर बडा तप किया, और शक्ति सहित परमेश्वर अन्तर्धान हो अपने लोकमें गये ॥ ४५ ॥ इधर विष्णुजीने द्वादश सहस्र दिव्यवर्षतक तपस्या की परन्तु अपना अभिलषित कल्याणकारी शंकरका दर्शन नहीं पाया ॥ ४६ ॥ तब संदेहको प्राप्त हो मनमें चिन्ता करनेलगे मैं अब क्या करूं इसप्रकार शिवजीका स्मरण करतेहुए ॥ ४७ ॥ उसी अवसरमें शिवजीसे सुन्दर वाणी प्रगट हुई कि संशयके दूरकरनेके निमित्त फिर तपस्या करो ॥ ४८ ॥ विष्णुजीने यह

सुवर्णकृतिभृच्छ्रेष्ठदुकूलयुगलावृतः ॥ लसत्प्रचंडदोर्दण्डयुगलो ह्यपराजितः ॥४०॥ ततस्स पुरुषश्शंभुं प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ नामानि कुरु मे स्वामिन्वद कर्म जगाविति ॥४१॥ तच्छ्रुत्वा वचनम्प्राह शंकरः प्रहसन्प्रभुः ॥ पुरुषं तं महेशानो वाचा मेघगभीरया ॥४२॥ शिव उवाच ॥ विष्णिवतिव्यापकत्वात्ते नाम ख्यातं भविष्यति ॥ बहून्यन्यानि नामानि भक्तसौख्यकराणि ह ॥ ४३ ॥ तपः कुरु दृढो भूत्वा परमं कार्यसाधनम् ॥ इत्युक्त्वा श्वासमार्गेण ददौ च निगमं ततः ॥ ४४ ॥ ततोऽच्युतश्शिवं नत्वा चकार विपुलं तपः ॥ अंतर्द्धानं गतश्शक्त्या सलोकः परमेश्वरः ॥ ४५ ॥ दिव्यं द्वादशसाहस्रं वर्षं तस्यापि चाच्युतः ॥ न प्राप स्वाभिलषितं सर्वदं शंभुदर्शनम् ॥ ४६ ॥ ततत्संशयमापन्नश्चिंतितं हृदि सादरम् ॥ मयाद्य किं प्रकर्त्तव्यमिति विष्णुश्शिवं स्मरन् ॥ ४७ ॥ एतस्मिन्नंतरे वाणी समुत्पन्ना शिवाच्छुभा ॥ तपः पुनः प्रकर्त्तव्यं संशयस्यापनुत्तये ॥ ४८ ॥ ततस्तेन च तच्छ्रुत्वा तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥ बहुकालं तदा ब्रह्मध्यानमार्गपरेण हि ॥ ४९ ॥

सुनकर फिरभी दारुण तप किया, जब बहुत समय बीत गया तब ब्रह्म ध्यानमार्गके द्वारा विदितहुए ॥ ४९ ॥ तब पुरुष विष्णुजी ध्यानमार्गमें जागे और प्रसन्नतासे विस्मयको प्राप्त हो बोले कि यह क्या महान् तत्त्वहै ॥ ५० ॥ तब विष्णुजीके परिश्रमकरनेसे उनके शरीरसे शिवकी मायासे जलधारायें निकलने लगीं ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! वह सब महान् जल शून्यमें व्याप्त होगया, वह जल ब्रह्मरूप हुआ जिसके स्पर्शमात्रसे पाप नाश होतेहैं ॥ ५२ ॥ तब वह विष्णुजी शांतहोकर उसीजलमें विमोहित हो बहुतकालतक शयन करतेरहे ॥ ५३ ॥ उस समय उनका श्रुतिसम्मत नाम नारायण हुआ उस समय प्रकृति

ततस्स पुरुषो विष्णुः प्रबुद्धो ध्यानमार्गतः ॥ सुप्रीतो विस्मयं प्राप्तः किं यत्तव महा इति ॥ ५० ॥ परिश्रमवतस्तस्य विष्णोः स्वाङ्गेभ्य एव च ॥ जलधारा हि संयाता विविधाश्शिवमायया ॥ ५१ ॥ अभिव्याप्तं च सकलं शून्यं यत्तन्महामुने ॥ ब्रह्मरूपं जलमभूत्स्पर्शनात्पापनाशनम् ॥ ५२ ॥ तदा श्रांतश्च पुरुषो विष्णुस्तस्मिञ्जले स्वयम् ॥ सुष्वाप परमप्रीतो बहुकालं विमोहितः ॥ ५३ ॥ नारायणेति नामापि तस्यासीच्छ्रुतिसंमतम् ॥ नान्यत्किंचित्तदा ह्यासीत्प्राकृतं पुरुषं विना ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे काले तत्त्वान्यासन्महात्मनः ॥ तत्प्रकारं शृणु प्राज्ञ गदतो मे महामते ॥ ५५ ॥ प्रकृतेश्च महानासीन्महतश्च गुणास्त्रयः ॥ अहंकारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः ॥ ५६ ॥ तन्मात्राश्च ततो जाताः पञ्चभूतानि वै ततः ॥ तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च ॥ ५७ ॥ तत्त्वानामिति संख्यानमुक्तं ते ऋषिसत्तम ॥ जडात्मकञ्च तत्सर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना ॥ ५८ ॥

पुरुषके बिना और कुछ नहीं था ॥ ५४ ॥ उसी समय उन महात्मासे तत्त्व प्रगट हुए हे महामते ! हे महापंडित ! मैं उसका प्रकार कहताहूं सो आप मुझसे सुनिये ॥ ५५ ॥ प्रकृतिसे महान् और महान्से तीन गुण हुए उससे अहंकार और उससे गुणभेदसे तीन गुण हुए ॥ ५६ ॥ उससे तन्मात्रा और उनसे पांचभूत प्रगट हुए उनसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ हे ऋषिसत्तम ! आपसे तत्त्वोंका वर्णन ज्ञान पूर्वही कहाहै प्रकृतिका यह सब

जडात्मक कार्य पुरुषको छोडकर जान्ना ॥ ५८ ॥ वह चौवीस संख्यावाले तत्त्व शिवकी इच्छासे ग्रहण करके ब्रह्मरूपजलमें शयन करगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवम०रुद्रसं० भाषाटीकायां प्र०सृ० विष्णूत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले नारायणदेवके शयन कर जानेसे सहसा उनकी नाभिसे एक बडा कमल प्रगट हुआ ॥ १ ॥ जिसकी नाल अनंतथी, जो कर्णिकारकी समान कांति महान अनन्त योजन विस्तार और अनंत योजनतक ऊंचा था ॥ २ ॥ कोटि सूर्यकी समान कांतिमान् सुन्दर तत्त्वोंसे युक्त अत्यन्त अद्भुत महामनोहर और महादर्शनीय था ॥ ३ ॥ उन शंकर परमेश्वरने

तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसंख्यकम् ॥ शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सृष्टिव्याख्याने प्रथमखंडे विष्णूत्पत्तिवर्णनो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सुप्ते नारायणे देवे नाभौ पंकजमुत्तमम् ॥ आविर्बभूव सहसा बृहद्वै शंकरेच्छया ॥ १ ॥ अनंतयष्टिकायुक्तं कर्णिकारसमप्रभम् ॥ अनंतयोजनायाममनंतोच्छ्रायसंयुतम् ॥ २ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं सुंदरं तत्त्वसंयुतम् ॥ अत्यद्भुतं महारम्यं दर्शनीयमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ कृत्वा यत्नं पूर्ववत्स शंकरः परमेश्वरः ॥ दक्षिणांगान्निजान्मां वै साम्बश्शंभुरजीजनत् ॥ ४ ॥ स मायामोहितं कृत्वा मां महेशो द्रुतं मुने ॥ तन्नाभिपंकजादाविर्भावयामास लीलया ॥ ५ ॥ एवम्पद्मात्ततो जज्ञे पुत्रोऽहं हेमगर्भकः ॥ चतुर्मुखो रक्तवर्णस्त्रिपुंड्रांकितमस्तकः ॥ ६ ॥ तन्मायामोहितश्चाहं नाविदं कमलं विना ॥ स्वदेहजनकं तात पितरं ज्ञानदुर्बलः ॥ ७ ॥ कोहं वा कुत आयातः किं कार्यं तु मदीयकम् ॥ कस्य पुत्रोऽहमुत्पन्नः केनैव निर्मितोऽधुना ॥ ८ ॥ इति संशयमापन्नं बुद्धिर्मां समपद्यत ॥ किमर्थं मोहमायामि तज्ज्ञानं सुकरं खलु ॥ ९ ॥

पूर्ववत् यत्नकरके दक्षिण अंगसे मुझे उन साम्ब शंभुने प्रगट किया ॥४॥ हे मुने ! वह महेश मुझको शीघ्रही मायासे मोहित कर लीलासेही उस नाभिपंकजसे प्रगट करते हुए ॥ ५ ॥ हे नारदजी ! इसप्रकार मैं हिरण्यगर्भ उस कमलसे प्रगट हुआ चारमुख रक्तवर्ण त्रिपुंड्रसे शोभायमान मस्तक ॥६॥ उनकी मायासे मोहित होकर कमलके विना मैंने और कुछ न जाना हे तात ! मैंने ज्ञान हीन होनेके कारण अपने देहके उत्पन्न करनेवालेको न जाना ॥७॥ मैं कौन कहांसे आया हूं मेरा क्या कार्य है मैं किसका पुत्र किसनिमित्त निर्मित हुआहूं यह कुछ न जाना ॥ ८ ॥ तब यह शंकाकरतेहुए मुझे बुद्धि फुरी मैं मोहको

क्यों प्राप्त हूं, इसका ज्ञान तो सुलभ है ॥ ९ ॥ इस कमल पत्रके निचले भागको पकडकर नीचे २ चलाजाऊं वहां इसका कर्ता अवश्य प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ ऐसी बुद्धि कर मैं कमलसे नीचे उतरा, हे मुने ! सौवर्षतक उसकी नाभि पकडे २ नीचेको चलागया ॥ ११ ॥ परन्तु मुझे उस कमलनालका अन्त न मिला फिर सन्देहको प्राप्त होकर कमलके ऊपरजानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ हे मुने ! फिर नालके द्वारा मैं ऊपर को आया तब मोहित होकर कमलकलीको न प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ उस नालमार्गमें घूमते हुए मुझे बहुत वर्ष अर्थात् सौवर्ष बीतगये तब मोहित हुआ मैं

एतत्कमलपुष्पस्य पत्रारोहस्थलं ह्यधः ॥ मत्कर्ता च स वै तत्र भविष्यति न संशयः ॥ १० ॥ इति बुद्धिं समास्थाय कमलादवरो
हयन् ॥ नाले नाले गतस्तत्र वर्षाणां शतकं मुने ॥ ११ ॥ न लब्धं तु मया तत्र कमलस्थानमुत्तमम् ॥ संशयं च पुनः प्राप्तः कमले
गन्तुमुत्सुकः ॥ १२ ॥ आरुरोहाथ कमलं नालमार्गेण वै मुने ॥ कुड्मलं कमलस्याथ लब्धवान्न विमोहितः ॥ १३ ॥ नालमार्गेण
भ्रमतो गतं वर्षशतं पुनः ॥ क्षणमात्रं तदा तत्र ततस्तिष्ठन्विमोहितः ॥ १४ ॥ तदा वाणी समुत्पन्ना तपेति परमा शुभा ॥ शिवेच्छ
या परा व्योम्नो मोहविध्वंसिनी मुने ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ॥ पुनस्तप्तं तपो घोरं द्रष्टुं स्वजनकं तदा
॥ १६ ॥ तदा हि भगवान्विष्णुश्चतुर्बाहुस्सुलोचनः ॥ मय्येवानुग्रहं कर्तुं द्रुतमाविर्बभूव ह ॥ १७ ॥ शंखचक्रायुधकरो गदापद्मधरः
परः ॥ घनश्यामलसर्वांगः पीताम्बरधरः परः ॥ १८ ॥ मुकुटादिमहाभूषः प्रसन्नमुखपंकजः ॥ कोटिकंदर्पसंकाशस्सन्दृष्टो मोहितेन
सः ॥ १९ ॥ तद्दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं विस्मयं परमं गतः ॥ कालाभं कांचनाभं च सर्वात्मानं चतुर्भुजम् ॥ २० ॥

क्षणमात्रको स्थित हुआ ॥ १४ ॥ तब मुझको ‘तपकरो’ यह शुभवाणी सुनाई आई हे मुने ! यह वाणी परमाकाशसे मोहके नाशकरनेवाली सुनाई दी ॥ १५ ॥ तब यह आकाशवाणीके वचन सुनकर मैंने बडे प्रयत्नसे अपने जनकके देखनेकेलिये बारह वर्षतक घोर तप किया ॥ १६ ॥ तब भगवान् विष्णु चारभुजा सुन्दर नेत्र, मुझपर अनुग्रह करनेके लिये प्रगट हुए ॥ १७ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, आयुध धारे, घनश्याम अंगवाले, पीताम्बर धारी ॥ १८ ॥ मुकुटादि महाराजोंकी समान धारे प्रसन्न मुखकमलवाले कोटिकामदेवकी समान मैंने उनको मोहित होकर देखा ॥ १९ ॥ उस सुन्दर रूपको

देखकर मुझे परमविस्मय हुआ, कालकी समान सुवर्णकी समान सर्वात्मा चतुर्भुज ॥ २० ॥ नारायण महाभुज सदसन्मय भगवानको इसप्रकार देखकर मैं बडा प्रसन्न हुआ ॥ २१ ॥ शिवजीकी मायासे मोहित होकर, जो बडी लीला करतेहैं उनको अपना जनक न जानकर प्रसन्नहो विष्णुसे कहा ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले तुम कौन हो ऐसा कहकर उस सनातन पुरुषपर हाथ लगाया, तब वह तीव्र और दृढ उस हाथके प्रहारसे ॥ २३ ॥ जागकर क्षणमात्रकेलिये वह वशी स्थित हुए, और निद्रासे श्रमरहित नेत्रोंसे उन्होंने मुझे देखा ॥ २४ ॥ जब भगवान हरिने मुझे वहाँ स्थित देखा तब हँसते हुए प्रेमसे मुझ ब्रह्मासे

तथाभूतमहं दृष्ट्वा सदसन्मयमात्मना ॥ नारायणं महाबाहुं हर्षितो ह्यभवं तदा ॥ २१ ॥ मायया मोहितश्शम्भोस्तदा लीलात्मनः प्रभोः ॥ अविज्ञाय स्वजनकं तमवोचं प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम् ॥ तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण सुदृढेन तु ॥ २३ ॥ प्रबुद्धचोत्थाय शयनात्समासीनः क्षणं वशी ॥ ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः ॥ २४ ॥ मामत्र संस्थितं भासाध्यासितो भगवान्हरिः ॥ आह चोत्थाय ब्रह्माणं हसन्मां मधुरं सकृत् ॥ २५ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ स्वागतं स्वागतं वत्स पितामह महाद्युते ॥ निर्भयो भव दास्येऽहं सर्वान्कामान्न संशयः ॥ २६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभः ॥ रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम् ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भाषसे वत्स वत्सेति सर्वसंहारकारणम् ॥ मामिहाति स्मितं कृत्वा गुरुशिष्यमिवानघ ॥ २८ ॥ कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम् ॥ सनातनमजं विष्णुं विरिंचिं विष्णुसंभवम् ॥ २९ ॥ विश्वात्मानं विधातारं धातारम्पंकजेक्षणम् ॥ किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम् ॥ ३० ॥

कहनेलगे ॥ २५ ॥ विष्णु बोले हे वत्स ! हे पितामह ! आप भले आये भले आये हे महाकान्तिमान ! तुम निर्भयहो निःसन्देह मैं तुमको सबकामना दान करूंगा ॥ २६ ॥ हे देवर्षि ! हँसते हुए विष्णुजीके यह वचन सुनकर रजोगुणसे वैरमानकर विष्णुसे मैं बोला ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पापरहित ! सबके संहारके कारण मुझको तुम यहाँ आया देखकर भक्तवत्सल कहतेहो और गुरुशिष्यकी समान मेरा शासन करतेहो ॥ २८ ॥ साक्षात् जगत्का कर्ता प्रकृतिका प्रवर्तक सनातन अज विष्णु विरंचि विष्णुसंभव ॥ २९ ॥ विश्वके आत्मा विधाता धाता कमललोचन मुझको मोहसे वत्स कैसे कहतेहो

सो शीघ्र कहो ॥ ३० ॥ वेद मुझको नियमसे स्वयंभू विभु और अज कहते हैं, तथा पितामह स्वराट् परेष्ठी और श्रेष्ठ कहते हैं ॥ ३१ ॥ यह वचन श्रवण कर रमापति मेरे ऊपर क्रुद्धहुए और मुझसे कहा हम जानते हैं तुम जैसे लोकके कर्ताहो ॥ ३२ ॥ विष्णुजी बोले करने धरनेको तुम मेरे अविनाशी अंगसे प्रगट हुए हो, तुम अनामय नारायण जगन्नाथको भूलगये हो ॥ ॥ ३३ ॥ जो पुरुष परमात्मा पुरुहूत पुरुषोंसे स्तुतिको प्राप्तहै जो विष्णु अच्युत ईशान विश्वकी उत्पत्ति पालन करतेहैं ॥ ३४ ॥ जो नारायण महाबाहु सर्वव्यापक ईश्वर हैं उन मेरे नाभिपद्मसे तुम प्रगट हुए हो इसमें सन्देह

वेदो मां वक्ति नियमात्स्वयंभुवमजं विभुम् ॥ पितामहं स्वराजं च परमेष्ठिनमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ इत्याकर्ण्य हरिर्वाक्यं मम क्रुद्धो
रमापतिः ॥ सोऽपि मामाह जाने त्वां कर्तारमिति लोकतः ॥ ३२ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ कर्तुं धर्तुं भवानंगादवतीर्णो ममाव्ययात् ॥
विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥ ३३ ॥ पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥ विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम् ॥
॥ ३४ ॥ नारायणं महाबाहुं सर्वव्यापकमीश्वरम् ॥ मन्नाभिपद्मतस्त्वं हि प्रसूतो नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ तवापराधो नास्त्यत्र त्वयि
मायाकृतं मम ॥ शृणु सत्यं चतुर्वक्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम् ॥ ३६ ॥ कर्ता हर्ता च भर्ता च न मयास्ति समो विभुः ॥ अहमेव परं ब्रह्म
परं तत्त्वं पितामह ॥ ३७ ॥ अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः ॥ अद्य दृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिँश्चराचरम् ॥ ३८ ॥ तत्तद्विद्धि
चतुर्वक्र सर्वं मन्मयमित्यथ ॥ मया सृष्टं पुराव्यक्तं चतुर्विंशतितत्त्वकम् ॥ ३९ ॥ नित्यं तेष्वणवो बद्धास्सृष्टक्रोधभयादयः ॥ प्रभावाच्च
भवानंगान्यनेकानीह लीलया ॥ ४० ॥

नहीं ॥ ३५ ॥ इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है, तुम मेरी मायासे मोहित हो हे ब्रह्माजी ! सुनो हे चतुर्मुख ! यह मेरा वचन सत्यहै सब देवताओंका ईश्वर मैं ॥ ३६ ॥ कर्ता हर्ता भर्ता व्यापक मेरी समान कोई नहीं है हे पितामह ! मैंही परब्रह्म और परमतत्त्वहूं ॥ ३७ ॥ मैंही परमज्योति परमात्मा और विभुहूं आज देखा सुनाहुआ जो यह चराचर जगतहै ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्माजी ! यह सब आप मुझमेंही जानिये, मैंनेही पहले २४ चौवीस तत्त्वसे यह अव्यक्त निर्माण किया है ॥ ३९ ॥ उनमें नित्य ही अणु बद्ध हैं उससे क्रोध भयादि सृष्टि हुई है और मेरेही प्रभावसे आप और लीलासे सब अंग हुएहैं ॥ ४० ॥

मैंने बुद्धि निर्माण की है, उससे तीनप्रकारसे अहंकार हुआ है, उससे पञ्चतन्मात्रा उससे मन देह इन्द्रिय ॥ ४१ ॥ आकाशादि भूत भौतिक पदार्थ लीलासेही निर्माण किये हैं, हे ब्रह्मा! हे प्रजापति! ऐसा जानकर तुम मेरी शरणको प्राप्त हो ॥ ४२ ॥ इसमें सन्देह नहीं मैं तुम्हारी सब दुःखोंसे रक्षा करूंगा, ब्रह्माजी बोले;विष्णुजीके यह वचन सुन मुझ ब्रह्माको बडा क्रोध हुआ, और मायासे मोहित होकर ललकारकर कहा कि तुम होते कौन हो ॥ ४३ ॥ बहुतसे अनर्थकारीवचन क्यों कहते हो तुम परब्रह्म ईश्वर नहीं हो, कोई तुम्हारा भी कर्ता होगा ॥ ४४ ॥ तब मैंने महाप्रभु शिवकी मायासे मोहित होकर

सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहंकारस्त्रिधा ततः ॥ तन्मात्रं पंकजं तस्मान्मनोदेहेन्द्रियाणि च ॥ ४१ ॥ आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया ॥ इति बुद्ध्वा प्रजानाथ शरणं व्रज मे विधे ॥ ४२ ॥ अहं त्वां सर्वदुःखेभ्यो रक्षिष्यामि न संशयः ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा क्रोधसमन्वितः ॥ को वा त्वमिति संभर्त्स्याब्रवं मायाविमोहितः ॥ ४३ ॥ किमर्थं भाषसे भूरि बह्वनर्थकरं वचः ॥ नेश्वरस्त्वं परब्रह्म कश्चित्कर्ता भवेत्तव ॥ ४४ ॥ मायया मोहितश्चाहं युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ हरिणा तेन वै सार्द्धं शंकरस्य महाप्रभोः ॥ ४५ ॥ एवं मम हरेश्चासीत्संगरो रोमहर्षणः ॥ प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः ॥ ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नंतरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः ॥ विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं तथाऽऽवयोः ॥ ४७ ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ॥ क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ ४८ ॥ अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसंभवम् ॥ तस्य ज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान्हरिः ॥ ४९ ॥

विष्णुसे दारुण युद्ध किया ॥ ४५ ॥ इसप्रकार मेरा और विष्णुजीका रोमहर्षण संग्राम हुआ उस प्रलयसागरमें रजोगुणसे वैर कर दोनों संग्राम करनेलगे ॥ ४६ ॥ इसी अवसरमें हम दोनोंके मध्यमें शिवलिंगका आविर्भाव हुआ, हमारे विवाद शमन करने और बोध देनेके निमित्त वे प्रगट हुए ॥ ४७ ॥ सहस्रों ज्वालामालासे व्याप्त सौकालानलके समान क्षय और वृद्धि तथा आदि मध्य अन्तसे वर्जित ॥ ४८ ॥ उपमारहित अनिर्देश्य अव्यक्त स्वरूप जिनसे विश्वप्रगट

होताहै उसकी सहस्रों ज्वालासे भगवान् हरि मोहित होगये ॥ ४९ ॥ और मुझको मोहित होताहुआ देखकर बोले कि किसनिमित्त तुमने अपनी बडाई की थी यह हमारे बीचमें तीसरा पदार्थ क्या प्रगट हुआ है, इतने युद्ध रहने दो ॥ ५० ॥ यह अग्निसंभव ज्योति कहांसे प्रगट हुई है इसकी हम परीक्षा करैं; मैं इस अग्निस्तंभके देखनेको नीचे जाताहूं ॥ ५१ ॥ हे प्रजानाथ ! तुम इसको देखनेके निमित्त वायुवेगसे शीघ्रही ऊपरको जाइये ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! इसप्रकार कहकर विश्वात्मा विष्णुजीने अपना वाराहरूप धरा और मैंने हंसरूप धारण किया ॥ ५३ ॥ उस दिनसे मुझे हंस हंस विराट्

मोहितं चाह मामत्र किमर्थं स्पर्द्धसेऽधुना ॥ आगतस्तु तृतीयोऽत्र तिष्ठतां युद्धमावयोः ॥ ५० ॥ कुत एवात्र संभूतः परीक्षावोऽग्निसंभवम् ॥ अधो गमिष्याम्यनलस्तंभस्यानुपमस्य च ॥ ५१ ॥ परीक्षार्थं प्रजानाथ तस्य वै वायुवेगतः ॥ भवानूर्द्धंप्रयत्नेन गंतुमर्हति सत्वरम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा ॥ वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान्मुने ॥ ५३ ॥ तदा प्रभृति मामाहुर्हंसहंसो विराडिति ॥ हंसहंसेति यो ब्रूयात्स हंसोऽथ भविष्यति ॥ ५४ ॥ सुश्वेतो ह्यनलप्रख्यो विश्वतः पक्षसंयुतः ॥ मनोनिलजवो भूत्वा गत्वोर्द्धं चोर्द्धतः पुरा ॥ ५५ ॥ नारायणोऽपि विश्वात्मा सुश्वेतो ह्यभवत्तदा ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ५६ ॥ मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ॥ कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम् ॥ ५७ ॥ ह्रस्वपादं विचित्रांगं जैत्रं दृढमनौपमम् ॥ वाराहाकारमास्थाय गतवांस्तदधो जवात् ॥ ५८ ॥

कहतेहैं । जो हंसः हंसः ऐसा जप करतेहैं वह हंस (ब्रह्म) होजातेहैं ॥ ५४ ॥ अत्यन्त श्वेत अग्निकी समान कान्तिमान् दोनों ओरके पक्षोंसे व्याप्त वायुकी समान वेगवान् हो मैं ऊपर ऊपर चलागया ॥ ५५ ॥ और विश्वात्मा नारायणभी सौ योजनको विस्तारवाले दशयोजनके चौंडावमें श्वेतवाराह बने ॥ ५६ ॥ मेरुपर्वतकी समान ठोडीका अग्रभाग गोरी और तीक्ष्ण डाढोंवाले कालरूपी सूर्यकी समान कान्तिमान् दीर्घ घोणा (नासिका) महाशब्दवाले ॥ ५७ ॥ छोटे चरण विचित्र अंग दृढ जैत्र (जयशील) उपमारहित वाराहके आकारमें स्थित हो बडे वेगसे नीचेको गये ॥ ५८ ॥

इसप्रकार सहस्रवर्षतक विष्णुजी नीचे २ चलेगये, उसी दिनसे लोकमें श्वेतवाराहसंज्ञक कल्प ॥ ५९ ॥ हे नारदजी मनुष्योंको कालसंख्याके लिये हुआ । समर्थ विष्णुजी नीचे २ जाकर बहुधा भ्रमे ॥ ६० ॥ परन्तु उन वाराहरूपने इस लिंगके मूलका अल्पचिह्न भी नहीं देखा और इतनेही समयतक शत्रुसूदन भी ऊपरको गया ॥ ६१ ॥ मैंनेभी सब यत्नसे उसके अन्त जाननेकी इच्छासे चेष्टा की; थकगया और उसका अन्त न पाया तब मैं समयपर नीचेको आया ॥ ६२ ॥ इसीप्रकार कमललोचन भगवान् विष्णुजी भी शान्त होकर वह सर्वदेवमय महाशरीरवाले ऊपर आये ॥ ६३ ॥ हम दोनों एक

एवम्वर्षसहस्रं च चरन्विष्णुरधो गतः ॥ तदाप्रभृति लोकेषु श्वेतवाराहसंज्ञकः ॥ ५९ ॥ कल्पो बभूव देवर्षे नराणां कालसंज्ञकः ॥
बभ्राम बहुधा विष्णुः प्रभविष्णुरधोगतः ॥ ६० ॥ नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः ॥ तावत्कालं गतश्चोर्द्ध्वमहमप्यरिसूदन ॥
॥ ६१ ॥ सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया ॥ श्रान्तो न दृष्ट्वा तस्यांतमहं कालादधोगतः ॥ ६२ ॥ तथैव भगवान्विष्णुश्श्रांतं
कमललोचनः ॥ सर्वदेवनिभस्तूर्णमुत्थितस्समहावपुः ॥ ६३ ॥ समागतो मया सार्द्धं प्रणिपत्य भवं मुहुः ॥ मायया मोहितश्शंभो
स्तस्थौ संविग्नमानसः ॥ ६४ ॥ पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव ह्यग्रतः परमेश्वरम् ॥ प्रणिपत्य मया सार्द्धं सस्मार किमिदं त्विति ॥ ६५ ॥
अनिर्देश्यं च तद्रूपमनाम कर्मवर्जितम् ॥ अलिंगं लिंगतां प्राप्तं ध्यानमार्गेप्यगोचरम् ॥ ६६ ॥ स्वस्थं चित्तं तदा कृत्वा नमस्कार
परायणौ ॥ बभूवतुरुभावावामहं हरिरपि ध्रुवम् ॥ ६७ ॥ जानीवो न हि ते रूपं योऽसि योऽसि महाप्रभो ॥ नमोऽस्तु ते महेशान
रूपं दर्शय नौ त्वरन् ॥ ६८ ॥

साथही वहां उपस्थित हुए और शिवजीको वारंवार प्रणाम करके शिवजीकी मायासे मोहित होकर चंचलचित्तसे स्थित हुए ॥ ६४ ॥ पृष्ठसे पार्श्वभागसे आगेसे उस परमात्माको मेरे साथ प्रणामकर स्मरण करने लगे कि यह क्या है ॥ ६५ ॥ वह रूप निर्देश करनेके अयोग्य नाम और कर्मसे रहित लिंग (चिह्न) रहित लिंगताको प्राप्त हुए । ध्यानमार्गमें भी न आनेवाले ॥ ६६ ॥ देवको स्वस्थचित्त करके नमस्कार करने लगे, इसप्रकार जब मैं और हरि प्रणाम कर कहने लगे ॥ ६७ ॥ हे महाप्रभो आप जो कुछ भी हो हम आपके रूपको नहीं जान्ते, हे महेशान ! आपको प्रणाम है शीघ्र आप अपना

रूप हमें दिखाइये ॥ ६८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मदमें स्थित हम दोनोंके इसप्रकार नमस्कार करते सौ वर्ष बीत गये ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवम० रुद्र० भाषाटीकायां प्र० सृ० विष्णुब्रह्मविवादवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिश्रेष्ठो ! इसप्रकार दर्शनकी इच्छा करनेवाले उन दोनों देवताओंका जब गर्व जातारहा ॥ १ ॥ तब दोनोंकी पालना करनेवाले शिवजी दयालु हुए, जो गर्वियोंके गर्व दूर करनेवालेहैं, और प्रभु अविनाशी हैं ॥ २ ॥ उस समय यहां शब्दलक्षणवाला नाद प्रगट हुआ, हे देवताओ ! वह शब्द ॐ ॐ लक्षणवाला प्रगट हुआ जो प्लुत लक्षणवाला था ॥ ३ ॥ यह क्या है

एवं शरच्छतान्यासन्नमस्कारं प्रकुर्वतोः ॥ आवयोर्मुनिशार्दूल मदमास्थितयोस्तदा ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसं
हितायां प्रथमखंडे विष्णुब्रह्मविवादवर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं तयोर्मुनिश्रेष्ठ दर्शनं कांक्षमाणयोः ॥ विगर्वयोश्च
सुरयोः सदा नौ स्थितयोर्मुने ॥ १ ॥ दयालुरभवच्छंभुर्दीनानां प्रतिपालकः ॥ गर्विणां गर्वहर्ता च सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥२॥ तदा सम
भवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः ॥ ओमोमिति सुरश्रेष्ठात्सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः ॥ ३ ॥ किमिदं त्विति संचिंत्य मया तिष्ठन्महास्वनः ॥
विष्णुस्सर्वसुराराध्यो निर्वैरस्तुष्टचेतसा ॥ ४ ॥ लिंगस्य दक्षिणे भागे तथापश्यत्सनातनम् ॥ आद्यं वर्णमकाराख्यमुकारं चोत्तरे
ततः ॥ ५ ॥ मकारं मध्यतश्चैव नादमंतेऽस्य चोमिति ॥ सूर्यमंडलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे ॥ ६ ॥ उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषि
सत्तम ॥ शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं तस्य मध्यतः ॥ ७ ॥ तस्योपरि तदाऽपश्यच्छुद्धस्फटिकसुप्रभम् ॥ तुरीयातीतममलं निष्कलं
निरुपद्रवम् ॥ ८ ॥ निर्द्वंद्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यंतरवर्जितम् ॥ स बाह्याभ्यन्तरे चैव बाह्याभ्यंतरसंस्थितम् ॥ ९ ॥

इसप्रकारसे महान् शब्द हुआ, विष्णु सब देवताओंके पूजनीय निर्वैर होनेसे सन्तुष्ट हुए ॥ ४ ॥ तब उन्होंने लिंगके दक्षिण भागमें सनातन आद्य अकारवर्ण और उसके उत्तर उकारको ॥ ५ ॥ मध्यमें मकारको अन्तमें नादको देखा इसप्रकार ओम् को देखा आदिवर्णको दक्षिणामें सूर्यमंडलकी समान देखा ॥ ६ ॥ हे ऋषिसत्तम ! उत्तरमें पावककी समान उकारको देखा और शीतांशु चंद्रमण्डलकी समान मकार उसके मध्यस्थानमें देखा ॥ ७ ॥ फिर उसके ऊपर शुद्ध स्फटिकमणिकी समान तुरीयातीत निर्मल निष्कल उपद्रवरहित ॥ ८ ॥ निर्द्वन्द्व केवल शून्य बाह्य और आभ्यन्तरसे वर्जित बाहर भीतरके बाह्य आभ्यन्तरमें

संस्थित ॥ ९ ॥ आदि मध्य अन्तरहित आनंदका भी कारण सत्यआनन्द अमृत परब्रह्म परायण दिखाई दिया ॥ १० ॥ यह कहांसे प्रगट हुआहै, इस अग्निसंभवकी हम परीक्षा करैं हम इस स्तंभके नीचेकी और जाकर देखैं ॥ ११ ॥ तब वेदशब्दसे उभयवेशवाले इस विश्वात्माको विचारने लगे तब उस समय वहां एक ऋषि हुआ, जो ऋषिका सारतम समझा जाताहै ॥ १२ ॥ उसी ऋषिसे विष्णुजीने परमेश्वरको जाना जो महादेव परब्रह्म शब्द ब्रह्मपर दूसरा ब्रह्मशरीरहै ॥ १३ ॥ यह रुद्रचिन्तामें नहीं आते इनके विचारमें मनसहित वाणी निवृत्त होजातीहै वह एकाक्षर 'ॐ' से ही जानेजातेहैं ॥ १४ ॥

आदिमध्यांतरहितमानंदस्यापिकारणम् ॥ सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परायणम् ॥ १० ॥ कुत एवात्र संभूतः परीक्षावोऽग्निसंभवम् ॥
अधो गमिष्याम्यनलस्तंभस्यानुपमस्य च ॥ ११ ॥ वेदशब्दोभयावेशं विश्वात्मानं व्यचिंतयत् ॥ तदाऽभवदृषिस्तत्र ऋषेस्सारतमं
स्मृतम् ॥ १२ ॥ तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान्परमेश्वरम् ॥ महादेवं परं ब्रह्म शब्दब्रह्मतनुं परम् ॥ १३ ॥ चिंतया रहितो रुद्रो वाचो
यन्मनसा सह ॥ अप्राप्य तन्निवर्तंते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः ॥ १४ ॥ एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम् ॥ सत्यमानन्दममृतं परं
ब्रह्म परात्परम् ॥ १५ ॥ एकाक्षरादकाराख्याद्भगवान्बीजकोण्डजः ॥ एकाक्षरादुकाराख्याद्धरिः परमकारणम् ॥ १६ ॥ एकाक्षरान्म
काराख्याद्भगवान्नीललोहितः ॥ सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः ॥ १७ ॥ मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ॥
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारोबीज उच्यते ॥ १८ ॥ उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च
महेश्वरः ॥ १९ ॥ बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः ॥ अस्य लिंगादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः ॥ २० ॥

एकाक्षररूप उनका वाक्य ऋत और परमकारण है, सत्यस्वरूप आनन्दस्वरूप परमअमृत ब्रह्म परात्पर अर्थात् परेसे परेहै ॥ १५ ॥ एकाक्षर अकारसे भगवान् बीजस्वरूप अण्डोत्पन्न ब्रह्माजीहैं, एकाक्षर उकारसे परम कारण हरिहैं ॥ १६ ॥ एकाक्षर मकारसे भगवान्नीललोहित हैं, अकार सृष्टिकर्ता उकार मोहन करनेवाला ॥ १७ ॥ और मकार नित्यही अनुग्रह करनेवालाहै, मकार विभु बीजी और अकार बीज कहलाताहै ॥ १८ ॥ उकार हरिकी योनि प्रधान पुरुषेश्वरहै, बीजी और बीज उसकी योनि और नादसंज्ञक महेश्वर है ॥ १९ ॥ बीजी आत्माको विभाग करके स्वेच्छासे ही स्थित हुआहै, इस प्रभु

लिंगीके बीजसे अकार हुआहै ॥ २० ॥ यह उकाररूप योनिमें पडकर सब ओरसे बढने लगा, उससे सोनेका यह अण्ड हुआ, उस समय यह अंड अवेद्य
और अलक्षण था ॥ २१ ॥ यह दिव्यअण्ड अनेक वर्षोंतक जलमें स्थित रहा सहस्र वर्षके पीछे ब्रह्माजीने इसके दो भागकिये ॥ २२ ॥ इस जलमें स्थित
हुए अण्डको जब परमेश्वरने व्याघात किया तब इसका एक कपाल ऊर्ध्वस्थित होकर शोभित हुआ ॥ २३ ॥ उससे द्युलोक हुआ और नीचेके कपालसे
पांचतत्वकी पृथिवी प्रगट हुई उस अण्डसे भव (शंकर) और ककार नामवाले चतुर्मुख प्रगट हुए ॥ २४ ॥ वह सब लोकोंके स्रष्टा और वही

उकारयोनौ निःक्षिप्तमवर्द्धत समंततः ॥ सौवर्णमभवच्चांडमावेद्यं तदलक्षणम् ॥२१॥ अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमंडं व्यवस्थितम् ॥
ततो वर्षसहस्रांते द्विधाकृतमजोद्भवम् ॥ २२ ॥ अंडमप्सु स्थितं साक्षाद्व्याघातेनेश्वरेण तु ॥ तथाऽस्य सुशुभं हैमं कपालं चोर्द्धसं
स्थितम् ॥ २३ ॥ जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पंचलक्षणा ॥ तस्मादंडाद्भवो जज्ञे ककाराख्यश्चतुर्मुखः ॥ २४ ॥ स स्रष्टा सर्वलोकानां
स एव त्रिविधः प्रभुः॥ एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः ॥ २५ ॥ यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम् । एवमेव हरे
ब्रह्मन्नित्याहुश्चावयोस्तदा ॥२६॥ ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छक्तिसंभवैः ॥ मंत्रै महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम् ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नं
तरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दरम् ॥ ददर्श च मया सार्द्धं भगवान्विश्वपालकः ॥ २८ ॥ पंचवक्रं दशभुजं गौरकर्पूरवन्मुने ॥ नानाकांति
समायुक्तं नानाभूषणभूषितम् ॥ २९ ॥ महोदारं महावीर्यं महापुरुषलक्षणम् ॥ तं दृष्ट्वा परमं रूपं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ॥ ३० ॥

तीनरूपधारी हैं, इसीसे यजुर्वेदी इनको ॐ ॐ ऐसा कहते हैं ॥ २५ ॥ यजुके वचन सुनकर ऋक् और साम आदरसे हे हरे ! हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार हम
दोनोंको कहते हैं ॥ २६ ॥ तब देवेशको जानकर यथायोग्य अपनी शक्तिसे संभवमंत्रोंसे महादेव महेश्वर देवको प्रसन्न करने लगे ॥२७॥ इसीसमय संसारके
पालन करनेवाले विष्णुभगवान् मेरे संग एक बहुत सुन्दर अद्भुत रूप देखने लगे ॥ २८ ॥ हे मुने ! पांचमुख दशभुजा गोरा कपूरकी समान सुन्दर अनेक
कान्तियोंसे युक्त और अनेक भूषणोंसे भूषित ॥ २९ ॥ महोदर महावीर्यवान् महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त, था उस स्वरूपको देखकर गुरुसहित हरि कृतार्थ

होगये ॥ ३० ॥ तब भगवान् महेश्वर परमेश्वर प्रसन्न होकर दिव्यशब्दमय रूप करके स्थित हुए ॥ ३१ ॥ उनका शिर आकार और माथा आकार दीर्घ
था इकार दक्षिणनेत्र बाम कमलनेत्र था ॥ ३२ ॥ उकार दाहिना उकार बायां कान था और ऋकार उन परमेष्ठीका दाहिना कपोल था ॥ ३३ ॥
ॠकार बायां कपोल, ऌॡ दोनों नासापुट, एकार ऊपरका होठ, और ऐकार नीचेका होठ था ॥ ३४ ॥ ओ और औ यह क्रमसे ऊपरनीचेकी बाईं पंक्ति
थी, उन देवदेव शूलधारीका 'अं' तालु हुआ ॥ ३५ ॥ क ख ग घ ङ यह पांच दहिने हाथ हैं, च छ ज झ ञ यह वाम ओरके पांच हाथ हैं ॥ ३६ ॥

अथ प्रसन्नो भगवान्महेशः परमेश्वरः ॥ दिव्यं शब्दमयं रूपमाख्याय प्रहसन्स्थितः ॥ ३१ ॥ अकारस्तस्य मूर्द्धा हि ललाटो दीर्घ
उच्यते ॥ इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम् ॥ ३२ ॥ उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते ॥ ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं
परमेष्ठिनः ॥ ३३ ॥ वामं कपोलमॄकारो ऌ ॡ नासापुटे उभे ॥ एकारश्चोष्ठ ऊर्द्ध्वश्च ह्यैकारस्त्वधरो विभोः ॥ ३४ ॥ ओकारश्च तथौ
कारो दन्तपंक्तिद्वयं क्रमात् ॥ अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ ३५ ॥ कादिपंचाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे ॥ चादिपं
चाक्षराण्येवं पंच हस्तास्तु वामतः ॥ ३६ ॥ टादिपंचाक्षरं पादास्तादिपंचाक्षरं तथा ॥ पकार उदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ॥ ३७ ॥
बकारो वामपार्श्वस्तु भकारः स्कंध उच्यते ॥ मकारो हृदयं शंभोर्महादेवस्य योगिनः ॥ ३८ ॥ यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधा
तवः ॥ हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते ॥ ३९ ॥ एवं शब्दमयं रूपमगुणस्य गुणात्मनः ॥ दृष्ट्वा तमुमया सार्द्धं कृतार्थो
ऽभून्मया हरिः ॥ ४० ॥ एवं दृष्ट्वा महेशानं शब्दब्रह्म तनुं शिवम् ॥ प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्द्ध्वतः ॥ ४१ ॥

ट ठ ड ढ ण यह पांच अक्षर दहिनाचरण, त थ द ध न यह पांच अक्षर वामचरण हैं एकार उदर और फकार पार्श्वभाग कहाता है ॥ ३७ ॥
बकार वामपार्श्व भकार स्कंध कहाता है, महादेव योगी शंभुका हृदय मकार है ॥ ३८ ॥ यकारसे सकारतक उस विभुकी सात धातु हैं हकार नाभि और
चकार घ्राण है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उस अगुणगुणात्माका शब्दमय रूप देखकर मेरे साहित विष्णुजी कृतार्थ होगये ॥ ४० ॥ इसप्रकार महेशानका

शब्द ब्रह्ममय शरीर देखकर मेरे सहित विष्णुजी उनको प्रणाम कर फिर ऊपरको देखने लगे ॥ ४१ ॥ वहां ओंकारसे प्रगट हुआ मंत्र पांचकलासे संयुक्त शुद्ध स्फटिकमणिकी समान स्वच्छ सुन्दर अडतीस अक्षरोंसे सम्पन्न है ॥ ४२ ॥ बुद्धिका करनेवाला सबका मत था अर्थका साधक है वह मंत्र गायत्रीसे प्रगट चौवीस वर्णवाला वश करनेवाला है यथा "तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्" अथवा तत्सवितु० यह गायत्री लेनी ॥ ४३ ॥ यह चौवीस वर्णोंसे युक्त चारों कालमें श्रेष्ठहै और पंचासित मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' आठ कलाओंसे युक्त ॥ ४४ ॥ आभिचारक मंत्र प्रायः तीस अक्षरोंसे सम्पन्न यजुर्वेदसे युक्त पच्चीस शुभाक्षरोंसे सम्पन्न ॥ ४५ ॥ आठ कलाओंसे सम्पन्न सुश्वेत और शांतिदायक मंत्र और तेरह कलाओंसे युक्त

ॐकारप्रभवं मंत्रं कलापंचकसंयुतम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् ॥ ४२ ॥ मेधाकारमभूद्भूयस्सर्वधर्मार्थसाधकम् ॥
गायत्रीप्रभवं मंत्रं सहितं वश्यकारकम् ॥ ४३ ॥ चतुर्विंशतिवर्णाढचं चतुष्कालमनुत्तमम् ॥ अथ पंचसितं मंत्रं कलाष्टक
समायुतम् ॥ ४४ ॥ आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् ॥ यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम् ॥ ४५ ॥ कलाष्टकसमा
युक्तं सुश्वेतं शांतिकं तथा ॥ त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैस्सह लेहितम् ॥ ४६ ॥ बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम् ॥ वर्णा एका
धिकाः षष्टिरस्य मंत्रवरस्य तु ॥ ४७ ॥ पुनर्मृत्युंजयं मंत्रं पञ्चाक्षरमतः परम् ॥ चिंतामणिं तथा मंत्रं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम् ॥ ४८ ॥
ततस्तत्त्वमसीत्युक्तं महावाक्यं हरस्य च ॥ पञ्चमंत्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः ॥ ४९ ॥

बालादिके सहित लेहित ॥ ४६ ॥ यह उत्पत्ति पालन और संहारका कारणहै और इस मंत्रके ६१ वर्ण हैं ॥४७॥ फिर मृत्युंजय मंत्र (ॐ जूं सः) अथवा (त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्) इसके उपरान्त (नमः शिवाय) यह पंचाक्षर मंत्र और (क्ष्म्यौं) यह चिन्तामणि मंत्र यथा (अग्निः सम्वर्तकादित्यावानिलौ षष्ठ बिन्दुमत् । चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्व समृद्धिदम्) और (ओं नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा) यह चिन्तामणि और दक्षिणामूर्ति मंत्र है ॥ ४८ ॥ तत्त्वमसि यह शिवका महावाक्य है इन पांचों मंत्रोंको लेकर भगवान

जप करने लगे ॥ ४९ ॥ फिर ऋक् यजु सामरूपी कला वर्णको देखकर जो ईशान ईश मुकुट पुरुष पुरातन हैं ॥ ५० ॥ अघोर हृदय मनोहर सबमें गुह्य सदाशिव वामपाद महादेव महाभोगीन्द्रका भूषण धारे ॥ ५१ ॥ सब ओर चरण और सब ओर नेत्रोंवाले ब्रह्माके अधिपति सर्ग स्थिति और संहार करनेवाल ॥ ५२ ॥ वरदाई साम्बशिवके वाणियोंसे संतुष्ट करने लगे, इसप्रकार मैंने और विष्णुजीने बडे प्रेमसे उनकी स्तुति की ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवम० रु० प्र० सृ० भाषाटीकायां शब्दब्रह्मचतुर्वर्णनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुकी की हुई स्तुतिको सुनकर महेश्वर प्रेमसे दया

अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुस्सामरूपिणम् ॥ ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥ ५० ॥ अघोरहृदयं हृद्यं सर्वगुह्यं सदाशिवम् ॥
वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् ॥ ५१ ॥ विश्वतः पादवन्तं तं विश्वतोक्षिकरं शिवम् ॥ ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकार
णम् ॥ ५२ ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिस्साम्बं वरदमीश्वरम् ॥ मया च सहितो विष्णुर्भगवांस्तुष्टचेतसा ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने शब्दब्रह्मतनुवर्णनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथाकर्ण्य नुतिं
विष्णुकृतां स्वस्यमहेश्वरः ॥ प्रादुबभूव सुप्रीतस्सवामं करुणानिधिः ॥ १ ॥ पञ्चवक्त्रस्त्रिनयनो भालचन्द्रो जटाधरः ॥ गौरवर्णो
विशालाक्षो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ २ ॥ दशबाहुर्नीलगलः सर्वाभरणभूषितः ॥ सर्वांगसुन्दरो भस्मत्रिपुण्ड्रांकितमस्तकः ॥ ३ ॥
तं दृष्ट्वा तादृशं देवं सवामं परमेश्वरम् ॥ तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्विष्णुर्मया सह ॥ ४ ॥ निगमं श्वासरूपेण ददौ तस्मै ततो हरः ॥
विष्णवे च प्रसन्नात्मा महेशः करुणाकरः ॥ ५ ॥

करके दोनोंके सन्मुख प्रगट हुए ॥ १ ॥ पांचमुख तीन नेत्र भालचंद्र जटाधारी गौरवर्ण विशाल नेत्र शरीरमें भस्म लगाये ॥ २ ॥ दश बाहु नीलकण्ठ सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित सर्वांगसे सुन्दर भस्म और त्रिपुंड्रसे अंकित मस्तक ॥ ३ ॥ इस प्रकारके शक्ति सहित परमेश्वरको देखकर मेरे सहित विष्णुजी सुन्दर वचनोंसे स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥ तब शिवजीने श्वासरूपसे उनके निमित्त वेद दिये यह प्रसन्नात्मा महेश्वरने बडी कृपाकर किया ॥ ५ ॥

फिर हरिपरमात्माके निमित्त ज्ञान दिया, हे मुने ! हरिने फिर कृपा करके मुझे ज्ञान दिया ॥ ६ ॥ इसप्रकार निगमको प्राप्त करके विष्णुजीने फिर पूछा और मुझसहित हाथ जोडकर बोले ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले हे देव ! किस प्रकार आप प्रसन्न होतेहैं और मैं किसप्रकार आपका पूजन करूं आपका ध्यान किसप्रकारसे करना चाहिये. किसप्रकार आप वशीभूत होतेहैं ॥ ८ ॥ हे महादेव ! आपकी आज्ञासे हमको क्या करना चाहिये, हे शंकर ! प्रीतिके निमित्त आप सदा हमको आज्ञा करते रहिये ॥ ९ ॥ हे महाराज ! हे शंकर ! हम दोनोंको अपना अनुगामी जानकर यह सब कहिये ॥ १० ॥

ततो ज्ञानमदात्तस्मै हरये परमात्मने ॥ परमात्मा पुनर्मह्यं दत्तवान्कृपया मुने ॥ ६ ॥ संप्राप्य निगमं विष्णुः पप्रच्छ पुनरेव तम् ॥ कृतार्थस्सांजलिर्नत्वा मया सह महेश्वरम् ॥ ७ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कथं च तुष्यसे देव मया पूज्यः कथं प्रभो ॥ कथं ध्यानं प्रकर्तव्यं कथं व्रजसि वश्यताम् ॥ ८ ॥ किं कर्तव्यं महादेव ह्यावाभ्यां तव शासनात् ॥ सदासदाज्ञापय नौ प्रीत्यर्थे कुरु शंकर ॥ ९ ॥ एतत्सर्वं महाराज कृपां कृत्वाऽवयोः प्रभो ॥ कथनीयं तथान्यच्च विज्ञाय स्वानुगौ शिव ॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवान्हरः ॥ उवाच वचनं प्रीत्या सुप्रसन्नः कृपानिधिः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ भक्त्या च भवतोर्नूनं प्रीतोहं सुरसत्तमौ ॥ पश्यतं मां महादेवं भयं सर्वं विमुंचताम् ॥ १२ ॥ मम लिंगं सदा पूज्यं ध्येयं चैतादृशं मम ॥ इदानीं दृश्यते यद्वत्तथा कार्यं प्रयत्नतः ॥ १३ ॥ पूजितो लिंगरूपेण प्रसन्नो विविधं फलम् ॥ दास्यामि सर्वलोकेभ्यो मनोभीष्टान्यनेकशः ॥ १४ ॥ यदा दुःखं भवेत्तत्र युवयोस्सुरसत्तमौ ॥ पूजिते मम लिंगे च तदा स्याद्दुःखनाशनम् ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर भगवान हर प्रसन्न हुए और कृपानिधि प्रसन्नतासे कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीशिवजी बोले हे श्रेष्ठदेवताओ ! आपकी भक्तिसे मैं प्रसन्न हुआहूं, मुझ महादेवको देखतेहुए तुम सब भयत्यागन करो ॥ १२ ॥ सदा मेरे लिंगकी पूजा करो और सदा मेरा ध्यान करो, इससमय जैसा दीखताहै वैसा प्रयत्नसे करना चाहिये॥ १३॥ मैं लिंगरूपसे पूजित हुआ अनेक प्रकारके फलोंको सबलोकोंके मनके अभीष्टोंको देताहूं॥ १४ ॥हे श्रेष्ठदेवताओ

जब किसीप्रकारके दुःखकी प्राप्ति हो तो मेरा लिंगपूजनेसे सब दुःख मिटजायँगे ॥ १५ ॥ तुम दोनों महाबली मेरी प्रकृति और मेरे दहिने बाँये
अंगसे प्रगट हुएहो ॥ १६ ॥ यह लोकपितामह ब्रह्माजी मेरे दक्षिणपार्श्वसे प्रगट हुएहैं, हे विष्णुजी तुम परात्माके वामपार्श्वसे प्रगट हुएहो ॥ १७ ॥
मैं तुम दोनोंसे बहुत प्रसन्न हूं, ईप्सित वर देताहूं तुमको मेरी इच्छासे मेरी दृढभक्ति होगी ॥ १८ ॥ तुम दोनों मेरी पार्थिवमूर्ति बनाकर और अनेकप्रकारकी
सेवा पूजा करोगे तो तुम दोनों महात्मा सुख पाओगे ॥ १९ ॥ हे ब्रह्माजी ! मेरी आज्ञाके पालन करनेवाले तुम सृष्टि करो और हे वत्स ! नारायण तुम

युवां प्रसूतौ प्रकृतेर्मदीयाया महाबलौ ॥ गात्राभ्यां सव्यं[1]सव्याभ्यां मम सर्वेश्वरस्य हि ॥ १६ ॥ अयं मे दक्षिणात्पार्श्वा
द्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ वामपार्श्वाच्च विष्णुस्त्वं समुत्पन्नः परात्मनः ॥ १७ ॥ प्रीतोहं युवयोस्सम्यग्वरं दद्यां यथेप्सितम् ॥ मयि
भक्तिर्दृढा भूयाद्युवयोरभ्यनुज्ञया ॥ १८ ॥ पार्थिवीं चैव मन्मूर्तिं विधाय कुरुतं युवाम् ॥ सेवां च विविधां प्राज्ञौ कृत्वा सुखमवा
प्स्यथ ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्सृष्टिं कुरु त्वं हि मदाज्ञापरिपालकः ॥ वत्स वत्स हरे त्वं च पालयैवं चराचरम् ॥ २० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्युक्त्वा नौ प्रभुस्ताभ्यां पूजाविधिमदाच्छुभाम् ॥ येनैव पूजितश्शंभुः फलं यच्छत्यनेकशः ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य
वचश्शंभोर्मया च सहितो हरिः ॥ प्रत्युवाच महेशानं प्रणिपत्य कृतांजलिः ॥ २२ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ यदि प्रीतिः समुत्पन्ना
यदि देयो वरश्च नौ ॥ भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी ॥ २३ ॥ त्वमप्यवतरस्वाद्य लीलया निर्गुणोपि हि ॥ सहायं
कुरु नौ तात त्वं परः परमेश्वरः ॥ २४ ॥

चराचरका पालन करो ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर विभुने हम दोनोंको अपनी श्रेष्ठ पूजाविधि दी, जिसके द्वारा पूजित होकर शिवजी अनेक
प्रकारके फल देतेहैं ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार भगवानविष्णुजी मुझ सहित शिवजीके वचन सुनकर हाथ जोड प्रणाम कर शिवजीसे बोले ॥ २२ ॥
विष्णुजी बोले यदि आप प्रसन्न हैं और हम दोनोंको वर देतेहैं, तो हमारी आपमें निश्चला भक्ति हो ॥ २३ ॥ और निर्गुण होकरभी लीलासे आप

---

[1] शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् शिष्टप्रयुक्तानां यथाकथञ्चित्साधुत्वान्वाख्यानात् सव्यासव्यगात्राभ्यां वा पाठोऽनुसंधेयः ।

अवतार लेकर हमारी सहायता करिये कारण कि आप परपरमेश्वर हैं ॥ २४ ॥ हे देवदेवेश ! हम दोनोंका विवादभी अच्छा हुआ जो हम दोनोंके विवाद शान्तिके लिये आपने दर्शन दिया ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले उनके यह वचन सुन फिर विष्णुजीसे शिवजीने कहा और विष्णुजी प्रणाम कर हाथ जोड शिरझुकाये खडे रहे ॥ २६ ॥ श्रीशिवजी बोले मैं निर्गुण सगुण होकर भी सृष्टि पालन और संहार करताहूं मैं परब्रह्म विकाररहित सच्चिदानंद लक्षणवाला हूं ॥ २७ ॥ हे विष्णुजी ! विष्णु ब्रह्मा और शिव नामसे मैं तीनप्रकारसे स्थित हूं हे हरे ! मैं उत्पत्ति, रक्षा लय इन गुणोंसे सदा निष्कल हूं ॥ २८ ॥

आवयोर्देवदेवेश विवादमपि शोभनम् ॥ इहागतो भवान्यस्माद्विवादशमनाय नौ ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम् ॥ प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृतांजलिपुटः स्वयम् ॥ २६ ॥ श्रीमहेश उवाच ॥ प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ताहं सगुणोऽगुणः ॥ परब्रह्म निर्विकारी सच्चिदानंदलक्षणः ॥ २७ ॥ त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ॥ सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोहं सदा हरे ॥ ॥ २८ ॥ स्तुतोऽहं यत्त्वया विष्णो ब्रह्मणा मेऽवतारणे ॥ प्रार्थनां तां करिष्यामि सत्यां यद्भक्तवत्सलः ॥ २९ ॥ मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदंगतः ॥ प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥ ३० ॥ मदंशात्तस्य सामर्थ्यं न्यूनं नैव भविष्यति ॥ योहं सोहं न भेदोस्ति पूजाविधिविधानतः ॥ ३१ ॥ यथा च ज्योतिषस्संगाज्जलादेः स्पर्शता न वै ॥ तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि ॥ ३२ ॥ शिवरूपं ममैतच्च रुद्रोऽपि शिववत्तदा ॥ न तत्र परभेदो वै कर्तव्यश्च महामुने ॥ ३३ ॥ वस्तुतो ह्येकरूपं हि द्विधा भिन्नं जगत्युत ॥ अतो न भेदो विज्ञेयः शिवे रुद्रे कदाचन ॥ ३४ ॥

हे विष्णु ! जो तुमने मेरी स्तुति की है, और ब्रह्माजीने युद्धमें मेरी स्तुति रक्षाके निमित्त ली है, तो मैं भक्तवत्सलताके कारण इस प्रार्थनाको सत्य करूंगा ॥ ॥ २९ ॥ हे ब्रह्माजी ! तुम्हारे अंगसे जो मेरा रूप प्रगट हुआहै लोकमें उसका नाम रुद्र होगा ॥ ३० ॥ मेरे अंश होनेसे उसकी सामर्थ्य न्यून न होगी जो मैं हूं सो वह है, पूजाके विधानसे हम दोनोंमें भेद न होगा ॥ ३१ ॥ जैसे ज्योतिके संग होनेपरभी जलादिमें स्पर्शता नहीं है इसीप्रकार मुझ निर्गुणको संयोगसे बंधन नहीं होता है ॥ ३२ ॥ मेरा रूप यही है रुद्रभी शिवरूपही हैं हे महामुने ! इसमें परपूर्वका भेद नहीं जानना ॥ ३३ ॥ वस्तुतः एकरूप ही यह

जगत्में दो रूप दिखाई देते हैं इससे शिवरुद्रमें कदाचित् भी भेद न जानना ॥ ३४ ॥ हे देव! एकही सुवर्णकी अनेकवस्तु बनती हैं अलंकार नाम आकृतिका भेद है वास्तवमें भेद नहीं है ॥ ॥ ३५ ॥ जैसे एकही मट्टीके अनेक नामवाले पात्र बनते हैं नामसे उनमें भेद है पर वास्तवमें वह सब मृत्तिकाही है। इसीप्रकार कार्यमें भेदहै कारणमें नहीं। यह दृष्टान्त बहुत है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मा विष्णु निर्मलज्ञानवाले पंडितोंको यह बात भलीभाँति जाननी चाहिये, ऐसा जानकर तुम दोनोंको भी भेद नहीं मानना चाहिये ॥ ३७ ॥ मेरे मतमें वस्तुकी समान सर्वत्र शिवरूप देखना चाहिये, मैं आप ब्रह्मा और जो यह

सुवर्णस्य तथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति ॥ अलंकृतिकृते देव नामभेदो न वस्तुतः ॥३५॥ यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः॥ कारणस्यैव कार्ये च सन्निधानं निदर्शनम् ॥ ३६ ॥ ज्ञातव्यं बुधवर्यैश्च निर्मलज्ञानिभिः सुरौ ॥ एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां तु न दृश्यं भेदकारणम् ॥ ३७ ॥ वस्तुवत्सर्वदृश्यं च शिवरूपम्मतम्मम ॥ अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति ॥ ३८ ॥ एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बंधनं भवेत् ॥ तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम् ॥ ३९ ॥ मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनंतकम् ॥ एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः ॥ ४० ॥ श्रूयतां चैव भो ब्रह्मन्यद्गोप्यं कथ्यते मया ॥ भवंतौ प्रकृतेर्यातौ नायं वै प्रकृतेः पुनः ॥ ॥ ४१ ॥ मदाज्ञा जायते तत्र ब्रह्मणो भ्रुकुटेरहम् ॥ गुणेष्वपि यथा प्रोक्तस्तामसः प्रकृतो हरः ॥ ४२ ॥ वैकारिकश्च विज्ञेयो योऽहंकार उदाहृतः ॥ नामतो वस्तुतो नैव तामसः परिचक्ष्यते ॥ ४३ ॥

रुद्र होंगे ॥ ३८॥ यह सब एकरूप हैं इनमें भेद नहीं है, और जो भेद मानेंगे उनको बंधन होगा, तोभी मेरा सनातन शिवरूप ॥ ३९॥ मूलभूत सत् सत्यज्ञान और अनन्त है, इसप्रकार तत्त्वसे सदा मनलगाकर जानना चाहिये ॥ ४० ॥ हे ब्रह्मन्! जो मैं गुप्तवाद तुमसे कहता हूं सो तुम सुनो तुम दोनों प्रकृतिसे प्रगट हुए हो, पर यह रुद्र वैसे नहीं हैं ॥ ४१ ॥ अपनी इच्छासेही मैं तुम ब्रह्माकी भृकुटीसे प्रगट हुआ हूं और गुणोंमें जो रुद्रको प्रकृतिका तामस गुण कहा है ॥ ४२ ॥ उसे वैकारिक जानना वास्तवमें नहीं, वह वही है जिसे अहंकार कहते हैं नामसे है पर वास्तवमें तामस नहीं कहाता ॥ ४३ ॥

हे ब्रह्माजी ! इसकारण आपको यह करना चाहिये कि तुम सृष्टिके कर्ता बनो, और यह नारायण सृष्टिके पालक होंगे ॥ ४४ ॥ और मेरे अंश यह रुद्र लयकर्त्ता होंगे, और जो यह उमानामक परमेश्वरी प्रकृति देवी है ॥ ४५ ॥ इसींकी शक्ति वाग्देवी ब्रह्माकी अर्द्धांगिनी होगी, और दूसरी शक्ति जो है वह प्रकृतिसे उत्पन्न होगी ॥ ४६ ॥ वह लक्ष्मीरूपहो विष्णुका आश्रय करैगी और फिर कालीनामसे निश्चय मेरे अंशको प्राप्त होगी, ॥ ४७ ॥ वहां वह ज्योतिरूपसे कार्यके लिये प्रगट होंगी, इसप्रकार देवीकी तीनप्रकारकी शक्तियें कहीगई हैं ॥ ४८ ॥ और क्रमसे उनका कार्य सृष्टि स्थिति और संहार

एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्करणीयमिदं त्वया ॥ सृष्टिकर्ता भव ब्रह्मन्सृष्टेश्च पालको हरिः ॥ ४४ ॥ मदीयश्च तथांऽशो यो लयकर्ता भविष्यति ॥ इयं या प्रकृतिर्देवी ह्युमाख्या परमेश्वरी ॥ ४५ ॥ तस्यास्तु शक्तिर्वाग्देवी ब्रह्माणं सा भजिष्यति ॥ अन्या शक्तिः पुनस्तत्र प्रकृतेः संभविष्यति ॥ ४६ ॥ समाश्रयिष्यते विष्णुं लक्ष्मीरूपेण सा तदा ॥ पुनश्च काली नाम्ना सा मदंशं प्राप्स्यति ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ ज्योतीरूपेण सा तत्र कार्यार्थे संभविष्यति ॥ एवं देव्यास्तथा प्रोक्ताश्शक्तयः परमाश्शुभाः ॥ ४८ ॥ सृष्टिस्थितिलयानां हि कार्यं तासां क्रमाद्ध्रुवम् ॥ एतस्याः प्रकृतेरंशा मत्प्रियायास्सुरोत्तम ॥ ४९ ॥ त्वं च लक्ष्मीमुपाश्रित्य कार्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ब्रह्मंस्त्वं च गिरां देवीं प्रकृत्यंशामवाप्य च ॥ ५० ॥ सृष्टिकार्यं हृदा कर्तुम्मन्निदेशादिहार्हसि ॥ अहं कालीं समाश्रित्य मत्प्रियांशां परात्पराम् ॥ ५१ ॥ रुद्ररूपेण प्रलयं करिष्ये कार्यमुत्तमम् ॥ चतुर्वर्णमयं लोकं तत्सर्वैराश्रमैर्ध्रुवम् ॥ ५२ ॥ तदन्यैर्विविधैः कार्यैः कृत्वा सुखमवाप्स्यथः ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्तो लोकानां हितकारकः ॥ ५३ ॥

करना है, हे देवताओ ! उत्तम क्रमसे इस मेरी प्यारी प्रकृतिके अंश ॥ ४९ ॥ लक्ष्मीको ग्रहण कर तुम अपने कार्य करो। और हे ब्रह्माजी ! तुम मेरी प्रकृतिके अंश गिरादेवीको प्राप्त होकर ॥ ५० ॥ मेरी आज्ञासे सृष्टिका कार्य करा, आर जो मेरी प्रियाका अंश परात्पर काली है उसको ॥ ५१ ॥ प्राप्त करके मैं रुद्ररूपसे प्रलय करूंगा। सब आश्रम और चारों वर्णवाले लोकके विभागको ॥ ५२ ॥ इसके सिवाय और भी दूसरे कार्य करके सुख पाओ ज्ञान विज्ञानसे

संयुक्त हो लोकोंके हित करनेके लिये ॥ ५३ ॥ मेरी आज्ञासे तुम लोकोंको मुक्ति देनेवाले हो जो मेरे दर्शनका फल है वही तुम्हारे दर्शनका फल होगा ॥
॥ ५४ ॥ यह जो मैंने तुमको वर दिया है यह सत्य होगा इसमें सन्देह नहीं मेरे हृदयमें विष्णु और विष्णुके हृदयमें मैं हूं ॥५५॥ हम दोनोंमें जो अन्तर
नहीं जानताहै वही मेरे सम्मत है, हरि मेरे वामांगसे उत्पन्न और ब्रह्मा मेरे दक्षिणांगसे उत्पन्नहैं ॥ ५६ ॥ और महाप्रलय करनेवाले विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे
उत्पन्नहैं, हे विष्णु मैंही ब्रह्मा विष्णु रुद्ररूपसे तीन प्रकारका हूं ॥ ५७ ॥ और तीन गुणोंसे उत्पत्ति पालन और प्रलय करताहूं, शिवजी साक्षात् गुणोंसे

मुक्तिदोऽत्र भवानद्य भव लोके मदाज्ञया ॥ मद्दर्शने फलं यद्वत्तदेव तव दर्शने ॥ ५४ ॥ इति दत्तो वरस्तेद्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ॥ ५५ ॥ उभयोरंतरं यो वै न जानाति मनो मम ॥ वामांगजो मम हरिर्दक्षिणांगोद्भवो विधिः ॥
॥ ५६ ॥ महाप्रलयकृद्रुद्रो विश्वात्मा हृदयोद्भवः ॥ त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया ॥ ५७ ॥ सर्गरक्षालयकरस्त्रिगुणै
रजआदिभिः ॥ गुणभिन्नश्शिवस्साक्षात्प्रकृतेः पुरुषात्परः ॥ ५८ ॥ परं ब्रह्माद्वयो नित्योऽनन्तः पूर्णो निरंजनः ॥ अंतस्तमो बहिस्सत्त्व
स्त्रिजगत्पालको हरिः ॥ ५९ ॥ अंतस्सत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः ॥ ६० ॥ अंतर्बहीरजाश्चैव त्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः ॥ एवं गुणा
स्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः ॥ ६१ ॥ विष्णो सृष्टिकरं प्रीत्या पालयैनं पितामहम् ॥ संपूज्यस्त्रिषु लोकेषु भविष्यसि मदाज्ञया ॥
॥ ६२ ॥ तव सेव्यो विधेश्चापि रुद्र एव भविष्यति ॥ शिवपूर्णावतारो हि त्रिजगल्लयकारकः ॥ ६३ ॥

भिन्न हैं प्रकृति पुरुषसे परेहैं ॥ ५८ ॥ वह परब्रह्म अद्वय अविनाशी अनन्त पूर्ण निरंजन हैं, भीतर तम बाहर सत्व इसप्रकार तीन जगतके पालन करनेवाले
हरि हैं ॥ ५९ ॥ भीतर सत्व बाहर तम ऐसे तीनों लोकके लय करनेवाले महादेव हैं ॥ ६० ॥ अन्तर्बाहर रजोगुणवाले तीनों लोककी सृष्टि करनेवाले
ब्रह्माजी हैं इसप्रकार तीनों देवताओंमें गुण हैं, और सदाशिव गुणोंसे भिन्न हैं ॥ ६१ ॥ हे विष्णुजी ! इन सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीको तुम प्रेमसे पालन करना,
मेरी आज्ञासे तुम त्रिलोकीमें पूजित होगे ॥ ६२ ॥ तुम्हारे और ब्रह्माजीके भी सेव्य यह सब होंगे, तीन जगतके लय करनेवाले रुद्रजी पूर्णावतार हैं ॥ ६३ ॥

पद्मकल्पमें पितामह तुम्हारे पुत्र होंगे तब उस समय तुम मुझे देखोगे और ब्रह्माजी भी देखेंगे ॥ ६४ ॥ इसप्रकार महेशने कहकर और अतुल कृपा करके
फिर वह सर्वेश्वर प्रभु विष्णुजीसे कहने लगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्र० भाषाटीकायां प्र०सृ० शिवतत्त्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
परमेश्वर बोले हे हरी हे विष्णुजी ! औरभी मेरी आज्ञा सुनो हे सुव्रत ! तुम सदा सब लोकोंमें मान्य और पूज्य होंगे ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके निर्माणकिये लोकमें
जब दुःख होगा तब तुम सब लोकोंके दुःखनाश करनेमें तत्पर होगे ॥ २ ॥ मैं तुम्हारे सब दुःसहकार्योंमें सहायक हूंगा मैं तुम्हारे दुःसाध्य परम उत्कट

पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः ॥ तदा द्रक्ष्यसि मां चैव सोऽपि द्रक्ष्यति पद्मजः ॥ ६४ ॥ एवमुक्त्वा महेशानः कृपां
कृत्वातुलां हरः ॥ पुनः प्रोवाच सुप्रीत्या विष्णुं सर्वेश्वरः प्रभुः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे
सृष्ट्युपाख्याने शिवतत्त्ववर्णनो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ परमेश्वर उवाच ॥ अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत ॥ सदा
सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि ॥ १ ॥ ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते ॥ तदा त्वं सर्वदुःखानां नाशाय तत्परो
भव ॥ २ ॥ सहायं ते करिष्यामि सर्वकार्ये च दुस्सहे ॥ तव शत्रून्हनिष्यामि दुस्साध्यान्परमोत्कटान् ॥ ३ ॥ विविधानवतारांश्च
गृहीत्वा कीर्तिमुत्तमाम् ॥ विस्तारय हरे लोके तारणाय परो भव ॥ ४ ॥ गुणरूपो ह्यहं रुद्रो ह्यनेन वपुषा सदा ॥ कार्यं करिष्ये
लोकानां तवाशक्यं न संशयः ॥ ५ ॥ रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्धेययो हरस्तथा ॥ युवयोरन्तरन्नैव तव रुद्रस्य किंचन ॥ ६ ॥ वस्तुतश्चापि
चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च ॥ लीलयापि महाविष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ७ ॥

शत्रुओंका भी संहार करूंगा ॥ ३ ॥ हे विष्णु ! तुम भी अनेकप्रकारके अवतार धारणकर संसारके जीवोंका उद्धार करनेकेलिये अपनी कीर्तिका विस्तार करो,
लोगोंके दुःखनाशकरनेमें तत्पर हो ॥ ४ ॥ मैं गुणरूप रुद्र सदा इस शरीरसे तुम्हारा और लोकोंका अशक्य कार्य करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥
तुम दोनोंको रुद्रका ध्यान करना चाहिये और हे ब्रह्माजी ! तुम्हारे ध्येय हरिहैं तुम दोनोंमें और तुममें रुद्रमें कुछ अन्तर नहीं है ॥ ६ ॥ वास्तवमें तुम

तीनोंका एकत्वही है हे विष्णो! यह लीलामात्रका भेदहै वास्तवमें नहीं यह सत्य सत्यहै ॥ ७ ॥ जो रुद्रका भक्त मनुष्य तुम्हारी निन्दा करैगा उसका सम्पूर्ण पुण्य तत्काल भस्म होजायगा ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुमसे द्वेषकरनेसे पुरुष नरकमें गिरैगा हे विष्णुजी ! इसमें सन्देह नहीं यह सब मेरी आज्ञासे होगा ॥ ९ ॥ इसलोकमें तुम मनुष्योंके मुक्तिदेनेवाले भोगदेनेवाले होंगे, तुम्हारा भक्त ध्यान पूजन करैंगे तुम निग्रह अनुग्रहमें समर्थ होंगे ॥ १० ॥ यह कहकर मुझ विधाताको हरिके हाथमें धरकर शंकरने कहा तुम इनके दुःखमें सदा सहाय करना ॥ ११ ॥ तुम सबके अध्यक्ष सबको भुक्ति देनेवाले

रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निंदां करिष्यति ॥ तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति ॥ ८ ॥ नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम ॥ मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ९ ॥ लोकेऽस्मिन्मुक्तिदो नृणां भुक्तिदश्च विशेषतः ॥ ध्येयः पूज्यश्च भक्तानां निग्रहानुग्रहौ कुरु ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा मां च धातारं हस्ते धृत्वा स्वयं हरिम् ॥ कथयामास दुःखेषु सहायो भव सर्वदा ॥ ११ ॥ सर्वाध्यक्षश्च सर्वेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ भव त्वं सर्वथा श्रेष्ठस्सर्वकामप्रसाधकः ॥ ॥ १२ ॥ सर्वेषां प्राणरूपश्च भव त्वं च ममाज्ञया ॥ संकटे भजनीयो हि स रुद्रो मत्तनुर्हरे ॥ १३ ॥ त्वां यस्समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः ॥ अंतरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदेवानां विशेषतः ॥ संदेहोऽत्र न कर्त्तव्यो ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम् ॥ १५ ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च तावती तस्य मानमेतत्क्रमेण ह ॥ १६ ॥ तेषां त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वादशैस्तैश्च वत्सरः ॥ शतवर्षप्रमाणेन ब्रह्मायुः परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥

होंगे; और सबकामके साधक तुम सबसे श्रेष्ठ होंगे ॥१२॥ मेरी आज्ञासे तुम सबके प्राण होंगे शंकरमें मेरे शरीर रुद्रशरीरका सदा भजन करना ॥ १३ ॥ जो तुमको आश्रय कियेहैं वह मुझको आश्रय कियेहैं, जो हम तुममें अन्तर जान्ताहै वह अवश्य नरकमें गिरैगा ॥ १४ ॥ आप देवताओंके आयुर्बलको विशेषकर सुनो ब्रह्मा विष्णु और शिवकी एकतामें संदेह न करना चाहिये ॥ १५ ॥ चार सहस्र युगका ब्रह्माका दिन कहाताहै इतनीही इस क्रमसे रात्रि जाननी ॥ १६ ॥ इस प्रकार इन तीसदिनोंसे महीना और बारह महीनोंसे वर्ष होताहै, ऐसे सौवर्षकी आयुका ब्रह्माका दिन कहाताहै ॥ १७ ॥

ब्रह्माजीका एकवर्ष विष्णुजीका दिन कहाता है वहभी अपने मानसे सौवर्षतक जीताहै ॥ १८ ॥ विष्णुके एकवर्षमें रुद्रका एकदिन होताहै नररूप रुद्रकी स्थितिके जब सौवर्ष बीत जातेहैं ॥ १९ ॥ तब सदाशिवके मुखका एकश्वास निकलताहै यह श्वास जबतक निकलताहै तबतक शक्ति प्राप्त होतीहै ॥ २० ॥ निश्वासके लेनेमें सब देहधारी ब्रह्मा, विष्णु, हर, गंधर्व, उरग, राक्षस होजाते हैं ॥ २१ ॥ इक्कीससहस्र सौ और छःसौ दिनरात कहेगयेहैं ॥ २२ ॥ हे सुरसत्तमो! छः निश्वास और उच्छ्वासोंसे एक पल होता है साठपलकी एकघडी और साठघडीका एकदिन रात होताहै ॥ २३ ॥ शिवके निश्वास उच्छ्वासकी

ब्रह्मणो वर्षमात्रेण दिनं वैष्णवमुच्यते ॥ सोऽपि वर्षशतं यावदात्ममानेन जीवति ॥ १८ ॥ वैष्णवेन तु वर्षेण दिनं रौद्रं भवेद्ध्रुवम् ॥ हरो वर्षशते याते नररूपेण संस्थितः ॥ १९ ॥ यावदुच्छ्वसितं वक्रे सदाशिवसमुद्भवम् ॥ पश्चाच्छक्तिं समभ्येति यावन्निश्वसितं भवेत् ॥ २० ॥ निःश्वासोच्छ्वसितानां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ ब्रह्मविष्णुहराणां च गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ २१ ॥ एकविंशसहस्राणि शतैः षड्भिश्शतानि च ॥ अहोरात्राणि चोक्तानि प्रमाणं सुरसत्तमौ ॥ २२ ॥ षड्भिरुच्छ्वासनिश्वासैः पलमेकं प्रवर्तितम् ॥ घटी षष्टिपला प्रोक्ता सा षष्ट्या च दिनं निशा ॥ २३ ॥ निश्वासोच्छ्वासितानां च परिसंख्या न विद्यते ॥ सदाशिवसमुत्थानमेतस्मात्सोऽक्षयः स्मृतः ॥ २४ ॥ इत्थं रूपं त्वया तावद्रक्षणीयं ममाज्ञया ॥ तावत्सृष्टेश्च कार्यं वै कर्तव्यं विविधैर्गुणैः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शंभोर्मया च भगवान्हरिः ॥ प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मंदतरं वशी ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शंकर श्रूयतामेतत्कृपासिंधो जगत्पते ॥ सर्वमेतत्करिष्यामि भवदाज्ञावशानुगः ॥ २७ ॥ मम ध्येयस्सदा त्वं च भविष्यासि न चान्यथा ॥ भवतस्सर्वसामर्थ्यं लब्धं चैव पुरा मया ॥ २८ ॥

संख्या नहीं है, इसीसे सदाशिवका उत्थान अक्षय कहाता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार मेरी आज्ञासे मेरा रूप तुमको रक्षा करना चाहिये, और अनेक गुणोंसे सृष्टिका कार्य करना चाहिये ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले मैं और भगवान् हरि इसप्रकार शिवजीके वचन सुनकर विश्वेश्वरको प्रणाम कर हमारे अन्तरमें वह वशी बोले ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले हे कृपासागर! जगत्पते हे शंकर! सुनो आपकी आज्ञाके वशीभूत होकर मैं यह सब करूंगा ॥ २७ ॥ तुम सदा मेरे

ध्येय होंगे इसमें संदेह नहीं है, आपसेही मैंने पहले सब सामर्थ्य प्राप्त की है ॥ २८ ॥ हे स्वामिन् ! क्षणमात्रको भी आपका ध्यान मेरे चित्तसे न उतरे नं भूलै यही चाहता हूं ॥ २९ ॥ हे स्वामिन् ! जो कोई मेरा भक्त तुम्हारी निंदा करैगा, उसे आप नरकमें निश्चय वास देना ॥ ३० ॥ हे स्वामिन् ! जो आपका भक्त होगा वह मेरा प्यारा होगा इसप्रकार जो जानता है उसको मुक्ति दुर्लभ नहीं है ॥ ३१ ॥ आपने जो निश्चय हमारी महिमा बढाई है कदाचित् अगुणोंमें ऐसा नहीं होता आप क्षमा कीजिये ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले तब शिवजी विष्णुजीके यह उत्तम वचन सुनकर प्रेमसे बोले हमने आपकी

क्षणमात्रमपि स्वामिंस्तव ध्यानं परं मम ॥ चेतसो दूरतो नैव निर्गच्छतु कदाचन ॥ २९ ॥ मम भक्तश्च यः स्वामिँस्तव निंदां करिष्यति ॥ तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम् ॥ ३० ॥ त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः ॥ एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा ॥ ३१ ॥ महिमा च मदीयोद्य वर्द्धितो भवता ध्रुवम् ॥ कदाचिदगुणश्चैव जायते क्षम्यतामिति ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तदा शंभुस्तदीयं हि श्रुत्वा वचनमुत्तमम् ॥ उवाच विष्णुं सुप्रीत्या क्षम्या तेऽगुणता मया ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वा हरिं नौ स कराभ्यां परमेश्वरः ॥ पस्पर्श सकलांगेषु कृपया तु कृपानिधिः ॥ ३४ ॥ आदिश्यविविधान्धर्मान्सर्वदुःखहरो हरः ॥ ददौ वराननेकांश्चावयोर्हिताचिकीर्षया ॥ ३५ ॥ ततस्स भगवाञ्छंभुः कृपया भक्तवत्सलः ॥ दृष्ट्या संपश्यतोः शीघ्रं तत्रैवांतरधीयत ॥ ३६ ॥ तदा प्रभृति लोकेऽस्मिँल्लिंगपूजाविधिः स्मृतः ॥ लिंगे प्रतिष्ठितश्शंभुर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ३७ ॥

अगुणताको क्षमा किया ॥ ३३ ॥ परमेश्वरने हम दोनोंसे यह बात कहकर अपने हाथसे कृपाकर कृपानिधिने सब अंगोंको स्पर्श किया ॥ ३४ ॥ सब दुःख हरनेवाले हरिने अनेक धर्मोंको उपदेश करके हम दोनोंके हितकी इच्छासे अनेक वर देते हुए ॥ ३५ ॥ तब भगवान् शिव कृपासे भक्तवत्सल हम दोनोंको कृपासे देखकर वहांही अन्तर्धान होगये ॥ ३६ ॥ तभीसे इसलोकमें लिंग पूजाविधि चली है, लिंगमें प्रतिष्ठित शिवजी भुक्ति मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ३७ ॥

लिंगवेदी महादेवी है लिंग साक्षात् महेश्वर है लयकर लेनेसे ही इसका नाम लिंग है इसीमें सब जगत् है ॥ ३८ ॥ जो शिवलिंगके समीपमें इसलिंगके व्याख्यानको सुनता है वह छः महीनेमें शिवरूप होजाता है इसमें विचार कर्तव्य नहीं है ॥ ३९ ॥ जो कोई लिंगके समीपमें कुछ कार्य करता है हे महामुने उसके पुण्यफल कहनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्र०सृ० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे महाभाग सूतजी ! हे व्यासशिष्य ! आपको नमस्कारहै आपने परम पावनी शिवकथा हमको सुनाई ॥ १ ॥ उसमें परम अद्भुत दिव्य लिंगोत्पत्ति सुनी

लिंगवेदिर्महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः ॥ लयनाल्लिंगमित्युक्तं तत्रैव निखिलं जगत ॥ ३८ ॥ यस्तु लैंगं पठेन्नित्यमाख्यानं
लिंगसन्निधौ ॥ षण्मासाच्छिवरूपो वै नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ यस्तु लिंगसमीपे तु कार्यं किंचित्करोति च ॥ तस्य
पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोमि महामुने ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने परम
शिवतत्त्ववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोस्तु ते ॥ श्राविताद्याद्भुता
शैवकथा परमपावनी ॥ १ ॥ तत्राद्भुता महादिव्या लिंगोत्पत्तिः श्रुता शुभा ॥ श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह ॥ २ ॥
ब्रह्मनारदसंवादमनुसृत्य दयानिधे ॥ शिवार्चनाविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्वा पूज्यते शिवः॥
कथं कार्यं च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शर्मदं श्रुतिसंमतम् ॥ उवाच सकलं प्रीत्या मुनि
प्रश्नानुसारतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टं भवद्भिश्च तद्रहस्यं मुनीश्वराः ॥ तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ॥ ६ ॥

जिसका प्रभाव सुनकर इस संसारमें दुःखनाश होता है ॥ २ ॥ हे दयानिधे ! ब्रह्मा और नारदजीका सम्वाद स्मरण करके अब आप शिवार्चनकी विधि कहिये जिससे शिवजी सन्तुष्ट होतेहैं ॥ ३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण शिवजीका पूजन करतेहैं व्यासजीने इसको कैसा करना लिखा है सो आप कहिये ॥ ४ ॥ कल्याणदायक श्रुतिसम्मत उनके यह वचन सुनकर सूतजी प्रश्नके अनुसार सब कहने लगे ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वरो ! तुमने यह

बात बहुत अच्छी पूछी सो मैंने जैसा सुना है वैसा कहताहूं ॥ ६ ॥ जैसा आप पूँछते हो पूर्वकालमें व्यासजीने सनत्कुमारसे पूछा और जो उन्होंने कहा और उपमन्युने सुना ॥ ७ ॥ फिर शिवपूजादिक जो कुछ है सो व्यासजीने लोकोंके हितकी कामनासे मुझे पढाया ॥ ८ ॥ उपमन्यु महात्माने वह सब श्रीकृष्णसे कही वह मैं सब तुमसे कहताहूं जैसे पहले ब्रह्माजीने कहा है ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! सुनो संक्षेपसे लिंगपूजनविधि कहताहूं, हे मुने विस्तारसे तो कोई सौवर्षमें भी नहीं कहसक्ता है ॥ १० ॥ इसप्रकार शिवजीका सुखदायक स्वच्छ सनातन रूप है सब काम और फलकी प्राप्तिके लिये

भवाद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तथा व्यासेन वै पुरा ॥ पृष्टं सनत्कुमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना ॥ ७ ॥ ततो व्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत् ॥ मह्यं च पाठितं तेन लोकानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ तच्छ्रुतं चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः ॥ तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्मावदत्पुरा ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि संक्षेपाल्लिंगपूजनम् ॥ वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरान्मुने ॥ १० ॥ एवं तु शांकरं रूपं सुखं स्वच्छं सनातनम् ॥ पूजयेत्परया भक्त्या सर्वकामफलाप्तये ॥ ११ ॥ दारिद्र्यं रोगदुःखं च पीडनं शत्रुसंभवम् ॥ पापं चतुर्विधं तावद्यावन्नार्चयते शिवम् ॥ १२ ॥ सम्पूजिते शिवे देवे सर्वदुःखं विलीयते ॥ संपद्यते सुखं सर्वं पश्चान्मुक्तिरवाप्यते ॥ १३ ॥ ये वै मानुष्यमाश्रित्य मुख्यं संतानतस्सुखम् ॥ तेन पूज्यो महादेवः सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ १४ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्च विधिवत्क्रमात् ॥ शंकरार्चां प्रकुर्वंतु सर्वकामार्थसिद्धये ॥१५॥ प्रातःकाले समुत्थाय मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके ॥ गुरोश्च स्मरणं कृत्वा शंभोश्चैव तथा पुनः ॥ १६ ॥ तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यानं चैव हरेरपि ॥ ममापि निर्जराणां वै मुन्यादीनां तथा मुने ॥१७॥

परमभक्तिसे उनका पूजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ दरिद्र रोग दुःख शत्रुकी पीडा यह चार प्रकारका दुःख पाप शंकरकी पूजा जबतक नहीं की तबतकही रहते हैं ॥ १२ ॥ देव शिवशंकरका पूजन करनेसे सब दुःख बिला जाते हैं सब सुख होकर पीछे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर मुख्य सुख सन्तानका है, इसके लिये सब कार्य अर्थके साधक महादेवजीका पूजन करना चाहिये ॥ १४ ॥ सब कामसिद्धिके लिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्रमसे शिवजीका पूजन करै ॥ १५ ॥ प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर गुरु और शिवजीका स्मरण करके ॥ १६ ॥ तीर्थोंका स्मरण कर शंकरका

ध्यान धरके मेरा देवता और मुनियोंका ध्यान करै ॥ १७ ॥ शिवनामका स्तोत्र विधिपूर्वक जपै फिर उठकर दक्षिणदिशामें मलोत्सर्ग करै ॥ १८ ॥ एकान्तमें शास्त्रानुसार मलोत्सर्ग विधि करै, हे मुने सो मैं आपसे कहताहूं तुम मन लगाकर सुनो ॥ १९ ॥ ब्राह्मण शुद्धिके लिये पांचबार मृत्तिकासे हाथ धोवै क्षत्रिय चारबार वैश्य तीनबार ॥ २० ॥ और शूद्र दोबार शुद्धिकेलिये मृत्तिका ग्रहण करै, गुदा और लिंगमें एकबार प्रयत्नसे मृत्तिका लगावै ॥ २१ ॥ वामहाथमें दशबार फिर दोनों हाथोंमें सातसातवार मृत्तिका लगावै, हे तात ! प्रत्येक चरणतलमें तीनवार फिर तीनवार हाथ धोवै ॥ २२ ॥

ततः स्तोत्रं शुभं नाम गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ॥ तथोत्थाय मलोत्सर्गं दक्षिणस्यां चरेद्दिशि ॥ १८ ॥ एकान्ते तु विधिं कुर्यान्मलोत्सर्गस्य यच्छ्रुतम् ॥ तदेव कथयाम्यद्य शृण्वाधाय मनो मुने ॥ १९ ॥ शुद्धां मृदं द्विजो लिप्यात्पंचवारं विशुद्धये ॥ क्षत्रियश्च चतुर्वारं वैश्यो वारत्रयं तथा ॥ २० ॥ शूद्रो द्विवारं च मृदं गृह्णीयाद्विधिशुद्धये ॥ गुदे वाथ सकृल्लिंगे वारमेकं प्रयत्नतः ॥ २१ ॥ दशवारं वामहस्ते सप्तवारं द्वयोस्तथा ॥ प्रत्येकम्पादयोस्तात त्रिवारं करयोः पुनः ॥ २२ ॥ स्त्रीभिश्च शूद्रवत्कार्यं मृदाग्रहणमुत्तमम् ॥ हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य पूर्ववन्मृदमाहरेत् ॥ २३ ॥ दंतकाष्ठं ततः कुर्यात्स्ववर्णक्रमतो नरः ॥ २४ ॥ विप्रः कुर्याद्दंतकाष्ठं द्वादशांगुलमानतः ॥ एकादशांगुलं राजा वैश्यः कुर्याद्दशांगुलम् ॥ २५ ॥ शूद्रो नवांगुलं कुर्यादिति मानमिदं स्मृतम् ॥ कालदोषं विचार्य्यैव मनुदृष्टं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥ षष्ट्याद्यामाश्च नवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम् ॥ तथा श्राद्धदिनं तात निषिद्धं रदधावने ॥ २७ ॥

स्त्रीजनोंको शूद्रकीसमान मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये हाथ पैर धोकर पूर्ववत् मृत्तिका लावै ॥ २३ ॥ फिर मनुष्य अपने वर्णक्रमसे दँतौन करै ॥ २४ ॥ ब्राह्मण बारहअंगुलकी दँतौन करै, क्षत्रिय ग्यारहअंगुलकी, वैश्य दशअंगुलकी दँतौन करै ॥ २५ ॥ शूद्र नौअंगुलकी करै, इसप्रकार यह मान कहागयाहै कालदोषको इसप्रकार विचारकर मनुदृष्टको वर्जित करदे ॥ २६ ॥ छठ, अमावस, नवमी, व्रतकादिन, अस्तके समय, रविवारके दिन तथा श्राद्धकेदिन दँतौन,

न करै ॥ २७ ॥ तीर्थादिमें क्रमसे विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये. विशेष करके देशकालानुसार समंत्रक स्नान करै ॥ २८ ॥ पहले स्नानकरके धौतवस्त्र
धारण करै, एकान्त अच्छे स्थलमें बैठकर संध्या करै ॥ २९ ॥ यथायोग्य विधिकरके पूजा आरंभ करै, मनस्थिर करके पूजास्थानमें प्रवेश करके ॥ ३० ॥
पूजाविधिको लेकर अपने आसनमें बैठकर न्यासादिकका विधान करके क्रमसे शंकरका पूजन करै ॥ ३१ ॥ पहले गणेशजी फिर द्वारपाल दिक्पालोंको
पूजकर सिंहासनकी कल्पना करै ॥ ३२ ॥ अथवा पूजाद्रव्यके समीप अष्टदलकमल करके आप बैठकर और शंकर प्रभुको वहां स्थापनकर ॥ ३३ ॥

स्नानं तु विधिवत्कार्यं तीर्थादिषु क्रमेण तु ॥ देशकालविशेषेण स्नानं कार्यं समंत्रकम् ॥ २८ ॥ आचम्य प्रथमं तत्र धौतवस्त्रेण
चाधरेत् ॥ एकान्ते सुस्थले स्थित्वा संध्याविधिमथाचरेत् ॥ २९ ॥ यथायोग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथारभेत् ॥ मन
स्तु सुस्थिरं कृत्वा पूजागारं प्रविश्य च ॥ ३० ॥ पूजाविधिं समादाय स्वासने ह्युपविश्य वै ॥ न्यासादिकं विधायादौ पूजयेत्क्रमशो
हरम् ॥ ३१ ॥ प्रथमं च गणाधीशं द्वारपालांस्तथैव च ॥ दिक्पालाँश्च सुसंपूज्य पश्चात्पीठं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥ अथ वाऽष्टदलं
कृत्वा पूजाद्रव्यं समीपतः ॥ उपविश्य ततस्तत्र उपवेश्य शिवं प्रभुम् ॥ ३३ ॥ आचमनत्रयं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः करौ ॥ प्राणा
यामत्रयं कृत्वा मध्ये ध्यायेच्च त्र्यम्बकम् ॥ ३४ ॥ पंचवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ सर्वाभरणसंयुक्तं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम्
॥ ३५ ॥ तस्य सारूप्यतां स्मृत्वा दहेत्पापं नरस्सदा ॥ शिवं ततः समुत्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ३६ ॥ देहशुद्धिं ततः कृत्वा मूल
मंत्रं न्यसेत्क्रमात् ॥ सर्वत्र प्रणवेनैव षडंगन्यासमाचरेत् ॥ ३७ ॥ कृत्वा हृदि प्रयोगं च ततः पूजां समारभेत् ॥ पाद्यार्घाचमनार्थं च
पात्राणि च प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥

तीनआचमन कर पीछे हाथ धोकर तीन प्राणायाम कर मध्यमें त्र्यम्बकदेवका ध्यान करै ॥ ३४ ॥ पाँच मुख दश भुजा शुद्ध स्फटिक माणिके समान उज्ज्वल
सब आभरण व्याघ्र चर्म और उत्तरीयके सहित शोभायमान ॥ ३५ ॥ शिवजीकी सारूप्यताको प्राप्त होकर प्राणि अपने पाप सदा नष्ट करै, फिर परमेश्वर
शिवको उठाकर पूजन करै ॥ ३६ ॥ फिर देहशुद्धिकर क्रमसे मूलमंत्रका न्यास करै सर्वत्र ओंकारके सहित षडंगन्यास करै ॥ ३७ ॥ हृदयमें प्रयोग कर

फिर पूजा आरंभ करै, पाद्य अर्घ आचमनके लिये पात्रोंकी कल्पना करै ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान यथाविधि नयेघडोंको स्थापन करै फिर कुशाओंसे आच्छादन
और जलसे छिडककर ॥ ३९ ॥ उन सब पात्रोंमें शीतलजल छोडै और बुद्धिमान् द्रव्योंको देखकर ओंकारपूर्वक उनमें डालै ॥ ४० ॥ पाद्यमें उशीर और
चंदन दे, जायफल, कंकोल, कपूर, वटमूल, तमाल ॥ ४१ ॥ यथायोग्य चूर्ण करके आचमनमें डाले इन सब पदार्थोंमें चंदनादिक डाले ॥ ४२ ॥
देवदेवके पार्श्वभागमें नंदीश्वरकी पूजा करै, विविध गंध धूप दीपसे शिवकी पूजा करै ॥ ४३ ॥ फिर मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक लिंगशुद्धि करके चित्तके अनुसार

स्थापयेद्विविधान्कुंभान्नव धीमान्यथाविधि ॥ दर्भैराच्छाद्य तैरेव संस्थाप्याभ्युक्ष्यवारिणा ॥ ३९ ॥ तेषु तेषु च सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशी
तलम् ॥ प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ॥ जातीकं कोलकर्पूरवटमूल
तमालकम् ॥ ४१ ॥ चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके ॥ एतत्सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनान्वितम् ॥ ४२ ॥ पार्श्वयोर्देवदेवस्य
नंदीशं तु समर्चयेत् ॥ गंधैर्धूपैस्तथा दीपैर्विविधैः पूजयेच्छिवम् ॥ ४३ ॥ लिंगशुद्धिं ततः कृत्वा मुदा युक्तो नरस्तदा ॥ यथोचितं तु
मंत्रौघैः प्रणवादिर्नमोंतकैः ॥ ४४ ॥ कल्पयेदासनं स्वस्तिपद्मादि प्रणवेन तु ॥ तस्मात्पूर्वदिशं साक्षादणिमामयमक्षरम् ॥ ४५ ॥
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा ॥ प्राप्तिश्चैवोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य च ॥४६॥ ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे ॥
सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते ॥ ४७ ॥ सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकस्त्वयम् ॥ धर्मादीनपि तस्याधो भवतः
कल्पयेत् क्रमात् ॥ ४८ ॥ अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयम् ॥ सद्योजातं प्रवक्ष्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम् ॥ ४९ ॥

ओंकर नमस्कारयुक्त बोलकर ॥ ४४ ॥ ओंकारपूर्वक स्वस्तिपद्मादि आसनकी कल्पना करै उससे पूर्वकी ओर साक्षात् अणिमामय अक्षरको ॥ ४५ ॥
लघिमा सिद्धि दक्षिणको महिमा पश्चिमको प्राप्तिकी उत्तरको प्राकाम्यको अग्निदिशामें ॥ ४६ ॥ ईशिको नैर्ऋत्यदिशामें वशित्वको वायुकोणके दलमें सर्वज्ञ
सिद्धिको ईशानमें कल्पना करै कर्णिका सोम कहलाती है ॥ ४७ ॥ सोमके नीचे सूर्य उसके नीचे पावक उसके नीचे धर्मादि क्रमसे कल्पना करै ॥ ४८ ॥
अव्यक्तादिको चारों दिशामें सोमके अन्तमें तीनों गुणोंको कल्पना करै सोमके अन्तमें तीन गुण कल्पना करै सद्योजातं प्रवक्ष्यामि० इस मंत्रसे परमेश्वरका

आवाहन करै ॥ ४९ ॥ वामदेवाय० इस मंत्रसे आसनपर बैठे रुद्रगायत्रीसे उनकी समीपता और अघोरेभ्यो थघोरेभ्यो० इस मंत्रसे निरोध करै ॥ ५० ॥
ईशानः सर्वविद्यानाम्० इस मंत्रसे पूजन करै पाद्य आचमनका विधान कर फिर अर्घ्य दे ॥ ५१ ॥ विधिपूर्वक गन्धचंदनके जलसे रुद्रकी स्थापना करै
फिर पंचगव्यके विधानसे गृह्यपात्रमें अभिमंत्रित कर ॥ ५२ ॥ प्रणवपूर्वक पञ्चगव्यसे शंकरको स्नान करावै, दही, शहत और गननेके रससे ॥ ५३ ॥
तथा घीसे सब कामना और हितकरनेवालेका पूजन करना चाहिये, पवित्र द्रव्योंसे ओंकारपूर्वक महादेवका पूजन करै अभिषेक कर ॥ ५४ ॥

वामदेवेन मंत्रेण तिष्ठेच्चैवासनोपरि ॥ सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत् ॥ ५० ॥ ईशानं सर्वविद्यानामिति मंत्रेण पूजयेत् ॥
पाद्यमाचमनीयं च विधायार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ५१ ॥ स्थापयेद्विधिना रुद्रं गंधचंदनवारिणा ॥ पञ्चगव्याविधानेन गृह्यपात्रेऽभिमंत्र्य च ॥
॥ ५२ ॥ प्रणवेनैव गव्येन स्नापयेत्पयसा च तम् ॥ दध्ना च मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन तु ॥ ५३ ॥ घृतेन तु तथा पूज्य सर्वकामहि
तावहम् ॥ पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ ५४ ॥ पवित्रजलभाण्डेषु मंत्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः ॥ शुद्धीकृत्य यथान्यायं सितवस्त्रेण
साधकः ॥ ५५ ॥ तावद्दूरं न कर्तव्यं न यावच्चन्दनं क्षिपेत् ॥ तंदुलैस्सुन्दरैस्तत्र पूजयेच्छंकरम्मुदा ॥ ५६ ॥ कुशापामार्गकर्पूरजातिचं
पकपाटलैः ॥ करवीरैस्सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः ॥ ५७ ॥ अपूर्वपुष्पैर्विविधैश्चन्दनाद्यैस्तथैव च ॥ जलेन जलधाराञ्च कल्पये
त्परमेश्वरे ॥ ५८ ॥ पात्रैश्च विविधैर्देवं स्नापयेच्च महेश्वरम् ॥ मंत्रपूर्वं प्रकर्तव्या पूजा सर्वफलप्रदा ॥ ५९ ॥

पवित्र जलोंके पात्रोंमें मंत्रोंसे जल गलै, और वह साधक यथायोग्य श्वेतवस्त्रसे जलको छानले ॥ ५५ ॥ तबतक दूर न करै जबतक चन्दन न डालै और
सुन्दर चाँवलोंसे आनंदपूर्वक शंकरका पूजन करै ॥ ५६ ॥ कुशा, चिरचिटा, कपूर, जाती, चम्पक, पाटल, कनेरके फूल मल्लिका और कमल ॥ ५७ ॥
तथा अनेक दूसरे अपूर्व फूल चन्दनादिसे पूजन कर परमेश्वरपर जलकी धारा छोडनी चाहिये ॥ ५८ ॥[१] अनेक प्रकारके पात्रोंमें जल भरकर देवदेव

---

[१] रुद्राष्टाध्यायीमें यह मंत्र लिखेहैं ।

परमेश्वरका पूजन करै मंत्रपूर्वक पूजा करनेसे पूजा सब कामना और फलकी देनेवाली है ॥ ५९ ॥ हे तात ! सब कामकी सिद्धिके लिये मैं उन मंत्रोंको संक्षेपसे कहताहूं तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६० ॥ पढायेहुए मंत्र तथा वाङ्मय कण्ठस्थ मन्त्र रुद्रसूक्तके मन्त्र नीलसूक्तके मन्त्र शुक्लयजुर्वेदके सुन्दर मन्त्रोंसे ॥ ६१ ॥ होतारम्० यजुके मन्त्र अथर्वशीर्षके मन्त्र शांति पुनः शान्ति आरुणिमन्त्र अरुणमन्त्रोंसे ॥ ६२ ॥ जो अपनेको अभीष्ट हो ऐसे अर्थ और सामद्वारा तथा देवव्रतमन्त्रसे ॥ ६३ ॥ रथांतर मंत्र पुष्पसूक्तसे युक्तेन इस मंत्रसे मृत्युंजय मंत्र तथा पंचाक्षरमंत्रसे ॥ ६४ ॥ सहस्र

मंत्राँश्च तुभ्यं ताँस्तात सर्वकामार्थसिद्धये ॥ प्रवक्ष्यामि समासेन सावधानतया शृणु ॥ ६० ॥ पाठ्यमानेन मंत्रेण तथा वाङ्मयकेन च ॥ रुद्रेण नीलरुद्रेण सुशुक्लेन शुभेन च ॥ ६१ ॥ होतारेण तथा शीर्ष्णा शुभेनाथर्वणेन च ॥ शांत्या वाथ पुनश्शांत्या मारुणेनारुणेन च ॥ ६२ ॥ अर्थाभीष्टेन साम्ना च तथा देवव्रतेन च ॥ ६३ ॥ रथांतरेण पुष्पेण सूक्तेन युक्तेन च ॥ मृत्युंजयेन मंत्रेण तथा पंचाक्षरेण च ॥ ६४ ॥ जलधाराः सहस्रेणशतेनैकोत्तरेण वा ॥ कर्तव्या वेदमार्गेण नामभिर्वाथ वा पुनः ॥ ६५ ॥ ततश्चंदनपुष्पादि रोपणीयं शिवोपरि ॥ दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकं तथा ॥ ६६ ॥ ततः स्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षयम् ॥ कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रविष्णवाद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ वेदविद्भिर्हि वेदांते त्वगोचरमिति स्मृतम् ॥ ६८ ॥ आदिमध्यान्तरहितं भेषजं सर्वरोगिणाम् ॥ शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिंगं व्यवस्थितम् ॥ ६९ ॥ प्रणवेनैव मंत्रेण पूजयेल्लिंगमूर्द्धनि ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैः सुन्दरैस्तथा ॥ ७० ॥

जलधारा वा १०१ एकसौ एक जलधारा वेदमार्ग वा नाममंत्रोंसे शिवजीके ऊपर करनी चाहिये ॥ ६५ ॥ फिर शिवजीके ऊपर चन्दन पुष्पादि चढाने चाहिये, तथा मुखवासादिके निमित्त सामग्री ओंकारपूर्वक देनी चाहिये ॥ ६६ ॥ पीछे स्फटिकमणिकी समान देव निष्कल अक्षय सब लोकोंके कारण सब लोकमय परमरूप ॥ ६७ ॥ ब्रह्मा इन्द्र उपेन्द्र विष्णु आदिके भी अगोचर तथा वेदज्ञाताओंको भी वेदान्तमें अगोचर ॥ ६८ ॥ आदि मध्य अन्तरहित सब रोगियोंकी औषधिस्वरूप विख्यात शिवतत्त्व शिवलिंग व्यवस्थित है ॥ ६९ ॥ धूप दीप देकर नैवेद्य ताम्बूल सुन्दर शिवलिंगपर चढावै, और प्रत्येक

वार वस्तुचढानेमें ओंकारका उच्चारण करै ॥ ७० ॥ फिर यथोक्त विधिसे मनोहर नीराजन करै, नमस्कार स्तुति और अनेक प्रकारके मंत्र पढै ॥ ७१ ॥
अर्घ्य देकर पीछे शिवजीके चरणोंमें फूल बखेरै, पीछे देवेशको प्रणाम करके आराधन करै ॥ ७२ ॥ फिर उठकर हाथमें पुष्प लेकर इस अगले लिखे
मंत्रसे ईशान देवकी प्रार्थना करै ॥ ७३ ॥ जो ज्ञान वा अज्ञानसे मैंने पूजा की है हे शंकर! वह आपकी कृपासे सब सफल हो ॥ ७४ ॥ यह पढकर
शंकरके ऊपर प्रेमसे फूल चढावै, फिर स्वस्तिवाचन कर आशीर्वाद ले ॥ ७५ ॥ फिर शिवके ऊपर मार्जन करै नमस्कार अपराध क्षमापन कर फिर

नीराजनेन रम्येण यथोक्तविधिना ततः ॥ नमस्कारैः स्तवैश्चान्यैर्मंत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ७१ ॥ अर्घ्यन्दत्त्वा तु पुष्पाणि पादयोस्सुवि
कीर्य च ॥ प्रणिपत्य च देवेशमात्मनाराधयेच्छिवम् ॥ ७२ ॥ हस्ते गृहीत्वा पुष्पाणि समुत्थाय कृतांजलिः ॥ प्रार्थयेत्पुनरीशानं
मंत्रेणानेन शंकरम् ॥ ७३ ॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ॥ कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर ॥ ७४ ॥ पठित्वैवं
च पुष्पाणि शिवोपरि मुदा न्यसेत् ॥ स्वस्त्ययनं ततः कृत्वा ह्याशिषो विविधास्तथा ॥ ७५ ॥ मार्जनं तु ततः कार्यं शिवस्योपरि
वै पुनः ॥ नमस्कारं ततः क्षांतिं पुनराचमनाय च ॥ ७६ ॥ अघोच्चारणमुच्चार्य नमस्कारं प्रकल्पयेत् ॥ प्रार्थयेच्च पुनस्तत्र सर्वभाव
समन्वितः ॥ ७७ ॥ शिवे भक्तिश्शिवे भक्तिश्शिवे भक्तिर्भवे भवे ॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ॥ ७८ ॥ इति संप्रार्थ्य
देवेशं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ पूजयेत्परया भक्त्या गलनादैर्विशेषतः ॥ ७९ ॥ नमस्कारं ततः कृत्वा परिवारगणैस्सह ॥ प्रहर्षमतुलं
लब्ध्वा कार्यं कुर्याद्यथासुखम् ॥ ८० ॥

आचमन करावै ॥ ७६ ॥ फिर अघोरमंत्र उच्चारण कर नमस्कारकी कल्पना करै फिर सब भावसे शंकरकी प्रार्थना करै ॥ ७७ ॥ शिवमें भक्तिहो शिवमें
भक्ति निरन्तरहो तुम्हारे शिवाय मुझे कोई शरण देनेवाला नहीं तुमहीं शरणदेनेवाले हो ॥ ७८ ॥ इसप्रकार सब सिद्धि देनेवाले देवेशकी प्रार्थना कर परम
भक्ति और विशेषकर गलनादके शब्दोंसे प्रसन्न करै ॥ ७९ ॥ फिर परिवारगणों सहित नमस्कार कर बडी प्रसन्नताको प्राप्त हो यथासुख कार्य करै ॥८०॥

शिवभक्तिमें परायण हो जो इसप्रकारसे नित्य पूजन करते हैं उनको पदपदमें सब सिद्धि होती है ॥ ८१ ॥ वह वाग्मी होताहै और मन इच्छित फल
अवश्य मिलता है, रोग दुःख शोक उद्वेग बनावट ॥ ८२ ॥ कुटिलता तथा विषप्रयोगके दुःख कल्याणकरनेवाले शिवजी नाश करते हैं ॥ ८३ ॥
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान उसका कल्याण होता है और शंकर पूजनसे अवश्य सद्गुण बढते हैं ॥८४॥ हे मुनिसत्तम ! इसप्रकार आपसे शिवजीकी पूजाविधि
कही हे नारद ! इसके उपरान्त क्या सुनना चाहते हो ॥ ८५ ॥ इति श्रीशिवमहा० रु०सृ० भाषाटीकायां पूजाविधिवर्णनोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

एवं यः पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः ॥ तस्य वै सकला सिद्धिर्जायते तु पदे पदे ॥ ८१ ॥ वाग्मी स जायते तस्य मनोभीष्टफलं
ध्रुवम् ॥ रोगं दुःखं च शोकं च ह्युद्वेगं कृत्रिमं तथा ॥ ८२ ॥ कौटिल्यं च गरं चैव यद्यद्दुःख मुपस्थितम् ॥ तद्दुःखं नाशयत्येव शिवः
शिवकरः परः ॥ ८३ ॥ कल्याणं जायते तस्य शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ वर्द्धते सद्गुणस्तत्र ध्रुवं शंकरपूजनात् ॥ ८४ ॥ इति पूजावि
धिश्शंभोः प्रोक्तस्ते मुनिसत्तम ॥ अतः परं च शुश्रूषुः किं प्रष्टासि च नारद ॥ ८५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहि
तायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजाविधिवर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्प्रजापते तात धन्यस्त्वं
शिवसक्तधीः ॥ एतदेव पुनस्सम्यग्ब्रूहि मे विस्तराद्विधे ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकस्मिन्समये तात ऋषीनाहूय सर्वतः ॥ निर्जरांश्चाऽवदं
प्रीत्या सुवचः पद्मसंभवः ॥ २ ॥ यदि नित्यसुखे श्रद्धा यदि सिद्धेश्च कामुकाः ॥ आगंतव्यं मया सार्द्धं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ ३ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गतास्ते हि मया सह ॥ यत्रास्ते भगवान्विष्णुस्सर्वेषां हितकारकः ॥ ४ ॥

नारदजी बोले हे तात ! हे ब्रह्मन् ! हे प्रजाके पति ! शिवजीमें मन लगानेवाले आप धन्यहैं हे ब्रह्माजी ! आप इस बातको हमसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ १ ॥
ब्रह्माजी बोले पुत्र एक समय सब ऋषियोंको बुलाकर प्रीतिपूर्वक मैं सब देवताओंसे कहने लगा ॥ २ ॥ जो तुम्हारी नित्य सुखमें श्रद्धाहै और जो तुम नित्य
सिद्धिकी इच्छा करनेवाले हो तो मेरे साथ क्षीरसागरमें आओ ॥ ३ ॥ यह वचन सुनकर वह सब मेरे साथ चले, जहां सबके हितकारक भगवान्

विष्णु विराजमानहैं ॥ ४ ॥ वहां जाकर सब देवता देवदेव जगन्नाथ जनार्दनकी स्तुति करनेको हाथ जोडकर स्थित हुए ॥ ५ ॥ भगवान विष्णुजी
ब्रह्माको आदि ले सब देवताओंको उपस्थित हुआ देखकर शिवके चरणकमलको स्मरण करतेहुए बोले ॥ ६ ॥ विष्णुजी बोले ब्रह्माजीसे आदि लेकर
तुम देवता यहां क्यों आयेहो वह सब कहिये कि आपका इससमय क्या कार्य है ॥ ७॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार जब विष्णुभगवानके यह वचन मैंने और
देवताओंने सुने फिर प्रीतिसे उनको प्रणाम करके कि इससमय क्या कार्य है और अपना कार्य निवेदन करनेकेलिये इसप्रकार सुन्दर वचन बोले ॥ ८ ॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं जनार्दनम् ॥ उपतस्थुस्सुरा नत्वा सुकृतांजलयो मुने ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वा च तदा विष्णुर्ब्रह्माद्यान
मरान्स्थितान् ॥ स्मरञ्छिवपदांभोजमब्रवीत्परमं वचः ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमर्थमागता यूयं ब्रह्माद्याश्च सुरर्षयः ॥ सर्वं वदत
तत्प्रीत्या किं कार्यं विद्यतेऽधुना ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टास्तदा तेन विष्णुना च मया सुराः ॥ पुनः प्रणम्य तं प्रीत्या किं
कार्यं विद्यतेऽधुना ॥ विनिवेदयितुं कार्यं ह्यब्रुवन्वचनं शुभम् ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ नित्यं सेवा तु कस्यैव कार्या दुःखापहारिणी
॥ ९ ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः ॥ सामरस्य मम प्रीत्या कृपया वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्म
ञ्छृणु सुरैस्सम्यक्श्रुतं च भवता पुरा ॥ तथापि कथ्यते तुभ्यं देवेभ्यश्च तथा पुनः ॥११॥ दृष्टं च दृश्यतेऽद्यैव किं पुनः पृच्छ्यते
ऽधुना ॥ ब्रह्मन्देवैस्समस्तैश्च बहुधा कार्यतत्परैः ॥ १२ ॥ सेव्यसेव्यस्सदा देवश्शंकरस्सर्वदुःखहा ॥ ममापि कथितं तेन ब्रह्म
णोऽपि विशेषतः ॥ १३ ॥ प्रस्तुतं चैव दृष्टं वस्सर्वं दृष्टांतमद्भुतम् ॥ त्याज्यं तदर्चनं नैव कदापि सुखमीप्सुभिः ॥ १४ ॥

देवता बोले दुःखोंकी दूरकरनेवाली नित्य सेवा किसकी करनी चाहिये ॥ ९ ॥ यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान देवताओंकी प्रीतिसे कृपापूर्वक
यह वचन बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान बोले हे ब्रह्मन् ! सुनो आपने और देवताओंने यह भलीप्रकार सुना है, पर तोभी आपके और देवताओंके पूँछनेसे
आपसे कहतेहैं ॥ ११ ॥ जो अब देखाहै और देखरहेहो उसको इस समय क्या पूछतेहो हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण देवता बहुधा कार्यमें तत्पर रहतेहैं ॥ १२ ॥
सदा सब दुःखोंके दूरकरनेवाले भगवान शंकरही सेव्य हैं, मैंने और विशेषकर ब्रह्माजीनेभी यह बात कही है ॥ १३ ॥ और प्रत्यक्षभी तुमने सब दृष्टान्त

देखाहै, सुखकी इच्छावालोंको कभीभी शंकरका पूजन नहीं त्यागना चाहिये ॥ १४ ॥ लिंगमूर्ति महेश्वर देवदेवको त्यागनकरके तारकेपुत्र बांधवोंके सहित नष्ट होगयेथे ॥ १५ ॥ और मेरे द्वारा मेरी मायासे मोहित होकर वे दूर करदियेगये, और शिवसे रहित होकर यह सब नष्ट और ध्वस्त होगये ॥ १६ ॥ इसकारण लिंगमूर्तिधारी शंकरका सदा पूजन करना चाहिये, हे देवताओंमें श्रेष्ठो और विशेषकरके उनकी सेवा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ शिवलिंगके अर्चनसे देवता और दैत्य और तुम सब ही श्रेष्ठ हुए हैं, हे ब्रह्मन् ! यह आपने किसप्रकार भुलादिया ॥ १८ ॥ इस लिंगमूर्तिको किसी न किसी

संत्यज्य देवदेवेशं लिंगमूर्तिं महेश्वरम् ॥ तारपुत्रास्तथैवैते नष्टास्तेऽपि सबांधवाः ॥ १५ ॥ मया च मोहितास्ते वै मायया दूरतः कृताः ॥ सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः शिवेन रहिता यदा ॥ १६ ॥ तस्मात्सदा पूजनीयो लिंगमूर्तिधरो हरः ॥ सेवनीयो विशेषण श्रद्धया देवसत्तमः ॥ १७ ॥ शर्वलिङ्गार्चनादेव देवा दैत्याश्च सत्तमाः ॥ अहं त्वं च तथा ब्रह्मन्कथं तद्विस्मृतं त्वया ॥ १८ ॥ तल्लिङ्गमर्चयेन्नित्यं येन केनापि हेतुना ॥ तस्मात् ब्रह्मन्सुरः शर्वः सर्वकामफलेप्सया ॥ १९ ॥ सा हानिस्तन्महाछिद्रं सान्धता सा च मुग्धता ॥ यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि शिवं नैव समर्चयेत् ॥ २० ॥ भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥ भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः ॥ २१ ॥ भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाभरणाः स्त्रियः ॥ धनं च तुष्टिपर्यंतं पुत्रपौत्रादिसंततिः ॥ २२ ॥ आरोग्यं च शरीरं च प्रतिष्ठां चाप्यलौकिकीम् ॥ ये वांछंति महाभागाः सुखं वा त्रिदशालयम् ॥ २३ ॥

कारणसे नित्य अर्चन करना चाहिये, हे ब्रह्माजी ! इसी कारण सब काम और फलकी इच्छासे शिवजीका सदा सेवन करै ॥ १९ ॥ वही बडी हानि वही महाछिद्र वही अन्धता और मुग्धता है कि जो मुहूर्त और क्षण विना शिवके अर्चनके जाता है ॥ २० ॥ जो शिवकी भक्तिमें तत्पर हैं, जो शंकरमें मन लगायेहैं जो शिवजीका स्मरण करते हैं उनको कभी दुःख नहीं होतेहैं ॥ २१ ॥ जो मनोहर भवन मनोहर आभरण पहरे स्त्रियें तुष्टिपर्यन्त धन पुत्र पौत्रादिकी सन्तति ॥ २२ ॥ शरीरकी आरोग्यता अलौकिकी प्रतिष्ठा वा जो महाभाग वैकुण्ठमें सुख चाहते हैं, उनकी सब सिद्धि सफल होती और वह पापोंसे

लिप्त नहीं होतेहैं ॥ २३ ॥ अन्तमें मुक्तिका फल वा परमेश्वरकी भक्ति होती है, पूर्वपुण्यके प्रभावसे वे सदाशिवकी अर्चा करतेहैं ॥२४॥ जो नित्य भक्तिमें
परायण होकर शिवालिंगकी अर्चा करता है उसकी सिद्धि सफल है । और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहनेपर देवताओंने
नारायणको प्रणाम किया, और सब कामनाकी प्राप्तिकोलिये शिवालिंगोंकी प्रार्थना की ॥ २६ ॥ यह सुनकर विष्णुजीने विश्वकर्मासे कहा, हे मुनिशार्दूल !
मैं तो जीवोंके उद्धारमें परायणहूं ॥ २७ ॥ विश्वकर्मासे कहा हे विश्वकर्मन् ! तुम शिवजीके शुभ लिंग कल्पना करके और मेरे वचनसे सब देवता

अंते मुक्तिफलं चैव भक्तिं वा परमेशितुः ॥ पूवपुण्यातिरेकेण तेऽर्चयंति सदाशिवम् ॥२४॥ योऽर्चयेच्छिवलिंगं वै नित्यं भक्तिपरायणः ॥
तस्य वै सफला सिद्धिर्न स पापैः प्रयुज्यते ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ताश्च तदा देवाः प्रणिपत्य हरिं स्वयम् ॥ लिंगानि प्रार्थयामासु
स्सर्वकामाप्तये नृणाम् ॥२६॥ तच्छुत्वा च तदा विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥ अहं च मुनिशार्दूल जीवोद्धारपरायणः ॥२७॥ विश्वकर्म
न्यथा शंभोः कल्पयित्वा शुभानि च ॥ लिंगानि सर्वदेवेभ्यो देयानि वचनान्मम ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लिंगानि कल्पयित्वैवमधिका
रानुरूपतः ॥ विश्वकर्मा ददौ तेभ्यो नियोगान्मम वा हरेः ॥ २९ ॥ तदेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तम ॥ पद्मरागमयं शक्रो हेम विश्र
वसस्सुतः ॥ ३० ॥ पीतं मणिमयं धर्मो वरुणश्श्यामलं शिवम् ॥ इन्द्रनीलमयं विष्णुर्ब्रह्मा हेममयं तथा ॥३१॥ विश्वेदेवास्तथा रौप्यं
वसवश्च तथैव च ॥ आरकूटमयं वापि पार्थिवं ह्यश्विनौ मुने ॥ ३२ ॥ लक्ष्मीश्च स्फाटिकं देवी ह्यादित्यास्ताम्रनिर्मितम् ॥ मौक्तिकं
सोमराजो वै वज्रलिंगं विभावसुः ॥३३॥ मृण्मयं चैव विप्रेंद्रा विप्रपत्न्यस्तथैव च ॥ चांदनं च मयो नागाः प्रवालमयमादरात् ॥३४॥

ओंको देदो ॥२८॥ ब्रह्माजी बोले तब विश्वकर्माने अधिकारके अनुसार लिंगोंकी कल्पना करके मेरी और हरिकी आज्ञासे सब देवताओंको देदिये ॥ २९ ॥
हे ऋषिश्रेष्ठ वही कहताहूं सो आप सुनिये, पद्मरागमणिका इन्द्रको, सुवर्णका कुबेरको, ॥ ३० ॥ पीतमणिमय धर्मराजको, श्याम वरुणको, इन्द्रनीलमणिका
विष्णुको, हेमका ब्रह्माजीको ॥३१॥ चांदीका विश्वेदेवाओंको, वसुओंको चांदीका, हे मुनि ! आरकूट (पीतल) वा पार्थिवलिंग अश्विनीकुमारोंको॥ ३२॥
स्फटिक मणिका लक्ष्मीको, ताम्बेका आदित्योंको, मोतीका चन्द्रमाको, वज्रलिंग अग्निको ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको मट्टीका, नागों

को चन्दनका तथा मूँगेका आदरसे दिया ॥ ३४ ॥ देवीको मक्खनका, योगीको भस्मका, यक्षोंको दहीका, छायाको पिट्ठीका लिंग दिया ॥ ३५ ॥ ब्रह्माणी रत्नमय शिवलिंगका पूजन करतीहै, पारेका पृथिवीका बाणको दिया तथा और भी उनका पूजन करतेहैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकारके लिंग विश्वकर्माने दिये देवता और ऋषिगण उनलिंगोंकी पूजा करतेहैं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार देवताओंके हितकी कामनासे विष्णुने लिंग देकर तब मुझसे शिवजीकी पूजाका विधान कहा ॥ ३८ ॥ उनके यह वचन सुनकर मैं ब्रह्मा देवताओंके सहित अपने स्थानपर आया, और अपने स्थानपर आकर हर्षसे मन पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥

नवनीतमयं देवी योगी भस्ममयं तथा ॥ यक्षा दधिमयं लिंगं छाया पिष्टमयं तथा ॥ ३५ ॥ शिवलिंगं च ब्रह्माणी रत्नं पूजयति ध्रुवम् ॥ पारदं पार्थिवं बाणस्समर्चति परेऽपि वा ॥ ३६ ॥ एवं विधानि लिंगानि दत्तानि विश्वकर्मणा ॥ ते पूजयंति सर्वे वै देवा ऋषिगणास्तथा ॥ ३७ ॥ विष्णुर्दत्त्वा च लिंगानि देवेभ्यो हितकाम्यया ॥ पूजाविधिं समाचष्ट ब्रह्मणे मे पिनाकिनः ॥ ३८ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्माहं देवसत्तमैः ॥ आगच्छं च स्वकं धाम हर्षनिर्भरमानसः ॥ ३९ ॥ तत्रागत्य ऋषीन्सर्वान्देवांश्चाहं तथा मुने ॥ शिवपूजाविधिं सम्यगब्रुवं सकलेष्टदम् ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयतामृषयः सर्वे सामराः प्रेमतत्पराः ॥ शिवपूजाविधिं प्रीत्या कथये भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ४१ ॥ मानुषं जन्म संप्राप्य दुर्लभं सर्वजंतुषु ॥ तत्रापि सत्कुले देवा दुष्प्राप्यं च मुनीश्वराः ॥ ४२ ॥ अव्यंगं चैव विप्रेषु साचारेषु सुपुण्यतः ॥ शिवसंतोषहेतोश्च कर्मस्वोक्तं समाचरेत् ॥ ४३ ॥ यद्यज्जातिसमुद्दिष्टं तत्तत्कर्म न लंघयेत् ॥ यावद्दानस्य संपत्तिस्तावत्कर्म समावहेत् ॥ ४४ ॥ कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते ॥ तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥ ४५ ॥

हे मुने ! वहां आकर सब ऋषि और देवताओंसे सब अभीष्ट देनेवाली शिवजीकी पूजाविधि मैंने कही ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले सब देवता और ऋषि प्रेममें तत्पर होकर सुनो, भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली शिवकी पूजाविधि कहतेहैं ॥ ४१ ॥ सब प्राणियोंमें मनुष्यजन्म बडा दुर्लभहै, हे देवता मुनियो ! उसमें भी सत्कुलमें जन्महोना बडा दुर्लभहै ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणोंमें व्यंगता नकरता हुआ पुण्यरूप आचरण करता हुआ, शिवजीके सन्तोषके हेतु अपना कर्म करै ॥ ४३ ॥ जो अपनी जातिमें कहाहै उस कर्मको उलंघन न करै जहांतक दानकी सम्पत्ति हो तबतक कर्म आरंभ करै ॥ ४४ ॥ सहस्रकर्म यज्ञसे

तपोयज्ञ विशेषहै सहस्र तपयज्ञसे जपयज्ञ विशेषहै ॥ ४५ ॥ ध्यानयज्ञसे परे कुछ नहीं है ध्यानही ज्ञानका साधन है कारण कि समरससे योगी ध्यानसेही अपने शान्तिरसको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ जो ध्यानयज्ञमें निरतहैं शंकर सदा उनके समीपहैं विज्ञानियोंको प्रायश्चित्तादि शोधन कुछ नहीं है ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस विशुद्धविद्यासे जो ब्रह्मज्ञानी इस परमशिवतत्वको जानतेहैं उनको सुखदुःखके विचारकी कुछ क्रिया नहीं है ॥४८॥ धर्म अधर्म जप होम ध्यान और ध्यानकी विधि इसमें इस विद्यासे वह सदा निर्विकारहैं हे देवताओ ॥ ४९ ॥ यह शिवलिंग परमआनंदका करनेवाला विशुद्ध कल्याणदायक अक्षर

ध्यानयज्ञात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥ यतस्समरसं स्वेष्टं यागी ध्यानेन पश्यति ॥ ४६ ॥ ध्यानयज्ञरतस्यास्य सदासं निहितश्शिवः ॥ नास्ति विज्ञानिनां किंचित्प्रायश्चित्तादिशोधनम् ॥ ४७ ॥ विशुद्धा विद्यया ये च ब्रह्मन्ब्रह्मविदो जनाः ॥ नास्ति क्रिया च तेषां वै सुखं दुःखं विचारतः ॥ ४८ ॥ धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानं ध्यानविधिस्तथा ॥ सर्वदा निर्विकारास्ते विद्यया च तयामराः ॥ ४९ ॥ परानंदकरं लिंगं विशुद्धं शिवमक्षरम् ॥ निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥ ५० ॥ लिंगं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं द्विजाः ॥ बाह्यं स्थूलं समुद्दिष्टं सूक्ष्ममाभ्यंतरं मतम् ॥ ५१ ॥ कर्मयज्ञरता ये च स्थूललिंगार्चने रताः ॥ असतां भावनार्थाय सूक्ष्मेण स्थूलविग्रहाः ॥ ५२ ॥ आध्यात्मिकं तु यल्लिंगं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत् ॥ स तल्लिंगे तथा स्थूले कल्पयेच्च न चान्यथा ॥ ५३ ॥ ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भावात्प्रत्यक्षमव्ययम् ॥ यथा स्थूलमयुक्तानामुत्कृष्टादौ प्रकल्पितम् ॥ ५४ ॥

स्वरूपहै यह निष्कल सर्वगामी योगियोंके हृदयमें सदा स्थितहै ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! बाह्य और आभ्यन्तर भेदसे लिंग दो प्रकारके हैं स्थूललिंग बाह्य कहागयाहै और सूक्ष्म आभ्यन्तरलिंग है ॥ ५१ ॥ जो कर्मयज्ञमें प्रीति करतेहैं वह स्थूललिंगमें प्रेमकरतेहैं, जो उस तत्वको नहीं जान्तेहैं उनकी भावनाके लिये सूक्ष्महीं स्थूल विग्रह हुआहै ॥ ५२ ॥ जो आध्यात्मिक लिंगहै जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता वह उस लिंग तथा स्थूललिंगमें पूजाकी कल्पना करै इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५३ ॥ ज्ञानियोंको सूक्ष्मलिंग निर्मलताका कारण है वह अविनाशी भावसे हो प्रत्यक्ष होता है, जैसे अयोगियोंको स्थूललिंग

उत्कृष्टताका करनेवाला है ॥ ५४ ॥ और तत्वार्थवादियोंको तौ विचारसे कोई भेद नहीं है कारण कि सबके चित्तमें निष्कल है और सारा जगत् शिवरूप है ॥ ५५ ॥ ज्ञानरहित लोगोंको दोष नहीं है उनको कोई विधिनिषेध भी नहीं है ॥ ५६ ॥ जैसा जलोंमें कमल रहकर जलोंसे लिप्त नहीं होता इसीप्रकार ज्ञानी घरमें स्थित हुआभी कर्मोंसे बद्ध नहीं होता ॥ ५७ ॥ इसप्रकारका ज्ञान जबतक मनुष्यको उदय नहीं होता तबतक कर्मद्वारा देवदेव शंकरकी आराधना करतारहै ॥ ५८ ॥ जगत्के विश्वासके निमित्त एकही स्थित हुआ दिवाकर जलधारादि वस्तुओंमें अनेकरूपसे देखाई देताहै ॥ ५९ ॥

अहो विचारतो नास्ति ह्यन्यत्तत्वार्थवादिनः ॥ निष्कलं सकलं चित्ते सर्वं शिवमयं जगत् ॥ ५५ ॥ एवं ज्ञानविमुक्तानां नास्ति दोष विकल्पना ॥ विधिश्चैव तथा नास्ति विहिताविहिते तथा ॥ ५६ ॥ यथा जलेषु कमलं सलिलैर्नावलिप्यते ॥ तथा ज्ञानी गृहे तिष्ठन्कर्मणा नावबध्यते ॥ ५७ ॥ इति ज्ञानं समुत्पन्नं यावन्नैव नरस्य वै ॥ तावच्च कर्मणा देवं शिवमाराधयेन्नरः ॥ ५८ ॥ प्रत्ययार्थं च जगतामेकस्थोऽपि दिवाकरः ॥ एकोऽपि बहुधा दृष्टो जलाधारादिवस्तुषु ॥ ५९ ॥ दृश्यते श्रूयते लोके यद्यत्सदसदात्मकम् ॥ तत्तत्सर्वं सुरा वित्त परं ब्रह्म शिवात्मकम् ॥ ६० ॥ भेदो जलानां लोकेऽस्मिन्प्रतिभावे विचारतः ॥ एवमाहुस्तथा चान्ये सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः ॥ ॥ ६१ ॥ हृदि संसारिणः साक्षात्सकलः परमेश्वरः ॥ इति विज्ञानयुक्तस्य किं तस्य प्रतिमादिभिः ॥ ६२ ॥ इति विज्ञानहीनस्य प्रतिमाकल्पना शुभा ॥ पदमुच्चैस्समारोढुं पुंसो ह्यालम्बनं स्मृतम् ॥ ६३ ॥ आलम्बनं विना तस्य पदमुच्चैः सुदुष्करम् ॥ निर्गुणप्राप्तये नृणां प्रतिमालम्बनं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

जो कुछ लोकमें सद् असदात्मक दिखाई देताहै, हे देवताओ ! वह सब तुमपर ब्रह्मशिवात्मक जानो ॥ ६० ॥ जलोंका भेद इस लोकमें विचारके अभावसे है इसीप्रकारसे शंकरमें भेद विचारसे नहीं है इसप्रकार सब वेदार्थतत्वके जाननेवाले कहते हैं ॥ ६१ ॥ सब संसारियोंके हृदयमें साक्षात् परमेश्वर विद्यमान है जब जिस पुरुषको ऐसा ज्ञान होजाय तब चाहै तो वह प्रतिमादिमें पूजन न करै तो उसको दोष नहीं है ॥ ६२ ॥ जबतक ऐसा पूर्णज्ञान न हो तबतक उसको प्रतिमामें पूजन करना सर्वथा उचित है यह उच्चपदपर चढनेके लिये पुरुषको परम अवलम्बन है ॥ ६३ ॥ अवलम्बनके बिना

ऊँचेपदपर चढना बडा कठिन है निर्गुणपदप्राप्तिके लिये मनुष्योंको प्रतिमाका अवलम्बन कहा है ॥ ६४ ॥ सगुणसे निर्गुणकी प्राप्ति होती है यह निश्चय है
इसप्रकार सब देवताओंकी प्रतिमायें विश्वासकी बढानेवाली हैं ॥ ६५ ॥ यह महादेव बडे देवता हैं इसकारण इनके निमित्त यह पूजन है प्रतिमाके बिना
गंध अक्षत चंदन पुष्पादि कुछ नहीं है ॥ ६६ ॥ जबतक विज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक बराबर प्रतिमापूजन करता रहै और जो ज्ञानके बिनाही पूजन
त्यागदेता है वह निश्चय पतित होजाता है ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसकारण तुम परमार्थसे मेरा वचन सुनो, अपनी जातका कहाहुआ जो कर्म है

सगुणान्निर्गुणा प्राप्तिर्भवतीति सुनिश्चितम् ॥ एवं च सर्वदेवानां प्रतिमा प्रत्ययावहा ॥ ६५ ॥ देवश्चायं महीयान्वै तस्यार्थे पूजनं
त्विदम् ॥ गन्धचन्दनपुष्पादि किमर्थं प्रतिमां विना ॥ ६६ ॥ तावच्च प्रतिमा पूज्या यावद्विज्ञानसंभवः ॥ ज्ञानाभावे न पूज्येत पतनं
तस्य निश्चितम् ॥६७॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः श्रूयतां परमार्थतः ॥ स्वजात्युक्त तु यत्कर्म कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः ॥ ६८ ॥ यत्र यत्र यथा
भक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम् ॥ विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः ॥६९॥ यावच्च पातकं देहे तावत्सिद्धिर्न जायते ॥ गते च पातके
तस्य सर्वं च सफलं भवेत् ॥ ७० ॥ तथा च मलिने वस्त्रे रंगः शुभतरो न हि ॥ क्षालने हि कृते शुद्धे सर्वो रंगः प्रसज्जते ॥ ७१ ॥
तथा च निर्मले देहे देवानां सम्यगर्चया ॥ ज्ञानरंगः प्रजायेत तदा विज्ञानसंभवः ॥ ७२ ॥ विज्ञानस्य च सन्मूलं भक्तिरव्यभिचा
रिणी ॥ ज्ञानस्याऽपि च सन्मूलं भक्तिरेवाऽभिधीयते ॥ ७३ ॥ भक्तेर्मूलं तु सत्कर्म स्वेष्टदेवादिपूजनम् ॥ तन्मूलं सद्गुरुः प्रोक्तस्त
न्मूलं संगतिः सताम् ॥ ७४ ॥

उसको प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ६८ ॥ जहां जहां जैसी भक्ति हो वैसा पूजन करना चाहिये, बिना पूजन दानादिके पातक लगता है ॥ ६९ ॥
जबतक देहमें पातक हैं तबतक सिद्धि नहीं होती पातक नष्ट होतेही सब सफलता होजाती है ॥ ७० ॥ जैसे मलीन वस्त्रपर अच्छा रंग नहीं चढता, और
धोकर शुद्ध करनेसे सब रंग चढजाते हैं ॥ ७१ ॥ ऐसेही निर्मल देहमें देवताओंकी भलीप्रकार पूजा करनेसे ज्ञानका रंग लगता है, और विज्ञान होजाता
है ॥ ७२ ॥ विज्ञानसे अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न होती है कारण कि ज्ञानका मूल संसारमें भक्ति ही कही है ॥ ७३ ॥ भक्तिका मूल सत्कर्म और

अपने इष्ट देवताका पूजन है उसका मूल सद्गुरु और उसका मूल महात्माओंकी संगति है ॥ ७४ ॥ संगतिसेही गुरुकी प्राप्ति और गुरुके मिलनेसे मंत्रादि पूजन होता है पूजनसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञान होता है ॥ ७५ ॥ ज्ञानसे विज्ञान और उससे ब्रह्मका प्रकाश होता है जिससमय विज्ञान हुआ कि उसीसमय भेदनिवृत्त होजाता है ॥ ७६ ॥ भेदके निवृत्त होतेही सब दुःखद्वंद्व निवृत्त होजातेहैं द्वंद्वदुःखसे विहीन होकर यह शिवरूप होजाता है ॥७७॥ हे ऋषियो ! द्वंद्वकी निवृत्तिमें सुख दुःख निवृत्त होजातेहैं फिर उसको कुछ विधिनिषेध भी नहीं रहता ॥ ७८ ॥ गृहस्थाश्रमसे वर्जित इसप्रकारके लोग संसारमें कोई

संगत्या गुरुराप्येत गुरोर्मंत्रादि पूजनम् ॥ पूजनाज्जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते ॥ ७५ ॥ विज्ञानं जायते ज्ञानात्परब्रह्मप्रकाशकम् ॥ विज्ञानं च यदा जातं तदा भेदो निवर्तते ॥ ७६ ॥ भेदे निवृत्ते सकले द्वंद्वदुःखविहीनता ॥ द्वंद्वदुःखविहीनस्तु शिवरूपो भवत्यसौ ॥ ७७ ॥ द्वंद्वाप्राप्तौ न जायेतां सुखदुःखे विजानतः ॥ विहिताविहिते तस्य न स्यातां च सुरर्षयः ॥७८॥ ईदृशो विरलो लोके गृहाश्रमविवर्जितः ॥ यदि लोके भवत्यस्मिन्दर्शनात्पापहारकः ॥ ७९ ॥ तीर्थानि श्लाघयंतीह तादृशं ज्ञानवित्तमम् ॥ देवाश्च मुनयस्सर्वे परब्रह्मात्मकं शिवम् ॥ ८० ॥ तादृशानि न तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन विज्ञानी दर्शनादपि ॥ ॥ ८१ ॥ यावद्गृहाश्रमे तिष्ठेत्तावदाकारपूजनम् ॥ कुर्याच्छ्रेष्ठस्य सप्रीत्या सुरेषुखलु पंचसु ॥ ८२ ॥ अथवा च शिवः पूज्योमूलमेकं विशिष्यते ॥ मूले सिक्ते तथा शाखास्तृप्तास्संत्यखिलास्सुराः ॥ ८३ ॥

विरलेही हैं, यदि कोई ऐसा इस लोकमें हो तो उसके दर्शनसे पाप हरे जाते हैं ॥ ७९ ॥ तीर्थोंकी श्लाघा जैसी है वैसीही ज्ञानीकी है, सब देवता और मुनि परब्रह्मात्मक शिवको ध्याते हैं ॥ ८० ॥ वैसे तीर्थ नहीं हैं न देवता केवल मूर्तियोंमेंहीहैं [किन्तु विज्ञानीमें देवता और तीर्थ दोनों निवास करते हैं] कारण कि केवल तीर्थ अवगाहन और प्रतिमामें पूजन दीर्घकालमें मनुष्यको पवित्र करते हैं, और विज्ञानी दर्शनमात्रसेही पवित्र कर देता है ॥ ८१ ॥ जबतक गृहस्थाश्रममें रहै तबतक आकार (प्रतिमा) में पंचदेवताओंके प्रेमसे पूजा करता रहै ॥ ८२ ॥ अथवा एक शिवजीकाही पूजन करलेना चाहिये,

कारण कि यही सबके मूलहैं मूलके सींचनेसे सब शाखा सिंची जातीहैं ऐसेही एक शिवके पूजनसे सब देवता पूजित होजातेहैं ॥८३॥ शाखाओंको सींचनेसे मूल कभी नहीं तृप्त होता. हे मुनिश्रेष्ठो ! इसीप्रकार सब देवताओंके तृप्त होनेसे ॥ ८४ ॥ सर्वथा शिवजी तृप्त नहीं होते यह सूक्ष्म बुद्धिवाले जानतेहैं और शिवके पूजन करनेसे सब देवता पूजित होजाते हैं ॥ ८५ ॥ इस कारण लोकके कल्याण करनेवाले देवदेव शंकरका पूजन सब कामना और फलकेलिये तथा सब प्राणियोंके हितकेलिये करना चाहिये ॥ ८६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्र० भाषाटीकायां प्र० सृ० पूजाविधिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

शांखासु च सुतृप्तासु मूलं तृप्तं न कर्हिचित् ॥ एवं सर्वेषु तृप्तेषु सुरेषु मुनिसत्तमाः ॥८४॥ सर्वथा शिवतृप्तिर्नो विज्ञेया सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ शिवे च पूजिते देवाः पूजितास्सर्व एव हि ॥ ८५ ॥ तस्माच्च पूजयेद्देवं शंकरं लोकशंकरम् ॥ सर्वकामफलावाप्त्यै सर्वभूतहिते रतः ॥ ८६ ॥ इंति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने पूजाविधिवर्णने सारासारविचारवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम् ॥ श्रूयतामृषयो देवास्सर्वकामसुखावहम् ॥ ॥ १ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मरेत्सांबकं शिवम् ॥ कुर्यात्तत्प्रार्थनां भक्त्या सांजलिर्नतमस्तकः ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश उत्तिष्ठ हृदयेशय ॥ उत्तिष्ठ त्वमुमास्वामिन्ब्रह्माण्डे मंगलं कुरु ॥ ३ ॥ जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ॥ त्वया महादेव हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा वचनं भक्त्या स्मृत्वा च गुरुपादुके ॥ बहिर्गच्छेद्दक्षिणाशां त्यागार्थं मलमूत्रयोः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले अब इसके उपरान्त मैं श्रेष्ठ पूजाविधि कहताहूं हे देवताओ सुनो यह सबकामना और सुखकी देनेवालीहै ॥ १ ॥ ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शिव और पार्वतीका स्मरण करै और हाथजोड मस्तक झुकाय भक्तिसे उनकी प्रार्थना करै ॥ २ ॥ हे देवेश ! हे हृदयमें शयनकरनेवाले आप उठिये, हे उमास्वामी आप उठिये और ब्रह्माण्डका मंगल कीजिये ॥ ३ ॥ मैं धर्म जानताहूं पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहींहै, मैं अधर्मको जानता हूं पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं है, हे महादेव आप हृदयमें स्थित हुए जैसी प्रेरणा करते हो वैसा करताहूं ॥ ४ ॥ इस प्रकार भक्तिसे वचन कहकर तथा गुरुपादुकाको स्मरण

कर, मल मूत्रके त्यागनेको त्तिका और जलसे पश्चात् देहशुद्धि करके हाथ पैर धोकर दँतौन करै ॥ ६ ॥ सूर्यके निकलनेसे पहले दँतौ मकी तिथि नौमी रविवार हे देवता ऋषियो ! इन दिनोंमें दँतौन नहीं करनी चाहिये ॥ ८ ॥ अवकाशके अनुसार नदीआदि अथवा घरमें स्नान करै मनुष्यको देशकालके अनुसार स्नान करना चाहिये ॥ ९ ॥ रविवार श्राद्ध संक्रान्ति ग्रहण तीर्थ और उपवासके दिन ॥ १० ॥ और आशौचकी प्राप्तिमें गरमजलसे स्नान न करै, भक्तिमान् पुरुष तीर्थादिमें उनके अभिमुख स्नान करै ॥ ११ ॥

देहशुद्धिं ततः कृत्वा स मृज्जलविशोधनैः ॥ हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दंतधावनमाचरेत् ॥६॥ दिवानाथे त्वनुदिते कृत्वा वै दंतधावनम्॥ मुखं षोडशवारं तु प्रक्षाल्यांजलिभिस्तथा ॥ ७ ॥ षष्ट्याद्यमाश्च तिथयो नवम्यर्कदिने तथा ॥ वर्ज्यास्सुरर्षयो यत्नाद्भक्तेन रदधावने ॥ ८ ॥ यथावकाशं सुस्नायान्नद्यादिष्वथवा गृहे ॥ देशकालविरुद्धं च स्नानं कार्यं नरेण च ॥ ९ ॥ रवेर्दिने तथा श्राद्धे संक्रान्तौ ग्रहणे तथा ॥ महादाने तथा तीर्थे ह्युपवासदिने तथा ॥ १० ॥ अशौचेप्यथवा प्राप्ते न स्नायादुष्णवारिणा ॥ यथा साभिमुखं स्नायात्तीर्थादौ भक्तिमान्नरः ॥ ११ ॥ तैलाभ्यंगं च कुर्वीत वारान्दृष्ट्वा क्रमेण च ॥ नित्यमभ्यंगके चैव वासितं वा न दूषितम् ॥ १२ ॥ श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने ॥ अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद्ग्रहणं विना ॥ १३ ॥ देशं कालं विचार्य्यैवं स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ उत्तराभिमुखश्चैव प्राङ्मुखोप्यथवा पुनः ॥ १४ ॥ उच्छिष्टेनैव वस्त्रेण न स्नायात्स कदाचन ॥ शुद्धवस्त्रेण स स्नायात्तद्देवस्मरपूर्वकम् ॥ १५ ॥ परधाय्य च नोच्छिष्टं रात्रौ च विधृतं च यत् ॥ तेन स्नानं तथा कार्यं क्षालितं च परित्यजेत् ॥ १६ ॥

वारोंको देखकर क्रमानुसार तेल लगावै, नित्य तेल लगानेवालेको वासित दूषित नहीं है ॥ १२ ॥ श्राद्धमें ग्रहणमें उपवासमें पडवामें सरसोंका तेल ग्रहणके विना दूषित नहीं है ॥ १३ ॥ देशकालको विचारकर यथाविधिसे स्नान करै उत्तर वा पूर्वको मुखकर स्नान करै ॥ १४ ॥ उच्छिष्ट वस्त्रसे कभी भी स्नान न करै अपने देवताके स्मरणपूर्वक शुद्धवस्त्रसे स्नान करै ॥ १५ ॥ दूसरेका धारण किया उच्छिष्ट है तथा जो एक रात्रिका धारण किया है वह उच्छिष्ट नहीं उससे

स्नान सदा करना चाहिये और धोयेहुएको फिर छोडदे ॥ १६ ॥ फिर देवता ऋषियोंकी तृप्तिकेलिये सदा तर्पण करना चाहिये फिर धुले वस्त्रको धारण करके
फिर आचमन करै ॥ १७ ॥ पीछे गोबरसे लिपेहुए पवित्र स्थानमें जाकर हे ब्राह्मणो ! वहां सुन्दर आसन रचना चाहिये ॥ १८ ॥ जो शुद्ध काष्ठका पूर्ण
चिकना हो ऐसा सबकाम और फलका देनेवाला चित्रासन बनावै ॥ १९ ॥ और फिर मृगचर्मादि यथायोग्य ग्रहण करने चाहिये उसपर बैठकर बुद्धिमान
भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगावै ॥ २० ॥ त्रिपुण्ड्र लगानेसे जप तप और दान सब सफल होजाता है, भस्म न हो तो जलसेही त्रिपुण्ड्र लगाले ॥ २१ ॥

तर्पणं च ततः कार्यं देवर्षिपितृतृप्तिदम् ॥ धौतवस्त्रं ततो धार्यं पुनराचमनं चरेत् ॥ १७ ॥ शुचौ देशे ततो गत्वा गोमयाद्युपमार्जिते ॥
आसनं च शुभं तत्रः रचनीयं द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ शुद्धकाष्ठसमुत्पन्नं पूर्णं स्तारितमेव वा ॥ चित्रासनं तथा कुर्यात्सर्वकामफलप्र
दम् ॥ १९ ॥ यथायोग्यं पुनर्ग्राह्य मृगचर्मादिकं च यत् ॥ तत्रोपविश्य कुर्वीत त्रिपुंड्रं भस्मना सुधीः ॥ २० ॥ जपस्तपस्तथा दानं
त्रिपुण्ड्रात्सफलं भवेत् ॥ अभावे भस्मनस्तत्र जलस्यादि प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥ एवं कृत्वा त्रिपुण्ड्रं च रुद्राक्षान्धारयेन्नरः ॥ संपाद्य च
स्वकं कर्म पुनराराधयेच्छिवम् ॥ २२ ॥ पुनराचमनं कृत्वा त्रिवारं मंत्रपूर्वकम् ॥ एकं वाथ प्रकुर्याच्च गंगाबिन्दुरिति ब्रुवन् ॥ २३ ॥
अन्नोदकं तथा तत्र शिवपूजार्थमाहरेत् ॥ अन्यद्वस्तु च यत्किंचिद्यथाशक्ति समीपगम् ॥ २४ ॥ कृत्वा स्थेयं च तत्रैव धैर्यमास्थाय वै
पुनः ॥ अर्घपात्रं तथा चैकं जलगंधाक्षतैर्युतम् ॥ २५ ॥ दक्षिणांसे तथा स्थाप्यमुपचारस्य कृतये ॥ गुरोश्च स्मरणं कृत्वा तदनुज्ञाम
वाप्य च ॥ २६ ॥ संकल्पं विधिवत्कृत्वा कामनां च नियुज्य वै ॥ पूजयेत्परया भक्त्या शिवं सपरिवारकम् ॥ २७ ॥

इसप्रकार त्रिपुण्ड्र लगाकर फिर मनुष्य रुद्राक्षोंको धारण करै, इसप्रकार अपना कर्म सम्पादन करके फिर शिवकी आराधना करै ॥ २२ ॥ फिर तीनवार
मंत्रपूर्वक आचमन करके, गंगाविष्णु कहता हुआ एकवार तिलक करै ॥ ॥ २३ ॥ फिर शिवजीकी पूजाके लिये अन्नजल वा और जो कुछ वस्तु होय
यथाशक्ति समीपमें लावै ॥ [illegible] जल गंध अक्षतसे युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर ॥ २५ ॥ उपचारकी पूर्त्तिके
लिये अपने दक्षिणांसमें स्थ [illegible] शी प्रात करके ॥ २६ ॥ विधिपूर्वक संकल्प करके और उसमें अपनी कामना

लगाकर परमभक्तिसे परिवारसहित शिवजीका पूजन करै ॥ २७ ॥ फिर एक मुद्रा भेंटकी दिखाकर विघ्नेश्वरका पूजन करै इनको सिन्दूरादि पदार्थ चढावै और सिद्धि बुद्धिसे पूजा करै ॥ २८ ॥ लक्षलाभसे युक्त पूजा करके फिर नमस्कार करै, जब प्रणाम करै तो ॐकारसहित नाममें चतुर्थी विभक्ति लगावै अन्तमें नमः लगावै ॥ २९ ॥ फिर देवसे क्षमा कराकर स्कन्दभ्राताकेसहित परमभक्तिसे पूजन कर वारंवार प्रणाम करै ॥ ३० ॥ और महोदरनाम द्वारपाल जो सदा द्वारस्थित रहता है, उसका पूजन कर फिर सती गिरिजाका पूजन करै ॥ ३१ ॥ चन्दन कुंकुम धूप दीप और नैवेद्यसे फिर शिवजीका

मुद्रामेकां प्रदर्श्यैव पूजयेद्विघ्नहारकम् ॥ सिंदुरादिपदार्थैश्च सिद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥ २८ ॥ लक्षलाभयुतं तत्र पूजयित्वा नमेत्पुनः ॥
चतुर्थ्यंतैर्नामपदैर्नमोन्तैः प्रणवादिभिः ॥ २९ ॥ क्षमाप्यैनं तदा देवं भ्रात्रा चैव समन्वितम् ॥ पूजयेत्परया भक्त्या नमस्कुर्यात्पुनः
पुनः ॥ ३० ॥ द्वारपालं सदा द्वारि तिष्ठंतं च महोदरम् ॥ पूजयित्वा ततः पश्चात्पूजयेद्गिरिजां सतीम् ॥ ३१ ॥ चंदनैः कुंकुमैश्चैव
धूपैर्दीपैरनेकशः ॥ नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयित्वा ततश्शिवम् ॥ ३२ ॥ नमस्कृत्य पुनस्तत्र गच्छेच्च शिवसन्निधौ ॥ यदि गेहे पार्थिवीं वा
हैमीं वा राजतीं तथा ॥ ३३ ॥ धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत् ॥ नमस्कृत्य पुनस्तां च पूजयेद्भक्तितत्परः ॥ ३४ ॥
तस्यां तु पूजितायां वै सर्वे स्युः पूजितास्तदा ॥ स्थापयेच्च मृदा लिंगं विधाय विधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ कर्तव्यं सर्वथा तत्र नियमास्स्वगृहे
स्थितैः ॥ प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च ॥ ३६ ॥ दिक्पालान्पूजयेत्तत्र स्थापयित्वा शिवालये ॥ गृहे शिवस्सदा पूज्यो
मूलमंत्राभियोगतः ॥ ३७ ॥ तत्र तु द्वारपालानां नियमो नास्ति सर्वथा ॥ गृहे लिंगं च यत्पूज्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३८ ॥

पूजन करै ॥ ३२ ॥ फिर नमस्कार करके शिवजीके समीप जाय जो घरमें पार्थिव सुवर्ण चांदी ॥ ३३ ॥ वा अन्य धातुकी वा पारेकी मूर्त्ति हो उसको नमस्कार कर भक्तिमें तत्पर होकर पूजन करै ॥ ३४ ॥ उसके पूजन करनेसे सब पूजित होजाते हैं, विधिपूर्वक मृत्तिकाका लिंग स्थापन करना चाहिये ॥ ३५ ॥ अपने घरमें स्थित होकर नियम करने चाहिये, भूतशुद्धिकरके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ शिवालयमें स्थापित करके दिक्पालोंका पूजन करना चाहिये मूलमंत्रसे घरमें सदा शिवजीका पूजन करना चाहिये ॥ ॥ ३७ ॥ वहां द्वारपालोंका नियम नहीं है घरमें जो लिंग पूजितहै उसमें सब प्रतिष्ठितहैं ॥ ३८ ॥

पूजाके समय सांगपरिवारके सहित आवाहन कर देवका पूजन करै, इसमें कोई नियम नहीं है ॥ ३९ ॥ शिवके समीपमें अपना आसन कल्पना करै, फिर उत्तरको मुखकर बैठ फिर आचमन करै ॥ ४० ॥ फिर हाथ धोकर प्राणायाम करै मूलमंत्रसे दशवार प्राणायाम करै ॥ ४१ ॥ फिर पांचों मुद्रा दिखावै कारण कि इसमें पूजा हाथमें स्थित होतीहै इन मुद्राओंको दिखाकरही मनुष्य पूजाविधि सम्पन्न करै ॥ ४२ ॥ फिर दीपकरके और गुरुको नमस्कार करके पद्मासन अथवा भद्रासन बाँधकर ॥ ४३ ॥ उत्तानासन वा पर्यंकासन करके यथासुख बैठकर प्रयोग करै ॥ ४४ ॥ पूर्वकी समान पूजा करके टवकसे-

पूजाकाले च सांगे वै परिवारेण संयुतम् ॥ आवाह्य पूजयेद्देवं नियमोऽत्र न विद्यते ॥ ३९ ॥ शिवस्य संनिधिं कृत्वा स्वासनं परिकल्पयेत् ॥ उदंमुखस्तदा स्थित्वा पुनराचमनं चरेत् ॥४०॥ प्रक्षाल्य हस्तौ पश्चाद्वै प्राणायामं प्रकल्पयेत् ॥ मूलमंत्रेण तत्रैव दशावर्तं नयेन्नरः ॥ ४१ ॥ पंचमुद्राः प्रकर्तव्याः पूजावश्यं करेप्सिताः ॥ एता मुद्राः प्रदर्श्यैव चरेत्पूजाविधिं नरः ॥ ४२ ॥ दीपं कृत्वा तदा तत्र नमस्कारं गुरोरथ ॥ बध्वा पद्मासनं तत्र भद्रासनमथापि वा ॥ ४३ ॥ उत्तानासनकं कृत्वा पर्यंकासनकं तथा ॥ यथासुखं तथा स्थित्वा प्रयोगं पुनरेव च ॥ ४४ ॥ कृत्वा पूजां पुरा जातां वट्टकेनैव तारयेत् ॥ यदि वा स्वयमेवेह गृहे न नियमोऽस्ति च ॥ ४५ ॥ पश्चाच्चैवार्घपात्रेण क्षालयेल्लिंगमुत्तमम् ॥ अनन्यमानसो भूत्वा पूजाद्रव्यं निधाय च ॥ ४६ ॥ पश्चाच्चावाहयेद्देवं मंत्रेणानेन वै नरः ॥ कैलासशिखर स्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ यथोक्तरूपिणं शंभुं निर्गुणं गुणरूपिणम् ॥ पंचवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥ ४८ ॥ कर्पूरगौरं दिव्यांगं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम् ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम् ॥ ४९ ॥

तारण (?) करै और यदि अपने घरमेंही हो तो इस बातका नियम नहीं है ॥ ४५ ॥ फिर अर्घ्यपात्रमें शिवलिंगको स्नान करावै फिर अनन्य मन होकर पूजाद्रव्यका विधान कर ॥ ४६ ॥ इस अगले मंत्रसे देवका आवाहन करै कैलासके शिखरमें स्थित पार्वतीपति उत्तम ॥४७॥ निर्गुण, सगुण यथोक्तरूप शंकर पांचमुख दशभुजा तीन नेत्र वृषभध्वज ॥ ४८ ॥ कपूरकी समान गौरवर्ण माथेपर चंद्र जटाजूटसे शोभायमान व्याघ्रचर्मका उत्तरीय वस्त्र और

सुन्दर गजचर्म धारण किये ॥ ४९ ॥ वासुकी आदि सर्प अंगमें लपेटे हुए, पिनाकादि आयुध हाथमें लिये जिनके आगे आठों सिद्धि निरन्तर नृत्य करती रहतीहैं ॥ ५० ॥ जिनके चारों ओर भक्तजन जयजय शब्द कररहेहैं, जो दुःसह तेजसे देवताओंसे सेवित हो दुर्लक्ष्य होरहेहैं ॥ ५१ ॥ सब जीवोंके शरणदेनेवाले प्रसन्न कमलमुखवाले वेदशास्त्रोंसे गीयमान विष्णु ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त ॥ ५२ ॥ भक्तवत्सल आनंदस्वरूप सदाशिवको मैं आवाहन करताहूं, इसप्रकार साम्बशिवको ध्यान करके पश्चात् आसनकी कल्पना करै ॥ ५३ ॥ सबवस्तुओंका समर्पण चतुर्थ्यन्तपदसे करै, फिर शंकरके निमित्त

वासुक्यादिपरीतांगं पिनाकाद्यायुधान्वितम् ॥ सिद्धयोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यंतीह निरंतरम् ॥ ५० ॥ जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुंजकैः ॥ तेजसा दुःसहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम् ॥ ५१ ॥ शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपंकजम् ॥ वेदैश्शास्त्रैर्यथा गीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा ॥ ५२ ॥ भक्तवत्सलमानंदं शिवमावाहयाम्यहम् ॥ एवं ध्यात्वा शिवं साम्बमासनं परिकल्पयेत् ॥ ५३ ॥ चतुर्थ्यंतपदेनैव सर्वं कुर्याद्यथाक्रमम् ॥ ततः पाद्यं प्रदद्याद्वै ततोर्घ्यं शंकराय च ॥ ५४ ॥ ततश्चाचमनं कृत्वा शंभवे परमात्मने ॥ पश्चाच्च पंचभिर्द्रव्यैः स्नापयेच्छंकरं मुदा ॥ ५५ ॥ वेदमंत्रैर्यथायोग्यं नामभिर्वा समंत्रकैः ॥ चतुर्थ्यंतपदैर्भक्त्या द्रव्याण्येवार्पयेत्तदा ॥ ५६ ॥ तथाभिलषितं द्रव्यमर्पयेच्छंकरोपरि ॥ ततश्च वारुणं स्नानं करणीयं शिवाय वै ॥ ५७ ॥ सुगंधं चंदनं दद्यादन्यलेपानि यत्नतः ॥ ससुगंधजलेनैव जलधारां प्रकल्पयेत् ॥ ५८ ॥ वेदमंत्रैः षडंगैर्वा नामभी रुद्रसंख्यया ॥ यथावकाशं तां दत्वा वस्त्रेण मार्जयेत्ततः ॥ ५९ ॥

पाद्य अर्घ्य दे ॥ ५४ ॥ फिर आचमन करके परमात्मा शंभुके निमित्त पंचद्रव्य घृत शर्करा जलादिसे प्रसन्न हो स्नान करावै ॥ ५५ ॥ वेदमंत्रोंसे वा नाममंत्रोंसे चतुर्थ्यन्त पदसे भक्तिपूर्वक सब वस्तु समर्पण करै ॥ ५६ ॥ सब अभिलषित पदार्थोंको शिवजीके ऊपर अर्पण करै फिर पार्वतीको जलसे स्नान करावै ॥ ५७ ॥ सुगंधयुक्त चन्दन तथा दूसरे अनुलेपनके पदार्थ लगावै फिर सुगंधित जलकी धारा चढावै ॥ ५८ ॥ फिर वेदमंत्र षडंग वा

एकादशनामसे स्नान कराय फिर वस्त्रसे मार्जन करै ॥५९॥ फिर आचमन कराकर वस्त्र समर्पण करै तिल जौ गेहूं मूंग ॥६०॥ यह नाम मंत्र पढपढकर
शिवजीको समर्पण करै फिर महात्माके पांचों मुखोंपर पांचपुष्प चढावै ॥ ६१ ॥ प्रतिमुखका अभिलाषाके अनुसार ध्यान करै कमल शतपत्र तथा
शंखपुष्पोंके फूल ॥ ६२ ॥ कुशपुष्प, धतूरा, मंदार, द्रोण, तुलसीपत्र, बेलपत्रोंसे॥ ६३ ॥ भक्तवत्सल शंकरका परमभक्तिसे पूजन करै यदि और वस्तु
न मिलै तो बेलपत्रही शिवजीको चढावै ॥ ६४ ॥ बेलपत्रके अर्पणसेही सब पूजा सिद्ध होजाती है फिर सुगन्धित चूर्णसे वासित सुन्दर तैल ॥ ६५ ॥

पश्चादाचमनं दद्यात्ततो वस्त्रं समर्पयेत् ॥ तिलाश्चैव जवा वापि गोधूमा मुद्गमाषकाः ॥ ६० ॥ अर्पणीयाः शिवायैवं मंत्रैर्नानाविधैरपि॥
ततः पुष्पाणि देयानि पंचास्याय महात्मने ॥ ६१ ॥ प्रतिवक्त्रं यथाध्यानं यथायोग्याभिलाषतः ॥ कमलैश्शतपत्रैश्च शंखपुष्पैः
परैस्तथा ॥ ६२ ॥ कुशपुष्पैश्च धत्तूरैर्मंदारैर्द्रोणसंभवैः ॥ तथा च तुलसीपत्रैर्बिल्वपत्रैर्विशेषतः ॥ ६३ ॥ पूजयेत्परया भक्त्या शंकरं
भक्तवत्सलम् ॥ सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै ॥ ६४ ॥ बिल्वपत्रार्पणे नैव सर्वपूजा प्रसिध्यति ॥ ततस्सुगंधचूर्णं वै
वासितं तैलमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ अर्पणीयं च विविधं शिवाय परया मुदा ॥ ततो धूपः प्रकर्तव्यो गुग्गुला गुरुभिर्मुदा ॥ ६६ ॥
दीपो देयस्ततस्तस्मै शंकराय घृतप्लुतः ॥ अर्घं दद्यात्पुनस्तस्मै मंत्रेणानेन भक्तितः ॥ ६७ ॥ कारयेद्भावतो भक्त्या वस्त्रेण मुख
मार्जनम् ॥ रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर ॥ ६८ ॥ भुक्तिमुक्तिफलं देहि गृहीत्वार्घं नमोस्तुते ॥ ततो देयं शिवायैव नैवेद्यं
विविधं शुभम् ॥ ६९ ॥

परम प्रसन्नतासे शिवजीको अर्पण करना चाहिये, फिर गूगल और अगरकी धूप प्रेमसे अर्पण करै ॥ ६६ ॥ फिर घृतसे भराहुआ दीपक शंकरके निमित्त
देना चाहिये, और फिर इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक अर्घ्य दे ॥ ६७ ॥ फिर भावभक्तिसे वस्त्रसे मुखमार्जन करै; प्रार्थना करै हे देव ! मुझे रूप यश और भोग
दीजिये ॥ ६८ ॥ हे भगवन् आपको प्रणाम है आप भुक्तिमुक्तिका फल अर्घग्रहण करदीजियेगा, तब शिवजीके निमित्त सुन्दर नैवेद्य देनी चाहिये॥६९॥

फिर विलम्बसे प्रीतिपूर्वक आचमन करावै, पीछे शिवजीकेलिये ताम्बूल साङ्गोपाङ्ग विधान करके ॥ ७० ॥ पांचबत्तीकी आर्ति करै, चरणोंमें चारबार
नाभिमंडलमें दो बार ॥ ७१ ॥ मुखपर एकबार सर्वांगमें सातबार फिर यथोक्त ध्यान करके मंत्रका उच्चारण करै ॥ ७२ ॥ यथासंख्य और यथाज्ञान
मंत्रविधि मनुष्यको करनी चाहिये और गुरुके उपदिष्टमार्गसे बुद्धिमान् मन्त्र जपताहुआ ॥ ७३ ॥ गुरुके उपदिष्टमार्गके अनुसार ही मन्त्रको उच्चारण करै,
यथासंख्य यथाज्ञान मन्त्रकी विधि करनी चाहिये ॥ ७४ ॥ और प्रसन्न हो अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे शिवजीकी स्तुति करै फिर शनैः शनैः

तत आचमनं प्रीत्या कारयेद्वा विलम्बतः ॥ ततश्शिवाय तांबूलं सांगोपाङ्गं विधाय च ॥ ७० ॥ कुर्यादारार्तिकं पञ्चवर्तिकामनुसं
ख्यया ॥ पादयोश्च चतुर्वारं द्विःकृत्वो नाभिमण्डले ॥ ७१ ॥ एककृत्वे मुखे सप्तकृत्वः सर्वाङ्ग एव हि ॥ ततो ध्यानं यथोक्तं वै कृत्वा
मंत्रमुदीरयेत् ॥ ७२ ॥ यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मंत्राविधिन्नरः ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मंत्रजपं सुधीः ॥ ७३ ॥ “ गुरूपदि
ष्टमार्गेण कृत्वा मंत्रमुदीरयेत् ॥ यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मंत्रविधिन्नरः” ॥ ७४ ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैः प्रीत्या स्तुवीत वृषभध्व
जम् ॥ ततः प्रदक्षिणां कुर्याच्छिवस्य च शनैश्शनैः ॥ ७५ ॥ नमस्कारांस्ततः कुर्यात्साष्टांगं विधिवत्पुमान् ॥ ततः पुष्पांजलिर्देयो
मंत्रेणानेन भक्तितः ॥ ७६ ॥ शंकराय परेशाय शिवसंतोषहेतवे ॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया ॥ ७७ ॥ कृतं तदस्तु
सफलं कृपया तव शंकर ॥ तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोहं सदा मृड ॥ ७८ ॥ इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसीद मे ॥ भूमौ स्ख
लितपादानां भूमिरेवावलंबनम् ॥ ७९ ॥

शिवकी प्रदक्षिणा करै ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वक साष्टांग नमस्कार करै फिर इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि दे ॥ ७६ ॥ शंकरपरेश शिवके संतोषके
लिये ज्ञान वा अज्ञानसे जो मैंने पूजादिक की है ॥ ७७ ॥ हे शंकर तुम्हारी कृपासे यह सब सफल हो मेरे प्राण तुममें हैं हे शिव ! सुखदायक मेरा
चित्त तुममें है ॥ ७८ ॥ हे गौरीश ! हे भूतनाथ ! ऐसा जानकर आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये जिनका चरण पृथिवीसे फिसलता है उनको पृथिवीही

अवलम्बन है॥ ७९ ॥ तुममें जो अपराध मुझसे हुए हैं उसमें आपही शरण हैं इसप्रकार विधिपूर्वक बहुतसी विज्ञप्ति करके ॥ ८० ॥ पुष्पांजलि देकर वारंवार प्रणाम करै, और कहै हे प्रभो ! अब परिवारके साथ आप अपने स्थानको जाइये ॥ ८१ ॥ हे नाथ ! पूजाके समय फिर आदरसे इस स्थानमें आना, इसप्रकार भक्तवत्सल शंकरकी बहुत प्रकारसे प्रार्थना करके ॥ ८२ ॥ विसर्जन कर उनकी जलमयमूर्त्ति अपने हृदयमें धारण करै, हे मुनियो ! यह शिवजीका पूजन तुमसे हमने विस्तारपूर्वक कहा यह भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है अब आगे क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ८३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे

त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥ इत्यादि बहुविज्ञप्तिं कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ ८० ॥ पुष्पांजलिं समर्प्यैव पुनः कुर्यान्नतिं मुहुः ॥ स्वस्थानं गच्छ देवेश परिवारयुतः प्रभो ॥ ८१ ॥ पूजाकाले पुनर्नाथ त्वया गंतव्यमादरात् ॥ इति संप्रार्थ्य बहुशश्शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ ८२ ॥ विसर्जयेत्स्वहृदये तदपोमूर्ध्नि विन्यसेत् ॥ इति प्रोक्तमशेषेण मुनयः शिवपूजनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव किमन्यच्छ्रोतुमर्हथ ॥ ८३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजनवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ व्यासशिष्य महाभाग कथय त्वं प्रमाणतः ॥ कैः पुष्पैः पूजितश्शंभुः किं किं यच्छति वै फलम् ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ शौनकाद्याश्च ऋषयः शृणुतादरतोऽखिलम् ॥ कथयाम्यद्य सुप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम् ॥ ॥ २ ॥ एष एव विधिः पृष्टो नारदेन महर्षिणा ॥ प्रोवाच परमप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम् ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ कमलैर्बिल्वपत्रैश्च शतपत्रैस्तथा पुनः ॥ शंखपुष्पैस्तथा देवं लक्ष्मीकामोऽर्चयेच्छिवम् ॥ ४ ॥

रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्रथमे सृष्टिखंडे शिवपूजनवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषि बोले हे व्यासशिष्य ! हे महाभाग आप यह कहिये किन किन फूलोंके पूजनेसे शिवजी क्या क्या फल देते हैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे शौनकादि ऋषियो ! आदरसे इस बातको सुनो मैं क्रमसे पुष्पोंके अर्पणका निर्णय कहताहूं ॥ २ ॥ यही विधि परमर्षि नारदजीने पूछीथी तब ब्रह्माजीने प्रसन्न हो उनसे पुष्पअर्पणकी विधि सुनाई थी ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले

कमल बेलपत्र शतपत्र शंखपुष्पोंसे देवका पूजन करनेसे लक्ष्मकिी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ यदि इन लाखफूलोंसे शिवजीका पूजन करै तो हे ब्राह्मणो ! पापकी हानि हो, और निःसंदेह लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ वीसकमलोंका एक प्रस्थ होता है और सहस्र बेलपत्रोंका आधा प्रस्थ होता है ॥ ६ ॥ और सहस्र शतपत्रका आधा प्रस्थ होता है, सोलह पलका एक प्रस्थ, और दशटंकका एक पल होता है ॥ ७ ॥ जब इस मानसे तराजूपर चढावै तो सब कामना पाता है, यदि निष्काम इतने पुष्पोंसे पूजै तो शिवरूप होता है ॥ ८ ॥ जिसको राज्यकी कामना हो वह दशकरोड़ पार्थिव पूजासे शिवको

एतैश्च लक्षसंख्याकैः पूजितश्चेद्भवेच्छिवः ॥ पापहानिस्तथा विप्र लक्ष्मीस्स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ विंशतिः कमलानां तु प्रस्थमेकमुदाहृतम् ॥ बिल्वो दलसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ॥ ६ ॥ शतपत्रसहस्रेण प्रस्थार्द्धं परिभाषितम् ॥ पलैः षोडशभिः प्रस्थः पलं टंकदशस्मृतः ॥ ७ ॥ अनेनैव तु मानेन तुलामारोपयेद्यदा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति निष्कामश्चेच्छिवो भवेत् ॥ ८ ॥ राज्यस्य कामुको यो वै पार्थिवानां च पूजया ॥ तोषयेच्छंकरं देवं दशकोटचा मुनीश्वराः ॥ ९ ॥ लिंगं शिवं तथा पुष्पमखण्डं तंदुलं तथा ॥ चर्चितं चंदनेनैव जलधारां तथा पुनः ॥ १० ॥ प्रतिरूपं तथा मंत्रं बिल्वीदलमनुत्तमम् ॥ अथवा शतपत्रं च कमलं वा तथा पुनः ॥ ११ ॥ शंखपुष्पैस्तथा प्रोक्तं विशेषेण पुरातनैः ॥ सर्वकामफलं दिव्यं परत्रेहापि सर्वथा ॥ १२ ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यमर्घं चारार्तिकं तथा ॥ प्रदक्षिणां नमस्कारं क्षमापनविसर्जने ॥ १३ ॥ कृत्वा सांगं तथा भोज्यं कृतं येन भवेदिह ॥ तस्य वै सर्वथा राज्यं शंकरः प्रददाति च ॥ १४ ॥ प्राधान्यकामुको यो वै तदर्द्धेनार्चयेत्पुमान् ॥ कारागृहगतो यो वै लक्षेनैवार्चयेद्धरम् ॥ १५ ॥

ंतुष्ट करै, हे मुनीश्वरो ॥ ९ ॥ शिवलिंगपर जो पुष्प अखण्ड चावल चढाकर चंदन और जलधारासे चर्चित करै ॥ १० ॥ प्रतिरूप प्रतिमंत्रसे बेलपत्रे डावै अथवा शतपत्र वा कमल चढावै ॥ ११ ॥ पुरातन पुरुषोंने शंखपुष्पोंके पुष्पोंसे विशेष पूजन कहा है यह दोनों लोकमें दिव्य सब काम फल देते ।२ ॥ धूप दीप नैवेद्य अर्घ आरती प्रदक्षिणा नमस्कार क्षमापन विसर्जन ॥ १३ ॥ यह सांग करके जिसने महेश्वरको भोग लगायाहै उसको य शंकर राज्यप्रदान करतेहैं ॥ १४ ॥ और जो अपना प्राधान्य चाहता हो वह इससे आधा शंकरका पूजन करै कारागारसे मुक्तिकेलिये लक्ष

ंसे शिवजीका पूजन करै ॥ १५ ॥ जो रोगग्रस्त हो वह पचास सहस्र कमलोंसे पूजै कन्याकी कामनावाला पचीस सहस्रसे ॥ १६ ॥ विद्याकी ावाला इससे आधा, वाणीकी कामनावाला घीसे शंकरकी पूजा करै ॥ १७ ॥ शत्रुओंके उच्चाटनके निमित्त भी उतनाही पूजन करै, मारणमें लक्ष ौर मोहनमें पचाससहस्र पूजन है ॥ १८ ॥ सामन्तोंके जयमें एक कोटि पूजा करनी चाहिये, राजोंके वशीकरणमें दशलाख पूजा है ॥ १९ ॥ यशकेलिये भी इतनीही और वाहनादिके प्राप्तिकेलिये एकसहस्र पूजा करनी चाहिये मुक्तिकी इच्छावाला भक्तिसे पांचकरोड पूजन करै ॥ २० ॥

रोगग्रस्तो यदा स्याद्वै तदर्द्धेनार्चयेच्छिवम् ॥ कन्याकामो भवेद्यो वै तदर्द्धेन शिवं पुनः ॥ १६ ॥ विद्याकामस्तथा यः स्यात्तदर्द्धेनार्चयेच्छिवम् ॥ वाणीकामो भवेद्यो वै घृतेनैवार्चयेच्छिवम् ॥ १७ ॥ उच्चाटनार्थं शत्रूणां तन्मितेनैव पूजनम् ॥ मारणे वै तु लक्षेण मोहने तु तदर्द्धतः ॥ १८ ॥ सामंतानां जये चैव कोटिपूजा प्रशस्यते ॥ राज्ञामयुतसंख्यं च वशीकरणकर्मणि ॥ १९ ॥ यशसे च तथा संख्या वाहनाद्यैः सहस्रिका ॥ मुक्तिकामोर्चयेच्छंभुं पंचकोटचा सुभक्तितः ॥ २० ॥ ज्ञानार्थी पूजयेत्कोटचा शंकरं लोकशंकरम् ॥ शिवदर्शनकामो वै तदर्द्धेन प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥ तथा मृत्युंजयो जाप्यः कामनाफलरूपतः ॥ पंचलक्षा जपा यर्हि प्रत्यक्षं तु भवेच्छिवः ॥ २२ ॥ लक्षेण भजते कश्चिद्द्वितीये जातिसंभवः ॥ तृतीये कामनालाभश्चतुर्थे तं प्रपश्यति ॥ २३ ॥ पंचमं च यदा लक्षं फलं यच्छत्यसंशयम् ॥ अनेनैव तु मंत्रेण दशलक्षे फलं भवेत् ॥ २४ ॥ मुक्तिकामो भवेद्यो वै दर्भैश्च पूजनं चरेत् ॥ लक्षसंख्या तु सर्वत्र ज्ञातव्या ऋषिसत्तमम् ॥ २५ ॥

ज्ञानकी इच्छावाला लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरकी एक करोडसे पूजा करै । शिवके दर्शनकी इच्छावाला इससे आधा पूजन करै ॥ २१ ॥ अन्य कामना फलके लिये मृत्युंजयका जप करना चाहिये । पांचलक्ष जप करनेसे शिवजी प्रत्यक्ष होतेहैं ॥ २२ ॥ कोई एक लाखसे पूजन करते हैं, दो लाखसे जातिका संभव होता है, तीसरे लाखमें कामना लाभ और चौथे लाखमें शिवका दर्शन होता है ॥ २३ ॥ फिर पांचलाखमें निःसन्देह पूर्ण फल मिलता है,इसीमन्त्रसे दशलाखमें पूर्णफल होता है ॥ २४ ॥ मुक्तिकी कामनावाला कुशाओंसे पूजन करै, हे ऋषियो ! इस पूजामें सर्वत्र लक्षसंख्यक

सामग्री जाननी ॥ २५ ॥ आयुकी इच्छावाला लक्ष दूर्वासे शिवजीका पूजन करै पुत्रकी इच्छावाला लाख धतूरेसे पूजा करै ॥ २६ ॥पूजनमें लाल
दंडीवाला धतूरा लेना चाहिये अगस्त्यके फूलोंके पूजनेसे बडा यश मिलता है ॥ २७ ॥ तुलसीके पूजनसे भुक्ति मुक्ति मिलती है । कुब्ज कल्हार और
आकके फूलोंके पूजनसे प्रताप बढताहै ॥२८॥ जपाके फूलोंसे पूजै तो शत्रुओंका नाश होताहै रोग और उच्चाटनकर्ममें कनेरके फूलोंसे पूजा करै ॥ २९ ॥
बंधूकके फूलोंसे भूषणोंकी प्राप्ति जाति (चमेली) के फूलोंसे पूजनेसे निश्चय वाहनकी प्राप्ति होतीहै अलसीके फूलोंसे पूजनेसे विष्णुका प्रिय होताहै॥ ३०॥

आयुःकामो भवेद्यो वै दूर्वाभिः पूजनश्चरेत् ॥ पुत्रकामो भवेद्यो वै धत्तूरकुसुमैश्चरेत् ॥ २६ ॥ रक्तदण्डश्च धत्तूरः पूजने शुभदः स्मृतः ॥
अगस्त्यकुसुमैश्चैव पूजकस्य महद्यशः ॥ २७॥ भुक्तिमुक्तिफलं तस्य तुलस्या पूजयेद्यदि ॥ अर्कपुष्पैः प्रतापश्च कुब्जकल्हारकैस्तथा ॥
॥ २८ ॥ जपाकुसुमपूजा तु शत्रूणां मृत्युदा स्मृता ॥ रोगोच्चाटनकानीह करवीराणि वै क्रमात् ॥ २९ ॥ बंधुकैर्भूषणावाप्तिर्जात्या
वाहान्न संशयः ॥ अतसीपुष्पकैर्देवं विष्णुवल्लभतामियात् ॥ ३० ॥ शमीपत्रैस्तथा मुक्तिः प्राप्यते पुरुषेण च ॥ मल्लिकाकुसुमैर्दत्तैः
स्त्रियं शुभतरां शिवः ॥ ३१ ॥ यूथिकाकुसुमैश्शस्यैर्गृहं नैव विमुच्यते ॥ कर्णिकारैस्तथा वस्त्रसंपत्तिर्जायते नृणाम् ॥ ३२ ॥ निर्गुण्डी
कुसुमैर्लोके मनो निर्मलतां व्रजेत् ॥ बिल्वपत्रैस्तथा लक्षैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ शृङ्गारहारपुष्पैस्तु वर्द्धते सुखसम्पदा ॥
ऋतुजातानि पुष्पाणि मुक्तिदानि न संशयः ॥ ३४ ॥ राजिकाकुसुमानीह शत्रूणां मृत्युदानि च ॥ एषां लक्षं शिवे दद्याद्दद्याच्च विपुलं
फलम् ॥ ३५ ॥ विद्यते कुसुमं तन्न यन्नैव शिववल्लभम् ॥ चंपकं केतकं हित्वा त्वन्यत्सर्वं समर्पयेत् ॥ ३६ ॥

शमीपत्रसे पूजनेसे पुरुषकी मुक्ति होतीहै मल्लिकाके फूलोंसे पूजनकरनेसे शंकर सुन्दर स्त्रियें देतेहैं ॥ ३१ ॥ यूथिकाके फूलोंसे पूजनेसे घरमेंसे धान्योंका
अभाव नहीं होता कर्णिकारके फूलोंके पूजनेसे वस्त्र तथा सम्पत्ति होतीहै ॥ ३२ ॥ निर्गुण्डीके फूलोंसे मन निर्मल होताहै लाख बेलपत्रोंसे पूजै तो सबकामना
पूरी होती है ॥ ३३ ॥ हारसिंगारके फूलोंसे पूजै तो सुखसम्पत्ति बढतीहै ऋतुके उत्पन्न हुए फूल निःसन्देह मुक्तिदेनेवालेहैं ॥३४ ॥ राजिका (राई)
के फूलोंसे पूजै तो शत्रुओंकी मृत्यु होतीहै यदि यह लाखफूल शिवजीपर चढाये जांय तो बडा फल होताहै ॥ ३५ ॥ ऐसा कोई फूल नहीं जो

शिवजीको प्यारा न हो, चंपा और केतकीको छोडकर और सब फूल चढावै ॥ ३६ ॥ इसके आगे धान्यद्वारा शंकरके पूजनेका फल प्रमाण और प्रीतिसे
सब सुनो ॥ ३७ ॥ चावलचढानेसे मनुष्योंको लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, पर वे चावल अखण्ड भक्तिसे शिवकेऊपर चढायेजांय ॥ ३८ ॥ वे छः प्रस्थ वा
तीनप्रस्थ वा दोपल वा संख्यामें एकलक्षहों ॥ ३९ ॥ रुद्रकी प्रधानतासे पूजा करै, फिर एक सुन्दर वस्त्र शिवको उढावै यह उत्तम तंदुल अर्पणकी
विधि है ॥ ४० ॥ फिर उसके ऊपर एक श्रीफल और गंधपुष्पादि चढावै, फिर धूप दीपादि देकर पूजाका फल प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ प्रजापति देवतावाले

अतः परं च धान्यानां पूजने शंकरस्य च ॥ प्रमाणं च फलं सर्वं प्रीत्या शृणु च सत्तम ॥ ३७ ॥ तंदुलारोपणे नृणां लक्ष्मीवृद्धिः
प्रजायते ॥ अखण्डितविधौ विप्र सम्यग्भक्त्या शिवोपरि ॥ ३८ ॥ षट्केनैव तु प्रस्थानां तदर्द्धेन तथा पुनः ॥ पलद्वयं तथा लक्ष
मानेन समुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ पूजां रुद्रप्रधानेन कृत्वा वस्त्रं सुसुन्दरम् ॥ शिवोपरि न्यसेत्तत्र तंदुलार्पणमुत्तमम् ॥ ४० ॥ उपरि
श्रीफलं त्वेकं गंधपुष्पादिभिस्तथा ॥ रोपयित्वा च धूपादि कृत्वा पूजाफलं भवेत् ॥ ४१ ॥ प्रजापत्यद्वयं रौप्यमाषसंख्या च
दक्षिणा ॥ देया तदुपदेष्टे हि शक्त्या वा दक्षिणा मता ॥ ४२ ॥ आदित्यसंख्यया तत्र ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ लक्षपूजा तथा जाता
साङ्गञ्च मंत्रपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ शतमष्टोत्तरं तत्र मंत्रे विधिरुदाहृतः ॥ तिलानां च पलं लक्षं महापातकनाशनम् ॥ ४४ ॥ एकादशप
लैरेव लक्षमानमुदाहृतम् ॥ पूर्ववत्पूजनं तत्र कर्तव्यं हितकाम्यया ॥ ४५ ॥ भोज्या वै ब्राह्मणास्तस्मादत्र कार्या नरेण हि ॥ महापा
तकजं दुःखं तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

दोरुपय वा माषकी संख्यासे दक्षिणा दे अथवा उपदेष्टाके निमित्त शक्तिके अनुसार दक्षिणा ॥ ४२ ॥ और बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावै जब सांग मंत्रपूर्वक
लक्षपूजा होजाय ॥ ४३ ॥ तब मंत्रकी विधि एकसौ आठ वर्णनकीहै लाखपल तिल चढानेसे महापातक दूर होतेहैं ॥ ४४ ॥ ग्यारह पल (६४ मासे)
तोलमें एकलाख तिल होजातेहैं हितकी कामनासे पूर्वकी समान पूजन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ और ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये जो

महापातकसे उत्पन्न हुआ दुःख तत्काल नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ हे शिव जब इसी प्रकार लाख जौंसे शिवजीकी पूजा करनी कही है, आठ प्रस्थ अथवा चार प्रस्थ ॥ ४७ ॥ वा दो पलका इसका मान कहा है, जौकी पूजा मुनियोंने स्वर्ग और सौभाग्य बढानेवाली कही है ॥ ४८ ॥ फलकी इच्छावालोंको प्रजापतिके उद्देश्यसे ब्राह्मण जिमाने चाहिये, गोधूम अन्नसे कीहुई पूजा भी शंकरका संतोष करती है ॥ ४९ ॥ लाख गोधूमसे कीहुई शंकरकी पूजा संतानकी बढानेवाली है, आधे द्रोण (८ सेंर) में एकलाख गेहूं होतेहैं, विधान इसका विधिपूर्वक है ॥ ५० ॥ मूंगके द्वारा पूजन करनेसे शिवजी सुख देते

यवपूजा तथा प्रोक्ता लक्षेण परमा शिवे ॥ प्रस्थानामष्टकं चैव तथा प्रस्थार्द्धकं पुनः ॥ ४७ ॥ पलद्वययुतं तत्र मानमेतत्पुरातनम् ॥ यवपूजा च मुनिभिः स्वर्गसौख्यविवर्द्धिनी ॥ ४८ ॥ प्राजापत्यं ब्राह्मणानां कर्तव्यं च फलेप्सुभिः ॥ गोधूमान्नैस्तथा पूजा प्रशस्ता शंकरस्य वै ॥ ४९ ॥ संततिर्वर्द्धते तस्य यदि लक्षावधिः कृता ॥ द्रोणार्द्धेन भवेल्लक्षं विधानं विधिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ मुद्गानां पूजने देवः शिवो यच्छति वै सुखम् ॥ प्रस्थानां सप्तकेनैव प्रस्थार्द्धेनाथवा पुनः ॥५१॥ पलद्वययुतेनैव लक्षमुक्तं पुरातनैः ॥ ब्राह्मणाश्च तथा भोज्या रुद्रसंख्याप्रमाणतः ॥५२॥ प्रियंगुपूजनादेव धर्माध्यक्षे परात्मनि ॥ धर्मार्थकामा वर्द्धंते पूजा सर्वसुखावहा ॥ ५३ ॥ प्रस्थैकेन च तस्योक्तं लक्षमेकं पुरातनैः ॥ ब्रह्मभोजं तथा प्रोक्तमर्कसंख्याप्रमाणतः ॥५४॥ राजिकापूजनं शंभोश्शत्रोर्मृत्युकरं स्मृतम् ॥ सार्षपानां तथा लक्षं पलैर्विंशतिसंख्यया ॥ ५५ ॥ तेषां च पूजनादेव शत्रोर्मृत्युरुदाहृतः ॥ आढकीनां दलैश्चैव शोभयित्वार्चयेच्छिवम् ॥ ५६ ॥

हैं, सात प्रस्थ अथवा आधे प्रस्थसे ॥ ५१ ॥ और दो पलमें एक लाख मूंग होजायगी ऐसा पुगतन महात्माओंने कहा है, और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ५२ ॥ धर्माध्यक्ष परमात्माका प्रियंगुसे पूजन करै तो धर्मार्थकामकी वृद्धि होती है और वह पूजा सब सुखोंकी देनेवाली है ॥ ५३ ॥ एक प्रस्थमें एक लाख प्रियंगु (ककुनी) होतेहैं, ऐसा पुरातन पुरुषोंने कहा है, इसमें भी बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ५४ ॥ राईसे शिवका पूजन करै तो शत्रुओंकी मृत्यु होती है, वीस[१]पल (१६० तोले) में एकलाख राजिका (राई) होतीहैं ॥ ५५ ॥ उनसे पूजन करनेसे शत्रुकी मृत्यु होती

---

[१] पांच चौंटलीका १ मासा सोलह मासेका १ कर्ष चार कर्ष वा ८ तोलेका एक पल होता है।

है आढकी (अरहर) वा शमीके पत्तोंसे शिवजीका पूजन कर शोभित करै ॥ ५६ ॥ प्रीतिके निमित्त एक गौ और एक बैल देना चाहिये मिरचोंसे पूजा करनेसे भी शत्रुका नाश होता है ॥ ५७ ॥ आढकीके पत्तोंसे रंजित कर शिवजीको पूजै यह पूजा अनेक प्रकारके सुख करनेवाली और सब फल देनेवाली है ॥ ५८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह आपसे हमने धान्योंका मान कहा, हे मुनीश्वर ! अब प्रसन्नतासे फूलोंका लक्ष मान सुनो ॥ ५९ ॥ सूक्ष्म मानके जाननेवाले व्यासजीने एक प्रस्थमें लाख शंखपुष्पोंका मान कहा है, ग्यारह प्रस्थमें एकलाख जाति (चमेली) के फूल होते हैं, इतनाही यूथिका (चमेलीविशेष) का मान

वृता गौश्च प्रदातव्या बलीवर्दस्तथैव च ॥ मरीचिसंभवा पूजा शत्रोर्नाशकरी स्मृता ॥ ५७ ॥ आढकीनां दलैश्चैव रंजयि
त्वार्चयेच्छिवम् ॥ नानासुखकरी ह्येषा पूजा सर्वफलप्रदा ॥ ५८ ॥ धान्यमानमिति प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम ॥ लक्षमानं तु पुष्पा
णां शृणु प्रीत्या मुनीश्वर ॥ ६९ ॥ प्रस्थानां च तथा चैकं शंखपुष्पसमुद्भवम् ॥ प्रोक्तं व्यासेन लक्षं हि सूक्ष्ममानप्रदर्शिना ॥ ६० ॥
प्रस्थैरेकादशैर्जातिलक्षमानं प्रकीर्तितम् ॥ यूथिकायास्तथा मानं राजिकायास्तदर्द्धकम् ॥ ६१ ॥ प्रस्थैर्विंशतिकैश्चैव मल्लिकामान
मुत्तमम् ॥ तिलपुष्पैस्तथा मानं प्रस्थान्न्यूनं तथैव च ॥ ६२ ॥ ततश्च द्विगुणं मानं करवीरभवे स्मृतम् ॥ निर्गुंडीकुसुमे मानं तथैव
कथितं बुधैः ॥ ६३ ॥ कर्णिकारे तथा मानं शिरीषकुसुमे पुनः ॥ बंधुजीवे तथा मानं प्रस्थानं दशकेन च ॥ ६४ ॥ इत्याद्यैर्विविधै
र्मानं दृष्ट्वा कुर्याच्छिवार्चनम् ॥ सर्वकामसमृध्यर्थं मुक्त्यर्थं कामनोज्झितः ॥ ६५ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धारापूजाफलं महत् ॥
यस्य श्रवणमात्रेण कल्याणं जायते नृणाम् ॥ ६६ ॥

है और राजिका (राई) का उससे आधा है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ बीसप्रस्थमें मल्लीका फूल एकलाख होते हैं एक सेरसे कुछ कममें तिलके फूल एकलाख होते हैं ॥ ६२ ॥ कनेरके फूल दो सेरमें एकलाख होतेहैं इतनाही निर्गुण्डीके फूलोंका मान पंडितोंने कहा है ॥ ६३ ॥ कर्णिकार शिरसके फूल तथा बन्धुजीवक दुपहरिया फूल दशसेरमें एक लाख होते हैं ॥ ६४ ॥ इसप्रकार अनेक मान देखकर शिवजीका पूजन करना चाहिये, सब प्रकारकी समृद्धि और मुक्तिके अर्थ कामना त्यागकर ॥ ६५ ॥ पूजन करै, अब धारापूजाका महाफल कहता हूं जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्योंका कल्याण होजाता है ॥ ६६ ॥

भक्तिपूर्वक विधान करके शिवकी पूजा करके पीछे भक्तिपूर्वक शिवके ऊपर जलधारा करनी चाहिये ॥ ६७ ॥ ज्वर प्रलापकी शान्तिकेलिये जलधारा बडी शोभायमान है, शतरुद्रिय मंत्र वा एकादश रुद्र मंत्रसे ॥ ६८ ॥ वा रुद्रजाप्य रुद्रसूक्त वा पुरुषसूक्त षडंग वा महामृत्युंजय ॥६९॥ गायत्री वा अन्तमें नमः लगाकर वा ॐकार मंत्र वा दूसरे आगमोक्त मंत्रोंसे जलधारा करनी चाहिये ॥ ७० ॥ सुख और संतानवृद्धिके लिये धारापूजन बडाश्रेष्ठ है अनेक प्रकारके सुन्दर दिव्य द्रव्य तथा प्रीतिसे सद्भस्म धारण करनेसे ॥ ७१ ॥ सहस्र मंत्र पढकर शिवके ऊपर घृतकी धारा करनी चाहिये तब निःसन्देह

विधानपूर्वकं पूजां कृत्वा भक्त्या शिवस्य वै ॥ पश्चाच्च जलधारा हि कर्तव्या भक्तितत्परैः ॥ ६७ ॥ ज्वरप्रलापशांत्यर्थं जलधारा शुभावहा ॥ शतरुद्रियमंत्रेण रुद्रस्यैकादशेन तु ॥ ६८ ॥ रुद्रजाप्येन वा तत्र सूक्तेन पौरुषेण वा ॥ षडंगेनाथ वा तत्र महामृत्युंजयेन च ॥ ६९ ॥ गायत्र्या वा नमोंतैश्च नामभिः प्रणवादिभिः ॥ मंत्रैर्वाथागमोक्तैश्च जलधारादिकं तथा ॥ ७० ॥ सुखसंतानवृध्यर्थं धारापूजनमुत्तमम् ॥ नानाद्रव्यैः शुभैर्दिव्यैः प्रीत्या सद्भस्मधारिणा ॥ ७१ ॥ घृतधारा शिवे कार्या यावन्मंत्रसहस्रकम् ॥ तदा वंशस्य विस्तारो जायते नात्र संशयः ॥ ७२ ॥ एवं मदुक्तमंत्रेण कार्यं वै शिवपूजनम् ॥ ब्रह्मभोज्यं तथा प्रोक्तं प्राजापत्यं मुनीश्वरैः ॥ ७३ ॥ केवलं दुग्धधारा च तदा कार्या विशेषतः ॥ शर्करामिश्रिता तत्र यदा बुद्धिजडो भवेत् ॥ ७४ ॥ तस्य संजायते जीवसदृशी बुद्धिरुत्तमा ॥ यावन्मंत्रायुतं न स्यात्तावद्धाराप्रपूजनम् ॥ ७५ ॥ यदा चोच्चाटनं देहे जायते कारणं विना ॥ यत्र कुत्रापि वा प्रेम दुःखं च परि वर्द्धितम् ॥ ७६ ॥ स्वगृहे कलहो नित्यं यदा चैव प्रजायते ॥ तद्धारायां कृतायां वै सर्वं दुःखं विलीयते ॥ ७७ ॥

वंशका विस्तार होता है ॥ ७२ ॥ इसप्रकार मेरे कहे मंत्रसे शिवजीका पूजन कराना चाहिये और प्रजापति संख्यक बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ७३ ॥ यदि किसीकी जडबुद्धि हो तो शर्करा मिलाकर शिवजीपर केवल दुग्धधारा देनी चाहिये ॥ ७४ ॥ तब उसकी बृहस्पतिकी समान उत्तम बुद्धि होजाती है जबतक मंत्र १०००० न होजांय तबतक धारासे पूजन ॥ ७५ ॥ और जब विनाकारणही देहमें उच्चाटन होजाय जहां कहीं प्रेम हो वह न्यून होजाय और दुःखही की वृद्धि हो ॥ ७६ ॥ और अपने घरमें नित्यही कलह होता हो तो इस धाराके करनेसे सब दुःख शान्त

होजाते हैं ॥ ७७ ॥ शत्रुओंके तापदेनेके लिये शिवके ऊपर तेलकी धारा देनी चाहिये, प्रयत्नपूर्वक यह कार्य करनेसे कार्यसिद्धि होती है ॥ ७८ ॥ सुगन्धित तेलसे भोग वृद्धि होती है और सरसोंके तेलसे अवश्य शत्रुओंका नाश होता है ॥ ७९ ॥ मधुद्वारा शिवकी पूजा करनेसे यक्षराज होजाता है, हे पार्वती गन्नेके रसकी धाराभी सब आनंद करनेवाली है ॥ ८० ॥ गंगाजलकी धारा भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली है यह सब मृत्युंजयसेही प्रगट है ॥ ८१ ॥ इसमें विधिसे अयुत १०००० संख्याका विधान करना चाहिये, और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥ हे मुनीश्वर ! जो आपने

शत्रूणां तापनार्थं वै तैलधारा शिवोपरि ॥ कर्तव्या सुप्रयत्नेन कार्यसिद्धिर्ध्रुवं भवेत् ॥ ७८ ॥ वासितेनैव तैलेन भोगवृद्धिः प्रजायते ॥ सार्षपेनैव तैलेन शत्रुनाशो भवेद्ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ मधुना यक्षराजो वै गच्छेच्च शिवपूजनात् ॥ धारा चेक्षुरसस्यापि सर्वानन्दकरी शिवे ॥ ८० ॥ धारा गंगाजलस्यैव भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ एतास्सर्वाश्च याः प्रोक्ता मृत्युंजयसमुद्भवाः ॥ ८१ ॥ तत्राऽयुतप्रमाणं हि कर्तव्यं तद्विधानतः ॥ कर्तव्यं ब्राह्मणानां च भोज्यं वै रुद्रसंख्यया ॥ ८२ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वर ॥ एतद्वै सफलं लोके सर्वकामहितावहम् ॥ ८३ ॥ स्कंदोमासहितं शंभुं संपूज्य विधिना सह ॥ यत्फलं लभते भक्त्या तद्वदामि यथाश्रुतम् ॥ ८४ ॥ अत्र भुक्त्वाखिलं सौख्यं पुत्रपौत्रादिभिः शुभम् ॥ ततो याति महेशस्य लोकं सर्वसुखावहम् ॥ ८५ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामगैः ॥ रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयवाद्यसमन्वितैः ॥ ८६ ॥

पूछा सो सब तुमको सुनादिया, यही लोकमें सफल और सब काम तथा हितका करनेवाला है ॥ ८३ ॥ शिवजीको स्कंद उमाके सहित पूजन करके भक्तिसे जो फल मिलता है वह कहता हूं जैसा सुना है ॥ ८४ ॥ यहां पुत्र पौत्रादिके सम्पूर्ण सुखोंको प्राप्त करके शिवजीके सब सुखदायक लोकको जाते हैं ॥ ८५ ॥ कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान कामगामी विमानोंपर स्थित हो गीत बाजे और रुद्रकन्याओंसे सेवित हो ॥ ८६ ॥

प्रलयपर्यंत शंकरके जनोंके साथ क्रीडा करते हैं फिर अविनाशी विज्ञानको प्राप्त होकर मोक्ष होजाते हैं ॥ ८७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्रथमे सृष्टिखंडे शिवपूजाविधि वर्णनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारदजी बोले, हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! हे महाभाग ब्रह्माजी ! हे देव ! आप धन्य हो, आपने हमको परमपावनी शिवकी कथा सुनाई है ॥१॥ और महादिव्य सुन्दर लिंगोत्पत्ति आपने सुनाई जिसका प्रभाव सुनकर सब दुःख नाश होजाते हैं ॥ २ ॥ इसके उपरान्त जो माहात्म्य और चरित्र हुआ तथा सृष्टिका प्रकार आप विशेषकर कहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले, आपने भलीबात पूँछी इसके पीछे जो

क्रीडते शिवभूतश्च यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ततो मोक्षमवाप्नोति विज्ञानं प्राप्य चाव्ययम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथम खंडे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजाविधानवर्णनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ विधे विधे महाभाग धन्यस्त्वं सुरसत्तम ॥ श्राविताद्याद्भुता शैवकथा परमपावनी ॥ १ ॥ तत्राद्भुता महादिव्या लिंगोत्पत्तिः श्रुता शुभा ॥ श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह ॥ २ ॥ अनंतरं च यज्जातं माहात्म्यं चरितं तथा ॥ सृष्टेश्चैव प्रकारं च कथय त्वं विशेषतः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक् पृष्टं च भवता यज्जातं तदनंतरम् ॥ कथयिष्यामि संक्षेपाद्यथा पूर्वं श्रुतं मया ॥ ४ ॥ अंतर्हिते तदा देवे शिवरूपे सनातने ॥ अहं विष्णुश्च विप्रेन्द्र अधिकं सुखमाप्तवान् ॥ ५ ॥ मया च विष्णुना रूपं हंसवाराहयोस्तदा ॥ संवृतं तु ततस्ताभ्यां लोकसर्गावनेच्छया ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ विधे ब्रह्मन् महाप्राज्ञ संशयो हृदि मे महान् ॥ कृपां कृत्वातुलां शीघ्रं तं नाशयितुमर्हसि ॥ ७ ॥ हंसवाराहयो रूपं युवाभ्यां च धृतं कथम् ॥ अन्यद्रूपं विहायैव किमत्र वद कारणम् ॥ ८ ॥

हुआ सो जैसा मैंने सुना है संक्षेपसे कहता हूं ॥ ४ ॥ जब शिवरूप सनातन देव अन्तर्धान होगये, हे विप्रेन्द्र ! तब मैंने और विष्णुजीने बडा सुख पाया ॥५॥ मैंने और विष्णुजीने हंस वाराहका रूप धारण करके उन रूपोंसे लोकोंको सम्वृत करलिया और सर्गकी इच्छाकी ॥ ६ ॥ नारदजी, बोले हे विधे, हे महापंडित, हे महाप्राज्ञ ! मेरे हृदयमें बडा सन्देह है, सो आप अतुलकृपा करके मेरे हृदयका संदेह शीघ्र नाश कीजिये ॥ ७ ॥ आपने हंस और बाराहका

रूप क्यों धारण किया, और रूपोंको छोडकर इसरूपके धारण करनेका क्या कारण है ? ॥८॥ सूतजी बोले महात्मा नारदजीके यह वचन सुनकर शिवके चरणकमलको स्मरणकर ब्रह्माजी आदरसे बोले ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले हंसकी ऊपरगमनमें निश्चलगति होती है और जलदुग्धके विभागकी समान तत्त्व और अतत्त्वका विवेक होता है ॥ १० ॥ हंस अज्ञान और ज्ञानके निर्णयमें समर्थ है इसकारण सृष्टिकारी ब्रह्माने हंसका रूप धारण किया ॥ ११ ॥ विवेकके प्राप्त न होनेसे यह हंस (मैं वह हूं) लीन होजाताहै. ज्योतिरूप शिवतत्त्वके जाननेसे प्रगट होता है ॥ १२ ॥ फिर जिसकी सृष्टिकी प्रवृत्तिमें कामना हो उसको किस प्रकारसे ज्ञान होता है इसकारणसे मुझ हंसरूपने विवेक न प्राप्त किया ॥ १३ ॥ अधोगमनमें वराहकी गति निश्चल होती है इसकारण विष्णुने वनचारी वराहका रूप धारण किया ॥ १४ ॥ अथवा भव (वाराह) कल्पके निमित्त उन्होंने यह रूप धारण किया, भुवनके नमनकारी विष्णुने इसप्रकार यह रूप धारण किया ॥ १५ ॥ जिस दिनसे विष्णुने यह रूप धारण किया उस दिनसे यह कल्प वाराहकल्प कहाया ॥ १६ ॥ जिस दिनसे उस रूपके धारण करनेमें उनकी इच्छा हुई, उस दिनसे प्रतिकल्पमें यह कल्प वाराहकल्प कहाया ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! इसप्रकार तुम अपने प्रश्नोत्तरको

सूत उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं ब्रह्मा सादरमब्रवीत् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हंसस्य
चोर्द्ध्वगमने गतिर्भवति निश्चला ॥ तत्त्वातत्त्वविवेकोऽस्ति जलदुग्धविभागवत् ॥ १० ॥ अज्ञानज्ञानयोस्तत्त्वं विवेचयति हंसकः ॥
हंसरूपं धृतं तेन ब्रह्मणा सृष्टिकारिणा ॥ ११ ॥ विवेको नैव लब्धश्च यतो हंसो व्यलीयत ॥ शिवस्वरूपतत्त्वस्य ज्योतिरूपस्य
नारद ॥ १२ ॥ सृष्टिप्रवृत्तिकामस्य कथं ज्ञानं प्रजायते ॥ यतो लब्धो विवेकोऽपि न मया हंसरूपिणा ॥ १३ ॥ गमनेऽधो वराहस्य
गतिर्भवति निश्चला ॥ धृतं वाराहरूपं हि विष्णुना वनचारिणा ॥ १४ ॥ अथवा भवकल्पार्थं तद्रूपं हि प्रकल्पितम् ॥ विष्णुना
च वराहस्य भुवनावनकारिणा ॥ १५ ॥ यद्दिनं हि समारभ्य तद्रूपं धृतवान्हरिः ॥ तद्दिनं प्रति कल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः ॥
॥ १६ ॥ तदिच्छा वा यदा जाता ताभ्यां रूपं हि धारणे ॥ तद्दिनं प्रतिकल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः ॥ १७ ॥ इति प्रश्नोत्तरं
दत्तं प्रस्तुतं शृणु नारद ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं वक्ष्ये सृष्टिविधिं मुने ॥ १८ ॥

सुनचुके, हे मुने ! अब शंकरके चरणकमल स्मरण कर सृष्टिका विधान कहताहूं ॥ १८ ॥ महादेवके अन्तर्धान होनेपर मैं लोकपितामह ब्रह्मा उनके
वचन करनेको ध्यानमें तत्परहो ध्यान करनेलगे ॥ १९ ॥ शिवजीको प्रणाम करके उस समय हरिसे ज्ञान प्राप्त करके परमआनंदको प्राप्त होकर सृष्टि
करनेमें मन लगाया ॥ २० ॥ और विष्णुजी भी सदाशिवको प्रणाम करके मुझे समझा बुझाकर अन्तर्धान होगये ॥ २१ ॥ तब ब्रह्माण्डसे बाहर
होकर शिवजीका अनुग्रह प्राप्त कर विष्णुजीने तो वैकुण्ठमें निवास किया ॥ २२ ॥ और मैंने सृष्टिकी कामनासे विष्णु और शिवको प्रणाम करके उस

अंतर्हिते महादेवे त्वहं लोकपितामहः ॥ तदीयं वचनं कर्तुमध्यायन्ध्यानतत्परः ॥ १९ ॥ नमस्कृत्य तदा शंभुं ज्ञानं प्राप्य हरेस्तदा ॥
आनंदं परमं गत्वा सृष्टिं कर्तुं मनोदधे ॥ २० ॥ विष्णुश्चापि तदा तत्र प्रणिपत्य सदाशिवम् ॥ उपदिश्य च मां तात ह्यंतर्धानमुपा
गतः ॥ २१ ॥ ब्रह्माण्डाच्च बहिर्गत्वा प्राप्य शम्भो रनुग्रहम् ॥ वैकुंठनगरं गत्वा तत्रोवास हरिस्सदा ॥ २२ ॥ अहं स्मृत्वा शिवं तत्र
विष्णुं वै सृष्टिकाम्यया ॥ पूर्वं सृष्टं जलं यच्च तत्रांजलिमुदाक्षिपम् ॥ २३ ॥ अतोऽण्डमभवत्तत्र चतुर्विंशतिसंज्ञकम् ॥ विराड्रूपमभूद्विप्र
जलरूपमपश्यतः ॥ २४ ॥ ततस्संशयमापन्नस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ द्वादशाब्दमहं तत्र विष्णुध्यानपरायणः ॥ २५ ॥ तस्मिंश्च समये
तात प्रादुर्भूतो हरिस्स्वयम् ॥ मामुवाच महाप्रीत्या मदंगं संस्पृशन्मुदा ॥ २६ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि
नादेयो विद्यते तव ॥ ब्रह्मञ्छंभुप्रसादेन सर्वं दातुं समर्थकः ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ युक्तमेतन्महाभाग दत्तोऽहं शंभुना च
ते ॥ तदुक्तं याचते मेऽद्य देहि विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

पूर्व निर्माण किये जलमें एक अंजली जल उठाकर डाला ॥२३॥ तब हे विप्र ! चौवीस तत्त्वोंका उसमें एक अण्ड प्रगट हुआ उस जलरूपको देखतेहुए
विराड्रूप होगया ॥ २४ ॥ तब मैं सन्देहको प्राप्त होकर कठिन तप करने लगा और बारहवर्षतक विष्णुजीका ध्यान करतारहा ॥ २५ ॥ हे तात ! उस
समय फिर विष्णुजी प्रगटहुए और प्रेमसे मेरा अंग छूतेहुए मुझसे बोले ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले हे ब्रह्माजी ! तुम वर मांगो मैं प्रसन्नहूं तुम्हारेलिये मुझे
कोई वस्तु अदेय नहीं है. हे ब्रह्मन् ! शिवजीके प्रसादसे मैं सब कुछ देनेमें समर्थहूं ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे महाभाग ! यह आपका कथन युक्तहीहै

शिवजीने मुझे आपको देदियाहै सो मैं उनहींका कहा मांगताहूं आपको प्रणामहै आप दीजिये ॥ २८ ॥ चौवीस तत्त्वोंका यह विराट्रूपी अंडहै सो चैतन्य नहीं होता जडरूप दीखताहै ॥ २९ ॥ हे हरे ! आप शिवके अनुग्रहसे प्रादुर्भूत हुए हो, अब शंकरकी संभूतिसे इस अण्डको चैतन्य करो ॥ ३० ॥ यह कहनेपर शिवकी आज्ञामें परायण महाविष्णुजी अनन्तरूपसे उस अंडमें प्रवेश करगये ॥ ३१ ॥ वह पुरुष सहस्रों शिर सहस्रोंनेत्र सहस्रों चरणोंसे समस्त भूमिको आक्रमण कर उस अंडमें व्याप्त होगये ॥ ३२ ॥ मेरी स्तुतिसे जब विष्णुजी उस अंडमें प्रवेश करगये तब वह चौवीस तत्त्वका अण्ड चैतन्य

विराड्रूपमिदं ह्यंडं चतुर्विंशातिसंज्ञकम् ॥ न चैतन्यं भवत्यादौ जडीभूतं प्रदृश्यते ॥ २९ ॥ प्रादुर्भूतो भवानद्यशिवानुग्रहतो
हरे ॥ प्राप्तं शंकरसंभूत्या ह्यण्डं चैतन्यमावह ॥ ३० ॥ इत्युक्ते च महाविष्णुश्शंभोराज्ञापरायणः ॥ अनंतरूपमास्थाय प्रविवेश
तदंडकम् ॥ ३१ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषस्सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ स भूमिं सर्वतस्स्पृत्वा तदण्डं व्याप्तवानिति ॥ ३२ ॥ प्रविष्टे
विष्णुना तस्मिन्नण्डे सम्यक्स्तुतेन मे ॥ सचेतनमभूदण्डं चतुर्विंशातिसंज्ञकम् ॥ ३३ ॥ पातालादि समारभ्य सप्तलोकाधिपः स्व
यम् ॥ राजते स्म हरिस्तत्र वैराजः पुरुषः प्रभुः ॥ ३४ ॥ कैलासनगरं रम्यं सर्वोपरिविराजितम् ॥ निवासार्थं निजस्यैव पंचवक्रश्च
कार ह ॥ ३५ ॥ ब्रह्मांडस्य तथा नाशे वैकुण्ठस्य च तस्य च ॥ कदाचिदेव देवर्षे नाशो नास्ति तयोरिह ॥ ३६ ॥ सत्यं पदमुपाश्रित्य
स्थितोऽहं मुनिसत्तम ॥ सृष्टिकामोऽभवं तात महादेवाज्ञया ह्यहम् ॥ ३७ ॥ सिसृक्षोरथ मे प्रादुरभवत्पापसर्गकः ॥ अविद्यापंचकस्तात
बुद्धिपूर्वस्तमोपमः[1] ॥ ३८ ॥ ततः प्रसन्नचित्तोऽहमसृजं स्थावराभिधम् ॥ मुख्यसर्गं च निस्संगमध्यायं शंभुशासनात् ॥ ३९ ॥

होगया ॥ ३३ ॥ पातालसे आरंभ करके सातलोकके अधिपति हरि विराट्पुरुषरूपसे विराजमान हुए ॥ ३४ ॥ उसमें कैलासनगर सबके ऊपर विराजमान हुआ, उसको शंकरने अपने निवासके लिये किया ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्ड और वैकुण्ठका भी जिस समय अभाव होजाताहै हे देवर्षे ! उस समय भी कैलासका नाश नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं सत्यपदको प्राप्त होकर स्थित हुआहूं, हे तात ! महादेवकी आज्ञासे मैं सृष्टिकी कामनासे ॥ ३७ ॥ जब रचना करनेलगा तब प्रथम पापसृष्टि होनेलगी वह बुद्धिपूर्वक अविद्यापंचक तमप्रधान थे ॥ ३८ ॥ तब मैंने प्रसन्नचित्त हो स्थावर पदार्थोंकी रचना

---

[1] यलोपस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वेऽप्यावद्गुणः आर्षः ।

की, फिर मुख्यसर्गके निमित्त शिवजीकी आज्ञासे ध्यान करनेलगा ॥ ३९ ॥ तब उस सृष्टिको देख मैं अपने कार्यसाधनके लिये फिर रचना करने लगा तब तिरछे चलनेवाले जीव प्रगटहुए जो दुःखरूप थे वह भी कार्यसाधक न हुए ॥ ४० ॥ उस सृष्टिको असाधक मानकर जब फिर मैंने विचार किया तब ऊर्ध्वगामी सात्विक सृष्टि प्रगट हुई ॥ ४१ ॥ वह देवताओंकी सृष्टि बहुतही सुखदायक हुई, पर उसको भी असाधक मानकर मैं फिर विचार करनेलगा ॥ ४२ ॥ तब शंकरकी आज्ञासे राजससर्ग प्रगट हुआ वह मनुष्य नाम अर्वाक्स्रोत परसाधक है ॥४३॥ फिर महादेवजीकी आज्ञासे भूतादि सर्ग

तं दृष्ट्वा मे सिसृक्षोश्च ज्ञात्वा साधकमात्मनः ॥ सर्गोऽवर्तत दुःखाढ्यस्तिर्यक्स्रोता न साधकः ॥४०॥ तं चासाधकमाज्ञाय पुनश्चिंतयतश्च मे ॥ अभवत्सात्विकस्सर्ग ऊर्ध्वस्रोता इति द्रुतम् ॥ ४१ ॥ देवसर्गः प्रतिख्यातस्सत्योऽतीवसुखावहः ॥ तमप्यसाधकं मत्वाऽचिंतयं प्रभुमात्मनः ॥ ४२ ॥ प्रादुरासीत्ततस्सर्गो राजसः शंकराज्ञया ॥ अर्वाक्स्रोता इति ख्यातो मानुषः परसाधकः ॥ ४३ ॥ महादेवाज्ञया सर्गस्ततो भूतादिकोऽभवत् ॥ इति पंचविधा सृष्टिः प्रवृत्ता वै कृता मया ॥ ४४ ॥ त्रयस्सर्गाः प्रकृत्याश्च ब्रह्मणः परिकीर्तिताः ॥ तत्राद्यो महतस्सर्गो द्वितीयः सूक्ष्मभौतिकः ॥ ४५ ॥ वैकारिकस्तृतीयश्च इत्येते प्राकृतास्त्रयः ॥ एवं चाष्टविधास्सर्गाः प्राकृतैर्वैकृतैः सह ॥ ४६ ॥ कौमारो नवमः प्रोक्तः प्राकृतो वैकृतश्च सः ॥ एषामवांतरो भेदो मया वक्तुं न शक्यते ॥ ४७ ॥ अल्पत्वादुपयोगस्य वच्मि सर्गं द्विजात्मकम् ॥ कौमारः सनकादीनां यत्र सर्गो महानभूत् ॥ ४८ ॥ सनकाद्याः सुता मे हि मानसा ब्रह्मसंमिताः ॥ महावैराग्यसंपन्ना अभवन्पंच सुव्रताः ॥ ४९ ॥

प्रगट हुआ, इसप्रकार मेरी कीहुई सृष्टि पांचप्रकारकी हुई ॥४४॥ तीन सर्ग प्रकृतिके ब्रह्मद्वाराहुएहैं उनमें पहला महत्सर्ग और दूसरा सूक्ष्म भौतिक ॥ ४५॥ और तीसरा वैकारिक सर्ग सृष्टिका किया है, इसप्रकार यह आठप्रकारकी सृष्टि प्राकृतिक और विकृतिके साथ है ॥ ४६ ॥ नौवाँ कुमारसर्ग है वही प्रकृति और विकृतिवाला है और इनके अवान्तरभेद इतने हैं कि, जिनको मैं नहीं कहसकता ॥ ४७ ॥ थोडा और उपयोगी जानकर द्विजात्मक सृष्टि कहता हूं। सनकादिकोंका जहां महान् सर्ग हुआ है ॥४८॥ यह सनकादि मेरे मानसपुत्र ब्रह्मसंमित हैं यह पांचों सुव्रत महावैराग्यसे सम्पन्न हुए ॥४९॥

वे पांचों पण्डित मेरी आज्ञासेही संसारसे विमुख हुए हैं और शिवकेही ध्यानमें मनलगाकर सृष्टिके करनेमें इन्होंने मति नहीं की ॥ ५०॥
हे मुनिश्रेष्ठ ! उनका सृष्टिनिषेधका उत्तर सुनकर मोहको प्राप्त होकर मैंने बहुत क्रोध किया ॥ ५१ ॥ हे मुने ! जब मैं क्रोधसे व्याकुलहोगया तब मेरे
नेत्रोंसे जलकी बूँदैं गिरीं ॥ ५२ ॥ उसीसमय मनसे स्मरण करतेही तुरन्त आकर विष्णुजीने मुझे समझाया ॥ ५३ ॥ कि.तुमअभी शंकरकेसंतोषके
लिये घोर तप करो। जब भगवान् विष्णुने यह शिक्षा की तब हे मुनिसत्तम! मैंने घोरतप किया ॥ ५४ ॥ तबसृष्टिकेलियेतपकरतेहुए भौंहऔर घ्राणके

मयाज्ञप्ता अपि च ते संसारविमुखा बुधाः ॥ शिवध्यानैकमनसो न सृष्टौ चक्रिरे मतिम् ॥५०॥ प्रत्युत्तरं च तैर्दत्तं श्रुत्वाहं मुनिसत्तम ॥
अकार्षं क्रोधमत्युग्रं मोहमाप्तश्च नारद ॥५१॥ क्रुद्धस्य मोहितस्याथ विह्वलस्य मुने मम ॥ क्रोधेन खलु नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिंदवः ॥
॥ ५२ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र स्मृतेन मनसा मया ॥ प्रबोधितोहं त्वरितमागतेन हि विष्णुना ॥ ५३॥ तपः कुरु शिवस्येति हरिणा
शिक्षितोप्यहम् ॥ तपोऽकारि महद्धोरं परमंमुनिसत्तम ॥ ५४ ॥ तपस्यतश्च सृष्ट्यर्थं भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यतः॥ अविमुक्ताभिधाद्देशा
त्स्वकीयान्मे विशेषतः ॥ ५५ ॥ त्रिमूर्तीनां महेशस्य प्रादुरासीद्घृणानिधिः ॥ अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा पूर्णांशस्सकलेश्वरः॥५६॥
तमजं शंकरं साक्षात्तेजोराशिमुमापतिम् ॥ सवज्ञं सर्वकर्तारं नीललोहितसंज्ञकम् ॥ ५७॥ दृष्ट्वा नत्वा महाभक्त्या स्तुत्वाहं तु प्रह
र्षितः ॥ अवोचं देवदेवेशं सृज त्वं विविधाः प्रजाः ॥ ५८ ॥ श्रुत्वा मम वचस्सोथ देवदेवो महेश्वरः॥ससर्ज स्वात्मनस्तुल्यान्रुद्रो
रुद्रगणान्बहून ॥ ५९ ॥ अवोचं पुनरेवेशं महारुद्रं महेश्वरम् ॥ जन्ममृत्युभयाविष्टास्सृज देव प्रजा इति ॥६०॥

मध्यसे अविमुक्त नाम देशसे और विशेषकर मुझसे ॥ ५५ ॥ त्रिमूर्त्तिके आदिकारण कृपानिधि सकलेश्वर अर्धनारीश्वर होकर पूर्णांशसकलेश्वरप्रगट
हुए ॥ ५६ ॥ उन अजन्मा तेजोराशि साक्षात उमापति सर्वज्ञ सबकेकर्त्ता नीललोहित शंकरको देखकर॥५७॥ महाभक्तिसेस्तुति और नमस्कार कर
मैं बडा प्रसन्न हुआ, और देवदेवसे कहा आप अनेक प्रकारकी सृष्टि कीजिये ॥५८॥ तब यह देवदेव महेश्वर मेरेवचनको सुनकर अपनी समान
बहुतसे रुद्रोंकी सृष्टि करनेलगे ॥ ५९ ॥ तब महारुद्र महेश्वरसे मैंने फिर कहा हे देव! आपजन्ममृत्युके भयवाली प्रजाकी रचना कीजिये ॥६०॥

करुणानिधि महादेवजी इसप्रकारसे मेरे वचन सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ! हँसतेहुए मुझसे कहने लगे ॥ ६१ ॥ महादेवजी बोले हे ब्रह्माजी ! मैं जन्ममृत्युके भयवाली प्रजा नहीं रचूंगा, जो अशोभन कर्मवश दुःखसागरमें मग्न हो ॥ ६२ ॥ मैं तो दुःखसागरमें मग्न हुई प्रजाओंका उद्धार करता हूं मैं, उनको भली प्रकार अपनी गुरुमूर्तिसे ज्ञान देताहूं ॥६३॥ हे प्रजापते ! यह दुःखसे व्याकुल प्रजा आपही निर्माण कीजिये मेरी आज्ञासे तुम मायासे बद्ध न होंगे ॥६४॥ ब्रह्माजीबोले इसप्रकारसे वह नीललोहित भगवान् मुझसे कहकर मेरे देखते २ गणोंसहित अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहि

एवंश्रुत्वा महादेवो मद्वचः करुणानिधिः ॥ प्रहस्योवाच मां सद्यः प्रहस्य मुनिसत्तम ॥ ६१ ॥ ॥ महादेव उवाच ॥ जन्ममृत्युभयाविष्टानाह स्रक्ष्ये प्रजा विधे ॥ अशोभनाः कर्मवशा विमग्ना दुःखवारिधौ ॥ ६२ ॥ अहं दुःखोदधौ मग्ना उद्धरिष्यामि च प्रजाः ॥ सम्यक्ज्ञानप्रदानेन गुरुमूर्तिपरिग्रहः ॥ ६३ ॥ त्वमेव सृज दुःखाढ्याः प्रजास्सर्वाः प्रजापते ॥ मदाज्ञया न बद्धस्त्वं मायया संभविष्यसि ॥ ६४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा मां स भगवान्सुश्रीमान्नीललोहितः ॥ सगणः पश्यतो मे हि द्रुतमंतर्दधे हरः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपक्रमे रुद्रावताराविर्भाववर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शब्दादीनी च भूतानि पंचीकृत्वाहमात्मना ॥ तेभ्यः स्थूलं नभो वायुं वह्निं चैव जलं महीम् ॥ १ ॥ पर्वतांश्च समुद्रांश्च वृक्षादीनपि नारद ॥ कलादियुगपर्यंता न्कालानन्यानवासृजम् ॥ २ ॥ सृष्ट्यंतानपरांश्चापि नाहं तुष्टोऽभवं मुने ॥ ततो ध्यात्वा शिवं [१]साम्बं सोधकानसृजं मुने ॥३॥

ताभाषाटीकायां प्रथमे सृष्टिखण्डे रुद्रावतारवर्णनोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारद ! मैंने स्वयं शब्दादि पंचभूतोंद्वारा पंचीकरण करके उनसे स्थुल आकाश.वायु.जल.अग्नि.पृथिवी॥१॥ तथा पर्वत, समुद्र, वृक्षादि और कलादि युगपर्यन्त कालोंकी भी मैंने रचना की ॥२॥ हे मुने ! और भी सृष्टिके पदार्थोंकी रचना की परमैं संतुष्ठ नहींहुआ.तब मैंने साम्बशंकरका ध्यान करके सृष्टिके पदार्थ निर्माण किये ॥३॥

---

[१] सृष्टेरिति शेषः।

अपने नेत्रोंसे मरीचिको. हृदयसे भृगुको. शिरसे अंगिराको. व्यानसे ऋषिश्रेष्ठ पुलहको निर्माण किया ॥ ४ ॥ उदानसे पुलस्त्यको, समानसे वसिष्ठजीको, अपानसे
ऋतुको. श्रोत्रसे अत्रिको और प्राणसे दक्षजीको निर्माण किया, गोदीसे हे नारदजी ! तुमको और छायासे कर्दमजीको निर्माण किया ॥ ५ ॥ और सब साधनके
साधन धर्मको संकल्पसे निर्माण किया ॥ ६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसप्रकारसे मैं महादेवजीकी कृपासे इन सृष्टिके साधनोंको निर्माण करके कृतार्थ होगया ॥ ७ ॥
हे तात ! फिर मेरी आज्ञासे संकल्पसंभव धर्म साधकोंके साथ मनुष्यरूपसे प्रवृत्त हुआ ॥ ८ ॥ हे मुने ! फिर मैंने अपने शरीरसे सुर असुर आदि अनेक पुत्र

मरीचिं च स्वनेत्राभ्यां हृदयाद्भृगुमेव च ॥ शिरसोऽङ्गिरसं व्यानात्पुलहं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥ उदानाच्च पुलस्त्यं हि वसिष्ठञ्च
समानतः॥ क्रतुं त्वपानाच्छ्रोत्राभ्यामत्रिं दक्षं च प्राणतः ॥ असृजं त्वां तदोत्संगाच्छायायाः कर्दमं मुनिम् ॥ ५ ॥ संकल्पाद
सृजं धर्मं सर्वसाधनसाधनम् ॥ ६ ॥ एवमेतानहं सृष्ट्वा कृतार्थस्साधकोत्तमान् ॥ अभवं मुनिशार्दूल महादेवप्रसादतः ॥ ७ ॥ ततो
मदाज्ञया तात धर्मः संकल्पसंभवः ॥ मानवं रूपमापन्नस्साधकैस्तु प्रवर्तितः ॥ ८ ॥ ततोऽसृजं स्वगात्रेभ्यो विविधेभ्योऽमितान्सुतान् ॥
सुरासुरादिकांस्तेभ्यो दत्त्वा तां तां तनुं मुने ॥ ९ ॥ ततोऽहं शंकरेणाथ प्रेरितोऽतर्गतेन ह ॥ द्विधा कृत्वात्मनो देहं द्विरूपश्चाभवं मुने ॥
॥ १० ॥ अर्द्धेन नारी पुरुषश्चार्द्धेन संततो मुने ॥ स तस्यामसृजद्द्वंद्वं सर्वसाधनमुत्तमम् ॥ ११ ॥ स्वायंभुवो मनुस्तत्र पुरुषः पर
साधनम् ॥ शतरूपाभिधा नारी योगिनी सा तपस्विनी ॥ १२ ॥ सा पुनर्मनुना तेन गृहीतातीव शोभना ॥ विवाहविधिना
ताताऽसृजत्सर्गं समैथुनम् ॥ १३ ॥

बनाये और उनको उन उनके अनुरूप पुत्र दिये ॥ ९ ॥ तब अन्तर्यामी शंकरकी प्रेरणासे मैंने अपने के दो भाग करके दो रूप किये ॥ १० ॥
हे मुने ! मैं आधेसे नारी और आधेसे पुरुष हुआ, उससे सबका साधन परमोत्तम एक मिथुन बनाया ॥ ११ ॥ उसमें पुरुष परमसाधक स्वायंभुव मनु हुआ
और योगिनी तपस्विनी शतरूपा स्त्री हुई ॥ १२ ॥ उस अत्यन्त शोभावालीको मनुने ग्रहण किया हे तात ! उन्होंने विवाहकी विधिसे मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की ॥ १३ ॥

उसमें उन्होंने प्रियव्रत पुत्रको उत्पन्न किया, दूसरा पुत्र उत्तानपाद और तीन कन्या जन्मीं ॥ १४ ॥ जो आकूती देवहूती और प्रसूती नामवाली थीं रुचिके निमित्त आकूती और कर्दमके निमित्त देवहूती दी ॥ १५ ॥ उत्तानपादकी छोटी बहिन प्रसूती दक्षप्रजापतिके निमित्त दी उनमें प्रसूतीकी संतानसे चराचर जगत् व्याप्त होगया ॥ १६ ॥ आकूतीमें रुचिसे दक्षिणासहित यज्ञ उत्पन्न हुआ, यज्ञके दक्षिणामें बारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ हे मुने ! देवहूतीमें कर्दमसे बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए, दक्षके चौबीस कन्या हुईं ॥ १८ ॥ सो दक्षजीने श्रद्धाको आदि ले तेरहकन्या धर्मको दीं हे मुनीश्वर ! उन धर्मकी स्त्रियोंके नाम सुनो ॥१९॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, धृति, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शांति, सिद्धि, कीर्ति, यह तेरह धर्मकी स्त्रीहैं ॥ २० ॥ उनसे छोटी जो ग्यारह कन्या थीं वे ख्याति, सत्पथसंभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ॥ २१ ॥ सन्नति, अनुरूपा, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा । भृगु, भव, मरीचि, अंगिरा, मुनि ॥ २२ ॥ पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वशिष्ठ, वह्नि, पितर इन ग्यारहोंको यथाक्रमसे ॥ २३ ॥ यह श्रेष्ठ कन्या व्याही गईं, इनकी संतानोंसे

तस्यां तेन समुत्पन्नस्तनयश्च प्रियव्रतः ॥ तथैवोत्तानपादश्च तथा कन्यात्रयं पुनः ॥ १४ ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥
आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ १५ ॥ ददौ प्रसूतिं दक्षायोत्तानपादानुजां सुताः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवैस्सर्वं व्याप्तं
चराचरम् ॥ १६ ॥ आकूत्यां च रुचेश्चाभूद्द्वंद्वं यज्ञश्च दक्षिणा ॥ यज्ञस्य जज्ञिरे पुत्रा दक्षिणायां च द्वादश ॥ १७ ॥ देवहूत्यां
कर्दमाच्च बह्वयो जातास्सुता मुने ॥ दक्षाज्जाताश्चतस्रश्च तथा पुत्र्यश्च विंशतिः ॥ १८ ॥ धर्माय दत्ता दक्षेण श्रद्धाद्यास्तु त्रयोदश ॥
शृणु तासां च नामानि धर्मस्त्रीणां मुनीश्वर ॥ १९ ॥ श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया ॥ बुद्धि र्लज्जा वसुः शांतिः सिद्धिः
कीर्तिस्त्रयोदश ॥ २० ॥ ताभ्यां शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥ ख्यातिस्सत्पथसंभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ २१ ॥
सन्नतिश्चानुरूपा च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवांगिरा मुनिः ॥ २२ ॥ पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च
र्षिवरस्तथा ॥ अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ॥ २३ ॥ ख्यातास्ता जगृहुः कन्या भृग्वाद्यास्साधका वराः ॥ ततस्सं
पूरितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २४ ॥

चराचर सहित त्रिलोकी व्याप्त होगई ॥ २४ ॥ इसप्रकार अम्बिकापतिकी आज्ञासे कर्मानुसार अनेकप्राणी और ब्राह्मणश्रेष्ठ उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ कल्पभेदसे दक्षके साठकन्या कही गईहैं उनमें दश धर्मको सत्ताईस चन्द्रमाको ॥ २६ ॥ और विधिसे १३ कश्यपको दीहैं, हे नारद ! और चार पररूप तार्क्ष्य (गरुड) जीको दीं ॥ २७ ॥ भृगु अंगिरा और कृशाश्व को दोदो कन्या दीं उनसे चराचर बहुतसी सृष्टि हुई॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो दक्षजीने विधिपूर्वक १३ कन्या कश्यपजीको दीथीं ॥ २९ ॥ उनकी सन्तानोंसे चराचर त्रिलोकी व्याप्त होगई, स्थावर जंगम इनमें कहींभी

एवं कर्मानुरूपेण प्राणिनामंबिकापतेः ॥ आज्ञया बहवो जाताअसंख्याता द्विजर्षभाः ॥ २५ ॥ कल्पभेदेन दक्षस्य षष्टिः कन्याः प्रकीर्तिताः ॥ तासां दश च धर्माय शशिने सप्तविंशतिम् ॥ २६ ॥ विधिना दत्तवान्दक्षः कश्यपाय त्रयोदश ॥ चतस्रः पररूपाय ददौ तार्क्ष्याय नारद ॥ २७ ॥ भृग्वंगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे कन्ये च दत्तवान् ॥ ताभ्यस्तेभ्यस्तु संजाता बह्वी सृष्टिश्चराचरा ॥ २८ ॥ त्रयोदशमितास्तस्मै कश्यपाय महात्मने ॥ दत्ता दक्षेण याः कन्या विधिवन्मुनिसत्तम ॥ २९ ॥ तासां प्रसूतिभिर्व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ स्थावरं जंगमं चैव शून्यं नैव तु किंचन ॥ ३० ॥ देवाश्च ऋषयश्चैव दैत्याश्चैव प्रजज्ञिरे ॥ वृक्षाश्च पक्षिणश्चैव सर्वे पर्वतवीरुधः ॥ ३१ ॥ दक्षकन्याप्रसूतैश्च व्याप्तमेवं चराचरम् ॥ पातालतलमारभ्य सत्यलोकावधि ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मांडं सकलं व्याप्तं शून्यं नैव कदाचन ॥ एवं सृष्टिः कृता सम्यग्ब्रह्मणा शंभुशासनात् ॥ ३३ ॥ सती नाम त्रिशूलाग्रे सदा रुद्रेण रक्षिता ॥ तपोर्थं निर्मिता पूर्वं शंभुना सर्वविष्णुना ॥ ३४ ॥

शून्यता न रही ॥ ३० ॥ देवता ऋषि और दैत्य प्रगट हुए, वृक्ष पक्षी पर्वत वीरुध (छोटेवृक्ष) हुए ॥ ३१ ॥ इसप्रकार दक्षकी कन्याओंसे यह चराचर जगत व्याप्त होगया, पातालसे लेकर सत्यलोकतक ॥ ३२ ॥ सब ब्रह्माण्ड व्याप्त होगया, खालीस्थान न रहा इसप्रकार शिवजीकी आज्ञासे ब्रह्माजीने यह सृष्टि की ॥ ३३ ॥ सतीकी त्रिशूलके अग्रभागसे सदाशिवने रक्षाकी, सर्वव्यापी शिवजीने उसको तपके निमित्त ही निर्माणकियाथा ॥ ३४ ॥

वह दक्षजीसे लोकके कल्याणंके निमित्तही प्रगट हुईथी, भक्तोंके उद्धारके निमित्त उन्होंने बहुतसी लीला की ॥ ३५ ॥ जिसका वामांग वैकुण्ठहै, दक्षिणाङ्ग मैं हूं, रुद्र जिसके हृदयसेहैं, इसप्रकार शिवको त्रिविध कहतेहैं॥ ३६॥ मैं विष्णु और रुद्र यह तीनों गुणहैं परब्रह्म अविनाशी शिव स्वयं सदा निर्गुणहैं॥ ३७॥ विष्णु सत्वगुण मैं रजोगुण और रुद्र तमोगुणके अधिष्ठाताहैं लोकाचारमें इसप्रकार नाम है वास्तवमें तो ॥ ३८ ॥ अन्तरमें तम बाहरमें सत्व ऐसे विष्णु हैं, बाहरमें तम अन्तरमें सत्वगुणी रुद्रहैं, भीतरमें सत्व और तम बाहरमें रजोगुण प्रधान मैं ब्रह्माहूं ॥ ३९ ॥ रजोगुणी सुरा देवीहै, सत्वरूपा वह सतीहै,

सैव दक्षात्समुद्भूता लोककार्यार्थमेव च ॥ लीलां चकार बहुशो भक्तोद्धरणहेतवे ॥३५॥ वामांगो यस्य वैकुंठो दक्षिणांगोऽहमेव च ॥ रुद्रो हृदयजो यस्य त्रिविधस्तु शिवः स्मृतः ॥ ३६ ॥ अहं विष्णुश्च रुद्रश्च गुणास्त्रय उदाहृताः ॥ स्वयं सदा निर्गुणश्च परब्रह्माव्यय शिवः ॥ ३७ ॥ विष्णुस्सत्त्वं रजोऽहं च तमोरुद्र उदाहृतः ॥ लोकाचारत इत्येवं नामतो वस्तुतोऽन्यथा ॥३८॥ अंतस्तमो बहिस्सत्त्वो विष्णूरुद्रस्तथा मतः ॥ अंतस्सत्त्वस्तमो बाह्यो रजोहं सर्वथा मुने ॥३९॥ राजसी च सुरा देवी सत्त्वरूपा तु सा सती ॥ लक्ष्मीस्तमोमयी ज्ञेया त्रिरूपा च शिवा परा ॥ ४० ॥ एवं शिवा सती भूत्वा शंकरेण विवाहिता ॥ पितुर्यज्ञे तनुं त्यक्त्वा नादात्तां स्वपदं ययौ ॥ ४१ ॥ पुनश्च पार्वती जाता देवप्रार्थनया शिवा ॥ तपः कृत्वा सुविपुलं पुनश्शिवमुपागता ॥ ४२ ॥ तस्या नामान्यनेकानि जातानि च मुनीश्वर ॥ कालिका चंडिका भद्रा चामुंडा विजया जया ॥ ४३ ॥ जयंती भद्रकाली च दुर्गा भगवतीति च ॥ कामाख्या कामदा ह्यम्बा मृडानी सर्वमंगला ॥ ४४ ॥ नामधेयान्यनेकानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ गुणकर्मानुरूपाणि प्रायशस्तत्र पार्वती ॥ ४५ ॥

तमोमयी लक्ष्मीहै इसप्रकार परा शिवा तीनरूपवाली है ॥४०॥ इसप्रकार शिवा सती होकर शंकरके साथ ब्याहीगई, पिताके यज्ञमें शरीर छोडकर नार दसे उस अपने पदको प्राप्त हुई ॥ ४१ ॥ फिर देवताओंकी प्रार्थनासे वह शिवा पार्वती हुई, बडी तपस्या करके फिर शिवजीके समीप प्राप्त हुई ॥ ४२ ॥ हे मुनीश्वर ! शिवाके अनेक नाम हुए, कालिका, चंडिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया ॥ ४३ ॥ जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गाभगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी, सर्वमंगला ॥ ४४ ॥ यह अनेक नाम भुक्तिमुक्तिके देनेवाले हैं। गुणकर्मके अनुसार प्रायशः पार्वती ॥ ४५ ॥

गुणमयी तीनोंदेवी और गुणमय तीनों देवता मिलके सृष्टिके उत्तम कार्य करतेहैं ॥ ४६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ इसप्रकारसे तुमसे यह सृष्टिका प्रकार वर्णन किया,
शिवकी आज्ञासे मैंने सब ब्रह्माण्डकी रचना कीहै ॥ ४७ ॥परब्रह्म शिवहैं उनके तीनरूपहैं मैं विष्णु और रुद्र यह तीनों गुण भेदसे हैं ॥ ४८ ॥
निर्गुण स्वगुण स्वतंत्र परमात्मा शिव शिवाके सहित मनोहर शिवलोकमें रमण करतेहैं ॥ ४९ ॥ उनके पूर्णावतार रुद्र साक्षत् शिवहैं, उन पंचमुखी देवने
कैलासमें अपना मनोहर भवन बनाया है ब्रह्माण्डके नाश होनेपर भी जिसका नाश नहीं होता ॥५०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहिताभाषायां प्रथमसृष्टिखंडे

गुणमय्यस्तथा देव्यो देवा गुणमयास्त्रयः ॥ मिलित्वा विविधं सृष्टेश्चक्रुस्ते कार्यमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ एवं सृष्टिप्रकारस्ते वर्णितो मुनि
सत्तम ॥ शिवाज्ञया विरचितो ब्रह्मांडस्य मयाखिलः ॥ ४७ ॥ परं ब्रह्म शिवः प्रोक्तस्तस्य रूपास्त्रयः सुराः ॥ अहं विष्णुश्च रुद्रश्च
गुणभेदानुरूपतः ॥ ४८ ॥ शिवया रमते स्वैरं शिवलोके मनोरमे ॥ स्वतंत्रः परमात्मा हि निर्गुणस्सगुणोऽपि वै ॥ ४९ ॥ तस्य पूर्णा
वतारो हि रुद्रस्साक्षाच्छिवः स्मृतः ॥ कैलासे भवनं रम्यं पंचवक्त्रश्चकार ह ॥ ब्रह्मांडस्य तथा नाशे तस्य नाशोस्ति वै न हि ॥
॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने ब्रह्मनारदसंवादे सृष्टिवर्णनो नाम षोडशोऽ
ध्यायः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणस्स तु नारदः ॥ पुनः पप्रच्छ तं नत्वा विनयेन मुनीश्वराः ॥ १ ॥ नारद
उवाच ॥ कदा गतो हि कैलासं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ क्व वा सखित्वं तस्यासीत्कुबेरेण महात्मना ॥ २ ॥ किं चकार हरस्तत्र
परिपूर्णः शिवाकृतिः ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व परं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः ॥
यथा जगाम कैलासं सखित्वं धनदस्य च ॥ ४ ॥

सृष्टिवर्णनो नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥ सूतजी बोले हे मुनियो ! ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर वह नारदजी फिर नमस्कार कर उनसे पूछने लगे ॥ १ ॥
नारदजी बोले भक्तवत्सल शंकर किस समय कैलासपर गये और महात्मा कुबेरके साथ उनकी मित्रता कहां हुई ॥ २ ॥ और परिपूर्ण शिवाकृति हरिने
वहां क्या किया, यह सब कुछ मुझसे कहिये इसबातका मुझे परमकौतूहल है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले सुनो नारदजी शंकरका चरित्र कहता हूं,

इसीप्रकार कुबेरसे मित्रता हुई ॥४॥ काम्पिल्यनगरमें एक सोमयाजीके कुलमें उत्पन्न यज्ञविद्यामें विशारद यज्ञदत्तनामा दीक्षित था ॥५॥ वह ब्राह्मण वेद वेदांगका जाननेवाला वेदान्तादिमें चतुर राजमान्य बोलनेमें चतुर कीर्त्तिभाजन था॥६॥अग्निकी शुश्रूषामें रत वेदके पढनेमें तत्पर सुन्दर रमणीयअंग चन्द्रबिम्बकी समान आकृतिवाला था ॥७॥ उस यज्ञदत्तदीक्षितका गुणनिधिनामक पुत्र था. आठही वर्षमें यज्ञोपवीत होकर जिसको पढानेको भेजा था, पर पिताके अनजानमें वह द्यूत खेलने लगा ॥८॥ माताके पाससे बहुतसा धन ला लाकर अभिमानसे ज्वारियोंके साथ हो मित्रता करने लगा ॥९॥ क्रमसे ब्राह्मणोंके

आसीत्कांपिल्यनगरे सोमयाजिकुलोद्भवः ॥ दीक्षितो यज्ञदत्ताख्यो यज्ञविद्याविशारदः ॥५॥ वेदवेदांगवित्प्राज्ञो वेदान्तादिषु दक्षिणः ॥
राजमान्योऽथ बहुधा वदान्यः कीर्तिभाजनः ॥६॥ अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः ॥ सुन्दरो रमणीयांगश्चन्द्रबिंबसमाकृतिः ॥७॥
आसीद्गुणनिधिर्नाम दीक्षितस्यास्य वै सुतः॥ कृतोपनयनस्सोष्टौ विद्या जग्राह भूरिशः ॥ अथ पित्रानभिज्ञातो द्यूतकर्मरतोऽभवत् ॥८॥
आदायादाय बहुशो धनं मातुस्सकाशतः ॥ समदाद्द्यूतकारेभ्यो मैत्रीं तैश्च चकार सः ॥९॥ संत्यक्तब्राह्मणाचारः संध्यास्नानपराङ्मुखः॥
निंदको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिंदकः॥१०॥ स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक् ॥ नटपाखंडभाण्डैस्तु बद्धप्रेमपरंपरः
॥११॥ प्रेरितोऽपि जनन्या स न ययौ पितुरंतिकम् ॥ गृहकार्यांतरव्याप्तो दीक्षितो दीक्षितायिनीम् ॥ १२ ॥ यदा यदैव तां पृच्छेदये
गुणनिधिस्सुतः॥ न दृश्यते मया गेहे कल्याणि विदधाति किम् ॥ १३॥ तदा तदेति सा ब्रूयादिदानीं स बहिर्गतः ॥ स्नात्वा समर्च्य
वै देवानेतावंतम नेहसम् ॥ १४ ॥ अधीत्याध्ययनार्थं स द्वित्रैर्मित्रैस्समं ययौ ॥ एकपुत्रेति तन्माता प्रतारयति दीक्षितम् ॥ १५ ॥

आचार छोड दिये सन्ध्या स्नानसे भी पराङ्मुख हुआ वेदशास्त्र और देवब्राह्मणोंकी निन्दा करनेलगा ॥ १० ॥ स्मृति आचारसे विहीन होकर गीतबाजेके खेलमें बनगया, नट पाखण्डी और भांडोंके साथ प्रेम करने लगा ॥ ११ ॥ माताके कहनेसे भी वह पिताके समीप न जाता और वह पिता कार्य तथा दीक्षामें लगाकर रहता ॥ १२ ॥ और जब कभी वह अपनी स्त्रीसे पूछता हे कल्याणि इस समय गुणनिधि पुत्र हमारा घरमें नहीं है क्या करता है कहो तो ॥ १३ ॥ तब वह कहती अभी तो बाहर गया है अभी स्नानकर वह पापरहित देवपूजन करता है ॥ १४ ॥ कभी कहती

पढनेके निमित्त वह दो तीन मित्रोंके साथ गया है एकही पुत्र होनेके कारण माता दीक्षितको प्रतारणा करदेती ॥ १५ ॥ इससे दीक्षितने उस पुत्रके कर्म और वृत्तको कुछ भी न जाना, फिर उसने सोलहवें वर्षमें इसका केशान्त कर्म किया ॥ १६ ॥ पीछे दीक्षित यज्ञदत्तने उस पुत्रका गृह्योक्त विधानसे विवाह कराया ॥ १७ ॥ हे नारद प्रतिदिन उसकी माता उस गुणनिधिको एकान्तमें बैठाकर बहुत समझाती और प्यारसे कहती ॥ १८ ॥ हे पुत्र तुम्हारे महात्मा पिता बडे क्रोधी हैं, यदि वह तुम्हारा और मेरा चारित्र जानलेंगे तो तुझे और मुझे मारैंगे ॥ १९ ॥ मैं तेरे पिताके आगे

न तत्कर्म च तद्वृत्तंकिंचिद्वेत्ति स दीक्षितः ॥ सर्वं केशांतकर्मास्य चक्रे वर्षेऽथ षोडशे ॥ १६ ॥ अथो स दीक्षितो यज्ञदत्तः पुत्रस्य तस्य च ॥ गृह्योक्तेन विधानेन पाणिग्राहमकारयत् ॥ १७ ॥ प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिं मृदु ॥ शास्ति स्नेहार्द्रहृदया ह्युपवेश्य स्म नारद ॥ १८ ॥ क्रोधनस्तेस्ति तनय स महात्मा पितेत्यलम् ॥ यदि ज्ञास्याति ते वृत्तं त्वां च मां ताडयिष्यति ॥ १९ ॥ आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे कुचेष्टितम् ॥ लोकमान्योऽस्ति ते तातस्सदाचारैर्नवैधनैः ॥ २० ॥ ब्राह्मणानां धनं तात सद्विद्या साधुसंगमः ॥ किमर्थं न करोषि त्वं सुरुचिं प्रीतमानसः ॥ २१ ॥ सच्छ्रोत्रियास्तेऽनूचाना दीक्षितास्सोमयाजिनः ॥ इति रूढिमिह प्राप्तास्तव पूर्वपितामहाः ॥ २२ ॥ त्यक्त्वा दुर्वृत्तसंसर्गं साधुसंगरतो भव ॥ सद्विद्यासु मनो धेहि ब्राह्मणाचारमाचर ॥ २३ ॥ तातानुरूपो रूपेण यशसा कुलशीलतः ॥ ततो न त्रपसे किन्नस्त्यज दुर्वृत्ततां स्वकाम् ॥ २४ ॥

नित्य तेरी कुचेष्टाको छिपाये रहतीहूं सदाचारसेही तुम्हारे पिताकी प्रतिष्ठा है धनसे नहीं है ॥ २० ॥ हे तात ! ब्राह्मणोंका धन सद्विद्या और साधुओंका समागम है तू इसमें प्रसन्नतासे अपना मन क्यों नहीं लगाता ॥ २१ ॥ सोमयाजी अच्छे श्रोत्रिय यथायोग्य कर्म करनेवाले दीक्षित हैं ऐसी विख्याती तुम्हारे दादाकी चली आती है ॥२२॥ तुम दुर्वृत्तका संसर्ग छोडकर साधुओंके संगमें प्रीति करो अच्छी विद्यामें मन लगाओ ब्राह्मणोंके आचार वह ॥ २३ ॥ पिताके समान यश कुलशीलसे चलो उनके से कार्य करके तू लज्जित क्यों नहीं होता, यह अपनी बुरी चाल छोड ॥ २४ ॥

उन्नीस वर्षका तू है और सोलहवर्षकी यह तेरी बहू है इस सद्वृत्तवालीसे युक्त होकर पिताकी भक्तिमें युक्त हो ॥२५॥ गुण और शीलसे श्वशुर भी तुम्हारा मान्य है, तो भी तू लज्जित नहीं होता अरे इस दुर्वृत्तताको त्यागे कर ॥ २६ ॥ हे पुत्र तेरे मामा भी विद्या कुल शीलमें श्रेष्ठ हैं, दोनों वंशमें शुद्ध हो कर तू उनसे भी नहीं डरता ॥ २७ ॥ इन अपने स्थानमें स्थित ब्राह्मण कुमारोंको तो देख और इन विनयपरायण घरके शिष्योंको तो देख ॥ २८ ॥ हे पुत्र जब राजा इस तेरी कुचेष्टाको सुनैगा, तो तेरे पितासे श्रद्धा हटाकर आजीविका नष्ट कर देगा ॥ २९ ॥ अभी तो लोग तेरी बालचेष्टा कहदेतेहैं,

ऊनविंशतिकोऽसि त्वमेषा षोडशवार्षिकी ॥ एतां संवृणु सद्वृत्तां पितृभक्तियुतो भव ॥ २५ ॥ श्वशुरोऽपि हि ते मान्यस्सर्वत्र गुणशीलतः ॥ ततो न त्रपसे किन्नस्त्यज दुर्वृत्ततां सुत ॥ २६ ॥ मातुलास्तेऽतुलाः पुत्र विद्याशीलकुलादिभिः ॥ तेभ्योऽपि न बिभेषि त्वं शुद्धोऽस्युभयवंशतः ॥ २७ ॥ पश्यैतान्प्रतिवेश्मस्थान्ब्राह्मणानां कुमारकान् ॥ गृहेऽपि शिष्यान्पश्यैतान्पितुस्ते विनयोचितान् ॥ २८ ॥ राजापि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं सुत ॥ श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपं करिष्यति ॥ २९ ॥ बालचेष्टितमेवैतद्वदंत्यद्यापि ते जनाः ॥ अनंतरं हरिष्यंति युक्तां दीक्षिततामिह ॥ ३० ॥ सर्वेप्याक्षारयिष्यंति तव तातं च मामपि ॥ मातुश्चरित्रं तनयो धत्ते दुर्भाषणैरिति ॥ ३१ ॥ पितापि ते न पापीयाञ्छ्रुतिस्मृतिपथानुगः ॥ तदंघ्रिलीनमनसो मम साक्षी महेश्वरः ॥ ३२ ॥ न चर्तुस्नातयापीह मुखं दुष्टस्य वीक्षितम् ॥ अहो बलीयान्स विधिर्येन जातो भवानिति ॥ ३३ ॥ प्रतिक्षणं जनन्येति शिक्ष्यमाणोतिदुर्मतिः ॥ न तत्याज च तद्धर्मं दुर्बोधो व्यसनी यतः ॥ ३४ ॥

अनन्तर वे दीक्षितपना हरण करलेंगे ॥ ३० ॥ पीछे सबही तेरे पिताको और मुझे दुर्नाम धरैंगे, कि यह बालक माताके चरित्रपर गया है ॥ ३१ ॥ कारण कि तेरा पिता तो पापी नहीं है श्रुतिस्मृतिका अनुगामी है, मैं भी उनके चरणोंमें मन लगानेवालीहूं, इस बातके साक्षी महेश्वर हैं ॥ ३२ ॥ ऋतुस्नानके समय मैंने तो किसी दुष्टका मुखभी नहीं देखा, अहो विधाताकी गति बडी बलवान है, जिससे तुझ सरीखा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ इसप्रकार प्रतिक्षण माता उसको शिक्षा देती, पर उसने उस कर्मको न छोडा, कारण कि वह निर्बोध उसके व्यसनमें रत होगया था ॥ ३४ ॥

मृगया, मद्य, चुगली, असत्यभाषण, चोरी, पाशक्रीडा, वारांगना इनमें पडकर कौन खंडित नहीं हुआहै ॥ ३५॥ वह दुर्मति जो जो घरमें देखे वह वह लेजाकर वस्त्र पेटी आदि सब ज्वारियोंको दे आवै ॥ ३६॥ एकसमय उसने रत्नमयी अपने पिताके हाथकी अँगूठी जो घरमें धरी थी लेकर ज्वारीको दे दी ॥ ३७॥ संयोगवश दीक्षितने उसको ज्वारीके हाथमें देखा और उससे पूछा कि यह अँगूठी तैने कहांसे पाई ॥ ३८ ॥ जब उससे वारंवार पूछा तब उसने कहा हे ब्राह्मण ! मेरेपर आक्षेप क्यों करतेहो क्या मैंने चोरीसे यह ॥ ३९ ॥ अँगूठी ली है रुपया देकर तुम्हारे पुत्रसे मोल ली है अपनी माताकी साडी

मृगयामद्यपैशुन्यानृतचौर्यदुरोदरैः ॥ स वारदारैर्व्यसनैरेभिः कोऽत्र न खंडितः ॥ ३५ ॥ यद्यन्मध्यगृहे पश्येत्तत्तन्नीत्वा सुदुर्मतिः ॥ अर्पयेद्द्यूतकाराणां सकुप्यं वसनादिकम् ॥ ३६ ॥ न्यस्तां रत्नमयीं गेहे करस्य पितुरूर्मिकाम् ॥ चोरयित्वैकदादाय दुरोदरकरेऽर्पयत् ॥ ३७ ॥ दीक्षितेन परिज्ञातो दैवाद्द्यूतकृतः करे ॥ उवाच दीक्षितस्तं च कुतो लब्धा त्वयोर्मिका ॥ ३८ ॥ पृष्टस्तेनाथ निर्बंधादसकृत्तमुवाच सः ॥ मामाक्षिपसि विप्रोच्चैः किं मया चौर्यकर्मणा ॥ ३९ ॥ लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैव समर्पिता ॥ मम मातुर्हि पूर्वेद्युर्जित्वा नीतो हि शाटकः ॥ ४० ॥ न केवलं ममैवैतदंगुलीयं समर्पितम् ॥ अन्येषां द्यूतकर्तॄणां भूरि तेनार्पितं वसु ॥ ४१ ॥ रत्नकुप्यदुकूलानि शृंगारप्रभृतीनि च ॥ भाजनानि विचित्राणि कांस्यताम्रमयानि च ॥ ४२ ॥ नग्नीकृत्य प्रतिदिनं बध्यते द्यूतकारिभिः ॥ न तेन सदृशः कश्चिदाक्षिको भूमिमंडले ॥ ४३ ॥ अद्यावधि त्वया विप्र दुरोदरशिरोमणिः ॥ कथं नाज्ञायि तनयोऽविनयानयकोविदः ॥ ४४ ॥

पूर्वदिन जीतकरके गया था, ॥ ४० ॥ केवल उसने मुझेही यह अँगूठी नहीं दी है और ज्वारियोंको उसने बडा धन समर्पण किया है ॥ ४१ ॥ रत्नोंकी पेटी, दुकूल वस्त्र, झारी आदि विचित्र कांसी तांबेके पात्र दियेहैं ॥ ४२॥ ज्वारी उसको प्रतिदिन नंगा करके बांध लेते हैं, तब वह धन देता है, उसकी समान तो अब पृथिवीमें कोई द्यूतकारी नहीं है ॥ ४३ ॥ हे दीक्षितजी ! अबतक आपने द्यूतकारियोंमें शिरोमणि अविनय अनीतिमें पंडित अपने पुत्रको क्यों न

जाना ॥४४॥ यह सुनकर लज्जासे दीक्षितका शिर नीचा होगया, और वस्त्रसे मुख ढककर अपने घरमें आया ॥४५॥ उसकी महापतिव्रता स्त्री थी उससे श्रौतकर्ममें परायण दीक्षित यज्ञदत्त कहने लगा ॥ ४६ ॥ यज्ञदत्त बोला हे दीक्षितायनि ! हे धूर्ते ! वह गुणनिधि पुत्र कहां है, अच्छा इससे क्या है कहीं हो वह मेरी अँगूठी कहां है ॥ ४७ ॥ जो उबटना करतेसमय तैंने मेरे हाथसे लेली थी, वह रत्नमयी मेरी अँगूठी लाकर शीघ्र मुझे दे ॥ ४८ ॥ यह वचन सुनतेही दीक्षितायिनी डरगई और बोली इससमय मध्याह्न, स्नानकी क्रियामें मैं ॥ ४९ ॥ व्यग्र हूं, हे देव ! इससमय पूजाके निमित्त सामग्री एकत्र

इति श्रुत्वा त्रपाभारविनम्रतरकंधरः ॥ प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशन्निजमन्दिरम् ॥ ४५ ॥ महापतिव्रतामस्य पत्नीं प्रोवाच तामथ ॥ स दीक्षितो यज्ञदत्तः श्रौतकर्मपरायणः ॥ ४६ ॥ यज्ञदत्त उवाच ॥ दीक्षितायनि कुत्रास्ति धूर्ते गुणनिधिस्सुतः ॥ अथ तिष्ठतु किं तेन क्व सा मम शुभोर्मिका ॥ ४७ ॥ अंगोद्वर्तनकाले या त्वया मेऽङ्गुलितो हृता ॥ सा त्वं रत्नमयीं शीघ्रं तामानीय प्रयच्छ मे ॥ ४८ ॥ इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं भीता सा दीक्षितायनी ॥ प्रोवाच स्नानमध्याह्नीं क्रियां निष्पादयंत्यथ ॥ ४९ ॥ व्यग्रास्मि देवपूजार्थमुपहारादिकर्मणि ॥ समयो ऽयमतिक्रामेदतिथीनां प्रियातिथे ॥ ५० ॥ इदानीमेव पक्वान्नकरणव्यग्रया मया ॥ स्थापिता भाजने क्वापि विस्मृतेति न वेद्म्यहम् ॥ ५१ ॥ दीक्षित उवाच ॥ हं हेऽसत्पुत्रजननि नित्यं सत्यप्रभाषिणि ॥ यदायदा त्वां संपृच्छे तनयः क्व गतस्त्विति ॥ ५२ ॥ तदातदेति त्वं ब्रूयाद्धयथेदानीं स निर्गतः ॥ अधीत्याध्ययनार्थं च द्वित्रैर्मित्रैस्सयुग्बहिः ॥ ५३ ॥ कुतस्ते शाटकः पत्नि मांजिष्ठो यो मयार्पितः ॥ लंबते योऽनिशं धाम्नि तथ्यं ब्रूहि भयं त्यज ॥ ५४ ॥

करतीहूं हे प्रियातिथि ! अतिथियोंके आगमनका यह समय बीता जाता है ॥ ५० ॥ मैं इससमय पक्वान्न बनानेमें व्यग्र होरहीहूं, मैं उसे किसी वर्तनमें रखकर भूलगईहूं, अभीतक मुझे याद नहीं आई है ॥ ५१ ॥ दीक्षितने कहा ठीक अरे असत्पुत्रकी उत्पन्न करनेवाली सत्य बोलनेवाली जब जब तुझसे पूछा कि पुत्र कहां गया है ॥ ५२ ॥ तब तब तैंने कहा कि वह अभी दो तीन मित्रोंके साथ पढनेको बाहर गया है ॥ ५३ ॥ हे पत्नि ! वह मजीठ

रंगकी साडी जो मैंन तुझे दी थी सो कहां है, जो रोज यहां टँगी रहती थी तू भयको छोडकर सत्य कह ॥ ५४ ॥ इससमय वह मणिजटित कारी
भी दिखांई नहीं देती, और रेशमकी जो त्रिपटी (वस्त्रविशेष) मैंने तुझे दी थी ॥ ५५ ॥ हे दीक्षितायिणी ! वह दक्षिणदेशका कांस्यपात्र गौडी ताम्रघटी
कहां है ? और हाथीदांतकी बनीहुई वह सुखकौतुकमंचिका [झूलेदारपलगीरी] कहां है ॥ ५६ ॥ और वह पर्वतदेशकी बनीहुई चन्द्रकान्तमणिकी
समान शोभायमान दीपक हाथमें लिये शृंगारवाली पुतलियें कहां है ॥ ५७ ॥ हे कुलोत्पन्ने ! बहुतकहनेसे क्या है और तेरे ऊपर क्रोधकरना वृथा है, मैं

सांप्रतं नेक्ष्यते सोऽपि भृंगारोमणिमंडितः ॥ पट्टसूत्रमयी सापि त्रिपटी या मयार्पिता ॥ ५५ ॥ क्व दाक्षिणात्यं तत्कांस्यं गौडी ताम्र
घटी क्व सा ॥ नागदंतमयीसा क्व सुखकौतुकमंचिका ॥ ५६ ॥ क्व सा पर्वतदेशीया चन्द्रकांतिरिवाद्भुता ॥ दीपकव्यग्रहस्ताग्र्यालंकृता
शालभञ्जिका ॥ ५७ ॥ किं बहूक्तेन कुलजे तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा ॥ तदाभ्यवहरिष्येहमुपयंस्याम्यहं यदा ॥ ५८ ॥ अनपत्योऽस्मि
तेनाहं दुष्टेन कुलदूषिणा ॥ उत्तिष्ठानय पाथस्त्वं तस्मै दद्यास्तिलांजलिम् ॥ ५९ ॥ अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात्कुलपांसनात् ॥ त्यजे
देकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी ॥६०॥ स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेवाह्नि कस्यचित् ॥ श्रोत्रियस्य सुतां प्राप्य पाणिं जग्राह
दीक्षितः ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने गुणनिधिचरित्रवर्णनोनाम सप्तदशो
ऽध्यायः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा तथा स वृत्तांतं प्राक्तनं स्वं विनिंद्य च ॥ कांचिद्दिशं समालोक्य निर्ययौ दीक्षितांगजः ॥१॥

अब तबही भोजन करूंगा जब मैं दूसरा विवाह कर लूंगा ॥ ५८ ॥ उस कुलको कलंक लगानेवाले दुष्टसे तो मैं संतानरहितही अच्छा, जल्दी उठ पात्र
ला कि मैं उसको तिलांजलि दूं ॥ ५९ ॥ कुपुत्र कलंकीपुत्रसे मनुष्यका संतानहीन रहनाही अच्छा है । कुलकेलिये एकको त्यागदेना श्रेष्ठ है यह सनातनी
रीति है ॥ ६० ॥ यह कह दीक्षितने स्नानकर नित्यविधि करके उसी दिन किसी श्रोत्रिय कन्यासे अपना पाणिग्रहण करलिया ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीशिव
महापुराणे द्वि०रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्रथमसृष्टिखंडे गुणनिधिचरित्रवर्णनोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वृत्तान्त सुनकर अपने

भाग्यकी निन्दा करता हुआ वह दीक्षितका पुत्र किसी ओरको चलदिया ॥ १ ॥ वह यज्ञदत्तका पुत्र कुछ दूर जाकर उत्साहरहित होकर एकस्थानपर स्थितहुआ ॥ २ ॥ और बड़ी चिन्ताको प्राप्त होकर बोला कहांजाऊं, क्याकरूं, न मैंने विद्यापढीहै और न मैं धनीहूं ॥ ३ ॥ जिसके पास धनहै वही। देशान्तरमें सुखपाताहै, धन होनेसे चोरका भय होताहै वह विघ्नभी सब ओरसे प्राप्तहै ॥ ४ ॥ याजकके कुलमें जन्म लेकर मुझै यह व्यसन क्यों लगा, अहो प्रारब्ध बलवानहै, होनहार कर्मका यह फलहै ॥ ५ ॥ मैं तो भिक्षामांगनाभी नहीं जानता, न मेरा कोई पहचानवालाहै,न मेरे पास कुछ धन है फिर अब

कियच्चिरं ततो गत्वा यज्ञदत्तात्मजस्स हि ॥ दुष्टो गुणनिधिस्तस्थौ गतोत्साहो विसर्जितः ॥२॥ चिंतामवाप महतीं क्क यामि करवाणि किम् ॥ नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न चैवातिधनोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥ देशांतरे यस्य धनं स सद्यस्सुखमेधते ॥ भयमस्ति धने चौरात्स विघ्नस्सर्वतोभवः ॥ ४ ॥ याजकस्य कुले जन्म कथं मे व्यसनं महत् ॥ अहो बलीयान्हि विधिर्भावि कर्मानुसंधयेत् ॥ ५ ॥ भिक्षितुन्नाधिगच्छामि न मे परिचितिः क्कचित् ॥ न च पार्श्वे धनं किञ्चित्किमत्र शरणं भवेत् ॥ ६ ॥ सदानभ्युदिते भानौ प्रसूर्मे मिष्टभोजनम् ॥ दद्यादद्यात्र कं याचे न चेह जननी मम ॥७॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति चिंतयतस्तस्य बहुशस्तत्र नारद ॥ अतिदीनं तरोर्मूले भानुरस्ताचलं गतः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नेव समये कश्चिन्माहेश्वरो नरः ॥ सहोपहारानादाय नगराद्बहिरभ्यगात् ॥ ९ ॥ नानाविधान्महादिव्यान्स्वजनैः परिवारितः ॥ समभ्यर्चितुमीशानं शिवरात्रावुपोषितः ॥ १० ॥ शिवालयं प्रविश्याथ स भक्तश्शिवसक्तधीः ॥ यथोचितं सुचित्तेन पूजयामास शंकरम् ॥ ११ ॥

किसके पास जाऊं ॥ ६ ॥ सूर्य उदय होतेही सदा मेरी माता मुझको मिष्टान्न देदेतीथी; अब किससे याचना करूं वह माता तो यहां नहीं है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी! जब इसप्रकार वह बहुत चिन्तातुर हुआ और अति दीन होगया तब वृक्षके नीचेही सूर्यभगवान् अस्ताचलको प्राप्त होगये ॥ ८ ॥ इसीसमय कोई शंकरका पूजन करनेवाला पूजनकी सामग्री लिये नगरसे बाहर आया ॥ ९ ॥ वह अनेकप्रकारके दिव्य वस्त्र धारण किये स्वजनोंके संग शिवरात्रिके व्रतमें शिवके पूजनको आया ॥ १० ॥ शिवालयमें प्रवेश करके उस बुद्धिमान् शिवके भक्तने प्रेमभक्तिसे शिवजीकी पूजा की ॥ ११ ॥

पक्वान्नकी गंध सूँघकर यज्ञदत्तके पुत्रने पिता माताके त्यागसे व्याकुल हो भूँखसे उसका पीछा किया ॥ १२ ॥ कि जो कुछ इसने शिवजीपर अन्न चढायाहै
मैं उस सबको लेलूंगा, यह शिवके भक्त जभी सोजायेंगे तबही सब लेलूंगा ॥ १३ ॥ ऐसी आशामें वह शिवजीके मंदिरके द्वारे बैठ रहा, उस भक्तकी
कीहुई महापूजाको देखनेलगा ॥ १४ ॥ जब नृत्य गीतादिकरके क्षणमात्रको भक्तजन सोगये, तब उसने नैवेद्य लेनेको मंदिरमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥
दीपकको मन्द देखकर पक्कान्न देखनेकेलिये उसने अपने वस्त्रसे बत्तीबना कर दीपकको प्रकाशित किया ॥ १६ ॥ तब यज्ञदत्तके पुत्रने आदरसे शिवके

पक्वान्नगंधमाघ्राय यज्ञदत्तात्मजो द्विजः ॥ पितृत्यक्तो मातृहीनः क्षुधितः स तमन्वगात् ॥ १२ ॥ इदमन्नं मया ग्राह्यं शिवायोपकृतं
निशि ॥ सुप्ते शैवजने दैवात्सर्वस्मिन्विविधं महत् ॥ १३ ॥ इत्याशामवलम्ब्याथ द्वारिशंभोरुपाविशत् ॥ ददर्श च महापूजां तेन
भक्तेन निर्मिताम् ॥ १४ ॥ विधाय नृत्यगीतादि भक्तास्सुप्ताः क्षणे यदा ॥ नैवेद्यं स तदादातुं भर्गागारं विवेश ह ॥ १५ ॥ दीपं
मंदप्रभं दृष्ट्वा पक्वान्नवीक्षणाय सः ॥ निजचैलांचलाद्वर्तिं कृत्वा दीपं प्रकाश्य च ॥ १६ ॥ यज्ञदत्तात्मजस्सोऽथ शिवनैवेद्यमादरात् ॥
जग्राह सहसा प्रीत्या पक्वान्नं बहुशस्ततः ॥ १७ ॥ ततः पक्वान्नमादाय त्वरितं गच्छतो बहिः ॥ तस्य पादतलाघातात्प्रसुप्तः
कोप्यबुध्यत ॥ १८ ॥ कोऽयं कोऽयं त्वरापन्नो गृह्यतांगृह्यतामसौ ॥ इति चुक्रोश स जनो गिरा भयमहोच्चया ॥ १९ ॥ याव
द्भयात्समागत्य तावत्स पुररक्षकैः ॥ पलायमानो निहतः क्षणादंधत्वमागतः ॥ २० ॥ अभक्षयच्च नैवेद्यं यज्ञदत्तात्मजो मुने ॥
शिवानुग्रहतो नूनं भाविपुण्यबलान्न सः ॥ २१ ॥

नैवेद्यको प्रेमसे पक्वान्नके सहित ग्रहण किया ॥ १७ ॥ जबही पक्वान्न लेकर वह शीघ्रतासे बाहर चला उसके चरण प्रहारके आघातसे कोई पुरुष उससमय
जागउठा ॥ १८ ॥ यह कौन है कौन है पकडो पकडो ! ऐसा वह भयकी वाणीसे चिल्लाने लगा ॥ १९ ॥ जबतक वह भयसे भागा तबतक पुरके रक्षकोंने
उसे मारा और वह क्षणमें अंधा होगया ॥ २० ॥ हे मुने ! उस यज्ञदत्तके पुत्रने नैवेद्य भक्षण नहीं किया था यह भावी पुण्यका बल था और केवल शिवका

अनुग्रह था ॥ २१ ॥ इतनेहीमें [illegible]र हाथमें लिये संयमनीपुरीके यमदूत विकटभट उसे लेनेको आये ॥ २२ ॥ इतनेहीमें किंकणीजालसे मंडित दिव्य विमान लिये शूलधारी शिवजीके प[illegible] आनकर प्राप्तहुए ॥ २३ ॥ शिवगण बोले हे यमराजके गणों ! इस परमधर्मात्माको छोड दो, यह ब्राह्मण दंडके योग्य नहीं है, इसके सब पाप नष्ट होगयेहैं ॥ २४ ॥ यह उनके वचन सुन यमराजके गण बहुत चकित होकर महादेवके गणोंसे बोले ॥ २५ ॥ शिवजीके गणोंको देखकर भीतहुए यमके गणोंने यह कहा कि, हे गणों ! यह ब्राह्मण तो बडा दुर्वृत्त है ॥ २६ ॥ यमगण बोले इसने कुलाचारको त्यागन कर

अथ बद्धस्समागत्य पाशमुद्गरपाणिभिः ॥ निनीषुभिः संयमनीं याम्यैस्स विकटैर्भटैः ॥२२॥ तावत्पारिषदाः प्राप्ताः किंकिणीजालमालिनः ॥ दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः ॥ २३ ॥ शिवगणा ऊचुः ॥ ॥ मुंचतैनं द्विजं याम्या गणाः परमधार्मिकम् ॥ दण्डयोग्यो न विप्रोऽसौ दग्धसर्वाघसंचयः ॥ २४ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्ते हि यमराजगणास्ततः ॥ महादेवगणानाहुर्बभूवुश्चकिता भृशम् ॥ २५ ॥ शंभोर्गणानथालोक्य भीतैस्तैर्यमकिंकरैः ॥ अवादि प्रणतैरित्थं दुर्वृत्तोऽयं गणा द्विजः ॥ २६ ॥ ॥ यमगणा ऊचुः ॥ कुलाचारं प्रतीर्य्यैष पित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः ॥ सत्यशौचपरिभ्रष्टस्संध्यास्नानविवर्जितः ॥ २७ ॥ आस्तां दूरेस्य कर्मान्यच्छिवनिर्माल्यलंघकः ॥ प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योऽयं भवादृशाम् ॥२८॥ शिवनिर्माल्यभोक्तारश्शिवनिर्म्माल्यलंघकाः ॥ शिवनिर्माल्यदातारः स्पर्शस्तेषां ह्यपुण्यकृत् ॥ २९ ॥ विषमालोक्य वा पेयं श्रेयो वा स्पर्शनं परम् ॥ सेवितव्यं शिवस्वं न प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ३० ॥ यूयं प्रमाणं धर्मेषु यथा न च तथा वयम् ॥ अस्ति चेद्धर्मलेशोस्य गणास्तं शृणुमो वयम् ॥ ३१ ॥

दिया, पिता माताके वचन न माने, सत्य शौच और संध्या स्नानसे भी यह भ्रष्ट है ॥ २७ ॥ भला और कर्म तो अलग रहे इसने शिवनिर्माल्यको उल्लंघन किया है, यह आप प्रत्यक्षसे देखो बल्कि यह आपसरीखोंको स्पर्शके योग्य भी नहीं है ॥ २८ ॥ शिवनिर्माल्यके खानेवाले, शिवनिर्माल्यके उल्लंघन करनेवाले, शिवनिर्माल्यके देनेवाले इनका स्पर्श अपुण्यका करनेवाला है ॥ २९ ॥ विषको देखकर पीना चाहिये वा उसका स्पर्श करना चाहिये, कण्ठमें प्राण आजानेपर शिवका धन स्वयं सेवन न करै ॥ ३० ॥ धर्ममें जैसे आप प्रमाण हैं वैसे हम नहीं हैं, यदि इसमें कुछ धर्मका लेश हो तो हे गणों ! हमभी सुनना

चाहते हैं ॥ ३१ ॥ शिवजीके गण इसप्रकार यमदूतोंके वचन श्रवणकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर उनसे बोले ॥ ३२ ॥ शिवजीके गण बोले हे यमकिंकरो ! जो सूक्ष्म शिवधर्म हैं जिनको सूक्ष्मदृष्टिवाले जानसक्ते हैं उनको स्थूललक्ष्यवाले तुम कैसे जानसक्ते हो ॥ ३३ ॥ हे गणों ! इस पापरहित यज्ञदत्तके पुत्रने जो कर्म किया है उसे सावधान होकर सुनो ॥ ३४ ॥ लिंगके शिरपर गिरतीहुई दीपककी छायाको इसने निवारण किया, और रात्रिमें इसने अपना वस्त्र फाडकर उसमें बत्ती डाली ॥ ३५ ॥ हे किंकरो ! और भी इसने धर्म किया है जो प्रसंगसे दूसरे लोगोंकेलिये शिवनामोंको भी इसने सुना है

इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य यामानां शिवकिंकराः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्रोचुः पारिषदास्तु तान् ॥ ३२ ॥ ॥ शिवकिंकरा ऊचुः ॥ ॥
किंकराश्शिवधर्मा ये सूक्ष्मास्ते तु भवादृशैः ॥ स्थूललक्ष्यैः कथं लक्ष्या लक्ष्या ये सूक्ष्मदृष्टिभिः ॥ ३३ ॥ अनेनानेनसा कर्म यत्कृतं
शृणुतेह तत् ॥ यज्ञदत्तात्मजेनाथ सावधानतया गणाः ॥ ३४ ॥ पतंती लिंगशिरसि दीपच्छाया निवारिता ॥ स्वचैलांचलतोऽनेन
दत्त्वा दीपदशां निशि ॥ ३५ ॥ अपरोपि परो धर्मो जातस्तत्रास्य किंकराः ॥ शृण्वतः शिवनामानि प्रसंगादपि गृह्णताम् ॥ ३६ ॥
भक्तेन विधिना पूजा क्रियमाणा निरीक्षिता ॥ उपोषितेन भूतायामनेनास्थितचेतसा ॥ ३७ ॥ शिवलोकमयं ह्यद्य गंतास्माभिस्सहैव
तु ॥ कंचित्कालं महाभोगान्करिष्यति शिवानुगः ॥ ३८ ॥ कलिंगराजो भविता ततो निर्धूतकल्मषः ॥ एष द्विजवरो नूनं शिवप्रि
यतरो यतः ॥ ३९ ॥ अन्यत्किंचिन्न वक्तव्यं यूयं यात यथागतम् ॥ यमदूतास्स्वलोकं तु सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ४० ॥

॥ ३६ ॥ औरोंसे विधिपूर्वक कीहुई पूजा इसने देखी, और स्थिर चित्तसे यह निराहार बैठा रहा ॥ ३७ ॥ इसीसे यह हमारे साथ अब शिवलोकको जायगा, और शिवका अनुगामी हो [illegible] समयतक महाभोगोंको भोगेगा ॥ ३८ ॥ फिर पापरहित हो यह कलिंगदेशका राजा होगा, यह ब्राह्मणश्रेष्ठ अवश्यही शिवको प्यारा है ॥ ३९ ॥ और [illegible] त कहो तुम जहांसे आये हो वहांको चले जाओ, तब यमके दूत प्रसन्न चित्तसे अपने लोकको चलेगये ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! जब य सुन वे यमराजके दूत पराङ्मुख होकर अपने लोकको चलेगये ॥ ४१ ॥ हे मुने ! और यमराजको यह सब चरित्र निवेदन किया, तथा शिवके दू भी आदिसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ४२ ॥ तब धर्मराज बोले हे गणों ! सावधान होकर मेरे वचन सुनो, और प्रसन्नहो प्रीतिसे सब मेरा शासन मानो ॥ ४३ ॥ हे गणों ! संसारमें जितने त्रिपुंड्रधारी हैं, जितने सफेद विभूति लगायेहुए हैं, उन सबको तुम छोडदेना, हमारे पास कभी मत लाना ॥ ४४ ॥ हे गणों ! जो श्वेतविभूति अपने अंगमें लगाये हुए हैं, उन सबको छोडदेना हमारे पास न लाना ॥ ४५ ॥ जो किसी

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां यमदूता मुनीश्वर ॥ यथागतं ययुस्सर्वे यमलोकं पराङ्मुखाः ॥ ४१ ॥ सर्वं निवेदयामा
सुश्शमनाय गणा मुने ॥ तद्वृत्तमादितः प्रोक्तं शंभुदूतैश्च धर्मतः ॥ ४२ ॥ ॥ धर्मराज उवाच ॥ ॥ सर्वे शृणुत मद्वाक्यं
सावधानतया गणाः ॥ तदेव प्रीत्या कुरुत मच्छासनपुरस्सरम् ॥ ४३ ॥ ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके विभूत्या सितया गणाः ॥ ते सर्वे परि
हर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥ ४४ ॥ उद्धूलनकरा ये हि विभूत्या सितया गणाः ॥ ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥ ४५ ॥
शिववेषतया लोके येन केनापि हेतुना ॥ ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥ ४६ ॥ ये रुद्राक्षधरा लोके जटाधारिण एव ये ॥
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥ ४७ ॥ उपजीवनहेतोश्च शिववेषधरा हि ये ॥ ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥
॥ ४८ ॥ दंभेनापि च्छलेनापि शिववेषधरा हि ये ॥ ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन ॥ ४९ ॥ एवमाज्ञापयामास स यमो निज
किंकरान् ॥ तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्शुचिस्मिताः ॥ ५० ॥

प्रकारभी लोकमें शिववेषधारी हैं, वह सबही त्यागने हमारे पास उनको कभी न लाना ॥ ४६ ॥ जो लोकमें जटाधारी हैं जो लोकमें रुद्राक्षधारी हैं, वह सब छोडने, उनको मेरे पास न लाना ॥ ४७ ॥ जो जीविकाके निमित्त शिववेषके धारण करनेवाले हैं उनको भी छोड देना मेरे पास न लाना ॥ ४८ ॥ जो दंभ और छलसे शिववेषके धारण करनेवाले हैं, वह सब छोड देने मेरे पास न लाने ॥ ४९ ॥ इसप्रकार यमने अपने किंकरोंको आज्ञादी, बहुत अच्छा

ऐसा कह वे हँसतेहुए चुप होगये ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले यमराजके दूतोंसे छुडाया जाकर वह ब्राह्मण शिवके दूतोंद्वारा पवित्र मन होकर कैलासको गया
॥ ५१ ॥ वहां अनेक भोग भोगकर और शिवाशिवका सेवन कर कलिंगके राजा अरिंदमका पुत्र हुआ ॥ ५२ ॥ इसका नाम दम और यह शिवकी सेवामें
परायण हुआ, बालकअवस्थाहीमें बालकोंके साथ शिवकी भक्ति करनेलगा ॥ ५३ ॥ क्रमसे पिताके उपराम होनेपर युवावस्थामें राज्य पाय उसने प्रीतिसे बहुतसे
शिवधर्मोंको प्रवृत्त किया ॥ ५४ ॥ वह दमनके अयोग्य राजा दम और धर्मको नहीं जानता था, सब शिवालयोंमें दीपदानके सिवाय और नहीं जानता

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ पार्षदैर्यमदूतेभ्यो मोचितस्त्विति स द्विजः ॥ शिवलोकं जगामाशु तैर्गणैश्शुचिमानसः ॥ ५१ ॥ तत्र भुक्ता
खिलान्भोगान्संसेव्य च शिवाशिवौ ॥ अरिंदमस्य तनयः कलिंगाधिपतेरभूत् ॥ ५२ ॥ दम इत्यभिधानोऽभूच्छिवसेवापरायणः ॥
बालोऽपि शिशुभिः साकं शिवभक्तिं चकार सः ॥ ५३ ॥ क्रमाद्राज्यमवापाथ पितर्य्युपरते युवा ॥ प्रीत्या प्रवर्तयामास शिवधर्मांश्च
सर्वशः ॥ ५४ ॥ नान्यं धर्मं स जानाति दुर्दमो भूपतिर्दमः ॥ शिवालयेषु सर्वेषु दीपदानादृते द्विजः ॥ ५५ ॥ ग्रामाधीशान्समाहूय
सर्वान्स विषयस्थितान् ॥ इत्थमाज्ञापयामास दीपा देयाश्शिवालये ॥ ५६ ॥ अन्यथा सत्यमेवेदं स मे दण्डचो भविष्यति ॥ दीप
दानाच्छिवस्तुष्टो भवतीति श्रुतीरितम् ॥ ५७ ॥ यस्ययस्याभितो ग्रामं यावंतश्च शिवालयाः ॥ तत्रतत्र सदा दीपो द्योतनीयोऽविचा
रितम् ॥ ५८ ॥ ममाज्ञाभंगदोषेण शिरश्छेत्स्याम्यसंशयम् ॥ इति तद्भयतो दीपा दीप्ताः प्रतिशिवालयम् ॥ ५९ ॥ अनेनैव स धर्मेण
यावज्जीवं दमो नृपः ॥ धर्मर्द्धिं महतीं प्राप्य कालधर्मवशं गतः ॥ ६० ॥

था ॥ ५५ ॥ सब अपने राज्यके ग्रामाधीशोंको बुलाकर यही आज्ञा दी कि प्रतिशिवालयोंमें दीपदान दो ॥ ५६ ॥ ऐसा न करनेवालेको मैं दंड दूँगा
वेदमें कहाहै दीपदानसे शिवजी संतुष्टहो[illegible]ैं ॥ ५७ ॥ जिस जिस ग्राममें जितने २ शिवालय हैं वहां विनाविचारे सदा दीपदान करने चाहिये ॥ ५८ ॥
जो मेरी आज्ञाका भंग करैगा उस[illegible]र छेदन करूंगा, तब इस भयसे सब शिवालयोंमें दीपावलि होनेलगी ॥ ५९ ॥ इस धर्ममें राजा दम अपनी सारी

अवस्था बिताकर बडे धर्मको प्राप्त होकर कालधर्मके वशीभूत हुआ ॥ ६० ॥ वह दीपोंकी वासनाके योगसे बहुतसे दीपोंको प्रज्वलित करके रत्नोंके दीपोंके
शिखामें आश्रय करनेवाला अलकाका पति हुआ ॥ ६१ ॥ इसप्रकार थोडीभी शंकरकी सेवा समयपर बहुत फलतीहै, ऐसा जानकर सुखार्थियोंको शिवका
भजन करनाचाहिये ॥ ६२ ॥ सब धर्मोंसे रहित कहां तो वह दीक्षितका पुत्र ! दैवयोगसे शिवालयमें धनचुराने चला, अपने स्वार्थके निमित्त बत्ती बालकर
लिंगके मस्तकका अंधकार दूर किया ॥ ६३ ॥ इतनेहीसे कलिंगदेशका राज्यपाया, पहली वासनाके उदयसे शिवालयमें बहुतसे दीपक बालकर ॥ ६४ ॥

स दीपवासनायोगाद्बहून्दीपान्प्रदीप्य वै ॥ अलकायाः पतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः ॥ ६१ ॥ एवं फलति कालेन शिवेऽल्पमपि
यत्कृतम् ॥ इति ज्ञात्वा शिवे कार्यं भजनं सुसुखार्थिभिः ॥ ६२ ॥ क्व स दीक्षितदायादः सर्वधर्मारतिः सदा ॥ शिवालये दैवयोगा
द्यातश्चोरयितुं वसु ॥ स्वार्थदीपदशोद्योतलिंगमौलितमोहरः ॥ ६३ ॥ कलिंगविषये राज्यं प्राप्तो धर्मरतिं सदा ॥ शिवालये समुद्दीप्य
दीपान्प्राग्वासनोदयात् ॥ ६४ ॥ क्वैषा दिक्पालपदवी मुनीश्वर विलोकय ॥ मनुष्यधर्मिणानेन सांप्रतं येह भुज्यते ॥ ६५ ॥ इति
प्रोक्तं गुणनिधेर्यज्ञदत्तात्मजस्य हि ॥ चरितं शिवसंतोषं शृण्वतां सर्वकामदम् ॥ ६६ ॥ सर्वदेवशिवेनासौ सखित्वं च यथेयिवान् ॥
तदप्येकमना भूत्वा शृणु तात ब्रवीमि ते ॥ ६७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखंडे सृष्ट्युपाख्याने
कैलासगमनोपाख्याने गुणनिधिसद्गतिवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ पाद्मे कल्पे मम पुरा ब्रह्मणो
मानसात्सुतात् ॥ पुलस्त्याद्विश्रवा जज्ञे तस्य वैश्रवणस्सुतः ॥ १ ॥

हे मुनीश्वर ! यह तो देखिये कि दिक्पालपदवीको पाया मनुष्य धर्मवालेने इस समय अलकापुरीका भोग भोगा ॥ ६५ ॥ यह मैंने यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिका
चरित्र तुमसे कहा है। यह शिवजीका चरित्र संतोष करके सुननेवालोंको सब कामना देताहै ॥ ६६ ॥ जैसे यह सब देवताओंके शिरमौर शिवके सखापनेको
प्राप्त हुए वह आप एकांत मनसे सुनो हे तात ! मैं तुमसे कहता हूं ॥ ६७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि०रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्रथमसृष्टिखंडे
गुणनिधिसद्गतिवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले–पहले पद्मकल्पमें मेरे मानसी पुत्र पुलस्त्यजीसे विश्रवाका जन्म हुआ उनका पुत्र

वैश्रवण हुआ ॥ १ ॥ उन्होंने विश्वकर्माकी निर्माण कीहुई इस अलकापुरीको भोगा और महा तपस्यासे शंकरको संतुष्ट किया ॥ २ ॥ जब वह कल्प बीतकर मेघवाहन कल्प आरंभ हुआ और यज्ञदत्तके पुत्र श्रीमानने बडा तप किया ॥ ३ ॥ दीपदान मात्रसे शिवजीकी उस भक्तिके प्रभावको जानकर चित्तकी प्रकाश करनेवाली शिवकी काशीमें प्राप्त होकर ॥ ४ ॥ चित्त रत्नके दीपक ग्यारह रुद्रोंके समीप बालकर अनन्य भक्तिसे तन्मय होकर ज्ञानमें निश्चल हो ॥ ५ ॥ शिवकाही एक महापात्र तपकी अग्निसे वृद्धिको प्राप्त काम क्रोधरूपी महाविघ्नोंके पतंग आघातसे वर्जित ॥ ६ ॥ प्राणायाम करनेसे

तेनेयमलका भुक्ता पुरी विश्वकृता कृता ॥ आराध्य त्र्यंबकं देवमत्युग्रतपसा पुरा ॥ २ ॥ व्यतीते तत्र कल्पे वै प्रवृत्ते मेघवाहने ॥ याज्ञदत्तिरसौ श्रीदस्तपस्तेपे सुदुस्सहम् ॥ ३ ॥ भक्तिप्रभावं विज्ञाय शंभोस्तद्दीपमात्रतः ॥ पुरा पुरारेस्संप्राप्य काशिकां चित्प्रकाशिकाम् ॥ ४ ॥ शिवैकादशमुद्बोध्य चित्तरत्नप्रदीपकैः ॥ अनन्यभक्तिस्नेहाढ्यस्तन्मयो ध्याननिश्चलः ॥ ५ ॥ शिवैक्यं सुमहापात्रं तपोग्निपरिबृंहितम् ॥ कामक्रोधमहाविघ्नपतंगाघातवर्जितम् ॥ ६ ॥ प्राणसंरोधनिर्वातं निर्मलं निर्मलेक्षणात् ॥ संस्थाप्य शांभवं लिंगं सद्भावकुसुमार्चितम ॥ ७ ॥ तावत्तताप स तपस्त्वगस्थिपरिशोषितम् ॥ यावद्बभूव तद्वर्ष्म वर्षाणामयुतं शतम् ॥ ८ ॥ ततस्सह विशालाक्ष्या देवो विश्वेश्वरस्स्वयम् ॥ अलकापतिमालोक्य प्रसन्नेनांतरात्मना ॥ ९ ॥ लिंगे मनस्समाधाय स्थितं स्थाणुस्वरूपिणम् ॥ उवाच वरदोऽस्मीति तदाचक्ष्वालकापते ॥ १० ॥ उन्मील्य नयने यावत्स पश्यति तपोधनः ॥ तावदुद्यत्सहस्रांशुसहस्राधिकतेजसम् ॥ ॥ ११ ॥ पुरो ददर्श श्रीकंठं चन्द्रचूडमुमाधवम् ॥ तत्तेजःपरिभूताक्षितेजाः संमील्य लोचने ॥ १२ ॥

वातरहित निर्मल दृष्टिसे निर्मल शिवजीके लिंगकी स्थापना कर सद्भावके फूलोंसे पूजाकर ॥ ७ ॥ तबतक वह तपस्या करता रहा जबतक कि अस्थिमात्र शेष रहगयी और इस अवसरमें दशसहस्रसौ वर्ष व्यतीत होगये ॥ ८ ॥ तब विश्वेश्वर देव विशालाक्षि उमाके सहित प्रसन्न मनसे अलकापतिको देखकर ॥ ९ ॥ कि जो अलकापति स्थाणुरूपसे स्थित शिवलिंगमें मन लगा रहेथे, ऐसा देखकर बोले हे अलकापते ! जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥ १० ॥ जबतक वह तपोधन नेत्र खोलकर देखतेहैं कि तबतक सहस्रसूर्यसे भी अधिक तेजसम्पन्न ॥ ११ ॥ चन्द्रचूड उमापति शंकरको आगे देखा, उस तेजसे

तिरस्कृत होकर इनके नेत्र मिचगये ॥ १२ ॥ और मनोरथके देनेवाले देवदेवसे कहा हे नाथ ! अपने चरणकमलके दर्शनकी सामर्थ्य मेरे नेत्रोंको दीजिये ॥ १३ ॥ हे नाथ ! यही वर है कि आपका साक्षात् दर्शन हो और हे शशिशेखर ! दूसरे वरसे क्या है आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ देवदेव उमापति इस प्रकार उसके वचन सुनकर पाणितल[illegible] स्पर्श कर उसको दर्शनकी सामर्थ्य देते भये ॥ १५ ॥ उन्होंने नेत्र फैलाकर पहले उमाकाही दर्शन किया तब यह यज्ञदत्तका पुत्र उस सामर्थ्यको प्राप्त करके ॥ १६ ॥ विचारने लगे शिवजीके समीपमें यह सर्वांगसुन्दरी कौन है इसने क्या तप किया है क्या

उवाच देवदेवेशं मनोरथपदातिगम् ॥ निजांघ्रिदर्शने नाथ दृक्सामर्थ्यं प्रयच्छ मे ॥१३॥ अयमेव वरो नाथ यत्त्वं साक्षान्निरीक्ष्यसे ॥
किमन्येन वरेणेश नमस्ते शशिशेखर ॥ १४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेव उमापतिः ॥ ददौ दर्शनसामर्थ्यं स्पृष्ट्वा पाणितलेन तम्
॥ १५ ॥ प्रसार्य नयने पूर्वमुमामेव व्यलोकयत् ॥ ततोऽसौ याज्ञदत्तिस्तु तत्सामर्थ्यमवाप्य च ॥ १६ ॥ शंभोस्समीपे का योषिदेषा
सर्वांगसुन्दरी ॥ अनया किं तपस्तप्तं ममापि तपसोऽधिकम् ॥ १७ ॥ अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यं श्रीरहो भृशम् ॥ इत्यवादीदसौ
पुत्रो मुहुर्मुहुरतीव हि ॥ १८ ॥ क्रूरदृग्वीक्षते यावत्पुनःपुनरिदं वदन् ॥ तावत्पुस्फोट तन्नेत्रं वामं वामाविलोकनात् ॥ १९ ॥ अथ
देव्यब्रवीद्देवं किमसौ दुष्टतापसः ॥ असकृद्वीक्ष्य मां वक्ति कुरु त्वं मे तपःप्रभाम् ॥ २० ॥ असकृद्दक्षिणेनाक्ष्णा पुनर्मामेव
पश्यति ॥ असूयमानो मे रूपप्रेमसौभाग्यसंपदः ॥ २१ ॥ इति देवीगिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः ॥ उमे त्वदीयः पुत्रोऽयं न च
क्रूरेण चक्षुषा ॥ २२ ॥

इसका तप मुझसे विशेष है ॥ १७ ॥ अहो इनका रूप प्रेम सौभाग्य लक्ष्मी आश्चर्यरूप है इसप्रकार यज्ञदत्तके पुत्रने बारंबार यह बात कही ॥ १८ ॥ और बारंबार यही कहतेहुए क्रूरदृष्टिसे उमाको देखने लगे, तबतक कुटिलतासे देखनेके कारण इनका बायांनेत्र फूट गया ॥ १९ ॥ तब देवीने शंकरसे कहा यह दुष्ट तपस्वी कौन है ? वारंवार मुझे देखकर कहता है आप मेरे तपप्रभावको कहिये ॥ २० ॥ वारंवार दक्षिणनेत्रसे फिर मुझसे कहताहै प्रेम सौभाग्य सम्पत्तिसे मेरे रूपकी असूया करताहै ॥ २१ ॥ यह देवीके वचन सुन हँसकर शिवजी उनसे बोले हे उमा ! यह तुम्हारा पुत्र है क्रूरदृष्टिसे तुमको नहीं ॥ २२ ॥

देखता किन्तु यह सोचताहै कि तुम्हारी तपोलक्ष्मी कितनी अधिक है, ऐसे देवीसे कहकर फिर शंकरने यज्ञदत्तके पुत्रसे कहा ॥ २३ ॥ हे वत्स ! तुम्हारे
इस तपसे प्रसन्न होकर मैं तुमको वर देताहूं तुम निधियोंके अधिपति और गुह्योंके ईश्वर होगे ॥ २४ ॥ यक्ष और किन्नरोंके राजाओंके राजा होगे
पुण्यजनोंके पति और सबके धन देनेवाले होगे ॥२५॥ मैं तुमसे नित्य मित्रता करके सदा तुम्हारे समीप निवास करूंगा हे मित्र ! तुम्हारी प्रीतिके बढानेके
निमित्त अलकाके समीप रहूंगा ॥ २६ ॥ हे यज्ञदत्तके पुत्र ! आ यह उमा तेरी माता है हे महाभक्त ! तू इसके चरणोंमें प्रणाम कर और प्रसन्नचित्तसे

संपश्यति तपोलक्ष्मीं तव किं त्वधिवर्णयेत् ॥ इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत् ॥ २३ ॥ वरान्ददामि ते वत्स तपसानेन
तोषितः ॥ निधीनामथ नाथस्त्वं गुह्यकानां भवेश्वरः ॥ २४ ॥ यक्षाणां किन्नराणां च राज्ञां राजा च सुव्रतः ॥ पतिः पुण्यजनानां च
सर्वेषां धनदो भव ॥ २५ ॥ मया सख्यं च ते नित्यं वत्स्यामि च तवांतिके ॥ अलकां निकषा मित्र तव प्रीतिविवृद्धये ॥ २६ ॥
आगच्छ पादयोरस्याः पत ते जननी त्वियम् ॥ याज्ञदत्ते महाभक्त सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति दत्त्वा वरान्देवः
पुनराह शिवां शिवः ॥ प्रसादं कुरु देवेशि तपस्विन्यंगजेऽत्र वै ॥ २८ ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शंभोः पार्वती जगदम्बिका ॥ अब्रवीद्याज्ञदत्तिं
तं सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २९ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ वत्स ते निर्मला भक्तिर्भवे भवतु सर्वदा ॥ भवैकपिंगो नेत्रेण वामेन स्फुटितेन ह ॥
॥ ३० ॥ देवेन दत्ता ये तुभ्यं वरास्संतु तथैव ते ॥ कुबेरो भव नाम्ना त्वं मम रूपेर्ष्यया सुत ॥ ३१ ॥ इति दत्त्वा वरान्देवो देव्या सह
महेश्वरः ॥ धनदायाविवेशाथ धाम वैश्वेश्वराभिधम् ॥ ३२ ॥

दंडवत कर ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार शिवजी उसको वरदे फिर उमासे बोले हे देवेशि ! इस अपने अंगज पुत्रपर प्रसन्न हो ॥ २८ ॥
शिवजीके यह वचन सुन जगदम्बा पार्वती प्रसन्न चित्तसे यज्ञदत्तके पुत्रसे बोलीं ॥ २९ ॥ देवी बोली हे वत्स ! सदा शंकरमें तुम्हारी निर्मल भक्ति हो तुम
एकनेत्रसे रहित होगे तुम्हारा वामनेत्र न होगा ॥ ३० ॥ और जो वर देवदेवने तुमको दिये हैं ठीक उसीप्रकार रहैंगे हे पुत्र मेरा रूप देखकर जो तुमने
ईर्षा की है इससे तुम्हारा नाम कुबेर होगा ॥३१॥ इसप्रकार देवीके सहित महेश्वर वर देकर वैश्वेश्वर नामक स्थानमें कुबेरको प्रवेशित करादिया ॥ ३२॥

इस कुबेरने शंकरका सखित्व पूर्वकालमें इसप्रकार पाया था अलकाके निकटही शंकरका स्थान कैलास हुआ ॥ ३३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रुद्रसंहिताभाषाटीकायां प्रथमसृष्टिखंडे कुबेरस्य शिवमित्रत्ववर्णनं नामैकोनाविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी तुम पर्वतश्रेष्ठ कैलासमें कुबेरके तपोबलसे शिवका आगमन सुनो ॥ १ ॥ कुबेरको वर देकर और अपने श्रेष्ठस्थानमें जाकर वह कुबेरके वर देनेवाले विश्वेश हृदयमें विचार करने लगे ॥ २ ॥ विधाताके अंगसे प्रगट हुआ, मेरा स्वरूप पूर्ण प्रलयकार्य करता है उस स्वरूपसे गुह्यकके स्थान कैलासको जाऊंगा ॥ ३ ॥ पूर्णांश निष्फल

इत्थं सखित्वं श्रीशंभोः प्रापैष धनदः पुरम् ॥ अलकान्निकषा चासीत्कैलासश्शंकरालयः ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे कैलासगमनोपाख्याने कुबेरस्य शिवमित्रत्ववर्णनो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नारद त्वं शृणु मुने शिवागमनसत्तमम् ॥ कैलासे पर्वतश्रेष्ठे कुबेरस्य तपोबलात् ॥ १ ॥ निधिपत्ववरं दत्त्वा गत्वा स्वस्थानमुत्तमम् ॥ विचिन्त्य हृदि विश्वेशः कुबेरवरदायकः ॥ २ ॥ विध्यंगजस्स्वरूपो मे पूर्णः प्रलयकार्यकृत् ॥ तद्रूपेण गमिष्यामि कैलासं गुह्यकालयम् ॥ ३ ॥ रुद्रो हृदयजो मे हि पूर्णांशो ब्रह्मनिष्फलः॥ हरिब्रह्मादिभिस्सेव्यो मदभिन्नो निरंजनः ॥ ४ ॥ तत्स्वरूपेण तत्रैव सुहृद्भूत्वा विलास्यहम् ॥ कुबेरस्य च वत्स्यामि करिष्यामि तपो महत् ॥ ५ ॥ इति संचिंत्य रुद्रोऽसौ शिवेच्छां गंतुमुत्सुकः ॥ ननाद तत्र ढक्कां स्वां सुगतिं नादरूपिणीम् ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यामानशे तस्या ध्वनिरुत्साहकारकः ॥ आह्वानगतिसंयुक्तो विचित्रः सांद्रशब्दकः ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुब्रह्माद्याः सुराश्च मुनयस्तथा ॥ आगमा निगमा मूर्तास्सिद्धा जग्मुश्च तत्र वै ॥ ८ ॥

रुद्र मेरे हृदयसे प्रगट हैं, वह निरंजन मुझसे अभिन्न हरि और ब्रह्मादिसे सेवनीय हैं ॥४॥ सो वहां मैं सुहृद्ताके कारण उसी स्वरूपसे कुबेरके समीप निवास करता हुआ महा तप करूंगा ॥ ५ ॥ यह विचारकर रुद्र शिवेच्छासे तहां जानेकी इच्छा कर सुगतिदायक नादरूपिणी अपनी ढक्का बजाने लगे ॥ ६ ॥ उत्साहकारक उसकी ध्वनिसे त्रैलोक्य व्याकुल होगया, जो आह्वान गतिसे संयुक्त विचित्र मनोहर शब्दयुक्त था ॥ ७ ॥ वह शब्द सुनकर विष्णु ब्रह्मादि

देवता और मुनि आगम निगम मूर्त्ति सिद्ध सब गमन करने लगे ॥ ८ ॥ सुर असुर बडे उत्सवके सहित वहां गमन करनेलगे जहां कहीं भी स्थित थे सब प्रमथगण चले ॥ ९ ॥ महाभाग्यवान सब लोकोंसे नमस्कृत गणपभी उस स्थानमें गये सावधान होकर सुनो मैं उनकी संख्या कहता हूं ॥ १० ॥ शंखकर्णनामक गणेश्वरोंकी एक कोटी, दशकोटि केकराक्ष, आठकोटि विकृत ॥ ११ ॥ चौंसठकोटि विशाख, नौ कोटि पारियात्रक, छः कोटि सर्वान्तक, आठकोटि श्रीमानदुंदुभिः ॥ १२ ॥ बारहकोटि जालंकनामक श्रेष्ठगण, सातकोटि श्रीमान् समद इतनेही विकृतानन ॥ १३ ॥ पांचकोटि कपाली, छः कोटि शुभसन्दारक, कण्डुक कुण्डक एकएक कोटि ॥ १४ ॥ विष्टम्भ आठकोटि चन्द्रतापन आठकोटि, ॥ १५ ॥ महाकेश सहस्रकोटि गणपतियोंसे युक्त आया ॥ १६ ॥ कुण्डीवाह और श्रेष्ठ पर्वतक बारहकोटि, काल कालक महाकाल सौकोटि ॥ १७ ॥ अग्निक सौ कोटि, अभिमुख एककोटि, आदित्य मूर्धा और धनावह एक एक कोटि ॥ १८ ॥ सन्नाह सौ कोटि, कुमुदभी इतनीही कोटि, अमोघ कोकिल सुमंत्रक एक एक कोटि ॥ १९ ॥

सुरासुराद्यास्सकलास्तत्र जग्मुश्च सोत्सवाः ॥ सर्वेऽपि प्रमथा जग्मुर्यत्र कुत्रापि संस्थिताः ॥ ९ ॥ गणपाश्च महाभागास्सर्वलोकनमस्कृताः ॥ तेषां संख्यामहं वच्मि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥ अभ्ययाच्छंखकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः ॥ दशभिः केकराक्षश्च विकृतो ऽष्टाभिरेव च ॥ ११ ॥ चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रकः ॥ षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च ॥ १२ ॥ जालंको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः ॥ सप्तभिस्समदः श्रीमाँस्तथैव विकृताननः १३ ॥ पंचभिश्च कपाली हि षडभिः सन्दारकश्शुभः ॥ कोटिकोटिभिरेवेह कण्डुकः कुण्डकस्तथा ॥ १४ ॥ विष्टंभोऽष्टाभिरगमदष्टभिश्चन्द्रतापनः ॥ १५ ॥ महाकेशस्सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः ॥ १६ ॥ कुण्डी द्वादशभिर्वाहस्तथा पर्वतकश्शुभः ॥ कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै ॥ १७ ॥ अग्निकश्शतकोट्या वै कोटयाभिमुख एव च ॥ आदित्यमूर्द्धा कोटया च तथा चैव धनावहः ॥ १८ ॥ सन्नाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा ॥ अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोटया सुमंत्रकः ॥ १९ ॥

काकपाद और सन्तानक प्रभु साठसाठ कोटि, महाबल नौ कोटि इतनेही मधुपिंग और मंगल ॥ २० ॥ पूर्णभद्र और नील नव्वे कोटिसे देवेशके समीप आये महाबली चतुर्वक्र सात कोटि लेकर आया ॥ २१ ॥ कोटि २ सहस्र और एकसौबीसकोटिसे युक्त सर्वेश कैलास जानेके लिये आया ॥ २२ ॥ सुकेश वृषभ और काष्ठागूढ चौंसठकोटिसे, चैत्र सातकोटि सहित, इतनाही स्वयं प्रभु नकुलीश ॥ २३ ॥ लोकान्तक दीप्तात्मा, दैत्यान्तक प्रभु देव, भृंगी रिटि श्रीमान् देवदेवप्रिय ॥ २४ ॥ अशनि भानुक सनातन यह चौंसठ २ कोटियोंसे आये, महाबली गणाधीश नंदीश्वर सौ कोटि गणपतियोंके साथ आया ॥ २५ ॥

काकपादोऽपरः षष्ट्या षष्ट्या संतानकः प्रभुः ॥ महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च पिंगलः ॥२०॥ नीलो नवत्यां देवेशं पूर्णभद्रस्तथैव च ॥
कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्रो महाबलः ॥ २१ ॥ कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृतः ॥ तत्राजगाम सर्वेशः कैलासगमनाय वै
॥ २२ ॥ काष्ठागूढश्चतुष्षष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा ॥ कोटिभिस्सप्तभिश्चैत्रो नकुलीशस्स्वयं प्रभुः ॥ २३ ॥ लोकांतकश्च दीप्तात्मा
तथा दैत्यांतकः प्रभुः ॥ देवो भृंगी रिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा ॥ २४ ॥ अशनिर्भानुकश्चैव चतुष्षष्ट्या सनातनः ॥ नंदीश्वरो
गणाधीशः शतकोट्या महाबलः ॥ २५ ॥ एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः ॥ सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः
॥ २६ ॥ सर्वे चन्द्रावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥ हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः ॥ २७ ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशा अणिमादि
गणैर्वृताः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः ॥ २८ ॥ एते गणाधिपाश्चान्ये महात्मानोऽमलप्रभाः ॥ जग्मुस्तत्र महाप्रीत्या
शिवदर्शनलालसाः ॥ २९ ॥ गत्वा तत्र शिवं दृष्ट्वा नत्वा चक्रुः परां नुतिम् ॥ सर्वे साञ्जलयो विष्णुप्रमुखा नतमस्तकाः ॥ ३० ॥

यह तथा और भी महाबली असंख्यात गणप सबही सहस्र २ हाथवाले जटामुकुटधारी ॥ २६ ॥ सबही माथेपर चन्द्रमा धारे नीलकण्ठ त्रिलोचन हार कुंडल बाजूबंद मुकुट आदिसे अलंकृत ॥ २७ ॥ ब्रह्मा इन्द्र विष्णुकी समान अणिमादिगणोंसे आवृत कोटिसूर्यकी समान कांतिमान गणेश्वर वहां आये ॥ २८ ॥ यह तथा और भी निर्मल कांतिवाले महात्मा शिवदर्शनकी लालसासे बडे प्रेमसे वहां गये ॥ २९ ॥ वहां जाकर और शिवजीको देखकर बडी

स्तुति करने लगे और विष्णु आदि हाथ जोड मस्तक झुका खडे होगये ।। ३० ॥ इस प्रकार विष्णु आदिके संग महेश परमेश्वर प्रेमपूर्वक महात्मा कुबेरके कैलासको गये ।। ३१ ।। कुबेरने भी शिवजीको आया देख आदरसे पूजा की भक्तिपूर्वक परिवारके सहित नानाप्रकारसे पूजा की ।। ३२ ॥ और फिर शंकरके संतोषके निमित्त विष्णु आदि देवता तथा और शिवके अनुगामी गणोंकी पूजा की ।। ३३ ।। फिर प्रसन्न मनसे शिवजीने कुबेरको आलिंगन कर और उसका शिर सूंघकर सब गणोंके सहित वहां निवास किया ॥ ३४ ॥ फिर शिवजीने उस पर्वतपर अपने और दूसरे देवताओंके अनेक भक्तोंके

इति विष्णवादिभिस्सार्द्धं महेशः परमेश्वरः ॥ कैलासमगमत्प्रीत्या कुबेरस्य महात्मनः ॥ ३१ ॥ कुबेरोप्यागतं शंभुं पूजयामास सादरम् ॥ भक्त्या नानोपहारैश्च परिवारसमन्वितः ॥ ३२ ॥ ततो विष्णवादिकान्देवान्गणांश्चान्यानपि ध्रुवम् ॥ शिवानुगान्समानर्च शिवतोषणहेतवे ॥ ३३ ॥ अथ शम्भुस्समालिंग्य कुबेरं प्रीतमानसः ॥ मूर्ध्नि चाघ्राय संतस्थावलकां निकषाखिलैः ॥ ३४ ॥ शशास विश्वकर्माणं निर्माणार्थं गिरौ प्रभुः ॥ नानाभक्तैर्निवासाय स्वपरेषां यथोचितम् ॥ ३५ ॥ विश्वकर्मा ततो गत्वा तत्र नानाविधां मुने ॥ रचनां रचयामास द्रुतं शम्भोरनुज्ञया ॥ ३६ ॥ अथ शम्भुः प्रमुदितो हरिप्रार्थनया तदा ॥ ३७ ॥ कुबेरानुग्रहं कृत्वा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ सुमुहूर्ते प्रविश्यासौ स्वस्थानं परमेश्वरः ॥ ३८ ॥ अकरोदखिलान्प्रीत्या सनाथान्भक्तवत्सलः ॥ अथ सर्वे प्रमुदिता विष्णुप्रभृतयस्सुराः ॥ मुनयश्चापरे सिद्धा अभ्यषिंचन्मुदा शिवम् ॥ ३९ ॥ समानर्चुः क्रमात्सर्वे नानोपायनपाणयः ॥ नीराजनं समाकार्षुर्महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ४० ॥

निवासयोग्य स्थान बनानेकी आज्ञा दी ।। ३५ ।। हे मुने ! शिवजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने वहां जाकर बहुत शीघ्र सुन्दर स्थान बनाये ॥ ३६ ॥ तब हरिकी प्रार्थनासे शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ कुबेरपर अनुग्रह करके कैलासपर्वतको गये ! परमेश्वरने अपने स्थानमें शुभ मुहूर्तमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ तब विष्णुको आदि लेकर सब देवता मुनि और सिद्ध परम भक्तिसे शिवका अभिषेक करने लगे ॥ ३९ ॥ अनेक सामग्रियोंसे क्रमसे सब पूजा

महोत्सवपूर्वक नीराजन करने लगे ॥ ४० ॥ हे मुने उस समय मंगलकारिणी फूलोंकी वर्षा होनेलगी और गानमें तत्पर प्रसन्नतासे ॥ नारद[illegible] री नाचने लगीं ॥ ४१ ॥ उस समय सब कोई जयशब्द नमः शब्द कहने लगे उस समय सबके सुख बढानेवाला महा उत्साह हुआ ॥ ४२ ॥ सिंहासनपर स्थित हो शिवजी महाशोभित हुए विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंसे अत्यन्त सेवित हुए ॥ ४३ ॥ फिर सब देवता पृथक्पृथक् स्तुति करने लगे, बडे २ अर्थवाली इष्ट वाणियोंसे लोकके आनंद देनेवाले शंकरकी स्तुति की ॥ ४४ ॥ स्तुति सुन प्रसन्न हो शिवजीने उनको अनेक कामना

तदासीत्सुमनोवृष्टिर्मंगलायतना मुने ॥ सुप्रीता ननृतुस्तत्राप्सरसो गानतत्पराः ॥४१॥ जयशब्दो नमश्शब्दस्तत्रासीत्सर्वसंस्कृतः ॥ तदोत्साहो महानासीत्सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥ ४२ ॥ स्थित्वा सिंहासने शंभुर्विरराजाधिकं तदा ॥ सर्वैस्संसेवितोऽभीक्ष्णं विष्णवाद्यैश्च यथोचितम् ॥ ४३ ॥ अथ सर्वे सुराद्याश्च तुष्टुवुस्तं पृथक्पृथक् ॥ अर्थ्याभिर्वाग्भिरिष्टाभिश्शंकरं लोकशंकरम् ॥ ४४ ॥ प्रसन्नात्मा स्तुतिं श्रुत्वा तेषां कामान्ददौ शिवः ॥ मनोभिलषितान्प्रीत्या वरान्सर्वेश्वरः प्रभुः ॥४५॥ शिवाज्ञयाथ ते सर्वे स्वंस्वं धाम ययुर्मुने ॥ प्राप्तकामाः प्रमुदिता अहं च विष्णुना सह ॥ ४६ ॥ उपवेश्यासने विष्णुं माञ्च शम्भुरुवाच ह ॥ बहु सम्बोध्य सुप्रीत्यानुगृह्य परमेश्वरः ॥ ४७ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे तातौ युवां प्रियतरौ मम ॥ सुरोत्तमौ त्रिजगतोऽवनसर्गकरौ सदा ॥ ४८ ॥ गच्छतं निर्भयन्नित्यं स्वस्थानञ्च मदाज्ञया ॥ सुखप्रदाताहं वै वाम्विशेषात्प्रेक्षकस्सदा ॥ ४९ ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोस्सुप्रणम्य तदाज्ञया ॥ अहं हरिश्च स्वं धामागमाव प्रीतमानसौ ॥ ५० ॥

दीं, सर्वेश्वर प्रभुने सबको मनवांछित वर दिये ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिवजीकी आज्ञासे वे सबकोई अपने २ स्थानोंको गये, मेरे और विष्णुके सहित कामना पाकर सब प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ आसनपर बैठाकर शिवजीने मुझसे और विष्णुजीसे प्रीति और अनुग्रह कर सम्बोधन देकर कहा ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले हे विष्णु ! हे ब्रह्मा ! तुम दोनों देवताओंमें श्रेष्ठ हो और मेरे प्यारे हो तीनों जगतकी उत्पत्ति और पालन सदा करो ॥ ४८ ॥ तुम मेरी आज्ञासे निर्भय अपने स्थानको गमन करो मैं तुम दोनोंका सुखदाता और विशेष निरीक्षक रहूंगा ॥ ४९ ॥ यह शिवजीके वचन सुन उनकी आज्ञा

ले प्रेमसे उनको प्रणाम कर मैं और हरि अपने स्थानको आये ॥ ५० ॥ उसी समय प्रसन्न होकर शिवजी कुबेरके पास आय उसका हाथ पकड यह
शुभ वचन बोले॥ ५१ ॥ शिवजी बोले हे मित्र ! मैं तुम्हारी मित्रता और तुम्हारे प्रेमसे तुम्हारे वशीभूत हूं, तुम भयरहित अब अपने स्थानको जाओ
हे पापरहित ! मैं सदा तुम्हारा सहायक हूं ॥ ५२ ॥ यह शिवजीके वचन सुन कुबेरजी प्रसन्न हो शंकरकी आज्ञासे अपने स्थानको गये ॥ ५३ ॥
और शिवजी पर्वतश्रेष्ठ कैलासमें निवास करनेलगे गणोंसहित योगमें निरत हो स्वच्छन्दतासे ध्यानमें तत्पर हुए ॥ ५४ ॥ कभी अपने आत्माका ध्यान

तदानीमेव सुप्रीतश्शंकरो निधिपम्मुदा ॥ उपवेश्य गृहीत्वा तं कर आह शुभं वचः ॥ ५१ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ तव प्रेम्णा
वशीभूतो मित्रतागमनं सखे ॥ स्वस्थानङ्गच्छ विभयस्सहायोहं सदानघ ॥ ५२ ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोः कुबेरः प्रीतमानसः ॥
तदाज्ञया स्वकं धाम जगाम प्रमुदान्वितः ॥ ५३ ॥ स उवाच गिरौ शम्भुः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ सगणो योगनिरतस्स्वच्छन्दो ध्या
नतत्परः ॥ ५४ ॥ क्वचिद्दध्यौ स्वमात्मानं क्वचिद्योगरतोऽभवत् ॥ इतिहासगणान्प्रीत्यावादीत्स्वच्छन्दमानसः ॥ ५५ ॥ क्वचित्कै
लासकुधरसुस्थानेषु महेश्वरः ॥ विजहार गणैः प्रीत्या विविधेषु विहारवित् ॥ ५६ ॥ इत्थं रुद्रस्वरूपोऽसौ शंकरः परमेश्वरः ॥ अका
र्षीत्स्वगिरौ लीला नाना योगिवरोऽपि यः ॥ ५७ ॥ नीत्वा कालं कियन्तं सोऽपत्नीकः परमेश्वरः ॥ पश्चादवाप स्वाम्पत्नीन्दक्षप
त्नीसमुद्भवाम् ॥ ५८ ॥ विजहार तया सत्या दक्षपुत्र्या महेश्वरः ॥ सुखी बभूव देवर्षे लोकाचारपरायणः ॥ ५९ ॥

करते कभी योगमें निरत होते कभी स्वच्छन्दमनसे प्रसन्न हो गणोंसे कोई इतिहास कहते ॥ ५५ ॥ महेश्वर कभी कैलास पर्वतके श्रेष्ठ स्थानोंमें प्रीति
र्वक विहार करते ॥ ५६ ॥ इस प्रकार रुद्रके स्वरूप परमेश्वर शंकर अनेक योगिवरोंके साथ अनेक लीला अपने पर्वतमें करने लगे ॥ ५७ ॥
त्नीके विना शंकर कितना एक समय व्यतीत करके पीछे दक्षकी पत्नीमें उत्पन्न सतीसे विवाह करके ॥ ५८ ॥ उस दक्षकी पुत्री सतीके साथ

॥ नारदजी बोले हे ब्रह्माजी ! आप महादेवजीकी कृपासे सब जानतेहैं; आपने पार्वती और शिवकी कथा मुझसे कही ॥ १ ॥ हे प्रभु ! कमलरूपी आपके मुखसे उत्तम शिवकी कथाको सुनकर अतृप्त मैं फिर उनकी कथाको सुनना चाहताहूं ॥ २ ॥ आपने जो शंकरकाही पूर्णांश कैलासवासी जितेन्द्रिय रुद्रको कहा ॥ ३ ॥ विष्णुसे आदि लेकर सब देवताओंसे पूजनीय, साधुओंकी गति निर्विकार महाप्रभु वह योगी सर्वदा निर्द्वन्द्वतासे क्रीडा करतेहैं ॥ ४ ॥ वही भगवानकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर अपनेहीको ध्यान करतीहुई मंगलरूपिणी श्रेष्ठ स्त्रीका विवाह करके गृहस्थ हुए ॥ ५ ॥ पहले दक्षकी पुत्री फिर

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ सतीखंडो द्वितीयः प्रारभ्यते ॥ नारद उवाच ॥ विधे सर्वं विजानासि कृपया शंकरस्य च ॥ त्वयाद्भुता हि कथिताः कथा मे शिवयोश्शुभाः ॥ १ ॥ त्वन्मुखांभोजसंवृत्तां श्रुत्वा शिवकथां पराम् ॥ अतृप्तो हि पुनस्तां वै श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ २ ॥ पूर्णांशश्शंकरस्यैव यो रुद्रो वर्णितः पुरा ॥ विधे त्वया महेशानः कैलासनिलयो वशी ॥ ३ ॥ स योगी सर्वविष्णवादिसुरसेव्यस्सतां गतिः ॥ निर्द्वंद्वः क्रीडति सदा निर्विकारी महाप्रभुः ॥ ४ ॥ सोऽभूत्पुनर्गृहस्थश्च विवाह्य परमां स्त्रियम् ॥ हरिप्रार्थनया प्रीत्या मंगलां स्वतपस्विनीम् ॥ ५ ॥ प्रथमं दक्षपुत्री सा पश्चात्सा पर्वतात्मजा ॥ कथमेकशरीरेण द्वयोरप्यात्मजा मता ॥ ६ ॥ कथं सती पार्वती सा पुनश्शिवमुपागता ॥ एतत्सर्वं तथान्यच्च ब्रह्मन् गदितुमर्हसि ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरर्षेः शंकरात्मनः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु तात मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां शुभाम् ॥ यां श्रुत्वा सफलं जन्म भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥ पुराहं स्वसुतां दृष्ट्वा संध्याह्वां तनयैस्सह ॥ अभवं विकृतस्तात कामबाणप्रपीडितः ॥ १० ॥

हिमालयकी पुत्री एकही शरीरसे दोनोंकी कन्या कैसे हुई ॥ ६ ॥ पतिव्रता वह पार्वती महादेवजीको कैसे मिली, यह सर्व और भी सब आप कहिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार शिवभक्त सुरर्षि नारदके वचनको सुनकर प्रसन्न हो ब्रह्माजी बोले ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे पुत्र ! कल्याण देनेवाली कथाको कहताहूं जिसको सुनकर निस्सन्देह जन्म सफल होताहै ॥ ९ ॥ पहले मैं पुत्रोंके साथ सन्ध्यानाम्नी अपनी कन्याको देखकर कामबाणसे पीडित होगया ॥ १० ॥

वह महायोगी परमप्रभु रुद्र धर्मको स्मरण करतेहुए पुत्रोंके साथ मुझे धिक्कार देकर कैलासको चलेगये ॥ ११ ॥ जिसकी मायासे मोहित वेदवक्ता मूर्ख
मैंने परम प्रभु महादेवजीके साथ वैर किया ॥ १२ ॥ शिवकी मायासे मोहित मूर्ख पुत्रोंके सहित मैंने द्वेषसे उनको मोहित करनेके लिये बहुत यत्न
किया ॥ १३ ॥ हे मुनि ! परन्तु परम प्रभु उस शंभुमें मेरे और मेरे सुतोंके सब उपाय निष्फल होगये ॥ १४ ॥ तब पुत्रों सहित निष्फल मैंने भगवानका
ध्यान किया और शिवभक्त भगवानने आकर मुझे समझाया ॥ १५ ॥ शिवतत्त्वके जाननेवाले विष्णुसे समझाये हुए मोहित मैंने उनसे द्वेष छोड दिया

धर्मः स्मृतस्तदा रुद्रो महायोगी परः प्रभुः ॥ धिकृत्य मां सुतैस्तात स्वस्थानं गतवानयम् ॥ ११ ॥ यन्मायामोहितश्चाहं वेदवक्ता च
मूढधीः ॥ तेनाकार्षं सहाकार्यं परमेशेन शंभुना ॥ १२ ॥ तदीर्षयाहमाकार्षं बहूपायान्सुतैः सह ॥ कर्तुं तन्मोहनं मूढः शिवमाया
विमोहितः ॥ १३ ॥ अभवंस्तेऽथ वै सर्वे तस्मिञ् शंभौ परप्रभौ ॥ उपायाः निष्फलास्तेषां मम चापि मुनीश्वर ॥ १४ ॥ तदाऽस्मरं
रमेशानं व्यर्थोपायस्सुतैस्सह ॥ अबोधयत्स आगत्य शिवभक्तिरतस्सुधीः ॥ १५ ॥ प्रबोधितो रमेशेन शिवतत्त्वप्रदर्शिना ॥ तदीर्षा
मत्यजं सोहं तं हठं न विमोहितः ॥ १६ ॥ शक्तिं संसेव्य तत्प्रीत्योत्पादयामास तां तदा ॥ दक्षादशिक्न्यां वीरिण्यां स्वपुत्राद्धरमोहने
॥ १७ ॥ सोमा भूत्वा दक्षसुता तपः कृत्वा तु दुस्सहम् ॥ रुद्रपत्न्यभवद्भक्त्या स्वभक्तहितकारिणी ॥ १८ ॥ सोमो रुद्रो गृही भूत्वा
ऽकार्षील्लीलां परां प्रभुः ॥ मोहयित्वाथ मां तत्र स्वविवाहेऽविकारधीः ॥ १९ ॥ विवाह्य तां स आगत्य स्वगिरौ सूतिकृत्तया ॥ रेमे
बहुविमोहो हि स्वतंत्रस्स्वात्तविग्रहः ॥ २० ॥

परन्तु हठ न छोडा ॥ १६ ॥ हठी मैंने शक्तिकी सेवाकर महादेवजीको मोहित करनेके लिये अपने पुत्र दक्षसे असिक्नी वीरिणीमें उस सतीको उत्पन्न
कराया ॥ १७ ॥ वह दक्षसुता उमा दुःसह तपको करके भक्तोंको कल्याण देनेवाली प्रसन्नतासे रुद्रकी पत्नी हुई ॥ १८ ॥ शुद्धबुद्धि वह रुद्र अपने
विवाहमें मुझे मोहित कर पार्वतीके साथ गृहस्थ होकर उत्तम लीलांको करनेलगे ॥ १९ ॥ उमाका विवाह करके अपने पर्वतपर आकर स्वतंत्र होकर संतानकी

इच्छासे मोहित हो रमण करनेलगे ॥ २० ॥ उमाके साथ विवाह करते हुए निर्विकार उन शंभुका बहुत समय बीतगया ॥ २१ ॥ फिर शिवकी मायासे मोहित अहंकारी मूर्ख दक्षके साथ रुद्रका वैर हुआ ॥ २२ ॥ उन्हींके प्रभावसे मूर्ख अहंकारी मोहित दक्षने शांत निर्विकार रुद्रकी निन्दा की ॥ २३ ॥ फिर संसारके स्वामी दक्षने सब देवताओंको विष्णुको और मुझे बुलाकर शिवके विना अहंकारसे यज्ञ किया ॥ २४ ॥ महादेवजीके द्वेषसे आकुल द्वेषसे मोहित दक्षने सतीनाम्नी अपनी पुत्रीको नहीं बुलाया, तब पतिव्रता पार्वतीने आगे कहा हुआ चरित्र किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ अहंकारी दक्षसे विना बुलाई

तया विहरतस्तस्य व्यतीयाय महान् मुने ॥ कालस्सुखकरश्शंभोर्निर्विकारस्य सद्व्रतेः ॥२१॥ ततो रुद्रस्य दक्षेण स्पर्द्धा जाता निजे
च्छया ॥ महामूढस्य तन्मायामोहितस्य सुगर्विणः ॥ २२ ॥ तत्प्रभावाद्धरं दक्षो महागर्वी विमूढधीः ॥ महाशांतं निर्विकारं निनिंद
बहु मोहितः ॥ २३ ॥ ततो दक्षः स्वयं यज्ञं कृतवान्गर्वितोऽहरम् ॥ सर्वानाहूय देवादीन् विष्णुं मां चाखिलाधिपः ॥ २४ ॥ नाजुहाव
तथाभूतो रुद्रं रोषसमाकुलः ॥ तथा तत्र सतीं नाम्ना स्वपुत्रीं विधिमोहितः ॥ २५ ॥ यदा नाकारिता पित्रा मायामोहितचेतसा ॥
लीलां चकार सुज्ञाना महासाध्वी शिवा तदा ॥ २६ ॥ अथागता सती तत्र शिवाज्ञामधिगम्य सा ॥ अनाहूतापि दक्षेण गर्विणा स्वपि
तुर्गृहम् ॥ २७ ॥ विलोक्य रुद्रभागं नो प्राप्यावज्ञां च ताततः ॥ विनिंद्य तत्र तान्सर्वान्देहत्यागमथाकरोत् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा देव
देवेशः क्रोधं कृत्वा तु दुस्सहम् ॥ जटामुत्कृत्य महतीं वीरभद्रमजीजनत् ॥ २९ ॥ सगणं तं समुत्पाद्य किं कुर्य्यामिति वादिनम् ॥
सर्वापमानपूर्वं हि यज्ञध्वंसं दिदेश ह ॥३०॥ तदाज्ञां प्राप्य स गणाधीशो बहुबलान्वितः ॥ गतोऽरं तत्र सहसा महाबलपराक्रमः॥३१॥

हुई भी सती शिवकी आज्ञाको लेकर अपने पिताके घर गई ॥ २७ ॥ वहाँ महादेवजीका भाग न देख पितासे अपमानित सतीने सबकी निन्दाकर शरीर छोड दिया ॥ २८ ॥ यह सुन शिवने कठिन क्रोधकर जटा उखाड वीरभद्रको उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ गणोंके सहित वीरभद्रको उत्पन्नकर क्या करैं यह कहते हुए वीरभद्रको अपना तिरस्कार कथनपूर्वक दक्षके यज्ञको नाश करनेकी आज्ञा दी ॥ ३० ॥ उनकी आज्ञा पाकर गणाधीश बहुत बलोंसे युक्त

---

१ हरसहितम् ।

वहाँ गये ॥ ३१ ॥ और उनकी आज्ञासे गणोंने महा उपद्रव करके सबको दंडित किया किसीको नहीं छोडा ॥ ३२ ॥ विष्णु और देवतोंको यत्नपूर्वक जीत दक्षका शिर काटकर अग्निमें हवन करदिया ॥ ३३ ॥ महा उपद्रव करतेहुए गणोंने यज्ञको विध्वंसकर कैलास पर्वतपर जाकर महादेवजीको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ देवतोंके देखतेही देखते रुद्रके अनुचर वीरभद्रादिकों करके यज्ञका विध्वंस होगया ॥ ३५ ॥ उत्तम प्रभु रुद्रके रुष्ट होनेपर लोकका कल्याण कैसे हो ? हे मुनि ! यह नीति श्रुति और स्मृतिके सम्मतसे जानिये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर स्तुतिको सुन दीनवत्सल रुद्र प्रसन्न हो सबकी विज्ञप्तिको

महोपद्रवमाचेरुर्गणास्तत्र तदाज्ञया ॥ सर्वान्स दंडयामास न कश्चिदवशेषितः ॥ ३२ ॥ विष्णुं संजित्य यत्नेन सामरं गणसत्तमः ॥ चक्रे दक्षशिरश्छेदं तच्छिरोग्नौ जुहाव च ॥ ३३ ॥ यज्ञध्वंसं चकाराशु महोपद्रवमाचरन् ॥ ततो जगाम स्वगिरिं प्रणनाम प्रभुं शिवम् ॥ ३४ ॥ यज्ञध्वंसोऽभवच्चेत्थं देवलोके हि पश्यति ॥ रुद्रस्यानुचरैस्तत्र वीरभद्रादिभिः कृतः ॥ ३५ ॥ मुने नीतिरियं ज्ञेया श्रुतिस्मृतिषु संमता ॥ रुद्रे रुष्टे कथं लोके सुखं भवति सुप्रभौ ॥ ३६ ॥ ततो रुद्रः प्रसन्नोभूत्स्तुतिमाकर्ण्य तां पराम् ॥ विज्ञप्तिं सफलां चक्रे सर्वेषां दीनवत्सलः ॥ ३७ ॥ पूर्ववच्च कृतं तेन कृपालुत्वं महात्मना ॥ शंकरेण महेशेन नानालीलाविहारिणा ॥ ३८ ॥ जीवितस्तेन दक्षो हि तत्र सर्वे हि सत्कृताः ॥ पुनस्स कारितो यज्ञः शंकरेण कृपालुना ॥ ३९ ॥ रुद्रश्च पूजितस्तत्र सर्वैर्देवैर्विशेषतः ॥ यज्ञे विश्वादिभिर्भक्त्या सुप्रसन्नात्मभिर्मुने ॥ ४० ॥ सतीदेहसमुत्पन्ना ज्वाला लोकसुखावहा ॥ पतिता पर्वते तत्र पूजिता सुखदायिनी ॥ ॥ ४१ ॥ ज्वालामुखीति विख्याता सर्वकामफलप्रदा ॥ बभूव परमा देवी दर्शनात्पापहारिणी ॥ ४२ ॥

सफल करतेहुए ॥ ३७ ॥ शंकर महादेव नाना लीला और विहार करनेवाले महात्माने कृपासे सब पूर्ववत् करदिया ॥ ३८ ॥ दक्षको जीवित कर उनके द्वारा सबका सत्कार कराकर कृपालु शंकरजीने यज्ञ करवाया ॥ ३९ ॥ तब यज्ञमें विश्वादिक सम्पूर्ण देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न हो रुद्रका पूजन किया ॥४०॥ और सतीके देहसे उत्पन्न, लोकको सुख देनेवाली ज्वाला पर्वतपर जाकर गिरी, वह पूजित होनेपर सुखदायिनी ॥४१॥ सम्पूर्ण कामोंके फलको

देनेवाली ज्वालामुखीके नामसे विख्यात हो दर्शनसे पातकोंको नाश करनेवाली श्रेष्ठ देवी हुई ॥ ४२ ॥ अब भी सम्पूर्ण कामोंके फलकी इच्छा करके महोत्सवमें परस्पर बहुतसे उपचारों द्वारा संसार उनका पूजन करताहै ॥ ४३ ॥ उसके पीछे वह सती देवी हिमालयकी कन्या हो पार्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ४४ ॥ वह फिर कठिन तपस्याके द्वारा आराधन कर उसी परम ईश पतिको प्राप्त हुई ॥ ४५ ॥ हे मुनीश्वर ! जो तुमने पूँछा वह सब हमने कहा जिसके सुननेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै इसमें संदेह नहीं ॥ ४६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे

इदानीं पूज्यते लोके सर्वकामफलाप्तये ॥ संविधाभिरनेकाभिर्महोत्सवपरस्परम् ॥ ४३ ॥ ततश्च सा सती देवी हिमालयसुताऽभवत् ॥ तस्याश्च पार्वतीनाम प्रसिद्धमभवत्तदा ॥ ४४ ॥ सा पुनश्च समाराध्य तपसा कठिनेन वै ॥ तमेव परमेशानं भर्त्तारं समुपाश्रिता ॥ ॥ ४५ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टोहं मुनीश्वर ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सतीसंक्षेपचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नैमिषारण्यवासिनः ॥ पप्रच्छ च मुनिश्रेष्ठः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ विधेविधे महाभाग कथां शंभोश्शुभावहाम् ॥ शृण्वन् भवन्मुखांभोजान्न तृप्तोस्मि महाप्रभो ॥ २ ॥ अतः कथय तत्सर्वं शिवस्य चरितं शुभम् ॥ सतीकीर्त्यन्वितं दिव्यं श्रोतुमिच्छामि विश्वकृत् ॥ ३ ॥ सती हि कथमुत्पन्ना दक्षदारेषु शोभना ॥ कथं हरो मनश्चक्रे दाराहरणकर्मणि ॥ ४ ॥ कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा ॥ हिमवत्तनया जाता भूयो वाकाशमागता ॥ ५ ॥

भाषाटीकायां सतीसंक्षेपचारित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ सूतजी बोले हे नैमिषारण्यवासियों ! इसप्रकार उनके वचन सुन नारदजी पापनाश करनेवाली कथाको पूँछा ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे विधि ! हे महाभाग ! शुभदायिनी शंभुकी कथाको कमलरूपी आपके मुखसे सुनकर हे महाप्रभु ! मैं तृप्त नहीं हुआ ॥ २ ॥ हे विश्वके रचनेवाले ! वह सम्पूर्ण शुभ शिवजीके चरित्र दिव्य सतीजीकी कीर्त्तिसे युक्त कहिये, मुझे सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ किसप्रकार सती दक्षकी स्त्रीमें उत्पन्न हुई और कैसे महादेवजीने स्त्रीके करनेमें मन दिया ॥ ४ ॥ पूर्वही किस प्रकार दक्षके कोपसे सतीजीने शरीर छोडा और हिमवान्की

कन्या होकर फिर आकाशमें आई ॥ ५ ॥ पार्वतीका उग्र तप आर उनका विवाह किस प्रकार हुआ और स्मरको नाशकरनेवाले महादेवजीकी अर्द्धांगी
कैसे हुई ॥ ६ ॥ हे महामति ! यह सब आप विस्तारसे कहिये, आपके समान संशयका नाशकरनेवाला और दूसरा नहीं है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी !
परमपवित्र गुप्तसे गुप्त दिव्य सती और शिवजीका शुभयश सुनो ॥ ८ ॥ विष्णु करके बडी प्रीतिसे पूंछेहुए शिवजीने प्रथम भक्तश्रेष्ठ परोपकारी विष्णुसे यह
कहाथा ॥ ९ ॥ फिर हमसे पूँछे हुए भगवान्‌ने प्रेमसे विस्तारपूर्वक कहा ॥ १० ॥ सब कामोंके देनेवाली सती और शिवके यशसे युक्त उसी पुरानी कथाको

पार्वत्याश्च तपोऽत्युग्रं विवाहश्च कथं त्वभूत् ॥ कथमर्द्धशरीरस्था बभूव स्मरनाशिनः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण
महामते ॥ नान्योस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु त्वं च मुने सर्वं सतीशिवयशश्शुभम् ॥
पावनं परमं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतमं परम् ॥ ८ ॥ एतच्छंभुः पुरोवाच भक्तवर्याय विष्णवे ॥ पृष्टस्तेन महाभक्त्या परोपकृतये मुने
॥ ९ ॥ ततस्सोपि मया पृष्टो विष्णुश्शैववरस्सुधीः ॥ प्रीत्या मह्यं समाचख्यौ विस्तरान्मुनिसत्तम ॥ १० ॥ अहं तत्कथयिष्यामि
कथामेतां पुरातनीम् ॥ शिवाशिवयशोयुक्तां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ११ ॥ पुरा यदा शिवो देवो निर्गुणो निर्विकल्पकः ॥ अरूप
श्शक्तिरहितश्चिन्मात्रस्सदसत्परः ॥ १२ ॥ अभवत्सगुणस्सोपि द्विरूपश्शक्तिमान्प्रभुः ॥ सोमो दिव्याकृतिर्विप्र निर्विकारी परात्परः
॥ १३ ॥ तस्य वामांगजो विष्णुर्ब्रह्माहं दक्षिणांगजः ॥ रुद्रो हृदयतो जातोऽभवच्च मुनिसत्तम ॥ १४ ॥ सृष्टिकर्ताभवं ब्रह्मा विष्णुः
पालनकारकः ॥ लयकर्ता स्वयं रुद्रस्त्रिधाभूतस्सदाशिवः ॥ १५ ॥ तमेवाहं समाराध्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज सर्वा
स्तास्सुरासुरनरादिकाः ॥ १६ ॥

मैं कहताहूं ॥ ११ ॥ प्रथम निर्गुण निर्विकल्प रूपरहित शक्तिरहित चिन्मात्र सत्त्वस्वरूप शिव ॥ १२ ॥ परेसेभी परे निर्विकार वह उमाके सहित द्विरूप
सगुण शक्तिमान्‌ हुए ॥ १३ ॥ उनके बाँये अंगसे विष्णु और दक्षिण अंगसे मैं ब्रह्मा हृदयसे रुद्र उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन
करने वाले विष्णु, लय करने वाले वे स्वयं शिवजी हुए ॥ १५ ॥ लोकपितामह मैंने उन्हींका आराधनकर सब प्रजाओं और देवता दैत्यों और मनुष्यादि

कोंको बनाया ॥ १६ ॥ देवश्रेष्ठ दक्षादिक प्रजापतियोंको बनाकर प्रसन्न मैंने सब तेजोंसे युक्त अपनेको माना ॥ १७ ॥ मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य,
अंगिरस, क्रतु, वशिष्ठ, नारद, दक्ष, भृगुको ॥ १८ ॥ जिसं समय मैंने मनसे उत्पन्न किया उंसी समय मेरे मनसे सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥
दिवसके अंतमें सायंकालकी संध्याकी समान सुन्दरी सुष्ठु भौंहोंवाली मुनियोंके भी चित्तको मोहन करनेवाली जिसका नाम संध्या था ॥ २० ॥
निश्चय करके सब गुणोंसे युक्त तीनों काल और तीनों लोकोंमें वैसी नारी न थी ॥ २१ ॥ उसको देखकर उठकर मैं और सृष्टि करनेवाले दक्षादिक और

सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान्सुरसत्तमान् ॥ अमन्यं सुप्रसन्नोऽहं निजं सर्वमहोन्नतम् ॥१७॥ मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यांगिरसौ क्रतुम् ॥
वसिष्ठं नारदं दक्षं भृगुं चेति महाप्रभून् ॥ १८ ॥ ब्रह्माहं मानसान्पुत्रानसर्जं च यदा मुने ॥ तदा मन्मनसो जाता चारुरूपा वरांगना
॥ १९ ॥ नाम्ना संध्या दिवःक्षांता सायं संध्या जपंतिका ॥ अतीव सुन्दरी सुभ्रूर्मुनिचेतोविमोहिनी ॥ २० ॥ न तादृशी देवलोके न
मर्त्ये न रसातले ॥ कालत्रयेपि वै नारी सम्पूर्णगुणशालिनी ॥ २१ ॥ दृष्ट्वाहं तां समुत्थाय चिन्तयन्हृदि हृद्गतम् ॥ दक्षादयश्च
स्रष्टारो मरीच्याद्याश्च मत्सुताः ॥ २२ ॥ एवं चिंतयतो मे हि ब्रह्मणो मुनिसत्तम ॥ मानसः पुरुषो मंजुराविर्भूतो महाद्भुतः ॥ २३ ॥
कांचनीकृतजाताभः पीनोरस्कस्सुनासिकः ॥ सुवृत्तोरुकटीजंघो नीलवेलितकेसरः ॥ २४ ॥ लग्नभ्रूयुगलो लोलः पूर्णचंद्रनिभाननः ॥
कपाटायतसद्वक्षो रोमराजीविराजितः ॥ २५ ॥ अभ्रमातंगकाकारः पीनो नीलसुवासकः ॥ आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवः ॥
॥ २६ ॥ क्षीणमध्यश्चारुदन्तः प्रमत्तगजगंधनः ॥ प्रफुल्लपद्मपत्राक्षः केसरघ्राणतर्पणः ॥ २७ ॥

मरीच्यादिक मेरे पुत्र सोचने लगे ॥ २२ ॥ सोचते हुए मेरे हृदयसे सुन्दर बडा अद्भुत एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ जो तपेहुए सुवर्णके समान
कांतिधारी मोटे वक्षःस्थलवाला और उत्तम नासिकावाला सुन्दर मुख, उंर, कटि, जंघासे युक्त और भ्रमरके समान काले बालोंसे शोभित ॥ २४ ॥
मिलीहुई दोनों भौं हैं प्यारा पूर्णचन्द्रमाकी तरह दीप्तिवाला कपाटके समान दीर्घ हृदय रोमरूपी कमलसे शोभित ॥ २५ ॥ श्यामगजके सदृश आकारवाला
स्थूल, नील, उत्तम, सुगंधियोंसे युक्त और रक्त वर्णके हाथ पैर मुख नेत्रसे शोभायमान ॥ २६ ॥ क्षीण मध्यभाग और सुन्दर दाँतवाला मतवाले गजके

समान गंधसे युक्त फूले कमलपत्रके समान नेत्र वालोंकी सुगंधसे सुवासित करता हुआ ॥ २७ ॥ सुन्दर गर्दनवाला मीन है ध्वजामें जिसके ऐसा मकरवाहन पंचपुष्पायुध, शीघ्रगामी पुष्पके धनुषसे शोभित काम ॥ २८ ॥ हे तात ! कटाक्षोंसे दोनों नेत्रोंको घुमाता हुआ सबका प्रिय सुगंधित श्वासवाला शृंगार रससे सेवित ॥ २९ ॥ ऐसे उस पुरुषको देख चकित दक्षादिक मेरे पुत्र प्रसन्न हो बडी आश्चर्यताको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ कामबाणसे पीडित उन मेरे पुत्रोंका चित्त शीघ्रही विकृत होगया और धीर नहीं रहा ॥ ३१ ॥ विनयपूर्वक स्कंधको झुकाकर वह पुरुष संसारके स्वामी प्रजाओंके रचयिता मुझ

कंबुग्रीवो मीनकेतुः प्रांशुर्मकरवाहनः ॥ पंचपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदंडमंडितः ॥ २८ ॥ कांतः कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम् ॥ सुगंधिमारुतो तात शृंगाररससेवितः ॥ २९ ॥ तं वीक्ष्य पुरुषं सर्वे दक्षाद्या मत्सुताश्च ते ॥ औत्सुक्यं परमं जग्मुर्विस्मयाविष्टमानसाः ॥ ३० ॥ अभवद्विकृतं तेषां मत्सुतानां मनो द्रुतम् ॥ धैर्यं नैवालभत्तात कामाकुलितचेतसाम् ॥ ३१ ॥ मां सोपि वेधसं वीक्ष्य स्रष्टारं जगतां पतिम् ॥ प्रणम्य पुरुषः प्राह विनयानतकंधरः ॥ ३२ ॥ ॥ पुरुष उवाच ॥ किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय ॥ मान्योद्य पुरुषो यस्मादुचितः शोभितो विधे ॥३३॥ अभिमानं च योग्यं च स्थानं पत्नी च या मम ॥ तन्मे वद त्रिलोकेश त्वं स्रष्टा जगतां पतिः ॥ ३४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एव तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मनः ॥ क्षणं न किंचित्प्रावोचत्स स्रष्टा चातिविस्मितः ॥ ३५ ॥ अतो मनस्सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम् ॥ अवोचत्पुरुषं ब्रह्मा तत्कामं च समावहन् ॥ ३६ ॥

ब्रह्माको देख प्रणाम करके बोला ॥३२॥ पुरुष बोला हे ब्रह्मन् ! मैं क्या करूं मुझे ऐसे कर्ममें नियोजित कीजिये जिससे मैं पुरुषोंका माननीय हूं॥ ३३॥ और अभिमानयोग्य स्थान और जो मेरी पत्नी है उसे हे त्रिलोकेश ! जगतके पति सृष्टि करनेवाले मुझसे आप कहिये ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले महात्मा कामके इस वचनको सुनकर अतिचकित हो थोडी देरतक ब्रह्मा कुछ न बोला ॥ ३५ ॥ फिर मनको सावधानकर विस्मयको छोड कामको समीप बुलाकर

ब्रह्माजी बोले ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले तुम इस अपने रूप और पाँच पुष्पोंके बाणोंसे पुरुष और स्त्रियोंको मोहित करते हुए सृष्टि करो तुम्हारे सन्मुख त्रिलोकमें चराचर देवता और जीवोंमें कोई न ठहर सकेगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मैं और वासुदेव और शिवजी भी तुम्हारे वश होवेंगे और जीवोंकी तो बातही क्या है ॥ ३९ ॥ गुप्तरूप तुम सर्वदा प्राणधारियोंके हृदयमें प्रवेश करतेहुए सुखरूप होकर सनातनी सृष्टिको करो ॥ ४० ॥ सदा तुम्हारे पुष्पबाण मनके आश्चर्य देनेवाला सुखरूपी लक्ष्य सब प्राणियोंको नित्य मद देनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ यह सृष्टि चलानेवाला कर्म मैंने तुमसे कहा फिर यह मेरे पुत्र

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ अनेन त्वं स्वरूपेण पुष्पबाणैश्च पंचभिः ॥ मोहयन् पुरुषान् स्त्रीश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम् ॥ ३७ ॥ अस्मिञ्जीवाश्च देवाद्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ एते सर्वे भविष्यन्ति न क्षमास्त्यवलंबने ॥ ३८ ॥ अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तमः ॥ भविष्यामस्तव वशे किमन्ये प्राणधारकाः ॥ ३९ ॥ प्रच्छन्नरूपो जंतूनां प्रविशन् हृदयं सदा ॥ सुखहेतुः स्वयं भूत्वा सृष्टिं कुरु सनातनीम् ॥ ४० ॥ त्वत्पुष्पबाणस्य सदा सुखलक्ष्यं मनोद्भुतम् ॥ सर्वेषां प्राणिनां नित्यं सदा मदकरो भवान् ॥ ४१ ॥ इति ते कर्म कथितं सृष्टिप्रावर्तकं पुनः ॥ नामान्येते वदिष्यंति सुता मे तव तत्त्वतः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वाहं सुरश्रेष्ठ स्वसुतानां मुखानि च ॥ आलोक्य स्वासने पाद्मे प्रोपविष्टोऽभवं क्षणम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे कामप्रादुर्भावो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्ते मुनयः सर्वे तदभिप्रायवेदिनः ॥ चक्रुस्तदुचितं नाम मरीचिप्रमुखास्सुताः ॥ १ ॥ मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तांतमन्यतः ॥ दक्षादयश्च स्रष्टारः स्थानं पत्नीं च ते ददुः ॥ २ ॥

वास्तवमें तुम्हारे नाम कहेंगे ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे सुरश्रेष्ठ ! यह कहकर अपने पुत्रोंका मुख देख मैं अपने कमलासनपर बैठगया ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु० द्वितीये सतीखण्डे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ फिर उसके अभिप्रायको जाननेवाले मरीच्यादिकोंने कामदेवका उचित नाम रखदिया ॥ १ ॥ सृष्टि करनेवाले दक्षादिकोंने दूसरोंसे उसका वृत्तान्त जान उसका मुख देखतेही स्थान और स्त्रीको उसे देदिया ॥ २ ॥

फिर मरीच्यादिक मेरे पुत्रोंने उसके नाम निश्चितकर उससे कहदिये ॥ ३ ॥ ऋषि बोले, जो तुमने पहलेही हमारा और ब्रह्माजीका चित्त मथदिया इस्से
संसारमें मन्मथ तुम्हारा नाम होगा ॥ ४ ॥ संसारमें तुम्हारे समान कोई सुन्दर नहीं है इससे तुम्हारा कामभी नाम होगा ॥ ५ ॥ मोहनसे मदन,
अहङ्कारसे तुम अहंकारी कन्दर्प भी तुम्हारा नाम होगा ॥ ६ ॥ तुम्हारे समान किसी देवतामें पराक्रम न होगा इससे आपके सब स्थान और आप

ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखा द्विजाः ॥ ऊचुस्संगतमेतस्मै पुरुषाय ममात्मजाः ॥ ३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यस्मात्प्रमथसे
तत्त्वं जातोस्माकं यथा विधेः ॥ तस्मान्मन्मथनामा त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि ॥४॥ जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो न हि विद्यते ॥
अतस्त्वं कामनामापि ख्यातो भव मनोभव ॥ ५ ॥ मदनान्मदनाख्यस्त्वं जातो दर्पात्सदर्पकः ॥ तस्मात्कंदर्पनामापि लोके ख्यातो
भविष्यसि ॥ ६ ॥ त्वत्समं सर्वदेवानां यद्वीर्यं न भविष्यति ॥ ततः स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापी भवांस्ततः ॥ ७ ॥ दक्षोयं भवते
पत्नीं स्वयं दास्यति कामिनीम् ॥ आद्यः प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा ॥
संध्या नाम्नेति विख्याता सर्वलोके भविष्यति ॥ ९ ॥ ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात्सम्यग्जाता वरांगना ॥ अतस्संध्येति विख्याता
क्रांताभा तुल्यमल्लिका ॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कौसुमानि तथास्त्राणि पंचादाय मनोभवः ॥ प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिंतयामास निश्चयम्
॥ ११ ॥ हर्षणं रोचनाख्यं च मोहनं शोषणं तथा ॥ मारणं चेति प्रोक्तानि मुनेर्मोहकराण्यपि ॥ १२ ॥

सर्वव्यापी होंगे ॥ ७ ॥ पुरुषोत्तम प्रजाओंके स्वामी दक्ष यथेष्ट कामिनी स्त्री आपको देंगे ॥ ८ ॥ यह ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न सुन्दरी संसारमें संध्यानाम
वाली होगी ॥ ९ ॥ अच्छी प्रकार ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके हृदयसे यह उत्पन्न हुई है इससे इसका संध्या नाम है ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले, गुप्तरूप
कामदेव पुष्परूपी पाँच अस्त्र लेकर वहीं सोचने लगा ॥ ११ ॥ रोचन, हर्षण, मोहन, शोषण और मारण यह पांच बाण मुनियोंके भी चित्तको मोहन

करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ सनातन जो कर्म ब्रह्माजीने मुझसे कहा है उसकी परीक्षा मुनियोंके समीप यहीं करूं ॥ १३ ॥ यहां बहुतसे ऋषि और साक्षात
प्रजापतिजी वर्त्तमान हैं; इनके सामने कर्म्मकी सत्यता निश्चय होजायगी ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीकी कहीहुई संध्याभी कर्म्मोंकी परीक्षा करनेके निमित्त बोली
॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले यह मनमें सोच और निश्चयकर कामने धनुषको योजित किया ॥ १६ ॥ सुन्दर स्थानमें पहुँचकर यत्नसे धनुष खींच धन्वीवर
कामने धनुषको चूडीकी तरह बनादिया ॥ १७ ॥ उसके धनुषको ठीक करनेपर प्रसन्न करनेवाली सुगान्धित वायु चलनेलगी ॥ १८ ॥ फिर मोहन

ब्रह्मणा मम यत्कर्म समुद्दिष्टं सनातनम् ॥ तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधे ॥ १३ ॥ तिष्ठंति मुनयश्चात्र स्वयं चापि प्रजा
पतिः ॥ एतेषां साक्षिभूतं मे भविष्यंत्यद्य निश्चयम् ॥ १४ ॥ संध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्ता चेदानीं प्रेषयेद्वचः ॥ इह कर्म परीक्ष्यैव प्रयोगा
न्मोहयाम्यहम् ॥१५॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति संचित्य मनसा निश्चित्य च मनोभवः ॥ पुष्पजं पुष्पजातस्य योजयामास मार्गणैः ॥ १६ ॥
आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नतः ॥ चकार बलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा॥१७॥ संहिते तेन कोदंडे मारुताश्च सुगंधयः ॥
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठ सम्यगाह्लादकारिणः ॥ १८ ॥ ततस्तानपि धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान् ॥ पृथक् पुष्पशरैस्तीक्ष्णैर्मोहयामास
मोहनः ॥ १९ ॥ ततस्ते मुनयस्सर्वे मोहिताश्चाप्यहं मुने ॥ संहितो मनसा कंचिद्विकारं प्रापुरादितः ॥२०॥ संध्यां सर्वे निरीक्षंतस्स
विकारं मुहुर्मुहुः ॥ आसन् प्रवृद्धमदनाः स्त्री यस्मान्मदनैधिनी ॥ २१ ॥ ततः सर्वान्स मदनो मोहयित्वा पुनःपुनः ॥ यथेन्द्रियवि
कारं ते प्रापुस्तानकरोत्तथा ॥२२॥ उदीरितेंद्रियो धाता वीक्ष्याहं स यदा च ताम् ॥ तदैव चोनपंचाशंद्भावा जाताश्शरीरतः ॥ २३ ॥

(कामदेव) ने अलग २ तेज पुष्पबाणोंसे ब्रह्मादिक सबके मन मोहित करालिये ॥ १९ ॥ तब मैं और सब मुनि मोहित होगये और परस्पर मिलकर
विकारको प्राप्तहुए ॥ २० ॥ बार २ संध्याको देखतेहुए जिस कामरूपी अग्निकी स्त्री ईंधन होती है ऐसे कामसे अंधे होगये ॥२१॥ उस कामने वारम्वार
उन सबको मोहित करके उनको इन्द्रियविकार प्राप्त करादिया ॥२२॥ उसे देख उठीहुई इन्द्रियवाले मुझ ब्रह्माके शरीरसे ४९ भाव उत्पन्न होगये ॥२३॥

कामरूपी बाणके गिरनेसे उन लोगोंसे देखती कटाक्षरूपी आवरणोंको करतीहुई ॥ २४ ॥ स्वभावसेही सुन्दरी उस संध्याने मनसे उत्पन्न उन भावोंको शरीरकी दीप्तिसे बढादिया ॥ २५ ॥ धर्मसे व्याप्त शरीरवाले प्रजापतिने भावयुक्त सन्ध्याको देखकर उसमें अभिलाषा की ॥ २६ ॥ फिर मरीच्यादिक और दक्षादिक इन्द्रियोंके विकारको प्राप्त होगये ॥२७॥ इसप्रकार मरीच्यादिकोंको मुझको और सन्ध्याको देख कामने अपने कार्य्यमें विश्वास करलिया॥ २८॥ जो कुछ ब्रह्माजीने मेरे कर्म्म नियत किये मैं वह करनेको समर्थ हुआ हूं ॥ २९ ॥ इसप्रकार भाइयों और पिताकी पापबुद्धिको देख धर्म्मने धर्म्ममूर्त्ति

सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कंदर्पशरपातनात ॥ चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान् ॥ २४ ॥ निसर्गसुंदरी संध्या तान्भावान् मानसोद्भवान् ॥ कुर्वंत्यतितरां रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभिः ॥ २५ ॥ अथ भावयुतां संध्यां वीक्ष्याकार्षं प्रजापतिः ॥ धर्माभिपूरिततनुरभिलाषमहं मुने ॥२६॥ ततस्ते मुनयस्सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि ॥ दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठ प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम् ॥२७॥ दृष्ट्वा तथाविधा दक्षमरीचिप्रमुखाश्च माम् ॥ संध्यां च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा ॥ २८ ॥ यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयापि तत् ॥ कर्तुं शक्यमिति ह्यद्धा भावितं स्वभुवा तदा ॥ २९ ॥ इत्थं पापगतिं वीक्ष्य भ्रातॄणां च पितुस्तथा ॥ धर्मस्ससस्मार शंभुं वै तदा धर्मावनं प्रभुम् ॥३०॥ संस्मरन्मनसा धर्मं शंकरं धर्मपालकम् ॥ तुष्टाव विविधैर्वाक्यैर्दीनो भूत्वाजसंभवः ॥ ३१ ॥ धर्म उवाच ॥ देवदेव महादेव धर्मपाल नमोस्तु ते ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता शंभो त्वमेव हि ॥ ३२ ॥ सृष्टौ ब्रह्मा स्थितौ विष्णुः प्रलये हररूपधृक् ॥ रजस्सत्त्वतमोभिश्च त्रिगुणैरगुणः प्रभो ॥ ३३ ॥

शिवजीका स्मरण किया ॥ ३० ॥ वह धर्म्म धर्म्मके पालक शिवजीको मनसे स्मरण करताहुआ दीन होकर नाना वाक्योंसे शिवजीकी स्तुति करनेलगा ॥ ३१ ॥ धर्म्म बोला, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे धर्म्मपालक ! आपको नमस्कार है । हे शम्भु ! सृष्टिकी स्थिति, और विनाशके करनेवाले आपहीहैं ॥ ३२ ॥ सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, स्थितिकर्ता विष्णु और प्रलयकर्त्ता हर हैं परन्तु हे प्रभु ! आप सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे रहित हो ॥ ३३ ॥

प्रकृतिसे परे तीनों गुणोंसे रहित,निर्गुण विकाररहित नानाप्रकारकी लीलाओंको करनेवाले हे शिव ! वह चतुर्थ साक्षात् आपही हैं ॥ ३४ ॥ हे महादेव ! इन दुस्तर पापोंसे रक्षा करो, यह मेरे पिता और भाई पापबुद्धि हैं ॥३५॥ ब्रह्माजी बोले, इस प्रकार जब परम प्रभु महादेवजीकी स्तुति धर्मने की तब उसी समय धर्मकी रक्षा करनेके हेतु मैं ब्रह्मा वहाँ गया ॥३६॥ शम्भुजी मुझ ब्रह्माको आया देख मुझको और दक्षादिकोंको मनमें हँसते हुए ॥ ३७ ॥ वह उन सबको बारंबार हँसकर मुझ ब्रह्माको लज्जित करतेहुए वृषभध्वज बोले, ॥ ३८ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्मा ! कन्याको देखकर कैसे आपके कामका भाव प्रगट

निस्त्रैगुण्यः शिवः साक्षात्तुर्यश्च प्रकृतेः परः ॥ निर्गुणो निर्विकारी त्वं नानालीलाविशारदः ॥ ३४ ॥ रक्षरक्ष महादेव पापान्मां
दुस्तरादितः ॥ मत्पितायं तथा चेमे भ्रातरः पापबुद्धयः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुतो महेशानो धर्मेणैव परः प्रभुः ॥ तत्राजगाम
शीघ्रं वै रक्षितुं धर्ममात्मभूः ॥३६॥ जातो वियद्गतश्शंभुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ मां दक्षाद्यांश्च मनसा जहासोपजहास च ॥ ३७ ॥
स साधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुनःपुनः ॥ उवाचेदं मुनिश्रेष्ठ लज्जयन् वृषभध्वजः ॥ ३८ ॥ शिव उवाच ॥ अहो ब्रह्मंस्तव कथं
कामभावस्समुद्गतः ॥ दृष्ट्वा च तनयां नैव योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥ ३९ ॥ यथा माता च भगिनी भ्रातृपत्नी तथा सुता ॥ एताः
कुदृष्ट्या द्रष्टव्या न कदापि विपश्चिता ॥ ४० ॥ एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखे स्थितः ॥ कथं तु काममात्रेण स ते विस्मारितो
विधे ॥ ४१ ॥ धैर्यं जागरितं ब्रह्मन्मनस्ते चतुरानन ॥ कथं क्षुद्रेण कामेन रंतुं विघटितं विधे ॥ ४२ ॥ एकांतयोगिनस्तस्मात्सर्व
दादित्यदर्शिनः ॥ कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपाः स्त्रीषु मानसाः ॥ ४३ ॥

होगया ? जो वेदके मतानुसार योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥ जैसे माता, भगिनी और भाईकी स्त्री होतीहै वैसेही कन्याको जानिये, इनको भूलकर भी कुदृष्टिसे न देखना चाहिये ॥ ४० ॥ इस वेदके मार्गका निश्चय आपके मुखमें स्थित है, हे विधि ! कैसे काममात्रहीसे आपने उसे भुलादिया ॥ ४१ ॥ हे चतुरानन ! हे ब्रह्मन् ! आपके मनमें किस प्रकार धैर्यका जागरण न हुआ जिस्से एक क्षुद्र कामसेही रतिकी इच्छाका विधान किया ॥ ४२ ॥ सदा सूर्य्यका दर्शन करने

वाले दक्ष मरीच्यादि एकान्त योगियोंका चित्त कैसे स्त्रीमें लोलुप होगया ॥ ४३ ॥ और किसप्रकार अकालज्ञ मंद बुद्धिवाले मंदात्मा कामदेवने प्रबलतासे बाणोंके द्वारा विकृत किया ॥ ४४ ॥ धैर्यको छोड चपलतामें जिसका मन डूबताहै और सदा जिस्के मनको स्त्रियाँ हरतीहैं उसके सत्संगको धिक्कार है ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार लोकेश मैं श्रीशिवजीका वचन सुन द्विगुण लज्जाको प्राप्त हो पसीनेमें डूबगया ॥ ४६ ॥ कामरूपिणी उस संध्याको चाहता हुआभी मैं शिवजीके भयसे कामको रोक विकारको छोडताहुआ ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो मेरे शरीरसे जल गिरा उस्से अग्निष्वात्तादिक पितृगण

कथं कामोपि मंदात्मा प्राबल्यात्सोधुनैव हि ॥ विकृतान्बाणैः कृतवानकालज्ञोल्पचेतनः ॥ ४४ ॥ धिक्तं श्रुतं तस्य सदा यस्य कांता मनोहरत् ॥ धैर्यादाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि मानसम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा लोके सोहं शिवस्य च ॥ व्रीडया द्विगुणीभूतस्वेदार्द्रस्त्वभवंक्षणात् ॥४६॥ ततो निगृह्यैंद्रियकं विकारं चात्यजं मुने ॥ जिघृक्षुरपि तद्भीत्या तां संध्यां कामरूपिणीम् ॥ ॥ ४७ ॥ मच्छरीरात्तु घर्मांभो यत्पपात द्विजोत्तम ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणा जाताः पितृगणास्ततः ॥ ४८ ॥ भिन्नांजननिभास्सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः ॥ नितांतयतयः पुण्यास्संसारविमुखाः परे ॥ ४९ ॥ सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः ॥ षडशीति सहस्राणि तथा बर्हिषदो मुने ॥ ५० ॥ घर्मांभः पतितं भूमौ तदा दक्षशरीरतः ॥ समस्तगुणसंपन्ना तस्माज्जाता वरांगना ॥ ५१ ॥ तन्वंगी सममध्या च तनुरोमावली श्रुता ॥ मृद्वंगी चारुदशना नवकांचनसुप्रभा ॥ ५२ ॥ सर्वावयवरम्या च पूर्णचन्द्राननाम्बुजा ॥ नाम्ना रतिरिति ख्याता मुनीनामपि मोहिनी ॥ ५३ ॥

उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ मेघकी समान कान्तिवाले, फूलेहुए कमलकी समान आंखवाले, नित्य यतिभावसे रहनेवाले, पुण्यरूप, संसारसे विमुख ॥ ४९ ॥ चौंसठ हजार अग्निष्वात्ता पितर ८६ हजार बर्हिषद पितर हैं ॥५०॥ जो दक्षजीके शरीरसे जल गिरा उस्से समस्त गुणयुक्त एक कन्या उत्पन्न हुई ॥५१॥ दुर्बल शरीरवाली, सूक्ष्मकमरवाली, मृदुअंगवाली, सुंदर दाँत और सोनेकी समान दीप्तिवाली ॥ ५२ ॥ सम्पूर्ण अंग रमणीय पूर्णचन्द्रकी समान मुखवाली

कमलकी समान कान्तिवाली, मुनियोंकेभी मनको मोहन करनेमें समर्थ रतिनामवाली स्त्रीको देख ॥ ५३ ॥ निगृहीत इन्द्रियक्रियाओंवाले मरी
च्यादिक छहोंके मध्यमेंसे वसिष्ठ और क्रतुको छोड ॥ ५४ ॥ दूसरे चारों पुलस्त्य और आंगिरसकाभी वीर्य पृथ्वीपर गिरपडा उससे दूसरे पितृगण
उत्पन्न हुए ॥ ५५ ॥ सोमपा, आज्यपा, सुकाली, हविष्मान्, कव्यवाह संज्ञक हुए ॥ ५६ ॥ क्रतुके सोमप, वसिष्ठसे सुकाली, पुलस्त्यसे आज्यपा,
अंगिरससे हविष्मान् उत्पन्न हुए ॥ ५७ ॥ हे विप्रेन्द्र ! चारों दिशाओंने संसारके पितर, कव्यवाट और अग्निष्वात्तादिकोंके उत्पन्न होनेपर ॥ ५८ ॥

मरीचिप्रमुखाः षड् वै निगृहीतेन्द्रियक्रियाः ॥ ऋते क्रतुं वसिष्ठं च पुलस्त्यांगिरसौ तथा ॥ ५४ ॥ क्रत्वादीनां चतुर्णां च बीजं भूमौ
पपात च ॥ तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे मुनिसत्तम ॥ ५५ ॥ सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः ॥ हविष्मंतस्सुतास्सर्वे
कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः ॥ ५६ ॥ क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठात्कालिनस्तथा ॥ आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य हविष्मंतोंगिरस्सुताः
॥ ५७ ॥ जातेषु तेषु विप्रेन्द्र अग्निष्वात्तादिकेष्वथ ॥ लोकानां पितृवर्गेषु कव्यवाड् स समंततः ॥ ५८ ॥ संध्या पितृप्रसूर्भूत्वा
तदुद्देशयुताऽभवत् ॥ निर्दोषा शंभुसंदृष्टा धर्मकर्मपरायणा ॥ ५९ ॥ एतस्मिन्नंतरे शम्भुरनुगृह्याखिलान्द्विजान् ॥ धर्मं संरक्ष्य विधिव
दंतर्धानं गतो द्रुतम् ॥ ६० ॥ अथ शंकरवाक्येन लज्जितोहं पितामहः ॥ कंदर्प्पायाकोपिषं हि भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा
मुखमभिप्रायं विदित्वा सोपि मन्मथः ॥ स्वबाणान्संजहाराशु भीतः पशुपतेर्मुने ॥ ६२ ॥ ततः कोपसमायुक्तः पद्मयोनिरहं मुने ॥
अज्वलं चातिबलवान् दिधक्षुरिव पावकः ॥ ६३ ॥

धर्म कर्मसे परायण शम्भुके द्वारा संदृष्ट निर्दोष संध्या पितरोंके उत्पन्न करनेवाली होकर उनके उद्देशसे युक्त होजातीभई ॥ ५९ ॥ फिर शंकरजीके वचनसे
लज्जित पितामह मैं भौंहें टेढीकर कंदर्पसे क्रोधित हुआ ॥ ६० ॥ इसी बीचमें महादेवजी संपूर्ण मुनियोंको अनुगृहीतकर और धर्मकी रक्षाभी करके
शीघ्रही अन्तर्द्धान होगये ॥ ६१ ॥ मुख देख अभिप्राय जान महादेवजीसे भयभीत कामने शीघ्रही अपने बाण खींचलिये ॥ ६२ ॥ अतिबली क्रोधित

कमलकी उत्पत्तिवाला मैं जलती हुई अग्निके समान जलनेलगा ॥ ६३ ॥ महादेवमें दुष्कर कर्म करके अहङ्कारसे मोहित हे कन्दर्प ! तू शिवजीके नेत्रसे जलजायगा ॥ ६४ ॥ यती मुनियों और पितृगणोंके सामने मैंने कामको यह शाप देदिया ॥ ६५ ॥ इसप्रकार भयभीत रतिपति धन्वाको छोड बडा कठिन शाप सुन प्रकट हुआ ॥ ६६ ॥ हे मुने दक्षादिक मेरे सुत व पितृसमूह और संध्या इन सबके सामने मुझसे बोला ॥ ६७ ॥ काम बोला, न्यायी आपसे अनपराधी मुझे ऐसा कठिन शाप कैसे दियागया ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्माजी ! जो कुछ मुझे आपने कर्म बताया वही मैंने किया इसलिये मुझे शाप देना

भवनेत्राग्निनिर्दग्धः कंदर्पो दर्पमोहितः ॥ भविष्यति महादेवे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥६४॥ इति वेधास्त्वहं काममक्षयं द्विजसत्तम ॥ समक्षं पितृसंघस्य मुनीनां च यतात्मनाम् ॥ ६५॥ इति भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात्त्यक्तमार्गणः ॥ प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम् ॥ ६६ ॥ ब्रह्माणं मामुवाचेदं सदक्षादिसुतं मुने ॥ शृण्वतां पितृसंघानां संध्यायाश्च विगर्वधीः ॥ ६७ ॥ ॥ काम उवाच ॥ किमर्थं भवता ब्रह्मन् शप्तोहमिति दारुणम् ॥ अनागास्तव लोकेश न्याय्यमार्गानुसारिणः ॥ ६८ ॥ त्वया चोक्तं नु मत्कर्म यत्तद्ब्रह्मन् कृतं मया ॥ तत्र योग्यो न शापो मे यतो नान्यत्कृतं मया ॥ ६९ ॥ अहं विष्णुस्तथा शंभुः सर्वे त्वच्छरगोचराः ॥ इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम्॥७०॥ नापराधो ममाप्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि ॥ दारुणः समयश्चैष शापो देव जगत्पते॥७१॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्माहं जगतां पतिः ॥ प्रत्यवोचं यतात्मानं मदनं दमयन्मुहुः ॥ ७२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ आत्मजा मम संध्येयं यस्मादेतत्स कामतः ॥ लक्ष्यीकृतोहं भवता ततश्शापो मया कृतः ॥ ७३ ॥

अनुचित था ॥ ६९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये सब तुम्हारे बाणसे पीडित होंगे, यह जो आपने कहाथा उसीकी मैंने परीक्षा की थी ॥ ७० ॥ हे जगत्पिता ब्रह्माजी ! मैं निरपराधी हूं मेरा अपराध नहीं है यह शाप और यह समय कठिन है ॥ ७१ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे जगत्पति ! मैं ब्रह्मा इस प्रकार उसके वचनको सुन बारम्बार कामको डाँटता हुआ बोला ॥ ७२ ॥ ब्रह्माजी बोले, संध्या इस मेरी कन्याको आपने जो कामसे लक्षित किया इस्से मैंने शाप

दिया ॥ ७३ ॥ हे काम ! शान्तक्रोध होकर मैं तुझसे कहता हूं गतसंदेह हो भयछोड सुखी हो ॥७४॥ महोदवजीके नेत्ररूपी अग्निसे भस्मित होकर तुम शीघ्रही शरीर पाओगे ॥७५॥ जिस समय महादेवजी अनायास विवाह करेंगे तब वही आपको शरीर देंगे ॥ ७६ ॥ ब्रह्माजी बोले मुनियोंके देखते हुए लोक पितामह मैं कामसे कहकर अन्तर्द्धान होगया ॥७७॥ इसप्रकार मेंरे वचनको सुनकर वे मुनि और काम सुखीहो शीघ्रही अपने स्थानको चले गये॥ ७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहिताऽन्तर्गत द्वितीये सतीखण्डे भाषाटीकायां कामशापानुग्रहो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥ ॥नारदजी बोले, हे विधि ! हे महा

अधुना शांतरोषोहं त्वां वदामि मनोभव ॥ शृणुष्व गतसंदेहस्सुखी भव भयं त्यज ॥७४॥ त्वं भस्म भूत्वा मदन भर्गलोचनवह्निना ॥ तथैवाशु समं पश्चाच्छरीरं प्रापयिष्यसि॥७५॥यदा करिष्यति हरोंजसा दारपरिग्रहम् ॥ तदा स एव भवतश्शरीरं प्रापयिष्यति ॥७६॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वाथ मदनमहं लोकपितामहः ॥ अंतर्गतो मुनीन्द्राणां मानसानां प्रपश्यताम् ॥ ७७॥ इत्येवं मे वचश्श्रुत्वा मदनस्तेपि मानसाः ॥ संबभूवुस्सुतास्सर्वे सुखिनोऽरं गृहं गताः ॥ ७८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे कामशापानुग्रहो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ विधे लोककर प्रभो ॥ अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शिवलीलामृतान्विता ॥ १ ॥ ततः किमभवत्तात चरितं तद्वदाधुना ॥ अहं श्रद्धान्वितः श्रोतुं यदि शम्भुकथाश्रयम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ शंभौ गते निजस्थाने वेधस्यंतर्हिते मयि ॥ दक्षः प्राहाथ कंदर्पं संस्मरन् मम तद्वचः ॥ ३ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ मद्देहजेयं कंदर्प सद्रूपगुणसंयुता ॥ एनां गृह्णीष्व भार्यार्थं भवतस्सदृशीं गुणैः ॥ ४ ॥

प्राज्ञ ! हे लोक रचनेवाले प्रभु ! हे विष्णुशिष्य ! शिवलीलारूपी अमृतसे युक्त यह अद्भुत कथा आपने कही ॥ १ ॥ हे पिता ! उसके पीछे क्या चरित्र हुआ ? सो अब कहिये श्रीशम्भुजीकी कथा सुननेमें मेरी रुचि है ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले जब शम्भु निजस्थानको गये और मैं ब्रह्मा अन्तर्द्धान होगया तब मेरी बातका स्मरणकर दक्ष कन्दर्पसे बोले ॥ ३ ॥ दक्ष बोले हे काम ! आपके समान गुणवाली मेरी देहसे उत्पन्न उत्तम रूप और गुणसे युक्त इसको भार्याके

लिये ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥ यह महातेजा स्त्री सदा आपकी सहचारिणी और यथाकाम वशवार्त्तिनी होगी ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले, यह कह देहके पसीनेसे उत्पन्न स्त्रीका रतिनाम रख आगे करके कन्दर्पको दे दिया ॥ ६ ॥ हे नारद मुनियोंका भी मन मोहनेवाली दक्षसे उत्पन्न उत्तम कन्याका विवाह करके कामभी अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ ७ ॥ फिर मदन उस रतिनाम्नी अपने गुणके सदृश उत्तम स्त्रीको देखकर रतिसे रंजित हो मोहको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ गौरी मृगदृशी चंचलांगी वह रति उस कामहीकी भार्या हुई ॥ ९ ॥ उसकी दोनों भौंहैं देख कामको यह सन्देह हुआ कि मानो ब्रह्माजीने मेरे

एषा तव महातेजास्सर्वदा सहचारिणी॥ भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै देहस्वेदाम्बुसंभवाम् ॥ कंदर्प्पायाग्रतः कृत्वा नाम कृत्वा रतीति ताम् ॥ ६ ॥ विवाह्य तां स्मरस्सोपि मुमोदातीव नारद ॥ दक्षजां तनयां रम्यां मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ७ ॥ अथ तां वीक्ष्य मदनो रत्याख्यां स्वस्त्रियं शुभाम् ॥ आत्मा गुणेन विद्धोसौ मुमोह रतिरंजितः ॥ ८ ॥ क्षणप्रदाऽभवत्कांता गौरी मृगदृशी मुदा ॥ लोलापांग्यथ तस्यैव भार्या च सदृशी रतौ ॥ ९ ॥ तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोकरोत् ॥ उत्सादनं मत्कोदण्डं विधात्रास्यां निवेशितम् ॥ १० ॥ कटाक्षाणामाशुगतिं दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तम ॥ आशु गन्तुं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम् ॥ ११ ॥ तस्याः स्वभावसुरभिधीरश्वासानिलं तथा ॥ आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयांतिके ॥ १२ ॥ पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा लक्ष्मसुलक्षितम् ॥ न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः ॥ १३ ॥ सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम् ॥ रेजे चूचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव वेष्टितम् ॥ १४ ॥

धन्वाके छेदनार्थ इसमें निवेशित किया है ॥ १० ॥ हे नारद ! उसके कटाक्षकी शीघ्रगति और सुन्दरताको देख उसके सन्मुख अपने अस्त्रोंको मन्दगति माना ॥ ११ ॥ उसका स्वभाव उत्तम वायुकी समान मन्द श्वासको सूँघकर मदनने मलयाचलके समीपकी श्रद्धा छोडदी ॥ १२ ॥ लक्ष्मीसे लक्षित पूर्णचन्द्रकी समान मुखको देख उसके मुख और चन्द्रमामें मदन कुछ भेद न समझसका ॥ १३ ॥ सुवर्णकमलकी कलीके समान उसके दोनों कुच

जिनपर दोनों चूचुक भ्रमरके समान शोभित थे ॥ १४ ॥ दृढमोटे और उन्नत स्तन नाभिपर्य्यन्त लटकनेवाली मालाको धारणकिये कृशोदरी चन्द्रवदनी सुन्दरीको देख मोहित हुआ ॥ १५ ॥ पुष्पायुध कामदेव भौरोंकी पंक्तिरूपी प्रत्यंचाको भूल उसको छोड इसे देखने लगे ॥ १६ ॥ नाभिरंध्र बडा गंभीर था चारोंओरसे मानो घिराहुआ, मुख बडाश्रेष्ठ दोनों नेत्र बडे कमलकी समान रक्तवर्ण थे ॥ १७ ॥ कामदेवंसे भ्रमरकी तरह कान्तिवाली सोनेकी बेदी क्षीणमध्यभागवालीके समान वह रति देखीगई ॥ १८ ॥ कदलीस्तंभ सदृश चिकने मनोहर दोनों जंघाओंको अपनी शक्तिके समान कामदेवने देखा

दृढपीनोन्नतं तस्यास्तनमध्यं विलंबिनीम् ॥ आनाभिप्रतलं मालां तन्वीं चन्द्रायितां शुभाम् ॥ १५ ॥ ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसंभ्रमाम् ॥ विसस्मार च यस्मात्तां विसृज्यैनां निरीक्षते ॥ १६ ॥ गम्भीरनाभिरंध्रांतश्चतुःपार्श्वत्वगावृतम् ॥ आननाब्जेऽक्षण द्वंद्वमारक्तकफलं यथा ॥१७॥ क्षीणमध्येन वपुषा निसर्गाष्टापदप्रभा ॥ रुक्मवेदीव ददृशे कामेन रमणी हि सा ॥१८॥ रंभास्तंभायतं स्निग्धं यदूरुयुगलं मृदु ॥ निजशक्तिसमं कामो वीक्षांचक्रे मनोहरम् ॥ १९ ॥ आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रांतभागं पदद्वयम् ॥ अनुरागमिवाऽनेन मित्रं तस्या मनोभवः ॥ २० ॥ तस्याः करयुगं रक्तं नखैरैः किंशुकोपमैः ॥ वृत्ताभिरंगुलीभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम् ॥ २१ ॥ तद्बाहुयुगलं कांतं मृणालयुगलायतम् ॥ मृदु स्निग्धं चिरं राजत्कांतिलोहप्रवालवत् ॥ २२ ॥ नीलनीरदसंकाशः केशपाशो मनोहरः ॥ चमरीवालभरवद्बिभाति स्म स्मरप्रियः ॥ २३ ॥ एतादृशीं रतिं नाम्ना प्रालेयाद्रिसमुद्भवाम् ॥ गंगामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचनः ॥ ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ दोनों पैरोंके पार्श्व और अग्रभागमें रक्तवर्णवाली रतिको देख कामदेव प्रेमसे उसका मित्र होगया ॥ २० ॥ उसके दोनों हाथ टेसूके पुष्पके सदृश लाल नखों और सूक्ष्म अग्रभाग, गोल अंगुलियोंसे मनोहर थे ॥ २१ ॥ कमलकी नालकी सदृश लम्बे मृदुल मूँगोंके सदृश चिक्कण और कान्तिवाले दोनों हाथ हैं ॥ २२ ॥ काले मेघके समान चमरीकी तरह घुंघरारे मनोहर वालवाली ॥ २३ ॥ जिसप्रकार हिमालयसे उत्पन्न गंगाजीको शिवजीने ग्रहण

किया उसीप्रकार प्रसन्नहो कामने ऐसी रतिको ग्रहण किया ॥२४॥ चक्र पद्मोंसे युक्त सुन्दर कर जिनमें कमलको धारण किये और लहरियोंके समान दोनों भौहोंके विभ्रमसे शोभित ॥ २५ ॥ कटाक्षपातके सदृश धारावाली, कमल रूपी नेत्रोंसे युक्त, सेवाररूपी रोमसे युक्त मनरूपी वृक्षोंमें विलास करनेवाली ॥२६॥ भँवर रूप नाभिसे युक्त ऐसी सर्वांग सुन्दरी सम्पूर्ण सुन्दरताकी सदन लक्ष्मीके समान शोभायमान ॥ २७ ॥ बारह प्रकारके आभूषण और षोडश शृंगारोंसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंकी मोहन करनेवाली अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको पूरित करती ॥ २८ ॥ इसप्रकार रतिको देख काम

चक्रपद्मां चारुबाहुं मृणालशकलान्विताम् ॥ भ्रूयुग्मविभ्रमव्राततनूर्मिपरिराजिताम् ॥ २५ ॥ कटाक्षपाततुंगौघां स्वीयनेत्रोत्पलान्विताम् ॥ तनुलोमांबुशैवालां मनोद्रुमविलासिनीम् ॥ २६ ॥ निम्ननाभिह्रदां क्षामां सर्वांगरमणीयिकाम् ॥ सर्वलावण्यसदनां शोभमानां रमामिव ॥ २७ ॥ द्वादशाभरणैर्युक्तां शृंगारैः षोडशैर्युताम् ॥ मोहनीं सर्वलोकानां भासयंती दिशो दश ॥ २८ ॥ इति तां मदनो वीक्ष्य रतिं जग्राह सोत्सुकः ॥ रागादुपस्थितां लक्ष्मीं हृषीकेश इवोत्तमाम् ॥२९॥ नोवाच च तदा दक्षं कामो मोदभवात्ततः ॥ विस्मृत्य दारुणं शापं विधिदत्तं विमोहितः ॥ ३० ॥ तदा महोत्सवस्तात बभूव सुखवर्द्धनः ॥ दक्षः प्रीततरश्चासीन्मुमुदे तनया मम ॥ ३१ ॥ कामोतीव सुखं प्राप्य सर्वदुःखक्षयं गतः ॥ दक्षजापि रतिः कामं प्राप्य चापि जहर्ष ह ॥ ३२ ॥ रराज चेतयासार्द्धं भिन्नश्चारुवचः स्मरः ॥ जीमूत इव संध्यायां सौदामन्या मनोज्ञया ॥ ३३ ॥

ने ग्रहण किया (जैसे गंगाको महादेवजीने ग्रहण कियां था) प्रेमसे आई हुई उत्तम लक्ष्मीको विष्णुकी समान ग्रहण कर ॥ २९ ॥ काम ब्रह्माके कठिन शापको भूल आनन्दके मारे दक्षसे उस समय न बोला ॥३०॥ हे नारदजी ! उस समय सुख बढानेवाला महोत्सव हुआ और मेरी कन्या प्रसन्न हुई दक्षभी बहुत प्रसन्न हुये ॥३१॥ काम अत्यन्त सुखीहो दुःखसे छूटगया दक्षसे उत्पन्न होनेवाली रतिभी कामको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥३२॥ सन्ध्या समय

मनोज्ञ बिजलीसे युक्त मेघकी समान काम दक्षकी कन्याके साथ पृथक् विराजित हुआ ॥ ३३ ॥ कामने रतिको ग्रहण किया जैसे योगी विद्याको ग्रहण करते हैं रतिभी कामको पाकर अतिप्रसन्न हुई जैसे पूर्णचन्द्रकी समान मुखवाली लक्ष्मी विष्णुको पाकर प्रसन्न होतीहै ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवपुराणे द्वितीये सतीखण्डे भाषाटीकायां कामविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूतजी बोले ब्रह्माजीके ऐसे वचनोंको सुनकर मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नचित्त नारदजी शंकरका स्मरणकर बोले ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे महाभाग ! ब्रह्माजी हे विष्णुशिष्य ! महामति आपने शिवजीकी अद्भुत

इति रतिपतिरुच्चैर्मोहयुक्तो रतिं तां हृदुपरि जगृहे वै योगदर्शीव विद्याम् ॥ रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य सा चापि रेजे हरिमिव कमला वै पूर्णचन्द्रोपमास्या ॥ ३४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्विती० स० कामविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमः ॥ स मुदोवाच संस्मृत्य शंकरं प्रीतमानसः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ ब्रह्मन् विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते ॥ अद्भुता कथिता लीला त्वया च शशिमौलिनः ॥ २ ॥ गृहीतदारे मदने हृष्टे हि स्वगृहं गते ॥ दक्षे च स्वगृहं याते तथा हि त्वयि कर्त्तरि ॥ ३ ॥ मानसेषु च पुत्रेषु गतेषु स्वस्वधामसु ॥ संध्या कुत्र गता सा च ब्रह्मपुत्री पितृप्रसूः ॥ ४ ॥ किं चकार च केनैव पुरुषेण विवाहिता ॥ एतत्सर्वं विशेषेण संध्यायाश्चरितं वद ॥ ५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मपुत्रश्च धीमतः ॥ संस्मृत्य शंकरं भक्त्या ब्रह्मा प्रोवाच तत्त्ववित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ शृणु त्वं च मुने सर्वं संध्यायाश्चरितं शुभम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वकामिन्यस्साध्व्यस्स्युस्सर्वदा मुने ॥ ७ ॥

कथा कही ॥ २ ॥ स्त्रीको पाकर प्रसन्न कामके और दक्षके तथा आपके घर चले जानेपर ॥ ३ ॥ और मनसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रोंकेभी अपने २ स्थानको चलेजानेपर ब्रह्मपुत्री सन्ध्या कहां गई ॥ ४ ॥ उसने क्या किया और किसके साथ उसका विवाह हुआ यह सब औरभी सन्ध्याका चरित्र कहिये ॥ ५ ॥ सूतजी बोले तत्त्वज्ञाता ब्रह्माजी इसप्रकार नारदजीके वाक्योंको सुन शंकरका स्मरणकर बोले ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी आप

सन्ध्याका सम्पूर्ण शुभचारित्र सुनिये जिसके सुननेसे सर्वदा सम्पूर्ण स्त्रियां पतिव्रता होती हैं ॥ ७ ॥ मेरे मनसे वह सन्ध्या प्रथम उत्पन्न हुई वही तप स्याकर शरीरको छोड अरुन्धती हुई ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णु और शिवके वचनको मान व्रत धारण करनेवाली ॥ ९ ॥ सन्ध्यानेभी वसिष्ठको अपना पति स्वीकार किया और वह पूज्य वंद्य और पतिव्रता हुई ॥ १० ॥ नारदजी बोले क्यों उसने तप किया किसलिये और कहां और किसप्रकार शरीर छोड मेधामुनिकी कन्या हुई ॥ ११ ॥ और किसप्रकार विष्णु ब्रह्मा शिवसे कथित वसिष्ठको पति स्वीकार किया ॥ १२ ॥ हे ब्रह्माजी ! सुननेवाले मुझसे

सा च संध्या सुता मे हि मनोजाता पुराऽभवत् ॥ तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव जाता त्वरुंधती ॥ ८ ॥ मेधातिथेस्सुता भूत्वा
मुनिश्रेष्ठस्य धीमती ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानवचनाच्चरितव्रता ॥ ९ ॥ वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं शंसितव्रतम् ॥ पतिव्रता च
मुख्याऽभूद्वंद्या पूज्या त्वभीषणा ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र संध्यया ॥ कथं शरीरं सा त्यक्त्वाऽभव
न्मेधातिथेः सुता ॥ ११ ॥ कथं वा विहितं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैः पतिम् ॥ वसिष्ठं तु महात्मानं संवव्रे शंसितव्रतम् ॥ १२ ॥ एतन्मे
श्रोष्यमाणाय विस्तरेण पितामह ॥ कौतूहलमरुंधत्याश्चरितं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहं स्वतनयां संध्यां दृष्ट्वा पूर्वम
थात्मनः ॥ कामायाशु मनोऽकार्षं त्यक्ता शिवभयाच्च सा ॥ १४ ॥ संध्यायाश्चलितं चित्तं कामबाणविलोडितम् ॥ ऋषीणामपि
संरुद्धमानसानां महात्मनाम् ॥ १५ ॥ भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासं च मां प्रति ॥ आत्मनश्चलितत्वं वै ह्यमर्यादमृषीन्प्रति ॥१६॥
कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः ॥ दृष्ट्वा संध्या स्वयं तत्रोपयमायातिदुःखिता ॥ १७ ॥

सुन्दर अरुन्धतीका चारित्र कहिये ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले मैंने प्रथम सन्ध्यानाम्नी अपनी कन्याको देख अपने चित्तको शीघ्र कामकी ओर आकर्षित किया, परन्तु शिवके भयसे छोड़दिया ॥ १४ ॥ जितेन्द्रिय महात्मा ऋषियों और सन्ध्याकाभी चित्त काममें चलायमान होगया ॥ १५ ॥ उपहासयुक्त शिवके वचनसे ऋषियोंमें मेरी अप्रतिष्ठा हुई ॥ १६ ॥ मुनियोंके भी मोहन करनेवाले उस कामभावको वारंवार देख संध्या अत्यन्त दुःखी हुई ॥ १७ ॥

फिर शिवके कैलास जानेपर मुझ ब्रह्मासे कामके शापहोनेपर मैं अन्तर्द्धान होगया ॥ १८ ॥ आमर्षयुक्त वह मेरी पुत्री सन्ध्या विचारकर ध्यान करनेमें
तत्पर होगई ॥ १९ ॥ बुद्धिमती सन्ध्या कुछ देर पूर्व वृत्तका ध्यानकर यह उस समय यथायोग्य विचार करने लगी ॥ २० ॥ सन्ध्या बोली कामसे
प्रेरित मेरे पिताने युवती उत्पन्न हुई मुझको देख मेरी इच्छा की ॥ २१ ॥ मानसमुनियोंको देखतेहुए मुझको देखकर उनका चित्त मर्य्यादा छोड
कामसे युक्त होगया ॥ २२ ॥ और दुष्ट कामने मेरे चित्तकोभी चालित करदिया जिससे मुनियोंको देख मेरा चित्त अत्यन्त चलायमान होगया ॥ २३ ॥

ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने च मया मुने ॥ अंतर्भूते मयि शिवे गते चापि निजास्पदे॥ १८ ॥ आमर्षवशमापन्ना सा संध्या मुनिसत्तम॥
मम पुत्री विचार्यैवं तदा ध्यानपराऽभवत् ॥ १९ ॥ ध्यायंती क्षणमेवाशु पूर्वं वृत्तं मनस्विनी ॥ इदं विममृशे संध्या तस्मिन्काले यथो
चितम् ॥ २० ॥ ॥ संध्योवाच ॥ उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः ॥ अकार्षीत्सानुरागोयमभिलाषं पिता मम ॥ २१ ॥
पश्यतां मानसानां च मुनीनां भावितात्मनाम् ॥दृष्ट्वैव माममर्यादं सकाममभवन्मनः ॥२२॥ ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना ॥
येन दृष्ट्वा मुनीन्सर्वांश्चलितं मन्मनो भृशम् ॥ २३ ॥ फलमेतस्य पापस्य मदनस्स्वयमाप्तवान् ॥ यस्तं शशाप कुपितः शंभोरग्रे पिता
महः ॥ २४ ॥ प्राप्नुयां फलमेतस्य पापस्य स्वघकारिणी ॥ तच्छोधनफलमहमाशु चेच्छामि साधनम् ॥२५॥ यन्मां पिता भ्रातरश्च
सकाममपरोक्षतः ॥ दृष्ट्वा चक्रुस्स्पृहां तस्मान्न मत्तः पापकृत्परा ॥ २६ ॥ ममापि कामभावोभूदमर्यादं समीक्ष्य तान् ॥ पत्या इव स्वके
ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ॥ २७ ॥ करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम् ॥ आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ॥ २८ ॥

इस पापका फल स्वयं पाया कि महादेवजीके आगे कुपित पितामहने इसे शाप दिया ॥ २४ ॥ पापिन मैंभी इस पापका फल पाऊंगी इस पापके नाशका
साधन मैं शीघ्रही चाहती हूं ॥२५॥ जो मुझको देख पिता और भाई कामकी इच्छा करते हुये इससे मुझसे कोई बडी पापिन नहीं है ॥ २६ ॥उनको देख पिता
और भाइयोंमें जो अमर्य्याद मेरा कामसे चित्त चला ॥ २७ ॥ इस पापका प्रायश्चित्त मैं स्वयं करूंगी वेदमार्गके अनुसार अपने शरीरको जलादूंगी॥ २८ ॥

इस संसारमें उत्पन्न होतेही मनुष्य जैसे कभी न हो ऐसी मर्य्यादा स्थापित करूंगी ॥ २९ ॥ इसीलिये मैं कठिन तपकर मर्य्यादाको स्थापित करूंगी और पीछे शरीर छोडूंगी ॥ ३० ॥ जिस मेरे शरीरमें पिता और भाइयोंने कामभाव किया वह अच्छे कामका नहीं है ॥ ३१ ॥ सन्ध्या इसप्रकार मनमें बिचार कर चन्द्रभागानदीवाले श्रेष्ठ चन्द्रभाग पर्वतपर गई ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और तपस्याके हेतु सन्ध्याको श्रेष्ठ पर्वतपर गई जान ब्रह्माजी ॥ ३४ ॥ समीपमें बैठे वेदवेदाङ्गके ज्ञाता योगी वशिष्ठजीसे बोले ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुत्र ! सर्वज्ञ वशिष्ठ तपस्याकेलिये जातीहुई मनस्विनी सन्ध्याको तुम

किं त्वेकां स्थापयिष्यांमि मर्यादामिह भूतले ॥ उत्पन्नमात्रा न यथा सकामास्स्युश्शरीरिणः ॥ २९ ॥ एतदर्थमहं कृत्वा तपः परम
दारुणम् ॥ मर्यादां स्थापयिष्यामि पश्चात्त्यक्षामि जीवितम् ॥ ३०॥ यस्मिञ्च्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषस्स्वयं कृतः ॥ भ्रातृभिस्तेन
कायेन किंचिन्नास्ति प्रयोजनम् ॥ ३१ ॥ मया येन शरीरेण तातेषु सहजेषु च ॥ उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधनम् ॥३२॥
इति संचिंत्य मनसा संध्या शैलवरं ततः ॥ जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागापगा यतः ॥ ३३ ॥ अथ तत्र गतां ज्ञात्वा संध्यां
गिरिवरं प्रति ॥ तपसे नियतात्मानं ब्रह्मावोचमहं सुतम् ॥ ३४ ॥ वशिष्ठं संयतात्मानं सर्वज्ञं ज्ञानयोगिनम् ॥ समीपे स्वे समा
सीनं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वसिष्ठ पुत्र गच्छ त्वं संध्यां जातां मनस्विनीम् ॥ तपसे धृतकामां च दीक्षस्वैनां यथा
विधि ॥३६॥ मंदाक्षमभवत्तस्याः पुरा दृष्ट्वैव कामुकान् ॥ युष्मान्मां च तथात्मानं सकामां मुनिसत्तम ॥ ३७ ॥ अभूतपूर्वं तत्कर्म पूर्व
मृत्युं विमृश्य सा ॥ युष्माकमात्मनश्चापि प्राणान्संत्यक्तुमिच्छति ॥ ३८ ॥ समर्यादेषु मर्यादां तपसा स्थापयिष्यति ॥ तपः कर्तुं गता
साध्वी चन्द्रभागाख्यभूधरे ॥ ३९ ॥ न भावं तपसस्तात सानुजानाति कंचन ॥ तस्माद्यथोपदेशात्सा प्राप्नोत्विष्टं तथा कुरु ॥ ४० ॥

जाकर अच्छेप्रकार विधिपूर्वक दीक्षा दो ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पहिले तुमको मुझको कामुक देख और अपनेको सकामा समझकर उसके नेत्रोंकी चपलता जाती रही ॥ ३७ ॥ आपके दुष्कर्मों तथा अपनी पूर्वमृत्युको विचार वह अपने प्राणोंको छोडनेकी इच्छाकरतीहै ॥ ३८ ॥ वह तपके द्वारा मर्य्यादामेंभी मर्य्यादा स्थापित करेगी इस हेतु वह साध्वी तपकरनेको चन्द्रभागपर्वतपर गई है ॥ ३९ ॥ हे तात ! वह तपके किसीभावको नहीं जानतीहै, इसलिये

जिसप्रकार वह उपदेशसे अपने इष्टको प्राप्त हो वैसा करो ॥४०॥ हे मुनि ! इस अपने रूपको छोड दूसरा रूप धर उसके समीप जाकर तपकी क्रियाओंको दिखाओ ॥ ४१ ॥ पहिले उसने इस मेरे और तुम्हारे रूपको देखाहै इसलिये वह कुछ न प्राप्त करेगी, इससे दूसरारूप धारण करो ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! इसप्रकार दयावान् वशिष्ठ मेरी आज्ञाको पाकर ऐसाही होगा यह कह सन्ध्याके समीप गये ॥ ४३ ॥ और वहाँ जाकर मनके समान गुणोंसे पूर्ण देवसर और उसके समीपमें गईहुई सन्ध्याको देखा ॥४४॥ कमलसे युक्त उस सरके समीपमें गईहुई सन्ध्याको और सरको संध्यासमयमें

इदं रूपं परित्यज्य निजं रूपांतरं मुने ॥ परिगृह्यांतिके तस्यास्तपश्चर्यां निदर्शयन् ॥ ४१ ॥ इदं स्वरूपं भवतो दृष्ट्वा पूर्वं यथात्र वाम् ॥ नाप्नुयात्साऽथ किंचिद्वै ततो रूपांतरं कुरु ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नारदेत्थं वसिष्ठो मे समाज्ञप्तो दयावता ॥ यथाऽस्त्विति च मां प्रोच्य ययौ संध्यांतिकं मुनिः ॥ ४३ ॥ तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससंमितम् ॥ ददर्श स वसिष्ठोथ संध्यां तत्तीरगामपि ॥ ४४ ॥ तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम् ॥ उद्यदिंदुसुनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा ॥ ४५ ॥ मुनिर्दृष्ट्वाथ तां तत्र सुसंभावां स कौतुकी ॥ वीक्षांचक्रे सरस्तत्र बृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥ ४६ ॥ चन्द्रभागा नदी तस्मात्प्राकाराद्दक्षिणांबुधिम् ॥ यांती सा चैव ददृशे तेन सानु गिरेर्महत् ॥ ४७ ॥ निर्भिद्य पश्चिमं सा तु चन्द्रभागस्य सा नदी ॥ यथा हिमवतो गंगा तथा गच्छति सागरम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन् गिरौ चन्द्रभागे बृहल्लोहिततीरगाम् ॥ संध्यां दृष्ट्वाथ पप्रच्छ वसिष्ठस्सादरं तदा ॥ ४९ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ किमर्थमागता भद्रे निर्जनं त्वं महीधरम् ॥ कस्य वा तनया किं वा भवत्यापि चिकीर्षितम् ॥ ५० ॥

उदय हुये उत्तम नक्षत्र चन्द्रमासे युक्त आकाशके समान देखा ॥ ४५ ॥ मुनिने वहां स्थित कौतुक युक्त संध्या तथा रक्त वर्णके तालाबको देखकर उसे देखनेकी इच्छाकी ॥ ४६ ॥ और उस श्रेष्ठ पर्वतके दक्षिणसे समुद्रमें जाती हुई चन्द्रभागानदीको देखा ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार हिमालयसे श्रीगंगाजी सागरको जातीहैं उसी प्रकार यह चन्द्रभागानदी चन्द्रभागपर्वतको पश्चिमसे काटकर समुद्रमें जातीहै ॥ ४८ ॥ उस चन्द्रभाग पर्वतमें रक्तवर्ण सरके समीप संध्याको देख सत्कारपूर्वक वशिष्ठजीने पूँछा ॥ ४९ ॥ वशिष्ठ बोले हे भद्रे ! इस निर्जन पर्वतपर तुम किसलिये आई ? तुम किसकी कन्याहो और

तुम्हारा यहाँ क्या प्रयोजन है ॥ ५० ॥ यह मेरे सुननेकी इच्छा है अगर छिपानेके योग्य नहीं है तौ कहो और पूर्णचन्द्रमाके समान यह तुम्हारा मुख मलीन क्यों है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी बोले ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी महात्मा वशिष्ठजीको देख और उनके वचन सुन ॥ ५२ ॥ संध्या जटाको धारण करनेवाले ब्रह्मचारी तपोधन श्रीवशिष्ठजीको प्रणामकर आदर पूर्वक बोली ॥ ५३ ॥ संध्या बोली जिसलिये मैं इस पर्वतपर आई हूँ वह सब मेरे मनोरथ आपके दर्शन मात्रहीसे पूर्णहोंगे ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं संध्यानाम्नी ब्रह्माजीकी कन्या तपकरनेके हेतु इस निर्जनपर्वतपर आई हूं ॥ ५५ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं वद गुह्यं न चेद्भवेत् ॥ वदनं पूर्णचन्द्राभं निश्श्रेष्टं वा कथं तव ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छुत्वा वचनं तस्य वशिष्ठस्य महात्मानः ॥ दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलंतमिव पावकम् ॥ ५२ ॥ शरीरधृग्ब्रह्मचर्यं विलसंतं जटाधरम् ॥ सादरं प्रणिपत्याथ संध्योवाच तपोधनम् ॥ ५३ ॥ संध्योवाच ॥ यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे निबोध ह ॥ तव दर्शनमात्रेण यन्मे सेत्स्यति वा विभो ॥ ५४ ॥ तपश्चर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता ॥ ब्रह्मणोहं सुता जाता नाम्ना संध्येति विश्रुता ॥ ५५ ॥ यदि ते युज्यते सह्यं मां त्वं समुपदेशय ॥ एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यैः किंचन विद्यते ॥ ५६ ॥ अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता ॥ चिंतया परिशुष्येहं वेपते हि मनो मम ॥ ५७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ स्वयं च सर्वकृत्यज्ञो नान्यत्किंचन पृष्टवान् ॥ ५८ ॥ अथ तां नियतात्मानं तपसेतिधृतोद्यमाम् ॥ प्रोवाच मनसा स्मृत्वा शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ ५९ ॥

यदि आपको सुगम जान पडै तो मुझे उपदेश दीजिये यही मेरा गुप्त कार्य है और कुछ नहीं ॥ ५६ ॥ मैं तपके भावसे अज्ञात इस तपोवनमें आगई हूं, इसी चिंतासे सूखतीहूं और मेरा मन कांपताहै ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले ब्रह्मज्ञानी श्रीवशिष्ठजीने उसका वचन सुन फिर उससे कुछ नहीं पूंछा क्योंकि उनको सब ज्ञातथा ॥ ५८ ॥ मनमें भक्तवत्सल श्रीशंकरजीका स्मरणकर उस नियतात्मा तपमें उद्यमको धारण करनेवाली संध्यासे बोले ॥ ५९ ॥

वशिष्ठ बाले ! जो परम महान् तेज जो परम महान् तप और जो परम, परमआराधना करने योग्य है उन श्रीशंभुजीको मनमें धारण करो ॥ ६० ॥
जो एकही धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके आदि कारण हैं उन्हीं एक जगत्के आदिपुरुषोत्तमका भजन करो ॥ ६१ ॥ हे शुभानने ! इस मंत्रसे देवेश शंकरका
तुम भजन करो इसीसे तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण होंगी इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ " ॐ नमः शंकराय " ॐ अंतमें ओंकार योजितकर मौन तप
प्रारम्भ करो सो मैं कहताहूं सुनो ॥ ६३ ॥ प्रथम दोनों षष्ठकालोंमें पूर्णजलका आहारकर मौन धारणकर स्नान और हरपूजन करना ॥ ६४ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ॥ परमः परमाराध्यः शम्भुर्मनसि धार्यताम् ॥ ६० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां य
एकस्त्वादिकारणम् ॥ तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ॥ ६१ ॥ मंत्रेणानेन देवेशं शम्भुं भज शुभानने ॥ तेन ते सकलावाप्तिर्भवि
ष्यति न संशयः ॥ ६२ ॥ ॐ नमश्शंकरायेति ॐमित्यंतेन सन्ततम् ॥ मौनतपस्याप्रारम्भं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ६३ ॥ स्नानं मौनेन
कर्तव्यं मौनेन हरपूजनम् ॥ द्वयोः पूर्णजलाहारं प्रथमं षष्ठकालयोः ॥ ६४ ॥ तृतीये षष्ठकाले तु ह्युपवासपरो भवेत् ॥ एवं तपस्स
माप्तौ वा षष्ठे काले क्रिया भवेत् ॥ ६५ ॥ एवं मौनतपस्याख्या ब्रह्मचर्यफलप्रदा ॥ सर्वाभीष्टप्रदा देवि सत्यंसत्यं न संशयः ॥ ६६ ॥
एवं चित्ते समुद्दिश्य कामं चिंतय शंकरम् ॥ स ते प्रसन्न इष्टार्थमचिरादेव दास्यति ॥ ६७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उपविश्य वसिष्ठोथ
संध्यायै तपसः क्रियाम् ॥ तामाभाष्य यथान्यायं तत्रैवांतर्दधे मुनिः ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां
द्वितीये सतीखंडे संध्याचरित्रवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तीसरे षष्ठ कालमें उपवास करना इसप्रकार तपकी समाप्ति होनेपर छठेकालमें क्रिया होतीहै ॥ ६५ ॥ हे देवि ! इस प्रकारकी मौन तपस्या सम्पूर्ण फलके
देनेवाली और ब्रह्मचर्य फलके देनेवाली सत्य है इसमें संदेह नहीं ॥ ६६ ॥ इसप्रकारका उद्देश्य चित्तमें धारणकर शंकरजीकी चिंतना करो वह तुमसे
प्रसन्न होकर शीघ्रही तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करैंगे ॥ ६७ ॥ ब्रह्माजी बोले, वशिष्ठजी वहाँ बैठकर संध्याको तपस्याकी सम्पूर्ण क्रिया बताकर अंतर्धान
होगये ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीशिवपुराणे द्वितिये सतीखण्डे रुद्रसंहिता भाषाटीकायां संध्याचरित्रवर्णनो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले हे बुद्धिमान् ! हे पुत्रवर ! बडाभारी संध्याका तप सुनो जिसके सुननेसे पापका समूह निश्चयही नष्ट होजाताहै ॥१॥ तपकी क्रिया सुन और वशिष्ठजीके घर जानेपर संध्याभी तपका प्रभाव जान प्रसन्न हुई ॥२॥ बृहल्लोहितके समीप गईहुई संध्याने प्रसन्नचित्त हो उसी प्रकारका वेशकर तपकरना प्रारंभ किया ॥३॥ वसिष्ठजीने जैसा तप साधनमें मंत्र कहाथा उसी मंत्रसे भक्तिपूर्वक शंकरजीका पूजन किया ॥४॥ एकान्त चित्तवाली बडाभारी तपकरती हुई शंभुमें चित्त लगाये उस संध्याको एक चतुर्युग बीतगया ॥ ५ ॥ उस तपसे संतुष्ट महादेवजी प्रसन्न हुए; बाहर भीतर और आकाशमें अपना शरीर

॥ ब्रह्मोवाच ॥ सुतवर्य महाप्राज्ञ शृणु संध्यातपो महत् ॥ यच्छ्रुत्वा नश्यते पापसमूहस्तत्क्षणा द्ध्रुवम् ॥ १ ॥ उपविश्य तपोभावं वसिष्ठे स्वगृहं गते ॥ संध्यापि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप ह ॥ २ ॥ ततस्सानंदमनसो वेषं कृत्वा तु यादृशम् ॥ तपश्चर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ॥ ३ ॥ यथोक्तं तु वशिष्ठेन मंत्रं तपसि साधनम् ॥ मंत्रेण तेन सद्भक्त्या पूजयामास शंकरम् ॥ ४ ॥ एकान्तमनसस्तस्याः कुर्वंत्याः सुमहत्तपः ॥ शंभौ विन्यस्तचित्ताया गतमेकं चतुर्युगम् ॥ ५ ॥ प्रसन्नोभूत्तदा शंभुस्तपसा तेन तोषितः ॥ अंतर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः ॥ ६ ॥ यद्रूपं चिंतयंती सा तेन प्रत्यक्षतां गतः ॥ ७ ॥ अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिंतितं प्रभुम् ॥ प्रसन्नवदनं शांतं मुमोदातीव शंकरम् ॥ ८ ॥ ससाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरम् ॥ इति चिंतापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ॥ ९ ॥ निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरः ॥ दिव्यं ज्ञानं ददौ तस्यै वाचं दिव्ये च चक्षुषी ॥ १० ॥ दिव्यज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा ॥ प्रत्यक्षं वीक्ष्य दुर्गेशं तुष्टाव जगतां पतिम् ॥ ११ ॥

दिखाकर ॥ ६ ॥ जिस रूपका वह ध्यान कररहीथी उसी रूपसे प्रगट होगये ॥ ७ ॥ मनसे चिंतित प्रसन्नमुख शांत शंकरजीको आगे देख संध्या बडी प्रसन्न हुई ॥ ८ ॥ मैं क्या कहूं और कैसे शिवजीकी स्तुति करूं, इस चिन्तामें मग्नहोकर संध्याने आँखे मूंदलीं ॥ ९ ॥ निमीलितचक्षु उसके हृदयमें शंकरजी प्रवेशकर दिव्यज्ञान दिव्यवाणी दिव्यआँखें देते हुए ॥ १० ॥ यह सब प्राप्त होनेसे जगत्पति पार्वतीपतिको सामने देख स्तुति करनेलगी ॥११॥

संध्या बोली निराकार ज्ञानसे परे न सूक्ष्म न स्थूल न उच्च अतएव आपका रूप योगियोंसे चिन्त्यहै, ऐसे लोककर्ता आपके लिये नमस्कार है ॥१२॥ शांत निर्मल निर्विकार ज्ञानसे अगम्य अपने प्रकाशमें विकाररहित परब्रह्म मार्गके ज्ञाता ध्वांत मार्गसे परे रूपवाले प्रसन्नचित्त आपको नमस्कार करतीहूं ॥१३॥ एक शुद्ध प्रकाशमान अज चिदानंद सहज विकाररहित नित्यानंद सत्यैश्वर्यसे प्रसन्न रूपवाले आपके निमित्त नमस्कारहै ॥ १४ ॥ मंत्ररूप विद्यासे प्राप्त अभिन्न सत्यस्वरूप ध्यानके योग्य आत्मस्वरूपसार पवित्रोंसे भी पवित्ररूपवाले आपको प्रणाम है ॥ १५ ॥ जो आकार शुद्धरूप है मनोज्ञ रत्नवत् शरीरकी

॥ संध्योवाच ॥ ॥ निराकारं ज्ञानगम्यं परं यन्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चम् ॥ अंतश्चिंत्यं योगिभिस्तस्य रूपं तस्मै तुभ्यं लोककर्त्रे नमोस्तु ॥ १२ ॥ सर्वं शांतं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानागम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम् ॥ खाध्वप्रख्यं ध्वांतमार्गात्परस्ताद्रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ॥ १३ ॥ एकं शुद्धं दीप्यमानं तथाजं चिदानंदं सहजं चाविकारि ॥ नित्यानंदं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमस्ते ॥ १४ ॥ विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं सत्त्वच्छंदं ध्येयमात्मस्वरूपम् ॥ सारं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते ॥ १५ ॥ यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं रत्नाकल्पं स्वच्छकर्पूरगौरम् ॥ इष्टाभीती शूलमुंडे दधानं हस्तैर्नमो योगयुक्ताय तुभ्यम् ॥ १६ ॥ गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ॥ पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोस्तु ते ॥ १७ ॥ प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ ॥ तस्माद्व्यक्तरूपाय शंकराय नमोनमः ॥ १८ ॥ यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ॥ संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥ १९ ॥

कांति है स्वच्छ कपूरके सदृश गौर, सेवकको अभयदेनेवाले, हाथोंमें शूल और मुंडको धारणकरनेवाले, योगयुक्त आपके लिये नम स्कार है ॥ १६ ॥ आकाश, पृथ्वी, दिक्, जल, ज्योति, समय रूपवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ जिसके शरीरसे ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न हुए ऐसे अव्यक्तरूप आपके लिये नमस्कार है ॥१८॥ जो ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं और विष्णु पालते हैं, रुद्र संहार करते हैं ऐसे रूपत्रययुक्त आपके लिये नमस्कार है ॥१९॥

कारणोंके कारण दिव्यज्ञान ऐश्वर्यके दाता संसारको ऐश्वर्य देनेवाले प्रकाशरूप परेसे परे शंकरके लिये नमस्कार है ॥ २० ॥ जिसके पैरसे पृथ्वी दिशायें सूर्य चन्द्रमा काम और नाभिसे बर्हिर्मुख और आकाश उत्पन्न हुए ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे शंकरजी आप पर हैं, परमात्मा हैं नानाप्रकारकी विद्या आपकी हैं, सद्ब्रह्म और परब्रह्म आपही हैं और विचारचतुर आपही हैं ॥ २२ ॥ जिसका न आदि है न अंत है न मध्य है वाणी और मनसे परे देव शिवजीकी स्तुति कैसे करूं ॥ २३ ॥ जिसके रूपको ब्रह्मादिक देवता तपरूप धनवाले मुनि नहीं जानसकते उन्हें मैं कैसे

नमोनमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ॥ समस्तलोकांतरभूतिदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥ २० ॥ यस्याऽपरं नो जगदुच्यते पदात् क्षितिर्दिशस्सूर्य इंदुर्मनोजः ॥ बर्हिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मै तुभ्यं शंभवे मे नमोस्तु ॥ २१ ॥ त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः ॥ सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः ॥ २२ ॥ यस्य नादिर्न मध्यं च नांतमस्ति जगद्यतः ॥ कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचरं हरम् ॥ २३ ॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः ॥ न विप्रण्वंति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ॥ २४ ॥ स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो ॥ नैव जानंति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ २५ ॥ नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तमोमय ॥ प्रसीद शंभो देवेश भूयोभूयो नमोस्तु ते ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्यास्सं स्तुतः परमेश्वरः ॥ सुप्रसन्नतरश्चाभूच्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ २७ ॥ अथ तस्याश्शरीरं तु वल्कलाजिनसंयुतम् ॥ परिच्छनं जटाव्रातैः पवित्रे मूर्ध्नि राजितैः ॥ २८ ॥

कह सकती हूं ॥ २४ ॥ जिस आपके रूपको इन्द्रादिक देवता और दैत्य नहीं जानतेहैं उस निर्गुण आपके गुणको क्या मैं स्त्री होकर जानसकतीहूं अर्थात् कदापि नहीं ॥ २५ ॥ हे महेशान ! आपके लिये नमस्कार है हे देवेश ! प्रसन्न होवो आपके लिये वारम्बार नमस्कार है ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरजी उसके स्तुति कियेहुए इन वचनोंको सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ पवित्र शिरमें देदीप्यमान जटासमूहोंसे युक्त वलकल

और मृगचर्म धारण किये शिरके ऊपर कुश पवित्र विराजमानथे ॥ २८ ॥ कमलके ऊपर जैसे तुषार पडी हो इसप्रकारसे उसका मुख कमल मुरझा रहाथा
इसप्रकार उसको देख कृपाकर भक्तवत्सल शंकरने उससे कहा ॥ २९ ॥ शिवजी बोले हे भद्रे मैं तेरे परम तपसे प्रसन्नहूं।हे शुभे ! तेरे स्तोत्रसेभी प्रसन्नहूं जो
तेरे मनमें आवै सो वर मांगो ॥ ३० ॥ जिससे तुम्हारा कार्य हो जो तेरे मनमें हो हे भद्रे वही मैं करूंगा। हे भद्रे ! तेरे व्रतसे मैं प्रसन्नहूं ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी
बोले जब शंकरके यह वचन सुने तब सन्ध्या बडी प्रसन्न हो वारंवार प्रणाम कर कहने लगी ॥ ३२ ॥ सन्ध्या बोली यदि तुम प्रेमसे वरदेते हो यदि मैं वरके

हिमानीतर्जितांभोजसदृशं वदनं तदा ॥ निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरः प्रोवाच तामिदम् ॥ २९ ॥ महेश्वर उवाच ॥ प्रीतोस्मि तपसा भद्रे
भवत्याः परमेण वै ॥ स्तवेन च शुभप्राज्ञे वरं वरय सांप्रतम् ॥ ३० ॥ येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्मिन्मनोगतम् ॥ तत्करिष्ये च
भद्रं ते प्रसन्नोहं तव व्रतैः ॥ ३१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा महेशस्य प्रसन्नमनसस्तदा ॥ संध्योवाच सुप्रसन्ना प्रणम्य च मुहु
र्मुहुः॥ ३२ ॥ संध्योवाच ॥ ॥ यदि देयो वरः प्रीत्या वरयोग्यास्म्यहं यदि ॥ यदि शुद्धास्म्यहं जाता तस्मात्पापान्महेश्वर ॥ ३३ ॥
यदि देव प्रसन्नोसि तपसा मम सांप्रतम् ॥ वृतस्तदायं प्रथमो वरो मम विधीयताम् ॥ ३४ ॥ उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोस्मिन्नभः
स्थले ॥ न भवंतु समेनैव सकामास्संभवंतु वै ॥ ३५ ॥ यद्धि वृत्तहि लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा ॥ भविष्यामि तथा नान्या वर
एको वृतो मया ॥३६ ॥ सकामा मम सृष्टिस्तु कुत्रचिन्न पतिष्यति ॥ यो मे पतिर्भवेन्नाथ सोपि मेतिसुहृच्च वै ॥ ३७ ॥

योग्य हूं हे महेश्वर ! यदि मैं उस पापसे शुद्धहूं ॥ ३३ ॥ हे देव ! यदि आप मेरी तपस्यासे प्रसन्न हो तो पहले आप मुझको यही वर दीजिये ॥ ३४ ॥
हे देवेश ! इस संसारमें प्राणीजनोंके उत्पन्नमात्रसे कोई तुरंतही कामी न हो ॥ ३५ ॥ यदि मैं तीनलोकमें विख्यात और व्रतवालीहूं तो मैं जैसी हूं दूसरी
न हो यह वर मुझको दीजिये ॥ ३६ ॥ मेरी सृष्टि सकामा कहीं न हो हे नाथ ! जो मेरा पतिहो वह भी मित्रके समान हो महाकामी न हो ॥ ३७ ॥

जो पुरुष पतिके सिवाय मुझको अभिलाषासे देखै उसका पुरुषार्थ नाश होजाय, वह नपुंसक होजाय ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले भक्तवत्सल शंकर इसप्रकार उसके वचन सुनकर बोले और प्रसन्नतासे कहा तुझमें कोई पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ शिवजी बोले हे देवि सन्ध्या! सुनो तुम्हारा पाप सब शांत होगया है मेरा क्रोध तुझपर नहीं तू शुद्ध होगई है ॥ ४० ॥ हे भद्रे! जो जो तैंने माँगा सो सो सब मैंने तुझे दिया। हे सन्ध्या! तेरे तपसे और वरसे मैं प्रसन्नहूं ॥ ४१ ॥ पहला शैशवभाव दूसरा कुमारभाव तीसरा यौवन और चौथा वार्द्धक्य होगा ॥ ४२ ॥ जब शरीरधारी तीसरी अवस्था जवानीको प्राप्त होंगे तब वे

यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् ॥ नाशं गमिष्यति तदा स च क्लीबो भविष्यति ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्शंकरो भक्तवत्सलः ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा निष्पापायास्तयेरिते ॥ ३९ ॥ महेश्वर उवाच ॥ शृणु देवि च संध्ये त्वं त्वत्पापं भस्मतां गतम् ॥ त्वयि त्यक्तो मया क्रोधः शुद्धा जाता तपःकरात् ॥ ४० ॥ यद्यद्वृतं त्वया भद्रे दत्तं तदखिलं मया ॥ सुप्रसन्नेन तपसा तव संध्ये वरेण हि ॥ ४१ ॥ प्रथमं शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वीतीयकः ॥ तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ॥ ४२ ॥ तृतीये त्वथ संप्राप्ते वयोभागे शरीरिणः ॥ सकामास्स्युर्द्वितीयांतो भविष्यति क्वचित् क्वचित् ॥ ४३ ॥ तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया ॥ उत्पन्नमात्रा न यथा सकामास्स्युश्शरीरिणः ॥ ४४ ॥ त्वं च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्नुहि ॥ त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृशं संभविष्यति ॥ ४५ ॥ यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्राहमृते तव ॥ स सद्यः क्लीबतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति ॥ ४६ ॥ पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः ॥ सप्तकल्पांतजीवी च भविष्यति सह त्वया ॥ ४७ ॥

सकाम होंगे और कोई कोई दूसरी अवस्थाके अन्तमें सकाम होंगे ॥ ४३ ॥ तेरे तपसे मैंने जगत्में यह मर्यादा स्थापित की कि, कोई भी शरीरधारी उत्पन्नमात्रसे सकाम न होंगे ॥ ४४ ॥ और तू इसलोकमें ऐसे सतीभावको प्राप्त होगी कि तीनलोकमें तेरी समान कोई न होगा ॥ ४५ ॥ पाणिग्रहणवाले पतिको छोड जो कोई तुझको सकाम देखैगा. वह तत्काल क्लीबताको प्राप्त हो दुर्बल होजायगा ॥ ४६ ॥ हे महाभागे तेरा पति महातपस्वी होगा और तेरे

साथ सातकल्प पर्यन्त जीवित रहैगा ॥ ४७ ॥ इसप्रकार तैंने मुझसे जो वर माँगे सो मैंने तुझे दिये औरभी पूर्वजन्मकी बात तुझसे कहताहूं ॥ ४८ ॥
तेरा अग्निमें शरीर त्यागना पहलेसेही निश्चित है, उसका उपाय मैं तुझसे कहताहूं निश्चय उसको करो ॥ ४९ ॥ उन मेधातिथिकी द्वादशवर्षकी यज्ञमें
बडी प्रबलतासे जलतीहुई अग्निमें तुम शीघ्रही प्रवेश करो ॥ ५० ॥ पर्वतश्रेणियोंमें चंद्रभागानदीके तीर तपोभूमिमें मेधातिथि ऋषि यज्ञ करतेहैं ॥ ५१ ॥
वहाँ तुम स्वच्छन्द जाकर मुनियोंसे दृष्टिगोचर न होती हुई अग्निमें प्रविष्ट हो मेधातिथिकी पुत्री होगी ॥ ५२ ॥ जो स्वामी वरमें तुम्हैं माँगनाहो उसे स्मरण

इति ते ये वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया ॥ अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वजन्मनि संस्थितम् ॥ ४८ ॥ अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव
प्रतिश्रुतः ॥ तदुपायं वदामि त्वां तत्कुरुष्व न संशयः ॥ ४९ ॥ स च मेधातिथिर्यज्ञे मुने द्वादशवार्षिके ॥ कृत्स्नप्रज्वलिते वह्नाव
चिरात् क्रियतां त्वया ॥ ५० ॥ एतच्छैलोपत्यकायां चंद्रभागानदीतटे ॥ मेधातिथिर्महायज्ञं कुरुते तापसाश्रमे ॥ ५१ ॥ तत्र गत्वा
स्वयं छंदं मुनिभिर्नोपलक्षिता ॥ मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यसि ॥ ५२ ॥ यस्ते वरो वाञ्छनीयः स्वामी मनसि
कश्चन ॥ तं निधाय निजस्वांते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम् ॥ ५३ ॥ यदा त्वं दारुणं संध्ये तपश्चरसि पर्वते ॥ यावच्चतुर्युगं तस्य
व्यतीते तु कृते युगे ॥ ५४ ॥ त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः ॥ वाक्पाश्शीलसमापन्ना यथा योग्यं विवाहिताः ॥ ५५ ॥
तन्मध्ये स ददौ कन्या विधवे सप्तविंशति ॥ चन्द्रोऽन्यास्संपरित्यज्य रोहिण्यां प्रीतिमानभूत् ॥ ५६ ॥ तद्धेतोर्हि यदा चन्द्रश्शप्तो
दक्षेण कोपिना ॥ तदा भवत्या निकटे सर्वे देवास्समागताः ॥ ५७ ॥ न दृष्टाश्च त्वया संध्ये ते देवा ब्रह्मणा सह ॥ मयि विन्यस्त
मनसा खं च दृष्ट्वा लभेत्पुनः ॥ ५८ ॥

कर अग्निमें शरीर छोडना ॥ ५३ ॥ चारयुग सतयुगके व्यतीत होनेपर जब तुम पर्वतोंमें घोर तप करोगी ॥ ५४ ॥ तब त्रेताके प्रथमभागमें दक्षके
कन्यारूपसे उत्पन्न होगी और यथायोग्य विवाही जावोगी ॥ ५५ ॥ उनमेंसे दक्ष सत्ताइस कन्या चन्द्रमाको देंगे शशि सबको छोड रोहिणीसे प्रसन्न
होंगे ॥ ५६ ॥ तब कुपितहो दक्षजी चन्द्रमाको शाप देंगे और सब देवता तुम्हारी शरण आवेंगे ॥ ५७ ॥ हे संध्या ! तुमने उन देवताओंको ब्रह्माके

साथ नहीं देखा मुझको मनमें धारणकर आकाशको देख फिर प्राप्त करोगी ॥ ५८ ॥ चन्द्रमाके शापके मोक्षकेलिये ब्रह्माजी वहीं चन्द्रभागानदी उत्पन्न
करेंगे, और वहीं मेधातिथि ऋषि प्राप्त होंगे ॥५९॥ तपमें उनके समान कोई है न होगा, उन्होंने ज्योतिष्टोम यज्ञ प्रारम्भ कियाहै ॥६०॥ तुम वहाँ जा
जलती हुई अग्निमें अपने शरीरको छोडो तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी ॥ ६१ ॥ यह स्थान मैनें अपने लिये सोचाथा परन्तु तुम जाओ और अपना कार्य
सिद्ध करो । यह कह देवेश अन्तर्धान होगये ॥ ६२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेद्वितीयायांरुद्रसंहितायां द्वितीयेसतीखंडे भाषाटीकायां संध्याचरित्रवर्णनो

चंद्रस्य शापमोक्षार्थं जाता चंद्रनदी तदा ॥ सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः ॥ ५९ ॥ तपसा सत्समो नास्ति न भूतो न
भविष्यति ॥ येन यज्ञस्समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः ॥ ६० ॥ तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिन्त्यज वपुःस्वकम् ॥ सुपवित्रा त्वमि
दानीं संपूर्णोस्तु पणस्तव ॥ ६१ ॥ एतन्मयास्थापितन्ते कार्यार्थं भो तपस्विनि ॥ तत्कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञे महामुनेः ॥ तस्या
हितं च देवेशस्तत्रैवांतरधीयत ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे संध्याचरित्रवर्णनं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं दत्त्वा मुने तस्मिन् शंभावंतर्हिते तदा ॥ संध्याप्यगच्छत्तत्रैव यत्र मेधातिथिर्मुनिः ॥१॥
तत्र शंभोः प्रसादेन न केनाप्युपलक्षिता ॥ सस्मार वर्णिनं तं वै स्वोपदेशकरं तपः ॥ २ ॥ वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णीभूत्वा रुषा
मुने ॥ उपदिष्टा तपश्चर्तुं वचनात्परमेष्ठिनः ॥ ३ ॥ तमेव कृत्वा मनसा तपश्चर्योपदेशकम् ॥ पतित्वेन तदा संध्या ब्राह्मणं ब्रह्मचारि
णम् ॥ ४ ॥ समिद्धेग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता ॥ दृष्टा शंभुप्रसादेन सा विवेश विधेस्स्तुता ॥ ५॥

नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वर देकर शम्भुजीके अन्तर्धान होजानेके पीछे संध्या मेधातिथि नामक मुनिके समीप गई ॥१॥
और महादेवजीके प्रसादसे उसे किसीने न देखा । उस समय संध्याने अपने तपोपदेश कर्ताका स्मरण किया ॥ २ ॥ हे मुनि ! पूर्व ब्रह्माजीकी आज्ञासे
वसिष्ठजीने तपके लिये इसे उपदेश किया था ॥ ३ ॥ उस तपश्चर्याके उपदेश करनेवाले ब्रह्मचारी ब्राह्मणको मनमें धारणकर संध्या गिरी ॥ ४ ॥
उस महायज्ञके विषे होम कीहुई अग्निमें गिरते हुए किसी मुनिने न देखा, महादेवजीके प्रसादसे वह ब्रह्माकी कन्या उसमें प्रवेश कर गई ॥ ५ ॥

तस्याः पुरोडाशमयं शरीरं तत्क्षणात्ततः ॥ दग्धं पुरोडाशगंधं तस्तार यदलक्षितम् ॥ ६ ॥ वह्निस्तस्याः शरीरं तु दग्ध्वा सूर्यस्य मंडलम् ॥ शुद्धं प्रवेशयामास शंभोरेवाज्ञया पुनः ॥ ७ ॥ सूर्यो व्यर्थं विभज्याथ तच्छरीरं तदा रथे ॥ स्वकेशं स्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः ॥ ८ ॥ तदूर्द्धभागस्तस्यास्तु शरीरस्य मुनीश्वर ॥ प्रातस्संध्याभवत्सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ॥ ९ ॥ तच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रांतमध्यगा ॥ सा सायमभवत्संध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा ॥ १० ॥ सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदयः ॥ प्रातस्संध्या तदोदेति देवानां प्रीतिकारिणी ॥ ११ ॥ अस्तं गते ततः सूर्य्ये शोणपद्मनिभे सदा ॥ उदेति सायंसंध्यापि पितॄणां मोदकारिणी ॥ १२ ॥ तस्याः प्राणास्तु मनसा शंभुनाथ दयालुना ॥ दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरे हि शरीरिणः ॥ १३ ॥ मुनेर्यज्ञावसाने तु संप्राप्ते मुनिना तु सा ॥ प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकांचनसुप्रभा ॥ १४ ॥ तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुतः ॥ यज्ञार्थं तान्तु संस्नाप्य निजक्रोडे दधौ मुने ॥ १५ ॥

उसका पुरोडाश हव्यके समान शरीर तत्काल भस्म होगया, और उसके अलक्षित शरीरसे हव्यके समान गंध निकली ॥ ६ ॥ फिर शम्भुजीकी आज्ञासे अग्निने उसके शरीरको भस्म करके शुद्ध शरीर लेकर सूर्यमंडलमें प्रवेश किया ॥७॥ सूर्यने अपने रथमें उसके शरीरका विभाग कर देवता और पितरोंकी प्रसन्नताके लिये उसे स्थापित किया ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर ! उसके शरीरवाला ऊपरका भाग रात्रि और दिनके मध्यमें होनेवाली प्रातःसंध्या होगई ॥९॥ और शेष भाग पितरोंको प्रसन्न करनेवाली दिनके अंतमें होनेवाली सायंसंध्या होगई ॥ १० ॥ सूर्योदयसे पहिले जो अरुणोदय होताहै वह देवताओंको प्रसन्न करनेवाली प्रातःसंध्या है ॥ ११ ॥ और सूर्यके अस्त होनेपर जो लाल कमलके समान उदय होतीहै वह पितरोंको प्रसन्न करनेवाली सायं संध्याहै ॥ १२ ॥ उसके प्राणको दयालु श्रीशंकरजीने अपने दिव्यशरीरमें सम्मिलित करलिया ॥ १३ ॥ हे मुनि ! यज्ञकी समाप्तिमें सम्पूर्ण मुनियोंने प्राप्त होनेपर तपे हुए सुवर्णके समान कांतिवाली कन्याको अग्निमें पाया ॥ १४ ॥ उस पुत्रीको ले मुनि बडे प्रसन्नहो यज्ञके निमित्त उसे स्नान कराकर गोदीमें ले

लिया ॥ १५ ॥ और मुनिने उसका अरुंधती नाम रक्खा शिष्योंसे युक्त मेधातिथि मुनि बडे प्रसन्नहुए ॥ १६ ॥ उसने किसीकारणसे भी धर्मका अवरोधन
नहीं किया इस हेतु तीनोंलोकमें विदितहो उस नामको स्वयं प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ यज्ञ समाप्तकर वह मुनि कृतकृत्यके भावको प्राप्त हो कन्याके लाभसे संपदा
युक्तहो शिष्यवर्गोंके साथ उस अपने आश्रममें उसका पालन करने लगे ॥ १८ ॥ उस चंद्रभागानदीके किनारे तापसारण्यवाले मेधातिथि मुनिके आश्रममें
वह कन्या बढनेलगी ॥ १९ ॥ पाँचवर्षकी अवस्थाको प्राप्तहो वह अपने गुणोंके द्वारा चन्द्रभागानदी और तापसारण्य दोनोंको पवित्र करती हुई ॥ २० ॥

अरुंधती तु तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः ॥ शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप ह ॥ १६ ॥ विरुणद्धि यतो धर्मं सा कस्मादपि
कारणात् ॥ अतस्त्रिलोके विदितं नाम संप्राप तत्स्वयम् ॥ १७ ॥ यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभावमासाद्य संपद्युतस्तनयाप्रलं
भात् ॥ तस्मिन्निजाश्रमपदे सह शिष्यवर्गैस्तामेव संततमसौ दयिते सुखें ॥ १८ ॥ अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके ॥ १९ ॥ संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणैः ॥ तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत्सती ॥
॥ २० ॥ विवाहं कारयामासुस्तस्या ब्रह्मसुतेन वै ॥ वसिष्ठेन ह्यरुंधत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २१ ॥ तद्विवाहे महोत्साहो बभूव
सुखवर्द्धनः ॥ सर्वे सुराश्च मुनयस्सुखमापुः परं मुने ॥ २२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां करनिस्सृततोयतः ॥ सप्तनद्यस्समुत्पन्नाश्शिप्राद्या
स्सुपवित्रकाः ॥ २३ ॥ अरुंधती महासाध्वी साध्वीनां प्रवरोत्तमा ॥ वसिष्ठं प्राप्य संरेजे मेधातिथिसुता मुने ॥ २४ ॥ यस्याः
पुत्रास्समुत्पन्नाः श्रेष्ठाश्शक्त्यादश्शुभाः ॥ वसिष्ठं प्राप्य तं कांतं संरेजे मुनिसत्तमा ॥ २५ ॥

फिर ब्रह्मा विष्णु शिवने ब्रह्मपुत्र वशिष्ठके साथ उस अरुंधतीका विवाह कराया ॥ २१ ॥ हे मुनि ! उसके विवाहमें सुखके बढानेवाला बडाही उत्सव हुवा
सम्पूर्ण देवता और मुनि सुखको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ और ब्रह्मा विष्णु शिवजीके हाथसे निकले हुए जलके द्वारा शिप्रादिक पवित्र सात नदी हुईं ॥ २३ ॥
पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ उत्तम महापतिव्रता अरुंधती मेधातिथिकी कन्या वशिष्ठको पाकर रमण करती हुई ॥ २४ ॥ और उसके शक्त्यादिक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न

हुये, ऐसे वशिष्ठ कांतको पाकर वह रमण करती हुई ॥ २५ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार संध्याका चरित्र मैंने तुमसे कहा जो अत्यन्त पवित्र दिव्य और
पावन सम्पूर्णकामोंके मूलको देनेवालाहै ॥ २६ ॥ जो स्त्री या पुरुष शुद्ध चित्तसे इसको सुनैंगे वह सम्पूर्ण कामोंको प्राप्त होंगे इसमें संदेह नहीं ॥२७॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीये सतीखण्डे रुद्रसंहिताभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार प्रजापति ब्रह्माका वचन सुन प्रसन्न हो
नारदजी बोले ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! हे विधि ! महाभाग हे विष्णु ! शिष्य महामति आप परतत्त्वके जाननेवाले शिवभक्त धन्य हो ॥ २ ॥

एवं संध्याचरित्रं ते कथितं मुनिसत्तम ॥ पवित्रं पावनं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २६ ॥ य इदं शृणुयान्नारी पुरुषो वा शुभव्रतः ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वि० सतीखंडे सप्तमोऽध्यायः
॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो हि प्रजापतेः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा तं प्रोवाच स नारदः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥
ब्रह्मन् विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते ॥ धन्यस्त्वं शिवभक्तो हि परतत्त्वप्रदर्शकः ॥ २ ॥ श्राविता सुकथा दिव्या शिवभक्तिवि
र्वर्द्धिनी ॥ अरुंधत्यास्तथा तस्याः स्वरूपायाः परे भवे ॥ ३ ॥ इदानीं ब्रूहि धर्मज्ञ पवित्रं चरितं परम् ॥ शिवस्य परपापघ्नं मंगलप्र
दमुत्तमम् ॥ ४ ॥ गृहीतदारे कामे च दृष्टे तेषु गतेषु च ॥ संध्यायां किं तपस्तप्तुं गतायामभवत्ततः ॥ ५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति
श्रुत्वा वचस्तस्य ऋषेर्वै भावितात्मनः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद विप्रेन्द्र तदेव
चरितं शुभम् ॥ शिवलीलान्वितं भक्त्या धन्यस्त्वं शिवसेवकः ॥ ७ ॥

आपने शिवभक्तिके बढानेवाली अरुंधती और उसके स्वरूपकी दिव्य कथा कही ॥ ३ ॥ हे धर्मके जाननेवाले अब दूसरा पवित्र पापोंको नाशकरनेवाला
उत्तमम् गलके देनेवाला शिवका चारित्र कहिये ॥ ४ ॥ स्त्री ग्रहणकर कामको जातेहुए देख संध्याने जाकर क्या तप किया ॥ ५ ॥ सूतजी बोले इसप्रकार
नारदजीके वचन सुन प्रसन्न हो ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे विप्रेन्द्र ! नारद शिवलीलासे युक्त वह शुभ चरित्र भक्तिपूर्वक सुनो तुम शिवजीके

सेवक धन्य हौ ॥ ७ ॥ मैं जब पूर्वही मोहित हो अन्तर्धान होगया तबसे सदा शिवके वाक्यसे दुःखी हो सोचता रहा ॥ ८ ॥ शिवकी मायासे मोहित
बहुत दिनतक सोचकर शिवसे ईर्ष्या की वह सुनो तुमसे कहताहूं ॥ ९ ॥ उस मदन व रतिको देख किंचित् मदसे युक्त हो मैं दक्षादिकोंके समीप आया
॥ १० ॥ हे नारद ! शिवकी मायासे मोहित मैंने दक्षादिक पुत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक कहा ॥११॥ ब्रह्माजी बोले, हे दक्ष ! हे मरीच्यादि सुत ! मेरी बातको
सुनकर मेरे कष्टके दूर होनेका उपाय करो ॥ १२ ॥ स्त्रीके अभिलाष मात्रसेही महायोगी महादेवजीने मुझको और तुमको बहुत धिक्कारा ॥ १३ ॥

अहं विमोहितस्तात यदैवांतर्हितः पुरा ॥ अचिंतयं सदाहं तच्छंभुवाक्यविषार्दितः ॥८॥ चिंतयित्वा चिरं चित्ते शिवमायाविमोहितः ॥
शिवे चेर्ष्यामकार्षं हि तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ ९ ॥ अथाहमगमं तत्र यत्र दक्षादयः स्थिताः ॥ सरतिं मदनं दृष्ट्वा समदोहं हि किञ्चन
॥ १० ॥ दक्षमाभाष्य सुप्रीत्या परान्पुत्रांश्च नारद ॥ अवोचं वचनं सोहं शिवमायाविमोहितः ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे दक्ष हे मरीच्याद्या
स्सुताः शृणुत मद्वचः ॥ श्रुत्वोपायं विधेयं हि मम कष्टापनुत्तये ॥ १२ ॥ कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत् ॥ मां च युष्मान्महा
योगी धिक्कारं कृतवान्बहु ॥ १३ ॥ तेन दुःखाभितप्तोहं लभेहं शर्म न क्वचित् ॥ यथा गृह्णातु कांतां स स यत्नः कार्य एव हि ॥१४॥
यथा गृह्णातु कांतां स सुखी स्यां दुःखवर्जितः ॥ दुर्लभस्स तु कामो मे परं मन्ये विचारतः ॥ १५ ॥ कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शंभु
रगर्हयत् ॥ मुनीनां पुरतः कस्मात्स कांतां संग्रहीष्यति ॥ १६ ॥ का वा नारी त्रिलोकेस्मिन् या भवेत्तन्मनाः स्थिता ॥ योगमार्गम
वज्ञाप्य तस्य मोहं करिष्यति ॥ १७ ॥

उस दुःखसे दुःखी मुझको कहीं चैन नहीं पडता जिसप्रकार महादेवजी स्त्रीको ग्रहण करैं वह यत्न करो ॥ १४ ॥ जब वह स्त्रीको ग्रहण करैं तब मैं दुःखसे
रहित हो सुखी होऊं । परंतु मेरे विचारसे यह काम दुर्लभ है ॥ १५ ॥ मुनियोंके सन्मुख कांताके अभिलाषमात्रसेही शम्भुने मुझे धिक्कारा तो वह कैसे
स्त्रीको ग्रहण करैंगे ॥ १६ ॥ कौनसी स्त्री तीनोंलोकमें ऐसी है जो उनके मनमें स्थित हो सकै, और योगमार्गको जानकर उनका मोह न करै ॥ १७ ॥

उनके मोहनमें मन्मथ भी नहीं समर्थ होगा, वे निरंतर योगी स्त्रियोंके नामका भी सहन नहीं करते ॥ १८ ॥ वे आदिहर तो वाणीसे भी स्त्रियोंको नहीं कहते हैं तो भला बताइये विवाह कर वे सृष्टि कैसे करेंगे, ॥१९॥ संसारमें कोई महासुर मेरे वध्य होंगे, कोई हरिके वध्य होंगे, कोई निश्चयसे श्रीशंभुजीके उपायसे मारेजांयगे ॥ २० ॥ एकान्त विरागी संसारसे विमुख शम्भु इससे विपरीत दूसरा कर्म नहीं करैंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २१ ॥ यह कह मैंने दक्षादिक पुत्रोंको देखा उसी समय रति और मदन दोनों आनन्द पूर्वक वहाँ आकर प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले सर्वदा सुखके देनेवाले मेरे श्रेष्ठ पुत्र

मन्मथोपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने ॥ नितांतयोगी रामाणां नामापि सहते न सः ॥ १८ ॥ अगृहीतेषुणा चैव हरेण कथमादिना ॥ मध्यमा च भवेत्सृष्टिस्तद्वाचा नान्यवारिता ॥ १९ ॥ भुवि केचिद्भविष्यंति मायाबद्धा महासुराः ॥ बद्धा केचिद्धरेर्नूनं केचिच्छंभोरुपायतः ॥ २० ॥ संसारविमुखे शंभौ तथैकांताविरागिणि ॥ अस्माद्दते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा तनयांश्चाहं दक्षादीन् सुनिरीक्ष्य च ॥ सरतिं मदनं तत्र सानंदमगदं ततः ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मत्पुत्र वर काम त्वं सर्वथा सुखदायकः ॥ मद्वचश्शृणु सुप्रीत्या स्वपत्न्या पितृवत्सल ॥ २३ ॥ अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव ॥ एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम् ॥ २४ ॥ यथा स्त्रिया हृषीकेशो हरिणा सा यथा रमा ॥ क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधुः ॥ २५ ॥ तथैव युवयोश्शोभा दांपत्यं च पुरस्कृतम् ॥ अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि ॥ २६ ॥ जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिनाकिनम् ॥ यथाशु सुमनश्शंभुः कुर्य्याद्दारप्रतिग्रहम् ॥ २७ ॥

हे काम ! हे पितृवत्सल ! तुम स्त्री सह प्रसन्नतापूर्वक मेरे वचनको सुनो ॥ २३ ॥ हे काम ! इस स्त्रीके साथ तुम शोभाको दे रहेहौ, और यह तुमसे युक्त शोभित है ॥ २४ ॥ जैसे हृषीकेश स्त्रियोंसे और हरि लक्ष्मीसे रोहिणी चन्द्रमासे और चन्द्रमा रोहिणीसे शोभितहैं ॥ २५ ॥ उसीप्रकार तुम्हारी स्त्री पुरुषोंकी शोभाहै इसलिये तुम जगत और संसारके केतु होगे ॥ २६ ॥ हे वत्स ! संसारके हितके लिये तुम महादेवजीको मोहन करो, जिससे शीघ्र

प्रसन्नहो शंकर स्त्रीको ग्रहण करैं ॥ २७ ॥ निर्जनस्थानमें उत्तम देशमें पर्वतमें तालाबमें जहाँ जहाँ ईश जायँ वहां वहां तुम इसके साथ जाकर ॥ २८ ॥ तुम वनितासे विमुख इन्द्रीजित शंकरका मोहन करो, तुम्हारे सिवाय उनको मोहन करनेवाला और दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥ हे काम ! प्राणियोंपर महादेवजीके अनुराग करनेसे तुम्हारेभी शापोंकी शांति होगी इसलिये तुम अपना हित करो ॥ ३० ॥ अनुरागसे युक्त हो शंकरजी जब उत्तम स्त्रीकी इच्छा करैंगे, तब महादेवजी तुमको तारदेंगे ॥ ३१ ॥ इसलिये महादेवजीके मोहनार्थ दूसरी स्त्री उत्पन्न करो इस विधि महादेवजीका मोहन करके तुम संसारके

विजने स्निग्धदेशे तु पर्वतेषु सरस्सु च ॥ यत्रयत्र प्रयातीशस्तत्र तत्रानया सह ॥ २८ ॥ मोहय त्वं यतात्मानं वनिताविमुखं हरम् ॥
त्वदृते विद्यते नान्यः कश्चिदस्य विमोहकः ॥ २९ ॥ भूते हरे सानुरागे भवतोपि मनोभव ॥ शापोपशांतिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु
॥ ३० ॥ सानुरागो वरारोहां यदीच्छति महेश्वरः ॥ तदा भवोपि योग्यार्यस्त्वां च संतारयिष्यति ॥ ३१ ॥ तस्माज्जायाद्वितीयस्त्वं
यतस्व हरमोहने ॥ विश्वस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो मे हि जनकस्य जगत्प्रभोः ॥
उवाच मन्मथस्तथ्यं तदा मां जगतां पतिम् ॥ ३३ ॥ मन्मथ उवाच ॥ करिष्येहं तव विभो वचनाच्छंभुमोहनम् ॥ किं तु योषिन्म
हास्त्रं मे तत्कांतां भगवन् सृज ॥ ३४ ॥ मया संमोहिते शंभौ यया तस्यानुमोहनम् ॥ कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं परं कुरु ॥ ३५ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ एवंवादिनि कंदर्पे धाताहं स प्रजापतिः ॥ कया संमोहनीयोसाविति चिंतामयामहम् ॥ ३६ ॥ चिंताविष्टस्य मे तस्य
निःश्वासो यो विनिस्सृतः ॥ तस्माद्वसंतस्संजातः पुष्पव्रातविभूषितः ॥ ३७ ॥

केतु हो ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले संसारके प्रभु मुझ अपने पिताकी बातको सुन मन्मथने ठीक ठीक जगत्के पति मुझसे कहा ॥ ३३ ॥ मन्मथ बोला हे स्वामी ! आपकी आज्ञासे मैं शंभुको मोहन करूंगा परन्तु हे भगवन् ! मेरे अस्त्र स्त्रीको आप बनाइये ॥ ३४ ॥ जिसमें मेरे महादेवजीके मोहन करनेपर उसका मोहन न होजाय, हे ब्रह्मा ! इससे दूसरा उपाय आप कीजिये ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार कंदर्पकी बात सुन मैं ब्रह्मा और प्रजापति दक्ष किसके द्वारा उनका संमोहन करैं यह सोचने लगे ॥ ३६ ॥ चिंतामें प्रविष्ट हुये मेरे श्वासके द्वारा पुष्पबाणसे विभूषित वसंत उत्पन्न हुवा ॥ ३७ ॥

फूलेहुये कमलकी समान कांति फूलेहुये तामरसके समान नेत्र और संध्यासमय उदय हुए चन्द्रखंडके समान उत्तम नासिका ॥ ३८ ॥ शार्ङ्गके समान चरणोंके आवर्त, काले धुँघुँराले बाल, संध्या समयके सूर्यके सदृश दो कुंडलोंसे मंडित ॥ ३९ ॥ मतवारे हाथीकीसी चाल, चिकने व चौंडे जंघा, ऊंचे कंधेवाला, कबूतरके समान गर्दन चौंडी छाती सन्मुखका भाग उठाहुवा ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण अंग सुन्दर श्याम सब लक्षणोंसे युक्त देखनेके योग्य सबको मोहित करनेवाला कामको बढानेवाला ॥ ४१ ॥ इसप्रकारके पुष्पोंको उत्पन्न करनेवाले वसंतके उत्पन्न होनेपर सुगंधित वायु चलने लगी और वृक्ष

शोणराजीवसंकाशः फुल्लतामरसेक्षणः ॥ संध्योदिताखंडशशिप्रतिमास्यस्सुनासिकः ॥ ३८ ॥ शार्ङ्गवच्चरणावर्त्तश्श्यामकुंचितमूर्द्धजः ॥
संध्यांशुमालिसदृशः कुंडलद्वयमंडितः ॥ ३९ ॥ प्रमत्तेभगतिः पीनायतदोरुन्नतांसकः ॥ कंबुग्रीवस्सुविस्तीर्णहृदयः पीनसन्मुखः
॥ ४० ॥ सर्वांगसुन्दरः श्यामस्सम्पूर्णस्सर्वलक्षणैः ॥ दर्शनीयतमस्सर्वमोहनः कामवर्द्धनः ॥ ४१ ॥ एतादृशे समुत्पन्ने वसंते कुसुमा
करे ॥ ववौ वायुस्सुसुरभिः पादपा अपि पुष्पिताः ॥ ४२ ॥ पिका विनेदुश्शतशः पंचमं मधुरस्वनाः ॥ प्रफुल्लपद्मा अभवन्सरस्यः
स्वच्छपुष्कराः ॥ ४३ ॥ तमुत्पन्नमहं वीक्ष्य तदा तादृशमुत्तमम् ॥ हिरण्यगर्भो मदनमगदं मधुरं वचः ॥ ४४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
एवं स मन्मथनिभस्सदा सहचरोभवत् ॥ आनुकूल्यं तव कृतः सर्वं देव करिष्यति ॥ ४५ ॥ यथाग्नेः पवनो मित्रं सर्वत्रोपकरिष्य
ति ॥ तथायं भवतो मित्रं सदा त्वामनुयास्यति ॥ ४६ ॥ वसतेरंतहेतुत्वा द्वसंताख्यो भवत्वयम् ॥ तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुर
ञ्जनम् ॥ ४७ ॥ असौ वसंतशृंगारो वासंतो मलयानिलः ॥ भवेत्तु सुहृदो भावस्सदा त्वद्वशवर्त्तिनः ॥ ४८ ॥

फूल गये ॥ ४२ ॥ पंचम मीठे स्वरसे कोकिल बोलने लगे, कमल व कोकावेली फूलगईं, तालाब स्वच्छ होगये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार उत्तम उसको उत्पन्न हुवा देख हिरण्यगर्भ मदनसे मैंने मधुर वचनमें कहा ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारका मन्मथके समान कांतिवाले वसंत तुम सदा कामके सहचरहो देव तुम्हारी सदा अनुकूलता करैं ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार अग्निका मित्र पवन सर्वत्र उपकार करताहै उसी प्रकार यह तुम्हारा मित्र सदा तुम्हारे साथ रहै ॥ ४६ ॥ यह रमणका हेतुहै इसलिये इसका नाम वसंतहो इसका कर्म तुम्हारा अनुगमन और संसारका रंजन है ॥ ४७ ॥ इस वसंतका

शृंगार सदा मलयाचलकी पवनमें बसै और सदा तुम्हारा इसका मित्रभाव हो और सदा तुम्हारे वशमें रहै ॥ ४८ ॥ रतिके किये हुये विव्वोकादि भाव और चौंसठ कला तुम्हारी प्रसन्नताके लिये तुम्हारे सुहृदहों ॥ ४९ ॥ हे काम ! इस अपने सहचर वसंत और रतिके साथ उद्यत हो महादेवजीका मोहन करो ॥ ५० ॥ हे पुत्र ! मैं उस स्त्रीको यत्न पूर्वक विचारकर कहूंगा जो महादेवजीका मोहन करैगी ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार मेरे कहने पर कामने प्रसन्न होकर मेरे चरणोंमें सपत्नीक प्रणाम किया ॥ ५२ ॥ फिर दक्षको और मनसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पुत्रोंको प्रणाम कर जिस स्थानमें महादेवजी गयेथे वहींको मन्मथ गया ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीये सतीखण्डे रुद्रसंहिताभाषाटीकायां सतीचारित्रे वसंतरूपवर्णनो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ब्रह्माजी बोले, अनुचरोंके साथ उस कामको शिवके स्थानमें जानेपर जो कुछ विचित्र चरित्र हुआ उसे सुनो ॥ १ ॥ मोह करनेवाले महावीर कामने वहां जाकर अपने प्रभावको विस्तारितकर प्राणियोंको मोहित करलिया ॥ २ ॥ वसन्त ऋतुनेभी महादेवजीके मोहित करनेवाला अपना प्रभाव किया सभी वृक्ष एक साथ प्रफुल्ल होगये ॥ ३ ॥ रतिके साथ कामने नाना प्रकार यत्न किये सब जीव वश होगये परन्तु शिव और गणेशजी वशी न हुये ॥ ४ ॥

विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुष्षष्टिकलास्तथा ॥ रत्याः कुर्वंतु सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव ॥ ४९ ॥ एभिस्सहचरैः काम वसंतप्रमुखैर्भवान् ॥ मोहयस्व महादेवं रत्या सह महोद्यतः ॥ ५० ॥ अहं तां कामिनीं तात भावयिष्यामि यत्नतः ॥ मनसा सुविचार्यैव या हरं मोहयिष्यति ॥ ५१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्तो मया कामः सुरज्येष्ठेन हर्षितः ॥ ननाम चरणौ मेऽपि स पत्नीसहितस्तदा ॥ ५२ ॥ दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान्मानसानभिवाद्य च ॥ यत्रात्मा गतवाञ्शंभुस्तत्स्थानं मन्मथो ययौ ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सतीचरित्रे द्वितीये सतीखंडे वसंतस्वरूपवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्मिन् गते सानुचरे शिवस्थानं च मन्मथे ॥ चरित्रमभवच्चित्रं तच्छृणुष्व मुनीश्वर ॥ १ ॥ गत्वा तत्र महावीरो मन्मथो मोहकारकः ॥ स्वप्रभावं ततानाशु मोहयामास प्राणिनः ॥ २ ॥ वसंतोपि प्रभावं स्वं चकार हरमोहनम् ॥ सर्वे वृक्षा एकदैव प्रफुल्ला अभवन्मुने ॥ ३ ॥ विविधान्कृतवान्यत्नान् रत्या सह मनोभवः ॥ जीवास्सर्वे वशं यातास्सगणेशश्शिवो न हि ॥ ४ ॥

इस कामके सब प्रयास निष्फल होगये और यह मदरहित हो अपने स्थानको चला गया ॥ ५ ॥ गद्गद वाणीसे मुझ ब्रह्माजीको प्रणामकर अहंकाररहित
उदासीन काम मुझसे बोला ॥ ६ ॥ काम बोला, योगपरायण शंभुजी मोहित होनेवाले नहीं हैं उस शंभुके मोहन करनेमें दूसरोंकी और मेरी सामर्थ्य
नहींहै ॥ ७ ॥ समित्र मैंने नाना उपाय किये परन्तु रतिके साथ शिवमें सम्पूर्ण उपाय निष्फल होगये ॥ ८ ॥ हे ब्रह्माजी ! शिवके मोहनमें जो कुछ हमने
उपाय किया कहते हुए मुझसे उन प्रयासोंको आप सुनिये ॥९॥ जब शिवजी समाधि लगाकर बैठगये, तब अतिशीतल सुगन्धित वायु चलनेलगी ॥ १० ॥

समधोर्मदनस्यासन्प्रयासा निष्फला मुने ॥ जगाम स मम स्थानं निवृत्य विमदस्तदा ॥ ५ ॥ कृत्वा प्रणामं विधये मह्यं गद्गदया
गिरा ॥ उवाच मदनो मां चोदासीनो विमदो मुने ॥ ६ ॥ काम उवाच ॥ ब्रह्मन् शंभुर्मोहनीयो न वै योगपरायणः ॥ न शक्तिर्मम
नान्यस्य तस्य शंभोर्हि मोहने ॥ ७ ॥ समित्रेण मया ब्रह्मन्नुपाया विविधाः कृताः ॥ रत्या सहाखिलास्ते च निष्फला अभव
ञ्छिवे ॥ ८ ॥ शृणु ब्रह्मन्यथास्माभिः कृता हि हरमोहने ॥ प्रयासा विविधास्तात गदतस्तान्मुने मम ॥ ९ ॥ यदा समाधिमाश्रित्य
स्थितश्शंभुर्नियंत्रितः ॥ तदा सुगंधिवातेन शीतलेनातिवेगिना ॥ १० ॥ उद्वीजयामि रुद्रं स्म नित्यं मोहनकारिणा ॥ प्रयत्नतो
महादेवं समाधिस्थं त्रिलोचनम् ॥ ११ ॥ स्वसायकांस्तथा पंच समादाय शरासनम् ॥ तस्याभितो भ्रमंतस्तु मोहयंस्तद्गणानहम् ॥
॥ १२ ॥ मम प्रवेशमात्रेण सुवश्यास्सर्वजंतवः ॥ अभवद्विकृतो नैव शंकरस्सगणः प्रभुः ॥ १३ ॥ यदा हिमवतः प्रस्थं स गतः
प्रमथाधिपः ॥ तत्रागतस्तदैवाहं सरतिस्समधुर्विधे ॥ १४॥ यदा मेरुं गतो रुद्रो यदा वा नागकेशरम् ॥ कैलासं वा यदा यातस्तत्राहं
गतवाँस्तदा ॥ १५ ॥

मोहनकारी पवनसे समाधिस्थ त्रिलोचन शिवजीको नित्यही उद्वीजन किया ॥ ११ ॥ अपने पाँच बाणको ले शिवके सामने घूमता हुआ मैं उनके गणोंको
मोहित करने लगा ॥ १२ ॥ मेरे प्रवेश करतेही सब प्राणी वश हो गये परन्तु गणोंके सहित शिवजी वश न हुये ॥ १३ ॥ जब शिवजी हिमवान् पर्वतपर
गये हे विधि ! उसी समय मैं रति और वसंतको साथमें ले वहाँ आया ॥ १४ ॥ जब शिवजी मेरु पर्वतको गये तब मैं वहाँ गया जब नागकेशर गये

तब मैं वहाँ गया, जब कैलास गये तब मैं वहाँ गया ॥ १५ ॥ जब शिवजीने किसीप्रकार समाधि न छोडी तब मैंने दो चक्र बनाये ॥ १६ ॥ हावभाव युक्त उस भ्रूयुगलने स्त्री पुरुषके क्रमसे उत्तम नानाप्रकारोंके भावोंको किया ॥ १७ ॥ गणोंके सहित नीलकंठ शिवजीके समीप स्थित मृग और पक्षियोंने मोहितहो नानाभाव किये ॥ १८ ॥ उनके चारों ओर नानाप्रकारकी गतियोंका आश्रयणकर रसके उत्सुक करनेवाले मयूरोंने वहाँ मैथुन किया ॥ १९ ॥ मेरे बाणने उन शिवमें कदाचित् स्थान नहीं पाया सत्य कहताहूं उनके मोहन करनेमें मेरी शक्ति नहीं है ॥ २० ॥ उनके मोहनमें युक्त

यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तस्थौ कदाचन ॥ तदा तस्य पुरश्चक्रयुगं रचितवानहम् ॥ १६ ॥ तच्च भ्रूयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहुः ॥ नानाभावानकार्षींच्च दांपत्यक्रममुत्तमम् ॥ १७॥ नीलकंठं महादेवं सगणं तत्पुरःस्थिताः ॥ अकार्षुर्मोहितं भावं मृगाश्च पक्षिणस्तथा ॥ १८ ॥ मयूरमिथुनं तत्राकार्षीद्भावं रसोत्सुकम् ॥ विविधां गतिमाश्रित्य पार्श्वे तस्य पुरस्तथा ॥ १९ ॥ नालभद्विवरं तस्मिन् कदाचिदपि मच्छरः ॥ सत्यं ब्रवीमि लोकेश मम शक्तिर्न मोहने ॥ २० ॥ मधुरप्यकरोत्कर्म युक्तं यत्तस्य मोहने ॥ तच्छृणुष्व महाभाग सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २१ ॥ चंपकान्केशरान्बालान्कारणान्पाटलांस्तथा ॥ नागकेशरपुन्नागान्किंशुकान्केतकान्क रान् ॥ २२ ॥ मागंधिमल्लिकापर्णभारान्कुरबकांस्तथा ॥ उत्फुल्लयति तत्र स्म यत्र तिष्ठति वै हरः ॥ २३ ॥ सरांस्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलैः ॥ यत्नात्सुगंधीन्यकरोदतीव गिरिशाश्रमे ॥ २४ ॥ लतास्सर्वास्सुमनसो दधुरंकुरसंचयान् ॥ वृक्षांकं चिरभावेन वेष्टयंतिस्म तत्र च ॥ २५ ॥

जो कुछ कर्म्म वसन्तने किया सत्य २ कहता हूं उसको सुनो ॥ २१ ॥ चंपक, केशर, कटहल, पाटल, नागकेशर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी, कुरबक और पाटल ॥ २२ ॥ मालती, चमेली, पत्र, कुरबकोंको जहाँ शिवजी बैठेथे प्रफुल्लित करदिया ॥ २३ ॥ शिवजीके आश्रममें फूलेकमलवाले सरोंको मलयागिरीके वायुसे यत्नपूर्वक सुगंधित करदिया ॥ २४ ॥ धतूरेके अंकुरके समूह और फूली हुई सब लतायें बडे प्रेमसे वृक्षोंको लिपट गईं ॥ २५ ॥

सुगंधित पवनोंसे उन वृक्षोंको प्रफुल्लित देख मुनिभी कामके वश होगये औरोंकी तो क्या बातहै ॥ २६ ॥ इसप्रकार होनेपरभी शंभुके मोहनका कारण भावमात्रभी न देखा; और अपनेपर शंकरका कोप ॥ २७ ॥ यह सब देख और उनकी भावनाको जान शंभुके मोहसे जिसप्रकार मैं विमुख हुआ वह तुमसे कहताहूं ॥ २८ ॥ कोपसे मोहित समाधिको छोडे हुए उन शंभुके सन्मुख मैं ठहर न सका, भला उन्हें कौन मोह सकताहै ॥ २९ ॥ जिनके जलतीहुई शिखाओंसे युक्त अग्निकी राशिके समान नेत्रहैं, ऐसे शृंगीको देख उनके समीप कौन ठहरसकताहै ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले, इसप्रकार कामके वचन सुन

तान्वृक्षांश्च सुपुष्पौघान् तैः सुगंधिसमीरणैः ॥ दृष्ट्वा कामवशं याता मुनयोऽपि परे किमु ॥ २६ ॥ एवं सत्यपि शंभोर्न दृष्टं मोहस्य कारणम् ॥ भावमात्रमकार्षीन्नो कोपो मय्यपि शंकरः ॥ २७ ॥ इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा तस्य च भावनाम् ॥ विमुखोऽहं शंभुमोहान्नियतं ते वदाम्यहम् ॥ २८ ॥ तस्य त्यक्तसमाधेस्तु क्षणं नो दृष्टिगोचरे ॥ शक्नुयामो वयं स्थातुं तं रुद्रं को विमोहयेत् ॥ २९ ॥ ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जट्टाराशिकरालिनम् ॥ शृंगिणं वीक्ष्य कस्स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुरः ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मनोभववचश्चेत्थं श्रुत्वाहं चतुराननः ॥ विवक्षुरपि नावोचं चिंताविष्टोऽभवं तदा ॥ ३१ ॥ मोहनेहं समर्थो न हरस्येति मनोभवः ॥ वचः श्रुत्वा महादुःखान्निरश्वसमहं मुने ॥ ३२ ॥ निश्वासमारुता मे हि नाना रूपमहाबलाः ॥ जाता गता लोलजिह्वा लोलाश्चातिभयंकराः ॥ ३३ ॥ अवादयंत ते सर्वे नानावाद्यानसंख्यकान् ॥ पटहादिगणास्तांस्तान् विकरालान्महारवान् ॥ ३४ ॥ अथ ते मम निश्श्वाससंभवाश्च महागणाः ॥ मारयच्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्मणो मे पुरः स्थिताः ॥ ३५ ॥

मैं चतुरानन (ब्रह्मा) चिन्तामें मग्न हो फिर कुछ पूँछनेकेलिये भी नहीं बोलसका ॥ ३१ ॥ मैं महादेवजीके मोहनमें नहीं समर्थहूं, इसप्रकार कामका वचन सुन बडे दुःखसे मैं श्वासरहित होगया ॥ ३२ ॥ फिर प्रगटहुए मेरे श्वासकी पवनसे चंचल बडे भयंकर जिह्वाको लपलपानेवाले बडे बली नानाप्रकारके रूपधारी गण प्रगट हुए ॥ ३३ ॥ कोलाहल करनेवाले असंख्य विकरालगण जो नानाप्रकारके पटहादिवाद्योंको बजातेथे ॥ ३४ ॥ मेरे श्वाससे

उत्पन्नहुए वे महागण मेरे समीप मारो काटो इसप्रकारका शब्द करने लगे ॥ ३५ ॥ मुझको मारने काटनेका वाक्य सुन काम कुछ कहनेकेलिये तत्पर होगया ॥ ३६ ॥ काम यह देखकर उनको निवारित कर गणोंके सन्मुख मुझसे बोला ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् प्रजानाथ ! सम्पूर्ण सृष्टिके प्रवर्त्तक आपने इन विकराल भयंकर किन वीरोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मा ! इनका क्या कामहै यह कहाँ रहैंगे इनका क्या नामहै वह कहिये और वहाँ इनको नियोजित कीजिये ॥ ३९ ॥ हे देवेश ! इनको अपने कृत्यमें नियोजित कर नाम और स्थान दे कृपाकर जो उचित हो वह मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ४० ॥

तेषां तु वदतां तत्र मारयच्छेदयेति माम् ॥ वचः श्रुत्वा विधिं कामः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३६ ॥ मुनेऽथ मां समाभाष्य तान् दृष्ट्वा मदनो गणान् ॥ उवाच वारयन्न ब्रह्मन्गणानामग्रतः स्मरः ॥ ३७ ॥ ॥ काम उवाच ॥ हे ब्रह्मन् हे प्रजानाथ सर्वसृष्टिप्रवर्तक ॥ उत्पन्नाः क इमे वीरा विकराला भयंकराः ॥ ३८ ॥ किं कर्मैते करिष्यंति कुत्र स्थास्यंति वा विधे ॥ किन्नामधेया एते तद्वद तत्र नियोजय ॥ ॥ ३९ ॥ नियोज्य तान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा च नाम च ॥ मामाज्ञापय देवेश कृपां कृत्वा यथोचिताम् ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मुनेऽहं लोककारकः ॥ तमवोचं ह मदनं तेषां कर्मादिकं दिशन् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदन् वचः ॥ मुहुर्मुहुरतोमीषां नाम मारेति जायताम् ॥ ४२ ॥ सदैव विघ्नं जंतूनां करिष्यन्ति गणा इमे ॥ विना निजार्चनं काम नानाकामरतात्मनाम् ॥ ४३ ॥ तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषां मनोभव ॥ सहायिनो भविष्यंति सदा तव न संशयः ॥ ४४ ॥ यत्रयत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा ॥ गंता स तत्रतत्रैते सहायार्थं तदातदा ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले, हे मुनि ! लोककर्ता मैंने इस उसकी बातको सुन उन गणोंको कर्मादिककी आज्ञा दे उस मदनसे कहा ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले यह उत्पन्न होतेही बारम्बार 'मारय मारय' इसप्रकारका वचन कहनेलगे, इसलिये मार इनका नाम हो ॥ ४२ ॥ यह गण सदैव जन्तुओंको विघ्न करैं और नानाकामोंमें रत यह गण बिना अपनी पूजाके प्रसन्न न हों ॥ ४३ ॥ हे काम ! सदा तुम्हारेही अनुकूल रहना यह उनका मुख्य कर्महै, और यह सदा तुम्हारे सहायक होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ४४ ॥ जब जब जहाँ आप अपने कामकेलिये जाँयगे तब तब यह वहाँ तुम्हारे सहायतार्थ जायाकरैंगे ॥ ४५ ॥

तुम्हारे अस्त्रके वशमें चलनेवाले मनुष्योंके चित्तको भ्रमित करदिया करैंगे, और ज्ञानियोंके ज्ञानमार्गमें सदा विघ्न करैंगे ॥४६॥ ब्रह्माजी बोले यह मेरा वचन सुन रति और काम दोनों कुछ प्रसन्न हुए ।। ४७ ॥ वह सब गण सुनकर मुझको और कामको छोड वहाँ कार्यके अनुकूल अपनी आकृतिमें बैठे ॥४८॥ यह कह ब्रह्माने फिर कामसे कहा कि हे काम ! तुम अनुत्तर हो मेरी आज्ञाको करो, इनको साथमें ले फिर महादेवजीके मोहनकेलिये जाओ ॥ ४९ ॥ मनको स्थिरकर मारगणोंके साथ यत्न करो जिससे स्त्रीग्रहणार्थ महादेवजीका मोहन हो ॥ ५० ॥ हे नारद ! यह वचन सुन गौरवमान विनयपूर्वक मुझे

चित्तभ्रांतिं करिष्यंति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम् ॥ ज्ञानिनां ज्ञानमार्गं च विघ्नयिष्यंति सर्वथा ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचो मे हि सरतिस्समहानुगः ॥ किंचित्प्रसन्नवदनो बभूव मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ श्रुत्वा तेपि गणास्सर्वे मदनं मां च सर्वतः ॥ परिवार्य्य यथाकामं तस्थुस्तत्र निजाकृतिम् ॥ ४८ ॥ अथ ब्रह्मा स्मरं प्रीत्याऽगदन्मे कुरु शासनम् ॥ एभिस्सहैव गच्छ त्वं पुनश्च हरमोहने ॥ ४९ ॥ मन आधाय यत्नाद्धि कुरु मार गणैस्सह ॥ मोहो भवेद्यथा शंभोर्दारग्रहणहेतवे ॥ ५० ॥ इत्याकर्ण्य वचः कामः प्रोवाच वचनं पुनः ॥ देवर्षे गौरवं मत्वा प्रणम्य विनयेन माम् ॥ ५१ ॥ काम उवाच ॥ मया सम्यक् कृतं कर्म मोहने तस्य यत्नतः ॥ तन्मोहो नाभवत्तात न भविष्यति नाधुना ॥ ५२ ॥ तव वाग्गौरवं मत्वा दृष्ट्वा मारगणानपि ॥ गमिष्यामि पुनस्तत्र सदारोहं त्वदाज्ञया ॥ ५३ ॥ मनो निश्चितमेतद्धि तन्मोहो न भविष्यति ॥ भस्म कुर्य्यान्न मे देहमिति शंकास्ति मे विधे ॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वा समधुः कामस्सरतिस्सभयस्तदा ॥ ययौ मारगणैः सार्द्धं शिवस्थानं मुनीश्वर ॥ ५५ ॥

प्रणाम कर काम फिर बोला ॥ ५१ ॥ काम बोला हे तात ! मैंने युक्तिपूर्वक उनके मोहनके निमित्त सम्पूर्ण उपाय किये परन्तु उनका मोहन न हुआहै न अब होगा ॥ ५२ ॥ परन्तु आपकी आज्ञासे आपकी वार्ताका गौरव मान और मारगणोंको देख फिर मैं उस समारोहमें जाऊंगा ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्माजी ! मेरे मनमें यह निश्चयहै कि, उनका मोहन न होगा, और मुझे यह शंकाहै कि, कदाचित् मेरे शरीरको भस्म न करदें ॥ ५४ ॥ हे मुनीश्वर ! यह कहकर

काम, वसंत, रति और मारगणोंको साथले शिवके स्थानमें गया ॥ ५५ और वहाँ जाकर पहलेकी समान काम और मधुने बुद्धिमानीसे बहुतसे प्रकारके उपाय और अपने प्रभावको किया ॥ ५६ ॥ और मारगणोंनेभी बहुतसे उपाय किये परन्तु परमात्मा शंभुजी मोहको नहीं प्राप्तहुए ॥ ५७ ॥ तब निवृत्त होकर काम फिर मेरे पास आया और गर्व व हर्षरहित वे दोनों काम और मारगण वहांसे आकर मेरे सामने खडे होगये ॥ ५८ ॥ निरुत्सव हो मार और मधु दोनों मेरे समीपमें बैठ कामने प्रणाम कर मुझसे कहा कि ॥ ५९ ॥ महादेवजीके मोहनमें पूर्वसे अधिक कर्म किया परंतु ध्यानमें रत आत्मावाले

पूर्ववत् स्वप्रभावं च चक्रे मनसिजस्तदा ॥ बहूपायं स हि मधुर्विविधां बुद्धिमावहन् ॥ ५६ ॥ उपायं स चकाराति तत्र मारगणोऽपि च ॥ मोहोभवन्न वै शंभोरपि कश्चित्परात्मनः ॥ ५७ ॥ निवृत्य पुनरायातो मम स्थानं स्मरस्तदा ॥ आसीन्मारगणोऽगर्वोऽहर्षो मेपि पुरस्थितः ॥ ५८ ॥ कामः प्रोवाच मां तात प्रणम्य च निरुत्सवः ॥ स्थित्वा मम पुरोऽगर्वो मारैश्च मधुना तदा ॥ ५९ ॥ कृतं पूर्वादधिकतः कर्म तन्मोहने विधे ॥ नाभवत्तस्य मोहोपि कश्चिद्ध्यानरतात्मनः ॥६०॥ न दग्धा मे तनुश्चैव तत्र तेन दयालुना ॥ कारणं पूर्वपुण्यं च निर्विकारी स वैप्रभुः ॥ ६१ ॥ चेद्धरस्ते हरो भार्यां गृह्णीयादिति पद्मज ॥ परोपायं कुरु तदा विगर्व इति मे मतिः ॥ ६२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा सपरीवारो ययौ कामस्स्वमाश्रमम् ॥ प्रणम्य मां स्मरन् शंभुं गर्वदं दीनवत्सलम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सतीखंडे सत्युपाख्याने कामप्रभावमारगणोत्पत्तिवर्णनो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् विधे महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः ॥ कथितं सुचरित्रं ते शंकरस्य परात्मनः ॥ १ ॥

शिवका मोहन नहीं हुआ ॥ ६० ॥ उन दयालु निर्विकारी प्रभुने पूर्व पुण्यके कारण मेरे शरीरको दग्ध नहीं किया ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मा ! यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि महादेवजी स्त्रीको ग्रहण करैं तो अहंकार रहित हो दूसरा उपाय कीजिये यह मेरी सम्मति है ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कह गर्वके देने वाले दीनवत्सल शंभुका स्मरणकर और मुझको प्रणामकर सपरिवार काम अपने आश्रमको गया ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे कामप्रभावमारगणोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! हे विधे! हे महाभाग ! शिवजीमें आसक्त बुद्धिवाले

आप धन्य हैं परमात्मा श्रीशंकरजीके चरित्रको आपने कहा ॥ १ ॥ रति और गणोंके सह कामको अपने आश्रममें चलेजानेपर क्याहुवा आपने क्या किया वह चारित्र इससमय कहो ॥ २॥ ब्रह्माजी बोले हे नारद ! प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके चरित्र सुनो जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य निर्विकार होजाता है ॥ ३॥ कामके सपरिवार अपने आश्रममें चलेजानेपर उस समय जो हुवा वह चारित्र मुझसे सुनो ॥ ४ ॥ हे नारद ! श्रीशिवजीमें अपना मनोरथ अपूर्ण देखकर मेरे हृदयमें विस्मय उत्पन्न हो मेरा मद नष्ट होगया ॥ ५ ॥ मैं अपने चित्तमें बहुत सोचता रहा कि, वह विकाररहित निजात्मा योगमें तत्पर शंकरजी

निजाश्रमे गते कामे सगणे सरतौ ततः॥ किमासीत्किमकार्षीस्त्वं तच्चरित्रं वदाधुना ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद सुप्रीत्या चरित्रं शशिमौलिनः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण निर्विकारो भवेन्नरः ॥ ३ ॥ निजाश्रमं गते कामे परिवारसमन्विते ॥ यद्बभूव तदा तात तच्चरित्रं निबोध मे ॥ ४ ॥ नष्टोभून्नारद मदो विस्मयोऽभूच्च मे हृदि ॥ निरानंदस्य च मुनेऽपूर्णे निजमनोरथे ॥ ५ ॥ अशोचं बहुधा चित्ते गृह्णीयात्स कथं स्त्रियम् ॥ निर्विकारी जितात्मा स शंकरो योगतत्परः॥ ६ ॥ इत्थं विचार्य बहुधा तदाहं विमदो मुने ॥ हरिं तं सोऽस्मरं भक्त्या शिवात्मानं स्वदेहदम् ॥ ७ ॥ अस्तवं च शुभस्तोत्रैर्दीनवाक्यसमन्वितैः ॥ तच्छ्रुत्वा भगवानाशु बभूवाविर्हि मे पुरा ॥ ८ ॥ चतुर्भुजोरविंदाक्षः शखवार्जगदाधरः ॥ लसत्पीतपटश्श्यामतनुर्भक्तप्रियो हरिः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा तादृशमहं सुशरण्यं मुहुर्मुहुः ॥ अस्तवं च पुनः प्रेम्णा बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १० ॥

किसप्रकार स्त्रीका ग्रहण करैं ॥ ६ ॥ हे नारदजी इसप्रकार बहुत सोचकर मदरहित हो मैंने शिव आत्मावाले स्वदेह देनेवाले हरिजीका भक्तिपूर्वक स्मरण किया ॥ ७ ॥ और दीनवाक्योंसे युक्त उत्तम स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की, वह सुनकर भगवान् शीघ्रही मेरे समीप प्रगट होगये ॥८॥ जो चतुर्भुज कमल नैन शंख पद्म गदाधारी पीतपटको धारण किये श्यामवर्ण अंग भक्तप्रिय श्रीहरिजी ॥ ९ ॥ शरणागतवत्सलको वारम्वार देख नेत्रोंमें जलभर गद्गदवाणीसे

फिर प्रेमपूर्वक स्तुति की ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके दुःखको नाशकरनेवाले ब्रह्माको शरणमें आयेहुए देख मेरी की हुई स्तुतिको सुन प्रसन्न हो मुझसे बोले ॥ ११ ॥ हरिबोले हे विधे ! ब्रह्मन् ! महाप्राज्ञ ! हे लोकके कर्त्ता ! तुम धन्यहो किसलिये मेरा स्मरण करके स्तुति करते हो॥ १२ ॥ तुमको क्या बडा दुःख हुवा वह मेरे सन्मुख कहो वह सब मैं नाश करूंगा, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले, इसप्रकार विष्णुका वचन सुन कुछ उलटी श्वास ले हाथजोड प्रणाम कर विष्णुसे मैं बोला ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवोंके देव हे रमानाथ हे मानकेदेनेवाले ! मेरी वार्त्ताको सुन

हरिराकर्ण्य तत्स्तोत्रं सुप्रसन्न उवाच माम् ॥ दुःखहा निजभक्तानां ब्रह्माणं शरणं गतम् ॥ ११ ॥ हरिरुवाच ॥ ॥ विधे ब्रह्मन् महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं लोककारक ॥ किमर्थं स्मरणं मेऽद्य कृतं च क्रियते नुतिः ॥ १२ ॥ किं जातं ते महद्दुःखं मदग्रे तद्वदाधुना ॥ शमयिष्यामि तत्सर्वं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति विष्णोर्वचश्श्रुत्वा किंचिदुच्छ्वसिताननः ॥ अवोचं वचनं विष्णुं प्रणम्य सुकृतांजलिः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ देवदेव रमानाथ मद्वार्तां शृणु मानद ॥ श्रुत्वा च करुणां कृत्वा हर दुःखं कमावह ॥ १५ ॥ रुद्रसंमोहनार्थं हि कामं प्रेषितवानहम् ॥ परिवारयुतं विष्णो समारमधुबांधवम् ॥ १६ ॥ चक्रुस्ते विविधोपायान् निष्फला अभवंश्च ते ॥ नाभवत्तस्य संमोहो योगिनस्समदर्शिनः ॥ १७ ॥ इत्याकर्ण्य वचो मे स हरिर्मां प्राह विस्मितः ॥ विज्ञाताखिलदज्ञानी शिवतत्त्वविशारदः ॥ १८ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कस्माद्धेतोरिरिति मतिस्तव जाता पितामह ॥ सर्वं विचार्य सुधिया ब्रह्मन् सत्यं हि तद्वद ॥ १९ ॥

कृपाकर दुःखको दूरकर सुखी कीजिये ॥ १५ ॥ हे विष्णु ! रुद्रके संमोहनार्थ मैंने सपरिवार मारगण और वसंतके साथ कामको भेजाथा ॥ १६ ॥ उन्होंने जाकर वहां बहुतसे उपाय किये परंतु वह निष्फल होगये, उन समदर्शी योगीको मोह नहीं हुवा ॥ १७ ॥ शिवतत्त्वविशरदा सर्वज्ञ विज्ञ श्रीहरिजी इसप्रकार मेरे वचन सुन विस्मित हो मुझसे बोले ॥ १८ ॥ विष्णुजी बोले हे पितामह ! किसलिये इसप्रकारकी तुम्हारी बुद्धि हुई हे ब्रह्मन् ! यह सब

विचारकर सत्यसत्य मुझसे कहो ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! उस चरित्रको सुनिये मोहनकरनेवाली आपकी माया है जिसके अधीन सम्पूर्ण जगत है और वही सुखदुःखोंको देनेवाली है ॥ २० ॥ उसीने मुझे पापकरनेके लिये उद्यत किया हे देवेश ! सो मैं आपकी आज्ञासे कहताहूं ॥ २१ ॥ सृष्टिके प्रारम्भमें दक्षादिक दशपुत्र उत्पन्न हुए और वाणीके द्वारा अत्यन्त सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २२ ॥ छातीसे धर्म, मनसे काम, देहसे और बहुतहुए हे हरि ! तब उस कन्याको देख मुझे मोह उत्पन्न हुवा ॥ २३ ॥ और आपकी मायासे मोहित हो मैंने उस कन्याको कुदृष्टिसे देखा, तब उसी समय महादेवजीने आकर मुझे और मेरे पुत्रोंको बहुत धिक्कारा ॥ २४ ॥ हे नाथ ! ऐसे ज्ञानी योगी भोगरहित इन्द्रीजीत परमप्रभुने अपना समुझ सबको धिक्कारदिया ॥ २५ ॥ हे हरे ! मेरे पुत्र होकर सबके सन्मुख मेरी निन्दा की, यह मुझे बडा दुःख है वही आपके समीप कहा ॥ २६ ॥ हे केशव ! वह स्त्रीका ग्रहण करैं तब मेरे दुःख दूर हों और मैं सुखी होऊँ इसीलिये मैं आपकी शरण आया हूं ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले मुझ ब्रह्माके इसप्रकार वचन सुन मधुसूदन भगवान्ने हँसकर संसारके करनेवाले मुझको प्रसन्न करते हुए शीघ्र कहा ॥ २८ ॥ विष्णु बोले हे विधि ! संपूर्ण वेद और आगमोंका सम्मत

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ शृणु तात चरित्रं तत् तव माया विमोहिनी ॥ तदधीनं जगत्सर्वं सुख दुःखादिततपरम् ॥ २० ॥ ययैव प्रेषितश्चाहं
पापं कर्तुं समुद्यतः ॥ आसं तच्छृणु देवेश वदामि तव शासनात् ॥ २१ ॥ सृष्टिप्रारंभसमये दश पुत्रा हि जज्ञिरे ॥ दक्षाद्यास्तनया
चैका वाग्भवाप्यतिसुन्दरी ॥ २२ ॥ धर्मो वक्षःस्थलात्कामो मनसोन्योपि देहतः ॥ जातास्तत्र सुतां दृष्ट्वा मम मोहोभवद्धरे ॥ २३ ॥
कुदृष्ट्या तां समद्राक्षं तव मायाविमोहितः ॥ तत्क्षणाद्धर आगत्य मामनिन्दत्सुतानपि ॥ २४ ॥ धिक्कारं कृतवान् सर्वान् निजं मत्वा
परप्रभुम् ॥ ज्ञानिनं योगिनं नाथाभोगिनं विजितेन्द्रियम् ॥ २५ ॥ पुत्रो भूत्त्वा मम हरेऽनिन्दन्मां च समक्षतः ॥ इति दुःखं महन्मे
हि तदुक्तं तव सन्निधौ ॥ २६ ॥ गृह्णीयाद्यदि पत्नीं स स्यां सुखी नष्टदुःखधीः ॥ एतदर्थं समायातश्शरणं तव केशव ॥ २७ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विहस्य मां द्रुतं प्राह हर्षयन्भवकारकम् ॥ २८ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥
विधे शृणु हि मद्वाक्यं सर्वं भ्रमनिवारणम् ॥ सर्वं वेदागमादीनां संमतं परमार्थतः ॥ २९ ॥

परमअर्थसे युक्त संपूर्ण भ्रमोंको निवारण करनेवाला मेरा वचन सुनो ॥ २९ ॥ हे विधि! आप संपूर्ण लोकोंके कर्त्ता और वेदके वक्ता होकर महामूढमति वैसे होगये ॥ ३० ॥ हे मंदात्मा जडताको छोडो ऐसी बुद्धि मतकरो तुम स्मरण करो कि संपूर्ण वेद स्तुतिके द्वारा उन्हें क्या कहते हैं ॥ ३१ ॥ हे खलबुद्धि ! रुद्र परमेश्वरको अपनापुत्र जानते हो हे विधि ! तुम अखिल वेदके वक्ता होकरभी विज्ञानको भूलगये ॥ ३२ ॥ शंकरको सामान्य देवता समुझकर उनसे द्रोह करते हो तुम्हारी उत्तम बुद्धि नष्ट होगई, और तुम्हारेमें कुमतिका आविर्भाव हुवा ॥ ३३ ॥ निगममें कहाहुवा कल्याणके देनेवाला

महामूढमतिश्चाद्य संजातोसि कथं विधे ॥ वेदवक्तापि निखिललोककर्ता हि दुर्मतिः ॥ ३० ॥ जडतां त्यज मन्दात्मन् कुरु त्वं नेदृशीं मतिम् ॥ किं ब्रुवंत्यखिला वेदाः स्तुत्या तत्स्मर सद्धिया ॥ ३१ ॥ रुद्रं जानासि दुर्बुद्धे स्वसुतं परमेश्वरम् ॥ वेदवक्तापि विज्ञानं विस्मृतं तेखिलं विधे ॥ ३२ ॥ शंकरं सुरसामान्यं मत्वा द्रोहं करोषि हि ॥ सुबुद्धिर्विगता तेद्याविर्भूता कुमतिस्तथा ॥ ३३ ॥ तत्त्वसिद्धांतमाख्यातं शृणु सद्बुद्धिमावह ॥ यथार्थं निगमाख्यातं निर्णीय भवकारक ॥ ३४ ॥ शिवस्सर्वस्वकर्ता हि भर्ता हर्ता परात्परः ॥ परब्रह्म परेशश्च निर्गुणो नित्य एव च ॥३५॥ अनिर्देश्यो निर्विकारी परमात्माऽद्वयोऽच्युतः ॥ अनंतोंतकरः स्वामी व्यापकः परमेश्वरः ॥ ३६ ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्ता त्रिगुणभाग्विभुः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यो रजस्सत्त्वतमःपरः ॥ ॥ ३७ ॥ मायाभिन्नो निरीहश्च मायो मायाविशारदः ॥ सगुणोपि स्वतंत्रश्च निजानंदो विकल्पकः ॥ ३८ ॥ आत्मारामो हि निर्द्वन्द्वो भक्ताधीनस्सुविग्रहः ॥ योगी योगरतो नित्यं योगमार्गप्रदर्शकः ॥ ३९ ॥

तत्त्वके सिद्धांतको यथार्थ निर्णय करके तुमसे कहताहूं सो उसे चित्तदेकर सुनो ॥ ३४ ॥ शिव सबके कर्त्ता देनेवाले और हर्त्ता परेसे परे परब्रह्म परमईश निर्गुण नित्य ॥ ३५ ॥ अनिर्देश्य विकाररहित परमात्मा द्वैतभावसे रहित अच्युत अनंत ॐकार यमके स्वामी सर्वव्यापक परमेश्वर हैं ॥ ३६ ॥ सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति विनाशके कारणके तीनों गुणोंसे युक्त संसारके स्वामी ब्रह्मा विष्णु महेश इन नामोंको धारण करनेवाले सत्त्व, रज, तमसे परे ॥ ३७॥ मायासे भिन्न निरीह मायाकी मायाको जाननेवाले गुणोंसे युक्त स्वतंत्र अपनेहीमें आनन्दमाननेवाले निर्विकल्पक ॥ ३८ ॥ अपनेहीमें रमरणकरनेवाले

निर्द्वन्द्व, भक्तके आधीन उंत्तम शरीरवाले योगी योगमें रत नित्य योगमार्गके दिखानेवाले ॥ ३९ ॥ गर्वके हरनेवाले सम्पूर्ण लोकोंके पति सदैव दीनपर प्रसन्न
होनेवाले इसप्रकारके जो स्वामी हैं उन्हें तुम पुत्र मानते हौ ॥ ४० ॥ इस अपने अज्ञानको छोड उनकी शरणमें जाओ और सब प्रकार आत्मासे शम्भुका
भजन करो वह तुमको संतोष देंगे ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि तुम्हारा विचार है कि, शिवजी स्त्रीको ग्रहण करैं तो पार्वतीके उद्देश्यसे शिवका स्मरण करके
तप करो ॥ ४२ ॥ अपने कामका उद्देश्य करके हृदयमें पार्वतीका ध्यान करो यदि वह भगवती प्रसन्न होगी, तो तुम्हारे सब काम पूर्ण होंगे ॥ ४३ ॥

गर्वापहारी लोकेशस्सर्वदा दीनवत्सलः ॥ एतादृशो हि यः स्वामी स्वपुत्रं मन्यसे हि तम् ॥ ४० ॥ ईदृशं त्यज कुज्ञानं शरणं व्रज
तस्य वै ॥ भज सर्वात्मना शम्भुं सन्तुष्टश्शं विधास्यति ॥ ४१ ॥ गृह्णीयाच्छंकरः पत्नीं विचारो हृदि चेत्तव ॥ शिवामुद्दिश्य सुतपः कुरु
ब्रह्मन् शिवं स्मरन् ॥ ४२ ॥ कुरु ध्यानं शिवायास्त्वं काममुद्दिश्य तं हृदि ॥ सा चेत्प्रसन्ना देवेशी सर्वं कार्यं विधास्यति ॥ ४३ ॥
कृत्वावतारं सगुणा यदि स्यान्मानुषी शिवा ॥ कस्यचित्तनया लोके सा तत्पत्नी भवेद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ दक्षमाज्ञापय ब्रह्मन् तपः कुर्य्या
त्प्रयत्नतः ॥ तामुत्पादयितुं पत्नीं शिवार्थं भक्तितस्स्वतः ॥४५॥ भक्ताधीनौ च तौ तात सुविज्ञेयौ शिवाशिवौ ॥ स्वेच्छया सगुणौ जातौ
परब्रह्मस्वरूपिणौ ॥ ४६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा तत्क्षणं मेशश्शिवं सस्मार स्वप्रभुम् ॥ कृपया तस्य संप्राप्य ज्ञानमूचे च मां
ततः ॥ ४७ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ विधे स्मर पुरोक्तं यद्वचनं शंकरेण च ॥ प्रार्थितेन यदावाभ्यामुत्पन्नाभ्यां तदिच्छया ॥ ४८ ॥

वह पार्वती अवतार ले गुणसे युक्त हो लोकमें किसीकी मानुषी कन्या होगी तब वह शीघ्रही शिवकी पत्नी होगी ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! तुम दक्षको तपकरने
केलिये आज्ञादो, वह पार्वतीको उत्पन्न करनेके लिये युक्तिसे भक्तिपूर्वक तप करैं ॥ ४५ ॥ हे तात ! उन दोनों शिवा शिवको भक्तके अधीन जानो वह
परब्रह्म स्वरूपी अपनी इच्छासे सगुण होते हैं ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कह उसीक्षण अपने प्रभु ईश शिवका स्मरण कर उनकी कृपासे ज्ञानको पाकर
मुझसे बोले ॥४७॥ विष्णु बोले हे विधि ! उनकी इच्छासे उत्पन्न हुये हम दोनोंके प्रार्थना करनेपर शंकरजीने जो वचन कहेथे उनका स्मरण करो॥४८॥

वह शंकरकी माया धन्य है जिसके द्वारा मोहित हो वह सब भूलगये जो शिवजीके विना दुःखसे जानने योग्य है ॥ ४९ ॥ जब निर्गुण शिव अपनी इच्छासे सगुण हुए, तब मुझको और तुमको उत्पन्न कर अपनी शक्तिमें विहार करतेहुए ॥ ५० ॥ हे ब्रह्मन् तब उत्पन्न करनेवाले अव्यय प्रभु शंकरजीने तुमको सृष्टि करनेका कार्य और मुझे उनके पालनका उपदेश दिया ॥ ५१ ॥ हाथ जोड नतमस्तक हो आप और हम दोनों शिवजीके समीप जाकर यह कहा कि, सबके ईश इच्छासे अवतार लेनेवाले सगुणरूपोंको धारण करनेवाले आपही हैं ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहनेपर नानालीलाओंमें प्रवीण

विस्मृतं तव तत्सर्वं धन्या या शांभवी परा ॥ तया संमोहितं सर्वं दुर्विज्ञेया शिवं विना ॥ ४९ ॥ यदा हि सगुणो जातस्स्वेच्छया निर्गुणशिवः ॥ मामुत्पाद्य ततस्त्वां च स्वशक्त्या सुविहारकृत् ॥ ५० ॥ उपादिदेश त्वां शम्भुस्सृष्टिकार्यं तदा प्रभुः ॥ तत्पालनं च मां ब्रह्मन् सोमस्सूतिकरोऽव्ययः ॥५१॥ तदा वां वेश्म संप्राप्तौ सांजली नतमस्तकौ ॥ भव त्वमपि सर्वेशोऽवतारी गुणरूपधृक् ॥ ५२ ॥ इत्युक्तः प्राह स स्वामी विहस्य करुणान्वितः ॥ दिवमुद्वीक्ष्य सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥ ५३ ॥ मद्रूपं परमं विष्णो ईदृशं ह्यंगतो विधेः ॥ प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥ पूर्णरूपस्स मे पूज्यस्सदा वां सर्वकामकृत् ॥ लयकर्त्ता गुणाध्यक्षो निर्विशेषः सुयोगकृत् ॥ ५५ ॥ त्रिदेवा अपि मे रूपं हरः पूर्णो विशेषतः ॥ उमाया अपि रूपाणि भविष्यंति त्रिधा सुताः ॥ ५६ ॥ लक्ष्मी नाम हरेः पत्नी ब्रह्मपत्नी सरस्वती ॥ पूर्णरूपा सती नाम रुद्रपत्नी भविष्यति ॥ ५७ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वांतर्हितो जातः कृपां कृत्वा महेश्वरः ॥ अभूतां सुखिनावावां स्वस्वकार्यपरायणौ ॥ ५८ ॥

करुणासे युक्त वे शिवजी हँसकर स्वर्गको देख बडी प्रसन्नतासे बोले ॥ ५३ ॥ विष्णु मेराही रूप है इसीप्रकार विधिसे प्रगट हो लोकमें रुद्रनामसे प्रसिद्ध होनेवाला भी मैंही हूं ॥ ५४ ॥ वे लयकरनेवाले मेरे पूर्णरूप निर्विशेष योगोंको करनेवाले गुणके स्वरूप आपलोगोंके कार्यको पूर्णकरनेवाले सब लोगोंसे पूजनीय हैं ॥ ५५ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव मेरेही रूपहैं, परंतु विशेषकर हर मेरे पूर्णरूपहैं, पार्वतीजीके भी इसीप्रकार तीनरूप होंगे ॥ ५६ ॥ विष्णुकी लक्ष्मी, ब्रह्माकी सरस्वती, शिवकी पूर्णरूप सती होंगी ॥ ५७ ॥ विष्णु बोले कृपाकर महेश्वरजी यह कहकर अंतर्धान होगये फिर अपने कार्यमें लग्न हम

और आप सुखी हुए ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् समय पाकर हम दोनों सस्त्रीक होगये और शंकरने रुद्रनामसे कैलासपर्वतपर अवतार लिय[illegible] है ॥ ५९ ॥ अब उनके उत्पादनार्थ यत्न करो, जिसमें प्रजेश दक्षके यहां सतीनामसे शिवा पार्वती अवतार ले ॥ ६० ॥ अत्यन्त करुणाकरके इसप्रक[illegible] विष्णु अंतर्धान होगये तब मैं अहंकारसे मुक्तहो अधिक प्रसन्न हुवा ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीय[illegible]ह्मविष्णुसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! तात ! हे महाप्राज्ञ ! वक्ताओंमें श्रेष्ठ विष्णुके जानेपर क्या [illegible]पने क्याकिया सो

समयं प्राप्य सस्त्रीकावावां ब्रह्मन्न शंकरः॥ अवतीर्णस्स्वयं रुद्रनामा कैलाससंश्रयः ॥५९॥ अवतीर्णा शिवा स्यात्सा सतीनाम प्रजेश्वर ॥ तदुत्पादनहेतोर्हि यत्नोतः कार्य एव वै ॥ ६० ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे विष्णुः कृत्वा स करुणां पराम् ॥ प्राप्नुवं प्रमुदं चाथ ह्यधिकं गतमत्सरः ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे ब्रह्मविष्णुसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ नारद उवाच ॥ ॥ ब्रह्मन् तात महाप्राज्ञ वद नो वदतां वर ॥ गते विष्णौ किमभवदकार्षीत्किं विधे भवान् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विप्रनन्दनवर्य त्वं सावधानतया शृणु ॥ विष्णौ गते भगवति यदकार्षमहं खलु ॥ २ ॥ विद्याविद्यात्मिकां शुद्धां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं दुर्गां शम्भुप्रियां सदा ॥ ३ ॥ सर्वत्र व्यापिनीं नित्यां निरालंबां निराकुलाम् ॥ त्रिदेवजननीं वंदे स्थूलस्थूलामरूपिणीम् ॥ ४ ॥ त्वं चिंतिः परमानंदा परमात्मस्वरूपिणी ॥ प्रसन्ना भव देवेशि मत्कार्यं कुरु ते नमः ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा मया मुने ॥ आविर्बभूव प्रत्यक्षं देवर्षे चंडिका मम ॥ ६ ॥

मुझसे कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे श्रेष्ठ विप्रपुत्र ! विष्णुके जानेपर भगवतीके अर्थ जो मैंने किया वह तुम सावधान होकर सुनो ॥२॥ विद्याकीस्वरूप शुद्ध परब्रह्मरूप शिवकी प्रिया दुर्गा संसारकी माता देवीजीकी सदा मैं स्तुति करता रहा ॥ ३ ॥ हे सर्वस्थानवासिनी नित्य अवलम्बरहित, निराकुल तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाली स्थूलसे स्थूल रूपरहित भगवती आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥ चिति परमआनंद परमात्माके रूपको धारणकरनेवाली आप प्रसन्न होकर मेरे कार्यको करैं आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनि ! मेरे इसप्रकार स्तुति करनेपर योगनिद्रा चण्डिका मेरे सन्मुख

प्रगट होगई ॥ ६ ॥ चिकने अंजनके समान जिनकी द्युति सुन्दररूप दिव्य चतुर्भुज सिंहपरसवार वरको हाथमें लिये मुक्तामणिके समान बालोंका टेढापन ॥ ७ ॥ शरत्कालके चन्द्रमाके समान मुख उत्तम चन्द्रमा मस्तकमें तीननेत्र संपूर्ण अंग सुन्दर कमलके समान चरणके नखोंकी द्युति ॥ ८ ॥ हे मुनि मैं उस शिवजीकी शक्ति उमाको सन्मुख देख साष्टाङ्ग प्रणामकर स्तुति करनेलगा ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले जगत्की प्रवृत्ति निवृत्ति स्थिति रूपको धारणकरनेवाली चर और अचरोंकी शक्ति सनातनी सबको मोहित करनेवाली आपको नमस्कारहै ॥ १० ॥ जो लक्ष्मी सदा भगवान्के मूर्तिकी माला

स्निग्धांजनद्युतिश्चारुरूपा दिव्यचतुर्भुजा ॥ सिंहस्था वरहस्ता च मुक्तामणिकचोत्कटा ॥ ७ ॥ शरदिंद्वानना शुभ्रचन्द्रभाला त्रिलोचना ॥ सर्वावयवरम्या च कमलांघ्रिनखद्युतिः ॥ ८ ॥ समक्षं तामुमां वीक्ष्य मुने शक्तिं शिवस्य हि ॥ भक्त्या विनततुंगांशः प्रास्तवं सुप्रणम्य वै ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमोनमस्ते जगतः प्रवृत्तिनिवृतिरूपे स्थितिसर्गरूपे ॥ चराचराणां भवती सुशक्तिस्सनातनी सर्वविमोहनीति ॥ १० ॥ या श्रीः सदा केशवमूर्तिमाला विश्वंभरा या सकलं बिभर्ति ॥ या त्वं पुरा सृष्टिकरी महेशी हर्त्री त्रिलोकस्य परा गुणेभ्यः ॥ ११ ॥ या योगिनां वै महिता मनोज्ञा सा त्वं नमस्ते परमाणुसारे ॥ यमादिपूते हृदि योगिनां या या योगिनां ध्यान पथे प्रतीता ॥ १२ ॥ प्रकाशशुद्ध्यादियुता विरागा सा त्वं हि विद्या विविधावलंबा ॥ कूटस्थमव्यक्तमनंतरूपं त्वं बिभ्रती कालमयी जगंति ॥ १३ ॥ विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं गुणान्विता सर्वजनेषु नूनम् ॥ त्वं वै गुणानां च शिवे त्रयाणां निदांनभूता च ततः परासि ॥ १४ ॥

संसारका पालन करनेवाली और सबको धारण करनेवाली है जो आप पहिले सृष्टि करनेवाली हरनेवाली और गुणोंके द्वारा तीनों [illegible]ोंसे परे ॥ ११ ॥ जो योगियोंके चित्तकी हेतु और परमाणुओंका सारहै उस आपको नमस्कारहै यमादिक और योगियोंके पवित्र हृदयमें जो विरा[illegible]े योगी ध्यान मार्गसे देखतेहैं ॥ १२ ॥ शुद्ध प्रकाशसे युक्त मोहरहित नाना प्रकारके अवलंबोंसे युक्त वह विद्या आपहीहैं, कूटमें स्थित अव्यक्त[illegible]रूपोंको धारण करनेवाली आप कालरूपसे संसारको धारण करती हैं ॥ १३ ॥ निश्चयसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें नित्यही गुणसे युक्त विकारके बीज[illegible] प्रगट करतीहो, हे

पार्वती ! आप तीनों गुणोंकी निदानभूतहो और उससे परे हो ॥ १४ ॥ सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंके विकारसे हीन आप संसारके गुणोंकी एक हेतु ब्रह्मको धारण करनेवाली आप रक्षा करो ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण संसारकी बीज जाननेवाले और ज्ञानकी स्वरूप संसारकी हित शिवकी पत्नी आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले, यह मेरा वचन सुन संसारकी पूज्य काली प्रीतिपूर्वक मुझ संसारके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मासे बोली ॥ १७ ॥ देवीबोली हेब्रह्मन् ! किस लिये आपने मेरी स्तुति की, यदि वह कथनयोग्य हो तो मेरे समीप शीघ्र कहो ॥ १८ ॥ मेरे प्रत्यक्ष होनेपर संसारके कार्य सिद्ध होतेहैं

सत्वं रजस्तामस इत्यमीषां विकारहीना समुवस्तितीर्या ॥ सा त्वं गुणानां जगदेकहेतुं ब्रह्मांतरारंभसि चात्सि पासि ॥ १५ ॥ अशेषजगतां बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि ॥ जगद्धिताय सततं शिवपत्नि नमोस्तु ते ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः सा मे काली लोकविभाविनी ॥ प्रीत्या मां जगतामूचे स्रष्टारं जनशब्दवत् ॥ १७ ॥ देव्युवाच ॥ ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय ॥ उच्यतां यदि धृष्योसि तच्छीघ्रं पुरतो मम ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षमपि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता ॥ तस्मात्त्वं वांछितं ब्रूहि या करिष्यामि भाविता ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु देवि महेशानि कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ मनोरथस्थं सर्वज्ञे प्रवदामि त्वदाज्ञया ॥ २० ॥ यः पतिस्तव देवेशि ललाटान्मेऽभवत्पुरा ॥ शिवो रुद्राख्यया योगी स वै कैलासमास्थितः ॥ २१ ॥ तपश्चरति भूतेश एक एवाविकल्पकः ॥ अपत्नीको निर्विकारो न द्वितीयां समीहते ॥ २२ ॥ तं मोहय यथा चान्यां द्वितीयां सति वीक्षते ॥ त्वदृते तस्य नो काचिद्भविष्यति मनोहरा ॥ २३ ॥

यह निश्चितहै इसलिये तुम अपना मनोरथ कहो जिसे मैं प्रसन्नतासे करूं ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवि हे महेशानि ! मुझपर कृपाकर सुनिये । हे सर्वज्ञे ! आपकी आज्ञासे मैं अपने मनोरथको कहता हूं ॥२०॥ हे देवेशि जो आपके पति पहिले मेरे मस्तकसे हुयेथे रुद्रनामके शिवयोगी वह कैलासमें विद्यमानहैं ॥ २१ ॥ जो प्राणियोंमें एकही विकल्परहित तप करतेहैं वह अपत्नीक विकाररहित दूसरेकी इच्छा नहीं करते ॥ २२ ॥ उनको आप मोहित कीजिये

जिससे वे दूसरेकी ओर देखैं आपको छोड और दूसरी उनके मनको हरनेवाली कोई न होगी ॥ २३ ॥ हे शिवे ! इसलिये तुम्हीं दक्षकी कन्या होकर रूपके द्वारा हरको मोहित करके रुद्रकी पत्नी हो ॥ २४ ॥ जिसप्रकार लक्ष्मीका रूप धारणकर विष्णुको प्रसन्न करतीहो, उसीप्रकार संसारके हितके लिये उनकोभी वैसाही करो ॥ २५ ॥ हे देवि ! कांताके अभिलाषा मात्रही देखकर महादेवजीने मेरी निन्दा की सो वह अपनी इच्छासे किसप्रकार स्त्रीका ग्रहण करैंगे ॥ २६ ॥ और महादेवजीके स्त्रीग्रहण करनेपरभी कैसे उत्तम सृष्टि होगी ? क्योंकि आदि मध्य अंत इन तीनों अवस्थाओंमें वह विराग युक्त हैं

तस्मात्त्वमेव रूपेण भवस्व हरमोहिनी ॥ सुता भूत्वा च दक्षस्य रुद्रपत्नि शिवे भव ॥ २४ ॥ यथाधृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम् ॥ आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु ॥२५॥ कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वाऽनिंदद्वृषध्वजः ॥ स कथं वनितां देवि स्वेच्छया संग्रहीष्यति ॥ २६ ॥ हरे गृहीतकांते तु कथं सृष्टिश्शुभावहा ॥ आद्यंतमध्ये चैतस्य हेतौ तस्मिन्विरागिणि ॥ २७ ॥ इति चिंतापरो नाहं त्वदन्यं शरणं हितम् ॥ कृच्छ्रवांस्तेन विश्वस्य हितायैतत्कुरुष्व मे ॥ २८ ॥ न विष्णुस्तस्य मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभवः ॥ न चाप्यहं जगन्मातर्नान्यस्त्वां कोपि वै विना ॥ २९ ॥ तस्मात्त्वं दक्षजा भूत्वा दिव्यरूपा महेश्वरी ॥ तत्पत्नी भव मद्भक्त्या योगिनं मोहयेश्वरम् ॥ ३० ॥ दक्षस्तपति देवेशि क्षीरोदोत्तरतीरगः ॥ त्वामुद्दिश्य समाधाय मनस्त्वयि दृढव्रतः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्सा मे चिंतामाप शिवा तदा ॥ उवाच च स्वमनसि विस्मिता जगदम्बिका ॥ ३२ ॥

॥ २७ ॥ इसप्रकार चिंतासे युक्त मेरेको सिवाय आपके दूसरेकी शरण हित नहीं है इसहेतु संसारके हितके निमित्त यह कीजिये ॥ २८ ॥ न विष्णु न लक्ष्मी न काम न मैं उनके मोहनमें समर्थ हुवा । हे जगन्माता ! आपके विना और दूसरा कोई समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ हे महेश्वरी ! इसलिये आप दिव्यरूपवाली दक्षकी कन्या होकर मेरी भक्तिसे उन योगी महेश्वरकी स्त्री हो ॥ ३० ॥ हे देवेशि ! क्षीरसमुद्रके उत्तरतीरपर दक्ष दृढव्रतहो अपने मनको लगाकर आपहीके उद्देशसे तप करते हैं ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले यह मेरा वचन सुन शिवा चिंताको प्राप्त हुई और वह जगदम्बिका अपने मनमें सोचने

लगी ॥ ३२ ॥ देवी बोली अहो यह बडा आश्चर्य है कि, वेदके वक्ता संसारको रचनेवाले विधाता महाअज्ञानसे युक्त हो क्या कहरहेहैं ॥ ३३ ॥ यह सुखरहित महामोह विधिके चित्तमें उत्पन्न हुवा जिससे निर्विकार शिवको मोहित करना चाहतेहैं ॥ ३४ ॥ महादेवजीके मोहका वर मुझसे ब्रह्मा चाहते हैं उन संसारके स्वामी निर्मोह निर्विकल्पके मोहन करनेमें क्या लाभहै ॥ ३५ ॥ परब्रह्म वह शिव निर्गुण विकाररहित हैं मैं उनकी सदा आज्ञाकी वशवर्तिनी दासीहूं ॥ ३६ ॥ वह स्वतंत्र परमेश्वर भक्तके उद्धारणके हेतु शिव पूर्णरूपसे रुद्र हुये ॥ ३७ ॥ वह हरि और विधिके स्वामी शिव किसी प्रकारसे कम

देव्युवाच ॥ अहो सुमहदाश्चर्यं वेदवक्तापि विश्वकृत् ॥ महाज्ञानपरो भूत्वा विधाता किं वदत्ययम् ॥ ३३ ॥ विधेश्चेतसि संजातो महामोहोऽसुखावहः ॥ यद्वरं निर्विकारं तं संमोहयितुमिच्छति ॥ ३४ ॥ हरमोहवरं मत्तस्समिच्छति विधिस्त्वयम् ॥ को लाभोस्यात्र स विभुर्निर्मोहो निर्विकल्पकः ॥३५॥ परब्रह्माख्योयश्शंभुर्निर्गुणो निर्विकारवान् ॥ तस्याहं सर्वदा दासी तदाज्ञावशगा सदा ॥ ३६ ॥ स एव पूर्णरूपेण रुद्रनामाभवच्छिवः ॥ भक्तोद्धारणहेतोर्हि स्वतंत्रः परमेश्वरः ॥ ३७ ॥ हरेर्विधेश्च स स्वामी शिवान्न्यूनो न कर्हिचित् ॥ योगादरो ह्यमायस्थो मायेशः परतः परः ॥ ३८ ॥ मत्वा तमात्मजं ब्रह्मा सामान्यसुरसंनिभम् ॥ इच्छत्ययं मोहयितुमतोऽज्ञानविमोहितः ॥ ३९ ॥ न दद्यां चेद्वरं वेदनीतिर्भ्रष्टा भवेदिति ॥ किं कुर्य्यां येन न विभुः क्रुद्धस्स्यान्मे महेश्वरः ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विचार्य्यैत्थं महेशं तं सस्मार मनसा शिवा ॥ प्रापानुज्ञां शिवस्याथोवाच दुर्गा च मां तदा ॥ ४१ ॥ ॥ दुर्गोवाच ॥ यदुक्तं भवता ब्रह्मन् समस्तं सत्यमेव तत् ॥ मद्दते मोहयित्रीह शंकरस्य न विद्यते ॥ ४२ ॥

नहीं हैं वह योगी मायासे रहित और मायाके स्वामी परसेभी परे हैं ॥ ३८ ॥ अज्ञानसे मोहित ब्रह्मा ऐसे रुद्रको अपना पुत्र मान सामान्य देवताके सदृश जान मोहन करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३९ ॥ यदि मैं वर न दूं तो वेदकी नीति भ्रष्ट होतीहै मैं क्याकहूं जिस्में वह स्वामी महेश्वर क्रुद्ध न हों ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले शिवाने यह सोच महादेवजीका स्मरणकर महादेवजीकी आज्ञाको पाकर दुर्गाने मुझसे कहा ॥ ४१ ॥ दुर्गा बोली हे ब्रह्मन् ! जो आपने कहा

सब सत्यहै मुझे छोड शंकरको मोहन करनेवाली दूसरी नहीं है ॥ ४२ ॥ और यह आपका कथन सत्यहै कि; महादेवजीके स्त्रीग्रहण न करनेपर सनातनी
सृष्टि न होगी ॥ ४३ ॥ मैंभी उस महाप्रभुके मोहनमें समर्थ नहीं हूं परंतु आपके वाक्यसे मुझमें द्विगुण प्रयत्न हुआ ॥ ४४ ॥ हे विधि, मैं वह उपाय
करूंगी जिसमें शंकरजी मोहित हो स्वयं स्त्रीका ग्रहण करैं ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार महाभागा लक्ष्मीजी विष्णुकी प्रियाहै, सतीका रूप धारण कर उसीप्रकार
मैं उनकी वशवर्तिनी होऊंगी ॥ ४६ ॥ और उन्हींकी कृपासे मैं वह उपाय करूंगी जिसमें वह सदा मेरे वशवर्ती रहैं ॥ ४७ ॥ हे पितामह ! दक्षकी स्त्रीमें

हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी ॥ भविष्यतीति तत्सत्यं भवता प्रतिपादितम् ॥ ४३ ॥ ममापि मोहने यत्नो विद्यतेस्य महाप्रभोः ॥
त्वद्वाक्याद्द्विगुणो मेद्य प्रयत्नोऽभूत्स निर्भरः ॥ ४४ ॥ अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम् ॥ हरः करिष्यति विधे स्वयमेव विमोहितः
॥४५॥ सतीमूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी ॥ भविष्यामि महाभागा लक्ष्मीर्विष्णोर्यथा प्रिया ॥४६॥ यथा सोपि मयैवेह वशवर्ती सदा
भवेत् ॥ तथा यत्नं करिष्यामि तस्यैव कृपया विधे ॥ ४७ ॥ उत्पन्ना दक्षजायायां सतीरूपेण शंकरम् ॥ अहं सभाजयिष्यामि लीलया तं
पितामह ॥४८॥ यथान्यजंतुरवनौ वर्तते वनितावशे ॥ मद्भक्त्या स हरो वामावशवर्ती भविष्यति ॥ ४९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मह्यमित्थं
समाभाष्य शिवा सा जगदम्बिका॥वीक्षमाणा मया तात तत्रैवांतर्दधे ततः॥५०॥तस्यामंतर्हितायां तु सोहं लोकपितामहः ॥ अगमं यत्र
स्वसुतास्तेभ्यस्सर्वमवर्णयम्॥५१॥इति श्रीशिवपुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सतीखण्डे दुर्गास्तुतिब्रह्मवरप्राप्तिवर्णनो नामैकादशोऽ
ध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् शंभुवर प्राज्ञ सम्यगुक्तं त्वयानघ ॥ शिवाशिवचरित्रं च पावितं जन्म मे हितम् ॥ १ ॥

उत्पन्न हो सतीरूपसे मैं लीलाहीसे शंकरजीको जीतलूंगी ॥ ४८ ॥ जिसप्रकार औरभी जन्तु स्त्रीके वशमें होते हैं उसीप्रकार मेरी भक्तिसे वह महादेव स्त्रीके
वश होजायँगे ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा बोले हे तात ! मुझसे यह कहकर वह जगत्की माता पार्वती मेरे देखतेही देखते अन्तर्धान होगई ॥५०॥ उनके अन्तर्धान
होजानेपर मुझ संसारके पितामह ब्रह्माने अपने पुत्रोंके पास आकर सब कहा ॥ ५१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसती
खण्डे दुर्गास्तुतिब्रह्मवरप्राप्तिवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्माजी ! हे प्राज्ञ ! हे पापरहित ! हे शिवभक्त ! आपने कल्याण

देनेवाले पार्वती और शिवके चरित्रको कहा, और मेरा जन्म पवित्र किया ॥ १ ॥ इस समय यह कहिये कि दृढव्रत दक्षजीने शिवाका तपकर किस वरको प्राप्त किया, और शिवा कैसे दक्षकी कन्या हुई ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले नारदजी आप सब मुनियोंमें धन्यहैं जैसे दक्षने तपकिया और वर पाया, सो भक्तिसे सुनो ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञासे दक्षने उस कामकेलिये जगत्‌की माता देवीकी धारणा कर दर्शनके निमित्त ॥ ४ ॥ क्षीरोदके उत्तर तीरपर उनको मनमें धारण कर प्रत्यक्ष जगदम्बिकाको देखनेके लिये तप करना प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ दक्षने ३ हजार वर्ष नियतात्मा और दृढतासे नियमपूर्वक तप किया ॥ ६ ॥

इदानीं वद दक्षस्तु तपः कृत्वा दृढव्रतः ॥ कं वरं प्राप देव्यास्तु कथं सा दक्षजाऽभवत् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद धन्यस्त्वं मुनिभिर्भक्तितोखिलैः ॥ यथा तेपे तपो दक्षो वरं प्राप च सुव्रतः ॥ ३ ॥ मदाज्ञप्तस्सुधीर्दक्षस्समाधाय महाधिपः ॥ अपाद्यष्टुं च तां देवीं तत्कामो जगदंबिकाम् ॥ ४ ॥ क्षीरोदोत्तरतीरस्थां तां कृत्वा हृदयस्थिताम् ॥ तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोम्बिकाम् ॥ ५ ॥ दिव्यवर्षेण दक्षस्तु सहस्राणां त्रयं समाः ॥ तपश्चचार नियतस्सं यतात्मा दृढव्रतः ॥ ६ ॥ मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् ॥ एवं निनाय तं कालं चिंतयन्तां जगन्मयीम् ॥ ७ ॥ दुर्गाध्यानसमासक्तश्चिरं कालं तपोरतः ॥ नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयति सुव्रतः ॥ ८ ॥ ततो यमादियुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तम ॥ जगदम्बां पूजयतः प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥ ९ ॥ ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा जगदम्बां जगन्मयीम् ॥ कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्षः प्रजापतिः ॥ १० ॥ सिंहस्थां कालिकां कृष्णां चारुवक्त्रां चतुर्भुजाम् ॥ वरदाभयनीलाब्जखड्गहस्तां मनोहराम् ॥ ११ ॥

जगन्मयी उस शिवाका ध्यान करते हुये दक्षने पत्ते और वायुभक्षण करते और निराहार हो समय व्यतीत किया ॥ ७ ॥ शिवाके ध्यानमें दत्तचित्त बहुत दिनतक अनेक नियमोंसे देवीका आराधन करते हुए तप करने लगे ॥ ८ ॥ हे मुने ! यमादिकोंसे युक्त जगदम्बाका पूजन करतेहुए दक्षके सामने शिवा प्रगट होगई ॥ ९ ॥ जगन्मयी जगत्‌की माता शिवाको देख प्रजापति दक्षने अपनेको कृतकृत्य माना ॥ १० ॥ सिंहपर बैठेहुई कृष्णवर्ण सुन्दर मुखवाली

चारभुजा धारे, वरदेनेवाली नीलकमलके समान हस्तमें खड्ग धारण किये हुए मनोहर लोलनेत्रवाली खुलेकेश जगत्की सृष्टिकी कारणी सुन्दर कान्तिवाली शिवाको प्रणाम कर दक्षने विचित्रवाणियोंसे शिवाकी स्तुति की ॥ ११ ॥ १२ ॥ दक्ष बोला, हे जगन्माता ! हे महामाया ! हे जगत्की स्वामिनी ! हे महेश्वरि ! आपने बडी कृपाकर अपने शरीरका दर्शन दियाहै, इससे आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ शिवस्वरूपिणी आद्या शक्ति भक्तोंको वरदेनेवाली संसारकी माता आप प्रसन्न होओ, आपकेलिये नमस्कारहै ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले, व्रतसंयमवाले दक्षसे इसप्रकार स्तुति कीहुई शिवा उस दक्षके ईप्सितको

आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशीं जगत्प्रसूम् ॥ तुष्टाव वाग्भिश्चित्राभिः सुप्रणम्याथ सुप्रभाम् ॥ १२ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ जगदंब महामाये जगदीशे महेश्वरि ॥ कृपां कृत्वा नमस्तेस्तु दर्शितं स्ववपुर्मम ॥ १३ ॥ प्रसीद भगवत्याद्ये प्रसीद शिवरूपिणि ॥ प्रसीद भक्तवरदे जगन्माये नमोस्तुते ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुता महेशानी दक्षेण प्रयतात्मना ॥ उवाच दक्षं ज्ञात्वापि स्वयं तस्येप्सितं मुने ॥ १५ ॥ देव्युवाच ॥ तुष्टाहं दक्ष भवतस्सद्भक्त्या ह्यनया भृशम् ॥ वरं वृणीष्व स्वाभीष्टं नादेयं विद्यते तव ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जगदम्बावचश्श्रुत्वा ततो दक्षः प्रजापतिः ॥ सुप्रहृष्टतरः प्राह नामं नामं च तां शिवाम् ॥ १७ ॥ दक्ष उवाच ॥ जगदम्ब महामाये यदि त्वं वरदा मम ॥ मद्वचः शृणु सुप्रीत्या मम कामं प्रपूरय ॥ १८ ॥ मम स्वामी शिवो यो हि स जातो ब्रह्मणस्सुतः ॥ रुद्रनामा पूर्णरूपावतारः परमात्मनः ॥ १९ ॥ तवावतारो नो जातः का तत्पत्नी भवेदतः ॥ तं मोहय महेशानमवतीर्य क्षितौ शिवे ॥ २० ॥

जानतीहुई दक्षसे बोली॥ १५॥ देवी बोली, हे दक्षजी ! आपकी इस सद्भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूं, स्वाभीष्ट वर माँगो आपकेलिये अदेय कुछ नहीं है॥ १६॥ ब्रह्मा बोले, प्रजापति दक्षजी जगदम्बाके वचनको सुन महाप्रसन्न हो शिवाको प्रणाम करते हुए बोले ॥ १७ ॥ दक्ष बोले, हे जगन्माता ! हे महामाया ! आप यदि प्रसन्नहैं तो मेरे वचनको सुनें और प्रसन्नतासे मेरे कामको पूर्ण करैं ॥ १८ ॥ जो शिव मेरे स्वामी हैं वे परमात्मा ब्रह्मके पूर्णअवतार ब्रह्माके पुत्र रूपसे हुयेहैं ॥ १९ ॥ हे शिवे ! और आपका अवतार नहीं हुआहै, उनकी स्त्री कौन हो अतः आपही पृथ्वीपर अवतार ले उनको मोहो ॥ २० ॥

तुमको छोड उनको मोहनेमें किसीकी शक्ति नहीं है, इससे मेरी पुत्री हो शिवकी पत्नी आप होवैं ॥ २१ ॥ इसप्रकार लीलाकर हरमोहिनी आप होवैं,
यही हमारा वर है, सो आपके सामने सत्य कहदिया ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सब संसारके कल्याणहीकेलिये केवल ब्रह्माजीने मुझे भेजाहै ॥ २३ ॥
ब्रह्माजी बोले, जगदम्बा शिवा ऐसे दक्षके वचनको सुनकर शिवजीको मनमें स्मरणकर हँसकर बोलीं ॥ २४ ॥ देवी बोली; हे पुत्र ! प्रजापति दक्ष ! सुनो,
तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न मैं सत्य कहतीहूं ॥ २५ ॥ तुम्हारी भक्तिसे वशीभूत मैं तुम्हारी स्त्रीमें तुम्हारी पुत्री होऊंगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ ऐसा

त्वदृते तस्य मोहाय न शक्तान्या कदाचन ॥ तस्मान्मम सुता भूत्वा हरजायाभवाऽधुना ॥ २१ ॥ इत्थं कृत्वा सुलीलां च भव त्वं हर
मोहिनी ॥ ममैवैष वरो देवि सत्यमुक्तं तवाग्रतः ॥ २२ ॥ केवलं स्वार्थमिति च सर्वेषां जगतामपि ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानां च ब्रह्मणा प्रेरितो
ह्यहम् ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य प्रजेशस्य वचनं जगदम्बिका ॥ प्रत्युवाच विहस्येति स्मृत्वा तं मनसा शिवम् ॥ २४ ॥ देव्यु
वाच ॥ तात प्रजापते दक्ष शृणु मे परमं वचः ॥ सत्यं ब्रवीमि त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाखिलप्रदा ॥ २५ ॥ अहं तव सुता दक्ष त्वज्जायायां
महेश्वरी ॥ भविष्यामि न संदेहस्त्वद्भक्तिवशवर्तिनी ॥ २६ ॥ तथा यत्नं करिष्यामि तपः कृत्वा सुदुस्सहम् ॥ हरजाया भविष्यामि
तद्वरं प्राप्य चानघ ॥ २७ ॥ नान्यथा कार्यसिद्धिर्हि निर्विकारी च स प्रभुः ॥ विधेर्विष्णोश्च संसेव्यः पूर्ण एव सदाशिवः ॥ २८ ॥
अहं तस्य सदा दासी प्रिया जन्मनि जन्मनि ॥ मम स्वामी स वै शंभुर्नानारूपधरोपि ह ॥ २९ ॥ वरप्रभावाद्भ्रुकुटेरवतीर्णो विधे
स्म च ॥ अहं तद्वरतोपीहावतरिष्ये तदाज्ञया ॥ ३० ॥ गच्छ स्वभवनं तात मया ज्ञाता तु दूतिका ॥ हरजाया भविष्यामि भूता ते
तनयाचिरात् ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा सद्वचो दक्षं शिवाज्ञां प्राप्य चेतसि ॥ पुनः प्रोवाच सा देवी स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३२ ॥

दुःसह तपकर यत्नकरूंगी जिस तपसे वर पाकर शिवजीकी पत्नी होजाऊं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा विष्णुसे सेवित निर्विकारी उन पूर्णशिवमें विना तपके कार्य्यसिद्धि
न होगी ॥ २८ ॥ मैं उनकी प्रत्येक जन्ममें दासीही हूं, और नानारूप धारण करनेवाले वेभी मेरे पतिहैं ॥ २९ ॥ ब्रह्माके वरके प्रभावसे वे रुद्र हुएहैं, हमभी
उन्हींके वर और आज्ञासे अवतारलेंगी ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! घरजाओ शीघ्रही मैं तुम्हारी कन्या हो शिवपत्नी होऊंगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दक्षको वर

और घरजानेकी आज्ञा दे शिवके चरणारविन्दको स्मरण कर शिवा फिर बोली ॥ ३२ ॥ हे दक्षजी ! मेरे प्रणको चित्तसे याद रक्खो, कि मैं जो कुछ कहतीहूं वह सत्यहीहै झूंठ न समझना ॥ ३३ ॥ यदि आप मेरा निरादर करेंगे तो मैं अपना शरीर छोडदूंगी मैं अपनेमें वशीभूतहूं ॥३४॥ हे दक्षजी ! मैं प्रत्येक सृष्टिमें आपकी सुता हो शिवकी पत्नी होऊंगी, यह वर आपको दिया ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले, महेशानी शिवा मुख्य प्रजापति दक्षसे यह कहकर शीघ्रही दक्षके देखतेहुए अन्तर्धान होगई ॥ ३६ ॥ दुर्गाके अन्तर्धान होनेपर दक्षभी अपने आश्रमको चलेगये, यह हमारी सुता होंगी यह मान हर्षको

परन्तु पण आधेयो मनसा ते प्रजापते ॥ श्रावयिष्यामि ते तं वै सत्यं जानीहि नो मृषा ॥ ३३ ॥ यदा भवान् मयि पुनर्भवेन्मंदादरस्तदा ॥ देहं त्यक्ष्ये निजं सत्यं स्वात्मन्यस्म्यथ वेतरम् ॥ ३४ ॥ एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते ॥ अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा महेशानी दक्षं मुख्यप्रजापतिम् ॥ अंतर्दधे द्रुतं तत्र सम्यग् दक्षस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥ अंतर्हितायां दुर्गायां स दक्षोपि निजाश्रमम् ॥ जगाम च मुदं लेभे भविष्यति सुतेति सा ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे दक्षवरप्राप्तिवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्विधे महाप्राज्ञ वद नो वदतां वर ॥ दक्षे गृहं गते प्रीत्या किमभूत्तदनंतरम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ दक्षः प्रजापतिर्गत्वा स्वाश्रमं हृष्टमानसः ॥ सर्गं चकार बहुधा मानसं मम चाज्ञया ॥ २ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ दक्षो निवेदयामास ब्रह्मणे जनकाय मे ॥ ३ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ ब्रह्मंस्तात प्रजानाथ वर्द्धन्ते न प्रजाः प्रभो ॥ मया विरचितास्सर्वास्तावत्यो हि स्थिताः खलु ॥ ४ ॥

प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसतीखंडे दक्षवरप्राप्तिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले, हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! महाप्राज्ञ वर्णन करनेवालोंमें श्रेष्ठ प्रीतिपूर्वक कहो दक्षके घर जानेपर क्या हुआ ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले, प्रसन्न हो दक्षके घरजानेपर मेरी आज्ञासे दक्षने बहुतसी मानसी सृष्टिकी रचना की ॥ २ ॥ दक्ष उस प्रजासर्गको बढता हुआ न देख उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मासे यह बोले ॥ ३ ॥ दक्ष बोले, हे ब्रह्मन् ! तात ! हे प्रजानाथ ! मैंने बहुत विचारकर देखाहै कि, आपके प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, उतनेही विद्यमान हैं ॥ ४ ॥

हे प्रजानाथ ! मैं क्या करूं अपनेको किसप्रकार बढाऊं, वह उपाय आप बताइये जिससे मैं निस्सन्देह प्रजाकी सृष्टि करूं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे दक्षप्रजा
पति ! हे तात ! मेरा वचन सुनो, तुम वही करो शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ६ ॥ हे प्रजापते ! जो पंचजनके अंगसे उत्पन्न असिक्की नामकी कन्या
है हे प्रजेश ! उसे तुम स्त्रीके लिये ग्रहण करो ॥ ७ ॥ स्त्रीके व्यवायरूपी धर्मके द्वारा फिर इस प्रजासर्गको करो और तुम उस कामिनीमें बहुतसे भाव
करोगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले, फिर मेरी आज्ञासे मेरे पुत्रने मैथुनधर्मके द्वारा वीरिणीसे प्रजाका उत्पन्न करना प्रारम्भ किया ॥ ९ ॥ और प्रजापतिने

किं करोमि प्रजानाथ वर्द्धेयुः कथमात्मना ॥ तदुपायं समाचक्ष्व प्रजाः कुर्यां न संशयः ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दक्ष प्रजापते तात
शृणु मे परमं वचः ॥ तत्कुरुष्व सुरश्रेष्ठ शिवस्ते शं करिष्यति ॥ ६ ॥ या च पञ्चजनस्यांग सुता रम्या प्रजापतेः ॥ असिक्की नाम
पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥ ७ ॥ वामव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः॥तद्विधायां च कामिन्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ८ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्समुत्पादयितुं प्रजा मैथुनधर्मतः ॥ उपयेमे वीरणस्य निदेशान्मे सुतां ततः ॥ ९ ॥ अथ तस्यां स्वपत्न्यां च
वीरिण्यां स प्रजापतिः ॥ हर्यश्वसंज्ञानयुतं दक्षः पुत्रानजीजनत् ॥ १० ॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे आसन् सुता मुने ॥ पितृभक्तिरता
नित्यं वेदमार्गपरायणाः ॥ ११ ॥ पितृप्रोक्ताः प्रजासर्गकरणार्थं ययुर्दिशम् ॥ प्रतीचीं तपसे तात सर्वे दाक्षायणास्सुताः ॥ १२ ॥
तत्र नारायणसरस्तीर्थं परमपावनम् ॥ संगमो यत्र संजातो दिव्यसिन्धुसमुद्रयोः ॥ १३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव प्रोत्पन्नमतयोऽभवन् ॥
धर्मे पारमहंसे च विनिर्द्धूतमलाशयाः ॥ १४ ॥

उस अपनी वीरिणी स्त्रीमें हर्यश्व नामके पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ हे मुनि ! वह पुत्र वेदमार्गमें परायण पिताके समान धर्मवाले नित्यही पिताकी
भक्तिमें रतहुये ॥ ११ ॥ वह सब दक्षके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुत्र पिताकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न करनेके निमित्त तपके हेतु पूर्वदिशाको गये ॥ १२ ॥
वे उत्तम सिन्धुसमुद्रसंगममें परम पवित्र नारायणसरनामक तीर्थपर गये ॥ १३ ॥ जिसके स्पर्शमात्रसे निर्मल बुद्धि हो मलके आशयोंसे छूट पारमहंसधर्ममें

स्थितहो ॥ १४ ॥ पिताकी आज्ञासे दक्षके पुत्र दृढव्रत हो प्रजावृद्धि करनेके हेतु वहां उत्तम तप करनेलगे ॥ १५ ॥ हे नारद ! तब तुम सृष्टिके हेतु तप करतेहुए उनको जान लक्ष्मीपतिके हार्दको जान वहां गये ॥१६॥ और दक्षके पुत्र हर्यश्वादिकोंसे सत्कारपूर्वक बोले कि, पृथ्वीको विनादेखेहुए किसप्रकार सृष्टिकरनेके निमित्त उद्यत होगये हो ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले, तब हर्यश्वोंने तुम्हारी बातको सुन उत्पन्न करनेवाली बुद्धिको स्वयं भूलगये ॥ १८ ॥ पिताके उपदेश कियेहुये निवृत्ति देनेवाले उत्तम शास्त्रको जो नहीं जानता वह गुणरहित किसप्रकार सर्गको करसक्ता है ॥ १९ ॥ उत्तम बुद्धि व एकही

प्रजाविवृद्धये ते वै तेपिरे तत्र सत्तमाः ॥ दाक्षायणा दृढात्मानः पित्रादेशसुयंत्रिताः ॥ १५ ॥ त्वं च तान् नारद ज्ञात्वा तपतस्सृष्टिहेतवे ॥ अगमस्तत्र भूरीणि हार्दमाज्ञाय मापतेः ॥ १६ ॥ अदृष्ट्वा तं भुवस्सृष्टिं कथं कर्तुं समुद्यताः ॥ हर्यश्वा दक्षतनया इत्यवोचस्त मादरात् ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वास्ते त्वदुक्तमतंद्रिताः ॥ औत्पत्तिकधियस्सर्वे स्वयं विममृशुर्भृशम् ॥ १८ ॥ सुशास्त्रजनकादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ स कथं गुणविश्रंभी कर्तुं सर्गमुपक्रमेत् ॥१९॥ इति निश्चित्य ते पुत्रास्सुधियश्चैकचेतसः ॥ प्रणम्य तं परिक्रम्यायुर्मार्गमनिवर्तकम् ॥ २० ॥ नारद त्वं मनश्शंभोर्लोकानन्यचरो मुने ॥ निर्विकारो महेशानमनोवृत्तिकरस्तदा ॥ २१ ॥ काले गते बहुतरे मम पुत्रः प्रजापतिः ॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदादन्वतप्यत ॥ २२ ॥ मुहुर्मुहुरुवाचेति सुप्रजात्वं शुचां पदम् ॥ शुशोच बहुशो दक्षश्शिवमायाविमोहितः ॥ २३ ॥ अहमागत्य सुप्रीत्या सांत्वयं दक्षमात्मजम् ॥ शांतिभावं प्रदर्श्यैव दैवं प्रबलमित्युत ॥ २४ ॥ अथ दक्षः पंचजन्यां मया स परिसांत्वितः ॥ सबलाश्वाभिधान् पुत्रान् सहस्रं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥

चित्तवाले वह पुत्र यह निश्चय कर परिक्रमा व प्रणामकर ऐसे मार्गमें गये जिससे लौट न सके ॥ २० ॥ हे नारद मुने ! लोकोंमें घूमनेवाले शंकरके मन आप निर्विकारी शंकरजीके मनकी वृत्तिको सदा करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ फिर बहुतकाल बीतजानेके पीछे मेरे प्रजापति पुत्र अपने हर्यश्वादिक पुत्रोंका नाश जानकर नारदसे क्रुद्ध हुये ॥ २२ ॥ तुम पवित्रपदवाले उत्तम प्रजासे युक्त हो इसप्रकार वारम्वार कहकर शिवकी मायासे मोहित दक्ष अत्यन्त शोच करने लगे ॥ २३ ॥ तब मैंने आकर अपने पुत्र दक्षको दैवकी प्रबलता बताकर शांतिका भाव दिखाय प्रीतिपूर्वक शांत किया ॥ २४ ॥ मेरेद्वारा शांतकियेहुये

दक्षने पञ्चजन्यामें सबलाश्वनामवाले हजारों पुत्र उत्पन्न किये ॥ २५ ॥ पिताकी आज्ञासे दृढव्रत वह पुत्र भी वहीं गये जिस सिद्धाश्रममें प्रजा उत्पन्न करनेके
लिये उनके पहिले भाई गये थे ॥ २६ ॥ उसके स्पर्शसे पापको नष्टकर निर्मल बुद्धि हो उत्तमव्रतसे ब्रह्मको जपतेहुए कठिन तप करने लगे ॥ २७ ॥
ईश्वरकी गतिका स्मरणकर उनको प्रजासर्गमें उद्यत जान नारदजीने वहां जाकर पहिलेहीकी समान उनसे भी कहा ॥ २८ ॥ हे मुने ! तुमने उन्हें भी भाईके
मार्गको दिखाया तब वे पुत्र भी अपने बडेभाइयोंके मार्गको चले गये ॥ २९ ॥ वह प्रजापति अपने उत्पन्न किये हुए बहुतसे पुत्रोंको आया न देखकर

तेपि जग्मुस्तत्र सुताः पित्रादिष्टा दृढव्रताः ॥ प्रजासर्गे यत्र सिद्धास्स्वपूर्वभ्रातरो ययुः ॥ २६ ॥ तदुपस्पर्शनादेव नष्टाघा विमला
शयाः ॥ तेपुर्महत्तपस्तत्र जपन्तो ब्रह्म सुव्रताः ॥ २७ ॥ प्रजासर्गोद्यतांस्तान् वै ज्ञात्वा गत्वेति नारद ॥ पूर्ववच्चागदो वाक्यं संस्म
रन्नैश्वरीं गतिम् ॥ २८ ॥ भ्रातृपंथानमादिश्य त्वं मुनेमोघदर्शनः ॥ अयाश्चोर्द्ध्वगतिं तेपि भ्रातृमार्गं ययुस्सुताः ॥ २९ ॥ उत्पा
तान् बहुशोऽपश्यत्तदैव स प्रजापतिः ॥ ॥ विस्मितोभूत्स मे पुत्रो दक्षो मनसि दुःखित ॥ ३० ॥ पूर्ववत्त्वत्कृतं दक्षश्शुश्राव चकितो
भृशम् ॥ पुत्रनाशं शुशोचातिपुत्रशोकविमूर्छितः ॥ ३१ ॥ चुक्रोध तुभ्यं दक्षोसौ दुष्टोयमिति चाब्रवीत् ॥ आगतस्तत्र दैवात्त्वमनुग्र
हकरस्तदा ॥ ३२ ॥ शोकाविष्टस्सदक्षो हि रोषविस्फुरिताधरः ॥ उपलभ्यतमाहत्य धिग्धिक् प्रोच्य विगर्हयन् ॥ ३३ ॥ दक्ष उवाच
॥ ॥ किं कृतं तेऽधमश्रेष्ठ साधूनां साधुलिंगतः ॥ भिक्षोर्मार्गोऽर्भकानां वै दर्शितस्साधुकारि नो ॥ ३४ ॥

मेरे पुत्र दक्ष विस्मयको प्राप्त हो मनमें दुःखी होते हुए ॥ ३० ॥ पहिलेकी समान तुम्हारे कियेको सुन दक्ष चकित हो पुत्रका नाश जान शोचकर पुत्रके
शोकसे मूर्छित होगये ॥ ३१ ॥ क्रोधकर दक्षने तुमको कहा कि, यह दुष्ट है उसी समय अनुग्रह करनेवाले देवता आगये ॥ ३२ ॥ शोकसे आविष्ट और
क्रोधसे जिसके होंठ हिल रहे हैं ऐसे दक्षने उनके समीप धिक्कारपूर्वक तुम्हारी निन्दा की ॥ ३३ ॥ दक्षजी बोले, हे अधमश्रेष्ठ यह तूने क्या किया ? हे

भिक्षुक यह कैसा विरक्त करदेनेवाला मार्ग मेरे पुत्रोंको दिखाया ॥ ३४ ॥ तुम शठने दोनो लोकोंमें मेरे पुत्रोंको तीनप्रकारके ऋणोंसे अमुक्त किया और
हे निर्दय ! तूने इस मेरे कल्याणमें घात किया ॥ ३५ ॥ विना तीनों ऋणोंसे छुट्टी पाये जो मनुष्य माता पिताको छोड मोक्षकी इच्छाकर घरसे विरक्त
होनेकी इच्छासे जाताहै वह नीची गतिको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥ हे निर्दय ! निर्लज्ज ! यशको नाशकरनेवाले तूने पुत्रोंकी बुद्धिका भेदन किया हे मूर्ख !
तू हरिके पार्षदोंमें वृथा फिरताहै ॥ ३७ ॥ हे अधमाधम ! तूने बारबार मेरा अकल्याण किया है इसलिये घूमनेसे संसारमें तेरा पैर स्थिर न रहै ॥ ३८॥

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानां लोकयोरुभयोः कृतः ॥ विघातश्श्रेयसोऽमीषां निर्दयेन शठेन ते ॥ ३५ ॥ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य यो गृहात्प्रव्रजे
त्पुमान् ॥ मातरं पितरं त्यक्त्वा मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥ ३६ ॥ निर्दयस्त्वं सुनिर्लज्जश्शिशुधीभिद्यशोऽपहा ॥ हरेः पार्षदमध्ये हि
वृथा चरसि मूढधीः ॥ ३७ ॥ मुहुर्मुहुरभद्रं त्वमचरो मेऽधमाऽधम ॥ विभवेद्भ्रमतस्तेऽतः पदं लोकेषु न स्थिरम् ॥ ३८॥ शशापेति
शुचा दक्षस्त्वां तदा साधुसंमतम् ॥ बुबोध नेश्वरेच्छां स शिवमायाविमोहितः ॥ ३९ ॥ शापं प्रत्यग्रहीश्च त्वं स मुने निर्विकारधीः ॥
एष एव ब्रह्मसाधो सहते सोपि च स्वयम् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वि०सतीखंडे दक्षसृष्टौ नारदशापो
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवमुने लोकपितामहः ॥ तत्रागममहं प्रीत्या ज्ञात्वा तच्चरितं
द्रुतम् ॥ १ ॥ असांत्वयमहं दक्षं पूर्ववत्सुविचक्षण ॥ अकार्षं तेन सुस्नेहं तव सुप्रीतिमावहन् ॥ २ ॥ स्वात्मजं मुनिवर्यं त्वां सुप्रीत्या
देववल्लभम् ॥ समाश्वास्य समादाय प्रत्यपद्ये स्वधाम ह ॥ ३ ॥

शिवकी मायासे मोहित ईश्वरकी इच्छाको न जानकर पवित्रतापूर्वक दक्षने तुमको शाप दिया ॥ ३९ ॥ हे मुनि ! निर्मल बुद्धिवाले आपने शापको ग्रहण
किया ब्रह्मज्ञानी साधु इसीप्रकार स्वयं सहन करतेहैं ॥ ४० ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे दक्षसृष्टिनारद
शापवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे मुने ! इसीसमय लोकपितामह मैं देवचरित्र जाननेके लिये शीघ्र वहां गया ॥ १ ॥
पहिलेकी समान जब मैंने दक्षको शांतकिया तब वह उत्तम प्रीतिको धारण करते हुए तुमसे उत्तम स्नेह करनेलगे ॥ २ ॥ देवताओंके प्रिय अपने पुत्र मुनियोंमें

श्रेष्ठ तुमको प्रीतिपूर्वक समझाकर साथमें ले अपने स्थानको आया ॥ ३ ॥ उसके पीछे प्रजापति दक्षने अपनी स्त्रियोंसे साठ कन्या उत्पन्न की ॥ ४ ॥
हे मुनीश्वर ! उनका विवाह धर्मादिकोंसे किया वह मैं प्रीतिपूर्वक कहताहूं सुनो ॥ ५ ॥ दक्षने दश कन्या धर्मको दीं, और तेरह कश्यपको और अत्रि
मुनिको उन्नीस ॥ ६ ॥ भूतांगिरस और कृशाश्वको दो दो कन्या दीं और शेष कन्या तार्क्ष्य (गरुड) को सृष्टि करनेके हेतु दीं ॥ ७ ॥ उनसे तीनों लोक
पूरित होगये मैं बहुत बढजानेके भयसे नहीं कहताहूं ॥ ८ ॥ कोई शिवाको ज्येष्ठ कहतेहैं कोई मध्यमा कहतेहैं कोई सबसे अन्तमें होनेवाली कहते

ततः प्रजापतिर्दक्षोऽनुनीतो मे निजस्त्रियाम् ॥ जनयामास दुहितॄस्सुभगाः षष्टिसंमिताः ॥ ४ ॥ तासां विवाहं कृतवान् धर्मादिभिरतं
द्रितः ॥ तदेव शृणु सुप्रीत्या प्रवदामि मुनीश्वर ॥ ५ ॥ ददौ दश सुता दक्षो धर्माय विधिवन्मुने ॥ त्रयोदश कश्यपाय मुनये त्रिन
वेंदवे ॥ ६ ॥ भूतांगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वेद्वे पुत्र्यौः प्रदत्तवान् ॥ तार्क्ष्याय चापराः कन्याः प्रसूतिप्रसवैर्यतः ॥ ७ ॥ त्रिलोकाः पूरिता
स्तन्नो वर्ण्यते व्यासतो भयात् ॥ ८ ॥ केचिद्वदंति तां ज्येष्ठां मध्यमां चापरे शिवाम् ॥ सर्वानन्तरजां केचित्कल्पभेदात्रयं च सत्
॥ ९ ॥ अनंतरं सुतोत्पत्तेः सपत्नीकः प्रजापतिः ॥ दक्षो दधौ सुप्रीत्या तां मनसा जगदम्बिकाम् ॥ १० ॥ अतः प्रेम्णा च तुष्टाव
गिरा गद्गदया हि सः ॥ भूयोभूयो नमस्कृत्य सांजलिर्विनयान्वितः ॥ ११ ॥ सन्तुष्टा सा तदा देवी विचारं मनसीति च ॥ चक्रेऽ
वतारं वीरिण्यां कुर्यां पणविपूर्तये ॥ १२ ॥ अथ सोवास मनसि दक्षस्य जगदम्बिका ॥ विललास तदातीव स दक्षो मुनिसत्तम
॥ १३ ॥ सुमुहूर्तेनाथ दक्षोऽपि स्वपत्न्यां निदधे मुदा ॥ दक्षपत्न्यास्तदा चित्ते शिवोवास दयान्विता ॥ १४ ॥

हैं कल्पके भेदसे यह तीनों सत्य हैं ॥९॥ उसके अनन्तर सुतोत्पत्तिसे सपत्नीक प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक मनमें उस जगदम्बिकाको धारण किया ॥ १० ॥
और गद्गद स्वरसे प्रेमपूर्वक स्तुति कर हाथजोड विनयपूर्वक वारम्वार नमस्कार करतेहुए ॥ ११ ॥ तब देवीने संतुष्ट हो मनमें विचार किया कि, मैं अपनी
प्रतिज्ञा पूर्णकरनेके लिये वीरिणीमें अवतार धारण करूं ॥ १२ ॥ हे मुनिसत्तम ! यह शोच जगदम्बिकाने दक्षके मनमें वास किया तब वह दक्ष अत्यन्त शोभित
हुये ॥ १३ ॥ दक्षने उत्तम मुहूर्त्तमें प्रसन्न होकर उन्हें अपनी स्त्रीमें रखदिया तब वह दयासे युक्त शिवा दक्षकी पत्नीके चित्तमें वास करने लगीं ॥ १४ ॥

और सम्पूर्ण कन्याके चिह्न प्रगट होगये ॥ १५ ॥ हे तात ! महामंगलरूपको धारण करनेवाली शिवाके वासके प्रभावसे वीरिणी अधिक प्रसन्नचित्त हो शोभित हुई ॥ १६ ॥ दक्षने वेदविहित कुलकी सम्प्रदायके द्वारा प्रसन्न हो प्रीतिपूर्वक पुंसवनादि क्रियाओंको किया ॥ १७ ॥ प्रजापतिने उस कर्ममें अत्यन्त उत्सव कर ब्राह्मणोंको यथारुचि बहुत द्रव्य दिया ॥ १८ ॥ उसी समयमें हरिआदिक सम्पूर्ण देवता वीरिणीके गर्भमें गई हुई देवीको जान प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये ॥ १९ ॥ और वहाँ जाकर उस लोकके उपकार करनेवाली जगदम्बिकाकी स्तुतिकर वारम्वार प्रणाम करने लगे ॥ २० ॥

आविर्बभूवुश्चिह्नानि दोहदस्याखिलानि वै ॥१५॥ विरेजे वीरिणी तात हृष्टचित्ताधिका च सा॥ शिवावासप्रभावात्तु महामंगलरूपिणी ॥ १६ ॥ कुलस्य संपदश्चैव श्रुतेश्चित्तसमुन्नतेः ॥ व्यधत्त सुक्रिया दक्षः प्रीत्या पुंसवनादिकाः ॥ १७ ॥ उत्सवोतीव संजातस्तदा तेषु च कर्मसु ॥ वित्तं ददौ द्विजातिभ्यो यथाकामं प्रजापतिः ॥ १८ ॥ अथ तस्मिन्नवसरे सर्वे हर्यादयस्सुराः ॥ ज्ञात्वा गर्भगतां देवीं वीरिण्यास्ते मुदं ययुः ॥ १९ ॥ तत्रागत्य च सर्वे ते तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ लोकोपकारकारिणीं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥ कृत्वा ततस्ते बहुधा प्रशंसां हृष्टमानसाः ॥ दक्षप्रजापतेश्चैव वीरिण्यास्स्वगृहं ययुः ॥ २१ ॥ गतेषु नवमासेषु कारयित्वा च लौकिकीम् ॥ गतिं शिवा च पूर्णे सा दशमे मासि नारद ॥ २२ ॥ आविर्बभूव पुरतो मातुस्सद्यस्तदा मुने ॥ मुहूर्ते सुखदे चन्द्रग्रहतारानुकूलके ॥ २३ ॥ तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽसौ प्रजापतिः ॥ सैव देवीति तां मेने दृष्ट्वा तां तेजसोल्बणाम् ॥२४॥ तदाभूत्पुष्पसद्वृष्टिर्मेघाश्च ववृषुर्जलम् ॥ दिशश्शांता द्रुतं तस्यां जातायां च मुनीश्वर ॥ २५ ॥

फिर दक्ष प्रजापति और वीरिणीकी बहुत प्रशंसाकर प्रसन्नहो अपने घरगये ॥ २१ ॥ हे नारद ! नवमास पूर्ण होनेपर लौकिक गतिको आश्रयकर शिवा पूर्ण दशवें मासमें ॥२२॥ हे मुनि ! सुखदेनेवाले उत्तम मुहूर्त्त और चंद्र ग्रह ताराके अनुकूल होनेपर शीघ्रही माताके समीप प्रगट होगई ॥२३॥ उनके उत्पन्न होतेही प्रसन्न हो प्रजापतिने उन्हे तेजरूप देख शिवकी देवी माना ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वर ! उनके उत्पन्न होतेही उत्तम फूलोंकी वृष्टि हुई और मेघोंने

जल वरसाया और शीघ्रही सब दिशायें शान्त होगईं ॥ २५ ॥ देवता आकाशमें आकर उत्तम शुभ बाजे बजाये जलती हुई अग्नि शांत होगई सब उत्तम मंगल
होगये ॥ २६ ॥ दक्षने वीरिणीमें उत्पन्न जगदम्बिकाको देख भक्तिपूर्वक हाथ जोड नमस्कार कर बहुत स्तुति की ॥ २७ ॥ दक्ष बोले, हे जगतकीमाता !
सनातनी शिवा ! आपको नमस्कार है सत्यमें सत्यरूपको धारण करने वाली हे महादेवी ! कृपा करो ॥ २८ ॥ हे शिवा ! हे शान्ता ! हे महामाया
हे संसारमयी ! योगनिद्रा ! वेदके ज्ञाता इसप्रकार आपको कहतेहैं, हे संसारके हितकरनेवाली आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिन्होंने पूर्वही ब्रह्माको

अवादयंत त्रिदशाश्शुभवाद्यानि खे गताः ॥ जज्वलुश्चाग्नयश्शांताः सर्वमासीत्सुमंगलम् ॥ २६ ॥ वीरिणीसंभवां दृष्ट्वा दक्षस्तां जगद
म्बिकाम् ॥ नमस्कृत्य करौ बद्ध्वा बहु तुष्टाव भक्तितः ॥ २७ ॥ दक्ष उवाच ॥ महेशानि नमस्तुभ्यं जगदम्बे सनातनि ॥ कृपां कुरु
महादेवि सत्ये सत्यस्वरूपिणि ॥ २८ ॥ शिवा शांता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ॥ या प्रोच्यते वेदविद्भिर्नमामि त्वां हितावहाम्
॥ २९ ॥ यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराकरोत् ॥ तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥ ३० ॥ यया विष्णुर्जगत्स्थित्यै
नियुक्तस्तां सदाकरोत् ॥ तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥ ३१ ॥ यया रुद्रो जगन्नाशे नियुक्तस्तां सदाकरोत् ॥ तां त्वां
नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ रजस्सत्त्वतमोरूपां सर्वकार्यकरीं सदा ॥ त्रिदेवजननीं देवीं त्वां नमामि च तां
शिवाम् ॥ ३३ ॥ यस्त्वां विचिंतयेद्देवीं विद्याविद्यात्मिकां पराम् ॥ तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता ॥ ३४ ॥

उत्पन्नकर जगत्की सृष्टिमें नियुक्त किया, ऐसी परमा जगतकी माता महेश्वरी आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ जिन्होंने संसारकी स्थितिके निमित्त
विष्णुको नियुक्त किया उन परमा जगद्धात्री महेश्वरी आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ जिन्होंने संसारके नाश करनेके लिये रुद्रको नियुक्त किया उन
परमा जगन्माता महेश्वरीको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ सत्त्व, रज, तम रूपोंको धारण करनेवाली और सम्पूर्ण कार्योंको साधनेवाली देवताओंको उत्पन्न
करनेवाली शिवादेवी आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे देवी ! जो आपको विद्याविद्यारूप सबसेपरे चिंतवन करतेहैं भुक्ति और मुक्ति सदा उनके हाथमें

विद्यमान है ॥ ३४ ॥ हे विद्याको प्रकाशकरनेवाली विद्यादेवी ! जो प्रत्यक्ष पवित्र शिवा आपको देखतेहैं उनकी अवश्य मुक्ति होतीहै ॥ ३५ ॥ जो आपकी जगन्माता भवानी अम्बिका संसारमयी दुर्गा इन नामोंसे स्तुति करतेहैं सब उनके हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले, जब इसप्रकार जगन्माता शिवाकी दक्षने स्तुति की तब दक्षसे ऐसे बोली, जिसमें माता न सुनै ॥ ३७ ॥ अनेकप्रकारकी क्रीडाकरनेवाली परमेश्वरी सबको मोहित करके सत्यवाक्य इसप्रकार कहतीभई जिसमें दक्षही सुनैं दूसरा न सुनैं ॥ ३८ ॥ देवी बोली हे प्रजापति ! तुमने सुताके अर्थ पाहिले मेरी आराधना की सो तुम्हारा अभीष्ट

यस्त्वां प्रत्यक्षतो देवि शिवां पश्यति पावनीम् ॥ तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिका ॥ ३५ ॥ ये स्तुवंति जगन्मातर्भवानी मंबिकेति च ॥ जगन्मयीति दुर्गेति सर्वं तेषां भविष्यति ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुता जगन्माता शिवा दक्षेण धीमता ॥ तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न ॥ ३७ ॥ सर्वं मुमोह तथ्यं च तथा दक्षः शृणोतु तत् ॥ नान्यस्तथा शिवा प्राह नानोतिः परमेश्वरी ॥ ३८ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ अहमाराधिता पूर्वं सुतार्थं ते प्रजापते ॥ ईप्सितं तव सिद्धं तु तपो धारय संप्रति ॥ ३९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षं च निजमायया ॥ आस्थाय शैशवं भावं जनन्यंते रुरोद सा ॥ ४० ॥ अथ तद्रोदनं श्रुत्वा स्त्रियो वाक्यं ससंभ्रमाः ॥ आगता स्तत्र सुप्रीत्या दास्योपि च ससंभ्रमाः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वासिक्नीसुतारूपं ननन्दुस्सर्वयोषितः ॥ सर्वे पौरजनाश्चापि चक्रुर्जयरवं तदा ॥ ४२ ॥ उत्सवश्च महानासीद्गानवाद्यपुरस्सरम् ॥ दक्षोसिक्नी मुदं लेभे शुभं दृष्ट्वा सुताननम् ॥ ४३ ॥

पूराहुवा अब तपको धारण करो ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले, दक्षसे देवी यह कह अपनी मायामें बैठ शिशुका भाव करके माताके पास रोने लगीं ॥ ४० ॥ रोदन सुन संभ्रमयुक्त हो स्त्रियां बोलने लगीं और दासियां संभ्रमसे युक्तहो प्रीतिपूर्वक वहां आईं ॥ ४१ ॥ देवीको सुताके रूपमें देख सब स्त्रियां प्रसन्न हुईं और नगरमें वसनेवाले सम्पूर्ण जनोंने जय जय शब्द किया ॥ ४२ ॥ गान वाद्यके द्वारा बडा उत्सव हुवा और कन्याका मुख देख सपत्नीक दक्ष बडे

प्रसन्न भये ॥ ४३ ॥ और दक्षने विधिपूर्वक वेदोक्त कुलाचारकर ब्राह्मण तथा अन्य मनुष्योंको नानाप्रकारके दानदिये ॥ ४४ ॥ मंगलाचारपूर्वक नाना प्रकारके गान तथा नृत्य और मंगलके बाजे बजे ॥ ४५ ॥ जन्मोत्सवके समय अनुचरोंके साथ और मुनियोंके वृन्दसे युक्त हरिआदिक देवताओंने आकर नानाप्रकारका उत्सव किया ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण देवताओंने जगत्की परमेश्वरी दक्षकन्याको देखकर नम्रतापूर्वक प्रणामकर नानाप्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की ॥ ४७ ॥ सम्पूर्ण देवता जय जय शब्द कर दक्ष और दक्षपत्नी वीरिणीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ४८ ॥ सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेसे प्रशस्त उस

दक्षः श्रुतिकुलाचारं चक्रे च विधिवत्तदा ॥ दानं ददौ द्विजातिभ्योन्येभ्यश्च द्रविणं तथा ॥ ४४ ॥ बभूव सर्वतो गानं नर्तनं च यथो
चितम् ॥ नेदुर्वाद्यानि बहुशस्सुमंगलपुरस्सरम् ॥ ४५ ॥ अथ हर्यादयो देवास्सर्वे सानुचरास्तदा ॥ मुनिवृन्दैः समागत्योत्सवं चक्रु
र्यथाविधि ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा दक्षसुतामंबां जगतः परमेश्वरीम् ॥ नेमुः सविनयास्सर्वे तुष्टुवुश्च शुभस्तवैः ॥ ४७ ॥ ऊचुस्सर्वे प्रमुदिता
गिरं जयजयात्मिकाम् ॥ प्रशशंसुर्मुदा दक्षं वीरिणीं च विशेषतः ॥ ४८ ॥ तदोमेति नाम चक्रे तस्या दक्षस्तदाज्ञया ॥ प्रशस्ताया
स्सर्वगुणसत्त्वादपि मुदान्वितः ॥ ४९ ॥ नामान्यन्यानि तस्यास्तु पश्चाज्जातानि लोकतः ॥ महामंगलदान्येव दुःखघ्नानि विशेषतः
॥ ५० ॥ दक्षस्तदा हरिं नत्वा मां सर्वानमरानपि ॥ मुनीनपि करौ बद्ध्वा स्तुत्वा चानर्च भक्तितः ॥ ५१ ॥ अथ विष्ण्वादयस्सर्वे
सुप्रशस्याजनंदनम् ॥ प्रीत्या ययुस्स्वधामानि संस्मरन् सशिवं शिवम् ॥ ५२ ॥ अतस्तां च सुतां माता सुसंस्कृत्य यथोचितम् ॥
शिशुपानेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ ॥ ५३ ॥

देवीका हरिआदिक देवताओंकी आज्ञासे दक्षने प्रसन्न होकर उमा ऐसा नाम रक्खा ॥ ४९ ॥ पीछेसे लोकमें मंगलके देनेवाले और विशेषकर दुःखोंके दूरकरनेवाले भगवतीके अनेक नाम हुए ॥ ५० ॥ दक्षप्रजापतिने हरि और मुझको और सम्पूर्णदेवता व मुनियोंको हाथजोर प्रणाम किया तथा विधिपूर्वक भक्तिसे सबका पूजन किया ॥ ५१ ॥ तब विष्णुआदि सब देवता ब्रह्माके दश पुत्र की प्रशंसा करके कल्याणरूप शंकरको स्मरण करते अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ५२ ॥ वीरिणी माताने विधिपूर्वक उस कन्याका संस्कारकर बालकोंके स्तनपानके विधानसे उसको दूधपीनेको दिया ॥ ५३ ॥

वीरिणी और महात्मा दक्ष उस कन्याका पालन करनेलगे वह कन्या शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान प्रतिदिन बढने लगी ॥ ५४ ॥ हे द्विजसत्तम ! उस कन्यामें सम्पूर्ण गुणोंने आकर निवास किया जैसे बालकपनमेंभी चंद्रमाकी सब कला मनोहर होतीहैं ॥५५॥ वह अपने भावसे सब सखियोंमें क्रीडा करतीहुई प्रतिदिन भगवान् शंकरकी प्रतिमा निर्माण करती थी ॥ ५६ ॥ जिस समय शिवा बालकोंके उचित गीत गाती थी तब तब कामशासन करनेवाले शंकरका स्मरण करती थीं ॥५७॥ दोनों स्त्री पुरुषोंका प्रेम उसपर प्रतिदिन बढताथा यद्यपि वह बालक थी तथापि दोनों स्त्री पुरुष उसको बडा प्यार करते थे ॥५८॥

पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण च महात्मना ॥ ववृधे शुक्लपक्षस्य यथा शशिकलान्वहम् ॥ ५४ ॥ तस्यां तु सद्गुणास्सर्वे विविशुर्द्विजसत्तम ॥ शैशवेपि यथा चन्द्रे कलास्सर्वा मनोहराः ॥ ५५ ॥ आचरन्निजभावेन सखीमध्यगता यदा ॥ तदा लिलेख भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः ॥ ५६ ॥ यदा जगौ सुगीतानि शिवा बाल्योचितानि सा ॥ तदा स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरशासनम् ॥ ५७ ॥ ववृधेतीव दंपत्योः प्रत्यहं करुणातुला ॥ तस्या बाल्येपि भक्तायास्तयोर्नित्यं मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥ सर्वबालागुणाक्रांतां सदा स्वालयकारिणीम् ॥ तोषयामास पितरौ नित्यंनित्यं मुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सतीखण्डे सतीजन्मबाललीलावर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठंतीं तां सतीमहम् ॥ त्वया सह मुनेद्राक्षं सारभूतां त्रिलोकके ॥ १ ॥ पित्रा नमस्कृतं वीक्ष्य सत्कृतं त्वां च मां सती ॥ प्रणनाम मुदा भक्त्या लोकलीलानुसारिणी ॥ २ ॥ प्रणामांते सतीं वीक्ष्य दक्षदत्तशुभासने ॥ स्थितोहं नारद त्वं च विनतामहमागदम् ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण बालगुणोंको अतिक्रमण करनेवाली गृहकार्यमें निपुण भगवती माता पिताको वारंवार प्रसन्न करने लगी ॥ ५९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गताद्वितीयसतीखण्डे दुर्गोत्पात्तिवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले, एक समय वह त्रिलोकीकी सारभूत संती पिताकी गोदमें बैठीथी कि, मैंने तुम्हारे साथ जाकर उसको देखा ॥ १ ॥ पितासे हम दोनोंको नमस्कार किया जाता देख लोकलीलाका अनुसरण करते हुए भक्तिसे प्रणाम किया ॥ २ ॥ प्रणामके पीछे सतीको देख नम्रताको प्राप्तहुए हम और आप दक्षके दिये हुए आसनपर बैठगये और सतीसे बोले॥ ३॥

हे सती ! जो आपकी इच्छा करतेहैं और तुम जिसकी इच्छा करतीहो उस सर्वज्ञ जगदीश्वर पतिको तुम प्राप्त होगी ॥ ४ ॥ जिसने अन्य स्त्रीको ग्रहण नहीं किया न ग्रहण करते न ग्रहणकरेंगे हे शुभे ! वही अनन्यसदृश तुम्हारा पति होगा ॥ ५ ॥ चिरकालमें वह तुमको ग्रहण करैंगे, इस प्रकार सतीसे कह दक्षसे पूजितहो हम दोनों अपने स्थानोंको गये ॥ ६ ॥ दक्ष यह सुनकर परमप्रसन्न और चिन्तारहित हुए और अपनी कन्याको परमेश्वरी जानकर बडा सत्कार किया ॥ ७ ॥ अपनी इच्छासे मनुष्यशरीर धारण करनेवाली भक्तवत्सला देवीने सुन्दर कौमार विहारोंके साथ कौमार अवस्थाको अतिक्रमण

त्वामेव यः कामयते यन्तु कामयसे साति ॥ तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥ ४ ॥ यो नान्यां जगृहे नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति ॥ जायां स ते पतिर्भूयादनन्यसदृशश्शुभे ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा सुचिरं तां वै स्थित्वा दक्षालये पुनः ॥ विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं तौ च नारद ॥ ६ ॥ दक्षोभवच्च सुप्रीतस्तदाकर्ण्य गतज्वरः ॥ आददे तनयां स्वां तां मत्वा हि परमेश्वरीम् ॥ ७ ॥ इत्थं विहारै रुचिरैः कौमारैर्भक्तवत्सला ॥ जहाववस्थां कौमारीं स्वेच्छाधृतनराकृतिः ॥ ८ ॥ बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप किञ्चिद्यौवनतां सती ॥ अतीव तपसांगेन सर्वांगेषु मनोहरा ॥ ९ ॥ दक्षस्तां वीक्ष्य लोकेशः प्रोद्भिन्नांतर्वयःस्थिताम् ॥ चिंतयामास भर्गाय कथं दास्य इमां सुताम् ॥ १० ॥ अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम् ॥ पितुर्मनोगतिं ज्ञात्वा मातुर्निकटमागमत् ॥ ११ ॥ पप्रच्छाज्ञां तपोहेतोश्शंकरस्य विनीतधीः ॥ मातुश्शिवाथ वैरिण्यास्सा सती परमेश्वरी ॥ १२ ॥ ततस्सती महेशानं पतिं प्राप्तुं दृढव्रता ॥ सा तमाराधयामास गृहे मातुरनुज्ञया ॥ १३॥ आश्विने मासि नन्दायां तिथावानर्च भक्तितः ॥ गुडौदनैस्सलवणैर्हरं नत्वा निनाय तम् ॥ १४ ॥

किया ॥ ८ ॥ अत्यन्त तपके प्रभावसे सर्वांगसे मनोहर सती बाल्यावस्थाको विताकर कुछ युवावस्थाको प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ लोकेश दक्षजी युवावस्थामें स्थित उस सतीको देख इस पुत्रीको शिवको कैसे देवैं यह सोचने लगे ॥ १० ॥ पिताके मनकी बात जान वहभी माताके समीप आय शिवकी प्राप्तिके लिये स्वयं इच्छा करती हुई ॥ ११ ॥ शंकरके तपके कारण विशाल बुद्धि परमेश्वरी सतीजी वीरिणी अपनी माताकी आज्ञाको पानेकी इच्छा करनेलगीं ॥ १२ ॥ शिवको पति पानेके लिये दृढव्रता सतीने माताकी आज्ञासे घरहीमें उनका आराधन किया ॥ १३ ॥ आश्विनकी नंदा तिथिमें गुड और चावल

तथा लवणसे सतीने हरका पूजन किया ॥ १४ ॥ कार्तिककी चतुर्दशीको खीर और पुओंसे शिवकी आराधनाकर उनको स्मरण करने लगी ॥ १५ ॥ अगहनके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको यव तिल चावलोंसे शिवका पूजन कर दिन बिताती हुई ॥ १६ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीकी रात्रिको जागरण कर खिचडीसे प्रातःकाल शिवका पूजन करती हुई॥ १७॥ माघकी पूर्णमासीकी रात्रिको जागरण और भीगेकपडे धारणकर नदीके किनारे शिवका पूजन करती हुई॥ १८॥ फाल्गुन वदी चतुर्दशीकी रात्रिको जागरण और शैलूष बिल्वफलसे शिवकी पूजा करती भई विशेषकर फाल्गुनमें प्रायः सब रात्रियोंमें जागरण और पूजन करती हुई ॥ १९ ॥ चैत्र शुक्ल चतुर्दशीको दिन रात्रि शिवका स्मरण करती हुई, सती पलाश और दवनासे शिवको पूजती हुई ॥ २० ॥ वैशाख शुक्ल ३ को नव्य तिल यव चावलोंसे शिवका पूजन कर उस मासको व्यतीत करती हुई ॥२१॥ ज्येष्ठकी पूर्णमासीको वस्त्र और मालतीके फूलोंसे शिवका पूजनकर उस मासको व्यतीत किया ॥ २२ ॥ आषाढ शुक्ल १४ को काले वस्त्र अथवा कस्तुरी और मालतीके पुष्पोंसे शिवको पूजा ॥ २३ ॥ श्रावण शुक्ल ८–१४

कार्तिकस्य चतुर्दश्यामपूपैः पायसैरपि ॥ समाकीर्णैस्समाराध्य सस्मार परमेश्वरम् ॥ १५ ॥ मार्गशीर्षेऽसिताष्टम्यां सतिलैस्सयवौदनैः ॥ पूजयित्वा हरं कीलैर्निनाय दिवसान् सती ॥ १६ ॥ पौषे तु शुक्लसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि ॥ अपूजयच्छिवं प्रातः कृशरान्नेन सा सती ॥ १७ ॥ माघे तु पौर्णमास्यां सा कृत्वा जागरणं निशि ॥ आर्द्रवस्त्रा नदीतीरेऽकरोच्छंकरपूजनम् ॥ १८ ॥ तपस्यसितभूतायां कृत्वा जागरणं निशि ॥ विशेषतस्समानर्च शैलूषैस्सर्वयामसु ॥ १९ ॥ चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पलाशैर्दमनैश्शिवम् ॥ अपूजयद्दिवारात्रौ संस्मरन् सा निनाय तम् ॥ २० ॥ राधशुक्लतृतीयायां तिलाहारयवौदनैः ॥ पूजयित्वा सती रुद्रं नव्यैर्मासं निनाय तम् ॥ २१ ॥ ज्येष्ठस्य पूर्णिमायां वै रात्रौ संपूज्य शंकरम् ॥ वसनैर्बृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय तम् ॥ २२ ॥ आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृष्णवाससा ॥ बृहतीकुसुमैः पूजा रुद्रस्याकारि वै तया ॥ २३ ॥ श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्यां च सा शिवम् ॥ यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत् ॥ २४ ॥

को यज्ञोपवीत और वस्त्रोंसे पूजन किया ॥ २४ ॥ भादों कृष्ण तेरस चौदशको नाना पुष्प और फलोंसे पूजन कर जल पीकर रहगई ॥ २५ ॥ नानाप्रकारके पुष्प फल और अन्न जो जिस ऋतुमें होते हैं उनसे निराहार रहकर शंकरका पूजन किया ॥ २६ ॥ अपनी इच्छासे मनुष्यकी आकृतिको धारण करनेवाली देवी दृढव्रत हो सब मासके सबदिनोंमें शिवपूजनमें रत होती हुई ॥ २७ ॥ इसप्रकार विधिपूर्वक सम्पूर्ण नन्दा व्रतको समाप्त कर अनन्य भावको धारण करतीहुई सतीने प्रेमपूर्वक शिवको धारण किया ॥ २८ ॥ उसी समय सम्पूर्ण देवता और मुनि और मुझको आगे कर सतीकी तपस्या देखनेके निमित्त गये ॥ २९ ॥

भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ॥ संपूज्य च चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम् ॥ २५ ॥ नानाविधैः फलैः पुष्पैस्सस्यैस्तत्कालसंभवैः ॥ चक्रे सुनियताहारा चेषमासे शिवार्चनम् ॥ २६ ॥ सर्वमासे सर्वदिने शिवार्चनरता सती ॥ दृढव्रताभवद्देवी स्वेच्छाधृतनराकृतिः ॥ २७ ॥ इत्थं नंदाव्रतं कृत्स्नं समाप्य सुसमाहिता ॥ दध्यौ शिवं सती प्रेम्णा निश्चलाभूदनन्यधीः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवा मुनयश्चाखिला मुने ॥ विष्णुं मां च पुरस्कृत्य ययुर्द्रष्टुं सतीतपः ॥ २९ ॥ दृष्टागत्य सती देवैर्मूर्ता सिद्धिरिवापरा ॥ शिवध्यानमहामग्ना सिद्धावस्थां गता तदा ॥ ३० ॥ चक्रुः सर्वे सुरास्सत्ये मुदा सांजलयो नतिम् ॥ मुनयश्च नतस्कंधा विष्णवाद्याः प्रीतमानसाः ॥ ३१ ॥ अथ सर्वे सुप्रसन्ना विष्णवाद्याश्च सुरर्षयः ॥ प्रशशंसुस्तपस्तस्यास्सत्यास्तस्मात्सविस्मयाः ॥ ३२ ॥ ततः प्रणम्य तां देवीं पुनस्ते मुनयस्सुराः ॥ जग्मुर्गिरिवरं सद्यः कैलासं शिववल्लभम् ॥ ३३ ॥ सावित्रीसहित श्चाहं सह लक्ष्म्या मुदान्वितः ॥ वासुदेवोपि भगवाञ्जगामाथ हरांतिकम् ॥ ३४ ॥

शिवजीके ध्यानमें मग्न सिद्ध अवस्थाको प्राप्त वह सती आकर देवताओंसे दूसरी सिद्धिकी समान देखीगई ॥ ३० ॥ सब मुनि प्रेमपूर्वक विष्णुआदिक सम्पूर्ण देवतोंसहित हाथजोड प्रणाम करने लगे ॥ ३१ ॥ प्रसन्नहो विष्णुआदिक देवता और सुरर्षि विस्मित हो उन सतीके तपकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३२ ॥ उन सतीजीको प्रणाम कर वे देवता और मुनि शिवके प्रिय कैलासको चलेगये ॥ ३३ ॥ प्रसन्न सावित्रीके सहित मैं, लक्ष्मीके सहित विष्णु, महादेवजीके

पासगये ॥ ३४ ॥ वहां पहुँच शिवजीको देख चकित हो प्रणाम कर हाथ जोड नम्र हो नानास्तुतियोंसे स्तुति करनेलगे ॥ ३५ ॥ देवता बोले जो कुछ यह
चर और अचर है सब आपहीका है, ऐसे छहों ऐश्वर्यौंसे युक्त आपके लिये नमस्कार है पुरुष महेश परेश महात्मा ॥ ३६ ॥ सबके प्रथम कारण चिद्रूप
निर्विकार प्रकृति और पुरुषसे परे हो ॥३७॥ जो इसको विरचताहै जिससे यह प्रकाशमान होताहै जिससे यह है जिसका यह है और जहांसे आप ॥ ३८ ॥
जो इससे और परेसे परे है और जो निर्विकारी महाप्रभु अपनी आत्माको देखता है स्वयं होनेवाले उस देवको हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ ३९॥ दिवाचक्षु,

गत्वा तत्र प्रभुं दृष्ट्वा सुप्रणम्य सुसंभ्रमाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैः करौ बद्धा विनम्रकाः ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो भगवते तुभ्यं
यत एतच्चराचरम् ॥ पुरुषाय महेशाय परेशाय महात्मने ॥ २६ ॥ आदिबीजाय सर्वेषां चिद्रूपाय पराय च ॥ ब्रह्मणे निर्विकाराय प्रकृतेः
पुरुषस्य च ॥ ३७ ॥ य इदं प्रतिपंच्येदं येनेदं विचकास्ति हि ॥ यस्मादिदं यतश्चेदं यस्येदं त्वं च यत्नतः ॥ २८ ॥ योस्मात्प
रस्माच्च परो निर्विकारी महाप्रभुः ॥ ईक्षते यस्स्वात्मनीदं तं नताः स्म स्वयंभुवम् ॥ ३९ ॥ अविद्धदृक् परः साक्षी सर्वात्माऽ
नेकरूपधृक् ॥ आत्मभूतः परब्रह्म तपंतं शरणं गताः ॥ ४० ॥ न यस्य देवा ऋषयः सिद्धाश्च न विदुः पदम् ॥ कः पुनर्जंतुरपरो
ज्ञातुमर्हति वेरितुम् ॥ ४१ ॥ दिदृक्षवो यस्य पदं मुक्तसंगास्सुसाधवः ॥ चरंति सुगतिर्नस्त्वं सलोकव्रतमव्रणम् ॥ ४२ ॥ त्वज्जन्मादि
विकारा नो विद्यंते केपि दुःखदाः ॥ तथापि मायया त्वं हि गृह्णासि कृपया च तान् ॥ ४३ ॥ तस्मै नमः परेशाय तुभ्यमाश्चर्यक
र्मणे ॥ नमो गिरां विदूराय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ४४ ॥

परसाक्षी, सबका आत्मा, अनेक रूपोंके धारण करनेवाले, स्वयं होनेवाले तप करते हुये उस परब्रह्मकी हम लोग शरणआये हैं ॥ ४० ॥ जिसके पदको
देवता ऋषि और सिद्धोंने नहीं जाना फिर दूसरा कौन जन्तु उसके पदको जानसकता है अर्थात कोई नहीं ॥ ४१ ॥ सत्यलोकके कर्त्ता व्रणरहित जिसके
पदको मुक्तिके चाहनेवाले सुकर्म्मी दिदृक्षु सज्जनगण चाहते हैं ॥ ४२ ॥ दुःखके देनेवाले जन्मादिविकार जिनको नहीं प्राप्त होते, तो भी आप अपनी
मायासे कृपाकर उनको ग्रहण करते हैं ॥ ४३ ॥ आश्चर्यकर्म करनेवाले परेश वाणीसे परे परमात्मा ब्रह्मस्वरूप उस आपके लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥

रूपरहित सर्वस्वरूप पर अनन्तशक्ति त्रिलोकपति सबके साक्षी सर्वत्र गतिशील ॥४५॥ आत्मप्रदीप निर्वाणपदके सुखरूपी संपत्ति, ज्ञानस्वरूप, व्यापक ईश्वर आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ सुकर्मसे प्राप्त कैवल्यपति, पुरुष, परेश सब कुछ दाता आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मस्वरूप सब पल्ययोंके कारण पुरुष परेश सबकुछ देनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ सबके अध्यक्ष महान् मूलप्रकृति पुरुष परेश सबकुछ देनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४९ ॥ त्रिनेत्र पंचमुख सर्वदा तेजस्वरूप सब इन्द्री और गुणोंके देखनेवाले निष्कारण आपकेलिये नमस्कार है ॥ ५० ॥ त्रैलोक्यके कारण

अरूपायोरुरूपाय परायानंतशक्तये ॥ त्रिलोकपतये सर्वसाक्षिणे सर्वगाय च ॥ ४५ ॥ नम आत्मप्रदीपाय निर्वाणसुखसंपदे ॥ ज्ञानात्मने नमस्तेऽस्तु व्यापकायेश्वराय च ॥ ४६ ॥ नैष्कर्म्येण सुलभ्याय कैवल्यपतये नमः ॥ पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च ॥ ४७ ॥ क्षेत्रज्ञायात्मरूपाय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ ४८ ॥ सर्वाध्यक्षाय महते मूलप्रकृतये नमः ॥ पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च ॥ ४९ ॥ त्रिनेत्रायेषुवक्त्राय सदाभासाय ते नमः ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे निष्कारण नमोस्तु ते ॥ ५० ॥ त्रिलोककारणायाथापवर्गाय नमोनमः ॥ अपवर्गप्रदायाशु शरणागततारिणे ॥ ५१ ॥ सर्वाम्नायागमानां चोदधये परमेष्ठिने ॥ परायणाय भक्तानां गुणानां च नमोस्तु ते ॥ ५२ ॥ नमो गुणारणिच्छन्नचिदूष्माय महेश्वर ॥ मूढदुष्प्रातरूपाय ज्ञानिहृद्वासिने सदा ॥ ५३ ॥ पशुपाशविमोक्षाय भक्तसन्मुक्तिदाय च ॥ स्वप्रकाशाय नित्यायाऽव्ययायाजस्रसंविदे ॥ ५४ ॥ प्रत्यग्द्रष्ट्रेऽविकाराय परमैश्वर्यधारिणे ॥ यं भजन्ति चतुर्वर्गं कामयंतीष्टसद्गतिम् ॥ सोऽभूदकरुणस्त्वं नः प्रसन्नो भव ते नमः ॥ ५५ ॥

अपवर्गके दाता शीघ्रही शराणगतको तारनेवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५१ ॥ सब आम्नाय आगमोंके समुद्र परमेष्ठी भक्त और गुणोंके परायण आपके लिये नमस्कार है ॥ ५२ ॥ गुणकी अरणीसे आच्छन्न चित्त ऊष्मारूप महेश्वर मूढोंको दुष्प्राप्य रूप वाले सदा ज्ञानियोंके हृदयमें वास करनेवाले आपको नमस्कारहै ॥ ५३ ॥ पशुओंके पाशको दूर करनेवाले भक्तोंके सन्मुक्ति दाता स्वयंप्रकाश नित्य अव्यय निरन्तर सर्वेश ॥ ५४ ॥ सम्यक्द्रष्टा विकारसे

रहित उत्कृष्ट ऐश्वर्यको धारण करनेवाले इष्टके दाता जिन शिवको धर्म अर्थ काम मोक्ष भजते हैं और इच्छा अपनी पूर्ण करते हैं ऐसे कारुणिक आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो आपकेलिये नमस्कारहै ॥ ५५ ॥ जो आपके अनन्यभक्त किसी अर्थकी इच्छा नहीं करते किन्तु परम मंगल आपके गुणोंहीका ध्यान किया करते हैं, उनको नमस्कारहै ॥ ५६ ॥ अव्यक्ताकृति विभु ब्रह्म परम अध्यात्म योगसे प्राप्त, परिपूर्ण अक्षरको हमलोग स्तुति करतेहैं ॥ ५७ ॥ इन्द्रियसे परे आधार रहित सबके आधार, कारण रहित जिसका अन्त नहींहै, आदि सूक्ष्म सम्पूर्णके स्वामीके लिये नमस्कारहै ॥ ५८ ॥ हरिआदिक सम्पूर्ण देवता और लोक तथा चर और अचरके कार्यके लिये नामरूप भेदसे आप अलग स्थित करतेहो ऐसे विश्वस्वरूप आपके लिये नमस्कारहै ॥५९ ॥

एकांतिनः कंचनार्थं भक्ता वांछंति यस्य न ॥ केवलं चरितं ते ते गायंति परमंगलम् ॥ ५६ ॥ अक्षरं परमं ब्रह्म तमव्यक्ताकृतिं
विभुम् ॥ अध्यात्मयोगगम्यं त्वां परिपूर्ण स्तुमो वयम् ॥ ५७ ॥ अतींद्रियमनाधारं सर्वाधारमहेतुकम् ॥ अनंतमाद्यं सूक्ष्मं त्वां प्रण
मामोऽखिलेश्वरम् ॥ ५८ ॥ हर्यादयोऽखिला देवास्तथा लोकाश्चराचराः ॥ नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ ५९ ॥
यथार्चिषोग्नेस्सवितुर्यांति निर्यांति वासकृत् ॥ गभस्तयस्तथायं वै प्रवाहो गौण उच्यते ॥ ६० ॥ न त्वं देवोऽसुरो मर्त्यो न तिर्यङ् न
द्विजः प्रभो ॥ न स्त्री न षंढो न पुमान्सदसन्न च किंचन ॥ ६१ ॥ निषेधशेषस्सर्वं त्वं विश्वकृद्विश्वपालकः ॥ :विश्वलयकृद्विश्वात्मा
प्रणतास्स्मस्तमीश्वरम् ॥ ६२ ॥ योगरंधितकर्माणो यं प्रपश्यन्ति योगिनः ॥ योगसंभाविते चित्ते योगेशं त्वां नता वयम् ॥ ६३ ॥
नमोस्तु तेऽसह्यवेगशक्तित्रय त्रयीमय ॥ नमः प्रसन्नपालाय नमस्ते भूरिशक्तये ॥ ६४ ॥

अग्निके तेज और सविता अर्थात् सूर्य्यका प्रभाव और वायु ये जो कुछ हैं सब आपके गौण- प्रभावहैं ऐसे सूर्य्य ग्रीवा द्युस्वरूप आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६० ॥ हे प्रभु! न आप देवताहैं न असुर हैं न मनुष्यहैं न तिर्यक् न ब्राह्मणहैं न स्त्रीहैं न नपुंसक हैं, न पुरुष हैं और आप सत असत् कुछ नहीं करते ॥ ६१ ॥ हे संसारके करनेवाले संसारके पालक और संसारके लोप करनेवाले संसारकी आत्मा सम्पूर्ण निषेधके शेष आपहीहैं ऐसे आप ईश्वरको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ६२ ॥ कर्म योगमें मन लगानेवाले योगीलोग योगमें लग्नचित्त हो योगीश आपको देखतेहैं, ऐसे आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६३ ॥ असह्य वेग

तीनों शक्तियोंसे युक्त प्रसन्न चित्त महाशक्ति पालक आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६४ ॥ हे दुर्गेश जो विषयलग्न मनुष्य आत्मज्ञानको नहीं प्राप्त करसकते उनके भी शरणमें आनेसे उनके उद्धारमें चित्तलगानेवाले गूढ बुद्धि आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६५॥ मूर्ख मनुष्य जिसकी मायासे अपनेको नहीं जानते ऐसे अकथनीय माहात्म्यवाले महाप्रभु आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६६ ॥ ब्रह्माजी बोले शिर झुकाये हुये विष्णुआदिक सब देवता महादेवजीकी इस प्रकार स्तुति कर मौन होगये ॥ ६७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे नंदाव्रताविधानशिवस्तुतिवर्णनं नाम

कर्दिंद्रियाणां दुर्गेशानवाप्यपरवर्त्मने ॥ भक्तोद्धाररतायाथ नमस्ते गूढवर्चसे ॥६५॥ यच्छक्त्याहं धियात्मानं हंत वेद न मूढधीः॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं त्वां नताः स्मो महाप्रभुम् ॥ ६६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वा महादेवं सर्वे विष्ण्वादिकास्सुराः ॥ तूष्णीमासन्प्रभोरग्रे सद्भक्तिनतकंधराः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे नंदाव्रतविधानशिवस्तुतिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुतिं च हर्यादिकृतामाकर्ण्य शंकरः ॥ बभूवातिप्रसन्नो हि विजहास च सूतिकृत् ॥ १ ॥ ब्रह्मविष्णू तु दृष्ट्वा तौ सस्त्रीकौ संगतौ हरः ॥ यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः ॥ २ ॥ रुद्र उवाच ॥ हेहरे हेविधे देवा मुनयश्चाद्य निर्भयाः ॥ निजागमनहेतुं हि कथयध्वं सुतत्त्वतः ॥ ३ ॥ किमर्थमागता यूयं-किं कार्यं चेह विद्यते ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवत्स्तुत्या प्रसन्नधीः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टे हरेणाहं सर्वलोकपितामहः ॥ मुनेऽवोचं महादेवं विष्णुना परिचोदितः ॥ ५ ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ यदर्थमागतावावां तच्छृणु त्वं सुरर्षिभिः ॥ ६ ॥

पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार हरि इत्यादिकोंकी स्तुतिको सुन सृष्टिकर्ता शिवजी प्रसन्न हो हँसे ॥ १ ॥ स्त्रियोंके सहित ब्रह्मा और विष्णुको देख हर यथोचित कह उनके कारण पूछने लगे ॥ २ ॥ रुद्र बोले हे विष्णु हे विधि हे देवताओं हे मुनियों निर्भयहो अपने आगमनका यथार्थ कारण कहो ॥ ३ ॥ आपकी स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूं आप किस निमित्त आये हैं और आपका यहां क्या कार्य है वह सब सुननेकी इच्छा है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार जब महादेवजीने पूँछा तो सब लोकोंका पितामह मैं ब्रह्मा विष्णुजीसे प्रेरित होकर महादेवजीसे बोला ॥ ५ ॥ हे करुणासागर !

जिसकारण हम आये हैं हे देवदेव ! वह आप सुरर्षियोंसे सुनिये ।। ६ ।। हे वृषभध्वज ! विशेषकरके हम आपहीके निमित्त आये हैं आप सदा हमारी सहायता कीजिये नहीं तो जगत् न होगा ।। ७ ।। हे महेश्वर ! कोई असुर तो मेरे वध्य होंगे कोई हरिके और कोई आपसे मरैंगे ॥ ८ ॥ हे महाप्रभो ! कोई आपके वीर्यसे उत्पन्नहुए पुत्रद्वारा मरैंगे हे प्रभो ! कोई दैत्यआदि शक्तिकेद्वारा मारेजांयगे ।। ९ ।। हे शिव ! आपहीकी कृपासे देवताओंको उत्तम सुख होगा घोर असुरोंको मार आप जगत्का श्रेष्ठ मंगल करो ॥१०॥ आप रागद्वेषसे रहित सदा योगयुक्त हो आप दयामें रत हैं आप किसीको बध नहीं करते ॥११॥

विशेषतस्तवैवार्थमागतावृषभध्वज ॥ सहार्थिनस्सदायोग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥ ७ ॥ केचिद्भविष्यंत्यसुरा मम वध्या महेश्वर ॥
हरेर्वध्यास्तथा केचिद्भवतश्चापि केचन ॥ ८ ॥ केचित्त्वद्वीर्यजातस्यतं नयस्य महाप्रभो ॥ मायावध्याः प्रभो केचिद्भविष्यंत्यसुरास्सदा
॥९॥ तवैव कृपया शंभोस्सुराणां सुखमुत्तमम् ॥ नाशयित्वाऽसुरान् घोराञ्जगत्स्वास्थ्यं सदाभयम् ॥१०॥ योगयुक्ते त्वयि सदा राग
द्वेषविवर्जिते ॥ दयामात्रैकनिरते न वध्या ह्यथवा तव ॥ ११ ॥ अराधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः ॥ अतश्च भविता युक्तं
नित्यंनित्यं वृषध्वज ॥ १२ ॥ सृष्टिस्थित्यंतकर्माणि न कार्याणि यदा तदा ॥ शरीरभेदश्चास्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥ १३ ॥
एकस्वरूपा हि वयं भिन्नाः कार्यस्य भेदतः ॥ कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ॥ १४ ॥ एक एव त्रिधा भिन्नः परमात्मा महे
श्वरः ॥ मायास्वाकारणादेव स्वतंत्रो लीलया प्रभुः ॥ १५ ॥ वामाङ्गजो हरिस्तस्य दक्षिणांगभवो ह्यहम् ॥ शिवस्य हृदयाज्जातस्त्वं
हि पूर्णतनुश्शिवः ॥ १६ ॥ इत्थं वयं त्रिधा भूताः प्रभाभिन्नस्वरूपिणः ॥ शिवाशिवसुतास्तत्त्वं हृदा विद्धि सनातन ॥ १७ ॥

हे देवेश उनके आराधनमें फिर सृष्टिकी स्थिति कैसे होगी ? हे वृषभध्वज इसकारण आपको योग्यकार्योंमें मिलित होना उचित है ।। १२ ।। यदि सृष्टि स्थिति और अन्तके कर्म न किये जांय तो उस समय हमारा शरीरभेद मायासे युक्त न होगा ।। १३ ।। हमारा एकही स्वरूप है हम कार्यके भेदसे पृथक् हैं यदि कार्य भेद न हो तो रूपभेद की आवश्यकता नहीं है ।।१४।। परमात्मा महेश्वर एकही कार्यवश तीनभेदोंको प्राप्त हुए हैं मायाही इससे कारण है प्रभुलीलासे स्वतंत्र हैं ।। १५ ।। हरि उनके वाम और मैं दक्षिण अंगसे उत्पन्न हुआहूं आप पूर्णशरीर शिवशंकरके हृदयसे उत्पन्न हुए हो ॥ १६ ॥ हे प्रभो !

इसप्रकारसे हम भिन्नस्वरूप तीनप्रकारसे हुए हैं शिवाशिवका हमको एकप्रकार पुत्र जानो हे सनातन ! ॥ १७ ॥ कार्यके कारण हम और विष्णुजी तो स्त्री सहित होगयेहैं हे प्रभो आपकी आज्ञासे प्रेमपूर्वक लोकका कार्य करतेहैं ॥ १८ ॥ इसकारण संसार और देवताओंके सुखके निमित्त भार्यारूपसे आप कोई स्त्री ग्रहण करैं ॥ १९ ॥ हे महेशान ! और भी एक पुरानी बात मैं कहताहूं आप उसको सुनैं जो शिवरूप आपने पहले हमारे सामने कहाथा ॥ २० ॥ हे ब्रह्माजी ! मेरा जो परमरूप है वह तुम्हारे अंगसे रुद्रनाम कहलानेवाला प्रकट होगा ॥ २१ ॥ सृष्टिकर्ता ब्रह्मा पालनकरनेवाले विष्णु और गुणाकृति

अहं विष्णुश्च सस्त्रीकौ संजातौ कार्यहेतुतः॥लोककार्यकरौ प्रीत्या तव शासनतः प्रभो ॥ १८ ॥ तस्माद्विश्वहितार्थाय सुराणां सुखहेतवे ॥ परिगृह्णीष्व भार्यार्थे रामामेकां सुशोभनाम्॥१९॥ अन्यच्छृणु महेशान पूर्ववृत्तं स्मृतं मया ॥ यन्नौ पुरःपुरा प्रोक्तं त्वयैव शिवरूपिणा ॥ २० ॥ मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदंगतः ॥ प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ सृष्टिकर्ताऽभवद्ब्रह्मा हरिः पालनकारकः ॥ लयकारी भविष्यामि रुद्ररूपो गुणाकृतिः ॥ २२ ॥ स्त्रियं विवाह्य लोकस्य करिष्ये कार्यमुत्तमम् ॥ इति संस्मृत्य स्वप्रोक्तं पूर्णं कुरु निजं पणम् ॥ २३ ॥ निदेशस्तव च स्वामिन्नहं सृष्टिकरो हरिः ॥ पालको लयहेतुस्त्वमाविर्भूतस्स्वयं शिवः ॥ २४ ॥ त्वां विना न समर्थौ हि आवां च स्वस्वकर्मणि ॥ लोककार्यरतौ तस्मादेकां गृह्णीष्व कामिनीम् ॥ २५ ॥ यथा पद्मालया विष्णोस्सावित्री च यथा मम॥तथा सहचरीं शंभो कांतां गृह्णीष्व संप्रति ॥ २६ ॥

मैं रुद्रनामसे लयकरनेवाला हूंगा ॥२२॥ एक स्त्रीको व्याहकर लोकका उत्तम कार्य करूंगा,यह अपना कहा स्मरण कर आप अपना प्रण पूर्ण करैं ॥२३॥ हे स्वामिन् आपकी आज्ञासे मैं सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता, और आदिभूत स्वयं शिव आप लयकारी हैं ॥ २४ ॥ आपके विना हम अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं इसकारण लोककार्यमें तत्पर आप एक स्त्रीको ग्रहण करैं ॥ २५ ॥ जैसे विष्णुके लक्ष्मी मेरे सावित्री है वैसे आप भी कोई कान्ता गृहीत

कीजिये ॥२६॥ ब्रह्माजी बोले मुझ ब्रह्माके इन वचनोंको सुन विष्णुके समीप प्रसन्नमुखवाले लोकोंके ईश महादेवजी मुझसे बोले ॥ २७ ॥ ईश्वर बोले हे ब्रह्मा ! हे हरि ! आप दोनों मेरे सदा अत्यन्त प्रियहैं आप दोनोंको देख निश्चय करके मुझे बडा आनन्द होताहै ॥ २८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ आप दोनों निश्चय करके तीनों लोकके स्वामी हैं आप दोनों कथनमें गरिष्ठहैं आप सदा संसारके कार्योंमें रतहैं ॥ २९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मुझे विवाह करना उचित नहीं है, क्योंकि मैं तपमें रत सदा विरक्त और विदित योगी हूं ॥ ३० ॥ जो निवृत्तिके उत्तम मार्गमें सदा स्थित अपनीही आत्मामें रमण करने

ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो मे हि ब्रह्मणः पुरतो हरेः ॥ स मां जगाद लोकेशः स्मेराननमुखो हरः ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्रह्मन् हे हरे मे हि युवां प्रियतरौ सदा ॥ दृष्ट्वा त्वां च ममानंदो भवत्यतितरां खलु ॥ २८ ॥ युवां सुरविशिष्टौ हि त्रिभवस्वामिनौ किल ॥ कथनं वां गरिष्ठेति भवकार्यरतात्मनोः ॥ २९ ॥ उचितं न सुरश्रेष्ठौ विवाहकरणं मम ॥ तपोरतविरक्तस्य सदा विदितयोगिनः ॥ ३० ॥ यो निवृत्तिसुमार्गस्थः स्वात्मारामो निरंजनः ॥ अवधूततनुर्ज्ञानी स्वद्रष्टा कामवर्जितः ॥ ३१ ॥ अविकारी ह्यभोगी च सदाशुचिरमंगलः ॥ तस्य प्रजोजनं लोके कामिन्या किं वदाधुना ॥ ३२ ॥ केवलं योगलग्नस्य ममानंदस्सदास्ति वै ॥ ज्ञानहीनस्तु पुरुषो मनुते बहु कामकम् ॥ ३३ ॥ विवाहकरणं लोके विज्ञेयं परबंधनम् ॥ तस्मात्तस्य रुचिर्नो मे सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ॥ ३४ ॥ न स्वार्थं मे प्रवृत्तिर्हि सम्यक्स्वार्थविचिंतनात् ॥ तथापि तत्करिष्यामि भवदुक्तं जगद्धितम् ॥ ३५ ॥ मत्वा वचो गरिष्ठं वा नियोक्तिपरिपूर्त्तये ॥ करिष्यामि विवाहं वै भक्तवश्यस्सदा ह्यहम् ॥ ३६ ॥

वाले निरंजन अवधूत तनु ज्ञानी अपनेको देखनेवाले कामसे वर्जित ॥ ३१ ॥ विकाररहित भोगरहित, सदा अशुचि और अमंगल रूपहैं इस संसारमें स्त्रीका उन्हें क्या प्रयोजन है सो इस समय कहिये ॥ ३२ ॥ केवल योगहीमें लगे रहनेसे मुझे आनन्दहै, ज्ञानहीन पुरुष कामकी इच्छा करतेहैं ॥ ३३ ॥ संसारमें विवाहका करना यह परम बंधन समुझिये,इसलिये मुझे उसकी रुचि नहीं है मैं सत्य.सत्य कहताहूं ॥ ३४ ॥ सम्यक प्रकारसे स्वार्थका विचार करनेसे, तिसपर भी आपके कहनेसे और संसारके हितसे करूंगा ॥ ३५ ॥ सदा भक्तके वशमें आप लोगोंके वचन मान इस कार्यकी प्रीतिके लिये विवाह करूंगा॥ ३६॥

हे हरि ! हे ब्रह्मा ! जैसी स्त्रीको मैं ग्रहण करूंगा वह मेरा प्रण तथ्य वचन सुनो ।। ३७ ।। उस कामरूपिणी योगिनीको स्त्रीके लिये आप उपदेश दें जो विभागपूर्वक मेरे तेज ग्रहण करनेमें समर्थ हो ॥ ३८ ॥ जब मैं योगमें युक्त हो जाऊं तब वह योगिनी होजाय, और जब कामसे युक्त होजाऊं तब वह कामिनी होजाय ॥ ३९ ॥ जिस अक्षरको वेदके जाननेवाले बुद्धिमान कहतेहैं उसे सनातन ज्योतिरूप शिवकी चिंतना करतीरहै ॥ ४० ॥ हे ब्रह्मन् ! उसकी चिन्तामें जब मैं आसक्त होजाऊं उस समय विघ्न करनेवाली न हो अन्यथा वह हतयोगी ॥ ४१ ॥ आप ब्रह्मा, विष्णु और मैं महाभाग

परंतु यादृशीं कांतां ग्रहीष्यामि यथापणम् ॥ तच्छृणुष्व हरे ब्रह्मन् युक्तमेव वचो मम ॥ ३७ ॥ या मे तेजस्समर्था हि ग्रहीतुं स्याद्विभागशः ॥ तां निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ ३८ ॥ योगयुक्ते मयि तथा योगिन्येव भविष्यति ॥ कामासक्ते मयि तथा कामिन्येव भविष्यति ॥ ३९ ॥ यमक्षरं वेदविदो निगदंति मनीषिणः ॥ ज्योतीरूपं शिवं ते च चिंतयिष्ये सनातनम् ॥ ४० ॥ तच्चिंतायां यदा सक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भाविनीम् ॥ तत्र या विघ्नजननी न भवित्री हतास्तु मे ॥ ४१ ॥ त्वं वा विष्णुरहं वापि शिवस्य ब्रह्मरूपिणः ॥ अंशभूता महाभागा योग्यं तदनुचिंतनम् ॥ ४२ ॥ तच्चिंतया विनोद्वाहं स्थास्यामि कमलासन ॥ तस्माज्जायां प्रादिश त्वं मत्कर्मानुगतां सदा ॥ ४३ ॥ तत्राप्येकं पणमेत्वं वृणु ब्रह्मँश्चमां प्रति ॥ अविश्वासो मदुक्तेचेन्मया त्यक्ता भविष्यति ॥ ४४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तस्य वचश्श्रुत्वाहं स विष्णुर्हरस्य च ॥ सस्मितं मोदितमनोऽवोचं चेति विनम्रकः ॥ ४५ ॥ शृणु नाथ महेशान मार्गिता यादृशी त्वया ॥ निवेदयामि सुप्रीत्या तां स्त्रियं तादृशीं प्रभो ॥ ४६ ॥

ब्रह्मरूपी श्रीशिवजीके अंशहैं, इस हेतु उनका चिन्तन योग्यहै ॥ ४२ ॥ हे कमलासन ! उसकी चिन्ताके विना मैं विवाह कर्ममें स्थिति करूंगा इसकारण आप मेरे अनुकूल चलनेवाली स्त्रीका चिन्तन करैं ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे एक प्रणको सुनिये यदि मेरे वाक्यमें उसे विश्वास न होगा तो मैं उसे त्याग करदूंगा ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारके उनके वचन सुन मैं और विष्णु प्रसन्न हो हँसकर अत्यन्त नम्रहो बोले ॥ ४५ ॥ हे महान् ईश ! हे नाथ !

सुनिये जिस प्रकारकी स्त्री आपने बताई हे प्रभो ! उसी प्रकारकी उस स्त्रीको प्रसन्नतापूर्वक निवेदन करूंगा ॥ ४६ ॥ कार्यके साधन करनेवाली उमा भिन्नरूपसे उत्पन्न हुई हैं, हे प्रभु ! जिसप्रकार पहिले उन्होंने सरस्वती लक्ष्मीके दो रूप धारण कियेथे ॥ ४७ ॥ लक्ष्मी भगवान्की और सरस्वती मेरी कांता हुई लोकके कार्य रूप हितके करनेवाली भगवतीने तीसरा रूप नहीं धराथा ॥ ४८ ॥ हे विभो ! जो सती नामसे प्रसिद्ध दक्षकी कन्या हैं वह हितके करनेवाली उसीप्रकारकी स्त्री होंगी ॥ ४९ ॥ हे देवेश ! वह महातेजवाली सती आपके पतिहोनेकी इच्छासे दृढव्रत हो आपके अर्थ तप करती हैं ॥५०॥

उमा सा भिन्नरूपेण संजाता कार्यसाधिनी ॥ सरस्वती तथा लक्ष्मीर्द्विधा रूपा पुरा प्रभो ॥ ४७ ॥ पद्माकांताऽभवद्विष्णोस्तथा मम सरस्वती ॥ तृतीयरूपा सा नाभूल्लोककार्यहितैषिणी ॥ ४८ ॥ दक्षस्य तनया याभूत्सती नाम्ना तु सा विभो ॥ सैवेदृशी भवेद्भार्या भवेद्धि हितकारिणी ॥ ४९ ॥ सा तपस्यति देवेश त्वदर्थं हि दृढव्रता ॥ त्वां पतिं प्राप्तुकामा वै महातेजोवती सती ॥ ५० ॥ दातुं गच्छ वरं तस्यै कृपां कुरु महेश्वर ॥ तां विवाहय सुप्रीत्या वरं दत्त्वा च तादृशम् ॥ ५१ ॥ हरेर्मम च देवानामियं वाञ्छास्ति शंकर ॥ परिपूरय सद्दृष्ट्या पश्यामोत्सवमादरात् ॥ ५२ ॥ मंगलं परमं भूयात्त्रिलोकेषु सुखावहम् ॥ सर्वज्वरो विनश्येद्वै सर्वेषां नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ अथवास्मद्वचश्शेषवदत्वं मधुसूदन ॥ लीलाजाकृतिमीशानं भक्तवत्सलमच्युत ॥ ५४ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं मदुक्तं तन्न संशयः ॥ ५५ ॥

हे महेश्वर ! कृपाकर उनको वरदेनेके लिये आइये, और उसीप्रकारका वर देकर प्रीतिपूर्वक उनका विवाह कीजिये ॥ ५१ ॥ हे शंकर ! विष्णुकी मेरी और देवताओंकी यही इच्छा है उसे पूरी कीजिये जिसमें आदरपूर्वक इस उत्सवको अपनी दृष्टिसे देखैं ॥ ५२ ॥ और तीनों लोकमें, सुखके देनेवाला परममंगल हो, सबके सम्पूर्ण ज्वर नष्ट हों इसमें संदेह नहीं ॥ ५३ ॥ हे अच्युत ! मधुसूदन अपनी लीलासे रूप धारणकरनेवाले ! भक्तवत्सल शिवसे कहतेहुए मेरे वचनमें जो अवशिष्ट हो उसे आप कहिये ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले हे देवोंके देव शिवजी ! हे करुणाकर जो ब्रह्माजीने कहा वह सब मेराही कहा जानिये

इसमें संशय नहीं ॥ ५५ ॥ हे महान ईश मुझपर कृपाकर उनका विवाह कर तीनोंलोकको सनाथ कीजिये ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कह विष्णु चुप
हो रहे और भक्तवत्सल प्रभु शिवजी हँसकर तथास्तु कहते हुए ॥ ५७ ॥ हम लोग शिवकी आज्ञा पाकर हर्षित हो स्त्रियोंके साथ देव ऋषियों सहित अपने
स्थानको चलेगये ॥ ५८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसतीखंडे विष्णुब्रह्मकृतशिवप्रार्थनानाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
ब्रह्माजी बोले हे मुनि ! इसप्रकार सब देवताओंने शिवकी प्रार्थना की और सत्कारपूर्वक उनसे वर पाया वह कथा आप आदरसे सुनिये ॥ १ ॥ फिर सतीजी

तत्कुरुष्व महेशान कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ सनाथं कुरु सद्दृष्ट्या त्रिलोकं सुविवाह्य ताम् ॥ ५६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्
विष्णुस्तूष्णीमास मुनेसुधीः ॥ तथा स्तुतिं विहस्याह स प्रभुर्भक्तवत्सलः ॥ ५७ ॥ ततस्त्वावां च संप्राप्य चाज्ञां स मुनिभिस्सुरैः ॥
अगच्छावस्वेष्टदेशं सस्त्रीकौ परहर्षितौ ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे विष्णुब्रह्मकृतशिव
प्रार्थनावर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता सर्वदेवैश्च कृता शंभोर्नुतिः परा ॥ शिवाच्च सा वरं प्राप्ता
शृणुह्यादरतो मुने ॥ १ ॥ अथो सती पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषिता ॥ आश्विने मासि सर्वेशं पूजयामास भक्तितः ॥ २ ॥ इति
नंदाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनभागतः ॥ तस्यास्तु ध्यानमग्नायाः प्रत्यक्षमभवद्धरः ॥ ३ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरो गौरः पंचवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥
चंद्रभालः प्रसन्नात्मा शितिकंठश्चतुर्भुजः ॥ ४ ॥ त्रिशूलब्रह्मकवराभयधृग्भस्मभास्वरः ॥ स्वर्धुन्या विलसच्छीर्षस्सकलाङ्गम
नोहरः ॥ ५ ॥ महालावण्यधामा च कोटिचन्द्रसमाननः ॥ कोटिस्मरसमाकांतिस्सर्वथा स्त्रीप्रियाकृतिः ॥ ६ ॥

आश्विन शुक्ल ८ को भक्तिपूर्व्वक महादेवजीका पूजन करती हुईं ॥ २ ॥ इसप्रकार नंदाव्रतके पूर्ण होनेपर नवमीको उन्हींके ध्यानमें मग्न पार्वतीजीके सन्मुख
शिवजी प्रगट हुए ॥ ३ ॥ सर्वांगसुन्दर गौर पाँच मुख तीन नेत्रवाले चन्द्रभाल प्रसन्न शरीर नीलकंठ चतुर्भुज ॥ ४ ॥ श्रेष्ठ ब्रह्मादिकोंको अभय देनेवाले
त्रिशूलको धारण कियेहुये भस्मसे देदीप्यमान मस्तकमें गंगाको धारण किये हुये सर्वांगसुन्दर ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण शोभाके घर करोडों चन्द्रमाके समान मुखवाले

करोडों कामदेवोंकी कान्तिको लजानेवाले सर्वथा स्त्रियोंको मोद देनेवाले ॥ ६ ॥ शिवको प्रत्यक्ष देख लज्जासे नीचा मुख किये सती उनके चरणोंमें प्रणाम करतीहुई ॥ ७ ॥ तपस्याके फलको देनेवाले शिवजी पाणिग्रहणकी इच्छा करतेहुये भी नंदाव्रतको धारण करनेवाली सतीसे बोले ॥ ८ ॥ महादेव बोले हे दक्षपुत्री ! तुम्हारे इस व्रतसे मैं प्रसन्नहूं जो कुछ तुम्हारी इच्छाहो वर माँगो मैं देनेकेलिये उद्यतहूं ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले जगत्पति शिवजी उनके चित्तके भावको जानते हुयेभी उनकी वाक्य सुननेकी इच्छासे वरमाँगो यह कहते हुए ॥ १० ॥ लज्जायुक्त वह जो कुछ हृदयमें था वह कहनेको न समर्थ हुई ॥ ११ ॥

प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सती सेदृग्विधं प्रभुम् ॥ ववन्दे चरणौ तस्य सुलज्जावनतानना ॥ ७ ॥ अथ प्राह महादेवस्सतीं सद्व्रतधारिणीम् ॥ तामिच्छन्नपि भार्यार्थं तपश्चर्याफलप्रदः ॥ ८ ॥ महादेव उवाच ॥ दक्षनंदिनि प्रीतोस्मि व्रतेनानेन सुव्रते ॥ वरं वरय संदास्ये यत्त वाभिमतं भवेत् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पतिः ॥ जगौ वरं वृणीष्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ॥ १० ॥ सापि त्रपावशा युक्ता वक्तुं नो हृदि यत्स्थितम् ॥ शशाक सात्वभीष्टंयत्तल्लज्जाच्छादितं पुनः ॥ ११ ॥ प्रेममग्नाऽभवत्साति श्रुत्वा शिववचः प्रियम् ॥ तज्ज्ञात्वा सुप्रसन्नोभूच्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ १२ ॥ वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि प्राहेति स पुनर्द्रुतम् ॥ सतीभक्तिवश श्शंभुरंतर्यामी सतांगतिः ॥ १३ ॥ अथ त्रपां स्वांसंधाय यदा प्राह हरं सती ॥ यथेष्टं देहि वरद वरमित्यनिवारकम् ॥ १४ ॥ तदा वाक्यस्यावसानमनवेक्ष्य वृषध्वजः ॥ भव त्वं मम भार्येति प्राह तां भक्तवत्सलः ॥ १५ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफल भावनम् ॥ तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥ १६ ॥

शिवके प्रियवचनको सुन प्रेममें मग्न होगई भक्तवत्सल शंकर उसे जान अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ १२ ॥ सज्जनोंकी गति अन्तर्यामी शिव सतीकी भक्तिके वश हो शीघ्रही फिर वरमाँगो २ यह कहने लगे ॥ १३ ॥ लज्जाको धारणकर सतीने शिवसे कहा जो कुछ आपकी इच्छा हो वही वर देदीजिये ॥ १४ ॥ भक्तवत्सल वृषभध्वज सतीके वाक्यको सुन तुम हमारी वामांगी हो यह कहते हुए ॥ १५ ॥ इसप्रकार शिवके वचनको सुन जो कुछ मनमें इच्छाथी उसे

पाय अत्यन्त प्रसन्न हो सती चुपहोगई ॥१६॥ कामयुक्त शिवके सामने स्थित सुन्दर हँसन करतीहुई सतीने कामको बढानेवाले हावभावोंको किया॥१७॥ उससमय उसके भावोंको स्वीकार कर शृंगाररस उन दोनोंके चित्तमें शीघ्रही प्रवेश करगया ॥ १८ ॥ संसारकी लीलाके अनुकरण करनेवाले उनके चित्तमें शृंगाररसके प्रवेश होनेसे कोई चित्र इच्छा उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥ सुन्दर कान्तिवाली सती चन्द्रोदयसे स्फटिक पत्थरकी समान श्वेतवालूमें पीली रेखाके समान शिवको पाकर शोभित हुई ॥ २० ॥ तब प्रसन्न वह सती दोनों हाथ जोड भक्तवत्सल शिवसे फिर नम्र हो बोली ॥ २१ ॥ सती बोली हे

सकामस्य हरस्याग्रे स्थिता सा चारुहासिनी ॥ अकरोन्निजभावांश्च हावान्कामविवर्द्धनान् ॥ १७ ॥ ततोभावान्समादाय शृंगाराख्यो रसस्तदा ॥ तयोश्चित्ते विवेशाशुकला हावा यथोदितम् ॥ १८ ॥ तत्प्रवेशात्तु देवर्षे लोकलीलानुसारिणोः ॥ काप्यभिख्या तयोरासी च्चित्राचन्द्रमसोर्यथा ॥ १९ ॥ रेजे सती हरं प्राप्य स्निग्धभिन्नांजनप्रभा ॥ चन्द्राभ्याशेऽभ्रलेखेव स्फटिकोज्वलवर्ष्मणः ॥ २० ॥ अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः ॥ सुप्रसन्ना करौ बद्ध्वा नतका भक्तवत्सलम् ॥ २१ ॥ सत्युवाच ॥ देवदेव महादेव विवाहविधिना प्रभो ॥ पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृहाण जगत्पते ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं सतीवचः श्रुत्वा महेशो भक्तवत्सलः ॥ तथास्त्विति वचः प्राह निरीक्ष्य प्रेमतश्च ताम् ॥ २३ ॥ दाक्षायण्यपि तं नत्वा शंभुं विज्ञाप्य भक्तितः ॥ प्राप्ताज्ञा मातुरभ्याशमगान्मोहमुदान्विता ॥ २४ ॥ हरोपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम् ॥ दाक्षायणीवियोगाद्वै कृच्छ्रध्यानपरोऽभवत् ॥ २५ ॥ समाधाय मनः शंभुर्लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ चिंतयामास देवर्षे मनसा मां वृषध्वजः ॥ २६ ॥

जगत्पति देवोंके देव पिताके सन्मुख विवाहकी विधिसे आप मुझे स्वीकार कीजिये ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार भक्तवत्सल शिवजी सतीके वचनको सुन प्रेमलग्न उसको देख तथास्तु बोले ॥ २३ ॥ सतीभी शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर शिवकी आज्ञा पा प्रसन्न हो माताके समीप चली गई ॥ २४ ॥ शिवभी अपने आश्रमको जा सतीके वियोगसे ध्यानको घटादेतेभये ॥ २५ ॥ हे मुने सांसारिक गतिको स्वीकार कियेहुए शिवजीने चित्तसमाधान कर

मुझको ध्यानमें स्मरण किया ॥ २६ ॥ त्रिशूली शिवजीसे ध्यान कियाहुआ मैं शिवकी सिद्धिसे प्रेरित हो शीघ्र उनके समीप पहुंचगया ॥ २७ ॥
जहां सतीके वियोगमें शिवजी बैठे थे वहीं सरस्वतीके साथ मैं भी पहुंचगया ॥२८॥ वे सरस्वतीयुक्त मुझे देख उत्सुक सतीके प्रेममें बद्ध शिवजी बोले॥२९॥
शिवजी बोले हे ब्रह्माजी ! हम बडे स्वार्थी हैं जो इस समय आपको कष्ट दिया, अतएव इस समय मेरी स्वार्थता चमक रही है ॥ ३० ॥ दक्षपुत्री सतीने
मेरी आराधना बडे प्रेमसे की थी उससे मैंने नन्दाव्रतके प्रभावसे उसको यह वर दिया ॥ ३१ ॥ उन्होंने कहा कि आप मेरे पति होवैं और मैंने उनसे कहा

ततस्संचिंत्यमानोहं महेशेन त्रिशूलिना ॥ पुरस्तात्प्राविशंतूर्णं हरसिद्धिप्रचोदितः ॥ २७ ॥ यत्रासौ हिमवत्प्रस्थे तद्वियोगी हरः
स्थितः ॥ सरस्वतीयुतस्तात तत्रैव समुपस्थितः ॥ २८ ॥ सरस्वतीयुतं मां च देवर्षे वीक्ष्य स प्रभुः ॥ उत्सुकः प्रेमबद्धश्च सत्या
शंभुरुवाच ह ॥ २९ ॥ शंभुरुवाच ॥ अहं ब्रह्मन्स्वार्थपरः परिग्रहकृतौ च यत् ॥ तदा स्वत्वमिवस्वार्थे प्रतिभाति ममाधुना ॥ ३० ॥
अहमाराधितस्सत्यादाक्षायण्याथ भक्तितः ॥ तस्यै वरो मया दत्तो नंदाव्रतप्रभावतः ॥ ३१ ॥ भर्ता भवेति च तया मत्तो ब्रह्मन् वरो
वृतः ॥ मम भार्या भवेत्युक्तं मया तुष्टेन सर्वथा ॥ ३२ ॥ अथावदत्तदा मां सा सती दाक्षायणीत्विति ॥ पितुर्मे गोचरीकृत्य मां
गृहाण जगत्पते ॥ ३३ ॥ तदप्यंगीकृतं ब्रह्मन्मया तद्भक्तितुष्टितः ॥ सा गता भवनं मातुरहमत्रागतो विधे ॥ ३४ ॥ तस्मात्त्वं गच्छ
भवनं दक्षस्य मम शासनात् ॥ तां दक्षोपि यथा कन्यां दद्यान्मेऽरं तथा वद ॥ ३५ ॥ सतीवियोगभंगस्स्याद्यथा मे त्वं तथा कुरु ॥
समाश्वासय तं दक्षं सर्वविद्याविशारदः ॥ ३६ ॥

कि आप मेरी वामांगी होवैं ॥ ३२ ॥ फिर सतीने कहा कि आप मुझे पिताके सन्मुख विवाहविधिसे स्वीकार करलेंवे ॥ ३३ ॥ उसकी भक्तिसे प्रसन्न
हो मैंने वहभी स्वीकार कर लिया वे अपनी माताके समीप गईं और मैं यहां चला आया ॥ ३४ ॥ अतः आप मेरी आज्ञासे दक्षसे जाकर कहदीजिये
जिसमें कि वे शीघ्रही अपनी कन्याको मुझे देदेवें ॥ ३५ ॥ मुझसे सतीका वियोग छूटजावै वैसेही सब विद्याविशारद आप दक्षको समझादेवें ॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले दक्षके समीप जानेके लिये मुझसे कह सरस्वतीको देख शिवजी सतीके वियोगमें मग्न हो गये॥ ३७॥ उनसे आज्ञा पा कृतकृत्य प्रसन्न मैं जगत्पति
भक्तवत्सल उनसे कहने लगा ॥ ३८॥ ब्रह्माजी बोले हे भगवन् शंभु जो कुछ आपने विचार कर निश्चित कियाहै उसमें मेरा और देवताओंहीका हितहै॥ ३९॥
दक्ष स्वयं अपनी कन्या आपको देवेंगे मैं भी आपके वचन को दक्षसे कहूंगा ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले सबके ईश्वर प्रभु महादेवजीके यह कहनेपर अत्यन्त
वेगसे युक्त रथपर सवारहो मैं दक्षके भवनमें आया ॥ ४१ ॥ नारदजी बोले हे विधे ! महाभाग कहनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यह मुझसे कहिये कि उसके गृह आनेपर

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युदीर्य महादेवस्सकाशे मे प्रजापतेः ॥ सरस्वतीं विलोक्याशु वियोगवशगोभवत् ॥ ३७ ॥ तेनाहमपि चाज्ञतः
कृतकृत्यो मुदान्वितः ॥ प्रावोचं चेति जगतां नाथं तं भक्तवत्सलम् ॥ ३८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदात्थ भगवञ्शम्भो तद्विचार्य सुनि
श्चितम् ॥ देवानां मुख्यस्स्वार्थो हि ममापि वृषभध्वज ॥ ३९ ॥ दक्षस्तुभ्यं सुतां स्वां च स्वयमेव प्रदास्यति ॥ अहं चापि वदिष्यामि
त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः ॥४०॥ ॥ब्रह्मोवाच ॥ इत्युदीर्य्य महादेवमहं सर्वेश्वरं प्रभुम् ॥ अगमं दक्षनिलयं स्यंदनेनातिवेगिना ॥ ४१ ॥
॥ नारद उवाच ॥ विधे प्राज्ञ महाभाग वद नो वदतां वर ॥ सत्यै गृहागतायै स दक्षः किमकरोत्ततः ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
तपस्तत्वा वरं प्राप्य मनोभिलषितं सती ॥ गृहं गत्वा पितुर्मातुः प्रणाममकरोत्तदा ॥ ४३ ॥ मात्रे पित्रेथ तत्सर्वं समाचख्यौ महे
श्वरात् ॥ वरप्राप्तिः स्वसख्या वै सत्यास्तुष्टस्तुभक्तितः ॥ ४४ ॥ माता पिता च वृत्तांतं सर्वं श्रुत्वा सखीमुखात् ॥ आनन्दं परमं
लेभे चक्रे च परमोत्सवम् ॥४५॥ द्रव्यं ददौ द्विजातिभ्यो यथाभीष्टमुदारधीः ॥ अन्येभ्यश्चांधदीनेभ्यो वीरिणी च महामनाः॥ ४६ ॥

दक्षने क्या किया ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले सतीने तपके द्वारा मनोभिलषित वर पाकर घरमें आय मातापिताको प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ फिर सतीकी
भक्तिसे प्रसन्नहो जिसप्रकार सतीने महादेवजीसे वर पाया वह सब वृत्त उनकी सखीने मातापितासे कहा ॥ ४४ ॥ मातापिताने सखीके मुखसे सब वृत्तान्त
सुनकर परम आनन्दमें मग्नहो बडा उत्सव किया ॥ ४५ ॥ अत्यन्त उत्साहवाली वीरिणीने उदार बुद्धिसे ब्राह्मण और अंधे दीनोंको उनकी रुचिके

अनुसार द्रव्य दिया ॥४६॥ वीरिणी माता प्रीतिके बढानेवाली उस अपनी पुत्रीका आलिंगनकर प्रसन्नतासे मस्तक सूंघ वारम्वार प्रशंसा करतीहुई ॥४७॥
अब कुछ कालके बीतनेपर धर्मके जाननेवाले दक्ष विचारने लगे कि इस कन्याको किस प्रकार महादेवजीको दें ॥ ४८ ॥ श्रीमहादेवजी आकर यहाँसे
प्रसन्न होगये अब वह फिर किसप्रकार कन्याके लिये यहाँ आवेंगे ॥ ४९ ॥ यदि मैं किसीको शिवके समीप भेजूं तो यह योग्य नहीं. कदाचित् वह न
अंगीकार करैं तो यह उद्योगही व्यर्थ होगा ॥५०॥ अथवा भक्तिसे उन्हीं वृषभध्वज शिवका पूजन करूंगा जिसमें वह मेरी कन्याके स्वयं पति होवें ॥५१॥

वीरिणी तां समालिंग्य स्वसुतां प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय मुदिता प्रशशंस मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ अथ दक्षः कियत्काले व्यतीते
धर्मवित्तमः ॥ चिंतयामास देयेयं स्वसुता शम्भवे कथम् ॥ ४८ ॥ आगतोपि महादेवः प्रसन्नस्सजगाम ह ॥ पुनरेव कथं सोपि
सुतार्थेऽत्रागमिष्यति ॥ ४९ ॥ प्रस्थाप्योथ मया कश्चिच्छंभोर्निकटमंजसा ॥ नैतद्योग्यं निगृह्णीयाद्यद्येवं विफलार्दना ॥ ५० ॥
अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम् ॥ मदीयतनयाभक्त्या स्वयमेव यथा भवेत्॥५१॥तयैव पूजितस्सोपि वांछत्यार्यप्रयत्नतः ॥
शंभुर्भवतु मद्भर्त्तेत्येवं दत्तवरेण तत् ॥५२॥ इति चिंतयतस्तस्य दक्षस्य पुरतोऽन्वहम् ॥ उपस्थितोहं सहसा सरस्वत्यन्वितस्तदा॥५३॥
मां दृष्ट्वा पितरं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः ॥ आसनं च ददौ मह्यं स्वभवाय यथोचितम् ॥ ५४ ॥ ततो मां सर्वलोकेशंतत्रागमन
कारणम् ॥ दक्षः पप्रच्छ स क्षिप्रं चिंताविष्टोपि हर्षितः ॥ ५५ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ तवात्रागमने हेतुः कः प्रवेशे स सृष्टिकृत् ॥ ममो
परि सुप्रसादं कृत्वाचक्ष्वजगद्गुरो ॥ ५६ ॥ पुत्रस्नेहात्कार्यवशादथ वा लोककारक ॥ ममाश्रमं समाया तो हृष्टस्य तव दर्शनात् ॥ ५७ ॥

और उनसे पूजित वे उनको भार्या बनानेकी इच्छा प्रगट करैंगे और शिवजी उनके पति होंगे जैसा कि प्रथम वर प्राप्त हो चुका है ॥ ५२ ॥ इसप्रकार
चिंता करते हुये दक्षके समीप सरस्वतीसे युक्त मैं सहसा उपस्थित हुवा ॥ ५३ ॥ दक्षने मुझ पिताको देख मस्तकझुका प्रणामकर अपने कल्याणके निमित्त
मुझे यथोचित आसन दिया ॥ ५४ ॥ चिंतासे व्याकुल होनेपरभी दक्षने प्रसन्नहो मुझ सम्पूर्ण लोकोंके कर्ताको देख शीघ्रही अपने यहाँके आगमनका
कारण पूँछा ॥ ५५ ॥ दक्ष बोला हे सृष्टिके करनेवाले जगत्के गुरु मुझपर प्रसन्नहो अपने यहाँ आनेका हेतु कहिये ॥ ५६ ॥ हे लोकके करनेवाले !

आपके दर्शनसे संतुष्ट मेरे आश्रममें पुत्रके प्रेमसे अथवा किसी दूसरे कार्यसे आप आये ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिसत्तम ! अपने पुत्र दक्षके इसप्रकार पूंछनेपर प्रजापति दक्षको प्रसन्न करताहुआ मैं बोला ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा बोले हे दक्ष ! जिसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूं वह तुम सुनो तुमसे अधिक और कौन मेरा हेतुहै जिसलिये मैं तुम्हारे पास आयाहूं वह तुम्हें भी ईप्सितहै ॥ ५९ ॥ तुम्हारी पुत्रीने जगत्पति महादेवकी आराधना करके जो वर मांगा है अब यह उसका समय उपस्थित हुआ है ॥ ६० ॥ महादेवजीने तुम्हारी पुत्रीके लिये शीघ्रही मुझे तुम्हारे समीप भेजा है इसमें जो उत्तम कृत्य हो उसे

ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टस्स्वपुत्रेण दक्षेण मुनिसत्तम ॥ विहसन्नब्रुवं वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम् ॥ ५८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु दक्ष यदर्थं त्वत्समीपमहमागतः ॥ त्वत्तोकस्य हितं मेपि भवतोपि तदीप्सितम् ॥ ५९ ॥ तव पुत्री समाराध्य महादेवं जगत्पतिम् ॥ यो वरः प्रार्थितस्तस्य समयोयमुपागतः ॥ ६० ॥ शंभुना तव पुत्र्यर्थं त्वत्सकाशमहं ध्रुवम् ॥ प्रस्थापितोस्मि यत्कृत्यं श्रेयस्तदवधारय ॥ ६१ ॥ वरं दत्त्वा गतो रुद्रस्तावत्प्रभृति शंकरः ॥ त्वत्सुताया वियोगेन न शर्म लभतेंजसा ॥ ६२ ॥ अलब्धच्छिद्रमदनो जिगाय गिरिशं न यम् ॥ सर्वैः पुष्पमयैर्बाणैर्यत्नं कृत्वापि भूरिशः ॥ ६३ ॥ स कामबाणविद्धोपि परित्यज्यात्मचिंतनम् ॥ सतीं विचिंतयन्नास्ते व्याकुलः प्राकृतो यथा ॥ ६४ ॥ विस्मृत्य प्रश्रुतां वाणीं गणाग्रे विप्रयोगतः ॥ क्व सतीत्येवमभितो भाषते निकृतावपि ॥ ६५ ॥ मया यद्वांछितं पूर्वं त्वया च मदनेन च ॥ मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत्सिद्धमधुना सुत ॥ ६६ ॥ त्वत्पुत्र्याराधितश्शंभुस्सोपि तस्या विचिंतनात् ॥ अनुशोधयितुं प्रेप्सुर्वर्त्तते हिमवद्गिरौ ॥ ६७ ॥

ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ श्रीशंकरजी वर देकर जबसे गये तबसे तुम्हारी पुत्रीके वियोगसे उन्हें कल नहीं पडती ॥ ६२ ॥ जिसका भेद नहीं प्राप्त हो सकता ऐसा वह काम भी अपने सब पुष्पोंके बाणोंसे उनको अनेक प्रकारके यत्न करके भी न जीत सका इससमय उसने इन्हें जीतलिया है ॥ ६३ ॥ वह कामबाणसे विद्ध आत्मचिंतनको छोड प्राकृत मनुष्यके समान व्याकुल हो. सतीके चिंतनमें प्रवृत्त हैं ॥ ६४ ॥ उस प्रश्रुतवाणीको भूल गणोंके सन्मुख सती कहां हैं इसप्रकारके शब्द कहते हैं ॥ ६५ ॥ मैं तुम काम और मरीच्यादिको जो पहिले चाहा था हे सुत ! वह अब सिद्ध है ॥ ६६ ॥ तुम्हारी पुत्रीने

शंभुकी तपस्या की और वे भी उत्सुकहो उनके चिंतनमें मग्न हिंमालयपर्वत पर हैं ॥ ६७ ॥ जैसे नंदाव्रतसे नानाभावोंसे सतीने शंभुकी आराधना की वैसी ही शंभुने सतीकी इच्छा की है ॥ ६८ ॥ हे दक्ष ! इसलिये शंभुके अर्थ कन्याको अलंकृत कर शीघ्रही उनको दो ॥ ६९ ॥ मैं और नारद उनको तुम्हारे स्थानमें लाऊंगा और उनके लिये तुम इस कन्याको अलंकृतकर उनको देदो ॥ ७० ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार वचन सुन मेरे पुत्र दक्ष प्रसन्नहो मुझसे बोले कि ऐसाही होगा ॥ ७१ ॥ हे मुने ! तब मैं अत्यन्त हर्षित हो वहां आया जहां लोकमें रत अत्यंत उत्सुक महादेवजी थे ॥ ७२ ॥ हे नारद मेरे

यथा नानाविधैर्भावैस्सत्त्वात्तेन व्रतेन च ॥ शंभुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती ॥ ६८ ॥ तस्मात्तु दक्षतनयां शंभ्वर्थं परिकल्पिताम् ॥ तस्मै देह्यविलंबेन कृता ते कृतकृत्यता ॥ ६९ ॥ अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम् ॥ तस्मै त्वमेनां संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम् ॥ ७० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा मम वचश्चेति स मे पुत्रोतिहर्षितः ॥ एवमेवेतिमां दक्ष उवाच परिहर्षितः ॥ ७१ ॥ ततस्सोहं मुने तत्रागममत्यंतहर्षितः ॥ उत्सुको लोकनिरतो गिरिशो यत्र संस्थितः ॥ ७२ ॥ गते नारद दक्षोपि सदारतनयो ह्यपि ॥ अभवत्पूर्णकामस्तु पीयूषैरिव पूरितः ॥ ७३ ॥ ॥ इति श्रीशैवे महापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सतीवरलाभो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ रुद्रपार्श्वे त्वयि गते किमभूच्चरितं ततः ॥ का वार्ता ह्यभवत्तात किं चकार हरः स्वयम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथाहं शिवमानेतुं प्रसन्नः परमेश्वरम् ॥ आसदं हि महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम् ॥ २ ॥ मां वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायांतं वृषभध्वजः ॥ मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥

चलेजानेके पीछे सकुटुम्ब दक्ष भी मानो अमृतसे पूरित हो पूर्णकाम होगये ॥७३॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितांतर्गतद्वितीयसतीखंडे सतीवरलाभो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ नारदजी बोले, आपको रुद्रके समीप जानेपर क्या चरित्र और क्या वार्त्ता हुई और स्वयं महादेवजीने क्या किया सो कहो॥ १ ॥ब्रह्मा बोले, उसके पीछे मैं प्रसन्नतासे हिमालय पर्वतपर स्थित परमेश्वर महादेव शिवको लानेके निमित्त गया॥ २ ॥ वृषभध्वज महादे

वजीने लोकके करनेवाले मुझको आतेहुये देख मनमें सतीके प्राप्तिकी वारंवार चिंतना की ॥ ३ ॥ महादेवजी अपनी लीलासे लोककी गतिमें स्थित हो प्राकृत मनुष्यके समान सतीकी भक्तिसे मुझसे शीघ्रही बोले ॥ ४ ॥ ईश्वर बोले, हे देवतोंमें ज्येष्ठ ! उस आपके पुत्रने मेरे निमित्त सतीके प्रति क्या विचार किया वह कहिये जिसमें मन्मथ मेरे अंतःकरणको न विदीर्ण करै ॥ ५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! वियोगी मैं शिव अन्य वामाको छोड सतीहीकी इच्छा करताहूं अन्यके प्रति मेरा मन नहीं है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्माजी ! आप निरंतर यही सतीसे कहैं कि मैं निरंतर तुम्हारा ध्यानरूप कार्य करताहूं वह मेरी अभेद

अथ प्रीत्या हरो लोके गतिमाश्रित्य लीलया ॥ सत्या भक्त्या च मां क्षिप्रमुवाच प्राकृतो यथा ॥ ४ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ किम
कार्षीत्सुरज्येष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुतस्स माम् ॥ कथयस्व यथा स्वांतं न दीर्येँ मन्मथेन हि ॥ ५ ॥ धावमानो विप्रयोगो मामेव च सतीं
प्रति ॥ अभिहंति सुरज्येष्ठ त्यक्त्वान्यां प्राणधारिणीम् ॥ ६ ॥ सतीति सततं ब्रह्मन् वद कार्यं करोम्यहम् ॥ अभेदान्मम सा
प्राप्या तद्विधे क्रियतां तथा ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति रुद्रोक्तवचनं लोकाचारसुगर्भितम् ॥ श्रुत्वाहं नारदमुने सांत्वयन्नगदं
शिवम् ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यर्थं यन्मम सुतो वदतिस्म वृषध्वज ॥ तच्छृणुष्व निजासाध्यं सिद्धमित्यवधारय ॥ ९ ॥
देया तस्मै मया पुत्री तदर्थं परिकल्पिता ॥ ममाभीष्टमिदं कार्यं त्वद्वाक्यादधिकं पुनः ॥ १० ॥ मत्पुत्र्याराधितश्शंभुरेतदर्थं स्वयं
पुनः ॥ सोप्यन्विष्यति मां यस्मात्तदा देया मया हरे ॥ ११ ॥ शुभे लग्ने सुमुहूर्ते समागच्छतु सोंतिकम् ॥ तदा दास्यामि तनयां
भिक्षार्थं शंभवे विधे ॥ १२ ॥

प्रिया होजाँय हे विधाता ! सो आप करैं ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी इस प्रकार रुद्रजीके लोकाचारके वचन सुन मैं समझाताहुआ शिवजीसे बोला ॥ ८ ॥ हे वृषभध्वज ! सतीके विषयमें जो मेरा पुत्र कहताहै वह सुनिये उस कार्यको साध्य और सिद्ध समुझिये ॥ ९ ॥ उन्हींके अर्थ परिकल्पित इस पुत्रीको मैं उन्हें दूंगा यह मेरा अभीष्ट कार्यहै फिर तिसपर आपकी आज्ञा ॥ १० ॥ मेरी पुत्रीने इसी निमित्त शम्भुकी आराधना कीहै और वह भी मुझसे इच्छा करतेहैं इस हेतु मैं महादेवजीको दूंगा ॥ ११ ॥ हे विधि ! शुभलग्न शुभमुहूर्त्तमें वह आवैं तब मैं महादेवजीको भिक्षाके अर्थ कन्यादूं ॥ १२ ॥

हे वृषभध्वज ! दक्षने यह मुझसे कहाहै इसहेतु आप शुभलग्न शुभमुहूर्त्तमें उनके घर जाइये ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले, हे मुने ! लौकिकी गतिका आश्रय ले भक्तवत्सल रुद्र इन मेरे वचनोंको सुन हँसकर मुझसे बोले ॥ १४ ॥ रुद्र बोले, तुम्हारे और नारदके साथ मैं उनके घर जाऊंगा इसलिये हे जगत्‌के रचनेवाले ब्रह्मा ! आप नारदका स्मरण करैं ॥ १५ ॥ हे विधे ! मरीच्यादि अपने मानसपुत्रोंका भी स्मरण करो उनके साथ गणोंके सहित मैं दक्षके स्थानको चलूंगा ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले, लोकाचारसे युक्त ईशने जब इसप्रकार मुझे आज्ञा दी तब मैंने तुम नारदका और अपने पुत्र मरीच्यादिकोंका

इत्युवाच स मां दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ॥ शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामत्रगच्छच ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा मम वचो लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ उवाच विहसन्रुद्रो मुने मां भक्तवत्सलः ॥ १४ ॥ ॥ रुद्रउवाच ॥ गमिष्ये भवतासार्द्धं नारदेन च तद्गृहम् ॥ अहमेव जगत्स्रष्टस्तस्मात्त्वं नारदं स्मर ॥ १५ ॥ मरीच्यादीन् स्वपुत्रांश्च मानसानपि संस्मर ॥ तैः सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्ये सगणो विधे ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याज्ञप्तोहमीशेन लोकाचारपरेण ह ॥ संस्मरं नारदं त्वां च मरीच्यादीन्सुतांस्तथा ॥ १७ ॥ ततस्समागतास्सर्वे मानसास्तनयास्त्वया ॥ मम स्मरणमात्रेण हृष्टास्ते द्रुतमादरात् ॥ १८ ॥ विष्णुस्समागतस्तूर्णं स्मृतो रुद्रेण शैवराट् ॥ सस्वसैन्यः कमलया गरुडारूढएव च ॥ १९ ॥ अथ चैत्रसिते पक्षे नक्षत्रे भगदैवते ॥ त्रयोदश्यां दिने भानौ निर्गच्छत्स महेश्वरः ॥ २० ॥ सर्वैस्सुरगणैस्सार्द्धं ब्रह्मविष्णुपुरस्सरैः ॥ तथा तैर्मुनिभिर्गच्छन् स बभौ पथिशंकरः ॥ २१ ॥ मार्गे समुत्सवो जातो देवादीनां च गच्छताम् ॥ तथा हरगणानां च सानंदमनसामति ॥ २२ ॥

स्मरण किया ॥ १७ ॥ तब मेरे स्मरणमात्रसे शीघ्रही प्रसन्नहो तुम और मरीच्यादि मेरे मानसपुत्र आगये ॥१८॥ और रुद्रके स्मरण करनेपर लक्ष्मीसह गरुडारूढ शैवराज ससैन्य विष्णु शीघ्रही आगये ॥१९॥ चैत्र शुक्लपक्ष त्रयोदशी रविवार पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें शिवजीने यात्रा की ॥२०॥ ब्रह्मा विष्णुआदि सम्पूर्ण देवता और मुनियोंके साथ जातेहुये मार्गमें श्रीशिवजी अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ अत्यन्त आनन्दसे युक्त देवता और हरगणोंके मार्गमें

चलनेपर बडाही उत्सव हुआ ॥ २२ ॥ शिवकी आज्ञासे यथायोग्य भूषणके निमित्त हाथी गऊ बाघ सर्प जटा चन्द्रमाकी कलायुक्त जाते हुए ॥ २३ ॥
वेगवान् बलीवर्दके द्वारा विष्णु आदि देवताओं सहित प्रसन्नतापूर्वक महादेवजी दक्षके स्थानमें पहुँचगये ॥ २४ ॥ विनीत आत्मा दक्ष सम्पूर्ण अपने
सहचरोंको साथ ले प्रसन्नहो रुद्रके सन्मुख गये ॥ २५ ॥ फिर दक्षने सम्पूर्ण देवता और समीपमें स्थित मुनियोंका यथायोग्य सत्कार किया ॥ २६ ॥
फिर सम्पूर्ण देवता और मुनियोंको परिवारित करके दक्ष शिवजीको अपने घरमें लेगये ॥ २७ ॥ और प्रसन्नतापूर्वक दक्षने सर्वेश्वर हरका विधिवत् पूजनकर

गजगोव्याघ्रसर्पाश्च जटा चंद्रकला तथा ॥ जग्मुस्सर्वे भूषणत्वं यथायोग्यं शिवेच्छया ॥२३॥ ततः क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना ॥
स विष्णुप्रमुखः प्रीत्या प्राप दक्षालयं हरः ॥ २४ ॥ ततो दक्षो विनीतात्मा संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ प्रययौ सन्मुखं तस्य संयुक्तस्सकलैर्निजैः
॥ २५ ॥ सर्वे सुरगणास्तत्र स्वयं दक्षेण सत्कृताः ॥ पार्श्वे श्रेष्ठं च मुनिभिरुपविष्टा यथाक्रमम् ॥ २६ ॥ परिवार्याखिलान्देवान्गणांश्च
मुनिभिर्यथा ॥ दक्षस्समानयामास गृहाभ्यंतरतश्शिवम् ॥ २७ ॥ अथ दक्षः प्रसन्नात्मा स्वयं सर्वेश्वरं हरम् ॥ समानर्च विधानेन
दत्त्वासनमनुत्तमम् ॥ २८ ॥ ततो विष्णुं च मां विप्रान्सुरान्सर्वान्गणांस्तथा ॥ पूजयामास सद्भक्त्या यथोचितविधानतः ॥ २९ ॥
कृत्वा यथोचितां पूजां तेषां पूज्यादिभिस्तथा ॥ चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥ ३० ॥ ततो मां पितरं प्राह दक्षः
प्रीत्या हि मत्सुतः ॥ प्रणिपत्य त्वया कर्म कार्यं वैवाहिकं विभो ॥ ३१ ॥ वाढमित्यहमप्युक्त्वा प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ समुत्थाय ततोऽ
कार्षं तत्कार्यमखिलं तथा ॥ ३२ ॥

उत्तम आसन दिया ॥ २८ ॥ फिर यथा उचित विधानसे भक्तिपूर्वक दक्षने विष्णु मुझ ब्रह्मा मुनिगण और सम्पूर्ण देवताओंका पूजन किया ॥ २९ ॥
इसप्रकार पूजा आदिसे दक्षने उन सबका सत्कार कर मानसमुनियोंके साथ आसनादिका सत्कार किया ॥ ३० ॥ मेरे सुत दक्ष प्रसन्नतापूर्वक मुझ
अपने पितासे प्रणाम कर बोले कि हे विभो ! आप विवाहके कार्योंको कीजिये ॥ ३१ ॥ तब प्रसन्नहो बहुत अच्छा कह उठकर मैंने सम्पूर्ण कार्योंको

किया ॥ ३२ ॥ शुभमुहूर्त और ग्रहोंकरके बली लग्नमें दक्षने अपनी कन्या सतीको हर्षपूर्वक महादेवजीको दिया ॥ ३३ ॥ दक्षकी स्त्रीके द्वारा पूजित वृषभध्वजने विवाहकी विधिसे हर्षितहो सतीके पाणिका ग्रहण किया ॥ ३४ ॥ फिर मैं, हरि, तुमको आदिले सम्पूर्ण मुनि और देवतागण नमस्कार कर स्तुस्तिके द्वारा ईश्वरको प्रसन्न करने लगे ॥ ३५॥ नृत्यगानके द्वारा बडाही उत्सव हुवा और सम्पूर्ण देवताओंसहित मुनिगण परमआनंदको प्राप्त हुये ॥ ३६॥ कन्याको देकर मेरे सुत दक्ष कृतार्थहुये और सम्पूर्ण मंगलके स्थान शिवपार्वती दोनों प्रसन्न हुये ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां

ततश्शुभे मुहूर्ते हि लग्ने गृहबलान्विते ॥ सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शंभवे ॥ ३३ ॥ उद्वाहविधिना सोपि पाणिं जग्राह हर्षितः ॥ दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः ॥ ३४ ॥ अहं हरिस्त्वदाद्या वै मुनयश्च सुरा गणाः ॥ नेमुस्सर्वे संस्तुतिभिस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥ ३५ ॥ समुत्सवो महानासीन्नृत्यगानपुरस्सरः ॥ आनन्दं परमं जग्मुस्सर्वे मुनिगणाः सुराः ॥ ३६ ॥ कन्यां दत्वा कृतार्थोभूत्तदा दक्षो हि मत्सुतः ॥ शिवाशिवौ प्रसन्नौ च निखिलं मंगलालयम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे कन्यादानवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृत्वा दक्षस्सुतादानं यौतकं विविधं ददौ ॥ हराय सुप्रसन्नश्च द्विजेभ्यो विविधं धनम् ॥ १ ॥ अथ शंभुमुपागत्य समुत्थाय कृतांजलिः ॥ सार्द्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वजः ॥ २ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ त्वं पिता जगतां तात सती माताखिलस्य च ॥ ३ ॥ युवां लीलावतारौ वै सतां क्षेमाय सर्वदा ॥ खलानां निग्रहार्थाय श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ४ ॥

रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे कन्यादानवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले, दक्षने प्रसन्न होकर कन्यादान कर महादेवजीको बहुत कुछ दायज दे ब्राह्मणोंको बहुत द्रव्य दिया ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहित गरुडध्वज विष्णु उठकर हाथ जोड शिवके समीप आकर बोले ॥ २ ॥ विष्णु बोले हे देवोंके देव ! महादेव हे करुणासागर प्रभु ! आप संसारके पिताहैं और सती अखिलसंसारकी माता हैं ॥ ३ ॥ सर्वदा सज्जनोंके कल्याणके निमित्त और

खलोंके निग्रहके हेतु आप दोनों लीलावतारीहैं यह सनातनी श्रुतिहै ॥ ४ ॥ हे हर ! आप चिकने नीलअंजनकी श्याम शोभाके समान दक्षकन्यासे शोभितहैं जैसे विपरीततासे लक्ष्मी और मैं ॥ ५ ॥ हे शिव ! इस सतीसे युक्त आप देवता और मनुष्योंकी रक्षा कर संसारियोंका सर्वदा मंगल कीजिये ॥६॥ हे सम्पूर्णप्राणियोंके ईश ! जो इनको साभिलाष देखैं अथवा सुनै उसका हनन कीजिये हे प्रभु ! यह मेरी प्रार्थना है ॥७॥ ब्रह्मा बोले परमेश्वर सर्वज्ञ शिवजी इन विष्णुके वचनोंको सुन हँसकर मधुसूदनसे एवमस्तु कहते हुए ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर ! उसके पीछे हरिजी अपने स्थानमें आकर उत्सवकरके स्थित हो

स्निग्धनीलांजनश्यामशोभया शोभसे हर ॥ दाक्षायण्या यथा चाहं प्रतिलोमेन पद्मया ॥ ५ ॥ देवानां वा नृणां रक्षां कुरु सत्याऽनया सताम् ॥ संसारसारिणां शम्भो मंगलं सर्वदा तथा ॥ ६ ॥ य एनां साभिलाषो वै दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत् ॥ तं हन्यास्सर्वभूतेश विज्ञप्तिरिति मे प्रभो ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्विहस्य परमेश्वरः ॥ एवमस्त्विति सर्वज्ञः प्रोवाच मधुसूदनम् ॥ ८ ॥ स्वस्थानं हरिरागत्य स्थित आसीन्मुनीश्वर ॥ उत्सवं कारयामास जुगोप चरितं च तत् ॥ ९ ॥ अहं देवीं समागत्य गृह्योक्तविधिनाऽखिलम् ॥ अग्निकार्यं यथोद्दिष्टमकार्षं च सुविस्तरम् ॥ १० ॥ ततश्शिवा शिवश्चैव यथाविधि प्रहृष्टवत् ॥ अग्नेः प्रदक्षिणं चक्रे मदाचार्यद्विजाज्ञया ॥ ११ ॥ तदा महोत्सवस्तत्राद्भुतोभूद्द्विजसत्तम ॥ सर्वेषां सुखदं वाद्यं गीतनृत्यपुरस्सरम् ॥ १२ ॥ तदानीमद्भुतं तत्र चरितं समभूदति ॥ सुविस्मयकरं तात तच्छृणु त्वं वदामि ते ॥ १३ ॥ दुर्ज्ञेया शांभवी माया तया संमोहितं जगत् ॥ सचराचरमत्यंतं सदेवासुरमानुषम् ॥ १४ ॥

उस चरित्रको छिपाते भये ॥ ९ ॥ और मैंने देवीके समीप आकर गृह्योक्तविधिसे विस्तारपूर्वक यथोद्दिष्ट अग्निका कार्य किया ॥ १० ॥ उसके पीछे मुझे ब्राह्मणआचार्यकी आज्ञासे शिवा और शिवने यथाविधि प्रसन्नहो अग्निकी प्रदक्षिणा की ॥ ११ ॥ हे नारद ! तब गीत नृत्यके द्वारा सबको सुखदेनेवाला अद्भुत महाउत्सव हुवा ॥ १२ ॥ हे तात ! उससमय वहां विस्मयके करनेवाला अद्भुत चरित्र हुवा सो तुमसे कहताहूँ उसे सुनो ॥ १३ ॥ शंकरकी माया

दुःखसे जानने योग्यहै उसीने चर अचर मनुष्योंसे युक्त संसार और देवताओंको मोहित कररक्खा है ॥ १४ ॥ जो मैं कपटके द्वारा पूर्वही शंकरको मोहित करना चाहताथा हे तात ! उन्हीं शंकरने मुझको अपनी लीलासे मोहित कर लिया ॥ १५ ॥ जो दूसरेका अपकार चाहताहै उसका शीघ्रही वह होजाताहै यह मानकर पुरुष किसीका अपकार न करै ॥ १६ ॥ हे मुने ! अग्निकी सतीके पदद्वय परिक्रमा करनेपर वस्त्र उडनेसे जो पदका दर्शन हुआ उसे देख मैं ॥ १७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शिवमायासे मोहित मदनसे आविष्टचित्त हो अंगोंका अवलोकन करनेलगा ॥ १८ ॥ कौतुकसे सतीके जैसे

योऽहं शंभुं मोहयितुं पुरैच्छं कपटैन ह ॥ मां च तं शंकरस्तात मोहयामास लीलया ॥ १५ ॥ इच्छेत्परापकारं यस्स तस्यैव भवे द्ध्रुवम् ॥ इति मत्वाऽपकारं नो कुर्यादन्यस्य पूरुषः ॥ १६ ॥ प्रदक्षिणां प्रकुर्वंत्या वह्नेस्सत्याः पदद्वयम् ॥ आविर्बभूव वसनात्तदद्राक्ष महं मुने ॥ १७ ॥ मदनाविष्टचेताश्च भूत्वांगानि व्यलोकयम् ॥ अहं सत्या द्विजश्रेष्ठ शिवमायाविमोहितः ॥ १८ ॥ यथा यथाहं रम्याणि व्यैक्षमंगानि कौतुकात् ॥ सत्या बभूव संहृष्टः कामार्तो हि तथा तथा ॥ १९ ॥ अहमेवं तथा दृष्ट्वा दक्षजां च पतिव्रताम् ॥ स्मराविष्टमना वक्रं द्रष्टुकामोभवं मुने ॥२०॥ न शंभोर्लज्जया वक्रं प्रत्यक्षं च विलोकितम् ॥ न च सा लज्जयाविष्टा करोति प्रगटं मुखम् ॥ २१ ॥ ततस्तद्दर्शनार्थाय सदुपायं विचारयन् ॥ धूम्रघोरेण कामार्तोऽकार्षं तच्च ततः परम् ॥ २२ ॥ आर्द्रैंधनानि भूरीणि क्षिप्त्वा तत्र विभावसौ ॥ स्वल्पाज्याहुतिविन्यासादार्द्रद्रव्योद्भवस्तथा ॥ २३ ॥ प्रादुर्भूतस्ततो धूमो भूयांस्तत्र समंततः ॥ तादृग् येन तमो भूतं वेदीभूमिविनिर्मितम् ॥ २४ ॥

जैसे उत्तम अंगोंको देखे तिसी तिसी तरह प्रसन्न होताहुआ ॥ १९ ॥ हे मुने दक्षसे उत्पन्न हुई पतिव्रता सतीको इसप्रकार देख मैं कामसे आविष्टाचित्त हो मुख देखनेकी इच्छा करनेलगा ॥ २० ॥ न मैंने शिवकी लज्जासे उनका मुख देखा और न उन्होंने लज्जाके मारे मुख खोला ॥ २१ ॥ कामसे दुःखी मैंने उसके देखनेके लिये अत्यन्त धुआं करनेकी इच्छा की इसका मुख देखैं यही विचारते हुये मैंने उसके पीछे यह किया कि ॥ २२ ॥ अग्निमें खूब गीली लकडी छोडी और धीरे २ थोडी आहुतिके छोडनेसे गीले द्रव्योंसे उत्पन्न ॥ २३ ॥ बहुत धुआं चारोंओरसे फैलगया और धूमाधिक्य

होनेके कारण वेदीके आसपासकी पृथ्वी धूमयुक्त होगई ॥ २४ ॥ नाना लीलाओंके करनेवाले समर्थ परमेश्वर शिवने धूमसे व्याकुल दोनों हाथोंसे
अपने नेत्र मूँद लिये ॥ २५ ॥ फिर प्रसन्न हो कामार्त मैंने सतीके मुखके वस्त्रको हटा सतीके मुखको देखा ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! मैं बार बार सतीके
मुखको देखनेलगा और इन्द्रियविकारकोभी प्राप्त होताहुआ ॥ २७ ॥ और मेरा चार बिन्दु वीर्य्य पृथिवीपर गिरगया ॥ २८ ॥ तब चकित मौनी मैं
अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त होगया और उस वीर्यको छिपाया जिसमें और कोई न जाने ॥ २९ ॥ भगवान् शम्भु दिव्य चक्षुसे यह वीर्यस्खलन जान क्रुद्ध

ततो धूमाकुले नेत्रे महेशः परमेश्वरः ॥ हस्ताभ्यां छादयामास बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ २५ ॥ ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सतीवक्रमहं मुने ॥
अवेक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ २६ ॥ मुहुर्मुहुरहं तात पश्यामि स्म सतीमुखम् ॥ अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि
सोऽवशः ॥ २७ ॥ मम रेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद्भुतम् ॥ चतुर्बिन्दुमितं भूमौ तुषारचयसंनिभम् ॥ २८ ॥ ततोहं शंकितो मौनी
तत्क्षणं विस्मितो मुने ॥ आच्छादयेस्म तद्रेतो यथा कश्चिद्बुबोध न ॥ २९ ॥ अथ तद्भगवाञ्छंभुर्ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ रेतोवस्कं
दनात्तस्य कोपादेतदुवाचह ॥ ३० ॥ रुद्र उवाच ॥ किमेतद्विहितं पाप त्वया कर्म विगर्हितम् ॥ विवाहे मम कांताया वक्रं दृष्टं न
रागतः ॥ ३१ ॥ त्वं वेत्सि शंकरेणैतत्कर्म ज्ञातं न किंचन ॥ त्रैलोक्येपि न मेऽज्ञातं गूढं तस्मात्कथं विधे ॥ ३२ ॥ यत्किंचित्त्रिषु
लोकेषु जंगमं स्थावरं तथा ॥ तस्याहं मध्यगो मूढ तैलं यद्वत्तिलांतिकम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रियविष्णुर्मां तदा विष्णु
वचः स्मरन् ॥ इयेष हंतुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शंकरः ॥ ३४ ॥

हो बोले ॥ ३० ॥ रुद्र बोले जो आपने मेरे विवाहमें मेरी कान्ताके मुखको रागसे देखा यह कुत्सित कर्म्म आपने क्या किया ॥ ३१ ॥ आपने जाना
कि शिवने यह कर्म्म कुछ नहीं जाना परन्तु ऐसी कौन बात संसारमें है जिसको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३२ ॥ जैसे तिलमें तैल वैसेही तीनोंलोक और
स्थावर जंगममें मैंहूं ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा बोले यह कह विष्णुप्रिय शंकरजी विष्णुके वचनको स्मरण करते हुये शूल ले मुझ ब्रह्माको मारनेकी इच्छा

करने लगे ॥ ३४ ॥ मुझे मारनेके अर्थ शम्भुके शूल लेतेही मरीच्यादिकोंने हाहाकार किया ॥ ३५ ॥ तब सब देवता और मुनियोंने व्याकुलहो क्रोधित हुए शिवजीकी स्तुति की ॥ ३६ ॥ देवता बोले हे शरणागतवत्सल देवदेव परमेश्वर शिवजी कृपा करिये और ब्रह्माजीकी रक्षा करिये ॥ ३७ ॥ आप संसारके पिता और सतीजी संसारकी माता और ब्रह्मादिक देवता सब आपके दास हैं ॥ ३८ ॥ आपकी लीला अद्भुतहै और आपकी माया अद्भुतहै उसीने आपकी भक्तिसे विरक्त रहने वालेको मोह रक्खा है ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा बोले इस प्रकार वृद्धमुनियोंने नम्रतापूर्वक देवताओंके साथ नम्रहो

शंभुनोद्यमिते शूले मां च हंतुं द्विजोत्तम ॥ मरीचिप्रमुखास्ते वै हाहाकारं च चक्रिरे ॥ ३५ ॥ ततो देवगणास्सर्वे मुनयश्चाखिलास्तथा ॥ तुष्टुवुश्शंकरं तत्र प्रज्वलंतं भयातुराः ॥ ३६ ॥ देवाऊचुः ॥ देव देव महादेव शरणागतवत्सल ॥ ब्रह्माणं रक्ष रक्षेश कृपां कुरु महेश्वर ॥ ३७ ॥ जगत्पिता महेश त्वं जगन्माता सती मता ॥ हरिब्रह्मादयस्सर्वे तव दासास्सुरप्रभो ॥ ३८ ॥ अद्भुताकृतिलीलस्त्वं तव मायाद्भुता प्रभो ॥ तया विमोहितं सर्वं विना त्वद्भक्तिमीश्वर ॥ ३९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं बहुतरं दीना निर्जरा मुनयश्च ते ॥ तुष्टुवुर्देवदेवे संक्रोधाविष्टं महेश्वरम् ॥४०॥ दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शंकितः ॥ वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥ ४१ ॥ अथाग्रे संगतं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः ॥ प्रत्युवाचाप्रियमिदं संस्मरन्प्रार्थनां हरेः ॥ ४२ ॥ महेश्वर उवाच ॥ विष्णुना मेतिभक्तेन यदिदानीमुदिरितम् ॥ मयाप्यंगीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापत ॥ ४३ ॥ सतीं यस्साभिलाषस्सन् वीक्षेत वध तं प्रभो ॥ इतिविष्णुवचस्सत्यं विधिं हत्वा करोम्यहम् ॥ ४४ ॥

क्रोधयुक्त देवदेवेश शिवजीकी स्तुति की ॥ ४० ॥ उसीसमय महासंदेहको प्राप्तहो दक्षजीने शिवके समीप आय हाथ उठाकर कहा कि कृपाकर ऐसा न कीजिये ॥ ४१ ॥ फिर: शिवजी आगे दक्षको देख और विष्णुकी प्रार्थनाको स्मरण करते हुये यह प्रियवचन बोले ॥ ४२ ॥ महेश्वर बोले हे दक्षजी ! जो प्राप्तभक्ति विष्णुने इससमय कहा उसको मैंने स्वीकार करलिया ॥ ४३ ॥ जो सतीको कामकी अभिलाषासे देखे उसे आप मारें इस विष्णुके वचनसे

ब्रह्माको मार प्रण सत्य करूंगा ॥ ४४ ॥ साभिलाष ब्रह्माने कैसे सतीको देखा अतएव अपराधी ब्रह्माको जरूर मारेंगे ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा बोले क्रोधयुक्त महेशके यह कहनेपर देवता देवेश मुनि मनुष्य सब कांप उठे ॥ ४६ ॥ चारोंओर हाहाकार और उदासीनता छागई और मैं मोहितहो अति विकल होगया ॥ ४७ ॥ तब कार्य्यमें चतुर सुधी महेशप्रिय विष्णुने इस प्रकार कहते हुये रुद्रजीकी स्तुति की ॥ ४८ ॥ भक्तवत्सल शिवजीकी नानास्तोत्रोंसे स्तुतिकर शीघ्रही आगे हो वारण करते हुये यह बोले ॥ ४९ ॥ विष्णुजी बोले हे भूतोंके प्रभु आप जगत्के बनानेवाले ब्रह्माजीको न मारिये यह आज

साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् ॥ अभवत्त्यक्तरेतास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तवति देवेशे महेशे क्रोधसंकुले ॥ चकंपिरे जनाः सर्वे सदेवमुनिमानुषाः ॥४६॥ हाहाकारो महानासीदौदासीन्यं च सर्वशः ॥ अभूवम्विकलोऽतीव तदाहं तद्विमोहकः ॥ ४७ ॥ अथ विष्णुर्महेशातिप्रियः कार्यविचक्षणः ॥ तमेवंवादिनं रुद्रं तुष्टाव प्रणतस्सुधीः ॥ ४८ ॥ स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैश्शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ इदमूचे वारयंस्तं क्षिप्रं भूत्वा पुरस्सरः ॥ ४९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विधिन्न जहि भूतेश स्रष्टारं जगतां प्रभुम् ॥ अयं शरणगस्तेद्य शरणागतवत्सलः ॥ ५० ॥ अहं तेतिप्रियो भक्तो भक्तराज इतीरितः ॥ विज्ञप्तिं हृदि मे मत्वा कृपां कुरु ममोपरि ॥ ५१ ॥ अन्यच्च शृणु मे नाथ वचनं हेतुगर्भितम् ॥ तन्मनुष्व महेशान कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ५२ ॥ प्रजास्स्रष्टुमयं शंभो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥ अस्मिन् हते प्रजास्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना ॥ ५३ ॥ सृष्टिस्थित्यंतकर्माणि करिष्यामः पुनः पुनः ॥ त्रयो देवा वयं नाथ शिवरूप त्वदाज्ञया ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्निहते शम्भो कस्त्वत्कर्म करिष्यति ॥ तस्मान्न वध्यो भवता सृष्टिकृल्लय कृद्विभो ॥ ५५ ॥

आपकी शरण है ॥ ५० ॥ आप मुझे भक्तराज कहते हैं और मैं आपका बडा प्रियहूं मेरी विज्ञप्ति हृदयमें धर मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ ५१ ॥ हे शिवजी मेरे ऊपर कृपाकर हेतुयुक्त मेरे दूसरेभी वचनोंको सुनिये ॥ ५२ ॥ हे शिवजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये ये चतुर्मुख उत्पन्न हुये हैं इनके मरनेके पीछे इस समय कोई प्रजाका स्रष्टा नहीं है ॥ ५३ ॥ आपकी आज्ञासे हम तीनों देवता सृष्टिके कर्मोंको करतेहैं ॥ ५४ ॥ इनके मारनेपर आपका

काम कौन करेगा अतः सृष्टिके लय करनेवाले आप इनको न मारें ॥ ५५ ॥ इन्होंहीने दक्षकी कन्या सतीको आपकी भार्याके लिये प्रकल्पितकिया है ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा बोले शिवजी इसप्रकार विष्णुकी विज्ञप्तिको सुन सबको सुनाते हुये यह बोले ॥ ५७ ॥ महेश बोले हे देवदेव रमापति मेरे प्राणप्रिय विष्णुजी ! इसके मारनेसे मुझे आप न निवारण करैं क्योंकि यह दुष्ट है ॥ ५८ ॥ प्रथम अंगीकृत आपकी विज्ञप्तिको मैं पूर्ण करूंगा और पापी इस चतुराननको मारूंगा ॥ ५९ ॥ मैं स्वयंही प्रजाओंको बनालूंगा अथवा अपने तेजसे दूसरे सृष्टि करनेवालेको उत्पन्न करलूंगा ॥ ६० ॥ इस ब्रह्माको

अनेनैव सती कन्या दक्षस्य च शिवा विभो ॥ सदुपायेन वै भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ॥ ५६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य महे
शस्तु विज्ञप्तिं विष्णुना कृताम् ॥ प्रत्युवाचाखिलांस्तांश्च श्रावयंश्च दृढव्रतः ॥ ५७ ॥ ॥ महेश उवाच ॥ देव देव रमेशान विष्णो
मत्प्राणवल्लभ ॥ न निवारय मां तात वधादस्य खलस्त्वयम् ॥ ५८ ॥ पूरयिष्यामि विज्ञप्तिं पूर्वान्तेंगीकृतां मया ॥ महापापकरं
दुष्टं हन्म्येनं चतुराननम् ॥ ५९ ॥ अहमेव प्रजास्स्रक्ष्ये सर्वाः स्थिरचरा अपि ॥ अन्यं स्रक्ष्ये सृष्टिकरमथवाहं स्वतेजसा ॥ ६० ॥
हत्वैनं विधिमेवाहं स्वपणं पूरयन् कृतम् ॥ स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न निवारय मेश माम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तस्य वचश्श्रुत्वा
गिरीश स्याहचाच्युतः ॥ स्मितप्रभिन्नहृदयः पुनर्मैवमितीरयन् ॥ ६२ ॥ ॥ अच्युत उवाच ॥ प्रतिज्ञापूरणं योग्यं परस्मिन्पुरुषे
स्ति वै ॥ विचारयस्व वध्येश भवत्यात्मनि न प्रभो ॥ ६३ ॥ त्रयो देवा वयं शंभो त्वदात्मानः परा नहि ॥ एकरूपा न भिन्नाश्च
तत्त्वतस्सुविचारय ॥ ६४ ॥

मारकर अपने प्रणको पूर्ण करके एक उत्पन्न करनेवालेको उत्पन्न करूंगा मुझे न रोकिये ॥ ६१ ॥ ब्रह्मा बोले इन महादेवजीके वचनोंको सुन निषेध करते हुये भगवान् मुसक्यायकर फिर बोले ॥ ६२ ॥ अच्युत बोले हे प्रभु ! प्रतिज्ञा पूर्ण करना दूसरे पुरुषोंमें योग्यहै अपनेमें नहीं है ईश इस वध्य ब्रह्माके प्रति विचारिये ॥ ६३ ॥ हे शंभु हम तीनोंदेवता आपहीकी आत्माहैं दूसरे नहीं एकही रूपहैं भिन्न नहीं इसका तत्त्वपूर्वक विचार कीजिये ॥ ६४ ॥

अत्यन्त प्रिय विष्णुके इन वचनोंको सुन अपनी गतिको कहते हुये शंभुजी फिर बोले ॥ ६५ ॥ शंभु बोले ! हे सम्पूर्ण भक्तोंके ईश विष्णु, ब्रह्मा कैसे मेरी आत्माहैं यह प्रत्यक्ष आगे बैठे हुये भिन्न दिखलाई पडतेहैं ॥ ६६ ॥ ब्रह्मा बोले सबके सन्मुख महादेवजीने जब यह अज्ञा की तब भगवान् विष्णु महादेवजीको प्रसन्न करतेहुये यह बोले ॥ ६७ ॥ विष्णु बोले हे सदाशिव ! ब्रह्मा आपसे भिन्न नहींहैं न आप उनसे भिन्नहैं और हे परमेश्वर ! न मैं आपसे भिन्नहूं न आप मुझसे भिन्नहैं ॥ ६८ ॥ हे सदाशिव ! परमेश्वर ! हे सर्वज्ञ ! आप सब जानतेहैं जो आप सन्मुख कहरहेहैं यह केवल सबको

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णोस्स्वातिप्रियस्य सः ॥ शंभुरूचे पुनस्तं वै ख्यापयन्नात्मनो गतिम् ॥ ६५ ॥ ॥ शम्भुरुवाच ॥ हे विष्णो सर्वभक्तेश कथमात्मा विधिर्मम ॥ लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः ॥ ६६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याज्ञप्तो महेशेन सर्वेषां पुरतस्तदा ॥ इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वजः ॥ ६७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न त्वं तस्मात्सदाशिव ॥ नवाहं भवतो भिन्नो न मत्त्वं परमेश्वर ॥ ६८ ॥ सर्वं जानासि सर्वज्ञ परमेश सदाशिव ॥ मन्मुखादखिलान्सर्वं संश्रावयितुमिच्छसि ॥ ६९ ॥ त्वदाज्ञया वदामीश शृण्वंतु निखिलास्सुराः ॥ मुनयश्चापरे शैवं तत्त्वं संधार्य स्वं मनः ॥ ७० ॥ प्रधानस्याऽप्रधानस्य भागाभागस्य रूपिणः ॥ ज्योतिर्मयस्य भागास्ते वयं देवाः प्रभोस्त्रयः ॥ ७१ ॥ कस्त्वं कोहं च को ब्रह्मा तवैव परमात्मनः ॥ अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥ ७२ ॥ चिंतयस्वात्मनात्मानं स्वलीलाधृतविग्रहः ॥ एकस्त्वं ब्रह्म सगुणो ह्यंशभूता वयं त्रयः ॥ ७३ ॥ शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव वर्ष्मणः ॥ अंगानि ते तथेशस्य तस्य भागत्रयं हर ॥ ७४ ॥

सुनानेकी इच्छासे है ॥ ६९ ॥ हे ईश आपकी आज्ञासे मैं कहताहूं सम्पूर्ण देवता और मुनियों सुनो आपलोग अपने मनमें शैवतत्त्वका धारण करो ॥ ७० ॥ हे प्रभु ! प्रधान अप्रधान भाग अभाग रूपवाले ज्योतिर्मय भागसे हम तीनों देवताहैं ॥ ७१ ॥ आप कौनहैं मैं कौनहूं और ब्रह्मा कौनहैं आपही परमात्मासे सृष्टि पालन और अंत करनेके लिये तीन अंश भिन्न हुये हैं ॥ ७२ ॥ अपनी आत्मासे अपनेको विचारिये अपनी लीलाके द्वारा आपने रूपोंको धारण कियाहै एक आपही ब्रह्महैं गुणसे युक्त हम तीनों आपके अंशभूतहैं ॥ ७३ ॥ हे हर ! जिसप्रकार एकही शरीरमें शिर ग्रीवा आदि भेद होतेहैं उसीप्रकार

आपके तथा उस ईशके यह तीनों भाग अंगहैं ।। ७४ ।। जो ज्योति अभ्रस्वरुप पुराणपुरुष कूटस्थ अव्यक्त अनन्त नित्य दीर्घादिविशेषणोंसे हीन कहाजाताहै जो एकरस अनादि निर्विकारहै वही सर्वरूप शिव आपहैं यह विचारिये ।। ७५ ।। ब्रह्मा बोले हे मुनीश्वर ! महादेवजी इन विष्णुके वचनोंको सुन अत्यन्त प्रसन्नहो मुझको नहीं मारते हुये ❀ ॥ ७६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे सतीविवाहशिवलीलावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ हे ब्रह्मन् ! विधि ! हे महाभाग ! श्रेष्ठ शिवभक्त ! हे प्रभु ! मंगलका स्थान ऐसा अद्भुत

यज्ज्योतिरभ्रं स्वपुरं पुराणं कूटस्थमव्यक्तमनंतरूपम् ॥ नित्यं च दीर्घादिविशेषणाद्यैर्हीनं शिवस्त्वं तत एव सर्वम् ॥ ७५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो मुनीश्वर ॥ बभूव सुप्रसन्नश्च न जघान स मां ततः ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सतीविवाहशिवलीलावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् विधे महाभाग शिवभक्तवर प्रभो ॥ श्रावितं चरितं शंभोरद्भुतं मंगलायनम् ॥ १ ॥ ततः किमभवत्तात कथ्यतां शशिमौलिनः ॥ सत्याश्च चरितं दिव्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ निवृत्ते शंकरे चास्मद्वधाद्भक्तानुकंपिनि ॥ अभवन्निर्भयास्सर्वे सुखिनस्सुप्रसन्नकाः ॥ ३ ॥ नतस्कंधास्सांजलयः प्रणेमुर्निखिलाश्च ते ॥ तुष्टुवुश्शंकरं भक्त्या चक्रुर्जयरवं मुदा ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेव कालेऽहं प्रसन्नो निर्भयो मुने ॥ अस्तवं शंकरं भक्त्या विविधैश्च शुभस्तवैः ॥ ५ ॥

शिवजीका चरित्र आपने सुनाया ।।१।। हे तात ! फिर सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला महादेवजी और सतीका क्या दिव्य चरित्र हुवा सो कहिये।।२।। ब्रह्मा बोले भक्तपर दयाकरनेवाले शंकरके मेरे वधसे निवृत्त होनेपर सुखी और प्रसन्नहो सब निर्भय होगये ॥ ३ ॥ वह सब हाथ जोड नीची गर्दनकर प्रणाम करते हुए और भक्तिपूर्वक शंकरकी स्तुतिकर जयजय शब्द करने लगे ।। ४ ।। हे मुनि ! उसीसमय मैंने प्रसन्न और निर्भय हो नानाप्रकारके उत्तम

---

१ यह कथा अध्यात्मवादकी है इसमें गूढ तत्त्वहै ।

स्तोत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक शंकरकी स्तुतिकी ॥ ५ ॥ हे मुनि ! बहुतसी लीला करनेवाले प्रभु शंकरजी प्रसन्नचित्तहो सबके सन्मुख मुझसे बोले ॥ ६ ॥ रुद्र बोले हे ब्रह्मन् तात ! मैं प्रसन्नहूं अब तुम निर्भय हो और संशयरहितहो मेरी आज्ञाको करते हुये हाथसे अपने मस्तकका स्पर्श करो ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले बहुतसी लीला करनेवाले प्रभु महादेवजीके वचनको सुन उसीप्रकार हो शिवकी आज्ञा मान अपने शिरको स्पर्शकरनेलगा ॥ ८ ॥ जबतक मैं अपने हाथसे अपने शिरका स्पर्श करूं तबतक शीघ्रही उसीरूपमें वृषभध्वजको स्थित पाया ॥ ९ ॥ तब इन्द्रादिक देवताओंके देखते हुये मैं लज्जासे

ततस्तुष्टमनाश्शंभुर्बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ मुने मां समुवाचेदं सर्वेषां शृण्वतां तदा ॥ ६ ॥ ॥ रुद्र उवाच ॥ ब्रह्मन् तात प्रसन्नोहं निर्भयस्त्वं भवाधुना ॥ स्वशीर्षं स्पृश हस्तेन मदाज्ञां कुर्वसंशयम् ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोर्बहुलीलाकृतः प्रभोः ॥ स्पृशन् स्वं कं तथा भूत्वा प्राणमं वृषभध्वजम् ॥ ८ ॥ यावदेवमहं स्वं कं स्पृशामि निजपाणिना ॥ तावत्तत्र स्थितं सद्य स्तद्रूपवृषवाहनम् ॥ ९ ॥ ततो लज्जापरीतांगस्स्थितश्चाहमधोमुखः ॥ इन्द्राद्यैरमरैस्सर्वैस्सुदृष्टस्सर्वतस्स्थितैः ॥ १० ॥ अथाहं लज्जयाविष्टः प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ प्रावोचं संस्तुतिं कृत्वा क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ११ ॥ अस्य पापस्य शुध्यर्थं प्रायश्चितं वद प्रभो ॥ निग्रहं च तथान्यायं येन पापं प्रयातु मे ॥ १२ ॥ इत्युक्तस्तु मया शंभुरुवाच प्रणतं हि तम् ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा सर्वेशो भक्तवत्सलः ॥ १३ ॥ शंभुरुवाच ॥ ॥ अनेनैव स्वरूपेण मदधिष्ठितकेन हि ॥ तपः कुरु प्रसन्नात्मा मदाराधनतत्परः ॥ १४ ॥ ख्यातिं यास्यसि सर्वत्र नाम्ना रुद्रशिरः क्षितौ ॥ साधकः सर्वकृत्यानां तेजोभाजां द्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥

अधोमुख हो स्थित रहा ॥ १० ॥ फिर मैं लज्जासे युक्तहो महादेवजीकी स्तुति और प्रणामकर क्षमाकीजिये क्षमाकीजिये कहताहुआ ॥ ११ ॥ हे प्रभु ! इस पापकी शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्त कहिये जिससे मेरा पाप दूरहो ॥ १२ ॥ सबके ईश भक्तवत्सल शम्भु प्रसन्नहो इस मेरे कहनेपर बोले ॥ १३ ॥ शंभु बोले प्रसन्नहो मेरे आराधनमें तत्पर होकर इसी मेरे अधिष्ठित रूपसे तप करो ॥ १४ ॥ पृथ्वीमें सर्वत्र रुद्रशिरनामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी और सबकार्योंके

साधक ब्राह्मणोंमें तेजस्वी होंगे ॥ १५ ॥ यह मनुष्योंका कृत्यहै जैसा तुमने वीर्यका पात किया इसलिये तुम मनुष्य होकर पृथ्वीमें विचरो ॥ १६ ॥
इस रूपसे पृथ्वीमें घूमते हुये जो तुमको देखैंगे तब वे कहैंगे कि यह ब्रह्माके मस्तकमें क्याहै ॥ १७ ॥ तब तुम्हारे कियेहुयेको कौतुकसे जो सुनैंगे सो दूसरेकी
स्त्रीका त्यागकर शीघ्रही मुक्तिको प्राप्त होंगे ॥१८॥ जिस जिसप्रकार मनुष्य इस तुम्हारी कीर्तिको कहैंगे उसी उसी प्रकार तुम्हारे पापोंकी शुद्धि होगी॥१९॥
हे ब्रह्मन् ! संसारमें तुम्हारी निन्दाकरनेवाला और तुमको हँसने वाला यह प्रायश्चित्त मैंने तुमसे कहा ॥ २० ॥ कामसे दुःखी यह तुम्हरा वीर्य वेदीके

मनुष्याणामिदं कृत्यं यस्माद्वीर्य्यं त्वयाऽधुना ॥ तस्मात्त्वं मानुषो भूत्वा विचरिष्यसि भूतले ॥ १६ ॥ यस्त्वां चानेन रूपेण दृष्ट्वा कौ
विचारिष्यति ॥ किमेतद्ब्रह्मणो मूर्ध्नि वदन्निति पुरान्तकः ॥ १७ ॥ ततस्ते चेष्टितं सर्वं कौतुकाच्छ्रोष्यतीति यः ॥ परदारकृतात्त्या
गान्मुक्तिं सद्यस्स यास्यति॥१८॥यथा यथा जनश्चैतत्कृत्यन्ते कीर्तयिष्यति ॥ तथा तथा विशुद्धिस्ते पापस्यास्य भविष्यति ॥ १९ ॥
एतदेव हि ते ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं मयेरितम् ॥ जनहास्यकरं लोके तव गर्हाकरं परम् ॥ २० ॥ एतच्च तव वीर्य्यं हि पतितं वेदिमध्य
गम् ॥ कामार्तस्य मया दृष्टं नैतद्धार्यं भविष्यति ॥ २१ ॥ चतुर्बिन्दुमितं रेतः पतितं यत्क्षितौ तव ॥ तन्मितास्तोयदा व्योम्नि
भवेयुः प्रलयंकराः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र देवर्षीणां पुरो द्रुतम् ॥ तद्रेतसस्समभवंस्तन्मिताश्च बलाहकाः ॥ २३ ॥ संवर्तकस्त
थावर्त्तः पुष्करो द्रोण एव च ॥ एते चतुर्विधास्तात महामेघा लयंकराः ॥ २४ ॥ गर्जंतश्चाथ मुंचंतस्तोयानीषच्छिवेच्छया ॥
फेलुर्व्योम्नि मुनिश्रेष्ठ तोयदास्ते कदारवाः ॥ २५ ॥

मध्यमें पतित मैंने देखा इसहेतु यह धारण करनेयोग्य न होगा ॥ २१ ॥ चार बिन्दुओंमें जो तुम्हारा वीर्य पृथ्वीमें गिराहै वह प्रलयकरनेवाले चारमेघ
आकाशमें होंगे ॥ २२ ॥ उसी समय शीघ्रही देवर्षियोंके समीप वह वीर्य उसी संख्याके चारमेघ होगये ॥ २३ ॥ हे तात ! संवर्त, आवर्त, पुष्कर, द्रोण
यह चार प्रकारके प्रलय करनेवाले महामेघ होतेहुए ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! शिवकी इच्छासे गर्जते थोडा थोडा जल बरसाते एकहीसे उत्पन्न होनेवाले

मेघ आकाशको चलेगये ॥ २५ ॥ जब वह मेघ जाकर आकाशमें गर्जे तब शंकरभगवान् दाक्षायणी देवीके सहित शांत हुए ॥ २६ ॥ हे मुने ! तब
मैंने भयरहित हो शंकरकी आज्ञासे शेष विवाहके कर्मको समाप्त किया ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सर्वत्र प्रसन्नतापूर्वक देवतोंके द्वारा छोडे हुये पुष्पोंकी शिव
और सतीके मस्तकपर वृष्टि हुई ॥ २८ ॥ भक्तिसे युक्त ब्राह्मणोंके पढने बाजन बजने और गान होनेपर ॥ २९ ॥ हे नारद ! रंभादि अप्सराओंके नाचने
पर देवताओंकी स्त्रियोंमें बडाही उत्सव हुवा ॥ ३० ॥ फिर कर्मरूप परमेश्वर प्रसन्न होकर संसारीगतिमें स्थित होप्रीतिपूर्वक मुझसे बोले ॥ ३१ ॥

तैस्तु संछादिते व्योम्नि सुगर्जद्भिश्च शंकरः ॥ प्रशान् दाक्षायणी देवी भृशं शांतोऽभवद्द्रुतम् ॥ २६ ॥ अथ चाहं वीतभयश्शंकरस्या
ज्ञया तदा ॥ शेषं वैवाहिकं कर्म समाप्तिमनयं मुने ॥ २७ ॥ पपात पुष्पवृष्टिश्च शिवाशिवशिरस्कयोः ॥ सर्वत्र च मुनिश्रेष्ठ मुदा
देवगणोज्झिता ॥ २८ ॥ वाद्यमानेषु वाद्येषु गायमानेषु तेषु च ॥ पठत्सु विप्रवर्येषु वादान् भक्त्यान्वितेषु च ॥ २९ ॥ रंभादिषु
पुरंध्रीषु नृत्यमानासु सादरम् ॥ महोत्सवो महानासीद्देवपत्नीषु नारद ॥ ३० ॥ अथ कर्मवितानेशः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ प्राह मां
प्रांजलिं प्रीत्या लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ ३१ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्रह्मन् सुकृतं कर्म सर्वं वैवाहिकं च यत् ॥ प्रसन्नोस्मि
त्वमाचार्यो दद्यां ते दक्षिणां च काम् ॥ ३२ ॥ याचस्व तां सुरज्येष्ठ यद्यपि स्यात्सुदुर्लभा ॥ ब्रूहि शीघ्रं महाभाग नादेयं विद्यते
मम ॥ ३३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्सोहं शंकरस्य कृतांजलिः ॥ मुनेऽवोचं विनीतात्मा प्रणम्येशं मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश वरयोग्योस्म्यहं यदि ॥ तत्कुरु त्वं महेशान सुप्रीत्या यद्ददाम्यहम् ॥ ३५ ॥

ईश्वर बोले हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण वैवाहिक सुकृत कर्म जो था वह समाप्त हुवा अब मैं प्रसन्नहूँ आप आचार्यहैं तुमको क्या दक्षिणादूँ ॥ ३२ ॥ हे देवताओंमें
ज्येष्ठ दुर्लभ होनेपरभी उसे मांगिये हे महाभाग ! उसे शीघ्रही कहिये मेरे कुछ अदेय नहींहै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा बोले हे मुनि ! वह मैं शंकरजीके इन
वचनोंको सुन हाथ जोड ईशको वारम्वार प्रणाम कर बोला ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा बोले हे देवेश ! यदि आप प्रसन्नहैं और मैं वरके योग्यहूँ तो हे महान् ईश !

जो मैं कहूँ उसे आप प्रसन्नतापूर्वक कीजिये॥ ३५॥हे महेश्वर ! मनुष्योंके पापकी शुद्धिकेलिये सदैव यहाँ इसीरूपसे इसी वेदीमें आप स्थित रहिये॥ ३६॥
हे शशिशेखर शंकर ! जिसमें इसीके समीप अपना आश्रम बनाकर अपने पापके विनाशके निमित्त मैं तप करूँ ॥ ३७ ॥ चैत्रशुक्ल त्रयोदशी भगदैवत नक्षत्र
रविवारमें पृथ्वीमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक आपको देखैंगे ॥ ३८ ॥ तभी उनके पाप नष्ट होंगे अत्यन्त पुण्यबढैगा और सम्पूर्ण रोग नष्टहोंगे ॥ ३९ ॥
जो स्त्री दुर्भगा वंध्या कानी कुरूप होगी वह भी उस मुहूर्त्तमें आपका दर्शनकर शीघ्रही निर्दोष होजायगी ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले अपने सम्पूर्ण सुखके

अनेनैव तु रूपेण वेद्यामस्यां महेश्वर ॥ त्वया स्थेयं सदैवात्र नृणां पापविशुद्धये ॥ ३६ ॥ येनास्य संनिधौ कृत्वा स्वाश्रमं शशि
शेखर ॥ तपः कुर्यां विनाशाय स्वपापस्यास्य शंकर ॥ ३७ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां नक्षत्रे भगदैवते ॥ सूर्यवारे च यो भक्त्या
वीक्षेत भुवि मानवः ॥ ३८ ॥ तदैव तस्य पापानि प्रयांतु हर संक्षयम् ॥ वर्द्धते विपुलं पुण्यं रोगा नश्यंतु सर्वशः ॥ ३९ ॥ या
नारी दुर्भगा वंध्या काणा रूपविवर्जिता ॥ सापि त्वद्दर्शनादेव निर्दोषा संभवेद्ध्रुवम् ॥ ४० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचो
मे हि स्वात्मसर्वसुखावहम् ॥ तथाऽस्त्विति शिवः प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ४१ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ हिताय सर्वलोकस्य वेद्यां
तस्यां व्यवस्थितः ॥ स्थास्यामि सहितः पत्न्या सत्या त्वद्वचनाद्विधे ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र सभार्यो वृषभ
ध्वजः ॥ उवाच वेदिमध्यस्थो मूर्तिं कृत्वांशरूपिणीम् ॥ ४३ ॥ ततो दक्षं समामंत्र्य शंकरः परमेश्वरः ॥ पत्न्या सत्या गंतुमना
अभूत्स्वजनवत्सलः ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नंतरे दक्षो विनयावनतस्सुधीः ॥ सांजलिर्नतकः प्रीत्या तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ ४५ ॥

देनेवाले इन मेरे वचनोंको सुन शिवजी प्रसन्नहो तथास्तु कहते हुये ॥ ४१ ॥ शिवजी बोले हे विधि ! आपके वचनसे सम्पूर्ण लोकके हितके अर्थ उस
वेदीमें अपनी सती पत्नीके सहित वास करूंगा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा बोले यह कह वृषभध्वज भगवान् उत्तममूर्तिको कर वहाँ वेदीके मध्यमें बासकरते भये ॥ ४३ ॥
अपने जनोंपर दयाकरनेवाले परमेश्वर शिवजी दक्षसे सम्मतिकर सतीपत्नी सहित जानेकी इच्छा करतेहुये ॥ ४४ ॥ उस समय दक्ष हाथ जोड विनयपूर्वक

प्रीतिसे वृषभध्वजकी स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता और मुनिगण स्तुतिपूर्वक नमस्कार कर जयजय शब्द करनेलगे ॥ ४६ ॥ दक्षकी आज्ञासे प्रसन्न हो महादेवजीने सतीको बैलपर बैठाकर आपभी वृषभपर सवारहो हिमालयपर्वतको गमनकिया ॥ ४७ ॥ वह चारुहासिनी सती बैलपर बैठी शंकरके समीप चन्द्रमामें कृष्णरेखाके समान शोभित भई ॥ ४८ ॥ विष्णुआदि सम्पूर्ण देवता और मरीच्यादि सम्पूर्ण ऋषि दक्ष औरभी बहुतसे मनुष्य मोहित होगये ॥ ४९ ॥ कोई बाजनबजाते कोई गाते प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध कल्याणके देनेवाले शिवका यश शिवके साथ चला ॥ ५० ॥

विष्णवादयस्सुरास्सर्वे मुनयश्च गणास्तदा ॥ नत्वा संस्तूय विविधं चक्रुर्जयरवं मुदा ॥ ४६ ॥ आरोप्य वृषभे शंभुस्सतीं दक्षाज्ञया मुदा ॥ जगाम हिमवत्प्रस्थं वृषभस्थस्स्वयं प्रभुः ॥ ४७ ॥ अथ सा शंकराभ्यासे सुदती चारुहासिनी ॥ विरेजे वृषभस्था वै चन्द्रांते कालिका यथा ॥ ४८ ॥ विष्णवादयस्सुरास्सर्वे मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ दक्षोपि मोहितश्चासीत्तथान्ये निश्चला जनाः ॥ ४९ ॥ केचिद्वाद्यान्वादयन्तो गायंतस्सुस्वरं परे ॥ शिवं शिवयशश्शुद्धमनुजग्मुः शिवं मुदा ॥ ५० ॥ मध्यमार्गाद्विसृष्टो हि दक्षः प्रीत्याथ शम्भुना ॥ स्वधाम प्राप सगणः शम्भुः प्रेमसमाकुलः ॥ ५१ ॥ विसृष्टा अपि विष्णवाद्याश्शम्भुना पुनरेव ते ॥ अनुजग्मुश्शिवं भक्त्या सुराः परमया मुदा ॥ ५२ ॥ तैस्सर्वैस्सगणैश्शंभुस्सत्या च स्वस्त्रिया युतः ॥ प्राप स्वं धाम संहृष्टो हिमवद्गिरिशोभितम् ॥ ॥ ५३ ॥ तत्र गत्वाखिलान्देवान्मुनीनपि परांस्तथा ॥ मुदा विसर्जयामास बहु सम्मान्य सादरम् ॥ ५४ ॥

दक्ष प्रीतिपूर्वक महादेवजीको आधे मार्गतक पहुँचाकर गणोंसहित अपने स्थानको लौटआये, उधर शम्भुजी प्रेमसे आकुल हो चलेगये ॥ ५१ ॥ शिवजीने उन विष्णुआदि सब देवताओंको बिदाभी करदिया तोभी वे सब परमभक्ति और प्रेमसे शंकरके संग संग कैलासतक गये ॥ ५२ ॥ उन सबोंके साथ स्त्रीयुक्त सगण शंभु अपने धाममें शोभित हिमगिरिपर पहुँचगये ॥ ५३ ॥ वहां जाकर सम्पूर्ण देवता और मुनियोंको प्रसन्न हो सन्मानपूर्वक बिदा किया ॥ ५४ ॥

वह सब विष्णु आंदि देवता और मुनि महादेवजीसे कहकर स्तुति और नमस्कारकर अपने अपने स्थानको गये ॥ ५५ ॥ शिवभी मुदित हो अपनी स्त्री दक्षकन्याके सहित हिमालय पर्वतपर स्थित हो विहार करनेलगे ॥ ५६ ॥ शंकरजी गणोंसे युक्त सतीसहित प्रसन्नतापूर्वक पर्वतोंमें उत्तम अपने स्थान कैलासपर्वतपर प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥ हे मुनि ! यह स्वायंभुवमनुके समयमें होनेवाले महादेवजीके विवाहका वर्णन किया जैसा पहिले हुवाथा ॥ ५८ ॥ महादेवजीका पूजन करके जो मनुष्य इस कथाको विवाहके समय अथवा यज्ञके आरम्भमें सुनते हैं ॥ ५९ ॥ उनके सम्पूर्ण वैवाहिक कर्म और जितने

शंभुमाभाष्य ते सर्वे विष्णवाद्या मुदिताननाः ॥ स्वंस्वं धाम ययुर्नत्वा स्तुत्वा च मुनयस्सुराः ॥ ५५ ॥ शिवोपि मुदितोत्यर्थं स्वपत्न्या दक्षकन्यया ॥ हिमवत्प्रस्थसंस्थो हि विजहार भवानुगः ॥ ५६ ॥ ततस्स शंकरस्सत्या सगणस्सूतिकृन्मुने ॥ प्राप स्वं धाम संहृष्टः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ५७ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं यथा तस्य पुराऽभवत् ॥ विवाहो वृषयानस्य मनुस्वायंभुवान्तरे ॥ ५८ ॥ विवाहसमये यज्ञे प्रारंभे वा शृणोति यः ॥ एतदाख्यानमव्यग्रस्संपूज्य वृषभध्वजम् ॥ ५९ ॥ तस्याऽविघ्नं भवेत्सर्वं कर्म वैवाहिकं च यत् ॥ शुभाख्यमपरं कर्म निर्विघ्नं सर्वदा भवेत् ॥ ६० ॥ कन्या च सुखसौभाग्यशीलाचारगुणान्विता ॥ साध्वी स्यात्पुत्रिणी प्रीत्या श्रुत्वाख्यानमिदं शुभम् ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ नारद उवाच ॥ समीचीनं वचस्तात सर्वज्ञस्य तवाऽनघ ॥ महाद्भुतं श्रुतं नो वै चरितं शिवयोश्शुभम् ॥ १॥ विवाहश्च श्रुतस्सम्यक् सर्वमोहापहारकः ॥ परमज्ञानसंपन्नो मंगलालय उत्तमः ॥ २ ॥

शुभकर्म हैं वह सब सदैव निर्विघ्न पूर्ण होजाते हैं ॥६०॥ इस उत्तम कथाको प्रीतिपूर्वक सुनकर कन्या सुख सौभाग्य उत्तमशील आचाररूपी गुणोंसे युक्तहो पतिव्रता और पुत्रवती होती है॥६१॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे सतीविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारद बोले हे तात ! आप सर्वज्ञके उत्तम वचनोंद्वारा मैंने महाअद्भुत शिवका शुभचरित्र सुना ॥ १ ॥ सम्पूर्ण मोहोंके करनेवाला परमज्ञानसे युक्त मंगलोंका

स्थान उत्तम श्रीशिवजीके विवाहको अच्छे प्रकारसे सुना ॥ २ ॥ हे महाप्राज्ञ ! मेरी शिवके शुभचरित्रके सुननेकी फिरभी इच्छा है सो मुझपर कृपा करके वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले हेमुनि ! अच्छे प्रकार करुणाकरनेवाले शिवजीकी लीलावर्णनमें जो तुमसे कहा और जो नहीं कहा उसे सुनिये ॥ ४ ॥ दक्षसे उत्पन्न होनेवाली तीनोंलोकोंकी माता सतीदेवीका विवाह कर प्रीतिपूर्वक अपने स्थानको जाकर जो किया वह मुझसे सुनो ॥ ५ ॥ महादेवजी गणों सहित अपने स्थानमें पहुँच अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बैलसे उतरे ॥ ६ ॥ हे देवऋषि ! संसारीलीलाकरनेवाले शिवजी यथायोग्य अपने स्थानमें प्रवेशकर

भूय एव विवित्सा मे चरितं शिवयोश्शुभम् ॥ तद्वर्णय महाप्राज्ञ कृपां कृत्वाऽतुलामरम् ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्यैव मुने ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं नोदितस्सौम्य शिवलीलानुवर्णने ॥ ४ ॥ विवाह्य दक्षजां देवीं सतीं त्रैलोक्यमातरम् ॥ गत्वा स्वधाम सुप्रीत्या यद कार्षीन्निबोध मे ॥ ५ ॥ ततो हरस्स स्वगणस्स्वस्थानं प्राप्य मोदनम् ॥ देवर्षे तत्र वृषभादवातरदतिप्रियात् ॥ ॥ ६ ॥ यथायोग्यं निजस्थानं प्रविश्य स सतीसखः ॥ मुमुदेतीव देवर्षे भवाचारकरश्शिवः ॥ ७ ॥ ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान् ॥ स्वीयान्निर्यापयामास नंद्यादीन् गिरिकंदरात् ॥ ८ ॥ उवाच चैतांस्तान् सर्वान्नंद्यादीनतिसूनृतम् ॥ लौकिकीं रीतिमाश्रित्य करुणासागरः प्रभुः ॥ ९ ॥ ॥ महेश उवाच ॥ यदाहं च स्मराम्यत्र स्मरणादरमानसाः ॥ समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं मे गणा द्रुतम् ॥ १० ॥ ॥ इत्युक्ते वामदेवेन नंद्याद्यास्स्वगणाश्च ते ॥ महावेगा महावीरा नानास्थानेषु संययुः ॥ ११ ॥ ईश्वरोपि तया सार्द्धं तेषु यातेषु विभ्रमी ॥ दाक्षायण्या समं रेमे रहस्ये मुदितो भृशम् ॥ १२ ॥

अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥७॥ तब शिवजीने सतीको पाय नंदी और अपने गणोंको पहाडकी कन्दरासे अन्य स्थानको भेजदिया ॥८॥ करुणासागर प्रभु शिवजी संसारी रीतिसे इन सबसे बोले ॥ ९ ॥ महेश बोले जब मैं आप लोगोंका बडे प्रेमसे स्मरण करूं तब आप लोग शीघ्रही मेरे पास आजावें ॥१०॥ शिवजीके यह कहतेही शीघ्रगामी वीरगण और नंदी आदि नानास्थानोंको चलेगये ॥ ११ ॥ अत्यन्त प्रसन्न शिवजी भी उनके चलेजानेपर सतीजीके साथ रमण

करनेलगे ॥ १२ ॥ वे शिवजी कभी वनके फूलोंको तोड सुन्दरमालाको बना सतीको हारके स्थानमें पहिराते ॥ १३ ॥ कभी सतीजीके दर्पणमें मुख देखतेहुए आपभी पीछेसे जा अपना मुख देखने लगते ॥ १४ ॥ सतीजीके रोकनेपरभी उनके कुण्डलोंको बार बार उघारकर कभी खोलैं और कभी बांधै॥ १५॥ कभी वह भगवान् शंकर स्वभावसे रक्तवर्ण अग्निकी समान निर्मल इन सतीजीके चरणोंको प्रसन्नतासे रंगलगाकर बहुत लाल करदेते॥ १६॥ जो कुछ बात दूसरे मनुष्योंके सामने भी सतीसे कहनेयोग्य थी उसको भी सतीके मुखके देखनेकी इच्छासे कानमें कहते ॥ १७ ॥ शंकर कभी दूर न

कदाचिद्वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम् ॥ मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने स योजयत् ॥ १३ ॥ कदाचिद्दर्पणे चैव वीक्षंतीमात्मनस्सतीम् ॥ अनुगम्य हरी वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ॥ १४ ॥ कदाचित्कुंडलं तस्या उल्लास्योल्लास्य संगतः॥ बध्नाति मोचयत्येव सा स्वयं मार्जयत्यपि ॥१५॥ सरागौ चरणावस्याः पावकेनोज्वलेन च ॥ निसर्गरक्तौ कुरुते पूर्णरागौ वृषध्वजः ॥ १६ ॥ उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो बहु ॥ तत् कर्णे कथयत्त्यस्या हरो द्रष्टुं तदाननम् ॥१७॥ न दूरमपि गन्तासौ समागत्य प्रयत्नतः ॥ अनुबध्नाति नामाक्षी पृष्ठदेशेन्यमानसाम् ॥ १८ ॥ अंतर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः ॥ तामालिलिंग भीत्या स्वं चकिता व्याकुलाऽभवत् ॥ १९ ॥ सौवर्ण पद्म कलिकातुल्ये तस्या कुचद्वये ॥ चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम् ॥ २० ॥ हारमस्याः कुचयुगाद्वियोज्य सहसा हरः ॥ न्ययोजयच्च तत्रैव स्वकरस्पर्शनं मुहुः ॥ २१ ॥ अंगदान्वलयानूर्मान्विश्लेष्य च पुनः पुनः ॥ तत्स्थानात्पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रत्ययोजयत् ॥ २२ ॥ कालिकेति समायाति सवर्णा ते सखी त्विमाम् ॥ यास्यत्वस्यास्तथेक्षंत्याः प्रोत्तुंगौ साहसं कुचौ ॥ २३ ॥

जाते जाते भी तो छिपकर पीठपीछे आ खडेहोते कि देखें सतीका मन किनबातोंमें लगाहुआ है ॥१८॥ कभी अपनी मायासे अन्तर्द्धान होकर सतीजीका आलिंगन करलेते और सतीजी चकित हो अत्यन्त व्याकुल होतीं ॥ १९ ॥ सुवर्णकी कलीकी समान उनके दोनों स्तन भ्रमरोंका आकार धारण किये थे और मृगनाभिकी उपमाके थे ॥ २० ॥ कभी बडी शीघ्रतासे इनके स्तनोंके स्पर्शकी इच्छा कर स्तनोंके बीचसे हार उठा और फिर छोड देते ॥ २१ ॥ बाजूबंद कंगन और कडोंको वार वार निकालते और पहराते और जहांकी जो वस्तु होती फिर उसे उसी स्थानमें पहरादेतथे ॥ २२ ॥ कालिका नाम्नी

तुम्हारी यह सखी आती है, इसके साथ जाओ यह कहनेपर उसको देखतेहुए सतीके ऊंचे स्तनोंका स्पर्श करते ॥२३॥ कामसे व्यथितचित्त कभी प्रियासे अत्यन्त प्रसन्न हो लज्जाको छोडदेते॥२४॥ कभी कमल और २ सुन्दर पुष्पोंको लाकर बडे प्रेमसे सब शरीरमें फूलोंके आभरण बनाकर पहराते॥२५॥ भक्तवत्सल शिवजी सम्पूर्ण रमणीय कुञ्जोंमें सतीजीके साथ विहार करते ॥ २६ ॥ न उनके विना कहीं गये न बैठे न देखा उनके विना क्षणभर भी शिवजी सुख न पाते॥ २७ ॥ कैलास पर्वतके कुंजोंमें बहुत दिनों तक विहार कर हिमालयपर आगये और अपनी इच्छासे कामका स्मरण करतेहुए ॥ २८ ॥

कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिपः ॥ चकार नर्म शर्माणि तथाकृतिप्रियया मुदा ॥ २४ ॥ आत्हत्य पद्मपुष्पाणि रम्यपुष्पाणि शंकरः ॥ सर्वांगेषु करोति स्म पुष्पाभरणमादरात् ॥ २५ ॥ गिरिकुंजेषु रम्येषु सत्या सह महेश्वरः ॥ विजहार समस्तेषु प्रियया भक्तवत्सलः॥ २६ ॥ तया विना स्म नो याति नास्थितो न स्म चेष्टते ॥ तया विना क्षममपि शर्म लेभे न शंकरः ॥ २७ ॥ विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकुंजरे ॥ अगमद्धिमवत्प्रस्थं सस्मार स्वेच्छया स्मरम् ॥ २८ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे कामे तु वसंतश्शंकरांतिके ॥ वितस्तार निजं भावं हार्दं विज्ञाय यत्प्रभोः ॥ २९ ॥ सर्वे च पुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याश्च पुष्पिताः ॥ अंभांसि फुल्लपद्मानि पद्मा स्सभ्रमरास्तथा ॥ ३० ॥ प्रविष्टे तत्र सद्दतौ ववौ स मलयो मरुत् ॥ सुगंधिगंधपुष्पेण मोदकश्च सुगंधियुक् ॥ ३१ ॥ संध्यार्द्धचन्द्र संकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे ॥ कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदात्पादपाधरः ॥ ३२ ॥ बभुः पंकजपुष्पाणि सरस्सु सकलाञ्जनान् ॥ संमोहयितुमुद्युक्ता सुमुखी वायुदेवता ॥ ३३ ॥ नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णैः प्रसूनकैः ॥ बभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाश्शंकरांतिके ॥ ३४ ॥

कामके शिवजीके पास जानेपर वसंतने अपने हार्दभावको शिवजीपर फैलाया ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण वृक्ष प्रफुल्लित होगये लतायें फूलगई हैं जल कमलोंसहित और कमल भ्रमरोंसहित होगयेहैं ॥ ३० ॥ वसन्तके प्रविष्ट होतेही सुगंधित पुष्पोंकी गंधसे युक्त सुन्दर मलयवायु वहने लगी ॥ ३१ ॥ संध्याके अर्धचन्द्रके समान पलाश शोभित होरहेथे, और उनमें जो पुष्प फूल रहेथे वही मानो कामदेवके अस्त्र थे ॥ ३२ ॥ तडागमें कमलके पुष्प शोभित होरहेथे और वायु देवता मनुष्योंको मोहित करनेको उद्यतथी ॥ ३३ ॥ वहां शंकरके समीपमें नागकेशरके वृक्ष अपने स्वर्णवर्णके पुष्पोंसे मदनकेतुके समान शोभित

होरहेथे ॥ ३४ ॥ लवंग लता सुन्दर सुगन्धसे वायुको वासित करके कामीजनोंके चित्तको वारंवार मोहित कररहीथी ॥ ३५ ॥ सुन्दर अग्निकी समान चर्चित सुन्दर स्वरवाले आमपर बैठनेवाले भ्रमर कामके बाणके समूह और कामसे व्याप्त वे मदनके पर्यंक जानेगये ॥ ३६ ॥ ज्ञानके बलसे जिनके हृदयान्धकार दूर होगयेहैं ऐसे मुनियोंके चित्तके समान फूलेहुये कमलोंसे पूरित निर्मल जल शोभा देरहेथे ॥ ३७ ॥ सूर्यकी किरणोंके लगनेसे बरफ गलकर बहगईथी तडागोंके मध्य गाध होरहेथे ॥ ३८ ॥ रात्रि चन्द्रमाके साथ होनेके कारण वैसेही शोभित होरहीथी जैसे अपने प्रियतमके साथ सुन्दर स्त्री हो ॥ ३९ ॥

लवंगवल्लीसुरभिगंधेनोद्वास्य मारुतम् ॥ मोहयामास चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ॥ ३५ ॥ चारुपावकचर्चित्सु सुस्वराश्चूतशालिनः॥
बभुर्मदनबाणौघपर्यंकमदनावृताः ॥ ३६ ॥ अंभांसि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशाशयाः ॥ मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमम् ॥
॥ ३७ ॥ तुषारास्सूर्यरश्मीनां संगमादगमन् बहिः ॥ प्रमत्वानीक्ष्यतेक्षाश्च सलिलीहृदयास्तदा ॥ ३८ ॥ प्रसन्नास्सह चन्द्रेण
निनिषारास्तदाऽभवन् ॥ विभावर्यः प्रियेणैवं कामिन्यस्सुमनोहराः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्काले महादेवस्सह सत्या धरोत्तमे ॥ रेमे
स सुचिरं छन्दं निकुंजेषु नदीषु च ॥ ४० ॥ तथा तेन समं रेजे तदा दाक्षायिणी मुने ॥ यथा हरः क्षणमपि शांतिमाप तया
विना ॥ ४१ ॥ संभोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया ॥ विशतीव हरस्यांगे पाययन्निव तद्रसम् ॥ ४२ ॥ तस्याः कुसुममाला
भिर्भूषयन्सकलां तनुम् ॥ स्वहस्तरचिताभिस्तु नवशर्माकरोच्च सः ॥ ४३ ॥ आलापैर्वीक्षितैर्हास्यैस्तथा संभाषणैर्हरः ॥ तस्या
दिदेश गिरिजां सपतीवात्मसंविदम् ॥ ४४ ॥

उस समय महादेवने उस पर्वतपरके निकुञ्ज और नदिओंमें सतीके सांथ बहुत काल पर्यन्त स्वच्छन्द रमण कियां ॥ ४० ॥ हे मुने ! दक्षकी पुत्री महादेवजीके साथ अतिशय शोभित हुई और शिवभी उसके विना क्षणभरभी न शान्त रहतेथे ॥ ४१ ॥ सतीभी शिवके मनको प्रसन्न करतीहुई और मानो सम्भोगका रस पान कराती हुई शिवके शरीरमें प्रविष्टसी हुई जारहीथी ॥ ४२ ॥ और शंकरभी उसके अंगोंको पुष्पोंकी मालासे शोभित करते हुये नवीन नवीन प्रकारके मंगल कररहेथे ॥ ४३ ॥ शिवभी आलापवीक्षित हास्य और सम्भाषणसे उस विषयमें अपने ज्ञानका परिचयसा देरहथे ॥ ४४ ॥

उसके चन्द्ररूपी मुखके अमृतके पानसे प्रसन्न हुये शिव अपनी विशिष्ट अवस्थाका कुछ ध्यान न करतेथे ॥ ४५ ॥ उसके मुखकमलकी आवाससे उसकी
सुंदरतासे उसकी क्रीडासे महादेवजी ऐसे बँधेथे जैसे कोई हाथी रस्सियोंसे बँधाहो ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसे हिमालयके कुंजोंमें सानुओंपर और गुफाओंमें
शिवजी सतीके साथ प्रतिदिन रमण करतेथे शिवजीके ऐसे क्रीडा करतेहुये देवताओंके पचीस वर्ष गत होगये ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले कभी वर्षाऋतुमें जब कि महादेवजी कैलास पर्वतके एक

तद्वक्त्रचंद्रपीयूषपानस्थिरतनुर्हरः ॥ नानावैशेषिकीं तन्वीमवस्थां स कदाचन ॥ ४५ ॥ तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्य्यैश्च नर्मभिः ॥
गुणैरिव महादंती बद्धो नान्यविचेष्टितः ॥ ४६ ॥ इति हिमगिरिकुंजप्रस्थभागे दरीषु प्रतिदिनमभिरेमे दक्षपुत्र्या महेशः ॥ क्रतुभु
जपरिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता दश दश च सुरर्षे वत्सराः पंच चान्ये ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसं
हितायां द्वितीये सतीखंडे सतीशिवक्रीडावर्णनं नामैकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे ॥
कैलासक्ष्माभृतः प्राह प्रस्थस्थं वृषभध्वजम् ॥ १ ॥ ॥ सत्युवाच ॥ देव देव महादेव शंभो मत्प्राणवल्लभ ॥ शृणु मे वचनं नाथ
श्रुत्वा तत्कुरु मानद ॥ २ ॥ घनागमोयं संप्राप्तः कालः परमदुस्सहः ॥ अनेकवर्णमेघौघास्संगीतांबरदिक्चयाः ॥ ३ ॥ विवांति वाता
हृदयं हारयंतीति वेगिनः ॥ कदंबरजसा धौताः पाथोबिन्दुविकर्षणाः ॥ ४ ॥ मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुंचताम् ॥ विद्युत्पता
किनां तीव्रैः क्षुब्धं स्यात्कस्य नो मनः ॥ ५ ॥

शिखरपर बैठेथे तब सतीने यह प्रश्न किया ॥ १ ॥ सती बोली हे देवताओंकेदेवता ! हे मेरे प्राणके वल्लभ ! हे मानद ! हे नाथ ! मेरे वचनोंको सुनो और
वैसा करो ॥ २ ॥ हे नाथ ! यह परम दुस्सह वर्षाकाल आकर प्राप्त हुआ नानावर्णके मेघ दशोदिशाओंमें घिरे हैं ॥ ३ ॥ हृदयको हरनेवाली वायु
बहरहीहै कदम्बके मकरन्दसे मिलेहुये जलके शीकर आरहे हैं ॥ ४ ॥ धाराओंका समूह बरसातेहुये बिजुलीको चमकातेहुये और गर्जते हुये मेघोंको

देखकर किसका मन क्षुभित नहीं होजाता ॥ ५ ॥ यह ऋतु विरहियोंको दुःख देनेवाला जिसमें न तो दिनको सूर्य प्रकाशित होताहै और न रात्रिको चन्द्रमा ऐसा दिनको भी रात्रिके समान रखनेवाला शोभित होरहाहै ॥ ६ ॥ हे शंकर ! वायुके वेगसे प्रेरित शब्द करते हुये मेघभी एकत्र नहीं ठहरते किन्तु लोगोंके शिरपर गिरतेहुये दिखाई देतेहैं ॥७॥ हे शंकर ! वायुसे प्रेरित बडे बडे वृक्ष, अन्तरिक्षमें नाचतेसे दिखाई देतेहैं जो डरनेवालोंको डरावने और कामियोंको सुख देनेवाले हैं॥८॥चिकने और काले अंजनके समान मेघके ऊपर उडती हुई बकपंक्ति ऐसी शोभा देरही है जैसे यमुना नदीके पृष्ठपर फेन वहताहो ॥९॥

न सूर्यो दृश्यते नापि मेघच्छन्नो निशापतिः ॥ दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यसनाकरः ॥ ६ ॥ मेघा नैकत्र तिष्ठंतो ध्वनन्तः पवनेरिताः ॥ पतंत इव लोकानां दृश्यंते मूर्ध्नि शंकर ॥ ७ ॥ वाताहता महावृक्षा नर्तंत इव चांबरे ॥ दृश्यंते हर भीरूणां त्रासदाः कामुकेप्सिताः ॥ ८ ॥ स्निग्धनीलांजनस्याशु सदिवौघस्य पृष्ठतः ॥ बलाकराजी वात्युच्चैर्यमुनापृष्ठफेनवत् ॥ ९ ॥ क्षपाक्षयेषवलयं दृश्यते कालिकागता ॥ अंबुधाविव संदीप्तपावको वडवामुखः ॥ १० ॥ प्रारोहंतीह सस्यानि मंदिरं प्राङ्गणेष्वपि ॥ किमन्यत्र विरूपाक्ष सस्योद्भूतिं वदाम्यहम् ॥ ११ ॥ श्यामलै राजतैरक्तैर्विशदोयं हिमाचलः ॥ मंदराश्रयमेघौघः पत्रैर्दुग्धांबुधिर्यथा ॥ १२ ॥ असमश्रीश्च कुटिलं भेजे यस्याथ किंशुकान् ॥ उच्चावचान् कलौ लक्ष्मीर्गन्ता संत्यज्य सज्जनान् ॥ १३ ॥ मंदारस्तनपीलूनां शब्देन हषिता मुहुः ॥ केकायंते प्रतिवने सततं पृष्ठसूचकम् ॥ १४ ॥

रात्रिके आजानेमें श्यामता आजानेसे विद्युत वलयाकार दीखतीहै जैसे समुद्रमें प्रदीप्त वडवामुख अग्नि होतीहै ॥ १० ॥ हे विरूपाक्ष ! ऐसे समयमें मन्दराचलपर छोटे वृक्ष जमरहेहैं दूसरे स्थानकी क्या चर्चा है ॥ ११ ॥ काले सफेद और लाल मेघोंसे घिरा हुआ यह पर्वत वैसेही शोभा देता है जैसे पक्षियोंसे घिराहुआ दुग्धका समुद्र ॥ १२ ॥ भिन्न भिन्न प्रकारकी शोभा दिखाते हुये वृक्षोंके पल्लव शोभित होरहेहैं जैसे कलिकालमें सज्जनोंको छोडकर नीचे ऊंचे पुरुषोंको लक्ष्मी प्राप्त होतीहै ॥ १३ ॥ मन्दर पर्वतके मेघोंकी ध्वनिसे प्रसन्न हुये ये मयूर वनवनमें अपनी पीठ दिखाकर नाच रहेहैं ॥ १४ ॥

और मेघोंके लिये उत्सुक यह चातकोंकी मधुर ध्वनि सुनाई पडरहीहै ॥ १५ ॥ मेघोंकी यह दुर्नीति देखिये जो कि अपने अनुगामी मयूर और चातकोंको ओलोंसे ढंकताहै ॥ १६ ॥ मयूर और सारंगका मित्रसेभी पराजय देखकर उनका मन हर्षको प्राप्त होताहै ॥ १७॥ इस विषम कालमें काक और मयूरभी अपना घोसला बनातेहैं भला कहो कि तुम विना घरके कैसे शान्ति पाओगे ॥ १८ ॥ हे पिनाकी ! मुझे मेघोंसे बडा डर लगता है इस हेतु मेरे कहनेसे कहीं घरका प्रबंध करो ॥ १९ ॥ हे वृषभध्वज ! कैलासमें अथवा हिमालयमें वा महाकाशीमें अथवा पृथ्वीमें जहां उचित हो प्रबंध करो ॥ २० ॥

मेघोत्सुकानां मधुरश्चातकानां मनोहरः ॥ धारासारशरैस्तापं पेतुः प्रतिपथोद्गतम् ॥ १५ ॥ मेघानां पश्य मद्देहे दुर्नयं करकोत्करैः ॥ ये छादयंत्यनुगते मयूरांश्चातकांस्तथा ॥ १६ ॥शिखिसारंगयोर्हष्ट्वा मित्रादपि पराभवम् ॥ हर्षं गच्छंति गिरिशं विदूरमपि मानसम् ॥ ॥ १७ ॥ एतस्मिन्विषये काले नीडं काकाश्चकोरकाः ॥ कुर्वंति त्वां विना गेहान् कथं शांतिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ महतीवाद्य नो भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक् ॥ यतस्व यस्माद्वासाय माचिरं वचनान्मम ॥ १९ ॥ कैलासे वा हिमाद्रौ वा माहाकोष्यामथ क्षितौ ॥ तत्रोपयोग्यं संवासं कुरु त्वं वृषभध्वज ॥ २० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्तस्तया शंभुर्दाक्षायण्या तथाऽसकृत् ॥ संजहास च शीर्षस्थ चन्द्ररश्मिस्मितालयम् ॥ २१ ॥ अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नौष्ठसंपुटः ॥ महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन्परमेश्वरः ॥ २२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ॥ मेघास्तत्र न गंतारः कदाचिदपि मत्प्रिये ॥ २३ ॥ मेघा नितंबपर्यंतं संचरंति महीभृतः ॥ सदा प्रालेयसा नोस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥ २४ ॥ कैलासस्य तथा देवि पादगाः प्रायशो घनाः ॥ संचरंति न गच्छंति तत ऊर्द्ध्वं कदाचन ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी बोले ऐसी दाक्षायणीकी विनती सुनकर शंकर वारंवार हँसे और उनके मस्तक पर स्थित अर्धचन्द्रके प्रकाशसे वह स्थान प्रकाशित होगया ॥२१॥ अनन्तर परमेश्वर सब तत्त्वोंके जाननेवाले सतीको प्रसन्न करते हुये हँसकर बोले ॥ २२ ॥ ईश्वर बोले हे प्रिये ! जहां तेरी प्रसन्नता केलिये मैं स्थान बनाऊंगा वहां मेघ नहीं जावेंगे ॥ २३ ॥ हे मनोहरे ! वर्षाकालमें भी हिमालयके शिखरके नीचेही नीचे मेघ भ्रमण करते रहतेहैं ॥ २४॥ और कैलासके

तो नीचेही मेघ रहतेहैं ऊपर कदापि नहीं जाते ॥ २५ ॥ पुष्करावर्तक आदि मेघ जम्बूके मूलतक प्राप्त होकर सुमेरुके शिखरके ऊपर नहीं जाते ॥२६॥ इतने कहे हुये पर्वतोंमेंसे जिसपर निवास करनेकी तुम्हारे मनकी इच्छा हो उसको मुझसे शीघ्र कहो ॥२७॥ हिमालय पर्वतपर सुवर्ग पक्षवाले अनिलवृन्द नामक पक्षियोंके समूह अपने ऊंचे ऊंचे मधुर शब्दोंसे तुम्हारे इच्छानुसार विहारके कौतुकोंका गान करैंगे ॥ २८ ॥ तहां सिद्धों की स्त्रियां तुम्हारे स्वेच्छा विहारके समय मणियोंमें जडजडकर बनाई हुई वेदीरूप आसनकी भूमिको कौतुक साथ तुम्हारे अर्पण करेंगी, और नाना प्रकारके फल आदि लाकर

सुमेरोर्वा गिरेरूर्द्ध्वं न गच्छंति बलाहकाः ॥ जम्बूमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ॥ २६ ॥ इत्युक्तेषु गिरीन्द्रेषु यस्योपरि भवेच्छि ते ॥ मनोरुचिर्निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं हि मे ॥ २७ ॥ स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ॥ शब्दोत्तरंगैर्मधुरस्वनैस्तैर्मुदोपगेयानि गिरौ हिमोत्थे ॥ २८॥ सिद्धाङ्गनास्ते रचितासना भुवमिच्छंति चैवोपहृतं सकौतुकम् ॥ स्वेच्छाविहारे मणिकुट्टिमे गिरौ कुर्वन्ति चेष्यंति फलादिदानकैः ॥ २९ ॥ फणीन्द्रकन्या गिरिकन्यकाश्च या नागकन्याश्च तुरंगमुख्याः ॥ सर्वास्तु तास्ते सततं सहायतां समाचरिष्यंत्यनुमोदविभ्रमैः ॥ ३० ॥ रूपं तदेवमतुलं वदनं सुचारु दृष्ट्वांगना निजवपुर्निजकांतिसद्मम् ॥ हेला निजे वपुषि रूपगणेषु नित्यं कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥ ३१ ॥ या मेनका पर्वतराजजाया रूपैर्गुणैख्यातवती त्रिलोके ॥ सा चापि ते तत्र मनोनुमोदं नित्यं करिष्यत्यनुनाथनाद्यैः ॥ ३२ ॥ पुरं हि वर्गैर्गिरिराजवंद्यैः प्रीतिं विचिन्वद्भिरुदाररूपा ॥ शिक्षा सदा ते खलु शोचितापि कार्याऽन्वहं प्रीतियुता गुणाढ्यैः ॥ ३३ ॥

भी तुम्हारे सामने रखना चाहेंगी ॥ २९ ॥ नागकन्या, पर्वतकन्या, तथा तुरङ्गमुखी नागकन्या (किन्नरी) यह सब निरंतर क्रीडाके समय सुन्दर २ वचन कह तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ ३० ॥ तहांकी अतिसुंदरी देवांगनायें तुम्हारे इस अनुपम रूप और परममनोहर मुखको देखकर अपने शरीरमें रूप और गुणको धिक्कार देवेंगी और तुम्हारी ओर टकटकी लगाकर देखेंगी ॥ ३१ ॥ जो पर्वतराजकी स्त्री मेनका रूप गुणसे त्रिलोकीमें विख्यात है वह भी तुम्हारे मनकी प्रसन्नता अनेक प्रकारसे करेगी और तुम्हारी अनुकूलता करेगी ॥ ३२ ॥ गिरिराजको वंदन करने वाले सब पुरके परिवारके लोग तुम्हारी

उदाररूप प्रीति करैंगे यदि तुमको कुछ शोचभी होगा तो वह तुम्हारी शिक्षा करैंगे और तुमको समझावैंगे ॥ ३३ ॥ बडे विचित्र कोकिलाओंके आलाप
और मोदवाले कुंजोंके समूहोंसे घिरेहुए स्थानमें वा हे प्रिये ! क्या सदा वसन्तकी उत्पत्तिवाले स्थानमें जाना चाहतीहो ॥ ३४ ॥ अनेक बहुतसे जलोंसे
पूर्ण सरस शीतसे युक्त सैंकडों कमलनियोंसे युक्त अचलराजाहिमालय है ॥ ३५ ॥ सब कामना देनेवाले शाद्वल तथा कल्पवृक्षोंसे सम्पन्न फूलोंको अश्व
करि गोव्रजकी समान क्षणमात्रको देखो ॥ ३६ ॥ यहांके हिंसक जीव सब शांत हैं मुनि यतियोंसे यह सम्पन्न है देवालय है हे महामाये ! यह अनेक

विचित्रैः कोकिलालापमोदैः कुंजगणावृतम् ॥ सदा वसंतप्रभवं गंतुमिच्छसि किं प्रिये ॥ ३४ ॥ नानाबहुजलापूर्णसरश्शीतसमा
वृतम् ॥ पद्मिनीशतशोयुक्तमचलेन्द्रं हिमालयम् ॥ ३५ ॥ सर्वकामप्रदैर्वृक्षैश्शाद्वलैः कल्पसंज्ञकैः ॥ सक्षणं पश्य कुसुमान्यथाश्वक
रिगोव्रजे ॥ ३६ ॥ प्रशांतश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ॥ देवालयं महामाये नानामृगगणैर्युतम् ॥ ३७ ॥ स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै
राजतैश्च विराजितम् ॥ मानसादिसरोरंगैरभितः परिशोभितम् ॥ ३८ ॥ हिरण्मयै रत्ननालैः पंकजैर्मुकुलैर्वृतम् ॥ शिशुमारैस्तथासं
ख्यैः कच्छपैर्मकरैः करैः ॥ ३९ ॥ निषेवितं मंजुलैश्च तथा नीलोत्पलादिभिः ॥ देवेशि तस्मान्मुक्तैश्च सर्वगंधैश्च कुंकुमैः ॥ ४० ॥
लसद्गंधजलैः शुभ्रैरापूर्णैः स्वच्छकांतिभिः ॥ शाद्वलैस्तरुणैस्तुंगैस्तीरस्थैरुपशोभितम् ॥ ४१ ॥ नृत्यद्भिरिव शाखोटैर्वर्जयंतं स्वसं
भवम् ॥ कामदेवैस्सारसैश्च मत्तचक्रांगशोभितैः ॥ ४२ ॥

मृगगणोंसे युक्त है ॥ ३७ ॥ स्फटिक मणि और सुवर्णकी गोखादि तथा चांदीके स्थानोंसे विराजमान मानसादि सरोवरके रंगोंसे सब प्रकारसे शोभित ॥ ३८ ॥
सुवर्ण और रत्नोंकी डंडीवाले कमल और बबूलोंसे सम्पन्न, शिशुमार तथा असंख्य कच्छप मकरोंसे व्याप्त ॥ ३९ ॥ बडे उज्वल नील कमलादिकोंसे सम्पन्न
है हे देवेशि ! इसी कारण कुंकुमादिकी सब ओरसे गंध प्राप्त होरहीहै ॥ ४० ॥ जलोंमेंसे गंध आरहीहै स्वच्छ कान्तिवाले सरोवर भर रहेहैं बडे तरुण
ऊंचे वृक्ष तथा शाद्वलोंसे शोभायमान है ॥ ४१ ॥ यहांके अखरोटोंके वृक्ष मानो अपनी शाखा हिलाकर नृत्य कररहेहैं कामदेव सारस और मतवाले

चकवाचकवियोंसे शोभित है ॥ ४२ ॥ भ्रमरादि मधुरध्वनिसे गुंजार रहेहैं और प्रेमसे शब्दायमान कामोद्दीपन करनेवाले शब्द होरहेहैं ॥ ४३ ॥ इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कोणपति पवनादिकी पुरियें ॥ ४४ ॥ जिसके शिखरपर शोभायमान होरहीहैं, मेरुपर्वतमें इस प्रकार सब देवता निवास करतेहैं रंभा शची मेनका आदि अप्सराओंसे सेवित है ॥४५॥ हे देवि ! क्या तुम इन समस्त भूमियोंके सारभूत महामनोहर महापर्वतोंमें विहार करनेकी इच्छाकरतीहै॥ ४६॥ यहां जानेसे सखियोंसे युक्त अप्सरागणोंसे मंडित शचीदेवी तुम्हारी नित्य सहायता करैगी ॥ ४७ ॥ अथवा पर्वतराज सब वस्तुओंसे शोभायमान मेरे

मधुराराविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ॥ शब्दायमानं च मुदाकामोद्दीपनकारकम् ॥ ४३ ॥ वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ अग्नेः कोणपराजस्य मारुतस्य परस्य च ॥ ४४ ॥ पुरीभिश्शोभिशिखरं मेरोरुच्चैस्सुरालयम् ॥ रंभाशचीमेनकादिरंभोरुगणसेवितम् ॥ ४५ ॥ किं त्वमिच्छासि सर्वेषां पर्वतानां हि भूभृताम् ॥ सारभूते महारम्ये संविहर्तुं महागिरौ ॥ ४६ ॥ तत्र देवी सखियुता साप्सरोगणमंडिता ॥ नित्यं कारिष्यति शची तव योग्यां सहायताम् ॥ ४७ ॥ अथवा मम कैलासे पर्वतेंद्रे सदाश्रये ॥ स्थानमिच्छासि वित्तेशपुरीपारिविराजिते ॥ ४८ ॥ गंगाजलौघप्रयते पूर्णचन्द्रसमप्रभे ॥ दरीषु सानुषु सदा ब्रह्मकन्याभ्युदीरिते ॥ ४९ ॥ नानामृगगणैर्युक्ते पद्माकरशतावृते ॥ सर्वैर्गुणैश्च सद्वस्तुसुमेरोरपि सुंदरि ॥ ५० ॥ स्थानेष्वेतेषु यत्रापि तवांतःकरणे स्पृहा ॥ तं द्रुतं मे समाचक्ष्व वासकर्तास्मि तत्र ते ॥ ५१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतीरिते शंकरेण तदा दाक्षायणी शनैः ॥ इदमाह महादेवं लक्षणं स्वप्रकाशनम् ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ सत्युवाच ॥ ॥ हिमाद्रावेव वसितुमहमिच्छेत्वयासह ॥ नचिरात्कुरु संवासं तस्मिन्नेव महागिरौ ॥ ५३ ॥

पर्वतराज कैलासमें जो कुबेरकी पुरीकेभी ऊपरभागमें विराजमान है तू रहनेकी इच्छा करतीहै ॥ ४८ ॥ जहां पूर्ण चन्द्रमाकी कान्तिकी समान नित्य जल बहताहै जहांकी गुफा (कन्दरा) ओंमें ब्रह्मकन्या सुन्दर गान करतीहैं वहां रहाचाहतीहो ॥ ४९ ॥ जो अनेक मृगगणोंसे युक्त सैंकडों कमलोंसे व्याप्त सबगुणोंमें श्रेष्ठ सुमेरुसेभी सुन्दर है ॥ ५० ॥ हे देवि ! इन स्थानोंमेंसे जहां तुम्हारे मनमें इच्छा हो उस वृक्षादिके स्थानको कहो वहीमें स्थान बनाय निवास करूं ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी बोले जब शंकरने ऐसा कहा तब सती शनैः महादेवसे अपने रहनेके लक्षण प्रकाश करने लगी ॥ ५२ ॥ सती बोली मैं

आपके सहित हिमालयमें निवास करनेकी इच्छा करती हूं उसी महापर्वतमें शीघ्रही निवास करिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले सतीके वचन सुन मोहित हुए
शंकरजी हिमालयके ऊंचे शिखरमें पार्वतीके सहित गये ॥ ५४ ॥ जो सिद्धोंकी स्त्रियोंसे सेवित है जहां पक्षी भी नहीं जासकते उस कमलोंके वनसे विराजमान
मनोहर शिखरमें शिवजी गये ॥ ५५ ॥ विचित्ररूपवाले कमलोंसे वह शिखर चित्रित होरहाथा, प्रभातके सूर्यकी समान शोभायमान उस शिखरपर सतीसहित
शिवजी प्राप्त हुए ॥ ५६ ॥ स्फटिकमणि और अभ्रमय शाद्वल वृक्षोंसे विराजमान विचित्र पुष्पराजी और कमलिनियोंसे संयुक्त ॥ ५७ ॥ फूले वृक्षोंकी

॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोहितः ॥ हिमाद्रिशिखरं तुंगं दाक्षायण्या समं ययौ ॥ ५४ ॥ सिद्धांगनागणयुत
मगम्यंचैव पक्षिभिः ॥ अगमच्छिखरं रम्यं सरसीवनराजितम् ॥ ५५ ॥ विचित्ररूपैः कमलै शिखरं रत्नकर्बुरम् ॥ बालार्कसदृशं
शंभुराससाद सतीसखः ॥ ५६ ॥ स्फटिकाभ्रमये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ॥ विचित्रपुष्पावलिभिस्सरसीभिश्च संयुते ॥ ५७ ॥
प्रफुल्लतरुशाखाग्रं गुंजद्भ्रमरसेवितम् ॥ पंकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ॥ ५८ ॥ शोभितं चक्रवाकाद्यैः कादंबैर्हंसशंकुभिः ॥
प्रमत्तसारसैः क्रौंचैर्नीलस्कंधैश्च शब्दितैः ॥ ५९ ॥ पुंस्कोकिलानां निनदैर्मधुरैर्गणसेवितैः ॥ तुरंगवदनैस्सिद्धैरप्सरोभिश्च गुह्यकैः
॥ ६० ॥ विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारितम् ॥ पुरंध्रीभिः पावतीभिः कन्याभिरभिसंगतम् ॥ ६१ ॥ विपंचीतांत्रिकामत्तमृदं
गपटहस्वनैः ॥ नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैश्च शोभितम् ॥ ६२ ॥ देविकाभिर्दीर्घिकाभिर्गंधिभिस्सुसमावृतम् ॥ प्रफुल्लकुसुमैर्नित्यं
सुकुंजैरुपशोभितम् ॥ ६३ ॥

अग्रशाखावाले गुंजार करतेहुए भ्रमरोंसे सेवित फूले हुए पंकरुह और नीले कमलोंसे शोभायमान ॥ ५८ ॥ चक्रवाक, कादम्ब, हंस, शंकु, मतवाले सारस
और नीली गर्दन वाले क्रौंच पक्षियोंसे सेवित तथा शब्दायमान ॥ ५९ ॥ पुंस्कोयलोंके मधुरालाप तथा गणोंसे सेवित तुरंगवदनवाले सिद्ध और
अप्सराओंके समूहोंसे व्याप्त ॥ ६० ॥ विद्याधरी देवी और किन्नरियोंके विहारसे सम्पन्न पर्वतकी रहनेवाली स्त्री और कन्याओंसे संघटित ॥ ६१ ॥
मृदंग पटह वीणा सितारके बाजोंपर नाचती हुई अप्सराओंके कौतुकोंसे नित्य व्याप्त ॥ ६२ ॥ देवताओंद्वारा निर्माण की हुई बावडी और उनमें आतीहुई

कमलगंधिसे व्याप्त फूले हुए फूलोंवाले वृक्षोंकी कुंजोंसे नित्य शोभायमान ॥६३॥ शैलराजके इसप्रकार सब प्राणियोंसे शोभायमान उत्तम शिखरपर सतीके सहित शंकर बहुत कालतक रमण करतेरहे ॥ ६४ ॥ उस स्वर्गके समान स्थानमें महादेवजी सतीके साथ परम प्रसन्नतासे देवताओंके दशसहस्र वर्षतक विहार करते रहे ॥ ६५ ॥ कभी उस स्थानसे शिवजी अन्य स्थानमें जाते कभी देवी देवताओंसे व्याप्त मेरु शिखरपर जाते ॥ ६६ ॥ पृथिवीके अनेक द्वीप तथा दिव्य उद्यानोंमें पृथिवीमें विचरण करते सतीके साथ रमण करने लगे ॥६७॥ यज्ञ तप निजरूप चिन्तन यह सब छोड शिवने सतीमेंही मन लगाया॥६८॥

शैलराजपुराभ्यर्णे शिखरे वृषभध्वजः ॥ सहसत्या चिरं रेमे एवं भूतेषु शोभनम् ॥ ६४ ॥ तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शंकरः ॥ दशवर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा ॥ ६५ ॥ स कदाचित्ततस्स्थानादन्ययाति स्थलं हरः ॥ कदाचिन्मेरुशिखरं देवीदेववृतं सदा ॥ ६६ ॥ द्वीपान्नानातथोद्यानवनानि वसुधातलम् ॥ गत्वागत्वा पुनस्तत्राभ्येत्य रेमे सतीसुखम् ॥ ६७ ॥ न जज्ञे स दिवा रात्रौ न ब्रह्मणि तपस्समम् ॥ सत्यां हि मनसा शंभुः प्रीतिमेव चकार ह ॥ ६८ ॥ एवं महादेवमुखं सत्यपश्यत्स्म सर्वदा ॥ महादेवोपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत्सतीमुखम् ॥ ६९ ॥ एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम् ॥ वर्द्धयामासतुः कालीशिवौ भावांबुसेचनैः ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे शिवाशिवविहारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं कृत्वा विहारं वै शंकरेण च सा सती ॥ संतुष्टा साभवच्चातिविरागा समजायत ॥ १ ॥ एकस्मिन्दिवसे देवी सती रहसि संगता ॥ शिवं प्रणम्य सद्भक्त्या न्यस्योच्चैः सुकृतांजलिः ॥ २ ॥

इस प्रकार सती सदा महादेवकाही मुख देखती और महादेवजी सदा सतीका मुख देखतेथे ॥ ६९ ॥ इस प्रकार परस्पर एक दूसरेके अनुरागसे परस्पर शिव कालीने भावका जल छिडककर प्रेमरूपी वृक्षको बढाया ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतसतीखंडे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वह सती शंकरके साथ विहार करके बहुत संतुष्ट हो फिर कामसे विरक्त हुई ॥ १ ॥ एक समय एकांतमें सुखसे बैठी हुई सती

श्रेष्ठ भक्तिसे शिवको प्रणामकर और हाथ जोड ॥ २ ॥ वह दक्षकन्या सती प्रसन्नहुए अपने प्रभुको प्रणामकर बडी नम्र और भक्तिसे कहने लगी ॥ ३ ॥ सती बोली हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! दीनोंके उद्धार करनेवाले हे महायोगी ! मुझपर कृपा करो ॥ ४ ॥ हे स्वामी ! आप परमपुरुष हो रज, सत, तमसे परे हो निर्गुण सगुणके साक्षी निर्विकारी महा प्रभु हो ॥ ५ ॥ मैं स्त्रियोंमें धन्य हूं जो विहारशील आपकी प्रिया हुई हूं, हे हर ! भक्तिवत्सलतासे आप मेरे स्वामी हुए हो ॥ ६ ॥ हे नाथ ! आपने मेरे साथ बहुत कालतक विहार किया; हे महेशान ! उससे मैं संतुष्ट हुई और मेरा मन

सुप्रसन्नं प्रभुं नत्वा सा दक्षतनया सती ॥ उवाच सांजलिर्भक्त्या विनयावनता ततः ॥ ३ ॥ सत्युवाच ॥ देवदेव महादेव करुणा
सागर प्रभो ॥ दीनोद्धर महायोगिन् कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४ ॥ त्वं परः पुरुषस्स्वामी रजस्सत्त्वतमःपरः ॥ निर्गुणस्सगुणस्साक्षी
निर्विकारी महाप्रभुः ॥ ५ ॥ धन्याहं ते प्रिया जाता कामिनी सुविहारिणी ॥ जातस्त्वं मे पतिस्स्वामिन्भक्तिवात्सल्यतो हर ॥
॥ ६ ॥ कृतो बहुसमा नाथ विहारः परमस्त्वया ॥ संतुष्टाहं महेशान निवृत्तं मे मनस्ततः ॥ ७ ॥ ज्ञातुमिच्छामि देवेश परं तत्त्वं
सुखावहम् ॥ यं न संसारदुःखाद्धै तरेज्जीवोंजसा हर ॥ ८ ॥ यत्कृत्वा विषयी जीवस्स लभेत्परमं पदम् ॥ संसारी न भवेन्नाथ तत्त्वं
वद कृपां कुरु ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्यपृच्छत्स्म सद्भक्त्या शंकरं सा सती मुने ॥ आदिशक्तिर्महेशानी जीवोद्धाराय केवलम् ॥ १० ॥
आकर्ण्य तच्छिवः स्वामी स्वेच्छयोपात्तविग्रहः ॥ अवोचत्परमप्रीतस्सतीं योगविरक्तधीः ॥ ११ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ शृणु देवि
प्रवक्ष्यामि दाक्षायणि महेश्वरि ॥ परं तत्त्वं तदेवानुशयी मुक्तो भवेद्यतः ॥ १२ ॥

निवृत्त होगया ॥ ७ ॥ हे देवेश ! अब सुख देनेवाले परम तत्त्वके जाननेकी इच्छा करती हूं; हे हर ! जिसके कारणसे यह जीव संसारके पार होसकता है ॥ ८ ॥ विषयी जीव जिसको प्राप्त कर परमपदको लेता है हे नाथ ! और फिर भी वह संसारी न हो कृपाकरके वह तत्त्व कहो ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जब सतीने श्रेष्ठ भक्तिकर शंकरसे ऐसा पूंछा और आदिशक्ति महेशानीने केवल जीवोंके उद्धारकी इच्छा की ॥ १० ॥ तब अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले शिवजी यह वचन सुन, योगसे विरक्त बुद्धि होनेके कारण परम प्रेमसे सतीसे बोले ॥ ११ ॥ शिवजी बोले हे दाक्षायणि महेश्वरि !

सुनो मैं तुमसे कहता हूं जिस परमतत्त्वको जानकर यह अनुशयी जीव मुक्त होजाता है ॥ १२ ॥ हे परमेश्वरि तुम विज्ञानको ही परमतत्त्व जानो दूसरा स्मरण उस स्थलपर नहीं शुद्ध बुद्धिसे केवल ब्रह्मका स्मरण है ॥ १३ ॥ हे प्रिये इस तत्त्वका जाननेवाला कोई विरलाही होता है और त्रिलोकीमें दुर्लभ है मैं दास हूं और वह ब्रह्म साक्षात् परेसे परे है ॥ १४ ॥ भुक्ति और मुक्तिकी फल देनेवाली उस विज्ञानकी माता मेरी भक्ति है वह भक्तिभी मेरीही कृपासे सुलभ होती है और वह नौ प्रकारकी है ॥ १५ ॥ भक्ति और ज्ञानमें कुछ भेद नहीं है भक्ति करनेवालेको सदा सुख होता है भक्तिसे विरोध करनेवालेको कभी विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १६ ॥ हे देवि, मैं भक्तिके सदा आधीन हूं भक्तिके प्रभावसे जातिसे हीन नीच पुरुषोंके घरोंमें भी जाता हूं हे देवि !

परतत्त्वं विजानीहि विज्ञानं परमेश्वरी ॥ द्वितीयं स्मरणं यत्र नाहं ब्रह्मेति शुद्धधीः ॥ १३ ॥ तदुर्लभं त्रिलोकेस्मिंस्तज्ज्ञाता विरलः प्रिये ॥ यादृशो यस्सदासोहं ब्रह्मसाक्षात्परात्परः ॥ १४ ॥ तन्माता मम भक्तिश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥ भक्तौ ज्ञाने न भेदो हि तत्कर्तुस्सर्वदा सुखम् ॥ विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः ॥ १६ ॥ भक्त्या हीनस्सदाहं वै तत्प्रभावाद्गृहेष्वपि ॥ नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः ॥ १७ ॥ सा भक्तिर्द्विविधा देवि सगुणा निर्गुणा मता ॥ वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा त्ववरा स्मृता ॥ १८ ॥ नैष्ठिक्यनैष्ठिकी भेदाद्द्विविधे द्विविधे हि ते ॥ षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता ॥ १९ ॥ विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ॥ तयोर्बहुविधत्वाच्च तत्त्वं त्वन्यत्र वर्णितम् ॥ २० ॥ ते नवांगे उभे ज्ञेये वर्णिते मुनिभिः प्रिये ॥ वर्णयामि नवांगानि प्रेमतः शृणु दक्षजे ॥ २१ ॥

इसमें संदेह नहीं है ॥ १७ ॥ हे देवि ! सगुण निर्गुणके भेदसे वह भक्ति दो प्रकारकी है नियम संबन्धी और स्वभावकी इसमें पहली श्रेष्ठ और दूसरी अवर है ॥ १८ ॥ वह दोनों प्रकारकी भक्ति नैष्ठिकी और अनैष्ठिकी भेदसे दो दो प्रकारकी है इसमें नैष्ठिकी छः प्रकारकी और अनैष्ठिकी एकही प्रकारकी है ॥ १९ ॥ इसको विहित अविहित भेदसे पंडित अनेक प्रकारकी कहते हैं और वह अनेक प्रकारके होनेसे उनका तत्त्व अन्यत्र वर्णन किया है ॥ २० ॥ हे प्रिये ! उन दोनोंके अंग मुनियोंने नौ प्रकारके वर्णन किये हैं हे देवि ! उन नौ अंगोंके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं सावधान होकर प्रेमसे

सुनो ॥ २१ ॥ श्रवणकरना, कीर्तनकरना, स्मरण, सेवन, दास्यपन, अर्चन और सदा वन्दन करना ॥ २२ ॥ सख्यता और पश्चात् आत्मसमर्पण, यह नौ अंग विद्वानोंने कहे हैं हे शिवे ! उसके उपांग तो बहुतही हैं ॥ २३ ॥ हे देवि ! अब नवांगोंका लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं जो मेरा भक्त इनमें मन लगावै तो उसको भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै ॥ २४ ॥ कथा आदिमें देहादिसे नित्य सन्मान करै स्थिर आसनसे बैठ कर उसका पान करै यह श्रवण कहाता है ॥ २५ ॥ मेरे जन्म कर्मको हृदयरूपी आकाशमें देखताहुआ उनको प्रीतिसे उच्चारण करै इसका नाम कीर्तन है ॥ २६ ॥ हे देवि ! मुझको

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा ॥ दास्यं तथार्चनं देवि वंदनं मम सर्वदा ॥ २२ ॥ सख्यमात्मार्पणं चेति नवांगानि
विदुर्बुधाः ॥ उपांगानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै ॥ २३ ॥ शृणु देवि नवांगानां लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ मम भक्तेर्मनो
दत्त्वा भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ॥ २४ ॥ कथादेर्नित्यसम्मानं कुर्वन्देहादिभिर्मुदा ॥ स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते ॥ २५ ॥
हृदाकाशेन संपश्यञ् जन्मकर्माणि वै मम ॥ प्रीत्याचोच्चारणं तेषामेतत्कीर्तनमुच्यते ॥ २६ ॥ व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र
सर्वदा ॥ निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम् ॥ २७ ॥ अरुणोदयमारभ्य सेवाकालेंचिता हृदा ॥ निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं
तदुदाहृतम् ॥ २८ ॥ सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः ॥ हृदयामृतभोगेन प्रियं दास्यमुदाहृतम् ॥ २९ ॥ सदा मृत्यानुकूल्येन
विधिना मे परात्मने ॥ अर्पणं षोडशानां वै पाद्यादीनां तदर्चनम् ॥ ३० ॥ मंत्रोच्चारणध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात् ॥ यदष्टांगेन
भूस्पर्शं तद्वै वंदनमुच्यते ॥ ३१ ॥ मंगलामंगलं यद्यत्करोतीतीश्वरो हि मे ॥ सर्वं तन्मंगलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम् ॥ ३२ ॥

नित्य सर्वत्र सर्वदा व्यापक जानकर निर्भय होकर लोकमें सदा विचरै ॥ २७ ॥ अरुणोदयसे आरंभ करके सेवाकालमें हृदयसे विचारकर सदा निर्भय हो स्मरण करै इसका नाम स्मरण है ॥ २८ ॥ सदा सेवाके अनुकूल हो अपनी इन्द्रियोंको भगवत्सेवामें लगावै हृदयसे उनके अमृतका भोग करै उनका प्रिय चिन्तन करै इसका नाम दास्य है ॥ २९ ॥ भृत्यकी समान मेरी सदा अनुकूलता करै और सोलह प्रकारसे मेरा पूजन करै पाद्य अर्घ दे यह अर्चन है ॥ ३० ॥ मन वचन कर्मसे मंत्रोच्चारण और ध्यान करै आठों अंगोंसे भूमिको स्पर्श करै इसका नाम वंदन है ॥ ३१ ॥ मंगल अमंगल जो कुछ ईश्वर

मेरेलिये विधान करता है वह सब मंगल है ऐसा जो विश्वास है यह मित्रताका लक्षण है ॥ ३२ ॥ प्रीतिसे देहादि सब उसके निर्वाहको अर्पण करदेना आप शून्यत्व समझना यही आत्मसमर्पणहै ॥ ३३ ॥ यह मेरी भक्तिके नौ अंग भुक्ति मुक्तिके देनेवालेहैं यह ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले मुझको बहुत प्यारेहैं ॥ ३४ ॥ और मेरी भक्तिके उपांगतो बहुतही हैं बेलपत्र आदिसे सेवन यह विचारसे जानलेने ॥ ३५ ॥ हे प्रिया ! इसप्रकारसे सांगोपांग मेरी भक्ति सर्वोत्तम है यह ज्ञान वैराग्यकी उत्पन्न करनेवाली है इसकी मुक्ति दासी होकर रहतीहै यह सदा शोभायमान है ॥ ३६ ॥ हे प्रिये ! इसीसे सब कर्म और फलकी

कृत्वा देहादिकं तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम् ॥ निर्वाहाय च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम् ॥ ३३ ॥ नवांगानीति मद्भक्तेर्भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च ॥ ३४ ॥ उपांगानि च मद्भक्तेर्बहूनि कथितानि वै ॥ बिल्वादिसेवनादीनि समूह्यानि विचारतः ॥ ३५ ॥ इत्थं सांगोपांगभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये ॥ ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते ॥ ३६ ॥ सर्वकर्मफलोत्पत्तिस्सर्वदा त्वत्समप्रिया ॥ यच्चित्ते सा स्थिता नित्यं सर्वदा सोति मत्प्रियः ॥ ३७ ॥ त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पंथा नास्ति सुखावहः ॥ चतुर्युगेषु देवेशि कलौ तु सुविशेषतः ॥ ३८ ॥ कलौ तु ज्ञानवैरागौ वृद्धरूपौ निरुत्सवौ ॥ ग्राहकाभावतो देवि जातौ जर्जरतामति ॥ ३९ ॥ कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिस्सर्वयुगेष्वपि ॥ तत्प्रभावादहं नित्यं तद्वशो नात्र संशयः ॥ ४० ॥ यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत् ॥ विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयः ॥ ४१ ॥

उत्पत्ति होतीहै यह सदा तुम्हारी समान प्रियाहै जिसके चित्तमें यह स्थित हो वह सदा मेरा प्रियहै ॥ ३७ ॥ तीनों लोकमें भक्तिकी समान कोई मार्ग सुखदायी नहीं है हे देवेशि ! यह चारों युगोंमें प्रधानहै पर कलिमें विशेषहै ॥ ३८ ॥ कलियुगमें ज्ञान वैराग्य वृद्ध और निरुत्सव हैं हे देवि ! ग्राहकके अभावसे वे जर्जर होरहे हैं ॥ ३९ ॥ सब युगोंमें और विशेषकर कलिमें भक्ति विशेष फल देनेवालीहै इसके प्रत्यक्ष फलके प्रभावसे मैं सदा इसके वशीभूत रहताहूँ ॥ ४० ॥ जो पुरुष लोकमें भक्तिमान् होताहै मैं सदा उसकी सहाय करताहूं, मैं विघ्नोंका हरनेवाला उसके यहां जो विघ्न करताहै उसका शत्रु

होताहूं इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ हे देवि ! भक्तोंके हेतुही मैं काल क्रोधसे व्याप्त होताहूं मैंने भक्तोंके निमित्तही अपने नेत्रोंकी अग्निसे उसको दग्ध किया था ॥ ४२ ॥ हे देवि ! भक्तोंके निमित्तही मैं सूर्यसे ऊपर हुआ और बडे क्रोधसे शूल उठाकर उसको जय किया ॥ ४३ ॥ हे देवि ! भक्तके निमित्तही मैंने रावणको क्रोध करके गणोंके सहित त्याग दिया और उसका पक्षपात नहीं किया ॥ ४४ ॥ हे देवि ! भक्तोंके निमित्तही मैंने एकवार कुमति करनेपर व्यासजीको नंदीद्वारा काशीसे निकलवादिया था ॥ ४५ ॥ हे देवेशि ! बहुत कहनेसे क्या है मैं सदा भक्तिके अधीन हूं और भक्ति कर

भक्तहेतोरहं देवि कालं क्रोधपरिप्लुतः ॥ अदहं वह्निना नेत्रभवेन निजरक्षकः ॥ ४२ ॥ भक्तहेतोरहं देवि रव्युपर्यभवं किल ॥ अतिक्रोधान्वितः शूलं गृहीत्वाऽन्वजयं पुरा ॥ ४३ ॥ भक्तहेतोरहं देवि रावणं सगणं क्रुधा ॥ त्यजति स्म कृतो नैव पक्षपातो हि तस्य वै ॥ ४४ ॥ भक्तहेतोरहं देवि व्यासं हि कुमतिग्रहम् ॥ काश्या न्यसारयत् क्रोधाद्दण्डयित्वा च नंदिना ॥ ४५ ॥ किं बहूक्तेन देवेशि भक्त्याधीनस्सदा ह्यहम् ॥ तत्कर्तुः पुरुषस्यातिवशगो नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थमाकर्ण्य भक्तेस्तु महत्त्वं दक्षजा सती ॥ जहर्षातीव मनसि प्रणनाम शिवं मुदा ॥ ४७ ॥ पुनः पप्रच्छ सद्भक्त्या तत्काण्डविषयं मुने ॥ शास्त्रं सुखकरं लोके जीवोद्धारपरायणम् ॥ ४८ ॥ सयंत्रमंत्रशास्त्रं च तन्माहात्म्यं विशेषतः ॥ अन्यानि धर्मवस्तूनि जीवोद्धारकराणि हि ॥ ४९ ॥ शंकरोपि तदाकर्ण्य सतीप्रश्नं प्रहृष्टधीः ॥ वर्णयामास सुप्रीत्या जीवोद्धाराय कृत्स्नशः ॥ ५० ॥ तत्र शास्त्रं सयंत्रं हि सपंचाङ्गं महेश्वरः ॥ बभाषे महिमानं च तत्तद्देववरस्य वै ॥ ५१ ॥

नेवाले पुरुषके अधीन रहताहूं इसमें संदेह नहीं ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले दक्षकन्या सती इसप्रकार भक्तिका माहात्म्य सुनकर बडी प्रसन्न हुई और प्रेमसे प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ हे मुने ! फिरभी भक्तिकाण्डके विषयमें पूछने लगी जो शास्त्र लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारका करनेवालाहै ॥ ४८ ॥ यंत्र मंत्र शास्त्र और विशेषकर उसका माहात्म्य तथा जीवोंके उद्धार करनेवाली और भी अनेक धर्म वस्तुओंको पूछा ॥ ४९ ॥ शिवजी भी सतीके प्रश्न सुनकर बडे प्रसन्न हुए और जीवोंके उद्धारके निमित्त परमभक्तिसे उसको वर्णन करने लगे ॥ ५० ॥ यंत्र और पंचांगके सहित देव शंकरने उस शास्त्रको

महिमा सहित वर्णन किया ॥ ५१ ॥ इतिहास और भक्तिके माहात्म्य सहित वह सब कथा वर्णाश्रमधर्म राजधर्म ॥ ५२ ॥ पुत्र और स्त्री धर्मके माहात्म्य
वर्णाश्रमोंके अविनाशी धर्म तथा जीवोंके उद्धार करनेवाला वैद्यक और ज्योतिष शास्त्र ॥ ५३ ॥ सामुद्रिक शास्त्र तथा और भी दूसरे शास्त्र कृपाकरके
शिवजीने तत्त्वसे वर्णन किया ॥ ५४ ॥ इसप्रकार त्रिलोकीके सुख देनेवाले सर्वज्ञ सती और शिवजीने भक्तोंके हेतु शरीर धारण करके यह सब वर्णन
किया ॥५५॥ इसप्रकार हिमालय पर्वतपर अनेक प्रकारसे क्रीडा करनेलगे तथा दोनों परब्रह्मस्वरूप शिवाशिव अन्य स्थलोंमें विहार करनेलगे ॥५६॥

सेतिहासकथं तेषां भक्तमाहात्म्यमेव च ॥ सवर्णाश्रमधर्मांश्च नृपधर्मान् मुनीश्वर ॥ ५२ ॥ सुतस्त्रीधर्ममाहात्म्यं वर्णाश्रममनश्वरम् ॥
वैद्यशास्त्रं तथा ज्योतिश्शास्त्रं जीवसुखावहम् ॥ ५३ ॥ सामुद्रिकं परं शास्त्रमन्यच्छास्त्राणि भूरिशः ॥ कृपां कृत्वा महेशानो वर्णया
मास तत्त्वतः ॥ ५४ ॥ इत्थं त्रिलोकसुखदौ सर्वज्ञौ च सतीशिवौ ॥ लोकोपकारकरणधृतसद्गुणविग्रहौ ॥ ५५ ॥ चिक्रीडाते बहुविधं
कैलासे हिमवद्गिरौ ॥ अन्यस्थलेषु च तदा परब्रह्मस्वरूपिणौ ॥ ५६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये
सतीखंडे भक्तिप्रभाववर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ ब्रह्मन् विधे प्रजानाथ महाप्राज्ञ कृपाकर ॥ श्रावितं
शंकरयशस्सतीशंकरयोः शुभम् ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सत्प्रीत्या परं तद्यश उत्तमम् ॥ किमकार्ष्टां हि तत्स्थौ वै चारितं दपती शिवौ
॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सतीशिवचरित्रं च शृणु मे प्रेमतो मुने ॥ लौककीं गतिमाश्रित्य चिक्रीडाते सदान्वहम् ॥ ३ ॥ ततस्सती
महादेवी वियोगमलभन्मुने ॥ स्वपतश्शंकरस्येति वदंत्येके सुबुद्धयः ॥ ४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग !
प्रजानाथ ! महापंडित ! कृपासागर ! आपने शिवा शिवका परम सुन्दर यश श्रवण कराया ॥ १ ॥ इसीप्रकारसे अब फिरभी उनका उत्तम यश कहिये
वहां स्थित होकर शिवाशिवजीने क्या चरित्र कियाहै ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! प्रेमसे शिवाशिवके चरित्र श्रवण करो वह लौकिकी गतिको आश्रय
करके सदा क्रीडा करने लगे ॥ ३ ॥ हे मुने ! तब महादेवी सतीने वियोगकी प्राप्ति शंकरके शयन करनेपर की ऐसा कोई २ सुबुद्धि कहतेहैं ॥ ४ ॥

यथार्थमें तो चित्तसे शिवाशिव वाणी और अर्थकी समान मिले हुए हैं, हे मुने ! तत्त्वसे उनका वियोग कैसे संभव होसकताहै ॥ ५ ॥ अथवा लीला करनेमें वह सब संगठित होजाताहै जो जो भवरीतिसे शिवाशिव करतेथे ॥ ६ ॥ फिर शंकरसे त्यक्त होकर सतीने पिताजीके यज्ञमें जाकर शिवजीके अनादरके कारण अपना शरीर त्यागदिया ॥ ७ ॥ फिर वह हिमालयके यहां जाकर सती प्रगट हुई और तप करके फिरभी शंकरको प्राप्त हुई और वहां पार्वती नामवाली हुई ॥ ८ ॥ सूतजी बोले नारदजी ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर फिरभी विधातासे शिवा शिवके महान् यशको पूछने लगे ॥ ९ ॥

वागर्थाविव संपृक्तौ शक्तीशौ सर्वदा चितौ ॥ कथं घटेत च तयोर्वियोगस्तत्त्वतो मुने ॥ ५ ॥ लीलारुचित्वादथ वा संघटेताऽखिलं च तत् ॥ कुरुते यद्यदीशश्च सती च भवरीतिगौ ॥ ६ ॥ सा त्यक्ता दक्षजा दृष्ट्वा पतिना जनकाध्वरे ॥ शंभोरनादरात्तत्र देहं तत्याज संगता ॥ ७ ॥ पुनर्हिमालये सैवाविर्भूता नामतस्सती ॥ पार्वतीति शिवं प्राप तप्त्वा भूरि विवाहतः ॥ ८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणस्सतु नारदः ॥ पप्रच्छ च विधातारं शिवाशिवमहद्यशः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुशिष्य महाभाग विधे मे वद विस्तरात् ॥ शिवाशिवचरित्रं तद्भवाचारपरानुगम् ॥ १० ॥ किमर्थं शंकरो जायां तत्याज प्राणतः प्रियाम् ॥ तस्मादाचक्ष्व मे तात विचित्रमिति मन्महे ॥ ११ ॥ कुतो ह्यध्वरजः पुत्रस्यानादरोभूच्छिवस्य ते ॥ कथं तत्याज सा देहं गत्वा तत्र पितृक्रतौ ॥ १२ ॥ ततः किमभवत्तत्र किमकार्षीन्महेश्वरः ॥ तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रद्धायुक् तच्छुतावहम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ शृणु तात परप्रीत्या मुनिभिस्सह नारद ॥ सुतवर्य महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ॥ १४ ॥

नारदजी बोले हे विष्णुशिष्य ! महाभाग ब्रह्माजी ! आप विस्तारसहित यह लोकलीलाका शिवाशिवचरित्र वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ प्राणोंकी प्यारी जायाको शिवजीने किसप्रकारसे त्यागन किया ? हे तात ! मैं इस बातको बडी विचित्र मानता हूं आप मुझसे इस चरित्रको कहिये ॥ ११ ॥ किसप्रकारसे आपके पुत्र शंकरका अनादर हुआ ? और पिताके यज्ञमें जाकर सतीने किसप्रकारसे देहको त्यागन किया ॥ १२ ॥ फिर इसके पश्चात् क्या हुआ और शंकरने क्या किया मैं श्रद्धासे सुनना चाहता हूं आप यह सब मुझसे कहिये ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! मुनियोंके साथ परम प्रीतिसे इस

बातको सुनो हे पंडित पुत्र ! मैं शंकरका चरित्र कहता हूं ॥ १४ ॥ हरि आदिसे सेवित महेशानको प्रणाम करके महाअद्भुत परमब्रह्मका चरित्र कहता हूं ॥ १५ ॥ बहुतसी लीलाकरनेवाले प्रभु शंकरकी यह अद्भुत लीला है वह स्वतंत्र और निर्विकार है सती भी इसीप्रकारकी है ॥ १६ ॥ हे मुने! अन्यथा उस कर्मके करनेमें कौन समर्थ है परमात्मा परब्रह्म वही परमेश्वर है ॥ १७ ॥ जिनका भजन सदा श्रीपति विष्णु मैं और सब देवता करते हैं महात्मा मुनि और सिद्ध सनकादिक जिनका भजन करते हैं ॥ १८ ॥ शेषजी सदा जिनके यशको प्रेमसे गाते हैं हे तात ! और उसका पार नहीं पाते

नमस्कृत्य महेशानं हर्यादिसुरसेवितम् ॥ परब्रह्म प्रवक्ष्यामि तच्चरित्रं महाद्भुतम् ॥ १५ ॥ सर्वेयं शिवलीला हि बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ स्वतंत्रो निर्विकारी च सती सापि हि तद्विधा ॥ १६ ॥ अन्यथा कस्समर्थो हि तत्कर्मकरणे मुने ॥ परमात्मा परब्रह्म स एव परमेश्वरः ॥ १७ ॥ यं सदा भजते श्रीशोऽहं चापि सकलाः सुराः ॥ मुनयश्च महात्मानः सिद्धाश्च सनकादयः ॥ १८ ॥ शेषस्सदा यशो यस्य मुदा गायति नित्यशः ॥ पारं न लभते तात स प्रभुश्शंकरः शिवः ॥ १९ ॥ तस्यैव लीलया सर्वोयमिति तत्त्वविभ्रमः ॥ तत्र दोषो न कस्यापि सर्वव्यापी स प्रेरकः ॥ २० ॥ एकस्मिन्समये रुद्रस्सत्या त्रिभुवने भवः ॥ वृषमारुह्य पर्याटद्रसां लीलाविशारदः ॥ २१ ॥ आगत्य दण्डकारण्यं पर्यटन् सागरांबराम् ॥ दर्शयन् तत्रगां शोभां सत्यै सत्यपणः प्रभुः ॥ २२ ॥ तत्र रामं ददर्शासौ लक्ष्मणेनान्वितं हरः ॥ अन्विष्यंतं प्रियांसीतां रावणेन हृतां छलात् ॥ २३ ॥ हा सीतेति प्रोच्चरंतं विरहाविष्टमानसम् ॥ यतस्ततश्च पश्यंतं रुदंतं हि मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

वही प्रभु सर्वेश्वर शंकर हैं ॥ १९ ॥ उसीकी लीलासे यह सब तत्त्वका विलास दिखाई देता है उसमें किसीका दोष नहीं है वह सर्वव्यापी सबका प्रेरक है ॥ २० ॥ एक समय लीला करनेमें चतुर शंकरजी सतीके सहित वृषपर स्थित होकर त्रिभुवन भूमिमें विचरण करनेलगे ॥ २१ ॥ सागरपर्यन्त जब भूमिमें भ्रमण करतेहुए दण्डकारण्यमें आये तब सत्यप्रतिज्ञ शिवजी सतीको भूमिकी शोभा दिखानेलगे ॥ २२ ॥ उस समय शिवजीने राम लक्ष्मणको उस स्थानमें देखा जो छल करके रावणके द्वारा हरीहुई जानकीको खोज रहे थे ॥ २३ ॥ उस समय रामचन्द्र हा सीता ! ऐसा कहकर विरहसे व्याकुल

हो रहे थे और इधर उधर खोजतेहुए रो रहे थे और जानकीको खोजकर रहे थे ॥ २४ ॥ उसकी प्राप्तिकी इच्छासे उसकी गतिकी खोज करतेहुए बुद्धिरहित होजानेसे वृक्षोंसे पूछ रहे थे शोकसे व्याकुल थे ॥ २५ ॥ इसप्रकार सूर्यवंशमें उत्पन्न वीर दशरथपुत्र भरतके बडे भ्राता आनंद और प्रभा रहित ॥ २६ ॥ शोकके अधीन होकर वनमें भ्रमणकरतेहुए लक्ष्मणसहित रामको देख उदारबुद्धि शंकरने प्रणाम किया ॥ २७ ॥ और जय ऐसा उच्चारण कर दूसरी ओरसे अपना दर्शन दिया जब भक्तवत्सल शंकरने रामचन्द्रको अपना दर्शन दिया ॥ २८ ॥ तब ऐसी मोहनेवाली शिवकी लीलाको देखकर

समिच्छंतं च तत्प्राप्तिं पृच्छंतं तद्गतिं हृदा ॥ कुजादिभ्यो नष्टधियमत्रपं शोकविह्वलम् ॥२५॥ सूर्यवंशोद्भवं वीरं भूपं दशरथात्मजम् ॥ भरताग्रजमानंदरहितं विगतप्रभम् ॥२६॥ पूर्णकामो वराधीनं प्राणमत्स्म मुदा हरः॥रामं भ्रमन्तं विपिने सलक्ष्मणमुदारधीः ॥ २७ ॥ जयेत्युक्त्वाऽन्यतोगच्छन्नदात्तस्मै स्वदर्शनम् ॥ रामाय विपिने तस्मिञ्छंकरो भक्तवत्सलः ॥२८॥ इतीदृशीं सतीं दृष्ट्वा शिवलीलां विमोहनीम् ॥ सुविस्मिता शिवं प्राह शिवमायाविमोहिता ॥२९॥सत्युवाच ॥ देव देव परब्रह्मन् सर्वेश परमेश्वर ॥ सेवंते त्वां सदा सर्वे हरिब्रह्मादयस्सुराः ॥ ३० ॥ त्वं प्रणम्यो हि सर्वेषां सेव्यो ध्येयश्च सर्वदा ॥ वेदांतवेद्यो यत्नेन निर्विकारी परप्रभुः ॥ ३१ ॥ काविमौ पुरुषौ नाथ विरहव्याकुलाकृती ॥ विचरंतौ वने क्लिष्टौ दीनौ वीरौ धनुर्धरौ ॥ ३२ ॥ तयोर्ज्येष्ठं कंजश्यामं दृष्ट्वा वै केन हेतुना ॥ मुदितस्सुप्रसन्नात्माऽभवो भक्त इवाऽधुना ॥ ३३ ॥ इति मे संशयं स्वामिञ्शंकर छेत्तुमर्हसि ॥ सेव्यस्य सेवकेनैव घटते प्रणतिः प्रभो ॥ ३४ ॥

मायासे मोहित हो सती शिवजीसे बोली ॥ २९ ॥ सती बोली हे देवदेव ! हे परब्रह्म ! हे सर्वेश ! हे परमेश्वर ! आपको हरि ब्रह्मादि देवता सदा सेवन करते हैं ॥ ३० ॥ आपही सबके प्रणाम ध्यान और सेवन करनेवाले हो आप यत्नसे वेदान्तसे जाननेयोग्य निर्विकारी परंप्रभु हो ॥ ३१ ॥ हे नाथ ! विरहसे आकुल आकृति किये यह दोनों पुरुष कौन हैं जो धनुष धारण किये यह वीर वनमें विचरण करते हैं पर विरहसे व्याकुल हैं ॥ ३२ ॥ उनमें श्यामकमलकी समान ज्येष्ठ पुरुषको देखकर आप भक्तकी समान किसप्रकारसे प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥ हे शंकर नाथ ! आप इस प्रकारसे मेरे संदेहको

दूर कीजिये हे प्रभो ! स्वामीका सेवकको प्रणाम करना ठीक नहीं होता ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले सती देवी आदिशक्ति शिवा परमेश्वरी है शिवकी मायाके
वशीभूत होकर उसने परमेश्वर शिवसे ऐसा पूँछा ॥ ३५॥ शंकर परमेश्वर सतीके यह वचन सुनकर हृदयमें हँसतेहुए लीला करनेमें चतुर यह बोले ॥ ३६॥
शिवजीबोले हे सती ! देवि मैं यथार्थ कहता हूं तुम सुनो कि इसमें कुछ सन्देह नहीं वरदानके प्रभावसे मैंने आदरसे प्रणाम किया है ॥ ३७ ॥ यह राम
लक्ष्मण नामवाले दोनों भाई वीरसम्मत हैं सूर्यवंशमें उत्पन्न महाप्राज्ञ दशरथपुत्र हैं ॥ ३८ ॥ जो गौरवर्ण इनका छोटा भ्राता है वह वीरसम्मत शेष है ज्येष्ठ

ब्रह्मोवाच॥आदिशक्तिस्सती देवी शिवा सा परमेश्वरी॥शिवमायावशीभूत्वा पप्रच्छेत्थं शिवं प्रभुम् ॥३५॥ तदाकर्ण्य वचस्सत्याश्शंकरः
परमेश्वरः ॥ तदा विहस्य स प्राह सतीं लीलाविशारदः ॥ ३६ ॥ परमेश्वर उवाच ॥ शृणु देवि सति प्रीत्या यथार्थं वच्मि न
च्छलम्॥वरदानप्रभावात्तु प्रणामं चैवमादरात्॥३७॥रामलक्ष्मणनामानौ भ्रातरौ वीरसम्मतौ॥ सूर्यवंशोद्भवौ देवि प्राज्ञौ दशरथात्मजौ॥
॥ ३८ ॥ गौरवर्णौ लघुर्बंधुश्शेषेशो लक्ष्मणाभिधः ॥ ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः ॥ ३९ ॥ अवतीर्णः क्षितौ साधु
रक्षणाय भवाय नः ॥ इत्युक्त्वा विररामाऽसौ शंभुस्स्मृतिकरः प्रभुः ॥ ४० ॥ श्रुत्वापीत्थं वचशम्भोर्न विशश्वास तन्मनः ॥ शिवव
माया बलवती सैव त्रैलोक्यमोहिनी ॥ ४१ ॥ अविश्वस्तं मनो ज्ञात्वा तस्याश्शंभुस्सनातनः ॥ अवोचद्वचनं चेति प्रभुर्लीलाविशारदः
॥ ४२ ॥ शिव उवाच ॥ शृणु मद्वचनं देवि न विश्वासिति चेन्मनः॥ तव रामपरिक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ॥ ४३ ॥ विनश्यति
यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये ॥ गत्वा तत्र स्थितस्तावद्वटे भव परीक्षिका ॥ ४४ ॥

राम नामवाले पूर्णांश निरुपद्रव विष्णुरूप हैं॥ ३९॥ यह भूमिमें साधुओंकी रक्षाके निमित्त अवतार ले आये हैं यह कहकर जगत्कर्ता शंकर मौन हुए॥ ४०॥
शिवजीके यह वचन सुनकर भी सतीके मनमें विश्वास नहीं आया शिवजीकी माया बडी बलवान् है और सब लोकोंको मोहित करनेवाली है ॥ ४१ ॥
सनातन शिवजीने स्त्रीको अविश्वासयुक्त जानकर लीला करनेकी इच्छासे यह वचन कहे ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले हे देवि ! मेरे वचन सुनो यदि तुम्हारे
मनमें विश्वास नहीं आता है तो अपनी बुद्धिसे रामचन्द्रकी परीक्षा करो ॥ ४३॥ हे प्रिये ! सती जिसप्रकारसे तुम्हारा मोह नष्ट होजाय वैसा करो मैं तबतक

वटकी छायामें स्थित होता हूं तबतक तुम जाकर परीक्षा लो ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवकी आज्ञासे ईश्वरी सती जाकर विचार करनेलगी कि मैं इन वनचारी रामकी परीक्षा किसप्रकार करूं ॥ ४५ ॥ मैं सीताका रूप धारण करके रामचन्द्रके समीप जाऊं यदि राम हारि होंगे तो मेरी बातको सब प्रकार जानजांयगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार सीताजीका रूप धारण कर वह रामके समीप गई और मोहपरायण होकर परीक्षाकी इच्छा की सतीका सीताका रूप देख शिवनाम जपतेहुए इस बातको जान हँसते हुए प्रणाम कर रामचन्द्रजी बोले ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ रामचन्द्र बोले हे सती! आपको प्रणाम है प्रेमसे कहिये कि

ब्रह्मोवाच ॥ शिवाज्ञया सती तत्र गत्वाचिंतयदीश्वरी ॥ कुर्यां परीक्षां च कथं रामस्य वनचारिणः ॥ ४५ ॥ सीतारूपमहं धृत्वा गच्छेयं रामसन्निधौ ॥ यदि रामो हारिस्सर्वं विज्ञास्यति न चान्यथा ॥ ४६ ॥ इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा रामसमीपतः ॥ आगमत्तत्परीक्षार्थं सती मोहपरायणा ॥ ४७ ॥ सीतारूपां सतीं दृष्ट्वा जपन्नाम शिवेति च ॥ विहस्य तत्प्रविज्ञाय नत्वावोचद्रघूद्वहः ॥ ४८ ॥ राम उवाच ॥ प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शंभुस्ते नमोगतः ॥ एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना ॥ ४९ ॥ त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतं रूपमिदं सति ॥ ब्रूहि तत्कारणं देवि कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ५० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति रामवचः श्रुत्वा चकितासीत्सती तदा ॥ स्मृत्वा शिवोक्तं मत्वा चावितथं लज्जिता भृशम् ॥ ५१ ॥ रामं विज्ञाय विष्णुं तं स्वरूपं संविधाय च ॥ स्मृत्वा शिवपदं चित्ते सत्युवाच प्रसन्नधीः ॥ ५२ ॥ शिवो मया गणैश्चैव पर्यटन् वसुधां प्रभुः ॥ इहागच्छच्च विपिने स्वतंत्रः परमेश्वरः ॥ ५३ ॥ अपश्यदत्र स त्वां हि सीतान्वेषणतत्परम् ॥ सलक्ष्मणं विरहिणं सीतया क्लिष्टमानसम् ॥ ५४ ॥

शंकर इस समय कहां हैं पतिके विना अकेली तुम वनमें क्यों आई हो ॥ ४९ ॥ हे सति ! अपना रूप छोडकर तुमने यह रूप क्यों धारण किया है हे देवि ! मेरे ऊपर कृपा करके इसका कारण कहो ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले रामचन्द्रके यह वचन सुनकर सती बडी चकित हुई और शिवके वचन स्मरण कर बहुत लज्जित हुई ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रको साक्षात् विष्णुही जाना तब अपना रूप धारण कर चित्तमें शिवजीको स्मरणकर प्रसन्न हो सती बोली ॥ ५२ ॥ मेरे और गणोंके सहित भूमिपर्यटन करने शिवजी यहां आये और स्वतंत्र होकर वह परमेश्वर वनमें विचरनेलगे ॥ ५३ ॥ यहां उन्होंने

सीताके खोजनेमें तत्पर तुमको देखा कि सीताजीके विना लक्ष्मणसहित तुम दुःखी होरहे हो ॥ ५४ ॥ तुमको प्रणाम कर वह वटके मूलमें स्थित होरहे हैं और आपकी वैष्णवी महिमाकी प्रशंसा कर रहे हैं ॥ ५५ ॥ आपको विना चतुर्भुज देखेहुए भी वह बहुत प्रसन्न हुए हैं इस निर्मलरूपको देखकर उन्होंने बहुत आनंद माना है ॥५६॥पर शिवजीके वचनोंसे मेरे मनमें भ्रम होगया, हे राघव ! उन्हींकी आज्ञासे मैं आपकी परीक्षा लेने आई थी॥५७॥ हे राम ! मैंने आपकी प्रभुता देखी आपको साक्षात् विष्णु जाना मैं सन्देहरहित होगई हूं हे महामते ! तौभी मुझे कुछ कहना है सो तुम सुनो ॥ ५८ ॥

नत्वा त्वां स गतो मूले वटस्य स्थित एव हि ॥ प्रशंसन् महिमानं ते वैष्णवं परमं मुदा ॥ ५५ ॥ चतुर्भुजं हरिं त्वां नो दृष्ट्वेवं मुदितोऽभवत् ॥ यथेदं रूपममलं पश्यन्नानंदमाप्तवान् ॥ ५६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं शंभोर्भ्रममानीय चेतसि ॥ तदाज्ञया परीक्षां ते कृतवत्यस्मि राघव ॥ ५७ ॥ ज्ञातं मे राम विष्णुस्त्वं दृष्टा ते प्रभुताऽखिला ॥ निःसशंया तदापि तच्छृणु त्वं च महामते ॥ ५८ ॥ कथं प्रणम्यस्त्वं तस्य सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ कुरु निस्संशयां त्वं मां शमलं प्राप्नुहि द्रुतम् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या रामश्चोत्फुल्ललोचनः ॥ अस्मरत्स्वं प्रभुं शंभुं प्रेमाभूद्धृदि चाधिकम् ॥ ६० ॥ सत्या विनाज्ञया शंभुसमीपं नागमन्मुने ॥ संवर्ण्य महिमानं च प्रावोचद्राघवस्सतीम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे रामपरीक्षावर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ राम उवाच ॥ एकदा हि पुरा देवि शंभुः परमसूतिकृत् ॥ विश्वकर्माणमाहूय स्वलोके परतः परे ॥ १ ॥

आप यह बात मुझसे सत्य सत्य कहैं कि शिवजीने आपको प्रणाम क्यों किया तुम मुझको शीघ्रही संदेहरहित करके कल्याणको प्राप्त करो ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले सतीके यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रके नेत्र हर्षसे प्रफुल्लित होगये और अपने प्रभु शंकरको स्मरणकर उनके हृदयमें विशेष प्रेम हुआ ॥६०॥ हे मुने ! सतीकी आज्ञाके विना शिवजीके समीप न गये और उस महिमाको वर्णन करतेहुए श्रीराम सतीसे बोले ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ रामचंद्र बोले हे देवि ! परमकल्याणकारी शंकरने एक समय पहले परेसे परे

अपने लोकमें विश्वकर्माको बुलाया ॥ १ ॥ और उससे बडी मनोहर अपनी गोशाला बनवाई और एक बडा मनोहर भवन और एक परम मनोहर सिंहासन बनवाया ॥ २ ॥ और बडा अद्भुत परम मनोहर छत्रभी शिवजीने विश्वकर्मासे गणेशजीके निमित्त बनवाया ॥ ३ ॥ और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवताओंको बुलाया तथा गण सिद्ध गंधर्व नागादि सबको बुलाया ॥ ४ ॥ सब देवता और ब्रह्माजीके पुत्रोंको भी बुलाया और सब देवियें अप्सराओंके साथ अनेक स्थानोंसे आई ॥ ५ ॥ देवता सिद्ध ऋषि तथा सर्पादि यह सब आये और सोलह सोलह कन्या आदि ॥ ६ ॥ वीणा मृदंग आदि अनेक

स्वधेनुशालायां रम्यं कारयामास तेन च ॥ भवनं विस्तृतं सम्यक् तत्र सिंहासनं वरम् ॥ २ ॥ तत्रच्छत्रं महादिव्यं सर्वदाद्भुतमुत्तमम् ॥
कारयामास विघ्नार्थं शंकरो विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥ शक्रादीनां जुहावाशु समस्तान् देवतागणान् ॥ सिद्धगंधर्वनागादीनुपदेशांश्च कृत्स्नशः
॥ ४ ॥ देवान् सर्वानागमांश्च विधिं पुत्रैर्मुनीनपि ॥ देवीः सर्वा अप्सरोभिर्नानावस्तुसमन्विताः ॥ ५ ॥ देवानां च तथर्षीणां सिद्धानां
फणिनामपि ॥ आनयन्मंगलकराः कन्याः षोडशषोडश ॥ ६ ॥ वीणामृदंगप्रमुखवाद्यान्नानाविधान्मुने ॥ उत्सवं कारयामास वाद
यित्वा सुगायनैः ॥ ७ ॥ राजाभिषेकयोग्यानि द्रव्याणि सकलौषधैः ॥ प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिः पंचकुंभांश्च पूरितान् ॥ ८ ॥ तथान्यास्सं
विधा दिव्या आनयत्स्वगणैस्तदा ॥ ब्रह्मघोषं महारावं कारयामास शंकरः ॥ ९ ॥ अथो हरिं समाहूय वैकुंठात्प्रीतमानसः ॥ तद्भक्त्या
पूर्णया देवि मोदतिस्म महेश्वरः ॥ १० ॥ सुमुहूर्ते महादेवस्तत्र सिंहासने वरे ॥ उपवेश्य हरिं प्रीत्या भूषयामास सर्वशः ॥ ११ ॥

प्रकारके बाजे बजाने लगे और गायनाचार्योंको बुलावा देकर उत्सव करायागया ॥ ७ ॥ राजाके अभिषेक योग्य सब द्रव्य और सब औषधी और तीर्थके जलोंके भरे हुए पांच घट ॥ ८ ॥ तथा दूसरी प्रकारकी भी सब सामग्री शिवजीके गण लाये उस समय शंकरकी आज्ञासे ब्रह्मघोष होनेलगा ॥ ९ ॥ तब बडे प्रेमसे वैकुण्ठसे श्रीहरिको बुलाकर हे देवि ! उनकी सद्भक्तिसे शंकर बडे प्रसन्न हुए ॥ १० ॥ तब उस श्रेष्ठ मुहूर्तमें महादेवजीने उस श्रेष्ठ सिंहासनपर

हरिको बैठाकर उनको भूषणोंसे सजाया ॥ ११ ॥ कौतुक मंगल करके उनके मस्तकपर मुकुट बांधा और ब्रह्माण्ड मण्डपमें स्वयं शंकरने उनको अभिषेक किया ॥ १२ ॥ जो कभी दूसरोंपर नहीं जाता वह सब अपना ऐश्वर्य शंकरने हरिको दिया और भक्तवत्सल स्वतंत्र परमेश्वर विष्णुजीकी स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ और लोककर्ता ब्रह्माजीसे इस प्रकारके वचन बोले और भक्तवत्सल स्वतंत्र परमेश्वरने अपनी भक्तवत्सलता सर्वत्र व्याप्तकरदी॥ १४ ॥ शिवजी बोले हे लोकेश ! आप और सब लोक सुनैं आजसे लेकर यह हरि औरोंको तो क्या मेरेभी वंदनीय हुए ॥ १५ ॥ हे तात ! सब देवताओंके सहित तुम इन हरिको प्रणाम करो और यह वेदभी मेरी आज्ञासे इन हरिका यश वर्णन करैंगे ॥ १६ ॥ रामचंद्र बोले ऐसा कहकर शंकरने गरुडध्वजको प्रणाम किया और भक्तवत्सल शंकर विष्णुकी भक्तिसे प्रसन्न वरदायक हुए ॥ १७ ॥ तब उस समय ब्रह्मादि देवता सर्वरूप देवता मुनि सिद्ध आदि सबने हरिको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ तब शिवजी देवताओंके समक्ष विष्णुजीकी बडाई करतेहुए प्रसन्न होकर भक्तवत्सलताके कारण विष्णुको अनेक वरदान देनेलगे ॥ १९ ॥ महेश्वर बोले आप सब लोकोंके कर्ता हर्ता भर्ता मेरी आज्ञासे होगे धर्म अर्थ काम मोक्षके देनेवाले तथा अधर्मियोंके शासन करनेवाले होगे ॥ २० ॥

आबद्धरम्यमुकुटं कृतकौतुकमंगलम् ॥ अभ्यषिंचन्महेशस्तु स्वयं ब्रह्मांडमंडपे ॥ १२ ॥ दत्तवान्निखिलैश्वर्यं यन्नैजं नान्यगामि यत् ॥ ततस्तुष्टाव तं शंभुस्स्वतंत्रो भक्तवत्सलः ॥ १३ ॥ ब्रह्माणं लोककर्तारमवोचद्वचनं त्विदम् ॥ व्यापयन्स्वं वराधीनं स्वतंत्रं भक्तवत्सलः ॥ १४ ॥ महेश उवाच ॥ अतः प्रभृति लोकेश मन्निदेशादयं हरिः ॥ मम वंद्यः स्वयं विष्णुर्जातस्सर्वश्शृणोति हि ॥ १५ ॥ सर्वैर्देवादिभिस्तात प्रणम त्वममुं हरिम् ॥ वर्णयंतु हरिं वेदा ममैते मामिवाज्ञया ॥ १६ ॥ ॥ राम उवाच ॥ इत्युक्त्वाथ स्वयं रुद्रोऽनमद्वै गरुडध्वजम् ॥ विष्णुभक्तिप्रसन्नात्मा वरदो भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सर्वरूपसुरैस्तथा ॥ मुनिसिद्धादिभिश्चैवं वंदितोभूद्धरिस्तदा ॥ १८ ॥ ततो महेशो हरयेशंसद्विविषदां तदा ॥ महावरान् सुप्रसन्नो धृतवान्भक्तवत्सलः ॥ १९ ॥ ॥ महेश उवाच ॥ त्वं कर्ता सर्वलोकानां भर्ता हर्ता मदाज्ञया ॥ दाता धर्मार्थकामानां शास्ता दुर्नयकारिणाम् ॥ २० ॥

तुम जगदीश जगत्पूज्य महाबलपराक्रमी होगे तुम युद्धमें अजेय होगे और कभी मुझकोभी अजेय होगे ॥ २१ ॥ मुझसे दी हुई तुम तीन शक्तियोंको ग्रहणकरो तुम अनेक लीलाके करनेवाले तीनों भुवनमें प्रतापी होगे ॥ २२ ॥ हे विष्णुजी ! जो आपसे द्वेष करैंगे मैं अवश्य उनका शासन करूंगा हे विष्णुजी ! आपके भक्तोंको मैं अवश्य निर्वाणपद दूंगा ॥ २३ ॥ और जिसको कोई देवता भेदन नहीं करसकते उस मायाकोभी आप मुझसे ग्रहण कीजिये जिससे मोहित हुआ यह संसार अचिद्रूप होगा ॥ २४ ॥ हे हरे ! तुम साक्षात् मेराही रूप हो यह विधाता मेरी दक्षिणभुजा हैं तुम इन विधाताके उत्पादक

जगदीशो जगत्पूज्यो महाबलपराक्रमः ॥ अजेयस्त्वं रणे क्वापि ममापि हि भविष्यसि ॥ २१ ॥ शक्तित्रयं गृहाण त्वमिच्छादिप्रापितं मया ॥ नानालीलाप्रभावत्वं स्वतंत्रत्वं भवत्रये ॥ २२ ॥ त्वद्द्वेष्टारो हरे नूनं मया शास्याः प्रयत्नतः ॥ त्वद्भक्तानां मया विष्णो देयं निर्वाणमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मायां चापि गृहाणेमां दुःप्रणोद्यां सुरादिभिः ॥ यया संमोहितं विश्वमचिद्रूपं भविष्यति ॥ २४ ॥ मम बाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोसौ विधिर्हरे ॥ अस्यापि हि विधेः पाता जनितापि भविष्यसि ॥ २५ ॥ हृदयं मम यो रुद्रस्स एवाहं न संशयः ॥ पूज्यस्तव सदा सोपि ब्रह्मादीनामपि ध्रुवम् ॥ २६ ॥ अत्र स्थित्वा जगत्सर्वं पालय त्वं विशेषतः ॥ नानावतारभेदैश्च सदा नानोतिकर्तृभिः ॥ २७ ॥ मम लोके तवेदं वै स्थानं च परमर्द्धिमत् ॥ गोलोक इति विख्यातं भविष्यति महोज्वलम् ॥ २८ ॥ भविष्यंति हरे ये तेऽवतारा भुवि रक्षकाः ॥ मद्भक्तास्तान् ध्रुवं द्रक्ष्ये प्रीतानथ निजाद्वरात् ? ॥ २९ ॥ राम उवाच ॥ अखंडैश्वर्यमासाद्य हरेरित्थं हरस्स्वयम् ॥ कैलासे स्वगणैस्तस्मिन् स्वैरं क्रीडत्युमापतिः ॥ ३० ॥

और रक्षकभी होगे ॥ २५ ॥ मेरा हृदय जो रुद्र है सो साक्षात् मैंही हूं वह रुद्र तुमसे तथा ब्रह्मादिसे पूज्य होगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ यहां स्थित होकर तुम सब जगत्की पालना करो अनेक अवतार धारण करके तुम अनेक लीला करो ॥ २७ ॥ मेरे लोकमें तुम्हारा यह स्थान महासमृद्धिवाला होगा और यह परम उज्ज्वल स्थान गोलोक नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ हे विष्णुजी ! तुम्हारे.जो अवतार पृथिवीमें रक्षारूपसे होगे मेरे वरसे प्रसन्न हुए· मेरे भक्तजन अवश्य उनका दर्शन करैंगे ॥ २९ ॥ रामचन्द्र बोले इस प्रकार शंकरसे विष्णुजीने अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त किया और कैलासमें शिवजी

उमाके साथ क्रीडा करनेलगे ॥ ३० ॥ उसीसमयसे कमलापतिनें भी गोपवेष धारण किया और गोप गोपी तथा गौओंके रक्षक होकर आप वहां निवास करनेलगे ॥ ३१ ॥ और प्रसन्न हो विष्णुजी सब जगत्का पालन करने लगे और शिवकी आज्ञासे अनेक अवतार धांरणकर रक्षा करनेलगे ॥ ३२ ॥ इस समय उसने शिवजीकी आज्ञासे चार प्रकारसे अवतार धारण कियाहै वह मैं राम और दूसरे भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं ॥ ३३ ॥ हे देवि ! मैं पिताकी आज्ञासे लक्ष्मण और सीताके सहित वनमें आयाहूं और दैववश दुःखी हुआहूं ॥ ३४ ॥ मेरी सीता भार्या किसी निशाचरने हरलीहै सो मैं वियोगी

तदाप्रभृति लक्ष्मीशो गोपवेषोभवत्तथा ॥ अयासीत्तत्र सुप्रीत्या गोपगोपीगवां पतिः ॥ ३१ ॥ सोपि विष्णुः प्रसन्नात्मा जुगोप निखिलं जगत् ॥ नानावतारस्संधर्तावनकर्त्ता शिवाज्ञया ॥ ३२ ॥ इदानीं स चतुर्द्धात्रावातरच्छंकराज्ञया ॥ रामोहं तत्र भरतो लक्ष्मणश्शत्रुहेति च ॥ ३३ ॥ अथ पित्राज्ञया देवि ससीतालक्ष्मणस्सति ॥ आगतोहं वने चाद्य दुःखितो दैवतोऽभवम् ॥ ३४ ॥ निशाचरेण मे जाया हृता सीतेति केनचित् ॥ अन्वेष्यामि प्रियां चात्र विरही बंधुना वने ॥ ३५ ॥ दर्शनं ते यदि प्राप्तं सर्वथा कुशलं मम ॥ भविष्यति न संदेहो मातस्ते कृपया सति ॥ ३६ ॥ सीताप्राप्तिवरो देवि भविष्यति न संशयः ॥ तं हत्वा दुःखदं पापं राक्षसं त्वदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ महद्भाग्यं ममाद्यैव यद्यकार्ष्टां कृपां युवाम् ॥ यस्मिन् सकरुणौ स्यातां स धन्यः पुरुषो वरः ॥ ३८ ॥ इत्थमाभाष्यबहुधा सुप्रणम्य सतीं शिवाम् ॥ तदाज्ञया वने तस्मिन् विचचार रघूद्वहः ॥ ३९ ॥ अथाकर्ण्य सती वाक्यं रामस्य प्रयतात्मनः ॥ हृष्टाभूत्सा प्रशंसन्ती शिवभक्तिरतं हृदि ॥ ४० ॥

होकर भ्रातासहित उसको वनमें खोजताहूं ॥ ३५ ॥ हे माता सति ! अब आपका दर्शन पायाहै तो सदा कुशल होगी यदि आपकी कृपा होगी तो सर्वथा मंगल होगा ॥ ३६ ॥ हे देवि ! सीताप्राप्तिका वर प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं और उस दुःखदाई राक्षसको मैं अवश्य मारूंगा इसमें सन्देह नहीं पर यह सब तुम्हारी कृपासे होगा ॥ ३७ ॥ मेरे आज बडे भाग्यहैं जो तुम दोनोंने कृपा की जिसके ऊपर तुम दोनोंकी कृपाहो वह पुरुष धन्य है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार बहुत कुछ कहकर और सतीको प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले वनमें रघुनाथजी विचरने लगे ॥ ३९ ॥ तब सतीजी जितेन्द्रिय रघुनाथजीके

यह वचन सुनकर उनको शिवजीका भक्त जानकर हृदयसे प्रशंसा करनेलगी ॥४०॥ और अपना कर्म जानकर हृदयमें बडा शोक किया तब उदासीन और विवर्णमुखसे शिवजीके समीप गमन किया ॥ ४१ ॥ मार्गमें जाते हुए देवा वारंवार विचारने लगी मैंने शिवजीके वचन न मानकर रामचंद्रके प्रति कुचेष्टा की ॥ ४२ ॥ अब शिवजीके समीप जाकर मैं क्या उत्तर दूंगी ऐसा वारंवार विचारकर सती पछताने लगी ॥ ४३ ॥ और शिवजीके समीप जाकर उनको हृदयसे प्रणाम किया शोकसे व्याकुलमुख होगई शरीरकी कांति जातीरही ॥ ४४ ॥ सतीको दुःखी देख शिवजीने कुशल पूछी और प्रेमसे बोले

स्मृत्वा स्वकर्म मनसाकार्षीच्छोकंसुविस्तरम् ॥ प्रत्यागच्छदुदासीना विवर्णा शिवसन्निधौ ॥ ४१ ॥ अचिंततपथि सा देवी संचलंती
पुनः पुनः ॥ नांगीकृतं शिवोक्तं मे रामं प्रति कुधीः कृता ॥ ४२ ॥ किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शंकरसन्निधौ ॥ इति संचिंत्य बहुधा
पश्चात्तापोऽभवत्तदा ॥ ४३ ॥ गत्वा शंभुसमीपं च प्रणनाम शिवं हृदा ॥ विषण्णवदना शोकव्याकुला विगतप्रभा ॥ ४४ ॥ अथ तां
दुःखितां दृष्ट्वा पप्रच्छ कुशलं हरः ॥ प्रोवाच वचनं प्रीत्या तत्परीक्षा कृता कथम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा शिववचो नाहं किमपि प्रणतानना॥
सती शोकविषण्णा सा तस्थौ तत्र समीपतः ॥ ४६ ॥ अथ ध्यात्वा महेशस्तु बुबोध चरितं हृदा ॥ दक्षजाया महायोगी नानालीला
विशारदः ॥ ४७ ॥ सस्मार स्वपणं पूर्वं यत्कृतं हरिकोपतः ॥ तत्प्रार्थितोथ रुद्रोसौ मर्यादाप्रतिपालकः ॥ ४८ ॥ विषादोभूत्प्रभोस्तत्र
मनस्येवमुवाच ह ॥ धर्मवक्ता धर्मकर्त्ता धर्मावनकरस्सदा ॥ ४९ ॥ ॥ शिव उवाच॥ कुर्यां चेद्दक्षजायां हि स्नेहं पूर्वं यथा महान् ॥
नश्येन्मम पणः शुद्धो लोकलीलानुसारिणः ॥ ५० ॥

कहो किस प्रकारसे परीक्षा ली ॥ ४५ ॥ शिवके वचन सुनकर सतीने मस्तक झुकालिया और कहा कुछ भी परीक्षा न ली यह कहकर शोकसे व्याकुल हो शिवजीके समीप स्थित हुई ॥ ४६ ॥ तब शिवजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया महायोगी नाना लीला करनेमें चतुर शिवजीने दक्षसुताका सब चारित्र जान लिया ॥ ४७ ॥ और अपना पहला प्रण हरिके कोपके समयका स्मरण किया जो मर्यादाके प्रतिपालक रुद्रको अभीष्ट था ॥ ४८ ॥ शंकरको उस समय बहुत विषाद हुआ और धर्मके वक्ता धर्मके कर्ता धर्मके रक्षकने मनमें यह कहा ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले यदि मैं दक्षकी कन्यासे

पूर्ववत् स्नेह करूं तो लोकलीलाकी अनुसरण करनेवाली मेरी प्रतिज्ञा भंग होजायगी ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले वेदधर्मके प्रतिपालक शंकरने अपनी प्रतिज्ञा
नहीं छोडी और बहुत प्रकारसे हृदयमें विचारकर सतीको त्यागदिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार परमेश्वरने मनसे सतीको त्यागनकर अपने पर्वतको गमन किया
और इस भेदको प्रकाश न किया कारण कि प्रभु हैं ॥ ५२ ॥ तब मार्गमें चलतेहुए आकाशसे वाणी हुई जिस वाणीको सबने और विशेषकर सतीने सुना
॥ ५३ ॥ आकाशवाणी बोली हे परमेशान महायोगी महाप्रभु आप धन्यहो आपकी समान त्रिलोकीमें कोई प्रतिज्ञाकी रक्षा नहीं करसकता ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं विचार्य बहुधा हृदा तामत्यजत्सतीम् ॥ पणं न नाशयामास वेदधर्मप्रपालकः ॥ ५१ ॥ ततो विहाय मनसा
सतीं तां परमेश्वरः ॥ जगाम स्वगिरिं भेदं जगावद्धा स हि प्रभुः ॥ ५२ ॥ चलंतं पथि तं व्योमवाण्युवाच महेश्वरम् ॥ सर्वान् संश्रा
वयन् तत्र दक्षजां च विशेषतः ॥ ५३ ॥ व्योमवाण्युवाच ॥ धन्यस्त्वं परमेशान त्वत्समोद्य तथा पणः ॥ न कोप्यन्यस्त्रिलोकेस्मिन्
महायोगी महाप्रभुः ॥ ५४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा व्योमवचो देवी शिवं पप्रच्छ विप्रभा ॥ कं पणं कृतवान्नाथ ब्रूहि मे परमेश्वर
॥ ५५ ॥ इति पृष्टोपि गिरिशस्सत्या हितकरः प्रभुः ॥ नोद्वाहे स्वं पणं तस्यै कहर्यग्रेऽकरोत्पुरा ? ॥ ५६ ॥ तदा सती शिवं ध्यात्वा
स्वपतिं प्राणवल्लभम् ॥ सर्वं बुबोध हेतुं तं प्रियत्यागमयं मुने ॥ ५७ ॥ ततोऽतीव शुशोचाशु बुध्वा सा त्यागमात्मनः ॥ शंभुना दक्षजा
तस्मान्निश्वसंती मुहुर्मुहुः ॥५८॥ शिवस्तस्याः समाज्ञाय गुप्तं चक्रे मनोभवम् ॥ सत्यै पणं स्वकीयं हि कथा बह्वीर्वदन् प्रभुः ॥५९॥

ब्रह्माजी बोले व्योमवाणी सुनकर सती शिवजीसे पूँछनेलगी हे नाथ ! हे परमेश्वर ! आपने क्या प्रण किया है सो आप कहिये ॥ ५५ ॥ हित करकेभी
सतीने शंकरसे पूछा तथापि शिवजीने ब्रह्मा विष्णुके आगे की हुई अपनी प्रतिज्ञाको न कहा ॥ ५६ ॥ तब सतीने प्राणप्यारे अपने पति शंकरका ध्यान
करके वह अपने त्यागसम्बन्धी सब विषयको जानलिया ॥ ५७ ॥ तब अपना त्याग जानकर सती बडा शोच करनेलगी और वह दक्षसुता शिवजीके निमित्त
वारंवार स्वास लेनेलगी ॥ ५८ ॥ शिवजीने सतीके हृदयमें अपनी प्रतिज्ञा गुप्तरूपसे प्रगटहुई विचारकर उसके मन वहलानेको बहुतसी कथा कहीं ॥५९॥

इस प्रकार अनेक कथा कहतेहुए सतीके साथ कैलासमें पहुँचे और वहां स्थित हो समाधी लगाय अपने निजरूपका ध्यान करनेलगे ॥ ६० ॥ और सती महाव्याकुल हो वहां स्थिति करनेलगी हे मुने ! शिवाशिवके इस चरित्रको वहां किसीनेभी नहीं जाना ॥ ६१ ॥ हे महामुने ! दोनोंको इस प्रकारसे वहां महासमय व्यतीत होगया इस प्रकार लोकलीला करनेके कारण वह देह धारणकर चरित्र करनेलगे ॥ ६२ ॥ जब भगवान् शंकरने समाधी त्यागी तब यह जानकर सती उनके समीप गईं ॥ ६३ ॥ और व्याकुल हृदयसे देवीने उनको प्रणाम किया उदारबुद्धि शंकरने उनको अपने सन्मुख आसन

सत्या प्राप स कैलासं कथयन् विविधाः कथाः ॥ वरे स्थित्वा निजं रूपं दधौ योगी समाधिभृत् ॥ ६० ॥ तत्र तस्थौ सती धाम्नि
महाविषण्णमानसा ॥ न बुबोध चरित्रं तत्कश्चिच्च शिवयोर्मुने ॥ ६१ ॥ महान्कालो व्यतीयाय तयोरित्थं महामुने ॥ स्वोपात्तदेहयोः
प्रभ्वोर्लोकलीलानुसारिणोः ॥ ६२ ॥ ध्यानं तत्याज गिरिशस्ततस्स परमार्तिहृत् ॥ तज्ज्ञात्वा जगदंबा हि सती तत्राजगाम सा
॥ ६३ ॥ ननामाथ शिवं देवी हृदयेन विदूयता ॥ आसनं दत्तवान्शंभुः स्वसम्मुख उदारधीः ॥ ६४ ॥ कथयामास सुप्रीत्या कथा
बह्वीर्मनोरमाः ॥ निश्शोकां कृतवान् सद्यो लीलां कृत्वा च तादृशीम् ॥ ६५ ॥ पूर्ववत्सा सुखं लेभे तत्याज स्वपणं न सः ॥ नेत्या
श्चर्यं शिवे तात मंतव्यं परमेश्वरे ॥ ६६ ॥ इत्थं शिवाशिवकथां वदन्ति मुनयो मुने ॥ किल केचिदविद्वांसो वियोगश्च कथं तयोः
॥ ६७ ॥ शिवाशिवचरित्रं को जानाति परमार्थतः ॥ स्वेच्छया क्रीडतस्तौ हि चरितं कुरुतस्सदा ॥ ६८ ॥

दिया ॥ ६४ ॥ और प्रेमसे बहुतसी मनोहर कथा सुनाईं और वैसी लीला करके सतीको शीघ्रही शोकरहित करादिया ॥ ६५ ॥ और सतीको पूर्ववत सुखप्राप्त हुआ मानो शंकरने अपनी प्रतिज्ञा छोडदी हे तात ! परमात्मा शिवमें यह सुखके व्यापारका कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ६६ ॥ हे मुने ! मुनिजन इस प्रकारसे शिवाशिवकी कथा कहते हैं अविद्वान्ही उनका वियोग कहते हैं ॥ ६७॥ परमार्थसे शिवाशिवके चरित्रको कौन जानसकता है वे दोनों अपनी

इच्छासे क्रीडा करतेहुए चरित्र करते हैं ॥ ६८ ॥ सती और शिव सदा वाणी और अर्थकी समान मिले हुए हैं उनके वियोगकी फिर संभावना कहां जो कुछ उनकी इच्छा है सोई होता है ॥ ६९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले पूर्वकालमें प्रयागराजमें एकत्र हुए मुनिजनोंका एक महान् यज्ञ हुआथा ॥ १ ॥ वह सिद्ध परमर्षि सुरर्षि सनकादिक प्रजापति ब्रह्मज्ञानी देवता एकत्रित हुए थे ॥ २ ॥ मैंभी अपने परिवारके सहित वहां उपस्थित हुआ था निगमागम मूर्त्ति धारण किये मेरे संग थे ॥ ३ ॥ उत्सवके सहित

वागर्थाविव संपृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ ॥ तयोर्वियोगस्संभाव्यस्संभवेदिच्छया तयोः ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सतीवियोगो नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुराभवच्च सर्वेषामध्वरो विधिना महान् ॥ प्रयागे समवेतानां मुनीनां च महात्मनाम् ॥ १ ॥ तत्र सिद्धास्समायातास्सनकाद्यास्सुरर्षयः ॥ सप्रजापतयो देवा ज्ञानिनो ब्रह्मदर्शिनः ॥ २ ॥ अहं समागतस्तत्र परिवारसमन्वितः ॥ निगमैरागमैर्युक्तो मूर्तिमद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३ ॥ समाजोभूद्विचित्रो हि तेषामुत्सवसंयुतः ॥ ज्ञानवादोऽभवत्तत्र नानाशास्त्रसमुद्भवः ॥ ४ ॥ तस्मिन्नवसरे रुद्रस्सभवानीगणः प्रभुः ॥ त्रिलोकहितकृत्स्वामी तत्रागात्सूक्तिकृन्मुने ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा शिवं सुरास्सर्वे सिद्धाश्च मुनयस्तथा ॥ अनमंस्तं प्रभुं भक्त्या तुष्टुवुश्च तथा ह्यहम् ॥ ६ ॥ तस्थुश्शिवाज्ञया सर्वे यथास्थानं मुदान्विताः ॥ प्रभुदर्शनसंतुष्टा वर्णयन्तो निजं विधिम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्नवसरे दक्षः प्रजापतिपतिः प्रभुः ॥ आगमत्तत्र सुप्रीतस्सुवर्चस्वी यदृच्छया ॥ ८ ॥

उनका वह विचित्र समाज हुआ वहां अनेक शास्त्रोंका ज्ञानवाद उपस्थित हुआ॥ ४॥ उसी समयमें भवानीपति रुद्रभी अपने गणोंको साथ लिये त्रिलोकीका हित और पालन करनेवाले वहां आये ॥ ५ ॥ शिवजीको देखते ही सब सिद्ध देवता ऋषि और मुनि अपना प्रभु मानकर प्रणाम करतेहुए और मैं भक्तिसे स्तुति करनेलगा ॥ ६ ॥ तब शिवजीकी आज्ञासे सब कोई अपने स्थानोंमें स्थित हुए और प्रभुके दर्शनसे सन्तुष्ट होकर सब कोई अपने भाग्यकी सराहना करनेलगे ॥ ७ ॥ उसी समय प्रजापतियोंकेभी पति महातेजस्वी दक्षजी प्रसन्नतापूर्वक अपनी इच्छासे वहाँ आये ॥ ८ ॥

ब्रह्माण्डके अधिपतिके मान्य तत्त्वसे बहिर्मुख अभिमानी दक्षजी केवल मुझेही प्रणामकर मेरी आज्ञासे वहां बैठगये ॥९॥ उस समय सब देवताऋषियोंने उन महातेजस्वी दक्षजीकी स्तुति और प्रणामोंसे प्रतिष्ठा की और पूजाकर नम्र हो हाथजोड प्रशंसा की ॥ १० ॥ परन्तु अनेक प्रकारकी लीलाविहार करनेवाले परमस्वतंत्र महेश्वर अपने आसनपर बैठे रहे उन्होंने दक्षजीको प्रणाम नहीं किया ॥ ११ ॥ तब शिवजीको प्रणाम करता हुआ न देखकर मेरा पुत्र दक्ष बडा अप्रसन्न हुआ और शिवजीपर बडा क्रोध किया ॥ १२ ॥ और महागर्वसे क्रूरदृष्टिसे शिवजीको देखतेहुए ज्ञानसे रहितहो सबको सुनातेहुए दक्षजीने

मां प्रणम्य स दक्षो हि न्युष्टस्तत्र मदाज्ञया ॥ ब्रह्माण्डाधिपतिर्मान्यो मानी तत्त्वबहिर्मुखः ॥ ९ ॥ स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च दक्षस्सर्वैस्सुरर्षिभिः ॥ पूजितो वरतेजस्वी करौ बध्वा विनम्रकैः ॥ १० ॥ नानाविहारकृन्नाथस्स्वतंत्रः परमोतिकृत् ॥ नानमत्तं तदा दक्षं स्वासनस्थो महेश्वरः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाऽनतं हरं तत्र स मे पुत्रोऽप्रसन्नधीः ॥ अकुपत्सहसा रुद्रे तदा दक्षः प्रजापतिः ॥ १२ ॥ क्रूरदृष्ट्या महागर्वो दृष्ट्वा रुद्रं महाप्रभुम् ॥ सर्वान्संश्रावयन्नुच्चैरवोचज्ज्ञानवर्जितः ॥ १३ ॥ ॥ एते हि सर्वे च सुरासुरा भृशं नमंति मां विप्रवरास्तथर्षयः ॥ कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महामनास्त्वभूत्तु यः प्रेतपिशाचसंवृतः ॥ १४ ॥ श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेधुना ॥ लुप्तक्रियो भूत पिशाचसेवितो मत्तोऽविधो नीतिविदूषकस्सदा ॥ १५ ॥ पाखंडिनो दुर्जनपापशीला दृष्ट्वा द्विजं प्रोद्धतनिंदकाश्च ॥ वध्वां सदासक्तरतिप्रवीणस्तस्मादमुं शप्तुमहं प्रवृत्तः ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्येवमुक्त्वा स महाखलस्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं ह्यवोचत ॥ शृण्वंत्वमी विप्रवरास्तथा सुरा वध्यं हि मे चार्हथ कर्तुमेतम् ॥ १७ ॥

कहा ॥ १३ ॥ दक्ष बोले यह सब सुर असुर ब्राह्मण ऋषि मुझे देखकर सब प्रणाम करते हैं परन्तु यह प्रेत पिशाचोंसे आवृत महामानी दुर्जनकी समान किस प्रकारसे स्थित रहे ॥ १४ ॥ इन श्मशानसेवी निर्लज्ज क्रियाहीन भूतपिशाचोंसे सेवित मतवाले विधिहीन नीतिके विदूषकने मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ॥ १५ ॥ पाखण्डी दुर्जन पापशील ब्राह्मणकी निंदा करने वाले सदा वधूमें आसक्त रतिमें प्रवीण होनेसे मैं इनको शाप देनेके निमित्त प्रवृत्त होताहूं ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहकर महादुष्ट प्रजापतिने क्रोध करके रुद्रके प्रति यह वचन कहे हे ब्राह्मणो ! देवताओ ! सब सुनो यह मुझसे वध्य होनेको योग्य

हैं ॥ १७ ॥ दक्षजी बोले इन रुद्रको मैंने यज्ञसे बाहर किया यह वर्णोंसेभी बाहरहैं विवर्णरूप हैं यह आजसे देवताओंके मध्यमें भाग न पावैंगे कारण कि यह श्मशानवासी कुलजन्मसे हीन हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले भृगुआदि बहुतसे ऋषि दक्षजीके यह वचन सुनकर देवताओंकी समान रुद्रको जानकर निन्दा करनेलगे ॥ १९ ॥ पर नन्दीकी प्रजापतिके वचनोंसे लाल आंखैं होगईं और वह श्रेष्ठ गण दक्षको शाप देतेहुए बोले ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले अरे शठ महामूढ दक्ष दुष्टमति ! तैंने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बाहर किसकारण किया ॥ २१ ॥ जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल होतेहैं तीर्थ पवित्र होतेहैं

॥ दक्ष उवाच ॥ ॥ रुद्रो ह्ययं यज्ञबहिष्कृतो मे वर्णेष्वतीतोथ विवर्णरूपः ॥ देवैर्न भागं लभतां सहैव श्मशानवासी कुलजन्म
हीनः ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति दक्षोक्तमाकर्ण्य भृग्वाद्या बहवो जनाः ॥ अगर्हयन् दुष्टसत्त्वं रुद्रं मत्वामरैस्समम् ॥ १९ ॥
नन्दी निशम्य तद्वाक्यं लोलाक्षोतिरुषान्वितः ॥ अब्रवीत्त्वरितं दक्षं शापं दातुमना गणः ॥ २० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ रेरेशठ महा
मूढ दक्ष दुष्टमते त्वया ॥ यज्ञबाह्यो हि मे स्वामी महेशो हि कृतः कथम ॥ २१ ॥ यस्य स्मरणमात्रेण भवंति सफला मखाः ॥
तीर्थानि च पवित्राणि सोयं शप्तो हरः कथम् ॥ २२ ॥ वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोयं दक्ष दुर्मते ॥ वृथोपहसितश्चैवादुष्टो रुद्रो महाप्रभुः
॥ २३ ॥ येनेदं पाल्यते विश्वं सृष्टमंते विनाशितम् ॥ शप्तोयं स कथं रुद्रो महेशो ब्राह्मणाधम ॥ २४ ॥ एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना
हि प्रजापतिः ॥ नन्दिनं च शशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः ॥ २५ ॥ दक्ष उवाच ॥ यूयं सर्वे रुद्रगणा देवबाह्या भवंतु वै ॥ वदमार्गपरित्य
क्तास्तथा त्यक्ता महर्षिभिः ॥ २६ ॥ पाखंडवादनिरताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ॥ मदिरापाननिरता जटा भस्मास्थिधारिणः ॥ २७ ॥

उन शंकरको तैंने कैसे शाप दिया ॥ २२ ॥ हे दुर्मति दक्ष ! ब्रह्मचपलतासे तैंने शंकरको वृथाही शाप दिया इन सरल महाप्रभु रुद्रका वृथाही तैंने उपहास किया ॥ २३ ॥ जो इस जगत्को पालनकर सृष्टिके अन्तमें विनाश करते हैं हे ब्राह्मणाधम ! उन रुद्रको तुमने कैसे शाप दिया ॥ २४ ॥ इसप्रकार जब नन्दीने प्रजापतिकी भर्त्सनाकी तब क्रोधकर दक्षने नन्दीको शाप दिया ॥ २५ ॥ दक्ष बोला तुम सब रुद्रके गण वेदसे बाहर होगे वेद और महर्षियोंसे तुम त्यागे जाओगे ॥ २६ ॥ पाखण्ड वादमें निरत शिष्टाचारसे हीन मदिरापान करनेवाले जटा भस्म और अस्थियोंके धारण करनेवाले होगे ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकारसे दक्षने शिवके किंकरोंको शाप दिया तब शिवके प्रिय नन्दी यह सुनकर महाक्रोधित हुए ॥ २८ ॥ और उस घमण्डी महादुष्ट दक्षसे शीघ्रतापूर्वक शिलादपुत्र शिवके प्रिय नन्दीने कहा ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले रे शठ दुर्बुद्धि दक्ष! शिवके तत्त्वको न जाननेवाले ! तैंने ब्रह्मचपलतासे वृथाही शिवके किंकरोंको शाप दिया ॥ ३० ॥ दुष्टचित्तवाले भृगु आदि जनोंसे हंसी कराई ब्राह्मणत्वके अहंकारसे महाप्रभु महेशानका निरादर किया ॥ ३१ ॥ जो रुद्रसे विमुख तेरी समान खल ब्राह्मणहैं रुद्रके तेजके प्रभावसे मैं उनको शाप देताहूं ॥ ३२ ॥ वेदवादमें रत होकरभी तुम वेदका तत्त्व न जानसकोगे

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति शप्तास्तथा तेन दक्षेण शिवकिंकराः ॥ तच्छ्रुत्वातिरुषाविष्टोभवन्नंदी शिवप्रियः ॥ २८ ॥ प्रत्युवाच द्रुतं दक्षं गर्वितं तं महाखलम् ॥ शिलादतनयो नंदी तेजस्वी शिववल्लभः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ रे दक्ष शठ दुर्बुद्धे वृथैव शिवकिंकराः ॥ शप्तास्ते ब्रह्मचापल्याच्छिवतत्त्वमजानता ॥ ३० ॥ भृग्वाद्यैर्दुष्टचित्तैश्च मूढैस्स उपहासितः ॥ महाप्रभुर्महेशानो ब्राह्मणत्वादहंमते ॥ ३१ ॥ ये रुद्रविमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृशाः खलाः ॥ रुद्रतेजःप्रभावत्वात्तेषां शापं ददाम्यहम् ॥ ३२ ॥ वेदवा दरताः यूयं वेदतत्त्वबहिर्मुखाः ॥ भवंतु सततं विप्रा नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ३३ ॥ कामात्मानस्स्वर्गपराः क्रोधलोभमदान्विताः ॥ भवंतु सततं विप्रा भिक्षुका निरपत्रपाः ॥ ३४ ॥ वेदमार्गं पुरस्कृत्य ब्राह्मणाश्शूद्रयाजिनः ॥ दरिद्रा वै भविष्यंति प्रति ग्रहरतास्सदा ॥ ३५ ॥ असत्प्रतिग्रहाश्चैव सर्वे निरयगामिनः ॥ भवष्यंति सदा दक्ष केचिद्वै ब्रह्मराक्षसाः ॥३६॥ यश्शिवं सुरसामान्यमुद्दिश्य परमेश्वरम् ॥ द्रुह्यत्यजो दुष्टमतिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ ३७ ॥ कूटधर्मेषु गेहेषु सदा ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतंत्रं वितनुता वेदवादं च शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

और तुम निरन्तर और कुछ नहीं है ऐसा कहनेवाले होगे ॥ ३३ ॥ केवल कामनासेही अनुष्ठान करनेवाले स्वर्गपरायण क्रोध लोभ मदसे युक्त होगे और भिक्षा मांगनेवाले लज्जारहित होगे ॥ ३४ ॥ वेदमार्गको आगे करके ब्राह्मण शूद्रोंको यज्ञ करावोगे और सदा कुदान लेनेवाले दरिद्री होगे ॥ ३५ ॥ असत्प्रतिग्रह लेनेके कारण नरकगामी होगे हे दक्ष ! इनमें कोई २ ब्रह्मराक्षस होगे ॥ ३६ ॥ जिन शिवजी परमेश्वरको तुम देवताओंमें सामान्य देव जानतेहो उनसे जो दुष्टमति द्रोह करैगा वह तत्वसे विमुख होगा ॥ ३७ ॥ यह शिवजीके द्रोही कूटधर्ममें तत्पर घरमें पडेहुए ग्राम्यसुखकी इच्छा करैंगे

कर्मतंत्रमें लगेहुए वेदवाद करैंगे ॥ ३८ ॥ इसके आनंद नष्ट होजायंगे अपनी गति भूलजानेसे पशुरूप प्रायः होजायगा कर्म नीतिसे विमुख होनेसे शीघ्रही दक्षका बकरेका मुख होजायगा ॥ ३९ ॥ जिस समय नंदीने क्रोध करके ब्राह्मणको शाप दिया उस समय महाहाहाकार मचगया जब कि दक्षनेभी शंकरको शाप दिया॥४०॥यह सुनकर मैंने दक्ष आदि तथा दूसरे ब्राह्मण भृगु आदिकी निन्दा की कि वेद और शिवतत्व जानकरभी ऐसा किया॥४१॥ शंकर नंदीके यह वचन सुन हंसते हुए उसको समझाते हुए यह बोले ॥ ४२ ॥ सदाशिव बोले हे महाप्राज्ञ ! हे नंदि ! तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये

विनष्टानंदकमुखो विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ भ्रष्टकर्मानयसदा दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ ३९ ॥ शप्तास्ते कोपिना तत्र नंदिना ब्राह्मणा यदा ॥ हाहाकारो महानासीच्छप्तो दक्षेण चेश्वरः ॥ ४० ॥ तदाकर्ण्याहमत्यंतमनिंदंतं मुहुर्मुहुः ॥ भृग्वादीनपि विप्रांश्च वेदसृट् शिवतत्त्ववित् ॥ ४१ ॥ ईश्वरोपि वचः श्रुत्वा नंदिनः प्रहसन्निव ॥ उवाच मधुरं वाक्यं बोधयंस्तं सदाशिवः ॥ ४२ ॥ सदाशिव उवाच ॥ शृणु नंदिन् महाप्राज्ञ न कर्तुं क्रोधमर्हसि ॥ वृथा शप्तो ब्रह्मकुलो मत्वा शप्तं च मां भ्रमात् ॥ ४३ ॥ वेदो मंत्राक्षरमयस्साक्षात्सूक्तमयो भृशम् ॥ सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ ४४ ॥ तस्मादात्मविदो नित्यं त्वं मा शप रुषान्वितः ॥ शप्या न वेदाः केनापि दुर्द्धियापि कदाचन ॥ ४५ ॥ अहं शप्तो न चेदानीं तत्त्वतो बोद्धुमर्हसि ॥ शान्तो भव महाधीमन् सनकादिविबोधकः ॥ ४६ ॥ यज्ञोहं यज्ञकर्माहं यज्ञांगानि च सर्वशः ॥ यज्ञात्मा यज्ञनिरतो यज्ञबाह्योहमेव वै ॥ ४७ ॥ कोयं कस्त्वमिमे के हि सर्वोहमपि तत्त्वतः ॥ इति बुद्ध्या हि विमृश वृथा शप्तास्त्वया द्विजाः ॥ ४८ ॥

भ्रमसे मुझको शाप देताहुआ देखकर तुमने ब्रह्मकुलको वृथा शाप दिया ॥४३॥ वेद मंत्राक्षरमय है वह साक्षात् सूक्तमय है और सूक्तमें सब देहधारियोंकी आत्मा प्रतिष्ठित है ॥ ४४ ॥ इस कारण आत्मज्ञानी होनेके कारण तुम क्रोधकर शाप मतदो किसी दुर्बुद्धिसे भी कभी वेद शापित नहीं होसकते ॥४५॥ तुम तत्वसे जानसक्तेहो कि मैं शापित नहीं होसकता हे बुद्धिमान् ! तुमने सनकादिकोंको बोध दियाहै इससे शान्त हो ॥ ४६ ॥ यज्ञ, यज्ञके कर्म, यज्ञके अंग, यज्ञात्मा, यज्ञमें निरत, यज्ञसे बाह्य, सब मैंही हूं ॥ ४७ ॥ यह तुम सब कौनहो तत्त्वसे विचारो सब मैंही हूं ऐसी बुद्धिसे विचारकरनेसे विदित

होगा कि ब्राह्मणोंको वृथा शाप दिया ॥ ४८ ॥ तत्त्वज्ञानसे इस प्रपंचकी बातको जानकर तुम शान्त होजाओ हे महाबुद्धिवाले ! क्रोध छोडकर स्वस्थहो और इस बातको समझो ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले जब शिवजीने इस प्रकारसे नन्दिकेश्वरको समझाया तब वे परमज्ञानको प्राप्त होकर क्रोध त्याग शांत हुए ॥ ५० ॥ इस प्रकार शिवजी अपने प्राणप्यारे गणको समझाकर प्रसन्नतापूर्वक गणों सहित उस स्थानसे चलेगये ॥ ५१ ॥ इधर दक्षजीभी क्रोधमें भरेहुए ब्राह्मणोंके सहित मनमें शिवका द्रोह करके उस स्थानसे अपने स्थानको चले आये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार रुद्रको शाप देकर परम क्रोधमें भरकर

तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य प्रपंचरचनो भव ॥ बुधस्स्वस्थो महाबुद्धे नन्दिन् क्रोधादिवर्जितः ॥ ४९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना नन्दिकेश्वरः ॥ विवेकपरमो भूत्वा शांतोऽभूत्क्रोधवर्जितः ॥ ५० ॥ शिवोपि तं प्रबोध्याशु स्वगणं प्राणवल्लभम् ॥ सगणस्स ययौ तस्मात्स्वस्थानं प्रमुदान्वितः ॥ ५१ ॥ दक्षोपि स रुषाविष्टस्तैर्द्विजैः परिवारितः ॥ स्वस्थानं च ययौ चित्ते शिवद्रोहपरायणः ॥ ५२ ॥ रुद्रं तदानीं परिशप्यमानं संस्मृत्य दक्षः परया रुषान्वितः ॥ श्रद्धां विहायैव स मूढबुद्धिर्निंदापरोभूच्छिवपूजकानाम् ॥ ५३ ॥ इत्युक्तो दक्षदुर्बुद्धिश्शंभुना परमात्मना ॥ परां दुर्धिषणां तस्य शृणु तात वदाम्यहम् ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीयखंडे सत्युपाख्याने शिवेन दक्षविरोधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकदा तु मुने तेन यज्ञः प्रारंभितो महान् ॥ तत्राहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेन सुरर्षयः ॥ १ ॥ महर्षयोऽखिलास्तत्र निर्जराश्च समागताः ॥ यद्यज्ञकरणार्थं हि शिवमायाविमोहितः ॥ २ ॥

दक्ष श्रद्धाको त्याग मूढताके कारण शिवके पूजकोंकी निन्दामें तत्परहुए ॥ ५३ ॥ हे तात ! दुर्बुद्धि दक्षजीकी यह धृष्टता शंकरके प्रति वर्णनकी अब जो उनकी धर्षणा शंकरके द्वारा हुई उसको तुम श्रवण करो ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे शिवदक्षविरोधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! एक समय उस दक्षने एक महान् यज्ञका आरंभ किया और दीक्षा लेकर सब महर्षियोंको बुलाया ॥ १ ॥ शिवकी मायासे मोहित होकर देवता और ऋषि उस स्थानमें यज्ञ करानेके निमित्त आये ॥ २ ॥

अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भरद्वाज, गौतम ॥ ३ ॥ पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुपसित, सुमंतु, त्रिक, कंक, वैशंपायन॥ ४ ॥ इनको आदि लेकर और भी बहुतसे मुनि प्रसन्न होकर आये यह सब मेरे पुत्र दक्षके यज्ञमें स्त्री पुत्रों सहित आये ॥ ५॥ इसी प्रकार और सब देवता लोकपाल आदि इसी प्रकार दूसरे देवता उपकरण तथा बलसे सम्पन्न आये॥ ६॥ सत्यलोकसे प्रार्थनाकर मुझ विश्वस्रष्टाको भी बुलाया पुत्र परिवार और मूर्तियुक्त वेद शास्त्रादि संयुक्त मैं आया ॥ ७॥ और बडे आदरसे प्रार्थनाकर वैकुण्ठसे विष्णुजीको बुलाया वहभी अपने पार्षद परिवारयुक्त वैकुण्ठसे यज्ञमें आये

अगस्त्यः कश्यपोत्रिश्च वामदेवस्तथा भृगुः ॥ दधीचिर्भगवान् व्यासो भारद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥ पैलः पराशरो गर्गो भार्गवः ककुपस्सितः ॥ सुमंतुत्रिककंकाश्च वैशंपायन एव च ॥ ४ ॥ एते चान्ये च बहवो मुनयो हर्षिता ययुः ॥ मम पुत्रस्य दक्षस्य सदारास्ससुता मखम् ॥ ५ ॥ तथा सर्वे सुरगणा लोक पाला महोदयाः ॥ तथोपनिर्जरास्सर्वे स्वोपकारबलान्विताः ॥ ६ ॥ सत्यलोकात्समानीतो नुतोहं विश्वकारकः ॥ ससुतस्सपरीवारो मूर्तवेदादिसंयुतः ॥ ७ ॥ वैकुंठाच्च तथा विष्णुस्संप्रार्थ्य विविधादरात् ॥ सपार्षदपरीवारस्समानीतो मखं प्रति ॥ ८ ॥ एवमन्ये समायाता दक्षयज्ञं विमोहिताः ॥ सत्कृतास्तेन दक्षेण सर्वे ते हि दुरात्मना ॥ ९ ॥ भवनानि महार्हाणि सुप्रभाणि महांति च ॥ त्वष्ट्रा कृतानि दिव्यानि तेभ्यो दत्तानि तेन वै ॥ १० ॥ तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथायोग्यं च संस्थिताः ॥ सन्मानिता अराजंस्ते सकला विष्णुना मया ॥ ११ ॥ वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तदा ॥ ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्याश्च तपोधनाः ॥ १२ ॥ अधिष्ठाता स्वयं विष्णुस्सह सर्वमरुद्गणैः ॥ अहं तत्राऽभवं ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ और भी बहुतसे महात्मा मोहित होकर दक्षके यज्ञमें आये और उस द्रोही दक्षने उन सबका सन्मान किया॥ ९ ॥ बडे २ प्रकाशमान भवन विश्वकर्माके बनाये उनके रहनेको दिये ॥ १० ॥ उन सब स्थानोंमें वे देवता आदि सन्मानित होकर मेरे और विष्णुजीके सहित विराजमानहुए ॥ ११ ॥ जिस समय वह महायज्ञ कनखल तीर्थमें प्रारंभ हुआ उस समय तपस्वी भृगुआदि उसमें ऋत्विग हुए ॥ १२ ॥ और सब मरुद्गणोंके सहित विष्णुजी उसमें अधिष्ठाता

हुए और वेदत्रयीकी विधि जाननेवाला मैं उस यज्ञमें ब्रह्मा हुआ ॥ १३ ॥ इसी प्रकार सब दिक्पाल द्वारपालरूपसे रक्षक हुए वे आयुध लिये हुए परिवार सहित कुतूहलमें तत्परथे ॥ १४ ॥ उस यज्ञमें यज्ञभी अपने स्वरूपसे स्थित हुआ सब महामुनि स्वयं वेदधारी हुए ॥ १५ ॥ अग्निनेभी अपने सहस्रों रूप धारण किये और उस महाउत्सववाले यज्ञमें आहुति ग्रहण करनेलगे ॥ १६ ॥ अठासी सहस्र ऋषि अग्निमें आहुति देतेथे चौंसठ हजार ऋषि उस यज्ञमें उद्गाता थे ॥ १७ ॥ इतनेही अध्वर्यु और होता थे और नारद आदि सप्तऋषि पृथक् पृथक् गाथा करते थे ॥ १८ ॥ गंधर्व विद्याधर सिद्धोंके समूह आदित्यगण यज्ञोंके गण समस्त संख्यावाले नाग समस्त चर दक्षने अपने यज्ञमें वरणकिये ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षि, राजर्षि, सुरर्षि, मित्र, मंत्री और सेनासहित समस्त राजा वसु तथा गणदेवता इन सबको दक्षने वरण किया ॥२०॥ तब कौतुक मंगल करने उपरान्त दक्षने दीक्षा ली और स्वस्तिवाचनके उपरान्त भार्यासहित अत्यन्त शोभायमान हुआ ॥ २१॥ पर दुरात्मा दक्षने उस यज्ञमें शिवजीको नहीं बुलाया कि, वे कपाली हैं उनको यज्ञमें योग्यता नहीं ऐसा कहदिया ॥२२॥ यद्यपि अपनी सती कन्या प्यारी थी पर कपालीकी भार्या है ऐसा विचारकर गुणदर्शी दक्षने सतीको भी यज्ञमें नहीं बुलाया॥२३॥

तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ॥ सायुधास्सपरीवाराः कुतूहलकरास्सदा ॥१४॥ उपतस्थे स्वयं यज्ञस्सुरूपस्तस्य चाध्वरे ॥
सर्वे महामुनिश्रेष्ठाः स्वयं वेदधराऽभवन् ॥ १५ ॥ तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः ॥ हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञे महोत्सवे
॥ १६ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि जुह्वति सह ऋत्विजः ॥ उद्गातारश्चतुषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ॥ १७ ॥ अध्वर्यवोथ होतारस्तावन्तो
नारदादयः ॥ सप्तर्षयस्समा गाथाः कुर्वंति स्म पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ गंधर्वविद्याधरसिद्धसंघानादित्यसंघान् सगणान् सयज्ञान् ॥
संख्यावरान्नागचरान् समस्तान् वव्रे स दक्षो हि महाध्वरे स्वे ॥ १९ ॥ द्विजर्षिराजर्षिसुरर्षिसंघा नृपास्समित्राः सचिवास्ससैन्याः ॥
वसुप्रमुख्या गणदेवताश्च सर्वे वृतास्तेन मखोपवेत्राः ॥ २० ॥ दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमंगलः ॥ भार्यया सहितो रेजे कृत
स्वस्त्ययनो भृशम् ॥ २१ ॥ तस्मिन् यज्ञे वृतश्शंभुर्न दक्षेण दुरात्मना ॥ कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥ २२ ॥
कपालिभार्येति सती दयिता स्वसुतापि च ॥ नाहूता यज्ञविषये दक्षेणागुणदर्शिना ॥ २३ ॥

जब इसप्रकारसे दक्षयज्ञका महोत्सव आरम्भ हुआ और वे सब अध्वर्यु अपने २ कार्यमें तत्पर हुए ॥ २४ ॥ तब वहां अपने प्रभु शंकरको स्थित न देखकर उद्विग्नमनसे परम शैव दधीचि कहनेलगे ॥ २५ ॥ दधीच बोले सब देवता ऋषि इस सभामें मेरा वचन सुनें इस महोत्सवयज्ञमें शिवजी क्यों नहीं आये ॥ २६ ॥ यह सब सुरेश्वर मुनिजन लोकपाल इस यज्ञमें आये हैं पर महात्मा शंकरके विना यह यज्ञ शोभायमान नहीं होता ॥ २७ ॥ महात्मा कहतेहैं कि जिसके द्वारा समस्त मंगल होतेहैं वही पुराणपुरुष नीलकण्ठ परेश वृषध्वज यहां दिखाई नहीं देते ॥ २८ ॥ जिनकी प्राप्तिसे अमंगल भी मंगलरूप होजातेहैं और आठों दिशाओंमें सब ओरसे मंगलही दिखाई देतेहैं ॥ २९ ॥ इसकारण तुमको बहुतशीघ्र ब्रह्मा वा विष्णुजी महाराजको भेजकर शिवजीको शीघ्र बुलाना चाहिये ॥ ३० ॥ इन्द्र वा लोकपाल वा सिद्ध ब्राह्मणोंके सहित तुमको यज्ञकी पूर्त्तिके निमित्त शिवजीको शीघ्र बुलाना चाहिये ॥ ३१ ॥ सब तुमको महेश्वर शंकरके समीप जानाचाहिये और शीघ्र उनको दाक्षायणीके सहित लानाचाहिये ॥ ३२ ॥ यदि वह देवेश शंकर

एवं प्रवर्तमाने हि दक्षयज्ञे महोत्सवे ॥ स्वकार्यलग्नास्तत्रासन् सर्वे तेऽध्वरसंमताः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र दृष्ट्वा वै शंकरं प्रभुम् ॥ प्रोद्विग्नमानसश्शैवो दधीचो वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ दधीच उवाच ॥ ॥ सर्वे शृणुत मद्वाक्यं देवर्षिप्रमुखा मुदा ॥ कस्मान्नैवा गतश्शंभुरस्मिन् यज्ञे महोत्सवे ॥ २६ ॥ एते सुरेशा मुनयो महत्तरास्सलोकपालाश्च समागता हि ॥ तथापि यज्ञस्तु न शोभते भृशं पिनाकिना तेन महात्मना विना ॥ २७ ॥ येनैव सर्वाण्यपि मंगलानि भवंति शंसन्ति महाविपश्चितः ॥ सोसौ न दृष्टोत्र पुमान् पुराणो वृषध्वजो नीलगलः परेशः ॥ २८ ॥ अमंगलान्येव च मंगलानि भवंति येनाधिगतानि दक्षः ॥ त्रिपंचकेनाप्यथ मंगलानि भवंति सद्यः परतः पुराणि ॥ २९ ॥ तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेशितुः ॥ त्वरितं ब्रह्मणा वापि विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३० ॥ इन्द्रेण लोकपालैश्च द्विजैस्सिद्धैस्सहाधुना ॥ सर्वथा नयनीयोसौ शंकरो यज्ञपूर्त्तये ॥ ३१ ॥ सर्वैर्भवद्भिर्गंतव्यं यत्र देवो महेश्वरः ॥ दाक्षायण्या समं शम्भुमानयध्वं त्वरान्विताः ॥ ३२ ॥ तेन सर्वं पवित्रं स्याच्छंम्भुना परमात्मना ॥ अत्रागतेन देवेशास्सांबेन परमात्मना ॥ ३३ ॥

यहां सतीसहित आगये तो यह सब यज्ञ पवित्र होजायगा कारण कि वह परमात्मा हैं ॥ ३३ ॥ जिनके स्मरण और नाम उच्चारणसे सब सुकृत होजाता है इसकारण वृषभध्वजको सब प्रयत्नसे लाना चाहिये ॥ ३४ ॥ शंकरके आतेही यज्ञ पवित्र होजायगा नहीं तो अपूर्ण रहैगा यह मैं सत्य कहताहूं॥ ३५॥ ब्रह्माजी बोले दधीचके यह वचन सुनतेही दक्षको बडा क्रोध हुआ और वह दुष्टबुद्धि मूढ हँसता हुआ बोला ॥ ३६ ॥ देवताओंके मूल विष्णुजीहैं जिनमें सनातनधर्म स्थितहै सो मैंने यज्ञमें बुलाहीलियेहैं अब इस यज्ञमें न्यूनता क्या है ॥३७॥ जिसमें अनेकविधिके कर्म यज्ञ और वेद स्थित हैं वह विष्णुजी

यस्य स्मृत्वा च नामोक्त्या समग्रं सुकृतं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्यानेतव्यो वृषध्वजः ॥ ३४ ॥ समागते शंकरेत्र पावनो हि भवेन्मखः ॥ भविष्यत्यन्यथाऽपूर्णः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ३५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षो रोषसमन्वितः ॥ उवाच त्वरितं मूढः प्रहसन्निव दुष्टधीः ॥ ३६ ॥ मूलं विष्णुर्देवतानां यत्र धर्मस्सनातनः ॥ समानीतो मया सम्यक् किमूनं यज्ञकर्मणि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्वेदाश्च यज्ञाश्च कर्माणि विविधानि च ॥ प्रतिष्ठितानि सर्वाणि सोसौ विष्णुरिहागतः ॥ ३८ ॥ सत्यलोकात्समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ वेदैस्सोपनिषद्भिश्च विविधैरागमैस्सह ॥ ३९ ॥ तथा सुरगणैस्साकमागतस्सुरराट् स्वयम् ॥ तथा यूयं समायाता ऋषयो वीतकल्मषाः ॥ ४० ॥ येये यज्ञोचिताश्शांताः पात्रभूतास्समागताः ॥ वेदवेदार्थतत्त्वज्ञास्सर्वे यूयं दृढव्रताः ॥ ४१ ॥ अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणापि प्रयोजनम् ॥ कन्या दत्ता मया विप्र ब्रह्मणा नोदितेन हि ॥ ४२ ॥

यहां आहीगये हैं ॥ ३८ ॥ लोकपितामह ब्रह्मा सत्यलोकसे आगयेहैं वेद उपनिषद और आगम इनके साथ हैं ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार देवताओंके साथ स्वयं सुरपतिने आगमन किया है इसीप्रकार पापरहित आप सब ऋषि यहां आये हैं॥४०॥ जो जो यज्ञमें उचित पात्ररूप शांत वेदवेदार्थके तत्त्व जाननेवाले दृढव्रत हैं वे सब यहां आगयेहैं ॥ ४१ ॥ तब रुद्रसे अब हमारा प्रयोजन क्या है हे विप्र ! ब्रह्माजीके कहनेसे मैंने अपनी कन्या उनको देदीथी ॥४२॥

हे विप्र ! रुद्र तो अकुलीन पितामातासे रहित भूत प्रेत पिशाचोंके पति दुर्गम हैं ॥ ४३ ॥ तथा आत्माकी संभावनावाले मूढ स्तब्ध मौनी और अहंकारी हैं न इनमें कर्म न योग्यता है इसकारण मैंने उनको न बुलाया ॥ ४४ ॥ इस कारण फिर तुमने इसप्रकारके वचन न कहना, तुम सबही मिलकर इस मेरे यज्ञको सफल करो ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले दक्षके यह वचन सुनकर दधीच कहनेलगे वह उनके सार वचन देवता मुनि सबने सुने ॥ ४६ ॥ दधीचने कहा शंकरके विना यह यज्ञ अयज्ञही हुआहै विशेषकर इसमें तुम्हारा नाश होगा ॥ ४७ ॥ यह कहकर इकले दधीचही वहांसे चलेगये और दक्षके यहांसे

हरोऽकुलीनोसौ विप्र पितृमातृविवर्जितः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः ॥ ४३ ॥ आत्मसंभावितो मूढस्तब्धो मौनी समत्सरः ॥ कर्मण्यस्मिन्न योग्योसौ नानीतो हि मयाऽधुना ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वमीदृशं वाक्यं पुनर्वाच्यं न हि क्वचित् ॥ सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचो वाक्यमब्रवीत् ॥ सर्वेषां शृण्वतां देवमुनीनां सारसंयुतम् ॥ ४६ ॥ दधीच उवाच ॥ अयज्ञोयं महाजातो विना तेन शिवेन हि ॥ विनाशोपि विशेषेण ह्यत्र ते हि भविष्यति ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वा दधीचोसावेक एव विनिर्गतः ॥ यज्ञवाटाच्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमं ययौ ॥ ४८ ॥ ततोन्ये शांकरा ये च मुख्याश्शिवमतानुगाः ॥ निर्ययुस्स्वाश्रमान् सद्यश्शापं दत्त्वा तथैव च ॥ ४९ ॥ मुनौ विनिर्गते तस्मिन् मखादन्येषु दुष्टधीः ॥ शिवद्रोही मुनीन् दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५० ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ गतः शिवप्रियो विप्रो दधीचो नाम नामतः ॥ अन्ये तथाविधा ये च गतास्ते मम चाध्वरात् ॥ ५१ ॥ एतच्छुभतरं जातं संमतं मे हि सर्वथा ॥ सत्यं ब्रवीमि देवेश सुराश्च मुनयस्तथा ॥ ५२ ॥

उठकर तुरत अपने आश्रममें चलेआये ॥ ४८ ॥ इसके पीछे औरभी जो शिवके भक्त थे वेभी दक्षको शापदेकर शीघ्र अपने स्थानोंको गये ॥ ४९ ॥ जब दूसरे मुनिभी वहांसे उठगये तब वह मूढबुद्धि शिवद्रोही दक्ष हंसताहुआ दूसरे मुनियोंसे बोला ॥ ५० ॥ दक्ष बोला शिवका प्रिय दधीच यहांसे चलगया तथा उस सरीखे औरभी यहांसे उठगये ॥ ५१ ॥ यह बहुतही अच्छा हुआ और मैं यह चाहताभीथा, हे देवेश ! देवता और मुनियों यह मैं

सत्यही कहताहूं ॥ ५२ ॥ नष्टबुद्धि मंदात्मा मिथ्यावादमें निरत वेदबाह्य दुराचारी इनको तो यज्ञमें बुलानाही न चाहिये ॥ ५३ ॥ आप विष्णुआदि समस्त वेदवादमें रत हो हे ब्राह्मण ! तथा देवताओ ! आप शीघ्र मेरे यज्ञको सफल करो ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे दक्षके वचन सुन शिवकी मायासे मोहित हुए उस यज्ञमें देवता ऋषि देवयजन करनेलगे ॥ ५५ ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकारसे यज्ञमें शापका वर्णन किया अब आदरसे यज्ञके विध्वंस होनेका वृत्तान्त सुनो ॥ ५६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे यज्ञप्रारंभो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी

विनष्टचित्ता मंदाश्च मिथ्यावादरताः खलाः ॥ वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते मखकर्मणि ॥ ५३ ॥ वेदवादरता यूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः ॥ यज्ञं मे सफलं विप्रास्सुराः कुर्वंतु मा चिरम् ॥ ५४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिवमायाविमोहिताः ॥ यन्मखे देवयजनं चक्रुस्सर्वे सुरर्षयः ॥ ५५ ॥ इति तन्मखशापो हि वर्णितो मे मुनीश्वर ॥ यज्ञविध्वंसयोगोपि प्रोच्यते शृणु सादरम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सती खंडे यज्ञप्रारंभो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदा ययुर्दक्षमखमुत्सवेन सुरर्षयः ॥ तस्मिन्नेवांतरे देवी पर्वते गंधमादने ॥ १ ॥ धारागृहे वितानेन सखीभिः परिवारिता ॥ दाक्षायणी महाक्रीडाश्चकार विविधास्सती ॥ २ ॥ क्रीडासक्ता तदा देवी ददर्शाथ मुदा सती ॥ दक्षयज्ञे प्रयांतं च रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा सीमंतया भूतां विजयां प्राह सा सती ॥ स्वसखीं प्रवरां प्राणप्रियां सा हि हितावहाम् ॥ ४ ॥ ॥ सत्युवाच ॥ हे सखीप्रवरे प्राणप्रिये त्वं विजये मम ॥ क्व गमिष्यति चन्द्रोयं रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम् ॥ ५ ॥

बोले जिस समय दक्षके यज्ञमें देवता ऋषि जारहे थे उस अवसरमें सती देवी गंधमादन पर्वतके ॥ १ ॥ धारधरके वितानके नीचे अपनी सखियों सहित अनेक प्रकारकी क्रीडा कर रही थी ॥ २ ॥ उस समय क्रीडा करते करते देवीने दक्षयज्ञमें जाती हुई रोहिणीसे पूछा ॥ ३ ॥ उसको शृंगाराकिये देख सती विजयासे बोली यह विजया सतीकी निजसखी प्राणप्रिया बडीहितकारिणी थी ॥ ४ ॥ सती बोली हे विजया ! तू मेरी प्राणोंकी समान प्यारी है

यह चन्द्रमा कहांजाता है सो तू रोहिणीसे आदरपूर्वक पूछ ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले यह सुनकर विजया उस स्थानमें जाकर चन्द्रमासे पूछनेलगी तुम कहां जाते हो ॥ ६ ॥ विजयाके वचन सुनकर चन्द्रमाने दक्षके यज्ञोत्सवका वृत्तान्त और उसमें अपना गमन आदरपूर्वक वर्णन किया ॥ ७ ॥ यह सुनकर विजयाको बडा आश्चर्य हुआ और उसने देवीसे आकर सब वृत्तान्त तत्काल वर्णनकिया जो कुछ चन्द्रमाने कहाथा ॥ ८ ॥ यह सुनकर कालिकादेवी सती बडे आश्चर्यमें हुई और उसका कारण विचारमें न आनेसे सोचने लगी ॥ ९ ॥ दक्ष मेरे पिता माता मेरी वीरिणी इन्होंने मुझे क्यों न

ब्रह्मोवाच ॥ तथोक्ता विजया सत्या गत्वा तत्सन्निधौ द्रुतम् ॥ क्व गच्छसीति पप्रच्छ शशिनं तं यथोचितम् ॥ ६ ॥ विजयोक्तमथाकर्ण्य स्वयात्रां पूर्वमादरात् ॥ कथितं तेन तत्सर्वं दक्षयज्ञोत्सवादिकम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा विजया देवीं त्वरिता जातसंभ्रमा ॥ कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना सतीम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा कालिका देवी विस्मिताभूत्सती तदा ॥ विमृश्य कारणं तत्राज्ञात्वा चेतस्यचिंतयत् ॥ ९ ॥ दक्षः पिता मे माता च वीरिणी नौ कुतस्सती ॥ आह्वानं न करोति स्म विस्मृता मां प्रियां सुताम् ॥ १० ॥ पृच्छेयं शंकरं तत्र कारणं सर्वमादरात् ॥ चिंतयित्वेति सासीद्वै तत्र गंतुं सुनिश्चया ॥ ११ ॥ अथ दाक्षायणी देवी विजयां प्रवरां सखीम् ॥ स्थापयित्वा द्रुतं तत्र समगच्छच्छिवांतिकम् ॥ १२ ॥ ददर्श तं सभामध्ये संस्थितं बहुभिर्गणैः ॥ नंद्यादिभिर्महवीरैः प्रवरैर्यूथयूथपैः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा तं प्रभुमीशानं स्वपतिं साथ दक्षजा ॥ प्रष्टुं तत्कारणं शीघ्रं प्राप शंकरसंनिधिम् ॥ १४ ॥

बुलाया मुझ अपनी प्यारीको भुलादिया ॥ १० ॥ मैं इसका कारण चलकर शंकरसे पूछूं ऐसा विचारकर शंकरके समीप जानेका निश्चय किया ॥ ११ ॥ तब सतीदेवी विजयासखीको वहीं ठहराकर शीघ्रतासे शिवजीके समीप गई ॥ १२ ॥ वहां जाकर देखा कि सभा जुडरही है नन्दीआदि महागण बैठे हैं बीचमें शंकर शोभायमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ दक्षकुमारी इसप्रकार अपने पतिको यूथपोंके मध्यमें देखकर उस कारणके पूछनेको शीघ्रही शंकरके समीप गई ॥ १४ ॥

शिवजीने प्रेमसे अपनी प्रियाको गोदीमें बैठाया और बडे मानके वचनोंसे उसको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥ तब महालीला करनेवाले सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले
शिवजी गणोंके मध्यमेंही आदरपूर्वक सतीसे बोले ॥ १६ ॥ शिवजी बोले इतनी शीघ्रतासे विस्मितहुई तुम सभाके मध्यमें कैसे आगई हे सुमध्यमे !
प्रेमपूर्वक शीघ्र इसका कारण कहो ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! जब शंकरने ऐसा कहा तब हाथजोडकर शिवा अपने पतिसे बोली ॥ १८ ॥
सती बोली मैंने सुना है मेरे पिताके यहां महान् यज्ञ होता है वहां बडा उत्सव है सब ऋषि मुनि एकत्र हुएहैं ॥ १९ ॥ सो मेरे पिताका यज्ञ आपको क्यों

शिवेन स्थापिता स्वांके प्रीतियुक्तेन स्वप्रिया ॥ प्रमोदिता वचोभिस्सा बहुमानपुरस्सरम् ॥ १५ ॥ अथ शंभुर्महालीलस्सर्वेशस्सुख
दस्सताम् ॥ सतीमुवाच त्वरितं गणमध्यस्थ आदरात् ॥ १६ ॥ शंभुरुवाच ॥ किमर्थमागतात्र त्वं सभामध्ये सविस्मया ॥ कारणं
तस्य सुप्रीत्या शीघ्रं वद सुमध्यमे ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्ता तदा तेन महेशेन मुनीश्वर ॥ सांजलिस्सुप्रणम्याशु सत्युवाच
प्रभुं शिवा ॥ १८ ॥ सत्युवाच ॥ पितुर्मम महान् यज्ञो भवतीति मया श्रुतम् ॥ तत्रोत्सवो महानस्ति समवेतास्सुरर्षयः ॥ १९ ॥
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ॥ गमनं देवदेवेश तत्सर्वं कथय प्रभो ॥ २० ॥ सुहृदामेष वै धर्मस्सुहृद्भिस्सह संगतिः ॥
कुर्वंति यन्महादेव सुहृदः प्रीतिवर्द्धिनीम् ॥ २१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मया गच्छ सह प्रभो ॥ यज्ञवाटं पितुर्मेद्य स्वामिन् प्रार्थनया
मम ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सत्या देवो महेश्वरः ॥ दक्षवाग्गिषुहृद्विद्धो बभाषे सूनृतं वचः ॥ २३ ॥ महेश्वर
उवाच ॥ दक्षस्तव पिता देवि मम द्रोही विशेषतः ॥ २४ ॥

न अच्छा लगा ? हे देव ! आप वहां क्यों नहीं गये मुझसे यह सब कहिये ॥ २० ॥ सुहृदोंका सुहृदोंकेसाथ मिलना परमधर्म है हे महादेव ! आपभी इस
प्रेमबढानेवाली रीतिका पालन करो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! इसकारण यत्नसे मेरे साथ आप वहां चले हे स्वामिन् ! मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे पिताके
यज्ञवाटमें चलें ॥२२॥ ब्रह्माजी बोले महेश्वरदेव सतीके यह वचन सुनकर दक्षके वचनोंको हृदयमें स्मरण करते सत्य वचन बोले ॥ २३ ॥ महेश्वर बोले

हे देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे बहुत वैर रखते हैं ॥ २४ ॥ उसके जो देवता ऋषि मान्यहैं वही मूढबुद्धि तुम्हारे पिताके यज्ञमें प्राप्त हुएहैं ॥ २५ ॥ हे देवि ! जो विनाबुलाये किसीके घर जाते हैं वह महा तिरस्कार तथा कहीं मरणादिक भी पाते हैं ॥ २६ ॥ पराये घर जानेमें इन्द्रको भी लघुता प्राप्त होती है दूसरोंकी तो बातही क्याहै ऐसी यात्रा अनर्थकारी होतीहै ॥ २७ ॥ इसकारण मुझे दक्षके यज्ञमें जाना उचित नहीं यह मैंने सत्यही कहा है ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे शत्रुओंके बाणोंसे मनुष्य व्याकुल नहीं होता जैसे अपने बंधुओंकी दुरुक्तिसे मनुष्योंके अन्तःकरण व्यथित होते हैं॥ २९॥

यस्य ये मानिनस्सर्वे ससुरर्षिमुखाः परे ॥ ते मूढा यजनं प्राप्ताः पितुस्ते ज्ञानवर्जिताः ॥ २५ ॥ अनाहूताश्च ये देवि गच्छंति परमंदिरम् ॥ अवमानं प्राप्नुवंति मरणादधिकं तथा ॥ २६ ॥ परालयं गतोपींद्रो लघुर्भवति तद्विधः ॥ का कथा च परेषां वै रीढा यात्रा हि तद्विधा ॥ २७ ॥ तस्मात्त्वया मया चापि दक्षस्य यजनं प्रति ॥ न गंतव्यं विशेषेण सत्यमुक्तं मया प्रिये ॥ २८ ॥ तथारिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोपि शरैर्जनः ॥ स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्मताडितस्स यथा मतः ॥ २९ ॥ विद्यादिभिर्गुणैः षड्भिरसदन्यैस्सतां स्मृतौ ॥ हतायां भूयसां धाम न पश्यंति खलाः प्रिये ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना ॥ उवाच रोषसंयुक्ता शिवं वाक्यविदां वरम् ॥ ३१ ॥ सत्युवाच ॥ यज्ञस्स्यात्सफलो येन स त्वं शंभोखिलेश्वरः ॥ अनाहूतोसि तेनाद्य पित्रा मे दुष्टकारिणा ॥ ३२ ॥ तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि भव भावं दुरात्मनः ॥ सुरर्षीणां च सर्वेषामागतानां दुरात्मनाम् ॥ ३३ ॥

हे प्रिये ! विद्याआदि छः गुणोंसे युक्त भी अपने सम्पन्न विदित नहीं होते खल उनका तेज हत करतेहैं उनको देखते नहीं ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले जब महात्मा महेश्वरने सतीसे ऐसा कहा तब बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ शंकरसे सती क्रोधकर बोली ॥ ३१ ॥ सती बोली हे शंकर ! आप सबके ईश्वर हो तुम्हारे जानेसे वह यज्ञ सफल होजाता पर दुष्टकर्मा मेरे पिताने आपको नहीं बुलाया ॥ ३२ ॥ सो मैं उस दुरात्माके भावके जाननेकी इच्छा करती हूं हे शंकर !

जो वहां दुरात्मा होकर देवता ऋषि गये हैं ॥ ३३ ॥ इससे मैं उस अपने पिताके यज्ञमें जाती हूं हे महेश्वर ! आप मुझे वहां जानेकी आज्ञा दें ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकार स्वयं देवीने शंकरसे कहा तब सबकुछ जाननेवाले लीलाकारी शंकर देवीसे बोले ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले हे देवि ! यदि तुम्हारी वहां जानेकी अवश्यही रुचि है तो हे सुव्रते ! तुम मेरे वचनसे पिताके यज्ञमें शीघ्र जाओ ॥ ३६ ॥ इस नन्दीनामक वृषभको आदरसे सजाय इसपर चढकर महाराजोंके सम्बन्धके सब उपचार सजाकर ॥ ३७ ॥ अपने सब गहने पहरकर रथपर चढो यह सुनतेही सती सब कुछ पहर ओढ पिताके

तस्माच्चाद्यैव गच्छामि स्वपितुर्यजनं प्रभो ॥ अनुज्ञां देहि मे नाथ तत्र गंतुं महेश्वर ॥ ३४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तो भगवान् रुद्रस्तया देव्या शिवस्स्वयम् ॥ विज्ञाताखिलदृक् द्रष्टा सतीं सूतिकरोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ यद्येवं ते रुचिर्देवि तत्र गंतुमवश्यकम् ॥ सुव्रते वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम् ॥ ३६ ॥ एतं नंदिनमारुह्य वृषभं सज्जमादरात् ॥ महाराजोपचाराणि कृत्वा बहुगुणान्विता ॥ ३७ ॥ भूषितं वृषमारोहेत्युक्ता रुद्रेण सा सती ॥ सुभूषिता सती युक्ता ह्यगमत्पितृमंदिरम् ॥ ३८ ॥ महाराजोपचाराणि दत्तानि परमात्मना ॥ सुच्छत्रचामरादीनि सद्वस्त्राभरणानि च ॥ ३९ ॥ गणाः षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुश्शिवाज्ञया ॥ कुतूहलयुताः प्रीता महोत्सवसमन्विताः ॥ ४० ॥ तदोत्सवो महानासीद्यजने तत्र सर्वतः ॥ सत्याश्शिवप्रियायास्तु वामदेवगणैः कृतः ॥ ४१ ॥ कुतूहलं गणाश्चक्रुश्शिवयोर्यश उज्जगुः ॥ बालांतः पुप्लुवुः प्रीत्या महावीराश्शिवप्रियाः ॥ ४२ ॥

मंदिरको चली ॥ ३८ ॥ परमात्मा शिवने महाराजोंके सम्बन्धकी सब वस्तुएं प्रदान कीं छत्र, चमर, सद्वस्तु और आभरण दिये ॥ ३९ ॥ शिवकी आज्ञासे साठ हजार शिवजीके गण सतीके संग चले वे महोत्सव और कौतूहल करते चले ॥ ४० ॥ उस समय उस देवयजन स्थानमें महा उत्सव आरम्भ हुआ शिवकी प्रिया सतीके साथ बहुतसे वामदेवगण चले ॥ ४१ ॥ शिवाशिवका यश गाते गण कुतूहल करते चले वह महावीर शिवके प्रिय दूर २ तक

कूदनेलगे ॥ ४२ ॥ सब प्रकारसे जगदम्बाके चलनेमें महा शोभा हुई उनके मुखके शब्दोंसे तीनों भुवन भरगये ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण
भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ तब सती वहां गई जहां वह महाप्रभावशाली यज्ञ होरहाथा सुर असुर मुनि
और इन्द्रादिक वहां कौतूहल कररहेथे ॥ १ ॥ उस समय अपने पिताके स्थानको अनेक आश्चर्योंसे संयुक्त देखा जो बडा मनोहर देवता मुनियोंसे
संयुक्तथा ॥ २ ॥ द्वारमें स्थित हुईही देवी अपने आसनसे उतरी और केवल नन्दीके साथही भीतर यज्ञभूमिमें गई ॥ ३ ॥ सतीको आयादेख यशस्वी

सर्वथासीन्महाशोभा गमने जागदम्बिके ॥ सुखारावस्संबभूव पूरितं भुवनत्रयम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसं
हितायां द्वितीये सतीखंडे सतीयात्रावर्णनं नामाष्टविंशोध्यायः॥ २८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः ॥
सुरासुरमुनीन्द्रादिकुतूहलसमन्वितः ॥ १ ॥ स्वपितुर्भवनं तत्र नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ददर्श सुप्रभं चारु सुरर्षिगणसंयुतम् ॥ २ ॥
द्वारि स्थिता तदा देवी ह्यवरुह्य निजासनात ॥ नन्दिनोऽभ्यंतरं शीघ्रमेकैवागच्छदध्वरम् ॥ ३ ॥ आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता
यशस्विनी ॥ अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ॥ ४ ॥ नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन ॥ नान्योपि तद्भयात्तत्र
शिवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ अथ सा मातरं देवी पितरं च सती मुने ॥ अनमद्विस्मितात्यंतं सर्वलोकपराभवात् ॥ ६ ॥ भागान
पश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे ॥ न शंभुभागमकरोत् क्रोधं दुर्विषहं सती ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ तदा दक्षं दहन्तीव रुषा पूर्णा सती
भृशम् ॥ क्रूरदृष्ट्या विलोक्यैव सर्वानप्यपमानिता ॥ ८ ॥

उसकी असिक्नी माता तथा भगिनियोंने यथोचित आदर किया ॥ ४ ॥ पर दक्षने उसको देखकर कुछ भी आदर नहीं किया और शिवकी मायासे
मोहित होनेके कारण औरोंने भी आदर नहीं किया ॥ ५ ॥ तब देवीने अपने माता पिताको बडे विस्मयके साथ प्रणाम किया और सब जनोंके पराभवसे
महादुःख माना॥ ६ ॥उस यज्ञमें हरि आदि देवताओंका भाग सतीने पृथक् २ देखा पर शंभुका भाग न देखनेसे सतीने बडा क्रोध किया ॥ ७ ॥ तब परम

क्रोधसे सती क्रूर दृष्टिसे मानो दक्षको भस्म करती हुई सबसे अपमानित होकर बोली ॥ ८ ॥ सती बोली जिसकी कृपासे यह चराचर विश्व पवित्र होजाताहै तैंने किस कारणसे उन परम शोभायमान शंकरको नहीं बुलाया ॥ ९ ॥ यज्ञस्वरूप यज्ञ जाननेवालोंमें श्रेष्ठ यज्ञके अंग यज्ञके दक्षिणास्वरूप यज्ञके कर्ता शिवके विना यज्ञ कैंसे सम्पादन होसकताहै ॥१०॥ जिनके स्मरण मात्रसे यह सब पवित्र होजाताहै उनके विना सबही अपवित्र होगा॥ ११॥ सब द्रव्य मंत्र हव्य कव्य शंकरके विना निरर्थकहै उनके विना यह यज्ञ किसप्रकारसे प्रवृत्त हुआ ॥ १२ ॥ क्या शंकरको सामान्यदेवता जानकर तुमने

सत्युवाच ॥ अनाहूतस्त्वया कस्माच्छंभुः परमशोभनः ॥ येन पूतमिदं विश्वं समग्रं सचराचरम् ॥ ९ ॥ यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञांगो यज्ञदक्षिणः ॥ यज्ञकर्ता च यश्शंभुस्तं विना च कथं मखः ॥ १० ॥ यस्य स्मरणमात्रेण सर्वं पूतं भवत्यहो ॥ विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति ॥ ११ ॥ द्रव्यमंत्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम् ॥ शंभुना हि विना तेन कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥ १२॥ किं शिवं सुरसामान्यं मत्वाकार्षीरनादरम् ॥ भ्रष्टबुद्धिर्भवानद्य जातोसि जनकाधम ॥ १३ ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवा यं संसेव्य महेश्वरम् ॥ प्राप्ताः स्वपदवीं सर्वे तं न जानासि रे हरम् ॥ १४ ॥ एते कथं समायाता विष्णुब्रह्मादयस्सुराः ॥ तव यज्ञे विना शंभुं स्वप्रभुं मुनयस्तथा ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा परमेशानी विष्ण्वादीन्सकलान् प्रति ॥ पृथक्पृथगवोचत्सा भर्त्सयंती भवात्मिका॥ १६॥ सत्युवाच ॥ हे विष्णो त्वं महादेवं किं न जानासि तत्त्वतः ॥ सगुणं निर्गुणं चापि श्रुतयो यं वदंति ह ॥ १७ ॥ यद्यपि त्वां करं दत्त्वा बहुवारं महेश्वरः ॥ अशिक्षयत्पुरा शाल्वप्रमुखाकृतिभिर्हरे ॥ १८ ॥

अनादर किया हे पिताधम ! तुम बडे भ्रष्टबुद्धि हो ॥ १३ ॥ विष्णु ब्रह्मादिक देवता जिन महेश्वरकी सेवा करके अपनी पदवीको प्राप्त हुए हैं अरे तू उन शंकरको नहीं जानता ॥१४॥ यह विष्णु ब्रह्मादिदेवता यहां कैसे आगये और इन देवता मुनियोंने अपने प्रभु शंकरके विना कैसे आगमन किया॥ १५॥ ब्रह्माजी बोले परमेशानी विष्णुआदि सब देवताओंके प्रति ऐसा कहकर पीछे सबको पृथक् २ घुडकती हुई बोली ॥ १६ ॥ सती बोली हे विष्णुजी ! क्या तुम तत्त्वसे महादेवजीको नहीं जानते जिसको श्रुतियें सगुण निर्गुण कहती हैं ॥ १७ ॥ हे विष्णु ! यद्यपि बहुतवार शंकरने हाथदेकर शाल्वादिके

समय तुमको शिक्षा दी है ॥ १८ ॥ हे मतिसे हीन ! तौभी तुम्हारे चित्तमें ज्ञान नहीं आया अपने स्वामी शिवके भागके विना अपना भाग स्वीकार
करलिया ॥ १९ ॥ ब्रह्मा तुम पहले पांचमुखवाले थे गर्वित होकर सदाशिवके प्रति द्रोह किया जिससे तुमको चारमुखवाला किया यह तुम बहुत शीघ्रही
भूलगये ॥ २० ॥ हे इन्द्र क्या तू महादेवका पराक्रम नहीं जानता कठिनकर्मा शंकरने तुम्हारा वज्र भस्म कर दियाथा ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! क्या
तुम महादेवका कर्म नहीं जानते हे अत्रि ! हे वशिष्ठ ! तुमने यह क्या किया ॥ २२ ॥ जब प्रभु दारुवनमें भिक्षा मांगने गये थे और उस समय आप

तदपि ज्ञानमायातं न ते चेतसि दुर्मते ॥ भागार्थी दक्षयज्ञेस्मिन् शिवं स्वस्वामिनं विना ॥ १९ ॥ पुरा पंचमुखो भूत्वा गर्वितोसि
सदाशिवम् ॥ कृतश्चतुर्मुखस्तेन विस्मृतोसि तदद्भुतम् ॥ २० ॥ इन्द्र त्वं किं न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ॥ भस्मीकृतः पविस्ते
हि हरेण क्रूरकर्मणा ॥ २१ ॥ हे सुराः किन्न जानीथ महादेवस्य विक्रमम् ॥ अत्रे वसिष्ठ मुनयो युष्माभिः किं कृतं त्विह ॥ २२ ॥
भिक्षाटनं च कृतवान् पुरा दारुवने विभुः ॥ शप्तो यद्भिक्षुको रुद्रो भवद्भिर्मुनिभिस्तदा ॥ २३ ॥ शप्तेनापि च रुद्रेण यत्कृतं विस्मृतं
कथम् ॥ तल्लिंगेनाखिलं दग्धं भुवनं सचराचरम् ॥ २४ ॥ सर्वे मूढाश्च संजाता विष्णुब्रह्मादयस्सुराः ॥ मुनयोऽन्ये विना शंभुमागता
यदिहाध्वरे ॥ २५ ॥ सर्वे वेदाश्च संभूताः सांगाश्शास्त्राणि वाग्यतः ॥ योसौ वेदांतगश्शंभुः कैश्चिज्ज्ञातुं न पार्यते ॥ २६ ॥ ब्रह्मो
वाच ॥ इत्यनेकविधा वाणीरगदज्जगदम्बिका ॥ कोपान्विता सती तत्र हृदयेन विदूयता ॥ २७ ॥ विष्ण्वादयोखिला देवा मुनयो ये
च तद्वचः ॥ मौनीभूतास्तदाकर्ण्य भयव्याकुलमानसाः ॥ २८ ॥

मुनियोंने भिक्षुकरूपधारी उन शंकरको शाप दिया था ॥ २३ ॥ सो शापित होकर रुद्रने जो कुछ किया सो क्या तुमने भुलादिया उस शिवलिंगसे
चराचर विश्व दग्ध होने लगाथा॥ २४ ॥इस समय विष्णु ब्रह्मादिक देवता सबही मूढ होगये अच्छा शिवके विना जो देवता मुनि इस यज्ञमें आयेहैं॥ २५॥
अंगोंसहित सब वेद और शास्त्र जिसमें मौन हैं पर उन वेदान्तसे जानने योग्य शंकरके जाननेको कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार
जगदम्बाने अनेक वचन कहे और दुःखी हृदयसे सती बडी क्रोधित हुई ॥ २७ ॥ विष्णु आदि सब देवता और मुनि पार्वतीके वचन सुनकर भयसे

व्याकुलमन हो मौन होगये ॥ २८ ॥ तब दक्ष अपनी पुत्रीके उस प्रकारके वचन सुनकर क्रूरदृष्टिसे सतीको देख क्रोधपूर्वक बोला ॥ २९ ॥ दक्ष बोला
हे भद्रे ! बहुत कहनेसे क्या है यहां तेरा क्या कामहै चाहै रह वा जा परंतु यहां क्यों आई ॥ ३० ॥ सब पंडित जानतेहैं तुम्हारे स्वामी शिव अमंगलीक
हैं अकुलीन वेदबाह्य भूत प्रेत पिशाचोंके स्वामी हैं ॥ ३१ ॥ इस कारण उन कुवेषधारी शंकरको मैंने नहीं बुलाया मैंने बुद्धिमानीसे विचारलिया कि देवता
ऋषियोंकी सभामें उनका क्या काम ॥ ३२ ॥ मुझ मंद पापीने ब्रह्माके कहनेसे तुझै रुद्रको दिया, मैंने यह नहीं जाना कि रुद्र अनिंदित अर्थवाले क्रोधी

अथ दक्षस्समाकर्ण्य स्वपुत्र्यास्तदृशं वचः ॥ विलोक्य क्रूरदृष्ट्या तां सतीं क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २९ ॥ दक्ष उवाच ॥ तव किं बहुनो
क्तेन कार्यं नास्तीह सांप्रतम् ॥ गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे कस्मात्त्वं हि समागता ॥ ३० ॥ अमंगलस्तु ते भर्ता शिवोसौ गम्यते बुधैः ॥
अकुलीको वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ॥ ३१ ॥ तस्मान्नाह्वारितो रुद्रो यज्ञार्थं सुकुवेषभृत् ॥ देवर्षिसंसदि मया ज्ञात्वा पुत्रि विप
श्चिता ॥ ३२ ॥ विधिना प्रेरितेन त्वं दत्ता मंदेन पापिना ॥ रुद्रायाविदितार्थाय चोद्धताय दुरात्मने ॥ ३३ ॥ तस्मात्कोपं परित्यज्य
स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ यद्यागतासि यज्ञेस्मिन् दायं गृह्णीष्व चात्मना ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दक्षेणोक्तेति सा पुत्री सती त्रैलोक्यपू
जिता ॥ निंदायुक्तं स्वपितरं दृष्ट्वासीद्रुषिता भृशम् ॥ ३५ ॥ अचिंतयत्तदा सेति कथं यास्यामि शंकरम् ॥ शंकरं द्रष्टुकामाहं पृष्टा
वक्ष्ये किमुत्तरम् ॥ ३६ ॥ अथ प्रोवाच पितरं दक्षं तं दुष्टमानसम् ॥ निश्श्वसंती रुषाविष्टा सा सती त्रिजगत्प्रसूः ॥ ३७ ॥ सत्यु
वाच ॥ यो निंदति महादेवं निंद्यमानं शृणोति वा ॥ तावुभौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३८ ॥

और दुरात्मा हैं ॥ ३३ ॥ हे शुचिस्मिते ! इसकारण कोपको त्यागन करके स्वस्थ हो यदि तू इस यज्ञमें आगई है तो अपना भाग ग्रहणकर ॥ ३४ ॥
ब्रह्माजी बोले दक्षके वैसा कहनेपर वह त्रैलोक्यपूजिता सती निन्दायुक्त अपने पिताको देखकर बडी रुष्ट हुई ॥ ३५ ॥ और विचारनेलगी किसप्रकार मैं
शंकरके पास जाऊं मैं शिवको देखनेकी इच्छा करती हूं पर जब वह पूँछैंगे तब क्या उत्तर दूंगी ॥ ३६ ॥ तीनलोककी प्रगट करनेवाली देवी क्रोधसे
वारंवार स्वाँस लेतीहुई दुष्टमनवाले अपने पिता दक्षसे बोली ॥ ३७ ॥ सती बोली जो महादेवकी निन्दा करतेहैं वा निन्दा करतेहुएको सुनते हैं वह चन्द्र

सूर्यकी स्थितिपर्यन्त नरकमें जातेहैं ॥ ३८ ॥ इससे अग्निमें प्रवेशकर देहत्यागन करती हूं हे तात ! स्वामीका अनादर सुननेसे फिर मुझे जीनेसे क्या प्रयोजन
है ॥ ३९ ॥ यदि समर्थ हो तो निन्दककी रसनाको बलपूर्वक छेदन करे तब शुद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ यदि समर्थ न हो तो कानोंपर
हाथ धरके बुद्धिमान् वहांसे चलाजाय यह बुधजनोंने कहा है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार धर्मनीति कहकर पीछे देवीको बडा तापहुआ और
दुःखीचित्तसे शंकरके वचन स्मरण करनेलगी ॥ ४२ ॥ फिर क्राधकर निश्शंकभावसे सब विष्णुआदि देवता और मुनियोंसे निश्चयपूर्वक बोली ॥ ४३॥

तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ किं जीवितेन मे तात शृण्वंत्यानादरं प्रभोः ॥ ३९ ॥ यदि शक्तस्स्वयं शंभोर्निंद
कस्य विशेषतः ॥ छिंद्यात् प्रसह्य रसनां तदा शुद्ध्येन्न संशयः ॥ ४० ॥ यद्यशक्तो जनस्तत्र निरयात्सुपिधाय वै ॥ कर्णौ धीमान्
ततश्शुद्ध्येद्वदंतीदं बुधान्वरान् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थमुक्त्वा धमनीतिं पश्चात्तापमवाप सा ॥ अस्मरच्छांकरं वाक्यं दूयमानेन
चेतसा ॥४२॥ ततस्संक्रुद्ध्य सा दक्षं निश्शंकं प्राह तानपि ॥ सर्वान्विष्ण्वादिकान्देवान्मुनीनपि सती ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ सत्युवाच ॥
तात त्वं निंदकश्शंभोः पश्चात्तापं गमिष्यसि ॥ इह भुक्त्वा महादुःखमंते यास्यासि यातनाम् ॥ ४४ ॥ यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रिय
श्चैव परात्मनः ॥ तस्मिन्नवैरे शर्वेस्मिन् त्वां विना कः प्रतीपकः ॥ ४५ ॥ महद्भिर्निंदा नाश्चर्यं सर्वदाऽसत्सु सेर्ष्यकम् ॥ महदंघ्रिरजो
ध्वस्ततमस्सु सैव शोभना ॥ ४६ ॥ शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम् ॥ सकृत्प्रसंगात्सकलमघमाशु विहंति तत् ॥ ४७ ॥
पवित्रकीर्तितमलं भवान् द्वेष्टि शिवेतरः ॥ अलंघ्यशासनं शंभुमहो सर्वेश्वरं खलः ॥ ४८ ॥

सती बोली हे तात ! तुम शिवजीकी निन्दा करते हो इसकारण बडे पश्चात्तापको प्राप्त होगे यहां महादुःख प्राप्त करके अन्तमें यमयातनाको प्रात होगे॥ ४४ ॥
संसारमें जिसका कोई अप्रिय नहीं है जिस परमात्माके सबही प्रिय हैं उन वैररहित शंकरसे तुम्हारे सिवाय कौन वैर करता है ॥ ४५ ॥ इसमें आश्चर्यभी
नहीं असत्पुरुष महत्पुरुषोंकी निन्दा करतेहैं हां महत्पुरुषोंके चरणोंकी रजसे अज्ञान नष्टकरना शोभा यही है ॥ ४६ ॥ जिसने शिव इन दो अक्षरोंको वाणीसे
उच्चारण किया है वह एकवारके उच्चारणसे अपने सब पाप नष्ट करतेहैं ॥ ४७ ॥ अहो शिवजीका शासन यद्यपि अलंघ्य है पवित्र कीर्त्तन है पर तुम अमं

गलरूप उनसे वैर करते हो ॥४८॥ जिनके चरणकमलोंमें बडे बडे पुरुषोंका मन लगारहताहै जो ब्रह्मरसद्वारा सम्पूर्ण अर्थियोंको आदरसे सब प्रकार कामनाके अनुसार फल देतेहैं ॥ ४९ ॥ जो अतिथियोंपर शीघ्रही कामनाकी वर्षा करतेहैं आदर करतेहैं उन लोकबंधु शंकरसे तुम द्वेष करते हो ॥ ५० ॥ उन शिवको अशिव तेरे सिवाय दूसरे नहीं जानते ब्रह्मादि तथा सनकादि दूसरे मुनि क्या नहीं जानते ॥ ५१ ॥ वह जटा खोलकर भूतगणोंके साथ श्मशानमें कपाल धारण करतेहैं मृतककी अस्थिकी माला और भस्मको उदारबुद्धि प्रेमसे धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ जो उनके चरणोंकी रजको आदरसे शिरपर धारण

यत्पादपद्मं महतां मनोलिसुनिषेवितम् ॥ सर्वार्थदं ब्रह्मरसैः सर्वार्थिभिरथादरात् ॥ ४९ ॥ यद्वर्षत्यर्थिनश्शीघ्रं लोकस्य शिव आदरात् ॥ भवान् द्रुह्यति मूर्खत्वात्तस्मै चाशेषबंधवे ॥ ५० ॥ किंवा शिवाख्यमशिवं त्वदन्ये न विदुर्बुधाः ॥ ब्रह्मादयस्तं मुनयस्सनकाद्यास्तथापरे ॥ ५१ ॥ अवकीर्य जटाभूतैश्श्मशाने स कपालधृक् ॥ तन्माल्यभस्म वा ज्ञात्वा प्रीत्यावसदुदारधीः ॥ ५२ ॥ ये मूर्द्धभिर्दधति तच्चरणोत्सृष्टमादरात् ॥ निर्माल्यं मुनयो देवास्सशिवः परमेश्वरः ॥ ५३ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म चोदितम् ॥ वेदे विविच्य वृत्तं च तद्विचार्यं मनीषिभिः ॥ ५४ ॥ विरोधियौगपद्यैककर्तृके च तथा द्वयम् ॥ परब्रह्मणि शंभौ तु कर्मर्च्छंति न किंचन ॥ ५५ ॥ मा वः पदव्ययस्स्म पितर्या अस्मदास्थितास्सदा ॥ यज्ञशालासु वो धूम्रवर्त्मभुक्तोज्झिताः परम् ॥ ॥ ५६ ॥ नोऽव्यक्तलिंगस्सततमवधूतसुसेवितः ॥ अभिमानमतो न त्वं कुरु तात कुबुद्धिधृक् ॥ ५७ ॥ किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्त्वं सर्वथा कुधीः ॥ त्वदुद्भवेन देहेन न मे किंचित्प्रयोजनम् ॥ ५८ ॥

करतेहैं वे पापरहित होतेहैं मुनि देवता जिनके निर्माल्यकी इच्छा करते हैं वही देव परमेश्वर शिव हैं ॥ ५३ ॥ प्रवृत्ति निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके कर्म कहेहैं वेदमें वह निर्णय है बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये ॥ ५४ ॥ एकही कर्तामें वे दोनों विरोधी हैं परब्रह्म शंकरमें कुछ कर्मादिकी इच्छा नहीं है ॥ ॥ ५५ ॥ हे पितः ! तुम्हारे पदका व्यय न हो जो हमारे कारणसे तुमको उपस्थित हुआहै यज्ञशालामें तुम्हारे धूम्र अपना मार्ग त्यागन करै ॥ ५६ ॥ वह अव्यक्तलिंग सदा अवधूत गणोंसे सेवित है हे तात ! कुबुद्धिसे उनमें अभिमान मतकरो ॥ ५७ ॥ बहुत कहनेसे क्या है कुबुद्धिके कारण तुम महादुष्ट

हो तुमसे प्रगट इस देहसे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ ५८ ॥ उस जन्मको धिक्कार है जिस जन्ममें महान् पुरुषोंकी निन्दा हो बुद्धिमान्को विशेषकर तुम्हारा सम्बन्ध त्यागदेना चाहिये ॥ ५९ ॥ तुम्हारे गोत्रसे जो शंकर मुझे दाक्षायणी कहतेहैं मैं अब इससे दुःखी हूंगी ॥ ६० ॥ इसकारण तुम्हारे शरीरसे उत्पन्नहुए इस गर्हित देहको मैं अभी त्यागकर सुखी हूंगी ॥ ६१ ॥ हे देवतामुनियों ! सब मेरे वचन सुनो दुष्टचित्तवाले तुमलोगोंका यह कर्म सर्वथा निन्दित हुआहै ॥ ६२ ॥ तुम सब मूढ होगये कलिप्रिय तुमने शिवकी निन्दा कीहै इसका दण्ड तुम शंकरसे बहुत शीघ्र पाओगे ॥ ६३ ॥

तज्जन्म धिग्यो महतां सर्वथावद्यकृत्खलः ॥ पारत्याज्यो विशेषेण तत्संबंधो विपश्चिता ॥ ५९ ॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान् यदाह वृषभध्वजः ॥ दाक्षायणीति सहसाहं भवामि सुदुर्मनाः ॥ ६० ॥ तस्मात्त्वदंगजं देहं कुणपं गर्हितं सदा ॥ व्युत्सृज्य नूनमधुना भविष्यामि सुखावहा ॥ ६१ ॥ हे सुरा मुनयस्सर्वे यूयं शृणुत मद्वचः ॥ सर्वथानुचितं कर्म युष्माकं दुष्टचेतसाम् ॥ ६२ ॥ सर्वे यूयं विमूढा हि शिवनिंदाः कलिप्रियाः ॥ प्राप्स्यंति दण्डं नियतमखिलं च हराद्ध्रुवम् ॥ ६३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दक्षमुक्त्वाध्वरे तांश्च व्यरमत्सा सती तदा ॥ अनूद्य चेतसा शम्भुमस्मरत्प्राणवल्लभम् ॥ ६४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सतीवाक्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ मौनीभूता यदा सासीत्सती शंकरवल्लभा ॥ चरित्रं किमभूत्तत्र विधे तद्वद चादरात् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मौनीभूता सती देवी स्मृत्वा स्वपतिमादरात् ॥ क्षितावुदीच्यां सहसा निषसाद प्रशांतधीः ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले दक्षके यज्ञमें यह बात कहकर सती मौन हुई और दुःखी चित्तसे प्राणवल्लभ शंकरका स्मरण करने लगी ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारदजी बोले जिससमय शंकरकी प्रिया मौन हुई हे ब्रह्माजी ! तब क्या हुआ सो आप आदरपूर्वक मुझसे कहैं ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले जब आदरसे अपने पतिको स्मरणकर सती मौन होगई तब शांत होकर उत्तरकी ओर भूमिमें

बैठी ॥ २ ॥ विधिपूर्वक आचमन करके नियममें तत्पर हो शुद्धवस्त्र धारणकर नेत्र मूंद पतिको स्मरणकर योगमार्गमें तत्परहुई ॥ ३ ॥ उस श्वेतमुखवालीने
प्राण अपान वायुको समानकर और नाभिचक्रसे यत्नपूर्वक उदानको उठाकर ॥ ४ ॥ बुद्धिपूर्वक उनको हृदयमें स्थापनकर पीछे निन्दारहित शंकरकी
प्राणवल्लभा सतीने कंठमें लाकर पीछे भौंके मध्यमें प्राणवायुको स्थापित किया ॥ ५ ॥ इसप्रकार दक्षके कोपसे सहसा अपने देहको त्यागनेकी इच्छा
करती हुई सतीने योगधारणा की वायुसे शरीरको भस्मकरना आरंभ किया ॥ ६ ॥ उस समय वह केवल अपने भर्ताकेही चरणोंको स्मरण करतीहुई और

जलमाचम्य विधिवत् संवृता वाससा शुचिः ॥ दृङ्निमील्य पतिं स्मृत्वा योगमार्गं समाविशत् ॥ ३ ॥ कृत्वा समानावंनिलौ
प्राणापानौ सितानना ॥ उत्थाप्योदानमथ च यत्नात्सा नाभिचक्रतः ॥ ४ ॥ हृदि स्थाप्योरसि धिया स्थितं कंठाद्भ्रुवोस्सती ॥
अनिंदितानयन्मध्यं शंकरप्राणवल्लभा ॥ ५ ॥ एवं स्वदेहं सहसा दक्षकोपाज्जिहासती ॥ दग्धे गात्रे वायुशुचिधारणं योगमार्गतः
॥ ६ ॥ ततस्स्वभर्तुश्चरणं चिंतयंती न चापरम् ॥ अपश्यत्सा सती तत्र योगमार्गनिविष्टधीः ॥ ७ ॥ हतकल्मषतद्देहः प्रापतच्च तद
ग्निना ॥ भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया ॥ ८ ॥ तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा ॥ हाहेति सोद्भुतश्चित्रस्सुरा
दीनां भयावहः ॥ ९ ॥ हंत प्रिया परा शंभोर्देवी दैवतमस्य हि ॥ अहादसून् सती केन सुदुष्टेन प्रकोपिता ॥ १० ॥ अहो त्वनात्म्यं
सुमहदस्य दक्षस्य पश्यत ॥ चराचरं प्रजा यस्य यत्पुत्रस्य प्रजापतेः ॥ ११ ॥ अहाद्यद्विमनाऽभूत्सा सती देवी मनस्विनी ॥ वृषध्व
जप्रियाऽभीक्ष्णं मानयोग्या सतां सदा ॥ १२ ॥

कुछ नहीं उसने स्वामीका ध्यानकर योगमार्गमें अपनी बुद्धि लगाई ॥ ७ ॥ उसका देह सर्वथा विकाररहित होगया और चारोंओरसे उसमें अग्नि लगउठी
हे मुनिश्रेष्ठ ! उसकी इच्छासे तत्कालही देह भस्म होगया ॥ ८ ॥ यह देखतेही आकाश और भूमिमें बडा कोलाहल हुआ देवताओंके हाहाकारसे ध्वनि हुई
क्या अद्भुत क्या विचित्र बात हुई ॥ ९ ॥ खेदहै कि परम देवता शंकरकी प्रिया सतीदेवीने अपने प्राणोंको त्यागदिया किस दुष्टने इसको कोपित
किया ॥ १० ॥ अहो ! इस दक्षकी महामूर्खताको देखो जिस प्रजापतिकी चराचर प्रजा पुत्ररूप है उसका अज्ञान देखो ॥ ११ ॥ अहो ! आज सतीदेवी

विमना हुई वह शंकरकी प्रिया तो निश्चयही मानयोग्य थी ॥ १२ ॥ परन्तु यह प्रजापति महा अभिमानी ब्रह्मद्रोही हुआ इसने सब संसारमें महा अपकीर्ति पाई ॥ १३ ॥ जिसने अपने अंगसे उत्पन्नहुई सुताको शिवजीसे द्रोहकर तिरस्कार किया यह अन्तमें महानरकका भोगी होगा यह बडा अपराध हुआ ॥ १४ ॥ सतीके प्राणत्यागनेपर जब सब कोई ऐसा कहरहे थे तब यह देख शंकरके गण हाथमें आयुध लेकर उठ खडेहुए ॥ १५ ॥ द्वारमेंभी सातसहस्र गण स्थित थे वे शंकरके गण महाबली महाक्रोधको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ वे सब हाहाकार करतेहुए बोले हमको धिक्कार है हमको

सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मधृक् स प्रजापतिः ॥ महतीमपकीर्तिं हि प्राप्स्यति त्वखिले भवे ॥ १३ ॥ यत्स्वांगजां सुतां शंभुद्विट् न्यषेधत्समुद्यताम् ॥ महानरकभोगी स भृतये नोऽपराधतः ॥ १४ ॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ द्रुतं तत्पार्षदाः क्रोधादुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥ द्वारि स्थिता गणास्सर्वे रसायुतमिता रुषा ॥ शंकरस्य प्रभोस्ते वाऽक्रुध्यन्नतिमहाबलाः ॥ १६ ॥ हाहाकारमकुर्वंस्ते धिक्धिक् न इति वादिनः ॥ उच्चैस्सर्वेऽसकृद्वीराश्शंकरस्य गणाधिपाः ॥ १७ ॥ हाहाकरेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ॥ सर्वे प्रापन् भयं देवा मुनयोन्येपि ते स्थिताः ॥ १८ ॥ गणास्संमंत्र्य ते सर्वेऽभूवन् क्रुद्धा उदायुधाः ॥ कुर्वन्तः प्रलयं वाद्यशस्त्रैर्व्याप्तं दिगंतरम् ॥ १९ ॥ शस्त्रैरघ्नन्निजांगानि केचित्तत्र शुचाकुलाः ॥ शिरोमुखानि देवर्षे सुतीक्ष्णैः प्राणनाशिभिः ॥ २० ॥ इत्थं ते विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समं तदा ॥ गणायुते द्वे च तदा तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥ गणा नाशाऽवशिष्टा ये शंकरस्य महात्मनः ॥ दक्षं तं क्रोधितं हन्तुं मुदातिष्ठन्नुदायुधाः ॥ २२ ॥

धिक्कार है ऐसा कह वे शंकरके वीरगण ऊंचे स्वरसे चिल्लाये ॥ १७ ॥ उनके हाहाकारसे भूमि और आकाश भरगया सब देवता मुनि जो वहां थे महाभयभीत हुए ॥ १८ ॥ गणोंने परस्पर सम्मतिकर अस्त्र उठाये उनके वाद्य और शस्त्रोंके शब्दोंसे मानो प्रलय उपस्थित हुई ॥ १९ ॥ किन्हीं २ ने तो शस्त्रोंसे अपने अंगही छेदन करडाले हे नारद ! किन्हीं २ ने तीक्ष्णशस्त्रोंसे अपने शिर और मुख नष्ट कर दिये ॥ २० ॥ इसप्रकार वे सतीके साथही नाशको प्राप्त हुए इसप्रकार वीससहस्र गण नष्ट हुए यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ २१ ॥ और जो महात्मा शंकरके गण अवशिष्ट रहे वे क्रोधकर

दक्षके मारनेको आयुध लेकर उठे ॥ २२ ॥ भृगुजी महर्षिने उनके इस आक्रमणको देखकर यज्ञविघ्न दूर करनेवाले यजुर्मंत्रोंसे दक्षिणाग्निमें हवन करना आरम्भ किया ॥ २३ ॥ भृगुके उस हवन करनेपर ऋभवनामवाले महावीर, सहस्रोंही उस कुण्डसे प्रगट हुए ॥ २४ ॥ हे मुनीश्वर ! उनके चक्रायुधोंसे सहस्रों शंकरके प्रमथवीर युद्ध करने लगे और वहां उनका बडा भयंकर रांगार्थशक्तिसंग्राम होनेलगा ॥ २५ ॥ ऋभु और महावीरगण परस्पर एक दूसरेको प्रहार करनेलगे ब्रह्मतेजके कारण विनाही यत्नके शंकरके गण नष्ट होनेलगे ॥ २६ ॥ शिवकी इच्छारूप महाशक्तिसे वह गण हत और विद्रावित होगये यह

तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान् भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहोन्मुने ॥ २३ ॥ हूयमाने च भृगुणा समुत्पेतुर्महासुराः ॥ ऋभवो नाम प्रबलवीरास्तत्र सहस्रशः ॥ २४ ॥ तैरलातायुधैस्तत्र प्रमथानां मुनीश्वरः । अभूद्युद्धं सुविकटं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥ २५ ॥ ऋभुभिस्तैर्महावीरैर्हन्यमानास्समन्ततः ॥ अयतयानाः प्रमथा उशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ २६ ॥ एवं शिवगणास्ते वै हता विद्राविता द्रुतम् ॥ शिवेच्छया महाशक्त्या तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥ तद्दृष्ट्वा ऋषयो देवाश्शक्राद्यास्समरुद्गणाः ॥ विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन् ॥ २८ ॥ केचिद्विष्णुं प्रभुं तत्र प्रार्थयन्तस्समन्ततः ॥ उद्विग्ना मन्त्रयंतश्च विघ्नाभावं मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥ सुविचार्योदर्कफल महोद्विग्नास्सुबुद्धयः ॥ सुरविष्णवादयोभूवन् तन्नाशद्रावणान्मुहुः ॥ ३० ॥ एवं भूतस्तदा यज्ञो विघ्नो जातो दुरात्मनः ॥ ब्रह्मबंधोश्च दक्षस्य शंकरद्रोहिणो मुने ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने सतीदेहत्यागोपद्रववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

बात अद्भुतसी हुई ॥ २७ ॥ इस बातको देखकर इन्द्रादि सब देवता मरुद्गणोंके सहित तथा विश्वेदेवा अश्विनीकुमार सब लोकपाल मौन होगये ॥ २८ ॥ कोई उस समय स्वामी विष्णुकी प्रार्थना करनेलगे कोई उद्विग्न होकर विघ्नोंके अभावकी प्रार्थना करनेलगे ॥ २९ ॥ अगले होनेवाले फलको विचार कर विष्णुआदि देवता शोच करनेलगे और उस विघ्नको दूर न कर सकनेके कारण उद्विग्न होगये ॥ ३० ॥ इसप्रकार उस ब्रह्मबंधु शंकरके द्रोही दुरात्मा दक्षके यज्ञमें विघ्न होगया ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! उसीसमय वहां दक्ष और देवता आदिके सुनतेहुए आकाशवाणी हुई ॥ १ ॥ आकाशवाणी बोली अरे दुराचारी दक्ष ! दंभआचारमें परायण अरे मूढ ! यह तैंने क्या अनर्थकारी कर्म किया ॥२॥ अरे मूढ ! तैंने सब आनंदका देनेवाला शैवराज दधीचका श्रेष्ठ वचन न सुना ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मण घोर शाप देकर तुम्हारे यज्ञसे चलागया तो भी तुझ मूर्खने चित्तमें कुछ न समझा ॥ ४ ॥ फिर तैंने अपनी कन्याका भी आदर न किया जो मंगला सती स्वयं तेरे घर आई थी ॥ ५ ॥ अरे अज्ञानी ! तैंने सती और शंकरका आदर न किया तू मोहित होकर ब्रह्माका पुत्र हूं इस बातमें गर्व

ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र नभोवाणी मुनीश्वर ॥ अवोचच्छृण्वतां दक्षसुरादीनां यथार्थतः ॥ १ ॥ व्योमवाण्युवाच ॥ रे रे दक्ष दुराचार दंभाचारपरायण ॥ किं कृतं ते महामूढ कर्म चानर्थकारकम् ॥ २ ॥ न कृतं शैवराजस्य दधीचेर्वचनस्य हि ॥ प्रमाणं तत्कृते मूढ सर्वानंदकरं शुभम् ॥ ३ ॥ निर्गतस्ते मखाद्विप्रः शापं दत्त्वा सुदुस्सहम् ॥ ततोपि बुद्धं किंचिन्नो त्वया मूढेन चेतसि ॥ ४ ॥ ततः कृतः कथं नौ वै स्वपुत्र्यास्त्वादरः परः ॥ समागतायास्सत्याश्च मंगलाया गृहं स्वतः ॥ ५ ॥ सतीभवौ नार्चितौ हि किमिदं ज्ञानदुर्बल ॥ ब्रह्मपुत्र इति वृथा गर्वितोसि विमोहितः ॥ ६ ॥ सा सत्येव सदाराध्या सर्वा पापफलप्रदा ॥ त्रिलोकमाता कल्याणी शंकरार्द्धांगभागिनी ॥ ७ ॥ सा सत्येवार्चिता नित्यं सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ माहेश्वरी [illegible]भक्तानां सर्वमंगलदायिनी ॥ ८ ॥ सा सत्येवार्चिता नित्यं संसारभयनाशिनी ॥ मनोभीष्टप्रदा देवी सर्वोपद्रवहारिणी ॥ ९ ॥ [illegible]त्ये वार्चिता नित्यं कीर्तिसंपत्प्रदायिनी ॥ परमा परमेशानी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १० ॥

करताहै ॥ ६ ॥ सब पुण्योंके फलकी देनेवाली सतीकी आराधना तुझे सद [illegible] उचित थी वह त्रिलोकीकी माता कल्याणी सदा शंकरके अर्द्धांगमें निवास करनेवाली थी ॥ ७ ॥ उस सब सौभाग्यदेनेवाली सतीकी सदा सेवा करनी चाहिये थी वह माहेश्वरी अपने भक्तोंको सदा मंगल देनेवाली है ॥ ८ ॥ वह नित्य पूजनकरनेसे संसारका भय नाशकरनेवाली है वह देवी मनका अभीष्ट देकर सब उपद्रवका नाश करनेवालीहैं ॥ ९ ॥ वह नित्यपूजित होनेसे कीर्ति

और सम्पत् देनेवाली हैं वह परमा परमेशानी भुक्ति मुक्ति देनेवालीहैं ॥ १० ॥ वह जगत्की माता सती जगत्रक्षण करनेवालीहैं वह अनादि शक्ति
कल्पान्तमें जगत्का संहार करनेवालीहैं ॥ ११ ॥ वह सतीही विष्णुमाता जगन्माता विलासिनी ब्रह्मा, इन्द्र, चंद्र, अग्नि, सूर्यादिकी अनादि जननी
हैं ॥ १२ ॥ वह सतीही तपस्या दान धर्मके फलकी देनेवालीहैं वह शिवनाथशक्ति महादेवी दुष्टोंकी मारनेवाली परेसे परे हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकारकी सती
देवी जिसकी हैं प्रियपत्नी अरे मूढ ! कुविचारी तैंने उनको भाग नहीं दिया ॥ १४ ॥ शिवही परमेशान सबके स्वामी परात्परहैं वह विष्णु ब्रह्मादिसे सेवित

सा सत्येव जगद्धात्री जगद्रक्षणकारिणी ॥ अनादिशक्तिः कल्पान्ते जगत्संहारकारिणी ॥ ११ ॥ सा सत्येव जगन्माता विष्णुमाता
विलासिनी ॥ ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवह्न्यर्कदेवादिजननी स्मृता ॥ १२ ॥ सा सत्येव तपोधर्मदानश्चैवफलदायिनी ॥ शंभुशक्तिर्महादेवी दुष्टहंत्री
परात्परा ॥ १३ ॥ ईदृग्विधा सती देवी यस्य पत्नी सदा प्रिया ॥ तस्मै भागो न दत्तोऽसि मूढेन कुविचारिणा ॥ १४ ॥ शंभुर्हि
परमेशानस्सर्वस्वामी परात्परः ॥ विष्णुब्रह्मादिसंसेव्यः सर्वकल्याणकारकः ॥१५॥ तप्यते हि तपः सिद्धैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः ॥ युज्यते
योगिभिर्योगैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः ॥ १६ ॥ अनंतधनधान्यानां यागादीनां तथैव च ॥ दर्शनं शंकरस्यैव महत्फलमुदाहृतम् ॥ १७ ॥
शिव एव जगद्धाता सर्वविद्यापतिः प्रभुः ॥ आदिविद्यावरस्वामी सर्वमंगलमंगलः ॥ १८ ॥ तच्छक्तेर्न कृतो यस्मात्सत्कारोद्य त्वया
खल ॥ अत एवाऽध्वरस्यास्य विनाशो हि भविष्यति ॥ १९ ॥ अमंगलं भवत्येव पूजार्हाणामपूजया ॥ पूज्यमाना च नासौ हि
यतः पूज्यतमा शिवा ॥ २० ॥ सहस्रेणापि शिरसां शेषो यत्पादजं रजः ॥ वहत्यहरहः प्रीत्या तस्य शक्तिः शिवा सती ॥ २१ ॥

सबके कल्याण कर्ता हैं ॥ १५ ॥ इनके दर्शनकी इच्छा करके सिद्ध जन तप करते हैं इन्हींके दर्शनकी इच्छासे योगी योग करते हैं ॥ १६ ॥ अनन्त
धन धान्य तथा यज्ञादिका फल शंकरके दर्शनसेही होजाताहै ॥ १७ ॥ शिवही जगत्के धाता सब विद्याके पति प्रभु हैं वही आदि विद्याके श्रेष्ठ स्वामी
सब मंगलोंके मंगल करनेवाले हैं ॥१८॥ अरे खल ! जो कि तैंने उनकी शक्तिका सत्कार नहीं किया इस कारण इस यज्ञका विनाश होजायगा ॥१९॥
जहां पूज्यजनोंकी पूजा नहीं होती वहां अमंगलही होताहै क्या यह शिवा तुम सबको पूज्यमाना नहीं थी ॥ २० ॥ शेषजी जिसके चरणोंकी रजको

सहस्रशिरसे प्रतिदिन प्रीतिपूर्वक धारण करतेहैं वही यह शिवा हैं ॥ २१ ॥ जिसके चरणोंका प्रतिदिन ध्यान करके विष्णु विष्णुपनको प्राप्त हुए हैं वही यह सती शिवजीकी प्रिया हैं ॥ २२ ॥ जिनके चरणोंका ध्यान और पूजन करनेसे ब्रह्माजी ब्रह्मापनको प्राप्त हुएहैं यही सती शिवकी प्रियाहैं ॥२३॥ जिनके चरणोंका ध्यान और पूजन करके इन्द्रादिक लोकपालोंने अपना पद पाया है ॥ २४ ॥ शिव जगत्के पिता सती जगत्की माताहैं हे मूढ ! तैंने उनका सत्कार न किया तेरा कल्याण कैसे होगा ॥२५॥ तुझमें दुर्भाग्य और आपत्ति आकर प्राप्त होगई जो तैंने भक्तिसे भवानीशंकरका आराधन

यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम् ॥ विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नस्तस्य शंभोः प्रिया सती ॥ २२ ॥ यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम् ॥ ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नस्तस्य शंभोः प्रिया सती ॥ २३ ॥ यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम् ॥ इन्द्रादयो लोकपालाः प्रापुस्स्वं स्वं परं पदम् ॥ २४ ॥ जगत्पिता शिवश्शक्तिर्जगन्माता च सा सती ॥ सत्कृतौ न त्वया मूढ कथं श्रेयो भविष्यति ॥ २५ ॥ दौर्भाग्यं त्वयि संक्रांतं संक्रांतास्त्वयि चापदः ॥ यौ चानाराधितौ भक्त्या भवानीशंकरौ च तौ ॥ २६ ॥ अनभ्यर्च्य शिवं शंभुं कल्याणं प्राप्नुयामिति ॥ किमस्ति गर्वो दुर्वारस्स गर्वोद्य विनश्यति ॥ २७ ॥ सर्वेशविमुखो भूत्वा देवेष्वेतेषु कस्तव ॥ करिष्यति सहायं तं न ते पश्यामि सर्वथा ॥ २८ ॥ यदि देवाः करिष्यंति साहाय्यमधुना तव ॥ [illegible]दा नाशं समाप्स्यंति शलभा इव वह्निना ॥ ॥ २९ ॥ ज्वलत्वद्य मुखं ते वै यज्ञध्वंसो भवत्वति ॥ सहायास्तव यावंतस्ते ज्वलं[illegible] सत्वरम् ॥ ३० ॥ अमराणां च सर्वेषां शपथोऽमंगलाय ते ॥ करिष्यंत्यद्य साहाय्यं यदेतस्य दुरात्मनः ॥ ३१ ॥

नहीं किया ॥२६॥ शंकर शिवका विना अर्चन किये मैं कल्याण करलूं[illegible] इस तेरे दुर्वार गर्वका आज खंडन होजायगा ॥ २७ ॥ सर्वेश शंकरसे विमुख होकर देवताओंमें तेरी कौन सहायता करैगा मैं उसको सर्वथा नहीं देखता ॥ २८ ॥ यदि इस समय देवता तेरी सहाय करैंगे वे भी अग्निमें शलभकी समान नाश होजायँगे ॥ २९ ॥ तेरा मुख जलजाय और यह यज्ञ ध्वंस होजाय और जो तेरे सहायक हैं वहभी जल जायँ ॥ ३० ॥ सब देवताओंको

आकाशवाणी सुनकर सब देवता विस्मयको प्राप्त हुए और किसीने कुछ न कहा मोहित होकर बैठे रहगये ॥ ३ ॥ उधर भृगुके मंत्रबलसे जो वीर भागगये थे वह अवशिष्ट शंकरके गण शिवजीकी शरणमें गये ॥४॥ और अमित तेजस्वी शंकरके निकट जाय प्रणामकर आदरसे उन्होंने सब चरित्र सुनाया ॥५॥ गण बोले हे देवदेव ! महादेव हम शरणमें आयेहुओंकी रक्षा करो हे नाथ ! आदरसे विस्तारपूर्वक सतीकी वार्त्ता सुनो ॥ ६ ॥ हे महेशान ! उस दुरात्मा दक्षने महागर्वसे देवताओंके सहित सतीका अनादर किया है ॥ ७ ॥ तुमको भाग न देकर उन्होंने अन्य देवताओंको भाग दिया है और गर्वित हो दक्षने

पलायमाना ये वीरा भृगुमंत्रबलेन ते ॥ अवशिष्टाश्शिवगणाश्शिवं शरणमाययुः ॥ ४ ॥ सर्वं निवेदयामासू रुद्रायामिततेजसे ॥ चरित्रं च तथाभूतं सुप्रणम्यादराच्च ते ॥ ५ ॥ गणा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव पाहि नश्शरणागतान् ॥ संशृण्वादरतो नाथ सतीवार्तां च विस्तरात् ॥ ६ ॥ गर्वितेन महेशानदक्षेण सुदुरात्मना ॥ अवमानः कृतस्सत्याऽनादरो निर्जरैस्तथा ॥ ७ ॥ तुभ्यं भागमदान्नो स देवेभ्यश्च प्रदत्तवान् ॥ दुर्वचांस्यवदत्प्रोच्चैर्दुष्टो दक्षस्तु गर्वितः ॥ ८ ॥ ततो दृष्ट्वा न ते भागं यज्ञेऽकुप्यत्सती प्रभो ॥ विनिंद्य बहुशस्तातमधाक्षीत्स्वतनुं तदा ॥ ९ ॥ गणास्त्वयुतसंख्याका मृतास्तत्र विलज्जया ॥ स्वांगान्याछिद्य शस्त्रैश्च क्रुध्याम ह्यपरे वयम् ॥ १० ॥ तद्यज्ञं ध्वंसितुं वेगात्सन्नद्धास्तु भयावहाः ॥ तिरस्कृता हि भृगुणा स्वप्रभावाद्विरो[illegible] ॥ ११ ॥ ते वयं शरणं प्राप्तास्तव विश्वंभर प्रभो ॥ निर्दयान् कुरु नस्तस्माद्दयमानभवाद्भयात् ॥ १२ ॥ अपमानं विशेषे[illegible]न् यज्ञे महाप्रभो ॥ दक्षाद्यास्तेऽखिला दुष्टा अकुर्वन् गर्विता अति ॥ १३ ॥

बडे २ दुर्वचन कहे हैं ॥८॥ हे प्रभो ! यज्ञमें आपका भाग न देखकर सती [illegible] कुपित हुई और अपने पिताकी निंदा करके उन्होंने शरीर त्यागन करदिया ॥९॥ लज्जाके मारे दशवीससहस्र गणोंने वहां अपने शरीर त्यागन करदिये अ[illegible] शरीरोंको शस्त्रोंसे काटडाला और शेष हम लोगोंने शस्त्रग्रहण किये॥ १०॥ और भय देकर हम उस यज्ञके नष्ट करनेको तत्पर हुए उस समय आपके वि[illegible]धी भृगुने मंत्रबलसे हमारा तिरस्कार किया ॥ ११ ॥ हे शंकर ! प्रभो ! हम भयसे व्याकुल होकर आपकी शरण हुए हैं हमारा निर्दयताके साथ तिरस्कार हुआ है आप हमपर दया करैं निर्भय करैं ॥ १२ ॥ हे महाप्रभो ! उस यज्ञमें

तेरे अमंगलके लिये शपथ है कि यह इस दुरात्माकी सहाय करै ॥ ३१ ॥ देवता बहुत शीघ्र इस मंडपसे निकलजायँ नहीं तो सर्वथा इनका नाश
होजायगा ॥ ३२ ॥ मुनि नागादि शीघ्र इस यज्ञसे निकलजांय नहीं तो सर्व [illegible] नाश होजायगा ॥ ३३ ॥ हे विष्णु ! तुम भी शीघ्र इस मंडपसे
निकलजाओ नहीं तो सर्वथा तुम्हारा नाश होजायगा ॥ ३४ ॥ हे विधात [illegible] शीघ्र इस स्थानसे निकलो नहीं तो सर्वथा तुम्हारा नाश होगा ॥ ३५ ॥
ब्रह्माजी बोले इसप्रकार सबके बैठेहुए यज्ञशालामें सबके कल्याणके निमित्त वह काशवाणी बोलकर मौन हुई ॥ ३६ ॥ हरि आदि सब देवता और

निर्गच्छंत्वमरास्स्वोकंमेतदध्वरमंडपात् ॥ अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य स [illegible] ३२ ॥ निर्गच्छंत्वपरे सर्वे मुनिनागादयो
मखात् ॥ अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥ ३३ ॥ निर्गच्छ त्वं हरे [illegible] दध्वरमंडपात् ॥ अन्यथा भवतो नाशो भवि
ष्यत्यद्य सर्वथा ॥ ३४ ॥ निर्गच्छ त्वं विधे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात् ॥ अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मो
वाच ॥ इत्युक्त्वाध्वरशालायामखिलायां सुसंस्थितान् ॥ व्यरमत्सा नभोवाणी सर्वकल्याणकारिणी ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं
सर्वे हर्यादयस्सुराः ॥ अकार्षुर्विस्मयं तात मुनयश्च तथा परे ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये
सतीखंडे सत्युपाख्याने नभोवाणीवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा व्योमगिरं दक्षः किमकार्षीत्तदाऽ
बुधः ॥ अन्ये च कृतवंतः किं ततश्च किमभूद्वद ॥ १ ॥ पराजिताः शिवगणा भृगुमंत्रबलेन वै ॥ किमकार्षुः कुत्र गतास्तत्त्वं वद
महामते ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा व्योमगिरं सर्वे विस्मिताश्च सुरादयः ॥ नावोचत्किंचिदपि ते तिष्ठन्तस्तु विमोहिताः ॥ ३ ॥

मुनि आकाशवाणीके इस प्रकार वचन सुनकर बडा विस्मय मानते भये ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ नारदजी बोले आकाशवाणी सुनकर अदूरदर्शी दक्षने क्या किया तथा और दूसरोंने क्या किया आप इस बातको
कहो ॥ १ ॥ जब शिवजीके गण भृगुके मंत्रबलसे पराजित होगये उन्होंने क्या किया वे कहां गये हे महामते ! यह आप तत्त्वसे कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले

हमारा बडा अपमान हुआ है और उन दुष्ट दक्षआदिने गर्वसे यह अपमान कियाहै ॥ १३ ॥ यह हमने अपना और सतीका सब वृत्तान्त आपसे कहा उन मूढबुद्धियोंके अपमानकी बात कही अब आपकी जो इच्छा हो सो करो ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार महाप्रभुने अपने गणोंके मुखसे इस बातको सुनकर उस चरित्रको शीघ्र जाननेकी इच्छा कर मनसे नारदजीको स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे दिव्यदर्शन नारदजी ! तुम बहुत शीघ्र वहां पहुँचे और भक्तिपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड स्थित हुए ॥ १६ ॥ तुम्हारी प्रशंसा करके स्वामीने स[illegible] बात पूछी तथा दक्षके यज्ञमें जानेके सब समाचार पूछे

इत्युक्तं निखिलं वृत्तं स्वेषां सत्याश्च नारद ॥ तेषां च मूढबुद्धीनां यथच्छ[illegible] कुरु ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स्वगणानां वचः प्रभुः ॥ सस्मार नारदं सर्वं ज्ञातुं तच्चरितं लघु ॥ १५ [illegible] स्त्वं द्रुतं तत्र देवर्षे दिव्यदर्शन ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या सांजलिस्तत्र तस्थिवान् ॥ १६ ॥ त्वां प्रशस्याथ स स्वामी सत्य[illegible] च पृष्टवान् ॥ दक्षयज्ञगताया वै परं च चरितं तथा ॥ १७ ॥ पृष्टेन शंभुना तात त्वयाश्वेव शिवात्मना ॥ तत्सर्वं कथितं वृत्तं जातं दक्षाध्वरे हि यत् ॥ १८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यं मुने तत्त्वन्मुखोदितम् ॥ चुकोपातिद्रुतं रुद्रो महारौद्रपराक्रमः ॥ १९ ॥ उत्पाट्यैकां जटां रुद्रो लोकसंहारकारकः ॥ आस्फालयामास रुषा पर्वतस्य तदोपरि ॥ २० ॥ तोदनाच्च द्विधा भूता सा जटा च मुने प्रभोः ॥ संबभूव महारावो महाप्रयलयभीषणः ॥२१॥ तज्जटायास्समुद्भूतो वीरभद्रो महाबलः ॥ पूर्वभागेन देवर्षे महाभीमो गणाग्रणीः ॥२२॥ स भूमिं विश्वतो वृत्यात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ प्रलयानलसंकाशः प्रोन्नतो दोस्सहस्रवान् ॥ २३ ॥

॥१७॥ हे तात ! जब शिवात्मा शंकरने तुमसे यह पूछा तब तुमने जो कुछ वहां हुआ था सो सब कहसुनाया ॥ ॥१८ ॥ हे मुने ! तब तुम्हारे मुखसे शिवजी वह सब चरित्र सुनकर महारौद्र पराक्रमी शंकर अत्यन्त कुपित हुये ॥ १९ ॥ लोकसंहारकारी रुद्रने अपनी एक जटा उखाडकर बडे क्रोधसे पर्वतके ऊपर देमारी ॥ २० ॥ हे प्रभो ! पटकते ही उस जटाके दो खण्ड होगये और महाप्रलयकी समान उसमेंसे भयंकर शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस जटासे महाबली वीरभद्र उत्पन्न हुआ यह महाभयंकर वीरोंमें अग्रणी जटाके पूर्वभागसे उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ यह समस्त भूमिको व्याप्त करके दशांगुलपरिमित

स्थानमें स्थित हुआ प्रलयाग्निकी समान तेजस्वी दोसहस्रभुजावाला था ॥ २३ ॥ उस समय महारुद्रके कोपसे सौ ज्वर और तेरह प्रकारके सन्निपातैं प्रगट हुए ॥ २४ ॥ जटाके दूसरेभागसे महाकाली प्रगट हुई हे नारदजी ! वह महाभयंकर और कोटिभूतोंसे आवृत हुई ॥ २५ ॥ यह सब ज्वर महाभयंकर क्रूरमूर्त्ति धारण किये थे अपने तेजसे प्रज्वलितहुए महाभयंकर मानों सब ओरको जलानेलगे ॥ २६ ॥ तब वीरभद्र वीर परमेश्वरको प्रणाम करके हाथजोड बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ इस प्रकारसे कहने लगा ॥ २७ ॥ वीरभद्र बोले महारुद्र हे महारौद्र ! हे सोमसूर्य अग्निनेत्रवाले ! हे प्रभो ! मुझे क्या कार्य करना

कोपनिःश्वासतस्तत्र महारुद्रस्य चेशितुः ॥ जातं ज्वराणां शतकं संनिपातास्त्रयोदश ॥ २४ ॥ महाकाली समुत्पन्ना तज्जटापरभागतः ॥ महाभयंकरा तात भूतकोटिभिरावृता ॥ २५ ॥ सर्वे मूर्त्तिधराः क्रूराः स्वरा लोकभयंकराः ॥ स्वतेजसा प्रज्वलंतो दहंत इव सर्वतः ॥ २६ ॥ अथ वीरो वीरभद्रः प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ कृतांजलिपुटः प्राह वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ २७ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ महारुद्र महारौद्र सोमसूर्याग्निलोचन ॥ किं कर्तव्यं मया कार्यं शीघ्रमाज्ञापय प्रभो ॥ २८ ॥ शोषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव सिंधवः ॥ पेषणीयाः किमीशान क्षणार्द्धेनैव पर्वताः ॥ २९ ॥ क्षणेन भस्मसात्कुर्यां ब्रह्मांडमुत किं हर ॥ क्षणेन भस्मसात्कुर्यांम्सुरान्वा किं मुनीश्वरान् ॥ ३० ॥ व्याश्वासः सर्वलोकानां किमु कार्यो हि शं[illegible] कर्तव्यं किमुतेशान सर्वप्राणिविहिंसनम् ॥ ३१ ॥ ममाशक्यं न कुत्रापि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ पराक्रमेण मत्तुल्यो न भूतो न भ[illegible] ॥ ३२ ॥ यत्र यत्कार्यमुद्दिश्य प्रेषयिष्यासि मां प्रभो ॥ तत्कार्यं साधयाम्येव सत्वरं त्वत्प्रसादतः ॥ ३३ ॥

होगा सो शीघ्र आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ हे ईशान ! क्या क्षणमा[illegible]में समुद्रको सोख[illegible]ूं ? हे देव ! क्या क्षणमेंही पर्वतोंको चूर्ण करडालूं ॥ २९ ॥ हे हर ! क्या क्षणमात्रमें ब्रह्माण्डको भस्म करडालूं अथवा क्षणमात्रमें देवता वा मुनीश्वरोंको भस्म करडालूं ॥ ३० ॥ हे शंकर ! क्या सब लोकोंको अस्तव्यस्त करडालूं ॥ ३१ ॥ हे महेशान ! क्या मैं सब प्राणियोंको नष्ट करडालूं हे महेश्वर ! आपके प्रसादसे मुझे कुछ भी अशक्य नहीं है पराक्रममें मेरी समान न हुआ है न होगा ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! जिस २ कार्यके उद्देश्यसे आप मुझको भेजेंगे वह वह कार्य मैं आपकी कृपासे सम्पादन करूंगा ॥ ३३ ॥

हे शंकर ! आपके शासनसे क्षुद्रपुरुष भी संसारसागरके पार होजाते हैं फिर क्या मैं आपकी कृपासे महाआपत्तिके सागरसे तरनेको समर्थ नहीं हूं ॥ ३४ ॥
हे शंकर ! आपकी कृपासे तृण भी महत् कार्य करनेको समर्थ होसकता है और क्षणमात्रमें करसकता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ हे शंभो ! यद्यपि
आपकी लीलामात्रसे सब कार्य सिद्ध होताहै तो भी अनुग्रहकर कार्यके निमित्त मुझे भेजो ॥ ३६ ॥ हे शंकर आपके अनुग्रहसे मुझे इतनी शक्ति है हे
शंकर ! आपके अनुग्रहके विना किसीमें वह शक्ति नहीं ॥ ३७ ॥ आपकी आज्ञाके विना कोई तृणको चलायमान करनेमें भी समर्थ नहीं होसकता यह

क्षुद्रास्तरंति लोकाब्धिं शासनाच्छंकरस्य ते ॥ हरातोहं न किं ततुं महापत्सागरं क्षमः ॥ ३४ ॥ त्वत्प्रेषिततृणेनापि महत्कार्यमय
त्नतः ॥ क्षणेन शक्यते कर्तुं शंकरात्र न संशयः ॥ ३५ ॥ लीलामात्रेण ते शंभो कार्यं यद्यपि सिद्ध्यति ॥ तथाप्यहं प्रेषणीयो तवैवानु
ग्रहो ह्ययम् ॥ ३६ ॥ शक्तिरेतादृशी शंभो ममापि त्वदनुग्रहात् ॥ विना शक्तिर्न कस्यापि शंकर त्वदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ त्वदाज्ञया
विना कोपि तृणादीनपि वस्तुतः ॥ नैव चालयितुं शक्तस्सत्यमेतन्न संशयः ॥ ३८ ॥ शंभो नियम्यास्सर्वेपि देवाद्यास्ते महेश्वर ॥
तथैवाहं नियम्यस्ते नियंतुस्सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥ प्रणतोस्मि महादेव भूयोपि प्रणतोस्म्यहम् ॥ प्रेषय स्वेष्टसिद्ध्यर्थं मामद्य हर
सत्वरम् ॥ ४० ॥ स्पंदोपि जायते शंभो सव्यांगानां मुहुर्मुहुः ॥ भविष्यत्यद्य विजयो मामतः प्रेषय प्रभो ॥ ४१ ॥ हर्षोत्साहविशेषो
पि जायते मम कश्चन ॥ शंभो त्वत्पादकमले संसक्तश्च मनो मम ॥ ४२ ॥ भविष्यति प्रतिपदं शुभसंतानसंततिः ॥ ४३ ॥ तस्यैव
विजयो नित्यं तस्यैव शुभमन्वहम् ॥ यस्य शंभौ दृढा भक्तिस्त्वयि शोभनसंश्रये ॥ ४४ ॥

मैं सत्य कहता हूं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ हे शंकर ! जिस प्रकारसे सब देवता आपके नियममें स्थित हैं हे देव ! उसी प्रकारसे मैं भी आपके नियममें
स्थित हूं ॥ ३९ ॥ हे महादेव ! मैं आपको वारंवार प्रणाम करता हूं हे हर ! अपनी इष्ट सिद्धिके लिये आप मुझे प्रेषित कीजिये ॥ ४० ॥ हे शिवजी!
मेरे दहने अंग वारंवार फडक रहे हैं हे प्रभो ! आप जहां मुझे भेजेंगे वहीं विजय होगी ॥ ४१ ॥ मुझे किसी प्रकारका हर्ष और विशेष उत्साह होरहाथा
हे शिवजी ! मेरा मन आपके चरणकमलमें लगरहा है ॥ ४२ ॥ प्रतिपदमें अच्छे सन्तानकी सन्तति होती है ॥ ४३ ॥ उसीकी नित्य विजय और उसीका

निरन्तर कल्याण होगा जिसकी सुन्दर आश्रयवाले आप शंकरके चरणोंमें भक्ति हो ॥४४॥ ब्रह्माजी बोले मंगलापति भगवान् ऐसा सुनकर सन्तुष्ट हुए और
हे वीरभद्र ! तेरी जय हो इस प्रकारका आशीर्वाद दिया ॥ ४५ ॥ महेश्वर बोले हे तात ! हे वीरभद्र ! अच्छे चित्तसे मेरे वचन सुनो मेरे सन्तोषके
निमित्त शीघ्रही मेरा वचन मानो ॥४६॥ ब्रह्माका पुत्र दुष्ट दक्ष यज्ञ कररहा है वह विशेषकर मेरा विरोधी महाअहंकारी मूर्ख है॥४७॥ यागपरिवारसंहित
उसका यज्ञ भस्म करके हे गण ! मेरे समीप शीघ्रही आओ ॥ ४८ ॥ देवता गन्धर्व जो कोई भी वहां हों सहसा उन सबको भस्म करदो ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तं तद्वचः श्रुत्वा संतुष्टो मंगलापतिः ॥ वीरभद्र जयेति त्वं प्रोक्ताशीः प्राह तं पुनः ॥ ४५ ॥ महेश्वर उवाच ॥ शृणु
मद्वचनं तात वीरभद्र सुचेतसा ॥ करणीयं प्रयत्नेन तद्द्रुतं मे प्रतोषकम् ॥ ४६ ॥ यागं कर्तुं समुद्युक्तो दक्षो विधिसुतः खलः ॥ मद्वि
रोधी विशेषेण महागर्वोऽबुधोऽधुना ॥ ४७ ॥ तन्मखं भस्मसात्कृत्वा सयागपरिवारकम् ॥ पुनरायाहि मत्स्थानं सत्वरं गणसत्तम
॥ ४८ ॥ सुरा भवंतु गंधर्वा यक्षा वान्ये च केचन ॥ तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ॥ ४९ ॥ तत्रास्तु विष्णुर्ब्रह्मा वा
शचीशो वा यमोपि वा ॥ अपि चाद्यैव तान्सर्वान्पातयस्व प्रयत्नतः ॥ ५० ॥ सुरा भवंतु गंधर्वा यक्षा वान्ये च केचन ॥ तानप्यद्यैव
सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम् ॥ ५१ ॥ दधीचिकृतमुल्लंघ्य शपथं मयि तत्र ये ॥ तिष्ठंति ते प्रयत्नेन ज्वालनीयास्त्वया ध्रुवम् ॥ ५२ ॥
प्रमथाश्चागमिष्यंति यदि विष्ण्वादयो भ्रमात् ॥ नानाकर्षणमंत्रेण ज्वालयानीय सत्वरम् ॥ ५३ ॥ ये तत्रोल्लंघ्य शपथं मदीयं गर्विताः
स्थिताः ॥ ते हि मद्द्रोहिणोऽतस्तान् ज्वालयानलमालया ॥ ५४ ॥

विष्णु ब्रह्मा इंद्र यम कोई भी वहां हो सबको जाकर नष्ट करडालो ॥५०॥ देवता गन्धर्व यक्ष वा कोई जो हो उन सबको शीघ्रही भस्म करडालो॥५१॥
दधीचिके कृत्यको उल्लंघन करके जो उनकी शपथको उल्लंघन करके स्थित हुए हैं उनको तुम शीघ्र भस्म करडालो ॥ ५२ ॥ यदि प्रमथोंके संग विष्णु
भ्रमसे कोई कार्य करैं तो अनेक प्रकारके आकर्षण मंत्रोंसे उनको प्रज्वलित करडालो ॥ ५३ ॥ जो उस ऋषिकी शपथकी उल्लंघन करके गर्वसे वहां

स्थित हुए हैं मेरे वे द्रोही हैं अग्निकी ज्वालामालासे उन सबको भस्म करडालो ॥ ५४ ॥ जितने दक्षके यज्ञमें स्थित हैं उनको स्त्री धन आदिके सहित भस्म करके शीघ्र मेरे पास चले आओ ॥ ५५ ॥ तुम्हारे जानेपर विश्वादि देवता तुम्हारी स्तुति करेंगे तो भी तुम न मानकर उनको अग्निसे भस्म करदेना ॥ ५६ ॥ जितने देवता हमसे द्रोह करतेहैं उनको शीघ्रही ज्वालामालासे आकुल कर अग्निसे जलाडालना ध्यान मत करना कि यह मंत्रपालक है ॥ ५७ ॥ और सपत्नीक तथा गंधर्वों सहित सब दक्षादिको भस्म करके हे दक्ष ! पीछे नीलधाराका जल पीना ॥५८॥ ब्रह्माजी बोले वेदमर्यादापालक

सपत्नीकान्ससारांश्च दक्षयागस्थलस्थितान् ॥ प्रज्वाल्य भस्मसात्कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥ ५५ ॥ तत्र त्वयि गते देवा विश्वाद्या अपि सादरम् ॥ स्तोष्यंति त्वां तदाप्याशु ज्वालया ज्वालयैव तान् ॥ ५६ ॥ देवानपि कृतद्रोहान् ज्वालामालासमाकुलैः ॥ ज्वालय ज्वलनैश्शीघ्रं माध्यायाध्यायपालकम् ॥ ५७ ॥ दक्षादीन्सकलांस्तत्र सपत्नीकान्सबांधवान् ॥ प्रज्वाल्य वीर दक्षं नु सलीलं सतिलं पिब ॥ ५८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तो रोषताम्राक्षो वेदमर्यादपालकः ॥ विरराम महावीरं कालारिस्सकलेश्वरः ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे वीरभद्रोत्पत्तिशिवोपदेशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तं श्रीमहेशस्य श्रुत्वा वचनमादरात् ॥ वीरभद्रोतिसंतुष्टः प्रणनाम महेश्वरम् ॥ १ ॥ शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ॥ प्रचचाल ततः शीघ्रं वीरभद्रो मखं प्रति ॥ २ ॥ शिवोथ प्रेषयामास शोभार्थं कोटिशो गणान् ॥ तेन सार्द्धं महावीरान्प्रलयानलसन्निभान् ॥ ३ ॥

शिवजी क्रोधसे लालनेत्रवाले कालके भी शत्रु सकलेश्वर महावीरसे ऐसा कह मौन हुए ॥५९॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गत द्वितीयसतीखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२॥ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले इसप्रकार महेश्वरके कहेहुए वचन आदरसे सुनकर वीरभद्रने बहुत संतुष्ट होकर महेश्वरको प्रणाम किया ॥ १ ॥ देवदेव शंकरके शासनको शिरपर धारणकर वीरभद्र बहुत शीघ्र यज्ञस्थानको चला ॥ २ ॥ शोभाके लिये शंकरने औरभी कोटियों

गणोंको भेजा वह महावीर प्रलयाग्निकी समान उसके साथ साथ चले ॥ ३ ॥ तब वे सब प्रबल गण वीरभद्रके आगे २ और पीछे पीछे बडे कुतूहल करते चले ॥ ४ ॥ वीरभद्रके साथ जो प्रबल गण थे वे कालके काल शंकरके जो पार्षद थे वह सबही रुद्रके स्वरूप थे ॥ ५ ॥ वह महात्मा वीरभद्र शिवजीका वेष धारण किये सहस्र भुजा धारे सर्पराजसे वेष्टित महाप्रबल शत्रुओंको भय देनेवाले रथके ऊपर स्थित होकर चला ॥ ६ ॥ उसके रथका प्रमाण दोसहस्र नल्व (४०० हाथ) था और उसको दशसहस्र सिंह वहन करतेथे ॥ ७ ॥ इसीप्रकारसे पार्श्वरक्षक भी बहुतसे सिंह थे शार्दूल मकर मत्स्य

अथ ते वीरभद्रस्य पुरतः प्रबला गणाः ॥ पश्चादपि ययुर्वीराः कुतूहलकरा गणाः ॥ ४ ॥ वीरभद्रसमेता ये गणाश्शतसहस्रशः॥पार्षदाः
कालकालस्य सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ॥ ५ ॥ गणैस्समेतः किलतैर्महात्मा स वीरभद्रो हरवेषभूषणः ॥ सहस्रबाहुर्भुजगाधिपाढ्यो ययौ
रथस्थः प्रबलोतिभीकरः ॥ ६ ॥ नल्वानं च सहस्रे द्वे प्रमाणं स्यंदनस्य हि ॥ अयुतेनैव सिंहानां वाहनानां प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ तथैव
प्रबलाः सिंहा बहवः पार्श्वरक्षकाः ॥ शार्दूला मकरा मत्स्या गजास्तत्र सहस्रशः ॥ ८ ॥ वीरभद्रे प्रचलिते दक्षनाशाय सत्वरम् ॥
कल्पवृक्षसमुत्सृष्टा पुष्पवृष्टिरभूत्तदा ॥ ९ ॥ तुष्टुवुश्च गणा वीरं शिपिविष्टे प्रचेष्टितम् ॥ चक्रुः कुतूहलं सर्वे तस्मिंश्च गमनोत्सवेः
॥ १० ॥ काली कात्यायिनीशानी चामुंडा मुंडमर्दिनी ॥ भद्रकाली तथा भद्रा त्वरिता वैष्णवी तथा ॥ ११ ॥ एताभिर्नवदुर्गाभिर्म
हाकाली समन्विता ॥ ययौ दक्षविनाशाय सर्वभूतगणैस्सह ॥ १२ ॥ डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः ॥ कूष्मांडाः पर्पटा
श्चैव चटका ब्रह्मराक्षसाः ॥ १३ ॥ भैरवाः क्षेत्रपालाश्च दक्षयज्ञविनाशकाः ॥ निर्ययुस्त्वरितं वीराश्शिवाज्ञाप्रतिपालकाः ॥ १४ ॥

और हाथी सहस्रों चले ॥ ८ ॥ जिससमय दक्षके नाश करनेके निमित्त वीरभद्रने गमन किया उस समय उनपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥ ९ ॥ शिवकी चेष्टावाले उस वीरकी गण स्तुति करनेलगे और उसके गमनमें सबकोई कौतूहल करनेलगे ॥ १० ॥ काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुंडमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता, वैष्णवी ॥ ११ ॥ इन नौ दुर्गाओंके संग महाकाली दक्षके नाश करनेके निमित्त भूतगणोंके साथ चली ॥ १२ ॥ डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस ॥ १३ ॥ भैरव, क्षेत्रपाल यह सब शिवजीकी आज्ञासे दक्षके यज्ञ विनाशके

लिये बहुत शीघ्रतासे चले ॥ १४ ॥ इसीप्रकार चौंसठ योगिनी गणोंके साथ चलीं यह सब क्रोधकर दक्षका यज्ञ नाशकरनेके लिये चले ॥ १५ ॥
हे नारदजी मैं तुमसे उन गणोंकी संख्या कहताहूं उन धैर्यशाली महाबलियोंमें संघगण मुख्य था ॥ १६ ॥ शंकुकर्ण दशकोटि गण लेकर चला, केकराक्ष
दशकोटि, विकृत आठकोटि ॥ १७ ॥ विशाख चौंसठ कोटि, पारियात्र नौकोटी, सर्वांकक छःकोटि, वीरविकृतानन छःकोटि ॥ १८ ॥ गणश्रेष्ठ ज्वाल
कोश बारहकोटि, समद सातकोटि, दद्रुम आठकोटि ॥ १९ ॥ कपालीश पांचकोटि, संदारक छः कोटि, कोटिकुण्ड एकएक कोटि ॥ २० ॥ विष्टंभवीर

तथैव योगिनीचक्रं चतुःषष्टिगणान्वितम् ॥ निर्ययौ सहसा क्रुद्धं दक्षयज्ञं विनाशितुम् ॥ १५ ॥ तेषां गणानां सर्वेषां संख्यानं शृणु
नारद ॥ महाबलवतां संघो मुख्यानां धैर्यशालिनाम् ॥ १६ ॥ अभ्ययाच्छंकुकर्णश्च दशकोट्या गणेश्वरः ॥ दशभिः केकराक्षश्च विकृतो
ष्टाभिरेव च ॥ १७॥ चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः ॥ षड्भिस्सर्वाङ्कको वीरस्तथैव विकृताननः ॥ १८ ॥ ज्वालकेशो
द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः ॥ सप्तभिः समदज्जीमान् दुद्रभोष्टाभिरेव च ॥ १९ ॥ पंचभिश्च कपालीशः षड्भिस्संदारको गणः ॥
कोटिकोटिभिरेवेह कोटिकुण्डस्तथैव च ॥ २० ॥ विष्टंभोष्टाऽष्टभिर्वीरैः कोटिभिर्गणसत्तमः ॥ सहस्रकोटिभिस्तात संनादः पिप्पल
स्तथा ॥ २१ ॥ आवेशनस्तथाष्टाभिरष्टाभिश्चंद्रतापनः ॥ महावेशः सहस्रेण कोटिना गणपो वृतः ॥ २२ ॥ कुण्डी द्वादशकोटी
भिस्तथा पर्वतको मुने ॥ विनाशितुं दक्षयज्ञं निर्ययौ गणसत्तमः ॥ २३ ॥ कालश्च कालकश्चैव महाकालस्तथैव च ॥ कोटीनां शत
केनैव दक्षयज्ञं ययौ प्रति ॥ २४ ॥ अग्निकृच्छतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च ॥ आदित्यमूर्द्धा कोटचा च तथा चैव घनावहः
॥ २५ ॥ सन्नाहश्शतकोटचा च कोटचा च कुमुदो गणः ॥ अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोटचा गणाधिपः ॥ २६ ॥

आठकोटि, वीर संतकोटि, शंनाद और पिप्पल सहस्रकोटि ॥ २१ ॥ आवेशन आठकोटि, चन्द्रतापन आठकोटि, महावेशगणपति सहस्रकोटि ॥ २२ ॥
कुण्डी और पर्वतक १२ कोटि, सेना लेकर दक्षयज्ञके नाश करनेको चले ॥ २३ ॥ काल कालक और महाकाल यह सौ सौ कोटि लेकर दक्षका यज्ञ
नाश करनेको चले ॥ २४ ॥ अग्निकृत शतकोटि, अग्निमुख एककोटि, आदित्यमूर्धा और घनावह एकएक कोटि ॥ २५ ॥ सन्नाह सौ कोटि, कुमुद

एककोटि अमोघकोकिल गणाधिप एक एककोटि ॥२६॥ काष्ठागूढ, सुकेशी, वृषभ, गणाधीश, सुमंत्रक यज्ञ सब चौंसठ चौंसठ कोटि लेकर चले ॥ २७ ॥ काकपादोदर साठ कोटि, सन्तानक गण साठ कोटि ॥ २८ ॥ श्रेष्ठगण महाबल नौ कोटि ॥ २९ ॥ इसीप्रकार गणाधीश मधुपिंग चला नील और पूर्णभद्र नब्बेकोटि ॥ ३० ॥ चतुर्वक्त्र सौकोटिलेकर चला काष्ठागूढ सुकेश वृषभ चौंसठकोटि ॥ ३१ ॥ गणेश्वर विरूपाक्ष चौंसठकोटि तालकेतु षट् मुख पंचमुख गणेश्वर ॥ ३२ ॥ सम्वर्तक कुलिश स्वयं प्रभु हे मुने ! लोकान्तक दीप्तात्मा तथा दौयान्तक ॥ ३३ ॥ देवदेवके प्रिय श्रीमान् भृंगीरिटि अशनी और

काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशी वृषभस्तथा ॥ सुमन्त्रको गणाधीशस्तथा तात सुनिर्ययौ ॥ २७ ॥ काकपादोदरः षष्टिकोटिभिर्गणसत्तमः ॥ तथा सन्तानकः षष्टिकोटिभिर्गणपुंगवः ॥ २८ ॥ महाबलश्च नवभिः कोटिभिः पुंगवस्तथा ॥ २९ ॥ मधुपिंगस्तथा तात गणाधीशो हि निर्ययौ ॥ नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ॥ ३० ॥ निर्ययौ शतकोटीभिश्चतुर्वक्त्रो गणाधिपः ॥ काष्ठागूढश्चतुष्षष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा ॥ ३१ ॥ विरूपाक्षश्च कोटीनां चतुःषष्ट्या गणेश्वरः ॥ तालकेतुः षडास्यश्च पंचास्यश्च गणाधिपः ॥ ३२ ॥ संवर्तकस्तथा चैव कुलीशश्च स्वयं प्रभुः ॥ लोकांतकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ॥ ३३ ॥ गणो भृंगीरिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा ॥ अशानिर्भालकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रकः ॥ ३४ ॥ कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशातिभिर्वृतः ॥ वीरेशो ह्यभ्ययाद्वीरः वीरभद्रः शिवाज्ञया ॥ ३५ ॥ भूतकोटिसहस्रैस्तु प्रययौ कोटिभिस्त्रिभिः ॥ रोमजैः श्वगणैश्चैव तथा वीरो ययौ द्रुतम् ॥ ३६ ॥ तदा भेरीमहानादः शंखाश्च विविधस्वनाः ॥ जटाहरोमुखाश्चैव शृंगाणि विविधानि च ॥ ३७ ॥ ते तानि विततान्येव बंधनानि सुखानि च ॥ वादित्राणि विनेदुश्च विविधानि महोत्सवे ॥ ३८ ॥

भालकगण चौंसठ सहस्रकोटि लेकर चले ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वीरेश वीरभद्र शिवजीकी आज्ञासे सहस्रों सैंकडों बीसियों कोटियों सेनासे आवृत होकर चला ॥ ३५ ॥ सहस्रोंकोटि भूत तीनकोटि दूसरी जातिके भूत रोमज और श्वगणोंके साथ वीरभद्र चला ॥ ३६ ॥ उस समय भेरी शंखका बडा शब्द होनेलगा जटाहर और मुखोंके अनेक प्रकारके शब्द होनेलगे शृंगोंके शब्द हुए ॥ ३७ ॥ वे बंधस्थानोंपर सुखदायक शब्द विस्तृत होनेलगे उस उत्सवमें

अनेक प्रकारके शब्द होनेलगे ॥ ३८ ॥ हे महामुने ! सबलवीरभद्रकी यात्रामें अनेक सुखदायक शकुन हुए ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां रुद्रसंहिताऽन्तर्गतद्वितीयसतीखंडे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकारसे गणोंके सहित वीरभद्र चला तब दक्षने और देवताओंने सब चिह्न जानलिये ॥ १ ॥ हे देवर्षे उससमय यज्ञके विध्वंस होनेवाले तीन प्रकारके उत्पात वीरभद्रके चलनेमें हुए ॥ २ ॥ दक्षकी बाईं आंख बाहू ऊरु फडकने लगी और भी अनेक प्रकारके कष्टप्रद उत्पात दिखाई देनेलगे ॥ ३ ॥ उस समय दक्षके यज्ञमें भूमि कंपायमान होनेलगी मध्याह्नमेंही

वीरभद्रस्य यात्रायां सबलस्य महामुने ॥ शकुनान्यभवस्तत्र भूरीणि सुखदानि च ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे वीरभद्रयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं प्रचलिते चास्मिन् वीरभद्रे गणान्विते ॥ दुष्टचिह्नानि दक्षेण दृष्टानि विबुधैरपि ॥ १ ॥ उत्पाता विविधाश्चासन् वीरभद्रे गणान्विते ॥ त्रिविधा अपि देवर्षे यज्ञविध्वंससूचकाः ॥ २ ॥ दक्षवामाक्षिबाहूरुविस्पंदस्समजायत ॥ नानाकष्टप्रदस्तात सर्वथाऽशुभसूचकः ॥ ३ ॥ भूकंपस्समभूत्तत्र दक्षयागस्थले तदा ॥ दक्षोपश्यच्च मध्याह्ने नक्षत्राण्यद्भुतानि च ॥ ४ ॥ दिशश्चासन्सुमलिनाः कर्बुरोभूद्दिवाकरः ॥ परिवेषसहस्रेण संक्रांतश्च भयंकरः ॥ ५ ॥ नक्षत्राणि पतंतिस्म विद्युदग्निप्रभाणि च ॥ नक्षत्राणामभूद्वक्रा गतिश्चाधोमुखी तदा ॥ ६ ॥ गृध्रा दक्षशिरः स्पृष्ट्वा समुद्भूताः सहस्रशः ॥ आसीद्गृध्रपक्षच्छायैस्सच्छायो यागमंडपः ॥ ७ ॥ ववाशिरे यागभूमौ क्रोष्टारो नेत्रकस्तदा ॥ उल्काबृष्टिरभूत्तत्र श्वेतवृश्चिकसंभवा ॥ ८ ॥

दक्षको नक्षत्र दिखाई देने लगे ॥ ४ ॥ दिशा मलीन होगई सूर्यमें कालेदाग दिखाई देनेलगे और सैंकडों भयंकर परिवेश दिखाई देनेलगे ॥५॥ और बिजली और अग्निकी समान नक्षत्र गिरनेलगे और नक्षत्रोंकी गति वक्र होगई तथा अधोमुखी गति होगई ॥ ६ ॥ सैंकडो गृध्र दक्षका शिर स्पर्श करके उडनेलगे ग्रहोंकी छायासे यज्ञमंडप आच्छादित होगया ॥ ७ ॥ गीदड और नेत्रकपक्षी उस समय शब्द करने लगे श्वेत वृश्चिकोंके साथ उल्कावृष्टि होनेलगी ॥ ८ ॥

पांशुवृष्टिके साथ तीक्ष्ण पवन बहनेलगी चारों ओरसे शलभ प्रगट होगये आवर्तकी पवन बडे वेगसे चलने लगी ॥ ९ ॥ रीतिवाली पवनोंसे दक्षका मंडप उडनेलगा दैवसे दक्षके यागमें यह अद्भुत नूतन बात हुई ॥ १० ॥ दक्षादिक सब रुधिर वमन करनेलगे तथा शल्य सहित मांसके खंड वमन करनेलगे ॥ ११ ॥ सब दीपक वातसे हतकी समान कंपित होगये शस्त्रधारासे हतहुएकी समान सब कोई दुःखी होगये ॥ १२ ॥ उस समय बडे शब्दसे आंसू बरसने लगे जैसे सबेरे ओसकी बूंदोंसे कमल व्याप्त हों ऐसे सबके मुख होगये ॥ १३ ॥ अकस्मात् दक्षादिके नेत्र विशद होगये जैसे रातमें कुमुद

खरा वाता ववुस्तत्र पांशुवृष्टिसमन्विताः ॥ शलभाश्च समुद्भूता विवर्तानिलकंपिताः ॥ ९ ॥ रीतैश्च पवनैरूर्द्ध्वं स दक्षाध्वरमंडपः ॥
देवान्वितेन दक्षेण यः कृतो नूतनोद्भुतः ॥ १० ॥ वेमुर्दक्षादयस्सर्वे तदाशोणितमद्भुतम् ॥ वेमुश्च मांसखंडानि सशल्यानि मुहुर्मुहुः
॥ ११ ॥ सकंपाश्च बभूवुस्ते दीपा वातहता इव ॥ दुःखिताश्चाभवन्सर्वे शस्त्रधाराहता इव ॥ १२ ॥ तदा निनादजातानि बाष्पवर्षा
णि तत्क्षणे ॥ प्रातस्तुषारवर्षीणि पद्मानीव वनांतरे ॥ १३ ॥ दक्षाद्यक्षीणि जातानि ह्यकस्माद्विशदान्यपि ॥ निशायांकमलाश्चैव
कुमुदानीव संगवे ॥ १४ ॥ असृग्ववर्ष देवश्च तिमिरेणावृता दिशः ॥ दिग्दाहोभूद्विशेषेण त्रासयन् सकलाञ्जनान् ॥ १५ ॥ एवं विधा
न्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः ॥ भयमापेदिरेऽत्यंतं मुने विष्ण्वादिकास्तदा ॥ १६ ॥ भुवि ते मूर्छिताः पेतुर्हा हताः स्म इतीरयन् ॥
तरवस्तीरसंजाता नदीवेगहता इव ॥ १७ ॥ पतित्वा ते स्थिता भूमौ क्रूराः सर्पा हता इव ॥ कंदुका इव ते भूयः पतिताः पुनरुत्थिताः
॥ १८ ॥ ततस्ते तापसंतप्ता रुरुदुः कुररी इव ॥ रोदनध्वनिसंक्रांतोक्तिप्रत्युक्तिका इव ॥ १९ ॥

हो जातेहैं ॥१४॥ आकाशसे रुधिर वर्षने लगा दिशा अंधकारसे व्याप्त होगईं विशेषकर सब जनोंको दुःख देनेवाला दिग्दाह होनेलगा ॥ १५ ॥ इसप्रकार देवताओंने अनेक अरिष्ट देखे हे मुने ! विष्णु आदिकोंने बडा भय पाया ॥ १६ ॥ हा हम मरे ऐसा कहकर वे भूमिमें गिरपडे जैसे नदीके वेगसे किनारेके वृक्ष गिरजाते हैं ॥ १७ ॥ क्रूर सर्पसे हतहुएकी समान वे पतित होकर भूमिपर स्थित हुए गेंदकी समान वे उठते और गिरपडतेथे ॥ १८ ॥ फिर वे तापसे

सन्तप्त हो कुररीकी समान रोनेलगे उक्ति प्रत्युक्ति करके रोने लगे ॥ १९ ॥ विष्णुसहित सबकी शक्ति कुंठित होगई कमलकी समान अपने अपने थानोंमें लौटने लगे ॥ २० ॥ उसी समय वहां आकाशवाणी हुई वह सब देवताओंने और विशेषकर दक्षने सुनी ॥ २१ ॥ आकाशवाणी बोली हे दक्ष ! तुमको धिक्कार है तुम बडे पापी मूढहो तुझको हरसे अनिवार्य दुःख प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ खेदहै कि यहां जितने देवता स्थितहैं उन सबको भी महा दुःख उपस्थित होगा इसमें संदेह नहीं ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले यह आकाशके वचन सुन और अरिष्ट देख दक्ष और दूसरे देवताओंने बडा

सर्वैकुंठास्ततस्सर्वे तदा कुंठितशक्तयः ॥ स्वस्वोपकंठमाकंठं लुलुठुः कमठा इव ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र संजाता चाशरीरवाक् ॥ श्रावयत्यखिलान् देवान्दक्षं चैव विशेषतः ॥ २१ ॥ आकाशवाण्युवाच ॥ धिक् जन्म तव दक्षाद्य महामूढोसि पापधीः ॥ भविष्यति महद्दुःखमनिवार्यं हरोद्भवम् ॥ २२ ॥ हाहापि नोत्र ये मूढास्तव देवादयस्थिताः ॥ तेषामपि महादुःखं भविष्यति न संशयः ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वाकाशवचनं दृष्ट्वारिष्टानि तानि च ॥ दक्षः प्रापद्भयं चाति परे देवादयोपि ह ॥ २४ ॥ वेपमानस्तदा दक्षो विकलश्चाति चेतसि ॥ अगच्छच्छरणं विष्णोः स्वप्रभोरिंदिरापतेः ॥ २५ ॥ सुप्रणम्य भयाविष्टः संस्तूय च विचेतनः ॥ अवोचद्देवदेवं तं विष्णुं स्वजनवत्सलम् ॥ २६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे दुश्शकुनदर्शनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ देवदेव हरे विष्णो दीनबंधो कृपानिधे ॥ मम रक्षा विधातव्या भवता साध्वरस्य च ॥ १ ॥ रक्षकस्त्वं मखस्यैव मखकर्मा मखात्मकः ॥ कृपा विधेया यज्ञस्य भंगो भवतु न प्रभो ॥ २ ॥

दुःख माना ॥ २४ ॥ दक्ष कम्पायमान होकर चित्तमें बडा व्याकुल हुआ और लक्ष्मीपति अपने प्रभुकी शरणमें गया ॥ २५ ॥ प्रणामकर स्तुति की भयके मारे व्याकुल अचेतन हो भक्तवत्सल विष्णुजी बोले ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गताद्वितीयसतीखंडे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ दक्षजी बोले हे देवदेव ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे दीनबंधु ! हे कृपासागर ! मेरी रक्षा इस यज्ञमें जैसे हो वैसे करनी चाहिये ॥ १ ॥ आप यज्ञके रक्षक मखके

कर्मवाले साक्षात् यज्ञात्मा हो हे प्रभो ! ऐसी कृपा करो जिसमें यज्ञका भंग न हो ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार आदरसे दक्षने बहुत विज्ञप्ति की और भयसे व्याकुल मन होकर दक्ष विष्णुजीके चरणोंमें गिरे ॥ ३ ॥ तब व्याकुलमन दक्षजीको विष्णुने उठाकर और उस कुमतिके वचनोंको सुनकर शिवजीको स्मरण किया ॥ ४ ॥ महेशान अपने प्रभु परमेश शिवको स्मरण कर शिवतत्त्वके जाननेवाले हरि दक्षको समझाते हुए बोले ॥ ५ ॥ हरि बोले दक्षजी तुम तत्त्वसे मेरे वचन सुनो मैं कहताहूं सर्वथा मैं तुम्हारे हितका करनेवाला महामंत्र कहताहूं ॥ ६ ॥ हे दक्षजी ! आपने सबके अधीश्वर शंकर

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं बहुविधां दक्षः कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् ॥ पपात पादयोस्तस्य भयव्याकुलमानसः ॥ ३ ॥ उत्थाप्य तं ततो विष्णुर्दक्षं विक्लिन्नमानसम् ॥ श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्यं कुमतेरस्मरच्छिवम् ॥ ४ ॥ स्मृत्वा शिवं महेशानं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ॥ अवदच्छिवतत्त्वज्ञो दक्षं संबोधयन्हरिः ॥ ५ ॥ ॥ हरिरुवाच ॥ शृणु दक्ष प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु मे वचः ॥ सर्वथा ते हितकरं महामंत्रसुखप्रदम् ॥ ६ ॥ अवज्ञा हि कृता दक्ष त्वया तत्त्वमजानता ॥ सकलाधीश्वरस्यैव शंकरस्य परात्मनः ॥ ७ ॥ ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा ॥ विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदेपदे ॥ ८ ॥ अपूज्या यत्र पूज्यंते पूजनीयो न पूज्यते ॥ त्रीणि तत्र भविष्यंति दारिद्र्यं मरणं भयम् ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माननीयो वृषध्वजः ॥ अमानितान्महेशाच्च महद्भयमुपस्थितम् ॥ १० ॥ अद्यापि न वयं सर्वे प्रभवः प्रभवामहे ॥ भवतो दुर्नयेनैव मया सत्यमुदीर्य्यते ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिंतापरोऽभवत् ॥ विविर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ॥ १२ ॥

परात्माका तत्त्व न जानकर उनका निरादर किया ॥ ७ ॥ ईश्वरकी अवज्ञा करनेसे केवल कार्य विफलही नहीं होता किन्तु पदपदमें विपत्ति पडतीहै ॥ ८ ॥ जहां अपूज्योंका पूजन और पूज्योंका असत्कार होताहै वहां दारिद्य मरण और भय यह तीन बातें होतीहैं ॥ ९ ॥ इस कारण शिवजी सब प्रयत्नसे मान्य हैं शिवजीका मान्य न करनेसे यह महाभय उपस्थित हुआहै ॥ १० ॥ तुम्हारी दुर्नीतिसेही इस समय हमारा किसीका प्रभाव नहीं रहैगा यह मैं सत्यही कहताहूं ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुके यह वचन सुन दक्षजीको बडी चिन्ता हुई और व्याकुलमन विवर्णमुख होकर पृथ्वीमें मौन हो स्थित हुए ॥ १२ ॥

इसी अवसरमें महासेनाके साथ रुद्रसे प्रेरित गणनायक वीरभद्र वहां उपस्थित हुआ ॥ १३ ॥ कोई गण उसके पीछे और कोई आकाशसे आये कोई दिशा विदिशासे आकर वहां स्थित हुए ॥ १४ ॥ वह गण शिवजीकी आज्ञासे निर्भय महाशूर भयंकर पराक्रमी थे वह वीरश्रेष्ठ असंख्य सिंहनाद करनेलगे ॥ १५ ॥ उनके नादसे तीनोंभुवन शब्दायमान होगये रजसे आकाश और अंधकारसे दिशा व्याप्त होगईं ॥ १६ ॥ भयके मारे सातद्वीपवाली पृथिवी चलायमान होगई पर्वत वनोंसहित समुद्र चलायमान होगये ॥ १७ ॥ इसप्रकार वह लोककी क्षय करनेवाली महासेना उपस्थित हुई देवतादिक उसको देखकर

एतस्मिन्नंतरे वीरभद्रः सैन्यसमन्वितः ॥ अगच्छदध्वरं रुद्रप्रेरितो गणनायकः ॥ १३ ॥ पृष्ठे केचित्समायाता गगने केचिदागताः ॥ दिशश्च विदिशः सर्वे समावृत्य तथापरे ॥ १४ ॥ शर्वाज्ञया गणाः शूरा निर्भया रुद्रविक्रमाः ॥ असंख्याः सिंहनादान्वै कुर्वंतो वीरसत्तमाः ॥ १५ ॥ तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ॥ रजसा चावृतं व्योम तमसा चावृता दिशः ॥ १६ ॥ सप्तद्वीपान्विता पृथ्वी चचालातिभयाकुला ॥ सशैलकानना तत्र चुक्षुभुस्सकलाब्धयः ॥ १७ ॥ एवंभूतं च तत्सैन्यं लोकक्षयकरं महत् ॥ दृष्ट्वा च विस्मितास्सर्वे बभूवुरमरादयः ॥ १८ ॥ सैन्योद्योगमथालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखाकुलः ॥ दंडवत्पतितो विष्णुं सकलत्रोऽभ्यभाषत ॥ १९ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ भवद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारंभितो महान् ॥ सत्कर्मसिद्धये विष्णो प्रमाणं त्वं महाप्रभो ॥ २० ॥ विष्णो त्वं कर्मणां साक्षी यज्ञानां प्रतिपालकः॥धर्मस्य वेदगर्भस्य ब्रह्मणस्त्वं महाप्रभो ॥ २१॥ तस्माद्रक्षा विधातव्या यज्ञस्यास्य मम प्रभो ॥ त्वदन्यः कस्समर्थोऽस्ति यतस्त्वं सकलप्रभुः ॥ २२ ॥

सबही क्षुभित होगये॥ १८॥सेनाका उद्योग देखकर दक्षका शिर नीचा होगया और विष्णुजीके आगे दंडकी समान गिरकर कलत्रके सहित कहनेलगा॥ १९॥ दक्ष बोला आपहीके बलसे मैंने यह महान् यज्ञ आरंभ कियाहै हे प्रभो विष्णुजी ! इस सत्कर्मकी सिद्धिमें आपही प्रमाण हैं ॥ २० ॥ हे विष्णुजी ! आप कर्मोंके साक्षी यज्ञोंके पालन करनेवालेहैं हे महाप्रभो ! धर्मके वेदके भीतरके तुमही अधिष्ठान ब्रह्महो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! इसकारण हमारे इस यज्ञकी

रक्षा करनी तुमको उचितहै आपके सिवाय और कौन रक्षाकरनेमें समर्थहै कारण कि आप सबके प्रभुहैं ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले दक्षके वचन सुनकर
विष्णुजी बहुत दीन होगये, और शिवतत्त्वसे पराङ्मुख उसको समझंते हुए बोले ॥२३॥ विष्णुजी बोले हे दक्षजी ! मैं तुम्हारे यज्ञकी रक्षा करूंगा कारणकि
धर्मका पालन करना मेरा पणहै॥२४॥तुमने सत्य कहाहै अब उसका व्यतिक्रम नहीं होसकता, हे दक्ष ! मैं जो तुमसे कहताहूं सो तुम सुनो इस समय क्रूर
बुद्धि त्यागन करो ॥ २५ ॥ नैमिषारण्यमें जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ, क्या वह स्मरण नहीं ? हे दक्ष ! क्रूरबुद्धिसे तुमने उसको भुलादिया ॥ २६ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ दक्षस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दीनतरं तदा ॥ अवोचद्बोधयंस्तं वै शिवतत्त्वपराङ्मुखम् ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ मया
रक्षा विधातव्या तव यज्ञस्य दक्ष वै ॥ ख्यातो मम पणः सत्यो धर्मस्य परिपालनम् ॥ २४ ॥ तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हि किं तत्तस्य
व्यतिक्रमः ॥ शृणु त्वं वच्म्यहं दक्ष क्रूरबुद्धिं त्यजाऽधुना ॥ २५ ॥ नैमिषे निमिषक्षेत्रे यज्जातं वृत्तमद्भुतम् ॥ तत्किं न स्मर्यते दक्ष
विस्मृतं किं कुबुद्धिना ॥ २६ ॥ रुद्रकोपाच्च को ह्यत्र समर्थो रक्षणे तव ॥ न यस्याभिमतं दक्ष यस्त्वां रक्षति दुर्मतिः ॥ २७ ॥ किं कर्म
किमकर्मेति तन्न पश्यसि दुर्मते ॥ समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा ॥ २८ ॥ स्वकर्मविद्धि तद्येन समर्थत्वेन जायते ॥ न
त्वन्यः कर्मणो दाता शं भवेदीश्वरं विना ॥ २९ ॥ ईश्वरस्य च यो भक्त्या शांतस्तद्गतमानसः ॥ कर्मणो हि फलं तस्य प्रयच्छति
तदा शिवः ॥ ३० ॥ केवलं ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः ॥ निरयं ते च गच्छंति कल्पकोटिशतानि च ॥ ३१ ॥ पुनः कर्ममयैः
पाशैर्बद्धा जन्मनि जन्मनि ॥ निरयेषु प्रपच्यंते केवलं कर्मरूपिणः ॥ ३२ ॥

रुद्रके कोपसे तुम्हारी रक्षा करनेमें कौन समर्थहै हे दक्ष ! तुम्हारी रक्षा करना भी एक दुर्मतिहै ॥ २७ ॥ हे दुर्मते ! तुम कर्म और अकर्म कुछ नहीं
देखतेहो केवल सदा सब बातमें कर्महीं सफल नहीं होता ॥ २८ ॥ वही अपना कर्म जानो जिसमें समर्थपन होजाय पर शिवजीके विना तो कोईभी
कर्मका फल देनेको समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ जो भक्तिसे शान्त होकर ईश्वरमें मन लगाताहै सदाशिव उसीको कर्मका फल देतेहैं ॥ ३० ॥ जो ईश्वरको
नहीं माननेवाले मनुष्य केवल ज्ञानका आश्रय करके उन्नति चाहतेहैं वे सैंकडों करोंडों वर्षतक नरकमें जातेहैं ॥ ३१ ॥ फिर जन्मजन्मान्तर कर्मकी फांसीसे

बंधतेहैं केवल कर्मरूपी नरकमें वारंवार पडतेहैं ॥ ३२॥ यह रुद्रके गणोंमें अधीश्वर शत्रुनाशी वीरभद्रहै रुद्रकी क्रोधाग्निसे प्रगट होकर यज्ञमें आयाहै॥ ३३॥ इसमें सन्देह नहीं कि यह हमारे विनाशके निमित्त आयाहै इसका निवारण करना कल्पनामें भी अशक्यहै वास्तवमें तो क्या ॥ ३४ ॥ यह महाप्रभु स्वयंही इस यज्ञमें हम सबको प्रज्वलित करकै पीछे शांत होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ भ्रमसे मैंने श्रीमहादेवकी शपथको उल्लंघन करके जो यहां स्थिति की उसका दुःख हमने तुमसहित यह प्राप्त किया ॥ ३६ ॥ हे दक्ष अब इस उपद्रवके निवारणमें मेरी सामर्थ्य नहीं है शपथके उल्लंघन करनेमें मैं शिवद्रोही

अयं रुद्रगणाधीशो वीरभद्रोऽरिमर्दनः ॥ रुद्रकोपाग्निसंभूतः समायातोध्वरांगणे ॥ ३३ ॥ अयमस्मद्विनाशार्थमागतोस्ति न संशयः ॥
अशक्यमस्य नास्त्येव किमप्यस्तु तु वस्तुतः ॥ ३४ ॥ प्रज्वाल्यास्मानयं सर्वान् ध्रुवमेव महाप्रभुः ॥ ततः प्राशांतहृदयो भविष्य
ति न संशयः ॥ ३५ ॥ श्रीमहादेवशपथं समुल्लंघ्य भ्रमान्मया ॥ यतः स्थितं ततः प्राप्यं मया दुःखं त्वया सह ॥ ३६ ॥ शक्ति
र्मम तु नास्त्येव दक्षाद्यैतन्निवारणे ॥ शपथोल्लंघनादेव शिवद्रोही यतोस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ कालत्रयेपि न यतो महेशद्रोहिणां सुखम् ॥
ततोऽवश्यं मया प्राप्तं दुःखमद्य त्वया सह ॥ ३८ ॥ सुदर्शनाभिधं चक्रमेतस्मिन्न लगिष्यति ॥ शैवचक्रमिदं यस्मादशैवलयकार
णम् ॥ ३९ ॥ विनापि वीरभद्रेण नामैतच्चक्रमैश्वरम् ॥ हत्वा गमिष्यत्यधुना सत्वरं हरसन्निधौ ॥ ४० ॥ शैवं शपथमुल्लंघ्य स्थितं मां
चक्रमीदृशम् ॥ असंहत्यैव सहसा कृपयैव स्थिरं परम् ॥ ४१ ॥ अतः परमिदं चक्रमपि न स्थास्यति ध्रुवम् ॥ गमिष्यत्यधुना शीघ्रं
ज्वालामालासमाकुलम् ॥ ४२ ॥ वीरभद्रः पूजितोपि शीघ्रमस्माभिरादरात् ॥ महाक्रोधसमाक्रांतो नास्मान्संरक्षयिष्यति ॥ ४३ ॥

हुआ ॥ ३७ ॥ तीनकालमें भी शंकरके द्रोहीको सुख नहीं मिलता इसकारण मैंने तुम्हारे सहित दुःख पाया ॥ ३८ ॥ सुदर्शन चक्र भी इसपर प्रहार नहीं करसकैगा कारण कि यह शैवचक्र अशैवोंपरही चलता है ॥ ३९ ॥ यह शिवजीका चक्र वीरभद्रपर विना प्रहारकिये छोडतेही शिवजीके पासको चला जायगा ॥ ४० ॥ शिवजीकी शपथको उल्लंघन करके यह चक्र मेरे पास स्थितहै तो यह समझना कि उनकी परम कृपाहै ॥ ४१ ॥ नहीं तो यह चक्र किसीप्रकारभी स्थित नहीं रहसकता और ज्वालामालासे आकुल होकर शीघ्रही चलाजायगा ॥ ४२ ॥ यहां हम आदरसे यदि

वीरभद्रका पूजन करैं तो भी यह शंकरके क्रोधित होनेसे किसी प्रकार हमारी रक्षा नहीं करसकैगा ॥ ४३ ॥ अहो इस समय कुसमय हमारी प्रलय हुई हा खेद हमारा तुम्हारा इस समय नाश उपस्थित हुआ ॥ ४४ ॥ त्रिलोकीमें इस समय हमारा कोई रक्षक नहीं ठीक भी है शंकरद्रोहीकी त्रिलोकीमें कौन रक्षा करसकता है ॥ ४५ ॥ शरीरका नाश होजाय यमयातना भोगनी पडै पर यह दुःख तो इस समय सहा न जायगा ॥ ४६ ॥ कारण कि शिवद्रोहीको देखतेही यमराज दांत पीसने लगतेहैं और निस्सन्देह उसको तेलके तत्ते कराहमें डालदेतेहैं ॥ ४७ ॥ मैं सर्वथा शपथके उत्तर जासकताहूं पर दुष्ट

अकांडप्रलयोऽस्माकमागतोद्य हि हा हहा ॥ हा हा बत तवेदानीं नाशोस्माकमुपस्थितः ॥ ४४ ॥ शरण्योस्माकमधुना नास्त्येव हि जगत्त्रये ॥ शंकरद्रोहिणो लोके कश्शरण्यो भविष्यति ॥ ४५ ॥ तनुनाशेपि संप्राप्यास्तैश्चापि यमयातनाः ॥ ता नैव शकते सोढुं बहुदुःखप्रदायिनीः ॥ ४६ ॥ शिवद्रोहिणमालोक्य दष्टदंतो यमः स्वयम् ॥ तप्ततैलकटाहेषु पातयत्येव नान्यथा ॥ ४७ ॥ गन्तुमेवाहमुद्युक्तं सर्वथा शपथोत्तरम् ॥ तथापि न गतश्शीघ्रं दुष्टसंसर्गपापतः ॥ ४८ ॥ यदद्य क्रियतेस्माभिः पलायनमितस्तदा ॥ शार्वो ना कर्षकश्शस्त्रैरस्मानाकर्षयिष्यति ॥ ४९ ॥ स्वर्गे वा भुवि पाताले यत्र कुत्रापि वा यतः ॥ श्रीवीरभद्रशस्त्राणां गमनं न हि दुर्लभम् ॥ ५० ॥ यावंतश्च गणास्संति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः ॥ तावतामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम् ॥ ५१ ॥ श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया ॥ पुरा शिरश्च चिच्छेद पंचमं ब्रह्मणो ध्रुवम् ॥ ५२ ॥ एतदुक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः ॥ वीरभद्रोपि संप्राप तदैवाऽध्वरमंडपम् ॥ ५३ ॥

संसर्गके पापसे मैं न पहुँचसका ॥ ४८ ॥ यदि अब हम यहांसे भागजांय तो शिवजी अपने आकर्षण शस्त्रोंसे हमसबको आकर्षण करलेंगे ॥ ४९ ॥ स्वर्ग भूमि पाताल कहीं भी हों वीरभद्रके शस्त्र सब स्थानोंमें जासकते हैं ॥ ५० ॥ त्रिशूली भगवान् शंकरके जितने गण हैं उनसबकी निश्चय ऐसीही शक्ति है ॥ ५१ ॥ काशीमें शिवजीकी आज्ञासे श्रीकालभैरवने लीलापूर्वक अपने नखोंसे ब्रह्माजीका पांचवां शिर छेदन करादिया ॥ ५२ ॥ यह कहकर

विष्णुजी बडे व्याकुल मुखसे स्थितहुये इधर वीरभद्रभी यज्ञमण्डपमें आकर प्राप्तहुए ॥ ५३ ॥ गोविन्दके ऐसा कहनेपर सेनासागर आनकर उपस्थितहुई वीरभद्रके साथ इस सेनाको सब देवताओंने देखा ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे विष्णुवाक्यवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले उस समय इन्द्र विष्णुजीका हास्य करतेहुए आत्मप्रशंसा करते वीरभद्रसे युद्धकरनेको वज्र हाथमें ले देवताओंके सहित स्थितहुए ॥ १ ॥ उस समय हाथीपर इन्द्र, मेढेपर अग्नि, महिषपर यम, प्रेतपर निर्ऋति ॥ २ ॥ मकरपर वरुण, मृगपर वायु, पुष्पकपर

एवं ब्रुवति गोविन्द आगतं सैन्यसागरम् ॥ वीरभद्रेण संहितं ददृशुश्च सुरादयः ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे सत्युपाख्याने विष्णुवाक्यवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इन्द्रोपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा ॥ वज्रपाणिस्सुरैस्सार्द्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा ॥ १ ॥ तदेन्द्रो गजमारूढो बस्तारूढोऽनलस्तथा ॥ यमो महिषमारूढो निर्ऋतिः प्रेतमेव च ॥ २ ॥ पाशी च मकरारूढो मृगारूढस्सदागतिः ॥ कुबेरः पुष्पकारूढस्संनद्धोभूदतंद्रितः ॥ ३ ॥ तथान्ये सुरसंघाश्च यक्षचारणगुह्यकाः ॥ आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः ॥ ४ ॥ तेषामुद्योगमलोक्य दक्षश्चासृङ्मुखस्तथा ॥ तदंतिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥ दक्ष उवाच ॥ युष्मद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारंभितो महान् ॥ सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणास्स्युर्महाप्रभाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवास्सवासवाः ॥ निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः ॥ ७ ॥

आरूढ कुबेर हुए और भी सब तयारहुए ॥ ३ ॥ इसी प्रकार औरभी बहुतसे देवता यक्ष चारण गुह्यक अपने अपने प्रतापी वाहनोंके ऊपर चढकर चले ॥ ४ ॥ उनका उद्योग देखकर नीचेको मुख कियेहुए दक्षजी इन्द्रके समीप आकर बोले ॥ ५ ॥ दक्षने कहा कि आपहीके भरोसे पर मैंने महायज्ञ आरंभ किया है आप महाप्रभाववालेहैं इस सत्कर्मको सिद्धिके लिये आपही महानुभाव प्रमाणहैं ॥ ६ ॥ दक्षके यह वचन सुन इन्द्रके सहित सब देवता

बहुत शीघ्रतासे युद्ध करनेके निमित्त चले ॥ ७ ॥ तब वे सब बलवान् देवता युद्ध करनेलगे वह और वे इन्द्रादि देवता शिवजीकी मायासे मोहित होगये ॥ ८ ॥ उस समय देवता और गणोंका भयंकर संग्राम हुआ तीक्ष्ण तोमर और नाराचोंसे वे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ उस युद्धके महोत्सवमें शंख और भेरियें बजने लगीं महादुन्दुभी पटह और डिमडिम बजने लगे ॥ १० ॥ उस महाशब्दसे सब देवता श्लाघ्यमान होकर लोकपालोंके सहित उन शिवकिंकरोंको मारनेलगे ॥ ११ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! भृगुके मंत्रबलसे इन्द्रादि लोकपालोंने शिवजीके गणोंको छेदन करादिया ॥ १२ ॥

अथ देवगणाः सर्वे युयुधुस्ते बलान्विताः ॥ शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया ॥ ८ ॥ देवानां च गणानां च तदासीत्समरो महान् ॥ तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते परस्परम् ॥ ९ ॥ नेदुश्शंखाश्च भेर्य्यश्च तस्मिन् रणमहोत्सवे ॥ महादुंदुभयो नेदुः पटहा डिंडिमादयः ॥ १० ॥ तेन शब्देन महता श्लाघ्यमानास्तदा सुराः ॥ लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिंकरान् ॥ ११ ॥ इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्च गणाश्शंभोः पराङ्मुखाः ॥ कृत्ताश्च मुनिशार्दूल भृगोर्मंत्रबलेन च ॥ १२ ॥ उच्चाटनं कृतं तेषां भृगुणा यज्वना तदा ॥ यजनार्थं च देवानां तुष्टयर्थं दीक्षितस्य च ॥ १३ ॥ पराजितान्स्वकान्दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः ॥ भूतप्रेतपिशाचांश्च कृत्वा तानेव पृष्ठतः ॥ १४ ॥ वृषभस्थान् पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ॥ महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान् ॥ १५ ॥ देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि ॥ शूलघातैश्च ते सर्वे गणा वेगात् प्रजघ्निरे ॥ १६ ॥ केचिद्द्विधा कृताः खड्गैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः ॥ अन्यैश्शस्त्रैरपि सुरा गणैर्भिन्नास्तदाऽभवन् ॥ १७ ॥

यज्ञ करनेवाले भृगुने सबका उच्चाटन किया यह कार्य देवताओंके यजन और दक्षके संतोषके निमित्त किया ॥ १३ ॥ उन भूत प्रेत पिशाचोंको पराजित देख वीरभद्रने क्रोधकर उनको पीछे किया ॥ १४ ॥ महाबलीने वृषभमें स्थित उनको आगे करके महात्रिशूल लेकर देवताओंको गिराना आरम्भ किया ॥ १५ ॥ देवता यक्ष साध्य गुह्यक चारण शूलघातसे इन सबको गिरादिया ॥ १६ ॥ किन्हींके खड्गसे दो खंड करदिये किन्हींपर मुद्गरका प्रहार

किया दूसरे गणोंके शस्त्रोंसे भी इसीप्रकार देवता विदीर्ण होनेलगे ॥ १७ ॥ इसप्रकार देवता पराजित होकर परस्पर एक दूसरेको त्यागनकर पलायमान हो तेहुए स्वर्गको गये ॥ १८ ॥ केवल महाबलवान् इन्द्रादिदिक्पालही उस दारुण संग्राममें धैर्य धरके उत्साहसे स्थित भये ॥ १९ ॥ तब इन्द्रआदि सब देवता संग्रामस्थलमें इकट्ठे हो बडी नम्रतासे बृहस्पतिसे पूँछनेलगे ॥ २० ॥ लोकपाल बोले हे गुरो ! हे बृहस्पते ! हे तात ! महापण्डित ! हे दयासागर ! शीघ्र आप हमसे कहैं जिसमें हमारी जय हो ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले बृहस्पति उन सबके इसप्रकारके

एवं पराजितास्सर्वे पलायनपरायणाः ॥ परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ॥ संग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः ॥ १९ ॥ सर्वे मिलित्वा शक्राद्या देवास्तत्र रणाजिरे ॥ बृहस्पतिं च पप्रच्छुर्विनयावनतास्तदा॥ २० ॥ लोकपाला ऊचुः ॥ गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे ॥ शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ॥२१॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शंभुं प्रयत्नवान् ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रं ज्ञानदुर्बलम् ॥ २२ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै ॥ तदेव विवृणोमीन्द्र सावधानतया शृणु ॥ २३ ॥ अस्ति यक्षेश्वरः कश्चित् फलदः सर्वकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोपि न स्वकर्त्तुः प्रभुर्हि सः ॥ २४ ॥ अमंत्रौषधयस्सर्वे नाभिचारा न लौकिकाः ॥ न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ॥ २५ ॥ अन्यान्यपि च शास्त्राणि नानावेदयुतानि च ॥ ज्ञातुं नेशं संभवंति वदंत्येवं पुरातनाः ॥ २६ ॥ न स्वज्ञेयो महेशानस्सर्ववेदायुतेन सः ॥ भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथेति महाश्रुतिः ॥ २७ ॥

वचन सुन शंकरका स्मरण कर ज्ञानमें दुर्बल इन्द्रसे कहनेलगे ॥ २२ ॥ बृहस्पति बोले जो पहले विष्णुजीने कहा था वही सब अब हुआ हे इन्द्र मैं अब सब कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ २३ ॥ जो कोई सब कर्मोंके फलका देनेवाला ईश्वर है वह भी कर्त्ताकी अपेक्षा करता है वह भी स्वयं करनेमें प्रभु नहीं है ॥ २४ ॥ मंत्र औषधि अभिचार लौकिककर्म वेद दोनों मीमांसा ॥ २५ ॥ और दूसरे भी वेद युक्त सम्पूर्ण शास्त्र यह उसके विना कुछ नहीं हैं न उसको जाननेमें समर्थ होसकतेहैं ऐसा पुरातन कहतेहैं ॥ २६ ॥ सर्व वेदका ज्ञाताभी महेश्वरको नहीं जानसकताहै अनन्य

शरण भक्तही उसको जानसकतेहैं ऐसी श्रुतिहै ॥ २७ ॥ शांत निर्विकार पर दृष्टि हो और उसका अनुग्रह हो तब शंकरतत्त्व जानाजाताहै ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! तो भी कार्याकार्यके निर्णयमें मैं सिद्ध अंशको तुमसे कहताहूं सावधान होकर सुनो ॥ २९ ॥ हे इन्द्र ! तुम मूर्खताके वश होकर लोकपालोंसहित दक्षके यज्ञमें आये हो भला तुम क्या पराक्रम कर सकतेहो ॥ ३० ॥ यह रुद्रके परमकोपवाले गण यज्ञके विघ्नके लिये आयेहैं अवश्य विघ्न करैंगे ॥ ३१ ॥ यह मैं सत्यही सत्य कहताहूं कि यहां कोई भी उपाय इस यज्ञके विघ्न विनाश करनेका नहीं है ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले वह सब देवता इसप्रकार बृहस्पतिके

शांत्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया ॥ तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥ २८ ॥ परं तु संवदिष्यामि कार्याकार्य विवक्षितौ ॥ सिध्यंशं च सुरेशान तं शृणु त्वं हिताय वै ॥ २९ ॥ त्वमिंद्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै ॥ आगतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यासि विक्रमम् ॥ ३० ॥ एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमकोपनाः ॥ आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यंत्यसंशयम् ॥ ३१ ॥ सर्वथा न ह्युपायोत्र केषांचिदपि तत्त्वतः ॥ यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा ते हि दिवौकसः ॥ चिंतामापेदिरे सर्वे लोकपालास्सवासवाः ॥३३॥ ततोब्रवीद्वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः ॥ इन्द्रादीन् लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शंकरम् ॥ ३४ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः ॥ अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत ममांतिकम् ॥ ३५ ॥ हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिन् हे धनाधिप ॥ हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे ॥ ३६ ॥ हे सुरासुरसंघाश्च हीतेत च विचक्षणाः ॥ अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वराः ॥ ३७ ॥

वचन सुनकर इन्द्र तथा लोकपालोंके सहित सब चिन्ता करने लगे ॥ ३३ ॥ तब महावीर वीरभद्रने गणोंके सहित बडे क्रोधपूर्वक सब इन्द्रादिक लोकपालोंसे कहा ॥ ३४ ॥ वीरभद्रने कहा सब तुम मूर्खतासे इस यज्ञमें प्राप्त हुए हो अब मेरे समीप आओ मैं इसका फल तुमको चखाऊंगा ॥ ३५ ॥ हे इन्द्र ! अग्नि, सूर्य, चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, निर्ऋति, यम, शेष ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! हे चतुरो ! अब मैं इसका फल तुमको देताहूं तुम अच्छी

प्रकारसे इसका फल भोगो ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहकर तीक्ष्ण बाणोंसे उनपर प्रहार करने लगे जब गणोंमें अग्रणी वीरभद्र तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करनेलगा तब इन्द्रादि सब देवता उन बाणोंसे बडे व्यथित हुए ॥ ३८ ॥ तब वे सब दशों दिशाओंमें भागनेलगे जब लोकपाल दशोंदिशाओंमें भागगये तब वीरभद्र गणोंके सहित यज्ञस्थलमें आया ॥ ३९ ॥ तब वे समस्त ऋषि डरकर विष्णुजीके पास शीघ्रतासे आकर विज्ञप्ति करनेलगे ॥ ४० ॥ ऋषि बोले हे रमानाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे महाप्रभो ! आप दक्षके यज्ञकी रक्षा करो कारण कि आप साक्षात् यज्ञस्वरूप हो ॥ ४१ ॥ यज्ञके कर्म यज्ञके

ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा सितैर्बाणैर्जघानाथ रुषान्वितः ॥ निखिलांस्तान् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ तैर्बाणैर्निहतास्सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः ॥ ३८ ॥ पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश ॥ गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च ॥ यज्ञवाटोपकंठं हि वीरभद्रोगमद्गणैः ॥ ३९ ॥ तदा ते ऋषयस्सर्वे सुभीता हि रमेश्वरम् ॥ विज्ञप्तुकामास्सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम् ॥ ४० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो ॥ रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोसि त्वं न संशयः ॥ ४१ ॥ यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञांगो यज्ञरक्षकः ॥ रक्ष यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोन्यो न हि रक्षकः ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः ॥ योद्धुकामो भयाद्विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै ॥ ४३ ॥ चतुर्भुजस्सुसंनद्धो चक्रायुधधरः करैः ॥ महाबलोमरगणैर्यज्ञवाटात्स निर्ययौ ॥ ४४ ॥ वीरभद्रः शूलपाणिर्नानागणसमन्वितः ॥ ददर्श विष्णुं संनद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वा वीरभद्रोभूद्भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ कृतांत इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वाराणम् ॥ ४६ ॥

रूप यज्ञके अंग यज्ञके रक्षक आप हो इससे आप यज्ञकी रक्षा करो । आपके विना कोई रक्षक नहीं है ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुजी इस प्रकारसे उन सबके वचन सुनकर वीरभद्रसे भय करके भी उसके युद्धकी इच्छा करने लगे ॥ ४३ ॥ चारभुजा धारे हाथमें सुदर्शन चक्र लिये महाबली देवताओंको साथ ले यज्ञस्थानसे बाहर निकले ॥ ४४ ॥ इधर अनेक गणोंके साथ शूल हाथमें लिये वीरभद्रने युद्ध करनेकी इच्छा किये महाप्रभु विष्णुजीको सन्नद्ध देखा ॥ ४५ ॥ वीरभद्रने विष्णुको देखतेही बडी टेढी भौं करलीं और काल जैसे पापीको देखता वा सिंह जैसे हाथीको देखताहै ॥ ४६ ॥

इस प्रकारसे शत्रुनाशी वीरभद्रने विष्णुजीको देखा और वीरगणोंसे आवृत हुए बहुत शीघ्रतासे क्रोधकर बोले ॥ ४७ ॥ वीरभद्रने कहा हे विष्णु ! तुमने महादेवकी शपथ उल्लंघन की यह तुम्हारा चित्त ऐसा कैसे हुआ और तुमने किसबातका अभिमान किया है ॥ ४८ ॥ क्या शंकरकी शपथ उल्लंघन करनेकी तुम्हारी शक्तिहै, तुम कौन हो और त्रिलोकीमें तुम्हारा रक्षक कौन है ॥ ४९ ॥ तुम यहां कैसे आयेहो इस बातको मैं नहीं जानता, तुम दक्षके यज्ञकी रक्षा किसप्रकार कर सकतेहो सो कहो ॥ ५० ॥ जो कुछ सतीने किया सो क्या तुमने नहीं देखा जो दधीचने कहा था सो क्या तुमने नहीं सुना ॥ ५१ ॥

तथाविधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोरिमर्दनः ॥ अवदत्त्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैस्समावृतः ॥ ४७ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ रेरे हरे महादेव शपथोल्लंघनं त्वया ॥ कथमद्य कृतं चित्ते गर्वः किमभवत्तव ॥ ४८ ॥ तव श्रीरुद्रशपथोल्लंघने शक्तिरस्ति किम् ॥ को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोस्ति जगत्त्रये ॥ ४९ ॥ अत्र त्वमागतः कस्माद्वयं तन्नैव विद्महे ॥ दक्षस्य यज्ञपातात्त्वं कथं जातोसि तद्वद ॥ ५० ॥ दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्टं किमु त्वया ॥ प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्न किमु त्वया ॥ ५१ ॥ त्वञ्चापि दक्षयज्ञेस्मिन्नवदानार्थमागतः ॥ अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज ॥ ५२ ॥ वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव ॥ कस्तवास्ति समायातो रक्षकोद्य ममांतिकम् ॥ ५३ ॥ पातयिष्यामि भूपृष्ठे ज्वालयिष्यामि वह्निना ॥ दग्धं भवंतमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम् ॥ ५४ ॥ रेरे हरे दुराचार महेशविमुखाधम ॥ श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम् ॥ ५५ ॥

क्या तुमभी इस दक्षके यज्ञमें कुत्सित दानके निमित्त आयेहो हे महाभुज ! मैं आपको इसका कुत्सित दान देताहूं ॥ ५२ ॥ हे हरे ! त्रिशूलसे मैं तुम्हारी छातीको विदीर्ण करदूंगा जो तुम्हारा कोई रक्षक हो वह मेरे समीप आवै ॥ ५३ ॥ मैं तुमको पृथिवीमें पटककर पृथिवीमें प्रज्वालित करदूंगा और तुमको जलाकर पीसडालूंगा ॥ ५४ ॥ हे दुराचारी ! हरे महेशसे विमुख अधम क्या तुम महेश्वरके पवित्र माहात्म्यको नहीं जानते ॥ ५५ ॥

तो भी तुम महाभुज होकर युद्धकी कामना कर आगे हुए हो यदि तुम स्थित रहोगे तो मैं तुमको ऐसे स्थानमें भेजूंगा कि लौटना न पडै ॥ ५६ ॥
ब्रह्माजी बोले सुरेश्वर बुद्धिमान् विष्णुजी वीरभद्रके वचन सुनकर हंसते हुए बोले ॥ ५७ ॥ विष्णुजी बोले हे वीरभद्र ! सुनो मैं तुमसे तत्त्वसे कहताहूं
मुझ शंकरके सेवकको तुम रुद्रसे विमुख मत जानो ॥५८॥ इस दक्षने यज्ञके लिये वारंवार प्रार्थना की थी यह कर्मनिष्ठ तो है पर इसने मूर्खता की॥५९॥
मैं भक्तोंके पराधीन हूं और महेश्वर भी भक्ताधीन हैं हे तात ! दक्ष मेरा भक्त है इससे मैं यज्ञमें आयाहूं ॥ ६० ॥ हे रुद्रकोपसे उत्पन्न वीर तुम मेरी

अथापि त्वं महाबाहो योद्धुकामोग्रतः स्थितः ॥ नेष्यामि पुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ॥ ५६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा
वीरभद्रस्य बुद्धिमान् ॥ उवाच विहसन् प्रीत्या विष्णुस्तत्र सुरेश्वरः ॥ ५७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः ॥
न रुद्रविमुखं मां त्वं वद शंकरसेवकम् ॥ ५८ ॥ अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनःपुनः ॥ दक्षेणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः
॥ ५९ ॥ अहं भक्तपराधीनस्तथा सोपि महेश्वरः ॥ दक्षो भक्तो हि मे तात तस्मादत्रागतो मखे ॥ ६० ॥ शृणु प्रतिज्ञां मे वीर रुद्रको
पसमुद्भव ॥ रुद्रतेजस्स्वरूपो हि सुप्रतापालयं प्रभो ॥ ६१ ॥ अहं निवारयामि त्वां त्वं च मां विनिवारय ॥ तद्भविष्यति यद्भावि
करिष्येऽहं पराक्रमम् ॥ ६२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ॥ अवदत्सुप्रसन्नोस्मि त्वां ज्ञात्वास्मत्प्र
भोः प्रियम् ॥ ६३ ॥ ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ प्रश्रयावनतोवादीद्विष्णुं देवं हि तत्त्वतः ॥ ६४ ॥ ॥ वीरभद्र
उवाच ॥ तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो ॥ इदानीं तत्त्वतो वच्मि शृणु त्वं सावधानतः ॥ ६५ ॥

प्रतिज्ञाको सुनो तुम रुद्रके तेजसे उत्पन्न हो और प्रभु प्रतापके स्थान हो ॥ ६१ ॥ मैं तुमको और तुम मुझको निवारण करो जो होना होगा सो होगा मैं
पराक्रम करूंगा ॥६२॥ ब्रह्माजी बोले जब गोविन्दने ऐसा कहा तब वह महाभुज वीरभद्र बोला मैं तुमको अपने प्रभुका प्रिय जानकर प्रसन्न हूं ॥६३॥
फिर गणोंमें अग्रणी वीरभद्र प्रसन्न होकर नम्रतापूर्वक तत्त्वसे विष्णु देवतासे बोला ॥ ६४ ॥ वीरभद्रने कहा हे महाप्रभो ! तुम्हारे भावकी परीक्षाके निमित्तही

मैंने तुमसे वचन कहेथे इस समय जो मैं विचारसे कहूं वह तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ जैसे शिव वैसे तुम जैसे तुम तैसेही शिव हे हरे ! शिवकी
आज्ञासे वेद ऐसा कहते हैं ॥६६॥ शिवकी ही आज्ञासे हम सब उनके सेवक हैं तो भी हे रमानाथ ! आदरसे यह प्रवाद उचित है ॥६७॥ ब्रह्माजी बोले
वीरभद्रके यह वचन सुनकर भगवान् हँसतेहुए वीरभद्रसे यह वचन बोले ॥ ६८ ॥ विष्णुजी बोले हे महावीर ! मेरे साथ शंकारहित होकर युद्ध करो
मैं तुम्हारे अस्त्रोंसे पूर्ण होकर अपने स्थानको जाऊंगा ॥६९॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुजी ऐसा कहकर विरामको प्राप्त हो युद्धके लिये तत्पर हुए और महाबली

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ॥ इति वेदा वर्णयंति शिवशासनतो हरे ॥ ६६ ॥ शिवाज्ञया वयं सर्वे सेवकाः शंकरस्य
वै ॥ तथापि च रमानाथ प्रवादोचितमादरात् ॥ ६७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः ॥ प्रहस्य चेदं
प्रोवाच वीरभद्रमिदं वचः ॥ ६८ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ युद्धं कुरु महावीर मया सार्द्धमशंकितः ॥ तवास्त्रैः पूर्यमाणोहं गमिष्यामि
स्वमाश्रमम् ॥ ६९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा हि विरम्यासौ सन्नद्धोभूद्रणाय च ॥ स्वगणैर्वीरभद्रोपि सन्नद्धोथ महाबलः ॥ ७० ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे विष्णुवीरभद्रसम्वादो नाम षड्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मो
वाच ॥ वीरभद्रोथ युद्धे वै विष्णुना स महाबलः ॥ संस्मृत्य शंकरं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम् ॥ १ ॥ आरुह्य स्यंदनं दिव्यं सर्ववैरिवि
मर्दनः ॥ गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह ॥ २ ॥ विष्णुश्चापि महाघोषं पांचजान्याभिधन्निजम् ॥ दध्मौ बली महाशंखं स्व
कीयान् हर्षयन्निव ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा शंखनिर्ह्रादं देवा ये च पलायिताः ॥ रणं हित्वा गताः पूर्वं ते द्रुतं पुनराययुः ॥ ४ ॥ वीरभद्र
गणैस्तेषां लोकपालास्सवासवाः ॥ युद्धाञ्चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः ॥ ५ ॥

वीरभद्रभी अपने गणोंके साथ युद्धको तयार हुआ ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितांतर्गतद्वितीयसतीखंडे षाट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
ब्रह्माजी बोले तब महाबली वीरभद्र सब आपत्तिके निवारण करनेवाले शंकरको मनमें स्मरणकर विष्णुके साथ युद्धको तैयार हुआ ॥ १ ॥ सब वैरियोंको
मारनेवाला वह दिव्य रथपर चढकर परम अस्त्र ग्रहणकर सिंहनादसे गर्जने लगा ॥ २ ॥ इधर महाबली विष्णुजी अपने पक्षके देवताओंको प्रसन्न करते
हुए अपने पांचजन्य शंखका महा शब्द करने लगे ॥३॥ उस शंखका शब्द सुनकर देवता भागगयेथे वे शीघ्र संग्रामस्थलमें आये ॥ ४ ॥ तब वे इन्द्रादि

सब लोकपाल भी बडे ऊंचे स्वरसे सिंहनादकर वीरभद्रके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ सिंहनादकर गर्जते हुए गण और लोकपालोंका बडा भयंकर युद्ध हुआ ॥६॥ नन्दीसे इन्द्रका अनलसे वैष्णवोंका और कूष्माण्डपति महाबली कुबेरसे युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ उस समय सौपर्ववाले वज्रसे इन्द्रने नन्दीको ताडन किया ॥ ८ ॥ नन्दीने त्रिशूलद्वारा इन्द्रकी छातीमें आघात किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार दोनों बली बडे उत्साहसे परस्पर युद्ध करने लगे नन्दी और इन्द्र जीतनेकी इच्छासे अनेक प्रकारके प्रहार करनेलगे ॥ १० ॥ परम कोपन स्वभाववाले अग्निने शक्तिसे अश्माको ताडन किया उसने भी बडे वेगसे सौधारवाले शूलसे अग्निपर प्रहारकिया ॥ ११ ॥ यमके साथ महालोक नामक गणका संग्राम होने लगा यह वीर प्रसन्नतासे महादेवको स्मरण करके संग्राम करनेलगा ॥ १२ ॥ बलवान् चंडने नैर्ऋतके संग आनकर उसको बंचना करते हुए परम अस्त्रोंसे युद्ध आरम्भ किया ॥ १३ ॥ वरुणके साथ वीरमुंडका संग्राम होने लगा यह त्रिलोकीको विस्मय करते हुए परमशक्तिसे संग्राम करनेलगे ॥ १४ ॥ वायुने अपने परम अस्त्रसे भृंगीपर प्रहार किया और भृंगीने बडे प्रतापी शूलसे वायुपर प्रहार किया ॥ १५ ॥ तब कूष्माण्डपतिने बडे उत्साहसे हृदयमें महेश्वरका ध्यान करके बडेवेगसे कुबेरके साथ युद्ध आरम्भ

गणानां लोकपालानां द्वन्द्वयुद्धं भयावहम् ॥ अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः ॥ ६ ॥ नन्दिना ययुधे शक्रोऽनलो वै वैष्णवास्तथा ॥ कुबेरोपि हि कूष्मांडपतिश्च युयुधे बली ॥ ७ ॥ तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ॥ ८ ॥ नन्दिना च हतश्शक्रस्त्रिशूलेन स्तनांतरे ॥ ९ ॥ बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम् ॥ नानाघातांश्च कुर्वंतौ नन्दिशक्रौ जिगीषया ॥ १० ॥ शक्त्या जघान चाश्मानं शुचिः परमकोपनः ॥ सोपि शूलेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम् ॥ ११ ॥ यमेन सह संग्रामं महालोको गणाग्रणीः ॥ चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन्मुदा ॥ १२ ॥ नैर्ऋतेन समागम्य चंडश्चबलवत्तरः ॥ युयुधे परमास्त्रैश्च नैर्ऋतिं निविडं बयन् ॥ १३ ॥ वरुणेन समं वीरो मुंडश्चैव महाबलः ॥ युयुधे परया शक्त्या त्रिलोकीं विस्मयन्निव ॥ १४ ॥ वायुना च हतो भृंगीस्वास्त्रेण परमोजसा ॥ भृंगिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना ॥ १५ ॥ कुबेरेणैव संगम्य कूष्मांडपतिरादरात् ॥ युयुधे बलवान् वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम् ॥ १६ ॥

किया ॥ १६ ॥ योगिनी चक्रके सहित भैरवीनायकने सब देवताओंको विद्रावित कर उनका रुधिर पान करना आरम्भ किया ॥ १७ ॥ इसी प्रकार क्षेत्रपाल भी देवताओंको भक्षण करनेलगे काली भी उनको विदीर्णकर उनका रुधिर पान करनेलगी ॥१८॥ इधर महातेजस्वी विष्णुजी भी युद्ध करनेलगे और दशों दिशाओंको भस्म करतेहुए उन्होंने अपने चक्रका प्रहार किया ॥ १९ ॥ तब क्षेत्रपालोंने वेगसे उस चक्रको आता देखकर वह महावीर वहां सहसा सम्मुख उपस्थित हुए और उस चक्रको ग्रास करलिया ॥ २० ॥ शत्रुओंके पुर जीतनेवाले विष्णुजीने उस चक्रको ग्रसित हुआ देखकर उसका मुख

योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान् ॥ विदार्य्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भुतम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रपालास्तथा तत्र बभुक्षुः सुरपुंगवान् ॥ काली चापि विदार्यैव तान्पपौ रुधिरं बहु ॥ १८ ॥ अथ विष्णुर्महातेजा युयुधे तैश्च शत्रुहा ॥ चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्निव दिशो दश ॥ १९ ॥ क्षेत्रपालस्समायांतं चक्रमालोक्य वेगतः ॥ तत्रागत्यागतो वीरश्चाग्रसत्सहसा बली ॥ २० ॥ चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुरंजयः ॥ मुखं तस्य परामृज्य तमुद्गालितवानरिम् ॥ २१ ॥ स्वचक्रमादाय महानुभावश्चुकोप चातीव भवैकभर्त्ता ॥ महाबली तैर्युयुधे प्रवीरैस्सक्रुद्धनानायुधधारकोस्त्रैः ॥ २२ ॥ चक्रे महारणं विष्णुस्तैस्सार्द्धं युयुधे मुदा ॥ नानायुधानि संक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम् ॥ २३ ॥ अथ ते भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः ॥ नानास्त्राणि विमुंचंतस्संक्रुद्धाः परमोजसा ॥ २४ ॥ इत्थं तेषां रणं दृष्ट्वा हरिणातुलतेजसा ॥ विनिवृत्य समागम्य तान्स्वयं युयुध बली ॥ २५ ॥ अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः ॥ युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधवः ॥ २६ ॥

पकडकर उस चक्रको उगलवालिया ॥ २१ ॥ तब वह संसारके एक स्वामी अपना चक्र लेकर बडे क्रोधित हुए और वह महाबली अनेक प्रकारके अस्त्र और आयुध धारण करके बडे क्रोधसे युद्ध करनेलगे ॥ २२ ॥ उनसे उत्साहके साथ युद्ध करतेहुए विष्णुने बडा क्रोधकिया और अनेक आयुधोंको निःक्षेप करके भयंकर युद्ध किया ॥ २३ ॥ भैरवादिक अनेक उनके साथ युद्ध करनेलगे और परम क्रोधकर अनेक प्रकारके शस्त्र त्यागने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार उनका युद्ध देखकर भगवान्भी लौटकर फिर उनके संग युद्ध करनेलगे ॥ २५ ॥ तब विष्णुजी महाक्रोधकर चक्र उठाय परम वेगसे वीरभद्रके

साथ युद्ध करनेलगे ॥ २६ ॥ उन दोनोंका महाघोर रोमहर्षण युद्ध हुआ विष्णुजी उस समय अनेक अस्त्रोंका प्रहार करनेलगे ॥ २७ ॥ विष्णुकी देहमेंसे योगबलके कारण शंख चक्र गदा हाथमें लिये असंख्य वीर प्रगट हुए ॥ २८ ॥ वे सब विष्णुजीकी समान महाबली अनेक प्रकारके आयुध धारण किये वीरभद्रके संग युद्ध करनेलगे ॥ २९ ॥ वे महावीर नारायणकी समान प्रभाववालेथे वीरभद्रने शंकरको स्मरणकर उन सबको शूलसे भस्म करदिया ॥ ३० ॥ उसी समय महाबली वीरभद्रने अपने त्रिशूलसे विष्णुको युद्धमें प्रहार किया ॥ ३१ ॥ उस घातसे सहसा पुरुषोत्तम भगवान् ताडित हुए, हे मुने ! हरि उस

तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥ महावीराब्धिपत्योस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने ॥ २७॥ विष्णोर्योगबलात्तस्य देहादेव सुदारुणाः ॥ शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे ॥ २८॥ ते चापि युयुधुस्तेन वीरभद्रेण भाषता ॥ विष्णुवत् बलवंतो हि नानायुधधरा गणाः ॥ २९ ॥ तान्सर्वानपि वीरोसौ नारायणसमप्रभान् ॥ भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्त्वा शिवं प्रभुम् ॥ ३० ॥ ततश्चोरसि तं विष्णुं लीलयैव रणाजिरे ॥ जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबली ॥ ३१ ॥ तेन घातेन सहसा विहतः पुरुषोत्तः ॥ पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोभून्मुने हरिः ॥ ३२ ॥ ततो यज्ञोद्भुतं तेजः प्रलयानलसन्निभम् ॥ त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम्॥३३॥ क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्त्थाय स प्रभुः ॥ प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत्पुरुषर्षभः ॥ ३४ ॥ तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम् ॥ व्यष्टंभयददीनात्मा वीरभद्रश्शिवः प्रभुः ॥ ३५ ॥ मुने शंभोः प्रभावात्तु मायेशस्य महाप्रभोः ॥ न चचाल हरेश्चक्रं करस्थं स्तंभितं ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

आघातसे सहसा मूर्च्छितहो भगवान् पृथिवीपर गिरे ॥ ३२ ॥ उससमय वीरोंको भयदेनेवाला प्रलय अग्निकी समान त्रिलोकीके दाह करनेवाला तेज प्रगट हुआ ॥ ३३ ॥ और क्रोधसे लाल नेत्रकर श्रीमान् महाप्रभु फिर उठकर महाक्रोधकर फिर चक्र उठाकर मारनेको उद्यतहुए ॥ ३४ ॥ वीरभद्र शिवप्रभुने महात्मासे कालादित्यकी समान कान्तिमान् उस चक्रको स्तंभित करदिया ॥ ३५ ॥ महाप्रभु मायेश शंकरके प्रभावसे विष्णुके हाथमें स्थित वह सुदर्शन

चक्र स्तंभितहोगया ॥ ३६ ॥ उस समय महावीर गणेश्वर वीरभद्रके द्वारा स्तंभित हुए विष्णुजी भगवान् निश्चल पर्वतकी समान स्थित हुए ॥ ३७ ॥ हे नारदजी ! जब विष्णुजीको वीरभद्रने स्तंभित किया, तब यज्ञके मंत्रसे स्तंभन कारण मुक्तहुआ ॥ ३८ ॥ जब शार्ङ्गधनुषधारी उस स्तंभनसे मुक्त होकर अपना शार्ङ्ग धनुष उठाते हुए और उसपर बाण चढाया ॥ ३९ ॥ हरिके उस शार्ङ्गधनुषसे निकले तीन बाणोंसे वीरभद्र ताडित हुए हे तात ! वीरभद्रने उनको तीन प्रकारसे छेदनकरदिया ॥ ४० ॥ तब मैंने और सरस्वतीने उससमय विष्णुजीको उस गणके विषयमें समझाया और वीरभद्रजीको असह्य कान्तिवाला

अथ विष्णुर्गणेशेन वीरभद्रेण भाषता ॥ अतिष्ठत्स्तंभितस्तेन शृंगवानिव निश्चलः ॥ ३७ ॥ ततो विष्णुः स्तंभितो हि वीरभद्रेण नारद ॥ यज्वोपमंत्रणमना नीरस्तंभनकारकम् ॥ ३८ ॥ ततस्स्तंभननिर्मुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः ॥ शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुस्स शरं मुने ॥३९॥ त्रिभिश्च धर्षितो बाणैस्तेन शार्ङ्गं धनुर्हरेः ॥ वीरभद्रेण तत्तात त्रिधाभूत्तत्क्षणान्मुने ॥ ४० ॥ अथ विष्णुर्मया वाण्या बोधितस्तं महागणम् ॥ असह्यवर्चसं ज्ञात्वा ह्यंतर्धातुं मनो दधे ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं भविष्यं सतीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम् ॥ गताः स्वलोकं स्वगणान्वितास्तु स्मृत्वा शिवं सर्वपतिं स्वतंत्रम् ॥ ४२ ॥ सत्यलोकगतश्चाहं पुत्रशोकेन पीडितः ॥ अचिंतयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै ॥ ४३ ॥ विष्णौ मयि गते चैव देवाश्च मुनिभिस्सह ॥ विनिर्जिता गणैस्सर्वे ये ते यज्ञोपजीविनः ॥ ४४ ॥ समुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम् ॥ मृगस्वरूपो यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रवे ॥ ४५ ॥ तं तदा मृगरूपेण धावंतं गगनं प्रति ॥ वीरभद्रस्समादाय विशिरस्कमथाकरोत् ॥ ४६ ॥

जानकर अन्तर्धान होनेकी इच्छा की ॥ ४१ ॥ तब यह सब बात जानकर कि सतीके मरणका दुःसह पापहै तब भगवान् विष्णु अपने स्वामी स्वतंत्र शंकरका स्मरण करते हुए अपने गणोंके सहित अपने लोकको गये ॥ ४२ ॥ मैं भी पुत्रशोकसे पीडित होकर सत्यलोकको चला आया और दुःखीहोकर सोचने लगा कि मैं अब क्या करूं ॥ ४३ ॥ जब मैं और विष्णुजी वहांसे चले आये तब वीरभद्रने यज्ञके सब देवता और मुनियोंको जीतलिया ॥ ४४ ॥ यह महाउपद्रव और यज्ञका विध्वंस देखकर यज्ञभी महाभयभीत हो मृगका रूप धारणकर वहांसे पलायमान हुआ ॥ ४५ ॥ जब वह मृगका रूप धारणकर

आकाशमार्गमें धावमान हुआ तब वीरभद्रने उसको ग्रहणकर उसका शिर छेदन करडाला ॥ ४६ ॥ तब प्रजापति, धर्म, कश्यप, अरिष्टनेमि, बहुपत्रमुनि ॥ ४७ ॥ तथा आंगिरस, कृशाश्वमुनिको वह महावीर ग्रहणकर इन महामुनिके शिरपर अपना चरण प्रहार किया ॥ ४८ ॥ सरस्वती देवमाताकी नासा छेदन करडाली, यह प्रतापी वीरभद्रने अपने हस्तलाघवसे ऐसा कार्य किया ॥ ४९ ॥ फिर औरभी देवताओंको विदीर्णकरके महाक्रोधितनेत्र हो वीरभद्रने पृथिवीपर गिरादिया ॥ ५० ॥ इस प्रकार वीरभद्र मुख्यदेवता और मुनियोंको विदीर्ण करके क्रोधित सर्पराजकी समान शांत न हुआ ॥५१॥ जिसप्रकार

ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः ॥ अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपत्रमुनीश्वरम् ॥ ४७ ॥ मुनिमांगिरसं चैव कृशाश्वं च महागणः ॥ जघान मूर्ध्नि पादेन दत्तं च मुनिपुंगवम् ॥ ४८ ॥ सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च ॥ चिच्छेद करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ ४९ ॥ ततोन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले ॥ पातयामास सोयं वै क्रोधाक्रांतातिलोचनः ॥ ५० ॥ वीभद्रो विदार्य्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि ॥ नाभूच्छांतो द्रुतक्रोधः फणिराडिव मंडितः ॥ ५१ ॥ वीरभद्रोद्धूतारातिः केसरीव वनद्विपान् ॥ दिशो विलोकयामास कः कुत्रास्तीत्यनुक्षणम् ॥ ५२ ॥ व्यपोथयद्भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान् ॥ पदाक्रम्योरसि तदाऽकार्षीत्तच्छ्मश्रुलुंचनम् ॥ ५३ ॥ चंडश्चोत्पाटयामास पूष्णो दंतान् प्रवेगतः ॥ शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ ५४ ॥ नन्दी भगस्य नेत्रे हि पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार स दक्षोक्ष्णा यश्शपंतमसूचत ॥ ५५ ॥ विडंबिता स्वधा तत्र सा स्वाहा दक्षिणा तथा ॥ मंत्रास्तंत्रास्तथा चान्ये तत्रस्था गणनायकैः ॥ ५६ ॥

सिंह वनके हाथियोंको भगाकर चारोंओर देखै इसप्रकार वीरभद्र देखने लगा ॥ ५२ ॥ जबतक मणिभद्र प्रतापीगणने भृगुजीको दबोचकर उनकी छातीपर पैर रखकर उनकी डाढी उखाडली ॥ ५३ ॥ और चंडने बडे वेगसे पूषाके दांत उखाड लिये कि तुमही हरके शप्यमान होनेपर पहले दांत खोलकर हंसे थे ॥ ५४ ॥ नन्दीने क्रोधकर भगदेवताके नेत्र निकाल लिये दक्षके कारण शंकरकी निन्दासे उसकी आंख उखाडी गई ॥५५॥ स्वधा स्वाहा दक्षिणा

मंत्र तंत्र जो कुछभीथे गणनायकोंने उनको प्रहारकिया ॥ ५६ ॥ और गणोंने क्रोधकर वितानाग्निपर पुरीषकी वर्षा की महावीरगणोंने उस यज्ञको अनिर्वाच्य करदिया ॥ ५७ ॥ यह दक्ष इस बली वीरभद्रके भयसे अन्तर्वेदीमें छिपगया जानकर वीरभद्र दक्षको वहांसे लेआया ॥ ५८ ॥ तब कपोलको ग्रहणकर वीरभद्रने उसके शिरपर खड्गका प्रहार किया परन्तु योगके प्रभावसे उसका शिर अभेद होगया ॥ ५९ ॥ जब शस्त्रअस्त्रोंसे उसका शिर अभेद जाना तब उसके हृदयमें चरण रखकर हाथसे इसका शिर नोच लिया ॥ ६० ॥ शंकरके वैरी दुष्ट उस दक्षका शिर महागण वीरभद्रने अग्निकुंडमें डालदिया ॥ ६१ ॥

ववृषुस्ते पुरीषाणि वितानाऽग्नौ रुषा गणाः ॥ अनिर्वाच्यं तदा चक्रुर्गणा वीरास्तमध्वरम् ॥ ५७ ॥ अंतर्वेद्यंतरगतं निलीनं तद्भया द्बलात् ॥ आनिनाय समाज्ञाय वीरभद्रश्च भूसुतम् ॥ ५८ ॥ कपोलेस्य गृहीत्वा तु खड्गेनोपहतं शिरः ॥ अभेद्यमभवत्तस्य तच्च योग प्रभावतः ॥ ५९ ॥ अभेद्यं तच्छिरो मत्वा शस्त्रास्त्रैश्च तु सर्वशः ॥ करेण त्रोटयामास पद्भ्यामाक्रम्य चोरसि ॥ ६० ॥ तच्छिरस्तस्य दुष्टस्य दक्षस्य हरवैरिणः ॥ अग्निकुंडे प्रचिक्षेप वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ ६१ ॥ रेजे तदा वीरभद्रस्त्रिशूलं भ्रामयन्करे ॥ क्रुद्धा रणाक्षसंवर्ताः प्रज्वाल्य पर्वतोपमाः (?) ॥ ६२ ॥ अनायासेन हत्वैतान् वीरभद्रस्ततोग्निना ॥ ज्वालयामास सक्रोधो दीप्ताग्निश्शलभा निव ॥ ६३ ॥ वीरभद्रस्ततो दग्धान्दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान् ॥ अट्टाट्टहासमकरोत्पूरयश्च जगत्त्रयम् ॥ ६४ ॥ वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दनसंभवा ॥ पुष्पवृष्टिरभूद्दिव्या वीरभद्रे गणान्विते ॥ ६५ ॥ ववुर्गंधवहाश्शीतास्सुगन्धास्सुखदाः शनैः ॥ देवदुंदुभयो नेदुस्सम मेव ततः परम् ॥ ६६ ॥

तब उससमय हाथसे त्रिशूल घुमातेहुए वीरभद्रने रणमें बडी शोभा पाई और युद्धकी संवर्तअग्नि पर्वतकी समान इसको क्रोधकर जलानेलगी ॥ ६२ ॥ इसप्रकार वीरभद्रने अनायासही इन सबको प्रदीप्त अग्निमें शलभकी समान भस्मकरना आरंभ किया ॥ ६३ ॥ तब वीरभद्रने दक्षआदि सबको भस्मकरके तीनों जगत्को पूर्णकरनेके लिये बडा अट्टहास किया ॥ ६४ ॥ उस समय वह वीरभद्र लक्ष्मीसे आवृत हुआ और वीरभद्रके ऊपर नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा होनेलगी और सब गण प्रसन्नहुए ॥ ६५ ॥ सुखदायक शीतल सुगंधसनी पवन चलनेलगी और उसीसमय देवताओंकी दुंदुभी बजने लगीं ॥ ६६ ॥

इसके उपरान्त कृतकार्य होकर वह वीर कैलासपर्वतको गया और सूर्यकी समान सब अंधकार दूर करादिया ॥ ६७ ॥ वीरभद्रको कृतकार्य देखकर संतुष्टहो परमेश्वरने वीरभद्रको गणेश्वर करादिया ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गताद्वितीयसतीखंडे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले महाबुद्धिमान् विधाताके यह वचन सुनकर द्विजोत्तम नारदजी प्रेमसे विस्मितहो पूछने लगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्माजी ! शिवजीके विना विष्णुजी दक्षके यज्ञमें कैसे चलेगये इस कारणको आप हमारे आगे प्रकाश कीजिये ॥ २ ॥ क्या हरि शंकरका प्रलयकी समान पराक्रम नहीं जानतेथे

कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्य्यस्ततः परम् ॥ विनाशितदृढध्वांतो भानुमानिव सत्वरम् ॥ ६७ ॥ कृतकार्य्यं वीरभद्रं दृष्ट्वा संतुष्टमानसः ॥ शंभुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वीतीये सतीखंडे यज्ञविध्वंसवर्णनो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विधेरमितधीमतः ॥ पप्रच्छ नारदः प्रीत्या विस्मितस्तं द्विजोत्तमः ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ शिवं विहाय दक्षस्य सुरैर्यज्ञं हरिर्गतः ॥ हेतुना केन तद् ब्रूहि यत्रावज्ञाऽभवत्ततः ॥ २ ॥ जानाति किं स शंभुं नो हरिः प्रलयविक्रमम् ॥ रणं कथं च कृतवान् तद्गुणैरबुधो यथा ॥ ३ ॥ एष मे संशयो भूयांस्तं छिंधि करुणानिधे ॥ चरितं ब्रूहि शंभोस्तु चित्तोत्साहकरं प्रभो ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्विजवर्य शृणु प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः ॥ यत्पृच्छते कुर्वतश्च सर्वसंशयहारकम् ॥ ५ ॥ दधीचस्य मुनेः शापाद्भ्रष्टज्ञानो हरिः पुरा ॥ सामरो दक्षयज्ञं वै गतः क्षुवसहायकृत् ॥ ६ ॥ ॥ नारद उवाच॥ किमर्थं शप्तवान्विष्णुं दधीचो मुनिसत्तमः ॥ कोपाकारः कृतस्तस्य हरिणा तत्सहायिना ॥ ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ समुत्पन्नो महातेजा राजा क्षुव इति स्मृतः ॥ अभून्मित्रं दधीचस्य मुनीन्द्रस्य महाप्रभोः ॥८ ॥

और अपंडितकी समान उनके गुण न जानकर कैसे युद्ध किया ॥ ३ ॥ हे करुणानिधे ! यह मुझे बडा संदेहहै सो आप इसको छेदन कीजिये हे प्रभो ! चित्तमें उत्साह करनेवाले शंकरके चरित्रको आप कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रेमसे शंकरके चरित्रको सुनो जो पूछनेवालेके सब संदेह दूर करताहै ॥ ५ ॥ पहले दधीचके शापसे हरिका ज्ञान भ्रष्ट होगयाथा इससे वह दक्षकी सहायता करनेवाले दक्षके यज्ञमें आये ॥ ६ ॥ नारदजी बोले मुनिश्रेष्ठ दधीचने विष्णुजीको कैसे शाप दियाथा उनके सहायक हरिने उनको कैसे क्रोध दिवाया ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले एक महातेजस्वी राजा क्षुव था और वह

महातेजस्वी दधीचका मित्र था ॥ ८ ॥ कुछ कालमें तपके प्रसंगसे क्षुव और दधीचका विवाद हुआ वह महाअनर्थ करनेवाला त्रिलोकीमें विख्यात हुआ॥९॥
वेदके जाननेवाले शिवके भक्त दधीचने कहा कि ब्राह्मण तीनो वर्णोंसे श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ महामुनि दधीचके यह वचन सुनकर श्रीके मदसे मोहित होकर
क्षुव बोला ॥ ११ ॥ क्षुव बोला राजा आठ लोकपालोंका शरीर धारण करता है इसकारण वर्णआश्रमका पति राजा परमश्रेष्ठहै ॥ १२ ॥ यह श्रुति कहतीहै
कि, राजा सम्पूर्ण देवमयहै जो महादेवताहै हे मुने ! सो मैं हूं ॥ १३ ॥ हे च्यवनपुत्र ! इसकारण यंह बात विचारो कि राजा बडा होताहै राजाका कभी

चिरात्तपःप्रसंगाद्वै वादः क्षुवदधीचयोः ॥ महानर्थकरः ख्यातस्त्रिलोकेष्वभवत्पुरा ॥ ९ ॥ तत्र त्रिवर्णतः श्रेष्ठो विप्र एव न संशयः ॥
इति प्राह दधीचो हि शिवभक्तस्तु वेदवित् ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दधीचस्य महामुनेः ॥ क्षुवः प्राहेति नृपतिः श्रीमदेन विमो
हितः॥११॥ क्षुव उवाच ॥ अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ तस्मान्नृपो वरिष्ठो हि वर्णाश्रमपतिः प्रभुः ॥१२॥ सर्वदेवमयो
राजा श्रुतिः प्राहेति तत्परा ॥ महती देवता या सा सोहमेव ततो मुने ॥ १३ ॥ तस्माद्विप्राद्वरो राजा च्यवनेय विचार्यताम् ॥ नावमं
तव्य एवातः पूज्योहं सर्वथा त्वया ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुवस्य मुनिसत्तमः ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धं तं चुकोपा
तीव भार्गवः ॥ १५ ॥ अथ क्रुद्धो महातेजा गौरवाच्चात्मनो मुने ॥ अताडयत्क्षुवं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टितः ॥ १६ ॥ वज्रेण तं च
चिच्छेद दधीचं ताडितः क्षुवः ॥ जगर्ज्जातीव संक्रुद्धो ब्रह्मांडाधिपतिः कुधीः ॥१७॥ पपात भूमौ निहतो तेन वज्रेण भार्गवः ॥ शुक्रं
सस्मार क्षुवकृद्भार्गवस्य कुलंधरः ॥१८॥ शुक्रोथ संधयामास ताडितं च क्षुवेन तु॥ योगी दधीचस्य तदा देहमागत्य स द्रुतम्॥१९॥

निरादर न करना चाहिये मैं सर्वथा तुम्हारा पूज्य हूं ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले यह क्षुवके वचन सुनकर उस मुनि श्रेष्ठने यह श्रुतिस्मृतिके विरुद्ध जानकर
उसपर बडा कोपकिया ॥ १५ ॥ तब महातेजस्वी दधीचने अपने गौरवसे महाक्रोधकर बायां घूंसा क्षुवके शिरमें मारा ॥ १६ ॥ क्षुवने ताडित होकर
दधीचपर वज्रका प्रहार किया और वह ब्रह्माण्डके अधिपतिने बडे वेगसे गर्जना की ॥ १७ ॥ भार्गव दधीच उस वज्रसे ताडितहो पृथिवीमें गिरपडे और
भार्गवने राजाके निमित्त शुक्रका स्मरण किया ॥१८॥ शुक्रने तत्काल आकर क्षुवके प्रहारके संधानको ठीक करदिया अर्थात् दधीचयोगीका शरीर॥ १९॥

पूर्ववत् ठीक करदिया कारण कि वह शिवके भक्तोंमें अग्रणी और मृत्युंजय विद्याको प्रवर्तक हैं ॥ २० ॥ शुक्र बोले हे तात दधीच ! सर्वेश्वर शंकरका पूजन करके महामृत्युंजय वैदिकमंत्र मैं तुमको देताहूं उसको कहताहूं ॥ २१ ॥ त्रिलोकीके पिता श्रेष्ठ शंकरका यजन करतेहैं जो तीनमंडलके पितर त्रिगुण महेश्वरहैं ॥ २२ ॥ तीनतत्त्व तीनअग्नि तीनप्रकारसे तीन देव तीनबाहु तथा तीनप्रकारसे स्थितहैं ॥ २३ ॥ वह तीन देवताओंके महादेव सुगंधि और पुष्टिके बढानेवालेहैं सब भूतोंमें सर्वत्र तीनगुणोंमें सत्की समानहैं ॥ २४ ॥ सब इन्द्रिय तथा दूसरे देवतागणों पुष्पोंमें सुगंधिकी समान शूर सुगंधियुक्त

संधाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः ॥ शिवभक्ताग्रणीर्मृत्युंजयविद्याप्रवर्तकः ॥ २० ॥ शुक्र उवाच ॥ दधीच तात
संपूज्य शिवं सर्वेश्वरं प्रभुम् ॥ महामृत्युंजयं मंत्रं श्रौतमग्र्यं वदामि ते ॥ २१ ॥ त्र्यम्बकं यजामहे त्रैलोक्यं पितरं प्रभुम् ॥ त्रिमं
डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥२२॥ त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः॥ त्रिदिवस्य त्रिबाहोश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः॥२३॥
त्रिदेवस्य महादेवस्सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणेषु कृतौ यथा ॥ २४ ॥ इन्द्रियेषु तथान्येषु देवेषु च गणेषु च ॥
पुष्पे सुगंधिवत्सूरस्सुगंधिममरेश्वरः ॥ २५ ॥ पुष्टिश्च प्रकृतेर्यस्मात्पुरुषाद्वै द्विजोत्तम ॥ महदादिविशेषांतविकल्पश्चापि सुव्रत ॥
॥ २६ ॥ विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने ॥ इन्द्रियस्य च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्द्धनः ॥ २७ ॥ तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा
तपसापि वा ॥ स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च प्रजायते॥२८॥ सत्येनान्येन सूक्ष्माग्रान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम् ॥ बंधमोक्षकरो यस्मा
दुर्वारुकमिव प्रभुः ॥ २९ ॥ मृतसंजीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः ॥ एवं जपपरः प्रीत्या नियमेन शिवं स्मरन् ॥ ३० ॥

परमेश्वरहै ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिसप्रकार कि, प्रकृतिसे पुष्टि होतीहै हे सुव्रत ! महदादिसे विशेष पर्यन्त उसीसे विकल्पहै ॥ २६ ॥ हे महामुने ! विष्णु और महामुनियोंका भी वह पितामहहै तथा देवताओंकी इन्द्रियोंकी भी पुष्टि करताहै इसकारण उसको पुष्टिवर्द्धन कहतेहैं ॥ २७ ॥ उस देव अमृतरूप रुद्रकर्म वा तपसे स्वाध्याययोग और ध्यानसे प्रकटकरतेहैं ॥ २८ ॥ वह सत्यसे सूक्ष्म मृत्युपाशोंको छेदन करते अर्थात् सत्यसे बंधको उर्वारुक (फल विशेष) की समान मोक्षकरतेहैं इससे प्रभु हैं ॥ २९ ॥ यह मेरा मृतसंजीवनी मंत्र सबसे उत्तमहै नियमपूर्वक शिवको स्मरतेहुए इस मंत्रका जपकरो ॥ ३० ॥

इसके जपहोमके साथ अभिमंत्रण करके जलपान करो रातदिन शंकरके समीप स्थितहो ध्यानकरनेसे मृत्युका भय नहीं है ॥ ३१ ॥ सब न्यासादि कर विधिपूर्वक शंकरका पूजन इसप्रकार कर निर्व्यग्रहोकर भक्तवत्सल शंकरका ध्यान करो ॥ ३२ ॥ मैं इसका ध्यान कहताहूं जो करके मंत्र जपाजायगा जिस प्रकार शंकरके प्रभावसे मंत्र सिद्ध होजाय ॥ ३३ ॥ दोनो कमलसे हाथोंसे घटको उठाकर शिरके ऊपर जल छोडते हुए और दो हाथोंसे अपनी गोदीमें घट धरेहुए रुद्राक्षकी माला मृग और कमल हाथमें लिये शिरमें स्थितचन्द्रमासे निकलते हुए अमृतसे आर्द्रशरीर मृत्युंजय तीननेत्र शंकरको भवानीसहित

जप्त्वा हुत्वाभिमंत्र्यैवं जलं पिब दिवानिशम् ॥ शिवस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं क्वचित् ॥ ३१ ॥ कृत्वा न्यासादिकं सर्वं संपूज्य विधिवच्छिवम् ॥ संविधायेदं निर्व्यग्रश्शंकरं भक्तवत्सलम्॥३२॥ ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा जपेन्मनुम् ॥ सिद्धमंत्रो भवेद्धीमान् यावच्छंभुप्रभावतः॥३३॥ हस्तांभोजयुगस्थकुंभयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरस्सिंचंतं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुंभौ करौ ॥ अक्षस्रङ्मृगहस्तमंबुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उपदिश्येति शुक्रः स्वं दधीचिं मुनिसत्तमम् ॥ स्वस्थानमगमत्तात संस्मरञ् शंकरं प्रभुम् ॥ ३५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दधीचो हि महामुनिः ॥ वनं जगाम तपसे महाप्रीत्या शिवं स्मरन् ॥ ३६ ॥ तत्र गत्वा विधानेन महामृत्युंजयाभिधम् ॥ तं मनुं प्रजपन्प्रीत्या तपस्तेपे शिवं स्मरन् ॥३७॥ तन्मनुं सुचिरं जप्त्वा तपसाराध्य शंकरम् ॥ शिवं संतोषयामास महामृत्युंजयं हि सः ॥ ३८ ॥ अथ शंभुः प्रसन्नात्मा तज्जपाद्भक्तवत्सलः ॥ आबिर्बभूव पुरतस्तस्य प्रीत्या महामुने ॥ ३९ ॥ तं दृष्ट्वा स्वप्रभुं शंभुं स मुमोद मुनीश्वरः ॥ प्रणम्य विधिवद्भक्त्या तुष्टाव सुकृतांजलिः ॥ ४० ॥

स्मरण करताहूं ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे दधीचजीसे शुक्राचार्यने उपदेशकर शंकरको स्मरण करतेहुए अपने स्थानको गमन किया ॥ ३५ ॥ उनके यह वचन सुनकर महामुनि दधिचजीने महाप्रीतिसे शंकरको स्मरणकर तपके निमित्त वनको गमन किया ॥ ३६ ॥ वहां जाकर विधिपूर्वक प्रेमसे महामृत्युंजयमंत्र जपतेहुए शिवका स्मरण करते और वनको गमन किया ॥ ३७ ॥ वहां बहुतकालतक उस मंत्रको जपते हुए महामृत्युंजयके आराधनसे शंकरको स्मरण किया ॥ ३८ ॥ तब भक्तवत्सल शंकर उस मंत्रसे प्रसन्न हो प्रेमसे उस मुनिके आगे प्रकट हुए ॥ ३९ ॥ महामुनि अपने प्रभु शंकरको

देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वा विधिपूर्वक भक्तिसे प्रणामकर हाथ जोड स्तुति करनेलगे ॥ ४० ॥ हे मुनि ! तब दधीच ऋषिपर शंकर परम प्रसन्न हो प्रसन्नचित्तसे वर माँगनेके लिये बोले ॥ ४१ ॥ भक्तश्रेष्ठ दधीचजी शंकरके यह वचन सुन हाथ जोड भक्तवत्सल शंकरसे बोले ॥ ४२ ॥ दधीच बोले हे देवदेव ! महादेव ! आप मुझे तीन वर दीजिये मेरी वज्रकी समान अस्थि होजांय सबसे अवध्यहूं और सर्वथा दीन न हूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले ऋषिके वचन सुनकर शंकर बडे प्रसन्न हुए और तथास्तु कहकर शंकरने उसको तीन वर दिये ॥ ४४ ॥ शिवसे तीन वर पाकर मुनि बडे आनंदको प्राप्त हुए और

अथ प्रीत्या शिवस्तात प्रसन्नश्च्यावनिं मुने ॥ वरं ब्रूहीति स प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ४१ ॥ तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं दधीचो भक्तसत्तमः ॥ सांजलिर्नतकः प्राह शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ ४२ ॥ दधीच उवाच ॥ ॥ देवदेव महादेव मह्यं देहि वरत्रयम् ॥ वज्रास्थित्वादवध्यत्वमदीनत्वं हि सर्वतः ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तदुक्तवचनं श्रुत्वा प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ वरत्रयं ददौ तस्मै दधीचाय तथास्त्विति ॥ ४४ ॥ वरत्रयं शिवात्प्राप्य सानंदश्च महामुनिः ॥ क्षुवस्थानं जगामाशु वेदमार्गे प्रतिष्ठितः ॥ ४५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्राप्यावध्यत्वमुग्रात्स वज्रास्थित्वमदीनताम् ॥ अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्द्धनि ॥४६॥ क्षुवो दधीचं वज्रेण जघानोरस्यथो नृपः॥ क्रोधं कृत्वा विशेषेण विष्णुगौरवगर्वितः ॥ ४७ ॥ नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः ॥ प्रभावात्परमेशस्य धातृपुत्रो विसिस्मिये॥४८॥दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च वज्रस्य चात्यंतपरप्रभावम् ॥ क्षुवो दधीचस्य मुनीश्वरस्य विसिस्मिये चेतसि धातृपुत्रः॥४९॥

वेदमार्गमें प्रतिष्ठित होकर शीघ्रही क्षुवके स्थानमें प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे वह ऋषि शंकरसे अवध्यत्व और उग्रत्व पाकर फिर जाकर उस राजाके शिरपर चरणका प्रहार किया ॥ ४६ ॥ तब राजाने दधीचकी छातीमें वज्रका प्रहार किया यह विष्णुके गौरवके कारण राजाने विशेष क्रोध किया ॥ ४७ ॥ उसके लगनेसे महात्मा दधीचकी कुछ भी हानि न हुई यह सब शंकरका प्रभाव था विधाताका पुत्र उससे बडे विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ उस महाप्रभाववाले वज्रसे उसको अदीनता प्राप्त होने और अवध्यत्व प्राप्त होनेसे महामुनिकी दृढता देखकर क्षुव बडे विस्मयको प्राप्त

हुआ ॥ ४९ ॥ उसने हरि मुकुन्द इन्द्रके अनुज दीनोंके पालक नारायणका वनमें जाकर आराधन किया कि मृत्युंजयका सेवक दधीच मुझसे परास्त होजाय ॥ ५० ॥ भगवान् मधुसूदन उसके तपसे सन्तुष्ट हुए और गरुडध्वजने अपना दिव्य दर्शन उनको दिखाया ॥ ५१ ॥ जनार्दनदेवका दिव्य दर्शन देखकर सुन्दर वाणीसे गरुडध्वजकी स्तुति करनेलगा ॥ ५२ ॥ देवता आदिके सहित उनका पूजन करके अजेय ईश्वरकी स्तुति करके परम भक्तिसे विज्ञापना की और भक्तिपूर्वक प्रेमसे प्रणाम किया ॥ ५३ ॥ राजा बोला हे भगवन् ! कोई दधीचनामक ब्राह्मण है वह धर्मका ज्ञाता विनीत

आराधयामास हरिं मुकुन्दमिन्द्रानुजं काननमाशु गत्वा ॥ प्रपन्नपालश्च पराजितो हि दधीचमृत्युंजयसेवकेन ॥ ५० ॥ पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान् मधुसूदनः ॥ प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥ दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम् ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम् ॥५२॥ सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम् ॥ विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ ५३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ भगवन् ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः ॥ धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत् ॥ ५४ ॥ अवध्यस्सर्वदा सर्वैश्शंकरस्य प्रभावतः ॥ तमाराध्य महादेवं मृत्युंजयमनामयम् ॥ ५५ ॥ सावज्ञं वामपादेन मम मूर्ध्नि सदस्यपि ॥ ताडयामास वेगेन स दधीचो महातपाः ॥ ५६ ॥ उवाच तं च गर्वेण न बिभेमीति सर्वतः ॥ मृत्युंजयात्त सुवरो गर्वितो ह्यतुलं हरिः ॥ ५७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ज्ञात्वा दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः ॥ सस्मारास्य महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः ॥ ५८ ॥

आत्मा पहले मेरा मित्र था ॥ ५४ ॥ वह शंकरके प्रभावसे अब सदा अवध्य है उसने मृत्युंजय अनामय शंकरदेवकी आराधन कीहै ॥५५॥ उसने सभाके बीचमें अवज्ञापूर्वक मेरे शिरपर बायें चरणका प्रहार किया वह महातपसे गर्वितहै ॥ ५६ ॥ और गर्वसे उसने मुझसे कहा कि मैं कहींसे भी नहीं डरताहूं हे हरि ! वह मृत्युंजयका वर प्राप्तकर गर्वसे महाअभिमानी होरहा है ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार महात्मा दधीचका अवध्यत्व श्रवण करके हरिने

उसको महेश्वरका अतुल प्रभाव स्मरण कराया ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शंकरको स्मरणकर हरिने क्षुवसे कहा हे राजन् ! ब्राह्मणोंको कहीं भी किसीसे भय नहीं है ॥ ५९ ॥ हे भूपते ! विशेषकर शंकरके भक्तोंको कहीं भी भय नहीं है उनको दुःख देनेसे मुझे और देवताओंको शाप होताहै ॥ ६० ॥ हे राजन् ! दक्षके यज्ञमें उस ऋषिके शापसे मेरा विनाश और पुनः उत्थान होना है ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इसकारणसे सब यज्ञोंमें वा कार्योंमें साहस नहीं किया जाता पर मैं दधीचके विजयके लिये कोई यत्न करताहूं ॥ ६२ ॥ यह वचन सुनकर क्षुवने कहा ऐसाही होगा और बडे प्रेमसे उस कामनाके लिये उसने वहाँ

एवं स्मृत्वा हरिः प्राह क्षुवं विधिसुतं द्रुतम् ॥ विप्राणां नास्ति राजेन्द्र भयमण्वपि कुत्रचित् ॥ ५९ ॥ विशेषाद्रुद्रभक्तानां भयं नास्ति च भूपते ॥ दुःखं करोति विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे ॥ ६० ॥ भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरेश्वरात् ॥ विनाशो मम राजेन्द्र पुनरुत्थानमेव च ॥ ६१ ॥ तस्मात्समेत्य राजेन्द्र सर्वयज्ञो न भूयते ॥ करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते ॥ ६२ ॥ श्रुत्वा वाक्यं क्षुवः प्राह तथास्त्विवति हरेर्नृपः ॥ तस्थौ तत्रैव तत्प्रीत्या तत्कामोत्सुकमानसः ॥ ६३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे क्षुवदधीचवादवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्षुवस्य हितकृत्येन दधीचस्याश्रमं ययौ ॥ विप्ररूपमथास्थाय भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ दधीचं प्राह विप्रर्षिमभिवंद्य जगद्गुरुः ॥ क्षुवकार्य्यार्थमुद्युक्तश्शैवेन्द्रं छलमाश्रितः ॥ २ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भोभो दधीच विप्रर्षे भवार्चनरताव्यय ॥ वरमेकं वृणे त्वत्तस्तद्भवान् दातुमर्हति ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ याचितो देवदेवेन दधीचश्शैवसत्तमः ॥ क्षुवकार्यार्थिना शीघ्रं जगाद वचनं हरिम् ॥ ४ ॥

स्थिति की ॥ ६३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयरातीखंडे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले भक्तवत्सल भगवान् शिवकी प्रसन्नताके निमित्त ब्राह्मणरूप धारणकर दधीचके आश्रममें गये ॥ १ ॥ जगद्गुरुने दधीचको प्रणाम करके कहा उस समय छलसे शिवके कार्यके निमित्त विष्णुजी उद्यत हुए ॥ २ ॥ विष्णुजी बोले हे दधीच ब्रह्मर्षि ! हे शंकरके पूजनमें तत्पर ! हे अविनाशी ! मैं तुमसे एक वर मांगता हूं सो आप मुझे दीजिये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले जब देवदेवने ऋषिश्रेष्ठसे इसप्रकारकी याचना की तब शिवके कार्य करनेवाले हरिसे दधीच बोले ॥ ४ ॥

दधीच बोले हे विप्रर्षे ! मैं तुम्हारे भावको जानगया कि तुम शिवके कार्यके निमित्त आये हो आप मायासे ब्राह्मणरूप धारण करके आये हो साक्षात् हरि हो ॥ ५ ॥ हे देवेश ! हे जनार्दन ! जो भूत भविष्यत् वर्तमान है यह तीन कालका ज्ञान शंकरकी कृपासे मुझे सदा प्राप्त है ॥ ६ ॥ मैं आपको हरि विष्णु जानताहूं आप यह रूप त्यागदीजिये दुष्टबुद्धि क्षुवने आपकी आराधना की है यह भी मैं जानताहूं ॥ ७ ॥ हे हरे ! मैं आपकी भक्तवत्सलताको भी जानता हूं छलत्यागकर शंकरको स्मरणकर अपना पूर्वरूप धारण करो ॥ ८ ॥ शंकरके पूजन करतेहुये मुझे यदि कहींसे भय होय तो सत्यधारणपूर्वक

दधीच उवाच ॥ ज्ञातं तवेप्सितं विप्र क्षुवकार्यार्थमागतः ॥ भगवान् विप्ररूपेण मायी त्वमसि वै हरिः ॥५॥ भूतं भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन ॥ ज्ञानं प्रसादाद्रुद्रस्य सदा त्रैकालिक मम ॥ ६ ॥ त्वां जानेहं हरिं विष्णुं द्विजत्वं त्यज सुव्रत ॥ आराधितोसि भूपेन क्षुवेण खलबुद्धिना ॥ ७ ॥ जाने तवैव भगवन् भक्तवत्सलतां हरे ॥ छलं त्यज स्वरूपं हि स्वीकुरु स्मर शंकरम् ॥ ८ ॥ अस्ति चेत्कस्यचिद्भीतिर्भवार्चनरतस्य मे ॥ वक्तुमर्हसि यत्नेन सत्यधारणपूर्वकम् ॥ ९ ॥ वंदामि न मृषा क्वापि शिवस्मरणसक्तधीः ॥ न बिभेमि जगत्यस्मिन्देवदैत्यादिकादपि ॥ १० ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ॥ भयं दधीच सर्वत्र नष्टं च तव सुव्रत ॥ भवार्चनरतो यस्माद्भवान्सर्वज्ञ एव च ॥ ११ ॥ बिभेमीति सकृद्वक्तुमर्हसि त्वं नमस्तव ॥ नियोगान्मम राजेन्द्र क्षुवात् प्रतिसहस्य च ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं विष्णोस्स तु महामुनिः ॥ विहस्य निर्भयः प्राह दधीचश्शैवसत्तमः ॥ १३ ॥ दधीच उवाच ॥ न बिभेमि सदा क्वापि कुतश्चिदपि किंचन ॥ प्रभावाद्देवदेवस्य शंभोस्साक्षात्पिनाकिनः ॥ १४ ॥

आप यत्नसे मुझसे कहैं ॥ ९ ॥ शंकरको स्मरण करतेहुए मैं कभी असत्य नहीं बोलताहूं और इस जगत्में देवता दैत्य किसीसे भी मैं नहीं डरता ॥१०॥ विष्णुजी बोले हे सुव्रत ! हे दधीच ! सब ओरसे तुम्हारा भय नष्ट होगया है और शंकरके पूजनसे तुम सर्वज्ञ भी हो ॥ ११ ॥ पर हम तुमको नमस्कार करते हैं आप एकवार यह क्षुवराजाके पास जाकर यह कह दीजिये कि मैं तुमसे डरता हूं ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले वह महामुनि विष्णुके इस प्रकारके वचन सुनकर शैवश्रेष्ठ दधीच ऋषि हँसतेहुये निर्भय हो बोले ॥ १३ ॥ दधीच बोले मैं कभी किसीसे कहीं भी नहीं डरता यह सब भगवान् पिनाकी

साक्षात् शंकरका प्रभाव है ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले ऋषिके यह वचन सुन विष्णुजी महाकुपित हुये और मुनिके भस्म करनेकी इच्छासे अपना चक्र उठाया ॥ १५ ॥ राजाके समीपमें देखते हुए ही भगवान्का वह कठिन चक्र शंकरके प्रभावसे कुंठित होगया ॥ १६ ॥ उस चक्रको कुंठितहुआ देखकर दधीचने साक्षात् सद् असद् व्यक्तिके कारण विष्णुसे हँसतेहुए कहा ॥ १७ ॥ दधीचने कहा, विष्णुजी आपने तो बडे प्रयत्नसे यह दारुण सुदर्शन चक्र पायाथा ॥

ब्रह्मोवाच ॥ ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः ॥ चक्रमुद्यम्य संतस्थौ दिधक्षुर्मुनिसत्तमम् ॥ १५ ॥ अभवत्कुंठितं तत्र विप्रे चक्रं सुदारुणम् ॥ प्रभावाच्च तदीशस्य नृपतेस्संनिधावपि ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा तं कुंठितास्यं तच्चक्रं विष्णुं जगाद ह ॥ दधीचस्स स्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम् ॥ १७ ॥ दधीच उवाच ॥ ॥ भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम् ॥ सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णोः प्रयत्नतः ॥ भवस्य तच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह ॥ १८ ॥ भगवानथ क्रुद्धोस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः ॥ ब्रह्मास्त्राद्यैः शरैश्चास्त्रैः प्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स तस्य वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्य्यमानुषम् ॥ ससर्जाथ क्रुधा तस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः ॥ २० ॥ चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोस्साहाय्यमादरात् ॥ द्विजेनैकेन संयोद्धुं प्रसृतस्य विबुद्धयः ॥ २१ ॥

॥ १८ ॥ इसकारण यह शिवजीका दियाहुआ चक्र मुझको बाधा नहीं देसकता तब हरि भगवान्ने क्रोधकर उसपर सब अस्त्रोका प्रहार किया दधीचने कहा यह क्या आप ब्रह्मअस्त्र आदिका प्रहार कीजिये ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले हरिने उसके यह वचन सुनकर उसको निर्वीर्य मनुष्य जानकर क्रोधकर उसके ऊपर सम्पूर्ण शस्त्र चलाये ॥ २० ॥ और देवताओंने भी उत्साहसे विष्णुकी सहायता की एक ब्राह्मणसे युद्ध करनेको सबने अपनी बुद्धि चलाई ॥ २१ ॥

और सबनेही अपने अपने अस्त्र शस्त्र चलाये इन्द्रादि हरिके पक्षपाती देवताओंने दधीचपर प्रहार किया ॥ २२ ॥ दधीचजीने शंकरको स्मरण करते हुए कुशाकी मुट्ठी उठाकर सब देवताओंका प्रहार बचानेके लिये वज्रोंकी अस्थिकी रचना की ॥ २३ ॥ शिवजीके प्रभावसे मुनिकी वह कुशाओंकी मुट्ठी कालाग्निकी समान दिव्य त्रिशूल होगई ॥ २४ ॥ तब वह परमशैव दधीचका त्रिशूल सब ओरसे जलताहुआ प्रलयाग्निकी समान आयुध और शिखासहित देवताओंकी जलानेकी इच्छा करने लगा ॥ २५ ॥ नारायण चन्द्र इन्द्र जिन मुख्य देवताओंने अनेक अस्त्र शस्त्र छोडे थे उन सबने दधीचऋषिके शूलको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तब पराक्रम नष्ट होजानेसे सब देवता भागने लगे केवल मायाजाननेवालोंमें श्रेष्ठ हरिही तहां स्थित रहे ॥ २७ ॥ तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपनी देहसे अपनी समान दिव्य लक्षणवाले सहस्रोंगण प्रकटकिये ॥२८॥ हे नारदजी ! शिवात्मावाले इकले दधीचऋषिके संग वे सब वीर अस्त्र शस्त्र लेकर युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार विष्णुके गण बहुत कालतक संग्राम करके थकगये शैवश्रेष्ठ दधीचने उन सबको भस्म करदिया ॥ ३० ॥ तब हरिने दधीचऋषिको विस्मय प्रकट करनेके निमित्त महामायाके आश्रित हो शीघ्रही विश्वमूर्त्ति धारण की ॥ ३१ ॥

चिक्षिपुः स्वानि स्वान्याशु शस्त्राण्यस्त्राणि सर्वतः ॥ दधीचोपरि वेगेन शक्राद्या हरिपाक्षिकाः ॥ २२ ॥ कुशमुष्टिमथादाय
दधीचस्संस्मरञ् शिवम् ॥ ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थि सर्वतो वशी ॥ २३ ॥ शंकरस्य प्रभावात्तु कुशमुष्टिर्मुनेर्हि सा ॥ दिव्यं
त्रिशूलमभवत् कालाग्निसदृशं मुने ॥ २४ ॥ दग्धुं देवान् मतिं चक्रे सायुधां सशिखं च तत् ॥ प्रज्वलत्सर्वतश्शैवं युगांताग्न्य
धिकप्रभम् ॥ २५ ॥ नारायणेन्दुमुख्यैस्तु देवैः क्षिप्तानि यानि च ॥ आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं च तत् ॥२६॥ देवाश्च दुद्रुवु
स्सर्वे ध्वस्तवीर्या दिवौकसः ॥ तस्थौ तत्र हरिर्भीतः केवलं मायिनां वरः ॥ २७ ॥ ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः ॥
आत्मनस्सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गणान् ॥ २८ ॥ ते चापि युयुधुस्तत्र वीरा विष्णुगणास्ततः ॥ मुनिनैकेन देवर्षे दधीचेन
शिवात्मना ॥ २९ ॥ ततो विष्णुगणान् तान्वै नियुध्य बहुशो रणे ॥ ददाह सहसा सर्वान् दधीचश्शैवसत्तमः ॥ ३० ॥ ततस्तद्वि
स्मयार्थाय दधीचस्य मुनेर्हरिः ॥ विश्वमूर्तिरभूच्छीघ्रं महामायाविशारदः ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ दधीचने उस समय विष्णुके शरीरमें देवता और सहस्रों जीवोंका दर्शन किया ॥ ३२ ॥ करोडों भूतगण, और करोडों अण्डकटाह उस विश्वमूर्त्तिके शरीरमें दिखाई दिये ॥ ३३ ॥ दधीचऋषिने यह सब देखकर जगत्पति जगत्के स्तुतियोग्य अज अविनाशी विष्णुसे कहा ॥ ३४ ॥ दधीच बोले हे महाबाहो ! तुम मायाको त्यागन करो विचारसे यह सब प्रतिभास है हे माधव ! मैं सहस्रों कठिनाईसे जाननेयोग्य पदार्थोंको जानताहूं ॥ ३५ ॥ मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूं तुम सावधान होकर मुझमें सब जगत् ब्रह्मा और रुद्रके सहित देखो ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कह ऋषिने अपने शरीरमें

तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद्द्विजसत्तमः ॥ दधीचो देवतादीनां जीवानां च सहस्रकम् ॥ ३२ ॥ भूतानां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तथा ॥ अंडानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा ॥३३॥ दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिस्सततं तदा ॥ विष्णुमाह जगन्नाथं जगत्स्तुवमजं विभुम् ॥ ३४ ॥ दधीच उवाच ॥ मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासो विचारतः ॥ विज्ञातानि सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव ॥ ३५ ॥ मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया युक्तमतंद्रितः ॥ ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः ॥ ब्रह्मांडं च्यावनिश्शंभुतेजसा पूर्णदेहकः ॥ ३७ ॥ ददाह विष्णुं देवेशं दधीचश्शैवसत्तमः ॥ संस्मरञ् शंकरं चित्ते विहसन् विभयस्सुधीः ॥ ३८ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ मायया त्वनया किं वा मंत्रशक्त्याथ वा हरे ॥ सत्कामायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः ॥ ३९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा मुनेस्तस्य वचनं निर्भयस्तदा ॥ शंभुतेजोमयं विष्णुश्चुकोपातीव तं मुनिम् ॥ ४० ॥ देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम् ॥ योद्धुकामाश्च मुनिना दधीचेन प्रतापिना ॥ ४१ ॥

शिवजीके तेजसे पूर्णदेह हो सब ब्रह्माण्ड दिखाया ॥ ३७ ॥ और शैवश्रेष्ठ दधीचजी शिवजीको स्मरण करते मनमें हँसते निर्भय श्रेष्ठबुद्धिके सहित विष्णुजीको प्रज्वलित करने लगे ॥ ३८ ॥ दधीचने कहा इस माया वा मंत्रशक्तिसे क्या है आप श्रेष्ठ कामनाकर यत्नके साथ युद्ध कीजिये ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार उन मुनिके निर्भय वचन सुनकर शिवके तेजरूप विष्णुने मुनिपर बडा कोप किया ॥ ४० ॥ देव नारायणके साथ दधीचमुनि

महा प्रतापीको युद्धकी कामनासे स्थित देखकर सब देवता भागने लगे ॥ ४१ ॥ इसीसमय वहांपर क्षुवके संगमें मैं आया और निश्चेष्ट देवता तथा हरिको उस कार्यसे निवारण किया ॥ ४२ ॥ और मैंने कहा यह ब्राह्मण नहीं जीतागया तब विष्णुजीने मुनिराजके निकट जाकर प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और क्षुवभी महादीन हो मुनिके निकट जाकर व्याकुल हो प्रणाम कर दधीचकी प्रार्थना करने लगा॥४४॥ क्षुव बोला हे शिवके भक्तोंमें शिरमौर मुनिश्रेष्ठ! आप प्रसन्न हूजिये हे परमेशान! प्रसन्न हो दुर्जन आपको जाननेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार राजा और सब देवताओंके वचन

एतस्मिन्नंतरे तत्रागमन्मत्संगतः क्षुवः ॥ अवारयं तं निश्चेष्टं पद्मनाभं हरिं सुरान् ॥ ४२ ॥ निशम्य वचनं मे हि ब्राह्मणो न विनिर्जितः ॥ जगाम निकटं तस्य प्रणनाम मुनिं हरिः ॥ ४३ ॥ क्षुवो दीनतरो भूत्वा गत्वा तत्र मुनीश्वरम् ॥ दधीचमभिवाद्यैव प्रार्थयांमास विक्लवः ॥ ४४ ॥ ॥ क्षुव उवाच ॥ प्रसीद मुनिशार्दूल शिवभक्तशिरोमणे ॥ प्रसीद परमेशान दुर्लक्ष्ये दुर्जनैस्सह ॥ ४५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राज्ञस्सुरणगस्य हि ॥ अनुजग्राह तं विप्रो दधीचस्तपसां निधिः ॥ ४६ ॥ अथ दृष्ट्वा रमेशादीन् क्रोधविह्वलितो मुनिः ॥ हृदि स्मृत्वा शिवं विष्णुं शशाप च सुरानपि ॥ ४७ ॥ दधीच उवाच ॥ रुद्रकोपाग्निना देवास्सदेवेंद्रा मुनीश्वराः ॥ ध्वस्ता भवंतु देवेन विष्णुना च समं गणैः ॥ ४८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं शप्त्वा सुरान् प्रेक्ष्य क्षुवमाह ततो मुनिः ॥ देवैश्च पूज्यो राजेन्द्र नृपैश्चैव द्विजोत्तमः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः ॥ इत्युक्त्वा स स्फुटं विप्रः प्रविवेश निजाश्रमम् ॥ ५० ॥

सुनकर तपस्वी दधीचजीने उन सबके ऊपर कृपा की ॥ ४६ ॥ पर विष्णुआदिको देखकर मुनिको बडा क्रोध हुआ हृदयमें शंकरको स्मरणकर ऋषिने विष्णु और देवताओंको शाप दिया ॥ ४७ ॥ दधीच बोले इन्द्रादिदेवता और मुनीश्वरोंके सहित विष्णुजी अपने गणोंके सहित रुद्रकी कोपाग्निसे ध्वस्त हो जायँगे ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार देवता आदिको शाप देकर क्षुवको देखकर मुनिने कहा, हे राजेन्द्र! आपने जाना कि ब्राह्मण और देवता राजाओंसे भी पूज्य हैं ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र! ब्राह्मणही बली और समर्थ होते हैं यह स्पष्ट कहकर ऋषिने अपने आश्रममें प्रवेश किया ॥ ५० ॥

दधीचको प्रणाम कर क्षुव भी अपने आश्रममें गया और विष्णुजी देवताओंके साथ अपने लोकको गये ॥ ५१ ॥ वह स्थान उससमयसे स्थानेश्वर (थानेश्वर) तीर्थ हुआ यहां शंकरका दर्शन कर यह मनुष्य शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ यह आपसे क्षुव और दधीचका विवाद संक्षेपपूर्वक कहा इस प्रकार राजाके कारणसे उनको शाप मिला ॥ ५३ ॥ जो इस क्षुव दधीचके वादको नित्य कीर्तन करतेहैं वह अकालमृत्युको जीतकर अन्तमें ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥५४॥ जो इसको कीर्तनकर युद्धमें प्रवेश करताहै उसको मृत्युका भय नहीं होता और वह विजयी होताहै॥५५॥

दधीचमभिवंद्यैव क्षुवो निजगृहं गतः ॥ विष्णुर्जगाम स्वं लोकं सुरैस्सह यथागतम् ॥ ५१ ॥ तदेवं तीर्थमभवत् स्थानेश्वर इति स्मृतम् ॥ स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ कथितस्तव संक्षेपाद्वादः क्षुवदधीचयोः ॥ नृपात्तशापयोस्तात ब्रह्मविष्णवोः शिवं विना ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्त्तयेन्नित्यं वादं क्षुवदधीचयोः ॥ जित्वापमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः ॥ ॥ ५४ ॥ रणे यः कीर्तयित्वेदं प्रविशेत्तस्य सर्वदा ॥ मृत्युभीतिर्भवेन्नैव विजयी च भविष्यति ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुदधीचयुद्धवर्णनो नाम नवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विधे विधे महाप्राज्ञ शैवतत्त्वप्रदर्शक ॥ श्राविता रमणीप्राया शिवलीला महाद्भुता ॥ १ ॥ वीरेण वीरभद्रेण दक्षयज्ञं विनाश्य वै ॥ कैलासाद्रौ गते तात किमभूत्तद्वदाधुना ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ देवगणास्सर्वे मुनयश्च पराजिताः ॥ रुद्रानीकैर्विभिन्नांगा मम लोकं ययुस्तदा ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गताद्वितीयसतीखंडे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ नारदजी बोले हे महाभाग ब्रह्माजी हे शिवतत्त्वके प्रवृत्त करनेवाले ! आपने यह महाअद्भुत परम मनोहर शिवकी लीला मुझै सुनाई ॥ १ ॥ जिस समय वीरभद्रने दक्षका यज्ञ विनाश किया और वह कैलासको चला गया उस समय क्या हुआ ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले उस समय सब देवता और मुनि पराजित होकर रुद्रकी सेनासे छिन्न भिन्न अंगहो मेरे

लोकको गये ॥ ३ ॥ मुझ ब्रह्माजीको नमस्कारकर और मेरी बडी स्तुति करके अपना सब क्लेश विशेषकर वर्णन किया ॥ ४ ॥ यह सब सुनकर मैं
दक्षकी मृत्युसे बडा शोकित हुआ और दुःखी चित्तसे व्याकुल हो सोचने लगा ॥ ५ ॥ इससमय मैं देवताओंके सुखके निमित्त शीघ्रतासे क्या करूं जिससे
यह दक्ष जीजाय और यज्ञ पूर्ण होजाय ॥ ६ ॥ हे मुने ! ऐसा बहुत विचार करनेसे भी मुझे शान्ति प्राप्त न हुई उससमय भक्तिसे विष्णुका स्मरण
करनेसे यथोचित ज्ञान पाया ॥ ७ ॥ तब देवता और मुनियोंको साथ लेकर मैं विष्णुलोकको गया और बडी स्तुतिकरके मैंने उनसे सब दुःख निवेदन

स्वयंभुवे नमस्कृत्य मह्यं संस्तूय भूरिशः ॥ तत्स्वक्लेशं विशेषेण कार्त्स्न्येनैव न्यवेदयन् ॥ ४ ॥ तदाकर्ण्य ततोहं वै पुत्रशोकेन पी
डितः ॥ अचिन्तयमतिव्यग्रो दूयमानेन चेतसा ॥ ५ ॥ किं कार्य्यं कार्यमद्याशु मया देवसुखावहम् ॥ येन जीवतु दक्षोसौ मखः
पूर्णो भवेत्पुनः ॥ ६ ॥ एवं विचार्य बहुधा नालभं शमहं मुने ॥ विष्णुं तदा स्मरन् भक्त्या ज्ञानमाप्तं तदोचितम् ॥ ७ ॥ अथ देवैश्च
मुनिभिर्विष्णोर्लोकमहं गतः ॥ नत्वा नुत्वा च विविधैस्स्तवैर्दुःखं न्यवेदयम् ॥ ८ ॥ यथाध्वरः प्रपूर्णः स्याद्देव यज्ञकरश्च सः ॥
सुखिनस्स्युस्सुरास्सर्वे मुनयश्च तथा कुरु ॥ ९ ॥ देव देव रमानाथ विष्णो देवसुखावह ॥ वयं त्वच्छरणं प्राप्तास्सदेवमुनयो ध्रुवम्
॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणस्स रमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा शिवात्मा दीनमानसः ॥ ११ ॥
॥ विष्णुरुवाच ॥ तेजीयसि न सा भूता कृतागसि बुभूषताम् ॥ तत्र क्षेमाय बहुधा बुभूषा हि कृतागसाम् ॥ १२ ॥ कृतपापास्सुरा
स्सर्वे शिवे हि परमेश्वरे ॥ परादद्दुर्यज्ञभागं तस्य शंभोर्विधे यतः ॥ १३ ॥

किया ॥ ८ ॥ जिस प्रकारसे उस देवयज्ञ करनेवालेका यज्ञ पूर्ण होजाय देवता मुनि सब सुखी होजांय आप वैसा करैं ॥ ९ ॥ हे देवदेव रमानाथ !
देवताओंके सुख देनेवाले विष्णुजी ! हम देवता मुनियोंके सहित आपकी शरणमें प्राप्त हुएहैं ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुजी इस प्रकारसे मेरे वचन सुनकर
वह दीनहो शिवको स्मरणकर शिवात्मा होकर बोले ॥ ११ ॥ विष्णुजी बोले यदि तेजस्वीका अपराध किया जाय तो फिर नम्रता उनके लिये भूषण
नहीं, हां अपराधियोंपर क्षमाही बडे पुरुषोंका भूषण है ॥ १२ ॥ शिव परमेश्वरका सब देवताओंने अपराध कियाहै जो कि इन सबने उन शंकरको

यज्ञभाग नहीं दिया ॥ १३ ॥ तुम सब देवता शुद्धचित्तसे भगवान् शंकरको प्रसन्नकरो और शिवके चरणकमल पकडो तौ वे प्रसन्न होंगे ॥ १४ ॥ जिन शंकरके कोप करनेपर सब जगत् नष्ट होजाता है लोकपाल यक्ष सब उनहींके शासनसे जीवित होते हैं ॥ १५ ॥ उन देवको जो इससमय प्रियासे विहीन हैं दक्षने बडी दुरुक्तियोंसे वेधित किया है उनसे वह अपराध क्षमा कराओ ॥ १६ ॥ हे विधाताजी यही उनकी शांतिका परम उपाय है मैं इसीसे शंभुका संतोष मानताहूं यह मैंने सत्यही कहा है ॥१७॥ मैं तुम तथा दूसरे देवता और मुनि कोई भी उसके बलवीर्यका पराक्रम नहीं जानसकते ॥१८॥

प्रसादयध्वं सर्वे हि यूयं शुद्धेन चेतसा ॥ अथापरप्रसादं तं गृहीतांघ्रियुगं शिवम् ॥ १४ ॥ यस्मिन् प्रकुपिते देवे विनश्यत्यखिलं जगत् ॥ सलोकपालयज्ञस्य शासनाज्जीवितं द्रुतम् ॥ १५ ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं च दुरुक्तिभिः ॥ क्षमापयध्वं हृद्विद्धं दक्षेण सुदुरात्मना ॥ १६ ॥ अयमेव महोपायस्तच्छांत्यै केवलं विधे ॥ शंभोस्संतुष्टये मन्ये सत्यमेवोदितं मया ॥ १७ ॥ नाहं न त्वं सुराश्चान्ये मुनयोपि तनूभृतः ॥ यस्य तत्त्वं प्रमाणं च न विदुर्बलवीर्ययोः ॥ १८ ॥ आत्मतंत्रस्य तस्यापि परस्य परमात्मनः ॥ क उपायं विधित्सेद्वै परं मूढं विरोधिनम् ॥ १९ ॥ चलिष्येहमपि ब्रह्मन् सर्वैः सार्द्धं शिवालयम् ॥ क्षमापयामि गिरिशं कृतागाश्च शिवे ध्रुवम् ॥ २० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थमादिश्य विष्णुर्मां ब्रह्माणं सामरादिकम् ॥ सार्द्धं देवैर्मतिं चक्रे तद्गिरौ गमनाय सः ॥ २१ ॥ ययौ स्वधिष्ण्यनिलयं शिवस्याद्रिवरं शुभम् ॥ कैलासं सामरमुनिप्रजेशादिमयो हरिः ॥ २२ ॥ अतिप्रियं प्रभोर्नित्यं सुजुष्टं किन्नरादिभिः ॥ नरेतरैरप्सरोभिर्योगसिद्धैर्महोन्नतम् ॥ २३ ॥

तथापि स्वाधीन परम परमात्मासे विरोध करके कौन उपाय करसकता है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्माजी! सबके साथ मैं भी कैलासको चलता हूं और अपना अपराध शिवजीसे क्षमा करावैं ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे मुझे और सब देवताओंको समझाकर विष्णुजीने देवताओंसहित कैलासमें जानेकी इच्छा की ॥ ॥ २१ ॥ उस समय भगवान् विष्णुजी देवता मुनि और प्रजापतियोंके सहित शिवके कलासपर्वतपर गये ॥ २२ ॥ जो प्रभुका स्थान नित्यप्रिय है किन्नरा

दिसे सेवित है देवता अप्सरा योगासिद्ध जनोंसे महा उन्नतिको प्राप्त है ॥ २३ ॥ चारों ओर अनेक मणिमय श्रृंगोंसे व्याप्त है अनेक धातुओंसे विचित्र अनेक द्रुमलताओंसे सम्पन्न है ॥ २४ ॥ अनेक मृगगणोंसे व्याप्त अनेक पक्षियोंसे संयुक्त अनेक जलोंके टपकानेवाले झरनोंसे तथा अमर सिद्धोंकी योषाओंसे व्याप्त ॥ २५ ॥ अनेक पर्वतकी कन्दराओंमें अपने प्यारोंसे विहार करती हुई जो अनेक प्रकारके लता वृक्षोंसे सम्पन्न और चांदीकी समान कांतिमान् ॥ २६ ॥ व्याघ्र आदि महाजीवोंसे सेवित जिन जीवोंने क्रूरता त्यागन करदी है जो सब शोभाओंसे युक्त महादिव्य तथा महाविस्मयका करने

नानामणिमयैश्श्रृंगैः शोभमानं समंततः ॥ नानाधातुविचित्रं वै नानाद्रुमलताकुलम् ॥ २४ ॥ नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिसमन्वितम् ॥ नानाजलप्रस्रवणैरमरैस्सिद्धयोषिताम् ॥ २५ ॥ रमणैर्विहरंतीनां नानाकंदरसानुभिः ॥ द्रुमजातिभिरन्याभी राजितं राजतप्रभम् ॥ २६ ॥ व्याघ्रादिभिर्महासत्त्वैर्निर्घुष्टं क्रूरतोज्झितम् ॥ सर्वशोभान्वितं दिव्यं महाविस्मयकारकम् ॥ २७ ॥ पर्यस्तं गंगया सत्यास्थानपुण्यतरोदया ॥ सर्वपावनसंकर्त्र्या विष्णुपद्या सुनिर्मलम् ॥ २८ ॥ एवंविधं गिरिं दृष्ट्वा कैलासाख्यं शिवप्रियम् ॥ ययुस्ते विस्मयं देवा विष्णवाद्यास्समुनीश्वराः ॥ २९ ॥ तत्समीपेऽलकां रम्यां ददृशुर्नाम ते पुरीम् ॥ कुबेरस्य महादिव्यां रुद्रमित्रस्य निर्जराः ॥ ३० ॥ वनं सौगंधिकं चापि ददृशुस्तत्समीपतः ॥ सर्वद्रुमान्वितं दिव्यं यत्र तन्नादमद्भुतम् ॥ ३१ ॥ तद्बाह्यतस्तस्य दिव्ये सरितावतिपावने ॥ नंदा चालकनंदा च दर्शनात्पापहारिके ॥ ३२ ॥ पपुः सुरस्त्रियो नित्यमवगूह्य स्वलोकतः ॥ विगाह्य पुंभिस्तास्तत्र क्रीडंति रतिकर्शिताः ॥ ३३ ॥

वाला है ॥ २७ ॥ गंगासतीसे सब ओरसे वेष्टित पुण्यरूप उदयवाला है सबका पवित्र करनेवाला तथा विष्णुपदीसे निर्मल है ॥ २८ ॥ इसप्रकार कैलास नामक शिवके प्रियपर्वतको देखकर विष्णुआदि देवता मुनीश्वर सब विस्मयको प्राप्तहुए ॥ २९ ॥ उसीके समीपमें उन्होंने परम मनोहर अलकापुरी देखी जो रुद्रके मित्र कुबेरकी महादिव्य अलकापुरी है ॥ ३० ॥ उसके समीपमें उन्होंने सुगन्धित वन देखा, जो सब वृक्षोंसे युक्त दिव्य अनेक नादोंसे अद्भुत था ॥ ३१ ॥ उसके बाहर दो परम दिव्य नदी बहतीहैं वह नन्दा अलकनन्दा नदी दर्शनसे पाप हरनेवाली हैं ॥ ३२ ॥ देवस्त्रियां अपने लोकसे आकर

उसका जल पान करती हैं और रतिसे कर्शित होकर पुरुषोंके साथ क्रीडा करती हैं ॥ ३३ ॥ यक्षेश्वरकी पुरी और सुगन्धित वनको छोडकर वे देवता
आगे बढे और वहां उन्होंने शिवजीका वट देखा ॥ ३४ ॥ जिसके चारोंओर अचल छायाथी एकचरणसे प्रगट सौ योजनका जिसका घेरा पक्षियोंके
घोंसलोंसे रहित तापवर्जित ॥ ३५ ॥ पुण्यात्माओंके देखने योग्य बडा मनोहर और श्रेष्ठ साक्षात् शिवजीका योगस्थल दिव्ययोगियोंसे सेवित परम मनोहर
॥ ३६ ॥ मुमुक्षुओंको शरण देनेवाले उस महायोगमय वृक्षके नीचे बैठेहुए सब देवताओंने शंकरको देखा ॥ ३७ ॥ शिवभक्तिमें तत्पर विधाताके

हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगंधिकं च यत् ॥ गच्छंतस्ते सुरा आराद्ददृशुश्शांकरं वटम् ॥ ३४ ॥ पर्यक्कृताचलच्छायं पादोनविटपाय
तम् ॥ शतयोजनकोत्सेधं निर्नीडं तापवर्ज्जितम् ॥ ३५ ॥ महापुण्यवतां दृश्यं सुरम्यं चातिपावनम् ॥ शंभुयोगस्थलं दिव्यं योगिसेव्यं
महोत्तमम् ॥ ३६ ॥ मुमुक्षुशरणे तस्मिन् महायोगमये वटे ॥ आसीनं ददृशुस्सर्वे शिवं विष्णवादयस्सुराः ॥ ३७ ॥ विधिपुत्रैर्महा
सिद्धैश्शिवभक्तिरतैस्सदा ॥ उपास्यमानं सुमुदा शांतैस्संशांतविग्रहैः ॥ ३८ ॥ तथा सख्या कुबेरेण भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ सेव्यमानं
विशेषेण स्वगणैर्ज्ञातिभिस्सदा ॥ ३९ ॥ तापसाभीष्टसद्रूपं बिभ्रतं परमेश्वरम् ॥ वात्सल्याद्विश्वसुहृदं भस्मादिसुविराजितम् ॥ ४० ॥
मुने तुभ्यं प्रवोचंतं पृच्छते ज्ञानमुत्तमम् ॥ कुशासने सूपविष्टं सर्वेषां शृण्वतां सताम् ॥ ४१ ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं चरणं चैव
जानुनि ॥ बाहुप्रकोष्ठाक्षमालं स्थितं सत्तर्कमुद्रया ॥ ४२ ॥ एवंविधं शिवं दृष्ट्वा तदा विष्णवादयस्सुराः ॥ प्रणेमुस्त्वरितं सर्वे करौ
बध्वा विनम्रकाः ॥ ४३ ॥

सनकादि पुत्रोंसे सेवित और शांतविग्रहवाले महात्माओंसे आनंदपूर्वक उपासित ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार गुह्यक राक्षस जनोंके स्वामी अपने सखा कुबेर और
विशेषकर अपने ज्ञातिगणोंसे सेवित ॥ ३९ ॥ तबसे भक्तोंकी इच्छानुसार मनोहर सद्रूप धारण किये, वत्सलतासे विश्वके सुहृद भस्मादिसे विराजमान ॥
॥ ४० ॥ हे नारदजी ! उत्तमज्ञान पूछते हुए आपसे कुछ कह रहे कुशासनपर बैठे उनका सब कोई उपदेश सुनरहे थे ॥ ४१ ॥ दक्षिण जंघापर
वामचरण धारे भुजा और पहुंचीमें रुद्राक्षमाला धारे तर्कमुद्रासे स्थित ॥ ४२ ॥ विष्णुआदि देवता इसप्रकार शिवजीको देखकर हाथ जोड नम्र हो स्तुति

करने लगे ॥ ४३ ॥ जब सत्पुरुषोंकी गति रुद्रने मुझे देखा तो उन प्रभुन उठकर शिरसे अभिवादन किया ॥ ४४ ॥ जब विष्णुआदि सब देवताओंने शिवजीके चरणोंको प्रणाम किया तब लोकोंके सद्गतिने विष्णु और कश्यपको प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ सुरसिद्धगणाधीश और महर्षियोंसे नमस्कृत उन्होंने आदरपूर्वक विष्णुजी और देवताओंसे सम्भाषण किया ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ विष्णुआदि देवता बोले हे दैवदेव महादेव हे लौकिक आचार करनेवाले हे महाप्रभो ! हम आपकी कृपासे आपको ब्रह्म ईश्वर शिव जानते हैं ॥ १ ॥

उपलभ्यागतं रुद्रो मया विष्णुं सतां गतिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाभिवंदनमपि प्रभुः ॥ ४४ ॥ वंदितांघ्रिस्तदा सर्वैर्दिव्यैर्विष्णवादिभिश्शिवः ॥ ननामाथ यथा विष्णुं कश्यपं लोकसद्गतिः ॥ ४५ ॥ सुरसिद्धगणाधीशमहर्षिसुनमस्कृतम् ॥ समुवाच सुरैर्विष्णुं कृतसन्नतिमादरात् ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे शिवदर्शनवर्णनं नाम चत्वारिशोध्यायः ॥ ४० ॥ विष्णवादय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव लौकिकाचारकृत्प्रभो ॥ ब्रह्म त्वामीश्वरं शंभुं जानीमः कृपया तव ॥ १ ॥ किं मोहयसि नस्तात मायया परया तव ॥ दुर्ज्ञेयया सदा पुंसां मोहिन्या परमेश्वर ॥ २ ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि जगतो योनिबीजयोः ॥ परब्रह्म परस्त्वं च मनोवाचामगोचरः ॥ ३ ॥ त्वमेव विश्वं सृजसि पास्यत्सि निजतंत्रतः ॥ स्वरूपां शिवशक्तिं हि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४ ॥ त्वमेव क्रतुमीशान ससर्जिथ दयापरः ॥ दक्षेण सूत्रेण विभो सदा त्रय्यभिपत्तये ॥ ५ ॥ त्वयैव लोकेवसितास्सेतवो यान् धृतव्रताः ॥ शुद्धान् श्रद्दधते विप्रा वेदमार्गविचक्षणाः ॥ ६ ॥

हे तात ! परमायासे आप हमको क्यों मोहित करते हो हे महेश्वर ! वह आपकी मोहिनी माया प्राणियोंको सदा दुर्ज्ञेय है ॥ २ ॥ जगत्के योनि बीज प्रकृति पुरुषसे भी आप परे हैं मन वचन इन्द्रियोंसे परे आप मनवाणीसे परे हो ॥ ३ ॥ आपही विश्वको उत्पन्न कर फिर पालन करते हो अपनी स्वरूपवाली शिवशक्तिमें आप ऊर्णपटकी समान क्रीडा करतेहो ॥ ४ ॥ हे ईशान ! आपनेही कृपाकर यज्ञकी सृष्टि कीहै हे विभो ! वेद त्रयीकी रक्षाके लिये यह आपने दक्षिणसूत्रसे कियाहै ॥ ५ ॥ जो आपने मर्यादा बांधदीहै उनपर वेदमार्गमें चतुर ब्राह्मण श्रद्धा करतेहैं और वह व्रतधारी शुद्ध उनके अनुसारचलतेहैं ॥ ६ ॥

हे विभो ! अपने और पराये सुखके निमित्त आप मंगल करतेहो हितकारीको मंगल और अहितकारियोंको अमंगल मिश्रितको मिश्रित प्रदान करतेहो ॥७॥
सब कर्मोंके फल देनेवाले सदा तुमही हो वेद कहतेहैं और सब कहतेहैं कि सब यशोंके आप पतिहैं ॥ ८ ॥ पृथक् बुद्धिके बल कर्मकी दृष्टिवाले दुराशय मर्मसे
पीडित होतेहैं वे मूढ दुरुक्तियोंसे दूसरोंको पीडित करतेहैं ॥९॥ हे विभो ! उनको प्रारब्धके कारण आप वध करतेहो हे भगवन् ! हे परमेशान ! अब देवताओं
पर आप कृपा करो ॥ १० ॥ रुद्र शांत ब्रह्म परमात्मा कपर्दी महेश ज्योतिस्वरूप आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ तुम प्रजापतियोंके भी स्रष्टा हो तुम्ही धाता

कर्त्तुस्त्वं मंगलानां हि स्वपरं तु मुखे विभो ॥ अमंगलानां च हितं मिश्रं वाथ विपययम् ॥ ७ ॥ सर्वकर्मफलानां हि सदा दाता त्वमेव
हि ॥ सर्वे हि प्रोक्ता हि यशस्तत्पतिस्त्वं श्रुतिश्रुतः ॥ ८ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशोऽरुंतुदाश्च दुराशयाः ॥ वितुदंति परान् मूढा दुरुक्तैर्म
त्सरान्विताः ॥ ९ ॥ तेषां दैववधानां भो भूयात्त्वच्च वधो विभो ॥ भगवन्परमेशान कृपां कुरु परप्रभो ॥ १० ॥ नमो रुद्राय शांताय
ब्रह्मणे परमात्मने ॥ कपर्दिने महेशाय ज्योत्स्नाय महते नमः ॥ ११ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा धाता त्वं प्रपिताहः ॥ त्रिगुणात्मा
निर्गुणश्च प्रकृतेः पुरुषात्परः ॥ १२ ॥ नमस्ते नीलकंठाय वेधसे परमात्मने ॥ विश्वाय विश्वबीजाय जगदानंदहेतवे ॥ १३ ॥ ओंका
रस्त्वं वषट्कारस्सर्वारंभप्रवर्तकः ॥ हंतकारस्स्वधाकारो हव्यकव्यान्नभुक् सदा ॥ १४ ॥ कृतः कथं यज्ञभंगस्त्वया धर्मपरायण ॥
ब्रह्मण्यस्त्वं महादेव कथं यज्ञहनो विभो ॥ १५ ॥ ब्राह्मणानां गवां चैव धर्मस्य प्रतिपालकः ॥ शरण्योसि सदानंत्यः सर्वेषां प्रा
णिनां प्रभो ॥ १६ ॥

प्रपितामह, त्रिगुणात्मा, निर्गुण प्रकृति पुरुषसे परे हो ॥ १२ ॥ नीलकंठ, विधाता, परमात्मा, संसार, संसारके बीज, जगतके आनंदके कारण आपको
प्रणामहै ॥ १३ ॥ ॐकार, वषट्कार, सब आरंभ करनेवाले, हंतकार, स्वधाकार, सदा हव्यकव्य अन्नके भोक्ता तुमहो ॥ १४ ॥ हे धर्मपरायण आपने
यज्ञका भंग किस कारणसे किया, हे विभो ! आप ब्रह्मण्य महादेवहो आपने यज्ञको कैसे नष्ट किया ॥ १५ ॥ हे प्रभो आप तो ब्राह्मण गौ शरणागतोंके

रक्षक, धर्मोंके पालक सब प्राणियोंकी अनन्तगति तुमही हो ॥ १६ ॥ हे रुद्र ! हे भास्कर ! हे अमित तेजस्वी आपको प्रणामहै भवदेव. रसाअम्बुमय आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ सर्व पृथिवीरूप सदा सुरभीरूप आपको नमस्कारहै रुद्र अग्नि स्वरूप महातेजस्वी आपको नमस्कारहै ॥ १८ ॥ ईश वायु स्वरूप स्पर्शस्वरूप पशुपति यजमानरूप विधाता रूप आपको नमस्कारहै ॥ १९ ॥ भीम व्योमरूप शब्दमात्रा महादेव चन्द्र और प्रवृत्तिरूप आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ उग्र सूर्यरूप कर्मयोगी कालके काल आपको नमस्कारहै हे रुद्र ! आपके क्रोधको नमस्कारहै ॥ २१ ॥ कल्याणरूप, भयंकर कर्मकारी,

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे ॥ नमो भवाय देवाय रसायांबुमयाय ते ॥ १७ ॥ शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः ॥ रुद्रायाग्निस्वरूपाय महातेजस्विने नमः ॥ १८ ॥ इशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमोनमः ॥ पशूनां पतये तुभ्यं यजमानाय वेधसे ॥ १९ ॥ भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ॥ महादेवाय सोमाय प्रवृत्ताय नमोस्तु ते ॥ २० ॥ उग्राय सूर्यरूपाय नमस्ते कर्मयोगिने ॥ नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्र मन्यवे ॥ २१ ॥ नमश्शिवाय भीमाय शंकराय शिवाय ते ॥ उग्रोसि सर्व भूतानां नियंता यच्छिवोसि नः ॥ २२ ॥ मयस्कराय विश्वाय ब्रह्मणे ह्यार्तिनाशिने ॥ अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः ॥ २३ ॥ शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय परात्मने ॥ सदसद्व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते ॥ २४ ॥ जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमोनमः ॥ नीलाय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे ॥ २५ ॥ मीढुष्टमाय देवाय शिंपिविष्टाय ते नमः ॥ महीयसे नमस्तुभ्यं हंत्रे देवारिणां सदा ॥ २६ ॥

शंकर शिव उग्र सब प्राणियोंके नियन्ता हमारे निमित्त मंगल करतेहो ॥ २२ ॥ सुख करनेवाले विश्वरूप हमारे कष्ट दूर करनेवाले अम्बिकापति उमापति आपको नमस्कारहै ॥ २३ ॥ जगत्के संहारकर्ता, सर्वरूप सब शरीरोंमें व्यापक परात्मा सत् असत् व्यक्तिसे हीन महान् कारण आपको प्रणामहै ॥ २४ ॥ लोकमें अनेक प्रकारसे होनेवाले आपको प्रणामहै नील नीलरुद्र कद्रुद्र प्रचेतारूप आपको नमस्कारहै ॥ २५ ॥ भक्तोंपर मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले

दिव्यगुण शिपिविष्ट आपको नमस्कारहै महानुभाव देवशत्रुओंके मारनेवाले आपको प्रणामहै ॥ २६ ॥ तारकमंत्र रूप सुतार तरुण तेजस्वी हरिकेश देवमहेश
आपको नमस्कारहै ॥ २७ ॥ आप देवताओंके कल्याणकारक विभु परमात्माहो, परम कालकंठरूप आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ सुवर्णरूप परेश, सुवर्ण
मय शरीर भीम भीमरूप भीमकार्यमें तत्पर आपको प्रणामहै ॥ २९ ॥ शरीरमें भस्म लगाये रुद्राक्षके आभरण धारण करनेवाले ह्रस्व दीर्घ और वामनरूप
धारण करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ ३० ॥ दूरस्थितको भी मारनेवाले देव आगे चलतेको वध करनेवाले धनुष शूल गदा हलके धारण करनेवाले आपको

ताराय च सुताराय तरुणाय सुतेजसे॥ हरिकेशाय देवाय महेशाय नमोनमः ॥२७॥ देवानां शंभवे तुभ्यं विभवे परमात्मने॥ परमाय
नमस्तुभ्यं कालकंठाय ते नमः ॥ २८॥ हिरण्याय परेशाय हिरण्यवपुषे नमः ॥ भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय च ॥ २९ ॥
भस्मदिग्धशरीराय रुद्राक्षाभरणाय च ॥ नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमोस्तु ते ॥ ३० ॥ दूरेवधाय ते देवाग्रेवधाय नमोनमः ॥
धन्विने शूलिने तुभ्यं गदिने हलिने नमः ॥३१॥ नानायुधधरायैव दैत्यदानवनाशिने ॥ सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय वै नमः ॥
॥ ३२ ॥ वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः ॥ अघोराय परेशाय विकटाय नमोनमः ॥ ३३ ॥ तत्पुरुषाय नाथाय पुराणपुरु
षाय च॥ पुरुषार्थप्रदानाय व्रतिने परमेष्ठिने ॥ ३४ ॥ ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमोनमः ॥ ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमस्साक्षात्प
रात्मने ॥ ३५ ॥ उग्रोसि सर्वदुष्टानां नियंतासि शिवोसि नः ॥ कालकूटाशिने तुभ्यं देवाद्यवनकारिणे ॥ ३६ ॥ वीराय वीरभद्राय
रक्षद्वीराय शूलिने ॥ महादेवाय महते पशूनां पतये नमः ॥ ३७ ॥

प्रणामहै ॥ ३१ ॥ अनेक आयुध धारण करनेवाले दैत्य दानवोंके नाश करनेवाले सद्य, तत्कालरूपधारी सद्योजात आपको प्रणामहै ॥ ३२ ॥ वाम (सुन्दर)
वामरूप वामनेत्र अघोर परेश विकटरूप आपको प्रणामहै ॥ ३३ ॥ तत्पुरुषनाथ पुराणपुरुष पुरुषार्थके देनेवाले व्रती परमेष्ठी आपको नमस्कारहै ॥ ३४ ॥
ईशान और ईश्वररूप आपको नमस्कारहै ब्रह्म ब्रह्मरूप साक्षात्परमात्मारूप आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ उग्ररूप, सब दुष्टोंके नियन्ता, हमारे कल्याण
करनेवाले कालकूट पानकरनेवाले देवताओंके पालन करनेवाले ॥ ३६ ॥ वीर वीरभद्र वीरोंके रक्षक शूलधारी महादेव महान् पशुओंके पति आपको

प्रणामहै ॥ ३७ ॥ वीरात्मा, श्रेष्ठ विद्यावाले, श्रीकंठ, पिनाकधनुषधारी, अनन्त, सूक्ष्मरूप, मृत्यु, क्रोधरूप आपको नमस्कारहै ॥ ३८ ॥ परे, परमेश्वर,
परेसे परे, परात्पर सर्व व्यापक विश्वमूर्ति आपको नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ विष्णुके कुटुम्बरूप वा विष्णुको कलत्र माननेवाले विष्णुक्षेत्र भानुरूप भैरव शरण देने
वाले त्रिलोचन विहारशील आपको प्रणामहै ॥ ४० ॥ मृत्युके जीतनेवाले शोकरूप सतरजतम त्रिगुणात्मक गुणोंके आत्मा चन्द्र सूर्य और आग्नि नेत्रवाले
सबके कारण और मर्यादारूप आपको प्रणामहै ॥४१॥ आपनेही अपने तेजसे सब जगत व्याप्त कर रक्खाहै आप परब्रह्म निर्विकारी चिदानंद प्रकाशवान्

वीरात्मने सुविद्याय श्रीकंठाय पिनाकिने ॥ नमोनंताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्युमन्यवे ॥ ३८ ॥ पराय परमेशाय परात्परतराय ते ॥ परा
त्पराय विभवे नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ ३९ ॥ नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे ॥ भैरवाय शरण्याय त्र्यंबकाय विहारिणे
॥ ४० ॥ मृत्युंजयाय शोकाय त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ चन्द्रसूर्याग्निनेत्राय सर्वकारणसेतवे ॥ ४१ ॥ भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव
तेजसा ॥ परब्रह्म निर्विकारी चिदानंदः प्रकाशवान् ॥४२॥ ब्रह्मविष्णिंवद्रचन्द्रादिप्रमुखास्सकलास्सुराः ॥ मुनयश्चापरे त्वत्तस्संप्रसूता
महेश्वर ॥ ४३ ॥ यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा ॥ अष्टमूर्तिरितीशश्च त्वमाद्यः करुणामयः ॥ ४४ ॥ त्वद्भयाद्वाति वातोयं
दहत्यग्निर्भयात्तव ॥ सूर्यस्तपति ते भीत्या मृत्युर्धावति सर्वतः ॥ ४५ ॥ दयासिन्धो महेशान प्रसीद परमेश्वर ॥ रक्ष रक्ष सदैवास्मान्
यस्मान्नष्टान् विचेतसः ॥ ४६ ॥ रक्षिताः सततं नाथ त्वयैव करुणानिधे ॥ नानापद्भ्यो वयं शंभो तथैवाद्य प्रपाहि नः ॥ ४७ ॥

हो ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा विष्णु इन्द्र चन्द्र आदि सब देवता हे महेश्वर ! और सब मुनीश्वर आपसे प्रगटहैं ॥ ४३ ॥ जो कि आप अपना आठ प्रकारका
शरीर धारणकर सृष्टिको पालन करते हो आप करुणामय आद्य अष्टमूर्ति ईश्वरहो ॥ ४४ ॥ आपके भयसेही पवन चलती, आपके भयसे अग्नि तपतीहै,
आपके भयसे सूर्य तपता है और सब ओरसे मृत्यु धावमान होतीहै ॥ ४५ ॥ हे दयासागर महेशान परमेश्वर ! आप प्रसन्नहो आप सदा हमारी रक्षा करो
कारण कि हम नष्ट और विचेतन हैं ॥ ४६ ॥ हे करुणानिधान करुणासागर ! आप सदा हमारी रक्षा करो हे शंकर अनेक आपत्तियोंसे आपको हमारी

रक्षा करनी चाहिये ॥४७॥ हे नाथ ! कृपाकरके शीघ्रही यज्ञका उद्धार कीजिये, हे दुर्गेश प्रजापति दक्षके यज्ञकी समाप्ति नहीं है ॥ ४८ ॥ भगदेवताकी आंखैं प्राप्त होजांय, यजमान जीजाय, पूषाके दांत फिर प्राप्तहोजांय, भृगुकी डाढी पूर्ववत् होजाय ॥ ४९ ॥ आपके अनुग्रहसे इन सब देवताओंको आरोग्य हो, और वीरभद्रके आयुधोंसे भग्नगात्र हुए इनके शरीर ठीक होजांय ॥ ५० ॥ हे नाथ ! इस अवशिष्ट अध्वरकर्ममें आपको भाग प्राप्त होगा हे रुद्र ! इसमें सन्देह नहीं आपको भाग यज्ञमें अवश्य मिलेगा ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कहकर पृथिवीपर दंडवत् करतेहुए प्रजापति और विष्णुजीने अपराध क्षमा कराया ॥

यज्ञस्योद्धरणं नाथ कुरु शीघ्रं प्रसादकृत् ॥ असमाप्तस्य दुर्गेश दक्षस्य च प्रजापतेः ॥ ४८ ॥ भगोक्षिणी प्रपद्येत यजमानश्च जीवतु ॥ पूष्णो दंताश्च रोहंतु भृगोः श्मश्रूणि पूर्ववत् ॥ ४९ ॥ भवतानुग्रहीतानां देवादीनां च सर्वशः ॥ आरोग्यं भग्नगात्राणां शंकर त्वायुधाश्मभिः ॥ ५० ॥ पूर्णभागोस्तु ते नाथावशिष्टेऽध्वरकर्मणि ॥ रुद्र भागेन यज्ञस्ते कल्पितो नान्यथा क्वचित् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा सप्रजेशश्च रमेशश्च कृतांजलिः ॥ दंडवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे देवस्तुतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रीब्रह्मेशप्रजेशेन सदैव मुनिना च वै ॥ अनुनीतश्शंभुरासीत्प्रसन्नः मरमेश्वरः ॥ १ ॥ आश्वास्य देवान् विष्ण्वादीन् विहस्य करुणानिधिः ॥ उवाच परमेशानः कुर्वन् परमनुग्रहम् ॥ २ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणुतं सावधानेन मम वाक्यं सुरोत्तमौ ॥ यथार्थं वच्मि वां तात वां क्रोधं सर्वदासहम् ॥ ३ ॥ नाघं तनौ तु बालानां वर्णमेवानुचिंतये ॥ मम मायाभिभूतानां दंडस्तत्र धृतो मया ॥ ४ ॥

॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले जब ब्रह्मा विष्णु प्रजापति मुनि सिद्धोंने इसप्रकारसे शंकरकी प्रार्थना की तब परमेश्वर प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ करुणानिधिने हँसकर देवता आदिको आश्वासन (धीरज) दिया और उनपर परम अनुग्रह करते हुए शिवजी बोले ॥ २ ॥ श्रीमहादेव बोले—तुम दोनों देवता परमसावधानीके साथ मेरे वचन सुनो हे तात ! तुम्हारे क्रोधको सहताहुआ मैं यथार्थही कहताहूं ॥ ३ ॥ मेरी मायामें पडेहुए इन बालकोंका मैं कुछभी अपराध चिन्तन नहीं करता परन्तु सावधानीके निमित्त मैंने दंड दियाथा ॥४॥

मैंने दक्षके यज्ञका भंग नहीं किया पर जो दूसरोंसे विरोध करता है उसके लिये वैसा होता है ॥ ५ ॥ इससे दूसरोंको क्लेश देनेका कर्म किसी प्रकारभी न करना चाहिये जो दूसरोंसे द्वेष करता है उसके लिये स्वयं वही बात उपस्थित होती है ॥ ६ ॥ दक्षही यज्ञका शिर है इसलिये उसका शिर बकरेका होगा भग मित्रके नेत्रोंसे देखने लगैगा और देवताके अंग ठीक होकर यज्ञकार्य करैंगे ॥ ७ ॥ पूषाके दांत होजांयगे इसप्रकार यह मनकी पुष्टि करैंगे यह सब अंगोंसे पुष्ट होकर यजनका कार्य करैंगे यह मैंने सत्य कहा है ॥ ८ ॥ भृगु जो मेरे विरोधी हैं उनके बकरेकी डाढी लगादी जायगी जिन्होंने

दक्षस्य यज्ञभंगोयं न कृतश्च मया क्वचित् ॥ परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥ ५ ॥ परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत्कदाचन ॥
परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥ ६ ॥ दक्षस्य यज्ञशीर्ष्णों हि भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रनेत्रेण संपश्येद्यज्ञभागं भगस्सुरः
॥ ७ ॥ पूषाभिधस्सुरस्तातौ दद्भिर्यज्ञसुपिष्टभुक् ॥ याजमानैर्भग्नदंतस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८ ॥ बस्तश्मश्रुर्भवेदेव भृगुर्मम विरोध
कृत् ॥ देवाः प्रकृतिसर्वांगा ये म उच्छेदनं ददुः ॥ ९ ॥ बाहुभ्यामश्विनौ पूष्णो हस्ताभ्यां कृतवाहकौ ॥ भवंत्वध्वर्यवश्चान्ये भवत्प्रीत्या
मयोदितम् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्वा परमेशानो विरराम दयान्वितः ॥ चराचरपतिर्देवः संम्राट् वेदानुसारकृत् ॥ ११ ॥ तदा सर्वे
सुराद्यास्ते श्रुत्वा शंकरभाषितम् ॥ साधु साध्विति संप्रोचुः परितुष्टाः सविष्णवजाः ॥१२॥ ततश्शंभुं ससामंत्र्य मया विष्णुस्सुरर्षिभिः॥
भूयस्तद्देवयजनं ययौ च परया मुदा ॥ १३ ॥ एवं तेषां प्रार्थनया विष्णुप्रभृतिभिस्सुरैः॥ययौ कनखलं शंभुर्यज्ञवाटं प्रजापतेः॥१४॥

वीरभद्रसे छेदन भेदन प्राप्त किया है वे सब देवता सब अंगोंसे सम्पन्न होजायंगे ॥ ९ ॥ अश्विनीकुमारोंकी बाहु और पूषाके हाथोंसे सबकार्य होगा और भी सब अध्वर्यु प्रसन्न होजायंगे यह आपके प्रेमसे सब मैंने किया ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहकर दयालु परमेश्वर मौन हुये चराचरके पति देव स्वयं विराजमान होनेवालेने सब वेदोंके अनुसारही किया ॥ ११ ॥ तब वे सब देवता शंकरके भाषणको सुनकर संतुष्ट हो धन्यधन्य कहने लगे ॥ १२ ॥ तब मैंने और विष्णुआदि सब देवताओंने शंकरको आमंत्रण किया और वह परमप्रसन्नतासे उस देवयजनस्थानमें गये ॥ १३ ॥ इसप्रकार उन विष्णुआदि देवताओंकी

प्रार्थनासे शिवजी कनखलमें प्रजापतिके यज्ञस्थलमें गये ॥ १४ ॥ और जो कुछ वीरभद्रने कियाथा वह रुद्रने वहां जाकर सब देखा यज्ञका विध्वंस और देवर्षियोंका वहां विशेष अनिष्ट हुआथा ॥ १५ ॥ स्वाहा स्वधा पूषा तुष्टि धृति सरस्वती औरभी सब ऋषि पितर अग्नि ॥ १६ ॥ औरभी जो अनेक वह गन्धर्व यक्ष राक्षस थे कोई भग्न कोई लुंचित और कोई मृतक हुए पडेथे ॥ १७ ॥ इसप्रकार यज्ञकी दशा देख गणाधिप महाबली वीरभद्रको बुलाकर शिवजी हँसतेहुए बोले ॥ १८ ॥ हे महाबाहो ! वीरभद्र आपने यह क्या कर्म किया हे तात ! आपने महान् दंड देवता ऋषियोंमें धारण किया ॥ १९ ॥

रुद्रस्तदा ददर्शाथ वीरभद्रेण यत्कृतम् ॥ प्रध्वंसं तं क्रतोस्तत्र देवर्षीणां विशेषतः ॥ १५ ॥ स्वाहा स्वधा तथा पूषा तुष्टिर्धृति सरस्वती ॥ तथान्ये ऋषयस्सर्वे पितरश्चाग्नयस्तथा ॥ १६ ॥ येन्ये च बहवस्तत्र यक्षगंधर्वराक्षसाः ॥ त्रोटिता लुंचिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे ॥ १७ ॥ यज्ञं तथाविधं दृष्ट्वा समाहूय गणाधिपम् ॥ वीरभद्रं महावीरमुवाच प्रहसन् प्रभुः ॥ १८ ॥ वीरभद्र महाबाहो किं कृतं कर्म ते त्विदम् ॥ महान् दंडो धृतस्तात देवर्ष्यादिषु सत्वरम् ॥ १९ ॥ दक्षमानय शीघ्रं त्वं येनेदं कृतमीदृशम् ॥ यज्ञो विलक्षणस्तात यस्येदं फलमीदृशम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्तश्शंकरेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः ॥ कबंधमानयित्वाग्रे तस्य शंभोरथाक्षिपत ॥ २१ ॥ विशिरस्कं च तं दृष्ट्वा शंकरो लोकशंकरः ॥ वीरभद्रमुवाचाग्रे विहसन् मुनिसत्तम ॥ २२ ॥ शिरः कुत्रेति तेनोक्ते वीरभद्रोब्रवीत्प्रभुः ॥ मया शिरो हुतं चाग्नौ तदानीमेव शंकर ॥ २३ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वीरभद्रस्य शंकरः ॥ देवान् तथाज्ञप त्प्रीत्या यदुक्तं तत्पुरा प्रभुः ॥ २४ ॥

तुम शीघ्र दक्षको लाओ जिसने यह किया, हे तात यह यज्ञ बडा विलक्षणथा जिसका फल ऐसा हुआ ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले जब शिवजीने ऐसा कहा तब वीरभद्रने बहुतशीघ्रतासे दक्षका कबंध लाकर शिवजीके आगे धरदिया ॥ २१ ॥ लोकशंकर शंकरने उसको शिरहीन देखकर हे मुनिसत्तम हँसते हुए वीरभद्रसे कहा ॥ २२ ॥ कि इसका शिर कहाहैं तब वीरभद्रने कहा हे प्रभु उसको तो अग्निमें हवनकरदिया ॥ २३ ॥ तब शंकरने वीरभद्रके यह वचन

सुनकर देवताओंको प्रेमसे अपने पहले वाक्यका स्मरण कराया ॥ २४ ॥ जो भगवान्‌ने कहाथा उस सबको यथायोग्य सम्पादन करनेको कहा, तब मैं और विष्णु आदि सब देवता बहुत शीघ्र भृगुआदिके समीप गये ॥ २५ ॥ तब भगवान् शंकरने सवनके पशुका शिर लेकर प्रजापति दक्षके शिरपर जोड दिया ॥ २६ ॥ जब वह शिर जोडा गया और शिवजीने कृपादृष्टिसे देखा तब प्रजापति तत्कालही प्राणयुक्त होकर शीघ्रही सोतेहुए की समान उठबैठा ॥ २७ ॥ उठतेही अपने आगे करुणामय शंकरको देखा तब परम प्रेमसे प्रसन्न होगया ॥ २८ ॥ पहले तो महादेवसे बडा द्वेष करताथा इससे

विधाय कात्स्न्येंन च तद्यदाह भगवान् भवः ॥ मया विष्णवादयः सर्वे भृग्वादीनथ सत्वरम् ॥ २५ ॥ अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीयपशोश्शिरः ॥ बस्तस्य संदधुश्शंभोः कायेनारं सुशासनात् ॥ २६ ॥ संधीयमाने शिरासि शंभुसद्दृष्टिवीक्षितः ॥ सद्यस्सुप्त इवोत्तस्थौ लब्धप्राणः प्रजापतिः ॥ २७ ॥ उत्थितश्चाग्रतश्शंभुं ददर्श करुणानिधिम् ॥ दक्षः प्रीतमतिः प्रीत्या संस्थितः सुप्रसन्नधीः ॥ २८ ॥ पुरा हर महाद्वेषकलिलात्माभवद्धि सः ॥ शिवावलोकनात्सद्यश्शरच्चन्द्र इवामलः ॥ २९ ॥ भवं स्तोतुमनाः सोथ नाशक्नोदनुरागतः ॥ उत्कंठाविकलत्वाच्च संपरेतां सुतां स्मरन् ॥ ३० ॥ अथ दक्षः प्रसन्नात्मा शिवं लज्जासमन्वितः ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शंकरं लोकशंकरम् ॥ ३१ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ नमामि देवं वरदं वरेण्यं महेश्वरं ज्ञाननिधिं सनातनम् ॥ नमामि देवाधिपतीश्वरं हरं सदासुखाढ्यं जगदेकबांधवम् ॥ ३२ ॥ नमामि विश्वेश्वर विश्वरूपं पुरातनं ब्रह्मनिजात्मरूपम् ॥ नमामि शर्वं भवभावभावं परात्परं शंकरमानतोस्मि ॥ ३३ ॥

उसकी आत्मा पापी थी अब शंकरके दर्शनसे शरदूचन्द्रकी समान निर्मल होगया ॥ २९ ॥ शंकरकी स्तुति करनेकी इच्छा की पर अनुरागसे स्तुति न करसका और अपनी कन्याको मृतक विचारकर बडा व्याकुल हुआ ॥ ३० ॥ फिर दक्ष प्रसन्नहो लज्जासे संयुक्तहो नम्रहो लोकशंकर शंकरकी प्रार्थना करने लगा ॥ ३१ ॥ दक्ष कहने लगा देवता वरेण्य वरदायक महेश्वर ज्ञानके निधि सनातन देवताओंके अधिपति ईश्वर हर सदा सुख देनेवाले जगत्‌के एक बंधु शंकरको प्रणाम करता हूं ॥ ३२ ॥ विश्वके ईश्वर विश्वरूप पुरातन ब्रह्म निजरूप आत्मरूप शर्व भवभाव (शिवरूपता) के देनेहारे परेसे परे शंकरको प्रणाम

करताहूं ॥ ३३ ॥ हे देवदेव ! महादेव आप कृपा करो आपको नमस्कार करताहूं हे कृपानिधे शंकर ! आप मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ३४ ॥ हे शंकर ! दंडके बहानेसे आपने अनुग्रह किया मैं बडा खल मूढबुद्धि हूं आपका तत्त्व मैंने नहीं जाना ॥ ३५ ॥ आपको मैंने अब जाना कि आप सबके ऊपरहैं आप विष्णुआदि ब्रह्माआदि सब देवताओंसे सेव्य वेदोंसे वेद्य महेश्वर हो ॥ ३६ ॥ आप साधुओंको कल्पवृक्ष सदा दुष्टोंको दंड देनेवाले स्वतंत्र परमात्मा और भक्तोंको सदा अभीष्टवर देनेवाले हो ॥ ३७ ॥ आपनेही पहले विद्या तप व्रत धारण करने वाले ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था हे परमेश्वर आत्मतत्त्वमें

देवदेव महादेव कृपां कुरु नमोस्तु ते ॥ अपराधं क्षमस्वाद्य मम शंभो कृपानिधे ॥ ३४ ॥ अनुग्रहः कृतस्ते हि दंडव्याजेन शंकर ॥ खलोहं मूढधीर्देव ज्ञातं तत्त्वं मया न ते ॥ ३५ ॥ अद्य ज्ञातं मया तत्त्वं सर्वोपरि भवान्मतः ॥ विष्णुब्रह्मादिभिस्सेव्यो वेदवेद्यो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ साधूनां कल्पवृक्षस्त्वं दुष्टानां दंडधृक् सदा ॥ स्वतंत्रः परमात्मा हि भक्ताभीष्टवरप्रदः ॥ ३७ ॥ विद्यातपोव्रतधरानसृजः प्रथमं द्विजान् ॥ आत्मतत्त्वं समावेत्तुं मुखतः परमेश्वरः ॥ ३८ ॥ सर्वापद्भ्यः पालयिता गोपतिस्तु पशूनिव ॥ गृहीतदंडो दुष्टां स्तान् मर्यादापरिपालकः ॥ ३९ ॥ मया दुरुक्तविशिखैः प्रविद्धः परमेश्वरः ॥ अमराननतिदीनाशान् मदनुग्रहकारकः ॥ ४० ॥ स भवान् भगवान् शंभो दीनबंधो परात्परः ॥ स्वकृतेन महार्हेण संतुष्टो भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानं शंकरं लोकशंकरम् ॥ प्रजापतिर्विनीतात्मा विरराम महाप्रभुम् ॥ ४२ ॥ अथ विष्णुः प्रसन्नात्मा तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ वाश्पगद्गदया वाण्या सुप्रणम्य कृतांजलिः ॥ ४३ ॥

लानेके लिये आपने उनको मुखसे सृजन किया ॥ ३८ ॥ आपही सब आपत्तियोंसे पालन करते हो जैसे गोपाल गायोंकी रक्षा करताहै और दुष्टोंके ऊपर दंड धारण कर आप मर्यादाके पालन करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ मैंने परमेश्वरको बहुत दुरुक्ति कहीथी आपने दीनआशावाले देवताओंके और मेरे ऊपर अनुग्रह किया ॥ ४० ॥ सो वह आप भगवान् शंभु दीनबंधु परात्परहो आप भक्तवत्सल अपनेही कर्तव्यसे आप प्रसन्न होते हो ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार लोकके कल्याण करनेवाले महाप्रभु शंकरकी स्तुति करके नम्रहो प्रजापति मौन हुआ ॥ ४२ ॥ तब प्रसन्नात्मा विष्णुजी हाथ जोड गद्गद्वाणीसे

प्रणामकर शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४३ ॥ विष्णुजी बोले हे महादेव ! महेशान हे लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले परब्रह्म परमात्मा दीनबन्धु दयाके सागर ॥ ४४ ॥ सर्वव्यापी अपनी इच्छासे वर्तनेवाले वेदोंसे जाननेयोग्य यशवाले आपने हमारे ऊपर बडा अनुग्रह किया हमरा उद्धार करादिया ॥ ४५ ॥ यह दक्ष मेरा भक्त है जो खल तुम्हारी निन्दा करचुका है हे महेश ! सो आप क्षमाकरो कारण कि आप निर्विकार हो ॥ ४६ ॥ हे शंकर मूढतासे मैंने आपका अपराध किया है जो मैंने पक्षपातसे आपके गण वीरभद्रके साथ युद्ध किया ॥ ४७ ॥ आप परब्रह्म मेरे स्वामी दीनबन्धु दयासागर हो हे सदाशिव ! मैं

॥ विष्णुरुवाच ॥ महादेव महेशान लोकानुग्रहकारक ॥ परब्रह्म परात्मा त्वं दीनबंधो दयानिधे ॥ ४४ ॥ सर्वव्यापी स्वैरवर्ती वेदवेद्ययशाः प्रभोः ॥ अनुग्रहः कृतस्तेन कृताश्चासुकृता वयम् ॥ ४५ ॥ दक्षोयं मम भक्तस्त्वां यन्निनिंद खलः पुरा ॥ तत् क्षंतव्यं महेशाद्य निर्विकारो यतो भवान् ॥ ४६ ॥ कृतो मयापराधोपि तव शंकर मूढतः ॥ त्वद्गणेन कृतं युद्धं वीरभद्रेण पक्षतः ॥ ४७ ॥ त्वं मे स्वामी परब्रह्म दासोहं ते सदाशिव ॥ पोष्यश्चापि सदा ते हि सर्वेषां त्वं पिता यतः ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ स्वतंत्रः परमात्मा त्व परमेशोद्वयोव्ययः ॥ ४९ ॥ मम पुत्रोपारि कृतो देवानुग्रह ईश्वर ॥ स्वापमान मगणयन् दक्षयज्ञं समुद्धर ॥ ५० ॥ प्रसन्नो भव देवेश सर्वशापान्निराकुरु ॥ सबोधः प्रेरकस्त्वं मे त्वमेव विनिवारकः ॥ ५१ ॥ इति स्तुत्वा महेशानं परमं च महामुने ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा विनम्रीकृतमस्तकः ॥ ५२ ॥ अथ शक्रादयो देवा लोक पालास्सुचेतसः ॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं प्रसन्नमुखपंकजम् ॥ ५३ ॥

आपका दास हूं आपको सदा हमारा पालन करना चाहिये कारण कि आप हमारे सबके पिता हो ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव महादेव करुणासागर हे प्रभो ! आप स्वतंत्र परमात्मा परमेश्वर अद्वैत अविनाशी हो ॥ ४९ ॥ हे ईश्वर ! हे देव ! आपने मेरे पुत्रपर अनुग्रह किया आप अपने अपमानको न गिनकर दक्षके यज्ञका उद्धार करो ॥ ५० ॥ हे देवेश ! प्रसन्नहोकर सबका शाप दूर करो ज्ञानरूप आपही सबके प्रेरक और निवारक हो ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! इसप्रकारसे नम्र हो शिर झुकाय हाथ जोड विष्णुने परमात्मा शंकरकी स्तुति की ॥ ५२ ॥ तब इन्द्रादिक सब देवता और लोकपाल सावधान

चित्तसे प्रसन्न मुखकमलवाले शंकरदेवकी स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥ इसीप्रकार प्रसन्नमनसे और भी सब देवता सिद्ध ऋषि प्रजापति शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ इसीप्रकार उपदेवता, नाग, सदस्य, ब्राह्मण परमभक्तिसे प्रणाम कर पृथक् पृथक् स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखण्डे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकारसे मैंने विष्णुजी तथा सब सुरर्षियोंने तथा दूसरे देवताओंने स्तुति की तब महादेवजी प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ तब शिवजीने कृपादृष्टिसे सब देवता, ऋषि, मुनि और ब्रह्मा विष्णुको देखकर दक्षसे इसप्रकार कहा ॥ २ ॥

ततः प्रसन्नमनसः सर्वे देवास्तथा परे ॥ सिद्धर्षयः प्रजेशाश्च तुष्टुवुः शंकरं मुदा ॥ ५४ ॥ तथोपदेवनागाश्च सदस्या ब्राह्मणास्तथा ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक् ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे दक्षदुःखनिराकरणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुतो रमेशेन मया चैव सुरर्षिभिः ॥ तथान्यैश्च महादेवः प्रसन्नस्संबभूव ह ॥ १ ॥ अथ शंभुः कृपादृष्ट्या सर्वान् ऋषिसुरादिकान् ॥ ब्रह्मविष्णू समाधाय दक्षमेतदुवाच ह ॥ २ ॥ महादेव उवाच ॥ शृणु दक्ष प्रवक्ष्यामि प्रसन्नोऽस्मि प्रजापते ॥ भक्ताधीनः सदाहं वै स्वतंत्रोप्यखिलेश्वरः ॥ ३ ॥ चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनस्सदा ॥ उत्तरोत्तरतःश्रेष्ठास्तेषां दक्ष प्रजापते ॥ ४ ॥ आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैव चतुर्थकः ॥ पूर्वे त्रयश्च सामान्याश्चतुर्थो हि विशिष्यते ॥ ५ ॥ तत्र ज्ञानी प्रियतरो मम रूपश्च स स्मृतः ॥ तस्मात्प्रियतरो नान्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६ ॥

महादेवजी बोले हे प्रजापते ! दक्ष ! मैं प्रसन्न हूं जो कहता हूं सो सुनो यद्यपि मैं सबका ईश्वर स्वतंत्र हूं तथापि भक्तोंके अधीन हूं ॥ ३ ॥ पुण्यात्माजन चारप्रकारके होकर सदा मेरा भजन कर तेहैं. हे दक्ष प्रजापति ! उन आर्त जिज्ञासु कामनावाले और ज्ञानियोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥ आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इनमें पहले तीन सामान्य हैं और चौथा ज्ञानी विशेष है ॥ ५ ॥ उनमें ज्ञानी मुझे विशेष प्याराहै, कारण कि वह मेराही रूपहै उससे मुझे कोई

विशेष प्यारा नहीं है यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ ६ ॥ मैं वेदान्त और श्रुतियोंके पारगामियोंमें ज्ञानगम्य और आत्माका जाननेवाला हूं. विनाज्ञानके मुझे प्राप्त करनेको अल्पबुद्धि यत्न करते हैं ॥ ७ ॥ वेद यज्ञ दान तप यज्ञोंसे कर्मपरायण मूढनर मुझे यथार्थ जाननेको समर्थ नहीं होते. ॥८॥ तू केवल कर्म करकेही संसारके तरनेकी इच्छा करताहै इसकारण मैंने रुष्ट होकर तेरा यज्ञ विध्वंस किया ॥ ९ ॥ हे दक्ष ! अबसे लेकर मुझे परमेश्वर मानता हुआ बुद्धिसे ज्ञानमें तत्पर हो सावधानीसे कर्म कर ॥ १० ॥ हे प्रजापते ! और भी सद् बुद्धिसे मेरे वचन सुन, मैं इससमय सगुण होकर धर्मके कारण गुह्य वचन तुझसे

ज्ञानगम्योहमात्मज्ञो वेदांतश्रुतिपारगैः ॥ विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं यतत चाल्पबुद्धयः ॥ ७ ॥ न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित् ॥ न शक्नुवंति मां प्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः ॥ १८ ॥ केवलं कर्म्मणा त्वं स्म संसारं तर्तुमिच्छसि ॥ अत एवाभवं रुष्टो यज्ञविध्वंसकारकः ॥ ९ ॥ इतः प्रभृति भो दक्ष मत्वा मां परमेश्वरम् ॥ बुद्धया ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः ॥ १० ॥ अन्यच्च शृणु सद्बुद्धया वचनं मे प्रजापते ॥ वच्मि गुह्यं धर्महेतोः सगुणत्वेप्यहं तव ॥ ११ ॥ अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ १२ ॥ आत्ममायां समाविश्य सोहं गुणमयीं मुने ॥ सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दधे संज्ञाः क्रियोचिताः ॥ १३ ॥ अद्वितीये परे तस्मिन् ब्रह्मण्यात्मनि केवले ॥ अज्ञः पश्यति भेदेन भूतानि ब्रह्मचेश्वरम् ॥ १४ ॥ शिरःकरादिस्वांगेषु कुरुते न यथा पुमान् ॥ पारक्यशेमुषीं क्वापि भूतेष्वेवं हि मत्परः ॥ १५ ॥

कहता हूं ॥ ११ ॥ मैं ब्रह्मा विष्णु यह त्रिदेव जगत्के कारणहैं पर मैंही आत्मेश्वर सब जगतको विशेष रूपसे देखनेवाला हूं ॥१२॥ हे मुने ! मैं गुणमयी अपनी मायामें प्रवेशकरके जगत्के उत्पत्ति पालन और संहार करताहुआ क्रियाके अनुसार नाम धारण करताहूं वास्तवमें मैं एकही हूं ॥ १३ ॥ उसपर ब्रह्म आत्मस्वरूप अद्वितीय मैं अज्ञानीजन भेददृष्टिसे प्राणी ब्रह्म ईश्वर पृथक् २ देखतेहैं ॥ १४ ॥ जैसे शिर हाथ पैर अपने अंगादिमें मनुष्य अन्य मति नहीं

करता ऐसा मेरा परायण ज्ञानी देवादिमें भिन्नमति नहीं करता ॥ १५ ॥ सब भूतात्माओंको जो एक भावसे नहीं देखता, हे दक्ष ! जो तीनों देवताओंमें भेद नहीं देखता वही शांतिको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥ जो नराधम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि करताहै वह चन्द्रसूर्यकी स्थितिपर्यन्त नरकमें जाताहै ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् मुझमें मन लगाये सब देवताओंको पूजै तो उसे वह ज्ञान प्राप्त होताहै जिस्से निरन्तरकी मुक्ति मिलतीहै ॥ १८ ॥ विधाताकी भक्तिके विना विष्णुकी और विष्णुकी भक्तिके विना मेरी भक्ति किसी प्रकार नहीं मिलती ॥ १९ ॥ सबके परमेश्वर शंकर स्वामी ऐसा कहकर सबके सुन्तेहुए फिरभी

सर्वभूतात्मनामेकभावानां यो न पश्यति ॥ त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शांतिमधिगच्छति ॥ १६ ॥ यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः ॥ नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम् ॥ १७ ॥ मत्परः पूजयेद्देवान् सर्वानपि विचक्षणः ॥ स ज्ञानं लभते येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥ १८ ॥ विधिभक्तिं विना नैव भक्तिर्भवति वैष्णवी ॥ विष्णुभक्तिं विना मे न भक्तिः क्वापि प्रजायते ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्स्वामी सर्वेषां परमेश्वरः ॥ सर्वेषां शृण्वतां तत्रोवाच वाणीं कृपाकरः ॥ २० ॥ हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवो भवेद्यदि ॥ तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्न हि ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं सुखकारकम् ॥ जहृषुस्सकलास्तत्र सुरमुन्यादयो मुने ॥ २२ ॥ दक्षोभवन्महाप्रीत्या शिवभक्तिरतस्तदा ॥ सकुटुम्बस्सुराद्यास्ते शिवं मत्वाखिलेश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा येन कृता शंभोः संस्तुतिः परमात्मनः ॥ तथा तस्मै वरो दत्तश्शंभुना तुष्टचेतसा ॥ २४ ॥

कहने लगे ॥ २० ॥ जो हरिभक्त होकर मेरी निन्दा करै मेरा भक्त होकर विष्णुकी निन्दा करै तो हम दोनों देवताओंके शापसे उसको तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार शंकरके सुखकारक वचन सुनकर हे नारदजी ! वहांके देवता मुनि आदि सब प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ दक्षभी महाप्रेमसे शिवभक्तिमें तत्पर हुआ और कुटुम्बसहित सब देवता शंकरको परमेश्वर मानकर प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥ जिसने जैसी परमात्मा शंकरकी स्तुति की थी;

प्रसन्न चित्तहो शंकरने उसके निमित्त वैसाही वर दिया ॥ २४ ॥ प्रसन्नबुद्धि दक्ष तत्कालही शिवका नाम जपने लगा. हे मुने ! शिवके अनुग्रहसे उसने अपना यज्ञ पूर्ण किया ॥ २५ ॥ सब देवताओंको भाग दियागया और शिवको पूर्ण भाग दिया और शिवजीका अनुग्रह प्राप्त कर ब्राह्मणोंको बहुतसा दान दिया ॥ २६ ॥ तब देव शंकरकी कृपासे वह दक्ष प्रजापति विधिपूर्वक ऋत्विजोंके सहित यज्ञके उस महाकर्मको पूरा करता हुआ ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकारसे वह दक्षका यज्ञ पूर्ण हुआ परब्रह्मस्वरूप शंकरकी प्रसन्नतासेही यह सब हुआ ॥ २८ ॥ उस समय सर्व देवता ऋषि तथा दूसरे जनभी सुखी

ज्ञतः शिवेनाशु दक्षः शिवभक्तः प्रसन्नधीः ॥ यज्ञं चकार संपूर्णं शिवानुग्रहतो मुने ॥ २५ ॥ ददौ भागान्सुरेभ्यो हि पूर्णभागं शिवाय सः ॥ दानं ददौ द्विजेभ्यश्च प्राप्तः शंभोरनुग्रहः ॥ २६ ॥ अथो देवस्य सुमहत्तत्कर्म विधिपूर्वकम् ॥ दक्षः समाप्य विधिवत्सहर्त्विग्भिः प्रजापतिः ॥ २७ ॥ एवं दक्षमखः पूर्णोभवत्तत्र मुनीश्वर ॥ शकरस्य प्रसादेन परब्रह्मस्वरूपिणः ॥ २८ ॥ अथ देवर्षयस्सर्वे शंसंतश्शांकरं यशः ॥ स्वधामानि ययुस्तुष्टाः परेपि सुखतस्तदा ॥ २९ ॥ अहं विष्णुश्च सुप्रीतावपि स्वंस्वं परं मुदा ॥ गायन्तौ सुयशश्शंभोः सर्वमंगलदं सदा ॥ ३० ॥ दक्षसंमानितः प्रीत्या महादेवोपि सद्गतिः ॥ कैलासं स ययौ शैलं सुप्रीतस्सगणो निजम् ॥ ३१ ॥ आगत्य स्वगिरिं शंभुस्सस्मार स्वप्रियां सतीम् ॥ गणेभ्यः कथयामास प्रधानेभ्यश्च तत्कथाम् ॥ ३२ ॥ कालं निनाय विज्ञानी बहु तच्चरितं वदन् ॥ लौकिकीं गतिमाश्रित्य दर्शयन् कामितां प्रभुः ॥ ३३ ॥

और सन्तुष्ट हो शंकरका यश कहतेहुए प्रसन्नतासे अपने २ स्थानोंको गये ॥ २९ ॥ मैं और विष्णुभी बडे प्रेमसे शंकरका यश गातेहुए और सब मंगल देनेवाले उनके नामको उच्चारण करते हुए अपने २ स्थानोंको गये ॥ ३० ॥ सत्पुरुषोंके गति महादेवजीने प्रेमसे दक्षका सन्मान किया और प्रेमसे अपने गणोंके सहित कैलासको गमन किया ॥ ३१ ॥ अपने पर्वतमें आकर शिवजीने अपनी प्रिया सतीका स्मरण किया और प्रधान गणोंसे उसकी कथा कहने लगे ॥ ३२ ॥ वह विज्ञानी सतीका चरित्र कहते समय बिताने लगे और लौकिकी गतिका आश्रयकर प्रभुने कामियोंकी गति दिखाई ॥ ३३ ॥

परब्रह्म सत्पुरुषोंकीगति स्वामीने कभी अनीति नहीं की. हे मुने ! वास्तवमें उनको मोह शोक और विकार नहीं है॥ ३४ ॥मैं और विष्णुभी तो उनके भेदको नहीं जान सकते, फिर मुनि देवता और मनुष्य योगी तो क्या हैं॥ ३५ ॥शंकरकी महिमा अनंत है मनीषी भी उसको नहीं जान सकते उनकी कृपासे श्रेष्ठ भक्त सद्भक्तिके द्वारा विना श्रम उनको जान सकतेहैं ॥ ३६ ॥ शिवपरमात्मा एकही उनमें कोई विकार नहीं है वह लोकोंको वैसी गति करके दिखातेहैं ॥ ॥ ३७ ॥ हे मुने ! जिस चरित्रको पढसुनकर सुधी मनुष्य दिव्य सद्गति और उत्तम सुखको प्राप्तहों ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे दक्षकन्या सती अपनी देहको

नानीतिकारकः स्वामी परब्रह्म सतां गतिः ॥ तस्य मोहः क्व वा शोकः क्व विकारः परो मुने ॥ ३४ ॥ अहं विष्णु [illegible]नीवस्तद्भेदं न कदाचन ॥ के परे मुनयो देवा मानुषाद्याश्च योगिनः ॥ ३५ ॥ महिमा शांकरोनंतो दुर्विज्ञेयो मनीषिभिः ॥ भक्तज्ञातश्च सद्भक्त्या तत्प्रसादाद्विना श्रमम् ॥३६॥ एकोपि न विकारो हि शिवस्य परमात्मनः ॥ संदर्शयति लोकेभ्यः कृत्वा तां तादृशीं गतिम् ॥ ३७ ॥ यत्पठित्वा च संश्रुत्य सर्वलोकसुधीर्मुने ॥ लभते सद्गतिं दिव्यामिहापि सुखमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ इत्थं दाक्षायणी हित्वा निजदेहं सती पुनः ॥ जज्ञे हिमवतः पत्न्यां मेनायामिति विश्रुतम् ॥ ३९ ॥ पुनः कृत्वा तपस्तत्र शिवं [illegible] पतिं च सा ॥ गौरी भूत्वार्द्धवामांगी लीलाश्चक्रेद्भुताश्शिवा ॥ ४० ॥ इत्थं सतीचरित्रं ते वर्णितं परमाद्भुतम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ ४१ ॥ इदमाख्यानमनघं पवित्रं परपावनम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रपौत्रफलप्रदम् ॥ ४२ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्भक्तिमान्नरान् ॥ सर्वं कर्मा लभेत्तात परत्र परमां गतिम् ॥ ४३ ॥

त्यागनकर फिर हिमालयके यहां मेनामें जन्म लेती हुई यह विख्यातहै ॥ ३९ ॥ फिर महातपकरके उसने शिवको पाया, और गौरी तथा अर्धवामांगी होकर अद्भुत लीला की ॥ ४० ॥ इसप्रकारसे यह परमदिव्य सबकामना और भुक्तिमुक्तिका देनेवाला परमअद्भुत सती चरित्र तुमसे वर्णन किया ॥ ४१ ॥ यह आख्यान पापरहित परमपवित्र दूसरोंको पवित्र करनेवालाहै, स्वर्ग यश आयु और पुत्र पौत्रके फलका देनेवालाहै ॥ ४२ ॥ जो इसे भक्तिसे सुन्ता वा

भक्तिमानोंको सुनाताहै हे तात ! वह सब मनोरथोंको प्राप्त होकर अन्तमें परमगतिको प्राप्त करताह ॥ ४३ ॥ जो इस श्रेष्ठ आख्यानको पढता पढाताहै

यः पठेत्पाठयेद्वापि समाख्यानमिदं शुभम् ॥ सोपि भुक्त्वाखिलान् भोगानंते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखंडे दक्षयज्ञानुसंधानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीः ॥ समाप्तोयं रुद्रसंहितान्तर्गतसतीखण्डो द्वितीयः ॥ ॥

॥ श्रीसांबसदाशिवार्पणमस्तु ॥

यह सब भोगोंको प्राप्त होकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गतद्वितीयसतीखंडे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां दक्षयज्ञानुसंधानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दोहा—शिवा भवानी शारदा, शंकरदेव मनाय । सतीखंड भाषा कियो, भक्तजननसुखदाय ॥ १ ॥
पढहि सुनहि पावहि सुजन, नितनूतन अहलाद । शंकरभक्ति हिये धरहु, जन ज्वालापरसाद ॥ २ ॥

शिवमस्तु ।

दोहा—श्रीगुरु पदरज शीस धरि, पारवतीको व्याह । खण्ड तीसरेमें लिखत, जेहि सुनि होय उछाह ॥

नारदजी बोले जब देवी सतीने पिताके यज्ञमें अपना देह त्यागन करदिया हे ब्रह्माजी ! फिर वह हिमालयकी पुत्री कैसे हुई ॥ १ ॥ और बडी उग्र तपस्या करके वह शिवजीको कैसे प्राप्त हुई मेरे पूछनेपर यह आप विशेषरूपसे मुझसे कहैं ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! आदरसे आप उत्तम शिव चरित्रको मुझसे सुनिये जो पावन परमदिव्य और सब पापोंका हरनेवाला तथा श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ जिस समय देवी सती आनंदसे शिवजीके साथ हिमालयपर क्रीडा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ अथ तृतीयः पार्वतीखण्डः प्रारभ्यते ॥ ॥ नारद उवाच ॥ दाक्षायणी सती देवी त्यक्तदेहा पितुर्मखे ॥ कथं गिरिसुता ब्रह्मन्बभूव जगदम्बिका ॥ १ ॥ कथं कृत्वा तपोऽत्युग्रम्पतिमाप शिवं च सा ॥ एतन्मे पृच्छते सम्यक्कथय त्वं विशेषतः ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु त्वं मुनिशार्दूल शिवाचरितमुत्तमम् ॥ पावनं परमं दिव्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ३ ॥ यदा दाक्षायणी देवी हरेण सहिता मुदा ॥ हिमाचले सुचिक्रीडे लीलया परमेश्वरी ॥ ४ ॥ मत्सुतेयमिति ज्ञात्वा सिषेवे मातृवर्चसा ॥ हिमाचलप्रिया मेना सर्वर्द्धिभिरनिर्भरा ॥ ५ ॥ यदा दाक्षायणी रुष्टा नाहता स्वतनुं जहौ ॥ पित्रा दक्षेण तद्यज्ञे संगता परमेश्वरी ॥ ६ ॥ तदैव मेनका तां सा हिमाचलप्रिया मुने ॥ शिवलोकस्थितां देवीमारिराधयिषुस्तदा ॥ ७ ॥ तस्यामहं सुता स्यामित्यवधार्य सती हृदा ॥ त्यक्तदेहा मनो दध्रे भवितुं हिमवत्सुता ॥ ८ ॥ समयं प्राप्य सा देवी सर्वदेवस्तुता पुनः ॥ सती त्यक्ततनुः प्रीत्या मेनकातनयाभवत् ॥ ९ ॥

करती थी, और वह परमेश्वरी अनेक लीला करती थी ॥ ४ ॥ उस समय हिमाचलकी प्रिया मेना सब ऋद्धि सिद्धिसे संयुक्त हो अपनी कन्या मानकर भगवतीकी सेवा करतीथी ॥ ५ ॥ जब आदर न पानेसे रोष करके शिवप्रियाने अपने शरीरको त्यागन किया और उस यज्ञमें पिता दक्षके सामनेही परलोकको गई ॥ ६ ॥ हे मुने ! उसी समय हिमाचलकी प्रिया मेना शिवलोकमें स्थित देवीकी आराधना करनेके निमित्त उद्यत थी ॥ ७ ॥ सतीने मनमें यह विचार करा कि मैं हिमालयकी कन्या बनूं तत्काल देह त्यागन करते समय हिमालयकी सुता होनेका ध्यान किया ॥ ८ ॥ फिर वह देवी सब देवताहैं सुंत जिसके

ऐसी भी समयको प्राप्त होकर शरीरत्याग प्रेमसे मेनाकी पुत्री हुई ॥ ९ ॥ पार्वती देवी नाम हुआ वहां भी नारदके वचनसे परम दुष्कर तपस्या कर फिर अपने पति शंकरको प्राप्त हुई ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! हे विधे ! हे महाप्राज्ञ ! हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! मेनाकी उत्पत्ति और विवाह तथा चरित्र कहिये ॥ ११ ॥ मेनका देवी बडी धन्य है जिसके यहां सतीसी कन्या प्रगट हुई इसकारण वह पतिव्रता सबकी मान्य और धन्य है ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! आप पार्वतीकी माताकी उत्पत्ति तथा विवाह और चरित्र सुनो वह परम पवित्र और भक्तिका बढानेवाला है ॥ १३ ॥ उत्तरदिशामें देवता

नाम्ना सा पार्वती देवी तपः कृत्वा सुदुस्सहम् ॥ नारदस्योपदेशाद्वै पतिम्प्राप शिवं पुनः ॥ १० ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन्विधे
महाप्राज्ञ वद मे वदतां वर ॥ मेनकायास्समुत्पत्तिं विवाहं चरितं तथा ॥ ११ ॥ धन्या हि मेनका देवी यस्यां जाता सुता सती ॥
अतो मान्या च धन्या च सर्वेषां सा पतिव्रता ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु त्वं नारद मुने पार्वतीमातुरुद्भवम् ॥ विवाहं चरितं चैव
पावनं भक्तिवर्द्धनम् ॥ १३ ॥ अस्त्युरस्यां दिशि वै गिरिशो हिमवान्महान् ॥ पर्वतो हि मुनिश्रेष्ठ महातेजास्समृद्धिभाक् ॥ १४ ॥
द्वैरूप्यं तस्य विख्यातं जंगमस्थिरभेदतः ॥ वर्णयामि समासेन तस्य सूक्ष्मस्वरूपकम् ॥ १५ ॥ पूर्वापरौ तोयनिधी सुविगाह्य स्थितो
हि यः ॥ नानारत्नाकरो रम्यो मानदण्ड इव क्षितेः ॥ १६ ॥ नानावृक्षसमाकीर्णो नानाशृंगसुचित्रितः ॥ सिंहव्याघ्रादिपशुभिस्से
वितस्सुखिभिस्सदा ॥ १७ ॥ तुषारनिधिरत्युग्रो नानाश्चर्यविचित्रितः ॥ देवर्षिसिद्धमुनिभिस्संश्रितः शिवसंप्रियः ॥ १८ ॥ तपः
स्थानोऽतिपूतात्मा पावनश्च महात्मनाम् ॥ तपस्सिद्धिप्रदोत्यंतं नानाधात्वाकरः शुभः ॥ १९ ॥

शरीरवाला हिमालयनाम महा पर्वतराज है, हे मुनिराज ! वह महातेजस्वी समृद्धिशाली है ॥ १४ ॥ स्थावर जंगमके भेदसे उसके दो रूप हैं संक्षेपसे उसका सूक्ष्म स्वरूप कहता हूं ॥ १५ ॥ वह पूर्व पश्चिमके दोनों सागरोंको अवगाहन करके स्थित होरहा है वह अनेक रत्नोंकी खानि मानो भूमिका मानदण्ड होरहा है ॥ १६ ॥ अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और अनेक शृंगोंसे चित्र विचित्र है सिंह व्याघ्रादि पशु जहां सुखपूर्वक विचरते हैं ॥ १७ ॥ जिसके ऊपर महान् तुषार पडती है अनेक आश्चर्योंसे विचित्र, देवता, ऋषि, सिद्ध, मुनि, आदि शिवके प्रियोंसे सदा युक्त है ॥ १८ ॥ यही महात्मा पवित्र जनोंके तप

करनेका पवित्र स्थान है यह अनेक प्रकारकी तपस्याओंकी सिद्धि करनेवाला अनेक धातुओंकी खानि है ॥ १९ ॥ वही यह दिव्यरूप सर्वांगसुन्दर है, यह शैलराज विकाररहित सत्पुरुषोंका प्रिय है ॥ २० ॥ कुलकी स्थिति और धर्म बढानेके निमित्त तथा पितृदेवताओंकी हितेच्छासे पर्वतराजने अपने विवाह करनेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ उस समय सम्पूर्ण देवता अपने स्वार्थको विचारकर हे मुनीश्वर! दिव्य पितरोंके पास जाकर बोले ॥ २२ ॥ देवता बोले सुप्रसन्नमन हो सब पितर हमारे वचन सुनो, जो देवकार्यकी इच्छावाले हो तो शीघ्र करो ॥ २३॥ जो मेनानामकी तुम्हारी मंगलरूपिणी बडी सुता है उस

स एव दिव्यरूपो हि रम्यः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ विष्णवंशोऽविकृतः शैलराजराजस्सताम्प्रियः ॥ २० ॥ कुलस्थित्यै च स गिरिर्धर्म्मवर्द्धनहेतवे ॥ स्वविवाहं कर्त्तुमैच्छत्पितृदेवहितेच्छया ॥ २१ ॥ तस्मिन्नवसरे देवाः स्वार्थमाचिन्त्य कृत्स्नशः ॥ ऊचुः पितॄन्समागत्य दिव्यान्प्रीत्या मुनीश्वर ॥ २२ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वे शृणुत नो वाक्यं पितरः प्रीतमानसाः ॥ कर्त्तव्यं तत्तथैवाशु देवकार्य्येप्सवो यदि ॥ २३ ॥ मेना नाम सुता या वो ज्येष्ठा मङ्गलरूपिणी ॥ ताम्विवाह्य च सुप्रीत्या हिमाख्येन महीभृता ॥ २४ ॥ एवं सर्वमहालाभः सर्वेषां च भविष्यति ॥ युष्माकममराणां च दुःखहानिः पदे पदे ॥ २५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्यापरवचः पितरस्ते विमृश्य च ॥ स्मृत्वा शापं सुतानां च प्रोचुरोमिति तद्वचः ॥ २६ ॥ ददुर्मेनां सुविधिना हिमागाय निजात्मजाम् ॥ समुत्सवो महानासीत्तद्विवाहे सुमङ्गले ॥ २७ ॥ हर्य्यादयोऽपि ते देवा मुनयश्चापरेऽखिलाः ॥ आजग्मुस्तत्र संस्मृत्य वामदेवं भवं धिया ॥ २८ ॥

सुव्रताका विवाह हिमालयनामक पर्वतराजसे करादो ॥ २४ ॥ इससे सबका बडा लाभ होगा तुम्हारी और देवताओंकी पद पदमें दुःखहानि होगी ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार देवताओंके वचन सुन वह सब पितर विचारकर सुताओंके शापको स्मरणकर यह बात स्वीकार करतेहुए ॥ २६ ॥ और अपनी आत्मजाको हिमालयके निमित्त प्रदान किया, उस सुमंगल विवाहमें बडा उत्सव हुआ ॥ २७ ॥ हरिआदि सब देवता और सब ऋषि वामदेवजीका स्मरणकर

वहां सब आये ॥ २८ ॥ अनेक प्रकारके दान देकर बडा उत्सव कराया, पितृगण और हिमालयकी बडी प्रशंसा की ॥ २९ ॥ वह सब देवता और मुनि
महाप्रसन्न हुए और शिवाशिवको स्मरण करते अपने २ स्थानोंको गये ॥ ३० ॥ बहुत दहेजको प्राप्त हो और उस प्रियाको विवाह कर गिरि अपने घर
आकर बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! यह मेनाका समागम और सुन्दर विवाह आपसे कहा यह बडे सुखका देनेवाला है, अब
तुम क्या और सुनना चाहते हो ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे हिमाचलविवाहवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उत्सवं कारयामासुर्दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ सुप्रशस्य पितन्दिव्यान्प्रशशंसुर्हिमाचलम् ॥ २९ ॥ महामोदान्विता देवास्ते सर्वे समुनी
श्वराः ॥ संजग्मुः स्वस्वधामानि संस्मरन्तः शिवाशिवौ ॥ ३० ॥ कौतुकं बहु सम्प्राप्य सुविवाह्य प्रियां च ताम् ॥ आजगाम स्वभवनं
मुदमाप गिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मेनया हि हिमागस्य सुविवाहो मुनीश्वर ॥ प्रोक्तो मे सुखदः प्रीत्या किम्भूयः श्रोतुमिच्छ
सि ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे हिमाचलविवाहवर्णनं नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥
नारद उवाच ॥ विधे प्राज्ञ वदेदानीं मेनोत्पत्तिं समादरात् ॥ अपि शापं समाचक्ष्व कुरु संदेहभंजनम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु
नारद सुप्रीत्या मेनोत्पत्तिं विवेकतः ॥ मुनिभिः सह वक्ष्येहं सुतवर्य्य महाबुध ॥ २ ॥ दक्षनामा मम सुतो यः पुरा कथितो मुने ॥
तस्य जाताः सुताः षष्टिप्रमितास्सृष्टिकारणाः ॥ ३ ॥ तासां विवाहमकरोत्स वरैः कश्यपादिभिः ॥ विदितं ते समस्तं तत्प्रस्तुतं शृणु
नारद ॥ ४ ॥ तासां मध्ये स्वधानाम्नीं पितृभ्यो दत्तवान्सुताम् ॥ तिस्रोभवन्सुतास्तस्यास्सुभगा धर्म्ममूर्तयः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले हे विधाता ! आप अब प्रेमसे मेनाकी उत्पत्ति मुझसे कहिये और शापकी कथा भी कहकर संदेहका निराकरण करिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी
बोले नारदजी विवेकपूर्वक आप मेनाकी उत्पत्ति मुनियोंके साथ सुनिये, हे महापण्डित ! हे पुत्र ! मैं कहता हूं ॥ २ ॥ हे मुने ! जो मैंने पहले अपने
दक्षनामक पुत्रकी बात कही है उसकी सृष्टिको प्रगट करनेवाली साठ कन्या हुईं ॥ ३ ॥ कश्यपादिके साथ उसने कन्याओंका विवाह किया, हे नारद !
वह तो तुमको सब विदित है अब उपयोगी कथाको सुनो ॥ ४ ॥ उनमें स्वधा नामवाली कन्या पितरोंको दी उसके धर्मकी मूर्त्ति तीन कन्या हुईं ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वर ! उनके पवित्र नामोंको सुनो जो सदा विघ्न हरनेवाले तथा महामंगल देनेवालेहैं ॥ ६ ॥ मेना नामवाली ज्येष्ठकन्या, मध्या धन्या, कलावती
सबसे छोटीथी यह सब पितरोंकी मानसी कन्याहैं ॥ ७ ॥ यह तीनों कन्या अयोनिजा, स्वधासे प्रगट लोकमें उनकी कन्या कहलातीहैं, इनके नाम उच्चारण
करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥ यह लोकमाताएँ जगत्पूज्य और दूसरोंको परम आनंद देनेवालीहैं यह योगिनी परम ज्ञानकी निधान
त्रिलोकमें यात्रा करनेवालीहैं ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वर एक समय यह तीनों बहने श्वेतद्वीपमें भगवान् विष्णुका दर्शन करने गईं ॥१०॥ वहां विष्णुको प्रणाम

तासां नामानि शृणु मे पावनानि मुनीश्वर ॥ सदा विघ्नहराण्येव महामंगलदानि च ॥ ६ ॥ मेनानाम्नी सुता ज्येष्ठा मध्या धन्या
कलावती ॥ अन्त्या एतास्सुतास्सर्वाः पितॄणाम्मानसोद्भवाः ॥ ७ ॥ अयोनिजाः स्वधायाश्च लोकतस्तत्सुता मताः ॥ आसाम्प्रोच्य
सुनामानि सर्वान्कामाञ्जनो लभेत् ॥ ८ ॥ जगद्वंद्याः सदा लोकमातरः परमोददाः ॥ योगिन्यः परमा ज्ञाननिधानास्तास्त्रिलोकगाः
॥ ९ ॥ एकस्मिन्समये तिस्रो भगिन्यस्ता मुनीश्वर ॥ श्वेतद्वीप विष्णुलोकं जग्मुर्दर्शनहेतवे ॥ १० ॥ कृत्वा प्रणामं विष्णोश्च संस्तुतिं
भक्तिसंयुताः ॥ तस्थुस्तदाज्ञया तत्र सुसमाजो महानभूत् ॥ ११ ॥ तदैव सनकाद्यास्तु सिद्धा ब्रह्मसुता मुने ॥ गतास्तत्र हरिं नत्वा
स्तुत्वा तस्थुस्तदाज्ञया ॥ १२ ॥ सनकाद्यान्मुनीन्दृष्ट्वोत्तस्थुस्ते सकला द्रुतम् ॥ तत्रस्थान्संस्थितान्नत्वा देवाद्याँल्लोकवन्दितान् ॥
॥ १३ ॥ तिस्रो भगिन्यस्तांस्तत्र नोत्तस्थुर्मोहिता मुने ॥ मायया दैवविवशाश्शङ्करस्य परात्मनः ॥ १४ ॥ मोहिनी सर्वलोकानां
शिवमाया गरीयसी ॥ तदधीनं जगत्सर्वं शिवेच्छा सा प्रकीर्त्यते ॥ १५ ॥

कर भक्तिपूर्वक स्तुति की, और उनकी आज्ञासे वहां स्थित हुईं तथा वहां बडा समाज हुआ ॥ ११ ॥ हे मुने ! उसी समय सनकादि सिद्ध ब्रह्मपुत्र वहां
आये और भगवान्को प्रणामकर उनकी स्तुति की और वहां उनकी आज्ञासे स्थित हुए ॥१२॥ सनकादि मुनियोंको देखकर सब कोई सावधान हो उत्थित
हुए, वहां स्थानोंपर स्थितहो लोकवंदित देवादिकोंसे मुनि नमस्कृत हुए बैठे ॥ १३ ॥ हे मुने ! शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण यह तीनों बहनें वहां
ही स्थित रहीं खडी न हुईं जब इस प्रकार वह परमात्मा शंकरकी मायासे दैववश मोहित हुईं ॥ १४ ॥ जो सब लोकोंकी मोहनेवाली शिवकी माया है

जिसके अधीन सब जगत् है वह शिवकी इच्छा कहाती है ॥ १५ ॥ उसीको प्रारब्ध कहतेहैं, उसके नामभी अनेकहैं वह शिवकी इच्छासेही प्रवृत्त होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ उसी मायाके वशीभूत होकर उन्होंने प्रणाम नहीं किया और विस्मित होकर केवल देखतीही रहगईं ॥ १७ ॥ सनकादि मुनिजनोंने उनकी यह गति देखकर ज्ञानी होकरभी उनपर परम क्रोध किया ॥ १८ ॥ शिवकी इच्छासे मोहित होकर क्रोधपूर्वक सनत्कुमार योगीश्वरने उनको दण्डरूप शाप दिया ॥ १९ ॥ सनत्कुमार बोले तुम पितृकन्या होकर भी श्रुतिका तत्त्व नहीं जानती हो, और तुम तीनों मूढ हो ॥ २० ॥

प्रारब्धं प्रोच्यते सैव तन्नामानि ह्यनेकशः ॥ शिवेच्छया भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ भूत्वा तद्वशगास्ता वै न चक्रुरपि तन्नतिम् ॥ विस्मितास्सम्प्रदृश्यैव संस्थितास्तत्र केवलम् ॥ १७ ॥ तादृशीं तद्गतिं दृष्ट्वा सनकाद्या मुनीश्वराः ॥ ज्ञानिनोऽपि परं चक्रुः क्रोधं दुर्विषहं च ते ॥ १८ ॥ शिवेच्छामोहितस्तत्र सक्रोधस्ता उवाच ह ॥ सनत्कुमारो योगीशश्शापन्दण्डकरं ददन् ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ यूयं तिस्रो भगिन्यश्च मूढाः सद्वयुनोज्झिताः ॥ अज्ञातश्रुतितत्त्वा हि पितृकन्या अपि ध्रुवम् ॥ २० ॥ अभ्युत्थानं कृतं नो यन्नमस्कारोपि गर्वतः ॥ मोहिता नरभावत्वात्स्वर्गाद्दूरा भवन्तु हि ॥ २१ ॥ नरस्त्रियः सम्भवन्तु तिस्रोऽपि ज्ञानमोहिताः ॥ स्वकर्मणः प्रभावेण लभध्वं फलमीदृशम् ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य च साध्वस्तास्तिस्रोऽपि चकिता भृशम् ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य समूचुर्नतमस्तकाः ॥ २३ ॥ पितृतनया ऊचुः ॥ मुनिवर्य्य दयासिन्धो प्रसन्नो भव चाधुना ॥ त्वत्प्रणामं वयं मूढाः कुर्महे स्म न भावतः ॥ २४ ॥

तुमने हमारा अभ्युत्थान न किया, गर्वसे नमस्कार भी न किया, नरभावसे मोहित हो इस कारण तुम स्वर्गसे दूर होवो ॥ २१ ॥ और तीनोंही ज्ञानसे मोहित होनेके कारण मनुष्योंकी स्त्री होवोगी, अपने कर्मोंके बलसे ऐसा फल पाओगी ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुन वह तीनों कन्या बहुतही चकितहुईं और सनत्कुमारजीके चरणोंमें पतित हो प्रणामकर बोलीं ॥ २३ ॥ पितृकन्या बोलीं हे मुनिश्रेष्ठ! दयासागर अब आप हमारे ऊपर कृपा करो

हमने जो मूढ होकर आपको प्रणाम न किया ॥ २४ ॥ हे विप्र ! उसका फल पाया हे मुने ! आपका इसमें कुछ दोष नहीं आप अनुग्रह कीजिये जिससे हम फिर स्वर्गको प्राप्त हों ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुन वह सनत्कुमार शिवकी मायासे प्रेरितहो प्रसन्न होकर शापोद्धारको कहने लगे ॥ २६ ॥ सनत्कुमार बोले तुम तीनों पितरोंकी कन्या प्रसन्नहोकर सुनो मेरा वचन शोक दूर करनेवाला और तुमको सदा सुख देनेवालाहै ॥ २७ ॥ विष्णुका अंशरूप जो हिमालय पर्वत है जो हिमका आधारहै,यह ज्येष्ठा उसकी कामिनी होगी इसीकी कन्या पार्वती होगी ॥ २८ ॥ और यह दूसरी कन्या धन्या महायोगिनी

प्राप्तं च तत्फलं विप्रः न ते दोषो महामुने ॥ अनुग्रहं कुरुष्वात्र लभेम स्वर्गतिम्पुनः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तात प्रोवाच स मुनिस्तदा ॥ शापोद्धारं प्रसन्नात्मा प्रेरितः शिवमायया ॥ २६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पितॄणान्तनयास्तिस्रः शृणुत प्रीतमानसाः ॥ वचनं मम शोकघ्नं सुखदं सर्वदैव वः ॥ २७ ॥ विष्णोरंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी ॥ ज्येष्ठा भवतु तत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती ॥ २८ ॥ धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च ॥ तस्याः कन्या महा लक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति ॥ २९ ॥ वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती ॥ भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः ॥ ३० ॥ मेनका योगिनी पत्या पार्वत्याश्च वरेण च ॥ तेन देहेन कैलासं गमिष्यति परम्पदम् ॥ ३१ ॥ धन्या च सीतया सीरध्वजो जनकवंशजः ॥ जीवन्मुक्तो महायोगी वैकुण्ठं च गमिष्यति ॥ ३२ ॥ कलावती वृषभानस्य कौतुकात्कन्यया सह ॥ जीवन्मुक्ता च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

जनककी स्त्री होगी जिसके यहां महालक्ष्मी सीता उत्पन्न होगी ॥ २९ ॥ कलावती वैश्य वृषभान की प्रिया होगी द्वापरके अन्तमें उससे राधा प्रगट होगी ॥ ३० ॥ मेनका योगिनी पार्वतीजीसे आपने श्रेष्ठ वरको प्राप्त होकर उसी देहसे परमपद कैलासको जायगी ॥ ३१ ॥ और धन्या सीताको उत्पन्नकर जनकवंशोत्पन्न सीरध्वजको प्राप्त हो वैकुंठ को चली जायगी ॥ ३२ ॥ और कलावती वृषभानको प्राप्तहो कौतुकसे राधाके साथ जीवन्मुक्त हो गोलोकको जायगी इसमें

सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ विना विपत्तिके किसकी कहां महिमा होतीहै सुकर्मियोंको दुःखके गतहोनेमें परमोत्कृष्ट सुखही है ॥ ३४ ॥ तुम पितरोंकी कन्या स्वर्गविलासिनी हो विष्णुके दर्शनसे तुम्हारा कर्मक्षय होगया ॥ ३५ ॥ मुनीश्वर यह कहकर फिर भी बोले तथा ज्ञान और भुक्ति मुक्ति देनेवाले शिवका स्मरण किया ॥३६॥ और भी प्रेमसे मेरा सुख दायक वचन सुनो तुम शिवमें भक्ति करनेवाली धन्य हो निरन्तर मान्य और पूज्यहो ॥ ३७ ॥ मेनामें जगदम्बिका पार्वती देवी उत्पन्नहो परमदुष्कर तप करके शिवकी प्रिया होगी ॥ ३८ ॥ और धन्याकी सुता सीता राम चंद्रकी पत्नी होगी लौकिकाचारको

विना विपत्तिं महिमा केषां कुत्र भविष्यति ॥ सुकर्मिणां गते दुःखे प्रभवेद्दुर्लभं सुखम् ॥ ३४ ॥ यूयं पितॄणां तनयास्सर्वास्स्वर्गविलासिकाः ॥ कर्मक्षयश्च युष्माकमभवद्विष्णुदर्शनात् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा पुनरप्याह गतक्रोधो मुनीश्वरः ॥ शिवं संस्मृत्य मनसा ज्ञानदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३६ ॥ अपरं शृणुत प्रीत्या मद्वचस्सुखदं सदा ॥ धन्या यूयं शिवप्रीता मान्याः पूज्या ह्यभीक्ष्णशः ॥ ३७ ॥ मेनायास्तनया देवी पार्वती जगदम्बिका ॥ भविष्यति प्रिया शम्भोस्तपः कृत्वा सुदुस्सहम् ॥ ३८ ॥ धन्यासुता स्मृता सीता रामपत्नी भविष्यति ॥ लौकिकाचारमाश्रित्य रामेण विहरिष्यति ॥ ३९ ॥ कलावतीसुता राधा साक्षाद्गोलोकवासिनी ॥ गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थमाभाष्य स मुनिर्भ्रातृभिस्सह संस्तुतः ॥ सनत्कुमारो भगवाँस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥ ४१ ॥ तिस्रो भगिन्यस्तास्तात पितॄणां मानसीः सुताः ॥ गतपापास्सुखं प्राप्य स्वधाम प्रययुर्द्रुतम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे पूर्वगतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आश्रयकर रामके साथ विहार करैगी॥ ३९॥ कलावतीकी सुता राधा साक्षात् गोलोककी निवास करनेवाली गुप्त स्नेहमें निबद्ध हुई कृष्णकी पत्नी होगी॥ ४०॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार मुनिराज कथनकर अपने भाइयोंसहित वहीं अन्तर्हित होगये ॥ ४१ ॥ और पितरोंकी मानसी सुता वह तीनो बहनें पापरहित हो सुखको प्राप्त हो अपने २ धामोंको गईं ॥४२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे पूर्वगतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ २ ॥

नारदजी बोले हे ब्रह्माजी हे महापंडित हे बुद्धिमान बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हे विष्णुसद्गुरो ! इसक पीछे फिर क्या चरित्र हुआ सो आप कहिये ॥ १ ॥ यह आपने मेनाकी पूर्वगतिकी अद्भुत कथा सुनाई और विवाह भी भलीप्रकार सुनाया, अब आप इसका परम चरित्र कहिये ॥ २ ॥ वह गिरि मेनाको विवाहकर फिर क्या करते हुए और उसमें जगदम्बिका पार्वती किस प्रकार उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥ और किसप्रकारसे दुःसह तप करके शंकरको प्राप्त हुई यह शंकरका यश विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! तुम प्रेमसे शंकरका यश सुनो जिसको सुनकर ब्रह्महत्याराभी शुद्ध होकर सब कामनाओंको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ जब मेनाका विवाह करके गिरिराज अपने घर गये हे नारद ! उस समय त्रिलोकीमें उत्सव हुआ ॥ ६ ॥ हिमाचलने भी प्रसन्न होकर परम उत्सव किया, ब्राह्मण बन्धुजन तथा दूसरे जनोंको भी परम बुद्धिसे उनका अर्चन किया ॥ ७ ॥ सब ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, और दूसरे बन्धुजन भी अपने २ स्थानोंको गये ॥ ८ ॥ हिमाचलभी प्रसन्नहो अपने घरमें आनंद करने लगे और मेनाके संग अपने स्थान तथा नन्दन वनमें विहार करनेलगे ॥ ९ ॥ तिस समय सम्पूर्ण देवता विष्णु आदि तथा और महात्मा मुनि हिमालयके समीप गये ॥ १० ॥

नारद उवाच ॥ विधे प्राज्ञ महाधीमन्वद मे वदतां वर ॥ ततः परं किमभवच्चरितं विष्णुसद्गुरो ॥ १ ॥ अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता मेना
पूर्वगतिः शुभा ॥ विवाहश्च श्रुतस्सम्यक्परमं चरितं वद ॥ २ ॥ मेनां विवाह्य स गिरिः कृतवान्किं ततः परम् ॥ पार्वती कथमुत्पन्ना
तस्यां वै जगदम्बिका ॥ ३ ॥ तपस्सुदुस्सहं कृत्वा कथं प्राप पतिं हरम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराच्छांकरं यशः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मो
वाच ॥ मुने त्वं शृणु सुप्रीत्या शांकरं सुयशः शुभम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा शुद्ध्येत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ यदा मेनाविवाहन्तु
कृत्वागच्छद्गिरिर्गृहम् ॥ तदा समुत्सवो जातस्त्रिषु लोकेषु नारद ॥ ६ ॥ हिमाचलोऽपि सुप्रीतश्चकार परमोत्सवम् ॥ भूसुरान्बंधुवर्गांश्च
परानानर्च सद्धिया ॥ ७ ॥ सर्वे द्विजाश्च सन्तुष्टा दत्त्वाशीर्वचनं वरम् ॥ ययुस्तस्मै स्वस्वधाम बंधुवर्गास्तथापरे ॥ ८ ॥ हिमाचलो
ऽपि सुप्रीतो मेनया सुखदे गृहे ॥ रेमेऽन्यत्र च सस्थाने नन्दनादिवनेष्वपि ॥ ९ ॥ तस्मिन्नवसरे देवा मुने विष्णवादयोऽखिलाः ॥
मुनयश्च महात्मानः प्रजग्मुर्भूधरान्तिके ॥ १० ॥

उन देवताओंको आयेहुए देखकर गिरिराजने प्रणाम किया, और अपने सुकृतकी प्रशंसा करतेहुए भक्तिसे बडा सत्कार किया ॥ ११ ॥ हाथ जोड शिर झुकाय भक्ति स्तुतिसे प्रसन्न करते हुये गिरिराजके रुएँ खडे होगये और प्रेमके आंसू नेत्रोंसे पतित हुए ॥ १२ ॥ हे मुने ! तब प्रसन्न होकर हिमालय प्रणामकर विष्णु आदि देवताओंसे कहने लगे ॥ १३ ॥ हिमालय बोले आज मेरा सफल जन्म है आज मेरा सफल तपहै आज मेरा ज्ञान और क्रिया सफल हैं ॥ १४ ॥ आज मैं धन्य और मेरी भूमि धन्यहै, मेरा कुल दारा सब धन्य हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ जिसकारण कि तुम सब मिलकर आयेहो

दृष्ट्वा तानागतान्देवान्प्रणनाम मुदा गिरिः ॥ संमानं कृतवान्भक्त्या प्रशंसन्स्वविधिं महान् ॥ ११ ॥ साञ्जलिर्नतशीर्षो हि स तुष्टाव सुभक्तितः ॥ रोमोद्गमो महानासीद्गिरेः प्रेमाश्रवोऽपतन् ॥ १२ ॥ ततः प्रणम्य सुप्रीतो हिमशैलः प्रसन्नधीः ॥ उवाच प्रणतो भूत्वा मुने विष्ण्वादिकान्सुरान् ॥ १३ ॥ हिमाचल उवाच ॥ अद्य मे सफलं जन्म सफलं सुमहत्तपः ॥ अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलाः क्रियाः ॥ १४ ॥ धन्योऽहमद्य संजातो धन्या मे सकला क्षितिः ॥ धन्यं कुलं तथा दारास्सर्वं धन्यं न संशयः ॥ १५ ॥ यतः समागता यूयं मिलित्वा सर्व एकदा ॥ मां निदेशयत प्रीत्योचितं मत्त्वा स्वसेवकम् ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा महीध्रस्य वचनं ते सुरास्तदा ॥ ऊचुर्हर्यादयः प्रीताः सिद्धिं मत्त्वा स्वकार्यतः ॥ १७ ॥ देवा ऊचुः ॥ हिमाचल महाप्राज्ञ शृण्व स्मद्वचनं हितम् ॥ यदर्थमागतास्सर्वे तद्ब्रूमः प्रीतितो वयम् ॥ १८ ॥ या पुरा जगदम्बोमा दक्षकन्याऽभवद्गिरे ॥ रुद्रपत्नी हि सा भूत्वा चिक्रीडे सुचिरं भुवि ॥ १९ ॥

इसकारण प्रीतिसे मुझको अपना सेवक जानकर आज्ञा करो ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे वे देवता हिमालयके वचन सुनकर प्रसन्न होकर अपने कार्यकी सिद्धि मान बोले ॥ १७ ॥ देवता बोले हे हिमालय हे महाबुद्धिसम्पन्न ! हमारे हितकारी वचन सुनो जिस कारण हम यहां आयेहैं वह प्रेमसे कहतेहैं ॥ १८ ॥ हे गिरे ! जिस समय जगत्की माता उमा दक्षकी कन्या होकर रुद्रपत्नी हो भूमिमें बहुतकालतक क्रीडा करती रही ॥ १९ ॥

पश्चात् पितासे अनादरको प्राप्त हो अपना प्रण स्मरणकर अपने शरीरको त्यागकर अंबिका आपने पदको प्राप्त हुई ॥२०॥ हे हिमालय वह कथा लोकमें और
तुमको भी विदितहै ऐसा होनेसे देवताओंका महान् लाभ होगा॥२१॥ और शिवजीके वशवर्ती सब देवता भी तुम्हारे वशीभूत होजायंगे ॥२२॥ ब्रह्माजी बोले
इसप्रकार हिमालयने हरि आदिके वचन श्रवणकर ‘ऐसाही होवै’ ऐसा प्रसन्नमनसे कहा न कि आदर मात्रसे ही ॥ २३ ॥ तब सब देवता परम आदरसे उस
विधिको गिरिसे कहकर शंकरप्रिया उमाकी शरणको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ अच्छे स्थलमें स्थित हो मनसे जगदम्बाका स्मरण करने लगे, और अनेक प्रकारसे

पितृतोऽनादरं प्राप्य संस्मृत्य स्वपणं सती ॥ जगाम स्वपदं त्यक्त्वा तच्छरीरं तदाम्बिका ॥ २० ॥ सा कथा विदिता लोके तवापि
हिमभूधर ॥ एवं सति महालाभो भवेद्देवगणस्य हि ॥ २१ ॥ सर्वस्य भवतश्चापि स्युस्सर्वे ते वशास्सुराः ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां हर्यादीनां गिरीश्वरः ॥ तथास्त्विति प्रसन्नात्मा प्रोवाच न च सादरम् ॥ २३ ॥ अथ ते च समादिश्य तद्विधि
म्परमादरात् ॥ स्वयं जग्मुश्च शरणमुमायाश्शंकरस्त्रियः ॥ २४ ॥ सुस्थले मनसा स्थित्वा सस्मरुर्जगदम्बिकाम् ॥ प्रणम्य बहुशस्तत्र
तुष्टुवुः श्रद्धया सुराः ॥ २५ ॥ देवा ऊचुः ॥ देव्युमे जगतामम्ब शिवलोकनिवासिनि ॥ सदाशिवप्रिये दुर्गे त्वां नमामो महेश्वरि
॥ २६ ॥ श्रीशक्तिं पावनां शान्तां पुष्टिम्परमपावनीम् ॥ वयन्नमामहे भक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम् ॥ २७ ॥ शिवां शिवकरां शुद्धां
स्थूलां सूक्ष्मां परायणाम् ॥ अन्तर्विद्यासुविद्याभ्यां सुप्रीतां त्वां नमामहे ॥ २८ ॥ त्वं श्रद्धा त्वं धृतिस्त्वं श्रीस्त्वमेव सर्वगोचरा ॥
त्वन्दीधितिस्सूर्य्यगता स्वप्रपञ्चप्रकाशिनी ॥ २९ ॥

प्रणामकर श्रद्धा करके स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ देवता बोले हे देवि ! उमे जगन्मात ! हे शिवलोकनिवासिनी हे सदा शिवप्रिये दुर्गे महेश्वरिः तुमको
प्रणाम करतेहैं ॥ २६ ॥ श्रीशक्ति पावनी शान्ता पुष्टि परम पावनी अव्यक्तरूपिणीको हृदयसे प्रणाम करतेहैं ॥ २७ ॥ जो शिवा कल्याण कारिणी शुद्ध
स्थूल सूक्ष्म रूपवालीहै अन्तर्विद्या सुविद्यासे प्रसन्न होनेवाली तुमको हम प्रणाम करतेहैं ॥ २८ ॥ तुमही श्रद्धा तुमही धृति तुमही सर्वगोचर हो तुमही

सूर्यकी किरणरूप तथा स्वप्रपंचकी प्रकाश करने वाली हो ॥ २९ ॥ जो ब्रह्माण्ड संस्थानमें तथा अन्यसमयमें जगत्के जीवको और ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्तको जो बढातीहै हम उसको प्रणाम करतेहैं ॥ ३० ॥ तुमही वेदमाता गायत्री सावित्री सरस्वती हो तुमही सब जगत्को वार्ता और वेदत्रयस्वरूप वालीहो ॥३१॥ सब प्राणियोंमें निद्रारूप तुमही हो क्षुधा और तृप्ति तुमही हो तृष्णा, कान्ति, छबि, तुष्टि और सब आनंद करनेवाली तुम हो ॥३२॥ पुण्यकरनेवालोंकी तुम लक्ष्मी हो पापियोंको दंड देनेमें तुमही ज्येष्ठा हो तुम सब जगत्की शान्ति धात्री और प्राण पोषिणी हो ॥ ३३ ॥ प्राणियोंमें तुम

या च ब्रह्माण्डसंस्थाने जगज्जीवेषु या जगत् ॥ आप्याययति ब्रह्मादितृणान्तं तां नामामहे ॥ ३० ॥ गायत्री त्वं वेदमाता त्वं सावित्री सरस्वती ॥ त्वं वार्ता सर्वजगतां त्वं त्रयी धर्मरूपिणी ॥३१॥ निद्रा त्वं सर्वभूतेषु क्षुधा तृप्तिस्त्वमेव हि ॥ तृष्णा कान्तिश्छविस्तुष्टिस्सर्वानन्दकरी सदा ॥ ३२ ॥ त्वं लक्ष्मीः पुण्यकर्तॄणां त्वं ज्येष्ठा पापिनां सदा ॥ त्वं शान्तिः सर्वजगतां त्वं धात्री प्राणपोषिणी ॥ ३३ ॥ त्वन्तस्वरूपा भूतानां पञ्चानामपि सारकृत् ॥ त्वं हि नीतिभृतां नीतिर्व्यवसायस्वरूपिणी ॥ ३४ ॥ गीतिस्त्वं सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्वं यजुषां हुतिः ॥ ऋग्वेदस्य तथा मात्राथर्वणस्य परा गतिः ॥ ३५ ॥ समस्तगीर्वाणगणस्य शक्तिस्तमोमयी धातृगुणैकदृश्या ॥ रजःप्रपंचात्तु भवैकरूपा या न श्रुता भव्यकरी स्तुतेह ॥ ३६ ॥ संसारसागरकरालभवाङ्गदुःखनिस्तारकारितरणिश्च निवीतहीना ॥ आष्टाङ्गयोगपरिपालनकेलिदक्षां विन्ध्यागवासनिरतां प्रणमाम तां वै ॥ ३७ ॥

अन्तरूपिणी पांच तत्त्वोंमें साररूप हो तुम नीतिवालोंमें नीतिरूप तथा व्यवसायस्वरूपिणी हो ॥ ३४ ॥ सामवेदमें तुम गीतिरूप यजुर्वेदकी आहुति और ग्रन्थिरूप हो ऋग्वेदकी मात्रा और अथर्वकी परागति हो ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण देवसमूहोंकी शक्तिरूप, तमःप्रधान धात्री गुणोंकी एकही दृश्यरूप, रजोगुणके प्रपंचमें एक भवरूपा हो जो हमने शास्त्रोंसे सुनीहै कि वह कल्याणकरी स्तुतिको प्राप्त होतीहै ॥ ३६ ॥ कराल संसारसागरमें जो महान् दुःखहैं उनसे तुम निस्तारकरनेवाली निवीत (नौकासंचालक पालनामका वस्त्र) रहित नौका हो, अष्टांगयोगके पालनकी केलिये चतुरा विन्ध्याचल पर्वतपर निवास करनेवाली

भगवतीको हम प्रणाम करतेहैं ॥ ३७ ॥ जो प्राणियोंके नासिका नेत्र मुख भुजा वक्षःस्थल मनोंमें और मुखोंमें धृतिको धारण करातीहै, जगत्के कल्याणके अर्थ उनमें निद्रा रूपसे प्रवृत्त होती है, वह संसारकी स्थिति और पालनाके निमित्त हमसे प्रसन्न हो ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार जगदम्बा महेशानी उमाकी स्तुति कर सब देव प्रेमसे उनके दर्शनके निमित्त स्थित हुए ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गत–तृतीयपार्वतीखण्डे देवस्तुति र्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकारसे देवताओंने बडे कष्ट दूर करनेवाली दुर्गाकी स्तुति की तब जगदम्बिका देवताओंके आगे प्रगट

नासाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च धृत्या सुखानि वितनोषि सदैव जन्तोः ॥ निद्रेति यातिसुभगा जगती भवानां सा नः प्रसीदतु भवस्थितिपालनाय ॥ ३८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानीं जगदम्बामुमां सतीम् ॥ सुप्रेमयमनसः सर्वे तस्थुस्ते दर्शनेप्सवः ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवस्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं देवैः स्तुता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ आविर्बभूव देवानां पुरतो जगदम्बिका ॥ १ ॥ रथे रत्नमये दिव्ये संस्थिता परमाद्भुते ॥ किंकिणीजालसंयुक्ते मृदुसंस्तरणे वरे ॥ २ ॥ कोटिसूर्याधिकाभासरम्यावयवभासिनी ॥ स्वतेजोराशिमध्यस्था वररूपा समच्छविः ॥ ३ ॥ अनूपमा महामाया सदाशिवविलासिनी ॥ त्रिगुणा निर्गुणा नित्या शिवलोकनिवासिनी ॥ ४ ॥ त्रिदेवजननी चण्डी शिवा सर्वार्तिनाशिनी ॥ सर्वमाता महानिद्रा सर्वस्वजनतारिणी ॥ ५ ॥ तेजोराशेः प्रभावात्तु सा तु दृष्टा सुरैश्शिवा ॥ तुष्टुवुस्तां पुनस्ते वै सुरा दर्शनकांक्षिणः ॥ ६ ॥

हुई ॥ १ ॥ परम अद्भुत रत्नोंके दिव्य रथमें बैठीहुई जिसमें क्षुद्रघण्टिका बँधी हुई और मनोहर बिछौने बिछे थे ॥ २ ॥ कोटिसूर्यकी समान कान्तिमान् मनोहर अंग प्रत्यंगसे शोभायमान अपनी तेजोराशिके मध्यमें स्थित वररूपा समान छबिवाली ॥ ३ ॥ उपमारहित महामाया सदाशिवके साथ विलास करनेवाली त्रिगुणात्मिका निर्गुण नित्य शिवलोकमें निवास करनेवाली ॥ ४ ॥ तीनों देवताओंको प्रगट करनेवाली जननी चण्डिका, कल्याणदायिनी सब दुःखोंकी नाश करनेवाली सबकी माता महानिद्रा सब स्वजनोंकी तारनेवाली ॥ ५ ॥ उस तेजराशिके प्रभावसे देवताओंको शिवाका दर्शन हुआ वे दर्शनकी

इच्छासे भगवतीकी फिर स्तुति करनेलगे ॥ ६ ॥ तब विष्णुआदि सब देवता भगवतीके दर्शनकी इच्छासे कृपाको प्राप्त हो भगवतीके दर्शन करनेको समर्थ हुए ॥ ७ ॥ इस समय सम्पूर्ण देवताओंको बडा आनंद हुआ, वारंवार प्रणाम कर भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ देवता बोले हे शिवे ! हे शर्वाणि हे कल्याणकी करनेवाली हे जगत्की माता महेश्वरि तुम सब दुःखकी दूर करनेवाली हो हम सब देवता तुमको प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥ हे देवी ! वेद शास्त्र भी तुम्हारी महिमाको सर्वथा नहीं जानसकते, तुम्हारी महिमा और ध्यान हे शिवे ! वाणी और मनसे परे हैं ॥ १० ॥ उसको भली प्रकार न जाननेसे

अथ देवगणास्सर्वे विष्णवाद्या दर्शनेप्सवः ॥ ददृशुर्जगदम्बां तां तत्कृपां प्राप्य तत्र हि ॥ ७ ॥ बभूवानन्दसन्दोहस्सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ पुनःपुनः प्रणेमुस्तां तुष्टुवुश्च विशेषतः ॥ ८ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ शिवे शर्वाणि कल्याणि जगदम्ब महेश्वरि ॥ त्वां नतास्सर्वथा देवा वयं सर्वार्तिनाशिनीम् ॥ ९ ॥ न हि जानन्ति देवेशि वेदाश्शास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ अतीतो महिमा ध्यानं तव वाङ्मनसोऽशिवे ॥ १० ॥ अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै चकितं चकितं सदा ॥ अभिधत्ते श्रुतिरपि परेषां का कथा मता ॥ ११ ॥ जानन्ति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः ॥ शरणागतभक्तानां न कुत्रापि भयादिकम् ॥ १२ ॥ विज्ञप्तिं शृणु सुप्रीता यस्या दासास्सदाम्बिके ॥ तव देवि महादेवि हीनतो वर्णयामहे ॥ १३ ॥ पुरा दक्षसुता भूत्वा संजाता हरवल्लभा ॥ ब्रह्मणश्च परेषां वा नाशय त्वमकं महत् ॥ १४ ॥ पितृतोऽनादरं प्राप्यात्यजः पणवशात्तनुम् ॥ स्वलोकमगमस्त्वं वालभद्दुःखं हरोऽपि हि ॥ १५ ॥ न हि जातम्प्रपूर्णं तद्देवकार्यं महेश्वरि ॥ व्याकुला मुनयो देवाश्शरणन्त्वां गता वयम् ॥ १६ ॥

निगम सदा चकित रहता है, जब वेदकी यह दशा है तो दूसरोंकी कथा क्या है ॥११॥ हां तुम्हारी कृपाको प्राप्त होकर कोई २ भक्तही तुम्हारी महिमाको जानते हैं शरणमें आयेहुएको कहीं भी भय नहीं है ॥ १२ ॥ हे जगदम्ब ! अपने भक्तोंकी प्रार्थना प्रेमसे सुनो हे देवि ! हम दास क्या महिमा वर्णन करैं जो कहैंगे वह लघु होगी ॥ १३ ॥ पहले तुम दक्षकन्या होकर शिवकी प्रिया हुई, ब्रह्माका वा दूसरोंका गर्व उस समय खर्व हुआ ॥१४॥ पितासे अनादरको प्राप्त हो तुमने अपने प्राण त्यागन किये, और अपने लोकको चली आई, इसमें शंकरको भी बडा दुःख हुआ ॥ १५ ॥ हे महेश्वरि ! उस समय भी

देवकार्य पूर्ण नहीं हुआ, हम मुनि देवता व्याकुल होकर तुम्हारी शरणमें आये हैं ॥ १६ ॥ हे महेशानि ! आप देवताओंके मनोरथ पूर्ण कीजिये, हे शिवे ! जिस प्रकारसे सनत्कुमारके वचन सफलहों सो करो ॥ १७ ॥ हे देवि ! तुम फिरभी पृथिवीमें अवतार लेकर शिवजीकी पत्नी बनो और यथायोग्य लीला करो जिस्से देवताओंको सुखहो ॥ १८ ॥ हे देवि ! इसप्रकारसे कैलासाचलमें स्थित शंकर भी प्रसन्न होंगे सब सुखी हों और सब प्रकारके दुःख नाश होजायँ ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे विष्णु आदि प्रेमसे युक्त हो भक्तिसे शिर झुकाये मौन हो खडे रह गये ॥ २० ॥ शिवाभी देवताओंकी स्तुति

पूर्णं कुरु महेशानि निर्जराणां मनोरथम् ॥ सनत्कुमारवचनं सफलं स्याद्यथा शिवे ॥ १७ ॥ अवतीर्य क्षितौ देवि रुद्रपत्नी पुनर्भव ॥
लीलां कुरु यथायोग्यं प्राप्नुयुर्निर्जरास्सुखम् ॥ १८ ॥ सुखी स्याद्देवि रुद्रोऽपि कैलासाचलसंस्थितः ॥ सर्वे भवन्तु सुखिनो दुःखं
नश्यतु कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति प्रोच्यामरास्सर्वे विष्णवाद्याः प्रेमसंकुलाः ॥ मौनमास्थाय संतस्थुर्भक्तिनम्रा
त्ममूर्तयः ॥ २० ॥ शिवापि सुप्रसन्नाभूदाकर्ण्यामरसंस्तुतिम् ॥ आकलय्याथ तद्धेतुं संस्मृत्य स्वप्रभुं शिवम् ॥ २१ ॥ उवाचोमा
तदा देवी सम्बोध्य विबुधांश्च तान् ॥ विहस्य मापतिमुखान्सदया भक्तवत्सला ॥ २२ ॥ ॥ उमोवाच ॥ हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च
गतव्यथाः ॥ सर्वे शृणुत मद्वाक्यं प्रसन्नाहं न संशयः ॥ २३ ॥ चरितं मम सर्वत्र त्रैलोक्यस्य सुखावहम् ॥ कृतं मयैव सकलं दक्षमो
हादिकं च तत् ॥ २४ ॥ अवतारं करिष्यामि क्षितौ पूर्णं न संशयः ॥ बहवो हेतवोऽप्यत्र तद्वदामि महादरात् ॥ २५ ॥ पुरा हिमा
चलो देवा मेना चातिसुभक्तितः ॥ सेवां मे चक्रतुस्तात जननीवत्सतीतनोः ॥ २६ ॥

सुनकर प्रसन्न हुई और उस हेतुको विचार अपने प्रभु शंकरको स्मरण कर ॥ २१ ॥ उस समय उमा देवी सब देवताओंको सम्बोधन कर बोली वह भक्तवत्सला हँसकर विष्णुआदिसे कहने लगी ॥ २२ ॥ भगवती बोली हे हरि ! हे ब्रह्मा ! हे देव ! हे मुनियों ! तुम दुःखरहित होजाओ निःसन्देह मैं प्रसन्न हूं तुम सब कोई मेरे वचन सुनो ॥ २३ ॥ मेरा चारित्र त्रिलोकीको सुखदेनेवाला है दक्षको जो मोह हुआ यह सब मैंनेही किया है ॥ २४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि मैं पृथिवीमें अपना पूर्ण अवतार करूंगी इसमें बहुतसे हेतु हैं सो मैं आदरसे तुमसे कहती हूं ॥ २५ ॥ पहले हिमाचल और उनकी स्त्रीने बडे

प्रेमसे सतीशरीरमें माता पिताकी समान मेरी सेवा की थी ॥ २६ ॥ इस समय भी भक्तिसे मेरी सेवा करतेहैं और विशेष कर पुत्रीरूपसे मेना मेरी सेवा करती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ अब रुद्र तथा दूसरे देवता जावो मैं हिमालयके घर प्रगट हूंगी. उस समय उनकेसब दुःख नाश हो जायँगे ॥ २८ ॥ अब तुम सब अपने अपने स्थानोंपर जाकर सुख पाओ मैं मेनाकी कन्या होकर उसको सुख दूंगी ॥ २९ ॥ यह मेरा गुप्त मत है कि मैं शिवकी पत्नी हूंगी, शिवकी लीला बडी अद्भुत है जो ज्ञानियोंको भी मोहित करती है ॥ ३० ॥ हे देवताओ! जब कि मैंने दक्षकी कन्या होकर पितासे अनादर पाकर

इदानीं कुरुतस्सेवां सुभक्त्या मम नित्यशः ॥ मेना विशेषतस्तत्र सुतात्वेनात्र संशयः ॥ २७॥ रुद्रो गच्छतु यूयं चावतारं हिमवद्गृहे ॥
अतश्चावतरिष्यामि दुःखनाशो भविष्यति ॥ २८ ॥ सर्वे गच्छत धाम स्वं स्वं सुखं लभतां चिरम् ॥ अवतीर्य सुता भूत्वा मेनाया
दास्य उत्सुखम् ॥२९॥ हरपत्नी भविष्यामि सुगुप्तं मतमात्मनः ॥ अद्भुता शिवलीला हि ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ ३० ॥ यावत्प्रभृति
मे त्यक्ता स्वतनुर्दक्षजा सुराः ॥ पितृतोऽनादरं दृष्ट्वा स्वामिनस्तत्क्रतौ गता ॥ ३१ ॥ तदाप्रभृति स स्वामी रुद्रः कालाग्निसंज्ञकः ॥
दिगम्बरो बभूवाशु मच्चिन्तनपरायणः ॥ ३२ ॥ मम रोषं क्रतौ दृष्ट्वा पितुस्तत्र गता सती ॥ अत्यजत्स्वतनुं प्रीत्या धर्मज्ञेति विचा
रतः॥३३॥ योग्यभूत्सदनं त्यक्त्वा कृत्वा वेषमलौकिकम् ॥ न सेहे विरहं सत्या मद्रूपाया महेश्वरः ॥ ३४॥ मम हेतोर्महादुःखी स बभूव
कुवेषभृत् ॥ अत्यजत्स तदारभ्य कामजं सुखमुत्तमम् ॥३५॥ अन्यच्छृणुत हे विष्णो हे विधे मुनयः सुराः॥महाप्रभोर्महेशस्य लीलां
भुवनपालिनीम् ॥ ३६ ॥

उसके यज्ञमें जाकर अपने स्वामीके निमित्त अपना शरीर त्याग दिया ॥ ३१ ॥ उस समय वह हमारे स्वामी कालाग्निरूप हो दिगम्बर रहते हुए मेरी चिन्ताही करतेहैं ॥ ३२ ॥ पिताके यज्ञमें गई सतीने मेरे ऊपर रुष्ट दक्षके रोषसे शरीर त्याग दिया इससे मेरीप्रीतिहै और धर्मज्ञताको विचार कर वे बडे दुःखी होते हैं ॥ ३३ ॥ अपने योग्यस्थानको त्यागनकर अलौकिक वेष किये मुझ सतीरूपके वियोगको शिवजी योगी होकर भी नहीं सहसकतेहैं ॥ ३४ ॥ मेरे निमित्तही कुवेष धारणकर वह महा दुःखी हुए उसी दिनसे उन्होंने सब कामसे उत्पन्न हुए उत्तम सुखोंको त्याग दियाहै ॥ ३५ ॥ हे विष्णु! हे विधाता!

हे देवता ! मुनियो और भी महाप्रभु महेशजीकी भुवनपालिनी लीला सुनो ॥ ३६ ॥ वह प्रेमसे मेरी अस्थियोंके पवित्र मालाको प्रेमसे गलेमें धारण किये भी कहीं शान्तिको नहीं प्राप्त होते और निरन्तर जागृत रहतेहैं ॥ ३७ ॥ और अनीशकी समान वह प्रभु इधर उधर ऊंचे स्वरसे रोदन करतेहैं योग्य अयोग्यके ज्ञानसे रहित हो सर्वदा सर्वत्र भ्रमते रहतेहैं ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कामियोंकी गति दिखाते हुए शंकर लीला करतेहैं, और विरहसे व्याकुल हो कामियोंकी समान वाणी बोलतेहैं ॥ ३९ ॥ वास्तवमें प्रभु विकाररहित दीनतारहित अजित अविनाशी परमेश्वरहैं वह परिपूर्ण स्वामी शिव मायाके अधीश्वर सबके अधि

विधाय मालां सुप्रीत्या ममास्थ्नां विरहाकुलः ॥ न शान्तिं प्राप कुत्रापि प्रबुद्धोऽप्येक एव सः ॥ ३७ ॥ इतस्ततो रुरोदोच्चैरनीश इव स प्रभुः ॥ योग्यायोग्यं न बुबुधे भ्रमन्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३८ ॥ इत्थं लीलां हरोऽकार्षीद्दर्शयन्कामिनां प्रभुः ॥ ऊचे कामुकवद्वाणीं विरहव्याकुलामिव ॥ ३९ ॥ वस्तुतोऽविकृतोऽदीनोऽस्त्यजितः परमेश्वरः ॥ परिपूर्णः शिवः स्वामी मायाधीशोऽखिलेश्वरः ॥ ४० ॥ अन्यथा मोहतस्तस्य किं कामाच्च प्रयोजनम् ॥ विकारेणापि केनाद्य मायालिप्तो न स प्रभुः ॥ ४१ ॥ रुद्रोऽतीवेच्छति विभुस्स मे कर्तुं करग्रहम् ॥ अवतारं क्षितौ मेनाहिमाचलगृहे सुराः ॥ ४२ ॥ अतश्चावतरिष्यामि रुद्रसन्तोषहेतवे ॥ हिमागपत्न्यां मेनाया लौकिकीं गतिमाश्रिता ॥ ४३ ॥ भक्ता रुद्रप्रिया भूत्वा तपः कृत्वा सुदुस्सहम् ॥ देवकार्यं करिष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४४ ॥ गच्छत स्वगृहं सर्वे भव भजत नित्यशः ॥ तत्कृपातोऽखिलं दुःखं विनश्यति न संशयः ॥ ४६ ॥

पतिहैं ॥ ४० ॥ नहीं तो मोह और कामसे उसको क्या प्रयोजनहै किसी विकार और मायासे वह प्रभु लिप्त नहीं है ॥ ४१ ॥ वह प्रभु रुद्र मेरा पाणिग्रहण करनेकी इच्छा करतेहैं, हे देवताओ मैं हिमाचलके घरमें जाके अवतार लूंगी ॥ ४२ ॥ रुद्रके सन्तोषनिमित्त मैं अवतार लूंगी, हिमालयकी पत्नी मेनामें लौकिकी गति दिखाऊंगी ॥ ४३ ॥ भक्तिसे रुद्रकी प्रिया होकर और महातपस्या करके देवताओंका कार्य करूंगी इसमें सन्देह नहीं यह सत्य है ॥४४॥ तुम सब देवता अपने २ स्थानोंको जाओ और शंकरका भजन करो उनकी कृपासे ही सब दुःख दूर होजायँगे इसमें सन्देह नहीं ॥४५॥

उन कृपालुकी कृपासे सदा मंगल होगा मैं उनकी जाया होकर त्रिलोकीमें वंदित और पूजित होजाऊंगी ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर वह जगदम्बा देवताओंके देखते देखते अन्तर्धान होकर अपने लोकको प्राप्त होगई ॥४७॥ विष्णु आदि सब देवता और मुनि प्रसन्न हो उस दिशाको प्रणाम कर अपने २ स्थानोंको गये ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार तुमसे दुर्गाका चरित्र वर्णन किया जो मनुष्योंको सदा सुखदेनेवाला तथा भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है ॥ ४९ ॥ जो इसको नित्य सुन्ते वा भक्तिसे सुनातेहैं जो पढते वा पढातेहैं वे सब कामनाओंको प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गत

भविष्यति कृपालोस्तु कृपया मंगलं सदा ॥ वन्द्या पूज्या त्रिलोकेऽहं तज्जायेति च हेतुतः ॥ ४६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा जगदम्बा सा देवानां पश्यतान्तदा ॥ अन्तर्दधे शिवा तात स्वं लोकम्प्राप वै द्रुतम् ॥ ४७ ॥ विष्णवादयस्सुरास्सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः ॥ कृत्वा तद्दिशि संनामं स्वस्वधामानि संययुः ॥ ४८ ॥ इत्थं दुर्गासुचरितं वर्णितं ते मुनीश्वर ॥ सर्वदा सुखदं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे देवसान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ अन्तर्हितायान्देव्यां तु दुर्गायां स्वगृहेषु च ॥ गतेष्वमरवृन्देषु किमभूत्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ कथं मेनागिरीशौ च तेपाते परमन्तपः ॥ कथं सुताऽभवत्तस्य मेनायान्तात तद्वद ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विप्रवर्य सुतश्रेष्ठ शृणु तच्चारितं महत् ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ उपदिश्य गते तात सुरवृन्दे गिरीश्वरः ॥ हर्यादौ मेनका चापि तेपाते परमन्तपः ॥ ४ ॥

तृतीयपार्वतीखंडे देवसान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारदजी बोले जब भगवती दुर्गा अन्तर्धान होकर अपने स्थानको गई और देवसमूह भी अपने २ स्थानको गया तब क्या हुआ ॥ १ ॥ मेना और हिमालयने किसप्रकार परम तप किया और भगवती किसप्रकार उनकी सुता हुई सो आप हमसे कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे विप्रवर्य ! हे श्रेष्ठपुत्र ! इस चरित्रको सुनो मैं शिवजीको प्रणाम कर उस भक्तिवर्द्धन चरित्रको कहताहूं ॥३॥ जब देवता हिमालय

और मेनाको उपदेश देकर चले गये तब हिमालय और मेना विष्णुकी आज्ञासे महा तप करने लगी ॥ ४ ॥ दोनो स्त्री पुरुष दिनरात शिवा शिवका ध्यान करते हुए भक्तियुक्तचित्तसे भली प्रकार आराधना करने लगे ॥५॥ गिरिकी प्रिया बडी प्रसन्नतासे शिवजीके सहित भगवतीको पूजनकर ब्राह्मणोंके सन्तोषके निमित्त ब्राह्मणोंको दान देने लगी ॥ ६ ॥ चैत्रमासके आरंभसे सत्ताईस वर्षतक पुत्री होनेके निमित्त बराबर शिवाकी आराधना करती रही ॥ ७ ॥ अष्टमीको उपवास करके नवमीके दिन मोदक पिट्ठी खीर गन्ध पुष्पोंसे भगवतीको पूजा ॥ ८ ॥ गंगातटवर्ती औषधिप्रस्थपर शिवसंयुक्त भगवतीकी मृन्मयी

अहर्न्निशं शिवां शम्भुं चिन्तयन्तौ च दम्पती ॥ सम्यगारेधतुर्नित्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ५ ॥ गिरिप्रियातीव मुदानर्च देवीं शिवेन सा ॥ दानन्ददौ द्विजेभ्यश्च सदा तत्तोषहेतवे ॥ ६ ॥ चैत्रमासं समारभ्य सप्तविंशतिवत्सरान् ॥ शिवां सम्पूजयामासापत्त्यार्थिन्यन्वहं रता ॥ ७॥ अष्टम्यामुपवासन्तु कृत्वादान्नवमीतिथौ ॥ मोदकैर्बलिपिष्टैश्च पायसैर्गन्धपुष्पकैः ॥८॥ गङ्गायामौषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ उमायाः पूजयास नानावस्तुसमर्पणैः ॥ ९ ॥ कदाचित्सा निराहारा कदाचित्सा धृतव्रता ॥ कदाचित्पवनाहारा कदाचिज्जलभुग्ह्यभूत् ॥ १० ॥ शिवाविन्यस्तचेतस्का सप्तविंशतिवत्सरान् ॥ निनाय मेनका प्रीत्या परं सा मृष्टवर्चसा ॥ ११ ॥ सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी ॥ सुप्रीताभवदत्यर्थमुमा शंकरकामिनी ॥ १२ ॥ अनुग्रहाय मेनायाः पुरतः परमेश्वरी ॥ आविर्बभूव सा देवी सन्तुष्टा तत्सुभक्तितः ॥ १३ ॥ दिव्यावयवसंयुक्ता तेजोमण्डलमध्यगा ॥ उवाच विहसन्ती सा मेनां प्रत्यक्षतां गता ॥ १४ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ वरं ब्रूहि महासाध्वि यत्ते मनसि वर्तते ॥ सुप्रसन्ना च तपसा तवाहं गिरिकामिनि ॥ १५ ॥

मूर्ति बनाकर अनेक वस्तुओंको समर्पणकर भगवतीकी पूजा करने लगी ॥ ९ ॥ कभी निराहार रहजाती कभी व्रत धारण करती कभी पवनके आहारसे रहजाती कभी जलमात्रके आहारसे रहती ॥ १० ॥ इसप्रकार शिवशिवामें मन लगाये पश्चात अखंड सत्ताईस वर्ष मेनाने निराहारही रहकर प्रेमभक्तिपूर्वक बितादिये ॥ ११ ॥ सत्ताईस वर्षके पीछे जगन्मयी जगन्माता उमा शंकरप्रिया मेनापर प्रसन्न हुई ॥ १२ ॥ उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट हो परमेश्वरी अनुग्रह करनेके निमित्त मेनाके आगे प्रकटहुई ॥ १३ ॥ दिव्य अवयवसे संयुक्त तेजोमण्डलके मध्यमें स्थित हँसती हुई प्रत्यक्षहो मेनासे बोली ॥ १४ ॥ देवी बोली

हे महासाध्वि ! जो तुम्हारे मनमें हो सो वर माँगो, हे गिरिकामिनि ! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्नहूं ॥ १५ ॥ हे मेना तपोव्रत समाधिसे जो तुमने प्रार्थना कीहै जो जो तुमको वांछित होगा सो मैं तुमको सब दूंगी ॥१६॥ तब मेनका देवी भगवतीको प्रत्यक्ष देखकर प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगी ॥१७॥ मेना बोली हे देवि ! मैंने इस समय आपका रूप प्रत्यक्ष देखाहै मैं तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करती हूं हे कालिके ! तुम प्रसन्नहो ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकार मेनाने कहा तब सबकी मोहनेवाली भगवती प्रसन्न होकर अपनी दोनों भुजाओंसे मेनाको आलिंगन करतीभई ॥ १९ ॥ तब मेनका महा

यत्प्रार्थितं त्वया मेने तपोव्रतसमाधिना ॥ दास्ये तेऽहं च तत्सर्वं वाञ्छितं यद्यदा भवेत् ॥ १६ ॥ ततस्सा मेनका देवीं प्रत्यक्षां कालिकान्तदा ॥ दृष्ट्वा च प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ मेनोवाच ॥ देवि प्रत्यक्षतो रूपन्दृष्टन्तव मयाऽधुना ॥ त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना भव कालिके ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ सा मेनयेत्युक्ता कालिका सर्वमोहिनी ॥ बाहुभ्यां सुप्रसन्नात्मा मेनकां परिषस्वजे ॥ १९ ॥ ततः प्राप्तमहाज्ञाना मेनका कालिकां शिवम् ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्त्या प्रत्यक्षतां गताम् ॥ २० ॥ ॥ मेनोवाच ॥ महामायां जगद्धात्रीं चण्डिकां लोकधारिणीम् ॥ प्रणमामि महादेवीं सर्वकामार्थदायिनीम् ॥ २१ ॥ नित्यानन्दकरीं मायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ॥ प्रणमामि सदा सिद्धां शुभसारसमालिनीम् ॥ २२ ॥ मातामहीं सदानन्दां भक्तशोकविनाशिनीम् ॥ आकल्पं वनितानां च प्राणिनां बुद्धिरूपिणीम् ॥ २३ ॥ सा त्वं बंधच्छेदहेतुर्यतीनां कस्ते गेयो मादृशीभिः प्रभावः ॥ हिंसाया वाथर्ववेदस्य सा त्वं नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥ २४ ॥

ज्ञानको प्राप्त होकर शिवाशक्तिको प्रत्यक्ष देखकर परम भक्तिसे प्रसन्न करने लगी ॥ २० ॥ मेना बोली महामाया जगद्धात्री चण्डिका लोककी धारण करनेवाली महादेवि ! सबकाम और अर्थकी देनेवालीको मैं प्रणाम करतीहूं ॥ २१ ॥ नित्य आनंद करनेवाली माया योगनिद्रा जगत्की उत्पन्न करनेवाली सिद्धस्वरूप दिव्यकमलोंकी मालावालीको प्रणाम करतीहूं ॥ २२ ॥ माता तुमही सदा आनंदरूपिणी भक्तोंके शोक दूर करनेवाली कल्पपर्यन्त स्त्रीजनों तथा प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी हो ॥ २३ ॥ ऐसी तुम यतियोंके बंधन छेदन करनेवाली हो मुझ सरीखी कौन तुम्हारा प्रभाव जान सकतीहै हिंसा वा अथर्ववेदमें नित्य स्थित

तुम मेरी कामना और इष्टको विधान करो ॥ २४ ॥ नित्य अनित्य भावहीनोंसे परास्त उनउनकी मात्राओंसे प्राणिवर्गोंको युक्त करतीहो उनकी शक्ति तुम
सदा नित्यरूपाहो, समयपर आप योगयुक्त और समर्थ हो ॥ २५ ॥ जगत्की कारणरूप और जगत्की धारण करनेवाली तुमही हो तुमही परेसे परे नित्यप्रकृति
हो जिसप्रकारसे तुम ब्रह्मरूपको वशीभूत करती हो हे माता ! तुम नित्यरूप हो मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ २६ ॥ तुमही अग्निमें उग्र शक्तिसे वर्तमान हो तुमही
दाहिका और सूर्यकी किरणोंकी उग्रशक्ति हो चन्द्रिका (चांदिनी) में आह्लादक शक्तिहो आप चण्डिका हो मैं तुमको प्रणाम करतीहूं ॥ २७ ॥ स्त्रियोंमें

नित्यानित्यैर्भावहीनैः परास्तैस्तत्तन्मात्रैर्योज्यते भूतवर्गः ॥ तेषां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा काले योषा योगयुक्ता समर्था ॥ २५ ॥
योनिर्धरित्री जगतां त्वमेव त्वमेव नित्या प्रकृतिः परस्तात् ॥ यथा वशं क्रियते ब्रह्मरूपं सा त्वं नित्या मे प्रसीदाद्य मातः ॥ २६ ॥
त्वं जातवेदोगतशक्तिरुग्रा त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः ॥ आह्लादिका त्वं बहुचन्द्रिका या तान्त्वामहं स्तौमि नमामि चण्डीम्
॥ २७ ॥ योषाणां सत्प्रिया च त्वं नित्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम् ॥ वांछा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं यथा हरेः ॥ २८ ॥ या चेष्टरूपा
णि विधाय देवी सृष्टिस्थितीनाशमयी च कर्त्री ॥ ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुस्सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ॥ २९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
तत इत्थं स्तुता दुर्गा कालिका पुनरेव हि ॥ उवाच मेनकां देवीं वांछितं वरयेत्युत ॥ ३० ॥ ॥ उमोवाच ॥ प्राणप्रिया मम त्वं हि
हिमाचलविलासिनि॥यदिच्छसि ध्रुवन्दास्ये नादेयं विद्यते मम ॥ ३१ ॥इति श्रुत्वा महेशान्याः पीयूषसदृशं वचः ॥ उवाच परितुष्टा
सा मेनका गिरिकामिनी ॥ ३२ ॥

सत्प्रिया तुमहो ऊर्ध्वरेतसोंकी ध्यानगम्या तुमहो सब जगत्की वांछनीयहो तुमही हरिकी मायाहो ॥ २८ ॥ हे देवि ! आप इष्टरूपोंको धारण करके सृष्टिकी
स्थिति पालन और संहार करतीहो और ब्रह्मा विष्णु महेश्वरके शरीरोंका हेतुहो सो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले
जब भगवतीकालिकाकी इसप्रकारसे स्तुतिकी तब भगवतीने मेनासे कहा तुम वर मांगो ॥ ३० ॥ देवी बोली ! हे हिमाचलविलासिनि तुम मुझे प्राणोंकी
समान प्यारी हो जो इच्छा करोगी वह अवश्य दूंगी तुम्हारे लिये मुझे कोई वस्तु भी अदेय नहीं है ॥ ३१ ॥ इसप्रकार भगवतीके अमृतके समान वचन

सुनकर संतुष्ट हो गिरिकामिनी भगवतीसे बोली ॥ ३२ ॥ मेना बोली हे शिवे ! हे महाचतुरे ! हे महेश्वरि ! हे जगदम्बिका भवानी ! आपकी जयहो जो मैं वरके योग्य हूं तो आपसे वर मांगतीहूं ॥ ३३ ॥ हे जगदम्बिके एक वर तो यह है कि मेरे सौ पुत्र बडी आयुवाले वीर्यवान् ऋद्धिसिद्धि संयुक्त हों ॥ ३४ ॥ पीछे एक पुत्री रूप गुणसम्पन्न दोनों कुलके आनंदकरनेवाली त्रिलोकीमें पुजितहो ॥ ३५ ॥ हे शिवे ! देवकार्यके निमित्त तुम ही मेरी सुताहो हे अम्बिके रुद्रपत्नी होकर तुम लीला विस्तार करो ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले मेनाके यह वचन सुनकर देवी प्रसन्नहो बोली और हँसती हुई मेनाका मनोरथ पूर्ण करती बोली ॥ ३७ ॥ देवी बोली तुम्हारे सौ पुत्र बडे विक्रमशाली होंगे जिसमें एक मुख्य बडा बली प्रथम होगा ॥ ३८ ॥ तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हुई मैं तुम्हारी सुता हूंगी और देवताओंसे सेवित होकर देवकार्य करूंगी ॥३९॥ ब्रह्मा बोले कालिका परमेश्वरी जगद्धात्री यह वचन कहकर मेनकाके देखते देखते अन्तर्धान होगई ॥४०॥ मेना भी महेशानीसे इच्छित वरको प्राप्त होकर बडे आनन्दको प्राप्त हुई और तपका क्लेश भी निवृत्त होगया ॥४१॥

॥ मेनोवाच ॥ शिवे जयजय प्राज्ञे महेश्वरि भवाम्बिके ॥ वरयोग्यास्महं चेत्ते वृणे भूयो वरं वरम् ॥ ३३ ॥ प्रथमं शतपुत्रा मे भवन्तु
जगदम्बिके ॥ बह्वायुषो वीर्यवन्त ऋद्धिसिद्धिसमन्विताः ॥३४॥ पश्चात्तथैका तनया स्वरूपगुणशालिनी ॥ कुलद्वयानन्दकरी भुवन
त्रयपूजिता ॥ ३५ ॥ सुता भव मम शिवे देवकार्यार्थमेव हि ॥ रुद्रपत्नी भव तथा लीलां कुरु भवाम्बिके ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
तच्छ्रुत्वा मेनकोक्तं हि प्राह देवी प्रसन्नधीः ॥ स्मितपूर्वं वचस्तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ॥ ३७ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ शतपुत्रास्सं
भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः ॥ तत्रैको बलवान्मुख्यः प्रथमं संभविष्यति ॥ ३८ ॥ सुताहं संभविष्यामि सन्तुष्टा तव भक्तितः ॥ देव
कार्यं करिष्यामि सेविता निखिलैस्सुरैः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी ॥ पश्यन्त्या मेनकायास्तु
तत्रैवान्तर्दधे शिवा ॥ ४० ॥ मेनकापि वरं लब्ध्वा महेशान्या अभीप्सितम् ॥ मुदं प्रापामितां तात तपःक्लेशोप्यनश्यत ॥ ४१ ॥

वह सती प्रसन्न हो उस दिशाको नमस्कारकर जयशब्द उच्चारण करती अपने स्थानमें आई ॥ ४२ ॥ और अपने पतिसे उस वरकी बात अपने मुखकी प्रसन्नताके चिह्नसे पहलेही कहीगईको पुनः वचनोंसे कहा ॥ ४३ ॥ ऐसे मेनाके वचन सुनकर शैलराज बडे प्रसन्न हुए और शिवामें भक्ति करनेवाली मेनाकी बडी प्रशंसा की ॥ ४४ ॥ हे मुने ! फिर समयपर उन्होंके सुरत प्रवृत्त होनेसे मेनाके गर्भ रहा और प्रतिदिन बढने लगा ॥ ४५ ॥ समयपर उसने नागवधूओंको भोगनेयोग्य पुत्रको उत्पन्न किया जिस मैनाक नामके पुत्रने समुद्रसे मित्रता की ॥ ४६ ॥ जिस समय इन्द्र पर्वतोंपर क्रुद्ध हुए थे

दिशि तस्यां नमस्कृत्य सुप्रहृष्टमनास्सती ॥ जयशब्दं प्रोच्चरंती स्वस्थानम्प्रविवेश ह ॥ ४२ ॥ अथ तस्मै स्वपतये शशंस सुवरं च तम् ॥ स्वचिह्नबुद्धमिव वै सुवाचा पुनरुक्तया ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा शैलपतिर्हृष्टोऽभवन्मेनावचो हि तत् ॥ प्रशशंस प्रियां प्रीत्या शिवाभक्तिरतां च ताम् ॥ ४४ ॥ कालक्रमेणाऽथ तयोः प्रवृत्ते सुरते मुने ॥ गर्भो बभूव मेनाया ववृधे प्रत्यहं च सः ॥ ४५ ॥ असूत सा नागवधूपभोग्यं सुतमुत्तमम् ॥ समुद्रबद्धसत्सख्यं मैनाकाभिधमद्भुतम् ॥४६॥ वृत्रशत्रावपि क्रुद्धे वेदनाज्ञं सपक्षकम् ॥ पविक्षतानां देवर्षे पक्षच्छिदि वराङ्गकम् ॥ ४७ ॥ प्रवरं शतपुत्राणां महाबलपराक्रमम् ॥ स्वोद्भवानां महीध्राणां पर्वतेन्द्रैकधिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ आसीन्महोत्सवस्तत्र हिमाचलपुरेऽद्भुतः ॥ दम्पत्योः प्रमुदाधिक्यं बभूव क्लेशसंक्षयः ॥ ४९ ॥ दानन्ददौ द्विजातिभ्योऽन्येभ्यश्च प्रददौ धनम् ॥ शिवाशिवपदद्वन्द्वे स्नेहोऽभूदधिकस्तयोः ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे मेनावरलाभवर्णनो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उससमयभी उसने इन्द्रके वज्रके घावोंकी व्यथा नहीं जानी, हे नारद ! वज्रसे औरोंके पक्ष काटे गये पर इसके पक्ष वर्तमानहीं हैं ॥ ४७ ॥ महाबली महापराक्रमी सौ पुत्रोंमें यही श्रेष्ठ हुआ और पुत्र हिमालयके सब इसी प्रकार प्रगट हुए ॥ ४८ ॥ उस समय हिमायलके पुरमें बडा उत्सव हुआ, दोनों स्त्री पुरुष आनंदित हुए, क्लेशनाश हुआ ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणोंको दान और दूसरे द्विजोंको अनेक प्रकारसे धन दिये और दोनोंका शिव शिवाके चरणोंमें बडा स्नेह हुआ ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे मेनावरलाभवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले कुछ काल बीतनेपर दोनों स्त्रीपुरुषोंने भक्तिसे जगदम्बिकाका स्मरण किया, कि वह देवकार्यके निमित्त हमारे यहां आकर प्रगट हों ॥ १ ॥ योगसे अपना शरीर त्यागन कर सतीने मेनाके यहां प्रगट होनेकी इच्छा की ॥२॥ वह प्रसन्नमूर्त्ति सब कामनाओंकी देनेवाली है अपना वचन सत्य करनेके निमित्त पूर्णांशसे हिमालयके चित्तमें महेश्वरीने प्रवेश किया ॥ ३ ॥ अपूर्व कान्तिसे उस समय मेनाकी भी शोभा हुई, उस समय हिमालयका तेजभी अग्निकी समान सबको दुर्धर्ष होगया ॥ ४ ॥ तब गिरिराजने वह शिवाका पूर्ण अंश समाधिद्वारा सुसमयमें अपनी प्रिया मेनामें धारण किया ॥ ५ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ संस्मरतुर्भक्त्या दम्पती तौ भवाम्बिकाम् ॥ प्रसूतिहेतवे तत्र देवकार्यार्थमादरात् ॥ १ ॥ ततस्सा चण्डिका योगात्त्यक्तदेहा पुरा पितुः ॥ ईहया भवितु भूयस्समैच्छद्गिरिदारतः ॥ २ ॥ सत्यं विधातुं स्ववचः प्रसन्नाखिलकामदा ॥ पूर्णांशाच्छैलचित्ते सा विवेशाथ महेश्वरी ॥ ३ ॥ विरराज तत स्सोऽतिप्रमदोऽपूर्वसुद्युतिः ॥ हुताशन इवाधृष्यस्तेजोराशिर्महामनाः ॥ ४ ॥ ततो गिरिस्स्वप्रियायां परिपूर्णं शिवांशकम् ॥ समाधिमत्त्वात्समये समधत्त सुशंकरे ॥ ५ ॥ समधत्त गिरेः पत्नी गर्भं देव्याः प्रसादतः ॥ चित्ते स्थितायाः करुणाकरायाः सुखदं गिरेः ॥ ६ ॥ गिरिप्रिया सर्वजगन्निवासासंश्रयाधिकम् ॥ विरेजे सुतरां मेना तेजोमण्डलगा सदा ॥ ७ ॥ सुखोदयं स्वभर्तुश्च मेना दौहृदलक्षणम् ॥ दधौ निदानन्देवानामानन्दस्येप्सितं शुभम् ॥ ८ ॥ देहसादादसंपूर्णभूषणा लोध्रसंमुखा ॥ स्वल्पभेन्दुक्षये काल विचेष्यर्क्षा विभावरी ॥ ९ ॥

देवीके प्रसादसे हिमालयकी पत्नीने उसी समय गर्भ धारण किया, वह करुणामयी इस प्रकार पर्वतराजके चित्तमें सब सुख देनेवाली स्थित हो हिमालयकी पत्नीके हृदयमें प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ तब वह गिरिप्रिया सब जगत्की निवासभूताके प्राप्त होनेसे तेजोमण्डलके मध्य स्थित होनेसे अधिक शोभायमान हुई ॥ ॥ ७ ॥ अपने स्वामीसे प्राप्त होनेयोग्य मेनाने उस गर्भलक्षणको जो सब देवताओंको आनन्दस्वरूप और ईप्सित जैसा था धारण किया ॥ ८ ॥ देहके दुर्बल होजानेसे उसने अपने बहुतसे आभूषण उतार धरे, लोध्रकी समान उसका मुखमण्डल श्वेत होगया जैसे प्रभात कालके समय रात्रिका चन्द्रमा श्वेत

होजाता है और गिनने योग्य थोंडे तारे होजाते हैं ॥ ९ ॥ मट्टीकी गन्धिवाले उसके मुखको एकांतमें सूँघ कर गिरिराज तृप्तिको प्राप्त न हुए, और बडे आनन्दको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ और वारम्वार मेनाकी सखीसे गिरिराज पूंछने लगे कि मेनाकी किस वस्तुमें इच्छा है मेरी लज्जासे वह कुछ नहीं बताती तुम पूछो ॥ ११ ॥ इस प्रकार दोहदके कष्टसे पार होकर जो जो मेनाने इच्छा की सोसो प्राप्त हुआ देखा कारण कि गिरिराजको स्वर्गमें भी कोई वस्तु असाध्य नहीं थी ॥ १२ ॥ फिर पुष्ट अवयववाली वह गर्भव्यथासे पार हो मेना हरे पत्तोंसे युक्त बाललताकी समान शोभायमान हुई ॥ १३ ॥ जिस प्रकारसे धरणीके भीतर रत्न रहते हैं वा जैसे शमीके भीतर अग्नि रहतीहै इस प्रकार पर्वतराजने सगर्भा महिषीको रत्नगर्भा माना ॥ १४ ॥ वह जैसा

तदाननं मृत्सुरभि नायं तृप्तिं गिरीश्वरः ॥ मुने रहस्युपाघ्राय प्रेमाधिक्यं बभूव तत् ॥ १० ॥ मेना स्पृहावती केषु न मे शंसति वस्तुषु ॥ किंचिदिष्टं ह्रियापृच्छदनुवेलं सखीर्गिरिः ॥ ११ ॥ उपेत्य दौहदं शल्यं यद्वव्रेऽपश्यदाशु तत् ॥ आनीतं नेष्टमस्याद्धा नासाध्यं त्रिदिवेऽपि हि ॥ १२ ॥ प्रचीयमानावयवा निस्तीर्य दोहदव्यथाम् ॥ रेजे मेना बाललता नद्धपत्राधिका यथा ॥ १३ ॥ गिरिस्सगर्भां महिषीममंस्त धरणीमिव ॥ निधानगर्भामभ्यन्तर्लीनवह्निं शमीमिव ॥ १४ ॥ प्रियाप्रीतेश्च मनसः स्वार्जितद्रविणस्य च ॥ समुन्नतेः श्रुतेः प्राज्ञः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ ददर्श काले मेनां स प्रतीतः प्रसवोन्मुखीम् ॥ अभ्रितां च दिवं गर्भगृहे भिषगधिष्ठिते ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा प्रियां शुभाङ्गीं वै मुमोदातिगिरीश्वरः॥ गर्भस्थजगदम्बां हि महातेजोवतीन्तदा ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसरे देवा मुने विष्णवादस्तथा ॥ मुनयश्च समागम्य गर्भस्थां तुष्टुवुश्शिवाम् ॥ १८ ॥

प्रियाको प्यार करते थे जैसा उन्होंने धन एकत्रितकिया था जैसा शास्त्र पढाथा उसीके अनुसार उसने समस्त गर्भाधानादि क्रियाओंको किया ॥ १५ ॥ फिर प्रसन्नतासे समयपर अपनी प्रियाको प्रसवोंन्मुखी देखा जिस प्रकार मेघसहित आकाश देखकर जलवर्षण विचार लिया जाता है तथा वैद्योंने भी गर्भपुष्टिके अनेक उपचार किये थे ॥ १६ ॥ इस प्रकार सुन्दर अंगवाली प्रियाको देख गिरिराज बहुत प्रसन्न हुए जिसके गर्भमें महा तेजवती जगदम्बा विराजमान थी ॥ १७ ॥ उसी अवसरमें विष्णु आदि देवता और मुनिजन आनकर गर्भमें स्थित जगदम्बाकी स्तुति करनेलगे ॥ १८ ॥

देवा ऊचुः ॥ दुर्गे जय जय प्राज्ञे जगदम्ब महेश्वरि ॥ सत्यव्रते सत्यपरे त्रिसत्ये सत्यरूपिणि ॥ १९ ॥ सत्यस्थे सत्यसुप्रीते सत्य
योने च सत्यतः ॥ सत्यसत्ये सत्यनेत्रे प्रपन्नाः शरणं च ते ॥ २० ॥ शिवप्रिये महेशानि देवदुःखक्षयंकरि ॥ त्रैलोक्यमाता शर्वाणी
व्यापिनी भक्तवत्सला ॥ २१ ॥ आविर्भूय त्रिलोकेशि देवकार्यं कुरुष्व ह ॥ सनाथाः कृपया ते हि वयं सर्वे महेश्वरि ॥ २२ ॥
त्वत्तः सर्वे च सुखिनो लभन्ते सुखमुत्तमम् ॥ त्वाम्विना न हि किंचिद्वै शोभते त्रिभवेष्वपि ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं कृत्वा
महेशान्या गर्भस्थाया बहुस्तुतिम् ॥ प्रसन्नमनसो देवास्स्वं स्वं धाम ययुस्तदा ॥ २४ ॥ व्यतीते नवमे मासे दशमे मासि पूर्णतः ॥
गर्भस्थाया गतिन्दध्रे कालिका जगदम्बिका ॥ २५ ॥ तदा सुसमयश्चासीच्छान्तभग्रहतारकः ॥ नभः प्रसन्नतां यातं प्रकाशस्सर्व
दिक्षु हि ॥ २६ ॥ मही मंगलभूयिष्ठा सवनग्रामसागरा ॥ सरस्स्रवन्तीवापीषु पुफुल्लुः पंकजानि वै ॥ २७ ॥ ववुश्च विविधा वाता
स्सुखस्पर्शा मुनीश्वर ॥ मुमुदुस्साधवस्सर्वेऽसतान्दुःखमभूद्द्रुतम् ॥ २८ ॥

देवता बोले हे दुर्गे ! हे प्राज्ञे ! हे जगदम्बे ! हे महेश्वरि ! आपकी जय हो हे सत्यव्रत ! हे सत्यपरायण ! हे सत्य ! हे सत्यस्वरूपिणी ॥ १९ ॥ हे सत्यमें स्थित ! हे सत्यमें प्रेम करनेवाली ! हे सत्यरूप कार्यकी कारणरूपवाली सत्यरूप सत्य सत्य नेत्र हम सब तुम्हारी शरण हैं ॥ २० ॥ हे शिवप्रिये ! हे महेशानि ! हे देवताओंके दुःखक्षय करनेवाली ! त्रिलोकीकी माता शिवप्रिया सर्वत्र व्यापक भक्तवत्सला ॥ २१ ॥ हे त्रिलोकेशी ! आप प्रगट होकर देवताओंका कार्यकरो हे महेश्वरि ! आपकी कृपासे हम सब सनाथ होंगे ॥ २२ ॥ तुमसे ही सब सुखी हो उत्तम सुखको पातेहैं तुम्हारे विना तो त्रिलोकीमें कुछभी शोभा नहीं होती ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले ! इसप्रकार गर्भमें स्थित महेशानीकी बहुतसी स्तुति करके देवता प्रसन्नमनसे अपने अपने स्थानोंमें गये ॥ २४ ॥ जब नौ महीने बीतकर दशमा महीना पूर्ण हुआ उस समय जगदम्बाने गर्भसे बहिर्भूत होनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥ उस समय स्वच्छ समय होगया नक्षत्र ग्रह तारे शान्त होगये आकाश निर्मल होगया सब दिशा प्रकाशित होगईं ॥ २६ ॥ वन ग्राम सागर के सहित पृथिवी मंगलमय होगई बावडी सरोवरोंमें निर्मल जल होगये और उनमें कमल खिल गये ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरो ! सुखस्पर्शवाली सुन्दर पवन उससमय चलनेलगीं, महात्मा सब प्रसन्न हुए और

असत्पुरुषोंको दुःख हुआ ॥ २८ ॥ आकाशमें आकर देवता दुन्दुभी बजानेलगे फूलोंकी वर्षा हुई गन्धर्व गानेलगे ॥ २९ ॥ आकाशमें विद्याधरोंकी
स्त्रियें और आप्सरायें नृत्य करने लगीं आकाश स्थलमें देवताओंका बडा उत्सव हुआ ॥ ३० ॥ उसी समय देवी भगवती शिवा सती अपनी पूर्ण शक्तिसे
मेनाके सन्मुख अपने निजरूपसे प्रगट हुई [गर्भ मायामय था] ॥ ३१ ॥ वसन्त ऋतु चैत्रका महीना नौमी तिथि मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय
चन्द्रमण्डलसे गंगाकी समान भगवती प्रगट हुई ॥ ३२ ॥ उस समय अपने स्वरूपसे मेनकाके जठरसे भगवती सागरसे लक्ष्मीकी समान प्रगट हुई ॥ ३३ ॥

दुन्दुभीन्वादयामासुर्नभस्यागत्य निर्जराः ॥ पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥ २९ ॥ विद्याधरस्त्रियो व्योम्नि ननृतुश्चाप्सरा
स्तथा ॥ तदोत्सवो महानासीद्देवादीनां नभःस्थले ॥ ३० ॥ तस्मिन्नवसरे देवी पूर्वशक्तिश्शिवा सती ॥ आविर्बभूव पुरतो मेनाया
निजरूपतः ॥ ३१ ॥ वसंततौं मधौ मासे नवम्यां मृगधिष्ण्यके ॥ अर्द्धरात्रे समुत्पन्ना गंगेव शशिमण्डलात् ॥ ३२॥ समये तत्स्व
रूपेण मेनकाजठराच्छिवा ॥ समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ॥ ३३ ॥ ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्नोऽभूत्तदा भवः ॥
अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गंधयुक्शुभः ॥ ३४ ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिपुरस्सरम् ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च तदा
घनाः ॥ ३५ ॥ तस्यां तु जायमानायां सर्वस्वं समपद्यत ॥ हिमवन्नगरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र विष्ण्वा
द्यास्सकलास्सुराः ॥:आजग्मुः सुखिनः प्रीत्या ददृशुर्जगदम्बिकाम् ॥ ३७ ॥ तुष्टुवुस्तां शिवामम्बां कालिकां शिवकामिनीम् ॥
दिव्यरूपां महामायां शिवलोकनिवासिनीम् ॥ ३८ ॥

उस समय उस भगवतीके प्रगट होनेसे शंकर प्रसन्न हुए उस समय पवन गंभीर वेगसे अनुकूल गंधयुक्त शुभसूचक गमन करने लगा ॥ ३४ ॥ मन्द मन्द
वारिवृष्टि और पुष्पवृष्टि होने लगी शान्त हुई अग्नि प्रज्वलित हो उठी और मेघ गर्जने लगे ॥ ३५ ॥ भगवतीके प्रगट होनेमें हिमालयके यहां सर्वस्व होगया
और उस नगरके सब दुःख मिटगये ॥ ३६ ॥ उसी समय विष्णु आदि सब देवता सुखी हो प्रेमसे जगदम्बाका दर्शन करने आये ॥ ३७ ॥ और शिवा

अम्बा कालिका शिवकामिनीकी स्तुति करने लगे जो दिव्यरूपा महामाया शिवलोकमें निवास करनेवाली है ॥३८॥ देवता बोले हे जगदम्बे! हे महादेवि! हे सब सिद्धिके विधान करनेवाली! आप देवताओंकी कार्य करनेवाली हो हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सले! सर्वथा तुम देवताओंका कल्याण करो मेनाका मनोरथ पूर्ण किया अब शंकरका भी मनोरथ पूर्ण करो ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे विष्णु आदि देवता शिवाकी स्तुति और प्रणाम करके भगवतीकी परमगतिकी प्रशंसा करते करते अपने २ स्थानोंको गये ॥ ४१ ॥ नीलकमलकी समान कान्तिमती उस भगवती श्यामाका दर्शन

॥ देवा ऊचुः ॥ जगदम्ब महादेवि सर्वसिद्धिविधायिनि ॥ देवकार्यकरी त्वं हि सदातस्त्वां नमामहे ॥ ३९ ॥ सर्वथा कुरु कल्याणं देवानां भक्तवत्सले ॥ मेनामनोरथः पूर्णः कृतः कुरु हरस्य च ॥ ४० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं स्तुत्वा शिवां देवा विष्णवाद्याः सुप्रणम्य ताम् ॥ स्वं स्वं धाम ययुः प्रीताश्शंसन्तस्तद्गतिं पराम् ॥ ४१ ॥ तान्तु दृष्ट्वा तथा जातां नीलोत्पलदलप्रभाम् ॥ श्यामां सा मेनका देवीं मुदमापाति नारद ॥ ४२ ॥ दिव्यरूपं विलोक्यानु ज्ञानमाप गिरिप्रिया ॥ विज्ञाय परमेशानीं तुष्टावातिप्रहर्षिता ॥४३॥ मेनोवाच ॥ जगदम्ब महेशानि कृतातिकरुणा त्वया॥ आविर्भूता मम पुरो विलसन्ती यदम्बिके ॥४४॥ त्वमाद्या सर्वशक्तीनां त्रिलोकजननी शिवे ॥ शिवप्रिया सदा देवि सर्वदेवस्तुता परा ॥ ४५ ॥ कृपां कुरु महेशानि मम ध्यानास्थिता भव ॥ एतद्रूपेण प्रत्यक्षं रूपं धेहि सुतासमम् ॥४६॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या मेनाया भूधरस्त्रियाः ॥ प्रत्युवाच शिवा देवी सुप्रसन्ना गिरिप्रियाम् ॥ ४७ ॥

कर मेना बडी प्रसन्न हुई ॥ ४२ ॥ भगवतीका दिव्यरूप देखकर गिरिप्रियाने ज्ञान प्राप्त किया और उसको परमेशानी जानकर स्तुति करने लगी ॥४३॥ मेना बोली हे जगदम्बे महेशानि! तुमने बडी कृपा की हे अम्बिके! जो मेरे सामने आविर्भूत होकर तुम क्रीडा करती हो ॥ ४४ ॥ हे शिवे! तुम त्रिलोकजननी सब शक्तियोंकी आद्या हो, हे देवि! तुम सदा शिवकी प्रिया सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ हे महेशानि! कृपा करके मेरे ध्यानमें स्थित हो, इस रूपसे प्रत्यक्ष हुई तुम कन्याकी समान रूप धारण करो ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार हिमाचलकी प्रिया मेनाके वचन सुनकर प्रसन्न हो

गिरिप्रियासे देवी बोली ॥ ४७ ॥ देवी बोली हे मेना! तुमने पहले मेरी सेवा की है तुम्हारी भक्तिसे मैं प्रसन्न होकर वर देनेको तुम्हारे समीप गई ॥४८॥
और वर मांगो ऐसे मेरे वचनसे तुमने यह वर मांगा हे महादेवि! तुम मेरी कन्या होकर देवताओंका हित करो ॥ ४९ ॥ आदरसे मैं तुझे वर देकर अपने
स्थानको चली गई हे गिरिकामिनि! अब समयको प्राप्त होकर मैं तुम्हारी कन्या हुई हूं ॥ ५० ॥ यह दिव्यरूप इस कारण धारण किया कि तुझको
मेरा स्मरण हो जाय, अन्यथा मर्त्यभावसे मुझमें तुझको मानुषीज्ञान होता ॥५१॥ तुम दोनोंही मुझको पुत्रीभावसे अथवा दिव्यभावसे ध्यानकर स्नेह करोगे

देव्युवाच ॥ हे मेने त्वं पुरा मां च सुसेवितवती रता ॥ त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाहं वरन्दातुं गतान्तिकम् ॥ ४८ ॥ वरं ब्रूहीति मद्वाणीं श्रुत्वा
ते तद्वरो वृतः ॥ सुता भव महादेवि सा मे देवहितं कुरु ॥ ४९ ॥ तथा दत्त्वा वरं तेऽहं गता स्वम्पदमादरात् ॥ समयं प्राप्य तनयाऽ
भवन्ते गिरिकामिनि ॥ ५० ॥ दिव्यरूपं धृतं मेद्य यत्ते मत्स्मरणं भवेत् ॥ अन्यथा मर्त्यभावेन तवाज्ञानं भवेन्मयि ॥ ५१ ॥ युवां
मां पुत्रिभावेन दिव्यभावेन वासकृत् ॥ चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यातास्स्थो मद्गतिम्पराम् ॥ ५२ ॥ देवकार्यं करिष्यामि लीलां कृत्वाद्भुतां
क्षितौ ॥ शम्भुपत्नी भविष्यामि तारयिष्यामि सज्जनान् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वासीच्छिवा तूष्णीमम्बिका स्वात्ममायया ॥ पश्य
न्त्यां मातरि प्रीत्या सद्योऽभूत्तनया तनुः ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीजन्म
वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततो मेना पुरस्सा वै सुता भूत्वा महाद्युतिः ॥ चकार रोदनं तत्र लौकिकीं गतिमा
श्रिता ॥ १ ॥ अरिष्टशय्यां परितस्सद्धिसारिसुतेजसा ॥ निशीथदीपा विहतत्विष आसन्नरं मुने ॥ २ ॥

तो मेरी गतिको प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥ पृथिवीमें अद्भुत लीलाकर मैं देवकार्य करूंगी शिवपत्नी होकर सज्जनोंको तारूंगी ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे
कहकर जगदम्बा शिवा मौन होगई और अपनी मायासे माताको प्रीतिसे देखती हुई तत्काल बालिका होगई ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां
रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे पार्वतीजन्मवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले! तब वह महाकान्तिमान् मेनाके सन्मुख महाकान्तिमती कन्या
होकर लौकिकी गतिको आश्रय कर रोदन करनेलगी ॥१॥ सौवरकी शय्यामें उसके मुखके तेजसे अर्धरात्रिके दीपक निस्तेज चित्रकी समान रहगये ॥२॥

उस मनोहर रोदनको सुनकर सब गृहकी स्त्रियें चली आईं और प्रीतिपूर्वक बडी प्रसन्न हुईं ॥ ३ ॥ शुद्धान्तःपुरचारीने यह समाचार राजाको सुनाया, कि देवताओंको सुखदायक पार्वतीका जन्म हुआहै ॥ ४ ॥ पुत्रीका जन्म सुनकर गिरिराजने श्वेतच्छत्रके सिवाय उसको समस्त मनोरथ देनेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ पुरोहित ब्राह्मणोंके सहित गिरिराज वहां गये और अपनी कान्तिसे शोभायमान कन्याको वहां देखा ॥ ६ ॥ जो नीलोत्पलदलकी समान श्यामवर्ण श्रेष्ठद्युतिसे मनोहर ऐसी कन्याको देखकर गिरिराज बडे प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ सब पुरवासी पुरुष आर स्त्रियें प्रसन्न हुईं वहां बडा उत्सव

श्रुत्वा तद्रोदनं रम्यं गृहस्थास्सर्वयोषितः ॥ जहृषुस्सम्भ्रमात्तत्रागताः प्रीतिपुरस्सराः ॥ ३ ॥ तच्छुद्धान्तचरः शीघ्रं शशंस भूभृते तदा ॥ पार्वतीजन्म सुखदं देवकार्यकरं शुभम् ॥ ४ ॥ तच्छुद्धान्तचरायाशु पुत्रीजन्म सुशंसते ॥ सितातपत्रं नादेयमासीत्तस्य महीभृतः ॥ ५ ॥ गतस्तत्र गिरिः प्रीत्या सपुरोहितसद्विजः ॥ ददर्श तनयां तान्तु शोभमानां सुभाससा ॥ ६ ॥ नीलोत्पलदल श्यामां सुद्युतिं सुमनोरमाम् ॥ दृष्ट्वा च तादृशीं कन्यां मुमोदाति गिरीश्वरः ॥ ७ ॥ सर्वे च मुमुदुस्तत्र पौराश्च पुरुषाः स्त्रियः ॥ तदोत्सवो महानासीन्नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ॥ ८ ॥ बभूव मंगलं गानं ननृतुर्वारयोषितः ॥ दानन्ददौ द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ ९ ॥ अथ द्वारं समागत्य चकार सुमहोत्सवम् ॥ हिमाचलः प्रसन्नात्मा भिक्षुभ्यो द्रविणन्ददौ ॥ १० ॥ अथो मुहूर्त्ते सुमते हिमवान्मुनिभिः सह ॥ नामाऽकरोत्सुतायास्तु कालीत्यादि सुखप्रदम् ॥ ११ ॥

हुआ और अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८ ॥ मंगल गान होने लगा वेश्या नृत्य करने लगीं जातकर्म करके ब्राह्मणोंको बडा दान दियागया ॥ ९ ॥ फिर द्वारे आकर भी गिरिराजने बडा उत्सव किया, हिमाचलने प्रसन्नहो भिक्षुकोंको बडा धन दिया ॥ १० ॥ तब अच्छे मुहूर्तमें हिमालयने मुनियोंके साथ सुताके काली इत्यादि सुखदायक नाम किये काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी भैरवी छिन्नमस्ता विद्या धूमावती बगलामुखी सिद्धविद्या

---

१ काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ॥ भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥ बगलामुखी सिद्धविद्या मातंगी कमलात्मिकेत्यादिपद्यप्रणीतं नामेत्यर्थः ॥

मातंगी कमलात्मिका ॥ ११ ॥ उस समय ब्राह्मणोंको आदरसे बडा दान दिया और गानपूर्वक बहुतसा उत्सव कराया ॥ १२ ॥ देवीको वारंवार देखतेहुए इसप्रकार बडा उत्सव कराया बहुत पुत्रवाले गिरिराजने पत्नीसहित बडा सुख माना ॥ १३ ॥ इसप्रकार गिरिराजके घर शिवा बढने लगी जैसे वर्षा समयमें गंगा वा शरद ऋतुकी चांदनी ॥ १४ ॥ इसप्रकारसे सुन्दर अंगवाली सुंदर दर्शनवाली कालिका देवी प्रतिदिन चन्द्रमाकी समान सुन्दरताको बढाने लगी ॥ १५ ॥ कुलोचित नाम पार्वती लेकर सब उच्चारण करने लगे बन्धुप्रिय बन्धुजन सुशीलता और गुणोंसे युक्त नाम लेने लगे ॥ १६ ॥

दानं ददौ तदा प्रीत्या द्विजेभ्यो बहु सादरम् ॥ उत्सवं कारयामास विविधं गानपूर्व्वकम् ॥ १२ ॥ इत्थं कृत्वोत्सवं भूरि कालीं पश्यन्मुहुर्मुहुः ॥ लेभे मुदं सपत्नीको बहुपुत्रोऽपि भूधरः ॥ १३ ॥ तत्र सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शिवा ॥ गंगेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥ १४ ॥ एवं सा कालिका देवी चार्वङ्गी चारुदर्शना ॥ दध्रे चानुदिनं रम्यां चन्द्रबिम्बकलामिव ॥ १५ ॥ कुलोचितेन नाम्ना तां पार्वतीत्याजुहाव ह ॥ बन्धुप्रियां बन्धुजनः सौशील्यगुणसंयुताम् ॥ १६ ॥ उमेति मात्रा तपसे निषिद्धा कालिका च सा ॥ पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम भुवने मुने ॥ १७ ॥ दृष्टिः पुत्रवतोऽप्यद्रेस्तस्मिंस्तृप्तिं जगाम न ॥ अपत्ये पार्वतीत्याख्ये सर्वसौभाग्यसंयुते ॥ १८ ॥ मधोरनन्तपुष्पस्य चूते हि भ्रमरावलिः ॥ विशेषसंगा भवति सहकारे मुनीश्वर ॥ १९ ॥ पूतो विभूषितश्चापि स बभूव तया गिरिः ॥ संस्कारवत्यैव गिरा मनीषीव हिमालयः ॥ २० ॥ प्रभामहत्या शिखयेव दीपो भुवनस्य च ॥ त्रिमार्गयेव सन्मार्गस्तद्वद्गिरिजया गिरिः ॥ २१ ॥

जब माताने भगवतीको तपके लिये निषेध किया हे मुने ! तबसे वह सुमुखी उमा नामसे विख्यात हुई ॥ १७ ॥ सब सौभाग्यसे युक्त पार्वतीको देखते हुए अने त्र होनेपर भी पर्वतराज तृप्त नहीं होते थे ॥ १८ ॥ हे मुनीश्वर ! जिसप्रकार वसन्तमें अनन्त पुष्पोंके रस होनेपर भी भृङ्गावलि आमके विशेषकर बैठतीहै ॥ १९ ॥ इसीप्रकार भगवतीसे पर्वतराज पवित्र और भूषित हुए जैसे पंडित व्याकरणादि संस्कारवाली वाणीसे विभूषित और इसीप्रकार हिमालय हुए ॥ २० ॥ जैसे दीपककी बडी शिखासे मंदिर वेदत्रयके मार्गसे मार्ग शोभित होताहै, इसीप्रकार पर्वतराज पार्वतीसे

हुए ॥ २१ ॥ वह भगवती अपनी सखीजनोंके मध्यमें प्राप्त होकर गंगाके किनारेकी भूमियोंमें बारम्बार कन्दुकोंसे अथ च बनावटी पुत्रोंसे त्यादिकोंसे रमणकरने लगी ॥ २२ ॥ हे मुने ! तदन्तर शिवा देवी उपदेशके समयमें गुरुसे मन लगाकर विद्या पढने लगी ॥ २३ ॥ हंसाली स्वर्णनदीको और रात्रिमें प्रकाश औषधियोंको जैसे प्राप्त होताहै इन्हींकी समान सब प्राक्तनविद्या उसको प्राप्त होगई ॥ २४ ॥ इस प्रकार यह कुछ भगवतीकी लीला आपसे कही हे मुने ! अब प्रसन्नतासे दूसरी लीलाएँ सुनो ॥२५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गत

कन्दुकैः कृत्रिमैः पुत्रैस्सखीमध्यागता च सा ॥ गंगासैकतवेदीभिर्बाल्ये रेमे मुहुर्मुहुः ॥२२॥ अथ देवी शिवा सा चोपदेशसमये मुने ॥ पपाठ विद्यास्सुप्रीत्या यतचित्ता च सद्गुरोः ॥ २३ ॥ प्राक्तना जन्मविद्यास्तां शरदीव प्रपेदिरे ॥ हंसालिस्स्वर्णदी नक्तमात्मभासो महौषधिम् ॥ २४ ॥ इत्थं सुवर्णिता लीला शिवायाः काचिदेव हि ॥ अन्यलीलाम्प्रवक्ष्येऽहं शृणु त्वं प्रेमतो मुने ॥ २५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीबाल्यलीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकदा तु शिवज्ञानी शिवलीलाविदां वरः ॥ हिमाचलगृहं प्रीत्यागमस्त्वं शिवप्रेरितः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा मुने गिरीशस्त्वां नत्वानर्च स नारद ॥ आहूय च स्वतनयां त्वदङ्घ्र्योस्तामपातयत् ॥ २ ॥ पुनर्नत्वा मुनीश त्वामुवाच हिमभूधरः ॥ साञ्जलिः स्वविधिं मत्वा बहुसन्नतमस्तकः ॥ ३ ॥ हिमालय उवाच ॥ हे मुने नारद ज्ञानिन्ब्रह्मपुत्रवर प्रभो ॥ सर्वज्ञस्त्वं सकरुणः परोपकरणे रतः ॥ ४ ॥ मत्सुताजातकं ब्रूहि गुणदोषसमुद्भवम् ॥ कस्य प्रिया भाग्यवती भविष्यति सुता मम ॥ ५ ॥

तृतीयपार्वतीखंडे पार्वतीबाल्यलीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले एक समय तुम शिवज्ञानी शिवलीला जाननेवालोंमें चतुर शिवसे प्रेरित हो प्रेमसे हिमालयके यहां गये ॥ १ ॥ हे मुने ! गिरिराजने तुमको देखते ही सत्कारकर अपनी तनयाको बुलाकर तुम्हारे चरणोंमें गिराया ॥ २ ॥ हे मुनीश ! फिर आपको प्रणाम कर हाथ जोड अपने भाग्यको सराहते विधिपूर्वक मस्तक झुकाये हिमालयने कहा ॥ ३ ॥ हिमालय बोले हे नारदमुनि ! हे ज्ञानी ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे प्रभो ! तुम सर्वज्ञ करुणाही करके परोपकार करनेमें तत्पर हो ॥ ४ ॥ आप मेरी कन्याके गुण दोष कहो मेरी कन्याका पति

कौन होगा और कैसी भाग्यवती कन्या होगी ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! जब इस प्रकारसे हिमालयने कहा तब नारदजी भवानीका हाथ और मुख चरणादि अंग देखकर ॥ ६ ॥ कौतुकपूर्वक बोलनेवालोंमें चतुर तुम कहनेलगे हे नारदजी तुम तो ज्ञानी और सब वृत्तान्त जाननेवाले हो ॥ ७ ॥ नारद बोले यह आपकी कन्या चन्द्रकलाकी समान बढती है हे मेने ! हे शैलराज ! यह सब लक्षणसंयुक्त आद्या कला है ॥ ८ ॥ अपने पतिको अत्यन्त सुखदायिनी और पतिकी कीर्त्ति बढानेवाली होगी महापतिव्रता सब नारियोंमें होगी और सबको महा आनन्द करनेवाली होगी ॥ ९ ॥ हे पर्वतराज ! तुम्हारी

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तो मुनिवर्य त्वं गिरीशेन हिमाद्रिणा ॥ विलोक्य कालिकाहस्तं सर्वांगं च विशेषतः ॥ ६ ॥ अवोचस्त्वं गिरिं
तात कौतुकी वाग्विशारदः ॥ ज्ञानी विदितवृत्तान्तो नारदः प्रीतमानसः ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ एषा ते तनया मेने सुधांशोरिव
वर्द्धिता ॥ आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ॥ ८ ॥ स्वपतेस्सुखदात्यन्तं पित्रोः कीर्तिविवर्द्धिनी ॥ महासाध्वी च सर्वासु
ानन्दकरी सदा ॥ ९ ॥ सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे ॥ एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्त्वतः ॥ १० ॥
ी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतातविवर्जितः ॥ अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य
ते हि सत्यं मत्त्वा च दम्पती ॥ मेना हिमाचलश्चापि दुःखितौ तौ बभूवतुः ॥ १२ ॥ शिवाकर्ण्यवचस्ते हि तादृशं जगद
॥ लक्षणैस्तं शिवं मत्त्वा जहर्षाति मुने हृदि ॥ १३ ॥ न मृषा नारदवचस्त्विति संचिन्त्य सा शिवा ॥ स्नेहं शिवपदद्वन्द्वे
ति हृदा तदा ॥ १४ ॥

ं सम्पूर्ण सुलक्षण हैं और एक रेखा बडी विलक्षणहै उसका फल सुनो ॥ १० ॥ योगी नंगा गुणरहित अकाम मातापितासे रहित अमंगलवेश
इसको मिलैगा ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार तुम्हारे वचन सुन यह दोनों स्त्री पुरुष सत्य मानकर मेना और हिमाचल दोनो दुःखी हुए ॥
नगदम्बिका शिवा इस प्रकारके वचन सुनकर शिवजीमें यह लक्षण विचारकर मनमें बडी प्रसन्न हुई ॥ १३ ॥ भगवतीने विचारकिया कि

वन असत्य नहीं होंगे हृदयसे शिवजीके चरणोंमें बडा प्रेम किया ॥ १४ ॥ तब हे नारद ! दुःखी होकर पर्वतराज तुमसे कहने लगे हे मुने ! करूं मुझे तो बडा दुःख है ॥ १५ ॥ हे मुने ! यह वचन सुनकर महाकौतुकी तुम हिमालयको शुभ वचनोंसे प्रसन्न करतेहुए बोले ॥ १६ ॥ गिरे ! स्नेहसे मेरा वचन सुनो जो कभी मिथ्या नहीं होता, कररेखा तथा ब्रह्माकी लिपि कभी मिथ्या नहीं होती ॥ १७ ॥ हे शैल ! पति तो मिलेगा इसमें संदेह नहीं अब प्रेमसे यह उपाय करो जिसके करनेसे सुख मिलै ॥ १८ ॥ इसप्रकारके लक्षण लीलारूपधारी शंकरमें पाये जाते

दुःखितः शैलस्त्वान्तदा हृदि नारद ॥ कमुपायं मुने कुर्यामतिदुःखमभूदिति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वं मुने प्रात्थ महाकौतुक
ः ॥ हिमाचलं शुभैर्वाक्यैर्हर्षयन्वाग्विशारदः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ स्नेहाच्छृणु गिरे वाक्यं मम सत्यं मृषा न हि ॥ कररेखा
लिपिर्न मृषा भवति ध्रुवम् ॥ १७ ॥ तादृशोऽस्याः पतिः शैल भविष्यति न संशयः ॥ तत्रोपायं शृणु प्रीत्या यं कृत्वा लप्स्यसे
वम् ॥ १८ ॥ तादृशोऽस्ति वरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः ॥ कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः ॥ १९ ॥ प्रभौ दोषो न
दुःखाय दुःखदोऽत्यप्रभौ हि सः ॥ रविपावकगंगानां तत्र ज्ञेया निदर्शना ॥ २० ॥ तस्माच्छिवाय कन्यां स्वां शिवां देहि विवेकतः ॥
शिवस्सर्वेश्वरस्सेव्योऽविकारी प्रभुरव्ययः ॥ २१ ॥ शीघ्रप्रसादः स शिवस्तां ग्रहीष्यत्यसंशयम् ॥ तपःसाध्यो विशेषेण यदि कुर्या
च्छिवा तपः ॥ २२ ॥ सर्वथा सुसमर्थो हि स शिवस्सकलेश्वरः ॥ कुलिपेरपि विध्वंसी ब्रह्माधीनस्त्वकप्रदः ॥ २३ ॥

हैं जितने कुलक्षणहैं शंकरमें वह सब सुलक्षणहीं हैं ॥ १९ ॥ प्रभुओंमें दोष भी दुःखके निमित्त नहीं होते कारण कि वह दुःख दूर करनेमें समर्थहैं रवि पावक और गंगामें अशुभ वस्तु पडनेसे जैसे वह कुछ दोष नहीं होता है ॥ २० ॥ इस कारण ज्ञानपूर्वक इस अपनी कन्याको शिवजीके निमित्त प्रदान करो शिवही सर्वेश्वरसेव्य अविकारी अविनाशी हैं ॥ २१ ॥ शीघ्र प्रसाद करनेवाले शिवजी शिवाको अवश्य ग्रहण करेंगे सो शंकर तपसे सिद्ध होसकते हैं यदि तुम्हारी पुत्री तपस्या करे ॥ २२ ॥ तो सकलेश्वर शिवजी सदाही समर्थ हैं वह वज्रका भी विध्वंस कर सकते हैं ब्रह्मा उनके आधीन हैं तथा शुभगति

देनेवाले हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले कौतुकी ब्रह्मवित् तुम इसप्रकार हिमाचलसे कहकर सुन्दर वचनोंसे शैलराजको प्रसन्न करते फिर बोले ॥ २४ ॥
यह तो शिवकीही भाविनी दयिता है शिवजीमें सदा सानुकूल है कारण कि यह महासाध्वी सुव्रता माता पिताके सुख बढानेवाली है ॥ २५ ॥ यह शिवजीका
चित्त अपने वशमें करेगी इस तपस्विनीके सिवाय शिवजी अन्यको नहीं विवाहेंगे ॥ २६ ॥ इन शिवाशिवके प्रेमके समान किसीका प्रेम न होगा न है न
किसीका हुआ ॥ २७ ॥ यही दोनों देवतोंके नष्ट हुए कार्य्योंको करेंगे हे श्रेष्ठ ! जो जो कार्य हैं वह वह सब कियेजांयगे ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! इस

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा त्वं पुनस्तात कौतुकी ब्रह्मविन्मुने ॥ शैलराजमवोचो हि हर्षयन्वचनैश्शुभैः ॥ २४ ॥ भाविनी दयिता शम्भो
स्सानुकूला सदा हरे ॥ महासाध्वी सुव्रता च पित्रोस्सुखविवर्द्धिनी ॥ २५ ॥ शम्भोश्चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी ॥ स चाप्ये
नामृते योषां न ह्यन्यामुद्वहिष्यति ॥ २६ ॥ एतयोस्सदृशं प्रेम न कस्याप्येव तादृशम् ॥ भूतं वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते
२७ ॥ अनयोस्सुरकार्य्याणि कर्तव्यानि मृतानि च ॥ यानि यानि नगश्रेष्ठ जीवितानि पुनः पुनः ॥ २८ ॥ अनया कन्यया
अर्द्धनारीश्वरो हरः ॥ भविष्यति तथा हर्षदिनयोर्मिलितम्पुनः ॥ २९ ॥ शरीरार्द्धं हरस्यैषा हरिष्यति सुता तव ॥ तपःप्रभावात्सं
महेशं सकलेश्वरम् ॥ ३० ॥ स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोष्य तं हरम् ॥ विद्युद्गौरतमा चेयं तव पुत्री भविष्यति ॥ ३१ ॥
ति नाम्ना कन्या तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ॥ सर्वदेवगणैः पूज्या हरिब्रह्मादिभिस्तथा ॥ ३२ ॥ नान्यस्मै त्वमिमां दातुमिहार्हसि
म ॥ इदं चोपांशु देवानां न प्रकाश्यं कदाचन ॥ ३३ ॥

ासे शिवजी अर्द्धनारीश्वर कहावेंगे इनका यह मेल प्राथमिक नहीं है पुनर्मेल है ॥ २९ ॥ यह तुम्हारी सुता शिवजीका आधा शरीर हरण
प्रभावसे सकलेश्वर शिवको संतुष्टकरेगी ॥ ३० ॥ यह स्वर्णगौरी सुवर्णकी कान्तिवाली तपसे शिवजीको संतुष्ट कर विजलीकी समान गौरवर्णवाली
होगी ॥ ३१ ॥ गौरी नामसे तुम्हारी कन्या विख्यात होगी हरि ब्रह्मादि सब देवताओंसे तुम्हारी कन्या पूज्य होगी ॥ ३२ ॥ हे पर्वतराज !

को नहीं देसकते यह देवताओंके समीप भी प्रकाशित नहीं करना ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवर्षि नारदजी ! तुम्हारे यह वचन सुनकर
चतुर हिमालय कहने लगे ॥ ३४ ॥ हिमालय बोले हे मुने ! हे नारदजी ! हे पण्डितवर ! मेरी यह विज्ञप्ति है मैं जो प्रेमसे विज्ञप्ति करता
ुम प्रेमसे सुनो ॥ ३५ ॥ ऐसा सुना जाता है कि महादेव संगरहित यतात्मा हैं, वह देवताओंको अगोचर नित्य तपस्या करतेहैं ॥ ३६ ॥
ार्गमें स्थित परब्रह्म अपने रूपमें मन लगाये किसप्रकार संसारी कार्य करैंगे यह मुझे बडा सन्देह है ॥ ३७ ॥ परब्रह्म अक्षर प्रदीपकलिकाकी

ोवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षे तव नारद ॥ उवाच हिमवान्वाक्यं मुने त्वाम्वाग्विशारदः ॥ ३४ ॥ हिमालय उवाच ॥
नारद प्राज्ञ विज्ञप्तिं कांचिदेव हि ॥ करोमि तां शृणु प्रीत्यातस्त्वं प्रमुदमावह ॥ ३५ ॥ श्रूयते त्यक्तसंगस्स महादेवो यतात्म
॥ तपश्चरति सन्नित्यं देवानामप्यगोचरः ॥ ३६ ॥ स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः ॥ भ्रंशयिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो
हान् ॥ ३७ ॥ अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ॥ सदाशिवाख्यं स्वं रूपं निर्विकारमजापरम् ॥ ३८ ॥ निर्गुणं सगुणं तच्च
निर्विशेषं निरीहकम् ॥ अतः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते ॥ ३९ ॥ इति स श्रूयते नित्यं किंनराणां मुखान्मुने ॥ इहागतानां सुप्रीत्या किन्तन्मिथ्या वचो ध्रुवम् ॥ ४० ॥ विशेषतः श्रूयते स साक्षान्नाम्ना तथा हरः ॥ समयं कृतवान्पूर्व्वं तन्मया गदितं शृणु ॥ ४१ ॥ न त्वामृतेऽन्यां वरये दाक्षायणि प्रिये सति ॥ भार्यार्थं न ग्रहीष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥ इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः ॥ तस्यां मृतायां स कथं स्वयमन्यां ग्रहीष्यति ॥ ४३ ॥

समान हैं वह सदाशिववाला उनका निजरूप निर्विकार अजन्मा और पद है ॥ ३८ ॥ वह निर्गुण सगुण निर्विशेष निरीह हैं वह सर्वत्र देखतेहैं बाह्य विषयोंको मनसे नहीं देखतेहैं ॥ ३९ ॥ हे मुने ! यह बात यहां आयेहुए किन्नरोंके मुखसे प्रीतिसे कही नित्य सुनी जातीहै वह मिथ्या कैसे हो सक्तीहै ॥ ४० ॥ विशेषकर साक्षात नामसे महेश्वर हर सुने जाते हैं उनोंने जो पहले प्रतिज्ञा कीहै उसको मुझसे सुनो ॥४१॥ हे प्रिये ! दाक्षायाणी तुम्हारे सिवाय दूसरीको मैं नहीं वरूंगा भार्याके निमित्त मैं तुम्है ही ग्रहण करूंगा यह मेरा वचन सत्य है ॥ ४२ ॥ यह सतीके साथ उन्होंने पहलेही प्रतिज्ञा करली है उसके मरनेपर

वह औरको कैसे ग्रहण करैंगे ॥ ४३ ॥ यह कहकर गिरिराज उनके आगे मौन होगये यह सुनकर नारद तुम इसप्रकार तत्त्वसे कहने लगे ॥ ४४ ॥
नारदजी बोले हे महामते गिरिराज ! यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये यह तुम्हारी सुता काली पहले दक्षकन्या होचुकीहै ॥ ४५ ॥ इसका नाम सती था
और यह सब मंगलकी देनेवाली थी यह सती दक्षकी कन्या रुद्रकी प्रिया हुई ॥ ४६ ॥ पिताके यज्ञमें शंकरके अनादरको प्राप्त होकर कोपको प्राप्त हो
सतीने देह त्यागनकर दिया ॥ ४७ ॥ वही अम्बिका शिवा फिर तुम्हारे घरमें प्रगट हुई यह पार्वती शंकरकी पत्नी होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा स गिरिस्तूष्णीमास तस्य पुरस्तव ॥ तदाकर्ण्याथ देवर्षे त्वं प्रावोचस्सुतत्त्वतः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ न
वै कार्या त्वया चिंता गिरिराज महामते ॥ एषा तव सुता काली दक्षजा ह्यभवत्पुरा ॥ ४५ ॥ सतीनामाभवत्तस्यास्सर्वमंगलदं
सदा ॥ सती सा वै दक्षकन्या भूत्वा रुद्रप्रियाभवत् ॥ ४६ ॥ पितुर्यज्ञे तथा प्राप्यानादरं शंकरस्य च ॥ तन्दृष्ट्वा कोपमाधायात्याक्षी
देहं च सा सती ॥ ४७ ॥ पुनस्सैव समुत्पन्ना तव गेहेऽम्बिका शिवा ॥ पार्वती हरपत्नीयं भविष्यति न संशयः ॥ ४८ ॥ एत
र्वं विस्तरात्त्वं प्रोक्तवान्भूभृते मुने ॥ पूर्वरूपं चरित्रं च पार्वत्याः प्रीतिवर्धनम् ॥ ४९ ॥ तं सर्वं पूर्ववृत्तान्तं काल्या मुनिमुखा
ः ॥ श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसंशयोऽभवत् ॥ ५० ॥ ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा ॥ लज्जयाधोमुखी भूत्वा
विस्तारितानना ॥ ५१ ॥ करेण तां तु संस्पृश्य श्रुत्वा तच्चरितं गिरिः ॥ मूर्ध्नि शश्वत्तथाघ्राय स्वासनान्ते न्यवेशयत् ॥ ५२ ॥
ं तां पुनर्दृष्ट्वाऽवोचस्तत्र स्थितां मुने ॥ हर्षयन् गिरिराजं च मेनकान्तनयैः सह ॥ ५३ ॥

ह सब बात तुमने विस्तारसे पर्वतराजसे कही थी जो पार्वतीका पूर्वरूप और चरित्र प्रीतिका बढानेवाला था ॥ ४९ ॥ तुम्हारे मुखसे कालीके
र्ववृत्तान्तको सुनकर पर्वतराज पुत्रस्त्रीके सहित संदेहरहित होगये ॥ ५० ॥ तब काली नारदजीके मुखसे यह सब कथा सुनकर लज्जासे मुख
कुछेक हास्यमुखी होगई ॥ ५१ ॥ गिरिराज यह सब चरित्र सुन और हाथसे उसको स्पर्शकर तथा शिर सूंघकर अपने आसनके समीप
। ५२ ॥ तब तुम हे मुनि ! वहां भगवतीको स्थित हुए देखकर पुत्रोंसहित गिरिराज और मेनाको प्रसन्न करते हुए बोले ॥ ५३ ॥

इसके बैठनेका उत्तम सिंहासनरूप आसन तो सदाशिवजीकी जंघा होगी ॥ ५४ ॥ तुम्हारी तनया रत्नसिंहासनपर भी निरन्तर शिवजीकी
सन प्राप्त करैंगी जहांपर किसका मन और दृष्टि नहीं जायगी ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजी बोले नारद इसप्रकार तुम उदार वचन कहकर गिरिराजसे
को गये और प्रसन्न होकर गिरिराज भी सब सम्पत्तिसे उदार समृद्ध अपने घरमें प्रविष्ट हुए ॥५६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहि
यपार्वतीखंडे नारदहिमालयसंवादवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नारदजी बोले हे विधे ! हे तात ! हे शैववर ! तुमने शिवजीकी बडी अद्भुत

नन्तु किन्त्वस्याश्शैलराज भवेदतः ॥ शम्भोरूरौ सदैतस्या आसनं तु भविष्यति ॥ ५४ ॥ हरोरूर्वासनम्प्राप्य तनया तव
म् ॥ न यत्र कस्यचिद्दृष्टिर्मानसं वा गमिष्यति ॥ ५५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति वचनमुदारं नारद त्वं गिरीशं त्रिदिवमगम
ा तत्क्षणादेव प्रीत्या ॥ गिरिपतिरपि चित्ते चारुसंमोदयुक्तस्स्वगृहमगमदेवं सर्वसंपत्समृद्धम् ॥ ५६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहा
णि द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे नारदहिमालयसम्वादवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विधे
तात त्वया शैववर प्राज्ञाद्भुता कथा ॥ वर्णिता करुणां कृत्वा प्रीतिर्मे वर्द्धिताधिकम् ॥ १ ॥ विधे गते स्वकं धाम मयि वै दिव्यद
र्शने ॥ ततः किमभवत्तात कृपया तद्वदाधुना ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गते त्वयि मुने स्वर्गे कियत्काले गते सति ॥ मेना प्राप्यै
कदा शैलनिकटं प्रणनाम सा ॥ ३ ॥ स्थित्वा सविनयम्प्राह स्वनाथं गिरिकामिनी ॥ तत्र शैलाधिनाथं सा प्राणप्रियसुता सती
॥ ४ ॥ ॥ मेनोवाच ॥ मुनिवाक्यं न बुद्धं मे सम्यङ् नारीस्वभावतः ॥ विवाहं कुरु कन्यायास्सुन्दरेण वरेण ह ॥ ५ ॥

कथा सुनाई आपने जो करुणाकर कथा मुझसे कही इससे मेरे मनमें बहुत प्रीति बढी ॥ १ ॥ हे विधे ! जब मैं अपने स्थानको चला गया और दिव्यदर्शन
हिमवान्‌भी अपने स्थानको गया हे तात ! तब क्या हुआ कृपाकरके मुझसे आप यह सब कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! तुम्हारे स्वर्ग जानेपर कुछ
कालके बीतनेमें एक समय मेना गिरिराजके निकट आय प्रणामकर बोली ॥ ३ ॥ वह गिरिकामिनी प्राणसदृश प्रियहै पुत्री जिसको ऐसी सती विनयपूर्वक
अपने नाथ शैलनाथसे बोली ॥ ४ ॥ मेना बोली हे स्वामी ! नारीके स्वभावसे मैंने मुनिराजके वचन भलीप्रकार नहीं समझे कन्याका विवाह तो सुन्दर

वरके साथ होना चाहिये ॥ ५ ॥ कारण कि अपूर्व सुखका देनेहारा विवाह सर्वदाही सुखदायक होताहै इससे गिरिराजको सुलक्षण और कुलीन वर मिलना
चाहिये ॥ ६ ॥ हे प्रिय ! जिसप्रकार मेरी प्राणप्रिया कन्या अच्छा वर प्राप्त होकर सुखी हो सो करो तुमको प्रणाम है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कह
ांखोंमें आंसू भरकर मेना पतिके चरणोंमें गिरी चतुर गिरिराज उसको उठाकर कहने लगे ॥ ८ ॥ हिमालय बोले । हे मेनकादेवि ! मैं यथार्थ कहताहूं
त्वसे सुनो तुम भ्रमको त्यागन करो मुनिके वचन कभी असत्य नहीं होतेहैं ॥ ९ ॥ यदि पुत्रीपर तुम्हारा प्रेम है तो आदरसे जाकर उसको शिक्षा दो

हि भवेत्त त्रोद्वाहोऽपूर्वसुखावहः ॥ वरश्च गिरिजायास्तु सुलक्षणकुलोद्भवः ॥ ६ ॥ प्राणप्रिया सुता मे हि सुखिता स्याद्यथा
सद्वरं प्राप्य सुप्रीता तथा कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखी मेना पत्यंघ्र्योः पतिता तदा ॥ तामुत्थाप्य
यथावत्प्राज्ञसत्तमः ॥ ८ ॥ हिमालय उवाच ॥ शृणु त्वं मेनके देवि यथार्थं वच्मि तत्त्वतः ॥ भ्रमं त्यज मुनेर्वाक्यं वितथं
न ॥ ९ ॥ यदि स्नेहः सुतायास्ते सुतां शिक्षय सादरम् ॥ तपः कुर्याच्छंकरस्य सा भक्त्या स्थिरचेतसा ॥ १० ॥ चेत्प्रसन्नः
ल्याः पाणिं गृह्णाति मेनके ॥ सर्वं भूयाच्छुभं नश्येन्नारदोक्तममंगलम् ॥ ११ ॥ अमंगलानि सर्वाणि मंगलानि सदाशिवे ॥
ां शिवप्राप्त्यै तपसे शिक्षय द्रुतम् ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य गिरेर्वाक्यं मेना प्रीततराऽभवत् ॥ सुतोपकंठमगम
ोरुचिम् ॥ १३ ॥ सुताङ्गं सुकुमारं हि दृष्ट्वातीवाथ मेनका ॥ विव्यथे नेत्रयुग्मे चाश्रुपूर्णेऽभवतां द्रुतम् ॥ १४ ॥ सुतां
तन्न शशाक गिरिप्रिया ॥ बुबुधे पार्वती तद्वै जननीङ्गितमाशु सा ॥ १५ ॥

ूर्वक स्थिरचित्तसे शिवजीका तप करै ॥ १० ॥ हे मेना ! यदि प्रसन्न होकर शिवजी कालीका पाणिग्रहण करें तो सब शुभ होजायगा और
हा अमंगल दूर होजायगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण अमंगल सदाशिवमें मंगल होजातेहैं इसकारण शिवकी प्राप्तिके लिये सुताको तप करनेके लिये
ना ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले पर्वतराजके यह वचन सुन मेना बहुत प्रसन्न हुई और तप करनेकी शिक्षा देनेके निमित्त सुताके समीप गई ॥ १३ ॥
नका सुताके अंग अत्यन्त सुकुमार देखकर व्याकुल हुई और तत्काल उसके दोनो नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १४ ॥ गिरिप्रिया सुताको उपदेश देनेमें समर्थ

हुई, परन्तु पार्वतीने माताकी समस्त चेष्टा समझली ॥ १५ ॥ तब सर्वज्ञा परमेश्वरी कालिका देवी जननी माताको वारंवार समझाती हुई बोली ॥ १६ ॥
ी बोली ! हे मैया ! हे महाचतुरे ! आज रात्रिके ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखाहै, कहतीहूं कृपाकर सुनो ॥ १७ ॥ एक तपस्वी ब्राह्मण मुझको
के सहित शिवजीके उद्देश्यसे तपकरनेकेलिये कहता है ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले यह सुनतेही मेनाने शीघ्र पतिको बुलाकर सुताका देखाहुआ
ा ॥ १९ ॥ गिरिराज मेनाके मुखसे सुताका देखा स्वप्न सुनकर परम प्रसन्न हो अपनी प्रियासे बोले ॥ २० ॥ गिरिराज बोले हे प्रिये !

लिका देवी सर्वज्ञा परमेश्वरी ॥ उवाच जननीं सद्यः समाश्वास्य पुनः पुनः ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ मातश्शृणु महाप्राज्ञेऽ
ूर्तके ॥ रात्रौ दृष्टो मया स्वप्नस्तं वदामि कृपां कुरु ॥ १७ ॥ विप्रश्चैव तपस्वी मां सदयः प्रीतिपूर्वकम् ॥ उपादिदेश सुतपः
शवस्य वै ॥ १८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा मेनका शीघ्रं पतिमाहूय तत्र च ॥ तत्स्वप्नं कथयामास सुता दृष्टमशेषतः
सुतास्वप्नमथाकर्ण्य मेनकातो गिरीश्वरः ॥ उवाच परमप्रीतः प्रियां सम्बोधयन्गिरा ॥ २० ॥ ॥ गिरीश्वर उवाच ॥ हे
त्रान्ते स्वप्नो दृष्टो मयापि हि ॥ तं शृणु त्वं महाप्रीत्या वच्म्यहं तं समादरात् ॥ २१ ॥ एकस्तपस्वी परमो नारदोक्तवरां
पुरोपकंठं सुप्रीत्या तपः कर्तुं समागतः ॥ २२ ॥ गृहीत्वा स्वसुतां तत्रागमं प्रीततरोप्यहम् ॥ मया ज्ञातस्स वै शम्भुर्नारदो
भुः ॥ २३ ॥ सेवार्थं तस्य तनयामुपदिश्य तपस्विनः ॥ तं वै प्रार्थितवांस्तस्यां[2] न तदांगीचकार सः ॥ २४ ॥

ततेमें मैंने भी स्वप्न देखा है उसको तुम सुनो मैं आदरसे कहता हूं ॥ २१ ॥ एक परम उत्तम तपस्वी नारदके कहे वर अंगको धारण किये मेरे पुरके
र्में तपस्या करनेको आया ॥ २२ ॥ मैं बहुत प्रसन्न हो अपनी सुताको लेकर उसके समीप गया, और मैंने जाना कि वह नारदके कहे वर शिवजी हैं
॥ २३ ॥ उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी तनयाको समर्पण करके मैंने सेवाके लिये प्रार्थना की पर उन्होंने कन्याद्वारा सेवा स्वीकार न की ॥ २४ ॥

---

१ ब्राह्मेमुहूर्ते । २ सेवायाम् ।

उस समय सांख्य और वेदान्त सम्मत बहुत विवाद हुआ तब उनकी आज्ञासे सेवाके निमित्त मेरी सुता स्थित हुई ॥ २५ ॥ हृदयमें उनकी इच्छाको
धारण कर मेरी कन्या भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी हे वरानने ! यही स्वप्न मैंने देखा था सो तुमको सुना दिया ॥ २६ ॥ हे प्रिये ! सो
समय तक इस बातकी प्रतीक्षा करो जो योग्य समझो तो मेरी सम्मति स्वीकार करो ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले जब गिरिराजने ऐसा कहा तब मेनका
रिराज शुद्ध चित्तसे कुछ कालतक इस बातकी प्रतिज्ञा करते रहे ॥ २८ ॥ कुछ समय जब इस प्रकार बीता तब वह परमेश सत्पुरुषोंकी गति

ादस्सुमहान्सांख्यवेदान्तसंमतः ॥ ततस्तदाज्ञया तत्र संस्थितासीत्सुता मम ॥ २५ ॥ निधाय हृदि तं कामं सिषेवे भक्तितश्च
दृष्टं मया स्वप्नं प्रोक्तवांस्ते वरानने ॥ २६ ॥ ततो मेने कियत्कालं परीक्ष्यं तत्फलं प्रिये ॥ योग्यमस्तीदमेवेह बुध्यस्व
मम् ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा गिरिराजश्च मेनका वै मुनीश्वर ॥ सन्तस्थतुः परीक्षन्तौ तत्फलं शुद्धचेतसौ ॥
इत्थम्व्यतीतेऽल्पदिने परमेशः सतां गतिः ॥ सतीविरहसुव्यग्रो भ्रमन्सर्वत्र सूतिकृत् ॥ २९ ॥ तत्राजगाम सुप्रीत्या किय
ुः ॥ तपः कर्तुं सतीप्रेमविरहाकुलमानसः ॥ ३० ॥ तपश्चकार स्वं तत्र पार्वती सेवने रता ॥ सखीभ्यां सहिता नित्यं
त्तदा ॥ ३१ ॥ विद्धोऽपि मार्गणैश्शम्भुर्विकृतिं नाप स प्रभुः ॥ प्रेषितेन सुरैस्स्वात्ममोहनार्थं स्मरेण वै ॥ ३२ ॥ दग्ध्वा
व स्ववह्निनयनेन सः ॥ स्मृत्वा मम वचः क्रुद्धो मह्यमन्तर्दधे ततः ॥ ३३ ॥ ततः कालेन कियता विनाश्य गिरिजाम
दितस्सुतपसा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥ ३४ ॥

सर्वत्र भ्रमण करते हुए ॥ २९ ॥ प्रभु अपने कुछेक गण साथमें लिये सतीके प्रेमसे विरहाकुल मनसे तप करनेके निमित्त वहां आये ॥ ३० ॥
रने लगे और पार्वती उनकी सेवा करने लगी सखियोंके सहित नित्य उनको प्रसन्न करने लगी ॥ ३१ ॥ कामबाणसे विद्ध होकर भी
विकारको प्राप्त न हुए; देवताओंने उनके मोहनेके निमित्त कामदेवको भेजा ॥ ३२ ॥ तब शंकरने अपनी नेत्राग्निसे कामदेवको भस्म करदिया और मेरे
न स्मरणकर आप अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ फिर कितना एक समयके पीछे गिरिजाने मद दूरकरके महातप किया, जिससे शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥

कक आचारको मानकर विष्णुने शंकरको प्रसन्न किया शिवजीने पार्वतीके साथ विवाह किया उस अवसरमें बडा मंगल हुआ ॥ ३५ ॥ हे तात !
प्रकार संक्षेपसे यह शिवजीका चरित्र आपसे कहा यह शंकरका परमदिव्य चरित्रहै अब क्या सुननेकी इच्छाहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापु
यां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे स्वमवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ नारदजी बोले हे विष्णुशिष्य ! हे महाभाग ! हे विधे ! हे प्रभो !
प इस शिवलीलाको विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ सतीके विरहको प्राप्त हुए शिवजीने फिर क्या किया वह हिमालयपर्वतके ऊपर किस

रमाश्रित्य रुद्रो विष्णुप्रसादितः ॥ कालीं विवाहयामास ततोऽभूद्बहुमंगलम् ॥ ३५ ॥ इत्येतत्कथितं तात समासाच्चरितं
ंकरस्य परन्दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे
पू० संक्षेपशिवचरितवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुशिष्य महाभाग विधे शैववर प्रभो ॥
मिमां व्यासात्प्रीत्या मे वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सतीविरहयुक्शंम्भुः किं चक्रे चरितन्तथा ॥ तपः कर्तुं कदायातो हिमवत्प्रस्थमु
२ ॥ शिवाशिवशिवादोऽभूत्कथं कामक्षयश्च मे ॥ तपः कृत्वा कथम्प्राप शिवं शंभुं च पार्वती ॥ ३ ॥ तत्सर्वमपरं चापि
तं परम् ॥ वक्तुमर्हसि मे ब्रह्मन्महानन्दकरं शुभम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा नारदस्य प्रश्नं लोकाधिपोत्तमः ॥
ावाच सुप्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवर्षे शैववर्याद्य तद्यशः शृणु चादरात् ॥ पावनं मङ्गलकरं
र्धनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

तपस्या करने आये ॥ २ ॥ शिवा शिवका विवाद किसप्रकार हुआ और कामक्षय किस प्रकार हुआ, पार्वतीने तप करके शिवजीको किस प्रकार प्राप्त
किया ॥ ३ ॥ यह सब तथा और दूसरा भी शिवजीका चरित्र हे ब्रह्मन् ! महान् आनन्दका करनेवाला मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले इस प्रकारसे
नारदजीके वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण कर विधाता प्रसन्न हो बोले ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवर्षे नारदजी ! हे शैवश्रेष्ठ ! आदरसे

ण पुत्र रोता हो इस प्रकार वह भवाचाररत शिवजीका पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ फिर बुद्धिसे विचारकर पृथिवी देवी स्वयं स्त्रीका शरीर धारणकर शंकरसे
प्रगट हुई ॥ १७ ॥ और उस बालकको उठाकर खिलाने लगी तथा अपना दूध पिलाने लगी ॥ १८ ॥ हँसकर प्रेमसे उसका मुख चूमने लगी
बालक के प्रेमसे माता परमेशका हितकरने लगी ॥ १९ ॥ कौतुकी शंकर कृती इस प्रकारके चरित्रको देखकर अन्तर्यामी हँसते हुए
। २० ॥ हे भूमि ! तुम धन्य हो प्रेमसे इस मेरे बालकको पालो मेरे श्रमके जलसे यह तुम्हारेमें उत्पन्न हुआ महातेजस्वी श्रेष्ठ होगा तुम

सुधिया धृत्वा सुस्त्रीतनुं क्षितिः ॥ आविर्बभूव तत्रैव भयमानीय शङ्करात् ॥ १७ ॥ तम्बालं द्रुतमुत्थाप्य क्रोडायां निदधे
यं सापाययत्प्रीत्या दुग्धं स्वोपरिसम्भवम् ॥ १८ ॥ चुचुम्ब तन्मुखं स्नेहात्स्मित्वा क्रीडयदात्मजम् ॥ सत्यभावात्स्वयं
हितावहा ॥ १९ ॥ तद्दृष्ट्वा चरितं शम्भुः कौतुकी सूतिकृत्कृती ॥ अन्तर्यामी विहस्याथोवाच ज्ञात्वा रसां हरः ॥२०॥
णि प्रीत्या पालयैतं सुतं मम ॥ त्वय्युद्भूतं श्रमजलान्महातेजस्विनो वरम् ॥ २१ ॥ मम श्रमकभूर्बालो यद्यपि प्रियकृ
न्नाम्ना स्याद्भवेत्ख्यातस्त्रितापरहितस्सदा ॥ २२ ॥ असौ बालः कुदाता हि भविष्यति गुणी तव ॥ ममापि सुखदाता हि
ारुचि ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ किंचिद्विरहमुक्तधीः ॥ लोकाचारकरो रुद्रो निर्विकारी सताम्प्रियः
अपि क्षितिर्जगामाशु शिवाज्ञामधिगम्य सा ॥ स्वस्थानं ससुता प्राप सुखमात्यंतिकं च वै ॥ २५ ॥ स बालो भौम
प्राप्य भूत्वा युवा द्रुतम् ॥ तस्यां काश्यां चिरंकालं सिषेवे शङ्करम्प्रभुम् ॥ २६ ॥

प्रेम करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह बालक पृथिवीमें मेरा प्रियकारी होगा तो भी हे भूमि ! तेरे नामसे यह विख्यात होकर सदा तीनों तापोंसे रहित
२२ ॥ यह बालक भूमिदानी बडा गुणी होगा और यह मुझे भी सुखका देनेवाला होगा यथारुचि तुम इसको ग्रहण करो ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले
कहकर कुछेक वियोगसे बुद्धिको हटाकर शंकर विरामको प्राप्त हुए यह शंकर भगवान् निर्विकारी हैं परन्तु सत्पुरुषोंकी प्रियताके कारण लोकाचार
करतेहैं ॥ २४ ॥ तब शिवजीकी आंज्ञा पाकर भूमिदेवी चलीगई और सुतसहित अपने स्थानको प्राप्त होकर बडा सुख माना ॥ २५ ॥ वह बालक

शिवजीका यश सुनो जो परम पवित्र मंगल करनेवाला और उत्तम भक्तिका बढानेवाला है ॥ ६ ॥ प्रियाके विरहमें कातर शिवजी अपने पर्वतमें आकर
अपनी प्राणप्यारी सती देवीको हृदयसे स्मरण करने लगे ॥ ७ ॥ शोचते हुए गणोंसे सतीके प्रेम बढानेवाले गुण कहने लगे और लौकिककी गतिको स्मरण
हुए पुरातन गाथा कहने लगे ॥ ८ ॥ फिर गृहस्थकी सद्गतिको छोड शंकर दिगम्बर रहनेलगे और सब लीलाओंमें विशारद सब लोकोंमें भ्रमण करने
९ ॥ सतीके विरहसे दुःखी हुए कहीं उसके दर्शनको प्राप्त न होकर फिरभी कल्याणकारी शंकर भक्तगिरिके स्थानपर आये ॥ १० ॥ फिर यत्नसे

स्वगिरिं शम्भुः प्रियाविरहकातरः ॥ सस्मार स्वप्रियां देवीं सतीं प्राणाधिकां हृदा ॥ ७ ॥ गणानाभाष्य शोचंस्तां तद्गुणान्प्रे
॥ वर्णयामास सुप्रीत्या दर्शयल्लौकिकीं गतिम् ॥ ८ ॥ दिगम्बरो बभूवाथ त्यक्त्वा गार्हस्थ्यसद्गतिम् ॥ पुनर्बभ्राम लोकान्वै
विशारदः ॥ ९ ॥ दर्शनम्प्राप्य कुत्रापि सतीविरहदुःखितः ॥ पुनश्च गिरिमायातश्शङ्करो भक्तशङ्करः ॥ १० ॥ समाधाय
त्समाधिन्दुःखनाशिनम् ॥ चकार च ददर्शासौ स्वरूपं निजमव्ययम् ॥ ११ ॥ इत्थं चिरतरं स्थाणुस्तस्थौ ध्वस्तगुणत्रयः ॥
परम्ब्रह्म मायाधीशस्स्वयम्प्रभुः ॥ १२ ॥ ततस्समाधिन्तत्त्याज व्यतीय ह्यमितास्समाः ॥ यदा तदा बभूवाशु चरितं
॥ १३ ॥ प्रभोर्ललाटदेशात्तु यत्पृषच्छ्रमसंभवम् ॥ पपात धरणौ तत्र स बभूव शिशुर्द्रुतम् ॥ १४ ॥ चतुर्भुजोऽरुणा
याकृतिर्मुने ॥ अलौकिकद्युतिः श्रीमाँस्तेजस्वी परदुस्सहः ॥ १५ ॥ रुरोद स शिशुस्तस्य पुरो हि परमेशितुः ॥ प्राकृता
नवाचाररतस्य हि ॥ १६ ॥

नकर दुःख नाशिनी समाधिको लगाकर अपना अविनाशीरूप देखने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार त्रिगुणोंसे परे शंकर बहुत समयतक अपने
रहे वह निर्विकार परब्रह्म मायाधीश स्वयम्प्रभु हैं ॥ १२ ॥ फिर बहुत दिनोंके बीतजानेपर शंकरने समाधि त्यागन की उस समय जो जो
हुआ वह वह मैं सब कहता हूं ॥ १३ ॥ तप करते समय प्रभुके ललाटस्थानसे जो पसीना गिरा उससे एक बालक प्रगट हुआ ॥ १४ ॥ चार भुजा
ण आकार मनोहर आकृति अलौकिक श्रीमान् तेजस्वी शत्रुओंको दुःसह था ॥ १५ ॥ वह बालक परमेश्वर शंकरजीके समीप रोने लगा जैसे कोई

मनामको प्राप्त होकर तत्काल ही युवा होगया और काशीमें चिरकालतक भगवान् शंकरकी सेवा करता रहा ॥ २६ ॥ वह भूमिपुत्र शिवजीकी कृपासे
हत्वको प्राप्त होकर शुक्रलोकसे भी आगे दिव्यलोकको प्राप्त हुआ॥२७॥यह सतीके विरहके समयका शिवजीका चरित्र तुमसे कहा हे मुने ! अब आदरसे
तपस्याका वर्णन सुनो ॥२८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीये पार्वतीखण्डे भौमोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥
ले जिस समय वह लोकपूजित हिमालयकी पुत्री साक्षात् शक्तिरूपसे हिमालयके घर बढने लगी और हिमालयके घरमें आठ वर्षकी सती हुई ॥

प्रसादेन ग्रहत्वं प्राप्य भूमिजः ॥ दिव्यं लोकं जगामाशु शुक्रलोकात्परं वरम् ॥ २७ ॥ इत्युक्तं शम्भुचरितं सतीविरहसंयु
पस्याचरणं शम्भोश्शृणु चादरतो मुने ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे भौमो
वलीलावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वर्द्धमाना गिरेः पुत्री सा शक्तिर्लोकपूजिता ॥ अष्टवर्षा यदा जाता
गृहे सती ॥ १ ॥ तज्जन्म गिरिशो ज्ञात्वा सतीविरहकातरः ॥ कृत्वा तामद्भुतामन्तर्मुमोदातीव नारद ॥ २ ॥ तस्मिन्नेवान्तरे
किकीं गतिमाश्रितः ॥ समाधातुं मनस्सम्यक्तपः कर्त्तुं समैच्छत ॥ ३ ॥ कांश्चिद्गणवराञ्छान्तान्नंद्यादीनवगृह्य च ॥ गङ्गाव
द्धिमवत्प्रस्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ यत्र गंगा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात्स्रुता ॥ सर्वाघौघविनाशाय पावनी परमा मुने ॥ ५ ॥ तपः
मकरोत्स्थित्वा तत्र वशी हरः ॥ एकाग्रं चिंतयामास स्वमात्मानमतन्द्रितः ॥ ६ ॥

॥ तब कैलासपति पार्वतीका जन्म जानकर विरहसे कातर होगये, और हे नारदजी ! उसको जानकर मनमें बडे प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ शिवजी उसी
लौकिकी गतिका आश्रय कर मन सावधान करनेकी इच्छासे तपस्यामें मन लगानेकी इच्छा करने लगे ॥ ३ ॥ कुछ एक नन्दी आदि शान्त और
श्रेष्ठगणोंको साथ लेकर हिमालयके शिखरके समीप गंगावतरण स्थानमें आये ॥ ४ ॥ जहां ब्रह्माजीके कमंडलुसे गंगाजी निपतित हुई हैं, हे मुने ! जो
समस्त पाप दूर करनेवाली परम पाविनी हैं ॥ ५ ॥ वहां शिवजी मनके निग्रहपूर्वक तपस्या करनेलगे और आलस्यरहित हो एकाग्र चित्तसे अपनी आत्माको

चिंतन करनेलगे ॥ ६ ॥ जो सबका चैतन्य करनेवाला ज्ञानसे प्रगट नित्य ज्योतिस्वरूप निरामय जगत्में व्याप्त चिदानंद द्वैतहीन किसीके आश्रयमें रहनेवाले
ड़ीं हैं ॥ ७ ॥ जिस समय भगवान् शंकर अपने आत्माका ध्यान करनेलगे उस समय प्रमथ और नन्दी आदि गण तथा भृंगी आदि गण भी ध्यानमें तत्पर
हो ८ ॥ और कोई २ गण परात्मा शंकरकी सेवा करने लगे और कोई मौनहो कुछ भी न बोले केवल द्वारपालता करने लगे ॥ ९ ॥ उसी समय
लय आये उस औषधीवाले शिखरमें शंकरका आगमन सुनकर आदरसे ॥ १० ॥ पर्वतराज अपने सेवक वर्गोंके सहित प्रभुको प्रणाम करने आये

भवं नित्यं ज्योतीरूपं निरामयम् ॥ जगन्मयं चिदानन्दं द्वैतहीनं निराश्रयम् ॥ ७ ॥ हरे ध्यानपरे तस्मिन्प्रमथा ध्यानत
अभवन्केचिदपरे नन्दिभृंग्यादयो गणाः ॥८॥ सेवां चक्रुस्तदा केचिद्गणाः शम्भोः परात्मनः ॥ नैवाकूजंस्तु मौना हि द्वारपाः
न् ॥९॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम हिमभूधरः ॥ शङ्करस्यौषधिप्रस्थे श्रुत्वागमनमादरात् ॥१०॥ प्रणनाम प्रभुं रुद्रं सगणो
॥ समानर्च च सुप्रीतस्तुष्टाव स कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ ॥ हिमालय उवाच ॥ देवदेव महादेव कपर्दिञ्छंकर प्रभो ॥ त्वयैव
पालितं भुवनत्रयम् ॥ १२ ॥ नमस्ते देवदेवेश योगिरूपधराय च ॥ निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सगुणाय विहारिणे ॥ १३ ॥
सिने शम्भो सर्वलोकाटनाय च ॥ नमस्ते परमेशाय लीलाकाराय शूलिने ॥ १४ ॥ परिपूर्णगुणाधानविकाररहिताय ते ॥
य वीहाय धीरायपरमात्मने ॥१५॥ अबहिर्भोगकाराय जनवत्सल ते नमः ॥ त्रिगुणाधीश मायेश ब्रह्मणे परमात्मने ॥१६॥

त उनकी पूजाकर हाथजोड प्रणामकर स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ हिमालय बोले हे देवदेव ! महादेव कपर्दिन् हे प्रभो ! हे शंकर ! आपही
नों भुवनोंकी पालना कीहै ॥ १२ ॥ हे देवदेवेश ! योगीरूपधारी आपको प्रणामहै निर्गुणभी सगुणरूपसे विहारकरनेवाले आपको प्रणामहै ॥
३ ॥ आप कैलास वासी शिव सब लोकमें विचरनेवाले परमेश्वर लीला करनेवाले शूलधारी हो आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ आप परिपूर्ण गुणोंके
र विकाररहितहैं स्वयं इच्छारहित भी भक्तोंके अर्थ इच्छावाले हो इससे धीर और परमात्मा आपही जाने जातेहो ॥ १५ ॥ बाहरके भोग न करनेवाले

भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले आपको नमस्कारहै तीनों गुणोंके अधीश्वर मायाके पति परमात्मा ब्रह्म आपको नमस्कारहै ॥ १६ ॥ ब्रह्मा विष्णु आदि आपका सेवन करतेहैं तुम ब्रह्मा और विष्णुके स्वरूपहो तुम ब्रह्मा विष्णुको सब कुछ देतेहो भक्तोंके प्यारे हो तुमको नमस्कारहै ॥ १७ ॥ आप तपस्यामें रत तपस्याके स्थान अच्छे तपका फल देनेवालेहैं, तपको प्यार करनेवाले शान्त ब्रह्मरूप आपको प्रणामहै ॥ १८ ॥ आप व्यवहार और लोकाचार भी करतेहैं, सगुणपरेश परमात्मरूप आपको प्रणामहै ॥ १९ ॥ हे परेशान ! आपकी लीलाको कोई नहीं जानता है आपकी लीला साधुओंको सुख देनेवालीहै

विष्णुब्रह्मादिसेव्यायविष्णुब्रह्मस्वरूपिणे ॥ विष्णुब्रह्मकदात्रे ते भक्तप्रिय नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥ तपोरत तपःस्थानसुतपःफलदायिने ॥
तपःप्रियाय शान्ताय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ १८ ॥ व्यवहारकरायैव लोकाचारकराय ते ॥ सगुणाय परेशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥
॥ १९ ॥ लीलातव महेशानावेद्या साधुसुखप्रदा ॥ भक्ताधीनस्वरूपोऽसि भक्तवश्यो हि कर्मकृत् ॥२०॥ मम भाग्योदयादत्र त्वमागत
इह प्रभो ॥ सनाथं कृतवान्मां त्वं वर्णितो दीनवत्सलः ॥ २१ ॥ अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम ॥ अद्य मे सफलं सर्वं यदत्र
त्वं समागतः ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा मां दासमव्यग्रमाज्ञान्देहि महेश्वर ॥ त्वत्सेवां च महाप्रीत्या कुर्यामहमनन्यधीः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरीशस्य महेश्वरः ॥ किंचिदुन्मील्य नेत्रे च ददर्श सगणं गिरिम् ॥ २४ ॥ सगणं तन्तथा दृष्ट्वा गिरिराजं
वृषध्वजः ॥ उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निव जगत्पतिः ॥ २५ ॥

तुम भक्तोंके आधीन स्वरूपवालेहो आप भक्तोंके वशीभूत होकर कर्म करतेहो ॥ २० ॥ हे प्रभो ! मेरे भाग्योदयके कारणसे ही तुम यहाँ आये हो हे दीनवत्सल ! आपने मुझै सनाथ कर दियाहै ॥ २१ ॥ आज मेरा जीवन और जन्म सफल है आज मेरा सबही सफलहै जो कि आपका यहां आगमन हुआहै ॥ २२ ॥ हे महेश्वर ! अपना दास जानकर मुझै आप निस्संकोच आज्ञा दीजिये मैं अनन्यबुद्धि होकर प्रेमसे आपकी सेवा करूंगा ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले महेश्वर गिरीशके यह वचन सुनकर कुछेक नेत्र खोलकर गणोंसहित गिरीशको देखने लगे ॥ २४ ॥ वृषभध्वजने इसप्रकार गणोंसहित

गिरिराजको देखा और कुछ हँसते हुए जगत्पति ध्यानयोगमें स्थित होकर बोले ॥ २५ ॥ शंकरजी बोले मैं एकान्तमें आपके स्थानमें तपस्या करने आया हूं आप ऐसा कीजिये कि कोई मेरे समीप न आवै ॥ २६ ॥ तुम बडे महात्मा तपके स्थान हो तपोधन मुनि सदा तुम्हारे आश्रित रहतेहैं देवता राक्षस तथा दूसरे महात्माओंके आश्रयहो ॥ २७ ॥ सदा तुम्हारेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य निवास करतेहैं परम पवित्र गंगा सदा तुम्हारे शिखरपर वहन करतीहै तुम सबमें श्रेष्ठ परोपकारी हो गिरियोंके अधिपति प्रभु हो ॥ २८ ॥ इस गंगावतारमें मैं तपस्या करूंगा हे गिरिराज ! तुम इन्द्रियनिग्रहमें परायणहो मैं प्रेमसे तुम्हारे

महेश्वर उवाच ॥ तव पृष्ठे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः ॥ यथा न कोऽपि निकटं समायातु तथा कुरु ॥ २६ ॥ त्वं महात्मा तपोधामा
मुनीनां च सदाश्रयः ॥ देवानां राक्षसानां च परेषां च महात्मनाम् ॥ २७ ॥ सदा वासो द्विजादीनां गंगापूतश्च नित्यदा ॥ परोपकारी
सर्वेषां गिरीणामधिपः प्रभुः ॥ २८ ॥ अहं तपश्चराम्यत्र गंगावतरणे स्थले ॥ आश्रितस्तव सुप्रीतो गिरिराज यतात्मवान् ॥ २९ ॥
निर्विघ्नं मे तपश्चात्र हेतुना येन शैलप ॥ सर्वथा हि गिरिश्रेष्ठ सुयत्नं कुरु साम्प्रतम् ॥ ३० ॥ ममेदमेव परमं सेवनं पर्वतोत्तम ॥
स्वगृहं गच्छ सत्प्रीत्या तत्संपादय यत्नतः ॥३१॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास स सूतिकृत् ॥ गिरिराजस्तदा
शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ ॥ हिमालय उवाच ॥ पूजितोऽसि जगन्नाथ मया त्वम्परमेश्वर ॥ स्वागतेनाद्य विषये स्थितं
त्वाम्प्रार्थयामि किम् ॥ ३३ ॥ महता तपसा त्वं हि देवैर्यत्नपराश्रितैः ॥ न प्राप्यसे महेशान स त्वं स्वयमुपस्थितः ॥ ३४ ॥

आश्रित रहूंगा ॥ २९ ॥ हे गिरिश्रेष्ठ ! जिसकारणसे मेरी तपस्या निर्विघ्न हो इस प्रकारसे यत्न आपको करना चाहिये ॥ ३० ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! मेरा यही परम सेवनहै कि आप घर जाकर प्रेमसे मेरी निर्विघ्न तपश्चर्या होनेका यत्न करिये ॥ ३१ ॥ ब्रह्मांजी बोले जगत्के स्वामी भगवान् इसप्रकारकी आज्ञा देकर मौन हुए और गिरिराज बहुत नम्र हो इस प्रकारके वचन शिवजीसे बोले ॥ ३२ ॥ हिमालय बोले हे जगत्पति ! हे नाथ ! मैंने आपकी पूजा कीहै आपका स्वागतहो यहाँ आप स्थित हूजिये और मैं आपकी क्या प्रार्थना करूं ॥ ३३ ॥ हे महेशान ! देवताओंके बडे बडे यत्न और तपस्यासे भी आप प्राप्त नहीं

होसकते सो आप स्वयंही मेरे स्थानपर पधारे हैं ॥ ३४ ॥ मेरे समान भाग्यवान् बडाईके योग्य कोई दूसरा नहीं मेरे पृष्ठपर जो आप तप करने आयेहैं यह मेरा बडा भाग्य है ॥ ३५ ॥ हे परमेश्वर ! मैं तो अपनेको देवेन्द्र आदिसे भी विशेष मान्ता हूं आपने गणोंसहित यहां पधारकर मुझे अनुग्रहका भाजन बना दियाहै ॥ ३६ ॥ हे देव ! आप यहां स्वतंत्रतासे निर्विघ्न तपस्या कीजिये मैं आपकी सेवा करूंगा हे प्रभो ! मैं आपका सदाका दासहूं ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी बोले गिरिराज ऐसा कहकर शीघ्रतासे अपने स्थानको आये और आदरसे अपनी प्रियासे सब वृत्तान्त कहा ॥ ३८ ॥ हे नारदजी ! उस समय

मत्तोप्यन्यतमो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ॥ भवानिति च मत्पृष्ठे तपसे समुपस्थितः ॥३५॥ देवेन्द्रादधिकम्मन्ये स्वातमा
नम्परमेश्वर ॥ सगणेन त्वयागत्य कृतोऽनुग्रहभागहम् ॥३६॥ निर्विघ्नं कुरु देवेश स्वतन्त्रः परमन्तपः ॥ करिष्येऽहन्तथा सेवांदासोऽ
हन्ते सदा प्रभो॥३७॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा गिरिराजोऽसौ स्वं वेश्म द्रुतमागतः ॥ वृत्तान्तं तं समाचख्यौ प्रियायै च समादरात्॥३८॥
नीयमानान्परीवारान्स्वगणानपि नारद ॥ समाहूयाखिलाञ्छैलपतिः प्रोवाच तत्त्वतः ॥३९॥ हिमालय उवाच ॥ अद्य प्रभृति नो यातु
कोपि गंगावतारणम् ॥ मच्छासनेन मत्प्रस्थं सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४० ॥ गमिष्यति जनः कश्चित्तत्र चेत्तं महाखलम् ॥ दण्डयिष्ये
विशेषेण सत्यमेतन्मयो दितम् ॥ ४१ ॥ इति तान्स नियम्याशु स्वगणान्निखिलान्मुने ॥ सुयत्नं कृतवाञ्छैलस्तं शृणु त्वं वदामि ते
॥४२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे शिवशैलसमागमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हिमालयने अपने परिवारके सब सेवकोंको बुलाकर यह वचन कहे ॥ ३९ ॥ हिमालय बोले आजसे लेकर कोई भी गंगावतरण स्थानकी ओर मत जाना मेरी यह आज्ञाहै इसको सब मानना यह मैं सत्य कहताहूं ॥ ४० ॥ और यदि कोई वहां जायगा तो मैं उस दुष्टको अवश्य दण्ड दूंगा यह मैं सत्यही कहताहूं ॥ ४१ ॥ हे मुने ! इस प्रकार अपने सब सेवकवर्गोंको समझाकर शैलराजने जो सुयत्न किया था सो सुनो वह मैं तुमसे कहताहूं ॥ ४२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे शिवशैलसमागमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले तब हिमालय प्रसन्न हो अच्छे पुष्प और फलोंको लेकर अपनी पुत्रीके सहित शिवजीके समीप गये ॥ १ ॥ और जाकर ध्यानमें तत्पर त्रिलोकीनाथको प्रणामकर काली नामकी अपनी अद्भुत कन्याका शंकरजीको अर्पण किया ॥ २ ॥ और उन सब पुष्पफलादियोंको शंकरजीके आगे रखकर और सुताको आगे करके इस प्रकारके वचन कहे ॥ ३ ॥ हिमालयने कहा ! हे भगवन् ! यह मेरी कन्या आपकी सेवा करनेको उत्सुक हैं इसकारण इसे मैं आपके समीप लाया हूं ॥ ४ ॥ सखियोंके सहित यह नित्य आपकी सेवा करैगी इस कारण यदि आपकी मेरे ऊपर कृपाहै तो आप अवश्य इसे सेवामें

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ अथ शैलपतिर्हृष्टः सत्पुष्पफलसंचयम् ॥ समादाय स्वतनयासहितोऽगाद्धरान्तिकम् ॥१॥ स गत्वात्रिजगन्नाथं
प्रणम्य ध्यानतत्परम् ॥ अर्थयामास तनयां कालीं तस्मै हृदाद्भुताम् ॥ २ ॥ फलपुष्पादिकं सर्वं तत्तदग्रे निधाय सः ॥ अग्रे कृत्वा
सुतां शम्भुमिदमाह च शैलराट् ॥ ३ ॥ हिमगिरिरुवाच ॥ भगवंस्तनया मे त्वां सेवितुं चन्द्रशेखरम् ॥ समुत्सुका समानीता त्वदा
राधनकांक्षया ॥ ४ ॥ सखीभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामेव शंकरम् ॥ अनुजानीहि तां नाथ मयि ते यद्यनुग्रहः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
अथ तां शंकरोऽपश्यत्प्रथमारूढयौवनाम् ॥ फुल्लेन्दीवरपत्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्॥६॥समस्तलीलासंस्थानशुभवेषविजृम्भिकाम्॥
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥७॥ मृणालायतपर्य्यन्तबाहुयुग्ममनोहराम् ॥ राजीवकुड्मलप्रख्यौघनपीनौदृढौस्तनौ
॥ ८ ॥ बिभ्रतीं क्षीणमध्यां च त्रिवलीमध्यराजिताम् ॥ स्थलपद्मप्रतीकाशपादयुग्मविराजिताम् ॥ ९ ॥ ध्यानपंजरनिर्बद्धमुनिमानस
मप्यलम् ॥ दर्शनाद्भ्रंशने शक्तां योषिद्गणशिरोमणिम् ॥ १० ॥

स्वीकार करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले भगवान् शंकरने उस कन्याको यौवनकी प्रथमावस्थामें देखा जो फूले नीले कमलकी समान कांतिवाली पूर्णचन्द्रकी समान मुखवाली थी ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण लीलाओंकी स्थान सुन्दरवेशसे प्रकाशित शंखकी समान गर्दन विशालनेत्र सुन्दर दोनों कानोंके कर्णभूषणोंसे उज्ज्वल ॥ ७ ॥ मृणालकी समान चिकनी लम्बायमान भुजा कमलकलीकी समान घने दृढ दोनों स्तन ॥ ८ ॥ धारण किये पतली कमर त्रिवलीयुक्त मध्य भागसे शोभायमान स्थलपद्मकी समान दोनों चरणोंसे विराजमान ॥ ९ ॥ जो ध्यानमें निमग्न मनके वशीभूत करनेवाले मुनियोंकेभी मनको दर्शन मात्रसे

हरणकरनेमें समर्थ स्त्रियोंकी शिरोमणि थी ॥ १० ॥ हे नारदजी ! इसप्रकार ध्यानियोंके मनकोभी हरण करनेवाली तन्त्रमंत्रोंको बढानेवाली कामरूपिणी उस
कन्याको देखकर ॥ ११ ॥ ऐसे उत्तम रूपके दर्शनकर शिवजीने अपने नेत्र मीचलिये कारण कि आपही परतत्त्व महायोगी त्रिगुणसे परे अविनाशी हैं ॥
॥ १२ ॥ इस प्रकार सबके ईश्वर सर्वव्यापक तपमें तत्पर नेत्र मूंदे जटाजूट धारे चन्द्रकलाका भूषणधारे वेदान्तसे जानने योग्य परमासनमें स्थित शंकरको
देखकर ॥ १३ ॥ संशयपूर्वक शंकरके चरणोंमें हिमालयने प्रणाम किया और वाक्य बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ गिरीश जगत्के एक मात्र बंधु शंकरजीसे फिर बोले

दृष्ट्वा तां तादृशीं तात ध्यानिनां च मनोहराम् ॥ विग्रहे तन्त्रमन्त्राणां वर्द्धिनीं कामरूपिणीम् ॥ ११ ॥ न्यमीलयद्दृशौ शीघ्रं दध्यौ
स्वं रूपमुत्तमम् ॥ परतत्त्वं महायोगी त्रिगुणात्परमव्ययम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा तदानीं सकलेश्वरं विभुं तपोजुषाणं विनिमीलितेक्षणम् ॥
कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषणं वेदान्तवेद्यं परमासने स्थितम् ॥ १३ ॥ ववन्द शीर्ष्णा च पुनर्हिमाचलः स संशयं प्रापददीनसत्त्वः ॥
उवाच वाक्यं जगदेकबन्धुं गिरीश्वरो वाक्यविदां वरिष्ठः ॥ १४ ॥ हिमाचल उवाच ॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ पश्य मां
शरणम्प्राप्तमुन्मील्य नयने विभो ॥ १५ ॥ शिव शर्व महेशान जगदानन्दकृत्प्रभो ॥ त्वां नतेऽहं महादेव सर्वापद्विनिवर्तकम् ॥ १६ ॥
न त्वां जानंति देवेश वेदाश्शास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ अतीतो महिमाध्वानं तव वाङ्मनसोः सदा ॥ १७ ॥ अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै
चकितं चकितं सदा ॥ अभिधत्ते श्रुतिः सर्वा परेषां का कथा मता ॥ १८ ॥ जानंति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः ॥
शरणागतभक्तानां न कुत्रापि भ्रमादिकम् ॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ हिमालय बोले । हे देवदेव महादेव ! हे करुणाकर ! हे शंकर ! हे विभो ! नेत्र खोलकर देखो मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ १५ ॥
हे शिव ! शर्व महेशान जगत्के आनंद करनेवाले हे महादेव ! सब आपत्तिके दूर करनेवाले मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥ हे देवेश ! सम्पूर्ण वेद
शास्त्रादिभी आपको नहीं जानसकते वाणी और मनसे तुम्हारी महिमा सदा परे है ॥ १७ ॥ तुम्हारे पास न पहुंचकरभी शास्त्र सदा चकित रहता है जब
श्रुतिकी यह दशा है तब दूसरोंकी तो क्या कथा है ॥ १८ ॥ भक्तिसे आपकी महिमाको कुछ आपके भक्त जानते हैं शरणमें आये भक्तोंको कहींभी

भ्रमादिक नहींहैं ॥ १९ ॥ इस समय प्रेमपूर्वक आप अपने इस दासकी विज्ञप्तिको सुनैं हे देव ! आपकी आज्ञासे मैं इस समय कुछ वर्णन करता हूं ॥२०॥ हे शंकर ! हे महादेव ! आपके प्रसादसे मैं बडा भाग्यवान् हूं अपना दास जानकर आप मेरे ऊपर कृपा करैं हे नाथ ! आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! आपके दर्शनके निमित्त मैं प्रतिदिन आया करूंगा और इस सुताके साथ आऊंगा यह आप आज्ञा दें ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन गिरिराजके सुनकर महेश्वर अपने दोनों नेत्र खोलकर ध्यानको छोड़ विचारकर देवदेव यह वचन बोले ॥ २३ ॥ महेश्वरजी बोले हे हिमालय ! आप

विज्ञप्तिं शृणु मत्प्रीत्या स्वदासस्य ममाधुना ॥ तव देवाज्ञया तात दीनत्वाद्वर्णयामि हि ॥ २० ॥ सभाग्योहं महादेव प्रसादात्तव शंकर ॥ मत्वा स्वदासं मां नाथ कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ प्रत्यहं चागमिष्यामि दर्शनार्थं तव प्रभो ॥ अनया सुतया स्वामिन्निदेशं दातुमर्हसि ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्योन्मील्य नेत्रे महेश्वरः ॥ त्यक्तध्यानः परामृश्य देवदेवोऽब्रवीद्वचः ॥ २३ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ आगंतव्यं त्वया नित्यं दर्शनार्थं ममाचल ॥ कुमारीं सदने स्थाप्य नान्यथा मम दर्शनम् ॥ २४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ महेशवचनं श्रुत्वा शिवातातस्तथाविधम् ॥ अचलः प्रत्युवाचेदं गिरिशं नतकंधरः ॥ २५ ॥ हिमाचल उवाच ॥ कस्मान्मयानया सार्द्धं नागंतव्यं तदुच्यताम् ॥ सेवने किमयोग्येयं नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततोऽब्रवीद्गिरिं शंभुः प्रहसन्वृषभध्वजः ॥ लोकाचारं विशेषेण दर्शयन्हि कुयोगिनाम् ॥ २७ ॥ ॥ शंभुरुवाच ॥ इयं कुमारी सुश्रोणी तन्वी चन्द्रानना शुभा ॥ नानेतव्या मत्समीपे वारयामि पुनःपुनः ॥ २८ ॥

नित्य मेरा दर्शन करने आसक्ते हैं परन्तु इस अपनी कन्याको घरही राखिये नहीं तो मेरा दर्शन न होगा ॥२४॥ ब्रह्माजी बोले पार्वतीके पिता शिवजीके यह वचन सुनकर शिर झुकाय शंकरजीसे बोले ॥२५॥ भगवन् आप यह तो कहैं कि मैं दर्शनके निमित्त इस कन्याको क्यों छोड आऊं क्या यह आपकी सेवा करनेके अयोग्य है मैं इसमें कोई कारण नहीं देखता हूं ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले तब हँसतेहुए भगवान् शंकर हिमालयसे बोले विशेषकर कुयोगियोंका लोकाचार दिखाने लगे ॥ २७ ॥ शिवजी बोले सुन्दर नितम्बवाली क्षीण मध्यभागवाली श्रेष्ठ चन्द्रमाकी समान मुखवाली इस कुमारीको तुम मेरे समीप

मत लाना इस विषयमें मैं तुमको वारंवार निषेध करता हूं ॥ २८ ॥ वेदपारगामी ब्राह्मणोंने स्त्रीको मायारूपिणी कहाहै विशेषकर युवती तपस्वियोंको विघ्न करनेवाली होती है ॥ २९ ॥ मैं तपस्वी योगी मायासे सदा पृथक् हूं हे भूधर ! युवती स्त्रीसे मेरा प्रयोजनही क्या है ॥ ३० ॥ हे तपस्वियोंके आश्रित ! इस प्रकारसे फिर तुम न कहना तुम वेदधर्मके ज्ञाता ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ ३१ ॥ हे पर्वतराज ! स्त्रियोंके संगसे शीघ्रही विषयोत्पत्ति होतीहै उससे वैराग्य और श्रेष्ठ तप नष्ट होजाताहै ॥ ३२ ॥ हे शैलराज ! इसकारण तपस्वियोंको स्त्रियोंका संग न करना चाहिये, यह महाविषयका मूल ज्ञान वैराग्यका नाश करने

मायारूपा स्मृता नारी विद्वद्भिर्वेदपारगैः ॥ युवती तु विशेषेण विघ्नकर्त्री तपस्विनाम् ॥ २९ ॥ अहं तपस्वी योगी च निर्लिप्तो मायया सदा ॥ प्रयोजनं न युक्त्या वै स्त्रिया किं मेस्ति भूधर ॥ ३० ॥ एवं पुनर्न वक्तव्यं तपस्विवरसंश्रित ॥ वेदधर्मप्रवीणस्त्वं यतो ज्ञानिवरो बुधः ॥ ३१ ॥ भवत्यचल तत्संगाद्विषयोत्पत्तिराशु वै ॥ विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः ॥ ३२ ॥ अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु संगतिः ॥ महाविषयमूलं सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याद्युक्त्वा बहुतरं महायोगी महेश्वरः ॥ विरराम गिरीशं तं महायोगिवरः प्रभुः ॥ ३४ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शंभोर्निरामयं निःस्पृहं निष्ठुरं च ॥ कालीतातश्चकितोऽभूत्सुरर्षे तद्वत्किंचिद्व्याकुलश्वास तूष्णीम् ॥ ३५ ॥ तपस्विनोक्तं वचनं निशम्य तथा गिरीशं चकितं विचार्य्य ॥ अतः प्रणम्यैव शिवं भवानी जगाद वाक्यं विशदन्तदानीम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमाचलसम्वादवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ भवान्युवाच ॥ किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिंस्तपस्विना ॥ तदुत्तरं शृणु विभो मत्तो ज्ञानिविशारद ॥ १ ॥

वाला होताहै ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले महायोगी महेश्वर इस भाँति गिरीशसे बहुत कुछ कहकर योगेश्वर मौन हुए ॥ ३४ ॥ इसप्रकार शिवजीके स्पृहाहीन कालातीत निष्ठुर वचन सुनकर हिमालय बडे विस्मित हुए, हे नारदजी ! व्याकुल होकर कुछ देर मौन हुए ॥ ३५ ॥ इसप्रकार तपमें तत्पर शिवजीके वचन सुन और गिरिराजको चकित विचारकर स्वयं भवानी शिवजीको प्रणामकर उससमय उज्ज्वल वचन बोली ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ भवानी बोली हे योगिन् ! तपस्वी होकर आपने जो मेरे पितासे कहा, हे ज्ञानियोंमें विशारद !

हे विभो ! इसका उत्तर आप मुझसे सुनिये ॥ १ ॥ हे शिव ! तपकी शक्तिसे युक्त होकर ही आप महातपस्या करते हो सो आप महात्माकी भी तपस्या करनेमें बुद्धि लगी ॥ २ ॥ वह सबके कर्मोंकी शक्ति प्रकृति कहलाती है उसीसे सबकी उत्पत्ति पालन और संहार होताहै ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आप कौन हैं और वह सूक्ष्म प्रकृति कौन है इसका विचार कीजिये प्रकृतिके विना लिंगरूपी महेश्वर किसप्रकार होसक्ते हैं ॥ ४ ॥ प्रकृतिके कारणही प्राणी आपका सदा अर्चन वंदन और ध्यान करतेहैं हृदयमें यह बात धारण कर आप विचार करैं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले पार्वतीके यह वचन सुनकर उग्र तपस्यामें निरत प्रसन्नात्मा

तपश्शक्त्यान्वितश्शम्भा करोषि विपुलं तपः ॥ तव बुद्धिरियं जाता तपस्तप्तुं महात्मनः ॥ २ ॥ सा शक्तिः प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वेषामपि कर्मणाम् ॥ तया विरच्यते सर्वं पाल्यते च विनाश्यते ॥ ३ ॥ कस्त्वं का प्रकृतिस्सूक्ष्मा भगवंस्ताद्विमृश्यताम् ॥ विना प्रकृत्या च कथं लिंगरूपी महेश्वरः ॥ ४ ॥ अर्चनीयोऽसि वंद्योऽसि ध्येयोऽसि प्राणिनां सदा ॥ प्रकृत्या च विचार्येति हृदा सर्वं तदुच्यताम् ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः ॥ सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ तपसा परमेणैव प्रकृतिं नाशयाम्यहम् ॥ प्रकृत्या रहितश्शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः ॥ ७ ॥ तस्माच्च प्रकृतेस्सद्भिर्न कार्यस्संग्रहः क्वचित् ॥ स्थातव्यं निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारतः ॥ सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः ॥ ९ ॥ ॥ काल्युवाच ॥ यदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो ॥ सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान्कथम् ॥ १० ॥

शंकरजी हँसकर बोले ॥ ६ ॥ महेश्वर बोले मैं परम तपस्यासे ही प्रकृतिका नाश करदेता हूं मैं शंकर प्रकृतिसे रहित होकर नित्य स्थित रहता हूं और तत्त्वसे स्थित रहता हूं ॥ ७ ॥ इस कारण सत्पुरुषोंको प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये और लोकाचारसे रहित निर्विकार स्थित रहना चाहिये ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! जब लोकव्यवहारसे शिवजीने ऐसा कहा तब कालीजी हृदयमें हँसकर शंकरसे मधुर वचन बोली ॥ ९ ॥ काली बोली हे प्रभो

शंकर ! हे योगिराज ! आपने जो वचन कहे हैं सो यह क्या प्रकृति नहीं है फिर आप प्रकृतिसे परे कैसे हैं ॥ १० ॥ यह विचारकर तत्त्वसे यथायोग्य कहिये यह सबकुछ ही प्रकृतिसे निरन्तर बद्ध होरहा है ॥ ११ ॥ इसकारण आपको यह नहीं कहना चाहिये कि इससे कुछ कार्य नहीं है सम्पूर्ण वचन और रचना प्रकृतिसे ही है, यह आप जानिये ॥ १२ ॥ जो आप सुनते खाते देखते और करते हो यह सब प्रकृतिका ही कार्यहै मिथ्यावाद निरर्थक है ॥ ॥ १३ ॥ यदि आप प्रकृतिसे परे हो तो तपस्या क्यों करते हो हे प्रभो शंकर ! यदि ऐसाही है तो यहां एकान्त तपकी आवश्यकता क्या है ॥ १४ ॥

एतद्विचार्य वक्तव्यं तत्त्वतो हि यथातथम् ॥ प्रकृत्या सर्वमेतच्च बद्धमस्ति निरंतरम् ॥ ११ ॥ तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किंचिदेव हि ॥ वचनं रचनं सर्वं प्राकृतं विद्धि चेतसा ॥ १२ ॥ यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत् ॥ तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः ॥ १३ ॥ प्रकृतेः परमश्चेत्त्वं किमर्थं तप्यसे तपः ॥ त्वया शंभोऽधुना ह्यस्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो ॥ १४ ॥ प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर ॥ निजं जानासि चेदीश किमर्थं तप्यते तपः ॥ १५ ॥ वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिंस्त्वया सह ॥ प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रणामं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥ इंद्रियाणां गोचरत्वं यावद्भवति देहिनाम् ॥ तावत्सर्वं विमंतव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया ॥ १७ ॥ किं बहूक्तेन योगीश शृणु मद्वचनं परम् ॥ सा चाहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यंसत्यं न संशयः ॥ १८ ॥ मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान्मतः ॥ मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

हे हर ! प्रकृतिसे गलित होकर ही तो आप निजको नहीं जानते यदि हे ईश ! आप निजको नहीं जानते तो तप क्यों करते हो ॥ १५ ॥ हे योगिन् ! आपके साथ मुझे विवादसे क्या प्रयोजन है प्रत्यक्ष होनेपर पण्डित अनुमानका प्रमाण नहीं करते ॥ १६ ॥ जबतक देहधारियोंके इन्द्रियगोचर हुआ जाता है, तबतक बुद्धिसे ज्ञानियोंको सब प्रकृतिका कार्य जानना उचित है ॥ १७ ॥ हे योगीश ! बहुत कहनेसे क्या है आप मेरे वचन सुने वह प्रकृति मैं हूं आप पुरुष हैं यह सत्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ मेरे अनुग्रहसे ही आप सगुण ब्रह्मरूपवाले हुए हैं, मेरे विना आप निरीह हो और कुछ

भी करनेको समर्थ नहीं हो ॥ १९ ॥ आप वशी होकर भी अनेक कर्म करनेवाले हो आप निर्विकरी कैसे हो मुझसे कैसे लिप्त नहीं हो ॥ २० ॥ यदि आप प्रकृतिसे परे हो और यह आपके वचन सत्यहैं तो हे शंकर! मेरे समीप रहनेसे आपको भय करना न चाहिये ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकार शिवजी सांख्यशास्त्रके सम्मत पार्वतीके वचन सुनकर वेदान्तमतके आश्रितहो पार्वतीसे बोले ॥ २२ ॥ श्रीशिवजी बोले हे गिरिजा! इस प्रकारसे यदि तुम सांख्यके अनुसार वचन कहतीहो हे सुभाषिणी! तो तुम प्रतिदिन मेरी सेवा करो मैं इसमें तुमको निषेध नहीं करता ॥ २३ ॥ जब कि मैं ब्रह्म मायासे निर्लिप्त परमेश्वर

पराधीनस्सदा त्वं हि नानाकर्म्मकरो वशी ॥ निर्विकारी कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम् ॥ २० ॥ प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्यं वचस्तव ॥ तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शंकर ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः सांख्यशास्त्रोदितं शिवः ॥ वेदांतमतसंस्थो हि वाक्यमूचे शिवां प्रति ॥ २२ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरिजे सांख्यधारिणी ॥ प्रत्यहं कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि ॥ २३ ॥ यद्यहं ब्रह्म निर्लिप्तो मायया परमेश्वरः ॥ वेदांतवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा ॥ २४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमूचे गिरिं प्रभुः ॥ भक्तानुरंजनकरो भक्तानुग्रहकारकः ॥ २५ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ अत्रैव सोऽहं तपसा परेण गिरे तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये ॥ चरामि भूमौ परमार्थभावस्वरूपमानंदमयं सुलोचयन् ॥ २६ ॥ तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्या पर्वताधिप ॥ अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न शक्यते ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ प्रणम्य हिमवाञ्छंभुमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

वेदान्तसे जानने योग्यहूं तब तुम मेरा क्या कर सकतीहो ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले भगवान् शंकर पार्वतीसे ऐसा कहकर फिर गिरिराजसे बोले जो भगवान् भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले और उनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ हे गिरीराज! मैं यहां तुम्हारे मनोहर पर्वतमें परम तपस्या करताहुआ परमार्थ भावसे अपना स्वरूप विचारता हुआ विचरण करूंगा ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! अब तुमको तपकरनेकी अनुज्ञा मुझे देनी चाहिये, अनुज्ञाके विना किसी प्रकारका तप नहीं हो सक्ता ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले देवदेव शूलधारीके यह वचन सुनकर हिमालय शिवजीको प्रणाम करके यह वचन बोले ॥ २८ ॥

हिमालयने कहा देवता असुर मनुष्योंके सहित यह सब जगत् आपहीकाहै हे महादेवजी ! मैं तुच्छ आपसे क्या कहूं ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले जब लोककल्याणकारी शंकरसे हिमालयने ऐसा कहा तब शिवजीने हँसकर गिरिराजसे कहा कि आप सादर घर जाइये ॥ ३० ॥ शिवजीके यह वचन सुन हिमालय पार्वतीके संहित आनंदसे अपने घर गये और प्रतिदिन दर्शनको जाने लगे ॥ ३१ ॥ पार्वती पिताके विना भी नित्य अपनी सखीजनोंके साथ भक्तिमें तत्पर हो शंकरकी सेवाके लिये सदा गमन करती ॥ ३२ ॥ नंदीश्वर आदि गण कोई भी पार्वतीको निषेध नहीं करते कारण कि शिवजीकी ऐसी ही आज्ञा

हिमवानुवाच ॥ त्वदीयं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ किमप्यहं महादेव तुच्छो भूत्वा वदामि ते ॥ २९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एव
मुक्तो हिमवता शंकरो लोकशंकरः ॥ विहस्य गिरिराजं तं प्राह याहीति सादरम् ॥ ३० ॥ शंकरेणाभ्यनुज्ञातस्स्वगृहं हिमवान्ययौ ॥
सार्द्धं गिरिजया वै स प्रत्यहं दर्शने स्थितः ॥ ३१ ॥ पित्रा विनापि सा काली सखीभ्यां सह नित्यशः ॥ जगाम शंकराभ्याशं
सेवायै भक्तितत्परा ॥ ३२ ॥ निषिषेध न तां कोऽपि गणो नंदीश्वरादिकः ॥ महेशशासनात्तात तच्छासनकरश्शुचिः ॥ ३३ ॥ सांख्य
वेदांतमतयोश्शिवयोश्शिवदस्सदा ॥ संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोस्सुविचारतः ॥ ३४ ॥ गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शंकरः ॥
पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपरः ॥ ३५ ॥ उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः ॥ नित्यं मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र
तिष्ठतु ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वा तु तां देवीं सेवायै जगृहे हरः ॥ निर्विकारो महायोगी नानालीलाकरः प्रभुः ॥ ३७ ॥ इदमेव महद्धैर्य्यं
धीराणां सुतपस्विनाम् ॥ विघ्नवन्त्यपि संप्राप्य यद्विघ्नैर्न विहन्यते ॥ ३८ ॥

थी और वह पवित्र उनके आज्ञाकारी थे ॥ ३३ ॥ सांख्य और वेदान्तके मतको लेकर शिवाशिवका संवाद सुखकारी होगया, वास्तवमें दोनों अभिन्नही हैं ॥ ३४ ॥ इन्द्रियोंसे परे होकर भी भगवान् शंकरने गिरिराजके वचनगौरवसे पार्वतीको अपनी सेवामें ग्रहण किया ॥ ३५ ॥ और वशी भगवान् शंकरने सखियोंके सहित पार्वतीसे यह वचन कहे कि तुम नित्य मेरी सेवा करने आओ और निर्भय होकर स्थितहो ॥ ३६ ॥ इसप्रकार कहकर शिवजीने देवीको सेवामें ग्रहण किया जो प्रभु निर्विकार महायोगी अनेक लीला करनेवालेहैं ॥ ३७ ॥ धीर तपस्वियोंका यही महाधैर्य है जो विघ्नोंको प्राप्त होकर भी विघ्नोंसे

विचलित नहीं होते ॥ ३८ ॥ जब गिरिराज परिचारकोंके साथ अपने स्थानको आये हे मुनीश्वर ! तब वह अपने प्रियजनोंके सहित मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३९ ॥ और उस समय भगवान् शंकर ध्यानयोगसे अपने परमात्मरूपको निर्विघ्न मनसे विचारने लगे ॥ ४० ॥ और काली अपनी सखियोंके साथ नित्यप्रति शिवजीकी सेवा करती हुई गमनागमनमें स्थित हुई ॥ ४१ ॥ शिवजीके चरण धोकर उनका चरणामृत लिया, वह्निशौच वस्त्रसे उनके अंगोंका मार्जन किया ॥ ४२ ॥ षोडशोपचारसे विधिपूर्वक शंकरका पूजन करके वारंवार प्रणाम करके फिर अपने पिताके समीप जाती ॥ ४३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः ॥ मुमोदातीव मनसि सप्रियस्स मुनीश्वर ॥ ३९ ॥ हरश्च ध्यानयोगेन परमात्मानमादरात् ॥ निर्विघ्नेन स्वमनसा त्वासीच्चिंतयितुं स्थितः ॥ ४० ॥ काली सखीभ्यां सहिता प्रत्यहं चंद्रशेखरम् ॥ सेवमाना महादेवं गमनागमने स्थिता ॥ ४१ ॥ प्रक्षाल्य चरणौ शंभोः पपौ तच्चरणोदकम् ॥ वह्निशौचेन वस्त्रेण चक्रे तद्गात्रमार्जनम् ॥ ४२ ॥ षोडशेनोपचारेण संपूज्य विधिवद्धरम् ॥ पुनःपुनः सुप्रणम्य ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥ ४३ ॥ एवं संसेवमानायां शंकरं ध्यानतत्परम् ॥ व्यतीयाय महान्कालश्शिवाया मुनिसत्तम ॥ ४४ ॥ कदाचित्सहिता काली सखीभ्यां शंकराश्रमे ॥ वितेने सुंदरं गानं सुतालं स्मरवर्द्धनम् ॥ ॥ ४५ ॥ कदाचित्कुशपुष्पाणि समिधन्नायंति स्वयम् ॥ सखीभ्यां स्थानसंस्कारं कुर्वंती न्यवसत्तदा ॥ ४६ ॥ कदाचिंन्नियता गेहे स्थिता चन्द्रभृतो भृशम् ॥ वीक्षंती विस्मयामास सकामा चंद्रशेखरम् ॥ ४७ ॥ ततस्तत्तेन भूतेशस्तां निस्संगां परिस्थिताम् ॥ सोऽचिंतयत्तदा वीक्ष्य भूतदेहे स्थितेति च ॥ ४८ ॥

इस प्रकारसे पार्वतीको शिवजीकी सेवा करते करते बहुत समय व्यतीत होगया ॥ ४४ ॥ किसी समय पार्वती अपनी सखियोंके साथ शंकरके आश्रममें मधुर स्वरसे कंदर्पोद्दीपक गान करने लगती ॥ ४५ ॥ कभी कुश पुष्प और समिधाओंको स्वयं ले आती और कभी सखियोंके साथ स्थानका संस्कार करती ॥ ॥ ४६ ॥ कभी नियतकालतक शंकरके समीप रहती और कभी सकाम होकर विस्मयसे चन्द्रशेखरको देखने लगती ॥ ४७ ॥ तब सब प्राणिजनोंके अधिपति शंकरने उसको तपकरतेहुए देखा कि यह निस्संग होकर सेवा करतीहै और भगवतीको देखकर विचारने लगे कि यह पंचभूत देहमें स्थितहै ॥ ४८ ॥

यद्यपि यह मुनियोंके मनको मोहित करनेवाली महासुन्दरी शंकरके नित्य समीप रहती थीं तो भी शंकरने इसको भार्यारूपमें ग्रहण नहीं किया ॥ ४९ ॥ महादेवजीने जब भगवतीको इसप्रकार इन्द्रिय संयममें तत्पर देखा कि निरन्तर मेरी सेवामें तत्परहै तब दया करके विचारने लगे ॥ ५० ॥ कि जिससमय यह काली महातपस्या करैगी तब गर्वका बीज रहित होनेसे मैं इसको ग्रहण करूंगा ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी बोले भूतेश्वर यह बात मनमें विचारकर ध्यानमें तत्पर होगये कारण कि महालीला करनेवाले प्रभु महायोगीश्वर हैं ॥ ५२ ॥ जिस समय परमात्मा शंकर ध्यानमें स्थित हुए हे मुने ! उस समय भी

नाग्रहीद्गिरिशः कालीं भार्यार्थे निकटे स्थिताम् ॥ महालावण्यनिचयां मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ४९ ॥ महादेवः पुनर्दृष्ट्वा तथा तां संयतेंद्रियाम् ॥ स्वसेवने रतां नित्यं सदयस्समचिंतयत् ॥ ५० ॥ यदैवैषा तपश्चर्याव्रतं काली करिष्यति ॥ तदा च तां ग्रहीष्यामि गर्वबीजविवर्ज्जिताम् ॥ ५१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति संचिन्त्य भूतेशो द्रुतं ध्यानसमाश्रितः ॥ महायोगीश्वरोऽभूद्वै महालीलाकरः प्रभुः ॥ ५२ ॥ ध्यानासक्तस्य तस्याथ शिवस्य परमात्मनः ॥ हृदि नासीन्मुने काचिदन्या चिंता व्यवस्थिता ॥ ५३ ॥ काली त्वनुदिनं शंभुं सद्भक्त्या समसेवत ॥ विचिंतयती सततं तस्य रूपं महात्मनः ॥ ५४ ॥ हरो ध्यानपरः कालीं नित्यं प्रैक्षत सुस्थितम् ॥ विस्मृत्य पूर्वचिंतां तां पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ५५ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवाश्शक्राद्या मुनयश्च ते ॥ ब्रह्माज्ञया स्मरं तत्र प्रेषयामासुरादरात् ॥ ५६ ॥ तेन कारयितुं योगं काल्या रुद्रेण कामतः ॥ महावीर्येणासुरेण तारकेण प्रपीडिताः ॥ ५७ ॥

उनके मनमें कोई दूसरी चिन्ता उदय नहीं हुई ॥ ५३ ॥ भगवती काली भगवान् शंकरका रूप निरन्तर विचारती हुई सद्भक्तिसे निरन्तर शंकरकी सेवा करने लगी ॥ ५४ ॥ शिवजी भी नित्य ध्यानमें तत्पर होकर पार्वतीकी स्थिति विचारलेते और पूर्व चिन्ताको भुलाकर देखते हुए भी मानो भगवतीको नहीं देखतेथे ॥ ५५ ॥ इसी अवसरमें इन्द्रादिक देवता और मुनियोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे आदरपूर्वक वहां कामको भेजा ॥ ५६ ॥ कारण कि वे सब देवता महाबली तारकासुरसे बडे पीडित होगयेथे और शिवके पुत्रसे उस असुरकी मृत्यु थी इससे देवताओंने शिवपार्वतीका योग कराना चाहा ॥ ५७ ॥

वहां जाकर कामदेवने अपना पूरा पराक्रम किया पर शिवजी उससे कुछ भी क्षुभित न हुए किन्तु उसे भस्मीभूत करदिया ॥ ५८ ॥ हे नारदजी !
पार्वती भी गर्वरहित होकर बराबर तपस्या करती रही और फिर महातपस्या करके सतीने शिवजीको पाया ॥ ५९ ॥ तब पार्वती और परमेश्वर बडे
प्रसन्न हुए और परोपकारमें रत होकर देवकार्यमें तत्पर हुए ॥६०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडेत्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥
नारदजी बोले ! हे विष्णुशिष्य महाशैव ! हे ब्रह्माजी ! आपने उत्तम बात कही शिवा और शिवजीका चरित्र परम उत्तम है ॥ १ ॥ हे भगवन् ! यह

गत्वा तत्र स्मरस्सर्वमुपायमरकरोन्निजम् ॥ चुक्षुभे न हरः किञ्चित्तं च भस्मीचकार ह ॥ ५८ ॥ पार्वत्यपि विगर्वाभून्मुने तस्य
निदेशतः ॥ ततस्तपो महत्कृत्वा शिवं प्राप पतिं सती ॥ ५९ ॥ बभूवतुस्तौ सुप्रीतौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ चक्रतुर्देवकार्य्यं हि परो
पकरणे रतौ ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे पार्वतीपरमेश्वरसंवादवर्णनं नाम त्रयो
दशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुशिष्य महाशैव सम्यगुक्तं त्वया विधे ॥ चरितं परमं ह्येतच्छिवायाश्च शिवस्य च
॥१॥कस्तारकासुरो ब्रह्मन्येन देवाः प्रपीडिताः ॥ कस्य पुत्रस्स वै ब्रूहि तत्कथां च शिवाश्रयाम् ॥२॥भस्मीचकार स कथं शंकरश्च
स्मरं वशी ॥ तदपि ब्रूहि सुप्रीत्याद्भुतं तच्चरितं विभोः ॥ ३ ॥ कथं शिवा तपोऽत्युग्रं चकार सुखहेतवे ॥ कथं प्राप पतिं शंभुमादिश
क्तिर्जगत्परा ॥ ४ ॥ एतत्सर्वमशेषेण विशेषेण महाबुध ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय स्वपुत्राय शिवात्मने ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुत्रवर्य
महाप्राज्ञ सुरर्षे शंसितव्रत ॥ वच्म्यहं शंकरं स्मृत्वा सर्वं तच्चरितं शृणु ॥ ६ ॥

तारकासुर कौन है जिसने देवताओंको पीडित किया, वह किसका पुत्र था यह शिवसम्बन्धी कथा आप मुझसे कहैं ॥२॥ और वशी शंकरने कामदेवको
किस प्रकारसे भस्म किया था यह चरित्र बडा अद्भुत है, आप इसको विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ पार्वतीने सुखके निमित्त किस प्रकारसे अद्भुत तप किया,
वह आदिशक्ति जगत्परायण किस प्रकारसे शिवजीको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ हे महापंडित ! यह सब चरित्र विशेषरूपसे वर्णन कीजिये मैं शिवोपासक श्रद्धावाला
तुम्हारा पुत्र हूं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुत्रवर्य्य ! हे महापंडित देवर्षि ! इन्द्रिय संयममें तत्पर शंकरको प्रणाम कर मैं सब उनका चरित्र कहताहूं सो आप

प्रथमं तारकस्यैव भवं संशृणु नारद ॥ यद्वधार्थं महा यत्नः कृतो देवैश्शिवाश्रयैः ॥७॥ मम पुत्रो मरीचिर्यः कश्यपस्तस्य चात्मजः॥
त्रयोदशमितास्तस्य स्त्रियो दक्षसुताश्च याः ॥ ८ ॥ दितिर्ज्येष्ठा च तत्स्त्री हि सुषुवे सा सुतद्वयम् ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽ
नुजस्ततः ॥ ९ ॥ तौ हतौ विष्णुना दैत्यौ नृसिंहक्रोडरूपतः ॥ सुदुःखदौ ततो देवाः सुखमापुश्च निर्भयाः ॥ १० ॥ दितिश्च दुःखि
तासीत्सा कश्यपं शरणं गता ॥ पुनस्संसेव्य तं भक्त्या गर्भमाधत्त सुव्रता ॥ ११ ॥ तद्विज्ञाय महेंद्रोऽपि लब्धच्छिद्रो महोद्यमी ॥
तद्गर्भं व्यच्छिनत्तत्र प्रविश्य पविना मुहुः ॥ १२ ॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण न तद्गर्भो ममार ह ॥ स्वपंत्या दैवयोगेन सप्त सप्ताभवन्सुताः
॥ १३ ॥ देवा आसन्सुतास्ते च नामतो मरुतोऽखिलाः ॥ स्वर्गं ययुस्तदेन्द्रेण देवराजात्मसात्कृताः ॥ १४ ॥ पुनर्दितिः पतिं भेजेऽ
नुतप्ता निजकर्मतः ॥ चकार सुप्रसन्नं तं मुनिं परमसेवया ॥ १५ ॥ ॥ कश्यप उवाच ॥ तपः कुरु शुचिर्भूत्वा ब्रह्मणश्चायुतं
समाः ॥ चेद्भविष्यति तत्पूर्वं भविता ते सुतस्तदा ॥ १६ ॥

सुनिये ॥ ६ ॥ हे नारदजी ! पहले तारकासुरका चरित्र सुनिये जिसके वधके निमित्त शंकरके आश्रित हो देवताओंने बडा यत्न किया था ॥ ७ ॥ मेरा पुत्र मरीचि हुआ उसका पुत्र कश्यप हुआ उस कश्यपके तेरह स्त्री थीं यह दक्षकन्या थीं ॥ ८ ॥ उनकी बडी स्त्री दितिके दो पुत्र हुए बडा हिरण्यकशिपु छोटा हिरण्याक्ष ॥ ९ ॥ भगवान् विष्णुने इन दोनोंको नृसिंह और वाराहरूपसे मारडाला इन दुःख देनेवालोंके मरजानेसे देवता निर्भय हो सुखी हुए ॥ १० ॥ तब दिति बडी दुःखी हो कश्यपजीकी शरणमें गई और फिर उनकी सेवा कर उस सुव्रताने गर्भ धारण किया ॥ ११ ॥ महा उद्यमी इन्द्रको जब यह समाचार मिला तब छिद्र देखने लगा और दितिको अशुद्ध जानतेही वज्र लेकर उसके उदरमें प्रवेश कर गया और उस गर्भके टुकडे २ करडाले ॥ १२ ॥ पर उस व्रतके प्रभावसे वह गर्भ नहीं मरा और दैवयोगसे उस सोती हुईके गर्भके टुकडे ४९ पुत्र होकर निकले ॥ १३ ॥ वह सब पुत्र मरुत् नामवाले देवता होगये, और इंद्रको अपना भ्राता मानकर इन्द्रके साथ स्वर्गको चले गये ॥ १४ ॥ फिर भी दिति अपने कर्मसे अनुतप्त हो पतिकी सेवा करने लगी और परम सेवासे उस मुनिराजको प्रसन्न कर लिया ॥ १५ ॥ कश्यपजी बोले पवित्र होकर ब्रह्माजीके दश सहस्र वर्षतक तपस्या कर तो तेरे महापराक्रमी पुत्रका

जन्म होगा ॥ १६ ॥ हे मुने ! तब दितिने परम श्राद्धसे तपस्या आरम्भ की, तब पतिसे गर्भको प्राप्त होकर वैसाही पुत्र उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ वह दितिका पुत्र देवताओंके समान वज्राङ्ग नाम हुआ, नामसमानही उसका शरीर बडा वीर अपने प्रतापसे बडा बली था ॥ १८ ॥ माताकी आज्ञासे उस पुत्रने बलपूर्वक इन्द्रको निग्रह करके दण्ड दिया और देवताओंको भी इसी प्रकारसे दण्ड दिया ॥ १९ ॥ इन्द्रादि देवताओंकी दुर्दशा देखकर दितिको परम हर्ष हुआ, और इन्द्रादि देवता अपने कर्मसे दुःखको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ तब देवताओंके सदा हितकरनेमें तत्पर मैं कश्यपजीके पास गया और वहां

तथा दित्या कृतं पूर्णं तत्तपश्श्रद्धया मुने ॥ ततः पत्युः प्राप्य गर्भं सुषुवे तादृशं सुतम् ॥ १७ ॥ वज्रांगनामा सोऽभूद्वै दितिपुत्रोऽमरोपमः ॥ नामतुल्यतनुर्वीरस्सुप्रताप्युद्भवाद्बली ॥ १८ ॥ जननीशासनात्सद्यस्स सुतो निर्जराधिपम् ॥ बलाद्धृत्वा ददौ दंडं विविधं निर्जरानपि ॥ १९ ॥ दितिस्सुखमतीवाप दृष्ट्वा शक्रादिदुर्दशाम् ॥ अमरा अपि शक्राद्या जग्मुर्दुःखं स्वकर्मतः ॥ २० ॥ तदाहं कश्यपेनाशु तत्रागत्य सुसामगीः ॥ देवानत्याजयंस्तस्मात्सदा देवहिते रतः ॥ २१ ॥ देवान्मुक्त्वा स वज्रांगस्ततः प्रोवाच सादरम् ॥ शिवभक्तोऽतिशुद्धात्मा निर्विकारः प्रसन्नधीः ॥ २२ ॥ ॥ वज्रांग उवाच ॥ इंद्रो दुष्टः प्रजाघाती मातुर्मे स्वार्थसाधकः ॥ स फलं प्राप्तवानद्य स्वराज्यं हि करोतु सः ॥ २३ ॥ मातुराज्ञावशाद्ब्रह्मन्कृतमेतन्मयाखिलम् ॥ न मे भोगाभिलाषो वै कस्यचिद्भुवनस्य हि ॥ २४ ॥ तत्त्वसारं विधे ब्रूहि मह्यं वेदविदाम्वर ॥ येन स्यां सुसुखी नित्यं निर्विकारः प्रसन्नधीः ॥ २५ ॥

जाकर मैंने देवताओंको छुडाया ॥ २१ ॥ देवताओंको छोडकर वज्राङ्गने आदरपूर्वक कहा जो शुद्धात्मा शिवभक्त निर्विकार प्रपन्नबुद्धिवाला था ॥ २२ ॥ वज्रांग बोला यह इन्द्र बडा स्वार्थ साधन करनेवाला बडा दुष्ट है, मेरी माताकी सन्तानका नष्ट करनेवाला है इसने उस कर्मका फल पाया, अब अपना राज्य पालन करे ॥ २३ ॥ हे ब्रह्माजी ! यह सब कुछ मैंने अपनी माताकी आज्ञासे किया है, मुझे किसी भुवनके भी भोगनेकी अभिलाषा नहीं है ॥ २४ ॥ हे वेदजाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! ब्रह्माजी आप मुझसे तत्त्वका सार कहिये जिसके जाननेसे मैं निर्विकार प्रसन्नमुख नित्य आनन्दसे रहूं ॥ २५ ॥

हे मुने ! यह सुनकर मैंने कहा यह वचन सात्विक भावके हैं, सो मैं प्रसन्नतासे तत्त्वकी सार एक स्त्रीको निर्माण करता हूं ॥ २६ ॥ उस वरांगी नाम वाली स्त्रीको उस दितिपुत्रके लिये देकर मैं प्रसन्न हो कश्यप सहित अपने स्थानको गया ॥ २७ ॥ तब वह दैत्य वज्रांग सात्त्विक भावको प्राप्त होकर आसुर भाव छोड सबसे निर्वैर होकर सुखी हुआ ॥ २८ ॥ वह वरांगी अपने हृदयमें सात्त्विक भाव धारण किये बडी श्रद्धासे सकामा हो पतिकी सेवा करनेलगी ॥ २९ ॥ तब उसकी सेवासे वज्रांग महाप्रभु संतुष्ट होगये और इस प्रकारसे बोले ॥ ३० ॥ वज्रांगने कहा हे प्रिये ! तेरी क्या इच्छा है सो तू

तच्छ्रुत्वाहं मुनेऽवोचं सात्त्विको भाव उच्यते ॥ तत्त्वसार इति प्रीत्या सृजाम्येकां वरां स्त्रियम् ॥ २६ ॥ वरांगीं नाम तां दत्वा तस्मै
दितिसुताय वै ॥ अयां स्वधाम सुप्रीतः कश्यपस्तत्पितापि च ॥ २७ ॥ ततो दैत्यस्स वज्रांगस्सात्विकं भावमाश्रितः ॥ आसुरं भावमु
त्सृज्य निर्वैरस्सुखमाप्तवान् ॥ २८ ॥ न बभूव वरांग्या हि हृदि भावोथ सात्विकः ॥ सकामा स्वपतिं भेजे श्रद्धया विविधं सती ॥ २९ ॥
अथ तत्सेवनादाशु संतुष्टोऽभून्महाप्रभुः ॥ स वज्रांगः पतिस्तस्या उवाच वचनं तदा ॥ ३० ॥ ॥ वज्रांग उवाच ॥ किमिच्छसि
प्रिये ब्रूहि किं ते मनसि वर्तते ॥ तच्छ्रुत्वानम्य तं प्राह सा पतिं स्वमनोरथम् ॥ ३१ ॥ ॥ वरांग्युवाच ॥ चेत् प्रसन्नोऽभवस्त्वं वै
सुतं मे देहि सत्पते ॥ महाबलं त्रिलोकस्य जेतारं हरिदुःखदम् ॥ ३२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं विस्मितोऽभूत्स
आकुलः ॥ उवाच हृदि स ज्ञानी सात्विको वैरवर्जितः ॥ ३३ ॥ प्रियेच्छति विरोधं वै सुरैर्मे न हि रोचते ॥ किं कुर्यां हि क्व गच्छेयं
कथं नश्येन्न:मे पणः ॥ ३४ ॥ प्रियामनोरथश्चैव पूर्णस्स्यात्त्रिजगद्भवेत् ॥ क्लेशयुङ्नितरां भूयो देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ३५ ॥

कह तेरे मनमें क्या वर्तता है यह सुनकर वह बडी नम्रतासे अपना मनोरथ कहने लगी ॥ ३१ ॥ वरांगी बोली जो तुम प्रसन्न हो तो मुझे पुत्र दो जो महाबली त्रिलोकीका जीतनेवाला तथा इन्द्रको दुःख देनेवाला हो ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले प्रियाके यह वचन सुनकर वह बडा विस्मित और व्याकुल हुआ और सात्त्विकभावसे वैररहित हो वह ज्ञानी कहने लगा ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! तुम वैरकी इच्छा करती हो पर देवताओंसे वैर करना मुझे अच्छा नहीं लगता, मैं क्या करूं कहां जांऊं किस प्रकारसे मेरी प्रतिज्ञा नष्ट न हो ॥ ३४ ॥ और प्रियाका मनोरथ पूरा किया जाय, तो त्रिलोकीके देवता और मुनियोंको

महाकष्ट होगा ॥ ३५ ॥ और प्रियाके वचन न पूर्ण होनेसे मुझे नरक होगा दोनों प्रकारसेही धर्महानि है यह मैं जानताहूं ॥ ३६ ॥ हे मुने ! इस प्रकार
धर्मसंकटमें पडकर वज्रांग विचलित होने लगा और अपनी बुद्धिसे उसने बल अबल दोनों बातोंका विचारकर ॥ ३७ ॥ हे मुने ! शिवकी इच्छासे उसने
स्त्रीकांही वचन माननेकी इच्छा की और उस दैत्यपतिने अपनी प्रियासे कहा ऐसाही होगा ॥ ३८ ॥ तब इसके निमित्त उसने बडी कठिन तपस्या की
और जितेन्द्रिय हो उसने मेरे उद्देशसे बहुत कालतक तप किया ॥ ३९ ॥ तब उसका महातप देख मैं उसके समीप वर देनेको गया और प्रसन्न हो उससे

न पूर्णस्स्यात्प्रियाकामस्तदा मे नरको भवेत् ॥ द्विधापि धर्महानिर्वै भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ३६ ॥ वज्रांग इत्थं बभ्राम स मुने धर्मसंकटे ॥
बलाबलं द्वयोस्तत्र विचिचिंत च बुद्धितः ॥ ३७ ॥ शिवेच्छया स हि मुने वाक्यं मेने स्त्रियो बुधः ॥ तथास्त्विति वचः प्राह प्रियां प्रति
स दैत्यराट् ॥ ३८ ॥ तदर्थमकरोत्तीव्रं तपोन्यद्दुष्करं स तु ॥ मां समुद्दिश्य सुप्रीत्या बहुवर्षं जितेंद्रियः ॥ ३९ ॥ वरं दातुमगां तस्मै
दृष्ट्वाहं तत्तपो महत् ॥ वरं ब्रूहि ह्यवोचं तं सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ४० ॥ वज्रांगस्तु तदा प्रीतं मां दृष्ट्वा खे स्थितं विभुम् ॥ सुप्रणम्य बहु
स्तुत्वा वरं वव्रे प्रियाहितम् ॥ ४१ ॥ वज्रांग उवाच ॥ सुतं देहि स्वमातुर्मे महाहितकरं प्रभो ॥ महाबलं सुप्रतापं सुसमर्थं तपोनिधिम्
॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य च तद्वाक्यं तथास्त्वित्यब्रवं मुन ॥ अयां स्वधाम तद्दत्वा विमनास्संस्मरञ्छिवम् ॥ ४३ ॥ इति
श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे तारकोत्पत्तौ वज्रांगोत्पत्तितपोवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जाकर बोला जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥ ४० ॥ तब वज्रांगने प्रसन्न चित्त मुझ विभुको आकाशमें स्थित देखकर प्रणामकर बहुत स्तुतिकर अपनी
प्रियाका हितकारी वर मांगा ॥ ४१ ॥ वज्रांग बोला हे भगवन् ! आप मुझे इसप्रकारका वर दीजिये जिससे हमारा बहुत हितकरनेवाला महाबली
महाप्रतापी समर्थ और तपोनिधि पुत्रहो ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले ह मुने ! इसप्रकार उसके वचन सुनकर मैंने तथास्तु कहा और शिवजीको स्मरणकर
विमनहो अपने स्थानको चला आया ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले तब उस वरांगीने आदरसे गर्भधारण किया और बहुत वर्षोंतक अपने तेजसे भीतरही वह गर्भ बढता रहा ॥ १ ॥ तब समयके पूर्ण होनेपर वरांगीने पुत्र उत्पन्न किया, वह बडे शरीरवाला महाबली दशों दिशाओंका प्रकाश करनेवाला था ॥ २ ॥ उस समय दुःखके प्रकाश करनेवाले बहुतसे उत्पात हुए जिस समय वह देवताओंका दुःख देनेवाला पुत्र वरांगीके उत्पन्न हुआ था ॥ ३ ॥ स्वर्ग भूमि और अन्तारिक्षमें सब लोकोंके भयदायक तीन प्रकारके उत्पात हुए उन अनर्थसूचकोंका मैं वर्णन करताहूं ॥ ४ ॥ महाशब्द करतेहुए भयंकर उल्कापात होने लगे, दुःखदाई केतुओंका जहां तहां उदय

ब्रह्मोवाच ॥ अथ सा गर्भमाधत्त वरांगी तत्पुरादरात् ॥ स ववद्धाभ्यतरे हि बहुवषः सुतेजसा ॥ १ ॥ ततः सा समये पूर्णे वरांगी सुषुवे सुतम् ॥ महाकायं महावीय प्रज्वलंतं दिशो दश ॥ २ ॥ तदैव च महोत्पाता बभूबुर्दुःखहेतवः ॥ जायमाने सुते तस्मिन्वरांग्यास्सुरदुःखदे ॥ ३ ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च सर्वलोकभयंकराः ॥ अनर्थसूचकास्तात त्रिविधास्तान्ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुर्महाशब्दा भयंकराः ॥ उदयं चक्रुरुत्कृष्टाः केतवो दुःखदायकाः ॥ ५ ॥ चचाल वसुधा साद्रिर्जज्वलुस्सकला दिशः ॥ चुक्षुभुस्सरितस्सर्वाः सागराश्च विशेषतः ॥ ६ ॥ हूत्करानीरयन्धीरान्खरस्पर्शो मरुद्ववौ ॥ उन्मूलयन्महावृक्षान्वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ७ ॥ सराह्वोस्सूर्य्यविध्वोस्तु मुहुः परिधयोऽभवन् ॥ महाभयस्य विप्रेन्द्र सूचकास्सुखहारकाः ॥ ८ ॥ महीध्रविवरेभ्यश्च निर्घाता भयसूचकाः ॥ रथनिर्ह्रादतुल्याश्च जज्ञिरेऽवसरे ततः ॥ ९ ॥ सृगालोलूकटंकारैर्वमन्त्यो मुखतोऽनलम् ॥ अंतर्ग्रामेषु विकटं प्रणेदुरशिवाश्शिवाः ॥ १० ॥

होगया ॥ ५ ॥ पर्वतोंके सहित पृथिवी चलायमान होने लगी, सब दिशायें प्रज्वलित हो उठीं, सब नदियें क्षुभित होगईं, विशेषकर समुद्र चलायमान होगये ॥ ६ ॥ मेघोंसे हूत्कार शब्द होने लगा, तीक्ष्ण स्पर्श वायु चलने लगी, बडे बडे वृक्षोंको उखाडती हुई पवनकी सेना मानो रजोरूप केतुवाली वहन करनेलगी ॥ ७ ॥ सूर्य चन्द्रके ऊपर राहुकी वारंवार परिधी होने लगी हे राजेन्द्र ! इसके कारण महाभय सुखके हरनेवाला हुआ ॥ ८ ॥ पर्वतोंके विवरोंसे भयसूचक शब्द होने लगे, रथकी नेमिके समान उस समय घर घर शब्द होने लगा ॥ ९ ॥ शृगाल और उलूक टंकार शब्दसे मुखसे अग्नि उगलने लगे और ग्रामोंके

भीतरही भयंकर रूपसे गीदडी बोलने लगी ॥ १० ॥ इधर उधरसे ग्रामसिंह अपनी गरदन उठाकर संगीत और रोदनकी समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगे ॥ ११ ॥ गर्दभभी मत्त होकर खुरके अग्रभागसे पृथिवीको खोदने लगे हे तात ! उधर उधर उनके झुण्डके झुण्ड विचरने लगे ॥ १२ ॥ पक्षी अपने घोंसलोंसे उडने लगे गर्दभगण व्याकुल होगये और व्याकुल होकर शब्द करनेलगे कहीं उनको शान्ति प्राप्त न हुई ॥ १३ ॥ पशुसमूह अपनी गोडमें वारंवार मूत्र करने लगे वनके पशुभी व्याकुल होगये ताडित हुएके समान इधर उधर घूमनेलगे कहींभी उनको शान्ति प्राप्त न हुई ॥ १४ ॥ गायोंके थनोंसे

यतस्ततो ग्रामसिंहा उन्नमय्य शिरोधराम् ॥ संगीतवद्रोदनवद्व्यमुंचन्विविधान्रवान् ॥ ११ ॥ खार्कारैरभसा मत्ताः खुरैर्घ्नंतो रसां खराः ॥ वरूथशस्तदा तात पर्यधावन्नितस्ततः ॥ १२ ॥ खगा उदपतन्नीडाद्रासभत्रस्तमानसाः ॥ क्रोशंतो व्यग्रचित्ताश्च स्थितिमापुर्न कुत्रचित् ॥ १३ ॥ शकृन्मूत्रमकार्षुश्च गोष्ठेऽरण्ये भयाकुलाः ॥ बभ्रमुः स्थितिमापुर्नो पशवस्ताडिता इव ॥ १४ ॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहा बाष्पनेत्रा भयाकुलाः ॥ तोयदा अभवंस्तत्र भयदाः पूयवर्षिणः ॥ १५ ॥ व्यरुदन्प्रतिमास्तत्र देवानामुत्पतिष्णवः ॥ विनाऽनिलं द्रुमाः पेतुर्ग्रहयुद्धं बभूव खे ॥ १६ ॥ इत्यादिका बहूत्पाता जज्ञिरे मुनिसत्तम ॥ अज्ञानिनो जनास्तत्र मेनिरे विश्वसंप्लुवम् ॥ १७ ॥ अथ प्रजापतिर्नामाकरोत्तस्यासुरस्य वै ॥ तारकेति विचार्य्यैव कश्यपो हि महौजसः ॥ १८ ॥ महावीरस्स सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषः ॥ ववृधेत्यश्मसारेण कायेनाद्रिपतिर्यथा ॥ १९ ॥

रुधिर निकलने लगा उनके नेत्र भयसे व्याकुल होगये मेघभी उस समय रादरूप दुगधकी वर्षा करनेके कारण भयदाई हुए ॥ १५ ॥ देवताओंकी प्रतिमा रोने और गिरने लगीं, विनाही आंधीके वृक्ष गिरने लगे और आकाशमें ग्रहयुद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसप्रकारसे बहुतसे उत्पात होने लगे, और अज्ञानीजन उससमय प्रलय मानने लगे ॥ १७ ॥ तब प्रजापति कश्यपने बहुत विचारकर उस बालकका नाम तारक रक्खा कारण कि वह असुर महापराक्रमी था ॥ १८ ॥ वह महाबली सहसा अपने पुरुषार्थको प्रगटकरता हुआ पत्थरकी समान दृढताईवाली कायासे पर्वतराजकी समान बढने लगा ॥ १९ ॥

अथो स तारको दैत्यो महाबलपराक्रमः ॥ तपः कर्तुं जनन्याश्चाज्ञां ययाचे महामनाः ॥ २० ॥ प्राप्ताज्ञः स महामायी मायिनामपि मोहकः ॥ सर्वदेवजयं कर्तुं तपोर्थं मन आदधे ॥ २१ ॥ मधोर्वनमुपागम्य गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः ॥ विधिमुद्दिश्य विधिवत्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ २२ ॥ ऊर्द्ध्वबाहुश्चैकपादो रविं पश्यन्स चक्षुषा ॥ शतवर्षं तपश्चक्रे दृढचित्तो दृढव्रतः ॥ २३ ॥ अंगुष्ठेन भुवं स्पृष्ट्वा शतवर्षं च तादृशः ॥ तेपे तपो दृढात्मा स तारकोऽसुरराट् प्रभुः ॥ २४ ॥ शतवर्षं जलं प्राश्नञ्च्छतवर्षं च वायुभुक् ॥ शतवर्षं जले तिष्ठञ्च्छतं च स्थंडिलेऽतपत् ॥२५॥ शतवर्षं तथा चाग्नौ शतवर्षमधोमुखः ॥ शतवर्षं तु हस्तस्य तलेन च भुवं स्थितः ॥ २६ ॥ शतवर्षं तु वृक्षस्य शाखामालंब्य वै मुने ॥ पदाभ्यां शुचिधूमं हि पिबंश्चाधोमुखस्तथा ॥ २७ ॥ एवं कष्टतरं तेपे सुतपस्स तु दैत्यराट् ॥ काममुद्दिश्य विधिवच्छृण्वतामपि दुस्सहम् ॥ २८ ॥ तत्रैवं तपतस्तस्य महत्तेजो विनिस्सृतम् ॥ शिरसस्सर्वसंसर्पि महोपद्रवकृन्मुने ॥ २९ ॥

तब महाबली पराक्रमी उस मनस्वी तारकनामा दैत्यने अपनी मातासे तपस्या करनेके लिये आज्ञा मांगी ॥ २० ॥ वह माहामायावाला मायियोंकोभी मोहितकरनेवाला सब देवताओंके जीतनेको तपस्या करनेमें मन लगाता हुआ ॥ २१ ॥ वह गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला मधुवनमें आकर विधाताके प्रसन्न करनेको विधिपूर्वक महातपस्या करने लगा ॥ २२ ॥ एक पांवसे खडा हो ऊपरको भुजा किये नेत्रोंसे सूर्यको देखताहुआ दृढ चित्त और दृढ व्रतसे बराबर सौवर्षतक तपस्या करतारहा ॥ २३ ॥ अँगूठेसे पृथिवीको स्पर्शकरके उसने सौवर्ष उंसी प्रकारसे बितादिये, इस प्रकारसे वह असुरोंका राजा दृढतासे सौवर्षतक तप करतारहा ॥ २४ ॥ सौ वर्षतक जलमात्र पिया, सौवर्षतक वायु मात्र भक्षण करके रहा, सौ वर्षतक जल और सौ वर्षतक मैदानमें बैठकर तपस्या करता रहा ॥ २५ ॥ सौ वर्षतक अग्नितापी, सौ वर्ष नीचेको मुख ऊपरको पैर किये रहा, सौवर्ष हाथोंसे पृथिवीको स्पर्शकर सब शरीर उठाये रहा ॥ ॥ २६ ॥ हे मुने ! सौ वर्षतक पैरोंसे वृक्षकी शाखाको पकडकर नीचेको मुख किये अग्निहोत्रका पवित्र धूम सूंघता रहा ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे सुननेवालोंको भी दुःसह उस दैत्यराजने विधिपूर्वक महाकठिन तपस्या की ॥ २८ ॥ तब तपस्या करते २ उसके शरीरसे महातेज निकलने लगा हे मुने ! वह

शिरसे निकला तेज सबको स्पर्शकर महा उपद्रवका करनेवाला था ॥ २९ ॥ उस तेजसे प्रायः देवताओंके लोक दग्धहोनेलगे, हे मुने ! सब देवता और ऋषि चारोंओरसे दुःख पानेलगे ॥ ३० ॥ सबमें देवेश्वर इन्द्रको बडा भय हुआ जो इस समय तप कररहाहै यह अवश्य मेरा सिंहासन छीन लेगा ॥ ३१ ॥ अथवा प्रभु विनाही समय प्रलयकरना चाहतेहैं इस संदेहके प्राप्त होनेमें किसी प्रकारका निश्चय न हुआ ॥ ३२ ॥ तब वे सब देवता और ऋषि परस्पर सम्मति करके भीत और दीन हो सब मेरे स्थानपर आये ॥ ३३ ॥ वे सब प्रणाम करके मेरी स्तुति करनेलगे, और व्याकुल हो हाथ जोडकर मुझसे

तेनैव देवलोकास्ते दग्धप्राया बभूविरे ॥ अभितो दुःखमापन्नास्सर्वे देवर्षयो मुने ॥ ३० ॥ इंद्रश्च भयमापेदेऽधिकं देवेश्वरस्तदा ॥ तपस्यत्यद्य कश्चिद्वै मत्पदं धर्षयिष्यति ॥ ३१ ॥ अकांडे चैव ब्रह्माण्डं संहरिष्यत्ययं प्रभुः ॥ इति संशयमापन्ना निश्चयं नोपलेभिरे ॥ ३२ ॥ ततस्सर्वे सुसंमन्त्र्य मिथस्ते निर्जरर्षयः ॥ मल्लोकमगमन्भीता दीना मां समुपस्थिताः ॥ ३३ ॥ मां प्रणम्य सुसंस्तूय सर्वे ते क्लिष्टचेतसः ॥ कृतस्वंजलयो मह्यं वृत्तं सव न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ अहं सर्वं सुनिश्चित्य कारणं तस्य सद्धिया ॥ वरं दातुं गतस्तत्र यत्र तप्यति सोऽसुरः ॥ ३५ ॥ अवोचं वचनं तं वै वरं ब्रूहीत्यहं मुने ॥ तपस्तप्तं त्वया तीव्रं नादेयं विद्यते तव ॥ ३६ ॥ इत्येवं मद्वचः श्रुत्वा तारकस्स महासुरः ॥ मां प्रणम्य सुसंस्तूय वरं वव्रेऽतिदारुणम् ॥ ३७ ॥ तारक उवाच ॥ त्वयि प्रसन्ने वरदे किमसाध्यं भवेन्मम ॥ अतो याचे वरं त्वत्तः शृणु तन्मे पितामह ३८ ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम ॥ देयं वरद्वयं मह्यं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ३९ ॥

सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३४ ॥ मैंने बुद्धिपूर्वक उस सब कारणको निश्चयकर वहां वरदेनेको गया जहां वह असुर तपस्या करताथा ॥ ३५ ॥ हे मुने ! वहां जाकर मैंने उसे वर माँगनेको कहा, कि तैंने बडी तपस्या कीहै कोई वस्तु मुझे तुम्हैं अदेय नहीं है ॥ ३६ ॥ वह महाअसुर तारक इसप्रकार मेरे वचन सुनकर मुझे प्रणामकर स्तुतिपूर्वक बडा दारुण वर मांगने लगा ॥ ३७ ॥ तारकने कहा जब वरके देनेवाले आप उपस्थित हैं तब मुझे कोई वस्तु असाध्य नहीं है, इस कारण हे पितामह ! मैं आपसे वर मांगताहूं, सो आप सुनैं ॥ ३८ ॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्नहैं, यदि आप मुझे वर

देतेहैं तो मेरे ऊपर कृपाकरके मुझे दो वरदान दीजिये ॥ ३९ ॥ हे भगवन्! जहांतक आपके बनाये लोकहैं उनमें मेरे समान बलवान् कोई न हो ॥४०॥ जिस समय शिवके वीर्यसे सेनापति पुत्र उत्पन्न हो, और मेरे ऊपर शस्त्र चलावे तो मेरा मरण हो ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वर! जब उस दैत्यराजने इस प्रकार मुझसे वचन कहे तब मैं उसको वैसाही वर देकर अपने स्थानको आया ॥ ४२ ॥ वह दैत्येश्वर भी अपने मनके अनुसार उत्तम वरको पाकर महाप्रसन्न हो शोणित पुरको गया ॥ ४३ ॥ वहां दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उसका असुरोंके साथ त्रिलोकीके आधिपत्यमें अभिषेक किया और उनको यह आज्ञा मैंनेही

त्वया च निर्मिते लोके सकलेऽस्मिन्महाप्रभो ॥ मत्तुल्यो बलवान्नूनं न भवेत्कोऽपि वै पुमान् ॥ ४० ॥ शिववीर्यसमुत्पन्नः पुत्रस्सेनापतिर्यदा ॥ भूत्वा शस्त्रं क्षिपेन्मह्यं तदा मे मरणं भवेत् ॥ ४१ ॥ इत्युक्तोऽथ तदा तेन दैत्येनाहं मुनीश्वर ॥ वरं च तादृशं दत्वा स्वलोकमगमं द्रुतम् ॥४२॥ दैत्योऽपि स वरं लब्ध्वा मनसेप्सितमुत्तमम् ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा शोणिताख्यपुरं गतः ॥ ४३ ॥ अभिषिक्तस्तदा राज्ये त्रैलोक्यस्यासुरैस्सह ॥ शुक्रेण दैत्यगुरुणाज्ञया मे स महासुरः ॥ ४४ ॥ ततस्तु स महादैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ स्वाज्ञां प्रवर्तयामास पीडयन्सचराचरम् ॥ ४५ ॥ राज्यं चकार विधिवत्त्रिलोकस्य स तारकः ॥ प्रजाश्च पालयामास पीडयन्निर्जरादिकान् ॥ ४६ ॥ ततस्स तारको दैत्यस्तेषां रत्नान्युपाददे ॥ इंद्रादिलोकपालानां स्वतो दत्तानि तद्भयात् ॥ ४७ ॥ इंद्रेणैरावतस्तस्य भयात्तस्मै समर्पितः ॥ कुबेरेण तदा दत्ता निधयो नवसंख्यकाः ॥ ४८ ॥ वरुणेन हयाः शुभ्रा ऋषिभिः कामकृत्तथा ॥ सूर्येणोच्चैश्श्रवा दिव्यो भयात्तस्मै समर्पितः ॥ ४९ ॥ यत्र यत्र शुभं वस्तु दृष्टं तेनासुरेण हि ॥ तत्तद्गृहीतं तरसा निस्सारस्त्रिभवोऽभवत् ॥ ५० ॥

दीथी ॥ ४४ ॥ तब वह महादैत्य त्रिलोकीका नायक हुआ, उसने चर अचरको पीडित कर सर्वत्र अपनी आज्ञा प्रचार की ॥ ४५ ॥ विधिपूर्वक वह तारक त्रिलोकीका राज्य करने लगा और देवता आदिको पीडित करके प्रजाकी पालना करनेलगा ॥ ४६ ॥ तब दैत्येश्वरने उन इन्द्रादि देवताओंसे जो जिसके यहां रत्न थे मांगे और उन्होंने उसके भयसे स्वयं देदिये ॥ ४७ ॥ इन्द्रने डरके मारे उसे ऐरावत देदिया कुबेरने नौओं निधियें उसको देदीं ॥ ॥ ४८ ॥ वरुणने श्वेत वर्णके घोडे, ऋषियोंने कामधेनु सूर्यने[1] दिव्य उच्चैःश्रवाघोडा भयसे उसको अर्पण कर दिया ॥ ४९ ॥ उस असुरने जहांजहां उत्तम

---

[1] यहांपर सूर्य्यके स्थानमें जब इन्द्र ऐसा पाठ है तब इन्द्रने ऐसा अर्थ करना ।

वस्तु देखी वह वह बलसे ग्रहण कर ली बहुत क्या त्रिलोकी निस्सार होगई ॥ ५० ॥ हे मुने ! भयके मारे समुद्रोंने उसको रत्नप्रदान किये पृथिवी विनाजोते बीज ग्रहणकर फल देनेलगी, सब प्रजा उससे कामना अनुसार वस्तु दुहने लगी ॥ ५१ ॥ सूर्य उतनाही तपता जितनेमें किसीको दुःख न हो, चन्द्रमा अपनी कान्ति सहित देखता, और वायु निरन्तर अनुकूल चलता ॥ ५२ ॥ देवता और पितृ आदिका जो द्रव्यथा उस दुरात्मा असुरने वह सब ग्रहण करलिया ॥ ५३ ॥ त्रिलोकीको वशमें करके वह स्वयं इन्द्र हुआ वह अद्भुत स्वामी बना और उसने अद्वितीय राज्य किया ॥ ५४ ॥ सब स्थानोंसे

समुद्राश्च तथा रत्नान्यदुस्तस्मै भयान्मुने ॥ अकृष्टपच्यासीत्पृथ्वी प्रजाःकामदुघाःखिलाः ॥ ५१ ॥ सूर्यश्च तपते तद्वत्तद्दुःखं न यथा भवेत् ॥ चंद्रस्तु प्रभया दृश्यो वायुस्सर्वानुकूलवान् ॥ ५२ ॥ देवानां चैव यद्द्रव्यं पितॄणां च परस्य च ॥ तत्सर्वं समुपादत्तमसुरेण दुरात्मना ॥ ५३ ॥ वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन्स्वयमिंद्रो बभूव ह ॥ अद्वितीयः प्रभुश्चासीद्राज्यं चक्रेऽद्भुतं वशी ॥ ५४ ॥ निस्सार्य सकलान्देवान्दैत्यानस्थापयत्ततः ॥ स्वयं नियोजयामास देवयोनिस्स्वकर्मणि ॥ ५५ ॥ अथ तद्बाधिता देवास्सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ मुने मां शरणं जग्मुरनाथा अतिविह्वलाः ॥ ५६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे तारकासुरतपोराज्यवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते निर्जरास्सर्वे सुप्रणम्य प्रजेश्वरम् ॥ तुष्टुवुः परया भक्त्या तारकेण प्रपीडिताः ॥ १ ॥ अहं श्रुत्वामरनुतिं यथार्थां हृदयंगमाम् ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रत्यवोचं दिवौकसः ॥ २ ॥ स्वागतं स्वाधिकारा वै निर्विघ्नाः संति वस्सुराः ॥ किमर्थमागता यूयमत्र सर्वे वदंतु मे ॥ ३ ॥

देवताओंको निकालकर उसने वहां दैत्योंको स्थापित किया और देवयोनियोंको उन उनके कर्मोंमें उसने स्वयं स्थापन किया ॥ ५५ ॥ हे मुने ! तब सब इन्द्रादि देवता उससे बाधित होकर अनाथ और अतिविह्वल हो मेरी शरण आये ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे पंचदशोध्यायः ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले तब वे सब देवता प्रजापतिको प्रणाम कर तारकासुरसे पीडित हुए परम भक्तिसे प्रणाम करने और स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ तब मैं यथार्थ और हृदयको प्यारी लगनेवाली उस देवस्तुतिको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंसे बोला ॥ २ ॥ हे देवताओ !

तुम्हारा स्वागत हो तुम अपने अधिकारपर प्रसन्न हो तुम्हारे कोई विघ्न तो नहीं है तुम किस निमित्त यहां आयेहो सो सब मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ यह मेरे वचन सुनकर वे सब देवता मुझे प्रणाम करके तारकासुरसे भीत होकर दीनहो मस्तक झुकाय मुझसे कहनेलगे ॥ ४ ॥ देवता बोले हे लोकेश ! तारक नामा दैत्य आपके वरदानसे अभिमानी होकर हमको हमारे स्थानोंसे निकालकर हमारे अधिकारोंको हमसे ग्रहण कररहा है ॥ ५ ॥ जो हमको दुःख उपस्थित हुआहै आप क्या उसको नहीं जानते वह दुःख आप शीघ्र नाश कीजिये, हम आपकी शरणमें प्राप्त हैं ॥ ६ ॥ जहां कहीं हम स्थित होतेहैं

इति श्रुत्वा वचो मे ते नत्वा सर्वे दिवौकसः ॥ मामूचुर्नतका दीनास्तारकेण प्रपीडिताः ॥ ४ ॥ देवाऊचुः ॥ लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः ॥ निरस्यास्मान्हठात्स्थानान्यग्रहीन्नो बलात्स्वयम् ॥ ५ ॥ भवतः किमु न ज्ञातं दुःखं यन्न उपस्थितम् ॥ तद्दुःखं नाशय क्षिप्रं वयं ते शरणं गताः ॥ ६ ॥ अहर्निशं बाधतेस्मान्यत्र तत्रास्थितान्स वै ॥ पलायमानाः पश्यामो यत्र तत्रापि तारकम् ॥ ७ ॥ तारकान्नश्च यद्दुःखं संभूतं सकलेश्वर ॥ तेन सर्वे वयं तात पीडिता विकला अति ॥ ८ ॥ अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ॥ अन्ये दिक्पतयश्चापि सर्वे यद्वशगामिनः ॥ ९ ॥ सर्वे मनुष्यधर्माणस्सर्वैः परिकरैर्युताः ॥ सेवंते तं महादैत्यं न स्वतंत्राः कदाचन ॥ १० ॥ एवं तेनार्दिता देवा वशगास्तस्य सर्वदा ॥ तदिच्छाकार्य्यनिरतास्सर्वे तस्यानुजीविनः ॥ ११ ॥

वह रात दिन हमको पीडित करता है जहां कहीं हम भागकर जातेहैं, वहा असुरही हमको दिखाई देताहै ॥ ७ ॥ हे सकलेश्वर ! हमको तारक असुरसे जो दुःख प्राप्त हुआहै सो कहा नहीं जाता हे तात ! हम बडे विकल और पीडित हैं ॥ ८ ॥ अग्नि यम वरुण निर्ऋति वायु और दूसरे दिक्पाल भी सब उसकी शरणहैं ॥ ९ ॥ सबही मनुष्यधर्मवाले और सबही उसकी परिकरसे युक्तहैं, सबही उस महादैत्यकी सेवा करते हैं, और कोई भी स्वतंत्र नहीं है ॥ ॥ १० ॥ उस प्रकार देवताभी उससे व्याकुल होकर उसके वशीभूत हुए हैं उसकी इच्छासे कार्यमें निरत होकर सबही उसके अनुजीवी हैं ॥ ११ ॥

जितनी सुन्दरी स्त्रियें और जितनी अप्सरायें हैं उस महाबली तारक असुरने उन सबको ग्रहण करलिया है ॥ १२ ॥ न यज्ञही किये जाते हैं, न तपस्वी तपस्याही करते हैं, लोकमें कोई दान धर्मादिक नहीं प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ क्रौंच नामक एक महादानव उसका सेनापति है, वह पातालमें भी जाकर वहांकी प्रजाओंको निरन्तर पीडित करता है ॥ १४ ॥ हे जगत्पति! उस करुणारहित पापी तारकने यह सब त्रिजगत् हठसे अपने वशमें कर लिया है ॥ ॥ १५ ॥ हम सभी वहीं जायँगे हमारे लिये आप जो स्थान नियत करदें हे लोकनाथ! उस दैत्यसे महापीडित हुए हम स्वस्थ होकर कहां रह सकैंगे ॥

यावत्यो वनितास्सर्वा ये चाप्यप्सरसां गणाः ॥ सर्वांस्तानग्रहीद्दैत्यस्तारकोऽसौ महाबली ॥ १२ ॥ न यज्ञास्संप्रवर्तंते न तपस्यंति तापसाः ॥ दानधर्मादिकं किंचिन्न लोकेषु प्रवर्त्तते ॥ १३ ॥ तस्य सेनापतिः क्रौंचो महापाप्यस्ति दावनः ॥ स पातालतलं गत्वा बाधते त्वनिशं प्रजाः ॥ १४ ॥ तेन नस्तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम् ॥ हृतं हठाज्जगद्धातः पापेनाकरुणात्मना ॥ १५ ॥ वयं च तत्र यास्यामो यत्स्थानं त्वं विनिर्दिशेः ॥ स्वस्थास्तद्वारितास्तेन लोकनाथ मरारिणा ॥ १६ ॥ त्वं नो गतिश्च शास्ता च धाता त्राता त्वमेव हि ॥ वयं सर्वे तारकाख्यवह्नौ दग्धास्सुविह्वलाः ॥ १७ ॥ तेन क्रूरा उपाया नः सर्वे हतबलाः कृताः ॥ विकारे सांनिपाते वा वीर्यवंत्यौषधानि च ॥ १८ ॥ यत्रास्माकं जयाशा हि हरिचक्रे सुदर्शने ॥ तत्कुंठितमभूत्तस्य कंठे पुष्पमिवार्पितम् ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा निर्जराणामहं मुने ॥ प्रत्यवोचं सुरान्सर्वांस्तत्कालसदृशं वचः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममैव वचसा दैत्यस्तारकाख्यस्समेधितः ॥ न मत्तस्तस्य हननं युज्यते हि दिवौकसः ॥ २१ ॥

॥ १६ ॥ आपही हमारी गति हमारे शासक पोषक और विधाता हो, हम सब तारक नामक अग्निसे व्याकुल होकर दग्ध हो रहे हैं ॥ १७ ॥ उसने क्रूरताके उपायोंसे हम सबको हतबल कर दिया है विकार वा सन्निपातमें बलवान् औषधियेंही काम देती हैं ॥ १८ ॥ जिस नारायणके सुदर्शन चक्रमें हमको जयकी आशा थी वह भी उसके कण्ठमें पुष्पकी समान लगकर कुण्ठित होगया ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिराज! इस प्रकारसे मैं देवताओंके वचन सुनकर उस कालके समान सब देवताओंसे यह वचन बोला ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले मेरे ही वचनसे वह तारक नाम दैत्य वृद्धिको प्राप्त हुआहै

हे देवताओ ! मेरे द्वारा उसका मरण ठीक नहीं है ॥ २१ ॥ जिससे जो बढाया जाय वह उससे मारनेके योग्य नहीं होता विषवृक्ष भी लगाकर कोई छेदनकी इच्छा नहीं करता ॥ २२ ॥ हां शिवजी तुम्हारे सम्पूर्ण कार्य करसकते हैं परन्तु विना प्रेरणाके वह कुछ कार्य नहीं करैंगे ॥ २३ ॥ यह तारक नामवाला दैत्य अपने पापसे स्वयं ही नाश होजायगा, जैसे यह कार्य सिद्ध होगा वैसा मैं तुमको उपदेश करताहूं ॥ २४ ॥ मैं विष्णु इन्द्र वा कोई और दूसरे देवता तारक असुरको नहीं मार सकते, यह मेरा वर सत्य है ॥ २५ ॥ हे देवताओ ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो वही तारकनामक दैत्यको

ततो नैव वधो योग्यो यतो वृद्धिमुपागतः ॥ विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् ॥ २२ ॥ युष्माकं चाखिलं कार्यं कर्तुं योग्यो हि शंकरः ॥ किन्तु स्वयं न शक्तो हि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः ॥ २३ ॥ तारकाख्यस्तु पापेन स्वयमेष्यति संक्षयम् ॥ यथा यूयं संविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥ २४ ॥ न मया तारको वध्यो हरिणापि हरेण च ॥ नान्येनापि सुरैर्वापि मद्वरात्सत्यमुच्यते ॥ २५ ॥ शिववीर्य्यसमुत्पन्नो यदि स्यात्तनयस्सुराः ॥ स एव तारकाख्यस्य हंता दैत्यस्य नापरः ॥ २६ ॥ यमुपायमहं वच्मि तं कुरुध्वं सुरोत्तमाः ॥ महादेवप्रसादेन सिद्धिमेष्यति स ध्रुवम् ॥ २७ ॥ सती दाक्षायिणी पूर्वं त्यक्तदेहा तु याभवत् ॥ सोत्पन्ना मेनकागर्भात्सा कथा विदिता हि वः ॥ २८ ॥ तस्या अवश्यं गिरिशः करिष्यति करग्रहम् ॥ तत्कुरुध्वमुपायं च तथापि त्रिदिवौकसः ॥ २९ ॥ तथा विदध्वं सुतरां तस्यां तु परियत्नतः ॥ पार्वत्यां मेनकाजायां रेतःप्रतिनिपातने ॥ ३० ॥ तमूर्द्ध्वरेतसं शंभुं सैव प्रच्युतरेतसम् ॥ कर्तुं समर्था नान्यास्ति तथा काप्यबला बलात् ॥ ३१ ॥

मारसकताहै दूसरा नहीं ॥ २६ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! जो उपाय तुमसे मैं कहूं सो तुम करो महादेवके प्रसादसे सब प्रकारकी सिद्धि होगी ॥ २७ ॥ पहले जो दक्षकी कन्या सतीने अपना देह त्यागनकिया था वही मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई है, यह कथा आप जानतेही हैं ॥ २८ ॥ शिवजी अवश्य उसका कर ग्रहण करैंगे, हे देवताओ ! तो भी तुम उसके लिये उपाय करो ॥ २९ ॥ हे देवताओ ! अब इसप्रकारका तुम उपाय करो कि पार्वतीके साथ शिवजीका विवाहहो ॥ ३० ॥ कारण कि ऊर्ध्वरेता शंभुके वीर्य आकर्षण करनेमें वही समर्थ है दूसरी अबला कुछ नहीं कर सकती ॥ ३१ ॥

वह गिरिराजकी सुता इस समय युवा होगई है हिमालयमें तपस्या करतेहुए शंकरकी नित्य सेवा करती है ॥ ३२ ॥ वह पार्वती अपने पिताके वचनंसे
हठपूर्वक अपनी सखियोंके साथ ध्यानमें स्थित परमेश्वरकी नित्य सेवा करतीहै ॥ ३३ ॥ यद्यपि वह त्रिलोकसुन्दरी परमेश्वरके आगे नित्य रहती और
पूजा करतीहै पर ध्यानमें मन लगाये शिवजी कभी मनसे भी तो नहीं विच्युत होते ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार चन्द्रशेखर कालीको अपनी भार्या जानैं हे
देवताओ ! यत्नपूर्वक तुम बहुत शीघ्र वैसा विधान करो ॥ ३५ ॥ और मैं भी उस तारक दैत्यके स्थानमें जाकर उसे उस बुरी हठसे निवारण करता हूं

सा सुता गिरिराजस्य सांप्रतं प्रौढयौवना ॥ तपस्यंतं हिमगिरौ नित्यं संसेवते हरम् ॥ ३२ ॥ वाक्याद्धिमवतः काली स्वपितुर्हठत
शिवा ॥ सखीभ्यां सेवते सार्द्धं ध्यानस्थं परमेश्वरम् ॥ ३३ ॥ तामग्रतोऽर्च्चमानां वै त्रैलोक्ये वरवर्णिनीम् ॥ ध्यानसक्तो महेशो हि
मनसापि न हीयते ॥ ३४ ॥ भार्य्यां समीहेत यथा स कालीं चन्द्रशेखरः ॥ तथा विदध्वं त्रिदशा न चिरादेव यत्नतः ॥ ३५ ॥ स्थानं
गत्वाथ दैत्यस्य तमहं तारकं ततः ॥ निवारयिष्ये कुहठात्स्वस्थानं गच्छतामराः ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वाहं सुरान्शीघ्रं तारकाख्यासुरस्य वै ॥
उपसंगम्यं सुप्रीत्या समाभाष्येदमब्रवम् ॥ ३७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तेजोसारमिदं स्वर्गं राज्यं त्वं परिपासि नः ॥ यदर्थं सुतपस्ततं
वाञ्छसि त्वं ततोऽधिकम् ॥ ३८ ॥ वरश्चाप्यवरो दत्तो न मया स्वर्गराज्यता ॥ तस्मात्स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर ॥ ३९ ॥
देवयोग्यानि तत्रैव कार्य्याणि निखिलान्यपि ॥ भविष्यंत्यसुरश्रेष्ठ नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४० ॥ इत्युक्त्वाहं च संबोध्यासुरं तं
सकलेश्वरः ॥ स्मृत्वा शिवं च सशिवं तत्रांतर्धानमागतः ॥ ४१ ॥

इससे तुम अपने स्थानोंमें जाओ ॥ ३६ ॥ देवताओंसे यह कहकर मैं तारकके समीप गया, और प्रेमसे बातचीत करके उससे इसप्रकार कहा ॥ ३७ ॥
ब्रह्माजी बोले यह स्वर्ग तेजोंका सारहै, सो तुम हमारे राज्यको पालन करतेहो, जिस कारण तैंने तप किया था सो तू उससे अधिककी इच्छा करता है
॥ ३८ ॥ मैंने दूसरी प्रकारका वर दिया है स्वर्गके राज्यका वर नहीं दिया है इससे स्वर्गको त्यागकर भूमण्डलका राज्य करो ॥ ३९ ॥ हे असुरोत्तम !
वहां देवताओंकेही योग्य सम्पूर्ण कार्य हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ सकलेश्वर मैं इसप्रकारसे उसे सब बातें समझाकर शिवाशिवको स्मरणकर उसके

आगेसे अन्तर्धान होगया ॥ ४१ ॥ तारकभी स्वर्गको त्यागकर भूमिपर आगया और शोणितपुरमें आकर अपना राज्य करने लगा ॥ ४२ ॥ उधर सब देवता मेरे वचन सुनकर मुझे प्रणामकर प्रसन्न हो इन्द्रके साथ इन्द्रके स्थानमें चले गये ॥ ४३ ॥ वहां जाय मिलकर और परस्पर विचार करके वे सब मरुत् आदि प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहने लगे ॥ ४४ ॥ देवता बोले जिस प्रकार कामनापूर्वक शिवजीको पार्वतीमें रुचि होजाय, हे इन्द्र ! ब्रह्माजीके बताये उपायके अनुसार वह कार्य तुमको शीघ्र करना चाहिये ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे सब देवता सुरेश्वरसे यह उपाय निवेदन करके प्रसन्न

तारकोऽपि परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्यगात् ॥ शोणिताख्यपुरे स्थित्वा सर्वराज्यं चकार सः ॥ ४२ ॥ देवास्सर्वेऽपि तच्छ्रुत्वा मद्वाक्यं सुप्रणम्य माम् ॥ शक्रस्थानं ययुः प्रीत्या शक्रेण सुसमाहिताः ॥ ४३ ॥ तत्र गत्वा मिलित्वा च विचार्य्य च परस्परम् ॥ ते सर्वे मरुतः प्रीत्या मघवंतं वचोऽब्रुवन् ॥ ४४ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ शम्भोर्य्यथा शिवायां वै रुचिर्जायेत कामतः ॥ मघवंस्ते प्रकर्तव्यं ब्रह्मोक्तं सर्वमेव तत् ॥ ४९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं सर्ववृत्तांतं विनिवेद्य सुरेश्वरम् ॥ जग्मुस्ते सर्वतो देवाः स्वं स्वं स्थानं मुदान्विताः ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे देवसांत्वनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम् ॥ पीडितस्तारकेनातिदैत्येन च दुरात्मना ॥ १ ॥ आगतस्तत्क्षणात्कामस्सवसंतो रतिप्रियः ॥ सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥ २ ॥ प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतस्स्मरः ॥ महोन्नतमनास्तात सांजलिश्शक्रमब्रीत् ॥ ३ ॥

हो अपने अपने स्थानोंमें चले गये ॥४६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले देवताओंके चलेजानेपर इन्द्रने कामदेवको स्मरण किया, कारण कि उस समय इन्द्रभी दुरात्मा तारकसे बहुत पीडित होगये थे ॥ १ ॥ उसी समय रतिप्रिय कामदेव वसन्तके साथ उपस्थित हुआ, यह त्रिलोकीका जीतनेवाला प्रभु रतिके सहित साभिमान उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ प्रणाम करके कामदेव इन्द्रके

आगे उपस्थित हुआ और बडे उन्नत मनसे महेन्द्रजीसे बोला ॥ ३ ॥ आपका क्या कार्य उत्पन्न हुआ है, तुमने किस कारण मुझे स्मरण किया है, हे देवेश ! शीघ्र कहिये वह सब मैं करनेको उपस्थित हूं ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कामदेवके वचन सुनकर इन्द्र परमप्रसन्न हो उसकी बडाई करते हुए यह वचन बोले ॥ ५ ॥ इन्द्रने कहा तुम्हारा आरंभ उत्तम है, जो मेरा कार्य उपस्थित हुआहै, हे मकरध्वज ! तुम जो उसके करनेको उपस्थित हुए हो इससे तुम धन्य हो ॥ ६ ॥ अब मेरे वचन सुनो, मैं तुम्हारे आगे कहता हूं, जो मेरा कार्यहै वह तुम्हारा भी है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ७ ॥ मेरे बहुतसे

काम उवाच ॥ किं कार्य्यं ते समुत्पन्नं स्मृतोऽहं केन हेतुना ॥ तत्त्वं कथय देवेश तत्कर्तुं समुपागतः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कंदर्पस्य सुरेश्वरः ॥ उवाच वचनं प्रीत्या युक्तं युक्तमिति स्तुवन् ॥ ५ ॥ ॥ शक्र उवाच ॥ तव साधु समा
रम्भो यन्मे कार्य्यमुपस्थिमम् ॥ तत्कर्तुमुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज ॥ ६ ॥ प्रस्तुतं शृणु मद्वाक्यं कथयामि तवाग्रतः ॥ मदीयं
चैव यत्कार्य्यं त्वदीयं तन्न चान्यथा ॥ ७ ॥ मित्राणि मम संत्येव बहूनि सुमहांति च ॥ परं तु स्मर सन्मित्रं त्वत्तुल्यं न हि कुत्र
चित् ॥ ८ ॥ जयार्थं मे द्वयं तात निर्मितं वज्रमुत्तमम् ॥ वज्रं च निष्फलं स्याद्वै त्वं तु नैव कदाचन ॥ ९ ॥ यतो हितं प्रजायेत
ततः को नु प्रियः परः ॥ तस्मान्मित्रवरस्त्वं हि मत्कार्य्यं कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ मम दुःखं समुत्पन्नमसाध्यं चापि कालजम् ॥ केनापि
नैव तच्छक्यं दूरीकर्तुं त्वया विना ॥ ११ ॥ दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते ॥ आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य
हि ॥ १२ ॥ विनये संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः ॥ सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम् ॥ १३ ॥

महानुभाव मित्र हैं, परन्तु हे काम ! तेरे समान मेरा कोई मित्र नहीं है ॥ ८ ॥ मेरे जयके लिये हे तात ! एक तुम और एक वज्र यही दो उत्तम वस्तुहैं वज्र तो कभी निष्फल भी होजाता है परन्तु तुम कभी निष्फल नहीं हो सक्के ॥ ९ ॥ जिससे अपना हित हो उससे प्यारा कौन हैइस कारण हे मित्रवर ! तुम मेरे इस कार्य करनेके योग्य हो ॥ १० ॥ मुझे जो दुःख उत्पन्न हुआ है यह असाध्य और कालसे उत्पन्न तुम्हारे सिवाय उसे दूर करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ दुर्भिक्षमें दाताकी युद्धमें शूरकी आपत्तिमें मित्रकी असमर्थ होनेपर स्त्रीकुलकी परीक्षा होती है ॥ १२ ॥ हे तात ! विनयमें संकटकी

प्राप्तिमें परीक्षामें जो सत्यता वही सत्यता कही गई है इस दशामें सत्यका रखना कठिन होता है तैसे इन्हीं स्थलोंमें स्नेहका रखना भी कठिन है इनही स्थलोंमें रहनेवाली सत्यताको जैसे सत्यता कहते हैं तैसे इनहीं स्थलोंमें रहनेवाले स्नेहकोही स्नेह कहते हैं यही श्रेष्ठ सत्यता तथा श्रेष्ठ स्नेहका लक्षण कहागया है यह अन्यथा नहीं है मैं सत्य कहता हूं ॥ १३ ॥ जो कि दूसरेके निवारण करनेके अयोग्य मुझपर विपत्ति प्राप्त है, तभी हे मित्रवर्य ! इस विपत्तिहीमें आज तुम्हारी परीक्षा प्राप्त हुई है ॥ १४ ॥ यह केवल मेरेही सुखका कार्य नहीं है, किन्तु यह सब देवताओंका कार्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले कामदेव इसप्रकारसे इन्द्रके वचन सुनकर हँसते हुए गंभीरतासे यह वचन बोला ॥ १६ ॥ कामने कहा इतना आप क्यों कहते हो मैं आपके कथन

प्राप्तायां वै ममापत्ताववार्यायां परेण हि ॥ परीक्षा च त्वदीयाऽद्य मित्रवर्य भविष्यति ॥ १४ ॥ न केवलं मदीयं च कार्य्यमस्ति सुखावहम् ॥ किं तु सर्वसुरादीनां कार्य्यमेतन्न संशयः ॥ १५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येतन्मघवद्वाक्यं श्रुत्वा तु मकरध्वजः ॥ उवाच प्रेमगंभीरं वाक्यं सुस्मितपूर्वकम् ॥ १६ ॥ ॥ काम उवाच ॥ किमर्थमित्थं वदसि नोत्तरं वच्म्यहं तव ॥ उपकृत्कृत्रिमं लोके दृश्यते कथ्यते न च ॥ १७ ॥ संकटे बहु यो ब्रूते स किं कार्य्यं करिष्यति ॥ तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो ॥ १८ ॥ पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम् ॥ पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा ॥ १९ ॥ क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वर स्त्रियाः ॥ देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे ॥ २० ॥ वज्रं तिष्ठतु दूरे वै शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः ॥ किं ते कार्यं करिष्यंति मयि मित्र उपस्थिते ॥ २१ ॥ ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्य्यां न संशयः ॥ अन्येषां गणना नास्ति पातयेयं हरं त्वपि ॥ २२ ॥

पर उत्तर नहीं देता उपकारी और कृत्रिम लोकमें दीखे जाते हैं कहनेका क्या प्रयोजन है ॥ १७ ॥ संकटमें जो बहुत बोलताहै वह क्या कार्य करैगा, हे महाराज! तो भी मैं जो कहता हूँ सो आप सुनें ॥ १८ ॥ जो आपका पद ग्रहण करनेकी इच्छासे कोई तप करता है मैं उस आपके शत्रुको अवश्य गिरादूंगा कारण कि आप मेरे मित्र हैं ॥ १९ ॥ वरास्त्रियोंके कटाक्षसे क्षणमात्रमें नष्ट कर दूंगा चाहै देवर्षि वा दानव क्यों न हो और मनुष्योंकी तो इसमें गणनाही नहीं है ॥ २० ॥ वज्र और दूसरे अस्त्र शस्त्र दूरही रहैं मुझ मित्रके विद्यमान होते वे मेरा क्या कर सक्के हैं ॥ २१ ॥ मैं ब्रह्मा और हरिको भी

तपसे चलायमान करसक्का हूं औरोंकी गणना तो क्या है, शंकरको भी समाधिसे चलायमान करसक्का हूं ॥ २२ ॥ मेरे फूलोंके यह पांच कोमल बाण
और पुष्पोंकी तीन स्थानोंमें झुकी हुई धनुही और भ्रमरोंके गुंजाररूपी ज्या सुन्दरी स्त्रीही बल और वसंतका सखापनहै ॥ २३ ॥ मैं पांच बलका देवताहूं
चन्द्रमा मेरा भित्र है ॥ २४ ॥ शृंगार सेनापति और हावभाव सेनाके लोग हैं, हे इन्द्र ! हमारे ये सब मृदुरूपहैं और मैं भी उसी प्रकारका हूं ॥२५॥
जिससे जो कार्य पूर्ण हो बुद्धिमान् उसको उसी कार्यमें लगावैं, मेरे योग्य जो कार्य हो उसमें आप मुझे नियुक्त कीजिये ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह

पंचैव मृदवो बाणास्ते च पुष्पमया मम ॥ चापस्त्रिधा पुष्पमयश्शिंशजिनी भ्रमरार्ञ्जिता ॥ बलं सुदयिता मे हि वसंतः सचिवस्स्मृतः ॥
॥ २३ ॥ अहं पञ्चबलो देवा मित्रं मम सुधानिधिः ॥ २४ ॥ सेनाधिपश्च शृंगारो हावभावाश्च सैनिकाः ॥ सर्वे मे मृदवः शक्र अहं
चापि तथाविधः ॥ २५ ॥ यद्येन पूर्य्यते कार्य्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ॥ मम योग्यं तु यत्कार्य्यं सर्वं तन्मे नियोजय ॥ २६ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्रस्सुहर्षितः ॥ उवाच प्रणमन्वाचा कामं कांतासुखावहम् ॥ २७ ॥ ॥ शक्र उवाच ॥
यत्कार्य्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव ॥ कर्त्तुं तत्त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः ॥ २८ ॥ शृणु काम प्रवक्ष्यामि यथार्थं
मित्रसत्तम ॥ यदर्थे च स्पृहा जाता तव चाद्य मनोभव ॥ २९ ॥ तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम् ॥ अभूदजेयस्संप्राप्य
सर्वेषामपि दुःखदः ॥ ३० ॥ तेन संपीडयते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः ॥ दुःखिता निर्जरास्सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः ॥ ३१ ॥
देवैश्च सकलैस्तेन कृतं युद्धं यथाबलम् ॥ सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन्पुरा ॥ ३२ ॥

वचन सुनकर इन्द्र बडे प्रसन्न हुए और प्रसन्नताके वचन कांताओंके सुखदायक कामके प्रति कहे ॥ २७ ॥ इन्द्रने कहा हे तात कामदेव ! जो कार्य
मैंने मनमें विचारा है तुम वह करनेमें समर्थ हो औरसे उसका सम्भव नहीं है ॥ २८ ॥ हे काम ! हे यथार्थ मित्र ! सुन मैं कार्य तुझसे कहताहूं, हे
मनोभव ! जिस निमित्त मुझको स्पृहा हुई है ॥ २९ ॥ तारकनामक महादैत्य ब्रह्माजीके अद्भुत वरदानसे सबसे अजेय होगयाहै और सबको दुःख
देता है ॥ ३० ॥ वह लोकोंको बडी पीडा देताहै, अनेक धर्म नष्ट होगये हैं, देवता और सब ऋषि महादुःखी हो रहे हैं ॥३१॥ देवताओंने उससे अपने

वलके समान युद्ध किया, परन्तु सबके आयुध उसके सामने निष्फल होगये ॥ ३२ ॥ वरुणकी पाश (फांसी) उसके कंठमें पडकर टूट गई और कंठदेशमें मारा नारायणका सुदर्शन चक्र छूतेही कुण्ठित होगया ॥ ३३ ॥ इस दुरात्माका मरण प्रजापतिने महायोगीश्वर शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रसे निर्धारित किया है ॥ ३४ ॥ यह कार्य तुमको यत्नपूर्वक करना चाहिये, हे मित्रवर्य ! तब देवताओंको परम सुखकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ३५ ॥ मैंने यह सब लोकोंका आनन्दकारी कर्म विचारा है हृदयमें मित्रधर्मका स्मरण करके इस समय कार्य कीजिये ॥ ३६ ॥ शिवजी महाराज पर्वतराज हिमालयपर परम

भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम् ॥ तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना ॥ ३३ ॥ एतस्य मरणं प्रोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः ॥ शम्भोर्वीर्योद्भवाद्बालान्महायोगीश्वरस्य हि ॥ ३४ ॥ एतत्कार्य्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः ॥ ततस्स्यान्मित्रवर्य्याति देवानां नः परं सुखम् ॥ ३५ ॥ ममापि विहितं तस्मात्सर्वलोकसुखावहम् ॥ मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ ३६ ॥ शंभुस्स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः ॥ स प्रभुर्नापि कामेन स्वतंत्रः परमेश्वरः ॥३७॥ तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता ॥ सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञप्ता मया श्रुतम् ॥ ३८ ॥ यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः ॥ जायते नितरां मार तथा कार्यं त्वया ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनंक्ष्यति ॥ लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चान्यथा ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तस्स तु कामो हि प्रफुल्लमुखपंकजः ॥ प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशयः ॥ ४१ ॥

तपस्या कर रहे हैं उन प्रभुको कामना नहीं है कारण कि वह स्वतंत्र परमेश्वर हैं ॥३७॥ और मैंने यह सुना है उनके समीप सखियोंसहित पार्वती उनको पति करनेके लिये पिताकी आज्ञासे सेवा करती हुई. उपस्थित रहती हैं ॥ ३८ ॥ हे काम ! जिस प्रकारसे शंकरकी रुचि अवश्यही पार्वतीमें हो जाय वह बात तुमको अवश्य करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ यह करनेहीसे तुम कृतार्थ हो जाओगे, तुम्हारे सब दुःख नाश हो जायँगे इसमें सन्देह. नहीं संसारमें तुम्हारा प्रताप चिरस्थायी हो जायगा ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहनेपर कामदेवका मुखकमल खिल गया और प्रेमपूर्वक इन्द्रसे कहा कि मैं तुम्हारा यह कार्य

अवश्य करूंगा ॥ ४१ ॥ यह वचन कहनेपर ॐम् अर्थात् ऐसाही हो यह कहकर वचन स्वीकार किया शिवकी मायासे मोहित होकर कामने यह बात स्वीकार की ॥ ४२ ॥ जहां साक्षात् योगीश्वर परम तप करते थे वहां प्रसन्न होकर स्त्री और वसन्तके सहित कामदेव गया ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले वहां यह अभिमानी शिवजीकी मायासे मोहित होकर मधुके साथमें अपना मोहनेवाला धर्म विस्तारकरने लगा ॥ १ ॥ जो वसन्तका धर्म है वह सर्वत्र फैल गया, हे मुनीश्वर! उस औषधियोंके स्थानमें जहां महेश्वर तप करतेथे सर्वत्र वसन्तकी महिमा दिखाई दी ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! उस कामके प्रभावसे उस वनके सब वृक्ष फूलगये और बहुतसी बातोंमें विशेषता होने लगी ॥ ३ ॥ आमके मौर प्रकाशित होने लगे अशोकवाटिका खिलउठी इनकी सुगंध कामकी उद्दीपन करनेवाली बढने लगी ॥ ४ ॥ कैरवके फूल भ्रमरोंके गुंजारसे शोभायमान होने लगे इन सबसे कामका वेग बढने लगा ॥ ५ ॥ कोकिलाका शब्द कामका बढानेवाला बढने लगा यह बडा मनोहर और बडा प्यारा लगने लगा ॥ ६ ॥ हे मुने ! इसीप्रकारसे भौरोंका शब्द अनेक प्रकारसे होने लगा यह सबको मनोहर और कामदेवका बढानेवाला हुआ ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः ॥ अग्रहीत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः ॥ ४२ ॥ यत्र योगीश्वरस्साक्षात्तप्यते परमं तपः ॥ जगाम तत्र सुप्रीतस्सदारस्सवसंतकः ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शक्रकामसंवादवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायाविमोहितः ॥ मोहकस्स मधोश्चादौ धर्मं विस्तारयन्स्थितः ॥ १ ॥ वसंतस्य च यो धर्म्मः प्रससार स सर्वतः ॥ तपःस्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर ॥ २ ॥ वनानि च प्रफुल्लानि पादपानां महामुने ॥ आसन्विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर ॥ ३ ॥ पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै ॥ विरेजुस्सुस्मरोद्दीपकराणि सुरभीण्यपि ॥ ४ ॥ कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च ॥ बभूवुर्मदनावेशकराणि च विशेषतः ॥ ५ ॥ सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम् ॥ आसीदति सुरम्यं हि मनोहरमतिप्रियम् ॥ ६ ॥ भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्मुने ॥ मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि ॥ ७ ॥

चारों ओर चन्द्रमाकी निर्मलकांति छिटकने लगी, यह कामिनियों और कामीजनोंको दूतिकाकी समान हुई ॥ ८ ॥ उस समय कालदीपिका मानी और मानिनियोंको विहारके उत्तम समयकी बतलानेवाली और प्रेरण करनेवाली हुई तथा विरही जनोंको अप्रिय सुन्दर पवन वहने लगी ॥ ९ ॥ इस प्रकारसे उस वनमें मुनिजनोंको दुःसह कामके बढानेवाले वसन्तका विस्तार वनवासी और मुनिजनोंको दुःसह हो उठा ॥ १० ॥ हे मुने ! उस समय अचेतनोंको भी कामकी आसक्ति होगई और सचेतन जीवोंकी कथा तो क्या कहीजाय ॥ ११ ॥ इस प्रकार वसन्तने अपना दुःसह प्रभाव फैलाया, इससे सब जीवोंमें कामोद्दीपन होगया ॥ १२ ॥ हे तात ! इस प्रकारसे शंकर अकालमें वसन्तका प्रभाव देखकर परम आश्चर्य करने लगे कारण कि प्रभुने लीलाके निमित्त शरीर धारण कियाहै ॥ १३ ॥ तब दुःख हरनेवाले प्रभु लीलापूर्वक परम वशी हो दुष्कर तपस्या करने लगे ॥ १४ ॥ जब इस प्रकार वसन्तका प्रभाव बढ गया तब कामदेव रतिके सहित आम्रमंजरीका बाण चढाकर उनके वामपार्श्वमें स्थित हुआ ॥ १५ ॥ सब जनोंको मोहित करताहुआ अपना प्रभाव विस्तार करने लगा उस समय रतिसहित कामदेवको देखकर कौन मोहित न हुआ ॥ १६ ॥ जब इस प्रकारसे रति प्रवृत्त हुई तब श्रृंगार भी गणोंके साथ

चंद्रस्य विशदा कांतिर्विकीर्णा हि समंततः ॥ कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साभवत् ॥ ८ ॥ मानिनां प्रेरणा यासीत्तत्काले कालदीपिका ॥ मारुतश्च सुखः साधो ववौ विरहिणोऽप्रियः ॥ ९ ॥ एवं वसंतविस्तारो मदनावेशकारकः ॥ वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुस्सहोऽत्यभूत् ॥ १० ॥ अचेतसामपि तदा कामासक्तिरभून्मुने ॥ सुचेतसां हि जीवानां सेति किं वर्ण्यते कथा ॥ ११ ॥ एवं चकार स मधुस्स्वप्रभावं सुदुस्सहम् ॥ सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः ॥ १२ ॥ अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा ॥ आश्चर्य्यं परमं मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः ॥ १३ ॥ अथ लीलाकरस्तत्र तपः परमदुष्करम् ॥ तताप स वशीशो हि हरो दुःखहरः प्रभुः ॥ १४ ॥ वसंते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः ॥ चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः ॥ १५ ॥ स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन्सकलाञ्जनान् ॥ रत्या युक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः ॥ १६ ॥ एवं प्रवृत्तसुरतौ श्रृंगारोऽपि गणैस्सह ॥ हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरांतिकम् ॥ १७ ॥

हावभावके साथ शिवजीके समीप प्रविष्ट हुआ ॥ १७ ॥ वहां कामदेव प्रगट हुआ, वह यद्यपि मनोजहै तथापि चित्तके बाहरही स्थित रहा वहां उसने शंकरमें कोईछिद्र नहीं पाया जिसके द्वारा हृदयमें प्रवेशकरै ॥ १८ ॥ जब कामदेवने उस योगिराजके हृदयमें विकार उत्पन्न करनेका अवकाश नहीं पाया तब स्मर महादेवजीसे महान् देव होकर भी भयभीत हो मोहित होगया ॥ १९ ॥ जिनके मस्तकका नेत्र महाप्रज्वलित अग्निकी समान प्रकाशित होरहाथा, ध्यानमें स्थित शंकरको अपने अधीन करनेको किसकी सामर्थ्य है ॥ २० ॥ इसी समय पार्वती भी अपनी सखियोंके साथ बहुतसे पुष्प लिये शंकरकी पूजा

मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः ॥ न दृष्टवांस्तदा शंभोश्छिद्रं येन प्रविश्यते ॥ १८ ॥ यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन्योगिवरे स्मरः ॥ महादेवस्तदा सोऽभून्महाभयविमोहितः ॥ १९ ॥ ज्वलज्ज्वालाग्निसंकाशभालनेत्रसमन्वितम् ॥ ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवा ॥ जगाम शिवपूजार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः ॥ २१ ॥ पृथिव्यां यादृशं लोकैस्सौंदर्यं वर्ण्यते महत् ॥ तत्सर्वमधिकं तस्यां पार्वत्यामस्ति निश्चितम् ॥ २२ ॥ आर्तवाणि सुपुष्पाणि धृतानि च तया यदा ॥ तत्सौंदर्य्यं कथं वर्ण्यमपि वर्षशतैरपि ॥ २३ ॥ यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्वतात्मजा ॥ तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः ॥ २४ ॥ तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु ॥ बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ॥ २५ ॥ शृंगारैश्च तदा भावैस्सहिता पार्वती हरम् ॥ जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह ॥ २६ ॥

करने आई ॥ २१ ॥ पृथिवीमें जितनी सुन्दरताईका वर्णन होताहै उससे भी अधिक जहांतक सुन्दरताईकी सम्भावना पाई जातीहै वह सब उन पार्वती जीमें थी ॥ २२ ॥ जिससमय वह ऋतुसम्बन्धी पुष्प धारण करके चली वह सुन्दरता तो सैकडों वर्षमें भी उत्तम वर्णन करनेवालोंकरकेभी वर्णन नहीं हो सकती ॥ २३ ॥ जिसही समय पार्वती शिवजीके समीप गई उसी समय शिवजी ध्यान छोडकर समाधिसे क्षण भरके लिये जागेथे ॥ २४ ॥ बस कामदेव यही छिद्र पाय बडा प्रसन्न होकर पार्श्वमें स्थित हो शिवजीको अपने बाणसे प्रसन्न करने लगा ॥ २५ ॥ हे मुने ! उससमय शृंगार और भावोंके सहित पार्वती

माना [illegible] सहायताके लियेही सुन्दर सुगन्ध वायुके साथ शिवजीके समीप आई ॥ २६ ॥ उसी समय शूलधरकी पार्वतीजीके निरीक्षणादि व्यापारोंमें रुचि बढानेके लिये धनुष चढाकर बडी सावधानीसे कामदेवने शंकरके ऊपर पुष्पबाणका प्रहार किया ॥ २७ ॥ जिस प्रकारसे नित्यप्रति पार्वती शिवजीके समीप आकर प्रणाम पूजन सामने स्तुति करती उसी प्रकारसे प्रणाम और पूजादिक करके स्तुति करनेके अर्थ शंकरजीके सन्मुख स्थित हुई ॥ २८ ॥ जिस समय प्रभु शंकरजीने पार्वतीको देखा शिवजीको उसी दिन विशेष देखते जबही जाना कि वह लज्जासे तथा स्त्रीस्वभावसे अपने अंगोंको संकुचित करने लगीं ॥ २९ ॥ प्रभु शिवजी उसको वह वर जो विधाताने दिया था स्मरणकर पार्वतीके अंगोंको बडाई करने लगे ॥ ३० ॥ शिवजी बोले क्या यह मुख

तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः ॥ द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुंचत्सुसंयतः ॥ २७ ॥ यथा निरंतरं नित्यमागच्छति तथा शिवम् ॥ तन्नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता ॥ २८ ॥ सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि ॥ विवृण्वती तदांगानि स्त्रीस्वभावात्सुलज्जया ॥ २९ ॥ सुसंस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः ॥ शिवोऽपि वर्णयामास तदंगानि मुदा मुने ॥ ३० ॥ शिव उवाच ॥ किं मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम् ॥ भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः ॥ ३१ ॥ अधरः किं च बिंबं किं किं नासा शुकचंचुका ॥ किं स्वरः कोकिलालापः किं मध्यं चाथ वेदिका ॥ ३२ ॥ किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः ॥ पुष्पाणि किं च वर्ण्यंते वस्त्राणि च तथा पुनः ॥ ३३ ॥ लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेकत्र विनिर्मितम् ॥ सर्वथा रमणीयानि सर्वांगानि न संशयः ॥ ३४ ॥ अहो धन्यतरा चेयं पार्वत्यद्भुतरूपिणी ॥ एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी कापि सुरूपिणी ॥ ३५ ॥

है वा चन्द्रमा क्या यह नेत्रहैं वा कमल क्या यह दोनों भृकुटीहैं यह महात्मा कामदेवका धनुष है ॥ ३१ ॥ यह नीचेका अधर है वा बिंबाफल नासिका है वा तोतेकी चोंच क्या स्वर है अथवा कोकिलाका आलाप क्या मध्यभाग है अथवा वेदी ॥ ३२ ॥ अनूठी इसकी गतिका वर्णन किया जाय वा अनूठे रूपका वर्णन किया जाय वा अनूठे इसके पुष्पके गहने वा वस्त्रोंका वर्णन किया जाय ॥ ३३ ॥ सृष्टिमें जो लालित्यहै वह मानो विधाताने इसमेंही एकत्र निर्माण कियाहै इसमें सन्देह नहीं इसके सर्वांग सर्वथा मनोहरहैं ॥ ३४ ॥ अहो अद्भुत रूपवाली पार्वतीको धन्य है इसकी समान लोकमें कोई स्वरूपवाली

स्त्री नहीं है ॥ ३५ ॥ यह लावण्यकी निधान अद्भुत अंगोंको धारण करती है मुनियोंकी मोहनेवाली और महासुखकी बढानेवालीहै ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले इसप्रकारसे शिवजी बारबार पार्वतीके अंगोंका वर्णन करके विधाताके दिये वरदानके अध्याससे विरामको प्राप्त हुए ॥ ३७॥ और ज्यों ही शंकरजी हाथ चलानेके स्थानमें अपना हाथ वस्त्रान्तर शरीर वस्त्रके मध्यकी ओर जबतक चलावैं कि ऐसे शिवजीको जान प्रथमही स्त्री स्वभावसे लज्जित हो पार्वती दूर स्थित होगई ॥ ३८ ॥ और बारंबार शिवजीकी ओर कटाक्ष करके देखती हुई अपने अंगोंको प्रकाशित करतीं मुसकुराने लगीं, हे मुने ! उनके ऐसे चरित्रके महाआनंदसे पार्वतीको कुछ मुस्कान होगई ॥ ३९ ॥ इस प्रकार पार्वतीकी चेष्टा देखकर शंकरजीको मोह होगया और महालीला

सुलावण्यनिधिश्श्रेयमद्भुतांगानि बिभ्रती ॥ विमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्द्धिनी ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वर्णयित्वा तु तदंगानि मुहुर्मुहुः ॥ विधिदत्तवराध्यासाद्धरस्तु विरराम ह ॥ ३७ ॥ हस्तं वस्त्रांतरे यावदचालयत शंकरः ॥ स्त्रीस्वभावाच्च सा तत्र लज्जिता दूरतो गता ॥ ३८ ॥ विवृण्वती निजांगानि पश्यंती च मुहुर्मुहुः ॥ सुवीक्षणैर्महामोदात्सुस्मिताभूच्छिवा मुने ॥ ३९ ॥ एवं चेष्टां तदा दृष्ट्वा शंभुर्मोहमुपागतः ॥ उवाच वचनं चैवं महालीलो महेश्वरः ॥ ४० ॥ अस्या दर्शनमात्रेण महानंदो भवत्यलम् ॥ यदालिंगनमेतस्याः कुर्यां किन्तु ततस्सुखम् ॥ ४१ ॥ क्षणमात्रं विचार्य्येत्थं संपूज्य गिरिजां ततः ॥ प्रबुद्धस्स महायोगी सुविरक्तो जगाविति ॥ ४२ ॥ किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः ॥ कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वापि प्रभुरीश्वरः ॥ ४३ ॥ ईश्वरोहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शनं खलु ॥ तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति ॥ ४४ ॥

करनेवाले महेश्वर कहने लगे ॥ ४० ॥ जब कि इस पार्वतीके दर्शनमात्रसे महा आनंद होताहै, फिर जब इसका आलिंगन करूं तो उस सुखकी सीमा कब हो सकती है ॥ ४१ ॥ क्षणमात्रमेंही ऐसा विचार करते और गिरिजाकी बडाई करते ज्यों ही वह योगी चैतन्य हुए कि त्योंही विरक्त होकर यों बोले ॥ ४२ ॥ यह क्या विचित्र चरित्र हुआ मुझे किसप्रकारसे मोह हुआ प्रभु ईश्वर होकर भी कामने मुझे किस प्रकारसे विकृत किया ॥ ४३ ॥ जब [illegible] होकर दूसरेके अंगस्पर्शकी इच्छा करूं तो अन्य असमर्थ क्षुद्र पुरुष क्या क्या न करैंगे ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त होकर उस पार्वतीसे पर्यंक आसादनको शंकरने निवारण किया, क्या सर्वात्मा परेश कहीं पतित हो सकते हैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे कामकृतविकारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारदजी बोले ! हे ब्रह्मन् ! हे महाभाग ! इसके पीछे फिर क्या हुआ आप कृपा करके इस पापनाशिनी कथाको वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! इसके पीछे जो हुआ सो सुनो तुम्हारे स्नेहसे मैं शिवलीलाको वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ महायोगी महेश्वरने अपनी धीरतामें विघ्न देखकर बडे विस्मित होकर विचार किया और इस बातमें

एवं वैराग्यमासाद्य पर्य्यंकासादनं च तत् ॥ वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे कामकृतविकारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् विधे महाभाग किं जातं तदनंतरम् ॥ कथय त्वं प्रसादेन तां कथां पापनाशिनीम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयतां सा कथा तात यज्जातं तदनंतरम् ॥ तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि शिवलीलां मुदावहाम् ॥ २ ॥ धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वरः ॥ विचिचिंतं मनस्येवं विस्मितोऽति ततः परम् ॥ ३ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ किमु विघ्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम् ॥ केन मे विकृतं चित्तं कृतमत्र कुकर्मिणा ॥ ४ ॥ कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि वै कृतम् ॥ जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलंघिता ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विचिंत्येत्थं महायोगी परमेशस्सतां गतिः ॥ दिशो विलोकयामास परितश्शंकितस्तदा ॥ ६ ॥ वामभागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम् ॥ स्वशरं क्षेप्तुकामं हि गर्वितं मूढचेतसम् ॥ ७ ॥ तं दृष्ट्वा तादृशं कामं गिरिशस्य परात्मनः ॥ संजातः क्रोधसंमर्दस्तत्क्षणादपि नारद ॥ ८ ॥

बडा आश्चर्य माना ॥ ३ ॥ शिवजी बोले उत्तम तपस्याकरते हुए यह क्या विघ्न उत्पन्न हुए हैं किस कुकर्मीने मेरे चित्तमें यह विकार प्रगट किया ॥ ४ ॥ मैंने प्रेमसे अन्य स्त्रीको वर्णन किया यह बडा धर्मसे विरोध हुआ, और शास्त्रकी मर्यादा उल्लंघन की ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले परमेश सतांगति महायोगी इस प्रकार विचार करके शंकित हो सब दिशाओंको अवलोकन करने लगे ॥ ६ ॥ तब देखा कि वाम ओर धनुष चढाये हुए कामदेव विद्यमान है और बाण छोडनेकी इच्छासे वह मूढ महा गर्वित हो रहा है ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे कामदेवको देख परमात्मा गिरीशको उस समय महाक्रोध उत्पन्न हो गया ॥ ८ ॥

हे मुने ! उसी समय कामदेवने भयसे धन्वाबाण छोडकर अन्तरिक्षमें स्थिति करीथी कि मैंने दुर्निवार अमोघ अस्त्र शंकरजीके ऊपर चलाया है ॥ ९ ॥
वह अमोघ अस्त्र उन परमात्मामें मोघ निष्फलही शान्त होगया अनन्तर परमेश्वरके क्रोध करनेमें ॥ १० ॥ शिवके ऊपर अस्त्रके मोघ होनेमें कामदेवको भय
प्राप्त हुआ, और मृत्युंजय प्रभुको देखकर वह कम्पित होगया ॥ ११ ॥ तब भयसे व्याकुल हो कामदेवने इन्द्रादि देवताओंका स्मरण किया, हे मुनिश्रेष्ठ !
जब कामदेवका प्रयास निरर्थक हुआ ॥ १२ ॥ हे मुनीश्वर ! जब कामदेवने उन इन्द्रादि देवताओंका स्मरण किया तब वे सब देवता आकर और प्रणाम कर

कामः स्थितोऽन्तरिक्षे स धृत्वा तत्सशरं धनुः ॥ चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारममोघं शंकरे मुने ॥ ९ ॥ बभूवामोघमस्त्रं तु मोघं तत्परमा
त्मनि ॥ समशाम्यत्ततस्तस्मिन्संक्रुद्धे परमेश्वरे ॥ १० ॥ मोघीभूते शिवे स्वेस्त्रे भयमापाशु मन्मथः ॥ चकंपे च पुरः स्थित्वा दृष्ट्वा
मृत्युंजयं प्रभुम् ॥ ११ ॥ सस्मार त्रिदशान्सर्वान्शक्रादीभन्यविह्वलः ॥ स स्मरो मुनिशार्दूल स्वप्रयासे निरर्थके ॥ १२ ॥ कामेन
सुस्मृता देवाश्शक्राद्यास्ते मुनीश्वर ॥ आययुः सकलास्ते हि शंभुं नत्वा च तुष्टुवुः ॥ १३ ॥ स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्याति हरस्य
हि ॥ तृतीयात्तस्य नेत्राद्धै निस्ससार ततो महान् ॥१४॥ ललाटमध्यगात्तस्मात्स वह्निर्द्रुतसम्भवः ॥ जज्वालोर्द्ध्वशिखो दीप्तः प्रल
याग्निसमप्रभः ॥ १५ ॥ उत्पत्य गगने तूर्णं निपत्य धरणीतले ॥ भ्रामंभ्रामं स्वपरितः पपात मेदनीं परि ॥ १६ ॥ भस्मसात्कृतवा
न्साधो मदनं तावदेव हि ॥ यावच्च मरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ १७ ॥ हते तस्मिन्स्मरे वीरे देवा दुःखमुपागताः ॥ रुरुदु
र्विह्वलाश्चातिक्रोशंतः किमभूदिति ॥ १८ ॥

शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ जिस समय यह देवता शिवजीकी स्तुतिकर रहे थे उस समय क्रुद्ध हुए शिवजीके तीसरे नेत्रसे महान् ॥ १४ ॥
ललाटके मध्यसे अग्निका पुंज प्रगट होगया, और वह प्रलयाग्निकी समान ऊर्ध्व शिखासे प्रदीप्त हो जल उठा ॥ १५ ॥ तत्काल आकाशकी ओर धावमान
होकर और फिर भूमिकी ओर धावमान होकर अपने चारों ओर धावमान होतीहुई अग्निको देख कामदेव पृथिवीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ जबतक देवता यह
कह रहे थे कि क्षमा करो क्षमा करो तबतक उस अग्निने कामदेवको भस्म कर दिया ॥ १७ ॥ उस वीर कामदेवके नष्ट होनेमें देवताओंको बडा दुःख हुआ

और व्याकुल हो रोने लगे कि यह क्या हुआ ॥ १८ ॥ उसी समय भयसे श्वेतांग (पसीनेवाली) विकृतात्मा हुई गिरिराजकी पुत्री भी अपनी सखियोंको साथ लिये अपने मन्दिरमें गईं ॥ १९ ॥ क्षणमात्रके निमित्त तो रति उस समय संज्ञाहीन होगई और स्वामीकी मृत्युके दुःखसे पतित हो मृतककी समान होगई ॥ २० ॥ संज्ञाको प्राप्त हो रति दुःखसे व्याकुल हो विलाप करती अनेक प्रकारके वचन बोलने लगी ॥ २१ ॥ रति बोली क्या करूं कहां जाऊं यह देवतोंने क्या किया मेरे स्वामीको यहां भेजकर नाश कर दिया ॥ २२ ॥ हाहा नाथ ! हे स्मर ! हे स्वामी ! हा मेरे प्यारे प्राणनाथ ! सुखके देनेवाले

श्वेतांगा विकृतात्मा च गिरिराजसुता तदा ॥ जगाम मंदिरं स्वं च समादाय सखीजनम् ॥ १९ ॥ क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसंज्ञा साभवत्तदा ॥ भर्तृमृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता इव ॥ २० ॥ जातायां चैव संज्ञायां रतिरत्यंतविह्वला ॥ विललाप तदा तत्रोच्चरंती विविधं वचः ॥ २१ ॥ ॥ रतिरुवाच ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह ॥ मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम् ॥ २२ ॥ हा हा नाथ स्मर स्वामिन्प्राणप्रिय सुखप्रद ॥ इदं तु किमभूदत्र हा हा प्रिय प्रियेति च ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थं विलपती सा तु वदंती बहुधा वचः ॥ हस्तौ पादौ तदास्फाल्य केशानत्रोटयत्तदा ॥ २४ ॥ तद्विलापं तदा श्रुत्वा तत्र सर्वे वनेचराः ॥ अभवन्दुःखितास्सर्वे स्थावरा अपि नारद ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र देवाश्शक्रादयोऽखिलाः ॥ रतिमूचुस्समाश्वास्य संस्मरंतो महेश्वरम् ॥ २६ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ किंचिद्भस्म गृहीत्वा तु रक्ष यत्नाद्भयं त्यज ॥ जीवयिष्यति स स्वामी लप्स्यसे त्वं पुनः प्रियम् ॥ २७ ॥ सुखदाता न कोप्यस्ति दुःखदाता न कश्चन ॥ सर्वोऽपि स्वकृतं भुंक्ते देवाञ्शोचसि वै वृथा ॥ २८ ॥

हे प्रिय ! हाय यह क्या हुआ ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे विलाप करती अनेक प्रकारके वचन बोलने लगी, हाथ पैरं पटकने और केशोंको नोंचने लगी ॥ २४ ॥ उस विलापको सुनकर सब वनके चर अचर दुःखी होगये ॥ २५ ॥ हे नारद ! उस समय इन्द्रादि सब देवता महेश्वरका स्मरण करते रतिके समीप आकर पूछने लगे ॥ २६ ॥ देवता बोले हे रति ! कामकी थोडी भस्म लेकर तू यत्नसे उसकी रक्षाकर तेरा स्वामी फिर जीवित होगा, और तू उसको फिर प्राप्त होगी ॥ २७ ॥ सुख दुःखका देनेवाला किसीको कोई नहीं है सब अपना कर्म भोगते हैं तू वृथाही देवताओंको पतिके नाशमें हेतु

विचारती है ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार रतिसे कहकर सब देवता शिवजीके पास गये और भक्तिसे शिवजीको प्रसन्न कर यह वचन बोले ॥२९॥
देवता बोले हे प्रभो शंकर ! हे शरणागत वत्सल ! हे महेशान ! आप हमारे ऊपर कृपा करके हमारे वचन सुनिये ॥ ३० ॥ हे शंकर ! प्रीतिसे कामदेवके
कर्त्तव्यको आप विचारैं कामदेवनें यह जो कुछ किया है हे महेश्वर ! अपने स्वार्थके लिये नहीं किया है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! जब कि दुष्ट तारकासुरने
सब देवताओंको पीडित कर रक्खा है तब हमनेही यह कर्म कामदेवसे कराया है, हे शंकर ! इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ३२ ॥ हे देव ! यह इकली रति

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याश्वास्य रतिं देवास्सर्वे शिवमुपागताः ॥ सुप्रसाद्य शिवं भक्त्या वचनं चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥
भगवञ्छ्रूयतामेतद्वचनं नश्शुभं प्रभो ॥ कृपां कृत्वा महेशान शरणागतवत्सल ॥ ३० ॥ सुविचारय सुप्रीत्या कृतिं कामस्य शंकर ॥
कामेनैतत्कृतं यत्र न स्वार्थं तन्महेश्वर ॥ ३१ ॥ दुष्टेन पीडितैर्देवैस्तारकेणाऽखिलैर्विभो ॥ कर्म तत्कारितं नाथ नान्यथा विद्धि
शंकर ॥ ३२ ॥ रतिरेकाकिनी देव विलापं दुःखिता सती ॥ करोति गिरिश त्वं च तामाश्वासय सर्वद ॥ ३३ ॥ संहारं कर्तुकामोऽ
सि क्रोधेनानेन शंकर ॥ दैवतैस्सह सर्वेषां हतवांस्तं यदि स्मरम् ॥ ३४ ॥ दुःखं तस्या रतेर्दृष्ट्वा नष्टप्रायाश्च देवताः ॥ तस्मात्त्वया च
कर्त्तव्यं रत्याश्शोकापनोदनम् ॥ ३५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नो भगवाञ्छिवः ॥ देवानां सकलानां च वचनं
चेदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ ॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे मद्वचश्शृणुतादरात् ॥ मत्कोपेन च यज्जातं तत्तथा नान्यथा
भवेत् ॥ ३७ ॥ अनंगस्तावदेव स्यात्कामो रतिपतिः प्रभुः ॥ यावद्यावतरेत्कृष्णो धरण्यां रुक्मिणीपतिः ॥ ३८ ॥

विलाप करके महारोरही है हे गिरीश ! आप इसको तो आश्वासन दे ॥ ३३ ॥ हे शंकर ! यदि क्रोधसे कामको नष्ट करनेकी इच्छा की तो सब देवताओं
कोही मानों आपने मार दिया ॥ ३४ ॥ रतिका दुःख देखकर सब देवता मृतप्राय हो रहे हैं इससे आपको रतिका शोक दूर करना चाहिये ॥ ३५ ॥
ब्रह्माजी बोले यह उनके वचन सुनकर भगवान् शंकर सब देवताओंसे प्रसन्न होकर इस प्रकारके वचन बोले ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले देवता और ऋषि
सब कोई आदरसे मेरे वचन सुनें मेरे क्रोधसे जो कुछ होगया है वह अन्यथा नहीं हो सक्ता ॥ ३७ ॥ रतिपति काम अनंगरूपसे रहैगा, जबतक

रुक्मिणीपति कृष्णका संसारमें अवतार होगा ॥ ३८ ॥ जब द्वारकामें स्थित होकर कृष्ण पुत्रोंको उत्पन्न करैंगे तब वह रुक्मिणीमें कामको भी उत्पन्न करैंगे ॥ ३९ ॥ इसमें सन्देह नहीं उसका नाम प्रद्युम्न होगा, उसके उत्पन्न होतेही शंबर उसको हरकर लेजायगा ॥ ४० ॥ वह दानवोत्तम शंबर उसको हरण कर समुद्रमें डाल देगा और उसको मृतक जानकर वह मूढ अपने घरमें चला जावेगा ॥४१ ॥ तबतक रतिको उसके नगरमें सुखपूर्वक रहना चाहिये वहीं इसको इसके पति प्रद्युम्नकी प्राप्ति अवश्य होगी ॥ ४२ ॥ हे देवताओ ! वह काम उससे मिलकर संग्राममें शंबरको मारकर अपनी कामिनीको

द्वारकायां यदा स्थित्वा पुत्रानुत्पादयिष्यति ॥ तदा कृष्णस्तु रुक्मिण्यां काममुत्पादयिष्यति ॥ ३९ ॥ प्रद्युम्ननाम तस्यैव भविष्यति न संशयः ॥ जातमात्रं तु तं पुत्रं शंबरस्संहरिष्यति ॥ ४० ॥ हत्वा प्रास्य समुद्रे तं शंबरो दानवोत्तमः ॥ मृतं ज्ञात्वा वृथा मूढो नगरं स्वं गमिष्यति ॥ ४१ ॥ तावच्च नगरं तस्य रते स्थेयं यथासुखम् ॥ तत्रैव स्वपतेः प्राप्तिः प्रद्युम्नस्य भविष्यति ॥ ४२ ॥ तत्र कामो मिलित्वा तं हत्वा शम्बरमाहवे ॥ भविष्यति सुखी देवाः प्रद्युम्नाख्यस्स्वकामिनीम् ॥ ४३ ॥ तदीयं चैव यद्द्रव्यं नीत्वा स नगरं पुनः ॥ गमिष्यति तया सार्द्धं देवास्सत्यं वचो मम ॥ ४४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचश्शंभोर्देवा ऊचुः प्रणम्य तम् ॥ किंचिदुच्छ्वसिताश्चित्ते करौ बद्ध्वा नतांगकाः ॥ ४५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ शीघ्रं जीवय कामं त्वं रक्ष प्राणान् रतेर्हर ॥ ४६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्यामरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ पुनर्बभाषे करुणासागरस्सकलेश्वरः ॥ ४७ ॥ शिव उवाच ॥ ॥ हे देवास्सुप्रसन्नोऽस्मि जीवयिष्यामि चांतरे ॥ कामः स मद्गणो भूत्वा विहरिष्यति नित्यशः ॥ ४८ ॥

प्राप्तकर सुखी होगा ॥ ४३ ॥ हे देवताओ ! उसका सब द्रव्य लेकर रतिके साथ वह द्वारका पुरीमें जायगा, यह मेरा वचन सत्य है ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुन देवता शंकरको प्रणामकर कुछेक दुःखसे निश्वास लेकर हाथ जोडकर स्थित हुए ॥ ४५ ॥ देवता बोले ! हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! आप कामको शीघ्र जीवदान देकर रतिके प्राणोंकी रक्षाकीजिये ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए, और करुणासागर सकलेश्वरने फिर कहा ॥४७॥ शिवजी बोले हे देवताओ ! मैं प्रसन्नहूं, इस अवधिके मध्यमें भी काम

को मैं जीवित करूंगा वह काम मेरा गण होकर नित्य विहार करैगा ॥ ४८ ॥ हे देवताओ ! तुम इस आख्यानको किसीसे मत कहना तुम अपने स्थानको जाओ मैं तुम्हारे सब दुःख नाश करूंगा ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुन देवता ज्यौं ही स्तुति करने लगे कि शिवजी अन्तर्धान होगये, और सब देवता दुःख छूटजानेसे विस्मय रहित होगये ॥ ५० ॥ और रतिको समझाकर रुद्रके वचनमें स्थित हुए, और रतिको शंकरके वचन सुनाय अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ५१ ॥ हे मुने ! रतिभी शम्बरके स्थानको गई हे मुनीश्वर ! वहां वह शिवजीके बताये कालकी प्रतीक्षा करने लगी ॥ ५२ ॥

नाख्येयमिदमाख्यानं कस्यचित्पुरतस्सुराः ॥ गच्छत स्वस्थलं दुःखं नाशयिष्यामि सर्वतः ॥ ४९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे रुद्रो देवानां स्तुवतां तदा ॥ सर्वे देवास्सुप्रस्सन्ना बभूवुर्गतविस्मयाः ॥ ५० ॥ ततस्तां च समाश्वास्य रुद्रस्य वचने स्थिताः ॥ उक्त्वा वचस्तदीयं च स्वं स्वं धाम ययुर्मुने ॥ ५१ ॥ कामपत्नी समादिष्टं नगरं सा गता तदा ॥ प्रतीक्षमाणा तं कालं रुद्रादिष्टं मुनीश्वर ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामनाशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ ॥ १९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ विधे नेत्रसमुद्भूतवह्निज्वाला हरस्य सा ॥ गता कुत्र वद त्वं तच्चरित्रं शशिमौलिनः ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ यदा भस्म चकाराशु तृतीयनयनानलः ॥ शम्भोः कामं प्रजज्वाल सर्वतोविफलस्तदा ॥ २ ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ सर्वदेवर्षयस्तात शरणं मां ययुर्द्रुतम् ॥ ३ ॥ सर्वे निवेदयामासुस्तद्दुःखं मह्यमाकुलाः ॥ सुप्रणम्य सुसंस्तूय करौ बद्ध्वा नताननाः ॥ ४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे कामनाशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९ ॥नारदजी बोले हे ब्रह्माजी ! वह शिवजीके नेत्रसे निकलीहुई अग्निकी ज्वाला कहां गई यह शिवजीका चरित्र हमसे कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले जब तीसरे नेत्रकी अग्निने कामदेवको भस्म करदिया तब वह अग्नि विना प्रयोजनही सब ओरको धावमान हुई ॥ २ ॥ तब चर अचर त्रिलोकीमें सब ओरसे हाहाकार मच गया हे तात ! उस समय सब देवता और ऋषि मेरी शरणमें आये॥ ३ ॥और व्याकुल हो सबने मुझसे दुःख निवेदन किया, और प्रणामकर हाथ जोड खडे रहगये, और शिर झुकालिया॥ ४ ॥

अन्तर्धान होगया ॥ २२ ॥ जब यह भय छूट गया तब सब जगत् स्वस्थ होगया हे मुने ! देवता और मुनि सब महा सुखी हुए ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवम० भा० टी० रुद्र० तृतीयपार्वतीखंडे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारदजी बोले हे तात ब्रह्माजी ! हे महापंडित ! विष्णुजीके शिष्य ! त्रिलोकीके रचनेवाले यह महात्मा शंकरकी आपने बडी अद्भुत कथा कही है ॥ १ ॥ जब कामदेव शंकरके तीसरे नेत्रकी अग्निसे भस्म होगया और वह अग्नि सागरमें प्रविष्ट होगई तब क्या हुआ ॥ २ ॥ हिमालयकी पुत्री देवी पार्वतीने तब क्या किया वह सखियों सहित कहां गई हे दयानिधे ! सो आप

स्वास्थ्यं प्राप जगत्सर्वं निर्मुक्तं तद्भवाद्भयात् ॥ देवा बभूवुः सुखिनो मुनयश्च महामुने ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे वडवानलचरितवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य त्रिलोककृत् ॥ अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शंकरस्य महात्मनः ॥ १ ॥ भस्मीभूते स्मरे शंभुतृतीयनयनाग्निना ॥ तस्मिन्प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः ॥ २ ॥ किं चकार ततो देवी पार्वती कुधरात्मजा ॥ गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु तात महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ॥ महोतिकारकस्यैव स्वामिनो मम चादरात् ॥ ४ ॥ यदादहच्छंभुनेत्रोद्भवो हि मदनं शुचिः ॥ महाशब्दोऽद्भुतोऽभूद्वै येनाकाशः प्रपूरितः ॥ ५ ॥ तेन शब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च ॥ सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला ॥ ६ ॥ तेन शब्देन हिमवान्परिवारसमन्वितः ॥ विस्मितोऽभूदतिक्लिष्टस्सुतां स्मृत्वा गतां ततः ॥ ७ ॥ जगाम शोकं शैलेशो सुतां दृष्ट्वातिविह्वलाम् ॥ ८ ॥ रुदंतीं शंभुविरहादाससादाचलेश्वरः ॥ ९ ॥

कहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! हे महाभाग्य ! आप शंकरके चरित्र सुनिये वह मेरे स्वामी बडे कर्तव्य करते हैं आदरसे उनके चरित्र सुनो ॥ ४ ॥ जिससमय शंकरकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म होगया उस समय एक ऐसा भयंकर शब्द हुआ जिससे आकाश पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ यह महाशब्दसे कामदेवको दग्ध हुआ विचारकर पार्वती व्याकुल हो सखियोंके साथ अपने स्थानको गई ॥ ६ ॥ और उस शब्दसे हिमालय भी अपने परिवारके सहित बडे विस्मित हो अपनी पुत्रीको स्मरणकर वहां गये ॥ ७ ॥ सुताको विह्वल देखकर शैलराजको बडा कष्ट हुआ ॥ ८ ॥ जो कि शिवजीके विरहसे व्याकुल

थी उसी समय वहां पर्वतराज आनकर प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ और वहां पहुँचकर पार्वतीके नेत्रोंके आंसू अपने हाथोंसे पोंछे हे शिवे ! मत डरो मत रोओ ऐसा कहकर उसे ग्रहण किया ॥ १० ॥ अचलेश्वर हिमालयने शीघ्रही उसको अपनी गोदीमें बैठाया और उस घबराई हुईको समझाते हुए अपने स्थानमें ले गये ॥ ११ ॥ कामदेवको भस्म करके शिवजी अन्तर्धान होगये तब पार्वती उनके विरहसे महाव्याकुल हुई और किसी प्रकार कहीं उसको शान्ति न मिली ॥ १२ ॥ तब पार्वती पिताके घर जाकर मातासे मिली उस पार्वतीने मानो अपनेको फिर नवीन जन्म माना ॥ १३ ॥ और अपने रूपकी निन्दा करती हुई

आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ॥ मा बिभीहि शिवेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ॥ १० ॥ क्रोडे कृत्वा सुतां शीघ्रं हिम
वानचलेश्वरः ॥ स्वमालयमथानिन्ये सांत्वयन्नतिविह्वलाम् ॥ ११ ॥ अंतर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा ॥ विकलाभूद् भृशं
सा वै लेभे शर्म न कुत्रचित् ॥ १२ ॥ पितुर्गृहं तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा ॥ पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा ॥
॥ १३ ॥ निनिंद च स्वरूपं सा हा हतास्मीत्यथाब्रवीत् ॥ सखीभिर्बोधिता चापि न बुबोध गिरींद्रजा ॥ १४ ॥ स्वपती च पिबंती
च सा स्नाती गच्छती शिवा ॥ तिष्ठंती च सखीमध्ये न किंचित्सुखमाप ह ॥ १५ ॥ धिक्स्वरूपं मदीयं च तथा जन्म च कर्म्म च ॥
इति ब्रुवंती सततं स्मरंती हरचेष्टितम् ॥ १६ ॥ एवं सा पार्वती शंभुविरहोत्क्लिष्टमानसा ॥ सुखं न लेभे किंचिद्वाऽब्रवीच्छिवशिवेति
च ॥ १७ ॥ निवसंती पितुर्गेहे पिनाकिगतचेतना ॥ शुशोचाथ शिवा तात मुमोह च मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ शैलाधिराजोप्यथ मेनका
पि मैनाकमुख्यास्तनयाश्च सर्वे ॥ तां सांत्वयामासुरदीनसत्त्वा हरं विसस्मार तथापि नो सा ॥ १९ ॥

हा मैं मरी ऐसा कहने लगी सखियोंके समझानेपर भी पार्वती कुछ न समझी ॥ १४ ॥ सोते पीते स्नान करते जाते हुए तथा सखीजनोंके मध्यमें बैठते हुए उसको कहीं कुछ सुख न मिला ॥ १५ ॥ मेरे स्वरूप और जन्म कर्मको धिक्कार है इस प्रकार कहती हुई निरन्तर हरकी चेष्टा स्मरण करने लगी ॥ १६ ॥ इस प्रकार पार्वती शिवजीके विरहसे व्याकुल होकर कहीं सुखको प्राप्त न हो शिव शिव कहने लगी ॥ १७ ॥ पिताके घर निवास करती शंकरमेंही मन लगाये रही और हे तात ! पार्वती शोच करती बारंबार मोहको प्राप्त होगई ॥ १८ ॥ शैलराज उनकी स्त्री मेना और मैनाकको आदि लेकर उनके सब पुत्र

पार्वतीको बहुत प्रकारसे समझाने लगे पर वह बडे धैर्यवाली तब भी शंकरजीको किसी प्रकार न विसारती भई ॥ १९ ॥ हे नारदजी ! तब इन्द्रने बुद्धिमान् हिमालयके स्थानपर तुमको नियुक्त किया और विचरते विचरते तुम वहां पहुँचे ॥ २० ॥ तब तुम्हारी महात्मा भूधरने पूजा की और पश्चात् श्रेष्ठ आसनपर बैठकर उनसे कुशल तुमने पूछी ॥ २१ ॥ तब हिमालयने पार्वतीकी सेवाका चरित्र और शिवजीके द्वारा कामदहन वर्णन किया ॥ २२ ॥ यह सुनकर मुनिराजने कहा कि तुम शैलेश शिवका भजन करो और उनका आमन्त्रण करके मनसे शंकरका भजनकर तुम उठकर चले ॥ २३ ॥ फिर लोकोपकारी

अथ देवमुने धीमन्हिमवत्प्रस्तरे तदा ॥ नियोजितो बलभिदागमस्त्वं कामचारतः ॥ २० ॥ ततस्त्वं पूजिस्तेन भूधरेण महात्मना ॥
कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्टो वरासने ॥ २१ ॥ ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमादितः ॥ हरसेवान्वितं कामदहनं च हरेण ह
॥ २२ ॥ श्रुत्वावोचो मुने त्वं तु तं शैलेशं शिवं भज ॥ तमामंत्र्योदतिष्ठस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम् ॥ २३ ॥ तं समुत्सृज्य रहसि
कालीं तामगमस्त्वरा ॥ लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिववल्लभः ॥ २४ ॥ आसाद्य कालीं संबोध्य तद्धिते स्थित आदरात् ॥ अवो
चस्त्वं वचस्तथ्यं सर्वेषां ज्ञानिनां वरः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु कालि वचो मे हि सत्यं वच्मि दयारतः ॥ सर्वथा ते हितकरं
निर्विकारं सुकामदम् ॥ २६ ॥ सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा विना ॥ गर्ववत्या यद्ध्वंसीदीनानुग्रहकारकः ॥ २७ ॥ विरक्तश्च स
ते स्वामी महायोगी महेश्वरः ॥ विसृष्टवान्स्मरं दग्ध्वा त्वां शिवे भक्तवत्सलः ॥ २८ ॥

शंकरजीके प्यारे परमज्ञानी उन्हें छोडकर तुमगये एकान्तमें पार्वतीजीके समीप शीघ्रतासे कहा ॥ २४ ॥ तब तुम कालीके समीप आकर और आदरसे उसके हितके निमित्त सम्बोधन करके सब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तुम श्रेष्ठ वचन बोले ॥ २५ ॥ नारदजी बोले हे काली ! मेरे वचन सुनो मैं दयामें तत्पर होकर वचन कहता हूं जो सर्वथा आपके हितकारी निर्विकार कामनाके देनेवाले हैं ॥ २६ ॥ तुमने तपस्याके विना महादेवजीकी सेवा की और गर्वके साथ सेवा की और वे दीनके अनुग्रह करनेवाले हैं उन्होंने तुम्हारा गर्व नष्ट कर दिया ॥२७॥ महायोगी महेश्वर वह तुम्हारे स्वामी विरक्तहैं हे शिवे ! भक्तवत्सलताके

कारणही तो कामदेवको नष्ट करके तुमको छोड दिया ॥ २८ ॥ इस कारण तुम बहुत कालतक तपस्या करके महादेवजीकी आराधना करो, तपसे संस्कारको प्राप्त हुई तुमको भगवान् स्वीकार करैंगे ॥२९॥ तुम भी कभी शंकरको त्यागन नहीं करोगी हे देवी ! शंकरके सिवाय तुम भी दूसरे पतिको हठसे ग्रहण नहीं करोगी ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार पार्वती नारदजीके वचन सुनकर कुछेक ऊँची श्वास लेकर हाथ जोडकर तुमसे बोली ॥ ३१ ॥ पार्वती बोली हे नारदजी ! आप तो सब जगतके उपकार करनेवाले हो रुद्रकी अराधना करनेके निमित्त आप मुझे मंत्र दीजिये ॥ ३२ ॥ सद्गुरुके विना

तस्मात्त्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ॥ तपसा संस्कृतां रुद्रस्स द्वितीयां करिष्यति ॥ २९ ॥ त्वं चापि शंकरं शंम्भुं न त्यक्ष्यसि कदाचन ॥ नान्यं पतिं हठादेवि ग्रहीष्यसि शिवादृते ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा ॥ किंचिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां सांजलिर्मुदा ॥ ३१ ॥ ॥ शिवोवाच ॥ त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो ॥ रुद्रस्याराधनार्थाय मंत्रं देहि मुने हि मे ॥ ३२ ॥ न सिद्ध्यति क्रिया कापि सर्वेषां सद्गुरुं विना ॥ मया श्रुता पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः ॥ पंचाक्षरं शम्भुमन्त्रं विधिपूर्वमुपादिशः ॥ ३४ ॥ अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रद्धामुत्पादयन्मुने ॥ प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने ॥ ३५ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु देवि मनोरस्य प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण शंकरस्सुप्रसीददति ॥ ३६ ॥ मन्त्रोयं सर्वमंत्राणामधिराजश्च कामदः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यंतं शंकरस्य महाप्रियः ॥ ३७ ॥

किसीकी कोई क्रिया भी सिद्ध नहीं होती यह मैंने सुन रक्खा है यह सनातनी श्रुति है ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिराज इस प्रकारसे तुमने पार्वतीके वचन सुनकर विधिपूर्वक उसको शिवजीके पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया ॥ ३४ ॥ हे मुने ! श्रद्धाको उत्पन्न करते हुए तुमने उस मन्त्रराजका प्रभाव सबसे श्रेष्ठ वर्णन करते हुए कहा ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले हे देवि ! इस मंत्रका परम अद्भुत प्रभाव सुनो जिसके श्रवणमात्रसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ यह मंत्र सब मंत्रोंका महाराजा है कामना और भुक्ति मुक्तिका देनेवाला शंकरको परम प्रिय है ॥ ३७ ॥

हे सुभगे ! जब विधिपूर्वक तुम इसको जपोगी तो तुम्हारी आराधनासे वह प्रभु शीघ्रही प्रत्यक्ष होजायँगे, इसमें सन्देह नहीं ॥३८॥ नियममें स्थित होकर उन्हींका रूप विचारतीहुई पंचाक्षर मंत्रका जप करो हे शिवे ! इस मंत्रके जपनेसे शिवजी तुम्हारे ऊपर शीघ्र प्रसन्न होजायँगे ॥ ३९ ॥ हे साध्वि ! इस प्रकारसे तुम तप करो महेश्वर तपसेही साध्य होसक्के हैं सब तपस्याहीसे फल प्राप्त करते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले हे शिवप्रिय नारदजी ! तुम इस प्रकारसे कालीसे कहकर देवताओंके हितमें प्रीति करतेहुए अपनी इच्छासे स्वर्गको चले गये ॥४१॥ हे नारदजी ! तब पार्वती उस समय

सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद् द्रुतम् ॥ आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ चिंतयंतीच तद्रूपं नियमस्थाक्षराक्षरम् ॥ जप मन्त्रं शिवे त्वं हि संतुष्यति शिवो द्रुतम् ॥ ३९ ॥ एवं कुरु तपस्साध्वि तपस्साध्यो महेश्वरः ॥ तपस्येव फलं सर्वैः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ॥ ४० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा तदा कालीं नारद त्वं शिवप्रियः ॥ यादृच्छिकोऽगमस्त्वं तु स्वर्ग्गं देवहिते रतः ॥ ४१ ॥ पार्वती च तदा श्रुत्वा वचनं तव नारद ॥ सुप्रसन्ना तदा प्राप पंचाक्षरमनूत्तमम् ॥ ४२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे नारदोपदेशो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयि देवमुने याते पार्वती हृष्टमानसा ॥ तपस्साध्यं हरं मेने तपोर्थं मन आदधे ॥ १ ॥ ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा ॥ मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत ॥ २ ॥ प्रथमं पितरं गत्वा हिमवन्तं नगेश्वरम् ॥ पर्यपृच्छत्सुप्रणम्य विनयेन समन्विता ॥ ३ ॥ सख्या वूचतुः ॥ हिमवञ्छ्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना ॥ सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापितथा पुनः ॥ ४ ॥

तुम्हारे वचन सुनकर पंचाक्षर मंत्रको प्राप्त होकर बहुत प्रसन्न हुई ॥४२॥ इति श्रीशिव०भा०टी०रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिराज ! आपके चले जानेपर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई शिवजीको तपसे साध्य मानकर पार्वतीने तपमें ही मन लगाया ॥१॥ तब अपनी जया और विजयानामक सखीको लेजाकर माता पिता और सखीजनोंसे पूछा ॥ २ ॥ पहले पर्वतराज हिमालय अपने पितासे बडी नम्रता और भक्तिसे प्रणामकर पूछा ॥ ३ ॥ दोनों सखियें बोलीं हे राजन् ! पार्वती जो वचन कहतीहै उसको सुनिये, वह अपने देह और रूपको सफल करने ॥ ४ ॥

तथा आपके कुलको सफल करनेकी इच्छा करतीहै यह शंकर तपसे ही सिद्ध हो सके हैं अन्यथा किसीके दृष्टिगोचर नहीं हो सकते ॥ ५ ॥ इसकारण
हे गिरिराज ! इस समय आपको यह आज्ञा देनी चाहिये कि पार्वती वनमें जाकर तपस्या करै ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकार पार्वतीकी सखियोंने पूछा
तब विचारकर गिरिराज इस प्रकारके वचन बोले ॥ ७ ॥ गिरिराजने कहा मुझे तो यह बात अच्छी लगतीहीहै पर पार्वतीकी मातासे तो पूछना चाहिये
जो ऐसा होजाय तो इससे उत्तम और बात क्या है ॥ ८ ॥ इसमें हमारा कुल निश्चय धन्य होजायगा यदि मेनाको भी यह बात रुचै तो इससे उत्तम

भवतोहि कुलस्यास्य साफल्यं कर्तुमिच्छति ॥ तपसा साधनीयोऽसौ नान्यथा दृश्यतां व्रजेत् ॥ ५ ॥ तस्माच्च पर्वतश्रेष्ठ देयाज्ञा
भवताधुना ॥ तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं च तदा पृष्टस्सखीभ्यां मुनिसत्तम ॥ पार्वत्या
सुविचार्याथ गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ७ ॥ हिमालय उवाच ॥ मह्यं च रोचतेऽत्यर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः ॥ यथेदं भवितव्यं च किमतः
परमुत्तमम् ॥ ८ ॥ साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः ॥ मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किम् ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्येवं वचनं पित्रा प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा ॥ जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्ते तया सह ॥ १० ॥ गत्वा तु मातरं तस्याः पार्वत्यास्ते च
नारद ॥ सुप्रणम्य करौ बध्वोचतुर्वचनमादरात् ॥ ११ ॥ सख्यावूचतुः ॥ मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि नमोऽस्तु ते ॥ सुप्रसन्नतया
तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि ॥ १२ ॥ तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परमं तपः ॥ प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति ॥ १३ ॥
इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुकामा पतिव्रते ॥ त्वदाज्ञा यदि जायेत तप्यते च तथा तपः ॥ १४ ॥

और क्या है ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वे दोनों सखी पार्वतीके पिताके वचन सुनकर पार्वतीकी मातासे इस बातकी अनुमति लेनेको गईं ॥ १० ॥
हे नारद ! वे पार्वतीकी माताके पास जाकर प्रणामकर हाथ बांधकर आदरसे बोलीं ॥ ११ ॥ सखी बोलीं हे मैय्या ! तुम आदरसे पार्वतीके वचन सुनो
तुमको प्रणाम है सुनकर प्रसन्नतासे उस बातके करनेको तुम योग्य हो ॥ १२ ॥ तुम्हारी पुत्री शिवजीकी प्राप्तिके निमित्त परम तपस्या करनेकी इच्छा करतीहैं
पितासे आज्ञा प्राप्त हुई वह अब तुमसे पूछती हैं ॥ १३ ॥ हे पतिव्रते ! पार्वती इस रूपके सफल करनेकी इच्छा करती है जो तुम्हारी आज्ञा हो जाय

तो वह परम तपस्या करै ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार कहकर वे सखियें मौन हुईं पर मेनाने व्याकुलताके कारण उस पार्वतीके वचनको स्वीकार न किया ॥ १५ ॥ तब पार्वतीने स्वयंही मातासे कहा दोनों हाथ जोडकर विनयसे शिवजीके चरण कमल स्मरण करती हुई बोली ॥ १६ ॥ पार्वती बोली हे मातः ! मैं महेश्वरके प्राप्त होनेके निमित्त प्रभात ही तपोवनमें तपस्या करने जाऊंगी, हे मातः ! इस समय मुझे तपोवनमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले पुत्रीके यह वचन सुनकर मेनाको बडा दुःख हुआ, और विकल होकर पुत्रीको निकट बैठातीहुई बोली ॥ १८ ॥ मेना बोली

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा च ततस्सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर ॥ नांगीचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा ॥ १५ ॥ तत स्सा पार्वती प्राह स्वयमेवाथ मातरम् ॥ करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ मातस्तप्तुं गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम् ॥ अनुजानीहि मां गतुं तपसेऽद्य तपोवनम् ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः पुत्र्या मेना दुःखमुपागता ॥ सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती ॥ १८ ॥ मेनोवाच ॥ दुःखितासि शिवे पुत्रि तपस्तप्तुं पुरा यदि ॥ तपश्चर गृहेऽद्य त्वं न बहिर्गच्छ पार्वति ॥ १९ ॥ कुत्र यासि तपः कर्तुं देवास्संति गृहे मम ॥ तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ ॥ २० ॥ कर्तव्यो न हठः पुत्रि गंतव्यं न बहिः क्वचित् ॥ साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधयिष्यसि ॥ २१ ॥ शरीरं कोमलं वत्से तपस्तु कठिनं महत् ॥ एतस्माच्चु त्वया कार्यं तपोऽत्र न बंहिर्व्रज ॥ २२ ॥ स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी ॥ तस्मात्त्वं पुत्रि मा कार्षीस्तपोर्थं गमनं प्रति ॥ २३ ॥

हे शिवे पुत्रि ! यदि तू दुःखी है और तप करनेकीही यदि तेरी इच्छा है तो तू घरमेंही तपस्याकर बाहर मत जाय ॥ १९ ॥ तप करने कहां जाती है मेरे घरमें देवता विद्यमान हैं समस्त तीर्थ और अनेक क्षेत्र यहां विद्यमान हैं ॥ २० ॥ हे पुत्रि ! इसमें हठ मत करो तप करने बाहर मत जाओ पहले तैंने क्या साधा और अब क्या साधेगी ॥ २१ ॥ हे वत्से ! तेरा शरीर बडा कोमल है और तप करना बडा कठिन है इससे तुम यहीं तपस्या करो बाहर मत जाओ ॥ २२ ॥ हे कामनाकी इच्छावाली ! स्त्रियोंकी तपोवनमें गति नहीं सुनी है इस कारण तपस्याके लिये वनमें गमन मत करै ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे मेनाने बहुत प्रकारसे पुत्रीको निवारण किया पर उसने शंकरकी आराधनाके सिवाय किसी प्रकारसे सुख न माना ॥२४॥ मेनाने जो वारं वार तपस्याको जानेके निमित्त पार्वतीसे निषेध किया इस कारणसे शिवाका नाम उमा पडा ॥२५॥ हे मुने ! तब मेनाने शैलकी प्यारी उस शिवाको दुःखी जानकर पार्वतीको तप करनेके निमित्त आज्ञा दे दी ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस सुव्रताने माताकी आज्ञाको प्राप्त होकर शंकरको स्मरण करते हुए अपने मनमें बडा सुख माना ॥ २७ ॥ वह शिवा प्रसन्नतापूर्वक माता पिताको प्रणाम करके शिवको स्मरणकर दो सखियोंको साथ लेकर तप करनेको गई

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता ॥ संवेदे न सुखं किं चिद्विनाराध्य महेश्वरम्॥ २४ ॥ तपोनिषिद्धा तपसे वनं गंतुं च मेनया ॥ हेतुना तेन सोमेति नाम प्राप शिवा तदा ॥ २५ ॥ अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम् ॥ निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने ॥ २६ ॥ मातुराज्ञां च संप्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम ॥ ततः स्वांते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशंकरा ॥ २७ ॥ मातरं पितरं साथ प्रणिपत्य मुदा शिवा ॥ सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तुं समुद्गता ॥ २८ ॥ हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ वल्कलानि धृतान्याशु मौंजीं बद्धा तु शोभनाम् ॥ २९ ॥ हित्वा हारं तथा चर्म्म मृगस्य परमं धृतम् ॥ जगाम तपसे तत्र गंगावतरणं प्रति ॥ ३० ॥ शंभुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्दो मनोभवः ॥ गंगावतरणो नाम प्रस्थो हिमवतस्स च ॥ ३१ ॥ हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृतः ॥ काल्या तत्रेत्य भोस्तात पार्वत्या जगदम्बया ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ अनेक प्रकारके मत और अनेक प्रकारके वस्त्रोंको छोडकर पार्वतीने सुन्दर मौंजी कमरमें बांधकर वल्कल वस्त्र धारण किये ॥ २९ ॥ हारको छोडकर मृगचर्म धारण किया और गंगोत्तरीके समीप तपस्या करनेको गई ॥ ३० ॥ जहां शिवजीने समाधि लगाई थी जहां कामदेव भस्महुआ था वही गंगावतरणनामक हिमालयका प्रस्थ है ॥३१॥ हे तात ! उस समय वह स्थान शिवजीसे रहित था काली जगदम्बा पार्वती पहले उसी स्थानमें गई॥ ३२॥

जहां प्रथम शिवजीने दुष्कर तप किया था वहां क्षणमात्र स्थित होकर पार्वती विरहसे बहुत व्याकुल हुई ॥ ३३ ॥ हा शंकर ! इस प्रकार कहकर पार्वती रोने लगी, बडे दुःख और चिन्ता शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी ॥ ३४ ॥ फिर बहुत समय पीछे पार्वती धैर्यसे मोहको स्तंभित करके दीक्षित होकर तपस्याके निमित्त नियम धारणकरती हुई ॥ ३५ ॥ तब उस महा उत्तम श्रृंगितीर्थमें तपस्या करने लगी इसी कारण उस स्थानमें तपस्या करनेसे उस स्थानका नाम गौरीशिखर हुआ ॥ ३६ ॥ हे मुने ! शिवाके वहां पधारनेसे वृक्षादि हरे होगये, जो पार्वतीने तपकी परीक्षाके लिये लगाये थे कि

यत्र स्थित्वा पुरा शंभुस्तत्तवान्दुस्तरं तपः ॥ तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ॥ ३३ ॥ हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा
गिरेस्सुता ॥ विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ॥ ३४ ॥ ततश्चिरेण सा मोहं धैर्य्यात्संस्तभ्य पार्वती ॥ नियमायाऽभव
त्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता ॥ ३५ ॥ तपश्चकार सा तत्र श्रृंगितीर्थे महोत्तमे ॥ गौरीशिखरनामासीत्तत्तपःकरणाद्धि तत् ॥ ३६ ॥
सुंदराश्च द्रुमास्तत्र पवित्राश्शिवया मुने ॥ आरोपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः ॥ ३७ ॥ भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय
सुंदरी ॥ तथा तपस्समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम् ॥ ३८ ॥ विगृह्य मनसा सर्वाणींद्रियाणि सहाशु सा ॥ समुपस्थानिके तत्र चकार
परमं तपः ॥ ३९ ॥ ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलंतं दिवानिशम् ॥ कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम् ॥ ४० ॥ सततं
चैव वर्षासु स्थंडिले सुस्थिरासना ॥ शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया ॥ ४१ ॥ शीते जलांतरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा ॥
अनाहारातपत्तत्र नीहारेषु निशासु च ॥ ४२ ॥

तपस्याका फल किसप्रकारसे होगा ॥ ३७ ॥ तब सुन्दरीने भूमिशुद्धि करके और उस स्थानमें वेदी निर्माण करके मुनियोंको भी दुष्कर तपस्या आरंभ की ॥ ३८ ॥ मनके साथ शीघ्रही सम्पूर्ण इन्द्रियोंको रोककर वहां स्थितहो परम तपस्या करने लगी ॥ ३९ ॥ ग्रीष्मकालमें दिनरात अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके स्थित रही और उसके मध्यमें स्थित होकर मंत्र जपने लगी ॥ ४० ॥ और वर्षाके समय मैदानमें आसन लगाकर बैठी, शिलापृष्ठपर स्थित हो अपने ऊपर जलकी धाराको सहन करने लगी ॥ ४१ ॥ शीत कालमें शंकरकी भक्तिमें तत्पर होकर विना आहार किये शीत कालकी कठिन रात्रियोंमें

जलके भीतर स्थित रही ॥४२॥ इस प्रकार तपस्या करती पंचाक्षरका जप करने लगी और सब काम फलके देनेवाले शिवजीका ध्यानकरने लगी ॥४३॥
अपने लगायेहुए वृक्षोंको सखीजनोंसे सिंचित कराती तथा अवकाश पाकर आपभी सींचती और अतिथिसत्कार भी करती ॥ ४४ ॥ वात तथा शीतकालकी
अनेक प्रकारकी वर्षा और गरमीकी दुःसह धूपको भी सावधान चित्तसे सहने लगी ॥ ४५ ॥ और भी अनेक प्रकारके दुःख आये पर उसने एक भी न माना
हे मुने ! वह केवल शिवजीमें मन लगाकर स्थित हुई ॥ ४६ ॥ पहले वर्षमें फलभोजन दूसरे वर्षमें पर्णाहार करतेहुए तपस्यासे देवीको क्रमसे बहुत वर्ष बीत

एवं तपः प्रकुर्वाणा पंचाक्षरजपे रता ॥ दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४३ ॥ स्वारोपिताञ्छुभान्वृक्षान्सखीभिस्सिंचती
मुदा ॥ प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत् ॥ ४४ ॥ वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा ॥ दुस्सहोऽपि तथा घर्म्मस्तया
सेहे सुचित्तया ॥ ४५ ॥ दुःखं च विविधं तत्र गणितं न तयागतम् ॥ केवलं मन आधाय शिवे सासीत्स्थिता मुने ॥ ४६ ॥ प्रथमं
फलभोगेन द्वितीयं पर्णभोजनैः ॥ तपः प्रकुर्वती देवी क्रमान्निन्येऽमिताः समाः ॥ ४७ ॥ ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता ॥
निराहाराभवद्देवी तपश्चरणसंरता ॥ ४८ ॥ आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ॥ तेन देवैरपर्णेति कथिता नामतः शिवा ॥ ४९ ॥
एकपादस्थिता सासीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती ॥ पंचाक्षरं जपंती च मनुं तेपे तपो महत् ॥ ५० ॥ चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधा
रिणी ॥ शिवचिंतनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥ ५१ ॥ एवं तस्यास्तपस्यन्त्या चिंतयंत्या महेश्वरम् ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि
जग्मुः काल्यास्तपोवने ॥ ५२ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि यत्र तेपे तपो हरः ॥ तत्र क्षणमथोषित्वा चिंतयासास सा शिवा ॥ ५३ ॥

गये ॥ ४७ ॥ तब वह हिमवत्सुता शिवादेवी पर्ण भोजन भी छोंडकर निराहार होकर तपस्या करने लगी ॥ ४८ ॥ जब कि शिवाने पर्ण भोजनतक त्याग
दिया तब देवताओंने शिवाका नाम अपर्णा उच्चारण किया ॥४९॥ तब पार्वती एक चरणसे स्थित हो शिवजीको स्मरणकर पंचाक्षर मंत्र जपती महातपस्या
करने लगी ॥ ५० ॥ चीर वल्कल पहरे जटाजूटधारे शिवकोही चिंतनकरते पार्वतीने तपसे मुनियोंको जीत लिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार तपस्या करते
और महेश्वरको चिन्ता करते पार्वतीको तपोवनमें तीन सहस्र वर्ष बीत गये ॥५२॥ जहां शंकरने साठ सहस्र वर्षतक तपस्या की थी वहां क्षणमात्रको स्थित

हो पार्वती विचार करने लगी ॥ ५३ ॥ क्या महादेव यह नहीं जानते कि यह मेरे निमित्त तपस्यामें निरतहै जिससे कि इतने समयतक तप करते हुए भी उन्होंने मेरी सुधि न ली ॥ ५४ ॥ लोक वेद तथा मुनिजनोंमें यह बात प्रसिद्धहै कि शंकर सर्वज्ञ हैं सर्वात्मा और सर्वदर्शी हैं ॥ ५५ ॥ वह देव सब ऐश्वर्य देनेवाले सब भावोंसे अनुभावित हैं निरन्तर भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सब क्लेशोंके निवारण करनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ यदि मैं सब कामनाओंका त्यागकर शंकर मैं अनुरक्त हुई हूं तो वह शंकर मुझ अनुरागिनीपर प्रसन्न होंगे ॥ ५७ ॥ यदि नारद तंत्रका कहाहुआ पंचाक्षर मंत्र भक्ति और विधिसे मैंने

नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना ॥ येनाहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता ॥ ५४ ॥ लोके वेदे च गिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा ॥ शंकरस्स हि सर्वज्ञस्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ ५५ ॥ सर्वभूतिप्रदो देवस्सर्वभावानुभावनः ॥ भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः ॥ ५६ ॥ सर्वकामान्परित्यज्य यदि चाहं वृषध्वजे ॥ अनुरक्ता तदा सोत्र संप्रसीदतु शंकरः ॥ ५७ ॥ यदि नारदतंत्रोक्तमंत्रो जप्तश्शराक्षरः ॥ सुभक्त्या विधिना नित्यं संप्रसीदतु शंकरः ॥ ५८ ॥ यदि भक्त्या शिवस्याहं निर्विकारा यथोदितम् ॥ सर्वेश्वरस्य चात्यंतं संप्रसीदतु शंकरः ॥ ५९ ॥ एवं चिंतयती नित्यं तेपे सा सुचिर तपः ॥ अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी ॥ ६० ॥ तथा तया तपस्तप्तं मुनीनामपि दुष्करम् ॥ स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परम विस्मयं गताः ॥ ६१ ॥ तत्तपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः ॥ धन्यान्निजान्मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः ॥ ६२ ॥ महतां धर्म्मवृद्धेषु गमनं श्रेय उच्यते ॥ प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्म्मस्सदा बुधैः ॥ ६३ ॥

नित्य जपा है तो शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्नहों ॥ ५८ ॥ यदि भक्तिसे मैंने निर्विकार शंकरकी यथायोग्य आराधना की है तो वह सर्वेश्वर शंकर मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार महाचिन्ता करती वह महातपस्या करने लगी वह निर्विकार जटामण्डल धारे नीचेको मुख किये ॥ ६० ॥ इस प्रकारका तप करने लगी जो मुनियोंको भी बडा दुष्कर था उसको स्मरणकर सब कोई परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ६१ ॥ उस तपको सुनकर बहुतसे ऋषि मुनि देखनेको आये और अपनेको धन्य मानकर पार्वतीकी बडाई करने लगे तथा बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ महान् पुरुषोंका धर्मवृद्धोंमें गमन परम

कल्याणकारी है तपका प्रमाण नहीं है पण्डितोंको सदा धर्मको मान्य करनाही चाहिये ॥ ६३ ॥ इसका तप देख और सुनकर फिर दूसरे क्या तप करतेहैं
ऐसा तप होना चाहिये जैसा कि श्रीशिवाजीका है इससे विशेष तप लोकमें न किसीका हुआ है न होगा ॥ ६४ ॥ इस प्रकार वे सब लोग कहतेहुए
पार्वतीकी प्रशंसा करते अपने अपने स्थानोंको प्रसन्न होकर चले गये, यद्यपि वे कठिन अंगवाले थे ॥ ६५ ॥ हे महर्षे! और भी तुम तपस्याका प्रभाव सुनो
जो जो जगदम्बा पार्वतीका परम अद्भुत चरित्र है ॥६६॥ स्वभावसे परस्पर विरोध करनेवाले जो कोई उस आश्रममें जाते वे भी पार्वतीके प्रभावसे विरोधरहित

श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियते तपः ॥ अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति ॥ ६४ ॥ जल्पंत इति ते सर्वे सुप्र
शस्य शिवातपः ॥ जग्मुः स्वं धाम मुदिताः कठिनांगाश्च ये ह्यपि ॥ ६५ ॥ अन्यच्छृणु महर्षे त्वं प्रभावं तपसोऽधुना ॥ पार्वत्या
जगदंबायाः पराश्चर्य्यकरं महत् ॥ ६६ ॥ तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः ॥ तेप्यासँस्तत्प्रभावेण विरोधरहितास्तदा
॥ ६७ ॥ सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः ॥ तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधंत परस्परम् ॥ ६८ ॥ अथान्ये च मुनिश्रेष्ठ मार्ज्जारा
मूषकादयः ॥ निसर्गाद्वैरिणो यत्र विक्रियंते स्म न क्वचित् ॥ ६९ ॥ वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च ॥ पुष्पाणि च विचि
त्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम ॥ ७० ॥ तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम् ॥ जातं च तपसस्तस्यास्सिद्धिरूपमभूत्तदा ॥ ७१ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे पार्वतीतपोवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

हो जाते ॥ ६७ ॥ जो सिंह और गाय परस्पर रागादि दोषसे संयुक्त हैं पार्वतीकी महिमासे परस्पर किसीने किसीको बाधा नहीं दी ॥६८॥ हे मुनिश्रेष्ठ !
और भी जो मार्जार मूषक आदि हैं जो स्वाभाविक वैर करनेवाले हैं वे किसी प्रकारसे भी विकार नहीं करते थे ॥ ६९॥ वृक्ष और तृण यह सब फलवाले
होगये हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय पुष्पभी बडे विचित्र लग गये ॥ ७० ॥ उस समय वह सम्पूर्ण वन कैलासकी समान उपमावाला होगया यह सब पार्वतीके
तपका प्रभाव था इस प्रकारसे वह सिद्धरूप होगई ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! इस प्रकार पार्वतीको तप करते करते जब बहुत समय बीत गया और शिवदर्शनकी लालसा करते २ उसको शिवकी प्राप्ति न हुई ॥ १ ॥ तब निश्चयवाली पार्वतीके निकट गिरिराज हिमालय अपनी स्त्री पुत्र और मंत्रियों सहित प्राप्त हुए और परमेश्वरीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाभागे ! हे पार्वती ! इस तपसे तू खेदित मत होना, हे बाले ! तुझको रुद्र दिखाई नहीं देते इसमें सन्देह नहीं वह विरक्त हैं ॥ ३ ॥ तू सूक्ष्म शरीरवाली सुकुमार अंगोंवाली तपसे मोहित होगई है, इसमें सन्देह नहीं यह मैं तुझसे सत्य सत्यही कहता हूं ॥ ४ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस कारण उठो और

॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं तपंत्यां पार्वत्यां शिवप्राप्तौ मुनीश्वर ॥ चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि ॥ १ ॥ हिमालयस्तदागत्य
पार्वतीं कृतनिश्चयाम् ॥ सभार्यस्ससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम् ॥ २ ॥ हिमालय उवाच ॥ मा खिद्यतां महाभागे तपसानेन पार्वति ॥
रुद्रो न दृश्यते बाले विरक्तो नात्र संशयः ॥ ३ ॥ त्वं तन्वी सुकुमारांगी तपसा च विमोहिता ॥ भविष्यसि न संदेहस्सत्यं सत्यं
वदामि ते ॥ ४ ॥ तस्मादुत्तिष्ठ चैहि त्वं स्वगृहं वरवर्णिनि ॥ किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः ॥ ५ ॥ अतो हि निर्विकार
त्वात्त्वामादातुं वरां हरः॥ नागमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि ॥ ६ ॥ गगनस्थो यथा चंद्रो ग्रहीतुं न हि शक्यते ॥ तथैव दुर्गमं
शंभुं जानीहि त्वमिहानघे ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती ॥ मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव सा
॥ ८ ॥ एवमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौंचादिभिरनातुरा ॥ तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं प्रोक्ता
यदा तन्वी सा सर्वैस्तपसि स्थिता ॥ उवाच प्रहसंत्येव हिमवंतं शुचिस्मिता ॥ १० ॥

अपने घरको आओ, उन रुद्रसे तुम्हारा क्या काम चलैगा जिन्होंने प्रथमही कामदेवको भस्म कर दिया ॥ ५ ॥ इस कारणसे निर्विकार होनेसे शिवजी तुम्हें ग्रहण करनेको नहीं आवेंगे हे देवेशि ! तुम उनकी क्यों प्रार्थना करती हो ॥ ६ ॥ जैसे कि आकाशमें स्थित चन्द्रमाको कोई ग्रहण नहीं करसकता इसी प्रकार हे पापरहिते ! तुम शिवजीको दुर्गम जानो ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले इसी प्रकार मेना सतीने भी पार्वतीको समझाया. सह्य मेरु मन्दर और मैनाकने भी समझाया ॥ ८ ॥ तथा दूसरे क्रौंचादिपर्वतोंने भी आतुरतारहित पार्वतीको समझाया, और अनेक हेतु दिखाये ॥ ९ ॥ इस प्रकारसे जब सबने तपस्यामें

स्थित पार्वतीको समझाया तब हँसती हुई पवित्र हास्यवाली देवी हिमवान्से बोली ॥ १० ॥ पार्वती बोली हे तात ! हे मातः ! मैंने पहले जो कहाथा क्या इस समय तुमने भुलादिया इस समय बंधुजन मेरी प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ११ ॥ निश्चयही महादेव विरक्त हैं जिन्होंने क्रोधसे कामदेवका भस्म किया उन भक्तवत्सल शंकरको मैं तपस्यासे सन्तुष्ट करूंगी ॥ १२ ॥ तुम सब प्रसन्नतासे अपने २ स्थानको जाओ इसमें सन्देह नहीं है शंकर मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ १३ ॥ जिसने कामदेवको भस्म किया जिसने गिरिका वन दग्ध किया मैं उसे केवल तपस्याके प्रभावसे यहां बुला लूंगी ॥ १४ ॥ हे महाभागो ! मैं सत्य

पार्वत्युवाच ॥ पुरा प्रोक्तं मया तात मातः किं विस्मृतं त्वया ॥ अधुनापि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बांधवाः ॥ ११ ॥ विरक्तोसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः ॥ तं तोषयामि तपसा शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ १२ ॥ सर्वे भवंतो गच्छंतु स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः ॥ भविष्यत्येव तुष्टोसौ नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १३ ॥ दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम् ॥ तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि ॥ १४ ॥ तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः ॥ जानीध्वं हि महाभागास्सत्यं सत्यं वदामि वः ॥ १५ ॥ आभाष्य चैवं गिरिजा च मेनकां मैनाकबंधुं पितरं हिमालयम् ॥ तूष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा समंदरं पर्वतराजबालिका ॥ १६ ॥ जग्मुस्तथोक्ताः शिवया हि पर्वता यथागतेनापि विक्षचणास्ते ॥ प्रशंसमाना गिरिजा मुहुर्मुहुस्सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः ॥ १७ ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता ॥ तपस्तेपे तदधिकं परमार्थसुनिश्चया ॥ १८ ॥ तपसा महता तेन तप्तमासीच्चराचरम् ॥ त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ सदेवासुरमानुषम् ॥ १९ ॥

सत्यही कहती हूं महाभाग शंकर केवल महान् तपस्याके बलसेही सेवित होसकते हैं सो जानो ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले पर्वतराजकी पुत्री शिवा गिरिजा माता मेनका भ्राता मैनाक तथा पिता हिमालयसे इस प्रकार कहकर तथा मन्दरको भी समझाकर वह सुभाषिणी मौन होगई ॥ १६ ॥ पार्वतीके ऐसा कहनेपर वे विचक्षण पर्वतराज आदि तथा सुमेरु.आदि वारंवार पार्वतीकी प्रशंसा करके जहांसे आये थे विस्मित हो वहां चले गये ॥ १७ ॥ जबसे सब चले गये तबसे पार्वती अपनी सखियोंके साथ परमार्थके निश्चयसे महातपस्या करने लगी ॥ १८ ॥ तब उसकी महातपस्यासे चर अचर संतप्त होगये,

हे मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोकी और देवता असुर सब कोई सन्तप्त होगये ॥१९॥ तब सुर असुर यक्ष किन्नर चारण सिद्ध साध्य मुनि विद्याधर महोरग ॥२० ॥
प्रजापति और गुह्यक बडे कष्टको प्राप्त हुए और इसके कारणको किसीने न जाना ॥ २१ ॥ इन्द्रादि सर्व देवता मिलकर और बृहस्पतिसे सम्मतिकर बडे
व्याकुल हुए, और सुमेरुमें सर्वांगसे तप्त हो सब विधाताकी शरणमें गये ॥ २२ ॥ वहां जाकर मुझे प्रणाम किया विह्वल होनेसे सबकी कांति नष्ट होगई
थी वे सब एक पदसे मेरी स्तुति करतेहुए कहने लगे ॥ २३ ॥ देवता बोले ! हे देव ! यह चराचर जगत आपका निर्माणकिया हुआ है सो यह किस

तदा सुरासुराः सर्वे यक्षकिन्नरचारणाः ॥ सिद्धास्साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः ॥ २० ॥ सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्च तथापरे ॥
कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत् ॥ २१ ॥ सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामंत्र्य विह्वलाः ॥ सुमेरौ तप्तसर्वांगा विधिं मां
शरणं ययुः ॥ २२ ॥ तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः ॥ ऊचुस्सर्वे च संस्तूय ह्यैकपद्येन मां हि ते ॥ २३ ॥ देवा ऊचुः ॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ संतप्तमति कस्माद्वै न ज्ञातं कारणं विभो ॥ २४ ॥ ॥ तद्ब्रूहि कारणं ब्रह्मन् ज्ञातुमर्हसि नः
प्रभो ॥ दग्धभूततनून्देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः ॥ २५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिवं हृदा ॥ विचार्य
मनसा सर्वं गिरिजायास्तपःफलम् ॥ २६ ॥ दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात् ॥ हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम्
॥ २७ ॥ तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसंतं सुखासने ॥ सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं सांजलिः सुरैः ॥ २८ ॥

कारणसे संतप्त होरहाहै हे विभो ! इसका कोई कारण हम नहीं जानते ॥ २४ ॥ हे विभो ! हे ब्रह्मन् ! सो आप इसका कारण कहिये सब देवताओंके
शरीर दग्ध होगये हैं तुमसे अधिक कोई रक्षक नहीं है ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले उनके यह वचन सुनकर मैं हृदयसे शिवजीको स्मरणकर मनमें विचारता
हुआ कि यह सब पार्वतीके तपका फल है ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे उन सबने विश्वको दग्ध जानकर क्षीरसागरमें जाकर यह सब बात नारायणसे कही ॥
॥ २७ ॥ वहां जाकर नारायणको सुखके आसनपर बैठाहुआ देखकर वे सब देवता प्रणामकर हाथ जोड स्तुति करते हुए बोले ॥ २८ ॥

हे नारायण ! तेजसे व्याकुल हो हम आपकी शरणमें आये हैं आप हमारी रक्षा करैं हम पार्वतीकी परम उग्र तपस्यासे संतप्त होगये हैं ॥ २९ ॥
इस प्रकार हम सब देवताओंके वचन सुनकर वे रमेश्वर भगवान् शेषासनपर बैठे हुए हम सब देवताओंसे बोले ॥ ३० ॥ भगवान् विष्णु बोले पार्वतीकी
तपस्याका सब कारण हमने जानलिया आप लोकोंके सहित मैं परमेश्वरके स्थानको चलताहूं ॥ ३१ ॥ हम गिरिजाके पाणिग्रहणके निमित्त शिवजीकी
प्रार्थना करैंगे हे देवताओ ! इस पाणिग्रहणसे लोकोंका कल्याण होगा ॥ ३२ ॥ वह देवदेव पिनाकधारी पार्वतीको वर देनेके निमित्त जिस प्रकार वहां

त्राहि त्राहि महाविष्णो तप्तान्नश्शरणागतान् ॥ तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपंत्याः परमेण हि ॥ २९ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषामस्मदादिदिवौ
कसाम् ॥ शेषासने समाविष्टोस्मानुवाच रमेश्वरः ॥ ३० ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ज्ञातं सर्वनिदानं मे पार्वतीतपसोद्य वै ॥ युष्माभिस्स
हितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम् ॥ ३१ ॥ मदादेवं प्रार्थयामो गिरिजाप्रापणाय तम् ॥ पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः
॥ ३२ ॥ वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक् ॥ यथा चेष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत् ॥ ३३ ॥ तस्माद्वयं गमिष्यामो
यत्र रुद्रो महाप्रभुः ॥ तपसोग्रेण संयुक्तोऽद्यास्ते परममंगलः ॥ ३४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्व ऊचुस्सुरादयः ॥
महाभीता हठात् क्रुद्धाद्दग्धुकामात् लयंकरात् ॥ ३५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ महाभयंकरं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम् ॥ न यास्यामो वयं
सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभम् ॥ ३६ ॥ यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः ॥ तथैव क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न संशयः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः ॥ सांत्वयंस्तान्सुरान्सर्वान्प्रोवाच स हरिर्मुने ॥ ३८ ॥

जायँगे हम सब वही बात करैंगे ॥ ३३ ॥ इस कारण जहां वह महाप्रभु परम उग्र तपस्यासे परम मंगल सम्पन्न हो तप करते हैं हम वहीं जायँगे ॥ ३४ ॥
ब्रह्माजी बोले विष्णुजीके यह वचन सुनकर सब देवता बोले हम उन शंकरसे महाभीत हैं जो प्रलयके करनेहारे हैं जिन्होंने हठसे कामदेवको नष्टकर दिया
॥ ३५ ॥ देवता बोले महाभयंकर क्रोधको प्राप्त कालानलकी समान कान्ति वाले विरूपाक्ष महाप्रभावाले शंकरके समीप हम नहीं जायँगे ॥ ३६ ॥ जिस
प्रकारसे महादुःस्सह कामदेवको उन्होंने दग्ध किया, इसी प्रकारसे क्रोधयुक्त वह हमको भस्म करदेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥३७॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार

रमेश्वरने उन इन्द्रादिके वचन सुनकर सब देवताओंको सांत्वना करते हुए वह हरि कहने लगे ॥ ३८॥ हरि बोले हे देवताओं मेरे वचन तुम आदरसे सुनो, देवताओंके भय नाश करनेवाले स्वामी तुमको दग्ध नहीं करेंगे ॥ ३९ ॥ इस कारण तुम सब हमारे साथ आओ शिवजी शुभ करनेवाले हैं और उस शुभ करनेवालेकी शरणमें जाओ ॥ ४० ॥ शिव कल्याणकारी पुरुष अधीश्वर वरेण्यरूप परेसे परे तपका सेवन करनेवाले परमात्मरूप हैं हम उनकी शरण जाते हैं ॥४१॥ ब्रह्माजी बोले जब समर्थ विष्णुने इस प्रकारसे कहा तब सब शंकरके देखनेकी इच्छासे चले ॥ ४२ ॥ प्रथम शैलपुत्रीका आश्रम और तपस्या

॥ हरिरुवाच ॥ हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः ॥ न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भिर्गंतव्यं मया सार्द्धं विचक्षणैः ॥ शंभुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः ॥ ४० ॥ शिवं पुराणं पुरुषमधीशं वरेण्यरूपं हि परं पुराणम् ॥ तपोजुषाणां परमात्मरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामः ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ जग्मुस्सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम् ॥ ४२ ॥ प्रथमं शैलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रमम् ॥ जग्मुर्मार्गवशात्सर्वे विष्णवाद्यास्सकुतूहलाः ॥ ४३ ॥ पार्वत्यास्सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा ॥ प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपःस्थिताम् ॥ ४४ ॥ प्रशंसंतस्तपस्तस्यास्साक्षात्सिद्धितनोस्सुराः ॥ जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥ ४५ ॥ तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने प्रैषयंस्तदा ॥ पश्यंतो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात् ॥ ४६ ॥ नारद त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाऽभयस्सदा ॥ शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम् ॥ ४७ ॥

देखी, मार्गमें आनेके कारण विष्णु आदि देवताओंने यह भगवतीका आश्रम देखा ॥ ४३ ॥ तब पार्वतीका तप देखा कि तेजसे व्याप्त हो रहा है तब उन जगत्की धात्रीको प्रणाम किया जो तपके तेजरूपसे स्थित थी ॥ ४४ ॥ तप करते हुए देखकर सब देवता प्रशंसा करने लगे मानो साक्षात् सिद्धिका शरीर है तब वे सब देवता शंकरके समीप चले ॥ ४५ ॥ हे मुने ! वहां आकर सब देवताओंने तुमको शंकरके समीप भेजा और काम भस्म करनेवाले शंकरको दूरसे देखकर स्थित हुए ॥ ४६ ॥ हे नारदजी ! उस सयय तुम अभय होकर शिवके स्थानको गये, विशेष करके तुमने प्रभु शंकरको प्रसन्न देखा ॥४७॥

फिर तुम आकर यत्नसे देवताओंको बुलाकर शंकरके स्थानको ले गये, हे मुने ! तब विष्णु आदि सर्व देवता गये ॥ ४८ ॥ तब विष्णु आदि सब देवता प्रभु शिवके स्थानमें जाकर सुखसे बैठेहुए प्रसन्नमन उन भक्तवत्सलको देखने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय शंकर योगासनपर बैठे हुए थे, गण उनको घेर रहे थे, वह परमेश्वररूप उस समय तपस्याका रूप धारण किये हुए थे ॥ ५० ॥ तब विष्णु और मैं सुर सिद्ध मुनीश्वर भगवान्‌को प्रणाम कर वेद और उपनिषदोंके सूक्तोंसे स्तुति करनेलगे ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा०टी० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ देवता बोले रुद्र देव

पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः ॥ निनाय शंकरस्थानं तदा विष्ण्वादिकान्मुने ॥ ४८ ॥ अथ विष्ण्वादयस्सर्वे तत्र गत्वा शिवं प्रभुम् ॥ ददृशुस्सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ॥ ४९ ॥ योगपट्टस्थितं शंभुं गणैश्च परिवारितम् ॥ तपोरूपं दधानं च परमेश्वररूपिणम् ॥ ५० ॥ ततो विष्णुर्मयान्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः ॥ प्रणम्य तुष्टुवुस्सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीसांत्वनशिवदेवदर्शनवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो रुद्राय देवाय मदनांतकराय च ॥ स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमोनमः ॥ १ ॥ शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमोनमः ॥ महादेवाय प्रभवे त्रिविष्टपतये नमः ॥ २ ॥ त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः ॥ शंभुरीशश्शंकरोसि दयालुस्त्वं विशेषतः ॥ ३ ॥ त्वं धाता सर्वजगतां त्रातुमर्हसि नः प्रभो ॥ त्वां विना कस्समर्थोंस्ति दुःखनाशे महेश्वर ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः ॥ कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शंभुमारभत् ॥ ५ ॥

कामदेवके अन्त करनेवाले स्तुतिके योग्य अत्यन्त कांतिवाले तीन नेत्रधारी शंकरके निमित्त नमस्कार है ॥ १ ॥ शिपिविष्ट भीम भीमाक्ष आपके निमित्त नमस्कार है महादेव जगत्‌के उत्पादक स्वर्गके पतिके निमित्त नमस्कार है ॥ २ ॥ आप सब लोकके नाथ पिता माता और ईश्वर हो, शंभु ईश शंकर और दयालु हो॥ ३ ॥आप सब जगत्‌के विधाता हमारी रक्षा कीजिये हे महेश्वर ! आपके विना दुःख नाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले

इस प्रकारसे देवताओंके वचन सुनकर नन्दिकेश्वर परम कृपासे युक्त होकर शिवजीसे विज्ञप्ति करने लगे ॥ ५ ॥ नन्दिकेश्वर बोले हे भगवन् शंकर !
विष्णुसे आदि लेकर सब देवता मुनि सिद्ध आपके देखनेके निमित्त आये हैं, हे सुरवर्य ! दैत्योंसे व्याकुल हो उनसे ताडित और तिरस्कृतहोकर आपकी शरणमें
सब आये हैं ॥ ६ ॥ हे सर्वेश ! इस कारण आपको मुनि देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये हे दीनबन्धु ! विशेषकर आप भक्तवत्सल कहाते हैं ॥ ७ ॥
ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकार नंदीने दयावाले शिवजीसे प्रार्थना की तब ध्यानसे शनैः जागकर शिवजीने नेत्र खोले ॥ ८ ॥ उस समग्र परम कोविद शंकर

॥ नंदिकेश्वर उवाच ॥ विष्णवादयस्सुरगणा मुनिसिद्धसंघास्त्वां द्रष्टुमेव सुरवर्य्य विशेषयंति ॥ कार्य्यार्थिनोऽसुरवरैः परिभर्त्स्यमानास्स
म्यक् पराभवपदं परमं प्रपन्नाः ॥ ६ ॥ तस्मात्त्वया हि सर्वेश त्रातव्या मुनयस्सुराः ॥ दीनबंधुर्विशेषेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं दयावता शंभुर्विज्ञप्तो नंदिना भृशम् ॥ शनैश्शनैरुपरमद्ध्यानादुन्मील्य चाक्षिणी ॥ ८ ॥ ईशोऽथोपरतश्शंभुस्तदा
परमकोविदः ॥ समाधेः परमात्मासौ सुरान्सर्वानुवाच हं ॥ ९ ॥ शंभुरुवाच ॥ कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः ॥ हरिब्रह्माद
यस्सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचश्शम्भोस्सर्वे देवा मुदाऽन्विताः ॥ विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञ
प्तिहेतवे ॥ ११ ॥ अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः ॥ मदीरितमुवाचेदं सुरकार्यं महत्तरम् ॥ १२ ॥ तारकेण कृतं शंभो देवानां
परमाद्भुतम् ॥ कष्टात्कष्टतरं देवा विज्ञप्तुं सर्व आगताः ॥ १३ ॥ हे शंभो तव पुत्रेणौरसेन हि भविष्यति ॥ निहतस्तारको दैत्यो
नान्यथा मम भाषितम् ॥ १४ ॥

शनैः शनैः उपरामको प्राप्त हो वह परमात्मा समाधीसे जागकर सब देवताओंसे बोले ॥ ९ ॥ शंकर बोले हे देवताओ ! तुम हमारे समीप क्यों आये हो
हरि ब्रह्मादि तुम सब अपने आनेका कारण हमसे कहो ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुन सब देवता बडे प्रसन्न हुए और विज्ञप्तिके निमित्त
भगवान् विष्णुका मुख देखने लगे ॥ ११ ॥ सब देवताओंके हितकारी विष्णुजी इस देवताओंके महत्कार्यके लिये शंकरसे बोले ॥ १२ ॥ हे शंकर !
तारक असुरसे देवताओंको महान् कष्ट आनकर प्राप्त हुआ है इस कारण सब देवता आपसे विज्ञप्ति करने आये हैं ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! जब कोई आपके

औरस पुत्र होगा उससेही तारक दैत्य मारा जायगा यह मेरा कथन अन्यथा नहींहै ॥ १४ ॥ हे महादेव ! इस प्रकारसे विचारकर आप मेरे ऊपर कृपा करो आपको प्रणाम है हे स्वामिन् ! तारकासुरसे महाकष्ट प्राप्त हुआ है उससे उद्धार कीजिये ॥ १५ ॥ हे शंकर ! इस कारण दक्षिण हाथसे आपको गिरिजाका पाणिग्रहण करना चाहिये उस महाभाग्याको गिरिराज आपको देना चाहते हैं, आप उसको स्वीकार करैं ॥ १६ ॥ विष्णुके यह वचन सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर और योगमें तत्पर सब देवताओंको समीचीन व्यवहारकी गति दिखाते हुए यह वचन बोले ॥ १७ ॥ शिवजी बोले जिस समय

विचार्य्येत्थं महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ देवान्समुद्धर स्वामिन् कष्टात्तारकनिर्मितात् ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वया गिरिजा देव शंभो ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन ॥ पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरींद्रेण च तां कुरुष्व॥ १६ ॥ विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः ॥ दर्शयन् सद्गतिं तेषां सर्वेषां योगतत्परः ॥ १७॥ शिव उवाच ॥ यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुंदरी ॥ तदा सर्वे सुरेंद्राश्च मुनयो ऋषयस्तदा ॥ १८॥ सकामाश्च भविष्यंति न क्षमाश्च परे पथि ॥ जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतस्स्मरम् ॥ १९ ॥ मदनो हि मया दग्धस्सर्वेषां कार्य्यसिद्धये ॥ ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥ २० ॥ एवं विमृश्य मनसा कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥ सुधीः सर्वैश्च देवेंद्र हठं नो कर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥ दग्धे कामे मया विष्णो सुरकार्यं महत् कृतम् ॥ सर्वे तिष्ठंतु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम् ॥ २२ ॥

सर्व सुन्दरी गिरिजा देवी मैंने स्वीकृत होगी, उस समय सब सुरेन्द्र ऋषि और मुनि ॥ १८ ॥ सब सकाम होजायँगे, और परममार्गमें समर्थ न होंगे, और पाणिग्रहण होनेसे दुर्गा मृतक हुए कामदेवको फिर जीवित करावैगी ॥ १९ ॥ सबकी कार्यसिद्धिके निमित्त मैंने कामदेवको दग्ध किया, यह ब्रह्माकेही वचनसे हे विष्णु ! किया गया है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इस प्रकार कार्य अकार्यकी व्यवस्था मनसे विचारकर सब देवताओंके साथ हे बुद्धिवाले ! देवेन्द्र आप हठ न करैं ॥ २१ ॥ हे विष्णो ! कामके दग्ध होने पर मैंने देवताओंका महत् कार्य किया है, मेरे सहित निश्चय सब देवता कामनारहित हो स्थित

हों ॥ २२ ॥ हे देवताओं ! जिस प्रकारसे मैं तपस्या करता हूं, इसी प्रकारसे तुम सब दुष्कर तपस्या करो ॥ २३ ॥ हे देवताओ ! तुम समाधिपूर्वक उस कामके विना परमानन्दपूर्वक विघ्नरहित हो तपस्या करो ॥ २४ ॥ हे विधाता ! हे विष्णुजी ! महेन्द्र मुनि और देवता यदि तुमने कामदेवकी पुरातन बात भुला दी हो तो सब उसी पुरातन बातको विचारो ॥ २५ ॥ हे देवताओ ! उस महाधनुर्धर कामदेवने महेन्द्र मुनि और देवताओंकी जो दशा की है आप सब उसको विचारैं उसने प्रथम प्रथम सबहीका ध्यान नष्ट कर दिया है ॥ २६ ॥ कामही नरकका द्वार है इसीसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मोह और

यथाऽहं च सुरास्सर्वे तथा यूयमयत्नतः ॥ तपः परमसंयुक्ताः करिष्यध्वं सुदुष्करम् ॥ २३ ॥ यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः ॥ परमानंदसंयुक्ता निर्विकारा भवंतु वै ॥ २४ ॥ पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृतं यद् विधे हरे ॥ महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्वं विमृश्यताम् ॥ २५ ॥ महाधनुर्धरेणैव मदनेन हठात्सुराः ॥ सर्वेषां ध्यानविध्वंसः कृतस्तेन पुरापुरा ॥ २६ ॥ कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति संमोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ॥ २७ ॥ कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिस्सुरसत्तमैः ॥ सर्वैरेव च मंतव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित् ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः ॥ सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णू तथा मुनीन् ॥ २९ ॥ तूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानमाश्रित्य वै पुनः ॥ आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः ॥ ३० ॥ स्वात्मानमात्मना शंभुरात्मन्येव व्यचिंतयत् ॥ निरंजनं निराभासं निर्विकारं निरामयम् ॥ ३१ ॥ परात्परतरं नित्यं निर्ममं निरवग्रहम् ॥ शब्दातीतं निर्गुणं च ज्ञानगम्यं परात्परम् ॥ ३२ ॥

मोहसे स्मृतिमें भ्रम और भ्रमसे तपस्या नष्ट हो जाती है ॥ २७ ॥ हे देवताओ ! आप काम और क्रोधका त्याग कर देवें, और तुम सबको मेरे वचन मानने चाहिये, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले महादेव वृषभध्वज सबको इस प्रकारसे सुनाकर विधाता विष्णु मुनि और सब देवताओंसे उत्तर सुननेकी इच्छा करने लगे ॥ २९ ॥ जब शिवजी ध्यान लगाकर फिर मौन हुए और गणोंसे परिवारित हो स्थाणुकी समान अचल हुए ॥ ३० ॥ और आत्मासेही अपनी आत्माका ध्यान करने लगे जो निरंजन निराभास निर्विकार निरामय है ॥ ३१ ॥ परेसे अत्यंत परे नित्यस्वरूप ममतारहित निरवग्रह शब्दसे

परे निर्गुण ज्ञानगम्य और परेसे परे है ॥ ३२ ॥ इस परम स्वरूपको चिन्तन करते हुए परम ध्यानमें स्थित हुए और अनेक प्रकार जगत्की सृष्टि करनेवाले परमानन्दमें मग्न होगये ॥ ३३ ॥ सब देवता शंकरको ध्यानमें स्थित देखकर तब इन्द्र और विष्णुजी नंदिकेश्वरसे बोले ॥ ३४ ॥ देवता बोले अब हम क्या कहैं शंकरजी तो विरक्त हो ध्यानमें मग्न हो रहे हैं और आप शिवके परमसखा सर्वज्ञ परमपवित्र सेवक हैं ॥ ३५ ॥ हे गणाधिप ! किस उपायसे शिवजी प्रसन्न हो सकते हैं वह उपाय आप कहिये हम सब आपकी शरण हैं ॥ ३६ ॥ हे मुने ! जब देवताओंने प्रसन्नतासे इस प्रकार स्तुति की तब शिवके

एवं स्वरूपं परमं चिंतयन् ध्यानमास्थितः ॥ परमानंदसंमग्नो बभूव बहुसूतिकृत् ॥ ३३ ॥ ध्यानस्थितं च सर्वेशं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः ॥
हरिशक्रादयस्सर्वे नंदिनं प्रोचुरानताः ॥ ३४ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः ॥ शंभुस्त्वं शंकरसख
स्सर्वज्ञः शुचिसेवकः ॥ ३५ ॥ केनोपायेन गिरिशः प्रसन्नः स्याद्गणाधिप ॥ तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरणं गताः ॥ ३६ ॥ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ इति विज्ञापितो देवैर्मुने हर्षादिभिस्तदा ॥ प्रत्युवाच सुरांस्तान्स नंदी शंभुप्रियो गणः ॥ ३७ ॥ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥
हे हरे हे विधे शक्र निर्जरा मुनयस्तथा ॥ शृणुध्वं वचनं मे हि शिवसंतोषकारकम् ॥ ३८ ॥ यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे ॥
अतिदीनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात् ॥ ३९ ॥ भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतस्सुराः ॥ अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः ॥
॥ ४० ॥ एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः ॥ यथागतेन मार्गेणान्यथा गच्छत मा चिरम् ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्णवादयस्सुराः ॥ तथेति मत्त्वा सुप्रीत्या शंकरं तुष्टुवुर्हि ते ॥ ४२ ॥

प्रिय नंदीने इस प्रकार सब देवताओंसे कहा ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वरने कहा हे विष्णुजी । हे ब्रह्माजी ! हे इन्द्रादि देवताओ ! हे मुनियो ! शिवजीको संतोष करनेवाला मेरा वचन सुनो ॥३८॥ यदि शिवके दारपरिग्रह करनेमें तुमको बडाही हठ है तो सब दीनतासे शंकरकी स्तुति करो ॥ ३९ ॥ हे देवताओ ! शिवजी भक्तिके वशीभूत होते हैं साधारण रूपसे नहीं, वह परमेश्वर भक्तिके वश होकर अकार्यको भी कर सकते हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता करैं नहीं तो आप शीघ्र जहांसे आये हैं वहां पधारैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णु आदि इस प्रकारसे उनके वचन सुन बहुत अच्छा ऐसा

कहकर शंकरकी स्तुति करनेलगे ॥ ४२ ॥ दे देवदेव ! महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! महाक्लेशसे हमारा उद्धार करो शरण आयेहुओंकी रक्षा करो ॥ ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार बडी दीनतासे देवताओंने शंकरकी स्तुति की और प्रेमसे व्याकुल मनसे सब रोने लगे ॥ ४४ ॥ मैंने और हरिने बडी दीनतासे विज्ञाति की और परम भक्तिसे मन लगाकर शंकरको स्मरण किया ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे मैंने हरिने और सब देवताओंने मनसे शंकरका स्मरण किया तो भक्तवत्सलताके कारण शिवजी ध्यानसे उपरामको प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ और शिवजी प्रसन्न होकर विष्णु आदिको प्रसन्न

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ समुद्धर महाक्लेशात्त्राहि नश्शरणागतान् ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं बहुदीनोक्त्या तुष्टुवुश्शंकरं सुराः ॥ रुरुदुस्सुस्वरं सर्वे प्रेमव्याकुलमानसाः ॥ ४४ ॥ हरिर्मया सुदीनोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह ॥ संस्मरन्मनसा शंभुं भक्त्या परमयान्वितः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सुरैरेवं स्तुतश्शंभुर्हरिणा च मया भृशम् ॥ भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद्विरतोभून्महेश्वरः ॥ ४६ ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन्हर्षयन्हरः ॥ विलोक्य करुणादृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ शंकर उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवाश्शक्राद्या युगपत्समे ॥ किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ॥ ४८ ॥ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वंतर्याम्यखिलेश्वरः ॥ किं न जानासि चित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात् ॥ ४९ ॥ तारकासुरतो दुःखं संभूतं विविधं मृड ॥ सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः ॥ ५० ॥ शिवा सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात् ॥ तस्यां त्वदुद्भवात्पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा ॥ ५१ ॥

करतेहुए बोले और भक्तवत्सल शंकरने सबको करुणादृष्टिसे देखा ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले हे हरे ! हे विधाता ! हे इन्द्रादि देवताओ ! तुम सब कहो सत्य कहो किस निमित्त तुम्हारा आगमन है ॥ ४८ ॥ हरि बोले हे महेशान ! आप सर्वज्ञ सबके अन्तरकी बात जाननेवाले अखिलेश्वर हैं तो क्या आप हमारे मनकी नहीं जानते तो भी मैं आपके शासनसे कहता हूं ॥ ४९ ॥ हे शिव ! तारकासुरसे हमको बडा दुःख प्राप्त हुआ है, इस कारण सब देवता आपको प्रसन्न करनेके निमित्त आये हैं ॥ ५० ॥ वह पार्वती हिमालयके यहां आपहीके निमित्त उत्पन्न हुई हैं उस तारक असुरकी पार्वतीमें उत्पन्न हुए

पुत्रसे ही मृत्यु है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५१ ॥ इस प्रकारका ब्रह्माजीने उस दैत्यको वर दिया है, इससे औरसे मृत्यु न होनेके कारण यह सब जगत्को बाधा देता है ॥ ५२ ॥ नारदजीके उपदेशसे पार्वती कठिन तपस्या कररही हैं, उनके तेजसे त्रिलोकी चराचर सब व्याप्त होगये हैं ॥ ५३ ॥ हे परमेश्वर ! आप पार्वतीको वर देनेके निमित्त वहां गमन करैं हे स्वामिन् ! आप देवताओंके दुःख दूरकर हमको प्रसन्न कीजिये ॥ ५४ ॥ हे शंकर ! देवताओंके और हमारे मनमें यह उत्साह है, कि आपका विवाह देखैं सो उचित हो तो आप इसे स्वीकार करैं ॥ ५५ ॥ हे परात्पर ! जो आपने रतिको वर दिया है उसका

इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः ॥ तदन्यस्मादमृत्युस्स बाधते निखिलं जगत् ॥ ५२ ॥ नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः ॥ तत्तेजसाखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५३ ॥ वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर ॥ देवदुःखं जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह ॥ ५४ ॥ देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शंकर ॥ विवाहं तव संद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम् ॥ ५५ ॥ रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर ॥ प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु ॥ ५६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः ॥ संस्तूय विविधैस्तोत्रैस्संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः ॥ ५७ ॥ भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा ॥ विहस्य प्रत्युवाचाशु वेद[1]मर्यादरक्षकः ॥ ५८ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवाश्शृणुतादरतोऽखिलाः ॥ यथोचितमहं वच्मि सविशेषं विवेकतः ॥ ५९ ॥ नोचितं हि विधानं वै विवाहकरणं नृणाम् ॥ महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः ॥ ६० ॥ कुसंगा बहवो लोके स्त्रीसंगस्तत्र चाधिकः ॥ उद्धरेत्सकलैर्बंधैर्न स्त्रीसंगात्प्रमुच्यते ॥ ६१ ॥

भी अवसर आ पहुंचा है सो उसे आप सफल करैं ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे विष्णु और महर्षि तथा दूसरे देवता कहकर और प्रणामकर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर सब शंकरके आगे स्थित हुए ॥ ५७ ॥ भक्ताधीन शंकरभी देवताओंके वचन सुनकर वह वेदकी मर्यादा पालन करनेवाले हँसते हुए तत्काल बोले ॥ ५८ ॥ शिवजी बोले हे हरे ! हे विधाता ! हे सब देवताओ ! हमारे वचन सुनो मैं ज्ञानसे यथोचित विशेषतापूर्वक कहता हूं ॥ ५९ ॥ जहांतक बनै मनुष्योंतकको विवाह बंधन उचित नहीं है यह दृढबंधन विवाह महानिगडबंधन है ॥ ६० ॥ लोगोंको संसारमें बहुतसे कुसंग हैं उनमें स्त्रीसंग

---

[1] पुंस्त्वमार्षम् वेदंसीम्नोऽभिरक्षक इति वा पाठः ।

महा हानिकारक है, सब बंधनोंसे उद्धार हो सकता है, परन्तु स्त्रीबंधनसे छुटकारा नहीं होता ॥ ६१ ॥ लोहे की तथा दारुमय पाशोंसे दृढ बँधा हुआ भी पुरुष छुटकारा पा सक्ता है परन्तु स्त्रीसंगके पाशसे बंधाहुआ कभी छुटकारा नहीं पासक्ता ॥ ६२ ॥ इससे महाबंधनके करने वाले विषय निरन्तर बढतेहैं जब मनमें विषय बढगये तो स्वप्नमें भी मोक्ष दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ यदि बुद्धिमान् सुख चाहै तो विधिपूर्वक विषयोंको त्याग दे यह विषय विषकी ही समान हैं, जिन विषयोंसे यह प्राणी मारा जाता है ॥ ६४ ॥ पुरुष विषयी पुरुषोंके संग वार्तामात्रसेही क्षणमें पतित हो जाताहै, और हे इन्द्र ! आचार्योंने विषयको मिश्रीसे चुपरी हुई वारुणी कहा है ॥ ६५ ॥ यद्यपि मैं इस बातको जानता हूं विशेषकर मुझे सब ज्ञान है, तो भी मैं तुम्हारी प्रार्थनाको सफल करूंगा ॥

लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते ॥ स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन ॥ ६२ ॥ वर्द्धंते विषयाश्शश्वन्महाबंधनकारिणः ॥ विषयाक्रांतमनसस्स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः ॥ ६३ ॥ सुखमिच्छतु चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयाँस्त्यजेत् ॥ विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यैर्निहन्यते ॥ ६४ ॥ जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात् ॥ विषयं प्राहुराचार्यास्सितालिप्तेंद्रवारुणीम् ॥ ६५ ॥ यद्यप्येवं हि जानामि सर्वं ज्ञानं विशेषतः ॥ तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः ॥ ६६ ॥ भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात्सर्वकार्यकृत् ॥ अयथोचितकर्ता हि प्रसिद्धो भुवनत्रये ॥ ६७ ॥ कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः ॥ सुदक्षिणस्य भूपस्य भैमबंधगतस्य हि ॥ ६८ ॥ गौतमक्लेशकर्ताहं त्र्यंबकात्मा सुखावहः ॥ तत्कष्टप्रददुष्टानां शापदायी विशेषतः ॥ ६९ ॥ विषं पीतं सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक् ॥ देवकष्टं हृतं यत्नात्सर्वदैव मया सुराः ॥ ७० ॥

॥ ६६ ॥ मैं भक्तोंके अधीन होकर उनकी प्रार्थनासे सब कार्य करताहूं और तीनों भुवनोंमें बडे समर्थोंसे न होसकै ऐसा जो अशक्य अनुचित है उसका भी करनेवाला ‘अनुचितकर्ता’ नामसे मैं प्रसिद्ध हूं ॥ ६७ ॥ कामरूपदेशके राजाकी प्रतिज्ञा मैंने सफल की, भैम बंधनमें प्राप्त हुए सुदक्षिण राजाका प्रण पूरा करदिया ॥ ६८ ॥ गौतमको मैंने क्लेश दिया, मैं त्र्यम्बकात्मा सुखका प्राप्त करानेवाला हूं, जो भक्तोंको दुःख देते हैं उन दुष्टोंको मैं विशेषकर कष्ट और शाप देताहूं ॥ ६९ ॥ भक्तवत्सलभाव दिखाते हुए देवताओंके निमित्तही मैंने विष पान किया था. हे देवताओ ! तुम्हारा कष्ट तो मैंने सदाही यत्नसे दूर

किया है ॥ ७० ॥ भक्तोंके निमित्त मैंने बहुतवार बहुतसे कष्ट उठाये हैं और गृहपति होकर विश्वानर मुनिके दुःख दूर किये ॥७१॥ हे हरि ! हे विधाता ! बहुत कहनेसे क्या है मैं सत्य कहता हूं मेरे भाषणको तुम सब तत्त्वसे जानो ॥ ७२ ॥ जब कभी किसी प्रकार भक्तोंको विपत्ति होती है उसी २ समयमें उसको सब प्रकारसे दूर करताहूं ॥ ७३ ॥ तारकसे जो तुम सबको दुःख उपस्थित हुआ है वह मैं सब जानता हूं, वह दुःख मैं हरण करूंगा यह सत्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ७४ ॥ यद्यपि मुझे विहार करनेकी कुछ भी रुचि नहीं है, तथापि पुत्रोत्पादनके निमित्त गिरिजाको विवाहूंगा ॥ ७५ ॥

भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशो बहुयत्नतः ॥ विश्वानरमुनेर्दुःखं हृतं गृहपतिर्भवन् ॥ ७१ ॥ किं बहूक्तेन च हरे विधे सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ मत्पणोऽस्तीति यूयं वै सर्वे जानीथ तत्त्वतः ॥ ७२ ॥ यदायदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित् ॥ तदातदा हराम्याशु तत्क्षणात्सर्वशस्सदा ॥ ७३ ॥ जानेऽहं तारकाद्दुःखं सर्वेषां वस्समुत्थितम् ॥ असुरात्तद्धरिष्यामि सत्यंसत्यं वदाम्यहम् ॥ ७४ ॥ नास्ति यद्यपि मे काचिद्वि हारकरणे रुचिः ॥ विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे ॥ ७५ ॥ गच्छत स्वगृहाण्येव निर्भयास्सकलाः सुराः ॥ कार्यं वस्साधयिष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ ७६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धरः ॥ सर्वे विष्णवादयो देवास्स्वधामानि ययुर्मुने ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीविवाहस्वीकारो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ गतेषु तेषु देवेषु विधिविष्णवादिकेषु च ॥ सर्वेषु मुनिषु प्रीत्या किं बभूव ततः परम् ॥ १ ॥ किं कृतं शंभुना तात वरं दातुं समागतः ॥ कियत्कालेन च कथं तद्वद प्रीतिमावहन् ॥ २ ॥

हे सब देवताओ ! अब तुम निर्भय होकर अपने घरोंको जाओ, मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूंगा, इसमें विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७६ ॥ ऐसा कहकर शिवजी मौन हो समाधिमें स्थित हुए, हे मुने ! सब विष्णु आदि देवता अपने स्थानोंको गये ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नारदजी बोले जब विधाता और विष्णु आदि सब देवता चलेगये तथा प्रेमसे सब मुनियोंने गमन किया तब क्या हुआ ॥ १ ॥ हे तात ! शिवजीने क्या किया कैसे वर देनेको आये कितने समयपर कैसा वर दिया, सो आप प्रेमसे कहिये ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले जब ब्रह्मादि देवता अपने आश्रमोंमें गये, तब पार्वतीकी तपस्याकी परीक्षाके निमित्त शिवजी समाधिमें स्थित हुए ॥ ३ ॥ अपनी आत्मासेही आत्माको विचारने लगे, जो तत्त्व परेसे परे मायारहित स्वतन्त्र निरवग्रह है ॥ ४ ॥ वस्तुतः भगवान् ईश्वर वृषभध्वज अविज्ञातगति जगत्के उत्पादक परमेश्वर विचारने लगे ॥५॥ ब्रह्माजी बोले हे तात! उस समय पार्वतीने भी परम तपस्या आरंभ की उस तपसे शंकर भी परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥६॥ और बात नहीं भक्ताधीन होनेसेही शंकरकी समाधि चलायमान हुई और जगत्कर्ता हरने वशिष्ठादि सप्त मुनियोंका स्मरण किया ॥ ७ ॥ वे सातों ऋषि स्मरण करतेही वहां आकर प्राप्त हुए, और सब प्रसन्न मुखसे विधिकी बहुत बडाई करते हुए आये ॥ ८ ॥ और प्रसन्नतासे महेश्वरको प्रणाम कर स्तुति करने लगे, वाणीसे गद्गद हो हाथ जोड शिर झुका लिया ॥९॥ सप्तर्षि बोले हे देवदेव! महादेव करुणासागर हे प्रभो! हम बडे धन्य हैं, जो आज आपने हमको स्मरण किया ॥ १० ॥ हे नाथ! हमको किस निमित्त स्मरण किया है, सो आज्ञा दीजिये हे स्वामिन्! अपने दासकी सदृश कृपा कीजिये आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ करुणानिधि मुनियोंकी इस प्रकारसे विज्ञप्तिको सुनकर उत्फुल्ल नेत्रोंसे प्रीति दिखाते हुए हँसकर शिवजी बोले ॥ १२ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ गतेषु तेषु देवेषु ब्रह्मादिषु निजाश्रमम् ॥ तत्तपस्सुपरीक्षार्थं समाधिस्थोऽभवद्भवः ॥ ३ ॥ स्वात्मानमात्मना कृत्वा स्वा
त्मन्येव व्यचिंतयत् ॥ परात्परतरं स्वस्थं निर्माय निरवग्रहम् ॥ ४ ॥ तद्वस्तुभूतो भगवानीश्वरो वृषभध्वजः ॥ अविज्ञातगतिस्सूति
स्स हरः परमेश्वरः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गिरिजा हि तदा तात तताप परमं तपः ॥ तपसा तेन रुद्रोऽपि परं विस्मयमागतः ॥ ६ ॥
समाधेश्चलितस्सोऽभूद्भक्ताधीनोऽपि नान्यथा ॥ वसिष्ठादीन्मुनीन्सप्त सस्मार सूतिकृद्धरः ॥ ७ ॥ सप्तापि मुनयश्शीघ्रमाययुस्स्मृति
मात्रतः ॥ प्रसन्नवदनाः सर्वे वर्णयंतो विधिं बहु ॥ ८ ॥ प्रणम्य तं महेशानं तुष्टुवुर्हर्षनिर्भराः ॥ वाण्या गद्गदया बद्धकरा विनतकं
धराः ॥ ९ ॥ ॥ सप्तर्षय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ जाता वयं सुधन्या हि त्वया यदधुना स्मृताः ॥ १० ॥
किमर्थं संस्मृता वाथ शासनं देहि तद्धि नः ॥ स्वदाससदृशीं स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य
मुनीनां तु विज्ञप्तिं करुणानिधिः ॥ प्रोवाच विहसन्प्रीत्या प्रोत्फुल्लनयनाम्बुजः ॥ १२ ॥

॥ महेश्वर उवाच ॥ हे सप्तमुनयस्ताताश्शृणुतारं वचो मम ॥ अस्मद्धितकरा यूयं सर्वज्ञानविचक्षणाः ॥ १३ ॥ तपश्चरति देवेशी पार्वती गिरिजाऽधुना ॥ गौरीशिखरसंज्ञे हि पर्वते दृढमानसा ॥ १४ ॥ मां पतिं प्राप्तुकामा हि सा सखीसेविता द्विजाः ॥ सर्वान्कामान्विहायान्यान्परं निश्चयमागता ॥१५॥ तत्र गच्छत यूयं मच्छासनान्मुनिसत्तमाः ॥ परीक्षां दृढतायास्तत्कुरुत प्रेमचेतसः ॥ १६ ॥ सर्वथा छलसंयुक्तं वचनीयं वचश्च वः ॥ न संशयः प्रकर्तव्यश्शासनान्मम सुव्रताः ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याज्ञप्ताश्च मुनयो जग्मुस्तत्र द्रुतं हि ते ॥ यत्र राजति सा दीप्ता जगन्माता नगात्मजा ॥ १८ ॥ तत्र दृष्टा शिवा साक्षात्तपःसिद्धिरिवापरा ॥ मूर्ता परमतेजस्का विलसंती सुतेजसा ॥ १९ ॥ हृदा प्रणम्य तां ते तु ऋषयस्सप्त सुव्रताः ॥ सन्नता वचनं प्रोचुः पूजिताश्च विशेषतः ॥ २० ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शृणु शैलसुते देवि किमर्थं तप्यते तपः ॥ इच्छसि त्वं सुरं कं च किं फलं तद्वदाधुना ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता सा शिवा देवी गिरींद्रतनया द्विजैः ॥ प्रत्युवाच वचस्सत्यं सुगूढमपि तत्पुरः ॥ २२ ॥

शंकरजी बोले हे सप्त मुनियो ! हे तात ! तुम मेरे वचन सुनो, सब ज्ञानमें चतुर तुम हमारे हित करनेवाले हो ॥ १३ ॥ गौरीशिखरनामक पर्वतमें देवेशी पर्वतराजकी पुत्री दृढ मनसे तपस्या कर रही है॥ १४॥ हे ऋषियो ! सखियोंसे सेवित हुई वह मुझे पति बनानेकी इच्छा करती है सब कामको छोडकर मुझमेंही वह परम निश्चय किये है ॥ १५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे शासनसे तुम वहां जाओ, और प्रेम चित्तसे उसकी दृढताकी परीक्षा लो॥ १६ ॥ सर्वथा छल वा वंचनाके वचन बोलकर परीक्षा लेनी, हे सुव्रतो ! मेरे शासनसे संशय न करना ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार मेरे वचनसे शीघ्रही मुनि वहां गये जहां वह जगन्माता पर्वतराजपुत्री विराजमान थी ॥ १८ ॥ वहां जाकर उन्होंने शिवाको देखा कि मानो दूसरी तपकी सिद्धि है परम तेजोमयी मूर्तिसे मानो विराजमान होरही है ॥ १९ ॥ वे सुव्रत सातों ऋषि हृदयसे भगवतीको प्रणामकर पूजित हुए एकत्र हो वचन बोले ॥ २० ॥ ऋषि बोले हे शैलपुत्री देवि ! हमारे वचन सुनो तुम किस निमित्त तपस्या करती हो तुम किसी देवता या किसी फलको चाहती हो,सो अब कहिये ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले जब उन सप्त ऋषियोंने

इस प्रकार पार्वती देवीसे कहा तब पार्वती उनके आगे परम गूढ सत्य वचन बोली ॥ २२ ॥ पार्वती बोली हे मुनियो ! प्रेमसे तुम मेरे वचन सुनो; मैं अपने
विचारोंको तुमसे कहती हूं जो मैंने अपने मनमें विचार कियाहै ॥ २३ ॥ तुम मेरे असंभव वचनोंको सुनकर मेरा परिहास करोगे हे विप्रो ! मैं क्या करूं
इसके वर्णन करनेमें मुझे संकोच होताहै ॥ २४ ॥ यह मेरा मन दृढतासे परवश होगया है यह जलोंके ऊपर महाऊंची भींत बनाना चाहताहै ॥ २५ ॥
नारदजीकी आज्ञासे मैं कठिन तपस्या कररही हूं शंकर मेरे पति होजाँय मेरे मनमें यही दृढ मनोरथ है ॥ २६ ॥ विना पंखोंके मेरा मनरूपी पक्षी हठसे

॥ पार्वत्युवाच ॥ मुनीश्वरास्संश्शृणुत मद्वाक्यं प्रीतितो हृदा ॥ ब्रवीमि स्वविचारं वै चिंतितो यो धिया स्वया ॥ २३ ॥ करिष्यथ प्रहासं
मे श्रुत्वा वाचो ह्यसंभवाः॥ संकोचो वर्णनाद्विप्रा भवत्येव करोमि किम्॥ २४ ॥ इदं मनो हि सुदृढमवशं परकर्मकृत् ॥ जलोपरि महा
भित्तिं चिकीर्षति महोन्नताम् ॥ २५ ॥ सुरर्षेश्शासनं प्राप्य करोमि सुदृढं तपः ॥ रुद्रः पतिर्भवेन्मे हि विधायेति मनोरथम्॥ २६ ॥
अपक्षो मन्मनःपक्षी व्योम्नि उड्डीयते हठात् ॥ तदाशां शंकरस्वामी पिपर्त्तु करुणानिधिः ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य
वचस्तस्या विहस्य मुनयश्च ते ॥ संमान्य गिरिजां प्रीत्या प्रोचुश्छलवचो मृषा ॥ २८ ॥ ॥ ऋषय ऊचः ॥ न ज्ञातं तस्य चरितं
वृथापण्डितमानिनः ॥ देवर्षेः क्रूरमनसः सुज्ञा भूत्वाप्यगात्मजे ॥ २९ ॥ नारदः कूटवादी च परचित्तप्रमंथकः ॥ तस्य वार्त्ताश्रव
णतो हानिर्भवति सर्वथा ॥३०॥ तत्र त्वं शृणु सद्बुध्या चेतिहासं सुशोभितम् ॥ क्रमात्त्वां बोधयंतो हि प्रीत्या तमुपधारय॥ ३१ ॥
ब्रह्मपुत्रो हि यो दक्षस्सुषुवे पितुराज्ञया ॥ स्वपत्न्यामयुतं पुत्रानयुंक्त तपसि प्रियान्॥ ३२ ॥

आकाशमें उडताहै उस आशाको करुणानिधि स्वामी शंकरही पूर्ण करैंगे ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार पार्वतीके वचन सुन वे मुनि हँसकर गिरिजाको
सन्मान देतेहुए छलसे बोले ॥ २८ ॥ ऋषि बोले हे देवि ! वृथा पंडितमानी उन शंकरका चरित्र तुम नहीं जानती हे पार्वती ! तुमने विचारवती होकर भी क्रूर
मनवाले नारदजीका अभिप्राय न जाना ॥ २९ ॥ यह नारदजी बडे कूटवादी दूसरोंका चित्त मथन करनेवाले हैं उनकी बात सुननेसे सर्वथा मनुष्योंकी हानि
होतीहै ॥ ३० ॥ सो तुम श्रेष्ठबुद्धिसे इस सुन्दर इतिहासको सुनो हम तुमको क्रमसे समझाते हैं प्रेमसे उसको मनमें धारण करो ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र

दक्षजीने पिताकी आज्ञासे दस सहस्र पुत्र उत्पन्नकर उनको तप करनेमें नियुक्त किया ॥ ३२ ॥ वे पुत्र पश्चिम दिशामें नारायण सरोवरमें तपके निमित्त गये, उसी समय वहां नारदजी पहुँचे ॥ ३३ ॥ नारदजीने उनको कूट उपदेश सुनाकर विरक्तकर दिया जिससे वे लौटकर फिर पिताके घर न गये ॥ ३४ ॥ यह सुनकर दक्षजी बडे व्याकुल हुए और क्रोधभी किया और सहस्र पुत्र उत्पन्नकर उनको तपके निमित्त भेजा ॥ ३५ ॥ पिताकी आज्ञासे तपके निमित्त वे पुत्र भी वहीं गये, नारदजीने भी वहां जाकर उनको वहीं वैराग्यका उपदेश दिया ॥ ३६ ॥ जब उनको उपदेश दिया तब वे भी भ्राताओंके मार्गको प्राप्त

ते सुताः पश्चिमदिशि नारायणसरो गताः ॥ तपोर्थे ते प्रतिज्ञाय नारदस्तत्र वै ययौ ॥ ३३ ॥ कूटोपदेशमाश्राव्य तत्र तान्नारदो मुनिः ॥ तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययुः ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो दक्षः पित्राश्वासितमानसः ॥ उत्पाद्य पुत्रान्प्रायुंक्त सहस्रप्रमितांस्ततः ॥ ३५ ॥ तेऽपि तत्र गताः पुत्रास्तपोर्थं पितुराज्ञया ॥ नारदोऽपि ययौ तत्र पुनस्तत्स्वोपदेशकृत् ॥ ३६ ॥ ददौ तदुपदेशं ते तेभ्यो भ्रातृपथं ययुः ॥ आययुर्न पितुर्गेहं भिक्षुवृत्तिरताश्च ते ॥ ३७ ॥ इत्थं नारदसद्वृत्तिर्विश्रुत्ता शैलकन्यके ॥ अन्यां शृणु हि तद्वृत्तिं वैराग्यकरणीं नृणाम् ॥ ३८ ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराकरोत् ॥ स्वोपदेशमयं दत्त्वा तस्मै शून्यं च तद्गृहम् ॥ ३९ ॥ प्रह्लादाय स्वोपदेशान्हिरण्यकशिपोः परम् ॥ दत्त्वा दुःखं ददौ चायं परबुद्धिप्रभेदकः ॥ ४० ॥ मुनिना निजविद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना ॥ स स्वगेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः ॥ ४१ ॥ नारदो मलिनात्मा हि सर्वदोज्ज्वलदेहवान् ॥ जानीमस्तं विशेषेण वयं तत्सहवासिनः ॥ ४२ ॥

हुए, और भिक्षावृत्तिकरके रहे पर फिर पिताके स्थानको न आये ॥ ३७ ॥ हे पार्वती ! इस प्रकारसे नारदजीकी सद्वृत्तियें विख्यात हैं और भी उनका चरित्र मनुष्योंको वैराग्यका करनेवाला तुम सुनो ॥ ३८ ॥ चित्रकेतुनामक विद्याधर जो पहले रहा उसको अपना उपदेश देकर नारदजीने उसका घर शून्य कर दिया ॥ ३९ ॥ प्रह्लादको उपदेश देकर हिरण्यकश्यपसे उसे परम दुःख दिवाया बहुधा यह दूसरोंकी बुद्धियोंमें भेद डलवा देते हैं ॥ ४० ॥ इस मुनिने जिसको अपनी विद्या सुनाई वही अपना घर छोडकर भिक्षावृत्ति करने लगा ॥ ४१ ॥ यह नारदजी बडे मलिनात्मा हैं देखनेहीमें सदा उज्ज्वल देहवाले

अन्तःकरणके साफ नहींहैं हम उनको विशेषरूपसे जानते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे बगलेको देहसे स्वच्छ और उसकी पहलेकी क्रियाको देखकर कभी देखनेवाले उसको साधु कहतेहैं कि यह मच्छी नहीं खाता पर वह सर्वथा मच्छी खाता है सहवासी ही सहवासियोंका चरित्र जानताहै ॥ ४३ ॥ ऐसी बुद्धिमती होकर तुम भी उनका उपदेश मान गई तुम वृथा ही मूर्ख होकर दुश्चर तपस्या करती हो ॥ ४४ ॥ हा बाले ! जिसके निमित्त तुम ऐसा तप करती हो, वह उदासीन निर्विकार कामदेवके भस्म करनेवाले हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ अमंगल वेषधारण करनेवाले निर्लज्ज अकुलीन घरसे रहित कुवेषवाले भूत प्रेतादिका संग करनेवाले नग्न शूलधारी शिव हैं ॥ ४६ ॥ नारदजीने धूर्तताकर अपनी मायासे तुम्हारा ज्ञान नष्ट करके सद्युक्तिसे मोहित करके तुमसे तपस्या कराई॥ ॥ ४७ ॥ इस प्रकारके वरको प्राप्त होकर तुमको क्या सुख मिलेगा हे देवेशि ! तुमही इस विषयमें विचार करो ॥ ४८ ॥ पहले मूढतासे इन्होंने दक्षके यहां उत्पन्न हुई साध्वी सतीको विवाह करके कुछ दिन भी उनने निर्वाह नहीं किया ॥ ४९ ॥ और सतीकोही दोष लगाकर उन्होंने त्यागनकरदिया वह निरुपम रूपका ध्यान करते हुए अशोक हो रमण करते हैं ॥ ५० ॥ वह अद्वितीय परं निर्वाणस्वरूप असंग और अद्वैत हैं, हे देवि ! उनसे स्त्रियोंका

बकं साधुं वर्णयंति न मत्स्यानत्ति सर्वथा ॥ सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम् ॥ ४३ ॥ लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसंमता ॥ वृथैव मूर्खीभूता तु तपश्चरसि दुष्करम् ॥ ४४ ॥ यदर्थमीदृशं बाले करोषि विपुलं तपः ॥ सदोदासी निर्विकारो मदनारिर्न संशयः ॥ ४५ ॥ अमंगलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली ॥ कुवेषी प्रेतभूतादिसंगी नग्नो हि शूलभृत् ॥ ४६ ॥ स धूर्तस्तव विज्ञानं विनाश्य निजमायया ॥ मोहयामास सद्युक्त्या कारयामास वै तपः ॥ ४७ ॥ ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं संभविष्यति ॥ विचारं कुरु देवेशि त्वमेव गिरिजात्मजे ॥ ४८ ॥ प्रथमं दक्षजां साध्वीं विवाह्य सुधिया सतीम् ॥ निर्वाहं कृतवान्नैव मूढः किंचिद्दिनानि हि ॥ ४९ ॥ तां तथैव स वै दोषं दत्त्वात्याक्षीत्स्वयं प्रभुः ॥ ध्यायन्स्वरूपमकलमशोकमं[1]रमत्सुखी ॥ ५० ॥ एकलः परनिर्वाणो ह्यसंगोऽद्वय एव च ॥ तेन नार्याः कथं देवि निर्वाहः संभविष्यति ॥ ५१ ॥

---

[1] परस्मैपदमार्षम् ।

निर्वाह किस प्रकार होसकता है ॥ ५१ ॥ अब भी हमारी बात मानकर तुम घरको जाओ हमारे कहनेसे दुर्मतिको त्यागो हे महाभागे ! तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५२ ॥ तुम्हारे योग्यतो सब सद्गुणोंसे सम्पन्न विष्णुही हैं, वह वैकुंठवासी लक्ष्मीपति अनेक क्रीडाओंमें चतुर हैं ॥ ५३ ॥ उनके साथ तुम्हारा सब सुखदायक विवाह करावेंगे इस प्रकारकी हठको छोड हे पार्वती ! तू सुखी हो ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारके वचन सुनकर जगदम्बिका पार्वती हँसती हुई ज्ञानविशारद मुनियोंसे बोली ॥ ५५ ॥ पार्वती बोली हे मुनियो ! आपने अपने ज्ञानसे सत्यही कहा है हे ब्राह्मणो ! तिसपर भी मेरी हठ नहीं

अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम् ॥ त्यजास्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव ॥ ५२ ॥ त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुस्सर्वसद्गुणवान्प्रभुः॥ वैकुंठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडाविशारदः ॥ ५३ ॥ तेन ते कारयिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम् ॥ इतीदृशं त्यज हठं सुखिता भव पार्वति ॥ ५४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वती जगदम्बिका ॥ विहस्य च पुनःप्राह मुनीञ्ज्ञानविशारदान् ॥ ५५ ॥ पार्वत्युवाच ॥ सत्यं भवद्भिः कथितं स्वज्ञानेन मुनीश्वराः ॥ परंतु मे हठो नैव मुक्तो भवति हे द्विजाः ॥ ५६ ॥ स्वतनोः शैलजातत्वात्काठिन्यं सहजं स्थितम् ॥ इत्थं विचार्य सुधिया मां निषेद्धुं न चार्हथ ॥ ५७ ॥ सुरर्षेर्वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन॥ गुरूणां वचनं पथ्यमिति वेदविदो विदुः ॥ ५८ ॥ गुरूणां वचनं सत्यमिति येषां दृढा मतिः ॥ तेषामिहामुत्र सुखं परमं नासुखं क्वचित् ॥ ५९ ॥ गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः ॥ इहामुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित् ॥ ६० ॥ सर्वथा न परित्याज्यं गुरूणां वचनं द्विजाः ॥ गृहं वसेद्वा शून्यं स्यान्मे हठस्सुखदस्सदा ॥ ६१ ॥

जाती ॥ ५६ ॥ पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण यह मेरा शरीर बहुत कठिन है अपनी बुद्धिसे [illegible] प्रकार विचार करके अब मुझे निषेध मत करो ॥५७॥ नारदजीके वचनही पथ्य हैं मैं उनको कभी त्यागन नहीं करूंगी वेदविद कहते हैं कि गुरुओंके वचन सर्वदा माननेके योग्य हैं ॥ ५८ ॥ जिनके ऐसी दृढ मति है कि गुरुओंके वचन सत्य होते हैं उनको यहां वहां दोनों लोकमें सुख होता है, कभी असुख नहीं होता ॥ ५९ ॥ गुरुओंके वचन सत्य होते हैं, इस प्रकारकी जिनके मनमें धृति नहीं है, उनको दोनों लोकमेंही दुःख है कभी सुख नहीं है ॥ ६० ॥ हे द्विजो ! किसी प्रकार भी गुरुओंके वचन त्यागन

करने उचित नहीं हैं घर उजडो या वसो पर मेरी हठ नहीं जायगी ॥ ६१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! जो वचन आपने कहे हैं उनसे विपरीत जो तात्पर्य है संक्षेपसे उसका विवेक वर्णन करती हूं ॥ ६२ ॥ विष्णुजी सत्यही गुणोंके स्थान विहार करनेवाले हैं सदाशिव अगुण हैं इसमें एक कारण है ॥ ६३ ॥ शिव ब्रह्म हैं निर्विकारहैं गेहादिक न होनेसे यदि विकार युक्त दीखैं तो ऐसा जानो उन्होंने भक्तहेतु शरीर धारण किया है वह संसारकी प्रभुता दिखानेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥ इस कारण वह शिवजी अवधूत स्वरूपसे परमानन्दमें मग्न परमहंसोंकी गति धारण किये हैं ॥ ६५ ॥ भूषणादि रुचि यह मायाकी बात

यद्भवद्भिस्सुभणितं वचनं मुनिसत्तमाः ॥ तदन्यथा तद्विवेकं वर्णयामि समासतः ॥ ६२ ॥ गुणालयो विहारी च विष्णुस्सत्यं प्रकीर्तितः ॥ सदाशिवोऽगुणः प्रोक्तस्तत्र कारणमुच्यते ॥ ६३ ॥ शिवो ब्रह्माविकारः स भक्तहेतोर्धृताकृतिः ॥ प्रभुतां लौकिकीं नैव संदर्शयितुमिच्छति ॥ ६४ ॥ अतः परमहंसानां धार्यये सुप्रिया गतिः ॥ अवधूतस्वरूपेण परानंदेन शंभुना ॥ ६५ ॥ भूषणादिरुचिर्मायालिप्तानां ब्रह्मणो न च ॥ स प्रभुर्निर्गुणोऽजो निर्मायोऽलक्ष्यगतिर्विराट् ॥ ६६ ॥ धर्मजात्यादिभिश्शम्भुर्नानुगृह्णाति वै द्विजाः ॥ गुरोरनुग्रहेणैव शिवं जानामि तत्त्वतः ॥ ६७ ॥ चेच्छिवस्स हि मे विप्रा विवाहं न करिष्यति ॥ अविवाहा सदाहं स्यां सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६८ ॥ उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे प्रचलति यदि मेरुश्शीततां याति वह्निः ॥ विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां न हि चलति हठो मे सत्यमेतद्ब्रवीमि ॥ ६९ ॥

है, वह ब्रह्म कुछ उस मायामें अवलिप्त नहीं है यह प्रभु निर्गुण अज मायारहित अलक्ष्यगति विराट् है ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! शंकरजी धर्म जाति आदि मात्रसे अनुग्रह नहीं करते इसीसे कुलादि रहित दीखते हैं केवल गुरुके अनुग्रहसे ही शिवजी अनुग्रह करते हैं तत्त्वसे मैं ऐसा जानती हूं ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो शंकर मेरे साथ विवाह नहीं करैंगे तो मैं सदा विवाहरहितही रहूंगी, यह मैं सत्य सत्य कहती हूं ॥ ६८ ॥ चाहैं सूर्य पश्चिम ओर उदय हो, चाहै सुमेरु पर्वत चलायमान होजाय. चाहै अग्नि शीतल हो जाय, चाहैं पर्वतकी शिलाओंपर कमल खिलजायँ, तो भी मेरी हठ नहीं जायगी यह मैं

सत्यही कहती हूं ॥ ६९ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे पर्वतात्मजा उन मुनियोंको प्रणाम करके शिवको स्मरणकर निर्विकार चित्तसे मौन होगई ॥७०॥ ऋषियोंनेभी इस प्रकार गिरिजाका निश्चय जानकर जय शब्द उच्चारणकर उत्तम अशीस दी ॥ ७१ ॥ तब वे मुनि उस देवीको प्रसन्न मनसे प्रणाम कर परीक्षा लेकर हे मुने ! शीघ्रतासे शिवजीके समीपमें गये ॥ ७२ ॥ वहां जाय शिवजीको प्रणामकर सब वृत्तान्त निवेदन करके और उनकी आज्ञा लेकर आदरसे अपने लोकको गये ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा०टी० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ ब्रह्माजी बोले जब सप्तर्षि

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा तान्प्रणम्याशु मुनीन्सा पर्वतात्मजा ॥ विरराम शिवं स्मृत्वा निर्विकारेण चेतसा ॥ ७० ॥ ऋषयोऽपीत्थमाज्ञाय गिरिजायास्सुनिश्चयम् ॥ प्रोचुर्जयगिरं तत्र ददुश्चाशिषमुत्तमाम् ॥ ७१ ॥ अथ प्रणम्य तां देवीं मुनयो हृष्टमानसाः ॥ शिवस्थानं द्रुतं जग्मुस्तत्परीक्षाकरा मुने ॥ ७२ ॥ तत्र गत्वा शिवं नत्वा वृत्तांतं विनिवेद्य तम् ॥ तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वलोंकं जग्मुरादरात् ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे सप्तर्षिकृतपरीक्षावर्णनो नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गतेषु तेषु मुनिषु स्वं लोकं शंकरः स्वयम् ॥ परीक्षितुं तपो देव्या ऐच्छत्सूतिकरः प्रभुः ॥ १ ॥ परीक्षाछद्मना शंभुर्द्रष्टुं तां तुष्टमानसः ॥ जाटिलं रूपामस्थाय स ययौ पार्वतीवनम् ॥ २ ॥ अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ॥ प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दंडी छत्री बभूव सः ॥ ३ ॥ तत्रापश्यत्स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम् ॥ वेदिकोपरि शुद्धां तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥ ४ ॥ शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ॥ उपकंठं ययौ प्रीत्या तदाऽसौ भक्तवत्सलः ॥ ५ ॥

अपने स्थानको गये तब शंकर जगत्पतिने पार्वतीकी स्वयं परीक्षा लेनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ प्रसन्न मनसे शिवजी परीक्षाके बहाने (छल) से ब्रह्मचारीका वेष बनाकर पार्वतीके देखनेको उनके तपोवनमें गये ॥ २ ॥ बहुत बूढे ब्राह्मणका वेष बनाये अपने तेजसे प्रकाशित मनसे प्रसन्न हृष्टमन दण्ड छत्र धारण किये ॥ ३ ॥ जाकर देखा कि देवीकी सेवा सखियें कररही हैं वेदीके ऊपर ऐसी बैठी है मानो चन्द्रमाकी कला हो ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारीस्वरूपधारी

शिवजीने जब देवीको देखा तब यह भक्तवत्सल उस देवीके समीपमें गये ॥ ५ ॥ उस तेजस्वी अद्भुत ब्राह्मणको आयाहुआ देखकर देवीने सब पूजाकी सामग्रीसे उनका पूजन कियां ॥ ६ ॥ परम सत्कारकी अनेक सामग्रियोंसे शिवाने पूजन किया, और पार्वतीने आदरसे ब्राह्मणकी कुशल पूछी ॥ ७ ॥ पार्वती बोली आप ब्रह्मचारीस्वरूपसे कौन हो कहांसे आये हो जो इस वनको प्रकाशित करते हो हे वेदविदांवर ! सो आप कहिये ॥ ८ ॥ ब्राह्मणने कहा मेरी जहां इच्छा होती है वहां मैं जाता हूं मैं विप्र वृद्ध हूं शरीर निर्बल है तपस्वी दूसरोंको सुख देनेवाला परोपकारी हूं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

आगतं तं तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम् ॥ अपूजयच्छिवा देवी सर्वपूजोपहारकैः ॥ ६ ॥ सुसत्कृतं संविधाभिः पूजितं परया मुदा ॥ पार्वती कुशलं प्रीत्या पप्रच्छ द्विजमादरात् ॥ ७ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः ॥ इदं वनं भासयसे वद वेदविदां वर ॥ ८ ॥ ॥ विप्र उवाच ॥ अहमिच्छाभिगामी च वृद्धो विप्रतनुस्सुधीः ॥ तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ॥ ९ ॥ का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने ॥ तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रपदैरपि ॥ १० ॥ न बाला न च वृद्धासि तरुणी भासि शोभना ॥ कथं पतिं विना तीक्ष्णं तपश्चरसि वै वने ॥ ११ ॥ किं त्वं तपस्विनी भद्रे कस्यचित्सहचारिणी ॥ तपस्वी स न पुष्णाति देवि त्वां च गतोऽन्यतः ॥ १२ ॥ वद कस्य कुले जाता कः पिता तव काभिधा ॥ महासौभाग्यरूपा त्वं वृथा तव तपोरतिः ॥ १३ ॥ किं त्वं वेदप्रसूर्लक्ष्मीः किं सुरूपा सरस्वती ॥ एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमुत्सहे ॥ १४ ॥

तुम कौन हो किसकी कन्या हो निर्जन वनमें किस कारणसे तप करती हो, जो मुनिजनोंको परम दुर्लभ है ॥ १० ॥ तुम बाला और वृद्धा नहीं हो सर्वथा तरुणी दिखाई देती हो पतिके विना वनमें किस प्रकारसे तीक्ष्ण तपस्या करती हो ॥ ११ ॥ हे तपस्विनी ! भद्रे तुम किसकी सहचारिणी हो हे देवि ! वह तपस्वी क्या तुम्हारा पोषण नहीं करता कहीं अन्यत्र गया है ॥ १२ ॥ बताओ तुम किस कुलमें उत्पन्न हुई हो तुम्हारे पिताका क्या नाम और तुम्हारा क्या नाम है तुम महासौभाग्य रूपवाली हो तुम वृथा तपस्या क्यों करती हो ॥ १३ ॥ क्या तुम वेदप्रसू सावित्री हो वा लक्ष्मी हो अथवा क्या सुन्दर

रूपवाली सरस्वती हो इनके मध्यमें तुम कौनहो इस बातकी तर्कना करनेको मैं उत्साह नहीं करता ॥ १४ ॥ पार्वतीजी बोली हे विप्र ! न तो मैं वेदरूप सावित्री न लक्ष्मी और न सरस्वती हूं मैं हिमालयकी कन्याहूं इस समय मेरा नाम पार्वती है ॥ १५ ॥ पहले जन्ममें मैं दक्षकन्या थी मेरा नाम सती था जब मेरे पिताने मेरे पतिकी निन्दा की तब योगमार्गसे मैंने शरीर त्याग दिया ॥ १६ ॥ इस जन्ममें भी शंकर प्राप्त हुए थे पर प्रारब्धवशास मुझे छोड कामदेवको भस्मकर वह अन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥ शंकरके चलेजानेसे मुझे बडा उद्वेग हुआ, हे ब्राह्मण ! तब मैं गंगाके किनारे पिताके घरसे चलकर

॥ पार्वत्युवाच ॥ नाहं वेदप्रसूर्विप्र न लक्ष्मीश्च सरस्वती ॥ अहं हिमाचलसुता सांप्रतं नाम पार्वती ॥ १५ ॥ पुरा दक्षसुता जाता सती नामान्यजन्मनि ॥ योगेन त्यक्तदेहाऽहं यत्पित्रा निन्दितः पतिः ॥ १६ ॥ अत्र जन्मनि संप्राप्तश्शिवोऽपि विधिवैभवात् ॥ मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्य मन्मथं स जगाम ह॥ १७ ॥ प्रयाते शंकरे तापोद्विजिताहं पितुर्गृहात् ॥ आगता तपसे विप्र सुदृढा स्वर्णदीतटे ॥ १८ ॥ कृत्वा तपः कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम् ॥ न प्राप्याग्नौ विविक्षन्ती त्वां दृष्ट्वा संस्थिता क्षणम् ॥ १९ ॥ गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ शिवेनांगीकृता न हि ॥ यत्र यत्र जनुर्लप्स्ये वरिष्यामि शिवं वरम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा पार्वती वह्नौ तत्पुरः प्रविवेश सा ॥ निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः ॥ २१ ॥ वह्निप्रवेशं कुर्वत्याः पार्वत्यास्तत्प्रभावतः ॥ बभूव तत्क्षणं सद्यो वह्निश्चंदनपंकवत् ॥ २२ ॥

तप करने चली आई ॥ १८ ॥ मैंने प्राणवल्लभकी प्राप्तिके लिये महाकठिन तपस्या की है परन्तु उनकी प्राप्ति न हुई इस कारण अब अग्निमें प्रवेश करती हूं तुमको देखकर क्षणमात्रके निमित्त विलम्ब करती हूं ॥ १९ ॥ आप पधारें मुझे शिवजीने अंगीकार नहीं किया इस कारण अग्निमें प्रवेश करती हूं, जहां कहीं जन्म होगा पति होंगे तो शंकरही होंगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर पार्वती उस ब्रह्मचारीके वारंवार निषेध करनेपर भी अग्निमें प्रवेश करगई ॥ २१ ॥ जिस समय पार्वतीने अग्निमें प्रवेश किया उस समय उन ब्राह्मणरूप शिवजीके प्रभावसे उसी समय अग्नि चंदनकी समान शीतल होगई ॥२२॥

क्षणमात्रमें उस अग्निमें स्थित हो उसे शीतल जान जब पार्वती स्वयं द्युलोकको गमन करने लगी तब शिवजी अपने शरीरकी निन्दा करते हुए हँसकर उससे बोले ॥ २३ ॥ ब्राह्मणने कहा अहो भद्रे ! तुम्हारी तपस्यासे क्या होगा तुमने कुछभी न जाना अग्निने तुम्हारी देह न जलाई न तुम्हारा मनोरथ पूरा हुआ ॥ २४ ॥ इस कारण निश्चयकर ठीक तुम अपना मनोरथ कहो मैं ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ सबको आनंद देनेवाला हूं मुझसे सत्य कहो ॥ २५ ॥ हे देवि ! सर्वथा तुमको अपना वृत्तान्त कहना चाहिये कारण कि मेरी तुम्हारी अब मित्रता होगई है, इस कारण तुमको इस कार्यके छिपानेकी आवश्यकता नहीं ॥

क्षणं तदंतरे स्थित्वा ह्युत्पतंतीं दिवं द्विजः ॥ पुनः पप्रच्छ सहसा विहसन्सुतनुं शिवः ॥ २३ ॥ द्विज उवाच ॥ अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किंचिदेव हि ॥ न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तं मनीषितम् ॥ २४ ॥ अतस्सत्यं निकामं वै वद देवि मनोरथम् ॥ ममाग्रे विप्रवर्यस्य सर्वानंदप्रदस्य हि ॥ २५ ॥ यथाविधि त्वया देवि कीर्त्यतां सर्वथात्मना ॥ तस्मान्मैत्री च संजाता कार्य्यं गोप्यं त्वया न हि ॥ २६ ॥ किमिच्छसि वरं देवि प्रष्टुमिच्छाम्यतःपरम् ॥ त्वय्येव तदसौ देवि फलं सर्वं प्रदृश्यते ॥ २७ ॥ परार्थे च तपश्चेद्वै तिष्ठेत्तु तप एव तत् ॥ रत्नं हस्ते समादाय हित्वा काचस्तु संचितः ॥ २८ ॥ ईदृशं तव सौंदर्यं कथं व्यर्थीकृतं त्वया ॥ हित्वा वस्त्राण्यनेकानि चर्मादि च धृतं त्वया ॥ २९ ॥ तत्सर्वं कारणं ब्रूहि तपसस्त्वस्य सत्यतः ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवर्योऽहं यथा हर्षमवाप्नुयाम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति पृष्टा तदा तेन सखीं प्रैरयताम्बिका ॥ तन्मुखेनैव तत्सर्वं कथयामास सुव्रता ॥ ३१ ॥

॥ २६ ॥ हे देवि ! इसके उपरान्त तुम किस वरकी इच्छा करती हो यह मेरी सुननेकी इच्छा है कारण कि सम्पूर्ण फल तुममें ही दिखाई देता है ॥ २७ ॥ यदि दूसरेके निमित्त तपस्या है तो तप करो पर तुम्हें क्या यह तो ऐसा है कि हाथका रत्न छोडकर मानो काच धारण करना है ॥ २८ ॥ इस प्रकार अपनी सुन्दरताको तुमने व्यर्थ क्यों करदिया है अनेक प्रकारके वस्त्र छोडकर तुमने मृगचर्मादि धारण किये हैं ॥ २९ ॥ इस कारण इस तपस्या करनेका सत्य २ कारण कहिये जिसको सुनकर मैं प्रसन्नताको प्राप्त करूं ॥ ३० ॥ जब इस प्रकारसे ब्राह्मणने पूछा तब अम्बिकाने इस विषयमें अपनी सखीको प्रेरणा की

और उसके मुखसे ही सब उस सुव्रताने कहलाया ॥ ३१ ॥ इस प्रकारसे जब पार्वतीने विजयानामक सखीसे प्रेरणा की तब वह पार्वतीकी प्राणप्रिया सुव्रतज्ञा सखी जटाधारी ब्राह्मणसे बोली ॥३२॥ सखी बोली हे साधो ! सुनो मैं पार्वतीका परमचरित्र कहती हूं तपका कारणभी सब कहती हूं जो तुम्हारे सुननेकी इच्छा है ॥ ३३ ॥ यह हमारी सखी गिरिराज हिमालयकी सुता है यह पार्वती और काली नामसे माता मेनका करके विख्यात हुई है ॥ ३४ ॥ अभीतक इसका विवाह नहीं हुआ और शिवजीके सिवाय यह किसीकी इच्छा नहीं करती इसको तप करते ही तीन सहस्र वर्ष बीतगये ॥ ३५ ॥

तया च प्रेरिता तत्र पार्वत्या विजयाभिधा ॥ प्राणप्रिया सुव्रतज्ञा सखी जटिलमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ सख्युवाच ॥ शृणु साधो प्रवक्ष्यामि पार्वतीचरितं परम् ॥ हेतुं च तपसस्सर्वं यदि त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ ३३ ॥ सखी मे गिरिराजस्य सुतेयं हिमभूभृतः ॥ ख्याता वै पार्वती नाम्ना सा कालीति च मेनका ॥ ३४ ॥ ऊढेयं न च केनापि न वाञ्छति शिवात्परम् ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि तपश्चरणसाधिनी ॥ ३५ ॥ तदर्थं मेऽनया सख्या प्रारब्धं तप ईदृशम् ॥ तदत्र कारणं वक्ष्ये शृणु साधो द्विजोत्तम ॥ ३६ ॥ हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान् हरिं ब्रह्माणमेव च ॥ पतिं पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छति पार्वती ॥ ३७ ॥ इयं सखी मदीया वै वृक्षानारोपयत्पुरा ॥ तेषु सर्वेषु संजातं फलपुष्पादिकं द्विज ॥ ३८ ॥ रूपसार्थाय जनककुलालंकरणाय च ॥ समुद्दिश्य महेशानं कामस्यानुग्रहाय च ॥ ३९ ॥ मत्सखी चादरोद्देशात्तपस्तपति दारुणम् ॥ मनोरथः कुतस्तस्या न फलिष्यति तापस ॥ ४० ॥

उन्हींके निमित्त हमारी सखीने इस प्रकारका तप आरंभ किया है सो हे ब्राह्मण ! मैं इसमें कारण कहती हूं आप सुनिये ॥३६॥ इन्द्र आदि देवताओंको छोडकर, तथा हरि और ब्रह्माजीको छोडकर पार्वती पिनाकपाणि शंकरके प्राप्त करनेकी इच्छा करती है ॥ ३७ ॥ इस मेरी सखीने पहले जिन वृक्षोंका आरोपण किया था हे द्विज ! देखो उन वृक्षोंमें फूल फल अनेकवार आचुके हैं ॥ ३८ ॥ रूपके सार्थवत्के लिये और पिताके वंशको शोभित करनेके लिये महेशके उद्देश्यसे तथा कामके अनुग्रहके लिये ॥ ३९ ॥ मेरी सखी नारदके उपदेशसे दारुण तपस्या करती है हे तपस्वी ! इसका मनोरथ क्यों नहीं

सफल होगा ॥ ४० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो तुमने मेरी सखीका मनोरथ पूछा वह मैंने प्रेमसे वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार यथार्थरूपसे विजयाके वचन सुनकर हे मुने ! वह जटिल रुद्र हँसकर वचन कहने लगे ॥ ४२ ॥ जटिल बोले यह जो कुछ सखीने कहा है यह परिहास तर्कित होता है यदि यह बात यथार्थ हो तो देवी अपने मुखसे इसे प्रतिपादन करै ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले जब द्विजन्मा ब्रह्मचारीने इस प्रकार कहा तब पार्वती देवी अपने मुखसे उस सखीके कहे हुए वृत्तान्तको ब्राह्मणसे बोली ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० टी० रुद्रसंहितान्तर्ग

यत्ते पृष्टं द्विजश्रेष्ठ मत्सख्या मनसीप्सितम् ॥ मया ख्यातं च तत्प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा विजयाया यथार्थतः ॥ मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥ जटिल उवाच ॥ सख्येदं कथितं तत्र परिहासोनुमीयते ॥ यथार्थं चेत्तदा देवी स्वमुखेनाभिभाषताम् ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते च तदा तेन जटिलेन द्विजन्मना ॥ उवाच पार्वती देवी स्वमुखेनैव तं द्विजम् ॥ ४४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाजटिलसंवादो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ शृणु द्विजेन्द्र जटिल मद्वृत्तं निखिलं खलु ॥ सख्युक्तं मेऽद्य यत्सत्यं तत्तथैव न चान्यथा ॥ १ ॥ मनसा वचसा साक्षात्कर्म्मणा पतिभावतः ॥ सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं वृतो वै शंकरो मया ॥ २ ॥ जानामि दुर्ल्लभं वस्तु कथम्प्राप्यं मया भवेत् ॥ तथापि मन औत्सुक्यात्तप्यतेऽद्य तपो मया ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनन्तस्मै स्थिता सा गिरिजा तदा ॥ उवाच ब्राह्मणस्तत्र तच्छ्रुत्वा पार्वतीवचः ॥ ४ ॥

ततृतीयपार्वतीखण्डे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ पार्वती बोली हे ब्राह्मण ! यह सब तुम मेरा वृत्तान्त सुनो जो कुछ मेरी सखीने कहा है वह सब सत्य है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ १ ॥ मैंने मन वचन कर्मसे पतिभावसे ही शंकरका आराधन किया है मैं सत्य कहती हूं असत्य नहीं है मैंने शंकरका ही वरण किया है ॥ २ ॥ मैं भी जानती हूं कि दुर्लभ वस्तु मैं कैसे पासकती हूं तो भी मनकी उत्कंठासे मैं तप करती हूं ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले जब

इस प्रकारके वचन कहकर पार्वती स्थित हुई तो यह पार्वतीके वचन सुनकर ब्राह्मणने कहा ॥ ४ ॥ ब्राह्मण बोला इतने समयतक मुझे यह बडी इच्छा थी कि यह देवी किस वस्तुकी इच्छा करती है जो ऐसा तप करती है ॥ ५ ॥ हे देवि ! सो अब वह बात तुम्हारे मुखसे सब सुनकर मैं यहांसे जाता हूं जो तुम्हारी इच्छा हो सो तुम करना ॥ ६ ॥ यदि तुम मुझसे नहीं कहती तो यह मित्रत्वमें निष्फलता होती है, जैसा कार्य और जैसी होनहार हो वह सुखपूर्वक कहनी चाहिये तुमने कुछ न कहा. ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले यह उससे वचन कहकर जबतक वह ब्राह्मण जानेकी इच्छा करने लगा तबतक पार्वती

ब्राह्मण उवाच ॥ एतावत्कालपर्य्यन्तम्ममेच्छा महती ह्यभूत् ॥ किं वस्तु कांक्षती देवी कुरुते सुमहत्तपः ॥ ५ ॥ तज्ज्ञात्वा निखिलं देवि श्रुत्वा त्वन्मुखपंकजात् ॥ इतो गच्छाम्यहं स्थानाद्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६ ॥ न कथ्यते त्वया मह्यं मित्रत्वं निष्फलम्भवेत् ॥ यथा कार्य्यं तथा भावि कथनीयं सुखेन च ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं तस्य यावद्गन्तुमियेष सः ॥ तावच्च पार्वती देवी प्रणम्योवाच तं द्विजम् ॥ ८ ॥ ॥ पार्वत्युवाच॥ किं गमिष्यसि विप्रेन्द्र स्थितो भव हितं वद ॥ इत्युक्ते च तया तत्र स्थित्वोवाच स दण्डधृक् ॥ ९ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ यदि श्रोतुमना देवि मां स्थापयसि भक्तितः ॥ वदामि तत्त्वं तत्सर्वं येन ते वयुनम्भवेत् ॥ ॥ १० ॥ जानाम्यहं महादेवं सर्वथा गुरुधर्म्मतः ॥ प्रवदामि यथार्थं हि सावधानतया शृणु ॥ ११ ॥ वृषध्वजो महादेवो भस्मदिग्धो जटाधरः ॥ व्याघ्रचर्म्मांबरधरः संवीतो गजकृत्तिना ॥ १२ ॥ कपालधारी सर्पौघैस्सर्वगात्रेषु वेष्टितः ॥ विषदिग्धोऽभक्ष्यभक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ॥ १३ ॥

देवी उस ब्राह्मणको प्रणाम करके बोली ॥ ८ ॥ पार्वती बोली हे विप्रेन्द्र ! तुम क्यों जाते हो ठहरो और हितकी बात कहो जब पार्वतीने ऐसा कहा तब वह दंडधारी ब्राह्मण स्थित होकर बोला ॥ ९ ॥ ब्राह्मण बोला हे देवि ! यदि भक्तिसे मुझे बैठालकर तुम कुछ सुननेकी इच्छा करती हो तो मैं वह सब तत्त्व कहता हूं जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ १० ॥ मैं महादेवको जानताहूं वह सर्वथा धर्मसे गुरु हैं मैं यथार्थ कहता हूं तुम सावधान होकर सुनो ॥ ११ ॥ वृषभध्वज महादेव भस्म लगाये जटाधारे व्याघ्र चर्मके वस्त्रधारे हाथीका चर्म ओढते हैं ॥ १२ ॥ वह कपालधारी सर्पोंके समूह शरीरमें लपेटे रहते हैं

विषको धारण किये अभक्ष भक्षण करते तीननेत्र धारे देखनेमें भयंकर हैं ॥ १३ ॥ उनके जन्मकी ही किसीको खबर नहीं है वह गृहस्थोंके भोगसे रहित हैं वह दिगम्बर दशभुजावाले भूत प्रेतोंसे सदा युक्त रहतेहैं ॥ १४ ॥ तुम किस कारणसे ऐसे स्वामीकी इच्छा करती हो हे देवि ! तुम्हारा ज्ञान कहाँ गया सो आप विचारसे इस समय कहैं ॥ १५ ॥ मैंने पहलेही उनका भयंकर व्रत सुनाहै जो तुम्हारे सुननेकी रुचिहै तो सुनो मैं कहता हूं ॥ १६ ॥ पहले साध्वी दक्षकी सुताने शिवजीको वरण किया था वृषभवाहनका उससे कैसा संभोग हुआ वह तुमने सुनाहोगा ॥ १७ ॥ कपालीकी स्त्री है ऐसा जानकर

अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोगविवर्जितः ॥ दिगंबरो दशभुजो भूतप्रेतान्वितस्सदा ॥ १४ ॥ केन वा कारणेन त्वं तं भर्तारं समीहसे ॥ क्व ज्ञानं ते गतं देवि तद्वदाद्य विचारतः ॥ १५ ॥ पूर्वं श्रुतम्मया चैव व्रतन्तस्य भयंकरम् ॥ शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते श्रवणे रुचिः ॥ १६ ॥ दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ॥ वव्रे पतिं पुरा दैवात्तत्संभोगः परिश्रुतः ॥ १७ ॥ कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता ॥ यज्ञे भागप्रदानाय शंभुश्चापि विवर्जितः ॥ १८ ॥ सा तथैवापमानेन भृशं कोपाकुला सती ॥ तत्त्याजासून्प्रियाँस्तत्र तया त्यक्तश्च शंकरः ॥ १९ ॥ त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ॥ तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे ॥ २० ॥ दत्त्वा सुवर्णमुद्रां च ग्रहीतुं काचमिच्छसि ॥ हित्वा च चन्दनं शुभ्रं कर्दमं लेप्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ सूर्य्यतेजः परित्यज्य खद्योतद्युतिमिच्छसि ॥ चीनांशुकं विहायैव चर्म्मांबरमिहेच्छसि ॥ २२ ॥

दक्षने अपनी कन्याको छोडदिया और यज्ञमें शिवजीको भी भाग नहीं दिया ॥ १८ ॥ इस अपमानसे सतीको महाकोप हुआ उसने अपने प्राणोंको पिताके यज्ञमें त्याग दिया ऐसे शिव सती करके छोडेही गये ॥ १९ ॥ तुम स्त्रियोंमें रत्न हो तुम्हारे पिता भी तो सब पर्वतोंके राजाहैं तब ऐसे पतिको ऐसी कठिन तपस्यासे कैसे इच्छा करती हो ॥ २० ॥ सुवर्णकी मुद्रा (अशर्फी) अथवा अँगूठीरूप तपस्याके बदलेमें तुम काच ग्रहण करने अथवा पहिननेकी कैसे इच्छा करती हो सुन्दर चन्दनको छोडकर कर्दम लगानेकी क्यों इच्छा करती हो ॥ २१ ॥ सूर्यका तेज छोडकर खद्योत (जुगुनू) पटवीजने की कांतिकी

इच्छा करती हो रेशमी चीन देशके वस्त्र छोड कर चर्म वस्त्रोंकी इच्छा करती हो ॥२२॥ घरका वास त्यागकर वनवासकी इच्छा करती हो हे देवेशि ! शेवधि (कल्याणनिधि) को त्यागकर तुम लोहेकी इच्छा करती हो ॥ २३ ॥ तुम इन्द्रादि लोकपालोंको छोडकर शिवमें अनुरक्त हुई हो मैं इसको अच्छा नहीं समझता यह बात लोकसे भी विरुद्ध है ॥२४॥ कहाँ तुम कमललोचना और कहां वे त्रिलोचन कहाँ तुम चन्द्रमुखी कहाँ वे जो पंचमुख कहे जाते हैं ॥ २५ ॥ तुम्हारे शिरपर सर्पिणीकी समान दिव्य वेणी है और मस्तकपर जटाजूट प्रसिद्ध शिवजीहीका है ॥२६॥ तुम्हारे अंगमें चंदन है

गृहवासम्परित्यज्य वनवासं समीहसे ॥ लोहमिच्छसि देवेशि त्यक्त्वा शेवधिमुत्तमम् ॥ २३ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च हित्वा शिवमनुव्रता ॥ नैतत्सूक्तं हि लोकेषु विरुद्धं दृश्यतेऽधुना ॥ २४ ॥ क्व त्वं कमलपत्राक्षी क्वासौ वै त्रिविलोचनः ॥ शशांकवदना त्वं च पंचवक्त्रः शिवस्स्मृतः ॥ २५ ॥ वेणी शिरसि ते दिव्या सर्पिणीव विभासिता ॥ जटाजूटं शिवस्यैव प्रसिद्धम्परिचक्षते ॥ २६ ॥ चंदनं च त्वदीयांगे चिताभस्म शिवस्य च ॥ क्व दुकूलं त्वदीयं वै शांकरं क्व गजाजिनम् ॥ २७ ॥ क्व भूषणानि दिव्यानि क्व सर्पाश्शंकरस्य च ॥ क्व चरा देवतास्सर्वाः क्व च भूतबलिप्रियः ॥ २८ ॥ क्व वा मृदंगवादश्च क्व च तड्डमरुस्तथा ॥ क्व च भेरीकलापश्च क्व च शृंगरवोऽशुभः ॥ २९ ॥ क्व च ढक्कामयः शब्दो गलनादः क्व चाशुभः ॥ भवत्याश्च शिवस्यैव न युक्तं रूपमुत्तमम् ॥ ३० ॥ यदि द्रव्यं भवेत्तस्य कथं स्यात्स दिगंबरः ॥ वाहनं च बलीवर्दस्सामग्री कापि तस्य न ॥ ३१ ॥

और शिवके अंगमें चिताभस्म है कहाँ तुम्हारा दुकूल वस्त्र और कहाँ शिवजीका गज चर्म ॥ २७ ॥ कहां तुम्हारे दिव्य भूषण और कहां शंकरका सर्प कहां तुम्हारे अनुचर देवता और कहां शंकर भूतोंके प्रिय तथा बलिप्रिय ॥ २८ ॥ कहां इधर मृदंगोंका नाद कहां उधर उनका डमरू, कहां भेरीका शब्द कहां उनका शृंगी नाद ॥ २९ ॥ कहां ढक्कानामक बाजेका शब्द कहाँ उनका गलनाद जो अशुभ है तुम्हारे और शिवके रूपकी कोई समता नहीं है ॥ ३० ॥ यदि उनके पास द्रव्य होता तो वे दिगम्बर क्यों होते, उनका वाहन बलीवर्द है तात्पर्य यह कि उनके पास कोई सामग्री नहीं है ॥ ३१ ॥

स्त्रियोंको जो सुखदायक गुण वरोंमें होने चाहिये उनके बीचमें शंकरमें एक गुण भी नहीं है ॥ ३२ ॥ काम तो तुमको भी प्यारा होगा वह भी शंकरने भस्म करदिया, यह भी तुम्हारा अनादर किया जो तुमको छोडकर अन्यत्र चले गये ॥ ३३ ॥ उनकी जाति विद्या ज्ञान कुछ विदित नहीं होता, पिशाच उनके सहायक और कंठमें विष रहताहै ॥ ३४ ॥ सदा इकलेंही रहते और विशेष कर वैरागी हैं इस कारण तुम शंकरसें मन मत लगाओ ॥ ३५ ॥ कहां तुम्हारे हृदयका हार कहां मुण्डोंकी माला, कहां तुम्हारे शरीरका अंगराग और कहां उनके शरीरकी चिताभस्म ॥ ३६ ॥ हे देवि ! तुम्हारे और

वरेषु ये गुणाः प्रोक्ता नारीणां सुखदायकाः ॥ तन्मध्ये हि विरूपाक्षे एकोपि न गुणः स्मृतः ॥ ३२ ॥ तवापि कामो दयितो दग्धस्तेन हरेण च ॥ अनादरस्तदा दृष्टो हित्वा त्वामन्यतो गतः ॥३३॥ जातिर्न दृश्यते तस्य विद्याज्ञानं तथैव च ॥ सहायाश्च पिशाचा हि विषं कण्ठे हि दृश्यते ॥ ३४ ॥ एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ॥ तस्मात्त्वं हि हरेनैव मनो योक्तुं तु चार्हसि ॥ ३५ ॥ क्व च हारस्त्वदीयो वै क्व च तन्मुण्डमालिका ॥ अंगरागः क्व ते दिव्यः चिताभस्म क्व तत्तनौ ॥ ३६ ॥ सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च ॥ मह्यं न रोचते ह्येतद्यदिच्छसि तथा कुरु ॥ ३७ ॥ असद्वस्तु च यत्किंचित् तत्सर्वं स्वयमीहसे ॥ निर्वर्तय मनस्तस्मान्नोचेदिच्छसि तत्कुरु ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य विप्रस्य पार्वती ॥ उवाच क्रुद्धमनसा शिवनिन्दापरं द्विजम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे ब्रह्मचारिप्रतारणवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ पार्वत्युवाच ॥ एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिदन्योयमागतः ॥ इदानीं सकलं ज्ञातमवध्यस्त्वम्विशेषतः ॥ १ ॥

शंकरके रूपादि सब विरुद्ध हैं मुझे यह बात नहीं रुची जो तुम्हारी इच्छामें आवै सो करो ॥ ३७ ॥ जो असद्वस्तुहै स्वयं उसकी इच्छा करती हो शंकरसे मन हटालो आगे जो मनमें आवै सो करो ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले उस ब्राह्मणके यह वचन सुनकर पार्वती क्रोधकर शिवनिन्दक ब्राह्मणसे बोली ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवम० भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ पार्वती बोली मैंने इतना जाना था कि यह कोई अन्य है पर इस

समय तुम्हारी सब बात जानली क्या करूं क्रोध तो बहुतहै पर ब्रह्मचारी अवध्य होतेहैं ॥ १ ॥ हे देव ! जो कुछ तुमने कहा वह सबही मिथ्या है जो तुमने कहा कि हम उनको जानते हैं यह सब तुम्हारा कहना मिथ्या है, यदि तुम जानते होते तो ऐसे वचन कभी न कहते ॥ २ ॥ कभी वैसे वेषधारी भी महेश्वर दिखाई देते हैं, उन परब्रह्मने अपनी लीलासेही शरीर धारण किया है ॥ ३ ॥ तुम ब्रह्मचारीके स्वरूपसे मुझे छलनेको उद्यत हुए हो, और आकर कुयुक्तिसे छलके भरे वचन कहते हो ॥ ४ ॥ शंकरके स्वरूपको विशेषकर मैं जानती हूं यथार्थतासे विचारकर शिवतत्त्व मैं कहती हूं तुम सुनो ॥ ५ ॥

त्वयोक्तं विदितं देव तदलीकं न चान्यथा ॥ यदि त्वयोदितं स्याद्वै विरुद्धं नोच्यते त्वया ॥ २ ॥ कदाचिद्दृश्यते तादृक् वेषधारी महेश्वरः ॥ स्वलीलया परब्रह्म स्वरागोपात्तविग्रहः ॥ ३ ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण प्रतारयितुमुद्यतः ॥ आगतश्छलसंयुक्तं वचोवादीः कुयुक्तितः ॥ ४ ॥ शंकरस्य स्वरूपं तु जानामि सुविशेषतः ॥ शिवतत्त्वमतो वच्मि सुविचार्य्य यथार्हतः ॥ ५ ॥ वस्तुतो निर्गुणो ब्रह्म सगुणः कारणेन सः ॥ कुतो जातिर्भवेत्तस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ ६ ॥ स सर्वासां हि विद्यानामधिष्ठानं सदाशिवः ॥ किं तस्य विद्यया कार्य्यं पूर्णस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥ वेदा उच्छ्वासरूपेण पुरा दत्ताश्च विष्णवे ॥ शंभुना तेन कल्पादौ तत्समः कोऽस्ति सुप्रभुः ॥ ८ ॥ सर्वेषामादिभूतस्य वयोमानं कुतस्ततः ॥ प्रकृतिस्तु ततो जाता किं शक्तेस्तस्य कारणम् ॥ ९ ॥ ये भजंति च तं प्रीत्या शक्तीशं शंकरं सदा ॥ तस्मै शक्तित्रयं शंभुः स ददाति सदाव्ययम् ॥ १० ॥

यथार्थमें वह निर्गुण ब्रह्महैं, कारणवश सगुण हो जाते हैं उन निर्गुण गुणात्माकी जाति किस प्रकारसे होसकती है ॥ ६ ॥ वह सदाशिव सब विद्याओंके अधिष्ठान हैं उन पूर्ण परमात्माको साधारण विद्यासे क्या काम है ॥ ७ ॥ जिन्होंने उच्छ्वास रूपसे विष्णुजीको प्रथम वेद दिये थे यह कल्पकी आदिमें शिवजीने किया था, उनकी समान प्रभु कौन है ॥८॥ जो सबके आदि कारणहैं उनकी अवस्थाका मान क्या होसकता है उनके पश्चात् प्रकृति प्रगट हुई है वह शक्ति क्या शिवजीके प्रति कारण होसकती है ॥ ९ ॥ जो प्रेमसे शक्तिके ईश्वर शंकरका सदा भजन करते हैं, शिवजी उनको सदैव रहनेवाली ऐसी

तीनशक्तियोंका प्रदान करते हैं ॥ १० ॥ उन्हींके भजनसे यह जीव निर्भय होकर मृत्युको जीतता है इस कारण त्रिलोकीमें वह मृत्युंजय नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ॥ ११ ॥ उन्हीके पक्षपातसे विष्णु विष्णुपनेको प्राप्त होते हैं ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको और देवता देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ जैसे आदिमें शिवजीके दर्शनके लिये देवराज जाते हैं शिवानन्य शिवके द्वारपाल भूतादि गमन करतेही रहते हैं ॥ १३ ॥ कभी कभी उन गणोंके दंडोंके प्रहारसे उनका मुकुट चमकीला होगया है बहुत पक्ष लेनेसे क्या है वह स्वयंही महाप्रभु हैं ॥ १४ ॥ उन कल्याणरूपकी सेवा करनेसे यहां क्या नहीं हो सकता, उन देवके पास

तस्यैव भजनाज्जीवो मृत्युं जयति निर्भयः ॥ तस्मान्मृत्युंजयन्नाम प्रसिद्धम्भुवनत्रये ॥ ११ ॥ तस्यैव पक्षपातेन विष्णुर्विष्णुत्वमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मत्वं च यथा ब्रह्मा देवा देवत्वमेव च ॥ १२ ॥ दर्शनार्थं शिवस्यादौ यथा गच्छति देवराट् ॥ भूतादयस्तत्परस्य द्वारपाला शिवस्य तु ॥ १३ ॥ दण्डेश्च मुकुटं विद्धं मृष्टं भवति सर्वतः ॥ किं तस्य बहुपक्षेण स्वयमेव महाप्रभुः ॥ १४ ॥ कल्याणरूपिणस्तस्य सेवयेह न किं भवेत् ॥ किं न्यूनं तस्य देवस्य मामिच्छति सदाशिवः ॥ १५ ॥ सप्तजन्मदरिद्रः स्यात्सेवेन्नो यदि शंकरम् ॥ तस्यैतत्सेवनाल्लोको लक्ष्मीः स्यादनपायिनी ॥ १६॥ यदग्रे सिद्धयोष्टौ च नित्यं नृत्यंति तोषितुम् ॥ अवाङ्मुखास्सदा तत्र तद्धितं दुर्लभं कुतः ॥ १७ ॥ यद्यस्य मंगलानीह सेवते शंकरस्य न ॥ तथापि मंगलन्तस्य स्मरणादेव जायते ॥ १८ ॥ यस्य पूजाप्रभावेण कामास्सिद्धयन्ति सर्वशः ॥ कुतो विकारस्तस्यास्ति निर्विकारस्य सर्वदा ॥ १९ ॥

कमी किस बातकी है जो वह सदाशिव मेरी इच्छा करैं ॥ १५ ॥ जो शंकरका सेवन न करे वह सात जन्मतक दरिद्री होता है, [illegible]की सेवासे लोकमें अनपावनी लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जिनके आगे उन्हे संतुष्ट करनेको नित्यही आठों सिद्धियें नृत्य करती रहती हैं सदा नीचा[illegible] रहतीहैं, उनको दुर्लभही क्या है ॥ १७ ॥ यद्यपि इन शंकरकी मंगल सेवा नहीं करते अर्थात् वह मंगलवेश धारण नहीं करते, तो भी उनके स्म[illegible]मंगल होता है ॥ १८ ॥ जिनकी पूजाके प्रभावसे निरन्तर काम सिद्ध होजाते हैं उन सदा निर्विकार रहनेवाले शंकरमें विकार कहां हो सकता है [illegible]

जिसके मुखसे शिव ऐसा मंगल नाम निरन्तर निकलता है उसकेही दर्शनसे दूसरे प्राणी भी सदा पवित्र होजाते हैं ॥ २० ॥ जो तुम [illegible] की भस्म अपवित्र होती है तो वह इनके अंगकी भस्म देवता निरन्तर क्यों धारण करते हैं ॥ २१ ॥ जो देव जगतके कर्ता पोषक और [illegible] हैं तथा गुणोंसे संयुक्त हैं जो निर्गुण होते हुए भी शिवहैं उनको कोई किस प्रकारसे जान सकता है ॥ २२ ॥ परमात्मा शिवका ब्रह्मरूप नि[illegible] सरीखे उनसे विमुख उस रूपको कैसे जान सकते हैं ॥ २३ ॥ जो दुराचारी पापी वेद और देवतासे विमुखहैं वे अगुणरूपी शिवका तत्त्व नहीं ज[illegible] सकते ॥ २४ ॥

शिवेति मंगलन्नाम मुखे यस्य निरन्तरम् ॥ तस्यैव दर्शनादन्ये पवित्रास्संति सर्वदा ॥ २० ॥ यद्यपूतम्भवेद्भस्म चि[illegible]याश्च त्वयोदितम् ॥ नित्यमस्यांगगं देवैश्शिरोभिर्द्धार्यते कथम् ॥ २१ ॥ यो देवो जगतां कर्ता भर्ता हर्ता गुणान्वितः ॥ निर्गुणाश्शिवसंज्ञश्च स विज्ञेयः कथम्भवेत् ॥ २२ ॥ अगुणं ब्रह्मणो रूपं शिवस्य परमात्मनः ॥ तत्कथं हि विजानन्ति त्वादृशास्तद्बहिर्मुखाः ॥ २३ ॥ दुराचाराश्च पापाश्च देवेभ्यस्ते विनिर्गताः ॥ तत्त्वं ते नैव जानन्ति शिवस्यागुणरूपिणः ॥ २४ ॥ शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान् ॥ आजन्मसंचितं पुण्यं भस्मीभवति तस्य तत् ॥ २५ ॥ त्वया निंदा कृता यात्र हरस्यामिततेजसः ॥ त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्पापम्भजाम्यहम् ॥ २६ ॥ शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २७ ॥ रे रे दुष्ट त्वया चोक्तमहं जानामि शंकरम् ॥ निश्चयेन न विज्ञातश्शिव एव सनातनः ॥ २८ ॥ यथा तथा भवेद्रुद्रो यथा वा बहुरूपवान् ॥ ममाभीष्टतमो नित्यं निर्विकारी सतां प्रियः ॥ २९ ॥

जो पुरुष तत्त्वको न जानकर शिवजीकी निन्दा करता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पुण्य भस्म होजाता है ॥ २५ ॥ तुमने जो यहां महातेजस्वी शिवजीकी निन्दा की है और मैंने जो तुम्हारी पूजा की है इस्से मुझें पाप लगा है ॥ २६ ॥ शिवद्रोहीको देखकर वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये शिवद्रोहीको देखनेसे प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥२७॥ अरे दुष्ट! तैंने जो कहा मैं शंकरको जानता हूं सो तैंने सनातन शिवको निश्चयसे कुछ भी न जाना॥२८॥ और बहुत क्या वह चाहैं जैसे भी हों वह निर्विकारी सत्पुरुषोंके प्रिय मेरे नित्य मनोरथ पूरे करनेवाले हैं वह चाहें जैसे रूपवान् वा अरूपवान् हों ॥ २९ ॥

उन महात्माकी विष्णु और ब्रह्माजी भी समता नहीं कर सकते हैं, फिर दूसरे देवताओंकी तो कौन कहै वे तो सदा कालके अधीन हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार अपने सत्य और बुद्धिसे विचार कर शिवके लिये वनमें आकर मैं बडी तपस्या करती हूं ॥ ३१ ॥ वही परमेशान सर्वेश भक्तवत्सल हैं इस समय मेरी उनमें यह अभिलाषा है कि वे दीनोंपर अनुग्रह करते हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! इस प्रकार वह गिरिराजसुता गिरिजा कहकर निर्विकार चित्तसे मौन धारणकर विरामको प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचारी ब्राह्मण इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर जबही कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे कि ॥ ३४ ॥

विष्णुर्ब्रह्मापि न समस्तस्य क्वापि महात्मनः ॥ कुतोऽन्ये निर्जराद्याश्च कालाधीनास्सदैव तम् ॥ ३० ॥ इति बुध्या समालोक्य स्वया
सत्या सुतत्त्वतः ॥ शिवार्थं वनमागत्य करोमि विपुलं तपः ॥ ३१ ॥ स एव परमेशानस्सर्वेशो भक्तवत्सलः ॥ संप्राप्तुम्मेऽभिलाषो
हि दीनानुग्रहकारकम् ॥ ३२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा गिरिजा सा हि गिरीश्वरसुता मुने ॥ विरराम शिवं दध्यौ निर्विकारेण
चेतसा ॥ ३३ ॥ तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ॥ पुनर्वचनमाख्यातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥ ३४ ॥ उवाच गिरिजा ताव
त्स्वसखीं विजयां द्रुतम् ॥ शिवसक्तमनोवृत्तिश्शिवनिंदापराङ्मुखी ॥ ३५ ॥ गिरिजोवाच ॥ वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजा
धमः ॥ पुनर्वक्तुमनाश्चैव शिवनिन्दां करिष्यति ॥ ३६ ॥ न केवलम्भवेत्पापं निन्दां कर्तुश्शिवस्य हि ॥ यो वै शृणोति तन्निन्दां
पापभाक् स भवेदिह ॥ ३७ ॥ शिवनिन्दाकरो वध्यस्सर्वथा शिवकिंकरैः ॥ ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद्द्रुतम् ॥ ३८ ॥
अयं दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि ॥ ब्राह्मणत्वादवध्यश्चेत्त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥ ३९ ॥

उसी समय शिवमें मन लगाये शिवनिन्दाके सुननेकी इच्छा न करनेवाली पार्वतीने अपनी सखी विजयासे शीघ्रतापूर्वक कहा ॥ ३५ ॥ पार्वती बोली हे सखि ! यह द्विजाधम फिर कुछ शिवकी निन्दा करनेकी इच्छा करता है इस द्विजाधमको यत्नसे निवारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ केवल शिवकी निन्दा करनेसेही पाप नहीं होता जो उस निन्दाको सुनता है वह भी पापभागी होता है ॥ ३७ ॥ शिवकी निन्दा करनेवाला शिवके किंकरोंसे सदा वध्य है यदि वह ब्राह्मण हो तो उसको त्याग देना चाहिये और उस स्थलसे शीघ्र चलाजाय ॥ ३८ ॥ और यह दुष्ट फिर शिवजीकी निन्दा करेगा पर यह ब्राह्मण

होनेसे अवध्यहै वा अज्ञात हो तो सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ ३९ ॥ इस स्थानको छोढकर मैं अभी दूसरे स्थानको चलती हूं जिससे इस मूर्खके साथ मेरा फिर संभाषण न हो ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर ज्योंही पार्वतीने जानेके निमित्त पग उठाया, तबतक इस ब्रह्मचारीरूप साक्षात् शिवने अपने हाथसे प्रियाका ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ जैसा पार्वती ध्यान कर रही थी वैसाही स्वरूप धारणकर पार्वतीको दर्शन दिया, और लज्जासे नीचेको मुख किये पार्वतीसे शिवजी बोले ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले अब मुझे छोडकर कहां जायगी मैं तुझे नहीं छोडूंगा मैं प्रसन्न हूं वर मांग तेरे लिये मुझे कुछभी अदेय नहीं

हित्वैतत्स्थलमद्यैव यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम् ॥ यथा संभाषणं न स्यादनेनाऽविदुषा पुनः ॥ ४० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्का चो
मया यावत्पादमुत्क्षिप्यते मुने ॥ असौ तावच्छिवस्साक्षादालंबे प्रियया स्वयम् ॥ ४१ ॥ कृत्वा स्वरूपं सुभगं शिवाध्यानं यथातथा ॥
दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ॥ ४२ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ कुत्र यास्यसि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया पुनः ॥
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नादेयम्विद्यते तव ॥ ४३ ॥ अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः क्रीत एव ते ॥ क्रीतोऽस्मि तव सौन्दर्य्यात्क्षणमेकं
युगाय ते ॥ ४४ ॥ त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी ॥ गिरिजे त्वं हि सद्बुध्या विचारय महेश्वरि ॥ ४५ ॥ मया परी
क्षितासि त्वं बहुधा दृढमानसे ॥ तत्क्षमस्वापराधम्मे लोकलीलानुसारिणः ॥ ४६ ॥ न त्वादृशीम्प्रणयिनीं पश्यामि च त्रिलोकके ॥
सर्वथाहं तवाधीनस्स्वकामः पूर्य्यतां शिवे ॥ ४७ ॥ एहि प्रिये मत्सकाशं पत्नी त्वं मे वरस्तव ॥ त्वया साकं द्रुतं यास्ये स्वगृह
म्पर्वत्तोत्तमम् ॥ ४८ ॥

है ॥ ४३ ॥ आजसे तैंने, अपने तपसे मुझे मोल ले लिया है, मैं तेरा दास हूं तेरी सुन्दरतासे मैं बिक गया हूं, तेरे विना एकक्षण भी युगकी समान बीतता है ॥ ४४ ॥ तुम लाज त्याग दो, मेरी सनातनी पत्नी हो हे महेश्वरि ! गिरिजा तुमही होस बुद्धिसे विचार करो ॥ ४५ ॥ हे दृढमनवाली ! मैंने तुमको बहुत प्रकारसे परीक्षा कर देखा सो परीक्षणादि लोकलीळा अनुसरणरूप मेरा अपराध तुम क्षमा करो ॥ ४६ ॥ त्रिलोकीमें तुम्हारी समान मुझे कोई प्यारी नहीं है मैं सर्वथा तेरे अधीन हूं हे शिवे ! तुम अपनी कामना पूर्ण करो ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! तुम मेरे समीप आओ तुम मेरी पत्नी और मैं तुम्हारा वर हूं

अब तेरे साथ मैं अपने पर्वतोत्तम घरमें गमन करूंगा ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले ! देवदेवके यह कहतेही पार्वतीको बडा आनंद हुआ तपमें जो कष्ट हुआ था उसी समय वह पुरातन कष्ट दूर होगया ॥ ४९ ॥ हे मुनिसत्तम ! सतीका वह श्रम सब जाता रहा कारण कि फलके उत्पन्न होनेमें प्राणीका पहला श्रम नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसं० पा० अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ नारदजी बोले । हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! हे महाभाग ! इसके उपरान्त फिर क्या हुआ वह सब मेरे सुननेकी इच्छा है आप शिवजीका यश मुझसे कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवर्षे ! सुनिये मैं इस कथाको प्रसन्नतासे

ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते देवदेवेन पार्वती मुदमाप सा ॥ तपोजातं तु यत्कष्टं तज्जहौ च पुरातनम् ॥ ४९ ॥ सर्वः श्रमो विनष्टोभूत्सत्यास्तु मुनिसत्तम ॥ फले जाते श्रमः पूर्वो जन्तोर्नाशमवाप्नुयात् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे पार्वत्याश्शिवरूपदर्शनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् विधे महाभाग किं जातं तदनन्तरम् ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथय त्वं शिवायशः ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवर्षे श्रूयतां सम्यक् कथयामि कथां मुदा ॥ तां महापापसंहर्त्रीं शिवभक्तिविवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ पार्वती वचनं श्रुत्वा हरस्य परमात्मनः ॥ दृष्ट्वानन्दकरं रूपं जहर्षातीव च द्विज ॥ ३ ॥ प्रत्युवाच महासाध्वी स्वोपकण्ठस्थितं विभुम् ॥ अतीव सुखिता देवी प्रीत्युत्फुल्लानना शिवा ॥ ४ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ त्वं नाथो मम देवेश त्वया किं विस्मृतम्पुरा ॥ दक्षयज्ञविनाशं हि यदर्थं कृतवान्हठात् ॥ ५ ॥ स त्वं साहं समुत्पन्ना मेनायां कार्य्यसिद्धये ॥ देवानां देव देवेश तारकात्ताऽसुखात्मनाम् ॥ ६ ॥ यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां यदि ॥ पतिर्भव ममेशान मम वाक्यं कुरु प्रभो ॥ ७ ॥

कहताहूं जो यह कथा महापापकी नाशक और शिवभक्तिकी बढानेवाली है ॥ २ ॥ इस प्रकार पार्वती महात्मा शिवजीके वचन सुनकर हे मुनि ! उस आनन्दकारी रूपको देखकर परम प्रसन्न हुई ॥ ३ ॥ वह महासाध्वी अपने समीपमें स्थित हुए शंकरसे महाप्रसन्नतासे नेत्र खिलजानेसे महा सुखी हो बोली ॥ ४ ॥ पार्वती बोली हे देवेश ! आप तो मेरे नाथ हैं क्या आपने यह बात भुला दी जिस निमित्त पहले आपने दक्षके यज्ञका विनाश किया था ॥ ५ ॥ आप वही हैं और मैं कार्यसिद्धिके निमित्त मेनामें उत्पन्न हुई हूं, हे देवेश ! देवता तारक असुरसे बडे तप्त होरहे हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न

हो यदि आप कृपा करते हो तो हे महेशान ! मेरे वचन मानकर आप मेरे पति हूजिये ॥७॥ मैं आपकी आज्ञासे अपने पिताके घर जाती हूं वह आपका विशुद्ध यश [विवाह रूप] प्रसिद्ध किया जाय ॥ ८ ॥ हे नाथ ! आपको मेरे पिताके समीप जाना चाहिये आप तो अनेक लीलाओंमें विशारद हैं आपको मेरे पितासे मुझे मांगना चाहिये ॥ ९ ॥ हे भगवन् लोकोंमें अपना यश विस्तार करते हुए आपको इस प्रकारसे करना चाहिये जिससे मेरे पिताका गृहाश्रम सफल हो ॥ १० ॥ ऋषियों द्वारा प्रेमसे बोधित हुआ अपने बंधुजनोंसे परिवारित मेरा पिता आपके वाक्यमें सन्देह न करैगा ॥ ११ ॥ जब मैं

पितुर्गेहे मया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया ॥ प्रसिद्धं क्रियतां तद्वै विशुद्धं परमं यशः ॥ ८ ॥ गन्तव्यं भवता नाथ हिमवत्पार्श्वतः प्रभो ॥
याचस्व मां ततो भिक्षुर्भूत्वा लीलाविशारदः ॥ ९ ॥ तथा त्वया प्रकर्तव्यं लोके ख्यापयता यशः ॥ पितुर्मे सफलं सर्वं कुरुष्वैवं
गृहाश्रमम् ॥ १० ॥ ऋषिभिर्बोधितः प्रीत्या स्वबन्धुपरिवारितः ॥ करिष्यति न संदेहस्तव वाक्यं पिता मम ॥ ११ ॥ दक्षकन्या
पुराहं वै पित्रा दत्ता यदा तव ॥ यथोक्तविधिना तत्र विवाहो न कृतस्त्वया ॥ १२ ॥ न ग्रहाः पूजितास्तेन दक्षेण जनकेन मे ॥
ग्रहाणां विषयस्तेन सच्छिद्रोयं महानभूत् ॥ १३ ॥ तस्माद्यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ विवाहं त्वं महादेव देवानां कार्य्य
सिद्धये ॥ १४ ॥ विवाहस्य यथा रीतिः कर्तव्या सा तथा ध्रुवम् ॥ जानातु हिमवान् सम्यक् कृतं पुत्र्या शुभं तपः ॥ १५ ॥ ब्रह्मो
वाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सुप्रसन्नस्सदाशिवः ॥ प्रोवाच वचनं प्रीत्या गिरिजां प्रहसन्निव ॥ १६ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ शृणु देवि
महेशानि परमं वचनं मम ॥ यथोचितं सुमाङ्गल्यमविकारि तथा कुरु ॥ १७ ॥

दक्षकन्या थी तब मेरे पिताने तुमको दिया था उस समय यथायोग्य विधिसे आपने विवाह नहीं किया था ॥ १२ ॥ मेरे पिता दक्षजीने उस समय ग्रहोंका पूजन नहीं किया उन ग्रहोंके कारणही उस विवाहमें छिद्र दोष रहा ॥ १३ ॥ हे महादेव ! हे महाप्रभो ! इस कारण देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तुम यथोक्त विधिसे मेरे साथ विवाह करो ॥ १४ ॥ विवाहकी जो रीति है उसे अवश्य करना चाहिये जिससे हिमालय यह बात जान जाय कि इसने महातपस्याकी है ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए और हँसतेहुए प्रेमसे पार्वतीसे बोले ॥ १६ ॥ हे महेशानि ! देवि

मेरा वचन सुनो यथोचित और मंगलकारी जैसा उचित जानो वैसा करो ॥ १७॥ हे भामिनी ! ब्रह्मासे आदि लेकर जितने स्थावर जंगम दिखाई देते हैं, सब नश्वर जानो ॥ १८ ॥ यह एकही अनेकत्वको प्राप्त हुआ है यह निर्गुण ही गुणोंसे युक्त है यह अपनेही प्रकाशसे प्रकाशित है दूसरेकी ज्योति इसमें नहीं है ॥ १९ ॥ हे देवि ! मैं सदा स्वतंत्र हूं पर तुमने परतंत्र करदिया है सबकी करनेवाली प्रकृति महामाया तुमही हो ॥ २० ॥ यह सम्पूर्ण जगत मायामय ही किया है मुझ सर्वात्माने परम बुद्धिसे इसको धारण किया है, अपने परमात्मभाव और सर्वात्माकृतिसे इसको रचकर तथा सेवनकर गणोंसे

ब्रह्मादिकानि भूतानि त्वनित्यानि वरानने ॥ दृष्टं यत्सर्वमेतच्च नश्वरं विद्धि भामिनि ॥ १८ ॥ एकोनेकत्वमापन्नो निर्गुणो हि गुणान्वितः ॥ स्वज्योत्स्नया यो विभाति परज्योत्स्नान्वितोऽभवत् ॥ १९ ॥ स्वतन्त्रः परतन्त्रश्च त्वया देवि कृतो ह्यहम् ॥ सर्वकर्त्री च प्रकृतिर्महामाया त्वमेव हि ॥ २० ॥ मायामयं कृतमिदं च जगत्समग्रं सर्वात्मना हि विधृतं परया स्वबुद्ध्या ॥ सर्वातमाभिस्सुकृतिभिः परमात्मभावैस्संसिक्तमात्मनि गणैः परिवेष्टितश्च ॥ २१ ॥ के ग्रहाः के ऋतुगणाः के वान्येपि त्वया ग्रहाः ॥ किमुक्तं चाधुना देवि शिवार्थं वरवर्णिनि ॥ २२ ॥ गुणकार्य्यप्रभेदेना वाभ्यां प्रादुर्भवः कृतः ॥ भक्तहेतोर्जगत्यस्मिन्भक्तवत्सलभावतः ॥ २३ ॥ त्वं हि वै प्रकृतिस्सूक्ष्मा रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ व्यापारदक्षा सततं सगुणा निर्गुणापि च ॥ २४ ॥ सर्वेषामिह भूतानामहमात्मासुमध्यमे ॥ निर्विकारी निरीहश्च भक्तेच्छोपात्तविग्रहः ॥ २५ ॥ हिमालयं न गच्छेयं जनकं तव शैलजे ॥ ततस्त्वां भिक्षुको भूत्वा न याचेयं कथं चन ॥ २६ ॥

परिवेष्टितकर दिया है ॥ २१ ॥ तेरे सिवाय कौन ऋतु तथा ग्रह है हे देवि ! इस समय तुम शिवके निमित्त क्या कहती हो ॥ २२ ॥ गुण कार्यके भेदसेही हमारा प्रादुर्भाव है भक्तवत्सलताके भावसे भक्तोंके निमित्त सब कार्य करता हूं ॥ २३ ॥ रजसत्त्वतमोमयी तुम सूक्ष्म प्रकृति हो निरन्तर व्यापारमें दक्ष सगुण और निर्गुण रूपहो ॥ २४ ॥ इन सब भूतोंका मैं आत्मा हूं हे सुमध्यमे ! निर्विकारी निरीह होकर भी मैं भक्तोंके निमित्त शरीर धारण करता हूं ॥ २५ ॥ हे शैलपुत्रि ! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जाऊंगा और किसी प्रकारसे भी भिक्षुक होकर मैं तुम्हारे पितासे तुमको नहीं मागूंगा ॥ २६ ॥

चाहैं कोई बडे गुणोंमें गरिष्ठ महात्मा कैसा भी क्यों न हो हे गिरीन्द्रजे ! दो ऐसा कहतेही यह पुरुष लघुताको प्राप्त होजाताहै ॥ २७ ॥ हे कल्याणी यह बात जानकर तुम मुझसे ऐसा क्यों कहती हो, हे भद्रे ! और कार्य तुम्हारे कहनेसे सब होताहै, अब इसमें जैसा उचित जानो वैसा करो ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले वह कमललोचनी साध्वी शिवजीके ऐसा कहनेपर शंकरको वारंवार भक्तिसे प्रणाम करके कहने लगी ॥ २९ ॥ पार्वती बोली इसमें कोई विचारकी बात नहीं है कि तुम आत्मा हो और मैं प्रकृति हूं हम दोनों स्वतंत्र और निर्गुण होकर भी भक्तोंके वशीभूत हो सगुण होते हैं ॥ ३० ॥

महागुणैर्गरिष्ठोपि महात्मापि गिरीन्द्रजे ॥ देहीतिवचनात्सद्यः पुरुषो याति लाघवम् ॥ २७ ॥ इत्थं ज्ञात्वा तु कल्याणि किमस्माकं वदस्यथ ॥ कार्य्यं त्वदाज्ञया भद्रे यथेच्छसि तथाकुरु ॥ २८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तेनोक्तापि महादेवी सा साध्वी कमलेक्षणा ॥ जगाद शंकरं भक्त्या सुप्रणम्य पुनः पुनः ॥ २९ ॥ पार्वत्युवाच ॥ त्वमात्मा प्रकृतिश्चाहं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ स्वतन्त्रौ भक्तवशगौ निर्गुणौ सगुणावपि ॥ ३० ॥ प्रयत्नेन त्वया शम्भो कार्यं वाक्यं मम प्रभो ॥ याचस्व मां हिमगिरेस्सौभाग्यं देहि शङ्कर ॥ ३१ ॥ कृपां कुरु महेशान तव भक्तास्मि नित्यशः ॥ तव पत्नी सदा नाथ ह्यहं जन्मनि जन्मनि ॥ ३२ ॥ त्वं ब्रह्म परमात्मा हि निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ निर्विकारी निरीहश्च स्वतन्त्रः परमेश्वरः ॥ ३३ ॥ तथापि सगुणोपीह भक्तोद्धारपरायणः ॥ विहारी स्वात्मनिरतो नानालीलाविशारदः ॥ ३४ ॥ सर्वथा त्वामहं जाने महादेव महेश्वर ॥ किमुक्तेन च सर्वज्ञ बहुना हि दयां कुरु ॥ ३५ ॥ विस्तारय यशो लोके कृत्वा लीलां महाद्भुताम् ॥ यत्सुगीय जना नाथांजसोत्तीर्णा भवाम्बुधेः ॥ ३६ ॥

हे प्रभो शंकर ! आपको तो प्रयत्नपूर्वक मेरे वचन करने चाहिये हे शंकर ! आप हिमालयसे याचना करके मुझे सौभाग्य दीजिये ॥ ३१ ॥ हे महेशान ! आप कृपा करो मैं तुम्हारी नित्य भक्त हूं हे नाथ ! मैं तो जन्मजन्मान्तरमें सदा आपकी पत्नी हूं ॥ ३२ ॥ तुम ब्रह्मपरमात्मा निर्गुण प्रकृतिसे परे हो, विकार रहित इच्छा रहित स्वतंत्र परमेश्वर हो ॥ ३३ ॥ तथापि भक्तोंके उद्धारके निमित्त आप सगुण भी हो तुम विहारकरने वाले आत्मामें रत अनेकलीला करनेमें चतुर हो ॥ ३४ ॥ मैं सदा आपको महादेव महेश्वर जानती हूं हे सर्वज्ञ आप मुक्तस्वरूप हो दयाकरो ॥ ३५ ॥ अद्भुत लीला करके आप लोकमें

अपना यश विस्तार करो, हे नाथ जिस लीलाको गा गा कर आपके भक्त संसार सागरसे पार हो जायँ ॥ ३६ ॥ यह कहकर गिरिजा शंकरको वारंवार प्रणाम करके हाथ जोडे शिर झुकाये प्रार्थना कर मौन हुई ॥ ३७ ॥ जब पार्वतीने ऐसा कहा तब महात्मा लोकके विडम्बनके निमित्त हँसते हुए महा प्रसन्नहो आप कार्य करनेकी इच्छासे बोले ऐसाही होगा ॥ ३८ ॥ पश्चात् प्रसन्न होकर शिवजी अन्तर्धान होगये और कालीके विरहसे आकृष्टचित्तहोकर शिव [illegible] कैलासको गये ॥ ३९ ॥ वहां जाकर शिवजीने नन्दि आदिसे यह वृत्तान्त परम आनंदमें भरकर सुनाया ॥ ४० ॥ वह भैरव आदि सम्पूर्णगण

ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा गिरिजा सुप्रणम्य पुनः पुनः ॥ विरराम महेशानं नतस्कन्धा कृतांजलिः ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्तस्स तया महात्मा महेश्वरो लोकविडम्बनाय ॥ तथेति मत्त्वा प्रहसन् बभूव मुदान्वितः कर्तुमनास्तदेव ॥ ३८ ॥ ततो ह्यन्तर्हितश्शम्भुर्बभूव सुप्रहर्षितः ॥ कैलासं प्रययौ काल्या विरहाकृष्टमानसः ॥ ३९ ॥ तत्र गत्वा महेशानो नन्द्यादिभ्यस्स ऊचिवान् ॥ वृत्तान्तं सकलं तम्वै परमानन्दनिर्भरः ॥ ४० ॥ तेऽपि श्रुत्वा गणास्सर्वे भैरवाद्याश्च सर्वशः ॥ बभूवुस्सुखिनोत्यन्तं विदधुः परमोत्सवम् ॥ ४१ ॥ सुमंगलं तत्र द्विज बभूवातीव नारद ॥ सर्वेषां दुःखनाशोभूद्रुद्रः प्रापापि संमुदम् ॥ ४२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाशिवसम्वादवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विधे तात महाभाग धन्यस्त्वं परमार्थदृक् ॥ अद्भुतेयं कथाश्रावि त्वदनुग्रहतो मया ॥ १ ॥ गते हरे स्वशैले हि पार्वती सर्वमंगला ॥ किं चकार गता कुत्र तन्मे वद महामते ॥ २ ॥

यह वृत्तान्त सुनकर परम सुखी हो उत्सव मनाने लगे ॥ ४१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय परम उत्सव हुआ सबका दुःख नाश हुआ और शिवजीको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥४२॥ इति श्रीशिवम० भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ नारदजी बोले हे विधे ! हे तात ! हे महाभाग ! हे परमार्थके देखनेवाले ! आप धन्यहो आपने अनुग्रह करके यह मुझे अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ जब शिवजी अपने पर्वतको चले गये तब

सर्वमंगला पार्वतीने क्या किया, वह कहां गई हे महामते ! सो यह सब बात आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! प्रेमपूर्वक सुनो जो बात इसके पीछे हुई शिवको स्मरण करके शिवके निज स्थान जानेका चरित्र कहता हूं ॥३॥ पार्वतीने अपना रूप सार्थक करके 'महादेव' शब्द उच्चारण करके अपने पिताके घर गमन किया ॥ ४ ॥ पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमालय दिव्य यानमें चढकर हर्षमें विह्वल होकर चले ॥ ५ ॥ पुरोहित पुरवासी और भी अनेक सखियें तथा दूसरे सम्बन्धी वे सबही इस स्थानपर आये ॥ ॥ ६ ॥ और मैनाक आदि सब भाई भी उस स्थानपर आये यह

॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु सुप्रीतितस्तात यज्जातं तदनन्तरम् ॥ हरे गते निजस्थाने तद्वदामि शिवं स्मरन् ॥ ३ ॥ पार्वत्यपि सखीयुक्ता रूपं कृत्वा तु सार्थकम् ॥ जगाम स्वपितुर्गेहं महादेवेति वादिनी ॥ ४ ॥ पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेना च स हिमाचलः ॥ दिव्यं यानं समारुह्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥ ५ ॥ पुरोहितश्च पौराश्च सख्यश्चैवाप्यनेकशः ॥ सम्बन्धिनस्तथान्ये च सर्वे ते च समाययुः ॥ ६ ॥ भ्रातरः सकला जग्मुर्मैनकप्रमुखास्तदा ॥ जयशब्दं प्रब्रुवन्तो महाहर्षसमन्विताः ॥ ७ ॥ संस्थाप्य मंगलघटं राजवर्त्मनि राजिते ॥ चन्दनागरुकस्तूरीफलशाखासमन्विते ॥ ८ ॥ सपुरोधोब्राह्मणैश्च मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ नारीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्राद्रिसुशोभितैः ॥ ९ ॥ परितःपरितो रंभास्तम्भवृन्दसमन्विते ॥ पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः ॥ १० ॥ द्विजवृन्दैश्च संयुक्ते कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् ॥ नानाप्रकारवाद्यैश्च शंखध्वनिभिरन्विते ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा जगाम स्वपुरान्तिकम् ॥ विशंती नगरं देवी ददर्श पितरौ पुनः ॥ १२ ॥

सब भी प्रसन्न हो जय शब्द बोलते चले ॥ ७ ॥ राजमार्गमें शोभायमान मंगल वटकी स्थापना करके और उस मंगलवटमें चंदन अगर कस्तूरी उसकी फल शाखाओंमें लगाय ॥ ८ ॥ पुरोहित ब्राह्मण तथा ब्रह्मवादी मुनि, नारी, नर्तक तथा गजेन्द्रादिसे शोभायमान ॥ ९ ॥ नगरके सब ओर केलेके स्तम्भ लगाये पति पुत्रवाली स्त्रियें दीपक हाथमें लिये खडी हो गईं ॥ १० ॥ ब्राह्मणोंके समूह मंगलध्वनि करने लगे, अनेक प्रकारके बाजे और शंख ध्वनियें उस समय होनेलगीं ॥ ११ ॥ इसी समय दुर्गा अपने नगरके समीपमें आंई नगरमें प्रवेश करते हुए देवीने अपने पिता माताका दर्शन किया ॥ १२ ॥

जो देखतेही हर्षसे विह्वल मन हो प्रसन्न होकर दौड पडे और पार्वतीने माता पिताको देखतेही सखियों सहित दोनोंको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ माता पिताने
आशीर्वाद दे कालीको अपनी गोदीमें लिया, हे वत्से ! ऐसा उच्चारण कर प्रेमसे विह्वल हो रोनेलगे ॥ १४ ॥ तब इसकी अपनी और भी सम्बन्धकी स्त्रियें
तथा भ्राताओंकी स्त्रियें प्रीतिसे दृढ आलिंगन करने लगीं ॥ १५ ॥ और बोलीं तुमने अपने कुलके तारनेका कार्य भलीभांतिसे साधन किया, तुम्हारे
सदाचरणसे हम सबकोई पवित्र होगईं ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब कोई गिरिजाकी बडाई कर प्रेमसे प्रणाम करने लगे और पुष्प तथा चन्दनसे पूजनकर

सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षविह्वलमानसौ ॥ दृष्ट्वा काली सुप्रहृष्टा स्वालिभिः प्रणनाम तौ ॥ १३ ॥ तौ सम्पूर्णाशिषं दत्त्वा चक्रतुस्तौ
स्वाङ्कासि ॥ हे वत्से त्वेवमुच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ ॥ १४ ॥ ततस्स्वकीया अप्यस्या अन्या नार्यापि संमुदा ॥ भ्रातृस्त्रियोपि
सुप्रीत्या दृढालिंगनमादधुः ॥ १५ ॥ साधितं हि त्वया सम्यक् सुकार्यं कुलतारणम् ॥ त्वत्सदाचरणेनापि पाविताः स्माखिला
वयम् ॥ १६ ॥ इति सर्वे सुप्रशंस्य प्रणेमुस्तां प्रहर्षिताः ॥ चन्दनैः सुप्रसूनैश्च समानर्चुश्शिवां मुदा ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसरे देवा
विमानस्था मुदाम्बरे ॥ पुष्पवृष्टिं शुभां चक्रुर्नत्वा तां तुष्टुवुः स्तवैः ॥ १८ ॥ तदा तां च रथे स्थाप्य सर्वे शोभान्विते वरे ॥ पुरं
प्रवेशयामासुस्सर्वे विप्रादयो मुदा ॥ १९ ॥ अथ विप्राः पुरोधाश्च सख्योन्याश्च स्त्रियः शिवाम् ॥ गृहं प्रवेशयामासुर्बहुमानपुरस्सरम्
॥ २० ॥ स्त्रियो निर्मच्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषः ॥ हिमवान्मेनका माता मुमोदाति मुनीश्वर ॥ २१ ॥ स्वाश्रमं सफलं मेने
कुपुत्रात्पुत्रिका वरा ॥ हिमवान्नारदं त्वाश्च संस्तुवन् साधुसाध्विति ॥ २२ ॥

पार्वतीको प्रसन्नतासे प्रणाम करने लगे ॥ १७ ॥ उसी समय देवता भी आकाशसे विमानोंमें स्थित होकर फूलोंकी वर्षा करके श्रेष्ठ स्तोत्रोंसे स्तुति करने
लगे ॥ १८ ॥ उस समय सब ब्राह्मणादि बडी प्रसन्नतासे पार्वतीको रथमें बैठाकर पुरमें प्रवेश कराते हुए ॥ १९ ॥ तब ब्राह्मण पुरोहित सखी तथा
स्त्रियोंने पार्वतीको बडे मानके सहित घरमें प्रवेश कराया ॥ २० ॥ स्त्रियें मंगलाचार करने लगीं और ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे, हे मुनीश्वर ! हिमालय
और मेनका पार्वतीकी माता बडी प्रसन्न हुई ॥ २१ ॥ उन्होंने अपने आश्रमको सफल माना कि कुपुत्रसे तो पुत्री ही अच्छी होती है, हिमालयने नारदजी

तुमको धन्य धन्य कहकर स्तुति की ॥ २२ ॥ पर्वतराजने ब्राह्मण और बंदीजनोंको धन दिया और ब्राह्मणोंद्वारा मंगल पाठ कराकर महोत्सव किया ॥ ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस प्रकारसे पिता माता और भ्राता तथा भगिनियें पार्वतीके साहित आंगनमें बैठीं ॥ २४ ॥ हे तात ! उस समय हिमालय बडी प्रसन्नताको प्राप्त होकर सबको प्रेमसे सन्मान कर गंगामें स्नानकरनेको गये ॥ २५ ॥ उसी समय लीलाकरनेमें तत्पर भक्तवत्सल भगवान् शंकर नाचनेवाले नटका रूप धारण करके मेनकाके समीप गये ॥ २६ ॥ बायें हाथमें श्रृंगी और दाहिने हाथमें डमरू पीठपर गुदडी धारे लाल वस्त्र नृत्य और गानमें चतुर॥

ब्राह्मणेभ्यश्च बंदिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ ॥ मङ्गलं पाठयामास स द्विजेभ्यो महोत्सवम् ॥ २३ ॥ एवं स्वकन्यया हृष्टौ पितरौ भ्रातरस्तथा ॥ जामयश्च महाप्रीत्या समूषुः प्रांगणे मुने ॥ २४ ॥ ततस्स हिमवान् तात सुप्रहृष्टः प्रसन्नधीः ॥ सम्मान्य सकलान्प्रीत्या स्नातुं गंगां जगामह ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नंतरे शंभुस्सुलीलो भक्तवत्सलः ॥ सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासंनिधिं ययौ ॥ २६ ॥ श्रृंगं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुं तथा ॥ पृष्ठे कंथां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः ॥ २७ ॥ ततस्सुनटरूपोसौ मेनकाया गणे मुदा ॥ चक्रे सुनृत्यं विविधं गानं चातिमनोहरम् ॥ २८ ॥ श्रृंगं च डमरुं तत्र वादयामास सुध्वनिम् ॥ महतीं विविधां तत्र स चकार मनोहरम् ॥ २९ ॥ तां द्रष्टुं नागरास्सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा ॥ आजग्मुस्सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम् ॥ ३० ॥ श्रुत्वा सुगीतं तद्दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम् ॥ सहसा मुमुहुस्सर्वे मेनापि च तदा मुने ॥ ३१ ॥ मूर्च्छां संप्राप्य सा दुर्गा सुदृष्ट्वा हृदि शङ्करम् ॥ त्रिशूलांकचिह्नानि बिभ्रतं चातिसुन्दरम् ॥ ३२ ॥

॥ २७ ॥ इस प्रकारका रूप धारणकर मेनकाके द्वारे बडी प्रसन्नतासे अनेक प्रकारका नृत्य और मनोहर गानकरने लगे ॥ २८ ॥ श्रृंगी और डमरूको बडी ध्वनिके साथ शिवजीने बजाया, और भी विविध प्रकारकी मनोहर वीणादि बजानेकी क्रीडाकी ॥ २९ ॥ तब उनके देखनेको सब नगरनिवासी स्त्री तथा पुरुष बालक बूढे सब कोई देखनेकी इच्छासे आये ॥ ३० ॥ वह गीत और मनोहर नृत्य देखकर हे मुने ! मेना और दूसरे लोग सब मोहित होगये॥ ॥ ३१ ॥ शंकरका यह रूप हृदयमें विचारकर पार्वती मूर्च्छित होगई, उस समय पार्वतीको त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अति सुन्दर दिखाई दिये॥ ३२ ॥

विभूति लगाये अत्यन्त मनोहर अस्थिमालासे शोभायमान तीन नेत्रोंसे उज्ज्वल मुख, नागोंका यज्ञोपवित पहरे ॥ ३३॥ गौरवर्ण दीनबंधु दयासागर सर्वथा
मनोहर गौरवर्ण महेश्वर वर मांगो इस प्रकार कहते हुए ॥ ३४ ॥ इस प्रकार हृदयमें स्थित शंकरको देखकर पार्वतीने उनको प्रणाम किया और मनमें ही यह
वर मांगा कि तुम मेरे पति हो ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे हृदयमें ही शिवजी पार्वतीको वर देकर अन्तर्धान हो फिर भिक्षुक रूपसे नृत्य करने लगे ॥ ३६ ॥
तब मेना उनसे बहुत प्रसन्नहो सुवर्णके पात्रोंमें बहुतसे रत्न रखकर प्रेमसे उनके निमित्त देने गई ॥ ३७॥ नर्तकने यह स्वीकार न किये और भिक्षामें शिवाको

विभूतिभूषितं रम्यमस्थिमालासमन्वितम् ॥ त्रिलोचनोज्ज्वलद्वक्रं नागयज्ञोपवीतकम् ॥ ३३ ॥ वरं वृण्वित्युक्तवन्तं गौरवर्णं महेश्व
रम् ॥ दीनबन्धुं दयासिन्धुं सर्वथा सुमनोहरम् ॥ ३४ ॥ हृदयस्थं हरं दृष्ट्वेदृशं सा प्रणनाम तम् ॥ वरं वव्रे मानसं हि पतिर्मे त्वं भवे
ति च ॥ ३५ ॥ वरं दत्त्वा शिवं चाथ तादृशं प्रीतितो हृदा ॥ अन्तर्धाय पुनस्तत्र सुननर्त्त स भिक्षुकः ॥ ३६ ॥ ततो मेना सुर
त्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ॥ तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतमानसः ॥ ३७ ॥ तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां याचे शिवां च
ताम् ॥ पुनस्सुनृत्यं गानञ्च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥ मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता ॥ भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिष्क
र्तुमियेष सा ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरिराययौ ॥ ददर्श पुरतो भिक्षुं प्रांगणस्थं नराकृतिम् ॥ ४० ॥ श्रुत्वा मेनामु
खाद्वृत्तं तत्सर्वं सुचुकोप सः ॥ आज्ञां चकारानुचरान्बहिष्कर्तुञ्च तं नटम् ॥ ४१ ॥ महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम् ॥ न
शशाक बहिष्कर्तुं कोपि तं मुनिसत्तम ॥ ४२ ॥

मांगा और फिर कौतुकसे नृत्य तथा गान करने लगे ॥ ३८ ॥ मेना उसके वचन सुन विस्मयपूर्वक बडी क्रोधित हुई और भिक्षुकको घुडककर बाहर
निकालनेकी इच्छा की ॥ ३९ ॥ इसी समय हिमालय भी गंगाजीसे आगये और आंगनमें नराकार उस भिक्षुकको देखा ॥ ४० ॥ मेनाके मुखसे यह
सब वृत्तान्त सुनकर हिमालयको बडा क्रोध हुआ, और अपने सेवकोंको नटको बाहर निकालनेकी आज्ञादी ॥ ४१ ॥ जो महा अग्निकी समान छूनेके
अयोग्य तेजसे दुःसह थे, हे मुनिसत्तम ! उनको बाहर निकालनेकी किसीको भी सामर्थ्य न हुई ॥ ४२ ॥

हे नारदजी ! उस समय अनेक लीला करनेमें चतुर वह भिक्षुक पर्वतराजके निमित्त अपना अनन्त प्रभाव दिखाने लगे ॥ ४३ ॥ शैलराजने देखा कि
उनका अद्भुत विष्णुरूप होगया है, किरीट मुकुट कुण्डल धारे पीत वस्त्र और चार भुजा हैं ॥४४॥ पूजाके समय विष्णुजीको हिमालयने जो पुष्प पूजादी थी
वह हिमालयने भिक्षुकके शरीर तथा शिरपर देखी ॥४५॥ फिर थोडी देरमेंही उनको हिमालयने जगतके स्रष्टा ब्रह्माजीके रूपमें चारमुखवाला देखा कि लाल
वर्ण है और वेदोंके सूक्त उच्चारण कर रहे हैं॥४६॥फिर उनको जगत्के नेत्र सूर्यके स्वरूपमें देखा गिरिराजने देखा कि क्षण २ में नट अनेक कौतुक करते हैं

ततस्स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः ॥ दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥ ४३ ॥ शैलो ददर्श तं तत्र विष्णुरूपधरं
द्रुतम् ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥ ४४ ॥ यद्यत्पुष्पादिकं दत्तं पूजाकाले गदाभृते ॥ गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य
ददर्श ह ॥ ४५ ॥ ततो ददर्श जगतां स्रष्टारं स चतुर्मुखम् ॥ रक्तवर्णं पठन्तञ्च श्रुतिसूक्तं गिरीश्वरः ॥ ४६ ॥ ततस्सूर्य्यस्वरूपञ्च जग
च्चक्षुस्स्वरूपकम् ॥ ददर्श गिरिराजस्स क्षणं कौतुककारिणम् ॥ ४७ ॥ ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम् ॥ पार्वतीसहितं रम्यं विह
सन्तं सुतेजसम् ॥ ४८ ॥ ततस्तेजस्स्वरूपञ्च निराकारं निरंजनम् ॥ निरुपाधिं निरीहञ्च महाद्भुतमरूपकम् ॥ ४९ ॥ एवं बहूनि
रूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः ॥ सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंयुतः ॥ ५० ॥ अथासौ भिक्षुवर्य्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत् ॥
भिक्षां ययाचे दुर्गान्तां नान्यज्जग्राह किञ्चन ॥ ५१ ॥ न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितश्शिवमायया ॥ भिक्षुः किंचिन्न जग्राह तत्रैवा
न्तर्दधे ततः ॥ ५२ ॥ तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरिति ॥ आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान्प्रभुः ॥ ५३ ॥

॥४७॥हे तात ! फिर हिमालयने उनका महा अद्भुत रुद्ररूप देखा, जो कि पार्वतीके सहित परम मनोहर अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे॥४८॥ फिर उनका
स्वरूप निराकार और निरंजन उपाधि रहित निरीह महा अद्भुत ऐसा देखा॥४९॥इस प्रकारसे उनके बहुतसे रूप हिमालयने देखे और परम आनन्दसे संयुक्त
होकर वह बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ तब सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले भिक्षुकने फिर दुर्गाकीही याचना की, और कुछ नहीं मांगा ॥ ५१ ॥ शिवकी
मायासे मोहित होनेके कारण हिमालयने यह बात स्वीकार नहीं की तब भिक्षुकने कुछ भी ग्रहण न किया और अन्तर्धान होगये ॥५२॥ तब मेना और

हिमालयको यह ज्ञान हुआ कि प्रभु शंकर हम दोनोंको वंचित कर अपने स्थानको गये॥ ५३ ॥ जब उन्होंने इस बातका विचार किया तब महा मोक्ष करनेवाली परमदिव्य सब आनन्दकी देनेवाली भक्ति शिवजीमें हुई ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारद ! इस प्रकारसे उन दोनोंकी शिवजीमें अव्यभिचारिणी भक्ति जानकर सब इन्द्रादि देवता विचार करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले यदि हिमालय अनन्य भक्ति करैंगे, और शंकरको अपनी कन्या देंगे तो भारतमें वह शीघ्रही निश्चय निर्वाण पदको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ जो अनन्त रत्नोंकी आधार

तयोर्विचिन्त्य तत्रैवं शिवे भक्तिरभूत्परा ॥ महामोक्षकरी दिव्या सर्वानन्दप्रदायिनी ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे पार्वतीप्रत्यागमनमहोत्सववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा परामव्यभिचारिणीम् ॥ सर्वे शक्रादयो देवाश्चिचिन्तुरिति नारद ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥ ध्रुवं निर्वाणतां सद्यस्स प्राप्स्यति च भारते ॥ २ ॥ अनन्तरत्नाधारश्चेत्पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति ॥ रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् ॥ ३ ॥ स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ॥ कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति ॥ ४ ॥ महादेवस्य सारूप्यं लप्स्यते नात्र संशयः ॥ तत्र भुक्त्वा वरान्भोगांस्ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्यालोच्य सुरास्सर्वे कृत्वा चामन्त्रणं मिथः ॥ प्रस्थापयितुमैच्छंस्ते गुरुं तत्र सुविस्मिताः ॥ ६ ॥ ततः शक्रादयो देवास्सर्वे गुरुनिकेतनम् ॥ जग्मुः प्रीत्या सविनया नारद स्वार्थसाधकाः ॥ ७ ॥ गत्वा तत्र गुरुं नत्वा सर्वे देवास्सवासवाः ॥ चक्रुर्निवेदनं तस्मै गुरवे वृत्तमादरात् ॥ ८ ॥

पृथिवीको त्यागन करके जायँगे तो यह रत्नगर्भा भूमि मिथ्या नामवाली होगी ॥ ३ ॥ स्थाव ररूपको छोडकर वह दिव्य रूप धारणकर शिवजीको अपनी कन्या देकर शिवलोकमें जायँगे ॥ ४ ॥ इसमें सन्देह नहीं वह महादेवजीके सारूप्पको प्राप्त होंगे वहां अनेक भोग भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे सब देवता आलोचनाकर परस्पर सम्मति करके विस्मित हो गुरुको उस स्थानमें भेजनेकी इच्छा करने लगे ॥ ६ ॥ तब सब इन्द्रादिक देवता गुरु बृहस्पतिजीके स्थानको प्रीति और नम्रतासे स्वार्थ साधनके निमित्त गये ॥ ७ ॥ हे नारदजी वे सब देवता इन्द्रादिके साथ

मिलकर गुरुजीको प्रणामकर आदरसे सब वृत्तान्त निवेदन करने लगे ॥ ८ ॥ देवता बोले हे गुरो ! हमारे कार्यकी सिद्धिके निमित्त आप हिमालयके घर गमन कीजिये, वहां जाकर प्रयत्नसे शिवजीकी निन्दा करो ॥ ९ ॥ शिवजीके विना पार्वती दूसरा वर ग्रहण नहीं करैगी विना इच्छाके सुताको देकर शीघ्र फल न मिलैगा ॥ १० ॥ हे गुरो ! समयानुसार इस समय हिमालय भूलोकमें स्थिति करै उस अनेक रत्नोंके आधारको तुम भूलोकमें स्थापना करो नहीं तो भक्तिसे विवाह करतेही उनकी मोक्ष होजायगी ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले यह देवताओंके वचन सुनकर गुरु बृहस्पतिने कानोंपर हाथ रक्खे और शिवका

॥ देवा ऊचुः ॥ गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्य्यसिद्धये ॥ तत्र गत्वा प्रयत्नेन कुरु निन्दाञ्च शूलिनः ॥ ९ ॥ पिनाकिना विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति ॥ अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूर्णं [1]लंभिष्यति ॥ १० ॥ कालेनैवाधुना शैल इदानीं भुवि तिष्ठतु ॥ अनेकरत्नाधारं तं स्थापय त्वं क्षितौ गुरो ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करम् ॥ न स्वीचकार स गुरुस्स्मरन्नाम शिवेति च ॥ १२ ॥ अथ स्मृत्वा महादेवं बृहस्पतिरुदारधीः ॥ उवाच देववर्यांश्च धिक्कृत्वा च पुनःपुनः ॥ १३ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सर्वे देवास्स्वार्थपराः परार्थध्वंसकारकाः ॥ कृत्वा शङ्करनिन्दां हि यास्यामि नरकं ध्रुवम् ॥ १४ ॥ कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः ॥ संपादयेत्स्वाभिमतं शैलेन्द्रं प्रतिबोध्य च ॥ १५ ॥ अनिच्छया सुतां दत्त्वा सुखं तिष्ठतु भारते ॥ तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम् ॥ १६ ॥

नाम स्मरण करते हुए इस बातको स्वीकार न किया ॥ १२ ॥ और उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी महादेवको स्मरणकर उन देवताओंको वारंवार धिक्कार देकर कहने लगे ॥ १३ ॥ बृहस्पतिजी बोले तुम सब देवता स्वार्थ साधनमें तत्पर हो पराया अर्थ ध्वंस करनेवाले हो शंकरकी निन्दा करनेसे मुझे अवश्य नरक होगा ॥ १४ ॥ हे देवताओं कोई तुम्हारे मध्यमें ऐसा हो जो हिमालयके समीप जाय और हिमालयको समझाकर पहले अपना प्रयोजन सिद्ध करले ॥ १५ ॥ अनिच्छासे वह अपनी कन्याको देकर भारतमें सुखसे निवास करै और भक्तिपूर्वक शंकरको कन्या देकर निश्चय मोक्षकी प्राप्ति होगी ॥ १६ ॥

---

[1] इडन्त्रार्षः ।

पीछे सब सातों ऋषि पर्वतराजको समझावेंगे कि शिवजीके सिवाय पार्वती दूसरेको वर नहीं करैगी ॥ १७ ॥ अथवा हे देवताओ ! तुम सब इन्द्रके सहित ब्रह्म लोकको जाओ और अपना सब वृत्तान्त सुनाओ तो वह तुम्हारा सब कार्य करैंगे ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुन विचार कर वे सब देवता मेरी सभामें आये और प्रणाम कर आदरसे सबने उस वृत्तान्तको वर्णन किया ॥१९॥ देवताओंके शिवनिन्दा सम्बन्धी वचनोंको सुनकर हे मुने ! वेदवक्ता होकर भी दुःखी होकर मैं उनसे कहने लगा ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्सो ! मैं दुःसह शिवनिन्दा करनेमें समर्थ नहीं हूं शिवकी निन्दा संपत्तिकी विनाश

पश्चात्सप्तर्षयस्सर्वे बोधयिष्यन्ति पर्वतम् ॥ पिनाकिना विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति ॥ १७ ॥ अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं
सवासवाः ॥ वृत्तं कथयत स्वं तत्स वः कार्यं करिष्यति ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा ते समालोच्याजग्मुर्मम सभां सुराः ॥
सर्वे निवेदयांचक्रुर्नत्वा तद्वृतमादरात् ॥ १९ ॥ देवानां तद्वचः श्रुत्वा शिवनिन्दाकरं तदा ॥ वेदवक्ता विलप्याहं तानवोचं सुरान्मुने
॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुस्सहाम् ॥ संपद्विनाशरूपाश्च विपदां बीजरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुरा गच्छत
कैलासं सन्तोषयत शंकरम् ॥ प्रस्थापयत तं शीघ्रं हिमालयगृहं प्रति ॥ २२ ॥ स गच्छेदुपशैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै ॥ परनिन्दा
विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच श्रुत्वेति मद्वचो देवा मां प्रणम्य मुदा च ते ॥ कैलासं प्रययुः शीघ्रं शैलानाम
धिपं गिरिम् ॥ २४ ॥ तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा प्रणम्य नतमस्तकाः ॥ सुकृतांजलयस्सर्वे तुष्टवुस्तं सुरा हरम् ॥ २५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥
देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ वयं त्वां शरणापन्नाः कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

करनेवाली और विपत्तिकी बीजरूपहै ॥ २१ ॥ हे देवताओ तुम कैलासमें जाकर शिवजीको सन्तुष्ट करो और शीघ्रही उनको हिमालयके घर भिजवाओ ॥ २२ ॥ वही स्वयं हिमालयके यहां जाकर अपनी निन्दा करैं, पराई निन्दा नाशके निमित्त और अपनी निन्दा सदा यशके निमित्त होती है ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले वे देवता इस प्रकारसे मेरे वचन सुन प्रेमसे मुझको प्रणाम करके शीघ्रही कैलासपति शंकरके समीप गये ॥ २४ ॥ वहां जाय शिवको देख गर्दन झुकाकर खडे हुए और सब देवता हाथ जोडकर शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ देवता बोले हे देवदेव महादेव ! हे करुणाकर ! हे शंकर ! हम

आपके शरण हैं आप कृपा कीजिये आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे स्वामिन् ! आप भक्तवत्सल सदा देवताओंके कार्य करते रहते हैं, आप दीनोंके उद्धार
करनेवाले कृपासिन्धु भक्तोंकी आपत्ति दूर करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार इन्द्रादि सब देवताओंने शिवजीकी स्तुति कर आदरसे वह सब
वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २८ ॥ देवताओंके यह वचन सुन शिवजीने यह बात स्वीकार करली और हँसकरं तथा समझाकर उन सब देवताओंको बिदा कर
दिया ॥ २९ ॥ देवता बडे प्रसन्न होकर शीघ्रही अपने स्थानोंको चले गये अपने कार्यकी सिद्धि मानकर सदाशिवकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३० ॥ तब

त्वं भक्तवत्सलः स्वामिन्भक्तकार्यकरस्सदा ॥ दीनोद्धरः कृपासिन्धुर्भक्तापद्विनिमोचकः ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानं
सर्वे देवास्सवासवाः ॥ सर्वं निवेदयांचक्रुस्तद्वृत्तं तत आदरात् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः ॥ देवान् सुयापयामास
तानाश्वास्य विहस्य सः ॥२९॥ देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमन्दिरम् ॥ सिद्धं मत्वा स्वकार्य्यं हि प्रशंसन्तस्सदाशिवम् ॥ ३० ॥
ततः सभगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः ॥ प्रययौ शैलभूपश्च मायेशो निर्विकारवान् ॥ ३१ ॥ यदा शैलस्सभामध्ये समुवास मुदा
न्वितः ॥ बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितस्स्वयम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र ह्याजगाम सदाशिवः ॥ दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्र
त्तिलकमुज्ज्वलम् ॥ ३३ ॥ करे स्फटिकमालाञ्च शालग्रामं गले दधत् ॥ जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः ॥ ३४ ॥ तं च
दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्यातिथिमपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्र
रूपिणम् ॥ ज्ञात्वा तं मनसा देवी तुष्टाव परया मुदा ॥ ३६ ॥

मायापति विकाररहित भक्तवत्सल भगवान् शंकर शैलराजके यहां गये ॥ ३१ ॥ जिस समय शैलराज अपने बंधुवर्गोंके साथ तथा पार्वतीसहित सभामें
विराजमान थे ॥ ३२ ॥ उसी समय वहां दण्ड छत्र दिव्य वस्त्र और तिलक धारण किये सदाशिव आनकर प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ हाथमें स्फटिककी माला,
गलेमें शालिग्राम लटकाये, भक्तिसे नारायणका नाम जपतेहुए साधुवेषधारी साक्षात् ब्राह्मण ॥३४॥ इस प्रकार उनको देखकर हिमालय बंधु बांधवों सहित
उठ खडे हुए और अपूर्व अतिथिको देखकर भक्तिपूर्वक पृथिवीमें दंडवत् प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और पार्वतीने भी परम भक्तिसे विप्ररूपी प्राणेशको प्रणाम

किया और उनका स्वरूप जानकर देवीने उनको मनसे प्रणाम कर स्तुति की ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणरूपधारी शंकरने सबको प्रेमसे आशीर्वाद दिया, हे तात !
विशेषकर पार्वतीको मनसे आशीर्वाद दिया ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणने प्रेमसे मधुपर्कादि सब सामग्री ग्रहण की जो शैलाधिराज हिमालयने बहुत आदरसे दियी ॥
॥ ३८ ॥ हे मुने ! पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने बहुत प्रीतिसे उस ब्राह्मणकी पूजा करके इस ब्राह्मणकी कुशल पूंछी ॥ ३९ ॥ और फिर पर्वतराजने पूंछा कि
आप कौन हैं ? तब वह ब्राह्मण शीघ्रही हिमालयसे आदरपूर्वक कहने लगे ॥ ४० ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठने कहा हे पर्वतराज ! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! मैं ब्राह्मण हूं

आशिषं युयुजे विप्रस्सर्वेषां प्रीतितश्शिवः ॥ शिवाया अधिकं तात मनोभिलषितं हृदा ॥ ३७॥ मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह ब्राह्मणो
मुदा ॥ दत्तं शैलाधिराजेन हिमागेन महादरात् ॥ ३८॥ पप्रच्छ कुशलं चास्य हिमाद्रिः पर्वतोत्तमः ॥ तं द्विजेन्द्रं महाप्रीत्या सम्पूज्य
विधिवन्मुने ॥ ३९ ॥ पुनः पप्रच्छ शैलेशस्तं ततः को भवानिति ॥ उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रो गिरींद्रं सादरं वचः ॥ ४० ॥ ॥ विप्रेन्द्र
उवाच ॥ ब्राह्मणोऽहं गिरिश्रेष्ठ वैष्णवो बुधसत्तमः ॥ घटिकीं वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले ॥ ४१ ॥ मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं
गुरोर्बलात् ॥ परोपकारी शुद्धात्मा दयासिन्धुर्विकारहा ॥ ४२ ॥ मया ज्ञातं हराय त्वं स्वसुतां दातुमिच्छसि ॥ इमां पद्मसमां दिव्यां
वररूपां सुलक्षणाम् ॥ ४३ ॥ निराश्रयायासंगाय कुरूपायागुणाय च ॥ श्मशानवासिने व्यालग्राहिरूपाय योगिने ॥ ४४ ॥ दिग्वा
ससे कुगात्राय व्यालभूषणधारिणे ॥ अज्ञातकुलनाम्ने च कुशीलायाविहारिणे ॥ ४५ ॥

घटिकी (ज्योतिषकी) वृत्तिका आश्रय करके मैं पृथिवीमें विचरण करता हूं ॥ ४१ ॥ मैं अपने गुरुके आशीर्वादरूप बलसे मनकी समान वेगवाला सब
स्थानमें पहुंचनेकी सामर्थ्यवाला तथा सर्वज्ञ हूं. पराया उपकार करने वाला शुद्धात्मा दयामय और विकारोंका हरनेवाला हूं ॥ ४२ ॥ मुझे यह विदित
हुआ है कि तुम शिवजीको अपनी कन्या देनेकी इच्छा करते हो यह तुम्हारी कन्या कमलकी समान दिव्य रूप और श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न है ॥ ४३ ॥
इसे तुम आश्रयरहित, असंग, कुरूप, गुणहीन, श्मशानवासी, सर्पधारी, योगी ॥ ४४ ॥ नग्न, मलीनशरीर, सर्पोंके भूषण धारण करनेवाले, कुल नामसे

अज्ञात, कुशील विहार हीन ॥ ४५ ॥ शरीरमें भस्म मलने वाले, क्रोधी, अज्ञानी, अज्ञात आयुवाले, सदा विकट जटाधारी ॥ ४६ ॥ सबके आश्रय देनेवाले सदा भ्रमण करनेवाले नागोंके हार धारण करनेवाले भिक्षुक कुमार्गमें निरत हठसे वेदमार्गको त्यागनेवालेके निमित्त देना चाहतेहो ॥ ४७ ॥ हे हिमालय ! यह आपकी बुद्धि निश्चयही मंगलकी देनेवाली नहीं है, हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! नारायणके कुलमें उत्पन्न तुम इस बातको समझो ॥ ४८ ॥ पार्वतीका दान जिस पात्रमें तुमने करना विचारा है वह पात्र आपके अनुरूप नहीं है, यह बात सुनतेही सब बडे लोग तुम्हारी हँसी करैंगे ॥ ४९ ॥ हे शैलराज ! इस बातका तो तुम विचार करो कि उनके कोई बंधु नहीं हैं तुम्हारे यहां रत्नोंके ढेर हैं और उनके किंचित्भी धन नहीं है ॥ ५० ॥

विभूतिदिग्धदेहाय संक्रुद्धायाविवेकिने ॥ अज्ञातवयसेऽतीव कुजटाधारिणे सदा ॥ ४६ ॥ सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे ॥
कुमार्गनिरतायाथ वेदाऽध्वत्यागिने हठात् ॥ ४७ ॥ इयं ते बुद्धिरचल न हि मंगलदा खलु ॥ विबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव
॥ ४८ ॥ न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्मणि ॥ महाजनः स्मेरमुखः श्रुतमात्राद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ पश्य शैलाधिप त्वं च न
तस्यैकोस्ति बान्धवः ॥ महारत्नाकरस्त्वञ्च तस्य किञ्चिद्धनं न हि ॥ ५० ॥ बान्धवान्मेनकां कुध्रपते शीघ्रं सुतां स्तथा ॥ सर्वान्पृच्छ
प्रयत्नेन पण्डितान्पार्वतीं विना ॥ ५१ ॥ रोगिणो नौषधं शश्वद्रोचते गिरिसत्तम ॥ कुपथ्यं रोचतेऽभीक्ष्णं महादोषकरं सदा ॥ ५२ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स वै भुक्त्वा मुदान्वितः ॥ जगाम स्वालयं शान्तो नानालीलाकरश्शिवः ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिव
महापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवमायावर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

हे शैलराज ! आप अपने बंधुजनोंसे मेनकासे तथा दूसरे पंडितोंसे बहुत क्या पार्वतीके सिवाय सबसे पूँछो ॥ ५१ ॥ हे गिरिसत्तम ! रोगीको औषधी अच्छी नहीं लगती उसे तो महादोष करनेवाला कुपथ्यही निश्चय अच्छा लगता है ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहकर वह ब्राह्मण गिरिराजके दिये पदार्थोंको शीघ्रतासे भोजन कर प्रसन्नता और शान्ति दिखातेहुए नानालीला करनेवाले शंकर अपने स्थानको गये ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा०टीका० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले ब्राह्मणके वचन सुनकर मेनाके हृदयमें बडा दुःख हुआ उसके नेत्रोंमें शोक छागया हृदयमें दुःखी हो हिमालयसे बोली ॥ १ ॥ हे शैलेन्द्र ! परिणाममें सुख देनेवाले मेरे वचनको आप सुनैं, जो कुछ बात इस ब्राह्मणने कही है यह बात आप सब शैवोंसे निश्चय करैं ॥ २ ॥ इस वैष्णव ब्राह्मणने शिवजीकी निन्दा की है, हे नगेश्वर ! उसे सुनकर मेरा मन बहुत व्याकुल हुआ है ॥ ३ ॥ हे शैलेश ! जो रुद्र ऐसे हैं तो मैं उनको अपनी कन्या नहीं दूंगी इस सुलक्षणी सुताको कुरूपशाली शंकरको कैसे देसकती हूं ॥ ४ ॥ यदि तुम मेरे वचन नहीं मानोगे तो मैं अपने प्राण देदूंगी, मैं यह घर छोडदूंगी वा विषखालूंगी ॥ ५ ॥ गलेमें रस्सीसे अम्बिकाको बांधकर वनमें चली जाऊंगी, महासागरमें डूब जाऊंगी, परन्तु शंकरको अपनी सुता नहीं दूंगी ॥ ६ ॥ यह कहकर शोकके मारे मेना शीघ्रही कोप भवनको चली गई हार भूषण त्याग कर रोती हुई पृथिवीमें लोटने लगी ॥ ७ ॥ हे तात ! उसी समय विरहसे व्याकुल होकर शिवजीने उन सातों ऋषियोंको स्मरण किया ॥ ८ ॥ ज्योंही शिवजीने उन सातों ऋषियोंको स्मरण किया वे दूसरे कल्पवृक्षोंकी समान तत्काल वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ अरुन्धती तथा दूसरी उनकी स्त्रियें साक्षात् सिद्धिकी समान आनकर प्राप्त हुई सूर्यकी समान उन ऋषियोंको

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम् ॥ शोकेनासाधुनयना हृदयेन विदूयता ॥ १ ॥ मेनोवाच ॥ शृणु
शैलेन्द्र मद्वाक्यं परिणामे सुखावहम् ॥ पृच्छ शैववरान्सर्वान्किमुक्तं ब्राह्मणेन ह ॥ २ ॥ निन्दानेन कृता शम्भोर्वैष्णवेन द्विज
न्मना ॥ श्रुत्वा तां मे मनोऽतीव निर्विण्णं हि नगेश्वर ॥ ३ ॥ तस्मै रुद्राय शैलेश न दास्यामि सुतामहम् ॥ कुरूपशीलनाम्ने हि
सुलक्षणयुतां निजाम् ॥ ४ ॥ न मन्यसे वचो चेन्मे मरिष्यामि न संशयः॥ त्यक्ष्यामि च गृहं सद्यो भक्षयिष्यामि वा विषम् ॥ ५ ॥
गले बद्ध्वांबिकां रज्वा यास्यामि गहनं वनम् ॥ महाम्बुधौ मज्जयिष्ये तस्मै दास्यामि नो सुताम् ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वाशु तथा गत्वा
मेना कोपालयं शुचा ॥ त्यक्त्वा हारं रुदन्ती सा चकार शयनं भुवि ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तात शम्भुना सप्त एव ते ॥ संस्मृता
ऋषयस्सद्यो विरहव्याकुलात्मना ॥ ८ ॥ ऋषयश्चैव ते सर्वे शम्भुना संस्मृता यदा ॥ तदाऽऽजग्मुः स्वयं सद्यः कल्पवृक्षा इवापरे
॥ ९ ॥ अरुन्धती तथाऽऽयाता साक्षात्सिद्धिरिवापरा ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्विजहौ स्वजपं हरः ॥ १० ॥

देख शिवजीने जपसे विराम किया ॥ १० ॥ हे मुने! वे तपस्वी ऋषि शिवजीके आगे स्थित हो प्रणामकर स्तुतिकर अपने आपको कृतार्थ मानने लग ॥ ११ ॥ फिर विस्मयको प्राप्त हो नमस्कारकर स्थित हो लोकोंसे नमस्कारको प्राप्त शंकरसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥ १२ ॥ ऋषि बोले हे सबमें श्रेष्ठ ! हे महाराज ! हे देवताओंके चक्रमें चूडामणि सम्राट् ! हम इस समय अपने सर्वश्रेष्ठ भाग्य वर्णन करते हैं ॥१३॥ जो हमने पूर्वकालमें तीन प्रकारका तपकिया है, उत्तम वेदाध्ययन किया है, अग्निमें आहुति दी है, अनेक तीर्थ किये हैं ॥ १४ ॥ मन वचन कर्मसे जो तीन प्रकारका पुण्य किया है वह

स्थित्वाग्रे ऋषयः श्रेष्ठं नत्वा स्तुत्वा शिवं मुने ॥ मेनिरे च तदात्मानं कृतार्थं ते तपस्विनः ॥ ११ ॥ ततो विस्मयमापन्ना नम
स्कृत्य स्थिताः पुनः ॥ प्रोचुः प्राञ्जलयस्ते वै शिवं लोकनमस्कृतम् ॥ १२ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सर्वोत्कृष्ट महाराज सार्वभौम
दिवौकसाम् ॥ स्वभाग्यं वर्ण्यतेऽस्माभिः किं पुनस्सकलोत्तमम् ॥ १३ ॥ तपस्ततं त्रिधा पूर्वं वेदाध्ययनमुत्तमम् ॥ अग्नयश्च हुताः
पूर्वं तीर्थानि विविधानि च ॥ १४ ॥ वाङ्मनःकायजं किंचित्पुण्यं स्मरणसम्भवम् ॥ तत्सर्वं संगतं चाद्य स्मरणानुग्रहात्तव ॥ १५ ॥
यो वै भजति नित्यं त्वां कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ किं पुण्यं वर्ण्यते तेषां येषां च स्मरणं तव ॥ १६ ॥ सर्वोत्कृष्टा वयं जाताः स्मरणात्ते
सदाशिव ॥ मनोरथपथं नैव गच्छसि त्वं कथंचन ॥ १७ ॥ वामनस्य फलं यद्वज्जन्मान्धस्य दृशौ यथा ॥ वाचालत्वञ्च मूकस्य
रंकस्य निधिदर्शनम् ॥ १८ ॥ पङ्गोर्गिरिवराक्रान्तिर्वन्ध्यायाः प्रसवस्तथा ॥ दर्शनं भवतस्तद्वज्जातं नो दुर्लभं प्रभो ॥ १९ ॥

आज आपके स्मरण और अनुग्रहसे सफल हुआ है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य नित्य आपका भजन करता है वह कृतकृत्य हो जाता है, और जिनको आप स्मरण करो उनके पुण्यकी कथा तो कौन वर्णन कर सकता है ॥ १६ ॥ हे सदाशिव ! आपके स्मरण करनेसे हम सबसे उत्कृष्ट होगये, तुम साक्षात् तो कौन कहै किसीके मनोरथमें भी नहीं आते हो ॥ १७ ॥ जैसे बोनेको फल, अन्धेको नेत्र, गूंगेको वाणी, और कंगालको निधिका दर्शन होजाय ॥ १८ ॥ लूला पर्वतोंपर चढने लगे, बन्ध्याके पुत्र होजाय, हे प्रभो इसी प्रकार आपका दुर्लभ दर्शन हमको प्राप्त हुआ है ॥ १९ ॥

आजसे लेकर हम मुनीश्वर लोकोंमें मान्य और पूज्य हुए, हे देव ! आपके दर्शनसे इस उच्च पदको हम प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ हे देवदेवेश ! आप सर्वेश्वरके दर्शनसेही हम सर्वथा मान्यताको प्राप्त हुए हैं इसमें बहुत कहनेसे क्या है ॥ २१ ॥ पूर्णोंको क्या करना चाहिये यदि आपकी हमारे ऊपर परम कृपा है, तो आपको सेवकोंपर कृपा करके अब आज्ञा देनी चाहिये ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले महेश्वर शंकरने इस प्रकारसे उनके वचन श्रवण कर लौकिक आचारके आश्रित हो उनसे मनोहर वचन कहे ॥ २३ ॥ शिवजी बोले ऋषिलोग सदा पूज्य हैं, और तुम उनमें विशेषरूपसे पूज्य हो, हे ब्राह्मणो !

अद्य प्रभृति लोकेषु मान्याः पूज्या मुनीश्वराः ॥ जातास्ते दर्शनादेव स्वमुच्चैः पदमाश्रिताः ॥ २० ॥ अत्र किं बहुनोक्तेन सर्वथा
मान्यतां गताः ॥ दर्शनात्तव देवेश सर्वदेवेश्वरस्य हि ॥ २१ ॥ पूर्णानां किञ्च कर्तव्यमस्ति चेत्परमा कृपा ॥ सदृशं सेवकानां तु देयं
कार्यं त्वया शुभम् ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तेषां शम्भुर्महेश्वरः ॥ लौकिकाचारमाश्रित्य रम्यं वाक्यमुपाददे ॥
॥ २३ ॥ शिव उवाच ॥ ऋषयश्च सदा पूज्या भवन्तश्च विशेषतः ॥ युष्माकं कारणाद्विप्राः स्मरणं च मया कृतम् ॥ २४ ॥ ममाव
स्था भवद्भिश्च ज्ञायते ह्युपकारिका ॥ साधनीया विशेषेण लोकानां सिद्धिहेतवे ॥ २५ ॥ देवानां दुःखमुत्पन्नं तारकात्सुदुरात्मनः ॥
ब्रह्मणा च वरो दत्तः किं करोमि दुरासदः ॥ २६ ॥ मूर्तयोऽष्टौ च याः प्रोक्ता मदीयाः परमर्षयः ॥ तास्सर्वा उपकाराय न तु स्वार्थाय
तत्स्फुटम् ॥ २७ ॥ तथा च कर्तुकामोहं विवाहं शिवया सह ॥ तया वै सुतपस्तप्तं दुष्करं परमार्षिभिः ॥ २८ ॥ तस्यै परं फलं देय
मभीष्टं तद्धितावहम् ॥ एतादृशः पणो मे हि भक्तानन्दप्रदः स्फुटम् ॥ २९ ॥

एक विशेष कारणसे मैंने तुम्हारा स्मरण किया है ॥२४॥ तुम जानतेही हो कि हमारी अवस्था उपकारी है, लोकसिद्धिके निमित्त विशेष रूपसे उसे साधनी चाहिये ॥ २५ ॥ दुरात्मा तारक असुरसे देवताओंको बहुत दुःख प्राप्त हुआ है, मैं क्या करूं ब्रह्माने उसको बडा विकट वरदान दिया है ॥ २६ ॥ हे महर्षियो ! जो मेरी आठ प्रकारकी मूर्त्तियें कही जाती हैं वह सब उपकारकेही निमित्त हैं स्वार्थके निमित्त नहीं यह बात स्पष्ट है ॥२७॥ इसी निमित्त मैं शिवाके संग विवाह करनेकी इच्छा करता हूं, परमर्षियोंको भी कठिन उसने मेरे निमित्त तपस्या की है ॥ २८ ॥ उसके मनोरथ और हितका करनेवाला

उसको फल देना चाहिये भक्तोंको आनन्द देनेवाली मेरी प्रतिज्ञा सर्वत्र प्रगट है ॥ २९ ॥ मैं पार्वतीके वचनसे भिक्षुकरूप धारण करके हिमालयके घर गया था, अनेक लीलाओंमें विशारद मैंने कालीको मांगा ॥ ३० ॥ तब दोनों स्त्री पुरुषोंने मुझे परब्रह्म जानकर परम भक्तिसे वेद रीति पूर्वक अपनी सुता मुझे देनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ तब देवताओंकी प्रेरणासे मैंने अपनी निन्दा दोनोंको सुनाई और वैष्णवरूपसे मैंने उनकी वह भक्ति दूर करनेकी चेष्टा की ॥ ३२ ॥ यह मेरे वचन सुनकर वह दोनों स्त्री पुरुष व्याकुल हो उस भक्तिसे हीन हुए हैं, हे मुनियो ! अब वह मुझे अपनी कन्या देनेकी इच्छा नहीं

पार्वतीवचनाद्भिक्षुरूपो यातो गिरेर्गृहम् ॥ अहं पावितवान्कालीं यतो लीलाविशारदः ॥ ३० ॥ मां ज्ञात्वा तौ परं ब्रह्म दम्पती परभक्तितः ॥ दातुकामावभूतां च स्वसुतां वेदरीतितः ॥ ३१ ॥ देवप्रेरणयाहं वै कृतवानस्मि निन्दनम् ॥ तदा स्वस्य च तद्भक्तिं विहन्तुं वैष्णवात्मना ॥ ३२ ॥ तच्छुत्वा तौ सुनिर्विण्णौ तद्धीनौ संबभूवतुः ॥ स्वकन्यां नेच्छतो दातुं मह्यं हि मुनयोऽधुना ॥ ३३ ॥ तस्माद्भवन्तो गच्छन्तु हिमाचलगृहं ध्रुवम् ॥ तत्र गत्वा गिरिवरं तत्पत्नीश्च प्रबोधय ॥ ३४ ॥ कथनीयं प्रयत्नेन वचनं वेदसम्मितम् ॥ सर्वथा करणीयन्तद्यथा स्यात्कार्य्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ उद्वाहं कर्तुमिच्छामि तत्पुत्र्या सह सत्तमाः ॥ स्वीकृतस्तद्विवाहो मे वरो दत्तश्च तादृशः ॥ ३६ ॥ अत्र किं बहुनोक्तेन बोधनीयो हिमालयः ॥ तथा मेना च बोद्धव्या देवानां स्याद्धितं यथा ॥ ३७ ॥ भवद्भिः कल्पितो यो वै विधिस्स्यादधिकस्ततः ॥ भवताश्चैव कार्य्यं तु भवन्तः कार्य्यभागिनः ॥ ३८ ॥

करते ॥ ३३ ॥ इस कारण तुम अवश्यही हिमालयके घर जाओ, वहां जाकर हिमालय और मेनाको समझाओ ॥ ३४ ॥ यत्नपूर्वक उनसे वेदसम्मत वचन कहो सब प्रकारसे वही करना जिससे कार्यसिद्धि हो ॥ ३५ ॥ हे महानुभाव महर्षियों ! मैं उस हिमालयकी पुत्रीके संग विवाह करनेकी इच्छा करता हूं मैंने उस विवाहको स्वीकारकर पार्वतीको वैसा वर दिया है ॥ ३६ ॥ इसमें बहुत कहनेसे क्या है तुमको हिमालयको समझाना चाहिये और देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त मेनाको भी समझाना चाहिये ॥ ३७ ॥ जो आपने कल्पना की है उससे अधिक विधि होगी यह आपहीका कार्य है और आपही इस

कार्यके भागी हैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार शिवजीके वचन सुनकर वे निर्मल मनवाले महर्षि शिवजीके अनुग्रहको प्राप्त हो बडे आनंदको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ और बोले हम आज धन्य और कृतकृत्य हुए हम सबके वंदनीय और पूजनीय विशेष रूपसे हुए ॥ ४० ॥ जिसको ब्रह्मा और विष्णु नमस्कार करते हैं जो सबके अर्थसिद्ध करनेवाले हैं वह हमको लोकके सुखदायक प्रियकार्यमें प्रेरणा करते हैं ॥ ४१ ॥ यह जगत्के स्वामी पिताहैं, और वह जगतकी स्वामिनी माताहै यह जगत्का कल्याणकारक सम्बन्ध सदा चन्द्रमाकी समान वृद्धिको प्राप्त होता रहै ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे वह

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा मुनयस्तेऽमलाशयाः ॥ आनन्दं लेभिरे सर्वे प्रभुणानुग्रहीकृताः ॥ ३९ ॥ वयं धन्या अभूवँश्च कृतकृत्याश्च सर्वथा ॥ वंद्या याताश्च सर्वेषां पूजनीया विशेषतः ॥ ४० ॥ ब्रह्मणा विष्णुना यो वै वन्द्यस्सर्वार्थसाधकः ॥ सोस्मान्प्रेषयते प्रेष्यान्कार्ये लोकसुखावहे ॥ ४१ ॥ अयं वै जगतां स्वामी पिता सा जननी मता ॥ अयं युक्तश्च सम्बंधो वर्द्धतां चन्द्रवत्सदा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा ह्यृषयो दिव्या नमस्कृत्य शिवं तदा ॥ गता आकाशमार्गेण यत्रास्ति हिमवत्पुरम् ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वा तां च पुरं दिव्या मृषयस्तेऽतिविस्मिताः ॥ वर्णयन्तश्च स्वं पुण्यमब्रुवन्वै परस्परम् ॥ ४४ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ पुण्यवन्तो वयं धन्या दृष्ट्वैतद्धिमवत्पुरम् ॥ यस्मादेवंविधे कार्य्ये शिवेनैव नियोजिताः ॥ ४५ ॥ अलकायाश्च स्वर्गाच्च भोगवत्यास्तथा पुनः ॥ विशेषेणामरावत्या दृश्यते पुरमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ सुगृहाणि सुरम्याणि स्फटिकैर्विविधैर्वरैः ॥ मणिभिर्वा विचित्राणि रचितान्यङ्गणानि च ॥ ४७ ॥

दिव्यऋषि सदाशिवको प्रणाम करके हिमालयके नगरको आकाश मार्ग होकर गये ॥ ४३ ॥ उस दिव्य पुरको देखकर वे ऋषि बडे विस्मित हुए और अपना पुण्य वर्णन करते हुए परस्पर कहने लगे ॥ ४४ ॥ ऋषि बोले हम बडे पुण्यवान् और धन्य हैं जो आज हिमालयका नगर देखते हैं धन्य हैं हम जो शिवजीने इस कार्यमें हमको नियुक्त किया है ॥ ४५ ॥ यह हिमालयकी पुरी अलकापुरीसे स्वर्गसे सर्पोंकी भोगवती पुरीसे तथा अमरावतीसे भी विशेष दिखाई देती है ॥ ४६ ॥ स्फटिक मणिके इसमें सुन्दर सुन्दर अनेक घर हैं, इसमें मणियोंके बडे विचित्र आंगन बने हैं ॥ ४७ ॥

सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियें घर घरमें हैं और इसी प्रकार घर २ में स्वर्गके वृक्ष दिखाई देते हैं ॥४८॥ तोरण बंदनवार और लक्ष्मी घर घरमें दिखाई
देती है अनेक प्रकारके विमानोंमें विचित्र तोते और हंस बोलते हैं ॥ ४९ ॥ विचित्र वितानहैं विचित्र कपडेके बने हैं, उनमें बंदनवारें बंध रही हैं अनेक
जलाशय हैं और अनेक घरोंमें बावडी हैं ॥५०॥ अनेक प्रकारके विचित्र उद्यान मनोहर बने हुए हैं मनुष्य सब देवता हैं और स्त्रियें अप्सरायें हैं ॥५१॥
कर्मभूमिमें याज्ञिक और स्वर्गकी कामनासे पुरातन लोग जो यज्ञानुष्ठान करते हैं वे इस हिमालयके पुरके सामने वृथा ही हैं ॥५२॥ जबतक हिमालयका नगर

सूर्यकान्ताश्च मणयश्चन्द्रकान्तास्तथैव च ॥ गृहे गृहे विचित्राश्च वृक्षास्स्वर्गसमुद्भवाः ॥ ४८ ॥ तोरणानां तथा लक्ष्मीर्दृश्यते च
गृहेगृहे ॥ विविधानि विचित्राणि शुकहंसैर्विमानकैः ॥ ४९ ॥ वितानानि विचित्राणि चैलवत्तोरणैस्सह ॥ जलाशयान्यनेकानि
दीर्घिका विविधाः स्थिताः ॥ ५० ॥ उद्यानानि विचित्राणि प्रसन्नैः पूजितान्यथ ॥ नराश्च देवतास्सर्वे स्त्रियश्चाप्सरसस्तथा ॥ ५१ ॥
कर्मभूमौ याज्ञिकाश्च पौराणास्स्वर्गकाम्यया ॥ कुर्वन्ति ते वृथा सर्वे विहाय हिमवत्पुरम् ॥ ५२ ॥ यावन्न दृष्टमेतच्च तावत्स्वर्गपरा
नराः ॥ दृष्टमेतद्यदा विप्राः किं स्वर्गेण प्रयोजनम् ॥ ५३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवमृषिवर्य्यास्ते वर्णयन्तः पुरञ्च तत् ॥ गता हैमालयं
सर्वे गृहं सर्वसमृद्धिमत् ॥ ५४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्य्यसंकाशान् हिमवान्विस्मितोऽब्रवीत् ॥ दूरादाकाशमार्गस्थान्मुनीन्सप्त सुतेजसः
॥ ५५ ॥ ॥ हिमवानुवाच ॥ सप्तैते सूर्य्यसंकाशाः समायांति मदन्तिके ॥ पूजा कार्य्या प्रयत्नेन मुनीनां च मयाधुना ॥ ५६ ॥
वयं धन्या गृहस्थाश्च सर्वेषां सुखदायिनः ॥ येषां गृहे समायान्ति महात्मानो यदीदृशाः ॥ ५७ ॥

नहीं देखा है तभीतक मनुष्य स्वर्गकी कामना करतेहैं हे ब्राह्मणो ! जब इसको देख लिया तब स्वर्गसे क्या प्रयोजन है ॥५३॥ ब्रह्माजी बोले हे ऋषिश्रेष्ठ ! इस
प्रकारसे विचारते और उस पुरका वर्णन करते सब समृद्धिवाले हिमालयके घरको गये ॥५४॥ उन देवताओंकी समान ऋषियोंको देखकर हिमालय विस्मित
होकर देखने लगे कि महातेजस्वी सात पुरुष दूर आकाश मार्गसे आते हैं उन्हें देखकर बोले ॥ ५५ ॥ हिमालय बोले जो यह सात पुरुष सूर्यकी समान
हमारे समीप आते हैं इन मुनियोंकी विशेष रूपसे अब मुझे पूजा करनी चाहिये ॥५६॥ हम गृहस्थी लोग धन्य हैं जिनके यहां सबको सुख देनेवाले आपकी

समान महात्मा आते हैं ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले इसी अवसरमें आकाशमेंसे पृथिवीमें आकर स्थित हुए उन ऋषियोंको अवलोकनकर हिमालय मानपूर्वक उनके लेनेको गये ॥ ५८ ॥ शिर झुकाय हाथ जोड उन सप्त ऋषियोंको प्रणाम करके बडे मानके साथ हिमालयने उनकी पूजा की ॥ ५९ ॥ वे सातों ऋषि हिमालयकी हितकारिणी उस पूजाको ग्रहण करके प्रसन्नमुखसे हिमालयसे वचन बोले ॥ ६० ॥ हिमालयने यथायोग्य उनका सत्कार करके कहा मेरा गृहस्थाश्रम धन्य है ऐसा कह आसन लाकर भक्तिपूर्वक दिया ॥ ६१ ॥ जब ऋषि आसनोंपर बैठ चुके तब हिमालय उनकी आज्ञासे स्वयं भी आसन

ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैवाकाशादेत्य भुवि स्थितान् ॥ सन्मुखे हिमवान्दृष्ट्वा ययौ मानपुरस्सरम् ॥ ५८ ॥ कृतांजलिर्नतस्कन्धः सप्तर्षीन्सुप्रणम्य सः ॥ पूजां चकार तेषां वै बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५९ ॥ हितास्सप्तर्षयस्ते च हिमवन्तन्नगेश्वरम् ॥ गृहीत्वोचुः प्रसन्नास्या वचनं मङ्गलालयम् ॥ ६० ॥ यथाग्रतश्च तान्कृत्वा धन्या मम गृहाश्रमः ॥ इत्युक्त्वासनमानीय ददौ भक्तिपुरस्सरम् ॥ ६१ ॥ आसनेषूपविष्टेषु तदाज्ञप्तस्स्वयं स्थितः ॥ उवाच हिमवाँस्तत्र मुनीञ्ज्योतिर्मयांस्तदा ॥ ६२ ॥ हिमालय उवाच ॥ धन्यो हि कृतकृत्योहं सफलं जीवितं मम ॥ लोकेषु दर्शनीयोहं बहुतीर्थसमो मतः ॥ ६३ ॥ यस्माद्भवन्तो मद्गेहमागता विष्णुरूपिणः ॥ पूर्णानां भवतां कार्य्यं कृपणानां गृहेषु किम् ॥ ६४ ॥ तथापि किञ्चित्कार्य्यं च सदृशं सेवकस्य मे ॥ कथनीयं सुदयया सफलं स्याज्जनुर्मम ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तर्ष्यागमनवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ जगत्पिता शिवः प्रोक्तो जगन्माता शिवा मता ॥ तस्माद्देया त्वया कन्या शंकराय महात्मने ॥ १ ॥

पर बैठे, और हिमालयने उन ज्योतिस्वरूप मुनियोंसे यह वचन कहे ॥ ६२ ॥ हिमालय बोले मैं निश्चय धन्य और कृतकृत्य हूं मेरा जीवन सफल है मैं लोकोंमें अब दर्शनीय और बहुतीर्थरूप हुआ हूं ॥ ६३ ॥ जिस कारणसे कि विष्णुरूपी आप लोग मेरे घर आये हैं, आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं हम कृपणोंके गृहोंमें आपका क्या कार्य हो सक्ता है ॥ ६४ ॥ तोभी मुझसेवकके योग्य जो कुछ कार्य होय तो दया करके कहिये जिससे मेरा जन्म सफल होय ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले शिवजी जगत्के पिता कहे

---

१ हस्तामिति शेषः ।

जाते हैं, शिवा जगन्माता कही जाती है इस कारण महात्मा शंकरके निमित्त तुम अपनी कन्या देदो ॥१॥ हे हिमालय ! ऐसा करनेपर आपका जन्म सफल होजायगा, इसमें सन्देह नहीं तुम जगद्गुरुके गुरु हो जाओगे ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर इस प्रकारसे सप्त ऋषियोंके वचन सुनकर प्रणामकर हाथ जोड इस प्रकारसे गिरिराज बोले ॥ ३ ॥ हिमालय बोले हे सप्तऋषियो ! हे महा भाग्यवानो ! जो कुछ आपने कहाहै वह शिवजीकी इच्छासे मैंने पहलेही स्वीकार किया है ॥ ४ ॥ अभी थोडा समय हुआ कि एक वैष्णव ब्राह्मणने प्रेमसे शिवको लक्ष्य कर कुछ वचन कहे, जिसमें शंकरकी निन्दा

एवं कृत्वा हिमगिरे सार्थकं ते भवेज्जनुः ॥ जगद्गुरोर्गुरुस्त्वं हि भविष्यसि न संशयः ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं वचनमाकर्ण्य सप्तर्षीणां मुनीश्वर ॥ प्रणम्य तान्करौ बद्ध्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥ हिमालय उवाच ॥ सप्तर्षयो महाभागा भवद्भिर्यदुदीरितम् ॥ तत्प्रमाणीकृतं मे हि पुरैव गिरिशेच्छया ॥४॥ इदानीमेक आगत्य विप्रो वैष्णवधर्मवान् ॥ शिवमुद्दिश्य सुप्रीत्या विपरीतं वचोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ तदारभ्य शिवामाता ज्ञानभ्रष्टा बभूव ह ॥ सुताविवाहं रुद्रेण योगिना तेन नेच्छति ॥ ६ ॥ कोपागारमगात्सा हि सुतप्ता मलिनाम्बरा ॥ कृत्वा महाहठं विप्रा बोध्यमानापिऽनाबुधत् ॥ ७ ॥ अहं च ज्ञानविभ्रष्टो जातोहं सत्यमीर्य्यते ॥ दातुं सुतां महेशाय नेच्छामि भिक्षुरूपिणे ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा शैलराजस्तु शिवमायाविमोहितः ॥ तूष्णीं बभूव तत्रस्थो मुनीनां मध्यतो मुने ॥ ९ ॥ सर्वे सप्तर्षयस्ते हि शिवमायां प्रशस्य वै ॥ प्रेषयामासुरथ तां मेनकां प्रत्यरुन्धतीम् ॥ १० ॥

थी ॥ ५ ॥ उसी समयसे पार्वतीकी माता ज्ञानभ्रष्ट होगई, और योगी रुद्रसे अपनी कन्याका विवाह करना नहीं चाहती ॥ ६ ॥ बहुत क्रोधकर मलीन वस्त्र धारणकर वह कोपभवनमें चलीगई, और हे ब्राह्मणो ! उसको ऐसी हठ हुई है कि समझायेसे नहीं मानती ॥ ७ ॥ मैं भी ज्ञानसे भ्रष्ट होगया हूं, आंपसे सत्य कहता हूं भिक्षुरूपधारी शंकरको अब अपनी कन्या देनेकी मुझे इच्छा नहीं है ॥८॥ हे मुने ! शैलराज इस प्रकारसे कहकर शिवकी मायासे मोहित होकर उन मुनियोंके मध्यमें मौन होकर स्थित हुए॥९॥तब वे सातों ऋषि शिवकी मायाकी प्रशंसा करके मेनकाके समीप अरुन्धतीको भेजते हुए ॥१०॥

वह ज्ञानकी देनेवाली अरुन्धती पतिकी आज्ञा पाकर शीघ्रतासे मेना और पार्वतीके समीप गई ॥ ११ ॥ जाकर देखा कि मेना शोकसे मूर्च्छित हुई
पडी है, पतिव्रताने बडी सावधानीसे उससे मनोहर वचन कहे ॥ १२ ॥ अरुन्धती बोली हे पतिव्रते ! मेना उठो तो मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आई हूं
और दयालु सातों मुनि भी आये हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले अरुन्धतीका बोल सुनतेही मेना बडी शीघ्रतासे उठ बैठी, और तेजसे लक्ष्मीकी समान
प्रकाशमान उसको देखकर शिरझुकाय प्रणामकर बोली ॥ १४ ॥ मेना बोली अहो आज हम जीवधारियोंका कितना पुण्य है जो जगत्‌के विधाता

अथ पत्युस्समादाय निदेशं ज्ञानदा हि सा ॥ जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेना च पार्वती ॥ ११ ॥ गत्वा ददर्श मेनां तां शयानां शोकमू
र्च्छिताम् ॥ उवाच मधुरं साध्वी सावधाना हितं वचः ॥ १२ ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती ॥ आगता
मुनयश्चापि सप्तायाताः कृपालवः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अरुन्धतीस्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका ॥ उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव
तेजसा ॥१४ ॥ मेनोवाच ॥ अहोद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम् ॥ वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्यागतेह वै ॥ १५ ॥ किमर्थ
मागता देवि तन्मे ब्रूहि विशेषतः ॥ अहं दासीसमा ते हि ससुता करुणां कुरु ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा मेनकां साध्वी बोधयित्वा
च तां बहु ॥ तथागता च सुप्रीत्या सास्ते यत्रर्षयोऽपि ते ॥ १७ ॥ अथ शैलेश्वरं ते च बोधयामासुरादरात् ॥ स्मृत्वा शिवपदद्वन्द्वं सर्वे
वाक्यविशारदाः ॥१८॥ ऋषय ऊचुः ॥ शैलेन्द्र श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारणम् ॥ शिवाय पार्वतीं देहि संहर्त्तुः श्वशुरो भव ॥१९॥

वशिष्ठकी पत्नी हमारे घर आई हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुम किस निमित्त पधारी हो सो विशेष रूपसे मुझसे कहो मैं तुम्हारी दासीकी समान हूं मेरे ऊपर
कृपा करो, अपनी पुत्री मुझे जानो ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकार उसने कहा तो साध्वी अरुन्धतीने मेनाको बहुत समझाया और फिर प्रेमसे वह
उस स्थानमें गयी जहां वे सप्त ऋषि थे ॥ १७ ॥ तब वे शैलराजको आदरसे समझाने लगे, वे सब बोलनेमें चतुर थे, शिवजीके चरणोंको स्मरण कर
समझाने लगे ॥ १८ ॥ ऋषि बोले हे शैलराज ! हमारे शुभ वचन सुनो, आप शिवको पार्वती देकर उन संहार कर्ताके श्वशुर हूजिये ॥ १९ ॥

वह सर्वेश किसीसे कुछ याचना नहीं करते, तो भी तारक असुरके वधके निमित्त ब्रह्माजीने इस सम्बन्धमें बहुत प्रार्थना कीहै ॥ २० ॥ योगियोंमें श्रेष्ठ शिवजी यद्यपि दारसंग्रहमें उत्सुक नहीं हैं, पर वह देव विधाताकी प्रार्थनासे तुम्हारी कन्याको ग्रहण करैंगे ॥ २१ ॥ तुम्हारी कन्याने भी उनकी प्राप्तिके लिये तप किया है, जिसके लिये उन्होंने वर दिया है, इन्हीं दो कारणोंसे वह तुम्हारी कन्याको ग्रहण करैंगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले ऋषियोंके वचन सुनकर हिमालय हँसगये, और फिर कुछ भीत होकर विनयपूर्वक बोले ॥ २३ ॥ हिमालयने कहा मैं शंकरके पास कोई भी राजसामग्री नहीं देखता हूं

अयाचितारं सर्वेशं प्रार्थयामास यत्नतः ॥ तारकस्य विनाशाय ब्रह्मा सम्बंधकर्म्मणि ॥ २० ॥ नोत्सुको दारसंयोगे शंकरो योगिनां वरः ॥ विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति ॥ २१ ॥ दुहितुस्ते तपस्तप्तं प्रतिज्ञानं चकार सः ॥ हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य स(१) हिमालयः ॥ उवाच किञ्चिद्भीतस्तु परं विनयपूर्वकम् ॥ २३ ॥ हिमालय उवाच ॥ शिवस्य राजसामग्रीं न हि पश्यामि काञ्चन ॥ कश्चिदाश्रयमैश्वर्यं कं वा स्वजनबान्धवम् ॥ २४ ॥ नेच्छाम्यति विनिर्लिप्तयोगिने स्वां सुतामहम् ॥ यूयं वेदविधातुश्च पुत्रा वदत निश्चितम् ॥ २५ ॥ वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत् ॥ कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्स नष्टो नरकं व्रजेत् ॥ २६ ॥ न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणये ॥ यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद्विधीयताम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमागस्य मुनीश्वर ॥ प्रत्युवाच वसिष्ठस्तं तेषां वाक्यविशारदः ॥ २८ ॥

कोई ऐश्वर्यका आश्रय वा स्वजन बंधु उनके नहीं हैं ॥ २४ ॥ ऐसे कहीं लिप्त न होनेवाले योगीको मैं अपनी कन्या देनेकी इच्छा नहीं करताहूं तुम भी तो वेद विधान कर्ता विधाताके पुत्र हो, इसमें निश्चय कर कहो ॥ २५ ॥ जो पिता प्रतिकूल वरके निमित्त कन्याको काम मोह भय वा लोभसे देता है वह नष्ट होकर नरकमें जाता है ॥ २६ ॥ मैं अपनी इच्छासे तो शंकरके निमित्त अपनी कन्या नहीं दूंगा, परन्तु जो योग्य वर हो आप लोग उसका विचार करैं ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! हिमालयके यह वचन सुनकर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजी हिमालयसे कहने लगे ॥ २८ ॥

---

१ दातुमिति शेषः ।

वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु शैलेश मद्वाक्यं सर्वथा ते हितावहम् ॥ धर्माविरुद्धं सत्यञ्च परत्रेह मुदावहम् ॥ २९ ॥ वचनं त्रिविधं शैल लौकिके वैदिकेऽपि च ॥ सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा ॥ ३० ॥ असत्यमहितं पश्चात्सांप्रतं श्रुतिसुन्दरम् ॥ सुबुद्धिर्वक्ति शत्रुर्हि हितं नैव कदाचन ॥ ३१ ॥ आदावप्रीतिजनकं परिणामे सुखावहम् ॥ दयालुर्धर्मशीलो हि बोधयत्येव बांधवः ॥ ३२ ॥ श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकालसुखावहम् ॥ सत्यसारं हितकरं वचनं श्रेष्ठमीप्सितम् ॥ ३३ ॥ एवञ्च त्रिविधं शैल नीतिशास्त्रोदितं वचः ॥ कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं ब्रुवे वाक्यं त्वदीप्सितम् ॥ ३४ ॥ ब्राह्मसम्पद्विहीनश्च शंकरस्त्रिदशेश्वरः ॥ तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु सन्निमग्नैकमानसः ॥ ३५ ॥ ज्ञानानन्दस्येश्वरस्य ब्राह्मवस्तुषु का स्पृहा ॥ गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने ॥ ३६ ॥ कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता ॥ को वेद शंकरो दुःखी कुबेरो यस्य किंकरः ॥ ३७ ॥

वशिष्ठजी बोले हे शैलेन्द्र ! जो मैं सर्वथा तुम्हारे हितकारी वचन कहता हूं उनको सुनो यह वचन धर्मके अनुकूल और दोनों लोकमें आनंद करनेवाले हैं ॥ २९ ॥ हे शैल ! लोक और वेदमें तीन प्रकारके वचन होते हैं, शास्त्रका जाननेवाला निर्मल ज्ञान दृष्टिसे उन सबको जानता है ॥ ३० ॥ सुननेमें अच्छे लगें, परन्तु असत्य हों और पीछे अनहित करने वाले हों वह वचन शत्रु ही कहते हैं, वे किसी प्रकार हितकारी नहीं हैं ॥ ३१ ॥ आदिमें सुननेमें कठोर लगें, परन्तु परिणाममें सुखकारी हों इस प्रकारके वचन दयालु धर्मशील बंधुजन बोलते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु जो सुननेमें भी अमृतकी समान हो और सबकालमें सुखदायक हो सत्यका सार और हितकारी वचन श्रेष्ठ कहा है ॥ ३३ ॥ हे शैल यह तीन प्रकारके वचन नीतिशास्त्रमें कहेहैं कहो तो इन तीनोंमें तुमसे कौनसे वचन कहे जायँ ॥ ३४ ॥ देवताओंके स्वामी शंकर रजोगुणी सम्पत्तिसे तो हीन हैं परतत्त्वज्ञानके समुद्रमें उनका मन सदा निमग्न रहताहै ॥ ३५ ॥ जो ज्ञानानन्दका अधिपति है, उसको रजोगुणी वस्तुओंमें क्या इच्छा हो सकती है गृहस्थी अपनी कन्याको राजससम्पत्तिवालोंको देते हैं ॥ ३६ ॥ दुःखीको कन्या देनेसे पिता कन्याघाती होता है, शंकरको दुःखी दरिद्री कौन कह सकता है जिनके कुबेर दास हैं ॥ ३७ ॥

जो केवल अपनी भौंके विलास मात्रसे सृष्टिके सृजन पालन और संहार करनेको समर्थ हैं वह निर्गुण परमात्मा परेश प्रकृतिसे परे हैं ॥ ३८॥ जिनकी सृष्टिके कार्य करनेमें तीन प्रकारकी मूर्ति ब्रह्मा विष्णु हर नामवाली उत्पत्ति पालन और संहार करती है ॥ ३९॥ ब्रह्मा ब्रह्मलोकमें और विष्णु क्षीरसागरमें वास करते हैं हर कैलासमें वास करते हैं यह सब शिवजीकी विभूतियें हैं ॥४०॥ शिवसे उत्पन्न होकर प्रकृति तीन प्रकारके रूप धारण करती है, यद्यपि उसकी बहुत कला हैं तथापि लीलासृष्टिमें अंशोंसे अनेक अवतार लेती है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होकर वाणीकी अधिष्ठात्री देवता होकर वह

भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं हर्त्तुं क्षमो हि सः ॥ निर्गुणः परमात्मा च परेशः प्रकृतेः परः ॥ ३८ ॥ यस्य च त्रिविधा मूर्त्तिर्विधातुस्सृष्टिकर्मणि ॥ सृष्टिस्थित्यन्तजननी ब्रह्मविष्णुहराभिधा ॥ ३९ ॥ ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत् ॥ हरः कैलासनिलयः सर्वाः शिवविभूतयः ॥ ४० ॥ धत्ते च त्रिविधा मूर्त्तीः प्रकृतिः शिवसम्भवा ॥ अंशेन लीलया सृष्टौ कलया बहुधा अपि ॥ ४१ ॥ मुखोद्भवा स्वयं वाणी वागधिष्ठातृदेवता ॥ वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मीस्सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥ ४२ ॥ शिवा तेजस्सु देवानामाविर्भावं चकार सा ॥ निहत्य दानवान्सर्वान्देवेभ्यश्च श्रियं ददौ ॥ ४३ ॥ प्राप कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः ॥ नाम्ना सती हरं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम् ॥ ४४ ॥ देहं तत्याज योगेन श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम् ॥ साद्य त्वत्तस्तु मेनायां जज्ञे जठरतश्शिवा ॥ ४५ ॥ शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनिजन्मनि ॥ कल्पेकल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा ॥ ४६ ॥ जायते स्म सदा सिद्धा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी ॥ सत्या अस्थि चिताभस्म भक्त्या धत्ते हरस्स्वयम् ॥ ४७ ॥

सरस्वती हुई है वक्षस्थलसे उत्पन्न होनेसे लक्ष्मी सब सम्पत्की रूपवाली है ॥ ४२ ॥ देवताओंके तेजसे शिवाका प्रादुर्भाव हुआ है, उसने सब दानवोंको मारकर देवताओंके निमित्त लक्ष्मी दी है ॥ ४३ ॥ कल्पान्तरमें दक्षकी स्त्रीके जठरसे जन्म लेकर सती नामवाली यही हुई थी वहां दक्षने उसे शंकरहीको दिया ॥ ४४ ॥ वहां पिताके यज्ञमें सतीने अपने स्वामी शंकरकी निन्दा सुनकर योगसे देह त्याग दिया, वही शिवा इस समय मेनाके जठरमें प्रगट हुई ॥ ॥ ४५ ॥ हे शैल ! जन्म जन्ममें शिवा शिवकी पत्नी रही है कल्प कल्पमें यही ज्ञानियोंकी माता बुद्धिरूपिणी श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ यह सदा सिद्धोंकी

सिद्धिरूपिणी होकर प्रगट होती है, सतीकी अस्थि चिताकी भस्म भक्तिसे शिवजी सदा धारण करते हैं ॥ ४७ ॥ इस कारण तुम अपनी इच्छासेही इस
कल्याणी कन्याको शंकरके निमित्त दो अथवा तुम्हारे न देनेसे वह स्वयं अपने स्वामीके पास चली जायगी ॥ ४८ ॥ देवेशने प्रतिज्ञा करके जब देखा कि
तुम्हारी सुताने तप करके असंख्य क्लेश पाये तब वह ब्राह्मणका रूप धारण करके उस स्थानपर गये ॥ ४९ ॥ उसे आश्वासनकर वर दे अपने स्थानको
गये, हे गिरिराज उसीकी प्रार्थनासे शिवजी शिवाको तुमसे मांगते हैं ॥ ५० ॥ शिवकी भक्तिमें तत्पर तुम दोनोंने भी यह तपकी बात स्वीकार कर ली थी,

अतस्त्वं स्वेच्छया कन्यां देहि भद्रां हराय च ॥ अथवा सा स्त्रयं कान्तस्थाने यास्यत्यदास्यसि ॥ ४८ ॥ कृत्वा प्रतिज्ञां देवेशो
दृष्ट्वा क्लेशमसंख्यकम् ॥ दुहितुस्ते तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः ॥ ४९ ॥ तामाश्वास्य वरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥ तत्प्रार्थ
नावशाच्छम्भुर्ययाचे त्वां शिवां गिरे ॥ ५० ॥ अंगीकृतं युवाभ्यां तच्छिवभक्तिरतात्मना ॥ विपरीतमतिर्जाता वद कस्माद्गिरीश्वर ॥
॥ ५१ ॥ तद्गत्वा प्रभुणा देव प्रार्थितेन त्वदन्तिकम् ॥ प्रस्थापिता वयं शीघ्रं ह्यृषयस्साप्यरुन्धती ॥ ५२ ॥ शिक्षयामो वयं त्वां
हि दत्त्वा रुद्राय पार्वतीम् ॥ एवं कृते महानन्दो भविष्यति गिरे तव ॥ ५३ ॥ शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि ॥
भविता तद्विवाहोऽत्र भवितव्यबलेन हि ॥ ५४ ॥ वरं ददौ शिवायै स तपन्त्यै तात शंकरः ॥ नहीश्वरप्रतिज्ञातं विपरीताय कल्पते ॥
॥ ५५ ॥ अहो प्रतिज्ञा दुर्लंघ्या साधूनामीशवर्तिनाम् ॥ सर्वेषां जगतां मध्ये किमीशस्य पुनर्गिरे ॥ ५६ ॥

हे गिरीश्वर ! कहो तो अब तुम्हारी विपरीत बुद्धि किस प्रकारसे हुई ॥५१॥ हे गिरिराज ! वहांसे जाकर प्रभुने हमको प्रार्थना करनेके लिये भेजा है, और
अरुन्धती भी इसी निमित्त मेनाके समीप गई है ॥५२॥ हम भी तुमको शिक्षा देते हैं कि तुम रुद्रके निमित्त पार्वतीको दे दो हे शैल ! ऐसा करनेसे तुमको
महाआनन्दकी प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥ हे शैलराज ! यदि तुम अपनी इच्छासे पार्वती शिवको न दोगे तो भवितव्य बलसे यह विवाह शंकरसेही होगा ॥
॥ ५४ ॥ हे तात ! पार्वतीके तप करनेसे शिवजीने उसे वर दिया है ईश्वरकी प्रतिज्ञा की हुई निष्फल नहीं होती ॥ ५५ ॥ ईश्वरके वशवर्ती महात्माओंकी

प्रतिज्ञाही जब विफल नहीं होती तब सब जगत्के अधिपति ईश्वरकी प्रतिज्ञा विपरीत कौन करसकता है ॥ ५६ ॥ एक महेन्द्रने लीलासे पर्वतोंके पंख काटडाले थे और पार्वतीने तो लीलासे मेरुका शृंग भंग करदिया ॥५७॥ हे शैलेश ! एकके प्रयोजनसे सब सम्पत्ति नष्ट करनानही, कुलके निमित्त एकको त्यागन कर दे, यह सनातनी श्रुति है ॥ ५८ ॥ अनरण्य राजाने अपनी कन्याको ब्राह्मणके निमित्त देकर उसके भयसे अपनी सब सम्पतिकी रक्षा की ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणके शापसे भीत उस राजाको गुरु और ज्ञातिके नीतिशास्त्रके जाननेवाले लोगोंने बहुत प्रकारसे समझाया था ॥ ६० ॥ हे शैलराज ! इसी

एको महेन्द्रश्शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया ॥ पार्वती लीलया मेरोश्शृङ्गभङ्गं चकार च ॥ ५७ ॥ एकार्थे नहि शैलेश नाश्यास्सर्वा हि सम्पदः ॥ एकं त्यजेत्कुलस्यार्थे श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ५८ ॥ दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः ॥ ब्राह्मणाद्भयमापन्नो ररक्ष निजसम्पदम् ॥ ५९ ॥ तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः ॥ ब्रह्मशापाद्विभीताश्च गुरवो ज्ञातिसत्तमाः ॥ ६० ॥ शैलराज त्वमप्येव सुतां दत्त्वा शिवाय च ॥ रक्ष सर्वान्बंधुवर्गान्वशं कुरु सुरानपि ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वसिष्ठस्य वचनं स प्रहस्य च ॥ पप्रच्छ नृपवार्त्तांश्च हृदयेन विदूयता ॥ ६२ ॥ हिमालय उवाच ॥ कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननरण्यो नृपश्च सः ॥ सुतां दत्त्वा स च कथं ररक्षाखिलसम्पदः ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु शैलवाक्यं प्रसन्नधीः ॥ प्रोवाच गिरये तस्मै नृपवार्त्तां सुखावहाम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे गिरिसांत्वनो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

प्रकार तुम भी अपनी कन्या शिवजीके निमित्त देकर सब बंधुवर्गोंकी रक्षा करके देवताओंको अपने वशमें करो ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन वशिष्ठजीके श्रवण कर हिमालय हँसकर दुखी चित्तसे उस राजाका चरित्र पूछने लगे ॥ ६२ ॥ हिमालयने कहा हे ब्रह्मन् ! वह अनरण्य राजा किसके वंशमें उत्पन्न हुआ था, और अपनी सुताको देकर उसने किस प्रकारसे सब सम्पत्तियोंकी रक्षा की थी॥ ६३ ॥ ब्रह्माजी बोले वशिष्ठजी इस प्रकारसे हिमालयके वचन सुनकर प्रसन्न हो सुखदायक उस राजाका वृत्तान्त कहने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० टीका० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वशिष्ठजी बोले इन्द्रसावर्णि नामवाले चौदहवें मनुके वंशमें एक अनरण्य राजाने जन्म लिया ॥ १ ॥ वह नृपश्रेष्ठ सात द्वीपका राजा हुआ, वह मंगलारण्यका पुत्र महाबली विशेषकर शिवजीका भक्त था ॥ २ ॥ भृगुजीको पुरोहित बनाकर उसने सौ यज्ञ किये, देवता उसको इन्द्रपद देते थे परन्तु उसने यह बात स्वीकार न की ॥ ३ ॥ हे हिमालय ! उस राजाके सौ पुत्र हुए और सुन्दरी नामकी एक कन्या लक्ष्मीकी समान हुई ॥ ४ ॥ उसका प्रेम सौ पुत्रोंकी अपेक्षा कन्यामें विशेष था, हे राजन् ! और कन्या भी पिताको बडा प्यार करती थी ॥ ५ ॥ और सब स्त्रियें भी प्राणोंकी समान प्यारी थीं सब सौभाग्यसे युक्त उस राजाके पांच रानियें थीं ॥ ६ ॥ वह कन्या जब अपने पिताके घरमें युवा हुई, तब उसने अपने वरको खोजनेके लिये पत्र भेजा ॥ ७ ॥ एक समय पिप्पलाद ऋषि अपने स्थानको जाते थे, कि उस निर्जन तपके स्थानमें उन्होंने एक गन्धर्वको देखा ॥ ८ ॥ कि वह स्त्रियोंके साथ है, शृंगारके रससमुद्रमें उसका चित्त मग्न होरहा है वह कामशास्त्रमें विशारद महाप्रेमसे विहार कर रहा है ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर कामके वशीभूत हो गये और तपसे चित्त हटाकर दारसंग्रहकी इच्छा करने लगे ॥ १० ॥ इस प्रकार कामसे व्याकुल मनवाले श्रेष्ठ ऋषि पिप्पलादको कितना एक समय बीत गया ॥ ११ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ मनोर्वंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः ॥ इन्द्रसावर्णिसंज्ञस्य चतुर्दशमितस्य हि ॥ १ ॥ अनरण्यो नृपश्रेष्ठस्सप्तद्वीपमहीपतिः ॥ शम्भुभक्तो विशेषेण मङ्गलारण्यजो बली ॥ २ ॥ भृगुं पुरोधसं कृत्वा शतं यज्ञांश्चकार सः ॥ न स्वीचकार शक्रत्वं दीयमानं सुरैरपि ॥ ३ ॥ बभूवुश्शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय ॥ कन्यैका सुन्दरी नाम्ना पद्मा पद्मालयासमा ॥ ४ ॥ यस्स्नेहः पुत्रशतके कन्यायाश्च ततोऽधिकः ॥ नृपस्य तस्य तस्यां हि बभूव नगसत्तम ॥ ५ ॥ प्राणाधिकाः प्रियतमा महिष्यस्सर्वयोषितः ॥ नृपस्य पत्न्यः पञ्चासन्सर्वास्सौभाग्यसंयुताः ॥ ६ ॥ सा कन्या यौवनस्था च बभूव स्वपितुर्गृहे ॥ पत्रं प्रस्थापयामास सुवरानयनाय सः ॥ ७ ॥ एकदा पिप्पलादर्षिर्गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः ॥ तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह ॥ ८ ॥ स्त्रीयुतं मग्नचित्तं च शृङ्गारे रससागरे ॥ विहरन्तं महाप्रेम्णा कामशास्त्रविशारदम् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामः संबभूव सः ॥ तपस्स्वदत्तचित्तश्चाचिंतयद्दारसंग्रहम् ॥ १० ॥ एवंवृत्तस्य तस्यैव पिप्पलादस्य सन्मुनेः ॥ कियत्कालो गतस्तत्र कामोन्मथितचेतसः ॥ ११ ॥

एक समय वह मुनीश्वर पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेको गये वहां उन्होंने मनोहर लक्ष्मीकी समान सुन्दरी पद्माको देखा ॥ १२ ॥ तब मुनिने उन समीपवालोंसे पूछा कि यह किसकी कन्या है, शापके डरसे व्याकुल हो उसके आदमियोंने उसका पारिचय दिया ॥ १३ ॥ मनुष्योंने कहा यह पद्मानाम कन्या लक्ष्मीकी समान सुन्दरी अनरण्यकी कन्या है इस गुणवती सुमुखीकी अनेक राजा प्रार्थना करते हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वह सत्यवादी आदमियोंके सत्य वचन सुनकर मनमें बडे क्षुभित हुए और उसके लेनेकी इच्छा की ॥ १५ ॥ हे गिरिराज ! तब मुनि स्नानकर और अपने इष्टदेव शंकरको

एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः ॥ ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम् ॥ १२ ॥ केयं कन्येति पप्रच्छ समीपस्थाञ्जनान्मुनिः ॥ जना निवेदयांचक्रुर्नत्वा शापनियन्त्रिताः ॥ १३ ॥ जना ऊचुः ॥ अनरण्यसुतेयं वै पद्मा नाम रमापरा ॥ वरारोहा प्रार्थ्यमाना नृपश्रेष्ठैर्गुणालया ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छुत्वा स मुनिर्वाक्यं जनानां तथ्यवादिनाम् ॥ चुक्षोभातीव मनसि तल्लिप्सुरभवच्च सः ॥ १५ ॥ मुनिः स्नात्वाभीष्टदेवं सम्पूज्य विधिवच्छिवम् ॥ जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभां गिरे ॥ १६ ॥ राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः ॥ मधुपर्कादिकं दत्वा पूजयामास भक्तितः ॥ १७ ॥ कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः ॥ मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥ १८ ॥ मुनिर्ययाचे कन्यां स तां देहीति नृपेश्वर ॥ अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्यामिक्षणेन च ॥ १९ ॥ सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणास्तत्तेजसा मुने ॥ रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम् ॥ २० ॥ महिष्यो रुरुदुस्सर्वा इतिकर्त्तव्यताक्षमाः ॥ मूर्च्छामाप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाकुला ॥ २१ ॥

विधिपूर्वक पूजनकर कामके वशीभूत हो कन्याकी प्राप्तिके लिये राजा अनरण्यकी सभामें गये ॥ १६ ॥ राजाने मुनिको देखतेही भयसे प्रणाम किया और मधुर्पकादि देकर भक्तिसे पूजा की ॥ १७ ॥ मुनिने सब पूजाको ग्रहणकर राजासे कन्याको मांगा, राजा सुनतेही अवाक् होगया, और कुछ भी करनेको समर्थ न हुआ ॥ १८ ॥ मुनिने कहा हे राजन् ! अपनी कन्या तुम हमको दो नहीं तो क्षणमें सब भस्म कर दूंगा ॥ १९ ॥ हे मुने ! मुनिके तेजसे सब सेवकगण व्याप्त हो गये, और उस समय राजा कन्याके लिये रोने लगे कि ब्राह्मण तो बहुत ही जरासे व्याकुलहो रहे हैं ॥ २० ॥ रानियें भी

कर्तव्यमूढ होकर रोने लगीं और कन्याकी माता महाराज्ञी शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी ॥ २१ ॥ और राजाके सब पुत्र शोकसे व्याकुल मनवाले होगये, हे शैलराज ! जितने राजाके सम्बन्धी थे सब शोकसे व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ इसी समय महापंडित राजाका पुरोहित और बुद्धिमान् गुरु राजाके समीप आनकर प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ राजाने प्रणामकर पुरोहितजीका सत्कार किया और उनके आगे रोकर सब वृत्तान्त निवेदन किया, और पूछने लगे कि अब कर्तव्य शीघ्रतासे बताइये ॥ २४ ॥ तब राजाका गुरु विप्र और पुरोहित पंडित दोनों शास्त्र और नीतिके जाननेवाले राजाको समझाने

बभूवुस्तनयास्सर्वे शोकाकुलितमानसाः ॥ सर्वं शोकाकुलं जातं नृपसम्बन्धि शैलप ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राज्ञो द्विजो गुरुरुत्तमः ॥ पुरोहितश्च मतिमानागतो नृपसन्निधिम् ॥ २३ ॥ राजा प्रणम्य सम्पूज्य रुरोद च तयोः पुरः ॥ सर्वं निवेदयांचक्रे पप्रच्छोचितमाशु तत् ॥ २४ ॥ अथ राज्ञो गुरुर्विप्रः पण्डितश्च पुरोहितः ॥ अपि द्वौ शास्त्रनीतिज्ञौ बोधयामासतुर्नृपम् ॥ २५ ॥ शोकाकुलांश्च महिषीर्नृपबालाँश्च कन्यकाम् ॥ उत्तमां नीतिमादृत्य सर्वेषां हितकारिणीम् ॥ २६ ॥ गुरुपुरोधसावूचतुः ॥ शृणु राजन्महाप्राज्ञ वचो नौ सद्धितावहम् ॥ मा शुचः सपरीवारश्शास्त्रे कुरु मतिं सतीम् ॥ २७ ॥ अद्य वाब्ददिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप ॥ पात्राय विप्रायान्यस्मै कस्मैचिद्वा विशेषतः ॥ २८ ॥ सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यन्न पश्यावो जगत्त्रये ॥ सुतां दत्वा च मुनये रक्ष स्वां सर्वसम्पदम् ॥ २९ ॥

लगे ॥ २५ ॥ रानियें शोकसे व्याकुल हो रहीं थीं और नृपकी बाला कन्या भी व्याकुल हो रही थी पुरोहितजी उत्तम नीतिको आश्रयकर सबके हितकारी वचन बोले ॥ २६ ॥ गुरु और पुरोहित बोले हे राजन् ! हम दोनोंके हितकारी वचन सुनो परिवार सहित शोच मत करो शास्त्रमें सुन्दर मति करो ॥ २७ ॥ आज वा वर्ष दिनमें एक दिन तो तुमको कन्यादान करनाही होगा, किसी पात्र वा दूसरे किसीको अवश्य दोगे ॥ २८ ॥ ब्राह्मणको छोडकर हम

त्रिलोकीमें दूसरा कोई सत्पात्र नहीं देखते हैं मुनिको अपनी कन्या देकर अपनी सब सम्पत्तिकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ हे राजन् ! नहीं तो एकके निमित्तसे सब सम्पत्ति नाश होजायगी उसको देकर सबकी रक्षाकरना श्रेष्ठ है. शरणागतके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है ॥३०॥ वशिष्ठजी बोले राजा उन दोनोंके वचन सुन वारंवार विलाप करके कन्याको भूषण वस्त्र पहराय ऋषिको दान करता भया ॥ ३१ ॥ हे गिरिराज ! वह ऋषि उस मनोहर कन्याको पाय विधिपूर्वक विवाह करके पद्माकी समान उपमावाली उस पद्माको लेकर अपने मंदिरको गये ॥३२॥ राजाने जब वृद्धको इस प्रकारसे कन्या दी तब इस ग्लानिसे

राजन्नेकनिमित्तेन सर्वसंपद्विनश्यति ॥ सर्वं रक्षति तं त्यक्त्वा विना तं शरणागतम् ॥ ३० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राजा प्राज्ञवचः
श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥ कन्यां सालंकृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल ॥ ३१ ॥ कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्विवाह्य विधिवद्गिरे ॥
पद्मां पद्मोपमां तां वै मुदितस्स्वालयं ययौ ॥ ३२ ॥ राजा सर्वान्परित्यज्य दत्वा वृद्धाय चात्मजाम् ॥ ग्लानिं चित्ते समाधाय
जगाम तपसे वनम् ॥ ३३ ॥ तद्भार्य्यापि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे ॥ भर्त्तुश्च दुहितुश्शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ॥ ३४ ॥
पूज्याः पुत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छामापुर्नृपं विना ॥ शुशुचुः श्वाससंयुक्तं ज्ञात्वा सर्वेपरे जनाः ॥ ३५ ॥ अनरण्यो वनं गत्वा तपस्तप्त्वा
ति शंकरम् ॥ समाराध्य ययौ भक्त्या शिवलोकमनामयम् ॥ ३६ ॥ नृपस्य कीर्तिमान्नाम्ना ज्येष्ठपुत्रोथ धार्मिकः ॥ पुत्रवत्पालयामास
प्रजा राज्यं चकार ह ॥ ३७ ॥ इति ते कथितं शैलानरण्यचरितं शुभम् ॥ कन्यां दत्वा यथारक्षद्वंशं चाप्यखिलं धनम् ॥ ३८ ॥

सब राजपाट छोड पुत्रोंको राज्य दे वनमें तप करने चला गया ॥ ३३ ॥ हे गिरिराज ! जब प्राणपति वनको गये तब राजाकी भार्या सुन्दरीने भर्ता और अपनी कन्याके शोकसे प्राण त्याग दिये ॥ ३४ ॥ पूज्य पुत्र और भृत्य राजाके विना मूर्च्छाको प्राप्त हुए और दूसरे पुरुष भी स्वास लेकर इस बातका शोच करने लगे ॥ ३५ ॥ अनरण्य भी वनमें जाकर शंकरके निमित्त दुष्कर तपस्या करके और भक्तिसे उनका आराधन कर उत्तम शिवलोकमें चला गया ॥ ॥ ३६ ॥ राजाका श्रेष्ठपुत्र परम धर्मात्मा कीर्त्तिमान् नामवाला पुत्रकी समान प्रजाको पालन कर राज्य करने लगा ॥ ३७ ॥ हे शैलराज ! इस प्रकार

आपसे यह श्रेष्ठ अनरण्यका चरित्र वर्णन किया जैसे उसने कन्या देकर अपना सब वंश और धन बचाया ॥ ३८ ॥ हे शैलराज ! तुम भी अपनी कन्या शिवजीको देकर अपने सब कुलकी रक्षाकर सब देवताओंको अपने वशीभूत करो ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे अनरण्यचरित्रवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले हे पिताजी ! पुत्रीदानसम्बन्धी अनरण्यका चरित्र सुनकर गिरिराजने क्या किया उसको आप कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! कन्यादान सम्बन्धी अनरण्यके चरित्र सुनकर फिर शैलेश हाथजोडकर वशिष्ठजीसे कहने लगे ॥ २ ॥

शैलराज त्वमप्येवं सुतां दत्वा शिवाय च ॥ रक्ष सर्वकुलं सर्वान् वशान् कुरु सुरानपि ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डेऽनरण्यचरितवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनरण्यस्य चरितं सुतादानसमन्वितम् ॥ श्रुत्वा गिरिवरस्तात किं चकार च तद्वद ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अनरण्यस्य चरितं कन्यादानसमन्वितम् ॥ श्रुत्वा पप्रच्छ शैलेशो वसिष्ठं साञ्जलिः पुनः ॥ २ ॥ शैलेश उवाच ॥ वसिष्ठ मुनिशार्दूल ब्रह्मपुत्र कृपानिधे ॥ अनरण्यचरित्रन्ते कथितं परमाद्भुतम् ॥ ३ ॥ अनरण्यसुता यस्मात् पिप्पलादं मुनिं पतिम् ॥ सम्प्राप्य किमकार्षीत्सा तच्चरित्रं मुदावहम् ॥४॥ वसि०॥ पिप्पलादो मुनिवरो वयसा जर्जरोधिकः ॥ गत्वा निजाश्रमं नार्याऽनरण्यसुतया तया ॥ ५ ॥ उवास तत्र सुप्रीत्या तपस्वी नातिलम्पटः ॥ तत्रारण्ये गिरिवर स नित्यं निजधर्मकृत् ॥ ६ ॥ अथानरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥ ७ ॥

गिरिने कहा हे वशिष्ठ ! हे मुनिराज ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे कृपानिधे ! आपने परम अद्भुत अनरण्यका चरित्र कहा ॥ ३ ॥ अनरण्यकी सुताने पिप्पलादनामक पतिको प्राप्तकर क्या किया यह सुखदायक चरित्र कहिये ॥ ४ ॥ वशिष्ठ बोले, मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद तो जरासे व्याकुल थे जब उस अनरण्यकी सुताके साथ वे अपने आश्रमको गये ॥५॥ तब वे तपस्वी परम प्रीतिसे वहां निवास करने लगे बहुत लम्पटताभी न की हे गिरिराज ! उस वनमें वह नित्य अपना धर्म करते थे ॥ ६ ॥ और वह अनरण्यकी कन्या भी भक्तिसे मुनिकी सेवा करने लगी मन वचन कर्मसे जैसे लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती है वैसे करने लगी ॥७॥

एक समय वह मिष्टभाषिणी सुरनदीमें स्नान करनेको गई और मायासे मनुष्यरूपधारी धर्मराज मार्गमें मिले ॥ ८ ॥ जिनका रत्नोंसे खचित रथ था जो अनेक अलंकार धारण किये थे वह नवीन यौवनवाले श्रीमान् कामदेवकी समान कान्तिवाले थे ॥ ९ ॥ वह प्रभु धर्म उस सुन्दरी पद्माको देखकर कहने लगे और उस मुनिकन्याके भावके जाननेकी परीक्षा करने लगे ॥१०॥ धर्मराज बोले हे सुन्दरि लक्ष्मी ! राज्यके योग्य परम मनोहर अति यौवनमें स्थित हे कामिनि ! स्थिर यौवनवाली ॥ ११ ॥ तुम इस जरासे आतुर पिप्पलाद मुनिके समीप शोभाको नहीं प्राप्त होती, हे तन्वंगि ! मैं यह सत्य कहता

एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सुस्मितां च ताम् ॥ ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपरूपधृक् ॥ ८ ॥ चारुरत्नरथस्थश्च नानालं
कारभूषितः ॥ नवीनयौवनश्श्रीमान्कामदेवसमप्रभः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तां सुन्दरीं पद्मामुवाच स वृषो विभुः ॥ विज्ञातुं भावमन्तःस्थं
तस्याश्च मुनियोषितः ॥ १० ॥ ॥ धर्म उवाच ॥ अयि सुन्दरि लक्ष्मीवैं राजयोग्ये मनोहरे ॥ अतीव यौवनस्थे च कामिनि
स्थिरयौवने ॥ ११ ॥ जरातुरस्य वृद्धस्य पिप्पलादस्य वै मुनेः ॥ सत्यं वदामि तन्वङ्गि समीपे नैव राजसे ॥ १२ ॥ विप्रं तपस्सु
निरतं निर्घृणं मरणोन्मुखम् ॥ त्यक्त्वा मां पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम् ॥ १३ ॥ प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात्सौन्दर्य्यं पूर्वजन्मनः ॥
सफलं तद्भवेत्सर्वं रसिकालिंगनेन च ॥ १४ ॥ सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम् ॥ किंकरं कुरु मां कान्ते सम्परित्यज्य तं
पतिम् ॥ १५ ॥ निर्जने कानने रम्ये शैले शैले नदीतटे ॥ विहरस्व मया सार्द्धं जन्मेदं सफलं कुरु ॥ १६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
इत्येवमुक्तवन्तं सा स्वरथादवरुह्य च ॥ गृहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ॥ १७ ॥

हूं ॥ १२ ॥ वह ब्राह्मण केवल तपस्यामें निरत घृणा रहित मरणके समीप हो रहे हैं, उनको छोडकर मुझे देखो जो मैं रतिशूर और कामसे व्याकुल हो रहा हूं ॥ १३ ॥ हे सुन्दरी ! पूर्वजन्मके कर्मसे सुन्दरता प्राप्त होती है रसिकके आलिंगनसे वह सब सफल होता है ॥ १४ ॥ मैं सहस्र स्त्रियोंका पति कामशास्त्रमें चतुर हूं हे सुन्दरी ! उस बूढे पतिको त्यागन करके तुम मुझे अपना पति बनावो ॥ १५ ॥ निर्जन मनोहर वनमें पर्वत और नदीके किनारोंमें मेरे संग विहार करके इस जन्मको सफल करो ॥ १६ ॥ वशिष्ठजी बोले जब ऐसा कहकर धर्म रथसे उतरकर उसका हाथ पकडनेको हुए कि इसी समय

पतिव्रता बोली ॥ १७ ॥ हे नराधिप ! तुम पापी हो दूरहो यदि कामना सहित मुझे देखोगे तो शीघ्रही नष्ट हो जाओगे ॥ १८ ॥ तपसे पवित्र शरीरवाले पिप्पलाद मुनिश्रेष्ठको त्यागकर रतिलम्पट स्त्रीजित तुमको कैसे स्वीकार कर सकती हूं ॥ १९ ॥ स्त्रीजितके स्पर्शमात्रसे प्राणियोंका सब पुण्य नाश हो जाता है स्त्रीजित और दूसरेके निमित्त पाप करनेवाले इनका दर्शन पापकारी होता है ॥ २० ॥ जो पुरुष स्त्रियोंसे जीता हुआ है, वह सत्क्रिया होकर भी नित्य अपवित्र है, पितर देवता और मनुष्य सब उसकी निन्दा करते हैं ॥ २१ ॥ उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या और दानसे क्याहै जिसका मन

पद्मोवाच ॥ गच्छ दूरं गच्छ दूरं पापिष्ठस्त्वं नराधिप ॥ मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो नष्टो भविष्यसि ॥ १८ ॥ पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम् ॥ त्यक्त्वा कथं भजेयं त्वां स्त्रीजितं रतिलम्पटम् ॥ १९ ॥ स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति ॥ स्त्रीजितः परपापी च तद्दर्शनमघावहम् ॥ २० ॥ सत्क्रियो ह्यशुचिर्नित्यं स पुमान् यः स्त्रिया जितः ॥ निन्दन्ति पितरो देवा मानवास्सकलाश्च तम् ॥ २१ ॥ तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः ॥ विद्यया दानतः किम्वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ २२ ॥ मातरं मां स्त्रियो भावं कृत्वा येन ब्रवीषि ह ॥ भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः ॥ २३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ श्रुत्वा धर्मस्सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च ॥ धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच सः ॥ २४ ॥ ॥ धर्म उवाच ॥ मातर्जानीहि मां धर्मं ज्ञानिनाश्च गुरोर्गुरुम् ॥ परस्त्रीमातृबुद्धिश्च कुर्वन्तं सततं सति ॥ २५ ॥ अहं तवान्तरं ज्ञातुमागतस्तव सन्निधिम् ॥ तवाहञ्च मनो जाने तथापि विधिनोदितः ॥ २६ ॥ कृतं मे दमनं साध्वि न विरुद्धं यथोचितम् ॥ शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥ २७ ॥

स्त्रियोंने हरणकर लिया है ॥ २२ ॥ मैं तेरी माताकी समान हूं मुझमें जो तू स्त्रीभावसे यह वचन कहता है इससे समयपर तू मेरे शापसे क्षयको प्राप्त होगा ॥ २३ ॥ वशिष्ठजी बोले जब धर्मराजने सतीका शाप सुना तब अपनी राजमूर्त्ति छोडकर देवमूर्त्ति धारण कर वह देवेश कांपते हुए बोले ॥ २४ ॥ धर्म बोले हे मातः ! मैं धर्म हूं ज्ञानियोंके गुरुओंका भी गुरु हूं, हे सति ! मैं पराई स्त्रियोंमें सदा मातृबुद्धि करता हूं ॥ २५ ॥ मैं तुम्हारे मनका भाव जाननेके निमित्तही तुम्हारे समीप आया था मैं तुम्हारा मन जानता हूं तोभी विधिसे प्रेरित होकर ॥ २६ ॥ हे साध्वि ! तुमने मेरा दमन किया है, यह उचितही

है, उन्मार्गगामियोंको वह शासन करताही है, यह ईश्वरद्वारा ही निर्मित है ॥ २७ ॥ जो सबको सुख दुःख स्वयं देतेहैं, तथा इनके दूर करनेमेंभी समर्थहैं
जो सम्पद विपद कर्माधीन देतेहैं उन शिवके निमित्त नमस्कारहै ॥ २८ ॥ जो शत्रु मित्र प्रीति और क्लेश विधान करनेमें समर्थ हैं तथा सृष्टिके संहार और
सृजनमें समर्थ हैं उन शिवके निमित्त नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिसने दूधको श्वेत किया जलमें शीतलता की अग्निको दाहक शक्ति दी उन शिवजीको
नमस्कारहै ॥ ३० ॥ प्रकृति जिसने निर्माण की है जिसने महत्से आदि लेकर तपकर निर्माण की है जिसने ब्रह्मा विष्णु महेशादि निर्माण किये हैं उस

स्वयं प्रदाता सर्वेभ्यः सुखदुःखवरान्क्षमः ॥ सम्पदं विपदं यो हि नमस्तस्मै शिवाय हि ॥ २८ ॥ शत्रुं मित्रं सम्विधातुं प्रीतिश्च कलहं
क्षमः ॥ स्रष्टुं नष्टुं च यस्सृष्टिं नमस्तस्मै शिवाय हि ॥ २९ ॥ येन शुक्लीकृतं क्षीरं जले शैत्यं कृतम्पुरा ॥ दाही कृतो हुताशश्च नमस्त
स्मै शिवाय हि ॥ ३० ॥ प्रकृतिर्निर्मिता येन तत्वाति महदादितः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नमस्तस्मै शिवाय हि ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्युक्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः ॥ किञ्चिन्नोवाच चकितस्तत्पातिव्रत्यतोषितः ॥ ३२ ॥ पद्मापि नृपकन्या सा पिप्पलाद
प्रिया तदा ॥ साध्वी तं धर्ममाज्ञाय विस्मितोवाच पर्वत ॥ ३३ ॥ ॥ पद्मोवाच ॥ त्वमेव धर्म सर्वेषां साक्षी निखिलकर्मणाम् ॥
कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि मां विभो ॥ ३४ ॥ यत्तत्सर्वं कृतं ब्रह्मन् नापराधो बभूव मे ॥ त्वञ्च शप्तो मयाऽज्ञानात्स्त्रीस्वभा
वाद्वृथा वृष ॥ ३५ ॥ का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम् ॥ चित्ते स्फुरतु सा बुद्धिर्यया शं सँल्लभामि वै ॥ ३६ ॥

शिवके निमित्त प्रणाम है ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर वह जगद्गुरु धर्म उसके आगे स्थित हुए और उसके पति व्रतसे संतुष्ट होकर कुछभी न बोले
॥ ३२ ॥ हे नृपति ! वह नृपकन्या पद्मा पिप्पलादकी प्रिया साध्वी धर्मको जानकर विस्मित हो बोली ॥ ३३ ॥ पद्मा बोली हे नृप ! तुमही सब कर्मोंके
साक्षी हो फिर मेरे मन जाननेके लिये तुमने ऐसा किया था हे प्रभो ! ऐसा कहनेमें तुम मुझे क्यों वंचित करते हो ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह जो कुछभी
हुआ है इसमें मेरा अपराध नहीं है मैंने अज्ञानसे तुमको शाप दिया, हे धर्म ! स्त्री स्वभावसे वृथाही मैंने तुमको शाप दिया ॥ ३५ ॥ इस शापकी क्या

व्यवस्था होगी मैं यह चिन्ता करती हूं मेरे चित्तमें वह बुद्धि स्फुरायमान हो जिससे मुझे शान्ति हो ॥ ३६ ॥ आकाश सब दिशा और वायु आदिभी सब
चाहै नाश होजायँ परन्तु पतिव्रताका शाप कभी नष्ट नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे देवराज ! सतयुगमें चारों चरणोंसे पूर्ण पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान सब
कालमें दिनरात आप विराजमान होतेहैं ॥ ३८ ॥ यदि तुम्हारा नाश होजाय तो सम्पूर्ण सृष्टिही नाश होजायगी, ऐसी कर्तव्यतासे मूढ होकर मैं वृथाही
बोलती हूं ॥ ३९ ॥ हे सुरोत्तम ! त्रेतायुगमें तुम्हारा एक पाद क्षय हो जायगा द्वापरमें दूसरा और कलिमें तीसरा पाद क्षय होजायगा ॥ ४० ॥ कलिके

आकाशोसौ दिशस्सर्वा यदि नश्यन्तु वायवः ॥ तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥ ३७ ॥ सत्ये पूर्णश्चतुष्पादः पौर्ण
मास्यां यथा शशी ॥ विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम् ॥ ३८ ॥ त्वञ्च नष्टो भवसि चेत्सृष्टिनाशो भवेत्तदा ॥ इतिकर्तव्यतामूढा
वृथापि च वदाम्यहम् ॥ ३९ ॥ पादक्षयश्च भविता त्रेतायां च सुरोत्तम ॥ पादोपरे द्वापरे च तृतीयोऽपि कलौ विभो ॥ ४० ॥ कलि
शेषेऽखिलाश्छिन्ना भविष्यन्ति तवांघ्रयः ॥ पुनस्सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि ॥ ४१ ॥ सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च
कुत्रचित् ॥ युगव्यवस्थया स त्वं भविष्यसि तथा तथा ॥ ४२ ॥ इत्येवं वचनं सत्यं ममास्तु सुखदं तव ॥ याम्यहं पतिसेवायै गच्छ
त्वं स्वगृहं विभो ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्यास्सन्तुष्टोभूद्वृषस्स वै ॥ तदेवंवादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दन
॥ ४४ ॥ ॥ धर्म उवाच ॥ धन्यासि पतिभक्तासि स्वस्ति तेस्तु पविव्रते ॥ वरं गृहाण त्वत्स्वामी त्वत्परित्राणकारणात् ॥ ४५ ॥

शेषमें तुम्हारे चारों चरण क्षीण हो जायँगे फिर सतयुग आनेसे तुम पूर्ण होजाओगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ सतयुगमें तुम सर्वव्यापक होगे, दूसरे
युगोंमें कहीं कहीं व्यापक होगे, युगकी व्यवस्थासे तुम उस उस प्रकारके होजाओगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे यह मेरे सत्य वचन तुमको सुखदायक होंगे हे
विभो ! मैं पतिसेवाके निमित्त जाती हूं तुम अपने घर जाओ ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले पद्माके यह वचन सुन धर्मराज बडे प्रसन्न हुए हे नारदजी ! और इस
प्रकारसे उस साध्वीको कहने लगे ॥ ४४ ॥ धर्म बोले हे पतिव्रते ! तुम धन्य और पतिकी भक्त हो, हे पतिव्रते तुम्हारा मंगल हो अपने स्वामीकी रक्षाके

निमित्त वर लेवो ॥ ४५ ॥ मैं वर देताहूं तुम्हारे स्वामी युवा होकर रतिमें शूर और परम धार्मिकहों रूपवान् गुणी वक्ता होंगे और निरन्तर उनमें यौवनकी स्थिति रहैगी ॥ ४६ ॥ हे शुभे ! वह मार्कण्डेयसेभी विशेष चिरञ्जीव रहैंगे कुबेरसे विशेष धनवान् और ऐश्वर्यमें इन्द्रसे अधिक हो ॥ ४७ ॥ हरिके समान शिवके भक्त सिद्धिमें कपिलदेवजीसेभी विशेष बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान और समतामें दूसरा विधाता होंगे ॥ ४८ ॥ तुम जीवन पर्यन्त स्वामीके सौभाग्यसे संयुक्त होगी, और हे सुभगे ! इसी प्रकार तुमभी स्थिर यौवनवाली होगी ॥ ४९ ॥ तू गुणी और चिरजीवी दशपुत्रोंकी माता होगी तेरे स्वामीसे

युवा भवतु ते भर्ता रतिशूरश्च धार्मिकः ॥ रूपवान् गुणवान्वाग्मी संततस्थिरयौवनः ॥ ४६ ॥ चिरञ्जीवी स भवतु मार्कण्डेयात्परश्शुभे ॥ कुबेराद्धनवाँश्चैव शक्रादैश्वर्य्यवानपि ॥ ४७ ॥ शिवभक्तो हरिसमस्सिद्धस्तु कपिलात्परः ॥ बुद्ध्या बृहस्पतिसमस्समत्वेन विधेस्समः ॥ ४८ ॥ स्वामिसौभग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि ॥ तथा च सुभगे देवि त्वं भव स्थिरयौवना ॥ ४९ ॥ माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम् ॥ स्वभर्त्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः ॥ ५० ॥ गृहा भवन्तु ते साध्वि सर्वसम्पत्समन्विताः ॥ प्रकाशमन्तस्सततं कुबेरभवनाधिकाः ॥ ५१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा सन्तस्थौ धर्मस्स गिरिसत्तम ॥ सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ ॥ ५२ ॥ धर्मस्तथाशिषो दत्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥ प्रशशंस च तां प्रीत्या पद्मां संसदि संसदि ॥ ५३ ॥ सा रेमे स्वामिना सार्द्धं यूना रहसि सन्ततम् ॥ पश्चाद्बभूवुस्सत्पुत्रास्तद्भर्तुरधिका गुणैः ॥ ५४ ॥ बभूव सकला सम्पद्दम्पत्योः सुखवर्द्धिनी ॥ सर्वानन्दवृद्धिकरी परत्रेह च शर्मणे ॥ ५५ ॥

विशेष गुणी विज्ञात पुत्र होंगे ॥ ५० ॥ हे साध्वि ! तुम्हारे घर सब सम्पत्तिसे युक्त होंगे, और निरन्तर प्रकाशवाले कुबेरके भवनसे श्रेष्ठ होंगे ॥ ५१ ॥ वशिष्ठजी बोले हे गिरिसत्तम ! ऐसा कहकर धर्मराज स्थित होगये और पद्मा उनकी प्रदक्षिणाकर अपने घर गई ॥ ५२ ॥ और धर्मभी उसे आशीश देकर अपने स्थानको गये और प्रत्येक समागमोंमें पद्माकी प्रशंसा करते रहे ॥ ५३ ॥ और फिर अपने युवा स्वामीके साथ वह निरन्तर रमण करने लगी पीछे गुणोंमें उसके स्वामीसेभी विशेष उसके पुत्र हुए ॥ ५४ ॥ दोनों स्त्रीपुरुषोंको सुख बढानेवाली सब सम्पत्ति उनके हुई और दोनों लोकोंमें कल्याण करनेवाली

सब आनंद और वृद्धि करनेवाली हुई ॥ ५५ ॥ हे शैलेन्द्र ! तुमसे यह सब पुराना इतिहास वर्णन किया, सो दोनो स्त्रीपुरुषोंका यह चरित्र तुमने परम आदरसे सुना ॥ ५६ ॥ इस तत्त्वको जानकर अपनी सुता ईश्वरको प्रदान करो हे शैलराज ! अपनी स्त्री मेनाके सहित कुवासनाको त्याग दो ॥ ५७ ॥ एक सप्ताह बीतनेपर एक दुर्लभ योग है लग्नका स्वामी लग्नमें स्थित है और चन्द्रमा बुधके साथ स्थित होगा ॥ ५८ ॥ और रोहिणीसे युक्त होगा चन्द्रतारागणोंका योग विशुद्ध होगा, मार्गशीर्ष महीना सब दोष रहित चन्द्रवार ॥ ५९ ॥ सब श्रेष्ठ ग्रहोंके योगसे युक्त, असद्ग्रहोंसे रहित, श्रेष्ठ सन्तान

शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥ दम्पत्योश्च तयोः प्रीत्या श्रुतं ते परमादरात् ॥ ५६ ॥ बुद्ध्वा तत्त्वं सुतां देहि पार्वतीमीश्वराय च ॥ कुरुषं त्यज शैलेन्द्र मेनया स्वस्त्रिया सह ॥ ५७ ॥ सप्ताहे समतीते तु दुर्लभेति शुभे क्षणे ॥ लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते ॥ ५८ ॥ मुदिते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके ॥ मार्गमासे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते ॥ ५९ ॥ सर्वसद्ग्रहसंसृष्टेऽसद्ग्रहदृष्टिवर्जिते ॥ सदपत्यप्रदे जीवे पतिसौभाग्यदायिनि ॥ ६० ॥ जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ कन्यां प्रदाय गिरिजां कृती त्वं भव पर्वत ॥ ६१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो वसिष्ठो ज्ञानिसत्तमः ॥ विरराम शिवं स्मृत्वा नानालीलाकरं प्रभुम् ॥ ६२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पद्मापिप्पलादचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोपि हिमालयः ॥ विस्मितो भार्य्यया शैलानुवाच स गिरीश्वरः ॥ १ ॥ ॥ हिमालय उवाच ॥ हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर ॥ मैनाक विन्ध्य शैलेन्द्रास्सर्वे शृणुत मद्वचः ॥ २ ॥

देनेवाले बृहस्पतिके प्राप्त होनेपर जो सब सौभाग्य देनेवाले हैं ॥ ६० ॥ ऐसे समयमें मूल प्रकृतिकी रूपवाली ईश्वरी जगदम्बा कन्याको शंकरके निमित्त प्रदानकर हे गिरिराज ! आप कृतकार्य हूजिये ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले मुनिशार्दूल ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजी ऐसा कहकर नाना लीला करनेवाले महाप्रभु शिवको स्मरणकर मौन हुए ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवम० भा०टीका० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले हिमालय वशिष्ठजीके व[illegible]नकर अपने गणोंसहित विस्मित हो भार्याके सहित आश्चर्यको प्राप्त हो गिरीश्वर बोले ॥ १ ॥ हिमालय बोले हे मेरो, हे गिरिराज,

हे सह्य, हे गन्धमादन, हे मन्दर, मैनाक, विन्ध्य, शैलेन्द्र, हमारे वचन सुनो ॥ २ ॥ जब कि वशिष्ठजी ऐसा कहते हैं तब मेरा क्या कार्य है ऐसा विचार करता हूं तुम सब अपने मनमें विचारकर निर्णय करो ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले हिमालयके वचन सुनकर वे सुमेरु आदि गिरि परस्पर निर्णय करके प्रेमसे कहने लगे ॥ ४ ॥ शैल बोले हे महाभाग ! अब बहुत विचारसे क्या है कार्य तो होही गया है, हे महाभाग ! यह तो देवकार्यके निमित्त उत्पन्नही हुई है ॥ ॥ ५ ॥ इसका अवतार शिवके निमित्त हुआ है इस कारण यह शिवजीके निमित्तही देनी चाहिये इसनेहीं शंकरकी आराधना की है, रुद्रसे वह स्वीकृत

वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्य्यं विचार्य्यते यथा ॥ यथा तथा च शंसध्वं निर्णीय मनसाखिलम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छत्वा वचनं तस्य सुमेरुप्रमुखाश्च ते ॥ प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः ॥ ४ ॥ ॥ शैला ऊचुः ॥ अधुना किं विमर्शेन कृतं कार्य्यं तथैव हि ॥ उत्पन्नेयं महाभाग देवकार्यार्थमेव हि ॥ ५ ॥ प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेवतारिणी ॥ अनयाराधितो रुद्रो रुद्रेण यदि भाषिता ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छुत्वा वचस्तेषाम्मेर्वादीनां हिमाचलः ॥ सुप्रसन्नतरोभूद्वै जहास गिरिजा हृदि ॥ ७ ॥ अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात् ॥ नानावाक्यसमूहेनेतिहासैर्विविधैरपि ॥ ८ ॥ अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः ॥ मुनीनरुन्धतीं शैलं भोजयित्वा बुभोज च ॥ ९ ॥ अथ शैलवरो ज्ञानी सुसंसेव्य मुनींश्च तान् ॥ उवाच साञ्जलिः प्रीत्या प्रसन्नात्मागतभ्रमः ॥ १० ॥ हिमाचल उवाच ॥ सप्तर्षयो महाभागा वचश्शृणुत मामकम् ॥ विस्मयो मे गतस्सर्वशिवयोश्चरितं श्रुतम् ॥ ११ ॥

होचुकी है ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले हिमालय मेरु आदिके यह वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, और गिरिजा मनमें हँसने लगीं ॥ ७ ॥ इधर अरुन्धतीने मेनाको कारण रूपसे बोधन किया अनेक प्रकारके वाक्य और अनेक इतिहास सुनाये ॥ ८ ॥ तब शैलपत्नी उसे समझकर प्रसन्न हुई और मुनि अरुन्धती और शैलराजको भोजन कराकर उसने स्वयं भोजन किया ॥ ९ ॥ तब ज्ञानी शैलराजने उन मुनिश्रेष्ठोंकी भली प्रकारसे सेवा करके हाथ जोड प्रसन्नतासे भ्रमरहित वचन कहे ॥ १० ॥ हिमालय बोले हे महाभागवाले सप्तऋषियो तुम मेरे वचन सुनो मैंने शिवाशिवका चरित्र सुना अब मेरा सब विस्मय

जाता रहा ॥ ११ ॥ मेरा शरीर, पत्नी मेना, पुत्री ऋद्धि सिद्धि और जो कुछभी है सब शिवकाही है इसमें सन्देह नहीं ॥१२॥ ब्रह्माजी बोले हिमालयने इस प्रकारके वचन कह आदरपूर्वक उस पुत्रीको देख भूषण वस्त्रोंसे सजाकर ऋषिकी गोदीमें बैठा दिया ॥ १३ ॥ और प्रसन्न होकर शैलराजने ऋषियोंसे कहा यह भाग मैं शंकरको अवश्य दूंगा यह मैंने निश्चय करलिया है ॥ १४ ॥ ऋषि बोले शंकर तो ग्रहीता और आप दाता हैं पार्वती देवी भिक्षा है इससे अधिक उत्तमता और क्या होगी ॥ १५ ॥ हे हिमालय ! जो आपके शिखरोंकी जिस निमित्त ऐसी गति है इस कारण तुम धन्य हो सब शैलोंके अधिपति

मदीयं च शरीरम्वै पत्नी मेना सुतास्सुता ॥ ऋद्धिस्सिद्धिश्च चान्यद्वै शिवस्यैव न चान्यथा ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा स तदा पुत्रीं दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम् ॥ भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्संगे न्यवेशयेत् ॥ १३ ॥ उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषींस्तदा ॥ अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम् ॥ १४ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शंकरो भिक्षुकस्तेथ स्वयं दाता भवान् गिरे ॥ भैक्ष्यञ्च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम् ॥ १५ ॥ हिमवन् शिखराणान्ते यद्धेतोस्सदृशी गतिः ॥ धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपस्सर्वतो वरः ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्त्वा तु कन्यायै मुनयो विमलाशयाः ॥ आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव ॥ १७ ॥ स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति ॥ शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धन्तां त्वद्गुणास्तथा ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा मुनयस्सर्वे दत्त्वा ते गिरये मुदा ॥ पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्ययं चक्रिरे तदा ॥ १९ ॥ अरुन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा ॥ गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती ॥ २० ॥ हरिद्राकुंकुमैश्शैलश्मश्रूणि प्रत्यमार्जयत् ॥लौकिकाचारमाधाय मंगलायनमुत्तमम् ॥ २१ ॥

सर्वश्रेष्ठ हो ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर वे निर्मल हृदयवाले ऋषि कन्याको आशीर्वाद देनेलगे कि तू शिवके निमित्त सुखदायक हो ॥ १७ ॥ और हाथसे स्पर्शकरके उससे कहा कि तुम्हारा कल्याण होगा शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी समान तुम अपने गुणोंसे वृद्धिको प्राप्तहो ॥१८॥ यह कहकर ऋषियोंने गिरिराजको पुष्पफल देकर विश्वास दिवाया ॥१९॥ उस ओर सुमुखी अरुन्धतीने प्रसन्नतासे शिवके गुणोंसे साध्वी मेनाको लुभाया ॥२०॥ हरिद्रा और

कुमकुमसे शैलकी डाढी मूछैं मार्जित कीं लौकिक आचारपूर्वक सब मंगल किये ॥ २१ ॥ फिर वे चौथेदिनकी उत्तम लग्न निश्चय करके परस्पर सन्तुष्ट हो शिवजीके समीप गये ॥ २२ ॥ वहां आय शिवजीको प्रणाम करके अनेक सूक्तोंसे स्तुतिकर वह सब वशिष्ठादि ऋषि परमेश्वरसे कहने लगे ॥ ॥ २३ ॥ ऋषि बोले हे देवदेव महादेव ! हे परमेश्वर ! हे महाप्रभो ! हमारे वचन प्रेमसे सुनो जो कुछ आपके सेवकोंने किया है ॥ २४ ॥ हे महेशान ! हमने गिरिराज और मेनाको बडे बडे इतिहास कहकर बडे उपायोंसे समझाया है इसमें सन्देह नहीं अब वह समझ गये हैं ॥ २५ ॥ गिरीन्द्रने वाणीसे

ततश्च ते चतुर्थेह्नि संधार्य्य लग्नमुत्तमम् ॥ परस्परं च सन्तुष्य संजग्मुश्शिवसन्निधिम् ॥ २२ ॥ तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्तुत्वा विविधसूक्तिभिः ॥ ऊचुः सर्वे वसिष्ठाद्या मुनयः परमेश्वरम् ॥ २३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो ॥ शृण्वस्मद्वचनं प्रीत्या यत्कृतं सेवकैस्तव ॥ २४ ॥ बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तिभिः ॥ सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोसौ न संशयः ॥ २५ ॥ वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा ॥ उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैर्देवैश्च संयुतः ॥ २६ ॥ गच्छ शीघ्रं महादेव हिमाचलगृहं प्रभो ॥ विवाहय यथा रीतिः पार्वतीमात्मजन्मने ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां लौकिकाचारतत्परः ॥ प्रहृष्टात्मा महेशानः प्रहस्येदमुवाच सः ॥ २८ ॥ महेश उवाच ॥ विवाहो हि महाभागा न दृष्टो न श्रुतो मया ॥ यथा पुरा भवद्भिस्तद्विधिः प्रोच्यो विशेषतः ॥ २९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तदाकर्ण्य महेशस्य लौकिकं वचनं शुभम् ॥ प्रत्यूचुः प्रहसन्तस्ते देवदेवं सदाशिवम् ॥ ३० ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विष्णुमाहूय वै शीघ्रं ससमाजं विशेषतः ॥ ब्रह्माणं ससुतं प्रीत्या तथा देवं शतक्रतुम् ॥ ३१ ॥

आपको पार्वती देदी इसमें सन्देह नहीं अब आप देवता और गणोंके सहित व्याह करने चलिये ॥ २६ ॥ हे महादेव ! हे प्रभो ! आप शीघ्र हिमालयके घर चलिये यथा रीतिसे आप पार्वतीका व्याह कीजिये ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और लौकिकाचारमें तत्पर होकर हँसते हुए इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥ शिवजी बोले हे महाभाग ! हमने तो विवाह न देखा न सुना जैसी पूर्वमें आपने विधि कही है वह करो ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके इस प्रकारसे सुन्दर वचन सुनकर हँसतेहुए देवदेव सदाशिवसे कहने लगे ॥ ३० ॥ ऋषि बोले समाजसहित शीघ्रतासे विष्णुजीको

बुलाइये, प्रेमसे पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको तथा देवताओंसहित इन्द्रको बुलाइये ॥ ३१ ॥ और फिर सब ऋषिगण यक्ष गन्धर्व किन्नर सिद्ध विद्याधर और अप्सरागणोंको बुलाइये ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! इनके सिवाय दूसरे महानुभावोंको यथायोग्य बुलाइये यह सब आपका कार्य साध लेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले सप्त ऋषि इस प्रकारके वचन कह प्रसन्नतासे शिवजीकी आज्ञाको प्राप्त हो शिवजीकी महिमा वर्णन करते हुए अपने २ स्थानको गये ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे सप्तर्षिवचनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ नारदजी बोले हे तात ! जब

तथा ऋषिगणान्सर्वान् यक्षगन्धर्वकिन्नरान्॥ सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तथा चैवाप्सरोगणान् ॥ ३२ ॥ एतांश्चान्यान्प्रभो सर्वानानय स्वेह सादरम् ॥ सर्वे संसाधयिष्यन्ति त्वत्कार्य्यं ते न संशयः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा सप्त ऋषयस्तदाज्ञां प्राप्य ते मुदा ॥ स्वधाम प्रययुस्सर्वे शंसन्तः शाङ्करीं गतिम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे सप्तऋषिवचनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ॥ तात प्राज्ञ वदेदानीं सप्तर्षिषु गतेषु च ॥ किमकार्षीद्धिमगिरिस्तन्मे कृत्वा कृपां प्रभो ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गतेषु तेषु मुनिषु सप्तस्वपि मुनीश्वर ॥ सारुन्धतीषु हिमवान् यदकार्षीद्ब्रवीमि ते ॥ २॥ तत आमन्त्र्य स्वभ्रातॄन् मेर्वादीन् ससुतप्रियः ॥ महामनास्स मुमुदे हिमवान् पर्वतेश्वरः ॥ ३ ॥ तदाज्ञप्तस्ततः प्रीत्या हिमवान् लग्न पत्रिकाम् ॥ लेखयामास सुप्रीत्या गर्गेण स्वपुरोधसा ॥ ४ ॥ अथ प्रस्थापयामास तां शिवाय स पत्रिकाम् ॥ नानाविधास्तु सामग्र्यः स्वजनैर्मुदितात्मभिः ॥ ५ ॥ ते जनास्तत्र गत्वा च कैलासे शिवसन्निधिम् ॥ ददुश्शिवाय तत्पत्रं तिलकं सम्विधाय च ॥ ६ ॥

अरुन्धतीसहित सप्तर्षि अपने स्थानोंको चले गये तब पीछे हिमालयने जो किया सो कहो ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले अरुंधतीके सहित जब सप्तऋषि चले गये तब हिमवान् जो कुछ करताभया सो सुनो ॥ २ ॥ तब वह अपने भाई मेरु आदिको पुत्रादि सहित आमंत्रण देकर हिमवान् पर्वतेश्वर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ उनकी आज्ञासे बहुत प्रसन्न होकर अपने गणोंको बुलाय गर्ग अपने पुरोहितसे लग्न लिखाई ॥ ४ ॥ तब उस पत्रिकाको शिवजीके समीप भेजा और प्रसन्न होकर अपने जनोंसहित नाना प्रकारकी सामग्री भेजदीं ॥ ५ ॥ उन जनोंने कैलासमें शिवजीके समीप जाकर शिवजीको वह पत्र और तिलक

दिया ॥ ६ ॥ विशेषकर प्रभुने उनका बडा सन्मान किया, और वह सब प्रसन्न होकर शैलराजके समीप गये ॥ ७ ॥ शिवजीने आयेहुए जनोंका विशेष सत्कार किया था उनको देखकर शैलराज बडे प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ और फिर आनन्दसे अपने बंधुजनोंको निमंत्रण किया जो अनेक देशोंमें स्थित थे, और सब सम्पत्तियोंके अधिकारी थे ॥ ९ ॥ तब आदरसे गिरिराजने अन्नसंग्रह कराया और विवाह करणके उपयोगी अनेक प्रकारकी सामग्री एकत्रित की ॥ ॥ १० ॥ बहुतसे चावल और पृथक (च्यूरा) गुड, शर्करा, लवण, ॥ ११ ॥ दूध, घी, दही इनके ढेरके ढेर यवादि और पीसे हुए धान्य और लड्डू

सन्मानिता विशेषेण प्रभुणा च यथोचितम् ॥ सर्वे ते प्रीतिमनस आजग्मुश्शैलसन्निधिम् ॥ ७ ॥ सन्मानितान्विशेषेण महेशेनागताञ्जनान् ॥ दृष्ट्वा सुहर्षिताञ्छैलो मुमोदातीव चेतसि ॥ ८ ॥ ततो निमन्त्रणं चक्रे स्वबन्धूनां प्रमोदितः ॥ नानादेशस्थितानाञ्च निखिलानां सुखास्पदम् ॥ ९ ॥ ततस्स कारयामास स्वर्णसंग्रहमादरात् ॥ नानाविधाश्च सामग्रीर्विवाहकरणोचिताः ॥ १० ॥ तण्डुलानां बहूञ्छैलान् पृथुकानां तथैव च ॥ गुडानां शर्कराणाञ्च लवणानां तथैव च ॥ ११ ॥ क्षीराणां च घृतानाञ्च दध्नां वापीश्चकार सः ॥ यवादिधान्यपिष्टानां लड्डुकानां तथैव च ॥ १२ ॥ शष्कुलीनां स्वस्तिकानां शर्कराणां तथैव च ॥ अमृतेक्षुरसानां च तत्र वापीश्चकार सः ॥ १३ ॥ बह्वीर्हैयंगवानाञ्च ह्यासवानां तथैव च ॥ नाना पक्वान्नसंघांश्च महास्वादुरसाँस्तथा ॥ १४ ॥ नाना व्यञ्जनवस्तूनि गणदेवहितानि च ॥ अमूल्यनानावस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च ॥ १५ ॥ मणिरत्नप्रकाराणि सुवर्णरजतानि च ॥ द्रव्याण्येतानि चान्यानि संगृह्य विधिपूर्वकम् ॥ १६ ॥

॥ १२ ॥ पूरी, स्वस्तिका (पिट्ठीके पदार्थ,) शर्करा, अमृत, इक्षुरस इनकी बावडीकी बावडी करडाली ॥ १३ ॥ बहुतसी मक्खनके तथा आसवोंके ढेर तथा अनेक पक्वान्न महास्वादवाले रसोंके ढेरके ढेर ॥ १४ ॥ नाना व्यंजनकी वस्तुएँ गण और देवताओंके हितकी करनेवाली तथा दूसरे अमूल्य वस्त्र जो धूपमात्रके लगनेसे पवित्र गिने जाते हैं ॥ १५ ॥ मणि रत्नोंके प्रकार सुवर्ण चांदीके गहने यह तथा दूसरे द्रव्यभी विधिपूर्वक ग्रहण करके ॥ १६ ॥

मंगलदायक दिनमें गिरिराजने यह सब मंगलाचारं आरम्भ किया, और पर्वतकी स्त्रियें पार्ततीका संस्कार करने लगीं ॥१७॥ और भूषणोंसे भूषित होकर वे प्रसन्नतासे मंगलाचार करने लगीं पुर और ब्राह्मणोंकी स्त्रियें प्रसन्न हो लोकाचार करने लगीं ॥१८॥ वहां मंगलपूर्वक बडा उत्सव होने लगा, हिमालयने भी प्रसन्न हो मंगलाचार किया ॥ १९ ॥ वह सबप्रकारसे प्रसन्न हुआ और बंधुवर्गोंके आगमनमें उत्सुक हुआ इसी अवसरमें निमंत्रित हुए वह सब बांधव ॥ २० ॥ अपनी स्त्री पुत्रादिके साथ बडी प्रसन्नतासे आये, हे देवर्षे ! उन पर्वतका आगमन आदरसे सुनो ॥ २१ ॥ मैं शिवप्रीति बढानेके निमित्त संक्षेपसे

मंगलं कर्तुमारेभे गिरिर्मंगलकृद्दिने ॥ संस्कारं कारयामासुः पार्वत्याः पर्वतस्त्रियः ॥ १७ ॥ ता मंगलं मुदा चक्रुर्भूषिता भूषणैः स्वयम् ॥ पुरद्विजस्त्रियो हृष्टा लोकाचारं प्रचक्रिरे ॥ १८ ॥ सोत्सवं विविधं तत्र सुमंगलपुरस्सरम् ॥ हिमालयोऽपि हृष्टात्मा कृत्वाचारं सुमंगलम् ॥ १९ ॥ सर्वभावेन सुप्रीतो बन्धुवर्गागमोत्सुकः ॥ एतस्मिन्नन्तरे तस्य बान्धवाश्च निमन्त्रिताः ॥ २० ॥ आजग्मुस्सस्त्रियो हृष्टास्ससुतास्सपरिच्छदाः ॥ तदैव शृणु देवर्षे गिर्य्यागमनमादृतः ॥ २१ ॥ वर्णयामि समासेन शिवप्रीतिविवृद्धये ॥ देवालयगिरियों हि दिव्यरूपधरो महान् ॥ २२ ॥ नानारत्नपरिभ्राजत्समाजस्सपरिच्छदः ॥ नानामणिमहारत्नसारमादाय यत्नतः ॥ २३ ॥ सुवेषालंकृतः श्रीमान् जगाम स हिमालयम् ॥ मन्दरस्सर्वशोभाढ्यस्सनारीतनयो गिरिः ॥ २४ ॥ सूपायनानि संगृह्य जगाम विविधानि च ॥ अस्ताचलोपि दिव्यात्मा सोपायन उदारधीः ॥ २५ ॥ बहु शोभासमायुक्त आजगाम मुदान्वितः ॥ उदयाचल आदाय सद्रत्नानि मणीनपि ॥ २६ ॥ अत्युत्कृष्टपरीवार आजगाम महासुखी ॥ मलयो गिरिराजो हि सपरीवार आहृतः ॥ २७ ॥

वर्णन करता हूं दिव्यरूप धारण किये देवालय गिरि ॥ २२ ॥ अनेक रत्नोंको धारे अपने समाज और कुटुम्बके साथ आये, उनके साथमें अनेक मणि और रत्नोंके सार थे ॥ २३ ॥ सुवेषधारे अलंकारधारे वह श्रीमान् हिमालयके घर आये इसी प्रकार सब शोभाकी खान स्त्री पुत्र सहित पर्वतराज मंदर ॥ २४ ॥ अनेक भेटकी वस्तु लेकर हिमालयके स्थानमें आये, इसीप्रकार दिव्यशरीरधारी अस्ताचलभी अनेक सामग्री सहित प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ इसीप्रकार बहुतसी शोभा और सामग्री सहित अनेक रत्न और मणि लेकर उदयाचल आया ॥ २६ ॥ मलयाचल पर्वत अपने बडे परिवारके सहित

महासुखपूर्वक आया ॥ २७ ॥ सह्य और दर्दुरनामवाला पर्वत बडे परिवारयुक्त दिव्य रचनाके सहित आये और प्रसन्नतासे साथमें अपनी स्त्रियें भी लाये ॥ २८ ॥ यह सब बडी शोभासे युक्त हिमालयके घर आये, इसीप्रकार निषधपर्वतभी कुटुम्ब सहित आया ॥ २९ ॥ यह अपने पुत्र और स्त्री सहित प्रसन्न हो हिमालयके घर गये इसीप्रकार महाभाग गन्धमादन पर्वत आया ॥ ३० ॥ इसीप्रकार महाऐश्वर्यके सहित करवीर पर्वत आया इसीप्रकार पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्रभी हिमालयके यहां आया ॥ ३१ ॥ यह अपने गण और स्त्रीको साथ ले शोभाके सहित आया पारियात्रनामक महात्मा पर्वत मणी और रत्नोंके ढेर लेकर आया ॥ ३२ ॥ यह अपने गण और परिवारको लेकर हिमालयके घर आये इसीप्रकार पर्वतराज क्रौञ्च, महाबल और सामग्रीके साथ भेंट लेकर गिरिश्रेष्ठके यहां आये ॥ ३३ ॥ पुरुषोत्तम पर्वत भी अपनी समाज सहित आदरसे बडी सामग्री लेकर हिमालयके समीप आया ॥ ३४ ॥ नील सनील पर्वत भी अपनी स्त्री पुत्र और द्रव्य सहित हिमालयके घर आनंदपूर्वक आया ॥ ३५ ॥ त्रिकूट, चित्रकूट, वेंकट, श्रीगिरि, गोकामुखी और नारद यह हिमालयके घर आये ॥ ३६ ॥ विन्ध्यनामक पर्वतश्रेष्ठ अनेक सम्पत्तियोंके सहित स्त्रीपुत्रोंसहित बडी प्रसन्नतासे हिमालयके घर आया ॥ ३७ ॥

सुदिव्यरचनायुक्त आययौ बहुसद्दलः ॥ सह्यो दर्दुरनामा च मुदितस्सकलत्रकः ॥ २८ ॥ बहुशोभान्वितस्तात ययौ हिमगिरेर्गृहम् ॥ निषदोपि प्रहृष्टात्मा सपरिच्छद आययौ ॥ २९ ॥ ससुतस्त्रीगणः प्रीत्या ययौ हिमगिरेर्गृहम् ॥ आजगाम महाभाग्यो भूधरो गन्धमादनः ॥ ३० ॥ करवीरस्तथैवापि महाविभवसंयुतः ॥ महेन्द्रः पर्वतश्रेष्ठ आजगाम हिमालयम् ॥ ३१ ॥ सगणस्ससुतस्त्रीको बहुशोभासमन्वितः ॥ पारियात्रो हि हृष्टात्मा मणिरत्नाकरस्सयुत् ॥ ३२ ॥ सगणस्सपरीवार आययौ हिमभूधरम् ॥ क्रौञ्चः पर्वतराजो हि महाबलपरिच्छदः ॥ आजगाम गिरिश्रेष्ठस्समुपायन आदृतः ॥ ३३ ॥ पुरुषोत्तमशैलोपि सपरिच्छद आदृतः ॥ महोपायनमादायाजगाम हिमभूधरम् ॥ ३४ ॥ नीलः सलीलस्ससुतस्सस्त्रीको द्रव्यसयुंतः ॥ आजगाम हिमागस्य गृहमानन्दसंयुतः ॥ ३५ ॥ त्रिकूटश्चित्रकूटोपि वेंकटः श्रीगिरिस्तथा ॥ गोकामुखी नारदश्च हिमगेहमुपागमत् ॥ ३६ ॥ विन्ध्यश्च पर्वतश्रेष्ठो नानासम्पत्समन्वितः ॥ आजगाम प्रहृष्टात्मा सदारतनयश्शुभः ॥ ३७ ॥

महाशैल कालिंजर बडी प्रसन्नतासे अपने गण और धनी सहित हिमालयके घर आया ॥ ३८ ॥ कैलासनाम महाशैलभी बडी प्रसन्नताके सहित बडी
कृपाकर हिमालयके गेह पधारे यह सब पर्वतोंके अधिष्ठात्री देवता थे ॥ ३९ ॥ हे नारदजी ! जो दूसरे द्वीपोंमें दूसरे पर्वत थे तथा और जो भारत वर्षके
पर्वत देव थे वे सब हिमालयके घर आये ॥ ४० ॥ हे मुने ! उसने पहले सब पर्वतोंका प्रेमसे निमंत्रण किया था वे सब प्रेमसे शिवाशिवका विवाह देखने
आये ॥ ४१ ॥ उस समय शोणभद्रादिक नद सभी आये और सबने महाप्रसन्नता प्राप्त की कि शिवाशिवका विवाह है ॥ ४२ ॥ अनेक अलंकारोंसे

कालंजरो महाशैलो बहुहर्षसमन्वितः ॥ बहुभस्सगणः प्रीत्याजगाम हिमभूधरम् ॥ ३८ ॥ कैलासस्तु महाशैलो महाहर्षसमन्वितः ॥
आजगाम कृपां कृत्वा सर्वोपरि लसत्प्रभुः ॥ ३९ ॥ अन्येपि भूभृतो ये हि द्वीपेष्वन्येष्वपि द्विज ॥ इहापि येऽचलास्सर्वे आययुस्ते
हिमालयम् ॥ ४० ॥ निमन्त्रिता नगास्तत्र तेन पूर्वं मुदा मुने ॥ आययुर्निखिलाः प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति ॥ ४१ ॥ तदा सर्वे
समायाताश्शोणभद्रादयः खलु ॥ बहुशोभा महाप्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति ॥ ४२ ॥ नद्यस्सर्वास्समायातानानालंकारसंयुताः ॥ दिव्य
रूपधराः प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति ॥ ४३ ॥ गोदावरी च यमुना ब्रह्मस्त्रीर्वेणिका तथा ॥ आययौ हिमशैलम्वै विवाहश्शिवयोरिति
॥ ४४ ॥ गंगा तु सुमहाप्रीत्या नानालंकारसंयुता ॥ दिव्यरूपा ययौ प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति ॥ ४५ ॥ नर्मदा तु महामोदा रुद्र
कन्या सरिद्वरा ॥ महा प्रीत्याजगामाशु विवाहश्शिवयोरिति ॥ ४६ ॥ आगतैस्तैस्ततः सर्वैस्सर्वतो हिमभूधरम् ॥ संकुलासीत्पुरी
दिव्या सर्वशोभासमन्विता ॥ ४७ ॥ महोत्सवा लसत्केतुध्वजातोरणकाधिका ॥ वितानविनिवृत्तार्का तथा नानालसत्प्रभा ॥ ४८ ॥

संयुक्त सब नदियें आईं यह सब दिव्यरूप धारणकर प्रेमसे शिवजीका विवाह देखने आये ॥ ४३ ॥ गोदावरी, यमुना, ब्रह्मपुत्र, त्रिवेणी यह सब शिवाशिवका
विवाह देखनेको हिमालयके यहां आये ॥ ४४ ॥ गंगा तो महाप्रसन्न हो अनेक प्रकारके भूषण धारणकर प्रेमसे दिव्यरूप धारणकर हिमालयके यहां आई
॥ ४५ ॥ नर्मदा महामोदा सरिद्वरा रुद्रकन्या यह सब महाप्रेमसे शिवाशिवका विवाह देखने आईं ॥ ४६ ॥ जिस समय यह चारोंओरसे सब आगये उस
समय सब शोभासे युक्त हिमालयकी दिव्यपुरी इनसे व्याप्त होगई ॥ ४७ ॥ ध्वजा तोरणोंसे महाउत्सव उस समय होने लगा, वितान ताने गये जिनसे धूप

निवृत्त हो जाती है तथां अनेक और भी शोभा हो रही है ॥ ४८ ॥ हिमालयने भी प्रेम और बडे आदरसे उनका यथायोग्य सन्मान किया ॥ ४९ ॥ सबको पृथक् पृथक् अच्छे २ स्थानोंमें बैठाया, और अनेक सामग्रीसे सबको संतुष्ट किया ॥ ५० ॥ इति श्रीशिमहापुराणभा॰ रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वती खण्डे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! तब प्रसन्न होकर हिमालयने अपने पुरमें विचित्र परमउत्सव करनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ मार्ग सब प्रकारसे छिडकवा दिये गये परम ऋद्धिसे सब शोभित कर दिये गये प्रत्येक द्वारेपर केले और मंगलद्रव्य सम्पादन किये गये ॥ २ ॥ आंगनमें

हिमालयोपि सुप्रीत्यादरेण विविधेन च ॥ तेषां चकार सन्मानं तासां चैव यथायथम् ॥ ४९ ॥ सर्वान्निवासयामास सुस्थानेषु पृथक् पृथक् ॥ सामग्रीभिरनेकाभिस्तोषयामास कृत्स्नशः ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे लग्नपत्रसंप्रेषणसामग्रीसंग्रहशैलागमनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ शैलेश्वरः प्रीतो हिमवान्मुनिसत्तम ॥ स्वपुरं रचयामास विचित्रं परमोत्सवम् ॥ १ ॥ सिक्तमार्गं संस्कृतं च शोभितं परमर्द्धिभिः ॥ द्वारि द्वारि च रम्भादि मङ्गलंद्रव्यसंयुतम् ॥ २ ॥ प्रांगणं रचयामास रम्भास्तंभसमन्वितम् ॥ पट्टसूत्रैस्संनिबद्धरसालपल्लवान्वितम् ॥ ३ ॥ मालतीमाल्यसंयुक्तं लसत्तोरणसुप्रभम् ॥ शोभितम्मंगलद्रव्यैश्चतुर्दिक्षु स्थितैश्शुभैः ॥ ४ ॥ तथैव सर्वं परया मुदान्वितश्चक्रे गिरीन्द्रस्स्वसुतार्थमेव ॥ गर्गम्पुरस्कृत्य महाप्रभावं प्रस्तावयोग्यं च सुमंगलं हि ॥ ५ ॥ आहूय विश्वकर्माणं कारयामास सादरम् ॥ मण्डपं च सुविस्तीर्णं वेदिकादिमनोहरम् ॥ ६ ॥ अयुतेन सुरर्षे तद्योजनानां च विस्तृतम् ॥ अनेकलक्षणोपेतं नानाश्चर्य्यसमन्वितम् ॥ ७ ॥

केलेके खंभ लगाये गये और रेशमकी डोरीमें आमके पत्ते बांधकर बंदनवारैं लगाई ॥ ३ ॥ मालतीमालासे संयुक्त तोरण बांधी यह चारों ओर मंगलद्रव्यसे संयुक्त होकर लगाई गई ॥ ४ ॥ इसी प्रकारसे सब बातें पर्वतराजने परम आनंदसे अपनी पुत्रीकी प्रसन्नताके निमित्त की, महाप्रभाववाले गर्गजीको आगे करके सब सामग्री प्रस्तुत की ॥ ५ ॥ विश्वकर्माको बुलाकर आदरसे मण्डप और मनोहर वेदिकाकी रचना कराई ॥ ६ ॥ हे नारदजी ! वह वितान

१०००० योजनके विस्तारमें था जो अनेक लक्षणोंवाला अनेक आश्चर्योंसे युक्त था ॥ ७ ॥ स्थावर जंगम सबको ही रचनासे मनोहर था सबकोही अद्भुतरूप था नानावस्तुओंसे चमत्कृत ॥ ८ ॥ वहांकी स्थावर रचनाने जंगमके विशेष रूपसे जीत लिया था, और जंगमने स्थावरको जय करलिया था ॥ ९ ॥ जलकी रचनाने स्थल भूमिको जीत लिया था तात्पर्य यह कि जल कौनसा स्थल कौनसा यह चतुर जनभी नहीं जान सकते थे ॥ १० ॥ कहीं कृत्रिम सिंह और कहीं सारसकी पंक्तियें निर्माण की गई थीं और कहीं कृत्रिम मोर बनाये गये थे ॥ ११ ॥ कहीं मनोहर कृत्रिम स्त्रियें पुरुषोंके साथ

स्थावरं जंगमं सर्वं सदृशन्तैर्मनोहरम् ॥ सर्वतोऽद्भुतसर्वस्वं नानावस्तुचमत्कृतम् ॥ ८ ॥ जंगमं विजितन्तत्र स्थावरेण विशेषतः ॥ जंगमेन च तत्रासीज्जितं स्थावरमेव हि ॥ ९ ॥ पयसा च जिता तत्र स्थलभूमिर्न चान्यथा ॥ जलं किं हि स्थलं किं हि न विदुःकेऽपि कोविदाः ॥ १० ॥ क्वचित्सिंहाः कृत्रिमाश्च क्वचित्सारसपङ्क्तयः ॥ क्वचिच्छिखण्डिनस्तत्र कृत्रिमाश्च मनोहराः ॥ ११ ॥ क्वचित्स्त्रियः कृत्रिमाश्च नृत्यन्त्यः पुरुषैस्सह ॥ मोहयन्त्यो जनान्सर्वान्पश्यन्त्यः कृत्रिमास्तथा ॥ १२ ॥ तथा तेनैव विधिना द्वारपाला मनोहराः ॥ हस्तैर्धनूंषि चोद्धृत्य स्थावरा जंगमोपमाः ॥ १३ ॥ द्वारि स्थिता महालक्ष्मीः कृत्रिमा रचिताद्भुता ॥ सर्वलक्षणसंयुक्ता गताः साक्षात्पयोर्णवात् ॥ १४ ॥ गजाश्वालङ्कृताह्यासन्कृत्रिमा अकृतोपमाः ॥ तथाश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः ॥१५॥ रथा रथिभिराकृष्टा महाश्चर्यसमन्विताः ॥ वाहनानि तथान्यानि पत्तयः कृत्रिमास्तथा ॥ १६ ॥ एवं विमोहनार्थन्तु कृतं वै विश्वकर्मणा ॥ देवानां च मुनीनां च तेन प्रीतात्मना मुने ॥ १७ ॥

नृत्य करती थीं, वह कृत्रिम होकर भी देखने वालोंके मन मोहित करती थीं ॥१२॥ इसी प्रकार हाथमें धनुष लिये मनोहर द्वारपाल बनाये गये, वे स्थावर होकर भी सच्चे प्राणधारी विदित होते थे ॥ १३ ॥ द्वारे बनाई हुई महालक्ष्मी परम अद्भुत थी वह सब लक्षणसे सम्पन्न साक्षात् क्षीरसागरसे आई विदित होतीथी ॥ १४ ॥ इसी प्रकार कृत्रिम हाथी भी असली हाथी दिखाई देते थे इसी प्रकार अश्व अश्वारोहियोंसे, हाथी हाथीपर चढनेवालोंसे प्रसन्न हो रहे थे ॥ १५ ॥ महाआश्चर्यसे संयुक्त रथ रथी चलाते थे, तथा दूसरे वाहनोंको पैदल चलाते थे यह सब कृत्रिम थे ॥ १६ ॥ इस प्रकार सबके मोहनेको

विश्वकर्माने रचना की, हे मुने ! इस कौशलसे देवता और मुनि सब प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ महाद्वारपर कृत्रिम नन्दी बनाकर स्थित किया वह शुद्ध स्फटिक मणिकी समान कान्तिमान् मानो साक्षात् नन्दिही था ॥ १८ ॥ उसके ऊपर महादिव्य रत्नोंसे भूषित पुष्पक सुन्दर पल्लव और चामरोंसे शोभायमान विराजमान था ॥ १९ ॥ बाईं ओर दो हाथी शुद्ध काश्मीर देशके चार चार दांतवाले साठ वर्षके महाकान्तिवाले स्थित थे ॥२०॥ इसी प्रकार सूर्यकी समान कान्तिवाले दो अश्व निर्माण किये जो चंवरोंसे अलंकृत दिव्य अलंकारोंसे भूषित थे ॥ २१ ॥ इसी प्रकार श्रेष्ठरत्नोंसे युक्त लोकपाल बनाये, इस

महाद्वारि स्थितो नन्दी कृत्रिमश्च कृतो मुने ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशो यथा नन्दी तथैव सः ॥ १८ ॥ तस्योपरि महादिव्यम्पुष्पकं रत्नभूषितम् ॥ राजितं पल्लवैश्शुभ्रैश्चामरैश्च सुशोभितम् ॥ १९ ॥ वामपार्श्वे गजौ द्वौ च शुद्धकाश्मीरसन्निभौ ॥ चतुर्दन्तौ षष्टिवर्षौ भेदमानौ महाप्रभौ ॥ २० ॥ तथैवार्कनिभौ तेन कृतौ चाश्वौ महाप्रभौ ॥ चामरालङ्कृतौ दिव्यौ दिव्यालङ्कारभूषितौ ॥ २१ ॥ दंशिता वररत्नाढ्या लोकपालास्तथैव च ॥ सर्वे देवा यथार्थं वै कृता वै विश्वकर्मणा ॥ २२ ॥ तथा हि ऋषयस्सर्वे भृग्वाद्याश्च तपोधनाः ॥ अन्ये ह्युपसुरास्तद्वत्सिद्धाश्चान्येऽपि वै कृताः ॥ २३ ॥ विष्णुश्च पार्षदैस्सर्वैर्गरुडाख्यैस्समन्वितः ॥ कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परमाश्चर्यरूपावान् ॥ २४ ॥ तथैवाहं सुतैर्वेदैस्सिद्धैश्च परिवारितः ॥ कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्पठन्सूक्तानि नारद ॥ २५ ॥ ऐरावतगजारूढश्शक्रस्स्वदलसंयुतः ॥ कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परिपूर्णेन्दुसंनिभः ॥ २६ ॥ किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वो वै विश्वकर्मणा ॥ हिमागप्रेरितेनाशु कृतस्सुरसमाजकः ॥ २७ ॥

प्रकारसे विश्वकर्माने सब देवता यथार्थरूपसे बनाये ॥ २२ ॥ इसी प्रकार भृगु आदि सब तपोधन दूसरे सिद्ध और देवता सब कृत्रिम बनाये ॥ २३ ॥ इधर विष्णुजीको पार्षद और गरुडके सहित निर्माण किया इनका रूप परम आश्चर्यका बनाया ॥ २४ ॥ इसी प्रकारसे पुत्र वेद और कुटुम्ब सहित मेरा रूप बनाया, हे नारद ! ऐसा विदित होता था मानो यह सूक्त पढ रहे हैं ॥ २५ ॥ ऐरावतपर चढेहुए अपने गणोंसहित इन्द्रको निर्माण किया, यह मूर्त्ति पूर्णचन्द्रमाकी समान प्रकाशमान् थी ॥ २६ ॥ हे देवर्षे ! बहुत कहनेसे क्या है विश्वकर्माने सम्पूर्ण रचना हिमालयके कथनानुसार की ॥ २७ ॥

इसप्रकारसे दिव्यरूप मण्डप अनेक आश्वर्यसे संयुक्त निर्माण किया जो देवताओंको भी मोहित करता था ॥ २८ ॥ तब महामति विश्वकर्माने हिमालयकी आज्ञा पाकर देवताओंके निवासके लिये उनके लोकोंकी समान स्थान बनाये ॥२९॥ इसी प्रकार परम अद्भुत महामंच, चौकी बनाई विश्वकर्माने और भी बहुत दिव्य रचना की ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सातलोक क्षणमात्रमें परम अद्भुत बनाये, जो परम दीप्तिसे स्वयंभूके निवासके निमित्त बनाये गये ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार विष्णुके लिये वैकुण्ठ नामक स्थान बनाया यह क्षणमात्रमें अनेक आश्चर्यसे संयुक्त बनाया ॥ ३२ ॥ इसी प्रकारसे इन्द्रका परम अद्भुत घर

एवंभूतः कृतस्तेन मण्डपो दिव्यरूपवान् ॥ अनेकाश्चर्यसम्भूतो महान्देवविमोहनः ॥ २८ ॥ अथाज्ञप्तो गिरीशेन विश्वकर्मा महामतिः ॥ निवासार्थं सुरादीनां तत्तल्लोकान् हि यत्नतः ॥ २९ ॥ तत्रैव च महामञ्चाः सुप्रभाः परमाद्भुताः ॥ रचितास्सुखदा दिव्यास्तेषां वै विश्वकर्मणा ॥ ३० ॥ तथाप्तसप्तलोकं वै विरेचे क्षणतोऽद्भुतम् ॥ दीप्त्या परमया युक्तं निवासार्थं स्वयम्भुवः ॥ ३१ ॥ तथैव विष्णोस्त्वपरं वैकुण्ठाख्यं महोज्वलम् ॥ विरेचे क्षणतो दिव्यं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ अमरेशगृहन्दिव्यं तथैवाद्भुतमुत्तमम् ॥ विरेचे विश्वकर्मासौ सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ ३३ ॥ गृहाणि लोकपालानां विरेचे सुन्दराणि च ॥ तद्वत्स प्रीतितो दिव्यान्यद्भुतानि महान्ति च ॥ ३४ ॥ अन्येषाममराणां च सर्वेषां क्रमशस्तथा ॥ सदनानि विचित्राणि रचितानि च तेन वै ॥ ३५ ॥ विश्वकर्मा महाबुद्धिः प्राप्तशम्भुमहावरः ॥ विरेचे क्षणतः सर्वंशिवतुष्ट्यर्थमेव च ॥ ३६ ॥ तथैव चित्रं परमं महोज्ज्वलं महाप्रभन्देववरैस्सुपूजितम् ॥ गिरीशचिह्नं शिवलोकसंस्थितं सुशोभितं शम्भुगृहं चकार ॥ ३७ ॥

निर्माण किया, इस प्रकार विश्वकर्माने सब ऐश्वर्यके सहित गृह निर्माण किये ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार लोकपालोंके सुन्दरगृह निर्माण किये और परमप्रेमसे यह सब दिव्य अद्भुत रचना की ॥ ३४ ॥ तब क्रमसे और भी सब देवताओंके घर उसने बडे विचित्र निर्माण किये ॥३५॥ महाबुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीसे वर प्राप्त होनेके कारण क्षणमात्रमें शिवजीके सन्तोषके निमित्त स्थान निर्माण किये ॥३६॥ उसी प्रकारसे परम उज्ज्वल विचित्र महाप्रभावशाली देवताओंसे

पूजित, गिरीशके चिह्नवाला शिवलोकमें स्थित शंकरका गृह निर्माण किया ॥३७॥ इस प्रकारकी उस विश्वकर्माने रचना की जो बडी विचित्र परम आश्चर्य करनेवाली परमउज्ज्वल थी जो शिवजीके संतोषार्थ थी ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे यह सब लौकिक व्यवहार करके वह हिमालय बडे प्रेमसे शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ॥ ३९ ॥ हे नारदजी ! इस प्रकार आपसे यह महाआनन्द देनेवाले हिमालयके यहांका सब वृत्तान्त कहा अब तुम क्या सुननेकी इच्छा करते हो ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले हे विधे ! हे तात !

एवम्भूता कृता तेन रचना विश्वकर्मणा ॥ विचित्रा शिवतुष्ट्यर्थं पराश्चर्या महोज्ज्वला ॥ ३८ ॥ एवं कृत्वाखिलं चेदं व्यवहारं च लौकिकम् ॥ पर्य्यैक्षिष्ट मुदा शम्भ्वागमनं स हिमाचलः ॥३९॥ इति प्रोक्तमशेषेण वृत्तान्तम्प्रमुदावहम् ॥ हिमालयस्य देवर्षे किम्त्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मण्डपादिरचनावर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य नमोऽस्तु ते ॥ अद्भुतेयं कथाश्रावि त्वत्तोऽस्माभिः कृपानिधे ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः ॥ वैवाहिकं सुमाङ्गल्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ २ ॥ किं चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम् ॥ तां श्रावय कथान्दिव्यां शङ्करस्य परात्मनः ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच॥ शृणु वत्स महाप्राज्ञ शाङ्करम्परमं यशः ॥ यच्चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम् ॥ ४ ॥ अथ शम्भुर्गृहीत्वा तां मुदा मंगलपत्रिकाम् ॥ विजहास प्रहृष्टत्मा मानन्तेषां व्यधाद्विभुः ॥ ५ ॥ वाचयित्वा च तां सम्यक्स्वीचकार विधानतः ॥ तज्जनान्यापयामास बहुसम्मान्य चाहृतः ॥ ६ ॥

हे महाभाग ! हे विष्णुशिष्य ! आपको प्रणाम है, हे कृपानिधे ! आपने यह हमको अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ इस समय मैं शिवजीके चरित्रको सुनना चाहता हूं जो सब पापका नाश करनेवाला शिवके विवाहमंगल सम्बंधी है ॥ २ ॥ मंगलपत्रिका पाकर महादेवजीने क्या किया उन परमात्मा शंकरकी दिव्य कथा आप हमको सुनाइये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे महाभाग ! हे वत्स ! तुम शिवजीका परम यश सुनो महादेवजीने मंगलपत्रिका पाकर जो किया ॥ ॥ ४ ॥ शिवजीने प्रसन्नतासे उस मंगलपत्रिकाको पाकर हँसतेहुए उन मंगलपत्रिकावालोंका परम सन्मान किया ॥ ५ ॥ उस लग्नपत्रिकाको वांचकर

विधिपूर्वक स्वीकार किया बहुत सन्मानसे उन पुरुषोंका सन्मान किया ॥ ६ ॥ और उन मुनियोंसे यह कहा कि आपने अच्छा कार्य किया, मेरे विवाहमें आप आवैं मैंने विवाह स्वीकार किया है ॥ ७ ॥ शिवजीके यह वचन सुनकर वे बडे प्रसन्न हुए और शिवजीको प्रणामकर उनकी प्रशंसा करते हुए परिक्रमा कर अपने स्थानको गये ॥८॥ तब देवेश्वर शिवजी महालीला करनेवाले प्रभु देवताओंके सहित लौलिक आचारको आश्रय करके हे मुने ! तुमको स्मरण करते हुए ॥ ९ ॥ हे मुने ! उस समय तुम परम प्रीतिसे विधिकी प्रशंसा करते हुए वहां आये और नम्र हो शिर झुकाय हाथ जोड तुमने प्रणाम किया ॥

उवाच मुनिवर्गांस्तान्कार्य्यं सम्यक् कृतं शुभम् ॥ आगन्तव्यं विवाहे मे विवाहस्स्वीकृतो मया ॥ ७ ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोः प्रहृष्टास्ते प्रणम्य तम् ॥ परिक्रम्य ययुर्धाम शंसन्तः स्वं विधिम्परम् ॥ ८ ॥ अथ देवेश्वरश्शम्भुस्सामरस्त्वां मुने द्रुतम् ॥ लौकिकाचारमाश्रित्य महालीलाकरः प्रभुः ॥ ९ ॥ त्वमागतः परप्रीत्या प्रशंसंस्त्वं विधिम्परम् ॥ प्रणमंश्च नतस्कन्धो विनीतात्मा कृताञ्जलिः ॥ १० ॥ अस्तौस्सुजयशब्दान्हि समुच्चार्य मुहुर्मुहुः ॥ निदेशं प्रार्थयंस्तस्य प्रशंसंस्त्वं विधिम्मुने ॥ ११ ॥ ततश्शम्भुः प्रहृष्टात्मा दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ उवाच मुनिवर्य त्वां प्रीणयञ्छुभया गिरा ॥ १२ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ प्रीत्या शृणु मुनिश्रेष्ठ ह्यस्मत्तोऽद्य वदामि ते ॥ ब्रुवे तत्त्वां प्रियो मे यद्भक्तराजशिरोमणिः ॥ १३ ॥ कृतं महत्तपो देव्या पार्वत्या तव शासनात् ॥ तस्यै वरो मया दत्तः पतित्वे तोषितेन वै ॥ १४ ॥ करिष्येऽहं विवाहं च तस्या वश्यो हि भक्तितः ॥ सप्तर्षिभिस्साधितश्च तल्लग्नं शोधितश्च तैः ॥ १६ ॥

॥ १० ॥ जय शब्दको वारंवार उच्चारण कर तुमने स्तुति की हे मुने ! और बडी प्रशंसा प्रार्थना करके तुमने शिवजीसे आज्ञाकी प्रार्थना की ॥ ११ ॥ तब प्रसन्नमन हो लौकिकी गतिको दिखाते हुए शिवजीने शुभ वचनोंसे प्रसन्न करते हुए तुमसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीशिवजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मैं प्रेमसे कहता हूं वह तुम सुनो हे भक्तराजशिरोमणि ! जो मेरा प्रिय है वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ १३ ॥ तुम्हारे शासनसे पार्वतीने जो महातपस्या की थी मैंने संतुष्ट होकर पतिवरणमें उनको वर दे दिया है ॥ १४ ॥ मैं भक्तिके वशीभूत होकर पार्वतीसे विवाह करूंगा, सप्तर्षियोंने यह बात साधन की और उन्होंनेही

लग्न शोधी है ॥ १५ ॥ हे नारदजी ! आजसे सातवें दिन वह विवाह मैं लौकिकी गतिको आश्रयकर परिणयका महोत्सव करूंगा ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार परात्मा शंकरके वचन सुनकर हे तात ! तुम प्रसन्नमनहो प्रभुको प्रणामकर इस प्रकारके वचन बोले ॥ १७ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! भक्तोंकी आधीनताका तो आपका व्रतही है पार्वतीके मनकी अभिलाषा पूरी करनेका आपने उचित प्रबन्ध किया है ॥ १८ ॥ हे विभो ! अब जो मेरे योग्य कार्य हो आप उसको कहैं, मुझे अपना सेवक मानकर आप मेरे ऊपर कृपा करैं आपको प्रणाम है ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले जब तुमने इस प्रकारसे

अद्यतरसप्तमे चाह्नि तद्भविष्यति नारद ॥ महोत्सवं करिष्यामि लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य परात्मनः ॥ प्रसन्नधीः प्रभुं नत्वा तात त्वं वाक्यमब्रवीः ॥ १७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ भवतस्तु व्रतमिदम्भक्तवश्यो भवान्मतः ॥ सम्यक् कृतं च भवता पार्वतीमानसेप्सितम् ॥ १८ ॥ कार्यं मत्सदृशं किञ्चित्कथनीयन्त्वया विभो ॥ मत्वा स्वसेवकं मां हि कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तस्तु त्वया शम्भुश्शंकरो भक्तवत्सलः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सादरं त्वां मुनीश्वर ॥ २० ॥ शिव उवाच ॥ विष्णुप्रभृतिदेवाँश्च मुनीन्सिद्धानपि ध्रुवम् ॥ त्वन्निमन्त्रय मद्वाण्या मुनेऽन्यानपि सर्वतः ॥ २१ ॥ सर्व आयान्तु सोत्साहास्सर्वशोभासमन्विताः ॥ सस्त्रीसुतगणाः प्रीत्या मम शासनगौरवात् ॥ २२ ॥ नागमिष्यन्ति ये त्वत्र मद्विवाहोत्सवे मुने ॥ ते स्वकीया न मन्तव्या मया देवादयः खलु ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इतीशाज्ञां ततो धृत्वा भवाञ्छङ्करवल्लभः ॥ सर्वान्निमन्त्रयामास तंतं गत्वा द्रुतं मुने ॥ २४ ॥ शम्भूपकण्ठमागत्य द्रुतं मुनिवरो भवान् ॥ तद्दूत्यात्तत्र सन्तस्थौ तदाज्ञाम्प्राप्य नारद ॥२५॥

कहा तब भक्तवत्सल शंकरने प्रसन्नहो आदरपूर्वक तुमसे कहा ॥२०॥ शिवजी बोले हे मुने ! विष्णु आदि सब देवता मुनि और सिद्ध तथा दूसरे महात्माओंको भी मेरी ओरसे निमंत्रण दे आओ ॥ २१ ॥ सब उत्साह और सब शोभाके सहित आवैं, मेरी आज्ञासे अपनी स्त्री पुत्र गणोंके सहित सब आवैं ॥२२॥ हे मुने ! जो कोई इस मेरे विवाहोत्सवमें नहीं आवैंगे मैं निश्चयही उन देवताओंको अपना नहीं मानूंगा ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जब इस प्रकारसे शिवजीने कहा तब शंकरके प्रिय आपने वह आज्ञा शिरपर धारणकर बडी शीघ्रतासे जाकर सबको निमंत्रण दिया ॥ २४ ॥ हे नारदजी फिर आप

मुनिराजने बहुत शीघ्रतासे सबको निमंत्रण दे और उनकी आज्ञासे वहां स्थित होकर कार्य किया ॥ २५ ॥ उनके आगमनकी लालसासे शिवजी वहां स्थित हुए उनके गण परम उत्सवसे उस समय सब ओरसे नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥ इसी समय विष्णुने अपना वेष रचकर गणोंको साथ ले पार्षदों सहित कैलासको गमन किया ॥ २७ ॥ सद्भक्तिसे स्त्री और अपने दलोंसहित शिवजीको प्रणामकर और प्रसन्नमनसे उनकी आज्ञा प्राप्तकर स्थित हुए ॥ २८ ॥ और मैं भी अपने गणोंके साथ कैलास पर्वतको गया और अपने गणोंके सहित आनंदित होकर वहां स्थित हुआ ॥ २९ ॥ उसी समय इन्द्रादिक लोकपालभी

शिवोऽपि तस्थौ सोत्कण्ठस्तदागमनलालसः ॥ स्वगणैस्सोत्सवैस्सर्वैर्नृत्यद्भिस्सर्वतोदिशम् ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु रचयित्वा स्ववेषकम् ॥ आजगामाच्युतश्शीघ्रं कैलासं सपरिच्छदः ॥ २७ ॥ शिवम्प्रणम्य सद्भक्त्या सदारस्सदलो मुदा ॥ तदाज्ञाम्प्राप्य सन्तस्थौ सुस्थाने प्रीतमानसः ॥ २८ ॥ तथाहं स्वगणैराशु कैलासमगमं मुदा ॥ प्रभुम्प्रणम्यातिष्ठं वै सानन्दस्स्वगणान्वितः ॥ २९ ॥ इन्द्रादयो लोकपाला आययुस्सपरिच्छदाः ॥ तथैवालंकृतास्सर्वे सोत्सवास्सकलत्रकाः ॥ ३० ॥ तथैव मुनयो नागास्सिद्धा उपसुरास्तथा ॥ आययुश्चापरेऽपीह सोत्सवास्सुनिमन्त्रिताः ॥ ३१ ॥ महेश्वरस्तदा तत्रागतानां च पृथक् पृथक् ॥ सर्वेषाममराद्यानां सत्कारं व्यदधान्मुदा ॥ ३२ ॥ अथोत्सवो महानासीत्कैलासे परमोद्भुतः ॥ नृत्यादिकन्तदा चक्रुर्यथायोग्यं सुरस्त्रियः ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्समये देवा विष्णवाद्या ये समागताः ॥ यात्रां कारयितुं शम्भोस्तत्रोषुस्तेऽखिला मुने ॥ ३४ ॥

अपने कुटुम्ब और सेवक वर्गोंके सहित उपस्थित हुए, उसी प्रकारसे सब अलंकार धारण किये परम उत्सवके साथ आये ॥ ३० ॥ इसी प्रकार मुनि नाग सिद्ध तथा दूसरे देवताओंकी समान सन्मान पानेवाले तथा दूसरे लोगभी निमंत्रित होकर वहां आये ॥ ३१ ॥ महेश्वरने निमंत्रित होकर आये हुए उन सब देवताओंका पृथक् पृथक् प्रसन्नतासे सत्कार किया ॥ ३२ ॥ उस समय कैलासमें उन सबके आनेका परम उत्सव आरंभ हुआ देवताओंकी स्त्रियें यथायोग्य नृत्य करने लगीं ॥ ३३ ॥ हे मुने ! उस समय जो विष्णु आदि देवता उस स्थानमें आये थे हे मुने ! वह सब शिवजीको यात्रा करानेके लिये स्थित

हुए ॥ ३४ ॥ तब वे सब शिवजीकी आज्ञा पाकर और मेरे द्वारा प्रेरेजाकर कि यह सब शिवजीका कार्य है ऐसा विचारकर शिवजीका सेवन करने लगे ॥ ॥ ३५ ॥ सातो मातायें उस समय शिवजीका दूलह वेष प्रेमसे यथायोग्य सजाने लगीं, और परम प्रसन्न हुईं ॥ ३६ ॥ उनका स्वाभाविक वेषही अत्यन्त शोभायमान था परन्तु जब उनका वेष सजाया गया, हे मुनिश्रेष्ठ ! उस परमेश्वरकी इच्छासे यह सब कुछ हुआ ॥ ३७ ॥ चन्द्रने मुकुटके स्थानमें समीपता स्वीकारकी और तीसरा नेत्र मानो तिलकरूपसे शोभायमान हुआ ॥ ३८ ॥ उनके कर्णभूषण मानो दोनों सर्प स्थित किये गये, और नाना रत्नोंसे युक्त

शिवाज्ञप्तास्तदा सर्वे मदीयमिति यन्त्रिताः ॥ शिवकार्यमिदं सर्वं चक्रिरे शिवसेवनम् ॥ ३५ ॥ मातरस्सप्त तास्तत्र शिवभूषाविधिम्परम् ॥ चक्रिरे च मुदा युक्ता यथायोग्यन्तथा पुनः ॥ ३६ ॥ तस्य स्वाभाविको वेषो भूषाविधिरभूत्तदा ॥ तस्येच्छया मुनिश्रेष्ठ परमेशस्य सुप्रभोः ॥ ३७ ॥ चन्द्रश्च मुकुटस्थाने सान्निध्यमकरोत्तदा ॥ लोचनं सुन्दरं ह्यासीत्तृतीयन्तिलकं शुभम् ॥ ३८ ॥ कर्णाभरणरूपौ च यौ हि सर्पौ प्रकीर्तितौ ॥ कुण्डलेऽभवतान्तस्य नानारत्नान्विते मुने ॥ ३९ ॥ अन्यांगसंस्थितास्सर्पास्तदंगाभरणानि च ॥ बभूवुरतिरम्याणि नानारत्नमयानि च ॥ ४० ॥ विभूतिरंगरागोऽभूच्चन्दनादिसमुद्भवः ॥ तद्दुकूलमभूद्दिव्यं गजचर्मादि सुन्दरम् ॥ ४१ ॥ ईदृशं सुन्दरं रूपं जातं वर्णातिदुष्करम् ॥ ईश्वरोऽपि स्वयं साक्षादैश्वर्यं लब्धवान्स्वतः ॥४२॥ ततश्च सर्वे सुरपक्षदानवा नागाः पतंगाप्सरसो महर्षयः ॥ समेत्य सर्वे शिवसन्निधिं तदा महोत्सवाः प्रोचुरहो मुदान्विताः ॥ ४३ ॥ सर्व ऊचुः ॥ गच्छ गच्छ महादेव विवाहर्थं महेश्वर ॥ गिरिजाया महादेव्याः सहास्माभिः कृपां कुरु ॥ ४४ ॥

उनके दोनों कुण्डल शोभायमान हुए ॥ ३९ ॥ औरभी जो उनके अंगमें सर्प स्थित थे वे सबही अनेक रत्नोंसे जटित बडे मनोहर रत्न होगये ॥ ४० ॥ वह विभूति चन्दनादिसे उत्पन्न एक प्रकारका उत्तम अंगराग होगया और वह गजचर्म बडा सुन्दर दुकूल होगया ॥ ४१ ॥ इस प्रकारका शंकरका वह सुन्दररूप होगया जो वर्णा नहीं जाता साक्षात् ईश्वरने उस समय ऐश्वर्य धारण किया ॥ ४२ ॥ उस समय देवताओंके पक्षके दानव नाग पतंग अप्सरा महर्षि यह सब उस समय शिवजीके समीप आकर प्रसन्नतासे महोत्सवको कथन करने लगे ॥ ४३ ॥ सब बोले हे महेश्वर ! आप विवाहके निमित्त गमन

कीजिये आप महादेवी गिरिजा और हमारे ऊपर कृपा करो ॥ ४४ ॥ तब विष्णुने प्रस्तावके समान यह वचन प्रेमसे शंकरको प्रणामकर कहे ॥ ४५ ॥ विष्णुजी बोले हे देवदेव महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अपने भक्तोंके कार्य करनेवाले हैं इन भक्तोंकी प्रार्थना सुनिये ॥ ४६ ॥ हे शंकर! आप गृह्यसूत्रकी विधिसे गिरीशसुताके संग अपने सब विवाहकर्म करनेको योग्य हो ॥ ४७ ॥ हे हर! जब आप इस प्रकारसे विवाह विधि करैंगे तब वह रीति सर्वत्र विख्यात हो जायगी ॥ ४८ ॥ मण्डपका स्थापन, नान्दीमुख श्राद्ध, यह कुलधर्मके अनुसार करना चाहिये हे नाथ! सब लोकमें अपना यश

ततो विष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशं वचः ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या विज्ञानप्रीतमानसः ॥ ४५ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ कार्यकर्त्ता स्वभक्तानां विज्ञप्तिं शृणु मे प्रभो ॥ ४६ ॥ गृह्योक्तविधिना शम्भो स्वविवाहस्य शंकर ॥ गिरीशसुतया देव्या कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ ४७॥ त्वया च क्रियमाणे तु विवाहस्य विधौ हर ॥ स एव हि तथा लोके सर्वस्सुख्यातिमाप्नुयात् ॥४८॥ मण्डपस्थापनन्नान्दीमुखन्तत्कुलधर्मतः ॥ कारय प्रीतितो नाथ लोके स्वं ख्यापयन् यशः ॥ ४९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमुक्तस्तदा शम्भुर्विष्णुना परमेश्वरः ॥ लौकिकाचारनिरतो विधिना तच्चकार सः ॥ ५० ॥ अहं ह्यधिकृतस्तेन सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ अकुर्वं मुनिभिः प्रीत्या तत्र तत्कर्म चादरात् ॥ ५१ ॥ कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च गौतमो भागुरिर्गुरुः ॥ कण्वो बृहस्पतिश्शक्तिर्जमदग्निः पराशरः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयशिशलापाकोऽरुणपालोऽकृतश्रमः ॥ अगस्त्यश्च्यवनो गर्गश्शिलादोऽथ महामुने ॥ ५३ ॥ दधीचिरुपमन्युश्च भरद्वाजोऽकृतव्रणः ॥ पिप्पलादोऽथ कुशिकः कौत्सो व्यासः सशिष्यकः ॥ ५४ ॥

स्थापन करते हुए आप यह सब कीजिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी बोले जब विष्णुजीने परमेश्वर शंकरसे ऐसा कहा तब लौकिक आचार विधिसे शंकरने वह सब किया ॥५०॥ मुझे सब अभ्युदयके कार्यमें शंकरने अधिकार दिया, और दूसरे मुनियोंनेभी प्रीतिसे वह कार्य किया ॥ ५१ ॥ कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि, बृहस्पति, कण्व, जमदग्नि, पराशर ॥ ५२ ॥ मार्कंण्डेय, शिलापाक, अरुण पाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, ॥ ५३ ॥ दधीचि,

उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स, शिष्योंसहित व्यासजी ॥ ५४ ॥ इनके सिवाय और भी बहुतसे मनुष्य मुझसे प्रेरित होकर शिवजीके समीप आकर सत्कार्य करने लगे ॥ ५५ ॥ वेदवेदांगके पारगामी वे सब कौतुक मंगलपूर्वक शंकरकी रक्षा करने लगे ॥ ५६ ॥ ऋक् यजु और सामके सूक्तोंसे तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे तथा और भी अनेक प्रकारके मंगल ऋषिजन करने लगे ॥ ५७ ॥ और शिवजीसे तथा मुझसे ऋषियोंने ग्रहोंका पूजन कराया तथा विघ्नशान्तिके निमित्त मण्डलमें स्थित सब देवताओंका पूजन कराया ॥ ५८ ॥ तब शिवजीने सन्तुष्ट होकर सब

एते चान्ये च बहव आगताश्शिवसन्निधिम् ॥ मया सुनोदितास्तत्र चक्रुस्ते विधिवत्क्रियाम् ॥ ५५ ॥ वेदोक्तविधिना सर्वे वेदवेदांगपारगाः ॥ रक्षां चक्रुर्महेशस्य कृत्वा कौतुकमंगलम् ॥ ५६ ॥ ऋग्यजुस्सामसूक्तैस्तु तथा नानाविधैः परैः ॥ मंगलानि च भूरीणि चक्रुः प्रीत्यर्षयोऽखिलाः ॥ ५७ ॥ ग्रहाणां पूजनं प्रीत्या चक्रुस्ते शम्भुना मया ॥ मण्डलस्थसुराणां च सर्वेषां विघ्नशान्तये ॥ ५८ ॥ ततश्शिवस्सुसन्तुष्टः कृत्वा सर्वं यथोचितम् ॥ लौकिकं वैदिकं कर्म ननाम च मुदा द्विजान् ॥ ५९ ॥ अथ सर्वेश्वरो विप्रान्देवान्कृत्वा पुरस्सरान् ॥ निस्ससार मुदा तस्मात्कैलासात्पर्वतोत्तमात् ॥ ६० ॥ बहिः कैलासकुधराच्छम्भुस्तस्थौ मुदान्वितः ॥ देवैस्सह द्विजैश्चैव नानास्वीकारकः प्रभुः ॥ ६१ ॥ तदोत्सवो महानासीत्तत्र देवादिभिः कृतः ॥ सन्तुष्टयर्थं महेशस्य गानवाद्यसुनृत्यकः ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवनिमन्त्रणदेवागमनशिवयात्रावर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ शम्भुः समाहूय नन्द्यादीन् सकलान्गणान् ॥ आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै ॥ १ ॥

यथोचित कार्य करके तथा लौकिक वैदिक कार्यकर ब्राह्मणोंको प्रणाम किया ॥ ५९ ॥ तब वह सर्वेश्वर देवता ब्राह्मणोंको आगे करके प्रसन्नता पूर्वक उस पर्वतोत्तम कैलास पर्वतसे चले ॥ ६० ॥ प्रसन्नतापूर्वक शिवजी कैलासके बहिर्भागमें स्थित हुए उन लीलाकरनेवाले प्रभुके साथ देवता और ब्राह्मणभी स्थित हुए ॥ ६१ ॥ देवताओंने उस समय महेश्वरके सन्तोषके निमित्त गाने बजानेका नृत्यसम्बन्धी महान् उत्सव किया ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवम० भा० रु० तृतीये पा० एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले तब शिवजीने नन्दी आदि सब गणोंको बुलाकर अपने साथ चलनेके निमित्त

सबसे कहा ॥ १ ॥ शिवजी बोले तुम सब हमारे साथ हिमालयके नगरको चलो कुछ गण यहां रहैं, शेष सब महोत्सवपूर्वक चलैं ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले गणराज यह बात सुनकर प्रसन्नतासे अपनी अपनी टोली लेकर जैसे चले, वह कुछ मैं वर्णन करता हूं ॥ ३ ॥ गणेश्वर शंखकर्ण एक कोटिगण लेकर शिवके साथ हिमालयके पुरको चला ॥ ४ ॥ केकराक्ष गणराज दशकोटि गण लेकर महाउत्साहसे चला, आठकोटि सेना लेकर गणराज विकृत चला ॥ ५ ॥ गणनायक विशाख चारकोटी गण लेकर चला पारिजातगण नौ कोटिगण लेकर चला ॥ ६ ॥ श्रीमान् सर्वान्तक तथा विकृतानन

॥ शिव उवाच ॥ अपि यूयं सह मया संगच्छध्वं गिरेः पुरम् ॥ कियद्गणानिहास्थाप्य महोत्सवपुरस्सरम् ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा ॥ स्वंस्वं बलमुपादाय तान् कथंचिद्वदाम्यहम् ॥ ३ ॥ अभ्यगाच्छंखकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः ॥ शिवेन सार्द्धं संगन्तुं हिमाचलपुरम्प्रति ॥ ४ ॥ दशकोट्या केकराक्षो गणानां समहोत्सवः ॥ अष्टकोट्या च विकृतो गणानां गणनायकः ॥ ५ ॥ चतुष्कोट्या विशाखश्च गणानां गणनायकः ॥ पारिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुंगवः ॥ ६ ॥ षष्टिस्सर्वान्तकः श्रीमान्तथैव विकृताननः ॥ गणानान्दुन्दुभोष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः ॥ ७ ॥ पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा ॥ षड्भिस्सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने ॥ ८ ॥ कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा ॥ विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा ॥ ९ ॥ सहस्रकोट्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ ॥ तथा संनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम ॥ १० ॥ आवेशनस्तथाष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः ॥ महाकेशस्सहस्रेण कोटीनां गणपों ययौ ॥ ११ ॥

साठ साठ कोटिलेकर चला, दुन्दुभ नाम गणनायक आठ कोटिलेकर चला ॥ ७ ॥ कपाल नामक गणेश्वर पांचकोटि गण लेकर चला, सन्दारकवीर गणेश्वर छःकोटि लेकर चला ॥ ८ ॥ कन्दुक और कुण्डक एक एक कोटि लेकर चला विष्टम्भ गणराज आठ कोटि गण लेकर चला ॥ ९ ॥ गणेश्वर पिप्पल एक सहस्र कोटि लेकर चला, इसी प्रकार सनादक गणेश्वर वीर चला ॥ १० ॥ आवेशननामक गणनायक आठकोटि सेना लेकर चला, महाकेश गणाधीश

सहस्र कोटि लेकर चला ॥ ११ ॥ हे मुने! इसी प्रकार कुण्ड और पर्वतक बारह कोटि दल लेकर चले, वीर चंद्रतापन आठ कोटि लेकर चला ॥१२॥
कालकालक महाकाल तथा अग्निक यह गणनाथ सौ सौ कोटि लेकर चले ॥१३॥ अग्निमुख गणनायक एक कोटि लेकर चला आदित्यमूर्धा और घनावह
भी एकएक कोटि लेकर चला ॥ १४ ॥ सन्नाह कुमुद गणराज अमोघ और कोकिल सौ सौ कोटि बल लेकर चले ॥ १५ ॥ गणनायक सुमंत्र एक कोटि
काकयादोदर और सन्तानक साठ कोटि लेकर चला ॥ १६ ॥ महाबल नौ कोटि, मधुपिंग, कोकिल, नील और पूर्णभद्र नव्वेकोटि लेकर आया ॥ १७ ॥

कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने ॥ अष्टाभिः कोटिभिर्वीरस्समगाच्चन्द्रतापनः ॥ १२ ॥ कालश्च कालकश्चैव महाकालश्श
तेन वै ॥ कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः ॥ १३ ॥ कोट्याग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः ॥ आदित्यमूर्द्धा कोट्या
च तथा चैव घनावहः ॥ १४ ॥ सन्नाहश्शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा ॥ अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः ॥ १५ ॥
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः ॥ काकपादोदरः कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा ॥ १६ ॥ महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च
कोकिलः ॥ नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ॥ १७ ॥ सप्तकोट्या चतुर्वक्त्रः करणो विंशकोटिभिः॥ययौ नवतिकोट्या तु
गणेशानोहिरोमकः ॥ १८ ॥ यज्वाशश्शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद ॥ तावत्कोट्या ययुस्सर्वे गणेशा हि पृथक्पृथक् ॥ १९ ॥
काष्ठाङ्गुष्ठश्चतुष्षष्ट्या कोटीनां गणनायकः ॥ विरूपाक्षस्सुकेशश्च वृषाभश्च सनातनः ॥ २० ॥ तालकेतुः षडास्यश्च चञ्च्वास्यश्च
सनातनः ॥ सम्वर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशस्स्वयम्प्रभुः ॥ २१ ॥ लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ॥ देवो भृंगिरि
टिश्श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा ॥ २२ ॥

चतुर्वक्त्र सातकोटि, करण वीस कोटि, और रोमकनामक गणेश्वर नव्वेकोटि लेकर आया ॥१८॥ हे नारद! यज्वाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु, यह सब नव्वे २
कोटि लेकर सब चले ॥ १९ ॥ काष्ठांगुष्ठ गणनायक चौंसठ कोटि लेकर चले, विरूपाक्ष सुकेश सनातन वृषभ भी चले ॥ २० ॥ तालकेतु, षण्मुख,
चञ्चुमुख, सनातन, सम्वर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयम्प्रभु ॥ २१ ॥ हे मुने! लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, देव भृंगिरिटि, श्रीमान् देवदेवप्रिय ॥२२॥

अशनि, भानुक, चौंसठहजार गणेश्वर बडे उत्साहसे शिवजीके विवाहोत्सवमें चले ॥ २३ ॥ एकसहस्र कोटि भूत तीन कोटि प्रमथ वीरभद्र चौंसठकोटि, रोमज तीन कोटि चले ॥ २४ ॥ यह सब कोटिकोटि सहस्र और वीस सहस्र कोटियोंसे युक्त होकर चले, इस प्रकारसे नन्दि आदि गण शंकरके उत्सवमें चले ॥ २५ ॥ क्षेत्रपाली और भैरव कोटि कोटि गणोंसे व्याप्त होकर शिवजीके विवाह महोत्सवमें बडे प्रेमसे चले ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे और भी असंख्यात महाबली गणेश्वर महाप्रीतिसे शंकरके उत्सवमें गये ॥ २७ ॥ अनेक सहस्रों हाथवाले जटा मुकुटधारी माथेपर चन्द्ररेखाधारे नीलकंठ तीन नेत्र ॥ २८ ॥

अशनिर्भानुकश्चैव चतुष्षष्ट्या सहस्रशः ॥ ययुश्शिवविवाहार्थं शिवेन सहसोत्सवाः ॥ २३ ॥ भूतकोटिसहस्रेण प्रमथाः कोटिभिस्त्रिभिः ॥ वीरभद्रश्चतुषष्ट्या रोमजानान्त्रिकोटिभिः ॥ २४ ॥ कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृताः ॥ तत्र जग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाश्शंकरोत्सवे ॥ २५ ॥ क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युतः ॥ उद्वाहश्शंकरस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः ॥ २६ ॥ एते चान्ये च गणपा असङ्ख्याता महाबलाः ॥ तत्र जग्मुर्महाप्रीत्या सोत्साहाश्शंकरोत्सवे ॥ २७ ॥ सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः ॥ चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः ॥ २८ ॥ रुद्राक्षाभरणास्सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः ॥ हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः ॥ २९ ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रसंकाशा अणिमादिगुणैर्युताः ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः ॥ ३० ॥ पृथिवीचारिणः केचित् केचित्पातालचारिणः ॥ केचिद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने ॥ ३१ ॥ किम्बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः ॥ आययुस्स्वगणाश्शम्भोः प्रीत्या वै शङ्करोत्सवे ॥ ३२ ॥

सबही रुद्राक्ष धारण करनेवाले सद्भस्मको धारणकिये हार, कुंडल, केयूर, मुकुट आदिसे अलंकृत ॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णु इन्द्रकी समान अणिमादि गुणोंसे अलंकृत कोटि सूर्यकी समान प्रकाशवाले गणेश्वर शोभित हुए ॥ ३० ॥ कोई पृथिवीपर और कोई पातालमें विचरनेवाले कोई आकाशचारी और कोई सात स्वर्गमें विचरनेवाले थे ॥ ३१ ॥ हे देव ऋषि ! बहुत कहनेसे क्या है सब लोकके रहनेवाले गण बडे प्रेमसे शंकरके व्याहका महोत्सव देखने आये ॥ ३२ ॥

इस प्रकार प्रभु शंकर अन्य देवताओंके सहित अपने विवाहके निमित्त हिमालयके पुरमें गये ॥ ३३ ॥ हे नारदजी ! जिससमय वह सर्वेश देवता
आदिके सहित अपना विवाह करने गये उससमय जो वृत्तान्त हुआ सो सुनो ॥ ३४ ॥ चण्डी भी बडे उत्सवके सहित रुद्रकी भगिनी होकर शत्रुओंको भय
देनेवाली वह बडे प्रेमसे वहां आई ॥ ३५ ॥ प्रेतके आसनपर स्थित सर्पोंके भूषणोंसे भूषित शिरपर महाकान्तिवाले सुवर्णके कलशको लिये ॥ ३६ ॥
अपने परिवारसे संयुक्त दीप्तमुख और दीप्तिमान् लोचनवाली कुतूहल करती हुई प्रसन्नमुख महाबलवान् ॥ ३७ ॥ भगवती आई, हे मुने ! और भी कोटियों

इत्थं देवैर्गणैश्चान्यैस्सहितश्शङ्करः प्रभुः ॥ ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै ॥३३॥ यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः॥
तदा तत्र ह्यभूद्वृत्तं तच्छृणु त्वं मुनीश्वर ॥ ३४ ॥ रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता ॥ तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा
॥ ३५ ॥ प्रेतासनसमारूढा सर्पाभरणभूषिता ॥ पूर्णं कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम् ॥ ३६ ॥ स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्या
दीप्तलोचना ॥ कुतूहलम्प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला ॥ ३७ ॥ तत्र भूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने ॥ विराजन्ते स्म बहुश
स्तथा नानाविधास्तदा ॥ ३८ ॥ तैस्समेताग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना ॥ कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युपद्रवकारिणी ॥ ३९ ॥
चण्ड्या सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा ॥ कोट्येकादशसंख्याका रौद्ररुद्रप्रियाश्च ते ॥ ४० ॥ तदा डमरुनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्र
यम् ॥ भेरीझंकारशब्देन शंखानां निनदेन च ॥४१॥ तथा दुन्दुभिनिर्घोषैश्शब्दः कोलाहलोऽभवत् ॥ कुर्वञ्जगन्मंगलं च नाशयेन्मं
गलेतरत् ॥ ४२ ॥ गणानां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवास्समुत्सुकाः ॥ अन्वयुस्सर्वसिद्धाश्च लोकपालादिका मुने ॥ ४३ ॥

दिव्यभूत तथा अनेको विरूपाक्ष नाना प्रकारके बहुतसे वहां शोभित होनेलगे ॥ ३८ ॥ उन सबके समेत विकटमुख चण्डी वहां आनकर प्राप्त हुई, यह बडे
प्रेमसे प्रीतिके उपद्रव करनेवाली वहां आई ॥ ३९ ॥ चण्डीने सम्पूर्ण रुद्रगणोंको अपने पीछे करदिया वह सब रुद्रके गण रुद्रके प्रिय संख्यामें ग्यारह
कोटि थे ॥ ४० ॥ उस समय डमरूके शब्दोंसे त्रिलोकी व्याकुल होगई, भेरीका झंकार और शंखोंका शब्द होने लगा ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार दुन्दुभीके
निर्घोषसे कोलाहल होने लगा जिससे सम्पूर्ण अमंगल दूर हो, और सब जगत् मंगलरूप हो जाय ॥ ४२ ॥ उन गणोंके पीछे सब देवता उत्कंठासहित चले

हे मुने ! उनके पीछे सब सिद्धि और लोकपालादि चले ॥ ४३ ॥ सबके मध्यमें गरुडासनपर स्थित हो वैकुण्ठनाथ चले. हे मुने ! उनके ऊपर बडा छत्र
शोभायमान हो रहा था ॥ ४४ ॥ चमरसे वीज्यमान होकर अपने गणोंसे युक्त तथा पार्षदोंसे शोभायमान होते हुए अपने गहनोंसे शोभित थे ॥ ४५ ॥
इसी प्रकार मार्गमें जाता हुआ मैं भी शोभायमान था और मूर्त्ति धारण किये वेद शास्त्र और पुराण मेरे संग थे ॥ ४६ ॥ सनकादिक महा सिद्ध और
प्रजापति पुत्रोंसे तथा अपने परिवारसहित मैं शिवके सेवन करनेमें तत्पर था ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार ऐरावत हाथीपर चढे देवराज अपनी सेनामें शोभायमान

मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुडासनमाश्रितः ॥ शुशुभे ध्रियमाणेन छत्रेण महता मुने ॥४४॥ चामरैर्वीज्यमानोऽसौ स्वगणैः परिवारितः ॥
पार्षदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः ॥ ४५ ॥ तथाऽहमप्यशोभम्वै व्रजन्मार्गे विराजितः ॥ वेदैर्मूर्तिधरैश्शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा
॥ ४६ ॥ सनकादिमहासिद्धैस्सप्रजापतिभिस्सुतैः ॥ परिवारैस्संयुतो हि शिवसेवनतत्परः ॥ ४७ ॥ स्वसैन्यमध्यगश्शक्र ऐरावतगज
स्थितः ॥ नानाविभूषितोऽत्यन्तं व्रजन् रेजे सुरेश्वरः ॥ ४८ ॥ तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते ॥ विरेजुरतिसोत्कण्ठाश्शिवस्यो
द्वाहनम्प्रति ॥४९॥ शाकिन्यो यातुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च तथान्ये प्रमथादयः ॥ ५० ॥ तुम्बुरुर्नारदो हाहा
हूहूश्चेत्यादयो वराः ॥ गन्धर्वाः किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्माय हर्षिताः ॥ ५१ ॥ जगतो मातरस्सर्वा देवकन्याश्च सर्वशः ॥ गायत्री चैव सा
वित्री लक्ष्मीरन्यास्सुरस्त्रियः ॥ ५२ ॥ एताश्चान्याश्च देवानां पत्नयो भवमातरः ॥ उद्वाहश्शंकरस्येति जग्मुस्सर्वा मुदान्विताः ॥५३॥

थे और अनेक प्रकारके गहने पहरे इंद्रकी मार्गमें जाते बडी शोभा हुई ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वे बहुतसे ऋषि मार्गमें जाते हुए शिवके विवाह देखनेमें उत्कण्ठा
सहित बडी शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ शाकिनी, यातुधानी, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच और भी प्रमथ आदि ॥ ५० ॥ तुम्बुरु, नारद,
हाहा, हूहू, श्रेष्ठ गंधर्व, किन्नरगण बडी प्रसन्नतासे मुखके और हाथके बाजे बजाते चले ॥ ५१ ॥ सम्पूर्ण जगत्की माताएँ तथा सब देवकन्या, गायत्री,
सावित्री, लक्ष्मी तथा दूसरी देवताओंकी स्त्रियें ॥ ५२ ॥ यह तथा दूसरी देवताओंकी स्त्रियें तथा जगत्की मातायें यह सब शिवजीके विवाहमें प्रसन्नतापूर्वक

चलीं ॥ ५३ ॥ शुद्धस्फटिक मणिकी समान सब प्रकारसे सुन्दर वृषभ जिसको शास्त्रमें सिद्ध और महर्षियोंने धर्म कहा है ॥ ५४ ॥ धर्मवत्सल महादेव उस
वृषभपर आरूढ हुए, हे देवऋर्षि ! वह सबके सहित जातेहुए अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इन और सब महर्षियोंके सहित जाते हुए
महेश्वर अलंकृत हो बडी शोभाको प्राप्त हुए और सब देखने लगे कि, आज शंकर पार्वतीके पाणिग्रहणके निमित्त हिमालयके स्थानमें जाते हैं ॥ ५६ ॥
इस प्रकारसे यह शिवजीके गमनका परम सुंदर चरित्र कहा, हे नारदजी ! अब हिमालयके पुरका श्रेष्ठ वृत्तांत सुनिये ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा०

शुद्धस्फटिकसंकाशो वृषभस्सर्वसुन्दरः ॥ यो धर्म उच्यते वेदैश्शास्त्रैस्सिद्धमहर्षिभिः ॥ ५४ ॥ तमारूढो महादेवो वृषभं धर्मवत्सलः ॥
शुशुभेतीव देवर्षिसेवितस्सकलैर्व्रजन् ॥ ५५ ॥ एभिस्समेतैस्सकलैर्महर्षिभिर्बभौ महेशो बहुशोत्यलंकृतः ॥ हिमालयाह्वस्य धरस्य संव्र
जन् पाणिग्रहार्थं सदनं शिवायाः ॥ ५६ ॥ इत्युक्तं शम्भुचारितं गमनम्परमोत्सवम् ॥ हिमालयपुरोद्भूतं सद्वृत्तं शृणु नारद ॥ ५७ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे यात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तत
स्सम्मन्त्र्य च मिथः प्राप्याज्ञां शांकरीं हरिः ॥ मुने त्वाम्प्रेषयामास प्रथमं कुधरालयम् ॥ १ ॥ अथ प्रणम्य सर्वेशं गतस्त्वं नारदा
ग्रतः ॥ हरिणा नोदितः प्रीत्या हिमाचलगृहम्प्रति ॥ २ ॥ त्वं मुनेऽपश्य आत्मानं गत्वा तद्व्रीडयान्वितम् ॥ कृत्रिमं रचितं तत्र
विस्मितो विश्वकर्मणा ॥ ३ ॥ श्रान्तस्त्वमात्मना तेन कृत्रिमेण महामुने ॥ अवलोकपरस्सोऽभूच्चरितं विश्वकर्मणः ॥ ४ ॥ प्रविष्टो
मण्डपन्तस्य हिमाद्रे रत्नचित्रितम् ॥ सुवर्णकलशैर्जुष्टं रम्भादिबहुशोभितम् ॥ ५ ॥

रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! तब परस्पर सम्मतिकर और फिर शंकरकी आज्ञा पाकर हरिने
तुमको हिमालयके यहां भेजा ॥ १ ॥ हे नारदजी ! तब सर्वेश्वरको प्रणामकर तुम आगे चले और प्रेमसे विष्णुजी बोले, तुम हिमालयके घर जाओ ॥ २ ॥
हे मुने ! तुमने वहां जाकर विश्वकर्माकी बनाई अपनी कृत्रिम मूर्त्ति लज्जायुक्त देखी उसे देखकर तुम बडे विस्मित हुए ॥ ३ ॥ हे मुने ! जिस समय तुमने
विश्वकर्माका वह चरित्र देखा तुम उसी समय शान्त होगये और अपनी कृत्रिम मूर्त्ति देखकर परम विस्मय माना ॥ ४ ॥ फिर तुमने हिमालयके रचेहुए

रत्नोंसे चित्रित सुवर्णकलशोंसे शोभायमान केलेके वृक्षोंसे युक्त मण्डपको देखा ॥ ५ ॥ यह सहस्र स्तम्भसे संयुक्त विचित्र परम अद्भुत था उस वेदिकाको देखकर तुम बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ हे नारद ! पश्चात् तुमने नरेश्वरसे यह बात कही उस समय तुम्हारे मनमें बडा विस्मय था जिससे तुम्हारी बुद्धि और ज्ञान नष्ट होगया था ॥ ७ ॥ तुम सोचने लगे कि, क्या इस स्थलमें विष्णु आदि देवता सब महर्षि, सिद्ध और उपदेवता पहलेही आगये ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! श्वेत वृषपर आरूढ अपने गणोंको साथ लिये हुए क्या विवाहके निमित्त महादेवजी पधार चुके हैं ? यह आप सत्य कहिये ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी

सहस्रस्तम्भसंयुक्तं विचित्रम्परमाद्भुतम् ॥ वेदिकां च तथा दृष्ट्वा विस्मयं त्वं मुने ह्ययाः ॥६॥ तदावोचश्च स मुने नारद त्वं नगेश्वरम् ॥ विस्मितोऽतीव मनसि नष्टज्ञानो विमूढधीः ॥७॥ आगतास्ते किमधुना देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ तथा महर्षयस्सर्वे सिद्धा उपसुरास्तथा ॥ ८ ॥ महादेवो वृषारूढो गणैश्च परिवारितः ॥ आगतः किं विवाहार्थं वद तथ्यं नगेश्वर ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तव विस्मितचेतसः ॥ उवाच त्वां मुने तथ्यं वाक्यं स हिमवान् गिरिः ॥१०॥ हिमवानुवाच ॥ हे नारद महाप्राज्ञागतो नैवाधुना शिवः ॥ विवाहार्थं च पार्वत्यास्सगणस्सवरातकः ॥ ११ ॥ विश्वकर्मकृतं चित्रं विद्धि नारद सद्धिया ॥ विस्मयन्त्यज देवर्षे स्वस्थो भव शिवं स्मर ॥ १२ ॥ भुक्त्वा विश्रम्य सुप्रीतः कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ मैनाकादिधरैस्सार्द्धं गच्छ त्वं शंकरान्तिकम् ॥ १३ ॥ एभिस्समेतो गिरिभिर्महामते संप्रार्थ्य शीघ्रं शिवमत्र चानय ॥ देवैस्समेतं च महर्षिसंघैस्सुरासुरैरार्चितपादपल्लवम् ॥ १४ ॥

बोले विस्मययुक्त चित्तवाले तुम्हारे यह वचन सुनकर वह हिमालय तुमसे श्रेष्ठ और सत्य वचन बोले ॥ १० ॥ हिमालय बोले, हे महापण्डित नारदजी ! अभी शिवजी नहीं आयेहैं अभी गणोंको और बरातियोंको लेकर नहीं पधारे हैं ॥ ११ ॥ हे नारदजी ! आप बुद्धि लगाकर देखिये कि, यह विश्वकर्माजीकी कारीगरी है, हे देवर्षे ! आप विस्मयको त्यागकर स्वस्थ हूजिये ॥ १२ ॥ आप मेरे उपर कृपाकर भोजनकर विश्राम करैं और फिर मैनाक आदि पुत्रोंके साथ आप शंकरके समीप जाइये ॥ १३ ॥ हे महामते ! इन सबके साथ जाकर तुम प्रार्थना कर शिवजीको यहां लाओ सब देवता, महर्षिसमूह, सुर,

असुरोंसे पूजित चरणकमलवाले शंकरको यहां लाओ ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जब हिमालयने ऐसा कहा, तो तुम शीघ्रही हिमालयके पुत्रोंसहित
जाकर वहांके सब कृत्योंको करके भोजनकर बडी प्रसन्नतासे शिवजीके समीप आये ॥ १५ ॥ वहां तुमने देवताओंसे घिरे हुए महादेवजीको देखा, तुमने
और पर्वतराजके पुत्रोंने बडे प्रेमसे तथा भक्तिसे प्रणाम किया ॥ १६ ॥ तब मैं विष्णु और इन्द्रको आदि लेकर सब देवता तथा रुद्रके अनुचर यह सब तुमसे
पूछने लगे ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! तुमको और पर्वतके संतानगणको विस्मित देखकर सब विस्मयसे व्याकुल होगये, मैनाक, सह्य, मेरु आदि यह सब

ब्रह्मोवाच ॥ तथेति चोक्त्वागम आशु हि त्वं सदैव तैश्शैलसुतादिभिश्च ॥ तत्रत्यकृत्यं सुविधाय भुक्त्वा महामनास्त्वं शिवसन्निधानम्
॥ १५ ॥ तत्र दृष्टो महादेवो देवादिपरिवारितः ॥ नमस्कृतस्त्वया दीप्तश्शैलैस्तैर्भक्तितश्च वै ॥ १६ ॥ तदा मया विष्णुना च सर्वे
देवास्सवासवाः ॥ पप्रच्छुस्त्वां मुने सर्वे रुद्रस्यानुचरास्तथा ॥ १७ ॥ विस्मिताः पर्वतान्दृष्ट्वा सन्देहाकुलमानसाः ॥ मैनाकसह्यमे
र्वाद्यान्नानालंकारसंयुतान् ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ हे नारद महाप्राज्ञ विस्मितस्त्वं हि दृश्यसे ॥ सत्कृतोऽसि हिमागेन किं न वा वद
विस्तरात् ॥ १९ ॥ एते कस्मात्समायाताः पर्वता इह सत्तमाः ॥ मैनाकसह्यमेर्वाद्यास्सुप्रतापास्स्वलंकृताः ॥ २० ॥ कन्यां दास्यति
शैलोऽसौ स भवे वा न नारद ॥ हिमालयगृहे तात किं भवत्यद्य तद्वद ॥ २१ ॥ इति सन्दिग्धमनसामस्माकं च दिवौकसाम् ॥
वद त्वं पृच्छमानानां सन्देहं हर सुव्रत ॥ २२ ॥

अनेक अलंकार धारण किये थे, इनको देख देवता बोले ॥ १८ ॥ देवता कहने लगे, हे नारदजी ! हे महापंडित ! तुम इस समय विस्मित देखाई देते हो
क्या हिमालयने तुम्हारा सत्कार नहीं किया, यह बात आप विस्तारसे कहो ॥ १९ ॥ और यह श्रेष्ठ पर्वत यहां किस कारणसे आये हैं, यह मैनाक, सह्य,
मेरु, आदि अपने प्रतापसे अलंकृत हैं ॥ २० ॥ हे नारदजी ! यह हिमालय शंकरको अपनी कन्या देंगे या नहीं ? हे तात ! इस समय हिमालयके यहां
क्या हो रहा है सो आप कहिये ॥ २१ ॥ हे सुव्रत ! तुम्हारे इस प्रकारके आचरणसे हम सब देवताओंको सन्देह हो रहा है, तुम भी सन्दिग्ध हो इस

कारण हम पूछनेवालोंका सन्देह दूर करो ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले, इस प्रकारसे उन विष्णु आदि देवताओंके वचन सुनकर विश्वकर्माकी मायासे मोहित हुए तुम कहने लगे ॥ २३ ॥ हे मुने ! तब तुम मुझे और विष्णुजीको एकान्तमें ले जाकर इस प्रकारके वचन कहने लगे, तथा सब देवताओंके अधिपति शचीपति पर्वतोंके पंख छेदन करनेवाले इन्द्रको भी बुलाकर बोले ॥ २४ ॥ नारदजी बोले विश्वकर्माने ऐसी विचित्र रचना की है, जिसे देखकर सब देवता मोहित होजायँगे वह प्रेम और युक्तिसे सब देवताओंके मोहित करनेकी इच्छाकररहेहैं ॥ २५ ॥ हे शची पति इन्द्र ! पहले भी उसने तुमको मोहित कर दिया है सो क्या तुमने भुला दिया है इस कारण अब भी वह तुम्हारे जीतनेकी इच्छा करता है, और महात्मा हिमालयके यहां विश्वकर्मा विद्यमान हैं ॥ २६ ॥ मैं अपने कृत्रिमरूपको वहां देखकर मोहित होगया इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रको भी निर्माण किया है ॥ २७ ॥ हे देवेश ! बहुत कहनेसे क्या है उन्होंने कृत्रिम तथा चित्ररूपसे इस प्रकार देवताओंको निर्माण किया है कि कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता ॥ २८ ॥ विशेषकर सब देवताओंके मोहित करनेके निमित्त उसने परिहास करनेवाली चित्ररूपी माया की है ॥२९॥ ब्रह्माजी बोले, इस प्रकारसे नारदजीके वचन सुनकर भयसे व्याकुलशरी

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां विष्णवादीनान्दिवौकसाम् ॥ अवोचस्तान्मुने त्वं हि विस्मितस्त्वाष्ट्रमायया ॥ २३ ॥
एकान्तमाश्रित्य च मां हि विष्णुमभाषथा वाक्यमिदं मुने त्वम् ॥ शचीपतिं सर्व सुरेश्वरं वै पक्षच्छिदं पूर्वरिपुन्धराणाम् ॥ २४ ॥
॥ नारद उवाच ॥ त्वष्ट्रा कृतन्तद्विकृतं विचित्रं विमोहनं सर्वदिवौकसां हि ॥ येनैव सर्वान्स विमोहितुं सुरान्समिच्छति प्रेमत एव
युक्त्या ॥ २५ ॥ पुरा कृतन्तस्य विमोहनन्त्वया सुविस्मृतन्तत् सकलं शचीपते ॥ तस्मादसौ त्वां विजिगीषुरेव गृहे ध्रुवन्तस्य
गिरेर्महात्मनः ॥ २६ ॥ अहं विमोहितस्तेन प्रतिरूपेण भास्वता ॥ तथा विष्णुः कृतस्तेन ब्रह्मा शक्रोऽपि तादृशः ॥ २७ ॥
किम्बहूक्तेन देवेश सर्वदेवगणाः कृताः ॥ कृत्रिमाश्चित्ररूपेण न किंचिदवशेषितम् ॥ २८ ॥ विमोहनार्थं सर्वेषां देवानां च विशेषतः॥
कृता माया चित्रमयी परिहासविकारिणी ॥ २९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनन्तस्य देवेन्द्रो वाक्यमब्रवीत् ॥ विष्णुम्प्रति
तदा शीघ्रं भयाकुलतनुर्हरिम् ॥ ३० ॥

रहो विष्णुजीकी ओर देखकर इन्द्रने शीघ्रतासे कहा ॥ ३० ॥ देवेन्द्र बोले, हे देवदेव ! हे रमानाथ ! वह त्वष्टा पुत्रशोकसे व्याकुल होकर मुझसे द्रोह करता है, वह इसी बहानेसे मुझे मार देगा ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले देवदेव जनार्दन इन्द्रके इस प्रकारसे वचन सुनकर इन्द्रको समझाते हुए हँसकर इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ विष्णुजी बोले हे इन्द्र ! पहले निवातकवचोंने तुमको मोहित किया था पूर्वसे वैर करनेवाले दानवोंने महाविद्याके बलसे तुमको मोहित किया ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार इस पर्वतराज हिमालयके तथा दूसरे सब पर्वतोंके पक्ष तुमने मेरी आज्ञासे छेदन कर दिये ॥ ३४ ॥ इस कारण यह पर्वत

॥ देवेन्द्र उवाच ॥ देवदेव रमानाथ त्वष्टा मां निहनिष्यति ॥ पुत्रशोकेन तप्तोऽसौ व्याजेनानेन नान्यथा ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ उवाच प्रहसन् वाक्यं शक्रमाश्वासयंस्तदा ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ निवातकवचैः पूर्वं मोहितोऽसि शचीपते ॥ महाविद्याबलेनैव दानवैः पूर्ववैरिभिः ॥३३॥ पर्वतो हिमवानेष तथान्येऽखिलपर्वताः ॥ विपक्षा हि कृतास्सर्वे मम वाक्याच्च वासव ॥ ३४ ॥ तेनुस्मृत्या तु वै दृष्ट्वा मायया गिरयो ह्यमी ॥ जेतुमिच्छन्तु ये मूढा न भेतव्यमरावपि ॥ ३५ ॥ ईश्वरो नो हि सर्वेषां शंकरो भक्तवत्सलः ॥ सर्वथा कुशलं शक्र करिष्यति न संशयः ॥ ३६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं संवदमानन्तं शक्रं विकृतमानसम् ॥ हरिणोक्तश्च गिरिशो लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे हरे हे सुरेशान किम्ब्रूथोऽद्य परस्परम् ॥ इत्युक्त्वा तौ महेशानो मुने त्वाम्प्रत्युवाच सः ॥ ३८ ॥ किंतु वक्ति महाशैलो यथार्थं वद नारद ॥ वृत्तान्तं सकलम्ब्रूहि न गोप्यं कर्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥

उस मायाको देख सुनकर जो तुमको जीतना चाहते हैं वह मूर्ख हैं, तुमको शत्रुसे भय करना न चाहिये ॥ ३५ ॥ हे इन्द्र ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं वह भक्तवत्सल भगवान् शंकर सर्वथा हमारा मंगल करैंगे ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे व्याकुलमन इन्द्रको देखकर भगवान् जब विष्णुजीने समझाया तब लौकिकी गतिको आश्रयकर भगवान् शंकर बोले ॥ ३७ ॥ ईश्वर बोले हे हरे ! हे सुरपति ! तुम परस्पर क्या विचार कर रहे हो, हे मुने ! महेश्वरने उन दोनोंसे ऐसा कहकर फिर तुमसे कहा ॥ ३८ ॥ हे नारद ! शैलराजने क्या कहा है, वह तुम यथार्थरूपसे कहो सब वृत्तान्त कहो गुप्त रखनेकी आवश्य

कता नहीं ॥ ३९ ॥ तुम शीघ्र कहदो शैलको कन्यादान की इच्छा है वा नहीं हे तात ! तुमने वहां जाकर क्या देखा और क्या किया ? हे तात ! प्रेमसे वह सब बात हमसे कहिये ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले, हे मुने ! जब देवदर्शन तुमसे शिवजीने ऐसा कहा तब तुमने जो कुछ मण्डपमें देखा था वह सब रहस्य कहा ॥ ४१ ॥ नारदजी बोले हे देवदेव ! आप मेरे शुभ वचन सुनो, हे नाथ ! इस विवाहमें तो किसी प्रकारका विघ्न वा भय नहीं है ॥ ४२ ॥ हिमालय अवश्यही आपको कन्या देंगे, हे देव ! इसमें सन्देह नहीं, यह सब शैल आपको लेनेके निमित्त ही आये हैं ॥ ४३ ॥ हे सर्वज्ञ ! परन्तु

ददाति वा नैव ददाति शैलस्सुतां स्वकीयां वद तच्च शीघ्रम् ॥ किन्ते दृष्टं किं कृतन्तत्र गत्वा प्रीत्या सर्वं तद्वदाश्वद्य तात ॥ ४० ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तश्शम्भुना तत्र मुने त्वन्देवदर्शनः ॥ सर्वं रहस्यवोचो वै यद्दृष्टन्तत्र मण्डपे ॥ ४१ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव
महादेव शृणु मद्वचनं शुभम् ॥ नास्ति विघ्नभयं नाथ विवाहे किंचिदेव हि ॥ ४२ ॥ अवश्यमेव शैलेशस्तुभ्यं दास्यति कन्यकाम् ॥
त्वामानयितुमायाता इमे शैला न संशयः ॥ ४३ ॥ किन्तु ह्यमरमोहार्थं माया विरचिताद्भुता ॥ कुतूहलार्थं सर्वज्ञ न कश्चिद्विघ्नसं
म्भवः ॥ ४४ ॥ विचित्रम्मण्डपं गेहेऽकार्षीत्तस्य तदाज्ञया ॥ विश्वकर्मा महामायी नानाश्चर्यमयं विभो ॥ ४५ ॥ सर्वदेवसमाजश्च
कृतस्तत्र विमोहनः ॥ तन्दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्तोहं तन्मायाविमोहितः ॥ ४६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात लोकाचारकरः
प्रभुः ॥ हर्षादीन्प्रहसञ्छम्भुरुवाच सकलान्सुरान् ॥ ४७ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ कन्यां दास्यति चेन्मह्यं पर्वतो हि हिमाचलः ॥
मायया मम किं कार्यं वद विष्णो यथातथम् ॥ ४८ ॥

देवताओंके मोहनेको वहां एक माया रची गई है, जो बडी अद्भुत और सबको कौतूहल प्रकट करनेवाली है दूसरा कोई विघ्न नहीं है ॥ ४४ ॥ हे विभो ! महामाया करनेवाले विश्वकर्मांने हिमालयकी आज्ञासे उनके यहां महा आश्चर्ययुक्त मण्डपकी रचना की है ॥ ४५ ॥ और सब देवताओंके समाजको मोहित करनेवाला वह मंडप निर्माण किया है उसकी मायासे मोहित होकर मैं बडे विस्मयको प्राप्त हुआ हूं ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे तात ! उनके यह वचन सुनकर लोकाचार करनेवाले प्रभु शिवजी हरि आदिका हास्य करतेहुए सब देवताओंसे बोले ॥ ४७ ॥ ईश्वर बोले यदि हिमालय पर्वत मुझे कन्या देंगे.

हे विष्णुजी ! तब आप कहिये कि मायासे हमारा क्या प्रयोजन है ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मा, इन्द्र, मुनि, देवताओ ! आप यथार्थ कहिये जो गिरि कन्या देतेहैं तो मायासे मेरा क्या कार्य है ॥ ४९ ॥ न्यायके जाननेवाले पंडितोंने कहा है जैसे बने वैसे किसी उपायसे फलसिद्धि करै, इस कारण सबही कार्यकी इच्छासे विष्णुजीको आदि लेकर शीघ्रही चलो ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले जब शंकरने सब देवताओंसे ऐसा कहा तब प्राकृत जनोंकी समान सब देवेशके वशीभूत होगये ॥ ५१ ॥ तब शिवजीकी आज्ञासे वे सब विष्णुआदि देवता तथा ऋषिजन मोह तथा भ्रमसे रहित और प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ हे मुने !

हें ब्रह्मञ्छक्र मुनयस्सुरा ब्रूत यथार्थतः ॥ मायया मम किं कार्यं कन्यां दास्यति चेद्गिरिः ॥ ४९ ॥ केनाप्युपायेन फलं हि साध्यमित्युच्यते पण्डितैर्न्यायविद्भिः ॥ तस्मात्सर्वैर्गम्यतां शीघ्रमेव कार्यार्थिभिर्विष्णुपुरोगमैश्च ॥ ५० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं संवदमानोऽसौ देवेशश्शम्भुरभूत्तदा ॥ कृतः स्मरेणेव वशी वशं वा प्राकृतो नरः ॥ ५१ ॥ अथ शम्भ्वाज्ञया सर्वे विष्णवाद्या निर्जरास्तदा ॥ ऋषयश्च महात्मानो ययुर्मोहभ्रमापहम् ॥ ५२ ॥ पुरस्कृत्य मुने त्वां च पर्वतांस्तान्सविस्मयाः ॥ हिमाद्रेश्च तदा जग्मुर्मन्दिरम्परमाद्भुतम् ॥ ५३ ॥ अथ विष्ण्वादिसंयुक्तो मुदितैस्स्वबलैर्युतः ॥ आजगामोपहैमागपुरं प्रमुदितो हरः ॥ ५४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मण्डपरचनावर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथाकर्ण्य गिरीशश्च निजपुर्य्युपकण्ठतः ॥ प्राप्तमीशं सर्वगं वै मुमुदेति हिमालयः ॥ १ ॥ अथ सम्भृतसम्भारस्सम्भाषां कर्तुमीश्वरम् ॥ शैलान्प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि सर्वशः ॥ २ ॥

वे सब देवतादिक तुमको और उन पर्वतोंको आगे करके हिमालयके परम अद्भुत मंदिरमें गये ॥ ५३ ॥ तब विष्णु आदिके सहित और अपने परिवारसहित शिवजी हिमालयके नगरके समीप प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवम० भा० रु० तृतीये पार्वतीखंड एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले इधर गिरिराजने जब यह बात सुनी कि, सब बरात शिवजीके सहित नगरके समीप आगई है तब वह बडा प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ तब सब सम्भार

सजाकर ईश्वरकी अगौनी करनेके निमित्त बहुतसे ब्राह्मण और पर्वतोंको वहां भेजा ॥ २ ॥ और प्राणप्रिय ईश्वरके अवलोकन करनेको सद्भक्तिसे स्वयं भी गमन किया शैलके मनमें भक्ति बढ गई वह अपने भाग्यकी बडाई करने लगे ॥ ३ ॥ उस समय देवताओंकी सेनाको देखकर हिमालय बडे विस्मयको प्राप्त हुए और अपनेको धन्य मानते हुए उनके सन्मुख गये ॥ ४ ॥ देवताभी हिमालयके समुदायको देखकर परम विस्मयको प्राप्त हुए, इस प्रकार देवता और पर्वतोंको बडा आनंद हुआ ॥ ५ ॥ हे मुने ! वह देवता और पर्वतोंकी महासेना मिलकर पूर्व पश्चिमके सागरकी समान शोभायमान हुई ॥ ६ ॥

स्वयं जगाम सद्भक्त्या प्राणेप्सुन्द्रष्टुमीश्वरम् ॥ भक्त्युद्रुतमनाश्शैलः प्रशंसन् स्वविधिम्मुदा ॥ ३ ॥ देवसेनां तदा दृष्ट्वा हिमवान्विस्मयं गतः ॥ जगाम सम्मुखस्तत्र धन्योऽहमिति चिन्तयन् ॥ ४ ॥ देवा हि तद्बलं दृष्ट्वा विस्मयम्परमं गताः ॥ आनन्दम्परमम्प्रापुर्देवाश्च गिरयस्तथा ॥ ५ ॥ पर्वतानां महासेना देवानां च तथा मुने ॥ मिलित्वा विरराजेव पूर्वपश्चिमसागरौ ॥ ६ ॥ परस्परं मिलित्वा ते देवाश्च पर्वतास्तथा ॥ कृतकृत्यन्तथात्मानम्मेनिरे परया मुदा ॥ ७ ॥ अथेश्वरम्पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥ सर्वे प्रणेमुर्गिरयो ब्राह्मणाश्च सदाशिवम् ॥ ८ ॥ वृषभस्थम्प्रसन्नास्यन्नानाभरणभूषितम् ॥ दिव्यावयवलावण्यप्रकाशितदिगन्तरम् ॥ ९ ॥ सुसूक्ष्माहतसत्पट्टवस्त्रशोभितविग्रहम् ॥ सद्रत्नविलसन्मौलिं विहसन्तं शुचिप्रभम् ॥ १० ॥ भूषाभूताहियुक्तांगमद्भुतावयवप्रभम् ॥ दिव्यद्युतिं सुरेशैश्च सेवितं करचामरैः ॥ ११ ॥ वामस्थिताच्युतन्दक्षभागस्थितविभुम्प्रभुम् ॥ पृष्ठस्थितहरिं पृष्ठपार्श्वस्थितसुरादिकम् ॥ १२ ॥

वह देवता और पर्वत परस्पर मिलकर परम प्रसन्नतासे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे ॥ ७ ॥ तब हिमालयने ईश्वरको सन्मुख देखकर प्रणाम किया, सब पर्वतों और ब्राह्मणोंनेभी शंकरको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ बैलके ऊपर चढे, प्रसन्नमुख, अनेक अलंकारोंसे शोभायमान, दिव्य शरीरकी शोभासे दिगन्तरोंको प्रकाश करनेवाले ॥ ९ ॥ सूक्ष्म बारीक रेशमी वस्त्रोंसे जिनका शरीर शोभायमान हो रहाहै, शिरपर श्रेष्ठ रत्नोका मुकुट, शुभ्रकान्तिसे हँसते हुए ॥ १० ॥ गहनोंसे शोभितशरीर, शरीरके अवयवोंकी अद्भुत कार्थिक दिव्य कान्ति, हाथमें चमर लिये देवताओंसे शोभित ॥ ११ ॥ वाम ओर दक्षके भावकी स्थिति,

व्यापक प्रभुके पीछे इन्द्र स्थित उनके पीछे और पार्श्व भागमें देवता स्थित हैं ॥ १२ ॥ उन लोकके कर्ताकी देवता गण अनेक प्रकारसे स्तुति कर रहे थे, उन ब्रह्मने अपने कारणसे शरीर धारण किया है और वह ब्रह्म सर्वेश वरके देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ वह सगुण निर्गुण दोनों प्रकारसे भक्तोंके अधीन हो कृपाकरनेवाले हैं, वह प्रकृति पुरुषसेभी परे सत चित आनंदरूपवाले हैं ॥ १४ ॥ प्रभुके दक्षिणभागमें अच्युतहरि विराजमान थे जो गरुडपर चढे अनेक गहनोंसे भूषित थे ॥ १५ ॥ हे मुने ! प्रभुके वामभागमें उन्होंने मुझे देखा मैं चतुर्मुख महाशोभा धारण किये अपने परिवारसे संयुक्त था ॥ १६ ॥

नानाविधिसुराद्यैश्च संस्तुतं लोकशंकरम् ॥ स्वहेत्वात्ततनुम्ब्रह्म सर्वेशं वरदायकम् ॥१३॥ सगुणं निर्गुणं चापि भक्ताधीनं कृपाकरम् ॥
प्रकृतेः पुरुषस्यापि परं सच्चित्सुखात्मकम् ॥ १४ ॥ प्रभोर्दक्षिणभागे तु ददर्श हरिमच्युतम् ॥ विनतातनयारूढं नानाभूषणभूषितम् ॥
॥ १५ ॥ प्रभोश्च वामभागे तु मुने मां सन्ददर्श ह ॥ चतुर्मुखं महाशोभं स्वपरीवारसंयुतम् ॥ १६ ॥ एतौ सुरेश्वरौ दृष्ट्वा शिवस्याति
प्रियौ सदा ॥ प्रणनाम गिरीशश्च सपरीवार आदरात् ॥ १७॥ तथा शिवस्य पृष्ठे च पार्श्वयोस्सुविराजितान् ॥ देवादीन्प्रणनामासौ
दृष्ट्वा गिरिवरेश्वरः ॥ १८ ॥ शिवाज्ञया पुरो भूत्वा जगाम स्वपुरं गिरिः ॥ शेषहर्यात्मभूश्शीघ्रं मुनिभिर्निर्जरादिभिः ॥ १९ ॥
सर्वे मुनिसुराद्याश्च गच्छन्तः प्रभुणा सह ॥ गिरेः पुरं समुदिताः शशंसुर्बहु नारद ॥ २० ॥

सदाशिवजीके प्यारे इन दोनों सुरेश्वरोंको देखकर गिरीशने परिवार सहित आदरसे इनको प्रणाम किया ॥ १७ ॥ इसी प्रकार शिवके पृष्ठभागमें तथा पार्श्वभागमें विराजमान देवताओंको देखकर गिरीशने प्रणाम किया ॥ १८ ॥ शिवकी आज्ञासे आगे होकर हिमालय अपने पुरमें प्रविष्ट हुए, तथा शेष, हरि, ब्रह्माजी और सब देवताभी चले ॥ १९ ॥ हे नारदजी ! सब मुनि और देवता प्रभुके संग जातेहुए प्रसन्नतासे हिमालयके नगरकी प्रशंसा करने

लगे ॥ २० ॥ देवतादिकको एक परम मनोहर शिखरमें स्थापन करके हिमालय वहां गये जहां विधिवेदिका स्थापित थी ॥ २१ ॥ तोरणोंसे विशेषरूप वह स्थान चौकोन कराया गया था, वहां स्नान, दान करके परीक्षा ली ॥२२॥ और उस समय शिवजीके समीपमें अपने पुत्रोंको भेजा शैलराज हिमालयने विष्णु आदि सबको परिवारसहित बुलाया ॥ २३ ॥ महाउत्सवके सहित वरके आचार करनेकी इच्छा की और शैलराजने महाहर्षसहित सब बन्धुजनोंको बुलाया ॥ २४ ॥ तब उन पर्वतपुत्रोंने अपने समूहसहित विष्णुआदिके पास जाकर शैलेश्वरके वचन सुनाये और उनसे प्रार्थना की ॥ २५ ॥

रचिते शिखरे रम्ये संस्थाप्य देवतादिकम् ॥ जगाम हिमवाँस्तत्र यत्रास्ति विधिवेदिका ॥ २१ ॥ कारयित्वा विशेषेण चतुष्कन्तो
रणैर्युतम् ॥ स्नानदानादिकं कृत्वा परीक्षामकरोत्तदा ॥ २२ ॥ स्वपुत्रान्प्रेषयामास शिवस्य निकटे तथा ॥ हिमो विष्ण्वादिसम्पूर्ण
वर्गयुक्तस्य शैलराट् ॥ २३ ॥ कर्तुमैच्छद्वराचारं महोत्सवपुरस्सरम् ॥ महाहर्षयुतस्सर्वबन्धुयुग्घिमशैलराट् ॥ २४ ॥ अथ ते गिरिपु
त्राश्च तत्र गत्वा प्रणम्य तम् ॥ सस्ववर्गं प्रार्थनान्तामूचुश्शैलेश्वरस्य वै ॥ २५ ॥ ततस्ते स्वालयं जग्मुश्शैलपुत्रास्तदाज्ञया ॥ शैलरा
जाय संचख्युस्तेचायान्तीति हर्षिताः ॥ २६ ॥ अथ देवाः प्रार्थनान्तां गिरेः श्रुत्वातिहर्षिताः ॥ मुने विष्ण्वादयस्सर्वे सेश्वरा मुमुदुर्भृ
शम् ॥ २७ ॥ कृत्वा सुवेषं सर्वेपि निर्जरा मुनयो गणाः ॥ गमनं चक्रुरन्येपि प्रभुणा गिरिराड्गृहम् ॥ २८ ॥ तस्मिन्नवसरे मेना द्रष्टु
कामाभवच्छिवम् ॥ प्रभोराह्वाययामास मुने त्वां मुनिसत्तमम् ॥ २९ ॥ अगमस्त्वं मुने तत्र प्रभुणा प्रेरितस्तदा ॥ मनसा शिवहृद्धेतुं
पूर्णं कर्तुं तमिच्छता ॥ ३० ॥

तब वे शैलपुत्र उनकी आज्ञासे अपने स्थानोंको आये और शैलराजसे जाकर कहा सब देवता प्रसन्न हो आ रहे हैं ॥ २६ ॥ तब सब देवता गिरिकी प्रार्थना सुनकर बडे प्रसन्न हुए हे नारदजी ! इसी प्रकार ईश्वरसहित सब विष्णुआदि देवता प्रसन्नहुए ॥ २७ ॥ तब सब देवता और मुनिजन अपना सुन्दर वेष धारण करके शंकरके संग प्रसन्नतासे हिमालयके घर गये ॥ २८ ॥ हे मुने ! उस समय मेनाने तुम्हारे देखनेकी इच्छा की और तुम मुनिश्रेष्ठको प्रभुने बुलाया ॥ २९ ॥ हे मुने ! प्रभुकी प्रेरणासे उस स [illegible] तम वहां गये और शिवकी इच्छासे शिवके हृदयकी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा की ॥ ३० ॥

हे मुने ! तुमको प्रणाम कर मेना विस्मित हो मदहरनेवा शकरका रूप देखनेकी इच्छासे बोली ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहि
तान्तर्गततृतीये पार्वतीखण्डे देवगिरिसमागमवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२ ॥ ॥ मेना बोली हे नारदजी ! पहले मैं उन गिरिजापतिके देखनेकी
इच्छा करती हूं जिनके निमित्त पुत्रीने उत्तम तप किया है उनका कैसा रूप है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार अज्ञानमें तत्पर हो वह शिवजीके देखनेकी
इच्छासे तुम्हारे साथ चन्द्रशालामें आई ॥ २ ॥ शिवजीने भी उसके मनका अहंकार जानकर अद्भुत लीला करनेकी इच्छासे प्रभुने मुझसे और ब्रह्माजीसे

त्वाम्प्रणम्य मुने मेना प्राह विस्मितमानसा ॥ द्रष्टुकामा प्रभो रूपं शंकरस्य मदापहम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणें द्वितीयायां
रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे देवगिरिमेलवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ मेनोवाच ॥ निरीक्षिष्यामि प्रथमं
मुने तं गिरिजापतिम् ॥ कीदृशं शिवरूपं हि यदर्थें तप उत्तमम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्यज्ञानपरा सा च दर्शनार्थं शिवस्य च ॥
त्वया मुने समं सद्यश्चन्द्रशालां समागता ॥ २ ॥ शिवोऽपि च तदा तस्यां ज्ञात्वाहंकारमात्मनः ॥ प्राह विष्णुं च मान्तात लीलां
कृत्वाद्भुताम्प्रभुः ॥ ३ ॥ शिव उवाच ॥ मदाज्ञया युवान्तातौ सदेवौ च पृथक्पृथक् ॥ गच्छतं हि गिरिद्वारं वयं पश्चाद्व्रजेमहि ॥ ४ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य हरिस्सर्वानाहूयोवाच तन्मयाः ॥ सुरास्सर्वे तथैवाशु गमनं चक्रुरुत्सुकाः ॥ ५ ॥ स्थितां शिरोगृहे मेनां
मुने विश्वेश्वर त्वया ॥ तथैव दर्शयामासे हृद्भिभ्रंशो यथा भवेत् ॥ ६ ॥ एतस्मिन् समये मेना सेनां च परमां शुभाम् ॥ निरीक्षन्ती
मुने दृष्ट्वा सामान्यं हर्षिताऽभवत् ॥ ७ ॥

कहा ॥ ३ ॥ हे तात ! मेरी आज्ञासे तुम दोनों देवताओं सहित गिरिके द्वार पर जावो और हम पीछे जाँयगे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले हरिने यह वचन
सुन सब देवताओंको बुलाकर कहा और सब देवता उसी प्रकार गमन करने लगे ॥ ५ ॥ हे मुने ! तब तुमको साथ ले मेना महलके शिखरपर चढी
तुम इस प्रकारसे दिखाने लगे. जिस्से हृदय विदीर्ण हो ॥ ६ ॥ हे मुने ! उस समय मेना परम शोभायमान देवताओंकी सेनाको देखकर सामन्यरूपसे

प्रसन्न हुई ॥ ७ ॥ सबसे पहले सुंदर शोभायमान वस्त्र धारण किये अनेक अलंकार धारण किये गंधर्वगण आये ॥ ८ ॥ अनेक वाहनोंपर चढे अनेकं बाजे बजानेमें तत्पर विचित्र पताका और अप्सरागणोंसे संयुक्त आये ॥ ९ ॥ तब मेना उनके परमपति प्रभु वसुको देखकर प्रसन्न हुई और बोली क्या यही शिव हैं ॥ १० ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! तब तुमने मेनासे कहा यह शिवजीके गण हैं शिवाके पति शंकर नहीं हैं ॥ ११ ॥ तब मेना यह वचन सुनकर भ्रममें पड गई जो इनसे भी अधिक है वह कैसा होगा ॥ १२ ॥ उसी समय मेनाने मणिवीरादि यक्षोंकी सेना देखी जिनकी शोभा दूनी थी ॥ १३ ॥

प्रथमं चैव गन्धर्वास्सुन्दरास्सुभगास्तदा ॥ आयाताश्शुभवस्त्राढ्या नानालंकारभूषिताः ॥ ८ ॥ नानावाहनसंयुक्ता नानावाद्यपरायणाः ॥ पताकाभिर्विचित्राभिरप्सरोगणसंयुताः ॥ ९ ॥ अथ दृष्ट्वा वसुं तत्र तत्पतिं परमप्रभुम् ॥ मेना प्रहर्षिता ह्यासीच्छिवोयमिति चाब्रवीत् ॥ १० ॥ शिवस्य गणका एते न शिवोयं शिवापतिः ॥ इत्येवं त्वं ततस्तां वै अवोच ऋषिसत्तम ॥ ११ ॥ एवं श्रुत्वा तदा मेना विचारे तत्पराऽभवत् ॥ इतश्चाभ्यधिको यो वै स च कीदृग्भविष्यति ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे यक्षा मणिग्रीवादय श्च ये ॥ तेषां सेना तया दृष्टा शोभादिद्विगुणीकृता ॥ १३ ॥ तत्पतिं च मणिग्रीवं दृष्ट्वा शोभान्वितं हि सा ॥ अयं रुद्रश्शिवास्वामी मेना प्राहेति हर्षिता ॥ १४ ॥ नायं रुद्रश्शिवास्वामी सेवकोयं शिवस्य वै ॥ इत्यवोचोगपत्न्यै त्वं तावद्वह्निस्स आगतः ॥ १५ ॥ ततोपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत् ॥ रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥ १६ ॥ तावद्यमस्समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः ॥ तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता ॥ १७ ॥

और उनके पति मणिग्रीवकी शोभा देखकर वह यही शिवाके स्वामी रुद्र हैं ऐसा जानकर बडी प्रसन्न हुई ॥ १४ ॥ हे नारद ! तब तुमने कहा यह शिवजी नहीं किंतु यह शिवजीके सेवक हैं जब तुमने ऐसा कहा इसी अवसरमें अग्निकी सेना देखी ॥ १५ ॥ पूर्वसे दूनी शोभा उनकी देखकर यह कहा क्या यही गिरिजापति रुद्र हैं ? तुमनें कहा नहीं ॥ १६ ॥ तबतक उससे दुगुणी कांति धारण करनेवाले यमराज आये उनको देखकर प्रसन्न हो मेनाने कहा क्या यह

रुद्र हैं ? ॥ १७ ॥ तुमने कहा नहीं इसी अवसरमें निर्ऋति आये यह प्रभु पुण्यजन उनसे भी दूनी शोभा धारण किये थे ॥ १८ ॥ उनको देखकर मेनाने प्रसन्न हो कहा क्या यह रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं. तबतक वरुणजी आये ॥ १९ ॥ उनकी भी दूनी शोभा देखकर मेनाने कहा क्या यही गिरिजापति रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ २० ॥ तबतक उनसे भी दूनी कान्ति धारण किये वायु देवता आये उनको देखकर मेनाने कहा क्या यह रुद्र हैं ? ॥ २१ ॥ तुमने कहा नहीं. तबतक कुबेर आये यह गुह्यकपति कुबेर उनसे दूनी शोभा धारण किये थे ॥ २२ ॥ उनको देखकर प्रसन्नहो मेनाने कहा यही रुद्र हैं?

नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावन्निर्ऋतिरागतः ॥ बिभ्राणो द्विगुणां शोभां शुभः पुण्यजनप्रभुः ॥ १८ ॥ तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोयऽमिति हर्षिता ॥ नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्वरुण आगतः ॥ १९ ॥ ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत् ॥ रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥ २० ॥ तावद्वायुस्समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः ॥ तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोयमिति हर्षिता ॥ २१ ॥ नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्धनद आगतः ॥ ततोऽपि द्विगुणां शोभां बिभ्राणो गुह्यकाधिपः ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता ॥ नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावदीशान आगतः ॥ २३ ॥ ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत् ॥ रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥ २४ ॥ तावदिन्द्रस्समायातस्ततोऽपि द्विगुणप्रभः ॥ सर्वामरवरो नानादिव्यभस्त्रिदिवेश्वरः ॥२५॥ तं दृष्ट्वा शंकरस्सोऽयमिति सा प्राह मेनका ॥ शक्रस्सुरपतिश्चायं स नेति त्वं तदाब्रवीः ॥ २६ ॥ तावच्चन्द्रस्समायातश्शोभां तद्विगुणां दधत् ॥ दृष्ट्वा तं प्राह रुद्रोऽयं तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥ २७ ॥

तुमने कहा नहीं. तबतक ईशान आये ॥ २३ ॥ उनकी भी दूनी शोभा देखकर मेना बोली क्या गिरिजापति रुद्र यही हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ २४ ॥ तब उनसे भी दूनी कान्तिवाले इन्द्र आये, जो सब देवताओंमें श्रेष्ठ और अनेक अलंकार धारण किये सबके अधिपति थे ॥ २५ ॥ उनको देखकर मेनाने कहा यही शंकर हैं ? तुमने कहा नहीं यह तो देवराज इन्द्र है ॥ २६ ॥ तबतक उनसे दूनी शोभा धारण किये चन्द्रमा आये उसे देखकर कहा यह रुद्रहैं ?

तुमने कहा नहीं ॥ २७ ॥ तबतक उनसे दूनी शोभा धारण किये सूर्य आये, उनको देखकर मेनाने कहा यह रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ २८ ॥ तबतक भृगु आदि मुनीश्वर आनकर प्राप्त हुए, यह अपने शिष्यों सहित महातेजकी राशि धारण किये थे ॥ २९ ॥ उनके बीचमें वागीश बृहस्पतिको देखकर मेनाने कहा क्या यही गिरिजास्वामी रुद्र हैं ? तुमने कहा नहीं ॥ ३० ॥ तबतक तेजोंकी उत्तम राशि महाश्रेष्ठ ब्रह्माजी ऋषि और पुत्रोंके सहित धर्मपुंजकी समान आये ॥ ३१ ॥ हे मुने ! मुझे देखकर मेना बडी प्रसन्न हुई कहा यही शिव हैं, तुमने कहा नहीं ॥ ३२ ॥ इसी समयमें सब शोभाओंसे

तावत्सूर्यस्समायातश्शोभां तद्द्विगुणां दधत् ॥ दृष्ट्वा तं प्राह सा सोयन्तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥ २८ ॥ तावत्समागतास्तत्र भृग्वाद्याश्च मुनीश्वराः ॥ तेजसो राशयस्सर्वे स्वशिष्यगणसंयुताः ॥ २९ ॥ तन्मध्ये चैव वागीशं दृष्ट्वा सा प्राह मेनका ॥ रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः ॥ ३० ॥ तावद्ब्रह्मा समायातस्तेजसां राशिरुत्तमः ॥ सर्षिवर्य्यसुतस्साक्षाद्धर्मपुंज इव स्तुतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा मां तं तदा मेना महाहर्षवती मुने ॥ सोऽयं शिवापतिः प्राह तां तु नेति त्वमब्रवीः ॥३२॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्देवस्समागतः ॥ सर्वशोभान्वितः श्रीमान्मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥३३॥ कोटिकन्दर्प्पलावण्यः पीताम्बरधरस्स्वराट् ॥ राजीवलोचनश्शान्तः पक्षीन्द्रवरवाहनः ॥ ॥३४॥ शंखादिलक्षणैर्युक्तो मुकुटादिविभूषितः ॥ श्रीवत्सवक्षा लक्ष्मीशो ह्यप्रमेयप्रभान्वितः ॥३५॥ तं दृष्ट्वा चकिताक्ष्यासीन्महाहर्षेण साब्रवीत् ॥ सोऽयं शिवापतिः साक्षाच्छिवो वै नात्र संशयः ॥३६॥ अथ त्वं मेनकावाक्यमाकर्ण्योवाच ऊतिकृत् ॥ नायं शिवापतिरयं किन्त्वयं केशवो हरिः ॥ ३७ ॥ शंकराखिलकार्य्यस्य ह्यधिकारी च तत्प्रियः ॥ अतोऽधिको वरो ज्ञेयस्स शिवः पार्वतीपतिः ॥ ३८ ॥

युक्त श्रीमान् मेघकी समान श्याम वर्ण, चतुर्भुज, विष्णुजी देवताओंके सहित दिखाई दिये ॥ ३३ ॥ कोटि कामदेवकी समान शोभायमान पीताम्बर धारण किये अपने तेजसे प्रकाशित कमललोचन शान्तचित्त गरुडपर चढे ॥ ३४ ॥ शंखादि लक्षणोंसे युक्त मुकुट आदिसे शोभायमान वक्षस्थलमें शोभायमान श्रीवत्सचिह्न लक्ष्मीपति अप्रमेय प्रभावाले ॥ ३५ ॥ विष्णुको देखकर महाप्रसन्नतासे मेना चकित होगई और इसमें सन्देह नहीं यही साक्षात गिरिजाके पति हैं ॥ ३६ ॥ तब कौतुक करनेवाले तुमने मेनाके वचन सुनकर कहा कि यहभी शिव नहीं किन्तु यह केशव हरि हैं ॥ ३७ ॥ यह शिवजीके सम्पूर्ण

कार्यके अधिकारी और उनके प्रिय हैं इनसे भी अधिक प्रभाववाले पार्वतीपति शंकर हैं ॥ ३८ ॥ हे मेना ! उनकी शोभा वर्णन करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, वही सब ब्रह्माण्डोंके अधिपति सर्वेश्वर स्वराट् हैं ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजीबोले नारदजीके यह वचन सुनकर मेनाने अपनी कन्याको महाधना भाग्यवती तीनों कुलकी सुखदायक जाना ॥ ४० ॥ और प्रीतियुक्त चित्तसे प्रसन्न होकर कहा और अपने भाग्यकी वारंवार बडाई की ॥ ४१ ॥ मेना बोली पार्वतीके जन्मसे मैं सर्वथा धन्य हुई गिरीश्वरभी धन्य और सब प्रकारसे मैं धन्य हूं ॥ ४२ ॥ जो जो नायक देवता मैंने देखे हैं वही बडी कान्तिवाले हैं जो इनकेभी

तच्छोभां वर्णितुं मेने मया नैव हि शक्यते ॥ स एवाखिलब्रह्माण्डपतिस्सर्वेश्वरः स्वराट् ॥ ३९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मेना मेने च तां शुभाम् ॥ महाधनां भाग्यवतीं कुलत्रयसुखावहाम् ॥ ४० ॥ उवाच च प्रसन्नास्या प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥ स्वभाग्यमधिकं चापि वर्णयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥ मेनोवाच ॥ धन्याहं सर्वथा जाता पार्वत्या जन्मनाधुना ॥ धन्यो गिरीश्वरोप्यद्य सर्वं धन्यतमं मम ॥ ४२ ॥ येये दृष्टा मया देवा नायकास्सुप्रभान्विताः ॥ एतेषां यः पतिस्सोऽत्र पतिरस्या भविष्यति ॥ ४३ ॥ अस्याः किं वर्ण्यते भाग्यमपि वर्षशतैरपि ॥ वर्णितुं शक्यते नैव तत्प्रभुप्राप्तिदर्शनात् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्यवादीच्च सा मेना प्रेमनिर्भरमानसा ॥ तावत्समागतो रुद्रोऽद्भुतोतिकारकः प्रभुः ॥ ४५ ॥ अद्भुतात्मगणास्तात मेनागर्वापहारकाः ॥ आत्मानं दर्शयन् मायानिर्लिप्तं निर्विकारकम् ॥ ४६ ॥ तमागतमभिप्रेत्य नारद त्वं मुने तदा ॥ मेनामवोचः सुप्रीत्या दर्शयंस्तं शिवापतिम् ॥ ४७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ अयं स शंकरस्साक्षाद्दृश्यतां सुन्दरि त्वया ॥ यदर्थे शिवया तप्तं तपोऽति विपिने महत् ॥ ४८ ॥

स्वामी हैं वह मेरी पुत्रीके पति होंगे अहोभाग्य ॥ ४३ ॥ सौवर्षतकभी मेरी पुत्रीका भाग्य वर्णन नहीं हो सकता, उसको प्रभुकी प्राप्ति होगी तब उसके दर्शनसे महाफल होगा ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले जब प्रेमसे निर्भर मन होकर मेनाने ऐसा कहा तबतक अद्भुत रूप धारण किये प्रभु रुद्रजी आये ॥ ४५ ॥ मेनाके गर्व हरनेवाले अद्भुतही उनके साथ गण थे उन्होंने अपनेको मायासे पृथक् निर्विकार दिखाया ॥ ४६ ॥ हे नारदजी ! शंकरको आया हुआ देखकर परम प्रेमसे तुमने शिवापति शिवको दिखातेहुए कहा ॥ ४७ ॥ नारदजी बोले हे सुन्दरी ! देखो यही साक्षात् शंकर हैं जिनके निमित्त वनमें जाकर

पार्वतीने कठिन तपस्या की थी ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर मेना बहुत प्रसन्न होकर अद्भुत आकारवाले अद्भुत गणोंवाले शंकरको देखने लगी ॥ ४९ ॥ उसी समय महाअद्भुत रुद्रकी सेना आनकर प्राप्त हुई जो भूत प्रेतादिसे संयुक्त अनेक गणोंके साथ थी ॥ ५० ॥ कोई वायुका रूप धारे पताकाकी समान मर्मर शब्दवाले वक्रतुण्ड और कोई विरूपाक्ष थे ॥ ५१ ॥ किन्हींकी विकराल डाढी मूछैं कोई खञ्जे कोई नेत्रहीन कोई दण्ड पाश और कोई मुद्गर हाथोंमें लिये थे ॥ ५२ ॥ कोई २ विरुद्ध वाहनोंपर चढे शृंगीनाद करनेवाले कोई डमरू बजाते और कोई २ मुखसे शब्द करते थे ॥ ५३ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा हर्षिता मेना तं ददर्श मुदा प्रभुम् ॥ अद्भुताकृतिमीशानमद्भुतानुगमद्भुतम् ॥ ४९ ॥ तावदेव समायाता रुद्रसेना महाद्भुता ॥ भूतप्रेतादिसंयुक्ता नानागणसमन्विता ॥ ५० ॥ वात्यारूपधराः केचित्पताकामर्मरस्वनाः ॥ वक्रतुंडास्तत्र केचिद्विरूपाश्चापरे तथा ॥ ५१ ॥ करालाः श्मश्रुलाः केचित्केचित्खञ्जा ह्यलोचनाः ॥ दण्डपाशधराः केंचित्केचिन्मुद्गरपाणयः ॥ ५२ ॥ विरुद्धवाहनाः केचिच्छृंगनादविवादिनः ॥ डमरोर्वादिनः केचित्केचिद्गोमुखवादिनः ॥ ५३ ॥ अमुखा विमुखाः केचित्केचिद्बहुमुखा गणाः ॥ अकरा विकराः केचित्केचिद्बहुकरा गणाः ॥ ५४ ॥ अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिराः कुशिरास्तथा ॥ अकर्णा बहुकर्णाश्च नानावेषधरा गणाः ॥ ५५ ॥ इत्यादिविकृताकारा अनेके प्रबला गणाः ॥ असंख्यातास्तथा तात महावीरा भयंकराः ॥ ५६ ॥ अंगुल्या दर्शयँस्त्वं तां मुने रुद्रगणाँस्ततः ॥ हरस्य सेवकान्पश्य हरं चापि वरानने ॥ ५७ ॥ असंख्यातान् गणान् दृष्ट्वा भूतप्रेतादिकान् मुने ॥ तत्क्षणादभवत्सा वै मेनका त्राससंकुला ॥ ५८ ॥

कोई मुखरहित कोई विकटमुख कोई गण बहुत मुखवाले थे कोई हाथरहित कोई विकट हाथवाले और कोई बहुत हाथोंवाले थे ॥ ५४ ॥ नेत्रहीन बहुत नेत्रवाले शिरसे हीन बुरे शिरवाले कानरहित बहुत कान वाले इस प्रकार नाना वेषधारी गण थे ॥ ५५ ॥ इस प्रकारसे विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण थे, हे तात ! वह असंख्यात महावीर बडे भयंकर थे ॥ ५६ ॥ हे नारद ! जब तुमने अंगुलीसे रुद्रगणोंको दिखाया और कहा हे वरानने ! तुम शंकर और शंकरके सेवकोंकोभी देखो ॥ ५७ ॥ हे मुने ! मेना असंख्य गण और भूत प्रेतादिको देखकर उसी समय बडा शोच करने लगी ॥ ५८ ॥

उन्हींके बीचमें निर्गुण सगुणरूप शंकरको वृषभपर चढे पांचमुख तीन नेत्र विभूतिसे भूषित देखा ॥ ५९ ॥ जो जटाजूट बांधे माथेपर चन्द्रमा दशहाथ कपालधारे व्याघ्रचर्म ओढे हाथमें पिनाक धनुष लिये ॥ ६० ॥ शूलयुक्त विरूपाक्ष विकटरूप व्याकुल गजचर्म ओढे शंकरको देखकर पार्वतीकी माता बडी व्याकुल हुई ॥ ६१ ॥ उसको चकित, कांपती हुई, व्याकुल और बुद्धिमें भ्रम पाये हुए देखकर हे नारदजी ! तुमने अंगुलीसे दिखाकर कहा कि [illegible]व हैं ॥ ६२ ॥ तुम्हारे यह वचन सुनकर वह सती मेना बहुत दुःखी हो वातसे गिरी हुई वेलीकी समान पृथिवीपर गिर पडी ॥ ६३ ॥

तन्मध्ये शंकरं चैव निर्गुणं गुणवत्तरम् ॥ वृषभस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं भूतिभूषितम् ॥५९॥ कपर्दिनं चन्द्रमौलिं दशहस्तं कपालिनम् ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयञ्च पिनाकवरपाणिनम् ॥ ६० ॥ शूलयुक्तं विरूपाक्षं विकृताकारमाकुलम् ॥ गजचर्म वसानं हि वीक्ष्य त्रेसे शिवाप्रसूः ॥ ६१ ॥ चकितां कम्पसंयुक्तां विह्वलां विभ्रमद्धियम् ॥ शिवोऽयमिति चांगुल्या दर्शयँस्तां त्वमब्रवीः ॥ ६२ ॥ त्वदीयं तद्वचः श्रुत्वा वाताहतलता इव ॥ सा पपात द्रुतम्भूमौ मेना दुःखभरा सती ॥ ६३ ॥ किमिदं विकृतं दृष्ट्वा वञ्चिताहं दुराग्रहे ॥ इत्युक्त्वा मूर्च्छिता तत्र मेनका साऽभवत्क्षणात् ॥ ६४ ॥ अथ प्रयत्नैर्विविधैस्सखीभिरुपसेविता ॥ लेभे संज्ञां शनैर्मेना गिरीश्वरप्रिया तदा ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाद्भुतलीलावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ संज्ञां लब्ध्वा ततस्सा च मेना शैलप्रिया सती ॥ विललापातिसंक्षुब्धा तिरस्कारमथाकरोत् ॥ १ ॥ तत्र तावत्स्वपुत्रांश्च निनिन्द खलिता मुहुः ॥ प्रथमं सा ततः पुत्रीं कथयामास दुर्वचः ॥ २ ॥

मैं इस विकृतिको देखकर कैसी वंचित होगई यह कैसे दुराग्रहकी बात है ऐसा कहकर मेना क्षणमात्रमें मूर्च्छित होगई ॥ ६४ ॥ तब सखियोंने अनेक प्रकारके प्रयत्न किये, तब बडी कठिनतासे गिरीश्वरकी प्रिया संज्ञाको प्राप्त हुई ॥ ६५ ॥ ॥ इति श्रीशिवम०भा०रु०तृतीयपार्वतीखंडे त्रिंचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले जब शैलप्रिया सती मेनाको चैतन्यता प्राप्त हुई तब बडे क्षोभसे विलाप कर तिरस्कार करने लगी ॥ १ ॥ उनमें पहले तो व्याकुल हो अपने पुत्रोंकी निंदा करने लगी और फिर अपनी पुत्रीको दुर्वचन कहे ॥ २ ॥

मेना बोली हे मुने ! तुमनेही यह बात पहले कही थी कि पार्वती शिवजीको वरण करैगी तबही हिमालयने उसको शिवजीकी पूजामें नियुक्त किया॥ ३ ॥सो यह उसका बडा अनर्थकारी विपरीत फल उपस्थित हुआ है हे मुने ! हे दुर्बुद्धे ! हे अधम ! तुमने सब प्रकारसे मुझे ठगलिया॥ ४ ॥मेरी पुत्रीने ऐसा कठिन तप किया जिसे मुनिभी नहीं कर शकते उसका यह दुःखदायक फल उपस्थित हुआ सो देखो ॥५॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं मेरे दुःखको कौन दूर करैगा मेरा कुलादिक और जीवन नष्ट होगया ॥६॥ वे दिव्य ऋषि कहां गये जो मैं उनकी डाढी मूँछैं उखाड लूं वह तपस्विनी अरुंधती वशिष्ठकी पत्नी बडी धूर्ता निकली॥ ७॥

॥ मेनोवाच॥ मुने पुरा त्वया प्रोक्तं वरिष्यति शिवा शिवम् ॥ पश्चाद्धिमवतः कृत्यं पूजार्थं विनिवेशितम् ॥ ३ ॥ ततो दृष्टं फलं सत्यं विपरीतमनर्थकम् ॥ मुनेऽधमाहं दुर्बुद्धे सर्वथा वञ्चिता त्वया ॥ ४ ॥ पुनस्तया तपस्ततं दुष्करं मुनिभिश्च यत् ॥ तस्य लब्धं फलं ह्येतत्पश्यतां दुःखदायकम् ॥ ५ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहताम् ॥ कुलादिकं विनष्टं मे विहितं जीवितं मम ॥६॥ क्व गता ऋषयो दिव्याः श्मश्रूणि त्रोटयाम्यहम् ॥ तपस्विनी च या पत्नी सा धूर्ता स्वयमागता ॥ ७ ॥ केषाञ्चैवापराधेन सर्वं नष्टं ममाधुना ॥ इत्युक्त्वा वीक्ष्य च सुतामुवाच वचनं कटु ॥ ८ ॥ किं कृतं ते सुते दुष्टे कर्म दुःखकरं मम ॥ हेम दत्त्वा त्वयानीतः काचो वै दुष्टया स्वयम् ॥ ९ ॥ हित्वा तु चन्दनं भूयो लेपितः कर्दमस्त्वया ॥ हंसमुड्डीय काको वै गृहीतो हस्तपञ्जरे ॥ १० ॥ हित्वा ब्रह्मजलं दूरे पीतं कूपोदकं त्वया ॥ सूर्य्यं हित्वा तु खद्योतो गृहीतो यत्नतस्त्वया ॥ ११ ॥ तण्डुलांश्च तथा हित्वा कृतं वै तुषभक्षणम् ॥ प्रक्षिप्याज्यं तथा तैलं कारण्डं भुक्तमादरात् ॥ १२ ॥

किसीके अपराधसे मेरा तो सबही नष्ट होगया, यह कहकर अपनी कन्याको देख कटुवचन कहने लगी ॥ ८ ॥ हे दुष्टे ! यह तैंने क्या किया, मेरा कर्म फूट गया, हे मूर्खे ! तैंने सुवर्ण गमाकर स्वयं काँच ग्रहण किया ॥ ९ ॥ चंदनको छोडकर तैंने कीच ग्रहण की तैंने हंस उडाकर हाथके पींजरेमें कौआ ग्रहण किया ॥ १० ॥ तैंने ब्रह्मजल दूर बहाकर कूपका जल ग्रहण किया, सूर्यको छोडकर तैंने यत्नसे खद्योत ग्रहण किया ॥ ११ ॥ चावलोंको छोडकर तैंने

भूसी ग्रहण की, तैंने घृत और तैलको फैंककर करण्डको खाया और आदर किया ॥ १२ ॥ शेरकी सेवा छोडकर तैंने शृगालकी सेवा की, ब्रह्मविद्याको छोडकर तैंने कुत्सित गाथा सुनी ॥ १३ ॥ हे पुत्रि ! तुमने घरकी मंगलिक यज्ञविभूति दूर करके अमंगल चिताभस्म ग्रहण की ॥ १४ ॥ विष्णु आदि परमेश्वर सब श्रेष्ठ देवताओंको ग्रहण न करके तैंने कुबुद्धिसे शिवके निमित्त इस प्रकारका तप किया ॥ १५ ॥ तेरी बुद्धि तेरे रूप तेरे चरित्रको तुझे तेरे उपदेश कर्ता और तेरी सखियोंको धिक्कार है ॥ १६ ॥ हे पुत्रि ! हम तेरे माता पिताको भी धिक्कार है जो तेरे जन्म देनेवालेहैं हे नारद ! तेरी और सप्तर्षियोंकी बुद्धिको धिक्कार है ॥ १७ ॥ कुल क्रियाकी दक्षता और जो कुछ तुमने किया सबको धिक्कार है, तुमने मेरा घर नष्ट करादिया अब मेरा मरणही होगा ॥ १८ ॥ यह पर्वतोंका राजा मेरे समीप क्यों नहीं आता वह सप्तर्षि आकर स्वयं मेरे सुखको क्यों नहीं देखते ॥ १९ ॥ अथवा क्या सबने मिलकर यह बात साधी है मेरा कुल नष्ट कर दिया मैं वन्ध्या क्यों न हुई मेरा गर्भ क्यों न गिरगया ॥ २० ॥ अथवा मैं या यह पुत्रीही क्यों न मरगई अथवा हमको आकाशमें राक्षसोंने क्यों न खा लिया ॥ २१ ॥ मैं अभी तेरा शिर छेदन कर दूंगी, कलेवरसे क्या करूंगी, तुझै छोडकर मैं कहां जाऊं खेद

सिंहसेवां तथा मुक्त्वा शृगालस्सेवितस्त्वया ॥ ब्रह्मविद्यां तथा मुक्त्वा कुगाथा च श्रुता त्वया ॥ १३ ॥ गृहे यज्ञविभूतिं हि दूरीकृत्य
सुमंगलाम् ॥ गृहीतश्च चिताभस्म त्वया पुत्रि ह्यमंगलम् ॥१४॥ सर्वान् देववरांस्त्यक्त्वा विष्णवादीन्परमेश्वरान् ॥कृतं त्वया कुबुद्ध्या
वै शिवार्थं तप ईदृशम् ॥ १५ ॥ धिक्त्वां च तव बुद्धिश्च धिग्रूपं चरितं तव ॥ धिक् चोपदेशकर्त्तारं धिक्सख्यावपि ते तथा ॥ १६ ॥
आवां च धिक्तथा पुत्रि यौ ते जन्मप्रवर्तकौ ॥ धिक्ते नारद बुद्धिश्च सप्तर्षींश्च सुबुद्धिदान् ॥ १७ ॥ धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं
सर्वं धिग्यत्कृतं त्वया ॥ गृहन्तु धुक्षितं त्वेतन्मरणं तु ममैव हि ॥ १८ ॥ पर्वतानामयं राजा नायातु निकटे मम ॥ सप्तर्षयस्स्वयं
नैव दर्शयन्तु मुखम्मम ॥ १९ ॥ साधितं किञ्च सर्वैस्तु मिलित्वा घातितं कुलम् ॥ वन्ध्याहं न कथं जाता गर्भो न गलितः कथम्
॥ २० ॥ अथो न वा मृता चाहं पुत्रिका न मृता कथम् ॥ रक्षसाद्य कथं नो वा भक्षिता गगने पुनः ॥ २१ ॥ छेदयामिशिरस्तेऽद्य
किं करोमि कलेवरैः ॥ त्यक्त्वा त्वां च कुतो यायां हाहा मे जीवितं हतम् ॥ २२ ॥

है कि, मेरा जीवन नष्ट होगया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर मेना मूर्च्छित हो पृथिवीमें गिर पडी और शोक रोषसे व्याकुल हो अपने स्वामीके समीप भी न गई ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय बडा हाहाकार मच गया और फिर क्रमसे सब देवता उसके समीप आये ॥ २४ ॥ हे मुने ! पहले मैं स्वयंही उसके समीप गया हे ऋषिश्रेष्ठ ! मुझे देखकर तुम उससे इस प्रकारके वचन बोले ॥ २५ ॥ नारदजी बोले हे मेना ! तुमने शिवजीका यथार्थ सुन्दर रूप नहीं देखा है यह इन्होंने लीलाके निमित्त रूप धारण किया है, यथार्थमें शंकरका ऐसा रूप नहीं है ॥ २६ ॥ हे पतिव्रते ! इस कारण क्रोधको

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा पतिता सा च मेना भूमौ विमूर्छिता ॥ व्याकुला शोकरोषाद्यैर्न गता भर्तृसन्निधौ ॥ २३ ॥ हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्काले मुनीश्वर ॥ सर्वे समागतास्तत्र क्रमात्तत्सन्निधौ सुराः ॥ २४ ॥ पुरा देवमुने चाहमागतस्तु स्वयं तदा ॥ मां दृष्ट्वा त्वं वचस्तां वै प्रावोच ऋषिसत्तम ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ यथार्थं सुंदरं रूपं न ज्ञातं ते शिवस्य वै ॥ लीलयेदं धृतं रूपं न यथार्थं शिवेन च ॥ २६ ॥ तस्मात्क्रोधम्परित्यज्य स्वस्था भव पतिव्रते ॥ कार्य्यं कुरु हठं त्यक्त्वा शिवां देहि शिवाय च ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्ते सा मेना त्वां वाक्यमब्रवीत् ॥ उत्तिष्ठेतो गच्छ दूरं दुष्टाधमवरो भवान् ॥ २८ ॥ इत्युक्ते तु तया देवा इन्द्राद्याः सकलाः क्रमात् ॥ समागत्य च दिक्पाला वचनं चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ हे मेने पितृकन्ये हि शृण्वस्मद्वचनम्मुदा ॥ अयं वै परमः साक्षाच्छिवः परसुखावहः ॥ ३० ॥ कृपया च भवत्पुत्र्यास्तपो दृष्ट्वातिदुस्सहम् ॥ दर्शनं दत्तवाञ्छम्भुर्वरं सद्भक्तवत्सलः ॥ ३१ ॥

छोडकर सावधान हो हठको छोडकर कार्य करो, और पार्वती शंकरको प्रदान करो ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर मेना तुमसे कहने लगी तुम बडे दुष्ट और अधम हो यहांसे उठकर दूर चले जाओ ॥ २८ ॥ जब उसने ऐसा कहा तब क्रमसे इंद्रादिक सब देवता तथा दिक्पाल भी आकर इस प्रकारके वचन बोले ॥ २९ ॥ देवता बोले हे मेना ! हे पितृकन्या तुम हमारे वचन सुनो, यह साक्षात् परम शिव दूसरोंको सुख देनेवाले हैं ॥ ३० ॥ तुम्हारी पुत्रीका दुष्कर तप देखकर वह सद्भक्तवत्सल परम कृपासे उसको वर देते हुए ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले तब मेना वारंवार विलाप करती हुई देवताओंसे बोली, उग्ररूपी शंकरके निमित्त मैं अपनी कन्या नहीं दूंगी ॥ ३२ ॥ किस कारण
तुम सब देवता मिलकर प्रपंच करके इस मेरी पुत्रीके रूपको व्यर्थ करनेको उद्यत हुए हो ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वर ! जब मेनाने ऐसा कहा तब वे सब
वशिष्ठ आदि ऋषि आकर मेनासे कहने लगे ॥ ३४ ॥ सप्तर्षि बोले हे पितृकन्ये ! हे गिरिराजकी प्यारी ! हम यहां कार्य साधन करनेको प्राप्त
हुए हैं इस अर्थमें हम किसी प्रकार विरुद्ध नहीं मान सकते ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले यही परम लाभ है जो तुमको शंकरका दर्शन हुआ और वह

ब्रह्मोवाच ॥ अथोवाच सुरान्मेना विलप्याति मुहुर्मुहुः ॥ न देया तु मया कन्या गिरिशायोग्ररूपिणे ॥ ३२ ॥ किमर्थन्तु भवन्तश्च
सर्वे देवाः प्रपञ्चिताः ॥ रूपमस्याः परन्नाम व्यर्थीकर्तुं समुद्यतः ॥ ३३ ॥ इत्युक्ते च तया तत्र ऋषयस्सप्त एव हि ॥ ऊचुस्ते वच
आगत्य वसिष्ठाद्या मुनीश्वर ॥ ३४ ॥ सप्तर्षयःऊचुः ॥ कार्य्यं साधयितुम्प्राप्ताः पितृकन्ये गिरिप्रिये ॥ विरुद्धं चात्र उक्तार्थे
कथम्मन्यामहे वयम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अयं वै परमो लाभो दर्शनं शंकरस्य यत् ॥ दानपात्रं स ते भूत्वागतस्तव च मंदिरम् ॥
॥ ३६ ॥ ॥ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा तैस्ततो मेना मुनिवाक्यं मृषाकरोत् ॥ प्रत्युवाच च रुष्टा सा तानृषीञ्ज्ञानदुर्बला ॥ ३७ ॥
मेनोवाच ॥ शस्त्राद्यैर्घातयिष्येऽहं न दास्ये शंकरायताम् ॥ दूरं गच्छत सर्वे हि नागन्तव्यं मदन्तिके ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा
विररामाशु सा विलप्यातिविह्वला ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्र तद्वृत्ततो मुने ॥ ३९ ॥ ततो हिमालयस्तत्राजगामातिसमाकुलः ॥ तांश्च
बोधयितुं प्रीत्या प्राह तत्त्वञ्च दर्शयन् ॥ ४० ॥

दान पात्र होकर स्वयं तुम्हारे मंदिरमें आये ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले यह सुनकर भी मेनाने ऋषियोंके वचनोंको व्यर्थ कर दिया और वह लघु ज्ञानवाली
रुष्ट होकर उन ऋषियोंसे कहने लगी ॥ ३७ ॥ मेना बोली मैं शस्त्रादिसे घात कर डालूंगी परंतु शंकरके निमित्त पार्वतीको न दूंगी तुम सब दूर हो जाओ
और आजसे कभी मेरे समीप न आना ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार कहकर मेना व्याकुल हो मौन रह गई, हे मुने ! उस समय इस वृत्तांतसे
वहां महा हाहाकार मच गया ॥ ३९ ॥ तब इस वृत्तांतको सुनकर मेनाको समझानेके निमित्त स्वयं हिमालय आये और प्रीतिसे तत्त्व दिखाते हुए बोले

॥ ४० ॥ हिमालय बोले, हे मेना ! तू मेरे वचन सुन, किस प्रकारसे तू व्याकुल है घरमें कौन कौन आये हैं, तुम उनकी निंदा क्यों करती हो ॥ ४१ ॥ तू शंकरको नहीं जानती, उनका रूप देखकरही व्याकुल होगई है उनको विकट रूप इस कारण जानती हो कि, वह अनेक रूप धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ सबके पालन करनेवाले शंकरको मैं जानता हूं, यह पूज्योंके भी पूज्य सबके कर्ता निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ हैं ॥ ४३ ॥ हे पापरहित प्राणप्रिये ! हठ मत कर दुःखको त्यागो, उठो और शीघ्रतासे कार्य करो, हे सुंदर व्रतवाली ! ॥ ४४ ॥ जो शिवजी विकटरूप धारण कर द्वार पर आये हैं तो उन्होंने नाना लीलाकी हैं, कि मैं मेनाको खिजाऊं ॥ ४५ ॥ उनका परम माहात्म्य देखकर तैंने और मैंने कन्यादान करना अंगीकार किया, हे प्रिये ! उसको प्रमाण करो ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर हिमालय मौन हुए, यह सुनकर पार्वतीकी माता मेना हिमालयसे बोली ॥ ४७ ॥ हे नाथ ! तुम मेरे वचन सुनो और वैसाही करनेको तुम योग्य हो इस अपनी कन्या पार्वतीको लेकर और उसके कंठमें बांधकर ॥ ४८ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ शृणु मेने वचो मेऽद्य विकलाऽसि कथम्प्रिये ॥ के के समागता गेहं कथं चैतान्विनिन्दसि ॥ ४१ ॥
शंकरं त्वं च जानासि रूपं दृष्ट्वासि विह्वला ॥ विकटं तस्य शंभोस्तु नानारूपाभिधस्य हि ॥ ४२ ॥ स शंकरो मया ज्ञातस्सर्वेषां
प्रतिपालकः ॥ पूज्यानां पूज्य एवासौ कर्तानुग्रहनिग्रहान् ॥ ४३ ॥ हठं न कुरु मुञ्च त्वं दुःखं प्राणप्रियेऽनघे ॥ उत्तिष्ठारं तथा
कार्यं कर्तुमर्हसि सुव्रते ॥ ४४ ॥ यद्वै द्वारगतश्शंभुः पुरा विकटरूपधृक् ॥ नानालीलाश्च कृतवाञ्चेतयामि च तामिमाम् ॥ ४५ ॥
तन्माहात्म्यं परं दृष्ट्वा कन्यां दातुं त्वया मया ॥ अंगीकृतं तदा देवि तत्प्रमाणं कुरु प्रिये ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा सोऽद्रिना
थो हि विरराम ततो मुने ॥ तदाकर्ण्य शिवामाता मेनोवाच हिमालयम् ॥ ४७ ॥ मेनोवाच ॥ मद्वचः श्रूयतां नाथ तथा कर्तुं त्वम
र्हसि ॥ गृहीत्वा तनुजां चैनां बद्ध्वा कण्ठे तु पार्वतीम् ॥ ४८ ॥

---

१ तृजन्तत्वान्नलोकेति निषेधः ।

निश्शंक होकर नीचे गिरादो मैं शंकरके निमित्त पार्वती नहीं दूंगी अथवा हे नाथ ! इस कन्याको ले जाकर समुद्रमें ॥ ४९ ॥ दयारहित होकर डुबा दो औरं सुखी हो, और यदि तुम विकटमुखवाले शंकरके निमित्त पार्वती दोगे तो हे स्वामिन् ! मैं निश्चयही कलेवर त्यागन करदूंगी ॥ ५० ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे मेनाने हठसे वचन कहे तब स्वयं आकर पार्वती मनोहर वचन कहने लगी ॥ ५१ ॥ पार्वती बोली हे माताजी ! तुम्हारी शोभन बुद्धि इस समय विपरीत कैसे होगई तुम धर्मकी अवलम्बन करनेवाली धर्मको कैसे त्यागन करती हो ॥ ५२ ॥ यह रुद्र परमप्रभु साक्षात् सबके ईश्वर और समर्थ हैं,

अधः पातय निःशंकं दास्ये तां न हराय हि ॥ तथैनामथवा नाथ गत्वा वै सागरे सुताम् ॥ ४९ ॥ निमज्जय दयान्त्यक्त्वा
ततोऽद्रीश सुखी भव ॥ यदि दास्यसि पुत्रीन्त्वं रुद्राय विकटात्मने ॥ तर्हि त्यक्ष्याम्यहं स्वामिन्निश्चयेन कलेबरम् ॥ ५० ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते च तदा तत्र वचने मेनया हठात् ॥ उवाच वचनं रम्यं पार्वती स्वयमागता ॥ ५१ ॥ पार्वत्युवाच ॥ मातस्ते
विपरिता हि बुद्धिर्जाताऽशुभावहा ॥ धर्मावलम्बनात्त्वं हि कथन्धर्मं जहासि वै ॥ ५२ ॥ अयं रुद्रोऽपरस्साक्षात्सर्वप्रभव ईश्वरः ॥
शम्भुस्सुरूपस्सुखदस्सर्वश्रुतिषु वर्णितः ॥ ५३ ॥ महेशश्शंकरश्चायं सर्वदेवप्रभुस्स्वराट् ॥ नानारूपाभिधो मातर्हरिब्रह्मादिसेवितः ॥
॥ ५४ ॥ अधिष्ठानं च सर्वेषां कर्ता हर्ता च स प्रभुः ॥ निर्विकारी त्रिदेवेशो ह्यविनाशी सनातनः ॥ ५५ ॥ यदर्थे देवतास्सर्वा
आयाता किंकरीकृताः ॥ द्वारि ते सोत्सवाश्चाद्य किमतोऽन्यत्परं सुखम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठातः प्रयत्नेन जीवितं सफलं कुरु ॥ देहि
मां त्वं शिवायास्मै स्वाश्रमं कुरु सार्थकम् ॥ ५७ ॥

शिवजीका सुखदायक रूप सब शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है ॥ ५३ ॥ यह महेश्वर शंकर सबके प्रभु स्वराट् हैं हे माता ! यह हरि और ब्रह्मासे सेवित अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले हैं ॥ ५४ ॥ यही सबके हर्ता कर्ता और अधिष्ठान हैं, वह निर्विकारी त्रिदेवताओंके ईश्वर सनातन अविनाशी हैं ॥ ५५ ॥ जिनके निमित्त सब देवता दासरूप होकर प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे द्वारपर इस समय सबका उत्सव है इससे विशेष और क्या सुख होगा ॥ ५६ ॥ इससे प्रयत्न पूर्वक उठो और अपने जीवनको सफल करो और मुझे शंकरको देकर अपना गृहस्थाश्रम सफल करो ॥ ५७ ॥

हे मातः ! तुम शंका छोडकर मुझे परमेशके निमित्त दीजिये हे मातः ! जो मैं कहती हूं इस विनतीको तुम स्वीकार करो ॥ ५८ ॥ यदि शंकरको मुझे न
दोगी तो मैं दूसरोंको वरण नहीं करूंगी सिंहके भागको परवंचक शृगाल कैसे प्राप्त कर सकता है ॥ ५९ ॥ हे मातः ! मैं मनवचनकर्मसे शंकरको दृढतासे
वरण करचुकी हूं, अब जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी बोले शैलेश्वर प्रिया मेना इस प्रकारसे शिवाके वचन सुनकर बहुत विलाप
कर महा क्रुद्ध हो पार्वतीको ग्रहणकर ॥ ६१ ॥ मुट्ठी पहुचोंसे पुत्रीको ताडन करने लगी और व्याकुल तथा रोषकर दाँतोंसे ताडन करने लगी ॥६२॥

देहि मां परमेशाय शंकराय जनन्यहो ॥ स्वीकुरु त्वमिमं मातर्विनयम्मे ब्रवीमि ते ॥ ५८ ॥ चेन्न दास्यसि तस्मै मां न वृणेऽन्यमहं
वरम् ॥ भागं लभेत्कथं सैंहं शृगालः परवंचकः ॥५९॥ मनसा वचसा मातः कर्मणा च हरस्स्वयम् ॥ मया वृतो वृतश्चैव यदिच्छसि
तथा कुरु ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य शिवावाक्यं मेना शैलेश्वरप्रिया ॥ सुविलप्य महाक्रुद्धा गृहीत्वा तत्कलेबरम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिभिः कूर्परैश्चैव दन्तान्धर्षयती च सा ॥ ताडयामास तां पुत्रीं विह्वलातिरुषान्विता ॥ ६२ ॥ ये तत्र ऋषयस्तात त्वदाद्याश्चापरे
मुने ॥ तद्धस्तात्ताम्परिच्छिद्य निन्युर्दूरतरं ततः ॥६३॥ तान्वै तथा विधान्दृष्ट्वा भर्त्सयित्वा पुनः पुनः ॥ उवाच श्रावयन्ती सा दुर्वचो
निखिलान्पुनः ॥ ६४ ॥ ॥ मेनोवाच ॥ किं मेना हि करिष्येऽहं दुष्टां ग्रहवतीं शिवाम् ॥ दास्याम्यस्यै गरन्तीव्रं कूपे क्षेप्स्यामि वा
ध्रुवम् ॥ ६५ ॥ छेत्स्यामि कालीमथवा शस्त्रास्त्रैर्भूरिखण्डशः ॥ निमज्जयिष्ये वा सिन्धौ स्वसुताम्पार्वतीं खलु ॥ ६६ ॥

हे तात ! हे मुने ! तुमको आदि लेकर जो दूसरे ऋषि वहां विद्यमान थे उस मेनाके हाथसे पुत्रीको छीनकर दूर लेगये ॥ ६३ ॥ इस प्रकार उन
ऋषियोंको देखकर बारंबार फटकारती और उनसे बारंबार दुर्वचन कहने लगी ॥ ६४ ॥ मेना बोली मैं अब क्या करूं इस दुष्ट आग्रहवाली शिवाको
यातो मैं कूपमें डाल दूंगी या विष दे दूंगी ॥ ६५ ॥ अथवा बडे शस्त्र अस्त्रोंसे इसको खण्डखण्ड कर डालूंगी अथवा इस अपनी कन्या पार्वतीको समुद्रमें

डाल दूंगी ॥ ६६ ॥ अथवा मैं निश्चय अपना शरीर त्यागन करदूंगी पर विकटरूपी शंकरको अपनी कन्या नहीं दूंगी ॥ ६७ ॥ इस दुष्टाने कैसे भयंकर वरको ग्रहण किया है, मेरा गिरिराजका और इस कुलका उपहास कराया ॥ ६८ ॥ इन शंकरके माता पिता भाई बन्धु गोत्र रूप चातुर्य्य वा घर कुछभी नहीं है ॥ ६९ ॥ वस्त्र अलंकार वा सहायक इनके कोईभी नहीं है न सुन्दर सवारी न अवस्था और न कुछ धनही है ॥ ७० ॥ इनमें पवित्रता विद्या कुछभी नहीं है शरीर देखनेसे भी कैसा दुःख होताहै मैं क्या देखकर सुमंगली पुत्री इनको देसकती हूं ॥ ७१ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! मेना

अथवा स्वशरीरं हि त्यक्ष्याम्याश्वन्यथा ध्रुवम् ॥ न दास्ये शम्भवे कन्यां दुर्गां विकटरूपिणे ॥ ६७ ॥ वरोऽयं कीदृशो भीमोऽनया लब्धश्च दुष्टया ॥ कारितश्चोपहासो मे गिरेश्चापि कुलस्य हि ॥ ६८ ॥ न माता न पिता भ्राता न बन्धुर्गोत्रजोऽपि हि ॥ नो सुरूपं न चातुर्य्यं न गृहं वास्य किंचन ॥ ६९ ॥ न वस्त्रं नाप्यलङ्कारास्सहायाः केऽपि तस्य न ॥ वाहनं न शुभं ह्यस्य न वयो न धनन्तथा ॥ ७० ॥ न पावित्र्यं न विद्या च कीदृशः काय आर्तिदः ॥ किं विलोक्य मया पुत्री देयास्मै स्यात्सुमंगला ॥ ७१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्यादि सुविलप्याथ बहुशो मेनका तदा ॥ रुरोदोच्चैर्मुने सा हि दुःखशोकपरिप्लुता ॥ ७२ ॥ अथाहन्द्रुतमागत्याकथयम्मेनकां च ताम् ॥ शिवतत्त्वं च परमं कुज्ञानहरमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रोतव्यम्प्रीतितो मेने मदीयं वचनं शुभम् ॥ यस्य श्रवणतः प्रीत्या कुबुद्धिस्ते विनश्यति ॥ ७४ ॥ शंकरो जगतः कर्ता भर्ता हर्ता तथैव च ॥ न त्वं जानासि तद्रूपं कथन्दुःखं समीहसे ॥ ७५ ॥ अनेकरूपनामा च नाना लीलाकरः प्रभुः ॥ सर्वस्वामी स्वतन्त्रश्च मायाधीशोऽविकल्पकः ॥ ७६ ॥

इसप्रकारसे कहकर बडे ऊंचे स्वरसे रोने लगी और विलाप करने लगी ॥ ७२ ॥ तब मैंने शीघ्रतासे जाकर मेनासे अज्ञानका हरनेवाला परम शिवतत्व आनकर वर्णन किया ॥ ७३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मेना ! मेरे सुन्दर वचन प्रेमसे सुनो जिनके श्रवण करनेसे तेरी कुबुद्धि नष्ट हो जायगी ॥ ७४ ॥ यह शंकर जगत्के कर्ता हर्ता और विद्यादाता हैं तुम इनके रूपको न जानकर ही इस प्रकारसे विलाप करती हो ॥ ७५ ॥ यह प्रभु अनेक लीला करनेवाले

अनेक रूप और नामवाले हैं सबके स्वामी स्वतंत्र मायाके अधीश्वर विकल्परहित हैं ॥ ७६ ॥ हे मेना ! ऐसा जानकर तुम शंकरके निमित्त पार्वती
देदो और सब कार्यके नाश करने वाले इस कुहठ और अज्ञानको त्यागन करो ॥ ७७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जब मैंने ऐसा कहा तो मेना वारं
वार विलाप करती हुई शनैः शनैः लज्जाको त्यागन करके मुझसे कहने लगी ॥ ७८ ॥ मेना बोली हे भगवन् ! किस निमित्त आप इस मेरी पुत्रीके महाश्रेष्ठ
रूपको व्यर्थ करते हो यदि ऐसाही है तो इसको मार क्यों नहीं डालते ॥ ७९ ॥ यह तो आप कहो ही मत कि शिवके निमित्त कन्या दे दो, अपनी

इति विज्ञाय मेने त्वं शिवान्देहि शिवाय वै ॥ कुहठन्त्यज कुज्ञानं सर्वकार्यविनाशनम् ॥ ७७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता सा मया
मेना विलपन्ती मुहुर्मुहुः ॥ लज्जां किंचिच्छनैस्त्यक्त्वा मुने मां वाक्यमब्रवीत् ॥ ७८ ॥ ॥ मेनोवाच ॥ किमर्थन्तु भवान्ब्रह्मन्रूपमस्य
महावरम् ॥ व्यर्थीकरोति किमियं हन्यतां न स्वयं शिवा ॥ ७९ ॥ न वक्तव्यं च भवता शिवाय प्रतिदीयताम् ॥ न दास्येऽहं शिवा
यैनां स्वसुताम्प्राणवल्लभाम् ॥ ८० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ते तु तदा सिद्धाः सनकाद्या महामुने ॥ समागत्य महाप्रीत्या वचनं
हीदमब्रुवन् ॥ ८१ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयम्वै परमस्साक्षाच्छिवः परसुखावहः ॥ कृपया च भवत्पुत्र्यै दर्शनन्दत्तवान्प्रभुः ॥ ८२ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथोवाच तु तान्मेना विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥ न देया तु मया सम्यग्गिरिशायोग्ररूपिणे ॥ ८३ ॥ किमर्थन्तु भव
न्तश्च सर्वे सिद्धाः प्रपञ्चिनः ॥ रूपमस्याः परं नाम व्यर्थीकर्त्तुं समुद्यताः ॥ ८४ ॥ इत्युक्ते च तया तत्र मुनेऽहं चकितोऽभवम् ॥
सर्वे विस्मयमापन्ना देवसिद्धर्षिमानवाः ॥ ८५ ॥

प्राणप्यारी सुताको मैं शंकरके निमित्त नहीं दूंगी ॥ ८० ॥ ब्रह्माजी बोले हे महामुने ! इसप्रकार कहनेपर सनकादि सिद्धजन आकर महाप्रीतिसे इस प्रकारके
वचन कहने लगे ॥ ८१ ॥ सिद्ध बोले यह दूसरोंके सुख देनेवाले भगवान् शंकर परम शिव हैं तुम्हारी पुत्रीपर कृपा करके इन प्रभुने दर्शन दिया है ॥ ८२ ॥
ब्रह्माजी बोले तब मेनाने वारंवार विलापकर उनसे भी यही कहा कि मैं उग्ररूपवाले शंकरको अपनी कन्या नहीं दूंगी ॥ ८३ ॥ तुम सब सिद्ध प्रपंच
करके क्यों मेरी पुत्रीके रूपको व्यर्थ करनेको उद्यत हुए हो ॥ ८४ ॥ हे मुने ! जब उसने ऐसा कहा तब मैं चकित होगया और देव सिद्ध ऋषि तथा

मनुष्य सबही विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ८५ ॥इसी समय मेनाकी दृढ महान् हठ सुनकर शिवके प्रिय विष्णुजी वहां आकर इस प्रकारके वचन बोले॥८६॥ विष्णुजी बोले पितृगणोंकी तुम प्यारी मानसी पुत्री अनेक गुणोंसे युक्त हो साक्षात् हिमालयकी पत्नी हो तुम्हारा उत्तम ब्रह्मकुल है ॥ ८७ ॥ वैसेही तुम्हारे सहायक हैं लोकमें तुम धन्य हो इसमें विशेष मैं क्या कहूं तुम धर्मकी आधार होकर किस प्रकार धर्मको त्यागन करती हो ॥ ८८ ॥ देवता ऋषि ब्रह्माजी तथा मैं यह सब विरुद्ध ही कहते हैं भला तुम इतना तो विचारो ॥ ८९ ॥ तुम निर्गुण सगुण रूप शिवतत्त्वको नहीं जानती हो यह सत्पुरुषोंकी गति विरूप

एतस्मिन्समये तस्या हठं श्रुत्वा दृढं महत् ॥ द्रुतं शिवप्रियो विष्णुस्समागत्याऽब्रवीदिदम् ॥ ८६ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पितॄणां च प्रिया पुत्री मानसी गुणसंयुता ॥ पत्नी हिमवतस्साक्षाद्ब्रह्मणः कुलमुत्तमम् ॥ ८७ ॥ सहायास्तादृशा लोके धन्या ह्यसि वदामि किम् ॥ धर्मस्याधारभूतासि कथं धर्मं जहासि हि ॥ ८८ ॥ देवैश्च ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा वा मया तथा ॥ विरुद्धं कथ्यते किं नु त्वयैव सुविचार्यताम् ॥ ८९ ॥ शिवन्त्वं न च जानासि निर्गुणस्सगुणस्स हि ॥ विरूपस्स सुरूपो हि सर्वसे व्यस्सतां गतिः ॥ ९० ॥ तेनैव निर्मिता देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ तत्पार्श्वे च तदा तेन निर्मितः पुरुषोत्तमः ॥ ९१ ॥ ताभ्यां चाहं तथा ब्रह्मा ततश्च गुणरूपतः ॥ अवतीर्य स्वयं रुद्रो लोकानां हितकारकः ॥ ९२ ॥ ततो वेदास्तथा देवा यत्किंचिद्दृश्यते जगत् ॥ स्थावरं जंगमं चैव तत्सर्वं शंकरादभूत् ॥ ९३ ॥ तद्रूपम्वर्णितं केन ज्ञायते केन वा पुनः ॥ मया च ब्रह्मणा यस्य ह्यतो लब्धश्च नैव हि ॥ ९४ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं यत्किञ्चिद्दृश्यते जगत् ॥ तत्सर्वं च शिवं विद्धि नात्र कार्या विचारणा ॥ ९५ ॥

और सुरूप होकरभी सबके सेवनीय हैं ॥ ९० ॥ मूल प्रकृति ईश्वरी यह देवी इन्होंने ही निर्माण कीहै उसीके पार्श्वमें इन्होंने पुरुषोत्तमको निर्माण किया है ॥९१॥ उन्ही प्रकृति पुरुषसे मैं तथा ब्रह्माजी हुए हैं, और लोकोंपर हित करनेकी इच्छासे सगुणरूपसे रुद्र स्वयं प्रगट हुए हैं ॥ ९२ ॥ इसके उपरान्त वेद तथा देवता स्थावर जंगम यह जो कुछ जगत् दीखता है सब शंकरसे हुआ है ॥ ९३ ॥ उनका रूप कौन वर्णन करसकता और जान सकता है, मैं और ब्रह्मातक जिसको नहीं जान सकते ॥ ९४ ॥ ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जो कुछ जगत् दीखता है वह सबही शिवरूप जानो, इसमें विचारकी

आवश्यकता नहीं ॥ ९५ ॥ वही इस प्रकारके स्वरूपसे अपनी लीलासे उत्पन्न हुए हैं, वह पार्वतीके तप प्रभावसे ही तुम्हारे द्वारे आये हैं ॥ ९६ ॥ हे हिमालयकी पत्नी ! इसकारण तुम दुःखको छोडकर शिवजीका भजन करो ऐसा करनेसे महाआनंद होगा और क्लेशका भी नाश होगा ॥ ९७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जब विष्णुजीने इस प्रकारसे मेनाको समझाया तब मेनाका चित्त कुछेक कोमल हुआ ॥ ९८ ॥ परन्तु शिवको कन्या न देनेकी हठ उसने न छोडी, कारण कि वह उस समय शिवकी मायासे मोहित होरही थी ॥ ९९ ॥ गिरिप्रिया, पार्वतीकी माता मेना विष्णुजीके मनोहर वचन सुनकर कुछेक

स एवेदृक्सुरूपेणावतीर्णों निजलीलया ॥ शिवातपःप्रभावाद्धि तव द्वारि समागतः ॥ ९६ ॥ तस्मात्त्वं हिमवत्पत्नि दुःखं मुञ्च शिवम्भज ॥ भविष्यति महानन्दः क्लेशो यास्यति संक्षयम् ॥ ९७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवम्प्रबोधितायास्तु मेनकाया अभून्मुने ॥ तस्यास्तु कोमलं किंचिन्मनो विष्णु प्रबोधितम् ॥ ९८ ॥ परं हठं न तत्याज कन्यान्दातुं हराय न ॥ स्वीचकार तदा मेना शिवमायाविमोहिता ॥ ९९ ॥ उवाच च हरिं मेना किञ्चिद्धुद्धा गिरिप्रिया ॥ श्रुत्वा विष्णुवचो रम्यं गिरिजाजननी हि सा ॥ १०० ॥ यदि रम्यतनुस्स्यात्तदा देया मया सुता ॥ नान्यथा कोटिशो यत्नैर्वच्मि सत्यन्दृढं वचः ॥ १०१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं मेना तूष्णीमास दृढव्रता ॥ शिवेच्छाप्रेरिता धन्या तथा याखिलमोहिनी ॥ १०२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखंडे मेनाप्रबोधवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे त्वं हि विष्णुना प्रेरितो द्रुतम् ॥ अनुकूलयितुं शम्भुमयास्तन्निकटे मुने ॥ १ ॥ तत्र गत्वा स वै रुद्रो भवता सुप्रबोधितः ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैस्स्तुत्वा देवकार्यचिकीर्षया ॥ २ ॥

रोषसे बोली ॥ १०० ॥ यदि शंकरका शरीर मनोहर हो जाय तो मैं अपनी कन्या शंकरको दे सकती हूं नहीं तो कोटि यत्न करो मैं कन्या शंकरको नहीं दूंगी यह मेरा सत्य और दृढ वचन है ॥ १०१ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे धन्य और दृढव्रतवाली मेना शिवकी जगत् मोहनेवाली मायासे प्रेरित हो यह वचन कह मौन हुई ॥ १०२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीये पार्वतीखण्डे मेनाप्रबोधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले इसी अवसरमें तुम विष्णुजीसे प्रेरित हो शीघ्रतासे शिवजीके प्रसन्न करनेको उनके समीप गये ॥ १ ॥ वहां जाकर आपने रुद्रको समझाया

और देवकार्य करनेकी इच्छासे अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ २ ॥ तुम्हारे यह वचन सुनकर कृपालुता दिखानेके निमित्त शिवजीने बडा दिव्य और अद्भुतरूप दिखाया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे कामदेवसे भी अधिक सुन्दर शिवजीका रूप देखकर तथा दूसरोंके मान चूर्ण करनेवाला लावण्य देखकर तुम बडे प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ परमानन्दसे संयुक्त होकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके हे मुने ! तुम वहां आये जहां मेना स्थित थी ॥ ५ ॥ हे मुने ! तुम प्रसन्नता और प्रेमसे वहां जाकर और गिरिराजपत्नी मेनाको प्रसन्न करते हुए इस प्रकारसे बोले ॥६॥ नारदजी बोले, हे मेना ! हे विशाल नेत्रवाली ! *

श्रुत्वा त्वद्वचनं प्रीत्या शंभुना धृतमद्भुतम् ॥ स्वरूपमुत्तमन्दिव्यं कृपालुत्वं च दर्शितम् ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा सुन्दरं शम्भुं स्वरूपम्मन्मथाधिकम् ॥ अत्यहृष्यो मुने त्वं हि लावण्यपरमायनम् ॥ ४ ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैस्स्तुत्वा परमानन्दसंयुतः ॥ आगच्छस्त्वं मुने तत्र यत्र मेना स्थिताखिलैः ॥ ५ ॥ तत्रागत्य सुप्रसन्नो मुनेऽतिप्रेमसंकुलः ॥ हर्षयंस्तां शैलपत्नीं मेनान्त्वं वाक्यमब्रवीः ॥ ६ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ मेने पश्य विशालाक्षि शिवरूपमनुत्तमम् ॥ कृता शिवेन तेनैव सुकृपा करुणात्मना ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा सा तद्वचो मेना विस्मिता शैलकामिनी ॥ ददर्श शिवरूपन्तत्परमानन्ददायकम् ॥ ८ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम् ॥ विचित्रवसनं चात्र नानाभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥ सुप्रसन्नं सुहासं च सुलावण्यं मनोहरम् ॥ गौराभं द्युतिसंयुक्तं चन्द्ररेखाविभूषितम् ॥ १० ॥ सर्वैर्देवगणैः प्रीत्या विष्ण्वाद्यैस्सेवितं तथा ॥ सूर्येण च्छत्रितं मूर्ध्नि चन्द्रेण च विशोभितम् ॥ ११ ॥

तुम शिवजीका अद्भुत रूप देखो जो करुणामय शंकरने तुमपर बडी कृपाकर धारण किया है ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले शैलकामिनी मेना यह वचन सुनतेही विस्मित होकर परम आनन्द देनेवाले उन शिवजीके रूपको देखने लगी ॥ ८ ॥ कोटि सूर्यकी समान कांतिमान् सम्पूर्ण अवयवोंसे सुन्दर विचित्र वस्त्र और अनेक प्रकारके भूषण धारण किये ॥ ९ ॥ सुन्दर प्रसन्नतासे युक्त लावण्यतासे मनोहर गौरकांति, चन्द्ररेखासे विभूषित ॥ १० ॥ विष्णुआदि सब देवता

---

* विशाल नेत्रवाली कहनेका भाव यह कि आज शङ्करका दर्शन करके इनकी विशालता सार्थक हुई ।

कुतूहल बहुत बढगया था ॥ ३० ॥ कोई स्त्री आंखमें सुरमा लगा रही थी एक हाथमें सुरमेंकी सलाई लियेही दूसरे नेत्रमें विना सुरमा लगाये पार्वतीके वरको देखनेकी इच्छासे चली ॥ ३१ ॥ कोई स्त्री अपने पैरमें महावर लगा रही थी वह बरातका शब्द सुनकर उसे छोडकर उठ दौडी ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे अपने बहुतसे घरके कामकाज छोडकर स्त्रियें चलीं और शिवजीके रूपको देखकर सब कोई मोहको प्राप्त होगईं ॥ ३३ ॥ तब वे सब प्रेमसे व्याकुल हो शिवदर्शनकी इच्छा कर उनकी मूर्त्ति हृदयमें धारण कर यह वचन बोली ॥ ३४ ॥ पुरवासिनी बोली हिमालयके नगरमें रहनेवालोंके नेत्र

काचिद्धस्ते शलाकां च धृत्वांजनकरा प्रिया ॥ अञ्जित्वैकाक्षि सन्द्रष्टुं ययौ शैलसुतावरम् ॥ ३१ ॥ काचित्तु कामिनी पादौ रञ्जयन्ती ह्यलक्तकैः ॥ श्रुत्वा घोषं च तद्धित्वा दर्शनार्थमुपागता ॥ ३२ ॥ इत्यादि विविधं कार्यं हित्वा वासं स्त्रियो ययुः ॥ दृष्ट्वा तु शांकरं रूपं मोहं प्राप्तास्तदाऽभवन् ॥ ३३ ॥ ततस्ताः प्रेमसंविग्नाश्शिवदर्शनहर्षिताः ॥ निधाय हृदि तन्मूर्तिं वचनं चेदमब्रुवन् ॥ ३४ ॥ पुरवासिन्य ऊचुः ॥ नेत्राणि सफलान्यासन्हिमवत्पुरवासिनाम् ॥ यो योऽपश्यद्दो रूपं तस्य वै सार्थकं जनुः ॥ ३५ ॥ तस्यैव सफलं जन्म तस्यैव सफलाः क्रियाः ॥ येन दृष्टश्शिवस्साक्षात्सर्वपापप्रणाशकः ॥ ३६ ॥ पार्वत्या साधितं सर्वं शिवार्थे यत्तपः कृतम् ॥ धन्येयं कृतकृत्येयं शिवा प्राप्य शिवम्पतिम् ॥ ३७ ॥ यदीदं युगलं ब्रह्मा न युंज्याच्छिवयोर्मुदा ॥ तदा च सकलोऽप्यस्य श्रमो निष्फलतामियात् ॥ ३८ ॥ सम्यक् कृतं तथा चात्र योजितं युग्ममुत्तमम् ॥ सर्वेषां सार्थता जाता सर्वकार्यसमुद्भवा ॥ ३९ ॥ विना तु तपसा शम्भोर्दर्शनं दुर्लभन्नृणाम् ॥ दर्शनाच्छंकरस्यैव सर्वे याताः कृतार्थताम् ॥ ४० ॥

सफल हुए जिस जिसने यह शंकरका रूप देखा उस उसका जन्म सफल होगया ॥ ३५ ॥ उसीका सफल जन्म और उसीकी क्रिया सफल है जिसने
पापके नाश करनेवाले साक्षात् शंकरका दर्शन किया ॥ ३६ ॥ पार्वतीने ही यह सब बात साधली जिसने शिवजीके निमित्त तपस्या की, यह पार्वती
और कृतकृत्य है, जिसने शिवजीको पति पाया है ॥ ३७ ॥ यदि ब्रह्मा यह शिवा शिवकी जोडी न बनाता तो जगत्के निर्माणका इसका सबही
हो जाता ॥ ३८ ॥ यह उसने बहुतही उत्तम किया जो यह जोडा मिलाया, सब कार्यकी और सबकी सार्थकता होगई ॥ ३९ ॥ विना

शिवजीका दर्शन दुर्लभ है, शंकरके दर्शनसे सबही कृतार्थताको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥ जैसे पूर्व कालमें लक्ष्मीने नारायणको प्राप्त
पार्वती देवी शिवजीको प्राप्त होकर शोभायमान हुई है ॥ ४१ ॥ पहले जिस प्रकार सरस्वतीने अपने स्वामी ब्रह्माजीको पाया था, वैसेही यह पा
शिवजीको प्राप्त होकर शोभायमान हुई है ॥ ४२ ॥ हम सब स्त्री और पुरुष धन्य हैं जो सर्वेश गिरिजापति शंकरका दर्शन करते हैं ॥ ४३ ॥
बोले यह वचन कहकर स्त्रियोंने चन्दन अक्षतसे शंकरकी पूजा की और उनके ऊपर खीलैं वरसाई ॥ ४४ ॥ वहां सब स्त्रियें मेनकाके साथ उत्कंठा

लक्ष्मीर्नारायणं लेभे यथा वै स्वामिनम्पुरा ॥ तथासौ पार्वती देवी हरम्प्राप्य सुभूषिता ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणं च यथा लेभे स्वामिनं वै सर
स्वती ॥ तथासौ पार्वती देवी हरम्प्राप्य सुभूषिता ॥ ४२ ॥ वयन्धन्याः स्त्रियस्सर्वाः पुरुषास्सकला वराः ॥ ये ये पश्यन्ति सर्वेशं
शंकरं गिरिजापतिम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थमुक्का तु वचनं चन्दनैश्चाक्षतैरपि ॥ शिवं समर्चयामासुर्लाजान्ववृषुरादरात् ॥ ४४ ॥
तस्थुस्तत्र स्त्रियः सर्वा मेनया सह सोत्सुकाः ॥ वर्णयन्त्योऽधिकम्भाग्यम्मेनायाश्च गिरेरपि ॥ ४५ ॥ कथास्तथाविधाश्शृण्वंस्तद्धामा
वर्णिताश्शुभाः ॥ प्रहृष्टोऽभूत्प्रभुः सर्वैर्मुने विष्णवादिभिस्तदा ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्व
तीखण्डे शिवसुन्दरस्वरूपपुरवास्युत्सववर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ शंभुः प्रसन्नात्मा सदूतं
स्वगणैस्सुरैः ॥ सर्वैरन्यैर्गिरेर्द्धाम जगाम सकुतूहलम् ॥ १ ॥ मेनापि स्त्रीगणैस्तैश्च हिमाचलवरप्रिया ॥ तत उत्थाय स्वगृहाभ्यंतरं
सा जगाम ह ॥ २ ॥ नीराजनार्थं शम्भोश्च दीपपात्रकरा सती ॥ सर्वर्षिस्त्रीगणैस्साकमगच्छद्द्वारमादरात् ॥ ३ ॥

स्थित हुईं और मेना तथा हिमालयका महाभाग्य वर्णन करने लगीं ॥ ४५ ॥ उन स्त्रियोंकी कहीहुई अनेक प्रकारकी वार्ता सुनते विष्णुआदि देव और
मुनियोंके साथ भगवान् शंकर प्रविष्ट हुए ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवम० भा० रु० तृ० पार्वतीखंडे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी बोले तब
शिवजी महाराज प्रसन्नहो अपने गण दूत और देवताओंके साथ तथा और सबको साथ ले कुतूहलसे हिमालयके यहां चले ॥ १ ॥ हिमाचलकी श्रेष्ठ प्रिया
मेना भी सब स्त्रियोंके साथ उठकर अपने घरके भीतर गई ॥ २ ॥ वह सती शिवजीके नीराजनके निमित्त हाथमें दीपक ले सब स्त्रियोंको साथ लेकर बडे

धारण किये ॥ ७ ॥ वह सुभगा मनसे शिवजीका ध्यान करती हुई वहीं स्थित हुई त्रिजगत्की प्रगट करनेवाली शैलकन्या बडी शोभाको प्राप्त हुई ॥८॥ दोनों ओरका आनन्द करनेवाला बडा महोत्सव उस समय हुआ, और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारसे दान दिया गया, ॥ ९ ॥ और दूसरे मांगनेवालोंको भी बडा दान दिया गया, गीत बाजे और विनोदसे बडा उत्सव मनाया गया ॥ १० ॥ तब विष्णुजी, मैं, ब्रह्मा, इन्द्र और दूसरे सब देवता और मुनिजन भी महोत्साहसे महाउत्सव करने लगे ॥ ११ ॥ भक्तिसे शिवाको प्रणाम कर और शिवजीके पदकमल स्मरणकर गिरिआज्ञा पाय सब अपने २ स्थानोंमें बैठ

स्थिता तत्रैव सुभगा ध्यायन्ती मनसा शिवम् ॥ शुशुभेति महाशैलकन्यका त्रिजगत्प्रसूः ॥ ८ ॥ तदोत्सवो महानासीदुभयत्र मुदा
वहः ॥ दानं बभूव विविधं ब्राह्मणेभ्यो विवर्णितम् ॥ ९ ॥ अन्येषां द्रव्यदानं च बभूव विविधम्महत् ॥ गीतवाद्यविनोदश्च तत्रोत्सवपु
रस्सरम् ॥ १० ॥ अथ विष्णुरहं धाता शक्राद्या अमरास्तथा ॥ मुनयश्च महाप्रीत्या निखिलास्सोत्सवा मुदा ॥ ११ ॥ सुप्रणम्य
शिवां भक्त्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ सम्प्राप्य हिमगिर्य्याज्ञां स्वं स्वं स्थानं समाश्रिताः ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र ज्योतिःशास्त्र
विशारदः ॥ हिमवन्तं गिरींद्रं तं गर्गो वाक्यमभाषत ॥ १३ ॥ ॥ गर्ग उवाच ॥ हिमाचल धराधीश स्वामिन् कालीपितः प्रभो ॥
पाणिग्रहार्थं शंभुं चानय त्वं निजमंदिरम् ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ तं समयं ज्ञात्वा कन्यादानोचितं गिरिः ॥ निवेदितं च
गर्गेण मुमुदेऽतीव चेतसि ॥ १५ ॥ महीधरान्द्विजांश्चैव परानपि मुदा गिरिः ॥ प्रेषयामास सुप्रीत्या शिवानयनकाम्यया ॥ १६ ॥
ते पर्वता द्विजाश्चैव सर्वमंगलपाणयः ॥ संजग्मुस्सोत्सवाः प्रीत्या यत्र देवो महेश्वरः ॥ १७ ॥

गये ॥ १२ ॥ इसी समयमें ज्योतिश्शास्त्रमें पण्डित गर्गाचार्यजी हिमालयसे इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥१३॥ गर्गजी बोले हे हिमाचल ! हे धराधीश ! स्वामिन् ! हे प्रभो ! हे कालीके पिता ! पाणिग्रहणके निमित्त शिवजीको अपने मंदिरमें ले जाओ ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले तब गिरिराज कन्यादानका उचित समय जानकर गर्गका कथन सुन मनमें बडे प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ तब गिरिराज प्रसन्न होकर महीधर और दूसरे ब्राह्मणादिको शिवजीके आगमनकी इच्छासे भेजते हुए ॥ १६ ॥ वे पर्वत और द्विज मंगल हाथमें लिये सब मिलकर महाउत्सव और प्रेमसे शिवजीके समीप गये ॥ १७ ॥

उस समय बाजोंका शब्द और वेदोंका शब्द होने लगा और गीत नृत्य आदिसे महामहोत्सव होने लगा गीत और नृत्य होने लगा ॥ १८ ॥ उनके बाजोंके
शब्द सुनकर शिवजी देवता ऋषिगणोंके सहित वे एक साथही उठ खडे हुए ॥ १९ ॥ और हर्षसे निर्भर मन होकर परस्पर कहने लगे हिमालय यहां शिवजीके
बुलानेकी इच्छासे आते हैं ॥२०॥ इस समय यह पाणिग्रहणका समय प्राप्त हुआ है इस समय हम सबका बडा भाग्य है यह हम मानतेहैं॥ २१ ॥शिवा शिवका
विवाह देखेंगे इससे हम विशेषकर धन्य हैं यह व्याह जगत्का मंगलस्वरूप है ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे जब आदरपूर्वक उनका संवाद हुआ उसी

तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ महोत्साहोऽभवत्तत्र गीतनृत्यान्वितेन हि ॥ १८ ॥ श्रुत्वा वादित्रनिर्घोषं सर्वे शंकरसेवकाः ॥
उत्थितास्त्वैकपद्येन सदेवर्षिगणा मुदा ॥ १९ ॥ परस्परं समूचुस्ते हर्षनिर्भरमानसाः ॥ अत्रागच्छंति गिरयश्शिवानयनकाम्यया
॥ २० ॥ पाणिग्रहणकालो हि नूनं सद्यस्समागतः ॥ महद्भाग्यं हि सर्वेषां संप्राप्तमिह मन्महे ॥ २१ ॥ धन्या वयं विशेषेण विवाहं
शिवयोर्ध्रुवम् ॥ द्रक्ष्यामः परमप्रीत्या जगतां मंगलालयम् ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं यावदभूत्तेषां संवादस्तत्र चादरात् ॥ तावत्सर्वे
समायाताः पर्वतेंद्रस्य मंत्रिणः ॥ २३ ॥ ते गत्वा प्रार्थयां चक्रुश्शिवं विष्णवादिकानपि ॥ कन्यादानोचितः कालो वर्तते गम्यतामि
ति ॥ २४ ॥ ते तच्छ्रुत्वा सुरास्सर्वे मुने विष्णवादयोऽखिलाः ॥ मुमुदुश्चेतसातीव जयेत्यूचुर्गिरिं द्रुतम् ॥ २५ ॥ शिवोऽपि मुमुदेऽतीव
कालीप्रापणलालसः ॥ गुप्तं चकार तच्चिह्नं मनस्येवाद्भुताकृतिः ॥ २६ ॥ अथ स्नानं कृतन्तेन मङ्गलद्रव्यसंयुतम् ॥ शूलिना सुप्रसन्नेन
लोकानुग्रहकारिणा ॥ २७ ॥ स्नातस्सुवाससा युक्तस्सर्वैस्तैः परिवारितः ॥ आरोपितो वृषस्कन्धे लोकपालैस्सुसेवितः ॥ २८ ॥

समय हिमालयके सब मंत्री सहित आनकर प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ उन्होंने विष्णुजीसे और शिवजीसे प्रार्थना की कि यह कन्यादानका उपयोगी समय आगया
है, आप चलिये ॥ २४ ॥ वे सब देवता और सब विष्णुआदिक मनमें प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे ॥ २५ ॥ और कालीके प्राप्तहोनेकी लालसासे
शिवजी भी बडे प्रसन्न होगये, और मनमें अद्भुत आकृति थी पर उस प्रेमके चिह्नको गुप्त रक्खा ॥ २६ ॥ फिर मंगल द्रव्यके सहित शंकरने स्नान किया,
लोकके अनुग्रह करनेवाले शिवजी बडे प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ उन सबके सहित शिवजीने स्नान किया, और सब सेवकोंने लोकपालोंने शिवजीको वृषके स्कंधपर

चढाया ॥ २८ ॥ उस समय प्रभुको आगेकर सब कोई हिमालयके घर गये, सब बाजे बजाते और कुतूहल करते चले ॥ २९ ॥ हिमालयके भेजे हुए विप्र और वे दिव्यदेहधारी पर्वत कुतूहल करते हुए, शिवजीके आगे २ चले ॥ ३० ॥ शिवजीके ऊपर शोभायमान छत्र लगाया गया और दूसरे सेवक महेश्वर पर चमर करने लगे ॥ ३१ ॥ मैं, विष्णु, इन्द्र और सब लोकपाल परम लक्ष्मीके सहित अव्यग्रतासे शोभायमान हुए ॥ ३२ ॥ उसी समय शंख, भेरी, पटह, आनक, गोमुख आदि बाजे उस महोत्सवमें वारंवार बजाये जाने लगे ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार सब गानेवाले परम मंगलसे गाने लगे और नाचनेवाली

पुरस्कृत्य प्रभुं सर्वे जग्मुर्हिमगिरेर्गृहम् ॥ वाद्यानि वादयन्तश्च कृतवन्तः कुतूहलम् ॥ २९ ॥ हिमागप्रेषिता विप्रास्तथा ते पर्वतोत्तमाः ॥ शम्भोरग्रचरा ह्यासन्कुतूहलसमन्विताः॥ ३० ॥ बभौ छत्रेण महता ध्रियमाणो हि मूर्द्धनि ॥ चामरैर्वीज्यमानोऽसौ सवितानो महेश्वरः ॥ ३१ ॥ अहं विष्णुस्तथा चेन्द्रो लोकपालास्तथैव च ॥ अग्रगाः स्मातिशोभन्ते श्रिया परमया श्रिताः ॥ ३२ ॥ ततश्शङ्खाश्च भेर्य्यश्च पटहानकगोमुखाः ॥ पुनः पुनरवाद्यन्त वादित्राणि महोत्सवे ॥ ३३ ॥ तथैव गायकास्सर्वे जगुः परममङ्गलम् ॥ नर्तक्यो ननृतुस्सर्वा नानातालसमन्विताः ॥ ३४ ॥ एभिस्समेतो जगदेकबन्धुर्ययौ तदानीं परमेशवर्चसा ॥ सुसेव्यमानस्सकलैस्सुरेश्वरैर्विकीर्यमाणः कुसुमैश्च हर्षितैः ॥ ३५ ॥ सम्पूजितस्तदा शम्भुः प्रविष्टो यज्ञमण्डयम् ॥ संस्तूयमानो बह्वीभिः स्तुतिभिः परमेश्वरः ॥ ३६ ॥ वृषादुत्तारयामासुर्महेशम्पर्वतोत्तमाः ॥ निन्युर्गृहान्तरम्प्रीत्या महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ३७ ॥ हिमालयोऽपि सम्प्राप्तं सदेवगणमीश्वरम् ॥ प्रणम्य विधिवद्भक्त्या नीराजनमथाकरोत् ॥ ३८ ॥

अनेक तालसे गाने लगीं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार इन सबके सहित जगत्के एक बन्धु परमेशकी कान्ति धारण करनेवाले सब देवेश्वरोंसे सेवित हुए स्त्रियोंके वर्षाये फूलकी वर्षाको ग्रहण करते हुए गये ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे पूजितहो शिवजी यज्ञमंडपमें प्रविष्ट हुए उस समय परमेश्वरकी अनेक प्रकारसे स्तुति होने लगी ॥ ३६ ॥ पर्वतोत्तमने महेश्वरको वृषपरसे उतारा और महोत्सवपूर्वक प्रेमसे घरके भीतर ले गये ॥ ३७ ॥ और देवता और गणोंसहित शंकरको आया

हुआ देखकर हिमालयने परम प्रेमसे नीराजन किया ॥ ३८ ॥ और महोत्सवसहित सब देवता और अन्य मुनियोंको प्रणाम कर अपनी विधिसे प्रशंसापूर्वक उन सबका सन्मान किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे पर्वतराज भगवान् शंकर, विष्णुजी और मुख्य देवगणोंको अर्घ्यदान देकर अपने घरमें लिवाले गये ॥ ॥ ४० ॥ और आंगनमें उन सबको रत्नोंके सिंहासनपर बैठाया विशेषकर विष्णु, शिव और दूसरे देवताओंका सत्कार किया ॥ ४१ ॥ मेनाने अपनी सखीजनो तथा ब्राह्मणोंकी स्त्रीजनोंसहित तथा अन्य ब्राह्मणोंकी स्त्रियों सहित प्रेमसे नीराजन किया ॥ ४२ ॥ कृत्यके जाननेवाले पुरोहितने महात्मा

सर्वान्सुरान्मुनीनन्यान्प्रणम्य समहोत्सवः ॥ सम्मानमकरोत्तेषां प्रशंसन्स्वविधिम्मुदा ॥ ३९ ॥ सोऽगस्साच्युतमीशानं सुपाद्यार्घ्यं पुरस्सरम् ॥ सदेवमुख्यवर्गं च निनाय स्वालयान्तरम् ॥ ४० ॥ प्राङ्गणे स्थापयामास रत्नसिंहासनेषु तान् ॥ सर्वान्विष्णुं च मामीशं विशिष्टांश्च विशेषतः ॥ ४१ ॥ सखीभिर्मेनया प्रीत्या ब्राह्मणस्त्रीभिरेव च ॥ अन्याभिश्च पुरन्ध्रीभिश्चक्रे नीराजनम्मुदा ॥ ४२ ॥ पुरोधसा कृत्यविदा शंकराय महात्मने ॥ मधुपर्कादिकं यद्यत्कृत्यं तत्तत्कृतं मुदा ॥ ४३ ॥ मया स नोदितस्तत्र पुरोधाः कृतवाँस्तदा ॥ सुमंगलं च यत्कर्म्म प्रस्तावसदृशम्मुने ॥ ४४ ॥ अन्तर्वेद्यां महाप्रीत्या सम्प्रविश्य हिमाद्रिणा ॥ यत्र सा पार्वती कन्या सर्वाभरणभूषिता ॥ ४५ ॥ वेदिकोपरि तन्वंगी संस्थिता सुविराजिता ॥ तत्र नीतो महादेवो विष्णुना च मया सह ॥ ४६ ॥ लग्नन्निरीक्षमाणास्ते वाचस्पतिपुरोगमाः ॥ कन्यादानोचितन्तत्र बभूवुः परमोत्सवाः ॥ ४७ ॥ तत्रोपविष्टो गर्गश्च यत्रास्ति घटिकालयम् ॥ यावच्छेषा घटी तावत्कृतम्प्रणवभाषणम् ॥ ४८ ॥

शंकरका मधुपर्कादि सब कृत्य किया ॥ ४३ ॥ तब पुरोहितजीने बडे प्रेमसे मुझसे प्रेरित होकर जितना मंगलका कर्म है वह सब प्रस्तावके समान किया ॥ ॥ ४४ ॥ हे मुने ! जहां वह पार्वती देवी सब आभरणोंसे भूषित हुई स्थित थी, वहां हिमालय बडे प्रेमसे गये ॥ ४५ ॥ वहां वह सूक्ष्मांगी वेदिकाके ऊपर विराजमान थी, वहां हिमालयके साथ शंकर, विष्णु और मैंने प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ बृहस्पति आदि वह सब देवता लग्नको देखकर वहां कन्यादानका परम उत्सव करने लगे ॥ ४७ ॥ वहां गर्गजीभी विराजमान थे, उन्होंने उस समय घडीका समय विचारा, जबतक एक घडी शेष थी तबतक प्रणव भाषण

किया ॥ ४८ ॥ गर्गने पुण्याहवाचन करके चांवलोंकी अञ्जलि धारण की, और पार्वतीको दी और वह भगवतीने शिवजीके ऊपर धारण की ॥ ४९ ॥ पार्वतीने दधि अक्षत कुशा और जलोंसे परममोद और रुचिसे शंकरकी पूजा की ॥ ५० ॥ और रुचि भरे मुखसे शिवजीको देख विचारने लगी कि जिनके निमित्त मैंने परम प्रीतिसे महातपस्या की थी, वही शंकर यहां विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ हे मुने ! पार्वतीके ऐसा विचार करनेपर तब मैंने गर्गादिसे कहा और उनकी अनुमतिसे शिवजीने लौकिक आचारके साथ पार्वतीका पूजन किया ॥ ५२ ॥ इस प्रकारसे पार्वती परमेश्वर एक दूसरेका परस्पर सत्कार करते

पुण्याहम्प्रवदन्गर्गस्समादध्रेऽञ्जलिम्मुदा ॥ पार्व्वत्यक्षतपूर्णं च ववृषे च शिवोपरि ॥ ४९ ॥ तया सम्पूजितो रुद्रो दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ परमोदाढ्यया तत्र पार्वत्या रुचिरास्यया ॥ ५० ॥ विलोकयन्ती तं शम्भुं यस्यार्थे परमन्तपः ॥ कृतम्पुरा महाप्रीत्या विरराज शिवाति सा ॥ ५१ ॥ मया मुने तदोक्तस्तु गर्गादिमुनिभिश्च सः ॥ समानर्च शिवां शम्भुर्लौकिकाचारसंरतः ॥ ५२ ॥ एवं परस्परं तौ वै पार्व्वतीपरमेश्वरौ ॥ अर्चयन्तौ तदानीञ्च शुशुभाते जगन्मयौ ॥ ५३ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्या संवीतौ निरीक्षन्तौ परस्परम् ॥ तदा नीराजितौ लक्ष्म्यादिभिस्स्त्रीभिर्विशेषतः ॥ ५४ ॥ तथा परा वै द्विजयोषितश्च नीराजयामासुरथो पुरस्त्रियः ॥ शिवाञ्च शम्भुञ्च विलोकयन्त्योऽवापुर्म्मुदन्तास्सकला महोत्सवम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमगिरिगृहाभ्यन्तरगमनोत्सववर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

हुए, वह जगन्मय उस समय परम शोभाको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखते हुए त्रिलोकीकी लक्ष्मीसे शोभायमान हुए तब लक्ष्मी आदि स्त्रियोंने विशेषरूपसे नीराजन किया ॥ ५४ ॥ पीछे ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने फिर पुरकी स्त्रियोंने उनका नीराजन किया, शिवा और शम्भु परस्पर एक दूसरेको अवलोकन करते हुए बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुए ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवम० भा० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

१ असिद्धत्वाभाव आर्षः ।

ब्रह्माजी बोले उसी अवसरमें गर्गाचार्यसे प्रेरित होकर हिमालय मेनाके साथ कन्यादान करनेकी इच्छा करने लगे ॥ १ ॥ सुवर्णका कलश लेकर मेना हिमालयके वामांगमें स्थित हुई महाभाग्यवाली मेना उस समय वस्त्र और अलंकार धारण किये थी ॥ २ ॥ तब हिमालयने प्रसन्न होकर अपने पुरोहितके सहित अर्घ्यपाद्य देकर तथा वस्त्र चन्दन देकर वरका वरण किया ॥ ३ ॥ तब हिमालयने ब्राह्मणोंको तिथ्यादि कीर्तनमें नियुक्त किया कि अब समय आगया है अब तिथि आदिका प्रयोग किया जाय ॥ ४ ॥ यह बात सुनतेही समयके जाननेवाले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण परम शान्ति और प्रीतिसे तिथि आदिका कीर्तन करने लगे ॥५॥ तब हिमालयने परम प्रसन्नतासे हृदयमें शिवजीसे प्रेरित हो हँसते हुए उन सृष्टिकर्ता शिवजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे शंकर ! आप अपना गोत्र प्रवर और कुल कहिये, तथा अपना नाम अपना वेद और अपनी शाखा बताइये समयका व्यतीत करना ठीक नहीं ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले भगवान् शंकर इस प्रकार हिमालयके वचन सुनकर तत्कालही सोचने लगे यद्यपि आप शोचरहित हैं तो भी सुमुखोंसे विमुख न होनेवाले विचारने लगे ॥ ८ ॥ जब इस प्रकारसे उस समय श्रेष्ठ देवता, मुनि, गंधर्व, यक्ष, सिद्धगणोंने शिवजीको निरुत्तर देखा तब हे नारदजी ! तुमने इस प्रकारसे उस समय उनकी

॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र गर्गाचार्य्यप्रणोदितः ॥ हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥ हैमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता ॥ हिमाद्रेश्च महाभागा वस्त्राभरणभूषिता ॥ २ ॥ पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः स्वपुरोहितः ॥ तं वरं वरयामास वस्त्रचंदनभूषणैः ॥ ३॥ ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तने ॥ प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन्समय आगते ॥ ४ ॥ तथेति चोक्त्वा ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः ॥ तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः ॥ ५ ॥ ततो हिमाचलः प्रीत्या शंभुना प्रेरितो हृदा ॥ सूतिकृताः परेशेन विहसञ्शंभुमब्रवीत् ॥ ६ ॥ स्वगोत्रं कथ्यतां शम्भो प्रवरश्च कुलं तथा ॥ नाम वेदं तथा शाखां माकार्षीस्समयात्ययम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमाद्रेश्शंकरस्तदा ॥ सुमुखाविमुखः सद्योऽप्यशोच्यः शोच्यतां गतः ॥ ८ ॥ एवंविधस्सुरवरैर्मुनिभिस्तदानीं गंधर्वयक्षगणसिद्धगणैस्तथैव ॥ दृष्टो निरुत्तरमुखो भगवान्महेशोऽकार्षीस्सुहास्यमथ तत्र स नारद त्वम् ॥ ९ ॥

सहायताकी ॥ ९ ॥ हे नारदजी ! तुम उस समय ब्रह्मत्तत्त्वके जान्नेवाले मनमें शिवजीसे प्रेरित हो वीणा बजाने लगे ॥ १० ॥ हे बुद्धिमान् उस समय हठसे हिमालय, विष्णु, देवता और सब मुनियोंने तुमको निवारण किया ॥ ११ ॥ जिससमय शंकरकी इच्छासे तुम निवृत्त न हुए तब फिर हिमालयने तुमसे कहा हे नारदजी ! तुम अब वीणा मत बजाओ ॥१२॥ हे पण्डित ! हे देवर्षे ! जब हठसे तुमको उन्होंने निवृत्त किया तब तुम महेश्वरको स्मरणकर गिरीशसे कहने लगे ॥ १३ ॥ नारदजी बोले तुम बडे मूढ हो इस विषयमें तुम कुछभी नहीं जानते हो जो महेश्वरके विषयमें ऐसा पूछते हो तुम बडे विमुख

वीणामवादयस्त्वं हि ब्रह्मविज्ञोऽथ नारद ॥ शिवेन प्रेरितस्तत्र मनसा शंभुमानसः ॥ १० ॥ तदा निवारितो धीमान्पर्वतेंद्रेण वै हठात् ॥
विष्णुना च मया देवैर्मुनिभिश्चाखिलैस्तथा ॥ ११ ॥ न निवृत्तोऽभवस्त्वं हि स यदा शंकरेच्छया ॥ इति प्रोक्तोऽद्रिणा तर्हि वीणां मा
वादयाधुना ॥ १२ ॥ सुनिषिद्धो हठात्तेन देवर्षे त्वं यदा बुध ॥ प्रत्यवोचो गिरीशं तं सुसंस्मृत्य महेश्वरम् ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥
त्वं हि मूढत्वमापन्नो न जानासि च किंचन ॥ वाच्ये महेशविषयेऽतीवासि त्वं बहिर्मुखः ॥ १४ ॥ त्वया पृष्टो हरस्साक्षात्स्वगोत्रक
थनं प्रति ॥ समयेऽस्मिँस्तदत्यंतमुपहासकरं वचः ॥ १५ ॥ अस्य गोत्रं कुलं नाम नैव जानंति पर्वत ॥ विष्णुब्रह्मादयोऽपीह परेषां
का कथा स्मृता ॥ १६ ॥ यस्यैकदिवसे शैल ब्रह्मकोटिर्लयं गता ॥ स एव शंकरस्तेद्य दृष्टः कालीतपोबलात् ॥ १७ ॥ अरूपोऽयं
परब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ निराकारो निर्विकारो मायाधीशः परात्परः ॥ १८ ॥ अगोत्रकुलनामा हि स्वतंत्रो भक्तवत्सलः ॥
तदिच्छया हि सगुणस्सुतनुर्बहुनामभृत् ॥ १९ ॥

हो ॥ १४ ॥ तुमने जो साक्षात शंकरसे गोत्रके विषयमें पश्न किया है, यह इस समय तुम्हारा वचन महाउपहासका करनेवाला है ॥१५॥ हे पर्वतराज ! इनका गोत्र कुल जान्नेको ब्रह्मा विष्णुकीभी सामर्थ्य नहीं है, दूसरेकी तो क्या कथा है ॥ १६ ॥ हे शैल ! जिनके एक दिनमें कोटि ब्रह्मा लय होजातेहैं उन शंकरका तुमने कालीके तपोबलसे दर्शन किया है ॥ १७ ॥ यह अरूप परब्रह्म निर्गुण प्रकृतिसे परे हैं यह निराकार निर्विकार मायाधीश परेसे परे हैं ॥ ॥ १८ ॥ यह स्वतंत्र भक्तवत्सल कुल गोत्र और नामसे रहित हैं यह उसकी इच्छासेही सगुण शरीरधारी और बहुत नामवाले हुए हैं ॥ १९ ॥

जिनकी समान किसीका श्रेष्ठ गोत्र नहीं जो गोत्रहीन कुल हीन और कुलीन भी हैं, वह इस समय निःसंदेह पार्वतीके तपसे तुम्हारे जामाता हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ उस लीलाविहारीने चराचरको मोहित कर लिया है हे गिरिसत्तम ! कोई महापंडितभी यथार्थ रूपसे शंकरको नहीं जान सकता ॥ २१ ॥ लिंगाकार महेशका मस्तक आजतक कोई न देख पाया विष्णु पातालतक गये और अन्त न पाकर विस्मित हुए ॥ २२ ॥ हे पर्वतराज ! बहुत कहनेसे क्या है शिवकी माया बडी दुस्तर है उसके आधीन तीनों लोक तथा हरि ब्रह्मादिभी हैं ॥ २३ ॥ हे पार्वतीके पिता ! इस कारण आपको इस प्रकारके वरमें

सुगोत्री गोत्रहीनश्च कुलहीनः कुलीनकः ॥ पार्वतीतपसा सोऽद्य जामाता ते न संशयः ॥ २० ॥ लीलाविहारिणा तेन मोहितं च चराचरम् ॥ नो जानाति शिवं कोऽपि प्राज्ञोऽपि गिरिसत्तम ॥ २१ ॥ लिंगाकृतेर्महेशस्य केन दृष्टं न मस्तकम् ॥ विष्णुर्गत्वा हि पातालं तदेनं नाप विस्मितः ॥ २२ ॥ किंबहूक्त्या नगश्रेष्ठ शिवमाया दुरत्यया ॥ तदधीनास्त्रयो लोका हरिब्रह्मादयोपि च ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वया शिवातात सुविचार्य प्रयत्नतः ॥ न कर्तव्यो विमर्शोऽत्र त्वेवंविधवरे मनाक् ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा त्वं मुने ज्ञानी शिवेच्छाकार्यकारकः ॥ प्रत्यवोचः पुनस्तं वै शैलेंद्रं हर्षयन् गिरा ॥ २५ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु तात महाशैल शिवाजनक मद्वचः ॥ तच्छ्रुत्वा तनयां देवीं देहि त्वं शंकराय हि ॥ २६ ॥ सगुणस्य महेशस्य लीलया रूपधारिणः ॥ गोत्रं कुलं विजानीहि नादमेव हि केवलम् ॥ २७ ॥ शिवो नादमयः सत्यं नादश्शिवमयस्तथा ॥ उभयोरंतरं नास्ति नादस्य च शिवस्य च ॥ २८ ॥ सृष्टौ प्रथमजत्वाद्धि लीलासगुणरूपिणः ॥ शिवान्नादस्य शैलेंद्र सर्वोत्कृष्टस्ततस्स हि ॥ २९ ॥

कुछभी विचार न करना चाहिये, और प्रयत्नसे कन्यादान करना चाहिये ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले हे ज्ञानी मुनि ! शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले तुम इस प्रकारसे कहकर शिवजीकी प्रेरणासे शैलेन्द्रको प्रसन्न करते हुए बोले ॥ २५ ॥ नारदजी बोले हे तात ! हे शैलराज ! आप सुनिये हे पार्वतीके पिता मेरे वचन सुनकर तुम शंकरके निमित्त अपनी कन्या प्रदान कीजिये ॥ २६ ॥ यह सगुण महेश लीलासे अनेक रूप धारण करते हैं, इनका गोत्र और कुल केवल नाद ही है ॥ २७ ॥ सत्यही शिव नादमय हैं और नाद शिवमय हैं नाद और शिव इन दोनोमें भेद नहीं है ॥ २८ ॥ सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न होनेसे

लीलासे सगुण रूप धारण करनेवाले शिवजीसे ही नादकी महिमा प्रगट हुई है, इसीसे इसको सबसे श्रेष्ठ कहा है ॥ २९ ॥ हे हिमालय ! इसीसे मैंने मनमें सर्वेश्वर शंकरसे प्रेरित होकर यह वीणा बजाई थी ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! इस प्रकारसे गिरीश्वर हिमालयने जब तुम्हारे वचन सुने तब मनसे उनका विस्मय जाता रहा, और बहुत संतुष्ट हुए ॥ ३१ ॥ तब सब देवता और मुनि विस्मय रहित हो धन्य धन्य कहने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे सब चतुर शिवजीका गांभीर्य जानकर विस्मित हो महामोदसे परस्पर कहने लगे ॥ ३३ ॥ जिसकी आज्ञासे यह विशाल जगत् प्रगट हुआ है जो परेसे परे भी

अतो हि वादिता वीणा प्रेरितेन मयाद्य वै ॥ सर्वेश्वरेण मनसा शंकरेण हिमालय ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तव मुने वचस्तत्तु गिरिश्वरः ॥ हिमाद्रिस्तोषमापन्नो गतविस्मयमानसः ॥ ३१ ॥ अथ विष्णुप्रभृतयस्सुराश्च मुनयस्तथा ॥ साधुसाध्विति ते सर्वे प्रोचुर्विगतविस्मयाः ॥ ३२ ॥ महेश्वरस्य गांभीर्यं ज्ञात्वा सर्वे विचक्षणाः ॥ सविस्मया महामोदान्विताः प्रोचुः परस्परम् ॥ ३३ ॥ यस्याज्ञया जगदिदं च विशालमेव जातं परात्परतरो निजबोधरूपः ॥ शर्वः स्वतंत्रगतिकृत्परभावगम्यस्सोऽसौ त्रिलोकपतिरद्य च नस्सुदृष्टः ॥ ३४ ॥ अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः ॥ ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवंतं नगेश्वरम् ॥ ३५ ॥ पर्वता ऊचुः ॥ कन्यादाने स्थीयतां चाद्यशैलनाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव ॥ सत्यं ब्रूमो नात्र कार्यो विमर्शस्तस्मात्कन्या दीयतामीश्वराय ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः ॥ स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः ॥ ३७ ॥ इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर ॥ भार्यार्थे परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर ॥ ३८ ॥

निज बोधरूप हैं जो जगत्के संहारकर्ता स्वतंत्र गति करनेवाले परमभावसे जान्ने योग्य हैं यह त्रिलोकपति आज हमने देखे हमारे बडे भाग्य हैं ॥ ३४ ॥ तब वे पर्वतश्रेष्ठ मेरु आदि संभ्रमसे एक साथही पर्वतश्रेष्ठ हिमालयसे कहने लगे ॥ ३५ ॥ पर्वत बोले हे शैलराज ! इस समय कन्यादानमें आप स्थित हूजिये, देर करनेसे कार्य नाश होता है हम सत्य कहते हैं अब विचारकी आवश्यकता नहीं, इस कारण ईश्वरको अपनी कन्या दीजिये ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले तब हिमालयने इस प्रकार अपने सुहृदोंके वचन सुनकर विधिपूर्वक अपनी कन्याका दान किया ॥ ३७ ॥ हे परमेश्वर ! मैं तुमको इस कन्याका

दान करता हूं हे सबके ईश्वर आप इसको अपनी भार्यारूपमें ग्रहण कीजिये ॥ ३८ ॥ तब त्रिजगत्की उत्पन्न करनेवाली अपनी कन्याको हिमालयने मंत्रपूर्वक शंकरके निमित्त दान करदिया ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे पार्वतीका हाथ शिवजीके हाथमें रखकर जैसे कोई समुद्रके पार हो जाय इस प्रकार मनमें बडा प्रसन्न हुआ ॥ ४० ॥ जब परमेश्वरको हिमालयने वेदमंत्र पढकर कन्या समर्पण की तब प्रसन्न हो शंकरने पार्वतीका हाथ ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ हे मुने ! फिर पृथिवीको स्पर्शकर ‘कोदात् कस्मादात्’ इस मंत्रको लौकिकी गति दिखाते हुए शिवजीने प्रेमसे पढा ॥ ४२ ॥ उस समय आनन्दका

तस्मै रुद्राय महते मंत्रेणानेन दत्तवान् ॥ हिमाचलो निजां कन्यां पार्वतीं त्रिजगत्प्रसूम् ॥ ३९ ॥ इत्थं शिवाकरं शैलं शिवहस्ते निधाय च ॥ मुमोदातीव मनसि तीर्णकाममहार्णवः ॥ ४० ॥ वेदमंत्रेण गिरिशो गिरिजाकरपङ्कजम् ॥ जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ४१ ॥ क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोदादिति मनुं मुने ॥ पपाठ शंकरः प्रीत्या दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ ४२ ॥ महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः ॥ बभूव जयसंरावो दिवि भूम्यंतरिक्षके ॥ ४३ ॥ साधुशब्दं नमः शब्दं चक्रुस्सर्वेऽति हर्षिताः ॥ गंधर्वास्सुजगुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥ हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि ॥ मंगलं महदासीद्रै महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ४५ ॥ अहं विष्णुश्च शक्रश्च निर्जरा मुनयोऽखिलाः ॥ हर्षिता ह्यभवंश्चातिप्रफुल्लवदनाम्बुजाः ॥ ४६ ॥ अथ शैलवरस्सोदात्सुप्रसन्नो हिमाचलः ॥ शिवाय कन्यादानस्य सांगतां सुयथोचिताम् ॥ ४७ ॥

देनेवाला सर्वत्रही महोत्सव हुआ, दिवि भूमि और अन्तरिक्ष सर्वत्रही जय शब्द होने लगा ॥ ४३ ॥ सब कोई प्रसन्न हो साधु शब्द और नमः शब्द उच्चारण करने लगे प्रेमसे गंधर्व गाने और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ४४ ॥ हिमालयके पुरवासी भी मनमें बडे प्रसन्न हुए उस समय महोत्सवपूर्वक बडा मंगल हुआ ॥ ४५ ॥ मैं विष्णु, इन्द्र तथा दूसरे देवता सब मुनि सब कोई प्रसन्न होगये मुख कमल उनके प्रफुल्लित होगये ॥ ४६ ॥ तब हिमालयने कन्या

---

१ परस्मैपदमार्षम् ।

ततो बन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः॥ ददुश्शिवाय सद्रव्यं नानाविधिविधानतः ॥ ४८ ॥ हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीतये ॥ नानाविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ॥ ४९ ॥ कौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च॥ चारुरत्नविकाराणि पात्राणि विविधानि च ॥ ५० ॥ गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा ॥ दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रव्यभूषितम् ॥ ५१ ॥ नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ॥ सुवर्णजटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ॥ ५२ ॥ इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम्॥ शिवाय परमेशाय विधिनाऽऽप कृतार्थताम् ॥ ५३ ॥ अथ शैलवरो माध्यंदिनोक्तस्तोत्रतो मुदा ॥ तुष्टाव परमेशानं सद्गिरा सुकृताञ्जलिः ॥ ५४ ॥ ततो वेदविदा तेनाज्ञता मुनिगणास्तदा ॥ शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवायाः परमोत्सवाः ॥ ५५ ॥ देवाभिधानमुच्चार्य्य पर्य्युक्षणविधिं व्यधुः ॥ महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कन्यादानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दानकी सांगता प्रसन्न होकर शिवजीके निमित्त यथोचित प्रदान की ॥ ४७ ॥ तब उनके बंधुजन भक्तिसे पार्वतीका पूजन करके शिवजीके निमित्त अनेक विधि विधानसे श्रेष्ठ द्रव्य देते हुए ॥४८॥ और हिमालयने भी प्रसन्न होकर पार्वती और शिवजीकी प्रसन्नताके निमित्त अनेक प्रकारके द्रव्य दिये ॥४९॥ हे मुनीश्वर ! दहेजमें अनेक प्रकारके रत्न रत्नजटित पात्र तथा अनेक प्रकारके रत्नपात्र प्रदान किये ॥ ५० ॥ एक लाख गौ, और सजेसजाये सौ घोडे, पार्वतीमें प्रेम करनेवाली श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित एक लक्ष दासी ॥ ५१ ॥ एक कोटी हाथी, और इतनेही रथ, जो सुवर्णके जडे और रत्नोंके सारसे निर्मित थे ॥ ५२ ॥ इस प्रकारसे हिमालयने अपनी पुत्री गिरीजा शिवा परमेश शिवजीको विधिपूर्वक देकर कृतार्थता प्राप्तकी ॥५३॥ तब हिमालयने यजुर्वेदीय माध्यन्दिनी शाखाके स्तोत्रसे परमेशान शंकरको हाथ जोड श्रेष्ठवाणीसे प्रसन्न किया ॥ ५४ ॥ तब वेदके जाननेवाले उसने आज्ञाको लेकर वे परमउत्सवसे शिवाका अभिषेक करने लगे ॥ ५५ ॥ देव अभिधानका उच्चारण करके फिर उन्होंने पर्य्युक्षण विधिका विधान किया, हे मुने ! उस समय बडे आनन्दका करनेवाला उत्सव हुआ ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे कन्यादानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले तब ईश्वरने मेरी आज्ञासे ब्राह्मणोंद्वारा अग्निको स्थापनकर पार्वतीको अंकमें लेकर होम किया ॥ १ ॥ ऋक्, यजु और सामवेदके मंत्रोंसे अग्निमें शिवने आहुती दी औंर कालीके भ्राता मैनाकने लाजांजलि दी ॥ २ ॥ हे तात ! तब लोकाचारका विधान करके शिव और पार्वतीने विधिपूर्वक अग्निकी प्रदक्षिणा की ॥ ३ ॥ हे मुने ! उस समय गिरिजापति शंकरने एक अद्भुत चरित्र किया, वह सुनो मैं तुम्हारे प्रेमके कारण उसे वर्णन करता हूं ॥ ॥ ४ ॥ उसी समयमें शिवजीकी मायासे मोहित होकर मैंने देवीके मनोहर नखचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ हे मुने ! दर्शन मात्रसे ही मैं क्षुभित होगया

॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथो ममाज्ञया विप्रैस्संस्थाप्यानलमीश्वरः ॥ होमं चकार तत्रैवमङ्के संस्थाप्य पार्वतीम् ॥ १ ॥ ऋग्यजुस्साममन्त्रैश्चाहुतिं वह्नौ ददौ शिवः ॥ लाजाञ्जलिं ददौ कालीभ्राता मैनाकसंज्ञकः ॥ २ ॥ अथ काली शिवश्चोभौ चक्रतुर्विधिवन्मुदा ॥ वह्निप्रदक्षिणां तात लोकाचारं विधाय च ॥ ३ ॥ तत्राद्भुतमलश्चक्रे चरितं गिरिजापतिः ॥ तदेव शृणु देवर्षे तवस्नेहाद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥ तस्मिन्नवसरे चाहं शिवमायाविमोहितः ॥ अपश्यश्चरणे देव्या नखेन्दुञ्च मनोहरम् ॥ ५ ॥ दर्शनात्तस्य च तदाऽभूवं देवमुने ह्यहम् ॥ मदनेन समाविष्टोऽतीव क्षुभितमानसः ॥ ६ ॥ मुहुर्मुहुरपश्यं वै तदंगं स्मरमोहितः ॥ ततस्तद्दर्शनात्सद्यो वीर्यं मे प्राच्युतद्भुवि ॥ ७ ॥ रेतसा क्षरता तेन लज्जितोहं पितामहः ॥ मुने व्यमर्दं तच्छिश्नं चरणाभ्यां हि गोपयन् ॥ ८ ॥ तज्ज्ञात्वा च महादेवश्चुकोपातीव नारद ॥ हन्तुमैच्छत्तदा शीघ्रं मां विधिं काममोहितम् ॥ ९ ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्र सर्वत्र नारद ॥ जनाश्चकम्पिरे सर्व्वे भयमायाति विश्वभृत् ॥ १० ॥ ततस्तन्तुष्टुवुश्शम्भुं विष्णवाद्या निर्जरा मुने ॥ सकोपम्प्रज्वलन्तन्तन्तेजसा हन्तुमुद्यतम् ॥ ११ ॥

और कामसे मेरा मन क्षोभको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ और वारंवार मोहित होकर मैं देवीके नखचन्द्रको देखने लगा और उसीके दर्शनसे मेरा रेत पृथिवीमें पतित हुआ (अर्थात् सृष्टि रचनाका अहंकार पतित हुआ) ॥ ७ ॥ उस रेतके पात होनेसे मैं बडा लज्जित हुआ और चरणोंसे उसको छिपाते हुए गुप्तांगको मर्दित किया ॥ ८ ॥ हे नारदजी यह देखकर महादेवजीको बडा क्रोध हुआ और काममोहित मुझको शीघ्रही मारनेकी इच्छा की ॥ ९ ॥ हे नारदजी ! उस समय सर्वत्र महान् हाहाकार होने लगा, सब मनुष्य कांपगये संसार भयभीत होगया ॥ १० ॥ हे मुने ! तब विष्णु आदि देवता शिवजीकी स्तुति

करने लगे उस समय उनके कोपका तेज मानो मारडाला ही चाहता था ॥ ११ ॥ देवता बोले हे देवदेव ! हे जगत्में व्यापक ! हे परमेश ! हे सदाशिव ! जगत्पति जगन्नाथ हे जगन्मय ! आप प्रसन्न हो ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! सब भावोंके आप आत्मा हेतु और ईश्वर हो निर्विकार अविनाशी नित्य निर्विकल्प अक्षर और सबसे परे हो ॥ १३ ॥ आपका आदि अन्त मध्य यह सब कुछ नहीं है बाहर भीतर सबसे आप परेहो यह जो कुछ है सो आप नहीं हो आप सत्यस्वरूप ब्रह्म और चिद्रूप हो ॥ १४ ॥ मुक्तिकी कामनावाले दृढव्रत मुनिजन आपहीके चरणोंको सब संग छोडकर उपासना करते हैं ॥ १५ ॥ आप

देवा ऊचुः ॥ ॥ देवदेव जगव्द्यापिन्परमेश सदाशिव ॥ जगदीश जगन्नाथ सम्प्रसीद जगन्मय ॥ १२ ॥ सर्वेषामपि भावानान्त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ निर्विकारोऽव्ययो नित्यो निर्विकल्पोऽक्षरः परः ॥ १३ ॥ आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहम्बहिः ॥ यतोऽव्ययः सनैतानि तत्सत्यम्ब्रह्म चिद्भवान् ॥ १४ ॥ तवैव चरणाम्भोजम्मुक्तिकामा दृढव्रताः ॥ विसृज्योभयतस्संगं मुनयस्समुपासते ॥ १५ ॥ त्वम्ब्रह्म पूर्णममृतं विशोकं निर्गुणम्परम् ॥ आनंदमात्रमव्यग्रमविकारमनात्मकम् ॥ १६ ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमनस्य हि ॥ तदपेक्षतयात्मेशोऽनपेक्षस्सर्वदा विभुः ॥ १७ ॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयमेव च ॥ स्वर्णं कृताकृतमिव वस्तुभेदो न चैव हि ॥ १८ ॥ अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विकल्पो विदितो यतः ॥ तस्माद्भ्रमप्रतीकारो निरुपाधेर्न हि स्वतः ॥ १९ ॥ धन्या वयं महेशान तव दर्शनमात्रतः ॥ दृढभक्तजनानन्दप्रदश्शम्भो दयां कुरु ॥ २० ॥

पूर्णब्रह्म अमृतस्वरूप शोकरहित निर्गुण और परम हो, आनन्द मात्र व्यग्रता रहित विकार रहित आत्मासे भी परे हो ॥ १६ ॥ संसारके उत्पत्ति, पालन और प्रलयके तुम ही हेतुहो हे विभु ! हे आत्माके ईश्वर ! आपको कुछ अपेक्षा नहीं और दूसरे आपकी अपेक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ आप एकही सत् असत् द्वैत, अद्वैत हो, जैसे सुवर्णकी वस्तुओंमें वास्तवमें सुवर्णसे कुछ भेद नहीं है ॥ १८ ॥ अज्ञानसे पुरुषोंने आपमें विकल्पका आरोप किया है इससे उपाधिमें भ्रम है, निरुपाधिमें भ्रमका प्रतीकार होजाताहै ॥ १९ ॥ हे महेशान ! हम धन्य हैं जो आपके दर्शन मात्रसे हम भक्तजनोंको दृढ आनंद मिला है, हे

भक्तवत्सल ! अब दया कीजिये ॥ २० ॥ तुम ही आदि अनादि प्रकृतिसे परे पुरुष हो, तुम विश्वेश्वर जगन्नाथ निर्विकार परेसे परेहो ॥२१॥ यह पितामह ब्रह्माजी रजोगुणकी विश्वमूर्तिहैं और आपके प्रसादसे पुरुषोत्तम विष्णु सत्वगुणकी मूर्तिहैं ॥ २२ ॥ कालाग्नि रुद्र परमात्मा तम और गुणोंसे परे हैं वह आप सदाशिव महेशान सर्वव्यापी महेश्वर हैं ॥ २३ ॥ व्यक्त, महत्तत्त्व, पंचमहाभूत तन्मात्रा और इन्द्रिय हे महेश्वर ! हे विश्वकी मूर्त्ति ! यह सब आपमेंही अधिष्ठान किये हुए हैं ॥ २४ ॥ हे महादेव ! हे परेश ! हे करुणामय ! हे शंकर ! हे देवदेवेश पुरुषोत्तम ! अब आप प्रसन्न हूजिये ॥ २५ ॥ सातों समुद्र

त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतेस्त्वं परः पुमान् ॥ विश्वेश्वरो जगन्नाथो निर्विकारः परात्परः ॥ २१ ॥ योऽयं ब्रह्मास्ति रजसा विश्वमूर्त्तिः पितामहः ॥ त्वत्प्रसादात्प्रभो विष्णुस्सत्त्वेन पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥ कालाग्निरुद्रस्तमसा परमात्मा गुणैः परः॥सदाशिवो महेशानस्सर्वव्यापी महेश्वरः ॥ २३ ॥ व्यक्तं महच्च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ त्वयैवाधिष्ठितान्येव[1] विश्वमूर्त्ते महेश्वर ॥ २४ ॥ महादेव परेशान करुणाकर शंकर ॥ प्रसीद देवदेवेश प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ २५ ॥ वासांसि सागरास्सप्त दिशश्चैव महाभुजाः ॥ द्यौर्मूर्द्धा ते विभोर्नाभिः खं वायुर्नासिका ततः ॥ २६ ॥ चक्षूंष्यग्नी रविस्सोमः केशा मेघास्तव प्रभो ॥ नक्षत्रतारकाद्याश्च ग्रहाश्चैव विभूषणम् ॥ २७ ॥ कथं स्तोष्यामि देवेश त्वां विभो परमेश्वर ॥ वाचामगोचरोऽसि त्वं मनसा चापि शंकर ॥ २८ ॥ पञ्चास्याय च रुद्राय पञ्चाशत्कोटिमूर्तये ॥ त्र्यधिपाय वरिष्ठाय विद्यातत्त्वाय ते नमः ॥ २९ ॥

आपके वस्त्र, दशों दिशा आपकी दशभुजा, हे विभो ! द्युलोक आपका शिर, आकाश नाभि और वायु तुम्हारी नासिका है ॥ २६ ॥ अग्नि रवि और सोम तुम्हारे नेत्र हैं, हे प्रभो ! मेघ तुम्हारे केश हैं नक्षत्र तारे और ग्रह यह तुम्हारे भूषण हैं ॥ २७ ॥ हे व्यापक परमेश्वर ! हे देवेश ! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति कर सकता हूं, हे शंकर आप मन वचनसे तो परे हो ॥२८॥ आप पंच मुख रुद्र पचास कोटि मूर्त्तिवाले हो, तीन लोकके अधिपति सर्वश्रेष्ठ विद्यातत्त्वके

---

[1] अन्तर्भावितण्यर्थः ।

अधिपति आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥ आप कहनेमें नहीं आते, नित्यस्वरूप विद्युतज्वालाके रूपवाले हो अग्निवर्ण देव शंकरके निमित्त हम प्रणाम करते
हैं ॥ ३० ॥ कोटिबिजलीकी समान प्रकाशमान् आठकोन मनोहररूप धारण कर आप इस लोकमें स्थित हैं आपको प्रणाम है ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले
उनके यह वचन सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए और मुझ ब्रह्माजीके निमित्त भक्तवत्सलने शीघ्रही अभय दिया ॥ ३२ ॥ उसी समय विष्णु आदि सब देवता
और मुनि कुछेक मुस्काकर परम उत्सव करनेलगे ॥ ३३ ॥ हे तात ! मेरे उस रेतके वारं वार मर्दित होनेसे बहुतसे परम उज्ज्वल कनके होगये ॥ ३४ ॥

अनिर्देश्याय नित्याय विद्युज्ज्वालाय रूपिणे ॥ अग्निवणार्य देवाय शंकराय नमोनमः ॥ ३० ॥ विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकोणं सुशो
भनम् ॥ रूपमास्थाय लोकेऽस्मिन्संस्थिताय नमो नमः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ब्रह्मणो मे ददौ
शीघ्रमभयं भक्तवत्सलः ॥ ३२ ॥ अथ सर्वे सुरास्तत्र विष्णवाद्या मुनयस्तथा ॥ अभवन्सुस्मितास्तात चक्रुश्च परमोत्सवम् ॥ ३३ ॥
मम तद्रेतसा तात मर्दितेन मुहुर्मुहुः ॥ अभवन्कणकास्तत्र भूरिशः परमोऽज्वलाः ॥ ३४ ॥ ऋषयो बहवो जाता वालखिल्यास्सह
स्रशः ॥ कणकैस्तैश्च वीर्यस्य प्रज्वलद्भिः स्वतेजसा ॥ ३५ ॥ अथ ते ह्यृषयस्सर्वे उपतस्थुस्तदा मुने ॥ ममान्तिकं परप्रीत्या तात
तातेति चाब्रुवन् ॥ ३६ ॥ ईश्वरेच्छाप्रयुक्तेन प्रोक्तास्ते नारदेन हि ॥ बालखिल्यास्तु ते तत्र कोपयुक्तेन चेतसा ॥ ३७ ॥ ॥ नारद
उवाच ॥ गच्छध्वं संगता यूयं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ न स्थातव्यम्भवद्भिश्च न हि वोऽत्र प्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ तत्र तत्वा तपश्चाति
भवितारो मुनीश्वराः ॥ सूर्य्यशिष्याश्शिवस्यैवाज्ञया मे कथितन्त्विदम् ॥ ३९ ॥

जिससे सहस्रों बालखिल्य ऋषि प्रगट हुए, और वे वीर्यके कनकोंसे प्रगट हुए अपने तेजसे प्रज्वलित होने लगे ॥ ३५ ॥ हे मुने ! तब वे सब ऋषि मेरे
समीप स्थित होकर परम प्रीतिसे पिता पिता कहने लगे ॥ ३६ ॥ तब ईश्वरकी इच्छासे नारदजीने चित्तमें क्रोधकर उन बालखिल्य ऋषियोंसे कहा ॥ ३७ ॥
नारदजी बोले तुम सब एक साथही गंधमादन पर्वतको जाओ तुम यहां स्थित मत हो तुम्हारा यहां प्रयोजन नहीं है ॥ ३८ ॥ वहां तुम बहुतसा तप करके

---

१ आत्मनेपदमार्षम् ।

मुनीश्वर हो जाओगे और सूर्यके शिष्य हो मैंने यह बात शिवजीकी आज्ञासे कही है ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनते ही वे सम्पूर्ण ऋषि भगवान् शंकरके प्रणाम कर बहुत शीघ्र गंधमादन पर्वतको चले गये ॥४०॥ हे मुनीश्वर ! विष्णु आदिनेभी उस समय मुझे समझाया और महात्माओंकी प्रेरणासे मैं निर्भय हुआ ॥ ४१ ॥ उस समयमें भक्तवत्सल सब कार्यके करनेवाले तथा दुष्टोंके गर्व हरनेवाले शंकरकी स्तुति करने लगा ॥ ४२ ॥ हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! तुमही सबके कर्ता भर्ता और सर्वथा हर्ता हो ॥ ४३ ॥ आपकी इच्छासे ही यह चराचर स्थित हो रहा है जैसे,

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तास्ते तदा सर्वे बालखिल्याश्च पर्वतम् ॥ सत्वरम्प्रययुर्नत्वा शंकरं गन्धमादनम् ॥ ४० ॥ विष्णवादिभिस्तदाभूवं श्वासितोहं मुनीश्वर ॥ निर्भयः परमेशानप्रेरितैस्तैर्महात्मभिः ॥४१॥ अस्तवञ्चापि सर्वेशं शंकरम्भक्तवत्सलम् ॥ सर्वकार्यकरं ज्ञात्वा दुष्टगर्वापहारकम् ॥ ४२ ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ त्वमेव कर्ता सर्वस्य भर्ता हर्त्ता च सर्वथा ॥ ४३ ॥ त्वदिच्छया हि सकलं स्थितं हि सचराचरम् ॥ तन्त्यां यथा बलीवर्दा मया ज्ञातं विशेषतः ॥ ४४ ॥ इत्येवमुक्त्वा सोहं वै प्राणमं च कृताञ्जलिः ॥ अन्येऽपि तुष्टुवुस्सर्वे विष्णवाद्यास्तं महेश्वरम् ॥ ४५ ॥ अथाकर्ण्य नुतिं शुद्धां मम दीनतया तदा ॥ विष्णवादीनाञ्च सर्वेषां प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥ ४६ ॥ ददौ सोतिवरं मह्यमभयं प्रीतमानसः ॥ सर्वे सुखमतीवापुरत्यमोदमहं मुने ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे विधिमोहवर्णनं नाम नवचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

नाथसे बैल नथे होते हैं, इस प्रकार आपसे यह सब नथ रहा है ॥ ४४ ॥ यह कहकर मैंने हाथ जोड प्रणाम किया, और विष्णु आदिनेभी महेश्वरकी स्तुतिकर उनको प्रसन्न किया ॥ ४५ ॥ सबकी शुद्ध स्तुति सुन और मेरी दीनता देखकर महेश्वर, विष्णु आदि सब पर प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ और अभय करके प्रीतियुक्त मनसे मुझे सृष्टि करनेका वर दिया, हे मुने ! उस समय सबनेही सुख और आनंद माना ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्ग ततृतीयपार्वतीखण्डे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजी बोले हे मुने ! तब मैंने शिवजीकी आज्ञासे मुनिगणोंके साथ परम प्रीतिसे पार्वती और शिवके शेष कृत्यको सम्पादन किया ॥ १ ॥ हे नारदजी ! तब उन दोनोंके शिरपर अभिषेक किया गया; और ब्राह्मणोंने आदरसे शिवका दर्शन कराया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त हृदय स्पर्शका कार्य कराया गया हे विप्रेन्द्र बडे महोत्सवपूर्वक स्वस्तिवाचन हुआ ॥ ३ ॥ फिर शिवजीने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पार्वतीके शिरमें सिन्दूर लगाया, उस समय पार्वतीकी शोभा अद्भुत और वर्णनयोग्य हो गई ॥ ४ ॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवा शिव दोनों एक आसनपर विराजे, और भक्तोंके चित्तमें आनन्द उपजानेवाली परम

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततश्चाहं मुनिगणैश्शेषकृत्यं शिवाज्ञया ॥ अकार्षं नारद प्रीत्या शिवाशिवविवाहतः ॥ १ ॥ तयोश्शिरोऽभिषेकश्च बभूवा
दरतस्ततः ॥ ध्रुवस्य दर्शनं विप्राः कारयामासुरादरात् ॥ २ ॥ हृदयालम्भनं कर्म बभूव तदनन्तरम् ॥ स्वस्तिपाठश्च विप्रेन्द्र महोत्सव
पुरस्सरः ॥ ३ ॥ शिवाशिरसि सिन्दूरं ददौ शम्भुर्द्विजाज्ञया ॥ तदानीं गिरिजाभिख्याद्भुतावर्ण्या बभूव ह ॥ ४ ॥ ततो विप्राज्ञया तौ
द्वावेकासनसमास्थितौ ॥ लेभाते परमां शोभां भक्तचित्तमुदावहाम् ॥ ५ ॥ ततः स्वस्थानमागत्य संस्रवप्राशनं मुदा ॥ चक्रतुस्तौ निदे
शान्मेऽद्भुतलीलाकरौ मुने ॥ ६ ॥ इत्थं निवृत्ते विधिवद्याज्ञे वैवाहिके शिवः ॥ ब्रह्मणे पूर्णपात्रं मे ददौ लोककृते प्रभुः ॥ ७ ॥ गोदानं
विधिवच्छम्भुराचार्याय ददौ ततः ॥ महादानानि च प्रीत्या यानि मङ्गलदानि वै ॥ ८ ॥ ततश्शतसुवर्णं च विप्रेभ्यस्स ददौ पृथक् ॥
बहुभ्यो रत्नकोटीश्च नानाद्रव्याण्यनेकशः ॥ ९ ॥ तदानीममरास्सर्वे परे जीवाश्चराचराः ॥ मुमुदुश्चेतसातीव बभूवाति जयध्वनिः ॥ १० ॥

शोभाको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ फिर अपने स्थानपर आकर अद्भुत लीला करनेवाले उन दोनोंने प्रतिज्ञा पूर्वक मिष्ट प्राशन किया ॥ ६ ॥ जब इस प्रकारसे विवाहका कृत्य पूरा हो चुका तो शिवजीने लोकलीलाके अनुसार मुझ ब्रह्माको पूर्ण पात्र दिया ॥ ७ ॥ फिर शिवजीने आचार्यके निमित्त विधिपूर्वक गोदान किया, और दूसरे जो मंगलदेनेवाले महादान हैं वह भी परम प्रेमसे किये ॥ ८ ॥ फिर पृथक् पृथक् ब्राह्मणोंके निमित्त शत शत सुवर्ण मुद्रा दीं तथा अनेको रत्नकोटी और अनेक प्रकारके द्रव्य दिये ॥ ९ ॥ उस समय सब देवता और चराचर दूसरे जीव बडे प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे ॥ १० ॥

और सब प्रकारसे चारों ओर मंगल गान होने लगा और सब आनंदकी देनेवाली बाजोंकी ध्वनि होने लगी ॥ ११ ॥ विष्णुजी मैं तथा दूसरे देवता
ऋषि मुनि गिरीकी आज्ञासे परम प्रसन्न हो अपने २ ठहरनेके स्थानोंको गये ॥ १२ ॥ उस समय हिमालयके नगरकी स्त्रियें शिवको लेकर लहकोरके
स्थानमें गईं ॥ १३ ॥ और वे स्त्रियें परम आदरसे लौकिकाचार करने लगीं, और सब ओरसे आनंदका करनेवाला महोत्साह हुआ ॥ १४ ॥ तब वे
शिवा शिवको लिवा ले जाकर महा दिव्यवासालयमें ले जाकर लौकिक आचारकरती हुईं ॥ १५ ॥ इस प्रकार गिरिराजके नगरकी स्त्रियें समीप आय मंग

मङ्गलध्वनिगानश्च बभूव बहु सर्वतः॥वाद्यध्वनिरभूद्रम्यो सर्वानन्दप्रवर्द्धनः ॥ ११ ॥ हरिर्मयाथ देवाश्च मुनयश्चापरेऽखिलाः ॥ गिरि
मामन्त्र्य सुप्रीत्या स्वस्थानम्प्रययुर्द्रुतम् ॥ १२ ॥ तदानीं शैलनगरे स्त्रियश्च मुदिता वरम् ॥ शिवाशिवौ समानीय ययुः कुहवराल
यम् ॥ १३ ॥ लौकिकाचारमाजह्रुस्ताः स्त्रियस्तत्र चादृताः ॥ महोत्साहो बभूवाथ सर्वतः प्रमुदावहः ॥ १४ ॥ अथ तास्तौ समानीय
दम्पती जनशंकरौ ॥ वासालयम्महादिव्यं भवाचारं व्यधुर्मुदा ॥ १५ ॥ अथो समीपमागत्य शैलेन्द्रनगरस्त्रियः ॥ निर्वृत्य मङ्गलं कर्म
प्रापयन्दम्पती गृहम् ॥ १६ ॥ कृत्वा जयध्वनिं चक्रुर्ग्रन्थिनिर्मोचनादिकम् ॥ सस्मितास्सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ १७ ॥
वासगेहं सम्प्रविश्य मुमुदुः कामिनीवराः ॥ प्रसंशन्त्यस्स्वभाग्यानि पश्यन्तः परमेश्वरम् ॥ १८ ॥ महासुरूपवेषञ्च सर्वलावण्यसंयु
तम् ॥ नवीनयौवनस्थश्च कामिनीचित्तमोहनम् ॥ १९ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं सुसुन्दरम् ॥ सुसूक्ष्मवासो बिभ्राणं नानारत्न
विभूषितम् ॥ २० ॥ तदानीन्दिव्यनार्यश्च षोडशारं समाययुः ॥ तौ दम्पती च संद्रष्टुं महादरपुरस्सरम् ॥ २१ ॥

लकर्मसे निवृत्त होकर दोनों स्त्री पुरुषोंको घरमें प्राप्त करती हुईं ॥ १६ ॥ और जयध्वनि करके ग्रंथि खोलनेलगीं इस समय हास्य और कटाक्षोंसे उनके
शरीर पुलकायमान होगये ॥ १७ ॥ वे श्रेष्ठ स्त्रियें निवासघरमें प्रविष्ट हो पार्वती परमेश्वरको देखकर अपने भाग्यकी बडाई करने लगीं ॥ १८ ॥ वह
महास्वरूप वाला वेष सम्पूर्ण मनोहरतासे युक्त तथा नवीन यौवनमें स्थित कामिनियोंका चित्त मोहित करने वाला था ॥ १९ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुख
कटाक्षोंसे सुन्दर, बारीक वस्त्र धारण किये हुए अनेक रत्नोंसे विभूषित ॥ २० ॥ उस समय उन दोनोंके दर्शन करनेकी परम प्रीति और आदरसे षोडश

(वर्षीया) दिव्यनारियें वहां आनकर प्राप्त हुईं ॥ २१ ॥ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गंगा, अदिति, शची—इन्द्राणी, लोपामुद्रा, अरुन्धती ॥ २२ ॥ अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा और संज्ञा तथा रति यह देवताओंकी स्त्रियें आईं ॥ २३ ॥ देवकन्या, नागकन्या, मनोहर मुनिकन्या इत्यादि जो वहां आईं थीं उनकी संख्या करनेमें कौन समर्थ है ॥ २४ ॥ उनको भी रत्नोंके आसन दिये गये वे शिवके समीप बैठीं और वह क्रमसे मधुर परिहासके मधुर वचन बोलीं ॥ २५ ॥ सरस्वती बोली हे महादेव ! इस समय प्राणोंसे अधिक प्यारी सती देवी तुम्हारे समीप प्राप्त हुई, हे कामुक ! अब

सरस्वती च लक्ष्मीश्च सावित्री जाह्नवी तथा ॥ अदितिश्च शची चैव लोपामुद्राप्यरुन्धती ॥ २२ ॥ अहल्या तुलसी स्वाहा रोहिणी च वसुन्धरा ॥ शतरूपा च संज्ञा च रतिरेतास्सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥ तत्र या याः स्थितास्तासां सङ्ख्यां कर्तुं च कः क्षमः ॥ २४ ॥ ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा ॥ तमूचुः क्रमतो देव्यस्सुहासं मधुरं वचः ॥ २५ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा ॥ दृष्ट्वा प्रियास्यश्चन्द्राभं सन्तापन्त्यज कामुक ॥ २६ ॥ कालं गमय कालेश सतीसंश्लेषपूर्वकम् ॥ विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाश्रिता ॥ २७ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ लज्जां विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ तिष्ठ ताम्प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥ २८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ भोजयित्वा सतीं शम्भो शीघ्रं त्वं भुंक्ष्व मा खिदः ॥ तदाचम्य सकर्पूरन्तांबूलं देहि सादरम् ॥ २९ ॥ जाह्नव्युवाच ॥ स्वर्णकान्तिकरां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः ॥ कामिन्यास्स्वामिसौभाग्यसुखं नातः परं भवेत् ॥ ३० ॥

इनका मुखचंद्र देखकर विरहका दुःख त्याग करो ॥ २६ ॥ हे कालके अधिपति ! आप इस सतीको आलिंगन पूर्वक अपना समय बिताइये और मेरे आश्रयसे किसी समय भी तुम्हारा वियोग न हो ॥ २७ ॥ लक्ष्मी बोली हे देवेश ! अब लज्जाको छोडकर सतीको अपनी गोदीमें लो, और जिसके विना प्राण जातेथे, अब उसके प्रति क्या लज्जा है ॥ २८ ॥ सावित्री बोली हे शिवजी ! प्रेमसे सतीको भोजनकराकर तुम भी शीघ्र भोजनकरो, किसी बातका खेद मत मानो, आचमनकर सतीको कर्पूर मिश्रित ताम्बूल दीजिये ॥ २९ ॥ जाह्नवी बोली आप सुवर्णकी कान्ति वाली कंघीको हाथोंमें ले प्यारीके

केशोंको मार्जन करो स्वामीके सौभाग्यवाली स्त्रियोंको इससे अधिक और सुख नहीं है ॥ ३० ॥ अदिति बोली हे शंकर ! भोजनकर चुकने पर आप मुख शुद्धिके निमित्त आचमन करानेको पार्वतीको जल दीजिये ऐसा दम्पतिका प्रेम दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ इन्द्राणी बोली जिसके निमित्त इतने विलाप किये थे तथा जिसके निमित्त मोहसे भ्रमते फिरे थे उसको गोदीमें लेनेसे तुमको अब क्या लज्जा है ॥ ३२ ॥ लोपामुद्रा बोली हे शंकर ! यह व्यवहार है वासगृहमें भोजन करके शिवाको ताम्बूल देकर शयन कीजिये यही स्त्रियोंका व्यवहार है ॥ ३३ ॥ अरुन्धती बोली मेना तुमको शिवा नहीं देना चाहती

अदितिरुवाच ॥ भोजनान्ते शिवां शम्भुं मुखं शुद्ध्यर्थमादरात् ॥ जलं देहि महाप्रीत्या दम्पतिप्रेम दुर्लभम् ॥ ३१ ॥ शच्युवाच ॥ कृत्वा विलापं यद्धेतोः शिवां कृत्वा च वक्षसि ॥ यो बभ्रामानिशं मोहात् का लज्जा ते प्रियाम्प्रति ॥ ३२ ॥ लोपामुद्रोवाच ॥ व्यवहारोऽस्ति च स्त्रीणां भुक्त्वा वासगृहे शिव ॥ दत्त्वा शिवायै ताम्बूलं शयनं कर्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ मया दत्तां सतीमेनां तुभ्यन्दातुमनीप्सिताम् ॥ विविधं बोधयित्वेमां सुरतिङ्कर्तुमर्हसि ॥ ३४ ॥ अहल्योवाच ॥ वृद्धावस्थाम्परित्यज्य ह्यतीव तरुणो भव ॥ येन मेनानुमन्येत त्वां सुतार्पितमानसा ॥ ३५ ॥ तुलस्युवाच ॥ सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः ॥ कथन्तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ॥ ३६ ॥ स्वाहोवाच ॥ स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम् ॥ विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता ॥ ३७ ॥ ॥ रोहिण्युवाच ॥ कामम्पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद ॥ कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम् ॥ ३८ ॥

थी मैंनेही अनेक प्रकारसे समझा कर राजी किया था, अब इनके संग सुरति करो ॥ ३४ ॥ अहल्या बोली, आप वृद्धा अवस्थाको छोडकर तरुण होजाइये जिससे मेना पुत्रीदान करके तुमको माने ॥ ३५ ॥ तुलसी बोली पहले तुमने सतीको त्यागा फिर कामदेवको जलाया फिर पार्वतीके निमित्त तुमने वशिष्ठको कैसे भेजा ॥ ३६ ॥ स्वाहा बोली हे महादेव ! स्थिरहोकर इस समय स्त्रियोंके वचन सुनो विवाहोंमें यह व्यवहार होताहै कि स्त्रियें प्रगल्भ होजातीहैं ॥ ३७ ॥ रोहिणी बोली हे कामशास्त्रमें पंडित आप पार्वतीकी कामना पूर्ण कीजिये हे कामी ! आप स्वयं कामिनी रूप काम सागरको पार कीजिये ॥ ३८ ॥

वसुन्धरा बोली हे भावके ज्ञाता ! आप कामसे आर्त हुई स्त्रियोंके भावको जान्ते हो हे शंकर ! अपने स्वामी ईश्वरको कौन नहीं निरन्तर रक्षा करताहै ॥ ॥ ३९ ॥ शतरूपा बोली भूंखा पुरुष दिव्य भोगके भोगे बिना संतुष्ट नहीं होता है शंकर जिस प्रकारसे तुष्टिहो वह स्त्रियोंको करना उचित है ॥ ४० ॥ संज्ञा बोली हे सखीजनो ! रत्नका दीपक बालकर और ताम्बूल रखकर परम प्रीतिसे एकान्तमें पलंग बिछाकर उसपर शीघ्रही पार्वती और शंकरको स्थापन करदो ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले स्त्रियोंके यह वचन सुन स्वयं शिवजी उनसे कहने लगे जो भगवान् निर्विकार और योगीन्द्रोंके गुरुके गुरु हैं ॥ ४२ ॥

॥ वसुन्धरोवाच॥जानासि भावं भावज्ञ कामार्तानां च योषिताम् ॥ न च स्वं स्वामिनं शम्भो ईश्वरं पाति सन्ततम् ॥ ३९ ॥ शतरूपोवाच ॥ भोगं दिव्यं विना भुक्त्वा न हि तुष्येत्क्षुधातुरः ॥ येन तुष्टिर्भवेच्छंभो तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः ॥ ४० ॥ ॥ संज्ञोवाच ॥ तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम् ॥ रत्नप्रदीपन्ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥ ४१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्त्रीणान्तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम् ॥ निर्विकारश्च भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ४२ ॥ शङ्कर उवाच ॥ देव्यो न ब्रूत वचनमेवंभूतं ममान्तिकम् ॥ जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम् ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शङ्करस्य वचः श्रुत्वा लज्जितास्सुरयोषितः ॥ बभूवुः सम्भ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥ ४४ ॥ भुक्त्वा मिष्टान्नमाचम्य महेशो हृष्टमानसः ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे भार्यया सह ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे परिहासवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शंकर बोले हे देवियो ! इस प्रकारके वचन हमारे समीप मत कहो तुम साध्वी जगत्की माता हो अपने पुत्रमें चपलता किस प्रकार करती हो ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुनकर सब देवताओंकी स्त्रियें लज्जित होगईं और सम्भ्रमसे मौन हो चित्र पुतलीकी समान लिखी रह गईं ॥ ४४ ॥ फिर मिष्टान्न भोजनकर तथा आचमन कर शिवजी बडे प्रसन्न हुए तथा भार्यासहित कपूरयुक्त ताम्बूलका सेवन किया ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे परिहासवर्णनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

ब्रह्माजी बोले उस समय रति अनुकूल समय जानकर प्रसन्नहो भक्तवत्सल दीनानाथ शंकरसे बोली ॥१॥ रति बोली आपको ग्रहणकर पार्वतीने अतिदुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है, मेरे प्राणनाथको आपने किस निमित्त भस्म किया ॥ २ ॥ आत्मामें कामव्यापार होनेसे मेरे पतिकी जीवयात्रा सम्पादन करो, और मेरे वियोगका सन्ताप आप दूर कीजिये ॥ ३ ॥ इस आपके विवाहोत्सवमें सभी मनुष्य प्रसन्न हैं हे महेशान ! इकली मैं ही अपने पतिके विना दुःखिनी हूं ॥ ४ ॥ हे देव शंकर ! प्रसन्न होकर आप मुझे सनाथ कीजिये, हे दीनबंधु ! हे परम प्रभु ! जो जो आपने कहा है, उसे सत्य कीजिये ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्मिन्नवसरे ज्ञात्वानुकूलं समयं रतिः ॥ सुप्रसन्ना च तम्प्राह शङ्करं दीनवत्सलम् ॥ १ ॥ ॥ रतिरुवाच ॥ गृहीत्वा पार्वतीं प्राप्तं सौभाग्यमतिदुर्लभम् ॥ किमर्थं प्राणनाथो मे निस्स्वार्थं भस्मसात्कृतः ॥ २ ॥ जीवयात्रा पतिं मे हि कामव्यापारमात्मनि ॥ कुरु दूरं च सन्तापं समविश्लेषहेतुकम् ॥ ३ विवाहोत्सव एतस्मिन् सुखिनो निखिला जनाः ॥ अहमेका महेशान दुःखिनी स्वपतिम्विना ॥ ४ ॥ सनाथां कुरु मान्देव प्रसन्नो भव शङ्कर ॥ स्वोक्तं सत्यम्विधेहि त्वं दीनबन्धो पर प्रभो ॥ ५ ॥ त्वाम्विना कस्समर्थोत्र त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ नाशने मम दुःखस्य ज्ञात्वेति करुणां कुरु ॥ ६॥ सोत्सवे स्वविवाहेऽस्मिन्सर्वानन्दप्रदायिनि ॥ सोत्सवामपि मां नाथ कुरु दीनकृपाकर ॥ ७ ॥ जीविते मम नाथे हि पार्वत्या प्रियया सह ॥ सुविहारः प्रपूर्णश्च भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ सर्वं कर्तुं समर्थोसि यतस्त्वं परमेश्वरः ॥ किम्बहूक्त्यात्र सर्वेश जीवयाशु पतिं मम ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तदित्युक्त्वा कामभस्म ददौ सग्रन्थिबन्धनम् ॥ रुरोद पुरतश्शम्भोर्नाथं नाथेत्युदीर्य्य च ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ इस चराचर त्रिलोकीमें आपके बिना कौन मेरा दुःख नाश करनेको समर्थ है, ऐसा जानकर आप मेरे ऊपर कृपा करैं ॥ ६ ॥ सबके आनंद देनेवाले आपके इस विवाहोत्सवमें सब आनंदी हैं हे नाथ ! हे कृपासागर ! हे दीनरक्षक ! मेरा मनोरथ पूरा कर मुझे भी उत्सववाली कीजिये ॥ ७ ॥ इसमें संदेह नहीं कि मेरे स्वामीके जीवित होतेही पार्वतीके सहित आपका विहार पूर्ण होगा ॥ ८ ॥ आप परमेश्वरहो इससे सब कुछ पूर्ण करनेमें समर्थ हो हे सबके ईश्वर ! बहुत कहनेसे क्या है आप मेरे पतिको जीवित कीजिये ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले यह कहकर वह गांठमें बंधी हुई कामकी भस्म शंकरके

आगे रखकर शिवजीके सन्मुख हा नाथ ! हा नाथ ! कहकर रुदन करने लगी ॥ १० ॥ रतिका रोना सुनकर और भी देवताओंकी स्त्रियें रोनेलगीं और
वे सब बडे दीन वचन बोलने लगीं ॥ ११ ॥ देवी बोलीं आप भक्तवत्सल नामवाले दीनबंधु दयासागर हो आप कामको जिवाकर रतिको भी प्रसन्न
कीजिये आपको प्रणाम है ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार उनके वचन सुन महेश्वर प्रसन्न हुए, और करुणासागर प्रभुने तत्काल कृपादृष्टि की॥ १३॥
शिवजीकी अमृतमयी दृष्टिसे उस भस्ममेंसे कामदेव वैसेही रूप वेष चिह्न आत्मासे अद्भुत सुन्दर और मूर्तिमान् होकर निकल खडा हुआ ॥ १४ ॥ वही

रतिरोदनमाकर्ण्य सरस्वत्यादयः स्त्रियः ॥ रुरुदुस्सकला देव्यः प्रोचुर्दीनतरं वचः ॥ ११ ॥ ॥ देव्य ऊचुः ॥ भक्तवत्सलनामा त्वं
दीनबन्धुर्दयानिधिः ॥ कामं जीवय सोत्साहां रतिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः ॥
कृपादृष्टिं चकाराशु करुणासागरः प्रभुः ॥ १३ ॥ सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः ॥ तद्रूपवेषचिह्नात्मा सुन्दरोद्भुतमूर्ति
मान् ॥ १४ ॥ तद्रूपश्च तदाकारसंस्मितं सधनुश्शरम् ॥ दृष्ट्वा पतिं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम् ॥ १५ ॥ कृतार्थाभूच्छिवं देवं तुष्टाव
च कृताञ्जलिः ॥ प्राणनाथप्रदं पत्या जीवितेन पुनःपुनः ॥ १६ ॥ कामस्य स्तुतिमाकर्ण्य सनारीकस्य शङ्करः ॥ प्रसन्नोऽभवदत्यंतमु
वाच करुणार्द्रधीः ॥ १७ ॥ ॥ शङ्कर उवाच ॥ प्रसन्नोहं तव स्तुत्या सनारीकस्य चित्तज ॥ स्वयंभव वरम्ब्रूहि वाञ्छितं तद्ददामि
ते ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति शम्भुवचः श्रुत्वा महानन्दस्स्मरस्ततः ॥ उवाच साञ्जलिर्नम्रो गद्गदाक्षरया गिरा ॥ १९ ॥

रूप वही आकार वही हास्य उक्त धनुष बाण हाथमें लिये पतिको देखकर रतिने महेश्वरको प्रणाम किया ॥ १५ ॥ और प्राणनाथ पतिको जीवित
देखकर कृतार्थ होगई हाथ जोडकर देव शंकरको प्रणाम करने लगी ॥ १६ ॥ स्त्रीके सहित कामदेवकी स्तुति सुन शंकर करुणामय उन दोनों स्त्री पुरुषोंसे कहने
लगे ॥ १७ ॥ शंकर बोले हे काम ! स्त्री सहित तुम्हारी स्तुति सुनकर मैं प्रसन्न हुआ हूं हे स्वयंभव ! वर मांगो मैं तुमको शीघ्र वर देना चाहता हूं ॥
॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुन कामदेव बडे आनन्दको प्राप्त हुआ और नम्रतासे हाथ जोड गद्गद वाणीसे कहने लगा ॥ १९ ॥

काम बोला हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! हे सर्वेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे आनंदित कीजिये ॥ २० ॥ हे प्रभो ! जो पहले हुआ है उस मेरे अपराधको आप क्षमा कीजिये अपने जनोंमें परम प्रीति और अपने चरणोंकी भक्ति आप मुझे दीजिये ॥२१॥ ब्रह्माजी बोले कामदेवके यह वचन सुन परमेश्वर प्रसन्न हुए और हँसते हुये करुणासागरने कहा कि ऐसाही होगा ॥ २२ ॥ ईश्वरने कहा हे काम ! हे महामते ! मैं प्रसन्न हूं तुम भय त्यागन करो अब तुम विष्णुके समीप जाकर बाहर स्थित हो ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजी प्रभुके ऐसे वचन सुन कामदेवने स्तुति और परिक्रमाकर

॥ काम उवाच ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ यदि प्रसन्नस्सर्वेशः ममानन्दकरो भव ॥ २० ॥ क्षमस्व मेऽपराधं हि यत्कृतश्च पुरा प्रभो ॥ स्वजनेषु पराम्प्रीतिं भक्तिन्देहि स्वपादयोः ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य स्मरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ॐमित्युक्त्वाऽब्रवीत्तं वै विहसन्करुणानिधिः ॥ २२ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे कामाहं प्रसन्नोऽस्मि भयन्त्यज महामते ॥ गच्छ विष्णुसमीपञ्च बहिस्थाने स्थितो भव ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तच्छ्रुत्वा शिरसा नत्वा परिक्रम्य स्तुवन्विभुम् ॥ बहिर्गत्वा हरिन्देवान्प्रणम्य समुपास्त सः ॥ २४ ॥ कामं सम्भाष्य देवाश्च ददुस्तस्मै शुभाशिषम् ॥ विष्णवादयः प्रसन्नास्ते प्रोचुः स्मृत्वा शिवं हृदि ॥ २५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ धन्यस्त्वं स्मर सन्दग्धः शिवेनानुग्रहीकृतः ॥ जीवयामास सत्त्वांशकृपादृष्ट्याखिलेश्वरः ॥ २६ ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतस्स्वकृतभुक् पुमान् ॥ काले रक्षा विवाहश्च निषेकः केन वार्यते ॥ २७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा ते च सम्मान्य तं सुखेनामरास्तदा ॥ सन्तस्थुस्तत्र विष्णवाद्यास्सर्वे लब्धमनोरथाः ॥ २८ ॥

बाहर जाय हरि आदि देवताओंको प्रणाम कर स्थिति की ॥ २४ ॥ देवताओंने कामसे सम्भाषण कर उसे शुभ आशीर्वाद दिया और शिवजीको हृदयमें स्मरणकर वे विष्णु आदि देवता प्रसन्न होकर बोले ॥ २५ ॥ देवता बोले हे काम ! तुम धन्य हो जो शिवसे दग्ध होकर फिर जिये, सबके ईश्वरने सत्त्वांश कृपा दृष्टिसे तुमको जिवाया है ॥ २६ ॥ कोई सुख दुःखका देनेवाला नहीं है पुरुष अपना सुख दुःख भोगता है समय परही रक्षा और विवाह होता है यह निषेक (होनहार) कौन निवारण कर सकता है ॥ २७ ॥ ब्रह्माजी बोले देवताओंने इस प्रकारसे कह सुखपूर्वक उसका सन्मान किया और

मनोरथोंको प्राप्त होकर विष्णु आदि सब देवता वहां स्थित हुए ॥ २८ ॥ और कामदेवने भी शिवजीकी आज्ञासे वहां निवास किया उस समय जय शब्द नमस्कार शब्द और साधु शब्द होने लगा ॥ २९ ॥ उस समय शिवजीने निवासघरमें पार्वतीको बांईं ओर बैठाकर उन्हैं मिष्टान्न भोजन कराया और पार्वतीने प्रसन्न हो शंकरको मिष्टान्न भोजन कराया ॥ ३० ॥ तब शिवजीने वहां सम्पूर्ण लोकाचारकरके मेना और शैलराजसे पूछकर जनवासेमें गमन किया ॥ ३१ ॥ हे मुने ! उस समय बडा महोत्सव और वेदध्वनि हुई और वहांके लोग चार प्रकारके बाजे बाजने लगे ॥ ३२ ॥ शिवजीने अपने स्थानमें आकर

सोपि प्रमुदितस्तत्र समुवास शिवाज्ञया ॥ जयशब्दो नमश्शब्दस्साधुशब्दो बभूव ह ॥ २९ ॥ ततश्शम्भुर्वासगेहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥ मिष्टान्नं भोजयामास तं च सा च मुदान्विता ॥ ३० ॥ अथ शम्भुर्भवाचारी तत्र कृत्यम्विधाय तत् ॥ मेनामामंत्र्य शैलं च जनवासं जगाम सः ॥ ३१ ॥ महोत्सवस्तदा चासीद्वेदध्वनिरभून्मुने ॥ वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चातुर्विधानि च ॥ ३२ ॥ शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा ॥ हरिं च मां भवाचाराद्वन्दितोऽभूत्सुरादिभिः ॥ ३३ ॥ जयशब्दो बभूवाथ नमश्शब्दस्तथैव च ॥ वेदध्वनिश्च शुभदः सर्वविघ्नविदारणः ॥ ३४ ॥ अथ विष्णुरहं शक्रस्सर्वे देवाश्च सर्षयः ॥ सिद्धा उपसुरा नागास्तुष्टुवुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय शम्भोऽखिलाधार जय नाम महेश्वर ॥ जय रुद्र महादेव जय विश्वम्भर प्रभो ॥ ३६ ॥ जय कालीपते स्वामिञ्जयानन्दप्रवर्धक ॥ जय त्र्यम्बक सर्वेश जय मायापते विभो ॥ ३७ ॥

मुनियोंको प्रणाम किया, यद्यपि सब देवता उनको प्रणाम करते हैं, तथापि लौकिक आचारसे मुझे और विष्णुजीको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ उस समय जयशब्द और नमस्कार शब्द उच्चारण होनेलगा, और सब विघ्नोंकी दूरकरनेवाली सुन्दर वेदध्वनि होने लगी ॥ ३४ ॥ उस समय विष्णुजी मैं इन्द्र सब देवता सुर ऋषि सिद्ध उपदेवता और नाग पृथक् पृथक् शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥ देवता बोले हे शंकर ! हे सबके आधार ! हे जयनामवाले ! आपकी जय हो, हे महादेव ! विश्वके पालन करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो ॥ ३६ ॥ हे कालीपते ! हे स्वामिन् ! हे जय और आनन्दके बढानेवाले !

आपकी जय हो, हे त्र्यम्बक (त्रिलोचन) सबके पति मायाके पति हे व्यापक ! आपकी जय हो ॥ ३७ ॥ हे निर्गुण ! हे निष्काम ! हे कारणसे परे !
हे सर्वगामी ! हे सब लीलाके आधार अनेक रूपधारी ! आपको प्रणाम है ॥ ३८ ॥ अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले उसी स्थलमें प्रगट होनेवाले
करुणामय आपकी जय हो, हे आनन्दमय सद्रूप माया गुणोंकी आकृतिवाले आपकी जय हो ॥ ३९ ॥ उग्ररूप, सबके सुखदायक, सबके आत्मा, दीनबंधु,
दयामय, विकार रहित, मायापति, वाणी मनसे परे विग्रहवाले आपकी जय हो ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार गिरिजापति प्रभु महेशानकी स्तुतिकर

जय निर्गुण निष्काम कारणातीत सर्वग ॥ जय लीलाखिलाधार धृतरूप नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥ जय स्वभक्तसत्कामप्रदेश करुणाकर
॥ जय सानन्दसद्रूप जय मायागुणाकृते ॥ ३९ ॥ जयोग्र मृड सर्वात्मन् दीनबन्धो दयानिधे ॥ जयाविकार मायेश वाङ्मनोतीतविग्रह
॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानं गिरिजानायकम्प्रभुम् ॥ सिषेविरे परप्रीत्या विष्णवाद्यास्ते यथोचितम् ॥ ४१ ॥
अथ शम्भुर्महेशानो लीलात्ततनुरीश्वरः ॥ ददौ मानवरन्तेषां सर्वेषान्तत्र नारद ॥ ४२ ॥ विष्णवाद्यास्तेऽखिलास्तात प्राप्याज्ञाम्परमेशितुः
॥अतिहृष्टाः प्रसन्नास्याः स्वस्थानञ्जग्मुरादृताः ॥४३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसम्वादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये
पार्वतीखण्डे कामसंजीवनवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ शैलवरस्तात हिमवान्भाग्यसत्तमः ॥ प्राङ्गणं
रचयामास भोजनार्थं विचक्षणः ॥ १ ॥ मार्जनं लेपनं सम्यक्कारयामास तस्य सः ॥ स सुगन्धैरलञ्चक्रे नानावस्तुभिरादरात् ॥ २ ॥

वे विष्णु आदि देवता परम प्रीतिसे शिवजीकी सेवा करने लगे ॥ ४१ ॥ हे नारदजी ! तब लीलासे शरीर धारण करनेवाले महेशान शंकर उन सब
देवताओंका अधिक सन्मान करते हुए ॥ ४२ ॥ हे तात ! फिर वे सब विष्णु आदि देवता उन महेश्वरकी परम आज्ञाको प्राप्त होकर बहुत सुख और
प्रसन्नतासे सादर अपने अपने जनवासके स्थानको गये ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवम० भा० रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥
ब्रह्माजी बोले हे तात ! तब भाग्यवान् हिमालयने सबके भोजन करनेके निमित्त अपने आंगनमें समारोह किया ॥ १ ॥ उस आंगनको भली प्रकार धुलाकर

लिपाया, और अनेक प्रकारकी सुगंधित वस्तुओंसे उसको अलंकृत किया ॥ २ ॥ तब हिमालयने सब देवता तथा दूसरे बृहत् देवताओंको अपने पुत्रों तथा दूसरे शैलों द्वारा बुलवाया ॥ ३ ॥ हे मुने ! हिमालयके बुलावेको सुनकर शंकर विष्णु तथा और सब देवता परम प्रसन्नतासे भोजन करनेके निमित्त चले ॥ ४ ॥ हिमालयने प्रभु और सब देवताओंको यथाविधि सत्कार करके अपने घरमें प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ आसनोंपर बैठाया ॥ ५ ॥ फिर भोजन करनेकी अनेक वस्तुओंको परोसकर हाथ जोडकर सबसे भोजनके निमित्त प्रार्थना की ॥६॥ तब वे विष्णु आदि सब देवता प्रसन्न हो सम्मानित होकर

अथ शैलस्सुरान्सर्वानन्यानपि च सेश्वरान् ॥ भोजनायाह्वयामास पुत्रैश्शैलैः परैरपि ॥ ३ ॥ शैलाह्वानमथाकर्ण्य स प्रभुस्साच्युतो। मुने ॥ सर्वैस्सुरादिभिस्तत्र भोजनाय ययौ मुदा ॥ ४ ॥ गिरिः प्रभुं च सर्वांस्तान्सुसत्कृत्य यथाविधि ॥ मुदोपवेशयामास सत्पीठेषु गृहान्तरे ॥ ५ ॥ नानासुभोज्यवस्तूनि परिविष्य च तत्पुनः ॥ साञ्जलिर्भोजनायाज्ञां चक्रे विज्ञप्तिमानतः ॥६॥ अथ सम्मानितास्तत्र देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ सदाशिवं पुरस्कृत्य बुभुजुस्सकलाश्च ते ॥ ७ ॥ तदा सर्वे हि मिलिता ऐकपद्येन सर्वशः ॥ पङ्क्तिभूताश्च बुभुजुर्विहसन्तः पृथक्पृथक् ॥ ८ ॥ नन्दिभृंगिवीरभद्रवीरभद्रगणाः पृथक् ॥ बुभुजुस्ते महाभागाः कूतूहलसमन्विताः ॥ ९ ॥ देवास्सेन्द्रा लोकपाला नानाशोभासमन्विताः ॥ बुभुजुस्ते महाभागा नानाहास्यरसैस्सह ॥ १० ॥ सर्वे च मुनयो विप्रा भृग्वाद्या ऋषयस्तथा ॥ बुभुजुः प्रीतितस्सर्वे पृथक् पंक्तिगतास्तदा॥११॥तथा चण्डीगणास्सर्वे बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ कुतूहलं प्रकुर्वन्तो नानाहास्यकरा मुदा ॥१२॥

सदाशिवको आगे कर भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ तब वे सब मिलकर एक साथ पंक्ति बांधकर हास्य करते हुए पृथक् पृथक् भोजन करने लगे ॥ ८ ॥ नन्दि भृंगी वीरभद्र तथा वीरभद्रके गण यह सब महाभाग कुतूहलसहित पृथक् पृथक् भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ इन्द्रके साहित सब देवता और लोकपाल अनेक शोभाके सहित महाभाग्यताके कारण अनेक रसोंके सहित भोजन करने लगे ॥ १० ॥ सब मुनि विप्र भृगु आदि ऋषि पंक्तिमें बैठकर बडे आनन्दसे पृथक् पृथक् भोजन करनेलगे ॥ ११ ॥ इसी प्रकार सब चण्डीके गण आनन्दसे भोजन करने लगे और प्रसन्नतासे महाहास परिहास करते कुतूहल करने

लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार सबने आनन्दसे भोजन कर आचमन किया और फिर विष्णु आदि देवता आनन्दसे अपने निवासस्थानको गये ॥ १३ ॥ मेनाकी आज्ञासे सब स्त्रियें शिवजीसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना करके उनको निवासके घरमें ठहराती हुई ॥ १४ ॥ मेनाके बिछाये हुए परम मनोहर रत्नोंके सिंहासनपर शिवजी बैठे और प्रसन्नतासे उस वासमंदिरको देखा ॥ १५ ॥ जहां सैंकडों रत्नोंके दीपक प्रकाशित हो रहे थे जो रत्नोंके पात्र और रत्नोंसे शोभायमान था तथा मोती और मणियोंसे विराजमान था ॥ १६ ॥ रत्नोंके दर्पणोंसे शोभायमान श्वेत चामरोंसे मंडित मुक्तामणिकी मालाओंसे वेष्टित

एवन्ते भुक्तवन्तश्चाचम्य सर्वे मुदान्विताः ॥ विश्रामार्थं गताः प्रीत्या विष्णवाद्यास्स्वंस्वमाश्रमम् ॥ १३ ॥ मेनाज्ञया स्त्रियस्साध्व्य शिवं सम्प्रार्थ्य भक्तितः ॥ गेहे निवासयामासुर्वासाख्ये परमोत्सवे ॥ १४ ॥ रत्नसिंहासने शम्भुर्मेनादत्ते मनोहरे ॥ सन्निधाय मुदा युक्तो ददृशे वासमन्दिरम् ॥ १५ ॥ रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया ॥ रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामणिविराजितम् ॥ १६ ॥ रत्न दर्प्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः ॥ मुक्तामणिसुमालाभिर्वेष्टितं परमर्द्धिमत् ॥ १७ ॥ अनूपमम्महादिव्यं विचित्रं सुमनोहरम् ॥ चित्ताह्लादकरं नानारचनारचितस्थलम् ॥ १८ ॥ शिवदत्तवरस्यैव प्रभावमतुलम्परम् ॥ दर्शयन्तं समुल्लासि शिवलोकाभिधानकम् ॥ १९ ॥ नानासुगन्धसद्द्रव्यैर्वासितं सुप्रकाशकम् ॥ चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ॥ २० ॥ नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्म्मणा ॥ रत्नेन्द्रसाररचितैराचितं हारकैर्वरैः ॥ २१ ॥ कुत्रचित्सुरनिर्माणं वैकुण्ठं सुमनोहरम् ॥ कुत्रचिच्च ब्रह्मलोकं लोकपालपुरं क्वचित् ॥ २२ ॥

परम ऋद्धिवाला ॥ १७ ॥ अनुपम महादिव्य परमविचित्र और मनोहर चित्तका प्रसन्न करनेवाला था अनेक रचना उस स्थलमें की गई थीं ॥ १८ ॥ शिवके वरदानसे उसका महाप्रभाव होरहा था तथा शिवलोककी समान उसकी कान्ति हो रही थी ॥ १९ ॥ अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे वह स्थान सुवासित था जिसमें बडा प्रकाश था चन्दन अगरसे संयुक्त और फूलोंकी शय्यासे युक्त ॥ २० ॥ अनेक प्रकारके चित्र विचित्र पदार्थोंसे युक्त रत्नोंके सारोंसे रचित श्रेष्ठ हारसे युक्त विश्वकर्माद्वारा निर्माण किया गया ॥ २१ ॥ कहीं देवताओंके निमित्त निर्माण किया हुआ मनोहर वैकुण्ठ कहीं

ब्रह्मलोक और कहीं लोकपालोंका लोक था ॥ २२ ॥ कहीं मनोहर कैलास कहीं इन्द्रका मंदिर कहीं सबके ऊपर विराजमान शिवलोक ॥ २३ ॥ महेश्वर इस प्रकारके घर और आश्चर्यको देखकर पर्वतराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए बडे प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥ वहां अतिरमणीय रत्नोंके उत्तम पलंगमें लीलापूर्वक प्रसन्नतासे वह परमेश्वर स्थित हुए ॥ २५ ॥ इधर हिमालयने अपने सब भाइयोंको आनंद सहित भोजन कराया और प्रेमसे दूसरे लोगोंका भी सत्कार करके उसने शेष कृत्य पूर्णकिया ॥२६॥ इस प्रकार शैलेशके सब कार्य करने और शंकरके सो रहनेपर सारी रात बीत गई प्रभातकाल हुआ ॥ २७ ॥ प्रभातकाल होनेपर धैर्य और उत्साहमें भरकर वजन्त्री लोग अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥ २८ ॥ विष्णुजीको आदि लेकर सब देवता वहां उपस्थित हुए और अपने इष्टदेव शंकरको स्मरणकर सब सज गये ॥ २९ ॥ अपने अपने वाहन सजाकर सब कैलासमें जानेका उत्कंठित हुए, और यह सब करके धर्मको शिवजीके समीप भेजा ॥ ३० ॥ नारायणकी आज्ञासे धर्म शिवजीके निवास घरमें जाकर वह योगी योगेश्वर शंकरसे समयोचित वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ धर्मने कहा हे शंकर ! हे भव ! आपका कल्याणहो आप उठिये हे प्रमथोंके अधिपति ! जनवासेमें चलकर अपने भक्तोंको कृतार्थ

कैलासं कुत्रचिद्रम्यं कुत्रचिच्छक्रमन्दिरम् ॥ कुत्रचिच्छिवलोकं च सर्वोपरि विराजितम् ॥ २३ ॥ एतादृशगृहं सर्वदृष्टाश्चर्य्यं महेश्वरः ॥ प्रशंसन् हिमशैलेशं परितुष्टो बभूव ह ॥ २४ ॥ तत्रातिरमणीये च रत्नपर्य्यंक उत्तमे ॥ अशयिष्ट मुदा युक्तो लीलया परमेश्वरः ॥ २५ ॥ हिमाचलश्च स्वभ्रातॄन्भोजयामास कृत्स्नशः ॥ सर्वानन्यांश्च सुप्रीत्या शेषकृत्यं चकार ह ॥ २६ ॥ एवं कुर्वति शैलेशे स्वपति प्रेष्ठ ईश्वरे ॥ व्यतीता रजनी सर्वा प्रातःकालो बभूव ह ॥ २७ ॥ अथ प्रभातकाले च धृत्युत्साहपरायणाः ॥ नानाप्रकारवाद्यानि वादयाञ्चक्रिरे जनाः ॥ २८ ॥ सर्वे सुरास्समुत्तस्थुर्विष्णवाद्यास्सुमुदान्विताः ॥ स्वेष्टं संस्मृत्य देवेशं सज्जीभूतास्ससंभ्रमाः ॥ २९ ॥ स्ववाहनानि सज्जानि कैलासङ्गन्तुमुत्सुकाः ॥ कृत्वा सम्प्रेषयामासुर्धर्मं शिवसमीपतः ॥ ३० ॥ वासगेहमथागत्य धर्मो नारायणाज्ञया ॥ उवाच शंकरं योगी योगीशं समयोचितम् ॥ ३१ ॥ ॥ धर्म उवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते भव नः प्रमथाधिप ॥ जनावासं समागच्छ कृतार्थं कुरु तत्र तान् ॥ ३२ ॥

कीजिये ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले धर्मराजके यह वचन सुन हँसकर शंकरने कृपा दृष्टिसे देखा और पलंगपरसे उठ बैठे ॥ ३३ ॥ और हँसते हुए धर्मसे कहा तुम आगे चलो मैं शीघ्रही निस्सन्देह पीछे आताहूं ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले शंकरके इस प्रकारसे कहनेपर वह जनवासेमें गये और पीछे भगवान् शंकरने भी वहां जानेकी इच्छा की ॥ ३५ ॥ यह बात देख शंकरके पदकमलोंका दर्शन करके स्त्रीजनोंने मंगल गान और महोत्सव किया ॥ ३६ ॥ तब शिवजी लोकाचारके निमित्त प्रातःक्रिया सम्पादन करके मेना और हिमालयसे पूछकर जनवासेमें गये ॥३७॥ हे मुने ! उस समय बडा महोत्सव और वेदकी ध्वनि

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति धर्मवचः श्रुत्वा विजहास महेश्वरः ॥ ददर्श कृपया दृष्ट्या तल्पमुज्झाञ्चकार ह ॥ ३३ ॥ उवाच विहसन् धर्म त्वमग्रे गच्छ तत्र ह ॥ अहमप्यागमिष्यामि द्रुतमेव न संशयः ॥ ३४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तश्शंकरेणाथ जनावासं जगाम सः ॥ स्वयङ्गन्तुमना आसीत्तत्र शम्भुरपि प्रभुः ॥ ३५ ॥ तज्ज्ञात्वा स्त्रीगणस्सोसौ तत्रागच्छन्महोत्सवः ॥ चक्रे मंगलगानं हि पश्यञ्छम्भु पदद्वयम् ॥ ३६ ॥ अथ शम्भुर्भवाचारी प्रातःकृत्यं विधाय च ॥ मेनामामन्त्र्य कुध्रं च जनावासं जगाम सः ॥ ३७ ॥ महोत्सवस्तदा चासीद्वेदध्वनिरभून्मुने ॥ वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चातुर्विधानि च ॥ ३८ ॥ शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा ॥ हरिं च मां भवाचारात् वन्दितोऽभूत्सुरादिभिः ॥ ३९ ॥ जयशब्दो बभूवाथ नमश्शब्दस्तथैव च ॥ वेदध्वनिश्च शुभदो महाकोलाहलोऽभवत् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वरवर्गभोजनशिवशयनवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ विष्णवादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः ॥ कृत्वावश्यककर्माणि यात्रां सन्तेनिरे गिरेः ॥ १ ॥

हुई और मनुष्योंने चार प्रकारके बाजे बजाये ॥ ३८ ॥ शिवजीने जनवासेमें अपने स्थानपर जाकर मुनियोंको प्रणाम किया तथा लोकाचारसे हरिसे और मुझसे प्रणाम किया सब देवताओंने उनको प्रणाम किया ॥३९ ॥ उस समय जयशब्द नमःशब्द होने लगा और सुखदायक वेदध्वनिसे महाकोलाहल होने लगा ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे वरवर्गभोजनशिवशयनवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी तब विष्णु आदि सब देवता मुनि और तपोधन आवश्यक कर्म करके गिरिसे विदाके लिये कहते हुए ॥ १ ॥

तब हिमालय स्नान करके और यत्नसे अपने इष्ट वर्गोंको पूजन करके पुरके बंधुजनोंको बुलाकर प्रेमसे जनवासेको चले ॥ २ ॥ वहां शंकरकी पूजा करके प्रेमसे प्रार्थना की कुछ दिनतक सबके सहित मेरे स्थानपर रहिये ॥ ३ ॥ हे शम्भो ! मैं आपके दर्शनसे ही कृतार्थ होगया हूं इसमें सन्देह नहीं मेरा घर धन्य है जो आप देवतोंसहित मेरे घर पधारे हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले शैलराजने इस प्रकारसे बहुत कुछ कहकर दोनों हाथ जोड प्रणाम करके विष्णु आदि देवताओंके साथ प्रभुका निमंत्रण किया ॥ ५ ॥ तब वे शिवके सहित आदर मनसे वहां प्राप्त होकर मुनि और देवता विष्णु आदिके सहित बोले ॥ ६ ॥

ततो गिरिवरः स्नात्वा स्वेष्टं सम्पूज्य यत्नतः ॥ पौरबन्धून्समाहूय जनवासं ययौ मुदा ॥ २ ॥ तत्र प्रभुम्प्रपूज्याथ चक्रे सम्प्रार्थनां मुदा ॥ कियद्दिनानि सन्तिष्ठ मद्गेहे सकलैस्सह ॥ ३ ॥ विलोकनेन ते शम्भो कृतार्थोहं न संशयः ॥ धन्यश्च यस्य मद्गेहे आयातोऽसि सुरैस्सह ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा बहु शैलेशः करौ बद्ध्वा प्रणम्य च ॥ प्रभुन्निमन्त्रयामास सह विष्णुसुरादिभिः ॥ ५ ॥ अथ ते मनसा गत्वा शिवं संयुतमादरात् ॥ प्रत्यूचुर्मुनयो देवा हृष्टा विष्णुसुरादिभिः ॥ ६ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ धन्यस्त्वं गिरिशार्दूल तव कीर्तिर्महीयसी ॥ त्वत्समो न त्रिलोकेषु कोपि पुण्यतमोजनः ॥ ७ ॥ यस्य द्वारि महेशानः परब्रह्म सतां गतिः ॥ समागतस्सदासैश्च कृपया भक्तवत्सलः ॥ ८ ॥ जनावासोतिरम्यश्च सम्मानो विविधः कृतः ॥ भोजनानि त्वपूर्वाणि न वर्ण्यानि गिरीश्वर ॥ ९ ॥ चित्रन्न खलु तत्रास्ति यत्र देवी शिवाम्बिका ॥ परिपूर्णमशेषञ्च वयं धन्या यदागताः ॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्थम्परस्परन्तत्र प्रशंसाभवदुत्तमा ॥ उत्सवो विविधो जातो वेदसाधुजयध्वनिः ॥ ११ ॥

हे गिरिराज ! आपको धन्य है आपकी कीर्ति महान् है तुम्हारी समान त्रिलोकीमें कोई पुण्यात्मा नहीं है ॥ ७ ॥ जिनके द्वारेपर परब्रह्म सत्पुरुषोंकी गति भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने भक्तोंसहित कृपाकर पधारे ॥ ८ ॥ आपने परम मनोहर जनवासा देकर हमारा बडा सम्मान किया है हे गिरीश्वर ! ऐसे अपूर्व भोजन आपने हमको दिये जिनका हम वर्णन नहीं करसकते ॥ ९ ॥ यह बात वहां कुछ आश्चर्यकी नहीं है जहां साक्षात् अम्बिका देवी निवास करती है सबही बात परिपूर्ण है और हमभी आनेवाले धन्य हैं ॥ १० ॥ इस प्रकारसे परस्पर एकने दूसरेकी प्रशंसा की, वेद साधू और जयध्वनिपूर्वक वहां

परस्पर बडा उत्सव हुआ ॥ ११ ॥ मंगल गान होने लगा अप्सरा गण नृत्य करने लगीं मागध स्तुति पाठ करने लगे और बहुतसा द्रव्य दान दिया ॥१२॥ इसप्रकार देवेशका आमंत्रण कर गिरिराज अपने घर आये और अनेक विधिविधानसे भोजनके उत्सवका आरंभ किया ॥ १३ ॥ और भोजन करानेको परम प्रीतिसे प्रभुको ले आये बडे कुतूहल पूर्वक शंकर सब बरातियोंसहित आये ॥ १४ ॥ तब हिमालयने आदरसे शंकरके विष्णुजीके तथा मेरे चरणोंको धोकर पीछे सब देवता और मुनियोंके चरण धोये ॥ १५ ॥ तब गिरिराजने उस मण्डपमें दूसरे आये हुए अपने बंधुजनोंको भी प्रेमपूर्वक बुलाया ॥ १६ ॥

अभून्मङ्गलगानञ्च ननर्ताप्सरसाङ्गणः ॥ स्तुतिश्चक्रुर्मागधाद्या द्रव्यदानमभूद्बहु ॥ १२ ॥ तत आमन्त्र्य देवेशं स्वगेहमगमद्गिरिः ॥ भोजनोत्सवमारेभे नानाविधिविधानतः ॥ १३ ॥ भोजनार्थं प्रभुम्प्रीत्यानयामास यथोचितम् ॥ परिवारसमेतं च सकुतूहलमीश्वरम् ॥ १४ ॥ प्रक्षाल्य चरणौ शम्भोर्विष्णोर्मम वरादरात् ॥ सर्वेषाममराणाञ्च मुनीनाञ्च यथार्थतः ॥ १५ ॥ परेषाञ्च गतानाञ्च गिरीशो मण्डपान्तरे ॥ आसयामास सुप्रीत्या तांस्तान्बन्धुभिरन्वितः ॥ १६ ॥ सुरसैर्विविधान्नैश्च तर्प्पयामास तान्गिरिः ॥ बुभुजुर्निखिलास्ते वै शम्भुना विष्णुना मया ॥ १७ ॥ तदानीम्पुरनार्यश्च गालीदानम्व्यधुर्मुदा ॥ मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान् ॥ १८ ॥ ते भुक्त्वाचम्य विधिवद्गिरिमामन्त्र्य नारद ॥ स्वस्थानम्प्रययुस्सर्वे मुदितास्तृप्तिमागताः ॥ १९ ॥ इत्थन्तृतीये घस्रेऽपि मानितास्तेऽभवन्मुने ॥ गिरीश्वरेण विधिवद्दानमानादरादिभिः ॥ २० ॥ चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थीकर्म शुद्धितः ॥ बभूव विधिवद्येन विना खण्डित एव सः ॥ २१ ॥ उत्सवो विविधश्चासीत्साधुवादजयध्वनिः ॥ बहुदानं सुगानञ्च नर्त्तनम्विविधन्तथा ॥ २२ ॥

उन सबको बडे रसीले स्वादिष्ट अन्नोंसे गिरिराजने तृप्त किया और शंकर विष्णु तथा मेरे सहित सब देवता भोजन करने लगे ॥ १७ ॥ उस समय पुरकी स्त्रियें प्रेमसे गारी गानेलगीं और मृदुवाणीसे हँसती हुई यत्नसे देवताओंको देखने लगीं ॥१८ ॥ हे नारदजी ! वे सब विधिपूर्वक भोजनके उपरान्त आचमन करके मुदित और तृप्त होकर सब अपने स्थानोंको गये ॥ १९ ॥ हे मुने ! इसप्रकार तीसरे दिन भी सबका सन्मान हुआ गिरीशने विधिपूर्वक दान मान और आदर किया ॥२०॥ चौथा दिन प्राप्त होनेपर शुद्धतापूर्वक अखण्डित चतुर्थीकर्म विधिपूर्वक किया ॥२१॥ उस समय साधुवाद और जयध्वनिपूर्वक

महान् उत्सव हुआ बहुतसा दान गान और नृत्यविधि हुई ॥ २२ ॥ पांचवां दिन प्रात होनेमें प्रसन्न होकर सब देवता अतिप्रेमसे गिरिराजसे बिदाके निमित्त कहने लगे ॥ २३ ॥ यह सुनकर गिरिराज हाथ जोडकर देवताओंसे बोले हे देवताओं मेरे ऊपर कृपा करके आप कुछ दिन और रहैं ॥ २४ ॥ ऐसी प्रार्थना करके स्नेहसे शंकरको विष्णुजीको मुझे और सब देवताओंको कितनेही दिनोंतक आदरसे टिकाया ॥ २५ ॥ इसप्रकार वहां निवास करते बहुतसे दिन बीत गये, तब देवताओंने हिमालयके समीप सप्तर्षियोंको भेजा ॥ २६ ॥ उन्होंने गिरिराज और मेनाको समयोचित बातें कहकर समझाया और

पञ्चमे दिवसे प्राप्ते सर्वे देवा मुदान्विताः ॥ विज्ञप्तिश्चक्रिरे शैलं यात्रार्थमतिप्रेमतः ॥ २३ ॥ तदाकर्ण्य गिरीशश्चोवाच देवान् कृताञ्जलिः ॥ कियद्दिनानि तिष्ठन्तु कृपाङ्कुर्वन्तु मां सुराः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा स्नेहतस्ताँश्च प्रभुम्विष्णुञ्च माम्परान् ॥ वासया मास दिवसान् बहून्नित्यं समादरात् ॥ २५ ॥ इत्थम्व्यतीयुर्दिवसा बहवो वसतां च तत् ॥ सप्तर्षीन्प्रेषयामासुर्गिरीशान्ते ततस्सुराः ॥ ॥ २६ ॥ ते तं सम्बोधयामासुर्मेनाञ्च समयोचितम् ॥ शिवतत्त्वम्परम्प्रोचुः प्रशंसन्विधिवन्मुदा ॥ २७ ॥ अङ्गीकृतं परेशेन तत्तद्बोधनतो मुने ॥ यात्रार्थमगमच्छम्भुश्शैलेशं सामरादिकः ॥ २८ ॥ यात्राङ्कुर्वति देवेशे स्वशैलं सामरे शिवे ॥ उच्चै रुरोद सा मेना तमुवाच कृपानिधिम् ॥ २९ ॥ ॥ मेनोवाच ॥ कृपानिधे कृपाङ्कृत्वा शिवां सम्पालययिष्यसि ॥ सहस्रदोषं पार्वत्या आशुतोषः क्षमिष्यसि ॥ ३० ॥ त्वत्पादाम्बुजभक्ता च मद्वत्सा जन्मजन्मनि ॥ स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवं प्रभुम्विना ॥ ३१ ॥

विधिपूर्वक प्रेमसे प्रशंसा करते हुए शिवतत्व कहा ॥ २७ ॥ हे मुने! उनके समझानेसे हिमालयने विदा स्वीकारकी और शिवजी देवताओं सहित विदाहोनेको हिमालयके घर गये ॥ २८ ॥ जब देवेश अपने कैलासको देवताओं सहित चलनेको उद्युक्त हुए उस समय मेना ऊंचे स्वरसे रोकर कृपासागर शंकरसे बोलीं ॥ २९ ॥ मेना बोली हे कृपासागर ! कृपा करके आप मेरी पुत्रीका पालन करो, आप आशुतोष हैं, पार्वतीके सहस्र दोषोंको भी आपने क्षमा करना ॥ ३० ॥ यह मेरी कन्या जन्म जन्मसे आपके चरणकमलकी भक्त है महादेव प्रभुके विना सोते जागतेमें दूसरेका इसे स्मरण नहीं है ॥ ३१ ॥

तुम्हारी भक्तिके सुनतेही इसके नेत्रोंमें हर्षके आंसू आते और तनु रोमांचित होजातीहै हे मृत्युञ्जय ! तुम्हारी निन्दासे यह मौन मृतकके समान होजाती है ॥
॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर मेना उस समय शंकरको अपनी पुत्री सोंपकर बहुत ऊंचे स्वरसे रोदनकर उन दोनोंके आगे गिर पडी ॥ ३३ ॥
तब शंकरने मेनाको समझाया और हिमालयको आमंत्रणकर महोत्सवके सहित देवताओंके साथ यात्रा की ॥ ३४ ॥ तब वे सब देवता हिमालयकी बडाई
करते शंकर और अपने गणोंके सहित मौन हो वहांसे चले ॥ ३५ ॥ पुरीके बाहर हिमालयके एक उपवनमें प्रसन्न होकर सब देव विष्णुजीके सहित शिवके

त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता ॥ त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युंजय मृता इव ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा मेनका तस्मै
समर्प्य स्वसुतान्तदा ॥ अत्युच्चै रोदनङ्कृत्वा मूर्च्छामाप तयोः पुरः ॥ ३३ ॥ अथ मेनाम्बोधयित्वा तामामन्त्र्य गिरिस्तथा ॥ चकार
यात्रान्देवैश्च महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ३४ ॥ अथ ते निर्जरास्सर्वे प्रभुणा स्वगणैस्सह ॥ यात्राम्प्रचक्रिरे तूष्णीं गिरिम्प्रति शिवं दधुः ॥
॥ ३५ ॥ हिमाचलपुरीबाह्योपवने हर्षितास्सुराः ॥ सेश्वरास्सोत्सवास्तस्थुः पर्यैषन्त शिवागमम् ॥ ३६ ॥ इत्युक्ता शिवसद्यात्रा देवै
स्सह मुनीश्वर ॥ आकर्णय शिवायात्रां विरहोत्सवसंयुताम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायान्तृतीये पार्व
तीखण्डे शिवयात्रावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम् ॥ कारय
स्वात्मजादेव्या यात्रामद्योचितां गिरे ॥ १ ॥ इति श्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहम्परम् ॥ विषण्णोऽभून्महाप्रेम्णा कियत्कालं मुनीश्वर
॥ २ ॥ कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शैलराट् ततः ॥ तथास्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत् ॥ ३ ॥

आगमनकी इच्छा करते हुए ठहरे ॥ ३६ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसे देवताओंसहित शिवजीके विदा होनेका वृत्तान्त कहा शिवजीकी यात्रा सुनकर सब
कोई विरह और उत्सवसे आकुल होगये ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे शिवयात्रावर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमो
ऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले तब सप्तर्षियोंने जाकर हिमालयसे कहा हे गिरे ! आज अच्छा दिन है अब अपनी पुत्रीकी यात्रा कीजिये ॥ १ ॥
हे मुनीश्वर ! यह वचन सुनकर हिमालय भी पार्वतीके महावियोगसे कुछ कालतक तो व्याकुल होगये ॥ २ ॥ फिर पर्वतराजने कुछ कालमें चेतनाको प्राप्त

होकर ऐसाही होगा यह कहकर मेनाको सन्देशा भेजा ॥ ३ ॥ हे मुने ! पतिका सन्देशा सुनकर मेनाने हर्षशोकसे संयुक्त हो पुत्रीके विदा करनेकी सामग्री एकत्रित की ॥ ४ ॥ हे मुने ! वेद और कुलका आचार विधिपूर्वक किया और हिमालयकी पत्नीने सब उत्सवविधि सम्पादन की ॥ ५ ॥ पार्वतीको अनेक रत्नोंके गहनोंसे तथा श्रेष्ठ वस्त्रोंसे भूषित किया, बारह आभरणोंसे युक्त राजसम्मत शृंगार किया ॥ ६ ॥ मेनाकी मनकी बात जानकर एक ब्राह्मणकी पतिव्रता स्त्री गिरिजाको पतिव्रतधर्मकी शिक्षा देने लगी ॥ ७ ॥ द्विजपत्नी बोली हे पार्वती मेरे धर्मके बढानेवाले वचन प्रेमसे सुनो जो दोनों लोकमें आनन्द

शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने ॥ मेना संयापयामास कर्त्तुमासीत्समुद्यता ॥ ४ ॥ श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने ॥ उत्सवम्विविधन्तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया ॥ ५ ॥ गिरिजाम्भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः ॥ द्वादशाभरणैश्चैव शृंगारैर्नृपसम्मितैः ॥ ६ ॥ मेनामनोगतिम्बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी ॥ गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतम्परम् ॥ ७ ॥ ॥ द्विजपत्न्युवाच ॥ गिरिजे शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्द्धनम् ॥ इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम् ॥ ८ ॥ धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ॥ पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी ॥ ९ ॥ सेवते या पतिम्प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम् ॥ १० ॥ पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती ॥ शाण्डिल्या शतरूपानुसूया लक्ष्मीस्स्वधा सती ॥ ११ ॥ संज्ञा च सुमति श्श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च ॥ अन्या बह्व्योऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तरजाद्भयात् ॥ १२ ॥ पातिव्रत्यवृषेणैव ता गतास्सर्वपूज्यताम् ॥ ब्रह्मविष्णुहरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः ॥ १३ ॥

करनेवाले और सुननेवालोंको सुखदायक हैं ॥ ८ ॥ पतिव्रता स्त्रीही धन्य है उसके सिवाय स्त्रियोंमें अन्य कोई पूज्य नहीं है, वह सब लोकोंकी पवित्र करनेवाली तथा सब पापोंकी दूर करनेवाली है ॥ ९ ॥ जो अपने स्वामीको प्रेमसे परमेश्वरकी समान सेवन करती है, हे शिवे ! वह यहां अनेक भोगोंको भोग कर अन्तमें पतिलोकको प्राप्त होती है ॥ १० ॥ सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शांडिल्या, शतसूया, अनुसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती यह पतिव्रता हैं ॥ ॥ ११ ॥ संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना, स्वाहा और भी बहुत पतिव्रता हैं जिनको मैं विस्तारके भयसे नहीं कहती ॥ १२ ॥ पतिव्रत धर्मके प्रभावसेही यह

जगत्में मान्य और पूज्य हुईं तथा ब्रह्मा विष्णु और महेश तथा अन्य मुनीश्वरोंने भी उनका सन्मान किया है ॥ १३ ॥ इस कारण सदा तुम अपने पति शंकरकी सेवा करती रहना, यह सत्पुरुषोंके गतिदाता दीनोंपर कृपा करनेवाले सबसे सेवित हैं ॥ १४ ॥ पतिव्रताओंका महान्धर्म श्रुति स्मृतियोंमें लिखा हुआ है जैसा उनमें श्रेष्ठतासे लिखा गया है वैसा अन्यत्र नहीं है यह निश्चय है ॥ १५ ॥ जब स्वामी भोजन कर चुकें तब पतिकी भक्तिमें परायण होकर स्वयं भोजन करै इस प्रकारसे करनेसे स्त्री सदा आनन्दमें रहती है ॥ १६ ॥ उसके सो जानेपर आप सोवै, और स्वामीसे प्रथम जागे, और छलरहित होकर

सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शङ्करः प्रभुः ॥ दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यस्सतां गतिः ॥ः १४ ॥ महान्पतिव्रताधर्म्मश्श्रुतिस्मृतिषु नोदितः ॥ यथैष वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽस्ति निश्चितम् ॥ १५ ॥ भुंज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा ॥ तिष्ठेत्तस्मिञ्छिवे नारी सर्वथा सति तिष्ठति ॥१६॥ स्वप्यात्स्वपिति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः ॥ सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया ॥ १७ ॥ अनलंकृतमात्मानन्दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे ॥ कार्यार्थम्प्रोषिते तस्मिन्भवेन्मण्डनवर्जिता ॥ १८ ॥ पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता ॥ आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत्प्रसीदेत्ताडितापि च ॥ हन्यतामिति च ब्रूयात्स्वामिन्निति कृपाङ्कुरु ॥ १९ ॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छेत्तदन्तिकम् ॥ सत्वरं साञ्जलिः प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति ॥ २० ॥ किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ॥ तदादिष्टा चरेत्कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २१ ॥

स्वामीकी प्यारी होकर उनका हित करै ॥ १७ ॥ और कभी अपनेको विना अलंकारके स्वामीको न दिखावै और जब स्वामी परदेशमें हो तो कभी शृंगार न करै ॥ १८ ॥ पतिव्रता पतिका नाम कभी भी ग्रहण न करैं, स्वामी बुरे वचन कहै तो भी आप बुरे वचन न कहै, ताडन करने पर भी प्रसन्न रहै मारनेपर भी यही कहै हे स्वामिन् ! आप कृपा करो ॥ १९ ॥ स्वामीके बुलानेपर सब कार्य छोडकर उनके समीप जाय और शीघ्र हाथ जोडकर प्रणाम कर उनसे कहै ॥ २० ॥ हे स्वामिन् ! किस निमित्त आप बुलाते हैं कृपाकर कहिये जो वह आज्ञा दे प्रसन्नचित्तसे वह सब कार्य करै ॥ २१ ॥

चिरन्तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्नैव परालये ॥ आदाय तत्त्वं यत्किंचित्कस्मै चिन्नार्पयेत्क्वचित् ॥ २२ ॥ पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ॥ प्रतीक्षमाणावसरं यथाकालोचितं हितम् ॥ २३ ॥ न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित् ॥ दूरतो वर्जयेत्सा हि समाजोत्सवदर्शनम् ॥ २४ ॥ तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकम्पिबेत् ॥ तस्मिन्सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः ॥ २५ ॥ भुंज्यात्सा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत् ॥ महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तम्पतिव्रता ॥ २६ ॥ अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि ॥ परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुलेषु च ॥ २७ ॥ संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ॥ भवेत्सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा ॥ २८ ॥ कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् ॥ अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकम्व्रजेत् ॥ २९ ॥ सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥ आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ॥ ३० ॥ क्लीबम्वा दुरवस्थम्वा व्याधितं वृद्धमेव च ॥ सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लंघयेत् ॥ ३१ ॥

द्वारेपर बहुत कालतक स्थिति न करै दूसरेके घरोंमें न जाय जो कुछ बात सुनै उसे दूसरोंसे प्रकाश न करै ॥ २२ ॥ पूजाकी सामग्री विना कहे सब सम्पादन करै और यथासमय हितकारी समयका अवसर देखती रहै ॥ २३ ॥ पतिकी आज्ञाके विना कभी तीर्थयात्राको न जाय समाज और उत्सवमें जानेकी कुछभी आवश्यकता नहीं ॥ २४ ॥ जिस स्त्रीको तीर्थ दर्शनकी बडी अभिलाषा हो वह अपने स्वामीके चरणामृतको ले इसमें सन्देह नहीं उसमें सब क्षेत्र और तीर्थ निवास करते हैं ॥ २५ ॥ भर्ताके भोजन कर चुकनेपर जो कुछ मिष्टान्नादि हो वह सब भोजन करै वह पतिका दिया हुआ महाप्रसाद जानकर पतिव्रता भोजन करै ॥२६॥ देवता पितर अतिथियोंको विना समर्पण किये न खाय, तथा सेवकवर्ग गौ भिक्षुक इनको भी देना चाहिये ॥२७॥ सब सामग्री एकत्रित करनेमें चतुर रहै प्रसन्न रहै बहुत खर्च न करै इस प्रकारसे देवी सदा पतिव्रत धर्ममें परायण रहै ॥ २८ ॥ पतिकी आज्ञाके विना उपवास व्रतादिक न करै विना आज्ञा करनेसे कुछ फल नहीं होता और परलोकमें नरककी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥ सुख पूर्वक बैठे हुए अपनी इच्छासे रमण करते हुए पतिको कार्यान्तरमें न उठावै ॥ ३० ॥ नपुंसक, व्याधिग्रस्त, दुरवस्थाको प्राप्त, वृद्ध, सुखी, दुखी, कैसाही हो पतिको उल्लंघन न करै ॥३१॥

जब मासिक धर्म हो तब तीन रात अपना मुख न दिखावै जबतक स्नानसे शुद्ध न हो तबतक अपना शब्द न सुनावै ॥ ३२ ॥ फिर स्नानकर अपने स्वामी काही मुख देखै दूसरेका नहीं अथवा पति समीप न हो तो पतिका ध्यान करके सूर्यका दर्शन करै ॥३३॥ हलदी कुंकुम सिन्दूर कज्जल कूर्पासक (चोली) ताम्बूल मंगल सम्बन्धी भूषण धारण करै ॥ ३४ ॥ केशोंका संस्कार करै केशपाश संभालै हाथ और कानोंमें भूषण धारण करै भर्ताकी आयु बढानेकी इच्छा करती हुई पतिव्रता दूर न रहै ॥ ३५ ॥ धोबन वन्धकी [व्यभिचारिणी] श्रवणा (सन्यासिनी) और दुर्भागिनीसे मित्रता न करै ॥३६॥ जो स्त्री

स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुध्यति ॥ ३२ ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ॥ अथवा मनसि ध्यात्वा पतिम्भानुम्विलोकयेत् ॥ ३३ ॥ हरिद्राकुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम् ॥ कूर्पासकञ्च ताम्बूलं मांगल्याभरणादिकम् ॥ ३४ ॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ॥ ३५ ॥ न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रवणया न च ॥ न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत्क्वचित् ॥३६॥ पतिविद्वेषिणीं नारीं न सा संभाषयेत्क्वचित् ॥ नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित् ॥ ३७ ॥ नोलूखले न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि ॥ न यंत्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत्क्वचित् ॥ ३८ ॥ विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं नाचरेत्क्वचित् ॥ यत्रयत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत् ॥ ३९ ॥ हृष्टा हृष्टे विषण्णा स्याद्विषण्णास्ये प्रिये प्रिया ॥ पतिव्रता भवेद्देवी सदा पतिहितैषिणी ॥ ४० ॥ एकरूपा भवेत्पुण्या संपत्सु च विपत्सु च ॥ विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्धैर्य्यधारिणी ॥४१॥ सर्पिर्लवणतैलादिक्षयेपि च पतिव्रता ॥ पतिं नास्तीति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत् ॥ ४२ ॥

अपने पतिसे द्वेष करती हो उससे बात भी न करै न कहीं इकली रहै न कभी नंगी होकर स्नान करै ॥ ३७ ॥ ओखली मूसल बुहारी पाषाण यंत्र और दहेलीमें सती स्त्री कभी निवास न करै अर्थात् इन स्थानोंपर न सोवै ॥ ३८ ॥ विना उपयुक्त समयके प्रगल्भता न करै जिस जिसमें स्वामीकी रुचि हो उस उसमें प्रेम करै ॥ ३९ ॥ जो वह विषण्ण हो तो आपभी दुःखमाने जो प्रसन्न हो तो आप प्रसन्न हो प्रियमें प्रिय आचरण करै इस प्रकारसे देवी पविव्रता सबकी हितकारिणी हो ॥ ४० ॥ संपत् विपत्में एकरूप पुण्यरूप रहै धैर्य्य धारण कर सदा पतिकी हितकारिणी रहै ॥ ४१ ॥ पतिव्रता घृत लवण तेल

आदिके न होने परभी 'नहीं है' ऐसा पतिसे न कहै उसको परिश्रममें न युक्त करै ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा विष्णु और शिवसे भी पति विशेष कहा गया है. हे देवेशि ! पतिव्रताको अपना पति शिवरूपही जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पतिको उल्लंघन कर, व्रत उपवास और नियम करती वह स्वामीकी आयुको हरण करती है और मरकर उसे नरक होता है ॥ ४४ ॥ जो नारी क्रोधमें तत्पर होकर अपने स्वामीसे प्रत्युत्तर करती है वह ग्रामकी कुतिया और निर्जन वनमें गीदडी होती है ॥ ४५ ॥ पतिसे ऊंचे स्थानपर न बैठे दुष्टोंके समीप न जाय और पतिसे कभी कातर वाक्य न कहै ॥ ४६ ॥ न पतिकी निन्दाकरै

विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोधिको मतः ॥ पतिव्रताया देवेशि स्वपतिश्शिव एव च ॥ ४३ ॥ व्रतोपवासनियमम्पतिमुल्लंघ्य या चरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥ ४४ ॥ उक्ता प्रत्युत्तरन्दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा ॥ सरमा चायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥ ४५ ॥ उच्चासनं न सेवेत न व्रजेद्दुष्टसन्निधौ ॥ न च कातरवाक्यानि वदेन्नारी पतिं क्वचित् ॥ ४६ ॥ अपवादं न च ब्रूयात्कलहं दूरतस्त्यजेत् ॥ गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत् ॥ ४७ ॥ बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः ॥ ताम्बूलैर्वसनैश्चापि पादसम्वाहनादिभिः ॥ ४८ ॥ तथैव चाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः ॥ या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥ ४९ ॥ मितन्ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ॥ अमितस्य हि दातारं भर्तारम्पूजयेत्सदा ॥ ५० ॥ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ॥ तस्मात्सर्वम्परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ५१ ॥

कलेशको तो दूरसेही त्याग दे, गुरुजनोंकी स्थितिमें जोरसे न बोलै, न ऊंचे स्वरसे हँसे ॥ ४७ ॥ पतिको बाहरसे आया हुआ देखतेही शीघ्रही अन्न जल भोजन ताम्बूल वसन और चरण धोने आदिसे पतिका सत्कार करै ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार मनोहर वचन तथा पसीना सुखानेको पंखा करके जो अपने स्वामीको प्रसन्न करती है उसने जानो त्रिलोकी जीत ली ॥ ४९ ॥ माता पिता पुत्र भाई परिमित सुख देते हैं, परन्तु पति अमित सुख देता है, इस कारण उसे सदा पूजै ॥५०॥ भर्ताही देवता, भर्ताही गुरु, धर्म तीर्थ व्रत सब कुछ स्वामीही है, इस कारण सब कुछ छोडकर एक पतिकी ही पूजा करै ॥५१॥

जो दुर्मति स्त्री अपने स्वामीको छोडकर एकान्तमें दूसरेके पास जाती है वह वृक्षकी खखोलडमें रहनेवाली उलूकी होती है ॥ ५२ ॥ जो स्वामीके मारनेपर उसे मारनेको दौडतीहै वह दूसरे जन्ममें व्याघ्री और वृषदंशिका होती है और जो स्वामीको कुटिल आंखसे देखती है वह केंकराक्षी [नीची ऊंची आंखोवाली] होती है ॥ ५३ ॥ जो स्वामीको छोडकर केवल आपही मिष्टान्न खाती है वह ग्रामकी सुअरिया वा वल्गु (छागी) अपनी विष्ठा खानेवाली होती है ॥ ५४ ॥ जो अपने स्वामीको तू कहकर बोलती है तू कहकर प्रिय बोलती है वह मूकी होतीहै और जो अपनी सौतसे ईर्षा करती है वह वारंवार दुर्भगा होतीहै ॥ ५५ ॥ जो स्वामीसे दृष्टि चुराकर किसी अन्यको देखतीहै, वह कानी कुमुखी और विरूपा होती है ॥ ५६ ॥ जैसे जीवके विना देह क्षणमात्रमें अपवित्र होजाता है इसी प्रकार अपने स्वामीके विना स्नानकरनेपर भी स्त्री सदा अपवित्र रहती है ॥ ५७ ॥ उसके माता पिता जगत्में धन्य हैं उसका पति भी धन्य है जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री विद्यमान है ॥ ५८ ॥ पिता माता और पतिके वंशके तीन तीन पुरुष पतिव्रताके पुण्यसे स्वर्गमें सुख भोगते हैं ॥ ५९ ॥ और शीलके भंग करनेसे तीनकुल नरकमें जाते हैं वह पिता माता और पतिके तीनकुल नरकमें डालती और यहां भी वहां भी दुःखी

या भर्तारम्परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ॥ उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥ ५२ ॥ ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ॥ कटाक्षयति यान्यम्वै केकराक्षी तु सा भवेत् ॥ ५३ ॥ या भर्तारम्परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ॥ ग्रामे वा सूकरी भूया द्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ॥ ५४ ॥ या तुंकृत्य प्रियम्ब्रूयान्मूका सा जायते खलु ॥ या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनःपुनः ॥ ५५ ॥ दृष्टिम्विलुप्य भर्त्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ॥ काणा च विमुखी चापि कुरूपापि च जायते ॥ ५६ ॥ जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचिताम्व्रजेत् ॥ भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिस्सदा ॥ ५७ ॥ सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता ॥ धन्यस्स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता ॥ ५८ ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुंजते ॥ ५९ ॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिताः ॥ ६० ॥

रहती है ॥ ६० ॥ पतिव्रताके चरण जहां जहां पृथिवीपर पडते हैं वहीं वहीं वह पापहरनेवाली पवित्र होती है ॥ ६१ ॥ वह व्यापक सूर्य सोम और पवन अपनी पवित्रताके लिये पतिव्रताको स्पर्श करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ६२ ॥ पतिव्रताके स्पर्शकी जल सदा वांछा करतेहैं आज तुम्हारे स्पर्शसे हमारी जडताका नाश हुआ ॥ ६३ ॥ भार्याही गृहस्थ और सुखका मूल है, धर्मफलकी प्राप्ति और सन्तान वृद्धिके लिये भार्याही है ॥ ६४ ॥ क्या रूप और सुन्दरतासे युक्त अनेक घरोंमें स्त्रियें नहीं हैं,पर पतिव्रता स्त्रीकोही शंकरकी गति और भक्ति प्राप्त होती है ॥ ६५ ॥ भार्यासेही दोनों लोकोंका सुख जय किया

पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् ॥ तत्र तत्र भवेत्सा हि पापहन्त्री सुपावनी ॥ ६१ ॥ विभुः पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ॥ सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६२ ॥ आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ॥ अद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः ॥ ६३ ॥ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ॥ भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ॥ ६४ ॥ गृहे गृहे न किं नार्य्यो रूवलावण्यगर्विताः ॥ परम्विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥ ६५ ॥ परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ॥ देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ॥ ६६ ॥ गृहस्थस्स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता ॥ ग्रस्यतेऽन्यान्प्रतिदिनं राक्षस्या जरया यथा ॥ ६७ ॥ यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ॥ तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलम्पावनं भवेत ॥ ६८ ॥ न गङ्गया तया भेदो या नारी पतिदेवता ॥ उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद्बुधः ॥ ६९ ॥ तारः पतिश्श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयन्तपः ॥ फलम्पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे ॥ ७० ॥

जाता है, देवता, पितर, अतिथि, यज्ञकर्म विना भार्याके नहीं होते ॥ ६६ ॥ उसीको गृहस्थ जानो जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है, और तो दिन रात जरा राक्षसीकी समान ग्रास करती हैं ॥ ६७ ॥ जैसे गंगास्नानसे शरीर पवित्र होजाता, ऐसेही पतिव्रताको देखकर सब पवित्र होजाते हैं ॥ ६८ ॥ पतिव्रता और गंगा इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है शिव और पार्वतीकी समान वे दोनों स्त्री पुरुष हैं इस कारण विद्वान्को उनका निरन्तर पूजन करना चाहिये ॥ ॥ ६९ ॥ पति ॐकार है, स्त्री वेदश्रुति है, स्त्री क्षमा है तो पति तप है, पति फल है, स्त्री सत्क्रिया है, वे दोनों स्त्री पुरुष हे पार्वती ! धन्य हैं जो ऐसे हैं ॥ ७० ॥

हे पार्वती ! इस प्रकारसे मैंने तुमसे पतिव्रताओंका धर्म वर्णन किया, अब प्रेम और सावधानीसे पतिव्रताके भेदोंको सुनो ॥७१॥ पतिव्रता उत्तमादिके भेदसे चार प्रकारकी होती है, जो स्मरण करनेसे पाप हरनेवाली है ॥ ७२ ॥ उत्तम मध्यम अधम अति निकृष्ट अब इनके लक्षण कहती हूं यह सावधान होकर सुनो ॥ ७३ ॥ स्वप्नमें भी जिसका मन अपने पतिकोही देखता है, कभी परपतिमें नहीं जाता वह उत्तमा है ॥ ७४ ॥ जो दूसरोंके पतियोंको पिता भ्राता और पुत्रकी समान देखती है, हे पार्वती ! वह पतिव्रता मध्यम कोटिकी कही गई है ॥ ७५ ॥ जो स्त्री मनमें अपना धर्म समझकर व्यभिचार नहीं

एवम्पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरीन्द्रजे ॥ तद्भेदाञ् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाऽद्य मे ॥ ७१ ॥ चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि
पतिव्रताः ॥ उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः ॥ ७२ ॥ उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका ॥ ब्रुवे तासां लक्षणानि साव
धानतया शृणु ॥ ७३ ॥ स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम् ॥ नान्यम्परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥ ७४ ॥ या
पितृभ्रातृसुतवत् परम्पश्यति सद्धिया ॥ मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥ ७५ ॥ बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति
न ॥ निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ॥ ७६ ॥ पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न ॥ पतिव्रताऽधमा सा हि
कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ ७७ ॥ चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिव्रताः ॥ पावनास्सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिताः ॥ ७८ ॥ पाति
व्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थनात् ॥ जीवितो विप्र एको हि मृतो वाराहशापतः ॥ ७९ ॥ एवं ज्ञात्वा शिवे नित्यं कर्तव्यम्पतिसे
वनम् ॥ त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा ॥ ८० ॥

करती है हे पार्वति ! वह भी सुचरित्रवाली स्त्री निकृष्ट (अधम) कही है ॥ ७६ ॥ जो मनमें इच्छा करनेपर पति और कुलके भयसे व्यभिचार नहीं करती उसको पुरातन पंडितोंने अति निकृष्ट कहा है ॥ ७७ ॥ हे शिवे ! यह चार प्रकारकी पतिव्रता पाप हरनेवालीहैं और दोनों लोकोंकी पवित्र करने वाली कही गई हैं ॥ ७८ ॥ पतिव्रतधर्मके प्रभावसे अत्रिऋषिकी स्त्रीने तीनदेवताओंकी प्रार्थनासे वाराहके शापसे मरे हुए एक ब्राह्मणको जिवा दिया था ॥ ७९ ॥ हे शिवे ! ऐसा जानकर नित्य पतिका सेवन करना चाहिये हे शैलपुत्री ! ऐसा करनेसे तुमको सब कामनाओंकी प्राप्ति होगी ॥ ८० ॥

तुम जगत्की माता महेशी हो, साक्षात् शिवजी तुम्हारे पति हैं तुम्हारे नामस्मरण कर स्त्रियें पतिव्रता होंगी ॥ ८१ ॥ हे देवि ! तुम्हारे आगे विशेष कहनेकों प्रयोजन क्या है तो भी हे कल्याणि ! जगत्के आचारके निमित्त मैंने ऐसा कहा है ॥ ८२ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कह वह ब्राह्मणकी स्त्री भगवतीको प्रणामकर मौन हुई और शंकरकी प्रिया पार्वती भी बडे आनंदको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखंडे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार उस ब्राह्मणी देवीने भगवतीको पतिव्रत धर्मकी शिक्षादेकर मेनासे कहा अब

जगदम्बा महेशी त्वं शिवस्साक्षात्पतिस्तव ॥ तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः ॥ ८१ ॥ त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि
प्रयोजनम् ॥ तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारातश्शवे ॥ ८२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणम्य
ताम् ॥ शिवाम्मुदमतिप्राप पार्वती शङ्करप्रिया ॥ ८३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे
पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ सा ब्राह्मणी देव्यै शिक्षयित्वा व्रतञ्च तत् ॥ प्रोवाच
मेनामामन्त्र्य यात्रामस्याश्च कारय ॥ १ ॥ तथास्त्विति च सम्प्रोच्य प्रेमवश्या बभूव सा ॥ धृतिन्धृत्वाहूय कालीं विश्लेष
विरहाकुला ॥ २ ॥ अत्युच्चै रोदनं चक्रे संश्लिष्य च पुनः पुनः ॥ पार्वत्यपि रुरोदोच्चैरुच्चरन्ती कृपावचः ॥ ३ ॥ शैलप्रिया शिवा
चापि मूर्च्छामाप शुचार्दिता ॥ मूर्च्छाम्प्रापुर्देवपत्न्यः पार्वत्या रोदनेन च ॥ ४ ॥ सर्वाश्च रुरुदुर्नार्य्यस्सर्वमासीदचेतनम् ॥ स्वयं
रुरोद योगीशो गच्छन्कोन्यः परः प्रभुः ॥ ५ ॥

इनकी यात्रा करावो ॥ १ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर मेना प्रेमके वशीभूत होगई और धीरज धर पार्वतीको बुलाकर विरहसे व्याकुल हो ॥ २ ॥ वारंवार आलिंगनकर ऊंचे स्वरसे रोने लगी, और दीन वचन कहकर पार्वती भी ऊंचे स्वरसे रोने लगी ॥ ३ ॥ और शोंचसे व्याकुल होकर मेना और पार्वती दोनों मूर्च्छित होगईं, और पार्वतीके रोनेसे देवपत्नियें भी मूर्च्छित होगईं ॥ ४ ॥ सब ही स्त्रियें रोने लगीं और सबहीं अचेतन होगईं औरकी तो

क्या हैं, बिदाके समय योगीश्वर पर प्रभुभी स्वयं रोने लगे ॥५॥ इसी समय शीघ्रतासे हिमालय आये उनके साथमें उनके सब पुत्र और श्रेष्ठ ब्राह्मण थे॥६॥ पार्वतीको गोदमें लेकर मोहसे स्वयं रोने लगे, कहां जाती है, इस प्रकार वारंवार शब्द करने लगे ॥ ७ ॥ तब उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ उनका पुरोहित ज्ञानमें श्रेष्ठ कृपाकरके सबको अध्यात्मविद्यासे समझाता हुआ ॥ ८ ॥ पार्वतीने परमभक्तिसे अपने माता पिता और गुरुको प्रणाम किया और लोकाचारसे महामाया वारंवार रोने लगी ॥ ९ ॥ पार्वतीका रोदन देखकर और भी सब स्त्री रोने लगीं परन्तु पार्वतीकी माता मेना भगिनी और भाई बडे

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हिमालयः ॥ ससर्वतनयस्तत्र सचिवैश्च द्विजैः परैः ॥ ६॥ स्वयं रुरोद मोहेन वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि ॥
क्व यासीत्येवमुच्चार्य शून्यं कृत्वा मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ ततः पुरोहितो विप्रैरध्यात्मविद्यया सुखम् ॥ सर्वान्प्रबोधयामास कृपया ज्ञानवत्तरः
॥ ८ ॥ ननाम पार्वती भक्त्या मातरम्पितरं गुरुम् ॥ महामाया भवाचाराद्रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ पार्वत्या रोदनेनैव रुरुदुस्सर्वयो
षितः ॥ नितरां जननी मेना यामयो भ्रातरस्तथा ॥ १० ॥ पुनः पुनः शिवामाता यामयोऽन्याश्च योषितः ॥ भ्रातरो जनकः प्रेम्णा
रुरुदुर्बद्धसौहृदाः ॥ ११ ॥ तदा विप्राः समागत्य बोधयामासुरादरात् ॥ लग्नान्निवेदयामासुर्यात्रायास्सुखदम्परम् ॥ १२ ॥ ततो हिमा
लयो मेनां धृत्वा धैर्य्यम्विवेकतः ॥ शिबिकामानयामास शिवारोहणहेतवे ॥ १३ ॥ शिवामारोहयामासुस्तत्र विप्राङ्गनाश्चताम् ॥
आशिषम्प्रददुस्सर्वाः पिता माता द्विजास्तथा ॥ १४ ॥ महाराज्ञ्युपचारांश्च ददौ मेना गिरिस्तथा ॥ नानाद्रव्यसमूहं च परेषान्दुर्लभं
शुभम् ॥ १५ ॥ शिवा नत्वा गुरून्सर्वाञ् जनकं जननीन्तथा ॥ द्विजान्पुरोहितं यामीस्त्रीस्तथान्या ययौ मुने ॥ १६ ॥

व्याकुल हुए ॥ १० ॥ वारंवार मेना तथा भगिनी और दूसरी स्त्रियें भ्राता और पिता प्रेमसे बद्ध होकर रोने लगे ॥ ११ ॥ तब ब्राह्मणोंने आकर आदरसे सबको समझाया और कहा यात्राकी सुख देनेवाली लग्न टली जाती है देर मत करो ॥ १२ ॥ तब हिमालयने धीरज धर मेनाको समझाय पार्वतीके चढनेके निमित्त पालकी मंगवाई ॥ १३ ॥ और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने पार्वतीको पालकीपर चढाया, पिता माता और ब्राह्मण सबने आशीर्वाद दिये ॥ १४ ॥ मेना और हिमालयने महाराजोंके जैसे उपचार दिये, और भी अनेकप्रकारके द्रव्य समूह जो दूसरोंको परमदुर्लभ थे दिये गये ॥ १५ ॥ पार्वती सब गुरुजन

माता पिता ब्राह्मण पुरोहित भगिनी तथा अन्य स्त्री जनोंको प्रणामकर चली ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् हिमालय भी प्रेमके वशीभूत हो संग २ चले और वह प्राप्त हुए, जहां सब देवता ठहरे हुए थे ॥ १७ ॥ और प्रीतिसे सब कोई उत्सव करने लगे और प्रशंसा करते हुए भक्तिसे प्रभुको प्रणाम करने लगे और वहांसे बिदाहो अपने पुरमें प्रविष्ट हुए ॥ १८ ॥ इस ओर शिवजी पार्वती सहित अपने स्थानपर पहुंचकर बोले हे देवेशि ! तुमको मैं जातिस्मरण कराताहूं, जिसको तुम लीलासे स्मरण करतीहो सदा उसे प्राणोंकी समान प्यारी हो ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार अपने स्वामी महेशके वचन शंकरकी प्रिया सती

हिमाचलोऽपि ससुतोऽगच्छत्स्नेहवशी बुधः ॥ प्राप्तस्तत्र प्रभुर्यत्र सामरः प्रीतिमावहन् ॥ १७ ॥ प्रीत्याभिरेभिरे सर्वे महोत्सवपुरस्सरम् ॥ प्रभुम्प्रणेमुस्ते भक्त्या प्रशंसन्तोऽविशन्पुरीम् ॥ १८ ॥ जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद ॥ लीलया त्वाञ्च देवेशि सदा प्राणप्रिया मम ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशस्य स्वनाथस्याथ पार्वती ॥ शङ्करस्य प्रिया नित्यं सस्मितोवाच सा सती ॥ २० ॥ पार्वत्युवाच ॥ सर्वं स्मरामि प्राणेश मौनी भूतो भवेति च ॥ प्रस्तावोचितमद्याशु कार्यं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य प्रियावाक्यं सुधाधाराशतोपमम् ॥ मुमुदेऽतीव विश्वेशो लौकिकाचारतत्परः ॥ २२ ॥ शिवः सम्भृतसम्भारो नानावस्तुमनोहरम् ॥ भोजयामास देवश्च नारायणपुरोगमान् ॥ २३ ॥ तथान्यान्निखिलान्प्रीत्या स्वाविवाहसमागतान् ॥ भोजयामास सुरसमन्नम्बहुविधम्प्रभुः ॥ २४ ॥ ततो भुक्त्वा च ते देवा नानारत्नविभूषिताः ॥ सस्त्रीकास्सगणास्सर्वे प्रणेमुश्चंद्रशेखरम् ॥ २५ ॥

पार्वती सुनकर कुछेक हँसती हुई बोली ॥ २० ॥ पार्वती बोली हे देव ! मैं सब स्मरण करती हूँ मैं मौन हूँ आपको प्रणाम करती हूं, जो प्रस्तावके उचित कार्य हो सो आप करैं ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार अमृतकी समान पार्वतीके वचन सुनकर लौकिक आचार दिखाते हुए शिवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ शिवजीने अनेक वस्तुओंका सम्भार सजाया और विष्णु आदि देवताओंको भोजन कराया ॥ २३ ॥ तथा अपने विवाहमें आयेहुए और सब देवताओंको यथायोग्य बहुत प्रकारसे भोजन कराया ॥ २४ ॥ तब वे सब देवता भोजन करके अनेक रत्नोंसे भूषित हो अपनी २ स्त्रियोंके सहित भवानी

पति शंकरको प्रणाम कर ॥ २५ ॥ तथा सुन्दर वाणियोंसे स्तुति कर और प्रेमसे परिक्रमा कर विवाहकी बडाई करते अपने २ स्थानोंको गये ॥ २६ ॥ हे नारदजी ! मुझे और विष्णुजीको शिवजीने स्वयं प्रणाम किया, जैसे लोकाचारको प्राप्त होकर विष्णुजी कश्यपको प्रणाम करते हैं ॥२७॥ मैंने आलिंगन करके उनको आशीर्वाद दिया और फिर शंकरके आगे स्थित हो उनको परब्रह्म जानकर स्तुति की ॥ २८ ॥ मैं और विष्णुजी हाथ जोडकर शिवा शिवको प्रणाम कर विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने स्थानोंको गये ॥ २९ ॥ शिवजी भी कैलासमें स्थित हो पार्वतीके साथ विहार करने लगे और सब

संस्तुत्य वाग्भिरिष्टाभिः परिक्रम्य मुदान्विताः॥ प्रशंसन्तो विवाहञ्च स्वधामानि ययुस्ततः ॥ २६ ॥ नारायणं मुने मां च प्रणनाम शिवस्स्वयम् ॥ लौकिकाचारमाश्रित्य यथा विष्णुश्च कश्यपम् ॥ २७ ॥ मयाश्लिष्याशिषन्दत्वा शिवस्य पुनरग्रतः ॥ मत्वा वै तं परं ब्रह्म चक्रे च स्तुतिरुत्तमा ॥ २८ ॥ तमामन्त्र्य मया विष्णुस्साञ्जलिश्शिवयोर्मुदा॥प्रशंसंस्तद्विवाहञ्च जगाम स्वालयम्परम् ॥ २९ ॥ शिवोऽपि स्वगिरौ तस्थौ पार्वत्या विहरन्मुदा ॥ सर्वे गणास्सुखं प्रापुरतीव स्वभजञ्छिवौ ॥ ३० ॥ इत्येवङ्कथितस्तात शिवोद्वाहस्सुमगंलः ॥ शोकघ्नो हर्षजनक आयुष्यो धनवर्द्धनः ॥ ३१ ॥ य इमं शृणुयान्नित्यं शुचिस्तद्गतमानसः ॥ श्रावयेद्वाथ नियमाच्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ इदमाख्यानमाख्यातमद्भुतं मंगलायनम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३३ ॥ यशस्यं स्वर्ग्यमायुष्यं पुत्रपौत्रकरम्परम् ॥ सर्वकामप्रदं चेह भुक्तिदं मुक्तिदं सदा ॥ ३४ ॥

गण आनन्दको प्राप्त हो प्रेमसे शिवजीका भजन करने लगे ॥ ३० ॥ हे तात! इस प्रकार शिव और पार्वतीका मंगलदायक विवाह वर्णन किया है, यह शोकका दूर करनेवाला, आनन्दका बढानेवाला, और आयुका बढानेवाला है ॥ ३१ ॥ जो पवित्र हो शिवजीमें मन लगाकर नित्य इस कथाको सुनतेहैं वा जो नियमसे सुनाते हैं वे शिवलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ यह आख्यान बडा अद्भुत और मंगलका करनेवाला है सब विघ्नोंका शान्त करनेवाला और सब व्याधियोंका नाश करनेवाला है ॥ ३३ ॥ यह आख्यान यशका देनेवाला, स्वर्ग और आयुका देनेवाला, पुत्र पौत्रोंका बढानेवाला, सब कामना

इति शिवमहापुराणे भाषाटीकासमेते तृतीयः पार्वतीखण्डः स०

और भुक्ति मुक्तिका सदा देनेवाला है ॥ ३४ ॥ अपमृत्युका दूर करनेवाला तथा महाशान्ति और शुभका करनेवाला है, दुःस्वमकी शान्ति वाला, और बुद्धि ज्ञानका देनेवाला है ॥ ३५ ॥ इसको शिवजीके सम्पूर्ण उत्सवोंमें पाठ करना चाहिये, शिवके प्रसन्न करनेकी इच्छावालोंको तथ शिवजीका सन्तोष करनेवालोंको यह योग्य है ॥ ३६ ॥ विशेषकर इसको देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय पढाजाय तथा शिवसम्बन्धी समस्त क के आरम्भमें

अपमृत्युप्रशमनं महाशान्तिकरं शुभम् ॥ सर्वदुस्स्वप्नप्रशमनं बुद्धिप्रज्ञादिसाधनम् ॥ ३५ ॥ शिवोत्सवेषु सर्वेषु पठितव् त्नतः ॥ शुभेप्सुभिर्जनैः प्रीत्या शिवसन्तोषकारणम् ॥ ३६ ॥ पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु देवादीनां विशेषतः ॥ शिवस्य सर्वकार्यस्य आरम्भे च सुप्रीतितः ॥३७॥ शृणुयाद्वा शुचिर्भूत्वा चरितं शिवयोश्शिवम् ॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवकैलासगमनवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

पढाजाय तो शिव प्रसन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ और पवित्र होकर शिवाशिवके जो चरित्र पढते हैं उनके सब कार्य सिद्ध होते हैं, यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे रुद्रसंहितान्तर्गततृतीयपार्वतीखण्डे ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां शिवक ासगमनवर्णनं नाम पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

समाप्तोऽयं तृतीय

दोहा—श्रीगुरुचरण सरोज रज, प्रेम सहित हिय लाय। भाषाटीका सुखद अति, कुमारखंडकी गाय ॥ १ ॥

जो नमस्कार करनेसे प्रसन्न होजाते हैं जिनका मन बडा निर्मल है जो प्रेमप्रिय और प्रेमके देनेवाले हैं जो पूर्ण स्वरूप भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले सब प्रकारसे पूर्ण सम्पूर्ण ऐश्वर्यके एक स्थान सत्यस्वरूप सत्य सत्यमय तीनों कालमें सत्य ऐश्वर्यवाले सत्यके प्रिय सत्यके देनेवाले विष्णु और ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त अपनी कृपासे शरीर धारण करनेवाले कल्याणकारी शंकरको प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! लोककल्याणकारी शंकरने पार्वतीके

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ अथ रुद्रसंहितांतर्गतश्चतुर्थः कुमारखण्डः प्रारभ्यते ॥ वन्दे वन्दनतुष्टमानसमति प्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ॥ सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम् ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विवाहयित्वा गिरिजां शंकरो लोकशंकरः ॥ गत्वा स्वपर्वतं ब्रह्मन् किमकार्षीद्धि तद्वद ॥ २ ॥ कथं हि तनयो जज्ञे शिवस्य परमात्मनः ॥ यदर्थमात्मारामोऽपि समुवाह शिवां प्रभुः ॥ ३ ॥ तारकस्य कथं ब्रह्मन् वधोऽभूद्देवशंकरः ॥ एतत्सर्वमशेषेण वद कृत्वा दयां मयि ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य प्रजापतिः ॥ सुप्रसन्नमनाः स्मृत्वा शंकरं प्रत्युवाच ह ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चरितं शृणु वक्ष्यामि शशिमौलेस्तु नारद ॥ गुहजन्मकथां दिव्यां तारकासुरसद्वधम् ॥ ६ ॥ श्रूयतां कथयाम्यद्य कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो ध्रुवम् ॥ ७ ॥

साथ विवाह करके जब अपने कैलास पर्वतको गमन किया, तब वहां क्या किया सो कहिये ॥ २ ॥ परमात्मा शिवके किस प्रकारसे पुत्र हुआ, जिसके निमित्त आत्माराम प्रभु शंकरने शिवासे विवाह किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवसुखकारी तारकासुरका वध किस प्रकारसे हुआ, मेरे ऊपर दयाकर यह सब विस्तारके साथ कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार प्रजापति नारदजीके वचन सुनकर शंकरको स्मरण कर प्रसन्न मनसे कहने लगे ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! शिवजीके चरित्र सुनो गुहके जन्मकी दिव्य कथा और तारकासुरका वध कहता हूं ॥ ६ ॥ सुनो मैं इस समय पापनाशिनी कथाको

कहता हूं जिसको सुनकर मनुष्य निश्चय सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यह आख्यान पापरहित रहस्यरूप गोपनीय और परम अद्भुत है पाप संताप और सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है ॥ ८ ॥ सब मंगल देनेवाला साररूप सब श्रुतियोंमें मनोहर सुख और मोक्षका देनेवाला तथा कर्ममूलका नाश करनेवाला है ॥ ९ ॥ शिवाका विवाह कर कैलासमें आकर शिवजी भी बडी शोभाको प्राप्त हुए, और देवताओंके कृत्यका विचार करने लगे; तथा देवताओंकी पीडाका भी विचार किया ॥ १० ॥ साक्षात् भगवान् शिव जब कैलासमें आये, सब गण प्रसन्न होकर अनेक प्रकारके सुख मनाने लगे ॥ ११ ॥ शिवके

इदमाख्यानमनघं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ८ ॥ सर्वमंगलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ सुखदं मोक्षबीजं च कर्ममूलनिकृंतनम् ॥ ९ ॥ कैलासमागत्य शिवां विवाह्य शोभां प्रपेदे नितरां शिवोऽपि ॥ विचारयामास च देवकृत्यं पीडां जनस्यापि च देवकृत्ये ॥ १० ॥ शिवस्स भगवान् साक्षात्कैलासमगमद्यदा ॥ सौख्यं च विविधं चक्रुर्गणास्सर्वे सुहर्षिताः ॥ ॥ ११ ॥ महोत्सवो महानासीच्छिवे कैलासमागते ॥ देवास्स्वविषयं प्राप्ता हर्षनिर्भरमानसाः ॥ १२ ॥ अथ शंभुर्महादेवो गृहीत्वा गिरिजां शिवाम् ॥ जगाम निर्जनं स्थानं महादिव्यं मनोहरम् ॥ १३ ॥ शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥ अद्भुतां तत्र परमां भोगवस्त्वन्वितां शुभाम् ॥ १४ ॥ स रेमे तत्र भगवाञ्शंभुर्गिरिजया सह ॥ सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन मानदः ॥ १५ ॥ दुर्गांगस्पर्शमात्रेण लीलया मूर्च्छितः शिवः ॥ मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥ १६ ॥ हरे भोगप्रवृत्ते तु लोकधर्मप्रवर्तिनि ॥ महान् कालो व्यतीयाय तयोः क्षण इवानघ ॥ १७ ॥

कैलास आनेमें बडा महोत्सव हुआ, देवता बडे प्रसन्न हो अपने स्थानमें आये ॥ १२ ॥ तब महादेव शंकर शिवा गिरिजाको विवाह करके महा दिव्य मनोहर एकान्त स्थानमें गये ॥ १३ ॥ पुष्प चंदनसे चर्चित रतिकी बढानेवाली सेज बनाकर जो बडी अद्भुत थी और जिसमें सम्पूर्ण भोगकी वस्तुएँ विद्यमान थीं ॥ १४ ॥ भगवान् शिवजी पार्वतीसहित उस स्थानमें रमण करने लगे और वह मानके देनेवाले देवताओंके सहस्र वर्षतक विहार करते रहे ॥ १५ ॥ दुर्गाके अंग स्पर्शमात्रसे लीलासेही शिव मूर्च्छित होगये और भगवतीभी शिवके अंगस्पर्शसे मूर्च्छित होगई और दिनरात कुछ नहीं जाना ॥ १६ ॥ जिस समय

शिवजी भोगमें प्रवृत्त हुए तब उनको बहुत समय भी क्षणमात्रकी समान बीत गया ॥ १७ ॥ तब सब देवता एकसमय इकट्ठे होकर इन्द्रादिके साथ सलाह करने लगे और सब एकत्र हुए ॥ १८ ॥ देवता बोले ईश्वर शंकरने हमारे निमित्त विवाह किया, यह योगीश्वर निर्विकार स्वात्माराम निरंजन हैं ॥ १९ ॥ सो इनके अबतक कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है इसमें हम कारण नहीं जानते, देवेश्वर इसमें क्यों विलम्ब कर रहे हैं ॥ २० ॥ उसी समय देवता नारदसे देवदर्शन उन दोनोंके रमण करनेके समयको अपरिमित जानकर ॥ २१ ॥ उनका भोग बहुत समयका जानकर वे देवता चिन्ता करने लगे

अथ सर्वे सुरास्तात एकत्रीभूय चैकदा ॥ मंत्रयां चक्रुरागत्य मेरौ शक्रपुरोगमाः ॥ १८ ॥ सुरा ऊचुः ॥ विवाहं कृतवाञ्छंभुरस्मत्कार्यमीश्वरः ॥ योगीश्वरो निर्विकारो स्वात्मारामो निरंजनः ॥ १९ ॥ नोत्पन्नस्तनयस्तस्य न जानामोऽत्र कारणम् ॥ विलंबः क्रियते तेन कथं देवेश्वरेण हा ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे देवा नारदाद्देवदर्शनात् ॥ बुबुधुस्तन्मितं भोगं तयोश्च रममाणयोः ॥ २१ ॥ चिरं ज्ञात्वा तयोर्भोगं चिंतामापुस्सुराश्च ते ॥ ब्रह्माणं मां पुरस्कृत्य ययुर्नारायणांतिकम् ॥ २२ ॥ तं नत्वा कथितं सर्वं मया वृत्तांतमीप्सितम् ॥ सन्तस्थिरे सर्वदेवा चित्रे पुत्तलिका यथा ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन शंकरः ॥ रतौ रतश्च निश्चेष्टो योगी विरमते न हि ॥ २४ ॥ ॥ भगवानुवाच ॥ चिन्ता नास्ति जगद्धातस्सर्वं भद्रं भविष्यति ॥ शरणं व्रज देवेश शंकरस्य महाप्रभोः ॥ २५ ॥ महेशशरणापन्ना ये जना मनसा मुदा ॥ तेषां प्रजेश भक्तानां न कुतश्चिद्भयं क्वचित् ॥ २६ ॥ शृंगारभंगस्समये भविता नाधुना विधे ॥ कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धिं प्राप्नोति नान्यथा ॥ २७ ॥

मुझ ब्रह्माको आगे करके वे नारायणके समीप गये ॥ २२ ॥ नारायणको प्रणामकर मैंने सब वृत्तान्त सुनाया और सब देवता चित्र लिखी पुतलीकी समान होगये ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजी देवताओंके सहस्र वर्ष पर्यन्त रतिमें रत हुए हैं वह निश्चेष्ट योगी होकर विरामको प्राप्त नहीं होते ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे जगत्के विधाता ! चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं सब कल्याण होगा हे देवेश ! तुम महाप्रभु शंकरकी शरणमें जाओ ॥ २५ ॥ जो मनुष्य मनसे सदा महेशकी शरण जातेहैं हे प्रजापति ! उन शंकरके भक्तोंको कहींसे कुछ भय नहीं है ॥ २ [illegible] धाता ! पर यह समय शृंगारके

भंग करनेका नहीं है, समयपर किये प्रयोग सिद्धिके देनेवाले होते हैं, अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥ शंकरका संभोग भं [illegible] कौन समर्थ होसक्ताहै, सहस्र वर्ष पूर्ण होनेमें अपनी इच्छासे ही विराम करैंगे ॥ २८ ॥ जो पुरुष किसी उपायसे स्त्री पुरुषका वियोग करादेताहै जन्मजन्म उसके स्त्री पुत्रका भेद होता है ॥ २९ ॥ फिर इस लोकमें ज्ञानसे भ्रष्ट कीर्तिसे नष्ट होकर लक्ष्मीसे हीन हो जन्म लेताहै और फिर वह पातकी लाख वर्षतक कालसूत्र नाम नरकमें पडता है ॥ ३० ॥ रंभासे युक्त इन्द्रको महामुनि दुर्वासाने वियुक्त किया था, इस कारण उनके भी स्त्रीका भेद हुआ ॥ ३१ ॥ फिर दूसरी स्त्रीको प्राप्त

शम्भोस्सम्भोगमिष्टं को भेदं कर्तुमिहेश्वरः ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे च स्वेच्छया हि विरंस्यति ॥ २८ ॥ स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः ॥ तस्य स्त्रीपुत्रयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥ भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्त्तिरलक्ष्मीको भवेदिह ॥ प्रयात्यंते कालसूत्रं वर्षलक्षं स पातकी ॥ ३० ॥ रंभायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ ॥ महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह ॥ ३१ ॥ पुनरन्यां स संप्राप्य विषेव्य शुभपाणिकाम् ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥ ३२ ॥ घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान् गुरुः ॥ षण्मासाभ्यंतरे चन्द्रस्तस्य पत्नीं जहार ह ॥ ३३ ॥ पुनश्शिवं समाराध्य कृत्वा तारामयं रणम् ॥ तारां सगर्भां संप्राप्य विजहौ विरहज्वरम् ॥ ३४ ॥ मोहिनीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ ॥ महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह ॥ ३५ ॥ हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषलया सह संयुतम् ॥ चारयामास निश्चेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु ॥ ३६ ॥

हो शुभपाणि ग्रहणको प्राप्त हो दिव्य सहस्र वर्ष रमण करके वियोगका दुःख मिटाया ॥ ३२ ॥ घृताचीके संग मिलतेहुए कामको बृहस्पतिने निवारण किया था छः महीनेके भीतर ही चन्द्रमाने उनकी पत्नीको हरण किया ॥ ३३ ॥ फिर शिवजीकी आराधना करके और ताराके निमित्त संग्राम करके सगर्भा ताराको प्राप्त होकर विरहव्यथा मिटाई ॥ ३४ ॥ महर्षि गौतमने मोहिनीके साथ मिलतेहुए चन्द्रमाका वियोग किया था, इस कारण उनका स्त्रीसे वियोग हुआ ॥ ३५ ॥ हरिश्चन्द्रने हालिकको वृषलीके साथ निर्जनमें मिलतेहुए निवारण कर निश्चेष्ट किया था उसका फल सुनो ॥ ३६ ॥

वह विश्वामित्रसे ताडित हो स्त्री पुत्र और राज्यसे भी भ्रष्ट हुआ तब शिवजीकी आराधना करके पापसे मुक्त हुआ ॥ ३७ ॥ द्विजश्रेष्ठ अजामिल वृषलीका संग करता था, हे देवताओ ! भयके कारण उसे किसीने भी निवारण नहीं किया ॥ ३८ ॥ सबही निषेक साध्य है, हे विधाता ! निषेक बलवान् है, यह कर्म ही फल देता है इस कर्मफलको कौन निवारण कर सकता है ॥ ३९ ॥ यह शंकरके संभोगका कर्म दिव्य सहस्र वर्षतक है हे देवताओ ! जब सहस्र वर्ष पूर्ण होजांय तब वहाँ जाकर ॥ ४० ॥ वह प्रकार करना जिससे शंकरका वीर्य भूमिमें पतित होजाय, उस वीर्यसे स्कन्दनामवाला प्रभुका एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ हे विधाता ! इस समय देवताओंके साथ अपने स्थानको जाओ शिवजीको पार्वतीके साथ निर्जनमें आनंद करने दो ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले लक्ष्मीपति यह कहकर शीघ्रही अन्तःपुरमें चले गये, हे मुनीश्वर ! मेरे सहित सब देवता अपने स्थानको गये ॥ ४३ ॥ पीछे शक्ति और शक्तिमान्के विहारसे यह पृथिवी भारसे व्याकुल हो शेष और कच्छपजीके साथ कांप उठी ॥ ४४ ॥ तब कच्छपके भारसे सबका आधार पवन स्तंभित होगया और त्रिलोकी भयसे व्याकुल होगई ॥ ४५ ॥ तब सब देवता व्याकुल हो मुझसहित नारायणकी शरणमें गये और दीन मनसे वह सब वृत्तान्त

भ्रष्टः स्त्रीपुत्रराज्येभ्यो विश्वामित्रेण ताडितः ॥ ततश्शिवं समाराध्य मुक्तो भूतो हि कश्मलात् ॥ ३७ ॥ अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् ॥ न भिया वारयामासुस्सुरास्तां चापि केचन ॥ ३८ ॥ सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान् विधे ॥ निषेकफलदो वै स निषेकः केन वार्य्यते ॥ ३९ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च शंभोः संभोगकर्म तत् ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र सुरेश्वराः ॥ ४० ॥ येन वीर्यं पतेद्भूमौ तत् करिष्यथ निश्चितम् ॥ तत्र वीर्य्ये च भविता स्कन्दनामा प्रभोस्सुतः ॥ ४१ ॥ अधुना स्वगृहं गच्छ विधे सुरगणैस्सह ॥ करोतु शंभुस्संभोगं पार्वत्या सह निर्जने ॥ ४२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा कमलाकान्तः शीघ्रं स्वान्तःपुरं ययौ ॥ स्वालयं प्रययुर्देवा मया सह मुनीश्वर ॥ ४३ ॥ शक्तिशक्तिमतोश्चाऽथ विहारेणाऽति च क्षितिः ॥ भाराक्रांता चकंपे सा सशेषाऽपि सकच्छपा ॥ ४४ ॥ कच्छपस्य हि भारेण सर्वाधारस्समीरणः ॥ स्तंभितोऽथ त्रिलोकाश्च बभुवूर्भयविह्वलाः ॥ ४५ ॥ अथ सर्वे मया देवा हरेश्च शरणं ययुः ॥ सर्वं निवेदयांचक्रुस्तद्वृत्तं दीनमानसाः ॥ ४६ ॥

निवेदन किया ॥ ४६ ॥ देवता बोले हे देवदेव रमानाथ ! हे सबकी रक्षा करनेवाले प्रभो ! हम भय व्याकुल मनसे आपकी शरण आये हैं, आप हमारी सबकी रक्षा करैं ॥ ४७ ॥ न जाने किस कारणसे त्रिलोकीकें प्राण स्तंभित हुए हैं, मुनि और देवताओं सहित त्रिलोकी व्याकुल होगई है ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! मुझ सहित जब सब देवताओंने ऐसा कहा और दीन तथा मौन हो दुःखसे विष्णुके आगे स्थित हुए ॥ ४९ ॥ तब हमारी सब देवताओंकी वाणी सुनकर नारायण शिवके प्रिय कैलास पर्वतको गये ॥ ५० ॥ वह सुरवल्लभ नारायण मेरे और देवतोंके साथ वहां जा शिवजीके स्थानमें

देवा ऊचुः ॥ देवदेव रमानाथ सर्वाऽवनकर प्रभोः ॥ रक्ष नः शरणापन्नान् भयव्याकुलमानसान् ॥ ४७ ॥ स्तंभितस्त्रिजगत्प्राणो न जाने केन हेतुना ॥ व्याकुलं मुनिभिर्लेखैस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्का सकला देवा मया सह मुनीश्वर ॥ दीनास्तस्थुः पुरो विष्णोर्मौनीभूतास्सुदुःखिताः ॥ ४९ ॥ तदाकर्ण्य समादाय सुरान्नः सकलान् हरिः ॥ जगाम पर्वतं शीघ्रं कैलासं शिववल्लभम् ॥ ५० ॥ तत्र गत्वा हरिर्देवैर्मया च सुरवल्लभः ॥ ययौ शिववरस्थानं शंकरं द्रष्टुकाम्य या ॥ ५१ ॥ तत्र दृष्ट्वा शिवं विष्णुर्न सुरैर्विस्मितोऽभवत् ॥ तत्र स्थिताञ् शिवगणान् पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ५२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ हे शंकराः शिवः कुत्र गतस्सर्वप्रभु गणाः ॥ निवेदयत नः प्रीत्या दुःखितान्वै कृपालवः ॥ ५३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सामरस्य हरेर्गणाः ॥ प्रोचुः प्रीत्या गणास्ते हि शंकरस्य रमापतिम् ॥ ५४ ॥ शिवगणा ऊचुः ॥ हरे शृणु शिवप्रीत्या यथार्थं ब्रूमहे वयम् ॥ ब्रह्मणा निर्जरैस्सार्द्धं वृत्तान्तमखिलं च यत् ॥ ५५ ॥ सर्वेश्वरो महादेवो जगाम गिरिजालयम् ॥ संस्थाप्य नोऽत्र सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः ॥ ५६ ॥

उनके देखनेकी इच्छासे गये ॥ ५१ ॥ वहां विष्णुजीने शिवजीको न देखकर देवतों सहित बडा विस्मय माना और वहां स्थितहुए गणोंसे विनय पूर्वक पूछा ॥ ॥५२॥ विष्णुजी बोले हे गणों ! हे शिवके सेवको ! वह तुम्हारे प्रभु शंकर कहां हैं तुम कृपा करनेवाले हो हम दुःखियोंके समाचार उनसे कहो ॥५३॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे देवताओंसहित नारायणके वचन सुनकर वे शिवजीके गण प्रीतिपूर्वक भगवान्से शंकरका वृत्तान्त कहने लगे ॥ ५४ ॥ शिवगण बोले हे नारायण ! प्रेमसे सुनो हम यथार्थ कहते हैं, ब्रह्मा और सब देवता इस शंकरके वृत्तान्तको सुनैं ॥ ५५ ॥ अनेक लीला करनेमें चतुर भगवान्

शंकर हम सबको यहां स्थापित करके वे सर्वेश्वर पार्वतीके मन्दिरमें गये हैं ॥ ५६ ॥ सो महेश्वर शंकर घरके भीतर क्या करतेहैं, सो हम नहीं जानते, हे रमानाथ ! यहां हमको बहुत वर्ष बीतगये ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी बोले विष्णुजीने देवता और मेरे सहित यह वचन सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ ! बडे विस्मित होकर शंकरके द्वारपर गमन किया ॥ ५८ ॥ देवतोंके प्यारे वह हरि वहां मेरे साथ जाकर ऊंची आर्त वाणीसे शब्द सुनाने लगे ॥ ५९ ॥ देवताओंके और मेरे साथ भगवान् विष्णु शिवकी स्तुति करनेलगे और हे मुनिश्रेष्ठ ! वहीं स्थित होकर सब देवताओंके प्रिय शंकरकी स्तुति की ॥ ६० ॥ विष्णुजी

तद्गृहाभ्यन्तरे शंभुः किं करोति महेश्वरः ॥ न जानीमो रमानाथ व्यतीयुर्बहवस्समाः ॥ ५७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वेति वचनं तेषां स विष्णुस्सामरो मया ॥ विस्मितोऽति मुनिश्रेष्ठ शिवद्वारं जगाम ह ॥ ५८ ॥ तत्र गत्वा मया देवैस्स हरिर्देववल्लभः ॥ आर्तवाण्या मुने प्रोचे तारस्वरतया तदा ॥ ५९ ॥ शंभुमस्तौन्महाप्रीत्या सामरो हि मया हरिः ॥ तत्र स्थितो मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकप्रभुं हरम् ॥ ६० ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किं करोषि महादेवाऽभ्यन्तरे परमेश्वर ॥ तारकार्तान्सुरान्सर्वान् पाहि नः शरणागतान् ॥ ६१ ॥ इत्यादि संस्तुवन् शंभुं बहुधा सोमरैर्मया ॥ रुरोदाति हरिस्तत्र तारकार्तैर्मुनीश्वर ॥ ६२ ॥ दुःखकोलाहलस्तत्र बभूव त्रिदिवौकसाम् ॥ मिश्रितशिव संस्तुत्याऽसुरार्त्तानां मुनीश्वर ॥ ६३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां कुमारखण्डे शिवविहारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तदाकर्ण्य महादेवो योगज्ञानविशारदः ॥ त्यक्तकामो न तत्याज संभोगं पार्वतीभयात् ॥ १ ॥

बोले हे महादेव ! हे परमेश्वर ! आप मन्दिरके भीतर क्या करते हो, तारक असुरसे भीत होकर हम सब देवता आपकी शरणमें आये हैं, हमारी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ इस प्रकार मेरे देवताओंके सहित विष्णुने बहुत प्रकारसे स्तुति की, हे मुनीश्वर ! तारकासुरकी विपत्ति कहते २ नारायणके नेत्रोंसे जल निकलने लगा ॥ ६२ ॥ वहां देवताओंका दुःखसे कोलाहल होने लगा हे मुनीश्वर ! जिसमें देवताओंकी आर्त वाणी और शिवकी स्तुति मिली हुई थी ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कु० शिवविहारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले योगज्ञानमें विशारद महादेव ! यह वचन सुनकर

त्यक्तकाम होकर भी पार्वतीके भयसे संभोगको न त्यागते हुए ॥ १ ॥ घरके द्वारे देवताओंके निकट शिवजी आये, भक्तवत्सल शंकरने उनको दैत्यसे पीडित देखा ॥ २ ॥ सब देवताओंने मैंने और विष्णु भगवान्‌ने शंकरको देखा और सब कोई उन भक्तवत्सलको देखकर बडे प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ भगवान् शंकर देवताओंके वचन सुनकर कुछ दुःखी चित्तसे देवताओंसे बोले ॥ ४ ॥ उधर देवता महाप्रेमसे प्रणाम कर मस्तक झुकाय मेरे और नारायणके सहित भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ देवता बोले हे देवदेव महादेव करुणासागर ! हे प्रभो ! आप सबके अन्तर्यामी और सबके जानने वाले हो ॥ ६ ॥

आजगाम गृहद्वारि सुराणां निकटं शिवः ॥ दैत्येन पीडितानां च शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २ ॥ देवास्सर्वे प्रभुं दृष्ट्वा हरिणा च मया शिवम् ॥ बभूवुस्सुखिनश्चाति तदा वै भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां भगवान्भवः ॥ प्रत्युवाच विषण्णात्मा दूयमानेन चेतसा ॥ ४ ॥ प्रणम्य सुमहाप्रीत्या नतस्कंधाश्च निर्जराः ॥ तुष्टुवुः शंकरं सर्वे मया च हरिणा मुने ॥ ५ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ अन्तर्यामी हि सर्वेषां सर्वं जानासि शंकर ॥ ६ ॥ देवकार्यं कुरु विभो रक्ष देवान् महेश्वर ॥ जहि दैत्यान् कृपां कृत्वा तारकादीन् महाप्रभून् ॥ ७ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ हे विष्णो हे विधे देवास्सर्वेषां वो मनोगतिः ॥ यद्भावि तद्भवत्येव कोऽपि नो तन्निवारकः ॥ ८ ॥ यज्जातं तज्जातमेव प्रस्तुतं शृणुताऽमराः ॥ शिरस्तस्खलितं वीर्यं को ग्रहीष्यति मेऽधुना ॥ ९ ॥ स गृह्णीयादिति प्रोच्य पातयामास तद्भुवि ॥ अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितस्सर्वनिर्जरैः ॥ १० ॥ अभक्षच्छांभवं वीर्यं चंच्वा तु निखिलं तदा ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्राऽऽजगाम गिरिजा मुने ॥ ११ ॥

हे विभो ! देवताओंका कार्य करो हे महेश्वर ! देवताओंकी रक्षा करो हे प्रभु ! कृपा करके तारकादि महादैत्योंका नाश करो ॥७॥ शिवजी बोले हे विष्णो ! हे विधाता ! तुम हम सबके मनको जाननेवाले हो, जो कुछ होता है वह नहीं मिटता कोई उसका निवारण करनेवाला नहीं है ॥८॥ जो हुआ है वह होना ही था, अब इस समय जो प्रस्तुत है सो सुनो शिरसे स्खलित हुए मेरे वीर्यको कौन ग्रहण कर सकता है ॥ ९ ॥ वह कौन ग्रहण करेगा ऐसा कहकर उसे पृथिवीपर गिरा दिया, तब सब देवताओंने अग्निको प्रेरणा की कि, तुम कपोतरूपसे इस वीर्यको ग्रहण करो ॥ १० ॥ वह चोंचसे शिवजीका समस्त

वीर्य भक्षण कर गया हे मुने ! उसी समय वहां पार्वती आगई ॥ ११ ॥ वह इस कारण आई कि शिवजीके आगमनमें विलम्ब हुआ, परन्तु यहा के सहित वृत्तान्त देखकर महा क्रोधित हुई ॥ १२ ॥ और हरि आदि सब देवताओंको देखकर बोली ॥ १३ ॥ देवी बोली अरे देवताओ ! तुम सब बडे की स्तुति तुम स्वार्थ साधन करनेवाले हो, और दूसरोंको दुःख देते हो ॥ १४ ॥ स्वार्थके निमित्त परम प्रभु शिवकी आराधना करके मेरा विहार भंग [illegible]तक हो कारण मैं वन्ध्या हुई ॥ १५ ॥ मुझसे विरोध करके किसी भी देवताको सुख नहीं मिलैगा इस कारण तुम दुष्ट देवताओंको महादुःख मिलेगा ॥

शिवागमविलंबे च ददर्श सुरपुंगवान् ॥ ज्ञात्वा तद्वृत्तमखिलं महाक्रोधयुता शिवा ॥ १२ ॥ उवाच त्रिदशान् सर्वान् हरिप्रभृती स्तदा ॥ १३ ॥ देव्युवाच ॥ रेरे सुरगणास्सर्वे यूयं दुष्टा विशेषतः ॥ स्वार्थसंसाधका नित्यं तदर्थं परदुःखदाः ॥ १४ ॥ स्वार्थहेता र्महेशानमाराध्य परमं प्रभुम् ॥ नष्टं चक्रुर्मद्विहारं वंध्याऽभवमहं सुराः ॥ १५ ॥ मां विरोध्य सुखं नैव केषांचिदपि निर्जराः ॥ तस्मा दुःखं भवेद्वो हि दुष्टानां त्रिदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा विष्णुप्रमुखान् सुरान्सर्वाञ् शशाप सा ॥ प्रज्वलंती प्रकोपेन शैलराजसुता शिवा ॥ १७ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ अद्यप्रभृति देवानां वंध्या भार्या भवन्त्विति ॥ देवाश्च दुःखितास्संतु निखिला मद्विरोधिनः ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति शप्त्वाऽखिलान्देवान् विष्णवाद्यान्सकलेश्वरी ॥ उवाच पावकं क्रुद्धा भक्षकं शिवरेतसः ॥ १९ ॥ पार्वत्युवाच ॥ सर्वभक्षी भव शुचे पीडितात्मेति नित्यशः ॥ शिवतत्त्वं न जानासि मूर्खोऽसि सुरकार्यकृत् ॥ २० ॥ रेरे शठ महादुष्ट दुष्टानां दुष्टबोधवान् ॥ अभक्षश्शिववीर्यं यन्नाकार्षीरुचितं हि तत् ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर भगवतीने विष्णुआदि सब देवताओंको शाप दिया उस समय पार्वती क्रोधसे प्रज्वलित हो उठी ॥ १७ ॥ पार्वती बोली आजसे सब देवताओंकी स्त्रियें वांझ हो जांयगी और मेरे विरोधी सब देवता दुःख पावैं ॥ १८ ॥ सबकी ईश्वरीने इस प्रकार विष्णुआदि देवताओंको शाप देकर अग्निसे क्रोधकर कहा, तैने शिवजीका वीर्य भक्षण कियाहै ॥ १९ ॥ पार्वती बोली हे अग्नि ! तुम आजसे सर्वभक्षी होकर सदा पीडित होगे तुम शिवका तत्त्व नहीं जानोगे, देवताओंकेही कार्यसाधक रहे इससे मूर्ख हुए ॥ २० ॥ रे रे धूर्त ! महादुष्ट ! दुष्टोंका बोध करनेवाले ! जो कि तैने शिवजीका वीर्य

भक्षण किया, यह बहुत बुरा किया ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकार क्रोधसे पार्वतीने अग्निको शाप दिया, हे मुने ! और महा रुष्ट होकर अपने
स्थानको चली गई ॥ २२ ॥ तब पार्वतीके पास जाकर शिवजीने उन्हें बहुत समझाया हे मुनीश्वर ! फिर पार्वतीके गणेश नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥
हे मुनिराज ! वह वृत्तान्त आगे वर्णन करैंगे, इस समय प्रेमसे आप गुहकी उत्पत्ति सुनो ॥ २४ ॥ देवता अग्निके द्वाराही अन्नोंका भोग लगातेहैं, यह
वेदवाणी है इससे सब देवता सगर्भ होते हैं ॥ २५ ॥ तब उनके वीर्यको न सहनेके कारण सब देवता पीडित हुए विष्णु आदि सब देवताओंकी यही दशा हुई

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति शप्त्वा शिवा वह्निं महेशेन नगात्मजा ॥ जगाम स्वालयं शीघ्रमसंतुष्टा ततो मुने ॥ २२ ॥ गत्वा शिवा शिवं
सम्यक् बोधयामास यत्नतः ॥ अजीजनत्परं पुत्रं गणेशाख्यं मुनीश्वर ॥ २३ ॥ तद्वृत्तांतमशेषं च वर्णयिष्ये मुनेऽग्रतः ॥ इदानीं शृणु
सुप्रीत्या गुहोत्पत्तिं वदाम्यहम् ॥ २४ ॥ पावकादितमन्नादि भुंजते निर्जराः खलु ॥ वेदवाण्येति सर्वे ते सगर्भा अभवन्सुराः ॥ २५ ॥
ततोऽसहंतस्तद्वीर्यं पीडिता ह्यभवन् सुराः ॥ विष्ण्वाद्या निखिलाश्चाति शिवाऽऽज्ञानष्टबुद्धयः ॥ २६ ॥ अथ विष्णुप्रभृतिकास्सर्वे
देवा विमोहिताः ॥ दह्यमाना ययुः शीघ्रं शरणं पार्वतीपतेः ॥ २७ ॥ शिवालयस्य ते द्वारि गत्वा सर्वे विनम्रकाः ॥ तुष्टुवुस्सशिवं शंभुं
प्रीत्या सांजलयस्सुराः ॥ २८ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव गिरिजेश महाप्रभो ॥ किं जातमधुना नाथ तव माया दुरत्यया
॥ २९ ॥ सगर्भाश्च वयं जाता दह्यमानाश्च रेतसा ॥ तव शंभो कुरु कृपां निवारय दशामिमाम् ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्याऽमरस्तुतिं
परमेशश्शिवापतिः ॥ आजगाम द्रुतं द्वारि यत्र देवाः स्थिता मुने ॥ ३१ ॥

शिवकी इच्छासे उनकी बुद्धियें नष्ट होगईं ॥ २६ ॥ तब विष्णु आदि सब देवता मोहित होकर वीर्यकी अग्निसे दह्यमान होकर भगवान् शंकरकी
गये ॥ २७ ॥ वे सब देवता शिवमंदिरके द्वारे जाकर नम्र हो हाथ जोड बडी प्रीतिसे भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ देवता बोले
महादेव ! हे गिरिजापति ! हे महाप्रभो ! हे नाथ ! अब यह क्या हुआ हम सब आपके वीर्यकी अग्निसे व्याकुल हैं तुम्हारी माया बडी दुरत्यय है
हम सब सगर्भ हैं आपके वीर्यसे सब दग्ध होते हैं, हे शंकर ! कृपाकरके हमारी यह दशा निवारण कीजिये ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले परमेश

इस प्रकार देवताओंकी स्तुतिका सुनकर हे मुने ! जहां देवता थे शीघ्रतासे द्वारे आये ॥ ३१ ॥ जब शंकर द्वारेपर आये तब सब देवता भगव के सहित
उन भक्तवत्सल शंकरको प्रणाम करके शिर झुकाय स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥ देवता बोले हे शंभो शिव ! हे महेशान ! हम सब विशेषकर आ की स्तुति
करते हैं आपके वीर्यसे हम दग्ध होरहेहैं शरणमें आयेहुए हमारी आप रक्षा करैं ॥ ३३ ॥ हे हर ! आप हमारे इस दुःखको हरण कीजिये, हम तक हो
रहे हैं देवताओंके दुःख निवारणमें आपके बिना कौन समर्थ है ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले देवताओंके अधिपति शंकर देवताओंके यह दीनतर वचन कर

आगतं शंकरं द्वारि सर्वे देवाश्च साच्युताः ॥ प्रणम्य तुष्टुवुः प्रीत्या नतका भक्तवत्सलम् ॥ ३२ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ शंभो शिव
शान त्वां नतास्स्म विशेषतः ॥ रक्ष नश्शरणापन्नान् दह्यमानांश्च रेतसा ॥ ३३ ॥ इदं दुःखं हरं[1] हर भवामो हि मृता ध्रुवम् ॥ त्वा
विना कस्समर्थोऽद्य देवदुःखनिवारणे ॥ ३४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति दीनतरं वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् प्रभुः ॥ प्रत्युवाच विह
स्याऽथ स सुरान् भक्तवत्सलः ॥ ३ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवास्सर्वे शृणुत मद्वचः ॥ भविष्यंति सुखं वोऽद्य साव
धाना भवन्तु हि ॥ ३६ । र्यं द्रुतमेवाऽखिलास्सुराः ॥ सुखिनस्तद्विशेषेण शासनान्मम सुप्रभो ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इत्याज्ञां शिरसाऽधाय वि स्सुराः ॥ अकार्षुर्वमनं शीघ्रं स्मरंतश्शिवमव्ययम् ॥ ३८ ॥ तच्छंभुरेतस्स्वर्णाभं पर्वताकार
मद्भुतम् ॥ अभवत्पतितं नेव सुप्रभम् ॥ ३९ ॥

वह भक्तवत्सल हंसतेहुए सब ३५ ॥ शिवजी बोले हे विष्णुजी ! हे ब्रह्माजी ! हे सब देवताओं ! हमारे वचन सुनो तुमको सुख होगा
तुम सब सावधान होजाओ । ! तुम बहुत शीघ्र इस हमारे रेतको वमन करदो, हे देव ! मेरे शासनसे तुम शीघ्र सुखी होगे ॥ ३७ ॥
ब्रह्माजी बोले विष्णुआदि स शंकरकी आज्ञाको शिरपर धारण कर अविनाशी शंकरका स्मरण करतेहुए उस वीर्यको वमन करदिया
॥ ३८ ॥ पृथिवीपर गिरते र्य स्वर्णकी समान चमकता हुआ पर्वताकार होकर स्वर्गको स्पर्श करने लगा ॥ ३९ ॥

---

[1] एकहरशब्दस्य शिवेत्यर्थः । ।

उस समय विष्णुआदि सब
भक्तवत्सल परमेशान शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! पर अग्नि प्रसन्न न हुआ उसे
शंकरने परम आज्ञा दी थी
वह आग्नि हाथ जोड मस्तक झुकाय असुखी होनेके कारण शिवजीकी स्तुति करता हुआ यह वचन
बोला ॥ ४२ ॥ अग्निने क
! मैं आपका सेवक बडा मूढ हूं मेरा अपराध क्षमा करके मेरा दाह निवारण करो ॥ ४३ ॥
हे स्वामिन् ! तुम दीन वत्स
ार कल्याण करनेवाले हो जब इस प्रकार प्रसन्नचित्तसे अग्निने परमेश्वरकी स्तुति की तब वह बोले

अभवन्सुखिननस्सर्वे सु
॥ अस्तुवन् परमेशानं शंकरं भक्तवत्सलम् ॥४०॥ पावकस्त्वभवन्नैव सुखी तत्र मुनीश्वर ॥
तस्याज्ञां परमोऽदाद्धै शंक
४१ ॥ ततस्स वह्निर्विकलस्सांजलिर्नतको मुने ॥ अस्तौच्छिवं सुखी नात्मा वचनं चेदमब्र
वीत् ॥ ४२॥ ॥ अग्नि
वदेव महेशान मूढोऽहं तव सेवकः ॥ क्षमस्व मेऽपराधं हि मम दाहं निवारय ॥ ४३ ॥ त्वं
दीनवत्सल स्वामिञ्शंकरः
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावको दीनवत्सलम् ॥ ४४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य शुचेर्वाणीं
स शंभुः परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावकं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ शिव उवाच ॥ कृतं त्वनुचितं कर्म मद्रेतो भक्षितं हि यत् ॥
अतोऽनिवृत्तस्ते दाहः पापाधिक्यान्मदाज्ञया ॥ ४६ ॥ इदानीं त्वं सुखी नाम शुचे मच्छरणागतः ॥ अतः प्रसन्नो जातोऽहं सर्वं
दुःखं विनश्यति ॥ ४७ ॥ कस्याश्चित्सुस्त्रिया योनौ मद्रेतस्त्यज यत्नतः ॥ भविष्यसि सुखी त्वं हि निर्दाहात्मा विशेषतः ॥ ४८ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ शंभुवाक्यं निशम्येति प्रत्युवाच शनैः शुचिः ॥ सांजलिर्नतकः प्रीत्या शंकरं भक्तशंकरम् ॥ ४९ ॥

॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार परमेश्वर शिवजी अग्निकी वाणी सुनकर वह दीनवत्सल प्रसन्न हो अग्निसे कहने लगे ॥ ४५ ॥ तुमने यह अनु
चित कर्म किया था, जो मेरा वीर्य भक्षण किया, इस कारण मेरी आज्ञासे तेरा दाह निवृत्त न हुआ कारण कि तैने विशेष पाप किया था ॥ ४६ ॥ इस
समय तू शुचि हो सुखके निमित्त मेरी शरण हुआ है, इससे मैं प्रसन्न हुआ हूं अब तेरा सब दुःख नाश होजायगा ॥ ४७ ॥ तुम यत्नपूर्वक इस मेरे
वीर्यको किसी स्त्रीकी योनिमें त्यागन करो तब तुम्हारा दाह मिटजायगा और तू सुखी होगा ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुन शनैः

से मोहित हो अपना शीत निवारण करनेके निमित्त वहां गईं ॥ ५८ ॥ हे मुने ! अग्निके
कर गये, जिससे अग्निका दाह निवृत्त होगया ॥ ५९ ॥ उसी समय अग्नि वहांसे अन्तर्धान
ने लोकको चला गया ॥ ६० ॥ वह छहों स्त्रियें सगर्भा होकर दाहसे पीडित होगईं और
दुःखी देखा ॥ ६१ ॥ और उन मुनियोंने उन स्त्रियोंको इस प्रकार गर्भयुक्त देखकर क्रोधसे व्य

रोमद्वाराऽखिला वह्निरभूद्दाहविवर्जितः ॥ ५९ ॥ अंतर्धाय द्रुतं वह्निर्ज्वालारूपो ज
रं च तम् ॥ ६० ॥ सगर्भास्ताः स्त्रियस्साधोऽभवन् दाहप्रपीडिताः ॥ जग्मुस्स्वभवनं
स्वस्त्रीगतिं तात नाथाः क्रोधाकुला द्रुतम् ॥ तत्यजुस्ताः स्त्रियस्तात सुसंमंत्र्य परस्प
स्वव्यभिचारकम् ॥ महादुःखान्वितास्ताताऽभवन्नाकुलमानसाः ॥ ६३ ॥ तत्यजुश्शिव
भवन् दाहविवर्ज्जिताः ॥६४॥ असहञ्शिवरेतस्तद्धिमाद्रिः कंपमुद्वहन् ॥ गंगायां प्राक्षि
तद्वीर्यं दुस्सहं परमात्मनः ॥ निःक्षिप्तं हि शरस्तंबे तरंगैः स्वैर्मुनीश्वर ॥ ६६ ॥
भगः श्रीमांस्तेजस्वी प्रीतिवर्द्धनः ॥ ६७ ॥

ना व्यभिचार देखकर महा दुःखसे व्याकुल होगईं ॥ ६३ ॥ उन मुनियोंकी स्त्रियोंने गर्भरूप
कर वे सुखी हुईं ॥ ६४ ॥ उस वीर्यको सहनेकी सामर्थ्य न रखनेके कारण हिमालय कंपित
गंगाजीमें डालदिया ॥ ६५ ॥ श्रीगंगाजी भी शंकरके वीर्यको न सह सकी और पीडित
या ॥ ६६ ॥ वहां वह वीर्य पतित होतेही तत्काल बालक हो गया जो सुन्दर सुभग श्रीमान्

शंकरसे बोला ॥ ४९ ॥ हे महेश्वर ! हे नाथ ! आपका यह तेज बडा कठिन है, तीन
सामर्थ्य नहीं है ॥ ५० ॥ हे मुनिराज ! जिस समय अग्निदेवता यह वचन कहरहेथे उस
के निमित्त बोले ॥ ५१ ॥ नारदजी बोले हे अग्नि! तुम मेरे वचन सुनो जिनसे तुम्हारा
ब कष्टोंके दूर करनेवाले हैं ॥ ५२ ॥ हे अग्नि ! इसमें मेरे कहे उपायको करके तुम सुखी

विना शक्त्या धर्तुं योनौ जगत्त्रये ॥ ५० ॥ इत्थं यदाऽब्रवीद्वह्निस्तदा त्वं मुनिस
॥ ॥ नारद उवाच ॥ शृणु मद्वचनं वह्ने तव दाहहरं शुभम् ॥ परमानंददं रम्यं
सुखी भव विदाहकः ॥ शिवेच्छया मया सम्यगुक्तं तातेदमादरात् ॥ ५३ ॥ तपोमा
देहेषु स्थापय त्वं शिवरेतस्त्विदं महत् ॥ ५४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्मिन्नवसरे तत्राऽ
माः प्रातस्सन्नियमा मुने ॥ ५५ ॥ स्नानं कृत्वा स्त्रियस्ता हि महाशीतार्दिताश्च षट् ॥
६ ॥ विमोहिताश्च ता दृष्ट्वारुन्धती गिरिशाज्ञया ॥ निषिषेध विशेषेण सुचरित्रा सुबो
ठात्तत्र गता मुने ॥ स्वशीतविनिवृत्त्यर्थं मोहिताःशिवमायया ॥ ५८ ॥

कहनेकी इच्छा की है ॥ ५३ ॥ हे अग्नि ! माघके महीनेमें जो स्त्री प्रयागमें स्नान करनेके
करदो ॥५४॥ ब्रह्माजी बोले इसी समय वहां सातों मुनियोंकी स्त्रियें आनकर प्राप्त हुईं हे मुने !
॥ स्नान करके उनमें छः स्त्रियें शीतसे महा व्याकुल हुईं हे मुने ! वे शीघ्रतासे अग्निकी ज्वालाके
पतिव्रता अरुन्धतीने शिवकी आज्ञासे उनको विशेष रूपसे निषेध किया ॥ ५७ ॥ हे मुने

तेजस्वी प्रीतिका बढानेवालाथा ॥ ६७ ॥ हे मुनीश्वर ! मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीके दिन भूतलमें शिवपुत्रका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ६८ ॥ हे नारदजी ! उस समय अकस्मात् हिमालयपर्वतकी पुत्री और शिव ये दोनों प्रसन्न हुए ॥ ६९ ॥ पार्वतीके स्तनोंसे आनन्दका दूध चूने लगा, हे मुने ! वहां जाकर सबने विशेष सुख माना ॥ ७० ॥ हे तात ! त्रिलोकीको सुख देनेवाला मंगल विशेष रूपसे हुआ, खल और दैत्योंको विशेष रूपसे विघ्न हुआ ॥ ७१ ॥ आकाशसे अकस्मात् देवदुंदुभीका शब्द होने लगा हे नारद ! बालकके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ७२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुआदि

मार्गमासे सिते पक्षे तिथौ षष्ठ्‌ मुनीश्वर ॥ प्रादुर्भावोऽभवत्तस्य शिवपुत्रस्य भूतले ॥ ६८ ॥ तस्मिन्नवसरे ब्रह्मन्नकस्माद्धिमशैलजा ॥ अभूतां सुखिनौ तत्र स्वा गिरिशोऽपि च ॥ ६९ ॥ शिवाकुचाभ्यां सुस्राव पय आनन्दसंभवम् ॥ तत्र गत्वा च सर्वेषां सुखमासीन्मुनेऽधिकम् ॥ ७० ं चाऽभवत्तात त्रिलोक्यां सुखदं सताम् ॥ खलानामभवद्विघ्नो दैत्यानां च विशेषतः ॥ ७१ ॥ अकस्माद्ऽभवद्व्योम्नि परमो दुं ः ॥ पुष्पवृष्टिः पपाताऽऽशु बालकोपरि नारद ॥७२॥ विष्णवादीनां समस्तानां देवानां मुनिसत्तम ॥ अभूदकस्मात्परम आन त्सवः ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमदापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे शिवपुत्रजननवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्याय नारद उवाच ॥ देवदेव प्रजानाथ ब्रह्मन् सृष्टिकर प्रभो ॥ ततः किमभवत्तत्र तद्वदाऽद्य कृपां कुरु ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त रे तात विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ प्रेरितो विधिना तत्रागच्छत्प्रीतो यदृच्छया ॥ स दृष्ट्वाऽलौकिकं धाम तत्सुतस्य सु ॥ अभवत्पूर्णकामस्तु सुप्रसन्नो ननाम च ॥ ३ ॥

समस्त देवताओंको अकस्मात् परम आनन्द सव हुआ ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वितीयायां रुद्रसंहितायां च० कु० शिव वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद ोले हे देवदेव प्रजानाथ ! हे ब्रह्मन् ! हे सृष्टि करनेवाले ! हे प्रभो ! इसके पीछे क्या हुआ सो हमसे कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे त इसी अवसरमें प्रतापवान् विश्वामित्रजी विधातासे प्रेरित हो वहां अपनी इच्छासे आये ॥ २ ॥ उ

बालकका अलौकिक तेज देखकर पूर्णकाम प्रसन्न होकर नमस्कार किया ॥ ३ ॥ और प्रसन्न चित्तसे उस बालककी स्तुति करने लगे, प्रतापके
वाले विश्वामित्रजी विधिकी प्रेरित वाणियोंसे करने लगे ॥ ४ ॥ तब वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत प्रसन्न होकर विश्वामित्रजीसे
लगा ॥ ५ ॥ शिवके पुत्रने कहा हे महाज्ञ शिवकी इच्छासे आप अकस्मात यहां आगये हो, हे तात ! आप यथोक्त मेरा वेदसम्मत संस्कार क
॥ ६ ॥ और आजसे तुम मुझे प्रसन्न करने रे पुरोहित हुए और इसमें सन्देह नहीं तुम सबके पूज्य होंगे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले बालकके यह व

अकरोत्सुनुतिं तस्य सुप्रसन्नेन चेत धिप्रेरितवाग्भिश्च विश्वामित्रः प्रभाववित् ॥ ४ ॥ ततस्सोऽभूत्सुतस्तत्र सुप्रसन्नो महो
कृत् ॥ सुप्रहस्याद्भुतमहो विश्वामि व ॥ ५ ॥ शिवसुत उवाच ॥ शिवेच्छया महाज्ञानिन्नकस्मात्त्वमिहागतः ॥ संस्कारं कुरु
मे तात यथावद्वेदसंमितम् ॥ ६ ॥ पुरोधास्त्वं भव मे प्रीतिमावहन् ॥ भविष्यसि सदा पूज्यस्सर्वेषां नात्र संशयः ॥ ७ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य व सुप्रसन्नो हि गाधिजः ॥ तमुवाचानुदात्तेन स्वरेण च सुविस्मितः ॥ ८ ॥ ॥ विश्वामित्र
उवाच ॥ शृणु तात न विप्रोऽहं बालकः ॥ विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः ॥ ९ ॥ इति स्वचरितं ख्यातं
मया ते वरबालक ॥ कस्त्वं स्व ब्रूहि विस्मितायाखिलं हि मे ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तत्स्ववृत्तं जगाद
ह ॥ ततश्चोवाच सुप्रीत्या गाधि महोतिकृत् ॥ ११ ॥ ॥ शिवसुत उवाच ॥ विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षिर्नाऽत्र संशयः ॥ वशि
ष्ठाद्याश्च नित्यं त्वां प्रशंसिष्यंति आदरात् ॥ १२ ॥

सुन विश्वामित्रजी प्रसन्न हुए और विस्मित हो ऊँचे स्वरसे बालकसे कहने लगे ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजी बोले हे तात ! सुनो मैं ब्राह्मण नहीं हूं मैं गाधि
क्षत्रिय कुमार हूं मैं क्षत्रिय ब्राह्मणसेवक विश्वामित्र नामसे विख्यात हूं ॥ ९ ॥ हे श्रेष्ठ बालक ! इस प्रकार मैंने तुझसे अपना चरित्र कहा तू कौन है अपना
चरित्र कह, मुझे तेरी बातसे बडा आश्चर्य हो रहा है ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले जब यह वचन सुनकर वह बालक प्रसन्न हो उन विश्वामित्रजीसे अपना
चरित्र कहने लगे ॥ ११ ॥ शिवपुत्रने कहा हे विश्वामित्रजी ! मेरे वरसे तुम ब्रह्मर्षि होंगे, इसमें सन्देह नहीं वशिष्ठ आदि आदरसे नित्य तुम्हारी प्रशंसा

करैंगे ॥ १२ ॥ इस कारण मेरी आज्ञासे तुम मेरे संस्कार करो. और यह गुप्त रहस्य तुमको किसीसे कहना नहीं चाहिये ॥ १३ ॥ तब उन देवर्षिंने बडे प्रेमसे उस शिवपुत्रके संस्कार वेदानुसार किये ॥ १४ ॥ तब शिवके पुत्रने महा उपकार करके विश्वामित्र ऋषिके निमित्त प्रसन्न होकर दिव्य ज्ञान दिया ॥ १५ ॥ और इन अग्निपुत्रने विश्वामित्रजीको पुरोहित कियां, उसी दिनसे अनेक चरित्र करनेमें पण्डित वह ब्राह्मणश्रेष्ठ पुरोहित हुए ॥ १६ ॥ हे मुने ! इस प्रकार जो बालकने लीला की सो मैंने कही हे तात ! अब प्रेमसे दूसरी लीला सुनो मैं कहता हूं ॥ १७ ॥ हे तात ! उस समय श्वेतनामक एक महात्माने

अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि ॥ इदं सर्वं सुगोप्यं ते कथनीयं न कुत्रचित् ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततोकार्षीत्स संस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा ॥ शिवबालस्य देवर्षे वेदोक्तविधिना परम् ॥ १४ ॥ शिवबालोपि सुप्रीतो दिव्यज्ञानमदात्परम् ॥ विश्वामित्राय मुनये महोतिकारकः प्रभुः ॥ १५ ॥ पुरोहितं चकारासौ विश्वामित्रं शुचेस्सुतः ॥ तदारभ्य द्विजवरो नानालीलाविशारदः ॥ १६ ॥ इत्थं लीला कृता तेन कथिता सा मया मुने ॥ तल्लीलामपरां तात शृणु प्रीत्या वदाम्यहम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसेर तात श्वेतनामा च संप्रति ॥ तत्राऽपश्यत्सुतं दिव्यं निजं परमपावनम् ॥ १८ ॥ ततस्तं पावको गत्वा दृष्ट्वालिंग्य चुचुंम्ब च ॥ पुत्रेति चोक्का तस्मै स शस्त्रं शक्तिन्ददौ च सः ॥ १९ ॥ गुहस्तां शक्तिमादाय तच्छृंगं चारुरोह ह ॥ तं जघा न तया शक्त्या शृंगो भुवि पपात सः ॥ २० ॥ दशपद्ममिता वीरा राक्षसाः पूर्वमागताः ॥ तद्वधार्थं द्रुतं नष्टा बभूवुस्तत्प्रहारतः ॥ २१ ॥ हाहाकारो महानासीच्चकंपे साचला मही ॥ त्रैलोक्यं च सुरेशानस्सदेवस्तत्र चागमत् ॥ २२ ॥

उस दिव्य परम पावन बालकको देखा ॥ १८ ॥ और अग्निने जातेही उसको आलिंगन कर चूमा, और पुत्र ! इस प्रकार कहकर उसको शक्ति और अस्त्र दिया ॥ १९ ॥ गुह उस शक्तिको लेकर क्रौंच पर्वतके शिखरपर चढगये, और उस शक्तिसे पर्वत शृंगपर प्रहार किया, जिससे वह शिखर पृथिवीमें गिरपडा ॥ २० ॥ यह देखकर दश पद्म वीर राक्षस उनके मारनेको आये और कुमारके प्रहारसे सब नष्ट होगये ॥ २१ ॥ उस समय मह[illegible]हाकार मचगया,

और सब पृथिवी कांपने लगी, उस समय त्रिलोकी व्याकुल हुई तब इन्द्रादि देवता वहां आनकर प्राप्त हुए ॥२२॥ उनके दक्षिण र्श्वमें इन्द्रने वज्रका प्रहार किया, उस समय शाख नामक एक महा बली पुरुष प्रगट हुआ ॥ २३ ॥ फिर इन्द्रने उसके वाम पार्श्वमें प्रहार किया, तब उस वज्रके लगनेसे विशाख नामक एक दूसरा पुरुष महाबली उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ तब इन्द्रने उस बालकके हृदयमें वज्रका प्रहार किया, तब वहांसे नैगम नामक एक महाबली पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ तब वह स्कन्दादि चारों महाबली महावीर इन्द्रके मारनेको शीघ्रतासे चले, सो यह उनकी शरणमें गया ॥२६॥

दक्षिणे तस्य पार्श्वे च वज्रेण स जघान च ॥ शाखनामा ततो जातः पुमांश्चैको महाबलः ॥ २३ ॥ पुनश्शक्रो जघानाऽऽशु वामपार्श्वे हि तं तदा ॥ वज्रेणाऽन्यः पुमाञ्जातो विशाखाख्योऽपरो बली ॥ २४ ॥ ततस्तद्धृदयं शक्रो जघान पविना तदा ॥ परोऽभून्नैगमोपाख्यः पुमांस्तद्वन्महाबलः ॥ २५ ॥ तदास्कंदादिचत्वारो महावीरा महाबलाः ॥ इन्द्रं हंतुं द्रुतं जग्मुस्सोयं तच्छरणं ययौ ॥ २६ ॥ शक्रस्ससामरगणो भयं प्राप्य गृहात्ततः ॥ ययौ स्वलोकं चकितो न भेदं ज्ञातवान्मुने ॥ २७ ॥ स बालकस्तु तत्रैव तस्थाऽऽवानंदसंयुतः ॥ पूर्ववन्निर्भयस्तात नानालीलाकर प्रभुः ॥२८॥ तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः ॥ स्नातुं समागता बालं ददृशुस्तं महाप्रभुम् ॥ २९ ॥ ग्रहीतुं तं मनश्चक्रुस्सर्वास्ता कृत्तिकाः स्त्रियः ॥ वादो बभूव तासां तद्ग्रहणेच्छापरो मुने ॥ ३० ॥ तद्वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकार ह ॥ पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने ॥ ३१ ॥

तब इन्द्र देवताओंके सहित महाभयको प्राप्त होकर चकित हो अपने लोकको चला गया हे मुने ! उसने कुछ भेद नहीं जाना ॥ २७ ॥ और वह बालक आनंद पूर्वक वहीं स्थित हुआ हे तात ! वह अनेक लीला करनेवाले प्रभु पूर्वकी समान निर्भय रहे ॥ २८ ॥ उसी समय कृतिका नामक छः स्त्रियें वहां स्नानके निमित्त आईं उन्होंने उस बालकको वहां देखा जो बडी कान्तिवाला था ॥ २९ ॥ उन कृत्तिकादि छहों स्त्रियोंने उस बालकके ग्रहण करनेकी इच्छा की हे मुने ! बालकके ग्रहण करनेकी इच्छासे उनमें विवाद होने लगा ॥ ३० ॥ उनका विवाद देखकर बालकने छःमुख धारणकर लिये, और सबका

दूध पिया हे मुने ! इस कारण वे सब प्रसन्न हुईं ॥ ३१ ॥ उस बालकके मनकी गति जानकर वह छहों कृत्तिका उस बालकको लेकर प्रसन्न हो अपने लोकको गईं ॥३२॥ उन शिवजीके पुत्र सूर्यसे अधिक कान्तिवाले दूध पीनेकी इच्छा करनेवाले कुमारको वे छहों अपना दूध पिलाकर बढाने लगीं॥ ३३॥ वे किसी समय भी बालकको अपनी आंखोंकी ओट न करतीं, और प्राणोंसे भी अधिक उस प्रेमपात्र कुमारको रखतीं, कारण कि वह सब उनकी पोषक थीं ॥ ३४॥ जो जो वस्त्र और श्रेष्ठ भूषण त्रिलोकीमें दुर्लभ है, वे प्रेमपूर्वक उस बालकको लाकर देतीं ॥ ३५ ॥ महाकांतिवाले उस बालकको वे दिन दिन पुष्ट

तन्मनोगतिमाज्ञाय सर्वास्ताः कृत्तिकास्तदा ॥ तमादाय ययुर्लोकं स्वकीयं मुदिता मुने ॥ ३२ ॥ तं बालकं कुमाराख्यं स्तनं दत्त्वा
स्तनार्थिने ॥ वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम् ॥ ३३ ॥ न चक्रुर्बालकं याश्च लोचनानामगोचरम् ॥ प्राणेभ्योपि प्रेमपात्रं यः
पोष्टा तस्य पुत्रक ॥ ३४ ॥ यानि यानि च वस्त्राणि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ॥ ददुस्तस्मै च ताः प्रेम्णा भूषणानि वराणि वै ॥ ३५ ॥
दिनेदिने ताः पुपुषुर्बालकं तं महाप्रभुम् ॥ प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयित्वा विशेषतः ॥ ३६ ॥ अथैकस्मिन् दिने तात स बालः
कृत्तिकात्मजः ॥ गत्वा देवसभां दिव्यां सुचरित्रं चकार ह ॥ ३७ ॥ स्वमहो दर्शयामास देवेभ्यो हि महाद्भुतम् ॥ सविष्णुभ्योऽखिले
भ्यश्च महोतिकरबालकः ॥ ३८ ॥ तं दृष्ट्वा सकलास्ते वै साच्युतास्सर्षयस्सुराः ॥ विस्मयं प्रापुरत्यन्तं पप्रच्छुस्तं च बालकम्
॥ ३९ ॥ को भवानिति तच्छ्रुत्वा न किंचित्स जगाद ह ॥ स्वालयं स जगामाऽशु गुप्तस्तस्थौ हि पूर्ववत् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिव
महापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे कार्तिकेयलीलावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

करती जाती थीं, विशेषकर प्रशंसित और स्वादुअन्न भोजन कराती॥ ३६॥ हे तात ! एक समय कृत्तिकाका पुत्र वह बालक देवसभामें जाकर एक सुन्दर चरित्र करता हुआ ॥ ३७॥ वह महा उन्नति करनेवाला बालक देवसभामें विष्णु और सब देवताओंको अपनी महिमा दिखाने लगा ॥ ३८॥ उस कर्तव्यको देखकर वे विष्णु आदि देवता और ऋषि महा विस्मयको प्राप्त हो उस बालकसे पूछने लगे ॥ ३९ ॥ आप कौन हो ? यह वचन सुनकर उस बालकने कुछ न कहा और अपने स्थानमें आकर पूर्ववत् गुप्त रहना स्वीकार किया ॥४०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रु० च० कुमारखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारदजी बोले हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! इसके पीछे फिर क्या हुआ कृपा करके शिव लीलासे युक्त इस बातको आप कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! जिस समय उस शिवजीके पुत्रको कृत्तिकाओंने ग्रहणकर लिया कुछ समय बीतगया पर पार्वतीको यह समाचार न मिला ॥ २ ॥ उस समय हँसते हुए मुखकमलसे दुर्गाने देवेश्वर प्रभु अपने स्वामी शंकरसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ ३ ॥ पार्वती बोली हे देवदेव महादेव ! आप मेरे शुभ वचन सुनैं हे ईश्वर ! पूर्वजन्मके पुण्यके कारण ही आप मुझे प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ हे योगियोंमें श्रेष्ठ ! आप कृपा करके जब विहारमें तत्पर हुयेथे

नारद उवाच ॥ देवदेव प्रजानाथ ततः किमभवद्विधे ॥ वदेदानीं कृपातस्तु शिवलीलासमन्वितम् ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृत्तिकाभिर्गृहीते वै तस्मिञ्शंभुसुते मुने ॥ कश्चित्कालो व्यतीयाय बुबुधे न हिमाद्रिजा ॥ २ ॥ तस्मिन्नवसरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा ॥ उवाच स्वामिनं शंभुं देवदेवेश्वरं प्रभुम् ॥ ३ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेव महादेव शृणु मे वचनं शुभम् ॥ पूर्वपुण्यातिभारेण त्वं मया प्राप्त ईश्वर ॥ ४ ॥ कृपया योगिषु श्रेष्ठो विहारैस्तत्परोऽभवः ॥ रतिभंगः कृतो देवैस्तत्र मे भवता भव ॥ ५ ॥ भूमौ निपतितं वीर्यं नोदरे मम ते विभो ॥ कुत्र यातं च तद्देव केन देवेन निह्नुतम् ॥ ६ ॥ कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं ते महेश्वर ॥ मोघं यातं च किं किंवा शिशुर्जातश्च कुत्रचित् ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ उवाच देवानाहूय मुनींश्चापि मुनीश्वर ॥ ८ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् ॥ अमोघं कुत्र मे वीर्यं यातं केन च निह्नुतम् ॥ ९ ॥ सभयं नापतत्क्षिप्रं स चेद्दंडं न चार्हति ॥ शक्तौ राजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च भक्षकः ॥ १० ॥

उस समय देवताओंने मेरी रति भंगकरदीथी ॥ ५ ॥ हे विभो ! आपका वीर्य भूमिमें गिरा मेरे उदरमें नहीं गिरा हे देव ! वह वीर्य कहां गया किस देवताने उसे छिपा लिया ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! हे स्वामिन् वह आपका अमोघ वीर्य क्या मोघ होगया या कहीं उससे कोई बालक प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले पार्वतीके वचन सुनकर जगदीश्वर हंसते हुए देवता और मुनियोंको बुलाकर बोले ॥ ८ ॥ महेश्वर बोले हे देवताओ ! मेरे वचन सुनो तुमने पार्वतीके वचन सुने मेरा अमोघ वीर्य कहां है, उसको किसने छिपाया है ॥ ९ ॥ क्या भयसे शीघ्रतासे उसे कोई नहीं प्राप्त होगा, जो शीघ्र कहैगा तो दंडके

योग्य न होगा, जो शक्तिसम्पन्न होनेपर राजा अच्छा शासक न हो तो वह प्रजाको बाधा होनेसे रक्षक नहीं भक्षक कहाता है ॥ १० ॥ शिवजीके यह वचन सुनकर सब देवता व्याकुल होगये, और परस्पर सम्मति करके क्रमसे सब बोले ॥ ११ ॥ विष्णुजी बोले जिसने यह गुरुका वीर्य छिपाया है वे मिथ्यावादी हो वह भारतमें गुरुदारा और गुरु निन्दाके पापको प्राप्त हों ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले पुण्यक्षेत्र भारतमें जिसने यह पवित्र वीर्य चुराया है, वह आपकी सेवा पूजामें युक्त न हो ॥ १३ ॥ लोकपाल बोले जिस पापीने पतित होनेके भ्रमसे उस वीर्यको छिपाया है वह उस पापको प्राप्त होगा दुःख

शंभोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम् ॥ ऊचुस्सर्वे क्रमेणैव त्रस्तास्तु पुरतः प्रभोः ॥ ११ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ते मिथ्यावादिनस्संतु भारते गुरुदारिकाः ॥ गुरुनिन्दारताश्शश्वत्त्वद्वीर्यं यैश्च निह्नुतम् ॥ १२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ स नाऽन्वितो भवेत्तत्र सेवने पूजने तव ॥ १३ ॥ ॥ लोकपाला ऊचुः ॥ त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पापिना पतितभ्रमात् ॥ भाजनं तस्य सोत्यन्तं तत्तापं कर्म संततम् ॥ १४ ॥ देवा ऊचुः ॥ कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढोनाऽऽपादयति पूर्णताम् ॥ भाजनं तस्य पापस्य त्वद्वीर्यं येन निह्नुतम् ॥ १५ ॥ ॥ देवपत्न्य ऊचुः ॥ या निंदति स्वभर्तारं परं गच्छति पूरुषम् ॥ मातृबन्धुविहीना च त्वद्वीर्यं निह्नुतं यया ॥ १६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा देवदेवेश्वरो हरः ॥ कर्म्मणां साक्षिणश्चाह धर्मादीन्सभयं वचः ॥ १७ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ देवैर्न निह्नुतं केन तद्वीर्यं निह्नुतं ध्रुवम् ॥ तदमोघं भगवतो महेशस्य मम प्रभोः ॥ १८ ॥

पावैगा और निरन्तर उसके कर्मोंसे उसको ताप होगा ॥ १४ ॥ देवता बोले जो मूर्ख प्रतिज्ञा करके उसको पूर्ण नहीं करता, वही उस पापका भागी हो जिसने वह वीर्य छिपाया हों ॥ १५ ॥ देव पत्नी बोलीं जो स्त्री अपने स्वामीकी निन्दा करके दूसरे पुरुषके पास जाती हैं वे माता और बंधुओंसे हीन होकर जिस पापको प्राप्त होतीहैं, शिवजीके वीर्य चुरानेका वही पाप लगे ॥ १६ ॥ ब्रह्माजी बोले देवदेव महेश्वर देवताओंके वचन सुनकर धर्मादि कर्मके साक्षी देवताओंसे बोले ॥ १७ ॥ श्रीशिवजी बोले किसी देवताने तो उस वीर्यको नहीं छिपाया है, मुझ समर्थ महेश्वरका वीर्य मोघ कैसे हुआ ॥ १८ ॥

हे विश्वेदेवताओ! तुम सब कर्मके साक्षी हो क्या तुमको कहीं उस वीर्यके रखनेकी सुध है आप उसके जाननेके योग्य हो, कहीं विदित हो तो कहो॥ १९॥ ब्रह्माजी बोले ईश्वरके वचन सुनकर सब सभाके लोग कम्पित होगये, और परस्पर एक दूसरेको देख क्रमसे प्रभुके आगे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले रतिमें वीर्य स्थित रहा सो पृथिवीमें गिरा वह शंकरके प्रकोपसे अमोघ रहा पृथिवीको समाचार विदित होगा ॥ २१ ॥ पृथिवी बोली, मैं वह वीर्य सहनेमें असमर्थ थी, सो मैंने अग्निको सौंपदिया हे ब्रह्मन्! मुझे उसे उठानेको सामर्थ्य नहीं थी, सो आप मुझ अबलाको क्षमा करनेको योग्य है ॥ २२ ॥ अग्नि

यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम् ॥युष्माकं निह्नुतं किम्वा किं ज्ञातुं वक्तुमर्हथ ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कंपिताश्च ते ॥ परस्परं समालोक्य क्रमेणोचुः पुरः प्रभोः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रते तु तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधा तले ॥ मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः ॥ २१ ॥ ॥ क्षितिरुवाच ॥ वीर्यं सोढुमशक्ताहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा ॥ अतोऽत्र दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षंतुमर्हसि ॥ २२ ॥ वह्निरुवाच ॥ वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शंकर पर्वते ॥ कैलासे न्यक्षिपं सद्यः कपोतात्मा सुदुस्सहम् ॥ २३ ॥ ॥ गिरिरुवाच ॥ वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शंकर लोकप ॥ गंगायां प्राक्षिपं सद्यो दुस्सहं परमेश्वर ॥ २४ ॥ ॥ गंगोवाच ॥ वीर्यं सोढुमशक्ताहं तव शंकर लोकप ॥ व्याकुलाऽति प्रभो नाथ न्यक्षिपं शरकानने ॥ २५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह ॥ अतीव सुन्दरश्शम्भो स्वर्नद्याः पावने तटे ॥ २६ ॥

बोला, हे शंकर! मैं भी तुम्हारा वीर्य सहन करनेको असमर्थ हुआ था मैंने कपोतरूपसे उसे कैलासमें ही त्यागन कर दिया ॥ २३ ॥ गिरिराज बोले हे शंकर! हे लोकप! मैं भी आपका वीर्य सहन करनेमें असमर्थ हूं हे परमेश्वर! दुःसह होनेसे मैंने उस वीर्यको गंगाजीमें डाल दिया ॥ २४ ॥ गंगाजी बोली हे शंकर लोकपति! मैं भी आपका वीर्य सहन करनेमें अशक्त हुई हे प्रभो! तब मैंने व्याकुल होकर उसे शरकंडेकें वनमें डाल दिया ॥ २५ ॥ वायु बोले शरमें पतित हुआ वह वीर्य तत्काल बालक होगया हे शिवजी! स्वर्नदीके पवित्र तटमें वह बडा सुन्दर बालक जन्मा है ॥ २६ ॥

सूर्य बोले हे प्रभो ! बालकको रोताहुआ देखकर मैं अस्ताचलको चलागया, कालचक्रसे प्रेरित होकर मैं ठहरनेको असमर्थ हुआ ॥ २७ ॥ चन्द्रमाने कहा, रोते हुए बालकको देखकर कृत्तिकायें उसे लेकर स्वच्छन्दतासे बद्रिकाश्रमकी ओर अपने स्थानोंको लेगईं ॥ २८ ॥ जलोंने कहा हे प्रभो ! उस रोते हुए बालकको लेकर उन कृत्तिकाओंने अपने स्तनपानसे उसको बढाया है हे ईश ! वह तुम्हारा पुत्र सूर्यकी समान कांतिवाला है ॥ २९ ॥ संध्या बोली ! इस समय वह कृत्तिकायें वनमें उस पुत्रको पालन करके कौतुकसे उस बालकका नाम कार्तिकेय रखचुकी हैं ॥ ३० ॥ रात्रिने कहा वे कभी बालकको

सूर्य उवाच ॥ रुदंतं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रभो ॥ प्रेरितः कालचक्रेण निशायां स्थातुमक्षमः ॥ २७ ॥ ॥ चन्द्र उवाच ॥ रुदंतं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः ॥ जगाम स्वालयं शंभो गच्छन्बदरिकाश्रमम् ॥ २८ ॥ जलमुवाच ॥ अमुं रुदंतमानीय स्तन्यपानेन ताः प्रभो ॥ वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं तव रविप्रभम् ॥ २९ ॥ ॥ संध्योवाच ॥ अधुना कृत्तिकानां च वनं तम्पोष्य पुत्रकम् ॥ तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्त्तिकश्चेति कौतुकात् ॥ ३० ॥ रात्रिरुवाच ॥ न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् ॥ प्राणेभ्योपि प्रीतिपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः ॥ ३१ ॥ ॥ दिनमुवाच ॥ यानि यानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च ॥ प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम् ॥ ३२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टः पुरसूदनः ॥ मुदं प्राप्य ददौ प्रीत्या विप्रेभ्यो बहुदक्षिणाम् ॥ ३३ ॥ पुत्रस्य वार्त्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा ॥ कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च ॥ ३४ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः ॥ विष्णुस्सर्वे च देवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम् ॥ ३५ ॥

आंखोंकी ओट नहीं करती उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रीतिपात्र माना है वह उसको भलीप्रकार पोषण करती हैं ॥ ३१ ॥ दिनने कहा पृथिवीमें जितने श्रेष्ठ भूषण और वस्त्र हैं वह पहराती हैं तथा जितने स्वादिष्ट भोजन हैं वह तुम्हारे पुत्रको वे कराती हैं ॥ ३२ ॥ उनके यह वचन सुनकर शिवजी परम प्रसन्न हुए, और आनन्दपूर्वक ब्राह्मणोंको बहुतसी दक्षिणा दी ॥ ३३ ॥ पुत्रके यह समाचार सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई, ब्राह्मणोंको कोटिकोटि रत्न और बहुतसी दक्षिणायें दीं ॥ ३४ ॥ लक्ष्मी सरस्वती मेना सावित्री आदि सब स्त्रियोंने तथा विष्णु आदि देवताओंने ब्राह्मणोंके निमित्त बहुतसा धन

दिया ॥ ३५ ॥ वह प्रभु देवता मुनि और पर्वतोंसे प्रेरित होकर अपने गणों और दूतोंको पुत्रके समीप भेजते हुए ॥ ३६ ॥ वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदंष्ट्र, महोन्मद ॥ ३७ ॥ गोकर्णास्य, दधिमुख जो प्रज्वलित अग्निकी समान मुखवाला था, उसे तथा लाख क्षेत्रपाल और तीन लाख भूत ॥ ३८ ॥ शिवकी तुल्य पराक्रमवाले रुद्र और भैरवोंको औरभी असंख्य विकृत आकारवाले असंख्य गणोंको भेजा ॥ ३९ ॥ वे सब शिवजीके दूत अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके कृत्तिकाओंके भवनोंको घेर लेते हुए ॥ ४० ॥ उन सबको देखकर कृत्तिका भयसे व्याकुल होगई

प्रेरितस्स प्रभुर्देवैर्मुनिभिः पर्वतैरथ ॥ दूतान् प्रस्थापयामास स्वपुत्रो यत्र तान् गणान् ॥ ३६ ॥ वीरभद्रं विशालाक्षं शंकुकर्णं कराक्रमम् ॥ नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदंष्ट्रं महोन्मदम् ॥ ३७ ॥ गोकर्णास्यं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥ लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम् ॥ ३८ ॥ रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् ॥ अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद ॥ ३९ ॥ ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुद्धताः ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा तान् कृत्तिकास्सर्वा भयविह्वलमानसाः ॥ कार्त्तिकं कथायामासुर्ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ ४१ ॥ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं महाभयमुपस्थितम् ॥ ४२ ॥ ॥ कार्तिकेय उवाच ॥ भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वा मयि स्थिते ॥ दुर्निवार्योऽस्मि बालश्च मातरः केन वार्यते ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः ॥ पुरतः कार्तिकेयस्योपविष्टस्समुवाच ह ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहाम् ॥ प्रेरितोऽहं महेशेन संहर्त्रा शंकरेण च ॥ ४५ ॥

ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान कार्त्तिकेयसे कहती हुई ॥ ४१ ॥ कृत्तिका बोलीं हे वत्स ! असंख्य सेनाओंने हमारे भवनको घेर लिया है अब क्या करैं कहां जांय महाभय उपस्थित हुआ है ॥ ४२ ॥ कार्त्तिकेय बोले, हे कल्याणियो ! भय त्यागन करो, मेरे होते भयका कोई कारण नहीं है, हे मात ! मैं बालक होकर भी दुर्निवार हूं, मुझे कौन निवारण करसक्ता है ॥ ४३ ॥ उसी समय सेनापति नन्दिकेश्वर कार्त्तिकेयके आगे स्थित होकर इस प्रकारसे कहने लगा ॥ ४४ ॥ हे भ्रातः ! मेरी प्रवृत्ति सुनो, और माताएँभी शुभ समाचार सुनो जगत्के संहर्ता महेशने मुझे भेजा है ॥ ४५ ॥

कैलासमें ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र, आदि विद्यमान हैं हे तात ! उस महा उत्सव मंगलकी सभामें सब स्थित थे ॥ ४६ ॥ उस सभामें पार्वतीने सबके कल्याणकर्ता शंकरको सम्बोधन दे तुम्हें खोजनेके निमित्त कहा ॥ ४७ ॥ क्रमसे शंकरने सब देवताओंसे तुम्हारी प्राप्तिके निमित्त पूछा उनमें प्रत्येकने यथोचित उत्तर दिया ॥ ४८ ॥ पीछे सब धर्मादिकने और कर्मके साक्षी देवताओंने ईश्वरसे तुमको इन कृत्तिकाओंके स्थानमें बताया है ॥ ४९ ॥ प्रथम शिव पार्वतीमें बहुत कालतक विहार होता रहा, उसको देवताओंने अवलोकन किया, और शंकरका वीर्य भूमिमें गिरा ॥ ५० ॥ भूमिने उसे अग्निमें और अग्निने पर्वतमें

कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सभायां संस्थितास्तात महत्युत्सवमंगले ॥ ४६ ॥ तदा शिवा सभायां वै शंकरं सर्वशंकरम् ॥
सम्बोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम् ॥ ४७ ॥ पप्रच्छ तान्शिवो देवान् क्रमात्त्वत्प्राप्तिहेतवे ॥ प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च
यथोचितम् ॥ ४८ ॥ त्वामत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् ॥ सर्वे धर्मादयो धर्माधर्मस्य कर्मसाक्षिणः ॥ ४९ ॥ प्रबभूव रहः
क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा ॥ दृष्टस्य च सुरैश्शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह ॥ ५० ॥ भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्चाद्रौ स भूधरः ॥ गंगायां
सोऽक्षिपद्वेगात् तरंगैश्शरकानने ॥ ५१ ॥ तत्र बालोऽभवस्त्वं हि देवकार्यकृतिः प्रभुः ॥ तत्र लब्धः कृत्तिकाभिस्त्वं भूमिं गच्छ
सांप्रतम् ॥ ५२ ॥ तवाभिषेकं शंभुस्तु करिष्यति सुरैस्सह ॥ लप्स्यसे सर्वशस्त्राणि तारकाख्यं हनिष्यसि ॥ ५३ ॥ पुत्रस्त्वं विश्वसं
हर्त्तुस्त्वां प्राप्तुश्चाऽक्षमा इमाः ॥ नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तश्शुष्कवृक्षस्स्वकोटरे ॥ ५४ ॥ दीप्तवांस्त्वं च विश्वेषु नासां गेहेषु शोभसे ॥
यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥ ५५ ॥

और गिरिराजने उसे गंगामें प्रक्षेप किया, पीछे गंगाजीने उसे शरकंडोंके वनमें प्रक्षेप किया ॥ ५१ ॥ वहां देवताओंका कार्य करनेमें समर्थ तुम्हारा जन्म हुआ, वहां तुमको कृत्तिकाओंने प्राप्त किया, सो तुम इस समय भूमिमें चलो ॥ ५२ ॥ शिवजी देवताओंके साथ तुम्हारा अभिषेक करैंगे वहां तुमको सम्पूर्ण शस्त्र प्राप्त होंगे, जिस्से तुम तारक असुरको मारोगे ॥ ५३ ॥ तुम विश्वके संहर्ताके पुत्र हो, तुमको प्राप्त करनेको यह असमर्थ हैं जिस प्रकार सूखा वृक्ष अग्निको अपनी खखोडलमें रखनेको समर्थ नहीं होता ॥ ५४ ॥ तुम संसार भरमें प्रकाशित हो इनके घरमें शोभाको प्राप्त नहीं हो सक्के, जैसे

महाकूपमें पतित हुआ गिरिराज शोभाको नहीं प्राप्त होता ॥ ५५ ॥ जिस प्रकारसे हमारे तेजसे नहीं आच्छन्न हुए तुम प्रकाश करते हो जैसे सूर्य कलासे आच्छादित होकर मनुष्योंको प्रकाश देताही है ॥ ५६ ॥ वैसे तुम जगत्में व्यापी साक्षात विष्णु हो, हे शिवपुत्र ! और नहीं हो, जैसे किसी दूसरेसे व्याप्य न होकर आकाशही सर्वत्र व्यापक है ऐसे तुम हो ॥ ५७ ॥ योगन्द्रि होकर तुम अनुलिप्त नहीं होते पर पुष्ट करनेमें भागी हो, जिस प्रकार आत्मा जीवधारियोंके कर्मयोगसे लिप्त नहीं होता ॥ ५८ ॥ ऐसेही इन ईशसे सब कुछ होता है पर उनकी स्थिति लिप्तता किसीमें नहीं हो तो वा पुत्रमें भी उनकी स्थिति

करोषि च यथाऽऽलोकं नाऽऽच्छन्नोऽस्मासु तेजसा ॥ यथा सूर्यः कलाछन्नो न भवेन्मानवस्य च ॥ ५६ ॥ विष्णुस्त्वं जगतां व्यापी
नान्यो जातोसि शांभव ॥ यथा न केषां व्याप्यं च सत्सर्वं व्यापकं नभः ॥ ५७ ॥ योगीन्द्रो नाऽनुलिप्तश्च भागी चेत्परिपोषणे ॥
नैव लिप्तो यथात्मा च कर्मयोगेषु जीविनाम् ॥ ५८ ॥ विश्वारंभस्त्वमीशश्च नासु ते संभवेत् स्थितिः ॥ गुणानां तेजसां राशिर्यथा
त्मानं च योगिनः ॥ ५९ ॥ भ्रातर्ये त्वां न जानंति ते नरा हतबुद्धयः ॥ नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासाश्च पंकजान् ॥ ६० ॥
कार्त्तिकेय उवाच ॥ ॥ भ्रातस्सर्वं विजानासि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत् ॥ ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाश्रितः ॥ ६१ ॥
कर्मणां जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु ॥ तासु ते निर्वृतिं भ्रातः प्राप्नुवंतीह सांप्रतम् ॥ ६२ ॥ कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः
प्रकृतेः कलाः ॥ स्तन्येनासां वर्द्धितोऽहमुपकारेण संततम् ॥ ६३ ॥

नहीं है जिस प्रकार योगियोंको गुण और तेजकी राशिवाले ऐश्वर्यमें अभिलाषा नहीं होती ॥ ५९ ॥ हे भाई ! जो तुमको नहीं जानते हैं वे हतबुद्धि हैं वे ऐसे हैं जैसे भेक कमलोंको नहीं जानते हैं कारण कि वह एकही स्थानमें स्थित हैं तो भी उसके गुण नहीं जानते, ऐसेही मनुष्य तुमको नहीं जानते ॥ ॥ ६० ॥ कार्तिकेय बोले हे भ्रातः ! तुम सब जानते हो, जो त्रैकालिकज्ञान है तुम ज्ञानी हो तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाय, कारण कि तुम साक्षात शंकरके आश्रित हो ॥ ६१ ॥ जिन जिन योनियोंमें कर्मवश यह प्राणी जाते हैं, हे भ्रातः ! उनमें वे सुखीहोते हैं ॥ ६२ ॥ यह कृत्तिका ज्ञानवाली

योगिनी प्रकृतिके कला हैं, मैं इनके उपकार और दुग्ध पानकरके वृद्धिको प्राप्त हुआ हूं ॥ ६३ ॥ मैं इनका पोष्य पुत्र हूं और यह स्त्रियें मेरे अंशवाली हैं उन प्रकृतिके अंश उस उस स्वामीके वीर्यसे होते हैं ॥ ६४ ॥ हे नन्दिकेश्वर शैलेन्द्रकन्यासे मेरा प्रादुर्भाव नहीं है, वह मेरी धर्मकी माता हैं जैसे यह सब कृत्तिकाये हैं ॥ ६५ ॥ जो शिवजीने मुझे अपना पुत्र मानकर तुमको भेजा है, तो मैं तुम्हारे साथ चलकर देवसमूहोंको देखूंगा ॥ ६६ ॥ यह कहकर और शीघ्रतासे कृत्तिकाओंको बुलाय उनसे पूछा और शिवके पार्षदोंके साथ कुमारने गमन किया ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां

आसामहं पोष्यपुत्रो मदंशा योषितस्त्विमाः ॥ तस्याश्च प्रकृतेरंशास्ततस्तत्स्वामिवीर्यजः ॥ ६४ ॥ न मद्भंगो ह शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर ॥ सा च मे धर्मतो माता यथेमास्सर्वसंमताः ॥ ६५ ॥ शम्भुना प्रेषितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान् ॥ आगच्छामि त्वया सार्द्धं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् ॥ ६६ ॥ इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं संबोध्य कृत्तिकागणम् ॥ कार्त्तिकेयः प्रतस्थे हि सार्द्धं शंकरपार्षदैः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्त्तिकेयान्वेषणनन्दिसंवादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् ॥ अद्भुतं शोभितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ १ ॥ शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् ॥ प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ॥ २ ॥ समारोहत्ततोऽनंतो हृदयेन विदूयता ॥ कार्त्तिकः परमज्ञानी परमेशानवीर्यजः ॥ ३ ॥ तदैव कृत्तिकाः प्राप्य मुक्तकेश्यश्शुचाऽऽतुराः ॥ उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे वचः ॥ ४ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ विहायाऽस्मान् कृपासिन्धो गच्छसि त्वं हि निर्दयः ॥ नायं धर्मो मातृवर्गान् पालितो यत् सुतस्त्यजेत् ॥ ५ ॥

च० कुमारखण्डे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले उसी समय एक बडा सुन्दर रथ दिखाई दिया, जो विश्वकर्माका बनाया अद्भुत शोभायमान था ॥ १ ॥ जो सौ पहियोंके लगनेसे बडे विस्तारवाला मनकी समान वेगवान् बडा मनोहर जो पार्वतीने भेजा था, और श्रेष्ठ पार्षद जिसको वेष्टित कर रहे थे ॥ २ ॥ उस पर परमज्ञानी कार्तिकेयजी शिवजीके वीर्यसे सम्भूत अनन्त पराक्रमी कुछ दुःखी हृदयसे सवार हुए ॥ ३ ॥ उसी समय शोकसे व्याकुल बाल खोले कृत्तिकाएं वहां आकर प्राप्त हुईं, और आकर उन्मत्तकी समान वचन कहने लगीं ॥ ४ ॥ कृत्तिकायें बोलीं हे कृपासिन्धो ! हमें छोडकर तुम

निर्दयी हुए जाते हो, पुत्रोंका यह धर्म नहीं है जो माता पालन करैं उन्हें छोडकर चला जाय ॥ ५ ॥ हमने तुमको स्नेहसे बढाया है, तुम हमारे धर्मसे पुत्र हो, अब हम क्या करैं कहां जांय और क्या कर्तव्य करैं ॥ ६ ॥ यह कहकर सब कृत्तिकाएं कुमारको हृदयसे लगाकर पुत्रवियोगके कारण तत्कालही मूर्च्छित होगई ॥ ७ ॥ कुमारने उनको ज्ञानके वचनोंसे समझाया, हे मुने ! और उनके साथही रथके ऊपर कुमार चढे ॥ ८ ॥ बहुत प्रकारके सुखदायक मंगल देख और सुनकर कुमार पार्षदोंके साथ पिताके मंदिरमें चले ॥ ९ ॥ साथमें नन्दिकेश्वर मनकी समान वेगवान् रथपर चढे, कुमार, न्यग्रोध और

स्नेहेन वर्द्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं च धर्मतः ॥ किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं किं करवाम ह ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा कृत्तिकास्सर्वाः
कृत्वा वक्षसि कार्त्तिकम् ॥ द्रुतं मूर्च्छामवापुस्तास्सुतविच्छेदकारणात् ॥ ७ ॥ ताः कुमारो बोधयित्वा अध्यात्मवचनेन वै ॥ ताभिश्च
पार्षदैस्सार्द्धमारुरोह रथं मुने ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा श्रुत्वा मंगलानि बहूनि सुखदानि वै ॥ कुमारः पार्षदैस्सार्द्धं जगाम पितृमन्दिरम् ॥ ९ ॥
दक्षेण नंदियुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥ कुमारः प्राप कैलासं न्यग्रोधाऽक्षयमूलके ॥ १० ॥ तत्र तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह ॥
कुमारश्शांकरिः प्रीतो नानालीलाविशारदः ॥ ११ ॥ तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं समाचख्युस्तदा
गमम् ॥ १२ ॥ तदा दृष्ट्वा च गांगेयं ययौ प्रमुदितश्शिवः ॥ अन्यैस्समेतो हरिणा ब्रह्मणा च सुरर्षिभिः ॥ १३ ॥ शंखाश्च बहवो नेदुर्भेरी
तूर्याण्यनेकशः ॥ उत्सवस्सुमहानासीद्देवानां तुष्टचेतसाम् ॥ १४ ॥ तदानीमेव तं सर्वे वीरभद्रादयो गणाः ॥ कुर्वन्तः स्वन्वयुः केलिं
नानातालधरस्वराः ॥ १५ ॥ स्तावकाः स्तूयमानाश्च चक्रुस्ते गुणकीर्त्तनम् ॥ जयशब्दं नमश्शब्दं कुर्वाणाः प्रीतमानसाः ॥ १६ ॥

अक्षयमूलवृक्षवाले कैलास पर्वतपर पहुंचे ॥ १० ॥ वहां कृत्तिका और पार्षदोंके साथ स्थित हुए, अनेक लीलाओंमें चतुर कुमार शंकरकी प्रीतिसे वहां ठहरे ॥ ११ ॥ तब सब देवता ऋषि सिद्ध चारण ब्रह्मा और विष्णुजीने शिवजीसे गुहका आगमन कहा ॥ १२ ॥ तब गंगासे प्रगट कुमारके देखनेको सदाशिव चले और संगमें विष्णु आदि देवता तथा दूसरे महर्षि भी थे ॥ १३ ॥ उस समय शंख भेरी आदि बाजे बजने लगे और संतुष्ट चित्तवाले देवताओंका परम उत्सव हुआ ॥ १४ ॥ उस समय वीरभद्र आदि सब गण अनेक ताल और लयसे शब्द करते हुए स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥ स्तुति पढनेवाले

गुणकीर्तन करनेलगे और प्रसन्न ~~मनसे जय~~ शब्द और नमः शब्द करने लगे ॥ १६ ॥ और शिवजीके श्रेष्ठ पुत्र शरकंडोंमें प्रगट हुएको देखनेको सब चले ॥ १७ ॥ पार्वतीने उस समय बहुत मंगल मनाया, राजमार्ग मनोहर किया गया, और पद्मरागादि मणियोंसे सब ओरसे पुर सजाया गया ॥ १८ ॥ पतिपुत्रवाली सुहागनें तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियोंको आगे करके पार्वती चलीं ॥ १९ ॥ रम्भा आदि दिव्य अप्सरायें सुन्दर वेष धारण किये शिवजीकी आज्ञासे गाने और नृत्य करने लगीं ॥ २० ॥ जिन्होंने गंगाके पुत्र शंकरकी समान तेजस्वीका दर्शन किया उन्होंने देखा कि तीनों जगत्में कुमारका तेज

द्रष्टुं ययुस्तं शरजं शिवात्मजमनुत्तमम् ॥ १७ ॥ पार्वती मंगलं चक्रे राजमार्गं मनोहरम् ॥ पद्मरागादिमणिभिस्संस्कृतं परितः पुरम् ॥ १८ ॥ पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः स्त्रीभिरन्विता ॥ लक्ष्म्यादित्रिंशद्देवीश्च पुरः कृत्वा समायौ ॥ १९ ॥ रम्भाद्यप्सरसो दिव्यास्सस्मिता वेषसंयुताः ॥ संगीतनर्तनपरा बभूवुश्च शिवाज्ञया ॥ २० ॥ ये तं समीक्षयामासुर्गांगेयं शंकरोपमम् ॥ ददृशुस्ते मह त्तेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रये ॥ २१ ॥ तत्तेजसा वृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम् ॥ ववंदिरे द्रुतं सर्वे कुमारं सूर्यवर्चसम् ॥ २२ ॥ जहृषुर्विनतस्कंधा नमश्शब्दरतास्तदा ॥ परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणमागताः ॥ २३ ॥ अहं विष्णुश्च शक्रश्च तथा देवादयोऽखिलाः ॥ दण्डवत्पतिता भूभौ परिवार्य्य कुमारकम् ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्गिरिजा च मुदान्विता ॥ महोत्सवं समागम्य ददर्श तनयं मुदा ॥ २५ ॥ पुत्रं निरीक्ष्य च तदा जगदेकबंधुः प्रीत्यान्वितः परमया परया भवान्या ॥ स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात्सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैः परेशः ॥ २६ ॥

व्याप्त हो रहा है ॥ २१ ॥ उस तेजसे व्याप्त होकर यह बालक तपाये हुए सुवर्णकी समान प्रदीप्त होगया और सूर्यकी समान तेजस्वी कुमारकी सबने वंदना की ॥ २२ ॥ सब कोई शिर झुकाकर नमस्कार करने लगे, और बाँई दहिनी ओरसे कुमारको घेरकर सब कोई खडे होगये ॥ २३ ॥ मैं विष्णु इन्द्र तथा दूसरे सब देवता कुमारके चारोंओर स्थित हो पृथिवीमें दंडवत करने लगे ॥ २४ ॥ हे मुने ! इसी समय अपनी सखियोंके सहित आकर गिरिजाने वह महोत्सव देखा, और बडी प्रसन्न हुई ॥ २५ ॥ वह जगत्के एक मात्र बंधु अपने पुत्रको देखकर भवानी सहित बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुए, सर्पराजको धारण

किये, परेश, साक्षात् सर्वेश्वर अपने गुणोंके साथ बडे प्रेममें गदगद होगये ॥ २६ ॥ तब शक्तिधारी स्कन्दजी पार्वती और शिवको देखकर रथसे शीघ्र उतरकर शिरसे प्रणाम करते हुए ॥ २७ ॥ शिवजीने प्रेमसे कुमारको हृदयसे लगाय शिर सूंघ लिया, और परमेशान प्रेम और स्नेहके कारण बडे प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ और पार्वती पुत्रको हृदयसे लगाकर बडे संभ्रमको प्राप्त हुईं और स्नेहसे व्याप्त होकर पुत्रको दूध पिलाने लगीं ॥ २९ ॥ तब स्त्री सहित देवताओंने कुमारका नीराजन किया, और जय शब्दसे उस समय आकाश गूंज उठा ॥ ३० ॥ ऋषि वेदघोष करनेलगे गानेवाले गीत गाने लगे, और

अथ शक्तिधरः स्कन्दो दृष्ट्वा तौ पार्वतीशिवौ ॥ अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह ॥ २७ ॥ उपगुह्य शिवः प्रीत्या कुमारं मूर्ध्नि शङ्करः ॥ जघ्रौ प्रेम्णा परेशानः प्रसन्नः स्नेहकर्तृकः ॥ २८ ॥ उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसंभ्रमा ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ २९ ॥ तदा नीराजितो देवैस्सकलत्रैर्मुदान्वितैः ॥ जयशब्देन महता व्याप्तमासीन्नभस्तलम् ॥ ३० ॥ ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः ॥ वाद्यैश्च बहवस्तत्रोपतस्थुश्च कुमारकम् ॥ ३१ ॥ स्वमंकमारोप्य तदा महेशः कुमारकं तं प्रभया समुज्ज्वलम् ॥ बभौ भवानीपतिरेव साक्षाच्छ्रियाऽन्वितः पुत्रवतां वरिष्ठः ॥३२॥ कुमारः स्वगणैः सार्द्धमाजगाम शिवालयम् ॥ शिवाज्ञया महोत्साहैस्सह देवैर्महासुखी ॥ ३३ ॥ दंपती तौ तदा तत्रैकपद्येन विरेजतुः ॥ विवंद्यमानावृषिभिरावृतौ सुरसत्तमैः ॥ ३४ ॥ कुमारः क्रीडयामास शिवोत्संगे मुदान्वितः ॥ वासुकिं शिवकंठस्थं पाणिभ्यां समपीडयत् ॥ ३५ ॥ प्रहस्य भगवाञ्शंभुश्शशंस गिरिजां तदा ॥ निरीक्ष्य कृपया दृष्ट्या कृपालुर्लीलयाकृतिम् ॥ ३६ ॥

बहुतसे बाजे कुमारकी अभ्यर्थनामें बजने लगे ॥ ३१ ॥ तब प्रकाशसे दीप्तिमान् कुमारको महादेवजी अपनी गोदीमें बैठाकर उस समय भवानीपति महाशोभासे प्राप्तहो सब पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ हुए ॥ ३२ ॥ अपने गणोंके साथ शिवजीके मंदिरमें गये, शिवकी आज्ञासे देवतादि सबने ही महोत्साह किये ॥ ३३ ॥ शिवा और शिव दोनोही उस समय परमशोभाको प्राप्त हुए, और देवता और श्रेष्ठ ऋषि उस समय शिवा शिवको घेरकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ कुमार प्रेमसे शिवजीकी गोदीमें खेलने लगे, शिवके कंठमें लिपटेहुए वासुकी नागको अपने हाथसे पीडित करने लगे ॥ ३५ ॥ यह बात देखकर कृपालु

शंकर अनेक लीलाके स्थान देव कृपादृष्टिसे देख हंसकर पार्वतीसे कुमारकी यह बात कहने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय भगवान् शंकरने मंद मुस्काते हुए गिरिजासमेत परम आनन्द माना और वह जगत्के एक बंधु प्रेमसे गदगदकंठ होकर आनंदसे कुछ न बोले वह सब सर्वव्यापक सब भुवनोंके एक ही स्वामी हैं, भरण पोषण कर्ता हैं ॥ ३७ ॥ तब जगत्पति भगवान् शंकरने लौकिक लीलाके निमित्त मनोहर रत्नोंके सिंहासनमें कुमारको बैठाया ॥ ३८ ॥ सब तीर्थोंसे आयेहुए जलोंको वेदमंत्रोंसे पवित्र करके सौ रत्नोंके घटोंसे कार्तिकेयको स्नान कराया और बडी प्रसन्नता मानी ॥ ३९ ॥ अच्छे साररत्नोंसे

मदस्मितेन च तदा भगवान्महेशः प्राप्तो मुदं च परमां गिरिजासमेतः ॥ प्रेम्णा स गद्गदगिरो जगदेकबंधुर्नोवाच किंचन विभुर्भुवनैक भर्त्ता ॥ ३७ ॥ अथ शंभुर्जगन्नाथो हृष्टो लौकिकवृत्तवान् ॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कार्त्तिकम् ॥ ३८ ॥ वेदमंत्राभिपूतैश्च सर्व तीर्थोदपूर्णकैः ॥ सद्रत्नकुंभशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥ ३९ ॥ सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटांगदम् ॥ वैजयन्तीं स्वमालां च तस्मै चक्रं ददौ हरिः ॥ ४० ॥ शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं शरम् ॥ संहारास्त्रं च परमां विद्यां तस्मै ददौ शिवः ॥ ४१ ॥ अदामहं यज्ञसूत्रं वेदांश्च वेदमातरम् ॥ कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां चैवाऽरिमर्दिनीम् ॥ ४२ ॥ गजेन्द्रं चैव वज्रं च ददौ तस्मै सुरेश्वरः ॥ श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ वस्तुं जलेश्वरः ॥ ४३ ॥ मनोयायिरथं सूर्यस्सन्नाहं च महाचयम् ॥ यमदंडं यमश्चैव सुधाकुंभं सुधानिधिः ॥ ४४ ॥ हुताशनो ददौ प्रीत्या महाशक्तिं स्वसूनवे ॥ ददौ स्वशस्त्रं निर्ऋतिर्वायव्यास्त्रं समीरणः ॥ ४५ ॥

निर्मित किरीट और मुकुट तथा बाजूबंद, वैजयन्तीमाला और अपना चक्र हरिने कुमारको दिया ॥ ४० ॥ शूल, पिनाक, फरशा, शक्ति, पाशुपत, बाण संहारास्त्र और परम विद्या शंकरने कुमारको दी ॥ ४१ ॥ मैंने यज्ञोपवीत, वेद और वेदमाता गायत्री, कमल, ब्रह्मास्त्र और शत्रुनाशिनी विद्या प्रदान की ॥ ॥ ४२ ॥ इन्द्रने कुमारके निमित्त वज्र और गजेन्द्र दिया, स्वेतछत्र रत्नमाला और दूसरी वस्तुएं वरुणजीने दी ॥ ४३ ॥ सूर्यने मनकी समान वेगगामी एक रथ और एक बख्तर दिया यमने यमदंड और सुधानिधि समुद्रने अमृतका घट दिया ॥ ४४ ॥ अग्निने प्रसन्न होकर अपने पुत्रको महाशक्ति दान की,

निर्ऋतिने अपना शस्त्र और पवनने वायव्यास्त्र दिया ॥ ४५ ॥ कुबेरने गदा और ईशने प्रसन्न हो शूल दिया, इसी प्रकार दूसरे देवताओंने अनेक शस्त्र और भेंटैं दी ॥४६॥ प्रसन्न हो कामदेवने कामास्त्र दिया, गदा तथा अपनी विद्या परम प्रसन्नहोकर दी ॥४७॥ क्षीरसागरने अमूल्य रत्न तथा रत्नोके श्रेष्ठ नूपुर दिये, हिमालयने भी दिव्यभूषण और वस्त्र दिये ॥४८॥ गरुडने चित्रबर्हण नामवाला अपना पुत्र दिया, अरुणने ताम्रचूडनामवाला दी बलवान् चरणायुध दिया ॥४९॥ पार्वतीने परम ऐश्वर्य युक्त अपने पुत्रको देखा, और महा प्रेमसे उसको चिरंजीवित्व दिया ॥ ५० ॥ लक्ष्मीने दिव्यसम्पत् और मनोहर

गदां ददौ कुबेरश्च शूलमीशो ददौ मुदा ॥ नानाशस्त्राण्युपायांश्च सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥ ४६ ॥ कामास्त्रं कामदेवोऽथ ददौ तस्मै मुदान्वितः ॥ गदां ददौ स्वविद्याश्च तस्मै च परया मुदा ॥ ४७ ॥ क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टं रत्ननूपुरम् ॥ हिमालयो हि दिव्यानि भूषणान्यंशुकानि च ॥ ४८ ॥ चित्रबर्हणनामानं स्वपुत्रं गरुडो ददौ ॥ अरुणस्ताम्रचूडाख्यं बलिनं चरणायुधम् ॥ ४९ ॥ पार्वती सस्मिता हृष्टा परमैश्वर्यमुत्तमम् ॥ ददौ तस्मै महाप्रीत्या चिरंजीवित्वमेव च ॥ ५० ॥ लक्ष्मीश्च संपदं दिव्यां महाहारं मनोहरम् ॥ सावित्री सिद्धविद्यां च समस्तां प्रददौ मुदा ॥ ५१ ॥ अन्याश्चापि मुने देव्यो यायास्तत्र समागताः ॥ स्वात्मवत्सुददुस्तस्मै तथैव शिशुपालिकाः ॥ ५२ ॥ महामहोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम ॥ सर्वे प्रसन्नतां याता विशेषाच्च शिवाशिवौ ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्नंतरे काले प्रोवाच प्रहसन् मुदा ॥ मुने ब्रह्मादिकान् देवान् रुद्रो भर्गः प्रतापवान् ॥ ५४ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवास्सर्वे शृणुत मद्वचः ॥ सवर्थाहं प्रसन्नोस्मि वरान्वृणुत ऐच्छिकान् ॥ ५५ ॥

महाहार दिया, और सावित्रीने प्रेमसे सम्पूर्ण सिद्धविद्या प्रदान की ॥ ५१ ॥ हे मुने ! और भी जो देवियें प्रीतिसे वहां आई थीं, बालककी पालनाके निमित्त यथाशक्ति सबने दिया ॥ ५२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय वहां महामहोत्सव हुआ, और सब प्रसन्न हुए विशेषकर शिव पार्वती प्रसन्न हुईं ॥ ५३ ॥ हे मुने ! उसी समय महाप्रतापी रुद्र प्रेमसे हंसतेहुए ब्रह्मादि सब देवताओंसे कहनेलगे ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले हे हरे ! हे विधातः ! सब देवताओं मेरा

वचन सुनो मैं सर्वथा प्रसन्नहूं तुम मन इच्छित वर मांगो ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजी बोले शिवजीके यह वचन सुनकर सब विष्णु आदि देवता सब कोई प्रसन्न होकर पशुपतिसे बोले ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! तारकासुरको यह कुमार वध करैं उसी निमित्त यह उत्तम चारित्र हुआ है ॥ ५७ ॥ इस कारण इसी समय हम तारकासुरके वधके निमित्त गमन करैंगे, आप कुमारको आज्ञा दे कि यह उसको मारकर हमारा मंगल करैं ॥ ५८ ॥ ब्रह्माजी बोले देवताओंके यह वचन सुनकर विभुने परम कृपासे देवताओंकी प्रीतिके निमित्त कुमारको तारकासुरके वधके निमित्त आज्ञा दी ॥ ५९ ॥ शिवकी आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु आदि

॥ ब्रह्मोवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं शंभोर्मुनेविष्णवादयस्सुराः ॥ सर्वे प्रोचुः प्रसन्नास्या देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ ५६ ॥ कुमारेण हतो ह्येष तारको भविता प्रभो ॥ तदर्थमेव संजातमिदं चरितमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हन्तुमुद्यताः ॥ आज्ञां देहि कुमाराय स तं हंतुं सुखाय नः ॥ ५८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तथेति मत्वा स विभुर्दत्तवांस्तनयं तदा ॥ देवेभ्यस्तारकं हंतुं कृपया परिभावितः ॥ ५९ ॥ शिवाज्ञया सुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखास्तदा ॥ पुरस्कृत्य गुहं सद्यो निर्जग्मुर्मिलिता गिरेः ॥ ६० ॥ बहिर्निस्सृत्य कैलासात्त्वष्टा शासनतो हरेः ॥ विरेचे नगरं रम्यमद्भुतं निकटे गिरेः ॥ ६१ ॥ तत्र रम्यं गृहं दिव्यमद्भुतं परमोज्ज्वलम् ॥ गुहार्थं निर्ममे त्वष्टा तत्र सिंहासनं वरम् ॥ ६२ ॥ तदा हरिस्सुधीर्भक्त्या कारयामास मंगलम् ॥ कार्त्तिकस्याभिषेकं हि सर्वतीर्थजलैस्सुरैः ॥ ६३ ॥ सर्वथा समलंकृत्य वासयामास संग्रहम् ॥ कार्त्तिकस्य विधिं प्रीत्या कारयामास चोत्सवम् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मांडाधिपतित्वं हि ददौ तस्मै मुदा हरिः ॥ चकार तिलकं तस्य समानर्च सुरैस्सह ॥ ६५ ॥

सब देवता कुमारको आगे करके पर्वतसे सब चले ॥ ६० ॥ कैलाससे बाहर होकर त्वष्टाने विष्णुकी आज्ञासे पर्वतके निकटही एक बहुत मनोहर नगर रचा ॥ ६१ ॥ उसमें एक बडा मनोहर अत्यन्त रमणीक परम अद्भुत अधिक निर्मल महल कुमारके निमित्त बनाया और उसमें एक परम अद्भुत सिंहासन भी बिछाया ॥ ६२ ॥ तब बुद्धिमान् हरिने परम प्रेमसे उसमें मंगल करवाये और देवताओंके सहित सब तीर्थोंके जलसे वहां कुमारका अभिषेक किया ॥ ६३ ॥ और सब प्रकारसे अलंकृत कर वहां उनको निवास कराया और कार्तिककी विधिसे प्रेमपूर्वक उत्सव कराया ॥ ६४ ॥ और हरिने प्रेमसे उनको ब्रह्माण्डका

अधिपतित्व दिया, और तिलक करके देवताओंसहित उनकी पूजा की ॥ ६५ ॥ पीछे सब देवता ऋषियोंके सहित प्रेमसे कुमारको प्रणामकर उन सनातन
शिवरूपको अनेक स्तोत्रोंसे प्रसन्न किया ॥ ६६ ॥ श्रेष्ठ सिंहासनपर स्थित हो कार्तिकेय बडे शोभित हुए, और ब्रह्माण्डके पालकरूपमें स्वामिभावको प्राप्त
हुए ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां रु० च० कुमाराभिषेकवर्णनो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे नारदजी ! तब कार्तिकेयने वहां
सूतिकाको दिखाया उस भक्तिदायिनी कथाको आप प्रेमसे सुनो ॥ १ ॥ उसी समय एक नारदनामक ब्राह्मण वहां आया, वह यज्ञका करनेवाला था,

प्रणम्य कार्त्तिकं प्रीत्या सर्वदेवर्षिभिस्सह ॥ तुष्टाव विविधस्तोत्रैः शिवरूपं सनातनम् ॥ ६६ ॥ वरसिंहासनस्थो हि शुशुभेऽतीव का
र्त्तिकः ॥ स्वामिभावं समापन्नो ब्रह्मांडस्यासि पालकः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे
कुमाराभिषेकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ तत्र स गांगेयो दर्शयामास सूतिकाम् ॥ तामेव शृणु सुप्री
त्या नारद त्वं स्वभक्तिदाम् ॥ १ ॥ द्विज एको नारदाक आजगाम तदैव हि ॥ तत्राध्वरकरः श्रीमाञ्शरणार्थं गुहस्य वै ॥ २ ॥
स विप्रः प्राप्य निकटं कार्त्तिकस्य प्रसन्नधीः ॥ स्वाभिप्रायं समाचख्यौ सुप्रणम्य शुभैः स्तवैः ॥ ३ ॥ ॥ विप्र उवाच ॥ शृणु स्वा
मिन्वचो मेद्य कष्टं मे विनिवारय ॥ सर्वब्रह्मांडनाथस्त्वमतस्ते शरणं गतः ॥ ४ ॥ अजमेधाध्वरं कर्तुमारंभं कृतवानहम् ॥ सोऽजो
गतो गृहान्मे हि त्रोटयित्वा स्वबंधनम् ॥ ५ ॥ न जाने स गतः कुत्राऽन्वेषणं तत्कृतं बहु ॥ न प्राप्तोऽतस्स बलवान् भंगो भवति मे
क्रतोः ॥ ६॥ त्वयि नाथे सति विभो यज्ञभंगः कथं भवेत् ॥ विचार्य्यैवाऽखिलेशान कामं पूर्णं कुरुष्व मे ॥ ७ ॥

श्रीमान् कुमारकी शरण आनकर प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वह प्रसन्नमन ब्राह्मण कार्तिकेयके निकट प्राप्त होकर प्रणामकर सुन्दर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर अपना अभिप्राय
कहने लगा ॥ ३ ॥ ब्राह्मण बोला हे स्वामिन् ! मेरे वचन सुनकर मेरा कष्ट निवारण करो, तुम सब ब्रह्माण्डके स्वामी हो, इस कारण मैं तुम्हारी शरण
हूं ॥ ४ ॥ मैंने अजमेध यज्ञका आरंभ किया है वह अज बंधन तोडकर मेरे घरसे चलागया ॥ ५ ॥ न जाने वह कहां गया मैंने उसे बहुत खोजा परन्तु
वह बलवान न मिला इस कारण मेरा यज्ञभंग होता है ॥ ६ ॥ हे विभो ! आप स्वामीके रहते मेरा यज्ञ किस प्रकार भंग होसक्ताहै हे सबके अधिपति ! यह

विचारकर मेरी कामना पूर्ण करो ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! हे शिवपुत्र ! आपको छोडकर मैं किसकी शरण जाऊं आप सब ब्रह्माण्डके स्वामी हो, सब देवता तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ८ ॥ हे दीनबंधु ! हे दयासिन्धु ! हे भक्तवत्सल ! आप तो सब प्रकार सेवाके योग्य हैं हे परमेश्वर ! आपकी तो हरि ब्रह्मादि देवता स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ आप पार्वतीनन्दन स्कन्द परम एक और परम तपहो आप परमात्मा आत्मज्ञानके देनेवाले स्वामी शरणागतरक्षक हो ॥ १० ॥ हे दीनानाथ ! हे महेश ! हे शंकरके पुत्र ! हे त्रिलोकीनाथ ! प्रभो मायाके अधिपति ! हे प्रिय ! मैं आपकी शरण आयाहूं, आप मेरी रक्षा कीजिये,

त्वां विहाय शरण्यं कं यायां शिवसुत प्रभो ॥ सर्वब्रह्मांडनाथं हि सर्वामरसुसेवितम् ॥ ८ ॥ दीनबंधुर्दयासिन्धुस्सुसेव्यो भक्तवत्सलः ॥
हरिब्रह्मादिदेवैश्च सुस्तुतः परमेश्वरः ॥ ९ ॥ पार्वतीनन्दनस्स्कन्दः परमेकः परंतपः ॥ परमात्माऽऽत्मदस्स्वामी सतां च शरणार्थिनाम्
॥ १० ॥ दीनानाथ महेश शंकरसुत त्रैलोक्यनाथ प्रभो मायाधीश समागतोऽस्मि शरणं मां पाहि विप्रप्रिय ॥ त्वं सर्वप्रभुरानता
खिलविदब्रह्मादिदेवैस्तुतस्त्वं मायाकृतिरात्मभक्तसुखदो रक्षापरो माययिकः ॥ ११ ॥ भक्तप्राणगुणाकरस्त्रिगुणतो भिन्नोसि शंभुप्रियः
शंभुः शंभुसुतः प्रसन्नसुखदस्सच्चित्स्वरूपो महान् ॥ सर्वज्ञस्त्रिपुरघ्नशंकरसुतः सत्प्रेमवश्यस्सदा षड्वक्त्रः प्रियसाधुरानतप्रियस्सर्वेश्वर
शंकरः ॥ साधुद्रोहकरघ्न शंकरगुरो ब्रह्मांडनाथो प्रभुः सर्वेषाममरादिसेवितपदो मां पाहि सेवाप्रिय ॥ १२ ॥ वैरिभयंकर शंकर
णस्य वन्दे तव पदपद्मं सुखकरणस्य ॥ विज्ञप्तिं मम कर्णे स्कन्द निधेहि निजभक्तिं जनचेतसि सदा विधेहि ॥ १३ ॥

हो, सब ब्रह्मादिदेवता तुमको प्रणाम और स्तुति करते हैं, तुम मायासे अवतार लेते अपने भक्तोंको सुख देते रक्षामें तत्पर तथा मायावाले
भक्तोंके प्राण गुणोंके आगर तीनों गुणोंसे भिन्न शिवजीके प्यारे कल्याणमय शिवजीके पुत्र प्रसन्न सुखदायक सत्चित्रूप महान हो,
के पुत्र हो, सदा सत्प्रेमके वशमें हो, षण्मुखवाले साधुओंके प्यारे प्रणतोंके पालक, सर्वेश्वर, कल्याणकारी, साधुओंसे द्रोह करनेवालेको
हैं; ब्रह्माण्डके नाथ प्रभु आपके चरणोंकी सब देवता सेवा करते हैं हे सेवाप्रिय ! मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥ वैरियोंको भय

वाले शरणसुखद सुखकारी आपके चरणकमलोंको मैं प्रणाम करताहूं हे स्कन्द ! मेरी प्रार्थनापर आप कान करो भक्तोंके
दां ॥ १३ ॥ बली शत्रु उसका क्या कर सकते हैं वह दक्ष होकर भी दोनों पार्श्व (ओर) से रक्षित होसक्ताहै तक्षक वा
या कर सकते हैं चतुरोंसे माननीय आप जिसके रक्षक हैं ॥ १४ ॥ हे देव ! देवगुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं है,
द आपकी क्या स्तुति करूं बडाई पूजा करूं पवित्र अपवित्र अनार्य जैसा कुछ भी हूं, हे स्कन्द ! आपके चरणकमलके परागकी प्रार्थना करता
सबके ईश्वर ! हे भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले ! हे दयासिन्धु ! मैं तुम्हारा दास हूं, हे प्रभो ! आप गणोंके पति हो अपने सेवकके अपराध

किं तस्य बली विपक्षो दक्षोऽपि पक्षोभयपार्श्वगुप्तः ॥ किन्तक्षकोप्यामिषभक्षको वा त्वं रक्षको यस्य सदक्षमानः ॥ १४ ॥
विबुधगुरुरपि त्वां स्तोतुमीशो न हि स्यात्कथय कथमहं स्यां मंदबुद्धिर्वराच्यः ॥ शुचिरशुचिरनार्यो यादृशस्तादृशो वा पदकमलपरागं
स्कन्द ते प्रार्थयामि ॥ १५ ॥ हे सर्वेश्वर भक्तवत्सल कृपासिन्धो त्वदीयोऽस्म्यहं भृत्यस्स्वस्य न सेवकस्य गणपस्याऽऽगश्शतं
सत्प्रभो ॥ भक्तिं क्वापि कृतां मनागपि विभो जानासि भृत्यार्तिहा त्वत्तो नास्त्यपरोऽविता न भगवन् मत्तो नरः पामरः ॥ १६ ॥
कल्याणकर्ता कलिकल्मषघ्नः कुबेरबन्धुः करुणार्द्रचित्तः ॥ त्रिषट्कनेत्रो रसवक्त्रशोभी यज्ञं प्रपूर्णं कुरु मे गुह त्वम् ॥ १७ ॥ रक्षकस्त्वं
त्रिलोकस्य शरणागतवत्सलः ॥ यज्ञकर्त्ता यज्ञभर्त्ता हरसे विघ्नकारिणाम् ॥ १८ ॥ विघ्नवारण साधूनां सर्गकारण सर्वतः ॥ पूर्णं कुरु
ममेशानसुत यज्ञ नमोस्तु ते ॥ १९ ॥

मत गिनो, हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले ! आप जानते हो कि मैंने कभी आपकी भक्ति नहीं की, हे भगवन् ! आपकी बराबर तो कोई रक्षक नहीं है, और मेरे बराबर कोई पामर नहीं है ॥ १६ ॥ आप कल्याणके करनेवाले कलिके पाप नाश करनेवाले कुबेरके बन्धु, दयामय चित्रवाले अठारह नेत्रवाले छःमुखवाले हो, हे देव ! आप मेरा यज्ञ पूर्ण कीजिये ॥ १७ ॥ हे शरणागतवत्सल ! आप त्रिलोकीके रक्षक हो आप यज्ञके कर्त्ता यज्ञके भर्त्ता विघ्नके करनेवालोंको हरनेवाले हो ॥ १८ ॥ आप साधुजनोंके विघ्न निवारण करनेवाले हो, सबकी सृष्टिके करनेवाले हो, हे महेशानपुत्र ! आप मेरा यज्ञ पूर्ण

ईशान सबके रक्षक हो ॥ २० ॥ आप संगीतके
हो ॥ २१ ॥ भवानीनन्दन शिवजीके पुत्र वयुन
तरोंके पिता सदात्मा महात्माओंके कारण हो ॥
अपने गणको इसके निमित्त भेजा ॥ २३ ॥

॥ संगीतज्ञस्त्वमेवासि वेदविज्ञः परः
॥ ध्याता ध्येयः पितॄणां हि
॥ स्वगणं वीरबाह्वाख्यं प्रेषया
ययौ ॥ २४ ॥ अन्वेषणं चका
ऽजं प्रददर्श तम् ॥ उपद्रवं प्रकु
कुर्वंतं रवं बहु ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा तं
सोऽजो ब्रह्मांडं सकलं मुने ॥

४ ॥ उसने सब ब्रह्माण्ड भरमें उसकी
देखा जहां गलयूप महाबल उपद्रव
ने स्वामीके पास लेआया ॥ २७ ॥
त्रमें सब ब्रह्माण्डमें; भ्रमण कर श्रमको

ह अज वहीं स्थित रहा हे नारद !
दसे यज्ञ करैंगे, आप हमसे सखाभाव
यज्ञ पूर्ण होगा, मैं प्रसन्नतासे यह
॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
॥ नारद उवाच ॥ नमस्ते देव
वधयोग्यो न विप्राऽजः स्वगृहं
ी वचनं प्रीतमानसः ॥ जगाम
र्थे कुमारखंडे कुमाराऽद्भुतचरि
प्रसन्ना बभूबुर्हि विश्वासासक्तमा
२ ॥ देवानामुद्यमं श्रुत्वा तार
स्य महाबलम् ॥ बलेन बहुकुर्व
धो हर्यादीनखिलान् सुरान् ॥ ५ ॥
विभुके इस प्रकार चरित्र देखकर विश्वासमें मन
हो कुमारको आगे कर तारक असुरके मारनेको
के निमित्त गमन किया ॥ ३ ॥ जब देवताओंने
तब उस समय आकाशवाणी हुई वह शिवजीकी

सम्मत बडे बडे योधा क्षणमात्रमें सैंकडो हजारों पृथिवीपर गिरगये, और महाशस्त्रोंके लगनेसे उनके अंग छिन्न भिन्न होगये ॥२४॥ दारुण खड्गप्रहारसे
ीकी भुजा छिन्न भिन्न होगई, किन्हीं मानी वीरोंकी उस युद्धमें उस छिन्नभिन्न होगई ॥ २५ ॥ किन्हींके गदा और मुद्गरोंसे सर्वांग छिन्नभिन्न होगये,
हींके पाश और भालोंसे हृदय विदीर्ण होगये जिससे वह निपतित हुए ॥ २६ ॥ बरछियोंसे किन्हींके पृष्ठभाग विदीर्ण करदियेगये कोई ऋष्टि और
शोंसे घायल हुए, किन्हींके शिर कटकर पृथिवीमें गिर गये ॥ २७ ॥ सैकडों कबंध जंघा ताडन करते हाथमें शस्त्र उठाये समर भूमिमें नृत्य करने लगे

मौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ निकृत्तांगा महाशस्त्रैर्निहता वीरसंमताः ॥ २४ ॥ केषांचिद्बाहवश्छिन्नाः खड्गपातैस्सुदा
ैः ॥ केषांचिदूरवश्छिन्ना वीराणां मानिनां मृधे ॥ २५ ॥ केचिन्मथितसर्वांगा गदाभिर्मुद्गरैस्तथा ॥ केचिन्निर्भिन्नहृदयाः पाशैर्भ
श्च पातिताः ॥ २६ ॥ केचिद्विदारिताः पृष्ठे कुंतैर्ऋष्टिभिरंकुशैः ॥ छिन्नान्यपि शिरांस्येव पतितानि च भूतले ॥ २७ ॥ बहूनि च
बंधानि नृत्यमानानि तत्र वै ॥ वल्गमानानि शतशो उद्यतास्त्रकराणि च ॥२८॥ नद्यः प्रवर्तितास्तत्र शतशोऽसृङ्वहास्तदा ॥ भूतप्रे
दयस्तत्र शतशश्च समागताः ॥ २९ ॥ गोमायवश्शिवास्तत्र भक्षयन्तः पलं बहु ॥ तथा गृध्रवटाश्श्येना वायसा मांसभक्षकाः॥बुभुंजुः
तितानां च पलानि सुबहूनि वै ॥३०॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र तारकाख्यो महाबलः ॥ सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति ॥३१॥
ा दृष्ट्वा समायान्तं तारकं युद्धदुर्मदम् ॥ योद्धुकामं तदा सद्यो ययुश्शक्रादयस्तदा ॥ बभूवाथ महोन्नादस्सेनयोरुभयोरपि ॥ ३२ ॥

८ ॥ उस समय मांस तथा रुधिरकी नदियें उस स्थानमें बहने लगीं भूत प्रेतादिक भी वहां सैकडों आगये ॥२९॥ गीदड और गीदडी अनेक प्रकारसे
भक्षण करती हुई, इसी प्रकार गृध्र पिशाच श्येन तथा कौए मांस भक्षण करनेको वहां आगये, मृतक हुए शरीरोंका बहुतसा मांस भक्षण करने लगे॥
३० ॥ इसी समय महाबली तारक दैत्यने बडी सेना लेकर देवताओंसे युद्ध करनेको गमन किया ॥ ३१ ॥ युद्धमें दुर्मद तारक दैत्यको देवताओंने
ा देख तो इन्द्रादिक देवता भी उससे युद्ध करनेको चले उस समय दोनों सेनाओंमें बडा उल्लास हुआ ॥ ३२ ॥

समय तथा दैत्योंका नाश करनेवाला बडा युद्ध हुआ, जिसको देखकर वीर प्रसन्न और कायर भयभीत हुए ॥ ३३ ॥ दितिपुत्र तारक इन्द्रसे
म करन लगा, अग्निसे संह्लाद और जंभसे स्वयं यमराजका युद्ध होने लगा ॥ ३४ ॥ महाप्रभुका नैऋत्यके साथ, वरुणका बलके साथ, सुवीरका
के साथ पवमानका कुबेरके साथ युद्ध आरंभ हुआ॥ ३५॥ईशानके साथ रणकुशल शंभुका युद्ध होनेलगा शुंभका शेषसे, और कुंभ दानवका चन्द्रके
संग्राम होने लगा ॥ ३६॥महाबली पराक्रमी कुंजरका मिहिरके साथ संग्राम होने लगा,यह सब अनेक युद्धोंमें विशारद परम अस्त्र लेकर युद्ध करने

ाभूद्द्वंद्वयुद्धं हि सुरासुरविमर्दनम् ॥ यं दृष्ट्वा हर्षिता वीराः क्लीबाश्च भयमागताः ॥ ३३ ॥ तारको युयुधे युद्धे शक्रेण दितिजो बली ॥
ाग्निना सह संह्लादो जंभेनैव यमः स्वयम् ॥ ३४ ॥ महाप्रभुर्नैर्ऋतेन पाशी सह बलेन च ॥ सुवीरो वायुना सार्धं पवमानेन गुह्य
द् ॥ ३५ ॥ ईशानेन समं शंभुर्युयुधे रणवित्तमः ॥ शुंभश्शेषेण युयुधे कुंभश्चन्द्रेण दानवः ॥ ३६ ॥ कुंबरो मिहिरेणाजौ महाबल
राक्रमः ॥ युयुधे परमास्त्रैश्च नानायुद्धविशारदः ॥ ३७ ॥ एवं द्वन्द्वेन युद्धेन महता च सुरासुराः ॥ संगरे युयुधुस्सर्वे बलेन कृतनि
याः ॥ ३८ ॥ अन्योन्यं स्पर्द्धमानास्तेऽमरादैत्या महाबलाः ॥ तस्मिन्देवासुरे युद्धे दुर्जया अभवन्मुने ॥ ३९ ॥ तदा च तेषां सुर
ानवानां बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणाम् ॥ सुखावहं वीरमनस्विनां वै भयावहं चैव तथेतरेषाम् ॥ ४० ॥ मही महारौद्रतरा विनष्टकै
सुरासुरैर्वै पतितैरनेकशः ॥ तस्मिन्नगम्यातिभयानका तदा जाता महासौख्यवहा मनस्विनाम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे युद्धप्रारंभवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ३७॥इस प्रकार वे सुर असुर महान् द्वंद्वयुद्धसे निश्चयपूर्वक संग्राम करने लगे ॥३८॥ इस प्रकार महाबली देवता और दैत्य परस्पर स्पर्द्धी हुए, करते
देवता असुरोंके युद्धमें सर्वथा दैत्य दुर्जय हुए॥ ३९॥तब उस समय देवता और दैत्योंका महायुद्ध जयके निमित्त हुआ,जो वीर मनस्वियोंको सुखदायक
र कायरोंको भयदायक हुआ ॥ ४० ॥ जब इस प्रकारसे अनेक सुर असुर पतित हुए और उनके नष्ट होनेसे संग्रामभूमि महाभयंकर होगई तथा
यरोंको बडी भयंकर और वीरजनोको महा प्रसन्न करनेवाली हुई ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण रु० च०कु०भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हे नारदजी ! इस प्रकार आपसे देवता और दानवोंकी सेनाका घोर संग्राम वर्णन किया अब उनकी उन्नति सुनो ॥ १ ॥ इस प्रकार देवदानवके
क्षयकारक उस तुमुल युद्धमें देवेन्द्रको तारकने परम शक्तिसे ताडन किया ॥ २ ॥ इन्द्र शक्तिसे घायल हो तत्काल ऐरावतसे नीचे पृथिवीपर गिरपडे, और
वज्रधारी सुरेश्वरको बडी व्याकुलता आनकर प्राप्त हुई ॥३॥ इसी प्रकार बलवान् असुरोंने सब लोकपालको महायुद्धकी कौशलताके कारण परास्त करदिया
॥ ४ ॥ और दूसरे देवताभी दैत्योंसे युद्धकर पराजित हुए, और उनका तेज न सहकर भागने लगे ॥ ५ ॥ जयी होकर असुर गर्जने लगे और सिंहनाद

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति ते वर्णितस्तात देवदानवसेनयोः ॥ संग्रामस्तुमुलोऽतीव तत्प्रभ्वोः शृणु नारद ॥ १ ॥ एवं युद्धेऽतितुमुले देवदा
नवसंक्षये ॥ तारकेणैव देवेन्द्रश्शक्त्या परमया सह ॥ २ ॥ सद्यः पपात नागाच्च धरण्यां मूर्छितोऽभवत् ॥ परं कश्मलमापेदे वज्रधारी
सुरेश्वरः ॥ ३ ॥ तथैव लोकपास्सर्वेऽसुरैश्च बलवत्तरैः ॥ पराजिता रणे तात महारणविशारदैः ॥ ४ ॥ अन्येऽपि निर्जरा दैत्यैर्युद्ध्य
मानाः पराजिताः ॥ असहंतो हि तत्तेजः पलायनपरायणाः ॥ ५ ॥ जगर्जुरसुरास्तत्र जयिनस्सुकृतोद्यमाः ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः
कोलाहलपरायणाः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र वीरभद्रो रुषान्वितः ॥ आससाद गणैर्वीरैस्तारकं वीरमानिनम् ॥ ७ ॥ निर्जरान् पृष्ठतः
कृत्वा शिवकोपोद्भवो बली ॥ तत्सम्मुखो बभूवाथ योद्धुकामो गणाग्रणीः ॥ ८ ॥ तदा ते प्रमथास्सर्वे दैत्याश्च परमोत्सवाः ॥ युयुधुस्सं
युगेऽन्योन्यं प्रसक्ताश्च महारणे ॥ ९ ॥ त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ निजघ्नुस्समरेऽन्योन्यं रणे रणविशारदाः ॥ १० ॥
तारको वीरभद्रेण स त्रिशूलाहतो भृशम् ॥ पपात सहसा भूमौ क्षणं मूर्छापरिप्लुतः ॥ ११ ॥

करतेहुए कोलाहल करनेलगे ॥ ६ ॥ इसी समय वीरभद्रने महाक्रोधकर वीरगणोंसे वेष्टित हो तारक असुरके समीप गमन किया ॥ ७ ॥ यह बली शिवके
कोपसे उत्पन्न होनेके कारण महारोषको प्राप्त हो युद्धकी इच्छासे सब गणोसे आगे हो युद्धकी इच्छासे तारक असुरके सन्मुख हुआ ॥ ८ ॥ तब वे सब
प्रमथ और दैत्य परम उत्सवसे महारणमें प्रवृत्तहो परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ ९ ॥ त्रिशूल ऋष्टि पाश खड्ग परशे पट्टिश वे रणकरनेमें कुशल परस्पर एक
दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ १० ॥ वीरभद्रने त्रिशूल मारकर तारकको अत्यन्त ताडित किया, और क्षण मात्र मूर्छाको प्राप्त होकर पृथिवीपर मूर्च्छा खाकर

गिरपडा ॥ ११ ॥ फिर दैत्यश्रेष्ठ तारक क्षणमात्रमें उठकर चैतन्य हो बडे बलसे वीरभद्रपर शक्तिका प्रहार करता हुआ ॥१२॥ तब महातेजस्वी वीरभद्रने भी बडे तीक्ष्ण घोर त्रिशिख बाणसे प्रहार किया ॥ १३ ॥ तारकने भी समरमें वीरभद्रको शक्तिसे प्रहार किया, दैत्योंमें अधीश्वर तारक बडा प्रबल और सम्मत था ॥ १४ ॥ इस प्रकार युद्धकरते हुए वे परस्पर एक दूसरेको प्रहार करने लगे, व रणविद्यामें विशारद दोनो युद्धमें नाना अस्त्र शस्त्र छोडने लगे ॥ ॥ १५ ॥ उस समय उन दोनो महात्माओंका द्वंद्व युद्ध होने लगा उस भयंकर और रोमहर्षण युद्धको सब कोई देखने लगे ॥ १६ ॥ उस समय भेरी मृदंग

उत्थाय स द्रुतं वीरस्तारको दैत्यसत्तमः ॥ लब्धसंज्ञो बलाच्छक्त्या वीरभद्रं जघान ह ॥ १२ ॥ वीरभद्रस्तथा वीरो महातेजा हि तारकम् ॥ जघान त्रिशिखेनाशु घोरेण निशितेन तम् ॥ १३ ॥ सोपि शक्त्या वीरभद्रं जघान समरे ततः ॥ तारको दितिजाधीशः प्रबलो वीरसंमतः ॥ १४ ॥ एवं संयुद्धयमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् ॥ नानास्त्रशस्त्रैस्समरे रणविद्या विशारदौ ॥ १५ ॥ तयोर्महात्मनोस्तत्र द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा ॥ सर्वेषां पश्यतामेव तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ततो भेरीमृदंगाश्च पटहानकगोमुखाः ॥ विनेदुर्विहता वीरैश्शृण्वतां सुभयानकाः ॥ १७ ॥ युयुधातेतिसन्नद्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ ॥ अन्योन्यमतिसंरब्धौ तौ बुधांगारकाविव ॥ १८ ॥ एवं दृष्ट्वा तदा युद्धं वीरभद्रस्य तेन च ॥ तत्र गत्वा वीरभद्रमवोचस्त्वं शिवप्रियः ॥ १९ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ वीरभद्र महावीर गणानामग्रणीर्भवान् ॥ निवर्तस्व रणादस्माद्रोचते न वधस्त्वया ॥ २० ॥ एवं निशम्य त्वद्वाक्यं वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ अवदत्स रुषाविष्टस्त्वां तदा तु कृतांजलिः ॥ २१ ॥

पटह आनक गोमुख बजाने लगे जिसको सुनकर वीर प्रसन्न और कायर व्याकुल होने लगे ॥ १७ ॥ प्रहारसे जर्जरीभूत होकर वे दोनों युद्ध करने लगे और बुध तथा मंगलकी समान परस्पर दोनोंही बडे वेगसे युद्ध करनेलगे ॥ १८ उस प्रकार उनके संग वीरभद्रका युद्ध देखकर शिवके प्रिय तुम वीरभद्रसे जाकर कहने लगे ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे वीरभद्र ! हे महावीर ! तुम गणोंमें अग्रणीय हो इस युद्धसे तुम निवृत्त हो इसका वध तुमको शोभा नहीं देता ॥ २० ॥ गणोंमें अग्रगामी वीरभद्र नारदजीके यह वचन सुन रोषमें भरकर हाथ जोड उस समय तुमसे कहने लगा ॥ २१ ॥

वीरभद्र बोला हे मुनिश्रेष्ठ! हे महाभाग! मेरे परम वचन सुनो मैं तारक असुरको मारता हूं, इस समय तुम मेरा पराक्रम देखो ॥ २२ ॥ जो वीर स्वामीको रणक्षेत्रमें ले आते हैं वे पापी महा नपुंक रणक्षेत्रमें नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥ और वे असद्गतिको प्राप्त होते हैं उनको नरककी प्राप्ति अवश्य होती है वीरभद्रसे इस प्रकारके वचन फिर न कहना ॥ २४ ॥ जो शस्त्र अस्त्रोंसे भिन्न शरीर होकर निर्भय हो युद्ध करते हैं, वह दोनों लोकमें सम्पत्ति और उत्तम सुख पाते हैं ॥ २५ ॥ विष्णुसे आदि लेकर सब देवता मेरे वचन सुनै आज मैं इस पृथिवीको दैत्योंके स्वामी तारकसे हीन कर दूंगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार

वीरभद्र उवाच ॥ मुनिवर्य महाप्राज्ञ शृणु मे परमं वचः ॥ तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २२ ॥ आनयंति च ये
वीरास्स्वामिनं रणसंसदि ॥ ते पापिनो महाक्लीबा विनश्यन्ति रणं गताः ॥ २३ ॥ असद्गतिं प्राप्नुवन्ति तेषां च निरयो ध्रुवम् ॥
वीरभद्रो हि विज्ञेयो न वाच्यस्ते कदाचन ॥ २४ ॥ शस्त्रास्त्रैर्भिन्नगात्रा ये रणं कुर्वंति निर्भयाः ॥ इहामुत्र प्रशंस्यास्ते लभन्ते सुख
मद्भुतम् ॥ २५ ॥ शृण्वन्तु मम वाक्यानि देवा हरिपुरोगमाः ॥ अतारकां महीमद्य करिष्ये स्वामिवर्जितः ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वा प्रम
थैस्सार्द्धं वीरभद्रो हि शूलधृक् ॥ विचिंत्य मनसा शंभुं युयुधे तारकेण हि ॥ २७ ॥ वृषारूढैरनेकैश्च त्रिशूलवरधारिभिः ॥ महावीरै
स्त्रिनेत्रैश्च स रेजे रणसंगतः ॥ २८ ॥ कोलाहलं प्रकुर्वंतो निर्भयाश्शतशो गणाः ॥ वीरभद्रं पुरस्कृत्य युयुधुर्दानवैस्सह ॥ २९ ॥ असु
रास्तेऽपि युयुधुस्तारकासुरजीविनः ॥ बलोत्कटा महावीरा मर्दयन्तो गणान् रुषा ॥ ३० ॥

कह प्रमथगणोंके साथ शूल धारण किये हुए वीरभद्र मनसे शिवजीको स्मरण कर तारकके साथ युद्ध करने लगा ॥ २७ ॥ और भी श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये वृषभपर चढे बडे वीर तीन नेत्रवालोंसे वह युक्त होकर रणक्षेत्रमें शोभित हुआ ॥ २८ ॥ सैकडों गण निर्भय हो कोलाहल करते हुए वीरभद्रको आगेकर युद्ध करने लगे ॥२९॥ और तारकके आधीनके सब दैत्य भी युद्ध करने लगे वे बलमें उत्कट महावीर क्रोधसे गणोंको मर्दन करने लगे ॥३०॥

दैत्यवर्य और देवताओंका विकट संग्राम होने लगा और परम अस्त्र चलानेमें पंडितगण प्रसन्न होकर जय जय करने लगे ॥ ३१ ॥ प्रबल गणोंसे परास्त होकर वे गण रणसे विमुख होगये, व्यथित और व्यग्रमन होकर फिर परास्त होगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार अपनी सेनाको व्यथित देखकर उसका पालक असुर तारक बडा क्रोधकर देवताओंके मारनेको चला ॥ ३३ ॥ वह दशसहस्र भुजा करके बडे वेगसे सिंहपर चढकर उन देवता और दैत्योंको रणस्थलमें गिराने लगा ॥ ३४ ॥ गणोंमें अग्रणी वीरभद्रने उसका यह कर्म देखकर उस महाबलीने उसके मारनेके निमित्त बडा कोप किया ॥ ३५ ॥ शिवजीके

पुनःपुनश्चैव बभूव संगरो महोत्कटो दैत्यवरैर्गणानाम् ॥ प्रहर्षमाणाः परमास्त्रकोविदास्तदा गणास्ते जयिनो बभूवुः ॥ ३१ ॥ गणै
र्जितास्ते प्रबलैरसुरा विमुखा रणे ॥ पलायनपरा जाता व्यथिता व्यग्रमानसाः ॥ ३२ ॥ एवं भ्रष्टं स्वसैन्यं तद्दृष्ट्वा तत्पालकोऽसुरः ॥
तारको हि रुषाविष्टो हंतुं देवगणान् ययौ ॥ ३३ ॥ भुजानामयुतं कृत्वा सिंहमारुह्य वेगतः ॥ पातयामास तान्देवान् गणांश्च रणमूर्द्ध
नि ॥ ३४ ॥ स दृष्ट्वा तस्य तत्कर्म वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ चकार सुमहत्कोपं तद्वधाय महाबली ॥ ३५ ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं
जग्राह त्रिशिखं परम् ॥ जज्वलुस्तेजसा तस्य दिशः सर्वा नभस्तथा ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे स्वामी वारयामास तं रणम् ॥ वीरबाहु
मुखान्सद्यो महाकौतुकदर्शकः ॥ ३७ ॥ तदाज्ञया वीरभद्रो निवृत्तोऽभूद्रणात्तदा ॥ कोपं चक्रे महावीरस्तारकोऽसुरनायकः ॥ ४८ ॥
चकार बाणवृष्टिं च सुरोपरि तदाऽसुरः ॥ ततोऽह्वासीत्सुरान्सद्यो नानास्त्ररणकोविदः ॥ ३९ ॥ एवं कृत्वा महत्कर्म तारकोऽसुरपालकः ॥
सर्वेषामपि देवानामशक्यो बलिनां वरः ॥ ४० ॥

चरणकमलको स्मरण कर उसने त्रिशिख अस्त्रको ग्रहण किया उसके तेजसे सब दिशा और आकाश प्रज्वलित हो उठा ॥ ३६ ॥ तब इस अवसरमें वीरबाहु स्वामीने कौतुक दिखानेकी इच्छासे उसको युद्धसे निवारण किया ॥ ३७ ॥ उनकी आज्ञासे वीरबाहु वीरभद्र रणसे निवृत्त हुए और उसी समय असुरनायक तारकने महा क्रोध किया ॥ ३८ ॥ तब वह असुर देवताओंपर बाण वृष्टि करने लगा, और अनेक अस्त्र शस्त्र छोडकर देवताओंको तप्त करने लगा कारण कि यह रणकर्ममें बडा चतुर था ॥ ३९ ॥ इस प्रकार असुरोंकी पालना करनेवाला तारक दैत्य महा कर्म करके शोभित हुआ उस बलवालोंमें श्रेष्ठके यह

कर्म देवताओंको भी अशक्य थे ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे देवताओंको भयसे व्याकुल और घात होतेहुए देखकर महा क्रोधकर युद्ध करनेके निमित्त विष्णुजी उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ सुदर्शन चक्र शारंगधनुष और आयुध लेकर उस महादैत्यके मारनेके लिये हरि चले ॥ ४२ ॥ उस समय हरि और तारक असुरका महायुद्ध हुआ हे मुने ! इस लोमहर्षण युद्धको सब देखने लगे ॥ ४३ ॥ हरिने गदा उठाकर बडे वेगसे दैत्यको मारी महाबली दैत्यने त्रिशिख बाणसे उसके दो खण्ड करदिये ॥ ४४ ॥ तब देवताओंको अभय देनेवाले भगवान् क्रुद्ध हुए शारंग धनुष पर बाण चढाकर उस असुरनायकको मारा ॥ ४५ ॥

एवं निहन्यमानांस्तान् दृष्ट्वा देवान् भयाकुलान् ॥ कोपं कृत्वा रणायाशु संनद्धोऽभवदच्युतः ॥ ४१ ॥ चक्रं सुदर्शनं शार्ङ्गं धनुरादाय सायुधः ॥ अभ्युद्ययौ महादैत्यं रणाय भगवान् हरिः ॥ ४२ ॥ ततस्समभवद्युद्धं हरितारयोर्महत् ॥ लोमहर्षणमत्युग्रं सर्वेषां पश्यतां मुने ॥ ४३ ॥ गदामुद्यम्य स हरिर्जघानासुरमोजसा ॥ द्विधा चकार तां दैत्यस्त्रिशिखेन महाबली ॥ ४४ ॥ ततस्स क्रुद्धो भगवान्देवानामभयंकरः ॥ शार्ङ्गच्युतैश्शरव्यूहैर्जघानासुरनायकम् ॥ ४५ ॥ सोऽपि दैत्यो महावीरस्तारकः परवीरहा ॥ चिच्छेद सकलान्बाणान्स्वशरैर्निशितैर्द्रुतम् ॥ ४६ ॥ अथ शक्त्या जघानाशु मुरारिं तारकासुरः ॥ भूमौ पपात स हरिस्तत्प्रहारेण मूर्च्छितः ॥ ४७ ॥ जग्राह स रुषा चक्रमुत्थितः क्षणतोऽच्युतः ॥ सिंहनादं महत्कृत्वा ज्वलज्ज्वालासमाकुलम् ॥ ४८ ॥ तेन तश्च जघानासौ दैत्यानामधिपं हरिः ॥ तत्प्रहारेण महता व्यथितो न्यपतद्भुवि ॥ ४९ ॥ पुनश्चोत्थाय दैत्येन्द्रस्तारकोऽसुरनायकः ॥ चिच्छेद त्वरितं चक्रं स्वशक्त्यातिबलान्वितः ॥ ५० ॥

वह भी महाबली तारक शत्रुओंके वीरोंको मारनेवाला अपने धनुष पर चढाये बाणोंसे हरिके बाण छेदन करने लगा ॥ ४६ ॥ फिर तारक असुरने शक्तिसे मुरारीपर आघात किया, उस प्रहारसे मूर्छित हो विष्णुजी पृथिवीपर पतित हुए ॥ ४७ ॥ और क्षण मात्रमें उठकर विष्णुजीने सुदर्शनचक्र ग्रहण किया, और वह चक्र अग्निकी समान प्रज्वलित हो उठा विष्णुजी सिंहनाद करने लगे ॥ ४८ ॥ उस चक्रसे हरिने उसपर प्रहार किया, और उस प्रहारसे व्याकुल हो दैत्य पृथिवीमें गिरपडा ॥ ४९ ॥ फिर भी वह असुरनायक तारक उठकर बडे बलसे अपनी शक्ति चलाकर चक्रको छेदन करता हुआ ॥ ५० ॥

और फिर महाशक्तिसे विष्णुजीको ताडन किया, फिर अच्युतने नन्दकनामक गदासे उसको ताडन किया ॥५१॥ इस प्रकारसे विष्णुजी और वह दैत्य महा संग्राम करने लगे, हे नारदजी ! किसी प्रकार भी उनका बल क्षत न हुआ ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितान्तर्गतचतुर्थ कुमारखण्डे भाषाटीकायां युद्धवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले ! देवदेव हे गुह ! हे स्वामिन् ! हे शंकरपुत्र ! हे पार्वतीपुत्र ! विष्णु और तारकका संग्राम आपको शोभा नहीं देता ॥ १ ॥ वह बलवान् तारक विष्णुसे नहीं मरैगा, कारण कि उनसे वह वध्य नहीं है मैंने उसको ऐसाही वर दिया है, यह मैं सत्य सत्यही कहता हूं ॥ २ ॥ हे पार्वतीपुत्र ! तुम्हारे विना इसका कोई मारनेवाला नहीं है, हे महाप्रभो ! इस कारण तुमको हमारे वचन मानने चाहियै ॥ ३ ॥ आप इस दैत्यके मारनेमें शीघ्र तत्पर हूजिये, हे परंतप ! हे शिवापुत्र ! इसके मारनेके निमित्तही तुम उत्पन्न हुए हो ॥ ४ ॥ हे महावीर ! व्याकुल हुए देवताओंकी आप रक्षा कीजिये, आप बालक युवा नहीं किन्तु सर्वेश्वर प्रभु हो ॥५॥ आप देखिये इन्द्र विष्णु और सब देवताओंके गणोंको व्याकुल देखकर इस महादैत्यको मारकर इन सबको सुखी करो ॥ ६ ॥ इसने लोकपालोंके सहित पहले इन्द्रको जीताथा, और महावीर विष्णुको तपके कारणसे जीत लिया था॥७॥

पुनस्तया महाशक्त्या जघानामरवल्लभम् ॥ अच्युतोऽपि महावीरो नन्दकेन जघान तम् ॥ ५१ ॥ एवमन्योन्यमसुरो विष्णुश्च बलवानुभौ ॥
युयुधाते रणे भूरि तत्राक्षतबलौ मुने ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे देवदैत्यसामान्ययुद्धवर्णनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव गुह स्वामिञ्शांकरे पार्वतीसुत ॥ न शोभते रणो विष्णुतारकासुरयोर्वृथा ॥ १ ॥
विष्णुना न हि वध्योऽसौ तारको बलवानति ॥ मया दत्तवरस्तस्मात्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २ ॥ नान्योहंतास्य
पापस्य त्वां विना पार्वतीसुत ॥ तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं वचनं मे महाप्रभो ॥ ३ ॥ सन्नद्धो भव दैत्यस्य वधायाशु परंतप ॥
तद्वधार्थं समुत्पन्नः शंकरात्त्वं शिवासुत ॥ ४ ॥ रक्ष रक्ष महावीर त्रिदशान्व्यथितान्रणे ॥ न बालस्त्वं युवा नैव किं तु सर्वेश्वरः प्रभुः ॥
॥ ५ ॥ शक्रं पश्य तथा विष्णुं व्याकुलं च सुरान् गणान् ॥ एवं जहि महादैत्यं त्रैलोक्यं सुखितं कुरु ॥ अनेन विजितश्चेन्द्रो लोकपालैः
पुरा सह ॥ विष्णुश्चापि महावीरो तर्जितस्तपसो बलात् ॥ ७ ॥

इस दुरात्मा असुरने त्रिलोकीमें सब जीत लिया है इस समय आपके निकट भी फिर देवताओंने युद्ध कियाहै ॥ ८ ॥ इस कारण इस पापी तारकको तुम्हे
मारना चाहिये हे शंकरात्मज ! मेरे वरके कारण यह औरसे वध्य नहीं है ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले वह शंकरात्मज कुमार मेरे वचन सुनकर प्रसन्न होकर हँसे
और ऐसा ही होगा यह कहा ॥ १० ॥ वह महाप्रभु शंकरके पुत्र असुरका वध निश्चय करके विमानसे उतरकर पैदल हुए ॥ ११ ॥ तब यह शिवजीके पुत्र
विमानसे उतरकर पैदल चलते हुए बडी शोभाको प्राप्त हुए और कुमारने महा उल्काकी समान महा प्रकाशमान् शक्ति अपने हाथमें धारण की ॥ १२ ॥

त्रैलोक्यं निर्जितं सर्वमसुरेण दुरात्मना ॥ इनानीं तव सान्निध्यात्पुनर्युद्धं कृतं च तैः ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वया निहंतव्यस्तारकः पापपू
रुषः ॥ अन्यंवध्यो न चैवायं मद्वराच्छंकरात्मज ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा मम वचः कुमारः शंकरात्मजः ॥ विजहास
प्रसन्नात्मा तथास्त्विवति वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ विनिश्चित्यासुरवधं शांकरिस्स महाप्रभुः ॥ विमानादवतीर्याथ पदातिरभवत्तदा ॥ ११ ॥
पद्भ्यां तदासौ परिधावमानो रेजेऽतिवीरः शिवजः कुमारः ॥ करे समादाय महाप्रभां तां शक्तिं महोल्कामिव दीप्तिदीप्ताम् ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तमायांतमतिप्रचंडमव्याकुलं षण्मुखमप्रमेयम् ॥ दैत्यो बभाषे सुरसत्तमान्स कुमार एष द्विषतां प्रहंता ॥ १३ ॥ अनेन सार्कं
ह्यहमेकवीरो योत्स्ये च सर्वानहमेव वीरान् ॥ गणांश्च सर्वानपि घातयामि सलोकपालान्हरिनायकांश्च ॥ १४ ॥ इत्येवमुक्त्वा स तदा
महाबलः कुमारमुद्दिश्य ययौ च योद्धुम् ॥ जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको देववरान्बभाषे ॥ १५ ॥ ॥ तारक उवाच ॥
कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः ॥ यूयं गतत्रपा देवा विशेषाच्छक्रमेश्वरौ ॥ १६ ॥

उस अत्यन्त प्रचण्ड व्याकुलतारहित अप्रमेय षण्मुखको देख देवताओंको मारनेवाले दैत्यने कहा शत्रुओंपर प्रहार करनेवाला वह कुमार यही है ॥ १३ ॥
मैं एकवीर ही इस कुमारके तथा सब दूसरे वीरोंके साथ युद्ध करके सम्पूर्ण गण लोकपाल और हरिनायकोंको घात करसकताहूं ॥ १४ ॥ तब यह कहकर
वह महाबली कुमारको देखकर युद्ध करनेको चला और परम अद्भुत शक्तिको ग्रहणकर वह तारक सब देवश्रेष्ठोंसे कहने लगा ॥ १५ ॥ तारकने कहा
हे देवताओ ! तुमने कुमारको मेरे आगे कैसे कर दिया है हे देवताओ ! तुम लज्जाहीन होगये, विशेषकर इन्द्र और विष्णु लज्जाहीन हैं ॥ १६ ॥

पहले भी इन्होंने वेदमार्गसे विरुद्ध कर्म किया है, वह मैं सब तुमसे वर्णन करताहूं सुनो ॥ १७ ॥ इनमें विष्णुजी बडे दोषी छली और अविवेकी हैं जिन्होंने पाप और छल करके पहले राजा बलिको छला था ॥ १८ ॥ उन्होंनेही पहले यत्नसे मधुकैटभनामक असुरोंको धूर्ततासे वेदमार्गसे बाहर होकर शिरहीन कर दिया ॥ १९ ॥ फिर जब देवता और दैत्य अमृतपान करने बैठे, तब इन्होंने मोहिनीरूप धारणकर पंक्तिभेदकर वेदमार्गसे रहितहो देवताओंको अमृत पिलाया ॥ २० ॥ इन्होंने रामरूप होकर ताटका नारीको मारा, वालीको मारा फिर विश्रवाके पुत्र ब्राह्मणको वेदमार्गसे रहित होकर इन्होंने मारा ॥२१॥

पुरैताभ्यां कृतं कर्म विरुद्धं वेदमार्गतः ॥ तच्छृणुध्वं[1] मया प्रोक्तं वर्णयामि विशेषतः ॥ १७ ॥ तत्र विष्णुश्छली दोषी ह्यविवेकी विशेषतः ॥ बलिर्येन पुरा बद्धश्छलमाश्रित्य पापतः ॥ १८ ॥ तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ ॥ शिरोहीनौ कृतौ धौर्त्याद्वेदमार्गौ विवर्जितः ॥ १९ ॥ मोहिनीरूपतोऽनेन पंक्तिभेदः कृतो हि वै ॥ देवासुरसुधापाने वेदमार्गो विगर्हितः ॥२०॥ रामो भूत्वा हता नारी वाली विध्वंसितो हि सः ॥ पुनर्वैश्रवणो विप्रो हतो नीतिर्हता श्रुतेः ॥२१॥ पापं विना स्वकीया स्त्री त्यक्ता पापरतेन यत् ॥ तत्रापि श्रुतिमार्गश्च ध्वंसितस्स्वार्थहेतवे ॥ २२ ॥ स्वजनन्याश्शिरश्छिन्नमवतारे रसाख्यके ॥ गुरुपुत्रापमानश्च कृतोऽनेन दुरात्मना ॥२३॥ कृष्णो भूत्वान्यनार्यश्च दूषिताः कुलधर्मतः ॥ श्रुतिमार्गं परित्यज्य स्वविवाहाः कृतास्तथा ॥ २४ ॥ पुनश्च वेदमार्गो हि निंदितो नवमे भवे ॥ स्थापितं नास्तिकमतं वेदमार्गविरोधकृत् ॥ २५ ॥ एव येन कृतं पापं वेदमार्गं विसृज्य वै ॥ स कथं विजयेद्युद्धे भवेद्धर्मवतांवरः ॥२६॥

फिर विना अपराधके पापमें रत होकर इन्होंने अपनी स्त्रीको त्याग दिया, अपने स्वार्थके निमित्त इसमें भी वेदमार्गको ध्वंस कर दिया ॥ २२ ॥ फिर परशुराम अवतारमें इन्होंने अपनी माताका शिर छेदन किया इन्हीं दुरात्माने गुरुपुत्रका अपमान किया ॥ २३ ॥ कृष्ण होकर इन्होंने कुलधर्मसे अनेक नारियोंको दूषित कर दिया और वेदमार्गको छोडकर इन्होंने अपने विवाह किये ॥ २४ ॥ फिर नवमें बुद्ध अवतारमें इन्होंने वेदमार्गकी निन्दा की और वेदमार्गसे विरोधकर नास्तिकमत स्थापन किया ॥ २५ ॥ इस प्रकार वेदमार्गको त्यागन करके जिन्होंने पाप किये हैं वह युद्धमें किस प्रकार विजय

---

[1] आत्मनेपदमार्षम् ।

पासक्के और धर्मजाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो सक्के हैं ॥ २६ ॥ इसी प्रकार इनके ज्येष्ठ भ्राता इन्द्रभी महापापी है, इन्होंने भी अपनेलिये अनेक पाप किये हैं ॥ २७ ॥ इन्द्रने अपने स्वार्थके निमित्त दितिका गर्भ खंडन किया, गौतमकी स्त्रीको धर्षित कर ब्राह्मणकुमार वृत्रको मारा ॥ २८ ॥ ब्राह्मण विश्वरूप जो इसके गुरुका भानजा था उसके शिर काटकर इन्होंने वेदमार्गको नष्ट किया ॥ २९ ॥ इन हरि और शक्रने वारंवार पाप करके अपने वीर्य और तेजको नष्ट कर दिया है ॥ ३० ॥ इन दोनोंके बलसे तो तुम संग्राममें जय नहीं पासकते सो तुम मूढताको प्राप्त हो प्राण त्यागनेको कैसे आगये हो ॥ ३१ ॥

भ्राता ज्येष्ठश्च यस्तस्य शक्रः पापी महान्मतः ॥ तेन पापान्यनेकानि कृतानि निजहेतुतः ॥ २७ ॥ निकृत्तो हि दितेर्गर्भस्स्वार्थहेतोर्विशे
षतः ॥ धर्षिता गौतमस्त्री वै हतो वृत्रश्च विप्रजः ॥ २८ ॥ विश्वरूपद्विजातेर्वै भागिनेयस्य यद्गुरोः ॥ निकृत्तानि च शीर्षाणि तदध्वा
ध्वंसितश्रुतेः ॥ २९ ॥ कृत्वा बहूनि पापानि हरिश्शक्रः पुनःपुनः ॥ तेजोभिर्विहतावेव नष्टवीर्यौ विशेषतः ॥ ३० ॥ तयोर्बलेन
नो यूयं संग्रामे जयमाप्स्यथ॥किमर्थं मूढतां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुमिहागताः ॥ ३१ ॥ जानन्तौ धर्ममेतौ न स्वार्थलंपटमानसौ ॥ धर्मं
विनाऽमराः कृत्यं निष्फलं सकलं भवेत् ॥ ३२ ॥ महाधृष्टाविमौ मेद्य कृतवंतौ पुरश्शिशुम् ॥ अहं बालं वधिष्यामि तयोस्सोऽपि
भविष्यति ॥ ३३ ॥ किं तु बाल इतो यायाद्दूरं प्राणपरीप्सया ॥ इत्युक्त्वोद्दिश्य च हरी वीरभद्रमुवाच सः॥ ३४ ॥ पुरा हतास्त्वया विप्रा
दक्षयज्ञे ह्यनेकशः ॥ तत्कर्मणः फलं चाद्य दर्शयिष्यामि तेऽनघ ॥ ३५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा तु विधूय पुण्यं निजं स
तन्निंदनकर्मणा वै ॥ जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको युद्धवतां वरिष्ठः ॥ ३६ ॥

यह दोनों तो स्वार्थसे लम्पटमन होकर धर्मको नहीं जानते हे देवताओ ! धर्मके विनाजाने सब कृत्य निष्फल होता है ॥ ३२ ॥ यह दोनों महा ढीठ हैं जो इस बालकको इन्होंने मेरे सामने कर दिया है मैं बालकको मारूंगा तो इन दोनोंको वह भी पाप लगैगा ॥ ३३ ॥ किन्तु हे बालक ! तुम प्राणकी इच्छासे इस स्थानसे दूर हो, यह कहकर इन्द्र और विष्णुके उद्देश्यसे वीरभद्रसे बोला ॥ ३४ ॥ पहले तुमने भी दक्षके यज्ञमें बहुतसे ब्राह्मणोंका वध किया था, हे निष्पाप ! आज उस कर्मका फल मैं तुमको दिखाऊंगा ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार विष्णु और इन्द्रकी निन्दा करके उस निन्दासे उसने अपना

---

१ पापीयानिति शेषः । २ शक्रविष्णू इति भावः ।

समस्त पुण्य नष्ट करके युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ तारकने परम अद्भुत शक्तिको ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ बडे वेगसे कुमारके ऊपर धावमान होते हुए तारकासुरको कुमारके आगे होकर इन्द्रने वज्रसे ताडन किया ॥ ३७ ॥ उस वज्रके प्रहारसे तारक असुर जर्जर होगया, और निंदा करनेसे हतबल होकर वह सहसा पृथिवीपर गिरगया ॥ ३८ ॥ गिरनेके पीछे फिर उठकर बडे वेगसे इन्द्रपर शक्तिका प्रहार किया और हाथीपर चढे हुए इन्द्रको पृथिवीपर गिरादिया ॥ ॥ ३९ ॥ इन्द्रके पतित होनेमें देवताओंकी सेनामें महा हाहाकार मचगया और देवताओंने बडा क्लेश माना ॥ ४० ॥ हे नारदजी ! उस समय तारकनेभी

तं बालान्तिकमायांतं तारकासुरमोजसा ॥ आजघान च वज्रेण शक्रो गुहपुरस्सरः ॥ ३७ ॥ तेन वज्रप्रहारेण तारको जर्जरीकृतः ॥ भूमौ पपात सहसा निंदाहतबलः क्षणम् ॥ ३८ ॥ पतितोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्रुषा ॥ पुरंदरं गजस्थं हि पातयामास भूतले ॥ ३९ ॥ हाहाकारो महानासीत्पतिते च पुरंदरे ॥ सेनायां निर्जराणां हि तद्दृष्ट्वा क्लेश आविशत् ॥ ४० ॥ तारकेणाऽपि तत्रैव यत्कृतं कर्म दुःखदम् ॥ स्वनाशकारणं धर्मविरुद्धं तन्निबोध मे ॥ ४१ ॥ पतितं च पदाक्रम्य हस्ताद्वज्रं प्रगृह्य वै ॥ पुनरुद्वज्रघातेन शक्रमाताडयद्भृशम् ॥४२॥ एवं तिरस्कृतं दृष्ट्वा शक्रं विष्णुः प्रतापवान् ॥ चक्रमुद्यस्य भगवांस्तारकं स जघान ह ॥ ४३ ॥ चक्रप्रहाराभिहतो निपपात क्षितौ हि सः ॥ पुनरुत्थाय दैत्येन्द्रः शक्त्या विष्णुं जघान तम् ॥ ४४ ॥ तेन शक्तिप्रहारेण पतितो भुवि चाच्युतः॥हाहाकारो महानासीच्चुक्रुशुश्चाऽतिनिर्जराः ॥ ४५ ॥ निमेषेण पुनर्विष्णुर्यावदुत्तिष्ठते स्वयम् ॥ तावत्सवीरभद्रो हि तत्क्षणादागतोऽसुरम् ॥४६॥

जो धर्मविरुद्ध दुःखदायक कर्म अपने नाशके निमित्त किया सो आप मुझसे सुनैं ॥ ४१ ॥ गिरे हुए इन्द्रके ऊपर पैर रखकर और उसके हाथसे वज्र लेकर इन्द्रको उसने बडे वेगसे ताडन किया ॥ ४२ ॥ प्रतापवान् भगवान् विष्णुजीने इन्द्रको इस प्रकारसे तिरस्कृत देखकर अपना चक्र उठाकर तारकपर प्रहार किया ॥ ४३ ॥ चक्रके लगनेसे व्याकुल हो तारकअसुर भूमिपर गिरपडा और फिर उठकर उसदैत्यनायकने शक्तिसे विष्णुको ताडन किया ॥ ॥ ४४ ॥ उस शक्तिके लगनेसे भगवान् पृथिवीपर गिरपडे उस समय देवता हाहाकार कर चिल्लाने लगे ॥ ४५ ॥ ज्योही एक निमेषमात्रमें जबतक

विष्णुजी उठैं तबतक वीरभद्र क्षणमात्रमें उस असुरके समीप आगये ॥ ४६ ॥ प्रतापी बली वीरभद्रने अपना त्रिशूल उठाकर बडे वेगसे उस दैत्यपति तारकके मारा ॥ ४७ ॥ उस त्रिशूलके लगनेसे महाबली तारक पृथिवीपर गिरपडा और वह महा तेजस्वी क्षणमात्रमें फिर उठ बैठा ॥ ४८ ॥ फिर सब असुरोंके सेनानायक उस वीरने महाक्रोध कर एक परमशक्ति वीरभद्रकी छातीमें मारी ॥ ४९ ॥ उसकी महाक्रोधसे मारीहुई शक्ति जब छातीमें लगी तब उसके आघातसे क्षणमात्रको वीरभद्र पृथिवीमें गिरगया ॥५०॥ तब देवता, गंधर्व, उरग, राक्षस, अपने अपने गणोंके सहित महा हाहाकार करके वारंवार

त्रिशूलं च समुद्यम्य वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ तारकं दितिजाधीशं जघान प्रसभं बली ॥ ४७ ॥ तत्त्रिशूलप्रहारेण स पपात क्षितौ तदा ॥ पतितोऽपि महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः ॥ ४८ ॥ कृत्वा क्रोधं महावीरस्सकलासुरनायकः ॥ जघान परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि ॥ ४९ ॥ वीरभद्रोऽपि पतितो भूतले मूर्छितः क्षणम् ॥ तच्छक्त्या परया क्रोधान्निहतो वक्षसि ध्रुवम् ॥ ५० ॥ सगणाश्चैव देवास्ते गंधर्वोरगराक्षसाः ॥ हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ निमेषमात्रात्सहसा महौजास्सवीरभद्रो द्विषतां निहंता ॥ त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानं प्रभया विरेजे ॥ ५२ ॥ स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं सूर्येन्दुबिम्बाग्निसमानमंडलम् ॥ महाप्रभं वीरभयावहं परं कालाख्यमत्यंतकरं महोज्वलम् ॥ ५३ ॥ यावत्त्रिशूलेन तदा हंतुकामो महाबलः ॥ वीरभद्रोऽसुरं यावत्कुमारणे निवारितः ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे तारकवाक्यशक्रविष्णुवीरभद्रयुद्धवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

चिल्लाने लगे ॥ ५१ ॥ फिर एक निमेषमात्रमें वह महा पराक्रमी शत्रुनाशक वीरभद्र विजलीकी समान प्रकाशमान त्रिशूल हाथमें लेकर अपनी कान्तिसे विराजमान हुआ ॥ ५२ ॥ उसकी कान्तिसे दिशायें प्रकाशमान होगईं सूर्य चन्द्रमा और अग्निकी समान मंडल प्रकाशमान होनेलगा, महाप्रभावाला वीरोंको भयदायक मानों दूसरा महाकाल महाउज्ज्वल था ॥ ५३ ॥ इस प्रकार महाबली वीरभद्र जब त्रिशूल लेकर असुरको मारने चला तबतक उसको कुमारने निवारण किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रुद्रसंहितान्तर्गतचतुर्थे कुमारखंडे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले इस प्रकार शत्रुवीरनाशी वीरभद्रको निवारण करके शिवजीके चरण कमलको स्मरण कर तारकके वधकी इच्छा करते हुए ॥ १ ॥ तब महाबली महातेजस्वी कार्त्तिकेयने बडा क्रोध किया, और क्रोध कर बडी सेना लेकर चला ॥ २ ॥ उस समय सब देवता अपने गणोंसहित जयजयकार करने लगे और देवता ऋषि श्रेष्ठ वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ तब उस समय तारक असुर और कुमारका बडा दुस्सह महाघोर सब भूतोंको भय उपजानेवाला घोर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥ वह दोनों वीर शक्ति हाथमें लेकर परस्पर युद्ध करने लगे, हे मुने ! उस समय सब देवता देखकर आश्चर्य करने लगे ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ निवार्य वीरभद्रं तं कुमारः परवीरहा ॥ समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ॥ १ ॥ जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महाबलः ॥ सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ॥ २ ॥ तदा जयजयेत्युक्तं सर्वैर्देवैर्गणैस्तथा ॥ संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ॥ ३ ॥ तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुस्सहः ॥ जातस्तदा महाघोरस्सर्वभूतभयंकरः ॥ ४ ॥ शक्तिहस्तौ च तौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥ सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ॥ ५ ॥ शक्तिनिर्भिन्नदेहौ तौ महासाधनसंयुतौ ॥ परस्परं वंचयंतौ सिंहाविव महबलौ ॥ ६ ॥ वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् ॥ पापं तं च समाश्रित्य शक्त्या शक्तिं विजघ्नतुः ॥ ७ ॥ एभिर्मंत्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ॥ अन्योन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ ॥ ८ ॥ महाबलं प्रकुर्वंतौ परस्परवधैषिणौ ॥ जघ्नतुश्शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि कंठे तथाचोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे ॥ वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ॥ १० ॥

महा युद्ध करतेहुए दोनोंका देह शक्तिसे भिन्न होगया और महाबली दो सिंहोंके समान परस्पर दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ६ ॥ वैतालिक और खेचर मतके युद्धशास्त्रका आश्रय करके तथा पापका आश्रय करके शक्तिसे परस्पर एक दूसरेको प्रहार करने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार मंत्रोंसे वे दोनों वीर परस्पर युद्ध करने लगे, और महाबलपराक्रमवाले एक दूसरेके साधक होकर अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ परस्पर एक दूसरेके वधकी इच्छासे महाबलपराक्रम करने लगे, और युद्धमें विशारद शक्तिधारासे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे ॥ ९ ॥ शिर, कंठ, ऊरु, जानु, कटितट, छाती, हृदय, पृष्ठमें परस्पर प्रहार

करने लगे ॥ १० ॥ उस समय महाबली एक दूसरेके मारनेकी इच्छासे युद्ध करते युद्धमें अनेक प्रकारकी चतुराई करते, वीरशब्दसे शब्द करने लगे ॥ ११ ॥ सब देवता और गंधर्व परस्पर इस संग्रामको देखने लगे और परस्पर कहने लगे इस युद्धमें किसकी जय होगी ॥१२॥ उस समय देवताओंको समझातेहुए आकाशवाणी हुई कि, यह कुमारही इस तारकासुरको मारैगा ॥ १३ ॥ हे देवताओ ! तुम शोच मत करो, सुखसे स्थित हो तुम्हारे निमित्त शिवजी पुत्ररूपसे स्थित हुए हैं ॥ १४ ॥ उस समय आकाशसे उच्चारण की हुई इस सुन्दर वाणीको सुनकर अपने गणोंके सहित कुमार प्रसन्न हुए और

तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ ॥ वलगन्तौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ॥ ११ ॥ अभवन्प्रेक्षकास्सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः ॥ ऊचुः परस्परं तत्र कोस्मिन्युद्धे विजेष्यते ॥ १२ ॥ तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सांत्वयन् ॥ असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ॥ १३ ॥ मा शोच्यतां सुरैः सर्वैं सुखेन स्थीयतामिति ॥ युष्मदर्थं शंकरो हि पुत्ररूपेण संस्थितः ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां सप्रमथैस्समावृतः ॥ निहंतुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा ॥ १५ ॥ शक्त्या तया महाबाहुराजघानस्तनांतरे ॥ कुमारः स्म रुषाविष्टस्तारकासुरमोजसा ॥ १६ ॥ तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुंगवः ॥ कुमारं चापि संक्रुद्धस्स्वशक्त्या संजघान सः ॥ १७ ॥ तेन शक्तिप्रहारेण शांकरिर्मूर्च्छितोऽभवत् ॥ मुहूर्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १८ ॥ यथा सिंहो मदोन्मत्तो हंतुकामस्तथासुरम् ॥ कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ॥ १९ ॥ एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः ॥ युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धविशारदौ ॥ २० ॥

सुखपूर्वक तारक असुरके मारनेकी इच्छा की ॥ १५ ॥ और उन महाबाहुने तारककी छातीमें शक्ति मारी, और बडे क्रोधसे पराक्रमके साथ उसे प्रहार किया ॥ १६ ॥ दैत्यश्रेष्ठ तारकने उस प्रहारका तिरस्कार करके महाक्रोधकर अपनी शक्तिको कुमारपर प्रहारकिया ॥ १७ ॥ उस शक्तिके प्रहारसे शिवजीके पुत्र मूर्छित होगये, और महर्षियोंसे स्तुतिको प्राप्त हो क्षणमात्रमें उठ बैठे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार मदोन्मत्त होकर सिंह चलता है इसी प्रकार प्रतापवान् कुमारने उस असुरको शक्तिसे प्रहार किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार वह कुमार और तारक असुर बडे वेगसे शक्तियुद्धमें चतुर घोर संग्राम करने लगे ॥ २० ॥

और अभ्यासके कारण परस्पर जीतनेकी इच्छासे घोर युद्ध करने लगे दोनोही पैदल युद्ध करनेवाले चित्ररूप बडे वेगवान् थे ॥ २१ ॥ अनेक प्रकारके
बलसे परस्पर एक दूसरेको प्रहार करने लगे, और अनेक मार्गोंसे चलते हुए बडे पराक्रमसे गर्जने लगे ॥ २२ ॥ देव गन्धर्व और किन्नर सब खडे होकर
देखने लगे, और परस्पर परं विस्मयको प्राप्त हुए और कुछ भी न बोले ॥ २३ ॥ उस समय पवनका चलना बन्द होगया, सूर्य कान्तिहीन होगये पर्वत
वनकाननके सहित सब पृथिवी चलायमान होगई ॥ २४ ॥ इसी अवसरमें हिमालयको आदि लेकर पर्वत स्नेहसे व्याकुल होकर कुमारके समीप आये

अभ्यासपरमावास्तामन्योन्यं विजिगीषया ॥ पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ॥ २१ ॥ विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनि
जघ्नतुः ॥ नानामार्गान्प्रकुर्वन्तौ गर्जंतौ सुपराक्रमौ ॥ २२ ॥ अवलोकपरास्सर्वे देवगंधर्वकिन्नराः ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन
तत्र ते ॥ २३ ॥ न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र हिमा
लयमुखा धराः ॥ स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः ॥२५॥ ततस्स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः॥पर्वतान्गिरिजापुत्रो
बभाषे परिबोधयन् ॥ २६ ॥ कुमार उवाच ॥ मा खिद्यतां महाभागा मा चिंतां कुर्वतां नगाः ॥ घातयाम्यद्य पापिष्ठं सर्वेषां वः प्रपश्य
ताम् ॥ २७ ॥ एवं समाश्वास्य तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान् ॥ प्रणम्य गिरिजां शंभुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम् ॥२८॥ तं तारकं हंतुमनाः
करशक्तिर्महाप्रभुः ॥ विरराज महावीरः कुमारश्शंभुबालकः ॥ २९ ॥ शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम् ॥ तेजसाढ्यश्शं
करस्य लोकक्लेशकरं च तम् ॥ ३० ॥ पपात सद्यस्सहसा विशीर्णांगोऽसुरः क्षितौ ॥ तारकाख्यो महावीरस्सर्वासुरगणाधिपः ॥ ३१ ॥

॥ २५ ॥ तब शंकरके पुत्रने उन सबको आयाहुआ देखकर उन सबको समझाते हुए कहा ॥ २६ ॥ कुमार बोले हे महाभागो ! तुम खेद और
चिन्ता मत करो तुम सबके देखतेही मैं इस पापिष्ठका वध करूंगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार पर्वत देवगण गिरिजा और शंकरको प्रणाम करके उन्होंने
प्रभावाली शक्तिको ग्रहण किया ॥ २८ ॥ वह महाप्रभु हाथमें शक्ति लेकर तारकके मारनेकी इच्छासे वह शिवजीके बालक महावीर बडी शोभाको प्राप्त
हुए ॥ २९ ॥ तब तेजसे भरे हुए कुमारने लोकके क्लेश करनेवाले उस तारकासुरपर प्रहार किया ॥ ३० ॥ उसी समय वह तारक नामक महावीर सब

महाबली गणों और असुरोंका अधिपति सब अंगोंसे विशीर्ण होकर तत्काल पृथिवीपर गिर पडा ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जब इस प्रकारसे वीर तारक असुरको कुमारने मारा, तब वह सबके देखते देखते नष्ट होगया ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे बलवान् तारकको मराहुआ देखकर वीरने गतप्राण जानकर फिर उस पर प्रहार न किया ॥ ३३ ॥ उस महाबली तारक दैत्यके नष्ट होजाने पर देवताओंने बहुतसे असुरोंका नाश कर दिया ॥ ३४ ॥ कोई तो उस युद्धमें डरकर हाथ जोडने लगे, कोई छिन्न भिन्न होकर सहस्रो मरगये ॥ ३५ ॥ कोई व्याकुल होकर कुमारकी शरणमें गये और हाथ जोडकर रक्षाकरो

कुमारेण हतस्सोतिवीरस्स खलु तारकः ॥ लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ॥ ३२ ॥ तथा तं पतितं दृष्ट्वा तारकं बलवत्तरम् ॥ न जघान पुनर्वीरस्स गत्वा व्यसुमाहवे ॥ ३३ ॥ हते तस्मिन्महादैत्ये तारकाख्ये महाबले ॥ क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ॥ ३४ ॥ केचिद्भीताः प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे ॥ छिन्नभिन्नांगकाः केचिन्मृता दैत्यास्सस्रहशः ॥३५॥ केचिज्जाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः ॥ वदन्तः पाहि पाहीति दैत्याः सांजलयस्तदा ॥३६॥ कियंतश्च हतास्तत्र कियंतश्च पलायिताः ॥ पलायमाना व्यथिता स्ताडिता निर्ज्जरैर्गणैः ॥३७॥ सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः ॥ पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागताः ॥३८॥ एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर ॥ न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा ॥ ३९ ॥ आसीन्निष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ ते देवाः सुखमापन्नास्सर्वे शक्रादयस्तदा ॥ ४० ॥ एवं विजयमापन्नं कुमारं निखिलास्सुराः ॥ बभूवुर्युगपद्धृष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः ॥ ४१ ॥

रक्षाकरो ऐसा कहने लगे ॥ ३६ ॥ कितनेहीं तो मारे गये, और कितनेही भागगये, और पलायमान होते हुए व्यथित हुए और देवताओंसे ताडित हुए ॥ ३७ ॥ और उनमें सैंकडों अपने जीवनकी रक्षाके निमित्त पातालमें प्रविष्ट हुए और भागतेहुए उन दैत्योंकी सम्पूर्ण आशायें भग्न होगईं ॥ ३८ ॥ हे मुनीश्वर ! इसप्रकार सब दैत्योंकी सेनायें नष्ट होगईं देवताओंके भयसे कोईभी वहां स्थिति करनेको समर्थ न हुए ॥ ३९ ॥ उस दुरात्माके मरनेसे सब निष्कंटकता होगई और सब इन्द्रादिकदेवता बडे सुखको प्राप्तहुए ॥ ४० ॥ इसप्रकारसे विजयको प्राप्त होकर सब देवता एक साथही प्रसन्न होगये, और

त्रिलोकीमें महा आनंद छागया ॥ ४१ ॥ उस समय शिवजीभी अपने कुमारकी विजयको प्राप्त होकर अपने गण और प्रियाके सहित प्रसन्न होकर वहां गये ॥ ४२ ॥ सूर्यकी समान कांतिवाले कुमारको अपनी गोदीमें लेकर स्नेहसे व्याप्त होकर पार्वती लाड करनेलगी ॥ ४३ ॥ उसी समय अपने पुत्रोंके सहित हिमालयभी वहां आये और अपने बंधुओंके सहित शंकर पार्वती कुमारको प्रशंसासे प्रसन्न करने लगे ॥ ४४ ॥ उस समय सब देवता गण मुनि, सिद्ध, चारण, शिव, शिवा और कुमारकी स्तुतिकर उनको प्रसन्न करने लगे ॥ ४५ ॥ उपदेवता फूलोंकी बडी वर्षा करने लगे, गंधर्वपति गाने लगे और

तदा शिवोऽपि तं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च ॥ तत्राजगाम स मुदा सगणः प्रियया सह ॥ ४२ ॥ स्वात्मजं स्वांकमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् ॥ लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला ॥ ४३ ॥ हिमालयस्तदागत्य स्वपुत्रैः परिवारितः ॥ सबंधुस्सानुगश्शंभुं तुष्टाव च शिवां गुहम् ॥ ४४ ॥ ततो देवगणास्सर्वे मुनयस्सिद्धचारणाः ॥ तुष्टुवुश्शांकरिं शंभुं गिरिजां तुषितां भृशम् ॥ ४५ ॥ पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा ॥ जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः ॥ जयशब्दो नमः शब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ ततो मयाच्युतश्चापि संतुष्टोभूद्विशेषतः ॥ शिवं शिवां कुमारं च संतुष्टाव समादरात् ॥ ४८ ॥ कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखास्सुराः ॥ चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ॥ ४९ ॥ गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ तदोत्सवो महानासीत्कीर्तनं च विशेषतः ॥ ५० ॥

अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ४६ ॥ उस समय विशेषरूपसे बाजे बजाने लगे, जय शब्द और नमः शब्द वार वार ऊंचे स्वरसे होने लगा ॥ ४७ ॥ तब मैं और अच्युत भगवान् भी विशेष रूपसे सन्तुष्ट हुए, और आदरसे शिव शिवा और कुमारकी बडी बडाई की ॥४८॥ तब हरि ब्रह्म इन्द्रादिक देवता कुमारको आगे करके मुनियोंसहित उनकी आरती करने लगे ॥४९॥ गीत बाजे और वेदध्वनिसे तथा कीर्तन करनेसे वह उत्सव महान् होगया ॥ ५० ॥

हे मुनि ! गीत बाजे और अञ्जली बांधनेसे तथा सब देवताओंसे जगत्पति शंकर स्तुतिको प्राप्त हो बडे प्रसन्न हुए ॥५१॥ तब भगवान् रुद्र सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो जगदम्बा और अपने गणोंके सहित कैलास पर्वतको गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रु० च० कु० तारकासुरवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! उसी समय क्रौंचनामक पर्वत बाण नामक दैत्यसे पीडित हो कुमारकी शरणमें आया ॥ १ ॥ वह बाण असुर कुमारका तेज न सहसकनेके कारण युद्धसे भागगया था उसमें, दश सहस्र कोटी बल था यह क्रौंचको बडा कष्ट देता था ॥ २ ॥ क्रौंच परम

गीतवाद्यैस्सुप्रसन्नैस्तथा साञ्जलिभिर्मुने ॥ स्तूयमानो जगन्नाथस्सर्वैर्देवैर्गणैरभूत् ॥ ५१ ॥ ततस्स भगवान्रुद्रो भवान्या जगदंबया ॥ सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वगिरिं स्वगणैर्वृतः ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे तारकासुरवधदेवोत्सववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र क्रौंचनामाचलो मुने ॥ आजगाम कुमारस्य शरणं बाणपीडित ॥ १ ॥ पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम् ॥ तुतोदातीव स कौञ्चं कोट्यायुतबलान्वितः[1] ॥ २ ॥ प्रणिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम् ॥ प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात् ॥ ३ ॥ ॥ क्रौंच उवाच ॥ कुमार स्कंद देवेश तारकासुरनाशक ॥ पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडितम् ॥ ४ ॥ संगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पलायितः ॥ न्यपीडयच्च मागत्य हा नाथ करुणाकर ॥ ५ ॥ तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः ॥ पलायमानो देवेश शरजन्मन्दयां कुरु ॥ ६ ॥

भक्तिसे कुमारके दोनों चरणोंको पकडकर प्रेमभरी वाणीसे बडे आदरसे बोला ॥३॥ क्रौंच बोला हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारक असुरके नाशक ! मैं बाण दैत्यसे बडा पीडित हूं मेरी रक्षाकरो ॥ ४ ॥ हे महासेन ! वह आपके युद्धसे व्याकुल होकर भागगया है हे नाथ ! हे करुणाकर ! अब वह आकर मुझे पीडित करता है ॥ ५ ॥ उस बाण असुरसे पीडित होकर मैं आपकी शरण आया हूं हे शरजन्मा ! हे देवेश ! उस भागनेवालेसे मेरी रक्षा

---

[1] दीर्घ आर्षः ।

करो ॥ ६ ॥ हे विभो ! उस बाण नामक दैत्यको मारकर मुझे सुखी करो, आप विशेषकर दैत्योंके मारनेवाले देवताओंके रक्षक अपने तेजसे प्रकाशितहो
॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे क्रौंचने कुमारकी स्तुति की तब वह भक्तवत्सल प्रसन्न हुए, और शक्तिको हाथमें धारणकर मनसे शिवजीको स्मरण
किया ॥ ८ ॥ और बाणके उद्देश्यसे शंकरके आत्मजने उस शक्तिको छोडा, उस समय महाशब्द होउठा, और दशों दिशा प्रज्वलित होउठीं ॥ ९ ॥
क्षणमात्रमें उस असुरको उसके अनुगामियों सहित वह शक्ति भस्म करके शीघ्रही कुमारके समीप लौट आई ॥ १० ॥ तब प्रभु कुमारने पर्वतश्रेष्ठ क्रौंचसे

दैत्यं तं नाशय विभो बाणाह्वं मां सुखीकुरु ॥ दैत्यघ्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरस्स्वराट् ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति क्रौंचस्तुत
स्स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः ॥ गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवो धिया ॥ ८ ॥ चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शंकरात्मजः ॥
महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ॥ ९ ॥ सबलं भस्मसात्कृत्वासुरं तं क्षण मात्रतः ॥ गुहोपकंठं शक्तिस्सा जगाम परमा मुने
॥ १० ॥ ततः कुमारः प्रोवाच क्रौंचं गिरिवरं प्रभुः ॥ निर्भयस्स्वगृहं गच्छ नष्टस्स सबलोऽसुरः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदि
तो गिरिराट् तदा ॥ स्तुत्वा गुहं तदारातिं स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ १२ ॥ ततः स्कन्दो महेशस्य मुदा स्थापितवान्मुने ॥ त्रीणि लिंगानि
तत्रैव पापघ्नानि विधानतः ॥ १३ ॥ प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वमादरात् ॥ कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ॥ १४ ॥ पुनस्सर्वे
श्वरस्तत्र जयस्तंभसमीपतः ॥ स्तंभेश्वराभिधं लिंगं गुहः स्थापितवान्मुदा ॥ १५ ॥ ततस्सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा ॥ लिंगं
स्थापितवंतस्ते देवदेवस्य शूलिनः ॥ १६ ॥

कहा अब तुम निर्भय अपने घरको जाओ, वह दैत्य नष्ट होगया और उसके अनुचरभी मारे गये ॥ ११ ॥ स्वामीके वचन सुनकर क्रौंच बडा प्रसन्न हुआ,
और कुमारकी स्तुतिकर अपने धामको गया ॥ १२ ॥ तब वहां प्रसन्नहोकर कुमारने पापोंके दूर करनेवाले शिवजीके तीन लिंगोंको स्थापित किया ॥ १३ ॥
इन तीनोंके नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए यह तीनोही सब सिद्धि देनेवाले हैं ॥ १४ ॥ और उस जयस्तंभके समीप सर्वेश्वर लिंग स्थापन
किया और एक लिंग स्तंभेश्वर नामसे उसके समीपमें स्थापन किया ॥ १५ ॥ फिर सब विष्णुआदि देवताओंने देवदेव शंकरका लिंग वहां स्थापन किया ॥ १६ ॥

वहां सम्पूर्ण लिंगोंकी अद्भुत महिमा हुई जो सब कामना देनेवाले तथा भक्तिकरनेवालोंको मुक्ति देनेवाले थे ॥ १७ ॥ तब विष्णु आदि सब देवताओंने बडे प्रेमसे गुरुको आगे करके पर्वतश्रेष्ठ कैलासमें जानेकी इच्छा की ॥ १८ ॥ उसी समय कुमुद नामक शेषजीका पुत्र दैत्यसे पीडित हुआ कुमारकी शरणमें आया ॥ १९ ॥ इस युद्धमें जो प्रलम्बासुर नामक दैत्य पलायमान होगया था वह तारकासुरका अनुगामी वहां जाकर उपद्रव करने लगा ॥ २० ॥ वह शेषजीका पुत्र कुमुद महामति था, गिरीजापुत्र कुमारकी शरणमें आकर उनकी स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ कुमुद बोला हे देवदेव महादेवके पुत्र !

सर्वेषां शिवलिंगानां महिमाभूत्तदाद्भुतः ॥ सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् ॥ १७ ॥ ततस्सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः ॥ ऐच्छन्गिरिवरं गंतुं पुरस्कृत्य गुहं मुदा ॥ १८ ॥ तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः ॥ आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः ॥ १९ ॥ प्रलंबाख्योऽसुरो यो हि रणादस्मात्पलायितः ॥ स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः ॥ २० ॥ सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान् ॥ कुमारशरणं प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् ॥ २१ ॥ ॥ कुमुद उवाच ॥ देवदेव महादेववरतात महाप्रभो ॥ पीडितोऽहं प्रलंबेन त्वाहं शरणमागतः ॥ २२ ॥ पाहि मां शरणापन्नं प्रलंबासुरपीडितम् ॥ कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो ॥ २३ ॥ त्वं दीनबंधुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः ॥ खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ॥ २४ ॥ कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि ॥ स्वाञ्च शक्तिं स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांबुजौ ॥ २५ ॥

हे महाप्रभो ! मैं प्रलम्ब असुरसे पीडित होकर आपकी शरणमें आया हूं ॥ २२ ॥ हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारकके शत्रु ! हे महाप्रभो ! प्रलम्बासुरसे पीडित मेरी आप रक्षाकरो ॥ २३ ॥ आप दीनबंधु करुणासागर भक्तवत्सल हैं आप दुष्टोंके निग्रहकर्ता शरणागतवत्सल सत्पुरुषोंके गतिहैं ॥ ॥ २४ ॥ जब कुमुदने इसप्रकार स्तुतिकर दैत्यके वधके निमित्त कहा तब महाप्रभुने शंकरके चरण कमलोंको स्मरणकर शक्तिको ग्रहण किया ॥ २५ ॥

---

१ वादान्तशान्तेतीडभावाः ।

और गिरिजापुत्रने उस प्रलम्बके वध उद्देश्यसे उस शक्तिको छोडा, उस समय महाशब्द होकर आकाश और दिशायें प्रज्वलितहो उठीं ॥ २६ ॥ १०००० बल बली उस असुरको वह शक्ति अनुचरोंसहित भस्म करके अप्रतिहत गतिसे कुमारके समीप आगई, यह उसका बडा विचित्र कर्म हुआ ॥ ॥ २७ ॥ तब कुमारने शेषजीके पुत्र कुमुदसे कहा वह असुर अपने अनुचरों सहित मारागया अब तुम निर्भय अपने घरको जाओ ॥ २८ ॥ तब शेषजीका पुत्र कुमारके यह वचन सुन निर्भय हो कुमारकी स्तुतिकर प्रणामकर पातालको गया ॥ २९ ॥ हे मुनिश्वर ! इस प्रकार यह आपसे कुमारकी

चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलंबं गिरिजासुतः ॥ महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ॥ २६ ॥ तं सायुतबलं शक्तिर्द्रुतं कृत्वा च भस्म सात् ॥ गुहोपकंठं सहसाजगामाक्लिष्टकारिणी ॥ २७ ॥ ततः कुमारः प्रोवाच कुमुदं नागबालकम् ॥ निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टस्स सबलोऽसुरः ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुदोऽहिपतेस्सुतः ॥ स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ ॥ २९ ॥ एवं कुमार विजयं वर्णितं ते मुनीश्वर ॥ चरितं तारकवधं परमाश्चर्यकारकम् ॥ ३० ॥ सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥ धन्यं यशस्यमा युष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ३१ ॥ ये कीर्तयंति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः ॥ कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयांति ते ॥ ३२ ॥ श्रोष्यंति ये च तत्कीर्तिं भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः ॥ मुक्तिं प्राप्स्यन्ति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ॥३३॥ इति श्रीशिवमपुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे बाणप्रलंबवधकुमारविजयवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ निहतं तारकं दृष्ट्वा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुश्शांकरिं भक्त्या सर्वेऽन्ये मुदिताननाः ॥ १ ॥

विजय वर्णन की, यह तारकवधका चरित्र परम आश्चर्यका करनेवाला है ॥३०॥ यह सब पापका हरनेवाला परम दिव्य मनुष्योंको सब काम देनेवाला है, यह परम धन्य यश आयु और भुक्ति मुक्तिका देनेवाला है ॥३१॥ जो मनुष्य इसका कीर्तन करैंगे, उनको बडे भाग्यकी प्राप्ति होगी, इस दिव्य कुमार चरित्रके सुननेसे शिवलोककी प्राप्ति होगी ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा भक्तिसे उनकी कीर्ति सुनैंगे, वह यहां परम सुख भोगकर अन्तमें दिव्य मुक्तिको प्राप्त होंगे ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रु० च० कु० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले तारक दैत्यको मराहुआ देखकर विष्णु

देवा उचुः ॥ नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगल ॥ विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥ २ ॥ नमोस्तु ते दानववर्यहंत्रे बाणासुरप्राणहराय देव ॥ प्रलंबनाशाय पवित्ररूपिणे नमो नमश्शंकरतात तुभ्यम् ॥ ३ ॥ त्वमेव कर्ता जगतां च भर्त्ता त्वमेव हर्ता शुचिज प्रसीद ॥ प्रपञ्चभूतस्तव लोकबिंबः प्रसीद शम्भ्वात्मज दीनबंधो ॥४॥ देवरक्षाकर स्वामिन्रक्ष नस्सर्वदा प्रभो ॥ देवप्राणावनकर प्रसीद करुणाकर ॥ ५ ॥ हत्वा ते तारकं दैत्यं परिवारयुतं विभो ॥ मोचितास्सकला देवा विपद्भ्यः परमेश्वर ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं स्तुतः कुमारोऽसौ देवैर्विष्णुमुखैः प्रभुः ॥ वरान्ददावभिनवान्सर्वेभ्यः क्रमशो मुने ॥ ७ ॥ शैलान्निरीक्ष्य स्तुवतस्ततस्स गिरिशात्मजः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रोवाच प्रददद्वरान् ॥ ८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ यूयं सर्वे पवर्ता हि पूजनीयास्तपस्विभिः ॥ कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैव सेव्यमाना भविष्यथ ॥ ९ ॥ शंभोर्विशिष्टरूपाणि लिङ्गरूपाणि चैव हि ॥ भविष्यथ न संदेहः पर्वता वचनान्मम ॥ १० ॥

आदि देवता सब प्रसन्न होकर कुमारकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे कल्याणरूप ! आपको नमस्कार है आप विश्वके मंगलरूप हैं हे विश्वके बंधु ! हे विश्वभावन आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ हे बडे बडे दानवोंके मारनेवाले बाणासुर प्रलम्बासुरके नाश करनेवाले पवित्ररूप शंकरसुवन आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ आपही कर्ता और जगत्के भर्ताहो तुम्ही हर्ता हो हे अग्निसे प्रगट होनेवाले ! आप प्रसन्न हूजिये, यह सब लोकका प्रपंच आपका बिम्बस्वरूप है, हे दीनबंधो ! हे शंभुके पुत्र ! आपको प्रणाम है ॥४॥ हे देवरक्षाकरनेवाले स्वामिन् ! हे प्रभो ! हमारी सदा रक्षाकरो हे देवताओंके प्राणोंकी रक्षाकरनेवाले, हे करुणामय, आप प्रसन्न हूजिये ॥५॥ हे विभो ! तारक दैत्यको मारकर हमारी रक्षाकरो हे परमेश्वर ! आपने विपत्तिसे सब देवताओंकी रक्षा की है ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे विष्णु आदि देवताओंने कुमारकी स्तुति की हे मुने ! तब कुमारने सबके निमित्त नये नये वर दिये ॥ ७ ॥ पर्वतराजकी स्तुति सुनकर गिरिजासुतने प्रसन्न हो वर देते हुए इस प्रकारसे कहा ॥ ८ ॥ स्कन्द बोले तुम सब पर्वत तपस्वियोंसे पूजित हो तुम कर्मकाण्डके और ज्ञानियोंके द्वारा सदा सेवित रहोगे ॥ ९ ॥ शिवजीके विशिष्ट और लिंगरूप पर्वत होंगे इस मेरे वचनमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥

जो यह पर्वतोत्तम हिमालय मेरे नानाहैं यह महाभाग तपस्वियोंके फल देनेवाले होंगे ॥११॥ देवता बोले असुरपति तारकको आपने मारा, और हिमालयको वर दिया है, और हम तथा चराचर प्राणियोंको तुमने सुखी किया है ॥ १२ ॥ अब इस समय शिवा शम्भु अपने माता पिताके साथ आप कैलासको चलें ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार विष्णुआदि सब देवता कहकर महोत्सव करने लगे और कुमार कैलासको चलने लगे ॥ १४ ॥ जिस समय विभु कुमार कैलासको चलने लगे उस समय महा मंगलदायक जय शब्द होने लगा ॥ १५ ॥ कुमारने परम ऋद्धिवाले विमानपर आरोहणकिया, जो सब प्रकारसे

योऽयं मातामहो मेऽद्य हिमवान्पर्वतोत्तमः ॥ तपस्विनां महाभागः फलदो हि भविष्यति ॥ ११ ॥ देवा ऊचुः ॥ एवं दत्त्वा वरान्हत्वा तारकं चासुराधिपम् ॥ त्वया कृताश्च सुखिनो वयं सर्वे चराचराः ॥ १२ ॥ इदानीं खलु सुप्रीत्या कैलासं गिरिशालयम् ॥ जननी जनकौ द्रष्टुं शिवाशंभू त्वमर्हसि ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा निखिला देवा विष्णवाद्याः प्राप्तशासनाः ॥ कृत्वा महोत्सवं भूरि सकुमारा ययुर्गिरिम् ॥ १४ ॥ कुमारे गच्छति विभौ कैलासं शंकरालयम् ॥ महामंगलमुत्तस्थौ जयशब्दो बभूव ह ॥ १५ ॥ आरुरोह कुमारोऽसौ विमानं परमर्द्धिमत् ॥ सर्वतोलंकृतं रम्यं सर्वोपरि विराजितम् ॥ १६ ॥ अहं विष्णुश्च समुदौ तदा चामरधारिणौ ॥ गुह मूर्ध्नि महाप्रीत्या मुनेऽभूव ह्यतंद्रितौ ॥ १७ ॥ इन्द्राद्या अमरास्सर्वे कुर्वंतो गुहसेवनम् ॥ यथोचितं चतुर्दिक्षु जग्मुश्च प्रमुदास्तदा ॥ १८ ॥ शंभोर्जयं प्रभाषंतः प्रापुस्ते शंभुपर्वतम् ॥ सानंदा विविशुस्तत्रोच्चरितो मंगलध्वनिः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा शिवं शिवां चैव सर्वे विष्णवादयो द्रुतम् ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥ २० ॥

अलंकृत परम मनोहर तथा सबके ऊपर विराजमान था ॥ १६ ॥ मैंने और विष्णुने प्रसन्न हो कुमारपर चमर धारण किया, हे मुने ! इस प्रकार आलस रहित हो गुहके मस्तकपर चमर धारण किया गया ॥१७॥ इन्द्रादिक सब देवता भी गुहका सेवन करने लगे और यथा योग्य सब देवता उनके चारोंओर गमन करने लगे ॥ १८ ॥ शिवजीकी जय उच्चारण करते हुए वे शिवजीके पर्वतमें पहुँचे और आनन्दसे मंगलध्वनि उच्चारण करते हुए सबने उसमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ सब विष्णुआदि शिवा शिवका दर्शन करके बडी शीघ्रतासे भक्तिपूर्वक शंकरको प्रणाम कर हाथजोड खडे होगये ॥ २० ॥

कुमार भी बडी नम्रतासे विमानसे उतरकर सिंहासनपर बैठेहुए शिव पार्वतीको प्रेमसे प्रणाम करते हुए ॥ २१ ॥ हे नारद ! तब उस प्राणप्रिय अपने कुमार
पुत्रको देखकर वह दोनों देव बहुतही प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ महा प्रभु शंकरने उठाकर पुत्रको गोदीमें बैठाया और स्नेहसे शिर सूँघकर हाथसे स्पर्श किया
॥ २३ ॥ शिवजीने महा आनंदमें भरकर पुत्रका मुख चुम्बन किया और उस तारकके शत्रु महाप्रभु कुमारपर बडा स्नेह किया ॥ २४ ॥ पार्वतीने भी
उठाकर पुत्रको गोदीमें लिया, और शिरके ऊपर हाथ रखकर मुख चूम लिया ॥ २५ ॥ हे नारदजी ! उस समय उन दोनोंका प्रेम बहुत बढगया हे तात !

कुमारोऽपि विनीतात्मा विमानादवतीर्य च ॥ प्रणनाम मुदा शंभुं शिवां सिंहासनस्थिताम् ॥ २१ ॥ अथ दृष्ट्वा कुमारं तं तनयं
प्राणवल्लभम् ॥ तौ दंपती शिवौ देवौ मुमुदातेऽति नारद ॥ २२ ॥ महाप्रभुस्समुत्थाप्य तमुत्संगे न्यवेशयत् ॥ मूर्ध्नि जघ्रौ मुदा स्नेहात्तं
पस्पर्श करेण ह ॥ २३ ॥ महानंदभरः शंभुश्चकार मुखचुंबनम् ॥ कुमारस्य महास्नेहात् तारकारेर्महाप्रभोः ॥ २४ ॥ शिवापि तं समु
त्थाप्य स्वोत्संगे संन्यवेशयत् ॥ कृत्वा मूर्ध्नि महास्नेहात् तन्मुखाब्जं चुचुम्ब हि ॥ २५ ॥ तयोस्तदा महामोदो ववृधेतीव नारद ॥ दंप
त्योः शिवयोस्तात भवाचारं प्रकुर्वतोः ॥ २६ ॥ तदोत्सवो महानासीन्नानाविधिः शिवालये ॥ जयशब्दो नमश्शब्दो बभूवातीव सर्वतः
॥ २७ ॥ ततस्सुरगणास्सर्वे विष्णवाद्या मुनयस्तथा ॥ सुप्रणम्य मुदा शंभुं तुष्टुवुस्सशिवं मुने ॥ २८ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव
भक्तानामभयप्रद ॥ नमो नमस्ते बहुशः कृपाकर महेश्वर ॥ २९ ॥ अद्भुता ते महादेव महालीला सुखप्रदा ॥ सर्वेषां शंकर सतां
दीनबंधो महाप्रभो ॥ ३० ॥ एवं मूढधियश्चाज्ञाः पूजायां ते सनातनम् ॥ आवाहनं न जानीमो गतिं नैव प्रभोऽद्भुताम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकारसे दोनों स्त्री पुरुषोंने लौकिक आचार किया ॥ २६ ॥ शिवमन्दिरमें उस समय अनेक प्रकारका उत्सव होने लगा सब ओरसे जयकार और
नमस्कारका शब्द होने लगा ॥ २७ ॥ तब विष्णुआदि सब देवता और मुनि प्रसन्नतासे [illegible] स्तुतिसे प्रसन्न करने लगे ॥ २८ ॥ देवता
बोले हे देवदेव ! महादेव भक्तोंको अभय देनेवाले आपको बहुत प्रकारसे नमस्कारहै [illegible] २९ ॥ हे महादेव ! महासुखको देनेवाली
आपकी महालीला सुखदायक है हे दीनबन्धु ! हे महाप्रभो ! वह सबको [illegible] हम मूढबुद्धि हैं आपकी अद्भुत सनातन

पूजाको नहीं जानते हमारी गति नहीं है इस कारण हम आपका आवाहन नह धारण करनेवाले सबके आधार गुणोंके आत्मा देवताओंके अधिपति शंकरको वारंवार प्रणाम है ॥ ३२ ॥ वृषध्वज महेश गणा त्रिलोकीके अधिपतिके निमित्त नमस्कार हैं ॥ ३३ ॥ हे नाथ ! अन्तमें आप सबका संहार करते हो आपको वारंवार प्रणाम है ! आप इस जगत्के भरण पोषण करने और रचनेवाले हो हे भगवन् ! आप त्रिगुणोंके अधिपति हो ॥ ३४ ॥ तुम संगरहित परेश शिव परमात्मा हो निष्प्रपंच शुद्ध परम अविनाशी आपको प्रणाम है

गंगासलिलधाराय ह्याधाराय गुणात्मने ॥ नमस्ते त्रिदशेशाय शंकराय नमोनमः ॥ ३२ ॥ वृषांकाय महेशाय गणानां पतये नमः ॥ सर्वेश्वराय देवाय त्रिलोकपतये नमः ॥ ३३ ॥ संहर्त्रे जगतां नाथ सर्वेषां ते नमो नमः ॥ भर्त्रे कर्त्रे च देवेश त्रिगुणेशाय शाश्वते ॥ ३४ ॥ विसंगाय परेशाय शिवाय परमात्मने ॥ निष्प्रपंचाय शुद्धाय परमायाव्ययाय च ॥ ३५ ॥ दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय ते नमः ॥ वेदमंत्रप्रधानाय शतजिह्वाय ते नमः ॥ ३६ ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च स्थावरं जंगमं च यत् ॥ तव देहात्समुत्पन्नं सर्वथा परमेश्वर ॥ ३७ ॥ पाहि नस्सर्वदा स्वामिन्प्रसीद भगवन्प्रभो ॥ वयं ते शरणापन्नाः सर्वथा परमेश्वर ॥ ३८ ॥ शितिकण्ठाय रुद्राय स्वाहाकाराय ते नमः ॥ अरूपाय सरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ ३९ ॥ शिवाय नीलकंठाय चिताभस्मांगधारिणे ॥ नित्यं नील शिखंडाय श्रीकण्ठाय नमोनमः ॥ ४० ॥ सर्वप्रणतदेहाय संयमप्रणताय च ॥ महादेवाय शर्वाय सर्वार्चितपदाय च ॥ ४१ ॥

॥ ३५ ॥ दण्डधारी कालरूप हाथमें पाश धारण करनेवाले वेदमंत्रोंमें प्रधान शतजिह्व आपको प्रणाम है ॥ ३६ ॥ भूत भविष्य वर्तमान स्थावर जंगम जो कुछ यह जगत् है हे परमेश्वर ! यह सर्वथा आपकी देहसे उत्पन्न है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! हमारे ऊपर प्रसन्न होकर हमारी सदा रक्षा करो हे परमेश्वर ! सर्वथा हम आपकी शरणमें प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ शितिकंठ रुद्र स्वाहाकाररूप आपको प्रणाम है, अरूप स्वरूप विश्वरूप आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ शिव नीलकण्ठ अंगमें चिताभस्म धारण करनेवाले नित्यही नील शिखण्ड श्रीकंठ आपको प्रणाम है ॥ ४० ॥ सब आपको प्रणाम

करते, आप संयमसे दयालु होते, महादेव सर्व आपहो, आपके चरणोंको सब प्रणाम करते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ आप सब देवताओंमें ब्रह्मा, रुद्रोंमें नीललोहित, सब भूतोंकी आत्मा हैं, सांख्यवाले आपहीको पुरुष कहते हैं ॥ ४२ ॥ पर्वतोंमें सुमेरु नक्षत्रोंमें चन्द्रमा आपही हो ऋषियोमें वशिष्ठ देवताओंमें इन्द्र तुमहो ॥ ४३ ॥ हे महेश्वर ! वेदोंमें ॐकार आप हो, संसारके रक्षक लोकके हितके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करते हो ॥ ४४ ॥ हे महाभाग महेश्वर ! हे सब प्राणियोंके शुभाशुभ देखनेवाले ! हे देवेश ! हमारी रक्षा करो, हम आपके वचनमें स्थित हैं ॥ ४५ ॥ हे देवदेव ! आपके

त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ॥ आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यसे ॥ ४२ ॥ पर्वतानां सुमेरुस्त्वं नक्षत्राणां च चन्द्रमाः ॥ ऋषीणां च वशिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा ॥ ४३ ॥ ॐकारस्सर्ववेदानां त्राता भव महेश्वर ॥ त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिंचसि ॥ ४४ ॥ महेश्वर महाभाग शुभाशुभनिरीक्षक ॥ आप्यायास्मान्हि देवेश कर्तॄन्वै वचनं तव ॥ ४५ ॥ रूपकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु ते ॥ अंतं गंतुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोस्तु ते ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति स्तुत्वाखिला देवा विष्णवाद्याः प्रमुखस्थिताः ॥ मुहुर्मुहुस्सुप्रणम्य स्कंदं कृत्वा पुरस्सरम् ॥ ४७ ॥ देवस्तुतिं समाकर्ण्य शिवस्सर्वेश्वरस्स्वराट् ॥ सुप्रसन्नो बभूवाथ विजहास दयापरः ॥ ४८ ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा विष्णवादीन्सुरसत्तमान् ॥ शंकरः परमेशानो दीनबंधुस्सतां गतिः ॥ ४९ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवा वाक्यं मे शृणुतादरात् ॥ सर्वथाहं सतां त्राता देवानां वः कृपानिधिः ॥ ५० ॥

करोडों और सहस्रों रूप हैं हम आपके अन्त पानेको समर्थ नहीं हैं, वारंवार आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे विष्णुआदि सब देवताओंने स्तुति की और वारंवार प्रणाम कर स्कन्दको आगे कर स्थित हुए ॥ ४७ ॥ देवताओंकी स्तुतिको सुनकर वह सर्वेश्वर स्वराट् प्रसन्न होकर हँसने लगे ॥ ४८ ॥ और प्रसन्न होकर विष्णुआदि देवताओंसे वह दीनबन्धु परमेशान सत्पुरुषोंकी गति शंकर कहने लगे ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले हे हरे !

---

१ शीलार्थकतृन्नंत्तत्वान्न लोकेति निषेधात्कर्माणि न षष्ठी ।

हे विधे ! हे देवताओ ! आदरसे मेरे वचन सुनो, सब प्रकारसे मैं सत्पुरुषोंका रक्षक, देवताओंका रक्षक, कृपाका सागर हूं ॥ ५० ॥ मैं दुष्टोंका मारनेवाला
त्रिलोकीका अधिपति भक्तवत्सल शंकरहूं मैं सबका कर्ता हर्ता भर्ता और विकाररहित हूं ॥ ५१ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! जब जब तुमको दुःख हो तब तब सुख
प्राप्तिके निमित्त मेरा भजन करो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे सब देवता और मुनीश्वर भगवान्के वचन सुन पार्वतीसहित शिवजी और कुमारको
प्रणाम कर आनंदको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ वे सब शिवा शिव और कुमारका यश कथनकरते हुए परम आनंदको प्राप्त हो अपने २ स्थानोंको गये ॥५४॥

दुष्टहंता त्रिलोकेशश्शंकरो भक्तवत्सलः ॥ कर्ता भर्ता च हर्ता च सर्वेषां निर्विकारवान् ॥ ५१ ॥ यदा यदा भवेद्दुःखं युष्माकं देवस
त्तमाः ॥ तदा तदा मां यूयं वै भजंतु सुखहेतवे ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याज्ञप्तस्तदा देवा विष्णवाद्यास्समुनीश्वराः ॥ शिवं प्रणम्य
सशिवं कुमारं च मुदान्विताः ॥५३ ॥ कथयंतो यशो रम्यं शिवयोश्शांकरेश्च तत् ॥ आनन्दं परमं प्राप्य स्वधामानि ययुर्मुने ॥५४॥
शिवोपि शिवया सार्द्धं सगणः परमेश्वरः ॥ कुमारेण युतः प्रीत्योवास तस्मिन् गिरौ मुदा ॥ ५५ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं कौमारं चरितं
मुने ॥ शैवं च सुखदं दिव्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे
स्वामिकार्तिकचरितगर्भितशिवाशिवचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तारकारेरिति श्रुत्वा वृत्तमद्भुतमुत्त
मम् ॥ नारदस्सुप्रसन्नोथ पप्रच्छ प्रीतितो विधिम् ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव प्रजानाथ शिवज्ञाननिधे मया ॥ श्रुतं कार्ति
कसद्वृत्तममृतादपि चोत्तमम् ॥ २ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं वृत्तमुत्तमम् ॥ तज्जन्म चरितं दिव्यं सर्वमंगलमंगलम् ॥ ३ ॥

हे मुने ! अपने गण कुमार और पार्वतीके सहित शिवजी भी प्रसन्न होकर उस पर्वतमें निवास करने लगे ॥ ५५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार तुमसे सब कुमारके
चरित्र कहे यह शिवजीके भक्तोंको परम प्यारे हैं अब तुम और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ॥५६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रु० च० कु०
शिवाशिवचरित्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कुमारके यह अद्भुत चरित्र सुनकर नारदजी प्रसन्न होकर परम प्रीति से फिर पूछने लगे
॥ १ ॥ नारदजी बोले हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! हे शिव ! ज्ञानके सागर ! मैंने अमृतसे भी श्रेष्ठ कार्तिकेयका चरित्र श्रवण किया ॥ २ ॥ अब मैं गणे

शजीका चरित्र सुनना चाहताहूं, उनका जन्मचरित्र बडा दिव्य और मंगलोंका भी मंगल करने वाला है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले हे महामुने ! इस प्रकारसे
नारदजीके वचन सुन ब्रह्माजी प्रसन्न होकर शिवजीको स्मरण करते हुए बोले ॥४॥ ब्रह्माजी बोले कल्पभेदसे गणेशजीका जन्म अनेक भांति है, एकवार
शनिकी दृष्टिसे उनका शिरछेदन हुआ और हाथीका शिर जोडा गया ॥ ५ ॥ इस समय हम श्वेतकल्पमें हुई गणेशकी उत्पत्ति कहते हैं, जिसमें कृपालु
शंकरनेही उनका शिरछेदन किया था ॥ ६ ॥ हे मुने ! सृष्टिकर्ता शंकरके विषयमें यह संदेह न करना, वह सबके अधिपति शंकर सगुण निर्गुण हैं ॥

सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य महामुने ॥ प्रसन्नमानसो ब्रह्मा प्रत्युवाच शिवं स्मरन् ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कल्पभे
दाद्गणेशस्य जनिः प्रोक्ता विधेः परात् ॥ शनिदृष्टं शिरश्छिन्नं संचितं गाजमाननम् ॥ ५ ॥ इदानीं श्वेतकल्पोक्ता गणेशोत्पत्तिरुच्यते ॥
यत्र च्छिन्नं शिरस्तस्य शिवेन च कृपालुना ॥ ६ ॥ संदेहो नात्र कर्तव्यः शंकरस्सूतिकृन्मुने ॥ स हि सर्वाधिपः शंभुर्निर्गुणस्सगुणोऽ
पि हि ॥ ७ ॥ तल्लीलयाखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा ॥ विनाश्यते मुनिश्रेष्ठ प्रस्तुतं शृणु चादरात् ॥ ८ ॥ उद्वाहिते शिवे चात्र
कैलासं च गते सति ॥ कियता चैव कालेन जातो गणपतेर्भवः ॥ ९ ॥ एकस्मिन्नेव काले च जया च विजया सखी ॥ पार्वत्या च
मिलित्वा वै विचारे तत्पराभवत् ॥ १० ॥ रुद्रस्य च गणास्सर्वे शिवस्याज्ञापरायणाः ॥ ते सर्वेप्यस्मदीयाश्च नन्दिभृंगिपुरस्सराः
॥ ११ ॥ प्रमथास्ते ह्यसंख्याता अस्मदीयो न कश्चन ॥ द्वारि तिष्ठन्ति ते सर्वे शंकराज्ञापरायणाः ॥ १२ ॥ ते सर्वेप्यस्मदीयाश्च
तथापि न मिलेन्मनः ॥ एकश्चैवास्मदीयो हि रचनीयस्त्वयानघे ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ वह लीलासेही सब जगत्को उत्पन्न पालन और संहार करते हैं, हे मुने ! आदरसे उनके चरित्रको सुनो ॥ ८ ॥ शिवजीके विवाहकर कैलास
पर्वतपर चलेजानेमें कितने एक समयके पीछे गणपतिका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ एक समय जया विजया नामवाली सखी यह सब पार्वतीके साथ मिलकर
विचार करने लगीं ॥ १० ॥ शिवजीकी आज्ञामें उनके सम्पूर्ण गण रहते हैं; यद्यपि वे नन्दि भृंगिको आदिलेकर जैसे उनके हैं वैसे हमारे नहीं ॥११॥
वे असंख्यात प्रमथगण हैं परन्तु उनमें हमारे एक भी नहीं है वे शंकरकी आज्ञासे सब द्वारे स्थित रहते हैं ॥ १२ ॥ यद्यपि वे सब हमारेही हैं पर हमारा

मन उनसे नहीं मिलता हे भगवति ! हे पापरहिते ! एक कोई हमारा भी होना चाहिये, सो आप उसकी रचना करैं ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले पार्वती देवी सखियोंके यह सुन्दर वचन सुनकर इस बातको हितमानकर उसके करनेकी इच्छा करने लगी ॥ १४ ॥ एक समय पार्वती देवी स्नान करतीथी, नन्दि द्वारपर बैठे थे शिवजीने उसके निषेधको न मानकर उसे घुडककर भीतर प्रवेश किया ॥ १५ ॥ शिवजीका आता हुआ देखकर परम सुन्दरी जगदम्बिका लज्जित हो तुरत उठ बैठी ॥ १६ ॥ तब उस समय पार्वतीने अपनी सखीके वचनको हितकारी जाना और सुखदायक समझा ॥ १७ ॥ एक समयपर

ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा पार्वती देवी सखीभ्यां सुन्दरं वचः ॥ हितं मेने तदा तच्च कर्तुं स्माप्यध्यवस्यति ॥ १४ ॥ ततः कदाचिन्मज्जत्यां पार्वत्यां वै सदाशिवः ॥ नंदिनं परिभर्त्स्याथ ह्याजगाम गृहांतरम् ॥ १५ ॥ आयांतं शंकरं दृष्ट्वाऽसमये जगदंबिका ॥ उत्तस्थौ मज्जती सा वै लज्जिता सुन्दरी तदा ॥ १६ ॥ तस्मिन्नवसरे देवी कौतुकेनातिसंयुता ॥ तदीयं तद्वचश्चैव हितं मेने सुखावहम् ॥ १७ ॥ एवं जाते सदा काले कदाचित्पार्वती शिवा ॥ विचिंत्य मनसा चेति परमाया परेश्वरी ॥ १८ ॥ मदीयस्सेवकः कश्चिद्भवेच्छुभतरः कृती ॥ मदाज्ञया परं नान्यद्रेखामात्रं चलेदिह ॥ १९ ॥ विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसंभवम् ॥ पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २० ॥ सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम् ॥ विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम् ॥ २१ ॥ वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि ॥ नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम् ॥ २२ ॥ मत्पुत्रस्त्वं मदीयोसि नान्यः कश्चिदिहास्ति मे ॥ एवमुक्तस्स पुरुषो नमस्कृत्य शिवां जगौ ॥ २३ ॥

माया परमेश्वरी पार्वती मनमें कुछ समय विचारकर कि ॥ १८ ॥ कोई अत्यन्त श्रेष्ठ मेरा सेवक हो जो सब कार्य करै जो मेरी आज्ञाके विना रेखामात्र भी चलायमान न हो ॥ १९ ॥ यह विचार कर पार्वतीदेवीने अपने शरीरके मैलसे सब लक्षण सम्पन्न एक पुरुष निर्माण किया ॥ २० ॥ जो सब शरीरोंके अवयवसे निर्दोष सब अवयवोंसे सुन्दर विशाल और सब शोभासे सम्पन्न महाबली पराक्रमी था ॥ २१ ॥ तब वह अनेक प्रकारके वस्त्र यथाविधि देकर तथा अनेक प्रकारके अलंकार और बहुतसे आशीर्वाद देकर ॥ २२ ॥ तुम मेरे पुत्र हो दूसरा कोई नहीं है, इस प्रकार वह पुत्र पार्वतीके प्रति माता

कहकर बोला ॥ २३ ॥ गणेशजी बोले तुम्हारा क्या कार्य है, मैं तुम्हारा क्या करूं, पुत्रके ऐसा कहनेपर पार्वती बोली ॥ २४ ॥ देवी बोली हे तात ! मेरे वचन सुनो तुम मेरे द्वारपाल बनो तुम मेरे पुत्र होनेके कारण मेरे हो, दूसरे किसीके नहीं हो ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! मेरी आज्ञाके विना कोई मेरे घरके भीतर न आने पावै चाहै कोई कितनीही हठकरै पर आने न देना ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुने ! पार्वतीने ऐसा कहकर एक दृढ लकडी गणेशजीको दी और गणेशजीका सुन्दर रूप देखकर वह बडी प्रसन्न हुईं ॥ २७ ॥ और प्रेमसे मुख चूमकर पुत्रको आलिंगन किया और गणाधिपको लकडीलेकर

॥ गणेश उवाच ॥ किं कार्यं विद्यते तेद्य करवाणि तवोदितम् ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन प्रत्युवाच सुतं शिवा ॥ २४ ॥ शिवोवाच ॥ हे तात शृणु मद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे ॥ मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यथा कश्चिदस्ति मे ॥ २५ ॥ विना मदाज्ञां मत्पुत्र नैवायान्मद्गृहान्तरम् ॥ कोऽपि क्वापि हठात्तात सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा च ददौ तस्मै यष्टिं चातिदृढां मुने ॥ तदीयं रूपमालोक्य सुन्दरं हर्षमागता ॥ २७ ॥ मुखमाचुंब्य सुप्रीत्यालिंग्य तं कृपया सुतम् ॥ स्वद्वारि स्थापयामास यष्टिपाणिं गणाधिपम् ॥ २८ ॥ अथ देवीसुतस्तात गृहद्वारि स्थितो गणः ॥ यष्टिपाणिर्महावीरः पार्वतीहितकाम्यया ॥ २९ ॥ स्वद्वारि स्थापयित्वा तं गणेशं स्वसुतं शिवा ॥ स्वयं च मज्जती सा वै संस्थितासीत्सखीयुता ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नेव काले तु शिवो द्वारि समागतः ॥ कौतुकी मुनिशार्दूल नानालीलाविशारदः ॥ ३१ ॥ उवाच च शिवेशं तमविज्ञाय गणाधिपः ॥ मातुराज्ञां विना देव गम्यतां न त्वयाधुना ॥ ३२ ॥ मज्जनार्थं स्थिता माता क्व यासीतो व्रजाधुना ॥ इत्युक्त्वा यष्टिकां तस्य रोधनाय तदाग्रहीत् ॥ ३३ ॥

द्वारेपर बैठाया ॥ २८ ॥ हे तात ! जब वह गणेश द्वारेपर स्थित हुए वह महावीर लकडी लेकर पार्वतीके हितकी कामनासे जब बैठे ॥ २९ ॥ और शिवाने अपने पुत्र गणेशजीको जब अपने द्वारेपर स्थापन किया, तब आप सखियों सहित स्नान करने लगीं ॥ ३० ॥ इसी अवसरमें शिवजी भी द्वारेपर आकर स्थित हुए, हे मुनिश्रेष्ठ ! अनेक लीला करनेमें चतुर वे कौतुकी भगवान् शंकर जब भीतर जाने लगे ॥ ३१ ॥ तब शिवजीको न जानकर वह गणेश्वर कहने लगा हे देव ! माताकी आज्ञाके विना आप नहीं जा सकते ॥ ३२ ॥ माता इस समय स्नान कर रहीं हैं, तुम कहां जाते हो यहांसे जाओ,

यह कहकर गणेशजीने उनके रोकनेके लिये लकडीको उठाया ॥ ३३ ॥ यह देखकर शिवजी बोले हे मूर्ख ! तू किसको निषेध करता है, हे बुद्धिरहित !
मुझे नहीं जानता मैं शिव हूं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ३४ ॥ यह सुनतेही गणेशने महेश्वरको लकडीसे प्रहार किया और वे बहुत लीला करनेवाले क्रोधकर
पुत्रसे बोले ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले हे बालक ! तू मूर्ख है यह नहीं जानता कि मैं गिरिजापति शंकर हूं, हे बालक ! मैं अपने घरकोही जाता हूं तू मुझे
निषेध कैसे करता है ॥ ३६ ॥ यह कहकर जब गणेशजीकी परवा न करके शिवजी भीतर जाने लगे तब गणेशजीने फिर दंडका प्रहार किया ॥ ३७ ॥

तं दृष्ट्वा तु शिवः प्राह कं निषेधसि मूढधीः ॥ मां न जानास्यसद्बुद्धे शिवोहमिति नान्यथा ॥ ३४ ॥ ताडितस्तेन यष्ट्या हि गणेशेन
महेश्वरः ॥ प्रत्युवाच स तं पुत्रं बहुलीलश्च कोपितः ॥ ३५ ॥ शिव उवाच ॥ मुर्खोसि त्वं न जानासि शिवोहं गिरिजापतिः ॥
स्वगृहं यामि रे बाल निषेधसि कथं हि माम् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा प्रविशंतं तं महेशं गणनायकः ॥ क्रोधं कृत्वा ततो विप्र दंडेनाताडयत्पुनः
॥ ३७ ॥ ततश्शिवश्च संक्रुद्धो गणानाज्ञापयन्निजान् ॥ को वायं वर्तते किं च क्रियते पश्यतां[1] गणाः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा तु
शिवस्तत्र स्थितः क्रुद्धो गृहाद्बहिः ॥ भवाचाररतस्स्वामी बह्वद्भुतसुलीलकः ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां
रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गणास्ते क्रोधसंपन्नास्तत्र
गत्वा शिवाज्ञया ॥ पप्रच्छुर्गिरिजापुत्रं तं तदा द्वारपालकम् ॥ १ ॥

तब शिवजीने क्रोधकरके अपने गणोंको आज्ञा दी यह कौन है यहां क्यों स्थित है तुम देखो अब क्या करैं ॥ ३८ ॥ यह कहकर शिवजी महाक्रोधकर घरके
बाहर स्थित हुए, इस प्रकार अद्भुत लीला करनेवाले स्वामी संसारकी लीला दिखाने लगे ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रु० च० कु० त्रयोदशोऽध्यायः
॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले तब वे सब गण क्रोधको प्राप्त होकर शिवजीकी आज्ञासे वहां जाकर उस द्वारपाल गिरिजापुत्रसे पूँछने लगे ॥ १ ॥

---

[1] युष्माकमिति शेषः ।

शिवके गण बोले तुम कौन कहांसे आये और तुम्हारे क्या करनेकी इच्छा है, यदि जीनेकी इच्छा है तो यहांसे दूर चला जा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले गणेशजी शिवजीके गणोंके इस प्रकार वचन सुनकर निर्भय और दंड हाथमें लेकर उन द्वाररक्षक गणोंसे बोले ॥ ३ ॥ गणेशजी बोले तुम कौन और कहांसे आये हो तुम अच्छे सुन्दरहो दूर हो यहां विरोध करनेके निमित्त कैसे स्थित हुए हो ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार गणेशजीके वचन सुन वे सब महाबली शिवजीके गण परस्पर हास्यकरके वे आश्चर्यरहित हो बोले ॥ ५ ॥ वे शिवके पार्षद परस्पर कुछ बोलकर क्रोधित मनसे द्वारपाल गणेशजीसे कहने लगे ॥

॥ शिवगणा ऊचुः ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातः किं वा त्वं च चिकीर्षसि ॥ इतोऽद्य गच्छ दूरं वै यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा गिरिजातनयस्स वै ॥ निर्भयो दण्डपाणिश्च द्वारपानब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥ ॥ गणेश उवाच ॥ यूयं
के कुत आयाता भवंतस्सुन्दरा इमे[१] ॥ यात दूरं किमर्थं वै स्थिता अत्र विरोधिनः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं श्रुत्वा वचस्तस्य
हास्यं कृत्वा परस्परम् ॥ ऊचुस्सर्वे शिवगणा महावीरा गतस्मयाः ॥ ५ ॥ परस्परमिति प्रोच्य सर्वे ते शिवपार्षदाः ॥ द्वारपालं
गणेशं तं प्रत्यूचुः क्रुद्धमानसाः ॥ ६ ॥ शिवगणा ऊचुः ॥ श्रूयतां द्वारपाला हि वयं शिवगणा वराः ॥ त्वां निवारयितुं प्राप्ताश्शं
करस्याज्ञया विभोः ॥ ७ ॥ त्वामपीह गणं मत्वा न हन्यामोन्यथा हतः ॥ तिष्ठ दूरे स्वतस्त्वं च किमर्थं मृत्युमीहसे ॥ ८ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तोऽपि गणेशश्च गिरिजातनयोऽभयः ॥ निर्भर्त्स्य शंकरगणान्न द्वारं मुक्तवांस्तदा ॥ ९ ॥ ते सर्वेपि गणाश्शैवा
स्तत्रत्या वचनं तदा ॥ श्रुत्वा तत्र शिवं गत्वा तद्वृत्तांतमथाब्रुवन् ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ शिवके गण बोले सुनो हम सब श्रेष्ठ द्वारपाल शिवजीके गण हैं हम विभु शंकरकी आज्ञासे तुमको निवारण करनेको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥ तुमको भी गणमानकर हमने नहीं मारा नहीं तो कबका मार दिया होता, दूर हो स्वतः ही क्यों मृत्युकी इच्छा करता है ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहनेपर भी गिरिजापुत्र गणेशजी निर्भय रहे, और शिवजीके गणोंको घुडककर द्वार नहीं छोडा ॥ ९ ॥ उन सम्पूर्ण शिवजीके गणोंने भी गणेशजीके यह वचन

---

[१] सर्वे इत्यर्थः ॥

सुनकर वह सब वृत्तान्त शिवजीसे जाकर निवेदन कर दिया ॥ १० ॥ अद्भुत लीला करनेवाले महेश्वर गणोंके यह वचन सुनकर अपने गणोंको घुडककर
लोककी गतिसे कहने लगे ॥ ११ ॥ महेश्वर बोले ! यह किसका पुत्र वा सेवक है शत्रुकी समान उच्छृंखल यह क्या कहता है यह असद्बुद्धि क्या करैगा,
क्या अपनी मृत्युकी वांछा करता है ॥ १२ ॥ यह कोई नवीन द्वारपाल है इसको दूरकरो तुम नपुंसककी समान खडे हुए उसका वृत्तान्त कैसे कहते हो ॥
॥ १३ ॥ अद्भुत लीला करनेवाले स्वामी शंकरके यह वचन सुनकर वे गण फिर आकर वहां द्वारपाल गणेशजीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ शिवजीके गण

ततश्च तद्वचः श्रुत्वाद्भुतलीलो महेश्वरः ॥ विनिर्भर्त्स्य गणानूचे निजाँल्लोकगतिर्मुने ॥ ११ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ कश्चायं वर्तते किं
च ब्रवीत्यरिवदुच्छ्रितः ॥ किं करिष्यत्यसद्बुद्धिः स्वमृत्युं वांछति ध्रुवम् ॥ १२ ॥ दूरतः क्रियतां ह्येष द्वारपालो नवीनकः ॥ क्लीबा इव
स्थितास्तस्य वृत्तं वदथ मे कथम् ॥ १३ ॥ स्वामिनोक्ता गणास्ते चाद्भुतलीलेन शंभुना ॥ पुनरागत्य तत्रैव तमूचुर्द्वारपालकम् ॥ १४ ॥
॥ शिवगणा ऊचुः ॥ रे रे द्वारप कस्त्वं हि स्थितश्च स्थापितः कुतः ॥ नैवास्मान्गाणयस्येवं कथं जीवितुमिच्छसि ॥ १५ ॥ द्वारपा
ला वयं सर्वे स्थिताः किं परिभाषसे ॥ सिंहासनगृहीतश्च शृगालः शिवमीहते ॥ १६ ॥ तावद्गर्जसि मूर्ख त्वं यावद्गणपराक्रमः ॥
नानुभूतस्त्वयात्रैव ह्यनुभूतः पतिष्यसि ॥ १७ ॥ इत्युक्तस्तैस्सुसंक्रुद्धो हस्ताभ्यां यष्टिकां तदा ॥ गृहीत्वा ताडयामास गणांस्तान्पारि
भाषिणः ॥ १८ ॥ उवाचाथ शिवापुत्रः परिभर्त्स्य गणेश्वरान् ॥ शंकरस्य महावीरान्निर्भयस्तान्गणेश्वरः ॥ १९ ॥

बोले अरे द्वारपाल तू कौन है और किसने तुझको यहां स्थापित किया है, तू हमको कुछ नहीं गिन्ता इससे किस प्रकार जीनेकी इच्छा करता है ॥१५॥
हम सब द्वारपाल हैं तू अपनेको कैसे द्वारपाल कहता है शृगाल इस सिंहासनको ग्रहणकर कैसे अपना कल्याण चाहता है ॥ १६ ॥ हे मूर्ख ! तू उसही
समयतक गर्जताहै जबतक गणोंका पराक्रम नहीं देखता, तैंने यह पराक्रम अनुभव नहीं किया अनुभव करतेही पतितहोजायगा ॥ १७ ॥ ऐसे उनके वचन
सुनकर गणेशजीने क्रोधकर लाठी हाथमें ली और उन वाचाल गणोंको मारना प्रारंभ किया ॥ १८ ॥ और सब गणेश्वरोंको घुडकतेहुए शिवजीके पुत्र

बोले गणेश्वरके घुडकनेसे महाबली शिवके गण चकित हुए ॥ १९ ॥ गणेशजी बोले जाओ जाओ यहांसे दूर चले जाओ नहीं तो मैं तुमको अपना बडा उग्र पराक्रम दिखाऊंगा जिससे तुम उपहासको प्राप्त हो जाओगे ॥ २० ॥ गिरिजापुत्र गणेशजीके यह वचन सुनकर वह शिवजीके गण परस्पर कहने लगे ॥ ॥ २१ ॥ शिवजीके गण बोले अब क्या करैं कहां जांय अब जाने यह क्या न करै, हम मर्यादाकी रक्षा करते हैं, नहीं तो यह क्या नहीं करैगा ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले तब शिवजीके गण परस्पर विचारकर कैलाससे एक कोश दूर स्थित हुए शिवजीके पास जाकर वह सब कहते हुए ॥ २३ ॥ त्रिशूल हाथमें

शिवापुत्र उवाच ॥ यात यात ततो दूरे नो चेद्वो दर्शयामि ह ॥ स्वपराक्रममत्युग्रं यास्यथात्युपहास्यताम् ॥ २० ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरिजातनयस्य हि ॥ परस्परमथोचस्ते शंकरस्य गणास्तदा ॥ २१ ॥ शिवगणा ऊचुः ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं क्रियते स न किं पुनः ॥ मर्यादा रक्ष्यतेऽस्माभिरन्यथा क ब्रवीति च ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततश्शंभुगणास्सर्वे शिवं दूरे व्यवस्थितम् ॥ क्रोशमात्रं तु कैलासाद्गत्वा ते च तथाब्रुवन् ॥२३॥ शिवो विहस्य तान्सर्वांस्त्रिशूलकर उग्रधीः ॥ उवाच परमेशो हि स्वगणान् वीरसंमतान् ॥ २४ ॥ शिव उवाच ॥ रेरे गणाः क्लीबमता न वीरा वीरमानिनः ॥ मदग्रे नोदितुं योग्या भर्त्सितः किं पुनर्वदेत् ॥ २५ ॥ गम्यतां ताड्यतां चैष यः कश्चित्प्रभवेदिह ॥ बहुनोक्तेन किं चात्र दूरीकर्तव्य एव सः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ इति सर्वे महेशेन जग्मुस्तत्र मुनीश्वर ॥ भर्त्सितास्तेन देवेन प्रोचुश्च गणसत्तमाः ॥ २७ ॥ शिवगणा ऊचुः ॥ रेरे त्वं शृणु वै बाल बलात्किं परिभाषसे ॥ इतस्त्वं दूरतो याहि नो चेन्मृत्युर्भविष्यति ॥ २८ ॥

लिये उग्रबुद्धि परेश शिवजी उन वीरसम्मत अपने गणोंसे कहने लगे ॥ २४ ॥ अरे गणों तुम क्लीबही हो वीरमानी वीर नहीं हो, मेरे आगे यह बात कहनेको योग्य नहीं हो घुडकनेपर क्या फिर कुछ कहा जाताहै ॥ २५ ॥ जाओ कोई क्यों न हो उसपर प्रहार करो, बहुत कहनेसे क्या है, वह दूर ही करदेने योग्य है ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! जब देव महेश्वरने उन सब गणोंको इस प्रकारसे फटकारा, तब वे सब वहांको गये, और जाकर बोले ॥ २७ ॥ शिवके गण बोले रेरे बालक सुनो तू बहुत बलसे क्या कहता है, यहांसे तू दूर चला जा नहीं तो तेरी मृत्यु हो जायगी ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले तब शिवजीकी आज्ञा करनेवाले उन गणोंके यह वचन सुनकर गणेशजी यह विचारकर दुःखी हुए कि अब मैं क्या करूं ॥ २९ ॥ इसी अवसरमें देवीने द्वारेपर यह कलकल और क्लेश सुनकर सखीसे कहा देखो तो द्वारे क्या होरहा है ॥ ३० ॥ सखीने जाकर वहां सब वृत्तान्त जानलिया और क्षणमात्रमें सब देख प्रसन्नहो पार्वतीके समीप गई ॥ ३१ ॥ हे मुने ! वहां जाकर उस सखीने जो वृत्तान्त होरहा था वह सब पार्वतीके आगे वर्णन किया ॥ ३२ ॥ सखी बोली हे महेश्वरि ! जो हमारा गण द्वारेपर स्थित हो रहाहै उसको सब शिवजीके गण घुडक रहे हैं ॥ ३३ ॥ शिवजी और उनके

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां शिवाज्ञाकारिणां ध्रुवम् ॥ शिवासुतस्तदाभूत्स किंकरोमीति दुःखितः ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे
देवी तेषां तस्य च वै पुनः ॥ श्रुत्वा तु कलहं द्वारि सखीं पश्येति साब्रवीत् ॥ ३० ॥ समागत्य सखी तत्र वृत्तांतं समबुध्यत ॥
क्षणमात्रं तदा दृष्ट्वा गता हृष्टा शिवांतिकम् ॥ ३१ ॥ तत्र गत्वा तु तत्सर्वं वृत्तं तद्यदभून्मुने ॥ अशेषेण तया सख्या कथितं गिरि
जाग्रतः ॥ ३२ ॥ ॥ सख्युवाच ॥ अस्मदीयो गणो यो हि स्थितो द्वारि महेश्वरि ॥ निर्भर्त्सयंति तं वीराश्शंकरस्य गणा ध्रुवम्
॥ ३३ ॥ शिवश्चैव गणास्सर्वे विना तेऽवसरं कथम् ॥ प्रविशंति हठाद्गेहे नैतच्छुभतरं तव ॥ ३४ ॥ सम्यक् कृतं ह्यनेनैव न हि कोपि
प्रवेशितः ॥ दुःखं चैवानुभूयात्र तिरस्कारादिकं तथा ॥ ३५ ॥ अतः परन्तु वाग्वादः क्रियते च परस्परम् ॥ वाग्वादे च कृते नैव
तर्ह्यायान्तु सुखेन वै ॥ ३६ ॥ कृतश्चैवात्र वाग्वादस्तं जित्वा विजयेन च ॥ प्रविशंतु तथा सर्वे नान्यथा कर्हिचित्प्रिये ॥ ३७ ॥ अस्मि
न्नेवास्मदीये वै सर्वे संभर्त्सिता वयम् ॥ तस्माद्देवि त्वया भद्रे न त्याज्यो मान उत्तमः ॥ ३८ ॥

गण विना अवसरके घरमें कैसे प्रवेश करसकते हैं यह हमारे लिये शुभदायक नहीं है ॥ ३४ ॥ इस बालकने बहुत अच्छा किया जो किसीको न आने दिया, और यह दुःख तथा तिरस्कार अनुभव कर रहा है ॥ ३५ ॥ अब इनका परस्पर वाणीका विवाद होरहा है वाग्वाद होनेसे फिर कोई घरके भीतर नहीं आसकैंगे ॥ ३६ ॥ वाग्वाद करके और इसको जीतकर वे सब प्रवेश कर सकतेहैं अन्यथा प्रवेश नहीं कर सकते ॥ ३७ ॥ हमारे इस

बालकको घुडकनेसे मानो उन्होंने सबहीको घुडका, इस कारण हे देवि ! तुमको मान किसी प्रकार न छोडना चाहिये ॥ ३८ ॥ शिवजी तो सदा आपके आधीनही हैं, वे अहंकार क्या करैंगे तुम्हारे अनुकूल ही हो जांयगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले क्षणमात्रको शिवकी इच्छासे पार्वती स्थित हुईं ॥४०॥ और उस समय वह पार्वती मानिनी होकर मनही मनमें कहने लगी ॥ ४१ ॥ शिवा बोली अहो क्षणमात्रको पुत्र स्थित भी न हुआ कि यह हठ करने लगे, तो अब मैं विनय वा नम्रता क्या करूं ॥४२॥ जो होनहार है सो होगी अन्यथा नहीं हो सकती, ऐसा कहकर पार्वतीने अपनी सखीको वहां भेजा ॥४३॥

शिवो मर्कटवत्तेऽद्य वर्तते सर्वदा सति ॥ किं करिष्यत्यहंकारमानुकूल्यं भविष्यति ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो क्षणं स्थिता तत्र शिवेच्छावशतस्सती ॥ ४० ॥ मनस्युवाच सा भूत्वा मानिनी पार्वती तदा ॥ ४१ ॥ शिवोवाच ॥ अहो क्षणं स्थितो नैव हठात्कारः कथं कृतः ॥ कथं चैवात्र कर्त्तव्यं विनयेनाथ वा पुनः ॥ ४२ ॥ भविष्यति भवत्येव कृतं नैवान्यथा पुनः ॥ इत्युक्त्वा तु सखी तत्र प्रेषिता प्रियया तदा ॥ ४३ ॥ समागत्याऽब्रवीत्सा च प्रियया कथितं हि यत् ॥ तमाचष्ट गणेशं तं गिरिजातनयं तदा ॥ ४४ ॥ सख्युवाच ॥ सम्यक्कृतं त्वया भद्र बलात्ते प्रविशंतु न ॥ भवदग्रे गणा ह्येते किं जयंतु भवादृशम् ॥ ४५ ॥ कृतं चेद्वाकृतं चैव कर्त्तव्यं क्रियतां त्वया ॥ जितो यस्तु पुनर्वापि न वैरमथ वा ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या मातुश्चैव गणेश्वरः ॥ आनन्दं परमं प्राप बलं भूरि महोन्नतिम् ॥ ४७ ॥ बद्धकक्षस्तथोष्णीषं बद्ध्वा जंघोरु संस्पृशन् ॥ उवाच तान् गणान् सर्वान् निर्भयं वचनं मुदा ॥ ४८ ॥

सखीने जाकर गणेशजीसे वह सब बात कही जो प्रियाने कही थी वह गिरिजापुत्र गणेशसे इस प्रकारसे बोली ॥ ४४ ॥ सखी बोली हे भद्र ! तुमने बहुत अच्छा किया जो बलसे प्रवेश न होने दिया तुम्हारे सामने क्या यह गण तुमको जीत सकतेहैं ॥ ४५ ॥ कृत अकृत जो कुछ भी हो तुमको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये, जीतने पर भी कोई वैरकी बात तो हैही नहीं ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले गणेश्वर माताके इस प्रकारके वचन सुनकर महा उन्नत बलको प्राप्त होकर बडे आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ कच्छ और पगडी बांधकर जांघोंपर जांघियां कसकर उन सब गणोंसे प्रसन्नतासे निर्भय वचन

बोले ॥ ४८ ॥ गणेशजी बोले मैं पार्वतीका पुत्र और तुम शिवजीके गण हो दोनों ही समताको प्राप्त होकर अब अपना कर्त्तव्य पालन करें ॥ ४९ ॥ तुमही द्वारपालहो मैं द्वारपाल क्यों नहीं हूं जैसे तुम यहां स्थित हो वैसेही मैं स्थित हूं ॥ ५० ॥ तुम्हारी यहां स्थिति जब निश्चित हो जायगी तब तुम शिवजीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ५१ ॥ इस समय तो मैं यहां स्थित हुआ पार्वतीकी आज्ञाका पालन करता हूं, हे वीर ! यह मैं सत्यही कहता हूं और मैंने इसका निर्णय भी कर लिया है ॥ ५२ ॥ इस कारण हे शिवजीके गणों आदरसे तुम मेरे वचन सुनो हठ वा विनय किसी प्रकारसे भी तुम मन्दिरमें

गणेश उवाच ॥ अहं च गिरिजासूनुर्यूयं शिवगणास्तथा ॥ उभये समतां प्राप्ताः कर्तव्यं क्रियतां पुनः ॥ ४९ ॥ भवंतो द्वारपालाश्च द्वारपोहं कथं न हि॥ भवंतश्च स्थितास्तत्राऽहं स्थितोत्रेति निश्चितम् ॥ ५० ॥ भवद्भिश्च स्थितं ह्यत्र यदा भवति निश्चितम् ॥ तदा भवद्भिः कर्त्तव्यं शिवाज्ञापरिपालनम् ॥ ५१ ॥ इदानीं तु मया चात्र शिवाज्ञापरिपालनम्॥ सत्यं च क्रियते वीरा निर्णीतं मे यथोचितम् ॥ ५२ ॥ तस्माच्छिवगणास्सर्वे वचनं शृणुतादरात् ॥ हठाद्वा विनयाद्वा न गंतव्यं मन्दिरे पुनः ॥ ५३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तास्ते गणेनैव सर्वे ते लज्जिता गणाः ॥ ययुश्शिवांतिकं तं वै नमस्कृत्य पुरः स्थिताः ॥ ५४ ॥ स्थित्वा न्यवेदयन्सर्वे वृत्तांतं च तदद्भुतम् ॥ करौ बद्ध्वा नतस्कंधाश्शिवं स्तुत्वा पुरः स्थिताः ॥ ५५ ॥ तत्सर्वं तु तदा श्रुत्वा वृत्तं तत्स्वगणोदितम् ॥ लौकिकीं वृत्तिमाश्रित्य शंकरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ शंकर उवाच ॥ श्रूयतां च गणास्सर्वे युद्धं योग्यं भवेन्न हि ॥ यूयं चात्रास्मदीया वै स च गौरीगणस्तथा ॥ ५७ ॥ विनयः क्रियते चेद्वै वश्यश्शंभुः स्त्रिया सदा ॥ इति ख्यातिर्भवेल्लोके गर्हिता मे गणा ध्रुवम् ॥ ५८ ॥

नहीं जा सकते ॥ ५३ ॥ जब गणेशजीने ऐसा कहा तो वे सब गण लज्जित होगये और शिवजीके समीप जाय नमस्कार करके उनके आगे स्थित हुए ॥ ॥ ५४ ॥ और हाथजोड मस्तक नवाय स्तुतिकर आगे स्थित हो उस सम्पूर्ण अद्भुत वृत्तान्तको उन्होंने विवेदन किया ॥ ५५ ॥ अपने गणोंसे कहेहुए उस सब वृत्तान्तको सुनकर लौकिक दशाको दिखातेहुए शिवजी वचन बोले ॥ ५६ ॥ शिवजी बोले हे सम्पूर्ण गणों सुनो अब वह बालक युद्धके योग्य तो है नहीं तुम हमारे और वह गौरीका गण है ॥ ५७ ॥ और यदि नम्रता कीजाय तो लोकमें इस बातकी ख्याति होगी कि शिवजी सदा स्त्रीके वशमें हैं

हे गणो ! तब भी वह मुझे लज्जाका विषय होगा ॥५८॥ परनीतिके अनुसार इसमें कार्य करना चाहिये वह इकला गण बालक क्या पराक्रम करैगा ॥
॥ ५९ ॥ तुम गण युद्धमें बडे चतुर हो सो मेरे होकर युद्ध छोडकर लघुताको कैसे प्राप्त होते हो ॥६०॥ पतिके आगे विशेषकर स्त्री क्यों हठ करती है
यदि गिरिजा ऐसा करैगी तो इसका फल अवश्य पावैगी ॥ ६१ ॥ इस कारण सब मेरे वीर आदरसे मेरा वचन सुनैं, सर्वथा युद्ध करैं जो होना है सो
अवश्य होगा ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! अनेक लीलाकरनेमें चतुर भगवान् शंकर लौकिकी गतिको दिखातेहुए यह कहकर मौन हुए ॥ ६३ ॥

कृते चैवात्र कर्तव्यमिति नीतिर्गरीयसी ॥ एकाकी स गणो बालः किं करिष्यति विक्रमम् ॥ ५९ ॥ भवंतश्च गणा लोके युद्धे चाति
विशारदाः ॥ मदीयाश्च कथं युद्धं हित्वा यास्यथ लाघवम् ॥ ६० ॥ स्त्रिया ग्रहः कथं कार्यो पत्युरग्रे विशेषतः ॥ कृत्वा सा गिरिजा
तस्य नूनं फलमवाप्स्यति ॥ ६१ ॥ तस्मात्सर्वे च मद्वीराः शृणुतादरतो वचः ॥ कर्त्तव्यं सर्वथा युद्धं भावि यत्तद्भवत्विति ॥ ६२ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरो ब्रह्मन् नानालीलाविशारदः ॥ विरराम मुनिश्रेष्ठ दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणविवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्ता विभुना
तेन निश्चयं परमं गताः ॥ सन्नद्धास्तु तदा तत्र जग्मुश्च शिवमन्दिरम् ॥ १ ॥ गणेशोऽपि तथा दृष्ट्वा ह्यायातान्गणसत्तमान् ॥ युद्धाऽऽ
टोपं विधायैव स्थितांश्चैवाब्रवीदिदम् ॥ २ ॥ ॥ गणेश उवाच ॥ आयांतु गणपास्सर्वे शिवाज्ञापरिपालकाः ॥ अहमेकश्च बालश्च
शिवाज्ञापरिपालकः ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहिता० च०कुमारखण्डे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥ब्रह्माजी बोले जब उन विभुने इस प्रकार कहा तब वे सब गण परम
निश्चयको प्राप्त होकर सजकर शिवजीके मन्दिरके समीप गये॥ १ ॥इधर गणेशजीने भी देखा कि युद्धके निमित्त शिवजीके गण आ रहे हैं तब उनसे इस प्रकार
गणेशजी बोले ॥ २ ॥ गणेशजी बोले शिवजीकी आज्ञा पालन करनेवाले सब गण आवैं, मैं इकलाही बालक शिवाकी आज्ञापालन करनेवाला हूं ॥ ३ ॥

तथापि पश्यतां देवी पार्वती सूनुजं बलम् ॥ शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्यतु वै पुनः ॥ ४ ॥ बलवद्बालयुद्धं च भवानीशिवपक्षयोः ॥ भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः ॥ ५ ॥ मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना ॥ तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥ ६ ॥ ममैवं तु भवेन्नैव वैपरीत्यं भविष्यति ॥ ममैव भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥ ७ ॥ एवं ज्ञात्वा च कर्त्तव्यः समरश्च गणेश्वराः ॥ भवद्भिस्स्वामिनं दृष्ट्वा मया च मातरं तदा ॥ ८ ॥ क्रियते कीदृशं युद्धं भवितव्यं भवत्विति ॥ तस्य वै वारणे कोऽपि न समर्थस्त्रिलोकके ॥ ९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं भर्त्सितास्ते तु दंडभूषितबाहवः ॥ विविधान्यायुधान्येवं धृत्वा ते च समाययुः ॥ १० ॥ घर्षयन्तस्तथा दंतान् हुंकृत्य च पुनः पुनः ॥ पश्य पश्य ब्रुवंतश्च गणास्ते समुपागताः ॥ ११ ॥ नंदी प्रथममागत्य धृत्वा पादं व्यकर्षयत् ॥ धावन्भृंगी द्वितीयं च पादं धृत्वा गणस्य च ॥ १२ ॥ यावत्पादे विकर्षन्तौ तावद्धस्तेन वै गणः ॥ आहत्य हस्तयोस्ताभ्यामुत्क्षिप्तौ पादकौ स्वयम् ॥ १३ ॥

तो भी देवी पार्वतीके पुत्रका बल सब कोई देखैं, और आज शिवजीके गणोंका बल भी देखा जाय ॥ ४ ॥ आज भवानी और शिवजीके पक्षवालोंका बलपूर्वक युद्ध होनेवाला है, युद्धमें चतुर आप लोगोंने तो पहले युद्ध किया भी है ॥ ५ ॥ मैंने पहले युद्ध किया नहीं, मैं बालक होकर आजही युद्ध करता हूं तो भी गिरिजा और शिव आपकी लज्जा रक्खेंगे ॥ ६ ॥ मुझे तो इसमें कुछ है नहीं, हमारे तो विपरीत ही होगा, मेरी और आपकी लज्जा गिरिजा और शिवकीही लज्जा है ॥ ७ ॥ हे गणेश्वरो ! ऐसा विचारकर समर करना चाहिये आप अपने स्वामीको देखकर और मैं अपनी माताको देखकर किस प्रकारसे युद्ध करताहूं ॥ ८ ॥ वह कैसा युद्ध होना है सो देखना इस युद्धके निवारण करनेमें त्रिलोकीमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इसप्रकारसे दंडपाणि गणेशजीने उनको फटकारा तब वे अनेक प्रकारके आयुध लेकर उनके ऊपर धावमान हुए ॥ १० ॥ दांतोंको घर्षण करते तथा वारंवार हुँकार शब्द करते और देखो देखो कहतेहुए वे गण वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ११ ॥ सबसे पहले नंदीने आकर गणेशजीका चरण पकडकर खैंचा, और भृंगीने आनकर दूसरा चरण खैंचा ॥ १२ ॥ जबतक वे दोनों गण चरण पकडैं तबतक गणेशजीने हाथोंसे उनको प्रहारकर अपने पैर छुडा लिये ॥ १३ ॥

तब वीर देवीपुत्रने एक बडा परिघ ग्रहण करके जितने द्वारपर स्थित थे उन सबकोही प्रहार किया ॥ १४ ॥ किन्हींके हाथ टूटगये, किन्हींकी पृष्ठ टूट गई किन्हींके शिर और किन्हींके मस्तक टूट गये ॥ १५ ॥ किन्हींकी जंघा किन्हींके कंधे भिन्न होगये, और जो सन्मुख आये उन सबको हृदयमें प्रहार किया ॥ १६ ॥ कोई पृथिवीमें गिरगये कोई विदिशाओंमें चले गये, किन्हींके चरण छिन्न भिन्न होगये, कोई शिवजीके समीप चले गये॥ ॥ १७ ॥ उनमें कोईभी संग्राममें गणेशजीके सन्मुख न ठहरसका, सिंहको देखकर मृग जिस प्रकार दशों दिशाओंमें भाग जाते हैं ॥ १८ ॥ इसी भांति

अथ देवीसुतो वीरस्संगृह्य परिघं बृहत् ॥ द्वारस्थितो गणपतिः सर्वानापोथयत्तदा ॥ १४ ॥ केषांचित्पाणयो भिन्नाः केषांचित्पृष्ठकानि च ॥ केषांचिच्च शिरांस्येव केषां चिन्मस्तकानि च ॥ १५ ॥ केषांचिज्जानुनी तत्र केषांचित्स्कंधकास्तथा॥ सम्मुखे चागता ये वै ते सर्वे हृदये हताः ॥ १६ ॥ केचिच्च पतिता भूमौ केचिच्च विदिशो गताः॥ केषांचिच्चरणौ छिन्नौ केचिच्छर्वान्तिकं गताः ॥ १७ ॥ तेषां मध्ये तु कश्चिद्वै संग्रामे सम्मुखो न हि ॥ सिंहं दृष्ट्वा यथा यांति मृगाश्चैव दिशो दश ॥ १८ ॥ तथा ते च गणास्सर्वे गताश्चैव सहस्रशः ॥ परावृत्य तथा सोपि सुद्वारि समुपस्थितः ॥ १९ ॥ कल्पांतकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः ॥ यथा तथैव दृष्टस्स सर्वेषां प्रलयंकरः ॥ २० ॥ एतस्मिन्समये चैव सरमेशसुरेश्वराः ॥ प्रेरिता नारदेनेह देवास्सर्वे समागमन् ॥ २१ ॥ समब्रुवंस्तदा सर्वे शिवस्य हितकाम्यया ॥ पुरः स्थित्वा शिवं नत्वा ह्याज्ञां देहि प्रभो इति ॥ २२ ॥ त्वं परब्रह्म सर्वेशस्सर्वे च तव सेवकाः ॥ सृष्टेः कर्ता सदा भर्ता संहर्ता परमेश्वरः ॥२३॥ रजस्सत्त्वतमोरूपो लीलया निर्गुणः स्वतः ॥ का लीला रचिता चाद्य तामिदानीं वद प्रभो ॥ २४ ॥

वे सैंकडों सहस्रों गण पलायन कर गये गणेशजी लौटकर फिर अपने स्थानमें आगये ॥ १९ ॥ जैसे कल्पके अंतमें भयंकर काल दिखाई देता है इसी प्रकार वह सबको उस समय प्रलय करनेकी समान दिखाई देने लगे ॥ २० ॥ इसी समय नारदजीकी प्रेरणासे विष्णु इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता उस युद्धमें आये ॥ २१ ॥ और शिवजीके हितकी कामनासे वे सब कहने लगे, और आगे स्थित हो शिवको प्रणामकर बोले, हे प्रभो ! आज्ञा दीजिये ॥ २२ ॥ आप सर्वेश परब्रह्म हो हम सब तुम्हारे सेवक हैं, तुम सृष्टिके कर्ता भर्ता संहर्ता परमेश्वरहो ॥ २३ ॥ तुम सत रज तमसे अनेक प्रकारकी लीला करते हो

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनिश्रेष्ठ महेश्वरः ॥ गणान् भिन्नाँस्तदा दृष्ट्वा तेभ्यस्सर्वं न्यवेदयत् ॥ २५ ॥ अथ सर्वेश्वरस्तत्र शंकरो मुनिसत्तम ॥ विहस्य गिरिजानाथो ब्रह्माणं मामुवाच ह ॥ २६ ॥ शिव उवाच ॥ ब्रह्मञ्छृणु मम द्वारि बाल एकस्समास्थितः ॥ महाबलो यष्टिपाणिर्गेहावेशनिवारकः ॥ २७ ॥ महाप्रहारकर्ताऽसौ मत्पार्षदविघातकः ॥ पराजयः कृतस्तेन मद्गणानां बलादिह ॥ २८ ॥ ब्रह्मन् त्वयैव गंतव्यं प्रसाद्योऽयं महाबलः ॥ यथा ब्रह्मन्नयः स्याद्वै तथा कार्यं त्वया विधे ॥ २९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यमज्ञात्वाऽज्ञानमोहितः ॥ तदीयनिकटं तात सर्वैर्ऋषिवरैरयाम् ॥ ३० ॥ समायान्तं च मां दृष्ट्वा स गणेशो महाबली ॥ क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य मम श्मश्रूण्यवाकिरत् ॥ ३१ ॥ क्षम्यतां क्षम्यतां देव न युद्धार्थं समागतः ॥ ब्राह्मणोहमनुग्राह्यः शांतिकर्तानुपद्रवः ॥ ३२ ॥ इत्येवं ब्रुवति ब्रह्मंस्तावत्परिघमाददे ॥ स गणेशो महावीरो बालोऽबालपराक्रमः ॥ ३३ ॥

वास्तवमें स्वतंत्र निर्गुणहो, हे प्रभो ! इस समय यह क्या लीला रची है, सो आप इसको कहैं ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार उनके यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ महेश्वर गणोंको छिन्न भिन्न देखकर उनसे सब बात कहते हुए ॥ २५ ॥ हे मुनिराज ! तब सबके अधिपति शिवजी महाराज गिरिजाके पति हँसकर ब्रह्माजीसे कहने लगे ॥ २६ ॥ शिवजी बोलेहे ब्रह्माजी ! सुनो हमारे मंदिरके द्वारेपर एक बालक उपस्थित है, वह महाबली लकडी लिये हुए है, जो कोई घरमें आता है, उसका प्रवेश वह निवारण कर देता है ॥ २७ ॥ वह महाप्रहारका करनेवाला मेरे पार्षदोंको भी प्रहार करता और उनसे प्रहार नहीं खाता है, उसने मेरे गणोंको बलपूर्वक पराजित कर दिया है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्ही वहां जाकर इस बालकको प्रसन्न करो, हे ब्रह्माजी ! जिस प्रकार क्लेश न बढे वही आपको करना चाहिये ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे शिवजीके वचन सुनकर अज्ञानसे मोहित हो विशेष बातको न जानकर मैं उस बालकके निकट सब ऋषियोंके संग गया ॥ ३० ॥ वह महाबली गणेशजी मुझे आया हुआ देखकर क्रोधकर दौडकर मेरी डाढी मूंछै नौचने लगे ॥ ३१ ॥ तब मैंने कहा हे देव ! क्षमा करो क्षमा करो मैं युद्धके लिये नहीं आयाहूं, मैं ब्रह्मा हूं मेरे पर अनुग्रह करना चाहिये, मैं उपद्रवरहित शांति करनेवाला हूं ॥ ३२ ॥ हे नारदजी ! मैं ऐसा कह ही रहा, था कि तबतक उस महाबली युवाओंकी समान पराक्रमी बालक गणेशने परिघको ग्रहण किया ॥ ३३ ॥

उस महाबली गणेशको परिघ ग्रहण करता हुआ देखकर मैं उसी समय शीघ्रतासे वहांसे पलायनकर गया ॥ ३४ ॥ परिघसे ताडित हो मेरे साथी सब चलो
चलो कहने लगे, कोई स्वयं पतित होगये, और कोई उन गणेशके प्रहारसे पतित हुए ॥ ३५ ॥ कोई उसी समय शिवजीके समीप जाकर वह सब वृत्तान्त
शिवजीसे सुनाते हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकार उनकी गति देख और इस वृत्तान्तको सुनकर लीलाविशारद शंकरको बडा क्रोध हुआ ॥ ३७ ॥ इन्द्रादिक देवता
और षण्मुख आदि गण भूत प्रेत पिशाच गण सबको ही शिवजीने आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ वे सब यथायोग्य सब ओरसे धावमान हुए और शिवकी आज्ञासे

गृहीतपरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम् ॥ पलायनपरो यातस्त्वहं द्रुततरं तदा ॥ ३४ ॥ यात यात ब्रुवंतस्ते परिघेन हतास्तदा ॥
स्वयं च पतिताः केचित्केचित्तेन निपातिताः ॥ ३५ ॥ केचिच्च शिवसामीप्यं गत्वा तत्क्षणमात्रतः ॥ शिवं विज्ञापयांचक्रुस्तद्वृतां
तमशेषतः ॥ ३६ ॥ तथाविधांश्च तान् दृष्ट्वा तद्वृत्तांतं निशम्य सः ॥ अपारमादधे कोपं हरो लीलाविशारदः ॥ ३७ ॥ इन्द्रादिकान्दे
वगणान् षण्मुखप्रवरान् गणान् ॥ भूतप्रेतपिशाचांश्च सर्वानादेशयत्तदा ॥ ३८ ॥ ते सर्वे च यथायोग्यं गतास्ते सर्वतो दिशम् ॥ तं
गणं हंतुकामा हि शिवाज्ञाता उदायुधाः ॥ ३९ ॥ यस्य यस्यायुधं यच्च तत्तत्सर्वं विशेषतः ॥ तद्गणेशोपरि बलात्समागत्य विमोचितम्
॥ ४० ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ त्रिलोकस्था जनास्सर्वे संशयं परमं गताः ॥ ४१ ॥ न यातं ब्रह्मणोऽप्यायुर्ब्रह्मांडं
क्षयमेति हि ॥ अकाले च तथा नूनं शिवेच्छावशतः स्वयम् ॥ ४२ ॥ ते सर्वे चागतास्तत्र षण्मुखाद्याश्च ये पुनः ॥ देवा व्यर्थायुधा
जाता आश्चर्यं परमं गताः ॥ ४३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी जगदम्बा विबोधना ॥ ज्ञात्वा तच्चरितं सर्वमपारं क्रोधमादधे ॥ ४४ ॥

आयुध उठाकर उनके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३९ ॥ जिस जिसका जो आयुध था, वह उसने विशेष रूपसे बलपूर्वक आकर गणेशजी पर प्रहार
किया ॥ ४० ॥ उस समय चराचर त्रिलोकीमें बडा हाहाकार मचगया त्रिलोकीके सब मनुष्य परम संदेहको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ ब्रह्माकी आयु समाप्त नहीं
हुई, ब्रह्माण्ड किस प्रकार क्षयको प्राप्त होताहै, यह अकालमें निश्चय शिवकी इच्छाके वशसेही होता है ॥ ४२ ॥ हे मुने ! वे षण्मुखको आदि लेकर सम्पूर्ण
गण व्यर्थ आयुधवाले होगये, यह देखकर सम्पूर्ण देवता बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ इसी समय जगदम्बा देवी भी इस वृत्तान्तको जानकर अपार

क्रोध करती हुईं ॥ ४४ ॥ हे मुनिश्वर ! देवीने उस समय अपने गणकी सहायताके निमित्त दो शक्तियें निर्माण कीं ॥४५॥ हे महामुने ! एक तो महाप्रचण्ड रूप धारण कर वहां स्थित हुई, और श्याम पर्वतकी समान उसका मुख बडा कृष्ण और गुफाकी समान मुख:विवर था ॥ ४६ ॥ और एक बिजलीकी समान स्वरूपवाली बहुत हाथोंसे युक्त थी, यह देवी भी बडी भयंकर दुष्टोंको दंड देनेवाली थी ॥ ४७ ॥ देवता और गणोंने सबही प्रकारके आयुधोंका प्रहार किया, और वे गणेशके सन्मुख चलाये ॥ ४८ ॥ परन्तु उस परिघके चारों ओर देवताओंके आयुध दिखाई नहीं देते थे, इस प्रकार उन दोनोंके

शक्तिद्वयं तदा तत्र तया देव्या मुनीश्वर ॥ निर्मितं स्वगणस्यैव सर्वसाहाय्यहेतवे ॥ ४५ ॥ एका प्रचंडरूपं च धृत्वातिष्ठन्महामुने ॥ श्यामपर्वतसंकाशं विस्तीर्य मुखगह्वरम् ॥ ४६ ॥ एका विद्युत्स्वरूपा च बहुहस्तसमन्विता ॥ भयंकरा महादेवी दुष्टदंडविधायिनी ॥४७॥ आयुधानि च सर्वाणि मोचितानि सुरैर्गणैः ॥ गृहीत्वा स्वमुखे तानि ताभ्यां शीघ्रं च चिक्षिपे ॥ ४८ ॥ देवायुधं न दृश्येत परिघः परितः पुनः ॥ एवं ताभ्यां कृतं तत्र चरितं परमाद्भुतम् ॥ ४९ ॥ एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम् ॥ यथा गिरिवरेणैव लोडितस्सागरः पुरा ॥ ५० ॥ एकेन निहतास्सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा ॥ शंकरस्य गणाश्चैव व्याकुला अभवंस्तदा ॥ ५१ ॥ अथ सर्वे मिलित्वा ते निश्वस्य च मुहुर्मुहुः ॥ परस्परं समूचुस्ते तत्प्रहारसमाकुलाः ॥ ५२ ॥ ॥ देवगणा उचुः ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न ज्ञायंते दिशो दश ॥ परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च ॥ ५३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतत्कालेऽप्सरःश्रेष्ठाः पुष्पचन्दनदाणयः ॥ ऋषयश्च त्वदाद्या हि येऽतियुद्धे तिलालसाः ॥ ५४ ॥

आयुधोंने वहां परम अद्भुत चरित्र किया ॥ ४९ ॥ एकही बालकने सम्पूर्ण सेनाको विलोडितकर डाला, जैसे मंदरने पूर्वकालमें समुद्रको विलोडडाला था ॥ ५० ॥ एकनेही इन्द्रादिक सब देवताओंको निहत कर दिया तब उस समय शिवजीके गण व्याकुल होगये ॥ ५१ ॥ तब वे सब मिलकर और वारंवार श्वास लेकर गणेशके प्रहारसे व्याकुलहो परस्पर कहने लगे ॥ ५२ ॥ देवगण बोले क्या करैं कहां जांय दशों दिशा दिखाई नहीं देतीं केवल बायें दायें परिघही घूमता दीखता है ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले इसी समयमें श्रेष्ठअप्सरा पुष्प और चंदन हाथमें लिये और वह सब ऋषि मुनि जो युद्धकी लालसा

करनेवाले हैं ॥ ५४ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह सबही उस युद्धके दर्शन करनेके लिये आये, हे नारदजी ! उस समय युद्धदर्शनवालोंसे आकाश भर गया॥ ५५॥ वे इस युद्धको देखकर महा विस्मयको प्राप्त हुए, कि इस प्रकारका युद्ध तो हमने कभी देखा नहीं ॥ ५६ ॥ उस समय समुद्रके सहित पृथिवी कांपने लगी, और पर्वत चूर्ण होकर संग्रामकी सूचना करने लगे ॥ ५७ ॥ द्युलोक ग्रह तारागण सब संहत होकर व्याकुल होने लगे, उस समय सब देवता और गण पलायमान होगये ॥ ५८ ॥ केवल परम विक्रमी कार्तिकेय ही उस स्थानपर स्थित हो रहे, और पलायमान न हुए ॥ ५९ ॥ उन दोनों शक्तियोंने उस

ते सर्वे च समाजग्मुर्युद्धसंदर्शनाय वै ॥ पूरितो व्योमसन्मार्गस्तैस्तदा मुनिसत्तम ॥ ५५ ॥ तास्ते दृष्ट्वा रणं तं वै महाविस्मयमागताः ॥ ईदृशं परमं युद्धं न दृष्टं चैकदापि हि ॥ ५६ ॥ पृथिवी कंपिता तत्र समुद्रसहिता तदा ॥ पर्वताः पतिताश्चैव चक्रुः संग्रामसंभवम् ॥ ५७ ॥ द्यौर्ग्रहर्क्षगणैर्घूर्ण्णा सर्वे व्याकुलतां गताः ॥ देवाः पलायितास्सर्वे गणाश्च सकलास्तदा ॥५८॥ केवलं षण्मुखस्तत्र नापलायत विक्रमी ॥ महावीरस्तदा सर्वानावार्य पुरतः स्थितः ॥ ५९ ॥ शक्तिद्वयेन तद्युद्धे सर्वे च निष्फली कृताः ॥ सर्वास्त्राणि निकृत्तानि संक्षिप्तान्यमरैर्गणैः ॥ ६० ॥ येऽवस्थिताश्च ते सर्वे शिवस्यांतिकमागताः ॥ देवाः पलायितास्सर्वे गणाश्च सकलास्तदा ॥ ६१ ॥ ते सर्वे मिलिताश्चैव मुहुर्नत्वा शिवं तदा ॥ अब्रुवन्वचनं क्षिप्रं कोऽयं गणवरः प्रभो ॥ ६२ ॥ पुरा चैव श्रुतं युद्धमिदानीं बहुधा पुनः ॥ दृश्यते न श्रुतं दृष्टमीदृशं तु कदाचन ॥ ६३ ॥ किंचिद्विचार्यतां देव त्वन्यथा न जयो भवेत् ॥ त्वमेव रक्षकस्स्वामिन्ब्रह्मांडस्य न संशयः ॥ ६४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा रुद्रः परमकोपनः ॥ कोपं कृत्वा च तत्रैव जगाम स्वगणैस्सह ॥ ६५ ॥

युद्धमें सबको व्याकुल कर दिया, और देवताओंके चलाये हुए सब अस्त्र निष्फल कर दिये काट दिये॥ ६० ॥ जो शेष बचे वे सब शिवजीके समीप चले गये, सब देवता और गण पलायमान हो गये ॥६१॥ वे सब मिलकर और शिवजीको प्रणाम करके शीघ्रतासे बोले हे प्रभो यह कौनसा गण है ॥ ६२ ॥ पहले बहुतसे युद्धोंका वृत्तान्त हमने सुना है इस समय बहुतसे युद्ध देखे सुने हैं पर इस प्रकारका युद्ध तो कभी न देखा न सुना ॥ ६३ ॥ हे देव ! इसमें कुछ विचार कियाजाय, नहीं तो जय न होगी, हे स्वामिन् ! ब्रह्माण्डके तो आपही रक्षकहो, इसमें सन्देह नहीं है ॥६४॥ ब्रह्माजी बोले यह वचन सुनकर

परमकोपन स्वभाव रुद्र महाकोपकर अपने गणोंके सहित स्वयं वहां गये ॥ ६५ ॥ वह सब देवताओंकी सेना चक्रधारी विष्णुके साथ बडा उत्सव करती
शिवजीके पीछे चली ॥ ६६ ॥ इसी समय हे नारदजी ! तुम देवदेव महेश्वरको नमस्कार कर हाथ जोडकर कहने लगे ॥६७॥ नारदजी बोले हे देवदेव !
हे महादेव हे विभो ! तुम मेरे वचन सुनो, हे स्वामी आप अनेक लीला करनेमें चतुर सर्वगामी हो ॥ ६८ ॥ आपने यह महालीला करके गणोंका गर्व दूर
कर दिया, हे देव ! शंकर गणराजको महाबल देकर आपने देवताओंका गर्व चूर्ण किया ॥ ६९ ॥ हे देव ! शंभो ! हे सबके गर्व दूरकरनेवाले, हे स्वतंत्र !

देवसैन्यं च तत्सर्वं विष्णुना चक्रिणा सह ॥ समुत्सवं महत्कृत्वा शिवस्यानुजगामह ॥ ६६ ॥ एतस्मिन्नंतरे भक्त्या नमस्कृत्य महे
श्वरम् ॥ अब्रवीन्नारद त्वं वै देवदेवं कृतांजलिः ॥ ६७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव महादेव शृणु मद्वचनं विभो ॥ त्वमेव सर्वग
स्स्वामी नानालीलाविशारदः ॥ ६८ ॥ त्वया कृत्वा महालीलां गणगर्वोऽपहारितः ॥ अस्मै दत्त्वा बलं भूरि देवगर्वश्च शंकर ॥ ६९ ॥
दर्शितं भुवने नाथ स्वमेव बलमद्भुतम् ॥ स्वतंत्रेण त्वया शंभो सर्वगर्वप्रहारिणा ॥ ७० ॥ इदानीं न कुरुष्वेश तां लीलां भक्तवत्सल ॥
स्वगणानमरांश्चापि सुसन्मान्याभिवर्द्धय ॥ ७१ ॥ इमं न खेलयेदानीं जहि ब्रह्मपदप्रद ॥ इत्युक्त्वा नारद त्वं वै ह्यंतर्द्धानं गतस्तदा
॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रुद्रसंहितायां च० कुमारखंडे गणेशयुद्धवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
इति श्रुत्वा महेशानो भक्तानुग्रहकारकः ॥ त्वद्वाचा युद्धकामोभूत्तेन बालेन नारद ॥ १ ॥ विष्णु माहूय संमंत्र्य बलेन महता युतः ॥
सामरस्सम्मुखस्तस्याप्यभूद्देवस्त्रिलोचनः ॥ २ ॥

आपने भुवनमें अपना अद्भुत बल प्रत्यक्ष कर दिखाया ॥ ७० ॥ हे भक्तवत्सल ! इस समय आप यह लीला न करैं, अपने गण और देवताओंको सन्मानसे
बढाइये ॥ ७१ ॥ हे ब्रह्मपदके देनेवाले इस समय खेल न करके जय कीजिये, नारदजी ऐसा कहकर वहां से अन्तर्धान होगये ॥७२॥ इति श्रीशिवम०
भाषाटीकायां रु० च० कु० गणेशयुद्धवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रहकरनेवाले शिवजीने तुम्हारे
वचनोंसे उस बालकके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की ॥१॥ विष्णुजीको बुलाय इस विषयमें सम्मति करके बडी सेनाके साथ देव त्रिलोचन उसके सन्मुख

गये ॥ २ ॥ महाबली बडे उत्साही शिवजीकी दृष्टिसे देखे हुए देवताओंने शिवके चरणकमलोंका ध्यान करके उससे युद्ध करना आरंभ किया ॥ ३ ॥ तब महाबली बडे पराक्रमी विष्णुजी उस बालकसे युद्ध करने लगे, इस ओर वीरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् शिवरूप प्रवीण बालक महादेवीके आयुध ॥ ४ ॥ यष्टिको लेकर गणेशजी देवताओंमें श्रेष्ठ देवगणोंपर प्रहार करने लगे और शक्तिके दिये हुए आयुधसे उस महावीरने सहसा विष्णुके ऊपर यष्टिका प्रहार किया ॥ ५॥ हे मुने ! जिस समय उस बालकने यष्टिका प्रहार किया उस समय विष्णुकी यह दशा देख सब देवतोंका बल ह्रास होगया और वे युद्धसे पराङ्मुख हुए ॥

देवाश्च युयुधुस्तेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ महाबला महोत्साहाश्शिवसद्दृष्टिलोकिताः ॥ ३ ॥ युयुधेऽथ हरिस्तेन महाबलपराक्रमः ॥
महादेव्यायुधो वीरः प्रवणः शिवरूपकः ॥ ४ ॥ यष्ट्या गणाधिपस्सोथ जघानामरपुङ्गवान् ॥ हरिं च सहसा वीरश्शक्तिदत्तमहबलः
॥ ५ ॥ सर्वेऽमरगणास्तत्र विकुंठितबला मुने ॥ अभूवन् विष्णुना तेन हता यष्ट्या पराङ्मुखाः ॥ ६ ॥ शिवोपि सह सैन्येन युद्धं
कृत्वा चिरं मुने ॥ विकरालं च तं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥ ७ ॥ छलेनैव च हंतव्यो नान्यथा हन्यते पुनः ॥ इति बुद्धिं
समास्थाय सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ शिवे दृष्टे तदा देवे निर्गुणे गुणरूपिणि ॥ विष्णौ चैवाथ संग्रामे आयाते सर्वदेवताः
॥ ९ ॥ गणाश्चैव महेशस्य महाहर्षं तदा ययुः ॥ सर्वे परस्परं प्रीत्या मिलित्वा चक्रुरुत्सवम् ॥ १० ॥ अथ शक्तिसुतो वीरो
वीरगत्या स्वयष्टितः ॥ प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्वसुखावहम् ॥ ११ ॥ अहं च मोहयिष्यामि हन्यतां च त्वया विभो ॥ छलं
विना च वध्योऽयं तामसोयं दुरासदः ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ हे मुने ! शिवजी भी अपनी सेनाके सहित चिरकाल तक युद्ध करके उस बालकको विकराल स्वरूप देखकर परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ यह बालक कौशलसेही मृतक होसकताहै अन्यथा नहीं ऐसे निश्चयमें स्थितहो शिवजी सेनाके मध्यमें स्थित हुए ॥ ८ ॥ तब निर्गुण और सगुण रूपवाले देव शंकर और विष्णुजीको संग्राममें आया देखकर सब देवता ॥ ९ ॥ और शिवजीके सब गण बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुए, और परस्पर मिलकर उत्सव करने लगे ॥ १० ॥ तब शक्तिके पुत्र गणेशजीने वीरगतिको प्राप्त होकर अपनी यष्टिसे प्रथम विष्णुजीको पूजा [अर्थात् प्रहार] किया ॥ ११ ॥ तब विष्णुने

शंकरसे कहा हे विभो मैं तो इस बालकको मोहित करताहूं और आप इसको नष्ट करैं, यह विना कौशलके मर नहीं सकता, कारण कि यह तमोगुणवाला बडा दुर्जय है ॥ १२ ॥ इस प्रकार मति करके और शिवजीसे सम्मतिकर शैवी आज्ञाको प्राप्त हो उस समय विष्णुजी मोहको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ विष्णुजीकी यह दशा देख वे पार्वतीकी प्रगट कीहुई दोनों शक्तियें लय होगईं और हे मुने ! अपना सब बल उन्होंने गणेशजीको दे दिया ॥ १४ ॥ जब इस प्रकारसे दोनों शक्तियें लीन होगईं तब जहां विष्णुजी थे गणेशजीने उनपर परिघका प्रहार किया ॥ १५ ॥ विष्णुजीने उस समय भक्तवत्सल अपने प्रभु

इति कृत्वा मतिं तत्र सुसंमंत्र्य च शंभुना ॥ आज्ञां प्राप्याऽभवच्छैवीं विष्णुर्मोहपरायणः ॥ १३ ॥ शक्तिद्वयं तथा लीनं हरिं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ दत्वा शक्तिबलं तस्मै गणेशायाभवन्मुने ॥ १४ ॥ शक्तिद्वयेथ संलीने यत्र विष्णुः स्थितस्स्वयम् ॥ परिघं क्षिप्तवांस्तत्र गणेशो बलवत्तरः ॥ १५ ॥ कृत्वा यत्नं किमप्यत्र वंचयामास तद्गतिम् ॥ शिवं स्मृत्वा महेशानं स्वप्रभुं भक्तवत्सलम् ॥ १६ ॥ एकतस्तन्मुखं दृष्ट्वा शंकरोप्याजगाम ह ॥ स्वत्रिशूलं समादाय सुक्रुद्धो युद्धकाम्यया ॥ १७ ॥ स ददर्शागतं शंभुं शूलहस्तं महेश्वरम् ॥ हंतुकामं निजं वीरश्शिवापुत्रो महाबलः ॥ १८ ॥ शक्त्या जघान तं हस्ते स्मृत्वा मातृपदांबुजम् ॥ स गणेशो महावीरश्शिवशक्तिप्रवर्द्धितः ॥ १९ ॥ त्रिशूलं पतितं हस्ताच्छिवस्य परमात्मनः ॥ दृष्ट्वा सदूतिकस्तं वै पिनाकं धनुराददे ॥ २० ॥ तमप्यपातयद्भूमौ परिघेण गणेश्वरः ॥ हताः पंच तथा हस्ताः पञ्चभिश्शूलमाददे ॥ २१ ॥

महेश्वर ईशानको स्मरण कर उनकी गतिको महायत्न करके वंचित करदिया ॥ १६ ॥ इस ओर शंकरभी एक ओरसे बालकका मुख देखते हुए क्रोधकर हाथमें त्रिशूल लेकर उस स्थानमें आये ॥ १७ ॥ तब महाबली शिवापुत्रने हाथमें त्रिशूल लिये महेश्वर शिवको अपने मारनेको आते हुए देखा ॥ १८ ॥ तब गणेशजीने अपनी माताके चरणकमलको स्मरण कर महादेवजीके हाथमें शक्तिका प्रहार किया, वह महावीर गणेशजी शिवजीकी शक्तिसे बढे हुएहैं ॥ ॥ १९ ॥ शक्तिके लगनेसे परमात्मा शिवके हाथसे धनुष गिर पडा तब यह देखकर उन्होंने पिनाक धनुषको धारण किया ॥ २० ॥ गणेश्वरने परिघके

बहुत समय बीत गया ॥ ३१ ॥ फिर वीरोंमें श्रेष्ठ महाबली शक्तिपुत्रने शिवको स्मरणकर उस अतुल यष्टिको ग्रहणकर उससे विष्णुपर प्रहार किया ॥
॥ ३२ ॥ विष्णुजी उस प्रहारको न सहकर पृथिवीपर गिरपडे और फिर शीघ्रतासे उठकर शिवापुत्रके साथ संग्राम करने लगे ॥ ३३ ॥ इसी अंतरको
प्राप्त होकर शिवजीने बहुत शीघ्रतासे जाकर त्रिशूलसे उस बालकका शिर काट दिया ॥ ३४ ॥ हे नारदजी ! जिस समय उस बालकका शिर छिन्न होगया
उस समय देवता और गणोंकी सेना निश्चल होगई ॥ ३५ ॥ हे नारदजी ! उसीसमय तुमने जाकर यह सब बात देवीसे कहदी हे मानिनि ! सुनो तुम

पुनर्वीरवरश्शक्तिसुतस्स्मृतशिवो बली ॥ गृहीत्वा यष्टिमतुलां तया विष्णुं जघान ह ॥ ३२ ॥ अविषह्य प्रहारं तं स भूमौ निपपात ह ॥
द्रुतमुत्थाय युयुधे शिवापुत्रेण तेन वै ॥ ३३ ॥ एतदंतरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे ॥ आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृंतत
॥ ३४ ॥ छिन्ने शिरसि तस्यैव गणनाथस्य नारद ॥ गणसैन्यं देवसैन्यमभवच्च सुनिश्चलम् ॥ ३५ ॥ नारदेन त्वयाऽऽगत्य देव्यै सर्वं
निवेदितम् ॥ मानिनि श्रूयतां मानस्त्याज्यो नैव त्वयाधुना ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितस्तत्र नारद त्वं कलिप्रियः ॥ अविकारी सदा
शंभुर्मनोगतिकरो मुनिः ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्धगणेशशिरश्छेदन
वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मन् वद महाप्राज्ञ तद्वृत्तान्तेखिले श्रुते ॥ किमकार्षीन्महादेवी श्रोतु
मिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयतां मुनिशार्दूल कथयाम्यद्य तद्ध्रुवम् ॥ चरितं जगदंबाया यज्जातं तदनंतरम् ॥ २ ॥
मृदंगान्पटहांश्चैव गणाश्चावादयंस्तथा ॥ महोत्सवं तदा चक्रुर्हते तस्मिन्गणाधिपे ॥ ३ ॥

अपना मान किसी प्रकार मत त्यागन करना ॥ ३६ ॥ हे नारद ! कलहप्रिय तुम इस प्रकार कहकर अन्तर्धान होगये, कारण कि तुम अविकारी सदा
शिवकी मनकी गतिके अनुसार करनेवाले हो ॥३७॥ इति श्रीशिवमहापुरणे भाषायां रु० च० कु० षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् !
हे महाप्राज्ञ ! आप यह कहिये उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको सुनकर महादेवीने क्या किया सो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! सुनो
मैं उस वृत्तान्तको सम्पूर्ण रूपसे कहता हूं, इसके उपरान्त जो जगदम्बाने चरित्र किया उसको आप सुनिये ॥ २ ॥ उस समय शिवजीके गण गणेशजीके

मरजानेपर मृदंग पटह बजांकर महोत्सव करनेलगे ॥ ३ ॥ शिवजी गणराजका शिर छेदन करके जबतक कुछ दुःख पावैं हे मुनीश्वर ! तबतक पार्वतीको बडा क्रोध आगया ॥ ४ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं हा हा मुझे बडा दुःख प्राप्त हुआ है, मुझे जो महान् दुःख है मेरा यह दुःख किस प्रकार नष्ट हो सकता है ॥ ५ ॥ सब देवता और गणोंने मेरे पुत्रका नाश कर दिया है, सो मैं भी सबका नाश वा प्रलय कर दूंगी ॥ ६ ॥ इस प्रकार दुःखी होकर पार्वतीने सहस्रों सौ हजार शक्तियोंकी रचना करडाली, और सब लोकोंकी महेश्वरी एक क्षणमात्रमें क्रोधमें भरगई ॥ ७ ॥ वे निर्मित हुई शक्तियें उस जगदम्बा

शिवोपि तच्छिरश्छित्वा यावद्दुःखमुपाददे ॥ तावच्च गिरिजा देवी चुक्रोधाति मुनीश्वर ॥ ४ ॥ किं करोमि [illegible]च्छामि हाहा दुःख
सुपागतम् ॥ कथं दुःखं विनश्येतास्याऽतिदुःखं ममाधुना ॥ ५ ॥ मत्सुतो नाशितश्चाद्य देवैस्सर्वैर्गणैस्तथा ॥ सर्वांस्तान्नाशयिष्यामि
प्रलयं वा करोम्यहम् ॥ ६॥ इत्येवं दुःखिता सा च शक्तीश्शतसहस्रशः ॥ निर्ममे तत्क्षणं क्रुद्धा सर्वलोकमहेश्वरी ॥ ७ ॥ निर्मितास्ता
नमस्कृत्य जगदंबां शिवां तदा ॥ जाज्वल्यमाना ह्यवदन्मातरादिश्यतामिति ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा शंभुशक्तिस्सा प्रकृतिः क्रोधतत्परा ॥
प्रत्युवाच तु तास्सर्वा महामाया मुनीश्वर ॥ ९ ॥ देव्युवाच ॥ हे शक्तयोऽधुना देव्यो युष्माभिर्मन्निदेशतः ॥ प्रलयश्चात्र कर्त्तव्यो नात्र
कार्या विचारणा ॥ १० ॥ देवांश्चैव ऋषींश्चैव यक्षराक्षसकांस्तथा ॥ अस्मदीयान्परांश्चैव सख्यो भक्षत वै हठात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
तदाज्ञताश्च तास्सर्वाश्शक्तयः क्रोधतत्पराः ॥ देवादीनां च सर्वेषां संहारं कर्तुमुद्यताः ॥ १२ ॥ यथा च तृणसंहारमनलःकुरुते तथा ॥
एवं ताश्शक्तयस्सर्वास्संहारं कर्तुमुद्यताः ॥ १३ ॥

शिवाको प्रणाम करके तेजसे प्रकाशित हो कहने लगीं हे मातः ! क्या आज्ञा होती है ॥ ८ ॥ यह सुनकर क्रोधमें भरकर वह शिवकी शक्ति महामाया उन सबसे इस प्रकार कहने लगी ॥ ९ ॥ देवी बोली हे शक्तियो ! तुम सब देवी अभी मेरी आज्ञासे इस देवसेनामें जाकर प्रलय करडालो इसमें विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं है ॥ १० ॥ देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, अपने पराये जो मिलैं, इन सबको हठसे भक्षण करजाओ ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले पार्वतीकी आज्ञासे वह सब शक्तियें क्रोधमें तत्पर होकर सब देवादिका संहार करनेमें उद्यत हो गईं ॥ १२ ॥ जैसे अग्नि तृणोंका संहार करती है इसी प्रकार

द्वारा उसको भी पृथिवी पर गिरादिया, और शूलद्वारा शिवजीके पांच हाथोंको गणेशने व्यर्थ कर दिया ॥ २१ ॥ तब शिवजीने लोकाचारसे यह बात कही अहो कितने दुःखकी बात है जब मेरी यह दशाहै तब गणोंकी तो क्या दशा न होगी ॥२२॥ इसी समय शक्तिके दिये बलसे युक्त होकर वीर गणेशजीने परिघसे सब गण और देवताओंको ताडित किया ॥ २३ ॥ परिघसे व्याकुलहो वे देवता और गण दूर चले गये और उस अद्भुत प्रहार करनेवालेके सन्मुख कोई भी न ठहर सका ॥ २४ ॥ तब विष्णुने उस महाबली महावीर महाशूर रणप्रिय गणको देखकर कहा कि इसको धन्य है ॥ २५ ॥ हमने बहुतसे देवता,

अहो दुःखतरं नूनं संजातमधुना मम ॥ भवेत्पुनर्गणानां किं भवाचारी जगाविति ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नंतरे वीरः परिघेण गणेश्वरः ॥ जघान सगणान् देवान् शक्तिदत्तबलान्वितः ॥ २३ ॥ गता दशदिशो देवास्सगणाः परिघार्दिताः ॥ न तस्थुस्समरे केपि तेनाद्भुतप्रहारिणा ॥२४॥ विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योयमिति चाब्रवीत् ॥ महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः ॥२५॥ बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः ॥ दानवा बहवो दैत्या यक्षगंधर्वराक्षसाः ॥२६॥ नैतेन गणनाथेन समतां यांति केपि च ॥ त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजोरूपशौर्यगुणादिभिः ॥२७॥ एवं संब्रुवतेऽमुष्मै परिघं भ्रामयन् स च ॥ चिक्षेप विष्णवे तत्र शक्तिपुत्रो गणेश्वरः ॥२८॥ चक्रं गृहीत्वा हरिणा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ तेन चक्रेण परिघो द्रुतं खंडीकृतस्तदा ॥ २९ ॥ खंडं तु परिघस्यापि हरये प्राक्षिपद्गणः ॥ गृहीत्वा गरुडेनापि पक्षिणा विफलीकृतः ॥ ३० ॥ एवं विचारितं कालं महावीरावुभावपि ॥ विष्णुश्चापि गणश्चैव युयुधाते परस्परम् ॥ ३१ ॥

दानव, दैत्य, यक्ष, गंधर्व, राक्षस देखेहैं ॥ २६ ॥ पर इस गणेश्वरकी समताको तो कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता यह सब त्रिलोकीमें तेजरूप शूरता आदिके गुणोंसे युक्त हैं ॥ २७ ॥ विष्णुजी ऐसा कहरहे थे, कि इतनेमें परिघको घुमाते हुए शक्तिपुत्र गणेश्वरने उसको विष्णुजीपर प्रहार किया ॥ २८ ॥ तब शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर विष्णुजीने चक्र ग्रहण करके उस परिघके खंड खंड करदिये ॥२९॥ तब गणेश्वरने उस खंड परिघको ही विष्णुके ऊपरप्रहार किया तब गरुडजीने अपने पंखोंसे उसको ग्रहण करके विफल करदिया ॥ ३० ॥ इस प्रकार महावीर विष्णु और गणेश्वरको युद्ध करते करते

वह सब शक्तियें संहार करनेको उद्यत हुईं ॥ १३ ॥ गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, वा शंकर, इन्द्र, वा यक्षराज स्कन्द सूर्य ॥ १४ ॥ वह सबकाही संहार करनेको उद्यत होगईं जहां देखो वहां शक्तियेंही दिखाई देती थीं ॥ १५ ॥ कराली, कुब्जका, खंजा, लम्बशीर्षा इत्यादि अनेक शक्तियें हाथसे देवताओंको पकडकर मुखमें डालने लगीं ॥ १६ ॥ हर, ब्रह्मा, और हरि, इस प्रकार उस संहारको देखकर इन्द्रादि सब देवतागण और ऋषि ॥ १७ ॥ सब कोई जीवनसे हताश होकर कहने लगे, क्या देवी अकालमेंही प्रलय कर देगी, इस प्रकारका सबको संदेह होगया ॥ १८ ॥ सब मिलकर परस्पर विचार करने

गणपो वाथ विष्णुर्वा ब्रह्मा वा शंकरस्तथा ॥ इन्द्रो वा यक्षराजो वा स्कंदो वा सूर्य एव वा ॥ ॥ १४ ॥ सर्वेषां चैव संहारं कुर्वंति स्म निरंतरम् ॥ यत्रयत्र तु दृश्येत तत्रतत्रापि शक्तयः ॥ १५ ॥ कराली कुब्जका खंजा लंबशीर्षा ह्यनेकशः ॥ हस्ते धृत्वा तु देवांश्च मुखे चैवाक्षिपंस्तदा ॥ १६ ॥ तं संहारं तदा दृष्ट्वा हरो ब्रह्मा तथा हरिः ॥ इन्द्रादयोऽखिला देवा गणाश्च ऋषयस्तथा ॥ १७ ॥ किं करिष्यति सा देवी संहारं वाप्यकालतः ॥ इति संशयमापन्ना जीवनाशा हताऽभवत् ॥ १८ ॥ सर्वे च मिलिताश्चेमे किं कर्त्तव्यं विचिंत्यताम् ॥ एवं विचारयन्तस्ते तूर्णमूचुः परस्परम् ॥ १९ ॥ यदा च गिरिजा देवी प्रसन्ना हि भवेदिह ॥ तदा चैव भवेत्स्वास्थ्यं नान्यथा कोटियत्नतः ॥ २० ॥ शिवोपि दुःखमापन्नो लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ मोहयन्सकलांस्तत्र नानालीलाविशारदः ॥ २१ ॥ सर्वेषां चैव देवानां कटिर्भग्ना यदा तदा ॥ शिवा क्रोधमयी साक्षाद्गंतुं न पुर उत्सहेत् ॥ २२ ॥ स्वीयो वा परकीयो वा देवो वा दानवोपि वा ॥ गणो वापि च दिक्पालो यक्षो वा किन्नरो मुनिः ॥ २३ ॥

लगे अब क्या कियाजाय और परस्पर सब विचारकर बोले ॥ १९ ॥ यदि गिरिजा देवी प्रसन्न होजाय तभी स्वस्थता हो सकती है, अन्यथा करोड उपायसे भी न होगी ॥ २० ॥ लौकिकी गति दिखाते हुए शिवजी भी दुःखको प्राप्त हुए और वह अनेक लीला करनेमें चतुर उस समय सबको मोहित करने लगे ॥ २१ ॥ सब देवताओंकी उस समय कमर टूट गई और क्रोधमयी शिवाके भीतर मन्दिरमें जानेकी इच्छा न की ॥ २२ ॥ अपना पराया

---

१ परस्मैपदमार्षम् ।

व, दानव, गण, दिक्पाल, यक्ष, किन्नर, मुनि ॥ २३ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, वा महाप्रभु शंकर, हे मुने ! उस समय पार्वतीके आगे कोई भी ठहरनेको समर्थन
हुआ ॥ २४ ॥ उसके महाप्रकाशित चमकतेहुए तेजसे संतापित हो वे सब देवता भयभीत होकर दूरही स्थित हुए ॥ २५ ॥ उसी समय वहां दिव्यदर्शन
नारदजी देवताओंके सुखके निमित्त प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ मुझे ब्रह्मा, शिव, विष्णुजीको प्रणाम कर सबके साथ मिलकर विचार कार्य कहनेलगे ॥ २७ ॥
सब महात्मा देवता तुम्हारे सहित मिलकर विचार करने लगे और वह सब यह कहने लगे कि दुःखकी शांति किस प्रकारसे होगी ॥ २८ ॥ जबतक

विष्णुर्वापि तथा ब्रह्मा शंकरश्च तथा प्रभुः॥ न कश्चिद्गिरिजाग्रे च स्थातुं शक्तोऽभवन्मुने ॥ २४ ॥ जाज्वल्यमानं तत्तेजस्सर्वतोदाहि तेऽखिलाः
॥ दृष्ट्वा भीततरा आसन् सर्वे दूरतरं स्थिताः ॥ २५ ॥ एतस्मिन्समये तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥ आगतस्त्वं मुने देवगणानां
सुखहेतवे ॥ २६ ॥ ब्रह्माणं मां भवं विष्णुं शंकरं च प्रणम्य सः ॥ समागत्य मिलित्वोचे विचार्य कार्यमेव वा ॥ २७ ॥ सर्वे संमंत्रयां
चक्रुस्त्वया देवा महात्मना ॥ दुःखशांतिः कथं स्याद्वै समूचुस्तत एव ते ॥ २८ ॥ यावच्च गिरिजा देवी कृपां नैव करिष्यति ॥ तावन्नैवं
सुखं स्याद्वै नात्र कार्या विचारणा॥२९॥ऋषयो हि त्वदाद्याश्च गतास्ते वै शिवान्तिकम् ॥ सर्वे प्रसादयामासुः क्रोधशान्त्यै तदा शिवाम्
॥ ३० ॥ पुनः पुनः प्रणेमुश्च स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकशः ॥ सर्वे प्रसादयन्प्रीत्या प्रोचुर्देवगणाज्ञया ॥ ३१ ॥ सुरर्षय ऊचुः ॥ जगदम्ब नमस्तुभ्यं
शिवायै ते नमोस्तु ते ॥ चंडिकायै नमस्तुभ्यं कल्याण्यै ते नमोस्तु ते ॥ ३२ ॥ आदिशक्तिस्त्वमेवांब सर्वसृष्टिकरी सदा ॥ त्वमेव
पालिनी शक्तिस्त्वमेव प्रलयंकरी॥३३॥प्रसन्ना भव देवेशि शांतिं कुरु नमोस्तु ते ॥ सर्वं हि विकलं देवि त्रिजगत्तव कोपतः ॥३४॥

गिरिजा देवी कृपा नहीं करैगी, तबतक किसी प्रकारसे सुखकी प्राप्ति नहीं होगी इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ २९ ॥ तब तुमको आदि लेकर सब
ऋषि पार्वतीके समीप गये, और क्रोध शान्तिके लिये शिवाको सब कोई प्रसन्न करने लगे ॥ ३० ॥ वारंवार प्रणाम कर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके सब
देवता प्रसन्न करके भगवतीसे बोले ॥ ३१ ॥ देवर्षि बोले हे जगत्की माता ! हे शिवा ! तुमको प्रणाम है, हे चण्डिका ! हे कल्याणी ! तुमको प्रणाम है ॥
॥ ३२ ॥ तुमहीं आदि शक्ति और सब सृष्टिकी करनेवाली हो तुमहीं पालन और प्रलय करनेवाली शक्ति हो ॥ ३३ ॥ हे देवेशि ! तुम प्रसन्न होकर अब

शांति करो हे देवि ! आपके कोपसे सब जगत् व्याकुल हो रहा है ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे तुमको आदि लेकर ऋषियोंने परा देवीकी
स्तुति की तब भी क्रोधकी दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए शिवाने कुछभी न कहा ॥ ३५ ॥ तब सब ऋषियोंने भगवतीके चरणकमलोंको प्रणाम करके
परमभक्तिसे हाथ जोडकर स्तुति करनी आरंभ की ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले हे देवि ! क्षमा करो क्षमा करो इस समय संहार हुआ जाता है, हे अम्बिके !
तुम्हारे स्वामी यहां स्थित हैं उनको तो देखो ॥ ३७ ॥ और हम ब्रह्मा, विष्णु, आदि सब देवता तुम्हारी प्रजा हाथ जोडे हुए तुम्हारे सन्मुख खडे हैं ॥

ब्रह्मोवाच ॥ एवं स्तुता परा देवी ऋषिभिश्च त्वदादिभिः ॥ क्रुद्धदृष्ट्या तदा तांश्च किंचिन्नोवाच सा शिवा ॥ ३५ ॥ तदा च ऋषय
स्सर्वे नत्वा तच्चरणांबुजम् ॥ पुनरूचुश्शिवां भक्त्या कृतांजलिपुटाश्शनैः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ क्षम्यतां क्षम्यतां देवि संहारो जाय
तेऽधुना ॥ तव स्वामी स्थितश्चात्र पश्य पश्य तमंबिके ॥ ३७ ॥ वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा ॥ प्रजाश्च भवदीयाश्च कृतां
जलिपुटाः स्थिताः ॥ ३८ ॥ क्षंतव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि ॥ सर्वे हि विकलाश्चाद्य शांतिं तेषां शिवे कुरु ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवा
च ॥ इत्युक्त्वा ऋषयस्सर्वे सुदीनतरमाकुलाः ॥ संतस्थिरे चंडिकाग्रे कृतांजलिपुटास्तदा ॥ ४० ॥ एवं श्रुत्वा वचस्तेषां प्रसन्ना चंडि
काऽभवत् ॥ प्रत्युवाच ऋषींस्तान्वै करुणाविष्टमानसा ॥ ४१ ॥ देव्युवाच ॥ मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि ॥ यथा हि भवतां
मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति ॥ ४२ ॥ सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि ॥ तदा शांतिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ ॥ ४३ ॥

॥ ३८ ॥ हे परमेश्वरि ! अब इन सबका अपराध क्षमा करो हम सबही व्याकुल होरहे हैं हमारी शांति करो ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसे कहकर सब
देवता बडी दीनतासे व्याकुल होगये और हाथ जोडकर चण्डिकाके आगे खडे रहगये ॥ ४० ॥ तब उनके यह वचन सुनकर भगवती प्रसन्न हुई और
कृपा दृष्टिसे देखती हुई मनमें करुणाकर उन देवता ऋषियोंसे बोली ॥ ४१ ॥ देवी बोली मेरा पुत्र यदि जी जाय और तुम सबके मध्यमें वह प्रथम पूज्य हो
तो यह संहार नहीं होगा ॥ ४२ ॥ यदि तुम आजसे इसको सबका अध्यक्ष करसको तो लोकमें शांति होगी अन्यथा तुमको सुख नहीं मिलैगा ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले तब भगवतीके ऐसा कहनेपर वे तुमको आदि लेकर सब ऋषि उन देवताओंके समीप आकर यह सब वृत्तान्त निवेदन करते हुए ॥ ४४ ॥ उन सब देवताओंने सुनकर शंकरसे यह बात कही, और इन्द्रादि सब देवता हाथजोड दीन होकर खडे रह गये ॥ ४५ ॥ देवताओंके यह वचन सुनकर शिवजी बोले वह बात करनी चाहिये जिससे सब लोकका मंगल हो ॥ ४६ ॥ अच्छा उत्तर दिशाको चले जाओ इसमें जो पहले मिलै उसका शिर लाकर इस गणेश्वरके शरीरमें जोडदेना चाहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजी बोले तब उन शिवजीकी आज्ञा माननेवाले देवताओंने यह सब कुछ किया, कलेवरको

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्तास्ते तदा सर्वे ऋषयो युष्मदादयः ॥ तेभ्यो देवेभ्य आगत्य सर्वं वृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४४ ॥ ते च सर्वे तथा
श्रुत्वा शंकराय न्यवेदयन् ॥ नत्वा प्रांजलयो दीनाः शक्रप्रभृतयस्सुराः ॥ ४५ ॥ प्रोवाचेति सुराञ्छ्रुत्वा शिवश्चापि तथा पुनः ॥
कर्त्तव्यं च तथा सर्वलोकस्वास्थ्यं भवेदिह ॥ ४६ ॥ उत्तरस्यां पुनर्यात प्रथमं यो मिलेदिह ॥ तच्छिरश्च समाहृत्य योजनीयं कलेवरे ॥
॥ ४७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्तैस्तत्कृतं सर्वं शिवाज्ञाप्रतिपालकैः ॥ कलेवरं समानीय प्रक्षाल्य विधिवच्च तत् ॥ ४८ ॥ पूजयित्वा
पुनस्ते वै गताश्चोदङ्मुखास्तदा ॥ प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदंतकः ॥ ४९ ॥ तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् ॥
संयोज्य देवतास्सर्वाः शिवं विष्णुं विधिं तदा ॥ ५० ॥ प्रणम्य वचनं प्रोचुर्भवदुक्तं कृतं च नः ॥ अनंतरं च तत्कार्यं भवताद्भवशेषि
तम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्ते तु विरेजुश्च पार्षदाश्च सुराः सुखम् ॥ अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवोक्तं पर्य्यपलायन् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते
च तदा तत्र ब्रह्मविष्णुसुरास्तथा ॥ प्रणम्येशं शिवं देवं स्वप्रभुं गुणवर्जितम् ॥ ५३ ॥

लेकर और उसको विधिपूर्वक प्रक्षालन करके ॥ ४८ ॥ और उसको पूजनकरके वे उत्तर दिशाको गये, प्रथम उनको एक दांतवाला हाथी मिला ॥ ४९ ॥ उन्होंने उसका शिर काटकर लाय गणेशके कंधरपर संयुक्त करदिया, पीछे वे सब देवता ब्रह्मा, विष्णु, और शंकरके पास जाकर ॥ ५० ॥ प्रणाम कर बोले हे देव ! हमने अपना कृत्य सम्पूर्ण कर लिया, अब जो आपको कर्त्तव्य है सो आप अपना काम करैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहकर वह सब पार्षद वहां स्थित हुए और शिवजीके कहे सब वचनोंका पालन किया ॥ ५२ ॥ तब वे ब्रह्मा, विष्णु, आदि सब देवता अपने प्रभु निर्गुण ब्रह्म शंकरको प्रणामकर

कहने लगे ॥ ५३ ॥ जिस कारण कि तुम महात्माके तेजसे हम सब प्रगट हुए हैं, सो वेदमंत्रोंके योगसे वह तेज इसमें आकर प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ इस प्रकारके मंत्रसे जलको अभिमंत्रण कर शिवको स्मरण कर उन देवताओंने गणेशके शरीरपर जल छिडका ॥ ५५ ॥ उस जलको स्पर्श मात्रसेही वह बालक शिवजीकी इच्छासे सोते हुएकी समान उठ बैठा ॥ ५६ ॥ बहुत सुन्दर यह बालक गजमुख रक्त वर्ण प्रसन्न वदन बडी कांतिवाला बडी सुन्दर आकृतिवाला हुआ ॥ ५७ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय शिवापुत्र उस बालकको जीता हुआ देखकर सब कोई प्रसन्न होगये, और सबका दुःख क्षय होगया

यस्मात्त्वत्तेजसस्सर्वे वयं जाता महात्मनः ॥ त्वत्तेजस्तत्समायातु वेदमंत्राभियोगतः ॥ ५४ ॥ इत्येवमभिमंत्रेण मंत्रितं जलमुत्तमम् ॥ स्मृत्वा शिवं समेतास्ते चिक्षिपुस्तत्कलेवरे ॥ ५५ ॥ तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम् ॥ तदोत्तस्थौ सुप्त इव स बालश्च शिवेच्छया ॥ ५६ ॥ सुभगस्सुन्दरतरो गजवक्त्रस्सुरक्तकः ॥ प्रसन्नवदनश्चातिसुप्रभो ललिताकृतिः ॥ ५७ ॥ तं दृष्ट्वा जीवितं बालं शिवापुत्रं मुनीश्वर ॥ सर्वे मुमुदिरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥ ५८ ॥ देव्यै संदर्शयामासुः सर्वे हर्षसमन्विताः ॥ जीवितं तनयं दृष्ट्वा देवी हृष्टतराभवत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणेशजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे प्रजेश्वर ॥ ततः किमभवत्तत्र कृपया तद्वदाधुना ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे मुनीश्वर ॥ यज्जातं तच्छृणुष्वाद्य वच्मि ते महदुत्सवम् ॥ २ ॥ जीवितस्स शिवापुत्रो निर्व्यग्रो विकृतो मुने ॥ अभिषिक्तस्तदा देवैर्गणाध्यक्षैर्गजाननः ॥ ३ ॥

॥ ५८ ॥ और सबने प्रसन्न होकर देवीको दर्शन कराया, पुत्रको जीवित देखकर देवी बहुत प्रसन्न हुई ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रुद्रसंहितान्तर्गत च० कुमारखण्डे भाषाटीकायां गणेशजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥ नारदजी बोले हे देवेश्वर ! जब गिरिजाका पुत्र जीवित होगया तब क्या हुआ सो आप कृपाकर कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनीश्वर ! जब देवीने देखा कि मेरा पुत्र जीवित होगया उस समय जो हुआ सो मैं तुमसे कहता हूं उस समय महा उत्सव हुआ ॥ २ ॥ जिस समय वह शिवाके पुत्र जीवित हुए और विकारसे रहित हुए तब देवताओंने गजाननको गणाध्यक्षके पदपर अभिषिक्त

किया॥ ३ ॥ शिवादेवी अपने पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और दोनों भुजाओंसे पकडकर बालकको आलिंगन किया ॥ ४ ॥ अनेक प्रकारके अलंकार
और नाना प्रकारके वस्त्र जगदम्बाने बडे प्रेमसे अपने पुत्रके निमित्त दिये ॥ ५ ॥ सब सिद्धियों सहित देवीने उस बालकको सन्मानित किया और सब दुःख
हरनेवाले हाथसे उनका स्पर्श किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार पूजन कर देवीने अपने बालकका मुख चूमा और कहा बेटा तुमको बडा दुःख हुआ ऐसा कहकर
देवीने बहुतसे वर दिये ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! तुम धन्य और कृतकृत्य हो, तुम सबके पूज्य होगे सब देवताओंके पूजित होकर तुम दुःखसे वर्जित होगे ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा स्वतनयं देवी शिवा हर्षसमन्विता ॥ गृहीत्वा बालकं दोर्भ्यां प्रमुदा परिषस्वजे ॥ ४ ॥ वस्त्राणि विविधानीह नानालंकरणानि
च ॥ ददौ प्रीत्या गणेशाय स्वपुत्राय मुदांबिका ॥ ५ ॥ पूजयित्वा तया देव्या सिद्धिभिश्चाप्यनेकशः ॥ करेण स्पर्शितस्सोथ सर्वदुःख
हरेण वै ॥ ६ ॥ पूजयित्वा सुतं देवी मुखमाचुम्ब्य शांकरी ॥ वरान्ददौ तदा प्रीत्या जातस्त्वं दुःखितोऽधुना ॥ ७ ॥ धन्योसि कृत
कृत्योसि पूर्वपूज्यो भवाधुना ॥ सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः ॥ ८ ॥ आनने तव सिन्दूरं दृश्यते सांप्रतं यदि ॥ तस्मात्त्वं
पूजनीयोसि सिन्दूरेण सदा नरैः ॥ ९ ॥ पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च ॥ नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः ॥ १० ॥
तांम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि ॥ नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति ॥ ११ ॥ तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न
संशयः ॥ विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यंत्यसंशयम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा च तदा देवी स्वपुत्रं तं महेश्वरी ॥ नानावस्तुभि
रुत्कृष्टं पुनरप्यर्चयत्तथा ॥ १३ ॥ ततस्स्वास्थ्यं च देवानां गणानां च विशेषतः ॥ गिरिजाकृपया विप्र जातं तत्क्षणमात्रतः ॥ १४ ॥

तुम्हारे मुखमें जो यह सिन्दूर दिखाई देता है इस कारण सिन्दूरसे मनुष्य तुम्हारी सदा पूजा करैंगे ॥ ९ ॥ पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध मनोहर नैवेद्य और
नीराजनके विधानसे ॥ १० ॥ ताम्बूलके दान और परिक्रमणसे तथा नमस्कारके विधानसे जो तुम्हारी पूजा करैगा ॥ ११ ॥ इसमें सन्देह नहीं उसको
सब सिद्धि प्राप्त होंगी और तुम्हारे पूजनसे निःसन्देह सब विघ्न दूर होजांयगे ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले ऐसा कहनेपर तब देवी महेश्वरीने अपने पुत्रको नाना
प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत किया, और फिर उत्कृष्टतासे अर्चना की ॥ १३ ॥ हे नारदजी ! उस समय देवता और गणोंको गिरिजाकी कृपासे शांति

प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ उसी क्षणमें इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता शिवजीको स्तुतिसे प्रसन्न कर भक्तिसे पार्वतीके समीप गये ॥ १५ ॥ और सब देवताओंने उस महेशानीके बालकको तीन जगत्के सुखके निमित्त शिवजीकी गोदीमें बैठाया ॥ १६ ॥ शिवजीने भी अपना करकमल बालकके शिरपर धरा और यह मेरा दूसरा पुत्र है ऐसा सब देवताओंसे कहा ॥ १७ ॥ और गणेशजीनेभी उठकर शिवजीको प्रणामकर तथा पार्वती मुझे और विष्णुको नमस्कार कर ॥ १८ ॥ तथा नारद आदि सब ऋषियोंको प्रसन्न कर कहा मेरा अपराध क्षमा करो मनुष्योंमें मान ऐसाही होताहै ॥ १९ ॥ तब मैं शंकर और विष्णु

एतस्मिंश्च क्षणे देवा वासवाद्याः शिवं मुदा ॥ स्तुत्वा प्रसाद्य तं देवं भक्त्या निन्युः शिवांतिकम् ॥ १५ ॥ संसाद्य गिरिशं पश्चादुत्संगे सन्न्यवेशयन् ॥ बालकं तं महेशान्यास्त्रिजगत्सुखहेतवे ॥ १६ ॥ शिवोपि तस्य शिरसि दत्त्वा स्वकरपंकजम् ॥ उवाच वचनं देवान् पुत्रोऽयमिति मेऽपरः ॥ १७ ॥ गणेशोपि तदोत्थाय नमस्कृत्य शिवाय वै ॥ पार्वत्यै च नमस्कृत्य मह्यं वै विष्णवे तथा ॥ १८ ॥ नारदाद्यानृषीन्सर्वान्स त्वास्थाय पुरोऽब्रवीत् ॥ क्षंतव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम् ॥१९॥अहं च शंकरश्चैव विष्णुश्चैते त्रयस्सुराः॥ प्रत्यूचुर्युगपत्प्रीत्या ददतो वरमुत्तमम् ॥२०॥ त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये ॥ तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम् ॥२१॥ वयं च प्राकृताश्चायं प्राकृतः पूज्य एव च ॥ गणेशो विघ्नहर्त्ता हि सर्वकामफलप्रदः ॥ २२ ॥ एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः ॥ वयं च पूजितास्सर्वे नायं चापूजितो यदा ॥ २३ ॥ अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजाकृता यदि॥ तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा स गणेशानो नानावस्तुभिरादरात् ॥ शिवेन पूजितः पूर्वं विष्णुनानु प्रपूजितः ॥ २५ ॥

यह तीनोंही देवता एक साथही वर देते हुए प्रेमसे बोले ॥२०॥ हम तीनों देवता जिस प्रकारसे त्रिजगत्में पूजनीय हैं ऐसेही यह गणनाथभी सबके पूजनीय होंगे ॥ २१ ॥ हम और यह सब मनुष्योंके पूज्य होंगे और यह गणेश विशेष कर विघ्नहर्ता और सब कामना तथा फलके देनेवाले होंगे ॥ २२ ॥ पहले मनुष्य इनकी पूजा करैंगे पश्चात् हमारी, और जो हमारी सबकी पूजा करैगा इनकी पूजा न करैगा ॥ २३ ॥ तो इनकी पूजा न करनेसे दूसरोंकी पूजा करनेपर उस पूजाका कोई फलभी न होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे कहकर गणेशजीको अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे

पहले शिवजीने पूजा पीछे विष्णुजीने पूजा ॥ २५ ॥ फिर मैंने और पार्वतीने भी उनकी पूजा की, पीछे सब देवताओंने परम आदरसे उनका पूजन किया ॥ २६ ॥ फिर ब्रह्मा, विष्णु, हर आदि सबने मिलकर पार्वतीकी प्रसन्नताके निमित्त गणेशजीको सर्वाध्यक्ष कहकर उच्चारण किया ॥२७॥ फिर शिवजीने बडे प्रसन्न चित्तसे लोकोंको अनेक प्रकारके सुख देनेवाले अनेक वर दिये ॥ २८ ॥ शिवजी बोले हे पार्वतीपुत्र ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं और जब मैं प्रसन्न हो जाऊं तब कोई अप्रसन्न या विरुद्ध नहीं होसकता ॥ २९ ॥ जिस कारण कि बालकरूपसेभी तुम महा पराक्रमी हुए, इस

ब्रह्मणा च मया तत्र पार्वत्या च प्रपूजितः ॥ सर्वैर्देवैर्गणैश्चैव पूजितः परया मुदा ॥ २६ ॥ संवैर्मिलित्वा तत्रैव ब्रह्मविष्णुहरादिभिः ॥
स गणेशश्शिवातुष्टचै सर्वाध्यक्षो निवेदितः ॥ २७ ॥ पुनश्चैव शिवेनास्मै सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ सर्वदा सुखदा लोके वरा दत्ता ह्यने
कशः ॥ २८ ॥ शिव उवाच ॥ हे गिरीन्द्रसुतापुत्र संतुष्टोहं न संशयः ॥ मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोपि नो भवेत् ॥ २९ ॥ बाल
रूपोपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः ॥ शक्तिपुत्रस्सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी ॥ ३० ॥ त्वन्नाम विघ्नहंतृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति ॥
मम सर्वगणाध्यक्षः संपूज्यस्त्वं भवाधुना ॥ ३१ ॥ एवमुक्का शंकरेण पूजा विधिरनेकशः ॥ आशिषश्चाप्यनेका हि कृतास्तस्मिंस्तु
तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ ततो देवगणाश्चैव गीतं वाद्यं च नृत्यकम् ॥ मुदा ते कारयामासुस्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ३३ ॥ पुनश्चैव वरो
दत्तस्सुप्रसन्नेन शंभुना ॥ तस्मै च गणनाथाय शिवेनैव महात्मना ॥ ३४ ॥ चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर ॥ असिते
च तथा पक्षे चंद्रस्योदयने शुभे ॥ ३५ ॥

कारण तुम तेजस्वी शक्तिपुत्र सदा सुखी होंगे ॥ ३० ॥ विघ्न हरनेमें तुम्हारा नाम सदा श्रेष्ठ होगा। तुम मेरे सब गणोंमें अध्यक्ष और पूजनीय होंगे ॥ ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शिवजीने कहकर अनेक प्रकारकी पूजाविधि बताकर बालकको उस समय अनेक प्रकारके आशीर्वाद दिये ॥ ३२॥ तब देवताओंने गीत गाये और प्रसन्न होकर अनेक प्रकारके बाजे बजाये, और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ३३॥ तब फिरभी प्रसन्न होकर कल्याणकारी महात्मा शिवजीने उस बालकको वर दिया ॥ ३४ ॥ हे गणेश्वर ! तुम भादोंके महीनेकी चौथको उत्पन्न हुए हो, और कृष्णपक्षमें चन्द्रोदयके समय तुम प्रगट हुए ॥ ३५॥

इस प्रकार रात्रिके प्रथम प्रहरमें गिरिजाके मनसे तुम्हारा आविर्भाव हुआ है इस कारण उस दिन तुम्हारा उत्तम व्रत होगा ॥ ३६ ॥ उस दिनसे लेकर प्रसन्नतासे इसी तिथिको सब सिद्धिके लिये प्राणियोंको तुम्हारा सुन्दर व्रत करना चाहिये ॥ ३७ ॥ जब फिर वर्षके भीतरकी चौथ आवै, मेरी आज्ञासे वर्ष दिनतक यह व्रत करना चाहिये ॥ ३८ ॥ जे संसारमें अतुल सुख पानेकी इच्छा करते हैं, वे चतुर्थीके दिन विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा करैं ॥ ३९ ॥ मार्गशीर्ष (अगहन) के महीनेमें रमा चतुर्थी करके यह व्रत ब्राह्मणको निवेदन करदे ॥४०॥ दूर्वासे पूजन करके उपवास करै एक पहर रातके बीतजानेपर

प्रथमे च तथा यामे गिरिजायास्सुचेतसः ॥ आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा ॥ व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम् ॥ ३७ ॥ यावत्पुनस्समायाति वर्षान्ते च चतुर्थिका ॥ तावद्व्रतं च कर्तव्यं तव चैव ममाज्ञया ॥ ३८ ॥ संसारे सुखमिच्छन्ति येऽतुलं चाप्यनेकशः ॥ त्वां पूजयन्तु ते भक्त्या चतुर्थ्यां विधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ मार्गशीर्षे तथा मासे रमा या वै चतुर्थिका ॥ प्रातः स्नानं तदा कृत्वा व्रतं विप्रान्निवेदयेत् ॥ ४० ॥ दूर्वाभिः पूजनं कार्यमुपवासस्तथाविधः ॥ रात्रेश्च प्रहरे जाते स्नात्वा संपूजयेन्नरः ॥ ४१ ॥ मूर्तिं धातुमयीं कृत्वा प्रवालसंभवां तथा ॥ श्वेतार्कसंभवां चापि मार्दिकां निर्मितां तथा ॥ ४२ ॥ प्रतिष्ठाप्य तदा तत्र पूजयेत्प्रयतः पुमान् ॥ गंधैर्नानाविधैर्दिव्यैश्चन्दनैः पुष्पकैरिह ॥ ४३ ॥ वितस्तिमात्रा दूर्वा च त्र्यंगा वै मूलवर्जिता ॥ ईदृशानां तद्दलानां शतेनैकोत्तरेण ह ॥ ४४ ॥ एकविंशतिकेनैव पूजयेत्प्रतिमां स्थिताम् ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैर्गणनायकम् ॥ ४५ ॥ ताम्बूलाद्यर्घसद्द्रव्यैः प्रणिपत्य स्तवैस्तथा ॥ त्वां तत्र पूजयित्वेत्थं बालचन्द्रं च पूजयेत् ॥ ४६ ॥

स्नान करके पूजन करै ॥ ४१ ॥ धातुकी मूंगेकी श्वेत अर्ककी वा मृत्तिकाकी गणेशजीकी मूर्ति बनावै ॥४२॥ और उसकी प्रतिष्ठाकरै यत्नपूर्वक उसकी पूजा करै, अनेक प्रकारकी दिव्य गंध और चन्दन फूल दे ॥ ४३ ॥ दूर्वा तीन काण्डवाली मूलरहित एक विलस्तकी हो, इस प्रकारकी एकसौ एक दूर्वा दे ॥ ४४ ॥ अथवा इक्कीससेही प्रतिमाको पूजै धूप दीप अनेक प्रकारके नैवेद्य देकर गणेशजीका पूजन करै ॥ ४५ ॥ ताम्बूल आदि अच्छे द्रव्य निवेदन

करके स्तुति करै इस प्रकार तुम्हारी पूजाकर बालचन्द्रमाकी पूजाकर अर्घ दे ॥ ४६ ॥ पीछे ब्राह्मणोंको पूजनकर मीठा भोजन करावै पीछे आपभी मधुर
भोजन करै, नमक न खाय ॥ ४७ ॥ पीछे इस अपने नियमको विसर्जन करै और गणेशको स्मरण करै तब यह व्रत सफल होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार
जब व्रत करते मनुष्यको एकवर्ष बीत जाय तब व्रतकी पूर्तिके निमित्त उद्यापन करै ॥ ४९ ॥ मेरी आज्ञासे बारह ब्राह्मण जिमाने चाहिये, और एक घडा
स्थापन कर तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५० ॥ अथवा वेदकी विधिसे भूमिमें अष्टदल कमल निर्माण करके वित्तकी शठताको छोडकर होम

पश्चाद्विप्रांश्च संपूज्य भोजयेन्मधुरैर्मुदा ॥ स्वयं चैव ततो भुंज्यान्मधुरं लवणं विना ॥ ४७ ॥ विसर्जयेत्ततः पश्चान्नियमं सर्वमात्मनः ॥
गणेशस्मरणं कुर्य्यात्संपूर्णं स्माद्व्रतं शुभम् ॥४८॥ एवं व्रतेन संपूर्णे वर्षे जाते नरस्तदा ॥ उद्यापनविधिं कुयाद्व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे ॥४९॥
द्वादश ब्राह्मणास्तत्र भोजनीया मदाज्ञया ॥ कुंभमेकं च संस्थाप्य पूज्या मूर्तिस्त्वदीयिका ॥ ५० ॥ स्थंण्डिलेष्टदलं कृत्वा तदा वेदवि
धानतः ॥ होमश्चैवात्र कर्तव्यो वित्तशाठ्यविवर्जितैः ॥ ५१ ॥ स्त्रीद्वयं च तथा चात्र बटुकद्वयमादरात् ॥ भोजयेत्पूजयित्वा वै मूर्त्यग्रे
विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ निशि जागरणं कार्यं पुनः प्रातः प्रपूजयेत् ॥ विसर्जनं ततश्चैव पुनरागमनाय च ॥ ५३ ॥ बालकाच्चाशिषो
ग्राह्यास्स्वस्तिवाचनमेव च ॥ पुष्पांजलिं प्रदद्याच्च व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ ५४ ॥ नमस्कारांस्ततः कृत्वा नानाकार्यं प्रकल्पयेत् ॥ एवं व्रतं कृतं
येन तस्येप्सितफलं भवेत् ॥ ५५ ॥ यो नित्यं श्रद्धया सार्द्धं पूजां चैव स्वशक्तितः ॥ कुर्य्यात्तव गणेशान सर्वकामफलाप्तये ॥ ५६ ॥

करना चाहिये ॥ ५१ ॥ उस समय दो स्त्री और दो ब्रह्मचारी इनको मूर्तिके आगे पूजन करके जिमाना चाहिये ॥ ५२ ॥ रातमें जागरण करके संवेरे
फिर पूजन करै पीछे फिर आनेके निमित्त गणेशजीको विसर्जन करै ॥ ५३ ॥ बालकोंसे आशीर्वाद ग्रहण करावै उनसे स्वस्तिवाचन करावै फिर व्रतपूर्तिके
निमित्त पुष्पांजलि दे ॥ ५४ ॥ फिर नमस्कार करके दूसरे कार्य करै इस प्रकारसे जो व्रत करते हैं उनके सब मनोरथ पूरे होते हैं ॥ ५५ ॥ जो नित्य

श्रद्धाके सहित अपनी शक्तिसे पूजन करते हैं हे गणेश ! जो सब काम और फलप्राप्तिके निमित्त तुम्हारा पूजन करते हैं ॥ ५६ ॥ सिन्दूर चंदन केतकीके फूल चावल तथा अनेक सामग्रियोंसे तुम्हारा पूजन करै ॥ ५७ ॥ इस प्रकारसे जो भक्तिपूर्वक अनेक सामग्रियोंसे तुम्हारा पूजन करते हैं उनके सब विघ्न नाश होकर निश्चय अनेक प्रकारकी सिद्धि होती है ॥ ५८ ॥ यह पूजन सब वर्णोंको और विशेषकर स्त्रियोंको यह व्रत करना चाहिये, तथा उदयकी इच्छावाले राजाको विशेष कर यह व्रत करना चाहिये ॥ ५९ ॥ इसके करनेसे जो जो कामना हों वह वह सब प्राप्त होतीहैं इससे कामनावाले सदा आपकी

सिन्दूरैश्चन्दनैश्चैव तंडुलैः केतकैस्तथा ॥ उपचारैरनेकैश्च पूजयेत्त्वां गणेश्वरम् ॥ ५७ ॥ एवं त्वां पूजयेयुर्ये भक्त्या नानोपचारतः ॥
तेषां सिद्धिर्भवेन्नित्यं विघ्ननाशो भवेदिह ॥ ५८ ॥ सर्वैर्वर्णैः प्रकर्त्तव्यां स्त्रीभिश्चैव विशेषतः ॥ उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशे
षतः ॥ ५९ ॥ यं यं कामयते यो वै तंतमाप्नोति निश्चितम् ॥ अतः कामयमानेन तेन सेव्यस्सदा भवान् ॥ ६० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
शिवेनैवं तदा प्रोक्तं गणेशाय महात्मने ॥ तदानीं दैवतैश्चैव सर्वैश्च ऋषिसत्तमैः ॥ ६१ ॥ तथेत्युक्त्वा तु तैस्सर्वैर्गणैश्शंभुप्रियैर्मुने ॥
पूजितो[1] हि गणाधीशो विधिना परमेण सः ॥ ६२ ॥ ततश्चैव गणास्सर्वे प्रणेमुस्ते गणेश्वरम् ॥ समानर्चुर्विशेषेण नानावस्तुभिराद
रात् ॥ ६३ ॥ गिरिजायास्समुत्पन्नो यश्च हर्षो मुनीश्वर ॥ चतुर्भिर्वदनैर्वै तमवर्ण्यं च कथं ब्रुवे ॥ ६४ ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चा
प्सरोगणाः ॥ जगुर्गंधर्वमुख्याश्च पुष्पवर्षं पपात ह ॥ ६५ ॥

पूजा करैंगे ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी बोले जब इस प्रकारसे महात्मा गणेशजीके निमित्त शिवजीने ऐसा कहा तब सब देवता और श्रेष्ठ ऋषियोंने कहा ऐसाही होगा ॥ ६१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकारसे शिवजीके प्यारे सब गणोंने ऐसाही होगा, यह कहकर परम विधानसे गणेशजीका पूजन किया ॥ ६२ ॥ तब सब गणोंने गणेशजीको प्रणाम किया और आदरसे अनेक वस्तुओंसे उनकी विशेष पूजा की ॥ ६३ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय जो प्रसन्नता पार्वतीको प्राप्त हुई वह म चार मुखसे किस प्रकार कह सकता हूं ॥ ६४ ॥ देवताओंकी दुंदुभी बजने लगी, अप्सरागण नृत्य करने लगीं गंधर्वोंमें मुख्य गाने लगे, और आकाशसे

---

[1] पूजेति शेषः ।

फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ६५ ॥ गणेशजीके प्रतिष्ठित होनेमें जगत्में स्वस्थता प्राप्त हुई महामहोत्सव हुआ और सब दुःख क्षय होगये ॥६६॥ हे नारदजी ! विशेष कर शिवा शिवको बडी प्रसन्नता हुई और सबको सुखदायक महामंगल हुआ ॥ ६७ ॥ उस समय देवता और ऋषियोंके गण जो आयेथे वह सब शिवजीके आज्ञासे अपने २ स्थानोंको गये ॥ ६८ ॥ पार्वती और गणेशजीकी वारंवार प्रशंसा करते तथा शिवजीकी बडाई करते हुए कि किस प्रकारका युद्ध हुआ यह कहते हुए गये ॥ ६९ ॥ जिस समय देवी पार्वती कोपहीन होगईं तब शिवजीभी पूर्ववत् पार्वतीके समीप प्राप्त होकर ॥ ७० ॥ लोकोंके

जगत्स्वास्थ्यं तदा प्राप गणाधीशे प्रतिष्ठिते ॥ महोत्सवो महानासीत्सर्वं दुःखं क्षयं गतम् ॥ ६६ ॥ शिवाशिवौ च मोदेतां विशेषेणाति नारद ॥ आसीत्सुमंगलं भूरि सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ६७ ॥ ततो देवगणाः सर्वे ऋषीणां च गणास्तथा ॥ समागताश्च ये तत्र जग्मुस्ते तु शिवाज्ञया ॥६८॥ प्रशंसंतश्शिवां तत्र गणेशं च पुनःपुनः ॥ शिवं चैव तथा स्तुत्वा कीदृशं युद्धमेव च ॥ ६९ ॥ यदा सा गिरिजा देवी कोपहीना बभूव ह ॥ शिवोऽपि गिरिजां तत्र पूर्ववत्संप्रपद्य ताम् ॥ ७० ॥ चकार विविधं सौख्यं लोकानां हितकाम्यया ॥ स्वात्मारामोऽपि परमो भक्तकार्योद्यतः सदा ॥ ७१ ॥ विष्णुश्च शिवमापृच्छ्य ब्रह्माहं तं तथैव हि ॥ आगच्छाव स्वधामं च शिवौ संसेव्य भक्तितः ॥ ७२ ॥ नारद त्वं च भगवन्संगीय शिवयोर्यशः ॥ आगमो भवनं स्वं च शिवौ पृष्ट्वा मुनीश्वर ॥ ७३ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै शिवयोर्यशः ॥ भवत्पृष्टेन विघ्नेशयशस्संमिश्रमादरात् ॥ ७४ ॥ इदं सुमंगलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः ॥ सर्वमंगलसंयुक्तस्स भवेन्मंगलालयः ॥७५॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् ॥ भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम् ॥ ७६ ॥

हितकी इच्छासे अनेक प्रकारके सुख करने लगे, स्वात्माराम होकरभी यह सदा भक्तोंके कार्यमें तत्पर रहते हैं ॥ ७१ ॥ मैं और विष्णुजीभी शिवजीसे पूछकर शिवा शिवको भक्तिसे सेवन करके अपने स्थानमें आये ॥ ७२ ॥ हे नारदजी ! तुमभी शिवा शिवका यश वर्णन करते २ उनसे पूंछकर अपने स्थानको गये ॥ ७३ ॥ हे नारदजी ! जो आपने विघ्नेश्वरका चरित्र पूंछा था, वह मैंने प्रेमसे शिवा शिवके यशके सहित सब वर्णन किया ॥७४॥ यह मंगलदायक आख्यान जो नियमसे सुनते हैं वह सब मंगलोंसे युक्त मंगलका स्थान होतेहैं ॥ ७५ ॥ पुत्रहीनके पुत्र, धनहीनके धन, स्त्रीकी इच्छावालेको स्त्री, और

प्रजावालेको प्रजा प्राप्त होती है ॥ ७६ ॥ रोगीको आरोग्यता, दुर्भगाको सौभाग्य, नष्टपुत्रवालीको पुत्र, नष्टधनवालेको धन, और परदेश गये पतिवाली स्त्रीका पति परदेशसे आता है ॥ ७७ ॥ इसमें सन्देह नहीं, शोकवालेका शोक छूट जाता है यह गणेशका आख्यान जिसके घरमें विद्यमान होताहै ॥ ॥७८॥ वह सदा सब मंगलोंसे युक्त होताहै, इसमें संदेह नहीं, यात्राकाल तथा पवित्र दिनमें जो कोई सावधान होकर इस कथाको सुनता है वह श्रीगणेशजीके प्रसादसे अपने सब मनोरथोंको प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वितीयरुद्रसंहितान्तगतचतुर्थे कुमारखंडे गणेशगणाधिपपदवीवर्णनं

आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगो लभेत् ॥ नष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषिता च पतिं लभेत् ॥ ७७ ॥ शोकाविष्टश्शोकहीनस्स भवेन्नात्र संशयः ॥ इदं गाणेशमाख्यानं यस्य गेहे च तिष्ठति ॥ ७८ ॥ सदा मंगलसंयुक्तस्स भवेन्नात्र संशयः ॥ यात्राकाले च पुण्याहे यश्शृणोति समाहितः ॥ सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः ॥ ७९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणेशगणाधिपपदवीवर्णनं नामाष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ गणेशस्य श्रुता तात सम्यग्जनिरनुत्तमा ॥ चरित्रमपि दिव्यं वै सुपराक्रमभूषितम् ॥ १ ॥ ततः किमभवत्तात तत्त्वं वद सुरेश्वर ॥ शिवाशिवयशस्स्फीतं महानन्दप्रदायकम् ॥ ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना ॥ श्रूयतां दत्तकर्णं हि वक्ष्येऽहं ऋषिसत्तम ॥ ३ ॥ शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम् ॥ दर्शंदर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत् ॥ ४ ॥

नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारदजी बोले हे तात ! हमने गणेशजीका श्रेष्ठ जन्म चारित्र सुना, जो चरित्र बडा दिव्य और श्रेष्ठ पराक्रमसे भूषित है ॥ ॥ १ ॥ हे सुरेश्वर ! फिर क्या हुआ सो तुम भलीप्रकारसे कहो, यह शिवा शिवके यशकी कथा महा आनन्दकी देनेवाली है ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! हे करुणावाले ! तुमने अच्छी बात पूंछी हे ऋषिसत्तम ! कानलगाकर सुनो मैं कहता हूं ॥ ३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! शिवा और शिव उन अपने

---

१ परस्मैपदमार्षम् ।

दोनों पुत्रोंकी लीलाको देखकर महाप्रसन्न होने लगे ॥४॥ माता पिताके लालन करनेसे उनका सुख दिन दिन बढने लगा, और वे दोनों सदा महा प्रीतिसे खेलकूद करने लगे ॥ ५ ॥ हे मुनीश्वर ! उस समय वह दोनों पुत्रभी महाभक्तिसे युक्त हो माता पिताकी सेवा करने लगे ॥ ६ ॥ उन माता पिताका षण्मुख और गणेशमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान दिन दिन प्रेम बढने लगा ॥७॥ हे देवर्षे ! एक समय शिवा शिव प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठेहुए विचारकर रहे थे ॥ ८ ॥ शिवा शिव बोले, अब यह हमारे दोनों पुत्र विवाहके योग्य हुए, इन दोनों पुत्रोंका किस प्रकारसे शुभ विवाह किया जाय ॥ ९ ॥

पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत ॥ सदा प्रीत्या मुदा चातिखेलनं चक्रतुस्सुतौ ॥ ५ ॥ तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर ॥ महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्यां प्रचक्रतुः ॥ ६ ॥ षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा ॥ स्नेहो व्यवर्द्धत महाञ्छुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ७ ॥ कदाचित्तौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ ॥ शिवा शिवश्च देवर्षे सुविचारपरायणौ ॥ ८ ॥ शिवाशिवावूचतुः ॥ विवाहयोग्यौ संजातौ सुताविति च तावुभौ ॥ विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम् ॥ ९ ॥ षण्मुखश्च प्रियतमो गणेशश्च तथैव च ॥ इति चिंतासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभूवतुः ॥ १० ॥ स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ ॥ तदिच्छया विवाहार्थं बभूवतुरथो मुने ॥ ११ ॥ अहं च परिणेष्यामि ह्यहं चैव पुनः पुनः ॥ परस्परं च नित्यं वै विवादे तत्परावुभौ ॥ १२ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दंपती जगतां प्रभू ॥ लौकिकाचारमाश्रित्य विस्मयं परमं गतौ ॥ १३ ॥ किं कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः ॥ इति निश्चित्य ताभ्यां वैं युक्तिश्च रचिताद्भुता ॥ १४ ॥

कार्त्तिकेय और गणेश दोनोंही अधिक प्यारे हैं, इस प्रकार चिन्ता करते लीलाका आनन्द देखने लगे ॥ १० ॥ अपने मातापिताकी यह इच्छा जानकर दोनोंही कुमारोंने इच्छा की, हे मुने ! दोनोंनेही एक साथ विवाहकी इच्छा की ॥ ११ ॥ दोनों कहने लगे मैं पहले व्याह करूंगा, मैं पहले व्याह करूंगा, इस प्रकार कहकर दोनों परस्पर विवाद करने लगे ॥ १२ ॥ वह जगत्के माता पिता उन दोनों बालकोंके वचन सुनकर लौकिक आचारके आश्रय हो परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ अब क्या करें किसप्रकार इन दोनोंका विवाह कियाजाय, यह विचारकर उन दोनोंने एक अद्भुत युक्ति रची ॥१४॥

तब एक समय दोनों माता पिता अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर इस प्रकार कहने लगे ॥१५॥ शिवा शिव बोले, हमने तुम दोनोंके सुखके निमित्त एक नियम
किया है, तुम प्रेमसे सुनो हम उसको यथार्थ कहते हैं ॥ १६ ॥ तुम दोनों पुत्र समान भावसे हमें प्यारे हो इसमें कोई विशेष नहीं है, इस कारण तुम दोनों
पुत्रोंके निमित्त हमने एक प्रतिज्ञा की है ॥ १७ ॥ जो इस समय सम्पूर्ण पृथिवीकी परिक्रमा करके पहले चला आवैगा, उसीका शुभ लक्षणवाला विवाह
पहले किया जायगा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले, उन दोनों माता पिताके यह वचन सुन महाबली कार्त्तिकेय तत्कालही पृथिवीकी परिक्रमाके लिये मन्दिरसे

कदाचित्समये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ ॥ कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा ॥ १५ ॥ शिवाशिवावूचतुः ॥ अस्माकं नियमः
पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम् ॥ श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ॥ १६ ॥ समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्र लभ्यते ॥
तस्मात्पणः कृतश्शंदः पुत्रयोरुभयोरपि ॥ १७ ॥ यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रांत्वा पूर्वमुपाव्रजेत् ॥ तस्यैव प्रथमं कार्यो विवाहश्शुभल
क्षणः ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः ॥ जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै ॥ १९ ॥ गणनाथश्च
तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः ॥ सुबुद्ध्या संविचार्येति चित्त एव पुनः पुनः ॥ २० ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं लंघितुं नैव शक्यते ॥
क्रोशमात्रं गतः स्याद्वै गम्यते न मया पुनः ॥ २१ ॥ किं पुनः पृथिवीमेतां क्रांत्वा चोपार्जितं सुखम् ॥ विचार्येति गणेशस्तु यच्च
कार शृणुष्व तत् ॥ २२ ॥ स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं गृहम् ॥ उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः ॥ २३ ॥ गणेश
उवाच ॥ आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह ॥ भवंतौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ॥ २४ ॥

चले ॥ १९ ॥ और बुद्धिमान् गणेशजी वहां स्थित रहे; और वारंवार सुबुद्धिसे अपने चित्तमें विचारने लगे ॥ २० ॥ मैं क्या करूं, कहां जाऊं, मैं
तो जाही नहीं सकता, मैं एक क्रोशमात्र भी नहीं जा सकता ॥ २१ ॥ फिर इस पृथिवीकी परिक्रमा करना तो बडी बात है यह विचारकर गणेशजीने जो
किया सो सुनो ॥ २२ ॥ यथायोग्य स्नान कर और अपने घरमें आकर अपने माता और पितासे उन्होंने कहा ॥ २३ ॥ मैं तुम दोनोंको सिंहासनपर

प्राप्तकर पूजा करना चाहता हूं, माता पिता तुम दोनों मेरे समीप आकर मेरा मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले पार्वती परमेश्वर इस प्रकारसे उनके वचन सुनकर गणेशजीकी पूजाको ग्रहण करनेके लिये आसनपर बैठे ॥ २५ ॥ गणेशजीने उन दोनोंका पूजन करके वारंवार परिक्रमा की, इस प्रकारसे उन्होंने सात परिक्रमा की ॥ २६ ॥ और बुद्धिसागर गणेशजी हाथ जोडकर प्रेममें विव्हल माता पिताकी बडी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ गणेशजी बोले हे मातः हे पिता ! तुम मेरे वचन सुनो, शीघ्रही आप मेरा सुन्दर विवाह करदें ॥२८॥ इस प्रकार महात्मा गणेशजीके वचन सुनकर वे दोनों महाबुद्धिमान्

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ॥ २५ ॥ तेनाथ पूजितौ तौ च
प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः ॥ एवं च कृतवान् सप्त प्रणामास्तु तथैव सः ॥ २६ ॥ बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः ॥ स्तुत्वा बहु
तिथस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ ॥ २७ ॥ गणेश उवाच ॥ भो मातर्भो पितस्त्वं च शृणु मे परमं वचः ॥ शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाह
श्शोभनो मम ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः ॥ महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ॥२९॥ शिवा
शिवावूचतुः ॥ प्रक्रामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् ॥ कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं
वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् ॥ उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ॥ ३१ ॥ गणेश उवाच ॥ भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ
युवां मतौ ॥ धर्मतः श्रूयतां सम्यक् वचनं मम सत्तमौ ॥३२॥ मया तु पृथिवी क्रांता सप्तवारं पुनः पुनः ॥ एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च
पितराविह ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ ॥ महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्च तम् ॥ ३४ ॥

गणेशजीसे बोले ॥ २९ ॥ शिवा शिव बोले तुमभी काननसहित पृथिवीकी परिक्रमा करो कुमार गये हैं तुम परिक्रमा कर शीघ्र आओ ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले, गणेशजी माता पिताके इस प्रकारसे वचन सुनकर कुछेक क्रोधसे वचन बोले ॥ ३१ ॥ गणेशजी बोले हे मातः ! हे पिता ! तुम दोनों धर्मरूप महापंडित हो हे श्रेष्ठो आप धर्मसहित मेरे वचनोंको सुनो ॥ ३२ ॥ मैंने तो सात बार इस पृथिवीकी परिक्रमा की है, फिर कैसे कहतेहो पृथिवीकी परिक्रमा कर आओ ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले गणेशजीके यह वचन सुन लौकिकी गतिको आश्रय कर महालीला करनेवाले दोनों बोले ॥ ३४ ॥

शिवाशिव बोले हे पुत्र ! यह महान् पृथिवी तुमने कब परिक्रमा की, यह तो सात द्वीपवाली समुद्रांततक महापर्वतोंसे संयुक्त है ॥३५॥ ब्रह्माजी बोले शिवा और शंकरके यह वचन सुनकर उनके पुत्र महाबुद्धिमान् गणेशजी इस प्रकारके वचन बोले ॥ ३६ ॥ मैंने आप दोनों माता पिताओंका पूजन किया है, मैंने तो अपनी बुद्धिसे मानो समस्त पृथिवीकी परिक्रमा करली ॥ ३७ ॥ यह वचन वेद शास्त्र और धर्मसंचयमें लिखा है सो यह बात क्या सत्य है, वा असत्य सो आप कहे ॥ ३८ ॥ जो माता पिताका पूजन करके उनकी परिक्रमा करता है उसको पृथिवीकी परिक्रमाका निश्चय फल होता है ॥ ३९ ॥

पितरावूचतुः ॥ कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा ॥ सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैर्युता ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशंकरयोर्मुने ॥ महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ गणेश उवाच ॥ भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशंकरयोरहम् ॥ स्वबुद्ध्या हि समुद्रान्तपृथ्वीकृतपरिक्रमः ॥ ३७ ॥ इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये ॥ वर्त्तते किं च तत्तथ्यं न हि किं तथ्यमेव वा ॥ ३८ ॥ पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः ॥ तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥३९॥ अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् ॥ तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ॥ ४० ॥ पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपंकजम् ॥ अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ॥ ४१ ॥ इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम् ॥ पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ॥ ४२ ॥ इति शास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरंतरम् ॥ भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ॥ ४३ ॥ भवदीयं त्विदं रूपमसत्यं च भवेदिह ॥ तदा वेदोप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः ॥ ४४ ॥

जो माता पिताको घरमें छोडकर तीर्थको जाता है उसको उनके मारनेका पाप लगता है [इससे पूंछकर जाय] ॥ ४० ॥ पुत्रका यही बडा तीर्थ है जो माता पिताके चरणकमलकी सेवा करै, दूसरे तीर्थ तो दूर जानेसेही प्राप्त होते हैं ॥४१॥ यह तीर्थ सदा निकट सुलभ और धर्मका साधन है, पुत्रकी स्त्रीको घरमें यही शोभन तीर्थ है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार वेद शास्त्र निरन्तर कहते हैं सो यही आपको करना चाहिये नहीं तो शास्त्र असत्य होगा ॥ ४३ ॥ ऐसा न

करनेसे तुम्हारा यह रूप भी असत्य हो जायगा, इसी प्रकार वेद भी असत्य हो जायंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ शीघ्रही मेरा अब शुभ विवाह कर देना चाहिये अथवा वेद शास्त्रकी मर्यादाको निरर्थक कर दीजिये ॥ ४५ ॥ इन दोनोंके बीचमें जो श्रेष्ठ हो उसको भली प्रकार विचारकर धर्मरूप माता पिताको यत्नपूर्वक कार्य करना चाहिये ॥४६॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकारसे वह पार्वतीके पुत्र प्रसन्न होकर महाज्ञानी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ मौन हुए ॥ ४७ ॥ तब वे विश्वके माता पिता पार्वती परमेश्वर गणेशजीके यह वचन सुन परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ तब शिवा और शिव पुत्रकी यह विलक्षण बुद्धि

शीघ्रं च भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः ॥ अथ वा वेदशास्त्रञ्च व्यलीकं कथ्यतामिति ॥ ४५ ॥ द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत् ॥ कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ॥ ४६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रस्स गणेशः प्रकृष्टधीः ॥ विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ॥ ४७ ॥ तौ दंपती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गता ॥ ४८ ॥ ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम् ॥ सुप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम् ॥ ४९ ॥ शिवाशिवावूचतुः॥ पुत्र ते विमला बुद्धिस्समुत्पन्ना महात्मनः ॥ त्वयोक्तं यद्वचश्चैव ततश्चैव च नान्यथा ॥ ५० ॥ समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते ॥ तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥ ५१ ॥ बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ॥ कूपे सिंहो मदोन्मत्तश्शशकेन निपातितः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम् ॥ त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ॥ ५३ ॥

देखकर पुत्रकी प्रशंसा कर प्रेमसे कहने लगे कि पुत्र यथार्थभाषी है ॥४९॥ शिवाशिव बोले हे पुत्र ! तुम्हारी महात्माओंकीसी निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है तुमने जो वचन कहेहैं, वह वैसे ही हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥५०॥ संकट पडनेपर जिसकी बुद्धि विशेष रूपसे बनी रहती है, उसका दुःख नष्ट होजाता है, जैसे सूर्यके सामने अंधकार नष्ट हो जाता है ॥५१॥ जिसको बुद्धि है उसीको बल है, निर्बुद्धिको बल कहां है, एक बुद्धिमान् खरगोशने मदोन्मत्त सिंहको कुएमें डालकर नष्ट कर दिया ॥ ५२ ॥ वेद शास्त्र पुराणोंमें जो बालकोंका कृत्य वर्णन किया है वह तुमने सब धर्मका पालन किया ॥ ५३ ॥

हे पुत्र तुमने जो कुछ किया उसको कोई भी नहीं कर सकता, हम दोनोंने वह मान लिया, उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी बोले इस प्रकार वे दोनों बुद्धिसागर गणेशजीका आश्वासन कर इनके विवाह करनेकी इच्छा करते हुए ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां रु० च० कु० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी बोले इसी समय विश्वरूप प्रजापतिने प्रसन्नहो शिवाशिवका उद्योग विचारकर सुख माना ॥ १ ॥ विश्वरूप प्रजापतिकी दिव्यरूप दो कन्या थीं, यह सिद्धि बुद्धि नामसे विख्यात सर्वांगसे सुन्दर थीं ॥२॥ प्रभु शंकरने उन दोनोंके साथ गणेशजीका विवाहमहोत्सव

सम्यक्कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह ॥ आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ॥ ५४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् ॥ विवाहकरणे चास्य मतिं चक्रतुरुत्तमाम् ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशविवाहोपक्रमो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र विश्वरूपः प्रजापतिः ॥ तदुद्योगं संविचार्य सुखमाप प्रसन्नधीः ॥ १ ॥ विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे ॥ सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वांगशोभने ॥ २ ॥ ताभ्यां चैव गणेशस्य गिरिजा शंकरः प्रभू ॥ महोत्सवं विवाहं च कारयामासतुर्मुदा ॥ ३ ॥ संतुष्टा देवतास्सर्वास्तद्विवाहे समागमन् ॥ यथा चैव शिवस्यैव गिरिजाया मनोरथः ॥ ४ ॥ तथा च विश्वकर्माऽसौ विवाहं कृतवांस्तथा ॥ तथा च ऋषयो देवा लेभिरे परमां मुदम् ॥ ५ ॥ गणेशोपि तदा ताभ्यां सुखं चैवाप्तिचिंतकम् ॥ प्राप्तावांश्च मुने तत्तु वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ६ ॥ कियता चैव कालेन गणेशस्य महात्मनः ॥ द्वयोः पत्न्योश्च द्वौ दिव्यौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥ ७ ॥ सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत् ॥ बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्रो ह्यासीत्परमशोभनः ॥ ८ ॥

कराया ॥ ३ ॥ सब देवता संतुष्ट होकर उस विवाहमें आये जैसे शिवाशिवके विवाहमें आयेथे ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे प्रेमसे विश्वकर्माने यह विवाह किया और ऋषि तथा देवताओंने इसमें परम प्रसन्नता मानी गणेशजीको भी उस समय बडा सुख प्राप्त हुआ, हे मुने ! वह वर्णन करनेको कौन समर्थ हो सकता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ कितने समयके उपरांत गणेशजीकी प्यारी स्त्रियोंमें दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ सिद्धिनामक गणेशजीकी स्त्रीमें क्षेमनामक पुत्र

उत्पन्न हुआ और बुद्धिके परम सुन्दर लाभनामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८॥ इस प्रकार जब गणेशजी अचिन्त्य सुख भोगने लगे तब कार्तिकेयभी पृथिवीकी
परिक्रमा करके प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ इसी समय महात्मा नारदजी भी कुमारके घर न पहुंचते पहुंचते बोले हे कुमार ! मैं यथार्थ कहताहूं छल वा मत्सरसे यह
नहीं कहता ॥ १० ॥ शिवा और शिव तुम्हारे माता पिताने जो किया है वैसा कोई दूसरा इस लोकमें नहीं करेगा, यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ ११ ॥
तुमको यत्न करके बहानेसे पृथिवीके कुक्रमणके लिये भेजदिया, और इधर गणेशजीका परम शोभायमान विवाह कर दिया ॥ १२ ॥ गणेशजीका विवाह

एवं सुखमचिंत्यं वै भुंजाने हि गणेश्वरे ॥ आजगाम द्वितीयश्च क्रांत्वा पृथ्वीं सुतस्तदा ॥ ९ ॥ तावच्च नारदेनैव प्राप्तो गेहे महात्मना ॥
यथार्थं वच्मि नोऽसत्यं न छलेन न मत्सरात् ॥ १० ॥ पितृभ्यां तु कृतं यच्च शिवया शंकरेण ते ॥ तन्न कुर्य्यात्परो लोके सत्यं सत्यं
ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ निष्कास्य त्वां कुक्रमणं मिषमुत्पाद्य यत्नतः ॥ गणेशस्य वरोकारि विवाहः परशोभनः ॥ १२ ॥ गणेशस्य
कृतोद्वाहो लब्धवांस्त्रीद्वयं मुदा ॥ विश्वरूपप्रजेशस्य कन्यारत्नं महोत्तमम् ॥ १३ ॥ पुत्रद्वयं ललाभासौ द्वयोः पत्न्योश्शुभांगयोः ॥
सिद्धेः क्षेमं तथा बुद्धेर्लाभं सर्वसुखप्रदम् ॥ १४ ॥ पत्न्योर्द्वयोर्गणेशोऽसौ लब्ध्वा पुत्रद्वयं शुभम् ॥ मातापित्रोर्मतेनैव सुखं भुंक्ते निरं
तरम् ॥ १५ ॥ भवता पृथिवी क्रांता ससमुद्रा सकानना ॥ तच्छलाज्ञावशात्तात तस्य जातं फलं त्विदम् ॥ १६ ॥ पितृभ्यां क्रियता
स्मैव च्छलं तात विचार्यताम् ॥ स्वस्वामिभ्यां विशेषेण ह्यन्यः किन्न करोति वै ॥ १७ ॥ असम्यक्च कृतं ताभ्यां त्वत्पितृभ्यां हि
कर्म ह ॥ विचार्यतां त्वयाऽपीह मच्चित्ते न शुभं मतम् ॥ १८ ॥

होगया और उनके दो स्त्री हैं, वे दोनों विश्वरूप प्रजापतिकी मनोहर कन्या हैं ॥१३॥उन दोनों सुन्दर पत्नियोंके दो पुत्र हुए हैं, सिद्धिके क्षेम और बुद्धिके
लाभ नामक परम सुन्दर पुत्र हुआ है ॥ १४ ॥ इस प्रकार गणेशजी दोनोंसे दो पुत्र लाभ करके माता पिताके मतसे ही निरंतर सुख भोगते हैं ॥ १५ ॥
इधर तुमने वन पर्वतके सहित यह सारी पृथिवी खूंदडाली छलसे जो तुमको आज्ञा हुई, उसका तुमको यह फल प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥ हे तात ! इन
माता पिताके किये हुए फलको विचार करो अपने स्वामीकें लिये विशेष करके कोई क्या नहीं करता ॥ १७ ॥ तुम्हारे माता पिताने मेरी समझमें अच्छा

नहीं किया, तुमको भी इसमें विचार करना चाहिये, मेरी समझमें तो यह अच्छा नहीं किया ॥ १८ ॥ यदि माता विष दे या पिता बेंचदे और राजाही सर्वस्व देदे तो फिर किस्से कहै ॥ १९ ॥ जिस कारणसे कि यह अनर्थकारी कर्म किया है, हे तात! शान्तिकी इच्छावाला बुद्धिमान् उनका मुख कभी न देखै ॥ २० ॥ इस प्रकारसे श्रुति और स्मृति शास्त्रमें नीति कही है, वह तुम समझ गये अब जैसा तुम्हारे मनमें आवै वैसा करो ॥२१॥ ब्रह्माजी बोले हे नारदजी! तुम ऐसा कहकर महेश्वरके मनकी गति समझाकर मौन हुए ॥ २२ ॥ इस ओर कुमार भी अपने माता पिताको प्रणामकर कोपाग्निसे प्रज्व

दद्याद्यदि गरं माता विक्रीणीयात्पिता यदि ॥ राजा हरति सर्वस्वं कस्मै किं च ब्रवीतु वै ॥ १९ ॥ येनैवेदं कृतं स्याद्वै कर्मानर्थकरं परम् ॥ शांतिकामस्सुधीस्तात तन्मुखं न विलोकयेत् ॥ २० ॥ इति नीतिः श्रुतौ प्रोक्ता स्मृतौ शास्त्रेषु सर्वतः ॥ निवेदिता च सा तेऽद्य यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा नारद त्वं तु महेश्वरमनोगतिः ॥ तस्मै तथा कुमाराय वाक्यं मौनमुपागतः ॥ २२ ॥ स्कन्दोऽपि पितरं नत्वा कोपाग्निज्वलितस्तदा ॥ जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि सन् ॥ २३ ॥ वारणे च कृते त्वद्य गम्यते च कथं त्वया ॥ इत्येवं च निषिद्धोपि प्रोच्य नेति जगाम सः ॥ २४ ॥ न स्थातव्यं मया तातौ क्षणमप्यत्र किंचन ॥ यद्येवं कपटं प्रीतिमपहाय कृतं मयि ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वा गतस्तत्र मुने सोऽद्यापि वर्तते ॥ दर्शनेनैव सर्वेषां लोकानां पापहारकः ॥ २६ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै ॥ शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २७ ॥

लितहोकर शिवा शिवके निषेध करनेपर भी क्रौंच पर्वतको चले गये ॥ २३ ॥ हम निषेध करते हैं तुम क्यों जाते हो ऐसा कहकर निषेधकरनेपर भी कुमार चलनेही लगे और आगेकी बातके सिवाय कुछ न कहा ॥ २४ ॥ हे तात! अब मैं क्षणमात्रभी यहां स्थिति नहीं कर सकता जो मुझै छोडकर इस प्रकार मुझसे कपट प्रीति की है ॥ २५ ॥ हे नारदजी! इस प्रकारसे कहकर दर्शनसे ही सब लोकोंके पाप हरनेवाले कुमार वहांसे क्रौंच पर्वतको चले गये, और अबतक उसी पर्वतमें विराजते हैं ॥ २६ ॥ हे नारद उसी दिनसे लेकर उन शिवपुत्र कार्तिकेयका कुमारत्व प्रतिष्ठित हुआ ॥ २७ ॥

क और प्रसिद्ध है वह सब पापका हरनेवाला पुण्यस्वरूप परम ब्रह्मचर्यका देनेवाला है ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! कार्तिकमें सब इस तीर्थमें कुमारके दर्शनको जाते हैं ॥ २९ ॥ जो कार्तिकमें कृत्तिका नक्षत्रके योगमें कार्तिकेयका दर्शन करते हैं उनके सब पाप दूरहोकर च्छित फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ स्कन्दके विरहमें पार्वतीको भी दुःख प्राप्त हुआ, और दीन होकर शिवजीसे बोलीं हे पति ! मेरे साथ वहांको चलिये ॥ ३१ ॥ उनके सुखके लिये शिवजी अपने अंशसे क्रौंच पर्वतपर गये, वहां उनका सुखदायक ज्योतिर्लिंग मल्लिकार्जुन नामवाला हुआ ॥ ३२ ॥

तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम् ॥ २८ ॥ कार्तिक्यां च सदा देवा ऋषयश्च सतीर्थकाः ॥
दर्शनार्थं कुमारस्य गच्छंति च मुनीश्वराः॥२९॥कार्तिक्यां कृत्तिकासंगे कुर्याद्यः स्वामिदर्शनम् ॥ तस्य पापं दहेत्सर्वं चित्तेप्सितफलं
लभेत् ॥ ३० ॥ उमापि दुःखमापन्ना स्कन्दस्य विरहे सति ॥ उवाच स्वामिनं दीना तत्र गच्छ मया प्रभो ॥ ३१ ॥ तत्सुखार्थं
स्वयं शंभुर्गतस्स्वांशेन पर्वते ॥ मल्लिकार्जुननामासीज्ज्योतिर्लिंगं सुखावहम् ॥ ३२ ॥ अद्यापि दृश्यते तत्र शिवया सहितश्शिवः ॥
सर्वेषां निजभक्तानां कामपूरस्सतां गतिः ॥ ३३ ॥ तमागतं स विज्ञाय कुमारस्सशिवं शिवम् ॥ स विरज्य ततोऽन्यत्र गंतुमासीत्समु
त्सुकः ॥ ३४ ॥ देवैश्च मुनिभिश्चैव प्रार्थितस्सोपि दूरतः ॥ योजनत्रयमुत्सृज्य स्थितः स्थाने च कार्तिकः ॥ ३५ ॥ पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै
शिवौ पर्वणि पर्वणि ॥ दर्शनार्थं कुमारस्य तस्य नारद गच्छतः ॥ ३६ ॥ अमावास्यादिने शंभुः स्वयं गच्छति तत्र ह ॥ पूर्णमासी
दिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥ यद्यत्तस्य च वृत्तांतं भवत्पृष्टं मुनीश्वर ॥ कार्तिकस्य गणेशस्य परमं कथितं मया ॥ ३८ ॥

अबतक वह पार्वतीके सहित शिवजी दिखाई देते हैं, वह सत्पुरुषोंकी तथा अपने भक्तोंकी सब कामना पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ तब कुमार वहां शिव पार्वतीको आया देख विरक्तहो वहांसे अन्यत्र जानेकी इच्छा करने लगे ॥ ३४ ॥ तब देवता मुनियोंकी बडी प्रार्थनासे उस स्थानसे तीन योजन (बारह कोस) जाकर कुमार रहे ॥ ३५ ॥ तथापि पुत्रके स्नेहसे आतुर होकर शिवा शिव पर्वपर्वमें उस अपने पुत्रके अवलोकनके निमित्त जाते हैं ॥ ३६ ॥ अमावस्याके दिन स्वयं शिवजी वहां जाते हैं, पूर्णमासीके दिन निश्चय पार्वती जाती हैं ॥ ३७ ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो आपने कार्तिकेय और गणेशजीका

वृत्तान्त पूँछा सो मैंने तुमसे सब वर्णन किया ॥ ३८ ॥ इस कथाको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, और अपने इच्छित सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मोंको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ जो इस कथाको पढते पढाते सुनते सुनाते हैं इसमें सन्देह नहीं वह सब कामनाओंको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त और क्षत्रिय विजयी होता है वैश्य धन समृद्धिवाला और शूद्र सत्समताको प्राप्त होता है ॥४१॥ रोगी रोगसे, भयभीत भयसे छूटता है, इसके सुननेसे मनुष्य भूत प्रेतकी बाधासे छूट जाता है ॥ ४२ ॥ यह आख्यान पापरहित मनुष्योंको यश और सुखका बढानेवाला है, बडी उमर स्वर्गमें बडे सुख तथा

एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ शोभनां लभते कामानीप्सितान्सकलान्सदा ॥३९॥ यः पठेत्पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४० ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ वैश्यो धनसमृद्धस्स्याच्छूद्रस्सत्समतामियात् ॥ ४१ ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत भयान्मुच्येत भीतियुक् ॥ भूतप्रेतादिबाधाभ्यः पीडितो न भवेन्नरः ॥ ४२ ॥ एतदाख्यानमनघं यशस्यं सुखवर्द्धनम् ॥ आयुष्यं स्वर्ग्यमतुलं पुत्रपौत्रादिकारकम् ॥ ४३ ॥ अपवर्गप्रदं चापि शिवज्ञानप्रदं परम् ॥ शिवाशिवप्रीतिकरं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥ श्रवणीयं सदा भक्तैर्निःकामैश्च मुमुक्षुभिः ॥ शिवाद्वैतप्रदं चैतत्सदाशिवमयं शिवम् ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखंडे गणेशविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ समाप्तोयं रुद्रसंहितान्तर्गतः कुमारखण्डश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

पुत्र पौत्रादिका करनेवाला है ॥ ४३ ॥ यह मोक्ष और शिवज्ञानका देनेवाला, शिवाशिवकी प्रीति करनेवाला तथा शिवभक्तिका बढानेवाला है ॥ ४४ ॥ ोंको और मुमुक्षुओंको कामनारहित होकर सदा सुनना चाहिये यह शिवजीका अद्वैत ज्ञान देनेवाला सदा कल्याण और शिवमय है ॥ ४५ ॥
ाणे द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गतचतुर्थेकुमारखंडे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां गणेशविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

ति श्रीशिवमाहापुराणभाषाटीकायां द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गतचतुर्थकुमारखण्डः समाप्तः ।

नारदजी बोले हमने आनंदका देनेवाला उत्तम चरित्र श्रवण किया तथा शिवजीका गृहस्थ गणेश और स्कन्दकी सत्कथा सुनी ॥ १ ॥ अब आप कृपाकरके शिवजीके उन श्रेष्ठ चरित्रोंको कहिये जिसमें उन्होंने दुष्ट दानवोंका वध किया है ॥ २ ॥ भगवान् शंकरने दैत्योंके नगर किस प्रकारसे जलाये और उन महाबलीने एकही बाणसे एक साथ कैसे तीनों पुरोंको जलाया ॥ ३ ॥ यह सब शंकरका चरित्र आप वर्णन कीजिये, जो मायासे विहार करनेवाले प्रभुने अनेक चरित्र किये हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले एक समय ऋषिश्रेष्ठ व्यासजीने सनत्कुमारजीसे यही बात पूछी थीं, जो सनत्कुमारने कहा वही मैं तुमसे

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुतमस्माभिरानंदप्रदं चरितमुत्तमम् ॥ गृहस्थस्यैव शंभोश्च गणस्कंदादिसत्कथम् ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं दरमुत्तमम् ॥ शंकरो हि यथा रुद्रो जघान विहरन् खलान् ॥ २ ॥ कथं ददाह भगवान्नगराणि सुरद्विषाम् ॥ त्रीण्येकेन च बाणेन युगपत्केन वीर्यवान् ॥ ३ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व चरितं शशिमौलिनः ॥ देवर्षिसुखदं शश्वन्मायाविहरतः प्रभोः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो व्यासेन ऋषिसत्तमः ॥ सनत्कुमारं प्रोवाच तदेव कथयाम्यहम् ॥ ५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ॥ यथा ददाह त्रिपुरं बाणेनैकेन विश्व हृत् ॥ ६ ॥ शिवात्मजेन स्कन्देन निहते तारकासुरे ॥ तत्पुत्रास्तु त्रयो दैत्याः पर्यतप्यन्मुनीश्वर ॥ ७ ॥ तारकाख्यस्तु तज्ज्येष्ठो विद्युन्माली च मध्यमः ॥ कमलाक्षः कनीयांश्च सर्वे तुल्यबलास्सदा ॥ ८ ॥ जितेन्द्रियास्सुसन्नद्धास्संयतास्सत्यवादिनः ॥ दृढचित्ता महावीरा देवद्रोहिण एव च ॥ ९ ॥ ते तु मेरुगुहां गत्वा तपश्चक्रुर्महाद्भुतम् ॥ त्रयस्सर्वान्सुभोगांश्च विहाय सुमनोहरान् ॥ १० ॥

कहताहूं ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे महाविद्वान् व्यासजी ! तुम शंकरके चरित्र सुनो, जिस प्रकार एकही बाणसे उन्होंने त्रिपुरको भस्म कर दिया ॥ ६ ॥ जब शिवपुत्र स्कन्दने तारकासुर दैत्यको मारडाला, तब हे मुनीश्वर ! उसके पुत्र तीन दैत्य पृथ्वीपर तप करने लगे ॥ ७ ॥ उनमें तारकाक्ष ज्येष्ठ, वियुन्माली मध्यम और कमलाक्ष सबसे छोटा था, यह सब तुल्यबलवालेथे ॥ ८ ॥ जितेन्द्रिय बलमें तत्पर संयमी और सत्यवादी थे, यह सब दृढचित्त महावीर देवताओंके द्रोही थे ॥ ९ ॥ उन्होंने मेरुकी गुफामें जाकर तप करना आरंभ किया तीनोंने सम्पूर्ण मनोहर भोगोंको त्याग दिया ॥ १० ॥

वे तारकके पुत्र वसन्त ऋतुमें सब कामना गाने बजानेके उत्सव त्यागनकर महातपस्या करने लगे ॥ ११ ॥ गरमीमें सूर्यकी कान्तिको जीतकर चारों दिशाओंमें अग्नि बालकर उन अग्नियोंके बीचमें आदरसे बैठकर अग्निमें आहुती देने लगे ॥ १२ ॥ महाप्रतापमें पतित होकर सब मूर्च्छित होजातेथे, और वर्षामें भी त्रास रहित होकर शिरपर वर्षाको सहन करने लगे ॥ १३ ॥ शरतकालमें भी भोजन त्याग दिया, जो कि मनोहर स्निग्ध (चिकना) स्थिर हृदयको हितकारी जो उत्तम मूल फल है ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस प्रकार वे महात्मा निराधार हो चारों दिशाओंमें स्थित हुए, हेमन्तऋतुमें पर्वतमें आश्रयकर

वसंते सर्वकामांश्च गीतवादित्रनिस्स्वनम् ॥ विहाय सोत्सवं तेपुस्त्रयस्ते तारकात्मजाः ॥ ११ ॥ ग्रीष्मे सूर्यप्रभां जित्वा दिक्षु प्रज्वाल्य पावकम् ॥ तन्मध्यसंस्थाः सिद्ध्यर्थं जुहुवुर्हव्यमादरात् ॥ १२ ॥ महाप्रतापपतितास्सर्वेप्यासन् सुमूर्छिताः ॥ वर्षासु गतसंत्रासा वृष्टिं मूर्द्धन्यधारयन् ॥ १३ ॥ शरत्काले प्रसूतं तु भोजनं तु बुभुक्षिताः ॥ रम्यं स्निग्धं स्थिरं हृद्यं फलं मूलमनुत्तमम् ॥ १४ ॥ संयमात्क्षुत्तृषोजित्वा पानान्युच्चावचान्यपि ॥.बुभुक्षितेभ्यो दत्त्वा तु बभूवुरुपला इव ॥ १५ ॥ संस्थितास्ते महात्मानो निराधाराश्चतुर्दिशम् ॥ हेमंते गिरिमाश्रित्य धैर्येण परमेण तु ॥ १६ ॥ तुषारदेहसंछन्ना जलक्लिन्नेन वाससा ॥ आसाद्य देहं क्षौमेण शिशिरे तोयमध्यगाः ॥ १७ ॥ अनिर्विण्णास्ततस्सर्वे क्रमशोऽवर्द्धयंस्तपः ॥ तेपुस्त्रयस्ते तत्पुत्रा विधिमुद्दिश्य सत्तमाः ॥ १८ ॥ तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ॥ तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान् दानवोत्तमाः ॥१९॥ वर्षाणां शतकं चैव पदमेकं निधाय च ॥ भूमौ स्थित्वा परं तत्र तेपुस्ते बलवत्तराः ॥ २० ॥ ते सहस्रं तु वर्षाणां वातभक्षास्सुदारुणाः ॥ तपस्तेपुर्दुरात्मानः परं तापमुपागताः ॥ २१ ॥

परमधीरतासे स्थित हो ॥ १६ ॥ तुषारको अपनी देहपर धारण करते हुए, जलसे गीला कपडे पहरे अपनी देहको सुखाने लगे, और शिशिरमें जलके मध्य स्थित हो तप करने लगे ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वे सब व्याकुलतारहित हो तपको बढाने लगे इस प्रकार ब्रह्माजीके उद्देश्यसे वे तीनों तप करने लगे ॥ १८ ॥ वे उग्रतप करनेके लिये कठिन नियममें तत्परहुए, और वे दानवोंमें उत्तम अपने देहको तपस्या करके सुखाने लगे ॥ १९ ॥ फिर सौ वर्षतक एक पांवके सहारेसे स्थित होकर भूमिमें स्थित होकर वे बलवान् तपकरने लगे ॥ २० ॥ सहस्र वर्षतक वे केवल वायुभक्षण करकेही रहगये, वे दुरात्मा

इस प्रकार तप करते करते परंतापको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ एक सहस्र वर्षतक पृथिवीमें मस्तक टेककर स्थित हुए, सौ वर्षतक ऊपरको भुजा उठाकर स्थित रहगये ॥ २२ ॥ इस प्रकार वे दुराग्रहमें तत्परहोकर परम दुःखको प्राप्त हुए, इस प्रकारसे दिनरात वे दैत्य आलस्य छोडकर तपमें स्थित हुए ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस प्रकार तपस्या करते उनको बहुत समय बीतगया, और मेरी समझमें ब्रह्मात्मा वे तारकके पुत्र जब पूर्ण तपस्वी हुए तब धर्म जानकर ॥२४॥ सुरासुरके गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी संतुष्ट मनसे उनके वर देनेको आये ॥ २५ ॥ तब मुनि और देवताओंके साथ आकर सबके पितामह ब्रह्माजी सांत्वना

वर्षाणां तु सहस्रं वै मस्तकेनास्थितास्तथा ॥ वर्षाणां तु शतेनैव ऊर्द्ध्वबाहव आसिताः ॥ २२ ॥ एवं दुःखं परं प्राप्ता दुराग्रहपरा
इमे ॥ ईदृक्के संस्थिता दैत्या दिवारात्रमतंद्रिताः ॥ २३ ॥ एवं तेषां गतः कालो महान् सुतपतां मुने ॥ ब्रह्मात्मनां तारकाणां धर्मेणे
ति मतिर्मम ॥ २४ ॥ प्रादुरासीत्ततो ब्रह्मा सुरासुरगुरुर्महान् ॥ संतुष्टस्तपसा तेषां वरं दातुं महायशाः ॥ २५ ॥ मुनिदेवासुरैस्सार्द्धं
सांत्वपूर्वमिदं वचः ॥ ततस्तानब्रवीत्सर्वान् सर्वभूतपितामहः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि महादैत्या युष्माकं तपसा मुने ॥
सर्वं दास्यामि युष्मभ्यं वरं ब्रूत यदीप्सितम् ॥ २७॥ किमर्थं सुतपस्तप्तं कथयध्वं सुरद्विषः ॥ सर्वेषां तपसो दाता सर्वकर्तास्मि सर्वदा
॥ २८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शनैस्ते स्वात्मनो गतम् ॥ ऊचुः प्रांजलयस्सर्वे प्रणिपत्य पितामहम् ॥ २९ ॥
॥ दैत्या ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया ॥ अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु देहिनः ॥ ३० ॥ स्थिरान् कुरु जगन्नाथ
पांतु नः परिपंथिनः ॥ जरारोगादयस्सर्वे नास्मान्मृत्युरगात् क्वचित् ॥ ३१ ॥

पूर्वक उन सबसे यह वचन बोले ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे महादैत्यो मैं तुमसे प्रसन्न हूं मैं तुमको सब प्रकारसे वर दूंगा, तुम अपनी अभिलाषाका वर मांगो ॥ २७ ॥ हे दैत्यो तुमने किस निमित्त तपस्या की है सो कहो, मैं सबके तपस्याका फल देनेवाला सर्वदा सबका कर्ता हूं ॥ २८ ॥ सनत्कुमार बोले, वे असुर ब्रह्माजीके इस प्रकारके वचन सुन शनैः २ विचारकर ब्रह्माजीको प्रणाम कर बोले ॥ २९ ॥ दैत्य बोले, हे देवेश ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, यदि हमको वर देनेको उद्यत हुए हैं, तो सब प्राणियोंसे हमको अवध्य कर दीजिये ॥ ३० ॥ हे जगन्नाथ स्थिर करके हमारे जितने विघ्न हैं,

सबको दूर कीजिये, जराको आदि लेकर रोग और मृत्यु किसी प्रकार भी हमको प्राप्त न हो ॥ ३१ ॥ हम सब अजर अमर रहैं, यही हमारा मत है, और
हमको ऐसी सामर्थ्य हो कि हम चाहैं तो त्रिलोकीको वध कर सकैं ॥ ३२ ॥ बहुतसी लक्ष्मी बडे २ नगर और अनेक भोगस्थान ऐश्वर्योंसे क्या काम है
॥ ३३ ॥ जो यह प्राणि थोडेही दिनोंमें मृत्युका ग्रास होजाय, उसका सब कुछ व्यर्थ होजाता है, यह हमने निश्चय कर लिया है ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार
बोले, इस प्रकार उन दैत्य तपस्वियोंके वचन सुनकर ब्रह्माजी अपने प्रभु गिरीश, महादेवजीको स्मरण कर कहने लगे ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे असुरो !

अजराश्चामरास्सर्वे भवाम इति नो मतम् ॥ समृत्यवः करिष्यामस्सर्वानन्यांस्त्रिलोकके ॥ ३२ ॥ लक्ष्म्या किं तद्विपुलया किं कार्यं हि
पुरोत्तमैः ॥ अन्यैश्च विपुलैर्भोगैस्स्थानैश्वर्येण वा पुनः ॥ ३३ ॥ यत्रैव मृत्युना ग्रस्तो नियतं पंचभिर्दिनैः ॥ व्यर्थं तस्याखिलं ब्रह्मन्
निश्चितं न इतीव हि ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां दैत्यानां च तपस्विनाम् ॥ प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा स्वप्रभुं
गिरिशं विधिः ॥ ३५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्ति सर्वामरत्वं च निवर्तध्वमतोऽसुराः ॥ अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशो वो हि रोचते
॥ ३६ ॥ जातो जनिष्यते नूनं जंतुः कोप्यसुराः क्वचित् ॥ अजरश्चामरो लोके न भविष्यति भूतले ॥ ३७ ॥ ऋते तु खंडपरशोः
कालकालाद्धरेस्तथा ॥ तौ धर्माधर्मपरमावव्यक्तौ व्यक्तरूपिणौ ॥ ३८ ॥ संपीडनाय जगतो यदि स क्रियते तपः ॥ सफलं तद्व्रतं
वेद्यं तस्मात्सुविहितं तपः ॥३९॥ तद्विचार्य स्वयं बुद्ध्या न शक्यं यत्सुरासुरैः ॥ दुर्लभं वा सुदुस्साध्यं मृत्युं वंचयतानघाः ॥ ४० ॥

सबको अमरत्व नहीं होसकता, तुम इस कामसे निवृत्त हो, और वर जैसा तुमको रुचै मांगलो ॥ ३६ ॥ हे असुरो ! कोई भी प्राणी जो प्रगट हुआ होगा
मृत्युको प्राप्त होगा, लोकमें कोईभी अजर अमर न होगा ॥ ३७ ॥ कालके काल हरि और भगवान् शंकरके सिवाय लोकमें कोई भी अमर नहीं है, यह
दोनोंही धर्म और अधर्मसे परे हैं, तथा अव्यक्त और व्यक्तरूप हैं ॥३८॥ यदि तप जगत्को पीडा देनेके लिये कियाजाय, तो उसकी सफलता गई जानों,
इससे श्रेष्ठतपका अनुष्ठान करो ॥ ३९ ॥ सो आप स्वयं बुद्धिसे विचारकर जो सुर असुरोंको भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है दुर्लभ या दुःसाध्य मृत्युको

छोडकर वर मांगो ॥ ४० ॥ तुम सत्वगुणके आश्रय होकर मरणमें हेतुका कोई वर मांगो, जिससे मृत्यु तुमको न आवै, उस हेतुको पृथक् पृथक् रक्षा करो ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार बोले, विधाताके यह वचन सुनकर एक मुहूर्तको ध्यानमें स्थित हुए, और थोडी देर विचार कर सब लोकके पितामहसे बोले ॥ ॥ ४२ ॥ दैत्य बोले, हे भगवन् ! हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं है जिसमें पराक्रमवाले शत्रु प्रवेश न कर सकैं और हम वहां सुखसे निवास कर सकैं ॥ ४३ ॥ आप हमको तीन अद्भुत पुर निर्माण कर दीजिये, जिनमें सब सम्पति स्थित हो धनधान्य भरे हों तथा देवता जिनको धर्षण न कर सकैं

तत्किंचिन्मरणे हेतुं वृणीध्वं सत्त्वमाश्रिताः ॥ येन मृत्युर्नैव वृतो रक्षतस्तत्पृथक् पृथक् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतद्विधिवचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थिताः ॥ प्रोचुस्ते चिंतयित्वाथ सर्वलोकपितामहम् ॥ ४२ ॥ दैत्या ऊचुः ॥ भगवन्नास्ति नो वेश्म पराक्रमवतामपि॥ अधृष्याः शात्रवानां तु यत्र वत्स्यामहे सुखम् ॥ ४३ ॥ पुराणि त्रीणि नो देहि निर्मायात्यद्भुतानि हि ॥ सर्वसंपत्समृद्धान्यप्रधृष्याणि दिवौकसाम् ॥ ४४ ॥ वयं पुराणि त्रीण्येवं समास्थाय महीमिमाम् ॥ चरिष्यामो हि लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो ॥ ४५ ॥ तारकाक्षस्ततः प्राह यदभेद्यं सुरैरपि ॥ करोति विश्वकर्मा तन्मम हेममयं पुरम् ॥ ४६ ॥ ययाचे कमलाक्षस्तु राजतं सुमहत्पुरम् ॥ विद्युन्माली च संहृष्टो वज्रायसमयं महत् ॥ ४७ ॥ पुरेष्वेतेषु भो ब्रह्मन्नेकस्थानस्थितेषु च ॥ मध्याह्नाभिजिते काले शीतांशौ पुष्पसंस्थिते ॥ ४८ ॥ उपर्युपर्यहृष्टेषु व्योम्नि लीलाभ्रसंस्थिते ॥ वर्षत्सु कालमेघेषु पुष्करावर्तनामसु ॥ ४९ ॥

॥ ४४ ॥ हे लोकेश ! हे जगद्गुरो ! हम आपकी कृपासे इन तीनों पुरोंमें स्थित होकर इस समस्त पृथिवीमें विचरण करैंगे ॥ ४५ ॥ तारकाक्षने कहा मेरी यह इच्छा है, कि देवताओंसे भी अभेद्य हो ऐसा विश्वकर्मा मेरा सुवर्णका पुर निर्माण कर दे ॥ ४६ ॥ कमलाक्षने कहा मेरा चांदीका ऐसाही पुर हो, और विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर कहा मेरा लोहेका पुर निर्माण करा दीजिये ॥ ४७ ॥ हे प्रभु ! जब कभी यह तीनों पुर मध्याह्न समयमें एक स्थानपर स्थित हों मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तपर जब कि चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रमें स्थित हो॥४८॥और आकाशके ऊपर नीले नीले पुष्करावर्त्त नामक मेघ छायेहों॥४९॥

सहस्र सहस्र वर्षके उपरांन्त जब हम परस्पर मिलैं और यह तीनों पुर यदि उस समय एकीभावको प्राप्त हों ॥ ५० ॥ सर्व देवमय देव भगवान् कुहेलासे असंभव स्थलमें स्थित होकर जिसमें युद्धकी सब सामग्री हों ॥ ५१ ॥ असंभावनावाले एकही समय हमारे नगरको नष्ट करदे तो नष्ट हो नहीं तो नहीं हां शिवजी किंसीसे वैर नहीं करते हैं हमारे वह ॥ ५२ ॥ वन्दनीय पूजनीय नित्यही हैं वह हमें कैसे मारसकतें हैं इस प्रकार मनमें धारण कर देखते हैं कि, पृथिवीमें वैसा देव दुर्लभ है ॥ ५३ ॥ सनत्कुमार बोले, लोकपितामह ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर शिवजीको स्मरण करते हुए बोले, अच्छा ऐसाही

तथा वर्षसहस्रांते समेष्यामः परस्परम् ॥ एकीभावं गमिष्यंति पुराण्येतानि नान्यथा ॥ ५० ॥ सर्वदेवमयो देवस्सर्वेषां मे कुहेलया ॥ असंभवे रथे तिष्ठन् सर्वोपस्करणान्विते ॥ ५१ ॥ असंभाव्यैककांडेन भिनत्तु नगराणि नः ॥ निर्वैरः कृत्तिवासास्तु योस्माकमिति नित्यशः ॥ ५२॥ वंद्यः पूज्योभिवाद्यश्च सोस्माकं निर्दहेत्कथम् ॥ इति चेतसि संधाय तादृशो भुवि दुर्लभः ॥ ५३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ एवमस्तीति तान् प्राह सृष्टिकर्त्ता स्मरञ्शिवम् ॥ ५४ ॥ आज्ञां ददौ मयस्यापि कुत्र त्वं नगरत्रयम् ॥ कांचनं राजतं चैव आयसं चेति भो मय ॥ ५५ ॥ इत्यादिश्य मयं ब्रह्मा प्रत्यक्षं प्राविशद्दिवम् ॥ तेषां नारकपुत्राणां पश्यतां निजधाम हि ॥ ५६ ॥ ततो मयश्च तपसा चक्रे धीरः पुराण्यथ ॥ कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ॥ ५७ ॥ विद्युन्मालयायसं चैव त्रिविधं दुर्गमुत्तमम् ॥ स्वर्गे व्योम्नि च भूमौ च क्रमाज्ज्ञेयानि तानि वै ॥ ५८ ॥ दत्वा तेभ्यो सुरेभ्यश्च पुराणि त्रीणि वै मयः ॥ प्रविवेश स्वयं तत्र हितकामपरायणः ॥ ५९ ॥

होगा, शिवजीके हाथही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ५४ ॥ और मयको ब्रह्माजीने आज्ञा दी कि तुम तीन पुर बनाओ एक सोनेका, एक चांदीका और एक लोहेका ॥५५॥ ब्रह्माजी इस प्रकार मयको आज्ञा देकर उन तारकपुत्रोंके देखते २ अपने धाम द्युलोकको चले गये ॥ ५६ ॥ तब मयने बडे परिश्रमसे तीनों पुरोंको निर्माण किया तारकाक्षको सुवर्णका कमलाक्षको चांदीका ॥ ५७ ॥ और विद्युन्मालीको लोहेका पुर दिया, इस प्रकार तीन उत्तम दुर्ग निर्माण किये ॥ ५८ ॥ उनमें एक स्वर्गमें एक आकाशमें और एक पृथिवीमें विचरता था मय वह तीनोंपुर उन असुरोंको देकर और आपभी उनके हितकी इच्छासे

उनमें प्रवेश करगया ॥ ५९ ॥ इसप्रकार वे तारकके तीनों पुत्र उन तीनों पुरोंको प्राप्त होकर महाबलपराक्रमसे महाभोगोंको भोगने लगे ॥ ६० ॥ वह पुर कल्पवृक्षोंसे व्याप्त, गजवाजियोंसे भरेपुरे, अनेक महलोंसे संगठित, मणियोंके समूहवाले झरोखोंसे व्याप्त थे ॥ ६१ ॥ सूर्यमंडलकी समान अनेक विमान उनमें विद्यमान थे, और चन्द्रमाकी समान पद्मराग मणियोंसे शोभायमान थे ॥ ६२ ॥ बडे २ महल दिव्य छज्जे कैलासपर्वतके शिखरकी समान ऊंचे गंधर्व, सिद्ध, चारण, और दिव्यस्त्री जिनमें निवास करती थीं ॥ ६३ ॥ प्रत्येक घरमें शंकरके मंदिर थे, प्रत्येक घरमें अग्निहोत्र था, शास्त्रके जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण शिवभक्तोंसे वह पुर व्याप्त थे ॥ ६४ ॥ बावडी कुए तालाव अल्प सरोवरोंसे शोभायमान उद्यान और स्वर्गसे आयेहुए मानो वनके वृक्षोंसे

एवं पुत्रत्रयं प्राप्य प्रविष्टास्तारकात्मजाः ॥ बुभुजुस्सकलान्भोगान्महाबलपराक्रमाः ॥ ६० ॥ कल्पद्रुमैश्च संकीर्णं गजवाजिसमाकुलम् ॥ नानाप्रासादसंकीर्णं मणिजालसमावृतम् ॥ ६१ ॥ सूर्यमण्डलसंकाशैर्विमानैस्सर्वतोमुखैः ॥ पद्मरागमयैश्चैव शोभितं चन्द्रसन्निभैः ॥ ६२ ॥ प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः ॥ दिव्यस्त्रीजनसंकीर्णैर्गंधर्वैस्सिद्धचारणैः ॥६३॥ रुद्रालयैः प्रतिगृहमग्निहोत्रैः प्रतिष्ठितैः ॥ द्विजोत्तमैश्शास्त्रविज्ञैश्शिवभक्तिरतैस्सदा ॥ ६४ ॥ वापीकूपतडागैश्च दीर्घिकाभिस्सुशोभितम् ॥ उद्यानवनवृक्षैश्च स्वर्गच्युतगुणोत्तमैः ॥ ६५ ॥ नदीनदसरिन्मुख्यपुष्करैः शोभितं सदा ॥ सर्वकामफलाद्यैश्चानेकैर्वृक्षैर्मनोहरम् ॥ ६६ ॥ मत्तमातंगयूथैश्च तुरंगैश्च सुशोभनैः ॥ रथैश्च विविधाकारैश्शिबिकाभिरलंकृतम् ॥ ६७ ॥ समयादिशिकैश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक्पृथक् ॥ वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः पृथक्पृथक् ॥ ६८ ॥ अदृष्टं मनसा वाचा पापान्वितनरैस्सदा ॥ महात्मभिश्शुभाचारैः पुण्यवद्भिः प्रवीक्ष्यते ॥ ६९ ॥ पतिव्रताभिः सर्वत्र पावितं स्थलमुत्तमम् ॥ पतिसेवनशीलाभिर्विमुखाभिः कुधर्मतः ॥ ७० ॥

शोभायमान थे ॥ ६५ ॥ नदियें नद मुख्य २ सरितायें जिनमें सदा कमल खिलते सब समयमें फलनेवाले अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और मनोहरथे ॥ ६६ ॥ मतवाले हाथी और घोडोंके यूथोंसे शोभायमान अनेक प्रकारके रथ और पालकियोंसे अलंकृत ॥ ६७ ॥ समयादिके क्रीडास्थान पृथक्पृथक् बनेहुए, तथा वेदके अध्ययनकी शालायें पृथक्पृथक् बनी हुई थीं ॥ ६८ ॥ जिनको पापी मनुष्य मनवचनकर्मोंसे अवलोकन नहीं करसकते, अच्छे आचरणकरनेवाले महात्मा पुण्यात्मा जहाँ जा सकते हैं ॥ ६९ ॥ जिसके सब स्थल पतिव्रतास्त्रियोंसे पवित्रहैं, जो कुधर्मसे विमुखहोकर पतिकाही दर्शन करती हैं ॥ ७० ॥

उनमें महाभाग्यवाले बडे शूर दैत्य अपनी स्त्री पुत्र और ब्राह्मणोंके सहित निवासकरते थे, तथा श्रौतस्मार्तके तत्त्व जाननेवाले अपने धर्ममें निरत निवास करते थे ॥ ७१ ॥ जिनकी चौडी दृढ छाती, वृषभकेसे ऊंचे कंधे, सामयुद्धके उपायोंमें कुशल, ऐसे शांत हो निवास करते, तथा समयपर कोपकरते, इसी प्रकार कुबडे और बौनोंसे व्याप्त ॥ ७२ ॥ नीलकमलकी समान नीले और घुँघराने बालोंवाले यह सब युद्धकी लालसावाले मयने उसमें रक्खे ॥ ७३ ॥ चारों ओरसे युद्धमें प्रीतिवाले, ब्रह्मा और शिवके पूजनसे विशुद्धवीर्यवाले, सूर्य, मरुत और इन्द्रके समान पराक्रमी, देवताओंके मथन करनेमें दृढपराक्रमी दैत्योंसे सेवित थे ॥ ७४ ॥ वेद शास्त्र पुराणादिमें जो धर्म कथन किये हैं, जो धर्म सदा शिवके प्रिय हैं, वे सब धर्म उनमें विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ इस प्रकारसे वे सब तारकपुत्र शिवके धर्मवाले मयके आश्रित हो वहां निवास करने लगे ॥ ७६ ॥ वे तीनों नगर सब त्रिलोकीको नष्ट करते हुए शिवमार्गमें निरत होकर महद्राज्य करनेलगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकार उन पुण्यकर्म करनेवालोंको बहुत समय बीतगया, हे मुने ! वे वहां सुख और प्रीतिसे राज्य करने लगे ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रु० पं० यु० भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ व्यासजी बोले हे ब्रह्मपुत्र ! हे महाविद्वान ! हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ !

दैत्यशूरैर्महाभागैस्सदारैस्ससुतैर्द्विजैः ॥ श्रौतस्मार्तार्थतत्त्वज्ञैस्स्वधर्मनिरतैर्युतम् ॥ ७१ ॥ व्यूढोरस्कैर्वृषस्कंधैस्सामयुद्धधरैस्सदा ॥ प्रशांतैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा ॥ ७२ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुंचितमूर्द्धजैः ॥ मयेन रक्षितैस्सर्वैश्शिक्षितैर्युद्धलालसैः ॥ ७३ ॥ वरसमररतैर्युतं समंतादजशिवपूजनया विशुद्धवीर्यैः ॥ रविमरुतमहेन्द्रसंनिकाशैस्सुरमथनैस्सुदृढैस्सुसेवितं यत् ॥७४॥ शास्त्रवेदपुराणेषु येये धर्माः प्रकीर्तिताः ॥ शिवप्रियास्सदा देवास्ते धर्मास्तत्र सर्वतः ॥ ७५ ॥ एवं लब्धवरास्ते तु दैतेयास्तारकात्मजाः ॥ शैवं मयमुपाश्रित्य निवसंति स्म तत्र ह ॥ ७६ ॥ सर्वं त्रैलोक्यमुत्सार्य प्रविश्य नगराणि ते ॥ कुर्वंति स्म महद्राज्यं शिवमार्गरतास्सदा ॥ ७७ ॥ ततो महान् गतः कालो वसतां पुण्यकर्मणाम् ॥ यथासुखं यथाजोषं सद्राज्यं कुर्वतां मुने ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने त्रिपुरवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ वद मे वदतां वर ॥ ततः किमभवद्देवाः कथं च सुखिनोऽभवन् ॥ १ ॥

आप हमसे कहिये, तब क्या हुआ, और देवगण किस प्रकारसे सुखी हुए ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले, इसप्रकार महाबुद्धिमान् व्यासजीके वचन सुनकर शिवके चरणकमलको स्मरणकर सनत्कुमारजी कहने लगे ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, तब उसकी प्रभासे दग्धहो इन्द्रादिक देवता हीनबल होने लगे, सब परस्पर दुःखी हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ३ ॥ प्रीतिसे ब्रह्माजीको प्रणामकर अवसर देखकर अपना दुःख निवेदन करने लगे ॥४॥ देवता बोले हे विधाताजी, त्रिपुरोंके अधिपति मयने तथा उन तारकके पुत्रोंने सब देवताओंको तापितकर दिया है ॥ ५ ॥ हे विधाता ! इस कारण हम दुःखी हुए आपकी शरणमें आये

॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितधीमतः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ २ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ तत्प्रभया दग्धा देवा हीन्द्रादयस्तथा ॥ संमंत्र्य दुःखितास्सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥ नत्वा पितामहं प्रीत्या परिक्षिताखिलास्सुराः ॥ दुःखं विज्ञापयामासुर्विलोक्यावसरं ततः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ धातस्त्रिपुरनाथेन सतारकसुतेन हि ॥ सर्वे प्रतापिता नूनं मयेन त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥ अतस्ते शरणं याता दुःखिता हि विधे वयम् ॥ कुरु त्वं तद्वधोपायं सुखिनस्स्याम तद्यथा ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति विज्ञापितो देवैर्विहस्य भवकृद्विधिः ॥ प्रत्युवाचाथ तान्सर्वान्मयतो भीतमानसान् ॥ ७ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ न भेतव्यं सुरास्तेभ्यो दानवेभ्यो विशेषतः ॥ आचक्षे तद्वधोपायं शिवं शर्वः करिष्यति ॥ ८ ॥ मत्तो विवर्धितो दैत्यो वधं मत्तो न चार्हति ॥ तथापि पुण्यं वर्द्धेत नगरे त्रिपुरे पुनः ॥ ९ ॥ शिवं च प्रार्थयध्वं वै सर्वे देवास्सवासवाः ॥ सर्वाधीशः प्रसन्नश्चेत्स वः कार्यं करिष्यति ॥ १० ॥

हैं आप उसके वधका उपाय करैं, जिससे हम सब सुखी हो ॥ ६ ॥ सनत्कुमार बोले, जब देवताओंने ऐसे वचन कहे तब हँसकर ब्रह्माजी मयदानवसे डरेहुए सब देवताओंसे बोले ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले, देवताओ तुम उन दानवोंसे मत डरो, मैं उनके वधका उपाय कहता हूं शिवजी उनका संहार करेंगे ॥ ८ ॥ वह दैत्य मुझसे वृद्धिको प्राप्त हुएहैं, इस कारण मुझसे वधके योग्य नहीं हैं, और उस त्रिपुरनगरमें प्रतिदिन पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ ९ ॥ सब देवता इन्द्रादिके

सहित तुम शिवजीकी प्रार्थना करो वे सर्वाधीश यदि प्रसन्न होजायगे तो वह तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकारसे ब्रह्माजीके वचन सुनकर वे सब देवता दुःखी होकर शिवजीके समीप गये ॥ ११ ॥ वह सब कोई भक्तिसे देवेशको प्रणामकर हाथ जोडकर स्थित हुए, और कंधे झुकाकर लोकके कल्याण करनेवाले शंकरकी प्रार्थना करनेलगे ॥ १२ ॥ देवता बोले, हिरण्यगर्भ सब सृष्टिके विधान करनेवाले देवको प्रणाम है, स्थितिकरनेवाले समर्थ सर्वव्यापकके निमित्त नमस्कारहै ॥ १३ ॥ आप प्राणियोंके संहारकर्ता भूतस्वरूप हो, आपको प्रणाम है, निर्गुण अमित तेजवाले शिवके निमित्त

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य विधेर्वाणीं सर्वे देवास्सवासवाः ॥ दुःखितास्ते ययुस्तत्र यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥ ११ ॥ प्रणम्य भक्त्या देवेशं सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ तुष्टुवुर्विनतस्कंधाश्शंकरं लोकशंकरम् ॥ १२ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने ॥ नमः स्थितिकृते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे ॥१३॥ नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे ॥ निर्गुणाय नमस्तुभ्यं शिवायामिततेजसे ॥ १४ ॥ अवस्थारहितायाथ निर्विकाराय वर्चसे ॥ महाभूतात्मभूताय निर्लिप्ताय महात्मने ॥ १५ ॥ नमस्ते भूतपतये महाभारसहिष्णवे ॥ तृष्णाहराय निर्वैराकृतये भूरितेजसे ॥ १६ ॥ महादैत्यमहारण्यनाशिने दाववह्नये ॥ दैत्यद्रुमकुठाराय नमस्ते शूलपाणये ॥ १७ ॥ महादनुजनाशाय नमस्ते परमेश्वर ॥ अम्बिकापतये तुभ्यं नमस्सर्वास्त्रधारक ॥ १८ ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ परमात्मन्महेश्वर ॥ नीलकंठाय रुद्राय नमस्ते रुद्ररूपिणे ॥ १९ ॥

नमस्कार है ॥ १४ ॥ अवस्थासें रहित निर्विकार कांतिमान् महाभूतोंके आत्मा लिंग (चिह्न) रहित निर्लिप्त महात्मा आपको प्रणाम है ॥ १५ ॥ सब भूतोंके अधिपति महाभारको सहनेवाले तृष्णाके हरनेवाले वैररहित आकृतिवाले अमित तेजस्वीको प्रणामहै ॥ १६ ॥ महादैत्योंके वन नाशकरनेको दावकी अग्निरूप आपको प्रणाम है, दैत्यरूपी वृक्षोंको कुठाररूप शूलपाणि आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ हे परमेश्वर ! महादैत्योंके नाश करनेवाले आपको प्रणाम है, ह सब अस्त्रोंकेधारक ! अम्बिकापति आपको वारंवार प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे पार्वतीनाथ ! परमात्मन् महेश्वर आपको प्रणाम है, नीलकण्ठ रुद्ररूपी आपको

प्रणाम है ॥ १९ ॥ वेदान्तसे जाननेयोग्य मार्गसेभी परे आपको प्रणामहै गुणस्वरूप गुणी गुणवर्जित आपको प्रणाम है ॥ २० ॥ त्रिलोकीके आनन्द करनेवाले महादेवरूप आपको नमस्कार है, प्रद्युम्न अनिरुद्ध वासुदेवरूप आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥ संकर्षण देव, कंसके नाशक, चाणूरके मर्दनकरनेवाले, दामोदररूप तथा विषके नाशक आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ इन्द्रियोंके अधिपति विभो सुखदायक शंकर आपको प्रणाम है अधोक्षज गजकी पुकार सुननेवाले कामशत्रु विषनाशन आपको प्रणामहै ॥ २३ ॥ नारायणदेव, नारायणपरायण, नारायणस्वरूप, नारायणके शरीरसे प्रगट, वा अपने शरीरसे नारायणको प्रगट करनेवाले ॥ २४ ॥ सर्वरूप, महानरकके हरनेवाले, पापहारी, वृषवाहन आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥ क्षणआदिकालरूप अपने भक्तोंको बल देनेवाले अनेकरूप और रूपवाले दैत्योंके चक्रको मर्दन करनेवाले ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके देवता, गोब्राह्मणके हितकारी, सहस्रमूर्ति और सहस्रों अवयवोंवाले आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ धर्मरूप सत्त्वरूप सत्त्वके आत्मा दुःखहारी आपको नमस्कार है वेदसे ही जानने योग्य, वेद्यस्वरूप, वेदके प्रिय आपको नमस्कारहै ॥ ॥ २८ ॥ वेदस्वरूप, वेदमुख, सदाचारके मार्गमें जानेवाले तथा सदाचारके मार्गसेही प्राप्त होने योग्य आपको प्रणाम है ॥ २९ ॥ विष्टरकी बात सुनने

नमो वेदान्तवेद्याय मार्गातीताय ते नमः ॥ नमो गुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जित ॥ २० ॥ महादेव नमस्तुभ्यं त्रिलोकीनन्दनाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय वासुदेवाय ते नमः ॥ २१ ॥ संकर्षणाय देवाय नमस्ते कंसनाशिने ॥ चाणूरमर्दिने तुभ्यं दामोदर विषादिने ॥ २२ ॥ हृषीकेशाच्युत विभो मृड शंकर ते नमः ॥ अधोक्षज गजाराते कामारे विषभक्षण ॥ २३ ॥ नारायणाय देवाय नारायणपराय च ॥ नारायणस्वरूपाय नारायणतनूद्भव ॥ २४ ॥ नमस्ते सर्वरूपाय महानरकहारिणे ॥ पापापहारिणे तुभ्यं नमो वृषभवाहन ॥ २५ ॥ क्षणादिकालरूपाय स्वभक्तबलदायिने ॥ नानारूपाय रूपाय दैत्यचक्रविमर्दिने ॥ २६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥ सहस्रमूर्त्तये तुभ्यं सहस्रावयवाय च ॥ २७ ॥ धर्मरूपाय सत्त्वाय नमस्सत्त्वात्मने हर ॥ वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च ॥ २८ ॥ नमो वेदस्वरूपाय वेदवक्त्रे नमो नमः ॥ सदाचाराध्वगम्याय सदाचाराध्वगामिने ॥ २९ ॥ विष्टरश्रवसे तुभ्यं नमस्सत्यमयाय च ॥ सत्यप्रियाय सत्याय सत्यगम्याय ते नमः ॥ ३० ॥

वाले सत्यमय सत्यप्रिय सत्य और सत्यसे ही प्राप्त होनेवाले आपको प्रणाम है ॥३०॥ आप माया मायाके अधीश्वर सामगानमें परायँण ब्रह्म और ब्रह्मसेही प्रगट हो ॥ ३१ ॥ हे ईश ! आप तपरूप, तपके फल देनेवाले, स्तुतिके योग्य, सबसे स्तुतिको प्राप्त, स्तुतिसे प्रसन्न चित्त होनेवाले ॥ ३२ ॥ श्रुतिके आचारसे प्रसन्न होनेवाले, स्तुतिके आचारसे प्रसन्न होनेवाले, चार प्रकारके स्वरूपवाले, जलस्थलसे प्रगट होनेवालेको प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे नाथ ! यह सब देवता आपकी श्रेष्ठ विभूतिहैं, आप देवताओंमें इन्द्र, ग्रहोंमें सूर्य ॥ ३४ ॥ लोकोंमें सत्यलोक, नदियोंमें गंगा, वर्णोंमें श्वेतवर्ण, और सरोवरोंमें मानसरोवरहो

नमस्ते मायिने तुभ्यं मायाधीशाय वै नमः ॥ ब्रह्मगाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मजाय च ॥ ३१ ॥ तपसे ते नमस्त्वीश तपसां फलदायिने ॥ स्तुत्याय स्तुतये नित्यं स्तुतिसंप्रीतचेतसे ॥ ३२ ॥ श्रुत्याचारप्रसन्नाय स्तुत्याचारप्रियाय च ॥ चतुर्विधस्वरूपाय जलस्थलजरूपिणे ॥ ३३ ॥ सर्वे देवादयो नाथ श्रेष्ठत्वेन विभूतयः ॥ देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणां त्वं रविर्मतः ॥ ३४ ॥ सत्यलोकोऽसि लोकानां सरितां द्युसरिद्भवान् ॥ श्वेतवर्णोऽसि वर्णानां सरसां मानसं सरः ॥ ३५ ॥ शैलानां गिरिजातातः कामधुक्त्वं च गोषु ह ॥ क्षीरोदधिस्तु सिन्धूनां धातूनां हाटको भवान् ॥ ३६ ॥ वर्णानां ब्राह्मणोऽसि त्वं नृणां राजासि शंकर ॥ मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं तीर्थानां तीर्थराड् भवान् ॥ ३७ ॥ उपलेषु समस्तेषु स्फटिकस्त्वं महेश्वर ॥ कमलस्त्वं प्रसूनेषु शैलेषु हिमवांस्तथा ॥ ३८ ॥ भवान्वाग्व्यवहारेषु भार्गवस्त्वं कविष्वपि ॥ पक्षिष्वेवासि शरभः सिंहो हिंस्रेषु संमतः ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिला च त्वं शिलासु वृषभध्वज ॥ पूज्यरूपेषु सर्वेषु नर्मदालिङ्गमेव हि ॥ ४० ॥ नन्दीश्वरोऽसि पशुषु वृषभः परमेश्वर ॥ वेदेषूपनिषद्रूपो यज्वनां शीतभानुमान् ॥ ४१ ॥

॥ ३५ ॥ पर्वतोंमें हिमालय, गौओंमें कामधेनु, समुद्रोंमें क्षीरसागर, तथा धातुओंमें सुवर्ण हो ॥ ३६ ॥ हे शंकर ! आप वर्णोंमें ब्राह्मण, और मनुष्योंमें राजाहो, मुक्तिक्षेत्रोंमें काशी, और तीर्थोंमें प्रयागहो ॥ ३७ ॥ पाषाणोंमें आप स्फटिकमणि हो हे महेश्वर! सब फूलोंमें तुम कमल, और पर्वतोंमें हिमालयहो ॥ ३८ ॥ वाणीके व्यवहारोंमें आपही, और कवियोंमें भार्गव, पक्षियोंमें शरभ और हिंसकोंमें सिंहहो ॥ ३९ ॥ हे शंकर ! शिलाओंमें आप शालिग्राम शिलाहो, और सबके पूज्य रूपमें आप नर्मदालिंगरूपहो ॥ ४० ॥ पशुओंमें वृषभरूप परमेश्वर नन्दीश्वरहो, वेदोंमें उपनिषद्रूप और यज्ञकरनेवालोंमें

चन्द्ररूपहो ॥ ४१ ॥ प्रतापियोंमें तुम पावक, शैवोंमें अच्युत (विष्णु), पुराणोंमें आप भारत, और अक्षरोंमें मकारहो ॥ ४२ ॥ बीजरूपोंमें आप ओंकार, और दारुण वस्तुओंमें आप विषहो, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, और सब आत्माओंके परमात्माहो ॥ ४३ ॥ इन्द्रियोंमें तुम मन, दानोंमें अभय, पवित्रकरनेवालोंमें जल, और जीवनदेनेवालोंमें तुम अमृत हो ॥ ४४ ॥ लाभोंमें पुत्ररूपलाभ, वेगवानोंमें वायु और सब नित्यकर्मोंमें आप सन्ध्योपासन हो ॥ ४५ ॥ यज्ञोंमें आप अश्वमेधयज्ञ, और युगोंमें सतयुग, सब धिष्णों (नक्षत्रों) में आप पुष्यहैं, और तिथियोंमें अमावास्याहो ॥ ४६ ॥ सब ऋतुओंमें तुम वसन्तऋतु,

प्रतापिनां पावकस्त्वं शैवानामच्युतो भवान् ॥ भारतं त्वं पुराणानां मकारोऽस्यक्षरेषु च ॥ ४२ ॥ प्रणवो बीजमंत्राणां दारुणानां विषं भवान् ॥ व्योमव्याप्तिमतां त्वं वै परमात्मासि चात्मनाम् ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां मनश्च त्वं दानानामभयं भवान् ॥ पावनानां जलं चासि जीवनानां तथामृतम् ॥ ४४ ॥ लाभानां पुत्रलाभोऽसि वायुर्वेगवतामसि ॥ नित्यकर्मसु सर्वेषु संध्योपास्तिर्भवान्मता ॥ ४५ ॥ क्रतूनामश्वमेधोऽसि युगानां प्रथमो युगः ॥ पुष्यस्त्वं सर्वधिष्ण्यानाममावास्या तिथिष्वसि ॥ ४६ ॥ सर्वर्तुषु वसंतस्त्वं सर्वपर्वसु संक्रमः ॥ कुशोऽसि तृणजातीनां स्थूलवृक्षेषु वै वटः ॥ ४७ ॥ योगेषु च व्यतीपातस्सोमवल्ली लतासु च ॥ बुद्धीनां धर्मबुद्धिस्त्वं कलत्रं सुहृदां भवान् ॥ ४८ ॥ साधकानां शुचीनां त्वं प्राणायामो महेश्वर ॥ ज्योतिर्लिंगेषु सर्वेषु भवान् विश्वेश्वरो मतः ॥ ४९ ॥ धर्मस्त्वं सर्वबंधूनामाश्रमाणां परो भवान् ॥ मोक्षस्त्वं सर्ववर्गेषु रुद्राणां नीललोहितः ॥ ५० ॥ आदित्यानां वासुदेवो हनूमान्वानरेषु च ॥ यज्ञानां जपयज्ञोऽसि रामः शस्त्रभृतां भवान् ॥ ५१ ॥

सब पर्वोंमें संक्रान्तिहो, तृणोंमें कुश, और स्थूल वृक्षोंमें आप वटहो ॥ ४७ ॥ योगोंमें व्यतीपात, लताओंमें सोमवल्ली, और सुहृदोंमें कलत्ररूपहो ॥ ४८ ॥ हे महेश्वर, पवित्र साधनोंमें आप प्राणायामहो, सब ज्योतिर्लिंगोंमें आप विश्वनाथहो ॥ ४९ ॥ सब बन्धुओंमें आप धर्मरूपहो, आश्रमोंमें आप संन्यास आश्रमहो, सब वर्गोंमें आप मोक्ष, और रुद्रोंमें आप नीललोहित हो ॥ ५० ॥ आदित्योंमें वासुदेव, वानरोंमें हनूमान्, यज्ञोंमें जपयज्ञ और शस्त्रधारियोंमें

आप रामहो ॥ ५१ ॥ गंधर्वोंमें चित्ररथ, वसुओंमें पावक, महीनोंमें अधिकमास, और व्रतोंमें चतुर्दशीहो ॥ ५२ ॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत, सिद्धोंमें कपिल, नागोंमें अनन्त और पितरोंमें अर्यमा आपहो ॥ ५३ ॥ कलनकरनेवालोंमें काल, दैत्योंमें बलि आपहो, बहुत कहनेसे क्या है, आप इस सब जगत्को आक्रमण करके ॥ ५४ ॥ एकांशसे बाहर भीतर स्थित होरहेहो ॥५५॥ इसप्रकारसे सब देवता महादेव वृषभध्वजकी स्तुति करके नानाप्रकारके स्तोत्रपाठसे परमेश्वर शूलधारीको प्रसन्न करतेहुए ॥ ५६ ॥ अपने स्वार्थमें चतुर वे देवता दीन हो अपने स्वार्थको कहनेके लिये इन्द्रको आदिले सब देवता शिर झुकाय

गंधर्वाणां चित्ररथो वसूनां पावको ध्रुवम् ॥ मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी ॥ ५२ ॥ ऐरावतो गजेन्द्राणां सिद्धानां कपिलो मतः ॥ अनंतस्त्वं हि नागानां पितॄणामर्यमा भवान् ॥ ५३ ॥ कालः कलयतां च त्वं दैत्यानां बलिरेव च ॥ किं बहूक्तेन देवेश सर्वं विष्टभ्य वै जगत् ॥ ५४ ॥ एकांशेन स्थितस्त्वं हि बहिःस्थोऽन्वित एव च ॥५५॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुत्वा सुरास्सर्वे महादेवं वृष ध्वजम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः शूलिनं परमेश्वरम् ॥ ५६ ॥ प्रत्यूचुः प्रस्तुतं दीनास्स्वार्थं स्वार्थविचक्षणाः ॥ वासवाद्या नतस्कंधाः कृताञ्जलिपुटा मुने ॥ ५७ ॥ देवा ऊचुः ॥ पराजिता महादेव भ्रातृभ्यां सहितेन तु ॥ भगवंस्तारकोत्पन्नैः सर्वे देवास्सवासवाः ॥ ५८ ॥ त्रैलोक्यं स्ववशं नीतं तथा च मुनिसत्तमाः ॥ विध्वस्तास्सर्वसंसिद्धास्सर्वमुत्सादितं जगत् ॥ ५९ ॥ यज्ञभागान्समग्राँस्तु स्वयं गृह्णाति दारुणः ॥ प्रवर्तितो ह्यधर्मस्तैर्ऋषीणां च निवारितः ॥ ६० ॥ अवध्यास्सर्वभूतानां नियतं तारकात्मजाः ॥ तदिच्छया प्रकुर्वन्ति सर्वे कर्माणि शंकर ॥ ६१ ॥ यावन्न क्षीयते दैत्यैर्घोरैस्त्रिपुरवासिभिः ॥ तावद्विधीयतां नीतिर्यया संरक्ष्यते जगत् ॥ ६२ ॥

हाथ जोड बोले ॥ ५७ ॥ देवता बोले, हे महादेव ! तारकके पुत्रोंने हम इन्द्रादिक सब देवताओंको पराजित करदिया है ॥ ५८ ॥ उसने सब मुनिश्रेष्ठ और त्रिलोकी अपने वशमें कर सब सिद्धोंको विध्वस्त करदिया है, और सबही जगत् उत्सादित करदिया है ॥ ५९ ॥ वह दारुण सब यज्ञके भागोंको स्वयं ही ग्रहण करता है, ऋषियोंके निवारण करनेसेभी उन्होंने अधर्ममें प्रवृत्ति की है ॥ ६० ॥ हे शंकर ! वह तारकके पुत्र सबही प्राणियोंसे अवध्य हैं, दूसरे जब सब उन्हींकी इच्छासे कर्म करते हैं ॥ ६१ ॥ जबतक त्रिपुरवासियोंसे यह सम्पूर्ण जगत विध्वंस नहीं होता है, तबतक कोई नीतिका विधान

कियाजाय जिससे जगत्की रक्षा हो ॥ ६२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इसप्रकारसे उन इन्द्रादि देवताओंके वचन सुन शिवजी उन भाषण करनेवालोंसे कहने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रु० पं० यु० भाषाटीकायां देवस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ शिवजी बोले, यह त्रिपुरअध्यक्ष इस समय पुण्यात्मा है जहाँ पुण्य वर्तता है कोई बुद्धिमान् उसका वध नहीं करता है ॥ १ ॥ हे देवताओ ! तुमको जो महाकष्ट आनकर प्राप्त हुआ है, वह मैं सब जान्ताहूं वे दैत्य बडे प्रबल हैं, कोई देवता दैत्य उनके मारनेमें समर्थ नहीं है ॥ २ ॥ वे तारकात्मज इस समय सब पुण्य कररहे हैं, उन सब पुरवासियोंका वध

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ शिवः संभाषमाणानां प्रतिवाक्यमुवाच सः ॥ ६३ ॥ इति
श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे देवस्तुतिर्नाम द्वीतीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ अयं वै त्रिपुरा
ध्यक्षः पुण्यवान्वर्ततेऽधुना ॥ यत्र पुण्यं प्रवर्तेत न हंतव्यो बुधैः क्वचित् ॥ १ ॥ जानामि देवकष्टं च विबुधास्सकलं महत् ॥ दैत्यास्ते
प्रबला हंतुमशक्यास्तु सुरासुरैः ॥ २ ॥ पुण्यवंतस्तु ते सर्वे समयास्तारकात्मजाः ॥ दुस्साध्यस्तु वधस्तेषां सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ ३ ॥
मित्रद्रोहं कथं जानन्करोमि रणकर्कशः ॥ सुहृद्द्रोहे महत्पापं पूर्वमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेये भग्नव्रते तथा ॥
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ५ ॥ मम भक्तास्तु ते दैत्या मया वध्याः कथं सुराः ॥ विचार्यतां भवद्भिश्च धर्म
ज्ञैरेव धर्मतः ॥ ६ ॥ तावत्ते नैव हंतव्या यावद्भक्तिकृतश्च मे ॥ तथापि विष्णवे देवा निवेद्यं कारणं त्विदम् ॥ ७ ॥ सनत्कुमार
उवाच ॥ इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा देवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ न्यवेदयन् द्रुतं सर्वे ब्रह्मणे प्रथमं मुने ॥ ८ ॥

दुस्साध्य है ॥ ३ ॥ जानबूझकर रणकी कर्कशतासे कैसे मित्रद्रोह कियाजाय ? ब्रह्माजीने स्वयं मित्रद्रोह करनेमें बडा पाप वर्णन किया है ॥ ४ ॥ शास्त्रमें ब्रह्महत्यारेकी, सुरापीनेवालेकी, सुवर्ण चुरानेवालेकी, व्रत [प्रतिज्ञा] तोडनेवालेकी निष्कृति सत्पुरुषोंने कही है, पर कृतघ्नकी निष्कृति नहीं है ॥ ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! जब कि वे दैत्य मेरे भक्त हैं तब मैं उनको कैसे मारसकताहूं, तुम धर्मज्ञहो इस बातको धर्मके साथ विचारो ॥ ६ ॥ जबतक मेरी भक्ति वे करतेहैं तबतक मैं उनको नहीं मारसकता, तोभी हे देवताओ ! इस बातको तुम विष्णुजीसे निवेदन करो ॥ ७ ॥ सनत्कुमार बोले वह इन्द्रको

आदिलेकर वह देवता इसप्रकारसे शिवजीके वचन श्रवण कर हे मुने ! पहले तो यह सब बात ब्रह्माजीसे कहते हुए ॥८॥ तब इन्द्रादिक सब देवता ब्रह्माजीको आगे करके महाशोभाकी खान वैकुंठको गये ॥ ९ ॥ वहां जाय नारायणको देख संभ्रमसे प्रणाम करनेलगे, और सब देवता हाथजोड महाभक्तिसे प्रसन्न करनेलगे ॥ १० ॥ तब उन समर्थ विष्णुजीसे सब देवताओंने अपने दुःखका कारण पूर्वकी समान निवेदन किया ॥ ११ ॥ इसप्रकार त्रिपुरके दियेहुए देवताओंके दुःखको सुनकर और उनका व्रत जानकर विष्णुजीने उनसे कहा ॥ १२ ॥ विष्णुजी बोले, यह सत्यही बात है जहां सनातन धर्म है, वहां

ततो विधिं पुरस्कृत्य सर्वे देवास्सवासवाः ॥ वैकुंठं प्रययुश्शीघ्रं सर्वे शोभासमन्वितम् ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा हरिंदृष्ट्वा प्रणेमुर्जातसंभ्रमाः ॥ तुष्टुवुश्च महाभक्त्या कृतांजलिपुटास्सुराः ॥ १० ॥ स्वदुःखकारणं सर्वं पूर्ववत्तदनंतरम् ॥ न्यवेदयन्द्रुतं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ११ ॥ देवदुःखं ततः श्रुत्वा दत्तं च त्रिपुरालये ॥ ज्ञात्वा व्रतं च तेषां तद्विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ इदं सत्यं वचश्चैव यत्र धर्मस्सनातनः ॥ तत्र दुःखं न जायेत सूर्ये दृष्टे यथा तमः ॥ १३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा देवा दुःखमुपागताः ॥ पुनरूचुस्तथा विष्णुं परिम्लानमुखाम्बुजाः ॥ १४ ॥ देवा ऊचुः ॥ कथं चैव प्रकर्त्तव्यं कथं दुःखं निरस्यते ॥ कथं भवेम सुखिनः कथं स्थास्यामहे वयम् ॥ १५ ॥ कथं धर्मा भविष्यंति त्रिपुरे जीविते सति ॥ देवदुःखप्रदा नूनं सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ १६ ॥ किं वा ते त्रिपुरस्येह वधश्चैव विधीयताम् ॥ नोचेदकालिकी देवसंहतिः क्रियतां ध्रुवम् ॥ १७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते तदा देवा दुःखं कृत्वा पुनःपुनः ॥ स्थितिं नैव गतिं ते वै चक्रुर्देववरादिह ॥ १८ ॥

कभी दुःख नहीं होता, जैसे सूर्यके दर्शनसे अंधकार नहीं रहता ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, वह विष्णुजीके वचन सुनकर देवताओंको बडा दुःख हुआ, और उनके मुख मलिन होगये, वे विष्णुजीसे फिर कहनेलगे ॥ १४ ॥ देवता बोले फिर क्या किया जाय, और किसप्रकारसे दुःख दूर हो, कैसे हम सुखी हों, और किसप्रकारसे स्थिति करैं ॥ १५ ॥ फिर त्रिपुरके जीवित रहनेसे दूसरे धर्म किसप्रकार होंगे, वे सबही त्रिपुरवासी निश्चय देवताओंको दुःख देने वाले हैं ॥ १६ ॥ उन त्रिपुरोंका किसीप्रकारसे वध चिन्तन किया जाय, नहीं तो अकालमें ही देवताओंका नाश होजायगा ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले,

वह देवता इसप्रकारसे कहकर और वारंवार दुःख करके कहीं अपनी गति और स्थितिको न प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ इसप्रकारसे उन देवताओंको हीन और विनयसंयुक्त देखकर श्रीमान् नारायण मनमें चिन्ता करनेलगे ॥ १९ ॥ देवताओंकी सहायताके निमित्त मुझे क्या करना चाहिये, वे तारकके समस्त पुत्र तो शिवजीके बडे भक्तहैं ॥ २० ॥ समर्थ विष्णुजी इन प्रकारसे उस समय विचारकर देवताओंके कार्य करनेके निमित्त यज्ञोंका स्मरण करते हुए ॥ २१ ॥ विष्णुजीके स्मरण करतेही वे सब यज्ञ बडी शीघ्रतासे जहां श्रीपति पुरुषोत्तम थे वहां आये ॥ २२ ॥ तब यज्ञपति पुराणपुरुष हरिको हाथ जोड शिर

तान्वै तथाविधान्दृष्ट्वा हीनान्विनयसंयुतान् ॥ सोपि नारायणः श्रीमांश्चिंतयेच्चेतसा तथा ॥ १९ ॥ किं कार्यं देवकार्येषु मया देवसहायिना ॥ शिवभक्तास्तु ते दैत्यास्तारकस्य सुता इति ॥ २० ॥ इति संचिन्त्य तत्काले विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ततो यज्ञास्स्मृतास्तेन देवकार्यार्थमक्षयाः ॥ २१ ॥ तद्विष्णुः स्मृतिमात्रेण यज्ञास्ते तत्क्षणं द्रुतम् ॥ आगतास्तत्र यत्रास्ते श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥ ततो विष्णुं यज्ञपतिं पुराणं पुरुषं हरिम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुस्ते वै कृतांजलिपुटास्तदा ॥ २३ ॥ भगवानपि तान्दृष्ट्वा यज्ञान्प्राह सनातनम् ॥ सनातनस्तदा सेंद्रान्देवानालोक्य चाच्युतः ॥ २४ ॥ ॥ विष्णु रुवाच ॥ अनेनैव सदा देवा यजध्वं परमेश्वरम् ॥ पुरत्रय विनाशाय जगत्त्रयविभूतये ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अच्युतस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः ॥ प्रेम्णा ते प्रणतिं कृत्वा यज्ञेशं तेऽस्तुवन्सुराः ॥ २६ ॥ एवं स्तुत्वा ततो देवा अयजन्यज्ञपूरुषम् ॥ यज्ञोक्तेन विधानेन संपूर्णविधयो मुने ॥ २७ ॥ ततस्तस्माद्यज्ञकुंडात्समुत्पेतुस्सहस्रशः ॥ भूतसंघा महाकायाः शूलशक्तिगदायुधाः ॥ २८ ॥

झुकाय वे यज्ञ विज्ञप्ति करने लगें ॥ २३ ॥ भगवान् उन सनातन यज्ञोंको आया देखकर उनसे इन्द्रादि सब देवताओंको दिखाकर अच्युतने कहा ॥ २४ ॥ विष्णुजी बोले, हे देवताओ ! इन यज्ञोंसे तुम सदा परमेश्वरका यजन करो, इनसे तीनों जगत्का कल्याण और तीनों पुरोंका विनाश होगा ॥ २५ ॥ सनत्कुमारजी बोले देवदेव अच्युतके यह वचन सुनकर प्रेमपूर्वक वे सब देवता यज्ञेशकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ अनंतर वे देवता यज्ञपुरुषका यजन करने लगे, हे मुने ! वह सविधानसे यज्ञपुरुषका विधान करने लगे ॥ २७ ॥ तब उस यज्ञकुण्डसे महाकायावाले शूलशक्ति और गदाहाथमें लिये सहस्रों भूत

प्रगट हुए ॥ २८ ॥ तब देवताओंने उन सहस्रों भूतोंको अवलोकन किया, जो शूल शक्ति गदा हाथमें लिये दण्ड चाप धारण किये थे ॥ २९ ॥
अनेक प्रकारके प्रहारोंसे युक्त नानावेष धारण किये, कालाग्निरुद्रकी समान तथा कालसूर्यकी समान थे ॥ ३० ॥ जब उन सबने प्रगट होकर विष्णुजीके
आगे प्रणाम किया, तब रुद्रकी आज्ञाके पालन करनेवाले श्रीमान् विष्णुजी उनसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ विष्णुजी बोले हे भूतो ! देवताओंके कार्यके निमित्त
उद्यतहुए तुम मेरे वचन सुनो, तुम बडे बलवान् सब त्रिपुरके स्थानको जाओ ॥ ३२ ॥ वहां जाकर उसके पुरोंको तोडकर जलाकर, विदीर्णकर, फिर

दद्दशुस्ते सुरास्तान् वै भूतसंघान् सहस्रशः ॥ शूलशक्तिगदाहस्तान्दण्डचापशिलायुधान् ॥ २९ ॥ नानाप्रहरणोपेतान् नानावेषधराँ
स्तथा ॥ कालाग्निरुद्रसद्दशान्कालसूर्योपमाँस्तदा ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा तानब्रवीद्विष्णुः प्रणिपत्य पुरःस्थितान् ॥ भूतान्यज्ञपतिः श्रीमा
न्रुद्राज्ञाप्रतिपालकः ॥ ३१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भूताः शृणुत मद्वाक्यं देवकार्यार्थमुद्यताः ॥ गच्छन्तु त्रिपुरं सद्यस्सर्वे हि बलवत्तराः
॥ ३२ ॥ गत्वा दग्ध्वा च भित्त्वा च भङ्क्त्वा दैत्यपुरत्रयम् ॥ पुनर्यथागता भूता गंतुमर्हथ भूतये ॥ ३३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं ततो भूतगणाश्च ते ॥ प्रणम्य देवदेवं तं ययुर्दैत्यपुरत्रयम् ॥ ३४ ॥ गत्वा तत्प्रविशंतश्च त्रिपुराधिपतेजसि ॥
भस्मसादभवन्सद्यश्शलभा इव पावके ॥ ३५ ॥ अवशिष्टाश्च ये केचित्पलायनपरायणाः ॥ निस्सृत्यारं समायाता हरेर्निकटमाकुलाः
॥ ३६ ॥ तान्दृष्ट्वा स हरिः श्रुत्वा तच्च वृत्तमशेषतः ॥ चिंतयामास भगवान्मनसा पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥ किं कृतत्यमधुना कार्यमिति
संतप्तमानसः ॥ संतप्तानमरान्सर्वानाज्ञाय च सवासवान् ॥ ३८ ॥

अपने कल्याणके निमित्त तुम जहां इच्छा हो चलेजाना ॥ ३३ ॥ सनत्कुमारजी बोले भगवान्के इसप्रकारके वचन सुन वे भूतगण देवदेवको प्रणामकर
जहाँ त्रिपुर थे वहाँ गये ॥ ३४ ॥ जिससमय वे उसमें प्रवेश करने लगे तो वह त्रिपुरके तेजसे इसप्रकार भस्म होगये, जैसे अग्निमें शलभ भस्म होजातेहैं
॥३५॥ जो शेष बचेथे वे भी सब भागगये, और वहांसे निकलकर बडी व्याकुलतासे हरिके निकट आगये ॥३६॥ पुरुषोत्तम भगवान् हरिने उनको देखकर
और सब वृत्तान्त सुनकर मनमें विचार किया ॥३७॥ इस समय क्या करना चाहिये, ऐसा विचारकर सब इन्द्रादि देवताओंको सन्तप्त जानकर ॥३८॥

विचारनेलगे, कि किसप्रकार उन दैत्योंके तीनों पुर नाश करके देवताओंका कार्य करूं, जब चिन्तासे व्याकुल हुए तो यहभी सोचा कि ॥ ३९ ॥ धर्मात्माओंका अभिचारसे भी नाश नहीं होता, इसमें संदेह नहीं, श्रुतिके आचार प्रमाणकरनेवाले विष्णुजीने यह कहा ॥ ४० ॥ वह त्रिपुरके रहनेवाले सब दैत्य बडे धर्मिष्ठ हैं, हे देवताओ ! इसीप्रकारसे वह अवध्य हैं, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ४१ ॥ महत्पाप करके भी वह शंकरकी पूजा करते हैं, इससे वह सब पातकोंसे मुक्तहैं, जिसप्रकार जलसे पद्मपत्र पृथक् रहता है ॥ ४२ ॥ हे देवताओ ! रुद्रके पूजन करनेसे सब कामना पूर्ण होती है और पृथिवीमें

कथं तेषां च दैत्यानां बलाद्धत्वा पुरत्रयम् ॥ देवकार्यं करिष्यामीत्यासीच्चिंतासमाकुलः ॥ ३९ ॥ नाशोऽभिचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः ॥ इति प्राह स्वयं चेशः श्रुत्याचारप्रमाणकृत् ॥ ४० ॥ दैत्याश्च ते हि धर्मिष्ठास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ तस्मादवध्यतां प्राप्ता नान्यथासुरपुंगवाः ॥ ४१ ॥ कृत्वा तु सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयंति ते ॥ मुच्यंते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवांभसा ॥ ४२ ॥ रुद्राभ्यर्चनतो देवाः सर्वे कामा भवंति हि ॥ नानोपभोगसंपत्तिर्वश्यतां याति वै भुवि ॥ ४३ ॥ तस्मात्तद्भोगिनो दैत्या लिंगार्चनपरायणाः ॥ अनेकविधसंपत्तेर्मोक्षस्यापि परत्र च ॥ ४४ ॥ ततः कृत्वा धर्मविघ्नं तेषामेवात्ममायया ॥ दैत्यानां देवकार्यार्थं हरिष्ये त्रिपुरं क्षणात् ॥ ४५ ॥ विचार्येत्थं ततस्तेषां भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ कर्तुं व्यवस्थितः पश्चाद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम् ॥ ४६ ॥ यावच्च वेदधर्मास्तु यावद्वै शंकरार्चनम् ॥ यावच्च शुचिकृत्यादि तावन्नाशो भवेन्न हि ॥ ४७ ॥ तस्मादेवं प्रकर्तव्यं वेदधर्मस्ततो व्रजेत् ॥ त्यक्तलिंगार्चना दैत्या भविष्यंति न संशयः ॥ ४८ ॥

वह अनेक भोग और सम्पत्तिको वशीभूत करते हैं ॥ ४३ ॥ इस कारण लिंगार्चनपरायण होकर दैत्य आनंद भोगते हैं, उनको अनेकप्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त है, और अन्तमें मोक्षभी पावेंगे ॥ ४४ ॥ तोभी मैं अपनी मायासे उनमें विघ्न उत्पन्न कर देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त क्षणमात्रमें त्रिपुरका संहार करूंगा ॥ ४५ ॥ इसप्रकारसे विचार कर भगवान् पुरुषोत्तम उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके निमित्त इच्छा करनेलगे ॥ ४६ ॥ जबतक वेदके धर्महैं, और जगत्में जबतक शंकरका पूजन है, जबतक उनमें पवित्र कृत्य हैं, तबतक उनका नाश न होगा ॥ ४७ ॥ इस कारण ऐसा करना चाहिये जो उनमेंसे वेदधर्म

जातारहै, यह दैत्य लिंगार्चन त्यागदेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥४८॥ इस प्रकारसे विष्णुजीने विचार कर उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये श्रुतिखंडनरूप उपाय सोचा ॥ ४९ ॥ तब त्रिलोकीके रक्षणके निमित्त शिवजीकी ही आज्ञाको प्राप्तहोकर देवताओंकी सहायताके निमित्त सब देवताओंसे विष्णुजीने कहा ॥ ५० ॥ विष्णुजी बोले, हे देवताओ ! तुम सब अपने घरोंको जाओ, इसमें संदेह नहीं मैं यथामति देवताओंका कार्य करूंगा ॥ ५१ ॥ मैं यत्नकरके उनको रुद्रसे विमुख अवश्यमेव कर दूंगा, और अपनी भक्तिसे रहित जानकर शिवजी उनको अवश्य भस्म करैंगे ॥ ५२ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने !

इति निश्चित्य वै विष्णुर्विघ्नार्थमकरोत्तदा ॥ तेषां धर्मस्य दैत्यानामुपायं श्रुतिखण्डनम् ॥ ४९ ॥ ॥ तदैवोवाच देवान्स विष्णुर्देवसहायकृत् ॥ शिवाज्ञया शिवे नैवाज्ञप्तस्त्रैलोक्यरक्षणे ॥ ५० ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ हे देवास्सकला यूयं गच्छत स्वगृहान्ध्रुवम् ॥ देवकार्यं करिष्यामि यथामति न संशयः ॥ ५१ ॥ तान्रुद्राद्विमुखान्नूनं करिष्यामि सुयत्नतः ॥ स्वभक्तिरहिताञ्ज्ञात्वा तान्करिष्यति भस्मसात् ॥ ५२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तदाज्ञां शिरसाधायाश्वासितास्तेऽमरा मुने ॥ स्वस्वधामानि विश्वस्ता ययुर्ब्रह्मापि मोदिताः ॥ ५३ ॥ ततश्चैवाकरोद्विष्णुर्देवार्थं हितमुत्तमम् ॥ तदेव श्रूयतां सम्यक्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने भूतत्रिपुरधर्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ असृजच्च महातेजाः पुरुषं स्वात्मसंभवम् ॥ एकं मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः ॥ १ ॥ मुंडिनं म्लानवस्त्रं च गुंफिपात्रसमन्वितम् ॥ दधानं पुंजिकां हस्ते चालयंतं पदेपदे ॥ २ ॥

वे देवता विष्णुकी आज्ञाको शिरपर धारण करके कुछ निश्चिन्त हुए, और ब्रह्माके अनुमोदनसे प्रसन्न हो अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ५३ ॥ तब विष्णु भगवान्‌ने देवताओंका हित विचारा, वही सब पापोंके दूर करनेवाली कथा विश्वासके साथ सुनो ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे रु० पं० यु० भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, तब महातेजस्वी विष्णुजीने एक महापुरुष उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न उपस्थित करनेके निमित्त मायासे प्रगट किया ॥ १ ॥ शिर मुंडित मलिन वस्त्र पहरे गुंफि (काठ) का पात्र हाथमें लिये, हाथमें एक बुहारी लिये, पद पद पर उसको चलायमान करते ॥ २ ॥

एक हाथमें वस्त्र लिये मुखमें वस्त्र लपेटे, और विक्लव वाणीसे धर्म २ ऐसा कहते हुए ॥ ३ ॥ वह मुनि विष्णुजीको प्रणाम कर उनके आगे स्थित हुआ, और हाथ जोडकर हरिसे कहने लगा ॥ ४ ॥ हे अरिहन् ! अच्युत पूज्य मैं क्या करूं सो आप कहिये हे देव ! मेरे क्या २ नाम होंगे, और मेरा स्थान भी आप कहिये ॥ ५ ॥ भगवान् विष्णु इस प्रकारसे उनके सुन्दर वचन सुनकर प्रसन्न मनसे इस प्रकारके वचन बोले ॥ ६ ॥ विष्णुजी बोले, मैंने जिस कारण तुमको निर्माण किया है, सो तुम सुनो, हे महाप्राज्ञ ! मेरे अंगसे उत्पन्न होनेके कारण तुम मेरेही रूप हो, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ मेरे अंगसे

वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीयमाणं मुखे सदा ॥ धर्मेति व्याहरंतं हि वाचा विक्लवया मुनिम् ॥ ३ ॥ स नमस्कृत्य विष्णुं तं तत्पुरस्सं स्थितोऽथ वै ॥ उवाच वचनं तत्र हरिं स प्रांजलिस्तदा ॥ ४ ॥ अरिहन्नच्युतं पूज्यं किं करोमि तदादिश ॥ कानि नामानि मे देव स्थानं वापि वद प्रभो ॥ ५ ॥ इत्येवं भगवान्विष्णुः श्रुत्वा तस्य शुभं वचः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ यदर्थं निर्मितोऽसि त्वं निबोध कथयामि ते ॥ मदंगज महाप्राज्ञ मद्रूपस्त्वं न संशयः ॥ ७ ॥ ममांगाच्च समुत्पन्नो मत्कार्यं कर्तुमर्हसि ॥ मदीयस्त्वं सदा पूज्यो भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ अरिहन्नाम ते स्यात्तु ह्यन्यानि च शुभानि च ॥ स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादरात् ॥ ९ ॥ मायिन्मायामयं शास्त्रं तत्षोडशसहस्रकम् ॥ श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥ १० ॥ अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा ॥ रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति ॥ ११ ॥ ददामि तव निर्माणे सामर्थ्यं तद्भविष्यति ॥ माया च विविधा शीघ्रं त्वदधीना भविष्यति ॥ १२ ॥

उत्पन्न होनेसे तुम मेरा कार्य करनेको योग्य हो, तुम मेरे हो इस कारण सदा पूज्य होगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ मुख्य तुम्हारा अरिहन् नाम होगा, और भी सुन्दर नाम होंगे पीछे तुम्हारे स्थानोंको भी कहूंगा, अब तुम आदरसे प्रस्तुत कार्यको सुनो ॥ ९ ॥ हे मायावी ! तुम एक शास्त्र सोलह सहस्र श्लोकोंमें निर्माण करो, जो श्रुतिस्मृतिसे विरुद्ध और वर्णाश्रमके धर्मसे रहितहो ॥ १० ॥ वह सब शास्त्र अपभ्रंश शब्दों [धम्मलाभोदु] से युक्त हो, केवल उसमें कर्मवाद हो उसकी तुम प्रयत्नसे रचना करो, आगे उसका विस्तार होगा ॥ ११ ॥ और उसके निर्माणमें मैं तुमको सामर्थ्य देता हूं,और अनेक प्रकारकी माया भी

शीघ्र तुम्हारे आधीन होजायँगी ।। १२ ।। इस प्रकार परमात्मा हरिके यह वचन सुनकर प्रणाम कर वह मायावी जनार्दनसे कहने लगा ।। १३ ।। मुंडी बोला, हे देव ! जो मुझे कर्तव्य हो, उसको शीघ्र कहिये, आपकी आज्ञासे सब कार्य शीघ्र सिद्ध होगा ।। १४ ।। सनत्कुमारजी बोले यह सुनकर भगवान्‌ने उसको मायामय शास्त्र पढाया, कि स्वर्ग नरक सब यहीं हैं, अन्यत्र उसकी प्रतीति नहीं है ।। १५ ।। फिर विष्णुजीने शिवजीके चरणकमलको स्मरण करके कहा इस त्रिपुरके रहनेवाले सबही दैत्यजनोंको तुम अपनी मायासे मोहित करदो ।। १६ ।। तुम उन सबको दीक्षित करके तुम यत्नसे यह शास्त्र पढाओ,

तच्छुत्वा वचनं तस्य हरेश्च परमात्मनः ॥ नमस्कृत्य प्रत्युवाच स मायी तं जनार्दनम् ॥ १३ ॥ मुण्डच्युवाच ॥ यत्कर्तव्यं मया देव द्रुतमादिश तत्प्रभो ॥ त्वदाज्ञयाखिलं कर्म सफलञ्च भविष्यति ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा पाठयामास शास्त्रं मायामयं तथा ॥ इहैव स्वर्गनरकप्रत्ययो नान्यथा पुनः ॥ १५ ॥ तमुवाच पुनर्विष्णुः स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ मोहनीया इमे दैत्याः सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ १६ ॥ कार्यास्ते दीक्षिता नूनं पाठनीयाः प्रयत्नतः ॥ मदाज्ञया न दोषस्ते भविष्यति महामते ॥ १७ ॥ धर्मास्तत्र प्रकाशन्ते श्रौतस्मार्त्ता न संशयः ॥ अनया विद्यया सर्वे स्फोटनीया ध्रुवं यते ॥ १८ ॥ गंतुमर्हसि नाशार्थं मुण्डिं स्त्रिपुरवासिनाम् ॥ तमोधर्मं संप्रकाश्य नाशयस्व पुरत्रयम् ॥ १९ ॥ ततश्चैव पुनर्गत्वा मरुस्थल्यां त्वया विभो ॥ स्थातव्यं च स्वधर्मेण कलिर्यावत्समाव्रजेत् ॥ २० ॥ प्रवृत्ते तु युगे तस्मिन्स्वीयो धर्मः प्रकाश्यताम् ॥ शिष्यैश्च प्रतिशिष्यैश्च वर्तनीयस्त्वया पुनः ॥ २१ ॥ मदाज्ञया भवद्धर्मो विस्तारं यास्यति ध्रुवम् ॥ मदनुज्ञापरो नित्यं गतिं प्राप्स्यसि मामकीम् ॥ २२ ॥

हे महामते ! मेरी आज्ञासे इसमें तुमको दोष नहीं लगैगा ।। १७ ।। इसमें सन्देह नहीं, उनमें श्रौतस्मार्त धर्मोंका प्रकाश हो रहा है, हे यतिराज ! इस विद्यासे तुम उन सब धर्मोंको उच्छिन्न कर दो ॥ १८ ॥ हे मुण्डी ! उन त्रिपुरवासियोंके नाशार्थ अब तुम गमन करो, उनमें तमोगुणी धर्मका प्रकाश करके त्रिपुरका नाशक करदो ॥ १९ ॥ हे महामते ! फिर वहांसे मरुस्थलमें जाकर तुम कलियुगके आनेतक स्वधर्मसे निवास करना ॥ २० ॥ कलियुगके आनेपर तुम अपने धर्मका प्रकाश करना; और तुम अनेक शिष्य प्रशिष्योंके साथ अपने धर्मका प्रचार करो ॥ २१ ॥ मेरी आज्ञासे तुम्हारे धर्मका विस्तार होगा, मेरी

आज्ञामें तत्पर रहनेके कारण तुमको अवश्य मेरी गति मिलेगी ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवदेव महादेवकी आज्ञासे हृदयमें प्रेरित होकर हरि उसके प्रति यह आदेश कर अन्तर्धान होगये ॥ २३ ॥ तुम मुनिने हरिकी आज्ञापालनके निमित्त अपनी शिष्यमंडलीकी कल्पना की, और उस चतुर पुरुषने उस मायामय शास्त्रको यथायोग्य उन शिष्योंको पढाया ॥ २४ ॥ जैसा वह पुरुष था, उसीप्रकार श्रेष्ठ चार मुंडी भी उसके शिष्य हुए, और परमात्मा हरिको नमस्कारकर वहां स्थित हुए ॥ २५ ॥ भगवान्ने भी शिवजीकी आज्ञापालनके निमित्त उन चार शिष्योंसे बडी प्रसन्नतासे कहा ॥ २६ ॥ मेरी आज्ञासे तुम जैसे

एवमाज्ञा तदा दत्ता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ शासनाद्देवदेवस्य हृदा त्वंतर्दधे हरिः ॥ २३ ॥ ततस्स मुंडी परिपालयन्हरेराज्ञां तथा निर्मितवांश्च शिष्यान् ॥ यथास्वरूपं. चतुरस्तदानीं मायामयं शास्त्रमपाठयत्स्वयम् ॥ २४ ॥ यथा स्वयं तथा ते च चत्वारो मुंडिनः शुभाः॥ नमस्कृत्य स्थितास्तत्र हरये परमात्मने ॥ २५ ॥ हरिश्चापि मुनेस्तत्र चतुरस्तांस्तदा स्वयम् ॥ उवाच परमप्रीतश्शिवाज्ञापरिपालकः ॥ २६ ॥ यथा गुरुस्तथा यूयं भविष्यथ मदाज्ञया ॥ धन्याःस्थ सद्गतिमिह संप्राप्स्यथ न संशयः ॥ २७ ॥ चत्वारो मुंडिनस्तेऽथ धर्मं पाषंडमाश्रिताः ॥ हस्ते पात्रं दधानाश्च तुंडवस्त्रस्य धारकाः ॥ २८ ॥ मलिनान्येव वासांसि धारयंतो ह्यभाषिणः ॥ धर्मो लाभः परं तत्त्वं वदंतस्त्वतिहर्षतः ॥ २९ ॥ मार्जनीं ध्रियमाणाश्च वस्त्रखंडविनिर्मिताम् ॥ शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद्ध्रुवम् ॥ ३० ॥ ते सर्वे च तदा देवं भगवंतं मुदान्विताः ॥ नमस्कृत्य पुनस्तत्र मुने तस्थुस्तदग्रतः ॥ ३१ ॥ हरिणा च तदा हस्ते धृत्वा च गुरवेर्पिताः ॥ अभ्यधायि च सुप्रीत्या तन्नामापि विशेषतः ॥ ३२ ॥

तुम्हारे गुरुहैं वैसेही तुम होगे; और तुम धन्य हो इसमें सन्देह नहीं सद्गतिको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥ तब वे चारों मुनि भी पाखण्ड धर्ममें स्थित हुए, हाथमें पात्र लिये नासिका पर वस्त्र लपेटे ॥ २८ ॥ मलीन वस्त्र धारण किये, थोडा बोलनेवाले धर्मका लाभ ही परं तत्त्व है, इस प्रकार प्रसन्नतासे कहते हुए ॥ ॥ २९ ॥ छोटे वस्त्रोंसे बनी बुहारी हाथमें लिये जीवहिंसाके भयसे सहज सहज पैरं धरकर चलनेवाले ॥ ३० ॥ तब वे सब प्रसन्न हो देव भगवान्को प्रणाम कर उनके आगे स्थित हुए ॥ ३१ ॥ तब भगवान्ने उनका हाथ पकड उन्हैं गुरुजीको अर्पण करदिया, और विशेषकर उनके नामकरण प्रेमसे

किये ॥ ३२ ॥ जैसे तुम हो वैसेही यह चारों मेरे हैं, इसमें सन्देह नहीं आदिरूप तुम्हारा नाम है और पूज्य होनेसे तुम पूज्य भी कहाओगे ॥ ३३ ॥
ऋषि, यति, कीर्य, उपाध्याय इत्यादि तुम्हारे प्रसिद्ध नाम होंगे ॥ ३४ ॥ और मेरा शुभ नाम भी तुम ग्रहण कर सकोगे अरिहन् इस पापनाशक नामको सदा
ध्यान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ तुमको भी लोकोंके सुखदायक कार्यको करना चाहिये, लोकके अनुसार कार्य करनेमें उत्तम गति प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥
सनत्कुमारजी बोले तब वह मायावी शिष्योंसहित बडे प्रेमसे भगवान्को प्रणामकर शिवकी इच्छा करनेके निमित्त शीघ्रही त्रिपुरमें गया ॥ ३७ ॥ विष्णुकी

यथा त्वं च तथैवैते मदीया वै न संशयः ॥ आदिरूपं च तन्नाम पूज्यत्वात्पूज्य उच्यते ॥ ३३ ॥ ऋषिर्यतिस्तथा कीर्य उपाध्याय
इति स्वयम् ॥ इमान्यपि तु नामानि प्रसिद्धानि भवंतु वः ॥ ३४ ॥ ममापि च भवद्भिश्च नाम ग्राह्यं शुभं पुनः ॥ अरिहन्निति तन्नाम
ध्येयं पापप्रणाशनम् ॥ ३५ ॥ भवद्भिश्चैव कर्तव्यं कार्यं लोकसुखावहम् ॥ लोकानुकूलं चरतां भविष्यत्युत्तमागतिः ॥ ३६ ॥
॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततः प्रणम्य तं मायी शिष्ययुक्तस्स्वयं तदा ॥ जगाम त्रिपुरं सद्यः शिवेच्छाकारिणं मुदा ॥ ३७ ॥ प्रविश्य
तत्पुरं तूर्णं विष्णुना नोदितो वशी ॥ महामायाविना तेन ऋषिर्मायां तदाकरोत् ॥ ३८ ॥ नगरोपवने कृत्वा शिष्यैर्युक्तः स्थितिं
तदा ॥ मायां प्रवर्तयामास मायिनामपि मोहिनीम् ॥ ३९ ॥ शिवार्चनप्रभावेण तन्माया सहसा मुने ॥ त्रिपुरे न चचालाशु निर्विण्णो
भूत्तदा यतिः ॥ ४० ॥ अथ विष्णुं स सस्मार तुष्टाव च हृदा बहु ॥ नष्टोत्साहो विचेतस्को हृदयेन विदूयता ॥ ४१ ॥ तत्स्मृतस्त्व
रितं विष्णुस्सस्मार शंकरं हृदि ॥ प्राप्याज्ञां मनसा तस्य स्मृतवान्नारदं द्रुतम् ॥ ४२ ॥

प्रेरणासे वह वशी शीघ्रही त्रिपुरमें प्रवेश करके महामायावी होनेके कारण उसने ऋषिरूपसे माया फैलाई ॥ ३८ ॥ नगरके उपवनमें जाकर शिष्योंसहित
स्थिति की, और मायावालोंको भी मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई ॥ ३९ ॥ हे मुने ! शिवजीके अर्चनके प्रभावसे सहसा वह माया त्रिपुरमें न चल
सकी, तब यति व्याकुल होगये ॥ ४० ॥ तब उत्साहके रहित होजानेसे चित्त व्याकुल होनेसे हृदय दुखनेसे उसने विष्णुको स्मरणकर, हृदयसे बडी
स्तुति की ॥ ४१ ॥ उसके स्मरण करनेसे विष्णुने हृदयमें शंकरको स्मरण किया, और उनकी आज्ञा मनमें प्राप्त करके नारदजीको स्मरण किया ॥ ४२ ॥

विष्णुके स्मरण मात्रसे नारदजी उस स्थानमें उपस्थित हुए, और प्रणाम कर हाथ जोड विष्णुजीके आगे उपस्थित हुए ॥ ४३ ॥ बुद्धिमानोमें श्रेष्ठ विष्णुजीने नारदजीसे कहा, तुम लोकके उपकारमें निरत सदा देवकार्य करते हो ॥ ४४ ॥ हे तात ! मैं तुमसे शिवजीकी आज्ञासे कहता हूं, कि तुम शीघ्रही त्रिपुरमें जाओ, वहां एक ऋषि शिष्योंसहित वहांके निवासियोंको मोहित करने गये हैं ॥ ४५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, भगवान्‌के यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी शीघ्रतासे वहां गये, जहां वह मायावियोंमें श्रेष्ठ ऋषि थे ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसे मायापति भगवान्‌की आज्ञासे नारदजी भी उस पुरमें प्रवेश कर उस मायीसे

स्मृतमात्रेण विष्णोश्च नारदस्समुपस्थितः ॥ नत्वा स्तुत्वा पुरस्तस्य स्थितोभूत्सांजलिस्तदा ॥ ४३ ॥ अथ तं नारदं प्राह विष्णुर्मतिमतां वरः ॥ लोकोपकारनिरतो देवकार्यकरस्सदा ॥ ४४ ॥ शिवाज्ञयोच्यते तात गच्छ त्वं त्रिपुरं द्रुतम् ॥ ऋषिस्तत्र गतः शिष्यैर्मोहार्थं तत्सुवासिनाम् ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः ॥ गतस्तत्र द्रुतं यत्र स ऋषिर्मायिनां वरः ॥ ४६ ॥ नारदोऽपि तथा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः ॥ प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः ॥ ४७ ॥ ततश्च नारदो गत्वा त्रिपुराधीशसन्निधौ ॥ क्षेमप्रश्नादिकं कृत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ कश्चित्समागतश्चात्र यतिर्धर्मपरायणः ॥ सर्वविद्याप्रकृष्टो हि वेदविद्यापरान्वितः ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा च बहवो धर्मा नैतेन सदृशाः पुनः ॥ वयं सुदीक्षिताश्चात्र दृष्ट्वा धर्मं सनातनम् ॥ ५० ॥ तवेच्छा यदि वर्तेत तद्धर्मे दैत्यसत्तम ॥ तद्धर्मस्य महाराज ग्राह्या दीक्षा त्वया पुनः ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तदीयं स वचः श्रुत्वा महदर्थसुगर्भितम् ॥ विस्मितो हृदि दैत्येशो जगौ तत्र विमोहितः ॥ ५२ ॥

दीक्षित हुए ॥ ४७ ॥ तब नारदजीने त्रिपुरपतिके समीप जाकर क्षेमप्रश्न करके राजासे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४८ ॥ नारदजी बोले, धर्ममें परायण कोई यति आपके नगरमें आया है, वह सब विद्यासम्पन्न तथा परावेद विद्यामें तत्पर है ॥ ४९ ॥ हमने बहुत धर्म देखे परन्तु इसकी समान धर्म नहीं देखा है, हम इसके सनातन धर्मको देखकर इसमें दीक्षित हुए हैं ॥ ५० ॥ हे दैत्यसत्तम ! यदि उसके धर्ममें तुम्हारी इच्छा हो तो हे महाराज ! आप भी उसके धर्मकी दीक्षा ग्रहण करो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार बोले, वह दैत्यपति नारदजीके महान् अर्थसे गर्भित वचन सुनकर बडा विस्मित हुआ, और मोहित

होकर वहां गया ॥ ५२ ॥ जब कि नारदजीने दीक्षा ली है तब हम भी वहां जायँगे, ऐसा विचारकर त्रिपुराधीश स्वयं ही वहां गया ॥ ५३ ॥ उन महात्माको देखकर उनकी मायासे मोहित होकर उन महात्मासे नमस्कारकर कहा ॥ ५४ ॥ त्रिपुराधिपने कहा, हे निर्मल आशयवाले ऋषि आप मुझे दीक्षा दीजिये, मैं आपका शिष्य हूंगा, यंह बात सत्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥ दैत्यराजके इस प्रकार वचन सुनकर वह सनातन ऋषि बोले ॥ ५६ ॥ हे दैत्यसत्तम ! यदि तुम मेरी आज्ञाका सर्वथा प्रमाण करोगे तो मैं तुमको दीक्षा दूंगा, अन्यथा कोटियत्नसे भी दीक्षा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥ यह वचन

नारदो दीक्षितो यस्माद्वयं दीक्षामवाप्नुमः ॥ इत्येवं च विदित्वा वै जगाम स्वयमेव ह ॥ ५३ ॥ तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा मोहितो मायया तथा ॥ उवाच वचनं तस्मै नमस्कृत्य महात्मने ॥ ५४ ॥ त्रिपुराधिप उवाच ॥ दीक्षा देया त्वया मह्यं निर्मलाशय भो ऋषे ॥ अहं शिष्यो भविष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५५ ॥ इत्येवं तु वचः श्रुत्वा दैत्यराजस्य निर्मलम् ॥ प्रत्युवाच सुयत्नेन ऋषिस्स च सनातनः ॥ ५६ ॥ मदीया करणी या स्याद्यद्याज्ञा दैत्यसत्तम ॥ तदा देया मया दीक्षा नान्यथा कोटियत्नतः ॥ ५७ ॥ इत्येवं तु वचः श्रुत्वा राजा मायामयोऽभवत् ॥ उवाच वचनं शीघ्रं यतिं तं हि कृतांजलिः ॥ ५८ ॥ दैत्य उवाच ॥ यथाज्ञां दास्यसि त्वं च तत्तथैव न चान्यथा ॥ त्वदाज्ञां नोल्लंघयिष्ये सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्रिपुराधीशितुस्तदा ॥ दूरीकृत्य मुखाद्वस्त्रमुवाच ऋषिसत्तमः ॥ ६० ॥ दीक्षां गृह्णीष्व दैत्येन्द्र सर्वधर्मोत्तमोत्तमाम् ॥ येन दीक्षाविधानेन प्राप्स्यसि त्वं कृतार्थताम् ॥ ६१ ॥

सुनकर राजा तो मायामय होगया, हाथ जोडकर शीघ्रतासे उन यतिराजसे कहने लगा ॥ ५८ ॥ दैत्यराज बोला हे भगवन् ! तत्त्वविचारके साथ आप जो आज्ञा देंगे, उस आज्ञाको मैं कभी उल्लंघन नहीं करूंगा, यह बात सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥ सनत्कुमार बोले, इस प्रकारसे उस त्रिपुराधीश्वरके वचन सुनकर मुखसे वस्त्र दूरकर वह ऋषि श्रेष्ठ कहने लगे ॥ ६० ॥ हे दैत्येन्द्र ! सब धर्मोंमें परम उत्तम दीक्षाको आप ग्रहण करैं, जिस दीक्षाके विधानसे

तुम कृतार्थ होजाओगे ॥ ६१ ॥ सनत्कुमारजी बोले; उस मायावीने इस प्रकार कहकर विधिविधानसे अपने धर्मके अनुसार उस राजाको दीक्षा दी ॥
॥ ६२ ॥ हे मुने ! जिस समय सहजमें दैत्यराजको दीक्षा प्राप्त होगई तब सब त्रिपुरवासी भी उसी धर्ममें दीक्षित होगये ॥ ६३ ॥ हे मुने ! उस समय
वह त्रिपुर उस महामायावीके शिष्यों प्रशिष्योंसे क्षणमात्रमें भरगया ॥६४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु० पं० यु० भाषाटीकायां चतुर्थोध्यायः ॥४॥
व्यासजी बोले जिस समय उस मायावीपुरुषने दैत्यराजको दीक्षा देदी, दैत्यराज मोहित होगया, तब उस मायावीपुरुषने क्या कहा और दैत्यराजने क्या

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तु मायावी दैत्यराजाय सत्वरम् ॥ ददौ दीक्षां स्वधर्मोक्तां तस्मै विधिविधानतः ॥ ६२ ॥ दैत्यराजे
दीक्षिते च तस्मिन्ससहजे मुने ॥ सर्वे च दीक्षिता जातास्तत्र त्रिपुरवासिनः ॥ ६३ ॥ मुनेः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च व्याप्तमासीद्द्रुतं तदा ॥
महामायाविनस्तत्तु त्रिपुरं सकलं मुने ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमारपाराशर्य
संवादे त्रिपुरदीक्षाविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ दैत्यराजे दीक्षिते च मायिना तेन मोहिते ॥ किमुवाच तदा
मायी किं चकार स दैत्यपः ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ दीक्षां दत्त्वा यतिस्तस्मा अरिहन्नारदादिभिः ॥ शिष्यैस्संसेवितपादाब्जो दैत्य
राजानमब्रवीत् ॥ २ ॥ अरिहन्नुवाच ॥ शृणु दैत्यपते वाक्यं मम सज्ज्ञानगर्भितम् ॥ वेदान्तसारसर्वस्वं रहस्यं परमोत्तमम् ॥ ३ ॥
अनादिसिद्धस्संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः ॥ स्वयं प्रादुर्भवत्येव स्वयमेव विलीयते ॥४॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं यावद्देहनिबंधनम् ॥ आत्मैवै
केश्वरस्तत्र न द्वितीयस्तदीशिता ॥५॥ यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राख्यास्तदाख्या देहिनामिमाः ॥ आख्या यथास्मदादीनामरिहन्नादिरुच्यते ॥६॥

किया ॥ १ ॥ सनत्कुमार बोले, इस प्रकारसे जब राजा दीक्षित होगया और नारदको आदिले उनके शिष्यगण मुनिराजके चरणकमल सेवन करने लगे, तब
अरिहन्ने दैत्यराजसे कहा ॥ २ ॥ अरिहन् बोले हे दैत्यराज ! हमारे ज्ञानसम्पन्न वचनोंको तुम सुनो जो वेदान्तसारका सर्वस्व और परमोत्तम रहस्यरूपहैं
॥ ३ ॥ यह संसार अनादिकालसे चला आता है कर्ता और कर्मसे यह रहितहै यह आप ही प्रगट होकर और आपही लीन हो जाता है ॥ ४ ॥
ब्रह्माजीसे लेकर स्तम्बपर्यन्त यह जितना देहका बंधन है, आत्मा ही एक ईश्वर है इसमें कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ और जो यह ब्रह्मा विष्णु और

रुद्र नाम हैं यह देहधारियोंके नाम हैं, जैसे हमारे नाम है, आनादि तो एक अरिहन् कहाते हैं, ॥ ६ ॥ जैसे हम सरीखोंके देह समयपर लीन हो जाते हैं,
ऐसे ही ब्रह्मासे लेकर मशक पर्यन्त सब अपना समय आनेपर विलीन हो जाते हैं ॥ ७ ॥ यदि इस देहका विचार किया जाय तो कहीं भी कुछ अधिक
नहीं है, आहार मैथुन निद्रा यह सर्वत्र समान हैं, ॥ ८ ॥ सबही देहधारी निराहारके परिमाणको प्राप्त होकर समानही तृप्तिको प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ
न्यूनाधिक नहीं है ॥ ९ ॥ जैसे हम प्यासे होकर जल पीकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही दूसरे प्यासे होते हैं, इसमें थोडा विशेष भी अन्तर नहीं है ॥ १० ॥

देहो यथास्मदादीनां स्वकालेन विलीयते ॥ ब्रह्मादिमशकांतानां स्वकालाल्लीयते तथा ॥ ७ ॥ विचार्यमाणे देहेऽस्मिन्न किंचिद
धिकं क्वचित् ॥ आहारो मैथुनं निद्रा भयं सर्वत्र यत्समम् ॥ ८ ॥ निराहारपरीमाणं प्राप्य सर्वो हि देहभृत् ॥ सदृशीमेव संतृप्तिं
प्राप्नुयान्नाधिकेतराम् ॥ ९ ॥ तथा वितृषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदा वयम् ॥ तृषितास्तु तथान्येपि न विशेषोऽल्पकोऽधिकः॥ १० ॥
संतु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः ॥ परं निधुवने काले ह्येकैवेहोपयुज्यते ॥ ११ ॥ अश्वाः परश्शतास्संतु संत्वेनेकेप्यनेकधा ॥
अधिरोहे तथाप्येको न द्वितीयस्तथात्मनः ॥ १२ ॥ पर्य्यंकशायिनां स्वापे सुखं यदुपजायते ॥ तदेव सौख्यं निद्राभिर्भूतभूशायि
नामपि ॥ १३ ॥ यथैव मरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम् ॥ ब्रह्मादिकीटकांतानां तथा मरणतो भयम् ॥ १४ ॥ सर्वे तनुभृतस्तुल्या
यदि बुद्ध्या विचार्य्यते ॥ इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित् ॥ १५ ॥ धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥ १६ ॥

रूप यौवनसम्पन्न चाहों सहस्रों स्त्री क्यों न हों परन्तु रतिके समय एकही भोगी जाती है ॥ ११ ॥ चाहै घोडे भी असंख्य सैंकडों हो, पर अधिरोहणमें एक
ही होता है इस प्रकार एकही आत्मा है ॥ १२ ॥ पलंगपर सोनेवालोंको पलंगपर सोनेसे जो सुख होता है, वोही सुख पृथिवीपर सोनेवालोंको भी प्राप्त होता
है ॥ १३ ॥ जैसे हम शरीरधारियोंको मरणसे भय है, ब्रह्मासे लेकर कीट पर्यन्तको भी मरणसे वैसाही भय है ॥ १४ ॥ यदि बुद्धिसे विचार किया जाय
तो सब शरीरधारी समान हैं, ऐसा विचारकर कभी किसीकी किसीको हिंसा न करनी चाहिये ॥ १५ ॥ जीवोंपर दया करनेके समान पृथिवीमें कोई धर्म

नहीं है, इस कारण सब प्रयत्नोंसे मनुष्योंको जीवोंपर दया करनी चाहिये ॥ १६ ॥ एक जीवकी भी रक्षा करनेसे मानो त्रिलोकीकी रक्षा होती है, एकके मारनेसे घातका दोष लगता है, इससे रक्षा करै मारै नहीं ॥ १७ ॥ अहिंसा ही परमधर्म है और आत्माको पीडा देना परम पाप है, पराये आधीन न होना ही मुक्ति है, अभिलषित भोजनकी प्राप्ति ही स्वर्ग है ॥ १८ ॥ सत्की प्रमाणतासे पुराने विद्वानोंने ऐसा कहा है, इस कारण नरकसे डरनेवालोंको कभी हिंसा न करनी चाहिये ॥ १९ ॥ चराचर त्रिलोकीमें हिंसाकी समान पाप नहीं है, हिंसक नरकको और अहिंसक स्वर्गको जाताहै ॥ २० ॥ दान बहुत

एकस्मिन्रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् ॥ घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न घातयेत् ॥ १७ ॥ अहिंसा परमो धर्मः पापमात्मप्रपीडनम् ॥ अपराधीनता मुक्तिस्स्वर्गोऽभिलषिताशनम् ॥ १८ ॥ पूर्वसूरिभिरित्युक्तं सत्प्रमाणतया ध्रुवम् ॥ तस्मान्न हिंसा कर्त्तव्या नरैर्नरकभीरुभिः ॥ १९ ॥ न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ हिंसको नरकं गच्छेत्स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥ २० ॥ संति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः ॥ अभीतिसदृशं दानं परमेकमपीह न ॥ २१ ॥ इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः ॥ विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च ॥ २२ ॥ भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् ॥ देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे ॥ २३ ॥ यानि यानीह दानानि बहुमुन्युदितानि च ॥ जीवाभंयप्रदानस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ २४ ॥ अविचिंत्य प्रभावं हि मणिमंत्रौषधं बलम् ॥ तदभ्यस्यं प्रयत्नेन नामार्थोपार्जनाय वै ॥ २५ ॥ अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै ॥ परितः परिपूज्यानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥ २६ ॥

हैं परन्तु उन तुच्छ फलवालोंसे क्या है, अभयदानकी समान दूसरा दान कोई नहीं है ॥ २१ ॥ जो मनीषियोंने चार प्रकारके दान कहे हैं वह अनेक शास्त्रोंमें विचारकर दोनों लोकमें कल्याणके देनेवाले हैं ॥ २२ ॥ डरे हुओंको अभयदान, रोगीको औषधि, विद्यार्थीको विद्या और भूंखेको अन्न देना चाहिये ॥ २३ ॥ जो जो दान बहुतसे मुनियोंने कहे हैं, वे जीवोंको अभयदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं ॥ २४ ॥ मणि मंत्र औषधिके प्रभावको बिना विचारे नाम और अर्थके उपार्जनके लिये उसको प्रयत्नसे अभ्यास करै ॥ २५ ॥ बहुतसा धन उपार्जन कर सब ओरके बारहस्थान

पूजने चाहिये और दूसरे पूजनोंसे क्या है ॥ २६ ॥ पांच कर्मेन्द्रिय पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि यही बारह स्थान हैं ॥ २७ ॥ प्राणियोंको स्वर्ग नरक यहीं है और कहीं नहीं, सुखका हीं नाम स्वर्ग और दुःखका नाम नरक है ॥ २८ ॥ सुख भोगते २ यदि देह विसर्जन होजाय, तत्त्वचिन्तकोंने इसीका नाम परममोक्ष कहा है ॥ २९ ॥ जिस समय वासनाके सहित सब क्लेश नाश होजायँ, अज्ञानका नाश होजाय तत्त्वका विचार करनेवालोंने इसीका नाम मोक्ष कहा है ॥ ३० ॥ वेदवादी इस श्रुतिको प्रमाणमें देते हैं, कि किसी प्राणिकी हिंसा न करनी चाहिये, किसीकी हिंसामें प्रवृत्त न हो ॥ ३१ ॥

पंचकर्मेन्द्रियग्रामाः पंच बुद्धींद्रियाणि च ॥ मनो बुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम् ॥ २७ ॥ इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनां नान्यतः क्वचित् ॥ सुखं स्वर्गः समाख्यातो दुःखं नरकमेव हि ॥ २८ ॥ सुखेषु भुज्यमानेषु यत्स्याद्देहविसर्ज्जनम् ॥ अयमेव परो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिंतकैः ॥ २९ ॥ वासनासहिते क्लेशसमुच्छेदे सति ध्रुवम् ॥ अज्ञानोपरमो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिंतकैः ॥ ३० ॥ प्रामाणिकी श्रुतिरियं प्रोच्यते वेदवादिभिः ॥ न हिंस्यात्सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका ॥ ३१ ॥ अग्निष्टोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह ॥ न सा प्रमाणं ज्ञातॄणां पश्वालंभनकारिका ॥ ३२ ॥ वृक्षांश्छित्वा पशून्हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादि चित्रं स्वर्गोऽभिलष्यते ॥ ३३ ॥ इत्येवं स्वमतं प्रोच्य यतिस्त्रिपुरनायकम् ॥ श्रावयित्वाखिलान् पौरानुवाच पुनरादरात् ॥ ३४ ॥ दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधकान् ॥ बौद्धागमविनिर्दिष्टान्धर्मान्वेदपरांस्ततः ॥ ३५ ॥ आनंदं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते ॥ तत्तथैवेह मंतव्यं मिथ्या नानात्वकल्पना ॥ ३६ ॥

जो अग्निष्टोममें पशुआलंभन है वह भ्रमकी बात है, वह असतोंका कथन है, वह ज्ञानीपुरुषोंको पशुका आलम्भन प्रमाण नहीं है ॥ ३२ ॥ वृक्षोंको छेदनकर पशुओंको मारकर रुधिरकी कीच करके अग्निमें तिळ घी हवन करके स्वर्गकी अभिलाषा करना बडी विचित्र बातहै ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे उस असुरनामकके निमित्त यतिराजने अपना सिद्धान्त कथन कर सब पुरवासियोंको भी यही सुनाकर फिर आदरसे कहा ॥ ३४ ॥ प्रत्यक्ष अर्थमें ही विश्वास होना चाहिये यही एक मात्र देह सुख साधक हैं, यह धर्म वेदसे परे बौद्धशास्त्रोंमें निर्दिष्ट हुए हैं, ॥ ३५ ॥ आनंदही ब्रह्मका रूप है, ऐसा जो श्रुतियोंमें कहा गया है वह

वैसाही मान्नाचाहिये नानात्वकल्पना मिथ्या है ॥ ३६ ॥ जबतक यह शरीर स्वस्थहै जबतक इन्द्रिय निर्बल नहीं हैं, जबतक वृद्धावस्था दूर है तबतक सुखका साधन करै ॥ ३७ ॥ जिस समय इन्द्रिय अस्वस्थ होकर व्याकुल हुईं और बुढापा आगया फिर सुखकी प्राप्ति कहां होसकती है, इससे सुखकी इच्छावालोंको तो अर्थीके निमित्त अपना शरीर भी देदेनाचाहिये ॥ ३८ ॥ याचना करतेहुएको देदेकर जिसका मन उसकी पीडासे दुखी नहीं होता, उसीके बोझसे पृथिवी दबती है वृक्ष पर्वत और समुद्रका उसको भार नहीं है ॥ ३९ ॥ यह देह शीघ्रही जानेवालाहै, संचय क्षय होनेवाले हैं, ज्ञानी ऐसा जानकर

यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ३७ ॥ अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्द्धके तु कुतस्सुखम् ॥ शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतस्सुखेप्सुभिः ॥ ३८ ॥ याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नो जनिः ॥ तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्न हि ॥ ३९ ॥ सत्वरं गत्वरो देहः संचयास्सपरिक्षयाः ॥ इति विज्ञाय विज्ञाता देहसौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ४० ॥ श्ववाय सकृमीणां च प्रातर्भोज्यमिदं वपुः ॥ भस्मांतं तच्छरीरं च वेदे सत्यं प्रपठ्यते ॥ ४१ ॥ मुधा जातिविकल्पोयं लोकेषु परिकल्प्यते ॥ मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधर्मः कोऽथ चोत्तमः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मादिसृष्टिरेषेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः ॥ तस्य जातौ सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ ॥ ४३ ॥ मारीचेन कश्यपेन दक्षकन्यास्सुलोचनाः ॥ धर्मेण किल मार्गेण परिणीतास्त्रयोदश ॥ ४४ ॥ अपीदानीं तनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः ॥ अपि गम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियते मुधा ॥ ४५ ॥ मुखबाहूरुसञ्जातं चातुर्वर्ण्यं सहोदितम् ॥ कल्पनेयं कृता पूर्वैर्न घटेत विचारतः ॥ ४६ ॥

अपने देहका सुख साधै ॥ ४० ॥ यह शरीर कुत्ते कौए कीरोंका प्रभात समयका भोजन होगा. वेदमें ठीक पढा जाता है, कि शरीर अन्तमें भस्म होनेवाला है ॥ ४१ ॥ लोकोंमें यह जातिकी कल्पना व्यर्थ है, सामान्यरूपसे सब मनुष्योंमें कौन अधम और कौन उत्तम है ॥ ४२ ॥ वृद्धपुरुष कहते हैं ब्रह्मासे आदि लेकर यह सृष्टि है, उनके:दक्ष और मरीची पुत्र जन्मे ॥ ४३ ॥ मरीचिके पुत्र कश्यपने दक्षकी सुलोचनी तेरह कन्या धर्ममार्गसे विवाही ॥ ४४ ॥ इस समय अल्प बुद्धि और पराक्रमवाले मनुष्य यह गम्या यह अगम्या है ऐसा व्यर्थ विचार करतेहैं ॥ ४५ ॥ प्रजापतिके मुख बाहू जंघा चरणसे चार

वर्ण ऊत्पन्न हुए हैं, यह पूर्वपुरुषोंकी कल्पना है विचारसे संगठित नहीं होती ॥ ४६ ॥ यदि कोई एकही पुरुषके शरीरसे उत्पन्न हुए हो तो उसके चारों पुत्र भिन्न २ वर्णवाले कैसे होसकते हैं ॥ ४७ ॥ इस कारणसे यह वर्ण अवर्णका विभाग भलीप्रकारका विदित नहीं होता, इससे मनुष्यको कभी किसी प्रकारका भेद नहीं मानना चाहिये ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! इस प्रकारसे वह यति पुरवासी और राजासे इस प्रकार भाषण करके शिष्यों सहित वेदमार्गको नष्ट करता हुआ ॥ ४९ ॥ परम पतिव्रत स्त्रीधर्मको भी उसने खंडन किया इसी प्रकार पुरुषोंका जितेन्द्रियत्व धर्म भी उन्होंने खंडन

एकस्यां च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा क्वचित् ॥ चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥ ४७ ॥ वर्णावर्णविभागोऽयं तस्मान्न प्रतिभासते ॥ अतो भेदो न मंतव्यो मानुष्ये केनचित्क्वचित् ॥ ४८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्थमाभाष्य दैत्येशं पौरांश्च स यति मुने ॥ सशिष्यो वेदधर्मांश्च नाशयामास चादरात् ॥ ४९ ॥ स्त्रीधर्मं खंडयामास पातिव्रत्यपरं महत् ॥ जितेन्द्रियत्वं सर्वेषां पुरुषाणां तथैव सः ॥ ५० ॥ देवधर्मान्विशेषेण श्राद्धधर्मांस्तथैव च ॥ मखधर्मान्व्रतादींश्च तीर्थश्राद्धं विशेषतः ॥ ५१ ॥ शिवपूजां विशेषेण लिंगाराधनपूर्विकाम् ॥ विष्णुसूर्यगणेशादिपूजनं विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ स्नानदानादिकं सर्वं पर्वकालं विशेषतः ॥ खंडयामास स यतिर्मायी मायाविनां वरः ॥ ५३ ॥ किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र त्रिपुरे तेन मायिना ॥ वेदधर्माश्च ये केचित्ते सर्वे दूरतः कृताः ॥ ५४ ॥ पतिधर्माश्रयाः सर्वा मोहितास्त्रिपुरांगनाः ॥ भर्तृशुश्रूषणवतीं विजहुर्मतिमुत्तमाम् ॥ ५५ ॥ अभ्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृत्यमयीमपि ॥ पुरुषास्सफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः ॥ ५६ ॥

किया ॥ ५० ॥ विशेष करके देवताओंके धर्मशास्त्रके धर्मयज्ञ धर्मव्रत तीर्थ श्राद्ध इन सबका खंडन किया ॥ ५१ ॥ विशेषकर लिंगाराधनपूर्वक शिवकी पूजाका खंडन किया, विधिपूर्वक विष्णु सूर्य गणेशादिका पूजन ॥ ५२ ॥ सब स्नान दानादि विशेषकर पर्वकाल, उस मायावी यतिने इन सबका खंडन किया ॥ ५३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! बहुत कहनेसे क्या है उस त्रिपुरने यतिराजके कथनसे अपने यहांके सब वेदधर्म दूर करदिये ॥ ५४ ॥ यति धर्मके आश्रय होकर वहांकी सब स्त्रियें मोहित होगईं, और पतिशुश्रूषाकी मति उन्होंने त्याग दी ॥ ५५ ॥ वशीकरण करनेवाली आकर्षणी विद्याका अभ्यास करके

पुरुष परदाराओंमें मोहित हो अपना मनोरथ सफल करते हुए ॥ ५६ ॥ अंतःपुरकी स्त्रियें राजकुमार, पुरवासी पुरकी स्त्रियें उनसे सबही मोहित होगये ॥
॥ ५७ ॥ इस प्रकारसे त्रिपुरके रहनेवाले सबही जब अपने धर्मसे पराङ्मुख होगये, और अधर्म फैलने लगा ॥ ५८ ॥ उसी समय देवदेव भगवान्
विष्णुकी आज्ञासे जब सब मायासे मोहित होगये, तब उनकी आज्ञासे अलक्ष्मी त्रिपुरके स्थानमें गई ॥५९॥ जो लक्ष्मी उन्होंने बडी तपस्यासे परम आदरसे
देवेश्वरसे ग्रहण की थी, वह लक्ष्मी प्रभु ब्रह्माजीकी आज्ञासे उनको त्याग कर चली गई ॥ ६० ॥ और विष्णुजीके निर्माण किये उस बुद्धि मोहको इस

अंतःपुरचरा नार्यस्तथा राजकुमारकाः ॥ पौराः पुरांगनाश्चापि सर्वे तैश्च विमोहिताः ॥ ५७ ॥ एवं पौरेषु सर्वेषु निजधर्मेषु सर्वथा ॥
पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्ललास वृषेतरः ॥ ५८ ॥ माया च देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभो ॥ अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात्त्रि
पुरं गता ॥ ५९ ॥ या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वरादरात् ॥ बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः ॥ ६० ॥ बुद्धिमोहं
तथाभूतं विष्णोर्मायाविनिर्मितम् ॥ तेषां दत्वा क्षणादेव कृतार्थोऽभूत्स नारदः ॥ ६१ ॥ नारदोपि तथारूपो यथा मायी तथैव सः ॥
तथापि विकृतो नाभूत्परमेशादनुग्रहात् ॥ ६२ ॥ आसीत्कुंठितसामर्थ्यो दैत्यराजोऽपि भो मुने ॥ भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र मयेन च शिवे
च्छया ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखंडे त्रिपुरमोहनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यास
उवाच ॥ तस्मिन् दैत्याधिपे पौरे सभ्रातरि विमोहिते ॥ सनत्कुमार किं वासीत्तदाचक्ष्वाखिलं विभो ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
त्रिपुरे च तथाभूते दैत्ये त्यक्तशिवार्चने ॥ स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते ॥ २ ॥

प्रकार क्षणमात्रमें देकर नारदजी कृतार्थ होगये ॥ ६१ ॥ नारदजीने भी उस मायावी जैसा रूप धारण करलिया था, तो भी परमेश्वरके अनुग्रहसे उनके
मनमें विकार नहीं आया ॥ ६२ ॥ हे मुने ! उस समय दैत्यराजकी सामर्थ्य कुंठित होगई और शिवजीकी इच्छासे मयनामक अपने भाईके सहित सामर्थ्य
हीन होगया ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु० पं०यु० भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥५॥ व्यासजी बोले जब पुरवासियोंसहित दैत्यराज मोहित
होगया, हे सनत्कुमारजी ! तब क्या हुआ सो आप सब चरित्र कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब इस प्रकारसे कहनेपर दैत्यराजने शिवार्चन

त्यागदिया, सम्पूर्ण स्त्रीधर्म नष्ट होगया, तथा दुराचार प्रवृत्त होगया ॥ २ ॥ तब भगवान् विष्णु कृतार्थकी समान होकर यह बात निवेदन करनेको कैलासको गये ॥ ३ ॥ रमापति, देवताओंके सहित कैलासके समीप स्थित हुए, उसी समय समाधिमें स्थित ब्रह्माजीने भी यह बात जानली ॥ ४ ॥ वह सर्वज्ञ हरि ब्रह्माजीको मनसे आह्वान करनेलगे उसी समय ब्रह्माजी आये और इष्ट वाणीसे पुरुषोत्तम शंकरकी स्तुति करनेलगे ॥ ५ ॥ विष्णुजी बोले, महेश्वर देव परमात्माको नमस्कार है, नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्मरूपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति कर तथा दंडवत्प्रणाम कर

कृतार्थ इव लक्ष्मीशो देवैस्सार्द्धमुमापतिम् ॥ निवेदितुं तच्चरित्रं कैलासमगमद्धरिः ॥ ३ ॥ तस्योपकंठं स्थित्वाऽसौ देवैस्सह रमापतिः ॥ ततो भूरि स च ब्रह्मा परमेण समाधिना ॥ ४ ॥ मनसा प्राप्य सर्वज्ञं ब्रह्मणा स हरिस्तदा ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिश्शंकरं पुरुषोत्तमः ॥ ५ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने ॥ नारायणाय रुद्राय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ॥ ६ ॥ एवं कृत्वा महादेवं दंडवत् प्रणिपत्य ह ॥ जजाप रुद्रमंत्रं च दक्षिणामूर्तिसंभवम् ॥ ७ ॥ जले स्थित्वा सार्द्धकोटिप्रमितं तन्मनाः प्रभुः ॥ संस्मरन् मनसा शंभुं स्वप्रभुं परमेश्वरम् ॥ ८ ॥ तावद्देवास्तदा सर्वे तन्मनस्का महेश्वरम् ॥ ९ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्सर्वात्मने तुभ्यं शंकरायार्तिहारिणे ॥ रुद्राय नीलकंठाय चिद्रूपाय प्रचेतसे ॥ १० ॥ गतिर्नस्सर्वदा त्वं हि सर्वापद्विनिवारकः ॥ त्वमेव सर्वदास्माभिर्वंद्यो देवारिसूदन ॥ ११ ॥त्वमादिस्त्वमनादिश्च स्वानंदश्चाक्षयः प्रभुः ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि साक्षात्स्रष्टा जगत्प्रभुः ॥ १२ ॥

दक्षिणामूर्तिसे प्रगट रुद्रका मंत्र जपने लगे ॥ ७ ॥ और वह प्रभु जलमें स्थित हो अपने प्रभु परमेश्वरको मनसे स्मरण कर ५०००००० पचास लाख मंत्र जपने लगे ॥ ८ ॥ उसी समय सब देवता भी मन लगाकर परमेश्वरका जप करने लगे ॥ ९ ॥ देवता बोले, सर्वात्मा शंकर दुःखके हरनेवाले आपको प्रणाम है रुद्र नीलकंठ चिद्रूप प्रचेतारूप आपको प्रणाम है ॥ १० ॥ सब आपत्तिके दूर करनेवाले आप हमारी सबकी गति हो, हे देव ! हे अरिसूदन ! आप सदा हम सबसे नमस्कृत हो ॥ ११ ॥तुम आदि अनादि आनंद और अक्षयरूप प्रभु हो, आप जगत्के प्रभु साक्षात् प्रकृति पुरुषके भी स्रष्टा हो॥ १२॥

जगत्के कर्ता, भर्ता, हर्ता, आपही हो, रज, सत्, तम इन् गुणोंसे आपही ब्रह्मा, विष्णु, महेश होतेहो ॥ १३ ॥ आप इस जगत्के तारनेवाले सबके
अधिपति अविनाशी हो आप वरदाता वाणीरूप वाच्यवाचकतासे रहित हो ॥१४॥ आपको योगीजन योगसे मुक्तिके निमित्त याचना करते हैं, योगियोंके
हृदयकमलमें आपही स्थित हो ॥ १५ ॥ वेद और सन्त आपहीको परब्रह्मरूप कहते हैं, आपहीका तत्त्व तेजोराशीके परे है ॥ १६ ॥ हे विभो ! इस
जगतमें आपहीको परमात्मा कहते हैं, हे संसाररूप ! हे शर्व ! [संहारक] आपही सर्वात्मा और त्रिलोकके अधिपति हो ॥ १७ ॥ हे विभो ! जो कुछ

त्वमेव जगतां कर्ता भर्ता हर्ता त्वमेव हि ॥ ब्रह्मा विष्णुर्हरो भूत्वा रजस्सत्त्वतमोगुणैः ॥ १३ ॥ तारकोसि जगत्यस्मिन् सर्वेषामधिपोऽ
व्ययः ॥ वरदो वाङ्मयो वच्यो वाच्यवाचकवर्जितः ॥ १४ ॥ याच्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगवित्तमैः ॥ हृत्पुंडरीकविवरे योगिनां
त्वं हि संस्थितः ॥ १५ ॥ वदंति वेदास्त्वां संतः परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ भवंतं तत्त्वमित्यद्य तेजोराशिं परात्परम् ॥ १६ ॥ परमात्मानमि
त्याहुरस्मिन् जगति यद्विभो ॥ त्वमेव शर्व सर्वात्मन् त्रिलोकाधिपते भव ॥१७॥ दृष्टं श्रुतं स्तुतं सर्वं ज्ञायमानं जगद्गुरो ॥ अणोरल्पतरं
प्राहुर्महतोपि महत्तरम् ॥ १८ ॥ सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्वतश्श्रवणघ्राणं त्वां नमामि च सर्वतः ॥ १९ ॥ सर्वज्ञं
सर्वतो व्यापिन् सर्वेश्वरमनावृतम् ॥ विश्वरूपं विरूपाक्षं त्वां नमामि च सर्वतः ॥ २० ॥ सर्वेश्वरं भवाध्यक्षं सत्यं शिवमनुत्तमम् ॥ कोटि
भास्करसंकाशं त्वां नमामि च सर्वतः॥२१॥विश्वदेवमनाद्यंतं षट्त्रिंशत्कमनीश्वरम् ॥ प्रवर्तकं च सर्वेषां त्वां नमामि च सर्वतः ॥२२॥

यह देखा सुना स्तुति कियाजाता, तथा जानाजाता है हे जगत्के गुरु ! यह सब आपही हैं आपको अणुसे अणु और महान्से महान् कहते हैं ॥ १८ ॥
आपके हाथ, चरण, नेत्र, शिर, मुख, कान, नासिका सब ओर हैं आपको प्रणाम है ॥१९॥ आप सर्वज्ञ, सब ओरसे व्याप्त सबके ईश्वर कहीं भी आवृत्त
न होनेवाले, विश्वरूप, विरूपाक्ष हो, सब ओरसे आपको नमस्कार करताहूं ॥ २० ॥ सबके ईश्वर संसारके अध्यक्ष, सत्यरूप, श्रेष्ठ, शंकर, कोटिसूर्यकी
समान प्रकाशमान, आपको सब ओरसे प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ विश्वके देवता आदि अन्त रहित छत्तीस गुण सम्पन्न जिनके ऊपर कोई नहीं, आप

सबके ही प्रवृत्त करनेवाले हो सब ओरसे आपको प्रणाम करता हूं ॥२२॥ प्रकृतिके भी प्रवृत्त करनेवाले, सबके प्रपितामह, सबके विग्रहोंके अधिपति हो, तुमको सब ओरसे प्रणाम है ॥ २३ ॥ श्रुतियें आपको सबका निवासस्थान, स्वयंभू, श्रुतियोंका सार जान्नेवाले श्रुतिसारविद कहती हैं ॥ २४ ॥ जो कुछ आपने लोकोंमें किया है, वह सर्वथा हमको अदृश्य है, देवता असुर ब्राह्मण और स्थावर जंगम आपहीको कहतेहैं ॥२५॥ हे शिव ! हे देवताओंके प्रिय ! हम त्रिपुरके द्वारा नष्ट हुए जाते हैं, उन असुरोंको मार कर आप हमारी रक्षा करैं ॥ २६ ॥ हे परमेश्वर ! वह अब आपकी मायासे मोहित हैं हे प्रभो !

प्रवर्तकं च प्रकृतेस्सर्वस्य प्रपितामहम् ॥ सर्वविग्रहमीशं हि त्वां नमामि च सर्वतः ॥ २३ ॥ एवं वदंति वरदं सर्वावासं स्वयम्भुवम् ॥ श्रुतयः श्रुतिसारज्ञं श्रुतिसारविदश्च ये ॥ २४ ॥ अदृश्यमस्माभिरनेकभूतं त्वया कृतं यद्भवताथ लोके ॥ त्वामेव देवासुरभूसुराश्च अन्ये च वै स्थावरजंगमाश्च ॥ २५ ॥ पाह्यनन्यगतीञ्शंभो सुरान्नो देववल्लभ ॥ नष्टप्रायांस्त्रिपुरतो विनिहत्यासुरान्क्षणात् ॥ २६ ॥ मायया मोहितास्तेऽद्य भवतः परमेश्वर ॥ विष्णुना प्रोक्तयुत्तया त उज्झिता धर्मतः प्रभो ॥ २७ ॥ संत्यक्तसर्वधर्माश्च बौद्धागमसमाश्रिताः ॥ अस्मद्भाग्यवशाज्जाता दैत्यास्ते भक्तवत्सल ॥ २८ ॥ सदा त्वं कार्यकर्त्ता हि देवानां शरणप्रद ॥ वयं ते शरणापन्ना यथेच्छसि तथा कुरु ॥२९॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुत्वा महेशानं देवास्तु पुरतः स्थिताः ॥ कृतांजलिपुटा दीना आसन् संनतमूर्तयः ॥ ॥ ३० ॥ स्तुतश्चैवं सुरेन्द्राद्यैर्विष्णोर्जाप्येन चेश्वरः ॥ अगच्छत्तत्र सर्वेशो वृषमारुह्य हर्षितः ॥ ३१ ॥

विष्णुजीकी उक्तिसे अब उन्होंने धर्म त्यागन कर दिये हैं ॥२७॥ उन्होंने सब वेदधर्मोंका त्याग करके बौद्ध शास्त्रका आश्रय लिया है हे भक्तवत्सल ! यह बात हमारे ही भाग्यके वशसे हुई है ॥ २८ ॥ हे शरणके देनेवाले आप सदाही देवताओंका कार्य करनेवाले हैं हम आपकी शरण हैं, अब आपकी जो इच्छा हो सो करो ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार महेशकी स्तुति करके देवता आगे स्थित हुए, और हाथ जोड दीनतासे शिर झुकाये रहगये ॥ ३० ॥ जब इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंने स्तुति की और विष्णुजीने जप किया तब प्रसन्नहो भगवान् शंकर वृषभपर आरूढ हुए वहां

आये ॥ ३१ ॥ और प्रसन्नमन हो नंदीशसे उतर कर विष्णुको आलिंगन किया, और नन्दीको हस्तसे स्पर्श किये हुए सब देवताओंको देखा ॥ ३२ ॥ तब शिवजीने कृपादृष्टिसे देवता और विष्णुजीको देखा और प्रसन्नहो पार्वतीपतिने उनसे गंभीर वचनोंसे कहा ॥ ३३ ॥ शिवजी बोले, हे देवेश्वर ! मैंने देवताओंका कार्य जानलिया है, तथा विष्णुजी और नारदजीका मायाबल भी जानलिया है ॥ ३४ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! उन दैत्योंकी अधर्ममें निष्ठाको भी मैं भली प्रकार जानगयाहूं, अब मैं त्रिपुरका विनाश करदूंगा इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ परन्तु वे महादैत्य मनसे मेरे दृढ भक्त हैं, हे देवताओ ! मायासे

विष्णुमालिंग्य नंदीशादवरुह्य प्रसन्नधीः ॥ ददर्श सुदृशा तत्र नन्दीदत्तकरोऽखिलान् ॥ ३२ ॥ अथ देवान् समालोक्य कृपादृष्ट्या
हरिं हरः ॥ प्राह गंभीरया वाचा प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥ ३३ ॥ शिव उवाच ॥ ॥ ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वर ॥ विष्णोर्मा
याबलं चैव नारदस्य च धीमतः ॥ ३४ ॥ तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तम ॥ पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं न संशयः ॥ ३५ ॥
परन्तु ते महादैत्या मद्भक्ता दृढमानसाः ॥ अथ वध्या मयैव स्युर्व्याजत्यक्तवृषोत्तमाः ॥ ३६ ॥ विष्णुर्हन्यात्परो वाथ यत्त्याजितवृषाः
कृताः ॥ दैत्या मद्भक्तिरहितास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥ ३७ ॥ इति शंभोस्तु वचनं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः ॥ विमनस्का बभूवुस्ते हरिश्चा
पि मुनीश्वर ॥ ३८ ॥ देवान् विष्णुमुदासीनान् दृष्ट्वा च भवकृद्विधिः ॥ कृतांजलिपुरश्शंभुं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
न किंचिद्विद्यते पापं यस्मात्त्वं योगवित्तमः ॥ परमेशः परब्रह्म सदा देवर्षिरक्षकः ॥ ४० ॥

उत्तम धर्म त्यागनेके कारण मैं उनका वध करूंगा ॥ ३६ ॥ जिन्होंने धर्म त्यागे हैं, उन दूसरोंको विष्णुजी मारैंगे, वे त्रिपुरमें रहनेवाले सब ही मेरी भक्तिसे रहित होगये हैं ॥ ३७ ॥ हे मुनि ! सब देवता इस प्रकार शिवजीके वचन सुनकर अनमने होगये और विष्णुजी भी अनमने हुए ॥ ३८ ॥ तब संसारके करनेवाले ब्रह्माजीने देवता विष्णुजीको उदास देखा तब हाथ जोडकर ब्रह्माजी शिवजीसे वचन कहने लगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देव ! आपको कोई पाप स्पर्श नहीं करसकता कारण कि आप योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो, आप परमेश्वर ब्रह्म सदा देवता और ऋषियोंके रक्षक हो ॥ ४० ॥

आपहीके शासन और प्रेरणासे वे सब मोहित होगये हैं जब उन्होंने अपना धर्म और आपका पूजन त्यागदिया तो भी वह शत्रु वध्य नहीं हैं ॥ ४१ ॥ हे महादेव ! हे देवर्षियोंके प्राणरक्षक ! इसकारण आप साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त इन म्लेच्छ जातियोंका वध करो ॥ ४२ ॥ धर्मसे निग्रह करनेमें राजोंको कुछ पाप नहीं लगता है, इस कारणसे ब्राह्मण साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त कंटकोंको शोधन करना चाहिये ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसे राजा यदि दोनों लोकोंमें अपने राज्यकी रक्षा करे तो महाफल होता है राज्यधर्ममें सब लोकोंका प्रभुत्व है, इसकारण आप हमारी शीघ्र रक्षा करैं ॥ ४४ ॥

तवैव शासनात्ते वै मोहिताः प्रेरको भवान् ॥ त्यक्तस्वधर्मत्वत्पूजाः परवध्यास्तथापि न ॥ ४१ ॥ अतस्त्वया महादेव सुरर्षिप्राणरक्षक ॥ साधूनां रक्षणार्थाय हंतव्या म्लेच्छजातयः ॥ ४२ ॥ राज्ञस्तस्य न तत्पापं विद्यते धर्मतस्तव ॥ तस्माद्रक्षेद्द्विजान् साधून्कंटकाद्वै विशोधयेत् ॥ ४३ ॥ एवमिच्छेदिहान्यत्र राजा चेद्राज्यमात्मनः ॥ प्रभुत्वं सर्वलोकानां तस्माद्रक्षस्व माचिरम् ॥ ४४ ॥ मुनीन्द्रे शास्तथा यज्ञा वेदाश्शास्त्रादयोखिलाः ॥ प्रजास्ते देवदेवेश ह्ययं विष्णुरपि ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ देवतासार्वभौमस्त्वं सम्राड् सर्वेश्वरः प्रभो ॥ परिवारस्तवैवैष हर्यादि सकलं जगत् ॥ ४६ ॥ युवराजो हरिस्तेज ब्रह्माहं ते पुरोहितः ॥ राजकार्यकरः शक्रस्त्वदाज्ञापरिपालकः ॥ ॥ ४७ ॥ देवा अन्येपि सर्वेश तव शासनयन्त्रिताः ॥ स्वस्वकार्यकरा नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरस्सुरपो विधिम् ॥ ४९ ॥

हे देवदेवेश ! मुनियोंमें श्रेष्ठ यज्ञ सम्पूर्ण वेद तथा शास्त्रादि तथा मैं और विष्णु यह सब आपकी प्रजा हैं ॥ ४५ ॥ आप देवताओंके सार्वभौम सम्राट सर्वेश्वर हो, यह हरिको आदिलेकर सब जगत् आपका परिवार है ॥ ४६ ॥ हरि आपके युवराज, हे अज ! मैं ब्रह्मा तुम्हारा पुरोहित, और आपकी आज्ञा पालन करनेवाला इन्द्र आपका राजकाज करनेवाला है ॥ ४७ ॥ हे सर्वेश ! दूसरे देवता भी आपकी आज्ञाके वशवर्ती हैं, वे नित्य अपने २ कार्य करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकारके ब्रह्माजीके वचन सुनकर सुरपति शंकर परमेश्वर प्रसन्नहो ब्रह्मांजीसे कंहने लगे ॥४९॥

शिवजी बोले, हे ब्रह्माजी ! जो कि तुमने मुझे देवराज और सम्राज कहकर कीर्तन किया है, मेरे पास कोई ऐसा प्रकार नहीं जो मैं इस पदको ग्रहण करूं॥ ॥ ५० ॥ महादिव्य हमारे पास रथ नहीं है वैसाही सारथी नहीं है, जिसको लेकर चलैं, संग्राममें जयका करनेवाला धनुषबाण भी चाहिये ॥ ५१ ॥ कि जिस रथपर बैठकर धनुषबाण ग्रहणकर मन लगाकर मैं प्रबल दैत्योंको भी संग्राममें वध करसकूं ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार बोले प्रभुके यह वचन सुनकर ब्रह्मा इन्द्र उपेन्द्रादि सब देवता प्रसन्नहुए और प्रणामकर महेश्वरसे कहने लगे ॥ ५३ ॥ देवता बोले हे महेश्वर हम उस प्रकारके आपके रथादिरूपमें होजां

शिव उवाच ॥ ॥ हे ब्रह्मन् यद्यहं देवराजस्सम्राट् प्रकीर्त्तितः ॥ तत्प्रकारो न मे कश्चिद्विद्यीयां यमिह प्रभुः ॥ ५० ॥ रथो नास्ति महादिव्यस्तादृक् सारथिना सह ॥ धनुर्बाणादिकं चापि संग्रामे जयकारकम् ॥ ५१ ॥ यमास्थाय धनुर्बाणान् गृहीत्वा योज्य वै मनः ॥ निहनिष्याम्यहं दैत्यान् प्रबलानपि संगरे ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अद्य सब्रह्मका देवास्सेन्द्रोपेन्द्राः प्रहर्षिताः ॥ श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं नत्वा प्रोचुर्महेश्वरम् ॥ ५३ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयं भवाम देवेश तत्प्रकारा महेश्वर ॥ रथादिका तव स्वामिन्संनद्धास्संगराय हि ॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वा संहतास्सर्वे शिवेच्छामधिगम्य ह ॥ पृथगूचुः प्रसन्नास्ते कृतांजलिपुटास्सुराः ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शिवस्तुतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु सर्वेषां देवादीनां वचो हरः ॥ अंगीचकार सुप्रीत्या शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवी पुत्राभ्यां संयुता शिवा ॥ आजगाम मुने तत्र यत्र देवान्वितो हरः ॥ २ ॥ अथागतां शिवां दृष्ट्वा सर्वे विष्णवादयो द्रुतम् ॥ प्रणेमुरतिनम्रास्ते विस्मिता गतसंभ्रमाः ॥ ३ ॥

यगे, हे स्वामिन् ! युद्धके लिये हम तयार हैं ॥५४॥ यह कहकर सब कोई इकठे हो शिवकी इच्छा जानकर प्रसन्न हो हाथ जोडकर खडेरहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु० पं० यु० भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः॥६॥ सनत्कुमारजी बोले सम्पूर्ण देवताओंके इस प्रकारके वचन सुन शरणागतवत्सल भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले शंकरने इस बातको स्वीकार किया ॥ १ ॥ हे मुने ! उसी समय शिवादेवी अपने पुत्रोंको लेकर उस स्थानमें आई जहां देवताओंके सहित भगवान् शंकर थे ॥ २ ॥ पार्वतीको आताहुआ देख सब देवता विष्णु आदिक नम्र हो प्रणाम करनेलगे, और संभ्रम तथा विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३॥

हे मुने! सबने सुलक्षणपूर्वक जयके वचन कहे, और पार्वतीके आगमन कारणको न जानकर सब मौन होगये ॥ ४ ॥ जब सब देवताओंने स्तुति की तब अद्भुत कुतूहलवाली देवीने अनेक लीलाकरनेमें चतुर अपने स्वामीसे कहा ॥ ५ ॥ देवी बोली हे पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ ! आप सूर्यकी समान प्रकाशमान अपने षण्मुख पुत्रको खेलते हुए देखिये, जो अनेक भूषणोंसे भूषित होरहे हैं ॥ ६ ॥ जब लोकमाताने इस प्रकारकी वाणियोंसे शंकरको सम्बोधन किया, तब स्कन्दका मुखामृतपान करते हुए शंकर तृप्तिको न प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ और अपने तेजसे निपीडित हुए देवताओंको स्मरण न किया, स्कन्दको आलिंगनकर

प्रोचुर्जयेति सद्वाक्यं मुने सर्वे सुलक्षणम् ॥ तूष्णीमासन्नजानंतस्तदागमनकारणम् ॥ ४ ॥ अथ सर्वैः स्तुता देवैर्देव्यद्भुतकुतूहला ॥ उवाच स्वामिनं प्रीत्या नानालीलाविशारदम् ॥ ५ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसंनिभम् ॥ पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठं भूषितं भूषणैर्वरैः ॥ ६ ॥ इत्येवं लोकमात्रा च वाग्भिस्संबोधितश्शिवः ॥ न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन् स्कंदाननामृतम् ॥ ७ ॥ न सस्मारागतान्दैत्यान्निजतेजोनिपीडितान् ॥ स्कंदमालिंग्य चाघ्राय मुमोदाति महेश्वरः ॥ ८ ॥ जगदम्बाथ तत्रैव संमंत्र्य प्रभुणा च सा॥स्थित्वा किञ्चित्समुत्तस्थौ नानालीलाविशारदा ॥ ९ ॥ ततस्सनंदी सह षण्मुखेन तया च सार्द्धं गिरिराजपुत्र्या ॥ विवेश शंभुर्भवनं सुलीलः सुरैस्समस्तैरभिवंद्यमानः ॥ १० ॥ द्वारस्य पार्श्वतः तस्थुर्देवदेवस्य धीमतः ॥ तेऽथ देवा महाव्यग्रा विमनस्का मुनेऽखिलाः ॥ ११ ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं कः स्यादस्मत्सुखप्रदः ॥ किं तु किंत्विति संजातं हा हताः स्मेति वादिनम् ॥ १२ ॥ अन्योन्यं प्रेक्ष्य शक्राद्या बभूवुश्चातिविह्वलाः ॥ प्रोचुर्विकलवाक्यं ते धिक्कुर्वन्तो निजं विधिम् ॥ १३ ॥

और सूंघकर महेश्वर बडे प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ अनेक लीलामें चतुर जगदम्बाभी प्रभुसे मंत्रणाकर कुछकालतक वहीं स्थितरहीं ॥ ९ ॥ तब नन्दी कार्तिकेय और गिरिराजकन्याके साथ सम्पूर्ण देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होते हुए शंकरने अपने मंदिरमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ हे मुने ! उस समय वे सम्पूर्ण देवता महाव्याकुल और व्यग्रमन होकर उस महाबुद्धिसम्पन्न देवदेवके द्वारमेंही स्थित होरहे ॥ ११ ॥ अब क्या करैं कहां जायँ कौन हमको सुखदेनेवाला है, यह क्या होगया, हा ! हम तो मारेगये इस प्रकार कहते हुए ॥ १२ ॥ इन्द्रादिकदेवता परस्पर एक दूसरेको देख बडे व्याकुल होगये और अपने प्रारब्धको

धिक्कार देते वे सब इसप्रकार कहने लगे ॥ १३ ॥ कोई बोले हम बडे पापी हैं, कोई बोले हम अभागी हैं कोई देवता बोले वे असुर बडे भाग्यवान् हैं ॥
॥ १४ ॥ उसी समय उन देवताओंके अनेकप्रकारके कलकलशब्द सुनकर महातेजस्वी कुम्भोदरनामक गणपति देवताओंको लकडीसे ताडन करने लगा
॥ १५ ॥ तब सब देवता हाहाकारशब्द करके वहांसे भागनिकले, कोई मुनि गिरपडे, देवसमाजमें बडी व्याकुलता छागई ॥ १६ ॥ इन्द्र तो बडे व्याकुल
हो जंघाको टेककर पृथिवीमें बैठगये, दूसरे देवर्षिभी व्याकुल हो पृथिवीपर गिरपडे ॥ १७ ॥ तब सब मुनि और देवता परस्पर मिलकर बडी व्याकुलतासे

पापा वयमिहेत्यन्ये ह्यभाग्याश्चेति चापरे ॥ ते भाग्यवंतो दैत्येन्द्रा इति चान्येऽब्रुवन् सुराः ॥ १४ ॥ तस्मिन्नेवांतरे तेषां श्रुत्वा शब्दा
ननेकशः ॥ कुंभोदरो महातेजा दंडेनाताडयत्सुरान् ॥ १५ ॥ दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेति वादिनः ॥ अपतन्मुनयश्चान्ये विह्वलत्वं
बभूव ह ॥ १६ ॥ इन्द्रस्तु विकलोतीव जानुभ्यामवनीं गतः ॥ अन्ये देवर्षयोतीव विकलाः पतिता भुवि ॥ १७ ॥ सर्वे मिलित्वा
मुनयस्सुराश्च सममाकुलाः ॥ संगता विधिहर्योस्तु समीपं मित्रचेतसोः ॥ १८ ॥ अहो विधिबलं चैतन्मुनयः कश्यपादयः ॥ वदं
ति स्म तदा सर्वे हरिं लोकभयापहम् ॥ १९ ॥ अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः ॥ कस्माद्विघ्नमिदं जातमित्यन्ये ह्यति
विस्मिताः ॥ २० ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा कश्यपाद्युदितं मुने ॥ आश्वासयन्मुनीन्देवान् हरिर्वाक्यमुपाददे ॥ २१ ॥ विष्णुरुवाच ॥
हे देवा मुनयस्सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ॥ किमर्थं दुःखमापन्नाः दुःखं तु त्यजाताखिलम् ॥ २२ ॥

ब्रह्मा और विष्णुजीके समीपमें गये ॥ १८ ॥ उस समय कश्यपादि ऋषि इस प्रकारसे कहने लगे अहो प्रारब्धका बल बडा विचित्र है यह बात उन्होंने सब
लोकोंके भय हरनेवाले हरिसे कही ॥ १९ ॥ कोई कहने लगे हे महर्षियो ! हमारे अभाग्यको तो देखो कि हमारा कार्य तो पूराहुआही नहीं और विघ्न उप
स्थित होगया इस प्रकार सब कोई बडे विस्मित हुए ॥ २० ॥ हे मुने ! इस प्रकार कश्यपादि ऋषियोंके वचन सुनकर मुनि और देवताओंको आश्वासन
करते हुए विष्णुजी कहने लगे ॥२१॥ विष्णुजी बोले हे देवता मुनियो ! तुम आदरसे हमारे वचन सुनो, तुम किस निमित्त दुःखको प्राप्त हो, सब दुःखको

त्यागन करदो ॥ २२ ॥ हे देवताओ! महत्पुरुषोंका आराधन सहज नहीं होता है, इस प्रकार तुम विचारकर देखो, हमने ऐसा सुना है पहले महत्पुरुषोंके आराधनमें दुःख होता है, हे देवताओ ! वह दृढताको जानकर पीछे प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ शिव सब गणोंके अध्यक्ष और परमेश्वर हैं, अपने मनोमें विचारदेखो वह सहसा कैसे वशमें होसकते हैं ॥ २४ ॥ हे देवताओ ! पहले ‘ ॐ ’ पीछे ‘ नमः ’ पश्चात् ‘ शिवाय ’ पीछे ‘ शुभम् ’ ॥ २५ ॥ पश्चात् कुरु कुरु पीछे शिवाय नमः ॐ अर्थात् ॐ नमः शिवाय शुभं कुरु २ शिवाय नमः ‘ॐम्’ हे देवताओ ! यदि इस मंत्रको तुम निरन्तर ॥ २६ ॥ शिवजीके

महदाराधनं देवा न सुसाध्यं विचार्य्यताम् ॥ महदाराधने पूर्वं भवेद्दुःखमिति श्रुतम् ॥ विज्ञाय दृढतां देवाः प्रसन्नो भवति
ध्रुवम् ॥ २३ ॥ शिवस्सर्वगणाध्यक्षस्सहसा परमेश्वरः ॥ विचार्यतां हृदा सर्वैः कथं वश्यो भवेदिति ॥ २४ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य नमः
पश्चादुदाहरेत् ॥ शिवायेति ततः पश्चाच्छुभद्वयमतः परम् ॥ २५ ॥ कुरुद्वयं ततः प्रोक्तं शिवाय च ततः पुनः ॥ नमश्च प्रणवश्चैव
मंत्रमेवं सदा बुधाः ॥ २६ ॥ आवर्तध्वं पुनर्यूयं यदि शंभुकृते तदा ॥ कोटिमेकं तथा जप्त्वा शिवः कार्यं करिष्यति ॥ २७ ॥ इत्युक्ते
च तदा तेन हरिणा प्रभंविष्णुना ॥ तथा देवाः पुनश्चक्रुर्हरस्याराधनं मुने ॥ २८ ॥ संजजाप हरिश्चापि सविधिश्शिवमानसः ॥ देवा
नां कार्यसिद्ध्यर्थं मुनीनां च विशेषतः ॥ २९ ॥ मुहुः शिवेति भाषंतो देवा धैर्यसमन्विताः ॥ कोटिसंख्यं तदा कृत्वा स्थितास्ते
मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम् ॥ यथोक्तेन स्वरूपेण वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ श्रीशिव उवाच ॥
हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च शुभव्रताः ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत जयेनानेन चेप्सितम् ॥ ३२ ॥

निमित्त एककोटि जपोगे तो शिवजी तुम्हारा कार्य करैंगे ॥ २७ ॥ हे मुने! जब परमसमर्थ विष्णुजीने इस प्रकारके वचन कहे तब फिर देवता शंकरकी आराधना करनेलगे ॥ २८ ॥ उस समय विष्णुजीभी शिवमें मन लगाकर देवता और मुनियोंके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त शिवमंत्रका जप करने लगे ॥ ॥ २९ ॥ धैर्य धारणकर देवता वारंवार शिवशिव ऐसा कहने लगे, हे मुनिसत्तम ! इसप्रकार एककोटि मंत्र जपकर वे सब स्थित हुए ॥ ३० ॥ उसी समय साक्षात् शंकरने फिर दर्शन दिया, यथोक्तस्वरूपसे आकर इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ श्रीशिवजी बोले हे विष्णुजी ! हे विधाता ! हे श्रेष्ठ

व्रतवाले ऋषियो ! मैं प्रसन्न हूं इस मंत्रके प्रभावसे जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो कहो ॥ ३२ ॥ देवता बोले हे जगदीश ! हे शंकर ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो तो देवताओंको व्याकुल जानकर त्रिपुरोंका संहार कीजिये ॥ ३३ ॥ हे परमेशान ! हे दीनबंधो ! कृपाकरनेवाले आप हमारी रक्षा करो आपनेही सब आपत्तियोंसे वारंवार देवताओंकी रक्षा की है ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! ब्रह्मा और हरिके तथा देवताओंके इसप्रकारके वचन सुनकर हँसकर शिवजी उन देवताओंसे बोले ॥ ३५ ॥ महेश्वर बोले हे विधाता ! हे विष्णुजी ! हे सब देवता मुनियो ! तुम त्रिपुरको नष्टहुआ जान आदरसे

॥ देवा ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश जगदीश्वर शंकर ॥ सुरान् विज्ञाय विकलान् हन्यंतां त्रिपुराणि च ॥ ३३ ॥ रक्षास्मान्परमेशान दीनबंधो कृपाकर ॥ त्वयैव रक्षिता देवास्सदापद्भ्यो मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तं वचनं तेषां श्रुत्वा सहरिवेधसाम् ॥ विहस्यांतस्तदा ब्रह्मन्महेशः पुनरब्रवीत् ॥ ३५ ॥ ॥ महेश उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवा मुनयश्चाखिला वचः ॥ मदीयं शृणुताहृत्य नष्टं मत्वा पुरत्रयम् ॥ ३६ ॥ रथं च सारथिं दिव्यं कार्मुकं शरमुत्तमम् ॥ पूर्वमंगीकृतं सर्वमुपपादयताचिरम् ॥ ३७ ॥ हे विष्णो हे विधे त्वं हि त्रिलोकाधिपतिर्ध्रुवम् ॥ सर्वसम्राट्प्रकारं मे कर्तुमर्हसि यत्नतः ॥ ३८ ॥ नष्टं पुरत्रयं मत्वा देवसाहाय्यमित्युत ॥ करिष्यथः प्रयत्नेनाधिकृतौ सर्गपालने ॥ ३९ ॥ अयं मंत्रो महापुण्यो मत्प्रीतिजनकश्शुभः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदस्सर्वकामदश्शैवकावहः ॥ ४० ॥ धन्यो यशस्य आयुष्यः स्वर्गकामार्थिनां नृणाम् ॥ अपवर्गो ह्यकामानां मुक्तानां भुक्तिमुक्तिदः ॥ ४१ ॥

मेरे वचन सुनो ॥ ३६ ॥ जो तुमने रथ, सारथि, दिव्य धनुष, बाण देना पहले अंगीकार किया है, उसको शीघ्र उपस्थित करो ॥ ३७ ॥ हे विष्णु ! हे विधाता ! तुम त्रिलोकके अधिपति हो, बहुत शीघ्र यत्नसे हमारे सम्राट् पदका प्रकार उपस्थित करो ॥ ३८ ॥ तुम त्रिपुरको नष्ट हुआ ही जानकर प्रयत्नसे सब देवता सृष्टि पालनके अधिकारी इसमें सहायता करो ॥ ३९ ॥ जो तुमने यह महापुण्यदायक मेरा मंत्र जपा है, इससे मैं प्रसन्न होताहूं, यह महाशुभमंत्र भुक्तिमुक्तिका देनेवाला तथा सबकामनाका देनेवाला सब शैवोंको सुखकरनेवाला है ॥ ४० ॥ यह धन्य यश और आयुका देनेवाला है स्वर्गकी इच्छा

करनेवालोंको स्वर्ग और कामनारहितोंको मुक्ति और संसारसे मुक्तिको प्राप्त हुओंको भोग और मोक्षदेनेवाला है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य सदा पवित्र होकर इस मंत्रका कीर्तन करता है जो सुनता सुनाता है वह सब कामनाओंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, परमात्मा शिवके इस प्रकारके वचन सुनकर हरि और ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्न हुए॥ ४३ ॥तब विश्वकर्माने संसारके हितके निमित्त विष्णुजीकी आज्ञासे परम सुन्दर सब देवमय रथ निर्माण किया ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु० पं० यु० भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ व्यासजी बोले हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे शिवके भक्तोंमें

य इमं कीर्तयेन्मंत्रं शुचिर्भूत्वा सदा नरः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ सर्वे देवा मुदं प्रापुर्हरिर्ब्रह्माधिकं तथा ॥ ४३ ॥ सर्वदेवमयं दिव्यं रथं परमशोभनम् ॥ रचयामास विश्वार्थे विश्वकर्मा तदाज्ञया ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे देवस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शैवप्रवर सन्मते ॥ अद्भुतेयं कथा तात श्राविता परमेशितुः ॥ १ ॥ इदानीं रथनिर्माणं ब्रूहि देवमयं परम् ॥ शिवार्थं यत्कृतं दिव्यं धीमता विश्वकर्मणा ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ ३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ शृणु व्यास महाप्राज्ञ रथादेर्निर्मितिं मुने ॥ यथामति प्रवक्ष्येऽहं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४ ॥ अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ ! हे महाबुद्धिमान् ! हे तात ! आपने यह शंकरकी अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ इस समय आप उस देवमय रथका निर्माण कहिये जो बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके निमित्त निर्माण कियाथा ॥ २ ॥ सूतजी बोले वह मुनीश्वर व्यासजीके इस प्रकार वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलको स्मरणकर सनत्कुमारजी कहने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यासजी ! मैं बुद्धिके अनुसार शिवजीके चरणकमलको स्मरण करके कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ विश्वकर्माने जो रुद्रदेवके निमित्त रथ निर्माण कियाथा, वह दिव्य रथ सर्वलोकमें परम दिव्य यत्नपूर्वक बनाया गयाथा ॥ ५ ॥

वह सब भूतमय सुवर्णका सर्वसम्मत था, उसके दक्षिण पहियेमें सूर्य वाम पहियेमें चन्द्रमा ॥ ६ ॥ दक्षिणके पहियेमें बारहमहीनेरूप बारह आरे, और
बाईं ओरके पहियेमें कलारूप सोलह आरे थे, हे विप्रेन्द्र ! उन बारह आरोंमें बारह आदित्य लगेथे ॥ ७ ॥ हे सुव्रत ! बाईं ओर चन्द्रमाकी बारह कला
लगीहुई थीं, और बाईं ओरही २८ नक्षत्र लगे हुएथे ॥ ८ ॥ छहों ऋतु उस रथकी नेमि पुट्ठी पुष्कर उसका अन्तरिक्ष, और रथकी नीड मंदरपर्वत था॥
॥ ९ ॥ उदयाचल अस्ताचल उसका जुआ, मेरु उसका अधिष्ठान, और दूसरे पर्वत उसके केशर हुए ॥ १० ॥ सम्वत्सर उसका वेग उत्तरायण दक्षिणायन

सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णस्सर्वसंमतः ॥ रथांगं दक्षिणं सूर्यस्तद्वामं सोम एव च ॥ ६ ॥ दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् ॥ अरेषु
तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु ॥ ७ ॥ शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत ॥ ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम् ॥
॥ ८ ॥ ऋतवो नेमयः षट् च तयोर्वै विप्रपुंगव ॥ पुष्करं चांतरिक्षं वै रथनीडश्च मंदरः ॥ ९ ॥ अस्ताद्रिरुदयाद्रिस्तु तावुभौ
कूबरौ स्मृतौ ॥ अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केशराचलाः ॥ १० ॥ वेगस्संवत्सरास्तस्य अयने चक्रसंगमौ ॥ मुहूर्ता बंधुरास्तस्य शम्या
श्चैव कलाः स्मृताः ॥ ११ ॥ तस्य काष्ठाः स्मृता घोणाश्चाक्षदंडाः क्षणाश्च वै ॥ निमेषाश्चानुकर्षश्च ईषाश्चानुलवाः स्मृताः ॥ १२ ॥
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ ॥ युगान्तकोटितौ तस्य भ्रमकामदुघौ स्मृतौ ॥ १३ ॥ ईषादंडस्तथा व्यक्तं वृद्धिस्तस्यैव
नड्वलः ॥ कोणास्तस्याप्यहंकारो भूतानि च बलं स्मृतम् ॥ १४ ॥ इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समंततः ॥ श्रद्धा च गतिर
स्यैव रथस्य मुनिसत्तम ॥ १५ ॥

चक्रोंके संगम, मुहूर्त उस रथका बंधुर [बंधन बने] और कला उसकी शम्पा [दोनों कील] बनीं ॥ ११ ॥ कलाओंका तीसवां भाग काष्ठा उसका घोण
(जुएका अग्रनासिकारूप) और क्षण उसके अक्षदंड हुए निमेष उस रथका अनकर्ष [नीचेका काष्ठ] हुआ और लव उसका ईषा [जुएके बीचका काष्ठदंड]
बना ॥ १२ ॥ इस रथका लोहेका पर्दा द्युलोक बना, स्वर्ग और मोक्ष इसकी दोनों ध्वजा हुईं, और जुएके दोनों सिरे उसके भ्रम और कामदुघा बने ॥
॥ १३ ॥ व्यक्त उसका ईषादंड, और वृद्धि उसका नडवल बना अहंकार उसका कोना और पंचमहाभूत उसके बल बने ॥ १४ ॥ समस्त इन्द्रिय उसके

भूषण और हे मुनिसत्तम ! श्रद्धा इस रथकी गति हुई ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! षडंग उस समय भूषण बने, पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र यह उपभूषण हुए ॥ १६ ॥ सब लक्षणोंसे संयुक्त वर बलके स्थान बने, उनका घंटा मंत्र हुए, वर्णाश्रम चरण बने ॥ १७ ॥ सहस्रफणोंसे भूषित अनन्त सर्प उसका बंधन बने दिशा और उपदिशा इस रथके पाद हुए ॥ १८ ॥ सुवर्णकी समान प्रकाशमान रत्नोंसे भूषित पुष्करादि इस रथकी पताका बनी और चारों सागर इस रथके ढकनेका वस्त्र बने ॥१९॥ सब गहनोंको धारण किये गंगादि श्रेष्ठ नदियें सब स्त्रीरूप धारे चमर हाथमें लिये उपस्थित हुईं ॥२०॥ यह उन स्थानोंमें

तदानीं भूषणान्येव षडंगान्युपभूषणम् ॥ पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः ॥ १६ ॥ बलाशया वराश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः ॥
मंत्रा घटाः स्मृतास्तेषां वर्णपादास्तदाश्रमाः ॥ १७ ॥ अथो बन्धो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः ॥ दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोप
दिशश्च ह ॥ १८ ॥ पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः ॥ समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकंबलिनस्स्मृताः ॥ १९ ॥ गंगाद्यास्सरित
श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ चामरासक्तहस्ताग्रास्सर्वास्त्रीरूपशोभिताः ॥ २० ॥ तत्र तत्र कृतस्थानाः शोभयांचक्रिरे रथम् ॥ आव
हाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम् ॥ २१ ॥ लोकालोकाचलस्तस्योपसोपानस्समंततः ॥ विषमश्च तथा बाह्यो मानसादिस्तु
शोभनः ॥ २२ ॥ पाशास्समंततस्तस्य सर्वे वर्षाचलास्स्मृताः ॥ तलास्तस्य रथस्याऽथ सर्वे तलनिवासिनः ॥ २३ ॥ सारथिर्भ
गवान्ब्रह्मा देवा रश्मिधराः स्मृताः ॥ प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ॥ २४ ॥ अकारश्च महच्छत्रं मंदरः पार्श्वदंडभाक् ॥
शैलेन्द्रः कार्मुकं तस्य ज्या भुजंगाधिपस्स्वयम् ॥ २५ ॥

स्थिति कर रथको शोभायमान करतीहुईं, आवह आदि सात पवन उस रथकी उत्तम सुवर्णकी सीढी बनी ॥२१॥ लोकालोक पर्वत उस रथके इधर उधरकी उपसोपान बने विषम और बाह्यस्थान शोभायमान मानस आदि हुए ॥ २२ ॥ सब वर्षाचल उसके पाश बने, तललोकके रहनेवाले प्राणी उस रथका तलभाग बने ॥ २३ ॥ भगवान् ब्रह्मा सारथि, और सब देवता रश्मिधारण करनेवाले बने ब्रह्मदेवतावाला ओंकार कोडा ॥२४॥ अकारही उसका महाछत्र

और मंदर पार्श्वस्थानका दंड धारण करनेवाला बना शैलराज मेरु उसका धनुष और सर्पराज शेषजी उसका रोदा बने ॥ २५ ॥ वेदरूपा सरस्वतीदेवी
उसधनुषका घंटास्वरूप हुई महातेजस्वी विष्णुजी उसका बाण अग्नि उस बाणका शल्य बना ॥ २६ ॥ हे मुने! चार वेद उसके चार घोडे बने सब ज्योतियें
उनके भूषण हुए, और भी जो कुछ है वे उपभूषण बने ॥ २७ ॥ विषसम्भूत उसकी अनीक हुई, सम्पूर्ण वायु उसके बाजा बजानेवाले हुए, ऋषि और
व्यासको आदि लेकर मुख्य ऋषि उसके वहन करनेवाले बने ॥ २८ ॥ हे मुने! बहुत कहनेसे क्या है मैं थोडेसे अक्षरोंमें कहताहूं ब्रह्माण्डमें जो कुछ

घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी ॥ इषुर्विष्णुर्महातेजास्त्वग्निश्शल्यं प्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥ हयास्तस्य तथा प्रोक्ताश्चत्वारो नि
गमा मुने ॥ ज्योतींषि भूषणं तेषामवशिष्टान्यतः परम् ॥ २७ ॥ अनीकं विषसंभूतं वायवो वाजकास्मृताः ॥ ऋषयो व्यासमुख्याश्च
वाहवाहास्तथाभवन् ॥ २८ ॥ स्वल्पाक्षरैस्संब्रवीमि किं बहूक्त्या मुनीश्वर ॥ ब्रह्मांडे चैव यत्किंचिद्वस्तु तद्वै रथे स्मृतम् ॥ २९ ॥ एवं
सम्यक्कृतस्तेन धीमता विश्वकर्मणा ॥ स रथादिप्रकारो हि ब्रह्मविष्ण्वाज्ञया शुभः ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसं
हितायां पञ्चमे युद्धखण्डे रथादियुद्धप्रकारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ईदृग्विधं महादिव्यं नानाश्चर्य
मयं रथम् ॥ संनह्य निगमानश्वांस्तं ब्रह्मा प्रार्पयच्छिवम् ॥ १ ॥ शंभवेऽसौ निवेद्याधिरोपयामास शूलिनम् ॥ बहुशः प्रार्थ्य देवेशं
विष्ण्वादिसुरसंमतम् ॥ २ ॥ ततस्तस्मिन्रथे दिव्ये रथप्राकारसंयुते ॥ सर्वदेवमयः शंभुरारुरोह महाप्रभुः ॥ ३ ॥

वस्तु हैं वह सब उस रथमें विद्यमान थीं ॥२९॥ इस प्रकार उस विश्वकर्माने भलीभांति रथ निर्माण कर ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे वह रथका सब प्रकार
प्रस्तुत किया ॥३०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि०रु०पं०यु०भाषाटीकायां रथादियुद्धप्रकारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकारका
महादिव्य, अनेकआश्चर्यसम्पन्न रथ निर्माण होगया तब ब्रह्माजीने वेदरूपी घोडे उसमें जोतकर शिवजीको वह निवेदन किया ॥ १ ॥ शिवजीको इस प्रकार
वह रथ निवेदनकर विष्णु आदिदेवताओंने बडी प्रार्थनाकर उस रथपर उनको चढाया ॥ २ ॥ तब अनेक सामग्रियोंसे सम्पन्न उस दिव्यरथमें महाप्रभु सब

देवमय भगवान् शंकर आरूढ हुए ॥ ३ ॥ देव, गंधर्व, किन्नर, और ऋषियोंसे स्तुतिको प्राप्त हो तथा विष्णु ब्रह्मा और लोकपालोंसे स्तुतिको प्राप्त हो
॥ ४ ॥ गीत गानमें चतुरगण और अप्सराओंसे आवृत होकर शिवजी अपने सारथीको अवलोकन करतेहुए बडी शोभाको प्राप्तहुए ॥ ५ ॥ जिस समय
उस लोकोंके धारणकरनेवाले रथपर भगवान् शंकर चढे उस समय वेदसंभव चारों अश्व शिरके बल भूमिमें गिरपडे ॥ ६ ॥ पृथिवी और सम्पूर्ण पर्वत
चलायमान होगये उसके भार सहनेमें असमर्थ होकर शेषजी कंपित होगये ॥ ७ ॥ तब पृथिवीके धारण करनेवाले वृषरूपी भगवान् धर्मने स्थितहोकर

ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगंधर्वपन्नगैः॥विष्णुना ब्रह्मणा चापि लोकपालैर्बभूव ह ॥ ४ ॥ उपावृतश्चाप्सरसां गणैर्गीतविशारदैः ॥ शुशु
भे वरदश्शम्भुस्स तं प्रेक्ष्य च सारथिम् ॥ ५ ॥ तस्मिन्नारोऽहतिरथं कल्पितं लोकसंभृतम् ॥ शिरोभिः पतिता भूमौ तुरंगा वेदसंभवाः
॥ ६ ॥ चचाल वसुधा चेलुस्सकलाश्च महीधराः ॥ चकंपे सहसा शेषोऽसोढा तद्भारमातुरः ॥ ७ ॥ अथाधः स रथस्यास्य भगवान्ध
रणीधरः ॥ वृषेन्द्ररूपी चोत्थाय स्थापयामास वै क्षणम् ॥ ८ ॥ क्षणांतरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम् ॥ रथारूढमहेशस्य सुते
जस्सोढुमक्षमः ॥९॥ अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयांस्तदा ॥ स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं वरम् ॥ १० ॥ ततोऽसौ नोदया
मास मनोमारुतरंहसः ॥ ब्रह्मा हयान्वेदमयान्नद्धान्रथवरे स्थितः ॥ ११ ॥ पुराण्युद्दिश्य वै त्रीणि तेषां खस्थानि तानि हि ॥ अधिष्ठिते
महेशे तु दानवानां तरस्विनाम् ॥१२॥ अथाह भगवान्रुद्रो देवानालोक्य शंकरः ॥ पशूनामाधिपत्यं मे धद्ध्वं हन्मि ततोऽसुरान् ॥१३॥

नीचेसे क्षणमात्रको रथ उठाया ॥ ८ ॥ क्षणमात्रमें वृषेन्द्र भी जंघाओंके बलसे भूमिमें बैठगये, रथपर चढेहुए महेश्वरका तेज सहनेमें समर्थ न हुए ॥ ९ ॥
तब कोडा हाथमें लिये ब्रह्माजीने उन घोडोंको उठाकर देवके वचनोंसे उस श्रेष्ठ रथमें नियुक्त किया ॥ १० ॥ तब ब्रह्माजीने रथश्रेष्ठमें जुते हुए मन और
पवनकी समान वेगवाले इन वेदमय घोडोंको चलाया ॥ ११ ॥ और आकाशमें स्थित उन तीन पुरोंके सन्मुख किया, जब महेश्वर उस रथमें बैठचुके, और
वेगगामी दानवोंकी ओर वह रथ चला ॥ १२ ॥ उस समय भगवान् शंकर देवताओंको देखकर कहनेलगे, आप मुझे पशुओंका अधिपति करो तो मैं इन

असुरोंको नष्ट करदूं ॥ १३ ॥ हे देवताओ ! देवता और दूसरे जनोंका पशुत्व पृथक् पृथक् कल्पना करके दियाजाय तो वे बली दैत्य मरसकतेहैं और प्रकारसे नहीं ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी बोले इसप्रकार बुद्धिसम्पन्न उन देवदेवके वचन सुनकर पशुपनकी शंका करके सब देवता परम विषादको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ देवदेव अम्बिकापति देवताओंके भावको जानकर हंसते हुए कृपाकरके उन देवताओंसे कहने लगे ॥ १६ ॥ शिवजी बोले हे देवताओ ! पशुभाव होनेपर भी तुम्हारा पात नहीं होगा, सुनो पशुभावका मोक्ष जिस प्रकार होगा ॥ १७ ॥ जो दिव्य पाशुपतव्रतको करैगा उसका मोक्ष होजायगा, पशु होनेसेही यह

पृथक् पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः ॥ कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा दैत्यसत्तमाः ॥ १४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धीमतः ॥ विषादमगमन्सर्वे पशुत्वं प्रतिशंकिताः ॥ १५ ॥ तेषां भावमथ ज्ञात्वा देवदेवोऽम्बिकापतिः ॥ विहस्य कृपया देवाञ्छंभुस्तानिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ ॥ शंभुरुवाच ॥ मा वोऽस्तु पशुभावेऽपि पातो विबुधसत्तमाः ॥ श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः ॥ १७ ॥ यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति ॥ पशुत्वादिति सत्यं वः प्रतिज्ञातं समाहिताः ॥ १८ ॥ ये चाप्यन्ये करिष्यंति व्रतं पाशुपतं मम ॥ मोक्ष्यंति ते न संदेहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः ॥ १९ ॥ नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्द्धं वर्षकत्रयम् ॥ शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते ॥ २० ॥ तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः ॥ पशुत्वान्मोक्ष्यथ तदा यूयमत्र न संशयः ॥ २१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य महेशस्य परात्मनः ॥ तथेति चाब्रुवन्देवा हरिं ब्रह्मादयस्तथा ॥ २२ ॥ तस्माद्वै पशवस्सर्वे देवासुरवराः प्रभोः ॥ रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः ॥ २३ ॥

बात होगी यह तुम सावधानताको प्राप्त हुओंसे सत्य बात कही है ॥ १८ ॥ और भी जो कोई मेरे पाशुपतव्रतको करैंगे हे श्रेष्ठ देवताओ ! वह पशुत्वसे छूटजांयगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ जो निष्ठापूर्वक बारह वर्ष छःवर्ष वा तीन वर्ष मेरी शुश्रूषा करैगा, वह पशुपाशसे छूटजायगा ॥ २० ॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! इस कारण तुम इस व्रतको करो इसमें संदेह नहीं तुम पशुपनसे छूटजाओगे ॥ २१ ॥ सनत्कुमारजी बोले महेश परमात्माके इस प्रकारके वचन सुनकर हरिब्रह्मादि देवताओंने कहा ऐसाही होगा ॥ २२ ॥ इस कारणसे यह देवता असुर सब कोई उन प्रभुके पशु हैं, और पशुओंकी पाश मुक्त

करनेवाले शिवजी पशुपति हैं ॥ २३ ॥ इस कारण महेश्वरका एक नाम पशुपति भी है यह नाम सब लोकोंमें प्रसिद्ध कल्याणका देनेवाला है ॥ २४ ॥
तब सब देवता और ऋषि प्रसन्नतासे जयजयकार करने लगे तब ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर यह बडे प्रसन्नहुए तथा दूसरे भी प्रसन्नहुए ॥ २५ ॥ उस समय
जैसा उस परमात्माको अद्भुत रूप हुआ वह सौवर्षमें भी वर्णन नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ उस समय सब जगत्के पति शंकर और महेशानी पार्वतीसहित
सबके सुख देनेके निमित्त त्रिपुर मारनेको चले ॥ २७ ॥ जिससमय वह देवदेव त्रिपुरके मारनेके निमित्त चले, उससमय सम्पूर्ण देवता हाथी, घोडे, सिंह,

तदा पशुपतीत्ये तत्तस्य नाम महेशितुः ॥ प्रसिद्धमभवद्ध्वा सर्वलोकेषु शर्मदम् ॥ २४ ॥ मुदा जयेति भाषंतस्सर्वे देवर्षयस्तदा ॥
अमुदंश्चाति देवेशो ब्रह्मा विष्णुः परेऽपि च ॥ २५ ॥ तस्मिंश्च समये यच्च रूपं तस्य महात्मनः ॥ जातं तद्वर्णितुं शक्यं न हि वर्षशतै
रपि ॥ २६ ॥ एवं विधो महेशानो महेशान्यखिलेश्वरः ॥ जगाम त्रिपुरं हंतुं सर्वेषां सुखदायकः ॥ २७ ॥ तं देवदेवं त्रिपुरं निहंतुं
तदानु सर्वे तु रविप्रकाशाः ॥ गजैर्हयैस्सिंहवरै रथैश्च वृषैर्ययुस्तेऽमरराजमुख्याः ॥ २८ ॥ हलैश्च शालैर्मुशलैर्भुशुंडैर्गिरीन्द्रकल्पैर्गिरिसं
निभाश्च ॥ नानायुधैस्संयुतबाहवस्ते ततो नु हृष्टाः प्रययुस्सुरेशाः ॥ २९ ॥ नानायुधाढ्याः परमप्रकाशा महोत्सवाश्शंभुजयं वदंतः ॥
ययुः पुरस्तस्य महेश्वरस्य तदेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः ॥ ३० ॥ जहृषुर्मुनयस्सर्वे दंडहस्ता जटाधराः ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचरा
स्सिद्धचारणाः ॥ ३१ ॥ पुत्रत्रयं च विप्रेन्द्रा व्रजन्सर्वे गणेश्वराः ॥ तेषां संख्यां च कः कर्तुं समर्थो वच्मि कांश्चन ॥ ३२ ॥

रथ और वृषभपर चढकर देवताओंमें मुख्य इन्द्रादिके साथ चले ॥ २८ ॥ हल, भशुण्डी, शाल, मूशल, जो गिरीन्द्रकूट महापाषाणकी समान दृढ और
पर्वतोंकेही समान थे उन आयुधोंको ग्रहणकर उससमय ब्रह्मादिकभी अपने २ वाहनोंपर चढकर चले ॥ २९ ॥ अनेक प्रकारके आयुध हाथमें उठाये परम
प्रकाशमान महोत्सवसे शिवजीकी जय उच्चारणकरतेहुए उस समय इन्द्र ब्रह्मा और विष्णुजी महेश्वरके आगे आगे चले ॥ ३० ॥ दंड हाथमें लिये जटाधारे
सब मुनि प्रसन्नता प्रगट करने लगे और आकाशसे सिद्ध चारण फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उस समय जो शिवजीके गण उन तीनों

पुरोंमें प्रवेश करने लगे उनकी संख्या कौन कर सकताहै परन्तु थोडेसे मैं कहताहूं ॥ ३२ ॥ गणश्वर और देवगणोंके साथ सब देवगणोंमें श्रेष्ठ शंकरका
भृंगी नामक गणेश्वर विमानमें चढकर महेन्द्रकी समान शोभायमान हो त्रिपुरनाश करनेको चला ॥३३॥ केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली
सवर्ण, सोमप, सनक ॥ ३४ ॥ सोमधृक्, सूर्य वर्चा, सूर्यप्रेषणक, सूर्याक्ष, सूर्य, सुरसुन्दर ॥ ३५ ॥ प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र,
इन्द्रजव, यंता, हिमकर ॥ ३६ ॥ शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, (शतजित्) वा सतीजुह, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन ॥ ३७ ॥ द्विशिख, त्रिशिख,

गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृंगी समावृतस्सर्वगणेन्द्रवर्यः ॥ जगाम योगांस्त्रिपुरं निहंतुं विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः ॥३३॥ केशो विगतवासश्च
महाकेशो महाज्वरः ॥ सोमवल्लीसवर्णश्च सोमपस्सनकस्तथा ॥ ३४ ॥ सोमधृक् सूर्यवर्चाश्च सूर्यप्रेषणकस्तथा ॥ सूर्याक्षस्सूरिनामा
च सुरस्सुन्दर एव च ॥ ३५ ॥ प्रस्कंदः कुन्दरश्चंडः कंपनश्चातिकंपनः ॥ इन्द्रश्चेन्द्रजवश्चैव यंता हिमकरस्तथा ॥ ३६ ॥ शताक्षश्चैव
पंचाक्षः सहस्राक्षो महोदरः ॥ सतीजहुश्शतास्यश्च रंकः कर्पूरपूतनः ॥ ३७ ॥ द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथाहंकारकारकः ॥ अजवक्रोऽ
ष्टवक्रश्च हयवक्रोऽर्द्धवक्रकः ॥ ३८ ॥ इत्याद्या गणपा वीरा बहवोऽपरिमेयकाः ॥ प्रययुः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः ॥ ३९ ॥
समावृत्य महादेवं तदापुस्ते पिनाकिनम् ॥ दग्धुं समर्था मनसा क्षणेन सचराचरम् ॥ ४० ॥ दग्धुं जगत्सर्वमिदं समर्थाः किंत्वत्र दग्धुं
त्रिपुरं पिनाकी ॥ रथेन किं चात्र शरेण तस्य गणैश्च किं देवगणैश्च शंभोः ॥ ४१ ॥ स एव दग्धुं त्रिपुराणि तानि देवद्विषां व्यास
पिनाकपाणिः ॥ स्वयं गतस्तत्र गणैश्च सार्द्धं निजैस्सुराणामपि सोऽद्भुतोतिः ॥ ४२ ॥

हुंकारकारक, अजवक्र, अष्टवक्र, हयवक्र, अर्द्धवक्र ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे बहुतसे असंख्य गण, लक्ष्यलक्षणसे वर्जितहो शिवजीको घेरकर चले ॥ ३९ ॥
जिससमय वे पिनाकपाणी महादेवको घेरकर चले उससमय मनसे उन्होंने चराचरके दग्ध करनेकी इच्छा करली ॥ ४० ॥ वह पिनाकधारी वैसेही त्रिलो
कीके भस्म करनेमें समर्थ हैं, त्रिपुरका जलाना तो क्या बडी बात है उनको रथ बाण गण और देवताओंका प्रयोजन क्या है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! वह

जो पिनाकधारी उन दैत्योंके मारनेके निमित्त अपने गण और देवताओंको साथ लेकर चले यह बडी अद्भुत बात है ॥ ४२ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! जो इसमें,
कारण है सो मैं तुमसे कहताहूं पापोंका नाश करनेवाला अपना यश त्रिलोकीमें विस्तार करनेके निमित्त उन्होंने ऐसा किया ॥ ४३॥ और भी मलिनबुद्धि
दुष्टोंके विश्वासके लिये यह बात स्पष्ट करदी कि, सब देवताओंमें कोई विशेष नहीं, एक शंकरही प्रधान हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापु द्वि०रु० पं० यु०
भा० टी० शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ सनत्कुमारजी बोले तब महादेव शिवजी सब सामग्रीसहित उस रथपर स्थितहो दैत्योंके त्रिपुर दग्ध कर

किं तत्र कारणं चान्यद्वच्मि ते ऋषिसत्तम ॥ लोकेषु ख्यापनार्थं वै यशः परमलापहम् ॥ ४३ ॥ अन्यच्च कारणं ह्येतद्दुष्टानां प्रत्य
याय वै ॥ सर्वेष्वपि च देवेषु यस्मान्नान्यो विशिष्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे
शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ शंभुर्महादेवो रथस्थस्सर्वसंयुतः ॥ त्रिपुरं सकलं दग्धुमुद्यतोऽ
भूत्सुरद्विषाम् ॥ १ ॥ शीर्षं स्थानकमास्थाय संधाय च शरोत्तमम् ॥ सज्जं तत्कार्मुकं कृत्वा प्रत्यालीढं महाद्भुतम् ॥ २ ॥ निवेश्य
दृढमुष्टौ च दृष्टिं दृष्टौ निवेश्य च॥अतिष्ठन्निश्चलस्तत्र शतं वर्षसहस्रकम् ॥ ३ ॥ ततोऽङ्गुष्ठे गणाध्यक्षस्स तुदत्यनिशं स्थितः ॥ न लक्ष्यं
विविशुस्तानि पुराण्यस्य त्रिशूलिनः ॥ ४ ॥ ततोंतरिक्षादश्शृणोद्धनुर्बाणधरो हरः ॥ मुंजकेशो विरूपाक्षो वाचं परमशोभनाम् ॥ ५ ॥
भो भो न यावद्भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः ॥ पुराणि जगदीशेश सांप्रतं न हनिष्यति ॥ ६ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्रमपूज
यत् ॥ भद्रकालीं समाहूय ततोंधकनिषूदनः ॥ ७ ॥

नेके लिये उद्यत हुए ॥ १ ॥ शीर्षस्थानमें स्थितहो उत्तमबाण धनुषपर चढानेके निमित्त धनुष सजाकर वीर नामक आलीढ आसनसे स्थित हुए ॥२॥
दृढमुष्टिसे उस धनुषको धारणकर दृष्टिमें दृष्टि प्रवेशकर निश्चलहोकर सो हजार वर्षतक शिवजी स्थित हुए ॥ ३ ॥ परन्तु अंगूठेदे अग्रभागमें स्थितहो गणेशजी
उसमें विघ्न करने लगे, इससे शंकरके लक्ष्य पुरमें प्रविष्ट नहीं होते थे ॥४॥ तब मुंजकेश विरूपाक्ष धनुष बाणधारी शंकरने आकाशसे वाणी सुनी ॥ ५ ॥
हे देव ! जबतक आप इन गणेशजीका पूजन नहीं करैंगे, हे जगत्पति ! तबतक आप त्रिपुरको नष्ट न कर सकैंगे ॥ ६ ॥ यह वचन सुनतेही शंकरने गणे

शजीका पूजन किया, फिर अंधकासुरके नाश करनेवाले भगवान् भद्रकालीको बुलाकर गणशका पूजन कर चुके ॥ ७ ॥ तब प्रेमसे पूजा ग्रहणकर गणेशजी बडे प्रसन्न हुए, उस समय भगवान् शंकरने आकाशमें ॥ ८ ॥ उन महात्मा दैत्योंके तीनों पुरोंको देखा, जो यथायोग्य युक्तथे, इस स्थलमें कोई ऐसा कहते हैं ॥ ९ ॥ जो परब्रह्म देवेश महेश्वर सबके पूजनीय हैं उनके कार्यकी सिद्धि दूसरोंके प्रसादसे हो यह बात उनमें नहीं घटती ॥ १० ॥ वह परब्रह्म स्वतंत्र और सगुण निर्गुण रूप हैं वह परमात्मा निरंजन स्वामी सबसे अलक्षित हैं ॥ ११ ॥ वह परमप्रभु पांच देवताओंसे उपास्य पंचदेवात्मक हैं,

तस्मिन् संपूजिते हर्षात्परितुष्टे पुरस्सरे ॥ विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भमवान्हरः ॥ ८ ॥ पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम् ॥ यथातथं हि युक्तानि केचिदित्थं वदंति ह ॥ ९ ॥ परब्रह्मणि देवेश सर्वोपास्ये महेश्वरे ॥ अन्यप्रसादतः कार्यसिद्धिर्घटति नेति हि ॥ १० ॥ स स्वतंत्रः परं ब्रह्म सगुणो निर्गुणोऽपि ह ॥ अलक्ष्यः सकलैस्स्वामी परमात्मा निरंजनः ॥ ११ ॥ पंचदेवात्मकः पंचदेवोपास्यः परः प्रभुः ॥ तस्योपास्यो न कोप्यस्ति स एवोपास्य आलयम् ॥ १२ ॥ अथ वा लीलया तस्य सर्वं संघटते मुने ॥ चरितं देवदेवस्य वरदातुर्महेशितुः ॥ १३ ॥ तस्मिंस्स्थिते महादेवे पूजयित्वा गणाधिपम् ॥ पुराणि तत्र कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै ॥ १४ ॥ एकीभावं मुने तत्र त्रिपुरे समुपागते ॥ बभूव तुमुलो हर्षो देवादीनां महात्मनाम् ॥ १५ ॥ ततो देवगणास्सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ जयेति वाचो मुमुचुः स्तुवंतश्चाष्टमूर्तिनम् ॥ १६ ॥ अथाहेति तदा ब्रह्मा विष्णुश्च जगतां पतिः ॥ समयोऽपि समायातो दैत्यानां वधकर्मणः ॥ १७ ॥

उनको किसीकी उपासनाकी आवश्यकता नहीं है, वही प्रभु परम उपास्य हैं ॥ १२ ॥ परन्तु लीलामात्रसे गणेशादिका पूजन उनमें घटताहै, उन देवदेवने लीलाचरित्रमें गणेशजीको वरदान दिया था ॥१३॥ जब महादेवजी गणेशजीका पूजनकर स्थित हुए कि, उसी समय वह तीनोपुर एक स्थानमें आकर स्थित हुए ॥ १४ ॥ हे मुने ! तब त्रिपुरकें एकत्र होनेपर महात्मा देवताओंको उस समय बडी प्रसन्नता हुई ॥ १५ ॥ उस समय सब देवता, सिद्ध और परमऋषि अष्टमूर्ति शंकरकी स्तुति करते जयजय करने लगे ॥ १६ ॥ उससमय जगत्पति ब्रह्मा और विष्णुजी कहनेलगे कि, दैत्योंके वध करनेका समय

आगया है ॥ १७ ॥ हे महेश्वर ! आप देखिये कि, तीनो पुर एकत्र होगये हैं, अब त्रिपुरनिवासी तारकपुत्रोंको मारकर आप देवकार्य करो ॥ १८ ॥
हे देवेश ! जबतक इन त्रिपुरोंका वियोग न हो तबतक बाण छोडकर आप त्रिपुरका नाश करैं ॥ १९ ॥ तब पूज्य शंकरने धनुषको सजाकर उसपर बाण
चढाय, पाशुपतअस्त्रमें संयुक्तकर त्रिपुरसंहारकी इच्छा की ॥ २० ॥ तब अनेक श्रेष्ठ लीलाकरनेमें चतुर महादेवजीने किसी एक कारणसे उसको निरादरकी
दृष्टिसे देखा ॥ २१ ॥ तब देवता बोले हे देव ! आप देखनेसेही त्रिपुरकी क्षणमात्रमें भस्मकरनेमें समर्थ हैं, आप सत्पुरुषोंकी गति हैं ॥२२॥ हे देवेश !

तेषां तारकपुत्राणां त्रिपुराणां महेश्वर ॥ देवकार्यं कुरु विभो एकत्वमपि चागतम् ॥ १८ ॥ यावन्न यान्ति देवेश विप्रयोगं पुराणि
वै ॥ तावद्बाणं विमुंचश्व त्रिपुरं भस्मसात्कुरु ॥ १९ ॥ अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वस्संधाय तं शरम् ॥ पूज्यं पाशुपतास्त्रं स त्रिपुरं
समचिंतयत् ॥ २० ॥ अथ देवो महादेवो वरलीलाविशारदः ॥ केनापि कारणेनात्र सावज्ञं तदवैक्षत ॥ २१ ॥ पुरत्रयं विरूपाक्षः
कर्तुं तद्भस्मसात्क्षणात् ॥ समर्थः परमेशानो मीनातु च सतां गतिः ॥ २२ ॥ दग्धुं समर्थो देवेशो वीक्षणेन जगत्रयम् ॥ अस्मद्यशो
विवृद्ध्यर्थं शरं मोक्तुमिहार्हसि ॥२३॥ इति स्तुतोऽमरैस्सर्वैर्विष्णवादिविधिभिस्तदा ॥ दग्धुं पुरत्रयं तद्वै बाणेनैच्छन्महेश्वरः ॥ २४ ॥
अभिलाख्यमुहूर्ते तु विकृष्य धनुरद्भुतम् ॥ कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यंतदुस्सहम् ॥ २५ ॥ आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य
महासुरान् ॥ मातडकोटिवपुषं कांडमुग्रो मुमोच ह ॥ २६ ॥ ददाह त्रिपुरस्थांस्तान्दैत्यांस्त्रीन्विमलापहः ॥ स आशुगो विष्णुमयो
वह्निशल्यो महाज्वलन् ॥ २७ ॥

आप देखतेही तीनों जगत्को भस्म कर सकते हो पर हमारे यशके बढानेके निमित्त आप बाणको प्रहार करैं ॥ २३ ॥ जब विष्णु आदि देवताओंने इस
प्रकार शंकरकी स्तुति की तब उस बाणसे शिवजीने त्रिपुरके नाश करनेकी इच्छा की ॥ २४ ॥ जिससमय वह अभिलषित मुहूर्त आया उसी समय उस
अद्भुत धनुषको आकर्षण करके ज्याका शब्द करके स्थित हुए, उस समय वह शब्द सबको दुःसह होगया ॥ २५ ॥ तब शंकरनें अपना नाम सुनाकर
और उन महाअसुरोंसे संभाषण करके कोटिसूर्यकी समान प्रकाशमान उस बाणको असुरोंपर छोडा॥२६॥उस शीघ्रगामी, अग्निके शल्यवाले महाप्रज्वलित

पापहारी विष्णुमय बाणने त्रिपुरमें स्थित उन तीनों दैत्योंको भस्म कर दिया ॥ २७ ॥ फिर चारों सागरपर्यन्त जानेवाले उन तीनों पुरोंको भस्मकरादिया, और वह तीनोंही भस्म होकर एकसाथ भूमिपर गिरपडे ॥ २८ ॥ उस बाणकी अग्निसे सैकडों दैत्य भस्म होगये, शिवजीकी पूजा न करनेके कारण वे सब हाहाकार करने लगे ॥ २९ ॥ जब भ्राताओंसहित तारकाक्ष भस्म होनेलगा तब उसने भक्तवत्सल अपने प्रभु शंकर देवका स्मरण किया ॥ ३० ॥ महादेवजीको देखकर परमभक्तिसे अनेकप्रकार स्तुतिकर विलाप करताहुआ मनसे कहने लगा ॥ ३१ ॥ तारकाक्ष बोला, हे शिव ! हमने जानलिया

ततः पुराणि दग्धानि चतुर्जलधिमेखलाम् ॥ गतानि युगपद्भूमिं त्रीणि दग्धानि भस्मशः ॥ २८ ॥ दैत्यास्तु शतशो दग्धास्तस्य
बाणस्थवह्निना ॥ हाहाकारं प्रकुर्वंतश्शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ २९ ॥ तारकाक्षस्तु निर्दग्धो भ्रातृभ्यां सहितोऽभवत् ॥ सस्मार स्व
प्रभुं देवं शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥ भक्त्या परमया युक्तः प्रलपन् विविधा गिरः ॥ महादेवं समुद्वीक्ष्य मनसा तमुवाच सः ॥३१॥
तारकाक्ष उवाच ॥ भव ज्ञातोसि तुष्टोऽसि यद्यस्मान् सह बंधुभिः ॥ तेन सत्येन भूयोऽपि कदा त्वं प्रदहिष्यसि ॥ ३२ ॥ दुर्लभं
लब्धमस्माभिर्यदप्राप्यं सुरासुरैः ॥ त्वद्भावभाविता बुद्धिर्जातेजाते भवत्विति ॥ ३३ ॥ इत्येवं विब्रुवंतस्ते दानवास्तेन वह्निना ॥
शिवाज्ञयाद्भुतं दग्धा भस्मसादभवन्मुने ॥ ३४ ॥ अन्येऽपि बाला वृद्धाश्च दानवास्तेन वह्निना ॥ शिवाज्ञया द्रुतं व्यास निर्दग्धा
भस्मसात्कृताः ॥ ३५ ॥ स्त्रियो वा पुरुषा वापि वाहनानि च तत्र ये ॥ सर्वे तेनाग्निना दग्धाः कल्पान्ते तु जगद्यथा ॥ ३६ ॥
भर्तॄन्कंठगतान्हित्वा काश्चिद्दग्धा वरस्त्रियः ॥ काश्चित्सुप्ताः प्रमत्ताश्च रतिश्रांताश्च योषितः ॥ ३७ ॥

आप हमपर प्रसन्नहो, जो बंधुओंके सहित हमको भस्म किया, तो इसी सत्यसे अब फिर कब आप हमें भस्म करैंगे ॥ ३२ ॥ जो मरण सुर असुर सबको दुर्लभ है, वह हमें प्राप्त हुआ है, हमारी जन्म जन्मान्तरमें आपहीके भावमें बुद्धि लगै ॥ ३३ ॥ हे मुने ! इसप्रकार कहते हुए वे दानव अद्भुत शिवजीकी आज्ञासे क्षणमात्रमें भस्म होगये ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! और भी जो वृद्ध बालक उन पुरोंमें रहतेथे वे सब दानवदल शिवजीकी आज्ञासे भस्म होगये ॥ ३५ ॥ जैसे कल्पान्तकी अग्नि कुछ नहीं छोडती, इस प्रकारसे स्त्री पुरुष वाहनादि त्रिपुरके सब भस्म हुए ॥ ३६ ॥ कोई स्त्री भर्ताओंके कंठमें

हाथ डाले, कोई सोती हुई, कोई प्रमत्त और कोई रतिसे श्रांत हुई दग्धहुई ॥ ३७ ॥ कोई आधे दग्धहुए जाकर मोहसे घूमते हुए मूर्च्छित हुए, कोई ऐसी
सूक्ष्म वस्तु वह न थी जो त्रिपुरकी अग्निसे भस्म न हुई हो ॥ ३८ ॥ स्थावर जंगम कुछ भी उसमें भस्म हुए बिना न बचा, एक अविनाशी विश्वकर्मा
मय दैत्य उसमें बचा ॥ ३९ ॥ वह देवताओंका विरोधी न था, इस कारण शिवजीके तेजसे रक्षित रहा, विपत्कालमें भी महेश अपने श्रेष्ठ भक्तकी रक्षा
करते हैं ॥ ४० ॥ दैत्य अथवा दूसरे प्राणी भाव अभाव कृत अकृतमें कैसे भी यदि देवके समीप प्राप्त हो तो फिर उनका विनाश नहीं होताहै ॥ ४१ ॥
इस कारण सत्पुरुषोंको ध्यानसे इस बातमें यत्न करना चाहिये; जिससे भक्ति बढै, निन्दासे यह लोक क्षीण होजाता है इस कारण उस कर्मको न करै ॥

अर्द्धदग्धा विबुद्धाश्च बभ्रमुर्मोहमूर्च्छिताः ॥ तेन नासीत्सुसूक्ष्मोऽपि घोरत्रिपुरवह्निना ॥ ३८ ॥ अविदग्धो विनिर्मुक्तः स्थावरो जंग
मोपि वा ॥ वर्जयित्वा मयं दैत्यं विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ ३९ ॥ अविरुद्धं तु देवानां रक्षितं शंभुतेजसा ॥ विपत्कालेपि सद्भक्तं महे
शशरणागतम् ॥ ४० ॥ सन्निपातो हि येषां नो विद्यते नाशकारकः ॥ दैत्यानामन्यसत्त्वानां भावाभावे कृताकृते ॥ ४१ ॥ तस्माद्य
त्नस्सुसंभाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि ॥ गर्हणात्क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत् ॥ ४२ ॥ न संयोगो यथा तेषां भूयात्त्रिपुरवासि
नाम् ॥ मतमेतद्धि सर्वेषां दैवाद्यदि यतो भवेत् ॥ ४३ ॥ ये पूजयंतस्तत्रापि दैत्या रुद्रं सबांधवाः ॥ गाणपत्यं ययुस्सर्वे शिवपूजावि
धेर्बलात् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे त्रिपुरदाहवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ ४२ ॥ जैसे उन त्रिपुरवासियोंका फिर संयोग न हुआ, यदि यह मत प्रारब्धसे सब प्राणियोंका होजाय तो बडा भाग्य है ॥ ४३ ॥ उससमयतक भी
जिन त्रिपुरवासियोंके यहां शंकरका पूजन होतारहा वे शिवपूजाके पुण्य प्रभावसे सब शिवजीके गण हुए । "यह कथा अध्यात्मगर्भित भी है स्थूलसूक्ष्म
कारण तीन शरीर त्रिपुर हैं मन भय है शिव लक्ष्य है तीनों पुर एक साथ नष्ट होनेसे मोक्ष होती है ॥ ४४ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां
रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखण्डे भाषाटीकायां त्रिपुरदाहवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

व्यासजी बोले हे ब्रह्मपुत्र ! हे महापंडित ! हे शैवश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं, यह तो कहिये कि, त्रिपुरके सर्वथा नष्ट होजानेपर देवताओंने क्या किया ॥ १ ॥
मय कहां गया, त्रिपुरपति कहां गये, यदि यह बात शिवकी कथाके आश्रित हो तो आप मुझसे सब कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले व्यासजीके यह वचन
सुनकर ब्रह्म पुत्र प्रभावशाली सनत्कुमारजी शिवके युगल चरणोंको स्मरणकर कहने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे महाबुद्धिमान् पराशरपुत्र व्यासजी !
परमेश्वरके चरित्र सुनो उन लोकलीलाके करनेवाले शंकरके चरित्र परम अद्भुतहैं ॥ ४ ॥ जब शंकरने सर्वथा त्रिपुरवासियोंका संहार करदिया, तब सब

व्यास उवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैव सत्तम ॥ किमकार्षुस्ततो देवा दग्धे च त्रिपुरेऽखिलाः ॥ १ ॥ मयः कुत्र गतो दग्धो
पतयः कुत्र ते गताः ॥ तत्सर्वं मे समाचक्ष्व यदि शंभुकथाश्रयम् ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य व्यासवाक्यं भगवान्भवक्
त्सुतः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच शिवपादयुगं स्मरन् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे पाराशर्य्य महेशितुः ॥
चरितं सर्वपापघ्नं लोकलीलानुसारिणः ॥ ४ ॥ महेश्वरेण सर्वस्मिंस्त्रिपुरे दैत्यसंकुले ॥ दग्धे विशेषतस्तत्र विस्मितास्तेऽभवन्सुराः ॥
॥ ५ ॥ न किंचिदब्रुवन्देवाः सेन्द्रोपेंद्रादयस्तदा ॥ महातेजस्विनं रुद्रं सर्वे वीक्ष्य ससंभ्रमाः ॥ ६ ॥ महाभयंकरं रौद्रं प्रज्वलंतं दिशो
दश ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥ ७ ॥ भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं च हिमवत्सुताम् ॥ बिभ्यिरे निखिला देवप्रमुखास्त
स्थुरानताः ॥ ८ ॥ दृष्ट्वानीकं तदा भीतं देवाना मृषिपुंगवाः ॥ न किंचिदूचुस्संतस्थुः प्रणेमुस्ते समंततः ॥ ९ ॥ अथ ब्रह्मापि संभीतो
दृष्ट्वा रूपं च शांकरम् ॥ तुष्टाव तुष्टहृदयो देवैस्सह समाहितः ॥ १० ॥

देवता बडे विस्मित हुए ॥ ५ ॥ वे इन्द्र उपेन्द्रादि सब देवता महातेजस्वी रुद्रको देखकर कोई भी संभ्रमके कारण न बोलसके ॥ ६ ॥ उस समय उनके
महाभयंकर रौद्रतेजसे सब दिशा प्रज्वलित होरहीथीं, कोटिसूर्यके समान तथा प्रलयकालकी अग्निके समान वह तेज था ॥ ७ ॥ उससमय भगवान् शंकर
और हिमालयकी कन्या देवीको देखकर सब देवता व्याकुल हो नीचेको मुखकर खडे रहगये ॥ ८ ॥ उस समय देवताओंकी सेनाको इसप्रकारसे भयभीत
देखकर महर्षिलोगभी कुछ न कहकर प्रणाम करते रहगये ॥ ९ ॥ उस समय शंकरके रूपको देखकर ब्रह्माजीभी डरगये और संतुष्ट हो सावधानीसे

देवताओंसहित शंकरकी स्तुति करनेलगे ॥ १० ॥ उस समय भय पायेहुए विष्णुजीके सहित भव हर देवदेव त्रिपुरारी गिरिजापति भक्ताधीन महेश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले हे देवदेव महादेव ! हे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले ! हे परमेशान ! सब देवताओंके हितकारक आप हमसे प्रसन्न हो ॥ १२ ॥ हे जगत्पति ! हे आनंददायक ! आप प्रसन्न हो, हे शंकरस्वामिन् परमेश्वर ! प्रसन्न हो ॥ १३ ॥ ओंकाररूप आकार, पर, तारक, सब देवताओंके अधिपति, त्रिपुरनाशक आप हमपर प्रसन्न हो ॥ १४ ॥ आप अनेकनामधारी देव हो, आप श्रेष्ठ प्रतिज्ञावालोंके प्रिय हो, अगुणप्रकृति पुरुषसे परे

विष्णुना च सभीतेन देवदेवं भवं हरम् ॥ त्रिपुरारिं सगिरिजं भक्ताधीनं महेश्वरम् ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ॥ प्रसीद परमेशान सर्वदेवहितप्रद ॥ १२ ॥ प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानंददायक ॥ प्रसीद शंकर स्वामिन् प्रसीद परमेश्वर ॥ १३ ॥ ॐकाराय नमस्तुभ्यमाकारपरतारक ॥ प्रसीद सर्वदेवेश त्रिपुरघ्न महेश्वर ॥ १४ ॥ नानावाच्याय देवाय वरणप्रिय शंकर ॥ अगुणाय नमस्तुभ्यं प्रकृतेः पुरुषात्पर ॥ १५ ॥ निर्विकाराय नित्याय नित्यतृप्ताय भास्वते ॥ निरंजनाय दिव्याय त्रिगुणाय नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ सगुणाय नमस्तुभ्यं स्वर्गेशाय नमोस्तु ते ॥ सदाशिवाय शांताय महेशाय पिनाकिने ॥ १७ ॥ सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय ते नमः ॥ वामदेवाय रुद्राय तदाप्यपुरुषाय च ॥ १८ ॥ अघोराय सुसेव्याय भक्ताधीनाय ते नमः ॥ ईशानाय वरेण्याय भक्तानंदप्रदायिने ॥ १९ ॥ रक्षरक्ष महादेव भीतान्नस्सकलामरान् ॥ दग्ध्वा च त्रिपुरं सर्वे कृतार्था अमराः कृताः ॥ २० ॥ स्तुत्वैवं देवतास्सर्वा नमस्कारं पृथक्पृक् ॥ चक्रुस्ते परमप्रीता ब्रह्माद्यास्तु सदाशिवम् ॥ २१ ॥

आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, प्रकाशमान, निरंजन, दिव्य, त्रिगुणरूप, आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥ सगुणरूप, स्वर्गपति, सदाशिव, शांतरूप, महेश, पिनाकधारी आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ सर्वज्ञ, शरणदेनेवाले, सद्योजात, वामदेव, रुद्र, पुरुषातीत आपको प्रणाम है ॥ १८ ॥ अघोर, सेवनीय, भक्तोंके अधीन, ईशान, वरणकरनेयोग्य, भक्तोंके आनंददेनेवाले आपको प्रणाम है ॥ १९ ॥ हे महादेव ! भयपायेहुए हम सब देवताओंकी आप रक्षा कीजिये, आपने त्रिपुरको नष्टकर सब देवताओंको कृतार्थ करदिया ॥ २० ॥ इसप्रकार स्तुतिकरके सब देवता पृथक् पृथक् ब्रह्माको आदिले

कर शिवकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ तब स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोड शिरनवाय नम्र हो त्रिपुरारी महेश्वरदेवकी स्तुति करनेलगे ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! त्रिपुरनाशक शंकर ! हे महादेव ! आपमें मेरी अनपायिनी परा भक्ति हो ॥ २३ ॥ हे देवेश शंकर ! मैं सदाहीं आपका सारथी बनूं। हे भव ! हे व्यापक! आप सदा मेरे अनुकूल हो ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले इसप्रकार उदारबुद्धि ब्रह्माजी भक्तवत्सलताके कारण शिवजीकी स्तुति करके हाथ जोड शिर झुकाय मौनहुए ॥ २५ ॥ तब जनार्दन भगवान् शंकर महेश्वरको प्रणाम कर हाथजोड परमेश्वरको प्रसन्नकरनेलगे ॥ २६॥ विष्णुजी बोले

अथ ब्रह्मा स्वयं देवं त्रिपुरारिं महेश्वरम् ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नतस्कंधः कृतांजलिः ॥ २२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश त्रिपुरान्तक शंकर ॥ त्वयि भक्तिः परा मेऽस्तु महादेवानपायिनी ॥ २३ ॥ सर्वदा मेऽस्तु सारथ्यं तव देवेश शंकर ॥ अनुकूलो भव विभो सदा त्वं परमेश्वर ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुत्वा विधिश्शंभुं भक्तवत्सलमानतः ॥ विरराम नतस्कंधः कृतांजलिरुदारधीः ॥ २५ ॥ जनार्दनोऽपि भगवान् नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महेश्वरम् ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवाधीश महेशान दीनबंधो कृपाकर ॥ प्रसीद परमेशान कृपां कुरु नतप्रिय ॥ २७ ॥ निर्गुणाय नमस्तुभ्यं पुनश्च सगुणाय च ॥ पुनः प्रकृतिरूपाय पुनश्च पुरुषाय च ॥ २८ ॥ पश्चाद्गुणस्वरूपाय नतो विश्वात्मने नमः ॥ भक्तिप्रियाय शांताय शिवाय परमात्मने ॥ ॥ २९ ॥ सदाशिवाय रुद्राय जगतां पतये नमः ॥ त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽद्य वर्द्धमाना भवत्विति ॥ ३० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ शैवप्रवरसत्तमः ॥ सर्वे देवाः प्रणम्योचुस्ततस्तं परमेश्वरम् ॥ ३१ ॥

हे महेशान ! हे देवताओंके अधिपति ! हे कृपाकरनेवाले ! हे परमेशान ! नमस्कार करनेवालोंके प्रिय आप कृपाकरो आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ निर्गुण फिर सगुण फिर प्रकृति फिर पुरुषरूप आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ गुणस्वरूप विश्वके आत्मा भक्तोंके प्रिय शांत शिव परमात्मरूप आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ सदाशिव, रुद्र, जगत्के पति, आपको नमस्कार है, आपमें मेरी दृढभक्ति होकर निरन्तर बढतीरहै ॥ ३० ॥ सनत्कुमारजी बोले जब शैवोंमें श्रेष्ठ विष्णुजी

वह वचन कहकर मौन हुए, तब सब देवता प्रणामकर परमेश्वरसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले हे देवताओंके स्वामी ! महादेव, करुणामय, शंकर, जगत्पति, परमेश्वर, आप हमसे प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ सबके कर्ता आप प्रसन्न हूजिये, हम आपको प्रेमसे नमस्कार करते हैं, आपमें हमारी अनपायिनी दढभक्ति सदा हो ॥ ३३ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब ब्रह्मा और देवताओंने शंकरकी इसप्रकार स्तुति की तब लोकोंके कल्याणकर्ता भगवान् शंकर प्रसन्न होकर कहनेलगे ॥ ३४ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्मा विष्णु देवताओं मैं तुमपर प्रसन्न हूं आप सब विचारकर मनवांछित वर माँगो ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार

देवा ऊचुः ॥ देवनाथ महादेव करुणाकर शंकर ॥ प्रसीद जगतां नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥ ३२ ॥ प्रसीद सर्वकर्ता त्वं नमामस्त्वां वयं मुदा ॥ त्वयि भक्तिर्द्दढास्माकं नित्यं स्यादनपायिनी ॥३३॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुतश्च देवेशो ब्रह्मणा हरिणामरैः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरो लोकशंकरः ॥३४॥ शंकर उवाच ॥ हे विधे हे हरे देवाः प्रसन्नोऽस्मि विशेषतः ॥ मनोऽभिलषितं ब्रूत वरं सर्वे विचारतः ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा हरेण मुनिसत्तम ॥ प्रत्यूचुस्सर्वदेवाश्च प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ३६ ॥ सर्वे देवा ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो भगवन्यदि देयो वरस्त्वया ॥ देवदेवेश चास्मभ्यं ज्ञात्वा दासान्हि नस्सुरान् ॥३७॥ यदा दुःखं तु देवानां संभवेद्देवसत्तम ॥ तदा त्वं प्रकटो भूत्वा दुःखं नाशय सर्वदा ॥३८॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तो भगवान्रुद्रो ब्रह्मणा हरिणामरैः ॥ युगपत्प्राह तुष्टात्मा तथेत्यस्तु निरंतरम् ॥३९॥ स्तवैरेतैश्च तुष्टोऽस्मि दास्यामि सर्वदा ध्रुवम् ॥ यदभीष्टतमं लोके पठतां शृण्वतां सुराः ॥ ४० ॥

बोले हे मुनिश्रेष्ठ शिवजीके यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न होकर बोले ॥ ३६ ॥ देवता बोले ! हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं और वरदेना चाहतेहैं हे देवदेव ! यदि हम देवताओंको अपना दास जानते हैं तो ॥ ३७ ॥ हे देवसत्तम ! जिस समय देवताओंको दुःख प्राप्त हो उस समय तुम प्रगट होकर देवताओंका दुःख सदा दूर करो ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब ब्रह्मा हरि और देवताओंने इसप्रकार भगवान् रुद्रसे कहा तब एकही बार प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि, ऐसाही होगा ॥ ३९ ॥ मैं इस स्तोत्रसे प्रसन्न हूं सर्वदा तुम्हारे अभिलाषोंको पूर्ण करूंगा ! हे देवताओ ! मैं पढने सुन्नेवालोंके

भी मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ ४० ॥ यह कहकर सदा देवताओंके दुःख हरनेवाले शंकरने प्रसन्न होकर जो बात सब देवताओंको अभीष्ट थी वही सब उनको दी ॥ ४१.॥ ॥ इति श्रीशिवम०रुद्र०पं०युद्धखण्डे भाषायां देवस्तुतिवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ सनत्कुमार बोले शिवजीको प्रसन्न देखकर उससमय शिवजीकी कृपासे जलनेसे बचाहुआ मयदानव वहां आया ॥ १ ॥ और प्रेमसे शिव तथा दूसरे देवताओंको प्रणामकिया. फिर हाथ जोड शिरझुकाय शंकरको प्रणाम किया ॥ २ ॥ फिर वह मयदानव उठकर और शिवजीको देखकर प्रेमगद्गद स्वरसे भक्तिसे पूर्णहो शिवकी स्तुति करनेलगा ॥

इत्युक्त्वा शंकरः प्रीतो देवदुःख हरस्सदा ॥ सर्वदेवप्रियं यद्वै तत्सर्वं च प्रदत्तवान् ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे शंभुं प्रसन्नं वीक्ष्य दानवः ॥ तत्राजगाम सुप्रीतो मयोऽदग्धः कृपाबलात् ॥ १ ॥ प्रणनाम हरं प्रीत्या सुरानन्यानपि ध्रुवम् ॥ कृतांजलिर्नतस्कंधः प्रणनाम पुन शिवम् ॥ २ ॥ अथोत्थाय शिवं दृष्ट्वा प्रेम्णा गद्गदसुस्वरः ॥ तुष्टाव भक्तिपूर्णात्मा स दानववरो मयः ॥ ३ ॥ मय उवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तवत्सल शंकर ॥ कल्पवृक्षस्वरूपोसि सर्वपक्षविवर्जितः ॥ ४ ॥ ज्योतीरूपो नमस्तेस्तु विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥ नमः पूतात्मने तुभ्यं पावनाय नमोनमः ॥ ५ ॥ चित्ररूपाय नित्याय रूपातीताय ते नमः ॥ दिव्यरूपाय दिव्याय सुदिव्याकृतये नमः ॥ ६ ॥ नमः प्रणतसर्वार्तिनाशकाय शिवात्मने ॥ कर्त्रे भर्त्रे च संहर्त्रे त्रिलोकानां नमोनमः ॥७॥ भक्तिगम्याय भक्तानां नमस्तुभ्यं कृपालवे ॥ तपस्सत्फलदात्रे ते शिवाकांत शिवेश्वर ॥८॥ न जानामि स्तुतिं कर्तुं स्तुतिप्रिय परेश्वर ॥ प्रसन्नो भव सर्वेश पाहि मां शरणागतम् ॥९॥

॥ ३ ॥ मय बोला हे देवदेव महादेव ! भक्तवत्सल ! हे शंकर ! आपमें किसीका पक्षपात नहीं है, आप कल्पवृक्षके स्वरूप हो ॥ ४ ॥ ज्योतिरूप, पवित्ररूप, विश्वरूप, पवित्र आत्मा पावनरूप आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ चित्ररूप नित्यरूपसे परे दिव्यरूप, दिव्य, दिव्य आकृतिवाले आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ नम्रहुओंके सब दुःख दूर करनेवाले सब कष्ट हरनेवाले शिवात्मा त्रिलोकीके कर्ता धर्ता संहर्ता आपको प्रणाम है ॥७॥ आप भक्तोंको भक्तिसेही जानेजातेहो कृपासागर तपके फल देनेवाले शिवाके पति विश्वेश्वर आपको प्रणाम है ॥ ८ ॥ हे स्तुतिप्रिय परमेश्वर ! मैं आपकी स्तुति करना नहीं जान्ता, हे सर्वेश ! प्रसन्न

हो और मुझे शरण आयेकी रक्षा करो ॥९॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यासजी ! परमेश्वर मयदानवकी कीहुई इसप्रकारकी स्तुसिको सुनकर प्रसन्नहुए और आदरसे कहनेलगे ॥ १० ॥ शिवजी बोले हे श्रेष्ठ मय दानव ! वर मांग तुझसे प्रसन्नहूं, जो तेरे मनको अभिलाषा होगी मैं उसको पूर्ण करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार वह श्रेष्ठ दानव शिवजीके यह वचन सुनकर प्रभुको प्रणाम कर हाथ जोड शिर झुकाय कहने लगा ॥ १२ ॥ मय बोला हे देवदेव महादेव ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, यदि मैं वरके योग्य हूं तो आप मुझे अपनी सनातनी भक्ति दो ॥ १३ ॥

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मयोक्तां हि संस्तुतिं परमेश्वरः ॥ प्रसन्नोऽभूद्द्विजश्रेष्ठ मयं प्रोवाच चादरात् ॥ १० ॥ ॥ शिव उवाच ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं मय दानवसत्तम ॥ मनोऽभिलषितं यत्ते तद्दास्यामि न संशयः ॥ ११ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वा शिवं वचश्शंभोस्स मयो दानवर्षभः ॥ प्रत्युवाच प्रभुं नत्वा नतस्कंधः कृतांजलिः ॥ १२ ॥ ॥ मय उवाच ॥ देवदेव महादेव प्रसन्नो यदि मे भवान् ॥ वरयोग्योऽस्म्यहं चेद्धि स्वभक्तिं देहि शाश्वतीम् ॥ १३ ॥ स्वभक्तेषु सदा सख्यं दीनेषु च दयां सदा ॥ उपेक्षामन्यजीवेषु खलेषु परमेश्वर ॥ १४ ॥ कदापि नासुरो भावो भवेन्मम महेश्वर ॥ निर्भयः स्यां सदा नाथ मग्नस्त्वद्भजने शुभे ॥ ॥ १५ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ इति संप्रार्थ्य मानस्तु शंकरः परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच मयेनाथ प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ महेश्वर उवाच ॥ दानवर्षभ धन्यस्त्वं मद्भक्तो निर्विकारवान् ॥ प्रदत्तास्ते वरास्सर्वेऽभीप्सिता ये तवाधुना ॥ १७ ॥ गच्छ त्वं वितलं लोकं रमणीयं दिवोऽपि हि ॥ समेतः परिवारेण निजेन मम शासनात् ॥ १८ ॥

अपने भक्तोंपर सदा सख्यता, दीनोंपर सदा दया, हे परमेश्वर ! और जीव तथा खलोंमें उपेक्षा होनी चाहिये ॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! मैं यही चाहता हूं, कि कभी मेरा आसुरीभाव न हो, हे नाथ ! मैं निर्भय होकर सदा आपके श्रेष्ठ भजनमें मग्न रहूं ॥ १५ ॥ सनत्कुमार बोले जब शंकर परमेश्वरसे इस प्रकारकी प्रार्थना की तब भक्तवत्सल प्रसन्न हो मय दानवसे कहने लगे ॥१६॥ महेश्वर बोले हे दानव श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो विकारहीन तुम मेरे भक्त हो, जिनकी तुमको इच्छा है वह सब वर मैंने तुझे दिये ॥ १७ ॥ तुम द्युलोकसेभी मनोहर वितल लोकको जाओ, मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित वहां निवास करो ॥१८॥

वहां तू निर्भय भक्तिमें तत्पर होकर निवास कर, मेरी आज्ञासे तुममें कभी आसुरीभाव प्रगट न होगा ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार महात्मा
शंकरकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शंकर और देवताओंको प्रणामकर मय वितललोकको गया ॥ २० ॥ इसी समयमें वे सब मुण्डीभी वहां आकर
प्राप्त हुए, और शिवजी तथा ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवताओंको प्रणाम किया और बोले ॥२१॥ हे देवताओ ! अब हम क्या करैं कहां जांय, हम शिवकी
आज्ञा माननेमें तत्परोंको कुछ आज्ञा दीजाय ॥ २२ ॥ हे विष्णु ! हे ब्रह्माजी ! हे देवताओ ! जो हमने शिवभक्तिमें तत्पर दैत्योंकी शिवभक्ति विनाश करदी

निर्भयस्तत्र संतिष्ठ संहृष्टो भक्तिमान्सदा ॥ कदापि नासुरो भावो भविष्यति मदाज्ञया ॥ १९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याज्ञां
शिरसाधाय शंकरस्य महात्मनः ॥ तं प्रणम्य सुरांश्चापि वितलं प्रजगाम सः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे ते वै मुण्डिनश्च समागताः ॥
प्रणम्योचुश्च तान्सर्वान्विष्णुब्रह्मादिकान् सुरान् ॥ २१ ॥ कुत्र याम वयं देवाः कर्म किं करवामहे ॥ आज्ञापयत नश्शीघ्रं भवदादे
शकारकान् ॥ २२ ॥ कृतं दुष्कर्म चास्माभिर्हे हरे हे विधे सुराः ॥ दैत्यानां शिवभक्तानां शिवभक्तिर्विनाशिता ॥ २३ ॥ कोटिकल्पा
नि नरके नो वासस्तुभविष्यति ॥ नोद्धारो भविता नूनं शिवभक्तविरोधिनाम् ॥ २४ ॥ परन्तु भवदिच्छात इदं दुष्कर्म नः कृतम् ॥
तच्छांतिं कृपया ब्रूतवयं वश्शरणागताः ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विष्णु ब्रह्मादयस्सुराः ॥ अब्रुवन्मुंडिनस्तां
स्ते स्थिता नम्रे कृतांजलीन् ॥ २६ ॥ ॥ विष्ण्वादय ऊचुः ॥ न भेतव्यं भवद्भिस्तु मुंडिनो वै कदाचन ॥ शिवाज्ञयेदं सकलं जातं
चरितमुत्तमम् ॥ २७ ॥ युष्माकं भविता नैव कुगतिर्दुःखदायिनी ॥ शिववासा यतो यूयं देवर्षि हितकारकाः ॥ २८ ॥

यह हमने बड़ा दुष्कर्म किया है ॥ २३ ॥ हमारा कोटिकल्पोंतक नरकमें निवास होगा शिवभक्तोंके विरोधी हमारा उद्धार न होगा ॥ २४ ॥ परन्तु हमने वह
दुष्टकर्म आपकी इच्छासे किया है कृपाकरके अब इसकी शांति कहो, हम आपकी शरणमें आयेहैं ॥ २५ ॥ सनत्कुमारजी बोले विष्णु ब्रह्मादिक देवता इस
प्रकारसे उनकें वचन सुनकर सामने हाथ जोडकर खडेहुए उन मुंडियोंसे बोले ॥ २६ ॥ विष्णुआदि बोले हे मुंडियो ! तुमको किसी प्रकारसे भय नहीं करना
चाहिये यह सब चरित्र शिवजीकी आज्ञासेही हुआ है ॥ २७ ॥ तुमको दुःख देनेवाली कुगति कभी प्राप्त न होगी, कारण कि तुम शिवके दास देवताक्र

षियोंके हितकारी हो ॥ २८ ॥ शंकर सुर और ऋषियोंके हित करनेवाले हैं, शंकरही सुरऋषियोंके हित करनेवालोंके प्रियहैं, देवर्षियोंके हित करनेवाले मनुष्योंकी कभी कुगति नहीं होती ॥ २९ ॥ आजसे यह मत कलियुगके मनुष्योंमें प्रविष्ट होगा, उन्हीकी कुगति होगी यह सत्य है इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ तुम सब मुंडी धीरधारणकर हमारी आज्ञासे गुप्तभावसे कलियुगके आनेतक मरुभूमिमें निवास करो ॥ ३१ ॥ कलियुगके आनेपर तुम अपने मतकी स्थापना करना कलियुगमें मनुष्य मोहित होकर तुम्हारा मत स्वीकार करैंगे ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसे जब सुरेशोंने उनको

सुरर्षिहितकृच्छंभुस्सुरर्षिहितकृत्प्रियः ॥ सुरर्षिहितकृन्नृणां कदापि कुगतिर्न हि ॥ २९ ॥ अद्यतो मतमेतं हि प्रविष्टानां नृणां कलौ ॥
कुगतिर्भविता ब्रूमः सत्यं नैवात्र संशयः ॥ ३० ॥ भवद्भिर्मुंडिनो धीरा गुप्तभावान्ममाज्ञया ॥ तावन्मरुस्थली सेव्या कलिर्यावत्समा
व्रजेत् ॥ ३१ ॥ आगते च कलौ यूयं स्वमतं स्थापयिष्यथ ॥ कलौ तु मोहिता मूढास्संग्रहीष्यंति वो मतम् ॥ ३२ ॥ इत्याज्ञताः सुरेशैश्च
मुंडिनस्ते मुनीश्वर ॥ नमस्कृत्य गतास्तत्र यथोद्दिष्टं स्वमाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ततस्स भगवान्रुद्रो दग्ध्वा त्रिपुरवासिनः ॥ कृतकृत्यो महायोगी
ब्रह्माद्यैरभिपूजितः ॥ ३४ ॥ स्वगणैर्निखिलैर्देव्या शिवया सहितः प्रभुः ॥ कृत्वामरमहत्कार्यं ससुतोंतरधादथ ॥ ३५ ॥ ततश्चांतर्हिते देवे
परिवारान्विते शिवे ॥ धनुश्शररथाद्यश्च प्राकारोंतर्द्धिमागमत् ॥ ३६ ॥ ततो ब्रह्मा हरिर्देवा मुनिगंधर्वकिन्नराः ॥ नागास्सर्पाश्चाप्सरस
स्संहृष्टाश्चाथ मानुषाः ॥ ३७ ॥ स्वंस्वं स्थानं मुदा जग्मुश्शंसंतः शांकरं यशः ॥ स्वंस्वं स्थानमनुप्राप्य निर्वृतिं परमां ययुः ॥ ३८ ॥

यह आज्ञा दी तब वे सब मुंडी देवताओंको प्रणाम कर अपने आश्रमको गये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार भगवान् रुद्र त्रिपुरवासियोंको दग्ध करके वह महायोगी कृतकृत्य होकर ब्रह्मादिसे भी पूजित हुए ॥ ३४ ॥ तब प्रभु अपने सम्पूर्ण गण पुत्रों और पार्वतीसहित देवताओंका यह कार्य करके अन्तर्धान होगये ॥ ३५ ॥ जब परिवारसहित देव शंकर अन्तर्धान हुए तब वह धनुषबाण और सामग्रीसहित रथ भी अन्तर्धान होगया ॥ ३६ ॥ उस समय ब्रह्मा, हरि, देव, मुनि, गंधर्व, किन्नर, नाग, सर्प, अप्सरा और मनुष्य सब प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ और शंकरका यश वर्णन करते २ सब अपने २ स्थानोंको गये, और अपने स्थानोंमें

जाकर परम शांतिको प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ यह आपसे शिवजीका त्रिपुरवधसम्बन्धी तथा महालीलासम्बन्धी चरित्र वर्णन किया ॥ ३९ ॥ यह धन्य यश आयु धन धान्य स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है, अब आगे तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छाहै ॥ ४० ॥ यह परम सुन्दर आख्यान है, जो इसको सदा पढते सुनते हैं, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तहो अन्तमें मोक्षके भागी होते हैं ॥४१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटी० द्वि० रु०पं०यु०द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ व्यासजी बोले हे सनत्कुमारजी ! हमने यह बात पहले सुनी है कि शंकरदेवने जलंधर दैत्यका वध किया ॥ १ ॥ हे महापंडित ! आप शंकरका यह चरित्र

एतत्ते कथितं सर्वं चरितं शशिमौलिनः ॥ त्रिपुरक्षयसंसूचि परलीलान्वितं महत् ॥ ३९ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धकम् ॥ स्वर्गदं मोक्षदं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ इदं हि परमाख्यानं यः पठेच्छृणुयात्सदा ॥ इह भुक्त्वाखिलान्कामानंते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे सनत्कुमारपाराशर्य्यसंवादे त्रिपुरवधानंतरदेवस्तुतिमयस्तुतिमुंडिनिवेशनदेवस्वस्थानगमनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ भो ब्रह्मन्भगवन्पूर्वं श्रुतं मे ब्रह्मपुत्रक ॥ जलंधरं महादैत्यमवधीच्छंकरः प्रभुः ॥ १ ॥ तत्त्वं वद महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ॥ विस्तारपूर्वकं शृण्वन्कस्तृप्येत्तद्यशोऽमलम् ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं व्याससंपृष्टो ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ॥ उवाचार्थवदव्यग्रं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एकदा जीवशक्रौ च भक्त्या परमया मुने ॥ दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासं जग्मतुर्भृशम् ॥ ४ ॥ अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरः प्रभुः ॥ परीक्षितुं तयोर्ज्ञानं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ५ ॥ दिगम्बरोऽथ तन्मार्गमारुद्धय सद्गतिस्सताम् ॥ जटाबद्धेन शिरसातिष्ठत्संशोभिताननः ॥ ६ ॥

विस्तार पूर्वक कहिये उनका चरित्र सुनकर कौन तृप्त होसकताहै ॥२॥ सूतजी बोले जब इस प्रकारसे महामुनिसे व्यासजीने पूछा तब वह वाक्य बोलनेवालोंमें चतुर इस प्रकारसे बोले ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने ! एक समय बृहस्पति और इन्द्र परम भक्तिसे कैलासमें शंकरका दर्शन करने गये ॥४॥ भगवान् शंकरने गुरु और इन्द्रका आगमन जानकर अपने दर्शनमें प्रीति करनेवालोंके ज्ञानकी परीक्षाका विचार किया ॥ ५ ॥ वह दिगम्बर सत्पुरुषोंकी गति

उनके मार्गको रोककर शीशपर जटा बांधे शोभायमान मुखसे स्थित हुए ॥६॥ उस समय बृहस्पति और इन्द्र आनंदसे जा रहेथे, मार्गमें अद्भुत आकारवाले भीम पुरुषको देखतेहुए ॥ ७ ॥ वह महातेजस्वी शांत मस्तकपर जटाबांधे, महाबाहु, महोरस्थल, गौरवर्ण, भयंकरनेत्र थे ॥ ८ ॥ तब अपने अधिकारसे दुर्मद हुए इन्द्रने उनसे पूछा. यह नहीं समझा कि यह हमारे मार्गमें स्थित हुआ पुरुष शंकरही हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रने कहा हे पुरुष ! तुम कौन कहांसे आये और क्या तुम्हारा नाम है, शिवजी अपनेही स्थानपर स्थितहैं वा वह प्रभु कही गये हैं ? ॥ १० ॥ सनत्कुमार बोले, इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उस

अथ तौ गुरुशक्रौ च कुर्वंतौ गमनं मुदा ॥ आलोक्य पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम् ॥ ७ ॥ महातेजस्विनं शांतं जटासंबद्धमस्तकम् ॥ महाबाहुं महोरस्कं गौरं नयनभीषणम् ॥ ८ ॥ अथो पुरंदरोऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः ॥ पुरुषं तं स्वमार्गांतस्थितमज्ञाय शंकरम् ॥ ९ ॥ पुरन्दर उवाच ॥ कस्त्वं भोः कुत आयातः किं नाम वद तत्त्वतः ॥ स्वस्थाने संस्थितश्शंभुः किं वान्यत्र गतः प्रभुः ॥ ॥ १० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शक्रेणेत्थं स पृष्टस्तु किंचिन्नोवाच तापसः ॥ शक्रः पुनरपृच्छद्वै नोवाच स दिगंबरः ॥ ११ ॥ पुनः पुरंदरोऽपृच्छल्लोकानामधिपेश्वरः ॥ तूष्णीमास महायोगी लीलारूपधरः प्रभुः ॥ १२ ॥ इत्थं पुनः पुनः पृष्टश्शक्रेण स दिगम्बरः ॥ नोवाच किंचिद्भगवाञ्छक्रज्ञानपरीक्षया ॥ १३ ॥ अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः ॥ उवाच वचनं चैव तं निर्भर्त्स्य जटाधरम् ॥ १४ ॥ ॥ इन्द्र उवाच ॥ रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम् ॥ हंतुं दिगंबरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६ ॥

तपस्वीने कुछ न कहा, इन्द्रने फिरभी पूछा परन्तु उस दिगम्बरने कुछ न कहा ॥ ११ ॥ फिरभी लोकोंके अधीश्वर इन्द्रने उससे पूछा, पर अनेक लीला करनेवाले महाप्रभु महायोगी फिरभी न बोले ॥१२॥ जब इसप्रकार वारंवार उस दिगम्बरसे इन्द्रने पूछा पर भगवान् इन्द्रके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके कारण कुछ न बोले ॥ १३ ॥ तब त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे गर्वित होकर इन्द्रने क्रोध किया, और उस जटाधारीसे घुडककर कहा ॥ १४ ॥ इन्द्र बोले अरे मैं पूछताहूं और तू इसका कुछ उत्तर नहीं देता, इससे वज्रसे मैं तुझे मारताहूं, अरे दुर्मति ! मैं दखूं तेरी कौन रक्षा करता है ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले,

इन्द्रने इस प्रकारसे कहकर जब क्रोधमें भरकर उसको देखा और उस दिगम्बरके मारनेको वज्र हाथमें लिया ॥ १६ ॥ तब सदाशिव देवने इन्द्रको वज्र हाथमें लिये देखकर इन्द्रका हाथ वज्रके सहित स्तंभित कर दिया ॥ १७ ॥ और विकराल नेत्रकर भगवान् रुद्रने ज्योंही देखा तब ऐसा विदित हुआ कि मानो यह दिगम्बर प्रज्वलित होउठाहै, और तेजसे जला देगा ॥ १८ ॥ जब इन्द्रकी भुजा स्तंभित होगई तब क्रोधसे इन्द्र इसप्रकार मनमें दुःखी हुआ जिसप्रकार मंत्रबलसे पराक्रम रुद्ध होजानेपर सर्प दुःखी होजाताहै ॥ १९ ॥ ज्योहीं बृहस्पतिने उस पुरुषको तेजसे प्रज्वलित होते देखा, तब बुद्धिसे

पुरंदरं वज्रहस्तं दृष्ट्वा देवस्सदाशिवः ॥ चकार स्तंभनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः ॥ १७ ॥ ततो रुद्रः क्रुधाविष्टः करालाक्षो भयंकरः ॥ द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १८ ॥ बाहुप्रतिष्टंभभुवामन्युनांतश्शचीपतिः ॥ समदह्यत भोगीव मंत्ररुद्धपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं प्रज्वलंतं स्वतेजसा ॥ पुरुषं तं धिया ज्ञात्वा प्रणनाम हरं प्रभुम् ॥ २० ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः ॥ नत्वा च दंडवद्भूमौ प्रभुं स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ नमो देवाधिदेवाय महादेवाय चात्मने ॥ महेश्वराय प्रभवे त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥ २२ ॥ दीननाथाय विभवे नमोंधकनिषूदिने ॥ त्रिपुरघ्नाय शर्वाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने ॥ २३ ॥ विरूपाक्षाय रुद्राय बहुरूपाय शंभवे ॥ विरूपायातिरूपाय रूपातीताय ते नमः ॥ २४ ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥ नमस्ते मखरूपाय परकर्मप्रवर्तिने ॥ २५ ॥

उनको शंकर जानकर प्रणाम किया ॥२०॥ उस समय उदारबुद्धि बृहस्पतिजी हाथ जोडकर पृथिवीमें दंडवत् करके प्रणाम करनेलगे ॥ २१ ॥ बृहस्पतिजी बोले देवाधिदेव, महादेव, आत्मस्वरूप, महेश्वर, प्रभु, त्र्यम्बक, जटाजूटधारी ॥ २२ ॥ दीनोंके नाथ, सर्वव्यापक, विभु, अंधकासुरके मारनेवाले आपको नमस्कार है । त्रिपुरके मारनेवाले प्रलयमें जगत्के ध्वंसकरनेवाले परमेष्ठी ब्रह्म आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ विरूपाक्ष, रुद्र, बहुरूप, शंभु, विरूप, अतिरूप और रूपसे परे आपको प्रणाम है ॥२४॥ दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेवाले यज्ञोंका फलदेनेवाले मखरूप दूसरोंके कर्म प्रवृत्त करनेवाले आपको प्रणाम है ॥२५॥

कालान्तक कालस्वरूप कालसर्प धारण करनेवाले परमेश सर्वत्र व्यापक आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ ब्रह्माके शिरहन्ता ब्रह्मा चन्द्रसे स्तुतिको प्राप्त ब्रह्मण्य परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ २७ ॥ आपही अग्नि, वायु, आकाश, जल, भूमि, सूर्य, चन्द्रमा और प्रकाशमान ज्योतिश्चक्र हो ॥ २८ ॥ तुमही ब्रह्मा, विष्णु, परमेश्वर हो, तुमही मुनि सनकादि तपोधन नारद हो ॥२९॥ आपही सब लोकोंके ईश, जगदात्मा, नारद हो, आपमें ही सब अन्वयहै, तुमही सबसे भिन्न, प्रकृतिसे परे हो ॥ ३० ॥ आपही विधाता हो, रजोगुणसे लोकोंकी रक्षा करते हो, सत्त्वगुणसे हरिरूप हो, आप सब जगत्की रक्षा करते

कालांतकाय कालाय कालभोगिधराय च ॥ नमस्ते परमेशाय सर्वत्र व्यापिने नमः ॥ २६ ॥ नमो ब्रह्मशिरोहंत्रे ब्रह्मचन्द्रस्तुताय
च ॥ ब्रह्मण्याय नमस्तेऽस्तु नमस्ते परमात्मने ॥ २७ ॥ त्वमग्निरनिलो व्योमत्वमेवापो वसुंधरा ॥ त्वं सूर्यश्चन्द्रमा भानि ज्योतिश्चक्रं
त्वमेव हि ॥ २८ ॥ त्वमेव विष्णुस्त्वं ब्रह्मा तत्स्तुतस्त्वं परेश्वरः ॥ मुनयः सनकाद्यास्त्वं नारदस्त्वं तपोधनः ॥ २९ ॥ त्वमेव सर्व
लोकेशस्त्वमेव जगदात्मकः ॥ सर्वान्वयस्सर्वभिन्नस्त्वमेव प्रकृतेः परः ॥ ३० ॥ त्वं वै सृजसि लोकांश्चरजसा विधिनामभाक् ॥
सत्त्वेन हरिरूपस्त्वं सकलं यासि वै जगत् ॥ ३१ ॥ त्वमेवासि महादेव तमसा हररूपधृक् ॥ लीलया भुवनं सर्वं निखिलं पांचभौति
कम् ॥३२॥ त्वद्ध्यानबलतस्सूर्यस्तपते विश्वभावन ॥ अमृतं च्यवते लोके शशी वाति समीरणः ॥ ३३ ॥ त्वद्ध्यानबलतो मेघाश्चांबु
वर्षंति शंकर ॥ त्वद्ध्यानबलतश्शक्रस्त्रिलोकीं पाति पुत्रवत् ॥ ३४ ॥ त्वद्ध्यानबलतो मेघाः सर्वे देवा मुनीश्वराः ॥ स्वाधिकारं च
कुर्वंति चकिता भवतो भयात् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादकमलस्यैव सेवनाद्भुवि मानवाः ॥ नाद्रियन्ते सुरान्रुद्र लोकैश्वर्यं च भुंजते ॥ ३६ ॥

हो ॥ ३१ ॥ हे महादेव ! तुम आपहीसे हरिरूपधारी होतेहो, लीलासेही सम्पूर्ण पांचभौतिक भुवनको रक्षा करते हो ॥ ३२ ॥ हे विश्वके करनेवाले ! आपकेही ध्यानबलसे सूर्य तपताहै, चन्द्रमा अमृत टपकाता और पवन बहती है ॥ ३३ ॥ हे शंकर ! आपहीके ध्यानबलसे मेघ जल वर्षाते हैं, तुम्हारेही ध्यानबलसे इन्द्र त्रिलोकीकी रक्षा करता है, पुत्रवत्पालता है ॥ ३४ ॥ तुम्हारेही ध्यानबलसे सब देवता और मुनीश्वर आपके भयसे चकित हुए अपना अधिकार करते हैं ॥ ३५ ॥ तुम्हारे चरणकमलकी सेवासेही पृथिवीमें मनुष्य देवताओंका आदर नहीं करते. हे रुद्र ! आपकी कृपासे त्रिलोकीका ऐश्वर्य

भोगते हैं ॥ ३६ ॥ आपके चरणकमलकी सेवासेही योगियोंको अगम्य सर्व दुर्लभगति को यह प्राणी प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी बोले बृहस्पतिने जब इसप्रकारसे लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरकी स्तुति की, और इन्द्रको भगवान् शंकरके चरणोंमें पातित किया ॥ ३८॥ इसप्रकार जब इन्द्रको शिर नीचा कराकर चरणोंमें डाला तब बडी नम्रतासे बृहस्पति शिवजीसे कहने लगे ॥ ३९ ॥ बृहस्पति बोले हे दीनानाथ ! हे महादेव ! यह इन्द्र तुम्हारे चरणोंपर पड़ाहै नेत्रोंकी अग्निसे आप शान्त हो क्रोधको रोककर इन्द्रका उद्धार करो ॥ ४० ॥ हे महादेव ! आप प्रसन्नहो, शरणमें आये इन्द्रकी रक्षा करो,

त्वत्पादकमलस्यैव सेवनादगमन्पराम् ॥ गतिं योगधना नामप्यगम्यां सर्वदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ बृहस्पतिरिति स्तुत्वा शंकरं लोकशंकरम् ॥ पादयो पातयामास तस्येशस्य पुरंदरम् ॥ ३८ ॥ पातयित्वा च देवेशमिंद्रं नत शिरोधरम् ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतश्शिवम् ॥ ३९ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ दीननाथ महादेव प्रणतं तव पादयोः ॥ समुद्धर च शांतं त्वं क्रोधं नयनजं कुरु ॥ ४० ॥ तुष्टो भव महादेव पाहींद्रं शरणागतम् ॥ अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ ४१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं देवदेवो महेश्वरः ॥ उवाच करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ४२ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ क्रोधं च निस्सृतं नेत्राद्धारयामि बृहस्पते ॥ कथं हि कञ्चुकीं सर्पस्संधत्ते नोज्झितां पुनः ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः ॥ उवाच क्लिष्टरूपश्च भयव्याकुलमानसः ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे देव भगवन्भक्ता अनुकंप्याः सदैव हि ॥ भक्तवत्सलनामेति त्वं सत्यं कुरु शंकर ॥ ४५ ॥

आपके मस्तकके नेत्रोंसे निकलीहुई यह अग्नि शान्त हो ॥४१॥ सनत्कुमारजी बोले, देवदेव महेश्वर इसप्रकार बृहस्पतिजीके वचन सुनकर मेघगंभीरवाणीसे इसप्रकार बोले ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले, हे बृहस्पति ! जो यह नेत्रोंसे क्रोध निकला है उसको मैं कैसे धारण करूं त्यागन कीहुई कैंचलीको सर्प फिर कैसे धारण करसकताहै ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार बोले भक्तवत्सल भगवान् शंकरने जब इसप्रकारसे कहा तब बृहस्पतिजी भयव्याकुलमनसे फिर क्लिष्टरूपवाले भगवान्से बोले॥ ४४ ॥बृहस्पतिजी बोले, हे देव ! हे भगवन् ! भक्तोंपर सदाही दया करनी चाहिये, हे शंकर ! भक्तवत्सलनामको आप सार्थक करो॥ ४५॥

हे देवेश ! आप इस अपने तेजको कहीं अन्यत्र त्याग कीजिये, आप सब भक्तोंके उद्धार करनेवाले हो इसे इन्द्रकाभी उद्धार कीजिये ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब भक्तवत्सल भगवान् शंकरसे इसप्रकार बृहस्पतिने कहा उससमय दीनोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान्ने गुरु बृहस्पतिसे कहा ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले, हे तात ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर तुमको उत्तम वर देताहूं, तुमने इन्द्रको जीवदान दिवाया है, इस कारण तुम जीवनामसे विख्यात होंगे ॥ ४८ ॥ और जो यह इन्द्रके मारनेवाली अग्नि मेर भालनेत्रसे प्रगट हुई है, इसे मैं दूरही निक्षेप करताहूं जिससे यह इन्द्रको पीडित न करै ॥४९॥

क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि ॥ उद्धर्तस्सर्वभक्तानां समुद्धर पुरंदरम् ॥ ४६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक् ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यं प्रणतार्त्तिहा ॥ ४७ ॥ शिव उवाच ॥ प्रीतः स्तुत्यानया तात ददामि वरमुत्तमम् ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ ४८ ॥ समुद्भूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरेशहा ॥ एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ ४९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् ॥ भालनेत्रात्समुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणांभसि ॥ ५० ॥ ततश्चांतर्दधे रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः ॥ गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥ ५१ ॥ यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य वै ॥ कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने शक्रजीवनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ॥ श्रुतेयमद्भुता मेऽद्य कथा शंभोर्महात्मनः ॥ १ ॥

सनत्कुमारजी बोले, इसप्रकारसे भगवान् शंकरने अग्निमय अपने माथेके नेत्रसे उत्पन्नहुए तेजको हाथमें धारणकर क्षारसमुद्रमें त्यागन करादिया ॥ ५० ॥ तब महालीलाकरनेवाले भगवान् रुद्र अन्तर्धान होगये, और इन्द्र तथा बृहस्पति भयसे मुक्त हो परमसुखको प्रात हुए ॥५१॥ जिनके निमित्त जानेकी इच्छा कीथी उनके दर्शन पाकर गुरु और इन्द्र प्रसन्नतासे अपने स्थानको गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां द्वि०रु०पं०यु०शक्रजीवनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले, हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! आपको नमस्कार है, मैंने यह महात्मा शंभुकी अद्भुत कथा सुनी ॥ १ ॥

हे तात ! जिससमय शिवजीने वह अपने माथेके नेत्रका तेज क्षारसमुद्रमें डालदिया, उस समय क्या हुआ सो आप शीघ्र कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे तात ! हे महाभाग ! आप महाअद्भुत शिवलीलाको सुनो, जिसको श्रद्धासे सुनकर भक्त योगियोंकी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ जिस समय शिवजीने अपना वह तेज क्षारसमुद्रमें डालदिया, उससमय वह शीघ्रही बालक होगया ॥ ४ ॥ जहां गंगासागरका संगम हुआ है वहांपर स्थित हो सब लोकोंका भय देनेवाला वह बालक ऊंचे स्वरसे रोनेलगा ॥ ५ ॥ उसके रोनेसे पृथिवी वारंवार कंपायमान होनेलगी, स्वर्ग और सत्यलोकभी उसके शब्दसे बहरे होगये ॥ ६ ॥ उस बालकके रोनेसे सब लोक व्याकुल होगये, और सब लोकपालभी मनसे व्याकुल होगये ॥ ७ ॥ हे विप्रेन्द्र ! बहुत कहनेसे क्या है चराचर सब चलायमान होगये. हे तात ! उस शंकरसुवनके रोदनसे ब्रह्माण्डभर व्याकुल होगया ॥ ८ ॥ तब वे देवता और मुनि सब व्याकुल होकर लोकगुरु पितामह ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ९ ॥ वहां वे सब देवता मुनि इन्द्रके समीप जाकर प्रणाम और स्तुति करके ब्रह्माजीसे बोले ॥ १० ॥ देवता बोले हे लोक और देवताओंके ईश्वर हमको बडा भय आनकर उपस्थित हुआ है, हे महायोगी ! उसका नाश कीजिये, यह महाशब्द कहांसे उपस्थित

क्षिप्ते स्वतेजसि ब्रह्मन्भालनेत्रसमुद्भवे ॥ लवणांभसि किं ताताभवत्तत्र वदाशु तत् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु तात महाप्राज्ञ शिवलीलां महाद्भुताम् ॥ यच्छ्रुत्वा श्रद्धया भक्तो योगिनां गतिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् ॥ क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालत्वमाप ह ॥ ४ ॥ तत्र वै सिंधुगंगायाः सागरस्य च संगमे ॥ रुरोदोच्चैस्स वै बालस्सर्वलोकभयंकरः ॥ ५ ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकंपद्धरणी मुहुः ॥ स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद्बधिरीकृतः ॥ ६ ॥ बालस्य रोदनेनैव सर्वे लोकाश्च तत्रसुः ॥ सर्वतो लोक पालाश्च विह्वलीकृतमानसाः ॥ ७ ॥ किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र चचाल सचराचरम् ॥ भुवनं निखिलं तात रोदनात्तच्छिशो र्विभो ॥ ८ ॥ अथ ते व्याकुलास्सर्वे देवास्समुनयो द्रुतम् ॥ पितामहं लोकगुरुं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा च ते देवा मुनयश्च सवासवाः ॥ प्रणम्य च सुसंस्तुत्य प्रोचुस्तं परमेष्ठिनम् ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ लोकाधीश सुराधीश भयन्नस्समुपस्थितम् ॥ तन्नाशय महायोगिञ्जातोयं ह्यद्भुतो रवः ॥ ११ ॥

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ गंतुमैच्छत्ततस्तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ १२ ॥ ततो
ब्रह्मा सुरैस्तातावतरत्सत्यलोकतः ॥ रसां तज्ज्ञातुमिच्छन्स समुद्रमगमत्तदा ॥ १३ ॥ यावत्तत्रागतो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
तावत्समुद्रस्योत्संगे तं बालं स ददर्श ह ॥ १४ ॥ आगतं विधिमालोक्य देवरूप्यथ सागरः ॥ प्रणम्य शिर सा बालं तस्योत्संगे
न्यवेशयत् ॥ १५ ॥ ततो ब्रह्माब्रवीद्वाक्यं सागरं विस्मयान्वितः ॥ जलराशे द्रुतं ब्रूहि कस्यायं शिशुरद्भुतः ॥ १६ ॥ ॥ सनत्कु
मार उवाच ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य मुदितस्सागरस्तदा ॥ प्रत्युवाच प्रजेशं स नत्वा स्तुत्वा कृतांजलिः ॥ १७ ॥ ॥ समुद्र
उवाच ॥ भो भो ब्रह्मन्मया प्राप्तो बालकोऽयमजानता ॥ प्रभवं सिंधुगंगायामकस्मात्सर्वलोकप ॥ १८ ॥ जात कर्मादिसंस्कारान्कुरु
ष्वास्य जगद्गुरो ॥ जातकोक्तफलं सर्वं विधातर्वक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं वदति पाथो धौ स बालस्सागरा
त्मजः ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कण्ठे विधुन्वंतं मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥

हुआ है ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले, लोकपितामह ब्रह्माजी इसप्रकार उनके वचन सुनकर बडे विस्मित हो उस स्थानमें जानेकी इच्छा करते हुए ॥ १२ ॥ हे तात ! उससमय ब्रह्माजी सत्यलोकसे उतरे, और इस बातके जान्नेके निमित्त भूलोकमें आकर समुद्रके किनारे आये ॥ १३ ॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी जब उस स्थानपर आये तो उन्होंने समुद्रके तटपर उस बालकको देखा ॥ १४ ॥ तब विधाताको आताहुआ देखकर देवरूप समुद्रने शिर झुकाय प्रणाम कर उस बालकको ब्रह्माजीकी गोदीमें दिया ॥ १५ ॥ तब ब्रह्माजी विस्मयको प्राप्त हो समुद्रसे बोले हे सागर ! शीघ्र कहो यह अद्भुत पुत्र किसका है ? ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले ब्रह्माजीके यह वचन सुन समुद्र बडा प्रसन्न हुआ, और नमस्कार तथा स्तुति करके वह ब्रह्माजीसे बोला ॥ १७ ॥ समुद्रने कहा, भगवन् ! मुझको अनजानमें यह बालक मिला है, मैं नहीं कहसकता कि यह किसका है ? हे सब लोकोंके पति यह गंगासागरके संगममें अकस्मात् प्रगट हुआ है ॥ १८ ॥ हे जगद्गुरो ! इस बालकके जातकर्मादि संस्कार कीजिये, हे विधाता ! आप इसके जातकका सब फल वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब सागरने ऐसा कहा तब सागरपुत्र ब्रह्माजीके गलेमें हाथ डालकर वारंवार आकर्षण करने लगा ॥ २० ॥

हे व्यासजी ! जिससमय वह बालक ब्रह्माजीके गलेको पकडने लगा तब पीडितहुए ब्रह्माजीके नेत्रोंसे जल टपकने लगा ॥ २१ ॥ फिर किसी प्रकार अपने दोंनो हाथोंका बल लगाकर ब्रह्माजीने उस बालकसे अपना कण्ठ छुटाया, और फिर आदरसे कहा ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे सागर ! मैं इस तुम्हारे पुत्रका जातकके अनुसार सब फल कहताहूं तुम सावधान होकर सुनो ॥ २३ ॥ जिसकारणसे कि इसने मेरे नेत्रोंसे जल निकालाहै, इस कारण इसका विख्यातनाम जलन्धर होगा ॥ २४ ॥ इससमय जब कि वह उत्पन्न होनेसे ही तरुण होगयाहै, इससे वह सब शास्त्रोंका पारगामी, महापराक्रमी, महाधीरजवाला, महायोधा, रणमें दुमर्द होगा ॥ २५ ॥ और यह युद्धमें कार्तिकेयके समान गंभीर होगा, संग्राममें सबका जीतनेवाला और सब सम्पतिसे विराजमान होगा ॥ २६ ॥ यह बालक सब दैत्योंका अधिपति होगा, और यह विष्णुकाभी जीतनेवाला, कहीं नहीं हारेगा ॥ २७ ॥ यह रुद्रको छोड़कर सब प्राणियोंसे अवध्य होगा, जहांसे यह उत्पन्न है वहीं यह जायगा ॥ २८ ॥ सौभाग्यकी बढानेवाली इसकी स्त्री बडी पतिव्रता होगी, वह सर्वाङ्गसे सुन्दरी परममनोहर प्यारा बोलनेवाली शीलका सागर होगी ॥२९॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा कहकर शुक्रको बुलाकर उनके हाथसे उस बालकको

विधूननं च तस्यैवं सर्वलोककृतो विधेः ॥ पीडितस्य च कालेय नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ २१ ॥ कराभ्यामब्धिजातस्य तत्सुतस्य महौजसः ॥ कथंचिन्मुक्तकण्ठस्तु ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥ २२ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु सागर वक्ष्यामि तवास्य तनयस्य हि ॥ जातकोक्तफलं सर्वं समाधानरतः खलु ॥२३॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैव जलं मम ॥ तस्माज्जलंधरेतीह ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ ॥ ॥ २४ ॥ अधुनैवैष तरुणस्सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ महापराक्रमो धीरो योद्धा च रणदुर्मदः ॥ २५ ॥ भविष्यति च गंभीरस्त्वं यथा समरे गुहः ॥ सर्वजेता च संग्रामे सर्वसंपद्विराजितः ॥ २६ ॥ दैत्यानामधिपो बालः सर्वेषां च भविष्यति ॥ विष्णोरपि भवेज्जेता न कुतश्चित्पराभवः ॥ २७ ॥ अवध्यस्सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति ॥ यत एष समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति ॥ २८ ॥ पतिव्रतास्य भविता पत्नी सौभाग्य वर्द्धिनी ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी रम्या प्रिय वाक्छीलसागरा ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेच यत् ॥ आमंत्र्य सरितान्नाथं ब्रह्मांतर्द्धानमन्वगात् ॥ ३० ॥

दैत्योंके राज्यमें अभिषेक कराया और सागरको आमंत्रण कर ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये ॥ ३० ॥ समुद्र उस बालकको देख प्रसन्न हुआ, उसके मुख और नेत्र खिलगये, वह उस बालकको प्रसन्नतासे लेकर अपने घर गया ॥ ३१ ॥ और प्रसन्न हो अनेक उपायोंसे उस बालकको पुष्ट करने लगा, वह सर्वांगसे सुन्दर मनोहर बडे अद्भुततेजवाला था ॥ ३२ ॥ तब सागरने कालनेमिनामक महाअसुरको बुलाकर उसकी वृंदानामक कन्याको जलंधरकी भार्याके निमित्त मांगा ॥३३॥ कालनेमि असुरोंमें बडा विख्यात बुद्धिमान् था हे मुने ! वह अपने कार्यसाधनमें बडा चतुर था, उसने समुद्रकी याचनाको उचित समझा ॥ ३४ ॥ उसने समुद्रसे उत्पन्नहुए महावीर जलंधरके निमित्त अपनी प्राणतुल्य कन्याको ब्रह्मविधानसे व्याह दिया ॥ ३५ ॥ उनके विवाहमें उस समय महान् उत्सव हुआ. हे मुने ! नद नदी और सब असुरोंको बडा सुख हुआ ॥३६॥ स्त्रीसहित पुत्रको देखकर समुद्रको भी बडा सुख हुआ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंको भी बहुतसा दान दिया गया ॥ ३७ ॥ जो पातालके रहनेवाले दैत्य पहले देवताओंने जीतेथे अब वे निर्भय हो भूमंडलमें विचरण करने लगे ॥ ३८ ॥ वे कालनेमि आदिक उस सागरके पुत्रके निमित्त अपनी कन्या देकर बडे प्रसन्न हुए, और देवताओंके जीतनेके निमित्त

अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनस्सागरस्तदा ॥ तमात्मजं समादाय स्वगेहमगमन्मुदा ॥ ३१ ॥ अपोषयन्महोपायैस्स्वबालं मुदितात्मकः ॥
सर्वांगसुन्दरं रम्यं महाद्भुतसुतेजसम् ॥ ३२ ॥ अथाम्बुधिस्समाहूय कालनेमिं महासुरम् ॥ वृन्दाभिधां सुतां तस्य तद्भार्यार्थमयाचत
॥ ३३ ॥ कालनेम्यसुरो वीरोऽसुराणां प्रवरस्सुधीः ॥ साधु मेनेम्बुधेर्याच्ञां स्वकर्मनिपुणो मुने ॥ ३४ ॥ जलंधराय वीराय सागर
प्रभवाय च ॥ ददौ ब्रह्मविधानेन स्वसुतां प्राणवल्लभाम् ॥ ३५ ॥ तदोत्सवो महानासीद्विवाहे च तयोस्तदा ॥ सुखं प्रापुर्नदा नद्योऽ
सुराश्चैवाखिला मुने ॥ ३६ ॥ समुद्रोऽति सुखं प्राप सुतं दृष्ट्वा हि सस्त्रियम् ॥ दानं ददौ द्विजातिभ्योऽप्यन्येभ्यश्च यथाविधि ॥३७॥
ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः ॥ ते हि भूमंडलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ ३८ ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरा
स्तस्मै सुतां सिंधुसुताय दत्त्वा ॥ बभूवुरत्यन्तमुदान्विता हि तमाश्रिता देव विनिर्जयाय ॥ ३९ ॥

उसके आश्रित हुए ॥ ३९ ॥ वह भी असुर वीरोंमें मुख्य समुद्रका पुत्र जलंधर नामवाला जितेन्द्रिय बडी सुन्दर भार्याको प्राप्त होकर शुक्रजीके प्रभावसे राज्य करने लगा ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापु० द्वि० रु० पं० यु० भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी बोले एक समय समुद्रका पुत्र जलन्धर अपनी स्त्री वृंदाके संहित सब असुरोंसे सन्मानको प्राप्त हुआ सभामें बैठाथा ॥ १ ॥ उसी स्थानमें बडी कान्ति-वाले भगवान् भृगुजी प्राप्त हुए, जो मूर्तिमान् तेजकी समान सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहेथे ॥ २ ॥ उन गुरुजीको आयाहुआ देखकर सब दैत्य और सागरपुत्र जलन्धरने

स चापि वीरोम्बुधिबालकोऽसौ जलंधराख्योऽसुरवीरवीरः ॥ संप्राप्य भार्य्यामतिसुन्दरीं वशी चकार राज्यं हि कविप्रभावात् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरवधोपाख्याने जलंधरोत्पत्तिविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एकदा वारिधिसुतो वृन्दापतिरुदारधीः ॥ सभार्य्यस्संस्थितो वीरोऽसुरैस्सर्वैः समन्वितः ॥ ॥ १ ॥ तत्राजगाम सुप्रीतस्सुवर्चास्त्वथ भार्गवः ॥ तेजः पुंजो मूर्त इव भासयन्सकला दिशः ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमसुरास्तेऽखिला द्रुतम् ॥ प्रणेमुः प्रीतमनसास्सिंधुपुत्रोऽपि सादरम् ॥ ३ ॥ दत्त्वाशीर्वचनं तेभ्यो भार्गवस्तेजसां निधिः ॥ निषसादासने रम्ये संतस्थुस्तेऽपि पूर्ववत् ॥ ४ ॥ अथ सिंध्वात्मजो वीरो दृष्ट्वा प्रीत्या निजां सभाम् ॥ जलंधरः प्रसन्नोऽभूदनष्टवरशासनः ॥ ५ ॥ तत्स्थितं छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट् ॥ पप्रच्छ भार्गवं शीघ्रमिदं सागरनन्दनः ॥ ६ ॥ जलंधर उवाच ॥ केनेदं विहितं राहोश्शिरच्छेदनकं प्रभो ॥ तद्ब्रूहि निखिलं वृत्तं यथावत्तत्त्वतो गुरो ॥ ७ ॥

भी बडे आदरसे प्रणाम किया ॥ ३ ॥ तेजस्वी भार्गवने उन सबको आशीर्वाद दिया और मनोहर आसनपर बैठे, उधर वे भी दैत्य पूर्ववत् आसनपर बैठे ॥ ४ ॥ तब वीर सिंधुपुत्र जलंधरने अपनी सभाको देख बडी प्रसन्नता प्रगट की कारण कि, उसका श्रेष्ठ शासन कहीं नष्ट नहीं होता था ॥ ५ ॥ सागरपुत्र उस दैत्यराजने राहुको छिन्न शिर देखकर शीघ्रतासे गुरुजीसे पूछा ॥ ६ ॥ जलंधर बोला, हे प्रभो ! हे गुरो ! राहुका शिर किसने छेदन किया है. हे गुरो ! आप

यह वृत्तान्त यथायोग्य कहिये ॥ ७ ॥ सनत्कुमार बोले, इसप्रकार शुक्राचार्यने समुद्रपुत्रके वचन सुन शिवके पदकमलको स्मरणकर यथार्थ वाणीसे कहा ॥ ८ ॥ शुक्र बोले हे जलंधर ! महावीर सम्पूर्ण असुरोंकी सहायता करनेवाले ! इस सब वृत्तान्तको सुनो, मैं तुमसे यथायोग्य कहताहूं ॥ ९ ॥ पहले विरोचनका पुत्र हिरण्यकश्यपका पोता बडा धर्मात्मा राजा बलि होगया है ॥ १० ॥ उससे सब देवता पराजितहो भगवान् विष्णुकी शरणमें गये, और स्वार्थके साधन करने वाले ब्रह्मादिकने अपना वृत्तान्त कथन किया ॥ ११ ॥ उनकी आज्ञासे देवताओंने दैत्योंके साथ संधी करली. हे तात ! छल कर्ममें

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं प्रत्युवाच यथार्थवत् ॥ ८ ॥ शुक्र उवाच ॥
जलंधर महावीर सर्वासुरसहायक ॥ शृणु वृत्तांतमखिलं यथावत्कथयामि ते ॥ ९ ॥ पुराभवद्वलिर्वीरो विरोचनसुतो बली ॥ हिरण्य
कशिपोश्चैव प्रपौत्रो धर्मवित्तमः ॥ १० ॥ पराजितास्सुरास्तेन रमेशं शरणं ययुः ॥ सवासवास्स्ववृत्तांतमाचख्युः स्वार्थसाधकाः ॥ ११ ॥
तदाज्ञया सुरैः सार्द्धं चक्रुस्संधिमथो सुराः ॥ स्वकार्यसिद्धये तातच्छलकर्मविचक्षणाः ॥ १२ ॥ अथामृतार्थं सिंधोश्च मंथनं चक्रुरा
दरात् ॥ विष्णोस्सहायिनस्ते हि सुरास्सर्वेऽसुरैस्सह ॥ १३ ॥ ततो रत्नोपहरणमकार्षुर्दैत्यशत्रवः ॥ जगृहुर्यत्नतो देवाः पपुरप्यमृतं
छलात् ॥ १४ ॥ ततः पराभवं चक्रुरसुराणां सहायतः ॥ विष्णोस्सुरास्सचक्रास्तेऽमृतपानाद्बलान्विताः ॥ १५ ॥ शिरश्छेदं चकारासौ
पिबतश्चामृतं हरिः ॥ राहोर्देवसभायां वै पक्षपाती हरेस्सदा ॥ १६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं कविस्तस्य शिरश्छेदं राहोश्शशंस च ॥
अमृतार्थे समुद्रस्य मंथनं देवकारितम् ॥ १७ ॥

विचक्षण वे इस कार्यमें चतुर हैं ॥ १२ ॥ तब देवता और दैत्योंने अमृतके निमित्त समुद्र मथन किया, और विष्णुजीने उन देवता और दैत्योंकी सहायता की ॥ १३ ॥ उस समय देवताओंने रत्नोंको स्वयं हरण किया, और छलसे अमृत भी देवताओंने ही हरण किया ॥ १४ ॥ उस समय विष्णुकी सहायता पाकर और अमृत पानसे बली होकर इन्द्रादिक देवताओंने दैत्योंको परास्त करदिया ॥ १५ ॥ जिस समय देवसभामें जाकर यह राहु देवरूपसे अमृतपान करने लगे, उस समय इन्द्रके पक्षपाती भगवान् विष्णुने राहुका शिर छेदन करदिया ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इसप्रकार जब शुक्राचार्यने

राहुके शिर छेदन और अमृतके निमित्त समुद्र मथनका वृत्तान्त कहा ॥ १७ ॥ तथा रत्नोंका देवताओंकाही ग्रहणकर लेना, अमृतका देवताओंकोही पीनेको मिलना जब यह सब विस्तारसे ॥ १८ ॥ प्रतापवान् जलंधरने सुना, तब अपने पिताका मंथन सुनतेही उसके नेत्र लाल होगये, और बडा क्रोध किया ॥ १९ ॥ तुरंत उसने घस्मर नामक एक दूतको बुलाकर गुरुको कहाहुआ उसको सब वृत्तान्त सुनाया ॥ २० ॥ और इन्द्रके निकट उस दूतको बडे सन्मान और अभय देकर उसने भेजा, कारण कि वह दूत बडा चतुर था ॥ २१ ॥ वह बुद्धिमान् दूत बडी शीघ्रतासे इन्द्रपुरीको गया, और वह

रत्नोपहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥ देवैरमृतपानं च कृतं सर्वं च विस्तरात् ॥१८॥ तदा कर्ण्य महावीरोम्बुधिबालः प्रतापवान् ॥
चुक्रोध क्रोधरक्ताक्षस्स्वपितुर्मंथनं तदा ॥ १९ ॥ अथ दूतं समाहूय घस्मराभिधमुत्तमम् ॥ सर्वं शशंस चरितं यदाह गुरुरात्मवान् ॥
॥ २० ॥ अथ तं प्रेषयामास स्वदूतं शक्रसन्निधौ ॥ संमान्य बहुशः प्रीत्याऽभयं दत्त्वा विशारदम् ॥ २१ ॥ दूतस्त्रिविष्टपं तस्य
जगामारमलं सुधीः ॥ घस्मरोंऽबुधिबालस्य सर्वदेवसमन्वितम् ॥ २२ ॥ तत्र गत्वा स दूतस्तु सुधर्मां प्राप्य सत्वरम् ॥ गर्वादखर्व
मौलिर्हि देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ घस्मर उवाच ॥ जलंधरोऽब्धितनयस्सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ सुप्रतापी महावीरस्स्वयं कविसहाय
वान् ॥ २४ ॥ दूतोऽहं तस्य वीरस्य घस्मराख्यो न घस्मरः ॥ प्रेषितस्तेन वीरेण त्वत्सकाशमिहागतः ॥ २५ ॥ अव्याहताज्ञस्सर्वत्र
जलंधर उदग्रधीः ॥ निर्जिताखिलदैत्यारिस्स यदाह शृणुष्व तत् ॥ २६ ॥ जलंधर उवाच ॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितस्सागरो
ऽद्रिणा ॥ नीतानि सर्वरत्नानि पितुर्मे देवताधम ॥ २७ ॥

जलंधरका दूत सब देवताओंसे युक्त ॥ २२ ॥ उस इन्द्रकी सुधर्मा सभामें प्राप्त होकर बडे गर्वसे देवताओं के अधिपति इन्द्रसे बोला ॥ २३ ॥ घस्मर बोला जलंधर सागरका पुत्र सब दैत्योंका अधिपति है, महाप्रतापी महाबली है शुक्रजी उसके सहायक हैं ॥ २४ ॥ मैं घस्मर नामवाला उसका दूत हूं यथार्थमें घस्मर (भक्षक) नहीं हूं, उस वीरका भेजाहुआ तुम्हारे पास आया हूं ॥ २५ ॥ बडी बुद्धिवाले जलंधरकी आज्ञा इस समयतक कहीं नहीं रुकी है, उसने संपूर्ण दैत्योंके शत्रु जीतलिये हैं, उसने जो कहा है सो आप सुनिये ॥ २६ ॥ जलंधरने कहाहै तुमने किस कारण मेरे पिताको पर्वत डालकर मथन

किया, हे देवताओंमें अधम ! तुमने मेरे पिताके सब रत्नोंको किसप्रकारसे ग्रहण कियाहै ॥ २७ ॥ यह तुमने अच्छा नहीं किया, उन रत्नोंको शीघ्र मुझे लौटादो ! और सब देवताओंसहित मेरी शरणमें आनकर प्राप्त हो ॥२८॥ हे सुरोंमें अधम ! ऐसा न करनेसे तुमको मुझसे बडा भय आनकर प्राप्त होगा ॥ ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यह दूतके वचन सुन इन्द्र बड़ा विस्मित हुआ; और उसको स्मरण करताहुआ भय और रोषके सहित इन्द्र बोला ॥३०॥ जब पर्वत मेरे भयसे पलायन करने लगे तब सागरने अपनेमें उनको शरण दी; और भी उस सागरने मेरे शत्रु दैत्योंकी रक्षा की है ॥ ३१ ॥ इस कारण मैंने

उचितं न कृतं तेऽद्य तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ममायाहि विचार्येत्थं शरणं दैवतैस्सह ॥ २८ ॥ अन्यथा ते भयं भूरि भविष्यति सुराधम ॥ राज्यविध्वंसनं चैव सत्य मेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ सनत्कुमार ॥ उवाच ॥ ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः ॥ उवाच तं स्मरन्निन्द्रो भयरोषसमन्वितः ॥ ३० ॥ अद्रयो मद्भयात्त्रस्तास्स्वकुक्षिस्था यतः कृताः ॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा ॥ ३१ ॥ तस्मात्तद्रत्नजातं तु मया सर्वं हृतं किल ॥ न तिष्ठति मम द्रोही सुखं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३२ ॥ शंखोप्येवं पुरा दैत्यो मां द्विषन्सागरात्मजः ॥ अभवन्मूढचित्तस्तु साधुसंगात्समुज्झितः ॥ ३३ ॥ ममानुजेन हरिणा निहतस्स हि पापधीः ॥ हिंसकस्साधुसंघस्य पापिष्ठस्सागरो दरे ॥ ३४ ॥ तद्गच्छ दूत शीघ्रं त्वं कथयस्वास्य तत्त्वतः ॥ अब्धिपुत्रस्य सर्वं हि सिंधोर्मंथनकारणम् ॥३५॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्थं विसर्जितो दूतो घस्मराख्यस्सुबुद्धिमान् ॥ तदेन्द्रेणागमत्तूर्ण्णं यत्र वीरो जलंधरः ॥ ३६ ॥

उसके सम्पूर्ण रत्नोंको हरण करलिया है, मुझसे द्रोह करनेवाले कभी सुखसे नहीं बैठसकते, यह मैं सत्यही कहता हूं ॥ ३२ ॥ पहले एक सागरके पुत्र शंखनाम असुरने मुझसे विरोध किया था, और मूढतावश उसने महात्माओंका संग त्यागन करदिया ॥ ३३ ॥ उस पापबुद्धिवालेको मेरे अनुज विष्णुजीने संहार किया, वह सागरपुत्र बड़ा हिंसक साधुओंका दुःखदाई पापी था ॥ ३४ ॥ इस कारण हे दूत ! तुम बहुत शीघ्र जाकर उस जलन्धरसे सागरमथनेके कारणको तत्त्वसे सुनादेना ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब इसप्रकार इन्द्रने जलंधरके पास उस बुद्धिमान् दूतको बिदा किया तब वह घस्मर बहुत शीघ्र

जलंधरके पास गया ॥ ३६ ॥ तब बुद्धिमान् दूतने वहां जाकर उस दैत्यराजसे इन्द्रके कहे सम्पूर्ण वचनोंको निवेदन करदिया ॥ ३७ ॥ यह सुनतेही क्रोधसे
दैत्यपतिके होठ फडकने लगे, और शीघ्रही उसने सब देवताओंके जीतनेका उद्योग किया ॥ ३८ ॥ उस उद्योगमें उस दैत्यराजके समीप दिशा पातालादि
स्थानोंसे कोटि कोटि दैत्य आनकर प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ तब शुंभ निशुंभ आदि कोटियों सेनापतियोंको साथ लेकर सागरपुत्र महाप्रतापके साथ चला ॥ ४० ॥
और सब सेनाके साथ शीघ्रही इन्द्रपुरीमें पहुंचा, जलंधरने शंख बजाया और सब वीर सिंहनाद करने लगे ॥ ४१ ॥ वह दैत्य सब वीरोंके सहित सिंहनाद

तदिदं वचनं दैत्यराजो हि तेन धीमता ॥ कथितो निखिलं शक्रप्रोक्तं दूतेन वै तदा ॥ ३७ ॥ तन्निशम्य ततो दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिता
धरः ॥ उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया ॥ ३८ ॥ तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा ॥ दितिजाः प्रत्यपद्यंत कोटिशःको
टिशस्तथा ॥ ३९ ॥ अथ शुंभनिशुंभाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः ॥ निर्जगाम महावीरः सिन्धुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ प्राप त्रिविष्टपं
सद्यः सर्वसैन्यसमावृतः ॥ दध्मौ शंखं जलधिजो नेदुर्वीराश्च सर्वतः ॥ ४१ ॥ गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत् ॥ सर्वं
सैन्यं समावृत्य कुर्वाणः सिंहवद्रवम् ॥ ४२ ॥ पुरमावृत्य तिष्ठत्तद्दृष्ट्वा सैन्यबलं महत् ॥ निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः ॥
॥ ४३ ॥ ततस्समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः ॥ मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदापरशुशक्तिभिः ॥ ४४ ॥ तेऽन्योन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्प
रम् ॥ क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते ॥ ४५ ॥ पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ व्यराजतरणे भूमिस्संध्याभ्रपटलै
रिव ॥ ४६ ॥ तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तानजीवयत् ॥ विद्ययामृतजीविन्या मंत्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥ ४७ ॥

करता हुआ इन्द्रपुरीके नन्दन वनमें ठहरा ॥ ४२ ॥ उसकी पुरी घेरकर स्थित हुई तथा उसके पास बडी सेना देखकर देवताभी अमरावती पुरीसे युद्धके
निमित्त चले ॥ ४३ ॥ तब मूसल, परिघ, बाण, गदा, परशु, शक्तियोंसे देवता दैत्योंका महायुद्ध होने लगा ॥ ४४ ॥ परस्पर धावमान होतेहुए एक
दूसरेको प्रहार करनेलगे क्षणमात्रमें दोनों सेना रुधिरसे क्षत विक्षत होगई ॥ ४५ ॥ हाथी, घोडे, रथ, पैदलोंके गिरने गिरानेसे वह रणभूमि संध्याकालके
मेघसमूहोंकी समान व्याप्त हुई ॥ ४६ ॥ उस युद्धमें मरतेहुए दैत्योंको शुक्रजी जिवाने लगे, वह मृतसंजीवनी विद्यासे मंत्र पढ जल छिडकते थे ॥ ४७ ॥

और द्रोणाचलपर्वतसे दिव्य औषधी लाकर बृहस्पतिजी मृत देवताओंको जिवाने लगे ॥४८॥ जब युद्धमें देवताओंको पुनर्जीवित होते देखा तब जलंधर
बड़ेक्रोधसे शुक्राचार्यसे कहने लगा ॥ ४९ ॥ जलंधर बोला, यह देवता मुझसे हत हुए फिर कैसे जीवित होते हैं, मैंने सुनाहै यह संजीविनी विद्या तुम्हारे
सिवाय कहीं अन्यत्र नहींहै ॥ ५० ॥ सनत्कुमार बोले इस प्रकार उस बुद्धिमान् सागरपुत्रके वचन सुनकर प्रसन्न हो शुक्रजी जलंधरसे बोले ॥ ५१ ॥
शुक्रजी बोले अंगिराऋषि द्रोणाचलसे दिव्य औषधी लाकर जिवातेहैं, हे तात ! यह मेरे वचन सत्य जानो ॥ ५२ ॥ हे तात ! जो तुम जीतकी इच्छा

देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदंगिराः ॥ दिव्यौषधैस्समानीय द्रोणाद्रेस्स पुनःपुनः ॥ ४८ ॥ दृष्टवान्स तथा युद्धे पुनरेव समुत्थि
. तान् ॥ जलंधरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ जलंधर उवाच ॥ मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठंति कथं पुनः ॥ ततः संजी
विनी विद्या नैवान्यत्रेति वै श्रुता ॥ ५० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा
गुरुश्शुक्रो·जलंधरम् ॥ ५१ ॥ शुक्र उवाच ॥ ॥ दिव्यौषधीस्समानीय द्रोणाद्रेरंगिरास्सुरान् ॥ जीवयत्येष वै तात सत्यं जानीहि मे
वचः ॥ ५२ ॥ जयमिच्छसि चेत्तात शृणु मे वचनं शुभम् ॥ ततः सोऽरं भुजाभ्यां त्वं द्रोणमब्धावुपाहर ॥ ५३ ॥ ॥ सनत्कुमार
उवाच ॥ इत्युक्तस्स तु दैत्येन्द्रो गुरुणा भार्गवेण ह ॥ द्रुतं जगाम यत्रासावास्ते चैवाद्रिराट् च सः ॥ ५४ ॥ भुजाभ्यां तरसा दैत्यो
नीत्वा द्रोणं च तं तदा ॥ प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं चित्रं न हरतेजसि ॥ ५५ ॥ पुनरायान्महावीरस्सिन्धुपुत्रो महाहवम् ॥ जघानास्त्रैश्च विवि
धैस्सुरान्कृत्वा बलं महत् ॥ ५६ ॥ अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः ॥ तावत्तत्र गिरींद्रं तं न ददर्श सुरार्चितः ॥ ५७ ॥

करते हो तो मेरे श्रेष्ठ वचन सुनो तुम अपनी भुजाओंसे द्रोणपर्वतको उखाड डालो ॥ ५३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जब गुरु भार्गवने ऐसा कहा तब यह
दैत्य तुरत वहां गया जहां वह पर्वतराज था ॥ ५४ ॥ तब उस दैत्यराजने उस द्रोणाचलको भुजाओंसे उखाडकर शीघ्रही सागरमें डाल दिया, शिवके
तेजसे ऐसा होना विचित्र बात नहीं है ॥ ५५ ॥ वह महाबली सिन्धुपुत्र उस महासमरमें फिर आया, और बडा बल प्रकाश करके अनेक अस्त्रोंसे
देवताओंका संहार किया ॥ ५६ ॥ तब देवताओंको मृतक देखकर गुरु द्रोणाचलको गये, परन्तु वहां जाकर देवपूजित पर्वतको न देखा ॥ ५७ ॥

दैत्यसे उस पर्वतको हरा हुआ जानकर बृहस्पति भयसे व्याकुल हुए, और आकर व्याकुल मनसे देवताओंसे कहा ॥ ५८ ॥ गुरु बोले हे देवताओ ! इस समय सब भागजाओ, द्रोणाचल दिखाई नहीं देता, विदित होताहै कि सागरपुत्रने उसको नष्ट करदिया ॥ ५९ ॥ यह जलंधर दैत्य इस समय नहीं जीता जायगा, यह रुद्रके अंशसे उत्पन्न सम्पूर्ण देवताओंका मारनेवाला है ॥६०॥ हे देवताओ ! मैंने इसका प्रभाव जानलिया है, जिस प्रकारसे यह स्वयं उत्पन्न हुआ है जो इन्द्रने शिवका अपमान किया था उसीका यह फल है सो स्मरण करो ॥ ६१ ॥ सनत्कुमार बोले सब देवता इस प्रकारसे सुराचार्यके वचन सुनकर जयकी आशा छोडकर व्याकुल होगये ॥ ६२ ॥ इसी अवसरमें वे दैत्यराजसे सब प्रकारसे ताडित होकर धैर्य त्याग दशों दिशाओंमें इन्द्रके सहित पलायन करगये ॥ ६३ ॥ उस सागरके पुत्रने इस प्रकारसे देवताओंको भागता हुआ देखकर शंख भेरी जयका शब्द करते हुए अमरावतीमें प्रवेश किया ॥ ६४ ॥ जब जलन्धर अमरावतीमें प्रविष्ट हुआ तब देवता उससे तापितहो मेरुपर्वतकी गुफाओंमें निवास करनेलगे ॥ ६५ ॥ हे मुने ! तब जलन्धर इन्द्रादि देवताओंके सब अधिकारोंमें शुंभादिक दैत्याधिपतियोंको पृथक्पृथक् स्थापितकर आप मेरुपर्वतकी गुफामें देवताओंकी खोजमें गया ॥ ६६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां पञ्चमयुद्धखंडे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः ॥ आगत्य देवान्प्रोवाच जीवो व्याकुलमानसः ॥ ५८ ॥ गुरुरुवाच ॥ पलायध्वं सुरास्सर्वे द्रोणो नास्ति गिरिर्महान् ॥ ध्रुवं ध्वस्तश्च दैत्येन पाथोधितनयेन हि ॥५९॥ जलंधरो महादैत्यो नायं जेतुं क्षमो यतः ॥ रुद्रांशसंभवो ह्येष सर्वामरविमर्दनः ॥ ६० ॥ मया ज्ञातः प्रभावोऽस्य यथोत्पन्नः स्वयं सुराः ॥ शिवापमानकृच्छक्रचेष्टितं स्मरताखिलम् ॥ ६१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवास्सुराचार्यप्रकीर्तितम् ॥ जयाशां त्यक्तवंतस्ते भयविह्वलितास्तथा ॥ ६२ ॥ दैत्यराजेन तेनातिहन्यमानास्समंततः ॥ धैर्यं त्यक्त्वा पलायंत दिशो दश सवासवाः ॥ ६३ ॥ देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यास्सागरनंदनः ॥ शंखभेरीजयरवैः प्रविवेशामरावतीम् ॥६४॥ प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः ॥ ६५ ॥ तदैव सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेश्य सम्यक् ॥ शुंभादिकान्दैत्यवरान् पृथक्पृथक् स्वयं सुवर्णाद्रिगुहां व्यगान्मुने॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवजलंधरयुद्धवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

सनत्कुमारजी बोले इन्द्रादिक देवताओंने वहां फिर उस दैत्यको आताहुआ देखा तो भयसे कंपित होकर वहांसेभी शीघ्र पलायमान हुए ॥ १ ॥ प्रजापतिको आगेकरके सब देवता वैकुंठको गये और प्रजापतिसहित वे सब देवता प्रणामकर स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ देवता बोले, हे हृषीकेश ! हे महाबाहो ! भगवन् ! मधुदैत्यके मारनेवाले ! हे सब दैत्योंके मारनेवाले देवेश ! आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ हे विष्णुजी ! आपने मत्स्यावतार लेकर वेदोंका उद्धार किया, आपको प्रणाम है, आपने सत्यव्रतवाले राजा सत्यव्रतको प्रलयके जलमें विहार करायाहै ॥ ४ ॥ जिस समय देवता और दैत्य मंदर पर्वतको समुद्रमें डाल सागर मथनेको उद्यत हुए उस समय आपने कूर्मरूप धारण कर उस पर्वतको धारण किया, आपको नमस्कार है ॥५॥ हे भगवन् ! आपके यज्ञवाराहरूपको

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायांतं दृष्ट्वा देवास्सवासवाः ॥ भयात्प्रकंपितास्सर्वे सहैवादुद्रुवुर्द्रुतम् ॥ १ ॥ वैकुंठं प्रययुस्सर्वे पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ तुष्टुवुस्ते सुरा नत्वा सप्रजापतयो खिलाः ॥ २ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ हृषीकेश महाबाहो भगवन् मधुसूदन ॥ नमस्ते देवदेवेश सर्वदैत्यविनाशक ॥ ३ ॥ मत्स्यरूपाय ते विष्णो वेदान्नीतवते नमः ॥ सत्यव्रतेन सद्राज्ञा प्रलयाब्धिविहारिणे ॥४॥ कुर्वाणानां सुराणां च मंथनायोद्यमं भृशम् ॥ बिभ्रते मंदरगिरिं कूर्मरूपाय ते नमः ॥५॥ नमस्ते भगवन्नाथ क्रतवे सूकरात्मने ॥ वसुंधरां जनाधारां मूर्द्धतो बिभ्रते नमः ॥ ६ ॥ वामनाय नमस्तुभ्यमुपेन्द्राख्याय विष्णवे ॥ विप्ररूपेण दैत्येन्द्रं बलिं छलयते विभो ॥ ७ ॥ नमः परशुरामाय क्षत्रनिःक्षत्रकारिणे ॥ मातुर्हितकृते तुभ्यं कुपितायासतां द्रुहे ॥ ८ ॥ रामाय लोकरामाय मर्यादापुरुषाय ते ॥ रावणांतकरायाशु सीतायाः पतये नमः ॥ ९ ॥ नमस्ते ज्ञानगूढाय कृष्णाय परमात्मने ॥ राधाविहारशीलाय नानालीलाकराय च ॥ १० ॥

नमस्कार है, आप अपनी डाढके ऊपर जनोंके आधारवाली पृथिवीको धारण करते हो, आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे विभो ! आपने ब्राह्मणशरीर धारण कर उपेन्द्र वामनरूप होकर दैत्यराज बलिको छला, आपको प्रणाम है ॥७॥ क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले आपके परशुराम अवतारको नमस्कार है, यह अपने माताके हितके लिये सब किया क्रोध करके आपने असत्पुरुषोंपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ राम लोकके रमानेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम, रावणके विनाश करनेवाले सीतापति आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ गूढज्ञानसम्पन्न परमात्मा कृष्णरूप राधासे विहार करनेवाले तथा अनेक लीला करनेवाले आपको प्रणाम है ॥१०॥

गूढ देहधारी वेदकी निन्दा करनेवाले योगाचार्य जैन बौद्धरूप लक्ष्मीपति आपको नमस्कारहै ॥ ११ ॥ म्लेच्छोंके नाश करनेवाले कल्किरूप अनन्तशक्ति सम्पन्न सद्धर्मके स्थापन करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥ देवहूतीमें कपिल रूपसे उत्पन्न होनेवाले, महात्मा सांख्ययोगके वक्ता सांख्याचार्य, आप प्रभुको नमस्कारहै ॥ १३ ॥ परमहंस रूपसे आत्माके प्रसन्न करनेवाले ज्ञानको विधाताके निमित्त कथन करनेवाले ज्ञानरूप आपको नमस्कारहै ॥ १४ ॥ वेदव्यास रूपसे वेदोंके विभाग करनेवाले, सब लोकोंके हितकारी पुराण रचनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ इस प्रकार मत्स्यादि रूपसे भक्तोंके हित

नमस्ते गूढदेहाय वेदनिंदाकराय च ॥ योगाचार्याय जैनाय बौद्धरूपाय मापते ॥ ११ ॥ नमस्ते कल्किरूपाय म्लेच्छानामंतकारिणे ॥
अनन्तशक्तिरूपाय सद्धर्मस्थापनाय च ॥ १२ ॥ नमस्ते कपिलरूपाय देवहूत्यै महात्मने ॥ वदते सांख्ययोगं च सांख्याचार्याय वै
प्रभो ॥ १३ ॥ नमः परमहंसाय ज्ञानं संवदते परम् ॥ विधात्रे ज्ञानरूपाय येनात्मा संप्रसीदति ॥ १४ ॥ वेदव्यासाय वेदानां विभागं
कुर्वते नमः ॥ हिताय सर्वलोकानां पुराणरचनाय च ॥ १५ ॥ एवं मत्स्यादितनुभिर्भक्तकार्योद्यताय ते ॥ सर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे
नमस्ते ब्रह्मणे प्रभो ॥ १६ ॥ आर्तिहंत्रे स्वदासानां सुखदाय शुभाय च ॥ पीताम्बराय हरये तार्क्ष्ययानाय ते नमः ॥ सर्वक्रियायैककर्त्रे
शरण्याय नमोनमः ॥ १७ ॥ दैत्यसंतापितामर्त्य दुःखादिध्वंसवज्रक ॥ शेषतल्पशयायार्क चन्द्रनेत्राय ते नमः ॥ १८ ॥ कृपासिन्धो
रमानाथ पाहि नश्शरणागतान् ॥ जलंधरेण देवाश्च स्वर्गात्सर्वे निराकृताः ॥ १९ ॥ सूर्यो निस्सारितः स्थानाच्चन्द्रो वह्निस्तथैव च ॥
पातालान्नागराजश्च धर्मराजो निराकृतः ॥ २० ॥

करनेवाले तथा उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेवाले ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ अपने दासोंके दुःख दूर करनेवाले सुखद शुभस्वरूप पीताम्बरधारी गरुडपर स्थित होनेवाले आपको नमस्कार है आपही सब क्रियाके एक कर्त्ता हो शरणागतरक्षक आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आप दैत्योंसे सन्तापित जनोंके दुःख दूर करनेको वज्ररूप हो शेष शय्यापर शयन करनेवाले सूर्य चन्द्रमारूप नेत्रवाले आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे कृपासागर ! रमानाथ ! हम आपकी शरणमें आये हैं, हमारी रक्षा करो, जलंधरने सब देवताओंको निकाल दिया है ॥ १९ ॥ अपने स्थानोंसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्निको निकाल

दिया है, पातालसे धर्मराज और नागराजको निकाल दिया है ॥२०॥ वे देवता मनुष्योंकी समान मारे मारे फिरते हैं उनकी शोभा नहीं होती, हम आपकी शरणमें प्राप्त हुए हैं, आप उस दैत्यके वधका विचार करो ॥ २१ ॥ सनत्कुमारजी बोले भगवान मधुसूदनजीने इस प्रकारसे देवताओंके दीन वचन सुनकर करुणाकर मेघकी समान गंभीर वाणीसे उनसे कहा ॥ २२ ॥ विष्णु बोले हे देवता ! भय त्यागन करो मैं युद्धमें जाऊंगा, और उस जलन्धर दैत्यसे युद्ध करूंगा ॥ २३ ॥ यह वचन कहकर दैत्योंके नाशक विष्णुजीने खिन्नमनसे उठकर भक्तवत्सलताके कारण कृपा करके शीघ्रही गरुडपर आरोहण किया ॥

विचरंति यथा मर्त्याश्शोभंते नैव ते सुराः ॥ शरणं ते वयं प्राप्ता वधस्तस्य विचिंत्यताम् ॥ २१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति दीनवचश्श्रुत्वा देवानां मधुसूदनः ॥ जगाद करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ २२॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भयं त्यजत हे देवा गमिष्याम्यहमाहवम् ॥ जलंधरेण दैत्येन करिष्याामि पराक्रमम् ॥ २३ ॥ इत्युक्ता सहसोत्थाय दैत्यारिः खिन्नमानसः ॥ आरोहद्गरुडं वेगात्कृपया भक्तवत्सलः ॥ २४ ॥ गच्छन्तं वल्लभं दृष्ट्वा देवैस्सार्द्धं समुद्रजा ॥ सांजलिर्बाष्पनयना लक्ष्मीर्वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥ लक्ष्म्युवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता यदि च सर्वदा ॥ तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ जलंधरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम् ॥ तैस्संस्तुतो गमिष्यामि युद्धाय त्वरितान्वितः ॥ २७॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि ॥ प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलंधरः ॥ २८॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढश्शंखचक्रगदासिभृत् ॥ विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं देवैश्शक्रादिभिस्सह ॥ २९ ॥

॥ २४ ॥ जब इस प्रकारसे देवताओंके साथ अपने प्राणपतिको जाता देखा तब नेत्रोंमें जल भरकर समुद्रसे उत्पन्नहुई लक्ष्मी भगवानसे बोली ॥ २५ ॥ लक्ष्मी बोली हे नाथ ! यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो हे कृपानाथ ! आप मेरे भ्राताको युद्धमें कैसे मारोगे ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले मैं जलन्धर दैत्यके साथ युद्धमें पराक्रम करूंगा, देवताओंने स्तुति कीहै, इससे युद्धमें शीघ्र जाऊंगा ॥ २७ ॥ रुद्रांशसे उत्पन्न होने और ब्रह्माके वरदान तथा तुम्हारी प्रीतिसे मैं अपने हाथसे जलन्धरको नहीं मारूंगा ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी बोले यह कहकर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले विष्णुजी गरुडपर चढ बडे

वेगसे इन्द्रादि देवगणोंके सहित युद्धमें गये ॥ २९ ॥ और बहुत शीघ्र जलन्धरके समीप प्राप्त हुए, उस समय विष्णुके तेजसे दर्पितहो देवता सिंहनाद करने लगे ॥ ३० ॥ उस समय अरुणके छोटे भ्राता गरुडजीके पंखोंकी पवनसे पीडितहो दैत्य इस प्रकार भ्रमण करने लगे जैसे वायुसे ताडित होकर मेघ घूमते हैं ॥ ३१ ॥ तब वातसे पीडित हुए दैत्योंको जलन्धरने देखकर बडे क्रोधसे वचन कहकर विष्णुकी ओरको आक्रमण किया ॥ ३२ ॥ उसी समय देवताभी हर्षको प्राप्त हो युद्ध करने लगे, वे महाबली उस समय विष्णुजीके तेजसे पुष्ट होगये थे ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंकी सेनाको युद्धके निमित्त उद्युक्त देखकर जलन्धरने युद्धमें दुर्मद दैत्योंको आज्ञादी ॥ ३४ ॥ जलन्धरने कहा, हे श्रेष्ठदैत्यो ! तुम महायुद्ध करो, इस समय यह कायर इन्द्रादिक देवता प्रबल हुए जातेहैं ॥ ३५ ॥ मौर्यवंशीय एक लक्ष और धूम्रनामक सौ संख्यावाले असुर, एक कोटि संख्यावाले इतनेही कालिकेय असुर ॥ ३६ ॥ कालक, दौहृद, कंकन यह एक लक्ष संख्यामें, तथा दूसरेभी दैत्य मेरी आज्ञासे युद्धको चलें ॥ ३७ ॥ बहुत सेनासे संयुक्त होकर सब चलें और अनेक अस्त्र शस्त्रसे संयुक्त संशय रहित निर्भयतासे युद्ध करैं ॥ ३८ ॥ हे शुंभ निशुंभ ! सेनापतियो यह देवता युद्धमें कातर हैं, क्षणमात्रमें इन तुच्छोंको तुम महाबली विनाश

द्रुतं स प्राप तत्रैव यत्र दैत्यो जलंधरः ॥ कुर्वन् सिंहरवं देवैर्ज्वलद्भिर्विष्णुतेजसा ॥ ३० ॥ अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः ॥ वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ ३१ ॥ ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्यान् वात्याप्रपीडितान् ॥ उद्धृत्य वचनं क्रोधाद्द्रुतं विष्णुं समभ्यगात् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवाश्चक्रुर्युद्धं प्रहर्षिताः ॥ तेजसा च हरेः पुष्टा महाबलसमन्विताः ॥ ३३ ॥ युद्धोद्यतं समालोक्य देवसैन्यमुपस्थितम् ॥ दैत्यानाज्ञापयामास समरे चातिदुर्मदान् ॥ ३४ ॥ ॥ जलंधर उवाच ॥ भोभो दैत्यवरा यूयं युद्धं कुरुत दुस्तरम् ॥ शक्राद्यैरमरैरद्य प्रबलैः कातरैस्सदा ॥ ३५ ॥ मौर्यास्तु लक्षसंख्याता धौम्रा हि शतसंख्यकाः ॥ असुराः कोटिसंख्याताः कालकेयास्तथैव च ॥ ३६ ॥ कालकानां दौर्हृदानां कंकानां लक्षसंख्यया ॥ अन्येऽपि स्वबलैर्युक्ता विनिर्यांतु ममाज्ञया ॥ ३७ ॥ सर्वे सज्जा विनिर्यात बहुसेनाभिसंयुताः ॥ नानाशस्त्रास्त्रसंयुक्ता निर्भया गतसंशयाः॥ ३८ ॥ भोभो शुंभनिशुंभौ च देवान्समरकातरान् ॥ क्षणेन सुमहावीर्यौ तुच्छान्नाशयतं युवाम् ॥ ३९ ॥

करदो ॥३९॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकारसे युद्धविशारद जलंधरने जब दैत्योंको आज्ञादी तो वे सब चतुरंग बलसे आश्रित हो युद्ध करने लगे ॥४०॥ गदा, तीक्ष्ण बाण, शूल, पट्टिश, तोमर, फरशा, शूल इनसे परस्पर संग्राम करने लगे ॥ ४१ ॥ महाबलसंयुक्त होके अनेक आयुधोंसे परस्पर प्रहार करने लगे इधर महाबली देवता विष्णुके बलसे दर्पित होगये वे तीक्ष्ण बाणोंसे युद्ध करतेहुए सिंहनाद करने लगे ॥ ४२ ॥ कोई तीक्ष्ण बाणोंसे कोई मूसल तोमरोंसे, कोई फरशे और शूलसे परस्पर प्रहार करनेलगे ॥ ४३ ॥ इसप्रकार देवताओंका और दैत्योंका महादारुण संग्राम उपस्थित हुआ, जो मुनि और सिद्धोंको

सनत्कुमार उवाच ॥ दैत्या जलंधराज्ञप्ता इत्थं युद्धविशारदाः ॥ युयुधुस्तेसुरास्सर्वे चतुरंगबलान्विताः ॥ ४० ॥ गदाभिस्तीक्ष्णबाणैश्च शूलपट्टिशतोमरैः ॥ केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ४१ ॥ नानायुधैः परैस्तत्र निजघ्नुस्ते बलान्विताः ॥ देवास्तथा महावीरा हृषीकेशबलान्विताः ॥ युयुधुस्तीक्ष्णबाणाश्च क्षिपंतस्सिंहवद्रवाः ॥ ४२ ॥ केचिद्बाणैस्सुतीक्ष्णैश्च केचिन्मुसलतोमरैः ॥ केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ ४३ ॥ इत्थं सुराणां दैत्यानां संग्रामस्समभून्महान् ॥ अत्युल्बणो मुनीनां हि सिद्धानां भयकारकः ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे देवयुद्धवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ दैत्या महावीर्याश्शूलैः परशुपट्टिशैः ॥ निजघ्नुस्सर्वदेवांश्च भयव्याकुलमानसान् ॥ १ ॥ दैत्यायुधैः समाविद्धदेहा देवास्सवासवाः ॥ रणाद्विदुद्रुवुस्सर्वे भयव्याकुलमानसाः ॥ २ ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा हृषीकेशस्सुरानथ ॥ विष्णुर्वै गरुडारूढो योद्धुमभ्याययौ द्रुतम् ॥ ३ ॥ सुदर्शनेन चक्रेण सर्वतः प्रस्फुरन्रुचा ॥ सुशोभितकराब्जश्च रेजे भक्ताभयंकरः ॥ ४ ॥

भय देनेवाला था ॥४४॥ इति श्रीशिवमहापु० रु०पं० यु० भाषाटीकायां देवयुद्धवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सनत्कुमार बोले तब महाबली दैत्य शूल, फरशे और पट्टिश लेकर भयसे व्याकुल मनवाले सब देवताओंसे युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ दैत्योंके आयुधोंसे विद्ध होकर सब इन्द्रादिक देवता भयसे व्याकुलहो युद्धसे भागने लगे ॥२॥ जब विष्णुने देवताओंको भयसे व्याकुल देखा, तब गरुडपर चढकर युद्ध करनेको चले ॥ ३ ॥ उस समय यह भक्तोंके

अभय करनेवाले सुदर्शन चक्र हाथमें लिये उसकी कान्तिसे शोभायमान हाथवाले बडी शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ शंख, खड्ग, गदा, शार्ङ्गधारी, कठोर
अस्त्रधारी, महाक्रोधसे युक्तहो महावीर सब प्रकारके युद्ध करनेमें चतुर भगवानने ॥ ५ ॥ शार्ङ्गनामक धनुषको चढाकर शब्द किया, हे मुने ! उसके नादसे
समस्त त्रिलोकी पूर्ण होगई ॥ ६ ॥ शार्ङ्गधनुषसे छूटेहुए बाणोंसे सहस्रों दैत्योंके शिर क्रोध करके भगवानने काट डाले ॥ ७ ॥ इसी प्रकार गरुडजीके
पंखोंकी पवनसे पीडित होकर आकाशमें पवनद्वारा उडाये हुए मेघोंकी समान दैत्य घूमने लगे ॥८॥ तब जलंधरने दैत्योंको वातसे पीडित देखकर देवताओंके

शंखखड्गगदाशार्ङ्गधारी क्रोधसमन्वितः ॥ कठोरास्त्रो महावीरस्सर्वयुद्धविशारदः ॥ ५ ॥ धनुषं शार्ङ्गनामानं विस्फूर्य्य विननाद ह ॥
तस्य नादेन त्रैलोक्यं पूरितं महता मुने ॥ ६ ॥ शार्ङ्गनिस्सृतबाणैश्च दितिजानां शिरांसि वै ॥ चकर्त्त भगवान् विष्णुः कोटिशो रुट्समा
कुलः ॥ ७ ॥ अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः ॥ वात्याविवर्त्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः ॥ ८ ॥ ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्या
न्वात्याप्रपीडितान् ॥ चुक्रोधाति महादैत्यो देववृन्दभयंकरः ॥ ९ ॥ मर्द्दयंतं च तं दृष्ट्वा दैत्यान् प्रस्फुरिताधरः ॥ योद्धुमभ्याययौ वीरो
वेगेन हरिणा सह ॥ १० ॥ स चकार महानादं देवासुरभयंकरम् ॥ दैत्यानामधिपः कर्णा विदीर्णाः श्रवणात्ततः ॥११॥ भयङ्करेण दैत्य
स्य नादेन पूरितं तदा ॥ जलंधरस्य महता चकम्पे सकलं जगत् ॥ १२ ॥ ततस्समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत् ॥ आकाशं कुर्वतो
बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १३ ॥ तयोश्च तेन युद्धेन परस्परमभून्मुने ॥ देवासुरर्षिसिद्धानां भीकरेणातिविस्मयः ॥ १४ ॥

भय देनेके निमित्त उस महादैत्यने महाक्रोध किया ॥ ९ ॥ दैत्योंको मर्दित होताहुआ देखकर उसके होठ फडकने लगे, और वह वीर बडे वेगसे हरिके साथ
युद्ध करनेको चला ॥ १० ॥ उसने देवता तथा असुरोंको भय उपजानेवाला बडा नादकिया उस दैत्याधिपके शब्द करनेसे उस समय सुननेवालोंके कान
बहरे होगये ॥ ११ ॥ जिस समय जलंधर दैत्यने महानाद किया, उस समय सम्पूर्ण जगत् कम्पित होउठा ॥ १२ ॥ उस समय विष्णु और दैत्येन्द्रका
महायुद्ध होने लगा दोनोंके बाणोंसे आकाशमें अवकाश न रहा ॥ १३ ॥ हे मुने ! जिस समय उनका परस्पर संग्राम हुआ, उस समय देवता असुर ऋषि

और सिद्धोंको बडा विस्मय हुआ ॥ १४ ॥ विष्णुजीने अपने बाणोंके प्रहारसे उस दैत्यके ध्वजा, छत्र, धनुष बाण काटकर एक बाण उसके हृदयमें प्रहार
किया ॥ १५ ॥ उसी समय दैत्यने शीघ्रतासे गदा हाथमें लेकर उसे गरुडके शिरपर मारकर उसे भूमिमें गिरादिया ॥ १६ ॥ और एक तीक्ष्ण त्रिशूल
विष्णुजीके हृदयमें महाक्रोधकर होठ फडकते हुए उस दैत्यने प्रहार किया ॥१७॥ विष्णुजीने हँसते हुए उसकी गदाको खड्गसे काट दिया, और दैत्यारिने
शार्ङ्गधनुष चढाकर बडे तीक्ष्ण बाणोंसे उसको विद्ध किया ॥ १८ ॥ उस समय असुरारि विष्णुजीने और भी एक भयंकर तीक्ष्ण बाण लेकर महाक्रोधकर

विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुश्शरान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयन् ॥ १५ ॥ ततो दैत्यस्समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरा
न्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥ १६ ॥ विष्णुं जघान शूलेन तीक्ष्णेन प्रस्फुरद्रुचा ॥ हृदये क्रोधसंयुक्तो दैत्यः
प्रस्फुरिताधरः ॥ १७ ॥ विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तं विव्याध शरैस्तीक्ष्णैश्शार्ङ्गं विस्फूर्य दैत्यहा ॥ १८ ॥ विष्णु
र्जलंधरं दैत्यं भयदेन शरेण ह ॥ क्रोधाविष्टोऽतितीक्ष्णेन जघानाशु सुरारिहा ॥ १९ ॥ आगतं तस्य तं बाणं दृष्ट्वा दैत्यो महाबलः ॥
छित्त्वा बाणेन विष्णुं च जघान हृदये द्रुतम् ॥ २० ॥ केशवोपि महाबाहुं विक्षिप्तमसुरेण तम् ॥ शरं तिलप्रमाणेन च्छित्त्वा वीरो
ननाद ह ॥ २१ ॥ पुनर्बाण समाधत्त धनुषि क्रोधवेपितः ॥ महाबलोऽथ बाणेन चिच्छेद स शिलीमुखम् ॥ २२ ॥ वासुदेवः पुन
र्बाणं नाशाय विबुधद्विषः ॥ क्रोधेनाधत्त धनुषि सिंहवद्विननाद ह ॥ २३ ॥ जलंधरोऽथ दैत्येन्द्रः कोपच्छिन्नाधरो बली ॥ शरेण स्वेन
शार्ङ्गाख्यं धनुश्चिच्छेद वैष्णवम् ॥ २४ ॥

उस जलंधरको मारा ॥ १९ ॥ महाबली दैत्यने उस बाणको आता हुआ देखकर उस बाणको छेदनकर शीघ्रतासे अपने बाणका विष्णुजीके हृदयमें प्रहार
किया ॥ २० ॥ उस समय महाबाहु महावीर केशवने भी उसके छोडे हुए बाणको अपने बाणोंसे तिलकी समान काटकर बडा नाद किया ॥ २१ ॥
फिर क्रोधसे कम्पित होकर उसने दूसरे बाणको चढाया, उसे भी विष्णुजीने काट डाला ॥ २२ ॥ फिर वासुदेवने उस दैत्यके नाश करनेके निमित्त क्रोधकर
धनुषपर बाण चढाकर सिंहनाद किया ॥ २३ ॥ उस समय दैत्येन्द्र जलन्धर भी क्रोधसे अपने होठोंको काटता हुआ अपने बाणसे विष्णुके वैष्णव धनुषको

छेदन कर देता भया ॥ २४ ॥ और फिर तीक्ष्णबाणोंसे मधुसूदनपर प्रहार किया, वह उग्रपराक्रमवाला देवताओंको भय देनेवाला था ॥ २५ ॥ लोकके रक्षा करनेवाले भगवान केशवका जब धनुष छेदित हुआ तब जलंधरके नाशके लिये उन्होंने अपनी गदा ग्रहण की ॥२६॥ जब वह गदा अग्निकी समान प्रकाशमान भगवान्ने उसके ऊपर प्रहार की, वह अमोघ गतिवाली उसके देहमें बडी शीघ्रतासे लगी ॥ २७ ॥ उसके लगनेसे वह महादैत्य कुछ भी चलायमान न हुआ, वह मदोन्मत्त महादैत्य उसको पुष्पमालाकी समान मानता हुआ ॥ २८ ॥ तब युद्धमें दुर्मद जलन्धरने महाक्रोध कर देवताओंको भय

पुनर्बाणैस्सुतीक्ष्णैश्च जघान मधुसूदनम् ॥ उग्रवीर्यो महावीरो देवानां भयकारकः ॥ २५ ॥ स च्छिन्नधन्वा भगवान् केशवो लोकरक्षकः ॥ जलंधरस्य नाशाय चिक्षेप स्वगदां पराम् ॥ २६ ॥ सा गदा हरिणा क्षिप्ता ज्वलज्ज्वलनसन्निभा ॥ अमोघगतिका शीघ्रं तस्य देहे ललाग ह ॥२७॥ तया हतो महादैत्यो न चचालापि किंचन॥ जलंधरो मदोन्मत्तः पुष्पमालाहतो यथा॥२८॥ ततो जलंधरः क्रोधी देवत्रासकरोऽक्षिपत् ॥ त्रिशूलमनलाकारं हरये रणदुर्म्मदः ॥२९॥ अथ विष्णुस्तत्त्रिशूलं चिच्छेद तरसा द्रुतम् ॥ नंदकाख्येन खड्गेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३० ॥ छिन्ने त्रिशूले दैत्येन्द्र उत्प्लुत्य सहसा द्रुतम् ॥ आगत्य हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ ३१ ॥ सोऽपि विष्णुर्महावीरोऽविगणय्य च तद्व्यथाम् ॥ जलंधरं च हृदये जघान दृढमुष्टिना ॥३२॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम् ॥३३॥ एवं हि सुचिरं युद्धं कृत्वा तेनासुरेण वै ॥ विस्मितोऽभून्मुनिश्रेष्ठ हृदि ग्लानिमवाप ह ॥ ३४ ॥

देनेवाला अग्निकी समान एक त्रिशूल हरिके ऊपर प्रहार किया ॥२९॥ तब विष्णुजीने शिवके चरणकमल स्मरणकर नंदकनामक खड्गसे उसके शूलको छेदन कर दिया ॥ ३० ॥ त्रिशूलके छिन्न होतेही बडे क्रोधसे दैत्येन्द्रने झपटकर दृढ मुष्टिसे विष्णुजीके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३१ ॥ महावीर विष्णुजीने भी उस व्यथाको कुछ न गिनकर उसके हृदयमें दृढमुष्टिसे प्रहार किया ॥ ३२ ॥ तब उन दोनों महाबलियोंका बाहुयुद्ध होने लगा बाहु मुष्टि जानुओंके शब्दोंसे पृथिवी शब्दायमान होने लगी ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस असुरके साथ बहुत समयतक युद्ध करके भगवान् बहुत विस्मित हुए, और कुछ परिश्रम

माना ॥ ३४ ॥ तब माया करनेवाले माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् उस दैत्यराजसे मेघ गंभीरवाणीसे बोले ॥ ३५ ॥ विष्णुजी बोले हे रणदुर्मद दैत्यश्रेष्ठ! तुम धन्यहो जो तुम महायुद्धसे तथा श्रेष्ठ आयुधोंसे भी भयको प्राप्त न हुए ॥ ३६ ॥ हमने इन आयुधोंसे बहुतसे दैत्योंका संहार कियाहै, महासंग्राममें इन्हीं आयुधोंसे छिन्न होकर बहुतसे मृत्युको प्राप्त हुएहैं ॥ ३७ ॥ हे दैत्य ! मैं इस तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न हूं, मैंने चराचर त्रिलोकीमें तेरी समान कोई वीर नहीं देखा ॥ ३८ ॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! मैं तेरे विक्रमसे प्रसन्न हुआ हूं, जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग जो तेरे मनमें हो वह अदेय वर भी मैं तुमको दूगां ॥

अथ प्रसन्नो भगवान्मायी मायाविदां वरः ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगंभीरयागिरा ॥ ३५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भोभो दैत्यवरश्रेष्ठ धन्यस्त्वं रणदुर्मदः ॥ महायुधवरैर्यत्त्वं न भीतो हि महाप्रभुः ॥ ३६ ॥ एभिरेवायुधैरुग्रैर्दैत्या हि बहवो हताः ॥ महाजौ दुर्मदा वीराश्छिन्नदेहा मृतिं गताः ॥ ३७ ॥ युद्धेन ते महादैत्य प्रसन्नोऽस्मि महान्भवान् ॥ न दृष्टस्त्वत्समो वीरस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३८ ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विष्णोर्मायाविनो हरेः ॥ प्रत्युवाच महाबुद्धिर्दैत्यराजो जलंधरः ॥ ४० ॥ जलंधर उवाच ॥ यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतन्ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे सगणो वस ॥ ४१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य महादैत्यस्य खिन्नधीः ॥ तथास्त्विति च देवेशो जगाद भगवान् हरिः ॥ ४२ ॥ उवास स ततो विष्णुस्सर्वदेवगणैस्सह ॥ जलंधरं नाम पुरमागत्य रमया सह ॥ ४३ ॥ अथो जलंधरो दैत्यस्स्वभगिन्या च विष्णुना ॥ उवास स्वालयं प्राप्तो हर्षाकुलितमानसः ॥ ४४ ॥

॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार महामायावाले विष्णुजीके यह वचन सुनकर महाबुद्धि दैत्यराज जलंधर बोला ॥ ४० ॥ जलंधर बोला हे भावके ज्ञाता कल्याणमय यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो यह वर दो कि आप मेरी भगिनीके सहित तथा अपने कुटुम्बके सहित मेरे घरमें निवास कीजिये ॥ ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी बोले उस महादैत्यके इस प्रकार वचन सुनकर कुछ खेदित हो देवेश विष्णुजीने ऐसाही होगा यह कहा ॥ ४२ ॥ तब वहां विष्णुजीने सब देवताओं सहित जलन्धरनाम पुरमें लक्ष्मीके सहित जाकर निवास किया ॥ ४३ ॥ तब जलन्धर अपनी बहिन लक्ष्मी और देवताओं सहित

विष्णुजीको वहां आया देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ४४ ॥ और जलंधरने देवताओंके अधिकारमें दानवोंके स्थानपर बडी प्रसन्नतासे फिर पृथिवीमें आगमन किया ॥ ४५ ॥ वह सागरनंदन देवता, गन्धर्व, सिद्ध जनोंके पास जो कुछ रत्न थे लेकर स्थित हुआ ॥ ४६ ॥ महाबली जलन्धर महाबली निशुंभको पातालमें स्थापित करके वहांसे शेषादिको भूतलमें ले आया ॥ ४७ ॥ देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, राक्षस, मनुष्य यह सब अपने पुरमें लाकर तीनों भुवनोंको शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ इस प्रकार जलंधर सब देवताओंको अपने वशमें करके धर्मसे और सुपुत्रोंकी समान प्रजाओंकी पालना करने लगा ॥४९॥

जलंधरोऽथ देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा सहर्षस्सन्पुनरागान्महीतलम् ॥ ४५ ॥ देवगंधर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंचितम् ॥ तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनंदनः ॥ ४६ ॥ पातालभवने दैत्यं निशुंभं सुमहाबलम् ॥ स्थापयित्वा स शेषादीनानयद्भूतलं बली ॥ ४७ ॥ देवगंधर्वसिद्धौघान् सर्पराक्षसमानुषान् ॥ स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥ ४८ ॥ एवं जलंधरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः ॥ धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ४९ ॥ न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा ॥ न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरोपाख्याने विष्णुजलंधरयुद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं शासति धर्मेण महीं तस्मिन्महासुरे ॥ बभूवुर्दुःखिनो देवा भ्रातृभावान्मुनीश्वर ॥ १ ॥ दुःखितास्ते सुरास्सर्वे शिवं शरणमाययुः ॥ मनसा शंकरं देवदेवं सर्वप्रभुं प्रभुम् ॥ २ ॥ तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भगवंतं महेश्वरम् ॥ निवृत्तये स्वदुःखस्य सर्वदं भक्तवत्सलम् ॥ ३ ॥

उसके धर्मराज्यमें रोगी, दुःखी, दुबला और दीन दिखाई नहीं देता था ॥५०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रु०पं०यु० भाषाटीकायां सप्तदशोध्यायः॥ १७॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुनीश्वर ! इस प्रकार उस महाअसुरके धर्मपूर्वक पृथिवी शासन करनेपर भ्रातृभावसे देवता दुःखी हुए ॥ १ ॥ सब वे देवता दुःखी होकर शिवजीकी शरणमें गये, उन देवदेव शंकर प्रभुको मनसेही ध्यान किया ॥ २ ॥ और महेश्वर भगवान्को इष्ट स्तुतियोंसे प्रसन्न करने लगे, अपने

दुःखके निवृत्तिके निमित्त सब मनोरथ देनेवाले भक्तवत्सलको प्रसन्न करने लगे ॥ ३ ॥ भक्तोंके सब कामना देनेवाले महादेवजीने नारदको बुलाकर देवकार्य करनेकी इच्छासे उनको वहां भेजा ॥ ४ ॥ तब देवमुनि ज्ञानी शिवजीके भक्त सत्पुरुषोंकी गति शिवजीकी आज्ञासे देवताओंका हित करनेके निमित्त शिवजीके पुरमें गये ॥ ५ ॥ वे इन्द्रादिक सबही देवता व्याकुल थे, वे नारदमुनिको आताहुआ देखकर शीघ्रतासे उठ खडे हुए ॥ ६ ॥ और प्रणाम कर प्रीतिपूर्वक मुनिको आसन दिया और इन्द्रादिक देवता प्रीतिसे उत्कंठापूर्वक मुनिको देखने लगे ॥ ७ ॥ सुखसे आसनपर बैठे हुए उन मुनिको प्रणाम करके वे इन्द्रादिक

आहूय स महादेवो भक्तानां सर्वकामदः ॥ नारदं प्रेरयामास देवकार्यचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अथ देवमुनिर्ज्ञानी शंभुभक्तस्सतां गतिः ॥ शिवाज्ञया ययौ दैत्यपुरे देवान्स नारदः ॥ ५ ॥ व्याकुलास्ते सुरास्सर्वे वासवाद्या द्रुतं मुनिम् ॥ आगच्छंतं समालोक्य समुत्तस्थुर्हि नारदम् ॥ ६ ॥ ददुस्त आसनं नत्वा मुनये प्रीतिपूर्वकम् ॥ नारदाय सुराश्शक्रमुखा उत्कंठिताननाः ॥ ७ ॥ सुखासीनं मुनिवरमासने सुप्रणम्य तम् ॥ पुनः प्रोचुस्सुरा दीना वासवाद्या मुनीश्वरम् ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः ॥ भोभो मुनिवरश्रेष्ठ दुःखं शृणु कृपाकर ॥ श्रुत्वा तन्नाशय क्षिप्रं प्रभुस्त्वं शंकरप्रियः ॥ ९ ॥ जलंधरेण दैत्येन सुरा विद्राविता भृशम् ॥ स्वस्थानाद्भर्तृभावाच्च दुःखिता वयमाकुलाः ॥ १० ॥ स्वस्थानादुष्णरश्मिश्च चन्द्रो निस्सारितस्तथा ॥ वह्निश्च धर्मराजश्च लोकपालास्तथेतरे ॥ ११ ॥ सुबलिष्ठेन वै तेन सर्वे देवाः प्रपीडिताः ॥ दुःखं प्राप्ता वयं चातिशरणं त्वां समागताः ॥ १२ ॥ संग्रामे स हृषीकेशं स्ववशं कृतवान् बली ॥ जलंधरो महादैत्यः सर्वामरविमर्दकः ॥ १३ ॥

दीन होकर नारदजीसे पूछने लगे ॥ ८ ॥ देवता बोले हे मुनिश्रेष्ठ ! आप कृपाकर हमारे दुःख सुनिये तुम शंकरके प्रियहो सुनकर हमारे दुःख नाश करो ॥ ९ ॥ जलंधर दैत्यने देवताओंको बडा कष्ट दिया है, वह हमारा स्वामी बनाहै हम अपने स्थानसे तथा अधिकारसे भ्रष्ट हुएहैं, इससे दुःखी और व्याकुल हैं ॥ १० ॥ उसने उनके स्थानोंसे सूर्य, चंद्र, अग्नि, लोकपाल, और धर्मराजको निकाल दियाहै, तथा दूसरे लोकपालोंकी भी यही दशा की है ॥ ११ ॥ उस महाबलीने सब देवताओंको पीडित कियाहै हम बडे दुःखी होकर आपकी शरणको प्रात हुएहैं ॥ १२ ॥ उस महाबली महादैत्य सब

देवताओंके मर्दन करनेवाले जलंधरने सब देवताओंको अपने वशमें करके भगवान् विष्णुको भी वशीभूत करलिया है ॥ १३ ॥ वरके कारण भगवान् उसके वशीभूत होकर उसके घर निवास करतेहैं जो हमारा स्वार्थ सिद्ध करनेवाले थे वह विष्णु लक्ष्मीके सहित उसीके घर निवासकरतेहैं ॥ १४ ॥ हे महामतिवाले ! आप जलंधरके विनाशके निमित्त यत्न कीजिये, हमारे सब कार्य सिद्ध करनेको आप दैववशसे प्राप्त हुए हो ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले वह नारदजी इस प्रकारसे उन देवताओंके वचन सुनकर कृपाकर उन देवताओंको समझाते हुए बोले ॥ १६ ॥ नारदजी बोले हे देवताओं ! मैं जानताहूं तुम दैत्यराजसे

तस्य वश्यो वराधीनोऽवात्सीत्तत्सदने हरिः ॥ सलक्ष्म्या सहितो विष्णुर्यो नस्सर्वार्थसाधकः ॥ १४ ॥ जलंधरविनाशाय यत्नं कुरु महामते ॥ त्वं नो दैववशात्प्राप्तस्सदा सर्वार्थसाधकः ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषाममराणां स नारदः ॥ आश्वास्य मुनिशार्दूलस्तानुवाच कृपाकरः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ जानेऽहं वै सुरा यूयं दैत्यराजपराजिताः ॥ दुःखं प्राप्ताः पीडिताश्च स्थानान्निस्सारिताः खलु ॥ १७ ॥ स्वशक्त्या भवतां स्वार्थं करिष्ये नात्र संशयः ॥ अनुकूलोऽहमिह वो दुःखं प्राप्ता यतोऽमराः ॥ १८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ द्रष्टुं दानववल्लभम् ॥ आश्वास्य सकलान्देवाञ्जलंधरसभां ययौ ॥ १९ ॥ अथागतं मुनिश्रेष्ठं दृष्ट्वा देवो जलंधरः ॥ उत्थाय परया भक्त्या ददौ श्रेष्ठासनं वरम् ॥ २० ॥ स तं संपूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिविस्मितः ॥ सुप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद मुनिसत्तमम् ॥ २१ ॥ जलंधर उवाच ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन्किं च दृष्टं त्वया क्वचित् ॥ यदर्थमिह आयातस्तदाज्ञापय मां मुने ॥ २२ ॥

पराजित हुएहो, तुम दुःखी पीडित और अपने स्थानसे निकले हुए हो ॥ १७ ॥ इसमें संदेह नहीं मैं अपनी शक्तिसे तुम्हारा कार्य करूंगा, तुमने बडा दुःख पायाहै मैं आपके अनुकूल हूं ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी बोले मुनिश्रेष्ठने यह कहकर इस दानवोंके प्रियके निकट जानेकी इच्छा की, और सब देवताओंको समझाकर जलंधरकी सभामें गये ॥ १९ ॥ जलंधरने देवर्षि नारदजीको देखतेही परमभक्तिसे उठकर मुनिश्रेष्ठको आसन दिया ॥ २० ॥ उनको विधिपूर्वक पूजकर दानवराज बडे विस्मयको प्राप्त हो हँसताहुआ मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे बोला ॥ २१ ॥ जलंधर बोला—हे ब्रह्मन् ! आप कहांसे आयेहो, कहिये कहीं

आपने कुछ देखा, हे मुनिराज ! आप जिस निमित्त यहां आये हो सो आज्ञा दीजिये ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार उस दैत्येन्द्रके वचन सुनकर
वह महामुनि नारदजी प्रसन्न होकर जलंधरसे बोले ॥ २३ ॥ नारदजी बोले हे सब दानव ! और दैत्योंके अधिपति महाबुद्धिमान् जलंधर ! तुम धन्य हो,
हे सब लोकोंके अधिपति ! रत्नोंके भोक्ता तुमहीं हो ॥ २४ ॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! आप मेरे आगमनका कारण सुनो, जिस निमित्त मैं यहां आया हूं वह मैं सब
कहताहूं ॥ २५ ॥ हे दैत्यराज ! मैं अपनी इच्छासेही कैलास पर्वतपर गयाथा जहां दश सहस्र योजनोंमें कल्पवृक्षका वन है ॥ २६ ॥ वहां सैकडों

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रस्य महामुनिः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदो हि जलंधरम् ॥ २३ ॥ ॥ नारद
उवाच ॥ सर्वदानवदैत्येन्द्र जलंधर महामते ॥ धन्यस्त्वं सर्वलोकेश रत्नभोक्ता त्वमेव हि ॥ २४ ॥ मदागमनहेतुं वै शृणु दैत्येन्द्रस
त्तम ॥ यदर्थमिह चायातस्त्वहं वक्ष्येखिलं हि तत् ॥ २५ ॥ गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया ॥ योजनायुतविस्तीर्णं कल्प
द्रुममहावनम् ॥ २६ ॥ कामधेनुशताकीर्णं चिंतामणिसुदीपितम् ॥ सर्वरुक्ममयं दिव्यं सर्वत्राद्भुतशोभितम् ॥ २७ ॥ तत्रोमया
सहासीनं दृष्टवानस्मि शंकरम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं गौरं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥२८॥ तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा ॥ क्कापीदृशी
भवेद्वृद्धिस्त्रैलोक्ये वा नवेति च ॥ २९ ॥ तावत्तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिस्संस्मृता मया ॥ तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सांनिध्यमिहागतः
॥ ३० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति नारदतः श्रुत्वा स दैत्येन्द्रो जलंधरः ॥ स्वसमृद्धिं समग्रां वै दर्शयामास सादरम् ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा
स नारदो ज्ञानी देवकार्यसुसाधकः ॥ प्रभुप्रेरणया प्राह दैत्येन्द्रं तं जलंधरम् ॥ ३२ ॥

कामधेनु हैं वह चिन्तामणिसे प्रकाशमान है, जो सब ओर सुवर्णमय परमदिव्य और सब प्रकारसे अद्भुत शोभावाला है ॥ २७ ॥ मैंने वहां पार्वतीके साथ
स्थित हुए शंकरको देखा, जो सर्वांगसे सुन्दर गौरवर्ण त्रिनेत्र माथेपर चन्द्रमाको धारण कियेहैं ॥ २८ ॥ यह देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ कहीं
त्रिलोकीमें ऐसी समृद्धि है वा नहीं ॥ २९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! उसी समय मुझे तुम्हारी समृद्धिका स्मरण हुआ, उसके देखनेकी इच्छासे मैं तुम्हारे यहां आया
हूं ॥ ३० ॥ सनत्कुमारजी बोले दैत्यपति जलन्धरने यह बात नारदजीसे सुनकर आदरसे अपनी सब समृद्धि दिखाई ॥ ३१ ॥ ज्ञानी नारदजीने वह

सब देखकर देवकार्य साधन करनेकी इच्छासे तथा प्रभु शंकरकी प्रेरणासे जलंधरसे कहा ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले हे वीर ! इसमें सन्देहं नहीं कि तुम्हारी बडी समृद्धि है तुम त्रिलोकके पति हो, ऐसा होना कोई विचित्र बात नहीं है ॥ ३३ ॥ मणि रत्नोंके ढेर, हाथी, घोडे, समृद्ध और सब प्रकारके रत्न तुम्हारे घरमें शोभा पाते हैं ॥ ३४ ॥ इन्द्रसे तो आप हाथियोंमें श्रेष्ठ ऐरावत ले आये हैं, हे महावीर ! अश्वरत्न सूर्यका उच्चैःश्रवा घोडा तुम्हारे पास है ॥ ३५ ॥ कल्पवृक्ष और कुबेरकी निधि तुम्हारे यहां विद्यमान हैं, ब्रह्माजीका तुम हंसयुक्त विमान ले आये हो ॥ ३६ ॥ हे दैत्यराज ! इस प्रकार

नारद उवाच ॥ तवास्ति सुसमृद्धिर्हि वरवीर खिलाधुना ॥ त्रैलोक्यस्य पतिस्त्वं हि चित्रं किं चात्र संभवम् ॥ ३३ ॥ मणयो रत्नपुं
जाश्च गजाद्याश्च समृद्धयः ॥ ते गृहेऽद्य विभांतीह यानि रत्नानि तान्यपि ॥ ३४ ॥ गजरत्नं त्वयानीतं शक्रस्यैरावतस्तथा ॥ अश्वरत्नं
महावीर सूर्यस्योच्चैःश्रवा हयः ॥३५॥ कल्पवृक्षस्त्वयानीतो निधयो धनदस्य च ॥ हंसयुक्तविमानं च त्वयानीतं हि वेधसः ॥ ३६ ॥
इत्येवं वररत्नानि दिवि पृथ्व्यां रसातले ॥ यानि दैत्येन्द्र ते भांति गृहे तानि समस्ततः ॥ ३७ ॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्सम्पूर्णां
विविधामहम् ॥ प्रसन्नोऽस्मि महावीर गजाश्वादिसुशोभिताम् ॥ ३८ ॥ जायारत्नं महाश्रेष्ठं जलंधर न ते गृहे ॥ तदानेतुं विशेषेण
स्त्रीरत्नं वै त्वमर्हसि ॥ ३९ ॥ यस्य गेहे सुरत्नानि सर्वाणि हि जलंधर ॥ जायारत्नं न चेत्तानि न शोभंते वृथा ध्रुवम् ॥ ४० ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः ॥ उवाच दैत्यराजो हि मदनाकुलमानसः ॥ ४१ ॥ जलंधर उवाच ॥
भोभो नारद देवर्षे नमस्तेस्तु महाप्रभो ॥ जायारत्नवरं कुत्र वर्तते तद्वदाधुना ॥ ४२ ॥

जो दिव्यरत्न द्युलोक, पृथिवी और पातालमें हैं, हे दैत्यराज ! वे सब तुम्हारे घर विद्यमानहैं ॥ ३७ ॥ मैं अनेकप्रकारके सम्पूर्ण इस तुम्हारे ऐश्वर्यको देखकर जो कि गज अश्वादिसे शोभित है बडा प्रसन्न हूं ॥ ३८ ॥ परन्तु हे जलन्धर ! तुम्हारे यहां कोई स्त्रीरत्न नहीं है, इस कारण तुमको स्त्रीरत्न ग्रहण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे जलंधर ! जिसके यहां सम्पूर्ण रत्नहों और स्त्रीरत्न न हो तो उनकी शोभा नहीं होती, और सब व्यर्थ विदित होतेहैं ॥४०॥ सनत्कुमार बोले महात्मा नारदजीके इस प्रकारके वचन सुनकर कामसे व्याकुल हो दैत्यराज बोला ॥४१॥ जलन्धर बोला, हे देवर्षिनारद ! हे महाप्रभो !

आपको नमस्कार है, यह आप कहिये इस समय श्रेष्ठ जायारत्न कहां है ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माण्डमें या जहां कहीं वह होगा मैं सत्यसत्य कहताहूं उसको तुम्हारे वचनसे ले आऊंगा ॥४३॥ नारदजी बोले अतिपवित्र सब समृद्धिसम्पन्न कैलासपर्वतमें योगीका रूप धारण कियेहुए दिगम्बर शंकर विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ उनकी भार्या बडी मनोहर सब लक्षणोंसे लक्षित है, यह सर्वांगसुन्दरी पार्वती बहुतही मनोहर है ॥ ४५ ॥ इस प्रकारका दूसरेमें न होनेवाला रूप मैंने कहीं नहीं देखा, वह कुतूहलसे भराहुआ महायोगियोंकोभी अत्यन्त मोहनेवाला दर्शनयोग्य परमऋद्धिका करनेवाला रूप है ॥ ४६ ॥ यह बात मैं

ब्रह्मांडे यत्र कुत्रापि तद्रत्नं यदि वर्त्तते ॥ तदानेष्ये ततो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४३ ॥ नारद उवाच ॥ कैलासे ह्यतिरम्ये च सर्वर्द्धिसुसमाकुले ॥ योगिरूपधरश्शंभुरस्ति तत्र दिगम्बरः ॥ ४४ ॥ तस्य भार्या सुरम्या हि सर्वलक्षणलक्षिता ॥ सर्वांगसुन्दरी नाम्ना पार्वतीति मनोहरा ॥ ४५ ॥ तदीदृशं रूपमनन्यसंगतं दृष्टं न कुत्रापि कुतूहलाढ्यम् ॥ अत्यद्भुतं मोहनकृत्सुयोगिनां सुदर्शनीयं परमर्द्धिकारि ॥ ४६ ॥ स्वचित्ते कल्पयाम्यद्य शिवादन्यस्समृद्धिमान् ॥ जायारत्नान्विताद्वीर त्रिलोक्यां न जलंधर ॥ ४७ ॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः ॥ स्वधैर्य्यं मुमुचे पूर्वं तया कान्योपमीयते ॥ ४८ ॥ गतरागोऽपि हि यया मदनारिस्स्वलीलया ॥ निजतंत्रोऽपि हि यतस्स स्वात्मवशगः कृतः ॥ ४९ ॥ यथा स्त्रीरत्नसंभोकुस्समृद्धिस्तस्य साभवत् ॥ तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥ ५० ॥

अपने मनमेंही कल्पित करता हूं, कि शिवजीके पासही जायारत्न है, उनसे अधिक समृद्धिमान् कोई नहीं है, हे जलन्धर ! इस बातमें वह त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं ॥ ४७ ॥ जिसकी सुंदरताके सागरमें ब्रह्माजी निमग्न होगयेथे और उनका धैर्य जातारहा, उसके साथ किसकी उपमा होसकती है ॥४८॥ जिसने कामके शत्रु परमविरक्त आत्माराम शंकरकोभी लीलासेही अपने वशमें कर रक्खा है ॥ ४९ ॥ हे दैत्यपति ! स्त्रीरत्नभोगकी समृद्धि जैसी उनकी है, वैसी आपकी

नहीं, यद्यपि आपकेपास सब रत्न हैं ॥ ५० ॥ सनत्कुमार बोले, इस प्रकारसे लोकमें विख्यात देवर्षि नारदजी उस दैत्यसे कहकर देवकार्य करनेंकी इच्छासे आकाशमार्गसे चलेगये ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहा पुराणे द्वि० रु० पं० यु० भाषाटीकायां देवर्षिजलंधरसम्वादोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! जब नारदजी द्युलोकको चलेगये तब दैत्यराजने क्या किया, सो विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब उस दैत्यराजसे पूँछकर नारदजी चलेगये तब जलन्धर भगवतीका रूप स्मरण कर कामज्वरसे पीडित होने लगा ॥ २ ॥ तब उस जलन्धरने कालके आधीन होनेसे

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदो लोकविश्रुतः ॥ ययौ विहायसा देवोपकारकरणोद्यतः ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवर्षिजलंधरसंवादो नामाष्टदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ नारदे हि गते दिवि ॥ दैत्यराट् किमकार्षीत्स तन्मे वद सुविस्तरात् ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तमामंत्र्य गते दैत्यं नारदे दिवि दैत्यराट् ॥ तद्रूपश्रवणादासीदनंगज्वरपीडितः ॥ २ ॥ अथो जलंधरो दैत्यः कालाधीनः प्रनष्टधीः ॥ दूतमाह्वायामास सैंहिकेयं विमोहितः ॥ ३ ॥ आगतं तं समालोक्य कामाक्रांतमनास्स हि ॥ सुसंबोध्य समाचष्ट सिंधुपुत्रो जलंधरः ॥ ४ ॥ जलंधर उवाच ॥ भोभो दूतवरश्रेष्ठ सर्वकार्यप्रसाधक ॥ सैंहिकेय महाप्राज्ञ कैलासं गच्छ पर्वतम् ॥ ५ ॥ तत्रास्ति योगी शंभ्वाख्यस्तपस्वी च जटाधरः ॥ भस्मभूषितसर्वाङ्गो विरक्तो विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ तत्र गत्वेति वक्तव्यं योगिनं दूत शंकरम् ॥ जटाधरं विरक्तं तं निर्भयेन हृदा त्वया ॥ ७ ॥ हे योगिंस्ते दयासन्धिो जायारत्नेन किं भवेत् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिसेवितेन वनौकसा ॥ ८ ॥

नष्टबुद्धि होकर सैंहिकेयनामक दूतको बुलाया, उस समय दैत्यपति बडा मोहित था ॥ ३ ॥ उस दूतको आयाहुआ देखकर कामसे व्याकुलमन हो सागरपुत्र जलंधर उससे कहने लगा ॥ ४ ॥ जलंधर बोला हे दूतोंमें श्रेष्ठ ! हे सब कार्यके सिद्ध करनेवाले ! हे महापंडित ! सिंहिकापुत्र ! तू कैलासपर्वतको जा ॥ ५ ॥ वहां एक जटाधारी शंभुनामक योगी रहता है, सर्वांगमें भस्म लगाये परमविरक्त और जितेन्द्रिय है ॥ ६ ॥ हे दूत ! उस जटाधारी परमविरक्त योगीके पास जाकर निर्भय हो तुमने यह वचन कहना ॥ ७ ॥ हे योगिराज ! हे दयासागर ! जब कि, तुम वनमें रहतेहो और भूत प्रेतादि तुम्हारी सेवा करते हैं तो

तुम्हारा स्त्रीरत्नसे क्या प्रयोजन है ॥ ८ ॥ हे योगिराज ! जब कि, भुवनपति हमारे स्वामी विद्यमान हैं तो तुमको ऐसा करना उचित नहीं है, इस कारण
तुम इस जायारत्नको हमें दो, कारण कि रत्नभोगी हम हैं ॥ ९ ॥ त्रिलोकीमें जितने रत्न हैं सब मेरे यहां विद्यमान हैं, चर अचर सब जगत्को तुम मेरे
आधीन जानो ॥ १० ॥ इन्द्रका ऐरावत, उच्चैःश्रवा घोडा श्रेष्ठरत्न, और पारिजातवृक्ष यह मैंने बलपूर्वक हरण करलिया है ॥ ११ ॥ मेरे आंगनमें
ब्रह्माजीका हंसयुक्त विमान विद्यमान है, यह महादिव्य और परम अद्भुत है ॥ १२ ॥ महापद्म और दिव्य निधिरत्न कुबेरसे ले आयाहूं, और वरुणका

मन्नाथे भुवने योगिन्नोचिता गतिरीदृशी ॥ जायारत्नमतस्त्वं मे देहि रत्नभुजे निजम् ॥ ९ ॥ यानियानि सुरत्नानि त्रैलोक्ये तानि
संति मे ॥ मदधीनं जगत्सर्वं विद्धि त्वं सचराचरम् ॥ १० ॥ इन्द्रस्य गजरत्नं चोच्चैःश्रवोरत्नमुत्तमम् ॥ बलाद्गृहीतं सहसा पारिजा
तस्तरुस्तथा ॥ ११ ॥ विमानं हंससंयुक्तमंगणे मम तिष्ठति ॥ रत्नभूतं महादिव्यमुत्तमं वेधसोद्भुतम् ॥ १२ ॥ महापद्मादिकं दिव्यं नि
धिरत्नं स्वदस्य च ॥ छत्रं मे वारुणं गेहे कांचनस्राविं तिष्ठति ॥ १३ ॥ किञ्जल्किनी महामाला सर्वदाऽम्लानपंकजा ॥ मत्पितुस्सा
ममैवास्ति पाशश्च कपतेस्तथा ॥ १४ ॥ मृत्योरुत्क्रांतिदा शक्तिर्मया नीता बलाद्धरा ॥ ददौ मह्यं शुचिर्दिव्ये शुचिशौचे च वाससी
॥ १५ ॥ एवं योगीन्द्र रत्नानि सर्वाणि विलसंति मे ॥ अतस्त्वमपि मे देहि स्वस्त्रीरत्नं जटाधर ॥ १६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य नन्दिना स प्रवेशितः ॥ जगामोग्रसभां राहुर्विस्मयोद्धुतलोचनः ॥ १७ ॥

सुवर्ण वर्षानेवाला छत्र मेरे यहां विद्यमान है ॥ १३ ॥ किंजल्किनी नाम महामाला जिसके कमल कभी मलीन नहीं होते वह मेरे पिताके यहांकी माला
तथा वरुणका पाशभी मेरे यहां विद्यमान है ॥ १४ ॥ मैंने बलसे मृत्युकी उत्क्रांति देनेवाली शक्ति हरणकरली है और उसने मुझे कभी मैले न होनेवाले दो
वस्त्र दिये हैं ॥ १५ ॥ हे योगीन्द्र ! इस प्रकारसे मेरे यहां सम्पूर्णही रत्न विद्यमान हैं, हे जटाधारी ! इस कारण तुमभी अपनी स्त्रीरत्नको मेरे निमित्त प्रदान
करो ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले यह वचन सुनकर दूत चला, नंदीने उसको भीतर सभामें जाने दिया, वह राहु विस्मयसे युक्तहो उस उग्र सभामें

गया ॥ १७ ॥ वहां जाकर अपने तेजसेही समस्त अंधकारके दूर करनेवाले शरीरमें भस्म लगाये साक्षात् देवदेव महाप्रभु शंकरको देखा ॥१८॥ जिनक महाराजोंकी समान सेवन हो रहाथा, ऐसे महाप्रभु सम्पूर्ण अंगोंसे सुन्दर दिव्यभूषणोंसे शोभायमान साक्षात् हरको देखकर ॥ १९ ॥ तेजसे विक्रान्त गर्वित होकर वह राहुसंज्ञक दूत शिवजीके समीप गया ॥ २० ॥ तब शिवजीके आगे स्थित होकर जब कुछ कहनेकी इच्छा करने लगा, तब शिवजीकी इंगित पाकर इस प्रकार कहने लगा ॥ २१ ॥ राहु बोला दैत्य और सर्पोंसे सेवित त्रिलोकीके पति जलन्धरने मुझ दूतको भेजा है मैं आपके पास आया हूं

तत्र गत्वा शिवं साक्षाद्देवदेवं महाप्रभुम् ॥ स्वतेजोध्वस्ततमसं भस्मलेपविराजितम् ॥ १८ ॥ महाराजोपचारेण विलसंतं महाद्भुतम् ॥
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यभूषणैर्भूषितं हरम् ॥ १९ ॥ प्रणनाम च तं गर्वात्तत्तेजः क्रांतविग्रहः ॥ निकटं गतवाञ्छंभोस्स दूतो राहुसंज्ञकः
॥ २० ॥ अथो तदग्र आसीनो वक्तुकामो हि सैंहिकः ॥ त्र्यंबकं स तदा संज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ दैत्यपन्नगसेव्यस्य
त्रैलोक्याधिपतेस्सदा ॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ २२ ॥ ॥ राहुरुवाच ॥ जलंधरोब्धितनयस्सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥
त्रैलोक्यस्येश्वरस्सोथाभवत्सर्वाधिनायकः ॥ २३ ॥ स दैत्यराजो बलवान्देवानामंतकोपमः ॥ योगिनं त्वा समुद्दिश्य स यदाह
शृणुष्व तत् ॥ २४ ॥ महादिव्यप्रभावस्य तस्य दैत्यपतेः प्रभोः ॥ सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ॥ २५ ॥ श्मशानवासिनो
नित्यमस्थिमालाधरस्य च ॥ दिगंबरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥ २६ ॥ अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिता ॥
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ जलंधर सागरका पुत्र सब दैत्योंका अधिपतिहै, तथा त्रिलोकीका ईश्वर और सबका नायकहै ॥ २३ ॥ वह बलवान् दैत्यराज देवताओंको कालकी समान है तुम योगीको सम्बोधनकर जो उसने कहा है वह सुनो ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! उस दैत्यराजका महाप्रभाव है, हे वृषभध्वज ! उस सब रत्नोंके ईश्वरकी आप आज्ञा सुनिये ॥२५॥ तुम नित्य श्मशानमें निवास करतेहो तुम नित्य अस्थियोंकी माला धारण करतेहो तुम दिगम्बरहो ऐसी सुन्दर पार्वती हिमालयकी कन्याको तुम क्यों अपने पास रखते हो ॥ २६ ॥ मैं रत्नोंका अधिपति हूं और वह स्त्री रत्नसंज्ञक है इस कारण वह मेरे योग्य है तुम

भिक्षावृत्ति करनेवालेके योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ तीनों लोक मेरे वशमें हैं यज्ञोंका भाग मैं भोगता हूं जो त्रिलोकीमें रत्नहैं सो सब मेरे स्थानमें हैं ॥ २८ ॥ हम रत्नभोगी हैं और तुम भिक्षा मांगनेवाले दिगम्बर योगीहो वह स्त्रीरत्न मुझे देदो प्रजा राजाको सुख करनेवाली होती है ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले राहुके ऐसा कहतेही भगवान् शूलपाणिके भ्रूमध्यसे वज्रकी समान भयंकर शब्दवाला एक पुरुष प्रगट हुआ ॥ ३० ॥ सिंहकी समान मुख चलायमान जिह्वा प्रज्वलित महान्नेत्र ऊर्ध्वकेश सूखा शरीर मानो दूसरा नृसिंहही है ॥ ३१ ॥ महाशरीर, महाबाहु, तालकी समान जंघावाला, बडा भयंकर वह पुरुष

मम वश्यास्त्रयो लोका भुंजेऽहं मखभागकान् ॥ यानि संति त्रिलोकेस्मिन्रत्नानि मम सद्मनि ॥ २८ ॥ वयं रत्नभुजस्त्वं तु योगी खलु दिगम्बरः ॥ स्वस्त्रीरत्नं देहि मह्यं राज्ञस्सुखकराः प्रजाः ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वदत्येवं तथा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः ॥ अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ ३० ॥ सिंहास्यप्रचलज्जिह्वस्सज्वालनयनो महान् ॥ उर्द्ध्वकेशश्शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः ॥ ३१ ॥ महातनुर्महाबाहुस्तालजंघो भयंकरः ॥ अभिदुद्राव वेगेन राहुं स पुरुषो द्रुतम् ॥ ३२ ॥ स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः ॥ अधावदात वेगेन बहिस्स च दधार तम् ॥ ३३ ॥ राहुरुवाच ॥ देवदेव महेशान पाहि मां शरणागतम् ॥ सुराऽसुरैस्सदा वन्द्यः परमैश्वर्यवान् प्रभुः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः ॥ पुरुषोयं तवेशान सेवकोतिभयंकरः ॥ ३५ ॥ एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सल ॥ न खादेत यथायं मां नमस्तेऽस्तु मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदा मुने ॥ अब्रवीत्स्वगणं तं वै दीनानाथप्रियः प्रभुः ॥ ३७ ॥

बडी शीघ्रतासे राहुके ऊपर दौडा ॥ ३२ ॥ उसको खानेको आताहुआ देखकर बडे भयसे राहु वहांसे भागा पर उस पुरुषने उसको पकड लिया ॥ ३३ ॥ राहु बोला हे देवदेव ! महेशान ! मुझ शरणमें आयेकी रक्षा करो आप प्रभु सुर असुर सबके प्रणाम करने योग्यहो ॥ ३४ ॥ हे महादेव ! आप देखैं कि यह मुझ ब्राह्मणको खानेको आता है हे देव ! यह आपका सेवक बडा भयंकरहै ॥ ३५ ॥ हे शरणागतवत्सल ! इस कारण आप मेरी रक्षा कीजिये, हे देवदेव ! ऐसा कीजिये कि जिस प्रकारसे यह मुझे न खाय ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार बोले हे मुने ! इस प्रकारसे उस ब्राह्मणके वचन सुनकर दीनानाथ परमप्रभुने

अपने उस गणसे कहा ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले हे गण श्रेष्ठ ! यह राहूनामक दूत ब्राह्मण है प्रभु है शरणमें आया है इस कारण इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३८॥ सनत्कुमारजी बोले जब शिवजीने ऐसा कहा तब ब्राह्मण शब्द सुनकर करुणासे उस गणने राहुको छोडदिया ॥३९॥ जब उस पुरुषने आकाशमें राहुको त्यागदिया तब वह पुरुष महादेवजीके समीप आकर बडी दीनतासे कहने लगा ॥ ४० ॥ पुरुष बोला हे देवदेव महादेव ! हे करुणाकर शंकर ! हे शरणागतवत्सल ! आपने मेरा भक्ष्य त्यागन करा दिया ॥ ४१ ॥ हे स्वामी ! मुझे क्षुधा बाधा देती है मैं सर्वथा भूखसे व्याकुल हूं हे प्रभो !

महादेव उवाच ॥ प्रभुं च ब्राह्मणं दूतं राह्वाख्यं शरणागतम् ॥ शरण्या रक्षणीया हि न दण्ड्या गणसत्तम ॥३८॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तौ गिरिजेशेन सगणः करुणात्मना ॥ राहुं तत्याज सहसा ब्राह्मणेति श्रुताक्षरः ॥ ३९ ॥ राहुं त्यक्त्वाम्बरे सोथ पुरुषो दीनया गिरा ॥ शिवोपकंठमागत्य महादेवं व्यजिज्ञपत् ॥ ४० ॥ पुरुष उवाच ॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ त्याजितं मम भक्ष्यं ते शरणागतवत्सलः ॥ ४१ ॥ क्षुधा मां बाधते स्वामिन्क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा ॥ किं भक्ष्यं मम देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ ४२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुरुषस्य महाप्रभुः ॥ प्रत्युवाचाद्भुतोतिः स कौतुकी स्वहितंकरः ॥ ४३ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ बुभुक्षा यदि तेऽतीव क्षुधा त्वां बाधते यदि ॥ संभक्षयात्मनश्शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ ४४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषस्स्वकम् ॥ हस्तपादोद्भवं मांसं शिरश्शेषोऽभवद्यथा ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा शिरोवशेषं तु सुप्रसन्नस्सदाशिवः ॥ पुरुषं भीमकर्माणं तमुवाच सविस्मयः ॥ ४६ ॥

मेरा भक्ष्य क्या है सो आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी बोले महाप्रभु इस प्रकारसे उस पुरुषके वचन सुन महाकौतुकके वशीभूतहो हितकारी वचन कहने लगे ॥ ४३ ॥ महेश्वर बोले हे पुरुष ! यदि तुझको विशेष भूख बाधा देती है तो तू शीघ्रही अपने हाथपैरोंका मांस भक्षण करले ॥ ४४ ॥ सनत्कुमार बोले शिवजीकी आज्ञासे शीघ्रही वह पुरुष अपने हाथ पैरोंका मांस भक्षण करगया केवल उसका शिरमात्र शेष रहगया ॥ ४५ ॥ शिरमात्र शेष

देखकर शिवजी प्रसन्न हुए और विस्मयपूर्वक उस भीमकर्मा पुरुषसे बोले ॥ ४६ ॥ शिवजी बोले हे महागण ! मेरी आज्ञा पालन करनेवाले तुम धन्यहो
हे सत्तम ! तेरे इस कर्मसे मैं बडा प्रसन्नहूं ॥ ४७ ॥ तू कीर्तिमुख नामवाला मेरा द्वारपाल होगा तू महागण महावीर सब दुष्टोंको भय देनेवाला होगा ॥
॥ ४८ ॥ तू मेरा प्रिय होगा और मेरी पूजाके समय मेरे गण सदा तेरी पूजा करैंगे जो तेरी पूजा न करैंगे वे मेरे प्रिय न होंगे ॥ ४९ ॥ सनत्कुमारजी बोले
शिवजीसे यह वर पाकर वह पुरुष बहुत प्रसन्न हुआ उस दिनसे शिवजीके द्वारेपर कीर्तिमुख स्थित रहने लगा ॥ ५० ॥ शिवके पूजनके समय इस गणकी

शिव उवाच ॥ हे महागण धन्यस्त्वं मदाज्ञाप्रतिपालकः ॥ संतुष्टश्चास्मि तेऽतीव कर्मणानेन सत्तम ॥ ४७ ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो
हि भव मद्वारकस्सदा ॥ महागणो महावीरस्सर्वदुष्टभयंकरः ॥ ४८ ॥ मत्प्रियस्त्वं मदर्चायां सदा पूज्योऽहि मज्जनैः ॥ त्वदर्चां ये न
कुर्वंति नैव ते मत्प्रियंकराः ॥ ४९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति शंभोर्वरं प्राप्य पुरुषः प्रजहर्ष सः ॥ तदाप्रभृति देवेशद्वारे कीर्ति
मुखः स्थितः ॥ ५० ॥ पूजनीयो विशेषेण स गणश्शिवपूजने ॥ नार्चयंतीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवम
हापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरवधोपाख्याने दूतसंवादो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ व्यास उवाच ॥
सनत्कुमार सर्वज्ञ कथा ते श्राविताद्भुता ॥ महाप्रभोश्शंकरस्य यत्र लीला च पावनी ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या कृपां कृत्वा ममो
परि ॥ राहुर्मुक्तः कुत्र गतः पुरुषेण महामुने ॥२॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितमेधसः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्म
पुत्रो महामुनिः ॥३॥ सनत्कुमार उवाच ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोपि तद्बर्वरस्थले ॥ अतस्स वर्वरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ४ ॥

विशेष रूपसे पूजाकरनी चाहिये जो इस गणकी पूजा नहीं करते उनकी पूजा वृथा होजाती है ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापु० द्वि० रु० पं० यु०भाषाटीकायां
एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ व्यासजी बोले हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने अद्भुत कथा सुनाई जिसमें पवित्र करनेवाली महाप्रभु शंकरकी कथा है ॥ १ ॥
हे मुने ! इस समय मेरे ऊपर कृपा करके परमप्रेमसे यह कहिये कि उस समय राहु उस पुरुषसे छूटकर कहां गया ॥ २ ॥ सूतजी बोले अमित तेजस्वी
व्यासजीके यह वचन सुनकर महामुनि ब्रह्माजीके पुत्र प्रसन्नहोकर बोले ॥३॥ सनत्कुमारजी बोले जब उस पुरुषसे राहु वर्वरस्थानमें छूटा तो वह वर्वरनामसे

भूमिमें विख्यात हुआ ॥ ४ ॥ तब वह छुटकारा पाकर और अपना नया जन्म मानकर गर्वरहितहो शनैः २ जलंधरके स्थानमें गया ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! उसने दैत्येश्वरके स्थानमें जाकर शंकरकी सब चेष्टा विस्तारपूर्वक दैत्येश्वरके निकट निवेदन की ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले यह बात सुनतेही जलंधर महाक्रोधित हुआ वह दैत्येन्द्र सागरपुत्र महाबली महाक्रोधकर ॥७॥ और क्रोधके वशीभूत होकर सब सेनाको सज्जित करनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ८ ॥ जलंधर बोला कालनेमि आदिक सब दैत्य युद्धके लिये तयारहों इसी प्रकार शुंभ निशुंभको आदि लेकर सब वीर तयार हों ॥ ९ ॥ वीरकुलमें उत्पन्न हुए एक कोटि दुर्हृदनामक और कंबुवंशवाले दौहृद कालक कालकेय मौर्यवंशी धूम्रवंशी सब तयार हों ॥१०॥ महाप्रतापी सिन्धुपुत्र इस प्रकारसे आज्ञा देकर कोटिकोटि दैत्योंके साथ उस स्थानसे निकला ॥ ११ ॥ उसके आगे शुक्र और छिन्नशिर राहु हुआ और उसी समय जलंधरका मुकुट खसक कर पृथिवीमें गिरपडा ॥ १२ ॥ आकाश मेघोंसे व्याप्त होगया और महामृत्युके भयदायक बहुतसे अशकुन होने लगे ॥ १३ ॥ उसका यह उद्योग देखकर

ततः स मन्यमानस्स्वं पुनर्जनिमथानतः ॥ गतगर्वो जगामाथ जलंधरपुरं शनैः ॥५॥ जलंधराय सोऽभ्येत्य सर्वमीशविचेष्टितम् ॥ कथयामास तद्व्यासाद्व्यास दैत्येश्वराय वै ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः ॥ बभूव बलवान्सिन्धुपुत्रो दैत्येन्द्रसत्तमः ॥ ७ ॥ ततः कोपपराधीनमानसो दैत्यसत्तमः ॥ उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ८ ॥ ॥ जलंधर उवाच ॥ निर्गच्छंत्वखिला दैत्याः कालनेमिमुखाः खलु ॥ तथा शुंभनिशुंभाद्या वीरास्स्वबलसंयुताः ॥ ९ ॥ कोटिर्वीरकुलोत्पन्नाः कंबुवंश्याश्च दौर्हृदाः ॥ कालकाः कालकेयाश्च मौर्या धौम्रास्तथैव च ॥ १० ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिस्सिंधुपुत्रः प्रतापवान् ॥ निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥ ११ ॥ ततस्तस्याग्रतश्शुक्रो राहुश्छिन्नशिरोऽभवत् ॥ मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा ॥ १२ ॥ व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ जाता अशकुना भूरि महानिद्राविसूचकाः ॥ १३ ॥ तस्योद्योगं तथा दृष्ट्वा गीर्वाणास्ते सवासवाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः कैलासं शंकरालयम् ॥ १४ ॥

सब इन्द्रादिक देवता अलक्षित भावसे शिवजीके कैलासस्थानको गये ॥ १४ ॥ वहां जाकर और शिवजीको देखकर इन्द्रादि सब देवता प्रणाम कर शिर झुकाय हाथ जोड स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥ देवता बोले हे देवदेव महादेव ! हे करुणाकर शंकर ! हे महेशान ! आपको प्रणाम है हम शरणमें आये हुओंकी आप रक्षा करैं ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! जलंधरके कारणसे हम बहुत व्याकुल हो रहे हैं उसके उपद्रवसे देवता स्थानभ्रष्ट होकर पृथिवीमें प्राप्त हुएहैं ॥ १७ ॥ हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! आप इस देवताओंकी आपत्तिको कैसे नहीं जानते इससे हमारी रक्षाके निमित्त आप जलन्धरको मारिये ॥ १८ ॥

तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा सुप्रणम्य सवासवाः ॥देवास्सर्वे नतस्कंधाः करौ बद्ध्वा च तुष्टुवुः ॥ १५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ नमस्तेस्तु महेशान पाहि नश्शरणागतान् ॥ १६ ॥ विह्वला वयमत्युग्रं जलंधरकृतात्प्रभो ॥ उपद्रवात्सदेवेन्द्राः स्थानभ्रष्टाः क्षितिस्थिताः ॥१७॥ न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां प्रभो ॥ तस्मान्नो रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम् ॥ १८॥ अस्माकं रक्षणार्थाय यत्पूर्वं गरुडध्वजः ॥ नियोजितस्त्वया नाथ न क्षमस्सोऽद्य रक्षितुम् ॥ १९ ॥ तदधीनो गृहे तस्य तिष्ठत्यद्य मया सह ॥ वयं च तत्र तिष्ठामस्तदाज्ञावशगास्सुराः ॥ २० ॥ अलक्षिता वयं चात्रागताश्शंभो त्वदंतिकम् ॥ स आयाति त्वया कर्त्तुं रणं सिंधुसुतो बली ॥ २१ ॥ अतस्स्वामिन्रणे त्वं तमविलंबं जलंधरम् ॥ हंतुमर्हसि सर्वज्ञ पाहि नश्शरणागतान् ॥ २२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते सुरास्सर्वे प्रभुं नत्वा सवासवाः ॥ पादौ निरीक्ष्य संतस्थुर्महेशस्य विनम्रकाः ॥ २३ ॥

हमारी रक्षाके लिये जो पहले आपने विष्णुजीको नियुक्त कियाथा सो इस कार्यके लिये वह समर्थ नहीं हैं ॥१९॥ वह जलंधरके आधीन हो लक्ष्मीसहित उसके घरमें निवास करते हैं और उसकी आज्ञासे सब देवताओंकोभी वहीं रहना पडता है ॥ २० ॥ हे शंकर! अलक्षित होकर हम आपके समीप आयेहैं अब वह बली सागरपुत्र आपसे युद्ध करनेको आता है ॥ २१ ॥ हे स्वामिन् ! इस कारण बहुतही शीघ्र युद्धमें आप उस जलंधरको मारकर हम शरण आयेहुओंकी रक्षा कीजिये ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले वह सब देवता इन्द्रके सहित प्रभुसे ऐसा कह और उनको प्रणाम कर महेश्वरके चरण देखकर

नम्र हो स्थित हुए ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले देवताओंके यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर विष्णुजीको शीघ्रतासे बुलाकर यह वचन बोले ॥ २४ ॥ शिवजी बोले हे हृषीकेश ! हे महाविष्णो ! यहां देवता आये हैं और जलंधरसे दुःखी होकर यह सब हमारी शरणमें हुए हैं ॥ २५ ॥ हे विष्णुजी ! आपने युद्धमें जलंधरका संहार क्यों न किया और अपना वैकुंठ छोडकर उसके घर कैसे चलेगये ॥ २६ ॥ मैंने तो तुमको साधु महात्माओंकी रक्षामें नियुक्त किया है तथा खलोंके निग्रहमें आपको स्वतंत्रतासे इच्छाचारी नियुक्त किया है ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले गरुडध्वजजी इस प्रकार भगवान् शंकरके

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः ॥ द्रुतं विष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हर्षीकेश महाविष्णो देवाश्चात्र समागताः ॥ जलंधरकृतापीडाश्शरणं मेऽतिविह्वलाः ॥ २५ ॥ जलंधरः कथं विष्णो संगरे न हतस्त्वया ॥ तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुंठमात्मनः ॥ २६ ॥ मया नियोजितस्त्वं हि साधुसंरक्षणाय च ॥ निग्रहाय खलानां च स्वतंत्रेण विहारिणा ॥ २७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं गरुडध्वजः ॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा नतकस्साञ्जलिर्हरिः ॥ २८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ मया न निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥ २९ ॥ महाबलो महावीरोजेयस्सर्वदिवौकसाम् ॥ अन्येषां चापि देवेश सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ३० ॥ मया कृतो रणस्तेन चिरं देवान्वितेन वै ॥ मदुपायो न प्रवृत्तस्तस्मिन्दानवपुंगवे ॥ ३१ ॥ तत्पराक्रमतस्तुष्टो वरं ब्रूहीत्यहं खलु ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा स वव्रे वरमुत्तमम् ॥ ॥ ३२ ॥ मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे ससुरो वस ॥ मदधीनो महाविष्णो इत्यहं तद्गृहं गतः ॥ ३३ ॥

वचन सुनकर विनीत हो हाथ जोडकर शंकरसे बोले ॥ २८ ॥ विष्णुजी बोले आपके अंशसे प्रगट होनेसे तथा लक्ष्मीका भ्राता होनेसे मैंने युद्धमें उसे नहीं मारा आपही इस दानवका वध करैं ॥ २९ ॥ हे देवेश ! वह दानव महाबली महावीर सब देवताओंसे अजेय है तथा उसे और कोईं नहीं जीत सकता हे देवेश ! मैं यह सत्यही कहता हूं ॥ ३० ॥ मैंने देवताओंके सहित बहुत समयतक उससे युद्ध किया, पर उस दानवश्रेष्ठपर मेरा पराक्रम न चला ॥ ३१ ॥ तब मैंने उसके पराक्रमसे सन्तुष्ट हो उससे वर मांगनेको कहा उसने मेरे वचन सुनकर यह उत्तम वर मांगा ॥ ३२ ॥ हे महाविष्णुजी ! तुम मेरे वचनसे मेरे

आधीन होकर लक्ष्मी और देवताओं सहित मेरे घर निवास करो ॥ ३३ ॥ इससे मैं उसके घर गयाहूं सनत्कुमारजी बोले वह महेश्वर शंकर इसप्रकारसे उनके वचन सुनकर भक्तवत्सल दयासागर हँसते हुए इस प्रकारसे बोले ॥ ३४ ॥ महेश्वर बोले हे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णुजी ! तुम आदरसे मेरे वचन सुनो इसमें सन्देह नहीं मैं महादैत्य जलंधरका वध करूंगा ॥ ३५ ॥ तुम और देवताभी सब अपने २ स्थानोंको जाओ तुम अब निर्भय और सन्देहरहित होजाओ और दैत्यको मराहुआही जानो ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी बोले वह रमापति इस प्रकारसे महेश्वरके वचन सुनकर देवताओंसहित अपने स्थानको

सनत्कुमार उवाच ॥ इति विष्णोर्वचश्श्रुत्वा शंकरस्स महेश्वरः ॥ विहस्योवाच सुप्रीतस्सदयो भक्तवत्सलः ॥ ३४ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ हे विष्णो सुरवर्य त्वं शृणु मद्वाक्यमादरात् ॥ जलंधरं महादैत्यं हनिष्यामि न संशयः ॥ ३५ ॥ स्वस्थानं गच्छ निर्भीतो देवा गच्छंत्वपि ध्रुवम् ॥ निर्भया वीतसंदेहा हतं मत्वा सुराधिपम् ॥ ३६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा महेशस्य वचनं स रमापतिः ॥ सनिर्जरो जगामाशु स्वस्थानं गतसंशयः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नंतरे व्यास स दैत्येन्द्रोऽतिविक्रमः ॥ सन्नद्धैरसुरैस्सार्द्धं शैलप्रांतं ययौ बली ॥ ३८ ॥ कैलासमवरुध्याथ महत्या सेनया युतः ॥ संतस्थौ कालसंकाशः कुर्वन्सिंहरवं महान् ॥ ३९ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा दैत्यनादसमुद्भवम् ॥ चुक्रोधातिमहेशानो महालीलः खलांतकः ॥ ४० ॥ समादिदेश संख्याय स्वगणान्स महाबलान् ॥ नंद्यादिकान्महादेवो महोतिः कौतुकी हरः ॥ ४१ ॥ नन्दीभमुखसेनानी मुखास्सर्वे शिवाज्ञया ॥ गणाश्च समनह्यंत युद्धायातित्वरान्विताः ॥ ४२ ॥ अवतेरुर्गणास्सर्वे कैलासात्क्रोधदुर्मदाः ॥ वल्गतो रणशब्दांश्च महावीरा रणाय हि ॥ ४३ ॥

गये और संदेहरहित होगये ॥ ३७ ॥ हे तात ! इसी समय महाविक्रमशाली वह दैत्यपति महाबली दैत्योंकी सेना लिये पर्वतके समीप पहुंचा ॥ ३८ ॥ और महासेनाके सहित कैलासपर्वतको घेरकर सिंहके समान शब्द कर कालकी समान स्थित हुआ ॥ ३९ ॥ तब दैत्योंके नादका महाकोलाहल सुनकर महालीला करनेवाले दुष्टोंके मारनेवाले शंकर महाक्रोधित हुए ॥ ४० ॥ और महा कौतुकी हर महादेवने बडे पराक्रमके साथ अपने नंदी आदि गणोंको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ४१ ॥ नंदीको आदि लेकर सब सेनापति गण शिवजीकी आज्ञासे शीघ्रही युद्धभूमिको चले ॥ ४२ ॥ वह सब दुर्मद गण बडे

क्रोधसे कैलाससे चले और रणके निमित्त वह महावीर शब्द करने लगे ॥ ४३ ॥ उस समय कैलासके समीप महायुद्ध आरंभ हुआ प्रमथ और दैत्य अनेक
अस्त्र शस्त्र वर्षाने लगे ॥ ४४ ॥ भेरी मृदंग शंखोंके शब्द वीरोंके सिंहनाद हाथी घोडे और रथोंके शब्दोंसे शब्दायमान हो पृथिवी कांपने लगी ॥४५॥
शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, प्रास, पट्टिश इनके प्रहारोंसे आकाश मोतियोंसे मानों पूर्ण होकर शोभा पानेलगा ॥ ४६ ॥ हाथी घोडे और पैदलोंके मरनेसे
पृथिवी बडी शोभित हुई जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत होकर पहले पर्वतोंसे व्याप्त हुईथी ॥ ४७ ॥ प्रमथोंने दैत्य और दैत्योंने प्रमथ गणोंपर प्रहार किया

ततस्समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकासु वै ॥ प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥ ४४ ॥ भेरी मृदंगशंखौघैर्निस्स्वानैर्वीरहर्षणैः ॥
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकंपत ॥ ४५ ॥ शक्तितोमरबाणौघैर्मुसलैः पाशपट्टिशैः ॥ व्यराजत नभः पूर्णं मुक्ताभिरिव संवृतम् ॥
॥ ४६ ॥ निहतैरिव नागाश्वैः पत्तिभिर्भूर्व्यराजत ॥ वज्राहतैः पर्वतेन्द्रैः पूर्वमासीत्सुसंवृता ॥ ४७ ॥ प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणै
स्तथा ॥ वसासृङ्मांसपंकाढ्या भूरगम्याभवत्तदा ॥ ४८ ॥ प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवस्समजीवयत् ॥ युद्धे पुनःपुनश्चैव मृतसंजीवनी
बलात् ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा व्याकुलितांस्तांस्तु गणास्सर्वे भयार्दिताः ॥ शशंसुर्देवदेवाय सर्वं शुक्रविचेष्टितम् ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्र
श्चकार क्रोधमुल्बणम् ॥ भयंकरोऽतिरौद्रश्च बभूव प्रज्वलन्दिशः ॥ ५१ ॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीवभीषणा ॥ तालजंघा दरी
वक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा ॥ ५२ ॥ सा युद्धभूमिं तरसा ससाद मुनिसत्तम ॥ विचचार महाभीमा भक्षयंती महासुरान् ॥ ५३ ॥

वसा रुधिर और मांसकी कीचसे पृथिवी अगम्या होगई ॥४८॥ प्रमथोंके मारेहुए दैत्योंको शुक्राचार्य अपनी मृतसंजीविनी विद्याके बलसे वारंवार जिवाने
लगे ॥ ४९ ॥ यह बात देखकर शिवजीके सम्पूर्ण गण व्याकुल होगये और शिवजीसे यह शुक्राचार्यकी सब बात कही ॥ ५० ॥ यह सुनकर भगवान्
रुद्रने बडा क्रोध किया और बडे भयंकर रौद्ररूपसे दिशाओंको प्रज्वलित करने लगे ॥ ५१ ॥ तब रुद्रके मुखसे बडी भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई जिसकी
तालकी समान जांघे और जो स्तनोंसे वृक्षोंको पीडित कर सकती थी ॥ ५२ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह बहुत शीघ्र युद्धभूमिमें आनकर प्राप्त हुई और

महाअसुरोंको भक्षण करती युद्धभूमिमें विचरने लगी ॥ ५३ ॥ और वह युद्धभूमिमें बडे वेगसे गमन करती वहां पहुंची जहां दैत्यश्रेष्ठके साथ भृगुजी विद्यमान थे ॥ ५४ ॥ हे मुने ! वह अपने तेजसे आकाश और भूमिको व्याप्त करके और शुक्रको अपनी योनिमें गुप्त करके आकाशमें अन्तर्धान होगई ॥ ॥ ५५ ॥ यह शुक्रकी दशा देखकर बडे मलीन मुख हो दैत्य युद्धभूमिसे युद्धमें दुर्मद हुए भी निकले ॥५६॥ तब गणोंके भयसे दैत्योंकी सेना छिन्नभिन्न होने लगी जैसे वायुके वेगसे हत होकर तृण छिन्नभिन्न होजाते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार गणोंके भयसे दैत्योंकी सेना छिन्नभिन्न देखकर निशुंभ शुंभ और कालनेमि सेनापतिने महाक्रोध किया ॥ ५८ ॥ यह तीनों महाबली गणोंकी सेनाको निवारण करनेलगे और वर्षाकालमें मेघकी समान बाणोंकी वर्षा करने

अथ सा रणमध्ये हि जगाम गतभीर्द्रुतम् ॥ यत्रास्ते संवृतो दैत्यवरेन्द्रैस्स हि भार्गवः ॥ ५४ ॥ स्वतेजसा नभो व्याप्य भूमिं कृत्वा च सा मुने ॥ भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामांतर्हिता नभः ॥ ५५ ॥ विद्रुतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणास्तथा ॥ प्रम्लानवदना युद्धान्निर्जग्मुर्युद्धदुर्मदाः ॥ ५६ ॥ अथोऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥ वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः ॥ ५७ ॥ भग्नां गणभयाद्दैत्यसेनां दृष्ट्वातिमर्षिताः ॥ निशुंभशुंभौ सेनान्यौ कालनेमिश्च चुक्रुधुः ॥ ५८ ॥ त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥ मुंचंतश्शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः ॥ ५९ ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥ रुरुधुः खं दिशस्सर्वा गणसेनामकंपयन् ॥६०॥ गणाश्शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः ॥ वसंतकिंशुकाभासा न प्राजानन्हि किंचन ॥ ६१ ॥ ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य नन्द्यादिलंबोदरकार्त्तिकेयाः ॥ त्वरान्विता दैत्यवारन्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षणास्ते ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरवधोपाख्याने सामान्यगणासुरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

लगे ॥ ५९ ॥ तब उन दैत्योंके बाणोंने शलभोंकी समान आकाश और सब दिशाओंको व्याप्त कर गणोंकी सेनाको कंपित करादिया ॥६०॥ उस समय बाणोंसे भिन्न होनेके कारण गण छिन्न हो रुधिर चूनेसे वसन्तमें टेसूकी समान शोभायमान हो कुछभी न जानते हुए ॥ ६१ ॥ तब इस प्रकारसे अपनी सेनाको छिन्नभिन्न होताहुआ देखकर नंदी आदि गण, गणेशजी, स्वामिकार्त्तिक, महाक्रोध कर बडी शीघ्रतासे उन दैत्योंको निवारण करने लगे ॥ ६२ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहिताभाषाटीकायां पञ्चमयुद्धखण्डे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सनत्कुमारजी बोले जब उन दानवोंने नंदी, गणेश, कार्त्तिकेय आदि गणाधिपतियोंको सेना निवारण करते देखा तब द्वन्द्वयुद्धके लिये बडे क्रोधसे धावमान हुए ॥ १ ॥ नंदीसे कालनेमि, गणेशजीसे शुंभ और कार्त्तिकेयपर निशुंभ शंकित हो धावमान हुआ ॥ २ ॥ निशुंभने कार्त्तिकेयके मयूरके हृदयमें पांच बाणसे प्रहार किया जिससे वह मूर्च्छित हो पृथिवीमें गिरपडा ॥ ३ ॥ तब क्रोधकर कुमारने पांच बाणोंसे उसके रथ घोडे और सारथीको विद्ध किया ॥ ४ ॥ फिर उस महावीरने एक और तीक्ष्ण बाणले देवताओंके वैरी निशुंभपर बडे वेगसे प्रहार कर गर्जना की ॥ ५ ॥ महावीर्यवान् महाबली निशुंभने भी गर्जना कर अपने बाणसे कार्त्तिकेयपर प्रहार किया ॥ ६ ॥ जबतक कार्त्तिकेय क्रोधसे अपनी शक्तिको ग्रहण करैं तबतक निशुंभने अपनी शक्तिसे उनकी शक्तिको निपतित करदिया ॥ ७ ॥ हे व्यास ! इस प्रकारसे कार्त्तिकेय और निशुंभका महागर्जनापूर्वक घोर संग्राम होने लगा ॥ ८ ॥ इधर नंदीश्वरने बाणोंके प्रहारसे कालनेमिको विद्ध किया सात बाणोंसे घोडे ध्वजा रथ और सारथीको छेदन कर दिया ॥ ९ ॥ तब कालनेमिने क्रोधकर नंदीका धनुष छेदन कर दिया और अपने धनुषसे महातीक्ष्ण बाण प्रहार किये ॥ १० ॥ तब वीर नन्दीश्वरने महा असुरकालनेमिके हृदयको शूलसे बडे बलसे विद्ध किया ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान् ॥ अमर्षादभ्यधावंत द्वंद्वयुद्धाय दानवाः ॥ १ ॥ नन्दिनं कालनेमिश्च शुंभो लंबोदरं तथा ॥ निशुंभः षण्मुखं देवमभ्यधावत शंकितः ॥ २ ॥ निशुंभः कार्तिकेयस्य मयूरं पंचभिश्शरैः ॥ हृदि विव्याध वेगेन मूर्छितस्स पपात ह ॥ ३ ॥ ततः शक्तिधरः क्रुद्धो बाणैः पंचभिरेव च ॥ विव्याध स्यंदने तस्य हयान्यन्तारमेव च ॥ ४ ॥ शरेणान्येन तीक्ष्णेन निशुंभं देववैरिणम् ॥ जघान तरसा वीरो जगर्ज रणदुर्मदः ॥ ५ ॥ असुरोऽपि निशुंभाख्यो महावीरोऽतिवीर्यवान् ॥ जघान कार्तिकेयं तं गर्जंतं स्वेषुणा रणे ॥ ६ ॥ ततश्शक्तिं कार्तिकेयो यावज्जग्राह रोषतः ॥ तावन्निशुंभो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ७ ॥ एवं बभूव तत्रैव कार्तिकेयनिशुंभयोः ॥ आहवो हि महान्व्यास वीरशब्दं प्रगर्जतोः ॥ ८ ॥ ततो नन्दीश्वरो बाणैः कालनेमिमविध्यत ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं रथं सारथिमाच्छिनत् ॥ ९ ॥ कालनेमिश्च संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नंदिनः ॥ स्वशरासननिर्मुक्तैर्महातीक्ष्णैश्शिलीमुखैः ॥ १० ॥ अथ नन्दीश्वरो वीरः कालनेमिं महासुरम् ॥ तमपास्य च शूलेन वक्षस्यभ्यहनद्दृढम् ॥ ११ ॥

वह शूलसे हृदय विदीर्ण होनेसे घोडे और सारथीके नष्ट होनेसे एक पर्वतकी शिला उखाडकर नन्दीपर प्रहार करता हुआ ॥ १२ ॥ इस ओर शुंभनेभी गणेशके रथ मूषक वाहनको युद्ध करते करते बाणोंसे विद्ध किया ॥ १३ ॥ तब गणेशने शुंभके हृदयमें बाणका प्रहार किया और तीन बाण मारकर उसके सारथीको पृथिवीपर गिरादिया ॥ १४ ॥ तब शुंभने बहुत विद्ध होकर बाणोंकी वर्षासे गणेशजीको विद्ध कर तीन बाणोंसे उनके मूषकको विद्ध कर बडे वेगसे मेघकी समान गर्जना की ॥ १५ ॥ बाणोंसे अंग भिन्न होनेसे मूषक चलायमान होगया और गणेशजी गिरनेसे पैदल होगये ॥ १६ ॥ तब

स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः ॥ अद्रेः शिखरमुत्पाट्य नन्दिनं समताडयत् ॥१२॥ अथ शुंभो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ ॥
युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥ १३ ॥ गणेशस्तु तदा शुंभं हृदि विव्याध पत्रिणा ॥ सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास
भूतले ॥ १४ ॥ ततोऽतिक्रुद्धश्शुंभोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम् ॥ मूषकं च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः ॥ १५ ॥ मूषकश्शर
भिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः ॥ लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवत्स हि ॥ १६ ॥ ततो लम्बोदरश्शुंभं हत्वा परशुना हृदि ॥ अपातय
त्तदा भूमौ मूषकं चारुरोह सः ॥ १७ ॥ समरायोद्यतश्चाभूत्पुनर्गजमुखो विभुः ॥ प्रहस्य जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रेणैव महाद्विपम् ॥ १८ ॥
कालनेमिर्निशुंभश्च ह्युभौ लंबोदरं शरैः ॥ युगपच्चख्नतुः क्रोधादाशीविषसमैर्द्रुतम् ॥ १९ ॥ तं पीडचमानमालोक्य वीरभद्रो महा
बलः ॥ अभ्यधावत वेगेन कोटिभूतयुतस्तथा ॥ २० ॥ कूष्मांडा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः ॥ पिशाचा डाकिनीसंघा
गणाश्चापि समं ययुः ॥ २१ ॥

गणेशजीने शुंभके हृदयमें परशेका प्रहार किया और उसे पृथिवीमें गिराकर आपने मूषकपर आरोहण किया ॥ १७ ॥ और गणेशजी फिर युद्धके लिये सन्नद्ध होगये और हँसकर इस प्रकारसे उसपर प्रहार किया जैसे कोई कोडे वा अंकुशसे हाथीपर प्रहार करै ॥ १८ ॥ तब कालनेमि और निशुंभ वह दोनोंही महाक्रोधसे एकसाथ क्रोधित सर्पकी समान गणेशजीपर प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ महाबली वीरभद्रने इस प्रकार गणेशजीको पीडित देखकर बडे वेगसे असंख्य भूतोंको साथले वहां गमन किया ॥ २० ॥ कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनी, पिशाच और बहुतसी डाकिनी उसके साथ चलीं ॥ २१ ॥

ततः किलकिलाशब्दैस्सिंहनादैस्सघर्घरैः ॥ विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकंपत ॥ २२ ॥ ततो भूताः प्रधावंतो भक्षयंति स्म दान
वान् ॥ उत्पत्य पातयंति स्म ननृतुश्च रणांगणे ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नंतरे व्यासाभूतां नन्दी गुहश्च तौ ॥ उत्थितावाप्तसंज्ञौ हि जगर्जतुरलं
रणे ॥ २४ ॥ स नन्दी कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ ॥ जघ्नतुश्च रणे दैत्यान्निरंतरशरव्रजैः ॥ २५ ॥ छिन्नैर्भिन्नैर्हतैर्दैत्यैः पातितैर्भ
क्षितैस्तथा ॥ व्याकुला साभवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ २६ ॥ एवं नन्दी कार्तिकेयो विकटश्च प्रतापवान् ॥ वीरभद्रो गणाश्चान्ये
जगर्जुस्समरेऽधिकम् ॥ २७ ॥ निशुंभशुंभौ सेनान्यौ सिन्धुपुत्रस्य तौ तथा ॥ कालनेमिर्महादैत्योऽसुराश्चान्ये पराजिताः ॥ २८ ॥
प्रविध्वस्तां ततस्सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः ॥ रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥ २९ ॥ ततः पराजिता दैत्या अप्यभूवन्महो
त्सवाः ॥ जगर्जुरधिकं व्यास समरायोद्यतास्तदा ॥ ३० ॥ सर्वे रुद्रगणाश्चापि जगर्जुर्जयशालिनः ॥ नन्दिकार्तिकदंत्यास्यवीरभद्रा
दिका मुने ॥ ३१ ॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादश्शंखभेरीरवस्तथा ॥ अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तथा ॥ ३२ ॥

उस समय किलकिलाशब्द सिंहनाद घर्घरशब्द डमरूके शब्द वीरोंके शब्दोंसे पृथिवी कम्पायमान होने लगी ॥ २२ ॥ तब दानवोंको भक्षण करते हुए
भूतगण धावमान होनेलगे तथा कूदकर दानवोंको गिराकर भक्षण करने और नाचने लगे ॥ २३ ॥ हे व्यास! इसी समय नन्दी और कार्तिकेय संज्ञाको प्राप्तहो
उठकर रणभूमिमें गर्जने लगे ॥ २४ ॥ जब नन्दी और कार्तिकेय बडी शीघ्रतासे आये तब अपने बाणोंसे दैत्योंको मारने लगे ॥ २५ ॥ दैत्य छिन्नभिन्न
होकर गिरने लगे भूतगण उनको खानेलगे तब वह सब सेना व्याकुल होकर विषादसे भरगई ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे नन्दी कार्तिकेय और गणेशजी वीरभद्र तथा दूसरे गण युद्धभूमिमें गर्जने लगे ॥ २७ ॥ उस समय सेनापति शुंभ निशुंभ कालनेमि और जलंधरके दूसरे दैत्य पराजित होगये ॥ २८ ॥ जब सागरपुत्रने
इस प्रकारसे अपनी सेनाको विध्वस्त देखा तब पताकावाले रथपर बडे वेगसे आरोहण किया ॥ २९ ॥ तब पराजितहुए दैत्यभी प्रसन्न हो उठे हे व्यास! युद्धके
निमित्त तत्पर हो गर्जना कर उठे ॥ ३० ॥ तब जयशील शंकरके सब गणभी गर्जने लगे नन्दी, कार्तिकेय, गणेश, वीरभद्र आदिक सब गर्जने लगे हे मुने!
॥ ३१ ॥ हाथी घोडे रथ शंख भेरी तथा दोनों ओरके वीरोंके सिंहनादसे पृथिवी व्याप्त होगई ॥ ३२ ॥

जिस समय जलंधरने बाणोंका प्रहार किया उस समय कुहरेसे व्याप्तहुए आकाशकी समान द्युलोक और भूलोकमें कुछ अन्तर न रहा ॥ ३३ ॥ नन्दीको पांच, गणेशको पांच और वीरभद्रको वीस बाणसे विद्धकर उसने मेघकी समान शब्द किया ॥ ३४ ॥ तब कार्तिकेयने शक्तिसे बहुत शीघ्र दैत्यको विद्ध किया तब महावीर जलंधरने बडे वेगसे नाद किया ॥ ३५ ॥ और नेत्र घूमनेसे वह वीर पृथिवीपर गिरपड़ा शक्तिसे उसका देह भिन्न होगया था परन्तु तोभी बड़ी शीघ्रतासे उठ बैठा ॥ ३६ ॥ तब दैत्यश्रेष्ठ जलंधरने बडा क्रोध कर कार्तिकेयके हृदयमें गदाका प्रहार किया ॥ ३७ ॥ हे व्यासजी ! शंकरपुत्र

जलंधरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव ॥ द्यावापृथिव्योराच्छन्नमंतरं समपद्यत ॥ ३३ ॥ शैलादिं पंचभिर्विंद्ध्वा गणेशं पंचभिश्शरैः ॥ वीरभद्रं
च विंशत्या ननाद जलदस्वनः ॥ ३४ ॥ कार्तिकेयस्ततो दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरम् ॥ जलंधरं महावीरो रुद्रपुत्रो ननाद च
॥ ३५ ॥ स घूर्णनयनो दैत्यः शक्तिनिर्भिन्नदेहकः ॥ पपात भूमौ त्वरितमुदतिष्ठन्महाबलः ॥ ३६ ॥ ततः क्रोधपरीतात्मा कार्तिकेयं
जलंधरः ॥ गदया ताडयामास हृदये दैत्यपुंगवः ॥ ३७ ॥ गदाप्रभावं सफलं दर्शयन्शंकरात्मजः ॥ विधिदत्तवराद्व्यास स तूर्णं भूतले
ऽपतत् ॥ ३८ ॥ तथैव नंदी ह्यपतद्भूतले गदया हतः ॥ महावीरोऽपि रिपुहा किंचिद्व्याकुलमानसः ॥ ३९ ॥ ततो गणेश्वरः क्रुद्धस्स्मृ
त्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ संप्राप्यातिबलो दैत्यगदां परशुनाच्छिनत् ॥ ४० ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् ॥ सप्तभिश्च
हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे ॥ ४१ ॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रश्शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् ॥ गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत् ॥
॥ ४२ ॥ अभ्यगादथ वेगेन स दैत्यन्द्रो महाबलः ॥ विगणय्य हृदा तं वै वीरभद्रं रुषान्वितः ॥ ४३ ॥

कार्तिकेयने ब्रह्माके वरदानके कारण उस गदाके प्रहारको सफल करनेके निमित्त भूमिपर शयन किया ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार गदाके प्रहारसे नन्दीभी पृथिवीमें गिरगये यह शत्रुनाशी महावीर कुछेक व्याकुलभी होगये ॥ ३९ ॥ तब गणेशजी क्रोधकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण कर बडे वेगसे धावमान हो उस दैत्यकी गदाको परशेसे छेदन करदिया ॥ ४० ॥ और वीरभद्रने तीनबाण दानवके हृदयमें मारे और सातबाणोंसे उसके घोडे ध्वजा धनुष और छत्रको छेदन कर दिया ॥ ४१ ॥ तब दैत्येन्द्रने बडा क्रोधकर दारुण शक्तिका प्रहार कर गणेशको गिराकर आप दूसरे रथपर सवार हुआ ॥ ४२ ॥ और महा

बली वह दैत्य बड़े वेगसे धावमान हुआ और क्रोधसे हृदयमें वीरभद्रको कुछ न गिना ॥ ४३ ॥ और एक बडा तीक्ष्ण बाण वीरभद्रके हृदयमें मारा और दैत्यराज जलंधरने बड़े वेगसे नाद किया ॥ ४४ ॥ तब वीरभद्रने भी महा क्रोधकर एक तीक्ष्ण बाणके प्रहारसे उसके बाणको छेदन कर उसको अपने बाणसे विद्ध किया ॥ ४५ ॥ तब वह सूर्यकी समान दोनों बली परस्पर युद्ध करने लगे नानाशस्त्र अस्त्रोंसे उन महावीरोंने चिरकालतक युद्ध किया ॥ ४६ ॥ तब वीरभद्रने अपने बाणोंके प्रहारोंसे उसके घोडोंको छेदन करदिया रथकी पताका और उसके धनुषको भी छेदन करदिया ॥ ४७ ॥ तब वह दैत्यराज

वीरभद्रं जघानाशु तीक्ष्णेनाशीविषेण तम् ॥ ननाद च महावीरो दैत्यराजो जलंधरः ॥ ४४ ॥ वीरभद्रोऽपि संक्रुद्धस्सितधारेण चेषुणा ॥ चिच्छेद तच्छरं चैव तं विव्याध महेषुणा ॥ ४५ ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥ नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च चिरं वीरवरोत्तमौ ॥ ४६ ॥ वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् ॥ धनुश्चिच्छेद रथिनः पताकां चापि वेगतः ॥ ४७ ॥ अथो स दैत्यराजो हि पुप्लुवे परिघायुधः ॥ वीरभद्रोपकंठं स द्रुतमाप महाबलः ॥ ४८ ॥ परिघेनातिमहता वीरभद्रं जघान ह ॥ महाबलोऽब्धितनयो मूर्ध्नि वीरो जगर्ज च ॥ ४९ ॥ परिघेनातिमहता भिन्नमूर्द्धा गणाधिपः ॥ वीरभद्रः पपातोर्व्यां मुमोच रुधिरं बहु ॥ ५० ॥ पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् ॥ अपागच्छन्रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः ॥ निजपार्श्वस्थितान् वीरानपृच्छद्गणसत्तमान् ॥ ५२ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ किमर्थं मद्गणानां हि महाकोलाहलोऽभवत् ॥ विचार्य तां महावीराश्शांतिः कार्या मया ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

परिघ हाथमें लेकर दौडा और महाबली वह शीघ्रही वीरभद्रके समीप प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ और बडे वेगसे परिघद्वारा वीरभद्रको समीप मारा इस प्रकार महाबली जलंधर वीरभद्रके शिरपर प्रहार करके गर्जने लगा ॥ ४९ ॥ महान् परिघके लगनेसे वीरभद्रका शिर फटगया और बहुत रुधिर निकलनेसे व्याकुल हो वह पृथिवीमें गिरपड़ा ॥ ५० ॥ इस प्रकार वीरभद्रको समरभूमिमें गिराहुआ देखकर शिवजीके गण बडे वेगसे शंकरको पुकारते रणभूमि छोडकर चले ॥ ५१ ॥ शिवजीने गणोंका ऐसा कोलाहल सुनकर अपने समीपमें स्थित महाबली गणोंसे पूँछा ॥ ५२ ॥ शिवजी बोले हमारे गणोंका यह

कोलाहल कैसा होरहाहै हे महावीरो ! शीघ्र विचारो मैं इसकी अवश्य शांति करूंगा ॥ ५३ ॥ जबतक शिवजी अपने गणोंसे ऐसा पूँछते हैं कि उसी समय वे गणश्रेष्ठ शिवजीके समीप आपहुँचे ॥ ५४ ॥ उनको व्याकुल देखकर प्रभु शिवजीने उनकी कुशल पूँछी और गणोंने विस्तारपूर्वक सब समाचार कहा ॥ ॥ ५५ ॥ भगवान् रुद्र महालीला करनेवाले प्रभुने उनके यह समाचार सुनकर उनका महाउत्साह बढातेहुए उनको अभय दिया ॥५६॥ इति श्रीशिवम० द्वि० रु० पं०यु० भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सनत्कुमारजी बोले तब महाप्रभु शिवजी अपने महावीर गणोंको साथ लेकर वृषपर चढ हँसतेहुए

इति यावत्स देवेशो गणान्पप्रच्छ सादरम् ॥ तावद्गणवरास्ते हि समायाताः प्रभुं प्रति ॥ ५४ ॥ तान्दृष्ट्वा विकलान्रुद्रः पप्रच्छ कुशलं प्रभुः ॥ यथावत्ते गणा वृत्तं समाचख्युश्च विस्तरात् ॥ ५५ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्यो महोत्साहं प्रवर्द्धयन् ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरोपाख्याने विशेषयुद्धवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ वीरगणै रुद्रो रौद्ररूपो महाप्रभुः ॥ अभ्यगाद्वृषमारूढस्संग्रामं प्रहसन्निव ॥ १ ॥ रुद्रमायांतमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः ॥ निवृत्ताः स्संगरे रौद्रा ये हि पूर्वं पराजिताः ॥ २ ॥ वीरशब्दं च कुर्वन्तस्तेऽप्यन्ये शांकरा गणाः ॥ सोत्सवास्सायुधा दैत्यान्निजघ्नुश्शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ दैत्या हि भीषणं रुद्रं सर्वे दृष्ट्वा विदुद्रुवुः ॥ शांकरं पुरुषं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात् ॥ ४ ॥ अथो जलंधरो दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्य संगरे ॥ अभ्यधावत्स चंडीशं मुंचन्बाणान्सहस्रशः ॥ ५ ॥ निशुंभशुंभप्रमुखा दैत्येन्द्राश्च ॥ सहस्रशः ॥ अभिजग्मुश्शिवं वेगाद्रोषात्संदष्टदच्छदाः ॥ ६ ॥

संग्रामभूमिमें आये ॥ १ ॥ शिवजीको संग्रामभूमिमें आया देखकर उनके गण जो पराजितहो संग्रामभूमिसे भागगये थे वे फिर लौटे ॥२॥ और वे शंकरके गण फिर सिंहनाद करने लगे और प्रसन्नहो आयुध और बाणोंसे दैत्योंको मारने लगे ॥ ३ ॥ तब शिवजीकी भीषण मूर्ति देखकर सब दैत्य पलायन करने लगे जैसे शंकरके भक्तोंको देखकर उनके भयसे पाप भाग जाते हैं ॥ ४ ॥ तब जलन्धर अपने सब दैत्योंको युद्धसे विमुख देखकर सहस्रों बाण छोडता हुआ चंडीशके ऊपर धावमान हुआ ॥ ५ ॥ निशुंभ शुंभको आदि लेकर सहस्रों दैत्य क्रोधसे होट काटते हुए शिवजीपर धावमान हुए ॥ ६ ॥

महावीर कालनेमि, खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर और प्रचण्ड यह सब शिवजीपर धावमान हुए ॥ ७ ॥ इन्होंने शीघ्रही रुद्रके गणोंको बाणोंसे आच्छादन करदिया हे मुने ! और शुंभादिक गणोंके अंगोंको छेदन करने लगे ॥ ८ ॥ तब शिवजीने अपने गणोंको बाणके अंधकारसे आच्छन्न देखकर उस दैत्यके बाणोंको छेदनकर अपने बाणोंसे आकाश आच्छादन करदिया ॥ ९ ॥ और बाणरूपी वात्यासे दैत्योंको महापीडित किया, और प्रचण्ड वात समूहोंसे पृथिवीमें गिरादिया ॥ १० ॥ और परशेसे खड्गरोमाका शिर काटकर गिरादिया और खट्वांगसे बलाहकका शिर काटडाला ॥ ११ ॥ और घस्मर दैत्यको पाशसे बांधकर पृथिवीमें गिरादिया और मारदिया, और त्रिशिखाद्वारा महावीर प्रचंडका शिर काटडाला ॥ १२ ॥ किसीको शिवजीके बैलने मारा कोई बाणोंसे मारेगये उस समय सिंहसे घबडाये हुए हाथियोंके समान कोई असुर स्थित होनेको समर्थ न हुए ॥ १३ ॥ उस समय दैत्यपतिने महा क्रोधकर युद्धमें शुंभादि दैत्योंको धिक्कार देकर धैर्य धारणकर हँसतेहुए कहा ॥ १४ ॥ जलन्धर बोला भागतेहुए पृष्ठ दिखानेसे हतहुए माताके मलरूपोंको मारनेसे क्या है डरेहुओंको मारनेकी प्रशंसा नहीं है न शूरमानियोंको इस कार्यमें स्वर्ग होसकता है ॥ १५ ॥ यदि आपकी युद्धमें श्रद्धा है यदि हृदयमें

कालनेमिस्तथा वीरः खड्गरोमा बलाहकः ॥ घस्मरश्च प्रचंडश्चापरे चापि शिवं ययुः ॥ ७ ॥ बाणैस्संछादयामासुर्द्रुतं रुद्रगणांश्च ते ॥
अंगानि चिच्छिदुर्वीराः शुंभाद्या निखिला मुने ॥ ८ ॥ बाणांधकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं हरः ॥ तद्बाणजालमाच्छिद्य बाणैराववृते
नभः ॥ ९ ॥ दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा ॥ प्रचंडबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥ १० ॥ खड्गरोमशिरः कायात्तथा
परशुनाच्छिनत् ॥ बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद्द्विधा ॥ ११ ॥ स बद्ध्वा घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि ॥ महावीरं प्रचंडं च
चकर्त्त त्रिशिखेन ह ॥ १२ ॥ वृषभेण हताः केचित्केचिद्बाणैर्निपातिताः ॥ न शेकुरसुराः स्थातुं गजा सिंसहार्दिता इव ॥ १३ ॥
ततः क्रोधपरीतात्मा दैत्यान्धिक्कृतवान्रणे ॥ शुंभादिकान्महादैत्यः प्रहसन्प्राह धैर्यवान् ॥ १४ ॥ ॥ जलंधर उवाच ॥ किं व
उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाध्यः स्वर्गदः शूरमानिनाम् ॥ १५ ॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारो वा क्षुल्लका
हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ १६ ॥

कुछ साहस है यदि ग्राम्य सुखमें स्पृहा न हो तो मेरे साथ युद्धमें स्थित हो ॥ १६ ॥ युद्धमें मृत्युही श्रेष्ठ है यही सब कामनाकी पूर्ण करनेवाली है समरमें मृत्यु यश और मोक्षकी देनेवाली है ॥ १७ ॥ सूर्यमंडलको भेदकर परमपदको जायगा जहां परिव्राट् परमज्ञानी जाते हैं वहीं युद्धमें सन्मुख यत्न करने वाले जायँगे ॥ १८ ॥ मृत्युका भय कभी किसीको नहीं करना चाहिये कारण कि कितने भी उपाय करनेसे यह निवारण नहीं होसकती ॥ १९ ॥ हे वीरो ! मृत्यु तो देहधारियोंके साथही उत्पन्न होतीहै आज या सौ वर्षमें प्राणधारियोंको मृत्यु अवश्य है ॥ २० ॥ इससे मृत्युका भय छोडकर प्रसन्नतासे

रणे मृत्युर्वरश्चास्ति सर्वकामफलप्रदः ॥ यशःप्रदो विशेषेण मोक्षदोऽपि प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥ सूर्यस्य मंडलं भित्त्वा यायाद्वै परमं पदम् ॥ परिव्राट् परमज्ञानी रणे यस्संमुखे हतः ॥ १८ ॥ मृत्योर्भयं न कर्तव्यं कदाचित्कुत्रचिद्बुधैः ॥ अनिर्वार्यो यतो ह्येष उपायै र्निखिलैरपि ॥ १९ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीरा देहेन सह जायते ॥ अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥२०॥ तन्मृत्युभयमुत्सार्य युध्यध्वं समरे मुदा ॥ सर्वथा परमानन्द इहामुत्राप्यसंशयः ॥ २१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा बोधयामास स्ववीरान्बहुशस्स हि ॥ धैर्यं दधुर्न ते भीता पलायंत रणाद्द्रुतम् ॥ २२ ॥ अथ दृष्ट्वा स्वसैन्यं तत्पलायनपरायणम् ॥ चुक्रोधाति महावीरस्सिंधुपुत्रो जलंधरः ॥ २३ ॥ ततः क्रोधपरीमात्मा क्रोधाद्रुद्रं जलंधरः ॥ आह्वापयामास रणे तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २४ ॥ जलंधर उवाच ॥ युद्ध्यस्वाद्य मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव ॥ यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ॥ २५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा बाण सप्तत्या जघान वृषभध्वजम् ॥ जलंधरो महादैत्यश्शंभुमक्लिष्टकारिणम् ॥ २६ ॥

युद्ध करो इसमें सन्देह नहीं इससे दोनों लोकमें परमआनंद प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ सनत्कुमार बोले ऐसा कहकर उसने बहुतसे वीरोंको समझाया परन्तु तोभी उन्होंने धैर्य धारण न किया, और युद्धसे शीघ्रतासे भाग गये ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारसे जलन्धरने अपनी सेनाको भागते हुए देखा तब उस महाबली सिंधुपुत्रने बडा क्रोध किया ॥ २३ ॥ और महाक्रोधित हो जलंधरने वज्रकी समान शब्द करके युद्धमें शंकरको बुलाया ॥ २४ ॥ जलंधर बोला तुम मेरे साथ युद्ध करो इन अनुचरोंसे युद्ध करनेका प्रयोजन क्या है हे जटाधर ! जो कुछ तुममें बलहो उसे दिखाओ ॥ २५ ॥ सनत्कुमारजी बोले ऐसा

कहकर सत्तर बाणसे शिवजीको विद्ध किया, महाबली जलंधर दैत्यने इस प्रकार अक्लिष्टकर्मा शंकरपर प्रहार किया ॥ २६ ॥ महादेवजीने उन जलन्धरके बाणोंके प्राप्त न होतेहोते हँसतेहुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें काटडाला ॥२७॥ हे मुने ! पीछे उस जलंधर दैत्यकी ध्वजा छत्र और धनुषको सात बाणोंसे छेदन करदिया यह बडी विचित्र बात हुई ॥ २८ ॥ वह सागरपुत्र धनुष और रथके छिन्नभिन्न होजानेसे गदाको उठाकर शिवजीके ऊपर दौडा ॥२९॥ हे व्यासजी ! जैसेही उसने गदा छोडी कि महालीला करनेवाले शंकरने अपने बाणोंसे उसके दो खण्ड करदिये ॥ ३० ॥ तब वह महाअसुर शिवजीके मारनेकी इच्छासे घूंसा उठाकर बडे वेगसे दौडा ॥ ३१ ॥ कि इतनेमेंही बाणसमूहोंसे शंकरने अपने अक्लिष्ट कर्मसेही उसको एक कोश दूरतक पीछे हटा दिया ॥ ३२ ॥ तब जलंधर दैत्यने रुद्रदेवको अपनेसे अधिक बली जानकर बडी अद्भुत अपनी माया रुद्रके मोहनेको बनाई ॥ ३३ ॥ उसकी मायाके प्रभावसे गन्धर्व और अप्सराओंके गण रुद्रके मोहनेके लिये रचे वह अनेक प्रगट होगये ॥ ३४ ॥ इसके पीछे गन्धर्व और अप्सराओंके गण नृत्य करने लगे ताल वेणु और मृदंग बजाने लगे ॥ ३५ ॥ यह महाआश्चर्य देखकर गणोंके सहित रुद्र मोहित होगये और हाथसे गिरतेहुए अस्त्रोंकोभी उन्होंने न

तानप्राप्तान्महादेवो जलंधरशरान्द्रुतम् ॥ निजैर्हि निशितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ २७ ॥ ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः ॥
जलंधरस्य दैत्यस्य न तच्चित्रं हरे मुने ॥ २८ ॥ स च्छिन्नधन्वा विरथः पाथोधितनयोऽसुरः ॥ अभ्यधावच्छिवं क्रुद्धो गदामुद्यम्य
वेगवान् ॥ २९ ॥ प्रभुर्गदां च तत्क्षिप्तां सहसैव महेश्वरः ॥ पाराशर्य्य महालीलो द्रुतं बाणैर्द्विधाकरोत् ॥ ३० ॥ तथापि मुष्टिमुद्यम्य
महाक्रुद्धो महासुरः ॥ अभ्युद्ययौ महावेगाद्द्रुतं तं तज्जिघांसया ॥ ३१ ॥ तावदेवेश्वरेणाशु बाणौघैस्स जलंधरः ॥ अक्लिष्टकर्मकारेण
क्रोशमात्रमपाकृतः ॥ ३२ ॥ ततो जलंधरो दैत्यो रुद्रं मत्वा बलाधिकम् ॥ ससर्ज मायां गांधर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥ ३३ ॥ तस्य
मायाप्रभावात्तु गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ आविर्भूता अनेके च रुद्रमोहनहेतवे ॥३४॥ ततो जगुश्च ननृतुर्गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ तालवेणुमृ
दंगांश्च वादयन्तिस्म चापरे ॥ ३५ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गणै रुद्रो विमोहितः ॥ पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥ ३६ ॥

जाना ॥ ३६ ॥ दैत्य जलंधर इसप्रकार शंकरको एकाग्रभूत देखकर कामके वेगसे मत्त होकर पार्वतीके समीप गया ॥ ३७ ॥ युद्धके लिये शुंभ निशुंभ दैत्यको स्थापन करके आप दश भुजा, पांच मुख, तीन नेत्र, जटाधारी होकर ॥ ३८ ॥ महावृषभपर चढकर साक्षात् रुद्र वह अपनी आसुरी मायासे बनगया ॥ ३९ ॥ तब शिवप्रिया पार्वती रुद्रको आया देखकर सखीजनोंके मध्यसे उठकर उसके सन्मुख उपस्थित हुईं ॥ ४० ॥ ज्योंही उस दैत्येश्वरने पार्वतीको देखा कि उसका वीर्य पतित हुआ और उसके अंग जडीभूत होगये ॥ ४१ ॥ गौरी उसी समय उसे दानव जानकर भयसे व्याकुल होगईं और बडे वेगसे

एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः ॥ कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥ ३७ ॥ युद्धे शुंभनिशुंभाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ दशदोर्दण्डपंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ ३८ ॥ महावृषभमारूढस्सर्वथा रुद्रसंनिभः ॥ आसुर्य्या मायया व्यास स बभूव जलंधरः ॥ ३९ ॥ अथ रुद्रं समायांतमालोक्य भववल्लभा ॥ अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ ४० ॥ यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ॥ तावत्स वीय मुमुचे जडांगश्चाभवत्तदा ॥ ४१ ॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ॥ जगामांतर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसम् ॥ ४२ ॥ तामदृश्य ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव ॥ जवेनागात्पुनर्योद्धुं यत्र देवो महेश्वरः ॥ ४३ ॥ पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा ॥ तावद्ददर्श तं देवं सोपविष्टं समीपगम् ॥ ४४ ॥ तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं जगन्माता शिवप्रिया ॥ प्रसन्नमनसोवाच प्रणमंतं कृतांजलिम् ॥ ४५ ॥ पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलंधरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वा जगदम्बाया वचनं गरुडध्वजः ॥ प्रत्युवाच शिवां नत्वा सांजलिर्नम्रकंधरः ॥ ४७ ॥

अन्तर्धान हो उत्तर मानसमें चली गईं ॥ ४२ ॥ उस दैत्यने क्षणमात्रमें विद्युल्लताकी समान उसे न देखकर बडे वेगसे महेश्वरके समीप युद्धमें गमन किया ॥ ४३ ॥ पार्वतीने मनसे महाविष्णुको स्मरण किया कि विष्णुजीको उसीसमय अपने समीप देखा ॥ ४४ ॥ जगन्माता शिवकी प्रिया विष्णुजीको देखकर कि हाथ जोडे प्रणाम कर रहे हैं प्रसन्न होकर बोलीं ॥ ४५ ॥ पार्वती बोलीं हे विष्णुजी ! जलन्धर दैत्यने एक बडी विचित्र बात की है क्या उस दुर्मतिकी चेष्टा तुमको विदित नहीं है ॥ ४६ ॥ भगवान् गरुडध्वजने जगदम्बाके यह वचन सुनकर हाथ जोड शिर झुकाय प्रणाम कर पार्वतीसे कहा ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् बोले हे देवि ! आपकी कृपासे वह वृत्तान्त मैंने जानलिया है हे मातः ! जो आप आज्ञा दो सो मैं करनेको उपस्थित हूं ॥ ४८ ॥ सनत्कुमारजी बोले विष्णुजीके यह वचन सुनकर वह जगन्माता धर्मनीति सिखाती हुई बोलीं ॥ ४९ ॥ पार्वती बोलीं जो मार्ग उस दैत्यने खोलदिया है उसीका अनुसरण उचित है, मेरी आज्ञासे तुम उसकी स्त्रीका पतिव्रतधर्म नष्ट करो इसमें अब दोष न होगा ॥ ५० ॥ हे रमेश्वर ! अन्यथा वह दैत्य मारा न जायगा, पृथिवीमें पतिव्रतधर्मकी समान दूसरा धर्म नहीं है ॥ ५१ ॥ सनत्कुमार बोले यह आज्ञापातेही विष्णुजी उस आज्ञाको शिरपर धरकर जलंधरके पुरमें वैसाही छल

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्याः कृपया देवि तद्वृत्तं विदितं मया ॥ यदाज्ञापय मां मातस्तत्कुर्य्यां त्वदनुज्ञया ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं पुनरप्याह पार्वती ॥ हृषीकेशं जगन्माता धर्मनीतिं सुशिक्षयन् ॥ ४९ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ तेनैव दर्शितः पन्था बुध्यस्व त्वं तथैव हि ॥ तत्स्त्रीपातिव्रतं धर्मं भ्रष्टं कुरु मदाज्ञया ॥ ५० ॥ नान्यथा स महादैत्यो भवेद्वध्यो रमेश्वर ॥ पातिव्रतसमो नान्यो धर्मोऽस्ति पृथिवीतले ॥ ५१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्यनुज्ञां समाकर्ण्य शिरसाधाय तां हरिः ॥ छलं कर्त्तुं जगामाशु पुनर्जालंधरं पुरम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरवधोपाख्याने जलंधरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ वद त्वं वदतां वर ॥ किमकार्षीद्धरिस्तत्र धर्मं तत्याज सा कथम् ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ विष्णुर्जालंधरं गत्वा दैत्यस्य पुटभेदनम् ॥ पातिव्रत्यस्य भंगाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥ ॥ २ ॥ वृंदां स दर्शयामास स्वप्नं मायाविनां वरः ॥ स्वयं तन्नगरोद्यानमास्थितोऽद्भुतविग्रहः ॥ ३ ॥

करनेको गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवम० भा० द्वि० रु० पं० यु० जलंधरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले हे सनत्कुमार सर्वज्ञ ! हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! वहां जाकर विष्णुजीने क्या किया और उस वृन्दाने धर्म कैसे छोडा ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले विष्णुजी जलंधरके नगरमें जाकर वृन्दाके पतिव्रतभंगकी इच्छा करने लगे॥ २॥ मायावालोंमें श्रेष्ठ विष्णुजीने वृन्दाको स्वप्न दिया और अद्भुतरूपसे आप उसके नगरके उद्यानमें स्थित हुए॥ ३॥

तब जलन्धरकी पत्नी पतिव्रता वृन्दा देवीने रात्रिके समय बडा दुःस्वप्न देखा ॥ ४ ॥ विष्णुकी मायासे स्वप्नके बीचमें उसने अपने स्वामीको शरीरमें तेल लगाये भैंसेपर चढेहुए नंगा देखा ॥ ५ ॥ कि काले वर्णकी पुष्पोंकी माला धारण किये गीदड भेडियोंके साथ दक्षिणओरको अंधकारसे व्याप्त हो केवल पतिका मुंड जा रहा है ॥ ६ ॥ और अपने पुरको अपने सहित समुद्रमें डूबा हुआ देखा, इत्यादि बहुतसे स्वप्न उसने रातमें देखे ॥ ७ ॥ तत्काल वह बाला जाग उठी और उस स्वप्नका ध्यान करतीहुई उदय होते हुए सूर्यको छिद्रयुक्त और आकाशको कान्तिहीन देखने लगी ॥ ८ ॥ यह सब अनिष्ट

अथ वृन्दा तदा देवी तत्पत्नी निशि सुव्रता ॥ हरेर्मायाप्रभावात्तु दुस्स्वप्नं सा ददर्श ह ॥ ४ ॥ स्वप्नमध्ये हि सा विष्णुमायया प्रददर्श
ह ॥ भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगंबरम् ॥ ५ ॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् ॥ दक्षिणाशां गतं मुंडं तमसा च वृतं
तदा ॥ ६ ॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह ॥ इत्यादि बहुदुस्स्वप्नान्निशांते सा ददर्श ह ॥ ७ ॥ ततः प्रबुध्य सा बाला तं स्वप्नं
स्वं विचिन्वती ॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निःप्रभं मुहुः ॥ ८ ॥ तदनिष्टमिदं ज्ञात्वा रुदंती भयविह्वला ॥ कुत्रचिन्नाप सा शर्म
गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ९ ॥ ततस्सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥ तत्रापि सा गता बाला न प्राप कुत्रचित्सुखम् ॥ १० ॥ ततो जलं
धरस्त्री सा निर्विण्णोद्विग्नमानसा ॥ वनाद्वनांतरं याता नैव वेदात्मना तदा ॥ ११ ॥ भ्रमती सा ततो बाला ददर्शातीव भीषणौ ॥
राक्षसौ सिंहवदनौ दृष्ट्वा दशनभासुरौ ॥ १२ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा ॥ ददर्श तापसं शांतं सशिष्यं मौनमास्थि
तम् ॥ १३ ॥ ततस्तत्कंठमासाद्य निजां बाहुलतां भयात् ॥ मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत ॥ १४ ॥

जानकर वह भयसे व्याकुल होगई और रोने लगी, छज्जे अटारी और भूमिमें कहीं भी इसका मन स्थिर न हुआ ॥ ९ ॥ तब दो सखियोंको साथ लेकर नगरके बगीचेमें आई वहां जाकर भी फिर उसने किसी प्रकारका सुख न पाया ॥ १० ॥ तदनंतर वह जलंधरकी स्त्री उद्विग्नमन होकर वनवनमें घूमनेलगी ॥ ११ ॥ तब उस जलंधरकी स्त्रीने वहांभी सिंहके मुखवाले बडे भयंकर चमकदार दांतोंवाले दो राक्षसोंको देखा ॥ १२ ॥ उनको देखतेही भयसे व्याकुल होकर वह भागी और बगीचेमें शिष्यों सहित मौन साधे एक तपस्वीको देखा ॥ १३ ॥ और व्याकुल होकर उसने मुनिके गलेमें बाहैं डालकर हे मुनिराज!

मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारी शरण हूं ऐसा कहा ॥ १४ ॥ मुनिने उसको राक्षसोंसे इस प्रकार व्याकुल देखकर हुंकारमात्रसे उन दोनों राक्षसोंको भगादिया ॥ १५ ॥ मुनिके हुंकारभयसे उन राक्षसोंको भागते हुये देखकर हे मुने ! दैत्येन्द्रकी पत्नी अपने मनमें बडी विस्मित हुई ॥ १६ ॥ तब वह भयत्यागकर हांथ जोड उन मुनिनाथकी दण्डवत् कर इस प्रकारसे बोली ॥ १७ ॥ वृंदा बोली हे मुनिनाथ दयासागर ! दूसरोंकी पीडा निवारण करनेवाले दुष्टोंसे उत्पन्न भयसे रक्षाकरो ॥ १८ ॥ मैं आपसे कुछ कहनेकी इच्छा करती हूं कृपा करके आप उसे सुनले ॥ १९ ॥ हे प्रभो !ः मेरा स्वामी जलंधर रुद्रसे युद्ध

मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा ॥ हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ द्रुतम् ॥ १५ ॥ तद्धुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ ॥ विस्मितातीव दैत्येन्द्रपत्नी साभून्मुने हृदि ॥ १६ ॥ ततस्सा मुनिनाथं तं भयान्मुक्ता कृतांजलिः ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ बृन्दोवाच ॥ मुनिनाथ दयासिन्धो परपीडानिवारक ॥ रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्खलोद्भवात् ॥ १८ ॥ समर्थस्सर्वथा त्वं हि सर्वज्ञोऽपि कृपानिधे ॥ किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥ १९ ॥ जलंधरो हि मद्भर्त्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥ स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ २० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य मौनं कपटमास्थितः ॥ कर्त्तुं स्वार्थं विधानज्ञः कृपयोर्द्धमवैक्षत ॥ २१ ॥ तावत्कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥ २२ ॥ नीत्वा क्षणार्द्धमागत्य पुनस्तस्याग्रतः स्थितौ ॥ तस्यैव कं कबंधं च हस्तावास्तां मुनीश्वर ॥ २३ ॥ शिरः कबंधं हस्तौ तौ दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता ॥ २४ ॥

करनेको गया है हे सुव्रत ! युद्धमें स्वामीकी क्या दशा है सो आप कहैं ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी बोले मुनिने उसके वचन सुन कपटका मौन साधा और विधानके जाननेवाले कृपाकर ऊपरको देखने लगे ॥ २१ ॥ तबतक दो वानर आये और प्रणामकर मुनिके आगे स्थित हुए और मुनिके भ्रूक्षेपमात्रसे वे आकाशको कूद गये ॥ २२ ॥ और क्षणमात्रमें उस दैत्यका शिर और कबन्ध लेकर वे दोनों वानर उसके आगे स्थित हुए ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर ! अपने

स्वामीका शिर और कबन्ध देखकर स्वामीके दुःखसे दुःखी हो पृथिवीमें मूर्च्छा खाकर गिरपडी ॥ २४ ॥ वृंदा बोली हे प्रभो ! पहले जो आप मनोहर
वचनोंसे मुझे सुख देते थे अब उस निरपराधिनी अपनी प्यारीसे आप क्यों नहीं बोलते ॥ २५ ॥ जिसने विष्णुसहित सब देवता और गन्धर्वोंको जीत
लिया, उस त्रिलोकविजयीको एक तपस्वीने कैसे मार दिया ॥ २६ ॥ रुद्रतत्त्वको न जान कर तुमने मेरे वचन न माने हे दैत्यश्रेष्ठ ! मैंने पहलेही कहा था
कि शंकर परब्रह्म हैं ॥ २७ ॥ तुम्हारी सेवाके प्रभावसे मैंने उस तत्त्वको जाना था तुमने कुसंगके तथा अभिमानके वशसे मेरी बात न मानी ॥ २८ ॥

॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसम् ॥ २५ ॥ येन देवास्सगंधर्वा
निर्जिता विष्णुना सह ॥ कथं स तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ २६ ॥ नांगीकृतं हि मे वाक्यं रुद्रतत्त्वमजानता ॥ परं ब्रह्म
शिवश्चेति वदंत्या दैत्यसत्तम ॥ २७ ॥ ततस्त्वं हि मया ज्ञातस्तव सेवाप्रभावतः ॥ गर्वितेन त्वया नैव कुसंगवशगेन हि ॥ २८ ॥
इत्थं प्रभाष्य बहुधा स्वधर्मस्था च तत्प्रिया ॥ विललाप विचित्रं सा हृदयेन विदूयता ॥ २९ ॥ ततस्सा धैर्यमालंब्य दुःखोच्छ्वासान्वि
मुंचती ॥ उवाच मुनिवर्यं तं सुप्रणम्य कृतांजलिः ॥ ३० ॥ वृन्दोवाच ॥ ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ परोपकरणादर ॥ मयि कृत्वा कृपां
साधो जीवयैनं मम प्रभुम् ॥ ३१ ॥ यत्त्वमस्य पुनश्शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ अतस्संजीवयैनं मे प्राणनाथं मुनीश्वर ॥ ३२ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा दैत्यपत्नी सा पातिव्रत्यपरायणा ॥ पादयोः पतिता तस्य दुःखश्वासान् विमुञ्चती ॥ ३३ ॥

इस प्रकार उसकी प्रिया वृंदा अपने धर्ममें स्थित हो बहुत प्रकारके विलाप करके महादुःखी हृदयसे रुदन करने लगी ॥ २९ ॥ फिरभी दुःखसे गहरे सांस
भरती कुछेक धैर्य धारण कर हाथ जोडकर प्रणामकर मुनिश्रेष्ठसे कहने लगी ॥ ३० ॥ वृंदा बोली हे कृपासागर ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे परोपकार करनेवाले !
हे साधो ! मेरे ऊपर दयाकर आप मेरे स्वामीको जिवाइये ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे मतमें आप मेरे स्वामीको जिवानेमें समर्थ हैं इस कारण आप मेरे
प्राणनाथको जिवादें ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब पतिव्रतपरायण दैत्यपत्नीने ऐसा कहा और दुःखके आंसू बहातीहुई मुनिके चरणोंमें गिरपडी तब ॥ ३३ ॥

मुनि बोले यह शिवजीसे युद्धमें मारागया है इस कारण नहीं जियेगा संग्राममें रुद्रसे मारेहुए कभी नहीं जीते हैं ॥ ३४ ॥ तो भी कृपाकरके मैं इसको जिवाये देताहूं कारण कि शरणमें आयेकी रक्षा करनाही सनातनधर्म है ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुनिराज ! यह कहकर और उसके पतिको जिवाकर मायावी विष्णु वहांसे अंतर्धान होगये उनके कहनेपर सागरनन्दन तुरंत जी उठा, और जीवित होतेही उसने आलिंगनकर उसका मुख चूमा ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और स्वामीको जीवित देखतेही वृन्दाभी बहुत प्रसन्न हुई सब शोक त्यागनकर मरनेकी बात स्वप्नकी समान जानी ॥ ३८ ॥ जब

मुनिरुवाच ॥ नायं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि ॥ रुद्रेण निहता युद्धे न जीवन्ति कदाचन ॥ ३४ ॥ तथापि कृपयाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् ॥ रक्ष्याश्शरणगाश्चेति जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ३५ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा स मुनिस्तस्या जीवयित्वा पतिं मुने ॥ अंतर्दधे ततो विष्णुस्सर्वमायाविनां वरः ॥३६॥ द्रुतं स जीवितस्तेनोत्थितः सागरनन्दनः ॥ वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः ॥ ३७ ॥ अथ वृन्दापि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ जहौ शोकं च निखिलं स्वप्नवद्बुद्ध्यमन्यत ॥ ३८ ॥ अथ प्रसन्नहृदया सा हि संजातहृच्छया ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरान् ॥ ३९ ॥ कदाचित्सुरतस्यांते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥ वृन्दोवाच ॥ धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा क्रोधमापन्ना दर्शयंती स्वतेजसम् ॥ शशाप केशवं व्यास पातिव्रत्यरता च सा ॥ ४२ ॥ रे महाधम दैत्यारे परधर्मविदूषक ॥ गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं सर्वविषोल्बणम् ॥ ४३ ॥

वह प्रसन्न हुई तो उसको हृदयमें शयन करानेकी इच्छा करी और उसके साथ उसी वनमें बहुत दिनोंतक रमण करती रही ॥ ३९ ॥ एक समय सुरतके अन्तमें विष्णुको देखा, तब बहुत क्रोधकर घुडकती हुई विष्णुसे बोली ॥ ४० ॥ वृन्दा बोली हे विष्णु परदाराभिगामी ! तुम्हारे शीलको धिक्कारहै मैंने जाना कि वह तपस्वी मायावी तुमहीं थे ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यास ! ऐसा कह महाक्रोधकर अपना तेज दिखाते हुए पतिव्रतधर्मके प्रभावसे केशवको शाप दिया ॥ ४२ ॥ रे महा अधम दैत्य शत्रु ! पराया धर्म दूषित करनेवाले हे शठ ! सब विषोंसे भी तीक्ष्ण मेरे शापको तू ग्रहणकर ॥ ४३ ॥

जो तुमने मायासे दो राक्षस मुझको दिखाये थे वही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी भार्याको हरण करैंगे ॥ ४४ ॥ तुमभी भार्याके निमित्त दुःखी होकर वनमें
वानरोंकी सहायता ग्रहण करोगे और बनमें भ्रमण करोगे और यह सर्पेश्वर जो तुम्हारा शिष्य बना है यह भी तुम्हारे साथ होगा ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार
बोले ऐसा कहकर वृन्दा अग्निमें प्रवेश करगई विष्णुने निषेधभी किया परन्तु उसने अपना मन पतिमेंही लगाया ॥ ४६ ॥ हे मुने! उस समय ब्रह्मा
दिक सब देवता आकाशमें उसकी सद्गतिके देखनेको अपनी स्त्री सहित आये ॥४७॥ तब दैत्येन्द्रकी पत्नियोंके देखते तथा सब देवताओंके देखते २ उसका

यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ ४४ ॥ त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने
कपिसहायवान् ॥ भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥४५॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम् ॥
विष्णुना वार्यमाणापि तत्स्मितासक्तचेतसा ॥ ४६ ॥ तस्मिन्नवसरे देवा ब्रह्माद्या निखिला मुने ॥ आगता खे समं दारैः सद्गतिं वै दिद
क्षवः ॥ ४७ ॥ अथ दैत्येन्द्रपत्न्यास्तु तज्ज्योतिः परमं महत् ॥ पश्यतां सर्वदेवानामलोकमगमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ शिवातनौ विलीनं
तद्वृन्दातेजो बभूव ह ॥ आसीज्जयजयारावः खस्थितामरपंक्तिषु ॥ ४९ ॥ एवं वृन्दा महाराज्ञी कालनेमिसुतोत्तमा ॥ पातिव्रत्यप्रभा
वाच्च मुक्तिं प्राप परां मुने ॥ ५० ॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोवगुंठितः ॥ तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघकैः प्रबो
ध्यमानोपि ययौ न शांतिम् ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे जलंधरवधोपाख्याने वृन्दापति
व्रतभंगदेहत्यागवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

तेज अदृश्य होगया ॥ ४८ ॥ और वह वृन्दाका तेज पार्वतीके शरीरमें लीन होगया, और आकाशमें स्थित देवताओंमें जय जय शब्द होने लगा ॥
॥ ४९ ॥ इस प्रकारसे कालनेमिकी उत्तम कन्या महारानी वृंदा पतिव्रतधर्मके प्रभावसे परं मुक्तिको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ तब विष्णुजी वृन्दाको स्मरण
करते उसकी चिताभस्म शरीरमें लपेटकर वहीं स्थित हुए. यद्यपि सुर सिद्धोंने समझाया भी पर वह शांतिको प्राप्त न हुए ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० वृंदामुक्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

व्यासजी बोले हे तात ! हे विधिसुत ! हे प्राज्ञ ! यह आपने अद्भुत कथा सुनाई फिर संग्राममें क्या हुआ और वह दैत्य कैसे मरा सो आप कहैं ॥ १ ॥ गिरिजाके अदृश्य होनेमें और दैत्येन्द्रके युद्धमें आनेमें तथा गंधर्वविद्याके लीन होनेपर शिवजी महाराज चैतन्य हुए ॥ २ ॥ उस मायाको अंतर्धान हुआ देखकर शिवजी बडे क्रोधित हुए और लौकिकी गतिको आश्रय कर वह संहारकर्त्ता महाक्रुद्ध हुए ॥ ३ ॥ तब शिवजी विस्मित हो महाक्रोध कर फिर जलंधरसे युद्धके लिये चले और उस दैत्यने शंकरको युद्धमें आता देखकर शंकरके ऊपर बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥ तब महाबली शंकरने जलंधरके

॥ व्यास उवाच ॥ विधेः श्रेष्ठसुत प्राज्ञ कथेयं श्राविताद्भुता ॥ ततश्च किमभूदाजौ कथं दैत्यो हतो वद ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अदृश्य गिरिजां तत्र दैत्येन्द्रे रणमागते ॥ गांधर्वे च विलीने हि चैतन्योऽभूद्वृषध्वजः ॥ २ ॥ अंतर्धानगतां मायां दृष्ट्वा बुद्धो हि शंकरः ॥ चुक्रोधातीव संहारी लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ ३ ॥ ततश्शिवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलंधरं रुषा ॥ स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैस्समवाकिरद्रणे ॥ ४ ॥ क्षितं प्रभुस्तं शरजालमुग्रं जलंधरेणातिबलीयसा हरः ॥ द्रुतं प्रचिच्छेद शरैर्वरैर्निजैर्नचित्रमत्र त्रिभवप्रहंतुः ॥ ५ ॥ ततो जलंधरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् ॥ चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव ॥ ६ ॥ रथोपरि गतां बद्धां रुदंतीं पार्वतीं शिवः ॥ निशुंभ शुंभदैत्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः ॥ ७ ॥ गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा लौकिकीं दर्शयन्गतिम् ॥ बभूव प्राकृत इव शिवोप्युद्विग्नमानसः ॥ ८ ॥ अवाङ्मुखस्थितस्तूष्णीं नानालीलाविशारदः ॥ शिथिलांगो विषण्णात्मा विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ९ ॥ ततो जलंधरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ आपुंखमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥ १० ॥

सम्पूर्ण अस्त्रजालको अपने बाणोंसे शीघ्रही विनाश करदिया तीन भुवनोंके प्रहार करनेवालेमें यह कोई अद्भुत वस्तु नहीं है ॥ ५ ॥ तब जलंधरने शिवजीका अद्भुत विक्रम देखकर शिवजीके मोहनेके लिये मायाकी गौरी निर्माण की ॥ ६ ॥ शिवजीने उसके रथपर बैठी रोती हुई पार्वतीको देखा कि शुंभ और निशुंभ दैत्य उसका वध कर रहे हैं ॥ ७ ॥ पार्वतीकी यह दशा देखकर लौकिकी गतिको दिखाते हुए शंकर प्राकृत पुरुषकी समान उद्विग्नमन होगये ॥ ८ ॥ उस समय अनेक लीला करनेमें चतुर शिवजी नीचेको मुख कर शिथिल अंग विषण्णमुख अपना पराक्रम भूलकर स्थित हुए ॥ ९ ॥ उसी समय तीन

बाणोंसे जलंधरने उनको विद्ध किया वह शिवजीके शिर, हृदय और उदरमें पुंखपर्यन्त प्रविष्ट होगये ॥ १० ॥ क्षणमात्रमेंही वह महालीला करनेवाले
प्रभु प्रबुद्ध होकर ज्वालामालासे भयंकर रौद्ररूप धारण करते हुए ॥ ११ ॥ यह महा असुर शिवजीका इस प्रकार महाभयंकर रूप देखकर सन्मुख
खडे होनेको समर्थ न हुए और दशोंदिशाओंमें भाग गये ॥ १२ ॥ निशुंभ शुंभ भी जो बडे विख्यात वीर थे हे मुनीश्वर ! वह भी युद्धमें स्थित होनेको
समर्थ न हुए ॥ १३ ॥ जलंधरकी माया क्षणमात्रमें अन्तर्धान होगई उस भयंकर संग्राममें चारोंओरसे महान् हाहाकार होने लगा ॥ १४ ॥ तब शिवजीने

ततो रुद्रो महालीलो ज्ञानतत्त्वः क्षणात्प्रभुः ॥ रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ११ ॥ तस्यातीव महारौद्ररूपं दृष्ट्वा
महासुराः ॥ न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ १२ ॥ निशुंभशुंभावपि यौ विख्यातौ वीरसत्तमौ ॥ अपि तौ शेकतुर्नैव
रणे स्थातुं मुनीश्वर ॥ १३ ॥ जलंधरकृता मायांतर्हिताभूच्च तत्क्षणम् ॥ हाहाकारो महानासीत्संग्रामे सर्वतोमुखे ॥ १४ ॥ ततश्शापं
ददौ रुद्रस्तयोश्शुंभनिशुंभयोः ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा धिक्कृत्य क्रोधसंयुतः ॥ १५ ॥ रुद्र उवाच ॥ युवां दुष्टावतिखलावपराधकरौ
मम ॥ पार्वतीदंडदातारौ रणादस्मात्पराङ्मुखौ ॥ १६ ॥ पराङ्मुखो न हंतव्य इति वध्यौ न मे युवाम् ॥ मम युद्धादतिक्रांतौ गौर्य्या
वध्यौ भविष्यतः ॥ १७ ॥ एवं वदति गौरीशे सिन्धुपुत्रो जलंधरः ॥ चुक्रोधातीव रुद्राय ज्वलज्ज्वलनसन्निभः ॥ १८ ॥ रुद्रे रणे महा
वेगाद्ववर्ष निशितान्छरान् ॥ बाणांधकारसंछन्नं तथा भूमितलं ह्यभूत् ॥ १९ ॥ यावद्रुद्रः प्रचिच्छेद तस्य बाणगणान्द्रुतम् ॥ तावत्स
परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥ २० ॥

शुंभ निशुंभको शाप दिया और उनको भागता हुआ देखकर धिक्कारा ॥ १५ ॥ रुद्रबोले तुम दुष्ट खलोंने मेरा बडा अपराध किया है तुम पार्वतीको मारते
थे अब इसयुद्धसे भागते हो ॥ १६ ॥ भागते हुओंको मारना उचित नहीं है इसी कारण मैं तुम दोनोंको वध नहीं करताहूं मेरे युद्धसे तुम बचे पर युद्धमें
गौरी तुमको स्वयं संहारकरैगी ॥ १७ ॥ शिवजीके ऐसा कहनेपर समुद्रका बेटा जलंधर अग्निकी समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा ॥ १८ ॥ और महावेगसे
शिवजीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा उस समय संग्रामभूमिमें बाणोंसे अंधकार छागया ॥ १९ ॥ जबतक शिवजी उसके बाणोंको छेदन करैं तबतक

उस बलीने वृषभपर परिघका प्रहार किया ॥ २० ॥ उस प्रहारसे वृष रणभूमिसे पछि हटने लगा शिवजीने उसे खैंचा भी तथापि वह संग्राममूमिमें स्थित न हो सका ॥ २१ ॥ तब महारुद्रने इस लोकमें अपना दुस्सह तेज सबको दिखाया हे मुनीश्वर ! यह बात सत्य है ॥ २२ ॥ रौद्र शरीरधारी शंकर उस समय महा क्रोधकर प्रलयकालकी अग्निकी समान महाभयंकर होगये ॥ २३ ॥ आगे मेरुशृंगकी समान अचल उस दैत्यको खडा हुआ देखकर उसको दूसरोंसे अवध्य जानकर ॥ २४ ॥ जगत्के प्रभु ब्रह्माजीके वचनकी रक्षा करते हुए स्वयं उसके वध करनेको उद्यत हुए ॥ २५ ॥ शंकर

वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणांगणात् ॥ रुद्रेण कृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥ २१ ॥ अथ लोके महारुद्रस्स्वीयं तेजोऽतिदुस्सहम् ॥ दर्शयामास सर्वस्मै सत्यमेतन्मुनीश्वर ॥ २२ ॥ ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः ॥ प्रलयानलवद्घोरो बभूव सहसा प्रभुः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं दैत्यं मेघकूटमिव स्थितम् ॥ अवध्यत्वमपि श्रुत्वाप्यन्यैरभ्युद्यतोऽभवत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मणो वचनं रक्षन्रक्षको जगतां प्रभुः ॥ हृदानुग्रहमातन्वंस्तद्वधाय मनोदधत् ॥ २५ ॥ कोपं कृत्वा परं शूली पादांगुष्ठेन लीलया ॥ महांभसि चकाराशु रथांगं रौद्रमद्भुतम् ॥ २६ ॥ कृत्वार्णवांभसि शितं भगवान्रथांगं स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हतं पुरारिः ॥ दक्षान्धकांतकपुरत्रययज्ञहंता लोकत्रयांतककरः प्रहसन्नुवाच ॥२७॥ महारुद्र उवाच ॥ पादेन निर्मितं चक्रं जलंधर महाम्भसि ॥ बलवान्यदि चोद्धर्त्तुं तिष्ठयोद्धुं न चान्यथा ॥ २८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः ॥ प्रदहन्निव चक्षुर्भ्यां प्राहालोक्य स शंकरम् ॥ २९ ॥

शूलधारीने महाकोप करके अद्भुत और रौद्ररूपसे रथके पहियेको चरणके अंगुष्ठसे सागरमें मग्न किया ॥ २६ ॥ जब भगवान्‌ने रथके पहियेको सागरमें डुबाया और यह विचार कर कि इसने त्रिलोकीको पीडा दी है तब दक्षयज्ञ, अंधक, त्रिपुरके हन्ता तथा त्रिलोकीके संहारकर्ता शिवजी हँसते हुए बोले ॥ २७ ॥ महारुद्र बोले हे जलंधर ! महासागरमें मैंने रथके पहियेकी नेमि चरणांगुष्ठसे डुबादी है यदि बलसे तू इसको उद्धार कर सके तो संग्राममें स्थित हो अन्यथा भाग जा ॥२८॥ सनत्कुमार बोले शिवजीके यह वचन सुन क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर नेत्रोंसे शंकरको मानो जलाता हुआ दैत्य बोला॥ २९॥

जलंधर बोला हे शंकर ! इस रेखाको उद्धार कर तथा गणों सहित तुमको मारकर तथा देवताओं सहित सब लोकोंका संहार कर अपना भाग गरुडकी
समान ग्रहण करूंगा ॥ ३० ॥ मैं इन्द्रके सहित चराचरके नाश करनेमें समर्थ हूं हे महेश्वर ! त्रिलोकीमें कौन मेरे बाणोंसे भेदित नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥
ब्रह्माजीको तो बालभावसे मैंने तपसेही जीत लिया है वह ब्रह्मा बलिष्ठ होकर देवताओं सहित मेरे स्थानमें विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ क्षणमात्रमें जो
त्रिलोकीको भस्म करसकता है हे रुद्र ! क्या तुमने तपस्यासे उनको जीत लिया है ॥ ३३ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, वित्तेश, वायु, वरुणादि यह सब मेरे

जलंधर उवाच ॥ रेखामुद्धृत्य हत्वा च सगणं त्वां हि शंकर ॥ हत्वा लोकान्सुरैस्सार्द्धं स्वभागं गरुडो यथा ॥ ३० ॥ हंतुं चराचरं सर्वं
समर्थोऽहं सवासवम् ॥ को महेश्वर मद्बाणैरभेद्यो भुवनत्रये ॥ ३१ ॥ बालभावेन भगवांस्तपसैव विनिर्जितः ॥ ब्रह्मा बलिष्ठः स्थाने
मे मुनिभिरसुरपुंगवैः ॥ ३२ ॥ दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ तपसा किं त्वया रुद्रः निर्जितो भगवानपि ॥ ३३ ॥
इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः ॥ न सेहिरे यथा नागा गंधं पक्षिपतेरिव ॥ ३४ ॥ न लब्धं दिवि भूमौ च वाहनं मम शंकर ॥
समस्तान्पर्वतान्प्राप्य धर्षिताश्च गणेश्वराः ॥ ३५ ॥ गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुस्सुशोभनः ॥ धर्षितो बाहुदण्डेन कण्डू
उत्सर्पणाय मे ॥ ३६ ॥ गंगा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलार्थं हिमवद्गिरौ ॥ अरीणां मम भृत्यैश्च जयो लब्धो दिवौकसाम् ॥ ३७ ॥
वडवाया मुखं बद्धं गृहीत्वा तां करेण तु ॥ तत्क्षणादेव सकलमेकार्णवमभूत्तदा ॥ ३८ ॥

पराक्रमको इस प्रकार न सह सके जैसे सर्प गरुडकी गन्धको भी नहीं सह सकते ॥ ३४ ॥ हे शंकर ! स्वर्ग वा भूमि कहीं भी मुझे वाहन प्राप्त नहीं हुआ
मैंने समस्त पर्वतोंको प्राप्त होकर अनेक गणेश्वरोंको धर्षित किया है ॥ ३५ ॥ गिरीन्द्र, मन्दर, श्रीमान् नीलपर्वत, मेरुपर्वत, मैंने अपनी भुजाओंकी खुजली
मिटानेके लिये बहुतवार धर्षित किये हैं ॥ ३६ ॥ मैंने हिमालयपर्वतमें लीलासेही अपनी भुजाओंसे गंगाको निरुद्ध किया है और मैंने देवताओंको जो मेरे
वैरी हैं अपने नौकरोंद्वारा उनसे जय प्राप्त कराई है ॥ ३७ ॥ मैंने अपने हाथसे बडवाका मुख बन्दकर दिया, और उसी समय यह सब जगत् क्षणमात्रमें

एकार्णव होगया ॥ ३८ ॥ मैंने ऐरावत आदि हाथियोंको सागरके जलके ऊपर डाल दिया और भगवान् इन्द्रको मैंने रथसहित सौ योजनपर निक्षिप्त कर दिया ॥ ३९ ॥ गरुडको भी मैंने विष्णुके सहित नागपाशसे बांध लिया और उर्वशी आदिक स्त्रियेंभी मेरे कारागृहमें विद्यमान हैं ॥ ४० ॥ हे रुद्र ! त्रिलोकी जीतनेवाले मुझको तुम नहीं जानते मैं जलंधर महादैत्य त्रिलोक विजयी महाबली सिन्धुपुत्र हूं ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी बोले सागरनन्दनने महादेवजीसे ऐसा कहकर अचलभावसे स्थिती की और मरेहुए दानवोंको स्मरण न किया ॥४२॥ और उस दुर्मद अविनीतने अपनी भुजाओंको भुजाओंसे बलपूर्वक ताडनकर बडे कटुवचनोंसे महादेवको तिरस्कार किया ॥ ४३ ॥ यह दैत्यके उच्चारण किये हुए अमंगल वचनोंको सुनकर महादेवजी हँसे और परमक्रोध किया ॥ ४४ ॥ जो सुदर्शननामक चक्र शिवजीने चरणाङ्गुष्ठसे निर्माण किया था, शिवजी उसको हाथमें ग्रहणकर उस दैत्यके मारनेको उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ भगवान् शंकरने सुदर्शनचक्रको उसके ऊपर प्रहार किया जो कोटिसूर्यके समान तथा प्रलयानलकी समान कान्तिमान् था ॥ ४६ ॥ उसके वेगसे भूमि प्रज्वलित होने लगी और बडे नेत्रोंवाला उसका शिर बडे वेगसे उस चक्रने हरण कर लिया ॥ ४७ ॥ और पृथिवी तलको शब्दायमान करता

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि ॥ सरथो भगवानिन्द्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम् ॥ ३९ ॥ गरुडोपि मया बद्धो नागपाशेन
विष्णुना ॥ उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहांतरम् ॥ ४० ॥ मां न जानासि रुद्र त्वं त्रैलोक्यजयकारिणम् ॥ जलंधरं महादैत्यं
सिंधुपुत्रं महाबलम् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वाथ महादेवं तदा वारिधिनन्दनः ॥ न चचाल न सस्मार निहतान्दानवा
न्युधि ॥ ४२ ॥ दुर्मदेनाविनीतेन दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात् ॥ तिरस्कृतो महादेवो वचनैः कटुकाक्षरैः ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वा दैत्यवचन
ममंगलमतीरितम् ॥ विजहास महादेवः परमं क्रोधमादधे ॥ ४४ ॥ सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं पदांगुष्ठविनिर्मितम् ॥ जग्राह तत्करे रुद्रस्तेन
हंतुं समुद्यतः ॥ ४५ ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं चिक्षेप भगवान्हरः ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम् ॥ ४६ ॥ प्रदहद्रोदसी
वेगात्तदासाद्य जलंधरम् ॥ जहार तच्छिरो वेगान्महदायतलोचनम् ॥ ४७ ॥ रथात्कायः पपातोर्व्यां नादयन्वसुधातलम् ॥ शिर
श्चाप्यब्धिपुत्रस्य हाहाकारो महानभूत् ॥ ४८ ॥

हुआ उसका शिर पृथिवीमें गिरा और सागरके पुत्रको पृथिवीमें गिरतेही महान् हाहाकार हुआ ॥ ४८ ॥ अंजनपर्वतकी समान उसका देह दो खण्ड होकर पृथिवीमें गिरा, जैसे वज्रसे भिन्नदेह हो पर्वत पृथिवीमें गिरे थे ॥ ४९ ॥ उसके रुधिरसे संग्रामभूमि व्याप्त होगई हे मुनीश्वर ! तब सारी पृथिवी विकृत होगई ॥ ५० ॥ शिवजीकी आज्ञासे उसका रक्त और मांस महारौरवमें जाकर रक्तका कुंड होगया ॥ ५१ ॥ उसके शरीरसे तेज निकलकर शिवजीके शरीरमें प्रवेश कर गया जिस प्रकारसे वृन्दाका तेज गौरीके शरीरमें प्रवेश कर गयाथा ॥ ५२ ॥ देव, गन्धर्व, सर्प, जलंधरको मराहुआ देखकर सब प्रसन्न

द्विधा पपात तद्देहो ह्यंजनाद्रिरिवाचलः ॥ कुलिशेन यथा वारांनिधौ गिरिवरो द्विधा ॥ ४९ ॥ तस्य रौद्रेण रक्तेन सम्पूर्णमभवज्जगत् ॥
ततस्समस्ता पृथिवी विकृताभून्मुनीश्वर ॥ ५० ॥ तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च ॥ महारौरवमासाद्य रक्तकुंडमभूदिह ॥ ५१ ॥
तत्तेजो निर्गतं देहाद्रुद्रे च लयमागमत् ॥ वृन्दादेहोद्भवं यद्वद्गौर्य्यां हि विलयं गतम् ॥ ५२ ॥ जलंधरं हतं दृष्ट्वा देवगन्धर्वपन्नगाः ॥
अभवन्सुप्रसन्नाश्च साधु देवेति चाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ सर्वे प्रसन्नतां याता देवसिद्धमुनीश्वराः ॥ पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणास्तद्यशो जगुरुच्चकैः
॥ ५४ ॥ देवांगना महामोदान्ननृतुः प्रेमविह्वलाः ॥ कलस्वराः कलपदं किन्नरैस्सह संजगुः ॥ ५५ ॥ दिशः प्रसेदुस्सर्वाश्च हते वृन्दापतौ
मुने ॥ ववुः पुण्यास्सुखस्पर्शा वायवस्त्रिविधा अपि ॥ ५६ ॥ चन्द्रमाः शीततां यातो रविस्तेपे सुतेजसा ॥ अग्नयो जज्वलुश्शांता
बभूवाविकृतं नभः ॥ ५७ ॥

हुए और साधुवाद देने लगे ॥ ५३ ॥ देव, सिद्ध, मुनीश्वर, सब प्रसन्न होगये और पुष्पवृष्टि करके ऊंचे स्वरसे भगवान्का यश गाने लगे ॥ ५४ ॥ महामोदसे प्रसन्न होकर देवताओंकी स्त्री नृत्य करने लगीं और बडे मनोहर शब्दोंसे गन्धर्वोंके सहित गाने लगीं ॥ ५५ ॥ हे मुने ! वृन्दाके पतिके मरनेसे दिशाएँ प्रसन्न होगईं और शीतल मंद सुगंध इन तीन प्रकारकी सुख स्पर्श वायु चलने लगी ॥ ५६ ॥ चंद्रमा प्राकृतिक शीतलताको प्राप्त हुआ और सूर्य

अपने तेजसे तपने लगा, शान्त हुई अग्नि प्रज्वलित हो उठी, आकाश निर्मल होगया ॥ ५७ ॥ हे मुंने ! इस प्रकारसे सब जगत् स्वस्थ होगया जिस समय
अनन्तमूर्तिने युद्धमें सागरःनन्दनको मारा तब सब प्रसन्न होगये ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभा० द्वि० रु०पं० युद्धखण्डे जलंधरयुद्धवर्णनं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले तब ब्रह्मादि सब देवता और मुनि शिर झुकाकर भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे
देवदेव महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप साधुओंके सुख देनेवाले सदा अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले हो ॥ २ ॥ आप महाअद्भुत लीलावाले भक्तिसे

एवं त्रैलोक्यमखिलं स्वास्थ्यमापाधिकं मुने ॥ हतेऽब्धितनये तस्मिन्हरेणानंतमूर्तिना ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां
रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा
मुनयश्चाखिलास्तथा ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशं वाग्भिरिष्टाभिरानताः ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ साधुसौख्य
प्रदस्त्वं हि सर्वदा भक्तदुःखहा ॥ २ ॥ त्वं महाद्भुतसल्लीलो भक्तिगम्यो दुरासदः ॥ दुराराध्योऽसतां नाथ प्रसन्नस्सर्वदा भव ॥ ३ ॥
वेदोऽपि महिमानं ते न जानाति हि तत्त्वतः ॥ यथामति महात्मानस्सर्वे गायंति सद्यशः ॥ ४ ॥ माहात्म्यमतिगूढं ते सहस्रवदना
दयः ॥ सदा गायंति सुप्रीत्या पुनंति स्वगिरं हि ते ॥ ५ ॥ कृपया तव देवेश ब्रह्मज्ञानी भवेज्जडः ॥ भक्तिगम्यस्सदा त्वं वा इति
वेदा ब्रुवंति हि ॥ ६ ॥ त्वं वै दीनदयालुश्च सर्वत्र व्यापकस्सदा ॥ आविर्भवसि सद्भक्त्या निर्विकारस्सतां गतिः ॥ ७ ॥ भक्त्यैव ते
महेशान बहवस्सिद्धिमागताः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा दुःखिता निर्विकारतः ॥ ८ ॥

प्राप्त होनेवाले दुरासद हो हे नाथ ! आप असतोंको दुराराध्य हो आप सदा प्रसन्नरूप हो ॥ ३ ॥ आपकी महिमा तत्त्वसे वेदभी नहीं जानते यथामतिसे सब
महात्मा आपके यशको गाते हैं ॥ ४ ॥ आपके गूढ माहात्म्यको प्रेमसे शेष आदि सब गाकर अपनी वाणी पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥ हे देवेश ! आपकी
कृपासे ब्रह्मज्ञानी जड होजातेहैं आपकी भक्तिसेही मानव मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ऐसा वेद कहते हैं ॥ ६ ॥ आप दीनदयालु और सर्वत्र व्यापक हैं, सद्भक्तिसे
आपका आविर्भाव होता है आप निर्विकार और सत्पुरुषोंकी गति हैं ॥ ७ ॥ हे महेशान ! आपकी भक्तिसे बहुतसे जन सिद्धिको प्राप्त हुए हैं निर्विकारसे

दुःखी हुए यही सब प्रकारके सुख भोगते हैं ॥ ८ ॥ पहले यदु दशार्ह आपकी भक्तिकर सिद्धिको प्राप्त हुए हैं हे प्रभो ! उनकी पत्नी कलावती भी आपकी भक्तिकर सिद्धिको प्राप्त होगई ॥९॥ इसी प्रकार राजा मित्रसह और उनकी प्रिया मदयन्ती हे देवेश ! आपकी भक्तिसेही परम कैवल्यको प्राप्त हुई ॥ १० ॥ केकईकी बडी बहन सौमिनी नाम उनकी कन्या तुम्हारी भक्ति करके योगियोंमें परम दुर्लभ गतिको प्राप्त हुई ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! विमर्षणनामक राजाने आपकी सेवा करके सात जन्मतक अनेक भोग भोग कर आपकी कृपासे सद्गति पाई ॥ १२ ॥ राजा चन्द्रसेनने आपकी भक्तिसेही अनेकभोग भोगे और

पुरा यदुपतिर्भक्तो दाशार्हस्सिद्धिमागतः॥कलावती च तत्पत्नी भक्त्यैव परमां प्रभो ॥ ९ ॥ तथा मित्रसहो राजा मदयंती च तत्प्रिया ॥ भक्त्यैव तव देवेश कैवल्यं परमं ययौ ॥ १० ॥ सौमिनी नाम तनया कैकेयाग्रभुवस्तथा ॥ तव भक्त्या सुखं प्राप परं सद्योगि दुर्लभम् ॥ ११ ॥ विमर्षणो नृपवरस्सप्तजन्मावधि प्रभो ॥ भुक्त्वा भोगांश्च विविधांस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् ॥ १२ ॥ चन्द्रसेनो नृपवरस्त्वद्भक्त्या सर्वभोगभुक् ॥ दुःखमुक्तः सुखं प्राप परमत्र परत्र च ॥ १३ ॥ गोपीपुत्रः श्रीकरस्ते भक्त्या भुक्त्वेह सद्गतिम् ॥ परं सुखं महावीरशिष्यः प्राप परत्र वै ॥ १४ ॥ त्वं सत्यरथभूजानेर्दुःखहर्ता गतिप्रदः ॥ धर्मगुप्तं राजपुत्रमतार्षीस्सुखिनं त्विह ॥ ॥ १५ ॥ तथा शुचिव्रतं विप्रमदारिद्रं महाप्रभो ॥ त्वद्भक्तिवर्तिनं मात्रा ज्ञानिनं कृपयाऽकरोः ॥ १६ ॥ चित्रवर्मा नृपवरस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम् ॥ इह लोके सदा भुक्त्वा भोगानमरदुर्लभान् ॥ १७ ॥ चन्द्रांगदो राजपुत्रस्सीमंतिन्या स्त्रिया सह ॥ विहाय सकलं दुःखं सुखी प्राप महागतिम् ॥ १८ ॥

सब दुःखोंसे छूटकर दोनों लोकोंमें सुख पाया ॥ १३ ॥ श्रीकरनामवाला गोपीका पुत्र आपकी भक्तिसेही सद्गतिको प्राप्त हुआ और महावीरका शिष्य होकर दोनों लोकका सुख पाया ॥ १४ ॥ हम आपको जानते हैं कि आप दुःखहर्त्ता और गतिके देनेवाले हो आपने धर्मगुप्त और राजपुत्रको सुखी करदिया॥ ॥ १५ ॥ हे महाप्रभो ! इसी प्रकारसे आपने शुचिव्रतनामक ब्राह्मणका दारिद्र दूर करदिया, आपकी भक्तिमें वर्तनेसे ज्ञानियोंपर कृपा होती है ॥१६॥ चित्रवर्मा राजाको भी आपकी भक्तिसे सद्गति प्राप्त हुई इस लोकमें देवताओंको दुर्लभ सुख उसने भोगे ॥ १७ ॥ चित्रांगद नामक राजपुत्र अपनी सीमन्तिनी

नाम स्त्रीके सहित आपकी भक्तिसे सब दुःख छोडकर महासुखको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ जो मन्दर नामवाला ब्राह्मण वेश्यागामी महा अधम खल था वह भी आपकी भक्ति और पूजन करके उसके साथ आपकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ इसी प्रकार भद्रायु नाम राजपुत्रने आपकी भक्ति करके गति प्राप्त की हे प्रभो ! आपके भक्त आपकी कृपामात्रसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ सब प्रकारकी स्त्रियोंके भोगमें रत हो सर्वभक्षी दुर्जन भी आपकी सेवा करके विमुक्त होगया ॥ २१ ॥ हे शंकर ! शम्बर नामक पुरुष जो नियमसे भस्म धारण करता था वह भस्म न मिलनेसे स्त्रीके दग्ध शरीरकी भस्म लगाकर

द्विजो मंदरनामापि वेश्यागामी खलोऽधमः ॥ त्वद्भक्तः शिव संपूज्य तया सह गतिं गतः ॥ १९ ॥ भद्रायुस्ते नृपसुतस्सुखमाप गतव्यथः ॥ त्वद्भक्तकृपया मात्रा गतिं च परमां प्रभो ॥ २० ॥ सर्वस्त्रीभोगनिरतो दुर्जनस्तव सेवया ॥ विमुक्तोऽभूदपि सदा भक्ष्यभोजी महेश्वर ॥ २१ ॥ शंबरश्शंकरे भक्तश्चिताभस्मधरस्सदा ॥ नियमाद्भस्मनश्शंभो स्वस्त्रिया ते पुरं गतः ॥ २२ ॥ भद्रसेनस्य तनयस्तथा मंत्रिसुतः प्रभो ॥ सुधर्मशुभकर्माणौ सदा रुद्राक्षधारिणौ ॥ २३ ॥ त्वत्कृपातश्च तौ मुक्तावास्तां भुक्त्वेह सत्सुखम् ॥ पूर्वजन्मनि यौ कीशकुक्कुटौ रुद्रभूषणौ ॥ २४ ॥ पिंगला च महानन्दा वेश्ये द्वे तव भक्तितः ॥ सद्गतिं प्रापतुर्नाथ भक्तोद्धारपरायण ॥ २५ ॥ शारदा विप्रतनया बालवैधव्यमागता ॥ तव भक्तेः प्रभावात्तु पुत्रसौभाग्यवत्यभूत् ॥ २६ ॥ बिन्दुगो द्विजमात्रो हि वेश्याभोगी च तत्प्रिया ॥ वंचुका त्वद्यशः श्रुत्वा परमां गतिमाययौ ॥ २७ ॥

अपनी स्त्रीसहित आपके लोकको गया (यह स्त्री जीवित होगई थी) ॥ २२ ॥ हे देव ! इसी प्रकार भद्रसेनका पुत्र और मंत्रीका पुत्र यह सुधर्म औरं शुभकर्म करनेवाले सदा रुद्राक्ष धारण करनेवाले थे ॥ २३ ॥ आपकी कृपासे अनेक सुख यहां भोगकर यह पीछे मुक्त होगये, पूर्व जन्ममें जो कीश कुक्कुट रुद्रभूषण थे ॥ २४ ॥ तथा पिंगला और महानन्दा यह दो वेश्या आपकी भक्ति करके तरगईं हे नाथ ! हे भक्तोंके उद्धार करनेवाले ॥ २५ ॥ शारदा नामक ब्राह्मणकी कन्या जो बालविधवा थी, आपकी भक्तिके प्रभावसेही पुत्रवती और सौभाग्यवती हुई ॥२६॥ विन्दुग नाम ब्राह्मण वेश्याभोगी था और

उसकी स्त्री बंचुका आपका यश श्रवण करके परम गतिको प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकारसे बहुतसे जीव आपकी भक्तिकरके सिद्धिको प्राप्त हुए हैं हे दीनबन्धु महेशान ! भक्तिके आधीन होकरही आप पालते हो कृपाके सागर हो ॥ २८ ॥ हे देव ! आप प्रकृतिसे परे पुरुषसे परे ब्रह्म परमेश्वर हो आपही निर्गुण तीनों गुणोंके आधार ब्रह्मा विष्णु हरात्मक हो ॥ २९ ॥ आप निर्विकार सबके ईश्वरभी होकर नित्य अनेक प्रकारके कर्म करते हो हे महेश्वर ! हम ब्रह्मादिक सब आपके दास हैं ॥ ३० ॥ हे देवेश ! हे शिव ! आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा कीजिये, हे नाथ हम आपकी प्रजा और

इत्यादि बहवस्सिद्धिं गता जीवास्तव प्रभो ॥ भक्तिभावान्महेशान दीनबन्धो कृपालय ॥२८॥ त्वं परः प्रकृतेर्ब्रह्म पुरुषात्परमेश्वर ॥ निर्गुणस्त्रिगुणाधारो ब्रह्मविष्णुहरात्मकः ॥ २९ ॥ नानाकर्मकरो नित्यं निर्विकारोऽखिलेश्वरः ॥ वयं ब्रह्मादयस्सर्वे तव दासा महेश्वर ॥ ३० ॥ प्रसन्नो भव देवेश रक्षास्मान्सर्वदा शिव ॥ त्वत्प्रजाश्च वयं नाथ सदा त्वच्छरणं गताः ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुत्वा च ते देवा ब्रह्माद्यास्समुनीश्वराः ॥ तूष्णीं बभूवुर्हि तदा शिवांघ्रिद्वन्द्वचेतसः ॥ ३२ ॥ अथ शंभुर्महेशानः श्रुत्वा देवस्तुतिं शुभाम् ॥ दत्त्वा वरान्वरान्सद्यस्तत्रैवांतर्दधे प्रभुः ॥ ३३ ॥ देवास्सर्वेऽपि मुदिता ब्रह्माद्या हतशत्रवः ॥ स्वं स्वं धाम ययुः प्रीता गायंतः शिवसद्यशः ॥ ३४ ॥ इदं परममाख्यानं जलंधरविमर्दनम् ॥ महेशचरितं पुण्यं महाघौघविनाशनम् ॥ ३५ ॥ देवस्तुतिरियं पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥ सवसौख्यप्रदा नित्यं महेशानंददायिनी ॥ ३६ ॥

सदा आपके शरणमें आये हैं ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार बोले इस प्रकार जब ब्रह्मादि और सिद्ध मुनियोंने स्तुति की तब वे सब शिवके चरणकमलको देख मौन होगये ॥ ३२ ॥ तब शिवजी उस पवित्र देवस्तुतिको सुनकर देवताओंको अभिलषित वर दे शीघ्रही अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ शत्रुके मरजानेसे ब्रह्मादि सब देवता प्रसन्न हुए और शिवजीका यश गाते प्रसन्न हो सब अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ३४ ॥ यह जलंधरवधका परम आख्यान महेशचरित्र सम्मिलित होनेसे महापुण्यदायक सब पापोंका दूर करनेवाला है ॥ ३५ ॥ यह पवित्र देवस्तुति भी परम पुण्यदायक सब पापकी नाश करनेवाली है यह

नित्य सब सुख देनेवाली और नित्य महेशको आनन्द देनेवाली है ॥ ३६ ॥ जो इन दोनों आख्यानोंको पढता पढाता है वह यहां परम सुखको तथा गणपतिके अधिकारको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० देवस्तुतिवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले हे ब्रह्मपुत्र ! आपको नमस्कार है आप धन्य और शैवोंमें उत्तम हो जो आपने यह महादिव्य शिवजीकी कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे मुने ! अब आप प्रसन्न होकर विष्णुजीका चरित्र कहिये वृन्दाको मोहित कर उन्होंने क्या किया और वे कहां गये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे महापंडित !

यः पठेत्पाठयेद्वापि समाख्यानमिदं द्वयम् ॥ स भुक्त्वेह परं सौख्यं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवस्तुतिवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मपुत्र नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तम ॥ यच्छ्राविता महादिव्या कथेयं शांकरी शुभा ॥ १ ॥ इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वैष्णवं मुने ॥ स वृन्दां मोहयित्वा तु किमकार्षीत्कुतो गतः ॥ २ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाप्राज्ञ शैवप्रवर सत्तम ॥ वैष्णवं चरितं शंभुचरिताढ्यं सुनिर्मलम् ॥ ३ ॥ मौनीभूतेषु देवेषु ब्रह्मादिषु महेश्वरः ॥ सुप्रसन्नोऽवदच्छंभुश्शरणागतवत्सलः ॥ ४ ॥ ॥ शंभुरुवाच ॥ ब्रह्मन्देववरास्सर्वे भवदर्थे मया हतः ॥ जलंधरो मदंशोपि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ५ ॥ सुखमापुर्न वा तातास्सत्यं ब्रूतामराः खलु ॥ भवत्कृते हि मे लीला निर्विकारस्य सर्वदा ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ॥ प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥ ७ ॥

हे शैवोंमें श्रेष्ठ व्यासजी ! आप सुनिये यह विष्णुका चारित्र शिवजीके चारित्रसे मिला हुआ है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्मादिक देवता स्तुति करके मौन होगये तब शरणागतवत्सल शंकर प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ ४ ॥ शिवजी बोले हे ब्रह्माजी ! हे सब देवताओ ! यद्यपि जलंधर मेरा अंश था परन्तु यह सत्य है कि मैंने तुम्हारेही निमित्त उसका वध किया ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! सत्य कहो कि अब भी तुम सुखको प्राप्त हुए या नहीं मुझ निर्विकारकी यह लीला आपहीके निमित्त होती है ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले तब ब्रह्मादिक देवताओंके नेत्र हर्षसे खिल उठे और शंकरको शिरसे प्रणाम कर विष्णुजीका वृत्तान्त

निवेदन किया ॥ ७ ॥ देवता बोले हे देवदेव महादेव ! आपने शत्रुके भयसे हमारी रक्षा की पर कुछ एक और बात हुई है उसमें क्या करैं ॥ ८ ॥
ह नाथ ! बडे प्रयत्नसे विष्णुजीने वृन्दाको मोहित किया वह अग्निमें भस्म होकर परम गतिको प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ वृन्दाकी सुन्दरतासे मोहित होकर
विष्णुजी वहीं स्थित हैं और तुम्हारी मायासे मोहित होकर उसकी चिताकी भस्म धारण करते हैं ॥ १० ॥ सिद्ध मुनि तथा हमने भी आदरसे उनको
समझाया, पर आपकी मायासे मोहित होकर हरि कुछ नहीं समझते ॥ ११ ॥ हे महेशान ! कृपा करके आप विष्णुजीको समझाइये आपके ही आधीन

॥ देवा ऊचुः ॥ महादेव त्वया देव रक्षिताश्शत्रुजाद्भयात् ॥ किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे ॥ ८ ॥ वृन्दा विमोहिता नाथ
विष्णुना हि प्रयत्नतः ॥ भस्मीभूता द्रुतं वह्नौ परमां गतिमागता ॥ ९ ॥ वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ तच्चिताभ
स्मसंधारी तव मायाविमोहितः ॥ १० ॥ स सिद्धमुनिसंघैश्च बोधितोऽस्माभिरादरात् ॥ न बुध्यते हरिस्सोथ तव मायाविमो
हितः ॥ ११ ॥ कृपां कुरु महेशान विष्णुं बोधय बोधय ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं प्राकृतं सचराचरम् ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
इत्याकर्ण्य महेशो हि वचनं त्रिदिवौकसाम् ॥ प्रत्युवाच महालीलस्स्वच्छन्दस्तान्कृतांजलीन् ॥ १३ ॥ महेश उवाच ॥ हे ब्रह्मन्हे
सुरास्सर्वे मद्वाक्यं शृणुतादरात् ॥ मोहिनी सर्वलोकानां मम माया दुरत्यया ॥ १४ ॥ तदधीनं जगत्सर्वं यद्देवासुरमानुषम् ॥ तयैव
मोहितो विष्णुः कामाधीनोभवद्धरिः ॥ १५ ॥ उमाख्या सा महादेवी त्रिदेवजननी परा ॥ मूलप्रकृतिराख्याता सुरामा गिरिजा
त्मिका ॥ १६ ॥ गच्छध्वं शरणा देवा विष्णुमोहापनुत्तये ॥ शरण्यां मोहिनीं मायां शिवाख्यां सर्वकामदाम् ॥ १७ ॥

यह सब चराचर प्राकृत होरहे हैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले महेश्वर देवताओंके यह वचन सुनकर उन हाथ जोडे हुए देवताओंसे स्वच्छन्दता पूर्वक
हँसते हुए बोले ॥ १३ ॥ महेश्वर बोले हे ब्रह्मन् ! हे सब देवताओ ! आदरसे मेरे वचन सुनो सब लोकोंकी मोहनेवाली मेरी माया बडी दुस्तर है ॥ १४ ॥
देवता मनुष्योंके सहित यह सब जगत् उसीके आधीन है उसीसे मोहित होकर विष्णुजी कामके आधीन होगयेहैं ॥ १५ ॥ वह महादेवी उमानामवाली तीनों
देवताओंकी जननी है वही मूल प्रकृति वही परम मनोहर और वही गिरिजा कहाती है ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! उनके मोह दूर करनेके निमित्त आप

भगवतीकी शरण जाओ वह शिवानामक मोहिनी माया शरण्य और सब कामनाओंकी देनेवाली है ॥ १७ ॥ आप मेरी शक्तिके संतोषके निमित्त उसकी
स्तुति करो यदि वह प्रसन्न होजायगी तो तुम्हारे सब कार्य करैगी ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यास ! भगवान् पंचमुख हर इस प्रकारसे उन सब
देवताओंसे कहकर अपने गणोंसहित शीघ्रही अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ और शिवजीकी आज्ञासे सब ब्रह्मादिक देवता भक्तवत्सला प्रकृति देवीको मनसे प्रसन्न
करने लगे ॥ २० ॥ देवता बोले जिससे सत रज तम तीन गुण प्रगट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं जिसकी इच्छासे यह संसार प्रगट

स्तुतिं कुरुत तस्याश्च मच्छक्तेस्तोषकारिणीम् ॥ सुप्रसन्ना यदि च सा सर्वं कार्यं करिष्यति ॥ १८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा
तान्सुराञ्शंभुः पंचास्यो भगवान्हरः ॥ अंतर्दधे द्रुतं व्यास सर्वैश्च स्वगणैस्सह ॥ १९ ॥ देवाश्च शासनाच्छंभोर्ब्रह्माद्या हि सवासवाः ॥
मनसा तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवास्सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसविधानकारकाः ॥ यदि
च्छया विश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ पाहि त्रयोविंशगुणान् सुशब्दिताञ्जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ॥
यद्रूपकर्माणि जगत्त्रयोऽपि ते विदुर्न मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २२ ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यमोहात्ययसंभवादीन् ॥
न प्राप्नुवंत्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २३ ॥ कुरु कार्यं महादेवि देवानां नः परेश्वरि ॥ विष्णुमोहं हर
शिवे दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥ जलंधरस्य शंभोश्च रणे कैलासवासिनः ॥ प्रवृत्ते तद्वधार्थाय गौरीशासनतश्शिवे ॥ २५ ॥

और अप्रगट होताहै उस मूलप्रकृतिको हम प्रणाम करतेहैं ॥ २१ ॥ जो सम्पूर्ण जगत्में स्थित होकर शब्दादि २३ तेईस गुणोंकी रक्षा करती है तीनों
जगत्में जिसके रूप गुण प्रगट हैं और उस मूलप्रकृतिको नहीं जानते उसको हम प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ जिसकी भक्तिसे युक्त होकर यह पुरुष दरिद्र
मोहसे उत्पन्न हुए विकारोंको नहीं प्राप्त होते उस भक्तवत्सला मूलप्रकृतिको हम सदा प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ हे परेश्वरि ! हम देवताओंका कार्य आप
कीजिये, हे शिवे ! हे दुर्गे देवि ! आप विष्णुका मोह दूर करो आपको प्रणामहै ॥ २४ ॥ हे शिवे ! जिससमय कैलासवासी शंकर जलंधरके साथ युद्धमें

प्रवृत्त हुए तब गौरीकी आज्ञासे विष्णुजीने वृन्दाके मोहित करनेका प्रयत्न किया वह अपना सतीरूप धर्म नष्ट होजानेसे अग्निमें भस्महो श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुई ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ जलन्धर युद्धमें मारागया शिवजीने बडी कृपा करके हमको उसके भयसे छुडा दिया कारण कि शिवजी भक्तोंपर दया करते हैं ॥ ॥ २७ ॥ हे भगवति ! उन्हींकी आज्ञासे हम सब तुम्हारी शरण हुए हैं हे देवि ! तुम और शंकर यह दोही भक्तोंके उद्धार करनेवाले हैं ॥ २८ ॥ वृंदाके लावण्यसे मोहित हुए विष्णुजी उसी स्थानमें स्थितहैं उसकी चिताभस्मको धारण किये ज्ञानसे रहित और मोहित होगये हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वरी !

वृन्दा विमोहिता देवि विष्णुना हि प्रयत्नतः ॥ स्ववृषात्त्याजिता वह्नौ भस्मीभूता गतिं गता ॥ २६ ॥ जलंधरो हतो युद्धे तद्भयान्मोचिता वयम् ॥ गिरिशेन कृपां कृत्वा भक्तानुग्रहकारिणा ॥ २७ ॥ तदाज्ञया वयं सर्वे शरणं ते समागताः ॥ त्वं हि शंभुर्युवां देवि भक्तोद्धारपरायणौ ॥ २८ ॥ वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति तत्र वै ॥ तच्चिताभस्मसंधारी ज्ञानभ्रष्टो विमोहितः ॥ २९ ॥ संसिद्धसुरसंघैश्च बोधितोऽपि महेश्वरि ॥ न बुध्यते हरिस्सोथ तव मायाविमोहितः ॥ ३० ॥ कृपां कुरु महादेवि हरिं बोधय बोधय ॥ यथा स्वलोकं पायात्स सुचित्तस्सुरकार्यकृत् ॥ ३१ ॥ इति स्तुवंतस्ते देवास्तेजोमंडलमास्थितम् ॥ ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥ ३२ ॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः ॥ अमराश्शुश्रुवुर्व्यास कामदां व्योमचारिणीम् ॥ ३३ ॥ ॥ आकांशवाण्युवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः ॥ गौरी लक्ष्मीः सुरा ज्योती रजस्सत्त्वतमोगुणैः ॥ ३४ ॥

सिद्ध मुनियोंने उनको समझायाभी पर तुम्हारी मायासे मोहित हुए हरि चैतन्य नहीं होते ॥ ३० ॥ हे देवि ! कृपा करके तुम हरिको समझाओ जिस प्रकार वह चैतन्य होकर अपना कार्य करैं वैसा करो ॥ ३१ ॥ इस प्रकारसे स्तुति कर देवता देखने लगे कि आकाशमें तेजोमण्डलके बीचमें स्थित, अपनी ज्वालासे दिशाओंको व्याप्त करती ॥ ३२ ॥ भगवतीको उस तेजके मध्यमें ब्रह्मा इन्द्र आदिक सब देवता देखने लगे हे व्यासजी ! उस समय देवताओंने आकाशसे सब कामकी देनेवाली वाणीको सुना ॥ ३३ ॥ आकाशवाणी बोली मैंही तीन प्रकारसे तीन गुणोंसे पृथक् होकर स्थित होती हूं हे देवता ! गौरी

लक्ष्मी और ज्योति रज सत तमोगुणसे स्थित होतीहूं ॥ ३४ ॥ सो आप मेरी आज्ञासे अब उन देवियोंके समीप जाओ मेरी आज्ञासे आदरपूर्वक वे तुम्हारे मनोरथ पूरे करेंगी ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब देवताओंने यह वाणी सुनी तब और उनके नेत्र खुल गये प्रसन्नता होगई तब वह तेज अन्तर्धान होगया ॥ ३६ ॥ तब वे सब देवता आदरसे यह वचन सुनकर भगवतीके वाक्यका आदर करते हुए गौरी लक्ष्मी और सरस्वतीको प्रणाम करने लगे ॥ ३७॥ और सब देवता महाभक्तिसे उन सब देवियोंकी प्रार्थना करने लगे और वे ब्रह्मादिक शिर झुकाय अनेकप्रकारकी स्तुतियोंको करने लगे ॥ ३८ ॥

तत्र गच्छत यूयं वै तासामंतिक आदरात् ॥ मदाज्ञया प्रसन्नास्ता विधास्यंते तदीप्सितम् ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृण्वतामिंति तां वाचमंतर्द्धानमगान्महः ॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा मुने ॥ ३६ ॥ ततस्सर्वेऽपि ते देवाः श्रुत्वा तद्वाक्यमादरात् ॥ गौरीं लक्ष्मीं सुरां चैव नेमुस्तद्वाक्यचोदिताः ॥ ३७ ॥ तुष्टुवुश्च महाभक्त्या देवीस्तास्सकलास्सुराः ॥ नानाविधाभिर्वाग्भिस्ते ब्रह्माद्या नतमस्तकाः ॥ ३८ ॥ ततोऽरं व्यास देव्यस्ता आविर्भूताश्च तत्पुरः ॥ महाद्भुतैस्स्वतेजोभिर्भासयंत्यो दिगंतरम् ॥ ३९ ॥ अथ ता अमरा दृष्ट्वा सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या स्वकार्यं च न्यवेदयन् ॥४०॥ ततश्चैतास्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यमूचुश्च सादरम् ॥४१॥ देव्य ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठति॥निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥४२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा तास्ततो देव्योंतार्हिता अभवन्मुने ॥ रुद्रविष्णुविधीनां हि शक्तयस्त्रिगुणात्मिकाः ॥ ४३ ॥

हे व्यासजी। तब शीघ्रही वह तीनों देवियें उनके आगे प्रगट हुईं वे महा अद्भुत अपने तेजोंसे दिशाओंको व्याप्त करने लगीं ॥ ३९ ॥ तब वे सब देवता उन भगवतियोंको देखकर प्रसन्न चित्तसे प्रणामकर परमभक्तिसे अपना कार्य निवेदन करने लगे ॥४०॥ तब यह देवियें सब देवताओंको इस प्रकार भक्तिसे प्रणाम करते हुये देखकर उन देवताओंको कुछ बीज देती हुईं आदरसे यह वचन बोलीं ॥ ४१ ॥ देवी बोलीं जहां विष्णुजी स्थितहैं वहां यह बीज लेजाओ और वहांपर बो दो तब तुम्हारे कार्य सिद्ध हो जायँगे ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! ऐसा कहकर देवियें अन्तर्धान होगई वह त्रिगुणात्मक शक्तियें

रुद्र विष्णु और विधाता की थीं ॥ ४३ ॥ तब ब्रह्मा इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुए और उन बीजोंको लेकर जहां विष्णुजी थे वहां गये ॥ ४४ ॥ उन देवताओंने उनको वृन्दाकी चिताके नीचे भूमितलमें डालदिया, और हे मुने ! शिवकी शक्तियोंको स्मरण करते हुए वे देवता वहां स्थित हुए ॥४५॥ उन बीजोंके डालतेही उनसे तीन वनस्पति प्रगट हुईं हे मुनीश्वर ! धात्री (आमलकी) मालती और तुलसी यह तीनोंके नाम हुए ॥ ४६ ॥ विधात्रीके बीजसे धात्री, लक्ष्मीके बीजसे मालती और गौरीके बीजसे तुलसी प्रगट हुईं यह तम सत्त्व और रजोगुणवाली हैं ॥ ४७ ॥ हे मुने ! विष्णुने ज्योंही उन

ततस्तुष्टाः सुरास्सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः ॥ तानि बीजानि संगृह्य ययुर्यत्र हरिः स्थितः ॥ ४४ ॥ वृन्दाचिताभूमितले चिक्षिपुस्तानि ते सुराः ॥ स्मृत्वा तास्संस्थितास्तत्र शिवशक्त्यंशका मुने ॥ ४५ ॥ निक्षिप्तेभ्यश्च बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् ॥ धात्री च मालती चैव तुलसी च मुनीश्वर ॥ ४६ ॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता ॥ गौरीभवा च तुलसी तमस्सत्त्वरजोगुणाः ॥ ४७ ॥ विष्णुर्वनस्पतीर्दृष्ट्वा तदा स्त्रीरूपिणीर्मुने ॥ उदतिष्ठत्तदा तासु रागातिशयविभ्रमात् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा स याचते मोहात्कामासक्तेन चेतसा ॥ तं चापि तुलसी धात्री रागेणैवावलोकताम् ॥ ४९ ॥ यच्च बीजं पुरा लक्ष्म्या माययैव समर्पितम् ॥ तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराभवत् ॥५०॥ अतस्सा बर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिताम् ॥ धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा ॥ ५१ ॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ॥ वैकुंठमगमत्तुष्टस्सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥ ५२ ॥ कार्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्री च तुलसी सदा ॥ सर्वदेवप्रिया ज्ञेया विष्णोश्चैव विशेषतः ॥ ५३ ॥

स्त्रीरूपवाली वनस्पतियोंको देखा कि उनके विशेषराग विभ्रमसे तत्काल उठ बैठे ॥ ४८ ॥ और कामासक्त चित्तसे उनको देखकर मोहसे याचना करने लगे इसी प्रकार तुलसी और धात्री उनको प्रेमसे देखने लगी ॥ ४९ ॥ और जो बीज लक्ष्मीने अपनी मायासे अर्पण किया था उससे उत्पन्न हुइ स्त्री इनसे ईर्षा करने लगी ॥ ५० ॥ इस कारण वह बर्बरी नामसे विख्यात हो अत्यन्त गर्हित पनेको प्राप्त हुई और धात्री और तुलसी प्रेमसे उनको प्रीति देनेवाली हुई ॥ ५१ ॥ तब विष्णुजी दुःख भूलकर उन दोनोंके साथ सब देवताओंसे नमस्कृत हो वैकुण्ठको गये ॥ ५२ ॥ हे व्यासजी ! कार्त्तिकके महीनेमें

तुलसी और धात्री सब देवताओंको प्यारी होती हैं और विष्णुजीको विशेष प्यारी होती हैं ॥ ५३ ॥ हे मुने ! उसमें तुलसी विशेष श्रेष्ठ और धन्य है गणेशजीको छोडकर और सब देवताओंको प्रीति और कामनाकी देनेवाली है ॥ ५४ ॥ वे ब्रह्मा इन्द्रादिक देवता वैकुण्ठमें स्थित हरिको देखकर महाविष्णुकी स्तुति और प्रणाम कर अपने २ स्थानोंको गये ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अपने लोक वैकुण्ठमें स्थित होकर मोह टूट जानेसे पूर्ववत् सुखी हो विष्णुजी शंकरका स्मरण करने लगे ॥ ५६ ॥ यह आख्यान मनुष्योंके सब पापोंको दूरकर सब कामनाओंका देनेवाला है यह सब कामके विकारोंका हरनेवाला

तत्रापि तुलसी धन्यातीव श्रेष्ठा महामुने ॥ त्यक्त्वा गणेशं सर्वेषां प्रीतिदा सर्वकामदा ॥ ५४ ॥ वैकुण्ठस्थं हरिं दृष्ट्वा ब्रह्मेन्द्राद्याश्च तेऽमराः ॥ नत्वा स्तुत्वा महा विष्णुं स्वस्वधामानि वै ययुः ॥ ५५ ॥ वैकुण्ठोऽपि स्वलोकस्थो भ्रष्टमोहस्सुबोधवान् ॥ सुखी चाभून्मुनिश्रेष्ठ पूर्ववत्संस्मरञ्छिवम् ॥ ५६ ॥ इत्याख्यानमघोघघ्नं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥ सर्वकामविकारघ्नं सर्वविज्ञानवर्द्धनम् ॥ ५७ ॥ य इदं हि पठेन्नित्यं पाठयेद्वापि भक्तिमान् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ५८ ॥ पठित्वा य इदं धीमानाख्यानं परमोत्तमम् ॥ संग्रामं प्रविशेद्वीरो विजयी स्यान्न संशयः ॥ ५९ ॥ विप्राणां ब्रह्मविद्यादं क्षत्रियाणां जयप्रदम् ॥ वैश्यानां सर्वधनदं शूद्राणां सुखदं त्विदम् ॥ ६० ॥ शंभुभक्तिप्रदं व्यास सर्वेषां पापनाशनम् ॥ इह लोके परत्रापि सदा सद्गतिदायकम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधानंतरदेवीस्तुतिविष्णुमोहविध्वंसवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

तथा सब ज्ञानका बढानेवाला है ॥ ५७ ॥ जो भक्तिसे इसको नित्य पढते वा पढाते हैं जो सुनते सुनातेहैं वह परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥ जो बुद्धिमान् इस परम उत्तम आख्यानको पढकर वीरताके साथ संग्राममें जाता है इसमें सन्देह नहीं उसकी जय होती है ॥ ५९ ॥ यह ब्राह्मणोंको ब्रह्मविद्या और क्षत्रियोंको जय देनेवाला है वैश्योंको सब प्रकारके धन और शूद्रोंको सुख देनेवाला है ॥ ६० ॥ हे व्यास यह शिवकी भक्ति देनेवाला तथा सबके पाप नाश करनेवाला है इस लोक और परलोक सबमें सद्गति देता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषा० द्वि०रु० पं०यु० षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! अब प्रेमसे आप शंकरके दूसरे चरित्रको सुनिये जिसके श्रवणमात्रसे शंकरमें दृढ भक्ति होती है ॥ १ ॥ शंखचूडनामका वीर
दानव जो देवताओंको कंटकस्वरूप था शिवजीने उसका त्रिशूलसे जिसप्रकार रणभूमिमें वध किया ॥ २ ॥ वह शिवजीका पवित्र और पापनाशक दिव्य
चरित्र है हे व्यास ! प्रेमसे सुनो मैं तुम्हारे स्नेहके कारण कहता हूं ॥ ३ ॥ जो विधाताके पुत्र मरीचिके कश्यपजी जन्मे, वह बडे धर्मात्मा, सृष्टिके कर्ता,
विधाताकी आज्ञा माननेवाले थे ॥ ४ ॥ दक्षजीने प्रसन्न होकर उनको अपनी तेरह कन्या व्याह दीं उनकी बहुत सन्तानें हुईं जिनको हम विस्तारके भयसे

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यच्छंभुचरितं प्रेमतः शृणु वै मुने ॥ यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥ शंखचूडाभिधो वीरो
दानवो देवकंटकः ॥ यथा शिवेन निहतो रणमूर्ध्नि त्रिशूलतः ॥२॥ तच्छंभुचारितं दिव्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ शृणु व्यास सुसंप्रीत्या
वच्मि सुस्नेहतस्तव ॥ ३ ॥ मरीचेस्तनयो धातुः पुत्रो यः कश्यपो मुनिः ॥ स धर्मिष्ठस्सृष्टिकर्त्ता विध्याज्ञप्तः प्रजापतिः ॥ ४ ॥ दक्षः
प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश ॥ तासां प्रसूतिः प्रसभं न कथ्या बहुविस्तृताः ॥५ ॥ यत्र देवादिनिखिलं चराचरमभूज्जगत् ॥
विस्तरात्तत्प्रवक्तुं च कः क्षमोऽस्ति त्रिलोकके ॥ ६ ॥ प्रस्तुतं शृणु वृत्तांतं शंभुलीलान्वितं च यत् ॥ तदेव कथयाम्यद्य शृणु भक्तिप्र
वर्द्धनम् ॥ ७ ॥ तासु कश्यपपत्नीषु दनुस्त्वेका वरांगना ॥ महारूपवती साध्वी पतिसौभाग्यवर्द्धिता ॥ ८ ॥ आसंस्तस्या दनोः पुत्रा
बहवो बलवत्तराः ॥ तेषां नामानि नोच्यंते विस्तारभयतो मुने ॥ ९ ॥ तेष्वेंको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ॥ तत्पुत्रो धार्मिको
दंभो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १० ॥ नासीत्तत्तनयो वीरस्ततश्चिंतापरोऽभवत् ॥ शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णमंत्रमवाप्य च ॥ ११ ॥

नहीं कहते ॥ ५ ॥ जिनसे सम्पूर्ण देवता और चराचर जगत् उत्पन्न हुआ, त्रिलोकीमें उसका विस्तार कहनेको कौन समर्थ है ॥ ६ ॥ उस शिवलीलासे
संयुक्त वृत्तान्तको आप श्रवण कीजिये, वह भक्तिका बढानेवाला वृत्तान्त मैं अब कहता हूं ॥ ७ ॥ उन कश्यपजीकी स्त्रियोंमें एकका नाम दनु था वह
साध्वी महारूपवती पतिके सौभाग्यसे दर्पितथी ॥ ८ ॥ उस दनुके भी बलवान् बहुतसे पुत्र हुए, हे मुने ! विस्तारके भयसे उन सबके नाम नहीं कहते ॥९॥
उनमें एक विप्रचित्ति नामक पुत्र बडा बली और पराक्रमी था, उसका पुत्र दंभ बडा धार्मिक विष्णुभक्त और जितेन्द्रिय था ॥ १० ॥ उस वीरके कोई

पुत्र नहीं था इससे उसको बडी चिन्तां थी, उसने शुक्राचार्यको गुरु करके कृष्णमन्त्र ग्रहण किया ॥ ११ ॥ और पुष्करमें आकर लक्षवर्षतक तप किया, आसन बांधकर बहुत कालतक बराबर तप किया ॥ १२ ॥ तब तप करते करते उसके शिरमेंसे बडा दुःसह सर्वत्र फैलनेवाला तेज प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ उससे सब देवता मुनि और मनु तापित होगये, और इन्द्रको आगे कर सब ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ १४ ॥ सब सम्पत्तियोंके देनेवाले विधाताको प्रणाम करके देवता व्याकुल हो प्रार्थना करने लगे और सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ १५ ॥ यह सुनकर विधाता वैकुण्ठमें उन सबके सहित गये और यह सब वृत्तान्त विष्णुजीको सुनानेकी इच्छा की ॥ १६ ॥ वहां सब लोकोंकी रक्षा करनेवाले विष्णुके समीप जाकर प्रणाम कर शिर झुकाय सब देवता नम्र हो स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ देवता बोले हे देवदेव ! हम नहीं जानते कि क्या कारण हुआ, हम सब किसके तेजसे तप्त हुए हैं सो कारण आप कहैं ॥ १८ ॥ हे दीनबंधु ! आप तप्त हुए अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं हे रमानाथ ! हम शरण आयेहुओंकी आप रक्षा करैं ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले विष्णुजी ब्रह्मादि देवताओंके इस प्रकारके वचन सुनकर शरणागतवत्सलताके कारण हँसते हुए बोले ॥ २० ॥ विष्णुजी बोले हे देवताओ ! भय मत करो स्वस्थ

तपश्चकार परमं पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥ कृष्णमंत्रं जजापैव दृढं बद्ध्वासनं चिरम् ॥ १२ ॥ तपः प्रकुर्वतस्तस्य मूर्ध्नो निस्सृत्य प्रज्वलत् ॥ विससार च सर्वत्र तत्तेजो हि सुदुस्सहम् ॥ १३ ॥ तेन तप्तास्सुरास्सर्वे मुनयो मनवस्तथा ॥ सुनासीरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ १४ ॥ प्रणम्य च विधातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥ तुष्टुवुर्विकलाः प्रोचुः स्ववृत्तांतं विशेषतः ॥ १५ ॥ तदाकर्ण्य विधातापि वैकुंठं तैर्ययौ सह ॥ तदेव विज्ञापयितुं निखिलेन हि विष्णवे ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा त्रिलोकेशं विष्णुं रक्षाकरं परम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुस्सर्वे करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥ १७ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव न जानीमो जातं किं कारणं त्विह ॥ संतप्तास्सकला जातास्तेजसा केन तद्वद ॥ १८ ॥ तप्तात्मनां त्वमविता दीनबंधोऽनुजीविनाम् ॥ रक्षरक्ष रमानाथ शरण्यश्शरणागतान् ॥ १९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णुर्ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ उवाच विहसन्प्रेम्णा शरणागतवत्सलः ॥ २० ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ सुस्वस्था भवताव्यग्रा न भयं कुरुतामराः ॥ नोपप्लवा भविष्यन्ते लयकालो न विद्यते ॥ २१ ॥

हो जाओ उपद्रव और प्रलयका समय अभी नहीं है ॥ २१ ॥ मेरा भक्त दंभनाम दानव तपस्या करता है उसे पुत्रकी इच्छा है सो वरदानसे उसको निवृत्त किये देता हूं ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुने ! ऐसा सुनकर देवताओंको धीरज हुआ और ब्रह्मादिक देवता सब अपने २ स्थानोंको गये ॥ २३ ॥ इस ओर भगवान्भी वरदान देनेको पुष्करमें गये, जहां वह दंभनामवाला दानव तपस्या करता था ॥ २४ ॥ वहां जाकर सांत्वना देतेहुए भगवान्ने वर मांगनेको कहा जहां वह नारायणमंत्र जप रहा था, वहां भगवान्ने मनोहर वाणीसे कहा वर मांगो ॥ २५ ॥ यह भगवान्के वचन सुन और उनको अपने

दानवो दंभनामा हि मद्भक्तः कुरुते तपः ॥ पुत्रार्थी शमयिष्यामि तमहं वरदानतः ॥२२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तास्ते सुरास्सर्वे धैर्यमालंब्य वै मुने ॥ ययुर्ब्रह्मादयस्सुस्थास्स्वस्वधामानि सर्वशः ॥ २३ ॥ अच्युतोऽपि वरं दातुं पुष्करं संजगाम ह ॥ तपश्चरति यत्रासौ दंभनामा हि दानवः ॥ २४ ॥ तत्र गत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच परिसांत्वयन् ॥ गिरा सूनृतया भक्तं जपंतं स्वमनुं हरिः ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दृष्ट्वा तं च पुरःस्थितम् ॥ प्रणनाम महाभक्त्या तुष्टाव च पुनःपुनः ॥ २६ ॥ दंभ उवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु पुंडरीकविलोचन ॥ रमानाथ त्रिलोकेश कृपां कुरु ममोपरि ॥ २७ ॥ स्वभक्तं तनयं देहि महाबलपराक्रमम् ॥ त्रिलोकजयिनं वीरमजेयं च दिवौकसाम् ॥ २८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तो दानवेन्द्रेण तं वरं प्रददौ हरिः ॥ निवर्त्य चोग्रतपसस्तत स्सोंतरधान्मुने ॥ २९ ॥ गते हरौ दानवेन्द्रः कृत्वा तस्यै दिशे नमः ॥ जगाम स्वगृहं सिद्धतपाः पूर्णमनोरथः ॥ ३० ॥ कालेनाल्पेन तत्पत्नी सगर्भा भाग्यवत्यभूत् ॥ रराज तेजसात्यंतं रोचयंती गृहांतरम् ॥ ३१ ॥

आगे स्थित हुआ देखा तब महाभक्तिसे प्रणामकर दंभ बोला ॥ २६ ॥ दंभ बोला हे देवदेव ! हे कमललोचन ! आपको प्रणाम है हे रमानाथ ! हे त्रिलोकेश ! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २७ ॥ आप महाबली पराक्रमी अपनाभक्त पुत्र दीजिये जो त्रिलोकीका जीतनेवाला वीर जिसे देवता न जीत सकैं ॥ २८ ॥ दानवेन्द्रके ऐसा कहनेसे नारायणने वर दिया और उग्र तपस्या करनेसे उसको विराम दिया, और आप अन्तर्धान होगये ॥ २९ ॥ हरिके जानेसे दानवेन्द्रने उस दिशाको नमस्कारकर पूर्णमनोरथ और सिद्धतप हो अपने घरको गमन किया ॥ ३० ॥ थोडेही समयमें उसकी पत्नी गर्भवती

हुई और तेजसे अत्यन्त घरको प्रकाश करने लगी ॥ ३१ ॥ सुदामानामका गोप जो श्रीकृष्णका पार्षद है हे मुने ! वह राधासे शापित होकर उसके गर्भमें आया ॥ ३२ ॥ समयपर साध्वीने श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया और पिताने बहुतसे मुनियोंको बुलाकर जातकर्म किया ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! उसके उत्पन्न होनेसे महान् उत्सव हुआ और पिताने उसका नाम शंखचूड रक्खा ॥ ३४ ॥ और वह पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान बढने लगा बालकपनमें विद्याभ्यास करके वह बडा दीप्तिमान् हुआ ॥ ३५ ॥ वह बालक्रीडा करके नित्य पिताका आनन्द बढाने लगा और वह अपने सब कुटुम्बियोंका

सुदामा नाम गोपो यो कृष्णस्य पार्षदाग्रणीः ॥ तस्या गर्भे विवेशासौ राधाशप्तश्च यन्मुने ॥ ३२ ॥ असूत समये साध्वी सुप्रभं तनयं ततः ॥ जातकं सुचकारासौ पिताहूय मुनीन्बहून् ॥ ३३ ॥ उत्सवस्सुमहानासीत्तस्मिञ्जाते द्विजोत्तम ॥ नाम चक्रे पिता तस्य शंखचूडेति सद्दिने ॥३४ ॥ पितुर्गेहे स ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ शैशवेभ्यस्तविद्यस्तु स बभूव सुदीप्तिमान् ॥ ३५ ॥ स बालक्रीडया नित्यं पित्रोर्हर्षं ततान ह ॥ प्रियो बभूव सर्वेषां कुलजानां विशेषतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततश्च शंखचूडोऽसौ जीगीषव्योपदेशतः ॥ तपश्चकार सुप्रीत्या ब्रह्मणः पुष्करे चिरम् ॥ १॥ गुरुदत्तां ब्रह्मविद्यां जजाप नियतेन्द्रियः ॥ स एकाग्रमना भूत्वा करणानि निगृह्य च ॥ २ ॥ तपंतं पुष्करे तं वै शंखचूडं च दानवम् ॥ वरं दातुं जगामाशु ब्रह्मा लोकगुरुर्विभुः ॥ ३ ॥ वरं ब्रूहीति प्रोवाच दानवेन्द्रं विधिस्तदा ॥ स दृष्ट्वा तं ननामातिनम्रस्तुष्टाव सद्गिरा ॥ ४ ॥ वरं ययाचे ब्रह्माणमजेयत्वं दिवौकसाम् ॥ तथेत्याह विधिस्तं वै सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ ५ ॥

प्रिय हुआ ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भा० द्वि० रु० पं० यु० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ तब इस शंखचूडने जैगीषव्यके उपदेशसे पुष्करमें बहुतकालतक तप किया ॥ १ ॥ जितेन्द्रिय होकर गुरुकी दी हुई ब्रह्मविद्याको जपने लगा, वह एकाग्रमन होकर और इन्द्रियोंको निग्रहकर तप करने लगा ॥ २ ॥ इस प्रकार शंखचूडदानवको पुष्करमें तप करता देखकर लोकके गुरु ब्रह्माजी वरदान देनेको आये ॥ ३ ॥ उस समय ब्रह्माजीने दानवेन्द्रसे वर मांगनेको कहा वह बडा नम्र हो अच्छी वाणीसे स्तुति करने लगा ॥ ४ ॥ और ब्रह्मासे वर मांगा कि देवता मुझे न जीत सकैं और ब्रह्माजीने प्रसन्न हो

कहा ऐसा ही होगा ॥ ५ ॥ जगत्के मंगलका देनेवाला जो श्रीकृष्णजीका दिव्य कवच है वह सब जगह जयका देनेवाला श्रीकृष्णका कवच ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे दिया ॥ ६ ॥ और कहा कि तू बदरिकाश्रममें चलाजा जहां कामनासहित तुलसी तपस्या करती है उससे विवाह कर ॥ ७ ॥ वह धर्मध्वजकी सुता है ऐसा कहकर विधाता उसके देखते २ क्षणमात्रमें अन्तर्धान होगये ॥ ८ ॥ तब वह तपसिद्ध शंखचूड पुष्करस्थानमें उस महामंगल देनेवाले श्रीकृष्णके दिव्य कवचको गलेमें बांध कर ॥ ९ ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे तपसे सिद्ध मनोरथ होकर प्रसन्न हो बद्रिकाश्रममें आया ॥ १० ॥

श्रीकृष्णकवचं दिव्यं जगन्मंगलमंगलम् ॥ दत्तवाञ्शंखचूडाय सर्वत्र विजयप्रदम् ॥ ६ ॥ बदरीं संप्रयाहि त्वं तुलस्या सह तत्र वै ॥ विवाहं कुरु तत्रैव सा तपस्यति कामतः ॥ ७ ॥ धर्मध्वजसुता सेति संदिदेश च तं विधिः ॥ अन्तर्धानं जगामाशु पश्यतस्तस्य तत्क्षणात् ॥ ८ ॥ ततस्स शंखचूडो हि तपःसिद्धोऽति पुष्करे ॥ गले बबंध कवचं जगन्मंगलमंगलम् ॥ ९ ॥ आज्ञया ब्राह्मणस्सोऽपि तपःसिद्धमनोरथः ॥ समाययौ प्रहृष्टास्यस्तूर्णं बदारिकाश्रमम् ॥ १० ॥ यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र शंखचूडश्च दानवः ॥ तपश्चरन्ती तुलसी यत्र धर्मध्वजात्मजा ॥ ११ ॥ सुरूपा सुस्मिता तन्वी शुभभूषणभूषिता ॥ सकटाक्षं ददर्शासौ तमेव पुरुषं परम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् ॥ उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः ॥ १३ ॥ शंखचूड उवाच ॥ का त्वं कस्य सुता त्वं हि किं करोषिस्थितात्र किम् ॥ मौनीभूता किंकरं मां संभावितुमिहार्हसि ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामं तमुवाच सा ॥ १५ ॥ तुलस्युवाच ॥ धर्मध्वजसुताहं च तपस्यामि तपस्विनी ॥ तपोवने च तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥ १६ ॥

वह शंखचूड दानव वहां अपनी इच्छासेही प्राप्त हुआ जहां धर्मध्वजकी पुत्री तपस्या करती थी ॥ ११ ॥ वह सुरूपवान् सुन्दर हँसनेवाली सूक्ष्मांगी सुन्दर भूषणोंसे भूषित कटाक्षंपूर्वक उस परमपुरुषको देखने लगी ॥ १२ ॥ उस ललितमनोहर सुशील सुन्दरीको देख उसके समीप जाकर उसने मधुर वचन कहे ॥ १३ ॥ शंखचूड बोला हे सुन्दरि ! तुम कौन किसकी कन्या हो? यहां स्थितहुई क्या करती हो? तुम मौनवाली क्योंहो ? मुझे अपना दास जानकर सेवामें लो ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी बोले यह वचन सुनकर वह स्त्री उस कामीसे बोली ॥ १५ ॥ तुलसी बोली मैं धर्मध्वजकी कन्या तपस्विनी हूं, मैं तपोवनमें

तपकरती हूं तुम कौन हो अपने स्थानमें सुखपूर्वक जाओ ॥ १६ ॥ यह नारीजाति बडी मोंहिनी होतीहै, ब्रह्मादिकको विषकी समान होती है, बडी निन्दाके योग्य दोषकरनेवाली मायारूप तथा विचारशीलोंको शृंखलारूप है ॥ १७ ॥ सनत्कुमार बोले तुलसी उससे यह रसीले वचन कहकर मौन होगई और उसको मुसकाताहुआ देखकर शंखचूड बोला ॥ १८ ॥ शंखचूड बोला हे देवि ! तुमने जो कहा वह सबही अलीक नहीं है कुछ सत्य और कुछ मर्यादारहित है कुछ मुझसे सुनो ॥ १९ ॥ पतिव्रता स्त्रियोंके मध्यमें तुम अग्रणी हो मैं पापदृष्टिका कामी नहीं हूं और तुमभी ऐसी नहीं हो यह मेरी बुद्धि

नारीजातिर्मोंहिनी च ब्रह्मादीनां विषोपमा ॥ निन्द्या दोषकरी माया शृंखला ह्यनुशायिनाम् ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा तुलसी तं च सरसं विरराम ह ॥ दृष्ट्वा तां सस्मितां सोपि प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १८ ॥ शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् ॥ किञ्चित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय ॥ १९ ॥ पतिव्रताः स्त्रियो याश्च तासां मध्ये त्वमग्रणीः ॥ न चाहं पापदृक्कामी तथा त्वं नेति धीर्मम ॥ २० ॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना ॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥ २१ ॥ शंखचूडोऽहमेवास्मि देवविद्रावकारकः ॥ मां न जानासि किं भद्रे न श्रुतोऽहं कदाचन ॥ २२ ॥ दनुवंश्यो विशेषेण मन्द पुत्रश्च दानवः ॥ सुदामा नाम गोपोहं पार्षदश्च हरेः पुरा ॥ २३ ॥ अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥ जातिस्मरोऽहं जानामि सर्वं कृष्णप्रभावतः ॥ २४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वा शंखचूडो विरराम च तत्पुरः ॥ दानवेंद्रेण सेत्युक्ता वचनं सत्यमादरात् ॥ सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

है ॥ २० ॥ मैं ब्रह्माकी आज्ञासे तुम्हारे समीप आयाहूं हे शोभने ! गंधर्वविवाहसे तुम मुझे ग्रहण करो ॥ २१ ॥ मैं शंखचूडनामवाला देवताओंको विद्रावण करसकताहूं, हे भद्रे ! तू मुझे नहीं जानती, तैंने मुझे कभी नहीं सुना ॥ २२ ॥ मैं दम्भपुत्र दानव दनुके वंशमें प्रगट हुआहूं मैं सुदामानाम गोप नारायणका पार्षद हूं ॥ २३ ॥ इस समय मैं राधिकाके शापसे दानव हुआहूं, मैं कृष्णके प्रसादसे जातिस्मरण होनेसे सब जानताहूं ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले शंखचूड ऐसा कहकर उसके सन्मुख मौन होगया और दानवराजके ऐसा कहनेपर तुलसीने कहा यह बात सत्य है और संतुष्ट हो हँस

तीहुई तुलसी कहने लगी ॥ २५ ॥ तुलसी बोली तैंने इस समय मुझे विचारमें पराजित करलिया वही पुरुष संसारमें धन्य है जो स्त्रियोंसे पराजित नहीं है ॥ २६ ॥ जिस पुरुषको स्त्रीने जीतरक्खा है वह सत्क्रियावाला होकरभी नित्य अपवित्र है उसकी देवता पितर मनुष्य सब निन्दा करते हैं ॥ २७ ॥ मृत और सूतकमें ब्राह्मण दशदिनमें क्षत्रिय बारहदिन और वैश्य पन्द्रह दिनमें शुद्ध होता है ॥ २८ ॥ शूद्र एकमहीनेमें शुद्ध होता है यह वेदकी आज्ञा है परन्तु स्त्रीजित कभी शुद्ध नहीं होता है चितादाहके विना उसकी शुद्धि नहीं है ॥ २९ ॥ पितर उससे इच्छापूर्वक पिण्ड तर्पण ग्रहण नहीं करते और

तुलस्युवाच ॥ त्वयाहमधुना सत्त्वविचारेण पराजिता ॥ स धन्यः पुरुषो लोके न स्त्रिया यः पराजितः ॥ २६ ॥ सत्क्रियोप्यशुचिर्नित्यं स पुमान्यः स्त्रिया जितः ॥ निन्दंति पितरो देवा मानवास्सकलाश्च तम् ॥ २७ ॥ शुध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतसूतके ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ॥ २८ ॥ शूद्रो मासेन शुध्येत्तु हीति वेदानुशासनम् ॥ न शुचिः स्त्रीजितः क्वापि चितादाहं विना पुमान् ॥ २९ ॥ न गृह्णतीच्छया तस्मात्पितरः पिण्डतर्पणम् ॥ न गृह्णन्ति सुरास्तेन दत्तं पुष्पफलादिकम् ॥ ३० ॥ तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः ॥ विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ३१ ॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः ॥ कृत्वा कांतपरीक्षां वै वृणुयात्कामिनी वरम् ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवं प्रवदंत्यां तु तुलस्यां तत्क्षणे विधिः ॥ तत्राजगाम संस्रष्टा प्रोवाच वचनं ततः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह ॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु ॥ ३४ ॥ त्वं वै पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं च त्वियं सती ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान् भवेत् ॥ ३६ ॥

देवता उसके दिये पुष्प फलादिक ग्रहण नहीं करते ॥ ३० ॥ उसको ज्ञान, तप, जप, होम, पूजनसे क्या लाभ है विद्या और दानसेभी क्यालाभ है स्त्रियोंने जिसका मन हड़लिया है ॥ ३१ ॥ विद्याप्रभाव जाननेके लिये मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी स्वामीकी परीक्षा करकेही स्त्रियोंको स्वामीका वरण करना चाहिये ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार बोले तुलसीके ऐसा कहतेही विधाता उसी समय आकर इस प्रकारसे बोले ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले हे शंखचूड ! तुम इसके साथ विवाद क्या करते हो गंधर्व विवाहसे तुम इसका पाणिग्रहण करो ॥ ३४ ॥ तुम पुरुषोंमें रत्न और यह तुलसी स्त्रियोंमें रत्न है, चतुरोंका चतुरोंके

साथ संगम गुणवाला होता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! विरोधरहित दुर्लभ सुखको कौन त्यागन करसकता है जो विरोधरहित सुखका त्याग करता है इसमें
संदेह नहीं वह पशु है ॥३६॥ हे सति ! इस प्रकारके गुणी पतिकी तुम क्या परीक्षा करती हो यह देव असुर दानव सबकाही मर्दन करनेवाला है॥ ३७॥
इसके संग तू निरन्तर विहार कर, हे सुन्दरि ! सब लोकोंके अनेक स्थानोंमें विहार कर ॥ ३८ ॥ अन्तमें यहभी श्रीकृष्णके गोलोकमें प्राप्त होगा वैकुण्ठमें
यह चतुर्भुज होगा तू इसको प्राप्त होगी ॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी बोले विधाता इस प्रकार अशीश देकर अपने स्थानको गये और दानवने उसको गन्धर्वविवाहसे ग्रहण किया ॥४०॥तुलसीको इस प्रकार विवाह करके वह पिताके स्थानको गया और अपने सुन्दर स्थानमें उसके साथ रमण करने लगा ॥ ४१ ॥
इति श्रीशिवम० भा० द्वि० रु० पं० यु० अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी बोले जब इस प्रकार विवाह करके शंखचूड घर आया, और तपस्या
कर वर पाया तब सब दानव प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ और अपने गुरुके सहित अपने लोकसे आकर सब दैत्य मिलकर उसके समीप गये ॥ २ ॥

निर्विरोधं सुखं राजन् को वा त्यजति दुर्लभम् ॥ योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥ ३६ ॥ किं त्वं परीक्षसे कांतमीदृशं
गुणिनं सति ॥ देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥ ३७ ॥ अनेन सार्द्धं सुचिरं विहारं कुरु सर्वदा ॥ स्थानेस्थाने यथेच्छं
च सर्वलोकेषु सुन्दरि ॥ ३८ ॥ अंते प्राप्स्यति गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव सः ॥ चतुर्भुजं च वैकुण्ठे मृते तस्मिंस्त्वमाप्स्यसि ॥ ३९ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं तु ययौ विधिः ॥ गांधर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥ ४० ॥ एवं विवाह्य
तुलसीं पितुः स्थानं जगाम ह ॥ स रेमे रमया सार्द्धं वासगेहे मनोरमे ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे
युद्धखंडे शंखचूडतपःकरणविवाहवर्णनं नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स्वगेहमागते तस्मिन्शंखचूडे
विवाहिते ॥ तपः कृत्वा वरं प्राप्य मुमुदुर्दानवादयः ॥ १ ॥ स्वलोकादाशु निर्गत्य गुरुणा स्वेन संयुताः ॥ सर्वे सुरास्संमिलिता
स्समाजग्मुस्तदंतिकम् ॥ २ ॥

विनयपूर्वक उसको प्रणाम कर और आदरसे स्तुति करके उसको तेजस्वी विभु मानकर आदरसे वहीं स्थित हुए ॥ ३ ॥ उस दम्भपुत्रनेभी अपने कुलगुरुको आया देखकर महाभक्तिसे साष्टांग प्रणाम किया ॥ ४ ॥ तब कुलगुरु शुक्राचार्यने उस तेजस्वी शिष्यको श्रेष्ठ आशीर्वाद देकर देव दानवोंका वृत्तान्त उससे वर्णन किया ॥ ५ ॥ स्वभावसेही असुरोंका वैर और माहात्म्य तथा उनकी पराजय, देवताओंकी विजय बृहस्पतिका उनकी सहायता करना वर्णन किया ॥ ६ ॥ तब उन्होंने परस्पर सम्मति करके दानव और असुरोंकी आधिपत्यतामें शुक्राचार्यने अभिषेक किया ॥ ७ ॥ तब प्रसन्न होनेवाले असुरों

प्रणम्य तं सविनयं संस्तुत्य विविधादरात् ॥ स्थितास्तत्रैव सुप्रीत्या मत्वा तेजस्विनं विभुम् ॥ ३ ॥ सोपि दम्भात्मजो दृष्ट्वा गतं कुल
गुरुं च तम् ॥ प्रणनाम महाभक्त्या साष्टांगं परमादरात् ॥ ४ ॥ अथ शुक्रः कुलाचार्यो दृष्ट्वाशिषमनुत्तमम् ॥ वृत्तांतं कथयामास
देवदानवयोस्तदा ॥ ५ ॥ स्वाभाविकं च तद्वैरमसुराणां पराभवम् ॥ विजयं निर्जराणां च जीवसाहाय्यमेव च ॥ ६ ॥ ततस्स सम्मतं
कृत्वा सुरैस्सर्वैस्समुत्सवम् ॥ दानवाद्यसुराणां तमधिपं विदधे गुरुः ॥ ७ ॥ तदा समुत्सवो जातोऽसुराणां मुदितात्मनाम् ॥ उपाय
नानि सुप्रीत्या ददुस्तस्मै च तेऽखिलाः ॥ ८ ॥ अथ दम्भात्मजो वीरश्शंखचूडः प्रतापवान् ॥ राज्याभिषेकमासाद्य स रेजे सुरराट्
तदा ॥ ९ ॥ स सेनां महतीं कर्षन्दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ रथमास्थाय तरसा जेतुं शक्रपुरीं ययौ ॥ १० ॥ गच्छन्स दानवेन्द्रस्तु
तेषां सेवनकुर्वताम् ॥ विरेजे शशिवद्भानां ग्रहाणां ग्रहराडिव ॥ ११ ॥ आगच्छंतं शंखचूडमाकर्ण्याखण्डलस्स्वराट् ॥ निखिलैरमरै
स्सार्द्धं तेन योद्धुं समुद्यतः ॥ १२ ॥ तदाऽसुरैस्सुराणां च संग्रामस्तुमुलो ह्यभूत् ॥ वीराऽऽनन्दकरः क्लीबभयदो रोमहर्षणः ॥ १३ ॥

का उस समय बडा उत्सव हुआ, और उन्होंने प्रसन्न होकर असुरपतिको बहुत भेंटैं दीं ॥ ८ ॥ तब दंभपुत्र प्रतापी शंखचूडने राज्य अभिषेकको प्राप्त होकर बडी शोभा पाई ॥ ९ ॥ वह दैत्य दानव राक्षसोंकी बडी सेना लेकर रथपर चढ बडे वेगसे इन्द्रपुरी जीतनेको गया ॥ १० ॥ वह दानवेन्द्र जाताहुआ और दैत्योंसे सेवित होताहुआ तारोंके बीचमें ग्रहपति चन्द्रमा वा ग्रहोंके मध्यमें सूर्यकी समान शोभित हुआ ॥ ११ ॥ राजा इंद्रने शंखचूडको युद्धके निमित्त आया हुआ सुनकर सब देवताओंके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ उस समय देवता और असुरोंका बडा भयंकर संग्राम हुआ जो

वीरोंको आनंद करनेवाला और कायरोंको भय देनेवाला बडा रोमहर्षण संग्राम था ॥ १३ ॥ वीरोंके युद्धमें गर्जनेका महाकोलाहल हुआ, और वीरताके बढानेवाले बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥ देवता भी बडे बलवान् हो क्रोधकर असुरोंसे संग्राम करने लगे, और पराजयको प्राप्त हो असुरभयसे भागने लगे ॥ १५ ॥ दैत्योंको पलायन करता देखकर स्वयं दैत्यराज सिंहकेसमान गर्जकर देवताओंके साथ युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥ और बडे बेगसे देवताओंकी सेनाको नष्ट करने लगा, देवता उसके तेजको न सहकर भागने लगे ॥ १७ ॥ जहां जहां वह दीन होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें स्थित हुए वहीं वहीं वह

महान्कोलाहलो जातो वीराणां गर्जतां रणे ॥ वाद्यध्वनिस्तथा चाऽऽसीत्तत्र वीरत्ववर्द्धिनी ॥ १४ ॥ देवाः प्रकुप्य युयुधुरसुरैर्बलवत्तराः ॥ पराजयं च संप्रापुरसुरा दुद्रुवुर्भयात् ॥ १५ ॥ पलायमानांस्तान्दृष्ट्वा शंखचूडस्स्वयं प्रभुः ॥ युयुधे निर्जरैस्साकं सिंहनादं प्रगर्ज्य च ॥ १६ ॥ तरसा सहसा चक्रे कदनं त्रिदिवौकसाम् ॥ प्रदुद्रुवुस्सुरास्सर्वे तत्सुतेजो न सेहिरे ॥ १७ ॥ यत्र तत्र स्थिता दीना गिरीणां कंदरासु च ॥ तदधीना न स्वतंत्रा निष्प्रभाः सागरा यथा ॥ १८ ॥ सोपि दंभात्मजश्शूरो दानवेन्द्रः प्रतापवान् ॥ सुराधिकारान्संजह्ने सर्वाँल्लोकान्विजित्य च ॥ १९ ॥ त्रैलोक्यंस्ववशं चक्रे यज्ञभागांश्च कृत्स्नशः ॥ स्वयमिन्द्रो बभूवापि शासितं निखिलं जगत् ॥ २० ॥ कौबेरमैन्दवं सौर्यमाग्नेयं याम्यमेव च ॥ कारयामास वायव्यमधिकारं स्वशक्तितः ॥ २१ ॥ देवानामसुराणां च दानवानां च रक्षसाम् ॥ गंधर्वाणां च नागानां किन्नराणां रसौकसाम् ॥ २२ ॥ त्रिलोकस्य परेषां च सकलानामधीश्वरः ॥ स बभूव महवीरश्शंखचूडो महाबली ॥ २३ ॥

उसके अधीन होगये प्रभाहीन और स्वतंत्रता हीन होगये जैसे सगरके पुत्र ॥ १८ ॥ वह दम्भपुत्र शूर दानवराज महाप्रतापी सब लोकोंको जीतकर देवताओंका अधिकार हरण करता हुआ ॥ १९ ॥ त्रिलोकीको अपने वशमें करके स्वयं यज्ञभाग हरण करने लगा, और स्वयं इन्द्र होकर सब जगत्को अपने अधिकारसे शासन करने लगा ॥ २० ॥ कुबेर, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम, वायु इनका अधिकार स्वयं अपनी शक्तिसे पालन करने लगा ॥ २१ ॥ देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर, रसापति ॥ २२ ॥ त्रिलोकीपर और सबका अधीश्वर वह महाबली शंखचूड स्वयं होगया ॥ २३ ॥

इस प्रकार वह शंखचूड राजराजेश्वर होकर स्वयं राज्य करने लगा और बहुत कालतक सब भुवनोंका अधिपति रहा ॥ २४ ॥ उसके राज्यमें दुर्भिक्ष महामारी और अशुभ ग्रह आधिव्याधिकी पीडा नहीं थी सबही प्रजा सुखी थी ॥ २५ ॥ विना जोते पृथिवी अनेकप्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी अनेक औषधियें सफल और रसवाली थीं ॥ २६ ॥ खानोंसे मणि और सागरोंसे रत्न निकलतेथे वृक्षोंमें सदा फूल फल लगते और नदियोंमें स्वच्छ जल बहता था ॥ २७ ॥ देवताओंके विना और सब जीव बडे सुखी और विकार रहित थे चारोंवर्ण चारोंआश्रम अपने २ धर्मोंमें स्थित थे ॥ २८ ॥ उसके

एवं स बुभुजे राज्यं राजराजेश्वरो महान् ॥ सर्वेषांभुवनानां च शंखचूडश्चिरं समाः ॥ २४ ॥ तस्य राज्ये न दुर्भिक्षं न मारी नाशुग्रहाः ॥ आधयो व्याधयो नैव सुखिन्यश्च प्रजाः सदा ॥ २५ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी ददौ सस्यान्यनेकशः ॥ ओषध्यो विविधाश्चासन्सफलास्सरसाः सदा ॥ २६ ॥ मण्याकराश्च नितरां रत्नखन्यश्च सागराः ॥ सदा पुष्पफला वृक्षा नद्यस्सुसलिलावहाः ॥ २७ ॥ देवान् विनाखिला जीवास्सुखिनो निर्विकारकाः ॥ स्वस्वधर्मास्थितास्सर्वे चतुर्वर्णाश्रमाः परे ॥ २८ ॥ तस्मिञ्छासति त्रैलोक्ये न कश्चिद् दुःखितोऽभवत् ॥ भ्रातृवैरत्वमाश्रित्य केवलं दुःखिनोऽमराः ॥ २९ ॥ स शंखचूडः प्रबलः कृष्णस्य परमस्सखा ॥ कृष्णभक्तिरतस्साधुस्सदा गोलोकवासिनः ॥ ३० ॥ पूर्वशापप्रभावेण दानवीं योनिमाश्रितः ॥ न दानवमतिस्सोभूद्दानवत्वेऽपि वै मुने ॥ ३१ ॥ ततस्सुरगणास्सर्वे हृतराज्याः पराजिताः ॥ संमंत्र्य सर्षयस्तात प्रययुर्ब्रह्मणस्सभाम् ॥ ३२ ॥ तत्र दृष्ट्वा विधातारं नत्वा स्तुत्वा विशेषतः ॥ ब्रह्मणे कथयामासुस्सर्वं वृत्तांतमाकुलाः ॥ ३३ ॥

शासन कालमें त्रिलोकीमें कोई दुःखी न था, भाईके वैरके कारण केवल देवताही उससे दुःखी थे ॥ २९ ॥ वह कृष्णका परमसखा शंखचूड गोलोकवासी कृष्णकी भक्तिमें निरत साधु था ॥ ३० ॥ पूर्वशापके कारण ही उसको दानवी योनि प्राप्त हुई। हे मुनिराज ! उसकी दानवसम्बन्धी मति न थी ॥ ३१ ॥ तब राज्य हरनेसे पराजित हो सब देवता ऋषियोंसहित मंत्रणा करके ब्रह्माकी सभामें गये ॥ ३२ ॥ वहां विधाताको देख प्रणाम और विशेष स्तुतिकर

व्याकुल हो ब्रह्माजीसे सब अपना वृत्तान्त सुनाया ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी उस समय सब मुनि और देवताओंको समझाकर उनके सहित सत्पुरुषोंके सुख देनेवाले वैकुण्ठलोकमें गये ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजीने देवगणोंके साथ किरीट कुंडल वनमालासे भूषित लक्ष्मीपतिको देखा ॥ ३५ ॥ चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये पीतवस्त्र धारे सनन्दन आदि सिद्धोंसे सेवित ॥ ३६ ॥ विष्णुजीको ब्रह्मादिक सब मुनि और देवता देखकर भक्तिसे हाथ जोडकर प्रणाम करने लगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले देवदेव जगन्नाथ हे वैकुंठाधिपति प्रभो हे श्रीहरि तीनों जगत्के गुरु ! हम शरणमें आयेहुओंकी रक्षा करो ॥ ३८ ॥

ब्रह्मा तदा समाश्वास्य सुरान् सर्वान्मुनीनपि ॥ तैश्च सार्द्धं ययौ लोके वैकुण्ठं सुखदं सताम् ॥ ३४ ॥ ददर्श तत्र लक्ष्मीशं ब्रह्मा देवगणैस्सह ॥ किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम् ॥ ३५ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरं देवं चतुर्भुजम् ॥ सनंदनाद्यैः सिद्धैश्च सेवितं पीतवाससम् ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वा विष्णुं सुरास्सर्वे ब्रह्माद्यास्समुनीश्वराः ॥ प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या बद्धाञ्जलिकरा विभुम् ॥ ३७ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ वैकुंठाधिपते प्रभो ॥ रक्षास्मान्शरणापन्नाञ्छ्रीहरे त्रिजगद्गुरो ॥ ३८ ॥ त्वमेव जगतां पाता त्रिलोकेशाच्युत प्रभो ॥ लक्ष्मीनिवास गोविन्द भक्तप्राण नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥ इति स्तुत्वा सुरास्सर्वे रुरुदुः पुरतो हरेः ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमर्थमागतोसि त्वं वैकुंठं योगिदुर्लभम् ॥ किं कष्टं ते समुद्भूतं तत्त्वं वद ममाग्रतः ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः ॥ ४२ ॥ वृत्तांतं कथयामास शंखचूडकृतं तदा ॥ देवकष्टसमाख्यानं पुरो विष्णोः परात्मनः ॥ ४३ ॥

तुमहीं त्रिलोकीके रक्षक त्रिलोकपति समर्थ हो हे लक्ष्मीनिवास गोविन्द भक्तोंके प्राण ! आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार स्तुतिकर सब देवता नारायणके आगे रोने लगे और यह सुनकर भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४० ॥ विष्णुजी बोले हे ब्रह्माजी योगियोंको दुर्लभ इस वैकुण्ठमें आप किसनिमित्त आये हैं आपको क्या कष्ट हुआ है सो मेरेआगे कहो ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारजी बोले नारायणके यह वचन सुन बारंबार प्रणाम करके हाथ जोड विनयपूर्वक शिर झुकाय ॥ ४२ ॥ विधाताने शंखचूडका वृत्तान्त सुनाया जब परात्मा विष्णुके सन्मुख देवताओंके कष्टका

आख्यान किया ॥ ४३ ॥ तब सब प्रकार सब भावोंके जाननेवाले भगवान् यह सब वृत्तान्त सुनकर हँसकर विधातासे इस बातके रहस्यको कहने लगे
॥ ४४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्माजी ! मैं शंखचूडके सब वृत्तान्तको जानता हूं वह गोप मेरा भक्त पूर्व कालका बडा तेजस्वी है ॥ ४५ ॥ उसका
तुम पुरातन सब वृत्तान्त सुनो इसमें सन्देह न करो भगवान् शंकर सब मंगल करैंगे ॥ ४६ ॥ वह परात्पर शिवलोकमें जायँगे जहांपर ब्रह्मपरमेश्वर
विराजमान हैं ॥ ४७ ॥ जो तीन शक्तिके धारण करनेवाले प्रकृतिपुरुषके भी अधिष्ठाताहैं वही निर्गुण सगुण परमज्योति स्वरूपवाले हैं ॥ ४८ ॥ हे

हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वतस्सर्वभाववित् ॥ प्रहस्योवाच भगवांस्तद्रहस्यं विधिं प्रति ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शंखचूडस्य वृत्तांतं
सर्वं जानामि पद्मज ॥ मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥ ४५ ॥ शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम् ॥ संदेहो नैव कर्तव्यश्शं
करिष्यति शङ्करः ॥४६॥ सर्वोपरि च यस्यास्ति शिवलोकः परात्परः ॥ यत्र संराजते शंभुः परब्रह्म परेश्वरः ॥ ४७ ॥ प्रकृतेः
पुरुषस्यापि योधिष्ठाता त्रिशक्तिधृक् ॥ निर्गुणस्सगुणस्सोपि परं ज्योतिः स्वरूपवान् ॥४८॥ यस्यांगजास्तु वै ब्रह्मंस्त्रयस्सृष्ट्यादिकारकाः
॥ सत्त्वादिगुणसंपन्ना विष्णुब्रह्महराभिधाः ॥ ४९ ॥ स एव परमात्मा हि विहरत्युमया सह ॥ यत्र मायाविनिर्मुक्तो नित्यानित्य
प्रकल्पकः ॥ ५० ॥ तत्समीपे च गोलोको गोशाला शंकरस्य वै ॥ तस्येच्छया च मद्रूपः कृष्णो वसति तत्र ह ॥ ५१ ॥ तद्गवां रक्षणार्थाय
तेनाज्ञप्तस्सदा सुखी ॥ तत्संप्राप्तसुखस्सोपि संक्रीडति विहारवित् ॥ ५२ ॥ तस्य नारी समाख्याता राधेति जगदम्बिका ॥
प्रकृतेः परमा मूर्तिः पंचमी सुविहारिणी॥५३॥ बहुगोपाश्च गोप्यश्च तत्र संति तदंगजाः॥सुविहारपरा नित्यं राधाकृष्णानुवर्तिनः ॥५४॥

ब्रह्माजी ! जिनके अंगसे तीन सृष्टिके करनेवाले सत्त्वादि गुण विष्णु ब्रह्मा और हर प्रगट होते हैं ॥ ४९ ॥ वही परमात्मा उमाके सहित विहार करते हैं
जो मायासे निर्मुक्त नित्य अनित्यकी कल्पनावाले हैं ॥ ५० ॥ उनके समीप ही गोलोक और शंकरकी गोशाला है उनकी इच्छासे मेरे स्वरूप कृष्णजी वहां
निवास करते हैं ॥ ५१ ॥ उनकी आज्ञासे वह गोरक्षामें सदा सुखी रहते हैं और वह सुखको प्राप्त होकर विहारसे क्रीडा करते हैं ॥ ५२ ॥ उनकी स्त्री
जगदम्बा राधिका प्रकृतिकी पांचवीं परम मूर्ति वहां निवास करती है ॥ ५३ ॥ उनके अंगसम्भूत वहां बहुतसे गोप और गोपियें हैं वे राधाकृष्णके

अनुवर्ती होकर नित्य विहार करते हैं ॥ ५४ ॥ शंकरकी लीलासे उसने लीलापूर्वक इसको मोहित किया और दुःखदायक शापसे दानवी योनिको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ भगवान् कृष्णने रुद्रके त्रिशूलसे उसकी मृत्यु विधान की है फिर यह अपने देहको त्यागनकर कृष्णका पार्षद होगा ॥ ५६ ॥ हे देवेश ! ऐसा जानकर तुम किसी प्रकारका भय मत करो शंकरकी शरण हो वह सब कल्याण करैंगे ॥ ५७ ॥ हम तुम और सब देवता कष्टरहित स्थित होते हैं ॥ ५८ ॥ सनत्कुमार बोले—यह कहकर विष्णुजी विधाताके सहित शिवलोकको गये और सर्वेश भक्तवत्सल शंकरको मनसे स्मरण करने लगे ॥ ५९ ॥

स एव लीलया शंभोरिदानीं मोहितोऽनया ॥ संप्राप्तो दानवीं योनिं मुधा शापात्स्वदुःखदाम् ॥ ५५ ॥ रुद्रशूलेन तन्मृत्युः कृष्णेन विहितः पुरा ॥ ततस्स्वदेहमुत्सृज्य पार्षदस्स भविष्यति ॥ ५६ ॥ इति विज्ञाय देवेश न भयं कर्तुमर्हसि ॥ शंकरं शरणं यावस्स सद्यश्शं विधास्यति ॥ ५७ ॥ अहं त्वं चामरास्सर्वे तिष्ठंतीह विसाध्वसाः ॥ ॥ ५८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा सविधिर्विष्णुः शिवलोकं जगाम ह ॥ संस्मरन्मनसा शंभुं सर्वेशं भक्तवत्सलम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधोपाख्याने शंखचूडराज्यकरणवर्णनपूर्वकतत्पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ गत्वा तदैव स विधिस्तदा व्यास रमेश्वरः ॥ शिवलोकं महादिव्यं निराधारमभौतिकम् ॥ १ ॥ साह्लादोभ्यन्तरं विष्णुर्जगाम मुदिताननः ॥ नानारत्नपरिक्षिप्तं विलसंतं महोज्ज्वलम् ॥ २ ॥ संप्राप्य प्रथमं द्वारं विचित्रं गणसेवितम् ॥ शोभितं परया लक्ष्म्या महोच्चमतिसुन्दरम् ॥ ३ ॥ ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् ॥ शोभिताञ्श्वेतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ ४ ॥

इति श्रीशिवम० भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले—हे व्यासजी ! उस समय विधाता और विष्णु महादिव्य निराधार अभौतिक शिवलोकको गये ॥ १ ॥ विष्णुजी बडी प्रसन्नतासे भीतर गये जो अनेकरत्नोंसे युक्त महाउज्ज्वल था ॥ २ ॥ विचित्रगणोंसे सेवित प्रथम द्वारमें प्राप्त होकर देखा कि वह महाउच्च अत्यन्त सुन्दर परमलक्ष्मीसे शोभायमान है ॥ ३ ॥ वहां रत्नोंके सिंहासनोंपर स्थित द्वारपालोंको देखा, जो

श्वेतवस्त्रोंसे शोभित रत्नोंके गहनोंसे शोभायमान थे ॥ ४ ॥ पांचमुख तीन नेत्र गौर वर्ण सुन्दर विग्रहवाले त्रिशूलादि धारणकिये वीर भस्म रुद्राक्षसे शोभायमान ॥ ५ ॥ ब्रह्मा और विष्णुजीने नम्र होकर उनको प्रणाम किया और प्रभुके दर्शनके निमित्तका वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ६ ॥ उन्होंने आज्ञा दी और विष्णुजीने उनकी आज्ञासे प्रवेश किया दूसरा द्वारभी महामनोहर विचित्र और परमप्रभाववाला था ॥ ७ ॥ वहांपर भी प्रभुके समीप जानेके लिये अपना वृत्तान्त निवेदन किया उनकी आज्ञा पाकर तीसरे द्वारमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी पन्द्रह द्वारमें प्रवेश करते भये पश्चात् महाद्वारमें

पञ्चवक्त्रत्रिनयनान्गौरसुन्दरविग्रहान् ॥ त्रिशूलादिधरान्वीरान् भस्मरुद्राक्षशोभितान् ॥ ५ ॥ सब्राह्मापिरमेशश्च तान् प्रणम्य विनम्रकः ॥ कथयामास वृत्तान्तं प्रभुसंदर्शनार्थकम् ॥ ६ ॥ तदाज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ परं द्वारं महारम्यं विचित्रं परमप्रभम् ॥ ७ ॥ प्रभूपकंठगत्यर्थं वृत्तातं संन्यवेदयत् ॥ तद्वारपाय चाज्ञप्तस्तेनान्यं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ एवं पंचदशद्वारान्प्रविश्य कमलोद्भवः ॥ महाद्वारं गतस्तत्र नन्दिनं प्रददर्श ह ॥ ९ ॥ सम्यङ् नत्वा च तं स्तुत्वा पूर्ववत्तेन नन्दिना ॥ आज्ञप्तश्च शनैर्विष्णुर्विवेशाभ्यंतरं मुदा ॥ १० ॥ ददर्श गत्वा तत्रोच्चैस्सभां शंभोस्समुत्प्रभाम् ॥ तां पार्षदैः परिवृतां लसद्देहैस्सुभूषिताम् ॥ ११ ॥ महेश्वरस्य रूपैश्च दिग्भुजैश्शुभकांतिभिः ॥ पञ्चवक्त्रैस्त्रिनयनैश्शितिकंठैर्महोज्ज्वलैः ॥ १२ ॥ सद्रत्नयुक्तरुद्राक्षभस्माभरणभूषितैः ॥ नवेन्दुमंडलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् ॥ १३ ॥ मणीन्द्रहारनिर्माणहीरसारसुशोभिताम् ॥ अमूल्यरत्नरचितां पद्मपत्रैश्च शोभिताम् ॥ १४ ॥

जाकर नन्दीको देखा ॥ ९ ॥ उनकी स्तुति और प्रणाम कर और नन्दीकी आज्ञा पाकर विष्णुजीने शनैः २ मंदिरमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ वहां जाकर शंकरकी महाउच्च सभा देखी जो अनेकप्रकारके भूषण वस्त्र धारे श्रेष्ठ पार्षदोंसे भूषित थी ॥११॥ वे सब महेश्वरका रूप धारण किये दशदश भुजा सुन्दरकांति पांच मुख तीन नेत्र श्वेतकंठ महाभुजावाले ॥१२॥ अच्छे रत्नोंसे युक्त रुद्राक्ष और भस्म तथा आभरणोंसे भूषित नवीन चंद्रमाकी समान मण्डलाकार और चौकोन बडी मनोहर ॥ १३ ॥ बडी श्रेष्ठमणि और हारसे निर्माण किये हीरोंके सारसे शोभायमान अमूल्य रत्नोंसे रचित पद्मपत्रोंसे शोभायमान ॥१४॥

माणिक्यजालकी माला तथा अनेकचित्रोंसे विचित्र पद्मरागोंमें श्रेष्ठ मणियोंसे रचित, शंकरकी इच्छासे महाअद्भुत ॥ १५ ॥ सैंकडों सोपानोंसे युक्त जो स्यमंतक मणियोंके निर्माण कियेहुए हैं स्वर्णसूत्रकी ग्रन्थियोंसे युक्त जिनमें सुन्दर पत्ते लगे हुए थे ॥ १६ ॥ इन्द्रनीलमणिके बने स्तम्भोंमें वेष्टित बडी मनोहर थी और सब स्थानोंमें सुगंधमय वायुसे गंध लिये हुए ॥ १७ ॥ सहस्रयोजन चौडी बहुतसे सेवकोंसे पूर्ण उस सभामें पार्वतीसहित शंकरको सुरेश्वर विष्णुजीने देखा ॥ १८ ॥ वह उसके मध्य तारोंमें चंद्रमाकी समान शोभायमान अमूल्य रत्नोंसे बने विचित्र सिंहासनपर शोभायमान थे ॥१९॥

माणिक्यजालमालाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ॥ पद्मरागेन्द्ररचितामद्भुतां शंकरेच्छया ॥ १५ ॥ सोपानशतकैर्युक्तां स्यमंतकविनिर्मितैः ॥ स्वर्णसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ १६ ॥ इन्द्रनीलमणिस्तंभैर्वेष्टितां सुमनोहराम् ॥ सुसंस्कृतां च सर्वत्र वासितां गंधवायुना ॥ १७ ॥ सहस्रयोजनायामां सुपूर्णां बहुकिंकरैः ॥ ददर्श शंकरं सांबं तत्र विष्णुस्सुरेश्वरः ॥ १८ ॥ वसंतं मध्यदेशे च यथेन्दुतारकावृतम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ १९ ॥ किरीटिनं कुंडलिनं रत्नमालाविभूषितम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपंकजम् ॥ २० ॥ पुरतो गीतनृत्यश्च पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥ २१ ॥ शांतं प्रसन्नमनसमुमाकांतं महोल्लसम् ॥ देव्या प्रदत्तताम्बूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥ २२ ॥ गणैश्च परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः ॥ स्तूयमानं च सिद्धैश्च भक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥ २३ ॥ गुणातीतं परेशानं त्रिदेवजनकं विभुम् ॥ निर्विकल्पं निराकारं साकारं स्वेच्छया शिवम् ॥ २४ ॥ अमायमजमाद्यञ्च मायाधीशं परात्परम् ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि परमं स्वप्रभुं सदा ॥ २५ ॥

किरीट कुण्डल और रत्नोंकी मालासे विभूषित सर्वांगमें भस्म लगाये खेलनेका कमल हाथमें लिये ॥२०॥ सन्मुख प्रसन्नतासे नृत्य देखते हुए दिखाई दिये ॥ २१ ॥ शांत प्रसन्न मन उमापति महाकांतिमान् महाउल्लास युक्त देवीके दियेहुए सुगंधित ताम्बूलको सेवन करते हुए ॥ २२ ॥ श्वेतचमर लिये हुए परमभक्तिद्वारा गणोंसे सेवित और भक्तिसे शिर झुकाये हुए गणोंसे स्तुतिको प्राप्त ॥ २३ ॥ गुणातीत परमईशान तीन देवके उत्पन्न करनेवाले विभु निर्विकल्प निराकार अपनी इच्छासे साकार हुए शंकर ॥ २४ ॥ मायासे रहित आज आद्यमायाके अधीश्वर परेसे परे प्रकृतिपुरुषसे भी परे अपने प्रभु ॥ २५ ॥

परिपूर्ण श्रमको देखकर हाथजोड ब्रह्मा और विष्णु प्रणाम करने लगे ॥ २६ ॥ विष्णु और ब्रह्मा बोले हे देव देव महादेव ! हे परब्रह्म ! हे सबके ईश्वर !
त्रिगुणसे परे व्यग्रतारहित तीन देवके उत्पन्न करनेवाले हे प्रभो ! ॥ २७ ॥ हम आपकी शरण हैं हम दुखियोंकी आप रक्षा कीजिये हे परमेश्वर ! हम
शंखचूडसे घबडाये हैं हम अनाथोंके आपही नाथहैं ॥ २८ ॥ यह जो अधिष्ठित गोलोक है उसके अधिष्ठाता कृष्ण आपसे अधिष्ठित हैं ॥ २९ ॥ उनके
पार्षदश्रेष्ठ सुदामा प्रारब्धके वशीभूत होकर राधासे शापित हो शंखचूडनाम दानव हुए हैं ॥ ३० ॥ हे शंभो ! उस दानवसे पीडादेकर सब देवता निकाल

एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं समम् ॥ विष्णुर्ब्रह्मा तुष्टुवतुः प्रणम्य सुकृतांजली ॥ २६ ॥ विष्णुविधी ऊचतुः ॥ देवदेव महादेव
परब्रह्माखिलेश्वर ॥ त्रिगुणातीत निर्व्यग्र त्रिदेवजनक प्रभो ॥ २७ ॥ वयं ते शरणापन्ना रक्षास्मान्दुःखितान्विभो ॥ शंखचूडार्दिता
न्क्लिष्टान्सन्नाथान्परमेश्वर ॥ २८ ॥ अयं योऽधिष्ठितो लोको गोलोक इति स स्मृतः ॥ अधिष्ठाता तस्य विभुः कृष्णोऽयं त्वदधि
ष्ठितः ॥ २९ ॥ पार्षदप्रवरस्तस्य सुदामा दैवयंत्रितः ॥ राधाशप्तो बभूवाथ शंखचूडश्च दानवः ॥ ३० ॥ तेन निस्सारिताः शंभो पी
डयमानाः समंततः ॥ हृताधिकारस्त्रिदशा विचरंति महीतले ॥ ३१ ॥ त्वां विना न स वध्यश्च सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ तं घातय
महेशान लोकानां सुखमावह ॥ ३२ ॥ त्वमेव निर्गुणस्सत्योऽनंतोऽनंतपराक्रमः ॥ सगुणश्च सन्निवेशः प्रकृतेः पुरुषात्परः ॥ ३३ ॥
रजसा सृष्टिसमये त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृत्प्रभो ॥ सत्त्वेन पालने विष्णुस्त्रिभुवावनकारकः ॥ ३४ ॥ तमसा प्रलये रुद्रो जगत्संहारकारकः ॥
निस्त्रैगुण्ये शिवाख्यातस्तुर्य्यो ज्योतिःस्वरूपकः ॥ ३५ ॥

दिये गये हैं, सब देवता अपने अधिकारोंसे रहित होकर पृथिवीमें विचरते हैं ॥३१॥ आपके विना कोई देवता उसको नहीं मार सकता हे महेशान ! उसको
मारकर लोकोंको सुखी कीजिये ॥ ३२ ॥ आपही निर्गुण सत्य अनंत और अनंत पराक्रमी हो आप सगुण होकर प्रकृतिपुरुषसे परे हो ॥ ३३ ॥
सृष्टिके समय आपही ब्रह्मा होते हो सत्त्वगुणसे पालन करनेके लिये आपही विष्णु होते हो यों आप त्रिभुवनके करनवाले हो ॥ ३४ ॥ प्रलयमें आपका

आश्रय लेकर आपही जगत्का संहार करते हो त्रिगुणसे परे आपका ज्योतिर्मय शंकररूप है ॥ ३५॥ गोलोकमें आपकी दीक्षासे आपही गौओंके पालकहैं
आपकी गोशालामें आकर श्रीकृष्ण नित्य क्रीडा करतेहैं ॥ ३६ ॥ हे स्वामी ! आपही सबके स्वामी कारण विधाता विष्णु सबके ईश्वरहैं आप निर्विकारी
सदा साक्षी परमात्मा परमेश्वर हैं ॥ ३७॥ आप दीनानाथ सबके सहायक दीनोंके पालकहैं दीनबंधु त्रिलोकीपति शरणागतवत्सल हैं ॥ ३८ ॥ हे गौरीश !
हे परमेश्वर ! प्रसन्न हो हमारा उद्धार करो हे नाथ ! हम आपके अधीनहैं जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार बोले हे व्यासजी ! ब्रह्मा और

त्वंदीक्षया च गोलोके त्वं गवां परिपालकः ॥ त्वद्गोशालामध्यगश्च कृष्णः क्रीडत्यहर्निशम् ॥ ३६ ॥ त्वं सर्वकारणं स्वामी विधि
र्विष्णवीश्वरः परम् ॥ निर्विकारी सदासाक्षी परमात्मा परेश्वरः ॥ ३७ ॥ दीनानाथसहायी च दीनानां प्रतिपालकः ॥ दीनबंधुस्त्रिलो
केशश्शरणागतवत्सलः ॥ ३८ ॥ अस्मानुद्धर गौरीश प्रसीद परमेश्वर ॥ त्वदधीना वयं नाथ यदिच्छसि तथा कुरु ॥ ३९ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ सुरौ व्यास हरिर्ब्रह्मा च वै तदा ॥ विरेमतुः शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा विनीतकौ ॥ ४० ॥ इति श्रीशिव
महापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे देवदेवस्तुतिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
अथाकर्ण्य वचश्शंभुर्हरिविध्योस्सुदीनयोः ॥ उवाच विहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे वत्स हे ब्रह्मंस्त्यजतं
सर्वशो भयम् ॥ शंखचूडोद्भवं भद्रं शम्भविष्यत्यसंशयम् ॥ २ ॥ शंखचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि तत्त्वतः ॥ कृष्णभक्तस्य गोपस्य
सुदाम्नश्च पुरा प्रभो ॥ ३ ॥ मदाज्ञया हृषीकेशो कृष्णरूपं विधाय च ॥ गोशालायां स्थितो रम्ये गोलोके मदधिष्ठिते ॥ ४ ॥

विष्णु देवताओंने इस प्रकार कह हाथजोड नम्र हो मौन धारण किया ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां द्वि०रु०पं०यु० त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥
सनत्कुमारजी बोले तब शिवजी दीन हुए ब्रह्मा और विष्णुजीके वचन सुनकर हँसते हुए मेघकी समान गंभीरनादवाली वाणीसे बोले ॥ १ ॥ शिवजी बोले
हे वत्स ! ब्रह्माजी तुम सब प्रकारसे त्यागन कर दो शंखचूडका वध अवश्यही होगा ॥ २॥ मैं तत्त्वसे शंखचूडका सब वृत्तान्त जानता हूं और यहभी जानता
हूं वह गोप कृष्णभक्त है ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञासेही हृषीकेश श्रीकृष्णका रूप धारणकर मुझसे अधिष्ठित परमरम्य गोलोकमें निवास करतेहैं ॥ ४ ॥

पहले वह मोहको प्राप्त हो मैं स्वतंत्रहूं ऐसा जानकर मोहित हो स्वच्छन्दकी समान बहुतसी क्रीडा करने लगे ॥ ५ ॥ यह देखकर मैंने अपनी मायासे उनको मोहित करा दिया, और उनकी सद्बुद्धि हरणकर फिर उनको शाप दिवाया ॥ ६ ॥ इस प्रकार अपनी लीला करके मैंने उस मायाको हरण करलिया जब वे मोह दूर होनेसे ज्ञानयुक्त होगये और बुद्धिहुई ॥ ७ ॥ तब वे मेरे समीप आय दीनहो मुझे प्रणाम करने लगे और हाथ जोड शिर झुकाय मेरी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ और लज्जासे व्याकुलहो सब वृत्तान्त मुझसे कहा और रक्षाकरो रक्षाकरो ऐसा कहा दीनवाणी बोले ॥ ९ ॥ तब प्रसन्न होकर मैंने

स्वतंत्रोहमिति स्वं स मोहं मत्वा गतः पुरा ॥ क्रीडास्समकरोद्बह्वीस्स्वैरवर्तीव मोहितः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा मोहमत्युग्रं तस्याहं मायया
स्वया ॥ तेषां संहृत्य सद्बुद्धिं शापं दापितवान् किल ॥ ६ ॥ इत्थं कृत्वा स्वलीलां तां मायां संहृतवानहम् ॥ ज्ञानयुक्तास्तदा ते तु
मुक्तमोहास्सुबुद्धयः ॥ ॥ ७ ॥ समीपमागतास्त म दीनीभूय प्रणम्य माम् ॥ अकुर्वन्सुनुतिं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः ॥ ८ ॥
वृत्तांतमवदन् सर्वं लज्जाकुलितमानसाः ॥ ऊचुर्मत्पुरतो दीना रक्षरक्षेति वै गिरः ॥ ९ ॥ तदा त्वहं भवस्तेषां संतुष्टः प्रोक्तवान् वचः ॥
भयं त्यजत हे कृष्ण यूयं सर्वे मदाज्ञया ॥ १० ॥ रक्षकोऽहं सदा प्रीत्या सुभद्रं वो भविष्यति ॥ मदिच्छयाऽखिलं जातमिदं सर्वं न
संशयः ॥ ११ ॥ स्वस्थानं गच्छ त्वं सार्द्धं राधया पार्षदेन च ॥ दानवस्तु भवेत्सोयं भारतेऽत्र न संशयः ॥ १२ ॥ शापोद्धारं करिष्येऽ
हं युवयोस्समये खलु ॥ मदुक्तमिति संधार्य शिरसा राधया सह ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णोऽमोददत्यंतं स्वस्थानमगमत्सुधीः ॥ न्यष्ठातां सभयं
तत्र मदाराधनतत्परौ ॥ १४ ॥ मत्वाखिलं मदधीनमस्वतन्त्रं निजं च वै ॥ स सुदामाऽभवद्राधाशापतो दानवेश्वरः ॥ १५ ॥

उन सबसे कहा हे कृष्णादि ! तुम सब मेरी आज्ञासे भय त्यागन करो ॥ १० ॥ मैं तुम सबका रक्षक हूं तुम सबका कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं यह सब मेरी इच्छासेही हुआ है ॥ ११ ॥ तुम राधिका और पार्षदोंके सहित अपने स्थानको जाओ वह निःसन्देह भारतमें दानव होगा ॥ १२ ॥ समयपर मैं तुम्हारा शापोद्धार करूंगा, मेरे वचनको तुम राधाके सहित शिरपर धारण करो ॥ १३ ॥ मेरे वचन सुनकर श्रीकृष्ण बडे प्रसन्नहुए औरमेरे आराधनमें तत्परहो भयपूर्वक स्थित हुए ॥ १४ ॥ सब जगत् मेरे अधीन जान और अपनेको अस्वतंत्र समझने लगे वह सुदामा राधाके शापसे अस्वतंत्र दानवराज

हुआ ॥ १५ ॥ वह देवद्रोही धर्ममें चतुर शंखचूड नामवाला हुआ और वह अब कुबुद्धिकर सब देवताओंको पीडा देने लगा है ॥१६॥ वह मेरी मायासे मोहित होकर दुष्टमंत्रियोंकी सहायताको प्राप्त होरहा है सो मेरे होते तुम भय त्यागनकरो ॥१७॥ सनत्कुमारजी बोले जब इस प्रकारसे हरि और ब्रह्माजीके आगे शिवजीने कहा हे मुने ! उस समय जो दूसरा चरित्र हुआ उसको तुम सुनो ॥ १८ ॥ उसी समय राधिका और श्रेष्ठ पार्षदोंके सहित श्रीकृष्णजी शंकरकी अनुकूलता करनेको आये ॥ १९ ॥ अच्छी भक्तिसे शिवजीको प्रणामकर और आदरसे हरिसे मिलकर विधिसे सम्मतिको प्राप्तहो प्रेमसे शिवजीकी

शंखचूडाभिधो देवद्रोही धर्मविचक्षणः ॥ क्लिश्नाति सुबलात्कृत्स्नं सदा देवगणं कुधीः ॥ १६ ॥ मन्मायामोहितस्सोतिदुष्टमंत्रिसहायवान् ॥ तद्भयं त्यजताश्वेत्र मयि शास्तरि वै सति ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्यूचिवाञ्छिवो यावद्धरिब्रह्मपुरः कथाम् ॥ अभत्तावदन्यच्च चरितं तन्मुने शृणु ॥ १८ ॥ तस्मिन्नेवांतरे कृष्णो राधया पार्षदैः सह ॥ सद्गोपैरराययौ शंभुमनुकूलयितुं प्रभुम् ॥ १९ ॥ प्रभुं प्रणम्य सद्भक्त्या मिलित्वा हरिमादरात् ॥ संमतो विधिना प्रीत्या संतस्थौ शिवशासनात् ॥ २० ॥ ततः शंभुं पुनर्नत्वा तुष्टाव विहिताञ्जलिः ॥ श्रीकृष्णो मोहनिर्मुक्तो ज्ञात्वा तत्त्वं शिवस्य हि ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ देवदेव महादेव परब्रह्म सतांगते ॥ क्षमस्व चापराधं मे प्रसीद परमेश्वर ॥ २२ ॥ त्वत्तः शर्वं च सर्वं च त्वयि सर्वं महेश्वर ॥ सर्वं त्वं निखिलाधीश प्रसीद परमेश्वर ॥ २३ ॥ त्वं ज्योतिः परमं साक्षात्सर्वव्यापी सनातनः ॥ त्वया नाथेन गौरीश सनाथास्सकला वयम् ॥ २४ ॥ सर्वोपरि निजं मत्वा विहरन्मोहमाश्रितः ॥ तत्फलं प्राप्तवानस्मि शापं प्राप्तस्सवामकः ॥ २५ ॥

आज्ञासे उनके समीप बैठे ॥ २० ॥ फिर शिवजीको प्रणामकर हाथजोड उनकी स्तुति करने लगे, श्रीकृष्णजी इस प्रकार मोहसे निर्मुक्तहो शिवजीका तत्त्व जानकर बोले ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे देवदेव ! महादेव परब्रह्म ! सत्पुरुषोंकी गति हे परमेश्वर ! मेरा अपराध क्षमाकर मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये॥ २२॥ हे शंकर ! यह सब कुछ आपहीसे होताहै हे महेश्वर ! यह सब कुछ आपमेंही है हे सबके अधीश्वर ! सब कुछ आपहीहैं हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न हूजिये ॥ २३ ॥ आपही साक्षात्परमज्योति सर्वव्यापी सनातनहो हे गौरीश ! आपके नाथ होनेसेही हम सब सनाथ हैं ॥ २४ ॥ मैं सर्वोपरि अपनेको मानकर

मोहसे विहार करता था, उसका फल मिला जो स्त्रीसहित शापको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ जो मेरा सुदामा नाम गोप था, हे स्वामिन् ! वहँ राधाके शापसे दानवी योनिको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ हे दुर्गापति परमेश्वर ! हमारा उद्धार करो हमसे प्रसन्नहो आप हम शरणमें आये हुओंकी रक्षा करके शापोद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्ण राधिकाके सहित मौन हुए, और शरणागतवत्सल शंकरभी प्रसन्न हुए ॥२८॥ श्रीशिवजी बोले हे कृष्ण ! गोपिकानाथ ! तुम भय त्यागनकर सुखी हो, हे तात ! यह सब कुछ तुमने मेरे अनुग्रहसेही किया है ॥ २९ ॥ तुम्हारा कल्याण होगा अब तुम अपने स्थानको जाओ और

पार्षदप्रवरो यो मे सुदामा नाम गोपकः ॥ स राधाशापतः स्वामिन्दानवीं योनिमाश्रितः ॥ २६ ॥ अस्मानुद्धर दुर्गेश प्रसीद परमेश्वर ॥ शापोद्धारं कुरुष्वाद्य पाहि नश्शरणागतान् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा विररामैव श्रीकृष्णो राधया सह ॥ प्रसन्नोऽभूच्छिवस्तत्र शरणागतवत्सलः ॥ २८ ॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ हे कृष्ण गोपिकानाथ भयं त्यज सुखी भव ॥ मयानुगृह्णता तात सर्वमाचरितं त्विदम् ॥ २९ ॥ संभविष्यति ते भद्रं गच्छ स्वस्थानमुत्तमम् ॥ स्थातव्यं स्वाधिकारे च सावधानतया सदा ॥ ३० ॥ विहरस्व यथाकामं मां विज्ञाय परात्परम् ॥ स्वकार्यं कुरु निर्व्यग्रं राधया पार्षदैः खलु ॥ ३१ ॥ वाराहप्रवरे कल्पे तरुण्या राधया सह ॥ शापप्रभावं भुक्त्वा वै पुनरायास्यति स्वकम् ॥ ३२ ॥ सुदामा पार्षदो यो हि तव कृष्णप्रियप्रियः ॥ दानवीं योनिमाश्रित्येदानीं क्लिश्नाति वै जगत् ॥ ३३ ॥ शापप्रभावाद्राधाया देवशत्रुश्च दानवः ॥ शंखचूडाभिधस्सोऽति दैत्यपक्षी सुरद्रुहः ॥ ३४ ॥ तेन निस्सारिता देवास्सेन्द्रा नित्यं प्रपीडिताः ॥ हृताधिकारा विकृतास्सर्वे याता दिशो दश ॥ ३५ ॥

सदा सावधान होकर अपने अधिकारमें स्थितहो ॥ ३० ॥ और मुझे परात्पर जानकर यथायोग्य विहारकरो और राधा तथा पार्षदोंके सहित अपना कार्य करो ॥ ३१ ॥ वाराहकल्पमें राधिकाके सहित प्राप्त होकर शापका प्रभाव भोगकर फिर अपने स्थानको आवोगे ॥ ३२ ॥ हे कृष्ण ! जो यह सुदामानाम पार्षद तुम्हारा प्रियहै वह दानवी योनिको प्राप्तहो इस समय जगत्को क्लेश देरहाहै ॥ ३३ ॥ वह देवशत्रु दानव राधिकाके प्रभावसे शंखचूड नामवाला होकर दैत्योंका पक्षपाती बनरहाहै ॥ ३४ ॥ उसने इन्द्रादि देवताओंको पीडा देकर निकालदिया है, वे अधिकारहीन होनेसे व्याकुल हो दशों दिशाओंको

चलेगयेहैं ॥३५॥ इसी कारण ब्रह्मा और विष्णुजी मेरी शरणमें आये हैं इसमें सन्देह नहीं मैं इनका क्लेश दूर करूंगा ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार बोले–शिवजी महाराज कृष्णसे इस प्रकार कहकर फिर आदरसे ब्रह्मा और विष्णुजीसे क्लेशनाशक वचन बोले ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मा ! और विष्णुजी ! तुम प्रेमसे मेरे वचन सुनो तुम दोनों देवताओंको आनंद देनेके लिये शीघ्र जाओ उन्हें निर्भय करो ॥ ३८ ॥ मेरा पूर्णरूप कैलासवासी रुद्र है, मैंनेही देवताओंके कार्यके लिये वह पृथक् रूप धारण किया है॥ ३९ ॥ हे विष्णुजी ! इस देवकार्यके निमित्त ही मेरा पूर्णरूप भक्तोंके वश होकर कैलासपर्वतपर विराजमान है ॥४०॥ मुझसे उसका कुछ भेद नहीं है वह सदा तुम दोनोंका सेव्यहै तथा चराचर सब देवता मुनियोंका सेव्य है ॥ ४१ ॥ हम दोनोंमें भेद मान्नेवाला नरकको जायगा तथा यहांभी पुत्र पौत्रसे रहितहो कष्ट पावैगा ॥ ४२ ॥ शिवजीके ऐसा कहनेपर शंकरको बारंबार प्रणामकर श्रीकृष्णभी राधाके सहित अपने स्थानको गये ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! इसी प्रकार ब्रह्मा और विष्णुजी सन्देह रहितहो अपने स्थानको गये तथा चलते समय शिवजीको बहुतबार प्रणामकर वैकुंठको गमन किया ॥ ४४ ॥ वहां जाकर वे दोनों देवताओंसे सब वृत्तान्तको निवेदनकर उन सबको साथले ब्रह्मा और विष्णुजी फिर कैलास

ब्रह्माच्युतौ तदर्थे ही हागतौ शरणं मम ॥ तेषां क्लेशविनिर्मोक्षं कीरष्ये नात्र संशयः ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरः कृष्णं पुनः प्रोवाच सादरम् ॥ हरिं विधिं समाभाष्य वचनं क्लेशनाशनम् ॥ ३७ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे प्रीत्या ममेदं वचनं शृणु ॥ गच्छतं त्वरितं तातौ देवानंदाय निर्भयम् ॥ ३८ ॥ कैलासवासिनं रुद्रं मद्रूपं पूर्णमुत्तमम् ॥ देवकार्यार्थमुद्भूतं पृथगाकृतिधारिणम् ॥ ३९ ॥ एतदर्थे हि मद्रूपः परिपूर्णतमः प्रभुः ॥ कैलासे भक्तवशतस्संतिष्ठति गिरौ हरे ॥ ४० ॥ मत्तस्त्वत्तो न भेदोऽस्ति युवयोस्सेव्य एव सः ॥ चराचराणां सर्वेषां सुरादीनां च सर्वदा ॥ ४१ ॥ आवयोर्भेदकर्ता यस्स नरो नरकं व्रजेत् ॥ इहापि प्राप्नुयात्कष्टं पुत्रपौत्रविवर्जितः ॥ ४२ ॥ इत्युक्तवंतं दुर्गेशं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ राधया सहितः कृष्णः स्वस्थानं सगणो ययौ ॥ ४३ ॥ हरिर्ब्रह्मा च तौ व्यास सानन्दौ गतसाध्वसौ ॥ मुहुर्मुहुः प्रणम्येशं वैकुंठं ययतुर्द्रुतम् ॥ ४४ ॥ तत्रागत्याखिलं वृत्तं देवेभ्यो विनिवेद्य तौ ॥ तानादाय ब्रह्मविष्णू कैलासं ययतुर्गिरिम् ॥ ४५ ॥

पर्वतको गये ॥ ४५ ॥ वहां पार्वतीवल्लभ महेशान प्रभुको देखा कि वह देवता और दीनोंकी रक्षाके लिये सगुणरूपसे देहधारण किये है ॥ ४६ ॥ तब
सब देवता हाथजोड शिरझुकाय भक्तिसे नम्रहो गद्गदवाणीसे बोले ॥ ४७ ॥ देवता बोले हे देवदेव महादेव गिरिजानाथ ! हे शंकर ! हम आपकी शरण
आयेहैं इन भयसे व्याकुलहुए देवताओंकी आप रक्षाकरो ॥ ४८ ॥ देवशत्रु शंखचूड नामक दानवसे आप रक्षा कीजिये उसे मारिये उसने संग्राममें सब
देवताओंको पराजित किया है ॥ ४९ ॥ वे अधिकाररहितहो पृथिवीमें साधारण मनुष्योंकी समान विचरण करतेहैं उसके भयसे देवलोक उनको अगम्य

तत्र दृष्ट्वा महेशानं पार्वतीवल्लभं प्रभुम् ॥ दीनरक्षात्तदेहं च सगुणं देवनायकम् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुः पूर्ववत्सर्वे भक्त्या गद्गदया गिरा ॥
करौ बद्ध्वा नतस्कंधा विनयेन समन्विताः ॥ ४७ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव गिरिजानाथ शंकर ॥ वयं त्वां शरणापन्ना रक्ष
देवान्भयाकुलान् ॥ ४८ ॥ शंखचूडं दानवेन्द्रं जहि देवनिषूदनम् ॥ तेन विद्राविता देवाः संग्रामे च पराजिताः ॥ ४९ ॥ हृताधिकाराः
कुतले विचरंति यथा नराः ॥ देवलोको हि दुर्दृश्यस्तेषामासीच्च तद्भयात् ॥ ५० ॥ दीनोद्धर कृपासिन्धो देवानुद्धर संकटात् ॥
शक्रं भयान्महेशान हत्वा तं दानवाधिपम् ॥ ५१ ॥ इतिश्रुत्वा वचश्शंभुर्देवानां भक्तवत्सलः ॥ उवाच विहसन् वाण्या मेघनादगभीरया
॥ ५२ ॥ श्रीशंकर उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवाः स्वस्थानं गच्छत ध्रुवम् ॥ शंखचूडं वधिष्यामि सगणं नात्रसंशयः ॥ ५३ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशस्य वचः पीयूषसंनिभम् ॥ ते सर्वे प्रमुदा ह्यासन्नष्टं मत्वा च दानवम् ॥ ५४ ॥

होरहाहै ॥ ५० ॥ हे कृपासागर ! दीनोंके उद्धार करनेवाले संकटसे देवताओंका उद्धार करो । हे महेशान ! उस दैत्यको मारकर इन्द्रको भयसे छुडाओ
॥ ५१ ॥ भक्तवत्सल शंकर इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर हँसतेहुए मेघकी समान गंभीर वाणीसे बोले ॥ ५२ ॥ श्रीशंकर बोले—हे विष्णुजी !
हे विधाता ! आप शीघ्र अपने स्थानोंको गमन करैं मैं उसके सहायकोंके सहित शंखचूडको वध करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५३ ॥ सनत्कुमार बोले—

इस प्रकार अमृतकी समान शंकरके वचन सुनकर वे सब देवता दैत्यको मरा जानकर प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ हरि वैकुंठको और विधाता सत्यलोकको गये और शंकरको प्रणामकर सब देवताभी अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भा० द्वि० रु० पं० यु० एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारजी बोले—तब महारुद्र ईशान दुष्टोंको कालस्वरूप सत्पुरुषोंकी गति देवताओंकी इच्छासे शंखचूडका वध मनमें निश्चय करतेहुए ॥ १ ॥ तब गंधर्वोंके अधिपति चित्ररथको अपना दूत बनाकर प्रसन्नतासे शीघ्रही शंखचूडके समीप भेजा ॥ २ ॥ सर्वेश्वरकी आज्ञासे वह दूत उसके समीप गया उसका

हरिर्जगाम वैकुंठं सत्यलोके विधिस्तदा ॥ प्रणिपत्य महेशं च सुराद्याः स्वपदं ययुः ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधे शिवोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथेशानो महारुद्रो दुष्टकालस्सतांगतिः ॥ शंखचूडवधं चित्ते निश्चिकाय सुरेच्छया ॥ १ ॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम् ॥ शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिके मुदा ॥ २ ॥ सर्वेश्वराज्ञया दूतो ययौ तन्नगरं च सः ॥ महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ३ ॥ गत्वा ददर्श तन्मध्ये शंखचूडालयं वरम् ॥ राजितं द्वादशैर्द्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा पुष्पदन्तस्तु वरं द्वारं ददर्श सः ॥ कथयामास वृत्तांतं द्वारपालाय निर्भयः ॥५॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यंतरे मुदा ॥ अतीव सुन्दरं रम्यं विस्तीर्णं समलंकृतम् ॥ ६ ॥ स गत्वा शंखचूडं तं ददर्श दनुजाधिपम् ॥ वीरमंडलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ७ ॥ दानवेन्द्रैः परिवृतं सेवितं च त्रिकोटिभिः ॥ शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिश्शस्त्रपाणिभिः ॥ ८ ॥ एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंतस्सविस्मयः ॥ उवाच रणवृत्तांतं यदुक्तं शंकरेण च ॥ ९ ॥

नगर महेन्द्र और कुबेरके भवनकी समान था ॥ ३ ॥ जाकर उस नगरके मध्यमें उसने शंखचूडका स्थान देखा जिसके बारह द्वार थे और सबपर द्वारपाल स्थित थे ॥ ४ ॥ उस पुष्पदंतने वहां जाकर द्वारपालसे समस्त वृत्तान्त कहा और निर्भय हो स्थित रहा ॥ ५ ॥ उस द्वारको आक्रमण करके भीतर गया जो स्थान बडा शोभायमान मनोहर विस्तारवाला और अलंकृत था ॥६॥ वहां जाकर उसने दानवराज शंखचूडको देखा, जो वीरमण्डलके मध्यमें स्थित रत्नसिंहासनपर शोभायमान था ॥ ७ ॥ वह साढेतीन कोटि दानवोंका अधिपति था, शतकोटि दानव हाथोंमें शस्त्रलिये घूमते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार

ऐश्वर्यको देखकर पुष्पदन्त बडे विस्मयको प्राप्त हुआ और शंकरके कहे हुए युद्ध वृत्तान्तको कहने लगा॥९॥ पुष्पदंत बोला–हे राजेन्द्र ! मैं पुष्पदंतनामवाला शंकरका दूत हूं जो कुछ शिवजीने कहा है सुनो मैं कहता हूं ॥ १० ॥ शिवजी कहते हैं तुम अभी देवताओंका राज्य और अधिकार दे दो नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो ॥ ११ ॥ मैं देवेश शंकर सत्पुरुषोंका रक्षक हूं देवता मेरी शरण आनकर प्राप्त हुएहैं मैं महारुद्र क्रोधित होकर अवश्यही तुम्हारा वध करूंगा ॥ १२ ॥ मैं हर हूं मैंने सब देवताओंको अभय दिया है मैं शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला तथा दुष्टोंको दंड देनेवाला हूं ॥ १३ ॥ तू राज्य देगा

पुष्पदंत उवाच ॥ राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदंताभिधः प्रभो ॥ यदुक्तं शंकरेणैव तच्छृणु त्वं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ ॥ शिव उवाच ॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारं हि सांप्रतम् ॥ नोचेत्कुरु रणं सार्द्धं परेण च मया सताम् ॥ ११ ॥ देवा मां शरणापन्ना देवेशं शंकरं
सताम् ॥ अहं क्रुद्धो महारुद्रस्त्वां वधिष्याम्यसंशयम् ॥ १२ ॥ हरोऽस्मि सर्वदेवेभ्यो ह्यभयं दत्तवानहम् ॥ खलदंडधरोऽहं वै शरणा
गतवत्सलः ॥ १३ ॥ राज्यं दास्यसि किं वा त्वं करिष्यसि रणं च किम् ॥ तत्त्वं ब्रूहि द्वयोरेकं दानवेन्द्र विचार्य्य वै ॥ १४ ॥
पुष्पदंत उवाच ॥ इत्युक्तं यन्महेशेन तुभ्यं तन्मे निवेदितम् ॥ वितथं शंभुवाक्यं न कदापि दनुजाधिप ॥ १५ ॥ अहं स्वस्वामिनं
गंतुमिच्छामि त्वरितं हरम् ॥ गत्वा वक्ष्यामि किं शंभो तथा त्वं वद मामिह ॥ १६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्थं च पुष्पदं
तस्य शिवदूतस्य सत्पतेः ॥ आकर्ण्य वचनं राजा हसित्वा तमुवाच सः ॥ १७ ॥ ॥ शंखचूड उवाच ॥ राज्यं दास्ये न देवेभ्यो
वीरभोग्या वसुंधरा ॥ रणं दास्यामि ते रुद्र देवानां पक्षपातिने ॥ १८ ॥

अथवा मेरे साथ संग्राम करैगा ? हे दानवेन्द्र ! इस बातको विचारकर कह ॥१४॥ पुष्पदन्त बोला जो कुछ शंकरने कहा था सो मैंने तत्त्वसे कह सुनाया हे दानवराज! शंकरके वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥ १५ ॥ मैं शीघ्र अपने स्वामीके पास जानेकी इच्छा करता हूं उनसे जाकर मैं क्या कहूं सो तुम मुझसे कहो ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले–इस प्रकार सत्पतिके दूत पुष्पदंतके यह वचन सुनकर राजाने हँसकर उस्से कहा ॥ १७ ॥ शंखचूड बोला–

मैं देवताओंको राज्य न दूंगा यह पृथिवी वीरभोग्या है मैं देवताओंके पक्षपाती रुद्रको युद्ध दूंगा ॥ १८ ॥ जिसके ऊपर चढाई हो वह वीर पृथिवीमें अधम है इससे मैंही निःसन्देह पहले रुद्रपर चढाई करूंगा ॥१९॥ मैं वीरयात्राके विचारसे प्रभातही उधर गमन करूंगा तुम जाकर रुद्रसे मेरे इस प्रकारके वचन कहदेना ॥ २० ॥ इस प्रकार शंखचूडके वचन सुनकर वह शिवजीका दूत पुष्पदन्त हँसता हुआ दानवराजसे बोला ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! आप शिवजीके किसीगणके आगेभी नहीं ठहर सकते फिर शिवजीके सन्मुख होना तो क्या है ॥ २२ ॥ इस कारण तुम देवताओंके सब अधिकारोंको दे दो और जीनेकी इच्छाहो तो तुम शीघ्र पातालको चले जाओ ॥ २३ ॥ हे दानवराज ! आप शंकरको सामान्य देवता न जानो शंकर परमात्मा सबके ईश्वर हैं ॥ ॥ २४ ॥ इन्द्रादिक सब देवता जिनकी आज्ञा सदा मानते हैं प्रजापति, मुनि, सिद्ध, उरगगण उनके वशवर्ती हैं ॥ २५ ॥ वह विष्णु ब्रह्माकेभी स्वामी सगुण निर्गुण स्वरूपहैं जिसकी भृकुटी फेरनेमात्रसे प्रलय होजाती है ॥ २६ ॥ वह शिव पूर्णरूप लोकके संहार कारक हैं वह सत्पुरुषोंकी गति दुष्टोंके मारनेवाले निर्विकार परेसे परे हैं ॥२७॥ वह ब्रह्मा और हरिकेभी अधिपति महेश्वर हैं हे दानवश्रेष्ठ ! उनके शासनकी कोईभी हेला नहीं करसकता ॥२८॥

यस्योपरि प्रयायी स्यात्स वीरो भुवनेऽधमः ॥ अतः पूर्वमहंरुद्र त्वां गमिष्याम्यसंशयम् ॥ १९ ॥ प्रभात आगमिष्यामि वीरयात्रा
विचारतः ॥ त्वं गच्छाचक्ष्व रुद्राय हीदृशं वचनं मम ॥ २० ॥ ॥ इति श्रुत्वा शंखचूडवचनं सुप्रहस्य सः ॥ उवाच दानवेन्द्रं
स शंभुदूतस्तु गर्वितम् ॥ २१ ॥ अन्येषामपि राजेन्द्र गणानां शंकरस्य च ॥ न स्थातुं संमुखे योग्यः किं पुनस्तस्य संमुखम् ॥
॥ २२ ॥ स त्वं देहि च देवानामधिकाराणि सर्वशः ॥ त्वमरं गच्छ पातालं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २३ ॥ सामान्यममरं तं नो
विद्धि दानवसत्तम ॥ शंकरः परमात्मा हि सर्वेषामीश्वरेश्वरः ॥ २४ ॥ इन्द्राद्यास्सकला देवा यस्याज्ञावर्तिनस्सदा ॥ सप्रजापतय
स्सिद्धा मुनयश्चाप्यहीश्वराः ॥ २५ ॥ हरेर्विधेश्च स स्वामी निर्गुणस्सगुणस्स हि ॥ यस्य भ्रूभंगमात्रेण सर्वेषां प्रलयो भवेत् ॥ २६ ॥
शिवस्य पूर्णरूपश्च लोकसंहारकारकः ॥ सतां गतिर्दुष्टहंता निर्विकारः परात्परः ॥ २७ ॥ ब्रह्मणोधिपतिस्सोऽपि हरेरपि महेश्वरः ॥
अवमान्या न वै तस्य शासना दानवर्षभ ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! बहुत कहनेसे क्या है मनसे विचारकर रुद्रको महेशान परब्रह्म चिदात्मा जानो ॥ २९ ॥ देवताओंका राज्य और उनके अधिकार दे दो । हे तात ! इस प्रकार करनेसे तुम्हारी कुशल होगी नहीं तो महाभय होगा ॥३०॥ सनत्कुमार बोले–दानवराज महाप्रतापी शंखचूड यह वचन सुन भवितव्यसे मोहित हो शिवजीके दूतसे बोला ॥ ३१ ॥ शंखचूड बोला–यह निश्चय है कि वैसे मैं राज्य और अधिकारको नहीं दूंगा मैं यह सत्य कहता हूं विना युद्ध किये शंकरको कुछ न दूंगा ॥ ३२ ॥ यह सब चराचर जगत् कालके आधीनहै कालसेही सब होता है और कालसेही नाश होजाताहै ॥ ३३॥

किं बहूक्तेन राजेन्द्र मनसा संविचार्य च ॥ रुद्रं विद्धि महेशानं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ॥ २९ ॥ देहि राज्यं हि देवानामधिकारांश्च सर्वशः ॥ एवं ते कुशलं तात भविष्यत्यन्यथा भयम् ॥३०॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा दानवेन्द्रः शंखचूडः प्रतापवान् ॥ उवाच शिवदूतं तं भवितव्यविमोहितः ॥ ३१ ॥ शंखचूड उवाच ॥ स्वतो राज्यं न दास्यामि नाधिकारान् विनिश्चयात् ॥ विना युद्धं महेशेन सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ३२ ॥ कालाधीनं जगत्सर्वं विज्ञेयं सचराचरम् ॥ कालाद्भवति सर्वं हि विनश्यति च कालतः ॥ ३३ ॥ त्वं गच्छ शंकरं रुद्रं मयोक्तं वद तत्त्वतः ॥ स च युक्तं करोत्वेवं बहुवार्तां कुरुष्व नो ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा शिवदूतोऽसौ जगाम स्वामिनं निजम् ॥ यथार्थं कथयामास पुष्पदंतश्च सन्मुने ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधे दूतगमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः ॥ सक्रोधः प्राह गिरिशो वीरभद्रादिकान्गणान् ॥ १ ॥ रुद्र उवाच ॥ हे वीरभद्र हे नंदिन्क्षेत्रपालाष्टभैरवाः ॥ सर्वे गणाश्च सन्नद्धास्सायुधा बलशालिनः ॥ २ ॥

तुम जाकर रुद्र शंकरसे यह मेरा कथन कहना कि जो इच्छा हो सो करैं बहुत कहनेसे क्या है ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार बोले–ऐसा सुनकर वह दूत अपने स्वामीके पास गया और हे मुने ! उस पुष्पदन्तने सब वृत्तान्त निवेदन किया॥ ३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भा० द्वि० रु० पं०यु० द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥ सनत्कुमारजी बोले–सुरपति शंकर उस दूतके यह वचन सुनकर क्रोधकरके अपने वीरभद्रादिगणोंसे कहनेलगे ॥ १ ॥ रुद्र बोले–हे वीरभद्र ! हे नन्दिन् !

हे वीरभद्रादिगणों ! हो सब बलवान पार्षदो युद्धके लिये तयार होजाओ ॥ २ ॥ मेरी आज्ञासे तुम दोनों कुमारोंके सहित गमनकरो, और अपनी सेनाके सहित भद्रकालीभी युद्धके लिये निर्गत हो, शंखचूडके वधके लिये सब कोई शीघ्र चलो ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीभी अपनी सेनासहित निर्गतहुए और सब वीरगण प्रसन्नहो उनके साथ चले ॥ ४ ॥ इसी समय स्कन्द और गणेशजी सब सेनाके अधिपति आयुध लेकर प्रसन्नतासे शंकरके साथ चले ॥ ५ ॥ वीरभद्र नन्दी महाकाल सुभद्रकविशालाक्ष बाण पिंगलाक्ष विकंपन ॥ ६ ॥ विरूप विकृति मणिभद्र बाष्कल कपिल दीर्घदंष्ट्र

कुमाराभ्यां सहैवाद्य निर्गच्छंतु ममाज्ञया ॥ स्वसेनया भद्रकाली निर्गच्छतु रणाय च ॥ शंखचूडवधार्थाय निर्गच्छाम्यद्य सत्वरम् ॥ ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याज्ञाप्य महेशानो निर्ययौ सैन्यसंयुतः ॥ सर्वे वीरगणास्तस्यानु ययुस्संप्रहर्षिताः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंतरे स्कंदगणेशौ सर्वसैन्यपौ ॥ ययतुर्मुदितौ नद्धौ सायुधौ च शिवांतिके ॥ ५ ॥ वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालस्सुभद्रकः ॥ विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः ॥ ६ ॥ विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः ॥ कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकरस्ताम्रलोचनः ॥ ७ ॥ कालंकरो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः ॥ बलोन्मत्तो रणश्लाघ्यो दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥ ८ ॥ इत्यादयो गणेशानास्सैन्यानां पतयो वराः ॥ तेषां च गणनां वच्मि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ शंखकर्णः कोटिगणैर्युतः परविमर्दकः ॥ दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च ॥ १० ॥ चतुष्षष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः ॥ षड्भिस्सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः ॥ ११ ॥ जालको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः ॥ सप्तभिस्समदः श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च ॥ १२ ॥

विकर ताम्रलोचन ॥ ७ ॥ कालंकर बलीभद्र कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ॥ ८ ॥ इत्यादि गणेश और सेनापति चले, मैं उन सबके नाम कहताहूं सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ परविमर्दक शंखकर्ण एककोटि सेनासहित चला, केकराक्ष दशकोटि, विकृत आठकोटि ॥ १० ॥ विशाख चौंसठकोटि, पारियात्रिक नौकोटि, सर्वान्तक छःकोटि, श्रीमान् और विकृतानन छःकोटि ॥ ११ ॥ जालक बारहकोटि, समद सातकोटि, श्रीमान् दुंदुभ

आठकोटि ॥ १२ ॥ करालाक्ष पांचकोटि संदारक छःकोटि कंदुक और कुंडक एक एक कोटि ॥ १३ ॥ विष्टम्भ आठकोटि यह गणेश्वर बडा श्रेष्ठ है,
पिप्पल और संनाद सहस्रकोटि ॥ १४ ॥ आवेशन अठारहकोटि चन्द्रतापन आठकोटि महाकेश गणेश्वर सहस्रकोटि ॥ १५ ॥ कुंडी बारहकोटि पर्वतक
बारहकोटि कालकालक महाकाल सौकोटि ॥ १६ ॥ आग्निक सौकोटि अग्निमुख एककोटि आदित्य और घनावह आधीकोटि ॥१७॥ सनाह और कुमुद
सौसौ कोटि, अमोघकोकिल सुमंत्रक सौसौ कोटि ॥ १८ ॥ काकपाद और संतानक छःछः कोटि महाबल नौकोटि मधुपिंगल पांचकोटि ॥ १९ ॥ नील

पंचभिश्च करालाक्षः षड्भिस्संदारको वरः ॥ कोटिकोटिभिरेवेह कंदुकः कुंडकस्तथा ॥१३॥ विष्टंभोऽष्टाभिरेवेह गणपस्सर्वसत्तमः॥
पिप्पलश्च सहस्रेण संनादश्च तथाविधः ॥ १४ ॥ आवेशनस्तथाष्टाभिस्त्वष्टाभिश्चन्द्रतापनः ॥ महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो
वृतः ॥ १५ ॥ कुंडी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतकश्शुभः ॥ कालश्च कालकश्चैव महाकालश्शतेन वै ॥ १६ ॥ अग्निकश्शतकोट्या च
कोट्याग्निमुख एव च ॥ आदित्यो ह्यर्द्धकोट्या च तथा चैवं घनावहः ॥ १७ ॥ सनाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा ॥ अमोघः
कोकिलश्चैव शतकोट्या सुमंत्रकः ॥ १८ ॥ काकपादः कोटिषष्ट्या षष्ट्या संतानकस्तथा ॥ महाबलश्च नवभिः पञ्चभिर्मधुपिंगलः ॥
१९ ॥ नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च ॥ कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्रो महाबलः ॥ २० ॥ कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंश
तिभिस्तथा ॥ तत्राजग्मुस्तथा वीरास्ते सर्वे संगरोत्सवे ॥ २१ ॥ भूतकोटिसहस्रेण प्रमथैर्कोटिभिस्त्रिभिः ॥ वीरभद्रश्चतुष्षष्ट्या लोम
जानां त्रिकोटिभिः ॥ २२ ॥ काष्ठारूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा ॥ विरूपाक्षश्च भगवांश्चतुःषष्ट्या सनातनः ॥ २३ ॥ ताल
केतुः षडास्यश्च पंचास्यश्च प्रतापवान् ॥ संवर्तकस्तथा चैत्रो लंकुलीशस्स्वयं प्रभुः ॥ २४ ॥

नव्वेकोटि देवेश और पूर्णभद्र नव्वे २ कोटि महाबली चतुर्वक्र सातकोटि ॥ २० ॥ हजारों सैंकडों वीसियों कोटियोंको साथले बडे २ वीर युद्धके निमित्त
आये ॥ २१ ॥ सहस्रोंकोटि भूत और तीनकोटि प्रमथ लोमजोंकी तीनकोटि इस प्रकार चौंसठकोटि सहित वीरभद्र ॥ २२ ॥ सुकेश वृषभ काष्ठारूढ
चौंसठकोटि, भगवान सनातन विरूपाक्ष चौंसठकोटि ॥ २३ ॥ तालकेतु षण्मुख तथा प्रतापवान पंचमुख संवर्तक चैत्र लंकुलीश, स्वयंप्रभु ॥ २४ ॥

लोकान्तक दीप्तात्मा दैत्यांतक प्रभु देवभृंगी देवदेवके प्रिय श्रीमान् रिटि ॥ २५ ॥ अशनि भानुक चौंसठ सहस्त्रकोटि, कंकाल कालकंकाल नन्दी सर्वान्तक ॥ २६ ॥ इनको आदि लेकर औरभी बहुतसे गणपालक असंख्यात महाबली निर्भयहो शंखचूडके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे चले ॥ २७ ॥ सबही सहस्त्रों हाथवाले जटामुकुटधारी माथेपर चंद्ररेखाधारे नीलकंठ त्रिलोचनथे ॥२८॥ सबही रुद्राक्षके आभरण पहरे भस्म धारणकिये हार कुंडल केयूर मुकुट आदि धारण किये ॥ २९ ॥ ब्रह्मा इन्द्र विष्णुजीकी समान अणिमादि गुणोंसे सम्पन्न कोटियुद्धकी समान प्रकाशमान युद्धकर्ममें चतुर थे ॥ ३० ॥

लोकांतकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यांतकः प्रभुः ॥ देवो भृङ्गी रिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा ॥ २५ ॥ अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्त्रशः ॥ कंकालः कालकः कालो नन्दी सर्वान्तकस्तथा ॥ २६ ॥ एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः ॥ युद्धार्थं निर्ययुः प्रीत्या शंखचूडेन निर्भयाः ॥ २७ ॥ सर्वे सहस्त्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः ॥ चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकंठास्त्रिलोचनाः ॥ २८ ॥ रुद्राक्षाभरणास्सर्वे तथासद्भस्मधारिणः ॥ हारकुंडलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः ॥ २९ ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशा अणिमादिगुणैर्वृताः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशाः प्रवीणा युद्धकर्मणि ॥ ३० ॥ पृथिवीचारिणः केचित्केचित्पातालचारिणः ॥ केचिद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने ॥ ३१ ॥ किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः ॥ ययुश्शिवगणास्सर्वे युद्धार्थं दानवैस्सह ॥ ३२ ॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशाशु ये ॥ वसवोऽष्टौ वासवश्चादित्या द्वादश ते द्रुतम् ॥ ३३ ॥ हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ ॥ कुबेरश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्नलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलश्च वै ॥ ग्रहाश्चान्ये महेशेन कामदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥

हे मुने ! कोई पृथिवीमें कोई पातालमें कोई आकाशमें और सातस्वर्गमें विचरनेवाले थे ॥३१॥ हे देवर्षे ! बहुत कहनेसे क्या है सबही लोकोंके रहनेवाले सम्पूर्ण शिवजीके गण दानवोंसे युद्ध करनेको आये ॥ ३२ ॥ आठों भैरव ग्यारहों रुद्र आठ वसु और बारह आदित्य बडी शीघ्रतासे आये ॥ ३३ ॥ अग्नि, चंद्र, विश्वकर्मा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर ॥३४॥ वायु, वरुण तथा बुध मंगल आदि ग्रह तथा महाबली काम शंकरके समीप

आये ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्र उग्रदंड कोरट कोटभ तथा सौभुजा धारण किये भद्रकाली देवी स्वयं उपस्थित हुईं ॥३६॥ जो रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नथे वह भगवतीके विमानमें जडेथे उसपर भगवती विराजमान थी लालवस्त्र पहरे लालही अनुलेपन लगाये ॥३७॥ नाचती हँसती और अच्छे स्वरसे गातीहुईं अपने भक्तोंको अभय और शत्रुओंको भय देतीहुईं आईं ॥ ३८ ॥ एक योजन पर्यंत जिसकी भयंकर जिह्वा चलायमान होतीथी शंख चक्र गदा पद्म खड्ग चर्म धनुष बाण धारे ॥ ३९ ॥ एक योजनपर्यन्त गंभीर गोल खप्पर धारण किये, आकाशस्पर्शी त्रिशूल और एकयोजनकीशक्ति धारण किये ॥ ४० ॥ मुद्गर मूसल

उग्रदंष्ट्रश्चोग्रदण्डः कोरटः कोटभस्तथा ॥ स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली महेश्वरी ॥ ३६ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता ॥ रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ ३७ ॥ नृत्यंती च हसंती च गायंती सुस्वरं मुदा ॥ अभयं ददती स्वेभ्यो भयं चारिभ्य एव सा ॥ ३८ ॥ बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् ॥ शंखचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुश्शरान् ॥ ३९ ॥ खर्परं वर्तुलाकारं गंभीरं योजनायतम् ॥ त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम् ॥ ४० ॥ मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुल्बणम् ॥ वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वायव्यं नागपाशकम् ॥४१॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा ॥ पार्जन्यं च पाशुपतं जृंभणास्त्रं च पार्वतम् ॥ ४२ ॥ महावीरं च सौरं च कालकालं महानलम् ॥ महेश्वरास्त्रं याम्यं च दंडं संमोहनं तथा ॥ ४३ ॥ समर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रं शतकं परम् ॥ बिभ्रती च करैस्सर्वैरन्यान्यपि च सा तदा ॥ ४४ ॥ आगत्य तस्थौ सा तत्र योगिनीनां त्रिकोटिभिः ॥ सार्द्धं च डाकिनीनां वै विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४५ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः ॥ वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव सकिन्नराः ॥ ४६ ॥

वज्र खड्ग भयंकर फलक वैष्णवास्त्र वारुणअस्त्र वायव्यअस्त्र और नागपाश ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्र, गंधर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र पार्ज्यंन्य पाशुपत जृंभण पार्वत अस्त्र ॥ ४२ ॥ महावीर सौर कालकाल महानल महेश्वरास्त्र याम्य,दंड, सम्मोहन अस्त्र ॥४३॥दिव्य समर्थास्त्र, सौ दिव्यास्त्र, इत्यादि अपने हाथोंमें धारण कियेहुए ॥ ४४ ॥ इस प्रकार तीनकोटि योगिनी और तीनकोटि विकट डाकिनियोंको साथले आनकर स्थित हुईं ॥ ४५ ॥ भूत प्रेत पिशाच

कूष्माण्ड ब्रह्मराक्षस वेताल राक्षस यक्ष किन्नर ॥ ४६ ॥ इनके सहित स्कन्दने आकर शिवजीको प्रणाम किया और पिताकी आज्ञासे समीप स्थितहुए॥ ॥ ४७ ॥ तब शिवजी महाराज इस प्रकारसे अपनी सब सेना साथ लेकर निर्भयहो शंखचूडके साथ युद्ध करनेको चले ॥ ४८ ॥ चन्द्रभागानदीके किनारे मनोहर एक वटवृक्षके नीचे देवताओंके निस्तारके निमित्त शिवजी स्थितहुए ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवम०भा०द्वि०रु० पं० यु० त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—हे विधिपुत्र ! हे मुनिराज महाबुद्धिमान् ! चिरकाल पर्यन्त जीवित रहो, आपने शिवजीका बडा विचित्र चरित्र वर्णन किया ॥ १ ॥ अब

तैश्चैवाभिवृतः स्कंदः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् ॥ पितुः पार्श्वे सहायो यः समुवास तदाज्ञया ॥४७॥ अथ शंभुस्समानीय स्वसैन्यं सकलं तदा ॥ युद्धार्थमगमद्रुद्रश्शंखचूडेन निर्भयः ॥ ४८ ॥ चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ॥ तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे महादेवयुद्धयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ विधितात महाबुद्धे मुने जीव चिरं समाः ॥ कथितं सुमहच्चित्रं चरितं चन्द्रमौलिनः ॥ १ ॥ शिवदूते गते तत्र शंखचूडश्च दानवः ॥ किं चकार प्रतापी स तत्त्वं वद सुविस्तरम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान् ॥ उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यंतरमेव ताम् ॥ ३ ॥ ॥ शंखचूड उवाच ॥ शम्भुदूतमुखाद्देवि युद्धायाहं समुद्यतः ॥ तेन गच्छाम्यहं योद्धुं शासनं कुरु मे ध्रुवम् ॥ ४ ॥ इत्येवमुक्त्वा स ज्ञानी नानाबोधनतः प्रियाम् ॥ क्रीडां चकार हर्षेण तमनादृत्य शंकरम् ॥ ५ ॥ तौ दम्पती चिक्रीडाते निमग्नौ सुखसागरे ॥ नानाकामकलाभिश्च निशि चाटुशतैरपि ॥ ६ ॥

कहिये कि शिवजीके दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूड दानवने क्या किया सो आप विस्तारपूर्वक तत्त्वसे कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले—शिवदूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूडने मंदिरके भीतर जाकर तुलसीसे यह समाचार कहा ॥ ३ ॥ शंखचूड बोला—हे देवि ! शिवदूतके मुखकी वार्ता सुनकर मैं युद्धके निमित्त उपस्थित हुआहूं मैं उनसे युद्ध करनेके निमित्त अवश्य जाऊंगा तुम मुझे समझकर आज्ञा दो ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर उस ज्ञानीने प्रियाको बहुतसे बोधके वाक्य कहकर शंकरका अनादरकर प्रियाके संग अनेकप्रकारसे विहार किया ॥ ५ ॥ दोनों स्त्री पुरुष क्रीडा करते हुए॥सुखसागरमें मग्न होगये

और अनेकमनोहर वचन और आलापोंसे रात्रि बिताई ॥ ६ ॥ फिर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकालका सब कृत्य करके तथा नित्यकार्य कर ब्राह्मणोंको अनेक दान दिये ॥ ७ ॥ और सब दानवोंका राजा अपने पुत्रको करके सब राजसंपत्ति और अपनी भार्याको भी पुत्रको समर्पण कर ॥ ८ ॥ उस रोतीहुई प्रियाको बहुत समझाकर जो युद्धके लिये बारंबार निषेध कररही थी, उसको अनेकप्रकारसे धीरज दे ॥ ९ ॥ अपने सेनापति वीरको आदरसे बुलाकर संग्राम करनेके लिये सब सेनाके तयार होनेको कहा ॥ १० ॥ शंखचूड बोला—हे सेनापते ! हमारे सब वीर युद्धशाली हैं, वे सब कार्यमें कुशल अभी

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च ॥ नित्यकार्यं च कृत्वादौ ददौ दानमनंतकम् ॥ ७ ॥ पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च ॥ पुत्रे समर्प्य भार्यां च स राज्यं सर्वसंपदम् ॥८॥ प्रियामाश्वासयामास स राजा रुदतीं पुनः ॥ निषेधतीं च गमनं नानावार्तां प्रकथ्य च ॥ ९ ॥ निजसेनापतिं वीरं समाहूय समादृतः ॥ आदिदेश स संनद्धस्संग्रामं कर्तुमुद्यतः ॥ १० ॥ शंखचूड उवाच ॥ अद्य सेनापते वीरास्सर्वे समरशालिनः ॥ संनद्धाखिलकर्माणो निर्गच्छंतु रणाय च ॥ ११ ॥ दैत्याश्च दानवाः शूराः षडशीतिरुदायुधाः ॥ कंकानां बलिनां शीघ्रं सेना निर्यांतु निर्भयाः ॥ १२ ॥ पंचाशदसुराणां हि निर्गच्छंतु कुलानि वै ॥ कोटिवीर्याणि युद्धार्थं शंभुना देवपक्षिणा ॥ १३ ॥ संनद्धानि च धौम्राणां कुलानि च शतं द्रुतम् ॥ निर्गच्छंतु रणार्थं हि शंभुना मम शासनात् ॥ १४ ॥ कालकेयाश्च मौर्याश्च दौर्हृदाः कालकास्तथा ॥ सज्जा निर्यान्तु युद्धाय रुद्रेण मम शासनात् ॥ १५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिर्दानवेन्द्रो महाबलः ॥ निर्जगाम महासैन्यः सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ १६ ॥

तयारहो युद्धके लिये निकलैं ॥११॥ दैत्य दानव बडे २ शूरवीरोंकी छ्यासी पलटनै तथा महाबली कंकोंकी सेना मेरी आज्ञासे निर्भय होकर चलै ॥१२॥ असुरोंके पचास कुल मेरी आज्ञासे चलैं तथा एककोटि असुर देवताओंके पक्षपाती शंकरसे युद्ध करनेको चलैं ॥ १३ ॥ धूम्रनामक दैत्योंके सौ कुल युद्धके लिये तयारहो मेरी आज्ञासे शिवके साथ युद्ध करनेको चलैं ॥ १४ ॥ कालकेय, दौर्हृद, मौर्य, कालक यह सब मेरी आज्ञासे तयार होकर शंकरके साथ युद्ध करनेको गमन करैं ॥ १५ ॥ सनत्कुमार बोले—महाबली दानवोंका राजा असुरपति इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों असुरोंकी सेना लेकर चला ॥१६॥

उसका सेनापतिभी युद्धशास्त्रमें बडा पंडित, महारथी महावीर रथियोंमें बडा प्रबल ॥ १७ ॥ तीन लाखअक्षौहिणीसे युक्त मंडलीकरूपसे चला, इस प्रकारसे
युद्धमें बडा भयंकर वह वीर छावनीसे बाहर हुआ ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ रत्नोंके बने हुए विमानपर चढकर गुरुजनोंको आगेकर युद्धके लिये चला ॥ १९ ॥
पुष्पभद्रानदीके किनारे जहां श्रेष्ठ अक्षयवट है जो सिद्धाश्रम सिद्धक्षेत्र सब सिद्धियोंका देनेवालाहै ॥ २० ॥ जो इस पवित्रक्षेत्र भारतमें कपिल देवजीका
तपका स्थान है जो पश्चिम सागरके पूर्वमें और मलयपर्वतके पश्चिममें है ॥ २१ ॥ श्रीपर्वतके उत्तरभागमें और गन्धमादनके दक्षिणमें पांचयोजनके विस्तार

तस्य सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥ महारथो महावीरो रथिनां प्रवरो रणे ॥ १७ ॥ त्रिलक्षाक्षौहिणीयुक्तो मांडल्यं च चकार ह ॥
बहिर्बभूव शिबिराद्रणे वीरभयङ्करः ॥ १८ ॥ रत्नेन्द्रं सारनिर्माणं विमानमभिरुह्य सः ॥ गुरुवर्गं पुरस्कृत्य रणार्थं प्रययौ किल ॥ १९ ॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः ॥ सिद्धाश्रमे च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं सुसिद्धिदम् ॥ २० ॥ कपिलस्य ततः स्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य हि पश्चिमे ॥ २१ ॥ श्रीशैलोत्तरभागे च गंधमादनदक्षिणे ॥ पंचयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये शतगुणन्तथा ॥ २२ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥ पुष्पभद्रा नदी रम्या जलपूर्णा सरस्वती ॥ २३ ॥ लवणोदधिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसं
युता ॥ सरस्वतीसंश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥ २४ ॥ गोमंतं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥ तत्र गत्वा शंखचूडः शिव
सेनां ददर्श ह ॥ २५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडयात्रावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः
॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् ॥ दूतं कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम् ॥ १ ॥

और ५०० पांचसौ योजनके लम्बावमें है ॥ २२ ॥ वहां शुद्ध स्फटिकमणिकी समान पवित्र जलसे पूर्ण पुष्पभद्रा सरस्वती मनोहर नदी भारतमें विख्यात है
॥ २३ ॥ जो क्षारसमुद्रकी प्रियभार्या (अर्थात् क्षारसमुद्रमें गिरती है) निरन्तर सौभाग्यसे संयुक्त सरस्वतीके आश्रितहो हिमालयसे निकली है ॥ २४ ॥
गोमन्तकपर्वतको बाईं ओर लिये हुए पश्चिम सागरमें मिलती है वहां जाकर शंखचूडने शिवजीकी सेनाको देखा ॥ २५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां
द्वि० रु० पं० यु० चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजी बोले वहां स्थित होकर महान्त दानवेश्वरको दूत बनाकर शंकरके समीप भेजा ॥ १ ॥

दूतने वहां जाकर शंकरको देखा कि कोटिसूर्यकी समान कांतिवाले वटके मूलमें स्थित हैं॥ २॥ योगासन मारे मुद्रासे बैठे दृष्टि लगाये हास्ययुक्त शुद्ध स्फटिकमणिकी समान ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हैं ॥ ३ ॥ त्रिशूल पाट्टिश धारण किये व्याघ्रचर्मके वस्त्रधारे भक्तकी मृत्युके हरनेवाले शांत गौरीपति त्रिलोचन हैं ॥ ४ ॥ तपस्याओंके फलदेनेवाले सब सम्पात्तियोंके करनेवाले शीघ्र प्रसन्न होनेवाले भक्तोंके अनुग्रहसे कातर ॥ ५ ॥ विश्वनाथ, विश्वके बीज, विश्वरूप, विश्व उत्पन्न होताहै जिनसे ऐसे, विश्वके भरण पोषण करनेवाले, विश्वके उत्पन्न करनेवाले, विश्वके संहार कर्ता ॥ ६ ॥ कारणके भी कारण, नरकरूपी सागरसे पारकरने

सं तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह ॥ वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २ ॥ कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्तं च सस्मितम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ ३ ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मांबरावृतम् ॥ भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकान्तं त्रिलोचनम् ॥ ४ ॥ तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसंपदाम् ॥ आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ५ ॥ विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ॥ विश्वंभरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ॥ ६ ॥ कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥ ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ॥ ७ ॥ अवरुह्य रथाद् दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ शंकरं सकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः ॥ ८ ॥ वामतो भद्रकालीं च स्कंदं तत्पुरतः स्थितम् ॥ लोकाशिषं ददौ तस्मै काली स्कंदश्च शंकरः ॥ ९ ॥ अथासौ शंखचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित् ॥ उवाच शंकरं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ॥ १० ॥ ॥ दूत उवाच ॥ शंखचूडस्य दूतोहं त्वत्सकाशमिहागतः ॥ वर्तते ते किमिच्छाद्य तत्त्वं ब्रूहि महेश्वर ॥ ११ ॥

वाले, ज्ञानदाता, ज्ञानके बीज, ज्ञानमेंही आनन्द सनातन शंकरको देख ॥ ७ ॥ दानवेश्वरने रथसे उतरकर सुकुमाररूप शंकरको शिरसे प्रणाम किया ॥ ८ ॥ जिनके बाईओर भद्रकाली और आगे स्कन्द स्थित हैं काली स्कन्द और शंकरने उसको लोकरीतिसे अशीश दी ॥ ९ ॥ तब यह परमशास्त्रका जाननेवाला शंखचूडका दूत हाथजोड शिवजीसे श्रेष्ठ वचन बोला ॥ १० ॥ दूत बोला मैं शंखचूडका दूत आपके पास यहां आयाहूं हे महेश्वर ! आपकी

क्या इच्छा है सो आप तत्त्वसे कहिये ॥ ११ ॥ सनत्कुमार बोले शंखचूडके यह वचन सुनकर प्रसन्न होकर महादेव बोले ॥ १२ ॥ महादेव बोले हे महापंडित दूत ! मेरे सुखदायक वचन सुन, यह विचारकर विवादके विना अपने स्वामीसे कहदेना ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जगत्के पिता सब धर्मोंके जाननेवाले उनके पुत्र मरीचि उनके कश्यप हुए ॥ १४ ॥ दक्षने अपनी १३ कन्या कश्यपको दी १ उनमें पतिव्रता कन्या दनु उनका सौभाग्य बढानेवाली हुई ॥ १५ ॥ उसके बडे तेजस्वी दानव चार पुत्र हुए उनमें एक विप्रचित्ति महाबली पराक्रमी हुआ ॥ १६ ॥ उसका पुत्र परम धार्मिक बुद्धिमान् दानवराज दंभ हुआ, उसके

सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा च वचनं शंखचूडस्य शंकरः ॥ प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ १२ ॥ महादेव उवाच ॥ शृणु दूत महाप्राज्ञ वचो मम सुखावहम् ॥ कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च ॥ १३ ॥ विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ॥ मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १४ ॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश ॥ तास्वेका च दनुस्साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ॥ १५ ॥ चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः ॥ तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः ॥ १६ ॥ तत्पुत्रो धार्मिको दंभो दानवेन्द्रो महामतिः ॥ तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ॥ १७ ॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वेव च धार्मिकः ॥ अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः ॥ १८ ॥ दानवीं योनिमायातस्तत्त्वतो न हि दानवः ॥ निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाधुना ॥ १९ ॥ द्रोहं न कुरु तैस्सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम् ॥ नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ॥ २० ॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव ॥ निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठंतु स्वपदे सुराः ॥ २१ ॥

पुत्र तुम धर्मात्मा दानवराज हुए ॥ १७ ॥ प्रथम तुम श्रीकृष्णके पार्षद गोपोंमें मुख्य गोप थे अब तुम राधिकाके शापसे दानवेश्वर हुए हो ॥ १८ ॥ तुम दानवीयोनिमें आये हो वास्तवमें दानव नहीं हो सो अपना पुराना वृत्तान्त जानकर देवताओंसे वैर त्याग दो ॥ १९ ॥ उनके साथ द्रोह करके अपना पद आनन्दसे भोगो इसमें विशेषहानि नहीं विचार कर अपना राज्य करो ॥ २० ॥ हे दानव ! मेरी प्रीति, विचार कर देवताओंको राज्य दे दो सुखपूर्वक अपने

राज्यमें स्थित हो देवता अपने पदमें स्थित हों ॥ २१ ॥ प्राणियोंकाही विरोध बुरा होता है फिर देवताओंके विरोधकी कौन कहै । कुलीन और शुद्धकर्म
वाले सब कश्यपकी संतानहैं ॥ २२ ॥ जितने ब्रह्महत्यादि पापहैं वे सब ज्ञातिद्रोहके पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी
बोले इस प्रकार श्रुति स्मृतिके सिद्धान्तकी बहुतसी बात करके फिरभी शंकरने उसको समझाते हुए ज्ञानरूपी संदेशा कहा ॥ २४ ॥ तब शंखचूडका
समझाया हुआ तर्कका ज्ञाता वह दूत भवितव्यसे मोहित हुआ नम्र होकर बोला ॥२५॥ दूत बोला हे देव ! जो कुछ आपने कहा वह सब सत्य है पर मैं

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः ॥ कुलीनाश्शुद्धकर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः ॥ २२ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिका
नि च ॥ ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्यादिबहुवार्त्तां च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम् ॥
प्रोवाच शंकरस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ॥ २४ ॥ शिक्षितश्शंखचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः ॥ उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमो
हितः ॥ २५ ॥ दूत उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः ॥ तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ॥ २६ ॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ॥ तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो ॥ २७ ॥ सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि
विचार्य च ॥ निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु संदेहभंजनम् ॥ २८ ॥ मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ॥ शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री
महेश्वर ॥ २९ ॥ त्रिपुरैस्सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः ॥ भवाञ्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम् ॥ ३० ॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं
कुतः प्रस्थापितो बलिः ॥ सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः ॥ ३१ ॥

जो कुछ कहता हूं वह मेरा निवेदन सत्य २ आप सुनैं ॥ २६ ॥ जो आपने ज्ञातिद्रोहरूप महान्पाप कहा है हे ईश ! क्या वह बात असुरोंके लियेही है
देवताओंके लिये नहीं है ॥ २७ ॥ यदि वह सबके लियेहै तो मैं विचारकर कहता हूं उसमें निर्णय करके सन्देह भञ्जन करिये ॥२८॥ हे महेश्वर ! जो
ऐसा है तो मधुकैटभ दैत्यश्रेष्ठके शिरको चक्रसे फिर किस कारण काटा था ॥ २९ ॥ फिर त्रिपुरासुरके साथ युद्ध करके उसको भस्म क्यों किया हे
गिरिश ! फिर अपने देवताओंकी ओर होकर उनका कल्याण क्यों किया ॥ ३० ॥ बलिका सर्वस्व हरणकर उसको पातालमें क्यों भेजा जो कि उसको

सुतल भेजकर गदाधर उनके द्वारे स्थित हैं ॥ ३१ ॥ फिर भाई सहित हिरण्याक्षको देवताओंने कैसे मारा, तथा देवतों द्वारा शुंभादि दैत्य कैसे मारेगये ॥
॥ ३२ ॥ पहले समुद्रमथनमें अमृत देवताओंनेही भक्षण किया क्लेशभोगी हम सब हुए और वे केवल फल भोगी हुए ॥ ३३ ॥ परमात्मा कालका यह
विश्व खिलौना वह जिस समय जिसको देता है वह ऐश्वर्य उसको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ देवता दानवोंका वैर सदा किसी न किसी निमित्तसे होता है उनकी
हार और जीत कालके आधीन होती है ॥ ३५ ॥ इन दोनोंके विरोधमें आपका गमन निष्फल होगा समान बलवालोंका विरोध ठीक होता है आपको

सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ॥ शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः ॥ ३२ ॥ पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ॥
क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥ ३३ ॥ क्रीडाभांडमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः ॥ स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवे
त्तदा ॥ ३४ ॥ देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा ॥ पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ॥ ३५ ॥ तवानयोर्विरोधे च गमनं
निष्फलं भवेत् ॥ समसंबधिनां तद्वै रोचते नेश्वरस्य ते ॥ ३६ ॥ सुरासुराणां सर्वेषामीश्वरस्य महात्मनः ॥ इयं ते रहिता लज्जा स्पर्द्धा
स्माभिस्सहाधुना ॥ ३७ ॥ यतोधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ॥ तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ॥ ३८ ॥ सनत्कुमार
उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा संप्रहस्य त्रिलोचनः ॥ यथोचितं च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ३९ ॥ महेश उवाच ॥ वयं भक्तपराधीना
न स्वतंत्राः कदापि हि ॥ तदिच्छया तत्कर्माणो न कस्यापि च पक्षिणः ॥ ४० ॥ पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि ॥ मधुकैटभ
योर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ॥ ४१ ॥ देवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा ॥ प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ॥ ४२ ॥

विरोध नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥ सुर असुर सबके ईश्वर आप महात्माको यह बडी लज्जाकी बात है कि जो हमारे साथ वैर है ॥ ३७ ॥ जिसमें
जयमें अधिक कीर्ति पराजयमें हानि हो यह बात तुम्हारे विपरीत है इसको मनसे विचारो ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजी बोले शिवजी उसके यह वचन सुन
हँसते हुए यथोचित मधुर वचन दानवराजसे बोले ॥ ३९ ॥ महेश बोले मैं भक्तोंके आधीन हूं स्वतंत्र नहीं हूं उनकी इच्छासेही हम कर्म करते हैं किसीके
पक्षपाती नहीं ॥ ४० ॥ पहले विधाताकी प्रार्थनासे विष्णुजीका प्रलयसागरमें मधुकैटभके संग युद्ध हुआ था ॥ ४१ ॥ देवताओंकी प्रार्थनासेही विष्णुजीने

प्रहलादके निमित्त तथा भक्तोंके हितके निमित्त हिरण्यकशिपुका वध किया ॥४२॥ और देवताओंकी प्रार्थना और भक्तिसे मैंने त्रिपुरका संहार किया था यह बात विख्यात है ॥ ४३ ॥ सबके ऐश्वर्य हरनेवाले देवताओंको कष्ट देनेवाले शुंभादिका वध भी देवताओंकी प्रार्थनासेही किया गया ॥ ४४ ॥ अब भी सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और ब्रह्मा और विष्णुजी मेरी शरणमें आये ॥ ४५ ॥ हे दूत ! हरि और ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके कारण मैं देवताओंकी ओरसे युद्ध करने आया हूं ॥ ४६ ॥ मैं कहताहूं कि तुम कृष्णके उत्तम पार्षद हो इससे पहले जो दैत्य मारे गये उसमें कोई भी तुम्हारे

त्रिपुरैस्सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः ॥ देवप्रार्थनयाकारि मयापि च पुरा श्रुतम् ॥ ४३ ॥ सर्वैश्वर्यास्सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा ॥
आसीच्छुंभादिभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ॥ ४४ ॥ अद्यापि त्रिदशास्सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ स सदेवो हरिर्मां च देवश्शरणमा
गतः ॥ ४५ ॥ हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोप्यहम् ॥ सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु ॥ ४६ ॥ पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्ण
स्य च महात्मनः ॥ येये हताश्च दैतेया न हि केपि त्वया समाः ॥ ४७ ॥ का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह ॥ देवकार्या
र्थमीशोहं विनयेन च प्रेषितः ॥ ४८ ॥ गच्छ त्वं शंखचूडे वै कथनीयं च मे वचः ॥ स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ॥
॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम महेश्वरः ॥ उत्तस्थौ शंखचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदंतिकम् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्विती
यायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे शिवदूतसंवादो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

समान नहीं थे ॥४७॥ हे राजन् ! मेरी तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें क्या लज्जा है देवकार्यके निमित्त मुझ ईश्वरको उन्होंने विनयसे प्रेरण किया है ॥४८॥ तुम जाकर यह वचन शंखचूडसे कहना कि, उसके मनमें जो आवै सो करै मैं देवकार्य करता हूं ॥ ४९ ॥ ऐसा कह महेश्वर शंकर मौन हुए और वह शंखचूडका दूत उठकर अपने स्वामीके समीप गया ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सनत्कुमारजी बोले उस दूतने जाकर अपने राजासे शिवजीके वचन कहे और विस्तारपूर्वक यथार्थ उनका निश्चय कह सुनाया ॥ १ ॥ यह सुनकर महाप्रतापी शंखचूड दानवराजने प्रेमसे युद्धको स्वीकार किया ॥ २ ॥ अपने अमात्योंके साथ शीघ्रही विमानपर सवार हुआ और अपनी सेनाको शंकरके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ३ ॥ इधर शिवजीने अपनी सेना और देवताओंको प्रेरण किया और वह सर्वेश्वर लीलापूर्वक स्वयं तयार हुए ॥ ४ ॥ तत्काल युद्धका आरंभ होगया अनेकप्रकारके बाजे बजने लगे और वीरोंका अनेक प्रकारसे कोलाहल होने लगा ॥ ५ ॥ हे मुने ! देवता दानवोंका परस्पर

सनत्कुमार उवाच ॥ स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह ॥ सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा शंखचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् ॥ अंगीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ॥ २ ॥ समारुरोह यानं च सहामात्यैश्च सत्वरः ॥ आदिदेश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शंकरेण च ॥ ३ ॥ शिवस्स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः ॥ स्वयमप्यखिलेशोपि सन्नद्धोभूच्च लीलया ॥ ४ ॥ युद्धारंभो बभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ॥ कोलाहलश्च संजातो वीरशब्दस्तथैव च ॥ ५ ॥ देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने ॥ धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवयोर्गणः ॥ ६ ॥ स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धं च वृषपर्वणा ॥ भास्करो युयुधे विप्राचित्तिना सह धर्मतः ॥ ७ ॥ दंभेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम् ॥ कालासुरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥ ८ ॥ कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ॥ भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥ ९ ॥ कालम्बिकेन वरुणश्चंचलेन समीरणः ॥ बुधश्च घटपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ १० ॥ जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः ॥ अश्विनौ दीप्तिमद्भ्यां च धूम्रेण नलकूबरः ॥ ११ ॥

महायुद्ध हुआ और दानव और देवताओंके गण परस्पर धर्म युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ महेन्द्रका वृषपर्वाके साथ युद्ध होने लगा, भास्करका विप्रचित्तिके साथ धर्मयुद्ध होने लगा ॥७॥ दंभके साथ विष्णुका परमयुद्ध होनेलगा, कालासुरके साथ कालका और गोकर्णके साथ हुताशनका युद्ध होने लगा ॥८॥ कालकेयके साथ कुबेरका और मयके साथ विश्वकर्माका युद्ध होने लगा, भयंकरके साथ मृत्युका और संहारके साथ यमका युद्ध हुआ ॥९॥ कालम्बिकके साथ वरुणका, चंचलके साथ समीरणका, घटपृष्ठसे बुधका, और रक्ताक्षसे शनैश्चरका युद्ध होने लगा ॥ १० ॥ रत्नसारके साथ और वर्चसगणोंके साथ

जयन्तका, दीप्तिमानोंके साथ अश्विनीकुमारका धूम्रके साथ नलकूबरका ॥ ११ ॥ धुरंधरके साथ धर्मका, गणकाक्षके साथ मंगलका, शोभाकरके साथ वैश्वानरका, पिपिटके साथ मन्मथका ॥१२॥ गोकामुख, चूर्णखड्ग असुर, धूम्रसंहल, विश्वप्रतापी ॥१३॥ और पलाश, इनके साथ बारह आदित्योंका धर्मयुद्ध होनेलगा इस प्रकार शिवकी सहायताको प्राप्त हो देवता दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ ग्यारह महारुद्र महाभयंकर महाबली पराक्रमी ग्यारह असुरोंसे युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ महामणि उग्रचंडके साथ, राहु चन्द्रके साथ, बृहस्पति शुक्रके साथ, धर्मयुद्ध करने लगे ॥१६॥ और नन्दीश्वर आदि

धुरंधरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मंगलः ॥ शोभाकरेण वैश्वानः पिपिटेन च मन्मथः ॥ १२ ॥ गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्नाऽसुरेण च ॥
धूम्रेण संहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना ॥ १३ ॥ पलाशेन द्वादशाऽर्का युयुधुर्धर्मतः परे ॥ असुरैरमरास्सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः
॥ १४ ॥ एकादश महारुद्राश्चैकादशभयंकरैः ॥ असुरैर्युयुधुर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः ॥ १५ ॥ महामणिश्च युयुधे चोग्रचंडादिभिस्सह ॥
राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरादयस्सर्वे दानवप्रवरैस्सह ॥ युयुधुश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक्
॥ १७ ॥ वटमूले तदा शंभुस्तस्थौ काल्याः सुतेन च ॥ सर्वे च युयुधुस्सैन्यसमूहास्सततं मुने ॥ १८ ॥ रत्नसिंहासने रम्ये कोटि
दानवसंयुतः ॥ उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ १९ ॥ महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः ॥ नानायुधानि दिव्यानि चलंति
स्म महामृधे ॥ २० ॥ गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुंडिप्रासमुद्गराः ॥ निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखपरश्वधाः ॥ २१ ॥ शरतोमरखड्गाश्च
शतघ्न्यश्च सहस्रशः ॥ भिंदिपालादयश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥ २२ ॥

सबगण उन सब दानवोंसे युद्ध करने लगे, विस्तारके भयसे पृथक्पृथक् वर्णन नहीं करते ॥ १७ ॥ शिवजी काली और पुत्रके सहित वटकी मूलमें बैठेरहे, हे मुने ! और सब सेना निरन्तर युद्ध करने लगी ॥ १८ ॥ इधर रत्नोंके मनोहर सिंहासनपर कोटिपरिमित दानवोंके सहित रत्नोंके भूषणोंसे शोभायमान शंखचूड विराजमान था ॥ १९ ॥ वहां देवता असुरोंका प्राणसंहारकर्ता महायुद्ध हुआ, उस महायुद्धमें अनेकप्रकारके दिव्य आयुधोंका प्रहार होने लगा ॥ २० ॥ गदा, ऋषि, पट्टिश, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, निस्त्रिंश, भल्ल, परिघ, शक्ति, सन्मुख, परशे ॥ २१ ॥ शर, तोमर, खड्ग, सहस्रों शतघ्नी,

भिंदिपाल आदि वीरोंके हाथमें शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ वीरगण महापराक्रमसे शत्रुओंके शिर छेदन करने लगे दोनों ओर युद्धमें वीरोंकी सेना गर्जने लगी ॥ २३ ॥ हाथी घोडे रथ पैदल सारी वाहादि अनेकप्रकारकी सवारी टूटने लगी ॥ २४ ॥ भुजा ऊरु कर कटि कान पैर कटने लगे ध्वज बाण तलवार बख्तर भूषण टूटकर गिरने लगे ॥ २५ ॥ किरीटकुंडल पहरे हुए शिरोंसे तथा हाथियोंके सूंडोंसे पृथिवी आच्छादित होगई ॥ २६ ॥ भूषण आयुधोंके सहित भुजा छिन्न भिन्न होने लगी तथा मधुमक्खीके छत्तोंकी समान शिरोंसे व्याप्त होगई ॥ २७ ॥ युद्धमें जोधा धावमान होने लगे अपने

शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः ॥ वीराणामुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥ २३ ॥ गजास्तुरंगा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः ॥ सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखंडिताः ॥ २४ ॥ निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगांघ्रयः ॥ संछिन्नध्वजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥ २५ ॥ समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिस्सह कुंडलैः ॥ संरंभनष्टैरास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥ २६ ॥ महाभुजैस्साभरणैस्संछिन्नैस्सायुधैस्तथा ॥ अंगैरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥ २७ ॥ मृधे भटाः प्रधावंतः कबंधान् स्वशिरोक्षिभिः ॥ पश्यंतस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥ २८ ॥ वलंतोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् ॥ शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥ २९ ॥ केचित्स्वर्णसुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे ॥ व्यनदन् वीरसन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥ ३० ॥ सर्वतश्शरकूटेन वीरस्सरथसारथिम् ॥ वीरं संछादयामास प्रावृद्सूर्यमिवांबुदः ॥ ३१ ॥ अन्योन्यमभिसंसृत्ययुयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ आह्वयंतो विशंतोऽग्रे क्षिपंतो मर्मभिर्मिथः ॥ ३२ ॥ सर्वतो वीरसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः ॥ व्यदृश्यंत महासंख्ये कुर्वंतः सिंहसंरवम् ॥ ३३ ॥

गिरेहुए शिरोंके आंखोंसे देखते हुए आयुध उठाकर धावमान होने लगे ॥ २८ ॥ वह वीर परस्पर सिंहनाद करते युद्ध करने लगे और महाबली पराक्रमी अनेकप्रकारके शस्त्र अस्त्र उठाने लगे ॥ २९ ॥ कोई युद्धमें सुवर्णके पुंख लगे बाणोंसे योधाओंको मारने लगे कोई मेघकी समान गंभीर वाणीसे शब्द करने लगे ॥ ३० ॥ सब ओरसे बाणोंके समूह वीर रथ सारथीको ऐसे ढकने लगे जैसे बादल सूर्यको ढकलेतेहैं ॥ ३१ ॥ द्वंद्वयोधावाले परस्पर एक दूसरेपर प्रहार करने लगे और एक दूसरेके मर्मस्थानोंमें ताडन करने लगे ॥ ३२ ॥ सब ओरसे वीर समूह अनेक प्रकारकी बाहुध्वजारूप आयुधवाले सिंहनाद

करते हुए उस युद्धमें दिखाई देने लगे ॥ ३३ ॥ बडे शब्दवाले शंखोंको पृथक्पृथक् बजाने लगे, और महावीर प्रसन्न हो ताडन वेधन करने लगे ॥३४॥ इस प्रकार बहुत समयतक देवता और दानवोंका बडा विकराल और विकट वीरोंको प्रसन्न करनेवाला युद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ यह परमात्मा शंकर महाप्रभुकी लीला है जिसने देवता असुर मनुष्य सबको मोहितकर रक्खा ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भा० टीका० द्वि० रु०पं० यु० षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी बोले तब सब देवता दानवोंसे पराजित होकर दानवोंके शस्त्रास्त्रोंसे क्षत विक्षत होकर भागने लगे ॥ १ ॥ और पलायमान होकर वे शंकरकी

महारवान् स्वशंखांश्च विदध्मुर्वै पृथक्पृथक् ॥ वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥ ३४ ॥ एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् ॥ बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम् ॥ ॥ ३५ ॥ महाप्रभोश्च लीलेयं शंकरस्य परात्मनः ॥ यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३६ ॥ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे परस्परयुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ तदा देवगणास्सर्वे दानवैश्च पराजिताः ॥ दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥ १ ॥ ते परावृत्य विश्वेशं शंकरं शरणं ययुः ॥ त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥ २ ॥ दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शंकरः ॥ सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥ ३ ॥ निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥ बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ॥ ४ ॥ शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणैस्सह ॥ युयुधे निर्भयस्संख्ये महावीरो हरात्मजः ॥ ५ ॥ कृत्वा क्रोधं वीरशब्दं देवो यस्तारकांतकः ॥ अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ॥ ६ ॥

शरण गये और विह्वलवाणीसे रक्षा करो रक्षा करो इसप्रकार कहने लगे ॥२॥ तब भगवान् शंकरने उन देव आदिकी पराजयको देखकर और उनके भयके वचन सुन बडा कोप किया ॥ ३ ॥ कृपादृष्टिसे देखकर देवताओंको अभय दिया और अपने तेजसे अपने गणोंमें बल बढादिया ॥ ४ ॥ तब स्कन्दजी शिवजीकी आज्ञा पाकर महावीरता प्रकाशकर निर्भय हो दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ वह तारकान्तक वीरशब्दसे महाघोर शब्द कर सैकडों

अक्षौहिणीका समरमें नाश करने लगे ॥६॥ इधर काली समरमें दैत्योंका नाश करके उनका रुधिरपान करने लगी और उनके शिर छेदनकर सहसा भक्षण करने लगी ॥ ७ ॥ सब ओरसे दानवोंका रक्तपान करना आरंभ किया सुर दानवोंके साथ भयंकर युद्ध होनेलगा ॥ ८ ॥ सौलाख गजेन्द्र सौलाख दानव हाथसे पकड पकडकर लीलापूर्वक काली मुखमें प्रक्षेप करने लगी ॥ ९ ॥ सहस्रों कबंध रणभूमिमें नृत्य करनेलगे भीरुजनोंको भय देनेवाला युद्धमें महान कोलाहल हुआ ॥ १० ॥ फिर भी स्कन्दने क्रोधकर बाणोंकी महावर्षा की और करोडों दानवेन्द्रोंका नाशकर दिया ॥ ११ ॥ मरनेसे बचेहुए शेष दानव

रुधिरं पातयामास काली कमललोचना ॥ तेषां शिरांसि संछिद्य बभक्ष सहसा च सा ॥ ७ ॥ पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समंततः ॥ युद्धं चकार विविधं सुरदानवभीषणम् ॥ ८ ॥ शतलक्षं गजेंद्राणां शतलक्षं नृणां तथा ॥ समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ ९ ॥ कबंधानां सहस्रं च सन्ननर्त रणे बहु ॥ महान् कोलाहलो जातः क्लीबानां च भयंकरः ॥ १० ॥ पुनः स्कंदः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षाञ्चकार ह ॥ पातयामास क्षयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥ ११ ॥ दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः ॥ भीताः प्रदुद्रुवुस्सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥ १२ ॥ वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंडश्चापि विकंपनः ॥ स्कंदेन युयुधुस्सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥ १३ ॥ महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी ॥ बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कंदशक्तिप्रपीडिताः ॥ १४ ॥ महामारीस्कंदयोश्च विजयोऽभूत्तदा, मुने ॥ नेदुर्दुंदुभयस्स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ १५ ॥ स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम् ॥ दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम् ॥ ॥ १६ ॥ महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम् ॥ चुकोपातीव सहसा संनद्धोभूत्स्वयं तदा ॥ १७ ॥

कुमारके बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर हो पलायन करने लगे ॥ १२ ॥ वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दंड, विकम्पन यह क्रमसे स्कन्दजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ॥ १३ ॥ इधर महामारी परांमुख न होकर युद्ध करने लगी और स्कन्दकी शक्तिसे वे असुर क्षत विक्षत होगये ॥ १४ ॥ हे मुने ! उस समय भगवती और स्कन्दकी विजय हुई, स्वर्गकी दुन्दुभी बजी और फूलोंकी वर्षा हुई ॥१५॥ स्कन्दजीका महाभयंकर अद्भुतसंग्राम देखकर जो प्रकृति कल्पकी समान दानवोंका क्षय करनेवाला था ॥ १६॥ और जो उनके क्षयका हेतु महामारीने उपस्थित कियाथा, यह देखकर दानवराज बडा क्रोधकर स्वयं युद्धको तयार

हुआ ॥ १७ ॥ अनेकप्रकारके अस्त्र शस्त्रवाले श्रेष्ठ विमानमें चढकर जो सब वीरोंको अभय देनेवाला था और जिसमें अनेकप्रकारके शस्त्र अस्त्र धरे थे ॥ ॥ १८ ॥ महावीरोंके साथ शंखचूड रथके मध्यमें स्थित होकर चला और कानपर्यंत धनुषको खैंचकर बाणोंकी वर्षा करनेलगा ॥ १९॥ उसकी वह बाणोंकी वर्षा बडी दुर्निवार होगई उस वधस्थानमें महाघोर अंधकार होगया ॥ २० ॥ नन्दीश्वरको आदि लेकर सब देवता भागने लगे युद्धमें एकमात्र कार्त्तिकेयही स्थित रहे ॥ २१ ॥ दानवराजने उस समय पर्वत सर्प नाग और वृक्षोंकी दुर्निवार भयंकर वर्षा की ॥ २२ ॥ उस वर्षासे शिवपुत्र स्कन्दजी ताडित होने

वरं विमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम् ॥ १८ ॥ महावीरैश्शंखचूडो जगाम रथमध्यतः ॥ धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम् ॥ १९ ॥ तस्य सा शरवृष्टिश्च दुर्निवार्य्या भयंकरी ॥ महाघोरांधकारश्च वधस्थाने बभूव ह ॥ २० ॥ देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः ॥ एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥ २१ ॥ पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा ॥ राजा चकार वृष्टिं च दुर्निवार्यां भयंकरीम् ॥ २२ ॥ तद्वृष्ट्या प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः ॥ नीहारेण च सांद्रेण संवृतौ भास्करौ यथा ॥ २३ ॥ नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम् ॥ तां नाविदन् सुराः केपि गणाश्च मुनिसत्तम ॥ २४ ॥ तदैव शंखचूडश्च महामायी महाबलः ॥ शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै ॥ २५ ॥ बभंज तद्रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीडकान् ॥ मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः ॥ २६ ॥ शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् ॥ मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम् ॥ २७ ॥

लगे जैसे नीहारमें भास्कर हो ऐसे दोनों वीर होगये ॥ २३ ॥ तब उस दानवेश्वरने मयदानवकी अनेकमाया की, हे मुनिसत्तम ! उस मायाको शिवके गण और देवता कोई न जानसके ॥ २४ ॥ उसी समय महामायावी महाबली उस शंखचूडने एक दिव्य बाणसे स्कन्दका धनुष छेदन करदिया ॥ २५ ॥ उनके रथ आदिको भी छेदन करदिया, और दिव्यअस्त्रसे उनके मोरको जर्जर करदिया ॥२६॥ और सूर्यकी समान एक घातक शक्तिका स्कंदकी छातीपर

प्रहार किया जिसके प्रहारसे वह क्षणमात्रको मूर्च्छित होगये ॥ २७ ॥ फिर स्कन्द क्षणमात्रमें चेतनाको प्राप्त होकर महारत्नोंसे निर्मित अपने वाहनपर सवार
हुए ॥ २८ ॥ तब स्कन्दजीने मातासहित शिवजीके चरणोंको स्मरणकर शस्त्र अस्त्रोंको लेकर महा संग्राम किया ॥ २९ ॥ उसके सर्प पर्वत वृक्ष प्रस्तर
यह सबही अपने दिव्यास्त्रोंसे छेदन करदिये ॥ ३० ॥ और मेघास्त्रसे उसकी सब अग्नि शांत कर दी और लीलासेही शंखचूडका रथ और धनुष छेदन
करदिया ॥ ३१ ॥ उसका वख्तर वाहन निर्मल किरीट कुण्डल सब छेदन करके वीरशब्दसे वारंवार गर्जना की ॥ ३२ ॥ और सूर्यकी समान जलतीहुई

पुनश्च चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ॥ २८ ॥ स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च
षण्मुखः ॥ शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम् ॥ २९ ॥ सर्प्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा ॥ सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्या
स्त्रेण शिवात्मजः ॥ ३० ॥ वह्निं निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह ॥ रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ॥ ३१ ॥ सन्नाहं
सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः ॥ ३२ ॥ चिक्षेप शक्तिं सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ॥
तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छां दीर्घतमेन च ॥ ३३ ॥ मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महाबलः ॥ चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्च
सः ॥ ३४ ॥ शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम् ॥ स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ॥ ३५ ॥ काली गृहीत्वा
तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥ ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया ॥ ३६ ॥ ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ गम
नाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नंतरे वीरो वीरभद्रो महाबलः ॥ शंखचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ॥ ३८ ॥

एक शक्तिको उस दानवराजकी छातीमें मारा, उस प्रहारसे वह दैत्य बहुत कालतक मूर्च्छित रहा ॥ ३३ ॥ फिर वह महाबली मुहूर्त मात्रमें उस क्लेशको
निवारणकर चेतनाको प्राप्त हो उठकर गर्जने लगा ॥ ३४ ॥ और महाबली कार्तिकेयपर शक्तिका प्रहार किया और विधाताके वचन सार्थक करनेको वह
पृथिवीपर गिरपडे ॥ ३५ ॥ काली उनको गोदीमें उठाकर शिवजीके सपीप गई और शिवजीने लीलापूर्वक अपने ज्ञानसे उनको जीवित करदिया ॥ ३६ ॥
और अनन्तबल उनको दिया जिससे वह महाप्रतापी उठ बैठे और स्कन्दजीने फिर युद्धमें जानेकी इच्छा की ॥ ३७ ॥ उसी समय महाबली वीरभद्रजी

शंखचूडके साथ महाबलसे युद्ध करनेलगे ॥ ३८ ॥ दानवराजने समरमें जितने अस्त्रोंकी वर्षाकी उस वीरने लीलापूर्वक उन सबको छेदन करदिया ॥ ॥ ३९ ॥ दानवेश्वरने जितने दिव्य अस्त्रोंका प्रहार किया प्रतापी वीरभद्रने उन सबको छेदन करादिया ॥ ४० ॥ तब शंखचूडने महाक्रोधकर एक शक्ति मारकर वीरभद्रको पृथिवीपर गिरादिया ॥ ४१ ॥ वह गणेश्वर क्षणमात्रमें चेतनाको प्राप्त होकर उठ बैठा और गणेश्वर वीरभद्रने फिर धनुष ग्रहण किया ॥ ४२ ॥ इसी समय काली फिर समरभूमिमें आई और कार्तिकेयकी रक्षा करने और दानवोंको भक्षण करनेकी इच्छा की ॥ ४३ ॥ और नन्दीश्वरादि

ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानियानि च दानवः ॥ चिच्छेद लीलया वीरस्तानितानि निजैश्शरैः ॥ ३९ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे
दानवेश्वरः ॥ तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ अथातीव चुकोपोच्चैश्शंखचूडः प्रतापवान् ॥ शक्त्या जघानोरसि
तं स चकंपे पपात कौ ॥ ४१ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः ॥ जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ॥ ४२ ॥ एत
स्मिन्नंतरे काली जगाम समरं पुनः ॥ भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छया ॥ ४३ ॥ वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरा
दयः ॥ सर्वे देवाश्च गंधर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ॥ ४४ ॥ वाद्यभांडाश्च बहुशश्शतशो मधुवाहकाः ॥ पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभय
तोऽखिलाः ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधे ससैन्यशंखचूडयुद्धवर्णनं
नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सा च गत्वा हि संग्रामं सिंहनादं चकार ह ॥ देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छा
मापुश्च दानवाः ॥ १ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः ॥ तदा पपौ च माध्वीकंननर्त रणमूर्द्धनि ॥ २ ॥

वीर उसके पीछे चले सब देवता, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग उसके साथ आये ॥ ४४ ॥ वाद्य और मधुके सैकडों पात्र यह लेकर चले फिर दोनोंओरके सब वीर तयार होगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहा० भा० टीका० द्वि० रु० पं० यु० सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी बोले तब उसने संग्रामस्थलमें जाकर सिंहनाद किया देवीके उस सिंहनादसे दानव मूर्च्छित होगये ॥ १ ॥ वारंवार भगवतीने भयंकर सिंहनाद किया और वारंवार मधुपान कर युद्धभूमिमें

नृत्य करने लगी ॥ २ ॥ बडे डाढोंवाली भयंकर दंड हाथमें लिये मधुपान करने लगी और देवियें भी उसके साथ स्थित हो मधुपान कर नृत्य करने लगीं ॥ ३ ॥ उस समय गण और देवताओंके दलोंमें महा कोलाहल हुआ और सब देवगण उस शब्दको सुनकर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ कालीको देखकर शंखचूड शीघ्रही संग्राममें आया, दानवोंनें भय पाया और राजाने उनको अभय दिया ॥ ५ ॥ कालीने प्रलय आग्निकी समान अग्निका प्रहार किया, और राजाने उसको वैष्णवास्त्रसे शीघ्रही शांत करदिया ॥ ६ ॥ तब देवीने नारायणास्त्रका प्रहार किया तब वह दानवको देखकर वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥ ७ ॥

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ॥ अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ॥ ३ ॥ महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा ॥
जहृषुर्बहुगर्जंतस्सर्वे सुरगणादयः ॥४॥ दृष्ट्वा कालीं शंखचूडश्शीघ्रमाजौ समाययौ॥दानवाश्च भयं प्राप्ता राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ५ ॥
काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवांकितलीलया ॥ ६ ॥ नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदु
पर्यरम् ॥ वृद्धिं जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम् ॥ ७ ॥ तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ पपात दंडवद्भूमौ प्रणनाम
पुनःपुनः ॥ ८ ॥ निवृत्तिं प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् ॥ ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा प्रज्ज्वलंतं
च प्रणम्य भुवि संस्थितः ॥ ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिवारं चकार ह ॥ १० ॥ अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा ॥ चिक्षेप
दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मंत्रपूर्वकम् ॥ ११ ॥ आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम् ॥ जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥
॥ १२ ॥ काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायताम् ॥ देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखंडं चकार सा ॥ १३ ॥

शंखचूड उसको प्रलयाग्निकी समान देखकर पृथिवीमें गिरकर वारंवार प्रणाम करनेलगा ॥ ८ ॥ दानवोंको नम्र देखकर वह अस्त्र निवृत्तिको प्राप्त हुआ, तब देवीने मंत्रपूर्वक ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥ ९ ॥ उस अस्त्रको प्रज्वालित देखकर फिर दानव पृथिवीमें उतरप्रणाम करने लगा और ब्रह्मास्त्रद्वारा वह दानवराज बचगया ॥ १० ॥ तब दानवराज क्रोधकर बडे वेगसे धनुष चढाय, मंत्रपूर्वक देवीपर दिव्य बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ११ ॥ तब देवी मुख फैलाकर सब अस्त्रोंको भक्षणकर गई और अट्टहाससे गर्जी जिसे देखकर दानव भयको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ तब उसने शतयोजनके विस्तारहोनेवाली शक्ति काली

पर छोडी देवीने दिव्यास्त्रोंसे उसको खंड खंड करडाला ॥ १३ ॥ तब उसने चंडिकापर वैष्णव अस्त्रका प्रहार किया कालीने माहेश्वर अस्त्रसे उसको निवारणकरदिया ॥ १४ ॥ इस प्रकार दोनोंका बहुत कालतक युद्ध होता रहा, सब देव दानव खडे होकर युद्ध देखने लगे ॥ १५ ॥ तब महादेवी युद्धमें कालकी समान क्रोधित हुई और महाक्रोधकर पाशुपत अस्त्रको ग्रहण किया और उसको मंत्रसे पवित्र किया ॥ १६ ॥ उसके निक्षेप करनेसे पहलेही आकाशवाणी हुई हे देवि ! इस अस्त्रको शंखचूडपर मत छोडो ॥१७॥ हे चंडिके ! यद्यपि यह पाशुपतास्त्र अमोघ है पर इस्से इसकी मृत्यु नहीं

स च वैष्णवमस्त्रं च चिक्षेप चंडिकोपारि ॥ माहेश्वरेण काली च विनिवारं चकार सा ॥ १४ ॥ एवं चिरतरं युद्धमन्योन्यं संबभूव ह ॥ प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ॥ १५ ॥ अथ क्रुद्धा महादेवी काली कालसमा रणे ॥ जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ॥ १६ ॥ क्षेपात्पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ न क्षिपास्त्रमिदं देवि शंखचूडाय वै रुषा ॥ १७ ॥ मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघदापि च चंडिके ॥ शंखचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय ॥ १८ ॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् ॥ शतलक्षं दानवानां जघास लीलया क्षुधा ॥ १९ ॥ अत्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी ॥ दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः ॥ ॥ २० ॥ अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् ॥ ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यंतभीकरम् ॥ २१ ॥ सा काली तं समालोक्यायांतं प्रज्वलितं रुषा ॥ प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ॥ २२ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः ॥ प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखंडानि तानि च ॥ २३ ॥

है इस कारण इस शंखचूड वीरके निमित्त कोई दूसरा उपाय देखो ॥ १८ ॥ यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं छोडा और लीलासेही सौलाख दानवोंको भक्षणकर गई ॥ १९ ॥ और भयंकरवेगसे शंखचूडके खानेको दौडी तब दानवने दिव्य रौद्रास्त्रसे निवारण किया ॥ २० ॥ तब दानवराजने बडा क्रोधकर एक खड्गका प्रहार किया, जो गरमीके समयके सूर्यकी समान तीक्ष्ण धारवाला बडा भयंकर था ॥ २१ ॥ तब काली प्रज्वलित उस खड्गको आता देख क्रोधसे मुख फैलाकर उसे भक्षण करगई ॥ २२ ॥ दानवराजने और भी बहुतसे दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया पर भगवतीने वे सब

खण्ड खण्ड करदिये ॥ २३ ॥ फिर महादेवी बडे वेगसे उसे खानेको दौडी तब वह श्रीमान् दानवराज सर्व सिद्धोंका ईश्वर अन्तर्धान होगया ॥ २४ ॥
तब कालीने दैत्यराजको न देखकर बडे वेगसे अपनी मुष्टिसे उसका रथ और सारथी नष्ट कर दिया ॥ २५ ॥ फिर उस मायावीने शीघ्र आकर देवीपर
चक्रका प्रहार किया, शंखचूडका वह चक्र प्रलयाग्निकी शिखाके समान था ॥ २६ ॥ देवीने लीलासेही उस चक्रको बायें हाथमें लेकर और बडे क्रोधसे
भक्षण कर लिया ॥ २७ ॥ और बडे कोप और वेगसे देवीने उसपर मुष्टिप्रहार किया उससे दानवराज घूमगया और क्षणमात्रको उसे मूर्च्छा प्राप्त होगई

पुनरत्तुं महादेवी वेगतस्तं जगाम ह ॥ सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानंतर्धानं चकार सः ॥ २४ ॥ वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् ॥
बभंज च रथं तस्य जघान किल सारथिम् ॥ २५ ॥ अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः ॥ भद्रकाल्यै शंखचूडः प्रलयाग्निशिखो-
पमम् ॥ २६ ॥ सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेन लीलया ॥ जाग्राह स्वमुखेनैवाहारं चक्रे रुषा द्रुतम् ॥ २७ ॥ मुष्ट्या जघान तं देवी
महाकोपेन वेगतः ॥ बभ्राम दानवेन्द्रोपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥ २८ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य स चोत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ न चक्रे बाहु
युद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह ॥ २९ ॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥ ऊर्द्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥ ३० ॥
उत्पपात च वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ॥ निपत्य च समुत्तस्था प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥ ३१ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानं सुमनो
हरम् ॥ आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोपि महारणे ॥ ३२ ॥ दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र वाग्बभू
वाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥ उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुंक्ष्व चेश्वरि ॥ ३४ ॥

॥ २८ ॥ फिर वह प्रतापी क्षणमात्रमें मूर्च्छाको प्राप्त होकरभी उठ बैठा, पर मातृबुद्धिसे भगवतीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया ॥ २९ ॥ तब देवीने
उसको पकडकर और वारंवार घुमाकर महाकोपकर बडे वेगसे ऊपरको फेंक दिया ॥ ३० ॥ प्रतापी शंखचूड बडे वेगसे ऊपर कूदगया, और फिर नीचे
आकर भद्रकालीको प्रणामकर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और महाश्रेष्ठ रत्नोंके बने विमानपर स्थित होकर भ्रान्तिरहित प्रसन्नहो युद्धके निमित्त तयार हुआ
॥ ३२ ॥ इधर क्रोधसे काली दानवोंका रुधिर पान कउसी लगी समय अशरीरिणी वाणी सुनाई दी ॥ ३३ ॥ इस समय युद्धमें एक लाख दानवोंका

रुधिर शेषहै हे ईश्वरि ! वेही उद्धृत हैं उनको शीघ्र भक्षण करजाओ ॥ ३४ ॥ और संग्राममें इस दानवराजके मारनेकी इच्छा न करो हे देवि ! यह
शंखचूड तुमसे अवध्यहै यह निश्चय जानो ॥ ३५ ॥ यह वचन सुनकर देवीने देखा कि, आकाश मंडलसे बहुतसे दानवोंका रुधिर और मांस निकलरहा है
॥ ३६ ॥ भद्रकाली उसे भोजन पान कर शिवजीके समीप आई और पूर्वापरके क्रमसे युद्धका वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवम०भा०टीका०
द्वि०रु०पं०यु०भद्रकालीयुद्धवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ व्यासजी बोले हे महाप्राज्ञ ! सनत्कुमारजी भद्रकालीके वचन सुन शिवजीने क्या कहा और

संग्रामे दानवेन्द्रं च हंतुं न कुरु मानसम् ॥ अवध्योयं शंखचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममं
डलात् ॥ दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥ ३६ ॥ भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमाययौ ॥ उवाच रणवृत्तांतं पौर्वापर्येण
सक्रमम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रुद्रसं०पं० युद्धखंडे शंखचूडवधे कालीयुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ व्यास
उवाच ॥ श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् ॥ तत्त्वं वद महाप्राज्ञ परं कौतूहलं मम ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ काल्युक्तं
वचनं श्रुत्वा शंकरः परमेश्वरः ॥ महालीलाकरश्शंभुर्जहासाश्वासयञ्च ताम् ॥ २ ॥ व्योमवाणीं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ॥ ययौ
स्वयं च समरे स्वगणैस्सह शंकरः ॥ ३ ॥ महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः ॥ भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैस्समन्वितः ॥ ४ ॥ रणं
प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च ॥ विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवांतकः ॥ ५ ॥ शंखचूडश्शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः ॥ ननाम
परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि ॥ ६ ॥ तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः ॥ तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह सेषुकम् ॥ ७ ॥

क्या किया सो कहिये इसका मुझे परम कुतूहल है ॥ १ ॥ सनत्कुमार बोले शंकरपरमेश्वर कालीके यह वचन सुनकर उसको लीलासे समझातेहुए हँसने
लगे ॥ २ ॥ वह तत्त्वज्ञानमें विशारद आकाशवाणी सुनकर अपने गणोंको साथ ले स्वयं युद्धमें गये ॥ ३ ॥ यह वृषभपर चढे वीरभद्रादिसे संयुक्त तथा
अपनी समान भैरव और क्षेत्रपालको साथ लिये ॥ ४ ॥ वीररूप धारणकर महेश्वर युद्धमें प्राप्त हुए और उस समय शंकर कालकी समान विराजमान
होने लगे ॥ ५ ॥ शिवको देखतेही शंखचूडने विमानसे उतरकर परमभक्तिसे शिरसे भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ६ ॥ और शंकरको प्रणाम कर

योगमार्गसे फिर वह विमान पर चढा और वख्तर धारणकर धनुष बाण ग्रहण किया ॥ ७ ॥ उस समय सौ वर्षतक शिव और दानवका युद्ध होता रहा और वर्षते हुए मेघोंकी समान बाणवर्षा होती रही ॥ ८ ॥ महावीर शंखचूडने बडे दारुण बाणोंकी वर्षा की और शंकरने लीलापूर्वक वे सबअपने बाणोंसे छेदन करदिये ॥ ९ ॥ दुष्टोंके दण्ड देनेवाले सत्पुरुषोंकी गति विरूपाक्ष महारुद्रने बडे कोपसे उसके अंगोंमें शस्त्रोंका प्रहार किया ॥ ॥ १० ॥ तब वेगवान् दानवने बडी शीघ्रतासे आकर बडा तीक्ष्ण धारवाला खड्ग लेकर शिवजीके वरवाहनके मस्तकपर प्रहार किया ॥ ११ ॥ जैसेही उसने

शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह ॥ बाणवर्षमिवोग्रं तद्वर्षतोर्मेघयोस्तदा ॥८॥ शंखचूडो महावीरश्शरांश्चिक्षेप दारुणान् ॥ चिच्छेद शंकरस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥ ९ ॥ तदंगेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः ॥ महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डस्सतां गतिः ॥ १० ॥ दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वगवान् ॥ वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥११॥ ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया ॥ खड्गं चिच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥ छिन्नेऽसौ चर्मणि तदा शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ॥ द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां संमुखागताम् ॥ १३ ॥ कोपाध्मातश्शंखचूड श्चक्रं चिक्षेप दानवः ॥ मुष्टिपातेन तच्चाप्यचूर्णयत्सहसा हरः ॥ १४ ॥ गदामाविध्य तरसा संचिक्षेप हरं प्रति ॥ शंभुना सापि सहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १५ ॥ ततः परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः ॥ धावति स्म हरं वेगाच्छंखचूडः क्रुधाकुलः ॥ १६ ॥ समाहृत्य स्वबाणौघैरपातयत शंकरः ॥ द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयासुरम् ॥ १७ ॥

ताडन किया कि, शिवजीने अपने तीक्ष्ण खुरवाले बाणसे लीलापूर्वक उसकी ढाल और तलवार छेदन करदी ॥ १२ ॥ खड्गके छेदन करनेपर दानवने शक्तिका प्रहार किया और शिवजीने अपने बाणोंसे उसके दो खण्ड करडाले ॥ १३ ॥ तब दानवने बडे कोपसे चक्रका प्रहार किया और शिवजीने मुष्टिप्रहारसेही उसको नष्ट करदिया ॥ १४ ॥ तब उसने गदा उठाकर शिवजीके ऊपर चलाई शिवजीने उसको भी चूर्णकर भस्म कर दी ॥ १५ ॥ तब दानवराजने हाथमें परशा उठाया, और बडे क्रोधसे शिवजीके ऊपर दौडा ॥ १६ ॥ शिवजीने आते आते उस दैत्यके परशेको उस दैत्यके हाथस

हित पृथिवीमें गिरादिया ॥ १७ ॥ तब वह क्षणमात्रमें चेतनाको प्राप्त हो रथमें चढकर दिव्य आयुध धारण कर आकाशमें व्यापक हो स्थित हुआ ॥ ॥ १८ ॥ इस प्रकार उसको आया हुआ देखकर शिवजीने डमरु और ज्याका शब्द और भयंकर धनुषका शब्द किया ॥ १९ ॥ और प्रभुने डमरुनादसे सब दिशाओंको पूर्ण करदिया और असुरोंको त्रास देतेहुए शिवजी गर्जने लगे ॥ २० ॥ जिस समय महागर्वसे शंकरने नाद किया और वृषेश्वरने शब्द किया उस समय उस शब्दसे आकाश पृथिवी और दिशा व्याप्त होगई ॥ २१ ॥ तब बडे वेगसे महाकालने आकर भूमि आकाशको

ततः क्षणेन संप्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम् ॥ धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ॥ १८ ॥ आयांतं तं निरीक्ष्यैव डमरुध्वनि
मादरात् ॥ चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुस्सहं हरः ॥ १९ ॥ पूरयामास ककुभः शृंगनादेन च प्रभुः ॥ स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासय
न्नसुरांस्तदा ॥ २० ॥ त्याजितेभमहागर्वैर्महानादैर्वृषेश्वरः ॥ पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ॥ २१ ॥ महाकालस्समुत्पत्या
ताडयद्गां तथा नभः ॥ कराभ्यां तन्निनादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः ॥२२॥ अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह ॥ भैरवोऽपि महानादं
स चकार महाहवे ॥२३॥ महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयंकरः ॥ वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समंततः ॥ २४ ॥ संत्रेसुर्दानवास्सर्वे
तैश्शब्दैर्भयदैः खरैः ॥ चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ २५ ॥ तिष्ठतिष्ठेति दुष्टात्मन्व्याजहार यदा हरः ॥ देवैर्गणैश्च तैश्शी
घ्रमुक्तं जय जयेति च ॥ २६ ॥ अथागत्य स दंभस्य तनयस्सुप्रतापवान् ॥ शक्तिं चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम् ॥ २७ ॥

दोनों हाथोंसे ताडन किया उसके शब्दसे सब असुर व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ इसी प्रकार क्षेत्रपालने भयंकर शब्द किया, और भैरवने भी उस युद्धमें महाशब्द किया ॥ २३ ॥ उस समय संग्राममें महाकोलाहल होने लगा गणोंके मध्यमें चारोंओरसे वीरशब्द होने लगा ॥ २४ ॥ उन भयदायक तीक्ष्ण शब्दोंसे सब दानव व्याकुल होगये महाबली दानव उन शब्दोंको सुनकर महाकोपित हुआ ॥ २५ ॥ जब शिवजीने कहा अरे दुष्ट ! खडा रह खडा रह उसी समय सब देवता और असुरोंने जयजयकार शब्द उच्चारण किया ॥ २६ ॥ तब वह प्रतापवान् दंभका पुत्र आकर ज्वालामालासे भयंकर शक्तिका

रुद्रके ऊपर प्रहार करता हुआ ॥ २७ ॥ आग्निकी प्रभाकी समान उस शक्तिको आया देखकर प्रतापवान् क्षेत्रपालने आगे बढकर अपने मुखकी ज्वालासे नष्ट करदी ॥ २८ ॥ फिर भी शिव और दानवका बडा घोर संग्राम होने लगा उस समय द्युलोक भूमि पर्वत सागर कम्पायमान होने लगे ॥ २९ ॥ दंभ पुत्रके छोडे हुए बाणोंको शिवजी अपने बडे उग्र सहस्रों बाणोंसे छेदन करने लगे ॥ ३० ॥ तब बडा क्रोधकर शिवजीने उसपर त्रिशूलका प्रहार किया और वह उसको न सहकर मूर्च्छितहो पृथिवी में गिरा ॥ ३१ ॥ और फिर वह असुर क्षणमात्रमें चेतनाको प्राप्त हो धनुष चढाय बडे बडे बाणोंसे

वह्निकूटप्रभा यांती क्षेत्रपालेन सत्वरम् ॥ निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥ २८ ॥ पुनः प्रववृते युद्धं शिवदानवयोर्महत् ॥
चकंपे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥ २९ ॥ दांभिमुक्ताञ्छराञ्शंभुश्शरांस्तत्प्रहितान्स च ॥ सहस्रशश्शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा
॥ ३० ॥ ततश्शंभु–स्त्रिशूलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह ॥ तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्च्छितः ॥३१॥ ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च
तदासुरः ॥ आजघान शरै रुद्रं तान्सर्वानात्तकार्मुकः ॥ ३२ ॥ बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शंकरम् ॥ चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः
प्रतापवान् ॥ ३३ ॥ ततो दुर्गापतिः क्रुद्धोरुद्रो दुर्गार्तिनाशनः ॥ तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैरुत्तमैर्द्रुतम् ॥ ३४ ॥ ततो वेगेन सहसा
गदामादाय दानवः ॥ अभ्यधावत वै हंतुं बहुसेनावृतो हरम् ॥ ३५ ॥ गदां चिच्छेद तस्याश्वापततः सोऽसिना हरः ॥ शितधारेण
संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥ ३६ ॥ छिन्नायां स्वगदायां च चुकोपातीव दानवः ॥ शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुस्सहं ज्वलत् ॥ ३७ ॥

शिवजीपर प्रहार करने लगे ॥ ३२ ॥ दश सहस्र भुजासे शंकरको आच्छादन करदिया और प्रतापी शंखचूडने एकबारही सहस्र चक्र छोडे ॥ ३३ ॥ तब कठिन दुर्गतिके नाश करनेवाले दुर्गापति शंकरने महाक्रोध किया और अपने बाणोंसे उन सब चक्रोंको छेदन करदिया ॥ ३४ ॥ तब दानव बडे वेगसे गदा ग्रहणकर बहुत सेनाके सहित शिवजीके मारनेको दौडा ॥ ३५ ॥ तब शिवजीने अपनी तीक्ष्ण तलवारसे उसकी गदा छेदन करदी, इस प्रकार दुष्टका गर्व हरण किया ॥ ३६ ॥ अपनी गदा छेदन होजानेसे दानवने बडा क्रोध किया और शत्रु ओंको बडा भयंकर प्रज्वलित शूल ग्रहण किया ॥ ३७ ॥

उस दानवेश्वरको सुदर्शन शूल हाथमें लेकर आया देख शिवजीने वेगसे अपने शूलका उसके हृदयमें प्रहार किया ॥ ३८ ॥ त्रिशूलसे भिन्न हृदय होतेही
उसमेंसे एक और पुरुष निकला और वीर्यवान् शंखचूडने उससे खडे रहो खडे रहो ऐसा कहा वीर्यवान् शंखचूडके ॥३९॥ निष्क्रमण होकर शब्द करतेही
उसका शिर भयंकर तलवारसे छेदन कियागया और वह पृथिवीमें गिरपडा ॥ ४० ॥ तब कालीने अपना मुख फैलाकर अपनी डाढोंसे उसको चबाडाला
और क्रोधसे बहुतसे राक्षसोंको मुख फैलाकर भक्षण करगई ॥४१॥ इधर क्षेत्रपालने भी बहुतसे दैत्योंको क्रोधसे भक्षण कर लिया कोई भैरव अस्त्रसे छिन्न

सुदर्शनं शूलहस्तमायांते दानवेश्वरम् ॥ स्वत्रिशूलेन विव्याध हृदि तं वेगतो हरः ॥ ३८॥ त्रिशूलभिन्नहृदयान्निष्क्रांतः पुरुषः परः ॥
तिष्ठतिष्ठेति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥ निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः ॥ चिच्छेद च शिरो भीममसिना
सोऽपतद्भुवि ॥ ४० ॥ ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ॥ असुरांस्तान् बहून् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा ॥ ४१ ॥
क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्यान्क्रुधाकुलः ॥ केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथापरे ॥४२॥ वीरभद्रोऽपरान्धीमान्बहून् क्रोधादनाश
यत् ॥ नन्दीश्वरो जघानान्यान्बहूनमरमर्दकान् ॥ ४३ ॥ एवं बहुगणा वीरास्तदा संनह्य कोपतः ॥ व्यनाशयन्बहून्दैत्यानसुरान् देव
मर्दकान् ॥ ४४ ॥ इत्थं बहुतरं तत्र तस्य सैन्यं ननाश तत् ॥ विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडसैन्यवधवर्णनं नाम नवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स्वबलं निहतं
दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः ॥ तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ॥ १ ॥

भिन्न होकर नष्ट होगये ॥ ४२ ॥ क्रोधसे वीरभद्रने भी बहुतसे वीरोंका नाश कर दिया और नन्दीश्वरने भी बहुतसे असुरोंको नष्ट किया ॥ ४३ ॥
इस प्रकारसे बहुतसे वीर महाकोपकर देवद्रोही बहुतसे असुरोंको नष्ट करने लगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार उस दैत्यकी बहुतसी सेना नष्ट होगई और भयसे
कातर हो बहुतसे वीर भागगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० टीकां० द्वि० रु० पं० यु० शंखचूडसैन्यवधवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥
सनत्कुमारजी बोले इस प्रकारसे अपनी मुख्य सेनाको नष्ट होता हुआ देखकर और प्राणसमान वीरोंको छिन्न होता देखकर दानवने बडा क्रोध किया॥ १ ॥

और संग्राममें शंकरसे कहा मैं तैय्यार हूं आप सावधानहों इनके मारनेसे क्या है आप मेरे सन्मुख युद्ध करो ॥२॥ हे मुने ! ऐसा कहकर वह दानव युद्धको तयार हुआ और निश्चयकर शंकरके सन्मुख आया ॥ ३ ॥ दानवने महारुद्रपर अनेकदिव्य अस्त्रोंका प्रहार किया और जैसे मेघ जल वरसातेहैं इस प्रकार उसने शरवृष्टि की ॥ ४ ॥ और अदृश्य होकर अनेकमायासे भय दिखाने लगा जिसको देवताओंमें कोई भी नहीं समझसका ॥ ५ ॥ उसको देखकर शंकरभी लीलासे अस्त्रप्रहार करने लगे और सब मायाका नाश करनेवाला महादिव्य माहेश्वर अस्त्र प्रहार किया ॥ ६ ॥ उसके तेजसे वह माया तत्काल

उवाच वचनं शंभुं तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥ किमेतैर्निहतैर्मेत्र संमुखे समरं कुरु ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोसौ सन्नद्धस्समरे मुने ॥ अगच्छन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शंकरस्य च ॥ ३ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः ॥ चकार शरवृष्टिंश्च तोयवृष्टिं यथा घनः ॥ ४ ॥ मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः ॥ अप्रतर्क्याः सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ॥ ५ ॥ ता दृष्ट्वा शंकरस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया ॥ माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ॥ ६ ॥ तेजसा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा ॥ दिव्यान्यस्त्राणि तान्येव निस्तेजांस्यभवन्नपि ॥ ७ ॥ अथ युद्धे महेशानस्तद्वधाय महाबलः ॥ शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम् ॥ ८ ॥ तदैव तन्निषेद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ क्षिप शूलं न चेदानीं प्रार्थनां शृणु शंकर ॥ ९ ॥ सर्वथा त्वं समर्थो हि क्षणाद् ब्रह्माण्डनाशने ॥ किमेकदानवस्येश शंखचूडस्य सांप्रतम् ॥ १० ॥ तथापि वेदमर्यादा न नाश्या स्वामिना त्वया ॥ तां शृणुष्व महादेव सफलं कुरु सत्यतः ॥ ११ ॥ यावदस्य करेऽस्त्युग्रं कवचं परमं हरेः ॥ यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्या अस्य हि योषितः ॥ १२ ॥

नष्ट होगई वह सब दिव्य अस्त्र निस्तेज होगये ॥ ७ ॥ तब महाबली महेश्वरने उसके वधके निमित्त युद्धमें तेजस्वियोंको दुर्निवार शूल ग्रहण किया ॥ ८ ॥ उसी समय इस बातका निषेध करनेको अशरीरिणी वाणी हुई हे शंकर ! अभी शूलको मत छोडो थोडी प्रार्थना सुनो ॥ ९ ॥ आप क्षणमें ब्रह्माण्ड नाश करनेमें सर्वथा समर्थ हो, फिर एक दानव शंखचूडका मारना क्या वडी बातहै ॥ १० ॥ तोभी हे स्वामिन् ! आपको वेदकी मर्यादाका नाश न करना चाहिये हे महादेव ! उसको सुनकर सत्यसे सफल करो ॥ ११ ॥ जबतक इसके पास हरिका उत्तम कवचहै, और जबतक इसकी स्त्री पतिव्रता है ॥१२॥

हे शंकर ! तबतक इसको जरा और मृत्यु नहीं है हे नाथ ! ब्रह्माके इस वचनको आप सत्य करैं ॥ १३ ॥ आकाशवाणी सुनकर शिवजीने वैसाही किया
और विष्णुको इस बातकी आज्ञा हुई कारण कि, शंकर सत्पुरुषोंके गति हैं, हरकी इच्छासे विष्णुजी वहां गये ॥१४॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ विष्णुजीने
बूढे ब्राह्मणका वेष बनाय शंखचूडके समीप जाकर कहा ॥ १५ ॥ वृद्ध ब्राह्मण बोला हे दानवेन्द्र ! इस समय आप मुझे भिक्षा दीजिये ॥ १६ ॥ सो मैं
पहले नहीं मांगता हूं जब आप पहले शपथ करलेंगे तब दीनोंपर कृपा करनेवाले आपसे कहूंगा ॥ १७ ॥ राजाने प्रसन्नतासे प्रतिज्ञाकी तब ब्राह्मणने छलसे

तावदस्य जरामृत्युश्शंखचूडस्य शंकर ॥ नास्तीत्यवितथं नाथ विधेहि ब्रह्मणो वचः ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य नभोवाणीं तथेत्युक्ते हरे
तदा ॥ हरेच्छयागतो विष्णुस्तं दिदेश सतां गतिः ॥ १४ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ शंखचूडोपकंठं च गत्वोवाच
स तं तदा ॥ १५ ॥ वृद्धब्राह्मण उवाच ॥ देहि भिक्षां दानवेन्द्र मह्यं प्राप्ताय सांप्रतम् ॥ १६ ॥ नेदानीं कथयिष्यामि प्रकटं दीनव
त्सलम् ॥ पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुनस्सत्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥ ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ कवचार्थी जनश्चाहमि
त्युवाचेति सच्छलात् ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रोसौ ब्रह्मण्यः सत्यवाग्विभुः ॥ तद्ददौ कवचं दिव्यं विप्राय प्राणसंमतम् ॥ १९ ॥
माययेत्थं तु कवचं तस्माज्जग्राह वै हरिः ॥ शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥ २० ॥ गत्वा तत्र हरिस्तस्या योनौ मायावि
शारदः ॥ वीर्याधानं चकाराशु देवकार्यार्थमीश्वरः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरे शंभुमीरयन् स्ववचः प्रभुः ॥ शंखचूडवधार्थाय शूलं ॥
जग्राह प्रज्वलत् ॥ २२ ॥ तच्छूलं विजयं नाम शंकरस्य परात्मनः ॥ संचकाशे दिशस्सर्वा रोदसी संप्रकाशयन् ॥ २३ ॥

कहा मैं आपका यह कवच चाहता हूं ॥ १८ ॥ यह वचन सुनकर ब्रह्मण्य सत्यभाषी दानवराजने उसी समय प्राणोंकी समान प्यारा कवच ब्राह्मणको दे
दिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार हरिने मायासे शंखचूडका कवच ग्रहण कर लिया, और फिर शंखचूडके रूपसे तुलसीके प्रति गमन किया ॥ २० ॥
मायाविशारद हरिने देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त उससे अपनी शक्तिसे विहार किया ॥ २१ ॥ उसी समय शिवजीने अपना वचन पालन करनेके निमित्त
शंखचूडके मारनेको प्रज्वलित शूल ग्रहण किया ॥२२॥ वह परमात्मा शंकरका विजयनामक शूल सब दिशा और द्युलोकको प्रकाश करता हुआ ॥२३॥

कोटिमध्याह्नके सूर्य और प्रलयाग्निकी शिखाकी समान दुर्निवार दुर्धर्ष व्यर्थ न होनेवाला तथा शत्रुनाशक था ॥ २४ ॥ तेजोंका बडा उग्र चक्र सर्व शस्त्र अस्त्रोंमें साधक सुर असुर सबको दुस्सह बडा भयंकर ॥ २५ ॥ जो लीलासेही सब ब्रह्माण्डके नष्ट करनेमें समर्थ सब प्रचण्डताका एक प्रज्वलित होताहुआ तेज ॥ २६ ॥ एक सहस्र धनुष लम्बा, सौ हाथ चौडा जीव ब्रह्मका स्वरूप नित्यरूप जो किसीका निर्माण किया नहीं ॥ २७ ॥ क्षणमात्रमें शिवजीके हाथसे छूटाहुआ वह शूल आकाशमें भ्रमताहुआ शिवकी आज्ञासे क्षणमात्रमें शंखचूडके ऊपर गिरकर उसे भस्म करता हुआ ॥ २८ ॥ हे मुने ! क्षणमात्रमें

कोटिमध्याह्नमार्तंडप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥ २४ ॥ तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रसायकम् ॥
सुरासुराणां सर्वेषां दुस्सहं च भयंकरम् ॥ २५ ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमवलंब्य च लीलया ॥ संस्थितं परमं तत्र एकत्रीभूय विज्वलत् ॥
॥ २६ ॥ धनुस्सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् ॥ जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥ २७ ॥ विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शंख
चूडोपरि क्षणात् ॥ चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात् ॥ २८ ॥ अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शंकरम् ॥ ययौ विहायसा
विप्रमनोयायि स्वकार्यकृत् ॥ २९ ॥ नेदुर्दुंदुभयस्स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ३० ॥ बभूव पुष्प
वृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ॥ प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा ॥ ३१ ॥ शंखचूडो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा ॥ शापमुक्तो
बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह ॥ ३२ ॥ अस्थिभिश्शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ॥ प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना ॥ ३३ ॥
विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महाप्रियम् ॥ संबंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ॥ ३४ ॥

उस दैत्यको मारकर वह शिवजीका त्रिशूल आकाशसे होताहुआ मनोवेगसे फिर शंकरके समीप आगया ॥ २९ ॥ उस समय स्वर्गमें दुंदुभी बजने लगी, गन्धर्व किन्नर गानेलगे मुनि देवता प्रसन्न हुए अप्सरा गाने लगीं ॥ ३० ॥ शिवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई हारि ब्रह्मा और इन्द्रादि मुनि शिवजीकी बडाई करनेलगे ॥ ३१ ॥ दानवेन्द्र शंखचूड शिवजीकी कृपासे शापसे मुक्त होकर अपने पूर्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ शंखचूडकी अस्थियोंसे एक प्रकारकी शंखजाति प्रगट हुई शंकरके चढानेके सिवाय शंखका जल सर्वत्र प्रशस्त है ॥ ३३ ॥ विशेषकर विष्णु और लक्ष्मीको शंखका जल बहुत प्यारा है उनके

सम्बन्धियोंको भी वह जल प्रिय है, हे महामुने ! पर शंकरको वह प्रिय नहीं है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार शिवजी उसको मारकर और प्रसन्नतासे वृषपर चढेहुए उमा स्कन्द और अपने गणोंके साहित शिवलोकको चलेगये ॥ ३५ ॥ भगवान् वैकुण्ठको गये और कृष्णभी स्वस्थ हुए और परमानन्दके सहित सब देवता अपने २ स्थानोंको गये ॥ ३६ ॥ जगत् अत्यन्त स्वस्थताको प्राप्त हुआ, और सब प्रकारसे निर्विघ्नता प्राप्त हुई आकाश निर्मल होगया और सुमंगला पृथिवी होगई ॥ ३७ ॥ यह सुखदायक शंकरका चरित्र आपसे वर्णन किया, जो सब दुःखोंका हरनेवाला लक्ष्मीका देनेवाला और सब कामका पूर्णकरनेवाला है ॥ ३८ ॥ यह धन्य यशका देनेवाला, सब विघ्नोंका निवारण करनेवाला, भुक्ति मुक्ति तथा सब कामफलका देनेवाला है ॥ ३९ ॥ जो

तामित्थं शंकरो हत्वा शिवलोकं जगाम सः॥सुप्रहृष्टो वृषारूढः सोमस्कन्दगणैर्वृतः ॥३५॥ हरिर्जगाम वैकुंठं कृष्णस्स्वस्थो बभूव ह ॥
सुरास्स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ॥३६॥ जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वनिर्विघ्नमाप कम् ॥ निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिस्सर्वा सुमंगला
॥३७॥ इति प्रोक्तं महेशस्य चारितं प्रमुदावहम् ॥ सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ॥३८॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥३९॥ य इदं शृणुयान्नित्यं चरितं शशिमौलिनः॥श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ॥४०॥
धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न संशयः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति शिवभक्तिं विशेषतः ॥ ४१ ॥ इदमाख्यानमतुलं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥
परमज्ञानजननं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ धनाढ्यो वैश्यजश्शूद्रश्शृण्वन् सत्तमतामि
यात् ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायांपञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

कोई इस शंकरके चरित्रको नित्य श्रवण करता है, और जो बुद्धिमान् सुनाताहै वा पढतापढाताहै ॥ ४० ॥ वह धन धान्य पुत्र सुखको प्राप्त होताहै, इसमें सन्देह नहीं वह सब काम और शिवभक्तिको विशेष प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ यह अतुल आख्यान सब उपद्रवका नाश करनेवाला है, परमज्ञानका उत्पन्न करनेवाला तथा शिवभक्तिका बढानेवाला है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त और क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धनाढ्य और शूद्र सुननेसे श्रेष्ठ होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा० द्वि० रु० पं० यु० शंखचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

व्यासजी बोले हे मुने ! विष्णुजीने किस उपायसे तुलसीमें अपनी शक्तिका आधान किया सो आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले नारायण देवताओंके कार्यकर्ता सत्पुरुषोंकी गति, शंखचूडके रूपसे उस रामाके साथ रमते हुए ॥ २ ॥ सो आप आनंददायक विष्णुका चरित्र सुनिये, जिन्होंने शंकर और माता पार्वतीकी आज्ञाका पालन किया ॥ ३ ॥ देव शंकरने आकाशवाणी सुनकर विष्णुजीको प्रेरण किया तब विष्णुजीने उससे कवच ग्रहण कर ॥ ४ ॥ फिर ब्राह्मणरूपको छोड बहुत शीघ्र मायासे शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीके घर गमन किया ॥ ५ ॥ तुलसीके द्वारपर दुन्दुभीका शब्द

व्यास उवाच ॥ नारायणश्च भगवान् वीर्याधानं चकार ह ॥ तुलस्याः केन यत्नेन योनौ तद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
नारायणो हि देवानां कार्यकर्ता सतां गतिः ॥ शंखचूडस्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥ २ ॥ तदेव शृणु विष्णोश्च चरितं प्रमुदावहम् ॥
शिवशासनकर्तुश्च मातुश्च जगतां हरेः ॥३॥ रणमध्ये व्योमवचः श्रुत्वा देवेन शंभुना ॥ प्रेरितश्शंखचूडस्य गृहीत्वा कवचं परम् ॥४॥
विप्ररूपेण त्वरितं मायया निजया हरिः ॥ जगाम शंखचूडस्य रूपेण तुलसीगृहम् ॥ ५ ॥ दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ ॥
जयशब्दं च तत्रैव बोधयामास सुन्दरीम् ॥६॥ तच्छ्रुत्वा चैव सा साध्वी परमानन्दसंयुता ॥ राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम् ॥ द्रुतं चकार शृंगारं ज्ञात्वाऽऽयातं निजं पतिम् ॥ ८ ॥ अवरुह्य रथाद्विष्णुस्तद्देव्या भवनं
ययौ ॥ शंखचूडस्वरूपः स मायावी देवकार्यकृत् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा तं च पुरः प्राप्तं स्वकांतं सा मुदान्विता ॥ तत्पादौ क्षालयामास
ननाम च रुरोद च ॥ १० ॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास मंगलम् ॥ ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ११ ॥

बजवाया गया और जय शब्दसे सुन्दरीको समझाया गया ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुन्दरी बडे आनन्दमें भरगई और बडे आनन्दसे झरोखोंमेंसे राजमार्गको देखने लगी ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंको धन देकर उसने मंगलाचार कराया और अपने पतिको आया जानकर शीघ्रतासे अपना सिंगार किया ॥८॥ रथसे उतरकर विष्णु देवीके मन्दिरमें गये वह मायावी देव कार्यके करनेवाले शंखचूडके स्वरूपसे चले ॥९॥ अपने स्वामीको आया देखकर वह बडी प्रसन्न हुई और पतिके चरण धोकर प्रणामकर रोने लगी ॥ १० ॥ मनोहर रत्नके सिंहासनपर बैठाकर मंगलाचार कराया और कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल दिया ॥ ११ ॥

आज मेरा जन्म और जीवन सफल हुआ जो मैं आज युद्धसे लौटेहुए अपने स्वामीको घर आया देखतीहूं ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर वह कटाक्षसहित अपने स्वामीको देखकर हँसतीहुई मधुरवाणीसे युद्धका वृत्तान्त पूछने लगी ॥ १३ ॥ तुलसी बोली असंख्य संसारके संहार करने वाले वह देवश्रेष्ठ प्रभु जिनकी आज्ञामें सदा ब्रह्मा विष्णु आदि देवता रहते हैं ॥ १४ ॥ वह तीनों देवताओंका उत्पन्न करनेवाला त्रिगुणात्मा निर्गुण हरि ब्रह्माके प्रेरक भक्तोंकी इच्छासेही सगुण होते हैं ॥ १५ ॥ कुबेरकी प्रार्थनासे शिवजीने सगुण रूप धारण किया, वह कैलासवासी गणपति परब्रह्म सत्पुरुषोंकी गति हैं ॥ १६ ॥ जिनके

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं संबभूव ह ॥ रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा सकटाक्षं सा निरीक्ष्य सास्मितं मुदा ॥ पप्रच्छ रणवृत्तांतं कांतं मधुरया गिरा ॥ १३ ॥ तुलस्युवाच ॥ असंख्यविश्वसंहर्ता स देवप्रवरः प्रभुः ॥ यस्याज्ञावर्त्तिनो देवा विष्णुब्रह्मादयस्सदा ॥ १४ ॥ त्रिदेवजनकस्सोत्र त्रिगुणात्मा च निर्गुणः ॥ भक्तेच्छया च सगुणो हरिब्रह्मप्रवर्तकः ॥ १५ ॥ कुबेरस्य प्रार्थनया गुणरूपधरो हरः ॥ कैलासवासी गणपः परब्रह्म सतां गतिः ॥ १६ ॥ यस्यैकपलमात्रेण कोटिब्रह्मांडसंक्षयः ॥ विष्णुब्रह्मादयोऽतीता बहवः क्षणमात्रतः ॥ १७ ॥ कर्तुं सार्द्धं च तेनैव समरं त्वं गतः प्रभो ॥ कथं बभूव संग्रामस्तेन देवसहायिना ॥ ॥ १८ ॥ कुशली त्वमिहायातस्तं जित्वापरमेश्वरम् ॥ कथं बभूव विजयस्तव ब्रूहि तदेव मे ॥ १९ ॥ श्रुत्वेत्थं तुलसीवाक्यं स विहस्य रमापतिः ॥ शंखचूडरूपधरस्तामुवाचामृतं वचः ॥ २० ॥ भगवानुवाच ॥ यदाहं रणभूमौ च जगाम समरप्रियः ॥ कोलाहलो महान् जातः प्रवृत्तोऽभून्महारणः ॥ २१ ॥ देवदानवयोर्युद्धं संबभूव जयैषिणोः ॥ दैत्याः पराजितास्तत्र निर्जरैर्बलगर्वितैः ॥ २२ ॥

एक पलक मारनेमें कोटि ब्रह्माण्डोंका क्षय होता है जिनके क्षणमात्रमें बहुतसे ब्रह्मा विष्णु व्यतीत होजाते हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! तुम उनके साथ युद्ध करनेको गये थे उन देवसहायकके साथ तुम्हारा संग्राम किस प्रकार हुआ ॥ १८ ॥ उन परमेश्वरको जीतकर तुम कुशलतासे कैसे आये, हे स्वामिन् ! आपकी जय कैसे हुई सो मुझसे कहिये ॥ १९ ॥ तुलसीके यह वचन सुनकर रमापति हँसकर शंखचूडके रूपसे अमृतमय वचन बोले ॥ २० ॥ भगवान् बोले जब मैं समरभूमिमें युद्धको गया, तब बडा कोलाहल हुआ और बडा भयंकर युद्ध हुआ ॥ २१ ॥ जयशील देवदानवोंका बडा संग्राम हुआ बलगर्वित

देवताओंने दैत्योंको जीतलिया ॥ २२ ॥ तब मैंने बलवान् दवताओंसे महान् युद्ध किया वे हारकर शंकरकी शरणमें गये ॥२३॥ रुद्रभी उनकी सहायताके लिये शीघ्रही रणभूमिमें आये, मैंने बलदर्पित होकर उनके साथ बहुत कालतक युद्ध किया ॥ २४ ॥ हे कान्ते ! हम दोनोंका समर पूर्ण एक वर्षतक रहा हे कामिनि ! उसमें सब असुरोंका नाश होगया ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंकी प्रीति करादी मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे देवताओंके अधिकार दे

तदाहं समरं तत्राकार्षं देवैर्बलोत्कटैः ॥ पराजिताश्च ते देवाश्शंकरं शरणं ययुः ॥ २३ ॥ रुद्रोऽपि तत्सहायार्थमाजगाम रणं प्रति ॥
तेनाहं वै चिरं कालमयौत्संबलदर्पितः ॥ २४ ॥ आवयोस्समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह ॥ नाशो बभूव सर्वेषामसुराणां च कामिनि
॥ २५ ॥ प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः ॥ देवानामधिकाराश्च प्रदत्ता ब्रह्मशासनात् ॥ २६ ॥ मयागतं स्वभवनं शिवलोकं
शिवो गतः ॥ सर्वस्वास्थ्यमतीवाप दूरीभूतो ह्युपद्रवः ॥ २७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥ रेमे
रमापतिस्तत्र रमया स तया मुदा ॥ २८ ॥ सा साध्वी सुखसंभावाकर्षणस्य व्यतिक्रमात् ॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच
सा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच ॥ को वा त्वं वद मामाशु भुक्ताहं मायया त्वया ॥ दूरीकृतं यत्सतीत्वमथ त्वां वै शपाम्यहम् ॥ ३० ॥

दिये ॥ २६ ॥ मैं अपने घर चलाआया और शिवजी शिवलोकको गये सबको स्वस्थता हुई और उपद्रव दूर हुए ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले जगत्पतिने ऐसा कहकर शयन किया, और रमापतिने उसके साथ विहार किया ॥ २८ ॥ तब वह साध्वी उस सर्वात्मारूप आकर्षणवाले रमणको देखकर तर्कना करने लगी और बोली तु कौन है ॥ २९ ॥ तुलसी बोली तू कौन है*सत्य कह तैंनें मायासे मुझे भोगा है तैंनें मेरा सतीपन दूर किया है मैं तुझको

---

* इस कथासे वैष्णव तत्त्वपर परस्त्रीविहारकी शंका नहीं उठसकती कारण कि वह सर्वात्मा है सबके आत्मामें विराजमान है अणु २ में व्यापक है तब उसमें विहारका दोष नहीं तुलसीने इस तत्त्वको न जानाइस कारण अपनेमें दोष माना विष्णुमें दोष नहीं इसीसे उसके स्पर्शसे वैकुण्ठ मिला और एकके अपकारमें यदि जगत्भरका उपकार हो तो उस कार्यमें दोष नहीं और फिर इन पतिव्रताओंको वैकुंठ मिला है ।

शाप देती हूं ॥ ३० ॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यासजी तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे हरिने लीलासे अपनी मनोहर मूर्त्ति धारण की ॥ ३१ ॥ तुलसीने वह रूप देख और चिह्नसे उनको विष्णु जान अपना पतिव्रत भंग होनेसे क्रोधकर कहा ॥३२॥ तुलसी बोली हे विष्णु! तुममें दया नहीं है तुम्हारा मन पाषाणकी समान है पतिधर्मको भंग करके तुमने मेरे स्वामीका वध कराया है ॥ ३३ ॥ तुम पाषाणकी समान दयाहीन कर्मरहित हो इस कारण मेरे शापसे तुम पाषाण होजाओ ॥ ३४ ॥ जो आपको दयासागर कहते हैं वे निश्चय भ्रांतिमें पडे हैं, इसमें सन्देह नहीं आपने विना अपराध दूसरेके निमित्त

सनत्कुमार उवाच ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिश्शापभयेन च ॥ दधार लीलया ब्रह्मन्स्वमूर्तिं सुमनोहराम् ॥ ३१ ॥ तद्दृष्ट्वा तुलसीरूपं ज्ञात्वा विष्णुं तु चिह्नतः ॥ पातिव्रत्यपरित्यागात् क्रुद्धा सा तमुवाच ह ॥ ३२ ॥ तुलस्युवाच ॥ हे विष्णो ते दया नास्ति पाषाणसदृशं मनः ॥ पतिधर्मस्य भंगेन मम स्वामी हतः खलु ॥ ३३ ॥ पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः खलः ॥ तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं मच्छापेन भवाधुना ॥ ३४ ॥ ये वदंति दयासिन्धुं त्वां भ्रांतास्ते न संशयः ॥ भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः ॥ ३५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा तुलसी सा वै शंखचूडप्रिया सती ॥ भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप भृशं मुहुः ॥ ३६ ॥ ततस्तां रुदतीं दृष्ट्वा स विष्णुः परमेश्वरः ॥ सस्मार शंकरं देवं येन संमोहितं जगत् ॥ ३७ ॥ ततः प्रादुर्बभूवाथ शंकरो भक्तवत्सलः ॥ हरिणा प्रणतश्चासीत्संनुतो विनयेन सः ॥ ३८ ॥ शोकाकुलं हरिं दृष्ट्वा विलपंतीं च तत्प्रियाम् ॥ नयेन बोधयामास तं तां कृपणवत्सलाम् ॥ ॥ ३९ ॥ शंकर उवाच ॥ मा रोदीस्तुलसि त्वं हि भुंक्ते कर्मफलं जनः ॥ सुखदुःखदो न कोप्यस्ति संसारे कर्मसागरे ॥ ४० ॥

भक्तको कैसे मारा ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले वह शंखचूडकी प्रिया सती तुलसी इस प्रकार कहकर शोकके मारे अत्यन्त रोने और विलाप करने लगी ॥ ३६ ॥ उसको रोतीहुई देखकर परमेश्वर विष्णुने शंकरका स्मरण किया, जिन्होंने सब जगत्को मोहित कर रक्खा है ॥३७॥ तब भक्तवत्सल शंकर वहां प्रगट हुए, और विनयपूर्वक हरिने उनको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ हरिको शोकाकुल और उस प्रियाको रोती देखकर शंकरने उस दुःखियाको समझाया ॥ ३९ ॥ शिवजी बोले हे तुलसी! तू मत रोवै सब कोई कर्मोंका फल भोगते हैं, इस कर्मसागर संसारमें सुख दुःख देनेवाला कोई नहीं है ॥४०॥

अब तुम दुःख दूर होनेकी ठीक बात सुनो हरि भी सुनैं जो दोनोंको सुखदेनेवाली बात है मैं तुम्हारे सुखकें निमित्त कहता हूं ॥ ४१ ॥ हे भद्रे ! तैनें जो तपस्या की थी, उसी तपका जो फल प्राप्त होना है वह अन्यथा कैसे होसकता है ॥ ४२ ॥ इस शरीरको त्याग और दिव्य देह धारणकर नित्य हरिके साथ विहार करो यही तपका फल है ॥ ४३ ॥ तेरे इस छोडे हुए शरीरसे एक नदी होगी, और भारतमें वह गण्डकी नामसे विख्यात होगी, और पुण्यरूपा होगी ॥ ४४ ॥ हे देवि ! देवपूजनके साधनसे कितने कालके उपरान्त तुम मेरे वरसे प्रधानरूपा तुलसी होगी ॥ ४५ ॥ स्वर्ग मर्त्य पाताल तीनों लोकोंमें

प्रस्तुतं शृणु निर्दुःखं शृणोति सुमना हरिः ॥ द्वयोस्सुखकरं यत्तद्ब्रवीमि सुखहेतवे ॥ ४१ ॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे तस्यैव तपसः फलम् ॥ तदन्यथा कथं स्याद्वै जातं त्वयि तथा च तत् ॥ ४२ ॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ॥ रमस्व हरिणा नित्यं रमया सदृशी भव ॥ ४३ ॥ तवेयं तनुरुत्सृष्टा नदीरूपा भवेदिह ॥ भारते पुण्यरूपा सा गण्डकीति च विश्रुता ॥ ४४ ॥ कियत्कालं महादेवि देवपूजनसाधने ॥ प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरेण मे ॥ ४५ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तिष्ठ त्वं हरिसन्निधौ ॥ भव त्वं तुलसीवृक्षो वरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥ ४६ ॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं वैकुंठे दिव्यरूपिणी ॥ सार्द्धं रहसि हरिणा नित्यं क्रीडां करिष्यसि ॥ ४७ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते बहु पुण्यदा ॥ लवणोदस्य पत्नी सा हर्यंशस्य भविष्यसि ॥ ४८ ॥ हरिर्वै शैलरूपी च गंडकीतीरसंनिधौ ॥ संकरिष्यत्यधिष्ठानं भारते तव शापतः ॥ ४९ ॥ तत्र कोटचाश्च कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्रा भयंकराः ॥ तच्छित्त्वा कुहरे चक्रं करिष्यंति तदीयकम् ॥ ५० ॥ शालग्रामशिला सा हि तद्भेदादतिपुण्यदा ॥ लक्ष्मीनारायणाख्यादिश्चक्रभेदाद्भविष्यति ॥ ५१ ॥

तुम सदा हरिके समीप रहोगी, हे सुन्दरि ! तुम सब फूलवृक्षोंमें श्रेष्ठ तुलसीका वृक्ष बनो ॥ ४६ ॥ हे देवि ! तुम वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी होकर वैकुण्ठमें दिव्यरूप धारणकर रहोगी हरिके साथ रहकर नित्य क्रीडा करोगी ॥ ४७ ॥ नदीकी अधिष्ठात्री देवी जो भारतमें अनेकपुण्य देनेवाली है वहां भी तू हरिके अंश क्षारसागरकी पत्नी होगी ॥ ४८ ॥ और गंडकी नदीके किनारे यह हरि तेरे शापसे भारतमें पाषाणरूपसे स्थिति करैंगे ॥ ४९ ॥ वहां भी तीक्ष्ण डाढों (दाँतों) वाले कोटिहों कीट उस शिलाको भेदन कर उसमें चक्र करैंगे ॥ ५० ॥ इस प्रकारकी शालिग्रामशिला बडे पुण्यकी देनेवाली है यह चक्रके

भेदसे लक्ष्मीनारायणादि नामवाली होगी ॥ ५१ ॥ हे तुलसी ! इस विष्णुकी शालग्रामशलासे तुम्हारा संगम बहुत पुण्य देनेवाला होगा ॥ ५२ ॥ जो शालग्रामसे तुलसीपत्रका विच्छेद करैगा हे भद्रे ! जन्मान्तरमें उसको स्त्रीका वियोग होगा ॥ ५३ ॥ शंखको छोडकर जो तुलसीपत्रका विच्छेद करैगा वह स्त्रीविहीन होकर सात जन्मतक रोगी रहैगा ॥ ५४ ॥ शालग्राम तुलसी और शंख यह एक स्थानपर जो महाज्ञानी रखता है वह हरिका प्यारा होता है ॥ ५५ ॥ तू शंखचूडकी प्रिया एक मन्वन्तर तक रही, शंखके साथ तेरा भेद केवल तुझको दुःख देनेवाला होगा ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार बोले यह

शालग्रामशिला विष्णो तुलस्यास्तव संगमः ॥ सदा साद्दश्यरूपा या बहुपुण्यविवर्द्धिनी ॥ ५२ ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः ॥ तस्य जन्मान्तरे भद्रे स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥ ५३ ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शंखं हित्वा करोति यः ॥ भार्याहीनो भवेत्सोपि रोगी स्यात्सप्तजन्मसु ॥ ५४ ॥ शालग्रामश्च तुलसी शंखं चैकत्र एव हि ॥ यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः ॥ ५५ ॥ त्वं प्रियः शंखचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि ॥ शंखेन सार्द्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र माहात्म्यमूचिवांस्तदा ॥ शालग्रामशिलायाश्च तुलस्या बहुपुण्यदम् ॥ ५७ ॥ ततश्चांतर्हितो भूत्वा मोदयित्वा हरिं च ताम् ॥ जगाम स्वालयं शंभुः शर्मदो हि सदा सताम् ॥ ५८ ॥ इति श्रुत्वा वचश्शंभोः प्रसन्ना तु तुलस्यभूत् ॥ तद्देहं च परित्यज्य दिव्यरूपा बभूव ह ॥ ५९ ॥ प्रजगाम तया सार्द्धं वैकुंठं कमलापतिः ॥ सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी ॥ ६० ॥ शैलोभूदच्युतस्सोऽपि तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥ कुर्वंति तत्र कीटाश्च छिद्रं बहुविधं मुने ॥ ६१ ॥

कहकर शिवजीने फिर शालग्रामशिला और तुलसीका पुण्यदायक बहुत माहात्म्य वर्णन किया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार हरि और तुलसीको समझाकर सत्पुरुषोंकी गति कल्याणदायक शंकर अन्तर्धान होगये ॥ ५८ ॥ शिवजीके यह वचन सुन तुलसी प्रसन्न हुई और उस देहको त्यागकर दिव्यदेहको प्राप्त हुई ॥ ५९ ॥ और कमलापति उसके साथ वैकुण्ठको गये और उसकी पूर्वदेहसे गण्डकी नदी बह निकली ॥ ६० ॥ और उसके किनारे सत्पुरुषोंको

पुण्य देनेके लिये विष्णुजी शालग्राम हुए। हे मुने! उस शिलामें कीट अनेकप्रकारके छिद्र करते हैं ॥ ६१ ॥ जो शिला जलमें गिरती है वह बडी पुण्यदायक है जो स्थलकी है वह पिंगला है और ताप देनेवाली है ॥ ॥ ६२ ॥ आपके प्रश्नके अनुसार यह तुमसे मनुष्योंको सब कामना देनेवाला पुण्यदायक शिवजीका चरित्र वर्णन किया ॥ ६३ ॥ यह विष्णुके माहात्म्यसंयुक्त आख्यान भुक्ति मुक्ति और पुण्यका देनेवाला है अब आगे तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भा॰टी॰द्वि॰ रु॰ पं॰ यु॰ शंखचूडवधोपाख्याने तुलसीशापवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

जले पतंति यास्तत्र शिलास्तास्त्वतिपुण्यदाः ॥ स्थलस्था पिंगला ज्ञेयाश्चोपतापाय चैव हि ॥ ६२ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं तवप्रश्नानुसारतः ॥ चरितं पुण्यदं शंभोः सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥ ६३ ॥ आख्यानमिदमाख्यातं विष्णुमाहात्म्यामिश्रितम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शंखचूडवधोपाख्याने तुलसीशाप॰ वर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ नारद उवाच ॥ शंखचूडवधं श्रुत्वा चरितं शशिमौलिनः ॥ अयं तृप्तोऽस्मि नो त्वत्तोऽमृतं पीत्वा यथा जनः ॥ १ ॥ ब्रह्मन्यच्चरितं तस्य महेशस्य महात्मनः ॥ मायामाश्रित्य सल्लीलां कुर्वतो भक्तमोददाम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जलंधरवधं श्रुत्वा व्यासस्सत्यवतीसुतः ॥ अप्राक्षीदिममेवार्थं ब्रह्मपुत्रं मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥ सुप्रशंस्य महेशस्य चरितं मंगलायनम् ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महेशस्य चरितं मंगलायनम् ॥ यथान्धको गाणपत्यं प्राप शंभोः परात्मनः ॥ ५ ॥

नारदजी बोले शंखचूडका वध सुनकर और शिवजी महाराजके चरित्र सुनकर मैं इस प्रकारसे तृप्त नहीं होता जैसे कोई मनुष्य अमृत पीकर तृप्त नहीं होता ॥ १ ॥ हे ब्रह्माजी! जो उन महात्मा महेशके चरित्र हैं, जो उन्होंने मायाके आश्रित हो भक्तोंको आनंदकी देनेवाली लीला की हैं सो आप कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले सत्यवतीके पुत्र व्यासजी शंखचूडका वध सुनकर ब्रह्मपुत्र मुनीश्वरसे यही बात पूछने लगे ॥ ३ ॥ तब सनत्कुमारने सत्यवतीके पुत्र व्यासजीसे यही बात कही और प्रशंसा करके मंगलके देनेवाले शिवजीके चरित्र कहने आरम्भ किये ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यासजी! शंकरके मंगलदायक

चरित्र सुनो जैसे अन्धक दैत्यने महात्मा शंकरके गाणपत्यपदको प्राप्त किया ॥५॥ हे मुनीश्वर ! पहले तो उसने शंकरसे बडा संग्राम किया, पीछे सत्यभावसे
बारंबार उनकी प्रार्थना की ॥ ६ ॥ शरणागतकी रक्षा करनेवाले शिवजीका बडा माहात्म्य है वह अनेकलीलाओंसे विहार करनेवाले शरणागतवत्सलहैं
॥ ७ ॥ यह भगवान् शंकरका माहात्म्य सुनकर सत्यवतीके पुत्र व्यासजी भक्तिसे मुनीश्वरको प्रणाम करके उन मुनीन्द्र ब्रह्मसुतसे कहनेलगे ॥ ८ ॥
व्यासजी बोले हे भगवन् ! वह अन्धक कौन था किसके वंशमें इस पृथिवीमें उसने जन्म लिया वह किसवीर्यवानसे महात्मा प्रधान बलवान् हुआ, वह अंधक

कृत्वा परमसंग्रामं तेन पूर्वं मुनीश्वर ॥ प्रसाद्य तं महेशानं सत्त्वभावात्पुनःपुनः ॥ ६ ॥ माहात्म्यमद्भुतं शंभोश्शरणागतरक्षिणः ॥
सुभक्तवत्सलस्यैव नानालीलाविहारिणः ॥ ७ ॥ माहात्म्यमेतद्वृषभध्वजस्य श्रुत्वा मुनिर्गंधवतीसुतो हि ॥ वचो महार्थं प्रणिपत्य
भक्त्या ह्युवाच तं ब्रह्मसुतं मुनींद्रम् ॥ ८ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ को ह्यंधको वै भगवन्मुनीश कस्यान्वये वीर्यवतः पृथिव्याम् ॥ जातो
महात्मा बलवान् प्रधानः किमात्मकः कस्य सुतोऽधकश्च ॥ ९ ॥ एतत्समस्तं सरहस्यमद्य ब्रवीहि मे ब्रह्मसुतप्रसादात् ॥ स्कंदान्मया
वै विदितं हि सम्यक् महेशपुत्रादमितावबोधात् ॥ १० ॥ गाणपत्यं कथं प्राप शंभोः परमतेजसः ॥ सोंधको धन्य एवाति यो बभूव
गणेश्वरः ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ व्यासस्य चैतद्वचनं निशम्य प्रोवाच स ब्रह्मसुतस्तदानीम् ॥ महेश्वरोतीः परमाप्तलक्ष्मीस्संश्रो
तुकामं जनकं शुकस्य ॥ १२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुराऽऽगतो भक्तकृपाकरोऽसौ कैलासतश्शैलसुतागणाढ्यः ॥ विहर्तुकामः
किल काशिकां वै स्वशैलतो निर्जरचक्रवर्ती ॥ १३ ॥

किसका पुत्र था ॥ ९ ॥ आप यह सम्पूर्ण रहस्यसहित मुझसे वर्णन कीजिये ब्रह्मपुत्रकी प्रसन्नतासे मैंने बडे बोधवाले महेशके पुत्रसे यह बात भलीप्रकार
जानली ॥ १० ॥ परमतेजस्वी शिवजीके प्रसादसे उसने गणाधीश्वरपन प्राप्त किया, वह अंधक धन्य है जो गणेश्वर होगया ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले
व्यासजीके यह वचन सुनकर वह ब्रह्मपुत्र उस समय कहनेलगे, जिस प्रकारसे उस दैत्यने महेश्वरसे परमलक्ष्मी प्राप्त की वह बात सुननेकी इच्छावाले
व्यासजीसे कहनेलगे ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले एक समय अपने गण और पार्वतीको साथ लिये भक्तोंपर कृपा करनेवाले देवताओंके चक्रवर्त्ती काशी

जीमें आये ॥ १३ ॥ काशीपुरीको अपनी राजधानी विधानकर उसको मनुष्योंके सुखदायक बनाकर और भैरवनामक वीरको उसका रक्षक नियत करके बहुतसे पर्वतोंमें विचरनेलगे ॥ १४ ॥ तब एक समय वह मंदराचलनामक पर्वतको गये, कारण कि उसको वर देदियाथा, शंकर पार्वती तथा अनेक मुख्य गणोंके संग विहार करनेलगे ॥ १५ ॥ जिस समय प्रचण्ड पराक्रमी शिवजी मन्दर पर्वतकी पूर्वदिशामें विराजमानथे उस समय हँसीसे पार्वतीने उनके दोनों नेत्र मूँद लिये ॥१६॥ जिस समय मूँगे सुवर्णके कमलकी प्रभावाले दोनों हाथोंसे पार्वतीने शिवजीके दोनों नेत्र मूँदलिये, उस समय शिवजीके नेत्र मूँदनेपर

स राजधानीं च विधाय तस्यां चक्रे परोतीः सुखदा जनानाम् ॥ तद्रक्षकं भैरवनामवीरं कृत्वा समं शैलजया हि बह्वीः ॥ १४ ॥ स एकदा मंदरनामधेयं गतो नगं तद्वरसुप्रभावात् ॥ तत्रापि नानागणवीरमुख्यैश्शिवासमेतो विजहार भूरि ॥ १५ ॥ पूर्वे दिशो मन्दरशैलसंस्था कपर्दिनश्चंडपराक्रमस्य ॥ चक्रे ततो नेत्रनिमीलनं तु सा पार्वती नर्मयुतं सलीलम् ॥ १६ ॥ प्रवालहेमाब्जधृतप्रभाभ्यां कराम्बुजाभ्यां निमिमील नेत्रे ॥ हरस्य नेत्रेषु निमीलितेषु क्षणेन जातः सुमहांधकारः ॥ १७ ॥ तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य करौ च तस्याः स्खलितं मदांभः ॥ शंभोर्ललाटे क्षणवह्नितप्तो विनिर्गतो भूरिजलस्य बिन्दुः ॥ १८ ॥ गर्भो बभूवाथ करालवक्रो भयंकरः क्रोधपरः कृतघ्नः ॥ अन्धो विरूपी जटिलश्च कृष्णो नरेतरो वैकृतिकस्सुरोमा ॥ १९ ॥ गायन्हसन्प्ररुदन्नृत्यमानो विलेलिहानो घरघोरघोषः ॥ जातेन तेनाद्भुतदर्शनेन गौरीं भवोऽसौ स्मितपूर्वमाह ॥ २० ॥ श्रीमहेश उवाच ॥ निमील्य नेत्राणि कृतं च कर्म बिभेषि साऽस्माद्दयिते कथं त्वम् ॥ गारी हरात्तद्वचनं निशम्य विहस्यमाना प्रमुमोच नेत्रे ॥ २१ ॥

महाअंधकार हो गया ॥ १७ ॥ महेश्वरके शरीर स्पर्श करनेसे पार्वतीके हाथोंसे मदका जल निकलने लगा, कारण यह कि, शिवजीके माथेकी अग्निसे तप्त होकर बहुतसे जलके बिन्दु टपकने लगे ॥ १८ ॥ उसी समय बडा करालमुख भयंकर क्रोधपरायण एक पुरुष, जो कि अंधा विरूप जटाधारी कृष्णवर्ण विकृत तथा बहुतसे रोमोंवाला मनुष्योंसे कुछ इतर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ वह गाने हँसने नाचने रोने जीभसे चाटने और महाघोर शोर करने लगा उस अद्भुतदर्शनके उत्पन्न होतेही गौरीको आश्चर्यपूर्वक देख शिवजी हँसतेहुए बोले ॥ २० ॥ श्रीमहेश बोले, आंखें मीचकर जो कर्म किया है

हे गौरी ! फिर तू अब उससे क्यों डरतीहै, गौरी शिवजीके यह वचन सुनकर हँसंतीहुईने नेत्रोंसे हाथ उठालिया ॥ २१ ॥ प्रकाश होनेपर वह घोररूप अंधकारसेभी विशेष प्रतीत हुआ, इसप्रकारसे उस प्राणीको देखकर उस पुरुषके विषयमें पार्वती शिवजीसे पूँछने लगी ॥ २२ ॥ गौरी बोली हे भगवन् ! हम दोनोंके आगे यह घोरपुरुष कौन उत्पन्न हुआहै, आप सत्य कहिये इसे आपने किस निमित्त उत्पन्न किया है, अथवा किसी अन्यने इसको उत्पन्न कियाहै तो यह किसका पुत्रहै ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले अनेकदुःखोंके हरनेवाले अनेकलीलाकारी सृष्टिकर्ता भगवान् शंकर त्रिजगत्की जननीके यह वचन

जाते प्रकाशे सति घोररूपो जातोंधकारादपि नेत्रहीनः ॥ ताद्दग्विधं तं च निरीक्ष्य भूतं पप्रच्छ गौरी पुरुषं महेशम् ॥ २२ ॥ गौर्य्युवाच ॥ कोयं विरूपो भगवन्हि जातो नावग्रतो घोरभयंकरश्च ॥ वदस्व सत्यं मम किं निमित्तं सृष्टोऽथ वा केन च कस्य पुत्रः ॥ २३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वा हरस्तद्वचनं प्रियाया लीलाकरस्सृष्टिकृतोंऽधरूपाम् ॥ लीलाकरायास्त्रिजगज्जनन्या विहस्य किंचिद्भगवानुवाच ॥ २४ ॥ महेश उवाच ॥ शृण्वंबिके ह्यद्भुतवृत्तकारे उत्पन्न एषोऽद्भुतचंडवीर्यः ॥ निमीलिते चक्षुषि मे भवत्या स स्वेदजो मेंधकनामधेयः ॥ २५ ॥ त्वं चास्य कर्तास्ययथानुरूपं त्वया ससख्या दयया गणेभ्यः ॥ स रक्षितव्यस्त्वयि तं हि वैकं विचार्य बुद्ध्या करणीयमार्यै ॥ २६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ गौरी ततो भृत्यवचो निशम्य कारुण्यभावात्सहिता सखीभिः ॥ नानाप्रकारैर्बहुभिर्ह्युपायैश्चकार रक्षां स्वसुतस्य यद्वत् ॥ २७ ॥ कालेऽथ तस्मिञ्शिशिरे प्रयातो हिरण्यनेत्रस्त्वथ पुत्रकामः ॥ स्वज्येष्ठबंधोस्तनयप्रतानं संवीक्ष्य चासीत्प्रियया नियुक्तः ॥ २८ ॥

सुनकर कुछेक हँसतेहुए बोले ॥२४॥ शिवजी बोले हे चंडिके ! हे अद्भुत चरित्र करनेवाली ! यह अद्भुतपराक्रमी उत्पन्न हुआहै तुमने जो मेरे नेत्र मूंदलिये सो उस पसीनेके पडनेसे यह अन्धक नामक पुरुष उत्पन्न हुआहै ॥ २५ ॥ हे कल्याणी ! तुमनेही इसको रचाहै तुमको सखियों सहित दया करनी चाहिये, तुम बुद्धिसे इसकी रक्षाका उपाय कर जो उचित हो सो करो ॥ २६ ॥ तब इसप्रकारसे गौरीने उनके वचन सुनकर सखियोंके सहित करुणाके भावसे अनेक प्रकारके उपायोंसे उसकी रक्षाका विधान किया ॥ २७ ॥ इसप्रकारसे शिशिरऋतुका समय आनकर प्राप्त हुआ कि, हिरण्यनेत्रवाला दैत्य पुत्रकी

कामनासे अपने ज्येष्ठबंधुके यहां पुत्र देखकर प्रियाके कहनेसे वनमें आया ॥ २८ ॥ यह कश्यपपुत्र असुर वनमें आकर पुत्रके निमित्त तप करनेलगा, रोष और दोष जीतकर काष्ठकी समान स्थित होकर महेश्वरके दर्शन करनेके निमित्त वहां स्थित हुआ ॥ २९ ॥ हे व्यासजी ! भगवान् शंकर इनकी तपस्यासे प्रसन्न होगये और उसको वरदान देनेको गये, उसके स्थानमें प्राप्त होकर भगवान् शंकर महादेवजी उस दैत्येश्वरसे कहने लगे ॥ ३० ॥ महेश बोले हे दैत्यनाथ ! इन्द्रियसमूहका पात मत करै तुमने यह व्रत किस निमित्त ग्रहण कियाहै, सो तुम अपनी अभिलाषा हमसे कहो जो तुम्हारी इच्छा होगी वह

अरण्यमाश्रित्य तपश्चकारासुरस्तदा कश्पपजस्सुतार्थम् ॥ काष्ठोपमोऽसौ जितरोषदोषस्संदर्शनार्थं तु महेश्वरस्य ॥ २९ ॥ तुष्टः पिनाकी तपसास्य सम्यग्वरप्रदानाय ययौ द्विजेन्द्र ॥ तत्स्थानमासाद्य वृषध्वजोऽसौ जगाद दैत्यप्रवरं महेशः ॥ ३० ॥ ॥ महेश उवाच ॥ हे दैत्यनाथ कुरु नेन्द्रियसंघपातं किमर्थमेतद्व्रतमाश्रितं ते ॥ प्रब्रूहि कामं वरदो भवोऽहं यदिच्छसि त्वं सकलं ददाभि ॥ ३१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सरस्यमाकर्ण्य महेशवाक्यं ह्यतिप्रसन्नः कनकाक्षदैत्यः ॥ कृतांजलिर्नम्रशिरा उवाच स्तुत्या च नत्वा विविधं गिरीशम् ॥ ३२ ॥ ॥ हिरण्याक्ष उवाच ॥ पुत्रस्तु मे चन्द्रललाट नास्ति सुवीर्यवान्दैत्यकुलानुरूपी ॥ तदर्थमेतद्व्रतमास्थितोऽहं तं देहि देवेश सुवीर्यवंतम् ॥ ३३ ॥ यस्माच्च मद्भ्रातुरनंतवीर्याः प्रह्लादपूर्वा अपि पंच पुत्राः ॥ ममेह नास्तीति गतान्वयोऽहं को मामकं राज्यमिदं बुभूषेत् ॥ ३४ ॥ ॥ राज्यं परस्य स्वबलेन हृत्वा भुंक्तेऽथवा स्वं पितुरेव दृष्टम् ॥ स प्रोच्यते पुत्र इह त्वमुत्र पुत्री स तेनापिभवेत्पितासौ ॥ ३५ ॥

मैं सब तुमको दूंगा ॥ ३१ ॥ वह हिरण्याक्ष दैत्य शिवजीके यह वचन सुन बडा प्रसन्न हुआ, हाथ जोड शिर झुकाय विविधप्रकारसे शंकरकी स्तुति और प्रणाम कर करनेलगा ॥ ३२ ॥ हिरण्याक्ष बोला हे चन्द्रशेखर ! मेरे कोई पुत्र नहीं है जो वीर्यवान् दैत्यकुलके अनुरूप हो उसीके निमित्त मैं इस व्रतमें स्थित हुआहूं, हे देवेश ! आप मुझे वीर्यवान् पुत्र दीजिये ॥ ३३ ॥ जिस कारणसे कि, मेरे भाईके अनन्त वीर्यवाले प्रह्लादसे आदिलेकर पांच पुत्र हैं, परन्तु मेरे कोई पुत्र नहीं है, मेरा राजवंशही नहीं है तो यह मेरा राज्य कौन भोगैगा ॥ ३४ ॥ जो अपने बलसे दूसरेका राज्य हरण करके अथवा

अपने पिताके देखेहुएकोही भोगता है वह यहां पुत्र कहाहै और उसीकरके परलोकमें पिता पुत्रवाला कहाताहै॥ ३५॥ धर्मके जाननेवाले महर्षियोंने पुत्रवालोंकीही ऊर्ध्वगति कहीहै सब प्राणी इसी निमित्त पुत्र चाहतेहैं नहीं तो मरनेपर पशुओंमें अपना तेज प्रविष्ट होजाताहै॥ ३६॥ संतानहीनोंको श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती इस कारण यह मनुष्य देवताओंके चरण कमलोंका आराधन कर एक पुत्रकी इच्छा करतेहैं ॥ ३७॥ सनत्कुमारजी बोले शिवजी महाराज उस दैत्यके यह वचन सुन कृपाकर उस दैत्येश्वरसे प्रसन्न हो बोले हे दैत्यराज! तुम्हारे भाग्यमें तुम्हारे वीर्यसे कोई पुत्र नहीं है तोभी मैं तुमको पुत्र देताहूं ॥ ३८॥ एक मेरा

ऊर्द्ध्वं गतिः पुत्रवतां निरुक्ता मनीषिभिर्धर्मभृतां वरिष्ठैः ॥ सर्वाणि भूतानि तदर्थमेव मतौ प्रवर्तेंत पशून् स्वतेजसः ॥ ३६ ॥ निरन्वयस्याथ न संति लोकास्तदर्थमिच्छंति जनाः सुरेभ्यः ॥ सदा समाराध्य सुरांघ्रिपंकजं याचंत इत्थं सुतमेकमेव ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतद्भवस्तद्वचनं निशम्य कृपाकरो दैत्यनृपस्य तुष्टः ॥ तमाह दैत्याधिप नास्ति पुत्रस्त्वद्वीर्यजः किंतु ददामि पुत्रम् ॥ ३८ ॥ ममात्मजं त्वंधकनामधेयं त्वत्तुल्यवीर्यं त्वपराजितं च ॥ वृणीष्व पुत्रं सकलं विहाय दुःखं प्रतीच्छस्व सुतं त्वमेव ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवमुक्त्वा प्रददौ स तस्मै हिरण्यनेत्राय सुतं प्रसन्नः ॥ हरस्तु गौर्य्या सहितो महात्मा भूतादिनाथस्त्रिपुरारिरुग्रः ॥४०॥ ततो हरात्प्राप्य सुतं स दैत्यः प्रदक्षिणीकृत्य यथाक्रमेण ॥ स्तोत्रैरनेकैरभिपूज्य रुद्रं तुष्टस्स्वराज्यं गतवान्महात्मा ॥ ४१ ॥ ततस्तु पुत्रं गिरिशादवाप्य रसातलं चंडपराक्रमस्तु ॥ इमां धारित्रीमनयत्स्वदेशं दैत्यो विजित्वा त्रिदशानशेषान् ॥ ४२ ॥ ततस्तु देवैर्मुनिभिश्च सिद्धैः सर्वात्मकं यज्ञमयं करालम् ॥ वाराहमाश्रित्य वपुः प्रधानमाराधितो विष्णुरनंतवीर्यः ॥ ४३ ॥

पुत्र अंधकनामवाला, तेरी तुल्य वीर्य और पराक्रमवाला है तू सब दुःख छोडकर यदि उस पुत्रकी इच्छा करै तो उस पुत्रको मांगले ॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी बोले यह वचन कहकर प्रसन्न होकर भूतोंके आदिनाथ त्रिपुरके उग्र शत्रु गौरीसहित शंकरने प्रसन्नतासे उसको पुत्रप्रदान किया ॥ ४० ॥ तब वह दैत्य शिवजीसे पुत्रको पाय उनकी प्रदक्षिणा कर और अनेकस्तोत्रोंसे उनकी स्तुतिकर अपने राज्यको चलागया ॥ ४१ ॥ तब वह प्रचण्ड पराक्रमी शिवजीसे पुत्रको प्राप्त हो सब देवता और पृथिवी तथा पातालवासियोंको जीतकर इस पृथिवीको अपने अधीन करता हुआ ॥ ४२ ॥ उससमय देवता मुनि सिद्धोंने

सर्वात्मक यज्ञमय कराल वराहरूप प्रधान विष्णुदेवका आराधन किया ॥ ४३ ॥ तब उन्होंने अपनी घोर तुण्डप्रहारसे पृथिवीको विदीर्ण करते पातालमें प्रवेश करके और अपनी तुंडके प्रहारसे सैंकडों दैत्योंको विनाश करके और अखंडित डाढोंके अग्रभागसे ॥४४॥ तथा वज्रकी समान चरणोंके प्रहारसे निशाचरोंकी सेनाको मथित करके पीछे अद्भुत तेजवाले कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान चण्डतेजवाले सुदर्शनचक्रसे ॥ ४५ ॥ प्रज्वलित हिरण्याक्षका शिर छेदन करडाला और दुष्ट दैत्योंकाभी वध किया पश्चात् दैत्येन्द्रके उस राजासिंहासनपर अंधकका अभिषेक किया ॥ ४६ ॥ तब महात्मा भगवान् विष्णु पृथिवीको

घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं विदार्य पातालतलं प्रविश्य ॥ तुंडेन दैत्याञ्शतशो विचूर्ण्य दंष्ट्राभिरग्र्याभिअखंडिताभिः ॥ ४४ ॥ पादप्रहारैरशनिप्रकाशैरुन्मथ्य सैन्यानि निशाचराणाम् ॥ मार्तंडकोटिप्रातिमेन पश्चात्सुदर्शनेनाद्भुतचंडतेजाः ॥ ४५ ॥ हिरण्यनेत्रस्य शिरो ज्वलंतं चिच्छेद दैत्यांश्च ददाह दुष्टान् ॥ ततः प्रहृष्टो दितिजेन्द्रराजंस्वमंधकं तत्र स चाभ्यषिंचत् ॥ ४६ ॥ स्वस्थानमागत्य ततो धरित्रीं दृष्ट्वांकुरेणोद्धरतः प्रहृष्टः ॥ भूमिं च पातालतलान्महात्मा पुपोष भागं त्वथ पूर्वकं तु ॥ ४७ ॥ देवैस्समस्तैर्मुनिभिः प्रहृष्टैरभिष्टुतः पद्मभुवा च तेन ॥ ययौ स्वलोकं हरिरुग्रकायो वराहरूपस्तु सुकार्यकर्त्ता ॥ ४८ ॥ हिरण्यनेत्रेऽथ हतेऽसुरेशे वराहरूपेण सुरेण देवाः ॥ देवास्समस्ता मुनयश्च सर्वे परे च जीवास्सुखिनो बभूवुः ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे हिरण्याक्षवधो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ हते तस्मिन्सुरद्रुहि ॥ किमकार्षीत्ततस्तस्य ज्येष्ठभ्राता महासुरः ॥ १ ॥

कराल डाढोंपर धारण कियेहुए प्रसन्नतासे पातालसे लाकर जलके ऊपर स्थापन कर उसमें अपनी शक्ति दे उसकी रक्षा करने लगे ॥ ४७ ॥ तब देवता मुनि और ब्रह्माजी उनकी स्तुति करनेलगे, तब देवताओंके कार्यकर्ता उग्रकार्यवाले हरि भगवान् वाराह यह कार्य कर अपने लोकको गये ॥ ४८ ॥ इसप्रकार वाराहरूपधारी भगवान्ने जब हिरण्याक्षको मारा तब देवता मुनि और दूसरे सब जीव परमसुखको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० द्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजीसे व्यासजी बोले हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! जिस समय वह दैत्य मारागया

तब महाअसुर उसके ज्येष्ठ भ्राताने क्या किया ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! यह बात सुननेका मुझे बडा कौतूहल है, हे ब्रह्मपुत्र ! तुम्हैं नमस्कार है, कृपाकर मुझे आप यह सुनाइये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले वह मुनीश्वर सनत्कुमार व्यासजीके ऐसे वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर कहने लगे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले यज्ञवाराहसे अपने भ्राताको इसप्रकार निहतहुआ सुनकर हिरण्यकशिपु शोकसे व्याकुल होगया ॥ ४ ॥ तब उसने नारायणके प्रति वैर करनेकी इच्छासे हिंसाप्रिय वीर दैत्योंको प्रजाओंके नाश करनेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥ तब वे असुर अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरपर धारण करके हिंसाशील

कुतूहलमिति श्रोतुं ममाऽतीह मुनीश्वर ॥ तच्छ्रावय कृपां कृत्वा ब्रह्मपुत्र नमोस्तु ते ॥ २ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपुर्व्यास पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ ४ ॥ ततः प्रजानां कदनं विधातुं कदनप्रियान् ॥ निर्दिदेशाऽसुरान्वीरान्हरि वैरप्रियो हि सः ॥ ५ ॥ अथ ते भर्तृसंदेशमादाय शिरसाऽसुराः ॥ देवप्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ ६ ॥ ततो विप्रकृते लोकेऽसुरैस्तैर्दुष्टमानसैः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुस्संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा करोदकादीनि तत्कलत्राद्यसांत्वयत् ॥ ८ ॥ ततस्स दैत्यराजेन्द्रो ह्यजेयमजरामरम् ॥ आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराज्यं व्यधित्सत ॥ ९ ॥ स तेपे मंदरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्द्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ १० ॥

होनेके कारण देवता और प्रजाओंका कदन करने लगे ॥ ६ ॥ जब उन दुष्टमनवालोंने लोगोंका नाशकरना आरंभ किया तब देवता स्वर्गको त्याग अलक्षितभावसे पृथिवीमें विचरण करने लगे ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपु अपने भाईकी मृत्युसे दुःखीहो उसको जलदानादि करके उसकी स्त्री आदिकी सांत्वना करताहुआ ॥ ८ ॥ तब वह दैत्यराज अजर अमरकी समान अपनेको अजेय और अप्रतिद्वंद्वी जानकर एक राज्यमें स्थित हुआ ॥ ९ ॥ उसने चक्रवर्तीपदकी प्राप्तिके निमित्त मंदराचलपर्वतके स्थानमें ऊपरको भुजा उठाकर आकाशको दृष्टि लगाये पैरके अंगूठेसे स्थितहो परमकठिन तपकरना आरंभ किया ॥ १० ॥

उसके तपस्या करनेमें बलसम्पन्न सम्पूर्ण देवता सब दैत्योंको जीतकर फिर अपने स्थानोंको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ उस दैत्यके बहुत कालतक तपस्या करनेसे तपोमयी अग्नि धूमसहित निकलने लगी, वह तिरछे ऊंचे सब लोगोंको चारों ओरसे तपाने लगी ॥ १२ ॥ उसके तापसे तापित हो देवता स्वर्गलोकको छोड़कर ब्रह्मलोकको चलेगये, और उसके तपसे व्याकुलहो विधातासे यह सब बात सुनादी ॥ १३ ॥ हे व्यासजी ! जब उन सब देवताओंने ऐसा कहा तब ब्रह्माजी भृगु और दक्षआदिको साथले उस दैत्येश्वरके आश्रमको गये ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे सब लोगोंको तपाकर इसने वर देनेको आतेहुए ब्रह्माजीको देखा और पितामह ब्रह्माजीने उससे कहा जो तेरी इच्छाहो सो वरमाँग ॥ १५ ॥ हिरण्यकशिपु बोला हे विधाता ! हे पितामह ! मैं यही चाहता हूं कि मुझे मृत्युका भय कभीभी न हो शस्त्र अस्त्र पाश वज्र सूखावृक्ष गिरीन्द्र जल अग्निसम्बन्धी कोई शत्रुका प्रहार मुझे न व्यापै ॥ ॥ १६ ॥ हे प्रजापति ! देवता दैत्य मुनि सिद्ध किसी भी आपकी सृष्टिके जीवसे न मरूं, बहुत कहनेसे क्या है स्वर्गमें पृथिवीमें दिनरातमें ऊपर नीचे कहीं भी न मरूं ॥ १७ ॥ सनत्कुमार बोले उस दैत्यके ऐसे वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा हे दैत्येन्द्र ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूं तू यह सभी वर ग्रहणकर,

तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवास्सर्वे बलान्विताः ॥ दैत्यान्सर्वान्विनिर्जित्य स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ११ ॥ तस्य मूर्द्ध्नस्समुद्भूतः सधूमोग्निस्तपोमयः ॥ तिर्य्यगूर्द्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ १२ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुस्सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुस्तत्तपोविकृताननाः ॥ १३ ॥ अथ विज्ञापितो देवैर्व्यास तैरात्मभूर्विधिः ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥ प्रताप्यलोकानखिलांस्ततोऽसौ समागतं पद्मभवं ददर्श ॥ वरं हि दातुं तमुवाच धाता वरं वृणीष्वेति पितामहोपि ॥ निशम्य वाचं मधुरां विधातुर्वचोऽब्रवीदेव ममूढबुद्धिः ॥ १५ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ मृत्योर्भयं मे भगवन्प्रजेश पितामहाभून्न कदापि देव ॥ शस्त्रास्त्रपाशाशनिशुष्कवृक्षगिरीन्द्रतोयाग्निरिपुप्रहारैः ॥ १६ ॥ देवैश्च दैत्यैर्मुनिभिश्च सिद्धैस्त्वत्सृष्टजीवैर्बहुवाक्यतः किम् ॥ स्वर्गे धरण्यां दिवसे निशायां नैवोर्द्ध्वतो नाप्यधतः प्रजेश ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्यैतदीदृग्वचनं निशम्य दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि लभस्व सर्वम् ॥ प्रणम्य विष्णुं मनसा तमाह दयान्वितोऽसाविति पद्मयोनिः ॥ १८ ॥

और विष्णुको स्मरणकर दयायुक्त हो ब्रह्माजी कहने लगे ॥ १८ ॥ अब तप करनेकी आवश्यकता नहीं है, तू पूर्णकाम हुआ, सहस्र वर्षतक तपस्या की है,
उठ और दानवोंका राज्यकर यह वाणी सुनकर वह ब्रह्माजीके सन्मुख हुआ ॥ १९ ॥ तब पितामहने उसको त्रिलोकीके राज्यमें अभिषेक करदिया, तब
उसने त्रिलोकीके विनाशकी इच्छा की, और प्रमत्त हो संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर सब धर्मोंका नाश कर दिया ॥ २० ॥ तब इन्द्रादि सब देवता
भयसे व्याकुल हो सब कोई पितामहकी आज्ञाको प्राप्त हो दैत्यके पराक्रमसे व्याकुल हो क्षीरसागरमें गये जहां विष्णुभगवान् शयन करते थे ॥ २१ ॥

अलं तपस्ते परिपूर्णकामस्समाः सहस्राणि च षण्णवत्यः ॥ उत्तिष्ठ राज्यं कुरु दानवानां श्रुत्वा गिरं तत्सुमुखो बभूव ॥ १९ ॥
राज्याभिषिक्तः प्रपितामहेन त्रैलोक्यनाशाय मतिं चकार ॥ उत्साद्य धर्मान् सकलान्प्रमत्तो जित्वाहवे सोपि सुरान्समस्तान् ॥
॥ २० ॥ ततो भयादिंद्रमुखाश्च देवाः पितामहाज्ञां समवाप्य सर्वे ॥ उपद्रुता दैत्यवरेण जाताः क्षीरोदधिं यत्र हरिस्तु शेते ॥ २१ ॥
आराधयामासुरतीव विष्णुं स्तुत्वा वचोभिस्सुखदं हि मत्वा ॥ निवेदयामासुरथो प्रसन्नं दुःखं स्वकीयं सकलं हि तेते ॥ २२ ॥
श्रुत्वा तदीयं सकलं हि दुःखं तुष्टो रमेशः प्रददौ वरांस्तु ॥ उत्थाय तस्माच्छयनादुपेन्द्रो निजानुरूपैर्विविधैर्वचोभिः ॥ २३ ॥
आश्वास्य देवानखिलान्मुनीन्वा उवाच वैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ दैत्यं हनिष्ये प्रसभं सुरेशाः प्रयात धामानि निजानि तुष्टाः ॥ २४ ॥
श्रुत्वा रमेशस्य वचस्सुरेशाः शक्रादिकास्ते निखिलाः सुतुष्टाः ॥ ययुः स्वधामानि हिरण्यनेत्रानुजं च मत्वा निहतं मुनीश ॥ २५ ॥

उन्होंने बड़े सुखदायक वचनोंसे विष्णुजीका आराधन किया और जब विष्णुजी प्रसन्न हुए तब उन सबने अपना २ दुःख विष्णुजीसे निवेदन किया ॥ २२ ॥
उनके सम्पूर्ण दुःख सुनकर भगवानने प्रसन्न होकर उनको वरदिये और उपेन्द्रने आसनसे उठकर अपने अनुरूप अनेकवचनोंसे ॥ २३ ॥ सब देवता
और मुनियोंको समझाकर अग्निकी समान प्रकाशमान होकर कहा हे देवताओ ! तुम सब प्रसन्न होकर अपने अपने स्थानोंको जाओ मैं उस दैत्यको अवश्य
मारूंगा ॥ २४ ॥ भगवानके यह वचन सुनकर वे सब इन्द्र आदिक देवता प्रसन्न होकर अपने अपने स्थानोंको गये, हे मुनीश्वर ! उस समय उन्होंने यह

समझलिया कि अब वह दैत्य हिरण्याक्षका भ्राता मानो मारागया ॥ २५ ॥ तब विष्णुजी महाजटावाला, कराल डाढोंरूप आयुधवाला, तीक्ष्णनख, महानासिका, नारसिंहरूप मुख फैलाये प्रगटहुए जिनका प्रकाश कोटिसूर्यकी समान था ॥ २६ ॥ युगान्त कालाग्निकी समान प्रभाव वाले, जगन्मय, बहुत कहनेसे क्या है वह महात्मा सूर्यके अस्तहोनेमें दैत्योंकी नगरीमें गये ॥ २७ ॥ और उन दैत्योंके साथ घोर युद्ध करके और उन दैत्येश्वरोंको ग्रहणकर बहुतोंको वध करडाला और उनको लेकर घूमने लगे और उन सबको नष्ट करडाला ॥ २८ ॥ जब दैत्योंने उस अतुलप्रभाववालेको देखा तब वे सब युद्ध करने

आश्रित्य रूपं जटिलं करालं दंष्ट्रायुधं तीक्ष्णनखं सुनासम् ॥ सैंहं च नारं सुविदारितास्यं मार्तंडकोटिप्रतिमं सुघोरम् ॥ २६ ॥
युगांतकालाग्निसमप्रभावं जगन्मयं किं बहुभिर्वचोभिः ॥ अस्तं रवौऽसोऽपि हि गच्छतीशो गतोऽसुराणां नगरीं महात्मा ॥ २७ ॥
कृत्वा च युद्धं प्रबलैस्स दैत्यैर्हत्वाथ तान्दैत्यगणान्गृहीत्वा ॥ बभ्राम तत्राद्भुतविक्रमश्च बभंज तांस्तानसुरान्नृसिंहः ॥ २८ ॥
दृष्टस्स दैत्यैरतुलप्रभावस्ते रेभिरे ते हि तथैव सर्वे ॥ सिंहं च तं सर्वमयं निरीक्ष्य प्रह्लादनामा दितिजेन्द्रपुत्रः ॥ उवाच राजानमयं
मृगेन्द्रो जगन्मयः किं समुपागतश्च ॥ २९॥ प्रह्लाद उवाच ॥ एष प्रविष्टो भगवाननंतो नृसिंहमात्रो नगरं त्वदंतः ॥ निवृत्य युद्धाच्छ
रणं प्रयाहि पश्यामि सिंहस्य करालमूर्त्तिम् ॥ ३० ॥ यस्मान्न योद्धा भुवनत्रयेऽपि कुरुष्व राज्यं विनमन्मृगेन्द्रम् ॥ श्रुत्वा स्वपुत्रस्य
वचो दुरात्मा तमाह भीतोऽसि किमत्र पुत्र ॥ ३१ ॥ उक्त्वेति पुत्रं दितिजाधिनाथो दैत्यर्षभान्वीरवरान्स राजा ॥ गृह्णंतु वै सिंहममुं
भवंतो वीरा विरूपभ्रुकुटीक्षणं तु ॥ ३२ ॥

लगे, तब उस दैत्येश्वरके पुत्र प्रह्लादने उस सर्वमय नृसिंहको देखकर राजासे कहा क्या यह मृगेन्द्र जगन्मय तो नहीं है ॥ २९ ॥ प्रह्लाद बोले यह अनन्त भगवान् नृसिंहरूपसे यहां प्रविष्ट होकर आये हैं, हे राजन ! युद्धसे निवृत्त होकर आप शरणमें जाओ मैं नृसिंहकी करालमूर्त्ति देखता हूं ॥ ३० ॥ इनकी बराबर संसारमें कोई और योद्धा नहीं देखता हूं, तुम इनकी विनयकर प्रार्थना करो, पुत्रके यह वचन सुनकर वह दुरात्मा बोला हे पुत्र ! क्या तू डरगया है ॥ ३१ ॥ उस दैत्यराजने पुत्रसे यह कहकर बड़े बड़े दैत्योंको आज्ञादी कि, हे दैत्यश्रेष्ठो ! इस नृसिंहको ग्रहण करो और तीक्ष्णभ्रुकुटीसे भय मत करो ॥ ३२ ॥

उसकी आज्ञासे तब वे दैत्यश्रेष्ठ नृसिंहके ग्रहण करनेकी इच्छा करने लगे परन्तु वे सब दैत्य उनके समीप जातेही ऐसे दग्ध होगये जिस प्रकार अग्निके समीप जानेसे पतंगे नष्ट होजाते हैं ॥ ३३ ॥ दैत्योंके नष्ट होजानेपर स्वयं राजाने फिर उस मृगराजके साथ संग्राम किया अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अंकुश पावकादिके साथ घोर संग्राम हुआ ॥ ३४ ॥ हे व्यास ! उन शस्त्रधारियोंको युद्ध करते करते एक ब्राह्मदिन बीतगया वे दोनों वीर क्रोधयुक्त चित्तसे परस्पर गर्जन करते करते वीरशब्दसे शब्द करने लगे ॥ ३५ ॥ तब उस दैत्यने नृसिंहजीको महायुद्ध करता देखकर और उनकी बहुतसी भुजा

तस्याज्ञया दैत्यवरास्ततस्ते ग्रहीतुकामा विविशुर्मृगेन्द्रम् ॥ क्षणेन दग्धाश्शलभा इवाग्निंरूपाभिलाषात्प्रविविक्षवो वै ॥ ३३ ॥ दैत्येषु
दग्धेष्वपि दैत्यराजश्चकार युद्धं स मृगाधिपेन ॥ शस्त्रैस्समग्रैरखिलैस्तथास्त्रैश्शक्त्यर्ष्टिपाशांकुशपावकाद्यैः ॥ ३४ ॥ संयुध्यतोरेव तयो
र्जगाम ब्राह्मं दिनं व्यास हि शस्त्रपाण्योः ॥ प्रवीरयोर्वीररवेण गर्जतोः परस्परं क्रोधसुयुक्तचेतसोः ॥३५॥ ततः स दैत्यस्सहसा बहूंश्च
कृत्वा भुजाञ्छस्त्रयुतान्निरीक्ष्य ॥ नृसिंहरूपं प्रययौ मृगेन्द्रं संयुध्यमानं सहसा समंतात् ॥ ३६ ॥ ततस्सुयुद्धं त्वतिदुस्सहं तु शस्त्रै
स्समस्तैश्च तथाखिलास्त्रैः ॥ कृत्वा महादैत्यवरो नृसिंहं क्षयं गतैश्शूलधरोऽभ्युपायात् ॥ ३७ ॥ ततो गृहीतस्समृगाधिपेन भुजैरनेकै
र्गिरिसारवद्भिः ॥ निधाय जानौ स भुजांतरेषु नखांकुरैर्दानवमर्मभिद्भिः ॥ ३८ ॥ नखास्त्रहृत्पद्ममसृग्विमिश्रमुत्पाद्य जीवाद्विगतः
क्षणेन ॥ त्यक्तस्तदानीं स तु काष्ठभूतः पुनः पुनश्चूर्णितसर्वगात्रः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्हते देवरिपौ प्रसन्नः प्रह्लादमामंत्र्य कृतप्रणामम् ॥
राज्येऽभिषिच्याद्भुतवीर्यविष्णुस्ततः प्रयातो गतिमप्रतर्क्याम् ॥ ४० ॥

देख सहसा युद्धका घोररूपसे आरंभ किया ॥ ३६ ॥ तब वह युद्ध अस्त्र शस्त्रोंसे महा अगम्य होगया, और वह दैत्यश्रेष्ठ महायुद्ध करता हुआ नृसिंहको देखकर शूलधारण करके धावमान हुआ ॥ ३७ ॥ तब नृसिंहजीने उसको पर्वतकी समान बलवाली भुजाओंसे पकड़लिया और उसको भुजाओंके अन्तरमें ले जंघाओंपर धारणकर उसके मर्मस्थानोंको अपने नखोंसे विदीर्ण किया ॥ ३८ ॥ अपने नखरूप अस्त्रोंसे हृदयरूपी कमलको उसके जीवनके सहित उखाड़कर उसके नष्ट होजानेपर काष्ठकी समान उसको त्यागन कर बारंबार उसके सब अंग चूर्ण करदिये ॥ ३९ ॥ उस देवशत्रुके नष्ट होजानेपर प्रह्लादके

आमंत्रण और प्रणाम करनेपर अद्भुतवीर्यवाले विष्णुने प्रह्लादको राज्यपर अभिषेक करके अपनी अलक्ष्य गतिको गमन किया ॥ ४० ॥ हे व्यासजी ! तब सब देवता प्रसन्न होकर और उस दिशाको प्रणाम करके उन स्तुतियोग्य विष्णुको स्तुति करतेहुए अपने २ स्थानोंको गये ॥ ४१ ॥ यह हमने प्रसंगसे रुद्रसे अंधकका जन्म, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, तथा नृसिंहजीसे उसके भाईका नाश तथा प्रह्लादके राज्यकी प्राप्ति वर्णन की ॥ ४२ ॥ हे व्यासजी ! अब ब्रह्माजीसे अंधकको जो प्रभाव प्राप्त हुआ, तथा शिवजीसे उसका युद्ध और उसको गणाधिपताकी प्राप्ति जैसे हुई सो श्रवण कीजिये ॥ ४३ ॥

ततोऽतिहृष्टास्सकलास्सुरेशाः प्रणम्य विष्णुं दिशि विप्र तस्याम् ॥ ययुः स्वधामानि पितामहाद्याः कृतस्वकार्यं भगवंतमीड्यम् ॥४१॥ प्रवर्णितं त्वंधकजन्म रुद्राद्धिरण्यनेत्रस्य मृतिर्वराहात् ॥ नृसिंहतस्तत्सहजस्य नाशः प्रह्लादराज्याप्तिरिति प्रसंगात् ॥ ४२ ॥ शृणु त्विदानीं द्विजवर्य मत्तोंधकप्रभावं भवकृत्यलब्धम् ॥ हरेण युद्धं खलु तस्य पश्चाद्गणाधिपत्यं गिरिशस्य तस्य ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे गणाधिपत्यप्राप्त्यंधकजन्महिरण्यनेत्रहिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततो हिरण्याक्षसुतः कदाचित्संश्रावितो नर्मयुतैर्मदांधैः ॥ तैर्भ्रातृभिस्संप्रयुतो विहारे किमंध राज्येन तवाद्य कार्यम् ॥ १ ॥ हिरण्यनेत्रस्तु बभूव मूढः कलिप्रियं नेत्रविहीनमेव ॥ यो लब्धवांस्त्वां विकृतं विरूपं घोरैस्तपोभिर्गिरिशं प्रसाद्य ॥ २ ॥ स त्वं न भागी खलु राज्यकस्य किमन्यजातोऽपि लभेत राज्यम् ॥ विचार्यतां तद्भवतैव नूनं वयं तु तद्भागिन एव सत्यम् ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ सनत्कुमारजी बोले, एकसमय विहारमें तत्परहुए, हिरण्याक्षके पुत्रसे, क्रीडामें युक्त मदसे, अंधेहुए उसके भाइयोंने ठट्ठासे कहा हे अंध ! अब तुम्हारे राज्यसे क्या कामहै ॥ १ ॥ तुम्हारा पिता हिरण्याक्ष मूर्ख था, जिसने बडे कठिन तपसे शिवजीको प्रसन्न करके कलिप्रिय, नेत्रहीन, विकारवाले, कुरूप, तुम पुत्रको पाया ॥ २ ॥ इस कारण, ऐसे तुम राजके भागी नहीं हो

सकते ? औरसे उत्पन्न हुआ भी पुरुष राज्यको प्राप्त होसकता है, तुमहीं यह विचार देखो, हमहीं राज्यके भागी हैं यह सत्य जानो ॥ ३ ॥ सनत्कुमार बोले, उन भाइयोंके ऐसे वचन सुनकर वह अंधक स्वयं अपनी बुद्धिसे विचारकर दीनहो उनको अनेकवचनोंसे शान्तकरके रात्रिमें निर्जनवनको चला गया ॥ ४ ॥ वहां एक पैरसे खडाहो निराहारहो नियमसे दोनों भुजा उठाये देवता राक्षसोंसेभी करनेमें अशक्य इस प्रकार दसहजार वर्षपर्यन्त कठिन तप करने और मंत्र जपने लगा ॥ ५ ॥ अग्निको जलाके, रक्तसहित अपने शरीरके मांसको शरीरसे शस्त्रद्वारा काट २ के वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मंत्रसहित अग्निमें डालके

सनत्कुमार उवाच ॥ तेषां तु वाक्यानि निशम्य तानि विचार्य बुद्ध्या स्वयमेव दीनः ॥ ताञ्छांतयित्वा विविधैर्वचोभिर्गतस्त्वरण्यं
निशि निर्जनं तु ॥ ४ ॥ वर्षायुतं तत्र तपश्चचार जजाप जाप्यं विधृतैकपादः ॥ आहारहीनो नियमोर्द्ध्वबाहुः कर्त्तुं न शक्यं हि सुरा
सुरैर्यत् ॥ ५ ॥ प्रज्वाल्य वह्निं स्म जुहोति गात्रमांसं सरक्तं खलु वर्षमात्रम् ॥ तीक्ष्णेन शस्त्रेण निकृत्य देहात्समंत्रकं प्रत्यहमेव हुत्वा
॥ ६ ॥ स्नाय्वस्थिशेषं कुणपं तदासौ क्षयं गतं शोणितमेव सर्वम् ॥ यदास्य मांसानि न संति देहं प्रक्षेप्तुकामस्तु हुताशनाय ॥ ७ ॥
ततः स दृष्टस्त्रिदशालयैर्जनैः सुविस्मितैर्भीतियुतैस्समस्तैः ॥ अथामरैश्शीघ्रतरं प्रसादितो बभूव धाता नुतिभिर्नुतो हि ॥ ८ ॥ निवार
यित्वाथ पितामहस्तं ह्युवाच तं चाद्य वरं वृणीष्व ॥ यस्यातिकामस्तव सर्वलोके सुदुर्लभं दानव तं गृहाण ॥ ९ ॥ स पद्मयोनेस्तु
वचो निशम्य प्रोवाच दीनः प्रणतस्तु दैत्यः ॥ यैर्निष्ठुरैर्मे प्रहृतं तु राज्यं प्रह्लादमुख्या मम संतु भृत्याः ॥ १० ॥

होम करने लगा ॥ ६ ॥ तब नस और अस्थिमात्र शेष रहे शरीरमेंसे सम्पूर्ण रुधिर नष्ट हो गया, और जब इसके शरीरमें मांस न रहा तो इसने शरीरको अग्निमें फेंकनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥ उस समय सम्पूर्ण देवताओंने बडे विस्मयके साथ भयभीतहो उसको देखा, फिर उन देवताओंने शीघ्रही ब्रह्माजीको स्तोत्रोंसे स्तुति करके प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजी उसको निवारण करके यह बोले हे दानव ! अब तुम वर मांगो, सम्पूर्ण लोकोंमें जिस वरके पानेकी इच्छाहो उस दुर्लभ वरकोभी ग्रहण करो ॥ ९ ॥ वह दैत्य ब्रह्माजीका ऐसा वचन सुन दीन और नम्र हो यह बोला, जिन निठुर भाइयोंने मेरा

राज्य छीन लियाहै वे प्रह्लाद आदि सब मेरे भृत्य होवैं ॥ १० ॥ तथा मुझ अंधेके दिव्यनेत्र होजायं, इन्द्र आदि सब देवता मुझे कर देनेवालेहों, और मेरी मृत्यु, देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, मनुष्य किसीसेभी न होवै ॥ ११ ॥ तथा नारायणसे वा दैत्येन्द्रके शत्रुसे, सब मनुष्य, तथा सर्वव्यापी शिवजीसेभी मेरी मृत्यु न होवै, ऐसा उसका कठिन वचन सुन ब्रह्माजी शंकितहो उससे बोले ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले हे दैत्येन्द्र ! और सब तेरा मनोरथ पूर्ण होगा परन्तु किसी विनाशहेतुको ग्रहण कर, कारण कि ऐसा कोई न हुआहै, न होगा जो कालके मुखमें प्रवेश न हुआहो ॥ १३ ॥ आप सरीखे पुरुष बहुत समयसे

अंधस्य दिव्यं हि तथास्तु चक्षुरिन्द्रादयो मे करदा भवंतु ॥ मृत्युस्तु माभून्मम देवदैत्यगंधर्वयक्षोरगमानुषेभ्यः ॥ ११ ॥ नारायणाद्वा दितिजेन्द्रशत्रोस्सर्वाज्जनात्सर्वमयाच्च शर्वात् ॥ श्रुत्वा वचस्तस्य सुदारुणं तत्सुशंकितः पद्मभवस्तमाह ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दैत्येन्द्र सर्वं भविता तदेतद्विनाशहेतुं च गृहाण किंचित् ॥ यस्मान्न जातो न जनिष्यते वा यो न प्रविष्टो मुखमंतकस्य ॥ १३ ॥ अत्यन्तदीर्घं खलु जीवितं तु भवादृशास्सत्पुरुषास्त्यजंतु ॥ एतद्वचस्सानुनयं निशम्य पितामहात्प्राह पुनस्स दैत्यः ॥ १४ ॥ अंधक उवाच ॥ काल त्रये याश्च भवंति नार्यः श्रेष्ठाश्च मध्याश्च तथा कनिष्ठाः ॥ तासां च मध्ये खलु रत्नभूता ममापि नित्यं जननीव काचित् ॥ १५ ॥ कायेन वाचा मनसाप्यगम्या नारी नृलोकस्य च दुर्लभाय ॥ तां कामयानस्य ममास्तु नाशो दैत्येन्द्रभावाद्भगवान्स्वयंभूः ॥ १६ ॥ वाक्यं तदाकर्ण्य स पद्मयोनिः सुविस्मितश्शंकरपादपद्मम् ॥ सस्मार संप्राप्य निदेशमाशु शंभोस्तु तं प्राह ततोंधकं वै ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्कांक्षसे दैत्यवरास्तु ते वै सर्वं भवत्येव वचस्सकामम् ॥ उत्तिष्ठ दैत्येन्द्र लभस्व कामं सदैव वीरैस्तु कुरुष्व युद्धम् ॥ १८ ॥

जीवनको त्यागैं, ऐसे ब्रह्माजीके नीतिसहित वचन सुनके वह दैत्य फिर बोला ॥ १४ ॥ अंधक बोला तीनों कालोंमें जो श्रेष्ठ मध्य तथा कनिष्ठ स्त्रियां होतीहैं, उनमेंसे जो सबकी शिरोमणिहो और वह मेरी उत्पन्न करने वाली जननीकी समान हो ॥ १५ ॥ काय, वाणी, मनसे भी न प्राप्त होनेवाली मृत्युलोकवासियोंको दुर्लभहो, जब मैं दैत्येन्द्रभावसे उसकी इच्छा करूं तब भगवान् स्वयंभूसे मृत्यु प्राप्त हो ॥ १६ ॥ उसका वचन सुनकर ब्रह्माजी आश्चर्यमें हो, शिवके चरणकमलोंको स्मरण करने लगे, तब शीघ्रही शंभुकी आज्ञाको पाय उस अंधकसे बोले ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे दैत्यश्रेष्ठ ! तू जो अभिलाषा

करताहै, सो सब कामना सहित तेरा वचन पूर्ण होगा, हे दैत्येन्द्र ! उठ इच्छाको प्रातकर औरं वीरोंके साथ युद्ध कर ॥ १८ ॥ हे मुनीश्वर ! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुन स्नायु और अस्थिमात्र शरीरवाला हिरण्याक्षका पुत्र भक्तिसे ब्रह्माजीको प्रणाम करके यह बोला ॥ १९ ॥ अंधक बोला, हे विभो ! वैरीके बलके सामने मैं इस शरीरसे कैसे युद्ध करूंगा, क्यों कि केवल स्नायु अस्थि शेष रहे इस देहको अब अपने पवित्र हाथसे स्पर्श करो और मुझे मांससे पुष्ट करो ॥ २० ॥ सनत्कुमार बोले, उस दैत्यका वचन सुन ब्रह्माजी अपने हाथसे उसके शरीरको स्पर्शकर, मुनि सिद्धोंसे पूजितहो, इन्द्रके सहित अपने

श्रुत्वा तदेतद्वचनं मुनीश विधातुराशु प्रणिपत्य भक्त्या ॥ लोकेश्वरं हाटकनेत्रपुत्रः स्नाय्वस्थिशेषस्तु तमाह देवम् ॥ १९ ॥ अंधक उवाच ॥ कथं विभो वैरिबलं प्रविश्य ह्यनेन देहेन करोमि युद्धम् ॥ स्नाय्वस्थिशेषं कुरु मांसपुष्टं करेण पुण्ये न च मां स्पृशाद्य ॥ २० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वा वचस्तस्य स पद्मयोनिः करेण संस्पृश्य च तच्छरीरम् ॥ गतस्सुरेन्द्रैस्सहितः स्वधाम संपूज्यमानो मुनिसिद्धसंघैः ॥ २१ ॥ संस्पृष्टमात्रस्स च दैत्यराजस्सम्पूर्णदेहो बलवान्बभूव ॥ संजातनेत्रस्सुभगो बभूव हृष्टस्स्वमेवं नगरं विवेश ॥ २२ ॥ उत्सृज्य राज्यं सकलं च तस्मै प्रह्लादमुख्यास्त्वथ दानवेन्द्राः ॥ तमागतं लब्धवरं च मत्वा भृत्या बभूवुर्वशगास्तु तस्य ॥ २३ ॥ ततोन्धकः स्वर्गमगाद्विजेतुं सेनाभियुक्तस्सहभृत्यवर्गः ॥ विजित्य लेखान्प्रधने समस्तान्करप्रदं वज्रधरं चकार ॥ २४ ॥ नागान्सुपर्णान्वरराक्षसांश्च गंधर्वयक्षानपि मानुषांस्तु ॥ गिरीन्द्रवृक्षान्समरेषु सर्वांश्चतुष्पदः सिंहमुखान्विजिग्ये ॥ २५ ॥

स्थानको चले गये ॥ २१ ॥ वह दैत्य स्पर्श करतेही सम्पूर्ण देहसे पुष्ट और बलवान् हुआ, तथा नेत्रोंसहित शोभायमान और प्रसन्नहो अपने नगरमें आया ॥ २२ ॥ तब प्रह्लाद आदि सब दैत्योंने उसे वरदानपाया जानकर सम्पूर्ण राज्यको छोड उसके आनेपर उसके वशीभूत होकर भृत्यवत् होगये ॥ २३ ॥ तब वह अंधक अपने भृत्योंसमेत सेनासहित स्वर्गको जीतने गया वहां सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर सबको तथा इन्द्रको कर देनेवाला किया ॥ २४ ॥ उस दैत्यने नागोंको, पक्षियोंको (गरुडको), राक्षसोंको, गन्धर्व यक्षोंको तथा मनुष्योंको पर्वत वृक्षोंको, तथा समस्त सिंह आदि चौपाये जीवोंको युद्धमें

जीत लिया ॥ २५ ॥ फिर इसने चर, अचर तीनों लोकोंको अपनी शक्तिसे वशमें किया और सुन्दर रूपवाली अनुकूल सहस्रों स्त्रियोंसे गमन करके ॥ ॥ २६ ॥ रसातल (पाताल) भूमि तथा स्वर्गमें जो सुन्दर रूपवाली स्त्रियां थीं, उनके सहित पर्वतोंमें तथा रमणीक नदियोंके समीप रहनेवाली स्त्रियोंसे रमण करने लगा ॥ २७ ॥ क्रीडा करताहुआ वह दैत्य उनके मध्यमें स्थितहो, उनके पीनेसे बचे हुए, दिव्य, मनुष्योपयोगी, मदिरादि रसोंको पीके उनके साथ रमण करने लगा ॥ २८ ॥ और भी जो दिव्य रस, तथा सुगंधसहित फल, मूल, (पान) वाहन, उत्तम गृह थे, सो सम्पूर्ण मय दैत्यने निर्माण किये

त्रैलोक्यमेतद्धि चराचरं वै वशं चकारात्मनि संनियोज्य ॥ ततोनुकूलानि सुदर्शनानि नारीसहस्राणि बहूनि गत्वा ॥ २६ ॥ रसातले चैव तथा धरायां त्रिविष्टपे याः प्रमदाः सुरूपाः ॥ ताभिर्युतोऽन्येषु सपर्वतेषु रराम रम्येषु नदीतटेषु ॥ २७ ॥ क्रीडायमानस्स तु मध्यवर्ती तासां प्रहर्षादथ दानवेन्द्रः ॥ तत्पीतशिष्टानि पिबन्प्रवृत्त्यै दिव्यानि पेयानि सुमानुषाणि ॥ २८ ॥ अन्यानि दिव्यानि तु यद्रसानि फलानि मूलानि सुगंधवंति ॥ संप्राप्य यानानि सुवाहनानि मयेन सृष्टानि गृहोत्तमानि ॥ २९ ॥ पुष्पार्घधूपान्नविलेपनैश्च सुशोभितान्यद्भुतदर्शनैश्च ॥ संक्रीडमानस्य गतानि तस्य वर्षायुतानीह तथांधकस्य ॥ ३० ॥ जानाति किंचिन्नशुभं परत्र यदात्मनस्सौख्यकरं भवेद्धि ॥ सदान्धको दैत्यवरस्स मूढो मदांधबुद्धिः कृतदुष्टसंगः ॥ ३१ ॥ ततः प्रमत्तस्तु सुतान्प्रधानान्कुतर्कवादैरभिभूय सर्वान् ॥ चचार दैत्यैस्सहितो महात्मा विनाशयन्वैदिकसर्वधर्मान् ॥ ३२ ॥ वेदान्द्विजान्वित्तमदाभिभूतो न मन्यते स्माप्यमरान्गुरूंश्च ॥ रेमे तथा दैवगतो हतायुः स्वस्यैरहोभिर्गमयन्वयश्च ॥ ३३ ॥

॥ २९ ॥ पुष्प, अर्घ्य, धूप, मिष्टान्न, लेपन (अंगराग) आदिसे तथा सुन्दर दर्शनोंसे क्रीडा करतेहुए उस अन्धक दैत्यको दश हजार वर्ष इसी भाँति बीतगये ॥ ३० ॥ वह दैत्य ऐसे किसी पुण्यको नहीं जानता था जो परलोकमें अपने सुखदायक होतेहैं, सदाही वह अंधक, दैत्यपति अहंकारसे शून्यबुद्धि हो; दुष्टोंका संग करने लगा ॥ ३१ ॥ तब वह प्रमत्तहो सब मुख्य पुत्रोंको कुतर्कवादोंसे तिरस्कार करके, सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंको नाशकर, दैत्योंके साथ विचरने लगा ॥ ३२ ॥ उसने धनके गर्वसे तिरस्कृत हो, वेदों, ब्राह्मणों, देवताओं, गुरुओंको नहीं माना दैववश दुर्व्यसनोंसे अवस्थाको बितताहुआ क्रीडा

करने लगा ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार करोडों वर्षतक हर्षसे पृथ्वीमें निवास करताहुआ वह सेनासहित मंदराचलपर्वतपर गया ॥ ३४ ॥ वहां सुवर्णके समान शोभायमान भूमिको देख अभिमानसे उन्मत्त हो सेनासहित भ्रमण करने लगा, विहारके निमित्त उस श्रेष्ठ पर्वतको प्राप्तहो वहां निवास करनेके मोहसे बुद्धि की ॥ ३५ ॥ वहां वह दैत्य अपने प्रभावसे दृढ नगर निर्माणकर आनन्दसे रहने लगा, फिर क्रमसे उसने पर्वतके शिखरपै सुन्दर गृह बनवाया ॥ ३६ ॥ एक समय उस दैत्यपतिके दुर्योधन वैधस और हस्तिनामवाले मंत्रीजनोंने कभी उस पर्वतके स्थलमें परमसुन्दरी एक स्त्रीको देखा ॥ ३७॥ तब उन शीघ्रगामी

ततः कदाचिद्गतवान्ससैन्यो बहुप्रयाता पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥ अनेकसंख्या अपि वर्षकोट्यः प्रहर्षितो मंदरपर्वतं तु ॥ ३४ ॥ स्वर्णो
पमां तत्र निरीक्ष्य शोभां बभ्राम सैन्यैस्सह मानमत्तः ॥ क्रीडार्थमासाद्य च तं गिरीन्द्रं मतिं स वासाय चकार मोहात् ॥ ३५ ॥
शुभं दृढं तत्र पुरं स कृत्वा मुदास्थितो दैत्यपतिः प्रभावात् ॥ निवेशयामास पुनः क्रमेण अत्यद्भुतं मन्दरशैलसानौ ॥ ३६ ॥ दुर्यो
धनो वैधसहस्तिसंज्ञौ तन्मंत्रिणौ दानवसत्तमस्य ॥ ते वै कदाचिद्गिरिसुस्थले हि नारीं सुरूपां ददृशुस्त्रयोऽपि ॥ ३७ ॥ ते शीघ्रगा
दैत्यवरास्तु हर्षाद्द्रुतं महादैत्यपतिं समेत्य ॥ ऊचुर्यथादृष्टमतीव प्रीत्या तथान्धकं वीरवरं हि सर्वे ॥ ३८ ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ गुहांतरे
ध्याननिमीलिताक्षो दैत्येन्द्र कश्चिन्मुनिरत्र दृष्टः ॥ रूपान्वितश्चन्द्रकलार्द्धचूडः कटिस्थले बद्धगजेन्द्रकृत्तिः ॥ ३९ ॥ नागेन्द्रभोगा
वृतसर्वगात्रः कपालमालाभरणो जटालः ॥ स शूलहस्तश्शरतूणधारी महाधनुष्मान्विवृताक्षसूत्रः ॥ ४० ॥ खड्गी त्रिशूली लकुटी
कपर्दी चतुर्भुजो गौरतराकृतिर्हि ॥ भस्मानुलिप्तो विलसत्सुतेजास्तपस्विवर्योऽद्भुतसर्ववेशः ॥ ४१ ॥

दैत्योंने हर्षसे भरकर शीघ्रही उस दैत्यराजके समीप जाकर जैसा देखा था वैसा अतिप्रीतिसे उस शूरवीर अन्धकसे स्त्रीका वृत्तान्त कहा ॥ ३८॥ मंत्री बोले हे दैत्येन्द्र ! गुहाके भीतर ध्यानसे नेत्र मूंदे, सुन्दर रूपवान, माथेपै अर्धचन्द्रकलाको धारे, कमरमें व्याघ्रचर्म बांधेहुए एक मुनि स्थितहैं ॥ ३९ ॥ वह शेषराज (सर्पों) से सम्पूर्ण शरीर ढकेहुए तथा कपालों (खोपड़ियों) की माला धारे, जटाधारी, त्रिशूल हाथमें लिये, बाण तथा तर्कस बाँधे, महाधनुष धारे, यज्ञोपवीत पहने हैं ॥ ४० ॥ खड्गधारे त्रिशूल धारण किये, तथा लकुट लिये, जटाजूट धारे, चार भुजा, अति गौर शरीर, भस्मसे लिप्त, विलास

करते, दिव्यतेजवाले, तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण वेषसे अद्भुतआकारवाले हैं ॥ ४१ ॥ उनके समीप भयानक मुख भयंकर वानरवत् एक पुरुष संपूर्ण शस्त्रोंको लिये रूखे हाथोंवाला रक्षा कररहाहै, और उनके समीप शुक्लवर्ण एक वृद्ध बैल बँधा है ॥ ४२ ॥ उसके ऊपर बैठेहुए उन तपस्वीके समीपमें स्थित हुई परमसुन्दरी एक युवती मनोहर रत्न पहरे उनके समीपमें बैठी है ॥४३॥ मूंगे, मोती, मणि, सुवर्ण, रत्न, वस्त्रोंसे भूषित, शुभमालाको धारण किये, उसने जिसे देखा है वही दृष्टिमान् है इस लोकमें औरके देखनेसे उसे क्या प्रयोजन है ॥ ४४ ॥ हे दिव्यरत्नोंके भोगनेवाले दैत्येन्द्र ! पुण्यवान्, मुनि, महेश्वरकी

तस्याविदूरे पुरुषश्च दृष्टस्स वानरो घोरमुखः करालः॥ सर्वायुधो रूक्षकरश्च रक्षन्स्थितो जरद्गोवृषभश्च शुक्लः ॥ ४२ ॥ तस्योपविष्टस्य तपस्विनोपि सुचारुरूपा तरुणी मनोज्ञा ॥ नारी शुभा पार्श्वगता हि तस्य दृष्टा च काचिद्भुवि रत्नभूता ॥ ४३ ॥ प्रवालमुक्तामणि हेमरत्नवस्त्रावृता माल्यशुभोपगूढा ॥ सा येन दृष्टा स च दृष्टिमान्स्याद् दृष्टेन चान्येन किमत्र कार्यम् ॥ ४४ ॥ मान्या महेशस्य च दिव्यनारी भार्य्या मुनेः पुण्यवतः प्रिया सा ॥ योग्या हि द्रष्टुं भवतश्च सम्यगानाय्य दैत्येन्द्र सुरत्नभोक्तः ॥ ४५ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वेति तेषां वचनानि तानि कामातुरो घूर्णितसर्वगात्रः ॥ विसर्जयामास मुनेस्सकाशं दुर्योधनादीन्सहसा स दैत्यः ॥ ४६ ॥ आसाद्य ते तं मुनिमप्रमेयं बृहद्व्रतं मंत्रिवरा हि तस्य ॥ सुराजनीतिप्रवणा मुनीश प्रणम्य तं दैत्यनिदेशमाहुः ॥ ४७ ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ हिरण्यनेत्रस्य सुतो महात्मा दैत्याधिराजोऽन्धकनामधेयः ॥ त्रैलोक्यनाथो भवकृन्निदेशादिहोपविष्टोऽद्य विहारशाली ॥ ४८ ॥

वह माननीय सुन्दरी भार्या प्रिय स्त्री है, उसे बुलाके आप भलीभांति देखैं आप रत्नभोक्ता हैं आप उसके देखने योग्यहैं ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार बोले, इस प्रकार उन दैत्योंके वचन सुनके उस दैत्यने कामसे व्याकुल और संपूर्ण शरीरसे कम्पायमान हो, उन मुनिके समीप दुर्योधन आदि मंत्रियोंको शीघ्रभेजा ॥ ॥ ४६ ॥ तब राजनीतिमें चतुर उसके मंत्री वे दुर्योधनादि बडे व्रतवाले, तेजस्वी मुनिके समीप जाके, उन मुनिको प्रणाम करके अपने स्वामीकी आज्ञा कहने लगे ॥ ४७ ॥ मंत्री बोले, हिरण्याक्षके पुत्र, दैत्योंके अधिपति, महात्मा अंधक नामवाले, त्रिलोकीके राजा, शिवजीकी आज्ञासे वरपाय आज

विहार करतेहुए यहां बैठे हैं ॥ ४८ ॥ हे तपस्विन् ! हम अंगसे बलवान् हुए उनके मंत्री हैं और उन्होंने आपके पास भेजे हैं, इससे तुम्हारे पास प्राप्त हुए हैं, तुम्हारे लिये जो सन्देशा कहा है सो ध्यान देके सुनो ॥ ४९ ॥ हे बुद्धिमान ! हे मुनीन्द्र ! तुम किसके पुत्र हो, किसलिये यहां सुखसे बैठे हो, यह सुन्दर रूपवाली किसकी शुभ स्त्री है, इसको दैत्यराजके समीप देना योग्यहै ॥ ५० ॥ यह तुम्हारा भस्मसे लिप्तहुआ शरीर तथा खोपडियोंकी मालाधारी, कुरूप तर्कस श्रेष्ठ धनुष, बाण खड्ग भुशुण्डि त्रिशूल, वज्र तोमर व्यर्थ हैं ॥ ५१ ॥ कहां जटाओंके आगे, यह पवित्र गंगाजी, कहां यह

तन्मंत्रिणो वै वयमंगवीरास्तवोपकंठं च समागताः स्मः ॥ तत्प्रेषितास्त्वां यदुवाच तद्वै शृणुष्व संदत्तमनास्तपस्विन् ॥ ४९ ॥ त्वं कस्य पुत्रोऽसि किमर्थमत्र सुखोपविष्टो मुनिवर्य धीमन् ॥ कस्येयमीदृक्तरुणी सुरूपा देया शुभा दैत्यपतेर्मुनीन्द्र ॥ ५० ॥ क्वेदं शरीरं तव भस्मदिग्धं कपालमालाभरणं विरूपम् ॥ तूणीरसत्कार्मुकबाणखड्गभुशुंडिशूलाशनितोमराणि ॥ ५१ ॥ क्व जाह्नवी पुण्यतमा जटाग्रे क्वायं शशी वा कुणपास्थिखण्डम् ॥ विषानलो दीर्घमुखः क्व सर्पः क्व संगमः पीनपयोधरायाः ॥ ५२ ॥ जरद्गवारोहणमप्रशस्तं क्षमावतस्तस्य न दर्शनं च ॥ संध्याप्रणामः क्वचिदेष धर्मः क्व भोजनं लोकविरुद्धमेतत् ॥ ५३ ॥ प्रयच्छ नारीं मम सान्त्वपूर्वं स्त्रिया तपः किं कुरुषे विमूढ ॥ अयुक्तमेतत्त्वयि नानुरूपं यस्मादहं रत्नपतिस्त्रिलोके ॥ ५४ ॥ विमुंच शस्त्राणि मयाद्य चोक्तः कुरुष्व पश्चात्तव एव शुद्धम् ॥ उल्लंघ्य मच्छासनमप्रधृष्यं विमोक्ष्यसे सर्वमिदं शरीरम् ॥ ५५ ॥

चन्द्रमा कहां मुर्दोंकी अस्थियोंके खंड, कहां विषकी अग्नि कहां यह दीर्घमुख सर्प और कहां पुष्ट स्तनवाली स्त्री ॥ ५२ ॥ कहां बूढे बैल (नादिये) पर चढना, यह तुम्हारी प्रशंसाके योग्य नहीं, कहां यह क्षमा, इससे तुम दर्शनके योग्य नहीं, कहां यह संध्याका प्रणाम धर्म और कहां यह लोकोंसे विरुद्ध भोजन ॥ ५३ ॥ हे मूर्ख ! मुझे शान्तिपूर्वक इस स्त्रीको दे, इस स्त्रीके साथ तप क्यों करता है, तुझमें सबही बातें अयोग्य और विरुद्धहैं और जिससे कि मैं तीनों लोकोंका राजा हूं ॥ ५४ ॥ पहले शस्त्रोंको त्यागो, पीछे से शुद्ध तप करो, यह इस समय मैंने कहदिया, मेरी इस कठिन आज्ञाको उल्लंघन करनेसे

तुम्हारे शरीरका नाश होगा ॥ ५५ ॥ तब लौकिकभावमें तत्परहुए जगत प्रधान शिवजी, दूतके पूर्ण वचनोंको सुन, अंधक दैत्यको दुष्टबुद्धिवाला जान उस
दैत्यसे कुछ हँसतेहुए यह वचन बोले ॥ ५६ ॥ शिवजी बोले हे दैत्य ! जब कि मैं रुद्रहूं तो मेरा क्या होसकताहै, तू क्यों यह सब मिथ्या कहताहै, तुझको
ऐसा कहना योग्य नहींहै, मेरे प्रभावको सुन ॥ ५७ ॥ मैं कहींभी अपने माता पिताको स्मरण नहीं करता, और कुरूप, अतिमूढ होकर पर्वतकी गुहाके
भीतर स्थित हो, औरोंको दुर्लभ इस पाशुपत व्रतको करताहूं ॥ ५८ ॥ मूलरहित, यह सब जगत्, त्यागनेके अयोग्य मुझमेंही प्रसिद्ध है, तथा यह सब

मत्वांधकं दुष्टमतिं प्रधानो महेश्वरो लौकिकभावशीलः ॥ प्रोवाच दैत्यं स्मितपूर्वमेवमाकर्ण्य सर्वं त्वथ दूतवाक्यम् ॥ ५६ ॥ शिव
उवाच ॥ यद्यस्मि रुद्रस्तव किं मया स्यात् किमर्थमेवं वदसीति मिथ्या ॥ शृणु प्रभावं मम दैत्यनाथ न्याय्यं न वक्तुं वचनं त्वयै
वम् ॥५७॥ नाहं क्वचित्स्वं पितरं स्मरामि गुहांतरे घोरमनन्यचीर्णम् ॥ एतद्व्रतं पाशुपतं चरामि न मातरं त्वज्ञतमो विरूपः ॥ ५८ ॥
अमूलमेतन्मयि तु प्रसिद्धं सुदुस्त्यजं सर्वमिदं ममास्ति ॥ भार्या ममेयं तरुणी सुरूपा सर्वंसहा सर्वगतस्य सिद्धिः ॥ ५९ ॥ एतर्हि
यद्यद्रुचितं तवास्ति गृहाण तद्वै खलु राक्षस त्वम् ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंभुस्तपस्विवेषः पुरतस्तु तेषाम् ॥ ६० ॥ सनत्कुमार
उवाच ॥ गंभीरमेतद्वचनं निशम्य ते दानवास्तं प्रणिपत्य मूर्द्ध्ना ॥ जग्मुस्ततो दैत्यवरस्य सूनुं त्रैलोक्यनाशाय कृतप्रतिज्ञम् ॥ ६१ ॥
बभाषिरे दैत्यपतिं प्रमत्तं प्रणम्य राजानमदीनसत्त्वाः ॥ ते तत्र सर्वे जयशब्दपूर्वं रुद्रेण यत्तात्स्मितपूर्वमुक्तम् ॥ ६२ ॥

मेराही है, यह सर्वदा तरुणी, सुन्दर रूपवाली सब कुछ सहनेवाली, साक्षात् सिद्धिरूप सर्वव्यापिनी मेरी स्त्री है ॥ ५९ ॥ हे राक्षस ! इस समय जो जो तुझे
उचितहो सो सब ग्रहण कर, ऐसा उनके आगे कहके तपस्वीभेषधारी शिवजी मौन होगये ॥ ६० ॥ सनत्कुमार बोले ऐसा गौरवसहित वचन सुन, वे दैत्य
उनको शिरसे प्रणाम करके, त्रिलोकीके नाश करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले, हिरण्याक्षके पुत्र अंधक दैत्यके समीप गये ॥ ६१ ॥ महापराक्रमी वे सब वहां
जाय, उन्मत्तहुये, दैत्यपति, अंधक राजाको प्रणाम कर, जय हो, जय हो, कह कर जो कुछ शिवने हँसकर कहा था सो सब कहने लगे ॥ ६२ ॥

मंत्री बोले, पराक्रम धैर्यसे चलायमान, कृपण, सत्त्वहीन, क्रूर, कृतघ्नी, सदा पापी, वह निशाचर सूर्यके पुत्रसे क्यों डरताहै ॥ ६३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार बडे तेजस्वी वीर, तपस्वी उस मुनिने अपनी बुद्धिसे तीनों लोकोंको तृणवत् (तुच्छ) मान हँसतेहुएने सब दैत्योंके स्वामीसे आपसे यह कहाहै॥ ६४॥ कहां मैं, कहां मेरे कठिन शस्त्र, कहां मृत्युको त्रास देनेवाला युद्ध, कहां वानरके समान मुखवाला मेरा वीर और कहां बुढापेसे शिथिल शरीरवाला ॥ ६५ ॥ यह मेरा स्वरूप, कहां मन्दभाग्यवाला वह दैत्य, कहां तुम्हारी सेना आदिका बल कहां मेरा वीरुधास्त्र, यदि सामर्थ्य है तो मेरे साथ युद्ध करनेको

मंत्रिण उचुः ॥ निशाचरश्चंचलशौर्यधैर्यः क्व दानवः कृपणस्सत्त्वहीनः॥ क्रूरः कृतघ्नश्च सदैव पापी क्व दानवः सूर्यसुताद्बिभेति॥६३॥
राजत्वमुक्तोऽखिलदैत्यनाथस्तपस्विना तन्मुनिना विहस्य ॥ मत्वा स्वबुद्ध्या तृणवत्त्रिलोकं महौजसा वीरवरेण नूनम् ॥ ६४ ॥
क्वाहं च शस्त्राणि च दारुणानि मृत्योश्च संत्रासकरं क्व युद्धम् ॥ क्व वीरको वानरवक्त्रतुल्यो निशाचरो जरसा जर्जरांगः ॥ ६५ ॥
क्वायं स्वरूपः क्व च मंदभाग्यो बलं त्वदीयं क्वच वीरुधो वा ॥ शक्तोऽपि चेत्त्वं प्रयतस्व युद्धं कर्तुं तदा ह्येहि कुरुष्व किंचित् ॥
॥ ६६ ॥ वज्राशनेस्तुल्यमिहास्ति शस्त्रं भवादृशां नाशकरं च घोरम् ॥ क्व ते शरीरं मृदुपद्मतुल्यं विचार्य चैवं कुरु रोचते यत् ॥ ६७ ॥
मंत्रिण ऊचुः ॥ इत्येव मादीनि वचांसि भद्रं तपास्विनोक्तानि च दानवेश ॥ युक्तं नत तेन सहात्र युद्धं त्वामाह राजन्स्मयमान एव॥६८॥
विवस्तुशून्यैर्बहुभिः प्रलापैरस्माभिरुक्तैर्यदि बुध्यसे त्वम् ॥ तपोभियुक्तेन तपस्विना वै स्मर्तासि पश्चान्मुनिवाक्यमेतत् ॥ ६९ ॥

आ और चाहै कुछ प्रयत्न कर ॥ ६६ ॥ वज्राशनिके समान आप सरिखे दैत्योंके नाश करनेवाले यह घोर शस्त्र हैं. कहां तो कोमल कमलके समान तुम्हारा शरीर और कहां मेरे अस्त्र, ऐसा विचारकर जो अच्छा लगे सों करो ॥ ६७ ॥ मन्त्री बोले, हे दैत्यपते! इस प्रकार उन तपस्वी मुनिने कल्याणकारी वचन कहे हैं हे राजन्! अब उनके साथ तुम्हारा युद्ध करना योग्य नहीं इस प्रकार हँसतेहुए मुनिने तुमसे कहाहै ॥ ६८ ॥ यदि आप असारवस्तुसे

शून्य हुए, हमारे अनेकवचनोंको जानतेहैं तो तप करतेहुए तपस्वीके इन वचनोंको पीछेसे स्मरण करोगे ॥ ६९ ॥ सनत्कुमार बोले उस समय मंत्रियोंके ऐसे
वचनोंको सुन वह मूढबुद्धि दैत्य क्रोधसे जलउठा, और उनके वह हितकारी सत्य वचनभी घृतसे सींचे हुए अग्निकी समान, कुटिल और तीखे लगे ॥ ७० ॥
तब दैवके प्रतिकूल होनेसे वह वरदानसे उन्मत्त होकर खड्ग ले पवनकी समान बडे वेगसे तथा कामदेवके बाणोंसे विंधाहुआ वहां जानेको उद्यत हुआ ॥ ७१ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० अंधकगाणपत्यलाभोपाख्याने दूतसंवादो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ सनत्कुमार बोले तब

॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ ततस्स तेषां वचनं निशम्य जज्वाल रोषेण स मंदबुद्धिः ॥ आज्यावसिक्तस्त्विव कृष्णवत्मा सत्यं हितं
तत्कुटिलं सुतीक्ष्णम् ॥ ७० ॥ गृहीतखड्गो वरदानमत्तः प्रचंडवातानुकृतिं च कुर्वन् ॥ गंतुं च तत्र स्मरबाणविद्धस्समुद्यतोऽभूद्विपरीतदैवः ॥ ७१ ॥
॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखडे अंधकगाणपत्यलाभोपाख्याने दूतसंवादो
नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ गतस्ततो मत्तगजेन्द्रगामी पीत्वा सुरां घूर्णितलोचनश्च ॥ महानुभावो
बहुसैन्ययुक्तः प्रचंडवीरो वरवीरयायी ॥ १ ॥ ददर्श दैत्यः स्मरबाणविद्धो गुहां ततो वीरकरुद्धमार्गाम् ॥ स्निग्धं यथा वीक्ष्य
पतंगसंज्ञः दशाप्रदीपं च कृमिर्ह्युपेत्य ॥ २ ॥ तथा प्रदर्श्याशु पुनःपुनश्च संपीड्यमानोपि स वीरकेण ॥ बभूव कामाग्निसुदग्धदेहोंऽधको
महादैत्यपतिः स मूढः ॥ ३ ॥ पाषाणवृक्षाशनितोयवह्निभुजंगशस्त्रास्त्रबिभीषिकाभिः ॥ संपीडितोऽसौ न पुनः प्रपीड्यः
पृष्टश्च कस्त्वं समुपागतोसि ॥ ४ ॥

मदिरा पान कर नेत्रोंको घुमाता हुआ, मतवाले हाथीके समान गतिवाला बडा प्रतापी बहुत सेना लेकर महापराक्रमसे युक्त हो वीर योद्धाओंके सहित वह
दैत्य अंधक चला ॥ १ ॥ तब कामदेवके बाणोंसे विंधेहुए उसने शिवके वीरोंसे रुकेहुए मार्गवाली गुफाको देखा, जिस प्रकार पतंग तेलसे पूर्ण जलते हुए
दीपकको प्राप्तहो उसे देखता है ॥ २ ॥ उसी प्रकार बारंबार देख शंकरके गणसे पीडित हुआ वह मूढ अंधक दैत्य कामाग्निसे भस्मीभूत शरीर होकर मूढ
होगया ॥ ३ ॥ पाषाण, वृक्ष, वज्र, जल, अग्नि, सर्पों तथा शस्त्र अस्त्रोंके आघातोंसे उस दैत्यको ऐसा पीडित किया कि ऐसा कभी पीडित न हुआ था,

फिर उस वीरने इससे पूछा कितू कौन है और कहांसे आया है ॥ ४ ॥ ऐसा उस वीरका वचन सुन, अपना मत प्रकाश करके उस वीरके साथ युद्ध करन लगा, फिर थोडी देरमें उस वीरने युद्धमें अंधक दैत्यको जीत लिया ॥ ५ ॥ तब विस्मयरहित भूँख प्याससे शुष्ककंठवाला, वह दैत्य अपने खड्गके टूट जानेसे व्याकुल हो संग्राममें शिरको बचाके भाग गया ॥ ६ ॥ उस समय प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्योंने उस वीरके साथ संग्राम (युद्ध) किया, और अतिकठिन भी वे दैत्य अनेकशस्त्रोंसे युद्ध कर पराजित और लज्जित हुए ॥ ७ ॥ विरोचन, बलि, बाणासुर, सहस्रबाहु, भजि, कुजंभ, शंबर, और वीर्यवान्

निशम्य तद्वां स्वमतं स तस्मै चकार युद्धं स तु वीरकेण ॥ मुहूर्तमाश्चर्यवदप्रमेयं संख्ये जितो वीरतरेण दैत्यः ॥ ५ ॥ ततस्तु
संग्रामशिरो विहाय क्षुत्क्षामकंठस्तृषितो गतोऽभूत् ॥ चूर्णीकृते खड्गवरे च खिन्ने पलायमानो गतविस्मयः सः ॥ ६ ॥ चक्रुस्तदाजिं
सह वीरकेण प्रह्लादमुख्या दितिजप्रधानाः ॥ लज्जांकुशाकृष्टधियो बभूवुस्सुदारुणाः शस्त्रशतैरनेकैः ॥ ७ ॥ विरोचनस्तत्र चकार युद्धं
बलिश्च बाणश्च सहस्रबाहुः ॥ भजिः कुजंभस्त्वथ शंबरश्च वृत्रादयश्चाप्यथ वीर्यवंतः ॥ ८ ॥ ते युद्ध्यमाना विजिताः समंताद्द्विधाकृता
वै गणवीरकेण ॥ शेषे हतानां बहुदानवानामुक्तं जयत्येव हि सिद्धसंघैः ॥ ९ ॥ भेरुंडजानाभिनयप्रवृत्ते मेदोवसामांससुपूयमध्ये ॥
क्रव्यादसंघातसमाकुले तु भयंकरे शोणितकर्दमे तु ॥ १० ॥ भग्नैस्तु दैत्यैर्भगवान् पिनाकी व्रतं महापाशुपतं सुघोरम् ॥ प्रिये मया
यत्कृतपूर्वमासीद्दाक्षायणीं प्राह सुसांत्वयित्वा ॥ ११ ॥ शिव उवाच ॥ तस्माद्धलं यन्मम तत्प्रणष्टं मर्त्यैरमर्त्यस्य यतः प्रपातः ॥
पुण्यक्षयाही ग्रह एव जातो दिवानिशं देवि तव प्रसंगात् ॥ १२ ॥

वृत्रादिकोंने भी महायुद्ध किया ॥ ८ ॥ चारोंओरसे युद्ध करतेहुए उनको वीरने जीत लिया, और कितनोंको मारकर खंड २ कर डाला, जब थोडेसे दैत्य रहे तब सिद्धगण जय २ कार करने लगे ॥ ९ ॥ उस मेदा (चर्वी), मांस, पीके मध्यमें गीदड आनन्द करने लगे, और उस रुधिरकी कीचमें गृध्रगण अपना उत्सव करने लगे ॥ १० ॥ दैत्योंका नाश करके भगवान् शिवने अपना घोर पाशुपत व्रत पूर्ण किया. और अपनी प्रिया दाक्षायणीको शान्त करके यह कहा हे प्रिये ! मैंने जो पहले प्रतिज्ञाकी सो व्रत पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! जो मर्त्यधर्मवालोंसे मृत्युरहितोंका समागम हुआ है;

इससे मेरा बल नष्ट हुआ, हे देवि ! रात दिन तुम्हारे प्रसंगसे पुण्यके क्षय करनेवाला यह दिन हुआ ॥ १२ ॥ हे सुन्दरि ! मैं वनमें गमन कर दिव्य, परमअद्भुत अतिभयंकर वरको प्राप्त कर निर्भय, शोक रहित हो जाऊं, इस कारण घोर पाशुपत व्रत करताहूं ॥ १३ ॥ सनत्कुमार बोले इस प्रकार कहकर उग्र और दीप्तिमान् महात्मा शंकरने अपना शब्द करके, पवित्र घोर वनमें जाकर पाशुपत व्रतका प्रारंभ किया ॥ १४ ॥ जो व्रत, सहस्रोंवर्षतक, देवता तथा दानव भी करनेमें समर्थ नहीं होते, ऐसा व्रत करने लगे, शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करनेवाली पार्वती मन्द राचलपर्वतपर स्थित हुई ॥ १५ ॥ पतिव्रता

उत्पाद्य दिव्यं परमाद्भुतं तु पुनर्वरं घोरतरं च गत्वा ॥ तस्माद्व्रतं घोरतरं चरामि सुनिर्भयः सुन्दरि वै विशोका ॥ १३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतावदुक्त्वा वचनं महात्मा उत्पाद्य घोषं शनकैश्चकार ॥ स तत्र गत्वा व्रतमुग्रदीप्तो गतो वनं पुण्यतमं सुघोरम् ॥ १४ ॥ चर्तुं हि शक्यं तु सुरासुरैर्यन्न तादृशं वर्षसहस्रमात्रम् ॥ सा पार्वती मंदरपर्वतस्था प्रतीक्ष्यमाणागमनं भवस्य ॥ १५ ॥ पतिव्रता शीलगुणोपपन्ना एकाकिनी नित्यमथो विभीता ॥ गुहांतरे दुःखपरा बभूव संरक्षिता सा सुतवीरकेण ॥ १६ ॥ ततस्सदैत्यो वरदानमत्तस्तैर्योधमुख्यैस्सहितो गुहां ताम् ॥ विभिन्नधैर्यः पुनराजगाम शिलीमुखैर्मारसमुद्भवैश्च ॥ १७ ॥ अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं हित्वा तदा भोजनपाननिद्राः ॥ रात्रिंदिवं पंचशतानि पंच क्रुद्धस्ससैन्यैस्सह वीरकेण ॥ १८ ॥ खड्गैस्सकुंतैस्सह भिंदिपालैर्गदाभुशुंडीभिरथो प्रकांडैः ॥ शिलीमुखैरर्द्धशशीभिरुग्रैर्वितस्तिभिः कूर्ममुखैर्ज्वलद्भिः ॥ १९ ॥

अच्छे स्वभाव और गुणोंवाली, अकेली वह पार्वती गुहाके भीतर, अतिदुःखी हुई, उस समय भगवतीकी वीरक पुत्र रक्षा करता था ॥ १६ ॥ उस समय वह दैत्य, वरदानमें उन्मत्त हुआ, धैर्यको छोड उन प्रह्लाद आदि मुख्य योधाओंके सहित पवनसे प्रेरणा कियेहुए भौंरोंके समान कामदेवके बाणोंसे ताडितहो उस गुफामें आया ॥ १७ ॥ और सेनाके सहित क्रोधितहुए उस दैत्यने भोजन पान निद्राको त्याग पांचसौ पांच रातदिन उस वीरकके साथ युद्ध किया॥ ॥ १८ ॥ खड्ग, बरछे, भिन्दिपाल, गदा, भुशुण्डी आदि तथा तीक्ष्ण प्रकाशमान बाणों तथा आधे चन्द्रमाके समान मुखवाले हाथभर प्रमाणवाले कूर्म

(कछुए) के समान मुखवाले ॥ १९ ॥ मुख्य बाणोंसे तथा तीक्ष्ण त्रिशूलोंसे परशु तोमर मुद्गरों खड्गोंसे गुडों (हस्तिसन्नाह) पर्वत वृक्षों तथा दिव्य अस्त्रोंसे अनेकदैत्योंने युद्ध किया ॥ २० ॥ गुफाके द्वारपर, दैत्योंमें प्रहार कियेहुए उन शस्त्रोंसे भेदित शरीर होकर कोई भूमिमें गिरे, कोई मूर्च्छित हुये, इससे गुफाका सम्पूर्ण द्वार घिर गया और पीछे वीरक भी मूर्च्छित होगया ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण दैत्यों तथा उनके शस्त्रोंसे चारोंओरसे घिरेहुए उनके बीचमेंसे निकलनेको असमर्थ हुए वीरक तथा भयंकर दैत्योंको देखा ॥ २२ ॥ पार्वतीने सखियोंके सहित भयसे गुफ़ाके मध्यमें स्थित हो, ब्रह्मा, विष्णु, और अपने

नाराचमुख्यैर्निशितैश्च शूलैः परश्वधैस्तोमरमुद्गरैश्च ॥ खड्गैर्गुडैः पर्वतपादपैश्चदिव्यैरथास्त्रैरपि दैत्यसंघैः ॥ २० ॥ न दीधितिर्भिन्नतनुः पपात द्वारं गुहाया पिहितं समस्तम् ॥ तैरायुधैर्दैत्यभुजप्रयुक्तैर्गुहामुखे मूर्छित एव पश्चात् ॥ २१ ॥ आच्छादितं वीरकमस्त्रजालैर्दैत्यैश्च सर्वैस्तु मुहूर्तमात्रम् ॥ अपावृतं कर्तुमशक्यमासीन्निरीक्ष्य देवी दितिजान् सुघोरान् ॥ २२ ॥ भयेन सस्मार पितामहंतु देवी सखीभिस्सहिता च विष्णुम् ॥ सैन्यं च मद्वीरवरस्य सर्वं सस्मारयामास गुहांतरस्था ॥ २३ ॥ ब्रह्मा तया संस्मृतमात्र एव स्त्रीरूपधारी भगवांश्च विष्णुः ॥ इन्द्रश्च सर्वैः सह सैन्यकैश्च स्त्रीरूपमास्थाय समागतास्ते ॥ २४ ॥ भूत्वा स्त्रियस्ते विविशुस्तदानीं मुनीन्द्रसंघाश्च महानुभावाः ॥ सिद्धाश्च नागास्त्वथ गुह्यकाश्च गुहांतरं पर्वतराजपुत्र्याः ॥ २५ ॥ यस्मात्सुराज्यासनसंस्थितानामंतःपुरे संगमनं विरुद्धम् ॥ ततस्सहस्राणि नितंबिनीनामनंतसंख्यान्यपि दर्शयंत्यः ॥ २६ ॥ रूपाणि दिव्यानि महाद्भुतानि गौर्यै गुहायां तु सवीरकार्यैः ॥ स्त्रियः प्रहृष्टा गिरिराजकन्या गुहांतरं पर्वतराजपुत्र्या ॥ २७ ॥

बलवान् वीरगणोंकी सेनाको स्मरण किया ॥ २३ ॥ उस समय पार्वतीके स्मरण करतेही ब्रह्माजी, भगवान् विष्णु, इन्द्रादि देवताओंकी सेना सहित स्त्रियोंका स्वरूप धारण करके आगये ॥ २४ ॥ बडे प्रतापवाले मुनिगण, सिद्ध, नाग, गुह्यक, आदि सम्पूर्ण स्त्रियोंका रूप धारण कर गुहाके भीतर प्रवेश कर पार्वतीके समीप पहुंचे ॥ २५ ॥ कारण कि श्रेष्ठराज्योंके आसनोंपर बैठेहुए राजाओंके अन्तःपुर (खवास) में जाना विरुद्ध है, इससे स्त्रियोंके अनेकसमूह बनकर वे सब आगये ॥ २६ ॥ वे स्त्रियां वीरके कार्य करनेवाली पार्वतीके निमित्त सुन्दर अद्भुतरूपोंको धारे गुफामें अतिप्रसन्न हुईं ॥ २७ ॥

तब पार्वतीजीने अनेक स्त्रियोंके सहित संग्राममें विजय देनेवाले, प्रलयकालके मेघके समान घोर शब्द करनेवाले बाजे, शंख,आदि बजाये ॥२८॥ उसी समय
प्रचंड बलवाले वीरककी मूर्च्छा छूटी,तत्काल उसने आगे स्थित हो महारथोंके शस्त्रोंको ग्रहण करके उनहीं शस्त्रोंसे उन दैत्योंको मारा॥२९॥तब दंड हाथमें
लिये, तथा क्रोधसे व्याप्तचित्त गौरी,शंख,गदा,चक्र, धनुष धारे तथा बाहुदंडसे पूर्णहुई नारायणी ॥३०॥ लांगलदंड हाथमें लिये, सुवर्णके समान वर्णवाली
व्योमालका, बडे वेगके सहित, सहस्रों धाराओंको अवलम्बन कर, वज्र हाथमें लिये इन्द्राणी ॥३१॥ युद्धमें निश्चल होनेवाली, सहस्रनेत्रा, सैंकडों दैत्योंसे

स्त्रीभिस्सहस्रैश्च शतैरनेकैर्नेदुश्च कल्पांतरमेघघोषाः ॥ भेर्य्यश्च संग्रामजयप्रदास्तु ध्मातास्सुशंखाः सुनितम्बिनीभिः ॥ २८ ॥ मूर्छां
विहायाद्भुतचंडवीर्यस्स वीरको वै पुरतः स्थितस्तु ॥ प्रगृह्य शस्त्राणि महारथानां तैरेव शस्त्रैर्दितिजं जघान ॥ २९ ॥ ब्राह्मी ततो दंड-
करा विरुद्धा गौरी तदा क्रोधपरीतचेताः ॥ नारायणी शंखगदासुचक्रधनुर्द्धरा पूरितबाहुदंडा ॥ ३० ॥ विनिर्ययौ लांगलदण्डहस्ता
व्योमालका कांचनतुल्यवर्णा ॥ धारासहस्राकुलमुग्रवेगं बैडौजसी वज्रकरा तदानीम् ॥ ३१ ॥ सहस्रनेत्रा युधि सुस्थिरा च सुदुर्जया
दैत्यशतैरधृष्या ॥ वैश्वानरी शक्तिरसौम्यवक्त्रा याम्या च दंडोद्यतपाणिरुग्रा ॥ ३२ ॥ सुतीक्ष्णखड्गोद्यतपाणिरूपा समाययौ नैर्ऋति
घोरचापा ॥ तोयालिका वारणपाशहस्ता विनिर्गता युद्धमभीप्समाना ॥ ३३ ॥ प्रचंडवातप्रभवा च देवी क्षुधावपुस्त्वंकुशपाणि
रेव ॥ कल्पान्तवह्निप्रतिमां गदां च पाणौ गृहीत्वा धनदोद्भवा च ॥ ३४ ॥ याक्षेश्वरी तीक्ष्णमुखा विरूपा नखायुधा नागभयंकरी
च ॥ एतास्तथान्याश्शतशो हि देव्यः सुनिर्गताः संकुलयुद्धभूमिम् ॥ ३५ ॥

परास्त न होनेवाली, अप्रगल्भ वैश्वानरी, क्रूर मुखवाली शक्ति हाथमें दंड उठाये उग्र याम्या देवी ॥ ३२ ॥ तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिये घोर धनुषवाली नैर्ऋति
देवी आई, वारुणपाशको हाथमें लिये तोयालिका देवी युद्ध करनेकी इच्छासे प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ प्रचंड पवन देवताकी स्त्री देवी भी कुशा हाथमें लिये
भूँखसे व्याकुल हुए शरीरको धारण कर आई, कुबेरसे उत्पन्नहुई देवी भी हाथमें प्रलयकालकी अग्निके समान गदाको धारे आई ॥ ३४ ॥ तीक्ष्ण मुखवाली

याक्षेश्वरी तथा कुरूपा नखास्त्र धारिणी, नागभयंकरी, इत्यादि देवियें तथा और भी सैंकडों देवियाँ, भयंकर संग्राम भूमिमें प्राप्तहुईं ॥ ३५॥ वे अद्भुत वर्णवाली
अति विस्मित भयसे व्याकुल और चकित हुई उस दैत्यकी अपारसेनाको देख हृदयमें दुःखी (साहसहीन) होगईं ॥ ३६ ॥ तब विधाताकी मुख्य शक्तिने
सम्पूर्ण देवताओंकी स्त्रियोंकें मनको सावधान कर पार्वतीकी सम्मतिसे अतिपराक्रमी वीरकको सेनापति बनाया ॥ ३७ ॥ तब वे वरदानसे बलीहुए मुख्य
दैत्य बुद्धिको स्थिरकर, आज या तो जय या मृत्यु होगी ऐसा विचार कर अपूर्वयुद्ध करने लगे, और स्त्रियोंके मध्यमें कूदे ॥ ३८ ॥ उस संग्रामभूमिमें

दृष्ट्वा च तत्सैन्यमनंतपारं विवर्णवर्णाश्च सुविस्मिताश्च ॥ समाकुलास्संचकिता भयाद्वै देव्यो बभूवुर्हृदंदीनसत्त्वाः ॥ ३६ ॥ चक्रुस्स
माधाय मनस्समस्तास्ता देववध्वो विधिशक्तिमुख्याः ॥ सुसंमतत्वेन गिरीशपुत्र्याः सेनापतिर्वीरसुघोरवीर्यः ॥ ३७ ॥ चक्रुर्महायुद्धम
भूतपूर्वं निधाय बुद्धौ दितिजाः प्रधानाः ॥ निवर्तनं मृत्युमथात्मनश्च नारीभिरन्ये वरदानसत्त्वाः ॥ ३८ ॥ अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं
गौरी तदानीं सहिता सखीभिः ॥ कृत्वा रणे चाद्भुतबुद्धिशौण्डं सेनापतिं वीरकघोरवीर्यम् ॥ ३९ ॥ हिरण्यनेत्रात्मज एव भूपश्चक्रे
महाव्यूहमरं सुकर्मा ॥ संभाव्य विष्णुं च निरीक्ष्य याम्यां सुदारुणं तद्गिलनामधेयम् ॥ ४० ॥ मुखं करालं विधिसेवयास्य तस्मिन्
कृते भगवानाजगाम ॥ कल्पान्तघोरार्कसहस्रकांतिकीर्णश्च वै कुपितः कृत्तिवासाः ॥ ४१ ॥ गते ततो वर्षसहस्रमात्रे तमागतं
प्रेक्ष्य महेश्वरं च ॥ चक्रुर्महायुद्धमतीवमात्रं नार्यः प्रहृष्टास्सह वीरकेण ॥ ४२ ॥

पार्वतीने अद्भुतवीर्यवाले घोर पराक्रमी वीरकको सेनापति बनाके अपनी सखियोंके सहित अच्छी प्रकार युद्ध किया ॥ ३९ ॥ अतिपराक्रमी हिरण्याक्षपुत्र
अंधक राजाने भी महाव्यूहकी रचनाकी और विष्णुको देखके दक्षिण दिशाकी ओर बडे पराक्रमी गिलनामवाले दैत्यको नियुक्त किया ॥ ४० ॥ ब्रह्माजीकी
सेवासे इस दैत्यका मुख कराल होगया था. इसीसे उसके मारनेके निमित्त भगवान आये उन प्रलयकालके सहस्रों सूर्योंके समान कान्तिवाले व्याघ्रचर्म
धारीने महाक्रोध किया ॥ ४१ ॥ एक सहस्र वर्षके बीतने पर उन महेश्वरको आयाहुआ देख उन स्त्रियोंने वीरकसहित प्रसन्नहो अतियुद्ध किया ॥ ४२ ॥

उस समय पार्वतीने अपने स्वामीको अति शूरता दिखाय मस्तकसे शिवको प्रणाम कर फिर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध किया तब शिवजीने पार्वतीको ॥ ४३ ॥ हृदयसे लगाकर गुहामें प्रवेश किया तथा उन अनेकस्त्रियोंको विसर्जन किया, पार्वतीजीको अनेकप्रकारके सन्मानोंसे पूजके गुफाके द्वारपै अपने वीरकको स्थापन किया ॥ ४४ ॥ उस समय राजनीतिमें निपुण दैत्यने वहां पार्वती तथा शिवको न देखकर शिवके समीप अपना दूत भेजा ॥४५॥ उस संग्राममें देवताओंके प्रहार किये शस्त्रोंसे जर्जरीभूत (घायल) शरीरहुये दूतने वहां प्रवेशकर मस्तकसे शिवको प्रणामकर उनसे अभिमानके सहित यह कठोर

प्रणम्य गौरी गिरिशं च मूर्ध्ना संदर्शयन् भर्तुरतीव शौर्य्यम् ॥ गौरी प्रयुद्धं च चकार हृष्टा हरस्ततः पर्वतराजपुत्रीम् ॥ ४३ ॥ कंठे गृहीत्वा तु गुहां प्रविष्टो रमासहस्राणि विसर्जितानि ॥ गौरी च सन्मानशतैः प्रपूज्य गुहामुखे वीरकमेव स्थापयन् ॥ ४४ ॥ ततो न गौरीं गिरिशं च दृष्ट्वाऽसुरेश्वरो नीतिविचक्षणो हि ॥ द्रुतं स्वदूतं विधसाख्यमेव स प्रेषयामास शिवोपकंठम् ॥ ४५ ॥ तैस्तैः प्रहारैरपि जर्जरांगस्तस्मिन् रणे देवगणैरितैर्यः ॥ जगाद वाक्यं तु सगर्वमुग्रं प्रविश्य शंभुं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ ४६ ॥ ॥ दूत उवाच ॥ संप्रेषितोहं विविशे गुहां तु ह्येषोऽन्धकस्त्वां समुवाच वाक्यम् ॥ नार्या न कार्यं तव किंचिदस्तिविमुंच नारीं तरुणीं सुरूपाम् ॥ ४७ ॥ प्रायो भवांस्तापसस्तज्जुषस्व क्षांतं मया यत्कमनीयमन्तः ॥ मुनिर्विरोधव्य इति प्रचिंत्य न त्वं मुनिस्तापस किं तु शत्रुः ॥ ४८ ॥ अतीव दैत्येषु महाविरोधी युध्यस्व वेगेन मया प्रमथ्य ॥ नयामि पातालतलानुरूपं यमक्षयं तापस धूर्त्त हि त्वाम् ॥ ४९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतद्वचो दूतमुखान्निशम्य कपालमाली तमुवाच कोपात् ॥ ज्वलन्विषादेन महांस्त्रिनेत्रस्सतां गतिर्दुष्टमदप्रहर्ता ॥ ५० ॥

वचन कहे ॥ ४६ ॥ दूत बोला, अंधक दैत्यसे भेजाहुआ मैं इस गुहामें प्रवेश हुआहूं, अंधकने तुमसे यह कहा है कि तुमको इस स्त्रीसे कुछ कार्य नहीं, इससे सुन्दररूपवाली इस युवति स्त्रीको त्यागन करो ॥ ४७ ॥ तुम विशेष कर तपस्वीहो, इससे अन्तर्यामी परमात्माका भजन करो, मैंने ऐसी इच्छा की है कि मुनिके साथ विरोध करना न चाहिये, तुम तपस्वी नहीं हो किन्तु मेरे शत्रु हो ॥ ४८ ॥ हे धूर्त तपस्वी ! तुम दैत्योंके बडे विरोधी हो मेरे साथ मुँह फेर करके वेगसे युद्ध करो, मैं तुमको पातालकी समान यमराजकी क्षयनगरीको ले चलूंगा ॥ ४९ ॥ सनत्कुमार बोले दूतके मुखसे ऐसे वचन सुन

कपालमालाधारी, तीन नेत्रवाले सत्पुरुषोंके गति दुष्टोंके मदको नाश करनेवाले शिवजी, शोकाग्निसे प्रज्वलित हो बडे क्रोधसे यह बोले ॥ ५० ॥ शिवजी बोले हे उग्र दैत्य ! तेरा अतिकठोर वचन सब जान लिया अब तू शीघ्र जा यह कह कि यदि सामर्थ्य है तो अपने बलसे मेरे साथ तेरा स्वामी बलात्कारसे युद्ध करै ॥ ५१ ॥ जो पुरुष पृथिवीमें असमर्थ होता है उसको धन तथा मनोहर स्त्रियोंसे क्या फल है, बलसे उन्मत्तहुए दैत्य आवैं युद्ध करैं, मैंने ऐसा विचार किया है ॥ ५२ ॥ विना सामर्थ्यवाले मनुष्यकी शरीरयात्राभी नहीं होती, उन्होंने जो जो विचारा हो वह वह करैं, मुझे भी जो कुछ करना है सो

शिव उवाच ॥ व्यक्तं वचस्ते तदतीव चोग्रं प्रोक्तं हि तत्त्वं त्वरितं प्रयाहि ॥ कुरुष्व युद्धं हि मया प्रसह्य यदि प्रशक्तोसि बलेन हि
त्वम् ॥ ५१ ॥ यः स्यादशक्तो भुवि तस्य कोर्थो दारैर्धनैर्वा सुमनोहरैश्च ॥ आयांतु दैत्याश्च बलेन मत्ता विचार्यमेवं तु कृतं मयैतत् ॥
॥५२॥ शरीरयात्रापि कुतस्त्वशक्तेः कुर्वन्तु यद्यद्विहितं तु तेषाम् ॥ ममापि यद्यत्करणीयमस्ति तत्तत्करिष्यामि न संशयोत्र ॥ ५३ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ एतद्वचस्ताद्विधसोपि तस्माच्छ्रुत्वा हरान्निर्गत एव हृष्टः ॥ प्रागात्ततो गर्जितहुंकृतानि कुर्वंस्ततो दैत्यपतेस्सका
शम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे युद्धप्रारंभदूतसंवादवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः
॥ ४५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्येंगितज्ञश्च स दैत्यराजो गदां गृहीत्वा त्वरितस्ससैन्यः ॥ कृत्वाथ साऽग्रे गिलनामधेयं सुदारुणं देवव
रैरभेद्यम् ॥ १ ॥ गुहामुखं प्राप्य महेश्वरस्य बिभेद शस्त्रैरशनिप्रकाशैः ॥ अन्ये ततो वीरकमेव शस्त्रैरवाकिरञ्छैलसुतां तथान्ये ॥ २ ॥

करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, उन शिवजीके कहेहुए पूर्वोक्त वचनोंको सुनके विधस दैत्य प्रसन्न हुआ, और शिवजी उसी समय गर्जते तथा हुंकार करतेहुए उस दैत्यपतिके समीप युद्ध करनेको गये ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० प्रारंभदूतसंवाद वर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार बोले, उस समय शिवजीकी चेष्टाको जाननेवाला वह दैत्यराज गदाको ले सेनासहित शीघ्र युद्ध करनेको चला, और गिलनामवाले बली देवताओंसे अभेद्य दैत्यको आगे करके युद्ध करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ शिवजीकी गुहाके द्वारपर पहुंचके

उसने वज्रके समान शस्त्रोंसे शिवजीको भेदन किया, तथा कितनेकदैत्योंने वीरकके ऊपर तथा कितनेकोंने पार्वतीके ऊपर बाणोंको वर्षाया ॥ २ ॥ किसीने
गुहाके सुन्दर द्वारको तोडा तथा पुष्पोंको और पत्रोंको नष्ट किया, किसीने फल मूलों तथा मनोहर जलको नष्ट किया, और वनके मार्गोंको खंडित
किया ॥ ३ ॥ किसीने प्रसन्न होके पर्वतके प्रकाशमान शिखरोंको तोडडाला, तब त्रिशूलधारी शिवजीने क्रोधित हो अपनी सेनाको बुलाया ॥ ४ ॥
दारुणभूत गणोंको तथा सेनाके सहित विष्णु आदि देवताओंको बुलाया, वे सब स्मरणमात्रसे गणों सहित, सेना, रथ, हाथी, घोडे, बैल, गाय आदिके

द्वारं हि केचिद्रुचिरं बभंजुः पुष्पाणि पत्राणि विनाशयेयुः ॥ फलानि मूलानि जलं च हृद्यमुद्यानमार्गानपि खंडयेयुः ॥ ३ विलोडये
युर्मुदिताश्च केचिच्छृंगाणि शैलस्य च भानुमंति ॥ ततो हरस्संस्मृतवान्स्वसैन्यं समाह्वयन्कुपितः शूलपाणिः ॥ ४ ॥ भूतानि चान्या
नि सुदारुणानि देवान्ससैन्यान्सह विष्णुमुख्यान् ॥ आहूतमात्रानुगणास्ससैन्या रथैर्गजैर्वाजिवृषैश्च गोभिः ॥ ५ ॥ उष्ट्रैः खरैः पक्षि
वरैश्च सिंहैस्ते सर्वदेवाः सहभूतसंघैः ॥ व्याघ्रैर्मृगैस्सूकरसारसैश्च समीनमत्स्यैश्शिशुमारमुख्यैः ॥ ६ ॥ अन्यैश्च नानाविधजीवसंघै
र्विशीर्णदंशाः स्फुटितैस्स्मशानैः ॥ भुजंगमैः प्रेतशतैः पिशाचैर्दिव्यैर्विमानैः कमलाकरैश्च ॥ ७ ॥ नदीनदैः पर्वतवाहनैश्च समागताः
प्रांजलयः प्रणम्य ॥ कपर्दिनं तस्थुरदीनसत्त्वास्सेनापतिं वीरकमेव कृत्वा ॥ ८ ॥ विसर्जयामास रणाय देवान्विश्रांतवाहानथ तत्पि
नाकी ॥ युद्धे स्थिरं लब्धजयं प्रधानं संप्रेषितास्ते तु महेश्वरेण ॥ ९ ॥

सहित ॥ ५ ॥ ऊंट, गधे (खिच्चर), पक्षियोंके सहित भूतगणों समेत, व्याघ्र, मृग, सूकर, सारसों, मत्स्य (मछली), शिशुमार (नाकों), के वाहनों
समेत सम्पूर्ण देवतागण आये ॥६॥ और भी अनेकप्रकारके तीक्ष्ण जीवोंके सहित श्मशानोंसे प्रकाशित, सर्पोंसे तथा सैंकडों प्रेत, पिशाचों और दिव्य विमान
तथा कमलकी खानोंके सहित ॥ ७ ॥ नदी, नाले,पर्वत, वाहनों समेत सब देवता आये, और हाथजोड़ प्रणाम करके शिवके समीप शोकरहितहो स्थितहुये,
तब वीरकको सेनापति करके ॥ ८ ॥ पिनाकी शिवजीने थकित वाहनवाले उन देवताओंको तथा युद्धमें निश्चल विजयपानेवाले प्रधानकोभी भेजा ॥ ९ ॥

उस समय उन सब देवताओंने दैत्यसेनासहित गिलदैत्यके साथ मर्यादारहित प्रलयकालके समान घोरयुद्ध किया तब क्रोधसे उस दैत्यने सब देवताओंको निगल लिया ॥१०॥ उस समय युद्ध करतेहुए ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा आदि समस्तदेवतोंको विधस दैत्यने निगललिया, और अपनी सेनाके निगलजाने पर वह वीरक ॥ ११ ॥ तब संग्रामभूमिको छोड़ उस गुफामें प्रवेशकर शिवको शिर झुकाय प्रणाम कर, वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह वीरक दुःखीहो महादेवसे यह वृत्तान्त कहने लगा ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! विधस दैत्यने आपकी समस्तसेना निगल ली, तथा तीनों लोकोंके गुरु, दैत्योंके नाशकरनेवाले, विष्णुको निगल

चक्रुर्युगांतप्रतिमं च युद्धं मर्य्यादहीनं सगिलेन सर्वे ॥ दैत्येन्द्रसैन्येन सदैव घोरं क्रोधान्निगीर्णास्त्रिदशास्तु संख्ये ॥१०॥ तस्मिन्क्षणे युध्यमानाश्च सर्वे ब्रह्मेन्द्रविष्णवर्कशशांकमुख्याः ॥ आसन्निगीर्णा विधसेन तेन सैन्ये निगीर्णेऽस्ति तु वीरको हि ॥ ११ ॥ विहाय संग्रामशिरोगुहां तां प्रविश्य शर्वं प्रणिपत्य मूद्र्ध्ना ॥ प्रोवाच दुःखाभिहतः स्मरारिं सुवीरको वाग्मिवरोऽथ वृत्तम् ॥ १२ ॥ निगीर्णं ते सैन्यं विधसदितिजेनाद्य भगवन्निगीर्णोऽसौ विष्णुस्त्रिभुवनगुरुर्दैत्यदलनः ॥ निगीर्णौ चन्द्रार्कौ द्रुहिणमघवानौ च वरदौ निगीर्णास्ते सर्वे यमवरुणवाताश्च धनदः ॥ १३ ॥ स्थितोस्म्येकः प्रह्वः किमिह करणीयं भवतु मे अजेयो दैत्येन्द्रः प्रमुदितमना दैत्यसहितः ॥ १४ ॥ अजेयं त्वां प्राप्तः प्रतिभयमना मारुतगतिस्स्वयं विष्णुर्देवः कनककशिपुं कश्यपसुतम् ॥ नखैस्तीक्ष्णैर्भक्त्या तदपि भगवाञ्छिष्टवशगः प्रवृत्तस्त्रैलोक्यं विधमतु मलं व्यात्तवदनः ॥ १५ ॥

लिया, तथा चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, ब्रह्मा, यम, वरुण, पवन, कुबेर सम्पूर्ण देवताओंको निगल लिया ॥ १३ ॥ केवल मैं ही अकेला शेष रहाहूं अब मुझे क्या करना उचितहै, यह दैत्येन्द्र अजेयहै, ऐसा प्रसन्नहो वीरकने कहा ॥ १४ ॥ भयभीतमन हो पवनकी समान वेगगतिसे आप अजेयके समीप प्राप्त हुआहूं, भक्तोंके वशमें हुए भगवान् विष्णुदेवने, कश्यपके पुत्र हिरण्यकशिपुको तीव्रनखोंसे विदीर्णकर मुखफैलाय त्रिलोकीको भक्षण करनेकी इच्छा की थी॥ १५॥

तब भुवनपति, वशिष्ठादि सप्तऋषियोंने उन्हैं शाप दिया कि तुम फिरभी बहुत समयतक दैत्योंके सहित युद्ध करोगे ॥ १६ ॥ उस समय विष्णुने अपने हितकारी अधीनताके वचनोंसे उन ऋषियोंसे कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! ! ! कब इस घोरशापसे मेरा छुटकारा होगा, तब क्रुद्धहुए मुनियोंने कहा कि युद्धके समय विधस दैत्यके हरण करनेसे जब तुम तीव्रबाणों तथा मुष्टियोंसे विदीर्ण करनेसे उसके मुखमें प्रविष्ट होगे ॥ १७ ॥ तब बदरिकाश्रमनामक हरिगृहसे पवित्र नगरीमें अपने आत्माकी स्थितिकर शापरहित हो परमरूपको प्राप्त होगे, तबसे उनके वचन यह दैत्याचार्य गिलन युद्धकी क्षुधासे व्याकुल हो आनन्दमें पूर्ण

वसिष्ठाद्यैश्शप्तो भुवनपतिभिस्सप्तमुनिभिस्तथाभूते भूयस्त्वमिति सुचिरं दैत्यसहितः ॥ १६ ॥ ततस्तेनोक्तास्तेप्रणयवचनैरात्मनि
हितैः कदास्माद्वै घोराद्भवति मम मोक्षो मुनिवराः ॥ यतः क्रुद्धैरुक्तो विधसहरणाद्युद्धसमये ततो घोरैर्बाणैर्विदलितमुखे मुष्टिभिरलम् ॥
॥ १७ ॥ बदर्याख्यारण्ये ननु हरिगृहापुण्यवसतौ निसंस्तभ्यात्मानं विगतकलुषो यास्यसि परम् ॥ ततस्तेषां वाक्यात्प्रतिदिनमसौ
दैत्यगिलनः क्षुधार्तस्संग्रामाद्भ्रमति पुनरामोदमुदितः ॥ १८ ॥ तमस्वेदं घोरं जगदुदितयोस्सूर्यशशिनोर्यथाशुक्रस्तुभ्यं परमरिपुरत्यं
तविकरः ॥ हतान्देवैर्दैत्यान्पुनरमृतविद्यास्तुतिपदैस्सवीर्यान्संहृष्टान्व्रणशतवियुक्तान्प्रकुरुते ॥ १९ ॥ वरं प्राणास्त्याज्यास्तव मम तु
संग्रामसमये भवान्साक्षीभूतः क्षणमपि वृतः कार्यकरणे ॥ २० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इतीदं सत्पुत्रात्प्रमथपतिराकर्ण्य कुपितश्चिरं
ध्यात्वा चक्रे त्रिभुवनपतिः प्रागनुपमम् ॥ प्रगायत्सामाख्यं दिनकरकराकारवपुषा प्रहासात्तन्नाम्ना तदनु निहतं तेन च तमः ॥ २१ ॥

हुआ युद्धस्थलमें भ्रमण करता रहता था ॥ १८ ॥ जैसे जगत्में उदयहुए सूर्य, चन्द्रमाको राहु, केतु व्याकुल करतेहैं उसी प्रकार देवताओंसे मारेहुए पराक्रमी दैत्योंको परमशत्रु शुक्रजी संजीवनीविद्यासे, सैंकड़ों घावोंसे पूरित (रहित) कर जीवित करतेहैं ॥ १९ ॥ संग्रामके समयमें तुम्हैं और मुझे प्राणत्यागन करने योग्यहैं, साक्षीभूतहुए आप क्षणभरको इस कार्य करनेमें तत्परहो ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी बोले प्रमथपतिने इस प्रकार वीरकके वचनसुन बड़ा क्रोधकिया, और उन त्रिभुवनपतिने चिरकालतक विचारकर सामवेदका उत्तम गान किया । फिर सूर्यके समान प्रकाशित शरीरसे हास्य किया तब उस अट्टहाससे समस्त

अंधकार दूर होगया ॥ २१ ॥ तब उस वीरकमुनिने प्रकाश होनेसे संग्रामके बीचमें विकृतमुखवाले दैत्योंके साथ फिरभी बड़ा युद्धकिया शिलोञ्छचूर्णको भोजन करके जिसे श्रेष्ठमुनिने उत्पन्न किया, तथा पहले जिसने पुरकोभी जीता था, फिर वह वीरक संग्राम करनेलगा ॥ २२ ॥ उसी समय उस दैत्यने महारुद्र तीक्ष्णबाण, त्रिशूल, खड्गधारी, योधाओंमें मुख्य, सैंकड़ों मुनियोंमें श्रेष्ठ, सब विद्याओंके भंडार, शम, दम, महाधैर्य धारणकरनेवाले नन्दीकोभी निगल लिया ॥ २३ ॥ तब कपर्दी भगवान् सदाशिवने यह देखकर वृषभपर चढ़कर युद्धकी इच्छा की और विधसदैत्यके सन्मुख स्थितहो निगलेहुओंके उगलनेके

प्रकाशेऽस्मिँल्लोके पुनरपि महायुद्धमकरोद्रणे दैत्यैस्सार्द्धं विकृतवदनैर्वीरकमुनिः ॥ शिलाचूर्णं भुक्त्वा प्रवरमुनिना यस्तु जनितस्स कृत्वा
संग्रामं पुरमपि पुरा यश्च जितवान् ॥२२॥ महारुद्रस्सद्यः स खलु दितिजेनातिगिलितस्ततश्चासौ नन्दी निशितशरशूलासिसहितः ॥
प्रधानो योधानां मुनिवरशतानामपि महान्निवासो विद्यानां शमदममहाधैर्यसहितः ॥२३॥ निरीक्ष्यैवं पश्चाद्वृषभवरमारुह्य भगवान्कपर्दी
युद्धार्थी विधसदितिजं सम्मुखमुखः॥जपन्दिव्यं मन्त्रं निगलनविधानोद्गिलनकं स्थितस्सज्जं कृत्वा धनुरशनिकल्पानपिशरान् ॥ २४ ॥
ततो निष्क्रांतोऽसौ विधसवदनाद्वीरकमुनिर्गृहीत्वा तत्सर्वं स्वबलमतुलं विष्णुसहितः ॥ समुद्गीर्णास्सर्वे कमलजबलारीन्दुदिनपाः प्रहृष्टं
तत्सैन्यं पुनरपि महायुद्धमकरोत् ॥ २५ ॥ जिते तस्मिञ्छुक्रस्तदनु दितिजान्युद्धविहतान् यदा विद्यावीर्यात्पुनरपि सजीवान्प्रकुरुते ॥
तदा बद्ध्वानीतः पशुरिव गणैर्भूतपतये निगीर्णस्तेनासौ त्रिपुररिपुणा दानवगुरुः ॥ २६ ॥ विनष्टे शुक्राख्ये सुररिपुनिवासस्तदखिलो
जितो ध्वस्तो भग्नो भृशमपि सुरैश्चापि दलितम् ॥ प्रभूतैर्भूतौघैर्दितिजकुणपग्रासरसिकैस्सरुण्डैर्नृत्यद्भिर्निशितशरशक्त्युद्धृतकरैः ॥२७॥

विधानवाले दिव्यमंत्रको जपतेहुए वज्रकी समान तीव्रबाणों और प्रत्यंचासहित धनुषको तैयार किया ॥ २४ ॥ तब उस विधसनामक दैत्यके मुंखसे वह वीरकमुनि अपने अतुलबलको ग्रहणकर विष्णुके सहित ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य आदि सब देवता निकले इससे सब सेना अतिप्रसन्नहो फिरभी बड़े युद्धको करने लगी ॥ २५ ॥ शत्रुके जीतनेपर, शुक्राचार्यजी युद्धमें मारेहुए दैत्योंको अपनी संजीवनीविद्याके बलसे फिरभी जीवित करनेलगे, तभी गणोंने उनको बांधकर शिवके समीप उपस्थित किया, तब उन त्रिपुर महादेवने उस दैत्यके गुरु शुक्रको निगल लिया ॥ २६ ॥ उस समय शुक्रके नष्टहोनेपर वह सब

दैत्योंका समुदाय हारकर जीर्ण शीर्ण होगया, तब देवतोंने उन्हैं बहुत व्याकुल किया दैत्योंके शरीरोंको भक्षण करनेवाले अनेकोंभूतोंसे व्याप्तहो रणभूमिमें तीक्ष्णबाण शक्ति आदिसे हाथ शिर कटे रुण्ड नाचने लगे ॥ २७ ॥ प्रमत्तहुए वेताल, अतिदृढ हाथ मुखवाले पक्षियों तथा शवों (मुर्दों) के मांसके ग्रासोंसे पूर्ण मुखवाले भेडिये आदि अनेकजीवोंसे संग्रामके व्याप्त होनेपर वह हिरण्यकशिपुके वंशमें उत्पन्न हुआ दैत्य, बहुत समयतक युद्ध करके विष्णु, शिव, महेन्द्रसे हारगया ॥ २८ ॥ जिस समय पराजित होकर वह दैत्य पर्वत समुद्र और पातालके रंध्रोंमें प्रवेश कर गये, और दैत्यश्रेष्ठ अंधककी सब सेना क्षीण होगई, और देवताओंने महाक्रोधकर उन दैत्योंका नाश किया, और घोर गदा घातोंसे हरिने उस दैत्यका मद चूर्ण करदिया ॥२९॥ पर तो भी उस दैत्यने

प्रमत्तैर्वेतालैस्सुदृढकरतुंडैरपि खगैर्वृकैर्नानाभेदैश्शवकुणपपूर्णास्यकवलैः ॥ विकीर्णे संग्रामे कनककशिपोर्वंशजनकश्चिरं युद्धं कृत्वा
हरिहरमहेन्द्रैश्च विजितः ॥ २८ ॥ प्रविष्टे पाताले गिरिजलधिरंध्राण्यपि तथा ततस्सैन्ये क्षीणे दितिजवृषभश्चांधकवरः ॥ प्रकोपे
देवानां कदनदवरो विश्वदलनो गदाघातैर्घोरैर्विदलितमदश्चापि हरिणा ॥ २९ ॥ न वै यस्संग्रामं त्यजति वरलब्धः किल यतस्तदा
ताडैर्घोरैस्त्रिदशपतिना पीडिततनुः ॥ ततश्शस्त्रास्त्रौघैस्तरुगिरिजलैश्चाशु विबुधाञ्जिगायोच्चैर्गर्जन्प्रमथपतिमाहूय शनकैः ॥ ३० ॥
स्थितो युद्धं कुर्वन्रणपतितशस्त्रैर्बहुविधैः परिक्षीणैस्सर्वैस्तदनु गिरिजारुद्रमतुदत् ॥ तथा वृक्षैस्सर्पैरशनिनिवहैः शस्त्रपटलैर्विरूपैर्मायाभिः
कपटरचनाशम्बरशतैः ॥३१ ॥ विजेतुं शैलेशं कुहकमपरं तत्र कृतवान्महासत्त्वो वीरस्त्रिपुररिपुतुल्यश्च मतिमान् ॥ न वध्यो देवानां
वरशतमनोन्मादविवशः प्रभूतैश्शस्त्रास्त्रैस्सपदि दितिजो जर्जरतनुः ॥ ३२ ॥

संग्राम त्यागन नहीं किया, तब इन्द्रने घोर अस्त्रोंसे उसको पीडित किया, तब उसने बडे २ शस्त्रों तथा वृक्ष पर्वत जलोंके प्रहारसे देवताओंको जीतनेकी इच्छासे घोर शब्द किया, और प्रमथपतिको शनैः २ बुलाकर ॥ ३० ॥ सैंकडों शस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्धमें खडा रहा, जब वह सब क्षीण होगये, तब गिरिजा और रुद्रको पीडा देने लगा, वृक्ष सर्प शस्त्र और अनेकप्रकारके वज्रकी समान शस्त्रों तथा शम्बरकी सैंकडों माया तथा कपट रचनासे युद्ध करने लगा ॥ ३१ ॥ तब महाबली बुद्धिमान् त्रिपुरकी समान इस वीरने शिवजीके जीतनेके निमित्त एक मायाकी कारण कि सैंकडों वरोंसे और देवताओंसे अवध्य

होनेसे यह उन्मादको प्राप्त होगया था, परन्तु अनेक शस्त्र अस्त्रोंके प्रभावसे इसका शरीर शीघ्रही जर्जर होगया ॥ ३२॥ उस समय उसकी मायासे अन्धकगण संग्रामकी भूमिमें व्याप्त होकर उसकी समान घोर मर्दन करने लगे, तब प्रलयकालकी अग्निकी समान घोर शरीर धारणकर शिवजीने अपने त्रिशूलसे उस दैत्यको बहुत प्रकारसे विदीर्ण कर दिया ॥ ३३ ॥ जब शिवजीको त्रिशूलके प्रहारसे तथा सेनाके आघातसे उसकी देहमेंसे रुधिरका प्रवाह बहने लगा तब उससे भी बहुतसे दैत्य प्रकट होकर युद्ध करने लगे, तब बुद्धिमान् विष्णुजीने योगद्वारा प्रमथपति शंकरको बुलाकर बडा उग्ररूप धारण किया, जिनका मुख

तदीयाद्धिष्यन्दात्क्षितितलगतैरन्धकगणैरतिव्याप्तं घोरं विकृतवदनं स्वात्मसदृशम् ॥ दधत्कल्पांताग्निप्रतिमवपुषा भूतपतिना त्रिशूले
नोद्भिन्नस्त्रिपुरारिपुणा दारुणतरम् ॥ ३३ ॥ यदा सैन्यात्सैन्यं पशुपतिहतादन्यदभवद्व्रणोत्थैरत्युष्णैः पिशितनिसृतैर्बिन्दुभिरलम् ॥
तदा विष्णुर्योगात्प्रमथपतिमाहूय मतिमान् चकारोग्रं रूपं विकृतवदनं स्त्रैणमजितम् ॥ ३४ ॥ करालं संशुष्कं बहुभुजलताक्रांतकुपितो
विनिष्क्रांतः कर्णाद्व्रणशिरसि शंभोश्च भगवान् ॥ ३५ ॥ रणस्था सा देवी चरणयुगलालंकृतमही स्तुता देवैस्सर्वैस्तदनु भगवान् प्रेरि
तमतिः ॥ क्षुधार्ता तत्सैन्यं दितिजनिसृतं तच्च रुधिरं पपौ सात्युष्णं तद्व्रणशिरसि सृक्कर्दममलम् ॥ ३६ ॥ ततस्त्वेको दैत्यस्तदपि
युयुधे शुष्करुधिरस्तलाघातैर्घोरैरशनिसदृशैर्जानुचरणैः ॥ नखैर्वज्राकारैर्मुखभुजशिरोभिश्च गिरिशं स्मरन् क्षात्रं धर्मं स्वकुल
विहितं शाश्वतमजम् ॥ ३७ ॥

बडा विकृत और स्त्रियोंमें मन लगानेवाले जिसको जीत नहीं सकते ॥ ३४ ॥ बडा करालमुख, सूखा आकार बहुतसी भुजारूप लताओंसे व्याप्त वह भगवान गणोंके अधिपति शिवजीके कर्णसे प्रगट हुए ॥ ३५ ॥ वह देवीरूपा रणमें स्थितहो अपने चरणोंसे भूमिको शोभायमान करनेलगी देवता स्तुति करने लगे फिर शंकरसे प्रेरित होकर क्षुधासे व्याकुल हुई वह दैत्यपतिकी सेनाका निकला हुआ रुधिर उस रणभूमिमें पानकरने लगी, जहां मांसकी कीच होगई थी ॥ ॥ ३६ ॥ तब रुधिरके सूखजानेसे एकमात्र वह दैत्य शेष रहगया, तब वह वज्रकी समान तलोंके जानुचरणोंके तथा वज्रकी समान नखोंके तथा मुख भुजा

और शिरके आघातोंसे प्रहार करताहुआ अपने कुलका सनातन क्षात्रधर्म स्मरण करताहुआ शंकरपर प्रहार करनेलगा ॥ ३७॥ तब शिवजीने क्रोधकर अपने त्रिशूलसे उसको हृदयमें छेदनकर ऊपरको उठाय स्थाणुकी समान आकाशमें धारण करलिया, यह होतेही युद्ध शांत होगया, तब सूर्यकी किरणोंसे उसकी काया सूखनेलगी और शरीर जर्जर होगया, और पवनसे प्रेरित जल वर्षानेवाले मेघभी उसके शरीरको जलोंसे पीडित करनेलगे ॥ ३८ ॥ एकओर सूर्यकी किरणैं उसको पीडित करतीथीं, एकओरसे हिमखण्ड उसको विदीर्ण करतेथे, तथापि उस दैत्यश्रेष्ठके प्राण नहीं निकले, तब करुणासागर परमदयालु शंकरने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो उसको अपना गणपतिपद प्रदानकिया ॥ ३९ ॥ तब युद्ध समाप्त होजानेपर वे भुवनोंके पति हरि तथा ब्रह्माको आदि लेकर सब देवता शंकरकी विधिपूर्वक पूजा करके प्रेमसे मस्तक झुकाय अनेकप्रकारके मनोहर स्तोत्रों तथा सारगर्भित स्तुतियोंसे शंकरको प्रसन्नकर परमप्रेमसे जय जय उच्चारण करनेलगे ॥ ४० ॥ और भगवान् भूतपति अनेकप्रकारकी सामग्रीद्वारा उनसे पूजित होकर और उनको सत्कारके सहित बिदा करके उस पर्वतकी गुहामें पार्वतीके साथ प्रसन्न होकर प्रेमसे क्रीडा करनेलगे और घोर विधसके मुखसे अपने पापरहित वीरकपुत्रके निकलनेसे बडे प्रसन्नहुए, और अपना अंश वहां स्थापनकर शंकरने पार्वती सहित परमप्रसन्नता लाभ की ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वि० रु०पं० युद्धखण्डे अंधकवधोपाख्याने अंधकयुद्धवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

रणे शांतः पश्चात्प्रमथपतिना भिन्नहृदयस्त्रिशूले संप्रोतो नभसि विधृतस्स्थाणुसदृशः ॥ अधः कायश्शुष्कस्तपनकिरणैर्जीर्णतनुमा
ञ्जलासारैर्मेघैः पवनसहितैः क्लेदितवपुः ॥ ३८ ॥ विशीर्णस्तिग्मांशोस्तुहिनशकलाकारशकलस्तथाभूतः प्राणांस्तदपि न जहौ दैत्य
वृषभः ॥ तदा तुष्टश्शंभुः परमकरुणावारिधिरसौ ददौ तस्मै प्रीत्या गणपतिपदं तेन विनुतः ॥ ३९ ॥ ततो युद्धस्यांते भुवनपतयस्सार्थ
रमणैस्तवैर्नानाभेदैः प्रमथपतिमभ्यर्च्य विधिवत् ॥ हरिब्रह्माद्यास्ते परमनुतिभिस्तुष्टुवुरलं नतस्कंधाः प्रीता जयजय गिरं प्रोच्य
सुखिताः ॥ ४० ॥ हरस्तैस्तैस्सार्द्धं गिरिवरगुहायां प्रमुदितो विसृज्यैकानंशान् विविधबलिना पूज्यसुनगान् ॥ चकाराज्ञां क्रीडां गिरवर
सुतां प्राप्य मुदितां तथा पुत्रं घोराद्विधसवदनान्मुक्तमनघम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखण्डे
अन्धकवधोपाख्याने अन्धकयुद्धवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यासजी बोले उस बडे लोमहर्षण संग्राममें शिवजीने दैत्योंके आचार्य विद्वान् शुक्रको भक्षण करलिया ॥ १ ॥ यह मैंने संक्षेपसे सब सुना, अब फिर
विस्तारसे कहो कि शिवजीके पेटमें स्थितहुए महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया ॥ २ ॥ और शिवजीकी उदराग्निने उन शुक्रको क्यों नहीं भस्म किया,
और प्रलयाग्निके समान प्रदीप्त कालके समान तेजस्वी शुक्रजी ॥ ३ ॥ हे बुद्धिमन् ! शिवजीके उदरपिंजरसे वह किसप्रकार निकले, और उन्होंने कितने
समयतक किसप्रकार उनकी आराधना की॥ ४ ॥ फिर उसनें मृत्युकी शान्त करनेवाली परमविद्याको कैसे प्राप्त किया हेतात ! वह कौनसी विद्याहै जिससे मृत्युका

व्यास उवाच ॥ तस्मिन्महति संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे ॥ शुक्रो दैत्यपतिर्विद्वान्भक्षितस्त्रिपुरारिणा ॥ १ ॥ इति श्रुतं समासान्मे तत्पु
नर्ब्रूहि विस्तरात् ॥ किं चकार महायोगी जठरस्थः पिनाकिनः ॥ २ ॥ न ददाह कथं शंभोश्शुक्रं तं जठरानलः ॥ कल्पान्तदहनः
कालो दीप्ततेजाश्च भार्गवः ॥ ३ ॥ विनिष्क्रांतः कथं धीमाञ्छंभोर्जठरपंजरात् ॥ कथमाराधयामास कियत्कालं स भार्गवः ॥ ४ ॥
अथ च लब्धवान्विद्यां तां मृत्युशमनीं पराम् ॥ का सा विद्या परा तात यया मृत्युर्हि वार्यते ॥ ५ ॥ लेभेन्धको गाणपत्यं कथं शूला
द्विनिर्गतः ॥ देवदेवस्य वै शंभोर्मुनेर्लीलाविहारिणः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वमशेषेण महाधीमन् कृपां कुरु ॥ शिवलीलामृतं तात शृण्वतः
कथयस्व मे ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा व्यासस्यामिततेजसः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ ८ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे शिवलीलामृतं परम् ॥ धन्यस्त्वं शैवमुख्योसि ममानन्दकरः स्वतः ॥ ९ ॥ प्रवर्तमाने
समरे शंकरांधकयोस्तयोः ॥ अनिर्भेद्यपविव्यूहगिरिव्यूहाधिनाथयोः ॥ १० ॥

निवारण होताहै ॥ ५ ॥ और देवोंके देव, मुनिलीला करनेवाले, शिवजीके त्रिशूलसे नष्टहोकर अंधकदैत्यने किसप्रकार गणपतिकी पदवी पाई ॥ ६ ॥
हे धीमन् ! हे तात ! यह सब मेरे ऊपर कृपाकरके शिवजीकी लीलारूपी अमृतभरे इतिहासको मुझसे वर्णनकरो ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले, अतितेजस्वी
उन व्यासजीका ऐसा वचन सुनकर सनत्कुमारने शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके उनसे कहा ॥८॥ सनत्कुमारजी बोले हे व्यासजी ! हे महाबुद्धे !
शिवजीके अमृतरूपी चरित्रको सुनो, तुम धन्यहो तथा शैवोंमें मुख्यहो, मेरे आनन्दके करनेवाले हो ॥ ९ ॥ विनाभेदन करने योग्य, दैत्योंके व्यूहके स्वामी

अंधक, और देवताओंकी सेनाके अध्यक्ष शिवजीके परस्पर युद्ध होनेपर ॥ १० ॥ हे मुने ! पहले तो अतिबलवान् दैत्योंकी विजयहुई, फिर पीछेसे शिवजीके
प्रभावसे देक्ताओंकी विजय हुई ॥ ११ ॥ यह सुनकर अंधकासुर महादैत्य दुःखीहो इसप्रकार विचार करने लगा कि मेरी विजय किसप्रकार होगी ॥ १२ ॥
तब युद्धसे भागके वह अतिबुद्धिमान् अंधकवीर अकेला शुक्रके समीप गया ॥ १३ ॥ वह दैत्य रथसे उतर अपने गुरु शुक्राचार्यको प्रणाम करके नीतिमें
प्रवीणहो हाथजोड विचारके उनसे यह वचन कहने लगा ॥ १४ ॥ अंधक बोला हे भगवन् ! आपको प्राप्त होके हम गुरुभावको धारण करतेहैं और निरन्तर

पुरा जयो बभूवापि दैत्यानां बलशालिनाम् ॥ शिवप्रभावादभवत्प्रमथानां मुने जयः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वासीद्विषण्णो हि महादैत्यों
धकासुरः ॥ कथं स्यान्मे जय इति विचारणपरोऽभवत् ॥ १२ ॥ अपसृत्य ततो युद्धादंधकः परबुद्धिमान् ॥ द्रुतमभ्यगमद्वीर एकल
श्शुक्रसन्निधिम् ॥ १३ ॥ प्रणम्य स्वगुरुं काव्यमवरुह्य रथाच्च सः ॥ बभाषेदं विचार्याथ सांजलिर्नीतिवित्तमः ॥ १४ ॥ ॥ अंधक
उवाच ॥ भगवंस्त्वामुपाश्रित्य गुरोर्भावं वहामहे ॥ पराजिता भवामो नो सर्वदा जयशालिनः ॥ १५ ॥ त्वत्प्रभावात्सदा देवान्समस्ता
न्सानुगान्वयम् ॥ मन्यामहे हरोपेन्द्रमुखानपि हि कत्तृणान् ॥ १६ ॥ अस्मत्तो बिभ्यति सुरास्सदा भवदनुग्रहात् ॥ गजा इव हरि
भ्यश्च तार्क्ष्येभ्य इव पन्नगाः ॥ १७ ॥ अनिर्भेद्यं पविव्यूहं विविशुर्दैत्यदानवाः ॥ प्रमथानीकमखिलं विधूय त्वदनुग्रहात् ॥ १८ ॥
वयं त्वच्छरणा भूत्वा सदा गा इव निश्चलाः ॥ स्थित्वा चरामो निश्शंकमाजावपि हि भार्गव ॥ १९ ॥ रक्षरक्षाभितो विप्र प्रव्रज्य
शरणागतान् ॥ असुराञ्छत्रुभिर्वीरैरर्दितांश्च मृतानपि ॥ २० ॥

विजय पानेवालेभी हम पराजयको प्राप्त हुये ॥ १५ ॥ आपके प्रभावसे हम सदैव विष्णु आदि समस्त देवताओंको भृत्यों सहित तृणके समान तुच्छ मानतेहैं
॥ १६ ॥ आपहीके प्रभावसे सम्पूर्ण देवता हमसे इसप्रकार भय करतेहैं, जैसे सिंहोंसे हाथी और गरुडसे सर्प डरतेहैं ॥ १७ ॥ आपके अनुग्रहहीसे दैत्य
और दानवोंने अनिर्भेद्य,सम्पूर्ण, देवताओंकी सेनाव्यूहको कंपायके उसमें प्रवेश कियाहै॥ १८॥ हे शुक्राचार्यजी ! हम सब आपकी शरणमें आके सदा भूमिके
समान निश्चलहुए संग्राममें फिरते हैं ॥ १९ ॥ हे विप्र ! अपनी शरणमें आयेहुए वीर शत्रुओंसे मरतेहुए समस्त दैत्योंकी चारोंओरसे रक्षा करो ॥२०॥

भयंकर पराक्रमवाले मृत्युको भी नाश करनेवाले देवताओंसे पीडित गिरायेहुए हुंड आदि मेरे शेष गणोंको देखो ॥ २१ ॥ पहले आपने सहस्रों वर्षपर्यंत कणोंके धुएँको पीके जो वरदान तथा विद्या पाई है अब उसका समय आगया है ॥ २२ ॥ हे शुक्राचार्यजी ! अब सब देवता तुम्हारी विद्याके फलको देखेंगे, कृपाकर सम्पूर्ण दैत्योंको जीवित करो ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार उन शुक्राचार्यने अंधक दैत्यके वचन सुन व्याकुल हुए चित्तसे यह विचार किया ॥ २४ ॥ इस समय मुझे क्या करना योग्य है, किस प्रकार मेरा कल्याणहो ? मुझे संजीवनी विद्याका प्रयोग करना किसी प्रकार उचित नहीं

प्रमथैर्भीमविक्रांतैः क्रांतान्मृत्युप्रमाथिभिः ॥ सूदितान्पतितान्पश्य हुंडादीन्मद्गणान्वरान् ॥ २१ ॥ यः पीत्वा कणधूमं वै सहस्रं शरदां पुरा ॥ त्वया प्राप्ता वरा विद्या तस्याः कालोयमागतः ॥ २२ ॥ अद्य विद्याफलं तत्ते सर्वे पश्यंतु भार्गव ॥ प्रमथा असुरान्सर्वान् कृपया जीवयिष्यतः ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्थमन्धकवाक्यं स श्रुत्वा धीरो हि भार्गवः ॥ तदा विचारयामास दूयमानेन चेतसा ॥ २४ ॥ किं कर्तव्यं मयाद्यापि क्षेमं मे स्यात्कथं त्विति ॥ सन्निपातविधिर्जीवः सर्वथानुचितो मम ॥ २५ ॥ विधेयं शंकरात्प्राप्ता तद्गुणान्न प्रति योजये ॥ तद्रणे मर्दितान्वीरैः प्रमथैश्शंकरानुगैः ॥ २६ ॥ शरणागतधर्मोथ प्रवरस्सर्वतो हृदा ॥ विचार्य शुक्रेण धिया तद्वाणी स्वीकृता तदा ॥ २७ ॥ किंचित्स्मितं तदा कृत्वा सोऽब्रवीद्दानवाधिपम् ॥ भार्गवश्शिवपादाब्जं स्मृत्वा स्वस्थेन चेतसा ॥ २८ ॥ ॥ शुक्र उवाच ॥ यत्त्वया भाषितं तात तत्सर्वं तथ्यमेव हि ॥ एतद्विद्योपार्जनं हि दानवार्थं कृतं मया ॥ २९ ॥ दुस्सहं कणधूमं वै पीत्वा वर्षसहस्रकम् ॥ विद्येयमीश्वरात्प्राप्ता बंधूनां सुखदा सदा ॥ ३० ॥

है ॥ २५ ॥ क्योंकि वह विद्या शंकरसे प्राप्त की है, उनहींके गुणोंमें इसे युक्त करना उचित है, शंकरके अनुगामी वीर प्रमथोंसे मारेहुओंके ऊपर प्रयोग करूंगा ॥ २६ ॥ तब सब प्रकार श्रेष्ठ शरणागत धर्मको अपनी बुद्धिसे हृदयमें विचारके शुक्रने उसका वचन स्वीकार किया ॥२७॥ उस समय कुछ हास्य करके वह शुक्राचार्यजी शिवके चरणकमलोंको स्मरण करके स्वस्थ चित्तसे उस दैत्यराजसे बोले ॥ २८ ॥ शुक्रजी बोले हे तात ! जो तुमने कहा सो सब सत्य है मैंने इस सम्पूर्ण विद्याका उपार्जन दैत्योंके लिये ही किया है ॥ २९ ॥ अति कठिन कणोंके धूमको पीके सहस्र वर्षोंमें यह विद्या मैंने शिवजीसे

पाई है, यह सदा भाई बन्धुओंको सुख देनेवाली है ॥३०॥ मैं इस विद्यासे संग्राममें देवताओंसे मारेहुए दैत्योंको ऐसे जीवित करूंगा, जिस प्रकार मलीन हुए धान्योंको मेघ उठाता है ॥ ३१ ॥ तुम थोडे ही समयमें उन अपने दैत्योंको व्रण (घाव) रहित, रोगहीन स्वस्थ हुए, सो के फिर उठे हुएके समान जीवित हुए देखोगे ॥३२॥ सनत्कुमार बोले, ऐसा अंधकसे कहके उन शुक्राचार्यने आदरसे शिवजीको स्मरण करके प्रत्येक दैत्यके जिवानेको संजीवनी विद्याका प्रयोग किया ॥ ३३ ॥ विद्याकी आवृत्तिमात्रसे वे समस्त वीर दैत्य दानव शस्त्र धारे सोतेहुए की समान उठ खडे हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार निरन्तर

प्रमथैर्मथितान्दैत्यान्रणेहं विद्ययानया ॥ उत्थापयिष्ये म्लानानि शस्यानि जलमुग्यथा ॥ ३१ ॥ निर्व्रणान्नीरुजः स्वस्थान्सुप्त्वेव पुनरुत्थितान् ॥ मुहूर्तेस्मिंश्च द्रष्टासि दैत्यांस्तानुत्थितान्निजान् ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा सोंधकं शुक्रो विद्यामावर्तयत्कविः ॥ एकैकं दैत्यमुद्दिश्य स्मृत्वा विद्येशमादरात् ॥ ३३ ॥ विद्यावर्तनमात्रेण ते सर्वे दैत्यदानवाः ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीरास्सुप्ता इव धृतायुधाः ॥ ३४ ॥ सदाभ्यस्ता यथा वेदास्समरे वा यथाम्बुदाः ॥ श्रद्धयार्थास्तथा दत्ता ब्राह्मणेभ्यो यथापदि ॥ ३५ ॥ उज्जीवितांस्तु तान्दृष्ट्वा हुंडादींश्च महासुरान् ॥ विनेदुरसुराःसर्वे जलपूर्णा इवांबुदाः ॥ ३६ ॥ रणोद्यताः पुनश्चासन्गर्जंतो विकटान्रवान् ॥ प्रमथैस्सह निर्भीता महाबलपराक्रमाः ॥ ३७ ॥ शुक्रेणोज्जीवितान्दृष्ट्वा प्रमथा दैत्यदानवान् ॥ विसिष्मिरे ततस्सर्वे नंद्याद्या युद्धदुर्मदाः ॥ ३८ ॥ विज्ञाप्यमेवं कर्मैतद्देवेशे शंकरेऽखिलम् ॥ विचार्य बुद्धिमंतश्च ह्येवं तेऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ ३९ ॥

अभ्यास कियेहुए वेद तथा जिस प्रकार युद्धमें मेघ और जैसे आपत्तिमें ब्राह्मणोंको श्रद्धासे दियाहुआ दान फलवाला होता है ॥ ३५ ॥ उसी प्रकार उन हुंडादि दैत्योंको जीवित हुआ देखके सब असुरोंने जलसे पूर्णहुए मेघोंकी समान शब्द किया ॥ ३६ ॥ फिर गर्जतेहुए विकट शब्दोंको करते हुए महाबली और महापराक्रमी दैत्य निर्भयहो देवतोंके साथ संग्राममें उद्यत हुए ॥ ३७ ॥ उन दैत्य दानवोंको शुक्राचार्यसे जीवितहुए देख युद्धमें अभिमानी नन्दी आदि देवता विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ यह सम्पूर्ण समाचार देवोंके स्वामी शिवजीको सूचित करना चाहिये इस प्रकार उन बुद्धिमानोंने विचारके परस्पर कहा ॥ ३९ ॥

आश्चर्यजनक उन देवताओंके युद्धरूपी यज्ञमें शुक्राचार्यके अद्भुतकर्मको देख क्रोधित हुये शिलादके पुत्र नन्दी शिवके समीप गये ॥ ४० ॥ जय जय हो ऐसा कहकर नन्दी स्वर्णके समान स्वच्छ विजय देनेवाले शिवजीसे बोले, हे देव ! इन्द्र आदि देवताओं सहित, गणेश्वरोंका जो कठिन संग्राम हुआ है ॥ ४१ ॥ हे ईश्वर ! वह हमारा सब कार्य आज शुक्रने निष्फल कर दिया, जो मृतसंजीवनी विद्याका प्रयोग करके विनाही परिश्रम मरेहुए शत्रुओंको जिवा दिया ॥ ४२ ॥ यमराजके मार्गसे फिर लौटेहुए तुहुंड, हुंड, कुंभ, जंभ, विपाक, पाक आदि महादैत्य देवताओंका नाश करतेहुए फिरते

आश्चर्यरूपे प्रमथेश्वराणां तस्मिंस्तथा वर्तति युद्धयज्ञे ॥ अमर्षितो भार्गवकर्म दृष्ट्वा शिलादपुत्रोऽभ्यगमन्महेशम् ॥ ४० ॥ जयेति चोक्त्वा जययोनिमुग्रमुवाच नंदी कनकावदातम् ॥ गणेश्वराणां रणकर्म देव देवैश्च सेन्द्रैरपि दुःष्करं यत् ॥ ४१ ॥ तद्भार्गवेणाद्य कृतं वृथा नस्संजीवतांस्तान्हिमृतान्विपक्षान् ॥ आवर्त्य विद्यां मृतजीवदात्रीमेकैकमुद्दिश्य सहेलमीश ॥ ४२ ॥ तुहुंडहुंडादिककुंभजंभविपाकपाकादिमहासुरेन्द्राः ॥ यमालयादद्य पुनर्निवृत्ता विद्रावयंतः प्रमथांश्चरंति ॥ ४३ ॥ यदि ह्यसौ दैत्यवरान्निरस्तान्संजीवयेदत्र पुनः पुनस्तान् ॥ जयः कुतो नो भविता महेश गणेश्वराणां कुत एव शांतिः ॥ ४४ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्येवमुक्तः प्रमथेश्वरेण स नंदिना वै प्रमथेश्वरेशः ॥ उवाच देवः प्रहसंस्तदानीं तं नंदिनं सर्वगणेशराजम् ॥ ४५ ॥ शिव उवाच ॥ नन्दिन्प्रयाहि त्वरितोऽतिमात्रं द्विजेन्द्रवर्यं दितिनन्दनानाम् ॥ मध्यात्समुद्धृत्य तथानयाशु श्येनो यथा लावकमंडजातम् ॥ ४६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स एवमुक्तो वृषभध्वजेन ननाद नंदी वृषसिंहनादः ॥ जगाम तूर्णं च विगाह्य सेनां यत्राभवद्भार्गववंशदीपः ॥ ४७ ॥

हैं ॥४३॥ हे महेश्वर ! यदि यह शुक्राचार्यजी मरेहुए दैत्योंको बारंबार जीवित करेंगे तो किस प्रकार हमारी विजय होगी, और गणेश्वरोंकी शान्ति कहां ॥ ४४ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार प्रमथेश्वर नन्दीसे कहेहुए वचन सुनकर प्रमथेश्वरश शिव, देवदेव हँसकर उन गणोंके स्वामी नन्दीसे यह वचन बोले ॥ ४५ ॥ शिवजी बोले हे नन्दिन् ! अभी बहुत शीघ्र जाओ और दैत्योंके मध्यमेंसे शुक्राचार्यको इस प्रकार पकडके लाओ जैसे बाज लवा पक्षीको पकडताहै ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, शिवजीके ऐसा कहनेपर वह नन्दी (बैल) सिंहके समान शब्द करने लगे तथा सेनाको तैयार करके

वहां शीघ्र पहुँचे जहाँ शुक्राचार्यजी उपस्थित थे ॥ ४७ ॥ बलवान् नन्दीने पाश, खड्ग, वृक्ष, पाषाण, पर्वत हाथमें लिये सम्पूर्ण दैत्योंसे रक्षित उन शुक्रजीको दैत्योंके बीचमेंसे जिस प्रकार सिंहका बालक हाथीको पकडताहै उस प्रकार हरण किया ॥ ४८ ॥ वस्त्रोंसे शून्य नष्ट आभूषणवाले बिखरे हुए बालों सहित बली नन्दीसे पकडेहुए शुक्रको छुडानेके निमित्त राक्षसोंने बडा सिंहनाद किया ॥ ४९ ॥ और दैत्योंने नन्दीश्वरके ऊपर वज्र, त्रिशूल, खड्ग, परशु, तीक्ष्ण चक्र, पाषाण, कंपन (शस्त्रों) की, मेघोंके समान भयंकर वर्षा की ॥ ५० ॥ उन शुक्रको पकडके वह गणेश्वर नन्दी, अपने मुखकी

तं रक्ष्यमाणं दितिजैस्समस्तैः पाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः ॥ विक्षोभ्य दैत्यान्बलवाञ्जहार काव्यं स नन्दी शरभो यथेभम् ॥ ४८ ॥ स्रस्तांबरं विच्युतभूषणं च विमुक्तकेशं बलिना गृहीतम् ॥ विमोचयिष्यंत इवानुजग्मुः सुरारयस्सिंहरवांस्त्यजंतः ॥ ४९ ॥ दंभोलिशूलासिपरश्वधानामुद्दंड चक्रोपलकंपनानाम् ॥ नंदीश्वरस्योपरि दानवेन्द्रा वर्षं ववर्षुर्जलदा इवोग्रम् ॥ ५० ॥ तं भार्गवं प्राप्य गणाधिराजो मुखाग्निना शस्त्रशतानि दग्ध्वा ॥ आयातप्रवृद्धेऽमरदेवयुद्धे भवस्य पार्श्वे व्यथितारिपक्षः ॥ ५१ ॥ अयं स शुक्रो भगवन्नितीदं निवेदयामास भवाय शीघ्रम् ॥ जग्राह शुक्रं स च देवदेवो यथोपहारं शुचिना प्रदत्तम् ॥ ५२ ॥ न किंचिदुक्त्वा स हि भूतगोप्ता चिक्षेप वक्त्रे फलवत्कवीन्द्रम् ॥ हाहारवस्तैरसुरैस्समस्तैरुच्चैर्विमुक्तो हहहेति भूरि ॥ ५३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे अंधकयुद्धे शुक्रनिगीर्णनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अग्निसे सैंकडों शस्त्रोंको भस्म करके बढेहुए देवासुरसंग्राममें शत्रुओंके पक्षको व्याकुल करते हुए शिवजीके समीप आये ॥ ५१ ॥ हे भगवन्! यह वही शुक्रहै, इस प्रकार शिवजीसे शीघ्र निवेदन किया, तब देवोंके देव शिवजीने, पवित्र मनुष्यसे भेंट कियेहुए उपहारकी समान उन शुक्रको ग्रहण किया॥ ५२॥ प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले शिवजीनें कुछ न कहकर ऊँचे स्वरसे हाहाकार करतेहुए संपूर्ण दैत्योंके छुटानेपरभी उन शुक्रको फलकी समान अपने मुखमें रखलिया ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० अन्धकयुद्धे शुक्रनिगीर्णनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

व्यासजी बोले हे महामुने ! शिवजीसे शुक्राचार्यके निगलनेपर अंधकादि, बलवान् दैत्योंने क्या किया सो सब आप कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, शिवजीसे शुक्रके निगल जानेपर सम्पूर्ण दैत्य इस प्रकार जयकी आशासे हीनहुए जिस प्रकार हाथोंसे रहित मनुष्य तथा सींगोंसे हीन गाय बैल होतेहैं ॥ ॥ २ ॥ जिसप्रकार सिरके विना शरीर, जैसे विना पढा ब्राह्मण, और उद्यमके विना बल, तथा विना भाग्यके पुरुषार्थ ॥ ३ ॥ पतिके विना स्त्री, विना पंखोंके पक्षी, विना पुण्योंके अवस्था, और विना व्रतोंके शास्त्रहो ॥ ४ ॥ जिसप्रकार वैभव (ऐश्वर्य) शक्तिके विना समस्त कार्य, अपने फलोंसे हीन होतेहैं,

व्यास उवाच ॥ शुक्रे निगीर्णे रुद्रेण किमकार्षुश्च दानवाः ॥ अंधकेशा महावीरा वद तत्त्वं महामुने ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ काव्ये निगीर्णे गिरिजेश्वरेण दैत्या जयाशारहिता बभूवुः ॥ हस्तैर्विमुक्ता इव वारणेन्द्राः शृंगैर्विहीना इव गोवृषाश्च ॥ २ ॥ शिरोविहीना इव देहसंघा द्विजा यथा चाध्ययनेन हीनाः ॥ निरुद्यमास्सत्त्वगणा यथा वै यथोद्यमा भाग्यविवर्जिताश्च ॥ ३ ॥ पत्या विहीनाश्च यथैव योषा यथा विपक्षाः खलु मार्गणौघाः ॥ आयूंषि हीनानि यथैव पुण्यैर्व्रतैर्विहीनानि यथा श्रुतानि ॥ ४ ॥ विना यथा वैभवशक्तिमेकां भवंति हीनास्स्वफलैः क्रियौघाः ॥ यथा विशूराः खलु क्षत्रियाश्च सत्यं विना धर्मगणो यथैव ॥ ५ ॥ नन्दिना च हृते शुक्रे गिलिते च विषादिना ॥ विषादमगमन्दैत्या यतमानरणोत्सवाः ॥ ६ ॥ तान् वीक्ष्य विगतोत्साहानंधकः प्रत्यभाषत ॥ दैत्यांस्तुहुंडहुंडादीन्महाधीरपराक्रमः ॥ ७ ॥ अंधक उवाच ॥ कविं विक्रम्य नयता नन्दिना वंचिता वयम् ॥ तनूर्विना कृताः प्राणास्सर्वेषामद्य नो ननु ॥ ८ ॥ धैर्यं वीर्यं गतिः कीर्तिस्सत्त्वं तेजः पराक्रमः ॥ युगपन्नो हृतं सर्वमेकस्मिन् भार्गवे हृते ॥ ९ ॥

तथा जैसे पराक्रमहीन क्षत्रिय, तथा सत्यके विना समस्त धर्म होताहै ॥ ५ ॥ उसी प्रकार नन्दीसे पकडेहुए शुक्रको शिवके निगलनेपर संग्राममें प्रयत्न करनेवाले सब दैत्य दुःखको प्राप्तहुए ॥ ६ ॥ उन, तुहुंड, हुंड, आदि सब दैत्यों को उत्साहरहित देखके महाधीर पराक्रमवाला अंधकदैत्य बोला ॥ ७ ॥ अंधक बोला पराक्रमसे शुक्राचार्यको पकडनेवाले नन्दीने हमको वञ्चित किया, आज हम सबोंको विना प्राणके शरीरकी समान करदिया ॥ ८ ॥ अकेले शुक्रजीके

हरनेपर हमारा धैर्य, पराक्रम, गति, कीर्ति, बल, तेज, पारुष आदि एकसाथ सब हरागया ॥९॥ हम सबोंको धिक्कारहै कि जिन्होंने कुलपूज्य, वंशमें श्रेष्ठ, सबमें समर्थ, रक्षाकरनेवाले एक गुरुकीभी आपत्तिमें रक्षा न की ॥ १० ॥ इस कारण हे वीरो ! गुरुजीके चरणकमलोंको स्मरणकर, तुम सब विलंब न करके इन शत्रुवीर देवताओंके साथ यहां युद्ध करो ॥ ११ ॥ गुरु शुक्राचार्यजीके सुखदायक चरणकमलोंको स्मरण करके मैं नन्दीके सहित समस्त देवताओंको व्याकुल करूंगा ॥ १२ ॥ आज मैं इन्द्रादि देवताओंके सहित इन नन्दी आदि सबोंको मारके इस प्रकार शुक्रजीको छुडाऊंगा जैसे योगी

धिगस्मान् कुलपूज्यो यैरेकोऽपि कुलसत्तमः ॥ गुरुस्सर्वसमर्थश्च त्राता त्रातो न चापदि ॥१०॥ तद्यूयमविलंब्येह युध्यध्वमरिभिस्सह ॥ वीरैस्तैः प्रमथैर्वीराः स्मृत्वा गुरुपदांबुजम् ॥ ११ ॥ गुरोः काव्यस्य सुखदौ स्मृत्वा चरणपंकजौ ॥ सूदयिष्याम्यहं सर्वान् प्रमथान् सह नन्दिना ॥ १२ ॥ अद्यैतान् विवशान् हत्वा सहदेवैस्सवासवैः ॥ भार्गवं मोचयिष्यामि जीवं योगीव कर्मतः ॥ १३ ॥ स चापि योगी योगेन यदि नाम स्वयं प्रभुः ॥ शरीरात्तस्य निर्गच्छेदस्माकं शेषपालिता ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्यन्धकवचः श्रुत्वा दानवा मेघनिस्स्वनाः ॥ प्रमथान् निर्दयाः प्राहुर्मर्तव्ये कृतनिश्चयाः ॥ १५ ॥ सत्यायुषि न नो जातु शक्तास्स्युः प्रमथा बलात् ॥ असत्यायुषि किं गत्वा त्यक्त्वा स्वामिनमाहवे ॥ १६ ॥ ये स्वामिनं विहायातो बहुमानधना जनाः ॥ यांति ते यांति नियतमंधतामिस्रमालयम् ॥ १७ ॥ अयशस्तमसा ख्यातिं मलिनीकृत्य भूरिशः ॥ इहामुत्रापि सुखिनो न स्युर्भग्ना रणाजिरे ॥ १८ ॥

अपने कर्मसे जीवको छुडाता है ॥ १३ ॥ यदि वे शुक्रजीभी योगी और योगमें स्वयं समर्थहैं तो हमारे पालन करनेके अर्थ उन शिवजीके शरीरमेंसे निकलेंगे ॥ १४ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा अंधकका वचन सुन मेघके समान शब्द करते हुए निर्दयीहो तथा मरनेपर निश्चय करते हुए दैत्य बोले ॥ ॥ १५ ॥ देवतागण आयु रहते हुए कभीभी अपने बलसे समर्थ नहींहैं, फिर आयु नष्ट होनेपर युद्धमें स्वामीके छुडानेकी तो क्या कथाहै ॥ १६ ॥ जो मनुष्य अधिक मान करते हुए अपने स्वामीको छोडकर भाग जातेहैं वे अंधतामिस्रनामक नरकमें पडतेहैं ॥ १७ ॥ वे युद्धस्थलसे भागते हुए,

दुष्कीर्तिको पाय, प्रसिद्धिको मलीन कर, इस लोकमें तथा परलोकमें भी सुखी नहीं होते ॥ १८ ॥ दानोंसे क्या लाभ ? तथा तपों और तीर्थोंमें स्नान करनेसेभी क्या फल, जैसा फल पुनर्जन्मरूपी मलके नाश करनेवाले युद्धरूपी तीर्थमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार उसके वचनको स्वीकारकर उन दैत्य तथा दानवोंने युद्धमें संग्रामकी दुन्दुभी बजाय देवताओंको पीडित किया ॥ २० ॥ वहांपर बाण, खड्ग, वज्रों तथा कठिन शिलीमुखोंसे भुशुंडि, भिन्दिपाल, तथा शक्ति, परशु ॥२१॥ खट्वांगों, और पट्टिश त्रिशूल लकडी मूसलोंसे परस्पर ताडन करते हुए बडा भयंकर युद्ध करनेलगे ॥२२॥

किं दानैः किं तपोभिश्च किं तीर्थपरिमज्जनैः ॥ धारातीर्थे यदि स्नानं पुनर्भवमलापहे ॥ १९ ॥ संप्रधार्येति तद्वाक्यं दैत्यास्ते दनुजास्तथा ॥ ममंथुः प्रमथानाजौ रणभेरीं निनाद्य च ॥ २० ॥ तत्र बाणासिवज्रौघैः कठिनैश्च शिलामयैः ॥ भुशुण्डिभिंदिपालैश्च शक्तिभल्लपरश्वधैः ॥ २१ ॥ खट्वांगैः पट्टिशैश्शूलैर्लकुटैर्मुसलैरलम् ॥ परस्परमाभिघ्नंतः प्रचक्रुः कदनं महत् ॥ २२ ॥ कार्मुकाणां विकृष्टानां पततां च पतत्रिणाम् ॥ भिंदिपालभुशुंडीनां क्ष्वेडितानां रवोऽभवत् ॥ २३ ॥ रणतूर्य्यनिनादैश्च गजानां बहुबृंहितैः ॥ ह्रेषारवैर्हयानां च महान्कोलाहलोऽभवत् ॥ २४ ॥ अतिस्वनैरवापूरि द्यावाभूम्योर्यदंतरम् ॥ अभीरूणां च भीरूणां महारोमोद्गमोऽभवत् ॥ २५ ॥ गजवाजिमहारावस्फुटशब्दग्रहाणि च ॥ भग्नध्वजपताकानि क्षीणप्रहरणानि च ॥ २६ ॥ रुधिरोद्गारचित्राणि व्यश्वहास्तिरथानि च ॥ पिपासितानि सैन्यानि मुमूर्च्छुरुभयत्र वै ॥ २७ ॥ अथ ते प्रमथा वीरा नंदिप्रभृतयस्तदा ॥ बलेन जघ्नुरसुरान्सर्वान्प्रापुर्जयं मुने ॥ २८ ॥

खैंचेहुए धनुषोंपै बाणोंका प्रयोगहोने तथा छूटतीहुई भिन्दिपालोंका बडा शब्द होनेलगा ॥ २३ ॥ संग्रामके बाजोंके शब्दसे तथा हाथियोंके चिंघाडने घोडोंके हिनहिनानेके शब्दोंसे बडा कोलाहल मचा ॥ २४ ॥ उस समय भूमि और आकाशके बीचमें बडा शब्द गूंजउठा, भीरु और वीरोंके रुएँ खडे करने वाला परस्पर महारोमहर्षण युद्धहुआ ॥ २५ ॥ हाथी घोडोंके महानाद, तथा प्राणियोंके प्रगट हुए शब्दोंका भयंकर युद्ध हुआ ध्वजा पताका नष्ट होगई, शस्त्र नष्ट होगये ॥ २६ ॥ रुधिरके प्रवाहोंसे विचित्र घोडे हाथी रथोंसे शून्य सेना दोनों दलोंमें मूर्छित होगई ॥ २७ ॥ हे मुने ! तब उन, शूर नन्दी आदि

देवताओंने बलसे दैत्योंको मारा और विजय पाई ॥ २८ ॥ उस समय चारोंओरसे अपनी सेनाको देवताओंसे विनाश कीहुई देखके अंधकदैत्य स्वयं रथपर चढ शिवके गणोंके ऊपर दौड़ा ॥ २९ ॥ तब देवताओंको बाणोंकी वर्षाकरके इस प्रकार नाश करनेलगा जिस प्रकार वज्रपातोंसे पर्वतों तथा अस्त्रोंसे जलहीन मेघोंको नष्ट करतेहैं ॥ ३० ॥ अन्धकने जातेहुए, तथा आते हुए, दूरस्थितहुए, और समीपमें स्थितहुए प्रत्येकको बाणोंसे रोमरोममें बींधदिया ॥ ३१ ॥ बलवान् अंधकदैत्यसे नाश होतीहुई सेनाको देखके स्वामिकार्तिक, गणेशजी, नन्दीश्वर, तथा सोमनन्दी आदि ॥ ३२ ॥ शूरवीर देवता और महाबली शंकरके

दृष्ट्वा सैन्यं च प्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः ॥ दुद्राव रथमास्थाय स्वयमेवांधको गणान् ॥ २९ ॥ शरावारप्रयुक्तैस्तैर्वज्रपातैर्नगा इव ॥
प्रमथा नेशिरे चास्त्रैर्निस्तोया इव तोयदाः ॥ ३० ॥ यांतमायांतमालोक्य दूरस्थं निकटस्थितम् ॥ प्रत्येकं रोमसंख्याभिर्विव्याधेषुभिर
न्धकः ॥३१॥ दृष्ट्वा सैन्यं भज्यमानमंधकेन बलीयसा ॥ स्कंदो विनायको नंदी सोमनंद्यादयः परे ॥ ३२ ॥ प्रमथा प्रबला वीराश्शं
करस्य गणा निजाः ॥ चुक्रुधुस्समरं चक्रुर्विचित्रं च महाबलाः ॥ ३३ ॥ विनायकेन स्कंदेन नंदिना सोमनंदिना ॥ वीरेण नैगमेयेन
वैशाखेन बलीयसा ॥३४॥ इत्याद्यैस्तु गणैरुग्रैरंधकोऽप्यंधकीकृतः ॥ त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासंपातपातिभिः ॥३५॥ ततः कोलाहलो
जातः प्रमथासुरसैन्ययोः ॥तेन शब्देन महता शुक्रश्शंभूदरे स्थितः ॥३६॥ छिद्रान्वेषी भ्रमन्सोथ विनिकेतो यथानिलः ॥ सप्तलोकान्सपा
तालान्रुद्रदेहे व्यलोकयत् ॥ ३७॥ ब्रह्मनारायणेन्द्राणां सादित्याप्सरसां तथा ॥ भुवनानि विचित्राणि युद्धं च प्रमथासुरम् ॥ ३८ ॥

गणोंने अतिक्रोधकर अद्भुतयुद्ध किया ॥ ३३ ॥ गणेशजी, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, तथा वीर नैगमेय बलवान् वैशाख ॥ ३४ ॥ इत्यादि गणोंने अंधकदैत्यको त्रिशूल, शक्ति, बाणोंकी वर्षा करके अंधा करदिया ॥ ३५ ॥ उस समय देवता और दैत्योंकी सेनामें बड़ा कोलाहल हुआ, उस बड़े शब्दसे शिवके पेटमें स्थितहुए शुक्राचार्यजी ॥ ३६ ॥ छिद्रको खोजते चारोंओर फिरनेलगे, जिस प्रकार आधार रहित पवन बहताहै, और उन्होंने शिवजीके शरीरमें सातों लोकोंको और पातालोंको देखा ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी नारायण इन्द्र सूर्य सहित अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा प्रमथासुरके युद्धको देखा ॥ ३८ ॥

उन शुक्रने सौवर्षपर्यन्त शिवके उदरमें चारोंओर भ्रमण करतेहुए उसमें इस प्रकार कोई रन्ध्र (छेद) नहीं देखा जैसे खल पुण्यात्मामें दोष देखताहै तौभी नहीं पाता ॥ ३९ ॥ फिर वह भार्गव, शिवके दिये योगसे इस मंत्रको जपके शिवके वीर्यरूपमें शिवजीके उदरपंजरसे ॥ ४० ॥ लिंग मार्गसे निकले, और शिवजीको प्रणाम किया, तब पार्वतीने उनको पुत्ररूपसे ग्रहण किया, और विघ्नरहित किया ॥ ४१ ॥ लिंगमेंसे वीर्यरूपसे निकलेहुए शुक्रको देखके दयासागर शिवजी हँसके बोले ॥ ४२ ॥ शिवजी बोले हे भृगुके पुत्र ! जिस कारण कि तुम मेरे लिंगसे वीर्यरूपमें निकलेहो इस कर्मसे तुम शुक्रनामवाले मेरे

स वर्षाणां शतं कुक्षौ भवस्य परितो भ्रमन् ॥ न तस्य ददृशे रन्ध्रं शुचे रंध्रं खलो यथा ॥ ३९ ॥ शांभवेनाथ योगेन शुक्ररूपेण
भार्गवः ॥ इमं मंत्रवरं जप्त्वा शंभोर्जठरपंजरात् ॥ ४० ॥ निष्क्रांतो लिंगमार्गेण प्रणनाम ततश्शिवम् ॥ गौर्य्या गृहीतः पुत्रार्थं तदविघ्ने
श्वरीकृतः ॥ ४१ ॥ अथ काव्यं विनिष्क्रांतं शुक्रमार्गेण भार्गवम् ॥ दृष्ट्वोवाच महेशानो विहस्य करुणानिधिः ॥ ४२ ॥ ॥ महेश्वर
उवाच ॥ शुक्रवन्निस्सृतो यस्माल्लिंगान्मे भृगुनन्दन ॥ कर्मणा तेन शुक्रस्त्वं मम पुत्रोसि गम्यताम् ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
इत्येवमुक्तो देवेन शुक्रोर्कसदृशद्युतिः ॥ प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव विहितांजलिः ॥ ४४ ॥ शुक्र उवाच ॥ अनंतपादस्त्वमनंतमूर्तिरनं
तमूर्द्धांतकरश्शिवश्च ॥ अनंतबाहुः कथमीदृशं त्वां स्तोष्ये ह नुत्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ ४५ ॥ त्वमष्टमूर्त्तिस्त्वमनंतमूर्तिस्त्वमिष्टदस्सर्व
सुरासुराणाम् ॥ अनिष्टदृष्टश्च विमर्दकश्च स्तोष्ये ह नुत्यं कथमीदृशं त्वाम् ॥ ४६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति स्तुत्वा शिवं
शुक्रः पुनर्नत्वा शिवाज्ञया ॥ विवेश दानवानीकं मेघमालां यथा शशी ॥ ४७ ॥

पुत्र हुए अब जाओ ॥ ४३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, शिवजीके ऐसा कहनेपर वह सूर्यके समान कान्तिवाले शुक्रजी हाथजोड़के शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥४४॥ शुक्रजी बोले हे शिवजी ! तुम अनंतपादवाले अनंतमूर्तिहो, अनेकमस्तकवाले, अनेकहाथोंवाले, अनेकभुजावाले, अनेकरूपवाले स्तुतियोग्यहो, आपकी किस प्रकार शिरसे प्रणाम करके स्तुति करूं ॥ ४५ ॥ आप अष्टमूर्ति, अनंतमूर्ति, देवता और दैत्योंके मनोरथ सिद्ध करनेवाले, अमंगलोंके नाश करनेवाले, वेषमें स्थित हुए हो आपकी मैं किस प्रकार स्तुति करूं ॥ ४६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, शुक्रजीने इस प्रकार शिवजीकी स्तुतिकर नमस्कार

किया, और शिवजीकी आज्ञासे दैत्योंकी सेनामें प्रवेश किया जैसे मेघमालामें चन्द्रमा प्रवेश करताहै ॥ ४७ ॥ इस प्रकार युद्धके बीचमें शिवजीसे शुक्रके निगलनेका वर्णन किया, अब उस मंत्रकोभी सुनो जिसे शुक्रने शिवजीके उदरमें जपाथा ॥४८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु०

निगीर्णनमिति प्रोक्तं शंकरेण कवे रणे ॥ शृणु मंत्रं च तं जप्तो यश्शंभोः कविनोदरे ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां
रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे शुक्रनिगीर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॐ नमस्ते देवेशाय
सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिंगललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय
हराय हरितनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय
अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहंत्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे
वेदान्तगाय तपोंतगाय पशुपतये व्यंगाय शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखंडिने लकुटिने महायशसे भूतेश्वराय गुहावासिने
वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्यनिभाय श्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिन्दमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णो
दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशांपतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय
लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तंभकाय वसूनां स्तंभाय
क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेति समाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्व
ताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्यनिनादिने सर्वबाधाविमो
चनाय बंधनाय सर्वधारिणे धर्म्मोत्तमाय पुष्पदंतायापि भागाय मुखाय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीमपराक्रमाय ॐ
नमो नमः ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शुक्रो जठरपंजरात् ॥ निष्क्रान्तो लिंगमार्गेण शंभोश्शुक्रमिवोत्कटम् ॥ १ ॥

शुक्रनिगीर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥ मंत्र--सनत्कुमारजी बोले "ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय" इत्यादि मंत्रको जपकर शुक्रजी शम्भुके

---

१ मत्रके कारण टीका नहीं किया ।

उत्कटवीर्यके समान शिवजीके उदरस्थलसे लिंगमार्गसे निकले ॥ १ ॥ तब पार्वतीने उन्हें पुत्रकी समान ग्रहण किया, और संसारके ईश्वर शिवने श्रीमान्
अजर अमर मानो दूसरे शंकरके समान शुक्रको किया ॥ २ ॥ तीनसहस्रवर्षोंके बीतनेपर फिर वह वेदपाठी शुक्र पृथ्वीपै शिवजीसे उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥
शिवके त्रिशूलपै. सूखतेहूए, धैर्यसहित तपस्वी अंधकदैत्यको शंकरका ध्यानकरतेहुए देवदेवने देखा ॥ ४ ॥ महादेव, विरूपाक्ष, मस्तकपर अर्धचन्द्रको धारे,
तथा अमृत, सनातन, स्थाणु, पिनाकधनुषधारी ॥ ५ ॥ वृषभाक्ष, महाज्ञेय, पुरुष, सब कामनाके देनेवाले, कामदेवके शत्रु, कामके भस्म करनेवाले,

गौर्या गृहीतः पुत्रार्थं विश्वेशेन ततः कृतः ॥ अजरश्चामरः श्रीमान्द्वितीय इव शंकरः ॥ २ ॥ त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु समतीतैर्महीतले ॥
महेश्वरात्पुनर्जातः शुक्रो वेदनिधिर्मुनिः ॥ ३ ॥ ददर्श शूले संशुष्कं ध्यायंतं परमेश्वरम् ॥ अंधकं धैर्यसंपन्नं दानवेशं तपस्विनम् ॥
॥ ४ ॥ महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकंठं पिनाकिनम् ॥ ५ ॥ वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वका
मदम् ॥ कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम् ॥ ६ ॥ विरूपं गिरिशं भीमं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥ योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपा
लिनम् ॥ ७ ॥ गूढव्रतं गुप्तमंत्रं गंभीरं भावगोचरम् ॥ अणिमादिगुणाधारं त्रिलोक्यैश्वर्यदायकम् ॥ ८ ॥ वीरं वीरहणं घोरं विरूपं
मांसलं पटुम् ॥ महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै महेश्वरम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यद्रावणं लुब्धं लुब्धकं यज्ञसूदनम् ॥ कृत्तिकानां सुतैर्युक्तमुन्मत्तं
कृत्तिवाससम् ॥ १० ॥ गजकृत्तिपरीधानं क्षुब्धं भुजगभूषणम् ॥ दत्तालंबं च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम् ॥ ११ ॥ अघोरं घोरदै
त्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम् ॥ भस्मांगं जटिलं शुद्धं भेरुंडशतसेवितम् ॥ १२ ॥

कामरूपी, कपर्दी ॥ ६ ॥ विरूप, गिरीश, भीम, स्रग्वी, रक्तवास, योगी, कालदहन, त्रिपुरासुरको नाश करनेवाले, कपाली ॥ ७ ॥ गुढव्रत, गुप्तमंत्र,
गंभीरभावगोचर, अणिमा आदि सिद्धियोंके आधाररूप, तीनों लोकोंके ऐश्वर्य देनेवाले ॥८॥ वीर, वीरहरण, घोर, विरूप, मांसलपटु, महामांसभोजी, उन्मत्त,
भैरव, महेश्वर ॥९॥ त्रिलोकीके नाशकरनेवाले, लुब्ध, लुब्धक, यज्ञसूदन, कृत्तिकाओंके पुत्रोंसे युक्तहुए,उन्मत्त, मृगचर्मधारी ॥ १० ॥ हस्तीचर्मको धारे,
क्षुब्ध, सर्पोंके भूषणपहने, दत्तालंब, वेताल, घोर, शाकिनीसे पूजित ॥११॥ अघोर, भयंकर दैत्योंको नष्ट करनेवाले, घोरशब्द करने वाले, वनस्पति रूप,

भस्मांगी, जटाधारी, शुद्ध, सैंकडों रुंडोंसे भूषितहुए ॥ १२ ॥ भूतेश्वर, भूतनाथ, पंचभूताश्रित, खग, क्रोधित, निष्ठुर, चंड, चंडीश, चंडिकाके प्रिय ॥ १३॥
चंड, तुंग, गरुत्मंत, नित्य आसवभोजी, लेलिहान, महारौद्र, मृत्यु, मृत्युके अगोचर ॥ १४ ॥ मृत्युकेभी मृत्यु, महासेन, श्मशान, वनमें निवास करनेवाले,
राग, विराग, रागांध, सैंकडों विरक्तोंसे पूजित ॥ १५ ॥ सत्त्व, रज, तमोगुणोंके धारणकर्ता, अधर्म, वा सबके अनुज, सत्य, असत्य, सद्रूपी, तथा
असत्स्वरूपवाले, अहेतुक ॥ १६ ॥ अर्धनारीश्वर, भानु सैंकडों सूर्योंके समान प्रकाशमान, यज्ञपति, रुद्र, ईशान, वरदेनेवाले, शिव ॥ १७ ॥ इस प्रकार

भूतेश्वरं भूतनाथं पंचभूताश्रितं खगम् ॥ क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चंडीशं चण्डिकाप्रियम् ॥ १३ ॥ चण्डं तुंगं गरुत्मंतं नित्यमासवभोजनम्
॥ लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योगोरचरम् ॥ १४ ॥ मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम् ॥ रागं विरागं रागांधं वीतरागशताचितम्
॥ १५ ॥ सत्त्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम् ॥ सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम् ॥ १६ ॥ अर्द्धनारीश्वरं भानुं
भानुकोटिशतप्रभम् ॥ यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम् ॥ १७॥ अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः ॥ शिवस्य दानवो ध्यायन्मुक्तस्तस्मान्महाभयात् ॥ १८ ॥ दिव्येनामृतवर्षेण सोऽभिषिक्तः कपर्दिना ॥ तुष्टेन मोचितं स्तस्माच्छूलाग्रादवरोपितः ॥ १९ ॥
उक्तश्चाथ महादैत्यो महेशानेन सोंऽधकः ॥ असुरस्सांत्वपूर्वं यत्कृतं सर्वं महात्मना ॥२०॥ ईश्वर उवाच ॥ भो भो दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि
दमेन नियमेन च ॥ शौर्येण तव धैर्येण वरं वरय सुव्रत ॥ २१ ॥ आराधितस्त्वया नित्यं सर्वनिर्धूतकल्मषः ॥ वरदोऽहं वरार्हस्त्वं
महादैत्येन्द्रसत्तम ॥ २२ ॥ प्राणसंधारणादस्ति यच्च पुण्यफलं तव ॥ त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु तेनास्तु तव निर्वृतिः ॥ २३ ॥

शिवकी एकसौआठ परमा मूर्तियोंको ध्यानकरके वह अंधकदैत्य उस महाभयसे मुक्त होगया ॥ १८ ॥ फिर दिव्यअमृतकी वर्षासे शिवजीने उसका अभिषेक
किया और प्रसन्न होके उसे त्रिशूलके ऊपरसे उतारा ॥ १९ ॥ फिर महादेवने महादैत्य अंधकसे शान्तिपूर्वक सब कहा जो कुछ उन महात्मा शिवजीनें
किया था ॥ २० ॥ शिवजी बोले, हे दैत्येन्द्र ! हे सुव्रत ! मैं तेरे दम, नियम, शूरता धीरजसे प्रसन्न हुआहूं, तू वर मांग ॥ २१ ॥ हे महादैत्योंमें श्रेष्ठ !
तूने सब पापोंसे रहित हुए शिवकी नित्य आराधना की इससे मैं नित्य वरदेने योग्यहूं, तू वरपानेके योग्य है ॥२२॥ प्राणोंके धारण करनेसे लेके तीनसहस्र

वर्षोंतक जो कुछ तेरा पुण्यफल हुआहै, उससे तेरी निवृत्ति होगी ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यह सुनके अंधक हाथजोड कांपता हुआ, भूमिमें दोनों गोडोंको टेक उमापति शिवजीसे बोला ॥ २४ ॥ अंधक बोला हे भगवन् ! युद्धक्षेत्रमें मैंने जो दीनसे दीन, अधिकसे अधिक वचन, हर्ष गद्गदवाणीसे कहेहैं ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! और जो जो मैंने मूर्खतासे संसारमें निन्दितकर्म कियेहैं तथा जो विनाजाने तुमको कहाहै सो आप मनमें न रक्खैं ॥ २६ ॥ हे महादेव ! कामदोषसे मैंने जो पार्वतीजीके विषयमें कहा सो सब क्षमा करो मैं कृपण अतिदुःखीहूं ॥ २७ ॥ दुःखित, अतिकृपण, दीन, भक्तिमें युक्तहुए

सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वांधकः प्राह वेपमानः कृतांजलिः ॥ भूमौ जानुद्वयं कृत्वा भगवंतमुमापतिम् ॥ २४ ॥ अंधक उवाच ॥ भगवन्यन्मयोक्तोऽसि दीनोदीनः परात्परः ॥ हर्षगद्गदया वाचा मया पूर्वं रणाजिरे ॥ २५ ॥ यद्यत्कृतं विमूढत्वात्कर्म लोकेषु गर्हितम् ॥ अजानता त्वां तत्सर्वं प्रभो मनसि मा कृथाः ॥२६॥ पार्वत्यामपि दुष्टं यत्कामदोषात्कृतं मे मया ॥ क्षम्यतां मे महादेव कृपणो दुःखितो भृशम् ॥ २७ ॥ दुःखितस्य दया कार्या कृपणस्य विशेषतः ॥ दीनस्य भक्तियुक्तस्य भवता नित्यमेव हि ॥ २८ ॥ सोहं दीनो भक्तियुक्त आगतश्शरणं तव ॥ रक्षा मयि विधातव्या रचितोऽयं मयांजलिः ॥ २९ ॥ इयं देवी जगन्माता परितुष्टा ममोपरि ॥ क्रोधं विहाय सकलं प्रसन्ना मां निरीक्षताम् ॥ ३० ॥ क्वास्याः क्रोधः क्व कृपणो दैत्योऽहं चन्द्रशेखर ॥ तत्सोढा नाहमर्द्धेन्दुचूड शंभो महेश्वर ॥ ३१ ॥ क्व भवान्परमोदारः क्व चाहं विवशीकृतः ॥ कामक्रोधादिभिर्दोषैर्जरसा मृत्युना तथा ॥ ३२ ॥

मेरे ऊपर आपको नित्य दयाकरनी उचितहै ॥ २८ ॥ वह दीन हुआ, भक्तिमें लगाहुआ मैं आपकी शरणमें आयाहूं, मुझ कृपण तथा दुःखी हुएके ऊपर आपको विशेष दयाकरनी चाहिये मैंने अंजलिबांधीहै ॥ २९ ॥ यह जगज्जननी देवी पार्वतीजी सदा मेरे ऊपर संतुष्ट होके सम्पूर्ण क्रोधको त्यागन करके प्रसन्न हो मुझे देखैं ॥ ३० ॥ हे चन्द्रशेखर ! कहां उन देवीका क्रोध, और कहां मैं कृपण (मूर्ख) दैत्यहूं, इस कारण हे अर्धचन्द्रशेखर ! हे महेश्वर ! वह सब मेरा वचन आप महेश्वरको सहनकरना चाहिये ॥ ३१ ॥ कहां परमउदार आप, और कहां मैं, काम क्रोधादि दोषोंसे बुढापेमें मृत्युसे वशीभूत

हुआहूं ॥ ३२ ॥ यह तुम्हारा पुत्र, युद्धमें निपुण, महाबली वीरक, मुझ मूर्खको देखकर क्रोधके वशीभूत न हो ॥ ३३ ॥ हिम, हार, चन्द्रमा, शंख, माघपुष्प, चन्द्रमा इनके समान श्वेतवर्णवाले, हे शिवजी ! इन पार्वती माताको गौरवसे नित्य देखूँ ॥ ३४ ॥ तुम दोनों शिव पार्वतीका भक्त होके देवताओंके साथ वैरभावसे रहित, शांतचित्त, योगको विचारता हुआ मैं सदा गणोंके साथ निवास करूं ॥३५॥ हे शिवजी मैं अबसे आगे, आपकी कृपासे दैत्यभावसे उत्पन्न हुए विरुद्धकर्मको कभी न करूं, ऐसा वरदान दो ॥३६॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा वचन कहके वह दैत्येन्द्र चुपरहा, और देवदेव शिव तथा माता

अयं ते वीरकः पुत्रो युद्धशौंडो महाबलः ॥ कृपणं मां समालक्ष्य मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ३३ ॥ तुषारहारशीतांशुशंखकुन्देन्दुवर्णभाक् ॥ पश्येयं पार्वतीं नित्यं मातरं गुरुगौरवात् ॥ ३४ ॥ नित्यं भवद्भ्यां भक्तस्तु निर्वैरो दैवतैः सह ॥ निवसेयं गणैस्सार्द्धं शांतात्मा योगचिंतकः ॥ ३५ ॥ मा स्मरेयं पुनर्जातं विरुद्धं दानवोद्भवम् ॥ त्वत्कृपातो महेशान देह्येतद्वरमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतावदुक्त्वा वचनं दैत्येन्द्रो मौनमास्थितः ॥ ध्यायंस्त्रिलोचनं देवं पार्वतीं प्रेक्ष्य मातरम् ॥ ३७ ॥ ततो दृष्टस्तु रुद्रेण प्रसन्नेनैव चक्षुषा ॥ स्मृतवान्पूर्ववृत्तांतमात्मनो जन्म चाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्स्मृते च वृत्तांते ततः पूर्णमनोरथः ॥ प्रणम्य मातापितरौ कृतकृत्योऽभवत्ततः ॥ ३९ ॥ पार्वत्या मूर्ध्न्युपाघ्रातश्शंकरेण च धीमता ॥ तथाऽभिलषितं लेभे तुष्टाद्बालेन्दुशेखरात् ॥ ४० ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातमन्धकस्य पुरातनम् ॥ गाणपत्यं महादेवप्रसादात्परसौख्यदम् ॥ ४१ ॥

पार्वतीको देख उनका ध्यान करनेलगा ॥ ३७ ॥ तब उसे शिवने प्रसन्नताकी दृष्टिसे देखा उसने अपने अद्भुतजन्म तथा पूर्व वृत्तान्तको स्मरणकिया ॥ ३८ ॥ पूर्व वृत्तान्तके स्मरण होनेपर वह मनोरथोंसे पूर्ण हुआ माता पिताको प्रणाम करके कृतकृत्य हुआ ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् शिवजीने तथा पार्वतीने उसके मस्तकको सूंघा, और उसने प्रसन्न हुए शिवजीसे इच्छित वरको पाया ॥ ४० ॥ महादेवके प्रसादसे अंधक दैत्यका सब सुखदेनेवाला पुरातन गाणपत्यसम्बन्धी सब वृत्तान्त कहा ॥ ४१ ॥

और मृत्युका नाश करनेवाला, मृत्युंजयनामक मंत्रकोभी बताया इसको यत्नसे पढना उचित है, यह सब मनोरथों और सिद्धि यों को करनेवालाहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० अंधकगणजीवितप्राप्तिवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! जिस प्रकार शुक्रमुनिने मृत्युंजयनामक शिवजीसे मृत्युशमनीविद्या प्राप्त की वह सब सुनो ॥ १ ॥ पहले यह भार्गव (शुक्रजी) वाराणसीनगरीमें जाके प्रभु विश्वनाथका ध्यान करतेहुए बहुत समयतक तप करने लगे ॥ २ ॥ हे वेदव्यासजी ! वहां परमात्मा शिवका ज्योतिर्लिंग स्थापन करके उनके आगे सुन्दर

मृत्युंजयश्च कथितो मंत्रो मृत्युविनाशनः ॥ प्रठितव्यः प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदः ॥ ४२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकगणजीवितप्राप्तिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास यथा प्राप्ता मृत्युप्रशमनी परा ॥ विद्या काव्येन मुनिना शिवान्मृत्युञ्जयाभिधात् ॥ १ ॥ पुरासौ भृगुदायादो गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ बहुकालं तपस्तेपे ध्यायन्विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ २ ॥ स्थापयामास तत्रैव लिंगं शंभोः परात्मनः ॥ कूपं चकार सद्रम्यं वेदव्यास तदग्रतः ॥ ३ ॥ पंचामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वः प्रयत्नतः ॥ स्नापयामास देवेशं सुगंधस्नपनैर्बहु ॥ ४ ॥ सहस्रकृत्वो देवेशं चन्दनैर्यक्षकर्दमैः ॥ समालिलिंप सुप्रीत्या सुगन्धोद्वर्त्तनान्यनु ॥ ५ ॥ राजचंपकधत्तूरैः करवीरकुशेशयैः ॥ मालतीकर्णिकारैश्च कदंबैर्बकुलोत्पलैः ॥ ६ ॥ मल्लिकाशतपत्रीभिस्सिंधुवारैस्सकिंशुकैः ॥ बन्धूकपुष्पैः पुन्नागैर्नागकेशरकेशरैः ॥ ७ ॥ नवमल्लीचिबिलिकैः कुंदैस्समुचुकुन्दकैः ॥ मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च द्रोणैर्मरुबकैर्वृकैः ॥ ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैः सुरम्यैश्चूतपल्लवैः ॥ ८ ॥

रमणीक कूप खुदवाया ॥ ३ ॥ और एकद्रोण ३२ सेर पंचामृतसे शिवको लक्षबार स्नान कराके फिर बहुतसे सुगंधित द्रव्योंसे स्नान कराया ॥ ४ ॥ और शिवजीको अगर, तगर, कस्तूरी, कंकोल पीसकर सहस्रवार स्नानकराय सुगंधित पदार्थोंको प्रीतिसे लेपनकिया ॥ ५ ॥ राजचंपक (अमलतास), धतूरा, कनेर, कमल, चमेली, कर्णिकार, कदंब, वकुल, (बौलश्री), उत्पल (कमल) ॥ ६ ॥ मल्लिका (मोंगरा) शतपत्री (सौंफ कमल मोंगरा) सिन्धुवार (समालू) ढाक, बन्धूकपुष्प (गुल दुपहरी) पुन्नाग (केसर) नागकेसर तथा केसरके पुष्पोंसे ॥ ७ ॥ नवमल्ली (बेलमोंगरा) चिबिलिक (रक्तदला)

कुन्द (माघपुष्प) मुचुकुंद (मेचकंद) मन्दार (आक) वेलपत्रोंसे द्रोण (गुम्मा) मरुबक (मनफल) वृक (धूप) ग्रंथिपर्ण (भटोरा) दमनक तथा
मनोहर आमके पत्तोंसे ॥ ८ ॥ तुलसी देवगंधारी (पुष्पविशेष) बृहत्पत्री (कुशाओंके अंकुरों) से नंद्यावर्त (नांदरूख) अगस्त्य (पुष्पविशेष) साल
तथा देवदारुसे ॥ ९ ॥ कांचनार (कचनार) कुरबक (लालकुरंटा) दूर्वांकुर (दूबकेनार) कुरंटक (पीलाकुरंटा) इनके प्रत्येक पुष्पोंसे तथा पल्लवोंसे ॥
॥ १० ॥ अनेकप्रकारके मनोहरपत्रों तथा सुन्दर कमलों से उन्होंने सावधान चित्तहो प्रीतिसे शिवजीको पूजा ॥ ११ ॥ गीत, नृत्य, उपहारोंसे तथा

तुलसीदेवगंधारीबृहत्पत्रीकुशांकुरैः ॥ नंद्यावर्तैरगस्त्यैश्च सशालैर्देवदारुभिः ॥ ९ ॥ कांचनारैः कुरबकैर्दूर्वांकुरकुरुंटकैः ॥ प्रत्येकमे
भिः कुसुमैः पल्लवैरपरैरपि ॥ १० ॥ पत्रैः सहस्रपत्रैश्च रम्यैर्नानाविधैश्शुभैः ॥ सावधानेन सुप्रीत्या स समानर्च शंकरम् ॥ ११ ॥
गीतनृत्योपहारैश्च संस्तुतः स्तुतिभिर्बहु ॥ नाम्नां सहस्रैरन्यैश्च स्तोत्रैस्तुष्टाव शंकरम् ॥ १२ ॥ सहस्रं पञ्चशरदामित्थं शुक्रो महेश्वरम् ॥
नानाप्रकारविधिना महेशं स समर्चयत् ॥ १३ ॥ यदा देवं नानुलोके मनागपि वरोन्मुखम् ॥ तदान्यं नियमं घोरं जग्राहातीव दुस्स
हम् ॥ १४ ॥ प्रक्षाल्य चेतसोऽत्यंतं चांचल्याख्यं महामलम् ॥ भावनावार्भिरसकृदिंद्रियैस्साहितस्य च ॥ १५ ॥ निर्मलीकृत्य तच्चेतो
रत्नं दत्त्वा पिनाकिने ॥ प्रपपौ कणधूमौघं सहस्रं शरदां कविः ॥ १६ ॥ काव्यमित्थं तपो घोरं कुर्वन्तं दृढमानसम् ॥ प्रससाद स तं
वीक्ष्य भार्गवाय महेश्वरः ॥ १७ ॥ तस्माल्लिंगाद्विनिर्गत्य सहस्रार्काधिकद्युतिः ॥ उवाच तं विरूपाक्षस्साक्षाद्दाक्षायणीपतिः ॥ १८ ॥

स्तुतिपूर्वक शिवसहस्रनाम तथा और स्तोत्रोंसे शिवको सन्तुष्ट किया ॥ १२ ॥ शुक्रने इसी प्रकार पांचसहस्र वर्षपर्यन्त अनेकप्रकार विधिसे शिवकी पूजाकी
॥ १३ ॥ जब शिवजीको कुछभी वरदेनेमें उन्मुख न देखा तो शुक्रने अतिकठिन दूसरे घोर नियमको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ भावना (भक्ति) रूपी जलोंसे
अतिचंचल महामलीन चित्तको इन्द्रियोंके सहित बारंबार शुद्धकर ॥ १५ ॥ पश्चात् निर्मलकरके इस चित्तरूपी रत्नको शिवके अर्पणकरके वह शुक्र सहस्रों
वर्षोंतक, कण तथा धूमको पान करनेलगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार दृढ़मनसे घोरतप करतेहुए शुक्रको देखकर शिवजी प्रसन्न होगये ॥ १७ ॥ और सहस्रों सूर्योंके

समान प्रकाशमान वह शिवजी उस लिंगसे प्रगटहुए, और उन विरूपाक्ष, साक्षात् दाक्षायणीपतिने शुक्रसे यह कहा ॥ १८ ॥ शिवजी बोले, हे तपोनिधे ! हे महाभाग ! हे महामुने ! हे भृगुपुत्र ! तुम्हारे इस तपसे मैं अतिप्रसन्न हुआहूं ॥ १९ ॥ हे भार्गव ! मनसे इच्छितहुए समस्त वरको माँगो मैं प्रीतिसे तुझे सब पदार्थोंको दूंगा, तुझको कुछ अदेय नहींहै ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी बोले, शिवजीका ऐसा महासुखदायक श्रेष्ठवचन सुन शुक्रजी अतिप्रसन्न हुये, और आनन्दके समुद्रमें डूबगये ॥ २१ ॥ और कमलनेत्रवाले शुक्रने आनन्दके बढ़नेसे पुलकायमान शरीरहो प्रसन्नतासे शिवजीको प्रणाम किया ॥ २२ ॥

महेश्वर उवाच ॥ तपोनिधे महाभाग भृगुपुत्र महामुने ॥ तपसानेन ते नित्यं प्रसन्नोऽहं विशेषतः ॥ १९ ॥ मनोभिलषितं सर्वं
वरं वरय भार्गव ॥ प्रीत्या दास्येऽखिलान्कामान्नादेयं विद्यते तव ॥ २० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ निशम्येति वचश्शंभोर्महासुखकरं
वरम् ॥ स बभूव कविस्तुष्टो निमग्नस्सुखवारिधौ ॥ २१ ॥ उद्यदानंदसंदोहरोमांचांचितविग्रहः ॥ प्रणनाम मुदा शंभुमंभोजनयनो
द्विजः ॥ २२ ॥ तुष्टावाष्टतनुं तुष्टः प्रफुल्लनयनांचलः ॥ मौलावंजलिमाधाय वदञ्जयजयेति च ॥ २३ ॥ भार्गव उवाच ॥ त्वं भाभिरा
भिरभिभूय तमस्समस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम् ॥ देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते
॥ २४ ॥ लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्भासि कौच गगनेऽखिललोकनेत्रः ॥ विद्राविताखिलतमास्सुतमो हिमांशो पीयूषपूरपरि
पूरित तन्नमस्ते ॥ २५ ॥ त्वं पावने पथि सदागतिरप्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह ॥ स्तब्धप्रभंजनविवर्द्धितसर्वजंतोः
संतोषिताहिकुलसर्वग वै नमस्ते ॥ २६ ॥

सन्तुष्टहो खिलेहुए नेत्रांचलवाले शुक्रने शिरमें अंजलि बाँध जयजय उच्चारणकर शिवजीकी स्तुतिकी ॥ २३ ॥ शुक्रजी बोले हे भगवन् ! आप अपने इस तेजसे संपूर्ण अंधकारको दूरकरके सकल राक्षसोंके अभिमानोंको नष्ट करतेहो, हे दिवमणे ! हे जगदीश्वर ! आप तीनों लोकोंके हितकरनेको आकाशमें प्रकाशित होतेहैं, ऐसे आपको नमस्कारहै ॥२४॥ लोकमें अत्यन्तअंधकारको देखकर आपने पृथ्वी और आकाशमें सब लोकोंका नेत्र अनेकअंधकारोंका नाशकरनेके निमित्त चन्द्रमाको रचाहै वह अमृतकी किरणोंसे युक्तहै हे अमृतमय ! आपको नमस्कारहै ॥ २५ ॥ हे सर्वव्यापिन् ! आप पुण्यमार्गमें

सदा सुन्दरगतिवाले पवनहैं, हे संसारके जिवानेवाले ! आपकी कृपाके विना कौन पुरुष इस संसारमें जीसकताहै, हे सर्पोंके कुलोंको सन्तुष्टकरनेवाले ! आप
निश्चल वायुसे सब प्राणियोंको बढानेवालेहैं, ऐसे आपको नमस्कार है ॥२६॥ हे संसारके पावक एकमात्र पालनकर्ता ! हे अग्निके समान एकशक्तिवाले !
आपके विना मरणशील जन्तुओंको दिव्यमोक्ष देनेवाला कोई नहीं है हे जगत्के अन्तर्यामी ! दिव्यकार्य करनेवाले, आप इस जगत्में प्राणियोंमें शान्ति
देनेवाले, तथा प्रतिपदमें पावकहैं आपको नमस्कारहै ॥ २७ ॥ हे जलरूप ! हे परमेश ! हे जगत्के पवित्र करनेवाले ! आप अद्भुतचरित्र करतेहैं, हे
विश्वनाथ ! आप इस संसारको अपने दर्शनरूपी स्नानसे निर्मल तथा पवित्र करनेवालेहो, सो आपको नमस्कारहै ॥ २८ ॥ हे आकाशके समान रूपवाले ?

विश्वैकपावक न तावकपावकैकशक्तेर्ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम् ॥ प्राणिष्यदो जगदहो जगदंतरात्मंस्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो
नमस्ते ॥ २७ ॥ पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र चित्रं विचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम् ॥विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ पानीयगा
हनत एतदतो नतोऽस्मि ॥ २८ ॥ आकाशरूप बहिरंतरुतावकाशदानाद्विकस्वरमिहेश्वरविश्वमेतत् ॥ त्वत्तस्सदा सदय संश्वसिति
स्वभावात्संकोचमेति भवतोऽस्मिं नतस्ततस्त्वाम् ॥ २९ ॥ विश्वंभरात्मक बिभर्षि विभोत्र विश्वं को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमो
रिः ॥ स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम् ॥ ३० ॥ आत्मस्वरूप तव रूपपरंपराभिराभिस्ततं
हर चराचररूपमेतत् ॥ सर्वांतरात्मनिलयप्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्त्ते ॥ ३१ ॥

हे दयालो ! हे ईश्वर विश्वेश्वर ! बाहर भीतर अवकाश देनेसे प्रकाशितहुआ यह संसार आपसे ही सदा श्वास लेताहै, और आपमेंही संकोचको प्राप्त हो
जाताहै, ऐसे आपको प्रणाम करताहूं ॥ २९ ॥ हे विश्वंभरात्मक ! हे सर्वव्यापक ! हे विश्वनाथ ! हे सर्पोंके भूषणधारणकरनेवाले ! आपके विना कौन
प्रकाशक इस संसारको पालन और धारण कर सकताहै, आप अंधकार दूरकरनेवालेहैं, हे स्तुतिसे परे ! आप मेरे अंधकारको दूरकरो, परेसेभी परे आपको
मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३० ॥ हे आत्मस्वरूप ! हे शिव ! हे सर्वान्तर्यामी ! हे परमात्मजन ! हे प्रत्येकरूपके रूप ! हे अष्टमूर्ते ! आपके रूपकी परंपरासे

यह चर अचर संसार फैलाहै, ऐसे आपको नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ हे समस्तजनोंके हितकारी मूर्तिवाले ! हे नम्रोंके पालनकर्ता ! हे सर्वार्थसार्थ
परमार्थ ! ! ! आप अपनी इन आठों मूर्तियोंसे संसारको बंधनोंसे युक्त करतेहो, ऐसे विस्तारवाले आपको प्रणाम करताहूं ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारजी बोले,
इस प्रकार अष्टमूर्तिके अष्टकसे शिवकी स्तुतिकर शुक्रजीने, भूमिमें साष्टांग दंडवत्कर बारंबार प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अति तेजस्वी शुक्रजीसे
स्तुति किये हुए शिवजी; उन नम्र हुए ब्राह्मणोंको अपनी भुजाओंसे पृथ्वीसे उठाय आलिंगन कर ॥ ३४ ॥ मेघके समान गंभीर, मधुरवाणीसे प्रीतिपूर्वक

इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबंधबंधो युक्तौ करोषि खलु विश्वजनीनमूर्त्ते ॥ एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि
॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अष्टमूर्त्यष्टकेनेत्थं परिष्टुत्येति भार्गवः ॥ भर्गं भूमिमिलन्मौलिः प्रणनाम पुनःपुनः ॥ ३३ ॥ इति
स्तुतो महादेवो भार्गवेणातितेजसा ॥ उत्थाय भूमेर्बाहुभ्यां धृत्वा तं प्रणतं द्विजम् ॥ ३४ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मेघनादगभीरया ॥
सुप्रीत्या दशनज्योत्स्ना प्रद्योतितदिगंतरः ॥ ३५ ॥ महादेव उवाच ॥ विप्रवर्य कवे तात मम भक्तोऽसि पावनः ॥ अनेनात्युग्रतपसा
स्वजन्याचरितेन च ॥ ३६ ॥ लिंगस्थापनपुण्येन लिंगस्याराधनेन च ॥ दत्तचित्तोपहारेण शुचिना निश्चलेन च ॥ ३७ ॥ अवि
मुक्तमहाक्षेत्रपवित्राचरणेन च ॥ त्वां सुताभ्यां प्रपश्यामि तवादेयं न किंचन ॥ ३८ ॥ अनेनैव शरीरेण ममोदरदरीगतः ॥ मद्वरेन्द्रि
यमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेष्यसि ॥ ३९ ॥ यच्छाम्यहं वरं तेऽद्य दुष्प्राप्यं पार्षदैरपि ॥ हरेर्हिरण्यगर्भाच्च प्रायशोहं जुगोप यम् ॥ ४० ॥

अपने दांतोंकी कान्तिसे सब ओर प्रकाशित करते हुए बोले ॥ ३५ ॥ महादेव बोले, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हे शुक्र ! हे तात ! तुम मेरे अतिपवित्र भक्त हो,
कुटुम्बियोंसहित कियेहुए इस कठिन तपसे ॥ ३६ ॥ तथा ज्योतिर्लिंगके पुण्यलिंगप्रतिमाके आराधन तथा, पवित्र, निश्चल, चित्तके उपहार देनेसे ॥ ३७ ॥
अविमुक्त नामक क्षेत्रमें पवित्र आचरण करनेसे मैं तुमको दयाके नेत्रोंसे देखता हूं, तुम्हें अदेय वस्तु कोई नहीं ॥ ३८ ॥ तुम इसी शरीरसे मेरे पेटरूपी
गुहामें प्राप्त होके मेरी इन्द्रियमार्गसे निकलकर पुत्र भावको प्राप्त होगे ॥ ३९ ॥ अब विष्णुके पार्षदोंको भी दुर्लभ श्रेष्ठ वरको तुझे देताहूं जिसे मैंने

ब्रह्मांजीसे भी छिपाया था ॥ ४० ॥ मृतसंजीविनीनामक जो मेरी निर्मल विद्या है वह मैंने ही अपने तपोबलसे निर्माण की है ॥४१॥ हे महाशुचे ! मंत्ररूपवाली उस विद्याको तुम्हें देताहूं, हे पवित्र तपोनिधे ! तुमको उस पवित्र विद्याकी योग्यताहै ॥ ४२ ॥ जिस किसी कार्यका उद्देश कर नियमसे इस विद्याको जपोगे तो इस सत्येश्वरी विद्यासे अवश्य प्राणियोंको जीवित कर सकोगे ॥ ४३ ॥ सूर्य तथा अग्निको अतिक्रमणकर आकाशमें तारकरूपसे प्रकाशमान श्रेष्ठ ग्रह होगे ॥ ४४ ॥ जो स्त्री वा पुरुष तुम्हारे सन्मुख यात्रा करेंगे तुम्हारी दृष्टिपातसे उनके सब कार्य नष्ट होंगे ॥ ४५ ॥ हे सुव्रत !

मृतसंजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला ॥ तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता ॥४१॥ त्वां तां तु प्रापयाम्यद्य मंत्ररूपां महाशुचे ॥ योग्यता तेऽस्ति विद्यायास्तस्याश्शुचितपोनिधे ॥ ४२ ॥ यंयमुद्दिश्य नियतमेतामावर्तयिष्यसि ॥ विद्यां विद्येश्वरश्रेष्ठं सत्यं प्राणिष्यति ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ अत्यर्कमत्यग्नि च ते तेजो व्योम्नि च तारकम् ॥ देदीप्यमानं भविता ग्रहाणां प्रवरो भव ॥ ४४ ॥ अपि च त्वां करिष्यंति यात्रां नार्यो नरोऽपि वा ॥ तेषां त्वद्दृष्टिपातेन सर्वकार्यं प्रणश्यति ॥ ४५ ॥ तवोदये भविष्यंति विवाहादीनि सुव्रत ॥ सर्वाणि धर्मकार्याणि फलवंति नृणामिह ॥ ४६ ॥ सर्वाश्च तिथयो नन्दास्तव संयोगतश्शुभाः ॥ तव भक्ता भविष्यंति बहुशुक्रा बहु प्रजाः ॥ ४७ ॥ त्वयेदं स्थापितं लिंगं शुक्रेशमिति संज्ञितम् ॥ येऽर्चयिष्यंति मनुजास्तेषां सिद्धिर्भविष्यति ॥ ४८ ॥ आवर्षं प्रतिघस्रं ये नक्तव्रतपरायणाः ॥ त्वद्दिने शुक्रकूपे ये कृतसर्वोदकक्रियाः ॥ ४९ ॥ शुक्रेशमर्चयिष्यंति शृणु तेषां तु यत्फलम् ॥ अबंध्यशुक्रास्ते मर्त्याः पुत्रवंतोऽतिरेतसः ॥ ५० ॥ पुंस्त्वसौभाग्यसंपन्ना भविष्यंति न संशयः ॥ उपेतविद्यास्ते सर्वे जनास्स्युः सुखभागिनः ॥ ५१ ॥

तुम्हारे उदय होने पर विवाह आदि शुभ कार्य होंगे, तथा मनुष्योंके सम्पूर्ण धर्मसम्बन्धी कार्य सफल होंगे ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण नन्दातिथि तुम्हारे संयोगसे शुभ होंगी, तुम्हारे भक्त, बडे वीर्यवाले तथा अधिक सन्तानवाले होंगे ॥ ४७ ॥ तुमने यह शुक्रेशनामक ज्योतिर्लिंग स्थापित किया है, जो मनुष्य इसका पूजन करैंगे उनकी सिद्धि होगी ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य रात दिन व्रतमें तत्परहो वर्षभर प्रतिक्षण शुक्रके दिन शुक्रकूपमें जलक्रिया करेंगे ॥ ४९ ॥ और शुक्रेश शिवको पूजेंगे, उनके फलको सुनो, वे मनुष्य निर्बंध वीर्यवाले तथा पुत्रवाले अतिपराक्रमी होंगे ॥ ५० ॥ वे सम्पूर्ण मनुष्य मनुष्यत्व, सौभाग्य

सम्पन्न, विद्याके प्राप्त करनेवाले सुखके भागी होंगे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार वरोंको देके देवदेव शिवजी उस पार्थिवलिंगमें लयहोगये, और शुक्रजी प्रसन्नहो अपने स्थानको गये ॥ ५२ ॥ हे व्यासजी ! जिस प्रकार मृत्युंजयनामक विद्या तपोबलसे शुक्रजीने पाई, सो तुमसे कही, अब क्या सुननेकी इच्छाहै ॥ ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० मृतसंजीविनीविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ व्यासजी बोले, हे सनत्कुमारजी ! हे सर्वज्ञ ! आपने प्रीति तथा दया करके शिवके अनुग्रहवाली, अद्भुतकथा सुनाई ॥ १ ॥ अब मैं शिवजीके उस चरित्रको सुनना

इति दत्त्वा वरान्देवस्तत्र लिंगे लयं ययौ ॥ भार्गवोऽपि निजं धाम प्राप संतुष्टमानसः ॥ ५२ ॥ इति ते कथितं व्यास यथा प्राप्ता तपोबलात् ॥ मृत्युंजयाभिधा विद्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे मृतसंजीविनीविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ श्राविता सुकथाद्भुता ॥ भवतानुग्रहात्प्रीत्या शंभ्वनुग्रहनिर्भरा ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः ॥ गाणपत्यं ददौ प्रीत्या यथाबाणासुराय वै ॥ ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यासादरात्तां वै कथां शंभोः परात्मनः ॥ गाणपत्यं यथा प्रीत्या ददौ बाणासुराय हि ॥ ३ ॥ अत्रैव सुचरित्रं च शंकरस्य महाप्रभोः ॥ कृष्णेन समरोप्यत्र शंभोर्बाणानुगृह्णतः ॥ ४ ॥ अत्रानुरूपं शृणु मे शिवलीलान्वितं परम् ॥ इतिहासं महापुण्यं मनःश्रोत्रसुखावहम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मपुत्रो मरीचिर्यो मुनिरासीन्महामतिः ॥ मानसस्सर्वपुत्रेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥ ६ ॥ तस्य पुत्रो महात्मासीत्कश्यपो मुनिसत्तमः ॥ सृष्टिप्रवृद्धकोऽत्यंतं पितुर्भक्तो विधेरपि ॥ ७ ॥

चाहताहूं जिस प्रकार प्रीतिसे शिवने बाणासुरको; गणपति किया ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! आप परमात्मा शिवजीकी उस कथाको श्रवण करो जैसे प्रीतिसे बाणासुरको गाणपत्य प्रदान किया ॥ ३ ॥ इसी विषयमें महाप्रभु शंकरका चरित्र तथा बाणासुरके ऊपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिवजीका कृष्णजीके साथ युद्धभी है ॥ ४ ॥ अब मुझसे शिवजीकी लीलासे युक्त महापवित्र मन और कानोंको सुखदायक सुन्दर इतिहास सुनो ॥५॥ ब्रह्माजीके पुत्र, बड़े बुद्धिमान्, सब पुत्रोंमें ज्येष्ठ, मरीचिमुनिनामक श्रेष्ठ प्रजापति हुए ॥६॥ उनके पुत्र, महात्मा कश्यपमुनि, सृष्टिके बढ़ानेवाले तथा पिता

ब्रह्माजीके अतिभक्त हुये ॥७॥ हे व्यासजी ! उन कश्यपमुनिके दक्षकी कन्या, सुशील पतिव्रता तेरह स्त्रियां थीं ॥ ८ ॥ उनमें ज्येष्ठा दिति थी, उसके पुत्र दैत्य हुये, और शेष कन्याओंसे चर अचर सहित समस्त देवता उत्पन्नहुये ॥ ९ ॥ पहले ज्येष्ठा दितिस्त्रीसे महाबली, दो पुत्र उत्पन्नहुये, उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष कनिष्ठ था ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुसे दैत्योंमें श्रेष्ठ ह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, प्रह्लाद नामक चार पुत्र हुये ॥११॥ उन चारोंमें प्रह्लाद, विष्णुका बडा भक्त जितेन्द्रिय हुआ जिसको कोई दैत्य नाश करनेमें समर्थ न हुआ ॥ १२ ॥ प्रह्लादका पुत्र विरोचन बडा दानी हुआ, जिसने ब्राह्मणरूपसे

तस्य त्रयोदशमितादक्षकन्या स्सुशीलिकाः ॥ कश्यपस्य मुनेर्व्यास पत्न्यश्चासन्पतिव्रताः ॥ ८ ॥ तत्र ज्येष्ठा दितिश्चासीद्दैत्यास्तत्तनयास्स्मृताः ॥ अन्यासां च सुता जाता देवाद्यास्सचराचराः॥९॥ज्येष्ठायाः प्रथमौ पुत्रौ दितेश्चास्तां महाबलौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारो दैत्यसत्तमाः ॥ ह्रादानुह्रादसंह्रादप्रह्रादाश्चेत्यनुक्रमात् ॥ ११ ॥ प्रह्रादस्तत्र हि महान्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ यं नाशितुं न शक्तास्तेऽभवन्दैत्याश्च केपि ह ॥ १२ ॥ विरोचनः सुतस्तस्य महादातृवरोऽभवत् ॥ शक्राय स्वशिरो योऽदाद्याचमानाय विप्रतः ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रो बलिश्चासीन्महादानी शिवप्रियः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ १४ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणश्शिवभक्तो बभूव ह ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधस्सहस्रदः ॥ १५ ॥ शोणिताख्ये पुरे स्थित्वा स राज्यमकरोत्पुरा ॥ त्रैलोक्यं च बलाज्जित्वा तन्नाथानसुरेश्वरः ॥ १६ ॥ ॥ तस्य बाणासुरस्यैव शिवभक्तस्य चामराः ॥ शंकरस्य प्रसादेन किंकरा इव तेऽभवन् ॥ १७ ॥

मांगते हुये इन्द्रको अपना शिर देदिया था ॥ १३ ॥ उनका पुत्र बलि महादानी, शिवका भक्त हुआ, जिसने वामनावतारधारी विष्णुको समस्त पृथ्वी दान करदी ॥ १४ ॥ उन बलिका औरस पुत्र, बाणासुर शिवका भक्त हुआ जो माननीय, दाता, बुद्धिमान् सत्यवादी सहस्रोंको दान देनेवाला था ॥ १५ ॥ उसने पूर्व शोणितनामवाले नगरमें निवास करके अपने बलसे त्रिलोकीके राजाओंको जीतकर राज्यकिया ॥ १६ ॥ शिवके प्रसादसे, सम्पूर्ण देवता, उन

शिवके भक्तहुये बाणासुरके दाससे होगये ॥ १७ ॥ उसके राज्यमें देवताओंको छोड कोई प्रजा दुःखी नहीं थी, वे दूसरे धर्ममें प्रवृत्त हुये देवता शत्रुभावसे दुःखीथे ॥ १८ ॥ एक समय उस दैत्यने सहस्रभुजाओंके वाद्यसे तथा तांडवनृत्यसे उन शिवको प्रसन्नकिया ॥ १९ ॥ भक्तवत्सल शिवजीने उसके नृत्यसे संतुष्टहो प्रसन्नता तथा कृपादृष्टिसे उसे देखा ॥ २० ॥ सब लोकोंके स्वामी शरणागतवत्सल भक्तोंकी कामना पूर्णकरनेवाले भगवान् शिवजीने उस बाणासुर दैत्यको वरदानदेनेकी इच्छाकर कहा ॥ २१ ॥ शिवजीने जब कहा तब बलिका पुत्र श्रेष्ठभक्त बुद्धिमान बाणासुर शिवजीको प्रणामकर उनकी

तस्य राज्येऽमरान्हित्वा नाभवन्दुःखिताः जाः ॥ सापत्न्याद्दुःखितास्ते हि परधर्मप्रवर्तिनः ॥ १८ ॥ सहस्रबाहुबाद्येन स कदाचिन्महासुरः ॥ तांडवेन हि नृत्येनातोषयत्तं महेश्वरम् ॥ १९ ॥ तेन नृत्येन संतुष्टस्सुप्रसन्नो बभूव ह ॥ ददर्श कृपया दृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २० ॥ भगवान्सर्वलोकेशश्शरण्यो भक्तकामदः ॥ वरेण च्छंदयामास बालेयं तं महासुरम् ॥ २१ ॥ बालेयः स महादैत्यो बाणो भक्तवरस्सुधीः ॥ प्रणम्य शंकरं भक्त्या तुनाव परमेश्वरम् ॥ २२ ॥ बाणासुर उवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ संतुष्टोऽसि महेशान ममोपरि विभो यदि ॥ २३ ॥ मद्रक्षको भव सदा मदुपस्थः पुराधिपः ॥ सर्वथा प्रीतिकृन्मे हि ससुतस्सगणः प्रभो ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ बलिपुत्रस्स वै बाणो मोहितश्शिवमायया ॥ मुक्तिप्रदं महेशानं दुराराध्यमपि ध्रुवम् ॥ २५ ॥ स भक्तवत्सलः शंभुर्दत्त्वा तस्मै वरांश्च तान् ॥ तत्रोवास तथा प्रीत्या सगणस्ससुतः प्रभुः ॥२६॥ स कदाचिद्बाणपुरे चक्रे देवासुरैस्सह ॥ नदीतीरे हरः क्रीडां रम्ये शोणितकाह्वये ॥ २७ ॥

स्तुति करने लगा ॥ २२ ॥ बाणासुर बोला, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे महेशान ! हे विभो ! यदि तुम मेरे ऊपर संतुष्टहो॥२३॥ तो हे प्रभो ! नगरके अधिपति होके मेरे समीप रहके मेरी प्रीति करनेवाले तथा मेरी रक्षा करनेवाले होकर पुत्र और गणोंसहित निवास करो ॥२४॥ सनत्कुमारजी बोले, वह शिवजीकी मायासे मोहित हुआ, बलिका पुत्र बाणासुर, मुक्तिके देनेवाले, दुराराध्य निश्चल शिवसे यह वर मांगनेलगा ॥ २५ ॥ तब भक्तवत्सल शिवजीने उसे इन वरोंको देकर गणों और पुत्रोंके सहित प्रीतिसे वहां निवास किया ॥ २६ ॥ एक समय उन शिवजीने, शोणितपुरनामक,

बाणासुरके मनोहर नगरमें नदीके तटपर, देवता तथा दैत्योंके साथ क्रीडाकी ॥ २७ ॥ उस समय गन्धर्व अप्सरायें नाचने और हँसने लगीं मुनिगण उनको प्रणामकर पूजने और स्तुति करने तथा जयजयकार करनेलगे ॥ २८ ॥ सब देवता प्रसन्न हुये, ऋषि होम करनेलगे, सब सिद्धगण आगये, और शंकरकी क्रीडा देखने लगे ॥ २९ ॥ कुतर्क करनेवाले, तथा नष्ट आचारवाले, कुमार्गपर चलनेवाले, नाश होने लगे, उस समय सब चंडिकादि देवियां सन्मुख आईं, समस्तभय नष्टहुये ॥ ३० ॥ शिवके भक्तोंके सांसारिक दोष दूरहुए, तथा शिवके दर्शन करनेसे सम्पूर्ण प्रजा, अतिप्रीतिको प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ मुनि सिद्धगण,

ननृतुर्जहसुश्चापि गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ जेपुः प्रणेमुर्मुनय आनर्चुस्तुष्टुवुश्च तम् ॥ २८ ॥ ववल्गुः प्रमथास्सर्वे ऋषयो जुहुवुस्तथा ॥
आययुः सिद्धसंघाश्च ददृशुश्शांकरीं रतिम् ॥ २९ ॥ कुतर्किका विनेशुश्च म्लेच्छाश्च परिपंथिनः ॥ मातरोभिमुखास्तस्थुर्विनेशुश्च
बिभीषिकाः ॥ ३० ॥ रुद्रसद्भावभक्तानां भवदोषाश्च विस्तृताः ॥ तस्मिन्दृष्टे प्रजास्सर्वाः सुप्रीतिं परमां ययुः ॥ ३१ ॥ ववल्गुर्मुनय
स्सिद्धाः स्त्रीणां दृष्ट्वा विचेष्टितम् ॥ पुपुषुश्चापि ऋतवस्स्वप्रभावं तु तत्र च ॥ ३२ ॥ ववुर्वाताश्च मृदवः पुष्पकेसरधूसराः ॥ चुकूजुः
पक्षिसंघाश्च शाखिनां मधुलम्पटाः ॥ ३३ ॥ पुष्पभारावनद्धानां रारटचेरंश्च कोकिलाः ॥ मधुरं कामजननं वने[illegible]नेषु च ॥ ३४ ॥
ततः क्रीडाविहारे तु मत्तो बालेन्दुशेखरः ॥ अनिर्जितेन कामेन दृष्टः प्रोवाच नन्दिनम् ॥ ३५ ॥ ॥ चन्द्रशेखर उवाच ॥ वा
मामानय गौरीं त्वं कैलासात्कृतमंडनाम् ॥ शीघ्रमस्माद्वनाद्गत्वा ह्युक्त्वाऽकृष्णामिहानय ॥ ३६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स
तथेति प्रतिज्ञाय गत्वा तत्राह पार्वतीम् ॥ सुप्रणम्य रहोदूतश्शंकरस्य कृतांजलिः ॥ ३७ ॥

स्त्रियोंकी अद्भुतचेष्टा देख प्रसन्न हुये, और सब ऋतुयें वहां अपने २ प्रभावको पुष्ट करने लगीं ॥ ३२ ॥ कोमल पुष्पोंकी धूलिसे व्याप्त पवन चलने लगी, वृक्षोंके मदोंमें तत्पर हुये पक्षियोंके समूह, शब्द करने लगे ॥ ३३ ॥ कोयलैं, पुष्पोंके भारसे झुके हुये वृक्षोंपर, वनोंमें बागोंमें कामोत्पादक मधुर शब्द करने लगीं ॥ ३४ ॥ उस समय क्रीडाके विहारमें उन्मत्त हुए, विना जीते कामदेवसे देखे हुए शिवने नन्दीसे कहा ॥ ३५ ॥ शिवजी बोले हे नन्दी ! तुम यहांसे कैलासपर्वतमें जाय श्रृंगार की हुई पार्वतीसे मेरा संदेशा कहके शीघ्र लाओ ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, उन नन्दीने बहुत अच्छा ऐसी प्रतिज्ञा करके हाथ

जोड वेगसे गमन किया ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले हे देवि ! देवोंके देव शिवजी सिंगार किये हुए तुमको देखना चाहते हैं, मुझे संदेसा कहकर भेजा है ॥ ३८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! तब उन नन्दीके वचनसे पतिव्रता धर्ममें तत्पर हुई वह पार्वतीजी आदरसे सुन्दर वेष बनाने लगीं ॥ ३९ ॥ हे नन्दिन् ! मैं आती हूं, इस प्रकार तुम मेरी आज्ञासे जाकर प्रभु शिवजीसे कहो, यह सुन मनकी समान गतिवाले वे नन्दी शिवके समीप गये ॥ ४० ॥ तब वे शिवजी फिर नन्दीसे बोले हे तात ! फिर जाओ, और शीघ्र पार्वतीको लाओ ॥ ४१ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर वह नन्दी वहां जाकर सुन्दर

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ द्रष्टुमिच्छति देवि त्वां देवदेवो महेश्वरः ॥ स्ववल्लभां रूपकृतां मयोक्तं तन्निदेशतः ॥ ३८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततस्तद्वचनाद्गौरी मंडनं कर्तुमादरात् ॥ उद्यताभून्मुनिश्रेष्ठ पतिव्रतपरायणा ॥ ३९ ॥ आगच्छामि प्रभुं गच्छ वद तं त्वं ममाज्ञया ॥ आजगाम ततो नंदी रुद्रासन्नं मनोगतिः ॥ ४० ॥ पुनराह ततो रुद्रो नन्दिनं परविभ्रमः ॥ पुनर्गच्छ ततस्तात क्षिप्रमानय पार्वतीम् ॥ ४१ ॥ बाढमुक्त्वा स तां गत्वा गौरीमाह सुलोचनाम् ॥ द्रष्टुमिच्छति ते भर्ता कृतवेषां मनोरमाम् ॥ ४२ ॥ शंकरो बहुधा देवि विहर्तुं संप्रतीक्षते ॥ एवं पतौ सुकामार्ते गम्यतां गिरिनंदिनि ॥ ४३ ॥ अप्सरोभिस्समग्राभिरन्योन्यमभिमंत्रितम् ॥ लब्धभावो यथा सद्यः पार्वत्या दर्शनोत्सुकः ॥ ४४ ॥ अयं पिनाकी कामारिः वृणुयाद्यां नितंबिनीम् ॥ सर्वासां दिव्यनारीणां राज्ञी भवति वै ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ वीक्षणंगौरि रूपेण क्रीडयेन्मन्मथैर्गणैः ॥ कामोऽयं हंति कामारिमूचुरन्योन्यमादताः ॥ ४६ ॥

नेत्रवाली पार्वतीसे बोले कि—तुम्हारे पति मनोहर वेष बनाये हुए तुमको देखना चाहते हैं ॥ ४२ ॥ हे देवि ! शिवजी अनेकप्रकारसे विहार करनेकी प्रतीक्षा कररहेहैं इस प्रकार कामसे व्याकुलहुए पतिके कारण शीघ्र चलो देर मत करो, तथापि पार्वतीने देरकी ॥ ४३ ॥ तब सम्पूर्ण अप्सराओंने परस्पर, सम्मति करके, काममें ग्रसित हुए शीघ्र पार्वतीके देखनेमें उत्कंठित शिवके प्रति विचारा कि ॥ ४४ ॥ यह कामदेवके शत्रु शिवजी जिस स्त्रीको वरण करेंगे वह स्त्री निश्चयही समस्त दिव्य स्त्रियोंकी रानी होगी ॥ ४५ ॥ हम पार्वतीका रूप धारण कर कामके विलासोंसे इनके संग क्रीडा करैं, इस समय कामदेव

शिवजीको मोहित कियेहै, तब वे इस प्रकार परस्पर आदरसे बोलीं कि ॥ ४६ ॥ जो स्त्री दाक्षायणीके विना शंकरको स्पर्श करनेमें समर्थ हो वह वहां
जाय और निःसन्देह शिवजीको मोहित करै ॥ ४७ ॥ तब कुंभांडकी पुत्री चित्रलेखाने शिवजीके स्पर्श करनेका उत्साह किया और पार्वतीका रूप
धारणकर चित्रलेखाने कहा ॥ ४८ ॥ चित्रलेखा बोली, पहले परमार्थसे विष्णु भगवान्ने दैत्योंको मोहित करनेकी इच्छासे वैष्णवयोगको आश्रयकर जो
मोहिनीरूप धारण किया था मैं उसी योगसे रूप धरतीहूं ॥ ४९ ॥ उस समय उर्वशीने अपना रूप बदलाथा, यह देख घृताचीने कालीका, विश्वाचीने,

स्प्रष्टुं शक्नोति या काचिद्दते दाक्षायणीं स्त्रियम् ॥ सा गच्छेत्तत्र निश्शंकं मोहयेत्पार्वतीपतिम् ॥ ४७ ॥ कूष्मांडतनया तत्र शंकरं स्प्र
ष्टुमुत्सहे ॥ अहं गौरीसुरूपेण चित्रलेखा वचोऽब्रवीत् ॥ ४८ ॥ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ यदधान्मोहिनीरूपं केशवो मोहनेच्छया ॥
पुरा तद्वैष्णवं योगमाश्रित्य परमार्थतः ॥ ४९ ॥ उर्वश्याश्च ततो दृष्ट्वा रूपस्य परिवर्तनम् ॥ कालीरूपं घृताची तु विश्वाची चांडिकं
वपुः ॥ ५० ॥ सावित्रिरूपं रंभा च गायत्रं मेनका तथा ॥ सहजन्या जयारूपं वैजयं पुंजकस्थली ॥ ५१ ॥ मातॄणामप्यनुक्ताना
मनुक्ताश्चाप्सरोवराः ॥ यत्नाद्रूपाणि ताश्चक्रुस्स्वविद्यासंयुता अनु ॥ ५२ ॥ ततस्तासां तु रूपाणि दृष्ट्वा कुंभांडनंदिनी ॥ वैष्णवादात्म
योगाच्च विज्ञातार्था व्यडंबयत् ॥ ५३ ॥ ऊषा बाणासुरसुता दिव्ययोगविशारदा ॥ चकार रूपं पार्वत्या दिव्यमत्यद्भुतं शुभम् ॥ ५४ ॥
महारक्ताब्जसंकाशं चरणं चोत्तमप्रभम् ॥ दिव्यलक्षणसंयुक्तं मनोऽभीष्टार्थदायकम् ॥ ५५ ॥

चंडिकाका ॥ ५० ॥ रंभाने सावित्रीका, मेनकाने गायत्रीका, सहजन्याने जयाका, पुंजिकस्थलीने विजयाका रूप धराथा ॥ ५१ ॥ तथा और अनेकों
अप्सराओंने, और अनेकदेवियोंका रूप अपनी विद्यासे यत्नपूर्वक बनायाथा ॥ ५२ ॥ तब उन सबोंके रूपको देख, कुंभांडकी पुत्री (चित्रलेखा) ने
अपने वैष्णवयोगसे सबभाव जानके अपने रूपको छिपालिया ॥ ५३ ॥ सुन्दर योगमें निपुण हुई, ऊषा नामवाली, बाणासुरकी पुत्रीने, पार्वतीके सुन्दर
रूपको धारण किया ॥ ५४ ॥ उसके चरण, लाल कमलकी समान अनुपम कान्तिवाले तथा दिव्यलक्षणोंसे सम्पन्न मनके अभीष्टोंको देनेवालेथे ॥ ५५ ॥

उस कन्याके रमण करनेके संकल्पको जानके सब कुछ जानने वाली, सर्वान्तर्यामिनी पार्वतीजी बोली ॥ ५६ ॥ हे मानिनि ! सखि ! ऊषे ! समय प्राप्त होनेपर कामसे तूने मेरा स्वरूप धारण कियाहै ॥ ५७ ॥ तू इसी कार्तिकमासमें ऋतुधर्मवाली होगी, और वैशाख शुक्ला द्वादशीको अतिरात बीतनेपर ॥ ॥ ५८ ॥ व्रत करनेवाली अन्तःपुर (रनवास) में सोती हुई तुझसे जो कोई मनुष्य भोग करैगा, देवताओंने उसीको तेरा पति नियत कियाहै, उसीके साथ तू रमण करैगी ॥ ५९ ॥ कारण कि तू बाल्यावस्थासे निरालस्य विष्णुकी भक्ताहै, ऐसाही हो यह कहकर वह लज्जितमुख हो बैठगई ॥ ६० ॥

तस्या रमणसंकल्पं विज्ञाय गिरिजा ततः ॥ उवाच सर्वविज्ञाना सर्वान्तर्यामिनी शिवा ॥ ५६ ॥ गिरिजोवाच ॥ यतो मम स्वरूपं वै धृतमूषे सखि त्वया ॥ सकामत्वेन समये संप्राप्ते सति मानिनि ॥ ५७ ॥ अस्मिंस्तु कार्तिके मासि ऋतुधर्मास्तु माधवे ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तु घोरे निशागमे ॥ ५८ ॥ कृतोपवासां त्वां भोक्ता सुप्तामंतःपुरे नरः ॥ स ते भर्त्ता कृतो देवैस्तेन सार्द्धं रमिष्यसि ॥ ५९ ॥ आबाल्याद्विष्णुभक्तासि यतोऽनिशमतंद्रिता ॥ एवमस्त्विति सा प्राह मनसा लज्जितानना ॥ ६० ॥ अथ सा पार्वती देवी कृतकौतुकमण्डना ॥ रुद्रसंनिधिमागत्य चिक्रीडे तेन शंभुना ॥ ६१ ॥ ततो रतांते भगवान्रुद्रश्चादर्शनं ययौ ॥ सदारः सगणश्चापि सहितो दैवतैर्मुने ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखडे ऊषाचरित्रवर्णनं शिवशिवाविवाहवर्णनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्वान्यच्चरित्रं च शिवस्य परमात्मनः ॥ भक्तवात्सल्यसंगर्भि परमानन्ददायकम् ॥ १ ॥

तब वह देवी पार्वती, कौतुक के भेषसे शोभितहो शिवके समीप आय उनके साथ क्रीडा करनेलगी ॥ ६१ ॥ हे मुने ! उस समय सुरतके पश्चात् भगवान् शिव स्त्रियों तथा गणों और देवताओंके सहित अन्तर्धान होगये ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० ऊषाचरित्रवर्णनं शिवशिवा विहारवर्णनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले, परमात्मा शिवके भक्तोंकी दयासे मिश्रित तथा परमआनन्द देनेवाले और चरित्रको

सुनो ॥ १ ॥ एक समय प्रारब्धके दोषसे गर्वितहुए बाणासुर दैत्यने तांडवनृत्य करके शिवजीको संतुष्टकिया ॥ २ ॥ पार्वतीके प्रिय शिवजीको संतुष्टमन जानके वह बाणासुर कंधोंको झुकाकर, अंजलिबांध शिवजीसे बोला ॥ ३ ॥ बाणासुर बोला हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे सर्वदेवोंके शिरोमणि ! आपके प्रसादसे मैं बलीहूं आप मेरा वचन सुनो ॥ ४ ॥ हे शिवजी ! आपने मुझे सहस्रभुजा दीं, परन्तु वह मुझे भारमात्र हुईहैं, त्रिलोकीमें आपके समान कोई योद्धा नहीं है ॥ ५ ॥ हे देव ! मैं इन सहस्रभुजाओंसे क्या करूं, हे शिवजी ! युद्धके विना पर्वतके समान इन भुजाओंसे क्या लाभहै ॥ ६ ॥

पुरा बाणासुरो नाम दैवदोषाच्च गर्वितः ॥ कृत्वा तांडवनृत्यं च तोषयामास शंकरम् ॥ २ ॥ ज्ञात्वा संतुष्टमनसं पार्वतीवल्लभं शिवम् ॥ उवाच चासुरो बाणो नतस्कन्धः कृतांजलिः ॥ ३ ॥ बाण उवाच ॥ देवदेव महादेव सर्वदेवशिरोमणे ॥ त्वत्प्रसादाद्बली चाहं शृणु मे परमं वचः ॥ ४ ॥ दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ५ ॥ हे देव किमनेनापि सहस्रेण करोम्यहम् ॥ बाहूनां गिरितुल्यानां विना युद्धं वृषध्वज ॥ ६ ॥ कडूंत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ पुराण्याचूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेपि प्रदुद्रुवुः ॥७॥ मया यमः कृतो योद्धा वह्निश्च कृतको महान् ॥ वरुणश्चापि गोपालो गवां पालयिता तथा ॥ ८ ॥ गजाध्यक्षः कुबेरस्तु सैरन्ध्री चापि निर्ऋतिः ॥ जितश्चाखंडलो लोके करदायी सदा कृतः ॥ ९ ॥ युद्धस्यागमनं ब्रूहि यत्रैते बाहवो मम ॥ शत्रुहस्तप्रयुक्तैश्च शस्त्रास्त्रैर्जर्जरीकृताः ॥ १० ॥ पतंतु शत्रुहस्ताद्वा पातयन्तु सहस्रधा ॥ एतन्मनोरथं मे हि पूर्णं कुरु महेश्वर ॥ ११ ॥

मैं इन पुष्टभुजाओंकी खुजली मिटानेको दिग्गजोंसे युद्ध करनेकी अभिलाषा करके गया, और नगरों तथा पर्वतोंको चूर्णकरनेकी इच्छासे गया तो वे डरसे भागगये ॥ ७ ॥ मैंनें यमको युद्ध करनेवाला, अग्निको बडा कार्य करता बनायाहै, वरुणको गोपाल (गौओंका पालनकरनेवाला) कियाहै ॥ ८ ॥ कुबेरको हाथियोंका अध्यक्ष, निर्ऋतिको सैरन्ध्री, वालोंका संभारनेवाला किया, और इन्द्रको जीतकर करदेनेवाला कियाहै ॥ ९ ॥ अब आप मुझे युद्धका आगमन बताओ कि जिसयुद्धमें मेरी यह भुजाएँ शत्रुओंके हाथोंसे प्रहारकिये शस्त्र और अस्त्रोंसे जर्जरीभूतहों ॥ १० ॥ हे महेश्वर ! यह सहस्रबाहु

शत्रुओंके हाथसे गिरैं, अथवा शत्रुओंको गिरावैं, इस मेरे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यह सुन क्रोधित हुए भक्तोंकी बाधा दूर
करनेवाले शिवजी बडा अद्भुत अट्टहास करके बोले ॥ १२ ॥ शिवजी बोले, हे अहंकारी ! सब दैत्योंके कुलमें नीच ! तुझे सब प्रकार धिक्कारहै, भक्त,
बलिके पुत्र, तुझे ऐसा वचनकहना उचित नहीं है ॥ १३ ॥ शीघ्रही तू इस अहंकारकी शान्तिको प्राप्त होगा, मेरे समान बली किसीके साथ अकस्मात
तेरा बडा प्रचंड युद्ध होगा ॥ १४ ॥ उसमें पर्वतकी समान तेरी भुजा आककाष्ठके समान शस्त्र और अस्त्रोंसे खंडितहो भूमिमें गिरैंगी ॥ १५ ॥ हे दुष्टा

सनत्कुमार उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो रुद्रस्त्वट्टहासं महाद्भुतम् ॥ कृत्वाऽब्रवीन्महामन्युर्भक्तबाधाऽपहारकः ॥ १२ ॥ रुद्र उवाच ॥
धिग्धिक् त्वां सर्वतो गर्विन्सर्वदैत्यकुलाधम ॥ बलिपुत्रस्य भक्तस्य नोचितं वच ईदृशम् ॥ १३ ॥ दर्पस्यास्य प्रशमनं लप्स्यसे चाशु
दारुणम् ॥ महायुद्धमकस्माद्वै बलिना मत्समेन हि ॥ १४ ॥ तत्र ते गिरिसंकाशा बाहवोऽनलकाष्ठवत् ॥ छिन्ना भूमौ पतिष्यंति श
स्त्रास्त्रैः कदलीकृताः ॥ १५ ॥ यदेष मानुषशिरो मयूरसहितो ध्वजः ॥ विद्यते तव दुष्टात्मंस्तस्य स्यात्पतनं यदा ॥ १६ ॥ स्थापित
स्यायुधागारे विना वातकृतं भयम् ॥ तदा युद्धं महाघोरं संप्राप्तमिति चेतसि ॥ १७ ॥ निधाय घोरं संग्रामं गच्छेथाः सर्वसैन्यवान् ॥
सांप्रतं गच्छ तद्वेश्म यतस्तद्विद्यते शिवः ॥ १८ ॥ तथा तान्स्वमहोत्पातांस्तत्र द्रष्टासि दुर्मते ॥ इत्युक्त्वा विररामाथ गर्वहृद्भक्तवत्स
लः ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा रुद्रमभ्यर्च्य दिव्यैरंजलिकुड्मलैः ॥ प्रणम्य च महादेवं बाणश्च स्वगृहं गतः ॥
॥ २० ॥ कुंभाण्डाय यथावृत्तं पृष्टः प्रोवाच हर्षितः ॥ पर्यैक्षिष्टासुरो बाणस्तं योगं ह्युत्सुकस्सदा ॥ २१ ॥

त्मन् ! यह जो तेरी मनुष्यके सिरवाली तथा मोरसहित ध्वजाहै, जब इसका पतन होगा ॥१६॥ तेरे स्थापित शस्त्रोंके स्थानमें जब बातसे उत्पन्न हुआ
भय होगा तब महाघोरयुद्ध प्रारम्भ होगा ऐसा चित्तमें ॥ १७ ॥ विचारकर सम्पूर्ण सेनाके सहित घोर संग्राममें जाना, अब उस घरमें जा जहां शिवजी
विद्यमान हैं ॥ १८ ॥ हे दुष्टबुद्धे ! वहां उन बडे घोर उत्पातोंको तू देखेगा, यह कहके, अभिमानके नाश करनेवाले भक्तोंके दया करने वाले शिवजी
मौन हुए ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यह सुनकर बाणासुर दिव्य पुष्पोंसे शिवजीका पूजन और प्रणाम कर अपने घरको गया ॥२०॥ और कुंभांडके

पूछनेपर हर्षित हो सब वृत्तान्त कहा, तब वह बाणासुर उत्कंठितहो उस योगको सदा विचारने लगा ॥ २१ ॥ एक समय दैवयोगसे वह बाणासुर उस ध्वजको स्वयं भग्न हुआ देखकर प्रसन्नहो युद्ध करनेकी इच्छासे चला ॥ २२ ॥ वह अपनी सेनाको बुलाके, आठ गणोंके सहित युद्ध सम्बन्धी यज्ञ करके संग्रामके मधुको देख ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंमें पूर्ण मंगल विचार, वह अतिउत्साही, बडा पराक्रमी, महारथ, बलिपुत्र बाणासुर युद्ध को उद्यत हुआ ॥ २४ ॥ और हृदयमें यह विचारने लगा कि संग्रामप्रिय अनेक शस्त्र, अस्त्रोंमें पारगामी योधा कहांसे आवैगा ॥२५॥ जो मेरी सहस्र भुजाओंको

अथ दैवात्कदाचित्स स्वयं भग्नं ध्वजं च तम् ॥ दृष्ट्वा तत्रासुरो बाणो हृष्टो युद्धाय निर्ययौ ॥ २२ ॥ स स्वसैन्यं समाहूय संयुक्तः साष्ट
भिर्गणैः ॥ इष्टिं सांग्रामिकां कृत्वा दृष्ट्वा सांग्रामिकं मधु ॥ २३ ॥ ककुभां मंगलं सर्वं संप्रेक्ष्य प्रस्थितोऽभवत् ॥ महोत्साहो महावीरो
बलिपुत्रो महा रथः ॥ २४ ॥ इति हृत्कमले कृत्वा कः कस्मादागमिष्यति ॥ योद्धा रणप्रियो यस्तु नानाशस्त्रास्त्रपारगः ॥ २५ ॥
यस्तु बाहुसहस्रं मे छिनत्त्वनलकाष्ठवत् ॥ तथा शस्त्रैर्महातीक्ष्णैश्छिनद्मि शतशस्त्विह ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरे कालः संप्राप्तश्शंकरेण
हि ॥ यत्र सा बाणदुहिता सुजाता कृतमंगला ॥ २७ ॥ माधवं माधवे मासि पूजयित्वा महानिशि ॥ सुप्ता चांतःपुरे गुप्ते स्त्रीभावमु
पलंभिता ॥ २८ ॥ गौर्या संप्रेषितेनापि व्याकृष्टा दिव्यमायया ॥ कृष्णात्मजात्मजेनाथ रुदंती साह्यनाथवत् ॥ २९ ॥ स चापि तां
बलाद्भुक्त्वा पार्वत्याः सखिभिः पुनः ॥ नीतस्तु दिव्ययोगेन द्वारकां निमिषांतरात् ॥ ३० ॥ मृदिता सा तदोत्थाय रुदंती विविधा
गिरः ॥ सखीभ्यः कथयित्वा तु देहत्यागे कृतक्षणा ॥ ३१ ॥

आकके काष्ठके समान काटैगा मैं युद्धमें महातीव्र शस्त्रोंसे अनेकोंको छेदन करूंगा ॥ २६ ॥ इसी अन्तरमें शिवजीसे प्रेरितहुआ काल वहां गया जहाँ वह बाणासुरकी पुत्री सुन्दर वेष बनाये मंगल किये उपस्थित थी ॥ २७ ॥ वह वैशाखमासकी महारात्रिमें विष्णुको पूजके, स्त्रीभाव (सुरत) में प्राप्त हुई, गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी ॥ २८ ॥ तब दिव्यमायासे वशीभूत, तथा अनाथकी समान रोतीहुई उस कन्याको, पार्वतीसे भेजेहुए कृष्णके पौत्रने भोगा ॥ २९ ॥ कि उस कन्याको बलात्कारसे भोगकर वह पार्वतीकी सखियोंके दिव्ययोगसे, पलभरमें द्वारकापुरीमें आगया ॥ ३० ॥ तब दूषितहुई वह उठकर

रोने लगी, सखियोंको अनेक कुवाक्य कहके शरीर त्यागनेको उद्यत हुई ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! फिर उसे सखीने अपने दोषको स्मरण कराया तो वह
पहले सब वृत्तान्तको स्मरण करने लगी ॥३२॥ हे मुने ! तब वह बाणासुरकी पुत्री ऊषा, कुंभांडकी पुत्री चित्रलेखासे मधुरवाणीसे बोली ॥ ३३ ॥
ऊषा बोली हे सखि ! ! ! पार्वतीसे भेजाहुआ वह मेरा गुप्तपति, किस उपायसे मुझे प्राप्त हो सकता है ॥ ३४ ॥ वह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है जिसने
मेरा मन हरण किया, इस प्रकार ऊषाका वचन सुन सखी चित्रलेखाने उससे कहा ॥ ३५ ॥ चित्रलेखा बोली, हे देवि ! तूने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखाहै

सख्या कृतात्मनो दोषं सा व्यास स्मारिता पुनः ॥ सर्वं तत्पूर्ववृत्तांतं ततो दृष्ट्वा च साभवत् ॥ ३२ ॥ अब्रवीच्चित्रलेखां च ततो मधुरया
गिरा ॥ ऊषा बाणस्य तनया कुंभांडतनयां मुने ॥ ३३ ॥ ऊषोवाच ॥ सखि यद्येष मे भर्ता पार्वत्या विहितः पुरा ॥ केनोपायेन ते
गुप्तः प्राप्यते विधिवन्मया ॥ ३४ ॥ कस्मिन्कुले स वा जातो मम येन हृतं मनः ॥ इत्यूषावचनं श्रुत्वा सखी प्रोवाच तां तदा
॥ ३५ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ त्वया स्वप्ने च यो दृष्टः पुरुषो देवि तं कथम् ॥ अहं समानयिष्यामि न विज्ञातस्तु यो मम ॥ ३६ ॥
दैत्यकन्या तदुक्ते तु रागांधा मरणोत्सुका ॥ रक्षिता च तया सख्या प्रथमे दिवसे ततः ॥ ३७ ॥ पुनः प्रोवाच सोषां वै चित्रलेखा महा
मतिः ॥ कुंभांडस्य सुता बाणतनयां मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाष्यते ॥ समाने
ष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ ३९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा वस्त्रपुटके देवान्दैत्यांश्च दानवान् ॥ गन्धर्वसिद्धनागांश्च
यक्षादींश्च तथालिखत् ॥ ४० ॥ तथा नरांस्तेषु वृष्णीञ्शूरमानकदुंदुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं नरसत्तमम् ॥ ४१ ॥

मैं उसे किस प्रकार लाऊं, वह मेरा जानाहुआ नहींहै ॥ ३६ ॥ ऐसा चित्रलेखाके कहनेपर वह दैत्यकन्या, प्रेममें मग्नहुई, मरनेमें उद्यतहुई परन्तु पहले दिन
चित्रलेखाने उसकी रक्षाकी ॥ ३७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वह कुंभांडकी पुत्री बुद्धिमती चित्रलेखा फिर बाणासुरकी कन्या ऊषासे यह बोली ॥३८॥ चित्रलेखा
बोली, यदि त्रिलोकीमें भी तेरे मनको हरनेवाला पुरुष हो तो बता, उसे लाके तेरे दुःखको दूर करूं ॥ ३९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा कह उसने वस्त्रके
ऊपर देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, नाग तथा यक्षादिकोंका चित्र खींचा ॥ ४० ॥ मनुष्योंका, यादवोंका, शूर, आनकदुन्दुभि, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न

तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ, अनिरुद्धजीका चित्र लिखा ॥४१॥ अनिरुद्धके चित्रको देखतेही उस ऊषाने लज्जितहो नीचेको मुख करलिया, और मनमें अतिप्रसन्न हुई ॥ ४२ ॥ तब ऊषा बोली, हे सखि ! यह पुरुष मैनें पाया, जिसने रात्रिमें मेरे चित्तरूपी रत्नको चुराया है ॥ ४३ ॥ हे भामिनि ! जिसके स्पर्श मात्रसेही मैं मोहित होगई, उसको जाननेकी इच्छा करतीहूं सो सब विवरण कर ॥ ४४ ॥ कि—यह किसके वंशमें उत्पन्न हुआहै, तथा इसका क्या नाम है, ऐसा सुन वह योगिनी उसके वंशको कहने लगी ॥४५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके कुलादिका सब वृत्तान्त सुनकर, वह कामिनी बाणासुरकी पुत्री उत्कंठितहो

अनिरुद्धं विलिखितं प्राद्युम्निं वीक्ष्य लज्जिता ॥ आसीदवाङ्मुखी चोषा हृदये हर्षपूरिता ॥ ४२ ॥ ऊषा प्रोवाच चौरोऽसौ मया
प्राप्तस्तु यो निशि ॥ पुरुषः सखि येनाशु चेतोरत्नं हृतं मम ॥ ४३ ॥ यस्य संस्पर्शनादेव मोहिताहं तथाभवम् ॥ तमहं ज्ञातुमिच्छा
मि वद सर्वं च भामिनि ॥ ४४ ॥ कस्यायमन्वये जातो नाम किं चास्य विद्यते ॥ इत्युक्त्वा साब्रवीन्नाम योगिनी तस्य चान्वयम् ॥
॥ ४५ ॥ सर्वमाकर्ण्य सा तस्य कुलादि मुनिसत्तम ॥ उत्सुका बाणतनया बभाषे सा तु कामिंनी ॥ ४६ ॥ ऊषोवाच ॥ उपायं
रचय प्रीत्या तत्प्राप्त्यै सखि तत्क्षणात् ॥ येनोपायेन तं कांतं लभेय प्राणवल्लभम् ॥ ४७ ॥ यं विनाहं क्षणं नैकं सखि जीवितुमु
त्सहे ॥ तमानयेह सद्यत्नात्सुखिनीं कुरु मां सखि ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्ता सा तया बाणात्मजया मंत्रिकन्यका ॥
विस्मिताभून्मुनिश्रेष्ठ सुविचारपराऽभवत् ॥ ४९ ॥ ततस्सखीं समाभाष्य चित्रलेखा मनोजवा ॥ बुद्ध्वा तं कृष्णपौत्रं सा द्वारकां
गंतुमुद्यता ॥ ५० ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तृतीये तु गतेऽहनि ॥ आप्रभातान्मुहूर्ते तु संप्राप्ता द्वारकां पुरीम् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार बोली ॥ ४६ ॥ ऊषा बोली, हे सखि ! इसी समय उस पतिके प्राप्त होनेके निमित्त प्रीतिसे वह उपायकर, जिस उपायसे उस प्राणप्रिय (कान्त) पतिको प्राप्त करूं ॥ ४७ ॥ हे सखि ! जिस पतिके विना मैं क्षण भर नहीं जी सकती, हे सखि ! किसी यत्नसे तू यहां ला और मुझे सुखी कर ॥४८॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! बाणासुरकी कन्यासे इस प्रकार कहीहुई वह मंत्रीकी कन्या चित्रलेखा विस्मित हो विचार करनेलगी ॥ ४९ ॥ तब मनके वेगवाली वह चित्रलेखा अपनी सखी ऊषासे कह उन कृष्णके पौत्रको जान, द्वारकाके जानेमें उद्यत हुई ॥ ५० ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दशीको, तीसरे दिन,

प्रातःकालके समय वह चित्रलेखा द्वारकापुरीमें प्राप्त हुई ॥ ५१ ॥ एक क्षणमात्रमें आकाशंमार्गसे वह दिव्ययोगिनी वहां पहुँची, तब उसने अन्तःपुरके बागमें प्रद्युम्नके पुत्र, "अनिरुद्ध" को देखा ॥ ५२ ॥ उन्हें स्त्रियोंको साथ क्रीडा करते तथा माधवीलताओंके मद्यको पान करते, सर्वांगसे सुन्दर, श्यामवर्ण, नवीनयौवनवाले तथा अतिविस्मित हुये पाया ॥ ५३ ॥ तब वह खाटपर स्थितहुये उन अनिरुद्धजीको, अंधकार पटवाले, तामस योगमें आच्छादन करके ॥ ५४ ॥ उस खाटको अपने मस्तकपर रख क्षणमात्रमें शोणितपुरमें आगई, जहां वह बाणासुर की कन्या उपस्थित थी ॥५५॥ उस समय वह कामसे

एकेन क्षणमात्रेण नभसा दिव्ययोगिनी ॥ ततश्चांतःपुरोद्याने प्राद्युम्निर्ददृशे तया ॥ ५२ ॥ क्रीडन्नारीजनैस्सार्द्धं प्रपिबन्माधवी मधु ॥ सर्वांगसुन्दरःश्यामः सुस्मितो नवयौवनः ॥ ५३ ॥ ततः खट्वां समारूढमंधकारपटेन सा ॥ आच्छादयित्वा योगेन तामसेन च माधवम् ॥ ५४ ॥ ततस्सा मूर्ध्नि तां खट्वां गृहीत्वा निमिषांतरात् ॥ संप्राप्ता शोणितपुरं यत्र सा बाणनंदिनी ॥ ५५ ॥ कामार्ता विविधान्भावाञ्चकारोन्मत्तमानसा ॥ आनीतमथ तं दृष्ट्वा तदा भीता च साभवत् ॥ ५६ ॥ अंतःपुरे सुगुप्ते च नवे तस्मिन्समागमे ॥ यावत्क्रीडितुमारब्धं तावज्ज्ञातं च तत्क्षणात् ॥ ५७ ॥ अंतःपुरद्वारगतैर्वेत्रजर्जरपाणिभिः ॥ इंगितैरनुमानैश्च कन्यादौःशील्यमाचरन् ॥ ५८ ॥ स चापि दृष्टस्तैस्तत्र नरो दिव्यवपुर्धरः ॥ तरुणो दर्शनीयस्तु साहसी समरप्रियः ॥ ५९ ॥ तं दृष्ट्वा सर्वमाचख्युर्बाणाय बलिसूनवे ॥ पुरुषास्ते महावीराः कन्यान्तःपुररक्षकाः ॥ ६० ॥ द्वारपाला ऊचुः ॥ देव कश्चिन्न जानीते गुप्तश्चांतःपुरे बलात् ॥ स कस्तु तव कन्यां वै स्वयंग्राहादधर्षयत् ॥ ६१ ॥

उन्मत्तचित्त हुई अनेक भावोंको कररही थी, उस समय अपने पतिको लायाहुआ देख वह भयभीतसी होगई ॥ ५६ ॥ और अतिगुप्त अन्तःपुरमें उस नवीन समागममें जब ही क्रीडा करना प्रारम्भ किया तभी सबोंने जानलिया ॥५७॥ अन्तःपुरके द्वारपर स्थित, हाथोंमें, बेंत धारण करनेवाले द्वारपालोंने इंगित अनुमानोंसे कन्याके दुःशीलको जानलिया ॥ ५८ ॥ और वहां उन्होंने, दिव्यशरीरधारी, नव युवक, साहसी, युद्धप्रिय उन अनिरुद्धजीको भी देखा ॥ ५९ ॥ तब उन महावीर कन्याके अन्तःपुरके ड्योढीवानोंने यह सब दृश्य देखकर बलिके पुत्र बाणासुरसे कहदिया ॥ ६० ॥ द्वारपाल बोले, हे देव !

न जाने, किस पुरुषने अन्तःपुरमें आके तुम्हारी कन्याका बलात्कारसे भोग किया है ॥ ६१ ॥ हे दैत्योंके स्वामी ! हे महाबाहो ! उस पुरुषको वहां चलकर देखो, जो कुछ उचित हो सो करो, हम दोषी नहीं हैं ॥ ६२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा उनका वचन और कन्याका व्यभिचार सुनकर वह महाबली दैत्येन्द्र बडा विस्मित हुआ ॥६३॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकाया द्वि० रु० पं०यु० ऊषाचरित्रवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

सनत्कुमारजी बोले, तब क्रोधितहुए बाणासुरने वहां जाकर सुन्दर लीलाके शरीर धारनेवाले, पूर्व अवस्थामें स्थितहुये, उन अनिरुद्धजीको देखा ॥ १ ॥

दानवेन्द्र महाबाहो पश्यपश्यैनमत्र च ॥ यद्युक्तं स्यात्तत्कुरुष्व न दुष्टा वयमित्युत ॥६२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ विस्मितोभून्मुनिश्रेष्ठ कन्यायाः श्रुतदूषणः ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ बाणासुरः क्रुद्धस्तत्र गत्वा ददर्श तम् ॥ दिव्यलीलात्तवपुषं प्रथमे वयसि स्थितम् ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितं वाक्यं किं कारणमथाब्रवीत् ॥ बाणः क्रोधपरीतात्मा युधि शौंडो हसन्निव ॥ २ ॥ अहो मनुष्यो रूपाढ्यस्साहसी धैर्यवानिति ॥ कोयमागतकालश्च दुष्टभाग्यो विमूढधीः ॥ ३ ॥ येन मे कुलचारित्रं दूषितं दुहिता हिता ॥ तं मारयध्वं कुपिताश्शीघ्रं शस्त्रैस्सुदारुणैः ॥ ४ ॥ दुराचारं च तं बद्ध्वा घोरे कारागृहे ततः ॥ रक्षध्वं विकटे वीरा बहुकालं विशेषतः ॥५॥ न जाने कोयमभयः को वा घोरपराक्रमः ॥ विचार्येति महाबुद्धिस्संदिग्धोऽभूच्छरासुरः ॥ ६ ॥ ततो दैत्येन सैन्यं तु दशसाहस्रकं शनैः ॥ वधाय तस्य वीरस्य व्यादिष्टं पापबुद्धिना ॥ ७ ॥

उस विस्मित चरित्रको देखके क्रोधसे व्याकुल हो, युद्धमें चतुर वह दैत्य हँसताहुआसा यह बोला ॥२॥ अहो ! यह सुन्दररूपवाला, साहसी, धैर्यवान्, आसन्नमृत्यु, दुष्टभाग्यवाला, महामूर्ख कौन पुरुष आया है ॥३॥ जिसने मेरी पुत्रीको दूषितकर कुलको दूषितकिया, उसको तुम सब क्रोधित होके शीघ्रही तीव्रशस्त्रोंसे मारडालो ॥ ४ ॥ हे वीरो ! इस दुराचारीको मारके वा बांधकर, घोर कारागारमें बहुत समयतक बंद रक्खो ॥ ५ ॥ न जाने यह कौन तथा निर्भय घोर पराक्रमी बुद्धिमान् है, इस प्रकार वह दैत्य सन्देह करने लगा ॥ ६ ॥ तब उस पापबुद्धिवाले दैत्यने, उस वीरके मारनेको दशसहस्र

सेनाको आज्ञा दी ॥ ७ ॥ तब उसकी आज्ञा पाय वे बली योधा, "काटो मारो" ऐसा कहतेहुए चारोंओरसे शीघ्रही अन्तःपुरको घेरने लगे ॥ ८ ॥
उस समय शत्रुकी सेनाको गर्जती देखके वह अनिरुद्धजीने गर्जके अन्तःपुरके द्वारपर स्थितहुये, विकट परिघको ग्रहण करके ॥ ९ ॥ वज्र हाथमें लिये
कालकी समान उस अन्तःपुरके गृहसे निकले, और उस परिघास्त्रसे उन सेवकोंको मारके फिरभी अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार
क्रोधसे लालनेत्रवाले, शिवजीके तेजसे बढ़ेहुये, उन्होंने दश सहस्र सेनाको मारा ॥ ११ ॥ पीछे लक्ष योधाओंका दल नाश होजानेपर क्रोधसे उस

तदादिष्टास्तु ते वीराः सर्वतोन्तःपुरं द्रुतम् ॥ छादयामासुरत्युग्राश्छिंदि भिंदीति वादिनः ॥ ८ ॥ शत्रुसैन्यं ततो दृष्ट्वा गर्जमानः स या
दवः ॥ अंतःपुरं द्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम् ॥ ९ ॥ निष्क्रांतो भवनात्तस्माद्वज्रहस्त इवांतकः ॥ तेन तान्किंकरान् हत्वा पुनश्चांतः
पुरं ययौ ॥ १० ॥ एवं दशसहस्राणि सैन्यानि मुनिसत्तम ॥ जघान रोषरक्ताक्षो वर्द्धितशिवतेजसा ॥ ११ ॥ लक्षे हतेऽथ योधानां
ततो बाणासुरो रुषा ॥ कुंभांडं स गृहीत्वा तु युद्धे शौंडं समाह्वयत् ॥ १२ ॥ अनिरुद्धं महाबुद्धिं द्वन्द्वयुद्धे महाहवे ॥ प्राद्युम्निं रक्षितं
शैवतेजसा प्रज्वलत्तनुम् ॥ १३ ॥ ततो दशसहस्राणि तुरंगाणां रथोत्तमान् ॥ युद्धप्राप्तेन खड्गेन दैत्येन्द्रस्य जघान सः ॥ १४ ॥
तद्वधाय ततश्शक्तिं कालवैश्वानरोपमाम् ॥ अनिरुद्धो गृहीत्वा तां तया तं निजघान हि ॥ १५ ॥ रथोपस्थे ततो बाणस्तेन शक्त्या
हतो दृढम् ॥ स साश्वस्तत्क्षणं वीरस्तत्रैवांतरधीयत ॥ १६ ॥ तस्मिंस्त्वदर्शनं प्राप्ते प्राद्युम्निरपराजितम् ॥ आलोक्य ककु
भस्सर्वास्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १७ ॥

बाणासुरने, युद्धमें प्रवीण मंत्री, कुंभांड दैत्यको बुलाया ॥१२॥ दोनोंओरके द्वंद्व संग्राममें, महाबुद्धिमान, प्रद्युम्नके पुत्र शिवजीके तेजसे प्रज्वलित शरीरवाले
अनिरुद्धजी रक्षित प्रतीत होनेलगे ॥ १३ ॥ तब अनिरुद्धजीने, युद्धमें प्राप्त हुये दैत्येन्द्रके खड्गसेही बाणासुरकी दश सहस्र सेना, तथा घोड़े रथोंको
नाश किया ॥ १४ ॥ उस दैत्यके मारनेको, कालाग्निके समान शक्ति लेकर अनिरुद्धजीने उससे उसे मारा ॥ १५ ॥ तब उस शक्तिसे रथके ऊपर स्थित
वह बाणासुर ताडित हो उसी समय घोड़ोंसहित वहां अन्तर्धान होगया ॥ १६ ॥ विना पराजितहुए उस दैत्यके अन्तर्धान होजानेपर वह अनिरुद्ध सम्पूर्ण

दिशाओंको देखते पर्वतके समान स्थिर रहे ॥ १७ ॥ तब कपट युद्धवाला वह दैत्य, अन्तर्हित होकर उन्हें अनेकशस्त्रोंसे बारम्बार ताड़न करने लगा ॥ ॥ १८ ॥ फिर महाबली, शूरवीर, शिवके भक्त, बलिके पुत्र, उस दैत्यने छलसे अनिरुद्धजीको नागपाशसे बांधा ॥ १९ ॥ उनको बांध पींजरेमें बंद करके युद्धसे विश्रान्त हुआ वह बाणासुर क्रोधित हो महाबली, सारथीके पुत्रसे बोला ॥ २० ॥ बाणासुर बोला, हे सूतपुत्र ! इस दुष्ट पुरुषका शिर काटडालो, जिस दुरात्माने मेरा पवित्र कुल दूषित किया, इस बलात्कारका उसको फल दो ॥ २१ ॥ अरे ! इसके सम्पूर्ण शरीरको काटके राक्षसोंको देदो, और

अदृश्यमानस्तु तदा कूटयोधस्स दानवः ॥ नानाशस्त्रसहस्रैस्तं जघान हि पुनःपुनः ॥ १८ ॥ छद्मना नागपाशैस्तं बबंध स महाबलः ॥ बलिपुत्रो महावीरश्शिवभक्तश्शरासुरः ॥ १९ ॥ तं बद्ध्वा पंजरांतःस्थं कृत्वा युद्धादुपारमत् ॥ उवाच बाणः संक्रुद्धस्सूतपुत्रं महाबलम् ॥ २० ॥ बाणासुर उवाच ॥ सूतपुत्र शिरश्छिंधि पुरुषस्यास्य वै लघु ॥ येन मे दूषितं पूतं बलाद्दुष्टेन सत्कुलम् ॥ २१ ॥ छित्त्वा तु सर्वगात्राणि राक्षसेभ्यः प्रयच्छ भोः ॥ अथास्य रक्तमांसानि क्रव्यादा अपि भुंजताम् ॥ २२ ॥ अगाधे तृणसंकीर्णे कूपे पातकिनं जहि ॥ किं बहूक्त्या सूतपुत्र मारणीयो हि सर्वथा ॥२३॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मबुद्धिर्निशाचरः ॥ कुंभांडस्त्वब्रवीद्वाक्यं बाणं सन्मंत्रिसत्तमम् ॥ २४ ॥ कुंभांड उवाच ॥ नैतत्कर्तुं समुचितं कर्म देव विचार्यताम् ॥ अस्मिन् हते हतो ह्यात्मा भवेदिति मतिर्मम ॥ २५ ॥ अयं तु दृश्यते देवतुल्यो विष्णोः पराक्रमैः ॥ वर्धितश्चन्द्रचूडस्य त्वदुष्टस्य सुतेजसा ॥ २६ ॥ अथ चन्द्रललाटस्य साहसेन समत्स्वयम् ॥ इमामवस्थां प्राप्तोसि पौरुषे संव्यवस्थितः ॥ २७ ॥

इसके रुधिर तथा मांसको क्रव्याद (गिद्ध आदिपक्षी) भक्षण करैं ॥ २२ ॥ हे सूतपुत्र ! इस पापीको तृणोंसे व्याप्त हुये, गहरे कूपमें डालदो, बहुत कहनेसे क्या है, यह सब प्रकार मारनेके योग्यहै ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार उसका वचन सुन, वह धर्मबुद्धिवाला मंत्री कुंभांड दैत्य बाणासुरसे बोला ॥ २४ ॥ कुंभांड बोला, हे देव! विचार देखो, ऐसा कर्म करना उचित नहीं है, कारण कि, इसके मारडालनेपर आत्माका हनन होगा, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २५ ॥ हे देव ! यह तो पराक्रममें विष्णुके समान तथा शिवजीके तेजसे बढायाहुआ दीखताहै ॥ २६ ॥ और शिवके साहससे

पुरुषार्थमें भराहुआ यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआहै ॥ २७ ॥ यह महाबली कृष्णका पौत्र, शिवके प्रसादसे बलात्कार सर्पोंसे डसाहुआं भी हमसबोंको तृणके समान समझता है ॥ २८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार बाणासुरसे कहके राजनीति जाननेवाला वह दैत्य, अनिरुद्धजीसे बोला ॥ २९ ॥ कुंभांड बोला, हे वीर ! हे दुराचारी ! हे मनुष्योंमें नीच ! तू कौन है, किसका पुत्र है, कौनं तुझे यहां लाया, यह सब मेरे सामने सत्य सत्य कह ॥ ३० ॥ और तू हाथ जोडके मैं हारगया ऐसे बार २ दीन वचन कहकर वीर दैत्येन्द्रको नमस्कार कर, और स्तुति कर ॥ ३१ ॥ ऐसा करनेपर तेरा छुटकारा होगा,

अयं शिवप्रसादाद्वै कृष्णपौत्रो महाबलः ॥ अस्मांस्तृणोपमान् वेत्ति दष्टोपि भुजगैर्बलात् ॥ २८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतद्वाक्यं तु बाणाय कथयित्वा स दानवः ॥ अनिरुद्धमुवाचेदं राजनीतिविदुत्तमः ॥ २९ ॥ कुंभांड उवाच ॥ कोसि कस्यासि रे वीर सत्यं वद ममाग्रतः ॥ केन वा त्वमिहानीतो दुराचार नराधम ॥ ३० ॥ दैत्येन्द्रं स्तुहि वीरं त्वं नमस्कुरु कृतांजलिः ॥ जितोस्मीति वचो दीनं कथयित्वा पुनःपुनः ॥ ३१ ॥ एवं कृते तु मोक्षस्स्यादन्यथा बंधनादि च ॥ तच्छुत्वा वचनं तस्य प्रतिवाक्यमुवाच सः ॥ ३२ ॥ अनिरुद्ध उवाच ॥ रे रे दैत्याऽधमसखे करपिंडोपजीवक ॥ निशाचर दुराचार शत्रुधर्मं न वेत्सि भोः ॥ ३३ ॥ दैन्यं पलायनं चाथ शूरस्य मरणाधिकम् ॥ विरुद्धं चोपशल्यं च भवेदिति मतिर्मम ॥ ३४ ॥ क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सन्मुखे सदा ॥ न वीरमानिनो भूमौ दीनस्येव कृतांजलिः ॥ ३५ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्यादि वीरवाक्यानि बहूनि स जगाद तम् ॥ तदाकर्ण्य सबाणोऽसौ विस्मितोऽभूच्चुकोप च ॥ ३६ ॥

नहीं तो बन्धनादि होगा, ऐसे उस दैत्यके वचन सुन वह अनिरुद्धजी यह वचन बोले ॥ ३२ ॥ अनिरुद्धजी बोले, हे दैत्यके मित्र ! हाथसे दी आजीविकासे जीनेवाले ! हे निशाचर ! हे दुराचारी ! हे कुंभांड ! तू शत्रुधर्मको नहीं जानताहै ॥ ३३ ॥ दीन होना, तथा युद्धसे भागना, शूरको मारनेसेभी अधिक है, यह प्रतिकूल और शल्यकी समान दुःखदायक होताहै, ऐसी मेरी मति है ॥ ३४ ॥ वीरमानी क्षत्रियका संग्रामके सन्मुख होके मरजाना श्रेष्ठहै, और दीन हो हाथ जोडके भूमिपर रहना श्रेष्ठ नहीं ॥ ३५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार अनेकवाक्य उस दैत्यसे कहे, यह सुनके बाणासुर सहित वह कुभांड अतिविस्मित

हो क्रोध करने लगा ॥ ३६ ॥ उसी समय सम्पूर्ण वीर अनिरुद्ध तथा मंत्रीके आगे उस बाणासुरके समझानेके निमित्त आकाशवाणी हुई ॥ ३७ ॥ आकाशवाणी बोली, हे महावीर बाणासुर ! हे सुमते ! हे शिवभक्त ! तुमको क्रोध करना उचित नहीं है, विचार करो ॥ ३८ ॥ शिवजी सबके ईश्वर कर्मोंके साक्षी परमेश्वर हैं, उनके अधीन यह चर, अचर संसार है ॥ ३९ ॥ वेही सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी शिवजी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपसे संसारके उत्पन्न, पालन, तथा नाश कर्ता हैं ॥ ४० ॥ वे सबके अन्तर्यामी, स्वामी, सबके प्रेरक, सबसे परे, निर्विकार, अविनाशी, नित्य मायाके अधिपति, निर्गुण हैं ॥ ४१ ॥ हे बाणासुर ! हे महामते ! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् जानो, ऐसा मनमें जानके सावधान हो ॥ ४२ ॥ अभिमानको नाश करनेवाले, भक्तोंके पालनेवाले, अनेकलीला करनेमें चतुर, भगवान् सदाशिव अभी तुम्हारा अभिमान नाश करेंगे ॥ ४ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे महामुने ! ऐसा कहके आकाशवाणी शान्त हुई, तब उसके वचनसे बाणासुरने अनिरुद्धको नहीं मारा ॥ ४४ ॥ उसने अपने अन्तःपुर (रनवास) में जाकर श्रेष्ठ मदिरादिको पान किया और मेरे वाक्यको भूलके प्रतिकूल बुद्धिवालेने उस अनिद्धरुको बंद किया ॥ ४ ५ ॥ उस समय विष भरे, नागपाशोंसे बंधे, प्रियाके विना अतृप्त

तदोवाच नभोवाणी बाणस्याश्वासनाय हि ॥ शृण्वतां सर्ववीराणामनिरुद्धस्य मंत्रिणः ॥ ३७ ॥ ॥ व्योमवाण्युवाच ॥ भो भो बाण महावीर न क्रोधं कर्तुमर्हसि ॥ बलिपुत्रोसि सुमते शिवभक्त विचार्यताम् ॥ ३८ ॥ शिवस्सर्वेश्वरस्साक्षी कर्मणां परमेश्वरः ॥ तदधीनमिदं सर्वं जगद्वै सचराचरम् ॥ ३९ ॥ स एव कर्ता भर्ता च संहर्ता जगतां सदा ॥ रजस्सत्त्वतमोधारी विधिविष्णुहरात्मकः ॥४०॥ सर्वस्यांतर्गतः स्वामी प्रेरकस्सर्वतः परः॥ निर्विकार्यव्ययो नित्यो मायाधीशोपि निर्गुणः ॥ ४१ ॥ तस्येच्छयाऽबलो ज्ञेयो बली बलिवरात्मज ॥ इति विज्ञाय मनसि स्वस्थो भव महामते ॥ ४२ ॥ गर्वापहारी भगवान्नानालीलाविशारदः ॥ नाशयिष्यति ते गर्वमिदानीं भक्तवत्सलः ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याभाष्य नभोवाणी विरराम महामुने ॥ बाणासुरस्तद्वचनादनिरुद्धं न जघ्निवान् ॥ ॥ ४४ ॥ किं तु स्वान्तःपुरं गत्वा पपौ पानमनुत्तमम् ॥ मद्वाक्यं च विसस्मार विजहार विरुद्धधीः ॥ ४५ ॥ ततोनिरुद्धो बद्धस्तु नागभोगैर्विषोल्बणैः ॥ प्रिययाऽतृप्तचेतास्तु दुर्गां सस्मार तत्क्षणात् ॥ ४६ ॥

चित्तवाले अनिरुद्धने दुर्गादेवीको स्मरण किया ॥ ४६ ॥ अनिरुद्ध बोले, हे शरण्ये ! हे देवि ! हे यशोदे ! हे चंडरोषिणी ! मैं बंधा हूं तथा सर्पोंसे भस्म हो
रहा हूं, तुम आओ शीघ्र मेरी रक्षा करो ॥ ४७ ॥ हे शिवभक्ते ! हे महादेवि ! हे शिवे ! तुम जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेवाली हो, तुम्हारे विना
कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, इस कारण तुम मेरी रक्षा करो ॥४८॥ सनत्कुमारजी बोले, अनिरुद्धसे इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त हो, विदीर्णहुए अंजन पर्वतके
समान कालीजी, ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकी गाढ रात्रिमें प्रगट हुई ॥४९॥ अपनी बडी मुष्टिके प्रहारोंसे उस पींजरेको तोड तथा उन भयानक सर्परूपी बाणोंको
भस्म करके ॥ ५० ॥ अनिरुद्धको छुडाय और उन्हें अन्तःपुरमें प्रवेश कराकर वह दुर्गादेवी वहीं अन्तर्धान होगई ॥ ५१ ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार

अनिरुद्ध उवाच ॥ शरण्ये देवि बद्धोस्मि दह्यमानस्तु पन्नगैः ॥ आगच्छ मे कुरु त्राणं यशोदे चंडरोषिणि ॥ ४७ ॥ शिवभक्ते महा
देवि सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ त्वां विना रक्षको नान्यस्तस्माद्रक्ष शिवे हि माम् ॥ ४८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तेनेत्थं तोषिता तत्र
काली भिन्नांजनप्रभा ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां संप्राप्तासीन्महानिशि ॥ ४९ ॥ गुरुभिर्मुष्टिनिर्घातैर्दारयामास पंजरम् ॥ शरांस्तान्भस्म
सात्कृत्वा सर्परूपान् भयानकान् ॥ ५० ॥ मोचयित्वानिरुद्धं तु ततश्चांतःपुरं ततः ॥ प्रवेशयित्वा दुर्गा तु तत्रैवादर्शनं गता ॥ ५१ ॥
इत्थं देव्याः प्रसादाच्च शिवशक्तेर्मुनीश्वर ॥ कृच्छ्रमुक्तोनिरुद्धोभूत्सुखी चैव गतव्यथः ॥ ५२ ॥ अथ लब्धजयो भूत्वानिरुद्धश्शिवश
क्तितः॥प्राद्युम्निर्बाणतनयां प्रियां प्राप्य मुमोद च ॥५३॥ पूर्ववद्विजहारासौ तया स्वप्रियया सुखी ॥ पीतपानस्सुरक्ताक्षस्स बाणसुतया
ततः ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे ऊषाचरित्रे अनिरुद्धोषाविहारवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमो
ऽध्यायः ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ अनिरुद्धे हृते पौत्रे कृष्णस्य मुनिसत्तम ॥ कुंभांडसुतया कृष्णः किमकार्षीद्धि तद्वद ॥ १ ॥

अनिरुद्धजी देवीके प्रसादसे, तथा शिवजीकी भक्तिसे दुःखसे छूट गये और सुखी होके निर्द्वन्द्व हुए ॥ ५२ ॥ तब अनिरुद्धजीने शिवजीकी भक्तिसे विजय
पाके तथा प्रिया,बाणासुरकी कन्याको पाय,प्रसन्नता प्राप्त की ॥५३॥ और वह पानीयपदार्थोंका पानकर सुखी हुये,और लाल नेत्रवाले,वे अनिरुद्धजी अपनी
प्रिया उस बाणकी कन्याके साथ पहलेके समान विहार करने लगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि॰ रु॰ पं॰यु॰ ऊ॰ अनिरुद्धोषावि
हारवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥ व्यासजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! कुंभांडकी पुत्रीकरके श्रीकृष्णजीके पोते अनिरुद्धजीके चलेजानेपर श्रीकृष्णजीने

क्या किया यह सब कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिसत्तम ! अनिरुद्धके चले जानेपर उन स्त्रियोंके रोनेके शब्दको सुन श्रीकृष्णजी अति
दुःखी हुए ॥ २ ॥ अनिरुद्धजीको विना देखे, उनकी स्त्रियों तथा श्रीकृष्णजी को सोच करते हुए वर्षाके चार महीने बीत गए ॥ ३ ॥ तब नारद
जीसे उनकी वार्ता तथा बंधजानेके समाचारको सुन सब यादवगण, तथा श्रीकृष्णजी अतिदुःखी हुए ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको सुन
युद्ध करने की इच्छासे उसी समय, गरुडजीको बुलाकर शोणितपुरको गये ॥ ५ ॥ उस समय प्रद्युम्नजी युयुधान, साम्ब, सारण, नंद, उपनंद, भद्र आदि

सनत्कुमार उवाच ॥ ततो गतेऽनिरुद्धे तु तत्स्त्रीणां रोदनस्वनम् ॥ श्रुत्वा च व्यथितः कृष्णो बभूव मुनिसत्तम ॥ २ ॥ अपश्यतां
चानिरुद्धं तद्बंधूनां हरेस्तथा ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ ३ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥
आसन्सुव्यथितास्सर्वे वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ ४ ॥ कृष्णस्तद्वृत्तमखिलं श्रुत्वा युद्धाय चादरात् ॥ जगाम शोणितपुरं तार्क्ष्यमाहूय
तत्क्षणात् ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गतस्सांबोथ सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ६ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशं
भिस्समेतास्सर्वतो दिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ७ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ वीक्ष्यमाणो
रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ८ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रस्ससुतः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नन्दिवृषभं युद्धं कर्त्तुं समाययौ ॥ ९ ॥
आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ कृष्णादिकानां तैस्तत्र रुद्राद्यैर्बाणरक्षकैः ॥ १० ॥ कृष्णशंकरयोरासीत्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥
कूष्मांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ ११ ॥

राम कृष्णादिके अनुवर्ती सब चले ॥ ६ ॥ हे ऋषियो ! बारह अक्षौहिणी सेनाके सहित, चारोंओरसे यादवोंने बाणासुरके नगरको घेरलिया ॥ ७ ॥
नगर, वन, प्राकार, अटारी, गोपुर आदिको ध्वंस होता देख क्रोधसे व्याप्त हो उतनीही सेनाके सहित बाणासुर चला ॥८॥ बाणासुरकी रक्षा करनेके निमित्त
भगवान् सदाशिव अपने पुत्र तथा गणोंके सहित, नन्दीवृषभपर चढके युद्ध करनेको गये ॥ ९ ॥ वहां बाणासुरके रक्षक रुद्र आदिसे श्रीकृष्ण आदिका
अतिअद्भुत रोमहर्षण भयंकर युद्ध हुआ ॥ १० ॥ कृष्ण और शिवजीका, प्रद्युम्न और गुहका, कूष्मांड और कूपकर्णका बलपूर्वक परस्पर द्वंद्वयुद्ध होने

लगा ॥ ११ ॥ बाण पुत्रके साथ साम्बका, तथा बाणके साथ सात्यकिका, गरुडके साथ नन्दीका, औरोंके साथ औरोंका युद्ध होने लगा ॥ १२ ॥ उस समय ब्रह्मा आदि देवता, तथा मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ अपने वाहन तथा विमानों से देखनेको आये ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! रेवती आदि प्रमथोंके साथ बडा भयानक युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ भाई बलरामजी तथा बुद्धिमान् प्रद्युम्नके सहित श्रीकृष्णजीने शिवके गणोंसे बडा युद्ध किया ॥ १५ ॥ वहां अग्नि, यम, वरुण, आदि देवताओंसे विमुख, त्रिपाद, ज्वर, और गुहसे युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ तथा और अनेक गणोंसे उन यादवोंका

सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ नन्दिना गरुडस्यापि परेषां च परैरपि ॥ १२ ॥ ब्रह्मादयस्सुराधीशा मुनयः सिद्धचा
रणाः ॥ गंधर्वाऽप्सरसो यानैर्विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ १३ ॥ प्रमथैर्विविधाकारै रेवत्यंतैः सुदारुणम् ॥ युद्धं बभूव विप्रेन्द्र तेषां च यदुवं
शिनाम् ॥ १४ ॥ भ्रात्रा रामेण सहितः प्रद्युम्नेन च धीमता ॥ कृष्णश्चकार समरमतुलं प्रमथैस्सह ॥ १५ ॥ तत्राग्निनाऽभवद्युद्धं यमेन
वरुणेन च ॥ विमुखेन त्रिपादेन ज्वरेण च गुहेन च ॥ १६ ॥ प्रमथैर्विविधाकारैस्तेषामत्यंतदारुणम् ॥ युद्धं बभूव विकटं वृष्णीनां
रोमहर्षणम् ॥ १७ ॥ बिभीषिकाभिर्वह्वीभिः कोटरीभिः पदेपदे ॥ निर्लज्जाभिश्च नारीभिः प्रबलाभिरदूरतः ॥ १८ ॥ शंकरानुचरा
ञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ १९ ॥ एवं प्रद्युम्नप्रमुखा वीरा युद्धमहोत्सवाः ॥ चक्रुर्युद्धं
महाघोरं शत्रुसैन्यं विनाशयन् ॥ २० ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा रुद्रोत्यमर्षणः ॥ क्रोधं चकार सुमहन्ननाद च महोल्बणम् ॥ २१ ॥
तच्छ्रुत्वा शंकरगणा विनेदुर्युयुधुश्च ते ॥ मर्दयन्प्रतियोद्धारं वर्द्धिताश्शंभुतेजसा ॥ २२ ॥

अतिविकट भयंकर रोमहर्षण युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥ बहुतसी विभीषिकाओंसे कोटरियोंसे तथा निर्लज्जतासे प्रबल स्त्रियोंसे पदपदमें युद्ध होने लगा ॥ १८ ॥ तब श्रीकृष्णजीने शिवजीके अनुचर भूत, प्रमथ, गुह्यकोंको अपने शार्ङ्गधनुषसे छोडेहुए तीक्ष्णाग्रभागवाले बाणोंसे पीडित किया ॥ १९ ॥ इसी प्रकार युद्धके उत्साही प्रद्युम्न आदि वीरभी, शत्रुकी सेनाको नाश करतेहुए महाघोर युद्ध करने लगे ॥ २० ॥ अपनी सेनाको छिन्न भिन्न देख असह्य हो शिवजीने क्रोधकर बडा गंभीर शब्द किया ॥ २१ ॥ यह सुनके वे शिवजीके गण, महाशब्द तथा युद्ध करने लगे, तथा शिवजीके तेजसे बढाये हुये प्रत्येक

योधाको चूर्ण करने लगे ॥२२॥ तंब उन्होंने साङ्गधनुषपर रखकर नानाप्रकारके अस्त्रोंको शिवजीके ऊपर प्रहार किया, तब विस्मित न होकर महादेवजीने प्रत्यक्षरूपसे अस्त्रोंको शान्त करदिया ॥ २३ ॥ ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यास्त्रको पार्वतास्त्रसे, आग्नेय अस्त्रको पर्जन्यास्त्र (वारुणास्त्र) से इस प्रकार नारायणके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे शान्त किया ॥ २४ ॥ प्रत्येक योधासे जीती हुई श्रीकृष्णजीकी सेना नष्ट होनेलगी, हे व्यासजी ! वह सेना, शिवके सम्पूर्ण तेजसे युद्धमें न ठहरसकी ॥ २५ ॥ हे मुने ! अपनी सेनाके पलायन करनेपर परमतपस्वी, श्रीकृष्णजीने वरुणदेवतासम्बन्धी, अपने शीतलाख्य ज्वरवाले अस्त्रको छोडा ॥ २६ ॥ हे मुने ! कृष्णकी सेनाके पलायन करनेपर, वह कृष्णका शीतलज्वर दशों दिशाओंको भस्मकरताहुआ उन शिवजीके समीप प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ उस शीतलज्वरको आयाहुआ देखकर महादेवने अपना ज्वर छोडा, उस समय शिवका ज्वर तथा विष्णुका ज्वर, यह दोनों परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥ तब उस विष्णुके ज्वरने शिवजीके ज्वरसे पीडित हो महाशब्द किया और कहीं अपनी रक्षा न देखकर शिवजीकी स्तुति करने लगा ॥ २९ ॥ तब विष्णुके ज्वरसे स्तुतिकियेहुए, शरणागतवत्सल, भगवान् सदाशिव, शीतज्वरसे बोले ॥ ३० ॥ शिवजी बोले, हे शीतज्वर ! मैं

पृथग्विधानि चायुंक्त शार्ङ्गास्त्राणि पिनाकिने ॥ प्रत्यक्षैश्शमयामास शूलपाणिरविस्मितः ॥ २३ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं नारायणस्य च ॥ २४ ॥ कृष्णसैन्यं विदुद्राव प्रतिवीरेण निर्जितम् ॥ न तस्थौ समरे व्यास पूर्णरुद्रसुतेजसा ॥ २५ ॥ विद्राविते स्वसैन्ये तु श्रीकृष्णश्च परंतपः ॥ स्वं ज्वरं शीतलाख्यं हि व्यसृजद्दारुणं मुने ॥ २६ ॥ विद्राविते कृष्णसैन्ये कृष्णस्य शीतलज्वरः ॥ अभ्यपद्यत तं रुद्रं मुने दशदिशो दहन् ॥ २७ ॥ महेश्वरोऽथ तं दृष्ट्वायांतं स्वं विसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २८ ॥ वैष्णवोऽथ समाक्रंदन्माहेश्वरबलार्दितः ॥ अलब्ध्वा भयमन्यत्र तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ ॥ २९ ॥ अथ प्रसन्नो भगवान्विष्णुज्वरनुतो हरः ॥ विष्णुशीतज्वरं प्राह शरणागतवत्सलः ॥३०॥ महेश्वर उवाच ॥ शीतज्वर प्रसन्नोऽहं व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य न स्याज्ज्वराद्भयम् ॥ ३१ ॥

तुझसे प्रसन्न हूं, तुझे मेरे ज्वरसे भय न होगा, जो कोई हम दोनोंके संवादको स्मरण करैगा, उसकोभी ज्वरसे भय न रहेगा ॥ ३१ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा कहनेपर वह विष्णुका ज्वर शिवजीको नमस्कार करके चलागया, इस चरित्रको देख श्रीकृष्णजी भयभीतहो विस्मय करने लगे ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नके बाणसमूहसे पीडित हो क्रोधकर स्कन्दने अपनी शक्तिसे प्रद्युम्नको आहत किया ॥ ३३ ॥ तब स्वामिकार्तिककी शक्तिसे ताडन कियेहुए बलवान् प्रद्युम्न, अपने शरीरसे रुधिर बहातेहुए संग्राम छोडगये ॥ ३४ ॥ तथा कुंभांड, और कूपकर्णके अनेकअस्त्रोंसे ताड़न कियेहुए, बली बलभद्रजीभी युद्धमें स्थित

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तो रुद्रमानम्य गतो नारायणज्वरः ॥ तं दृष्ट्वा चरितं कृष्णो विसिस्माय भयान्वितः ॥ ३२ ॥ स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानोऽथ कोपितः ॥ जघान शक्त्या प्रद्युम्नं दत्यसंघात्यमर्षणः ॥ ३३ ॥ स्कंदप्राप्तिहतस्तत्र प्रद्युम्नः प्रबलोपि हि ॥ असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यो बलेनापाक्रमद्रणात् ॥ ३४ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां नानास्त्रैश्च सनाहतः ॥ दुद्राव बलभद्रोपि न तस्थेपि रणे बली ॥ ३५ ॥ कृत्वा सहस्रं कायानां पीत्वा तोयं महार्णवात् ॥ गरुडो नाशयत्यथाऽऽवर्तैर्मेघार्णवांबुभिः ॥ ३६ ॥ अथ क्रुद्धो महेशस्य वाहनो वृषभो बली ॥ वेगेन महतारं वै शृंगाभ्यां निजघान तम् ॥ ३७ ॥ शृंगघातविशीर्णांगो गरुडोऽतीव विस्मितः ॥ विदुद्राव रणात्तूर्णं विहाय च जनार्दनम् ॥ ३८ ॥ एवं जाते चरित्रं तु भगवान्देवकीसुतः ॥ उवाच सारथिं शीघ्रं रुद्रतेजोतिविस्मितः ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ हे सूत शृणु मद्वाक्यं रथं मे वाहय द्रुतम् ॥ महादेवसमीपस्थो यथा स्यां गदितुं वचः ॥ ४० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा सूतो दारुकस्स्वगुणाग्रणीः ॥ द्रुतं तं वाहयामास रथं रुद्रसमीपतः ॥ ४१ ॥

न रहसके ॥ ३५ ॥ गरुड़जीने सहस्रों काया रख महासागरके जलको पानकर मेघोंकी समान जल छोड़कर सहस्रोंको नाश किया ॥ ३६ ॥ तब, शिवजीके वाहन बली नंदीने उन गरुड़जीको बेगसे सींगोंसे विदीर्ण किया ॥ ३७ ॥ सींगोंके आघातसे आहत शरीर हो गरुड़जी बडे विस्मित हुए, और भगवान्को त्याग शीघ्रही संग्रामसे चलपडे ॥ ३८ ॥ ऐसा चरित्र होनेपर भगवान् श्रीकृष्णजी, शिवके तेजसे विस्मित हो शीघ्रही अपने सारथिसे यह बोले ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे सारथी ! मेरे वचनको सुनो, मेर रथको शीघ्रही हांको, जिससे मैं महादेवके समीप स्थित होके कुछ वचन कहूं ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजी

बोले, इस प्रकार भगवान्के कहनेपर, वह अपने गुणोंमें मुख्य, दारुक सारथि शीघ्रही उस रथको शिवजीके समीपको चलाने लगा ॥ ४१ ॥ तब श्रीकृष्णजीने वहां पहुँच, हाथ जोड, भक्तवत्सल, प्रसन्नमन, शरणागतरक्षक, उन शिवजीसे प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप अनन्तशक्तिवाले, सबके आत्मारूप, परमेश्वर हो, आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ४३ ॥ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, नाशके कारण, सद्विज्ञप्तिमात्र, ब्रह्मलिंग, परमशान्त, केवल, परमेश्वर ॥ ४४ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, द्रव्य, क्षेत्र, प्राण, आत्मा, विकार,

अथ विज्ञापयामास नतो भूत्वा कृतांजलिः ॥ श्रीकृष्णः शंकरं भक्त्या प्रपन्नो भक्तवत्सलम् ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ नमामि त्वाऽनंतशक्तिं सर्वात्मानं परेश्वरम् ॥ ४३ ॥ विश्वोत्पत्तिस्थाननाशहेतुं सज्ज्ञप्तिमात्रकम् ॥ ब्रह्मलिंगं परं शांतं केवलं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ कालो दैवं कर्म जीवस्स्वभावो द्रव्यमेव च ॥ क्षेत्रं च प्राण आत्मा च विकारस्तत्समूहकः ॥ ४५ ॥ बीजरोहप्रवाहस्तु त्वन्मायैषा जगत्प्रभो ॥ तन्निबंधं प्रपद्येह त्वामहं परमेश्वरम् ॥ ४६ ॥ नानाभावैर्लीलयैव स्वीकृतैर्निर्जरादिकान् ॥ लोकेशो नूनं बिभर्षि हंस्युन्मार्गान्स्वभावतः ॥ ४७ ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यंत्यमलात्मानमाकाशमिव केवलम् ॥ ४८ ॥ त्वमेव चाद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्य आत्मदृक् ॥ ईशो हेतुरहेतुश्च सविकारः प्रतीयसे ॥ ४९ ॥ स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै भगवन्प्रभो ॥ सर्वान्वितः प्रभिन्नश्च सर्वतस्त्वं महेश्वर ॥ ५० ॥

इनके समुदायवाले ॥ ४५ ॥ हे संसारके स्वामिन् ! बीजरोह, प्रवाहरूपी, यह तुम्हारी माया है, इस कारण आप बन्धनहीन परमेश्वरको मैं शरणमें प्राप्त हुआहूं ॥ ४६ ॥ अनेकभावोंके स्वीकार करनेसे देवता आदिको लीलासे संसारमें पोषण करतेहो, तथा बुरे मार्गमें जानेवालोंको आप स्वभावसे नाश करतेहो ॥ ४७ ॥ आपही वाङ्मय (शब्दमय) ब्रह्म, परब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप हैं, जिस निर्मल आत्माको योगी केवल आकाशके समान देखतेहैं ॥ ४८ ॥ आपही आदिपुरुष, अद्वितीय, तुर्य, आत्माके नेत्र, ईश, हेतु, अहेतु, विकारी, प्रतीयमान होतेहैं ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! हे भगवन् ! हे महेश्वर ! आप अपनी मायासे

सम्पूर्ण गुणोंकी प्रसिद्धिके निमित्त सबोंसे मिलेहुये तथा सबसे भिन्न होरहेहो ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! जिस प्रकार सूर्य छायारूपोंको तिरस्कार करके अपनी छायासे प्रकाश करताहै, इसी प्रकार परमनेत्रवाले आप सर्वत्र प्रकाश कररहेहैं ॥ ५१ ॥ हे सर्वव्यापक ! हे श्रेष्ठ ! हे भूमंन् ! हे शंकर ! आप गुणोंसे विना ढकेहुएभी अपने गुणसे समस्त गुणोंको दीपकके समान प्रकाशित करतेहो ॥ ५२ ॥ आपकी मायासे, पुत्र, स्त्री, गृह आदिमें मोहितहुए मनुष्य संसाररूपी समुद्रमें आसक्त होके, डूबतेहैं, और उछलते हैं ॥ ५३ ॥ जो अजितेन्द्रियके प्रारब्धसे दिये फलको पानेवाला यह संसारहै ऐसा कहके आपके चरणोंका

यथैव सूर्योऽपिहितश्छायारूपाणि च प्रभो ॥ स्वच्छायया संचकास्ति ह्ययं परमदृग्भवान् ॥ ५१ ॥ गुणेनापिहितोपि त्वं गुणेनैव गुणान् विभो ॥ स्वप्रदीपश्चकास्सि त्वं भूमन् गिरिश शंकर ॥ ५२ ॥ त्वन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ५३ ॥ दैवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥ ५४ ॥ त्वदाज्ञयाहं भगवान्बाणदोश्छेत्तुमागतः ॥ त्वयैव शप्तो बाणोऽयं गर्वितो गर्वहारिणा ॥ ५५ ॥ निवर्त्तस्व रणाद्देव त्वच्छापो न वृथा भवेत् ॥ आज्ञां देहि प्रभो मे त्वं बाणस्य भुजकृंतने ॥ ५६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शंभुः श्रीकृष्णस्य मुनीश्वर ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा कृष्णस्तुत्या महेश्वरः ॥ ५७ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया तात मया शप्तो हि दैत्यराट् ॥ मदाज्ञया भवान्प्राप्तो बाणदोर्दंडकृंतने ॥ ५८ ॥

आदर नहीं करते वही शोक करने योग्य आत्माके वंचक हैं ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञासे बाणासुरकी भुजाओंके छेदन करनेको आयाहूं, अभिमानके नाश करनेवाले आपसे शाप दियाहुआ यह बाणासुर गर्वित होरहाहै ॥ ५५ ॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप संग्रामसे लौटजाओ, आपका शाप वृथा न हो और आप मुझे बाणासुरके मारनेकी आज्ञा दो ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, श्रीकृष्णजीका ऐसा वचन सुन, मुनीश्वर, शिवजी, कृष्णकी स्तुतिसे प्रसन्न हो यह बोले ॥ ५७ ॥ शिवजी बोले, हे तात ! तुमने सत्य कहा, मैंने उस बाणासुरको शाप दियाहै, मेरी आज्ञासे तुम बाणासुरकी भुजाओंको

काटनेको आयेहो ॥ ५८ ॥ हे रमानाथ ! हे विष्णो ! हे वीर ! मैं क्या करूं ? मैं सदा भक्तोंके आधीन हूं, मेरे सन्मुख बाणासुरकी भुजाओंका छेदन किस प्रकार होगा ॥ ५९ ॥ इस कारण तुम मेरी आज्ञासे जृंभणास्त्रसे मुझे जृंभण (जंभाईवाला) करो तब अपना यथेष्ट कार्य कर सुखी होओ ॥६०॥ सनत्कुमारजी बोले शिवजीके ऐसा कहनेपर वह कृष्णजी अतिविस्मित हुए और अपने युद्धस्थानमें आके प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय अनेकअस्त्रोंमें कुशल भगवान् श्रीकृष्णजीने शिवजीके ऊपर शीघ्रही जृंभणास्त्रको धनुषपर चढाकर छोडा ॥ ६२ ॥ उस जृंभणास्त्रसे जृंभित हुए शिवको

किं करोमि रमानाथ भक्ताधीनस्सदा हरे ॥ पश्यतो मे कथं वीर स्याद्बाणभुजकृंतनम् ॥ ५९ ॥ अतस्त्वं जृंभणास्त्रेण मां जृंभय मदाज्ञया ॥ ततस्त्वं कुरु कार्यं स्वं यथेष्टं च सुखी भव ॥ ६० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्तश्शंकरेणाथ शार्ङ्गपाणिस्सुविस्मितः ॥ स्वरणस्थानमागत्य मुमोद स मुनीश्वरः ॥६१॥ जृंभणास्त्रं मुमोचाथ संधाय धनुषि द्रुतम् ॥ पिनाकपाणये व्यास नानास्त्रकुशलो हरिः ॥ ६२ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदर्ष्टिभिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे बाणाऽसुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णनं नाम चतुःपंचात्तशमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोस्तु ते॥अद्भुतेयं कथा तात श्राविता मे त्वया मुने ॥१॥ जृंभिते जृंभणास्त्रेण हरिणा समरे हरे ॥ हते बाणबले बाणः किमकार्षीच्च तद्वद ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वरः ॥३॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाप्राज्ञ कथां च परमाद्भुताम् ॥ कृष्णशंकरयोस्तात लोकलीलानुसारिणोः ॥४॥

मोहित करके खड्ग, गदा, ऋष्टियोंसे बाणासुरकी भुजाओंको छेदन किया ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषायां द्वि० रु० पं० यु० बाणासुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले, हे मुने ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे सनत्कुमारजी ! आपको नमस्कार है, आपने मुझे यह अद्भुतकथा सुनाई ॥ १ ॥ युद्धमें श्रीकृष्णजीके जृंभणास्त्रसे शिवके मोहित होनेपर दैत्य बाणासुरने भुजा छेदित होनेपर क्या किया, सो कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार अतितेजस्वी, उन व्यासजीका वचन सुन ब्रह्माके पुत्र, मुनीश्वर, प्रसन्नहो बोले ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे

हे बुद्धिमान् ! हे व्यासजी ! हे तात ! संसारमें लीला करनेवाले, श्रीकृष्णजी तथा शिवजीकी सुन्दर कथाको सुनो ॥ ४ ॥ शिवजीके पुत्रों, तथा गणोंसहित
लीलासे सोजानेपर वह दैत्यराज बाणासुर, कृष्णके साथ युद्ध करनेको आया ॥ ५ ॥ कुंभांड मंत्रीसे घोडा मंगाय वह महाबली दैत्य अनेकशस्त्र अस्त्रोंको
धारणकर भयंकर युद्ध करने लगा ॥ ६ ॥ उस महाबली दैत्येन्द्र बाणासुरने अपने बलको नष्टहुआ देखके सहन न करके (क्रोधित हो) बडा भयानक
युद्ध किया ॥ ७ ॥ उस संग्राममें शिवजीसे बडा बल पाय महावीर, श्रीकृष्णजी बाणासुरको तृणके समान मान ऊंचे स्वरसे गर्जने लगे ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वर !

शयिते लीलया रुद्रे सपुत्रे सगणे सति ॥ बाणो विनिर्गतो युद्धं कर्तुं कृष्णेन दैत्यराट् ॥ ५ ॥ कुंभांडसंगृहीताश्वो नानाशस्त्रास्त्रधृक्
ततः ॥ चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महाबलः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा निजबलं नष्टं स दैत्येन्द्रोऽत्यमर्षितः ॥ चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महा
बलः ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णोपि महावीरो गिरिशाप्तमहाबलः ॥ उच्चैर्जगर्ज तत्राजौ बाणं मत्वा तृणोपमम् ॥ ८ ॥ धनुष्टंकारयामास शार्ङ्गा
ख्यं निजमद्भुतम् ॥ त्रासयन्बाणसैन्यं तदवशिष्टं मुनीश्वर ॥ ९ ॥ तेन नादेन महता धनुष्टंकारजेन हि ॥ द्यावाभूम्योरंतरं वै व्याप्त
मासीदनंतरम् ॥ १० ॥ चिक्षेप विविधान्बाणान्बाणाय कुपितो हरिः ॥ कर्णान्तं तद्विकृष्याथ तीक्ष्णानाशीविषोपमान् ॥ ११ ॥
आयातस्तान्निरीक्ष्याऽथ स बाणो बलिनन्दनः ॥ अप्राप्तानेव निच्छेद स्वशरैस्स्वधनुश्च्युतैः ॥ १२ ॥ पुनर्जगर्ज स विभुर्बाणो वैरि
गणार्दनः ॥ तत्रसुर्वृष्णयस्सर्वे कृष्णात्मानो विचेतसः ॥ १३ ॥

शेष बचीहुई शत्रुकी सेनाको त्रास दिखाय, अपने अद्भुत, शार्ङ्ग नामक धनुषकी टंकार करने लगे ॥ ९ ॥ उस धनुषकी टंकारसे उत्पन्नहुए बडे शब्दसे भूमि
और आकाशका मध्यभाग व्याप्त होगया ॥ १० ॥ उसी समय श्रीकृष्णजीने क्रोधित हो उस धनुषको कानोंतक चढाकर बाणासुरके ऊपर सर्पोंके समान
अनेकबाणोंको छोडा ॥ ११ ॥ उस बलिपुत्र बाणासुरने युद्धमें आय, उन बाणोंको आता देख अपने धनुषसे छोडेहुए बाणोंसे अपने समीप न आनेपरही
काटडाला ॥ १२ ॥ फिर वह चारोंओरसे शत्रुओंको नाश करताहुआ गर्जने लगा, तब वहां सम्पूर्ण यादव कृष्णका स्मरण करतेहुए मूर्च्छित हुए ॥ १३ ॥

महाबली अहंकारी, बलीके पुत्र बाणने शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके अतिशूर कृष्णके ऊपर अपने बाण छोडे ॥ १४ ॥ तब महादैत्योंके शत्रु कृष्णजीनेभी शिवके चरणारविन्दोंको स्मरण करके उन बाणोंको दूरसेही काटदिया ॥ १५ ॥ संग्राममें बलराम आदि सब यादवोंने क्रोधमें व्याकुल हो प्रत्येक योधाको मारा ॥ १६ ॥ इस प्रकार वहां उन दोनों बली पुरुषोंका बहुत समय तक भयानक युद्ध होतारहा, जो सुननेवालोंकोभी विस्मय देनेवाला था ॥ १७ ॥ संग्राममें उस समय गरुडजीने अतिक्रोध करके अपने पंखोंके प्रहारोंसे बाणासुरकी सब सेनाको चूर्ण करदिया ॥ १८ ॥

स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं चिक्षेप निजसायकान् ॥ स कृष्णायातिशूराय महागर्वो बलेस्सुतः ॥ १४ ॥ कृष्णोऽपि तानसंप्राप्तानच्छिनत्स्वशरैर्द्रुतम् ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजममरारिर्महाबलः ॥ १५ ॥ रामादयो वृष्णयश्च स्वैस्वं योद्धारमाहवे ॥ निजघ्नुर्बलिनस्सर्वे कृत्वा क्रोधं समाकुलाः ॥ १६ ॥ इत्थं चिरतरं तत्र बलिनोश्च द्वयोरपि ॥ बभूव तुमुलं युद्धं शृण्वतां विस्मयावहम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र क्रोधं कृत्वाऽतिपक्षिराट् ॥ बाणासुरबलं सर्वं पक्षाघातैरमर्दयत् ॥ १८ ॥ मर्दितं स्वबलं दृष्ट्वा मर्दयंतं च तं बली ॥ चुकोपाति बलेः पुत्रः शैवराड् दितिजेश्वरः ॥ १९ ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं सहस्रभुजवान्द्रुतम् ॥ महत्पराक्रमं चक्रे वैरिणां दुस्सहं स वै ॥ २० ॥ चिक्षेप युगपद्बाणानमितांस्तत्र वीरहा ॥ कृष्णादिसर्वयदुषु गरुडे च पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥ जघानैकेन गरुडं कृष्णमेकेण पत्रिणा ॥ बलमेकेन च मुने परानपितथा बली ॥ २२ ॥ ततः कृष्णो महावीर्यो विष्णुरूपस्सुरारिहा ॥ चुकोपाति रणे तस्मिञ्जगर्ज च महेश्वरः ॥ २३ ॥

अपने बलके नाश करनेवाले गरुडको देख, शैवोंमें श्रेष्ठ, बलवान् उस दैत्यने उनके ऊपर अतिक्रोध किया ॥ ॥ १९ ॥ और सहस्र भुजावाले दैत्यने महादेवके चरणारविन्दोंको स्मरण करके शत्रुओंको असह्य अपना पौरुष दिखाया ॥ २० ॥ वहां वीरोंके नष्टकरनेवाले उसने एकसाथ कृष्णादि समस्त यादवोंपर तथा गरुडके ऊपर पृथक् २ अनेकबाणोंका प्रहार किया ॥ २१ ॥ हे मुने ! बलवान् उस दैत्यने एक बाणसे गरुडको, एक बाणसे कृष्णको, एकसे बलरामको एकसे और सबोंको ताडित किया ॥ २२ ॥ उस समय बडे पराक्रमी, विष्णुके अवताररूप दैत्योंके नाश करनेवाले सबके ईश्वर

श्रीकृष्णजी उस युद्धमें क्रोधितहुए गर्जने लगे ॥ २३ ॥ और एकसाथ शिवको स्मरणकर अतिउग्र पराक्रमवाले, उस दैत्यको अपने छोडेहुए बाणोंसे
ताडन किया ॥ २४ ॥ और भगवान् कृष्णने व्याकुल न हो उसके धनुष आदिको शीघ्रही काटदिया, और उसके घोडोंको अपने बाणोंसे मारके
गिरादिया ॥ २५ ॥ महावीर बाणासुर अति क्रोध करके गर्जा, और उसने अपनी गदासे श्रीकृष्णजीको ताडन किया, जिससे वह महात्मा पृथ्वीपर गिरे
॥ २६ ॥ हे देवर्षे ! तब श्रीकृष्णजीने लोकमें लीला करनेके कारण शीघ्रही भूमिसे उठ शस्त्रको ले उस शिवभक्त शत्रुके साथ युद्ध किया ॥ २७ ॥

जघान बाणं तरसा शार्ङ्गनिस्सृतसच्छरैः ॥ अति तद्बलमत्युग्रं युगपत्स्मृतशंकरः ॥ २४ ॥ चिच्छेद तद्धनुश्शीघ्रं छत्रादिकमना
कुलः ॥ हयांश्च पातयामास हत्वा तान्स्वशरैर्हरिः ॥ २५ ॥ बाणोऽपि च महावीरो जगर्जाति प्रकुप्य ह ॥ कृष्णं जघान गदया
सोऽपतद्धरणीतले ॥ २६ ॥ उत्थायारं ततः कृष्णो युयुधे तेन शत्रुणा ॥ शिवभक्तेन देवर्षे लोकलीलाऽनुसारतः ॥ २७ ॥ एवं
द्वयोश्चिरं कालं बभूव सुमहान्रणः ॥ शिवरूपो हरिः कृष्णः स च शैवोत्तमो बली ॥ २८ ॥ कृष्णोऽथ कृत्वा समरं चिरं बाणेन
वीर्यवान् ॥ शिवाऽऽज्ञया प्राप्तबलश्चुकोपाति मुनीश्वरः ॥ २९ ॥ ततस्सुदर्शनेनाशु कृष्णो बाणभुजान्बहून् ॥ चिच्छेद भगवाञ्शंभु
शासनात्परवीरहा ॥ ३० ॥ अवशिष्टा भुजास्तस्य चत्वारोऽतीव सुन्दराः ॥ गतव्यथो बभूवाशु शंकरस्य प्रसादतः ॥ ३१ ॥ गतस्मृ
तिर्यदा बाणः शिरश्छेत्तुं समुद्यतः ॥ कृष्णो वीरत्वमापन्नस्तदा रुद्रस्समुत्थितः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें बहुत समयतक बडा संग्राम होता रहा, भगवान् श्रीकृष्णजी शिवरूप तथा वह बली बाणासुर शिवके भक्तोंमें श्रेष्ठ था ॥२८॥
मुनीश्वर वीर श्रीकृष्णजीने बहुत देरतक बाणासुरके साथ युद्ध कर फिर शिवकी आज्ञासे बल प्राप्त कर अतिक्रोध किया ॥ २९ ॥ तब शत्रुओंके वीर
को नाशकरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीने शिवजीकी आज्ञासे शीघ्रही अपने सुदर्शन चक्रसे बाणासुरकी सब भुजाओंको छेदन करदिया ॥ ३० ॥ उस
समय उसकी श्रेष्ठ चार भुजा शेष रहगईं, और भगवान् कृष्ण, शिवके प्रसादसे निर्द्वन्द्व होगये ॥ ३१ ॥ जिस समय बाणासुर शिवके स्मरणसे हीन हुआ,

तभी वीरताको प्राप्तहुए श्रीकृष्णजी उसका सिर काटनेको उद्यत हुए, उस समय शिवजी उठके बोले ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले हे भगवन्! हे देवकीके पुत्र! मैंने पहले जो तुमको आज्ञा दी थी सो हे वीर! मेरी आज्ञाके पालक तुमने वह सब कार्य पूर्ण किया ॥ ३३ ॥ अब तुम बाणासुरके सिरको मत काटो, मेरी आज्ञासे अपने सुदर्शनचक्रको लौटालो मेरे भक्तके ऊपर सदा यह चक्र निष्फल होगा ॥ ३४ ॥ हे गोविन्द! संग्राममें मैंने तुम्हैं यह अनिवार्य सुदर्शनचक्र दिया है इससे इस चक्रको संग्राममें लौटाओ ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मीश! पहले तुमने यह सुदर्शनचक्र, दधीच,वीर रावण, तथा तारका आदिके

रुद्र उवाच ॥ भगवन्देवकीपुत्र यदाज्ञप्तं मया पुरा ॥ तत्कृतं च त्वया विप्र मदाज्ञाकारिणा सदा ॥ ३३ ॥ मा बाणस्य शिरश्छिंधि संहरस्व सुदर्शनम् ॥ मदाज्ञया चक्रमिदं स्यान्मोघं मज्जने सदा ॥३४॥ दत्तं मया पुरा तुभ्यमनिवार्यं रणे त्तव ॥ चक्रं जयं च गोविन्द निवर्तस्व रणात्ततः ॥ ३५ ॥ दधीचे रावणे वीरे तारकादिपुरेष्वपि ॥ विना मदाज्ञां लक्ष्मीश रथाङ्गं नामुचः पुरा ॥ ३६ ॥ त्वं तु योगीश्वरस्साक्षात्परमात्मा जनार्दन ॥ विचार्यतां स्वमनसा सर्वभूतहिते रतः ॥ ३७ ॥ वरमस्य मया दत्तं न मृत्युर्भयमस्ति वै ॥ तन्मे वचस्सदा सत्यं परितुष्टोस्म्यहं तव ॥ ३८ ॥ पुराऽयं गर्वितो मत्तो युद्धं देहीति मेऽब्रवीत् ॥ भुजान्कण्डूयमानस्तु विस्मृतात्मगर्तिर्हरे ॥ ३९ ॥ तदाहमशपं तं वै भुजच्छेत्ताऽऽगमिष्यति ॥ अचिरेणातिकालेन गतगर्वो भविष्यसि ॥ ४० ॥ मदाज्ञया हरिः प्राप्तो भुजच्छेत्ता तवाऽथ वै ॥ निवर्तस्व रणाद्गच्छ स्वगृहं सवधूवरः ॥ ४१ ॥

ऊपर मेरी आज्ञाके विना नहीं छोडाथा ॥ ३६ ॥ हे जनार्दन! आप तो साक्षात् परमात्मा योगीश्वर हैं सब प्राणियोंके हितमें तत्पर हो यह अपने मतसे विचारो ॥ ३७ ॥ मैंने इसे यह वर देदिया है कि तुझे मृत्युका भय न होगा सो मेरा यह वचन सदा सत्य होगा, मैं तुमसे संतुष्ट हूं ॥ ३८ ॥ हे हरे! पहले इसने भुजाओंको खुजाय अपनी गतिको भूलके गर्वितहो मुझसे यह वर मांगा कि मुझे युद्ध दो ॥ ३९ ॥ तब मैंने उसे शाप दिया कि थोडेही समयमें कोई तेरी भुजाओंका काटनेवाला आवैगा तब तू अभिमानरहित होगा ॥ ४० ॥ मेरी आज्ञासे तेरी भुजाके छेदन करने वाले भगवान् कृष्ण प्राप्त

हुये इससे तुम अब संग्रामसे लौटके सुन्दर वधूके सहित अपने स्थानको जाओ ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर शिवजीने उन दोनोंकी मित्रता कराके उनको आज्ञा दे अपने गणों तथा पुत्रोंके सहित, अपने लोकको गमन किया ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार भगवान् शिवजीके वचन सुन अपने सुदर्शन चक्रको हरण करके अक्षतशरीर विजय पानेवाले श्रीकृष्णजीने अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ भार्यासहित अनिरुद्धको आश्वासन दे बाणासुरसे प्रदान कियेहुए, अनेक रत्नसमुदायको ग्रहण कर ॥ ४४ ॥ उसकी सखी परमयोगिनी चित्रलेखाको ले शिवजीकी आज्ञासे कृतकृत्य हुए श्रीकृष्णजी अतिप्रसन्न

इत्युक्तः स तयोर्मैत्रीं कारयित्वा महेश्वरः ॥ तमनुज्ञाप्य सगणः सपुत्रः स्वालयं ययौ ॥ ४२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शंभोस्संहृत्य च सुदर्शनम् ॥ अक्षतांगस्तु विजयी तत्कृष्णोंतःपुरं ययौ ॥ ४३ ॥ अनिरुद्धं समाश्वास्य सहितं भार्यया पुनः ॥ जग्राह रत्नसंघातं बाणदत्तमनेकशः ॥ ४४ ॥ तत्सखीं चित्रलेखां च गृहीत्वा परयोगिनीम् ॥ प्रसन्नोऽभूत्ततः कृष्णः कृतकार्यः शिवाज्ञया ॥ ४५ ॥ हृदा प्रणम्य गिरिशमामंत्र्य च बलेस्सुतम् ॥ परिवारसमेतस्तु जगाम स्वपुरीं हरिः ॥ ४६ ॥ पथि जित्वा च वरुणं विरुद्धं तमनेकधा ॥ द्वारकां च पुरीं प्राप्तस्समुत्सवसमन्वितः ॥ ४७ ॥ विसर्जयित्वा गरुडं सखीन्वीक्ष्योपहस्य च ॥ द्वारकायां ततो दृष्ट्वा कामचारी चचार ह ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पंचमे युद्धखंडे बाणभुजकृन्तनगर्वापहारवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया ॥ अकार्षीत्किं ततो बाणस्तत्त्वं वद महामुने ॥ १ ॥

हुय ॥ ४५ ॥ तब श्रीकृष्णजी अपने चित्तसे शिवको प्रणाम कर बाणासुरसे विदाले कुटुम्बसहित अपने नगरको गये ॥ ४६ ॥ मार्गमें प्रतिकूलहुए वरुणको अनेकप्रकारसे जीत आनन्द सहित द्वारकापुरीमें आये ॥ ४७ ॥ उस समय, गरुडजीको विसर्जनकर अपने मित्रोंसे हास्यपूर्वक संभाषण करते द्वारकापुरीको देख इच्छानुसार भ्रमण करने लगे ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० बाणभुजकृन्तनगर्वापहारवर्णनं नाम पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ नारदजी बोले, हे महामुने! भार्याके सहित अनिरुद्धजीके तथा श्रीकृष्णजीके द्वारकापुरीमें चले जानेपर फिर बाणासुरने

क्या किया, सो तुम यथार्थरूपसे कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले भार्यासहित अनिरुद्ध तथा कृष्णके द्वारका जानेपर बाणासुर अपने मनसे अपने अज्ञानको स्मरणकर अतीव दुःखी हुआ ॥ २ ॥ तब शिवके गण, नन्दीने दुःखीहुए रुधिरसे भीजे शरीरवाले, संताप करतेहुए बाणासुर दैत्यसे कहा ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे शिवके भक्त बाणासुर ! तुम दुःख मत करो भगवान शिवजी भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले भक्तवत्सल नामधारी हैं ॥ ४ ॥ हे भक्तोंमें श्रेष्ठ ! उनकी इच्छासे जो कुछ हुआ सो हुआ, ऐसा चित्तसे मानकर वारंवार शिवका स्मरण करो ॥ ५ ॥ उन शिवमें मन लगाके नित्य भक्तोंमें दया करनेवाले महादेवका वारम्वार उत्सव करो ॥ ६ ॥ तब द्वेषसे शून्य हुआ वह बाण दैत्य नन्दीके वचनसे महोत्साहकर धैर्य धारण कर शिवके स्थानको गया ॥ ७ ॥ वहां जाय प्रभुको नमस्कार कर अतिव्याकुल हो गर्वके लेशसे शून्यहुआ, प्रेमसे पूर्णमन हो बाणासुर रोने लगा ॥ ८ ॥ अनेकस्तोत्रों तथा स्तुतियोंसे नमस्कार करताहुआ, यथोचित चरणन्यास कर हाथोंको चलाता हुआ ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके आलीढ आदि स्थानों तथा प्रत्येक आलीढादिसे शोभित हुए तांडव नृत्यको करने लगा ॥ १० ॥ सहस्रो मुखके बाजोंको बजाने, भौं चलाने, शिरके कंपाने तथा सहस्रों प्रकारके अंग चलाकर ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया ॥ दुःखितोऽभूत्ततो बाणस्स्वाज्ञानं संस्मरन्हृदा ॥ २ ॥ ततो नन्दी शिवगणो बाणं प्रोवाच दुःखितम् ॥ दैत्यं शोणितदिग्धांगमनुतापसमन्वितम् ॥ ३ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ बाण शंकरसद्भक्त मानुतापं कुरुष्व भोः ॥ भक्तानुकंपी शंभुर्वै भक्तवत्सलनामधृक् ॥ ४ ॥ तदिच्छया च यज्जातं तज्जातमिति चेतसा ॥ मन्यस्व भक्तशार्दूल शिवं स्मर पुनःपुनः ॥ ५ ॥ मन आद्ये समाधाय कुरु नित्यं महोत्सवम् ॥ भक्तानुकंपनश्चाऽस्य शंकरस्य पुनःपुनः ॥ ६ ॥ नन्दिवाक्यात्ततो बाणो द्विषा शीर्षकमात्रकः ॥ शिवस्थानं जगामाशु धृत्वा धैर्यं महामनाः ॥ ७ ॥ गत्वा तत्र प्रभुं नत्वा रुरोदातीव विह्वलः ॥ गतगर्वव्रजो बाणः प्रेमाकुलितमानसः ॥ ८ ॥ संस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैस्संनमन्नुतितस्तथा ॥ यथोचितं पादघातं कुर्वन्विक्षेपयन्करान् ॥ ९ ॥ ननर्त तांडवं मुख्यं प्रत्यालीढादिशोभितम् ॥ स्थानकैर्विविधाकारैरालीढप्रमुखैरपि ॥ १० ॥ मुखवादसहस्राणि भ्रूक्षेपसहितान्यपि ॥ शिरःकम्पसहस्राणि प्राप्तानीकः सहस्रशः ॥ ११ ॥

शनैः शनैः अनेकप्रकारके नृत्योंको दिखाके रुधिरकी धाराओंसे भूमिको सींच कर ॥ १२ ॥ उस महाभक्त, अपना गति तथा अहंकारसे भूलेहुए उस बाणासुरने चन्द्रशेखर शिवको प्रसन्न किया ॥ १३ ॥ तब भक्तवत्सल, नृत्यगीतमें प्रिय, भगवान् शिवजी प्रसन्न हो सुन्दर नृत्यको करनेवाले बाणासुरसे यह बोले ॥ १४ ॥ शिवजी बोले हे तात ! हे बलिके पुत्र ! हे बाणासुर ! हे दैत्येन्द्र ! मैं तेरे इस नृत्यसे प्रसन्न हूं, तेरे मनमें हो सो वरदान मांग ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने ! तब ऐसा शिवका वचन सुन उस दैत्येन्द्र बाणासुरने, अपने घावके भरनेके निमित्त वर मांगा ॥ १६ ॥ बाहुओंके युद्धकी

वारीश्च विविधाकारा दर्शयित्वा शनैश्शनैः ॥ तथा शोणितधाराभिस्सिञ्चयित्वा महीतलम् ॥ १२ ॥ रुद्रं प्रसादयामास शूलिनं चन्द्रशेखरम् ॥ बाणासुरो महाभक्तो विस्मृतात्मगतिर्नतः ॥ १३ ॥ ततो नृत्यं महत्कृत्वा भगवान्भक्तवत्सलः ॥ उवाच बाणं संहृष्टो नृत्यगीतप्रियो हरः ॥ १४ ॥ ॥ रुद्र उवाच ॥ बाण तात बलेः पुत्र संतुष्टो नर्तनेन ते ॥ वरं गृहाण दैत्येन्द्र यत्ते मनसि वर्तते ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचश्शम्भोर्दैत्येन्द्रेण तदा मुने ॥ बाणेन संवृणीतोऽभूद्वरैस्तु व्रणरोपणे ॥ १६ ॥ बाहुयुद्धस्य चोद्धत्तिर्गाणपत्यमथाक्षयम् ॥ उषापुत्रस्य राज्यं तु तस्मिञ्शोणितकाह्वये ॥१७॥ निर्वैरता च विबुधैर्विष्णुना च विशेषतः ॥ न पुनर्दैत्यता दुष्टा रजसा तमसा युता ॥ १८ ॥ शंभुभक्तिर्विशेषेण निर्विकारा सदा मुने ॥ शिवभक्तेषु च स्नेहो दया सर्वेषु जंतुषु ॥ १९ ॥ इति कृत्वा वराञ्शंभोर्बलिपुत्रो महाऽसुरः ॥ प्रेम्णाऽश्रुनयनो रुद्रं तुष्टाव सुकृतांजलिः ॥ २० ॥ ॥ बाण उवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ त्वां नमामि महेशान दीनबन्धो दयानिधे ॥ २१ ॥

क्षमा, तथा अक्षय, गणपतिका भाव, तथा उस शोणितनामक नगरमें ऊषाके पुत्रका राज्य मांगा ॥ १७ ॥ ज्ञानियोंसे देवताओंसे तथा विशेषकर विष्णुसे निर्वैरता, रजोगुण तमोगुणसे युक्त, दुष्ट दैत्यताका विनाश मांगा ॥ १८ ॥ हे मुने ! विशेषकर शिवकी निर्विकार भक्ति, शिवके भक्तोंमें स्नेह, तथा सब प्राणियोंमें दया ॥ १९ ॥ उस बलिपुत्र बाणदैत्यने यह सब वर शिवजीसे मांगे, और प्रेमसे नेत्रोंमें आंसू भर हाथ जोड, शिवको सन्तुष्ट किया ॥ २० ॥ बाणासुर बोला, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे महेश्वर ! हे दीनबन्धो ! हे दयानिधे ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥

हे शंकर ! हे कृपासागर ! हे प्रभो ! आपने मुझपै बडी कृपा की, आपने प्रसन्न होके मेरा गर्व नष्ट किया ॥ २२ ॥ आप, ब्रह्म, परमात्माहैं, सर्वव्यापी,
अखिलेश्वर, ब्रह्मांडरूपी शरीरवाले, विराट्, सबोंमें व्याप्त, सबसे परे हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारी नाभि आकाश, अग्नि मुख, जलवीर्य है, दिशायें कान
हैं, द्युलोक मस्तक है, पृथ्वी चरण हैं, चन्द्रमा मन है ॥ २४ ॥ सूर्य नेत्रहैं, ऋद्धि पेट है, इन्द्र भुजायें हैं, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति विसर्ग (दान) है तथा
धर्म तुम्हारा हृदय है ॥ २५ ॥ हे नाथ ! आपके रोम औषधी हैं, आपके केश मेघ हैं, तीनों गुण आपके तीनों नेत्र हैं, आप सर्वात्मा पुरुष हैं ॥ २६ ॥

कृता मयिऽकृपातीव कृपासागर शंकर ॥ गर्वोपहारितस्सर्वः प्रसन्नेन मम प्रभो ॥ २२ ॥ त्वं ब्रह्म परमात्मा हि सर्वव्याप्यखिले
श्वरः ॥ ब्रह्मांडतनुरुग्रेशो विराट् सर्वान्वितः परः ॥ २३ ॥ नाभिर्नभेऽग्निर्वदनमंबु रेतो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौश्शीर्षमंघ्रिरुर्वी ते मनश्च
न्द्रस्तव प्रभो ॥ २४ ॥ दृगर्को जठरं वार्द्धिर्भुजेंद्रो धिषणा विधिः ॥ प्रजापतिर्विसर्गश्च धर्म्मो हि हृदयं तव ॥ २५ ॥ रोमाण्यौषधयो
नाथ केशा जलमुचस्तव ॥ गुणास्त्रयस्त्रिनेत्राणि सर्वात्मा पुरुषो भवान् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणं ते मुखं प्राहुर्बाहुं क्षत्रियमेव च ॥ ऊरुजं
वैश्यमाहुस्ते पादजं शूद्रमेव च ॥ २७ ॥ त्वमेव सर्वदोपास्यस्सर्वैर्जीवैर्महेश्वर ॥ त्वां भजन्परमां मुक्तिं लभते पुरुषो ध्रुवम् ॥ २८ ॥
यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ २९ ॥ विष्णुर्ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चाम
लाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वां शंकरं प्रियमीश्वरम् ॥ ३० ॥

आपका मुख ब्राह्मण है, क्षत्रिय भुजा है, वैश्य जंघा हैं, चरणोंमें उत्पन्न शूद्र है ॥२७॥ हे महेश्वर ! आपही नित्य सब जीवोंको उपासना करने योग्य हैं,
मनुष्य आपको भजके निश्चयही परम मुक्तिको पातेहैं ॥२८॥ जो पुरुष आत्माके प्रिय ईश्वर आपको त्यागन कर विपरीत इद्रियोंके विषयोंमें लगे रहतेहैं,
वह मानो अमृतको छोड विष खाते हैं ॥ २९ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, निर्मल आशयवाले, पंडित, मुनि, आप प्रिय ईश्वरको सब आत्मासे प्राप्त होते हैं॥ ३० ॥

सनत्कुमारजी बोलें, ऐसा कहके वह बाणासुर प्रेमसे प्रफुल्लित अंग हो शिवको प्रणाम करके मौन हो रहा ॥ ३१ ॥ ऐसा अपने भक्त बाणासुरका वचन सुन
भगवान् सदाशिव "तुम सब वर प्राप्त करोगे" ऐसा कहकर वहांही अंतर्धान होगये ॥ ३२ ॥ तब शिवके प्रसादसे महाकालत्वको प्राप्त हो वह शिवका
अनुचर बाणासुर बडा प्रसन्न हुआ ॥ ३३ ॥ यह सब गुरुजनोंके गुरु, शूलपाणि, समस्त पृथ्वीके मध्यमें क्रीडा करनेवाले कानोंके सुखदायक शिवजीके
तथा बाणके सुंदर वृत्तान्तको आपसे वर्णन किया ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० बाणासुरगाणपत्यप्राप्तिवर्णनं नाम

सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्त्वा बलिपुत्रस्तु विरराम शरासुरः ॥ प्रेमप्रफुल्लितांगश्च प्रणम्य स महेश्वरम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुत्वा स्वभक्तस्य
बाणस्य भगवान्भवः ॥ सर्वं लभिष्यसीत्युक्त्वा तत्रैवांतरधीयत ॥ ३२ ॥ ततश्शंभोः प्रसादेन महाकालत्वमागतः ॥ रुद्रस्यानुचरो
बाणो महाप्रमुदितोऽभवत् ॥ ३३ ॥ इति किल शरनाम्नः शंकरस्यापि वृत्तं सकलगुरु जनानां सद्गुरोश्शूलपाणेः ॥ कथितमिह वरिष्ठं
श्रोत्ररम्यैर्वचोभिस्सकलभुवनमध्ये क्रीडमानस्य नित्यम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पं० युद्धखंडे
बाणासुरगणपत्वप्राप्तिवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाप्रेम्णा चरितं शशिमौ
लिनः ॥ यथाऽवधीत्त्रिशूलेन दानवेन्द्रं गजासुरम् ॥ १ ॥ दानवे निहते देव्या समरे महिषासुरे ॥ देवानां च हितार्थाय पुरा देवाः सुखं
ययुः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रो महावीरो मुनीश्वर गजासुरः ॥ पितुर्वधं हि संस्मृत्य कृतं देव्या सुरार्थनात् ॥ ३ ॥ स तद्वैरमनुस्मृत्य तपोर्थं
गतवान्वने ॥ समुद्दिश्य विधिं प्रीत्या तताप परमं तपः ॥ ४ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! शिवजीके चरित्रको प्रेमसे सुनो, जिस प्रकार महादेवने दानवेन्द्र गजासुरको त्रिशूलसे
मारा ॥ १ ॥ देवतोंके हितके निमित्त युद्धमें देवीने जब महिषासुरको मारा और देवता सुखसे अपने २ स्थानोंको चले गये ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! देवताओंकी
प्रार्थनासे कियेहुए पिताके स्मरण करके उसका पुत्र महावीर गजासुर ॥ ३ ॥ उस वैरको लेनेके लिये तप करनेको वनमें गया, और ब्रह्माजीके उद्देश्यसे

प्रीतिपूर्वक बडा तप करने लगा ॥ ४ ॥ मैं कामसे वशीभूत हुए, स्त्री तथा पुरुषोंसे अवध्य हूं, ऐसा मनमें विचारके तपमें तत्पर हुआ ॥ ५ ॥ तब वह हिमालयपर्वतकी गुफामें ऊपरको भुजा उठाये आकाशमें दृष्टि लगाये पैरके अंगूठेसे पृथ्वीपर खडे होकर परमदारुण तप करने लगा ॥ ६ ॥ वह बडा बुद्धिमान् महिषासुरका पुत्र, गजासुर जटाओंके भार सहित कान्तिसे प्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित हुआ ॥ ७ ॥ उसके मस्तकसे उत्पन्नहुई तपोमय धूमाग्नि, तिरछे, ऊपर तथा नीचेके लोकोंको चारोंओरसे संसारको तपाने लगी ॥ ८ ॥ मस्तकसे प्रगट हुई अग्निसे नदी समुद्र सूख गये, ग्रहों सहित

अवध्योहं भविष्यामि स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ॥ संविचार्येति मनसाऽभूत्तपोरतमानसः ॥ ५ ॥ स तेपे हिमवद्द्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्द्धबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ ६ ॥ जटाभारैस्स वै रेजे प्रलयार्क इवांशुभिः ॥ महिषासुरपुत्रोऽसौ गजासुर उदारधीः ॥ ७ ॥ तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतस्सधूमोग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकांस्तापयन्विष्वगीरितः ॥ ८ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतश्चाऽग्नेर्मुर्द्धसमुद्भवात् ॥ निपेतुस्सग्रहास्तारा जज्ज्वलुश्च दिशो दश ॥ ९ ॥ तेन तप्तास्सुरास्सर्वे दिवं त्यक्त्वा सवासवाः ॥ ब्रह्मलोकं ययुर्विज्ञापयामासुश्चचाल भूः ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विधे गजासुरतपस्तप्ता वयमथाकुलाः ॥ न शक्नुमो दिवि स्थातुमतस्ते शरणं गताः ॥ ११ ॥ विधेह्युपशमं तस्य चान्याञ्जीवयितुं कृपा ॥ लोका नंक्ष्यत्यन्यथा हि सत्यंसत्यं ब्रुवामहे ॥ १२ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्वासवाद्यैस्स आत्मभूः ॥ भृगुदक्षादिभिर्ब्रह्मा ययौ दैत्यवराश्रमम् ॥ १३ ॥

तारे गिरने लगे, तथा दशों दिशाएं प्रज्वलित हुईं ॥ ९ ॥ उस अग्निसे तप्तहुए सम्पूर्ण इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकको त्यागकै ब्रह्मलोकको गये, और ब्रह्मासे कहने लगे कि समस्त पृथ्वी चलायमान हुई है ॥ १० ॥ देवता बोले, हे ब्रह्माजी ! गजासुरके तपसे दुःखीहुए हम व्याकुल हैं स्वर्गमें स्थित होनेको समर्थ नहीं हैं, इससे तुम्हारी शरणमें आये हैं ॥ ११ ॥ आप कृपा करके औरोंके प्राण रखनेके निमित्त उस दैत्यकी शान्ति करो, नहीं तो सब लोक नष्ट होजायँगे, यह हम सत्य २ कहते हैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार इन्द्र आदि देवताओं तथा भृगु दक्ष आदिसे प्रार्थना कियेहुए ब्रह्माजी दैत्यके आश्रमको

गये ॥ १३ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंकी घटा हो, उस प्रकार उसके तपसे लोकोंको तपाताहुआ देख विस्मितहुए वह ब्रह्माजी हँसकर बोले ॥१४॥ ब्रह्माजी बोले, हे दैत्येन्द्र ! हे गजासुर ! हे तात ! उठ, उठ, तेरा तप सिद्ध हुआ मैं तुझे वर देनेको आयाहूं अपनी इच्छाके अनुकूल वर मांग ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, वह दैत्येन्द्र गजासुर उठके अपने नेत्रोंसे विभु, ब्रह्माजीको देख प्रसन्नहो उनसे गद्गद वाणीसे बोला ॥ १६ ॥ गजासुर बोला, हे देव देवेश ! आपको नमस्कार है, यदि आप मुझे वर देते हैं तो कामसे वशीभूत कियेहुए स्त्री पुरुषोंसे मैं अवध्य होऊं ॥ १७ ॥ हे विभो ! महाबलवान्

तपंतं तपसा लोकान्यथाऽभ्रापिहितं दिवि ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह विहसन्सृष्टिकारकः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दैत्येन्द्र
तपस्सिद्धोसि माहिषे ॥ प्राप्तोऽहं वरदस्तात वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ उत्थायोत्थाय दैत्येन्द्र ईक्षमाणो दृशा
विभुम् ॥ गिरा गद्गदया प्रीतोऽगृणाद्देवं स माहिषिः ॥ १६ ॥ गजासुर उवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश यदि दास्यसि मे वरम् ॥ अवध्योऽहं
भवेयं वै स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ॥ १७ ॥ महाबलो महावीर्योऽजेयो देवादिभिस्सदा ॥ सर्वेषां लोकपालानां निखिलर्द्धिसुभुग्विभो
॥ १८ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं वृतश्शतधृतिर्दानवेन स तेन वै ॥ प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरं तस्य सुदुर्लभम् ॥ १९ ॥ एवं लब्धवरो
दैत्यो माहिषिश्च गजासुरः ॥ सुप्रसन्नमनास्सोऽथ स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ स विजित्य दिशस्सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः ॥ देवा
सुरमनुष्येन्द्रान्गंधर्वगरुडोरगान् ॥ २१ ॥ इत्यादीन्निखिलाञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह
तेजसा ॥ २२ ॥ देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥ महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २३ ॥

महावीर्यवान् सदा देवादिकोंसे अजय सम्पूर्ण लोकपालोंकी समस्त सम्पत्तिको भोगनेवाला होऊं ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार उस दैत्यसे वरण कियेहुए ब्रह्माजीने उसके तपसे प्रसन्न होके अति दुर्लभ वरदान दिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार वह महिषासुरका पुत्र गजासुर वर पाय अति प्रसन्न हो अपने स्थानको गया ॥ २० ॥ उस दैत्यने सम्पूर्ण दिशाओंको, तीनों लोकोंको, देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड, सर्पोंको जीतके ॥ २१ ॥ सबोंको अपने वशमें किया, फिर संसारको जीतनेवाले दैत्यने आठों लोकपालोंके स्थानोंको उनके तेज सहित हरण किया ॥ २२ ॥ उसने देवोद्यान (नन्दन वन)

से शो भायमान साक्षात् विश्वकर्मासे निर्माण किये, स्वर्गस्थित महेन्द्रगृहमें निवास किया ॥ २३ ॥ उस महाबली महा मनवाले लोकोंको जीतनेवालेंने पीडित किये देवताओंसे अपने दोनों चरणोंमें प्रणाम कराया, और प्रचंड आज्ञा देकर महेन्द्रके, उस घरमें क्रीडा करने लगा ॥२४॥ इस प्रकार जीतीहुई दिशाओंका एकमात्र स्वामी जितेन्द्रिय वह दैत्य प्रिय विषयोंको लोलुपतासे भोगता हुआ तृप्त न हुआ ॥ २५ ॥ इस प्रकार ऐश्वर्यवान् अहंकारी शास्त्रोंको उल्लंघन करनेवाले उस दैत्यको बहुत समय बीतने पर पाप बुद्धि उदय हुई ॥ २६ ॥ तथा वह देवताओंको पीडा देनेवाला महिषासुरका पुत्र पृथ्वीपर

तस्मिन्महेन्द्रस्य गृहे महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ॥ रेमेऽभिवंद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः ॥ २४ ॥
स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्र
वर्तिनः ॥ काले व्यतीते महति पापबुद्धिरभूत्ततः ॥ २६ ॥ महिषासुरपुत्रोऽसौ संचिक्लेश द्विजान्वरान् ॥ तापसान्नितरां पृथ्व्यां दान
वस्सुरमर्दनः ॥ २७ ॥ सुरान्नरांश्च प्रमथान्सर्वांश्चिक्लेश दुर्मतिः ॥ धर्मान्वितान्विशेषेण पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २८ ॥ एकस्मिन्समये
तात दानवोऽसौ महाबलः ॥ अगच्छद्राजधानीं वै शंकरस्य गजासुरः ॥ २९ ॥ समागतेऽसुरेन्द्रे हि महान्कलकलो मुने ॥ त्रातत्रा
तेति तत्रासीदानंदवनवासिनाम् ॥ ३० ॥ महिषाऽसुरपुत्रोऽसौ यदा पुर्यां समागतः ॥ प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥ ३१ ॥
तस्मिन्नवसरे देवाश्शक्राद्यास्तत्पराजिताः ॥ शिवस्य शरणं जग्मुर्नत्वा तुष्टुवुरादरात् ॥ ३२ ॥

तपस्वी ब्राह्मणोंको अति क्लेश देने लगा ॥ २७ ॥ वह दुष्ट पहले वैरको स्मरण करके देवताओंको, मनुष्योंको, गणोंको विशेषकर धर्मात्माओंको अतिक्लेश देने लगा ॥ २८ ॥ हे तात ! एक समय, यह महाबली, गजासुर दैत्य, शिवजीकी राजधानीको गया ॥ २९ ॥ हे मुने ! उस समय, दैत्येन्द्रके आनेपर नन्दनवनमें निवास करनेवालोंका, रक्षा करो, रक्षा करो, ऐसा बडा शब्द होने लगा ॥ ३० ॥ जिस समय अपने वीर्य और मदसे उन्मत्त हुआ महिषासुरका पुत्र (गजासुर) सब देवगणोंको पीडा देता हुआ काशी नगरीमें आया ॥ ३१ ॥ उसी समय गजासुरसे पराजित हुए इन्द्रादि सब देवता शिवके शरणमें

गये, और उन्होंने आदरसे प्रणामकर, स्तुति की ॥ ३२ ॥ और उस दैत्यका काशीमें आना, तथा विशेषकर, वहां रहनेवाले उनके नाथोंका अति दुःखभी
निवेदन किया ॥ ३३ ॥ देवता बोले हे देवोंके देव ! हे कृपानिधे ! हे महादेव ! तुम्हारी (काशी) नगरीमें प्राप्त हुआ दैत्य तुम्हारे भक्त पुरुषोंको कष्ट देता
है ॥ ३४ ॥ इससे आप उसे मारें, वह भूमीमें जहां जहां चरण धरता है. वहां अचल हुई पृथ्वीको अपने भारसे चलायमान करता है ॥ ३५ ॥ उसके
जंघाके वेगसे वृक्ष गिरते हैं, भुजा दंडके आघातसे शिखरों सहित पर्वत चूर्ण होते हैं ॥ ३६ ॥ जिसके मुकुटके संघर्षसे मेघ आकाशको त्यागन करतेहैं, और

न्यवेदयन्दानवस्य तस्य काश्यां समागमम् ॥ क्लेशाधिक्यं तत्रत्यानां तन्नाथानां विशेषतः ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव
तव पुर्य्यां गतोऽसुरः ॥ कष्टं दत्ते त्वज्जनानां तं ि वं कृपानिधे ॥ ३४ ॥ यत्रयत्र धरायां च चरणं प्रमिणोति हि ॥ अचलां
सचलां तत्र करोति निजभारतः ॥ ३५ ॥ ऊरुवेगेन तरवः पतंति शिखरैस्सह ॥ यस्य दोर्दंडघातेन चूर्णाः स्युश्च शिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥
यस्य मौलिजसंघर्षाद्घना व्योम त्यजंत्यपि ॥ नीलिमानं न चाद्यापि जह्युस्तत्केशसंगजम् ॥ ३७ ॥ यस्य विश्वाससंभारैरुत्तरंगा
महाब्धयः ॥ नद्योप्यमन्दकल्लोला भवंति तिमिभिस्सह ॥ ३८ ॥ योजनानां सहस्राणि नव यस्य समुच्छ्रयः ॥ तावानेव हि विस्ता
रस्तनोर्मायाविनोऽस्य हि ॥ ३९ ॥ यन्नेत्रयोः पिंगलिमा तथा तरलिमा पुनः ॥ विद्युता नोह्यतेऽद्यापि सोऽयं स्माऽऽयाति सत्व
रम् ॥ ४० ॥ यांयां दिशं समभ्येति सोयं दुस्सहदानवः ॥ अवध्योऽहं भवामीति स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः ॥ ४१ ॥

उसके बालोंके संपर्कसे उत्पन्न हुए नीलेपनको अबतक भी नहीं छोडते ॥ ३७ ॥ जिसके विश्वासके भारोंसे ऊंची तरंगोंवाले महासागर तथा नदियां भी
जलजन्तुओंके सहित बडी किलोलकरती हैं ॥ ३८ ॥ जिसके शरीरकी ऊंचाई नौ सहस्र योजन मायासे होजाती है, तथा मायावी उस दैत्यका विस्तार
(चौडाईका घेरा) भी उतनाही होजाता है ॥ ३९ ॥ जिसके नेत्रोंको पीतता तथा चंचलताको विजली भी नहीं धारण करसक्ती, वही दैत्य बडे वेगसे यहां
आगया है ॥ ४० ॥ वह असह्य दैत्य जिस २ दिशाको जाता है कामसे जीतेहुए स्त्री पुरुषोंसे मैं अवध्य हूं ऐसा कहके भय दिखाता है ॥ ४१ ॥

हे देवताओंके स्वामी ! इसी प्रकार उस दैत्यकी चेष्टा आपसे निवेदन की, आप काशीकी रक्षामें तत्पर हो, भक्तोंकी रक्षा करो ॥ ४२ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार प्रार्थना करेहुए शिवजी उस दैत्यके वधकी कामनासे बडी शीघ्रतासे (काशी) में आये ॥ ४३ ॥ भक्तवत्सल त्रिशूल हाथमें ले गर्जते हुए उन शिवजीको देखके वह गजासुर गर्जनेलगा ॥ ४४ ॥ तब अतिशब्द करते हुए उन दोनोंका अनेकअस्त्र तथा शस्त्रोंके संपातोंसे दारुण युद्ध हुआ ॥ ४५ ॥ तब अतितेजस्वी महाबली गजासुरने दैत्योंके विनाश करनेवाले शिवजीको तीव्र बाणोंसे ताडन किया ॥ ४६ ॥ हे मुने ! उस समय भयंकर शरीरवाले

इत्येवं चेष्टितं तस्य दानवस्य निवेदितम् ॥ रक्षस्व भक्तान्देवेश काशीरक्षणतत्पर ॥ ४२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति संप्रार्थितो देवैर्भक्तरक्षणतत्परः ॥ तत्राऽऽजगाम सोरं तद्वधकामनया हरः ॥ ४३ ॥ आगतं तं समालोक्य शंकरं भक्तवत्सलम् ॥ त्रिशूलहस्तं गर्जंतं जगर्ज स गजासुरः ॥ ४४ ॥ ततस्तयोर्महानासीत्समरो दारुणोऽद्भुतः ॥ नानास्त्रशस्त्रसंपातैर्वीराराव प्रकुर्वतोः ॥ ४५ ॥ गजासुरोऽतितेजस्वी महाबलपराक्रमः ॥ विव्याध गिरिशं बाणैस्तीक्ष्णैर्दानवघातिनम् ॥ ४६ ॥ अथ रुद्रो रौद्रतनुः स्वशरैरतिदारुणैः ॥ तच्छरांश्चिच्छिदे तूर्णमप्राप्तांस्तिलशो मुने ॥ ४७ ॥ ततो गजासुरः क्रुद्धोऽभ्यधावत्तं महेश्वरम् ॥ खड्गहस्तः प्रगर्ज्योच्चैर्हतोसीत्यद्य वै मया ॥ ४८ ॥ ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायांतं दैत्यपुंगवम ॥ विज्ञायावध्यमन्येन शूलेनाभिजघान तम् ॥ ४९ ॥ प्रोतस्तेन त्रिशूलेन स च दैत्यो गजासुरः ॥ छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमाना जगा हरम् ॥ ५० ॥ गजासुर उवाच ॥ देवदेव महादेव तव भक्तोऽस्मि सर्वथा ॥ जाने त्वां त्रिदिवेशानं त्रिशूलिन्स्मरहारिणम् ॥ ५१ ॥

शिवजीने अपने अति तीव्र बाणोंसे समीप न आते २ तिलकी समान उसके बाणोंको काटडाला ॥ ४७ ॥ तब खड्ग हाथमें ले अब तुमको मारताहूं, इस प्रकार ऊंचे स्वरसे गर्जकर क्रोधित हुआ गजासुर शिवजीके ऊपर दौडा ॥ ४८ ॥ तब त्रिशूलधारी शिवने उस दैत्यको आताहुआ देख तथा औरसे न मारने योग्य जान उसे अपने त्रिशूलसे मारा ॥ ४९ ॥ त्रिशूलसे छेदित हुआ वह गजासुर दैत्य अपनेको शिवका छत्ररूप मान्ताहुआ शिवको स्मरण करने लगा ॥ ५० ॥ गजासुर बोला हे देवदेव ! हे महादेव ! हे त्रिशूलिन् ! हे देवताओंके स्वामी ! सब प्रकारमें तुम्हारा भक्त हूं, मैं कामदेवके नाश करनेवाले

आपकोही जानता हूं ॥ ५१ ॥ हे महेशान ! हे त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले ! हे सर्वव्यापी अन्धकार ! तुम्हारे हाथोंसे मेरा वध कल्याणकारी हुआ ॥ ॥ ५२ ॥ हे कृपालो ! हे मृत्युके जीतनेवाले ! मैं कुछ जताना चाहता हूं वह सुनिये सत्यही कहूंगा, असत्य नहीं कहूंगा सो आप विचार देखें ॥५३॥ आप एक मात्र संसारमें वंदनाके योग्य हैं, तथा संसारके ऊपर स्थितहैं, कालसे तो सबोंको मरना है परन्तु ऐसी मृत्यु कल्याणके निमित्त होती है ॥५४॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार उसका वचन सुनके दयासागर शिवजी हँसके महिषासुरके पुत्र गजासुरसे बोले ॥ ५५ ॥ ईश्वर बोले हे महापराक्रमी !

तव हस्ते मम वधो महाश्रेयस्करो मतः ॥ अंधकारे महेशान त्रिपुरांतक सर्वग ॥ ५२ ॥ किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि तच्छृणुष्व कृपाकर ॥ सत्यं ब्रवीमि नासत्यं मृत्युंजय विचारय ॥ ५३ ॥ त्वमेको जगतां वंद्यो विश्वस्योपरि संस्थितः ॥ कालेन सर्वैर्मर्तव्यं श्रेयसे मृत्युरीदृशः ॥ ५४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शंकरः करुणानिधिः ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचेशो माहिषेयं गजासुरम् ॥ ५५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ महापराक्रमनिधे दानवोत्तम सन्मते ॥ गजासुर प्रसन्नोस्मि स्वानुकूलं वरं वृणु ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं वरदस्य हि ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दानवेन्द्रो गजासुरः ॥५७॥ गजासुर उवाच ॥ यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे ॥ इमां कृत्तिं महेशान त्वत्रिशूलाग्निपाविताम् ॥ ५८ ॥ स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणांगणपणीकृताम् ॥ दर्शनीयां महादिव्यां सर्वदैव सुखावहाम् ॥ ५९ ॥ इष्टगंधिस्सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला ॥ सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमंडना ॥ ६० ॥

हे दानवोत्तम ! हे श्रेष्ठ मतिवाले ! हे गजासुर ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं अपने इच्छित वरको मांग ॥ ५६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, वर देनेवाले शिवजीका ऐसा वचन सुन दैत्योंका स्वामी गजासुर प्रसन्न हो इस प्रकार बोला ॥ ५७ ॥ गजासुर बोला हे महेशान ! हे दिगम्बर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र हुई मेरी इस देहके चर्मको अपना आच्छादन करो ॥ ५८ ॥ अपने प्रमाणवाली, कोमल स्पर्शवाली, युद्धक्षेत्रमें समर्पित हुई, देखने योग्य, महा दिव्य, निरन्तर सुखदायक, मेरी खालको धारण करो ॥५९॥ यह मेरी चर्म सदा सुगंधयुक्त, अतिकोमल, सदा निर्मल, तथा अतिशोभायमान

हो ॥ ६० ॥ हे सर्वव्यापक ! बडी घाम, तथा अग्निकी लपटको बहुत देरतक प्राप्त होके भी पवित्र सुगन्धिवाली मेरी यह देह चर्म भस्म न हो ॥६१॥ हे दिगंबर ! यदि मेरी यह चर्म पुण्यवाली नहीं थी तो तुम्हारे साथ युद्धस्थलमें किस प्रकार इसका संग हुआ ॥६२॥ हे शिवजी ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो तो और वर मुझे दो कि आजसे लेके तुम्हारा नाम कृत्तिवास हो ॥ ६३ ॥ सनत्कुमारजी बोले ऐसा उस दैत्यका वचन सुन भक्तवत्सल शिवजी अतिप्रसन्नहो, भक्तिसे निर्मल मन वाले, उस गजासुर दैत्यसे यह बोले ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ शिवजी बोले, मुक्तिके साधन, इस क्षेत्रमें यह पवित्र तेरा शरीर

महातपोनलज्वालां प्राप्यापि सुचिरं विभो ॥ न दग्धा कृत्तिरेषा मे पुण्यगंधानिधेस्ततः ॥ ६१ ॥ यदि पुण्यवती नैषा मम कृत्तिर्दिगंबर ॥ तदा त्वदंगसंगोस्याः कथं जातो रणांगणे ॥ ६२ ॥ अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम् ॥ ६३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुत्वेति स वचस्तस्य शंकरो भक्तवत्सलः ॥ तथेत्युवाच सुप्रीतो महिषासुरजं च तम् ॥ ६४ ॥ पुनः प्रोवाच प्रीतात्मा दानवं तं गजासुरम् ॥ भक्तप्रियो महेशानो भक्तिनिर्मलमानसम् ॥६५॥ ईश्वर उवाच ॥ इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिसाधने ॥ मम लिंगं भवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम् ॥६६॥ कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम् ॥ सर्वेषामेव लिंगानां शिरोभूतं विमुक्तिदम् ॥६७॥ कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिं परिगृह्य च ॥ गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धि दिगंबरः॥६८॥महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नह्नि मुनीश्वर ॥ हर्षमापुर्जनास्सर्वे काशीस्थाः प्रमथास्तथा ॥ ६९ ॥ हरिब्रह्मादयो देवा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ तुष्टुवुस्तं महेशानं नत्वा सांजलयस्ततः ॥७०॥ हते तस्मिन्दानवेशे माहिषे हि गजासुरे ॥ स्वस्थानं भेजिरे देवा जगत्स्वास्थ्यमवाप च ॥७१॥

सबोंको मुक्तिदायक मेरा ज्योतिर्लिंग होगा ॥६६॥ महा पापोंका नाश करनेवाला, समस्त पार्थिव लिंगोंमें शिरोभूत, मुक्तिका देनेवाला, कृत्तिवासेश्वरनामक ज्योतिर्लिंग यहाँ स्थापित होगा ॥ ६७ ॥ ऐसा कह उन दिगंबर, देवोंके स्वामी, शिवजीने उस गजासुरकी बडी विस्तृत चर्मको ग्रहण करके अपना आच्छादन किया ॥ ६८ ॥ हे मुनीश्वर ! उस दिन महामहोत्सव हुआ, काशीनिवासी सब मनुष्य तथा प्रमथ प्रसन्न हुए ॥ ६९ ॥ उस समय हर्षसे पूर्ण मनवाले विष्णु ब्रह्मा आदि देवताओंने हाथ बाँध उन शिवजीको नमस्कार करके स्तुति पढी ॥ ७० ॥ दानवोंके स्वामी, महिषासुरके पुत्र, उस गजासुरके

मरजानेपर, देवताओंने अपने स्थानको पाया और संसार स्वस्थताको प्राप्त हुआ ॥ ७१ ॥ यह भक्तोंपर दयाका सूचक स्वर्ग, कीर्ति, आयुका देनेवाला, धन धान्यको बढानेवाला, शिवजीका चरित्र कहा ॥ ७२ ॥ जो मनुष्य इस इतिहासको पवित्रताके साथ प्रीतिसे सुनताहै, अथवा सुनाताहै, वह बडा सुख पाके मोक्षको पाता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० गजासुरवधोनाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! सुनो, मैं शिवजीके चरित्रको कहता हूं कि जिस प्रकार महादेवने दितिके पुत्र दुंदुभि निर्ह्लादको मारा ॥ १ ॥ समय पाकर विष्णुदेवसे दितीके

इत्युक्तं चरितं शंभोर्भक्तवात्सल्यसूचकम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥ य इदं शृणुयात्प्रीत्या श्रावयेद्वा शुचिव्रतः ॥ स भुक्त्वा च महासौख्यं लभेतांते परं सुखम् ॥ ७३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे गजासुरवधो नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः ॥ यथा दुंदुभिनिर्ह्लादमवधीद्दितिजं हरः ॥ १ ॥ हिरण्याक्षे हते दैत्ये दितिपुत्रे महाबले ॥ विष्णुदेवेन कालेन प्राप दुःखं महद्दितिः ॥ २ ॥ दैत्यो दुंदुभिनिर्ह्लादो दुष्टः प्रह्लादमातुलः ॥ सांत्वयामास तां वाग्भिर्दुःखितां देवदुःखदः ॥ ३ ॥ अथ दैत्यस्स मायावी दितिमाश्वास्य दैत्यराट् ॥ देवाः कथं सुजेयाः स्युरित्युपायमचिंतयत् ॥ ४ ॥ देवैश्च घातितो वीरो हिरण्याक्षो महासुरः ॥ विष्णुना च सह भ्रात्रा सच्छलैर्दैत्यवैरिभिः ॥ ५ ॥ किंबलाश्च किमाहाराः किमाधारा हि निर्जराः ॥ मया कथं सुजेयास्स्युरित्युपायमचिंतयत् ॥ ६ ॥ विचार्य बहुशो दैत्यस्तत्त्वं विज्ञाय निश्चितम् ॥ अवश्यमग्रजन्मानो हेतवोऽत्र विचारतः ॥ ७ ॥

पुत्र महाबली हिरण्याक्ष दैत्यके मारनेपर, दिति बडे दुःखको प्राप्त हुई ॥ २ ॥ तब प्रह्लादके मामा दुन्दुभिनिर्ह्लादनामक देवताओंके दुःख देनेवाले दुष्ट दैत्यने दुःखी होके दुःखी हुई दितिको आश्वासन वाक्योंसे शान्त किया ॥ ३ ॥ तब छली उस दैत्यराज दुन्दुभिनिर्ह्लादने दितिको धैर्य दे देवता किस प्रकार सुगमतासे जीते जांयगे, ऐसा उपाय विचारा ॥ ४ ॥ इन्द्र सहित विष्णुने छलमें तत्पर होकर देवतोंके वैरी हिरण्याक्षको मारा है ॥ ५ ॥ उन देवताओंका क्या बल क्या आहार और क्या आधार है, मैं उनको कैसे जीतूंगा इस प्रकारका उपाय सोचने लगा ॥ ६ ॥ ऐसा बहुत विचारके, निश्चित तत्त्वको जान

इस विषयमें ब्राह्मणही आदि कारणहैं यह उसने विचारा ॥ ७ ॥ तब देवताओंके शत्रु, महादुष्ट, दुन्दुभिनिर्ह्राद दैत्यने वारम्वार ब्राह्मणोंके मारनेकी इच्छा की ॥ ८ ॥ कारण कि देवता यागके भोजी हैं, यज्ञ वेदोंसे उत्पन्न हैं, वे वेद ब्राह्मणके आधारमें हैं, इसमें ब्राह्मणही देवताओंका बल है ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण वेद तथा इन्द्रादि देवता ब्राह्मणोंके आधार और बलवालेहैं यह निश्चय है इसमें कुछ विचार करना उचित नहीं है ॥१०॥ यदि ब्राह्मण नष्ट होजायँ तो वेद स्वयं नष्ट होंगे उन वेदोंके नाश होजानेसे देवता स्वयं नष्ट होजांयगे ॥ ११ ॥ यज्ञोंके नाश होजानेसे देवता भोजनसे रहितहुए निर्बल होजानेसे सुगमतासे

ब्राह्मणान्हंतुमसकृदन्वधावत वै ततः ॥ दैत्यो दुन्दुभिनिर्ह्रादो देववैरी महाखलः ॥ ८ ॥ यतः क्रतुभुजो देवाः क्रतवो वेदसंभवाः ॥ ते
वेदा ब्राह्माणाधारास्ततो देवबलं द्विजाः ॥९॥ निश्चितं ब्राह्मणाधारास्सर्वे वेदास्सवासवाः ॥ गीर्वाणा ब्राह्मणबला नात्र कार्या विचारणा
॥ १० ॥ ब्राह्मणा यदि नष्टास्स्यु र्वेदा नष्टास्ततस्स्वयम् ॥ अतस्तेषु प्रणष्टेषु विनष्टाः सततं सुराः ॥ ११ ॥ यज्ञेषु नाशं गच्छत्सु हता
हारास्ततस्सुराः ॥ निर्बलास्सुखजय्याःस्युर्निर्जितेषु सुरेष्वथ ॥ १२ ॥ अहमेव भविष्यामि मान्यस्त्रिजगतीपतिः ॥ आहरिष्यामि देवा
नामक्षयास्सर्वसंपदः ॥ १३ ॥ निर्वेक्ष्यामि सुखान्येव राज्ये निहतकंटके ॥ इति निश्चित्य दुर्बुद्धिः पुनश्चिंतितवान्खलः ॥ १४ ॥
द्विजाः क्व संति भूयांसो ब्रह्मतेजोतिबृंहिताः ॥ श्रुत्यध्ययनसंपन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १५ ॥ भूयसां ब्राह्मणानां तु स्थानं वाराणसी
खलु ॥ तामादावुपसंहृत्य यायां तीर्थांतरं ततः ॥ १६ ॥ यत्र यत्र हि तीर्थेषु यत्र यत्राश्रमेषु च ॥ संति सर्वेऽग्रजन्मानस्ते मयाद्या
स्समंततः ॥ १७ ॥ इति दुंदुभिनिर्ह्रादो मतिं कृत्वा कुलोचिताम् ॥ प्राप्यापि काशीं दुर्वृत्तो मायावी न्यवधीद्द्विजान् ॥ १८ ॥

जीते जांयगे, और देवताओंके जीतनेपर ॥ १२ ॥ मैंही तीनों लोकोंमें माननीय होजाऊंगा, तथा देवताओंकी अक्षय सम्पत्तिको हरण करूंगा ॥ १३ ॥ और निष्कंटक राज्यकर सुख भोगूंगा, ऐसा निश्चय करके वह दुर्बुद्धि खल फिर विचारनेलगा ॥ १४ ॥ कि ब्रह्मतेजसे युक्त वेदोंके अध्ययन करनेवाले तप और बलसे पूर्ण हुये अधिक ब्राह्मण कहाँ हैं ॥ १५ ॥ बहुतसे ब्राहणोंका स्थान निश्चयही काशीपुरी है, पहले उसेही जीतके फिर दूसरे तीर्थोंमें जाऊंगा ॥ १६ ॥ फिर जिन २ तीर्थोंमें तथा जिन २ आश्रमोंमें जो ब्राह्मण हैं, उन सबको भक्षणकर जाऊंगा ॥ १७ ॥ ऐसी अपने कुलके योग्य मति

ठानके, वह दुराचारी छली दुन्दुभिनिर्ह्लादनामक दैत्य काशीमें आकर ब्राह्मणोंको मारने लगा ॥ १८ ॥ समिधा तथा कुशाओंके लानेको जहाँ ब्राह्मण जाते उस वनमें ही वह दुष्टात्मा उन सबोंको भक्षण करलेता ॥ १९ ॥ जिससे कोई न जाने, इस प्रकार छिपा रहता, वनमें भीलरूपसे तथा जलाशयोंमें जलजन्तुरूपसे विचरता था ॥ २० ॥ इस प्रकार अदृश्यरूपवाला वह मायावी देवताओंके भी अगोचर होकर, दिनमें मुनियोंके मध्यमें मुनिके समान ध्यानमें तत्पर रहता ॥ २१ ॥ रात्रिमें व्याघ्ररूपसे पर्णशालाओंके प्रवेश तथा निकासको देखता हुआ वह दैत्य बहुतसे ब्राह्मणोंको भक्षण करता था ॥ २२ ॥

समित्कुशान्समादातुं यत्र यांति द्विजोत्तमाः ॥ अरण्ये तत्र तान्सर्वान्स भक्षयति दुर्मतिः ॥ १९ ॥ यथा कोऽपि न वेत्त्येवं तथाऽऽ
च्छन्नोऽभवत्पुनः ॥ वने वनेचरो भूत्वा यादोरूपो जलाशये ॥ २० ॥ अदृश्यरूपी मायावी देवानामप्यगोचरः ॥ दिवा ध्यानपरस्तिष्ठे
न्मुनिवन्मुनिमध्यगः ॥ २१ ॥ प्रवेशमुटजानां च निर्गमं हि विलोकयन् ॥ यामिन्यां व्याघ्ररूपेणाभक्षयद्ब्राह्मणान्बहून् ॥ २२ ॥
निश्शंकम्भक्षयत्येवं न त्यजत्यपि कीकशम् ॥ इत्थं निपातितास्तेन विप्रा दुष्टेन भूरिशः ॥ २३ ॥ एकदा शिवरात्रौ तु भक्तस्त्वेको
निजोटजे ॥ सपर्यां देवदेवस्य कृत्वा ध्यानस्थितोऽभवत् ॥ २४ ॥ स च दुंदुभिनिर्ह्लादो दैत्येन्द्रो बलदर्पितः ॥ व्याघ्ररूपं समा
स्थाय तमादातुं मतिं दधे ॥ २५ ॥ तं भक्तं ध्यानमापन्नं दृढचित्तं शिवेक्षणे ॥ कृतास्त्रमन्त्रविन्यासं तं क्रांतुमशकन्न सः ॥ २६ ॥
अथ सर्वगतश्शम्भुर्ज्ञात्वा तस्याशयं हरः ॥ दैत्यस्य दुष्टरूपस्य वधाय विदधे धियम् ॥ २७ ॥

इसप्रकार निःसन्देह होके भक्षण करता कि अस्थितकको भी नहीं छोड़ता इसप्रकार उस दुष्टने बहुतसे ब्राह्मणोंको मारडाला ॥२३॥ एक समय शिवरात्रिमें एक शिवभक्त देवोंके देव शिवकी पूजा करके ध्यानमें लीन हुआ ॥ २४ ॥ तब उस दैत्येन्द्र बलसे दर्पित हुए दुन्दुभिनिर्ह्लादने व्याघ्रका रूप धारण करके उसे भक्षण करनेकी इच्छा की ॥२५॥ तब ध्यान करते हुए शिवके अवलोकनमें दृढ चित्त हुए, अस्त्र (कवच) मंत्रोंके विन्यास करनेवाले, उस भक्तको भक्षण करनेको वह समर्थ न हुआ ॥ २६ ॥ तब सर्वव्यापी शिवजीने उसके आशयको जानकर उस दुष्टरूप दैत्यके वध करनेकी इच्छा की ॥ २७ ॥

जबही उसने व्याघ्ररूपसे उसे ग्रहण करना चाहा, तबही संसारकी रक्षारूप मणि, तीन नेत्रवाले, भक्तोंके रक्षा करनेमें प्रवीण शिवजी प्रगट हुए ॥ २८ ॥ भक्तसे पूजित उस लिंगसे प्रगट हुए शिवजीको देखके वह दैत्य फिर उसी रूपसे पर्वतके समान होगया ॥ २९ ॥ जब ही सर्वज्ञ शिवको तिरस्कार सहित आता हुआ देखा, तबही उस दैत्यने उनकी कोखमें प्रहार किया ॥ ३० ॥ उसी समय उन भक्तवत्सल शिवजीने वज्रसे भी अति कठोर मुष्टिसे उस व्याघ्रको ताडन किया ॥ ३१ ॥ उस मुष्टिके आघातसे तथा कक्षाके (कोख) के मर्दन होनेसे दुःखी हुआ वह व्याघ्र अति नाद करके मरगया ॥ ३२ ॥ उसके रोदनके बड़े शब्दसे व्याकुलचित्त हुए तपस्वीलोग उसके शब्दके साथही रात्रिमें आये ॥ ३३ ॥ वहां मृगको कोखमें करनेवाले शिवजीको देखके वे सब नम्र हो जयजयकार करके स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोले, हे जगद्गुरो ! हे ईश्वर ! इस कठिन उपद्रवसे रक्षा करो, रक्षा करो, और दया करके इसही स्थानमें स्थिति करो ॥ ३५ ॥ हे महादेव ! आप इसही स्वरूपसे व्याघ्रेश नामसे यहाँ स्थितहो इस उत्तम स्थानकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ हे गौरीश ! दुष्टोंको नाश करके हम तीर्थवासियोंकी अनेक और उपद्रवोंसे रक्षा करो और भक्तोंको अभयदान दो ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी बोले इस प्रकार अपने

यावदादित्सति व्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः ॥ जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षो भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ २८ ॥ रुद्रमायांतमालोक्य तद्भक्तार्चितलिंगतः ॥ दैत्यस्तेनैव रूपेण ववृधे भूधरोपमः ॥२९॥ सावज्ञमथ सर्वज्ञं यावत्पश्यति दानवः ॥ तावदायातमादाय कक्षायंत्रे न्यपीडयत् ॥ ३० ॥ पंचास्यस्त्वथ पंचास्यं मुष्ट्या मूर्द्धन्यताडयत् ॥ भक्तवत्सलनामासौ वज्रादपि कठोरया ॥ ३१ ॥ स तेन मुष्टिघातेन कक्षानिष्पेषणेन च ॥ अत्यार्तमारटद्व्याघ्रो रोदसीं पूरयन्मृतः ॥ ३२ ॥ तेन नादेन महता संप्रवेपितमानसाः ॥ तपोधनास्समाजग्मुर्निशि शब्दानुसारतः ॥ ३३ ॥ अत्रेश्वरं समालोक्य कक्षीकृतमृगेश्वरम् ॥ तुष्टुवुः प्रणतास्सर्वे शर्वं जयजयाक्षरैः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ परित्राताः परित्राताः प्रत्यूहाद्दारुणादितः ॥ अनुग्रहं कुरुष्वेश तिष्ठात्रैव जगद्गुरो ॥ ३५ ॥ अनेनैव स्वरूपेण व्याघ्रेश इति नामतः ॥ कुरु रक्षां महादेव ज्येष्ठस्थानस्य सर्वदा ॥ ३६ ॥ अन्येभ्यो ह्युपसर्गेभ्यो रक्ष नस्तीर्थवासिनः ॥ दुष्टानपास्य गौरीश भक्तेभ्यो देहि चाभयम् ॥ ॥ ३७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां भक्तानां चन्द्रशेखरः ॥ तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह स भक्तान्भक्तवत्सलः ॥ ३८ ॥

भक्तोंका वचन सुन वह भक्तवत्सल शिवजी तथास्तु कह फिर यह बोले ॥ ३८ ॥ महेश्वर बोले, जो मनुष्य श्रद्धासे मुझे इस रूपसे देखैगा उसके दुःखको
मैं अवश्य दूर करूंगा ॥ ३९ ॥ मेरे इस चरित्रको स्मरण करके तथा मेरे पार्थिव लिंगको अपने हृदयमें स्मरण करके जो मनुष्य युद्धमें प्रवेश करैगा वह
निःसन्देह विजयको प्राप्त होगा ॥ ४० ॥ इसी अवसरमें इन्द्रादि समस्त देवता उत्सव पूर्वक जय २ कार करते हुए वहां आये ॥ ४१ ॥ सब देवताओंने
अंजलि बाँध कंधे झुकाय प्रेमसे शिवजीको प्रणाम करके भक्तवत्सल महादेवकी मधुर वाणीसे स्तुति की ॥ ४२ ॥ देवता बोले, हे देवोंके स्वामी ! हे प्रभो !

महेश्वर उवाच ॥ यो मामनेन रूपेण द्रक्ष्यति श्रद्धयात्र वै ॥ तस्योपसर्गसंधानं पातयिष्याम्यसंशयम् ॥ ३९ ॥ मच्चरित्रमिदं श्रुत्वा
स्मृत्वा लिंगमिदं हृदि ॥ संग्रामे प्रविशन्मर्त्यो जयमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरे देवास्समाजग्मुस्सवासवाः ॥ जयेति शब्दं
कुर्वंतो महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य शंकरं प्रेम्णा सर्वे सांजलयस्सुराः ॥ नतस्कंधाः सुवाग्भिस्ते तुष्टुवुर्भक्तवत्सलम् ॥ ४२ ॥
देवा ऊचुः ॥ जय शंकर देवेश प्रणतार्तिहर प्रभो ॥ एतद्दुंदुभिनिर्ह्रादवधात्त्राता वयं सुराः ॥ ४३ ॥ सदा रक्षा प्रकर्तव्या भक्तानां
भक्तवत्सल ॥ वध्याः खलाश्च देवेश त्वया सर्वेश्वर प्रभो ॥ ४४ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां परमेश्वरः ॥ तथेत्युक्त्वा प्रसन्नात्मा
तस्मिँल्लिंगे लयं ययौ ॥ ४५ ॥ सविस्मयास्ततो देवास्स्वंस्वं धाम ययुर्मुदा ॥ तेऽपि विप्रा महाहर्षात्पुनर्याता यथागतम् ॥ ४६ ॥
इदं चरित्रं परमं व्याघ्रेश्वरसमुद्भवम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि पठेद्वा पाठयेत्तथा ॥ ४७ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नरस्स्वमनसेप्सितान् ॥
परत्र लभते मोक्षं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ ४८ ॥

प्रणतोंके दुःख हरनेवाले आपने इस दुन्दुभिनिर्ह्रादके वधसे हम सब देवताओंकी रक्षा की ॥ ४३ ॥ हे भक्तवत्सल ! हे देवेश ! हे सर्वेश्वर ! हे प्रभो !
आपको सदा भक्तोंकी रक्षा करनी चाहिये तथा दुष्टोंका वध करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ऐसा उन देवतोंका वचन सुनके परमेश्वर ऐसा ही होगा, यह कह
प्रसन्न हो उस लिंगमें प्रवेश कर गये ॥ ४५ ॥ तब विस्मय करनेवाले देवता आनन्दसे अपने २ स्थानको पधारे तथा सम्पूर्ण ब्राह्मण भी बड़े हर्षके साथ
यथेष्ट स्थानको चले गये ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य व्याघ्रेश्वरसम्बन्धी इस बडे इतिहासको सुनताहै, वा सुनाताहै पढता है वा पढाता है ॥ ४७ ॥ यह अपने

मनसे चाही हुई सम्पूर्ण कामनाओंको पाताहै, तथा निर्द्वन्द्व हो परलोकमें मोक्षको प्राप्त होताहै ॥४८॥ यह अनुपम शिवलीलाके अमृताक्षरवाला इतिहास स्वर्ग दायक, कीर्तिका बढानेवाला तथा पुत्र पौत्रका भी बढानेवाला है ॥ ४९ ॥ अति भक्ति देनेवाला शिवजीकी प्रीतिका देनेवाला कल्याणकारी परम ज्ञानका देनेवाला परम मनोहर है, और अनेक विकारोंका दूर करनेवाला है ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वि० रु० पं० यु० खं० दुंदुभि निर्ह्लाददैत्यवध वर्णनं नामाष्ट पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! प्रीतिसे शिवजीके चरित्रको सुनो कि जिसप्रकार शिवजीने

इदमाख्यानमतुलं शिवलीलामृताक्षरम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥ ४९ ॥ परं भक्तिप्रदं धन्यं शिवप्रीतिकरं शिवम् ॥
परमज्ञानदं रम्यं विकारहरणं परम् ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रुद्रसंहितायां पञ्च० युद्धखण्डे दुंदुभिनिर्ह्राददैत्यव
धवर्णनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास सुसंप्रीत्या चरितं परमेशितुः ॥ यथावधी
त्स्वप्रियया दैत्यमुद्दिश्य संज्ञया ॥ १ ॥ आस्तां पुरा महादैत्यौ विदलोत्पलसंज्ञकौ ॥ अपुंवध्यौ महावीरौ सुदृप्तौ वरतो विधेः
॥ २ ॥ तृणीकृतत्रिजगती पुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात् ॥ ताभ्यां सर्वे सुरा ब्रह्मन् दैत्याभ्यां निर्जिता रणे ॥ ३ ॥ ताभ्यां पराजिता
देवा विधेस्ते शरणं गताः ॥ नत्वा तं विधिवत्सर्वे कथयामासुरादरात् ॥ ४ ॥ इति ब्रह्मा ह्यवोचत्तान् देव्या वध्यौ च तौ ध्रुवम् ॥
धैर्य्यं कुरुत संस्मृत्य सशिवं शिवमादरात् ॥ ५ ॥

संकेतसे दैत्यको बताके अपनी प्रियासे उस दैत्यको मरवाया ॥ १ ॥ पहले विदल, उत्पलनामक दो दैत्य महाबली थे, वे दोनों ही ब्रह्माजीके वरसे मनुष्योंसे वध न होनेका वर पाय बडे पराक्रमी अति अभिमानी होगये थे ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! उन दोनो दैत्योंने अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंको तृणवत (तुच्छ) कर दिया, तथा संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीता ॥ ३ ॥ उन दैत्योंसे पराजित हुए सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये, और आदरसे उनको विधिपूर्वक प्रणाम करके कहने लगे ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने उनसे यह कहा कि यह दोनों दैत्य निश्चयही पार्वतीसे मारे जायँगे , तुम सब पार्वतीसहित शिवजीको

भलीभाँति स्मरण करके धैर्य धारण करो ॥ ५ ॥ कारण कि देवीसहित वह शिवजी भक्तवत्सल हैं, कल्याण करनेवाले हैं वह परमेश्वर बहुत शीघ्रही तुम्हारा कल्याण करैंगे ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले उन देवताओंसे ऐसा कह वह ब्रह्माजी शिवको स्मरण करके मौन होगये और वे देवता भी प्रसन्न होके उसी समय अपने २ लोकको चले गये ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् शिवकी प्रेरणासे देवर्षि नारदजीने उस दैत्यके घर जाके पार्वतीकी सुन्दरताका वर्णन किया ॥ ८ ॥ तब नारदजीका वचन सुन वे दोनों दैत्य मायासे मोहित हुए और विषयोंसे पीडित हो पार्वतीके हरण करनेकी इच्छा करनेवाले ॥ ९ ॥ उन दोनोंने मनमें

भक्तवत्सलनामासौ सशिवश्शंकरश्शिवः ॥ शं करिष्यत्यदीर्घेण कालेन परमेश्वरः ॥६॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्का तांस्ततो ब्रह्मा तूष्णीमासीच्छिवं स्मरन् ॥ तेपि देवा मुदं प्राप्य स्वंस्वं धाम ययुस्तदा ॥ ७ ॥ अथ नारददेवर्षिशिवप्रेरणया तदा ॥ गत्वा तदीयभवनं शिवासौंदर्यमाजगौ ॥ ८ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं दैत्यावास्तां मायाविमोहितौ ॥ देवीं परिजिहीर्षू तौ विषमेषुप्रपीडितौ ॥ ९ ॥ विचारयामासतुस्तौ कदा कुत्र शिवा च सा ॥ भविष्याति विधेः प्राप्तोदयान्नाविति सर्वदा ॥ १० ॥ एकस्मिन्समये शंभुर्विजहार सुलीया ॥ कौतुकेनैव चिक्रीडे शिवा कंदुकलीलया ॥ ११ ॥ सखीभिस्सह सुप्रीत्या कौतुकाच्छिवसन्निधौ ॥ १२ ॥ उदंचंत्यंचदंगानां लाघवं परितन्वती ॥ निश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा ॥ १३ ॥ भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्वपुरीकृतभूमिका ॥ स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्त्रवदंबुकणोज्ज्वला ॥ १४ ॥ स्फुटच्चोलांशुकपथतिर्यदंगप्रभावृता ॥ उल्लसत्कंदुकास्फालातिश्रोणितकराम्बुजा ॥ १५ ॥

विचारा कि प्रारब्धके उदय होनेसे हम दोनोंको वह पार्वती कब कहाँ मिलैंगी ॥ १० ॥ एक समय शिवजी अपनी लीलासे विहार करने लगे, उसी समय पार्वती भी कौतुकसे गेंदकी क्रीडा करती ॥ ११ ॥ अपनी सखियोंके साथ प्रीतिसे शिवजीके समीप खेलने लगीं ॥ १२ ॥ ऊपरको गेंद फैंकती अपने अंगोंकी लघुताको विस्तार करती स्वासकी सुगन्धसे प्रसन्न हुए भौरोंसे घिरनेके कारण चंचल नेत्रवाली ॥ १३ ॥ केशपाशसे माला टूटजानेके कारण मानो अपने रूपकी भूमिका की है, पसीना आनेसें उसके कणोंसे कपोलोंकी पत्ररचना व्यस्त हो रही है ॥ १४ ॥ प्रकाशमान चोलांकुश (कुर्ती) के मार्गसे

निकलती हुई अंगकी कांतिसे व्याप्त तथा शोभायमान गेंदके ताडन करनेसे लालहुए करकमलोंवाली ॥ १५ ॥ गेंदके पीछे दृष्टि देनेसे कंपायमान भौंरूपी लताके अंचलवाली जगत्की माता पार्वती खेलती हुई दीखीं ॥ १६ ॥ आकाशमें विचरते हुए दोनों दैत्योंको कटाक्षोंसे देखा, मानों मृत्युनेही दोनोंको गोदीमें लिया ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानी हुए विदल और उत्पलनामक दोनों दैत्योंने अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोक तृणके समान कियेथे ॥ १८ ॥ कामदेवके बाणोंसे पीडित हुए पार्वतीदेवीको हरनेकी इच्छावाले दोनों दैत्य शीघ्रही शाम्बरी माया करके आकाशसे उतरे ॥ १९ ॥ गणसम्बन्धी मायाको धारण करके (अर्थात् गणबनकर) अतिदुराचारी, अति चंचल मनवाले वे दोनों पार्वतीके समीपमें आये ॥ २० ॥ तभी दुष्टोंको

कंदुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलतांचला ॥ मृडानी किल खेलंती ददृशे जगदम्बिका ॥ १६ ॥ अंतरिक्षचराभ्यां च दितिजाभ्यां कटाक्षिता ॥ क्रोडीकृताभ्यामिव वै समुपस्थितमृत्युना ॥ १७ ॥ विदलोत्पलसंज्ञाभ्यां दृप्ताभ्यां वरतो विधेः ॥ तृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात् ॥ १८ ॥ देवीं तां संजिहीर्षंतौ विषमेषुप्रपीडितौ ॥ दिव उत्तेरतुः क्षिप्रं मायां स्वीकृत्य शांबरीम् ॥ १९ ॥ धृत्वा पारिषदीं मायामायातावंबिकांतिकम् ॥ तावत्यंतं सुदुर्वृत्तावतिचंचलमानसौ ॥ २० ॥ अथ दुष्टनिहंत्रा वै सावज्ञेन हरेण तौ ॥ विज्ञातौ च क्षणादास्तां चांचल्याल्लोचनोद्भवात् ॥ २१ ॥ कटाक्षिताथ देवेन दुर्गा दुर्गतिघातिनी ॥ दैत्याविमाविति गणौ नेति सर्वस्वरूपिणा ॥ २२ ॥ अथ सा नेत्रसंज्ञां स्वस्वामिनस्तां बुबोध ह ॥ महाकौतुकिनस्तात शंकरस्य परेशितुः ॥ २३ ॥ ततो विज्ञाय संज्ञां तां सर्वज्ञार्द्धशरीरिणी ॥ तेनैव कंदुकेनाथ युगपन्निर्जघान तौ ॥ २४ ॥ महाबलौ महादेव्या कंदुकेन समाहतौ ॥ परिभ्रम्य परिभ्रम्य तौ दुष्टौ विनिपेततुः ॥२५॥ वृन्तादिव फले पक्के तालेनानिललोलिते ॥ दंभोलिना परिहते शृंगे इव महागिरेः ॥२६॥

नाश करनेवाले शिवजीने क्षणमात्रमें चंचलनेत्रोंसे उन दोनोंको जान लिया और मनमें अवज्ञा की ॥ २१ ॥ और सर्वस्वरूपी महादेवने संकटकी दूर करनेवाली पार्वतीकी ओर देखा (नेत्रोंके संकेतसे बताया) कि यह दोनों दैत्य हैं, गण नहीं हैं ॥ २२ ॥ उस समय पार्वतीजी महाकौतुकी कल्याणकारी परमेश्वर अपने पति शिवके नेत्रसंकेतको जान गई ॥ २३ ॥ उस नेत्रकी संज्ञाको जानके शिवकी अर्धांगिनी पार्वतीने सहसा उसी गेंदसे उन दोनोंको ताडन किया ॥ २४ ॥ तब महादेवी पार्वतीकी गेंदसे ताडित हुए महाबलवान् वे दोनों दुष्ट घूम २ के चक्कर खाके गिरपडे ॥ २५ ॥ जिसप्रकार ताडके

वृक्षके गुच्छे (बंधन) से पके हुए फल तथा वज्रसे छेदन किये हुए सुमेरु पर्वतके दो शिखर गिरतेहों ऐसे वो गिरपडे ॥ २६ ॥ कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त हुए उन दैत्योंको मारके वह गेंद पार्थिव लिंगस्वरूपको प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ तब ही वह ज्योतिर्लिंग कन्दुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध होगया, ज्येष्ठेश्वरके समीप सब दुष्टोंको निवारण करनेवाला वह पार्थिवलिंग पूजनीय हुआ ॥ २८ ॥ उसी सयय शिवको प्रगट हुआ जान विष्णु ब्रह्मा आदि सब देवता तथा ऋषिगण वहां आये ॥२९ ॥ सम्पूर्ण देवता तथा काशीनिवासी ब्राह्मण, शिवजीसे वरोंको पाकर प्रसन्नहो उनकी आज्ञासे अपने लोकोंको गये ॥ ३० ॥ पार्वतीसमेत महादेवका दर्शन करके उन्होंने अंजलि बांधकर प्रणाम कर भक्ति और आदरपूर्वक मनोहर वाणीसे स्तुति की ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी !

तौ निपात्य महादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ ॥ ततः परिणतिं यातो लिंगरूपेण कंदुकः ॥२७॥ कंदुकेश्वरसंज्ञां च तल्लिंगमभवत्तदा ॥ ज्येष्ठे
श्वरसमीपे तु सर्वदुष्टनिवारणम् ॥२८॥ एतस्मिन्नेव समये हरिब्रह्मादयस्सुराः॥शिवाविर्भावमाज्ञाय ऋषयश्च समाययुः ॥ २९ ॥ अथ
सर्वे सुराश्शम्भोर्वरान्प्राप्य तदाज्ञया॥स्वधामानि ययुः प्रीतास्तथा काशीनिवासिनः ॥३०॥ सांबिकं शंकरं दृष्ट्वा कृतांजलिपुटाश्च ते॥
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ ३१ ॥ सांबिकोऽपि शिवो व्यास क्रीडित्वा सुविहारवित् ॥ जगाम स्वालयं प्रीतस्सगणो
भक्तवत्सलः ॥ ३२ ॥ कंदुकेश्वरलिंगं च काश्यां दुष्टनिबर्हणम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं सर्वदा सताम् ॥ ३३ ॥ इदमाख्यानमतुलं
शृणुयाद्यो मुदान्वितः ॥ श्रावयेद्वा पठेद्यश्च तस्य दुःखभयं कुतः ॥ ३४ ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा नानाविधमनुत्तमम् ॥ परत्र लभते
दिव्यां गतिं वै देवदुर्लभाम् ॥ ३५ ॥ इति ते वर्णितं तात चरितं परमाद्भुतम् ॥ शिवयोर्भक्तवात्सल्यसूचकं शिवदं सताम् ॥ ३६ ॥

पार्वती समेत शिवजी, विहार और क्रीडा करके, भक्तवत्सलता दिखाय, गणोंसहित प्रसन्न हो, अपने लोकको चले गये ॥ ३२ ॥ काशीपुरीमें कन्दुकेश्वर नामक पार्थिव लिंग दुष्टोंका शान्त करनेवाला, भोग और मोक्षका देनेवाला, तथा निरन्तर सत्पुरुषोंकी कामनाका देनेवालाहै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस अद्भुत चरित्रको प्रसन्नतासहित सुनताहै अथवा सुनाता है या पढता है उसको दुःख और भय कहाँ ॥ ३४ ॥ वह इस लोकमें सब प्रकारके उत्तम सुखोंको भोगके पर लोकमें देवताओंसे भी दुर्लभ सुन्दर गति (मुक्ति) को पाता है ॥ ३५ ॥ हे तात ! भक्तोंकी कृपालुताकासूचक, सज्जनोंका

कल्याणकारी, परम अद्भुत, शिवपार्वतीका यह चरित्र वर्णन किया ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले, इस प्रकार शिवजीके चरित्र कह और उन व्यासजीको आमंत्रण कर उनसे प्रेरित हो आकाशमार्गसे मेरे पुत्र शीघ्रही काशीको गये ॥ ३७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह रुद्रसंहिताके मध्यमें युद्धखण्ड सब कामनाओं और सिद्धि योंका करनेवालाहै, यह सब मैंने तुमसे कहा ॥ ३८ ॥ यह शिवको अत्यन्त सन्तुष्ट करनेवाली, भुक्ति, मुक्ति फलकी देनेवाली, सम्पूर्ण रुद्रसंहिता तुमसे वर्णन की ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य शत्रुबाधाको निवारण करनेवाली इस रुद्रसंहिताको नित्य पढताहै, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त हो पश्चात् मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र नारदजी अपने पितासे शिवजीके यशको तथा शतनामोंको सुनके कृतार्थ और शिवानुगामी हुए ॥ ४१ ॥ मैंनें यह ब्रह्मा और नारदजीका सब संवाद तुमसे कहा, शिवजी सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान हैं, अब तुम्हारी और क्या सुनने की इच्छा है ॥४२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गतपञ्चमयुद्धखण्डे विदलोत्पलदैत्यवधवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वामंत्र्य तं व्यासं तन्नुतो मद्वरात्मजः ॥ ययौ विहायसा काशीं चरितं शशिमौलिनः ॥ ३७ ॥ युद्धखंडमिदं प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम ॥ रौद्रीयसंहितामध्ये सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८ ॥ इयं हि संहिता रौद्री सम्पूर्णा वर्णिता मया ॥ सदाशिवप्रियतरा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ ३९ ॥ इमां यश्च पठेन्नित्यं शत्रुबाधानिवारिकाम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेत ना ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ इति ब्रह्मसुतश्श्रुत्वा पित्रा शिवयशः परम् ॥ शतनामाप्य शंभोश्च कृतार्थोऽभूच्छिवानुगः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मनारदसम्वादः सम्पूर्णः कथितो मया ॥ शिवस्सर्वप्रधानो हि किं भूयश्श्रोतुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखंडे विदलोत्पलदैत्यवधवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ समाप्तोयं युद्धखंडः ॥

शिवाभवानी पदकमल, प्रेमसहित शिरनाय । रुद्रसंहिताको तिलक, भाषा लिख्यो बनाय ॥ १ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । भजन क शिवको तहां, द्विज ज्वालापरसाद ॥ २ ॥

समाप्तेयं द्विती हिता ॥ २ ॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां द्वितीया रुद्रसंहिता समाप्ता ॥

॥ अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकासमेते तृतीया शतरुद्रसंहिता प्रारभ्यते ॥

शिवमहापुराण - शतरुद्र संहिता ३

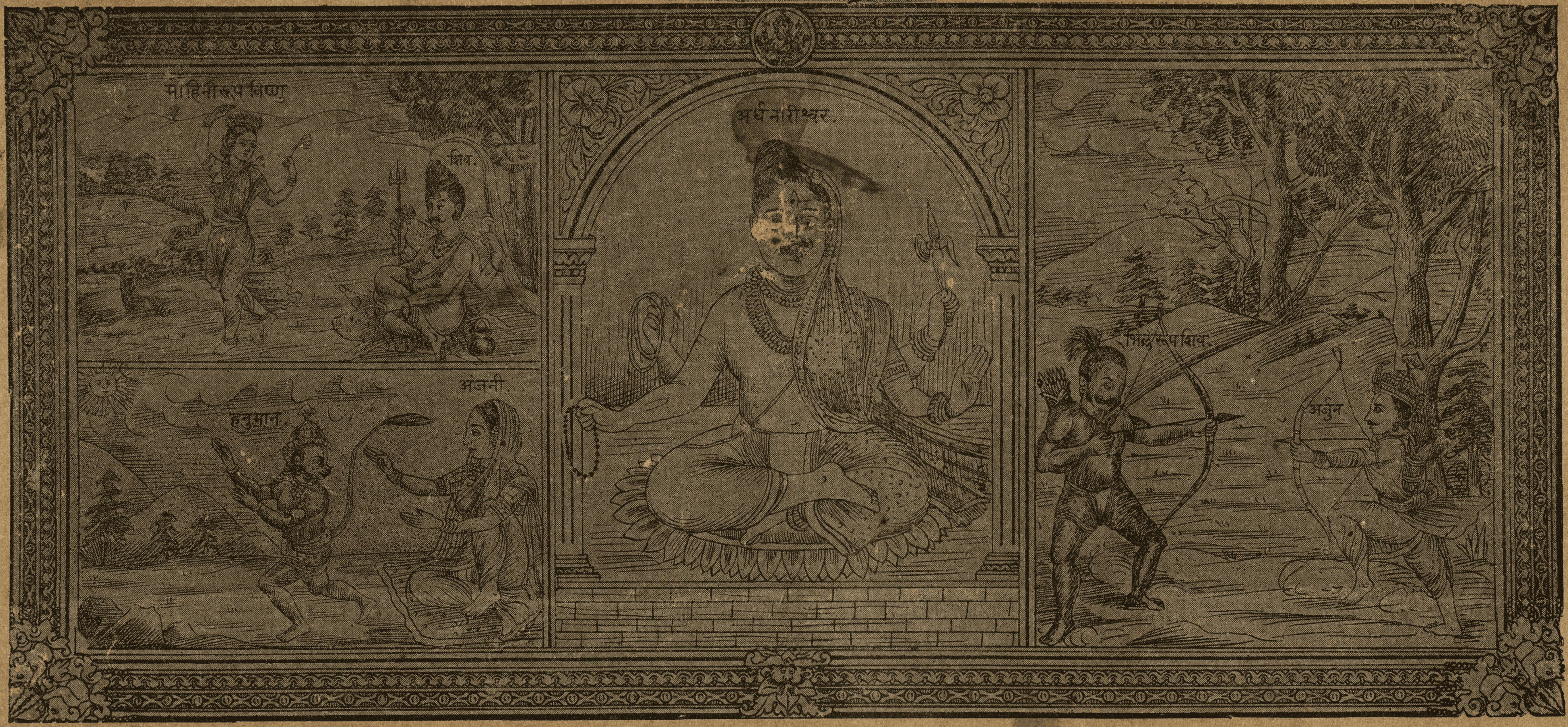
मोहिनीरूप विष्णु
शिव.
अर्धनारीश्वर.
हनुमान.
अंजनी.
भिल्लरूप शिव.
अर्जुन.

गौरि गिरा गणपति सुमरि, सकल सुमंगलखान । शतरुद्रियशिवसंहिता, भाषा कहूं बखान ॥ १ ॥

बडे आनन्दके देनेवाले अनन्तलीलायुक्त सर्वव्यापी महेश्वर महान् पार्वतीके पति स्वामिकार्तिक और गणेशजीके उत्पन्न करनेवाले आदिदेव शंकरको नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ शौनकजी बोले, हे व्यासशिष्य हे महाभाग हे ज्ञान और दयाके सागर सूतजी ! आप शिवजीके अवतारोंको कहिये, जिन अवतारोंके द्वारा सत्पुरुषोंका कल्याण हुआ है ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे मुने ! हे शौनकजी आप जितेन्द्रिय होकर भक्तिपूर्वक चित्त देकर सुनो, आप मुनिसे मैं शिवजीके अवतारोंको कहताहूं ॥ २ ॥ यही बात पहले सनत्कुमारने साक्षात् शिवमूर्ति सत्पुरुषोंके गति नन्दीश्वरसे पूछीथी, हे मुने ! तब शिवजीको स्मरणकर नन्दीश्वर कहने लगे ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर बोले, सर्वव्यापक शंकरके प्रत्येक कल्पोंमें अवतारहैं, वे अनन्त हैं, पर मैं बुद्धिके अनुसार वर्णन करताहूं ॥ ४ ॥ श्वेतलोहितनाम जो उन्नीसवां कल्प है उसमें पहला सद्योजात अवतार कहा है ॥ ५ ॥ उस कल्पमें उस परब्रह्मको ध्यान करतेहुए ब्रह्माजीके शिखायुक्त श्वेतलोहितकुमार उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी उस पुरुषको देख ब्रह्मरूपी ईश्वर जान हृदयमें ध्यान करके अंजलि बाँध नमस्कार करनेलगे ॥ ७ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ तृतीया शतरुद्रसंहिता प्रारभ्यते ॥ "वन्दे महानन्दमनन्तलीलम्महेश्वरं सर्व्वविभुम्महान्तम् ॥ गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शंकरमादिदेवम् ॥ १ ॥" शौनक उवाच ॥ व्यासशिष्य महाभाग सूत ज्ञानदयानिधे ॥ वद शंभ्ववतारांश्च येरकार्षीत्सतां शिवम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ मुने शौनक सद्वृत्त्या दत्तचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अवताराञ्छिवस्याहं वच्मि ते मुनये शृणु ॥ २ ॥ एतत्पृष्टः पुरा नन्दी शिवमूर्तिस्सतां गतिः ॥ सनत्कुमारेण मुने तमुवाच शिवं स्मरन् ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्व्वेश्वरस्य वै ॥ अवतारास्तथापीह वच्म्यहं तान्यथामति ॥ ४ ॥ एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ॥ सद्योजातावतारस्तु प्रथमः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥ तस्मिस्तत्परमं ब्रह्म ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥ उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा ब्रह्मरूपिणमीश्वरम् ॥ ज्ञात्वा ध्यात्वा स हृदये ववन्दे प्रयताञ्जलिः ॥ ७ ॥

सद्योजात शिवको जानकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए, और बारंबार सद्बुद्धिसे उस परमपुरुषको चिन्तन करने लगे ॥ ८ ॥ तब इनके ध्यान करनेसे श्वेतवर्ण यशस्वी परम विज्ञानी परब्रह्मस्वरूपी बहुतसे कुमार उत्पन्नहुए ॥ ९ ॥ सुनंद, नन्दन, विश्वनन्दन, उपनन्दन, यह उनके नाम थे यह सब उस महात्माके शिष्यहुए, कि जिन्होंने उस परब्रह्मको जाना ॥ १० ॥ सद्योजातशम्भुने ब्रह्माको ज्ञान दिया, और उसही परमेश्वरने प्रसन्न होकर उनको सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्तिभी दी ॥ ११ ॥ (इति सद्योजातावतारः १) तिसके पीछे बीसवां कल्प रक्तनामक हुआ जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्त (लाल) वर्ण

सद्योजातं शिवं बुद्ध्वा जहर्ष भुवनेश्वरः ॥ मुहुर्मुहुश्च सद्बुद्ध्या परं तं समाचिन्तयत् ॥ ८ ॥ ततोऽस्य ध्यायतः श्वेताः प्रादुर्भूता यशस्विनः ॥ कुमाराः परविज्ञानपरब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९ ॥ सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ ॥ शिष्यास्तस्य महात्मानो यैस्तद्ब्रह्म समावृतम् ॥ १० ॥ सद्योजातश्च वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ॥ सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ११ ॥ (इति सद्योजातावतारः १) ततो विंशातिमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥ १२ ॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य प्रादुर्भूतो विधेस्सुतः ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्ताक्षो रक्तभूषणः ॥ १३ ॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं ध्यानमाश्रितः ॥ वामदेवं शिवं ज्ञात्वा प्रणनाम कृतांजलिः ॥ १४ ॥ ततस्तस्य सुता ह्यासंश्चत्वारो रक्तवाससः ॥ विरजाश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ॥ १५ ॥ वामदेवः स वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ॥ सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ १६ ॥ (इति वामदेवावतारः २) एकविंशतिमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ॥ ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥ १७ ॥

धारण किया ॥ १२ ॥ जब ब्रह्माजीने ध्यान किया तब पुत्रकी कामना करनेवाले ब्रह्माजीके रक्तमाला तथा रक्तवस्त्र धारे लालनेत्रवाला रक्तभूषण पहरे एकपुत्र उत्पन्नहुआ ॥ १३ ॥ वह ब्रह्माजी उस महात्मा कुमारको देखकर, ध्यान करनेलगे, और उसको वामदेव शिव जानकर अंजलि बांध प्रणाम करनेलगे ॥ १४ ॥ तब लालवस्त्र धारण करनेवाले उनके चारपुत्र उत्पन्नहुये विरज, विवाह, विशोक, विश्वभावन ॥ १५ ॥ उन वामदेव शम्भुने ब्रह्माजीको ज्ञान दिया और प्रसन्न होकर उन परमेश्वरने सृष्टि करनेकी भी सामर्थ्य दी ॥ १६ ॥ (इति वामदेवावतारः २) इक्कीसवां पीतवासा नामक कल्प प्रसिद्ध

हुआ, उसमें महाभाग्यवान् ब्रह्माजी पीले वस्त्रधारी हुये ॥ १७ ॥ जब ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे ध्यान करनेलगे, तब उनके पीताम्बरधारी, प्रौढ अवस्थाका महातेजस्वी, दीर्घभुजावाला कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ उसको देख ध्यान करके उस पुरुषको शिवका अवतार जाना और प्रणाम कर ब्रह्माजी बुद्धिसे शिवगायत्रीको जपनेलगे ॥ १९ ॥ उस सर्वलोकोंसे नमस्कार कीहुई महादेवी गायत्रीको ध्यानपूर्वक चित्तसे जपनेसे महादेव प्रसन्नहुए ॥ २० ॥ तब इनके समीपसे बहुतसे दिव्य कुमार प्रगट हुए, जो संपूर्ण पीतवस्त्रधारी और योगमार्गके प्रवर्तक थे ॥ २१ ॥ (इति तत्पुरुषावतारः ३) तिसके पीछे स्वयम्भूके

ध्यायतः पुत्रकामस्य विधेर्जातः कुमारकः ॥ पीतवस्त्रादिकप्रौढो महातेजा महाभुजः ॥ १८ ॥ तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ज्ञात्वा तत्पुरुषं शिवम् ॥ प्रणनाम ततो बुद्ध्या गायत्रीं शांकरीं विधिः ॥ १९ ॥ जपित्वा तु महादेवीं सर्वलोकनमस्कृताम् ॥ प्रसन्नस्तु महादेवो ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥ २० ॥ ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ॥ पीतवस्त्रा हि सकला योगमार्गप्रवर्तकाः ॥ २१ ॥ (इति तत्पुरुषावतारः ३) ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः ॥ पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्ना शिवस्तु सः ॥ २२ ॥ एकार्णवे संव्यतीते दिव्यवर्षसहस्रके ॥ स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ २३ ॥ ततोऽपश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ॥ कृष्णवर्णं महावीर्य्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ २४ ॥ धृतकृष्णाम्बरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ॥ कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्नानानुलेपनम् ॥ २५ ॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् ॥ ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिंगलम् ॥ २६ ॥ अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपंव्यचिन्तयत् ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्तवत्सलमव्ययम् ॥ २७ ॥

पीतवर्णकल्पके बीतनेपर फिर दूसरा शिवनामवाला कल्प प्राप्तहुआ ॥ २२ ॥ समस्त स्थानपर जलहीजल था तब दिव्य सहस्रवर्षके बीतनेपर प्रजाके रचनेकी इच्छावाले ब्रह्माजी दुःखीहो विचारने लगे ॥ २३ ॥ महातेजस्वी ब्रह्माजीने कृष्णवर्ण बडे पराक्रमी अपने तेजसे प्रकाशित एक कुमारको प्रगटहुए देखा ॥ २४ ॥ कालेवस्त्र और पगियाको धारे तथा काले यज्ञोपवीतको पहने और कृष्णमुकटको धारण किये तथा काले गंध अनुलेपन किये ॥ २५ ॥ वह ब्रह्माजी अघोर और घोरपराक्रमी कृष्णपिंगलवर्ण अद्भुत देवदेवेशको देखकर प्रणाम करनेलगे ॥ २६ ॥ तब ब्रह्मा जो उन अघोर ब्रह्मरूपका

चिन्तन करनेलगे, और भक्तवत्सल अविनाशी उस शिवावतारकी प्रियवाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ २७ ॥ तब इसके समीप कृष्ण गंधानुलेपन किये कृष्णवर्ण चार महात्मा कुमार प्रगट हुए ॥ २८ ॥ कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्णकंठधारी, इस प्रकार अव्यक्तनामवाले तेजस्वी शिवस्वरूप हुए ॥ २९ ॥ इस प्रकारके वे महात्मा ब्रह्माकी सृष्टि बढानेके कारण बडे अद्भुत घोर नामक योगको करनेलगे ॥ ३० ॥ (इति अघोरावतारः ४) हे मुनीश्वरो ! तब दूसरा ब्रह्माका कल्प हुआ वह परम अद्भुत विश्वरूप नाम करके विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ जब पुत्रकी इच्छा करतेहुए ब्रह्माजी मनसे शिवका ध्यान

अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्नानानुलेपनाः ॥ चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः ॥ २८ ॥ कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णकण्ठधृक् ॥ इति तेऽव्यक्तनामानः शिवरूपाः सुतेजसः ॥ २९ ॥ एवंभूता महात्मानो ब्रह्मणः सृष्टिहेतवे ॥ योगं प्रवर्त्तयामासुर्घोराख्यं महदद्भुतम् ॥ ३० ॥ (इत्यघोरावतारश्चतुर्थः ४) अथान्यो ब्रह्मणः कल्पः प्रावर्त्तत मुनीश्वराः ॥ विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतो मनसा शिवम् ॥ प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥ ३२ ॥ तथाविधः स भगवानीशानः परमेश्वरः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ॥ ३३ ॥ तं दृष्ट्वा प्रणनामासौ ब्रह्मेशानमजं विभुम् ॥ सर्वगं सर्वदं सर्वं सुरूपं रूपवर्जितम् ॥ ३४ ॥ ईशानोऽपि तथादिश्य सन्मार्गं ब्रह्मणे विभुः ॥ सशक्तिः कल्पयांचक्रे स बालांश्चतुरः शुभान् ॥ ३५ ॥ जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे ॥ योगेनादिश्य सद्धर्मं कृत्वा योगगतिं गताः ॥ ३६ ॥

करनेलगे तब बडे नाद (शब्द) करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रगट हुई ॥ ३२ ॥ उसी प्रकारके वेषधारे वह परमेश्वर भगवान् ईशान शुद्ध स्फटिकमणिके सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत प्रगट हुए ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी उन अज विभु शिवको देखकर प्रणाम करनेलगे जो सर्वान्तर्यामी सबकुछदेनेवाले सबस्वरूप और रूपवर्जित हैं ॥ ३४ ॥ उन विभुईश्वरनेभी ब्रह्माजीको सन्मार्गकी आज्ञा देकर अपनी शक्तिसे चार शुभ बालक उत्पन्न किये ॥ ३५ ॥ जटी (जटाधारी) मुंडी (मुंडितकेशवाला) शिखंडी (शिखाधारी) तथा अर्धमुंडी, इस प्रकार चार बालक प्रगट हुए, योगके द्वारा सत्धर्मका अनुष्ठान करके वे योगकी गतिको

प्राप्त हुये ॥ ३६ ॥ (इति ईशानावतारः ५) हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! इस प्रकार सद्यआदि शिवके अवतारोंको संक्षेपसे लोकोंके हितकामनाके अर्थ वर्णन किया ॥ ३७ ॥ हे महापंडित ! उनहीका यथायोग्य त्रिलोकीका हितकारी व्यवहार संपूर्ण ब्रह्मांडमें फैलगया ॥ ३८ ॥ ईशान पुरुष अघोर तथा वामसंज्ञक और ब्रह्मनामवाली इस प्रकार शिवकी पांचमूर्ति संसारमें विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ ईशान शिवका रूप महान् और पहला कहा है वह साक्षात प्रकृतिके भोगने वाले क्षेत्रज्ञको अधिकार करके स्थित होरहा है ॥ ४० ॥ और दूसरा शिवजीका तत्पुरुष नामक स्वरूपहै जो गुणोंके आश्रयवाले भोगोंको भोगनेवाला सर्वज्ञ

(इतीशानावतारः पञ्चमः ५) एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ लोकानां हितकाम्यया ॥ ३७ ॥ अथ तेषां महाप्राज्ञ व्यवहारं यथायथम् ॥ त्रिलोकहितकारं हि सर्वं ब्रह्माण्डसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ ईशानः पुरुषो घोरो वामसंज्ञस्तथैव च ॥ ब्रह्मसंज्ञो महेशस्य मूर्तयः पंच विश्रुताः ॥ ३९ ॥ ईशानः शिवरूपश्च गरीयान्प्रथमः स्मृतः ॥ भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधिति ष्ठति ॥ ४० ॥ शैवस्तत्पुरुषाख्यश्च स्वरूपो हि द्वितीयकः ॥ गुणाश्रयात्मकं भोग्यं सर्वज्ञमधितिष्ठति ॥ ४१ ॥ धर्माय स्वांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः ॥ अघोराख्यस्वरूपो यस्तिष्ठत्यंतस्तृतीयकः ॥ ४२ ॥ वामदेवाह्वयो रूपश्चतुर्थः शङ्करस्य हि ॥ अहंकृतेरधि ष्ठानो बहुकार्यकरः सदा ॥ ४३ ॥ ईशानाह्वस्वरूपो हि शंकरस्येश्वरः सदा ॥ श्रोत्रस्य वचसश्चापि विभोर्व्योम्नस्तथैव च ॥ ४४ ॥ त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरं रूपमैश्वरम् ॥ पुरुषाख्यं विचारज्ञा मतिमन्तः प्रचक्षते ॥ ४५ ॥ वपुषश्च रसस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च ॥ अघोराख्यमधिष्ठानं रूपमाहुर्मनीषिणः ॥ ४६ ॥

होकर स्थित हो रहा है ॥ ४१ ॥ और जो तीसरा अघोर नाम स्वरूप कहाता है वह शिवजीके निज अंगसे संयुक्त धर्मके निमित्त बुद्धिका तत्त्व है ॥ ४२ ॥ और जो चौथा वामदेव नामक शिवका रूप है, वह अहंकारका अधिष्ठान होकर सदा बहुत कार्य करनेवाला है ॥ ४३ ॥ ईशाननामक जो पांचवां शिवका स्वरूप है वह श्रोत्र इन्द्रियका तथा वाक् इन्द्रियका विभु और आकाशका अधिष्ठान है ॥ ४४ ॥ त्वचा, हाथ, स्पर्श, वायु का अधिष्ठातृ देवता जो ईशान शिवका रूप है उसे विचारके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष नामक शिवका अवतार कहते हैं ॥ ४५ ॥ शरीरका, रसका, रूपका, अग्निका आधिष्ठातृ देवता,

अघोरनामक शंकरका रूप है, बुद्धिमान् ऐसा कहतेहैं ॥ ४६ ॥ जिह्वा, गुदा, रस तथा जलोंका अधिष्ठाता वामदेवनामक शिवका स्वरूप कहा है ॥ ४७ ॥ नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गंध और भूमिका सद्योजात नामक ईश्वर शंकरका रूप कहा है ॥ ४८ ॥ यह शंभुके रूप यत्नपूर्वक वन्दना करने योग्यहैं यही एक कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको नित्य कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य सद्यआदिकी उत्पत्तिको पढता अथवा सुनता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥५०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृतीयशतरुद्रसंहितायां पंचावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नन्दीश्वर बोले,

रशनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च ॥ ईश्वरं वामदेवाख्यं स्वरूपं शांकरं स्मृतम् ॥ ४७ ॥ घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा ॥ सद्योजाताह्वयं रूपमीश्वरं शांकरं विदुः ॥ ४८ ॥ इमे स्वरूपाः शंभोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः ॥ श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥ ४९ ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम् ॥ स भुक्त्वा सकलान्कामान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्य पञ्चब्रह्मावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो ॥ सर्वकार्यकराँल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ॥ १ ॥ तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ॥ तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ २ ॥ शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः ॥ ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥ ३ ॥ भूम्यंभोग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ॥ अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि ॥ ४ ॥ धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् ॥ शंकरस्य महेशस्य शास्त्रस्यैवेति निश्चयः ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! हे तात ! हे मुने ! शिवजीके बडे अवतारोंको सुनो, जो लोकमें संपूर्ण कार्योंको करनेवाले और सबको सुख देनेवाले हैं ॥ १ ॥ उन ईश्वर शिवकी आठ मूर्तिवाला यह समस्त संसार है जैसे कि सूत्रमें मणियोंका समुदाय गुथा होताहै तैसेही उसमें व्याप्त होकर संपूर्ण विश्व स्थित है ॥२॥ शर्व, भव, रुद्र, उग्र,भीम,पशुपति, ईशान, और महादेव, यह आठमूर्ति विख्यात हैं ॥३॥ भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा यह शिवके शर्व आदि आठों रूपोंसे अधिष्ठित हैं ॥ ४ ॥ शंकर महेशका विश्वंभरात्मक रूप चर अचर संसारको धारण करताहै, ऐसा शास्त्रका निश्चयहै ॥ ५ ॥

और संसारका जिवाने वाला जलात्मक उन परमात्मा शिवका भवरूप ऐसा कहा है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! जो स्वयं बाहर और भीतर स्थितहो संसारको पालन करताहै और चलाताहै वह उग्रनामक शिवका रूप है ऐसा सत्पुरुष कहतेहैं ॥ ७ ॥ सबको अवकाश देनेवाला सर्वव्यापक, आकाशात्मक, भीमरूप, शिवका भीमनामक रूप है, जो राजाओंके समुदायका भेदन करनेवाला है ॥ ८ ॥ जो सब आत्माओंका अधिष्ठातृ दव है, और समस्त क्षेत्रोंका निवासस्थान है वह शिवका पशुपति नामक रूप है, जो पशुजीवोंके पाशोंका काटनेवाला है ॥ ९ ॥ जो सूर्यात्मक होकर सब संसारको प्रकाश करने

संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ॥ भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ॥ ६ ॥ बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दतस्व
यम् ॥ उग्र इत्युच्यते सद्भी रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ॥ ७ ॥ सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम् ॥ रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्य
भेदकम् ॥ ८ ॥ सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् ॥ रूपं पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥ सन्दीपयज्जगत्सर्वं दिवाक
रसमाह्वयम् ॥ ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥ १० ॥ आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ॥ महादेवस्य तद्रूपं महा
देवस्य चाह्वयम् ॥ ११ ॥ आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ॥ व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥ १२ ॥
शाखाः पुष्प्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ॥ तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्प्यते च शिवार्चनात् ॥ १३ ॥ यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो
भवेत्पिता ॥ तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥ १४ ॥

वाला है, वह शिवजीका ईशाननामकरूप आकाशमें फैल रहाहै ॥ १० ॥ जो अमृतरूप किरनोंवाला (चन्द्रमा) संसारको तृप्त करताहै, वह शिवजीका महादेव नामक रूप कहाहै ॥ ११ ॥ और उन परमात्मा शिवका, आत्मा नामक रूप आठवाँ है और मूर्त अमूर्त सबमें व्यापक होनेसे यह सब संसार शिवरूप है ॥ १२ ॥ जैसे वृक्षकी जडको सेचन करनेसे सब शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार सब संसार उन शिवका शरीरहै, और शिवजीके अर्चन करनेसे सब विश्व पुष्ट होताहै ॥ १३ ॥ जिस प्रकार संसारमें सब पुत्र पौत्र आदिकी प्रसन्नतासे पिता स्वयं प्रसन्न होताहै उसीप्रकार सब संसारके साथ प्रीति

करनेसे वह शिवजी प्रसन्न होतेहैं ॥ १४ ॥ यदि किसी देहधारी प्राणीका निग्रह (बंधन) किया तो मानों शिवकी, अष्टमूर्तिका अनिष्ट किया इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥ शिवजी अष्टमूर्तिरूप आत्मासे संसारभरमें अधिष्ठित हो स्थित होरहेहैं इस कारण उन परमकारण, रुद्ररूप शिवका सब भावसे भजन करना चाहिये ॥ १६ ॥ हे सनत्कुमारजी ! जो विख्यात आठरूप सबके उपकार करनेमें तत्परहैं सो आपसे कहे कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको इनकी सेवा करनी चाहिये ॥ १७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥ नन्दीश्वर बोले, हे महाप्राज्ञ !

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः ॥ अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः ॥ १५ ॥ अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् ॥ भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥ १६ ॥ इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टविश्रुताः ॥ सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोर्थिभिर्नरैः ॥ १७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे ततीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवाष्टमूर्त्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ॥ अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥ १ ॥ यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वाः न व्यवर्द्धंत वेधसा ॥ तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुखितः ॥ २ ॥ नभोवाणी तदाभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ॥ तच्छुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ ३ ॥ नारीणां कुलमीशानान्निर्गतं न पुरा यतः ॥ ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शेके न पद्मभूः ॥ ४ ॥ प्रभावेण विना शंभोर्न जायेरन्निमाः प्रजाः ॥ एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तु प्रचक्रमे ॥ ५ ॥

हे तात ! विधाताकी कामनाओंका पूर्ण करनेवाला, अर्धनारीनर नामवाला शिवका श्रेष्ठ रूप वर्णन करताहूं सुनो ॥ १ ॥ जब ब्रह्माजी की रचीहुई सम्पूर्ण प्रजा नहीं बढी, तब वे दुःखसे व्याकुल हो चिन्ता करने लगे ॥ २ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई कि मैथुनी सृष्टिको उत्पन्न करो यह सुनकर ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टिके निर्माण करनेका निश्चय किया ॥ ३ ॥ कारण कि पहले स्त्रियोंका कुल शिवजीसे प्रगट नहीं हुआ थां, इस कारण ब्रह्माजी मैथुनवाली सृष्टि करनेको समर्थ न हुए ॥ ४ ॥ विना शिवजीके प्रभावसे यह प्रजा नहीं उत्पन्न होगी; इस प्रकार विचारते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत

हुए ॥ ५ ॥ पार्वतीरूप परम शक्तिसे युक्त परमेश्वरका हृदयमें प्रीतिसे ध्यान करके परम तप करने लगे ॥६॥ तीव्र (कठिन) तपमें संयुक्त हुए ब्रह्माजीके थोडे समयमें ही शिवजी शीघ्र सन्तुष्ट होगये ॥ ७ ॥ और पूर्णचिद्रूप ईश्वरने अपनी कामकी देनेवाली मूर्तिमें प्रवेशकरके आधी नारी और आधे पुरुष रूप होकर ब्रह्माके समीप गमन किया ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी उन शंकरको परमशक्तिसे युक्त हुआ देख दंडवत् प्रणाम करके हाथ जोडकर स्तुति करने लगे ॥९॥ तब देवोंमें उत्तम शिवजी विश्वके करनेवाले महेश्वर प्रसन्नहो मेघके समान गंभीर वाणीसे ब्रह्मासे बोले ॥ १० ॥ ईश्वर बोले, हे वत्स ! हे वत्स ! मेरे पुत्र

शिवया परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम् ॥ संचिंत्य हृदये प्रीत्या तेपे स परमं तपः ॥६॥ तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः ॥ अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥ ७ ॥ ततः पूर्णचिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम् ॥ अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या प्ररमयान्वितम् ॥ प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥ अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया ॥ संभवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्त्ता महेश्वरः ॥१०॥ ईश्वर उवाच ॥ वत्सवत्स महाभाग मम पुत्र पितामह ॥ ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ॥ ११ ॥ प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना ॥ तपसा तेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः ॥ पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ॥१३॥ तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम् ॥ प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवेन सृष्टोहमादौ त्वत्पतिना शिवे ॥ प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शंभुना परमात्मना ॥ १५ ॥ मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ॥ न वृद्धिमुपगच्छंति सृज्यमानाः पुनःपुनः ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी ! हे महाभाग ! मैंने तत्त्वसे तुम्हारे मनोरथको जान लिया ॥ ११ ॥ कि प्रजाके बढनेके लिये तुमने अब तप किया है उस तपसे मैं सन्तुष्ट होकर तुमको ईप्सित वर देताहूं ॥ १२ ॥ इस प्रकार परम उदार स्वभावसे मधुर वचन कहके शिवजीने अपने शरीरके भागसे शिवादेवीको पृथक् किया ॥१३॥ उस परम शक्तिको शिवसे पृथक् हुआ देखकर विनीतात्मा ब्रह्माजी प्रणाम करके उससे प्रार्थना करनेलगे ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे शिवे ! देवोंके देव तुम्हारे पतिने मेरी रचना कीहै और सारी प्रजाभी परमात्मा शिवनेही सृजीहै ॥ १५ ॥ हे शिवे ! मैंने संपूर्ण देवता मनसे बनायेहैं बारम्बार सृजे हुये भी

वृद्धिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ इसके आगे मैथुनसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिको उत्पन्न करके बढानेकी इच्छाहै यह सारी मेरी प्रजा है ॥ १७ ॥ पहले तुमसे नारियोंका अविनाशी कुल नहीं प्रगट हुआ इस कारण नारीकुल अति श्रेष्ठ है इसमें मेरी शक्ति नहीं है ॥ १८ ॥ सब शक्तियोंकी तुम्हारी शक्तिसेही उत्पत्ति है इस कारण सबकी ईश्वरी तुम परमाशक्तिकी प्रार्थना करताहूं ॥ १९ ॥ हे शिवे ! मुझे नारीकुल रचनेकी शक्ति दीजिये आपको नमस्कार है हे मातः ! हे शिवप्रिये ! चर अचर संसारके कारण शिवजीको जानो ॥ २० ॥ हे वरदेश्वरि ! और भी एक वर तुमसे मांगताहूं सो उसको मुझे कृपा करके दीजिये हे जगत्की माता ! तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे सर्वंगे ! हे संसारकी माता ! हे शिवे ! एकही सामर्थ्यसे चर अचर संसारकी वृद्धिके निमित्त तुम मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री होओ ॥ २२ ॥ इसप्रकार ब्रह्मासे याचना कीहुई परमेश्वरी देवीने ऐसाही हो इस प्रकार वचन कहके उस शक्तिको ब्रह्माके निमित्त दिया ॥ २३ ॥ जगन्मयी शिवा देवीने उस शक्तिसे भ्रूके मध्यभागसे अपनी समान कान्तिवाली, दूसरी शक्ति निर्माण की ॥ २४ ॥ उस शक्तिको देख देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपासिन्धु लीलाकरनेवाले शिवजीने हँसकर जगत्की मातासे कहा ॥ २५ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! परमेष्ठी ब्रह्मासे तपके द्वारा आराधना

मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ॥ संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥ १७ ॥ न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ॥ तेन नारीकुलं श्रेष्ठं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ १८ ॥ सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः ॥ तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ॥ १९ ॥ शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ चराचरं जगद्विद्धि हेतोर्मातः शिवं प्रिये ॥ २० ॥ अन्यं त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि ॥ देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥ चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे ॥ दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ॥ २२ ॥ एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परेश्वरी ॥ तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ ॥ ॥ २३ ॥ तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी ॥ शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ॥ २४ ॥ तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्तिं देववरो हरः ॥ कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ॥ २५ ॥ शिव उवाच ॥ तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ॥ २६ ॥

कीहुई प्रसन्नहो, और उनके सब मनोरथोंको सिद्ध करो ॥ २६ ॥ उस देवीने, शिवजीकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करके, ब्रह्माके वचनसे दक्षकी पुत्री होना स्वीकार किया ॥ २७ ॥ हे मुने ! वह शिवा, ब्रह्माको अतुल शक्ति देकर शिवके शरीरमें प्रविष्ट हुई और महासमर्थ शिवजी भी अन्तर्धान हुये ॥ ॥२८॥ उस दिनसे इस संसारमें स्त्रीका भाग देना कल्पित हुआ, तब ब्रह्माजी बडे आनंदको प्राप्त हुये और मैथुनी सृष्टिका आरंभ हुआ ॥२९॥ हे तात ! यह अतिश्रेष्ठ शिवका रूप तुमसे कहा, यह अर्धनारी, नरार्धरूप सत्पुरुषोंको बडे मंगलका देनेवाला है ॥ ३० ॥ जो पुरुष इस पुण्यके देनेवाली कथाको

तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ॥ ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत् ॥ २७ ॥ दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे सा शिवा मुने ॥ विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ॥ २८ ॥ तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः ॥ आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी ॥ २९ ॥ एतत्ते कथितं तात शिवरूपं महोत्तमम् ॥ अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामंगलदं सताम् ॥ ३० ॥ एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छृणुयादपि ॥ स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां रुद्रसंहितायां शिवस्यार्द्धनारीनरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा ॥ रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा ॥ १ ॥ शिव उवाच ॥ सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे ॥ कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः ॥ २ ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे ॥ ३ ॥ अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च ॥ उत्पश्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके ॥ ४ ॥

पढता है या सुनता है वह संपूर्ण भोगोंको भोगकर परम गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श०रु०शिवस्यार्धनारीनरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार ! रुद्रसे कहा हुआ शंकरका चरित्र निरंतर ब्रह्माको सुख देनेवाला है ॥ १ ॥ शिवजी बोले, कि सातवें मन्वंतरके बाराहकल्पमें कल्पेश्वर भगवान, सब लोकोंके प्रकाश करनेवाले ॥ २ ॥ तुझ मनु वैवस्वतके परपोते होंगे तब हे ब्रह्मा ! उस मन्वंतरमें चारों युग होंगे ॥ ३ ॥ लोकोंके अनुग्रहके निमित्त और ब्राह्मणोंके हितके निमित्त द्वापर युगके अन्तमें हे विधे ! हे ब्रह्मन् ! मैं

उत्पन्न हूंगा ॥ ४ ॥ ह ब्रह्माजी ! तब युगकी प्रवृत्तिसे उस प्रथम युगमें जब पहला द्वापर होगा और व्यासजी स्वयं प्रभु होंगे ॥ ५ ॥ तब मैं ब्राह्मणोंके हितार्थ उस कलियुगके अन्तमें शिवायुक्त श्वेतनामक महामुनि हूंगा ॥ ६ ॥ ब्रह्माजी हिमालयके मनोहर शिखरपर पर्वतोत्तम छागलमें उस समय मेरे शिखायुक्त शिष्य होंगे ॥ ७ ॥ श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित यह चारों ध्यान योगसे मेरे पुरको प्राप्त होंगे ॥ ८ ॥ तब मुझ अव्ययको तत्त्वसे जानकर और भी बहुत मेरे भक्त होंगे और जन्म मरण वृद्धावस्थासे रहित हुए परब्रह्ममें समाधि लगानेवाले होंगे ॥ ९ ॥ हे पितामह ! मनुष्योंको विना ध्यानके मैं नहीं दीखसकता, केवल दान, धर्म आदि कर्मके हेतु साधनोंसे प्राणी मुझे देख सकते हैं ॥ १० ॥ दूसरे द्वापरमें सत्यनामक प्रजापति व्यास होंगे तब मैं कलियुगमें सुतारनामसे विख्यात हूंगा ॥ ११ ॥ उस युगमें भी मेरे शिष्य वेदके जाननेवाले ब्राह्मण होंगे ये दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक, केतुमान नामवाले होंगे ॥ १२ ॥ वे चारों ध्यानयोगसे मेरे पुरको प्राप्त होंगे, और मुझ अव्ययको तत्त्वसे जानकर मुक्त होंगे ॥ १३ ॥ तीसरे द्वापरमें जब भार्गव व्यासजी होंगे तब मैं पुरके समीप दमननामसे विख्यात हूंगा ॥ १४ ॥

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे ॥ द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः ॥ ५ ॥ तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके ॥ भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ॥ ६ ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे ॥ तदा शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति विधे मम ॥ ७ ॥ श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ॥ चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ॥ ८ ॥ ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ॥ ९ ॥ द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहमृते ध्यानात्पितामह ॥ दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैः कर्महेतुभिः ॥ १० ॥ द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः ॥ यदा तदा भविष्यामि सुतारो नामतः कलौ ॥ ११ ॥ तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः ॥ दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ॥ १२ ॥ चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ॥ ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ १३ ॥ तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ॥ १४ ॥

वहां मेरे चार पुत्र होंगे । विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन ॥ १५ ॥ हे चतुरानन ! व्यासजीके शिष्योंकी सहायता करूंगा और कलियुगमें दृढ निवृत्ति (मोक्ष) मार्गको बताऊंगा ॥ १६ ॥ चतुर्थ द्वापरमें जब अंगिरा व्यासजी होंगे उस समय मैं सुहोत्र नामसे प्रगट होऊंगा ॥ १७ ॥ उस युगमें भी मेरे यह चारौं पुत्र योगसाधक महात्मा होंगे, हे विधे ! उनके नाम कहता हूं ॥ १८ ॥ सुमुख, दुर्मुख, दुदर्भ, दुरतिक्रम, हे विधे ! उस समय भी मैं व्यासके शिष्योंकी सहायता करूंगा ॥ १९ ॥ पंचम द्वापरमें सविता व्यास होंगे तब मैं कंकनामक योगी महातपस्वी हूंगा ॥ २० ॥ उस युगमें भी मेरे चारौं पुत्र

तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ॥ विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ॥ १५ ॥ शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन ॥ निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्त्तयिष्ये कलाविह ॥ १६ ॥ चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽगिराः स्मृतः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ॥ १७ ॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ॥ भविष्यंति महात्मानस्तन्नामानि ब्रुवे विधे ॥ १८ ॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुदर्भो दुरतिक्रमः ॥ शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ॥ १९ ॥ पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ॥ तदा योगी भविष्यामि कंको नाम महातपाः ॥ २० ॥ तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ॥ भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि शृणुष्व मे ॥ २१ ॥ सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ॥ विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृतिः ॥ २२ ॥ तत्रापि कंकनामाहं साहाय्यं सवितुर्विधे ॥ व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ॥ २३ ॥ परिवर्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः ॥ कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ॥ २४ ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ॥ व्यासस्य सुसाहाय्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ॥ २५ ॥

योगके साधक महात्मा होंगे उनके नाम सुनो ॥ २१ ॥ सनक, सनातन, और समर्थ सनंदन और विभु निर्मलचित्त अहंकाररहित सनत्कुमार यह चार पुत्र होंगे ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मा ! तहां मैं कंकनामसे होकर सविता व्यासजीकी सहायता करूंगा और निवृत्तिमार्गका बढानेवाला होऊंगा ॥ २३ ॥ फिर जब छठा द्वापर युग आवैगा तब लोकके करनेवाले वे वेदविभागके कर्त्ता मृत्युनामवाले व्यासजी होंगे ॥ २४ ॥ उस समय मैं लोकाक्षिनामवाला हूंगा और

व्यासजीकी सहायताके अर्थ निवृत्तिमार्गको बढाऊंगा ॥ २५ ॥ वहां भी मेरे चार शिष्य दृढव्रतवाले होंगे, सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय उनके नाम होंगे ॥ २६ ॥ सातवें द्वापरके प्रवृत्त होनेमें जब इन्द्र व्यासजी होंगे हे विधाता ! तब मैं सर्वज्ञ जैगीषव्य हूंगा ॥ २७ ॥ महायोगमें निपुण होकर मैं योगको दृढ करूंगा, काशीजीमें गुफाके भीतर दिव्य स्थानमें कुशाओंके ऊपर स्थित हुआ ॥ २८ ॥ शतक्रतु व्यासजीकी सहायता करूंगा; हे विधाता ! भक्तोंका संसारके भयसे उद्धार करूंगा ॥ २९ ॥ उस युगमें भी चार पुत्र होंगे, सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन ॥ ३० ॥ आठवें द्वापरमें मुनि

तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ॥ २६ ॥ सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ॥ तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ॥ २७ ॥ योगं संद्रढयिष्यामि महायोगविचक्षणः ॥ काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ॥ २८ ॥ साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः ॥ उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ॥ २९ ॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे ॥ सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ॥ ३० ॥ अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ॥ ३१ ॥ तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः ॥ व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम ॥ ३२ ॥ कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः ॥ चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ॥ ३३ ॥ नवमे परिवर्त्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ॥ भविष्याति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ॥ ३४ ॥ व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये ॥ तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ॥ ३५ ॥

वशिष्ठऋषि वेदव्यास होंगे यही मुनिश्रेष्ठ उस समय वेदविभागके कर्त्ता होंगे ॥ ३१ ॥ उस युगमें मेरा दधिवाहन नाम होगा, हे योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! उस समय व्यासजीकी सहायता करूंगा ॥ ३२ ॥ कपिल, आसुरि, पंचशिख, शाल्वल, यह चार योगीपुत्र मेरी समान होंगे ॥ ३३ ॥ हे विधाता ! जब नवम द्वापर आवैगा तब मुनिश्रेष्ठ सारस्वत नामवाले व्यास होंगे ॥ ३४ ॥ और उन व्यासजीके ध्यान करते हुये निवृत्तिमार्गके बढानेके निमित्त उस समय

मैं ऋषभनामसे प्रगट हूंगा ॥ ३५ ॥ परासर, गर्ग, भार्गव, तथा गिरिश यह चार श्रेष्ठयोगी मेरे शिष्य होंगे ॥ ३६ ॥ हे प्रजापते ! उनके साथ मैं योगमार्गको दृढ करूंगा; हे श्रेष्ठमुनि ! और मैं वेदव्यासजीकी सहायता करूगा ॥ ३७ ॥ हे विधाताजी ! मैं उस रूपसे बहुत दुःखी हुए भक्तोंका और तुम्हारा उद्धार करूंगा ॥ ३८ ॥ वह अवतार मेरा ऋषभ नामक सुयोग करनेवाला होगा, और सारस्वत व्यासमुनिकी सहायता करनेवाला तथा अनेक कल्याण करनेवाला होगा ॥ ३९ ॥ कि जिस मेरे अवतारने भद्रायुनामक राजाका बालक जो क्ष्वेड (छींक) के दोषसे मरगया और जिसे उसके पिताने त्यागदिया था

पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ॥ चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ ३६ ॥ तैः साकं द्रढयिष्यामि योगमार्गं
प्रजापते ॥ करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ॥ ३७ ॥ तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ॥ उद्धारं भवतोऽहं वै
करिष्यामि दयाकरः ॥ ३८ ॥ सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यस्सुयोगकृत् ॥ सारस्वतव्यासमनःपर्त्ता नानोतिकारकः ॥ ३९ ॥
अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ॥ जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ॥ ४० ॥ प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः
पुनः ॥ ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ॥ ४१ ॥ पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधिः ॥ उपादिदेश तद्धर्मान्राज
योगान्प्रजापते ॥ ४२ ॥ ततः स कवच दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ॥ ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ ४३ ॥ तदङ्ग
भस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ॥ स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ॥ ४४ ॥ इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम् ॥
ययौ स्वैरगतस्तास्यां पूजितस्त्वृषभः प्रभुः ॥ ४५ ॥

जिलाया ॥ ४० ॥ फिर जब वह राजपुत्र सोलह वर्षका हुआ तब उसके घर मेरी, आत्मारूप ऋषभजी गये ॥ ४१ ॥ उस राजाने कृपानिधि शोभायमान रूपवाले उन मुनिका सत्कार किया, हे प्रजापते ! उन्होंने राजयोगवाले धर्मोंका उस राजाको उपदेश दिया ॥ ४२ ॥ तब उस राजाको प्रसन्न होकर ऋषभजीने दिव्य कवच, शंख, प्रकाशमान खड्ग सब शत्रुओंका नाश करनेवाला दिया ॥ ४३ ॥ दीनोंके ऊपर दयाकरनेवाले उन महात्माने उस राजाके अंगमें भस्म लगाई और उसे बारहसहस्र हाथियोंका बल दिया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार मातासहित उस भद्रायुको भलीप्रकार समझाया, धीरजदे उन माता,

पुत्रोंसे पूजित हो वह ऋषभ मुनि अपने इच्छित स्थानको गये ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्माजी ! वह राजर्षि भद्रायु भी शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनी नामवाली कन्यासे विवाहकर धर्मपूर्वक राज्य करनेलगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकारका मेरे ऋषभ अवतारका प्रभाव है यह सत्पुरुषोंको गति देनेवाला, दीनोंका बन्धु, नौवां अवतार तुमसे कहा ॥ ४७ ॥ यह ऋषभका चरित्र, परम पवित्र करनेवाला है, स्वर्गका देनेवाला तथा यश और आयुका बढानेवाला है इसे यत्नपूर्वक सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० ऋषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ शिवजी बोले, दशवें द्वापरमें त्रिधामानाम मुनि

भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे ॥ राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्त्तिमालिनीम् ॥ ४६ ॥ इत्थंप्रभाव ऋषभोऽवतारः
शङ्करस्य मे ॥ सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ॥ ४७ ॥ ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं
श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामृषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ शिव उवाच ॥ दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामतो मुनिः ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुंगे नगोत्तमे ॥ १ ॥ तत्रापि मम पुत्राश्च
भृग्वाद्याः श्रुतिसंमिताः ॥ बलबन्धुर्नरामित्रः केतुशृंगस्तपोधनः ॥ २ ॥ एकादशे द्वापरे तु व्यासश्च त्रिवृतो यदा ॥ गंगाद्वारे कलौ
नाम्ना तपोऽहं भविता तदा ॥ ३ ॥ लम्बोदरश्च लम्बाक्षः केशलम्बः प्रलम्बकः ॥ तत्रापि पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ ४ ॥
द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजाश्च वेदकृत् ॥ तत्राप्यहं भविष्यामि द्वापरान्ते कलाविह ॥ ५ ॥ हेमकंचुकमासाद्य नाम्ना ह्यत्रिः परिप्लुतः ॥
व्यासस्यैव साहाय्यार्थं निवृत्तिपथरोपणः ॥ ६ ॥

व्यास होंगे, हिमालय पर्वतके मनोहर भृगुतुंग नामक ऊंचे शिखरपर ॥ १ ॥ वहां भी मेरे भृगुआदि पुत्र वेदानुगामी बलबन्धु, नरामित्र, केतुशृंग, तपोधन नामवाले होंगे ॥ २ ॥ ग्यारहवें द्वापरमें जब त्रिवृत्त मुनि व्यास होंगे तब मैं कलिमें गंगाके द्वारमें तप नामवाला हूंगा ॥ ३ ॥ वहां भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब, प्रलंबक, यह चार पुत्र दृढव्रतधारी होंगे ॥ ४ ॥ और बारहवें द्वापरमें वेदविभागकर्ता शततेजा मुनि व्यास होंगे तब भी मैं द्वापरके अन्तमें कलियुगमें प्रगट हूंगा ॥ ५ ॥ अत्रिनामवाला, सुवर्णका बख्तर पहरे हुए व्यासजीकी सहायताके निमित्त निवृत्तिमार्गका प्रचार करूंगा ॥ ६ ॥

सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व ये सुयोगी चार पुत्र होंगे ॥ ७ ॥ तेरहवें युगमें धर्मनारायण व्यास होंगे तब मैं बलिनामवाला महामुनि हूंगा ॥ ८ ॥ बालखिल्यके आश्रममें उत्तम गंधमादन पर्वतपर सुधामा, काश्यप, वशिष्ठ, विरज नामवाले यह श्रेष्ठ पुत्र होंगे ॥ ९ ॥ जब चौदहवें कल्पमें रक्षनामवाले व्यास होंगे तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे प्रगट हूंगा ॥ १० ॥ उस समय कलियुगमें मेरे पुत्र अत्रि, दवशद, श्रवण, श्रविष्कट होंगे ॥ ११ ॥ जब पन्द्रहवें द्वापरमें त्रय्यारुणि व्यास होंगे तब मैं वेदशिरा वेदशिर नामक मुनि हूंगा ॥ १२ ॥ वेदशिर नामक उनका अस्त्र महातेजस्वी होगा और

सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः शर्वः सुयोगिनः ॥ तत्रेति पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति महामुने ॥ ७ ॥ त्रयोदशे युगे तस्मिन्धर्मो नारायणः सदा ॥ व्यासस्तदाहं भविता बलिर्नाम महामुनिः ॥ ८ ॥ बालखिल्याश्रमे गंधमादने पर्वतोत्तमे ॥ सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजाः शुभाः ॥ ९ ॥ यदा व्यासस्तु रक्षाख्यः पर्याये तु चतुर्दशे ॥ वंश आङ्गिरसे तत्र भविताहं च गौतमः ॥ १० ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा ॥ अत्रिर्देवशदश्चैव श्रवणोथ श्रविष्कटः ॥ ११ ॥ व्यासः पञ्चदशे त्रय्यारुणिर्वै द्वापरे यदा ॥ तदाहं भविता वेदशिरा वेदशिरस्तथा ॥ १२ ॥ महावीर्यं तदस्त्रं च वेदशीर्षश्च पर्वतः ॥ हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे ॥ १३ ॥ तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता दृढाः ॥ कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥ १४ ॥ व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति ॥ तदा योगप्रदानाय गोकर्णो भविता ह्यहम् ॥ १५ ॥ तत्रैव च सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम् ॥ तत्रापि योगिनः पुत्रा भविष्यंत्यम्बुसंमिताः ॥ १६ ॥ काश्यपोप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः ॥ तेपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति शिवालयम् ॥ १७ ॥

हिमालयपर्वतके पृष्ठपर वेदशीर्ष पर्वतखंडमें जो सरस्वतीके उत्तर तटपर है उनका निवास होगा ॥ १३ ॥ वहां भी मेरे चार दृढ ज्ञानी पुत्र होंगे, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, यह नाम होंगे ॥ १४ ॥ सोलहवें द्वापरमें देवनामक मुनि व्यास होंगे तब योगके प्रदान करनेको मैं गोकर्णनामसे प्रगट हूँगा ॥ १५ ॥ वहीं परमपवित्र गोकर्णनामक वन है वहां भी मेरे परमयोगी चार पुत्र, जलकी समान निर्मलमन होंगे ॥ १६ ॥ काश्यप, उशना, च्यवन, और

बृहस्पति, यह नाम होंगे यह पुत्र भी उसी मार्गसे शिवके स्थानको प्राप्त होंगे ॥ १७ ॥ सतरहवें द्वापरके अन्तमें, देवकृतंजय व्यास होंगे तब मैं हिमालयके
रमणीक शिखरपर गुहावासी नामसे प्रगट हूंगा ॥ १८ ॥ बड़े ऊंचे, महाआलयवाले, तथा शिवक्षेत्र हिमालय पर्वतपर तथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल,
यह चार पुत्र होंगे ॥ १९ ॥ जब अठारहवें द्वापरमें ऋतंजय नामक व्यास होंगे तब मैं शिखंडीनामसे उस हिमालयकी मनोहर शिखरपर प्रगट हूंगा ॥
॥ २० ॥ बडे पवित्र सिद्धक्षेत्रमें शिखण्डीनामवाला पर्वत है और उसी स्थानमें शिखंडी वन है जहां सिद्धलोग निवास करते हैं ॥ २१ ॥ उस समय

परिवर्त्ते सप्तदशे व्यासो देवकृतंजयः ॥ गुहावासीति नाम्नाहं हिमवच्छिखरे शुभे ॥ १८ ॥ महालये महोत्तुंगे शिवक्षेत्रं हिमालयम् ॥
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः ॥ १९ ॥ परिवर्त्तेऽष्टादशे तु यदा व्यास ऋतंजयः ॥ शिखण्डीनामतोहं तद्धिमवच्छिखरे
शुभे ॥ २० ॥ सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः ॥ शिखण्डिनो वनं वापि यत्र सिद्धनिषेवितम् ॥ २१ ॥ वाचःश्रवा रुची
कश्च स्यावास्यश्च यतीश्वरः ॥ एते पुत्रा भविष्यन्ति तत्रापि च तपोधनाः ॥ २२ ॥ एकोनविंशे व्यासस्तु भरद्वाजो महामुनिः ॥ तदा
प्यहं भविष्यामि जटी माली च नामतः ॥ २३ ॥ हिमवच्छिखरे तत्र पुत्रा मेऽम्बुधिसंहिताः ॥ हिरण्यनामा कौशल्यो लोकाक्षी प्रधि
मिस्तथा ॥ २४ ॥ परिवर्त्ते विंशतिमे भविता व्यास गौतमः ॥ तत्राट्टहासनामाहमट्टहासप्रिया नराः ॥ २५ ॥ तत्रैव हिमवत्पृष्ठे
अट्टहासो महागिरिः ॥ देवमानुषयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः ॥ २६ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ सुमन्तुबर्बरि
विद्वान् कबंधः कुशिकन्धरः ॥ २७ ॥

वाचःश्रवा, रुचीक, स्यावास्य, यतीश्वर नामक यह पुत्र महातपस्वी होंगे ॥ २२ ॥ उन्नीसवें द्वापरमें भरद्वाजमुनि व्यास होंगे तब मैं जटीमालीनामसे प्रगट
हूंगा ॥ २३ ॥ वहां हिमालयके शिखरपर समुद्रके सम्मत मेरे चार पुत्र, हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षि, प्रधिमि, होंगे ॥ २४ ॥ बीसवें द्वापरमें गौतम
व्यास होंगे तब मैं अट्टहास नामसे हूंगा और मनुष्य अट्टहासप्रिय होंगे ॥ २५ ॥ उसी स्थलमें हिमालयपर्वतके पृष्ठपर अट्टहासनामक बडा पर्वत है जो
देवता, मनुष्य, यक्ष, इन्द्र, सिद्ध, चारणोंसे सेवित है ॥ २६ ॥ वहां मेरे चारपुत्र बडे योगी विद्वान्, सुमन्तु, बर्बरि, कबंध, कुशिकन्धर होंगे ॥ २७ ॥

इक्कीसवें द्वापरान्तमें वाचःश्रवा व्यास होंगे तब मैं दारुकनामसे प्रगट हूंगा मेरा प्रगटस्थान सुन्दर दारुवन होगा ॥ २८ ॥ वहांपर मेरे सुयोगी चारपुत्र, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, नामवाले होंगे ॥ २९ ॥ बाईसवें द्वापरमें जब शुष्मायण व्यास होंगे तब मैं वाराणसीमें महामुनि हूंगा ॥ ३० ॥ वहां मेरा नाम लांगलीभीम होगा इन्द्रआदि देवता कलियुगमें मुझे हलायुध भगवानके रूपमें दर्शन करैंगे ॥ ३१ ॥ वहां भी मेरे धार्मिक भल्लवी, मधु, पिंग, श्वेतकेतु यह चार पुत्र होंगे ॥ ३२ ॥ तेईसवें द्वापरयुगमें जब तृणबिन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं कालंजर पर्वतपर श्वेतनामवाला प्रगट हूंगा ॥ ३३ ॥

एकविंशे युगे तस्मिन् व्यासो वाचःश्रवा यदा ॥ तदाहं दारुको नाम तस्माद्दारुवनं शुभम् ॥ २८ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ॥ २९ ॥ द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा ॥ तदाप्यहं भविष्यमि वाराणस्यां महामुनिः ॥ ३० ॥ नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः ॥ द्रक्ष्यंति मां कलौ तस्मिन्भवं चैव हलायुधम् ॥ ॥ ३१ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति सुधार्मिकाः ॥ भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ३२ ॥ परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः ॥ श्वेतो नाम तदाहं वै गिरौ कालंजरे शुभे ॥ ३३ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥ ३४ ॥ परिवर्त्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः ॥ शूली नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे तदा ॥ ३५ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥ ३६ ॥ पंचविंशे यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति ॥ तदाप्यहं महायोगी दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ ३७ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भाण्डश्च प्रवाहकः ॥ ३८ ॥

वहां भी मेरे परमतपस्वी उशिक, बृहद्दश्व, देवल, कवि, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥ ३४ ॥ चौबीसवें द्वापरयुगमें जब यक्षनाम व्यासजी होंगे तब उस युगमें नैमिषारण्यमें शूलीनामक योगी हूंगा ॥ ३५ ॥ तहां भी वे मेरे परमतपस्वी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु, नामवाले चार शिष्य होंगे ॥ ३६ ॥ जब पचीसवें द्वापरयुगमें शक्तिनामक व्यास होंगे तब मैं महायोगी, दंडी मुंडीश्वर नामवाला हूंगा ॥ ३७ ॥ वहां भी मेरे परमतपस्वी छगल, कुंडकर्ण,

कुम्भाण्ड, प्रवाहक, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥ ३८ ॥ जब छब्बीसवें द्वापरमें योगी परासर व्यास होंगे तब मैं भद्रवटपुरमें सहिष्णु नामवाला हूँगा ॥ ३९॥ तहांपरभी मेरे परमतपस्वी उलूक, विद्युत, शम्बूक, आश्वलायन नामवाले चार शिष्य होंगे ॥ ४० ॥ सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे तब मैं प्रभासतीर्थमें सोमशर्मा हूंगा ॥ ४१ ॥ वहांपर भी मेरे परमतपस्वी अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, नामवाले चार पुत्र होंगे ॥ ४२ ॥ अट्ठाईसवें द्वापरमें जब परासरके पुत्र द्वैपायन व्यासजी होंगे ॥ ४३ ॥ तब छठे अंशसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णजी वसुदेवके पुत्र वासुदेव होंगे ॥ ४४ ॥ तब भी मैं योगमायासे

व्यासः परसरो यर्हि षड्विंशे भविताप्यहम् ॥ पुरं भद्रवटं प्राप्य सहिष्णुर्नाम नामतः ॥ ३९ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः ॥ ४० ॥ सप्तविंशे यदा व्यासो जातूकर्ण्यो भविष्यति ॥ प्रभासतीर्थमाश्रित्य सोमशर्मा तदाप्यहम् ॥ ४१ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः ॥ अक्षपादः कुमारश्चोलूको वत्सस्तथैव च ॥ ४२ ॥ अष्टाविंशे द्वापरे तु पराशरसुतो हरिः ॥ यदा व्यासा भविष्यामि नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः ॥४३॥ तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः ॥ वसुदेवसुतः श्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥४४॥ तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया ॥ लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥ ॥ ४५ ॥ श्मशाने मृतमुत्सज्य दृष्ट्वा कायमनामयम् ॥ ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया ॥ ४६ ॥ दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्ध च विष्णुना ॥ भविष्यामि तदा ब्रह्मल्लकुली नाम नामतः ॥४७॥ कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं परं तदा ॥ भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ४८ ॥ तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च ॥ ४९ ॥

योगात्मानामक, संसारको विस्मय करनेके निमित्त ब्रह्मचारी शरीरसे प्रगट हूंगा ॥ ४५ ॥ फिर ब्राह्मणोंके हितके निमित्त इस अपने निरोगी शरीरको, स्मशानमें त्यागकर योगमायामें प्रविष्ट हूंगा ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय मैं तुम्हारे सहित पवित्र और दिव्य मेरुकी गुफामें स्थित हूंगा उस समय मेरा नाम लंकुली होगा ॥ ४७ ॥ यह मेरा कायावतार सिद्धक्षेत्रमें होगा और जबतक भूमि रहेगी तबतक विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ वहां भी वही मेरे चार शिष्य

कुशिक, गर्ग, मित्र, कौरुष्य, नामवाले महातपस्वी होंगे ॥ ४९ ॥ वे योगी वेदके पारगामी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, माहेश्वर योगको प्राप्त होकर शिवलोकको जायँगे ॥ ५० ॥ हे सुव्रत ! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रत्येक द्वापरके आनेमें सम्यक्प्रकार परमात्मा शिवने योगेश्वरके अवतार कहे ॥ ५१ ॥ हे विभो ! यह अट्ठाईस व्यासके अवतार प्रत्येक द्वापर युगमें कहे और प्रति कलिके आरंभमें योगेश्वरका अवतार होताहै ॥ ५२ ॥ प्रत्येक योगेश्वरके अवतारोंमें चार शिष्य योगमार्गके बढानेवाले महाशैव, अविनाशी होतेहैं ॥ ५३ ॥ यह शिवजीके शिष्य पाशुपतव्रत करनेवाले, शरीरमें भस्म लगाये रुद्राक्षमालाधारे

योगिनो ब्राह्मणा वेदपारगा ऊर्द्ध्वरेतसः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति शिवं पुरम् ॥ ५० ॥ वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना ॥ योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः ॥ ५१ ॥ व्यासाश्चैवाष्टविंशत्का द्वापरेद्वापरे विभो ॥ योगेश्वरावतारश्च प्रारंभे च कलौ कलौ ॥ ५२ ॥ योगेश्वरावताराणां योगमार्गप्रवर्द्धकाः ॥ महाशैवाश्च चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः ॥ ५३ ॥ एते पाशुपताः शिष्या भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुण्ड्रांकितमस्तकाः ॥ ५४ ॥ शिष्या धर्मरताः सर्वे वेदवेदांगपारगाः ॥ लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः ॥ ५५ ॥ भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः ॥ संख्यया द्वादशाधिक्यशतं च गणिता बुधैः ॥ ५६ ॥ इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ॥ मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशद्युगक्रमात् ॥ ५७ ॥ तत्र श्रुतिसमूहानां विधानं ब्रह्मलक्षणम् ॥ भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा ॥ ५८ ॥

माथेपर त्रिपुंड्र लगानेवाले होतेहैं ॥ ५४ ॥ संपूर्ण शिष्य, धर्ममें तत्पर और वेदवेदांगके पारगामी नित्य बाहर भीतरसे प्रीतिसहित लिंगार्चन करनेमें तत्पर होते हैं ॥ ५५ ॥ और मुझमें भक्ति करनेवाले योगके द्वारा ध्यानमें स्थित जितेन्द्रिय होते हैं, अट्ठाईस द्वापरोंमें इनकी संख्या एकसौ बारह होतीहै ॥ ॥ ५६ ॥ यह मैंने मनुसे आदिलेकर कृष्णपर्यन्त अट्ठाईस युगोंके क्रमसे अवतारोंका लक्षण कहा ॥ ५७ ॥ इस कल्पमें जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे

उस समय श्रुतियोंसे युक्त ब्रह्मलक्षणवाला वेदान्त शास्त्र कहेंगे ॥ ५८ ॥ महेश्वर देवेश्वर ब्रह्माजीसे ऐसा कह और कृपादृष्टिसे उनको देख वहीं अन्तर्धा
न होगये ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ०श०रु० शिवावतारोपाख्याने एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
(अब नन्दीश्वर अवतार कहतेहैं) सनत्कुमारजी बोले, कि-हे नन्दीश्वर ! आप महादेवके अंशसे कैसे उत्पन्न हुए हो आपने शिवत्व किस प्रकार प्राप्त
किया है हे प्रभो ! यह सब मैं सुनना चाहताहूं आप कहिये ॥ १ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार आप सावधान होकर सुनिये कि, जिस प्रकार

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः ॥ पुनः संप्रेक्ष्य देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसं
हितायां शिवावतारोपाख्यान एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ इति द्विचत्वारिंशावताराः ॥ ४२ ॥ अथ
नन्दीश्वरावतारमाह ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवांशजः शिवम् ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥
॥ १ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ सावधानतया शृणु ॥ यथाहं च शिवं प्राप्तो महादेवांशजो मुने ॥ २ ॥ प्रजाकामः
शिलादोऽभूदुक्तः पितृभिरादरात् ॥ तदुद्धर्तुमना भक्त्या समुद्धारमभीप्सुभिः ॥ ३ ॥ अधोदृष्टिः सुधर्मात्मा शिलादो नाम वीर्यवान् ॥
तस्यासीन्मुनिकैर्वृत्तिः शिवलोके च सोगमत् ॥ ४ ॥ शक्रमुद्दिश्य स मुनिस्तपस्तेपे सुदुःसहम् ॥ निश्चलात्मा शिलादाख्यो बहु
कालं दृढव्रतः ॥ ५ ॥ तपतस्तस्य तपसा संतुष्टोऽभूच्छतक्रतुः ॥ जगाम च वरं दातुं सर्वदेवप्रभुस्तदा ॥ ६ ॥ शिलादमाह सुप्रीत्या शक्र
स्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ तेन त्वं मुनिशार्दूल वरयस्व वरानिति ॥ ७ ॥

शिवके अंशसे उत्पन्न होकर मैं शिवत्वको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ एक समय शिलाद ऋषिको जब सन्तानकी इच्छा हुई, तब आदरसे उसके पितरोंने उसके
उद्धारकी इच्छासे उसकी भक्ति देख कहा कि तुम पुत्रके निमित्त उद्योग करो तो हमारा उद्धारहो ॥ ३ ॥ धर्मात्मा, शिलाद महावीर्यवान् नीचेको दृष्टि
किये मुनिवृत्ति धारण किये मनसे शिवलोकको गया ॥ ४ ॥ और इन्द्रके उद्देशसे वह निश्चल आत्मावाला शिलाद बहुत समयतक कठिन तप करता
रहा ॥ ५ ॥ उसके तप करनेसे इन्द्र सन्तुष्ट हुए, और उस समय सब देवताओंके स्वामी इन्द्र उसे वर देनेको गये ॥ ६ ॥ इन्द्र प्रीतिपूर्वक उस शिलादसे

बोले हे अनघ ! मैं तुझसे प्रसन्न हुआ इस कारण हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वर मांगो ॥ ७ ॥ तब इन्द्रको प्रणाम करके और आदरपूर्वक स्तोत्रोंसे स्तुति करके वह मुनिशार्दूल शिलाद हाथ जोड उनसे बोला ॥ ८ ॥ शिलाद बोला, हे देवेश ! इन्द्र ! हे प्रभो ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए तो मैं विना योनिसे उत्पन्न हुए मृत्युहीन पुत्रकी इच्छा करताहूं ॥ ९ ॥ इन्द्र बोले; हे पुत्रकी इच्छा करनेवाले ! मैं मृत्युसंयुक्त, योनिसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको देसकताहूं अन्यथा नहीं दे सकता क्योंकि मृत्युहीन कोई नहीं है ॥ १० ॥ हे महामुने ! मृत्युहीन अयोनिज पुत्रको तुझे नहीं दे सकता क्योंकि विष्णुभगवान्

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥ शिलादो मुनिशार्दूलस्तमाह सुकृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ शिलाद उवाच ॥ शतक्रतो सुरेशान सन्तुष्टो यदि मे प्रभो ॥ अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रतम् ॥ ९ ॥ शक्र उवाच ॥ पुत्रं दास्यामि पुत्रार्थिन्योनिजं मृत्युसंयुतम् ॥ अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै ॥ १० ॥ न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥ हरिर्विधिश्च भगवान्किमुतान्ये महामुने ॥ ११ ॥ तावपि त्रिपुराऽंगसम्भवौ मरणान्वितौ ॥ तयोरप्यायुषां मानं कथितं निगमे पृथक् ॥ १२ ॥ तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः ॥ परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मक्षमं सुतम् ॥ १३ ॥ किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः ॥ सुदुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः ॥ १४ ॥ अहं च विष्णुर्भगवान्द्रुहिणश्च महामुने ॥ अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रं दातुं न शक्नुमः ॥ १५ ॥ आराधय महादेवं तत्पुत्रविनिकाम्यया ॥ सर्वेश्वरो महाशक्तः स ते पुत्रं प्रदास्यति ॥ १६ ॥

ब्रह्मातक सब मृत्युवालेहैं और की तो क्या कथा है ॥ ११ ॥ यह दोनों शिवके अंगसे उत्पन्न हुए हैं, और मृत्युसहितहैं और उनकी आयुका प्रमाण भी शास्त्रोंमें कहाहै ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इस कारण मृत्युहीन अयोनिज पुत्रके प्राप्त होनेका प्रयत्न और आशाको त्याग करो हे विप्रेन्द्र ! अपने समर्थ पुत्रको ग्रहण करो ॥ १३ ॥ हाँ यदि देवेश्वर रुद्र प्रसन्न हो जायँ तो तुमको ऐसा दुर्लभ मृत्युहीन अयोनिज पुत्र दे सकते हैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! मैं तथा भगवान् विष्णु और ब्रह्माभी अयोनिज मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते ॥ १५ ॥ इस कारण ऐसे पुत्र की इच्छासे उन शिव महादेवका आराधन

करो, वह सर्वेश्वर महासमर्थ शिवजी तुमको पुत्र देंगे ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले हे मुने ! इस प्रकार वह इन्द्र उस ब्राह्मणसे कहकर और उसके ऊपर दया करके वह देवताओंसहित इन्द्र अपने लोकको गये ॥ १७ ॥ इन्द्रके चले जानेपर वह शिलाद महादेवकी आराधना करता हुआ शिवजीको तपसे सन्तुष्ट करने लगा ॥ १८ ॥ तब इस प्रकार रात दिन तप करनेमें लगे हुए उस ब्राह्मणको दिव्य सहस्र वर्ष एक क्षणके समान बीत गये ॥ १९ ॥ बाँबीसे उसका शरीर ढपगया और वज्रसूची मुखवाले (दीमक) रुधिरभोजी लाखौं कीडोंसे उसका शरीर व्याप्त होगया ॥ २० ॥ मांस और रुधिरहीन त्वचामात्र शेष

नन्दीश्वर उवाच ॥ एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्र मनुगृह्य च तं घृणी ॥ देवैर्वृतः सुरेशानस्स्वलोकं समगान्मुने ॥ १७ ॥ गते तस्मिंश्च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः ॥ आराधयन्महादेवं तपसातोषयद्भवम् ॥ १८ ॥ अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य द्विजस्य वै ॥ दिव्यम्वर्षसहस्रन्तु गतं क्षणमिवाद्भुतम् ॥ १९ ॥ वल्मीकेनवृतांगश्च लक्षकीटगणैर्मुनिः ॥ वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तभुग्भिश्च सर्वतः ॥ २० ॥ निर्मांसरुधिरत्वग्वै बिले तस्मिन्नवस्थितः ॥ अस्थिशेषोभवत्पश्चाच्छिलादो मुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ तुष्टः प्रभुस्तदा तस्मै दर्शयामास स्वां तनुम् ॥ दिव्यां दिव्यगुणैर्युक्तामलभ्यां वामबुद्धिभिः ॥ २२ ॥ दिव्यवर्षसहस्रेण तप्यमानाय शूलधृक् ॥ सर्वदेवाधिपस्तस्मै वरदोस्मीत्यभाषत ॥ २३ ॥ महासमाधिसंलीनस्स शिलादो महामुनिः ॥ नाशृणोत्तद्गिरं शम्भोर्भक्त्यधीनतरस्य वै ॥ २४ ॥ यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण त्रिपुरारिणा ॥ तदैव मुनिशार्दूल उत्ससर्ज तपःक्रमम् ॥ २५ ॥ अथोन्मील्य मुनिर्नेत्रे सोमं शंभुं विलोकयन् ॥ द्रुतं प्रणम्य स मुदा पादयोर्न्यपतन्मुने ॥ २६ ॥

रहे शरीररूप बिलमें स्थित हुए शिलादके शरीरमें अस्थिमात्र शेष रहे ॥ २१ ॥ तब प्रसन्न हुए शिवजीने उसको दिव्य गुणोंसे युक्त परम दिव्य, कुटिल बुद्धिवालोंको अप्राप्त अपना शरीर दिखाया ॥ २२ ॥ दिव्य सहस्र वर्षतक तप करते हुए उस शिलादसे सब देवताओंके स्वामी शिवजीने, मैं वर देने आयाहूं इस प्रकार कहा ॥ २३ ॥ उस समय बडी समाधिमें लीन हुए शिलाद मुनिने भक्तिसे अधीन हुये शिवकी वाणीको नहीं सुना ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! तब शिवने उस मुनिको हाथसे स्पर्श किया तो उस मुनिकी उसी समय तपकी समाधि छुट गई ॥ २५ ॥ हे मुने ! तब मुनि नेत्रोंको खोलकर उमासहित शंभुको

देख शीघ्र आनंदपूर्वक प्रणामकर. उनके चरणोंमें गिरपडे ॥ २६ ॥ हर्षसे गद्गदवाणी और कंधे झुकाये हाथ जोडे प्रसन्नात्मा वह शिलाद शिवकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ तब देवदेवेश त्रिलोचन भगवान् शिवजीने उस मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहा कि—मैं वर देने आयाहूं ॥२८॥ हे महामते ! इस तपसे तुम्हारा क्या कार्य है तुमको सर्वज्ञ तथा सब शास्त्रोंमें पारगामी पुत्र देताहूं ॥ २९ ॥ वचन सुनतेही शिलाद चंद्रमौलेश्वर उन शिवजीको प्रणामकर हर्षसे गद्गद हुई वाणीसे बोला ॥ ३० ॥ शिलाद बोला, हे महेश्वर ! यदि आप मुझसे प्रसन्नहैं और वर देनेवाले हैं तो आपके समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहताहूं ॥

हर्षगद्गदया वाचा नतस्कंधः कृताञ्जलिः ॥ प्रसन्नात्मा शिलादस्स तुष्टाव परमेश्वरम् ॥२७॥ ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ वरदोऽस्मीति तम्प्राह शिलादं मुनिपुंगवम् ॥ २८ ॥ तपसानेन किं कार्यं भवते हि महामते ॥ ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥ २९ ॥ ततः प्रणम्य देवेशं तच्छुत्वा च शिलाशनः ॥ हर्षगद्गदया वाचोवाच सोमविभूषणम् ॥ ३० ॥ शिलाद उवाच ॥ महेश यदि तुष्टोऽसि यदि वा वरदश्च मे ॥ इच्छामि त्वत्समं पुत्रं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥ ३१ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥ एवमुक्तस्ततो देवस्त्र्यम्बकस्तेन शङ्करः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शिलादं मुनिसत्तमम् ॥ ३२ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन ॥ तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः ॥ ३३ ॥ तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नाम्ना त्वयोनिजः ॥ पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्यास्थितं घृणी ॥ सोमस्तूर्णं तमादिश्य तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ३५ ॥ गते तस्मिन्महादेवे स शिलादो महामुनिः ॥ स्वमाश्रममुपागम्य ऋषिभ्योऽकथयत्ततः ॥ ३६ ॥

॥ ३१ ॥ नंदीश्वर बोले त्र्यम्बकदेव शिव उस मुनिके वचन सुन प्रसन्नहो मुनिश्रेष्ठ शिलादसे बोले ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले, हे विप्र ! हे तपोधन ! पहले मेरी ब्रह्माने आराधना की थी, और देवताओंने तथा मुनियोंने भी अवतारके निमित्त आराधना की थी ॥ ३३ ॥ मैं तुम्हारे यहां नन्दी नामक अयोनिज पुत्ररूपसे प्रगट हूंगा हे मुने ! तुम मुझ लोकत्रयीके पिताके भी पिता होओगे ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कह प्रणाम करते हुए मुनिको देख दयालु शिव, ऐसाही होगा इस प्रकार पार्वती सहित उसको आज्ञा दे वहां ही अन्तर्धान हुए ॥ ३५ ॥ उन महादेवजीके चले जानेसे शिलाद मुनिने अपने

आश्रममें जाकर ऋषियोंसे यह वृत्तान्त कहा ॥ ३६ ॥ कुछ समय बीतनेपर पिता शिलादजी यज्ञ करनेके निमित्त यज्ञके आंगनको खोदनेलगे, ॥ ३७ ॥ उसीसमय उनकी आज्ञासे मैं उसका पुत्ररूप होकर प्रलयाग्निकी समान देदीप्यमान प्रगट हुआ ॥ ३८ ॥ उस समय देवताओंने फूल वर्षाए और आकाशमें स्थित किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य, गण गान करनेलगे, मेरे शिलादके पुत्रत्व होनेपर ऋषिगण भी चारोंओरसे पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३९ ॥ उससमय संपूर्ण ब्रह्मादि देवता तथा देवताओंकी स्त्रियां और प्रीतिसे विष्णु शिव अम्बिका आदि उस स्थानपर आये ॥ ४० ॥ और बडा उत्सव हुआ अप्सरायें

कियता चैव कालेन तदासौ जनकः स मे ॥ यज्ञांगणं चकर्षाशु यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः ॥ ३७ ॥ ततः क्षणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया ॥ स जातः पूर्व्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥३८॥ अवर्षंस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः ॥ शिलादात्मजत्वं गते मय्यृषीन्द्रास्समन्ताच्च वृष्टिं व्यधुः कौसुमीं ते ॥ ३९ ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा देवपत्न्यश्च सर्वशः ॥ तत्राजग्मुश्च सुप्रीत्या हरिश्चैव शिवोऽम्बिका ॥ ४० ॥ तदोत्सवो महानासीन्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ आदृत्य मां तथा लिंगं तुष्टुवुर्हर्षिताश्च ते ॥४१॥ सुप्रशस्य शिलादं तं स्तुत्वा च सुस्तवैः शिवौ॥सर्वे जग्मुश्च धामानि शिवावप्यखिलेश्वरौ॥४२॥शिलादोऽपि च मां दृष्ट्वा कालसूर्य्यानलप्रभम् ॥ त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं जटामुकुटधारिणम् ॥ ४३ ॥ त्रिशूलाद्यायुधं दीप्तं सर्वथा रुद्ररूपिणम् ॥ महानन्दभरः प्रीत्या प्रणम्यं प्रणनाम च ॥ ४४ ॥ शिलाद उवाच ॥ त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर ॥ तस्मात्त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम् ॥ ४५ ॥

नाचनेलगी वे सब प्रसन्नहो मेरी तथा लिंगमूर्त्तिकी पूजाकरते हुए प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥ वे सब देवता शिलादमुनिकी प्रशंसा करके तथा शिव पार्वतीकी स्तुति करके अपने अपने स्थानोंको गये और शिव पार्वती भी पधारे ॥ ४२ ॥ शिलादनेभी मुझको प्रलयकालके सूर्य और अग्निकी समान प्रकाशित तीननेत्रवाला, चतुर्भुज, जटामुकटधारी बालक देखकर ॥ ४३ ॥ त्रिशूल आदि शस्त्रधारे दीप्तिमान् सबप्रकारसे रुद्ररूपी, प्रणाम करनेयोग्य मुझे देखकर आनंदसे प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ शिलाद बोला, हे सुरेश्वर ! जोकि–तुमने मुझे महा आनंद दियाहै इस कारण तुम्हारानाम नन्दी हुआ तुम देवताओंको

आनंद देनेवाले जगदीश्वरको नमस्कार करताहूं ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर बोले, मुझ सहित पिता प्रसन्नचित्त हो महेश्वरको प्रणामकर शीघ्र अपनी पर्णकुटीमें गये, और ऐसे प्रसन्न हुए कि जिस प्रकार कोई निर्धन पुरुष धनको पाकर प्रसन्न होताहै ॥ ४६ ॥ हे महामुने ! जब मैं शिलादमुनिकी कुटीमें गया तब मैंने उस प्रकारका रूप त्यागकर मनुष्य शरीर धारण किया ॥ ४७ ॥ उस समय मनुष्यशरीर देखकर मेरा लोकपूजित पिता अपने कुटुम्बियों सहित अतिदुःखी होकर विलाप करनेलगा ॥ ४८ ॥ पुत्रपर प्रेम करनेवाले शालंकायनके पुत्र शिलादने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये ॥ ४९ ॥ उस मेरे पिताने

नन्दीश्वर उवाच ॥ मया सह पिता हृष्टः सुप्रणम्य महेश्वरम् ॥ उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः ॥ ४६ ॥ यदा गतो ह्युटजं शिलादस्य महामुने ॥ तदाहं तादृश रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः ॥ ४७ ॥ मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः ॥ विललापातिदुःखार्त्तः स्वजनैश्च समावृतः ॥ ४८ ॥ जातकर्मादिकान्येव सर्वाण्यपि चकार मे ॥ शालंकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः ॥ ४९ ॥ वेदानध्यापयामास सांगोपांगानशेषतः ॥ शास्त्राण्यन्यान्यपि तथा पञ्चवर्षे पिता च माम् ॥ ५० ॥ सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे मित्रावरुणसंज्ञकौ ॥ मुनी तस्याश्रमं प्राप्तौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः ॥ ५१ ॥ सत्कृतौ मुनिना तेन सूपविष्टौ महामुनी ॥ ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः ॥ ५२ ॥ मित्रावरुणावूचतुः ॥ तात नांदिंस्तवाल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ न दृष्टमेव चापश्य ह्यायुर्वर्षादतः परम् ॥ ५३ ॥ इत्युक्तवतोर्विप्रयोः शिलादः पुत्रवत्सलः ॥ तमालिङ्गय च दुःखार्त्तो रुरोदातीव विस्वरम् ॥ ५४ ॥

पांचवर्षकी अवस्थामें ही मुझे संपूर्ण सांगोपांग वेदोंको तथा और और शास्त्रोंको भी पढाया ॥ ५० ॥ सातवें वर्षके समाप्त होनेपर मित्रावरुण संज्ञक दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेको आये ॥ ५१ ॥ तब मेरे पितासे सत्कारको प्राप्त होकर वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारम्बार देखकर वे महात्मा बोले ॥ ५२ ॥ मित्रावरुण बोले, कि हे तात ! यह नंदी तुम्हारा पुत्र थोडी अवस्थावाला है सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारगामी ऐसा कोई नहीं देखा, इसकी एकवर्षकी आयु होगी ॥ ५३ ॥ उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर वह पुत्रवत्सल शिलाद अपने पुत्रको आलिंगन करके दुःखी हो ऊंचे स्वरसे रोनेलगा ॥ ५४ ॥

मृतकके समान गिरेहुए पिताको देख प्रसन्नात्मा वह बालक शिवके चरणकमलोंको स्मरणकर अपने पितासे बोला ॥ ५५ ॥ हे तात ! आप किस
दुःखसे कांपते हुए रोतेहैं तुमको कहांसे दुःख प्राप्त हुआ यह तत्त्वपूर्वक जानना चाहताहूं ॥ ५६ ॥ पिता बोला, हे पुत्र ! तुम्हारी अल्पमृत्युके दुःखसे
दुःखीहूं इस मेरे दुःखको कौन दूर करैगा मैं किसकी शरणमें जाऊं ॥ ५७ ॥ पुत्र बोला, देवता, दानव, यमराज, काल, तथा और मनुष्यभी यदि मुझे
मारें ॥ ५८ ॥ तबभी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी इस कारण तुम दुःखी मत होवो, हे पिता ! मैं सत्य कहताहूं तुम्हारी शपथ (सौगंध) खाताहूं ॥ ५९ ॥

मृतवत्पातितं दृष्ट्वा पितरं च पितामहम् ॥ प्रत्यवोचत्प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५५ ॥ केन त्वं तात दुःखेन वेपमानश्च
रोदिषि ॥ दुःखं ते कुत उत्पन्नं ज्ञातु मिच्छामि तत्त्वतः ॥ ५६ ॥ ॥ पितोवाच ॥ तवाल्पमृत्युदुःखेन दुःखितोऽतीव पुत्रक ॥ को
मे दुःखं हरतु वै शरणं तं प्रयामि हि ॥ ५७ ॥ ॥ पुत्र उवाच ॥ देवो वा दानवो वापि यमः कालोथ वापि हि ॥ ऋध्येयुर्यद्यपि ह्येते
मामन्येपि जनास्तथा ॥ ५८ ॥ अथापि चाल्पमृत्युर्मे न भविष्यति मा तुदः ॥ सत्यं ब्रवीमि जनकं शपथन्ते करोम्यहम् ॥ ५९ ॥
॥ पितोवाच ॥ किं तपः किं परिज्ञानं को योगश्च प्रभुश्च ते ॥ येन त्वं दारुणं दुःखं वञ्चयिष्यसि पुत्र मे ॥ ६० ॥ ॥ पुत्र उवाच ॥
न तात तपसा मृत्युं वंचयिष्ये न विद्यया ॥ महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा ॥ ६१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वाहं
पितुः पादौ प्रणम्य शिरसा मुने ॥ प्रदक्षिणीकृत्य च तमगच्छं वनमुत्तमम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां
नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ नन्दिकेश्वर उवाच ॥ तत्र गत्वा मुनेऽहं वै स्थित्वैकान्तस्थले सुधीः ॥
अतपं तप उग्रं सन्मुनीनामपि दुष्करम् ॥ १ ॥

पिता बोला, हे पुत्र ! कौनतप, कौनज्ञान, और वह कौनसा योगहै, तुम्हारा कौन प्रभु है जिससे तुम मेरे कठिन दुःखको दूर करोगे ॥ ६० ॥ पुत्र बोला;
हे तात ! मैं तपसे, वा विद्यासे, मृत्युको दूर न करूंगा केवल महादेवके भजन करनेसे मृत्युको जीतूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने !
इस प्रकार कहकर, पिताके चरणोंको शिरसे प्रणाम, और उनकी प्रदक्षिणा करके, मैं श्रेष्ठ बनको चलागया ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ०
श० रु० नंदिकेश्वरावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नन्दिकेश्वर बोले, हे मुने ! वहां जाकर मैं धीरतापूर्वक एकान्त-स्थलमें स्थित हो कर अतिकठिन,

श्रेष्ठ मुनियोंको भी दुर्लभ तप करने लगा ॥ १ ॥ अपने हृदयकमलमें त्र्यम्बकदेव, तीननेत्र, दशभुजा, शान्त, पंचमुख सदाशिवका ध्यान करके ॥ २ ॥ परम ध्यानमें मग्न हो रुद्रके मन्त्रको पवित्र नदीके उत्तरभागमें एकाग्र चित्तसे सावधान हो जपने लगा ॥३॥ उस जपमें स्थित हुए मुझसे चन्द्रशेखर, परमेश्वर, सदाशिव पार्वती सहित सन्तुष्ट हुए और बोले ॥ ४ ॥ शिवजी बोले, हे शिलादके पुत्र ! इस तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट होकर मैं तुमको वर देता हूं हे धीमन् ! तुमने बहुत श्रेष्ट तप किया, जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो ॥ ५ ॥ इस प्रकार शिवके कहनेपर अपने सिरको उनके चरणोंमे झुकाये हुए, जरा शोकके नाश

हृत्पुण्डरीकसुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम् ॥ त्र्यक्षं दशभुज शान्तं पञ्चवक्रं सदाशिवम् ॥ २ ॥ रुद्रजाप्यमकार्षंवै परमध्यानमास्थितः ॥ सरितश्चोत्तरे पुण्ये ह्येकचित्तः समाहितः ॥ ३ ॥ तस्मिञ्जाप्येऽथ संप्रीतः स्थितं मां परमेश्वरः ॥ तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्द्धभूषणः ॥ ४ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ शैलादे वरदोहं ते तपसानेन तोषितः ॥ साधु तत्तं त्वया धीमन् ब्रूहि यत्ते मनोगतम् ॥ ५ ॥ स एवमुक्तो देवेन शिरसा पादयोर्नतः ॥ अस्तवं परमेशानं जराशोकविनाशनम् ॥ ६ ॥ अथ मां नन्दिनं शम्भुर्भक्त्या परमया युतम् ॥ अश्रुपूर्णेक्षणं सम्यक् पादयोः शिरसा नतम् ॥ ७ ॥ उत्थाप्य परमेशानः पस्पर्श परमार्तिहा ॥ कराभ्यां संमुखाभ्यान्तु संगृह्य वृषभध्वजः ॥ ८ ॥ निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम् ॥ उवाच मां कृपादृष्ट्या समीक्ष्य जगताम्पतिः ॥ ९ ॥ वत्स नन्दिन्महाप्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्तव ॥ मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः ॥ १० ॥

करनेवाले शिवजीकी मैं स्तुति करनेलगा ॥ ६ ॥ तब परमभाक्तिसे युक्त तथा आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंवाले, चरणोंमें मस्तक झुकाये मुझ नन्दीको ॥ ७ ॥ उठाकर दुःखहर्ता परमेशान वृषभध्वजने दोनों हाथोंसे मुझे पकड स्पर्श किया ॥ ८ ॥ गणपतियोंको और देवी पार्वतीको तथा मुझे कृपाकटाक्षसे देखकर जगतपति बोले ॥ ९ ॥ हे वत्स नन्दिन् ! महाप्राज्ञ ! तुम्हें मृत्युसे भय कहां ? उन दोनों ब्राह्मणोंको मैंनेही भेजा था, तुम मेरी समान हो इसमें कुछ संशय

नहीं है ॥ १० ॥ तुम पिता और सुहृज्जनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय, और मेरे प्रिय होगे ॥ ११ ॥ मेरे बलवाले तथा मेरे समीप प्राप्त हुए रात दिन मेरे प्रिय होगे मेरी प्रसन्नतासे जरा मृत्यु तुमको प्राप्त न होगी ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कहकर अपनी कुशेशमयी, शिरोंकीमाला, कृपानिधि शिवने खोलकर शीघ्र मेरे कंठमें बांधदी ॥ १३ ॥ हे विप्र ! उस सुन्दर मालाको कंठमें पहरतेही तिनिनेत्र, दशभुजाओं वाला मानों दूसरा शिवही होगया ॥ १४ ॥ तब परमेश्वरने मुझे हाथसे ग्रहणकर कहा, कहो अब तुमको क्या ? श्रेष्ठ वर दूं ॥ १५ ॥ तब वृषभध्वजने

अमरो जरया त्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा ॥ अव्ययश्चाक्षयश्चेष्टः स पिता स सुहृज्जनः ॥ ११ ॥ मद्बलः पार्श्वगो नित्यं ममेष्टो भवितानिशम् ॥ न जरा जन्म मृत्युर्वै मत्प्रसादाद्भविष्याति ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा शिरोमालां कुशेशयमयीं निजाम् ॥ समुन्मुच्य बबन्धाशु मम कण्ठे कृपानिधिः॥१३॥तयाहं मालया विप्र शुभया कण्ठसक्तया ॥ त्र्यक्षो दशभुजश्चासं द्वितीय इव शङ्करः ॥ १४ ॥ तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः ॥ उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम् ॥१५॥ ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा हारनिर्मलम् ॥ उक्त्वा नन्दी भवेतीह विससर्ज वृषध्वजः ॥ १६ ॥ ततः पञ्चमिता नद्यः प्रावर्तंत शुभावहाः ॥ सुतोयाश्च महावेगा दिव्यरूपा च सुन्दरी ॥१७॥ जटोदका त्रिस्रोताश्च वृषध्वनिरितीव हि ॥ स्वर्णोदका जम्बुनदी पञ्चनद्यः प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ एतत्पंञ्चनदं नाम शिवपृष्ठतमं शुभम् ॥ जपेश्वरसमीपे तु पवित्रं परमं मुने ॥ १९ ॥ यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम् ॥ पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः ॥ २० ॥ अथ शम्भुरुवाचोमामभिषिञ्चामि नन्दिनम् ॥ गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये ॥ २१ ॥

अपनी जटाओंसे, हारकी समान निर्मलजल ग्रहणकर, नन्दी हो ऐसा कहकर उसको मेरे ऊपर छिडका ॥ १६ ॥ उस जलसे पांच शुभ नदियोंसे निर्मल और बडे बेगवाला दिव्यरूप जल, वहने लगा ॥ १७ ॥ जटोदका, त्रिस्रोता, वृषभध्वनि, स्वर्णोदका, जम्बुनदी, यह पांच नदियां कहीं ॥ १८ ॥ हे मुने ! यह पंचनद नामक परम पवित्र शिवका पृष्ठदेश, जपेश्वरके समीप वर्तमान है ॥ १९ ॥ जो पुरुष पंचनदपर प्राप्त हो, स्नानकर, वहां जप्तेश्वरेश्वर, शिवका पूजन करता है वह शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥ शिवजी पार्वतीसे बोले, कि नन्दीको गणेश्वर पदमें

अभिषेक करताहूं मैं इसको गणेन्द्र करूंगा, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ? ॥ २१ ॥ पार्वती बोली, हे देवेश ! परमेश्वर ! नन्दीको मुझे दो हे नाथ ! वह शिलादपुत्र आजसे मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोला, इसके उपरान्त, परमस्वतंत्र परम ईश, भक्तवत्सल शंकरने अपने श्रेष्ठ गणोंको स्मरण किया ॥ २३ ॥ शिवके स्मरण करतेही वे शंकरकी आकृतिवाले असंख्यात गणेश्वर बडे आनन्दसे आये ॥ २४ ॥ उन गणेशोंने उन शिव तथा आदिदेवी पार्वतीको प्रणाम करके हाथबांध शिर झुकाय शुभ वचन कहे ॥ २५ ॥ गणाध्यक्ष बोले, हे प्रभो ! हमको किस निमित्त स्मरण किया है आज्ञा

उमोवाच ॥ दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर ॥ महाप्रियतमो नाथ शैलादिस्तनयो मम ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्स शङ्करः स्वीयान्सस्मार गणपान्वरान् ॥ स्वतन्त्रः परमेशानस्सर्वदो भक्तवत्सलः ॥ २३ ॥ स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः ॥ असङ्ख्याता महामोदाश्शङ्कराकृतयोऽखिलाः ॥ २४ ॥ ते गणेशाश्शिवं देवीं प्रणम्याहुः शुभं वचः ॥ ते प्रणम्य करौ बद्धा नतस्कन्धा महाबलाः ॥ २५ ॥ गणेशा ऊचुः ॥ किमर्थं च स्मृता देव ह्याज्ञापय महाप्रभो ॥ किङ्करान्नः समायातांस्त्रिपुरार्दन कामद ॥ २६ ॥ किं सागराञ्शोषयामो यमं वा सह किंकरैः ॥ हन्मो मृत्युं महामृत्युं विशेषं वृद्धपद्मजम् ॥ २७ ॥ बद्धेन्द्रं सह देवैश्च विष्णुं वा पार्षदैः सह ॥ आनयामः सुसंक्रुद्धान्दैत्यान्वा दानवैः सह ॥ २८ ॥कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया ॥ कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गणानां वीरवाग्दिनाम् ॥ उवाच तान्स प्रशंस्य गणेशान्परमेश्वरः ॥ ३० ॥ शिव उवाच ॥ नन्दीश्वरोयं पुत्रो ॥ सर्वेषामीश्वरेश्वरः ॥ प्रियो गणाग्रणीस्सर्वः क्रियतां वचनं मम ॥ ३१ ॥

दीजिये, हे त्रिपुरार्दन ! हे कामद ! हम सब आपके सेवक आगये ॥ २६ ॥ कहो तो समुद्रोंको सुखाडालें, अथवा सेवकों सहित यमराजको मारडालें, मृत्यु, महामृत्यु, वा, वृद्ध ब्रह्माका संहार करदें ॥ २७ ॥ अथवा देवताओं सहित इन्द्रको वा पार्षदों सहित विष्णुको बांधकर ले आवें, या, दानवों सहित क्रोधित दैत्योंको पकड लावैं ॥ २८ ॥ आज आपकी आज्ञासे किसको घोर दण्ड दें अथवा किसी कामनाकी सिद्धिके अर्थ आज किसीका उत्सव करें ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन वीरवादी गणोंका वचन सुनकर शिवजी, उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके उनसे बोले, ॥ ३० ॥ शिवजी बोले,

यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र सब गणोंका अधिपति तथा प्रिय गणोंमें मुख्य हुआ, ऐसा सबोंको मेरा वचन पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ तुम सब प्रीतिपूर्वक मेरे गणाध्यक्ष, इस नन्दीको स्नान कराओ, और आजसे यह नन्दी तुम सबोंका स्वामी हुआ ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजीसे कहेहुए वे सम्पूर्ण गणपति, बहुंत अच्छा ऐसा कहकर सब सामग्री लाये ॥ ३३ ॥ तब इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण और सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न हो सबलोकोंसे आये ॥ ३४ ॥ शिवके नियोगसे भगवान् ब्रह्माजीने सावधान हो नन्दीका अभिषेक किया ॥ ३५ ॥ तब विष्णुने, फिर इन्द्रने इसके पीछे लोकपालोंने

सर्व्वे प्रीत्याभिषिञ्चध्वं मद्गणानां गतिम्पतिम् ॥ अद्यप्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्ताः शङ्करेण गणपास्सर्व्व एव ते ॥ एवमस्त्विति सम्प्रोच्य सम्भारानाहरँस्ततः ॥ ३३ ॥ ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा ॥ मुनयः सर्व्वतो लोका आजग्मुर्मुदिताननाः ॥ ३४ ॥ पितामहोपि भगवान्नियोगाच्छङ्करस्य वै ॥ चकार नंदिनस्सर्व्वमभिषेकं समाहितः ॥ ३५ ॥ ततो विष्णुस्ततश्शक्रो लोकपास्तथैव च ॥ ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः ॥ ३६ ॥ स्तुतिमत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव च समाहितः ॥ ३७ ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च ॥ ततो गणाधिपास्सर्व्वे ततो देवास्ततोऽसुराः ॥ ३८ ॥ एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैस्सब्रह्मकैस्तदा ॥ नन्दीश्वरोहं विप्रेन्द्र नियोगात्परमेशितुः ॥ ३९ ॥ उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः ॥ महोत्सवयुतः प्रीत्या विष्णुब्रह्मादिभिर्मम ॥ ४० ॥ मरुतां च सुता देवी सुयशास्तु मनोहरा ॥ पत्नी सा मेऽभवद्दिव्या मनोनयननन्दिनी ॥ ४१ ॥

स्नान कराया और ऋषिगण तथा ब्रह्मा आदि देवता बडे प्रसन्न होकर स्तुति करनेलगे ॥ ३६ ॥ तब उन सबके स्तुति करनेपर सब जगत्के पति विष्णुजी हाथ जोड शिर झुकाय स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ और हाथ जोड शिरझुकाय जय शब्द किया तब संपूर्ण गणाधिप, देवता तथा असुर ॥ ३८ ॥ और ब्रह्मासे आदि लेकर देवता स्तुति करने लगे, इस प्रकार अभिषेकको प्राप्तहो मुझ नन्दीश्वरने ब्रह्माजीकी आज्ञासे ॥ ३९ ॥ अपना विवाह किया विष्णु और ब्रह्मा आदिकोंने प्रीतिसे बडा उत्सव किया ॥ ४० ॥ सुयशा नामवाली परम मनोहर देवी मरुतकी कन्या, मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाली,

परम दिव्य रूपवती मेरी पत्नी हुई ॥ ४१ ॥ परम शोभायमान चन्द्रमाकें समान कान्तिमान छत्र लिया और दूसरी स्त्रियोंने चामरोंको ग्रहण किया ॥ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार परम मनोहर सिंहासनपर उसके साथ मैं बैठा और महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सजाया ॥ ४३ ॥ देवीने अपने कंठका दिव्य हार मुझे दिया, श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंहकी ध्वजा ॥ ४४ ॥ हे मुने ! रथ चन्द्रमाके प्रतिबिम्बके समान स्वच्छ सुवर्णका हार तथा और वस्तु भी मुझे मिली ॥ ४५ ॥ हे महामुने ! इस प्रकार उस पत्नीसे मेरा विवाह होनेपर मैंने पार्वतीके, ब्रह्माके, तथा विष्णुके चरणोंको नमस्कार किया ॥

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम् ॥ चामरैश्चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युतम् ॥ ४२ ॥ सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया ॥ अलंकृतो महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैस्सुभूषणैः ॥ ४३ ॥ लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा ॥ वृषेन्द्रश्च शितो नागस्सिंह स्सिंहध्वजस्तथा ॥ ४४ ॥ रथश्च हेमहारश्च चन्द्रबिंबसमः शुभः ॥ अन्यान्यपि च वस्तूनि लब्धानि हि मया मुने ॥ ४५ ॥ एवं कृतविवाहोऽहं तया पत्न्या महामुने ॥ पादौ ववन्दे शम्भोश्च शिवाया ब्रह्मणो हरेः ॥ ४६ ॥ तथाविधं त्रिलोकेशस्सपत्नीकं च माम्प्रभुः ॥ प्रोवाच परया प्रीत्या स शिवो भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु सत्पुत्र तातस्त्वं सुयशेयन्तव प्रिया ॥ ददामि ते वरम्प्रीत्या यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ४८ ॥ सदाहन्तव नन्दीश सन्तुष्टोऽस्मि गणेश्वर ॥ देव्या च सहितो वत्स शृणु मे परमं वचः ॥ ४९ ॥ सदेष्टश्च विशिष्टश्च मरमैश्वर्य्यसंयुतः ॥ महायोगी महेष्वासः स पिता स पितामहः ॥ ५० ॥ अजेयस्सर्वजेता च सदा पूज्यो महाबलः ॥ अहं यत्र भवांस्तत्र यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥ ५१ ॥

॥ ४६ ॥ उस प्रकार सपत्नीक मुझसे भक्तवत्सल त्रिलोकेश शिवजी परम प्रीतिसे बोले ॥ ४७ ॥ शिवजी बोले, हे सत्पुत्र ! तुम पति, और यह तुम्हारी सुयशा स्त्री है और मैं तुमको प्रसन्न होकर वही वर दूंगा जो तुम्हारे मनमें हो ॥ ४८ ॥ हे गणेश्वर ! हे नन्दीश्वर ! मैं तुझसे निरन्तर सन्तुष्ट हूं तुम मेरे सदा प्रिय होगे, हे वत्स ! देवीसहित इस मेरे वचनको सुनो ॥४९॥ अच्छे मनोरथ तथा परम ऐश्वर्य सहित महायोगी, महा धनुषधारी तुम्हारा पितामह समेत ॥ ५० ॥ अजेय, तथा सबको जीतनेवाला महाबली होकर सदा पूजनीय होगा जहां मैं हूंगा वहाँ तुम होगे जहां तुम होगे वहां मैं हूंगा ॥५१॥

हे पुत्र ! यह बडे ऐश्वर्य सहित तुम्हारा पिता महाबली मेरा भक्त, गणोंका अध्यक्ष होगा ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! तुम्हारा पितामह भी वैसाही होगा ऐसा नियम रहैगा मुझसे वरदान प्राप्त हुए वे सब मेरे समीप जायँगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब महाभागा देवी, नन्दीको वरदान देनेकी इच्छासे बोली हे पुत्र ! मुझसे इच्छित वर मांगो ॥ ५४ ॥ तब पार्वतीके वचन सुनकर मैं हाथ जोड उस समय बोला हे देवि ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी नित्यभक्ति हो यह वरदान करो ॥ ५५ ॥ मेरे वचनको सुनकर देवीने कहा कि-ऐसेही हो तब पार्वती, सुयशा नाम नन्दीकीस्त्री दयासे अच्छी प्रीतिपूर्वक बोली ॥ ५६ ॥

अयं च ते पिता पुत्र परमैश्वर्य्यसंयुतः ॥ भविष्यति गणाध्यक्षो मम भक्तो महाबलः ॥ ५२ ॥ पितामहोऽपि ते वत्स तथास्तु नियमा इमे ॥ मत्समीपं गमिष्यन्ति मया दत्तवरास्तथा ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततो देवी महाभागा नन्दिनं वरदाब्रवीत् ॥ वरं ब्रूहीति माम्पुत्र सर्व्वान्कामान्यथेप्सितान् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः प्रावोचत्साञ्जलिस्तदा ॥ भक्तिर्भवतु मे देवि पादयोस्ते सदा वरा ॥ ५५ ॥ श्रुत्वा मम वचो देवी ह्येवमस्त्विति साब्रवीत् ॥ सुयशां ताञ्च सुप्रीत्या नन्दिप्रियतमां शिवाम् ॥ ५६ ॥ देव्युवाच ॥ वत्से वरं यथेष्टं हि त्रिनेत्रा जन्मवर्जिता ॥ पुत्रपौत्रैस्तु भक्तिर्मे तथा च भर्तुरे हि ॥ ५७ ॥ नन्द्युवाच ॥ तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च सर्व्वे देवगणाश्च वै ॥ ताभ्यां वरान्ददुः प्रीत्या सुप्रसन्नाश्शिवाज्ञया ॥ ५८ ॥ सान्वयं मां गृहीत्वेशस्ततस्सम्बन्धिबान्धवैः ॥ आरुह्य वृषमीशानो गतो देव्या निजं गृहम् ॥ ५९ ॥ विष्ण्वादयः सुरास्सर्व्वे प्रशंसन्तो ह्यमी तदा ॥ स्वधामानि ययुः प्रीत्या संस्तुवन्तः शिवं शिवम् ॥ ६० ॥ इति ते कथितो वत्स स्वावतारो महामुने ॥ सदानन्दकरः पुंसां शिवभक्तिप्रवर्द्धनः ॥ ६१ ॥

पार्वती बोली, हे वत्से ! यथेष्ट वरको ग्रहण करो त्रिनेत्रा, जन्मवर्जिता तुम्हारी पुत्र पौत्रादि सहित मुझमें तथा पतिमें भक्ति हो ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय ब्रह्मा, विष्णु, तथा संपूर्ण देवताओंने प्रसन्न होकर शिवकी आज्ञासे उन दोनोंको वर दिये ॥ ५८ ॥ तब सम्बन्धी बान्धवों सहित, मुझे कुटुम्ब सहित लेकर, शिवजी बैलपर चढके देवीके सहित अपने गृहको पधारे ॥ ५९ ॥ विष्णु आदि संपूर्ण देवताभी उसकी प्रशंसा करते और प्रीति सहित शिवजीकी स्तुति करते हुए अपने अपने स्थानोंको गये ॥ ६० ॥ हे वत्स ! हे महामुने ! इस प्रकार अपना अवतार तुमसे कहा जो पुरुषोंको सदा आनंद देनेवाला

और शिवजीकी भक्ति बढानेवाला है ॥ ६१ ॥ जो पुरुष इस नन्दीके जन्म तथा मेरे वरदानको और अभिषेक तथा विवाहको सुनता और सुनाता है ॥
॥ ६२ ॥ तथा श्रद्धा भक्ति समेत जो पढता है अथवा पढाता है वह इस संसारमें संपूर्ण सुखोंको भोगकर परलोकमें सुन्दर गतिको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ (अब भैरव अवतार कहते हैं)
नन्दीश्वर बोले हे सर्वज्ञ सनत्कुमार ! अब तुम भैरवी कथाको सुनो कि, जिसके श्रवणमात्रसे शिवकी दृढ भक्ति होतीहै ॥ १ ॥ भैरवजी परमात्मा शंकरका

य इदन्नन्दिनो जन्म वरदानन्तथा मम ॥ अभिषेकं विवाहं च शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ॥६२॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रद्धावान्भक्तिसंयुतः ॥
इह सर्व्वसुखम्भुक्त्वापरत्र लभते गतिम् ॥६३॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाहवर्णनं
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ इति त्रिचत्वारिंशोवतारः ॥ ४३ ॥ अथभैरवावतारमाह ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्व्वज्ञ शृणु
त्वं भैरवीं कथाम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण शैवी भक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १ ॥ भैरवः पूर्णरूपो हि शंकरस्य परात्मनः ॥ मूढास्तं वै न
जानन्ति मोहिताश्शिवमायया ॥ २ ॥ सनत्कुमार नो वेत्ति महिमानं महेशितुः ॥ चतुर्भुजोऽपि विष्णुर्वै चतुर्व्वक्त्रोऽपि वै विधिः ॥
॥ ३ ॥ चित्रमत्र न किञ्चिद्वै दुर्ज्ञेया खलु शाम्भवी ॥ तया संमोहितास्सर्वे नार्चयन्त्यपि तम्परम् ॥ ४ ॥ वेद चेद्यदि वात्मानं स
एव परमेश्वरः ॥ तदा विहन्ति ते सर्व्वे स्वेच्छया न हि केऽपि तम् ॥ ५ ॥ सर्व्वगोऽपि महेशानो नेक्ष्यते मूढबुद्धिभिः ॥ देववद् बुध्यते
लोके योऽतीतो मनसां गिराम् ॥ ६ ॥ अत्रेतिहासं वक्ष्येऽहं परमर्षे पुरातनम् ॥ शृणु तं श्रद्धया तात परमं ज्ञानकारणम् ॥ ७ ॥

पूर्ण रूपहैं शिवकी मायासे मोहित हुए मूर्खजन उनको नहीं जानतेहैं ॥ २ ॥ हे सनत्कुमार ! महेश्वरकी महिमाको, चतुर्भुज विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्मा भी
नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ इसमें कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि–शंभुकी महिमा कठिनतासे जानी जातीहै उससे मोहित हुए बहुत लोग परमेश्वरको नहीं पूजते
हैं ॥ ४ ॥ यदि वहही परमेश्वर अपना आत्मा जनाता है तब वे जानते हैं और अपनी इच्छासे कोई उसे नहीं जानसकते ॥ ५ ॥ सब जगह स्थित
हुये भी महेश्वर मूर्खबुद्धियोंसे नहीं जाने जाते, जो मन और बाणीसे परे हैं सो देववत् संसारमें जानेजाते हैं ॥ ६ ॥ हे परमर्षे ! इस विषयमें पुराने

इतिहासको कहते हैं हे तात ! परमज्ञानके कारण उस इतिहासको श्रद्धासे सुनो ॥ ७ ॥ सुमेरु पर्वतके मनोहर शिखरपर बैठे हुये परमेश्वर, ब्रह्माजीके समीप देवता तथा ऋषिगण श्रेष्ठ तत्त्व जाननेकी इच्छासे गये ॥ ८ ॥ वे सब मुनीश्वर वहां जाके ब्रह्माजीको नमस्कार करके बड़े आदरसे अंजलि बांधे, कंधे झुकाये उनसे पूँछनेलगे ॥ ९ ॥ देवर्षि बोले, हे देवदेव ! हे प्रजानाथ ! हे सृष्टिकर्ता ! हे लोकनायक ! आप हमसे सत्य कहिये कि एक अविनाशी तत्त्व क्या है ? ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, कि महेश्वरकी मायासे मोहित हुए ब्रह्माजी परम भावको न जानकर उस भावको कहनेलगे ॥ ११ ॥

मेरुशृङ्गेऽद्भुते रम्ये स्थितम्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥ जग्मुर्देवर्षयः सर्व्वे सुतत्त्वं ज्ञातुमिच्छया ॥ ८ ॥ तत्रागत्य विधिन्नत्वा पप्रच्छुस्ते महा
दरात् ॥ कृताञ्जलिपुटास्सर्वे नतस्कन्धा मुनीश्वराः ॥ ९ ॥ देवर्षय ऊचुः ॥ देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकृल्लोकनायक ॥ तत्त्वतो वद चास्म
भ्यं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ स मायया महेशस्य मोहितः पद्मसम्भवः ॥ अविज्ञाय परम्भावं संभावं
प्रत्युवाच ह ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे सुरा ऋषयः सर्व्वे सुमत्या शृणुतादरात् ॥ वच्म्यहं परमं तत्त्वमव्ययं वै यथार्थतः ॥ १२ ॥
जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः ॥ अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः ॥ १३ ॥ प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्त्तकः ॥
संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित्सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तस्यैवं वदतो धातुर्विष्णुस्तत्र स्थितो मुने ॥ प्रोवाच
प्रहसन्वाक्यं संक्रुद्धो मोहितोऽजया ॥१५॥ न चैतदुचिता ब्रह्मन्योगयुक्तस्य मूर्खता ॥ अविज्ञाय परं तत्त्वं वृथैतत्ते निगद्यते ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले, हे ऋषियो !!! हे देवताओ !!! मन लगाय अच्छीबुद्धिसे सुनो मैं परम अविनाशी तत्त्वको यथार्थ रूपसे कहताहूं ॥ १२ ॥ मैं ही एक संसारका उत्पन्न करनेवाला तथा धारण करनेवाला, स्वयं, प्रगट होनेवाला, अज एकमात्र ईश्वर, अनादि, भोक्ता, हूं ब्रह्म तथा एक निरंजन आत्मा हूं ॥ १३ ॥ संसारको प्रवृत्त और निवृत्त करनेवाला मैं ही हूं हे देवताओ ! कोईभी देवता मुझसे अधिक प्रवर्तक नहींहै ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! ब्रह्माजी ऐसा कहरहे थे और विष्णुजी वहां स्थित थे, और मायासे मोहित हो हंसतेहुए क्रुद्धवाणीसे बोले ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप योगमें युक्तहो, आपको

ऐसी मूर्खता उचित नहींहै आप परम तत्त्वको न जानकर ऐसा वृथाही कहतेहैं ॥ १६ ॥ संपूर्ण लोकोंके कर्त्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञ, नारायणदेव, मायाधीश, परमगति हैं ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरी आज्ञाहीसे तुम इस सृष्टिको करतेहो संसारमें मेरा अनादर करके जीवन नहीं होसकता ॥ १८ ॥ इसप्रकार प्रकृतिसे मोहित होकर, परस्पर विजयकी इच्छा करतेहुए ब्रह्मा और विष्णुजी अपने प्रमाणमें वेदोंको शास्त्रोंको कहनेलगे ॥ १९ ॥ कि विशेषकर इन चारों वेदोंसे पूछना चाहिये, वे चारों वेद मूर्ति धारण कियेहुए स्थित हैं वेही इसबातका प्रमाण जानतेहैं ॥ २० ॥ ब्रह्मा और विष्णुजी बोले, हे वेदो !!!

कर्ता वै सर्वलोकानां परमात्मा परः पुमान् ॥ यज्ञो नारायणो देवो मायाधीशः परा गतिः ॥ १७ ॥ ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन्सृष्टिरेषा विधीयते ॥ जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम् ॥ १८ ॥ एवं त्रिप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ ॥ प्रोचतुर्निगमांश्चात्र प्रमाणे सर्वथा तनौ ॥ १९ ॥ प्रष्टव्यास्ते विशेषेण स्थिता मूर्तिधराश्च ते ॥ पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानित्युक्त्वा चतुरोऽपि तान् ॥ २० ॥ विधिविष्णू ऊचतुः ॥ वेदाः प्रमाणं सर्व्वत्र प्रतिष्ठा परमामिताः ॥ यूयं वदत विश्रब्धं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य तयोर्वाचं पुनस्ते हि ऋगादयः ॥ अवदंस्तत्त्वतः सर्व्वे संस्मरतो परं प्रभुम् ॥ २२ ॥ यदि मान्या वयन्देवौ सृष्टिस्थितिकरौ विभू ॥ तदा प्रमाणं वक्ष्यामो भवत्सन्देहभेदकम् ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ श्रुत्युक्तविधिमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ सुरौ श्रुतीः ॥ युष्मदुक्तं प्रमाणं नौ किन्तत्त्वं सम्यगुच्यताम् ॥ २४ ॥ ऋग्वेद उवाच ॥ यदन्तस्स्थानि भूतानि यतस्सर्व्वम्प्रवर्त्तते ॥ यदाहुः परमन्तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एव हि ॥ २५ ॥

सर्वत्र आपका प्रमाणहै आपकी प्रतिष्ठा बडी है आप विश्वास योग्य कहिये कि अविनाशी एक तत्त्व क्या ? है ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार उन ब्रह्मा विष्णुके वचन सुनकर वे, ऋक्, यजु आदि चारों वेद, परेश, प्रभुशिवको स्मरण करते हुए तत्त्वसे बोले ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे सृष्टिकी स्थिति करनेवाले ! देवताओ ! यदि हम माननीय हैं तो आपके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको कहते हैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, वेदोंसे कही विधिको सुनकर वे दोनों ब्रह्मा, विष्णु वेदोंसे बोले, कि जो कुछ तुम कहोगे, हम दोनों प्रमाण करैंगे, आप सम्यक् प्रकार कहिये ॥ २४ ॥ ऋग्वेदने कहा जिसके

भीतर संपूर्ण भूत हैं तथा जिससे सबकुछ प्रवृत्त होताहै, और जिसको परमतत्त्व कहते हैं वह एक रुद्रही हैं ॥ २५ ॥ यजुर्वेदने कहा, जो ईश्वर संपूर्ण यज्ञोंसे तथा योगसे यजन किया जाताहै जिसके द्वारा हमारा प्रमाण होताहै वह एक सबका देखनेवाला शिव है ॥ २६ ॥ सामवेद बोला, जिसके द्वारा सबजीव संसारमें भ्रमते हैं, जिसे योगीजन ढूंढते हैं जिसकी कान्तिसे संपूर्ण संसार प्रकाशित होरहाहै वही एक त्र्यम्बक शिव हैं ॥ २७ ॥ अथर्ववेद बोला, जिस देवेश्वरको भक्तजन भक्तिके द्वारा साक्षत्कार करते हैं, वही एक कैवल्य, दुःखोंसे परे, शंकर हैं ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार वेदोंके वचन

यजुर्वेद उवाच ॥ यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समिज्यते ॥ येन प्रमाणं खलु नस्स एकः सर्व्वदृक् छिवः ॥ २६ ॥ सामवेद उवाच ॥ येनेदम्भ्रम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते ॥ यद्भासा भासते विश्वं स एकस्त्र्यम्बकः परः ॥ २७ ॥ अथर्ववेद उवाच ॥ यं प्रपश्यन्ति देवेशम्भक्त्यनुग्रहिणो जनाः ॥ तमाहुरेकं कैवल्यं शंकरं दुःखतः परम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्यातीवमायाविमोहितौ ॥ स्मित्वाहतुर्विधिहरी निगमांस्तान्विचेतनौ ॥ २९ ॥ विधिहरी ऊचतुः ॥ हे वेदाः किमिदं यूयम्भाषन्ते गतचेतनाः ॥ किञ्जातं वोऽद्य सर्व्वं हि नष्टं सुवयुनं परम् ॥ ३० ॥ कथम्प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम् ॥ दिगम्बरः पीतवर्णो शिवया धूलिधूसरः ॥ ३१ ॥ विरूपवेषो जटिलो वृषगो व्यालभूषणः ॥ परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्व च तत्संगवर्जितम् ॥ ३२ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रणवः सर्वगस्तयोः ॥ अमूर्त्तो मूर्तिमान्प्रीत्या जृम्भमाण उवाच तौ ॥ ३३ ॥

सुनकर बडी मायासे मोहित हुए, ब्रह्मा, विष्णु विस्मित, विचेतन हुए उन वेदोंसे बोले ॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णु बोले, हे वेदो ! तुम ज्ञानरहित होकर यह क्या कहते हो ? आज तुमको क्या हुआ ? क्या सब विचार नष्ट होगया ? ॥ ३० ॥ यह प्रमथनाथ शिव, निरन्तर शिवासे रमण करतेहुए नग्न, पीतवर्ण, धूलिसे लिप्तहुए, कैसे परमतत्त्व हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ कुरूपवेषधारी, जटा बढाए, बैलपर चढनेवाले, साँपोंके भूषणधारी, निस्संग, शिवजी परब्रह्म कैसे हो सकते हैं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार उन दोनोंके वचन सुनकर सब स्थानोंमें स्थित, अमूर्त और मूर्तिमान् ओंकार प्रीतिपूर्वक उन दोनोंसे बोला ॥ ३३ ॥

ओंकार बोला, लीलारूपधारी भगवान् रुद्र शिव अपनी शक्तिके विना रमण नहीं करसकते हैं ॥ ३४ ॥ यह परमेश्वर शिवजी स्वयम्भु सनातन ज्योति स्वरूप हैं और उनकी आनंदरूपा शक्ति आगन्तुकी नहीं किन्तु नित्य है ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय ओंकारके इस प्रकार कहनेपर भी शिवजीकी मायासे मोहित होनेके कारण ब्रह्मा, विष्णुका अज्ञान नाशको प्राप्त न हुआ ॥ ३६ ॥ तब उन दोनोंके बीचमें बडी ज्योति प्रगट हुई जो अपने प्रकाशसे भूमि आकाशको पूर्णकर रहीथी ॥ ३७ ॥ उस ज्योतिसमूहके मध्यमें स्थित अद्भुत शरीरधारी एक पुरुषको ब्रह्मा और विष्णुजीने देखा ॥ ३८ ॥ तब

प्रणव उवाच ॥ न हीशो भगवाञ्छक्त्या ह्यात्मनो व्यतिरिक्तया ॥ कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरो हरः ॥ ३४ ॥ असौ हि परमेशानस्स्वयंज्योतिस्सनातनः ॥ आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवमुक्तोऽपि तदा विधेर्विष्णोश्च वै तदा ॥ नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया ॥ ३६ ॥ प्रादुरासीत्ततो ज्योतिरुभयोरन्तरे महत् ॥ पूरयन्निजया भासा द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः ॥ विधिक्रतुभ्यां तत्रैव महाद्भुततनुर्मुने ॥ ३८ ॥ प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ आवयोरन्तरे कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम् ॥ ३९ ॥ विधिः संभावयेद्यावत्तावत्स त्रिविलोचनः ॥ दृष्टः क्षणेन च महापुरुषो नीललोहितः ॥ ४० ॥ त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः ॥ हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा विहसन्प्राह मोहितः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नीललोहित जाने त्वां माभैषीश्चन्द्रशेखर ॥ भालस्थलान्मम पुरा रुद्रः प्रादुरभूद्भवान् ॥ ४२ ॥ रोदनाद्रुद्रनामापि योजितोऽसि मया पुरा ॥ मामेव शरणं याहि पुत्र रक्षाङ्करोमि ते ॥ ४३ ॥

क्रोधसे ब्रह्माका पांचवां शिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्यमें यह पुरुषाकारको कौन धारण किये हैं ॥ ३९ ॥ जबतक ब्रह्माजी विचार करैं कि तबतक वह त्रिलोचन महापुरुष नीललोहित शिव क्षणमात्रमें दिखाई दिये ॥ ४० ॥ त्रिशूल हाथमें लिये भाललोचन सर्प और चन्द्रमाके भूषण धारे शंकरको देख मोहित हुए ब्रह्माजी बोले ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे नीललोहित ! हे चन्द्रशेखर ! हे रुद्र ! भय मत करो मैं तुमको जानताहूं मेरे माथेसे आप पहले प्रगट हुए थे ॥ ४२ ॥ और रोनेके कारण मैंनेही तुम्हारा रुद्र नाम रक्खा था, हे पुत्र ! मेरी शरणमें आओ मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा ॥ ४३ ॥

नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! तब शिवजीने इस प्रकार अहंकारभरी ब्रह्माकी वाणी सुनकर बडा क्रोध किया मानों प्रलयही करदेंगे ॥ ४४ ॥ तब परमेश्वरने क्रोधसे एक भैरवपुरुषको उत्पन्न किया और क्रोधसे प्रज्वलित हुए उस पुरुषसे महेश्वर कहने लगे ॥ ॥ ४५ ॥ ईश्वर बोले, हे कालभैरव ! पहले तुम इन कमलभव ब्रह्माको शासन करो, तुम साक्षात् कालके समान शोभित हो, इससे कालराज नामसे विख्यात होगे ॥ ४६ ॥ संसारके पालन करनेमें तुम समर्थ हो भीषण होनेसे भैरव हो आपसे कालभी डरता है इस कारण आप कालभैरव हो ॥ ४७ ॥ तुम रुष्ट होकर दुष्टात्माओंको नष्ट करसकोगे, इस कारण तुम आमर्दक नामसे सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होगे ॥ ४८ ॥ जिसकारण कि आप भक्तोंके पाप तत्काल नाश करोगे इस कारण तुम्हारा पापभक्षण नाम होगा ॥ ४९ ॥ हे कालराज ! मेरी मुक्तिपुरी काशी सब पुरियोंसे बडी है तुमको सदा उसका आधिपत्य प्राप्त रहैगा ॥ ५० ॥ उस पुरीमें जो पापी पुरुष हैं उनको तुमही दंड देनेवाले होगे, वहांके शुभ और अशुभ कर्मको चित्रगुप्त लिखैंगे ॥ ५१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इन वरोंको ग्रहणकर कालभैरवने तत्क्षण बाईं अंगुलियोंके नखाग्र भागसे ब्रह्माका शिर काटलिया ॥ ५२ ॥ जो अंग अपराध करता है उसकोही दंड देना चाहिये इस कारण जिसने निन्दाकी

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वा गर्ववतीं गिरम् ॥ चुकोपातीव च तदा कुर्वन्निव लयम्मुने ॥ ४४ ॥ स कोपतस्समु
त्पाद्य पुरुषं भैरवं क्वचित् ॥ प्रज्वलन्तं सुमहसा प्रीत्या च परमेश्वरः ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्राक्च पंकजजन्मासौ शास्यस्ते
कालभैरव ॥ कालवद्राजसे साक्षात्कालराजस्ततो भवान् ॥ ४६ ॥ विश्वं भर्त्तुं समर्थोसि भीषणाद्भैरवः स्मृतः ॥ त्वत्तो भेष्यति कालो
ऽपि ततस्त्वं कालभैरवः ॥ ४७ ॥ आमर्दयिष्यति भवान्रुष्टो दुष्टात्मनो यतः ॥ आमर्दक इति ख्यातिं ततस्सर्वत्र यास्यासि ॥ ४८ ॥
यतः पापानि भक्तानां भक्षयिष्यसि तत्क्षणात् ॥ पापभक्षण इत्येव तव नाम भविष्यति ॥ ४९ ॥ या मे मुक्तिपुरी काशी सर्व्वाभ्योऽ
हि गरीयसी ॥ आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि ॥ ५० ॥ तत्र ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि ॥ शुभाशुभं च तत्कर्म
चित्रगुप्तो लिखिष्यति ॥ ५१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतान्वरान्प्रगृह्याथ तत्क्षणात्कालभैरवः ॥ वामांगुलिनखाग्रेण चकर्त च
विधेश्शिरः ॥ ५२ ॥ यदंगमपराध्नोति कार्यं तस्यैव शासनम् ॥ अतो येन कृता निन्दा तच्छिन्नम्पञ्चमं शिरः ॥ ५३ ॥

उसी पांचवें शिरको काट दिया ॥ ५३ ॥ तब ब्रह्माके शिरको कटा हुआ देखकर विष्णु भयभीत हुए शतरुद्रियके मंत्रोंके पाठसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥ भयभीत हुए ब्रह्माजीभी शतरुद्रियमंत्र जपने लगे हे मुने ! उस समय वे दोनों अहंकारशून्य हुए ॥ ५५ ॥ परब्रह्म शिवही साक्षात् सच्चिदानंद स्वरूपहैं परमात्माहैं गुणोंसे परे हैं ऐसा ज्ञान उन दोनोंको प्राप्त हुआ ॥५६॥ हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! मेरे परम शुभ वचनको सुनो जबतक अहंकार रहताहै तबतक ज्ञान छिपा रहताहै ॥ ५७ ॥ पुरुष अभिमानको त्यागन करके परमेश्वरको जानता है, वह विश्वपति गर्व करनेवालेको नष्ट करतेहैं क्योंकि अहंकारके विनाशकहैं ॥ ५८ ॥ तब परमेश्वर ब्रह्मा, और विष्णुको अहंकाररहित जानकर प्रसन्न हुए, और महादेवने उन दोनोंको अभयदान दिया ॥ ५९ ॥ भक्तवत्सल महादेव प्रसन्न होकर उन दोनोंको ढाढस बंधाते हुए अपनी कपर्दिनी भैरव मूर्तिसे बोले ॥ ६० ॥ महादेवजी बोले, तुम इन विष्णु तथा ब्रह्माजीका मान करते हो हे नीललोहित ! तुम इस ब्रह्माके कपालको धारण करो ॥ ६१ ॥ संसारमें ब्रह्महत्याके दूर करनेके अर्थ तुम व्रत धारण करो, और कपालव्रतको आश्रय करके भिक्षावृत्ति करो ॥ ६२ ॥ यह कहकर उनके देखतेही एक ब्रह्महत्यानामक कन्याको उत्पन्नकर

अथ च्छिन्नं विधिशिरो दृष्ट्वा भीततरो हरिः ॥ शातरुद्रियमन्त्रैश्च भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥ ५४ ॥ भीतो हिरण्यगर्भोऽपि जजाप शतरुद्रियम् ॥ इत्थं तौ गतगर्वौ हि संजातौ तत्क्षणान्मुने ॥ ५५ ॥ परब्रह्म शिवः साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ परमात्मा गुणातीत इति ज्ञानमवापतुः ॥ ५६ ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु मे परमं शुभम् ॥ यावद्गर्वो भवेत्तावज्ज्ञानगुप्तिर्विशेषतः ॥ ५७ ॥ त्यक्ताभिमानं पुरुषो जानाति परमेश्वरम् ॥ गर्विणं हन्ति विश्वेशो जातो गर्वापहारकः ॥ ५८ ॥ अथ विष्णुविधी ज्ञात्वा विगर्वौ परमेश्वरः ॥ प्रसन्नोऽभून्महादेवोऽकरोत्तावभयौ प्रभुः ॥ ५९ ॥ आश्वास्य तौ महादेवः प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ प्राह स्वां मूर्त्तिमपरां भैरवन्तं कपर्दिनम् ॥ ६० ॥ महादेव उवाच ॥ त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम् ॥ कपालम्वैधसम्वापि नीललोहित धारय ॥ ॥ ६१ ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शय ॥ चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य तेजोरूपः शिवोऽब्रवीत् ॥ उत्पाद्य चैकां कन्यान्तु ब्रह्महत्याभिविश्रुताम् ॥ ६३ ॥

तेजोरूप शिवजी बोले ॥ ६३ ॥ जबतक यह कन्या दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुँचे तबतक भयंकर रूप धारण करके तुम उसके आगेही चले जाओ॥६४॥
उससे कहना कि केवल वाराणसी पुरीको छोडकर और सब जगह तेरा प्रवेश रहैगा, जभी वाराणसीमें जायगी उसी समय तू मुक्त होजायगी ॥ ६५ ॥
नन्दीश्वर बोले,महाअद्भुत,परम प्रभु, शिवजी उस समय उस ब्रह्महत्याको इसप्रकार प्रवृत्तकराके अन्तर्द्धान होगये ॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां
तृ० श० रु० भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ सनत्कुमार! भैरवकी दूसरी कथाको प्रीतिपूर्वक सुनो जो महा

यावद्वाराणसीन्दिव्याम्पुरीमेषां गमिष्यति ॥ तावत्त्वं भीषणे कालमनुगच्छोग्ररूपिणम् ॥६४॥ सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीं
पुरीम् ॥ वाराणसीं यदा गच्छेत्तन्मुक्ता भव तत्क्षणात् ॥ ६५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ नियोज्य तामिति तदा ब्रह्महत्यां च ताम्प्रभुः ॥
महाद्भुतश्च स शिवोऽप्यन्तर्धानमगात्ततः ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽ
ध्यायः ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ भैरवीमपरां कथाम् ॥ शृणु प्रीत्या महादोषसंहर्त्रीम्भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ १ ॥
तत्सान्निध्यं भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालनः ॥ स देवदेववाक्येन बिभ्रत्कापालिकं व्रतम् ॥ २ ॥ कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार
भुवनत्रयम् ॥ नात्याक्षीच्चापि तं देवं ब्रह्महत्यापि दारुणा ॥ ३ ॥ प्रतितीर्थं भ्रमन्वापि विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ अतः कामारिमहिमा
सर्वोपि ह्यवगम्यताम् ॥ ४ ॥ प्रमथैः सेव्यमानोऽपि ह्येकदा विहरन्हरः ॥ कापालिको ययौ स्वैरी नारायणनिकेतनम् ॥ ५ ॥ अथा
यान्तं महाकालं त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् ॥ महादेवांशसम्भूतं पूर्णाकारं च भैरवम् ॥ ६ ॥

दोषोंको हरनेवाली और भक्तिकी बढानेवाली है ॥ १ ॥ शंकरकी समीपतासे भैरवजी कालके भी काल हुए और उन्होंने महादेवकी आज्ञासे कापालिकव्रत
धारण किया ॥ २ ॥ वह विश्वात्मा कपाल हाथमें लेकर तीनों लोकोंमें विचरने लगे और उस कठिन ब्रह्महत्याने कहींभी उनका पीछा न छोडा ॥ ३ ॥
वे प्रत्येक तीर्थमें भी भ्रमण करते हुए तथापि ब्रह्महत्यासे न छुटे, इसकारण शिवजीकी महिमा अद्भुत जाननी चाहिये ॥ ४ ॥ एक समय प्रमथोंसे सेवित
हुए शिवजी विहार करते २ कापालिक वेष धारे स्वतंत्र हो नारायणके स्थानको गये ॥५॥ उस समय महाकाल, तीननेत्र, सर्पोंके कुंडलधारे, महादेवके

अंशसे उत्पन्न, पूर्णाकारवाले, भैरवको आता हुआ देखा ॥ ६ ॥ विष्णु भगवानने उनको दंडवत की, देवता, मुनि और देवस्त्रियें चारों ओरसे उनके समीप आईं ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मीके स्वामी विष्णुजीने इनको प्रणाम कर मस्तकपर अंजलियुक्त हाथ करके अनेक स्तुतियोंसे सन्तुष्ट किया ॥ ८ ॥ उस समय आनंदसहित प्रसन्नात्मा विष्णुजीने क्षीरसागरके मथनेसे उत्पन्न हुई कमलालया लक्ष्मीसे कहा ॥ ९ ॥ विष्णु बोले, हे प्रिये ! हे कमलनयने ! हे अनघे ! हे सुभगे ! तुम धन्यहो हे देवि ! हे सुन्दरश्रोणिवाली ! मैं धन्यहूं जो हम दोनोंने जगत्पति शिवका दर्शन किया ॥ १० ॥ यह लोकोंके धारण करने

पपात दण्डवद्भूमौ तं दृष्ट्वा गरुडध्वजः ॥ देवाश्च मुनयश्चैव देवनार्य्यः समन्ततः ॥ ७ ॥ अथ विष्णुः प्रणम्यैनं प्रयातः कमलापतिः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव विविधैः स्तवः ॥ ८ ॥ सानन्दोऽथ हरिः प्राह प्रसन्नात्मा महामुने ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतां पद्मां पद्मालयां मुदा ॥ ९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रिये पश्याब्जनयने धन्यासि सुभगेऽनघे ॥ धन्योऽहं देवि सुश्रोणि यत्पश्यावो जगत्पतिम् ॥ १० ॥ अयन्धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः ॥ अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसंमितः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञः सर्वयोगीशस्सर्वभूतैकनायकः ॥ सर्वभूतान्तरात्मायं सर्वेषां सर्वदः सदा ॥ १२ ॥ ये विनिद्रा विनिश्वासाः शान्ता ध्यानपरायणाः ॥ धिया पश्यंति हृदये सोयं पद्मे समीक्षताम् ॥ १३ ॥ यं विदुर्व्वेदतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः ॥ अरूपो रूपवान्भूत्वा सोऽयमायाति सवर्गः ॥ १४ ॥ अहो विचित्रं देवस्य चेष्टितम्परमेष्ठिनः ॥ यस्याख्यां ब्रुवतो नित्यं न देहः सोऽपि देहभृत् ॥ १६ ॥

वाले, विधाता, प्रभु, ईश्वर, हैं अनादि, शरण, शान्त, छब्बीस तत्त्वोंसे सम्मिलित हैं ॥ ११ ॥ यही सर्वज्ञ, सब योगियोंमे ईश्वर, सब भूतोंके एक स्वामी, सब प्राणियोंके अन्तर्यामी, सबोंको सदा सब कछ देनेवाले हैं ॥ १२ ॥ हे देवि ! जिनको निद्रा त्यागकर, श्वास रोककर, शान्त समाधिवाले, ध्यानमें तत्पर, योगीजन बुद्धिके द्वारा अपने हृदयमें देखतेहैं यह वही हैं इनको देखो ॥ १३ ॥ जिनको वेदतत्त्वके जाननेवाले योगी, स्थिरमनसे जानतेहैं वही सर्वव्यापक, रूपरहित, सगुण रूप धारण करके यहां प्राप्त हुए हैं ॥ १४ ॥ अहो उन देवकी विचित्र चेष्टा है कि जिनके चरित्र वर्णन करनेवाले मनुष्यको

फिर देह धारण करना नहीं पडता ॥१५॥ उनके दर्शन करके मनुष्य फिर पृथिवीमें जन्म नहीं लेता, वही यह चन्द्रशेखर, त्र्यम्बक, शिव भगवान् आज पधारेहैं ॥ १६ ॥ आज मेरे कमलके समान दीर्घ नेत्र सफल हुए हे लक्ष्मि ! जिन नेत्रोंसे साक्षात् महादेवका दर्शन किया ॥१७॥ उन देवताओंके पदको धिक्कारहै कि जिन्होंने शंकरको नहीं देखा, जिनसे निर्वाण (शान्ति) प्राप्त होती है, और जो समस्त दुःखोंके नाश करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ जो देवेश शिवको देखकर मुक्ति प्राप्त न की तो देवलोकमें इससे अशुभ और क्या होगा ? ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर प्रसन्न और पुलकायमान शरीरवाले भगवान् विष्णुजी

तं दृष्ट्वा न पुनर्जन्म लभ्यते मानवैर्भुवि ॥ सोयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकश्शशिभूषणः ॥ १६ ॥ पुण्डरीकदलायामे धन्ये मेऽद्य विलोचने ॥ यद्दृश्यते महादेवो ह्याभ्यां लक्ष्मि महेश्वरः ॥ १७ ॥ धिग्धिक्पदन्तु देवानां परं दृष्ट्वा न शंकरम् ॥ लभ्यते यत्र निर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तु यत् ॥ १८ ॥ देवत्वादशुभं किञ्चिद्देवलोके न विद्यते ॥ दृष्ट्वापि सर्वे देवेशं यन्मुक्तिन्न लभामहे ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशस्संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ प्रणिपत्य महादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ २० ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमिदन्देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो ॥ क्रियते जगतां धात्रा सर्वपापहराव्यय ॥ २१ ॥ क्रीडेयन्तव देवेश त्रिलोचन महामते ॥ किङ्कारणं विरूपाक्ष चेष्टितन्ते स्मरार्दन ॥ २२ ॥ किमर्थं भगवञ्छम्भो भिक्षाश्चरासि शक्तिप ॥ संशयो मे जगन्नाथ एष त्रैलोक्यराज्यद ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्तस्ततः शम्भुर्विष्णुना भैरवो हरः ॥ प्रत्युवाचाद्भुतोतिस्स विष्णुं हि विहसन्प्रभुः ॥ २४ ॥ भैरव उवाच ॥ ॥ ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्नमङ्गुल्याग्रनखेन ह ॥ तदघम्प्रतिहन्तुं हि चराम्येतद्व्रतं शुभम् ॥ २५ ॥

उन शिवजीसे बोले ॥ २० ॥ विष्णु बोले, हे विभो ! देवोंकेदेव ! सर्वज्ञ ! सब पापके हरनेवाले ! अविनाशी ! आप यह भ्रमण क्यों करते हो ॥ २१ ॥ हे त्रिलोचन ! हे महामते ! यह तुम्हारी क्रीडा किसकारण हुईहै, हे कामारी ! हे विरूपाक्ष ! यह क्या आपकी चेष्टाहै ? ॥२२॥ हे भगवन् ! हे शंभो ! हे शक्तिपते ! आप किसकारण भिक्षा मांगते फिरतेहो ? हे त्रिलोकीके राज्य देनेवाले ! हे जगन्नाथ ! यह मुझे अति सन्देह है ? ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, जब इस प्रकारसे विष्णुजीने कहा तब भगवान् भैरवजी हँसकर इस अद्भुत कथाको फिर विष्णुसे कहने लगे ॥ २४ ॥ भैरव बोले, अंगुलीके नखाग्रसे

ब्रह्माका शिर काटा था, उस पापके दूर करनेको इस शुभ व्रतका अनुष्ठान करता हूं ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार लक्ष्मीपति विष्णुसे भैरव महेश्वरने कहा तब फिर कुछ स्मरण करके शिरझुकाय विष्णुजी बोले ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले, हे सब विघ्नोंके दूर करनेवाले भैरवजी ! आपकी जैसी इच्छाहो वैसी क्रीडा करो हे महादेव ! पर मुझे अपनी मायासे मोहित मत कीजिये ॥ २७ ॥ हे विभो ! प्रत्येक कल्पमें आपके नाभिकमलसे सत्ययोगद्वारा करोडों ब्रह्माण्ड प्रगट हुए हैं ॥ २८ ॥ हे देव ! इस अपनी मायाको त्यागन करो यह अकृतात्माओंको बडी कठिन है आपकी मायासे ब्रह्मादि सब देवता मोहित

नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्तो महेशेन भैरवेण रमापतिः ॥ स्मृत्वा किंचिन्नतशिराः पुनरेवमजिज्ञपत ॥ २६ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ यथेच्छसि तथा क्रीड सर्वविघ्नोपनोदक ॥ मायया मां महादेव नाच्छादयितुमर्हसि ॥ २७ ॥ नाभीकमलकोशात्तु कोटिशः कमलासनाः ॥ कल्पेकल्पे पुरा ह्यासन्सत्यं योगबलाद्विभो ॥ २८ ॥ त्यज मायामिमान्देव दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ब्रह्मादयो महादेव मायया तव मोहिताः ॥ २९ ॥ यथावदनुगच्छामि चेष्टितन्ते शिवापते ॥ तवैवानुग्रहाच्छम्भो सर्वेश्वर सतांगते ॥ ३० ॥ संहारकाले संप्राप्ते सदेवान्निखिलान्मुनीन् ॥ लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदा हर ॥ ३१ ॥ तदा कृते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ पारतन्त्र्यं न ते शम्भो स्वैरं क्रीडत्यतो भवान् ॥ ३२ ॥ अर्वीव ब्रह्मणो ह्यस्थ्नां स्रक्कण्ठे तव भासते ॥ तथाप्यनुगता शम्भो ब्रह्महत्या तवानघ ॥ ३३ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं यस्त्वां स्मरति मानवः ॥ आधारं जगतामीश तस्य पापं विलीयते ॥ ३४ ॥

हो रहे हैं ॥ २९ ॥ हे सबके ईश्वर ! हे सत्पुरुषोंकी गति ! हे पार्वतीपति ! मैं आपकेही अनुग्रहसे आपकी चेष्टाको यथावत् जानता हूं ॥ ३० ॥ संहार कालके प्राप्त होनेपर सब देवता और मुनियोंको लोक और वर्णाश्रमियोंको जब आप हरण करेंगे ॥ ३१ ॥ हे महादेव ! उस समय क्या ब्रह्मवध आदि पाप आपको लगैगा ? हे शिव ! आप पराधीन नहीं हैं आप स्वतंत्रतासे क्रीडा करते हैं ॥ ३२ ॥ अर्घीकी समान ब्रह्माकी अस्थिकी माला आपके कंठमें विराजती है हे पापरहित शिव ! तो भी आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है ॥ ३३ ॥ पापको करके भी जो मनुष्य तुमको स्मरण करता है हे संसारके

आधार ! उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार सूर्यके समीप अंधकार नहीं रहता उसी प्रकार जो तुम्हारा भक्त होता है उसका पाप नाशको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जो पुण्यात्मा आपके चरणाम्बुजोंका स्मरण करताहै उसके किये भये ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट होजातेहैं ॥ ३६ ॥ हे जगत्पते ! जिस मनुष्यकी वाणी तुम्हारे नाममें अनुरागवाली होतीहै उसे पहाडके कूटके समान पाप भी नहीं बाधा दे सकता ॥ ३७ ॥ हे परमात्मन् ! हे परमधाम ! अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले ! हे ईश्वर ! हे दयामय ! यह आपका कुतूहलमात्र है ॥ ३८ ॥ हे देवेश ! आज मैं धन्य हूं जिसको योगीजन

यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः ॥ तथैव तव यो भक्तः पापन्तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३५ ॥ यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाम्बुजद्वयम् ॥ ब्रह्महत्याकृतमपि पापन्तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३६ ॥ तव नामानुरक्ता वाग्यस्य पुंसो जगत्पते ॥ अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुबाधते ॥ ३७ ॥ परमात्मन्परन्धाम स्वेच्छाभिधृतविग्रह ॥ कुतूहलं तवेशेदं कृपणाधीनतेश्वर ॥ ३८ ॥ अद्य धन्योऽस्मि देवेश यन्न पश्यंति योगिनः ॥ पश्यामि तं जगन्मूर्त्तिं परमेश्वरमव्ययम् ॥ ३९ ॥ अद्य मे परमो लाभस्त्वद्य मे मंगलं परम् ॥ तं दृष्ट्वामृततृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गकम् ॥ ४० ॥ इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मया तया ॥ मनोरथवती नाम भिक्षा पात्रे समर्पिता ॥ ४१ ॥ भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा ॥ अन्यत्रापि महादेवो भैरवश्चात्तविग्रहः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वानुयायिनीं तान्तु समाहूय जनार्दनः ॥ संप्रार्थयद्ब्रह्महत्यां विमुंच त्वं त्रिशूलिनम् ॥ ४३ ॥ ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ अनेनापि मिषेणाहं संसेव्यामुं वृषध्वजम् ॥ आत्मानम्पावयिष्यामि त्वपुनर्भवदर्शनम् ॥ ४४ ॥

भी नहीं देख सकते, उस जगन्मूर्तिरूप अविनाशी परमेश्वरको मैं देखता हूं ॥ ३९ ॥ आज मुझे परमलाभ और आज मेरा परम मंगलहै जो आपके अमृतरूपी दर्शनकरके स्वर्ग और अपवर्ग तृणके समान विदित होते हैं ॥४०॥ इस प्रकार गोविन्द विष्णुके कहनेपर उस निर्मल लक्ष्मीने मनोरथवती नाम भिक्षा उनके पात्रमें समर्पण की ॥ ४१ ॥ वह भैरवरूपधारी महादेवभी परम प्रसन्नहो भिक्षाटन करनेके निमित्त अन्यत्र चले गये ॥ ४२ ॥ विष्णुने उनके पीछे जानेवाली ब्रह्महत्याको देखकर उसे बुलाकर प्रार्थनापूर्वक कहा कि हे ब्रह्महत्ये ! तू शिवजीको छोड ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्या बोली कि इसहीं बहानेसे मैं

शिवकी सेवा करती हूं और शिवरूप भैरवका दर्शन करके मोक्षके निमित्त अपने आपको पवित्र करूंगी ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, जब विष्णुभगवान्के कहनेपरभी उस ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोडा तब हास्यमुखसे शंकररूप भैरवजी विष्णुजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भैरव बोले, हे लक्ष्मीपते ! हे मानदेनेवाले ! मैं तुम्हारे अमृतरूपी वचनोंसे सन्तुष्ट हुआहूं जो आप कहतेहैं यह सज्जनोंका स्वभावही है ॥ ४६ ॥ हे मोविन्द ! हे पापरहित ! तुम वर मांगो मैं वरदान देनेवालाहूं हे हरे ! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रणी हुए और विकाररहित हुए ॥ ४७ ॥ भिक्षुक लोग अतिसंस्कार कीहुई भिक्षासे वैसे प्रसन्न नहीं होते कि

नन्दीश्वर उवाच ॥ सा तत्याज न तत्पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ॥ तमूचेऽथ हरिं शंभुः स्मेरास्यो भैरवो वचः ॥४५॥ भैरव उवाच ॥ त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहुमानद ॥ स्वभावोऽयं हि साधूनां यत्त्वं वदसि मापते ॥ ४६ ॥ वरं वृणीष्व गोविंद वरदोऽस्मि तवाऽनघ ॥ अग्रणीर्ममभक्तानां त्वं हरे निर्विकारवान् ॥ ४७ ॥ नो माद्यन्ति तथा भैक्ष्यैर्भिक्षवोऽप्यतिसंस्कृतैः ॥ यथा मानसुधापानैर्ननु भिक्षाटनज्वराः ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः शंभोर्भैरवस्य परात्मनः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा समवोचन्महेश्वरम् ॥ ४९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम् ॥ पश्यामि त्वान्देवदेव मनोवाणीपथातिगम् ॥ ५० ॥ अदभ्रेयं सुधादृष्टिरनया मे महोत्सवः ॥ अयत्ननिधिलाभोऽयं वीक्षणं हर ते सताम् ॥ ५१ ॥ अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदंघ्रियुगलेन वै ॥ एष एव वरः शंभो नान्यं कश्चिद् वृणे वरम् ॥ ५२ ॥

जिस प्रकार वे भिक्षाटनरूपी पीडावाले मानरूपी अमृतके पान करनेसे प्रसन्न और तृप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले, विष्णुजी इस प्रकार परमात्मा भैरवके वचन सुनकर बडे प्रसन्नहो महेश्वरसे बोले ॥ ४९ ॥ विष्णुजी बोले, मेरा यही वर प्रशंसाके योग्य है कि सब देवताओंके स्वामी मन वाणीसे परे आपका मैं दर्शन करताहूं ॥ ५० ॥ यह मेरी अमृतमयी निर्मल दृष्टि हुई कि जिससे मुझे बडा उत्सव हुआ, हे शिव ! आपका दर्शन सत्पुरुषोंके निमित्त विनायत्न ही निधिका लाभ है ॥ ५१ ॥ हे देव ! आपके चरणयुगलसे मेरा कभी वियोग न हो मुझे यही वर दीजिये, हे शंभो ! इसके सिवाय मुझे

और कुछ वर नहीं चाहिये ॥ ५२ ॥ भैरवजी बोले, हे तात ! जो तुमने कहा है वैसाही होगा तुम सब देवताओंको वर देनेवाले होगे ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार ब्रह्मा इन्द्रआदि लोकोंमें विचरनेवाले भैरवजी विष्णुके ऊपर कृपाकरके अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीको चलेगये ॥ ५४ ॥ महाभयंकर आकारवाले भैरवजीके काशीमें पहुँचतेही ब्रह्महत्या हाहाकार करके उसीसमय पातालमें प्रवेश करगई ॥ ५५ ॥ तत्काल ब्रह्माजीका शिर भैरवजीके हाथसे छुटकर पृथिवीपर गिरपडा और वहां कपालमोचन तीर्थ विख्यात हुआ ॥ ५६ ॥ रुद्रने ब्रह्माके शिरको सबके सामने हाथसे गिरा देख बडे आनंदसे नृत्य किया ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्माका शिर भ्रमण करते नहीं गिरा कारण कि वह हाथमें दृढतासे चिपट रहाथा परन्तु काशीमें प्रवेश करतेही क्षणमात्रमें गिरपडा ॥ ५८ ॥ जो भैरवकी ब्रह्महत्या कहीं नष्ट न हुई वह काशीमें क्षणमात्रमें नष्ट होगई इस कारण काशी सदा सेवन करने योग्य है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य काशीमें कपालमोचन तीर्थका स्मरण करते हैं उनके इस जन्म और परजन्मके पाप शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥ ६० ॥ इस तीर्थमें आय विधिपूर्वक स्नान कर पितृ और देवताओंका तर्पण करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ ६१ ॥ भैरवजीने कपालमोचन तीर्थको निर्माण करके भक्तोंके पाप समूहोंको नष्ट करते

श्रीभैरव उवाच ॥ एवम्भवतु ते तात यत्त्वयोक्तं महामते ॥ सर्वेषामपि देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५३ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥ अनुगृह्येति दैत्यारिं केंद्राद्रिभुवनेचरम् ॥ भेजे विमुक्तनगरीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम् ॥ ५४ ॥ क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ ॥ हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्या पातालं चाविशत्तदा ॥ ५५ ॥ कपालं ब्रह्मणः सद्यो भैरवस्य करांबुजात् ॥ पपात भुवि तत्तीर्थमभूत्कापालमोचनम् ॥ ५६ ॥ कपालं ब्रह्मणो रुद्रस्सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ हस्तात्पतन्तमालोक्य ननर्त परया मुदा ॥ ५७ ॥ विधेः कपालं नामुंचत्करमत्यन्तदुस्सहम् ॥ परस्य भ्रमतः क्वापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत् ॥ ५८ ॥ शूलिनो ब्रह्मणो हत्या नापैति स्म च या क्वचित् ॥ सा काश्यां क्षणतो नष्टा तस्मात्सेव्या हि काशिका ॥ ५९ ॥ कपालमोचनं काश्यां यः स्मरेत्तीर्थमुत्तमम् ॥ इहान्यत्रापि यत्पापं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ ६० ॥ आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ तर्पयित्वा पितृन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ६१ ॥ कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः ॥ तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम् ॥ ६२ ॥

हुए वहीं निवास किया ॥ ६२ ॥ मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको सत्पुरुषोंके प्रिय भैरवात्मा परमेश्वर प्रगट हुए ॥६३॥ जो मनुष्य अगहन कृष्णाष्टमीको कालभैरवजीके समीप स्थित होकर व्रतसहित जागरण करताहै वह महापापोंसे छूट जाता है ॥ ६४ ॥ तथा अन्य स्थानमें स्थित होकरभी जो मनुष्य भक्तिसे उनके व्रतको जागरणसहित करैगा वह पापोंसे छूटकर श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होगा ॥ ६५ ॥ प्राणियोंने जो अनेक जन्मोंमें सहस्रों पाप कियेहैं कालभैरवके दर्शनमात्रसे वह सब नाश होजातेहैं ॥ ६६ ॥ जो पुरुष कालभैरवके भक्तोंका पाप करतेहैं वह मूर्ख दुःखी होकर कुगतिको प्राप्त होते हैं ॥

कृष्णाष्टम्यान्तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः ॥ आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सताम्प्रियः ॥ ६३ ॥ मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ ॥ उपोष्य जागरं कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते ॥६४॥ अन्यत्रापि नरो भक्त्या तद्व्रतं यः करिष्यति ॥ स जागरं महापापैर्मुक्तो यास्यति सद्गतिम् ॥ ६५ ॥ अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम् ॥ तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात् ॥ ६६ ॥ कालभैरवभक्तानां पातकानि करोति यः ॥ स मूढो दुःखितो भूत्वा पुनर्दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ विश्वेश्वरेऽपि ये भक्ता नो भक्ताः कालभैरवे ॥ ते लभन्ते महादुःखं काश्यां चैव विशेषतः ॥ ६८ ॥ वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः ॥ तस्य पापानि वर्द्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६९॥ कालराजं न यः काश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम् ॥ भजेत्तस्य क्षयं पुण्यं कृष्णपक्षे यथा शशी ॥ ७० ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यम्ब्रह्महत्यापनोदकम् ॥ भैरवोत्पत्तिसंज्ञं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७१ ॥

॥ ६७ ॥ जो शिवकी भक्ति करैं कालभैरवकी भक्ति न करैं काशीमें वे बडे दुःखको प्राप्त होतेहैं ॥ ६८ ॥ काशीमें निवास करके जो मनुष्य भैरवको नहीं भजता उसके पाप शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी समान बढते हैं ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य काशीमें रहकर कृष्णाष्टमी या मंगलके दिन कालराजको नहीं सेवन करता उसके पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी समान क्षीण होतेजातेहैं ॥ ७० ॥ इस ब्रह्महत्याके दूर करनेवाले भैरवोत्पत्तिनामक पवित्र इतिहासको सुनकर मनुष्य

सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ७१ ॥ कारागारमें स्थित हुआ अथवा इससेभी अधिक विपत्तिमें पडाहुआ मनुष्य भरवोत्पत्तिनामक कथाको सुनकर सब कष्टोंसे छूट जाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श०रु० भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ नन्दीश्वर बोले, हे प्रभो ! दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाला वीरभद्रनामक परमात्मा शिवकाही अवतार जानना चाहिये ॥ १ ॥ सो उनका चरित्र सतीचरित्रमें सम्पूर्ण कहाहै और तुमने बहुतप्रकार सुना इससे वह यहां बहुत विस्तारसे नहीं कहा ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके आगे शार्दूलनामक शिवका अवतार सुनो, मैं तुम्हारे स्नेहसे

बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्तोऽपि विपदम्पराम्॥प्रादुर्भावं भैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात्॥७२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ नंदीश्वर उवाच ॥ विध्वंसी दक्षयज्ञस्य वीरभद्राह्वयः प्रभो ॥ अवतारश्च विज्ञेयः शिवस्य परमात्मनः॥१॥सतीचारित्रे कथितं चारितं तस्य कृत्स्नशः ॥ श्रुतं त्वयापि बहुधा नातः प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥२॥ अतः परं मुनिश्रेष्ठ भवत्स्नेहाद्ब्रवीमि तत्॥ शार्दूलाख्यावतारं च शङ्करस्य प्रभोः शृणु ॥ ३ ॥ सदाशिवेन देवानां हितार्थं रूपमद्भुतम् ॥ शारभं च धृतन्दिव्यं ज्वलज्ज्वालासमप्रभम्॥ ४ ॥ शिवावतारा अमिताः सद्भक्तहितकारकाः ॥ सङ्ख्या न शक्यते कर्तुं तेषां च मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥ आकाशस्य च ताराणां रेणुकानां क्षितेस्तथा ॥ आसाराणां च वृद्धेन बहुकल्पैः कदापि हि ॥ ६ ॥ सङ्ख्या विशक्यते कर्तुं सुप्राज्ञैर्बहुजन्मभिः ॥ शिवावताराणां नैव सत्यं जानीहि मद्वचः ॥ ७ ॥ तथापि च यथाबुद्ध्या कथयामि यथाश्रुतम् ॥ चारित्रं शारभं दिव्यं परमैश्वर्य्यसूचकम् ॥ ८ ॥ जयश्च विजयश्चैव भवद्भिः शापितौ यदा ॥ तदा दितिसुतौ द्वौ तावभूतां कश्यपान्मुने ॥ ९ ॥

कहताहूं ॥ ३ ॥ सदाशिवने देवताओंके हितके निमित्त जलतेहुए अग्निके समान कांतिवाला अद्भुत शरभरूप धारण किया ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! भक्तोंके हित करनेवाले शिवके अवतार अनेकों हुएहैं उनकी संख्या करनेको कोईभी समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ आकाशके तारागणोंकी तथा पृथ्वीकी रेणुकाकी और मेघोंकी धाराकी कदाचित् बहुत कल्पोंमें ॥ ६ ॥ कोई बुद्धिमान् पुरुष बहुत जन्मोंमें संख्या करले, परन्तु शिवके अवतारोंकी संख्या नहीं है यह मेरा वचन सत्य जानो ॥ ७ ॥ तथापि मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा सुना है परम ऐश्वर्यसूचक दिव्य शारभ चरित्र कहताहूं ॥ ८ ॥ जिस समय आपने जय

विजय नामक द्वारपालोंको शाप दिया हे मुने ! तब वे दोनों दितिके पुत्र कश्यपसे हुए ॥९॥ पहला पुत्र हिरण्यकशिपु, दूसरा पुत्र बली हिरण्याक्ष दितिसे उत्पन्न हुआ यह देवर्षि पार्षद शापसे दैत्य उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ पहले ब्रह्माजीने पृथ्वीके उद्धारके अर्थ विष्णुसे प्रार्थना की जब विष्णुने वाराहरूप धरके हिरण्याक्षको मारा ॥ ११ ॥ उस वीर तथा प्राणोंके समान भाई हिरण्याक्षको माराहुआ सुन हिरण्यकशिपुने विष्णुभगवान्‌के ऊपर अतिक्रोध किया ॥ १२ ॥ और उसने दश सहस्र वर्षतक तप करके ब्रह्मासे वरदान प्राप्त किया कि आपकी सृष्टिमें मुझे कोईभी न मारै ॥ १३ ॥ शोणितनाम

हिरण्यकशिपुश्चाद्यो हिरण्याक्षोऽनुजो बली ॥ देवर्षिपार्षदौ जातौ तौ द्वावपि दितेस्सुतौ ॥ १० ॥ पृथ्व्युद्धारे विधात्रा वै प्रार्थितो हि पुरा प्रभुः ॥ हिरण्याक्षं जघानासौ विष्णुर्वाराहरूपधृक् ॥ ११ ॥ तं श्रुत्वा भ्रातरं वीरं निहतं प्राणसन्निभम् ॥ चुकोप हरयेऽतीव हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १२ ॥ वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप सः ॥ न कश्चिन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविति तुष्टतः ॥ १३ ॥ शोणिताख्यपुरं गत्वा देवानाहूय सर्व्वतः ॥ त्रिलोकीं स्ववशे कृत्वा चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ १४ ॥ देवर्षिकदनं चक्रे सर्वधर्मविलोपकः ॥ द्विजपीडाकरः पापी हिरण्यकशिपुर्मुने ॥१५॥ प्रह्लादेन स्वपुत्रेण हरिभक्तेन दैत्यराट् ॥ यदा विद्वेषमकरोद्धरिर्वैरे विशेषतः ॥ १६ ॥ सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविर्द्धुतम्मुने ॥ सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा ततः ॥ १७ ॥ सर्वथा मुनिशार्दूल करालं नृहरेर्व्वपुः ॥ प्रजज्वालातिभयदं त्रासयन्दैत्यसत्तमान् ॥ १८ ॥

नगरमें जाकर चारोंओरसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें करके अकंटक (निर्द्वन्द्व) राज्य करने लगा ॥१४॥ हे मुने ! वह हिरण्यकशिपु देवता ऋषियोंको दुःखी करता तथा सब धर्मोंका लोप करनेवाला, द्विजोंको पीडा देनेवाला, बडा पापी था ॥ १५ ॥ विष्णुके भक्त प्रह्लादनामक अपने पुत्रसे उस दैत्यराजने द्वेष किया, कारण कि वह बडा हरिका वैरी था ॥ १६ ॥ हे मुने ! उस समय विष्णुजी सभास्तंभसे संध्याके समय क्रोधमें भरकर नृसिंह शरीर धारण कर प्रगट हुए ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उन नृसिंहजीका शरीर सब प्रकार विकराल अति भय देनेवाला दैत्योंको त्रास देताहुआ अति

प्रज्वलित हुआ ॥ १८ ॥ तब नृसिंहजीने सम्पूर्ण दैत्योंको उसी क्षणमें मारडाला तब हिरण्यकशिपुने कठिन युद्ध आरम्भ किया ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !
थोडीदेरतक उन दोनोंका घोर विकराल भय देनेवाला सबोंको लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ २० ॥ सायंकालके समय परमेश्वर नृसिंह भगवान्ने आकाशते
देवताओंके देखते २ उस दैत्य हिरण्यकशिपुको देहलीपर खैंचलिया ॥ २१ ॥ और उसको गोदमें डालकर उसका पेट अपने नाखूँनोसे शीघ्र फाडकर
देवताओंके देखते २ मारडाला ॥ २२ ॥ नृसिंह भगवान्के द्वारा हिरण्यकशिपुके मरनेपर संसार स्वास्थ्यको प्राप्तहुआ, परन्तु देवता स्वस्थ न हुए ॥ २३ ॥

नृसिंहेन तदा दैत्या निहताश्चैव तत्क्षणम् ॥ हिरण्यकशिपुश्चाथ युद्धञ्चक्रे सुदारुणम् ॥ १९ ॥ महायुद्धं तयोरासीन्मुहूर्त्तम्मुनिसत्तमाः ॥
विकरालं च भयदं सर्वेषां रोमहर्षणम् ॥ २० ॥ सायं चकर्ष देवेशो देहल्यां दैत्यपुङ्गवम् ॥ व्योम्नि देवेषु पश्यत्सु नृसिंहश्च रमेश्वरः
॥ २१ ॥ अथोत्संगे च तं कृत्वा नखैस्तदुदरन्द्रुतम् ॥ विदार्य मारयामास पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ हते हिरण्यकशिपौ नृसिंहे
नैव विष्णुना ॥ जगत्स्वास्थ्यन्तदा लेभे न वै देवा विशेषतः ॥ २३ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः प्रह्लादो विस्मयं गतः ॥ लक्ष्मीश्च विस्मयं प्राप्ता
रूपं दृष्ट्वाऽद्भुतं हरेः ॥ २४ ॥ हतो यद्यपि दैत्येन्द्रस्तथापि न परं सुखम् ॥ ययुर्देवा नृसिंहस्य ज्वाला सा न निवर्तिता ॥ २५ ॥ तया
च व्याकुलं जातं सर्वं चैव जगत्पुनः ॥ देवाश्च दुःखमापन्नाः किम्भविष्यति वा पुनः ॥ २६ ॥ इत्येवं च वदन्तस्ते भयाद् दूरमुपस्थि
ताः ॥ नृसिंहक्रोधजज्वालाव्याकुलाः पद्मभूमुखाः ॥ २७ ॥ प्रह्लादं प्रेषयामासुस्तच्छान्त्यै निकटं हरेः ॥ सर्वान्मिलित्वा प्रह्लादः
प्रार्थितो गतवांस्तदा ॥ २८ ॥ उरसाऽऽलिंगयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः ॥ हृदयं शीतलं जातं रुड्ज्वाला न निवर्त्तिता ॥ २९ ॥

देवताओंकी दुंदुभी बजनेलगी, प्रह्लाद विस्मयको प्राप्तहुआ, विष्णुका अद्भुतरूप देखकर लक्ष्मीजी भी विस्मयको प्राप्त हुईं ॥ २४ ॥ यद्यपि दैत्येन्द्र मारागया
तथापि परमसुख न हुआ, देवता चलेगये, परन्तु नृसिंहजीकी वह ज्वाला शांत न हुई ॥ २५ ॥ फिर उस कोपाग्निसे सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हुआ, देवता
दुःखको प्राप्तहुए कि, अब क्या होगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार कहतेहुए वह भयसे दूर जाकर स्थित हुए नृसिंहकी ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्माआदिकोंने ॥ २७ ॥
उनकी शान्तिके अर्थ नृसिंहके निकट प्रह्लादजीको भेजा तब सबोंसे मिलकर प्रह्लादजी गये और प्रार्थना की ॥ २८ ॥ कृपानिधि नृसिंहने उस प्रह्लादको

हृदयसे लगाया, हृदय तो ठंढा हुआ परन्तु क्रोधाग्नि दूर न हुई ॥ २९ ॥ जब उन भगवान्की कोपाग्नि शांत न हुई तो दुःखी हुए देवता शंकरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ ब्रह्माआदि देवता व मुनि सब वहां जाकर संसारके सुखके अर्थ शिवजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हम शरणमें आये हुए सब देवताओंकी तथा संसारकी रक्षा करो ॥ ३२ ॥ हे सदाशिव ! आपके अर्थ नमस्कार हो, नमस्कार हो, पहले जब हम दुःखी हुएथे तो आपने हमारी रक्षा की थी ॥ ३३ ॥ समुद्र मथा रत्नोंका विभाग देवताओंने किया तो हे शंभो ! आपने विष ग्रहण किया

तथापि न निवृत्ता रुड्ज्वाला नरहरेर्यदा ॥ दुःखं प्राप्तास्ततो देवाश्शङ्करं शरणं ययुः ॥ ३० ॥ तत्र गत्वा सुरास्सर्वे ब्रह्माद्या मुनयस्तथा ॥ शंकरं स्तवयामासुर्लोकानां सुखहेतवे ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ पाहि नः शरणापन्नान्सर्वान्देवाञ्जगन्ति च ॥ ३२ ॥ नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सदाशिव ॥ पूर्वं दुःखं यदा जातं तदा ते रक्षिता वयम् ॥ ३३ ॥ समुद्रो मथितश्चैवः रत्नानां च विभागशः ॥ कृते देवैस्तदा शंभो गृहीतं गरलन्त्वया ॥ ३४ ॥ रक्षिताः स्म तदा नाथ नीलकण्ठ इति श्रुतः ॥ विषं पास्यसि नो चेत्त्वं भस्मीभूतास्तदाखिलाः ॥ ३५ ॥ प्रसिद्धं च यदा यस्य दुःखं च जायते प्रभो ॥ तदा त्वन्नाममात्रेण सर्वदुःखं विलीयते ॥ ३६ ॥ इदानीं नृहरिज्वालापीडितान्नस्सदाशिव ॥ तां त्वं शमयितुं देव शक्तोऽसीति सुनिश्चितम् ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति स्तुतस्तदा देवैश्शंकरो भक्तवत्सलः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्माऽभयन्दत्त्वा परप्रभुः ॥ ३८ ॥ शंकर उवाच ॥ स्वस्थानं गच्छत सुरास्सर्व्वे ब्रह्मादयोऽभयाः ॥ शमयिष्यामि यद्दुःखं सर्व्वथा हि व्रतम्मम ॥ ३९ ॥

॥ ३४ ॥ हे नाथ ! उस समय हमारी रक्षा की तबसे आपकी नीलकंठ ऐसी प्रसिद्धि हुई, यदि आप विषका पान नहीं करते तो सब भस्म होजाते ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! यह प्रसिद्ध है कि जब जिसको दुःख उत्पन्न होता है तब तुम्हारे नामसे सारा दुःख नष्ट होजाताहै ॥ ३६ ॥ हे सदाशिव ! अब सब नृसिंहकी ज्वालासे पीडित हैं, उसको हे देव ! आप शांत करनेको समर्थ हैं ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार स्तुति करनेपर भक्तवत्सल शंकरदेव परम अभय देकर प्रसन्न हो यह बोले ॥ ३८ ॥ शिवजी बोले, तुम ब्रह्माआदि सब देवता निर्भयहो अपने स्थानोंको जाओ, जो दुःख है उसे मैं शान्त करूंगा मेरा यह व्रत है ॥ ३९ ॥

जो मेरे शरणमें आया, उसका दुःख नाश होगया, मेरी शरणमें आया हुआ मुझे प्राणासेभी अधिक प्रिय है, इसमें संशय नहीं ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, यह सुनकर सब देवता परम आनन्दको प्राप्त हुए जहाँसे आयेथे वहाँपर आनन्दपूर्वक शिवको स्मरण करते हुए चले गये ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां तृ० श० रु० नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार देवताओंसे प्रार्थना किये हुए महातेजस्वी कृपालु परमेश्वर नृसिंहके हरण करनेकी बुद्धि करने लगे ॥ १ ॥ तब ऊपरसे रुद्रने महाबली वीरभद्रका स्मरण किया, और अपना प्रियकारक भैरवरूपसे बोले ॥

गतो मच्छरणं यस्तु तस्य दुःखं क्षयं गतम् ॥ मत्प्रियः शरणापन्नः प्राणेभ्योऽपि न संशयः ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा तदा देवा ह्यानन्दम्परमं गताः ॥ यथागतं तथा जग्मुस्स्मरन्तश्शंकरं मुदा ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शार्दूलावतारे नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः ॥ महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्त्तुं परमेश्वरः ॥ १ ॥ तदूर्द्ध्वं स्मृतवान्रुद्रो वीरभद्रम्महाबलम् ॥ आत्मनो भैरवं रूपं प्राह प्रलयकारकम् ॥२॥ आजगाम ततस्सद्यो गणानामग्रणीर्हसन् ॥ साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः ॥ ३ ॥ नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः ॥ माद्यद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः ॥ ४ ॥ क्रीडद्भिश्च महावीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव ॥ अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः ॥ ५ ॥ कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः ॥ अशस्त्रो हि जटाजूटी ज्वलद्बालेन्दुमण्डितः ॥ ६ ॥ बालेन्दुवलयाकारतीक्ष्णदंष्ट्रांकुरद्वयः ॥ आखण्डलधनुःखण्डसंनिभभ्रूलतान्वितः ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ तब शीघ्र गणोंमें अग्रणी भैरवजी हँसते हुए अट्टहास करते इधर उधरसे घेरे हुए गणोंके सहित आये ॥ ३ ॥ नृसिंहरूपधारी; अति उग्र, कोटि गणोंसे वेष्टित, चारोंओरसे उन्मत्त वीरोंसे घिरे, तथा आनन्दमें नाचते हुए ॥ ४ ॥ गेंदके समान, ब्रह्माआदि महावीरोंसे क्रीडा करतेहुए, जिनको पहले कभी नहीं देखा ऐसे वीरोंसे वंदित, वह भैरवजी ॥ ५ ॥ प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रज्वलित, शोभायमान तीननेत्रोंवाले, विनाशस्त्रधारी, जटाओंसे घिरे, बाल चन्द्रमाकी समान प्रकाशित ॥ ६ ॥ बाल चन्द्रमाके वलयके आकारवाली तेज दाढके दोनों अंकुर, इन्द्रके धनुषके समान देदीप्यमान टूटे धनुषरूप

भ्रूलतासे संयुक्त हुए ॥ ७ ॥ बडी प्रचंड हुंकारसे दिशाओंके मुखको बहिरा करते हुए, नीले मेघ अञ्जनपर्वतके समान काले, भयंकर दाढी मूछोंवाले ॥ ८ ॥ अखंड भुजाओंसे वाद्यखंडको घुमाते हुए तीन शिखाओंको धारे वीरशक्तिसे संयुक्त भगवान् वीरभद्र ॥ ९ ॥ स्वयं शिवजीके समीप जाकर बोले, हे देव ! मुझे किस कारण स्मरण किया हे स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये मुझपर प्रसन्नता कीजिये ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार खलोंको दंड देनेवाले शिवजी वीरभद्रके वचनको आदरसे सुन देखकर प्रीतिसे वचन बोले ॥ ११ ॥ शंकर बोले, हे भैरव ! विना समय देवतोंको भय उत्पन्न हुआ है, वह

महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ नीलमेघाञ्जनश्यामो भीषणः श्मश्रुलोद्धुतः ॥ ८ ॥ वाद्यखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः ॥ वीरभद्रोऽपि भगवान्वरशक्तिविजृम्भितः ॥ ९ ॥ स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम् ॥ आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियताम्मयि ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेशानो वीरभद्रोक्तमादरात् ॥ विलोक्य वचनम्प्रीत्या प्रोवाच खल दण्डधृक् ॥ ११ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम् ॥ ज्वलितस्स नृसिंहाग्निश्शमयैनं दुरासदम् ॥ १२ ॥ सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किन्नोपशाम्यति ॥ ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय ॥ १३ ॥ सूक्ष्मं संहृत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा ॥ वक्रमानय कृत्तिं च वीरभद्र ममाज्ञया ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्यादिष्टो गणाध्यक्षो प्रशान्तं वपुरास्थितः ॥ जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी ॥ १५ ॥ ततस्तम्बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम् ॥ उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम् ॥ १६ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव ॥ स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोऽसि परेशः परमेष्ठिना ॥ १७ ॥

नृसिंहाग्नि प्रज्वलित हुई है, उस कठिन कोपाग्निको शांत करो ॥ १२ ॥ पहले तो शांतिपूर्वक कहो कि आप क्यों शांत नहीं होते, जब न मानें तो फिरै मेरे परमभाव भैरवरूपको दिखाओ ॥ १३ ॥ सूक्ष्मको सूक्ष्म तेजके द्वारा तथा स्थूल तेजको स्थूलतेजके द्वारा हरण कर हे वीरभद्र ! मेरी आज्ञासे श्रेष्ठ आकृतिको प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार सुनकर वह गणाध्यक्ष शान्त शरीरको धार बेगसे वहां पहुंचे, जहां नृसिंह थे ॥ १५ ॥ तब वीरभद्र शिव ईश्वर उन नृसिंहको समझाते हुए इस प्रकार वाक्य बोले, जैसे पिता औरस पुत्रसे बोलता है ॥ १६ ॥ वीरभद्र बोले, हे माधव ! आपने

संसारके सुखके लिये अवतार लिया है, स्थितिके लिये आप ब्रह्माकी प्रेरणासे प्रगट हुए हो ॥१७॥ पहले आपने मत्स्यरूपसे अपनी पूँछमें नौका बांधकर प्रलयके समुद्रमें मनुजीको घुमाया था ॥ १८ ॥ कर्मरूपसे सबका पालन करनेको वाराहरूपसे पृथ्वीका उद्धार किया, और इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारा ॥ १९ ॥ औरं वामन अवतार लेकर पराक्रम करते हुए आपने राजा बलीको बांधा, आपही सब प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले तथा स्वामी और अविनाशी हैं ॥ २० ॥ जब २ संसारको कुछ दुःख प्राप्त होता है, तब २ आप अवतार लेकर दुःख दूर करतेहैं ॥ २१ ॥ हे हरे ! आपसे अधिक

जन्तुचक्रं भगवता प्रच्छिन्नं मत्स्यरूपिणा ॥ पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा ॥ १८ ॥ बिभर्षि कर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही ॥ अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१९॥ वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः ॥ त्वमेव सर्व्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः ॥ २० ॥ यदायदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजायते ॥ तदातदावतीर्णस्त्वं करिष्यासि निरामयम् ॥ २१ ॥ नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायणः ॥ त्वया वेदाश्च धर्माश्च शुभमार्गे प्रतिष्ठिताः ॥ २२ ॥ यदर्थमवतारोऽयं निहतस्स हि दानवः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोऽपि सुरक्षितः ॥ २३ ॥ अतीव घोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव ॥ उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ ॥ २४ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा ॥ ततोऽधिकं महाघोरं कोपश्चक्रे महामदः ॥ २५ ॥ उवाच च महाघोरं कठिनं वचनन्तदा ॥ वीरभद्रम्महावीरं दंष्ट्राभिर्भीषयन्मुने ॥ २६ ॥ नृसिंह उवाच ॥ आगतोसि यतस्तत्र गच्छ त्वम्मा हितं वद ॥ इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २७ ॥

और आपके समान कोई नहीं है, हे शिव ध्यानमें तत्पर आपने वेद तथा धर्म सब शुभमार्ग स्थापित कियेहैं ॥ २२ ॥ जिस निमित्त यह नृसिंह अवतार लिया है, सो दानव हिरण्यकशिपु मारडाला, और प्रह्लादकी रक्षा की ॥ २३ ॥ हे नरसिंह ! हे भगवन् ! हे विश्वात्मा ! यह आपका बडाही घोर शरीर है, उसे आप मेरे समीपही संहार कीजिये ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकारसे वीरभद्रने नृसिंहजीसे शांत और नम्र वाणीसे कहा, तब उससे भी अधिक उन नृसिंहजीने क्रोध किया ॥ २५ ॥ हे मुने ! और बड़े पराक्रमी वीरभद्रसे दांत मिसमिसातेहुए महाघोर कठिन वचन बोले ॥ २६ ॥ नृसिंह बोले,

हे वीरभद्र ! जहांसे आयेहो वहां जाओ, मुझसे हितके वचन मतकहो, मैं अभी चर अचर संसारको हरण करूंगा ॥ २७ ॥ मुझ संहार करनेवालेका स्वयं
अथवा दूसरेसे संहार नहीं होसकता, सर्वत्र मैंनेही शासन कियाहै, और कोई शासन करनेवाला नहीं है ॥ २८ ॥ मेरे प्रभावसे यह चर अचर सब संसार
अभय होताहै, मैंही सब शक्तियोंका प्रवृत्त करनेवाला तथा दूर करनेवालाहूं ॥ २९ ॥ हे गणाध्यक्ष ! जो जो विभूतिवाला सत्त्व वा शोभायमान तेज है, सो
सो सब मेरे तेजसे प्रेरणा किया हुआ है ॥ ३० ॥ देवतागण मुझेही परमार्थके जाननेवाले कहते हैं, और मेरे अंश तथा शक्तिके सम्पन्न ब्रह्मा इन्द्र आदि सब

संहर्त्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा ॥ शासितम्मम सर्व्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते ॥ २८ ॥ मत्प्रसादेन सकलमभयं हि
प्रवर्त्तते ॥ अहं हि सर्व्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥ २९ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम
तेजोविजृम्भितम् ॥ ३० ॥ देवतापरमार्थज्ञं मामेव परमम्विदुः ॥ मदंशाश्शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयस्सुराः ॥ ३१ ॥ मन्नाभिकमला
ज्जातः पुरा ब्रह्मा जगत्करः ॥ सर्वाधिकस्स्वतन्त्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः ॥ ३२ ॥ इदन्तु मत्परं तेजः किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥
अतो मां शरणम्प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ ३३ ॥ अवेहि परमं भावमिदम्भूतं गणेश्वर ॥ मामकं सकलं विश्वं सदेवासुरमानु
षम् ॥ ३४ ॥ कालोऽस्म्यहं लोकविनाशहेतुर्लोकान्समाहर्तुमहम्प्रवृत्तः ॥ मृत्योर्मृत्युं विद्धिमां वीरभद्र जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः
॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ॥ साहङ्कारं वचः श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः ॥ विहस्योवाच सावज्ञन्ततो विस्फुरिताधरः ॥ ३६ ॥

देवताहैं ॥ ३१ ॥ पहले मेरेही नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्नहुए जगतको करते हैं, सबसे अधिक स्वतंत्र हरण करनेवाले, तथा उत्पन्न करनेवाले सबके स्वामी
हमहैं ॥ ३२ ॥ यह मेरा परमतेजहै, क्या और कुछ सुनना चाहतेहो; अब तुम मेरी शरणमें आकर निर्द्वन्द्व हो जाओ ॥ ३३ ॥ हे गणेश्वर ! मुझे
परमभाव जानो, मेराही देवता असुर मनुष्यसहित सम्पूर्ण संसार है ॥ ३४ ॥ मैंही कालहूं, तथा संसारके विनाशका कारणहूं, मैं लोकोंके संहार करनेको
प्रवृत्त हुआहूं, और मुझे मृत्युका मृत्युरूप जानो । हे वीरभद्र ! मेरेही प्रसादसे यह देवता जीते हैं ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, वीरभद्रजीने इसप्रकार अहंकार

सहित विष्णुके वचन सुन हौंठ कँपातेहुए तिरस्कारसहित हँसकर यह वचनकहे ॥ ३६ ॥ वीरभद्र बोले, क्या आप संसारके ईश्वर संहार करनेवाले पिनाकी शिवको नहीं जानते, केवल आपमें असत्य वादविवाद विनाशके निमित्तहै ॥ ३७ ॥ तुम्हारे परस्परके अवतार अब कौन शेषहैं, किस २ अवतारने क्या क्या किया, उनकी कथा शेष होजायगी ॥ ३८ ॥ उस दोषको कहिये कि जिससे तुम इस अवस्थाकूं प्राप्त हुए हो संसारमें निपुण हुए तुमको शिवसे दक्षिणा प्राप्त होगी ॥ ३९ ॥ तुम प्रकृति हो रुद्र पुरुष हैं, तुममें वीर्य सींचा है, तुम्हारी नाभिकमलसे पंचमुखवाले ब्रह्माजी हुए हैं ॥ ४० ॥ उन ब्रह्माजीने

॥ वीरभद्र उवाच ॥ किन्न जानासि विश्वेशं संहर्तारम्पिनाकिनम् ॥ असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः ॥ ३७ ॥ तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम् ॥ कृतानि येन केनैव कथाशेषो भविष्यति ॥ ३८ ॥ दोषं तं वद येन त्वमवस्थामीदृशीं गतः ॥ तेन संहारदक्षेण दक्षिणाशेषमेष्यसि ॥ ३९ ॥ प्रकृतिस्त्वं पुमान्रुद्रस्त्वयि वीर्य्यं समाहितम् ॥ त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः ॥ ४० ॥ जगत्त्रयीसर्जनार्थं शंकरं नीललोहितम् ॥ ललाटेऽचिन्तयत्सोयन्तपस्युग्रे च संस्थितः ॥ ४१ ॥ तल्ललाटादभूच्छम्भुः सृष्ट्यर्थें तेन भूषणम् ॥ अतोऽहं देवदेवस्य तस्य भैरवरूपिणः ॥ ४२ ॥ त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च ॥ देवदेवेन रुद्रेण सकलप्रभुणा हरे ॥ ४३ ॥ एकं रक्षो विदार्यैव तच्छक्तिकलया युतः ॥ अहंकारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः ॥ ४४ ॥ उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः ॥ उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥ ४५ ॥ यन्नृसिंह महेशानं पुनर्भूतं तु मन्यसे ॥ तर्ह्यज्ञानी महागर्वी विकारी सर्वथा भवान् ॥ ४६ ॥

तीनलोक सृजनेके निमित्त नीललोहित शंकरको ललाटमें ध्यान किया और उग्रतपमें स्थितहुए ॥ ४१ ॥ उनके ललाटसे शिवजी प्रगट हुए और सृष्टिके अर्थ भूषणरूप हुए इस कारण भैरवरूप देवदेवके द्वारा ॥४२॥ मैं तुम्हारे संहार करनेमें विनय और बलसे नियुक्त हुआहूं, उन देवदेव सबके स्वामी रुद्रकी प्रेरणासे मैं आयाहूं ॥ ४३ ॥ तुमने उनकी शक्ति कलासे युक्तहोकरही एक राक्षसको विदीर्णकर मारा है, और तत्त्व न जानकर अहंकारके लेपसे गर्जतेहो ॥ ४४ ॥ साधुओंका उपकार निश्चय सुखके लिये मानागयाहै, और दुष्टोंका उपकार केवल हानिकेही लिये होता है ॥ ४५ ॥ हे नृसिंह ! यदि आप

शिवको फिर जन्म धरनेवाला मानतेहो तो आप सब प्रकारसे अज्ञानी महाअभिमानी और विकारीहो ॥ ४६ ॥ हे नृसिंहजी ! न तुम सृजनवाले न संहार करनेवाले न पोषण करनेवाले हो तुम केवल मूढात्मा पराधीन हो स्वतंत्र कहींभी नहीं हो ॥ ४७ ॥ तुम कुम्हारके चाककी समान महादेवकी शक्तिसे प्रेरणा कियेगयेहो, हे हरे ! उनके अधीन हुए अनेक अवतारोंको धारण करतेहो ॥ ४८ ॥ अबतक भी कूर्मरूप धारी आपका कपाल शंकरकी अस्थिमालामें दग्धहुआभी विद्यमान है और कोई भी उसे धारण नहीं करसका ॥ ४९ ॥ क्या आप भूलगये जो उन तारक असुरके शत्रुके अंशसे बाराहरूपधारी आपकी

न त्वं स्रष्टा न संहर्ता भर्तापि न नृसिंहक ॥ परतन्त्रो विमूढात्मा न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित् ॥ ४७ ॥ कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितो
सि पिनाकिना ॥ नानावतारकर्ता त्वं तदधीनस्सदा हरे ॥ ४८ ॥ अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः ॥ हरहारलतामध्ये
दग्धः कश्चिन्न बध्यते ॥ ४९ ॥ विस्मृतिः किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितम् ॥ वाराहविघ्नहस्तेऽद्य याक्रोशन्तारकारिणा ॥ ५० ॥
दग्धोसि पश्य शूलाग्रैर्विष्वक्सेनच्छलाद्भवान् ॥ दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया तेजःस्वरूपिणा ॥ ५१ ॥ अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः
पञ्चमं शिरः ॥ छिन्नं न सञ्जितं भूयो हरे तद्विस्मृतन्त्वया ॥ ५२ ॥ निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्गणः ॥ कण्डूयमाने शिरसि
कथं तद्विस्मृतन्त्वया ॥ ५३ ॥ चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम् ॥ कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम् ॥ ५४ ॥
ये मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ ॥ निद्रापरवशश्शेषे स कथं सात्त्विको भवान् ॥ ५५ ॥

डाढको पीडा दीगई और उनकी कृपासे आपके विघ्न दूर हुए ॥ ५० ॥ विष्वक्सेनके छलसे आप महादेवकी त्रिशूलाग्निसे दग्धहुएथे और मुझ तेजरूपधारीने दक्षके यज्ञमें यज्ञरूप आपका शिर काटा ॥ ५१ ॥ अब भी आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवां शिरकाटागया सो फिर नहीं जमा क्या यह आप भूलगये ? ॥ ५२ ॥ और शिर खुजाते २ तुमको मरुद्गणसहित दधीचने संग्राममें जीता सो क्या आप भूलगये ? ॥ ५३ ॥ हे चक्रपाणे ! सुदर्शन चक्र घुमाते हुए तुम्हारा प्रिय किसने किया ? यह प्रियचक्र तुमको किसने दिया ? क्या वहभी भूलगये ? ॥ ५४ ॥ मेरे सब लोकोंके ग्रहण करनेपर आप समुद्रके

बीचमें निद्रामें परवश हुए सोतेहो तो आप किसप्रकार सब गुणी हैं ॥ ५५ ॥ तुमको आदि लेकर स्तम्बपर्यंत शिवजीकी शक्ति फैलीहै उसीसे अपाशक्तिमान् होकर भी चारोंओर तेजसे मोहित हो रहेहैं ॥ ५६ ॥ उन शिवके तेजरूप माहात्म्यको कोईभी पुरुष देखनेको समर्थ नहीं है, जो सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं वेही उस व्यापकके परमपदको देखते हैं ॥ ५७ ॥ आकाश, भूमि, इन्द्र, अग्नि, यम और वरुणको उत्पन्न करके अन्धकार और चन्द्रमामें भी वह परमेश्वर व्यापक हैं ॥ ५८ ॥ तुम काल हो तो परमेश्वर सदाशिव महाकाल और कालके भी काल हैं इस कारण तुम उनकी बडी कलासे मृत्युकी मृत्यु हो ॥ ५९ ॥ वह स्थिर अक्षर वीर विश्वके रक्षक प्रभु दुःखको नाश करनेवाले भीम मृग पक्षी हिरण्यमय ॥ ६० ॥ तथा शेष हैं और जगत्के

त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशाक्तिविजृम्भितम् ॥ शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलात्त्वं विमोहितः ॥ ५६ ॥ तत्तेजसो हि माहात्म्यं पुमान्द्रष्टुन्न हि क्षमः ॥ अस्थूला ये प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमम्पदम् ॥ ५७ ॥ द्यावापृथिव्या इन्द्राग्नेर्यमस्य वरुणस्य च ॥ ध्वान्तोदरे शर्शाके च जनित्वा परमेश्वरः ॥ ५८ ॥ कालोसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वर ॥ अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि ॥ ५९ ॥ स्थिरोद्य त्वक्षरो वीरो वीरो विश्वावकः प्रभुः ॥ उपहन्ता ज्वरं भीमो मृगः पक्षी हिरण्मयः ॥ ६० ॥ शास्ता शेषस्य जगतस्तत्त्वं नैव चतुर्मुखः ॥ नान्ये च केवलं शम्भुस्सर्वशास्ता न संशयः ॥ ६१ ॥ इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना ॥ न विनष्टन्त्वमात्मानं कुरु हे नृहरेऽबुध ॥ ६२ ॥ नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः ॥ वज्राशनिरिव स्थाणौ त्वयि मृत्युः पतिष्यति ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा वीरभद्रोपि विररामाकुतोभयः ॥ दृष्ट्वा नृसिंहाभिप्रायं क्रोधमूर्त्तिश्शिवस्य सः ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शासन करनेवाले हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार सब विचारकर अपनी आत्माको हरण करो, हे नृसिंह ! हे बुध ! यदि आप अपनी आत्माको न छिपालेंगे ॥ ६२ ॥ तो इसी समय महा भैरवरूपी क्रोधवाले स्थाणु शंकरका बडा वज्र मृत्युके समान तुम पर पडेगा ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर वह अभय शिवकी क्रोधमूर्ति वीरभद्रजी नृसिंहजीका अभिप्राय जाननेके निमित्त मौन हुए ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सनत्कुमार बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे नन्दीश्वर ! इसके उपरान्त क्या हुआ ? उन दोनोंका वृत्तान्त जो हो उसे मेरे ऊपर कृपा करके प्रीतिपूर्वक आप कहैं ॥ १ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वीरभद्रसे कहे हुए नृसिंहजी क्रोधसे व्याकुल हो बडेवेगसे शब्द करतेहुए उनको ग्रहण करनेको उद्यत हुए ॥ २ ॥ इसी अवसरमें बडा घोर प्रत्यक्षमें भय करनेवाला आकाशमें व्याप्त कठिन शिवजीका तेज प्रगट हुआ ॥ ३ ॥ उस समय वीरभद्रका रूप क्षणमात्रको होगया वह अदृश्य रूप हिरण्यमय चन्द्रमाके समान वा सूर्य अग्निसे प्रगट नहीं था ॥ ४ ॥ न बिजली न चन्द्रमाके समान केवल उपमारहित अद्भुत था

सनत्कुमार उवाच ॥ नन्दीश्वर महाप्राज्ञ विज्ञातन्तदनन्तरम् ॥ ममोपरि कृपां कृत्वा प्रीत्या त्वन्तद्वदाधुना ॥ १ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥
इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः ॥ निनदन्नु वेगेन तं ग्रहीतुम्प्रचक्रमे ॥ २ ॥ अत्रान्तरे महाघोरं प्रत्यक्षभयकारणम् ॥ गगन
व्यापि दुर्धर्षं शैवतेजस्समुद्भवम् ॥ ३ ॥ वीरभद्रस्य तद्रूपमदृश्यन्तु ततः क्षणात् ॥ तद्वै हिरण्मयं सौम्यं न सौरन्नाग्निसम्भवम् ॥ ४ ॥
न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यम्महेश्वरम् ॥ तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिँल्लीनानि शंकरे ॥ ५ ॥ न तद्व्योम महत्तेजो व्यक्तान्तश्चाभवत्ततः ॥
रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति ॥ ६ ॥ ततस्संहाररूपेण सुव्यक्तः परमेश्वरः ॥ पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः ॥ ७ ॥
सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ समृद्धोग्रशरीरेण पक्षाभ्याञ्चञ्चुना द्विजः ॥ ८ ॥ अतितीक्ष्णो महादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः ॥
कण्ठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसन्निभः॥९॥युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिस्वनः ॥ महाकुपितकृत्याग्निव्यावृत्तनयनत्रयः ॥१०॥

उस समय उन शिवमें समस्त तेज लयको प्राप्त होगये ॥ ५ ॥ वह महातेज आकाशमें भी न समाया वह केवल विकृताकार रुद्रका साधारण चिह्न था ॥ ६ ॥ जय जय आदि मंगलाचरण करते हुए सब देवताओंके देखते २ वह परमेश्वर संहाररूपसे प्रगट हुए ॥ ७ ॥ सहस्रों भुजाधारी, जटा रक्खें, अर्धचन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये, भयंकर शरीरसे युक्त, पंखोंसे तथा चोंचसे शोभायमान ॥ ८ ॥ अति तीक्ष्ण डाढोंवाला, वज्रके समान नखरूप शस्त्र धारे, कण्ठमें नील, दीर्घ भुजावाले, चार चरण सहित, अग्निके समान ॥ ९ ॥ प्रलय करनेमें मानों तत्पर, भयंकर तथा गम्भीर शब्द करतेहुए, महाकोप।

ग्निसे भरे, तीन नेत्रवाले ॥ १० ॥ स्पष्ट डाढ अधर ओंठवाले हुंकार करते हुए इस प्रकारके विकटरूपसे शंकर नृसिंहजीके आगे प्रगट हुए ॥ ११ ॥ उनके दर्शनमात्रसेही नृसिंहजीका पराक्रम बल नष्ट होगया, जैसे सूर्यके तेजसे पटवीजनेका तेज नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ तब अपने पक्षोंसे घुमाकर नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए, तथा पूँछसे पैरोंको और दोनों भुजाओंसे नृसिंहकी भुजाओंको बांध ॥ १३ ॥ भुजाओंसे हृदयको भेदन करते हुए शिवने उन नृसिंहरूपधारी विष्णुको ग्रहण किया, और देवता महर्षियोंके देखते २ आकाशको चले गये ॥ १४ ॥ तब भैरवजीने सहसा अभय हो

स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठश्च हुंकारसंयुतो हरः ॥ ईदृग्विधस्वरूपश्च ह्युग्र आविर्बभूव ह ॥ ११ ॥ अरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः ॥ बिभ्रद्धाम सहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम् ॥ १२ ॥ अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादान्विदारयन् ॥ पादान्बबंध पुच्छेन बाहुभ्याम्बाहुमण्डलम् ॥ १३ ॥ भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यान्निजग्राह हरो हरिम् ॥ ततो जगाम गगनन्देवैस्सह महर्षिभिः ॥ १४ ॥ सहसैवाभयाद्विष्णुं स हि श्येन इवोरगम् ॥ उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च ॥ १५ ॥ उड्डीयोड्डीय भगवान्पक्षघातविमोहितम् ॥ हरिं हरस्तं वृषभं विवेशानन्त ईश्वरः ॥ १६ ॥ अनु यान्तं सुरास्सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः ॥ प्रणेमुस्सादरं प्रीत्या ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः ॥ १७ ॥ नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः ॥ तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः ॥ १८ ॥ नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वा तम्मृडमेव च ॥ पुनश्च प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम् ॥ १९ ॥

विष्णुको ऐसे पकडलिया जैसे बाज सर्पको पकड पकड कर गिरावै इस प्रकार पकडकर गिरा गिरा कर ॥ १५ ॥ उड उडकर भगवान् शिवने पक्षोंसे विष्णुको व्याकुल करदिया, तब विष्णुजी वृषके नीचे प्रविष्ट होगये ॥ १६ ॥ उनके पीछे जाते शिवको देख सब देवतागण नमस्कारकी वाणीसे उन्हें संतुष्ट करनेलगे, ब्रह्माआदि मुनीश्वर सब आदरसहित प्रेमसे प्रणाम करनेलगे ॥ १७ ॥ शिवसे गृहीत हुए परवश विष्णुजी दीनमुख हो हाथ जोड़ उन शिवजीको मनोहर दीन वचनोंसे स्तुति करनेलगे ॥ १८ ॥ और आठसौ रुद्रमन्त्रोंसे उन शिवकी स्तुति करके फिर नृसिंहने शरभेश्वर शिवकी प्रार्थना की ॥ १९ ॥

हे परमेश्वर ! जब २ मेरी मति अहंकारसे दूषित होवै, तब २ आपकोही वह मति दूर करनी चाहिये ॥ २० ॥ नंदीश्वर बोले, इसप्रकार शिवजीसे प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करके नृसिंहजी महेश्वरसे पराजित हो नमस्कार करके दीन हुए ॥ २१ ॥ उसी समय वीरभद्रने उनके मुख तथा सब देहको और शक्तिके सहित अपने शरीरके मध्यमें प्रवेश करलिया ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले तब ब्रह्माआदि देवता शारभरूपधारी, सबलोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरको देख स्तुति करनेलगे ॥ २३ ॥ देवता बोले, हे महेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा आदि देवता तथा सब महर्षि औरं दितिके पुत्र आदि सब आपसे उत्पन्न हुएहैं ॥२४॥ ब्रह्मा विष्णु महेन्द्रोंको और सूर्य आदि देवता तथा असुरोंको आपही उत्पन्न करतेहो और हे सकलेश्वर ! तुमही रक्षा करतेहो ॥ २५ ॥ कारण कि—आप संसारको हरण करतेहो इस कारण विद्वान् आपको हर कहतेहैं, जो कि आपने हरिको विग्रह किया इस्से आप हर कहलातेहैं ॥ २६ ॥ जिस्से कि आप आठ प्रकारके शरीरका विभाग करके सकल संसारको पालन करतेहो हे भगवन् ! इसी कारण देवताओंके मनोरथों सहित हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ तुम महापुरुष शम्भु सर्वेश्वर सुरनायक निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सत्पुरुषोंकी गति हो ॥ २८ ॥ दीनबन्धु, तथा

यदायदा ममाज्ञेयं मतिस्स्याद्गर्वदूषिता ॥ तदातदाऽपनेतव्या त्वयैव परमेश्वर ॥ २० ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवं विज्ञापयन्प्रीत्या शङ्करं नरकेसरी ॥ नत्वाऽशक्तोऽभवद्विष्णुर्जीवितान्तपराजितः ॥ २१ ॥ तद्वक्त्रं शेषगात्रान्तं कृत्वा सर्वस्वविग्रहम् ॥ शक्तियुक्तं तदीयांगं वीरभद्रः क्षणात्ततः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ ब्रह्मादयो देवाश्शारभं रूपमास्थितम् ॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं सर्वलोकैकशंकरम् ॥ २३ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रादिसुराः सर्वे महर्षयः ॥ दितिजाद्याः सम्प्रसूतास्त्वत्तस्सर्वे महेश्वर ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेन्द्रांश्च सूर्याद्यानसुरान्सुरान् ॥ त्वं वै सृजासि पास्यत्सि त्वमेव सकलेश्वर ॥ २५ ॥ यतो हरसि संसारं हर इत्युच्यते बुधैः ॥ निगृहीतो हरिर्यस्माद्धर इत्युच्यते बुधैः ॥ २६ ॥ यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा ॥ अतोऽस्मान्पाहि भगवन् सुरादानैरभीप्सितैः ॥ २७ ॥ त्वं महापुरुषः शम्भुः सर्वेशस्सुरनायकः ॥ निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सतां गतिः ॥ २८ ॥ दीनबन्धुर्दयासिन्धुरद्भुतोतिः परात्मदृक् ॥ प्राज्ञो विराट् विभुस्सत्यः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ २९ ॥

दयाके सागर अद्भुतआत्मासे परे देखनेवाले, प्राज्ञ, विराट्, विभु, सत्य, सत् चित, आनन्दलक्षण हो ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, परमेश्वरने इस प्रकार देवताओंके वचनोंको सुनकर उन पुरातन देवता और महर्षियोंसे कहा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार जलमें जल दूधमें दूध घीमें घी मिलताहै उसी प्रकार यह विष्णुजी शिवमें लीन हुएहैं, इसमें संशय नहीं ॥ ३१ ॥ एक विष्णुजी नृसिंहात्मा महाबली अहंकारी उक्तरूप धारण करके संसारके संहार करनेमें प्रवृत्त हुएहैं ॥ ३२ ॥ वे मेरे भक्तोंसे नमस्कार करने योग्य हैं, और प्रार्थना करने योग्य हैं मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार महाबली भगवान् पक्षिराज

॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः शम्भुर्देवानां परमेश्वरः ॥ उवाच तान् सुरान्देवमहर्षींश्च पुरातनान् ॥ ३० ॥ यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ॥ एक एव तदा विष्णुः शिवे लीनो न चान्यथा ॥ ३१ ॥ एको विष्णुर्नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः ॥ जगत्संहारकरणे प्रवृत्तो नरकेसरी ॥ ३२ ॥ प्रार्थनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तैस्सिद्धिकारिभिः ॥ मद्भक्तप्रवरश्चैव मद्भक्तवरदायकः ॥ ३३ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवान् पक्षिराजो महाबलः ॥ पश्यतां सर्वदेवानान्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ॥ ३४ ॥ वीरभद्रोऽपि भगवान्गणाध्यक्षो महाबलः ॥ नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्य समादाय ययौ गिरिम् ॥ ३५ ॥ नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शंकरः ॥ तद्वक्त्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥ ३६ ॥ ततो देवा निरातङ्काः कीर्त्तयन्तः कथामिमाम् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥ ३७ ॥ य इदम्परमाख्यानं पुण्यं वेदरसान्वितम् ॥ पठति शृणुयाच्चैव सर्व्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यम्पुष्टिवर्द्धनम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

नृसिंहजीसे कहकर सब देवताओंके देखते२ वहां अन्तर्धान हुए ॥ ३४ ॥ गणाध्यक्ष महाबली भगवान् वीरभद्र भी नृसिंह शरीरको आकर्षण कर उसे ले पर्वतपर चले गये ॥ ३५ ॥ उस दिनसे शिवजी नृसिंहकृत्ति पहनतेहैं उनके मुखको मुण्डमालामें मुख्यरूपसे रखते हैं ॥ ३६ ॥ तब देवता निर्भय होकर इस कथाको कहतेहुये विस्मय हर्षसे खिले नेत्रोंवाले होकर जहांसे आये थे वहांको चले गये ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस वेदरससे भरेहुए पवित्र परम इतिहासको पढता है, तथा सुनता है, वह मनोरथोंको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ यह धन्य, यश देनेवाला, आयु देनेवाला, आरोग्य और पुष्टिको बढानेवाला है सब विघ्नोंको

शांत करनेवाला सब व्याधियोंका दूर करनेवाला॥ ३९॥ दुःखोंका नष्ट करनेवाला,वांछासिद्धिको देनेवाला,मंगलका स्थान, अकाल मृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिका देनेवाला,शत्रुका विनाश करनेवाला ॥ ४०॥ ऐसा यह पिनाकी शिवका शरभाकार परमरूप शिवके चर और भक्तोंमें प्रकाश करना चाहिये॥ ४१॥ और उनहीं शिवात्माओंको पढना चाहिये, और सुनना चाहिये, नौ प्रकारकी भक्तिका देनेवाला, और अन्तःकरण बुद्धिका देनेवाला यह माहात्म्य है ॥ ॥ ४२ ॥ सम्पूर्ण शिवके उत्सवोंमें तथा चौदश अष्टमीको प्रतिष्ठाके समय जो इसे पढता है वह शिवजीके समीप पहुंचताहै ॥ ४३ ॥ चोर भय व्याघ्र

दुःखप्रशमनं वाञ्छासिद्धिदं मंगलालयम् ॥ अपमृत्युहरं बुद्धिप्रदं शत्रुविनाशनम् ॥ ४० ॥ इदन्तु शरभाकारं परं रूपम्पिनाकिनः ॥ प्रकाशनीयं भक्तेषु शंकरस्य चरेषु वै ॥ ४१ ॥ तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः ॥ नवधा भक्तिदं दिव्यमन्तःकरणबुद्धिदम् ॥ ४२ ॥ शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु शिवसन्निधिकारणम् ॥ ४३ ॥ चौरव्याघ्रनृसिंहात्मकृत राजभयेषु च ॥ अन्येषूत्पातभूकम्पदस्य्वादिपांसुवृष्टिषु ॥ ४४ ॥ उल्कापाते महावाते विनावृष्ट्यतिवृष्टिषु ॥ पठेद्यः प्रयतो विद्वाञ्शिवभक्तो दृढव्रतः ॥ ४५ ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि निष्कामो व्रतमैश्वरम् ॥ रुद्रलोकं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ ४६ ॥ रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते ॥ ततस्सायुज्यमाप्नोति शिवस्य कृपया मुने ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ [अथ गृहपत्यवतारकथा ॥] नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु ब्रह्मसुत प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः ॥ सोऽवतीर्णो यथा प्रीत्या विश्वानरगृहे शिवः ॥ १ ॥

तथा मनुष्य नृसिंह आत्मकृत राजाके भयमें तथा भूकम्प डांकू आदि अतिवृष्टि अवृष्टि आदि और उत्पातोंमें ॥ ४४ ॥ उल्कापातहोनेपर बडी आंधीमें वृष्टिके न होनेपर जो शिवभक्त विद्वान् दृढव्रतमें तत्पर हो इसको पढता है ॥ ४५ ॥ अथवा कामनारहित हो ईश्वरके व्रतकोसुनता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होके शिवका सेवक होता है ॥ ४६ ॥ और रुद्रलोकको प्राप्त होके व रुद्रके साथही आनन्द करता है हे मुने ! शिवकी कृपासे उनकेही पदको पाता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ०श०रु० शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥ नन्दीश्वर बोले, हे ब्रह्मपुत्र ! शिवके चरित्रको

प्रीतिसे सुनो कि जिस प्रकार उन्होंने विश्वानरके घर अवतार लिया ॥ १॥ हे मुने ! अग्निलोकका पति गृहपतिनामक अग्निके समान तेजस्वी सर्वात्माओंमें श्रेष्ठ था ॥ २ ॥ नर्मदा नदीके किनारेपर नर्मपुर नामक नगरमें शिवका भक्त पुण्यात्मा विश्वानर मुनि रहता था ॥ ३ ॥ वह ब्रह्मचर्याश्रममें स्थित, निरंतर ब्रह्मयज्ञ (वेदाध्ययन) में तत्पर, शांडिल्य गोत्र वाला, पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी, जितेन्द्रिय ॥४॥ सब शास्त्रोंके अर्थका जाननेवाला सदाचारी, शैवोंके आचरमें निपुण, लौकिक आचारमें चतुर था ॥ ५ ॥ वह विश्वा नर अपने चित्तमें शुभ स्त्रीके गुणोंको विचार अपने उचितकालमें एक कन्याको विधि

नाम्ना गृहपतिः सोऽभूदग्निलोकपातिर्मुने ॥ अग्निरूपस्तैजसश्च सर्व्वात्मा परमः प्रभुः ॥ २ ॥ नर्मदायास्तटे रम्ये पुरे नर्मपुरे पुरा ॥ पुरारिभक्तः पुण्यात्माभवद्विश्वानरो मुनिः ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्य्याश्रमे निष्ठो ब्रह्मयज्ञरतस्सदा ॥ शाण्डिल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजोनिधिर्व्वशी ॥ ४ ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थस्सदाचाररतस्सदा ॥ शैवाचारप्रवीणोऽति लौकिकाचारविद्वरः ॥ ५ ॥ चित्ते विचार्य्य गृहिणीगुणान्विश्वानरः शुभान् ॥ उदुवाह विधानेन स्वोचितां कालकन्यकाम् ॥ ६ ॥ अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञपरायणः ॥ षट्कर्मनिरतो नित्यं देवपित्रतिथिप्रियः ॥ ७ ॥ एवम्बहुतिथे काले गते तस्याग्रजन्मनः ॥ भार्य्या शुचिष्मती नाम भर्तारम्प्राह सुव्रता ॥ ८ ॥ नाथ भोगा मया सर्वे भुक्ता वै त्वत्प्रसादतः ॥ स्त्रीणां समुचिता ये स्युस्त्वां समेत्य मुदावहाः ॥ ९ ॥ एवम्मे प्रार्थितन्नाथ चिराय हृदि संस्थितम् ॥ गृहस्थानां समुचितं त्वमेतद्दातुमर्हसि ॥ १० ॥ विश्वानर उवाच ॥ किमदेयं हि सुश्रोणि तव प्रियहितैषिणि ॥ तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्यविलम्बितम् ॥ ११ ॥

विधानसहित विवाहता हुआ ॥ ६ ॥ अग्निहोत्र करनेमें तत्पर तथा पञ्चयज्ञोंमें परायण छह कर्मोंमें तत्पर हुआ नित्य देवता, पितृ, अतिथियोंमें प्रिय ॥ ७ ॥ उस ब्राह्मणके इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर उसकी शुचिष्मतीनामक पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे बोली ॥ ८ ॥ हे नाथ ! आपके प्रसादसे स्त्रियोंके भोगनेयोग्य सम्पूर्ण भोग आनन्द मैंने आपको पाकर भोगे ॥ ९ ॥ हे नाथ ! इस प्रकारकी प्रार्थना बहुत कालसे मेरे हृदयमें है जो गृहस्थोंके योग्यभी है सो आप देनेके योग्य हैं ॥ १० ॥ विश्वानर बोला, हे सुश्रोणि ! हे प्रियहितैषिणी ! हे महाभागे ! तुमको कुछभी अदेय नहीं है, तुम कहो मैं तुमको

शीघ्रही दूंगा ॥ ११ ॥ शिवजीकी प्रसन्नतासे मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, हे कल्याणि ! सबके कल्याण करनेवाले मुझे इस लोकमें तथा परलोकमें कुछ दुष्प्राप्य वस्तु नहीं ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह पतिव्रता स्त्री अपने पतिका वचन सुन प्रसन्न मुखसे हाथ बाँधे नम्रहुई बोली ॥ १३ ॥ शुचिष्मती बोली, हे नाथ ! यदि मैं वर देनेके योग्य हूं तो यह वर मुझे देना चाहिये कि शिवके समान पुत्र दो और वर नहीं चाहती ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उसके वचन सुन वह पवित्र व्रती ब्राह्मण, क्षणभर समाधिमें स्थित होकर हृदयमें विचारने लगा ॥ १५ ॥ अहो ! इस मेरी स्त्रीने क्या

महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम् ॥ इहामुत्र च कल्याणि सर्वकल्याणकारिणः ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः पत्युस्तस्य सा पतिदेवता ॥ उवाच हृष्यद्वदना करौ बद्धा विनीतिका ॥ १३ ॥ शुचिष्मत्युवाच ॥ वरयोग्यास्मि चेन्नाथ यदि देयो वरो मम ॥ महेशसदृशम्पुत्रन्देहि नान्यं वरं वृणे ॥ १४ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्स शुचिव्रतः ॥ क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्समचिन्तयत् ॥ १५ ॥ अहो किं मे तया तन्व्या प्रार्थितं ह्यतिदुर्लभम् ॥ मनोरथपथाद्दूरमस्तु वा स हि सर्व्वकृत् ॥ १६ ॥ तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शम्भुना ॥ व्याहृतं कोऽन्यथा कर्त्तुमुत्सहेत भवेदिदम् ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति सञ्चित्य स मुनिर्विश्वानर उदारधीः ॥ ततः प्रोवाच ताम्पत्नीमेकपत्नीव्रते स्थितः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थमाश्वास्य ताम्पत्नीञ्जगाम तपसे मुनिः ॥ यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधितिष्ठति ॥ १९ ॥ प्राप्य वाराणसीं तूर्णं दृष्ट्वा ताम्मणिकर्णिकाम् ॥ तत्याज तापत्रितयमपि जन्मशतार्जितम् ॥ २० ॥

अतिदुर्लभ प्रार्थना की जो मनोरथके मार्गसे दूर है अथवा वही सब कुछ करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ उन्होंनेही इसके मुखमें वाणीरूपसे स्थित होकर कहाहै उनकी इच्छाको कौन अन्यथा करनेका उत्साह कर सकता है ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार एकपत्नीव्रतमें स्थित उस उदार बुद्धिवाले विश्वानरने विचारकर थोडी देरमें उस अपनी पत्नीसे कहा ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अपनी स्त्रीको ढाढस बंधाके वह मुनि तप करने को चले गये, जहाँ पर विश्वके ईश्वर साक्षात् काशिनाथ स्थित थे ॥ १९ ॥ शीघ्रही वाराणसीमें प्राप्त हो, वहां मणिकर्णिकाका दर्शन कर, सैंकडों जन्मके इकठे किये

तीनों प्रकारके तापोंको त्यागन किया ॥ २० ॥ और वहां विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण लिंगोंका दर्शनकर कुंड बावड़ी कूप सरोवर सबमें स्नानकरके ॥ २१ ॥ सब विनायक गौरी शिवको नमस्कार और पूजनकर पापभक्षणकारी कालराज भैरवजीकोभी पूजनकर ॥ २२ ॥ दंडनायक मुख्यगणोंकी स्तुति करके आदिकेशव मुख्योंको तथा केशवको संतुष्टकरके ॥ २३ ॥ और लोलार्कमुख सूर्य आदिको बारम्बार प्रणाम करके तथा सबतीर्थोंमें आलस्यरहित हो पिंडदान करके ॥ २४ ॥ सहस्रों प्रकारके भोजन आदिसे मुनियोंको तथा ब्राह्मणोंको तृप्तकरके भक्तिपूर्वक महापूजा योग्य उपचारोंसे सबलिंगोंको पूजकर

दृष्ट्वा सर्वाणि लिंगानि विश्वेशप्रमुखानि च ॥ स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥ २१ ॥ नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीं शर्वां
प्रणम्य च ॥ सम्पूज्य कालराजश्च भैरवम्पापभक्षणम् ॥ २२ ॥ दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः ॥ आदिकेशवमुख्यांश्च
केशवम्परितोष्य च ॥ २३ ॥ लोलार्कमुखसूर्यांश्च प्रणम्य स पुनःपुनः ॥ कृत्वा च पिण्डदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥ २४ ॥
सहस्रभोजनाद्यैश्च मुनीन्विप्रान्प्रतर्प्य च ॥ महापूजोपचारैश्च लिंगान्यभ्यर्च्य भक्तितः ॥ २५ ॥ असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्र
सिद्धिदम् ॥ यत्र निश्चलतामेति तपस्तनयकाम्यया ॥ २६ ॥ क्षणं विचार्य्य स मुनिरिति विश्वानरस्सुधीः ॥ क्षिप्रम्पुत्रप्रदं लिंगं वीरे
शम्प्रशशंस ह ॥ ॥ २७ ॥ असंख्यातास्सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिं गतास्ततः ॥ सिद्धलिंगमिति ख्यातन्तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ २८ ॥
वीरेश्वरम्महालिंगमब्दमभ्यर्च्य भक्तितः ॥ आयुर्मनोरथं सर्वं पुत्रादिकमनेकशः ॥ २९ ॥ अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्य त्रिकालतः ॥
आशु पुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितं स्त्रिया ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ बारम्बार यह विचारा कि क्या यह लिंग शीघ्र सिद्धिका देनेवाला है जिसमें पुत्रकी कामनासे तप निश्चलताको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मुनि विश्वानरने क्षणमात्र विचारकर पुत्रके देनेवाले वीरेशलिंगकी प्रशंसा की ॥ २७ ॥ असंख्यात सहस्रों सिद्ध इसके पूजन करनेसे सिद्धिको प्राप्त हुएहैं इस कारण यह वीरेश्वरलिंग प्रसिद्धिको प्राप्त हुआहै ॥ २८ ॥ वीरेश्वर लिंगको एकवर्ष भक्तिपूर्वक पूजकर आयु तथा मनोरथ और पुत्रादिकको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ मैंभी यहाँ वीरेशकी तीनोंसमय आराधना करके शीघ्र वैसे पुत्रको प्राप्त हूंगा जैसी कि स्त्रीने अभिलाषा की है ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ इति कृत्वा मतिन्धीरो विप्रो विश्वानरः कृती ॥ चन्द्रकूपजले स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती ॥ ३१ ॥ एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्ताशनोऽभवत् ॥ अयाचिताशनो मासम्मासन्त्यक्ताशनः पुनः ॥ ३२ ॥ पयोव्रतोऽभवन्मासम्मासं शाकफलाशनः ॥ मासम्मुष्टितिलाहारो मासं पानीयभोजनः ॥ ३३ ॥ पञ्चगव्याशनो मासम्मासश्चान्द्रायणव्रती ॥ मासं कुशाग्रजलभुग्मासं श्वसनभक्षणः ॥ ३४ ॥ एवमब्दमितं कालन्तताप स तपोऽद्भुतम् ॥ त्रिकालमर्चयद्भक्त्या वीरेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ अथ त्रयोदशे मासि स्नात्वा त्रिपथगाम्भसि ॥ प्रत्यूष एव वीरेशं यावदायाति स द्विजः ॥ ३६ ॥ तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्ये लिंगन्तपोधनः ॥ विभूतिभूषणम्बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ॥ ३७ ॥ आकर्णायतनेत्रञ्च सुरक्तदशनच्छदम् ॥ चारुपिंगजटामौलिन्नग्नम्प्रहसिताननम् ॥ ३८ ॥ शैशवोचितनेपथ्यधारिणञ्चितिधारिणम् ॥ पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ॥ ३९ ॥ तमालोक्य मुदम्प्राप्य रोमकञ्चुकितो मुनिः ॥ प्रोच्चचार हृदालापान्नमोस्त्विति पुनःपुनः ॥ ४० ॥

नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार धीर कृती विश्वानर ब्राह्मणने मति करके चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर व्रत और नियम धारण किया ॥ ३१ ॥ महीनेमें एकवार भोजन किया, तथा एकमासतक रात्रिमें एकवार भोजन किया, और एकमास तक विना मांगे जो मिला सो भोजन किया, तथा एकमहीने तक निराहार रहा ॥ ३२ ॥ और एकमास पयोव्रत किया, एकमास शाकभोजन किया, एकमास एकमुट्ठी तिल खाकर रहा और एकमास पानी भोजन किया ॥ ३३ ॥ एकमास पंचगव्य भोजन करके एकमास चान्द्रायण व्रतधारी एकमास कुशाके अग्रभागका जल पीकर एकमास वायु भक्षण करके रहा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उसने एकवर्ष तक अद्भुत तप किया, और उत्तम वीरेश लिंगको तीनोंकालोंमें भक्तिपूर्वक पूजा ॥ ३५ ॥ तब तेरहवें महीनेमें त्रिपथगा गंगाके जलमें नहाकर प्रातःकाल वह ब्राह्मण वीरेशलिंगके पूजनको आया कि ॥ ३६ ॥ उस तपोधनने उस लिंगके मध्यमें विभूतिसे शोभित आठ वर्षकी अवस्थावाले एक बालकको देखा ॥ ३७ ॥ कानोंतक विशालनेत्रोंवाले, सुन्दर लालहोंठोंवाले, तथा मनोहर पीली जटा, मौली (मुकुट) लगाये, नग्न, हँसतेहुए, सुखसहित ॥ ३८ ॥ बालकोंके योग्य भेष धारे चितिधारी तथा श्रुतिसूक्तोंको पढतेहुए अपनी लीलासे हंसते हुए ॥ ३९ ॥ उस बालकको देख आनन्दको प्राप्त

हो रोमाञ्चित शरीरवाले मुनि अपने हृदयसे नमोस्तु इस प्रकार आलाप करतेहुय बोले ॥ ४० ॥ वह कृती विश्वानर अभिलाषाके देनेवाले आठों पद्योंसे उन बालरूपी परमानन्द शम्भुको संतुष्ट करते हुये ॥ ४१ ॥ विश्वानर बोले, एक ब्रह्महो अद्वितीय है वही सत्य है, संपूर्णमैं उसके सिवाय और कुछ यहां नहीं है इस कारण तुम एक महेश्वरकी मैं शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ४२ ॥ हे शम्भो ! आप सब संसारके करनेवाले तथा हरण करनेवाले हो अनेकरूपोंमें एकरूपभी होकर विनारूपवाले हो, जिस प्रकार सनातनधर्म एक होता हुआ भी अनेक है, उसी प्रकार तुम महेश्वरके विना मैं दूसरेकी शरण नहीं प्राप्त करता हूं ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार रस्सीमें सांप तथा सीपीमें चांदी तथा मृगतृष्णामें जल भासता है, इसी प्रकार चारोंओर मायाका प्रपंच फैला

अभिलाषप्रदैः पद्यैरष्टभिर्बाल रूपिणम् ॥ तुष्टाव परमानन्दं शंभुं विश्वानरः कृती ॥ ४१ ॥ ॥ विश्वानर उवाच ॥ एकम्ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यंसत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ॥ एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकन्त्वाम्प्रपद्ये महेशम् ॥ ४२ ॥ कर्ता हर्त्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ॥ यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यन्त्वां विनेशम्प्रपद्ये ॥ ४३ ॥ रज्जौ सर्पश्शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ॥ यद्यत्सद्वद्विष्वगेव प्रपञ्चो यस्मिञ्ज्ञाते तम्प्रपद्ये महेशम् ॥ ४४ ॥ तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ॥ पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छंभो त्वं ततस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४५ ॥ शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रस्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात् ॥ व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४६ ॥ नो वेद त्वामीश साक्षाद्धि वेदो नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य ॥ नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेदस्त्वामतस्त्वाम्प्रपद्ये ॥ ४७ ॥

है, सो जिसके जानलेनेपर सब जाना जाता है मैं उसकी शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ४४ ॥ हे शम्भो ! जलमें ठंढक, तथा अग्निमें जलानेकी शक्ति, सूर्यमें संताप, चन्द्रमामें आह्लादकता और पुष्पमें सुगंध, तथा दूधके मध्यमें घी है वैसेही सबमेंही आपही हैं ऐसे तुमको मैं प्राप्त होता हूं ॥ ४५ ॥ आप कानोंके विना शब्दको ग्रहण करते हो, नासिकाके विना सूंघते हो, विना चरणकेदूरसे आते हो, विनानेत्रके देखते हो, विना जिह्वाके स्वाद जाननेवाले हो ऐसे आपको अच्छी प्रकार कौन जानसकता है उन आपकी मैं शरण होता हूं ॥ ४६ ॥ हे ईश्वर ! आपको साक्षात् वेद भी नहीं जानता और न विष्णु,

न ब्रह्मा, और न योगी और न इन्द्रआदि देवता जानसकतेहैं, केवल आपको भक्तही जानते हैं, ऐसे आपकी मैं शरणमें प्राप्त होता हूं ॥ ४७ ॥ न आपके गोत्र है, न शरीर है, न आप जन्म लेते, न आपका नाश होता है, न रूप है, न शील है, न आपका देश है, इस प्रकारके होतेहुए भी आप त्रिलोकीके मनोरथको पूर्ण करते हो, अतः तुमको सेवन करता हूं ॥ ४८ ॥ हे स्मरारे ! आपसे सब हैं, और आप सबमें हैं, आप पार्वतीके पति हैं आप नग्न हैं तथा अतिशांत हैं आपही वृद्धहैं और आपही युवा, आपही बालक हैं, संसारमें ऐसा पदार्थ क्या है जो आपसे भिन्न हो ऐसे आपको नमस्कार करताहूं ॥ ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार हाथ बाँधकर ब्राह्मण स्तुति कर जभी भूमिपर दंडवत्प्रणाम करताहुआ तभी वह सब वृद्धोंमें वृद्ध बालक अतिप्रसन्न हो उस मुनि ब्राह्मणसे बोला ॥ ५० ॥ बालक बोला, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे विश्वानर ! हे ब्राह्मण ! तुमसे संतुष्ट किया हुआ मैं प्रसन्न हुआ हूं, जैसी इच्छा हो वैसे श्रेष्ठ वरको मांगो ॥ ५१ ॥ तब वह मुनि विश्वानर उठकर प्रसन्न हो उन बालरूपधारी शिवजीसे इस प्रकार बोला ॥ ५२ ॥ विश्वानर बोला, हे महेश्वर ! हे प्रभो ! आप सर्वज्ञको क्या अज्ञात (न जानाहुआ) है हे भगवन् ! आप सबके अन्तर्यामी सब कुछ देनेवाले सर्व (हरण पोषण कर्तास्वरूप) हैं ॥ ५३ ॥ मांगनेमें लगेहुये मुझे क्या दीनवचनवाली याचनाको कहते हो; हे महेशान ! इस प्रकार जानकर जैसी इच्छा हो वैसा

नो ते गोत्रं न्नो सजन्मापि नाशो नो वा रूपं नैव शीलन्न देशः ॥ इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्यास्सर्वान्कामान्पूरयेस्त्वं भजे त्वाम् ॥ ॥ ४८ ॥ त्वत्तस्सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः ॥ त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्त्वं यत्किं नान्यत स्त्वां नतोऽहम् ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ संबद्धपाणिर्भवतीह यावत् ॥ तावत्स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेवमतीव हृष्टः ॥ ५० ॥ बाल उवाच ॥ विश्वानर मुनिश्रेष्ठ भूदेवाहं त्वयाद्य वै ॥ तोषितस्सुप्रसन्नात्मा वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ॥ ५१ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती ॥ प्रत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः शंकरम्बालरूपिणम् ॥ ५२ ॥ ॥ विश्वानर उवाच ॥ महेश्वर किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ सर्वान्तरात्मा भगवाञ्छर्वस्सर्व्वप्रदो भवान् ॥ ५३ ॥ याच्ञाम्प्रति नियुक्तम्मां किं ब्रूषे दैन्यकारिणीम् ॥ इति ज्ञात्वा महेशान यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५४ ॥

करो ॥ ५४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन पवित्र व्रतधारी विश्वानरका वचन सुन, वह बालकरूप पवित्र देवता कुछेक हँसकर बोले ॥ ५५ ॥ हे पवित्र विश्वानर ! तुमने शुचिष्मतीमें पुत्र होनेकी जो अभिलाषा की है वह बहुत शीघ्रही निःसन्देह पूर्ण होगी ॥ ५६ ॥ हे महामते ! शुचिष्मती स्त्रीमें तुम्हारा पुत्र मैं हूंगा, गृहपति नाम करके प्रसिद्ध तथा पवित्र और देवताओंका प्रिय हूंगा ॥ ५७ ॥ यह आपसे कहा हुआ अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्र एक वर्ष तीनोंकाल पढनेसे शिवके समीपसे सब मनोरथ प्राप्त होतेहैं ॥ ५८ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करना पुत्र पौत्र तथा धनका देनेवाला है, सब शांतिका करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियोंका नाश करनेवाला है ॥ ५९ ॥ स्वर्ग मोक्ष और सम्पत्तिका करनेवाला है, सब स्तोत्रोंके समान सम्पूर्ण कामनाओंका देनेवाला है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६० ॥ प्रातःकाल उठ कर अच्छी प्रकार स्नान करके शिवलिंगकी पूजा करके वर्षभर इस स्तोत्रको जपे तो इस लोकमें पुत्रवान् होगा ॥ ६१ ॥ इस अभिलाषाष्टक स्तोत्रको जिस किसीके लिये नहीं देना चाहिये, यत्नपूर्वक छिपाना चाहिये, यह महावन्ध्यास्त्रीके भी सन्तान करनेवाला है ॥ ६२ ॥ स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एकवर्षतक यह स्तोत्र जपै तो पुत्रादिकी सब इच्छा

नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य हि ॥ शुचिश्शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ ५५ ॥ त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ॥ अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम् ॥ ५६ ॥ तव पुत्रत्त्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते ॥ ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्व्वामरप्रियः ॥ ५७ ॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ॥ अब्दत्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ ॥ ५८ ॥ एतत्स्तोत्रप्रपठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ सर्व्वशान्तिकरश्चापि सर्व्वापत्तिविनाशनम् ॥ ५९ ॥ स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकन्नात्र संशयः ॥ सर्वस्तोत्रसमं ह्येतत्सर्व्वकामप्रदं सदा ॥ ६० ॥ प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥ वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ॥ ६१ ॥ अभिलाषाष्टकमिदन्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ ६२ ॥ स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ ॥ अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रम्पुत्रदन्नात्र संशयः ॥ ६३ ॥

पूर्ण होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कहकर वह बालक रूपधारी सत्पुरुषोंको गति देनेवाले शिवजी अन्तर्धान हुये और वह विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्न हो अपने घरको गया ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर बोलें, कि वह ब्राह्मण अपने घरमें आकर बडे हर्षपूर्वक उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको अपनी स्त्रीसे कहता हुआ ॥ १ ॥ यह सुन वह शुचिष्मतीनामक ब्राह्मणकी स्त्री आनन्दको प्राप्त हुई और अत्यन्त प्रेम सहित अपने प्रारब्धकी प्रशंसा करने लगी ॥ २ ॥ तब समय पाकर वह स्त्री गर्भवती हुई, उस ब्राह्मणने

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्बालरूपः सतांगतिः ॥ सोऽपि विश्वानरो विप्रो हृष्टात्मा स्वगृहं ययौ ॥ ६४ ॥ इति श्री शिवमहापुराणे तृतीयायां शत रुद्रसंहितायां गृहपत्यवतावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ स विप्रो गृहमागत्य महाहर्षसमन्वितः ॥ प्रियायै कथयामास तद्वृत्तान्तमशेषतः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रपत्नी सा मुदम्प्राप शुचिष्मती ॥ अतीव प्रेमसंयुक्ता प्रशशंस विधिन्निजम् ॥ २ ॥ अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वत्नी बभूव ह ॥ विधिवद्विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्म्मणि ॥ ३ ॥ ततः पुंसवनन्तेन स्यन्दनात्प्राग्विपश्चिता ॥ गृह्योक्तविधिना सम्यक्कृतम्पुंस्त्वविवृद्धये ॥ ४ ॥ सीमन्तोऽथाष्टमे मासे गर्भरूपसमृद्धिकृत् ॥ सुखप्रसवसिद्धौ च तेनाकारि कृपाविदा ॥ ५ ॥ अथातश्शुभतारासु ताराधिपवराननः ॥ केन्द्रे गुरौ शुभे लग्ने सुग्रहेषु युगेषु च ॥ ६ ॥ अरिष्टदीपनिर्वाणस्सर्वारिष्टविनाशकृत् ॥ तनयो नाम तस्यान्तु शुचिष्मत्याम्बभूव ह ॥ ७ ॥ शर्वस्समस्तसुखदो भूर्भुवः स्वर्न्निवासिनाम् ॥ गन्धवाहनवाहाश्च दिग्वधूर्मुखवाससः ॥ ८ ॥

गर्भाधानसंस्कार विधिपूर्वक किया ॥ ३ ॥ तथा गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार तेजकी वृद्धिके निमित्त पुंसवन संस्कार किया ॥ ४ ॥ और आठवें महीनेमें गर्भरूपकी वृद्धि करनेवाला सीमन्तोन्नयन संस्कार उस दयाके जानने वाले ब्राह्मणने सुखसे सन्तान होनेके निमित्त किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त शुभ नक्षत्रमें बृहस्पतिके केन्द्रस्थानमें होनेपर शुभ लग्नमें अच्छे ग्रह तथा सुन्दर योगमें ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके समान मुखवाले तथा सूतिकागृहमें दीपकके तेजको भी शान्त करनेवाला सब दुःखोंके नाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्मतीके उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ जो कल्याणस्वरूप सब भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक,

निवासियोंको सम्पूर्ण सुखोंका देनेवाला था, उस समय वायु द्वारा चलाये हुये मेघ दिशारूपी वधुओंके मुखकी गन्ध लेकर चले ॥ ८ ॥ देवतागण इच्छित सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करने लगे, देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगीं, चारोंओरसे दिशायें निर्मल होगईं ॥ ९ ॥ चारोंओरसे नदियां प्राणियोंके मनोंके सहित स्वच्छ होगईं, अन्धकार दूर होगया, धूलिभी मानो धूलिरहित हुई ॥ १० ॥ सत्त्वगुणसहित सब मंगलमयी अमृतकी वर्षा होनेलगी और सब मनुष्योंकी वाणी प्यारी और कल्याण करनेवाली हुई॥ ११ ॥ रंभाआदि अप्सरायें मंगलमय द्रव्योंको हाथमें लिये विद्याधरी किन्नरी तथा सहस्रों किन्नरी॥ १२॥

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववृषुस्ते घनाघनाः ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुस्सर्व्वतो दिशः ॥ ९ ॥ परितस्सरितस्स्वच्छा भूतानां मानसैस्सह ॥ तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥ १० ॥ सत्त्वास्सत्त्वसमायुक्ताः सुधावृष्टिर्बभूव वै ॥ कल्याणी सर्वथा वाणी प्राणिनः प्रियवत्यभूत् ॥ ११ ॥ रंभामुख्या अप्सरसो मङ्गलद्रव्यपाणयः ॥ विद्याधर्य्यश्च किन्नर्य्यस्तथामर्य्यस्सहस्रशः ॥ १२ ॥ गन्धर्वोरगयक्षाणां सुमानिन्यः शुभस्वराः ॥ गायन्त्यो मंगलं गीतन्तत्राजग्मुरनेकशः ॥ १३ ॥ मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो विभाण्डो माण्डवीसुतः ॥ १४ ॥ लोमशो रोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ भृगुस्तु गालवो गर्गो जातूकर्ण्यः पराशरः ॥ १५ ॥ आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यो दक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ॥ शातातपश्च लिखिताश्शिलादः शंख उञ्छभुक् ॥ १६ ॥ जमदग्निश्च संवर्तो मतंगो भरतोंऽशुभान् ॥ व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकस्सुश्रुतश्शुकः ॥ १७ ॥ ऋष्यशृङ्गोऽथ दुर्व्वासाश्शुचिर्नारद तुम्बुरू ॥ उत्तंको वामदेवश्च पवनोऽसितदेवलौ ॥ १८ ॥

गंधर्व उरग (नाग) यक्षोंकी सुन्दर स्वरवाली स्त्रियां मंगल गीतको गाती वहां आईं ॥ १३॥ मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, माण्डवीका पुत्र ॥ १४॥ लोमश, लोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण्य, पराशर ॥ १५ ॥ आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, शंख, उञ्छभुक् ॥ १६ ॥ जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक ॥ १७ ॥ ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल ॥ १८ ॥

सालंकायन, हारीत,विश्वामित्र, भार्गव,मृकंड,अपने पुत्र सहित पर्वत, दारुक ॥ १९ ॥ धौम्य, उपमन्यु,वत्स आदि मुनि और मुनिकन्या उस पुत्रकी शान्तिके अर्थ प्रशंसायोग्य विश्वानरके आश्रमपर आये ॥२०॥ बृहस्पतिसहित ब्रह्मा तथा विष्णु नन्दी और भृंगीगणसहित तथा पार्वतीसमेत शिवजी ॥२१॥ महेन्द्र आदि देवता तथा पातालवासी नाग अनेकप्रकारके रत्न आदि लिये नदियों सहित समुद्र ॥२२॥ और अनेकस्थावर पर्वतादि, जंगमरूप धरके आये,उस महोत्सवमें विना समयके भी चांदनी सी होगई॥२३॥और उस बालकका जातकर्म संस्कार स्वयं ब्रह्माजीने किया श्रुतिको विचारकर उसके रूपके अनुसार उसका

सालंकायनहारीतौ विश्वामित्रोऽथ भार्गवः ॥ मृकण्डस्सह पुत्रेण पर्व्वतो दारुकस्तथा ॥ १९ ॥ धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः ॥ तच्छान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम् ॥ २० ॥ ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः ॥ नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्य्यासह वृषध्वजः ॥ २१ ॥ महेन्द्रमुख्या गीर्वाणा नागाः पातालवासिनः ॥ रत्नान्यादाय बहुशस्ससरित्का महाब्धयः ॥ २२ ॥ स्थावरा जंगमं रूपं धृत्वायातास्सहस्रशः ॥ महामहोत्सवे तस्मिन्बभूवाकालकौमुदी ॥ २३ ॥ जातकर्म स्वयं तस्य कृतवान्विधिरानतः ॥ श्रुतिं विचार्य्य तद्रूपन्नाम्ना गृहपतिस्त्वयम् ॥ २४ ॥ इति नाम ददौ तस्मै देयमेकादशेऽहनि ॥ नामकर्मविधानेन तदर्थश्रुतिमुच्चरन् ॥ २५ ॥ चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ समयाद्धंसमारुह्य सर्वेषाञ्च पितामहः ॥ २६ ॥ कृत्वा बालोचितां रक्षां लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ आरुह्य यानं स्वन्धाम हरोऽपि हरिणा ययौ ॥ २७ ॥ अहो रूपमहो तेजस्त्वहो सर्वांग लक्षणम् ॥ अहो शुचिष्मती भाग्यमाविरासीत्स्वयं हरः ॥ २८ ॥

नाम गृहपति ॥२४॥ ग्यारहवें दिन रक्खा, और नामकर्म संस्कारके विधानसे श्रुतियोंका उच्चारण करके ॥२५॥ चार वेदोंके मतसे आशीर्वाद देकर हंसपर चढकर सबके पितामह ब्रह्माजी ॥२६॥ लौकिक गति (लोकाचार) का आश्रय करके बालककी उचित रक्षाको कर, शिवजी भी विष्णुके सहित अपने २ वाहनोंपर चढ अपने २ धामको गये ॥२७॥ अहो ! कैसा रूप कैसा तेज कैसा सब अंगका लक्षण, कैसी भाग्यवती शुचिष्मती है, जिसके साक्षात् शिवजी

प्रगट हुये ॥ २८ ॥ अथवा शिवभक्तपुरुषोंमें क्या ? यह आश्चर्यकी बात है कि उन भक्तोंसें अर्चित रुद्र स्वयं प्रगट होगये ॥ २९ ॥ इस प्रकार स्तुति
करतेहुए वे परस्पर प्रसन्न चित्तहुए सब विश्वानरसे पूँछकर जहाँसे आये वहां चले गये ॥ ३० ॥ इस कारण सब ग्रहस्थाश्रमवासी पुत्रको चाहते हैं,
पुत्रसे लोकोंको जीतताहै यह सनातनी श्रुति है ॥ ३१ ॥ विना पुत्रवालेका घर सूना है, तथा विना पुत्र वालेका अर्चन करना वृथा है, अपुत्रका तप
खंडितहै अपुसत्रे घर नहीं पवित्र होताहै ॥ ३२ ॥ पुत्रसे बढकर कोई लाभ नहीं, न पुत्रसे अधिक सुख और न पुत्रसे अधिक मित्र इस लोकमें न पर

अथ वा किमिदं चित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो ॥ स्वयमाविरभूद्रुद्रो यतो रुद्रस्तदर्चितः ॥ २९ ॥ इति स्तुवन्तस्तेन्योन्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहाः ॥
विश्वानरं समापृच्छ्य जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥३०॥ अतः पुत्रं समीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः ॥ पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनात
नी ॥३१॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनं वृथा ॥ अपुत्रस्य तपश्छिन्नं नो पवित्रत्यपुत्रतः ॥३२॥ न पुत्रात्परमो लाभो न पुत्रात्परमं
सुखम् ॥ न पुत्रात्परमं मित्रम्परत्रेहं च कुत्रचित् ॥ ३३ ॥ निष्क्रमोऽथ चतुर्थेऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात् ॥ अन्नप्राशनमब्दार्द्धे
चूडार्द्धे चार्थवत्कृता ॥३४॥ कर्णवेधन्ततः कृत्वा श्रवणर्क्षे स कर्मवित् ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतन्ददौ ॥३५॥ उपाकर्म ततः
कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः॥अब्दं वेदान्स विधिनाऽध्यैष्ट सांगपदक्रमान् ॥३६॥ विद्याजातं समस्तं च साक्षिमात्रं गुरोर्मुखात् ॥ विनया
दिगुणानाविष्कुर्वञ्जग्राह शक्तिमान् ॥ ३७॥ ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोश्शुश्रूषणे रतम् ॥ वैश्वानरं गृहपतिं द्रष्टुमायाच्च नारदः ॥ ३८ ॥
विश्वानरोटजम्प्राप्य देवर्षिस्तं तु कौतुकी ॥ अपृच्छत्कुशलन्तत्र गृहीतार्घासनः क्रमात् ॥ ३९ ॥

लोकमें है ॥ ३३ ॥ चौथे महीनेमें पिताने निष्क्रमण संस्कार किया और छठे महीनेमें अन्नप्राशन व चूडाकर्म संस्कार करदिया ॥ ३४ ॥ पश्चात् उस
कर्मकांडी पिताने श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध संस्कार किया,ब्रह्मतेजकी वृद्धिके अर्थ पांचवें वर्षमें यज्ञोपवीतव्रत दिया ॥ ३५॥ और उपाकर्म करके वेदोंको पढाया,
एक वर्षमें विधिपूर्वक सांग पदक्रमपूर्वक वेदोंको॥ ३६॥ तथा सम्पूर्ण विद्याओंको साक्षीमात्रहो गुरुके मुखसे;विनय भक्ति आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुयेने,
ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तब नवें वर्षमें माता पिताकी सेवामें तत्पर हुए विश्वानरके पुत्र गृहपतिको देखनेके निमित्त नारदजी आये ॥ ३८ ॥ कौतुकी देवर्षि

नारदजीने उस वैश्वानरकी पर्णशालामें प्राप्त होकर क्रमसे आधा आसन ग्रहणकर कुशल पूँछी ॥ ३९ ॥ और उसके सन्मुख उसके भाग्यको और पुत्रके धर्मको शिवके चरण कमलोंका स्मरण करके विश्वानरसे वर्णन किया ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार नारदजीके कहनेपर वह बालक माता पितांकी आज्ञाको पाकर नारदजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक बैठगया ॥ ४१ ॥ नारदजी ने कहा, हे वैश्वानर ! आओ मेरी गोदमें बैठो मैं तुम्हारे लक्षणोंकी परीक्षा करताहूं दाहिने हाथको दिखाओ ॥ ४२ ॥ तब नारदजीने तालु जिह्वा आदि सब अंग देखकर शिवकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहा ॥ ४३ ॥

ततः सर्वं च तद्भाग्यं पुत्रधर्मं च सम्मुखे ॥ वैश्वानरं समवदत्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तो मुनिना
बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः ॥ प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाविशत् ॥ ४१ ॥ वैश्वानर समभ्येहि ममोत्संगे निषीद भोः ॥
लक्षणानि परीक्षेऽहं पाणिन्दर्शय दक्षिणम् ॥४२॥ ततो दृष्ट्वा तु सर्वं हि तालुजिह्वादि नारदः ॥ विश्वानरं समवदच्छिवप्रेरणया सुधीः
॥ ४३ ॥ नारद उवाच ॥ विश्वानर मुने वच्मि शृणु पुत्रांकमादरात् ॥ सर्वांगस्वंकवान्पुत्रो महालक्षणवानयम् ॥ ४४ ॥ किन्तु सर्वगुणो
पेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ सम्पूर्णनिर्मलकलं पालयेद्विधुवाद्विधिः ॥ ४५ ॥ तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्त्वसौ शिशुः ॥ गुणोऽपि
दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥ ४६ ॥ शंकेऽस्य द्वादशे मासि प्रत्यूहो विद्युदग्नितः ॥ इत्युक्त्वा नारदोऽगच्छद्देवलोकं यथागतम् ॥
॥४७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नारदजी बोले, हे मुने ! विश्वानर सुनो पुत्रके लक्षण आदरसे कहताहूं सब अंगोंमें शुभ लक्षणवाला यह पुत्र है ॥ ४४ ॥ सब गुणोंसे पूर्ण, सब लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण निर्मल कला सहित इसको ब्रह्माजी चन्द्रमाके समान पालन करेंगे ॥४५॥ अतः सब यत्नोंसहित इस बालककी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि विधाताके टेढे होनेपर गुण भी दोषपनेको प्राप्त होतेहैं ॥४६॥ बारहवें महीनेमें इसको बिजली और अग्निसे भय है, यह कहकर नारदजी जैसे आये थे वैसे देवलोकको चलेगये ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नन्दीश्वर बोले, विश्वानरने अपनी स्त्रीसहित नारदजीका वचन सुन ऐसा दुःख माना कि मानो अतिकठिन वज्र पति होगया हो ॥ १ ॥ हा शोकसे मैं मारागया ऐसे वचन कहकर हृदयको ताडन किया, पुत्रके शोकसे व्याकुल हो बडी मूर्च्छाको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ शुचिष्मती भी दुःखसे व्याकुल हो महारुदन करती हुई बडे शब्दसे हाहाकार कर व्याकुल हुई ॥ ३ ॥ विश्वानर भी इस प्रकार दुःखके शब्दको सुन मोहको त्याग उठकर बोला, यह क्या हुआ क्या हुआ इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहने लगा कि वह बाहर स्थित प्राणोंका प्राण सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी मेरा पुत्र गृहपति कहां है ॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ विश्वानरस्सपत्नीकस्तच्छ्रुत्वा नारदेरितम् ॥ तदेवम्मन्यमानोभूद्वज्रपातं सुदारुणम् ॥ १ ॥ हा हतोस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् ॥ मूर्च्छामवाप महतीं पुत्रशोकसमाकुलः ॥ २ ॥ शुचिष्मत्यपि दुःखार्त्ता रुरोदातीव दुस्सहम् ॥ अतिस्वरेण हारावैरत्यन्तं व्याकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥ श्रुत्वार्त्तनादमिति विश्वनरोपि मोहं हित्वोत्थितः किमिति किंत्विति किं किमेतत् ॥ उच्चैर्वदन् गृहपतिः क्व स मे बहिस्थः प्राणोन्तरात्मनिलयस्सकलेन्द्रियेशः ॥ ४ ॥ ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ ॥ स्मित्वोवाच गृहपतिस्सबालश्शंकरांशजः ॥ ५ ॥ गृहपति रुवाच ॥ हे मातस्तात किं जातं कारणन्तद्वदाधुना ॥ किमर्थं रुदितोऽत्यर्थं त्रासस्तादृक्कुतो हि वाम् ॥ ६ ॥ न मां कृतवपुस्त्राणम्भवच्चरणरेणुभिः ॥ कालः कलयितुं शक्तो वराकी चञ्चलास्तिका ॥ ७ ॥ प्रतिज्ञां शृणुतान्तातौ यदि वान्तनयो ह्यहम् ॥ करिष्येहं तथा येन मृत्युस्त्रस्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ मृत्युंजयं समाराध्य सर्व्वज्ञं सर्वदं सताम् ॥ जपिष्यामि महाकालं सत्यं तातौ वदाम्यहम् ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ तब अपने माता पिताको महाशोकमें व्याकुल देख शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ वह गृहपति हँसकर बोला ॥ ५ ॥ गृहपति बोला हे माता ! हे पिता ! क्या हुआ सो कारण बताओ आप किसलिये रोते हो ऐसा भय तुम दोनोंको कहांसे प्राप्त हुआ है ॥ ६ ॥ आपकी चरणकी धूलिसे मुझको शरीर धारण किये कालभी मारनेको समर्थ नहीं है और विघ्न क्या दुःख दे सकताहै ॥ ७ ॥ हे माता पिता ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनो यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूं तो ऐसा करूंगा कि जिससे मृत्युसे रक्षा होगी ॥ ८ ॥ मैं मृत्युके जीतनेवाले मंत्रको सर्वज्ञ सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले महाकालरूप

शिवकी आराधना करके जपूंगा ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार उसका वचन सुन संतप्त हुये वे दोनों स्त्री-पुरुष विना समय अमृतकी वर्षासे
दुःख रहित हो बोले ॥ १० ॥ द्विज स्त्री पुरुष बोले, हे पुत्र ! फिर कहो, फिरतो कहो कैसे हैं, कालभी मारनेको समर्थ नहीं फिर वह तुच्छ बिजली
तो क्या है ॥ ११ ॥ हम दोनोंके दुःख दूर करनेके लिये तुमने बडा उपाय कहा, मृत्युंजयनामक शिवकी आराधनारूप लक्षणवाला उपाय है ॥
॥ १२ ॥ उनके समान कोई नहीं और न उन शंभुसे परे कोई है, वे मनोरथके मार्गको प्रगट करनेवाले तथा पाप हरण करनेवालेहैं ॥ १३ ॥ हे

नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य जारितौ द्विजदम्पती ॥ अकालमृतवर्षौघैर्गततापौ तदोचतुः ॥१०॥ द्विजदम्पती ऊचतुः ॥
पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक्कीदृक् पुनर्वद ॥ कालः कलयितुन्नालं वराकी चञ्चलास्ति का ॥ ११ ॥ आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वये
रितः ॥ मृत्युंजयाख्यदेवस्य समाराधनलक्षणः ॥ १२ ॥ तद्वच्च शरणं शम्भोर्नातः परतरं हि तत् ॥ मनोरथपथातीतकारिणः पापहा
रिणः ॥ १३ ॥ किन्न श्रुतन्त्वया तात श्वेतकेतुं यथा पुरा ॥ पाशितं कालपाशेन ररक्ष त्रिपुरान्तकः ॥ १४ ॥ शिलादतनयं मृत्युग्र
स्तमष्टाब्दमात्रकम् ॥ शिवो निजजनश्चक्रे नन्दिनं विश्वनंदिनम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् ॥ पीत्वा हलाहलं
घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ जलन्धरं महादर्पं हृतत्रैलोक्यसम्पदम् ॥ रुचिरांगुष्ठरेखोत्थचक्रेण निजघान यः ॥ १७ ॥ य एकेषु
निपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरम्पुरा ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्मूढं शोषयामास भानुना ॥ १८ ॥

तात ! क्या यह पहले तुमने नहीं सुना कि पहले श्वेतकेतु कालपाशसे बाँधा गया और शिवजीने रक्षा की ॥ १४ ॥ विश्वको आनन्द देनेवाले
नन्दीनामक शिलादके आठवर्षके पुत्रको मृत्युग्रसित देख शिवने अपना जन किया ॥ १५ ॥ क्षीर सागरके मथनेसे उत्पन्न हुई प्रलयकालकी अग्निके
समान घोर हलाहल विषको पान करके तीनों लोकोंकी रक्षा की ॥ १६ ॥ और जिन शिवने बडे अहंकारी त्रिलोकीकी संपदा हरण करनेवाले जलंधर
दैत्यको रुचिर अंगूठेकी रेखासे प्रेरणा किये हुए चक्रसे मारा ॥ १७ ॥ जिन्होंने एक छूटे बाणसे उत्पन्न अग्निसे त्रिलोकीके ऐश्वर्यको छीननेवाले

त्रिपुरासुरको भस्म किया ॥ १८ ॥ त्रिलोकीके विजय करनेवाले कामदेवको जिन्होंने दृष्टिनिक्षेपमात्रसे अजआदिके देखनेपरभी अनंग पदवी प्राप्त कराई ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! उन ब्रह्माआदिके एकमात्र कर्ता मेघवाहनवाले अविनाशी विश्वकी रक्षारूपमणि शिवकी शरणमें जाओ ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले, तब वह गृहपति अपने माता पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंको वन्दना करके प्रदक्षिणा करके बहुत धीरज देकर चलागया ॥ २१ ॥ ब्रह्मा तथा नारायण आदिको भी दुष्प्राप्य तीनों प्रकारके संताप हरण करनेवाली विश्वेश (शिव) से पालन कीहुई काशीजीमें आया ॥ २२ ॥ जो काशीनगरी गंगाजीसे

कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् ॥ निनायानंगपदवीं वीक्ष्यमाणेष्वजादिषु ॥ १९ ॥ तम्ब्रह्माद्यैककर्तारम्मेघवाहनमच्युतम् ॥
प्रयाहि पुत्र शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम् ॥ २० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ पित्रोरनुज्ञाम्प्राप्येति प्रणम्य चरणौ तयोः ॥ प्रादक्षिण्यमुपावृत्य
बह्वाश्वास्य विनिर्ययौ ॥ २१ ॥ सम्प्राप्य काशीं दुष्प्रापाम्ब्रह्मनारायणादिभिः ॥ महासंवर्त्तसन्तापहन्त्रीं विश्वेशपालिताम् ॥ २२ ॥
स्वर्धुन्या हारयष्ट्येव राजितां कण्ठभूमिषु ॥ विचित्रगुणशालिन्या हरपत्न्या विराजिताम् ॥ २३ ॥ तत्र प्राप्य स विप्रेशः प्राग्ययौ मणिक
र्णिकाम् ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरम्प्रभुम् ॥ २४ ॥ साञ्जलिर्नतशीर्षोऽसौ महानन्दान्वितस्सुधीः ॥ त्रैलोक्यप्राणसन्त्रा
णकारिणम्प्रणनाम ह ॥ २५ ॥ आलोक्यालोक्य तल्लिंगं तुतोष हृदये मुहुः ॥ परमानन्दकंदाढ्यं स्फुटमेतन्न संशयः ॥ २६ ॥
अहो न मत्तो धन्योस्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥ २७ ॥

कंठरूप भूमिमें हारयष्टिकी समान शोभायमान तथा अद्भुतगुणवती पार्वतीजीसे विराजमान है ॥ २३ ॥ वह गृहपति उस काशीजीमें आय पहले मणिकर्णिकाको गया, वहां विधिपूर्वक स्नान करके ॥ २४ ॥ अंजलि बांध सिर झुकाये बडा आनन्दित हुआ, उसने वह तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवको नमस्कार किया ॥ २५ ॥ उस लिंगको बारंबार देख २ कर हृदयमें बडा संतुष्ट हुआ जो कि परमआनन्दकन्दरूप साक्षात प्रकाशित है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २६ ॥ अहो ! चर अचररूप त्रिलोकीमें मुझसे अधिक कोई धन्य नहीं है जो आज विश्वेश्वर प्रभुका मैंने दर्शन किया ॥ २७ ॥

मेरे भाग्यके उदय होनेके लिये नारद महर्षिने पहले जो कहा सो मैं कृतकृत्य हूं ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि आनन्दरूपी अमृतरससे पारणाकर शुभ दिनमें सबके हित करनेवाले लिंगकी स्थापना करके ॥ २९ ॥ उन घोर नियमोंको ग्रहण किया जो अकृतात्माओंको अतिकठिन हैं, एकसौ आठ गंगाजलके घडोंसे ॥ ३० ॥ वस्त्रसे छने पवित्र जलवाले घटोंसे पवित्र हो प्रतिदिन शिवको स्नान कराके नित्य नीले कमलोंकी मालाको समर्पण करता था ॥ ३१ ॥ एकसहस्र आठ फूलोंसे बनाई मालाको चढाय पक्षमें अथवा महीनेमें कन्द मूल फल खाकर ॥ ३२॥ और छह महीनेमें सूखेपत्ते खाकर वह

मम भाग्योदयायैव नारदेन महर्षिणा ॥ पुरागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योस्म्यहन्ततः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्यानन्दामृतरसैर्विधाय स हि पारणम् ॥ ततश्शुभेह्नि संस्थाप्य लिंगं सर्व्वहितप्रदम् ॥ २९ ॥ जग्राह नियमान्घोरान् दुष्करानकृतात्मभिः ॥ अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णैर्गंगाम्भसा शुभैः ॥ ३० ॥ संस्नाप्य वाससा पूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम् ॥ नीलोत्पलमयीम्मालां समर्पयति सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् ॥ स पक्षे वाथ वा मासे कन्दमूलफलाशनः ॥ ३२ ॥ शीर्णपर्णाशनैर्धीरः षण्मासं सम्बभूव सः ॥ षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जल बिन्दुभुक् ॥ ३३ ॥ एवं वर्षवयस्तस्य व्यतिक्रान्तं महात्मनः ॥ शिवैकमनसो विप्रास्तप्यमानस्य नारद ॥ ३४ ॥ जन्मतो द्वादशे वर्षे तद्वचो नारदेरितम् ॥ सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः ॥ ३५ ॥ उवाच च बरं ब्रूहि दद्मि त्वन्मनसि स्थितम् ॥ अहं शतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोस्मि शुभव्रतैः ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्य वाक्यम्मुनिकुमारकः ॥ उवाच मधुरन्धीरः कीर्तयन्मधुराक्षरम् ॥ ३७ ॥

धीरव्रत करता हुआ, और छह महीने पवनका भक्षण करके तथा छह महीने जलकी बूंद पानकर तप करने लगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस महात्माको एकवर्ष बीता, केवल शिवजीकोही चित्तमें धारणकर तप करने लगा ॥ ३४ ॥ जन्मसे बारहवें वर्षमें नारदके वचनको सत्य करनेको वज्रधारी इन्द्र उसके समीप गये ॥ ३५ ॥ और बोले वर मांगो जो तुम्हारे मनमें स्थित है, हे विप्र ! मैं इन्द्र शुभ व्रतोंसे प्रसन्न हूं ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह

मुनिका पुत्र इन्द्रके वचन सुन मधुर अक्षरोंसे कीर्तन करताहुआ मधुर धीर स्वरसे बोला ॥ ३७ ॥ गृहपति बोला, हे वृत्रासुरके शत्रु ! हेइन्द्र कुलिशपाणि ! मैं आपको जानता हूं, आपसे वरको नहीं चाहता मुझे शिवजी वर देनेवाले हैं ॥ ३८ ॥ इन्द्र बोला, हे शिशो ! मुझसे अधिक शंकर नहीं हैं, मैं देवताआकों स्वामी हूं तुम लडकपनको छोडकर मुझसे वर मांगो ॥ ३९ ॥ गृहपति बोला, हे अहल्यापते ! हे साधो ! हे इन्द्र ! आप जाइये मैं शिवजीसे अतिरिक्त किसी देवतासे नहीं प्रार्थना करता हूं ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वचन सुन क्रोधसे लाल नेत्रवाला इन्द्र घोर वज्रको निकालकर

गृहपतिरुवाच ॥ मघवन् वृत्रशत्रो त्वां जाने कुलिशपाणिनम् ॥ नाहं वृणे वरन्त्वत्तश्शंकरो वरदोऽस्ति मे ॥ ३८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ न मत्तश्शङ्करस्त्वन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो ॥ विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मा चिरम् ॥ ३९ ॥ गृहपतिरुवाच ॥ गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारे पाकशासन ॥ न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम् ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ उद्यम्य कुलिशं घोरम्भीषयामास बालकम् ॥ ४१ ॥ स दृष्ट्वा बालको वज्रं विद्युज्ज्वालासमाकुलम् ॥ स्मरन्नारदवाक्यं च मुमूर्च्छ भयविह्वलः ॥ ४२ ॥ अथ गौरीपतिश्शम्भुराविरासीत्तपोनुदः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते स्पर्शैस्संजीवयन्निव ॥ ४३ ॥ उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिनक्षये ॥ अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम् ॥ ४४ ॥ भाले लोचनमालोक्य कण्ठेकालं वृषध्वजम् ॥ वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयं चन्द्रशेखरम् ॥ ४९ ॥

बालकको डराने लगा ॥ ४१ ॥ वह बालक वज्रको देखकर जो बिजलीकी अग्निसे व्याप्त था. और नारदजीके वाक्यको स्मरण करताहुआ भयसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गया ॥ ४२ ॥ तब अंधकारको दूर करनेवाले पार्वतीके पति साक्षात् शिवजी प्रगट हुए और अपने हाथसे स्पर्श करके संजीवन करते हुए बोले हे पुत्र ! उठो उठो ॥ ४३ ॥ तब गृहपतिने दिनके बीतजानेपर मानों सोनेसे उठकर नेत्रोंको खोलकर देखा कि सैंकडों सूर्योंकी समान प्रकाशमान शंकर स्थित हैं ॥ ४४ ॥ माथेपर शोभायमान नेत्र, कण्ठमें काल, बैलपर चढे, बाईओर स्थित पार्वती, माथेपर शोभायमान चन्द्र ॥४५॥

जटाजूटसे शोभायमान, त्रिशूल पिनाक धनुष धारी, चमकतेहुए कपूरकी समान गौर शरीरवाले हाथीके चर्मको धारे ॥ ४६ ॥ गुरुवाक्य तथा आगम प्रमाणसे ऐसे रूपवालेको महादेव जानकर हर्षके आंसुओंसे रुके कण्ठवाले (गद्गदवाणीसे) रोमांचित शरीर हो ॥ ४७ ॥ क्षणमात्रमें पर्वत चित्रकूट और त्रिपुत्रकी समान अचल होकर स्थित होगया ॥ ४८ ॥ जब वह न स्तुति करनेको और न नमस्कार करनेको तथा न कुछ जतानेको समर्थ हुआ तो शिवजी उससे हँसकर बोले ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे शिशो ! गृहपते ! मैंने तुमको वज्रहाथमें लिये हुये इन्द्रसे डरा जाना, सो अब भय मतकरो

कपर्देन विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् ॥ स्फुरत्कर्पूरगौरांगं परिणद्धगजाजिनम् ॥ ४६ ॥ परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात् ॥ हर्षबाष्पाकुलासन्नकण्ठरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ४७॥ क्षणं च गिरिवत्तस्थौ चित्रकूटत्रिपुत्रकः ॥ यथा तथा सुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मानमेव च ॥ ४८ ॥ न स्तोतुं न नमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तिमेव च ॥ यदा स न शशाकालं तदा स्मित्वाह शङ्करः ॥ ४९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिशो गृहपते शक्राद्वज्रोद्यतकरादहो ॥ ज्ञातं भीतोऽसि मामैषीर्जिज्ञासा ते मया कृता ॥ ५० ॥ मम भक्तस्य नो शक्रो न वज्रं चान्तकोऽपि च ॥ प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वम्विभीषितः ॥ ५१ ॥ वरन्ददामि ते भद्र त्वमग्निपदभाग्भव ॥ सर्वेषामेव देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५२ ॥ सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरो भव ॥ धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि ॥ ५३ ॥ त्वयेदं स्थापितं लिंगं तव नाम्ना भविष्यति ॥ अग्नीश्वर इति ख्यातं सर्वतेजोविबृंहणम् ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निभिः ॥ अग्निमांद्यभयं नैव नाकालमरणं क्वचित् ॥ ५५ ॥

यह मैंने तुम्हारी परीक्षा की थी ॥ ५० ॥ मेरे भक्तको न इन्द्र न काल न वज्र मारनेको समर्थ हैं मैंनेही इन्द्ररूप धारण करके तुमको भय दिखाया था ॥ ५१ ॥ हे भद्र ! मैं तुमको वरदान देता हूं कि तू अग्निपदका भागी और सम्पूर्ण देवताओंको वर देनेवाला होगा ॥ ५२ ॥ हे अग्नि ! तू सब प्राणियोंका अन्तर्यामी हो, और धर्मराज तथा इन्द्रके मध्यमें दिशाओंका ईश्वर होकर राज्यको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥ तूने यह लिंगस्थापन किया है, इस कारण तेरे नामसे यह अग्नीश्वर प्रसिद्ध होगा, और सब तेजोंका तिरस्कार करनेवाला होगा ॥ ५४ ॥ अग्नीश्वर महादेवके भक्तोंको बिजली तथा अग्निसे

भय नहीं होताहै, और न कहीं अकाल मृत्यु तथा अजीर्णताका भय होताहै ॥ ५५ ॥ मनुष्य काशीमें सब सम्पत्तियोंके देनेवाले अग्नीश्वर महादेवकी पूजा करके यदि दैवयोगसे काशीमें न भी मरे तो भी अग्निलोकमें प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर उसके भाई बन्धुओंको तथा माता पिताको बुलाकर, उनके देखतेही अग्नीश्वरको दिशाओंके पतिके राज्यमें स्थापित करके उसही लिंगमें शिवजी प्रवेश कर गये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार मैंने आपसे यह परमात्मा शंकरका गृहपति अग्निका अवतार वर्णन किया ॥ ५८ ॥ रमणीक सुख देनेवाली श्रेष्ठ प्रकाशवती चित्रहोत्रपुरी नामक नगरी है, वहां अग्नीश्वरके भक्त निवास करते हैं ॥ ५९ ॥ जो जितेन्द्रिय तथा दृढसत्त्ववाले पुरुष तथा सत्यसम्पन्न स्त्रियां अग्नीश्वरके स्थानमें प्रवेश करती हैं, वे

अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यां सर्वसमृद्धिदम् ॥ अन्यत्रापि मृतो दैवाद्वह्निलोके महीयते ॥ ५६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तानीय तद्बन्धून्पित्रोश्च परिपश्यतोः ॥ दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्र लिंगे शिवोऽविशत् ॥ ५७ ॥ इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः ॥ नाम्ना गृहपतिस्तात शंकरस्य परात्मनः ॥५८॥ चित्रहोत्रपुरी रम्या सुखदार्चिष्मती वरा ॥ जातवेदसि ये भक्ता ते तत्र निवसन्ति वै ॥५९॥ अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्दृढसत्त्वा जितेन्द्रियाः ॥ स्त्रियो वा सत्त्वसम्पन्नास्ते सर्वेऽप्यग्नितेजसः ॥ ६० ॥ अग्निहोत्ररता विप्राः स्थापिता ब्रह्मचारिणः ॥ पञ्चाग्निवर्त्तिनोऽप्येवमग्निलोकेऽग्निवर्चसः ॥ ६१ ॥ शीते शीतापनुत्त्यै यस्त्वेधोभारान्प्रयच्छति ॥ कुर्य्यादग्नीष्टिकां वाथ स वसेदग्निसन्निधौ ॥ ६२ ॥ अनाथस्याग्निसंस्कारं यः कुर्य्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ अशक्तः प्रेरयेदन्यं सोऽग्निलोके महीयते ॥ ६३ ॥ अग्निरेको द्विजातीनां निश्श्रेयसकरः परः ॥ गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम् ॥ ६४ ॥

सब अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ६० ॥ अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण तथा ब्रह्मचारी और इसी प्रकार पंचाग्नि तपनेवाले यह सब अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर स्थित होते हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य जाडोंमें शीतके दूर होनेके लिये ईंधनके बोझोंको दान करता है, अथवा ईंटोंसे अग्निकुंडको बनवाता है, वह अग्निलोकमें निवास करता है ॥ ६२ ॥ जो अनाथ प्रेतका अग्निसंस्कार श्रद्धासे करता है अथवा अशक्त होनेपर दूसरेसे करादेता है वह अग्निके लोकमें पूज्य होता है ॥ ६३ ॥ तीनों द्विजातियोंका एक अग्निही परम कल्याण करनेवाला है, तथा अग्निही, गुरु देवता व्रत तीर्थ है,

जो कुछ है सब अग्निही है ऐसा निश्चय है ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण अपवित्र वस्तु भी अग्निके संगसे क्षणभरमें पवित्र होजाती हैं, इस कारण वह पावक कही गई है ॥ ६५ ॥ यह अग्नि साक्षात् अन्तर्यामी रूपसे प्रगट है, और निश्चय शीघ्रही सुखानेवाली है, और कुक्षिमें मांस ग्रासोंको पकाती है, और स्त्रियोंकी पेशीको पकानेवाली नहीं है ॥ ६६ ॥ स्त्रियोंके शरीरमें तेजवाली दहनात्मिका शिवकी मूर्त्ति प्रत्यक्ष है, वही उत्पन्न करनेवाली विनाश करनेवाली और पालन करनेवाली है, इसके विना क्या कुछ दीखता है ? ॥६७॥ यह साक्षात् शिवका तीसरा नेत्र है, और विचित्र अग्नि है अंधकारसे व्याप्त हुये इस संसारमें इस अग्निके विना कौन प्रकाश करनेवाला है ? ॥ ६८ ॥ सर्व देवता आकाशमें स्थित हुए धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी, मिष्ठान्न, यह सब

अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्षणात् ॥ पावनानि भवन्त्येव तस्माद्यः पावकः स्मृतः ॥ ६५ ॥ अन्तरात्मा ह्ययं साक्षान्निश्चयो ह्याशुशुक्षणिः ॥ मांसग्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम् ॥ ६६ ॥ तैजसी शाम्भवी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका ॥ कर्त्री हर्त्री पालयित्री विनैतां किं विलोक्यते ॥६७॥ चित्रभानुरयं साक्षान्नेत्रन्त्रिभुवनेशितुः ॥ अन्धे तमोमये लोके विनैनं कः प्रकाशनः ॥ ६८ ॥ धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदधिघृतैक्षवम् ॥ एतद्भुक्तं निषेवन्ते सर्वे दिवि दिवौकसः ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ यक्षेश्वरावतारं च शृणु शंभोर्मुनीश्वर ॥ गर्विणं गर्वहन्तारं सताम्भक्तिविवर्द्धनम् ॥ १ ॥ पुरा देवाश्च दैत्याश्च पीयूषार्थम्महाबलाः ॥ क्षीरोदधिं ममन्थुस्ते सुकृतस्वार्थसन्धयः ॥ २ ॥ मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीराब्धेस्सुरदानवैः ॥ अग्नेः समुत्थितं तस्माद्विषं कालानलप्रभम् ॥ ३ ॥

अग्निमें हवन करनेपरही सेवन करते हैं ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवम० भाषा टीकायां तृ० श० रु० गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! अहंकारी तथा अभिमानी जनोंके अहंकार नष्ट करनेवाले तथा सत्पुरुषोंकी भक्ति बढानेवाले शिवजीके यक्षेश्वरावतारको सुनो ॥ ॥ १ ॥ पहले बडे बली देवता और दैत्य अपनी २ भलाई और स्वार्थमें तत्पर हो संधिकर अमृत निकालनेके अर्थ क्षीरसागरको मथने लगे ॥ २ ॥ देवता तथा दैत्योंसे अमृतके अर्थ क्षीरसागरके मथे जानेपर सबसे पहले उसमेंसे कालाग्निके समान अग्निसे प्रादुर्भूत विष निकला ॥ ३ ॥

हे तात ! उस विषको देख समस्त देवता तथा दैत्य भयभीत हुए और दौडकर शीघ्र वे शिवजीकी शरणमें गये ॥ ४ ॥ विष्णुसहित मस्तकको झुकाये हुये सब देवता उन सब देवताओंके सिरमौर शिवको देखकर प्रणाम करके भक्तिसे स्तुति करने लगे ॥५॥ तब भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले भगवान् शिवजीने वह महाघोर देवता दैत्यगणोंको पीडादेनेवाला विष पान किया ॥ ६ ॥ पान कियेहुए उस कठिन विषको कंठमें धारण किया, इससे वह विभु शोभायमान तथा नीलकंठ नामवाले हुये ॥ ७ ॥ तब देवता तथा दैत्योंने फिर उस समुद्रको मथा, वे सम्पूर्ण देवता शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त होगये ॥ ८ ॥

तं दृष्ट्वा निखिला देवा दैत्याश्च भयविह्वलाः ॥ विद्रुत्य तरसा तात शंभोस्ते शरणं ययुः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तं शंकरं सर्वे सर्वदेवशिखामणिम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्तया साच्युता नतमस्तकाः ॥ ५ ॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो भक्तवत्सलः ॥ पपौ विषं महाघोरं सुरासुरगणार्दनम् ॥ ६ ॥ पीतं तं विषमं कण्ठे निदधे विषमुल्बणम् ॥ रेजे तेनाति स विभुर्नीलकण्ठो बभूव ह ॥ ७ ॥ ततः सुरासुरगणा ममन्थुः पुनरेव तम् ॥ विषदाहविनिर्मुक्ताः शिवानुग्रहतोऽखिलाः ॥ ८ ॥ तातो बहूनि रत्नानि निस्सृतानि ततो मुने ॥ अमृतं च पदार्थं हि सुरदानवयोर्मुने ॥ ९ ॥ तत्पपुः केवलन्देवा नासुराः कृपया हरेः ॥ ततो बभूव सुमहद्रत्नं तेषां मिथोऽकदम् ॥ १० ॥ द्वन्द्वयुद्धम्बभूवाथ देवदानवयोर्मुने ॥ तत्र राहुभयाच्चन्द्रो विदुद्राव तदर्दितः ॥ ११ ॥ जगाम सदनं शंभोः शरणम्भयविह्वलः ॥ सुप्रणम्य च तुष्टाव पाहिपाहीति संवदन् ॥ १२ ॥ ततस्सतामभयदः शंकरो भक्तवत्सलः ॥ दध्रे शिरसि चन्द्रं स विभुश्शरणमागतम् ॥ १३ ॥ अथागतस्तदा राहुस्तुष्टाव सुप्रणम्य तम् ॥ शंकरं सकलाधीशं वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥ १४ ॥

हे मुने ! फिर उसमेंसे अनेक रत्न निकले तो अमृत पदार्थ उन दोनोंमेंसे ॥ ९ ॥ केवल देवताओंनेही विष्णुकी कृपासे पिया, दैत्योंने नहीं पिया, तबनिकले हुये बडे २ रत्नोंके परस्पर बांट करनेके निमित्त ॥ १० ॥ हे मुने ! उन देवता और दैत्योंका बडा द्वंद्वयुद्ध हुआ, वहां राहुके भयसे चन्द्रमा पीडित होकर भागे ॥ ११ ॥ भयसे व्याकुलहो शिवके स्थानमें गये, और प्रणाम करके मेरी रक्षाकरो रक्षाकरो यह कहकर शिवकी स्तुति की ॥ १२ ॥ तब सत्पुरुषोंको अभय देनेवाले भक्तवत्सल विभु शिवने उस शरणमें आये चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किया ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त राहु आया और उन सबके स्वामी

शिवको आदरपूर्वक प्रियवाणीसे प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥ १४ ॥ शिवने उसके मतको जानकर पहले विष्णुसे काटे हुये केतुसंज्ञक सिरोंको रुंडमालाके
साथ गलेमें धारण किया ॥ १५ ॥ तब युद्धमें सब दैत्य देवताओंसे पराजित हुये महाबली सब देवता अमृत पीकर विजयको प्राप्त हुये ॥ १६ ॥
विष्णुसे आदि लेकर सब देवता अति अभिमानी हुये और शिवकी मायासे मोहित हो अपने २ बलकी सराहना करने लगे ॥ १७ ॥ हे मुने ! तब वह
सर्वाधीश गर्वके नाश करनेवाले शिवजी यक्ष होकर शीघ्र वहां आये जहां सब देवता स्थित थे ॥ १८ ॥ तब यक्षपति शिवने विष्णु आदि सब देवताओंको

शंभुस्तन्मतमाज्ञाय तच्छिरांस्यच्युतेन ह ॥ पुरा छिन्नानि वै केतुसंज्ञानि निदधे गले ॥१५॥ ततो युद्धेऽसुराः सर्वे देवैश्चैव पराजिताः ॥
पीत्वाऽमृतं सुरास्सर्व्वे जयम्प्रापुर्महाबलाः ॥ १६ ॥ विष्णुप्रभृतयः सर्व्वे बभूवुश्चातिगर्विताः ॥ बलानि चांकुरंतोन्तशिवमायाविमोहिताः
॥ १७ ॥ ततस्स शंकरो देवः सर्वाधीशोथ गर्वहा ॥ यक्षो भूत्वा जगामाशु यत्र देवाः स्थिता मुने ॥ १८ ॥ सर्वान्दृष्ट्वाच्युतमुखान्दे
वान्यक्षपपतिस्स वै ॥ महागर्वाढचमनसा महेशः प्राह गर्वहा ॥ १९ ॥ यक्षेश्वर उवाच ॥ किमर्थं संस्थिता यूयमत्र सर्वे सुरा मिथः ॥
किमु काष्ठाखिलम्ब्रूत कारणं मेनुपृच्छते ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ अभूदत्र महान्देव रणः परमदारुणः ॥ असुरा नाशितास्सर्वेऽवशिष्टा
विद्रुता गताः ॥ २१ ॥ वयं सर्वे महावीरा दैत्यघ्ना बलवत्तराः ॥ अग्रेस्माकं कियन्तस्ते दैत्याः क्षुद्रबलास्सदा ॥ २२ ॥ ॥ नन्दीश्वर
उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुराणां गर्वगर्भितम् ॥ गर्वहासौ महादेवो यक्षरूपो वचोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ यक्षेश्वर उवाच ॥ हे सुरा
निखिला यूयं मद्वचश्शृणुतादरात् ॥ यथार्थं वच्मि नासत्यं सर्वगर्वापहारकम् ॥ २४ ॥

देखकर अहंकार विनाश करनेको बडे अहंकारयुक्त मनसे कहा ॥ १९ ॥ यक्षेश्वर बोले, तुम सब देवता आपसमें मिलकर किस कारण यहां स्थित हुयेहो,
सो सब ठीक २ कहो उसका कारण मैं पूँछता हूं ॥ २० ॥ देवता बोले, हे देव ! यहांपर बडा भयंकर युद्ध हुआ था सब दैत्य नष्ट हुये, शेष बचेहुये
भागकर चले गये ॥२१ ॥ हम सब बडे पराक्रमी तथा दैत्योंके मारनेवाले बडे बलीहैं हमारे आगे वे तुच्छ बलवाले दैत्य क्षुद्र होनेसे क्या वस्तु हैं ॥ २२ ॥
नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार उन देवताओंका अहंकारसे भरा वचन सुनकर गर्वनाश करनेवाले यक्षरूपधारी महादेव यह वचन बोले ॥ २३ ॥ यक्षेश्वर बोले,

कि हे सकलदेवताओ ! तुम सब मेरे वचनोंको आदरसे सुनो, सबके गर्वको नाश करनेवाला यथार्थ वचन कहताहूं, असत्य नहीं कहता ॥ २४ ॥ इस
विषयमें अभिमान मत करो, निर्माण करनेवाला तथा हरण करनेवाला स्वामी दूसराहै, उस महादेवको तुम भूलगये वृथा अपने बलको कहतेहो ॥ २५ ॥
हे देवताओ ! यदि तुम्हारा वह घमंड है तो अपने बलकी परीक्षा करो कि मुझसे स्थापन किये इस (तृण) तिनकेको अपने उन अस्त्रोंसे काटो ॥ २६ ॥
नन्दीश्वर बोले, यह कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूप महादेवने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंकदिया, और सब मद दूर किया ॥ २७ ॥

गर्व्वमेनं न कुरुत कर्त्ता हर्त्ताऽपरः प्रभुः ॥ विस्मृताश्च महेशानं कथयध्वम्वृथाबलाः ॥ २५ ॥ युष्माकञ्चेत्स हि मदो जानतां स्वबल
म्महत् ॥ मत्स्थापितं तृणमिदं छिन्त स्वास्त्रैश्च तैस्सुराः ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वैकतृणन्तेषां निचिक्षेप पुरस्ततः ॥
जह्रे सर्वमदं यक्षरूप ईशस्सतांगतिः ॥ २७ ॥ अथ सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखा वीरमानिनः ॥ कृत्वा स्वपौरुषन्तत्र स्वायुधानि विचि
क्षिपुः ॥ २८ ॥ तत्रासन् विफलान्याशु तान्यस्त्राणि दिवौकसाम् ॥ शिवप्रभावतस्तेषां मूढगर्वापहारिणः ॥ २९ ॥ अथासीत्तु नभो
वाणी देवविस्मयहारिणी ॥ यक्षोऽयं शंकरो देवाः सर्वगर्वापहारकः ॥३०॥ कर्ता हर्त्ता तथा भर्त्ताऽयमेव परमेश्वरः ॥ एतद्बलेन बलिनो
जीवाः सर्वेऽन्यथा न हि ॥ ३१ ॥ अस्य मायाप्रभावाद्धै मोहिताः स्वप्रभुं शिवम् ॥ मदतो बुबुधुर्नैवाद्यापि बोधतनुम्प्रभुम् ॥ ३२ ॥
नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा नभोवाणीं बुबुधुस्ते गतस्मयाः ॥ यक्षेश्वरम्प्रणेमुश्च तुष्टवुश्च तमीश्वरम् ॥ ३३ ॥

तब वीर अभिमानी विष्णुआदि सब देवताओंने अपना पुरुषार्थ करके उसके ऊपर अपने २ अस्त्र चलाये ॥२८॥ देवताओंके प्रहार किये वे अस्त्र निष्फल
होगये, उनमें गर्वके हरण करनेवाले शिवका प्रभाव पडा अर्थात् तृणको न काटसके ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त देवताओंके विस्मयको दूर करनेवाली आकाश
वाणी हुई कि यह यक्ष सब गर्वोंका विनाशक शंकर देव हैं ॥३०॥ यह परमेश्वरही कर्ता विनाशकर्ता तथा पालनकर्ता हैं, इनके बलसे ही सम्पूर्ण जीव बली
होतेहैं और प्रकारसे नहीं ॥ ३१ ॥ इनकी मायाके प्रभावसे मोहितहुये तुमने अपने प्रभु शिवके शरीरको अबतकभी मदके कारण नहीं जाना ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर

बोले, इस प्रकार आकाशवाणीको सुनकर विस्मयरहित हुए उन देवताओंने उन ईश्वरको जाना, और यक्षेश्वरको प्रणामकर संतुष्ट किया ॥ ३३ ॥ देवता बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! सबके अभिमानको नाश करनेवाले ! हे यक्षेश्वर ! हे महालीला वाले ! हे प्रभो ! आपकी माया बडी अद्भुत है ॥ ३४ ॥ आप यक्षरूपधारी शिवकी मायासे अबतक मोहित हुए गर्वसहित वचन कहते हुए हम आपके आगे पृथक्हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! अब तुम्हारीही कृपासे ज्ञान हुआ हे शंकर ! इस जगत्के कर्ता हर्ता तथा पालनकर्ता आपही हैं, दूसरा नहीं ॥ ३६ ॥ आप सब शक्तियोंके तथा सब जीवोंके प्रेरणा करनेवाले हो,

देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव सर्वगर्वापहारक । [illegible] महालील माया तेत्यद्भुता प्रभो ॥ ३४ ॥ मोहिता माययाद्यापि तव यक्षस्वरूपिणः ॥ सगर्वमभिभाषन्तस्त्वत्पुरो हि पृथङ्मयाः [illegible]५॥ इदानीं ज्ञानमायातन्तवैव कृपया प्रभो ॥ कर्ता हर्ता च भर्ता च त्वमेवान्यो न शंकर ॥ ३६ ॥ त्वमेव सर्वशक्तीनां सर्वेषां हि प्रवर्तकः ॥ निवर्तकश्च सर्वेशः परमात्माव्ययोऽद्वयः ॥ ३७ ॥ यक्षेश्वरस्वरूपेण सर्वेषां नो मदो हृतः ॥ कृतो मन्यामहे तत्तेऽनुग्रहो हि कृपालुना ॥ ३८ ॥ अथो स यक्षनाथोऽनुगृह्य वै सकलान् सुरान् ॥ विबोध्य विविधैर्वाक्यैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥ इत्थं स वर्णितः शम्भोरवतारः सुखावहः ॥ यक्षेश्वराख्यस्सुखदस्सतान्तुष्टोऽभयंकरः ॥ ४० ॥ इदमाख्यानममलं सर्वगर्वापहारकम् ॥ सतां सुशान्तिदन्नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४१ ॥

तथा निवृत्ति करनेवाले सबके ईश परमात्मा अव्यय अद्वैत हो ॥ ३७ ॥ आपने यक्षेश्वरका स्वरूप धारण करके हमारा अभिमान दूरकियां, सो कृपालु आपका हम उपकार तथा अनुग्रह करना मानतेहैं ॥ ३८ ॥ तब वह यक्षनाथ सब देवताओंको कृपापूर्वक अनेकवचनोंसे समझाकर वहांहीं अन्तर्धान हुए ॥ ३९ ॥ इस प्रकार सुख देनेवाला, यक्षेश्वरनामक, सत्पुरुषोंको सुखी करनेवाला, तथा संतुष्ट और अभय करनेवाला शिवका अवतार वर्णन किया ॥ ॥ ४० ॥ यह निर्मल इतिहास सबके अभिमानको नाश करनेवाला तथा सज्जनोंको शान्ति देनेवाला और नित्य मनुष्योंको भुक्ति और मुक्ति का देने

वालाहै ॥ ४१ ॥जो बुद्धिमान् पुरुष इसको भक्तिसे सुनता है, अथवा सुनाताहै, वह सम्पूर्ण कामना ओंको प्राप्त होकर अन्तसमय परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ हे मुने ! अब भक्तिसे उपासनाकांडको सेवन करनेवाले महाकाल आदि दश संख्यक शिवके अवतारोंको सुनो ॥ १ ॥ उनमेंसे पहला अवतार महाकाल नामक सत्पुरुषोंको भोग्य तथा मुक्तिका देनेवाला हुआ,और उसकी महाकाली शक्ति भक्तोंके इच्छित फलकी देनेवाली हुई ॥२॥ और दूसरा तारक नामक अवतार तथा तारा नामकी शक्ति हुई, वे दोनों अपने सेवकोंको सुख देनेवाले और भुक्ति तथा मुक्तिके दाता हैं ॥ ३ ॥ बाल नामक भुवनेशका तीसरा अवतार है, उसकी बाला भुवनेशी नामक शक्ति सत्पुरुषोंको सुख देनेवाली है ॥ ४ ॥ चौथा षोडश नामक श्रीविद्येश और उसकी श्रीविद्या षोडशी शक्ति है वह भक्तोंको सुख और मुक्तिके देनेवालेहैं ॥ ५ ॥ पाँचवां भैरव नामक अवतार सर्वदा भक्तोंकी कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है, उसकी भैरवी गिरजा नाम्नी शक्ति श्रेष्ठ उपासकोंकी कामना पूर्णकरनेवाली है ॥ ६ ॥ छठा छिन्नमस्तक अवतार हुआ है, और उसकी छिन्नमस्तका गिरिजा भक्तोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाली है ॥ ७ ॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा सुधीः पुमान् ॥ सर्वकामानवाप्नोति ततश्च लभते गतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोध्यायः ॥ १६॥ शृण्वथो गिरिशस्याद्यावतारान् दशसंख्यकान् ॥ महाकलमुखान् भक्त्योपासनाकाण्डसेवितान् ॥ १ ॥ तत्राद्यो हि महाकालो भुक्तिमुक्तिप्रदस्सताम् ॥ शक्तिस्तत्रमहाकाली भक्तेप्सितफलप्रदा ॥ २ ॥ तारनामा द्वितीयश्च तारा शक्तिस्तथैव सा ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदौ चोभौ स्वसेवकसुखप्रदौ ॥ ३ ॥ भुवनेशो हि बालाह्वस्तृतीयः परिकीर्तितः ॥ भुवनेशी शिवा तत्र बालाह्वा सुखदा सता[illegible] ॥ ४ ॥ श्रीविद्येशः षोडशाह्वः श्रीर्विद्या षोडशी शिवा ॥ चतुर्थो भक्तसुखदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५ ॥ पञ्चमो भैरवः ख्य[illegible]र्वदा भक्तकामदः ॥ भैरवी गिरिजा तत्र सदुपासककामदा ॥ ६ ॥ छिन्नमस्तकनामासौ शिवः षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ भक्त[illegible]प्रदा चैव गिरिजा छिन्नमस्तका ॥ ७ ॥

धूमवान् नामक शम्भुका अवतार सब कामनाओंका देनेवाला हुआ, उसकी धूमावती नामकी शक्ति सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली है ॥ ८ ॥ आठवाँ बगलामुख नामक सुखका देनेवाला शिवका अवतार हुआ, उसकी. महाआनन्द देनेवाली बगलामुखी शक्ति हुई ॥ ९ ॥ नवाँ मातंग नामक शिवका अवतार कहाहै उसकी मातंगी नामकी शर्वाणी सब कामना और फलकी देनेवाली कही है ॥ १० ॥ कमल नामक भुक्ति तथा मुक्तिका देनेवाला दशवाँ शिव अवतार हुआ, उसकी कमला गिरिजा नामकी अपने भक्तोंको पालन करनेवाली शक्ति हुई ॥ ११ ॥ यह शिवजीके दश अवतार सर्वदा सज्जन

धूमवान् सप्तमः शम्भुस्सर्वकामफलप्रदः ॥ धूमावती शिवा तत्र सदुपासककामदा ॥ ८ ॥ शिवावतारःसुखदो ह्यष्टमो बगलामुखः ॥
शक्तिस्तत्र महानन्दा विख्याता बगलामुखी ॥ ९ ॥ शिवावतारो मातङ्गो नवमः परिकीर्तितः ॥ मातंगी तत्र शर्वाणी सर्वकामफल
प्रदा ॥ १० ॥ दशमः कमलः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ कमला गिरिजा तत्र स्वभक्तपरिपालिनी ॥ ११ ॥ एते दशमिताः शैवा
अवतारास्सुखप्रदाः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैव भक्तानां सर्वदास्सताम् ॥ १२ ॥ एते दशावतारा हि शंकरस्य महात्मनः ॥ नानासुखप्रदा
नित्यं सेवतां निर्विकारतः ॥ १३ ॥एतद्दशावताराणां माहात्म्यं वर्णितं मुने ॥ सर्वकामप्रदं ज्ञेयं तंत्रशास्त्रादिगर्भितम् ॥ १४ ॥ एतासा
मादिशक्तीनामद्भुतो महिमा मुने ॥ सर्वकामप्रदो ज्ञेयस्तंत्रशास्त्रादिगर्भितः ॥ १५ ॥ शत्रुमारणकार्य्यादौ तत्तच्छक्तिः परा मता ॥ खल
दण्डकरी नित्यम्ब्रह्मतेजोविवर्द्धिनी ॥१६॥इत्युक्तास्ते मया ब्रह्मन्नवतारा महेशितुः ॥ सशक्तिका दशमिता महाकालमुखाश्शुभाः ॥१७॥

भक्तोंको सुख देनेवाले तथा भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ १२ ॥ यह महात्मा शंकरके दशों अवतार नित्य अनेकप्रकारके सुख देनेवाले हैं, इनकी निर्विकारतासे सेवा करनी चाहिये ॥ १३ ॥ हे मुने ! यह दश अवतारोंका माहात्म्य वर्णन किया, सो सब कामनाओंका देनेवाला तंत्र शास्त्रोंसे संयुक्त जानना चाहिये ॥ १४ ॥ हे मुने ! इन शक्तियोंकीभी अद्भुतमहिमा है, यहभी सब इच्छा पूर्ण करनेवाली और तंत्रशास्त्रोंसे गर्भित हैं ॥ १५ ॥ वह शक्ति शत्रुके मारण आदि कार्य में अधिक मानी गई हैं, दुष्टोंको नित्य दंड देनेवाली तथा ब्रह्मतेजकी बढानेवाली हैं ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! शिवजीके

इस प्रकार शुभ महाकाल आदि दशों शक्ति सहित दश अवतार मैंने कहे ॥ १७ ॥ जो मनुष्य शिवके पर्वोंमें इस निर्मल इतिहासको भक्तिपूर्वक पढताहै वह शिवका अत्यन्त प्रिय होताहै ॥ १८ ॥ यदि ब्राह्मण पढताहै तो ब्रह्मतेजस्वी होताहै और क्षत्रिय हो तो विजयी होताहै, वैश्य धनका अधिपति होताहै, और शूद्र हो तो सुखको पाताहै ॥ १९ ॥ यदि शिवके भक्त अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुनतेहैं तो सुखी और विशेष कर शिवजीकी भक्तिवाले होतेहैं ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ०श०रु० शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीके

शैवपर्वसु सर्वेषु योऽधीते भक्तितत्परः ॥ एतदाख्यानममलं सोतिशम्भुप्रियो भवेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ धनाधिपो हि वैश्यः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ शांकरा निजधर्मस्थाः शृण्वन्तश्चरितन्त्विदम् ॥ सुखिनः स्युर्विशेषण शिवभक्ता भवन्तु च ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एकादशावतारान्वै शृण्वथो शांकरान्वरान् ॥ यान्श्रुत्वा न हि बाध्येत बाधासत्यादिसम्भवा ॥ १ ॥ पुरा सर्वे सुराश्शक्रमुखा दैत्यपराजिताः ॥ त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ॥ २ ॥ दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्ते कश्यपान्तिकम् ॥ बद्ध्वा करान्नतस्कन्धाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम् ॥ ३ ॥ सुनुत्वा तं सुरास्सर्व्वे कृत्वा विज्ञप्तिमादरात् ॥ सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखन्तत्पराजयम् ॥ ४ ॥ ततस्स कश्यपस्तात तत्पिता शिवसक्तधीः ॥ तदाकर्ण्यामराकं वै दुःखितोभून्न चाधिकम् ॥ ५ ॥

ग्यारह श्रेष्ठ अवतारोंको सुनो, जिसके सुननेसे असत्यआदि दोषोंसे उत्पन्न हुई बाधा नहीं सताती है ॥ १ ॥ पहले दैत्योंसे पराजित हुए इन्द्र आदि सब देवता भयसे अपनी अमरावतीपुरीको छोडकर भांग गये ॥ २ ॥ दैत्योंसे पीडित हुए सब देवता कश्यपके निकट गये, और हाथोंको बांधे कन्धोंको झुकाये भयसे व्याकुल हुये उनको प्रणाम किया ॥ ३ ॥ सब देवताओंने प्रणामकर आदरसे प्रार्थनाकर अपने अत्यन्त पराजयरूप दुःखको निवेदन किया ॥ ४ ॥ हे तात ! तब उनके पिता शिवमें आसक्त बुद्धिवाले कश्यपजी उस देवता सम्बन्धी वचनको सुन अधिक दुःखी नहीं हुए ॥ ५ ॥

हे मुने ! उन शान्तबुद्धि कश्यप मुनिने उनको आश्वासना दे धैर्य धारण कराय प्रसन्नतापूर्वक काशीमें विश्वेश्वरपुरीको गमन किया ॥ ६ ॥ और गंगाजीमें स्नानकर आदरसे नैमित्तिक विधिको समाप्त कर पार्वतीसहित सबके ईश्वर प्रभु विश्वेश्वर महादेवजीका पूजन किया ॥ ७ ॥ शिवके लिंगकी स्थापना करके देवताओंके हितकी इच्छासे प्रीतिपूर्वक शिवके उद्देश्यसे अत्यन्त तप किया ॥ ८ ॥ हे मुने ! शिवके चरणकमलोंमें धैर्यपूर्वक मन लगा तप करते २ उनको बहुत समय बीतगया ॥ ९ ॥ तब उस अपने चरणोंमें मन लगायेहुए ऋषिको वर देनेके निमित्त दीनबन्धु सत्पुरुषोंको गति देनेवाले शिवजी

तानाश्वास्य मुनिस्सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः ॥ काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ॥ ६ ॥ गंगाम्भसि ततः स्नात्वा कृत्वा तं विधिमादरात् ॥ विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरम्प्रभुम् ॥ ७ ॥ शिवलिंगं सुसंस्थाप्य चकार विपुलन्तपः ॥ शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ महान्कालो व्यतीयाय तपतस्तस्य वै मुनेः ॥ शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्य्यशालिनः ॥ ९ ॥ अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वरन्दातुन्तदर्षये ॥ स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुस्सतांगतिः ॥ १० ॥ वरम्ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाथ तं महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः॥ तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः॥१२॥ कश्यप उवाच ॥ देवदेव महेशान शरणगतवत्सल ॥ सर्वेश्वरः परात्मा त्वं ध्यानगम्योद्वयोऽव्ययः ॥ १३ ॥ बलनिग्रह कर्ता त्वं महेश्वर सतांगतिः ॥ दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १४ ॥ एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ॥ दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ॥ १५ ॥

प्रगट हुए ॥ १० ॥ और प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने 'वरको ग्रहण करो' यह मुनिश्रेष्ठ अपने भक्त कश्यपजीसे कहा ॥ ११ ॥ तो उन शिवको देखकर प्रसन्न हो अंजलि बांध श्रेष्ठ बुद्धिवाले कश्यपजी उनको प्रणाम कर स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ कश्यपजी बोले, हे देवदेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप सर्वेश्वर हैं, परमात्मा हैं, ध्यानसे पाने योग्य हैं, आप अद्वैत और अविनाशी हैं ॥ १३ ॥ हे महेश्वर ! आप बलके रोकनेवाले तथा सज्जनोंको गति देनेवाले, दीनबंधु, दयाके समुद्र और भक्तोंकी रक्षा करनेमें निपुण हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! यह देवता आपके हैं तथा विशेष कर आपके भक्त

हैं, दैत्योंसे पराजय किये गये हैं अतः इनकी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ असमर्थ हुए विष्णुजी भी आपको दुःखही देते हैं, इस कारण बारम्बार देवता भी दुःखी हो मेरी शरणमें आकर अपना दुःख कहते हैं ॥ १६ ॥ हे देव देवेश ! हे देवताओंके दुःख नाश करनेवाले ! यह मनोरथ पूर्ण करनेको आपकी प्रसन्नताके निमित्त मैंने तपका अनुष्ठान किया है ॥ १७ ॥ हे महेश्वर ! हे स्वामिन् ! मैं सब प्रकार आपकी शरणमें आयाहूं, मेरी कामनाको पूर्ण करो और देवताओंके दुःखको नाश करो ॥ १८ ॥ हे देवेश ! हे ईश ! मैं विशेषकर पुत्रोंके दुःखसे दुःखी हूं. मुझे सुखी करो आप देवताओंके सहायक हैं ॥

असमर्थो रमेशोपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः ॥ अतः सुरा मच्छरणा वेदयन्तोसुखं च तत् ॥ १६ ॥ तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशकः ॥
तत्पूरितुं तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ॥ १७ ॥ शरणन्ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाहं महेश्वर ॥ कामं मे पूरय स्वामिन्देवदुःखं विनाशय ॥
॥ १८ ॥ पुत्रदुःखैश्च देवेश दुःखितोऽहं विशेषतः ॥ सुखिनं कुरु मामीश सहायस्त्वन्दिवौकसाम् ॥ १९ ॥ भूत्वा मम सुतो नाथ देवा
यक्षाः पराजिताः ॥ दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव ॥ २० ॥ सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकः ॥ यथा दैत्यकृता बाधा
न बाधेत सुरान्प्रभो ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स तु सर्वेशस्तथेति प्रोच्य शंकरः ॥ पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हरः
॥ २२ ॥ कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद्द्रुतम् ॥ देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादराम् ॥ २३ ॥ ततस्स शंकरश्शर्वस्सत्यं
कर्तुं स्वकं वचः ॥ सुरभ्यां कश्पाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान् ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ हे नाथ ! हे शम्भो ! मेरे पुत्र हो इन महाबली दैत्योंसे पराजित हुए देवता यक्षोंको आप आनन्द देनेवाले हो ॥ २० ॥ हे महेशान ! हे प्रभो ! आप सब देवताओंके सहायक हो, जिस प्रकार देवताओंको दैत्योंसे की हुई बाधा न पीडा दे ऐसा कीजिये ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, कश्यपके ऐसा कहनेपर 'ऐसाही होगा' यह कह कर, उनके देखते देखते भगवान् शिवजी वहांही अन्तर्द्धान होगये ॥ २२ ॥ कश्यपजी भी बडे प्रसन्नहो शीघ्र अपने स्थानको आये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे सब वृत्तान्त कहा ॥ २३ ॥ तब वह शंकर शर्व अपना वचन सत्य करनेको ग्यारह

रूप धारणकर कश्यपसे सुरभिमें प्रगट हुए ॥ २४ ॥ उस समय बडा उत्सव हुआ, सब मानों शिवरूप होगया सब देवता कश्यपजीसे बडे प्रसन्न हुए ॥ २५॥
कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद्, अहिर्बुध्न्य, शंभु, चंड, तथा भव नामवाले ॥ २६ ॥ यह ग्यारह रुद्र सुरभीके पुत्र
कहेहैं, यह देवताओंके कार्य करनेके निमित्त प्रगट हुए हैं यह शिवरूप साक्षात् सुखके स्थान हैं ॥ २७ ॥ इन महाबली और पराक्रमी वीर कश्यपके पुत्र
देवताओंकी सहायता करनेवाले ग्यारह रुद्रोंने संग्राममें दैत्योंको मारा ॥ २८ ॥ तब उन रुद्रोंकी कृपासे देवताओंने निर्भय हो दैत्योंको विजयकर इंद्र

महोत्सवस्तदासीद्धै सर्वं शिवमयं त्वभूत् ॥ आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना कश्यपेन च ॥ २५॥ कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरू
पाक्षो ४ विलोहितः५॥ शास्ताऽ ६ जपाद ७ हिर्बुध्न्य ८ श्शंभु ९ श्चण्डो १० भवस्तथा ११ ॥ २६ ॥ एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीत
नयाः स्मृताः ॥ देवकार्य्यार्थमुत्पन्नाश्शिवरूपास्सुखत्स्पदम् ॥ २७॥ ते रुद्राः काश्यपा वीरा महबलपराक्रमाः ॥ दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे
देवसाहाय्यकारिणः ॥ २८ ॥ तद्रुद्रकृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः॥ चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्यास्स्वस्थमानसाः ॥ २९ ॥
अद्यापि ते महारुद्रास्सर्वे शिवस्वरूपकाः ॥ देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ॥ ३० ॥ ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तव
त्सलाः ॥ विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ॥ ३१ ॥ तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः ॥ सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलो
केष्वभिभागशः ॥ ३२ ॥ इति ते वर्णितास्तातावताराश्शंकरस्य वै ॥ एकदशमिता रुद्रास्सर्वलोकसुखावहाः ॥ ३३ ॥ इदमाख्यानम
मलं सर्वपापप्रणाशकम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ ३४ ॥

आदिके सहित स्वस्थचित्तहो राज्य किया ॥ २९ ॥ आजतक भी शिवके स्वरूप वे सब महारुद्र देवताओंकी रक्षा करनेके निमित्त निरन्तर द्युलोकमें
विराजतेहैं ॥ ३० ॥ वे भक्तवत्सल तथा नानाप्रकारकी लीलाओंमें चतुर ईशान दिशामें निवास करते हुए वहां सदा रमण करते हैं ॥ ३१ ॥
उनके अनुचर करोडों रुद्र हैं जो तीनों लोकोंमें सर्वत्र चारों ओर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ हे तात ! यह शिवजीके ग्यारह रुद्र अवतार तुमसे वर्णन किये,
जो सबको सुख देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ यह निर्मल इतिहास सब पापोंका दूर करनेवाला धन और यशका बढानेवाला आयुवृद्धिकारक तथा सब

मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला है ॥ ३४ ॥ हे तात ! जो पुरुष सावधान होकर इसको सुनता अथवा सुनाता है वह इस लोकमें सब सुखोंको भोगकर अन्तसमय मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे महामुने ! अब और शिवजीका चरित्र प्रीतिसे सुनो जिस प्रकार धर्मके कारण शिवजीने दुर्वासा रूप धारण किया ॥ १ ॥ तप करनेवाले अति ब्रह्मवेत्ता अनसूयाके पति बुद्धिमान् तथा ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करनेवाले ब्रह्माके पुत्र अत्रि हुए ॥ २ ॥ वह ब्रह्माजीके

य इदं शृणुयात्तात श्रावयेद्वै समाहितः ॥ इह सर्वसुखम्भुक्त्वा ततो मुक्तिं लभेत सः ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां एकादशावतारवर्णनं नामाष्टदाशोऽध्यायः ॥१८॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथान्यच्चरितं शम्भोश्शृणु प्रीत्या महामुने ॥ यथा बभूव दुर्वासाश्शंकरो धर्महेतवे ॥ १ ॥ ब्रह्मपुत्रो बभूवातितपस्वी ब्रह्मवित्प्रभुः ॥ अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रातिपालकः ॥ २ ॥ सुनिर्देशाद्ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया ॥ स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ॥ ३ ॥ प्राणानायम्य विधिवन्निर्विन्ध्यातटिनी तटे ॥ तपश्चचार सुमहदद्वन्द्वोऽब्दशतम्मुनिः ॥ ४ ॥ य एक ईश्वरः कश्चिदविकारो महाप्रभुः ॥ स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ॥ ५ ॥ बहुकालो व्यतीयाय तस्मिंस्तपति सत्तपः ॥ आविर्बभूव तत्काद्धि शुचिर्ज्वाला महीयसी ॥ ६ ॥ तयासन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः ॥ तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ॥ ७॥ अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ॥ ब्रह्मस्थानं ययुश्शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥ ८ ॥

कहनेसे पुत्रकी इच्छाके कारण स्त्रीसहित तप करनेके निमित्त त्र्यक्षनामक पर्वतपर गये ॥ ३ ॥ और उन मुनिने विंध्याचलपर्वतके समीप नदीके किनारे विधिपूर्वक प्राणोंको रोककर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्षतक बडा कठिन तप किया ॥ ४ ॥ जो एकमात्र ईश्वर तथा अविकारी कोई महा प्रभुहैं, वह मुझे श्रेष्ठ पुत्र देंगे ऐसा मनमें ठान लिया ॥ ५ ॥ कठिन तप करते २ उनको बहुत समय बीतगया, तो उनके शिरसे पवित्र बडी तीक्ष्ण अग्निकी ज्वाला प्रगट हुई ॥ ६ ॥ उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक तथा मुनीश्वर ऋषि इन्द्र आदि देवता सब भस्म होनेलगे, और पीडा पानेलगे ॥ ७ ॥ हे मुने ! तब इन्द्रआदि देवता

मुनि आदि, सब उस अग्निसे अति पीडित होकर शीघ्रही ब्रह्माजीके स्थानको गये ॥८॥ हे तात ! देवताओंने नमस्कार और स्तुति कर ब्रह्माजीसे अपना दुःख निवेदन किया, तो ब्रह्माजी सब देवताओंसहित विष्णुलोकको गये ॥ ९ ॥ हे मुने ! वहां जाकर ब्रह्माजीने देवताओंके साथ लक्ष्मीसहित विष्णुको बारंबार नमस्कार करके उनके निकट अपने उस दुःखको कहा ॥ १० ॥ और विष्णुजी उन ब्रह्माजी तथा उन देवताओंके सहित शीघ्र शिवके स्थानको गये वहां परमेश्वर शिवजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ बहुत स्तुति कर उन व्यापक शिवजीसे अत्रिके परम तपसे अग्निके उत्पन्न

नत्वा नुत्वा विधिन्देवास्ततस्स्वदुःखन्न्यवेदयन् ॥ ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोकं ययावरम् ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा रमानाथं नत्वा नुत्वा
विधिस्सुरैः ॥ स्वदुःखन्तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ॥ १० ॥ विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ॥ हरं प्रणम्य तत्रेत्य
तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ११ ॥ स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदुःखं च न्यवेदयत् ॥ शर्वं ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ॥ १२ ॥ अथ तत्र
समेतास्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ मुने संमन्त्रयाञ्चक्रुरन्योन्यं जगतां हितम् ॥ १३ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ॥ जग्मुस्त
दाश्रमं शीघ्रं वरन्दातुन्तदर्षये ॥ १४ ॥ स्वचिह्नचिह्नितांस्तान्स दृष्ट्वात्रिर्मुनिसत्तमः ॥ प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ॥
॥ १५ ॥ ततस्स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥ १६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ हे ब्रह्मन्
हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः ॥ प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्षासंहारकारकाः ॥ १७ ॥

होनेवाले अपने दुःखको निवेदन किया ॥१२॥ हे मुने ! तब उस स्थानमें ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर तीनों मिलकर आपसमें संसारके हित करनेके निमित्त सम्मति करने लगे ॥ १३ ॥ हे देव ! उस समय ब्रह्मा आदि तीनों देवता उन अत्रि ऋषिके वर देनेको उनके आश्रममें शीघ्रतासे गये ॥ १४ ॥ उस अत्रि मुनिने उन सबको अपने २ चिह्नोंसे अंकित देखकर आदरसे प्रियवाणीके द्वारा प्रणाम किया और स्तुति की ॥ १५ ॥ तब वह विनीत आत्मा ब्रह्माके पुत्र अत्रि ब्राह्मण विस्मित हो उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे हाथ जोडकर बोले ॥ १६ ॥ अत्रि बोले, हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे शिव ! आप संसारभरके

पूजनीय मानेगये हैं, तथा प्रभु ईश्वर सृजन रक्षा और विनाश करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ केवल एक शिवजीकाही पुत्रके कारण मैंनें स्त्रीसहित ध्यान किया था, जो संसारमें ईश्वर प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥ हे वरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ ! आप तीनों देवता किस हेतुसे आये हैं इस मेरे संशयका छेदन करके इच्छितवरको दीजिये ॥ १९ ॥ हे मुनी ! ऐसा उनका वचन सुन वे तीनों देवता बोले हे मुनिराज ! जैसा तुमने संकल्प किया है वैसाही होगा ॥ २० ॥ हम तीनों ब्रह्मा ईशान तथा विष्णु समान वर देनेवाले हैं, इस कारण हमारे अंशसे उत्पन्न होनेवाले तीन पुत्र तुम्हारे होंगे ॥ २१ ॥ जो संसारमें विदित होकर माता

एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे ॥ यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ॥ १८ ॥ यूयं त्रयस्सुराः कस्मादागता वरदर्ष
भाः ॥ एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥ १९ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः ॥ यादृक्कृतस्ते संकलपस्तथै
वाभून्मुनीश्वर ॥ २० ॥ वयं त्रयो भवेशानास्समाना वरदर्षभाः ॥ अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ॥ २१ ॥ विदिता भुवने
सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः ॥ इत्युक्तास्ते त्रयो देवास्स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ २२ ॥ वरं लब्ध्वा मुनिस्सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा ॥
युतोऽनुसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥ २३ ॥ अथ ब्रह्मा हरिश्शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः ॥ पुत्ररूपैः प्रसन्नात्मनानालीलाप्रकाशकाः
॥ २४ ॥ विधेरंशाद्विधुर्जज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात् ॥ आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैस्स एव हि ॥ २५ ॥ विष्णोरंशात्स्त्रियान्तस्याम
त्रेर्दत्तो व्यजायत ॥ संन्यासपद्धतिर्येन वर्द्धिता परमा मुने ॥ २६ ॥

पिताकी कीर्ति बढानेवाले होंगे ऐसा कहकर वे तीनों देवता प्रसन्नहो अपने २ स्थानोंको चले गये ॥ २२ ॥ हे मुने ! वह अत्रि मुनि भी वर पाकर आनन्दके साथ अपने स्थानको गये, और अनसूया सहित प्रसन्न तथा ब्रह्मानंदके देनेवाले हुए ॥ २३ ॥ तब उस अनसूया स्त्रीसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पुत्र रूपसे प्रसन्न तथा अनेकलीलाओंके प्रकाश करनेवाले उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ अनसूयामें अत्रिके द्वारा ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जो देवताओंके निक्षेप करनेपर समुद्रमेंसे प्रगट हुआ ॥ २५ ॥ और विष्णुके अंशसे अनसूयामें अत्रिऋषिके द्वारा दत्त भगवान उत्पन्न हुए जिनने संन्यासकी बडी पद्धति बढाई ॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम ! शिवजीके अंशसे धर्मका प्रवर्तक दुर्वासा मुनि श्रेष्ठ उस स्त्रीमें उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उन शिवजीने ब्रह्मतेजके बढानेवाले दुर्वासा रूपसे प्रगट होकर दयालु हो बहुतोंकी धर्मपरीक्षा की ॥ २८ ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए अम्बरीषनामक राजाकी परीक्षा भी इन दुर्वासाजीने की उसको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वह अम्बरीष राजा सातद्वीपकी भूमिका स्वामी था, उसने एकादशीके व्रतमें दृढ नियम किया ॥ ३० ॥ कि मैं एकादशीका व्रत करके द्वादशीको पारण करूंगा ऐसा उस राजाने दृढ संकल्प किया ॥ ३१ ॥ मुनिश्रेष्ठ शंकरके अंशसे उत्पन्न हुये उन दुर्वासाने उसके नियमको जानकर

दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तमः ॥ जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरधर्मप्रवर्तकः ॥ २७ ॥ भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः ॥ चक्रे धर्मपरीक्षाञ्च बहूनां स दयापरः ॥ २८ ॥ सूर्य्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत् ॥ तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ॥ २९ ॥ सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः ॥ नियमं हि चकारासावेकादश्या व्रते दृढम् ॥ ३० ॥ एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम् ॥ करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः ॥ ३१ ॥ ज्ञात्वा तन्नियमन्तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥ तदन्तिकं गतश्शिष्यैर्बहुभिश्शंकरांशजः ॥ ३२ ॥ पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् ॥ कर्त्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ॥ ३३ ॥ ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः ॥ विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥ ३४ ॥ धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ॥ जलम्प्राश्यास्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः ॥ कृताशनं नपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥ ३६ ॥ चुक्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृषस्य सः ॥ प्रोवाच वचनन्तूग्रं स मुनिश्शंकरांशजः ॥ ३७ ॥

अपने अनेकशिष्योंसहित उसके समीप गमन किया ॥ ३२ ॥ उस राजाने पारणाके समय थोडी द्वादशीको जान तबतक भोजन करनेकी तइयारी की, उसी समय दुर्वासा आगये और राजाने उनको निमंत्रण दिया ॥ ३३ ॥ तब दुर्वासा अपने शिष्योंसहित स्नान करनेको चलेगये, और मुनिने वहां उसकी परीक्षाके निमित्त बहुत विलम्ब किया ॥ ३४ ॥ तब उस राजाने धर्ममें विघ्न जानकर शास्त्रकी आज्ञासे जलको पानकर उन दुर्वासाके आनेकी इच्छासे स्थिति की ॥ ३५ ॥ इसी अवसरमें वहां दुर्वासा ऋषि आये, और राजाको भोजन किया जान परीक्षाके निमित्त रुष्ट हो ॥ ३६ ॥ धर्मकी परीक्षाके कारण उस

राजाके ऊपर अति क्रोध किया, वे शिवके अंशसे उत्पन्नहुये दुर्वासा मुनि उससे कठोर वचन बोले ॥ ३७ ॥ दुर्वासा बोले, हे अधम ! राजन् ! मुझे निमंत्रण देकर विना भोजन कराये जल पीलिया, उसका फल दिखाता हूं क्योंकि मैं दुष्टोंको दंड देनेवाला हूं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर क्रोधसे लाल नेत्र कर ऋषि उस राजाके भस्म करनेको उद्यत हुये, तब शीघ्र उसकी रक्षाके निमित्त उस राजामें स्थित हुआ ईश्वरका सुदर्शन चक्र प्रगट हुआ ॥ ३९ ॥ शिवकी मायासे मोहित हो उनको शिवरूप न जानकर मुनिके जलानेको वह सुदर्शनचक्र प्रज्वलित हुआ ॥४०॥ इसही अंतरमें उस ब्रह्मभक्त तथा वैष्णव, महात्मा

दुर्वासा उवाच ॥ मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतन्त्वयाधम ॥ दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समुद्यतः ॥ समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम् ॥३९॥ प्रजज्वालाति तं चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम् ॥ शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥४०॥ एतस्मिन्नन्तरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी ॥ अम्बरीषम्महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥ ४१ ॥ व्योमवाण्युवाच ॥ सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनार्पितम् ॥ शांतं कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥४२॥ दुर्वासायं शिवः साक्षात्स चक्रं हरयेऽर्पितम् ॥ एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम ॥ ४३ ॥ तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः ॥ शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥ ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ॥ अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥ ४५ ॥ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥ ४६ ॥

अम्बरीषसे विना शरीरवाली आकाशवाणी बोली ॥४१॥ व्योमवाणी बोली, हे नृप ! अब दुर्वासाके निमित्त प्रज्वलित हुए, विष्णुके लिये शिवजीसे दियेहुए, सुदर्शनचक्रको शान्त करो ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम ! यह दुर्वासा साक्षात् शिवहैं, उन्होंने यह सुदर्शनचक्र विष्णुको अर्पण किया है, इन दुर्वासाको साधारण मुनि न जानो ॥ ४३ ॥ यह मुनीश्वर तुम्हारी परीक्षाके निमित्त आये हैं उनकी शरण जाओ नहीं तो प्रलय होगी ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे नृपोत्तम ! यह कहकर आकाशवाणी विश्रामको प्राप्त हुई, और उस अम्बरीष राजाने उन शिवके अंशरूप दुर्वासा ऋषिकी स्तुति की ॥ ४५ ॥ अम्बरीष बोले, यदि

मुझे वर दिया है, अथवा मैंने अपना धर्म अनुष्ठान किया है यदि हमारा कुल ब्राह्मण तथा देवताका भक्त है, तो विष्णु भगवान्का अस्त्र शांत होजाना चाहिये ॥ ४६ ॥ यदि मुझ भक्तपर भक्तवत्सल मेरें भगवान् प्रसन्न हैं तो विशेषकर यह सुदर्शनचक्र शांत होजाय ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे बुद्धिमान ! इस प्रकार उन शिवके आगे स्तुति करनेपर शिवका दिया सुदर्शनचक्र सब प्रकार उनको शिवका अंश जानकर शांत होगया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त उस अम्बरीषराजाने अपनी परीक्षाके निमित्त आयेहुये उन दुर्वासा मुनिको शिवका अवतार जान प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ तब वह शिवके अंशसे उत्पन्न हुये मुनि दुर्वासा बडे प्रसन्न हुये और उसके घर भोजन कर अपने इच्छित स्थानको गये ॥ ५० ॥ हे मुनीश्वर ! हमने अम्बरीषकी परीक्षाके विषयमें

यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः ॥ सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धधीः ॥४८॥ अथाम्बरीषस्स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम् ॥ शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥ ४९ ॥ सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजः ॥ भुक्त्वा तस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥ ५० ॥ अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितम्मुने ॥ प्रोक्तमन्यच्चरित्रन्त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥ ५१ ॥ पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै ॥ मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥ ५२ ॥ तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ॥ तन्तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं पणवशान्मुने ॥ ५३ ॥ सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदिता ॥ नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥ ५४ ॥ नियमं सुदृढं दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ॥ दुर्वासास्सुप्रसन्नात्मा वरन्तस्मै प्रदत्तवाम् ॥ ५५ ॥

दुर्वासाका चारित्र तो कहा, अब और भी उन दुर्वासा मुनिका चारित्र सुनो ॥ ५१ ॥ हे मुने ! फिर उन मुनिरूपधारी दुर्वासाने नियमसे रामचन्द्रकी परीक्षा की, हे मुने ! कालरूप मुनिसे, रामचन्द्रने जो नियम किया था कि हमारे तुम्हारे सम्बाद करनेमें कोई न आने पावै ॥ ५२ ॥ तबही उन मुनिने हठसे लक्ष्मणको भेजा, और रामचन्द्रने अपने पणके वश हो शीघ्र उन लक्ष्मण भाईको त्यागदिया ॥ ५३ ॥ संसारमें मुनियोंसे बहुधा कहीहुई वह कथा प्रसिद्ध है, इस कारण मैंने विस्तारसे नहीं कही क्योंकि वह सब प्रकार विद्वानोंकी जानी हुई है ॥ ५४ ॥ उन रामचन्द्रजीके बडे दृढनियमको देखकर दुर्वासामुनि

अतिप्रसन्न हुये और उन रामचन्द्रजीको वरदान किया ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्होंने श्रीकृष्णजीके नियमकी परीक्षा की, उस कथाको कहता हूं तुम उसे श्रवण करो ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विष्णुभगवान् भूमिके भार उतारनेके अर्थ साधुओंकी रक्षाके निमित्त, वसुदेवजीके पुत्र हुये ॥ ५७ ॥ और उन श्रीकृष्णजीने महापापी दुष्टोंको तथा ब्रह्मद्रोही खलोंको मारकर सम्पूर्ण साधु तथा ब्राह्मणोंकी रक्षा की ॥ ५८ ॥ और वे वसुदेवजीके पुत्र श्रीकृष्णजी अत्यन्त ब्राह्मणोंकी भक्ति करते थे, और अनेकों ब्राह्मणोंको नित्य सुन्दर रसवाले भोजन जिमाते थे ॥ ५९ ॥ हे मुने ! श्रीकृष्णजी विशेषही

श्रीकृष्णनियमस्यापि परीक्षां स चकार ह ॥ तां शृणु त्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतो
ऽभवत् ॥ धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥ ५७ ॥ हत्वा दुष्टान्महापापान् ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ॥ ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्म
णान्कृष्णनामभाक् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मभक्तिं चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः ॥ नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात् ॥ संद्रष्टुकामस्स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ॥ ६० ॥ रुक्मिणीसहितं कृष्णं नग्नं कृत्वा
रथे स्वयम् ॥ संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ॥ ६१ ॥ मुनी रथात्समुत्तीर्य दृष्ट्वा तां दृढताम्पराम् ॥ तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो
वज्राङ्गत्ववरन्ददौ ॥ ६२ ॥ द्युनद्यामेकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो बभूव ह ॥ लज्जितोभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ॥ ६३ ॥ तज्ज्ञात्वा
द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात् ॥ तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वाञ्चलदानतः ॥ ६४ ॥ तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः ॥
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ॥ ६५ ॥

ब्रह्मभक्त हैं, ऐसी प्रसिद्धिको देखकर उनकी परीक्षा करनेको दुर्वासा मुनि श्रीकृष्णजीके समीप गये ॥ ६० ॥ और रुक्मिणीसहित श्रीकृष्णजीको अपने रथमें जोड उसमें बैठ प्रसन्न हो उनसे बोले ॥ ६१ ॥ मुनिने रथसे उतरकर उस परम दृढताको देख उन कृष्णजीसे प्रसन्न होकर उनको वज्रके समान अंग होजानेका वरदान दिया ॥ ६२ ॥ हे मुने ! एक समय कौतुकी मुनिश्रेष्ठ, दुर्वासा नग्न होकर गंगाजीमें स्नान करनेसे परम लज्जित हुये ॥ ६३ ॥ वहांपर स्नान करतीहुई द्रौपदीने उनको लज्जित जान आदरपूर्वक अपने वस्त्रको फाडकर उनको देकर उनकी लज्जाको दूर किया ॥ ६४ ॥ तब मुनि

दुर्वासाने जलके प्रवाहसे बहकर अपने निकटको आतेहुये उस वस्त्रको लेकर उससे अपने गुह्यस्थानको ढककर द्रौपदीसे प्रसन्न हो उसका ॥ ६५ ॥ वस्त्रके बढनेका वर दिया, उस वरदानसे द्रौपदीने पांडवोंको सुखी किया ॥ ६६ ॥ कोई हंसडिम्भ नामक दुष्टराजा, अपना अभिमान करनेवाले थे, उनको इन प्रभु दुर्वासाने विष्णुका संदेश देकर नष्ट करदिया ॥ ६७ ॥ और विशेषकर इन्होंने ब्रह्मतेजको पृथ्वीपर विस्तार किया, तथा शास्त्रोंकी विधिके अनुसार संसारकी पद्धतीकाभी विस्तार किया ॥६८॥ और अपने शुभ उपदेशोंसे बोधन करके बहुतोंको उद्धार किया, विशेषकर बहुतोंको ज्ञान देकर मुक्त करदिया ॥६९॥

द्रौपद्यै च वरम्प्रादात्तदञ्चलविवर्द्धनम् ॥ पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ॥ ६६ ॥ हंसडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ ॥ दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ॥ ६७ ॥ ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयामास भूतले ॥ संन्यासपद्धतिश्चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ॥ ६८ ॥ बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च ॥ ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥ ६९ ॥ इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितम्बहु ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतस्सर्वकामदम् ॥ ७० ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितम्मुदा ॥ श्रावयेद्वा परान्यश्च स सुखीह परत्र च ॥७१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां दुर्वासश्चरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितम्मुने ॥ यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः ॥ १ ॥ चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वरः ॥ तत्सर्वं चरितं विप्र शृणु सर्वसुखावहम् ॥ २ ॥

इसप्रकार इन दुर्वासाने बहुत अद्भुतचरित्र किये वह सुननेवालोंके धनके बढानेवाले, यशके बढानेवाले आयुके बढानेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवालेहैं ॥ ७० ॥ जो पुरुष इस दुर्वासाके चरित्रको भक्तिपूर्वक आनन्दके साथ सुनताहै, अथवा औरोंको सुनाताहै, वह इस लोकमें तथा परलोकमें भी सुखी होता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० दुर्वासश्चरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! इसके आगे हनुमानजीका चरित्र सुनो, जिस प्रकार हनुमानजीके रूपसे शिवजीने सुन्दर लीला की हैं ॥ १ ॥ हे विप्र ! परमेश्वर शिवने प्रीति करके रामचन्द्रजीका

परमहित किया है, उस सब सुखोंको देनेवाले चरित्रको सुनो ॥ २ ॥ एक समय गुण युक्त लीला करनेवाले, प्रभु शिवने विष्णुका मोहिनीरूप देखा ॥ ३ ॥ तो कामदेवके बाणसे ताडित हुये शिवजीने अपने आपको कामसे व्याकुल किया और रामचन्द्रजीके कार्यके अर्थ अपना वीर्य गिराया ॥ ४ ॥ तब आदरसे रामचन्द्रके कार्यके अर्थ मनसे शिवजीके द्वारा प्रेरणा किये हुये उन सप्त ऋषियोंने उस वीर्यको पत्तेपर स्थापित किया ॥ ५ ॥ उन महर्षियोंने वह शिवजीका वीर्य गौतमकी पुत्रीमें कर्णके द्वारा तथा अंजनीमें रामचन्द्रजीके कार्यार्थ प्रवेश किया ॥ ६ ॥ उस समय उस वीर्यसे महाबली तथा, पराक्रम

एकस्मिन्समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः ॥ ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोस्स हि वसद्गुणः ॥ ३ ॥ चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो
यथा ॥ स्वम्वीर्यम्पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः ॥ ४ ॥ तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते ॥ प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थ
मादरात् ॥५॥ तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः ॥ कर्णद्वारा तथांजन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥ ६ ॥ ततश्च समये तस्माद्धनूमा
निति नामभाक् ॥ शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः ॥ ७ ॥ हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः ॥ रविबिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा
लघुफलम्प्रगे ॥ ८ ॥ देवप्रार्थनया तं सोऽत्यजज्ज्ञात्वा महाबलम् ॥ शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान्सुरर्षिभिः ॥ ९ ॥ स्वजनन्यन्ति
कम्प्रागादथ सोतिप्रहर्षितः॥हनूमान्सर्वमाचख्यौ तस्यै तद्वृत्तमादरात् ॥ १० ॥ तदाज्ञया ततो धीरस्सर्वविद्यामयत्नतः ॥ सूर्यात्पपाठ
स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम् ॥ ११ ॥ सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ ॥ मातुराज्ञामनु प्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥१२॥

युक्त वानरके शरीरवाले हनुमाननामक शिवजी उत्पन्न हुये ॥ ७ ॥ वह महाबली वानर हनुमान् बालकपनमें ही सूर्यको लघुफल जान सूर्यमंडलके खानेको उद्यत हुए ॥ ८ ॥ और देवताओंकी प्रार्थनासे सूर्यको त्यागा, तब देवता तथा ऋषियोंने महाबली शिवका अवतार जान उनको वरदान दिये ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजी अति प्रसन्न हो अपनी माताके निकट गये और उससे आदरपूर्वक वह सब वृत्तान्त (वर पानेका) कहा ॥ १० ॥ अपनी माताकी आज्ञासे धीर कपिने विना यत्नके सम्पूर्ण विद्या सूर्यके द्वारा उनके निकट जाकर पढीं ॥ ११ ॥ वह शिवके अंशसे उत्पन्न वानरश्रेष्ठ माताकी आज्ञा पाकर

सूर्यकी आज्ञासे सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुये सुग्रीवके समीप गये ॥ १२ ॥ छोटे भ्राता सुग्रीवकी स्त्री भोगनेवाले वालीनामक बडे भाईसे निरादरको प्राप्त हो
सुग्रीवजी ऋष्यमूक पर्वतपर उन हनुमानजीके सहित रहने लगे ॥ १३ ॥ तब वह बुद्धिमान् शिवांशसे उत्पन्न हुए हनुमान सुग्रीवके मंत्री हुए, और सुग्रीवजीका
सब प्रकारसे हित करते थे ॥ १४ ॥ भार्या जानकीके हरण होनेसे दुःखी हो, भाई लक्ष्मण समेत रामचन्द्रके वहां आनेपर उनके साथ सुखपूर्वक उनकी
मित्रता हुई ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्री भोगनेवाले पापी, वीर, अभिमानी, वालीनामक वानरराजको मारडाला ॥ १६ ॥ हे तात ! तब वह

ज्येष्ठभ्रात्रा वालिना हि स्वस्त्रीभोक्त्रा तिरस्कृतः ॥ ऋष्यमूकगिरौ तेन न्यवसत्स हनूमता ॥ १३ ॥ ततोऽभूत्स सुकण्ठस्य मन्त्री कपिवरस्सुधीः ॥
सर्वथा सुहितं चक्रे सुग्रीवस्य हरांशजः ॥ १४ ॥ तत्रागतेन सभ्रात्रा हतभार्येण दुःखिना ॥ कारयामास रामेण तस्य
सख्यं सुखावहम् ॥ १५ ॥ घातयामास रामश्च वालिनं कपिकुञ्जरम् ॥ भ्रातृपत्न्याश्च भोक्तारं पापिनम्वीरमानिनम् ॥ १६ ॥ ततो
रामाऽऽज्ञया तात हनूमान्वानरेश्वरः ॥ स सीतान्वेषणञ्चक्रे बहुभिर्वानरैस्सुधीः ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा लङ्कागतां सीतां गतस्तत्र कपीश्वरः ॥
द्रुतमुल्लंघ्य सिंधुन्तमनिस्तीर्य्यं परैस्स वै ॥ १८ ॥ चक्रेऽद्भुतचरित्रं स तत्र विक्रमसंयुतम् ॥ अभिज्ञानन्ददौ प्रीत्या सीतायै
स्वप्रभोर्वरम् ॥ १९ ॥ सीताशोकं जहाराशु स वीरः कपिनायकः ॥ श्रावयित्वा रामवृत्तं तत्प्राणावनकारकम् ॥ २० ॥ तदभिज्ञानमादाय
निवृत्तो रामसन्निधिम् ॥ रावणाऽऽराममाहत्य जघान बहुराक्षसान् ॥ २१ ॥

बुद्धिमान् वानरेश्वर, हनुमानजी रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुत वानरोंके सहित सीताकी खोजमें गये ॥ १७ ॥ उन हनुमानने जानकीको लंकामें गया हुआ
जान औरोंसे तरनेके अयोग्य भी समुद्रको शीघ्र लांघकर वहां लंकापुरीको गमन किया ॥ १८ ॥ वहां उन्होंने पराक्रम सहित बडा अद्भुत चरित्र किया,
और जानकीको उनके स्वामी रामचन्द्रजीका समाचार दिया ॥ १९ ॥ उन, कपियोंके स्वामी वीर हनुमानजीने जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले, रामचन्द्रके
वृत्तान्तको सुनाकर सीताजीका शोक शीघ्रही दूर किया ॥ २० ॥ उन सीताजीका समाचार ले रावणकी वाटिकाको उजाड बहुतसे राक्षसोंको मार

रामचन्द्रजीके समीप जानेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ उस समय वहां बहुतसे राक्षसों सहित रावणके पुत्रको मार निर्भयहो बलके साथ अत्यन्त उपद्रव किये ॥ २२ ॥ हे मुने ! जब बडे बली रावणने तेलसे सने हुये वस्त्रोंको पूँछमें लपेटकर दृढतासे जलाया ॥ २३ ॥ तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हुये, उन हनुमानने कूद २ कर कौतुकसे संम्पूर्ण लंकाको भस्म किया ॥ २४ ॥ तब वह वानरश्रेष्ठ बिभीषणके घरको छोड सब लंका जलाय समुद्रमें कूदपडे ॥ २५ ॥ वहां अपनी पूंछको बुझाकर समुद्रके दूसरे पारपर पहुँचे और शिवके अंशसे उत्पन्न वह हनुमानजी निर्द्वन्द्व हो रामचन्द्रजीके निकट आये ॥ २६ ॥

तदैव रावणसुतं हत्वा सबहुराक्षसम् ॥ स महोपद्रवं चक्रे महोतिस्तत्र निर्भयः ॥ २२ ॥ यदा दग्धो रावणेनावगुंठ्य वसनानि च ॥ तैलाभ्यक्तानि सुदृढं महाबलवता मुने ॥ २३ ॥ उत्प्लुत्योत्प्लुत्य च तदा महादेवांशजः कपिः ॥ ददाह लंकां निखिलां कृत्वा व्याजन्तमेव हि ॥ २४ ॥ दग्ध्वा लंकां वंचयित्वा बिभीषणगृहं ततः ॥ अपतद्वारिधौ वीरस्ततस्स कपिकुञ्जरः ॥ २५ ॥ स्वपुच्छं तत्र निर्वाप्य प्राप तस्य परन्तटम् ॥ अखिन्नस्स ययौ रामसन्निधिं गिरिशांशजः ॥ २६ ॥ अविलंबेन सुजवो हनूमान् कपिसत्तमः ॥ रामोपकण्ठमागत्य ददौ सीताशिरोमणिम् ॥ २७ ॥ ततस्तदाज्ञया वीरस्सिन्धौ सेतुमबन्धयत् ॥ वानरैस्स समानीय बहून्गिरिवरान्बली ॥ २८ ॥ गत्वा तत्र ततो रामस्तर्तुकामो यथा ततः ॥ शिवलिंगं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेप्सया ॥ २९ ॥ तद्वरात्स जयं प्राप्य वरं तीर्त्वोदधिं ततः ॥ लंकामावृत्य कपिभी रणं चक्रे स राक्षसैः ॥ ३० ॥ जघानाथासुरान्वीरो रामसैन्यं ररक्ष सः ॥ शक्तिक्षतं लक्ष्मणं च संजीविन्या ह्यजीवयत् ॥ ३१ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने बडे बेगसे शीघ्र रामचंद्रके पास आकर सीताजीके शिरकी मणि रामचंद्रको दी ॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रकी आज्ञासे वीरबली हनुमानने और वानरों सहित बहुत पर्वतोंको लाकर समुद्रमें पुल बांधा ॥ २८ ॥ तब वहां पारजानेकी इच्छावाले रामचंद्रजीने जाकर विजयकी इच्छासे शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके पूजन किया ॥ २९ ॥ और शिवजीके वरसे विजयके वरदानको पाकर समुद्रको तरके वानरों सहित लंकाको घेर रामचंद्रजीने राक्षसोंके साथ युद्ध किया ॥ ३० ॥ तब वहां वीर हनुमानजीने दैत्योंको मारा, रामचंद्रजीकी सेनाकी रक्षा की और शक्तिसे घायल हुये लक्ष्मणको संजीवनी बूँटीसे जिवाया ॥ ३१ ॥

महादेवके अंशवाले प्रभु हनुमानजीने सब प्रकार लक्ष्मणसहित रामचंद्रजीको सुखी किया और सब सेनाकी रक्षा की ॥ ३२ ॥ महाबल ग्रहण करनेवालें हनुमानजीने कुटुम्ब सहित रावणको नष्ट किया, और परिश्रम रहित हो देवताओंको सुखी किया ॥ ३३ ॥ और महीरावणनामक राक्षसको मारकर उस स्थानकी रक्षा कर उसके स्थानसे लक्ष्मणसहित रामचंद्रको ले आये ॥ ३४ ॥ वह कपिश्रेष्ठ, सब प्रकार रामचन्द्रका कार्य शीघ्रतासे करते हुये दैत्योंको मारते अनेक प्रकारकी लीला करने लगे ॥ ३५ ॥ सीताजी तथा रामचंद्रके सुख देनेवाले वानरने स्वयं भक्त होकर भूलोकमें रामचन्द्रजीकी भक्तिको स्थापित किया ॥ ३६ ॥ भगवान् शिवका अवतार, भक्तोंके उद्धारका करने वाला, तथा लक्ष्मणके प्राणदान करनेवाला तथा सब देवताओंके मदका नाश करनेवाला है ॥ ३७ ॥ दैत्योंको नष्ट करनेवाले, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले यह रामदूतनामक महावीर हनुमान सदा रामकार्य करनेवाले हैं ॥३८॥ हे तात ! यह धनका देनेवाला, यशका बढानेवाला, आयुको बढानेवाला, सब कामनाओंके फलको देनेवाला हनुमानका चरित्र तुमसे कहा ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर इसको भक्तिसे सुनता है, वह इस लोकमें सब मनोरथोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सर्वथा सुखिनं चक्रे सरामं लक्ष्मणं हि सः॥ सर्वसैन्यं ररक्षासौ महादेवात्मजः प्रभुः ॥३२॥ रावणं परिवाराढ्यं नाशयामास विश्रमः ॥ सुखीचकार देवान्स महाबलग्रहः कपिः ॥३३॥ महीरावणसंज्ञं स हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥ तत्स्थानादानयामास स्वस्थानम्परिपालय च ॥ ३४ ॥ रामकार्यं चकाराशु सर्वथा कपिपुंगवः ॥ असुरान्नमयामास नानालीलां चकार च ॥ ३५ ॥ स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः ॥ स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः॥ ३६ ॥ लक्ष्मणप्राणदाता च सर्वदेवमदापहः॥ रुद्रावतारो भगवान्भक्तोद्धारकरस्स वै ॥ ३७॥ हनुमान्स महावीरो रामकार्यकरस्सदा ॥ रामदूताभिधो लोके दैत्यघ्नो भक्तवत्सलः ॥३८॥ इति ते कथितं तात हनुमच्चरितम्वरम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥३९॥य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः॥स भुक्त्वेहाखिलान्कामानन्ते मोक्षं लभेत्परम् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

नन्दीश्वर बोले कि हे मुने ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब और शिवजीके परमअवतारको प्रीतिसे सुनो, जो सुननेवालोंको सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ १ ॥
हे मुनिशार्दूल ! एक समय पार्वती और शिवजी अपनी इच्छासे विहार करनेकी इच्छा करने लगे ॥ २ ॥ भैरवको द्वारपाल नियत करके भीतर आये
तब सुशील उन दोनोंकी अनेक सखियाँ प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ३ ॥ हे मुंने ! वहांपर स्वतंत्र हुए वे दोनों शिव पार्वती अनेकलीला करके प्रसन्न
हुए ॥ ४ ॥ तब उन्मत्त आकारवाली, तथा लीलासे स्वतंत्र हुई, पार्वती देवी द्वारपर प्रभु शिवकी आज्ञासे आई ॥ ५ ॥ तब वह भैरव द्वारपाल उस देवी

नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ प्रीत्या शृणु मुनेऽवतारं परमं प्रभोः ॥ शंकरस्यात्मभूपुत्र शृण्वतां सर्वकामदम् ॥ १ ॥ एकदा मुनिशार्दूल
गिरिजाशंकरावुभौ ॥ विहर्तुकामौ संजातौ स्वेच्छया परमेश्वरौ ॥ २ ॥ भैरवं द्वारपालं च कृत्वाभ्यन्तरमागतौ ॥ नानासखिगणैः
प्रीत्या सेवितौ नरशीलितौ ॥ ३ ॥ चिरं विहृत्य तत्र द्वौ स्वतन्त्रौ परमेश्वरौ ॥ बभूवतुः प्रसन्नौ तौ नानालीलाकरौ मुने ॥ ४ ॥ अथो
न्मत्ताकृतिर्देवी स्वतन्त्रा लीलया शिवा ॥ आगता द्वारि तद्रूपा प्रभोराज्ञामवाप सा ॥ ५ ॥ तां देवीं भैरवस्सोथ नारीदृष्ट्या विलोक्य
च ॥ निषिषेध बहिर्गन्तुं तद्रूपेण विमोहितः ॥ ६ ॥ नारीदृष्ट्या सुदृष्टा सा भैरवेण यदा मुने ॥ क्रुद्धाऽभवच्छिवा देवी तं शशाप
तदाम्बिका ॥ ७ ॥ ॥ शिवोवाच ॥ नारीदृष्ट्या पश्यसि त्वं यतो मां पुरुषाधम ॥ अतो भव धरायां हि मानुषस्त्वं च भैरव ॥ ८ ॥
नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं यदाऽभवच्छप्तो भैरवश्शिवया मुने ॥ हाहाकारो महानासीद्दुःखमाप स लीलया ॥ ९ ॥ ततश्च शंकरः शीघ्रं
तमागत्य मुनीश्वर ॥ आश्वासयद्भैरवं हि नानाऽनुनयकोविदः ॥ १० ॥

पार्वतीको स्त्रीकी दृष्टिसे देख उसके रूपसे मोहित हो बाहर जानेसे उनको निषेध करने लगे ॥ ६ ॥ हे मुने ! जब भैरवने उस देवीको नारीकी दृष्टिसे देखा,
तभी क्रोधित हुई उस माता पार्वतीने उस भैरवको शाप दिया ॥ ७ ॥ शिवा बोली, हे पुरुषाधम ! हे भैरव ! जो तू मुझको स्त्रीकी दृष्टिसे देखता है, इस
कारण भूमिमें तू मनुष्यपनको प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! इस प्रकार जब भैरव पार्वतीसे शाप दियेगये, तो बडा भारी हाहाकार मचा,
और लीलासे उन भैरवने बडा दुःख पाया ॥ ९ ॥ हे मुनीश्वर ! तब अनेकआश्वासन वाक्योंमें प्रवीणहुये शिवजी वहां आकर उस भैरवको आश्वासन

(ढाढस) करनेलगे ॥ १० ॥ हे मुने ! उस देवीके शापसे शिवकी इच्छासे भैरव पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें वैतालसंज्ञक उत्पन्न हुए ॥११॥ उनके स्नेहसे पार्वतीसमेत शिवभी लौकिक गतिको आश्रयकर शोभन लीला करने लगे विभु शिवजीने भी भूमिपर अवतारलिया ॥ १२ ॥ हे मुने ! शिवजी तो महेशनामक हुये, और पार्वती शारदा हुई इस प्रकार अनेकलीलाओंमें निपुण वे दोनों प्रीतिसे सुन्दर लीला करते हुये ॥ १३ ॥ हे तात ! यह श्रेष्ठ शिवजीका चरित्र तुमसे कहा, यह धनका देनेवाला, यशका देनेवाला, तथा सब कामनाओंके फलका देनेवाला है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य सावधान चित्तसे भक्तिपूर्वक

तच्छापाद्भैरवस्सोथ क्षितावक्तरन्मुने ॥ मनुष्ययोन्यां वैतालसंज्ञकश्शंकरेच्छया ॥ ११ ॥ तत्स्नेहतः शिवः सोपि क्षितावक्तरद्विभुः ॥ शिवया सह सल्लीलो लौकिकीङ्गतिमाश्रितः ॥ १२ ॥ महेशाह्वः शिवश्चासीच्छारदा गिरिजा मुने ॥ सुलीलां चक्रतुः प्रीत्या नाना लीलाविशारदौ ॥ १३ ॥ इति ते कथितं तात महेशचरितं वरम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोध्यायः ॥ ॥ २१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु ब्रह्मसुत प्राज्ञ वृषेशाख्यं मुनीश्वर ॥ शिवावतारं सल्लीलं हरिगर्वहरं वरम् ॥ १ ॥ पुरा देवासुराः सर्वे जरामृत्युभयार्दिताः ॥ परस्परं च संधाय रत्नान्यादित्सवोऽभवन् ॥ २ ॥ ततः सुराऽसुराः सर्वे क्षीरोदं सागरोत्तमम् ॥ उद्यता मथितुं तं च बभूवुर्मुनिनन्दन ॥ ३ ॥ आसञ्शुचिस्मितास्सर्वे केनेदं मन्थनं भवेत् ॥ स्वकार्य्यसिद्धये तस्य ब्रह्मन्निति सुरासुराः ॥ ४ ॥

इस चरित्रको सुनताहै अथवा सुनाताहै वह यहां सब भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको पाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे ब्रह्मसुत ! हे मुनीश्वर ! हे प्राज्ञ ! श्रेष्ठ लीला युक्त तथा विष्णुके अभिमानका नाश करनेवाला, वृषेशनामक शिवका अवतार सुनो ॥ १ ॥ पहले सब देवता तथा दैत्य, जरा मृत्युके भयसे व्याकुल हो आपसमें मिलकर रत्नोंके लेनेकी इच्छा करने लगे ॥ २ ॥ हे मुनिनन्दन ! तब वे सब देवता तथा दैत्य, क्षीरसागरके मथनेको उद्यत हुये ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! यह समुद्र किसके द्वारा मथाजाय इस प्रकार

वे सब अपने कार्य सिद्ध होनेके लिये शोकचिन्तासे व्याकुल मनवाले हुये ॥ ४ ॥ तब शिवकी आज्ञासे देवता तथा दैत्योंको आश्वासना देनेवाली, मेघकी समान गंभीर शब्द करनेवाली आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥ आकाशवाणी बोली, हे देवताओ ! हे दैत्यो ! ! तुम दोनों क्षीरसागरको मथो, तुम्हारी बुद्धिसे यह कार्य होजायगा, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६ ॥ मन्दराचलपर्वतकी मथानी (रई) बनाओ, और वासुकिकी रस्सी बनाओ, और आदरसहित परस्पर मिलकर दोनों देव दानव मथो ॥७॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनिसत्तम ! तब आकाशवाणीको सुनकर सब देवता तथा दैत्य सब सामग्री इकट्ठी करनेको

तदा नभोगता वाणी मेघगम्भीरनिस्वना ॥ उवाच देवान्दैत्यांश्च श्वासयन्तीश्वराज्ञया ॥ ५ ॥ नभोवाण्युवाच ॥ हे देवा असुराश्चैव मन्थध्वं क्षीरसागरम् ॥ भवताम्बलबुद्धिर्हि भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ मन्दरं चैव मन्थानं रज्जुं कुरुत वासुकिम् ॥ मिथस्सर्वे मिलित्वा तु मंथनं कुरुतादरात् ॥ ७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ नभोगतां तदा वाणीं निशम्याथ सुरासुराः ॥ उद्योगं चक्रिरे सर्वे तत्कर्तुं मुनिसत्तम ॥ ८ ॥ सुसन्धायाखिलास्ते वै मन्दरम्पर्वतोत्तमम् ॥ कनकाभं च सरलं नानाशोभार्चितं ययुः ॥ ९ ॥ सुप्रसाद्य गिरीशं तं तदाज्ञप्ताः सुरासुराः ॥ बलादुत्पाटयामासुर्नेतुकामाः पयोऽर्णवम् ॥ १० ॥ भुजैरुत्पाट्य ते सर्व्वे जग्मुः क्षीरार्णवं मुने ॥ अशक्ता अभवंस्तत्र तमानेतुं हतौजसः ॥ ११ ॥ तद्भुजैस्स परिभ्रष्टः पतितो मन्दरो गिरिः ॥ सहसातिगुरुस्सद्यो देवदैत्योपरि ध्रुवम् ॥ १२ ॥ एवम्भग्नोद्यमा भग्नाः सम्बभूवुस्सुरासुराः ॥ चेतनाः प्राप्य च ततस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ १३ ॥

उद्योगकरते हुये ॥ ८ ॥ वे दोनों मिलकर, सुवर्णकी समान कान्तिवाले सरल अनेकप्रकारकी शोभायुक्त उस मन्दराचलपर्वतके समीप गये ॥ ९ ॥ उस पर्वतको अच्छी भाँति प्रसन्न करके उसकी आज्ञा पाय समुद्रके मथनेकी इच्छासे वे दोनों देव दानव बलसे उस पर्वतको समुद्रमें लेजानेको उखाडने लगे ॥ १० ॥ हे मुने ! वे सब उस पर्वतको अपनी भुजाओंसे उखाड क्षीर सागरमें लेगये, वहांपर वे उस पर्वतके लानेमें असमर्थ हुये और बलशून्य हुये ॥ ११ ॥ उनकी भुजाओंसे छूटाहुआ वह बडाभारी मन्दराचलपर्वत अकस्मात् देवता और दैत्योंके ऊपर गिरा ॥ १२ ॥ इस प्रकार साहसहीन

उद्यमशून्य हुये वे देवता और दैत्य क्षणमें चेतना पाकर जगदीश्वर शिवकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ उन शिवकी इच्छासे उद्यत हुये सब देवता व
दैत्योंने फिर उस पर्वतको उठाकर क्षीरसागरके जलमें लेजाकर समुद्रके उत्तर तटमें डाला ॥ १४ ॥ तब देवता तथा राक्षसोंने वासुकिको रस्सी बनाकर
रत्नोंके लेनेकी इच्छासे उस क्षीरसागरको मथा ॥ १५ ॥ क्षीरसागरके मथनेपर उस समुद्रसे देवलोककी महेश्वरी भृगुकी पुत्री लक्ष्मी निकली ॥ १६ ॥
धन्वन्तारि वैद्य, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा घोडा, तथा ऐरावत हाथी ॥ १७ ॥ मदिरा, हरिकाधनुष (शार्ङ्ग), शंख, कामधेनु, कौस्तुभमणि,

तदिच्छयोद्यतास्सर्वे पुनरुत्थाप्य तं गिरिम् ॥ निचिक्षिपुर्जले नीत्वा क्षीरोदस्योत्तरे तटे ॥ १४ ॥ ततस्सुरासुरगणा रज्जुं कृत्वा च
वासुकिम् ॥ रत्नान्यादातुकामास्ते ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥ १५ ॥ क्षीरोदे मथ्यमाने तु श्रीस्स्वर्लोकमहेश्वरी ॥ समुद्भूता समुद्राच्च भृगु
पुत्री हरिप्रिया ॥ १६ ॥ धन्वन्तरिः शशांकश्च पारिजातो महाद्रुमः ॥ उच्चैश्श्रवाश्च तुरगो गज ऐरावतस्तथा ॥ १७ ॥ सुरा हरिधनु
श्शङ्खो गावः कामदुघास्ततः ॥ कौस्तुभाख्यो मणिश्चैव तथा पीयूषमेव च ॥ १८ ॥ पुनश्च मथ्यमाने तु कालकूटं महाविषम् ॥
युगान्तानलभ जातं सुरासुरभयावहम् ॥ १९ ॥ पीयूषजन्मकाले तु बिन्दवो ये बहिर्गताः ॥ तेभ्यः कान्ता समुद्भूता बह्व्यो ह्यद्भुतदर्शनाः
॥ २० ॥ शरत्पूर्णेन्दुवदनास्तडित्सूर्य्यानलप्रभाः ॥ हारकेयूरकटकैर्दिव्यरत्नैरलङ्कृताः ॥ २१ ॥ लावण्यामृततोयेन तास्सिंचन्त्यो
दिशो दश ॥ जगदुन्मादयन्त्येव भ्रूभंगायतवीक्षणाः ॥ २२ ॥

तथा अमृत यह सब निकले ॥ १८ ॥ फिर मथनेपर प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित, देवता और राक्षसोंको भय देनेवाला कालकूट महाविष,
निकला ॥ १९ ॥ अमृत निकलते समय जो उसकी बूँदें बाहर निकलीं उनसे बहुत सुन्दर स्वरूपवाली स्त्रियां उत्पन्न हुईं ॥ २० ॥ जो शरदृतुके पूर्ण
चन्द्रमाके समान मुखवाली बिजली और सूर्य तथा अग्निके समान कान्तिवाले हार बाजूबंद कंकण तथा सुन्दर रत्नोंसे शोभायमान थीं ॥ २१ ॥ वे सब
स्त्रियां लावण्य (सुन्दरता) रूप अमृत जलसे दशों दिशाओंको सींचती हुईं तथा भौंके चढानेमें चौडे नेत्रवाली संसारको उन्मत्त करातीहुईं ॥ २२ ॥

करोडों स्त्रियां उस अमृतसे निकलीं, फिर जरामृत्युका निवारण करने वाला अमृत उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभ, तथा खड्गको विष्णुने ग्रहण किया, और उच्चैःश्रवानामक सुन्दर घोडेको आदरसे सूर्यने लिया ॥ २४ ॥ देवताओंके स्वामी इन्द्रने बडे आदरपूर्वक पारिजात कल्पवृक्ष, तथा ऐरावत हाथी लिया ॥ २५ ॥ भक्तवत्सल शिवजीने कालकूट विष, अपने कंठमें, तथा चन्द्रमाको देवताओंकी रक्षा करनेके निमित्त अपनी इच्छासे अपने मस्तकमें धारण किया ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! शिवकी मायासे मोहित हुये दैत्योंने रमण करानेवाली मदिराको लिया और सब मनुष्योंने धन्वन्तारि वैद्यको

कोटिशस्तास्समुत्पन्नास्त्वमृतात्कामनिस्सृताः ॥ ततोऽमृतं समुत्पन्नं जरामृत्युनिवारणम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मीं शंखं कौस्तुभं च खड्गं जग्राह केशवः ॥ जग्राहार्को हयं दिव्यमुश्चैःश्रवसमादरात् ॥ २४ ॥ पारिजातं तरुवरमैरावतमिभेश्वरम् ॥ शचीपतिश्च जग्राह निर्जरेशो महादरात् ॥ ॥ २५ ॥ कालकूटं शशांकं च देवत्राणाय शंकरः ॥ स्वकण्ठे धृतवाञ्छम्भुस्स्वेच्छया भक्तवत्सलः ॥ २६ ॥ दैत्यास्सुराख्यां रमणीमीश्वराजाविमोहिताः ॥ जगृहुः सकला व्यास सर्वे धन्वन्तारिं जनाः ॥ २७ ॥ जगृहुर्मुनयस्सर्वे कामधेनुम्मुनीश्वराः ॥ सामान्यतस्त्रियस्ताश्च स्थिता आसन्विमोहिताः ॥ २८ ॥ अमृतार्थं महायुद्धं संबभूव जयैषिणाम् ॥ सुराणामसुराणां च मिथः संक्षुब्धचेतसाम् ॥ २९ ॥ हृतं सोमं च दैतेयैर्बलाद्देवान्विजित्य च ॥ बलिप्रभृतिभिर्व्यास युगान्ताग्न्यर्कसुप्रभैः ॥ ३० ॥ देवाश्शंकरमापन्ना विह्वलाश्शिवमायया ॥ सर्वे शक्रादयस्तात दैतेयैरर्दिता बलात् ॥ ३१ ॥ ततस्तदमृतं यत्नात्स्त्रीस्वरूपेण मायया ॥ शिवाज्ञया रमेशेन दैत्येभ्यश्च हृतंम्मुने ॥ ३२ ॥

ग्रहण किया ॥ २७ ॥ सब मुनीश्वरोंने कामधेनुको ग्रहण किया और वे सामान्य स्त्रियाँ मोहिनीरूप हो स्थित रहीं ॥ २८ ॥ तब अमृतके निमित्त मलीन चित्त हुये तथा विजय चाहनेवाले देवता और राक्षसोंमें परस्पर बडा युद्ध हुआ ॥ २९ ॥ हे व्यासजी ! प्रलयकी अग्नि तथा सूर्यकी समान तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवताओंको जीतकर अमृत हरण करलिया ॥ ३० ॥ हे तात ! बलात्कारसे दैत्योंसे पीडित हुये, वे इन्द्र आदि सब देवता, शिवकी मायासे मोहित हो शिवके समीप आये ॥ ३१ ॥ हे मुने ! शिवकी आज्ञासे विष्णुने वह अमृत, यत्नपूर्वक मायासे स्त्रीरूप धरकर दैत्योंसे छीन

लिया ॥ ३२ ॥ मायावियोंमें श्रेष्ठ विष्णुने मोहिनी स्त्रीका रूप धार सब दैत्योंको मोहितकर, वह अमृत देवताओंको पिलाया ॥ ३३ ॥ सब दैत्य उस मोहिनीके निकट जाकर बोले हमको भी इस अमृतको पिलाओ पंक्तिमें भेद न होवै ॥ ३४ ॥ यह कहकर शिवकी मायासे मोहित हुये उन सब दैत्य और दानवोंने अमृत बांटनेके निमित्त कपटरूपधारी विष्णुको दिया ॥ ३५ ॥ इसी अवसरमें उन दैत्योंने अमृतसे उत्पन्न हुई उन स्त्रियोंको देखकर सुखपूर्वक अपने २ स्थानोंपर स्थिति की ॥३६॥ उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसेभी सौगुने सुन्दर तथा घोर यन्त्रोंसे अच्छीप्रकार गुप्त शिवकी मायासे बनेहुए थे ॥३७॥

अपाययत्सुरांस्तांश्च मोहिनीस्त्रीस्वरूपधृक् ॥ मोहयित्वा सुरान्सर्वान्हरिर्मायाविनां वरः ॥ ३३ ॥ गत्वा निकटमेतस्या ऊचिरे दैत्य पुंगवाः ॥ पाययस्व सुधामेतां मा भूद्भेदोऽत्र पंक्तिषु ॥ ३४ ॥ एतदुक्त्वा ददुस्तस्मै विष्णवे छलरूपिणे ॥ ते दैत्या दानवाः सर्वे शिव मायाविमोहिताः ॥३५॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा स्त्रियो दानवपुंगवाः ॥ अनयन्नमृतोद्भूता यथास्थानं यथासुखम् ॥ ३६ ॥ तासाम्पुराणि दिव्यानि स्वर्गाच्छतगुणान्यपि ॥ घोरैर्यन्त्रैस्सुगुप्तानि मयमायाकृतानि च ॥ ३७ ॥ सुरक्षितानि सर्वाणि कृत्वा युद्धाय निर्ययुः ॥ अस्पृष्टवक्षसो दैत्याः कृत्वा समयमेव हि ॥ ३८ ॥ न स्पृशामः स्त्रियश्चेमा यदि देवैर्विनिर्जिताः ॥ इत्युक्त्वा ते महावीरा दैत्यास्सर्वे युयुत्सवः ॥ ३९ ॥ सिंहनादन्ततश्चक्रुश्शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ पूरयन्त इवाकाशं तर्पयन्तो बलाहकान् ॥ ४० ॥ युद्धं बभूव देवानामसुरैस्सह भीकरम् ॥ देवासुराख्यमतुलं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ४१ ॥ जयं प्रापुस्सुरास्सर्वे विष्णुना परिरक्षिताः ॥ दैत्याः पलायितास्तत्र हताः सामरविष्णुना ॥ ४२ ॥

उन सबोंको सुरक्षित करके युद्ध करनेको गये, और जिन्होंने उनका वक्षःस्थल भी न छुआ था ऐसे दैत्योंने उनकी रक्षा की ॥ ३८ ॥ यदि हमको देवत जीतलेंगे तो हम इन स्त्रियोंको नहीं स्पर्श करेंगे ऐसा कहकर महावीर युद्धकी इच्छा करनेवाले वे सब दैत्य मिलकर ॥ ३९ ॥ सिंहनाद करते हुये पृथक् २ शंखोंको बजानेसे मानो आकाशको गुंजारने और मेघोंको तृप्त करने लगे ॥ ४० ॥ तब देवताओंका दैत्योंके साथ भयंकर युद्ध अतुल देवासुर संग्राम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ तब विष्णुजीसे रक्षाकिये सब देवताओंने विजय पाई और वहां बहुतसे दैत्य देवता तथा विष्णुजीके हाथसे मारेगये, शेष

भागगये ॥ ४२ ॥ देवताओंने तथा महात्मा विष्णुने सब दैत्योंको मोहित किया, और जो मारनेसे बचे वह पातालके विवरोंमें प्रवेश करगये ॥ ४३ ॥ महाबली चक्र हाथमें लिये विष्णुजी डरेहुए पातालमें स्थित हुये उन दैत्योंके पीछे गये ॥ ४४ ॥ इसी अवसरमें विष्णुने अमृतसे उत्पन्न हुई पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली दिव्य सौन्दर्य्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा ॥ ४५ ॥ कामके बाणोंसे मोहित हुए विष्णुने उन सुन्दर स्त्रियोंके साथ क्रीडा विहार कर निवृत्ति (शांति) प्राप्त की ॥ ४६ ॥ विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले, अनेकप्रकारके युद्धमें चतुर पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सारी पृथ्वीको कंपानेमें समर्थ थे

दैत्याः संमोहिता देवैर्विष्णुना च महात्मना ॥ हतावशिष्टाः पातालं विविशुर्विवराणि च ॥ ४३ ॥ अनुवव्राज तान्विष्णुश्चक्रपाणिर्महाबलः ॥ पातालं परमं गत्वा संस्थितान्भीतभीतवत् ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्ददर्शामृतसम्भवाः ॥ कान्ताः पूर्णेन्दुवदना दिव्यलावण्यगर्विताः ॥ ४५ ॥ संमोहितः कामबाणैर्लेभे तत्रैव निर्वृतिम् ॥ ताभिश्च वरनारीभिः क्रीडमानो बभूव ह ॥ ४६ ॥ ताभ्यः पुत्रानजनयद्विष्णुर्वरपराक्रमान् ॥ महीं सर्वां कंपयतो नानायुद्धविशारदान् ॥ ४७ ॥ ततो वै हरिपुत्रास्ते महाबलपराक्रमाः ॥ महोपद्रवमाचेरुस्स्वर्गे भुवि च दुःखदम् ॥ ४८ ॥ लोकोपद्रवमालक्ष्य निर्जरा मुनयोऽथ वै ॥ चक्रुर्निवेदनन्तेषां ब्रह्मणे प्रणिपत्य च ॥ ॥ ४९ ॥ तच्छ्रुत्वादाय तान्ब्रह्मा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ तत्र दृष्ट्वा शिवं देवैः प्रणनाम पुनःपुनः ॥ ५० ॥ तुष्टाव विविधैस्स्तोत्रैर्नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ जय देव महादेव सर्वस्वामिन्निति ब्रुवन् ॥ ५१ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव लोकान्रक्षाखिलान्प्रभो ॥ उपद्रुतान्विष्णुपुत्रैः पातालस्थैर्विकारिभिः ॥ ५२ ॥

॥ ४७ ॥ तब महाबल और पराक्रमवाले वे विष्णुके पुत्र स्वर्गलोकमें तथाभूलोकमें बडा दुखदाई उपद्रव मचाने लगे ॥ ४८ ॥ मुनियोंने तथा देवताओंने उन पुत्रोंका संसारभरमें उपद्रव देखकर ब्रह्मासे प्रणामकर निवेदन किया ॥ ४९ ॥ यह सुनकर ब्रह्मा उनको लेकर कैलास पर्वतको गये, वहां देवदेव शिवको देखकर वारंवार प्रणाम करने लगे ॥ ५० ॥ नानाप्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए कंधे झुकाये तथा हाथ बांधे ब्रह्माजी बोले; हे सर्वस्वामिन् ! हे देव ! हे महादेव ! हे प्रभो ! सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करो, पातालमें स्थित हुए विकारी, विष्णुके पुत्रोंसे किये उपद्रवको शांत करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

हे विभो ! अमृतसे उत्पन्न हुई स्त्रियोंमें मन लगाये विकारवाले विष्णुजी अब पातालमें स्थित हैं, और वहां रमण करते हैं ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऋषि तथा देवताओंके सहित ब्रह्माजीसे इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त हो शिवजी लोककी रक्षा करनेके निमित्त तथा पातालसे विष्णुके लानेको प्रसन्न हुये ॥ ५४ ॥ और उन कृपासिंधु भगवान् महेश्वरने उस उपद्रवको जानकर बैलका रूप धारण किया ॥५५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु०विष्णूपद्रव वृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब बैलरूपसे गर्जतेहुए शिवजीने भयंकर शब्द करके उस पातालके विवरमें प्रवेश किया ॥

नारीष्वमृतभूतासु संसक्तात्मा हरिर्विभो ॥ पाताले तिष्ठतीदानीं रमते हि विकारवान् ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं बहु स्तुतः शम्भुर्ब्रह्मणा सर्षिनिर्जरैः ॥ लोकसंरक्षणार्थाय विष्णोरानयनाय च ॥ ५४ ॥ ततस्स भगवाञ्छम्भुः कृपासिन्धुर्महेश्वरः ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय वृषरूपो बभूव ह ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां विष्णूपद्रववृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततो वृषभरूपेण गर्जमानः पिनाकधृक् ॥ प्रविष्टो विवरं तत्र निनदन्भैरवान्रवान् ॥ १ ॥ निपेस्तुतस्य निनदैः पुराणि नगराणि च ॥ प्रकम्पो हि बभूवाथ सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ २ ॥ ततो वृषो हरेः पुत्रान्संग्रामोद्यतकार्मुकान् ॥ शिवमायाविमूढात्ममहाबलपराक्रमान् ॥ ३ ॥ हरिपुत्रास्ततस्तेऽथ प्राकुप्यन्मुनिसत्तम ॥ प्रदुद्रुवुः प्रगर्ज्योच्चैर्वीराश्शंकरसन्मुखम् ॥ ४ ॥ आयातांस्तान्हरेः पुत्रान्रुद्रो वृषभरूपधृक् ॥ प्राकुप्यद्विष्णुपुत्रांश्च खुरैश्शृंगैर्व्यदारयत् ॥ ५ ॥ विदारितांगा रुद्रेण सर्वे हरिसुताश्च ते ॥ नष्टा द्रुतं सम्बभूवुर्गतप्राणा विचेतसः ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ उनके उस घोर शब्दसे पुर तथा नगर सब गिरने लगे और नगरवासियोंमें हलचल मचगई ॥२॥ तब वह वृषरूपधारी शिवजी, महेश्वरकी मायासे मोहित हो बलपराक्रमवाले, संग्राममें धनुष पकडेहुये, विष्णुके पुत्रोंके सन्मुख गये ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब वे वीर विष्णुके पुत्र क्रोध करते हुये, गर्जकर शिवके सन्मुख धावमान हुए ॥ ४ ॥ और वृषरूपी महादेव भी आते हुये उन विष्णुके पुत्रोंको, खुर और सींगोंसे मारने लगे तथा उनके ऊपर क्रोध करने लगे ॥ ५ ॥ शिवजीसे घायल अंग किये हुए, विष्णुके पुत्र प्राणोंसे रहित तथा मूर्च्छित हो शीघ्रही नष्ट होगये ॥ ६ ॥

उन पुत्रोंके मरजानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु उस पातालविवरसे निकलकर शिवके निकट शीघ्र आये ॥ ७ ॥ और विष्णुके पुत्रोंको मारनेवाले वृषरूपी शिवको जाता हुआ देख, विष्णुजी उनको दिव्य अस्त्रोंसे ताडन करने लगे॥८॥तब महाबली वृषरूपधारी महादेवने कुपित होकर पर्वतके ऊपर विष्णुके सम्पूर्ण अस्त्र काट डाले ॥९॥ हे मुने ! तब वह वृषावतारी महादेव महाक्रोध करके तीनों लोकोंको कंपाते हुये महाघोर शब्द करने लगे ॥१०॥क्रोधी मूढ विष्णुको हरिहैं ऐसा न जानकर, बेगसे कूद कूद कर खुर और सींगोंसे विदीर्ण किया ॥११॥ तब वह मायासे मोहित, शिथिलशरीरवाले विष्णु उसके प्रहारको न सहकर

हतेषु तेषु पुत्रेषु विष्णुर्बलवतां वरः ॥ निष्क्रम्याथ प्रणम्योच्चैर्ययौ शीघ्रं हरान्तिकम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा रुद्रं प्रव्रजंतं हतविष्णुसुतं वृषम् ॥ शरैस्सन्ताडयामास दिव्यैरस्त्रैश्च केशवः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महादेवो वृषरूपी महाबलः ॥ अस्त्राणि तानि विष्णोश्च जग्रास गिरिगोचरः ॥ ९ ॥ अथ कृत्वा महाकोपं वृषात्मा स महेश्वरः ॥ विननाद महाघोरं कम्पयंस्त्रिजगन्मुने ॥ १० ॥ तत उत्प्लुत्य तरसा खुरैश्शृंगैर्व्यदारयत् ॥ विष्णुं क्रोधाकुलं मूढमजानन्तं निजं हरिम्॥ ११ ॥ ततस्स शिथिलात्मा हि व्यथितांगो बभूव ह ॥ तत्प्रहारमसह्याशु हरिर्मायाविमोहितः ॥ १२ ॥ गतगर्वो हरिश्चैव विचेता गतचेतनः ॥ ज्ञातवान्परमेशानं विहरन्तं वृषात्मना ॥ १३ ॥ अथ विज्ञाय गौरीशमागतं वृषरूपतः ॥ प्राह गम्भीरया वाचा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥१४॥ हरिरुवाच ॥ देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो ॥ मायया ते महेशान मोहितोहं विमूढधीः ॥ १५ ॥ कृतं युद्धं त्वयेशेन स्वनाथेन मया प्रभो ॥ कृपां कृत्वा मयि स्वामिन्सोऽपराधो हि सह्यताम् ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरेर्दीनतया मुने ॥ भगवाञ्छंकरः प्राह रमेशं भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥

शीघ्रही घायल होगये ॥१२॥ अभिमानरहित मूर्च्छित, तथा चेतना रहित हुये विष्णुने बैलरूपसे विहार करते हुये शिवजीको जाना ॥१३॥ तब वृषरूप धारणकर आयेहुए शिवको जान, कंधे झुकाय हाथजोड गम्भीर वाणीसे विष्णुजी बोले ॥१४॥ भगवान् बोले, कि–हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! हे महेशान ! आपकी मायासे मैं मूर्खबुद्धि मोहित हो रहा हूं ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! मेरे स्वामी आप ईश्वरने जो मेरे साथ युद्ध किया है सो मेरे ऊपर कृपा करके उस अपराधको सहन करो, क्षमा करो ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! उन विष्णुजीके दीन वचन सुन भक्तोंके ऊपर

दया करनेवाले भगवान् शंकर विष्णुसे बोले ॥ १७ ॥ हे विष्णो ! हे महाबुद्धे ! तुमने मुझे क्यों नहीं जाना, और मेरे साथ युद्ध किया, कैसे तुम्हारा ज्ञान सब जाता रहा ॥ १८ ॥ क्या तुम मुझसे अधीन पराक्रम युक्त अपनेको नहीं जानते हो, और तुम इन स्त्रियोंमें रमण मत करो इस खोटे कर्मसे निवृत्त हो ॥ १९ ॥ हे देवेश ! तुम स्त्रियोंके साथ आसक्त हो विहार करते हो, यह तुमको उचित नहीं है, कामके अधीन होकर, संसारके तारण करनेका ज्ञान किस प्रकार रहता है ॥ २० ॥ तब आदरसे कहे हुए ज्ञानके देनेवाले, शिवके वचन सुनकर विष्णु अपने मनसे अपनेको लज्जित करते हुए शिवजीसे

हे विष्णो हे महाबुद्धे कथं मां ज्ञातवान्न हि ॥ युद्धं कृतं कुतस्तेऽद्य ज्ञानं सर्व्वं च विस्मृतम् ॥ १८ ॥ आत्मानं किन्न जानासि मदधीनपराक्रमम् ॥ त्वया नात्र रतिः कार्या निवर्तस्व कुचारतः ॥ १९ ॥ कामाधीनं कथं ज्ञानं स्त्रीषु सक्तो विहारकृत् ॥ नोचितन्तव देवेश स्मरणं विश्वतारणम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं विज्ञानप्रदमादरात् ॥ व्रीडयन्स्वमनसा विष्णुः प्राह वाचं महेश्वरम् ॥ २१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममात्र विद्यते चक्रं तद् गृहीत्वैतदादरात् ॥ गमिष्यामि स्वलोकन्तन्त्वदाज्ञापरिपालकः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य महेशानो वचनं वैष्णवं हरः ॥ प्रत्युवाच वृषात्मा हि वृषरक्षः पुनर्हरिम् ॥ २३ ॥ न विलम्बः प्रकर्त्तव्यो गन्तव्यमित आशु ते ॥ मच्छासनाद्दूरे लोके चक्रमत्रैव तिष्ठताम् ॥ २४ ॥ सन्तानादित्यसंस्थानाच्छिवत्ववचनादपि ॥ अहं घोरतरं तस्माच्चक्रमन्यद्ददामि ते ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतदुक्त्वा हरोऽलेखीद्दिव्यं कालानलप्रभम् ॥ परं चक्रं प्रदीप्तं हि सर्वदुष्टविनाशनम् ॥ २६ ॥

वह वचन बोले ॥ २१ ॥ विष्णुजी बोले, मैं अपने सुदर्शन चक्रको लेकर तुम्हारी आज्ञाका पालनकर अपने लोकको जाता हूं ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजी विष्णुके वचन सुन फिर वृषात्मा तथा वृषभोंकी रक्षा करनेवाले महादेवजी विष्णुभगवान्से बोले ॥ २३ ॥ हे हरे ! तुमको विलम्ब नहीं करना चाहिये, शीघ्र मेरी आज्ञासे यहांसे जाओ चक्रको यहांही रहने दो ॥ २४ ॥ सन्तान तथा सूर्यके संस्थान तथा कल्याणी वचनके कहनेसे मैं अति भयंकर हूं इस कारण मैं तुमको और चक्र देता हूं ॥ २५ ॥ नंदीश्वर बोले, यह कहकर शिवजीने कालाग्निके समान देदीप्यमान प्रदीप्त सब दुष्टोंके नाश

करनेवाला दूसरा दिव्य चक्र निकाला ॥ २६ ॥ भयंकर सूर्यकी समान कांतिवाले चक्रको सब देवता तथा मुनियोंकी रक्षा करनेके निमित्त महात्मा विष्णुको दिया ॥ २७ ॥ परमदीप्तिवाले दूसरे सुदर्शनचक्रको लेकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुजी वहां देवताओंसे बोले ॥ २८ ॥ हे सब देवताओ ! तुम सब आदर सहित मेरे वचन सुनो, और उसी प्रकार शीघ्रतासे उनको करो तब तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २९ ॥ पाताललोकमें यौवनसे उन्मत्त दिव्य स्त्रियां हैं उनके साथ जिसकी इच्छा हो वह २ महाक्रीडा करै ॥ ३० ॥ यह विष्णुके वचन सुनकर विष्णुके सहित वे शूर देवता पातालमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेलगे ॥ ३१ ॥ तब भगवान् शिवजीने उन देवताओंके विचारको जानकर आगे देव योनियोंको क्रोधसे घोर शाप दिया ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले, मेरे अंशसे उत्पन्न हुए मुनियोंको तथा दैत्योंको छोडकर जो कोई भी पातालके स्थानमें प्रवेश करैगा उसी समय उसकी मृत्यु होजायगी ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके हितका बढानेवाला यह घोर शाप सुनकर शिवसे तिरस्कार किये हुये देवता अपने २ स्थानोंको गये ॥ ३४ ॥ हे व्यास ! इस प्रकार स्त्रियोंमें आसक्त हुये विष्णुको शिवने शासन किया, तो वह देवलोकको गये और संसार स्वस्थताको प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ भक्तवत्सल, वृषेश्वर, भगवान् शिवजी

विष्णवे प्रददौ चक्रं घोरार्कायुतसुप्रभम् ॥ सर्वामरमुनीन्द्राणां रक्षकाय महात्मने ॥ २७ ॥ लब्ध्वा सुदर्शनं चान्यच्चक्रं परमदीप्तिमत् ॥ उवाच विबुधांस्तत्र विष्णुर्बुद्धिमतां वरः ॥ २८ ॥ सर्वदेववरा यूयं मद्वाक्यं शृणुतादरात् ॥ कर्तव्यन्तत्तथा शीघ्रं ततश्शं वो भविष्यति ॥ २९ ॥ दिव्या वरांगनास्सन्ति पाताले यौवनान्विताः ॥ ताभिः सार्द्धं महाक्रीडां यः करोतु करोतु सः ॥ ३० ॥ तच्छुत्वा केशवाद्वाक्यं शूरास्त्रिदशयोनयः ॥ प्रवेष्टुकामाः पातालम्बभूवुर्विष्णुना सह ॥ ३१ ॥ विचारमथ विज्ञाय तन्तदा भगवान्हरः ॥ क्रोधाच्छापन्ददौ घोरं देवयोन्यष्टकस्य च ॥ ३२ ॥ हर उवाच ॥ वर्जयित्वा मुनिं शान्तं दानवान्वा मदंशजम् ॥ इदं यः प्रविशेत्स्थानं तस्य स्यान्निधनं क्षणात् ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा वाक्यमिदं घोरं मनुष्यहितवर्धनम् ॥ प्रत्याख्यातास्तु रुद्रेण देवास्स्वगृहमाययुः ॥ ३४ ॥ एवं स्त्रीलः परो विष्णुश्शिवेन प्रतिशासितः ॥ स्वर्लोकमगमद्व्यास स्वास्थ्यं प्राप जगच्च तत् ॥ ३५ ॥ वृषेश्वरोऽपि भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ इत्थं कृत्वा देवकार्यं जगाम स्वगिरीश्वरम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके अपने कलासपर्वतको गये ॥ ३६ ॥ शिवजीका वृषेश्वरावतार तो वर्णन किया जो विष्णुके अज्ञानका हरनेवाला कल्याणरूप त्रिलोकीके सुखका कारण है ॥ ३७ ॥ यह पवित्र कथा, शत्रुओंकी परम बाधा हरनेवाली, स्वर्ग देनेवाली तथा सत्पुरुषोंको यश आयु, भोग्य मुक्तिकी देनेवाली है ॥ ३८ ॥ जो इसको भक्तिके साथ सावधान हो सुनताहै अथवा सुनाता है, वह समस्त कामनाओंको भोगकर अंतसमय मोक्षको प्राप्त होता है, तथा जो इसे स्वयं पढता है अथवा पढाता है वह भी पूर्वोक्त फल पाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० वृषेश्वर

वृषेश्वरावतारस्तु वर्णितश्शंकरस्य च ॥ विष्णुमोहहरश्शर्वस्त्रैलोक्यसुखकारकः ॥ ३७ ॥ पवित्रमिदमाख्यानं शत्रुबाधाहरम्परम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ३८ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वै समाहितः ॥ स भुक्त्वा सकलान्कामानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ तथा पठति यो हीदं पाठयेत्सुधियो नरान् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वृषेश्वरसंज्ञकशिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ पिप्पलादाख्यपरममवतारं महेशितुः ॥ शृणु प्राज्ञ महाप्रीत्या भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ १ ॥ यः पुरा गदितो विप्रो दधीचिर्मुनिसत्तमः ॥ महाशैवस्सुप्रतापी च्यावनिर्भृगुवंशजः ॥ २ ॥ क्षुवेण सह संग्रामे येन विष्णुः पराजितः ॥ सनिर्जरोऽथ संशप्तो महेश्वरसहायिना ॥३॥ तस्य पत्नी महाभागा सुवर्चा नाम नामतः ॥ महापतिव्रता साध्वी यया शप्ता दिवौकसः ॥ ४ ॥ तस्मात्तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः ॥ प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः ॥ ५ ॥

शिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे महाप्राज्ञ ! भक्तिका बढानेवाला, पिप्पलादनामक शिवका परम अवतार कहता हूं आप प्रीतिसे सुनो ॥ १ ॥ जो पहले महाशैव, बडे प्रतापी, :च्यवननामक भृगु वंशमें उत्पन्न दधीचिमुनि होगये हैं ॥ २ ॥ क्षुव ऋषिके सहित जिसने विष्णुको पराजित किया और शिवकी सहायतासे जिसने देवताओं सहित विष्णुको शाप दिया ॥ ३ ॥ उनकी सुवर्चानामवाली स्त्री बडी भाग्यवती, महापतिव्रता साध्वी थी, जिसने देवताओंको शाप दिया ॥ ४ ॥ उससे नाना लीलाओंमें निपुण तेजस्वी महादेव पिप्पलादनामक उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

सूतजी बोले, इस प्रकार नन्दीश्वरका अद्भुत वचन सुन मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार शिरझुकाय अंजलि बांधकर उनसे बोले ॥ ६ ॥ सनत्कुमार बोलें, हे महाप्राज्ञ ! हे नन्दीश्वर ! हे तात ! आप साक्षात शिवके रूपधारी हो, धन्य हो सत्पुरुषोंमें बडे हो आपने यह अद्भुत कथा सुनाई ॥७॥ हे शिलादके पुत्र ! हे तात ! क्षुवके साथ संग्राममें युद्ध करते हुये, विष्णुका पराजय मैंने सुना, उसको आप ब्रह्माने मुझसे पहले कहा था ॥ ८ ॥ अब मेरी सुवर्चासे दिये, देवताओंके शापके सुननेकी इच्छा है, और पीछेसे मंगलका देनेवाला पिप्पलादका चरित्र सुनूंगा ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शैलादिने ब्रह्माके पुत्रका शुभ वचन

सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो नन्दीश्वरवचोऽद्भुतम् ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ नन्दीश्वर महाप्राज्ञ साक्षाद्रुद्रस्वरूपधृक् ॥ धन्यस्त्वं सद्गुरुस्तात श्रावितेयं कथाद्भुता ॥ ७ ॥ क्षुवेण सह संग्रामे श्रुतो विष्णुपराजयः ॥ ब्रह्मणा मे पुरा तात तच्छापश्च शिलादज ॥ ८ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि देवशापं सुवर्चया ॥ दत्तं पश्चात्पिप्पलादचरितं मङ्गलायनम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वाथ शैलादिर्विधिपुत्रवचश्शुभम् ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एकदा निर्ज्जरास्सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर ॥ वृत्रासुरसुहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ॥ ११ ॥ स्वानिस्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ॥ निक्षिप्य सहसा सद्योऽभवन्देवाः पराजिताः ॥ १२ ॥ तदा सर्वे सुरास्सेन्द्रा वध्यमाना स्तथर्षयः ॥ ब्रह्मलोकगताश्शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ॥१३ ॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्टुश्चैव चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्रायं तपसा सुराः ॥ वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ॥ १५ ॥

सुनकर प्रसन्नहो शिवके चरणकमलोंका ध्यान करके यह वचन कहे ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! एक समय इन्द्रआदि सब देवता, वृत्रासुरके साहाय्य करनेवाले दैत्योंसे पराजित हुए ॥ ११ ॥ दधीचि मुनिके आश्रममें अपने २ सब अस्त्रोंको फेंककर सहसा सम्पूर्ण देवता पराजित हुये ॥ १२ ॥ तब वे इन्द्रसहित देवता तथा ऋषिगण ताडित हो शीघ्र ब्रह्मलोकको गये, और उस अपने दुःखको ब्रह्माजीसे कहा ॥ १३ ॥ तब संसारके पितामह ब्रह्माजी देवताओंका वचन सुन, त्वष्टाके करनेकी इच्छाको तत्त्वसे कहने लगे ॥ १४ ॥ महातेजस्वी वृत्रासुर सब दैत्योंका स्वामी है, यह दैत्य त्वष्टाने तप करके

तुम्हारे मारनेको उत्पन्न किया है ॥ १५ ॥ हे प्राज्ञ ! अब जिसप्रकार इसका वध हो उस उपायको सुनो मैं तुमसे धर्मके निमित्त कहताहूं ॥ १६ ॥ पहले उन, तपस्वी महामुनि जितेन्द्रिय, दधीचि ऋषिने शिवका आराधन करके, वज्रकी हड्डियोंका वर पायाहै ॥ १७ ॥ उनसे अस्थियोंको मांगो, वह अवश्य देंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, उनके द्वारा दंड वज्रको बनाय वृत्रासुरको निःसन्देह मारो ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, देवता तथा गुरु सहित इन्द्रने ब्रह्माका वचन सुन देवताओं सहित दधीचि मुनिके श्रेष्ठ आश्रमको गमन किया ॥ १९ ॥ वहां इन्द्रने मुनिको सुवर्चा अपनी स्त्री सहित देखकर गुरु सहित

अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा ॥ तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ॥ १६ ॥ महामुनिर्दधीचिर्यस्स तपस्वी जितेन्द्रियः ॥ लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरम्पुरा ॥ १७ ॥ तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः ॥ निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच॥तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः ॥ आगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ॥ ननाम सांञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्च तम् ॥ २० ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ॥ स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम् ॥ २१ ॥ ततस्स देवराजश्च सामरः स्वार्थसाधकः ॥ अर्थशास्त्रपरो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शक्र उवाच ॥ त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयन्देवास्तथर्षयः ॥ शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥ २३ ॥ स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि ॥ अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ॥ २४ ॥

तथा देवताओं सहित नम्र हो हाथ जोड आदरपूर्वक उनको प्रणाम किया ॥ २० ॥ उन विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनि दधीचिने उनके अभिप्रायको जान सुवर्चानामक अपनी स्त्रीको आश्रमके भीतर भेजा ॥ २१ ॥ तब वह देवताओंसहित स्वार्थका सिद्ध करनेवाला इन्द्र अर्थशास्त्रमें तत्परहो उन मुनिसे यह वचन बोला॥ ॥ २२ ॥ इन्द्र बोला, हम सब त्वष्टा (विष्णु) से दुःखी हुये देवता तथा ऋषिगण दानी महाशैव, शरणागतवत्सल, आपकी शरणमें आये हैं ॥ २३ ॥ हे विप्र ! अपनी वज्रकी बनीहुई अस्थियां दो उन आपकी अस्थियोंसे अपना दंड वज्र बनाकर देवताका शत्रु उस वृत्रासुरको मारूंगा ॥ २४ ॥

ऐसा कहनेपर उन दधीचि मुनिने परोपकार करनेमें तत्परहो अपने स्वामी शिवका ध्यान करके अपने शरीरको त्याग दिया ॥ २५ ॥ वह मुनि बंधन रहितहो शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये, तथा फूलोंकी वर्षा हुई और सब विस्मयको प्राप्त हुये ॥ २६ ॥ तब इन्द्रने कामधेनुको बुलाकर शीघ्र अस्थि निकलवाई, और उन अस्थियोंसे अस्त्र बनानेके निमित्त त्वष्टाको आज्ञा दी ॥२७॥ उससे आज्ञा दिये हुये विश्वकर्माने शिवके तेजसे, बडी पुष्ट वज्रमय, उन अस्थियोंके द्वारा सम्पूर्ण अस्त्र बनाये ॥ २८ ॥ उसके वंशसे उत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्माके सिरका बाण हुआ, और हड्डियोंसे बहुतसे अपने पराये अस्त्र बनाये॥ २९॥

इत्युक्तस्तेन स मुनिः परोपकरणे रतः ॥ ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्ज कलेवरम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मलोकं गतस्सद्यस्स मुनिर्ध्वस्तबन्धनः ॥ पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागताः ॥ २६ ॥ अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ॥ अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्रं निदिदेश तदस्थिभिः ॥ २७ ॥ विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चक्रुपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः ॥ तदस्थिभिर्वज्रमयैस्सुदृढैश्शिववर्चसा ॥ २८ ॥ तस्य वंशोद्भवं वज्रं शरो ब्रह्मशिरस्तथा ॥ अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥ २९ ॥ तामिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववर्चसा ॥ वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥ ३० ॥ ततः शक्रस्सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण स द्रुतम् ॥ उच्चकर्त शिरो वार्त्रं गिरिशृंगमिवौजसा ॥ ३१ ॥ तदा समुत्सवस्तात बभूव त्रिदिवौकसाम् ॥ तुष्टुवुर्निर्जराश्शक्रम्पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३२ ॥ इति ते कथितन्तात प्रसंगाच्चरितन्त्विदम् ॥ पिप्पलादावतारम्मे शृणु शम्भोर्महादरात् ॥ ३३ ॥ सुवर्चा सा मुनेः पत्नी दधीचस्य महात्मनः ॥ ययौ स्वमाश्रमाभ्यन्तस्तदाज्ञप्ता पतिव्रता ॥ ३४ ॥ आगत्य तत्र सा दृष्ट्वा न पतिं स्वन्तपस्विनी ॥ गृहकार्यं च सा कृत्वाखिलम्पतिनिदेशतः ॥ ३५ ॥

हे मुने ! इन्द्र उस वज्रको उठाकर शिवकेतेजसे सम्पन्नहो क्रोधसे वृत्रासुरके समीप शिवजीकी समान दौडा ॥ ३० ॥ तब उद्यतहो उस वज्रको लेकर अपने बलसे शीघ्र वृत्रासुरको पर्वतके शिखरके समान काटडाला ॥ ३१ ॥ हे तात ! उस समय देवताओंमें बडा उत्सव हुआ सब देवता संतुष्ट हुये इन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ हे तात ! यह वृत्रासुरका चरित्र प्रसंगसे तुमको सुनाया अब तुम आदरसे मुझसे शिवके पिप्पलादनामक अवतारको सुनो ॥ ॥ ३३ ॥ वह सुवर्चानामक महात्मा दधीचिकी पतिव्रता स्त्री, आज्ञाको प्राप्त की हुई अपने आश्रमके भीतर गई ॥ ३४ ॥ और उस तपस्विनीने पतिकी

आज्ञासे सब घरके काम करके फिर लौट करके अपने पतिको वहां न देखा ॥ ३५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वहां आई; और देवताओंको न देख बहुत कुशकुन देख वह सुवर्चा बडी विस्मित हुई ॥ ३६ ॥ वह साध्वी यह सब देवताओंके कृत्यको अर्थात् पतिके अस्थिलेनेरूप समाचारको जान अतिक्रोधित हुई और रुष्ट होकर सुवर्चा नाम ऋषि दधीचिकी स्त्री उन देवताओंको शाप देतीहुई ॥ ३७ ॥ सुवर्चा बोली, हे देवताओ ! तुम बडे दुष्ट हो, तथा सब अपने कार्यमें चतुर हो, अज्ञानी हो, लुब्धक हो, इस कारण इन्द्र सहित तुम सब देवता पशु होगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार उस तपस्विनी मुनिकी स्त्री सुवर्चाने उन सब

आजगाम पुनस्तत्र पश्यन्ती बह्वशोभनम् ॥ देवांश्च तान्मुनिश्रेष्ठ सुवर्चा विस्मिताभवत् ॥ ३६ ॥ ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां कृत्यं तदानीञ्च चुकोप साध्वी ॥ ददौ तदा शापमतीव रुष्टा तेषां सुवर्चा ऋषिवर्यभार्या ॥ ३७ ॥ सुवर्चोवाच ॥ अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे स्वकार्यदक्षा ह्यबुधाश्च लुब्धाः ॥ तस्माच्च सर्वे पशवो भवन्तु सेन्द्राश्च मेऽद्यप्रभृतीत्युवाच ॥ ३८ ॥ एवं शापन्ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी ॥ सशक्राणां च सर्वेषां सुवर्चा मुनिकामिनी ॥ ३९ ॥ अनुगन्तुम्पतेर्लोकमथैच्छत्सा पतिव्रता ॥ चितां चक्रे समेधोभिः सुपवित्रैर्मनस्विनी ॥ ४० ॥ ततो नभोगिरा प्राह सुवर्चान्ताम्मुनिप्रियाम् ॥ आश्वासयन्ती गिरिशप्रेरिता सुखदायिनी ॥ ४१ ॥ आकाशवाण्युवाच ॥ साहसं न कुरु प्राज्ञे शृणु मे परमं वचः ॥ मुनितेजस्त्वदुदरे तदुत्पादय यत्नतः ॥ ४२ ॥ ततः स्वाभीष्टचरणन्देवि कर्तुन्त्वमर्हसि ॥ सगर्भा न दहेद्गात्रमिति ब्रह्मानिदेशनम् ॥ ४३ ॥

इन्द्र सहित देवताओंको शाप दिया ॥ ३९ ॥ तब वह पतिव्रता पतिके लोकको जानेकी इच्छा करने लगी, और उस बुद्धिमतीने अतिपवित्र काष्ठोंसे चिता वनाई ॥ ४० ॥ तब शिवजीसे प्रेरणा कीहुई सुखकी देनेवाली, तथा ढाढस बंधाती-हुई आकाशवाणी उस सुवर्चानामक मुनिकी स्त्रीसे बोली ॥ ४१ ॥ आकाशवाणी बोली, हे प्राज्ञ ! ऐसा साहस मतकर मेरे परमवचनको सुन तेरे पेटमें गर्भरूप मुनिका तेज स्थितहै उसको यत्नसे उत्पन्नकर ॥ ४२ ॥ हे देवि ! बालक उत्पन्न करनेके पीछे अपने इच्छानुसार (सती) कार्य करना गर्भसहित तू अपने शरीरको मत जला, ऐसी ब्रह्माकी आज्ञा है ॥ ४३ ॥

नन्दीश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! ऐसा कहकर वह आकाशवाणी मौन हुई, उसको सुन वह मुनिकी स्त्री उस समय विस्मित हुई ॥४४॥ और उस महासाध्वी,
पतिव्रता, पतिलोककी इच्छांवालीने बैठकर पत्थरसे अपने पेटको फोडा ॥ ४५ ॥ तब उसके पेटमेंसे महासुन्दर शरीर दीप्तिमान, दशों दिशाओंको प्रकाश
करता हुआ, उन दधीच मुनिका गर्भरूप बालक निकला ॥ ४६ ॥ हे तात ! यह साक्षात् शिव दधीचिऋषिके उत्तमतेजसे लीला करनेके लिये आपही
प्रगटहुये ॥ ४७ ॥ मुनिके प्राप्तिकी कामना करनेवाली सुबर्चाने शिवके अवताररूप उस अपने पुत्रको देख मनसे जानकर ॥ ४८ ॥ हे मुनीश्वर ! वह

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्का सा नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ॥ तां श्रुत्वा सा मुनेः पत्नी विस्मिताभूत्क्षणं च सा ॥ ४४ ॥ सुवर्चा सा
महासाध्वी पतिलोकमभीप्सती ॥ उपविश्याश्मना भूयः सोदरं विददार ह ॥ ४५ ॥ निर्गतो जठरात्तस्या गर्भो मुनिवरस्य सः ॥ महा
दिव्यतनुर्दीप्तो भासयंश्च दिशो दश ॥ ४६ ॥ साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ दधीचवरतेजसः ॥ प्रादुर्भूतस्स्वयन्तात स्वलीलाकरणे क्षमः ॥४७॥
तन्दृष्ट्वा स्वसुतन्दिव्यस्वरूपम्मुनिकामिनी ॥ सुवर्चाज्ञाय मनसा साक्षाद्रुद्रावतारकम् ॥ ४८ ॥ प्रहृष्टाभून्महासाध्वी प्रणम्याशु नुनाव
सा ॥ स्वहृदि स्थापयामास तत्स्वरूपम्मुनीश्वर ॥ ४९ ॥ सुवर्चा तनयं तं च प्रहस्य विमलेक्षणा ॥ जननी प्राह सुप्रीत्या पतिलोकम
भीप्सती ॥ ५० ॥ सुवर्चोवाच ॥ हे तात परमेशान चिरन्तिष्ठास्य सन्निधौ ॥ अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सुखदो भवेः ॥ ५१ ॥
मामाज्ञापय सुप्रीत्या पतिलोकाय चाधुना ॥ तत्रस्थाहं च पतिना त्वां ध्यास्ये रुद्ररूपिणम् ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवं सा
बभाषेऽथ सुवर्चा तनयम्प्रति ॥ पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना ॥ ५३ ॥

महासाध्वी बडी प्रसन्न हुई और शीघ्र प्रणाम करके उसके स्वरूपको अपने हृदयमें रखकर ॥ ४९ ॥ विमल दृष्टिवाली पतिलोकमें जानेकी इच्छा करती
हुई वह सुवर्चा माता हँसकर उस पुत्रसे बोली ॥ ५० ॥ सुवर्चा बोली, हे तात ! हे परमेशान ! हे महाभाग ! बहुत समयतक इस वटके वृक्षके समीप
निवासकर और सबोंको सुख देनेवाले हो ॥ ५१ ॥ और अब मुझे प्रीति सहित पतिलोकमें जानेकी आज्ञा दो, वहां स्थित हुई मैं पतिके शिवरूपधारी
तुम्हारा ध्यान करूंगी ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि इस प्रकार उस सुवर्चाने अपने पुत्रसे कहा, और उस साध्वीने परमसमाधि लगाकर (सती होकर)

पतिके पीछे गमन किया ॥ ५३ ॥ हे मुने ! इस प्रकार वह दधीचकी स्त्री पतिके संग सती होगई और शिवलोकको प्राप्त होकर आनन्दपूर्वक शिवजीको सेवन करती हुई ॥ ५४ ॥ हे तात ! इसी अवसरपर मुनियोंसहित सब देवता बुलाये हुएके समान शीघ्र प्रसन्न होकर आये ॥ ५५ ॥ भूमिपर दधीचिके सुवर्चामें उत्पन्नहुए शिवको देख अतिप्रीतिसे विष्णु तथा ब्रह्मा अपने २ गणोंसहित वहां गये ॥ ५६ ॥ वहाँ, मुनिपुत्ररूपमें अवतार लेके आयेहुए शिवको देखकर सब देवता हाथजोड प्रणाम करतेहुये ॥ ५७ हे मुनिसत्तम ! उस समय देवताओंका बडा उत्सव हुआ और सब स्तुति करनेलगे । दुन्दुभि, बाजे,

एवन्दधीचपत्नी सा पतिना संगता मुने ॥ शिवलोकं समासाद्य सिषेवे शंकरम्मुदा ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवास्सेन्द्राश्च मुनिभिस्सह ॥ तत्राजग्मुस्त्वरा तात आहूता इव हर्षिताः ॥ ५५ ॥ हरिर्ब्रह्मा च सुप्रीत्यावतीर्णं शंकरं भुवि ॥ सुवर्चायां दधीचाद्वा ययतुस्स्वगणैस्सह ॥ ५६ ॥ तत्र दृष्ट्वावतीर्णन्तं मुनिपुत्रत्वमागतम् ॥ रुद्रं सर्वे प्रणेमुश्च तुष्टुवुर्बद्धपाणयः ॥ ५७ ॥ तदोत्सवो महानासीद्देवानां मुनिसत्तम ॥ नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ५८ ॥ जगुर्गन्धर्वपुत्राश्च किन्नरा वाद्यवादकाः ॥ वादयामासुरमराः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ ५९ ॥ पिप्पलस्य शर्वपितुर्विलसन्तं सुतं च तम् ॥ संस्कृत्य विधिवत्सर्वे विष्णवाद्यास्तुष्टुवुः पुनः ॥ ६० ॥ पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः ॥ प्रसन्नो भव देवेश इत्यूचे हरिणा सुरैः ॥६१॥ इत्युक्त्वा तमनुज्ञाय ब्रह्मा विष्णुस्सुरास्तथा ॥ स्वंस्वं धाम ययुस्सर्वे विधाय च महोत्सवम् ॥ ६२ ॥ अथ रुद्रः पिप्पलादोऽश्वत्थमूले महाप्रभुः ॥ तताप सुचिरं कालं लोकानां हितकाम्यया ॥ ६३ ॥

और नाचनेवाली आनन्दसे नाचनेलगीं ॥ ५८ ॥ गन्धर्वके पुत्र गाने लगे, बाजोंको बजानेवाले किन्नर बाजे बजानेलगे, और देवताओंने फूलोंकी वर्षा की ॥ ५९ ॥ पिप्पलनामक शिवके पिताके उस पुत्रका विधिपूर्वक संस्कार करके विष्णु आदिक सब देवता सन्तुष्ट हुये ॥ ६० ॥ प्रसन्न हो कर ब्रह्माजीने उसका नाम पिप्पलाद रक्खा, हे देवेश ! प्रसन्नहो ऐसा विष्णुने देवताओंसहित ॥ ६१ ॥ कहकर उसकी आज्ञा पाय ब्रह्मा, विष्णु, तथा देवता, बडे उत्सवको करके अपने२स्थानको गये॥६२॥तब महाप्रभु, पिप्पलादनामक शिव, पीपलके वृक्षके नीचे संसारके हितकी इच्छासे बहुत समयतक तप करते रहे॥६३॥

इस प्रकार लोकचर्याके अनुसरण करनेवाले उस सुन्दर तप करनेवाले पिप्पलाद ऋषिके सन्मुख बडा समय बीतगया ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सन्मुने! उन शिवजीने संसारमें निवास करके धर्मके स्थापनकी इच्छासे जो बडी लीला कीहैं उन चरित्रोंको सुनो ॥ १ ॥ एक समय वह पिप्पलाद मुनीश्वर पुष्पभद्रानदीमें स्नान करनेको गये, वहां उन्होंने मनोहर शिवके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मायुवतीको देखा ॥ २ ॥ उसके लेनेकी इच्छासे, लोकके तत्त्वोंमें प्रवीण, भुवनोंमें फिरनेवाले वह मुनि उस कन्याके पिता

इत्थं सुतपतस्तस्य पिप्पलादस्य सम्मुखे ॥ महाकालो व्यतीयाय लोकचर्यानुसारिणः ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ लोके व्यवस्थाय धर्मस्य स्थापनेच्छया ॥ महालीलां चकारेशस्तामहो सन्मुने शृणु ॥ १ ॥ एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः ॥ ददर्श पद्मां युवतीं शिवांशां सुमनोहराम् ॥ २ ॥ तल्लिप्सुस्तत्पितुः स्थानमनरण्यस्य भूपतेः ॥ जगाम भुवनाचारी लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ३ ॥ राजा नराणां तं दृष्ट्वा प्रणम्य च भयाकुलः ॥ मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः ॥ ४ ॥ स्नेहात्सर्वं गृहीत्वा स ययाचे कन्यकां मुनिः ॥ मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥ ५ ॥ मुनिः प्रोवाच नृपतिं कन्यां मे देहि भक्तितः ॥ अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्येहं त्वया सह ॥ ६ ॥ अथो बभूवुराच्छन्नाः सर्वे राजजनास्तदा ॥ तेजसा पिप्पलादस्य दाधीचस्य महामुने ॥ ७ ॥ अथ राजा महाभीतो विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥ कन्यामलंकृताम्पद्मां वृद्धाय मुनये ददौ ॥ ८ ॥

अनरण्य राजाके स्थानको गये ॥ ३ ॥ मनुष्योंके राजाने इनको देख भयभीत हो प्रणाम कर मधुपर्क आदि देकर भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥ ४ ॥ मुनिने स्नेहपूर्वक सब वस्तु ग्रहण करके उस कन्याको मांगा, यह सुनकर वह राजा चुप होगया, कुछ कहनेको समर्थ न हुआ ॥ ५ ॥ मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्याको दो, नहीं तो तेरे सहित सब राज्यको भस्म करदूंगा ॥ ६ ॥ हे महामुने! तब उस समय दधीचके पुत्र पिप्पलादनामक मुनिके तेजसे सब राजाके पुरुष व्याकुल होगये ॥ ७ ॥ तब राजाने भयसे व्याकुल हो, वारंवार विलाप करके, वह अलंकृत हुई पद्मा कन्या उन वृद्ध

मुनिको दी ॥८॥ तब वह मुनि पिप्पलाद, शिवाके अंशसे उत्पन्नहुई पद्मानामक राजाकी कन्याको विवाहकर उसे ले प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको गये ॥९॥ वहां जाकर वह अवस्थासे अतिवृद्ध तपस्वी अतिसौम्य मुनिश्रेष्ठ अपनी स्त्रीके सहित वास करतेभये ॥१०॥ तब अनरण्यकी कन्या, भक्तिपूर्वक उन मुनिकी कर्म, मन, वाणीसे सेवा करने लगी, जैसे लक्ष्मी नारायणकी सेवा करतीहो ॥ ११ ॥ इस प्रकार शिवांश, मुनिश्रेष्ठ, पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे ॥ १२ ॥ उन तपस्वी पिप्पलाद मुनिके समान पद्माको सुख देनेवाले, महात्मा दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ यह

पद्मां विवाह्य स मुनिश्शिवांशाम्भूपतेः सुताम् ॥ पिप्पलादो गृहीत्वा तां मुदितः स्वाश्रमं ययौ ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः ॥ उवाच नार्या स तया तपस्वी नातिलम्पटः ॥१०॥ अथोऽनरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा ॥ ११ ॥ इत्थं स पिप्पलादो हि शिवांशो मुनिसत्तमः ॥ रेमे तया युवत्या च युवा भूय स्वलीलया ॥ १२ ॥ दश पुत्रा महात्मानो बभूवुस्सुतपस्विनः ॥ मुनेः पितुस्समाः सर्वे पद्मायाः सुखवर्द्धनाः ॥ १३ ॥ एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः ॥ पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ॥ १४ ॥ येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना ॥ दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम् ॥ १५ ॥ षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा ॥ तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ॥ १६ ॥ अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित् ॥ तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ॥ १७॥ इति तद्भयतस्तात विकृतोपि शनैश्वरः ॥ तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद्ग्रहसत्तमः ॥ १८ ॥

महाप्रभु शिवका, पिप्पलादरूपमें लीलावतार हुआ, जो अनेकप्रकारकी लीलाका करनेवाला था ॥ १४ ॥ जिस दयालु पिप्पलादने, संसारमें सबोंसे निवारण न होनेवाली शनैश्वरकी पीडाको देख, प्रीतिपूर्वक मनुष्योंको वरदान किया ॥१५॥ कि–जन्मसे लेकर सोलहवर्ष पर्यन्त शिवके भक्तोंको शनैश्वरकी पीडा नहीं होगी यह मेरा वचन सत्य है ॥ १६ ॥ यदि मेरे वचनका अनादर करके शनि कहींपर मनुष्योंको पीडा करैगा तो भस्म होजायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १७ ॥ हे तात ! इस प्रकार उसके भयसे विकृत होकर शनैश्वर ग्रह उनको कभी भी अपनी पीडा नहीं करता ॥ १८ ॥

हे सन्मुने ! यह पिप्पलादकी मनुष्यलीला तथा सुन्दर चरित्र तुमसे कहा सो सब कामनाके फलके देनेवाला है ॥ १९ ॥ गाधि, कौशिक, तथा पिप्पलाद, यह तीन महामुनि, शनैश्वरसे कीहुई पीडाको नष्ट करतेहैं ॥२०॥ जो मनुष्य पद्माके चरित्रसहित पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पृथ्वीपर पढताहै अथवा सुनताहै॥ २१ ॥तथा शनिकी पीडा दूर करनेके अर्थ इस उत्तम चरित्रको जो पढ़ताहै अथवा सुनताहै वह सब मनोरथोंको पाताहै ॥२२॥ वह ज्ञानी महाशैव सत्पुरुषोंका प्रिय मुनिवर दधीच धन्यहै कि जिसका पुत्र पिप्पलादनामक साक्षात् शिव हुआ ॥ २३ ॥ हे तात ! यह इतिहास पुण्य तथास्वर्गका देनेवाला

इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुने ॥ कथितं सुचरित्रन्ते सर्वकामफलप्रदम् ॥ १९ ॥ गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः ॥ शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः ॥ २० ॥ पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुभक्त्या भुवि मानवः ॥ २१ ॥ शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ धन्यो मुनिवरो ज्ञानी महाशैवः सताम्प्रियः ॥ अस्य पुत्रो महेशानः पिप्पलादाख्य आत्मवान् ॥ २३ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यं कुग्रहदोषहृत् ॥ सर्वकामप्रदन्तात शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारचरितवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं परानन्दं वैश्यनाथाह्वयं मुने ॥ १ ॥ नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता ॥ बभूव वारवनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी ॥ २ ॥ महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोज्ज्वला ॥ नानारत्नपरिच्छिन्नशृंगाररसनिर्भरा ॥ ३ ॥

कुत्सितग्रहोंके दोषका हटानेवाला सब इच्छाका पूर्ण करनेवाला और शिवकी भक्तिका बढानेवाला है ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ०श० रु० पिप्पलादावतारचरित्रवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! हे मुने ! परमात्मा शिवको वैश्यनाथनामक, परमआनन्द देनेवाले अवतारको वर्णन करताहूं ॥ १ ॥ पहले कोई नन्दीग्राममें शिवभक्ता, अतिसुन्दर, महानन्दानामवाली प्रसिद्ध वेश्या स्त्री रहती थी ॥ २ ॥ वह बडे ऐश्वर्यसे

पूर्ण, बडी धनाढ्य, उज्ज्वलवर्णवाली, अनेकप्रकारके रत्नजटित शृँगाररससे भरीहुई ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण गानविद्याओंमें निपुण, अतिमनोहर थी, उस वेश्याके गानेसे सब राजा और रानी प्रसन्न होती थीं ॥ ४ ॥ वह शिवनाम जपनेमें तत्पर, तथा भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाली, वेश्या सदैव पार्वती समेत शिवका पूजन करती थी ॥ ५ ॥ वह शिवका पूजन करके नित्य जगदीश्वरको सेवन करती शिवके सुन्दर यशको गाती हुई परमभक्तिसे नृत्य करती थी ॥ ६ ॥ वह वेश्या एक बन्दर और एक मुर्गेको रुद्राक्षसे शोभित करके हाथके ताल (खडताल बाजे) से गीतोंके साथ नचाती थी ॥ ७ ॥ तब

सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा ॥ तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्ञ्यो राजान एव च ॥ ४ ॥ समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा ॥ शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा ॥ ५ ॥ शिवं सम्पूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम् ॥ ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यशः ॥ ६ ॥ रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ॥ करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा ॥ ७ ॥ नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा ॥ वेश्या स्म विहसत्युच्चैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता ॥ ८ ॥ रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डनः ॥ मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत् ॥ ९ ॥ शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ॥ नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन् ॥ १० ॥ एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकम्परमादरात् ॥ शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराऽभवत् ॥ ११ ॥ शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्याया मुनिसत्तम ॥ बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः ॥ १२ ॥

शिवभक्तिमें लगीहुई वह वेश्या सब सखियोंसे युक्त हो उस बंदर और मुर्गेको नाचताहुआ देखकर अतिप्रेमसे उच्चस्वरपूर्वक हँसती थी ॥ ८ ॥ रुद्राक्षोंसे बनाये बाजूबन्द कानके गहनों (करनफूलों) से शोभित हुआ वानर सिखानेसे उसके आगे बालककी समान नाचता था ॥ ९ ॥ जिसकी शिखा (चोटी) में रुद्राक्ष बँधा था ऐसा मुर्गा भी बंदरके साथ नाचनेमें चतुर होकर नाचता था, और देखनेवालोंको प्रसन्न करता था ॥ १० ॥ यह शिवभक्तिमें तत्परहुई महाआनन्दमें पूर्ण वेश्या आदरसे इस कौतुकको करती थी ॥ ११ ॥ हे मुनिसत्तम ! शिवकी भक्ति करनेवाली उस वेश्याका बडे सुखसे बहुत समय

बीतगया ॥ १२ ॥ एक सयम उस वेश्याके घर शिवजी स्वयं वैश्य बनकर शुभव्रत धारे उसके भावकी परीक्षा करनेको आये ॥ १३ ॥ त्रिपुंड्रसे शोभायमान माथेवाले, रुद्राक्षके आभरण धारे, शिवनाम जपनेमें आसक्त, जटावाले, तथा शिवके वेषको धारण किये हुए ॥ १४ ॥ वह वैश्य अंगमें भस्म लगाये, हाथमें सुन्दर कंकण पहने, बडे रत्नोंसे शोभायमान, दूसरोंको कौतुक दिखानेवाला हो शोभित हुआ ॥ १५ ॥ उसको आयाहुआ देख उस सुन्दरी वेश्याने बडे आनंदके साथ सत्कार करके उसको आदरसहित अपने स्थानमें बैठाया ॥ १६ ॥ उसके हाथमें अति मनोहर सुन्दर कंगनको देखकर उसमें

एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवस्स्वयम् ॥ परीक्षितुं च तद्भावमाजगाम शुभो व्रती ॥ १३ ॥ त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षाभरणः कृती ॥ शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत् ॥ १४ ॥ स बिभ्रद्भस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम् ॥ महारत्नपरिस्तीर्णं राजते परकौतुकी ॥ १५ ॥ तमागतं सुसंपूज्य सा वेश्या परया मुदा ॥ स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत् ॥ १६ ॥ तत्प्रकोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम् ॥ तस्मिञ्जातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता ॥ १७ ॥ महानन्दोवाच ॥ महारत्नमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः ॥ मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तांनवरत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे ॥ वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥ १९ ॥ वैश्यनाथ उवाच ॥ अस्मिन् रत्नवरे दिव्ये सस्पृहं यदि ते मनः ॥ त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ २० ॥ ॥ वेश्योवाच ॥ वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ॥ अस्मत्कुलोचितो धर्मोव्यभिचारो न संशयः ॥ २१ ॥

लोभित हुई विस्मित वह वेश्या उस वैश्यसे बोली ॥ १७ ॥ महानंदा बोली, यह रत्नजटित, आपके हाथमें स्थित हुआ, दिव्यस्त्रियोंके आभूषणमें उचित कंकण शीघ्रही मेरे मनको लुभाता है ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार नवीनरत्नोंसे युक्त उस, हाथके भूषणमें उसकी इच्छा देख, गंभीरबुद्धि वह वैश्य हँसकर बोला ॥ १९ ॥ वैश्यनाथ बोला, यदि इस दिव्यश्रेष्ठरत्नमें तुम्हारा मन लुभागया है तो तुमही प्रीतिसे इसको धारण करो, और इसका मूल्य क्या दोगी ॥ २० ॥ वेश्या बोली, हम व्यभिचारिणी वेश्याहैं, पतिव्रता नहीं हैं, हमारे कुलका व्यभिचार करनाही धर्म है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २१ ॥

यदि यह हाथका भूषण आप मुझे दोगे तो मैं तीन दिनरात, तुम्हारी स्त्री रहूंगी ॥ २२ ॥ वैश्य बोला, हे वीरवल्लभे ! बहुत अच्छा यदि तेरा वचन सत्य है तो अपना रत्नोंका कंकण तुझे देताहूं, तुम तीन रात मेरी स्त्री हो ॥ २३ ॥ हे प्रिये ! इस व्यवहारमें चन्द्रमा तथा सूर्य प्रमाण हैं तीन वचनसे सत्य वचन कहकर मेरे हृदयको स्पर्शकर ॥ २४ ॥ वेश्या बोली, हे प्रभो ! तीन दिन तथा तीनरात तुम्हारी भार्या होकर तुम्हारे साथ विषय करूंगी इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह महानन्दा तीनबार कहकर, सूर्य और चंद्रमाको साक्षीकर प्रसन्नतापूर्वक उस वैश्यके हृदयको स्पर्श

यद्येतदलिखं चित्तं गृह्णाति करभूषणम् ॥ दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम् ॥ २२ ॥ वैश्य उवाच ॥ तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे ॥ ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ ॥ त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥ २४ ॥ वेश्योवाच ॥ दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तत्र प्रभो ॥ सहधर्मं चरामीति सत्यंसत्यं न संशयः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ ॥ प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥ २६ ॥ अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्त्वा रत्नकंकणम् ॥ लिंगं रत्नमयं तस्य हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ वैश्यनाथ उवाच ॥ इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम् ॥ रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम् ॥ नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद्गृहम् ॥ २९ ॥ सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा ॥ सुखं सुष्वाप पर्यंके मृदुतल्पोपशोभिते ॥ ३० ॥ ततो निशीथसमये मुने वैश्यपतीच्छया ॥ अकस्मादुत्थिता वाणीनृत्यमण्डपिकान्तरे ॥ ३१ ॥

करती हुई ॥ २६ ॥ तब वह वैश्य उस वेश्याको रत्नजडित कंकण देकर उसके हाथमें रत्नमय शिवलिंगको देकर कहनेलगा ॥ २७ ॥ वैश्यनाथ बोला, हे कान्ते ! यह रत्नजडित शिवका लिंग मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है तू इसकी रक्षा करना, और यत्नसे छिपाना ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसाही होगा, इस प्रकार कहकर वह रत्नजडितलिंग लेकर नाट्यशाला (नाचनेके घर) के मध्यमें रखकर उसने घरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ तब वह वेश्या उस विटधर्मी वैश्यके साथ रात्रिमें मिलकर कोमल तकिये गद्दोंसे शोभायमान, फेनसे पलंगपर सुखपूर्वक सोई ॥ ३० ॥ हे मुने ! तब रात्रिके समय

उस वैश्यकी इच्छासे, नृत्यमंडपमेंसे अकस्मात् वाणी हुई ॥ ३१ ॥ हे तात ! तेज पवनकी सहायतावाला अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होकर इस नाचभवनको एकसाथले उडा है अर्थात् नाट्यशाला चारोंओरसे जलनेलगीहै ॥ ३२ ॥ मंडपके जलनेपर उस वेश्याने एकसाथ उठकर बन्धनसे बन्दरको खोला ॥ ॥ ३३ ॥ वह बंदर बंधनसे खुलाहुआ उस मुर्गेके साथ बहुतसे आगकी चिनगारियोंको दूर करके भयसे दूर भागगया ॥ ३४ ॥ खंभोंके सहित वह लिंग जलकर खंड २ होगया, यह दुश्चरित्र देखकर वह वेश्या तथा वैश्य दोनों महादुःखी हुये ॥ ३५ ॥ उस समय वैश्यपतिने अपने समान शिवलिंगको जलाहुआ

महाप्रज्वलितो वह्निः सुमभीरसहायवान् ॥ नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत् ॥ ३२ ॥ मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात् ॥ मर्कटं मोचयामास सा वेश्या तत्र बन्धनात् ॥ ३३ ॥ स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना ॥ भिया दूरं हि दुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून् ॥ ३४ ॥ स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम् ॥ दृष्ट्वा वेश्या स वैश्यश्च दुरंतं दुःखमापतुः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा ॥ ज्ञातुन्तद्भावमन्तःस्थम्मरणाय मतिन्दधे ॥ ३६ ॥ निर्विश्येतितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ॥ नानालीलो महेशानः कौतुकान्नरदेहवान् ॥ ३७ ॥ ॥ वैश्यपतिरुवाच ॥ शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे मत्प्राणवल्लभे ॥ सत्यं वच्मि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३८ ॥ चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु ॥ शिवे मनस्समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ३९ ॥ यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ॥ तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाम्यसून् ॥ ४० ॥

देख उस वेश्याके चित्तके भाव जाननेके निमित्त मरणकी इच्छा की ॥ ३६ ॥ नानालीला करनेवाले महेश्वर, कौतुक करनेंको मनुष्य शरीरधारे, वह वैश्यपति महादुःखी होकर उस दुःखित हुई वेश्यासे बोले ॥ ३७ ॥ वैश्यपति बोला, मेरे प्राणोंसे भी प्रिय, शिवलिंगके जलजानेपर मैं जीनेका उत्साह नहीं करता यह सत्य २ कहताहूं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ हे भद्रे ! अपने श्रेष्ठ नौकरोंसे बहुत शीघ्र चिताको बनवाओ, मैं शिवमें मनलगाकर चितामें प्रवेश करूंगा ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! यदि मुझे यहां आकर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, आदिक देवताभी निषेधकरैं तोभी इस समय अग्निमें प्रवेश करूंगा;

और प्राणोंको त्यागदूंगा ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, उसका ऐसा दृढसंकल्प जानकर दुःखितहुई उस वेश्याने अपने नौकरोंसे अपने स्थानसे बाहर चिता बनवाई ॥४१॥ तब उस सुन्दर कौतुक करनेवाले, तथा संगतिके प्रेमकी परीक्षा करनेवाले, वैश्यरूपधारी धीर एकमात्र शिवने जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंके देखते २ अग्निमें प्रवेश किया ॥४२॥ हे मुनिसत्तम ! वह युवती, महानंदानामक वेश्या उस गति (चरित्र) को देख विस्मित हो अतिखेदको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ और उस दुःखीहुई वेश्याने सुन्दर निर्मलधर्मका स्मरण करके सब कुटुंबी पुरुषोंको देख करुणासे दीनताके वचन कहे ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ तमेवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता ॥ स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद्बहिः ॥ ४१ ॥ ततस्स वैश्य शिव एक एव प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ॥ विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वा सा तद्गतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता ॥ अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम ॥ ४३ ॥ अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् ॥ सर्वान्बंधुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः ॥ ४४ ॥ महानन्दोवाच ॥ रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् ॥ दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता ॥ ४५ ॥ कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती ॥ तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥ ४६ ॥ स्वधर्मचारिणीत्युक्तमाचार्य्यैः सत्यवादिभिः ॥ एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु ॥ ४७ ॥ सत्याश्रयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः ॥ सत्येन स्वर्ग मोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रातिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः ॥ सत्यलोकपरा नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे ॥ ४९ ॥

महानंदा बोली, मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा और तीनदिन इस वैश्यकी पत्नी हुई ॥ ४५ ॥ मेरे इस कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मराहै, इस कारण मैं भी इस वैश्यके साथ अग्निमें प्रवेश करूंगी ॥ ४६ ॥ सत्य बोलनेवाले गुरुओंने स्वधर्म आचरण करनेवाली यह होगी ऐसा हमको कहा है इससे प्रसन्न होकर ऐसा करनेसे सत्य हमारे बीचमें नष्ट न होओ ॥ ४७ ॥ सत्यका आश्रयही परमधर्म है, सत्यसे परमगति होती है, सत्यसेही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, सत्यमेंही सब प्रतिष्ठित है ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कह सत्यलोकमें तत्परहुई, तथा दृढसंकल्पको बांधेहुये वह वेश्या

नारी अपने भाई बंधुओंसे निषेध कीहुई भी प्राणोंको त्यागनेकी इच्छा करने लगी ॥४९॥ और अपना सर्वस्व धनादि पदार्थ मुख्यब्राह्मणोंको दानकर, सदाशिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करने लगी ॥ ५० ॥ जलती अग्निमें गिरतीहुई तथा अपने चरणोंमें मन अर्पण करतीहुई उस वेश्याको देख, विश्वात्मा साक्षात् शिवने प्रगट होकर उसको निवारण किया ॥ ५१ ॥ वह वेश्या उन सब देवताओंके अधिपति, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, कोटिचन्द्रमा तथा सूर्य अग्निकी समान प्रकाशवाले, उन शिवको देखकर निश्चलहुई भीतकी समान स्थित हुई ॥५२॥ तब व्याकुलहुई, बडी त्रासवाली कांपती हुई, जडीभूत, आंसूभरे नेत्रोंवाली उस वेश्याके हाथोंको पकडकर शिवजी यह वचन बोले ॥ ५३ ॥ शिवजी

सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम् ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत् ॥ ५० ॥ तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम् ॥ वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः ॥५१॥ सा तं विलोक्याखिलदेवदेवन्त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ शशांकसूर्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥५२॥ तां विह्वलां सुवित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम् ॥ समाश्वास्य गलद्बाष्पां करौ धृत्वाऽब्रवीद्वचः ॥ ५३ ॥ शिव उवाच ॥ सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम् ॥ परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः ॥ ५४ ॥ माययाग्निं समुद्दीप्य दग्धन्ते नाट्यमण्डपम् ॥ दग्धं कृत्वा रत्नलिंगं प्रविष्टोऽहं हुताशनम् ॥५५॥ सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह ॥ अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान् ॥ ५६ ॥ यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तदेव हि ददामि ते ॥ त्वद्भक्त्याहं प्रसन्नोऽस्मि तवादेयं न विद्यते ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति ब्रुवति गौरीशे शंकरे भक्तवत्सले ॥ महानन्दा च सा वेश्या शंकरम्प्रत्यभाषत ॥ ५८ ॥

बोले, तेरे सत्य धर्म तथा मुझमें निश्चलहुई भक्तिकी परीक्षा करनेके निमित्त मैं तेरे समीप वैश्य बनकर आया था ॥ ५४ ॥ मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्तकर, तेरा नाट्यमंडप जलादिया, और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५५ ॥ जो कि तू सत्यका अनुसरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट हुई, इस कारण तुझे देवताओंको भी दुर्लभ भोगोंको देताहूं ॥५६॥ हे सुश्रोणि ! तू जो जो इच्छा करै वह वह तुझे देताहूं, तेरी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूं तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है ॥५७॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार कल्याण करनेवाले भक्तवत्सल शिवके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरसे बोली ॥५८॥

वेश्या बोली, मेरी भूमि स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें इच्छा नहीं है, तुम्हारे चरण कमलोंके स्पर्शके विना और कुछ नहीं चाहती ॥ ५९ ॥ जो मेरे भृत्य और दासी तथा और जो मेरे बांधव हैं वे सब आपके दर्शनोंमें तत्पर हुये, और आपमें ही चित्तकी वृत्तियां लगायेहुयेहैं ॥ ६० ॥ मेरे सहित इन सबोंको अपने परमपदको प्राप्त कराके, पुनर्जन्मरूप घोरभयसे छुडाओ; आपको नमस्कार है ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसके उपरान्त शिवजीने उस वेश्याके वचन को प्रमाण कर उसके सहित उन सबोंको अपने परमपदको भेजदिया ॥ ६२ ॥ वैश्यनाथका परम अवतार तुमसे वर्णन किया,

वेश्योवाच ॥ न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले ॥ तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये ॥ ५९ ॥ ये मे भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः ॥ सर्वे त्वद्दर्शनपरास्त्वयि सन्न्यस्तवृत्तयः ॥ ६० ॥ सर्वानेतान्मया सार्द्धं निनीयात्मपरम्पदम् ॥ पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोऽस्तु ते ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्स तस्या वचनम्प्रतिनन्द्य महेश्वरः ॥ ताः सर्वाश्च तया सार्धं निनाय स्वम्परम्पदम् ॥ ६२ ॥ वैश्यनाथावतारस्ते वर्णितः परमो मया ॥ महानन्दासुखकरो भक्तानन्दप्रदस्सदा ॥ ६३ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं सतां च सर्वप्रदमाशु दिव्यम् ॥ शिवावतारस्य विशाम्पतेर्महानन्दामहासौख्यकरं विचित्रम् ॥ ६४ ॥ इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ च्यवते न स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्यनाथाह्वयशिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ (७६) अथ द्विजेश्वरावतारमाह ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥ द्विजेश्वरावतारं च सशिवं सुखदं सताम् ॥ १ ॥

जो महानन्दा वेश्याको सुखदेनेवाला तथा भक्तोंको आनन्द देनेवाला है ॥ ६३ ॥ यह परम पवित्र तथा शीघ्र सत्पुरुषोंको सबकुछ देनेवाला महानन्दा वेश्याको परमसुख देनेवाला सुन्दर शिवका अवताररूप वैश्यनाथका दिव्यचरित्र वर्णन किया ॥ ६४ ॥ जो पुरुष इस चरित्रको भक्तिसहित सावधान हो सुनता है अथवा सुनाताहै वह अपने धर्मसे पतित नहीं होता परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० वैश्यनाथाह्वयशिवावतार वर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ (अब द्विजेश्वर अवतार कहतेहैं ॥) नन्दीश्वर बोले, हे तात ! कल्याण करनेवाला

सत्पुरुषोंको सुख देनेवाला; परमात्मा शिवका द्विजेश्वरावतार तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥ १ ॥ हे तात ! जो पहले भद्रायुनामक राजाका वर्णन किया जिसपर
ऋषभरूप धारकर शिवने कृपा की ॥ २ ॥ उस भद्रायुके धर्मकी परीक्षा करनेको फिरभी द्विजेश्वररूपसे शिवजी प्रगट हुए, उस चरित्रको मैं कहताहूं ॥
॥ ३ ॥ हे तात ! ऋषभके प्रभावसे संग्राममें प्रभुने शत्रुओंको जीतकर राज्यसिंहासन प्राप्तकर भद्रायुको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रांगद राजाकी
सीमन्तिनी स्त्रीसे उत्पन्नहुई, शुभ अंगोंवाली बडीसौम्य कीर्तिमालिनी नाम कन्या उस राजाकी स्त्री हुई ॥ ५ ॥ हे मुने ! एक समय वह भद्रायु अपनी

यः पूर्वं वर्णितस्तात भद्रायुर्नृपसत्तमः ॥ यस्मिन्नृषभरूपेणानुग्रहं कृतवाञ्छिवः ॥ २ ॥ तद्धर्मस्य परीक्षार्थं पुनराविर्बभूव सः ॥ द्विजे
श्वरस्वरूपेण तदेव कथयाम्यहम् ॥ ३ ॥ ऋषभस्य प्रभावेण शत्रूञ्जित्वा रणे प्रभुः ॥ प्राप्तसिंहासनस्तात भद्रायुः संबभूव ह ॥ ४ ॥
चन्द्रांगदस्य तनया सीमन्तिन्याः शुभांगजा ॥ पत्नी तस्याभवद्ब्रह्मन् सुसाध्वी कीर्त्तिमालिनी ॥ ५ ॥ स भद्रायुः कदाचित्स्वप्रियया
गहनं वनम् ॥ प्राविशत्संविहारार्थं वसन्तसमये मुने ॥ ६ ॥ अथ तस्मिन्वने रम्ये विजहार स भूपतिः ॥ शरणागतपालिन्या तया
स्वप्रियया सह ॥ ७ ॥ अथ तद्धर्मदृढतां प्रतीक्षन्परमेश्वरः ॥ लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शङ्करः ॥ ८ ॥ शिवा शिवश्च भूत्वोभौ
तद्वने द्विजदम्पती ॥ व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया ॥ ९ ॥ अथाविदूरे तस्यैव द्रवन्तौ भयविह्वलौ ॥ अन्वीयमानौ व्याघ्रेण
रुदन्तौ तौ बभूवतुः ॥ १० ॥ अथ विद्धौ च तौ तात भद्रायुः स महीपतिः ॥ ददर्श क्रन्दमानौ हि शरण्यः क्षत्रियर्षभः ॥ ११ ॥

प्रियाके साथ वसन्तसमयमें विहार करनेको घने वनमें गया ॥ ६ ॥ तब उस रमणीक वनमें वह राजा, शरणमें आये हुओंका पालन करनेवाली उस
अपनी स्त्रीके साथ विहार करने लगा ॥ ७ ॥ तब उस राजाके धर्मकी दृढताकी परीक्षा करतेहुये शिवजी पार्वतीके सहित वहां लीला करनेलगे
॥ ८ ॥ वह दोनों पार्वती और शिव ब्राह्मण स्त्री पुरुषके रूपसे अपनी लीलासे मायाके व्याघ्रको बनाकर प्रगट हुये ॥ ९ ॥ और वे दोनों स्त्री पुरुष,
व्याघ्रके पीछे २ धावमान होनेसे भयसे व्याकुल, रोते चिल्लाते राजाके समीपमें हुए ॥ १० ॥ हे तात ! शरणागतवत्सल, क्षत्रियोंमें उत्तम उस

भद्रायुराजाने उन दोनोंको बिंधाहुआ, तथा रोताहुआ देखा ॥ ११ ॥ हे मुनिशार्दूल ! तब वह मायारूप द्विज स्त्रीपुरुष भयसे व्याकुल होतेहुये भद्रायु राजासे बोले ॥ १२ ॥ ब्राह्मण स्त्रीपुरुष बोले, हे महाराज ! हे महाराज ! हे महाप्रभो ! हे धर्मवित्तम ! हम दोनोंकी रक्षाकरो २ यह सिंह हम दोनोंके खानेको आता है ॥ १३ ॥ हे धर्मवित्तम ! यह सब प्राणियोंमें भयंकर कालरूप हिंसक सिंह जबतक हम दोनोंको प्राप्त होकर नहीं खाताहै तबतक तुम रक्षा करो ॥१४॥ नन्दीश्वर बोले, महावीर राजाने इस प्रकार उन दोनोंका रोना सुनकर जबतक धनुष लिया कि ॥ १५ ॥ तबतक मायाके सिंहने शीघ्रताके

अथ तौ मुनिशार्दूलः स्वमायाद्विजदम्पती ॥ भद्रायुषं महाराजमूचतुर्भयविह्वलौ ॥ १२ ॥ द्विजदम्पती ऊचतुः ॥ पाहिपाहि महाराज नावुभौ धर्मवित्तम ॥ एष आयाति शार्दूलो जग्धुमावां महाप्रभो ॥ १३ ॥ एष हिंस्रः कालसमः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष धर्मवित् ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा तयोश्च नृपतीश्वरः ॥ अतिशीघ्रं महावीरः स यावद्धनुराददे ॥ १५ ॥ तावदभ्येत्य शार्दूलस्त्वरमाणोतिमायिकः ॥ स तस्य द्विजवर्य्यस्य मध्ये जग्राह तां वधूम् ॥ १६ ॥ हे नाथ नाथ हे कान्त हा शम्भो हा जगद्गुरो ॥ इति रोरूयमाणां तां व्याघ्रो जग्रास भीषणः ॥ १७ ॥ तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत् ॥ न स तैर्विव्यथे किंचिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः ॥ १८ ॥ स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञः स्वैरकृतव्यथः ॥ बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रमत सत्त्वरः ॥ १९ ॥ व्याघ्रेणापहृतां नारीं वीक्ष्य विप्रोतिविस्मितः ॥ लौकिकीं गतिमाश्रित्य रुरोदाति मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥

साथ बीचमेंसे उस ब्राह्मणकी स्त्रीको ग्रहण करलिया ॥ १६ ॥ हे नाथ ! हे नाथ ! हे कान्त ! हा शम्भो ! हा शम्भो ! हा जगद्गुरो ! यह कहकर रोतीहुई उस स्त्रीको भयंकर सिंहने खालिया ॥ १७ ॥ तबतक वह राजा तीक्ष्ण भालोंसे व्याघ्रको ताडन करता हुआ; परन्तु वह उन भालोंसे वर्षासे ताडित पर्वतकी समान कुछ भी व्यथाको प्राप्त न हुआ ॥ १८ ॥ राजासे स्वतंत्रतापूर्वक व्यथाको प्राप्त न होनेवाले बडेपराक्रमी उस सिंहने शीघ्रही बलात्कारसे उस स्त्रीको खैंचकर पलायन किया ॥ १९ ॥ व्याघ्रसे हरण कीहुई स्त्रीको देखकर अतिविस्मित हुआ ब्राह्मण लौकिकी गतिको आश्रय

करके बारंबार अधिक रोनेलगा ॥ २० ॥ वह मायेश्वर ब्राह्मण बहुत कालतक रोता हुआ भद्रायु राजासे अभिमान नष्ट करनेवांले यह वचन बोला ॥
॥ २१ ॥ द्विजेश्वर बोला, हे राजन् ! तुम्हारे बडे २ अस्त्र कहां हैं, और महाधनुषकी रक्षा कहां गई, और बारह हजार हाथियोंका बल कहांगया॥
॥ २२ ॥ तुम्हारे खड्गसे क्या फल है, और शंखसे तथा मंत्र और अस्त्रविद्यासे क्या फल हुआ और बडे अस्त्रोंके सत्त्व (पराक्रम) से तथा अधिक प्रभावसे
क्या फल हुआ ॥ २३ ॥ और जो कुछ गुण तुममें स्थितहैं सो सब निष्फल हुये तुम वनमें रहनेवाले हिंसक जीवोंके घातके निवारण करनेकोभी समर्थ नहीं

रुदित्वा चिरकालं च स विप्रो माययेश्वरः ॥ भद्रायुषं महीपालं प्रोवाच मदहारकः ॥ २१ ॥ द्विजेश्वर उवाच ॥ राजन्क्व ते महास्त्रा
णि क्व ते त्राणं महद्धनुः ॥ क्व ते द्वादशसाहस्रमहानागायुतम्बलम् ॥ २२ ॥ किन्ते खड्गेन शङ्खेन किं ते मंत्रास्त्रविद्यया ॥ किं सत्त्वेन
महास्त्राणां किं प्रभावेण भूयसा ॥ २३ ॥ तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति ॥ यस्त्वं वनौकसां घातं न निवारयितुं क्षमः ॥
॥ २४ ॥ क्षत्रस्यायं परो धर्मो क्षताच्च परि रक्षणम् ॥ तस्मिन्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम् ॥ २५ ॥ आर्तानां शरणाप्तानां
त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः ॥ प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विना च मृतोपमाः ॥ २६ ॥ आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम् ॥ धनिनान्दा
नहीनानां गार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरम् ॥ २७ ॥ वरं विषाशनं प्राज्ञैर्वरमग्निप्रवेशनम् ॥ कृपणानामनाथानां दीनानामपरक्षणात् ॥ २८ ॥
नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्थं विलपितं तस्य स्ववीर्य्यस्य च गर्हणम् ॥ निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥ २९ ॥

हो ॥ २४ ॥ दुःखसे रक्षा करना क्षत्रियका परम धर्म है, उस कुलके धर्म नष्ट होनेपर तुम्हारे जीनेसे क्या फल है? ॥ २५ ॥ धर्मके जाननेवाले राजा
लोग, शरणमें आयेहुये दुःखी पुरुषोंको दुःखसे अपने प्राण और धनके द्वारा रक्षा करते हैं, इसके विना मरेहुयेके समान हैं ॥ २६ ॥ दुःखियोंकी रक्षासे
शून्य हुये मनुष्योंके जीनेसे मरना श्रेष्ठ है, दानहीन धनियोंके गृहस्थाश्रमकी अपेक्षा भिखारी होना श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ अनाथोंकी दीनोंकी न रक्षा करनेसे
कृपण मनुष्योंको विषका खाना तथा अग्निमें प्रवेश करना बुद्धिमानोंने श्रेष्ठ कहा है ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अपने वीर्यकीनिन्दारूप उस

ब्राह्मणका विलाप सुन राजा शोकसे आत्मामें यह विचार करने लगा ॥ २९ ॥ अहो शोक ! आज प्रारब्धके उलटे होनेसे मेरा पुरुषार्थ नष्ट हुआ, आज मेरी कीर्तिभी नष्ट हुई भयंकर पातक हमको लगा ॥ ३० ॥ दुर्मती मंदभागी जो मैं हूं मेरा कुलोचित धर्म भी नष्ट हुआ इससे निश्चय मेरी सम्पत्ति, राज्य, आयु, सब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ आज मैं इस मृत स्त्रीवाले शोकसे व्याकुल ब्राह्मणको अपने अतिप्रिय प्राणोंको देकर शोकरहित करूंगा ॥ ३२॥ उस भद्रायुराजाने मनसे यह निश्चयकर उसके चरणोंमें पडकर शान्त करते हुए यह कहा ॥ ३३ ॥ भद्रायु बोला, हे ब्रह्मन् ! हे महाप्राज्ञ ! बलसे गिरेहुये

अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात् ॥ अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकम्प्राप्तमुत्कटम् ॥ ३० ॥ धर्मः कुलोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः ॥ नूनं मे सम्पदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ॥ ३१ ॥ अद्य चैनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् ॥ हतशोकं करिष्यामि दत्त्वा प्राणानतिप्रियान् ॥ ३२ ॥ इति निश्चित्य मनसा स भद्रायुर्नृपोत्तमः ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ ३३ ॥ भद्रायुरुवाच ॥ कृपां कृत्वा मयि ब्रह्मन् क्षत्रबन्धौ हतौजसि ॥ शोकन्त्यज महाप्राज्ञ दास्याम्यद्य तु वाञ्छितम् ॥ ३४ ॥ इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदञ्च कलेवरम् ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं किन्तेऽभिलषितं वरम् ॥ ३५ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः ॥ किम्पुस्तकेन मूढस्य निस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३६ ॥ अतोऽहं हतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित् ॥ इमान्तवाग्रमहिषीं कामये दीयतामिति ॥ ३७ ॥ भ०उ० ॥ दाता रसान्तवित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम् ॥ आत्मदेहस्य कस्यापि कलत्रस्य न कर्हिचित् ॥ ३८ ॥

मुझ क्षत्रबन्धुमें कृपाकरके अपने शोकको त्यागन करो मैं तुमको वांछित वस्तु दूंगा ॥ ३४ ॥ यह राज्य रानी तथा यह मेरा शरीर सब तुम्हारे आधीनहैं, आपकी क्या अभिलाषाहै सो कहो ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण बोला, अंधेको दर्पणसे क्या फल, तथा भिक्षुकको घरसे क्या काम, मूर्खको पुस्तकसे क्या फल और स्त्रीरहित मनुष्यको धनसे क्या लाभ है ॥ ३६ ॥ इस कारण मृत स्त्रीवाला मैं और कोई भोग नहीं भोगना चाहता, केवल इस तुम्हारी मुख्य स्त्रीकी इच्छा करताहूं उसे देदो ॥ ३७ ॥ भद्रायु बोला, दान करनेवाला पुरुष, गुड, घी आदि रसंपर्यंत धनका, तथा अपने राज्य, हाथी, घोडोंका, और अपने

शरीरका दान कर सकता है, स्त्रीका दान कोई नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ दूसरेकी स्त्रीके साथ भोग करनेसे जो पाप एकत्रित होता है वह सैकडों प्रायश्चित्त करनेसे भी नहीं जाता ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण बोला ब्रह्महत्या तथा मदिराका सेवनरूप घोर पाप भी हो तो भी अपने तपके द्वारा मैं भस्म करदूंगा फिर परस्त्री भोगविषयक पाप क्या वस्तु है ॥ ४० ॥ इस कारण मुझे इस अपनी स्त्रीको दो और दूसरी इच्छा नहीं है, भयभीत हुओंकी रक्षा न करनेसे निश्चय तुम नरकको जाओगे ॥ ४१ ॥ नंदीश्वर बोले, ऐमी ब्राह्मणकी वाणीसे डराहुआ राजा विचारने लगा कि रक्षा न करनेसे महापाप होगा, उससे पत्नीका देना

परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम् ॥ न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३९ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ आस्तां ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् ॥ तपसा विधमिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्प्रयच्छ भार्यां स्वामिमां कामो न मेऽपरः ॥ अरक्षणाद्भयार्तानां गन्तासि निरयन्ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः ॥ अरक्षणान्महापापं पत्नीदानन्ततो वरम् ॥ ४२ ॥ अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निमुक्तकिल्बिषः ॥ सद्यो वह्निं प्रवेक्ष्यामि कीर्तिश्च विदिता भवेत् ॥ ४३ ॥ इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् ॥ तमाहूय द्विजं चक्रे पत्नीदानं सहोदकम् ॥ ४४ ॥ स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान् ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः ॥ ४५ ॥ तमथाग्निं पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम् ॥ प्रत्यषेधत विश्वेशः प्रादुर्भूतो द्विजेश्वरः ॥ ४६ ॥ तमीश्वरं पञ्चमुखं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ प्रलम्बपिंगासुजटाकलापं मध्याह्नसद्भास्करकोटितेजसम् ॥ ४७ ॥

श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ अतः अपनी स्त्रीको इस ब्राह्मणके अर्थ देकर निष्पाप हो शीघ्र अग्निमें प्रवेश करूंगा तो मेरी कीर्ति विस्तृत होगी ॥ ४३ ॥ ऐसा मनसे निश्चय करके अग्निको प्रज्वलित कर उस ब्राह्मणको बुलाय जलसहित स्त्रीका दान किया ॥ ४४ ॥ स्वयं स्नान करके पवित्र हो सब विद्वानोंको प्रणामकर उस अग्निकी तीन चार परिक्रमा करके सावधान हो शिवका ध्यानकर ॥४५॥ उस अग्निमें गिरते हुए तथा अपने चरणोंमें मग्नचित्त उस राजाको द्विजेश्वर रूपधारी शिवजीने प्रगट हो निषेध किया ॥ ४६ ॥ उन पांचमुख, तीननेत्रवाले, पिनाकधारी, चन्द्रमाकी कलाओंसे शोभायमान तथा लम्बायमान पीली

जटाओंको धारे, मध्याह्नकालके करोडों सूर्यके समान तेजस्वी, उन ईश्वरको ॥ ४७ ॥ तथा कमलडंडीके समान गौरवर्ण हाथीका चर्म ओढे, गंगाजीकी तरंगोंसे धुलते हुए मौलिस्थानवाले, सर्प राजोंके हारसमूह भूषणसे शोभायमान कंठवाले तथा मुकुट, कांची, बाजूबंद, कंकणसे देदीप्यमान ॥ ४८ ॥ त्रिशूल, खङ्ग, खट्वाङ्ग कुठार, चर्म, मृग अभयरूप आठअङ्गोंसे युक्त पिनाक हाथमें लिये तथा बैलके (नादियाके) ऊपर चढेहुयें विषके कंठभूषण धारे आगे प्रगट होतेहुए शिवको उस राजाने देखा ॥ ४९ ॥ तब आकाशसे शीघ्र फूलोंकी दिव्य वर्षा हुई, देवताओंके बाजे बजे, तथा देवस्त्रियां नाचने और गाने लगीं ॥ ५० ॥ तथा स्तुति करतेहुये विष्णु ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता तथा नारद आदि मुनि यह सब वहां आये ॥ ५१ ॥ उस समय वहां भक्तिसे नम्र तथा अंजलि बांधेहुये राजाके सन्मुख भक्तिका बढानेवाला बडा उत्सव हुआ ॥ ५२ ॥ उन शिवके दर्शनके आनन्दसे प्रगट आशयवाला, बडे आँसूरूप जलसे गीलेहुये शरीरवाला हर्षसे रोमाञ्चित शरीर, गद्गदवाणीसे अंजलि बांध राजा स्तुति करने लगा ॥ ५३ ॥ तब परमेश्वर दयासागर भगवान् शिव राजासे स्तुतिको प्राप्तहो पार्वतीसहित प्रसन्न हो राजासे बोले ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी भक्तिसे तथा तुम्हारे धर्मसे मैं अतिसंतुष्ट हुआ, स्त्रीसहित वर

मृणालगौरं गजचर्मवाससं गंगातरङ्गोक्षितमौलिदेशकम् ॥ नागेन्द्रहारावलिकण्ठभूषणं किरीटकांच्यंगदकंकणोज्ज्वलम् ॥ ४८ ॥
शूलासिखट्वांगकुठारचर्ममृगाभयाष्टांगपिनाकहस्तम् ॥ वृषोपरिस्थं शितिकण्ठभूषणं प्रोद्भूतमग्रे स नृपो ददर्श ॥ ४९ ॥ ततोम्बराद्द्रुतं
पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ प्रणेदुर्देवतूर्य्याणि देव्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ ५० ॥ तत्राजग्मुः स्तूयमाना हरिर्ब्रह्मा तथा सुराः ॥ इन्द्राद्यो नार
दाद्या मुनयश्चापरेऽपि च ॥ ५१ ॥ तदोत्सवो महानासीत्तत्र भक्तिप्रवर्धनः ॥ सति पश्यति भूपाले भक्तिनम्रीकृताञ्जलौ ॥ ५२ ॥
तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुविलिप्तगात्रः ॥ प्रहृष्टरोमा स हि गद्गदाक्षरस्तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृतांजलिः ॥ ५३ ॥ ततस्स
भगवान्राज्ञा संस्तुतः परमेश्वरः ॥ प्रसन्नः सह पार्वत्या तमुवाच दयानिधिः ॥ ५४ ॥ राजंस्ते परितुष्टोहं भक्त्या त्वद्धर्मतोऽधिकम् ॥
वरं ब्रूहि सपत्नीकम्प्रयच्छामि न संशयः ॥ ५५ ॥

मांगो मैं निःसन्देह दूँगा ॥ ५५ ॥ मैं तेरे भाव (प्रेम) की परीक्षा करनेको ब्राह्मण बनकर आयाहूं, और व्याघ्रने जो पकडी थी वह साक्षात् मेरी स्त्री पार्वती थी ॥ ५६ ॥ जो तेरे बाणोंसे घायल नहीं हुआ वह व्याघ्र मायाका था, मैंने तेरी धीरताके देखनेकी इच्छासे तेरी स्त्रीको मांगा ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर बोले, वह भद्रायु राजा, इस प्रकार प्रभु शिवका वचन सुन फिर प्रणाम और स्तुति करके हाथ नीचे किये हुये स्वामीसे बोला ॥ ५८ ॥ भद्रायु बोला, हे नाथ! मेरा एक यहही वर है कि—आप परमेश्वर, संसारके दुःखोंसे पीडित हुये मेरे दर्शनपथको प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ हे नाथ! यदि फिर अपनी कृपासे

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः ॥ व्याघ्रेण या परिग्रस्ता साक्षाद्देवी शिवा हि सा ॥ ५६ ॥ व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षत विग्रहः ॥ धीरतान्द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम् ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं स भद्रायुर्महीपतिः ॥ पुनः प्रणम्य संस्तूय स्वामिनं नतकोऽब्रवीत् ॥५८॥ भद्रायुरुवाच ॥ एक एव वरो नाथ यद्भवान्परमेश्वरः ॥ भवतापप्रतप्तस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ५९ ॥ यद्ददासि पुनर्नाऽथ वरं स्वकृपया प्रभो ॥ वृणेहं परमं त्यक्तो वरं हि वरदर्षभात् ॥ ६० ॥ वज्रबाहुः पिता मेहि सपत्नीको महेश्वर ॥ सपत्नीकस्त्वहं नाथ सदात्वत्पादसेवकः ॥६१॥ वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रस्सनयाभिधः ॥ सर्वानेतान्महेशान सदा त्वं पार्श्वगान्कुरु ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ राज्ञी च तत्पत्नी प्रमत्ता कीर्तिमालिनी ॥ भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ चन्द्रांगदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे ॥ तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं मुदा ॥ ६४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥ तयोः कामवरन्दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ६५ ॥

मुझे वर देते हो तो वरदानियोंमें श्रेष्ठ आपसे और वर छोड यह वर मांगता हूँ ॥ ६० ॥ हे महेश्वर ! हे नाथ ! मेरा वज्रबाहुवाला पिता स्त्रीसहित तथा मैं भी अपनी स्त्रीसहित तुम्हारे चरणोंका सेवक हूं ॥ ६१ ॥ हे महेशान ! पद्माकरनामक वैश्य उसका पुत्र सनय इन सबोंको आप अपने निकटवासी करो॥ ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब उसकी कीर्तिमालिनी नामक स्त्री प्रमत्त हुई भक्तिसे शिवको प्रसन्न करके उत्तम वरको मांगने लगी ॥ ६३ ॥ रानी बोली, हे महादेव ! मेरा पिता चन्द्रांगद तथा माता सीमन्तिनी इन दोनोंका आपके निकट वास होना प्रसन्न हो मांगतीहूं ॥ ६४ ॥ नन्दीश्वर बोले, भक्तवत्सल

पार्वतीके पति शिवजी ऐसाही होगा यह कहकर उन दोनों स्त्री पुरुषोंको इच्छित वरदान देकर क्षणमात्रमें अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ भद्रायु राजाने भी
प्रीतिपूर्वक शिवकी प्रसन्नता पाय कीर्तिमालिनी स्त्रीके सहित अनेकविषयोंको भोगा ॥ ६६ ॥ और विना नष्ट हुये पराक्रम सहित दस सहस्र वर्ष राज्य
करके फिर अपने पुत्रको राज्य समर्पणकर शिवकी समीपताको प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥ और वह राजर्षि चन्द्रांगद तथा वह रानी सीमन्तिनी यह दोनों
भक्तिसे शिवका पूजनकर शंभुके पदको प्राप्त हुये ॥ ६८ ॥ हे प्रभो ! मैंने तुमसे द्विजेश्वरनामक शिवका परमअवतार वर्णन किया, जो भद्रायुनामक

भद्रायुरपि सुप्रीत्या प्रसादम्प्राप्य शूलिनः ॥ सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्बहून् ॥ ६६ ॥ कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतपरा
क्रमः ॥ राज्यं विक्षिप्य तनये जगाम शिवसन्निधिम् ॥ ६७॥ चन्द्रांगदोपि राजेन्द्रो राज्ञी सीमन्तिनी च सा ॥ भक्त्या संपूज्य गिरिशं
जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ६८ ॥ द्विजेश्वरावतारस्ते वर्णितः परमो मया ॥ महेश्वरस्य भद्रायुपरमानन्ददः प्रभो ॥ ६९ ॥ इदं चरित्रं
परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्त्तेः ॥ द्विजेशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि शृण्वन्पठञ्शम्भुपदम्प्रयाति ॥ ७० ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्राव
येद्वा समाहितः ॥ न श्चोतति स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां द्विजेश
नामशिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ (७७) ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ॥
अवतारं पुरानन्दं यतिनाथाह्वयं मुने ॥ १ ॥ अर्बुदाचलसंज्ञे तु पर्वते भिल्लवंशजः ॥ आहुकश्च तदभ्याशे वसति स्म मुनीश्वर ॥ २ ॥

राजाको परमआनंद देनेवाला है ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य पवित्र कीर्तिवाले शिवके परम अवतार द्विजेश्वरका परमपवित्र बडा अद्भुतचरित्र सुनता है अथवा
पढ़ताहै वह शिवके पदको प्राप्त होताहै ॥ ७० ॥ इस कथानकको जो ब्राह्मणके मुखसे ध्यानपूर्वक सुनै वा लोगोंको सुनावै वह अपने धर्मसे कभी रहित
नहीं होता और परलोकमें सद्गति पाता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० द्विजेशशिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
नन्दीश्वर बोले, हे प्राज्ञ ! हे मुने ! सुनो, पहले जो आनन्ददायक यतिनाथ ! नामक, परमात्मा शिवका अवतार हुआहै उसे कहता हूं ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर !

अर्बुदाचलनामक पर्वतके निकट भीलके वंशमें उत्पन्न हुआ आहुकनाम एक भील रहता था ॥ २ ॥ उसकी स्त्री आहुकानामक बडी पतिव्रता थी, वह
दोनों महाशैव, शिवके पूजन करनेवाले थे ॥ ३ ॥ हे मुने ! किसी समय वह शिवकी भक्तिमें तत्पर हुआ भील, अपनी स्त्रीके भोजन लेनेको दूर गया ॥
॥ ४ ॥ इसी अवसरमें उस भीलके घर शिवजी संन्यासीका रूप धार सायंकालको उसकी परीक्षाके अर्थ आये ॥ ५ ॥ उसी समय वह गृहस्थी आहुक
अपने घरपर आगया, और उस बुद्धिमानने प्रेमसे संन्यासीका सत्कार किया ॥ ६ ॥ उसके प्रेमकी परीक्षा करनेको महालीलाकारी संन्यासीका रूप धारेहुए

तत्पत्नी ह्याहुका नाम बभूव किल सुव्रता ॥ उभावपि महाशैवावास्तान्तौ शिवपूजकौ ॥ ३ ॥ कस्मिँश्चित्समये भिल्लः शिवभक्तिरतः
सदा ॥ आहारार्थं स्वपत्न्याश्च सुदूरं स गतो मुने ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गेहे भिल्लस्य शङ्करः ॥ भूत्वा यतिवपुः सायं परीक्षार्थं समा
ययौ ॥५॥ तस्मिन्नवसरे तत्राजगाम स गृहाधिपः ॥ पूजनं च यतीशस्य चकार प्रेमतः सुधीः ॥ ६ ॥ तद्भावस्य परीक्षार्थं यतिरूपस्स
शंकरः ॥ महालीलाकरः प्रीत्या भीतं प्रोवाच दीनगीः ॥ ७ ॥ यतिनाथ उवाच ॥ अद्य स्थलं निवासार्थं देहि मे प्रातरेव हि ॥ यास्या
मि सर्वथा भिल्ल स्वस्ति स्यात्तव सर्वदा ॥ ८ ॥ भिल्ल उवाच ॥ सत्यम्प्रोक्तं त्वया स्वामिञ्शृणु मद्वचनं च ते ॥ अति स्वल्पं स्थलं मे
हि स्यान्निवासः कथन्तव ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स यतिस्तेन गमनाय मतिन्दधे ॥ तावद्भिल्लया वचः प्रोक्तं स्वामिनं संवि
चार्य्य वै ॥ १० ॥ भिल्ल्युवाच ॥ स्वामिन्देहि यतेः स्थानं विमुखं कुरु मातिथिम् ॥ गृहधर्मं विचार्य्य त्वमन्यथा धर्मसंक्षयः ॥ ११ ॥

शिवजी प्रीतिसे डरतेहुए दीन वचन बोले ॥ ७ ॥ यतिनाथ बोले, हे भिल्ल ! आज मुझे निवासके लिये अपना स्थान दे, प्रातःकाल मैं चला जाऊंगा,
तेरा निरन्तर कल्याण हो ॥८॥ भील बोला ! हे स्वामिन् ! तुमने सत्य कहा, मेरा वचन सुनो मेरे बहुत थोडा स्थान है. वह तुम्हारा निवास कैसे होसकैगा
॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उस भीलके कहनेपर वह संन्यासी जानेकी इच्छा करने लगा, तभी भीलनीने विचारकर अपने स्वामीसे मीठे वचनोंसे
कहा ॥ १० ॥ भिलनी बोली, हे स्वामिन् ! इस संन्यासीको स्थान दो, अतिथिको विमुख (निराश) मत करो, गृहस्थधर्मको विचारो अन्यथा धर्मका

क्षय होगा ॥ ११ ॥ तुम सुखपूर्वक संन्यासीके साथ घरके भीतर रहना, मैं बडे बाणोंसहित बाहर स्थिति करूंगी ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस भीलनी स्त्रीका यह धर्मयुक्त कल्याणकारी वचन सुन उस भीलने अपने मनमें विचारा ॥ १३ ॥ स्त्रीको बाहर निकालकर मैं घरमें किस प्रकार रहूंगा, और संन्यासीका और जगह जाना भी मेरे अधर्मका करनेवाला होगा ॥ १४ ॥ सब प्रकार गृहस्थियोंको यह दोनों बातैं भी उचित नहीं हैं, जो होनहार है सो होगी, मैं घरसे बाहर रहूंगा ॥ १५ ॥ इसप्रकार आग्रहकर उन दोनों को घरके भीतर आनन्दके साथ रखकर तथा अपने अस्त्रोंको भी भीतर रक्खके

स्थीयतान्ते गृहाभ्यंतः सुखेन यतिना सह ॥ अहं बहिः स्थितिं कुर्य्यामायुधानि बृहन्त्यपि ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भिल्लया धर्मान्वितं शिवम् ॥ स्वपत्न्या मनसा तेन भिल्लेन च विचारितम् ॥ १३ ॥ स्त्रियं बहिश्च निष्कास्य कथं स्थेयं मया गृहे ॥ यतेरन्यत्र गमनमधर्म्मकरमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वयमप्युचितं नैव सर्वथा गृहमेधिनः ॥ यद्भावि तद्भवेदेव मया स्थेयं गृहाद्बहिः ॥ ॥ १५ ॥ इत्याग्रहन्तदा कृत्वा गृहान्तः स्थाप्य तौ मुदा ॥ स्वायुधानि च संस्थाप्य भिल्लोऽतिष्ठद्गृहाद्बहिः ॥ १६ ॥ रात्रौ तम्पशवः क्रूरा हिंसकाः समपीडयन् ॥ तेनापि च यथाशक्ति कृतो यत्नो महांस्तदा ॥ १७ ॥ एवं यत्नं प्रकुर्वाणः स भिल्लो बलवानपि ॥ प्रारब्धात्प्रेरितैर्हिंस्रैर्बलादासीच्च भक्षितः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाय स यतिर्दृष्ट्वा हिंस्रैश्च भक्षितम् ॥ भिल्लं वने चरंतं वै दुःखितोऽभूदतीव हि ॥ १९ ॥ दुःखितं तं यतिन्दृष्ट्वा भिल्ली सा दुःखितापि हि ॥ धैर्यात्स्वदुःखं संहृत्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २० ॥ भिल्ल्युवाच ॥ किमर्थं क्रियते दुःखं भद्रं जातं यतेऽधुना ॥ धन्योयं कृतकृत्यश्च यज्जातो मृत्युरीदृशः ॥ २१ ॥

वह भील बाहर स्थित हुआ ॥ १६ ॥ रात्रिमें उस भीलको हत्यारे क्रूर पशुओंने पीडा दी, तब उसने भी अपनी शक्तिके अनुसार बडा यत्न किया ॥ ॥ १७ ॥ इस प्रकार यत्नको करता हुआ वह बलवान् भील, प्रारब्धसे प्रेरणा किये हुये हत्यारे जीवोंसे बलात्कारसे भक्षित होगया ॥ १८ ॥ प्रातःकाल उठकर उस संन्यासीने सिंहादिसे भक्षण किये उस वनचारी भीलको देखकर अत्यन्त दुःख माना ॥ १९ ॥ उस संन्यासीको दुःखी देख वह भिलनी भी दुःखी हुई; धैर्यसे दुःखको धारण करके यह वचन बोली ॥ २० ॥ भीलनी बोली हे संन्यासिन् ! आप किसनिमित्त दुःख करते हैं, अब बहुत कल्याण

हुआ यह धन्य है और कृतकृत्य है जो ऐसी मृत्यु हुई ॥२१॥ हे यते! मैं भी अग्निमें भस्म होकर इसके साथ सती हूंगी, प्रीतिके साथ चिताको बनाऊंगी क्योंकि,—यह स्त्रियोंका सनातनधर्म है ॥ २२ ॥ ऐसा उसका वचन सुन उसका हितमान स्वयं संन्यासीने चिता रचवाई और वह उसमें प्रवेश करगई ॥ ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें आगेसे साक्षात् शिवजी प्रगट हुए हे धन्ये ! हे धन्ये ! इस प्रकार प्रीतिसे प्रशंसा करतेहुये उससे शिवजी बोले ॥ २४ ॥ शिवजी बोले, हे अनघे ! मैं तेरे आचरणसे प्रसन्न हूं वर मांग तुझे कुछ वस्तुभी अदेय नहीं है मैं विशेषकर तेरी भक्तिसे वशीभूतहूं ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर

अहं चैनं गमिष्यामि भस्म भूत्वानले यते ॥ चितां कारय सुप्रीत्या स्त्रीणां धर्मः सनातनः ॥ २२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा हितं मत्वा स्वयं यतिः ॥ चितां व्यरचयत्सा हि प्रविवेश स्वधर्मतः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्पुरः प्रादुरभूच्छिवः ॥ धन्ये धन्ये इति प्रीत्या प्रशंसंस्तां हरोऽब्रवीत् ॥२४॥ हर उवाच ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोस्मि त्वदाचरणतोऽनघे ॥ तवादेयं न वै किंचिद्वश्योऽहं ते विशेषतः ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं परमानन्ददायकम् ॥ सुखं प्राप्तं विशेषेण न किंचित्स्मरणं ययौ ॥ २६ ॥ तस्यास्तद्गतिमालक्ष्य सुप्रसन्नो हरोऽभवत् ॥ उवाच च पुनः शम्भुर्वरं ब्रूहीति ताम्प्रभुः ॥ २७ ॥ शिव उवाच ॥ अयं यतिश्च मद्रूपो हंसरूपो भविष्यति ॥ परजन्मनि वां प्रीत्या संयोगं कारयिष्यति ॥ २८ ॥ भिल्लश्च वीरसेनस्य नैषधे नगरे वरे ॥ महान्पुत्रो नलो नाम भविष्यति न संशयः ॥ २९ ॥ त्वं सुता भीमराजस्य वैदर्भे नगरेऽनघे ॥ दमयन्ती च विख्याता भविष्यसि गुणान्विता ॥ ३० ॥ युवां चोभौ मिलित्वा च राजभोगं सुविस्तरम् ॥ भुक्त्वा मुक्तिं च योगीन्द्रैर्लप्स्येथे दुर्लभां ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

बोले, यह शिवजीका वचन सुनकर जो परम आनन्दका देनेवाला था उसने विशेष सुख पाया, और कुछ स्मरण नहीं रहा ॥ २६ ॥ उसकी ऐसी गति देख, प्रभु शिव बडे प्रसन्न हुए और उससे इस प्रकार बोले कि—वर मांग ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, यह मेरे रूपवाला संन्यासी हंसरूपमें होगा और दूसरे जन्ममें तुम दोनों स्त्री पुरुषोंको प्रीतिसे संयोग करावैगा ॥ २८ ॥ और यह भील वीरसेन राजाके नैषधनामक नगरमें नलनामक पुत्र होगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २९ ॥ हे अनघे ! तू विदर्भनगरमें भीमराजाके गुणोंसे पूर्ण दमयन्तीनामक कन्या होगी ॥ ३० ॥ तुम दोनों मिलकर, बडे विस्तारवाले

राज्यके भोगोंको भोगकर, योगियोंको भी दुर्लभ मुक्तिको निश्चय पाओगे ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजी स्वयं ऐसा कहकर लिंगरूप होगये वे धर्मसे चलायमान न हुये इस कारण आप वह अचलेश नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ३२ ॥ हे तात ! वह आहुकनामक भील, नैषध नगरमें वीरसेनका पुत्र नलनामवाला राजा हुआ ॥ ३३ ॥ और वह आहुकानामक भीलनी, वैदर्भनगरमें राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ और वह यतिनाथनामक शिव हंसरूप हुए, और उस हंसने दमयन्तीका नलके साथ विवाह कराया ॥ ३५ ॥ प्रभु शंकर पहले सत्काररूपी महापुण्यके कारण हंसके रूपको धारण करके उन दोनों नल दमयन्तीको सुख देते हुए ॥ ३६ ॥ शिवजी अनेकवार्ता करनेमें निपुण, हंसका अवतार ले दमयंती तथा राजानलके परमआनन्दके देनेवाले हुए ॥ ३७ ॥ यह हंसनामक पवित्र कीर्तिवाले शिवके अवतारका तथा यतीशनामक अवतारका परम पवित्र, मुक्ति देनेवाला बडा अद्भुत चरित्र है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य, शुभ यतीश तथा ब्रह्म हंस अवतारका चरित्र सुनता है, अथवा सुनाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ यह निष्पाप

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च स्वयं शम्भुर्लिंगरूपोऽभवत्तदा ॥ तस्मान्न चलितो धर्मादचलेश इति स्मृतः ॥ ३२ ॥ स भिल्ल आहु
कश्चापि वीरसेनसुतोऽभवत् ॥ नैषधे नगरे तात नलनामा महानृपः ॥ ३३ ॥ आहुका सा महाभिल्ली भीमस्य तनयाऽभवत् ॥ वैदर्भे
नगरे राज्ञो दमयन्तीति विश्रुता ॥३४॥ यतिनाथाह्वयस्सोपि हंसरूपोऽभवच्छिवः ॥ विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलेन वै ॥ ३५ ॥
पूर्वसत्काररूपेण महापुण्येन शंकरः ॥ हंसरूपं विधायैव ताभ्यां सुखमदात्प्रभुः ॥ ३६ ॥ शिवो हंसावतारो हि नानावार्ताविचक्षणः ॥
दमयन्त्या नलस्यापि परमानन्ददायकः ॥ ३७ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः ॥ यतीशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि
हंसाह्वयस्यापि विमुक्तिदं हि ॥ ३८ ॥ यतीशब्रह्महंसाख्यावतारचरितं शुभम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि स लभेत परां गतिम् ॥ ३९ ॥
इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ ४० ॥

सब कामनाके फलका देनेवाला, यश और आयुका देनेवाला तथा भक्तिका बढानेवाला चरित्र है ॥ ४० ॥ संन्यासी और हंसरूपधारी शिवजीका चरित्र सुनकर इस लोकमें सब सुखोंको भोगकर अन्त समयमें शिवके पुरको जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० यतिनाथब्रह्महंसाह्वय शिवावतारचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सनत्कुमार ! नभगके ज्ञानका देनेवाला, कृष्णदर्शननामक, शिवका परम अवतार सुनो ॥ १ ॥ जो इक्ष्वाकु आदि, श्राद्धदेवके पुत्र हुए हैं, उस वंशमें नौवीं पीढीमें नभग हुआ, तथा उसका पुत्र नाभाग हुआ ॥ २ ॥ उसका पुत्र

श्रुत्वैतच्चारितं शम्भोर्यतिहंसस्वरूपयोः ॥ इह सर्वसुखम्भुक्त्वा सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृ० शतरुद्रसंहि० यतिनाथब्रह्महंसाह्वयशिवावतारचरितवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार शम्भोस्त्ववतारं परमं शृणु ॥ नभगज्ञानदं कृष्णदर्शनाह्वयमुत्तमम् ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखा आसङ्श्राद्धदेवसुताश्च ये ॥ नभगस्तत्र नवमो नाभगस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २ ॥ अम्बरीषस्सुतस्तस्य विष्णुभक्तो बभूव सः ॥ यस्योपरि प्रसन्नोभूद्दुर्वासा ब्रह्मभक्तितः ॥ ३ ॥ पितामहोऽम्बरीषस्य नभगो यः प्रकीर्तितः ॥ तच्चरित्रं शृणु मुने यस्मै ज्ञानमदाच्छिवः ॥ ४ ॥ नभगो मनुपुत्रस्तु पठनार्थं सुबुद्धिमान् ॥ चक्रे गुरुकुले वासं बहुकालं जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ एतस्मिन्समये ते वा इक्ष्वाकुप्रमुखास्सुताः ॥ तस्मै भागमकल्प्यैव भेजुर्भागान्निजान्क्रमात् ॥ ६ ॥ स्वंस्वं भागं गृहीत्वा ते बुभुजू राज्यमुत्तमम् ॥ आविषादं महाभागा पित्रादेशात्सुबुद्धयः ॥ ७ ॥ स पश्चादागतस्तत्र ब्रह्मचारी गुरुस्थलात् ॥ नभगोऽधीत्य सर्वांश्च सांगोपांगाः श्रुतीः क्रमात् ॥ ८ ॥

अम्बरीषनामक विष्णुका भक्त हुआ जिसके ऊपर ब्रह्मभक्तिसे दुर्वासाऋषि प्रसन्न हुये थे ॥ ३ ॥ हे मुने ! अम्बरीषका पिता यह जो नाभागनामक कहा है, उसका चरित्र सुनो कि, जिसको शिवजीने ज्ञान दियाथा ॥ ४ ॥ मनुका पुत्र बुद्धिमान नभगनामक पढनेके लिये जितेन्द्रिय होकर बहुत समय तक गुरुकुलमें निवास करता हुआ ॥ ५ ॥ इसी समयमें उन इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उस नभगके भागको विना कल्पना किये ही क्रमशः अपने भागोंको विभाग करलिया ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! वह बुद्धिमान पिताकी आज्ञासे अपने २ भागको ग्रहण करके निर्द्वंद्व हो उत्तम राज्य भोगने लगे ॥ ७ ॥ पीछेसे वह ब्रह्मचारी

नभग, क्रमशः सम्पूर्ण सांगोपांग श्रुतियों (वेदों) को पढकर गुरुकुलसे लौटा ॥ ८ ॥ हे मुने ! वह नभग अपने सब भाइयोंको विभाग किये हुये देख अपने भागकी इच्छासे उन इक्ष्वाकु आदि भाइयोंसे स्नेहपूर्वक बोला ॥ ९ ॥ नभग बोला, हे भाइयो ! तुम सबोंने विभाग करलिया है सो अपने दायके लेनेको आये हुये मुझे प्रीति सहित यथोचित दायको विभाग करके दो ॥ १० ॥ वह बोले कि—विभाग करते समय हम सब भूल गये, अब पिताहीको हमने तुम्हारा विभाग नियत किया है उसको तुम लेना इसमें संदेह नहीं ॥ ११ ॥ यह भाइयोंका वचन सुन नभग अपने पिताके समीप प्राप्त होकर उनसे

भ्रातॄन्विलोक्य नभगो विभक्तान्सकलान्निजान् ॥ दायार्थी प्राह तान्स्नेहादिक्ष्वाकुप्रमुखान्मुने ॥ ९ ॥ नभग उवाच ॥ भ्रातरोऽभक्तकं मह्यं दायं कृत्वा यथातथम् ॥ सर्वे विभक्तास्सुप्रीत्या स्वदायार्थागताय च ॥ १० ॥ तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं पितरं तव ॥ विभजामो वयं भागं तं गृहाण न संशयः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा भ्रातृवचनं नभगः परविस्मृतः ॥ तदोपकण्ठमागत्य पितरं समभाषत ॥ १२ ॥ नभग उवाच ॥ हे तात भ्रातरः सर्वे त्यक्त्वा मां व्यभजंश्च ते ॥ पठनार्थं गतश्चाहं ब्रह्मचारी गुरोः कुले ॥ १३ ॥ तत आगत्य मे पृष्टा दायदानार्थमादरात् ॥ ते त्वामूचुर्विभागं मे तदर्थमहमागतः ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य पिता तं प्राह विस्मितः ॥ आश्वास्य श्राद्धदेवस्स सत्यधर्मरतं मुने ॥ १५ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ तदुक्तं माद्दथास्तात प्रतारणकरं हि तत् ॥ न ह्यहं परमं दायं सर्वथा भोगसाधनम् ॥ १६ ॥

बोला ॥ १२ ॥ नभग बोला, हे पिता ! उन सब भाइयोंने मुझे छोडकर राज्यका विभाग करलिया, मैं ब्रह्मचारी गुरुकुलमें पढनेको चलागया था ॥ १३ ॥ फिर आकर अपने दायके देनेके अर्थ उनसे मैंने आदरपूर्वक पूछा तो उन्होंने तुमको विभाग करनेके अर्थ बताया, इसके लिये मैं आयाहूं ॥ १४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! यह उसका वचन सुन उस्का पिता श्राद्धदेव विस्मित होकर सत्य तथा धर्ममें तत्पर हुये उस नभगको धीरज देकर यह वचन बोला ॥ १५ ॥ मनु बोला, हे तात ! उनके वचनको मत आदर करो क्योंकि बहाना करनेवाला उनका वचन है, मैं सर्वथा भोगके साधनरूप परम दायको प्राप्त

नहीं मानता हूं ॥ १६ ॥ तो भी उन प्रपंचियोंने तुझको मुझे दायभावसे दिया है, तौ मैं तेरे जीवनके उपायको बताता हूं तत्त्वसे श्रवणकर ॥ १७ ॥ आज बुद्धिमान् आंगिरस ब्राह्मण यज्ञ करते हैं, उस यज्ञकर्ममें प्रति छठवें २ दिन मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे नभग ! हे महाकवे ! वहां तुम जाओ और उनको अच्छी प्रकार शिक्षा दो, और दो वैश्व देवसूक्त पढनेसे उस यज्ञकी शुद्धि होगी ॥ १९ ॥ उस कर्म (यागकर्म) के समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण स्वर्गको जायंगे और वे संतुष्ट होकर अपने यज्ञका शेष धन तुझे दे जायंगे ॥ २० ॥ नन्दीश्वर बोले, यह पिताका वचन सुन वह सत्यसारवाला नभग वहां

तथापि दायभावेन दत्तोऽहं तैः प्रतारिभिः ॥ तव वै जीवनोपायं वदामि शृणु तत्त्वतः ॥ १७ ॥ सत्रमांगिरसा विप्राः कुर्वन्त्यद्य सुमेधसः ॥ तत्र कर्मणि मुह्यन्ति षष्ठंषष्ठमहः प्रति ॥ १८ ॥ तत्र त्वं गच्छ नभग तान् सुशंस महाकवे ॥ सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि सत्रं शुद्धं हि तद्भवेत् ॥ १९ ॥ तत्कर्मणि समाप्ते हि स्वर्यान्तो ब्राह्मणाश्च ते ॥ धनं दास्यन्ति ते तुष्टास्स्वसत्रपरिशेषितम् ॥ २० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं नभगः सत्यसारवान् ॥ जगाम तत्र सुप्रीत्या यत्र तत्सत्रमुत्तमम् ॥ २१ ॥ तदाहःकर्मणि मुने संत्रे तस्मिन्समानवः ॥ सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि प्रोवाच स्पष्टतस्सुधीः ॥ २२ ॥ समाप्ते कर्मणि ततो विप्रा आंगिरसाश्च ते ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं स्वंस्वं सत्रावशेषितम् ॥ २३ ॥ तत्तदा स्वीकरिष्यंतं सुसत्रपरिशेषितम् ॥ विज्ञाय गिरिशः संद्य आविर्भूतः सदूतिकृत् ॥ २४ ॥ सर्वांगसुन्दरः श्रीमान्पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ भावं समीक्षितुं भागं दातुं ज्ञानं परं च तत् ॥ २५ ॥ अथो स शंकरः शम्भुः परीक्षाकर ईश्वरः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य नभगं तं हि मानवम् ॥ २६ ॥

प्रीतिसहित गया, जहाँपर उत्तम यज्ञ होरहा था ॥ २१ ॥ हे मुने ! उस बुद्धिमान् मनुपुत्रने उस यज्ञकर्ममें दो वैश्वदेव सूक्त स्पष्ट उच्चारणके साथ बोले ॥ २२ ॥ उस यज्ञकर्मके समाप्त होनेपर वे आंगिरस ब्राह्मण, अपने २ यज्ञसे शेष बचेहुए धनको उस नभगको देकर स्वर्गको प्राप्त हुये ॥ २३ ॥ उस समय शुभयज्ञसे बचेहुये धनको स्वीकार करते हुये जानकर सुन्दर रक्षा करनेवाले शिवजी शीघ्र प्रगट हुये ॥ २४ ॥ जो सर्वांगसे सुन्दर, शोभायुक्त कृष्णदर्शन नामक पुरुषथे, उसके परमभावको जाननेको तथा परमज्ञानरूप भागको देनेके अर्थ प्रगट हुए ॥ २५ ॥ इसके पीछे वह परीक्षा करनेवाले, कल्याणकारी

शम्भु उस नभग मनुपुत्रके आगे प्राप्त होकर उससे बोले ॥ २६ ॥ ईश्वर बोले, कि हे पुरुष ! तू कौन है मेरा यह वास्तु सम्बन्धी धन तू कैसे ग्रहण करता है, तुझे किसने भेजा है यह सब मेरे आगे तू सत्य २ कह ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! वह कवि, नभग उनका वह वचन सुन विनीतहो उन कृष्णदर्शन पुरुषसे बोला ॥ २८ ॥ नभग बोला, हे कृष्णदर्शन ! ऋषियोंसे दियाहुआ यज्ञमें प्राप्त हुआ यह मेरा धन है इसे ग्रहण करते हुए मुझे तुम क्यों निषेध करते हो ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह नभगका कहा सत्य वचन सुन वह प्रसन्नात्मा कृष्णदर्शननामक पुरुष कहने लगे ॥ ३० ॥

ईश्वर उवाच ॥ कस्त्वं गृह्णासि पुरुष भॅमदं वास्तुकं वसु ॥ प्रेषितः केन तत्सर्वं सत्यं वद ममाग्रतः ॥ २७ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात मानवो नभगः कविः ॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा पुरुषं कृष्णदर्शनम् ॥ २८ ॥ नभग उवाच ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तं वसु यज्ञगतं खलु ॥ कथं वारयसे मां त्वं गृह्णंतं कृष्णदर्शनम् ॥ २९ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ आकर्ण्य नाभगं वाक्यमिदं सत्यमुदीरितम् ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ ३० ॥ कृष्णदर्शन उवाच ॥ विवादेऽस्मिन्हि नौ तात प्रमाणं जनकस्तव ॥ याहि तम्पृच्छ स ब्रूयात्तत्प्रमाणन्तु सत्यतः ॥ ३१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य नभगो मानवः कविः ॥ आगच्छत्पितरं प्रीत्या तदुक्तं पृष्टवान्मुने ॥ ३२ ॥ पुत्रोदितं समाकर्ण्य श्राद्धदेवस्स वै मनुः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्राप्तस्मृतिरुवाच तम् ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे तात शृणु मद्वाक्यं स देवः पुरुषः शिवः ॥ तस्यैव सकलं वस्तु यज्ञप्राप्तं विशेषतः ॥ ३४ ॥ अध्वरोर्वरितं वस्तु रुद्रभागः प्रकीर्तितः ॥ इत्यपि प्राज्ञवादो हि क्वचिज्जातस्तदिच्छया ॥ ३५ ॥

कृष्णदर्शन बोले, हे तात ! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारा पिताही प्रमाण है जाओ उससे पूछो वह इसके प्रमाणको सत्य २ कहैगा ॥ ३१ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! यह उनका वचन सुन वह कवि, नभग पुरुष पिताके पास आकर प्रीतिसे पूछने लगा ॥ ३२ ॥ वह श्राद्धदेव मनु, पुत्रके कथनको सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके, स्मृति प्राप्तकर उस पुत्रसे बोला ॥ ३३ ॥ मनु बोला, हे तात ! मेरे वाक्यको सुनो वह पुरुष शिव देवता हैं, यह सम्पूर्ण और विशेषकर यज्ञमें शेषरही वस्तु उनकीही है ॥ ३४ ॥ यज्ञके समाप्तिमें शेषवस्तु रुद्रका भागहै यहभी बुद्धिमानोंका कथन कहींपर उसकी

इच्छासे होताहै ॥ ३५ ॥ हे विभो ! वह ईश्वर देवयज्ञमें शेष बची सब वस्तु लेनेके योग्य हैं, इसमें कुछ संशय नहीं उनकी इच्छासे दूसरे पुरुष क्या वस्तुहैं
॥ ३६ ॥ हे नभग ! तेरे ऊपर अनुग्रह करनेको वह शिव प्रभु, उस रूपसे प्रगट हुये हैं, वहां तू जा और सत्य कहकर उनको प्रसन्न कर ॥ ३७ ॥ और
अपने अपराधको क्षमाकरा और प्रणाम करके स्तुति कर वह सबके प्रभु अखिलेश्वर शिवजी यज्ञके अधिपति हैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! विष्णु तथा ब्रह्मा
आदि देवता सिद्ध और सब ऋषि उनके अनुग्रहसे सब कर्मोंमें समर्थ होतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रेष्ठआत्मज ! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है, तुम वहां जाओ,

स देव ईश्वरः सर्वं वस्त्वर्हति न संशयः ॥ यज्ञावशिष्टं किमुत परे तस्येच्छया विभोः ॥ ३६ ॥ अनुग्रहार्थमायातस्तव तद्रूपतः प्रभुः ॥
तत्र त्वं गच्छ नभग प्रसन्नं कुरु सत्यतः ॥ ३७ ॥ क्षमापय स्वापराधं सुप्रणम्य स्तुतिं कुरु ॥ सर्वप्रभुस्स एवेशो यज्ञाधीशोऽखिले-
श्वरः ॥ ३८ ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धास्सर्वर्षयोऽपि हि ॥ तदनुग्रहतस्तात समर्थः सर्वकर्मणि ॥ ३९ ॥ किम्बहूक्त्यात्मजश्रेष्ठ
गच्छ तत्राशु माचिरम् ॥ प्रसादय महादेवं सर्वथा सकलेश्वरम् ॥ ४० ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा स मनुः श्राद्धदेवश्च तनयं
द्रुतम् ॥ प्रेषयामास निकटं शम्भोस्सोऽपि समेत्य तम् ॥ ४१ ॥ नभगश्च प्रणम्याशु साञ्जलिर्नतमस्तकः ॥ प्रोवाच सुप्रसन्नात्मा
विनयेन महामतिः ॥ ४२ ॥ नभग उवाच ॥ इदं तवेश सर्वं हि वस्तु त्रिभुवने हि यत् ॥ इत्याह मे पिता नूनं किमुताध्वरशेषि-
तम् ॥ ४३ ॥ अजानता मया नाथ यदुक्तन्तद्वचो भ्रमात् ॥ अपराधन्त्वं क्षमस्व शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा नभगस्सो
तिदीनधीस्तु कृताञ्जलिः ॥ तुष्टाव तं महेशानं कृष्णदर्शनमानतः ॥ ४५ ॥

देर न करो, सब प्रकारसे सबके ईश्वर महादेवको प्रसन्न करो ॥ ४० ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कहकर वह श्राद्धदेव मनु शीघ्र अपने पुत्रको शिवजीके समीप
भेजताहुआ, और वह नभग उनको प्राप्त होकर ॥ ४१ ॥ प्रणाम कर अंजलि बांध माथा झुकाय प्रसन्नचित्तहो बडी बुद्धिमानीपूर्वक विनयसे बोला ॥४२॥
नभग बोला, हे ईश ! जो कुछ तीनोंलोकोंमें है सो तुम्हारीही वस्तु है, फिर यज्ञमें शेषहुईकी तो क्या ? इस प्रकार मेरे पिताने निश्चय कहा है ॥ ४३ ॥
हे नाथ ! मैंने विनाजाने जो वचन तुमको भ्रमसे कहेहैं, उस अपराधको आप क्षमाकरें मैं शिरसे आपको प्रसन्न करताहूं ॥ ४४ ॥ यह कहकर, दीनबुद्धि,

नम्र हाथ जोडे वह नभग उन कृष्णदर्शन शिवकी स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ और उसका पिता बुद्धिमान्, शुद्धात्मा नम्र हुआ श्राद्धदेवभी उन प्रभुको संतुष्ट करनेलगा और नमस्कार करके अपने अपराधको क्षमा करानेलगा ॥ ४६ ॥ इसी अवसरमें वहां बुद्धिमान् विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि सब सिद्ध और मुनि आये ॥ ४७ ॥ सब हाथ बाँधेहुये महा उत्सव करने लगे और नृत्य करनेवाले पृथक् २ भक्तिसे प्रणाम करके नृत्य सहित स्तुति करने लगे॥ ४८॥ तब वह शिवरूप कृष्णदर्शन, प्रसन्न हो उन सबोंको कृपादृष्टिसे देखकर प्रीतिसहित हँसतेहुये नभगसे बोले ॥ ४९ ॥ कृष्णदर्शन बोले, तेरे पिताने धर्मयुक्त

श्राद्धदेवोऽपि शुद्धात्मा नतकस्साञ्जलिस्सुधीः ॥ तुष्टाव तं प्रभुं नत्वा स्वापराधं क्षमापयत् ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्ब्रह्मा
खिलः सुधीः ॥ वासवाद्याः समाजग्मुः सिद्धाश्च मुनयोऽपि हि ॥ ४७ ॥ महोत्सवं प्रकुर्वन्तः सुकृताञ्जलयोऽखिलाः ॥ तुष्टुवुर्नतका
भक्त्या सुप्रणम्य पृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥ अथ रुद्रः प्रसान्नात्मा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान् ॥ उवाच नभगं प्रीत्या सस्मितं कृष्णद
र्शनः ॥ ४९ ॥ कृष्णदर्शन उवाच ॥ यत्ते पितावदद्धर्म्यं वाक्यन्तत्तु तथैव हि ॥ त्वयापि सत्यमुक्तं तत्साधुस्त्वन्नात्र संशयः ॥ ५० ॥
अतोऽहं सुप्रसन्नोऽस्मि सर्वथा सुव्रतेन ते ॥ ददामि कृपया ते हि ज्ञानम्ब्रह्म सनातनम् ॥ ५१ ॥ महाज्ञानी भव त्वं हि सविप्रो नभग
द्रुतम् ॥ गृहाण वस्त्विदं सर्वं मद्दत्तं कृपयाधुना ॥ ५२ ॥ इह सर्वसुखं भुङ्क्ष्व निर्विकारं महामते ॥ सुगतिं प्राप्स्यसि त्वं हि सविप्रः
कृपया मम ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तात भगवान्स रुद्रः सत्यवत्सलः ॥ सर्वेषाम्पश्यतान्तेषान्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥
॥ ५४ ॥ विष्णुर्ब्रह्मापि देवाद्यास्सर्वे ते मुनिसत्तम ॥ स्वंस्वं धाम ययुः प्रीत्या तस्यै नत्वा दिशे मुदा ॥ ५५ ॥

जो वाक्य कहाहै, सो तो उसी प्रकार है और तूनेभी सत्य कहा तू साधुहै, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ इस कारण मैं तेरे दृढव्रतसे सब प्रकार प्रसन्न हूं, और कृपा करके तुझे सनातन ब्रह्मज्ञान देताहूं ॥ ५१ ॥ हे नभग ! तू शीघ्र महाज्ञानी हो कृपापूर्वक मुझसे दीहुई, सब वस्तु अब ग्रहण कर ॥ ५२॥ हे महामते ! इस संसारमें सब सुखोंको निर्विकार भोग और मेरी कृपासे तू सुन्दर गतिको प्राप्त होगा ॥ ५३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे तात ! यह कह कर सत्यवादियोंपर दया करनेवाले वह भगवान् शिव उन देखनेवालोंके आगेही वहांपर अन्तर्धान होगये ॥ ५४ ॥ हे मुनिसत्तम ! विष्णु, ब्रह्मा, तथा इन्द्र

आदि सम्पूर्ण देवता प्रीतिसहित आनन्दसे उसको नमस्कार करके अपने २ धामोंको चलेगये ॥ ५५ ॥ अपने पुत्र नभगसहित वह, श्राद्धदेवभी प्रसन्नतासे अपने स्थानको गया, और अनेकभोगोंको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार कृष्णदर्शननामक शिवका अवतार तुमसे कहा, जो नभगको आनन्दका देनेवाला है ॥ ५७ ॥ यह पापोंको नष्ट करनेवाला, तथा सत्पुरुषोंको भोग, मोक्ष और पढने तथा सुननेवालोंको सब कामनाओंके फलका देनेवाला चरित्र है ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य इस चरित्रको प्रातःकाल तथा सायंकाल स्मरण करता है, वह बुद्धिमान् कवि तथा मंत्रोंको

सपुत्रः श्राद्धदेवोऽपि स्वस्थानमगमन्मुदा ॥ भुक्त्वा भोगान्सविपुलान्सोऽन्ते शिवपुरं ययौ ॥ ५६ ॥ इत्थन्ते कीर्तितो ब्रह्मन्नवतारः शिवस्य हि ॥ कृष्णदर्शननामा वै नभगानन्ददायकः ॥ ५७ ॥ इदमाख्यानमनघं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ पठतां शृण्वतां वापि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५८ ॥ य एतच्चरितम्प्रातस्सायं च स्मरते सुधीः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिमन्ते लभेत्पराम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु त्वं ब्रह्मपुत्राद्यावतारं परमेशितुः ॥ अवधूतेश्वराह्वं वै शक्रगर्वापहारकम् ॥ १ ॥ शक्रः पुरा हि सगुरुः सर्वदेवसमन्वितः ॥ दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासमगमन्मुने ॥ २ ॥ अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरस्तयोः ॥ परीक्षितुं च तद्भावं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ३ ॥ अवधूतस्वरूपोऽभून्नानालीलाकरः प्रभुः ॥ दिगंबरो महाभीमो ज्वलदग्निसमप्रभः ॥ ४ ॥

जाननेवाला होताहै और अन्तमें परमगतिको पाताहै ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि हे ब्रह्माके पुत्र ! इन्द्रके गर्वका नाश करनेवाला, अवधूतेश्वर नामक शिवजीका अवतार सुनो ॥ १ ॥ हे मुने ! पहले बृहस्पतिसहित सब देवता और इन्द्र शिवजीके दर्शन करनेको कैलासपर्वतपर गये ॥ २ ॥ तब शिवजी, अपने दर्शनमें प्रीति करतेहुए उन दोनों बृहस्पति तथा इन्द्रको आया जान उनके प्रेमकी परीक्षा करनेको ॥ ३ ॥ नानाप्रकारकी लीला करनेवाले, प्रभु, बडे भयंकर, जलतीहुई अग्निके समान

कान्तिवाले शिवजी अवधूत स्वरूपसे प्रगट हुऐ ॥ ४ ॥ वह सद्गति अवधूतरूप हो उनके मार्गको रोककर, लम्बायमान वस्त्रयुक्त शोभन आकार धारण
कर स्थित हुये ॥ ५ ॥ तब शिवजीके समीप जातेहुये, बृहस्पति तथा इन्द्रने मार्गके मध्यमें, अद्भुत आकारवाले भयंकर पुरुषको देखा ॥ ६ ॥
हे मुने ! तब अपने अधिकारसे अभिमानी इन्द्रने मार्गके मध्यमें स्थितहुये उस पुरुषसे, शिव न जानकर पूँछा ॥ ७ ॥ इन्द्र बोले, तू कौनहै, दिगंबर
तथा अवधूत आकारवाला तू कहांसे आयाहै, तेरा क्या नामहै, शीघ्र मुझसे सत्य २ कह ॥ ८ ॥ शिवजी अपने स्थानपर:स्थितहैं, अथवा इस समय

सोऽवधूतस्वरूपो हि मार्गमारुद्ध्य सद्गतिः ॥ लंबमानपटः शंभुरतिष्ठच्छोभिताकृतिः ॥ ५ ॥ अथ तौ गुरुशक्रौ च गच्छन्तौ शिव
सन्निधिम् ॥ अद्राष्टां पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम् ॥ ६ ॥ अथ शक्रो मुनेऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः ॥ पुरुषं तं स्वमार्गान्तः
स्थितमज्ञाय शंकरम् ॥ ७ ॥ शक्र उवाच ॥ कस्त्वं दिगंबराकारावधूतः कुत आगतः ॥ किन्नाम तव विख्यातं तत्त्वतो वद मेऽ
चिरम् ॥ ८ ॥ स्वस्थाने संस्थितः शंभुः किम्वान्यत्र गतोऽधुना ॥ दर्शनार्थं हि तस्याहं गच्छामि सगुरुस्सुरैः ॥ ९ ॥ ॥ नन्दीश्वर
उवाच ॥ शक्रेणेत्थं स पृष्टश्च किंचिन्नोवाच पूरुषः ॥ लीलागृहीतदेहस्स शङ्करो मदहा प्रभुः ॥ १० ॥ शक्रः पुनरपृच्छत्तं नोवाच स
दिगम्बरः अविज्ञातगतिश्शम्भुर्महाकौतुककारकः ॥ ११ ॥ पुनः पुरन्दरोऽपृच्छत्त्रैलोक्याधिपतिस्स्वराट् ॥ तूष्णीमास महायोगी
महालीलाकरस्स वै ॥ १२ ॥ इत्थं पुनःपुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः ॥ नोवाच किंचिद्भगवाञ्शक्रदर्पजिघांसया ॥ १३ ॥

और कहीं गयेहैं, मैं बृहस्पति सहित उनके दर्शनको जाताहूं ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इन्द्रसे ऐसा पूंछने पर लीलासे शरीर धारण किये, मदके नाश
करनेवाले, प्रभु, शंकररूपधारी वह पुरुष कुछ न बोले ॥ १० ॥ इन्द्रने उससे फिर पूँछा तो भी वह दिगंबर उससे नहीं बोला जो महाकौतुककारी
शिवजी अविज्ञातगतिमें स्थित थे सो मौनहो रहे ॥ ११ ॥ फिर त्रिलोकीके स्वामी इन्द्रने उससे पूँछा तब भी प्रकाशमान महालीलाके करनेवाले महायोगी
वह अवधूत चुप होरहे ॥ १२ ॥ इस प्रकार बारंबार पूँछनेपर भी भगवान् दिगंबर इन्द्रके अभिमानके नाश करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले ॥ १३ ॥

तब त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे गर्वित वह इन्द्र क्रोध करता हुआ और क्रोधसे उस जटाधारीको ललकारके यह वचन बोला ॥ १४ ॥ इन्द्र बोला, हे मूढ ! हे दुर्मते ! पूँछनेपर भी तूने उत्तर नहीं दिया, इस कारण तुझको वज्रसे मारता हूं देखूं कौन तेरी रक्षा करता है ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधसे उसको देखा और उस दिगंबरको मारनेके निमित्त वज्र उठाया ॥ १६ ॥ वज्र हाथमें लिये उस इन्द्रको देखकर शिवजीने उसके वज्रपातको स्तंभित करदिया अर्थात् इन्द्रका वज्र उनके ऊपर न चलसका ॥ १७ ॥ तब वह पुरुष क्रुद्धहो, लाल नेत्र कर, भयंकर तेजसे जलते हुयेके समान शीघ्र प्रज्वलित हुआ ॥ १८ ॥ इन्द्र अपनी भुजाके रुकनेसे उत्पन्नहुये क्रोधसे मंत्रोंसे रुके पराक्रमवाले सर्पकी समान भीतरैभीतर जलने लगा ॥ ॥ १९ ॥ बृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होतेहुये देखकर बुद्धिसे उसको शिव जान शीघ्रही प्रणाम किया ॥ २० ॥ तब उदारबुद्धि बृहस्पति हाथ बांधेहुए दंडवत् प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ बृहस्पति बोले, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे गौरीश ! हे सर्वेश्वर ! आप प्रसन्नहों आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ सब ब्रह्मा, विष्णु, आदिक देवता आपकी मायासे मोहित हो रहेहैं, तुमको नहीं जानते

अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्य्यगर्वितः ॥ उवाच वचनं क्रोधात्तं निर्भर्त्स्य जटाधरम् ॥१४॥ इन्द्र उवाच ॥ पृच्छमानोऽपि रे मूढ नोत्तरं दत्तवानसि ॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५ ॥ इत्युदीर्य्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम् ॥ हन्तुन्दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६ ॥ वज्रहस्तं च तं दृष्ट्वा शक्रं शीघ्रं सदाशिवः ॥ चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः ॥ १७ ॥ ततः स पुरुषः क्रुद्धः करालाक्षो भयंकरः ॥ द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥१८॥ बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तश्शचीपतिः ॥ समदह्यत भोगीव मंत्ररुद्धपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वेनम्प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥ पुरुषं तं धियामास प्रणनाम हरं द्रुतम् ॥ ॥ २० ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः ॥ दण्डवत्कौ पुनर्नत्वा प्रभुं तुष्टाव भक्तितः ॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ प्रसन्नो भव गौरीश सर्वेश्वर नमोऽस्तुते ॥ २२ ॥ मायया मोहितास्सर्वे ब्रह्मविष्णवादयोपि ते ॥ त्वां न जानन्ति तत्त्वेन जानन्ति त्वदनुग्रहात् ॥ २३ ॥

हैं, आपके अनुग्रहसे आपको तत्त्वद्वारा जानतेहैं ॥ २३ ॥ नन्दीश्वर बोले, उन बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शंकरकी स्तुति करके इन्द्रको उन शिवजीके चरणोंमें गिराया ॥ २४ ॥ हे तात ! तब उदारबुद्धि देवताओंके आचार्य बृहस्पति प्रेमसे नम्र हो यह वचन बोले ॥ २५ ॥ बृहस्पति बोले, हे दीनोंके नाथ ! हे महादेव ! मैं तुम्हारे चरणोंमें पडा हूं, मुझे उद्धार करो और क्रोधको शान्त करो ॥ २६ ॥ हे महादेव ! आप प्रसन्न होवो आपके माथेके नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि आतीहै, इससे शरणमें प्राप्त हुए इन्द्रकी रक्षा करो ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा बृहस्पतिका वचन सुनकर अवधूत आकारवाले

नन्दीश्वर उवाच ॥ बृहस्पतिरिति स्तुत्वा स तदा शंकरम्प्रभुम् ॥ पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥ २४ ॥ ततस्तात सुराचार्य्यः कृताञ्जलिरुदारधीः ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः सुधीः ॥ २५ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ दीननाथ महादेव प्रणतन्तव पादयोः ॥ समुद्धर च मां तत्त्वं क्रोधं न प्रणयं कुरु ॥ २६ ॥ तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम् ॥ वह्निरेष समायाति भालनेत्रसमुद्भवः ॥ २७ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यमवधूताकृतिः प्रभुः ॥ उवाच करुणासिंधुर्विहसन् स सदूतिकृत् ॥ ॥ २८ ॥ अवधूत उवाच ॥ क्रोधाच्च निस्सृतन्तेजो धारयामि स्वनेत्रतः ॥ कथं हि कंचुकीं सर्पस्संधत्ते चोज्झितां पुनः ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः ॥ उवाच साञ्जलिर्भूयो भयव्याकुलमानसः ॥ ३० ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे देव भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि ॥ भक्तवत्सलनामेति स्वं सत्यं कुरु शंकर ॥ ३१ ॥ क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजो त्युग्रमर्हसि ॥ उद्धर्ता सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम् ॥ ३२ ॥

करुणासागर श्रेष्ठ रक्षा करनेवाले प्रभु शिवजी बोले ॥ २८ ॥ अवधूत बोले, क्रोधसे अपने द्वारा निकले तेजको किस प्रकार फिर धारण करसकता हूं क्या सर्प अपने कंचुकीको त्याग कर फिर धारण कर सकता है ? ॥ २९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा शिवजीका वचन सुनकर बृहस्पति हाथ जोडेहुये, भयसे व्याकुल चित्त हुए बोले ॥ ॥ ३० ॥ बृहस्पति बोले, हे देव ! हे भगवन् ! हे शंकर ! निरंतर, भक्तजन अनुकंपा (दया) के योग्य होते हैं, आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य करो ॥ ३१ ॥ हे देवेश ! अपने तीक्ष्ण तेजको और जगह स्थापित करनेके योग्य हो, आप सब भक्तोंके उद्धार करनेवालेहैं

इससे इन्द्रका उद्धार करो ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार बृहस्पतिजीसे कहे हुये, भक्तवत्सल नामके भजनेवाले प्रसन्नात्मा नम्र हुओंके दुःख नाश करनेवाले शिवजी ब्रहस्पतिसे बोले ॥ ३३ ॥ शिवजी बोले, हे सुराचार्य ! तुमसे प्रसन्न हुआ मैं तुमको श्रेष्ठ वर देता हूं तुम इन्द्रके जीवदान करनेसे जीवनामसे विख्यात होगे ॥ ३४ ॥ यह जो माथेके नेत्रसे उत्पन्न हुई देवताओंकी असह्य अग्निहै, इसको मैं दूर फेंकताहूं, जिससे यह इन्द्रको पीडा न देवै ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कहकर शिवजीने माथेसे उत्पन्नहुई अपने तेजरूप अद्भुत अग्निको लवण समुद्रमें फेंक दिया ॥ ३६ ॥ तब माथेके नेत्रसे उत्पन्न

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक् ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यम्प्रणतार्तिहा ॥ ३३ ॥ रुद्र उवाच ॥
प्रीतस्तेहं सुराचार्य्यं ददामि वरमुत्तमम् ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथाम्व्रज ॥ ३४ ॥ समुद्भूतोऽनलो योयं भालनेत्रात्सुरा
सहः ॥ एनन्त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत् ॥ ३५ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम् ॥
भालनेत्रसमुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणाम्भसि ॥ ३६ ॥ अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम् ॥ क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालो
बभूव ह ॥ ३७ ॥ स जलन्धरनामाभूत्सिन्धुपुत्रोऽसुरेश्वरः ॥ तं जघान महेशानो देवप्रार्थनया प्रभुः ॥ ३८ ॥ इत्थं कृत्वा सुचारितं
शंकरो लोकशंकरः ॥ अवधूतस्वरूपेण ततश्चान्तर्हितोऽभवत् ॥ ३९ ॥ बभूवुः सकला देवाः सुखिनश्चातिनिर्भयाः ॥ गुरुशक्रौ भया
न्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम् ॥४०॥ यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य तौ ॥ कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा ॥४१ ॥
अवधूतेश्वराह्वोऽवतारस्ते कथितो मया ॥ परमेशस्य परमानन्ददः खलदण्डदः ॥ ४२ ॥

लवण समुद्रमें फेंकीहुई अग्नि तत्काल बालकरूप होगई ॥ ३७ ॥ वही जलंधरनामक दैत्य, सिंधुका पुत्र हुआ, उसको देवताओंकी प्रार्थनासे शिवजीने मारा ॥ ३८ ॥ लोकोंके कल्याण करनेवाले शिवजी अवधूत रूप धारकर इसप्रकार सुन्दर चरित्र करके फिर अन्तर्धान होगये ॥ ३९ ॥ सब देवता सुखी तथा निर्भय हुये, बृहस्पति और इन्द्र भयसे मुक्त हुए और उत्तम सुखको प्राप्त हुये ॥ ४० ॥ जिस कारण वे दोनों गयेथे उन शिवके दर्शनको प्राप्त होकर बृहस्पति तथा इन्द्र आनन्दपूर्वक अपने स्थानको चलेगये ॥ ४१ ॥ यह मैंने तुमसे अवधूतेश्वरनामक परमेश्वरका परम आनन्द देनेवाला

अवतार कहा ॥ ४२ ॥ यह पवित्र इतिहास यश तथा स्वर्गका देनेवाला और भोग तथा मुक्तिका देनेवाला दिव्य सब मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला है॥ ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इसको नित्य सुनताहै, वह इस लोकमें सब सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी पदवीको प्राप्त होताहै ॥४४॥ इति श्रीशिवमहापुराण भा० तृ० श० रु० अवधूतेश्वरशिवावतारवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे विप्र ! शिवजीके अवतारको सुनो कि अपने भक्तके ऊपर दया करके स्त्रीके सन्देहको दूर किया ॥ १ ॥ विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यवादी, शैवोंका प्रिय, सत्यरथ नाम एक राजा था ॥ २ ॥

इदमाख्यानमनघं यशस्यं स्वर्ग्यमेव च ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४३ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ शंभोः शृण्ववतारकम् ॥ स्वभक्तदयया विप्र नारीसन्देहभंजकम् ॥ १ ॥ आसीत्सत्यरथो नाम्ना विदर्भविषये नृपः ॥ धर्म्मात्मा सत्यशीलश्च महाशैवजनप्रियः ॥ ॥ २ ॥ तस्य राज्ञस्सुधर्मेण महीं पालयतो मुने ॥ महान्कालो व्यतीयाय सुखेन शिवधर्म्मतः ॥ ३ ॥ कदाचित्तस्य राज्ञस्तु शाल्वैश्च पुररोधिभिः ॥ महाव्रणो बभूवाथ बहुसैन्यैर्बलोद्धतैः ॥ ४ ॥ स विदर्भनृपः कृत्वा सार्धं तैर्दारुणं रणम् ॥ प्रनष्टोरुबलः शाल्वैर्निहतो दैवयोगतः ॥ ५ ॥ तस्मिन्नृपे हते युद्धे शाल्वस्तु भयविह्वलाः ॥ सैनिका हतशषाश्च मन्त्रिभिस्सह दुद्रुवुः ॥ ६ ॥ अथ तस्य महाराज्ञी रात्रौ स्वपुरतो मुने ॥ संरुद्धा रिपुभिर्यत्नादन्तवत्नी बहिर्ययौ ॥ ७ ॥

हे मुने ! उस राजाको सुन्दर धर्मसे भूमिका पालन करते तथा शिवधर्मसेवन करते हुये सुखपूर्वक बहुत समय बीतगया ॥ ३ ॥ एक समय उसके नगर रोकनेवाले, बहुत सेना सहित, बलसे प्रौढ शत्रुओंके साथ उस सत्यरथ राजाका बडाभारी युद्ध हुआ ॥ ४ ॥ वह विदर्भराजा उनके साथ घोर संग्राम करके दैवयोगसे जंघाके बलसे शून्यहो उन शत्रुओंसे मारागया ॥ ५ ॥ शाल्बोंके साथ उस संग्राममें सत्यरथ राजाके मरनेपर शेष बचीहुई सेना भयसे व्याकुलहो मंत्रियोंके सहित भागगई ॥ ६ ॥ हे मुने ! तब उस राजाकी गर्भवती पटरानी, शत्रुओंसे घिरीहुई रातके समय अपने नगरसे बाहर चली गई ॥ ७ ॥

निकलकर शोकसे दुःखी वह राजाकी स्त्री शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करती हुई, धीरे २ पूर्व दिशाको गई ॥ ८ ॥ तब प्रातःकाल उस रानीने
मार्गमें दूर पहुँचकर शिवजीकी दयासे एक निर्मल सरोवर देखा ॥ ९ ॥ तब राजाकी गर्भवती दुःखी स्त्रीने अपने निवासके अर्थ वहां एक छायावाले
वृक्षका आश्रय किया ॥ १० ॥ रानीने दैववश वहां सुन्दर ग्रहोंसे युक्त शुभ मुहूर्तमें सब लक्षणोंसे युक्त दिव्य पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ इसके
पीछे प्रारब्धवशं उसकी माता, वह रानी प्याससे व्याकुलहो जल पीनेको सरोवरमें गई उसे वहां नाकेने भक्षणकर लिया ॥ १२ ॥ तत्कालका उत्पन्न हुआ

निर्गता शोकसंतप्ता सा राजमहिषी शनैः ॥ प्राचीं दिशं ययौ दूरं स्मरन्तीशपदाम्बुजम् ॥८॥ अथ प्रभाते सा राज्ञी ददर्श विमलं सरः ॥
अतीता दूरमध्वानं दयया शङ्करस्य हि ॥ ९ ॥ तत्रागत्य प्रिया राज्ञस्संतप्ता सुकुमारिणी ॥ निवासार्थं सरस्तीरे छायावृक्षमुपाश्रयत् ॥
॥ १० ॥ तत्र दैववशाद्राज्ञी मुहूर्त्ते सद्गुणान्विते ॥ असूत तनयं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ११ ॥ अथ तज्जननी दैवात्तृषितातिनृपा
ङ्गना ॥ सरोवतीर्णा पानार्थं ग्रस्ता ग्राहेण पाथसि ॥ १२ ॥ स सुतो जातमात्रस्तु क्षुत्पिपासार्दितो भृशम् ॥ रुरोद च सरस्तीरे विनष्ट
पितृमातृकः ॥ १३ ॥ तस्मिन्वने क्रन्दमाने जातमात्रे सुते मुने ॥ कृपान्वितो महेशोऽभूदन्तर्यामी स रक्षकः ॥ १४ ॥ प्रेरिता मनसा
काचिदीशेन त्रासहारिणा॥ अकस्मादागता तत्र भ्रमन्ती भैक्ष्यजीविनी॥१५॥ सा त्वेकहायनं बालं वहन्ती विधवा निजम् ॥ अनाथमेकं
क्रंदन्तं शिशुन्तत्र ददर्श ह ॥१६॥ सा दृष्ट्वा तत्र तम्बालं वने निर्मनुजे मुने ॥ विस्मितातिद्विजस्त्री सा चिचिन्त हृदये बहु ॥ १७ ॥

वह पुत्र भूँख प्याससे अत्यन्त पीडित हुआ तथा माता पितासे हीन होकर वह पुत्र बहुत रोने लगा ॥ १३ ॥ हे मुने ! उस वनमें क्षणमात्रके उत्पन्न हुये
पुत्रके रोनेपर वह रक्षा करनेवाले अन्तर्यामी शिवजी दयासे आर्द्र होगये ॥ १४ ॥ तब दुःखके दूर करनेवाले ईश्वरसे प्रेरितहुई एक भिखारिन अपने
मनसे भ्रमण करती हुई एकाएकी वहां आई ॥ १५ ॥ वह विधवा अपने एक वर्षके बालकको लियेहुए वहां आई और उसने अनाथ रोते हुए अकेले
बालकको वहां देखा ॥ १६ ॥ हे मुने ! वह ब्राह्मणकी स्त्री उस निर्जन वनमें उस बालकको देखकर हृदयमें चिन्ता कर बडी विस्मित हुई ॥ १७ ॥

वाणीसे न कहने योग्य तथा असंभव यह बडा आश्चर्य देखतीहूं ॥१८॥ इस बालकका अभीतक नालभी नहीं कटा है और अकेला
श्रेष्ठ यह पुत्र मातासे हीन हुआ सोरहाहै ॥ १९ ॥ इसके माता, पिता आदिक कोई सहायक यहां नहीं हैं, क्या कारण है
॥ २० ॥ न जाने यह किसका पुत्र है, इसका जाननेवाला यहां कोई नहीं कि जिससे इसके जन्मको पूँछू, इसके ऊपर
२१ ॥ इस बालकको औरस (हृदयसे उत्पन्न) पुत्रकी समान पालन करनेकी इच्छा करती हूं, परन्तु इसके कुल जन्म

म्मयाधुना ॥ असम्भाव्यमकथ्यं च सर्वथा मनसा गिरा ॥ १८ ॥ अच्छिन्ननाभिनालोयं रसायां केवलं
श्च क्रन्दंस्तेजस्विनां वरः ॥ १९ ॥ अस्य पित्रादयः केऽपि न सन्तीह सहायिनः ॥ कारणं किं बभूवाथ ह्यहो
न जाने कस्य पुत्रोऽयमस्य ज्ञातात्र कोपि न ॥ यतः पृच्छाम्यस्य जन्म जाता च करुणा मयि ॥ २१ ॥
संप्रष्टुं नोत्सहेऽज्ञात्वा कुलजन्मादि चास्य वै ॥ २२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति
पां चकार महतीं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २३ ॥ दध्रे भिक्षुस्वरूपं हि महालीलो महेश्वरः ॥
२४ ॥ तत्राजगाम सहसा स भिक्षुः परमेश्वरः ॥ यत्रास्ति संदेहवती द्विजस्त्री ज्ञातु
ज्ञातगतिः प्रभुः ॥ तामाह विप्रवनितां विहस्य करुणानिधिः ॥ २६ ॥ भिक्षुवर्य्य उवाच
॥ रक्षैनम्बालकं प्रीत्या सुपवित्रं स्वपुत्रकम् ॥ २७ ॥

२ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार चिन्ता करती हुई उस ब्राह्मणकी स्त्रीपर भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले
, सब प्रकार भक्तोंको सुख देने वाले, उपाधिरहित महेश्वर शिवजीने स्वयं भिक्षुकका रूप धारण किया
आये जहां जाननेकी इच्छा करनेवाली वह ब्राह्मणकी स्त्री विद्यमान थी ॥ २५ ॥ वह प्रभु अविज्ञातगति
ब्राह्मणकी स्त्रीसे बोले ॥ २६ ॥ भिक्षुक बोले, हे विप्रभामिनी ! अपने चित्तमें संदेह और खेद मत करो, पवित्र

त्य २ जानना चाहती हूं कि—यह बालक कौन है किसका पुत्र है, और आप कौनहैं कहांसे आयेहैं॥

॥ पुष्णीहि सर्वथा ह्येनं महातेजास्विनं शिशुम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं
निता शम्भुं प्रीत्या प्रपच्छ सादरम् ॥ २९ ॥ विप्रवनितोवाच ॥ त्वदाज्ञयैनं बालं हि
हो मद्भाग्यात्त्वमिहागतः ॥ ३० ॥ तथापि ज्ञातुमिच्छामि विशेषेण तु तत्त्वतः ॥ कोयं
१ ॥ मुहुर्मम समायाति ज्ञानं भिक्षुवर प्रभो ॥ त्वं शिवः करुणासिन्धुस्त्वद्भक्तोयं शिशुः
दशामिमाम् ॥ तद्धुक्त्वा परमं श्रेयः प्राप्स्यते त्वदनुग्रहात् ॥ ३३ ॥ त्वन्माययैव साहं
त्वत्तो ह्यस्य रक्षणहेतुतः ॥ ३४ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तद्दर्शनप्राप्तविज्ञानां
भिक्षुतनुश्शिवः ॥ ३५ ॥ ॥ भिक्षुवर्य्य उवाच ॥ शृणु प्रीत्या विप्रपत्नि बालस्यास्य
तत्त्वतोऽनघे ॥ ३६ ॥

कर ॥ २७ ॥ इस बालकके द्वारा अति शीघ्र तू परमकल्याणको प्राप्त होगी, इस महातेजस्वी बालकको सब प्रकार
कहते हुये उन भिक्षुकरूपधारी दयासागर, शिवसे वह ब्राह्मणकी स्त्री प्रीतिपूर्वक आदरके साथ पूँछने लगी ॥
मैं इस बालककी रक्षा करूंगी, तथा अपने पुत्रकी समान पालन करूंगी इसमें सन्देह नहीं मेरे भाग्यसे

मुझे ज्ञान प्राप्त होता है कि आप दयासागर साक्षात् शिवहैं और यह तुम्हारा पहला भक्त है ॥ ३२ ॥
आहै, सो तुम्हारे अनुग्रहसे सुख भोगकर परम कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥ आपकी मायासे मोहित हुई
पसे भेजीहुई इधर आई हूं ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, भिक्षुकरूपधारी शिव, विशेषकर जाननेकी इच्छा करतीहुई
णकी स्त्रीसे बोले ॥ ३५ ॥ भिक्षुकवर्य बोले, हे ब्रह्माणकी स्त्री ! हे अनघे ! प्रीतिसे सुनो इस बालकके विषयमें

सब वृत्तान्त प्रीतिसे कहताहूं ॥ ३६ ॥ यह शिवके भक्त, बुद्धिमान्, अपने धर्ममें तत्पर, विदर्भनगरके राजा सत्यरथका पुत्रहै ॥ ३७ ॥ सुनो सत्यरथ राजा युद्धमें शाल्व शत्रुओंसे मारागया, उसकी स्त्री भयसे व्याकुलहुई रातमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गई ॥ ३८ ॥ और इस वनमें आकर इस पुत्रको उत्पन्न किया, प्यासके मारे सरोवरमें उतरी तौ दैववश उसे नाकेने निगल लिया ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उसकी उत्पत्ति तथा उसके पिताका संग्राममें मरण और उसकी माताका नाकेद्वारा मरजाना यह सब वृत्तान्त उससे वर्णन किया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! तब वह ब्राह्मणी अति विस्मितहो,

सुतो विदर्भराजस्य शिवभक्तस्य धीमतः ॥ अयं सत्यरथस्यैव स्वधर्मनिरतस्य हि ॥ ३७ ॥ शृणु सत्यरथो राजा हतः शाल्वै रणे परैः ॥ तत्पत्नी निशि सुव्यग्रा निर्ययौ स्वगृहाद्द्रुतम् ॥ ३८ ॥ असूत तनयं चैनं समायाता प्रगेत्र हि ॥ सरोवतीर्णा तृषया ग्रस्ता ग्राहेण दैवतः ॥ ३९ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्य समुत्पत्तिं तत्पितुः संगरे मृतिम् ॥ तन्मातृमरणं ग्राहात्सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ अथ सा ब्रह्माणी सा हि विस्मितााति मुनीश्वर ॥ पुनः पप्रच्छ तं भिक्षुं ज्ञानिनं सिद्धरूपकम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ स राजोऽस्य पिता भिक्षो वरभोगान्तरेव हि ॥ कस्माच्छाल्वैस्स्वरिपुभिस्स्वल्पैहैश्च विघातितः ॥ ४२ ॥ कस्मादस्य शिशोर्माता ग्राहेणाशु सुभक्षिता ॥ यस्मादनाथोयं जातो विबन्धुश्चैव जन्मतः ॥ ४३ ॥ कस्मात्सुतो ममापीह सुदरिद्रो हि भिक्षुकः ॥ भवेत्कथं सुखं भिक्षो पुत्रयोरनयोर्वद॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा स भिक्षुः परमेश्वरः ॥ विप्रपत्न्याः प्रसन्नात्मा प्रोवाच विहसंश्च ताम् ॥४५॥ भिक्षुवर्य्य उवाच ॥ विप्रपत्नि विशेषेण सर्वप्रश्नान्वदामि ते ॥ शृणु त्वं सावधानेन चरित्रमिदमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

उन ज्ञानी, सिद्धरूप भिक्षुकसे फिर पूँछनेलगी ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणी बोली, हे भिक्षो ! इस राजपुत्रका पिता श्रेष्ठ भोगोंको, भोगताहुआ किस कारण अपने शत्रु स्वल्पइच्छावाले शाल्वोंसे मारागया ॥ ४२ ॥ किस हेतुसे इस पुत्रकी माता नाकेसे उसी समय भक्षणकीगई, तथा क्यों यह पुत्र जन्मसे बन्धुरहित, अनाथ हुआ ॥ ४३ ॥ हे भिक्षो ! क्यों यह भिक्षुक, निर्धन यहाँ मेरा पुत्र हुआ, और कैसे इन दोनों पुत्रोंको सुख होगा सो सब कहो ॥ ४४ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस ब्राह्मणकी स्त्रीका वचन सुन वह भिक्षुक परमेश्वर प्रसन्नचित्त हँसकर उससे बोले ॥ ४५ ॥ भिक्षुक बोले, हे ब्राह्मणकी पत्नि !

तेरे सब प्रश्नोंको विशेषकर कहताहूं तू सावधान होकर इस उत्तमचरित्रको सुन ॥ ४६ ॥ इस बालकका पिता वह विदर्भका राजा पहले जन्ममें पाण्डु
राजा हुआ ॥ ४७ ॥ वह शैव तथा धर्मात्मा सब उपद्रवोंको दूर करनेवाला राजा सम्पूर्ण भूमिको पालन करताहुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न करता था ॥
॥ ४८ ॥ कभी, इस राजाने त्रयोदशीमें निराहारहो, तथा दिनरात व्रत करतेहुये, सबके ईश्वर शिवका संध्याके समय पूजन किया ॥ ४९ ॥
प्रदोषकालमें उस राजाके शिवपूजन करनेपर नगरमें बडा विकट भयानक शब्द हुआ ॥ ५० ॥ उस शब्दको सुनकर वह राजा शिवका पूजन छोड

अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः ॥ पूर्वजन्मनि पाण्डचोऽसौ बभूव नृपसत्तमः ॥ ४७ ॥ स शैवनृपतिर्धर्मात्पालयन्निखिलां
महीम् ॥ स्वप्रजा रंजयामास सर्वोपद्रवनाशनः ॥ ४८ ॥ कदाचित्स हि सर्वेशं प्रदोषे पर्यपूजयत् ॥ त्रयोदश्यां निराहारो दिवानक्तव्रती
शिवम् ॥४९॥ तस्य पूजयतः शम्भुं प्रदोषे गिरिशं रते ॥ महाञ्छब्दो बभूवाथ विकटस्सर्वथा पुरे ॥ ५० ॥ तमाकर्ण्य रवं सोथ राजा
त्यक्तशिवार्चनः ॥ रिप्वागमनशंकातो निर्ययौ भवनाद्बहिः ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु तस्यामात्यो महाबली ॥ गृहीतशस्त्रसामन्तो
राजान्तिकमुपाययौ ॥ ५२ ॥ तन्दृष्ट्वा शत्रुसामन्तं महाक्रोधेन विह्वलः ॥ अविचार्य वृषन्तस्य शिरश्छेदमकारयत् ॥ ५३ ॥ असमाप्ये
शपूजान्तामशुचिर्नष्टधीर्नृपः ॥ रात्रौ चकार सुप्रीत्या भोजनन्नष्टमंगलः ॥ ५४ ॥ विदर्भे सोभवद्राजा जन्मनीह शिवव्रती ॥ शिवार्चनान्तरा
येण परैर्भोगान्तरे हतः ॥ ५५ ॥ तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ॥ अहमेव हतैश्वर्य्यः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ५६ ॥

शत्रुओंके आनेकी शंकासे अपने मंदिरके बाहर गया ॥ ५१ ॥ इसी अवसरपर वह महाबली शस्त्र धारण कियेहुए मंत्री सामन्तोंको साथले राजाके निकट
आया ॥ ५२ ॥ उसको देख शत्रुको मनुष्य जान, महाक्रोधसे व्याकुल हो विना विचारेही राजाने उसका शिर कटवाया ॥ ५३ ॥ अपवित्र नष्टबुद्धि
मंगलसे हीन राजाने शिवजीकी पूजाको विना समाप्त कियेही रात्रिमें भोजन किया ॥ ५४ ॥ इस जन्ममें वह शिवव्रती राजा विदर्भमें जन्मा और शिवपूजाके
समाप्त न करनेसे सुखोंके मध्यमेंही शत्रुओंसे मारागया ॥ ५५ ॥ जो पहले जन्ममें इसका पिता सत्यरथ था वहही इस जन्ममें शिवकी पूजाके व्यतिक्रमसे

ऐश्वर्य्यरहित पुत्ररूपमें हुआहै ॥ ५६ ॥ इसकी माताने अपने पहले जन्ममें सौतको छलसे हरण किया (मारदिया) था उस पापसे इस जन्ममें उसे नाकेने खालिया ॥५७॥ इन सबोंके चरित्र मैंने तुमसे कहे मनुष्य, शिवकी भक्तिके विनां वा विनाभक्तिके शिवका पूजन करनेसे दरिद्रताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५८ ॥ यह तेरा पुत्र पहले जन्ममें ब्राह्मण था नित्य प्रतिग्रह कर इसने अपनी अवस्था बिताई परन्तु यज्ञादिक शोभन कर्मोंसे नहीं ॥ ५९ ॥ हे द्विजभामिनी ! इस कारण तेरा पुत्र दारिद्रताको प्राप्त हुआ, उस दोषके दूर होनेके निमित्त शिवजीकी शरणमें जा ॥ ६० ॥ इन दोनों बालकोंके सहित शिवजीकी पूजाकर,

अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहरत् ॥ भक्षिता तेन पापेन ग्राहेणाऽस्मिन् भवे हि सा ॥ ५७ ॥ एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै परिकीर्तिता ॥ अनर्चिता शिवा भक्त्या प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ॥ ५८ ॥ एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैस्सुकर्मभिः ॥ ५९ ॥ अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शरणं शंकरं व्रज ॥ ६० ॥ एताभ्यां खलु बालाभ्यां शिवपूजा विधीयताम् ॥ उपवीतानन्तरं हि शिवः श्रेयः करिष्यति ॥ ६१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तामुपदिश्याथ भिक्षुवर्य्यतनुः शिवः ॥ स्वरूपं दर्शयामास परमं भक्तवत्सलः ॥ ६२ ॥ अथ सा विप्रवनिता ज्ञात्वा तं शंकरम्प्रभुम् ॥ सुप्रणम्य हि तुष्टाव प्रेम्णा गद्गदया गिरा ॥ ६३ ॥ ततस्स भगवाञ्छम्भुर्धृतभिक्षुतनुर्द्रुतम् ॥ पश्यन्त्या विप्रपत्न्यास्तु तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६४ ॥ अथ तस्मिन् गते भिक्षौ विश्रब्धा ब्राह्मणी च सा ॥ तमर्भकं समादाय सस्वपुत्रा गृहं ययौ ॥ ६५ ॥ एकचक्राह्वये रम्ये ग्राम्ये कृतनिकेतना ॥ स्वपुत्रं राजपुत्रं च वरान्नैश्च व्यवर्द्धयत् ॥ ६६ ॥

यज्ञोपवीतके पश्चात् शिवजी कल्याण करैंगे ॥ ६१ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उसे उपदेश देकर भिक्षुकरूपधारी भक्तवत्सल शिवजीने अपने प्रकट रूपको दिखाया ॥ ६२ ॥ वह ब्राह्मणकी स्त्री उन प्रभु शंकरको जानकर प्रणाम कर गद्गद वाणीसे प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगी ॥ ६३ ॥ तब वह भगवान् भिक्षुकरूपधारी शंभु शीघ्र ब्राह्मणकी स्त्रीके देखतेही देखते वहां अंतर्धान होगये ॥ ६४ ॥ तब उन भिक्षुकके चलेजानेपर वह विश्वासयुक्त हुई ब्राह्मणी उस पुत्रको ले अपने पुत्रके सहित निज स्थानको गई ॥ ६५ ॥ और एक चक्रनामक सुंदर नगरमें निवास कर अपने पुत्र तथा राजाके पुत्रको सुंदर

अन्नोंसे पालने लगी ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणोंसे संस्कारित तथा उपनयन कियेहुए वे दोनों पुत्र शिवजीके पूजनमें तत्पर हुये अपने घरमें पढने लगे ॥ ६७ ॥ हे तात ! वे दोनों शांडिल्यमुनिकी आज्ञासे नियममें स्थित होकर प्रदोषमें शुभव्रत करके शिवका पूजन करते थे ॥ ६८ ॥ किसी समय ब्राह्मणके पुत्रके विना वह राजपुत्र नदीमें नहानेको गया वहां एक सुंदर धनका भराहुआ कलश पाया ॥ ६९ ॥ इस प्रकार शिवको पूजतेहुये दोनों राजा तथा ब्राह्मणके पुत्रके चारमहीने सुखसे बीतगये ॥ ७० ॥ और इसी रीतिसे फिरभी शिवका पूजन करतेहुए उन दोनोंको उसी गृहमें परम आनंदके साथ एकवर्ष बीतगया

ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ कृतोपनयनौ च तौ ॥ ववृधाते स्वगेहे च शिवपूजनतत्परौ ॥ ६७ ॥ तौ शाण्डिल्यमुनेस्तात निदेशान्नियम स्थितौ ॥ प्रदोषे चक्रतुः शम्भोः पूजां कृत्वा व्रतं शुभम् ॥ ६८ ॥ कदाचिद्द्विजपुत्रेण विनाऽसौ राजनन्दनः ॥ नद्यां स्नातुं गतः प्राप निधानकलशं वरम् ॥ ६९ एवं पूजयतोः शम्भुं राजद्विजकुमारयोः ॥ सुखेनैव व्यतायाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ७० ॥ एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोपि परया मुदा ॥ सम्वत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव तयोर्गृहे ॥७१॥ सम्वम्सरे व्यतिक्रान्ते स राजतनयो मुने ॥ गत्वा वनान्ते विप्रेण शिवस्यानुग्रहाद्विभोः ॥ ७२ ॥ अकस्मादागतां तत्र दत्तां तज्जनकेन ह ॥ विवाह्य गन्धर्वसुतां चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ७३ ॥ या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् ॥ सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ७४ ॥ इत्थमाराध्य देवेशं धर्मगुप्ताह्वयस्स वै ॥ विदर्भविषये राज्ञ्या तया भोगं चकार ह ॥७५॥ भिक्षुवर्य्यावतारस्ते वर्णितश्च मयाधुना ॥ शिवस्य धर्मगुप्ताह्वनृपबालसुखप्रदः ॥७६॥

॥ ७१ ॥ हे मुने ! हे विभो ! वर्ष बीतनेपर वह राजाका पुत्र शिवकी दयासे ब्राह्मणके पुत्रके साथ वनके मध्यमें जाकर ॥७२॥ शिवकी कृपासे अकस्मात आईहुई उसके पितासे दीहुई गंधर्वकी कन्याको विवाह कर अकंटक (निर्द्वन्द्व) हो राज्य करने लगा ॥ ७३ ॥ जिस ब्राह्मणकी स्त्रीने अपने पुत्रकी समान इसको पालन लालन कियाथा वहही इसकी माता और ब्राह्मणका पुत्र भाई हुआ ॥ ७४ ॥ इस प्रकार शिवका आराधन कर वह धर्मगुप्त विदर्भदेशमें उस रानीके सहित भोग करने लगा ॥ ७५ ॥ यह मैंने तुमसे भिक्षुकरूप शिवजीका अवतार जो धमगुप्तनामक राजपुत्रके सुख देनेके निमित्त हुआथा सो वर्णन

किया ॥७६॥ यह निष्पाप चरित्र अतिपवित्र है औरोंको पवित्र करनेवाला धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके साधन तथा सब मनोरथोंके पूर्ण करनेवाला है ॥७७॥ जो इसको नित्य सुनता है अथवा सावधान होकर सुनाताहै वह यहां सब इच्छितभोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरको जाताहै ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ हे तात ! परमात्मा शिवका, सुरेश्वरनामक धौम्यके बडे भाईको सुख देनेवाला अवतार वर्णन करताहूं सुनो ॥ १ ॥ व्याघ्रपादका पुत्र बुद्धिमान् सत्पुरुषोंका प्रिय उपमन्यु नामक जन्मान्तरोंसे सिद्ध हो मुनिके

एतदाख्यानमनघं पवित्रं पावनं महत् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ॥ ७७ ॥ य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः॥स भुक्त्वेहाखिलान्कामान् सोन्ते शिवपुरम्व्रजेत् ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृती०शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्य्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः॥ सुरेश्वरावतारस्ते धौम्याग्रजहितावहम् ॥ १ ॥ व्याघ्रपादसुतो धीमानुपमन्युस्सताम्प्रियः ॥ जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ २ ॥ उवास मातुलगृहे स मात्रा शिशुरेव हि ॥ उपमन्युर्व्याघ्रपादिस्स्याद्दरिद्रश्च दैवतः ॥ ३ ॥ कदाचित्क्षीरमत्यल्पम्पीतवान्मातुलाश्रमे ॥ ययाचे मातरम्प्रीत्या बहुशो दुग्धलालसः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्वनी ॥ सांतः प्रविश्याथ तदा शुभोपायमरीरचत् ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्त्यर्जितान्बीजान्पिष्ट्वालोड्य जलेन तान् ॥ उपलाल्य सुतन्तस्मै सा ददौ कृत्रिमम्पयः ॥ ६ ॥ पीत्वा च कृत्रिमं दुग्धं मात्रा दत्तं स बालकः ॥ नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चारुदत्पुनः ॥ ७ ॥

कुमारपनको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वह बालक अपनी मातासहित मामाके घर रहताथा, वह व्याघ्रपादपुत्र उपमन्यु दैववशसे अतिदरिद्र था ॥ ३ ॥ उसने कभी अपने मामाके आश्रममें बहुत थोडा दूध पियाथा अतः दुग्धकी इच्छा करनेवाला वह बारंबार प्रीतिपूर्वक मातासे दूध मांगता ॥ ४ ॥ यह पुत्रका वचन सुन उसकी तपस्विनी माताने घरके भीतर प्रवेश करके एक उपायको विचारा ॥ ५ ॥ उञ्छवृत्ति (कणोंके बीनने) से इकट्ठे किये बीजोंको पीस उनको जलमें मिलाकर कृत्रिम दूध बालकको पिलाया, इस प्रकार अपने पुत्रको लालन पालन करने लगी ॥ ६ ॥ वह बालक मातासे दिये उस कृत्रिम दूधको पीकर

श्रुत्वा सुतस्य रुदितं प्राह सा दुःखितां सुतम् ॥ संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलाकृतिः ॥ ८ ॥ मातोवाच ॥ क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा ॥ प्रसादेन विना शम्भोः पयःप्राप्तिर्भवेन्न हि ॥९॥ पूर्वजन्मनि यत्कृत्यं शिवमुद्दिश्य हे सुत ॥ तदेव लभ्यते नूनन्नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ इति मातृवचश्श्रुत्वा व्याघ्रपादिस्स बालकः ॥ प्रत्युवाच विशोकात्मा मातरं मातृवत्सलः ॥ ११ ॥ शोकेनालमिमं मातः शंभुर्यद्यस्ति शङ्करः ॥ त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रम्भविष्यति ॥ १२ ॥ शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित् ॥ चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥१३॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा स शिशुः प्रीत्या शिवं मेऽस्त्वित्युदीर्य्य च ॥ विसृज्य तां सुप्रणम्य तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ हिमवत्पर्वतगतः वायुभक्षस्समाहितः ॥ अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम् ॥ १५ ॥ तत्रावाह्य शिवं साम्बं भक्त्यापञ्चाक्षरेण ह ॥ पत्रपुष्पादिभिर्वन्यैस्समानर्च शिशुः स वै ॥ १६ ॥

मातासे बोला कि यह दूध नहींहै, यह कहता हुआ रोनेलगा ॥ ७ ॥ अपने पुत्रका रोना सुन दुःखी हो पुत्रके नेत्रोंको अपने हाथसे पोंछतीहुई कमलके समान आकारवाली वह माता अपने पुत्रसे बोली ॥ ८ ॥ माता बोली, सदा हमारे वनमें रहतेहुये यहाँ दूध कहां है, शिवकी प्रसन्नताके विना दूधकी प्राप्ति नहीं होतीहै ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! पूर्वजन्ममें शिवका उद्देश कर जैसा कर्म किया वैसा ही प्राप्त होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाँहिये ॥ १० ॥ ऐसा माताका वचन सुन वह माताकी दया करनेवाला शोकाकुल व्याघ्रपादका पुत्र बालक अपनी मातासे बोला ॥ ११ ॥ हे मातः ! हे महाभागे ! शोक मतकर यदि शंकर कल्याण करनेवाले हैं तो शोकको त्याग अवश्य कल्याण होगा ॥ १२ ॥ हे मातः ! आज मेरा वचन सुनो, यदि कहीं महादेव हैं तो शीघ्र या देरमें उन दूधके देनेवालोंको साधलूंगा ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कह वह बालक शिवजी मेरा कल्याण करेंगे ऐसा कहकर माताको प्रणाम करके विदा हो तप करनेको चला ॥ १४ ॥ हिमालयपर्वतपर जाकर सावधानचित्त हो वायुका भक्षण करता हुआ आठ ईंटोंसे भवन तथा मृत्तिकाका लिंग बनाकर ॥१५॥ उस बालकने पार्वतीसहित शिवका आवाहन करके, 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मंत्रसे वनके पत्र तथा पुष्पोंसे पूजन किया॥ १६॥

ध्यात्वा शिवं च तं साम्बं जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम् ॥ समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमन्तपः ॥ १७ ॥ तपसा तस्य बालस्य ह्युपमन्योर्महात्मनः ॥ चराचरं च भुवनं प्रदीपितमभून्मुने ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्विष्णवाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः ॥ परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपोऽभवत्तदा ॥ १९ ॥ शिवा शचीस्वरूपाभूद्गणाः सर्वेऽभवन्सुराः ॥ ऐरावतगजो नन्दी सर्वमेव च तन्मयम् ॥ २० ॥ ततः साम्बः शिवः शक्रस्वरूपस्सगणो द्रुतम् ॥ जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ २१ ॥ परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपधरो हरः ॥ प्राह गंभीरया वाचा बालकन्तं मुनीश्वर ॥ २२ ॥ सुरेश्वर उवाच ॥ तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ॥ ददामि चेच्छितान्कामान्सर्वान्नात्रास्ति संशयः ॥ २३ ॥ एवमुक्तः स वै तेन शक्ररूपेण शम्भुना ॥ वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ २४ ॥ तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ २५ ॥ मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ॥ ददामि सर्वं भद्रन्ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥ २६ ॥

पार्वतीसमेत शिवका ध्यान करके पंचाक्षर मंत्रको जपताहुआ, बहुत समयतक पूजन करके परम तपको करने लगा ॥ १७ ॥ हे मुने ! उस महात्मा उपमन्यु बालकके तपसे सब चर अचर लोक प्रज्वलित होगये ॥ १८ ॥ इसी अन्तरमें विष्णु आदि देवताओंसे प्रार्थना किये, प्रभु, शिवजी, उस बालककी भक्तिकी परीक्षा करनेको इन्द्रका रूप धारण करतेहुये ॥ १९ ॥ और पार्वती शची (इन्द्राणी) हुई और उनके सब गण देवतारूपमें हुये, तथा नादियाने ऐरावत हाथीका रूप धरा, यह सब चले ॥ २० ॥ तब पार्वती तथा गणोंके सहित शिवजी इन्द्रका रूप धार उपमन्युके ऊपर दया करनेको उसके आश्रममें गये ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! वह इन्द्ररूपधारी शिवजी उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेको उस बालकसे गंभीरवाणीसे बोले ॥ २२ ॥ इन्द्र बोले, हे सुव्रत ! मैं इस तेरे तपसे संतुष्ट हुआ हूं वर मांग तेरे सब इच्छित वरोंको देता हूं, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ उस इन्द्ररूप शिवके इस प्रकार कहनेसे हाथ जोड वह बालक बोला कि मैं शिवजीमें भक्ति होनेका वरदान चाहताहूं ॥ २४ ॥ यह सुनकर इन्द्र बोला, मुझ त्रिलोकीके स्वामी, देवताओंके पति, तथा सब देवताओंसे नमस्कृत, इन्द्रको तुम नहीं जानते हो ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तू मेरा भक्त हो निरंतर मुझेही पूज मैंही तुझे सब कल्याण दूंगा निर्गुण

शिवको त्यागन कर ॥ २६ ॥ निर्गुण शिवकी भक्तिसे पृथक् हो उससे तेरा क्या कार्य होगा, वह तो देवजातिसे निकाले जाकर पिशाचपनको प्राप्त हुए हैं ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह सुनकर मुनिपुत्र धर्ममें विघ्नको जान पंचाक्षर मंत्रको जपता हुआ उस आये हुये इन्द्रसे बोला ॥ २८ ॥ उपमन्यु बोला, इस प्रकार शिवजीकी निन्दामें तत्पर हुये तुमने प्रसंगसे देवोंके देव शिवका निर्गुणपन वर्णन किया ॥ २९ ॥ देवदेवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इनके उत्पन्न करनेवाले तथा प्रकृतिसे परे उन रुद्रको तुम नहीं जानते हो ॥ ३० ॥ ब्रह्मवादी लोग जिनको सत्, असत, तथा व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक अनेक

रुद्रेण निर्गुणेनालं किन्ते कार्यं भविष्यति ॥ देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥ २७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा स मुनेः पुत्रो जपन्पञ्चाक्षरम्मनुम् ॥ मन्यमानो धर्मविघ्नम्प्राह तं कर्तुमागतम् ॥ २८ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै ॥ प्रसंगाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं पिशाचता ॥ २९ ॥ त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकम्प्रकृतेः परम् ॥ ३० ॥ सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥ ३१ ॥ हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम् ॥ यमुशन्ति हि तत्त्वज्ञा वरन्तस्माद्वृणोम्यहम् ॥ ३२ ॥ नास्ति शम्भोः परन्तत्त्वं सर्वकारणकारणात् ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानां श्रेष्ठाद्गुणपराद्विभोः ॥ ३३ ॥ नाहं वृणे वरं त्वत्तो न विष्णोर्ब्रह्मणोऽपि वा ॥ नान्यस्मादमराद्वापि शङ्करो वरदोऽस्तुमे ॥ ३४ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन वच्मि तत्त्वं मतं स्वकम् ॥ न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवादिकं स्फुटम् ॥ ३५ ॥ मद्भावं शृणु गोत्रारे मयाद्यानुमितन्त्विदम् ॥ भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत् ॥ ३६ ॥

कहते हैं उनसे मैं वर मागूँगा ॥ ३१ ॥ तत्त्वके जाननेवाले जिनको हेतु वादसे रहित, तथा सांख्ययोगके अर्थ देनेवाले कहते हैं, मैं उन्हींसे वरदानवरण करूंगा ॥ ३२ ॥ विभु शंभुसे परे कोई तत्त्व नहीं है, वे सब कारणोंके कारण तथा ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवताओंमें श्रेष्ठ और गुणोंसे परे हैं ॥ ३३ ॥ मैं न तुमसे वर मांगताहूं न विष्णुसे न ब्रह्मासे और न और किसी देवतासे, केवल मुझे शंकर ही वर देनेवाले हों ॥ ३४ ॥ अब बहुत कहनेसे क्या है? मैं अपने मतको सत्य २ कहताहूं कि शिवसे दूसरे देवता आदिकी इच्छा नहीं करता ॥ ३५ ॥ हे इन्द्र! मेरे भावको सुनो, मैंने आज यह अनुमान

किया है कि यदि शिवजीकी निन्दा सुनी तो जन्मान्तरमें पाप किया है ॥ ३६ ॥ शिवजीकी निन्दाको सुनकर उसी समय अपने शरीरको त्यागदे तौ अपने देहको नष्ट करके शीघ्र ही शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥ हे सुराधम ! चाहै मेरी दूध पीनेकी इच्छा रहजाय पर तुझको शिवके अस्त्रसे मारकर अपने शरीरको त्यागन करूंगा ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर उपमन्युने स्वयम् मरनेकी इच्छाकर और दूधकी इछाको त्याग इन्द्रके मारनेको तैयार हुआ ॥ ३९ ॥ उस मुनिने उस आधारसे भस्मको लेकर और उसे अघोर अस्त्रसे अभिमंत्रित कर इन्द्रके ऊपर उसे त्यागकर बडा शब्द

श्रुत्वा निन्दाम्भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत् ॥ स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥ ३७ ॥ आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरम्प्रति सुराधम ॥ निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम् ॥ क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः ॥ ३९ ॥ भस्मादाय तदाधारादघोरास्त्राभिमन्त्रितम् ॥ विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा ॥ ४० ॥ स्मृत्वा स्वेष्टपदद्वन्द्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः ॥ आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवास्थितः ॥ ४१ ॥ एवं व्यवसिते विप्रे भगवाञ्छक्ररूपवान् ॥ वारयामास सौम्येन धारणान्तस्य योगिनः ॥ ४२ ॥ तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नन्दीश्वरनियोगतः ॥ जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभम् ॥ ४३ ॥ स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः ॥ दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥ ४४ ॥ क्षीरार्णवसहस्रं च दध्यादेरर्णवन्तथा ॥ भक्ष्यभोज्यार्णवन्तस्मै दर्शयामास स प्रभुः ॥ ४६ ॥

किया ॥ ४० ॥ और उपमन्युने इष्टदेवके चरणयुगलको स्मरणकर, अपने शरीरके दग्ध करनेकी इच्छासे अग्निकी धारणा करके स्थिति की ॥ ४१ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके स्थित होनेपर इन्द्ररूपधारी भगवान् शिव सौम्यरूपसे उस योगी की धारणाको निवारण करतेहुये ॥ ४२ ॥ उस नन्दीश्वरके नियोगसे शंकरके प्रिय उस अघोर अस्त्रको छोडनेपर नन्दीश्वरने उसको मध्यमेंही ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ तब भगवान् शिवजीने अपने रूपको धारण कर बालचन्द्रमाको शिरपरधारे ब्राह्मणको दर्शन दिया ॥ ४४ ॥ उन प्रभुने सहस्रों दूधके समुद्र, दहीके समुद्र, तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंके समूहोंको उसे दिखाया ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उन शिवजीने पार्वतीके सहित बैलपर चढे गणोंसहित त्रिशूल आदि सुन्दर २ अस्त्रोंसे शोभायमान अपना रूप दिखाया ॥ ४६ ॥ स्वर्गलोकमें दुन्दुभि बजी और पुष्पोंकी वर्षा हुई, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, आदि देवताओंसे दशोंदिशा पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥ तब आनन्द सागरकी लहरोंसे पूर्ण हुआ उपमन्यु भक्तिसे नम्रहुए चित्तसे दंडवत कर भूमिमें लेटगया ॥ ४८ ॥ इसी समय वहां मुस्करातेहुए, भगवान् शिव आओ, आओ, इस प्रकार बुलाकर, मस्तकको सूंघकर वरदान देतेहुये ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे वत्स ! हे उपमन्यो ! हे विप्रर्षे ! मैं तुम्हारे सुन्दर आचरणसे संतुष्ट हूं, तू दृढ भक्त है मैंने

एवं स ददृशे शम्भुर्देव्या सार्द्धं वृषोपरि ॥ गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः ॥ ४६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात
ह ॥ विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश ॥ ४७ ॥ अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः ॥ पपात दण्डवद्भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा
॥ ४८ ॥ एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः ॥ एह्येहीति समाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ॥ ४९ ॥ शिव उवाच ॥ वत्सो
पमन्यो तुष्टोऽस्मि त्वदाचरणतो वरात् ॥ दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितोऽधुना ॥ ५० ॥ भक्ष्यभोगान्यथाकामं बान्धवैर्भुंक्ष्व
सर्वदा ॥ सुखी भव सदा दुःखनिर्मुक्तो भक्तिमान्मम ॥ ५१ ॥ उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती ॥ मया पुत्रीकृतो ह्यद्य कुमा
रत्वं सनातनम् ॥ ५२ ॥ दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाश्च सहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनामर्णवाश्चाखिलास्तथा ॥ ५३ ॥ तुभ्यं दत्ता
मया प्रीत्या त्वं गृह्णीष्व महामुने ॥ अमरत्वन्तथा दक्ष गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥ ५४ ॥ पिताहन्ते महादेवो माता ते जगदम्बिका ॥
वरान्वरय सुप्रीत्या मनोभिलषितान्परान् ॥ ५५ ॥

तेरी परीक्षा की ॥ ५० ॥ निरंतर भाई बन्धुओं सहित अपनी इच्छानुसार भक्ष्य भोज्योंको भोग और सदा निर्द्वन्द्व होकर सुखी हो, तथा मेरी भक्ति करनेमें तत्पर हो ॥ ५१ ॥ हे उपमन्यो ! हे महाभाग ! यह पार्वती तुम्हारी माता है, आज मैंने तुझे अपना पुत्र किया और तुम निरंतर कुमारपनको प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥ दूध, दही, घी, शहद, (मिष्टान्न) इनके सहस्रों समुद्र तथा भक्ष्य, भोज्य, आदि वस्तुओंके सम्पूर्ण समुद्र हैं ॥ ५३ ॥ हे महामुने ! हे दक्ष ! यह मैंने तुझे दिये तू प्रसन्नता सहित ग्रहणकर देवतापनको तथा गणकी पदवीको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ तेरा पिता मैं साक्षात् महादेव हूं, और

माता पार्वतीहै प्रसन्नता सहित, मनसे अभिलषितहुये वरोंको ग्रहण कर ॥ ५५ ॥ तू अजर, अमर, दुःखसें रहित तथा यशस्वी, सुन्दर, तेजस्वी, दिव्य ज्ञानी, महाप्रभु हो ॥ ५६ ॥ इस प्रकार शिवजीने प्रसन्नहो उसके परमतपको स्मरणकर उपमन्यु मुनिको दिव्य दश वर दिये ॥ ५७ ॥ पशुपतिसम्बन्धी व्रत, तथा ज्ञान और व्रतयोग कथनशक्तित्व तथा पटुता और अपना स्थान यह इसको दिया ॥ ५८ ॥ इस प्रकार महादेवने उसे वरदान देकर हाथोंसे उसे ग्रहण कर मस्तकको सूंघ, पार्वतीसे कहा कि-यह तेरा पुत्र है ॥ ५९ ॥ प्रीतिसे सुनकर पार्वतीने मस्तकपर अपना हस्तकमल रख उसे अक्षय

अजरश्चामरश्चैव भवत्वं दुःखवर्जितः ॥ यशस्वी वरतेजस्वी दिव्यज्ञानी महाप्रभुः ॥ ५६ ॥ अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा स्मृत्वा तस्य तपो महत् ॥ पुनर्दश वरान्दिव्यान्मुनये ह्युपमन्यवे ॥ ५७ ॥ व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः ॥ ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वं पाटवं च निजं पदम् ॥ ५८ ॥ एवन्दत्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् ॥ मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत् ॥ ५९ ॥ देवी च शृण्वती प्रीत्या मूर्ध्नि देशे कराम्बुजम् ॥ विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम् ॥ ६० ॥ क्षीराब्धिमपि साकारं क्षीरस्वादुकरोदधिः ॥ उपास्थाय ददौ तस्मै पिण्डीभूतमनश्वरम् ॥ ६१ ॥ योगैश्वर्यं सदा तुष्टम्ब्रह्मविद्यामनश्वराम् ॥ समृद्धिं परमान्तस्मै ददौ सन्तुष्टमानसः ॥ ६२ ॥ सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा ॥ तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ॥ ६३ ॥ ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः ॥ ययाचे स वरम्प्रीत्या देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ६४ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥ स्वभक्तिन्देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम् ॥ ६५ ॥

कुमारपद दान किया ॥ ६० ॥ साकार क्षीरसागर तथा क्षीरके समान स्वादयुक्त समुद्र पिण्डरूपसे निकटमें स्थित होकर उस मुनिके लिये दिया ॥ ॥ ६१ ॥ अविनाशी, योगैश्वर्य, तथा सनातनी ब्रह्मविद्या, तथा परमसमृद्धिको संतुष्टचित्तहो उसके लिये प्रदान किया ॥ ६२ ॥ वह मुनि उन शिव, पार्वतीसे, दिव्य वर तथा कुमारपदको पाकर प्रसन्न हुआ ॥ ६३ ॥ तब प्रसन्नचित्त हो मुनि हाथ जोड प्रणाम कर देवोंके देव महादेवसे यह वरदान मांगने लगा॥ ६४॥ उपमन्यु बोला, हे देवदेवेश ! हे परमेश्वर ! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, अपनी परम नष्ट न होनेवाली दिव्य भक्ति मुझे दीजिये ॥ ६५ ॥

हे महादेव ! अपने सम्बन्धियोंमें मेरी श्रद्धा और सदा अपना दास पद और परम स्नेह तथा अपनी निकटता दीजिये ॥ ६६ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर वह ब्राह्मण, उपमन्यु प्रसन्न होकर हर्षसे गद्गदवाणीद्वारा उन महादेवकी स्तुति करने लगा ॥ ६७ ॥ इस प्रकार सबके सुनतेहुये, प्रभु प्रसन्न आत्मा, सबके ईश्वर, शिवजी उपमन्युसे कहने लगे ॥ ६८ ॥ शिवजी बोले, हे वत्स ! हे उपमन्यो ! हे अनघ ! तू धन्य है और शिवका अतिभक्त है जो तैंने मांगा है सो सब मैंने दिया ॥ ६९ ॥ तू अजर, अमर, होकर तथा दुःखोंसे छूटकर सबोंसे पूजनीय, निर्विकारी, भक्तोंमें श्रेष्ठ होगा ॥ ७० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ !

श्रद्धान्देहि महादेव स्वसम्बान्धिषु मे सदा ॥ स्वदास्यं परमं स्नेहं स्वसान्निध्यं च सर्वदा ॥ ६६ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा ॥ तुष्टाव स महादेवमुपन्युर्द्विजोत्तमः ॥ ६७ ॥ एवमुक्तश्शिवस्तेन सर्वेषां शृण्वताम्प्रभुः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं सकलेश्वरः ॥ ६८ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ वत्सोपमन्यो धन्यस्त्वं मम भक्तो विशेषतः ॥ सर्वन्दत्तम्मया ते हि यद्वृत्तम्भवतानघ ॥ ६९ ॥ अजरश्चामरश्च त्वं सर्वदा दुःखवर्जितः सर्वपूज्यो निर्विकारी भक्तानाम्प्रवरो भव ॥ ७० ॥ अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ॥ ७१ ॥ सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव ॥ तिष्ठ वत्स यथा कामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि ॥ ७२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवांस्तस्मै दत्त्वा वरान्वरान् ॥ साम्बश्च सगणस्सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥ ७३ ॥ उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य शम्भोर्वरान्वरान् ॥ जगाम जननीस्थानं मात्रे सर्वमवर्णयत् ॥ ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वा तस्य जननी महाहर्षमवाप सा ॥ सर्वपूज्योऽभवत्सोऽपि सुखं प्रापाधिकं सदा ॥ ७५ ॥

तेरे बान्धव, कुल और गोत्र, अक्षय होगा, और मुझमें सदैव भक्ति रहेगी ॥ ७१ ॥ हे मुने ! हे वत्स ! मैं तेरे आश्रमके नित्य समीप रहूंगा और तू अपनी इच्छानुसार चाहै जहां स्थितहो उत्कंठा नहीं होगी ॥ ७२ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर भगवान् शिव उसे सुन्दर वर दे पार्वती सहित तथा अपने गणोंसहित उसी समय अन्तर्धान होगये ॥ ७३ ॥ और प्रसन्नहुये उपमन्युने शिवजीके श्रेष्ठ वरदानको प्राप्त करके अपनी माताके स्थानमें जाय मातासे सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ७४ ॥ यह सब समाचार सुन उसकी माता बडे हर्षको प्राप्त हुई और सबसे सत्कृतहो अधिक सुखको प्राप्त हुई ॥ ७५ ॥

हे तात ! इस प्रकार परमात्मा शिवका सर्वदा सज्जनोंको सुख देनेवाला सुरेश्वरनामक अवतार तुमसे वर्णन किया ॥ ७६ ॥ यह इतिहास निष्पाप तथा सब मनोरथोंका देनेवाला और सत्पुरुषोंको स्वर्ग, यश, आयु, भोग्य, और मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७७ ॥ जो पुरुष सावधान चित्त होकर इसको भक्तिसे सुनताहै अथवा सुनाताहै, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तसमयमें शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० सुरेश्वराख्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ नन्दीश्वर बोले, कि हे सनत्कुमार ! सर्वव्यापक परमात्मा शिवका जटि

इत्थन्ते वर्णितस्तात शिवस्य परमात्मनः ॥ सुरेश्वरावतारो हि सर्वदा सुखदः सताम् ॥ ७६ ॥ इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ७७ ॥ य एतच्छृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ७८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतारचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ (८३) नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम् ॥ ॥ १ ॥ पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुर्मखे ॥ स्वपित्राऽनादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ॥ २॥ सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः ॥ शंकरम्पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥ ३ ॥ तत्तपःसुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः ॥ तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ॥ ४ ॥ ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ॥ तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥ ५ ॥

लनामक, बडापवित्र अवतार प्रीतिके साथ सुनो ॥ १ ॥ पहले सती, दक्षकी कन्या पार्वती, अपने पितासे अनादरकीहुई पिताके यज्ञमें अपने शरीरको त्यागकर हिमालयपर्वतसे मेनामें उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ वह पार्वती अपने पति शिवकी इच्छा करती हुई सखियोंके सहित सघन वनमें जाकर बडी निर्मल तपस्या करने लगी ॥ ३ ॥ तब अनेकप्रकारकी लीलामें निपुण शिवजीने उस पार्वतीके तपकी परीक्षा करनेके निमित्त तपके स्थानमें सप्तऋषियोंको भेजा ॥ ४ ॥ वे मुनि वहां जा यत्नपूर्वक आदरसे उसकी परीक्षा करते हुये, परन्तु यथार्थ परीक्षा करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५ ॥

फिर लौटकर शिवको नमस्कार करके सब वृत्तान्तको निवेदन कर शिवजीकी आज्ञा पाकर स्वर्गलोकको चलेगये ॥ ६ ॥ उत्पत्ति करनेवाले प्रभु शंकरने उन मुनियोंके अपने स्थानमें चलेजानेपर स्वयं पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥ तब प्रसन्नहुए तपस्वी प्रभु शिवजीने अपनी इच्छारूप शांतिके कारण अद्भुतब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया ॥ ८ ॥ बडे बूढे तथा ब्राह्मणके शरीरको धारण किये, अपने तेजसे प्रज्वलित मनसे प्रसन्न दंड और छत्र धारे बडे उज्ज्वल भेष ॥ ९ ॥ जटिलरूपको धारकर अतिप्रीतिसहित, भक्तवत्सल, कल्याणकारी, शम्भु, पार्वतीके वनको

तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत् ॥ तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥ ६ ॥ गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरः स्वयम् ॥ परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः प्रभुः ॥ ७ ॥ सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ॥ ब्रह्मचर्य्यस्वरूपोऽभूत्तदाद्भुततरः प्रभुः ॥ ८ ॥ अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ॥ प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्वलः ॥ ९ ॥ धृत्वैवं जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् ॥ अतिप्रीतियुतः शम्भुश्शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ १० ॥ तत्रापश्यत्स्थितान्देवीं सखीभिः परिवारिताम् ॥ वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥ ११ ॥ शंभुर्निरीक्ष्य तान्देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ॥ उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्सुकी भक्तवत्सलः ॥ १२ ॥ आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम् ॥ अंगेषु लोमशं शान्तं दण्डचर्मसमन्वितम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मचर्य्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् ॥ अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ॥ १४ ॥ ततस्सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा ॥ कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् ॥ १५ ॥

गये ॥ १० ॥ वहांपर सखियोंसे घिरीहुई, वेदीके ऊपर स्थित, शुद्ध, चन्द्रमाकी कलाकी समान स्थित हुई उस पार्वतीको देखा ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारीका स्वरूप धारे भक्तवत्सल शिवजी उत्कंठित होकर उस पार्वतीको देख उसके समीप गये ॥ १२ ॥ उसने तेजसे अद्भुत, अंगोंमें रोमवाले, शांतस्वरूप, दंड तथा चर्मसे युक्त हुये उस ब्राह्मणको आताहुआ देखा ॥ १३ ॥ जो कि ब्रह्मचर्य धारण किये वृद्ध जटिल कमंडलु लिये थे, देखकर परमप्रीतिसे सब पूजाकी सामग्रीद्वारा उनका सत्कार किया ॥ १४ ॥ और उस देवी पार्वतीने पूजामें तत्पर हो आनन्दपूर्वक आदरसहित उन ब्रह्मचारीसे

कुशल पूँछी ॥ १५ ॥ हे वेदजाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम ब्रह्मचारीके रूपसे कौन हो और कहांसे आये हो जो इस वनको प्रकाशित करते हो ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार पार्वतीके पूँछनेपर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण पार्वतीकी परीक्षाके कारण शीघ्रही प्रीतिसहित बोला ॥ १७ ॥ ब्रह्मचारी बोला, मैं अपनी इच्छानुसार फिरनेवाला, ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, तपस्वी सुख देनेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूं ॥ १८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह ब्रह्मचारी भक्तवत्सल शंकर अपने रूपको छिपातेहुये पार्वतीके निकट स्थित हुए ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारी बोले, हे महादेवि ! क्या कहूं ?

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः ॥ इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ॥ प्रत्युवाच द्रुतम्प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ॥ १७ ॥ ॥ ब्रह्मचार्य्युवाच ॥ अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजोऽस्मि वै ॥ तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ॥ १८ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी स शंकरो भक्तवत्सलः ॥ तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन्रूपमात्मनः ॥ १९ ॥ ब्रह्मचार्य्युवाच ॥ किम्ब्रवीमि महादेवि कथनीयन्न विद्यते ॥ महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ॥ २० ॥ नवे वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे ॥ महोपचारस्सद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि ॥ २१ ॥ का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने ॥ तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥ २२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ॥ उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम् ॥ २३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने ॥ जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ॥ २४ ॥ पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी ॥ योगेन त्यक्तदेहाहं तातेन पतिनिन्दिना ॥ २५ ॥

कहने योग्य नहीं है, बडा अनर्थकारी महाविकृत वृत्तान्त दीखता है ॥ २० ॥ सुन्दर भोगोंके साधनरूप, सुखके कारण बाकी नवीन अवस्था तथा महाउपचारवाले सुन्दर भोगोंसे छूटीहुई तुम वृथाही तप करती हो ॥ २१ ॥ तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? किसलिये निर्जनवनमें जितेन्द्रिय नियोंकी समान कठिन तप कररही हो ? ॥ २२ ॥ नंदीश्वर बोले, ऐसा उनका वचन सुन हँसतीहुई पार्वती ब्रह्मचारीसे प्रेमपूर्वक यह श्रेष्ठ वचन बोली ॥ २३ ॥ पार्वती बोली, हे विप्र ! हे ब्रह्मचारिन् ! हे मुने ! मेरे सब समाचार सुनो, अब मेरा जन्म हिमालयके घरमें हुआ है ॥ २४ ॥ पहले दक्षके

घर उत्पन्न हुई सती शंकरकी स्त्री थी, मेरे पति शिवजीकी निंदा करनेवाले पिताके यहां मैंने योगद्वारा शरीर त्यागदियाथा ॥ २५ ॥ हे द्विज ! इस जन्ममें, बडे पुण्यसे प्राप्त होकर शिवजी मुझे त्याग, कामदेवको भस्म कर चलेगये ॥ २६ ॥ शिवजीके चलेजानेपर दुःखके कारण लज्जितहुई मैं पिताके घरसे गुरुके वचनसे नियम करके इस वनमें तप करनेको आई हूं ॥ २७ ॥ मन वचन कर्मसे, साक्षात् शिवरूप पतिके प्रेमके कारण मेरा तप है, मैं सत्य कहती हूं; असत्य इसमें कुछ नहीं, इसमें शिवजी साक्षी हैं ॥ २८ ॥ मैं जानती हूं कि दुर्लभ वस्तु मुझे किस प्रकार प्राप्त होसकती है, तौ भी मनकी उत्कंठासे

अत्र जंन्मनि संप्राप्य सुपुण्येन शिवो द्विज ॥ मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ॥ २६ ॥ प्रयाते शङ्करे तापाद्व्रीडिताहं पितुर्गृहात् ॥ आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता ॥ २७ ॥ मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः ॥ सत्यम्ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया ॥ २८ ॥ जानामि दुर्लभं वस्तु कथम्प्राप्यं मया भवेत् ॥ तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना ॥ २९ ॥ हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुम्ब्रह्माणमप्यहम् ॥ पतिम्पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम् ॥ मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ जटिल उवाच ॥ हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया ॥ रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलन्तपः ॥ ३२ ॥ जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणु त्वम्प्रवदामि ते ॥ वृषध्वजस्स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ॥ ३३ ॥ एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ॥ तस्मात्त्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि ॥ ३४ ॥

अब मैं तप करती हूं ॥ २९ ॥ मैं इंद्र आदि देवताओं तथा विष्णु आर ब्रह्माको छोडकर केवल पिनाकधारी शिवको पति पानेकी इच्छा करती हूं ॥ ॥ ३० ॥ नंदीश्वर बोले, हे मुने ! ऐसा पार्वतीका निश्चित वचन सुन जटिल रुद्र हसकर यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ जटिल बोले, हे हिमाचलकी पुत्रि ! हे देवि ! तूने कैसी बुद्धि स्वीकार की देवताओंको छोडकर शिवजीके निमित्त कठिन तप करती है ॥ ३२ ॥ मैं उस रुद्रको जानताहूं सुन तुझसे कहताहूं, वह रुद्र बैलपर चढनेवाले विकारी आत्मा और जटाधारी हैं ॥ ३३ ॥ सदा एकाकी रहते, विशेषकर वैरागी हैं, इस कारण तुझको उन शिवमें मन लगाना

उचित नहीं है ॥ ३४ ॥ हे देवि ! तुम्हारे शिवका रूप आदि सब विरुद्धहैं सो मुझे अच्छा नहीं लगता, आगे जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर ॥ ३५ ॥ नंदीश्वर बोले, ऐसा कहकर फिरभी ब्रह्मचारीरूपधारी शिवने उसकी परीक्षा करनेकी इच्छासे उसके आगे अनेकप्रकारसे अपनी निन्दा की ॥ ३६ ॥ यह न सहने योग्य ब्राह्मणका वचन सुन देवी पार्वती बहुत क्रोधित हो उस शिवकी निन्दामें तत्परहुये ब्राह्मणसे बोली ॥ ३७ ॥ इतना मैंने जाना कि तू कोई मारने के योग्य है, परन्तु सब प्रकार जान लिया कि इस समय तू अवध्य है ॥ ३८ ॥ हे मूढ ! तू ब्रह्मचारीका स्वरूप धारे कोई धूर्त आया है,

सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च ॥ मह्यं न रोचते ह्येतद्यदीच्छसि तथा कुरु ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च पुना रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ॥ मिनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम् ॥३६॥ तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासहम् ॥ प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ॥३७॥ एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद्वन्यो भविष्यति ॥ परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना ॥३८॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः ॥ शिवनिन्दा कृता मूढ त्वया मन्युरन्भूमम ॥ ३९ ॥ शिवं त्वं च न जानासि शिवात्त्वं हि बहिर्मुखः ॥ त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताऽभवम् ॥४०॥ शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान् ॥ आजन्मसंचितं पुण्यं तस्य भस्मी भवत्युत ॥ ४१ ॥ शिवविद्वेषिणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ४२ ॥ रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शंकरम् ॥ निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ॥ ४३ ॥ यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान् ॥ ममाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सताम्प्रियः ॥ ४४ ॥

तूने शिवजीकी निन्दा की इससे मुझे बडा क्रोध उत्पन्न हुआ है ॥ ३९ ॥ तू शिवजीको नहीं जानताहै और शिवजीसे बहिर्मुख है, मैंने जो तेरी पूजा की इस कारण मुझे संताप है ॥४०॥ जो मनुष्य तत्त्वको न जानकर शिवजीकी निन्दा करता है उसका जन्मभरका इकट्ठा हुआ पुण्य भस्म होताहै ॥४१॥ शिवके द्वेष करनेवालेको छू कर प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे दुष्ट ! हे दुष्ट ! तूने कहा कि मैं शिवको जानता हूं सो निश्चय ही तू शिवको नहीं जानता, शिवही बडे स्वामी हैं ॥ ४३ ॥ जैसे तैसे हो रुद्र मायासे बहुत रूपवालेहैं, तथा मेरे मनोरथोंको देनेवाले निर्विकार सत्पुरुषोंके प्रियहैं ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर बोले, यह कहकर देवी पार्वतीने उस शिवतत्त्वको वर्णन किया, जिसमें ब्रह्मरूपसे रुद्र निर्गुण, अविनाशी, कहेजातेहैं ॥ ४५ ॥ वह
ब्रह्मचारी ब्राह्मण, पार्वतीके वचनको सुन जबहीं फिर कुछ कहनेको उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥ तभी शिव में आसक्तचित्तवाली, शिवनिन्दासे रहित पार्वती
अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे बोली ॥ ४७ ॥ पार्वती बोली, हे सखि ! यह नीच ब्राह्मण निवारण करने योग्य है जो कि फिर कहनेको उद्यत हुआ
यह अब शिवकी निन्दा न करने पावै ॥ ४८ ॥ शिवकी निन्दा करनेवाले मनुष्यको ही केवल पाप नहीं होताहै, किन्तु जो उनकी निन्दाको सुनता है

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं शिवा देवी शिवतत्त्वं जगाद सा ॥ यत्र ब्रह्मतया रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ॥ ४५ ॥ तदाकर्ण्य
वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ॥ पुनर्वचनमादातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥ ४६ ॥ प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयान्द्रुतम् ॥ शिवा
सक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥ ४७ ॥ ॥ गिरिजोवाच ॥ वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः ॥ पुनर्वक्तुमनाश्चायं
शिवनिन्दां करिष्यति ॥ ४८ ॥ न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि ॥ यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ॥ ४९ ॥
शिवनिन्दाकरो वध्यस्सर्वथा शिवकिंकरैः ॥ ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद्द्रुतम् ॥ ५० ॥ अयन्दुष्टः पुनर्निंदां
करिष्यति शिवस्य हि ॥ ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥ ५१ ॥ स्थलमेतद्द्रुतं हित्वा यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम् ॥
यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ॥ ५२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने ॥ असौ
तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ॥ ५३ ॥

वह भी पापका भागी होता है ॥ ४९ ॥ सब प्रकार शिवकी निन्दा करनेवाला पुरुष, शिवके दासोंसे मारने योग्य है, यदि वह ब्राह्मण हो तो छोड
देनेलायक है, जहां निन्दा होतीहै उस स्थलसे शीघ्र चलाजाना चाहिये ॥ ५० ॥ यह दुष्ट फिर शिवकी निन्दा करेगा, ब्राह्मण होनेसे अवध्यहै और
त्यागने योग्यहै तथा सब प्रकार न देखनेलायक है ॥ ५१ ॥ मैं इस स्थलको त्यागकर शीघ्रही और स्थानपर जाती हूं जिससे शीघ्र इस मूर्खके साथ फिर
संभाषण न होवै ॥५२॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! ऐसा कहकर पार्वती जभी स्थान त्यागने लगीं तभी शिवजीने स्वयं उसके वस्त्रको धारण किया ॥५३॥

जैसा कि-पार्वती ध्यान करती थी वैसाही दिव्यस्वरूप धारणकर शिवजीने उसको दर्शन दिया, और नीचेकोमुखकरे स्थितहुई पार्वतीसे बोले ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले, हे शिवे ! हे अनघे ! तू मुझे त्यागकर कहां जातीहै, तू मुझसे नहीं त्यागनेयोग्य है, मैंने तेरी परीक्षा की तू दृढभक्तिवाली है ॥ ५५ ॥ मैंने ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण कर तेरे भाव जाननेके निमित्त तेरे समीप आकर अनेकवचन कहे ॥ ५६ ॥ हे पार्वति ! मैं विशेषकर तेरी दृढभक्तिसे प्रसन्न हूं अपने चित्तसे चाहेहुये वरको मांग तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है ॥ ५७ ॥ हे प्रेमनिर्भरे ! आजसे लेकर मैं तेरे तपसे तेरा दास हुआहूं, तेरी

कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा ॥ दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ॥ ५४ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वन्त्याज्या मया शिवे ॥ मया परीक्षितासि त्वं दृढभक्तासि मेऽनघे ॥ ५५ ॥ ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदीयकम् ॥ तवोपकण्ठमागत्य प्रावोचं विविधं वचः ॥ ५६ ॥ प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः ॥ चित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥ ५७ ॥ अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः प्रेमनिर्भरे ॥ कृतोऽस्मि तव सौन्दर्य्यात्क्षण एको युगायते ॥ ५८ ॥ त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी ॥ एहि प्रिये त्वया साकं द्रुतं यामि स्वकं गिरिम् ॥ ५९ ॥ इत्युक्तवति देवेशे शिवाति मुदमाप सा ॥ तपोदुःखन्तु यत्सर्वं तज्जहौ द्रुतमेव हि ॥ ६० ॥ ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत् ॥ प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जयाधोमुखी शिवा ॥ ६१ ॥ शिवोवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि ॥ पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तश्शिवया शिवः ॥ ६२ ॥

सुन्दरता निहारे विना एक क्षणभरभी युगकी समान बीतताहै ॥ ५८ ॥ हे प्रिये ! अब तुझको लज्जा त्यागनकरनी चाहिये, तू मेरी सदैवकी पत्नी है, यहां आ तेरे साथ शीघ्रही अपने कैलासपर्वतको जाऊंगा ॥ ५९ ॥ ऐसा देवेश शिवजीके कहनेपर वह पार्वती अतिआनन्दको प्राप्त हुई और तपका दुःख शीघ्रही त्यागन करतीहुई ॥ ६० ॥ तब प्रसन्नहुई पार्वतीजी शिवजीके उस दिव्यरूपको देखकर लज्जासे नीचे मुख कियेहुये प्रीतिसे उन शिवजीसे बोलीं ॥ ६१ ॥ पार्वती बोलीं, हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर कृपाको करतेहैं तो मेरे आप पति हों ऐसा पार्वतीने शिवजीसे कहा ॥ ६२ ॥

तब वह शिवजी उन पार्वतीके सहित विधिपूर्वक पाणिग्रहण (संस्कार) करके कैलासपर्वतको गये और पार्वतीने उन पतिको पाकर देवताओंका कार्य किया ॥ ६३ ॥ हे तात ! यह ब्रह्मचारिस्वरूपवाला तथा पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेवाला शिवजीका अवतार मैंने तुमसे कहा ॥ ६४ ॥ मेरी कहीहुई इस पापरहित उत्तम कथाको जो कोई प्रीतिसे सुनेगा वह सुखी होकर अच्छीगतिको प्राप्त होगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! परमात्मा शिवका नर्तकनट, नामक अवतार

गृहीत्वा विधिवत्पाणिं कैलासं स तया ययौ ॥ पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्य्यं चकार सा ॥ ६३ ॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारि स्वरूपकः ॥ शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः ॥६४॥ इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया ॥ य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥६५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ इति चतुरशीतिरवताराः (८४) नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं शृणु विभोस्सुनर्तकनटाह्वयम् ॥ १ ॥ यदा हि कालिका देवी पार्वती हिमवत्सुता ॥ तेपे तपस्सुविमलं वनं गत्वा शिवाप्तये ॥ २ ॥ तदा शिवः प्रसन्नोभूत्तस्यास्सुतपसो मुने ॥ तद्वृत्तसुपरीक्षार्थं वरं दातुम्मुदा ययौ ॥ ३ ॥ स्वरूपन्दर्शयामास तस्यै सुप्रीतमानसः ॥ वरम्ब्रूहीति चोवाच तां शिवां शंकरो मुने ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् ॥ सुजहर्ष शिवातीव प्राह तं सुप्रणम्य सा ॥ ५ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश मह्यं देयो वरो यदि ॥ पतिर्भव ममेशान कृपां कुरु ममोपरि ॥ ६ ॥

कहताहूं श्रवण करो ॥ १ ॥ जब वह हिमाचलकी पुत्री कालिका देवी पार्वती वनमें जाकर शिवकी प्राप्तिके निमित्त निर्मलतप करनेलगी ॥ २ ॥ हे मुने ! तब उसके कठिनतपसे शिवजी प्रसन्न हुये, और उसके भावकी परीक्षाके लिये आनन्दसे वर देनेको वनमें गये ॥ ३ ॥ हे मुने ! और प्रसन्नचित्त हो पार्वतीको अपना स्वरूप दिखाय और ‘वर मांगो’ ऐसे उस पार्वतीसे शिवजीने कहा ॥४॥ यह शिवजीके वचन सुनकर उनके उत्तमरूपको देख पार्वती बडी प्रसन्न हुई और उनसे प्रणाम कर बोली ॥ ५ ॥ पार्वती बोली, हे देवेश ! ईशान ! यदि आप मुझसे प्रसन्नहैं, और यदि मेरे लिये वर

देने योग्य हैं तो मेरे पति होकर मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! हे नाथ ! मैं तुम्हारी आज्ञासे अच्छी प्रकार पिताके घर जाती हूं और आपको मेरे पिताके समीप जाना चाहिये ॥ ७ ॥ और भिक्षुक होकर शुभ यशको विस्तार करतेहुये आप पितासे मुझे मांगो, और मेरे पिताका सब गृहाश्रम, सफल करो ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! हे महेशान ! फिर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार आप देवताओंके कार्य सिद्ध होनेके लिये मेरे साथ विवाह करनेके योग्यहैं ॥ ९ ॥ हे विभो ! आप मेरे मनोरथको पूर्ण करो, आप सदा निर्विकारहैं, आपका भक्तवत्सल नाम है मैं आपकी भक्ता हूं ॥ १० ॥ नन्दीश्वर

पितुर्गृहे मया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया ॥ गन्तव्यम्भवता नाथ मत्पितुः पार्श्वतः प्रभो ॥ ७ ॥ याचस्व मान्ततो भिक्षुः ख्यापयंश्च यशः शुभम् ॥ पितुर्मे सफलं सर्वं कुरु प्रीत्या गृहाश्रमम् ॥ ८ ॥ ततो यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि भो प्रभो ॥ विवाहं त्वं महेशान देवानां कार्य्यसिद्धये ॥ ९ ॥ कामं मे पूरय विभो निर्विकारो भवान्सदा ॥ भक्तवत्सलनामा हि तव भक्तास्म्यहं सदा ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स तया शम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः ॥ तथास्त्विति वचः प्रोच्यान्तर्हितस्स्वगिरिं ययौ ॥ ११ ॥ पार्वत्यपि ततः प्रीत्या स्वसखीभ्यां वयोन्विता ॥ जगाम स्वपितुर्गेहं रूपं कृत्वा तु सार्थकम् ॥ १२ ॥ पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनया स हिमाचलः ॥ परिवार युतो द्रष्टुं स्वसुतां तां ययौ मुदा ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा तां सुप्रसन्नास्यामानयामासतुर्गृहम् ॥ कारयामासतुः प्रीत्या महानन्दौ महोत्सवम् ॥ ॥ १४ ॥ धनन्ददौ द्विजादिभ्यो मेनागिरिवरस्तथा ॥ मंगलं कारयामास सवेदध्वनिमादरात् ॥ १५ ॥

बोले, इस प्रकार पार्वतीसे कहेहुये भक्तवत्सल वह महेश्वर शिवजी बहुत अच्छा ऐसा ही होगा यह कहकर अन्तर्धान हो अपने कैलासपर्वतको चले गये ॥ ११ ॥ और फिर पार्वतीभी प्रीति सहित सखियों के साथ सार्थकरूप करके अपने पिताके घर गई ॥ १२ ॥ मेना स्त्री सहित हिमाचल पार्वतीका आना सुन, परिवार सहित आनन्दके साथ अपनी पुत्री पार्वतीके देखनेको गये ॥ १३ ॥ उस प्रसन्नमुखवाली पुत्रीको देखकर वे दोनों बडे आनन्दको प्राप्त हुये उसे अपने घर लाये और प्रीतिसे महा उत्सव कराया ॥ १४ ॥ मेना तथा हिमांचल ब्राह्मण याचक आदिको धन देतेहुए और आदरसे

वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराये ॥ १५ ॥ तब अपनी पार्वती कन्या सहित उन दोनोंने अपने स्थानमें निवास किया, एक दिन वह मेना और हिमाचल
दोनों गंगाजीमें स्नान करनेको गये ॥ १६ ॥ इसी अवसरमें भक्तवत्सल, सुन्दरलीलाकारी शम्भु, नर्तकनट (नाचने वाले) का रूप धारण करके
मेनकाके समीप गये ॥ १७ ॥ बायें हाथमें शृंग (सींग) दाहिने हाथमें डमरूको धारणकिये, पीठपर गुदडीडाले, लाल कपडे पहने नाचने गानेमें
निपुण हो ॥ १८ ॥ नटका रूप धार शिवजी बडे आनन्दके साथ मेनकाके आंगनमें अनेकप्रकारके नृत्य तथा अतिमनोहर गान करने लगे ॥

ततः स्वकन्यया सार्द्धमुवास प्रांगणे मुदा ॥ मेना च हिमवाञ्छैलः स्नातुं गंगां जगाम सः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सुलीलो
भक्तवत्सलः ॥ सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ ॥ १७ ॥ शृंगं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुन्तथा ॥ पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्य
गानविशारदः ॥ १८ ॥ ततस्तु नटरूपोऽसौ मेनकाप्रांगणे मुदा ॥ चक्रे स नृत्यं विविधं गानञ्चातिमनोहरम् ॥ १९ ॥ शृंगञ्च
डमरुन्तत्र वादयामास सुध्वनिम् ॥ महोतिं विविधाम्प्रीत्या स चकार मनोहराम् ॥ २० ॥ तन्द्रष्टुं नागरास्सर्वे पुरुषाश्च स्त्रिय
स्तथा ॥ आजग्मुस्सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा सुगीतं तन्दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम् ॥ सहसा मुमुहुः सर्वे
मेनापि च तदा मुने ॥ २२ ॥ ततो मेनाशु रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ॥ तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतमानसा ॥ २३ ॥
तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां चेते शिवां च ताम् ॥ पुनस्सुनृत्यं गानं च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ सींग तथा डमरूको बडी ध्वनिके साथ बजाने लगे और अनेक प्रकार मनोहर लीलाको प्रीतिपूर्वक करने लगे ॥ २० ॥
उस कौतुक देखनेको नगरके पुरुष तथा स्त्रियें और बालक वृद्ध सबही एक साथ आगये ॥ ॥ २१ ॥ हे मुने ! सुन्दर गीत सुन तथा सुन्दर
मनोहर नाच देख, सहसा सब मोहित होगये और उस समय मेना प्रसन्न हुईं ॥ २२ ॥ तब मेना उस कौतुकसे प्रसन्नमन हो शीघ्रही स्वर्णके पात्रमें
रत्नोंको रखकर उसके लिये प्रीतिपूर्वक देने लगी ॥ २३ ॥ उनको उस नटने ग्रहण न करके उस पार्वतीकी भिक्षाको माँगा और फिर भी सुन्दर

नृत्यगानरूप कौतुक करनेको उद्यत हुआ ॥ २४ ॥ मेनाने उसका वचन सुन अतिविस्मित हो उसपर क्रोध किया और उसने उस भिक्षुकको ललकारा और बाहर करनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥ इसी अवसरमें वहांपर गंगाजीसे स्नानकर हिमाचल आये और आगे आंगनमें स्थितहुए मनुष्यआकारवाले भिक्षुकको देखा ॥ २६ ॥ और उसने मेनाके मुखसे उस सब वृत्तान्तको सुनकर क्रोध किया और उस भिक्षुकके बाहर करनेकी सेवकोंको आज्ञा दी ॥ २७ ॥ हे मुनिसत्तम ! बड़ी अग्निकी समान जलतेहुए स्पर्श करनेके अयोग्य प्रज्वलित होतेहुए उस नटको कोई भी निकालनेको समर्थ न हुआ

मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता ॥ भिक्षुकम्भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरिराडचयौ ॥ ददर्श पुरतो भिक्षुं प्रांगणस्थं नराकृतिम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वा मेनामुखाद्वृत्तन्तत्सर्वं सुचुकोप सः ॥ आज्ञां चकारानुचरान्बहिः कर्तुं च भिक्षुकम् ॥ २७ ॥ महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम् ॥ न शशाक बहिः कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम ॥ २८ ॥ ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः ॥ दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥ २९ ॥ शैलो ददर्श तन्तत्र विष्णुरूपधरन्द्रुतम् ॥ ततो ब्रह्मस्वरूपं च सूर्य्यरूपं ततः क्षणात् ॥ ३० ॥ ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम् ॥ पार्वतीसहितं रम्यं विहसन्तं सुतेजसम् ॥ ३१ ॥ एवं सुबहुरूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः ॥ सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंप्लुतः ॥ ३२ ॥ अथासौ भिक्षुवर्य्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत् ॥ भिक्षां ययाचे दुर्गान्तान्नान्यज्जग्राह किञ्चन ॥ ३३ ॥ ततश्चान्तर्दधे भिक्षुस्वरूपः परमेश्वरः ॥ स्वालयं स जगामाशु दुर्गावाक्यप्रणोदितः ॥ ३४ ॥

॥ २८ ॥ हे तात ! तब अनेकलीला करनेमें निपुण उस भिक्षुकने उस हिमालयको अपना अनन्त महाप्रभाव दिखाया ॥ २९ ॥ शैलने उसको शीघ्रही विष्णुरूप धारेहुए वहां देखा फिर ब्रह्मस्वरूप, थोडी देरमें सूर्यरूपसे देखा ॥ ३० ॥ हे तात ! थोड़ी देर पीछे उसको महाअद्भुत रुद्ररूप धारे पार्वतीके सहित मनोहर हँसतेहुए सुन्दर तेजसे युक्त देखा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उसने बहुत रूप उसके देखे, तब शीघ्रही परमआनन्द और पूर्ण विस्मययुक्त होगया ॥ ३२ ॥ तब उत्पत्ति करनेवाले भिक्षुकने उस हिमाचल तथा मेनासे पार्वतीकोही भिक्षामें मांगा और कुछ नहीं मांगा ॥ ३३ ॥ तब भिक्षुकरूपधारी

शिवजी पार्वतीके वाक्यसे प्रेरणा कियेहुए शीघ्रही अपने स्थानको गये ॥ ३४ ॥ उस ससय मेना और शैल हिमाचलको ज्ञान उत्पन्न होगया कि विभु शिव हम दोनोंको ठगकर अपने स्थानको चलेगये ॥ ३५ ॥ उनको यह तपस्विनी कन्या देनी चाहिये, ऐसा विचारकर उन दोनोंकी शिवमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ३६ ॥ तब बड़ी लीला करनेवाले रुद्रने अपने भक्तोंका उद्धार करके विधानसहित प्रीतिके साथ पार्वतीसे विवाह किया॥ ३७॥ हे तात ! यह मैंने सुनर्तकनट नामक तथा पार्वतीके वाक्यका पूर्ण करनेवाला शिवका अवतार कहा॥ ३८॥यह बड़े पापोंका नाशक बड़ा चारित्र मैंने

तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरपि ॥ आवां शिवो वञ्चयित्वा गतवान्स्वालयं विभुः ॥ ३५ ॥ अस्मै देया स्वकन्येयं पार्वती सुतपस्विनी ॥ एवं विचार्य्य च तयोः शिवे भक्तिरभूत्परा ॥ ३६ ॥ अतो रुद्रो महोतीश्च कृत्वा भक्तमुदावहम् ॥ विवाहं कृतवान्प्रीत्या पार्वत्या स विधानतः ॥ ३७ ॥ इति प्रोक्तस्तु ते तात सुनर्तकनटाह्वयः ॥ शिवावतारो हि मया शिवावाक्यप्रपूरकः ॥ ३८ ॥ इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतम्मया ॥ य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ॥ अवतारं शृणु विभोस्साधुवेषद्विजाह्वयम् ॥ १ ॥ मेनाहिमालयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा महोत्तमाम् ॥ चिन्तामापुस्सुरास्सर्वे मन्त्रयामासुरादरात् ॥ २ ॥ एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां दास्यति शम्भवे ॥ ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः सम्प्राप्स्यति शिवस्य वै ॥ ३ ॥

तुमसे कहा, जो मनुष्य प्रीतिसे इस चरित्रको सुनता है वह सुखी हो सुन्दर गतिको प्राप्त होताहै ॥ ३९॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! विभु परमात्मा शिवका साधुवेष द्विजनामक अवतार कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ शिवजीमें मेना और हिमालयकी बडी भक्ति जानकर सब देवताओंने बड़ी चिन्ता की और आदरसे सम्मति की ॥ २ ॥ यदि एकान्त भक्तिसे हिमालयपर्वत शिवजीको अपनी कन्या देंगे तो निश्चयही शीघ्र शिवजीकी निर्वाणता (परमपद) को प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥

यदि अनन्त रत्नोंका आधाररूप यह पर्वत मोक्षको प्राप्त होजायगा तो रत्नगर्भा भूमि मिथ्याही होगी ॥४॥ अपने स्थावररूपको त्यागकर दिव्यरूप धारण कर वह अपनी कन्या पार्वतीको शिवजीके निमित्त देकर शिवलोकको जायगा ॥ ५ ॥ शंभुके अनुग्रहसे महादेवके सादृश्यको प्राप्तकर वहां सब भोगोंको भोग अन्तमें मोक्षको प्राप्त होगा ॥ ॥ ६ ॥ हे मुने ! ऐसा विचारकर सब देवता बृहस्पति गुरुके स्थानको गये वे स्वार्थके सिद्ध करनेवाले देवता वहां जाकर बृहस्पतिसे निवेदन करने लगे ॥ ७ ॥ देवता बोले, हे गुरो ! हमारे कार्य सिद्ध करनेके निमित्त हिमालयके घर जाओ और शिवजीकी

अनन्तरत्नाधारोऽसौ चेत्प्रयास्यति मोक्षताम् ॥ रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् ॥ ४ ॥ अस्थिरत्वम्परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ॥ कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति ॥ ५ ॥ महादेवस्य सारूप्यं प्राप्य शम्भोरनुग्रहात् ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगां स्ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६ ॥ इत्यालोच्य सुरास्सर्वे जग्मुर्गुरुगृहं मुने ॥ चक्रुर्निवेदनं गत्वा गुरवे स्वार्थसाधकाः ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः ॥ गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्य्यसिद्धये ॥ कृत्वा निंदां महेशस्य गिरिभक्तिं निवारय ॥ ८ ॥ स्वश्रद्धया सुतां दत्त्वा शिवाय स गिरिर्गुरो ॥ लभेत मुक्तिमत्रैव धरण्यां स हि तिष्ठतु ॥ ९ ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रोवाच च विचार्य्य तान् ॥ १० ॥ ॥ गुरुरुवाच ॥ कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः ॥ सम्पादयेत्स्वाभिमतमहं तत्कर्तुमक्षमः ॥ ११ ॥ अथ वा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः ॥ तस्मै वृत्तं कथय स्वं स वः काय करिष्यति ॥ १२ ॥ ॥ नंदीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा ते समालोच्य जग्मुर्विधिसभां सुराः ॥ सर्वं निवेदयामासुस्तद्वृत्तं पुरतो विधेः ॥ १३ ॥

निन्दा कर उसके चित्तसे शिवकी भक्ति दूर करो ॥ ८ ॥ हे गुरो ! वह अपनी श्रद्धासे कन्या शिवको देकर यहाँही मुक्तिको प्राप्त होजाय और पृथ्वी परही स्थित रहै ॥ ९ ॥ ऐसा देवताओंका वचन सुनकर अपने चित्तमें विचारकर बृहस्पति उनसे बोले ॥ १० ॥ बृहस्पति बोले, हे देवताओ ! तुम्हारे मध्यमेंसे कोई एक शैलके समीप जाय और अपने मनोरथको साधै, मैं यह करनेको असमर्थ हूं ॥ ११ ॥ अथवा इन्द्रसे आदि लेकर सब देवता ब्रह्मलोकको जाओ और ब्रह्माजीसे अपना समाचार कहो वह तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ १२ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह सुनकर वे सब देवता विचारकर

ब्रह्माजीकी सभामें गये और वहां सब वृत्तान्त ब्रह्माके आगे निवेदन किया ॥ १३ ॥ यह देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी विचारकर उनसे बोले कि मैं दुःख देनेवाली, सदा कलहकारिणी, उनकी निंदाको नहीं करूंगा ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! तुम कैलासको जाओ और शंकर महादेवको संतुष्ट करो तथा उनको हिमालयके घरको भेजो ॥ १५ ॥ वह शिवजी जाकर हिमाचलसे अपनी निन्दा करैं क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये होतीहै और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गईहै ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब वे सम्पूर्ण देवता शीघ्र कैलासपर्वतको गए और शिवजीको प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति करनेलगे और उस वृत्तान्तको कहा ॥ १७ ॥ तब शिवजीने यह देवताओंका वचन सुनकर वह बात स्वीकारकी और हँसकर

अवोचत्तान्विधिः श्रुत्वा तद्वचः सुविचिंत्य वै ॥ नाहं करिष्ये तन्निंदां दुःखदां कहरां सदा ॥ १४ ॥ सुरा गच्छत कैलासं संतोषयत शङ्करम् ॥ प्रस्थापयत तं देवं हिमालयगृहं प्रति ॥ १५ ॥ स गच्छेदथ शैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै ॥ परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ ततस्ते प्रययुः शीघ्रं कैलासं निखिलास्सुराः ॥ सुप्रणम्य शिवं भक्त्या तद्वृत्तं निखिला जगुः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः ॥ देवान्सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः ॥ १८ ॥ ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः ॥ गन्तुमैच्छच्छैलमूलं मायेशो न विकारवान् ॥ १९ ॥ दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥ करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत् ॥ २० ॥ जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः ॥ हिमाचलं जगामाशु बन्धुवर्गैस्समन्वितम् ॥ २१ ॥ तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं विधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥

धीरज दिया, तब वे अपने २ स्थानको गए ॥ १८ ॥ तब वह महेश, भक्तवत्सल, अविकारी, मायाके ईश्वर, भगवान्, शिवजी हिमाचलके समीप जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ १९ ॥ दंड तथा छत्र धारण किये, सुन्दरवस्त्र पहने, उज्ज्वल तिलक लगाए, हाथमें स्फटिककी माला, गलेमें शालग्रामको धारणकिये ॥ २० ॥ भक्तिसे विष्णुभगवान्के नामको जपतेहुए साधुका भेष धारे ब्राह्मणके रूपमें भाई, बन्धुवर्गसे, संयुक्त हुए हिमालयके समीप शीघ्र गए ॥ २१ ॥ उनको देखतेही अपने समुदायसहित हिमालय उठे और भूमिमें साष्टांग दंडवत् करके विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ २२ ॥

तब वह शैलेश उस ब्राह्मणसे बोले कि आप कौनहैं तब उस विप्रेन्द्र योगीने शीघ्रही उस पर्वतसे अतिआदरके साथ कहा ॥ २३ ॥ साधुब्राह्मण बोला,
हे शैल ! मैं साधुद्विज नामक, परमार्थको देखनेवाला, परोपकारी, सर्वज्ञ, गुरुके बलसे सर्वत्र जानेवाला वैष्णव हूं ॥ २४ ॥ हे शैलसत्तम ! मैंने अपने
स्थानपरही विज्ञानसे जानलिया, पाखंडको त्यागकर तुमसे प्रीतिपूर्वक जो कहताहूं सो सुनो ॥ २५ ॥ तुम अपनेसे उत्पन्नहुई लक्ष्मीरूप मनोहर
अपनी कन्याको कुलशील विना जाने शिवजीके अर्थ देना चाहतेहो ॥ २६ ॥ हे शैलेन्द्र ! हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! नारायणके कुलमें उत्पन्न ! यह

ततः पप्रच्छ शैलेशस्तं द्विजं को भवानिति ॥ उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रस्स योग्यद्रिम्महादरात् ॥ २३ ॥ साधुद्विज उवाच ॥ साधुद्विजाह्वः
शैलाहं वैष्णवः परमार्थदृक् ॥ परोपकारी सर्वज्ञः सर्वगामी गुरोर्बलात् ॥ २४ ॥ मया ज्ञातं स्वविज्ञानात्स्वस्थाने शैलसत्तम ॥ तच्छृणु
प्रीतितो वच्मि हित्वा दम्भन्तवांतिकम् ॥ २५ ॥ शङ्कराय सुतान्दातुन्त्वमिच्छसि निजोद्भवाम् ॥ इमाम्पद्मासमां रम्यामज्ञातकुलशी
लिने ॥ २६ ॥ इयं मतिस्ते शैलेन्द्र न युक्ता मङ्गलप्रदा ॥ निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव ॥ २७ ॥ पश्य शैलाधिपत्वं च
न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः ॥ बान्धवान्स्वान्प्रयत्नेन पृच्छ मेनां च स्त्रप्रियाम् ॥ २८ ॥ सर्वान्संपृच्छ यत्नेन मेनादीन्पार्वतीं विना ॥
रोगिणे नौषधं शैल कुपथ्यं रोचते सदा ॥ २९ ॥ न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्म्मणि ॥ महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति
॥ ३० ॥ निराश्रयस्सदासङ्गो विरूपो निर्गुणोऽव्ययः ॥ स्मशानवासी विकटो व्यालग्राही दिगम्बरः ॥ ३१ ॥

तुम्हारी बुद्धि मंगलकी देनेवाली ठीक नहीं है ॥ २७ ॥ हे शैलाधिप ! तुम देखो कि उन शिवके कोई भाई, बन्धु, नहीं हैं, तुम अपने परिवारसे
तथा अपनी स्त्री मेनासे पूछो ॥ २८ ॥ हे शैल ! पार्वतीके विना मेना आदि सब बन्धुओंसे पूछो, रोगीको औषधी अच्छी नहीं लगती, सदा कुपथ्यही
अच्छा लगताहै ॥ २९ ॥ पार्वतीके दानकर्ममें तुम्हें योग्यपात्र नहीं मिला, पार्वतीके सुननेमात्रसे कोई सुन्दरमुखवाला महापुरुष वर होजायगा
॥ ३० ॥ वह शिव आश्रय (स्थान) रहित, सदा असंग (अकेला), कुरूप, निर्गुण, अव्यय, मर्घटनिवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको पकडने

वाले, नग्न ॥ ३१ ॥ भस्मसे शोभित, सर्पोंसे मस्तक लपेटेहुए, सब आश्रमोंसे रहित, तथा सदा अविज्ञातगति हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले, अनेकलीला
करनेमें तत्पर शिवजी इस प्रकार अपनी निन्दामें प्रवृत्त हो सत्य २ वचन कहकर शीघ्र अपने स्थानको गए॥ ३३ ॥ यह ब्राह्मणका वचन सुनकर उन दोनोंके
शरीर विपरीत अनर्थ करनेमें तत्पर होगये और सोचने लगे कि हम क्या करैं ॥ ३४ ॥ तब रुद्रने भक्तोंके उद्धार करनेवाली लीलाको करके पार्वतीको विवाह
कर देवताओंके कार्य किए ॥ ३५ ॥ हे तात ! हे प्रभो ! मैंने साधुवेषधारी द्विज नामक देवताओंके कार्य करनेवाला शिवका अवतार तुमसे कहा

विभूतिभूषणो व्यालवरावेष्टितमस्तकः ॥ सर्वाश्रमपरिभ्रष्टस्त्वविज्ञातगतिस्सदा ॥ ३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्याद्युक्त्वा वचस्तथ्यं शिव
निन्दापरं स हि ॥ जगाम स्वालयं शीघ्रन्नानालीलाकरः शिवः ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवचनमभूताञ्च तनू तयोः ॥ विपरीतानर्थपरे
किं करिष्यावहे ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ ततो रुद्रो महोतिं च कृत्वा भक्तमुदावहाम् ॥ विवाहयित्वा गिरिजां देवकार्य्यं चकार सः ॥ ३५ ॥
इति प्रोक्तस्तु ते तात साधुवेषो द्विजाह्वयः ॥ शिवावतारो हि मया देवकार्य्यकरः प्रभो ॥ ३६ ॥ इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यमायुष्यमुत्त
मम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि स सुखी गतिमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवाव
तारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ षडशीत्यवताराः (८६) ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ॥
अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ॥ १ ॥ बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने ॥ भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ॥
॥ २ ॥ धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिस्सर्वशास्त्रवित् ॥ बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ॥ ३ ॥

॥ ३६ ॥ यह इतिहास पापोंको नाश करनेवाला स्वर्ग और आयुका देनेवाला है, जो इसको पढ़ता है तथा सुनताहै, वह सुखी होकर सुन्दरगतिको प्राप्त
होताहैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ (८६ अवतारसमाप्तहुए)
नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! सर्वव्यापक परमात्मा शिवका अश्वत्थामा नामक परम अवतार सुनो ॥ १ ॥ हे मुने ! महाबुद्धिमान् देवर्षि
बृहस्पतिके अंशसे भरद्वाजके द्वारा अयोनिज द्रोण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, शूर, विप्रर्षि, सब शास्त्रोंका जाननेवाला, बड़ी

कीर्तिवाला, महातेजस्वी, सब अस्त्रोंका जाननेवाला था ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् बाणविद्याका पारगामी वेदोंमें निपुण वरिष्ठ विचित्र कर्म करनेवाला अपने कुलका बढानेवाला द्रोण नामसे प्रसिद्ध था ॥ ४ ॥ हे द्विज ! वह बलवान द्रोण कौरवोंके आचार्य तथा और छहों महा रथियोंमें विख्यात थे ॥ ५ ॥ उस ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रके निमित्त शिवके उद्देशसे बडा तप किया ॥ ६ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब भगवान् भक्तवत्सल शंकर प्रसन्न हो द्रोणाचार्यके आगे प्रगट हुए ॥ ७ ॥ उनको देखकर उस द्रोणाचार्य ब्राह्मणने हृदयमें महाप्रसन्न हो नम्रतासे हाथ बाँध शीघ्रही उनको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ उसकी स्तुतिसे तथा तपस्यासे भक्तवत्सल प्रभु शंकर प्रसन्न होकर उन द्रोणाचार्यसे बोले, कि-वर मांगो ॥ ९ ॥ यह शिवजीका वचन सुन, नम्र हो द्रोणाचार्य बोले, कि-महाबली सबसे अजेय अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्रको दीजिये ॥ १० ॥ हे मुने ! हे तात ! यह द्रोणाचार्यका वचन सुन शिवजी बोले ऐसाही होगा, यह कह कौतुक करनेवाले सुखकारी शिव अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ तब संशयरहित द्रोणाचार्य बडे प्रसन्न हो, अपने धामको गए और वह सब वरदानका समाचार अपनी स्त्रीसे प्रीतिपूर्वक कहा ॥ १२ ॥ तब अवसरको पाकर प्रभु सबके

धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः ॥ वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ॥ ४ ॥ कौरवाणां स आचार्य्यं आसीत्स्वबलतो
द्विज ॥ महारथिषु विख्यातः षट्सु कौरवमध्यतः ॥ ५ ॥ साहाय्यार्थं कौरवाणां स तेपे विपुलन्तपः ॥ शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणा
चार्य्यो द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः ॥ आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वा स द्विजो
द्रोणस्तुष्टावाशु प्रणम्य तम् ॥ महाप्रसन्नहृदयो नतकस्सुकृताञ्जलिः ॥ ८ ॥ तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शंकरः प्रभुः ॥ वरम्ब्रूहीति
चोवाच द्रोणन्तं भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः ॥ स्वांशजन्तनयन्देहि सर्वाजेयम्महाबलम् ॥ १० ॥
तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ॥ अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सुखकृन्मुने ॥ ११ ॥ द्रोणोऽपगच्छत्स्वन्धाम महाहृष्टो
गतभ्रमः ॥ स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा ॥ १२ ॥ अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तकः प्रभुः ॥ स्वांशेन तनयो
जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ॥ १३ ॥

संहार करनेवाले शिवजी अपने अंशसे द्रोणके बडे बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ हे मुने ! वह वीर कमलपत्रके समान नेत्रवाले, तथा शत्रु पक्षके नाश करनेवाले, शंकर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥ जिन महाबली विख्यात अश्वत्थामाने महाभारत संग्राममें अपने पिताकी आज्ञा पाकर कौरवोंकी सहायता की थी ॥ १५ ॥ जिस महावीर अश्वत्थामाको आश्रय कर बडे पराक्रमी कौरव भीष्मपितामह आदिक देवताओंसे भी अजेय होगये ॥१६॥ जिसके भयसे बडे शूर, विद्वान्, पांडव, कौरवोंको जीतनेमें असमर्थ हुए और नष्टप्राय होगये ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णजीके

अश्वत्थामेति विख्यातस्स बभूव क्षितौ मुने ॥ प्रवीरः कंजपत्राक्षश्शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ १४ ॥ यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ॥ सहायकृद्बभूवाथ कौरवाणां महाबलः ॥ १५ ॥ यमाश्रित्य महावीरं कौरवास्सुमहाबलाः ॥ भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ॥ १६ ॥ यद्भयात्पाण्डवास्सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः ॥ आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ॥ १७ ॥ कृष्णोपदेशतश्शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ॥ प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ॥ १८ ॥ अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने ॥ तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ॥ १९ ॥ विनाश्य पाण्डवसुताञ्छिक्षितानपि यत्नतः ॥ कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः ॥ २० ॥ पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ॥ रथेनाच्युतवंतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ॥ २१ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि ॥ ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ॥ २२ ॥

उपदेशसे शिवकी अतिकठिन तपस्या करके अर्जुनने शिवजीसे अस्त्र पाकर उन कौरवोंको जीता ॥ १८ ॥ हे मुने ! अश्वत्थामाने शिवके अंशसे उत्पन्न होकर महावीर कौरवोंकी भक्तिके वशीभूत हो अपने प्रतापको दिखाया ॥ १९ ॥ यत्नपूर्वक शिक्षित भी पांडवोंके पुत्रोंको मारकर महावीर कृष्ण आदि शत्रुओंसे भी उसके बलका निवारण न हुआ ॥ २० ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल हो रथपर चढकर धावमान होते कृष्णके सहित अर्जुनको देखकर वह अश्वत्थामा भागा ॥ २१॥ और अश्वत्थामाने अर्जुनके ऊपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहार किया जिस्से सब दिशाओंमें प्रचंड तेज प्रगट हुआ ॥ २२ ॥

तंब प्राणोंपर आपत्ति देखकर अर्जुनने क्लेश पाय भयभीत व्याकुल हो श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ २३ ॥ अर्जुन बोला, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह क्याहै और कहांसे यह दुस्सह तेज चारोंओरसे चला आताहै, सो मैं नहीं जानता ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार अर्जुनका वचन सुनकर वह शैव, श्रीकृष्ण पार्वतीसहित शिवका ध्यान करतेहुए आदरसे अर्जुनसे बोले ॥२५॥श्रीकृष्ण बोले, तुम जानतेहो यह द्रोणाचार्यके पुत्रका बडातीव्र ब्रह्मास्त्रहै, इसकी समान कोई दूसरा घातक अस्त्र नहींहै ॥ २६ ॥ तुम शीघ्र अपने प्रभु तथा भक्तोंके रक्षा करनेवाले शिवजीको स्मरण करो कि जिन्होंने सब कार्य करनेवाला

प्राणापदमाभिप्रेक्ष्य सोर्जुनः क्लेशसंयुतः ॥ उवाच कृष्णं विक्लान्तो नष्टतेजा महाभयः ॥२३॥ अर्जुन उवाच ॥ किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजश्चेदं सुदुस्सहम् ॥ २४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णश्शै वसत्तमः ॥ दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरात् ॥ २५ ॥ कृष्ण उवाच ॥ वेत्थेदन्द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं महोल्बणम् ॥ न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ २६ ॥ शिवं स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुम्भक्तरक्षकम् ॥ येन दत्तं हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्य्यकरम्परम् ॥२७॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धन्त्वन्त च्छैवास्त्रतेजसा ॥ इत्युक्त्वा च स्वयं कृष्णश्शिवन्दध्यौ तदर्थकः ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थस्स्मृत्वा शिवं हृदि ॥ स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रन्ततो मुने ॥ २९ ॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघञ्चाप्रतिक्रियम् ॥ शैवास्त्रतेजसा सद्यस्समशाम्यन्महामुने ॥ ३० ॥ मंस्था मा ह्येतदाश्चर्य्यं सर्वचित्रमये शिवे ॥ यस्स्वशक्त्याखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ३१ ॥

अपना बडा अस्त्र तुम्हें दियाहै ॥ २७ ॥ और उस शैव अस्त्रके तेजके द्वारा तुम तीव्र अस्त्रके तेजको दूर करो, ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी स्वयं उसके निमित्त शिवजीका ध्यान करनेलगे ॥ २८ ॥ हे मुने ! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके वचनको सुनकर अर्जुनने अपने हृदयमें शिवको स्मरण कर, उनको प्रणाम कर, जलका स्पर्श कर, उस शैवास्त्रको छोडा ॥ २९ ॥ हे महामुने ! यद्यपि ब्रह्मशिर अस्त्र निष्फल क्रियावान् नहीं था तथापि शैव अस्त्रके तेजसे उसी समय वह शान्त होगया ॥ ३० ॥ यह सब विचित्र लीला करनेवाले शिवजीके विषयमें आश्चर्य मतमानो, जो अजित अपनी शक्तिसे

सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करते तथा नष्ट करते हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! तब शिवके अंशसे उत्पन्न शिवकी इच्छासे संतुष्ट हुये उस अश्वथामाने वृत्तान्तको जानकर, शैव अस्त्रको किञ्चिन्मात्र भी छेदन न किया ॥ ३२ ॥ तब द्रोणाचार्यके पुत्रने इस सम्पूर्ण संसारको पांडवरहित करनेकी इच्छासे उत्तराके गर्भगत बालकके नाश करनेकी मनमें इच्छा की ॥ ३३ ॥ तब अश्वत्थामाने बडेकान्तिवाले और अस्त्रोंसे निवारणके अयोग्य ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर प्रहार किया ॥३४॥ तब वह व्याकुलमनवाली जयशील अर्जुनपुत्रकी भार्या उत्तरा उस अस्त्रसे जलतीहुई लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी ॥ ३५॥

अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः ॥ शैवन्न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ॥ ३२ ॥ अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तु
मपाण्डवम् ॥ उत्तरागर्भगं बालं नाशितुम्मन आदधे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ॥ उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स
महाप्रभुः ॥ ३४ ॥ ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा ॥ कृष्णन्तुष्टाव लक्ष्मीशन्दह्यमाना तदस्त्रतः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णः शिवं
ध्यात्वा हृदा नुत्वा प्रणम्य च ॥ अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ३६ ॥ स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा ॥ सुदर्शनेन
तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ॥ ३७ ॥ स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेण ह ॥ कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ॥ ३८ ॥
ततस्स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि ॥ अपातयत्तदंघ्र्योस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ॥ ३९ ॥ अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवा
न्कृष्णमेव च ॥ नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामानुगृह्य च ॥ ४० ॥

तब श्रीकृष्णने हृदयसे शिवका ध्यानकर, स्तुति तथा प्रणाम करके यह जाना कि पांडवोंके विनाश करनेको यह अश्वत्थामाका अस्त्र है ॥ ३६ ॥ अपनी रक्षाके निमित्त इन्द्रसे दिये बडे तेजवाले सुदर्शनचक्रसे श्रीकृष्णने शिवकी आज्ञापाकर उस उत्तराकी रक्षाकी ॥ ३७ ॥ यह चरित्र जानकर शिवकी आज्ञासे शैववर श्रीकृष्णजीने गर्भको अपनारूप करलिया तो वह अस्त्र धीरे २ शान्त होगया ॥ ३८ ॥ तब उस महाशैव श्रीकृष्णने प्रसन्नहो संपूर्ण पांडवोंको उस अश्वत्थामाकी प्रसन्नताके निमित्त उसके चरणकमलोंमें गिरवाया ॥ ३९ ॥ तब वह द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा प्रसन्न हुआ

और प्रीतिसहित पांडवोंपर तथा श्रीकृष्णजीपर अनुग्रह करके अनेकवर दिये ॥ ४० ॥ हे तात ! हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार प्रभु शिवजीने पृथ्वीपर अश्वत्थामारूपसे अनेकलीला की ॥ ४१ ॥ महाबल और पराक्रमवाले अश्वत्थामा नामक शिवजीका अवतार तीनों लोकोंको सुख देनेवाला अब तकभी गंगाजीके किनारेपर स्थित है ॥ ४२ ॥ तुमसे अश्वत्थामा नामक शिवका अवतार वर्णन किया, वह सब सिद्धियोंका करनेवाला और भक्तोंके मनोरथोंका सिद्धकरनेवाला है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इस चरित्रको सावधानचित्तसे सुनताहै, वा भक्तिसे कीर्तन करताहै वह मनोरथोंकी सिद्धिको पाताहै

इत्थं महेश्वरस्तात चक्रे लीलाम्पराम्प्रभुः ॥ अवतीर्य्य क्षितौ द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ॥ ४१ ॥ शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः ॥ त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ॥ ४२ ॥ अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितश्शंकरप्रभोः ॥ सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ ४३ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः ॥ स सिद्धिम्प्राप्नुयादिष्टामन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामश्वत्थामशिवावतारर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ किराताख्यमवतारम्पिनाकिनः॥मूकं च हतवान्प्रीतो योऽर्जुनाय वरन्ददौ ॥ १ ॥ सुयोधनजितास्ते वै पाण्डवाः प्रवराश्च ते ॥ द्रौपद्या च तया साध्व्या द्वैताख्यं वनमाययुः ॥ २ ॥ तत्रैव सूर्य्यदत्तां वै स्थालीं चाश्रित्य ते तदा ॥ कालं च वाहयामासुस्सुखेन किल पाण्डवाः ॥ ३ ॥ छलार्थं प्रेरितस्तेन दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥ सुयोधनेन विप्रेन्द्र पाण्डवान्तिकमादरात् ॥ ४ ॥

और अन्तसमयमें शिवलोकको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श०रु० अश्वत्थामाख्यशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे प्राज्ञ ! शिवजीके किरातनामक अवतारको सुनो, जिन्होंने प्रसन्न हो मूकको मारा, और अर्जुनको वरदान दिया ॥ १ ॥ सुयोधनसे जीते हुए वे श्रेष्ठ पांडव जब द्रौपदीके साथ द्वैतवनमें गये ॥ २ ॥ वहां वे पांडव उस समय सूर्यसे प्राप्तकीहुई स्थालीका आश्रय करके सुखपूर्वक अपना समय विताते थे ॥ ३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! उस दुर्योधनद्वारा कपटसे भेजेहुए मुनि दुर्वासा पांडवोंके निकट आदरसे आये ॥ ४ ॥

और दससहस्र विद्यार्थियों सहित आकर उन छात्रोंके लिये पांडवोंसे इच्छाके अनुसार भोजन माँगा ॥ ५ ॥ तो उस समय उन पांडवोंने स्वीकार करके तपस्वी मुनि दुर्वासा आदिकोंको स्नान करनेके निमित्त भेजा ॥ ६ ॥ हे मुनीश्वर ! तब वे सब पांडव अन्नके अभावसे दुःखी हुए और प्राणोंके त्यागनकरनेकी इच्छा की ॥ ७ ॥ तब द्रौपदीसे स्मरण करतेही श्रीकृष्णजी उसी समय आए आकर स्वयं शाकका पत्ता भक्षण करके उन सबकी तृप्ति करादी ॥ ८ ॥ तब दुर्वासा मुनि उन शिष्योंको तृप्तहुये जान चलेगए, उस समय श्रीकृष्णजीकी कृपासे पांडव कष्टसे छूटे ॥ ९ ॥ तब वे पांडव

छात्रैः स्वैर्वायुतैस्सार्द्धं ययाचे तत्र तान्मुदा ॥ भोज्यं चित्तेप्सितं वै स तेभ्यश्चैव समागतः ॥ ५ ॥ स्वीकृत्य पाण्डवैस्तैस्तैः स्नानार्थं प्रेषितास्तदा ॥ दुर्वासः प्रमुखाश्चैव मुनयश्च तपस्विनः ॥ ६ ॥ अथ ते पाण्डवाः सर्वे अन्नाभावान्मुनीश्वर ॥ दुःखिताश्च तदा प्राणांस्त्यक्तुं चित्ते समादधुः ॥ ७ ॥ द्रौपद्या च स्मृतः कृष्ण आगतस्तत्क्षणादपि ॥ शाकं च भक्षयित्वा तु तेषां तृप्तिं समादधत् ॥ ८ ॥ दुर्वासाश्च तदा शिष्यांस्तृप्ताञ्ज्ञात्वा ययौ पुनः ॥ पाण्डवाः कृच्छ्रनिर्मुक्ताः कृष्णस्य कृपया तदा ॥ ९ ॥ अथ ते पाण्डवाः कृष्णं पप्रच्छुः किम्भविष्यति ॥ बलवाञ्छत्रुरुत्पन्नः किं कार्य्यन्तद्वद प्रभो ॥ १० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तैस्तु श्रीकृष्णः पाण्डवैर्मुने ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजौ पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां पाण्डवाः श्रेष्ठाः श्रुत्वा कर्तव्यमेव हि ॥ मद्वृत्तान्तं विशेषेण शिवसेवासमन्वितम् ॥ १२ ॥ द्वारकां च मया गत्वा शत्रूणां विजिगीषया ॥ विचार्य्य चोपदेशांश्च उपमन्योर्महात्मनः ॥ १३ ॥ मया ह्याराधितः शम्भुः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ बटुके पर्वतश्रेष्ठे सप्तमासं सुसेवितः ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णजीसे पूंछने लगे कि हे प्रभो ! अब क्या होगा, बलवान् शत्रु उत्पन्न होगया अब क्या करना चाहिये सो कहो ? ॥ १० ॥ नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! उन पांडवोंके ऐसा पूछनेपर श्रीकृष्णजी शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके पांडवोंसे बोले ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे श्रेष्ठ पांडवो !!! सुनो, मेरे वृत्तान्तको सुनकर, विशेषकर शिवजीकी सेवा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ मैंने अपने शत्रुओंके जीतनेकी इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उपमन्युके उपदेशोंको विचारकर ॥ १३ ॥ सात महीने बटुकपर्वतपर परमेश्वर, प्रसन्नात्मा शिवजीकी आराधना तथा सेवा की ॥ १४ ॥

साक्षात संसारके स्वामी शिवजीने स्वयं प्रगट हो मुझे इच्छित मनोरथोंको दिया उनके प्रभावसे मैंने सम्पूर्ण उत्तम सामर्थ्य पाये ॥ ॥१५॥ अबभी भोग और मुक्तिके फल देनेवाले शिवकी सेवा करताहूं, तुम भी सब सुखोंके देनेवाले शिवका सेवन करो ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह कह और पांडवोंको धैर्य देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान होगये और शीघ्रही शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करतेहुए द्वारकाको चलेगए ॥ १७ ॥ तब पांडवोंने उस दुर्योधनके गुणोंकी तथा बलकी परीक्षा करनेके निमित्त भीलको भेजा ॥ १८ ॥ वह भीलभी वहां जाकर दुर्योधनके श्रेष्ठ गुणोंके उदयको जानकर फिर उन

इष्टान्कामानदान्मह्यं विश्वेशश्च स्वयं स्थितः ॥ तत्प्रभावान्मया सर्वसामर्थ्यं लब्धमुत्तमम् ॥ १५ ॥ इदानीं सेव्यते देवो भुक्तिमुक्ति फलप्रदः ॥ यूयं सेवत तं शम्भुमपि सर्वसुखावहम् ॥ १६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे कृष्ण आश्वास्याथ च पाण्डवान् ॥ द्वारकामगमच्छीघ्रं स्मरञ्छिवपदाम्बुजम् ॥ १७ ॥ पाण्डवा अथ भिल्लं च प्रेषयामासुरोजसा ॥ गुणानां च परीक्षार्थं तस्य दुर्य्योधनस्य च ॥ १८ ॥ सोपि सर्वं च तत्रत्यन्दुर्योधनगुणोदयम् ॥ समीचीनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून्प्रति ॥ १९ ॥ तदुक्तन्ते निशम्यैवं दुःखम्प्रापुर्मुनीश्वर ॥ परस्परं समूचुस्ते पाण्डवा अतिदुखिताः ॥ २० ॥ किङ्कर्तव्यं क्व गन्तव्यमस्माभिरधुना युधि ॥ समर्था अपि वै सर्वे सत्यपाशेन यन्त्रिताः ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एतस्मिन्समये व्यासो भस्मभूषितमस्तकः ॥ रुद्राक्षाभरणश्चायाज्जटाजूटविभूषितः ॥ २२ ॥ पञ्चाक्षरं जन्ममन्त्रं शिवप्रेमसमाकुलः ॥ तेजसां च स्वयं राशिस्साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ २३ ॥ तन्दृष्ट्वा ते तदा प्रीता उत्थाय पुरतः स्थिताः ॥ दत्त्वासनं तदा तस्मै कुशाजिनसुशोभितम् ॥ २४ ॥

पांडवोंके समीपमें आया ॥१९॥ हे मुनीश्वर ! उसका कथन सुनकर पांडव दुःखी हुए, और वे दुःखित पांडव परस्परमें कहने लगे ॥२०॥ हम सबोंको युद्धमें अब क्या करना चाहिये, हम सब सामर्थ्यवान् होकर सत्यपाशसे बंधे हैं ॥ २१ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसी समयमें भस्मसे भूषित मस्तकवाले, रुद्राक्षको धारण किए, जटाओंसे शोभायमान, व्यासजी आये ॥ २२ ॥ वह 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मंत्रको जपतेहुए शिवजीके प्रेममें मग्न स्वयं तेजस्वी साक्षात दूसरे धर्मकी समान थे ॥ २३ ॥ उनको देखकर वे पांडव प्रसन्न हो उठकर आगे स्थितहुए और उन व्यासजीको कुशा तथा

मृगछालाका शोभायमान आसन देकर ॥ २४ ॥ हर्षित हो अनेकप्रकारकी स्तुति करके, अपने भाग्यको सराहतेहुए उन व्यासजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ हे प्रभो! हमारा सुन्दर तप, अनेकदान, यह सब सफल हुआ, आपके दर्शनसे हम तृप्त हुए ॥ २६ ॥ हे पितामह ! आपके दर्शनसे हमारा दुःख दूर हुआ, क्रूरकर्म करनेवाले दुष्टोंने हमको बडा दुःख दियाहै ॥ २७ ॥ आपके दर्शन होनेपर वह दुःख जातारहा अन्यथा वह हमारा दुःख भी नहीं जाता, यह निश्चय है ॥ २८ ॥ सब कर्मोंमें समर्थहुए, बडे पुरुषोंके घरपर आनेसे यदि दुःख दूर न हो तो इसमें प्रारब्धही कारण है ॥ २९ ॥

तत्रोपविष्टं तं व्यासं पूजयन्ति स्म हर्षिताः ॥ स्तुतिं च विविधां कृत्वा धन्याः स्म इतिवादिनः ॥ २५ ॥ तपश्चैव सुसन्तप्तं दानानि विविधानि च ॥ तत्सर्वं सफलं जातं तृप्तास्ते दर्शनात्प्रभो ॥ २६ ॥ दुःखं च दूरतो जातन्दर्शनात्ते पितामह ॥ दुष्टैश्चैव महादुःखं दत्तं नः क्रूरकर्मभिः ॥ २७ ॥ श्रीमतान्दर्शने जाते दुःखं चैव गमिष्यति ॥ कदाचिन्न गतं तत्र निश्चयोयं विचारितः ॥ २८ ॥ महतामाश्रमे प्राप्ते समर्थे सर्वकर्मणि ॥ यदि दुःखं न गच्छेत्तु दैवमेवात्र कारणम् ॥ २९ ॥ निश्चयेनैव गच्छेत्तु दारिद्र्यं दुःखकारणम् ॥ महतां च स्वभावोयं कल्पवृक्षसमो मतः ॥ ३० ॥ तद्गुणानेव गणयेन्महतो वस्तुमात्रतः ॥ आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो ॥ ३१ ॥ लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्य्या विचारणा ॥ उत्तमानां स्वभावोयं यद्दीनप्रतिपालनम् ॥ ३२ ॥ रंकस्य लक्षणं लोके ह्यतिश्रेयस्करं मतम् ॥ पुरोऽस्य परयत्नो वै सुजनानां च सेवनम् ॥ ३३ ॥ अतः परं च भाग्यं वै दोषश्चैव न दीयताम् ॥ एतस्मात्कारणात्स्वामिंस्त्वयि दृष्टो शुभन्तदा ॥ ३४ ॥

बडे पुरुषोंके आनेसे दुःखका कारण दारिद्र्य निश्चयही दूर होताहै, यह बडे पुरुषोंको स्वभावही कल्पवृक्षकी समान माना गया है ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! उनके गुणोंको ही बडी वस्तु समझै कि जिनके आश्रयसे ही मनुष्यको वे गुण प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इसमें छोटे बडे पनका विचार नहीं करना चाहिये, क्यों कि—उत्तम पुरुषोंका यह स्वभावही है कि वे दीनोंका पालन करतेहैं ॥ ३२ ॥ संसार निर्धनताका लक्षण अत्यन्त कल्याण मानागया है, क्योंकि इस एकको दूसरोंका यत्नपूर्वक रक्षण और श्रेष्ठपुरुषोंका सेवन यहही रहता है ॥ ३३ ॥ हे स्वामिन् ! इसके आगे भाग्य है, उसको दोष नहीं देना चाहिये,

इस कारणसे आपके दर्शनसे मैं अपना मंगल मानताहूं ॥ ३४ ॥ आपके आगमनमात्रसे हमारे मन संतुष्ट हुए आप हमको कुछ उपदेशदें कि जिससे शीघ्र हमारा दुःख नष्ट हो ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह पांडवोंके वचन सुनकर महामुनि व्यासजी प्रसन्नचित्त हो यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ हे पांडवो ! ! ! तुम कष्ट करनेके योग्य नहीं हो, तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो कि तुमने सत्यका लोप नहीं किया ॥ ३७ ॥ सत्पुरुषोंका यह श्रेष्ठ स्वभावही है कि प्राणोंके चले जानेपर भी सुन्दर फलके देनेवाले सच्चे धर्मको नहीं त्यागते ॥ ३८ ॥ हमको तो तुम और वे कौरव दोनोंही समान हो

त्वदागमनमात्रेण सन्तुष्टानि मनांसि नः ॥ दिशोपदेशं येनाशु दुःखं नष्टम्भवेच्च नः ॥ ३५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवानां महामुनिः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा व्यासश्चैवाब्रवीदिदम् ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवाश्च यूयं वै न कष्टं कर्तुमर्हथ ॥ धन्याः स्थ कृतकृत्याः स्थ सत्यं नैव विलोपितम् ॥ ३७ ॥ सुजनानां स्वभावोयं प्रणान्तेऽपि सुशोभनः ॥ धर्मं त्यजन्ति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम् ॥ ३८ ॥ अस्माकं चैव यूयं च ते चापि समताङ्गताः ॥ तथापि पक्षपातो वै धर्मिष्ठानां मतो बुधैः ॥ ३९ ॥ धृतराष्ट्रेन दुष्टेन प्रथमं च ह्यचक्षुषा ॥ धर्मस्त्यक्तः स्वयं लोभाद्युष्माकं राज्यमाहृतम् ॥ ४० ॥ तस्य यूयं च ते चापि पुत्रा एव न संशयः ॥ पितर्य्युपरते बाला अनुकम्प्या महात्मनः ॥ ४१ ॥ पश्चात्पुत्रश्च तेनैव वारितो न कदाचन ॥ अनर्थो नैव जायेत यच्चैवं च कृतन्तदा ॥ ४२ ॥ अतः परं च यज्जात तज्जातं नान्यथा भवेत् ॥ अयन्दुष्टो भवन्तश्च धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः ॥ ४३ ॥ तस्मादन्ते च तस्यैवाशुभं हि भविता ध्रुवम् ॥ यच्चैव वापितं बीजं तत्प्ररोहो भवेदिह ॥ ४४ ॥

तो भी बुद्धिमानोंका धर्मात्माओंमें पक्षपात होताही है ॥ ३९ ॥ पहलेसेही दुष्ट, नेत्रहीन, धृतराष्ट्रने स्वयं लोभसे अपना धर्म त्यागा कि जो तुम्हारा राज्य छीनलिया ॥ ४० ॥ उस धृतराष्ट्रके तुम पांडव, तथा वे कौरव, पुत्र ही हैं इसमें संशय नहीं, पिताके मरनेपर महात्माओंको बालकोंके ऊपर दयाही करनी चाहिये ॥ ४१ ॥ और पीछे उसने अपने पुत्र दुर्योधनको भी अनर्थसे निवारण नहीं किया, यदि ऐसा करता तो यह अनर्थ कभी न होता ॥ ४२ ॥ इसके आगे जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही वह अन्यथा होही नहीं सकता, यह धृतराष्ट्र दुष्ट है, आप सब धर्मात्मा सत्यवादी हैं ॥ ४३ ॥ इस कारण

अन्तमें उसका ही निश्चय नाश होगा, जो बीज उसने बुवायाहै वह यहां अवश्य उपजैगा ॥ ४४ ॥ इस कारण आपको किसी प्रकार दुःख नहीं करना चाहिये, आपका शुभ होगा इसमें कुछ संशय नहींहै ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार व्यासजीने कहकर उन युधिष्ठिर आदि सब पांडवोंको प्रसन्न किया और वे फिर यह वचन बोले ॥ ४६ ॥ पांडव बोले, हे नाथ ! तुमने सत्य कहा, दुष्टलोग हमको निरंतर वनमें भी बारंबार दुःख देतेहैं ॥ ४७ ॥ हे विभो ! मेरे अशुभको नष्ट करो और मुझे कुछ शुभदान करो पहले श्रीकृष्णजीने कहाथा कि सदैव शिवजीकी आराधना करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

तस्माद्दुःखं न कर्तव्यं भवद्भिः सर्वथा ध्रुवम् ॥ भविष्यति शुभं वो हि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४५ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्ता पण्डवाः सर्वे तेन व्यासेन प्रीणिताः ॥ युधिष्ठिरमुखास्ते च पुनरेवाब्रुवन्वचः ॥ ४६ ॥ पाण्डवा ऊचुः ॥ सत्यमुक्तन्त्वया नाथ दुष्टैर्दुःखं निरन्तरम् ॥ दुष्टात्मभिर्वने चापि दीयते हि मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ तन्नाशयाशुभम्मेद्य किंचिद्देयं शुभं विभो ॥ कृष्णेन कथितं पूर्वमाराध्यश्शङ्करस्सदा ॥ ४८ ॥ प्रमादश्च कृतोऽस्माभिस्तद्वचश्शिथिलीकृतम् ॥ स देवमार्गस्तु पुनरिदानीमुपदिश्यताम् ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो हर्षसमन्वितः ॥ उवाच पाण्डवान्प्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयतां वचनं मेद्य पाण्डवा धर्म्मबुद्धयः ॥ सत्यमुक्तन्तु कृष्णेन मया संसेव्यते शिवः ॥ ५१ ॥ भवद्भिः सेव्यताम्प्रीत्या सुखं स्यादतुलं सदा ॥ सर्वदुःखं भवत्येव शिवाऽसेवात एव हि ॥ ५२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अथ पंचसु तेष्वेव विचार्य्य शिवपूजने ॥ अर्जुनं योग्यमुच्चार्य व्यासो मुनिवरस्तथा ॥ ५३ ॥

सो हमने असावधानीसे उनका वचन शिथिल किया, उस देवमार्गका अब फिर उपदेश कीजिये ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह वचन सुनकर व्यासजी बडे प्रसन्न हुए और प्रीतिसहित शिवके चरणकमलोंको स्मरण करके पांडवोंसे बोले ॥५०॥ व्यासजी बोले, हे धर्मबुद्धिवाले ! पांडवो !! मेरा वचन सुनो श्रीकृष्णने सत्य कहाहै मैंभी शिवजीको सेवन करताहूं ॥५१॥ और आपको भी प्रेमसहित सेवन करना चाहिये, तुमको अधिक सुख होगा, शिवकी सेवा न करनेसे सब दुःख होताहै ॥५२॥ नन्दीश्वर बोले, तब मुनि व्यासजीने उन पांचों पांडवोंमें शिवके पूजनमें अर्जुनको योग्य विचारा और कहा ॥५३॥

तपःस्थानं विचार्य्यैवं ततस्स मुनिसत्तमः ॥ पाण्डवान्धर्मसन्निष्ठान्पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥ ५४ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयताम्पाण्डवास्सर्वे कथयामि हितं सदा ॥ शिवं सर्वं परं दृष्ट्वा परं ब्रह्म सताङ्गतिम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादित्रिपरार्द्धान्तं यत्किञ्चिद्दृश्यते जगत् ॥ तत्सर्वं शिवरूपं च पूज्यन्ध्येयं च तत्पुनः ॥ ५६ ॥ सर्वेषां चैव सेव्योसौ शङ्करस्सर्वदुःखहा ॥ शिवः स्वल्पेन कालेन संप्रसीदति भक्तितः ॥५७॥ सुप्रसन्नो महेशो हि भक्तेभ्यः सकलप्रदः ॥ भुक्तिं मुक्तिमिहामुत्र यच्छतीति सुनिश्चितम् ॥ ५८ ॥ तस्मात्सेव्यस्सदा शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥ पुरुषश्शङ्करः साक्षाद्दुष्टहन्ता सतांगतिः ॥ ५९ ॥ परन्तु प्रथमं शक्रविद्यां दृढमना जपेत् ॥ क्षत्रियस्य पराख्यस्य चेदमेव समाहितम् ॥६०॥ अतोर्जुनश्च प्रथमं शक्रविद्यां जपेद्दृढः ॥ करिष्यति परीक्षाम्प्राक् संतुष्टस्तद्भविष्यति ॥ ६१ ॥ सुप्रसन्नश्च विघ्नानि संहरिष्यति सर्वदा ॥ पुनश्चैवं शिवस्यैव वरं मन्त्रं प्रदास्यति ॥ ६२ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वार्जुनमाहूयोपेन्द्रविद्यामुपादिशत् ॥ स्नात्वा च प्राङ्मुखो भूत्वा जग्राहार्जुन उग्रधीः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार वह मुनि व्यासजी तपके स्थानको विचार सत्यधर्ममें स्थित हुए पांडवोंसे यह वचन बोले ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले, हे पांडवो ! ! ! सुनो, तुम्हारा हित कहताहूं, सत्पुरुषोंकी गति, परब्रह्म, सबसे परे शिवको देखकर ॥ ५५ ॥ तथा ब्रह्मासे लेकर त्रिपरार्ध संख्यातक जो कुछ संसार दीखताहै सो सबही शिवरूप है और वह सदा पूजनेयोग्य तथा ध्यान करने योग्यहै ॥ ५६ ॥ इन दुःखोंके दूर करनेवाले शिवजीकी सबको सेवा करनी चाहिये, शिवजी भक्तिसे थोडेही समयमें प्रसन्न होतेहैं ॥ ५७ ॥ अतिप्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तोंको सब कुछ देनेवाले हैं, भोग तथा मुक्तिको इसलोक और परलोकमें निश्चयही देतेहैं ॥ ५८ ॥ इस कारण भोग और मुक्तिके चाहनेवालोंको सदाही शिवजीकी सेवा करनीचाहिये, शंकर साक्षात् पुरुषहैं, और दुष्टोंके नाश करनेवाले सत्पुरुषोंकी गतिहैं ॥ ५९ ॥ परन्तु पहले दृढमन होके इन्द्रविद्याको जपना चाहिये, परमप्रसिद्ध क्षत्रियको यहही धारणा करनी चाहिये ॥ ६० ॥ इस कारण अर्जुनको दृढहोकर पहले इन्द्रकी विद्या जपनी चाहिये, प्रथम वह इन्द्र परीक्षा करेगा तब संतुष्ट होगा ॥६१ ॥ अतिप्रसन्न होकर निरंतर सब विघ्नोंको दूर करैगा, फिर इसी प्रकार शिवजीके श्रेष्ठ मंत्रको देगा ॥ ६२ ॥ नन्दीश्वर बोले, व्यासजीने यह कह अर्जुनको बुलाय इन्द्रसम्ब

न्धिनी विद्याका उपदेश दिया और तीव्रबुद्धिवाले अर्जुनने पूर्वकी ओर मुख करके तथा स्नानकर उसे ग्रहण किया ॥ ६३ ॥ व्यासजीने अर्जुनको पार्थिवका विधान बताया, तब उदारबुद्धि व्यासजी उस अर्जुनसे फिर बोले ॥ ६४ ॥ व्यासजी बोले, हे अर्जुन ! अब इस सुन्दर शोभावाले इन्द्रकीलपर्वतपर गंगाजीके किनारे स्थित होकर अच्छीप्रकार तप करो ॥ ६५ ॥ यह विद्या अदृश्य सदा तेरे हितकरनेवाली होगी, इसप्रकार मुनि व्यासजीने अर्जुनको आशीर्वाद दिया, तब उन पांडवोंसे कहा ॥६६॥ हे नृपसत्तम ! तुम सब धर्मके ऊपर स्थित होकर रहो तुमको सब प्रकार श्रेष्ठ सिद्धिहोगी, इसमें संशय

पार्थिवस्य विधानं च तस्मै मुनिवरो ददौ ॥ प्रत्युवाच च तं व्यासो धनंजयमुदारधीः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच ॥ इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीले सुशोभने ॥ जान्हव्याश्च समीपे वै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु ॥ ६५ ॥ अदृश्या चैव विद्या स्यात्सदा ते हितकारिणी ॥ इत्याशिषन्ददौ तस्मै ततः प्रोवाच तान्मुनिः ॥ ६६ ॥ धर्म्ममास्थाय सर्वे वै तिष्ठन्तु नृपसत्तमाः ॥ सिद्धिः स्यात्सर्वथा श्रेष्ठा नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति दत्त्वाशिषन्तेभ्यः पाण्डवेभ्यो मुनीश्वरः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं व्यासश्चान्तर्दधे क्षणात् ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अर्जुनोपि तदा तत्र दीप्यमानो व्यदृश्यत ॥ मन्त्रेण शिवरूपेण तेजश्चातुलमावहन् ॥ ॥ १ ॥ ते सर्वे चार्जुनन्दृष्ट्वा पाण्डवा निश्चयं गताः ॥ जयोऽस्माकं ध्रुवञ्ज्ञातन्तेजश्च विपुलं यतः ॥ २ ॥ इदङ्कार्य्यन्त्वया साध्यन्नान्येन च कदाचन ॥ व्यासस्य वचनाद्भ्रातः सफलं कुरु जीवितम् ॥ ३ ॥

नहीं है ॥ ६७ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार मुनीश्वर व्यासजी उन पांडवोंको आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर उसीसमय अन्तर्धान हुए ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ०श०रु० किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय अर्जुनका शिवरूपमंत्रसे अधिक तेज बढने लगा और प्रकाशितहुआ दीखपडा ॥ १ ॥ उन सब पांडवोंने अर्जुनको देखकर निश्चय किया कि निःसन्देह अब हमारी विजय हुई, क्योंकि बडा तेज प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ हे अर्जुन ! व्यासजीके वचनसे यह कार्य तुमको साधना चाहिये, आप शोभित होतेहैं

और हमारे जीवनको सफल करो ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर वियोगके दुःखसे व्याकुल हुए भेजनेकी इच्छा न होनेपरभी पांडवोंने अर्जुनको उस पर्वतपर आदरसहित भेजा ।. ४ ॥ उस समय पतिव्रता, द्रौपदी, दुःखीहुई, नेत्रके आंसुओंको रोककर बिदाके समय यह शुभ वचन बोली ॥ ५ ॥ द्रौपदी बोली, हे राजन् ! व्यासजीने तुमको जो उपदेश दिया है उसे प्रयत्नसे पूर्ण करना चाहिये, तुम्हारा मार्ग शुभका देनेवाला हो और शिवजी तुम्हारा कल्याण करनेवाले हों ॥ ६ ॥ वे सब पांचोंपांडव आदर सहित अर्जुनको बिदा कर अति दुःखी हुए और सब मिलकर वहां रहनेलगे ॥ ७ ॥ हे ऋषिसत्तम !

इति प्रोच्यार्जुनन्ते वै विरहौत्सुक्यकातराः ॥ अनिच्छन्तोपि तत्रैव प्रेषयामासुरादरात् ॥ ४ ॥ द्रौपदी दुःखसंयुक्ता नेत्राश्रूणि निरुध्य च ॥ प्रेषयन्ती शुभं वाक्यन्तदोवाच पतिव्रता ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ व्यासोपदिष्टं यद्राजंस्त्वया कार्यं प्रयत्नतः ॥ शुभप्रदोऽस्तु ते पन्थाश्शंकरश्शंकरोस्तु वै ॥ ६ ॥ ते सर्वे चावसंस्तत्र विसृज्यार्जुनमादरात् ॥ अत्यन्तदुःखमापन्ना मिलित्वा पञ्च एव च ॥ ७ ॥ स्थितास्तत्र वदन्ति स्म श्रूयतामृषिसत्तम ॥ दुःखेपि प्रियसंगो वै न दुःखाय प्रजायते ॥८॥ वियोगे द्विगुणन्तस्य दुःखम्भवति नित्यशः ॥ तत्र धैर्य्यधरस्यापि कथन्धैर्य्यम्भवेदिह ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ कुर्वत्स्वेव तदा दुःखम्पाण्डवेषु मुनीश्वरः ॥ कृपासिन्धुश्च स व्यास ऋषिवर्य्यस्समागतः ॥ १० ॥ तन्तदा पाण्डवास्ते वै नत्वा सम्पूज्य चादरात् ॥ दत्त्वासनं हि दुःखाढ्याः करौ बद्ध्वा वचोऽब्रुवन् ॥ ११ ॥ ॥ पाण्डवा ऊचुः ॥ श्रूयतामृषभ श्रेष्ठ दुःखदग्धा वयम्प्रभो ॥ दर्शनन्तेऽद्य सम्प्राप्य ह्यानन्दं प्राप्नुमो मुने ॥ १२ ॥

सुनो वे वहां स्थितहुए परस्परमें कहतेथे कि दुःखके समयमें भी प्रियका संग हो तो दुःखके लिये नहीं होताहै ॥ ८ ॥ उसके वियोगमें नित्य दूना दुःख होताहै, उस समय धैर्य रखनेवालेका भी धैर्य किसप्रकार रहसकता है, अर्थात प्रियके वियोगमें धैर्यधारीका भी धीरज टूट जाताहै ॥ ९ ॥ नन्दीश्वर बोले, उस समय पांडवोंके दुःख करनेपर मुनीश्वर, कृपासिन्धु, ऋषिवर्य, व्यासजी आये ॥ १० ॥ तब उनको आदर सहित सत्कार करके तथा प्रणाम करके आसन देकर दुःखीहुए पांडव हाथ बांध यह वचन बोले ॥ ११ ॥ पांडव बोले, हे ऋषभश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! हे मुने ! आज आपके दर्शन पाकर

हम लोग दुःखसे रहितहो आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! हमारे दुःख नाश होनेके लिये कुछ समय यहां निवास करो, आप ब्रह्मर्षि के
दर्शन करनेसे सब दुःख नष्ट होतेहैं ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उनके कहनेपर ऋषिश्रेष्ठ व्यासजीने सुखके निमित्त निवास किया और उस समय
अनेक प्रकारकी कथाओंसे उन पांडवोंका दुःख दूर किया ॥ १४ ॥ हे सन्मुने ! उन व्यासजीके साथ वार्ता करनेपर विनीतात्मा, धर्मराज, प्रणाम करके
बोले ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर बोले, हे ऋषिश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! हे महाप्राज्ञ ! मेरा दुःख शान्त होताहै मैं आपसे जो पूछताहूं सो कहिये ॥ १६ ॥ सो पहले ऐसे

कियत्कालं वसात्रैव दुःखनाशाय नः प्रभो ॥ दर्शनात्तव विप्रर्षेस्सर्वं दुःखं विलीयते ॥ १३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्स ऋषिश्रेष्ठो
न्यवसत्तत्सुखाय वै ॥ कथाभिर्विविधाभिश्च तद्दुःखं नोदयंस्तदा ॥ १४ ॥ वार्तायां क्रियमाणायान्तेन व्यासेन सन्मुने ॥ सुप्रणम्य
विनीतात्मा धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १५ ॥ धर्मराज उवाच ॥ शृणु त्वं हि ऋषिश्रेष्ठ दुःखशान्तिर्मता मम ॥ पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ
कथनीयन्त्वया प्रभो ॥ १६ ॥ ईदृशं चैव दुःखं च पुरा प्राप्तश्च कश्चन ॥ वयमेव परं दुःखं प्राप्ता वै नैव कश्चन ॥१७॥ व्यास उवाच ॥
राज्ञस्तु नलनाम्नो वै निषधाधिपतेः पुरा ॥ भवद्दुःखाधिकं दुःखं जातन्तस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ हरिश्चन्द्रस्य नृपतेर्जातं दुःखम्मह
त्तरम् ॥ अकथ्यन्तद्विशेषेण परशोकावहन्तथा ॥ १९ ॥ दुःखन्तथैव विज्ञेयं रामस्याप्यथ पाण्डव ॥ यच्छ्रुत्वा स्त्रीनराणां च भवे
न्मोहो महत्तरः ॥ २० ॥ तस्माद्वर्णयितुन्नैव शक्यते हि मया पुनः ॥ शरीरं दुःखराशिं च मत्वा त्याज्यन्त्वयाधुना ॥ २१ ॥

दुःखको कभी और भी कोई प्राप्त हुआ है या मैं ही इस बडे दुःखमें पडा हूं क्या और कोई ऐसे दुःखको नहीं प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले,
पहले निषध देश के स्वामी महात्मा राजानलको आपसे भी अधिक दुःख हुआ है ॥ १८ ॥ और राजा हरिश्चन्द्रने बडा दुःख भोगाहै, वह परमशोक
देनेवाला दुःख, विशेषकर अनिर्वचनीय है ॥१९॥ हे पांडव ! उसी प्रकार रामचन्द्रको बडा दुःख हुआहै, जिसको सुनकर स्त्री पुरुषोंको बडा भारी मोह
होता है ॥२०॥ इसकारण उस चरित्रके वर्णन करनेको मैं समर्थ नहीं हूं, यह शरीर दुःखोंका समूह है यह जानकर तुमको दुःख त्यागना चाहिये॥२१॥

जिसने यह जगत धारण किया है वह ही व्याप्त हो रहा है इसमें कुछभी सन्देह नहीं, पहले तो माताके गर्भमें जन्मही दुःखका कारण है ॥ २२ ॥ फिर कौमार अवस्थामें बालकोंको लीला सम्बन्धी महादुःख है, इसके पीछे युवा अवस्थामें दुःखरूपी कामनाओंके भोगते हुए दुःख होताहै ॥ २३ ॥ अनेक प्रकारके कार्योंमें आसक्त हुए दिनोंके बीतनेपर नित्य आयु नष्ट होती जातीहै और मनुष्य उसको नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ इसके पीछे अन्तमें मरणरूप महादुःख होताहै, पीछे मूर्ख मनुष्योंको अनेक प्रकारके नरककी पीडा भोगने पडतीं हैं ॥ २५ ॥ इस कारण यह सब संसार अनित्य है, तुम

येनेदञ्च धृतन्तेन व्याप्तमेव न संशयः ॥ प्रथमम्मातृगर्भे वै जन्म दुःखस्य कारणम् ॥ २२ ॥ कौमारेऽपि महादुःखं बाललीलानुसारियत् ॥ ततोपि यौवने कामान्भुंजानो दुःखरूपिणः ॥ २३ ॥ गतागतैर्दिनानां हि कार्यभारैरनेकशः ॥ आयुश्च क्षीयते नित्यं न जानाति ह तत्पुनः ॥ २४ ॥ अन्ते च मरणं चैव महादुःखमतः परम् ॥ नानानरकपीडाश्च भुज्यंतेज्ञैर्नरैस्सदा ॥ २५ ॥ तस्मादिदमसत्यं च त्वन्तु सत्यं समाचर ॥ येनैव तुष्यते शम्भुस्तथा कार्यं नरेण च ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ एवं विविधवार्ताभिः कालनियार्पणन्तदा ॥ चक्रुस्ते भ्रातरः सर्वे मनोरथपथैः पुनः ॥ २७ ॥ अर्जुनोपि स्वयं गच्छन्दुर्गाद्रिषु दृढव्रतः ॥ यक्षं लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघ्नन्नेकशः ॥ २८ ॥ मनसा हर्षसंयुक्तो जगामाचलमुत्तमम् ॥ तत्र गत्वा च गंगायास्समीपं सुन्दरं स्थलम् ॥ २९ ॥ अशोककाननं यत्र तिष्ठति स्वर्ग उत्तमः ॥ तत्र तस्थौ स्वयं स्नात्वा नत्वा च गुरुमुत्तमम् ॥ ३० ॥ यथोपदिष्टं वेषादि तथा चैवाकरोत्स्वयम् ॥ इन्द्रियाण्यपकृष्यादौ मनसा संस्थितोऽभवत् ॥ ३१ ॥

सत्यका आचरण करो, जिसप्रकार शिवजी संतुष्ट हों मनुष्यको वही करना चाहिये ॥ २६ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन सब भाइयोंने, मनोरथके मार्गवाले अनेक प्रकारके संभाषणोंसे समयको बिताया ॥ २७ ॥ दृढव्रत अर्जुनने भी स्वयं इन्द्रकील पर्वतपर जाय, किसी यक्षको पाकर उसके द्वारा अनेक, डांकू राक्षसोंको नष्ट किया ॥ २८ ॥ मनमें प्रसन्नहो उत्तम पर्वतको गमन किया, वहां जाकर गंगाजीके समीप सुन्दर स्थल पाया ॥ २९ ॥ जहां अशोकवन उत्तम स्वर्गकी समान है, वहां गंगाजीमें स्नानकर श्रेष्ठ गुरुको नमस्कार करके स्थित हुआ ॥ ३० ॥ जैसा उपदेश दिया था उसी प्रकार

वेष आदि स्वयं किया, इन्द्रियोंको वशमें करके मन लगाकर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ फिर समानसूत्रवाले, सुन्दर पार्थिवलिंगको बनाकर उस अर्जुनने
उसके आगे श्रेष्ठ तेजके समूह शिवका ध्यान किया ॥ ३२ ॥ तीनों कालमें स्नानकर बारंबार शिवजीका अनेक प्रकार पूजनकर उपासना की ॥ ३३ ॥
तब उस अर्जुनके शरसे तेज निकलने लगा, उसको देख चर भय मानने लगे कि यह तेज कब प्रवेश होगा ॥ ३४ ॥ फिर उन्होंने यह बिचारा कि-
इन्द्रसे कहना चाहिये यह कहकर बेगसे वे इन्द्रके निकट गये ॥ ३५॥ चर बोले, हे देवेश ! कोई देवता अथवा ऋषि या सूर्य तथा अग्नि वनमें तप करताहै,

पुनश्च पार्थिवं कृत्वा सुन्दरं समसूत्रकम् ॥ तदग्रे प्रणिदध्यौ स तेजोराशिमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ त्रिकालं चैव सुस्नातः पूजनं विविध
तदा ॥ चकारोपासनन्तत्र हरस्य च पुनः पुनः ॥ ३३ ॥ तस्यैव शिरसस्तेजो निस्सृतन्तच्चरास्तदा ॥ दृष्ट्वा भयं समापन्नाः प्रविष्टश्च
कदा ह्ययम् ॥ ३४ ॥ पुनस्ते च विचार्यैवं कथनीयं बिडौजसे ॥ इत्युक्त्वा तु गतास्ते वै शक्रस्यान्तिकमञ्जसा ॥ ३५ ॥ चरा ऊचुः ॥
देवो वाऽथ ऋषिश्चैव सूर्य्यो वाथ विभावसुः ॥ तपश्चरति देवेश न जानीमो वने च तम् ॥ ३६ ॥ तस्यैव तेजसा दग्धा आगतास्तव
सन्निधौ ॥ निवेदितश्चरित्रं तत्क्रियतामुचितन्तु यत् ॥ ३७ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तैश्चरैस्सर्वं ज्ञात्वा पुत्रचिकीर्षितम् ॥
सगोत्रपान्विसृज्यैव तत्र गन्तुं मनो दधे ॥ ३८ ॥ स वृद्धब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचारी शचीपतिः ॥ जगाम तत्र विप्रेन्द्र परीक्षार्थं हि तस्य
वै ॥ ३९ ॥ तमागतन्तदा दृष्ट्वाकार्षीत्पूजाञ्च पाण्डवः ॥ स्थितोग्रे च स्तुतिं कृत्वा क्वायातोसि वदाधुना ॥ ४० ॥ इत्युक्तस्तेन देवेशो
धैर्य्यार्थन्तस्य प्रीतितः ॥ परीक्षागर्वितं वाक्यं पाण्डवन्तं ततोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥

हम उसको नहीं जानते हैं ॥ ३६ ॥ उसीके तेजसे तापित हो हम आपके निकट आये हैं, सो सब समाचार हमने निवेदन किया, जो उचितहो सो कीजिये
॥३७॥ नन्दीश्वर बोले, दूतोंके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने पुत्रकी इच्छाको जानकर अपने परिवारको छोड वहां जानेकी इच्छा की॥ ३८॥ हे विप्रेन्द्र !
वह इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूपधर अर्जुनकी परिक्षा करनेको गए ॥ ३९ ॥ उनको आया हुआ देखकर अर्जुनने पूजाकी और स्तुतिकरके उनके
आगे खडे होकर कहा कि, इससमय आप कहांसे आये हो सो कहिये ॥४० ॥ ऐसा अर्जुनके कहनेपर इन्द्रने उसके धैर्यदेनेके निमित्त प्रीतिपूर्वक परीक्षासे

गर्वित वचन, कहे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले, हे तात ! इससमय तू नई अवस्थामें क्यों तप करताहै, यह तेरा तप मुक्तिके अर्थ है अथवा विजयके निमित्त है ॥ ४२ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा पूछनेपर उस अर्जुनने सब वृतान्त कहा, यह सुनकर वह ब्राह्मण फिर बोले ॥४३॥ ब्राह्मण बोले, हे वीर सुख पानेको क्षत्रियधर्मसे तप करतेहो सो ठीक नहीं है मुक्तिके अर्थ तप करो ॥ ४४ ॥ हे श्रेष्ठ ! इन्द्र सुखका देनेवाला है मुक्तिका दाता नहीं है, इसकारण तुमको सबप्रकार श्रेष्ठ तप करना चाहिये ॥ ४५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस ब्राह्मणका वचन सुनकर दृढव्रत नम्रस्वभाववाले अर्जुनने क्रोध करके उसका

ब्राह्मण उवाच ॥ नवे वयसि वै तात किन्तपस्यसि साम्प्रतम् ॥ मुक्त्यर्थं वा जयार्थं किं सर्वथैतत्तपस्तव ॥ ४२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन सर्वं संवेदितम्पुनः ॥ तच्छ्रुत्वा स पुनर्वाक्यमुवाच ब्राह्मणस्तदा ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ युक्तं न क्रियते वीर सुखं प्राप्तुं च यत्तपः ॥ क्षात्रधर्मेण क्रियते मुक्त्यर्थं कुरुसत्तम ॥४४॥ इन्द्रस्तु सुखदाता वै मुक्तिदाता भवेन्न हि ॥ तस्मात्त्वं सर्वथा श्रेष्ठ कर्तुमर्हसि सत्तपः ॥ ४६ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इदन्तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधं चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा तदनादृत्य सुव्रतः ॥४६॥ अर्जुन उवाच ॥ राज्यार्थं न च मुक्त्यर्थं किमर्थं भाषसे त्विदम् ॥ व्यासस्य वचनेनैव क्रियते तप ईदृशम् ॥ ४७ ॥ इतो गच्छ ब्रह्मचारिन्मा पातयितुमिच्छसि ॥ प्रयोजनं किमत्रास्ति तव वै ब्रह्मचारिणः ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तः स प्रसन्नोभूत्सुन्दरं रूपमद्भुतम् ॥ स्वोपस्करणसंयुक्तं दर्शयामास वै निजम् ॥ ४९ ॥ शक्ररूपन्तदा दृष्ट्वा लज्जितश्चार्जुनस्तदा ॥ स इन्द्रस्तं समाश्वास्य पुनरेव वचोब्रवीत् ॥५०॥ इंद्र उवाच ॥ वरं वृणीष्व हे तात धनंजय महामते ॥ यदिच्छसि मनोभीष्टन्नादेयं विद्यते तव ॥ ५१ ॥

निरादरकर कहा ॥ ४६ ॥ अर्जुन बोला, तुम क्यों ? ऐसा कहतेहो हम न राज्यके लिये न मुक्तिके लिये किन्तु व्यासजीके वचनसे ही ऐसा तप करतेहैं ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मचारिन् ! इधरको जाइये, तुम मुझे गिरानेकी इच्छा मत करो, तुम ब्रह्मचारीको इससे क्या प्रयोजन है ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले, इसप्रकार कहनेपर इन्द्र प्रसन्नहुए और सबके उपकार करने योग्य अपने सुन्दर रूपको दिखाया ॥ ४९ ॥ तब इन्द्रके रूपको देखकर अर्जुन लज्जित होगया, उसको इन्द्रने ढाढस देकर फिर कहा ॥ ५० ॥ इन्द्र बोला, हे तात ! हे धनंजय ! हे महामते ! यदि तुम मनकी इच्छित अभिलाषाको चाहतेहो

तो वर मांगो, तुमको मुझे कुछभी अदेय नहीं है ॥ ५१ ॥ उस समय इन्द्रका वचन सुनकर अर्जुन बोला, हे तात ! शत्रुओंसे दुःखी हुए मुझे सबप्रकार विजय प्रदानकरो ॥ ५२ ॥ इन्द्र बोले, तुम्हारे शत्रु दुर्योधन आदि बडे बली हैं, द्रोण तथा भीष्म, कर्ण, निश्चय ही यह सब जीतनेको अशक्य हैं ॥ ॥ ५३ ॥ अश्वत्थामा नामक द्रोणाचार्यका पुत्र शिवका अंशहै, वह बडादुर्जय है, वे मुझसे भी असाध्यहैं, पर तुम सबप्रकार अपने हितको सुनो ॥५४॥ हे वीर ! इसके जय करनेको कोई भी समर्थ नहीं है, कारण कि, वह शिव है, इसकारण शिवका जप करनेसे कार्य होगा ॥५५॥ शिवजी संपूर्ण लोकोंके

तच्छ्रुत्वा शक्रवचनम्प्रत्युवाचार्जुनस्तदा ॥ विजयन्देहि मे तात शत्रुक्लिष्टस्य सर्वथा ॥ ५२ ॥ शक्र उवाच ॥ बलिष्ठाश्शत्रवस्ते च
दुर्योधनपुरःसराः ॥ द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च सर्वे ते दुर्जया ध्रुवम् ॥ ५३ ॥ अश्वत्थामा द्रोणपुत्रो रौद्रांशो दुर्जयोऽति सः ॥ मया
साध्या भवेयुस्ते सर्वथा स्वहितं शृणु ॥ ५४ ॥ एतद्वीर जपं कर्तुं न शक्तः कश्चनाधुना ॥ वर्तते हि शिवो वर्यस्तस्माच्छम्भोर्जयोऽ
धुना ॥ ५५ ॥ शंकरः सर्वलोकेशश्चराचरपतिः स्वराट् ॥ सर्वं कर्तुं समर्थोस्ति भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५६ ॥ अहं मन्ये च ब्रह्माद्या
विष्णुः सर्ववरप्रदः ॥अन्ये जिगीषवो ये च ते सर्वे शिवपूजकाः ॥ ५७ ॥ अद्यप्रभृति तन्मन्त्रं हित्वा भक्त्या शिवं भज ॥ पार्थिवेन
विधानेन ध्यानेनैव शिवस्य च ॥ ५८ ॥ उपचारैरनेकैश्च सर्वभावेन भारत ॥ सिद्धिः स्यादचला तेद्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ५९ ॥
नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा च चरान्सर्वान्समाहूयाब्रवीदिदम् ॥ सावधानेन वै स्थेयमेतत्संरक्षणे सदा ॥ ६० ॥

स्वामीहैं, तथा चरअचरके पति स्वयं प्रकाशवान हैं, वे सब करनेको समर्थ हैं तथा भोग और भुक्ति फलके देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ मैं, और ब्रह्माआदि सब वरके देनेवाले विष्णु, तथा और जो विजयके चाहनेवालेहैं वे सब शिवजी को पूजतेहैं ॥ ५७ ॥ आजसे लेकर इसइन्द्रके मंत्रको त्यागकर, भक्तिसे शिवको भजो, पार्थिवके विधान तथा ध्यानसे शिवका पूजन करो ॥ ५८ ॥ हे भारत ! अनेक उपचारोंसहित प्रेमसे तुम्हारी अटल सिद्धि होगी, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर इन्द्रने सब चरोंको बुलाकर यह कहा कि तुमको इस अर्जुनके रक्षा करनेमें सावधान

पूर्वक रहना चाहिये ॥ ६० ॥ इस प्रकार इन्द्र अपने चरोंको अर्जुनके रक्षण आदिमें समझाकर, दयासे पूर्ण हृदय हो फिर अर्जुनसे बोला ॥ ६१ ॥ इन्द्र बोला, हे परन्तप ! हे भद्र ! तुम राज्यको प्रमादसे कभी न करना, यह विद्या तुम्हारे कल्याणके लिये होगी ॥ ६२ ॥ तुम साधकको सब प्रकार धैर्य धारण करना चाहिये, शिवजी रक्षा करनेवाले हैं, सम्पत्तियोंके तुल्य फलको देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहींहै ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उस अर्जुनको वरदान देकर इन्द्र शिवजीके चरण कमलोंको स्मरण करतेहुए अपने धामको गये ॥ ६४ ॥ बडे पराक्रमी अर्जुनभी शिवको प्रणाम करके संयम

प्रबोध्य स्वचरानिन्द्रोऽर्जुनसंरक्षणादिकम् ॥ वात्सल्यपूर्णहृदयः पुनरूचे कपिध्वजम् ॥ ॥ ६१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ राज्यं त्वया प्रमादाद्वै न कर्तव्यं कदाचन ॥ श्रेयसे भद्र विद्येयं भवेत्तव परन्तप ॥ ६२ ॥ धैर्यं धार्यं साधकेन सर्वथा रक्षकः शिवः॥ सम्पत्तीश्च फलन्तुल्यं दास्यते नात्र संशयः ॥ ६३ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति दत्त्वा वरन्तस्य भारतस्य सुरेश्वरः ॥ स्मरञ्छिवपदाम्भोजञ्जगाम भवनं स्वकम् ॥ ६४ ॥ अर्जुनोपि महावीरस्सुप्रणम्य सुरेश्वरम् ॥ तपस्तेपे संयतात्मा शिवमुद्दिश्य तद्विधम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ स्नानं स विधिवत्कृत्वा न्यासादि विधिवत्तथा ॥ ध्यानं शिवस्य सद्भक्त्या व्यासोक्तं यत्तथाऽकरोत् ॥ १ ॥ एकपादतलेनैव तिष्ठन्मुनिवरो यथा ॥ सूर्य्ये दृष्टिं निबध्यैकां मंत्रमावर्तयन्स्थितः ॥ २ ॥ तपस्तेपेति संप्रीत्या संस्मरन्मनसा शिवम् ॥ पंचाक्षरं मनुं शम्भोर्जपन्सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ३ ॥ तपसस्तेज एवासीद्यथा देवा विसिस्मियुः ॥ पुनश्चैव शिवं याताः प्रत्यूचुस्ते समाहिताः ॥ ४ ॥

चित्तसे उसी प्रकार शिवके उद्देशसे तप करनेलगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नन्दीश्वर बोले, तब अर्जुनने विधिपूर्वक स्नान तथा यथाविधि न्यास आदि करके श्रेष्ठ भक्तिके सहित व्यासजीके कहनेके अनुसार शिवजीका ध्यान किया ॥ १ ॥ एकपादके तलुवेसे मुनिकी समान स्थित होकर, सूर्यमें एकमात्र दृष्टि लगाये मंत्रको जपताहुआ स्थित रहा ॥ ॥ २ ॥ मनसे शिवजीको स्मरण करता, मनसेही सर्वोत्तम शिवजीका पंचाक्षर मंत्र जपताहुआ प्रीतिसे तप करनेलगा ॥ ३ ॥ उसके तपका तेज इस

प्रकार फैला कि देवताभी विस्मित हुए और वे देवता शिवजीके समीपमें जाकर सावधान हो बोले ॥ ४ ॥ देवता बोले, हे प्रभो ! सर्वेश ! एक मनुष्यने तुम्हारेअर्थ तप किया है वह मनुष्य जो इच्छा करता है सो आप क्यों नहीं देते ॥ ५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर वे देवता अनेकप्रकारकी स्तुति करने लगे, और स्थिर समाधि लगाएहुए शिवके चरणोंमें नेत्र लगाए वहां स्थित हुए ॥ ६ ॥ महाप्रभु, उदारबुद्धि, प्रसन्नात्मा, शिवजी, उन देवताओंके वचन सुनकर हंसतेहुए उनसे बोले ॥ ७ ॥ शिवजी बोले, तुम सब देवता अपने २ स्थानको जाओ सबप्रकार मैं तुम्हारा कार्य करूंगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥

देवा ऊचुः ॥ नरेणैकेन सर्वेश त्वदर्थे तप आहितम् ॥ यदिच्छति नरस्सोयं किन्न यच्छति तत्प्रभो ॥ ५ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु स्तुतिं चक्रुर्विविधान्ते तदा सुराः ॥ तत्पादयोर्दृशः कृत्वा तत्र तस्थुः स्थिराधयः ॥ ६ ॥ शिवस्तु तद्वचः श्रुत्वा महाप्रभुरुदारधीः ॥ सुविहस्य प्रसन्नात्मा सुरान्वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शिव उवाच ॥ स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे सत्यन्न संशयः ॥ सर्वथाहं करिष्यामि कार्यं वो नात्र संशयः ॥ ८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनन्निश्चयं परमं गताः ॥ परावृत्य गताः सर्वे स्वस्थानं ते हि निर्जराः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो मूकनामागतस्तदा ॥ सौकरं रूपमास्थाय प्रेषितश्च दुरात्मना ॥ १० ॥ दुर्योधनेन विप्रेन्द्र मायिना चार्जुनं तदा ॥ यत्रार्जुनस्थितश्चासीत्तेन मार्गेण वै तदा ॥ ११ ॥ शृङ्गाणि पर्वतस्यैव च्छिन्दन्वृक्षाननेकशः ॥ शब्दं च विविधं कुर्वन्नतिवेगेन संयुतः ॥ १२ ॥ अर्जुनोपि च तं दृष्ट्वा मूकनामासुरन्तदा ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ नन्दीश्वर बोले, यह शम्भुका वचन सुनकर परम निश्चयको प्राप्त हुए, वे सब देवता अपने स्थानोंको गए ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें दुष्टात्मा, दुर्योधनसे भेजा हुआ मूकनामक दैत्य सूकर (सूअर) का रूप धारणकर आया ॥ १० ॥ हे विप्रेन्द्र ! कपट करनेवाले दुर्योधनने उसे अर्जुनके समीप भेजा, जहां अर्जुन स्थित था वह उसी मार्गसे निकला ॥ ११ ॥ वह अपने वेगसे पर्वतोंके शिखरोंको तोडता अनेक वृक्षोंको उखाडता तथा अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ अतिवेगसे चला ॥१२॥ उस समय अर्जुन मूक नामक उस दैत्यको देखकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर विचारने लगा ॥१३॥

अर्जुन बोला, यह कौन है, कहांसे आता है, यह क्रूर कर्म करनेवाला दीखताहै, निःसन्देह यह मेरा अनिष्ट करनेको आता है ॥ १४ ॥ मेरे मनमें यहही आता है कि यह शत्रुही है, इसमें संदेह नहीं, मैंने पहले अनेक दैत्य मारे हैं ॥ १५ ॥ उनका सम्बन्धी कोई वैर साधनेको आया है, अथवा कोई दुर्योधनका हित करनेवाला मित्र आयाहै ॥ १६ ॥ जिसके देखनेपर अपना मन प्रसन्न हो वह निश्चयही हितकारी है, जिसके देखनेपर मन व्याकुल हो वह शत्रु ही है ॥ १७ ॥ आचरणही कुलको कहता है और शरीर भोजनको कहता है वचन शास्त्रको कहता है और नेत्र स्नेहको कहते हैं ॥ १८ ॥

अर्जुन उवाच ॥ कोयं वा कुत आयाति क्रूरकर्मा च दृश्यते ॥ ममानिष्टं ध्रुवं कर्तुं समागच्छत्यसंशयम् ॥ १४ ॥ ममैवं मन आयाति शत्रुरेव न संशयः ॥ मया विनिहताः पूर्वमनेके दैत्यदानवाः ॥ १५ ॥ तदीयः कश्चिदायाति वैरं साधयितुम्पुनः ॥ अथवा च सखा कश्चिद्दुर्योधनहितावहः ॥ १६ ॥ यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद्ध्रुवम् ॥ यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः ॥ १७ ॥ आचारः कुल माख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥ १८ ॥ आकारेण तथा गत्या चेष्टया भाषितैरपि ॥ नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः ॥ १९ ॥ उज्ज्वलं सरसञ्चैव वक्रमारक्तकन्तथा ॥ नेत्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तस्य भावं पृथग्बुधाः ॥ २० ॥ उज्वलं मित्रसंयोगे सरसम्पुत्रदर्शने ॥ वक्रं च कामिनीयोगे आरक्तं शत्रुदर्शने ॥ २१ ॥ अस्मिन्मम तु सर्वाणि कलुषानीन्द्रियाणि च ॥ अयं शत्रुर्भवेदेव मारणीयो न संशयः ॥ २२ ॥ गुरोश्च वचनं मेद्य वर्तते दुःखदस्त्वया ॥ हन्तव्यः सर्वथा राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥

बाहरी आकृति, गति और चेष्टा तथा संभाषणोंसे, नेत्र और मुखके विकारसे भीतरी मनकी बात जानी जातीहै ॥ १९ ॥ उज्ज्वल, सरस, टेढे, और चारोंओरसे लाल, यह चार प्रकारके नेत्र हैं, पंडितोंने इनके पृथक् २ भाव कहेहैं ॥ २० ॥ मित्रके मिलनेपर नेत्र उज्ज्वल होतेहैं, और पुत्रके दर्शनमें सरस तथा स्त्रीके योगमें बाँके और शत्रुके देखनेपर सब ओरसे लाल होजातेहैं ॥ २१ ॥ इसके देखनेपर मेरी सब इन्द्रियां व्याकुल होती हैं, इससे यह शत्रुहीहै और निःसंदेह मारने योग्यहै ॥ २२ ॥ और यह मेरे गुरुका वचन भी है कि हे राजन् ! तुम सब प्रकार दुःख देनेवालेको मारडालना, उसमें कुछ

विचार न करना ॥ २३ ॥ इसी कारण मेरे पास यह शस्त्र है, इसमें संदेह नहीं ऐसा विचार बाणको निकाल अर्जुन स्थित हुआ ॥ २४ ॥ इसी अवसरमें वहां अर्जुन की रक्षाके निमित्त तथा उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेको भक्तवत्सल शिवजी ॥ २५ ॥ गणोंके समेत उस दैत्यके नाश करनेके निमित्त चतुर भीलके बडे अद्भुत रूपको तत्काल धारणकर आये ॥ २६ ॥ कच्छ बाँधे वस्त्रोंसे बंधीहुई शिवकी ध्वजावाले शरीरमें श्वेत रेखा, स्वयं धनुषबाण धारण कियेहुए ॥ २७ ॥ पीठपर बाणोंके तर्कसको धारण किये गणोंसहित शिवजी भीलोंके राजा बने ॥ २८ ॥ तब वह भील अनेकशब्दोंको करतेहुए चला

एतदर्थं त्वायुधानि मम चैव न संशयः ॥ विचार्य्यैति च तत्रैव बाणं संस्थाय संस्थितः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र रक्षार्थं ह्यर्जुनस्य वै ॥ तद्भक्तेश्च परीक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २५ ॥ विदग्धभिल्लरूपं हि गणैः सार्धं महाद्भुतम् ॥ तस्य दैत्यस्य नाशार्थं द्रुतं कृत्वा समागतः ॥ २६ ॥ बद्धकच्छश्च वस्त्रीभिर्बद्धेशानध्वजस्तदा ॥ शरीरे श्वेतारेखाश्च धनुर्बाणयुतः स्वयम् ॥ २७ ॥ बाणानान्तूणकं पृष्ठे धृत्वा वै स जगाम ह ॥ गणश्चैव तथा जातो भिल्लराजोऽभवच्छिवः ॥ २८ ॥ शब्दांश्च विविधान्कृत्वा निर्ययौ वाहिनीपतिः ॥ सूकरस्य ससाराथ शब्दश्च प्रदिशो दश ॥ २९ ॥ वनेचरेण शब्देन व्याकुलश्चार्जुनस्तदा ॥ पर्वताद्याश्च तैश्शब्दैस्ते सर्वे व्याकुलास्तदा ॥३०॥ अहो किन्नु भवेदेष शिवः शुभकरस्त्विह ॥ मया चैव श्रुतम्पूर्वं कृष्णेन कथितम्पुनः ॥३१॥ व्यासेन कथितं चैवं स्मृत्वा देवैस्तथा पुनः ॥ शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरस्तथा ॥ ३२ ॥ मुक्तिदश्च स्वयं प्रोक्तो मुक्तिदानान्न संशयः ॥ तन्नामस्मरणात्पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ भजतां सर्वभावेन दुःखं स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ यदा कदाचिज्जायेत तदा:कर्मसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥

और उस सूकरका शब्द भी दशोंदिशाओंमें फैलगया ॥ २९ ॥ उस भीलके शब्दसे अर्जुन व्याकुल होगया और उन शब्दोंसे पर्वतआदिक सब व्याकुल हुए ॥ ३० ॥ अहो ! यह क्या हुआ ? शंकर मंगल करेंगे, मैंने पहले श्रीकृष्णजीके मुखसे सुना था ॥ ३१ ॥ तथा व्यासजीने भी कहाथा और देवताओंनेभी स्मरण करके कहा था, कि—शिवजी मंगलकारी हैं, शुभ करनेवाले तथा सुख देनेवालेहै ॥३२॥ मुक्तिदान करनेसे वे स्वयं मुक्तिद नामवाले कहेहैं उनके नाम स्मरण करनेसे निश्चयही मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ ३३ ॥ उनके भजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होताहै, जब कभी

होता भी है तो वह कर्मसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ होनहारही बहुत और थोडी होजातीहै इसमें कुछ संशय नहीं है, अथवा विशेषकर प्रारब्धका दोष जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ अथवा शिवजीही अधिक वा न्यून भोगको दूर करके अपनी इच्छासे उसका दुःख दूर करतेहैं :॥ ३६ ॥ समर्थ शिवजी विषको अमृत करसकते हैं, तथा अमृतको विष करसकते हैं जो जो इच्छा करते हैं सोसो करते हैं, उन्हैं कौन निषेध करसकताहै ॥ ३७॥ ऐसा विचार करके पुरातन तथा भावी भक्तोंने शिवजीमें मन स्थिर किया है ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी चलीजाय, अथवा रहै मृत्यु निकट हो अथवा युगान्तरमें

तद्वद्वपि ज्ञेयं नूनमल्पं न संशयः ॥ प्रारब्धस्याथ वा दोषो नूनं ज्ञेयो विशेषतः ॥ ३५ ॥ अथ वा बहु चाल्पं हि भोग्यं निस्तीर्य शंकरः ॥ कदाचिदिच्छया तस्य दूरीकुर्य्यान्न संशयः ॥ ३६ ॥ विषं चैवामृतं कुर्यादमृतं विषमेव वा ॥ यदिच्छति करोत्येव समर्थः किन्निषिध्यते ॥ ३७ ॥ इत्थं विचार्य्यमाणेऽपि भक्तैरन्यैः पुरातनैः ॥ भाविभिश्च सदा भक्तैरिहानीय मनः स्थिरम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी र्गच्छेच्चावतिष्ठेन्मरणं निकटे पुरः ॥ निन्दां वाथ प्रकुर्वन्तु स्तुतिं वा दुःखसंक्षयम् ॥ ३९ ॥ जायते पुण्यपापाभ्यां शंकरस्सुखदः सदा ॥ कदाचिच्च परीक्षार्थं दुःखं यच्छति वै शिवः ॥ ४० ॥ अंते च सुखदः प्रोक्तो दयालुत्वान्न संशयः ॥ यथा चैव सुवर्णं च शोधितं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥ एवं चैव मया पूर्वं श्रुतं मुनिमुखात्तथा ॥ अतस्तद्भजनेनैव लप्स्येऽहं सुखमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ इत्येवन्तु विचारं स करोति यावदेव हि ॥ तावच्च सूकरः प्राप्तो बाणसंमोचनावधिः ॥ ४३ ॥

हो चाहै मनुष्य निन्दा, अथवा दुःख संक्षय रूप स्तुति करै ॥ ३९ ॥ पुण्य तथा पापोंके कारणही शिवजी निरन्तर सुख दुःख देनेवाले होतेहैं, अंथवा कभी २ परीक्षा करनेके लिये दुःख देतेहैं, ॥ ४० ॥ अन्तमें दयालुता भाव होनेसे सुख देतेहैं, इसमें कुछ संशय नहीं है, जैसे शुद्ध किया सुवर्ण शुद्धिको प्राप्त होता है ऐसे वे परीक्षासे भक्तको शुद्ध करतेहैं ॥ ४१ ॥ मैंने पहले इस प्रकार मुनिके मुखसे सुना था, इस कारण उनके भजनसे ही मैं उत्तम सुखको पाऊंगा ॥ ४२ ॥ वह अर्जुन जब ऐसा विचार कर रहा था, उसी समय वह सूकर वहां आया और उसी समय अर्जुनने बाण चढाया ॥ ४३ ॥

इधर शिवजीभी उस शूकरके पीछे लगे आये, तब उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्भुतपर्वतके शिखरके समान दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ अर्जुनने शिवजीका माहात्म्य कहा तो भक्तवत्सल कल्याणकारी शिवजी अर्जुनकी रक्षाके लिये शीघ्र वहां प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ इसी अवसरमें उन दोनों अर्जुन और शिवने एक साथ बाण छोडे तो शिवजीका बाण पूंछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा ॥ ४६ ॥ शिवजीका बाण पूँछमें प्रवेशकर शीघ्रही मुखमेंसे निकलकर भूमिमें प्रवेशकर गया और अर्जुनका बाण मुखमें प्रवेशकर, निकल पृथ्वीमें लय हुआ ॥ ४७ ॥ अर्जुनका बाण निकटमें ही गिरा और वह शूकर दैत्य

शिवोपि पृष्ठतो लग्नो ह्यायातः शूकरस्य हि ॥ तयोर्मध्ये तदा सोयं दृश्यते शृंगमद्भुतम् ॥ ४४ ॥ तस्य प्रोक्तं च माहात्म्यं शिवः शीघ्रतरं गतः ॥ अर्जुनस्य च रक्षार्थं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्समये ताभ्यां कृतं बाणविमोचनम् ॥ शिवबाणस्तु पुच्छे वै ह्यर्जुनस्य मुखे तथा ॥ ४६ ॥ शिवस्य पुच्छ तो गत्वा मुखान्निस्सृत्य शीघ्रतः ॥ भूमौ विलीनः संयातस्तस्य वै पुच्छतो गतः ॥ ॥ ४७ ॥ पपात पार्श्वतश्चैव बाणश्चैवार्जुनस्य च ॥ सूकरस्तत्क्षणं दैत्यो मृतो भूमौ पपात ह ॥ ४८ ॥ देवा हर्षं परम्प्रापुः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ जयपूर्वं स्तुतिकराः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ४९ ॥ शिवस्तुष्टमना आसीदर्जुनः सुखमागतः ॥ दैत्यस्य च तदा दृष्ट्वा क्रूरं रूपं च तौ तदा ॥ ५० ॥ अर्जुनस्तु विशेषेण सुखिना प्राह चेतसा ॥ अहो दैत्यवरश्चायं रूपं तु परमाद्भुतम् ॥ ५१ ॥ कृत्वागतो मद्वधार्थं शिवेनाहं सुरक्षितः ॥ ईश्वरेण ममाद्यैव बुद्धिर्दत्ता न संशयः ॥ ५२ ॥

उसी समय मरगया और भूमिपर गिरपडा ॥ ४८ ॥ देवता परमहर्षको प्राप्त हुए, और उन्होंने वारंवार प्रणामकर जयशब्दपूर्वक स्तुति करके फूलोंकी वर्षा की ॥ ४९ ॥ शिवजी संतुष्ट हुए और अर्जुन सुखको प्राप्त हुआ, उस समय उन दोनोंने दैत्यका भयंकर रूप देखा ॥ ५० ॥ अर्जुनने अति प्रसन्न चित्तसे कहा कि क्या आश्चर्य है ? कि यह दैत्य है, इसका रूप परमअद्भुतहै ॥ ५१ ॥ यह शूकररूपसे मेरे मारनेको आया था, शिवजीने मेरी रक्षा की, ईश्वरने आज मुझे बुद्धि दी, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥

ऐसा विचारकर अर्जुनने वहां शिव ! शिव ! जप किया और शिवको प्रणामकर वारंवार स्तुतिकी ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त उनमें दृढभक्ति करनेवाली लीला सुनो ॥ १ ॥ उन शिवजीने भी शीघ्र अपने सेवकको भेजा और उसी समय वहां अर्जुनभी बाण लेनेको आया ॥ २ ॥ एकही समय में बाण लेनेको शिवजीका गण, तथा अर्जुन दोनोंही प्राप्त हुए, तब अर्जुनने उस गणको ललकारकर अपना बाण लेलिया ॥ ३ ॥

विचार्य्येत्यर्जुनस्तत्र जगौ शिवशिवेति च ॥ प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव च पुनः पुनः ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु लीलाम्परात्मनः ॥ भक्तवात्सल्यसंयुक्तां तद्दृढत्वविदर्भिताम् ॥ १ ॥ शिवोप्यथ स्वभृत्यं वै प्रेषयामास स द्रुतम् ॥ बाणार्थे च तदा तत्रार्जुनोपि समगात्ततः ॥ २ ॥ एकस्मिन् समये प्राप्तौ बाणार्थं तद्गणार्जुनौ ॥ अर्जुनस्तं पराभर्त्स्य स्वबाणं चाग्रहीत्तदा ॥ ३ ॥ गणः प्रोवाच तं तत्र किमर्थं गृह्यते शरः ॥ बाणश्चैवास्मदीयो वै मुच्यतां ऋषिसत्तम ॥ ४ ॥ इत्युक्तस्तेन भिल्लस्य गणेन मुनिसत्तमः ॥ सोर्जुनः शंकरं स्मृत्वा वचनं च तमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अज्ञात्वा किं च वदसि मूर्खोसि त्वं वनेचर ॥ बाणश्च मोचितो मेऽद्य त्वदीयश्च कथं पुनः ॥ ६ ॥ रेखारूपं च पिच्छानि मन्नामांकित एव च ॥ त्वदीयश्च कथं जातः स्वभावो दुस्त्यजस्तव ॥ ७ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवन्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य स गणेश्वरः ॥ अर्जुनं ऋषिरूपं तं भिल्लो वाक्यमुपाददे ॥ ८ ॥

गण बोला, कि तुम किस कारण बाण लेतेहो ? हे ऋषिसत्तम ! यह दोनों बाण हमारे हैं, इनको छोड़दो ॥ ४ ॥ इस प्रकार वह मुनिश्रेष्ठ अर्जुन भीलके गणके वचन सुन शिवजीको स्मरणकर उससे यह वचन बोला ॥५॥ अर्जुन बोला, हे वनेचर ! तू विना जाने यह क्या कहताहै, मूर्ख ! बाणतो मैंने छोडा है, तेरा किस प्रकार होसकताहै ॥६॥ यह रेखा रूप पिच्छ, मेरे नामसे अंकित है तेरा कैसे हो सकता है तेरा स्वभावही लुटेरोंका है ॥ ७ ॥ नन्दीश्वर बोले

ऐसा अर्जुनका वचन सुंन वह गणेश्वर भील हँसकर ऋषिरूप उस अर्जुनसे बोला ॥ ८ ॥ हे तापस ! तू कुछ तप नहीं करता, तू छलसे तपस्वीवेष धारेहै, यथार्थमें तपस्वी नहींहै ॥ ९ ॥ तू तपस्वी मनुष्य होकर क्यों मिथ्या भाषण करताहै, तू मुझ भीलको अकेला मत जान ॥ १० ॥ बहुतसे वनके भीलों समेत हमारा स्वामी वह खडाहै, सो सब प्रकार निग्रह तथा अनुग्रह करनेमें समर्थहै ॥ ११ ॥ उनकाही यह बाण है, जो अब तूने लियाहै, यह बाण तेरे पास कभीभी नहीं रह सकेगा ॥ १२ ॥ हे तापस ! तू तपका फल क्यों त्यागना चाहताहै, चोरीसे, छल करनेसे, पीडा देनेसे, विस्मयसे, तथा सत्यके त्यागन करनेसे ॥ १३ ॥ मनुष्य अपने तपसे नष्ट होताहै, यह मैंने सुनाहै, इस कारण तेरे तपका फल कहांसे होगा ॥ १४ ॥ इस कारण तू इस बाणको न छोडनेसे कृतघ्नी होगा, मेरेही स्वामीने निश्चय यह बाण तेरे बचानेको छोडाहै ॥ १५ ॥ उस बाणसे तेरा शत्रु मारागया और तूने बाणभी रख लिया तू अत्यन्त कृतघ्नी है और तेरे तपके विषयमें अशुभ होनेवालाहै ॥ १६ ॥ तू सत्य नहीं बोलता, क्या इससे सिद्धिकी इच्छा करताहै, यदि तेरा बाणसे प्रयोजन है तो मेरे स्वामीसे मांग ॥ १७ ॥ वे स्वयं ऐसे बहुतसे बाण देनेको समर्थहैं, वह हमारे राजाहैं, उनसे तू क्यों नहीं मांगता ॥ १८ ॥

तापस श्रूयतां रे त्वं न तपः क्रियते त्वया ॥ वेषतश्च तपस्वी त्वं न यथार्थं छलायते ॥ ९ ॥ तपस्वी च कथं मिथ्या भाषते कुरुते
नरः ॥ नैकाकिनं च मां त्वं च जानीहि वाहिनीपतिम् ॥ १० ॥ बहुभिर्वनभिल्लैश्च युक्तः स्वामी स आसते ॥ समर्थस्सर्वथा कर्तुं
विग्रहानुग्रहौ पुनः ॥ ११ ॥ वर्तते तस्य बाणोयं यो नीतश्च त्वयाऽधुना ॥ अयं बाणश्च ते पार्श्वे न स्थास्यति कदाचन ॥ १२ ॥
तपःफलं कथं त्वं च हातुमिच्छसि तापस ॥ चौर्य्याच्छलार्द्यमानाच्च विस्मयात्सत्यभंजनात् ॥ १३ ॥ तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव
मया श्रुतम् ॥ तस्माच्च तपसस्तेद्य भविष्यति फलं कुतः ॥ १४ ॥ तस्माच्च मुच्यते बाणात्कृतघ्नस्त्वं भविष्यसि ॥ ममैव स्वामिनो
बाणस्तवार्थे मोचितो ध्रुवम् ॥ १५ ॥ शत्रुश्च मारितस्तेन पुनर्बाणश्च रक्षितः ॥ अत्यन्तं च कृतघ्नोसि तपोऽशुभकरस्तथा ॥ १६ ॥
सत्यं न भाषसे त्वं च किमतः सिद्धिमिच्छसि ॥ प्रयोजनं चेद्बाणेन स्वामी च याच्यतां मम ॥ १७ ॥ ईदृशांश्च बहून्बाणांस्तदा दातुं
क्षमः स्वयम् ॥ राजा च वर्तते मेऽद्य किं त्वेवं याच्यते त्वया ॥ १८ ॥

उपकारको छोडकर अपकारकी इच्छा करताहै, तुझे अब यह करना योग्य नहीं है चपलताको त्यागन कर ॥ १९ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस गणका
वचन सुन अर्जुन उस समय क्रोध करके शिवका स्मरण कर परिमित वचन कहने लगा ॥२०॥ अर्जुन बोले, हे भील ! हे वनेचर ! सुन जो मैं कहताहूं
तेरा कहना सत्य नहीं है जैसी तेरी जातिहै वैसाही तुझे जानताहूं ॥ २१ ॥ मैं राजाहूं तुम चोरहो, युद्ध किस प्रकार ठीकहै, मुझे बलवानोंके साथ युद्ध
करना चाहिये, अधर्मियोंके साथ कभी न करना चाहिये ॥ २२ ॥ इस कारण तेरा स्वामीभी तुझसा ही होगा, हमलोग दाता कहेगयेहैं, तुम भील चोर

उपकारं परित्यज्य ह्यपकारं समीहसे ॥ नैतद्युक्तं त्वयाद्यैव क्रियते त्यज चापलम् ॥ १९ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्येवं वचन
न्तस्य श्रुत्वा पार्थोर्ऽजुनस्तदा ॥ क्रोधं कृत्वा शिवं स्मृत्वा मितं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २० ॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ शृणु भिल्ल
प्रवक्ष्यामि न सत्यं तव भाषणम् ॥ यथा जातिस्तथा त्वां च जानामि हि वनेचर ॥ २१ ॥ अहं राजा भवांश्चौरः कथं युद्धप्रयु
क्तता ॥ युद्धं मे सबलैः कार्यं नाधमैर्हि कदाचन ॥ २२ ॥ तस्मात्ते च तथा स्वामी भविष्यति भवादृशः ॥ दातारश्च वयं प्रोक्ता
श्चौरा यूयं वनेचराः ॥ २३ ॥ कथं याच्यो मया भिल्लराज एवं च साम्प्रतम् ॥ त्वमेव याचसे नैव बाणं मां किं वनेचर ॥ २४ ॥
ददामि ते तथा बाणान्सन्ति मे बहवो ध्रुवम् ॥ राजा च ग्रहणं चैव न दास्यति तथा भवेत् ॥ २५ ॥ किम्पुनश्च तथा बाणान्प्र
यच्छामि वनेचर ॥ यदि मे या चिकीर्षा स्यात्कथं नागम्यतेऽधुना ॥ २६ ॥ यथागच्छतु ते भर्ता किमर्थं भाषतेऽधुना ॥ आगत्य च
मया सार्द्धं जित्वा युद्धे च माम्पुनः ॥ २७ ॥

हो ॥ २३ ॥ हे वनेचर ! मैं भीलोंके राजासे कैसे याचना करसकताहूं, तूही मुझसे बाण क्यों नहीं मांगता ॥ २४ ॥ मैं ऐसे अनेकों बाणोंको तुझे
देसकताहूं, तेरा राजा ग्रहण करै, वह ऐसे बाण नहीं देसकताहै ॥ २५ ॥ हे वनेचर ! बहुत क्या है मैं ऐसे अनेकबाण देसकता हूं यदि तेरे स्वामीकी इच्छा
हो तो मांगनेको तेरा स्वामी क्यों नहीं आताहै ॥ २६ ॥ तेरा स्वामीही मेरे पास क्यों न आवै, अथवा यह क्यों कहूं वह आकर मेरे साथ युद्धकर मुझे

जीतै ॥ २७ ॥ तब तेरा स्वामी भीलोंका राजा, इस बाणको ले अपने स्थानकों सुखसे चलाजाय देर क्यों करताहै ॥२८॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीकी
कृपासे सुन्दर बल प्राप्त करनेवाले अर्जुनका यह वचन सुनकर वह भील बोला ॥ २९ ॥ भिल्ल बोला, तू मूर्खहै, ऋषिं नहीं है, क्यों मरनेकी इच्छा
करताहै; बाणको दे और सुखसे रह नहीं तो क्लेशका भागी होगा ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, शिवजीकी शक्तिसे शोभायमान उस भीलसे इस प्रकार
कहाहुआ पांडव अर्जुन, शिवजीका स्मरण करके उस गणसे बोला ॥ ३१ ॥ अर्जुन बोला, हे वनेचर ! हे भिल्ल ! तत्त्वपूर्वक मेरे वचनको सुन, जब तेरा

नीत्वा बाणमिमं भिल्ल स्वामी ते वाहिनीपतिः ॥ निजालयं सुखं यातु विलंबः क्रियते कथम् ॥ २८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ महेश्वरकृ
पाप्राप्तसद्बलस्यार्ज्जुनस्य हि ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भिल्लो वाक्यमथाब्रवीत्॥२९॥ भिल्ल उवाच ॥ अज्ञोसि त्वं ऋषिर्नासि मरणं त्वीहसे
कथम् ॥ देहि बाणं सुखंन्तिष्ठ त्वन्यथा क्लेशभाग्भवेः ३० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन भिल्लेन शिवसच्छक्तिशोभिना ॥ गणेन
पाण्डवस्तं च प्राह स्मृत्वा च शङ्करम् ॥ ३१ ॥ अर्ज्जुन उवाच ॥ मद्वाक्यन्तत्त्वतो भिल्ल शृणु त्वं च वनेचर ॥ आगमिष्यति ते स्वामी
दर्शयिष्ये फलन्तदा ॥ ३२ ॥ न शोभते त्वया युद्धं करिष्ये स्वामिना तव ॥ उपहासकरं ज्ञेयं युद्धं सिंहसृगालयोः ॥३३॥ श्रुतं च मद्व
चस्तेऽद्य द्रक्ष्यसि त्वं महाबलम् ॥ गच्छस्व स्वामिनं भिल्ल यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३४ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तु गतस्तत्र
भिल्लः पार्थेन वै मुने ॥ शिवावतारो यत्रास्ते किरातो वाहिनीपतिः ॥ ३५ ॥ अथार्ज्जुनस्य वचनं भिल्लनाथाय विस्तरात् ॥ सर्वं निवेद
यामास तस्मै भिल्लपरात्मने ॥ ३६ ॥ स किरातेश्वरः श्रुत्वा तद्वचो हर्षमागतः ॥ आजगाम स्वसैन्येन शंकरो भिल्लरूपधृक् ॥ ३७ ॥

स्वामी आवैगा तब इसका फल दिखाऊंगा ॥ ३२ ॥ तेरे साथ युद्ध नहीं करूंगा तेरे स्वामीके साथ युद्ध करूंगा, सिंह और गीदडका युद्ध हँसी करानेवाला
होताहै ॥ ३३ ॥ हे भिल्ल ! तूने मेरा वचन सुना, अब महाबलको भी देखेगा, तू अपने स्वामीके समीप जा और जैसी इच्छाहो वैसा कर ॥ ३४ ॥
नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! अर्जुनसे इस प्रकार कहाहुआ भील वहां गया जहांपर शिवजीका अवताररूप भिल्लराज था ॥ ३५ ॥ वह अर्जुनका वचन भीलकी
आत्मावाले भीलोंके राजासे सब विस्तारपूर्वक निवेदन किया ॥ ३६ ॥ वह वचन सुनकर किरातेश्वर शिवजी हर्षको प्राप्त हो भीलका रूप धारणकिये

अपनी सेनाके सहित वहां आये ॥ ३७ ॥ पांडव अर्जुन भी किरातकी सेनाको देखकर, बाणसहित धनुषको ले उनके सन्मुख हुआ ॥ ३८ ॥ तब किरातने भी अपने दूतको भेजा और दूतमुखसे महात्मा अर्जुनसे यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ किरात बोला, हे तपस्विन् ! सेनाको देखो और अबभी बाणको देदो, इस समय थोडे कार्यके निमित्त क्यों मृत्युकी इच्छा करतेहो ॥ ४० ॥ तेरे भाई दुःखसे व्याकुलहैं और स्त्रीभी अतिदुःखी है और पृथ्वीभी तेरे हाथसे चलीजायगी, यह मैं जानताहूं ॥ ४१ ॥ नन्दीश्वर बोले, सब प्रकार अर्जुनकी रक्षाके अर्थ रूपधारण कियेहुए, सबके स्वामी, शिवजीने अर्जुनकी दृढ

अर्जुनश्च तदा सेनां किरातस्य च पाण्डवः ॥ दृष्ट्वा गृहीत्वा सशरन्धनुः सम्मुख आययौ ॥ ३८॥ अथो किरातश्च पुनः प्रेषयामास तं चरम् ॥ तन्मुखेन जगौ वाक्यम्भारताय महात्मने ॥ ३९ ॥ किरात उवाच ॥ पश्य सैन्यं तपस्विंस्त्वं मुञ्च बाणं व्रजाधुना ॥ मरणं स्वल्पकार्यार्थं कथमिच्छसि साम्प्रतम् ॥ ४० ॥ भ्रातरस्तव दुःखार्त्ताः कलत्रं च ततः परम् ॥ पृथिवी हस्ततस्तेद्य यास्यतीति मतिर्मम ॥ ४१ ॥ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तं परमेशेन पार्थदार्ढ्यपरीक्षया ॥ सर्वथार्जुनरक्षार्थं धृतरूपेण शंभुना ॥ ४२ ॥ इत्युक्तस्तु तदागत्य सगणश्शंकरश्च तत् ॥ विस्तराद्वृत्तमखिलमर्जुनाय न्यवेदयत् ॥ ४३ ॥ तच्छ्रुत्वा तु पुनः प्राह पार्थस्तं दूतमागतम् ॥ वाहिनीपतये वाच्यम्विपरीतम्भविष्यति ॥ ४४ ॥ यद्यहं चैव ते बाणं यच्छामि च मदीयकम् ॥ कुलस्य दूषणं चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ ४५ ॥ भ्रातरश्चैव दुखार्ताः भवन्तु च तथा ध्रुवम् ॥ विद्याश्च निष्फलाः स्युस्तास्तस्मादागच्छ वै ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ सिंहश्चैव शृगालाद्वा भीतो नैव मया श्रुतः ॥ तथा वनेचराद्राजा न बिभेति कदाचन ॥ ४७ ॥

परीक्षाके कारण ऐसा कहा ॥ ४२ ॥ ऐसा कह गणोंसहित शम्भुने वहां आकर विस्तारपूर्वक सब वृत्तान्त अर्जुनसे निवेदन किया ॥ ४३ ॥ यह सुन उस आयेहुए दूतसे फिर अर्जुनने कहा कि, भिल्लराजसे कहना कि, सब उलटाही होगा ॥ ४४ ॥ यदि मैं तुझे अपना बाण दूंगा तो मेरे कुलको दोष (पराजयरूप) होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ निश्चयही हमारे भाई दुःखसे व्याकुलहों, और विद्याभी निष्फलहों, पर वह भील अवश्यही युद्धको आवै ॥ ४६ ॥ मैंने सिंहको गीदड़से डराहुआ कभी नहीं सुना, इसी प्रकार वनेचर (भील) से राजा कभी नहीं डरताहै ॥ ४७ ॥

नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तं पुनर्गत्वा स्वामिनं पाण्डवेन सः ॥ सर्वं निवेदयामास तदुक्तं हि विशेषतः ॥ ४८ ॥ अथ सोपि
किराताह्वो महादेवस्ससैन्यकः ॥ तच्छ्रुत्वा सैन्यसंयुक्तो ह्यर्जुनं चागमत्तदा ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहि
तायां किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ तमागतन्ततो दृष्ट्वा ध्यानं कृत्वा शिवस्य सः ॥ गत्वा
तत्रार्जुनस्तेन युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ १ ॥ गणैश्च विविधैस्तीक्ष्णैरायुधैस्तं न्यपीडयत् ॥ तैस्तदा पीडितः पार्थः सस्मार स्वामिनं
शिवम् ॥ २ ॥ अर्जुनश्च तदा तेषां बाणावलिमथाच्छिनत् ॥ यदा युद्धं च तैः क्षिप्तं ततः शर्वः परामृशत् ॥ ३ ॥ पीडितास्ते गणा
स्तेन ययुश्चैव दिशो दश ॥ गणेशा वारितास्ते च नाजग्मुस्स्वामिनम्प्रति ॥ ४ ॥ शिवश्चैवार्जुनश्चैव युयुधाते परस्परम् ॥ नानाविधै
श्चायुधैर्हि महाबलपराक्रमौ ॥ ५ ॥ शिवोऽपि मनसा नूनं दयां कृत्वार्जुनं ह्यगात् ॥ अर्जुनश्च दृढं तत्र प्रहारं कृतवांस्तदा ॥ ६ ॥ आयु
धानि शिवस्सो वै ह्यर्जुनस्याच्छिनत्तदा ॥ कवचानि च सर्वाणि शरीरं केवलं स्थितम् ॥ ७ ॥

नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार पांडव अर्जुनसे कहा हुआ भील अपने स्वामीके पास जाकर उस अर्जुनके कहे सब वृत्तान्तको विशेष कर वर्णन करने लगा ॥४८॥ तब किरातनामक महादेव यह वचन सुन सेनासहित अर्जुनके समीप आये ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० तृ० श० रु० किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ अर्जुनने उनको आया देख शिवजीका ध्यान करके उनके सन्मुख जाय उनके साथ अतिकठिन युद्ध किया ॥ १ ॥ तब भिल्लराजने अनेकगणोंसहित तीव्र शस्त्रोंसे अर्जुनको पीडा दी, उससे पीडाको प्राप्त हुआ अर्जुन अपने स्वामी शिवका स्मरण करने लगा ॥ २ ॥ और अर्जुनने उसके बाणसमुदायको काटडाला, और जब युद्धमें बाण छोडे तो शिवजीने सहन करलिये ॥ ३ ॥ अर्जुनसे पीडा दियेहुए वे गण दशों दिशाओंमें भागने लगे और निवारण करनेपर भी वे गणाध्यक्ष अपने स्वामीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ महाबल तथा पराक्रमवाले शिवजी और अर्जुन अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ शिवजी मनसे दया करके अर्जुनके समीप गए उस समय वहां अर्जुनने उनपर बडा दृढ प्रहार किया ॥ ६ ॥ तब शिवजीने अर्जुनके सब अस्त्रोंको काटडाला, तथा कवच काटदिया, केवल अर्जुनका शरीरमात्र स्थित रहगया ॥ ७ ॥

तब अर्जुनने शिवजीका स्मरणकर मल्लयुद्ध किया और वह उस भिल्लराजसे भय मानकर क्लेशितहुआ भी वह अर्जुन धैर्यवान् रहा ॥८॥ उस संग्राममें समुद्रसहित सब पृथ्वी कांपने लगी, देवता दुःखको प्राप्त हुए कि, अब क्या होगा ॥९॥ इसी अवसरमें शिवजी आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे तब उसी प्रकार अर्जुन भी वहीं स्थितहो युद्ध करने लगा ॥ १० ॥ वे दोनों शिव और अर्जुन उड २ कर युद्ध करते थे, उस समय अद्भुत संग्राम देखकर देवता विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ तब अर्जुन उसको अधिक जानकर शिवजीके चरणकमलोंको स्मरणकर, उनके ध्यानसे श्रेष्ठ बल प्राप्तकर उसके चरणोंको पकड लिया

तदार्जुनः शिवं स्मृत्वा मल्लयुद्धं चकार सः ॥ वाहिनीपतिना तेन भयात्क्लिष्टोपि धैर्यवान् ॥ ८ ॥ तद्युद्धेन मही सर्वा चकम्पे ससमुद्रका ॥ देवा दुःखं समापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवः शिवो गगनमास्थितः ॥ युद्धं चकार तत्रस्थस्सोर्जुनश्च तथाऽकरोत् ॥ १० ॥ उड्डीयोड्डीय तौ युद्धं चक्रतुर्देवपार्थिवौ ॥ देवाश्च विस्मयं प्रापू रणं दृष्ट्वा तदद्भुतम् ॥ ११ ॥ अथार्जुनोत्तरं ज्ञात्वा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ दधार पादयोस्तं वै तद्ध्यानादाप्तसद्बलः ॥ १२ ॥ धृत्वा पादौ तदा तस्य भ्रामयामास सोर्जुनः ॥ विजहास महादेवो भक्तवत्सल ऊतिकृत् ॥ १३ ॥ दातुं स्वदासतान्तस्मै भक्तवश्यतया मुने ॥ शिवेनैव कृतं ह्येतच्चरितन्नान्यथा भवेत् ॥ १४ ॥ पश्चाद्विहस्य तत्रैव शङ्करो रूपमद्भुतम् ॥ दर्शयामास सहसा भक्तवश्यतया शुभम् ॥ १५ ॥ यथोक्तं वेदशास्त्रेषु पुराणे पुरुषोत्तमम् ॥ व्यासोपदिष्टं ध्यानाय तस्य यत्सर्वसिद्धिदम् ॥ १६ ॥ तद्दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं ध्यानप्राप्तं शिवस्य तु ॥ बभूव विस्मितोतीव ह्यर्जुनो लज्जितः स्वयम् ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ शंकरके चरणोंको पकड कर उसने घुमाया तब भक्तवत्सल लीलाकरनेवाले महादेवजी हँसे ॥ १३ ॥ हे मुने ! भक्तके वशमेंहुए शिवजीने अर्जुनको अपना दासत्वदान करनेके अर्थ यह चरित्र किया, अन्यथा ऐसा कभी नहीं होता ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् शंकरने अपने भक्तके वशीभूत हो सहसा हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप दिखाया ॥ १५ ॥ जैसा वेद और शास्त्रोंमें कहाहै और पुराणोंमें पुरुषोत्तमरूप कहाहै, तथा जैसा अर्जुनके ध्यानके लिये व्यासजीने उपदेश किया था वह रूप दिखाया जो सब सिद्धिका देनेवाला है ॥ १६ ॥ ध्यानसे प्राप्तहुए शिवजीके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुन अति विस्मितहो

स्वयं लज्जित हुआ ॥ १७ ॥ अहो शोक ! यह तो कल्याणकारी शिवहैं, जो मेरी प्रभुतासे पूर्णहैं जो स्वयं साक्षात् त्रिलोकीके ईश्वर हैं इस समय मैंने
क्या किया ॥ १८ ॥ उन प्रभुकी माया बडी बलवान्है, मायां करनेवालोंको भी मोहनेवाली है, क्या किया जो प्रभुने अपना रूप छिपाकर मुझे छला ॥
॥ १९ ॥ अपनी बुद्धिसे ऐसा विचारकर, हाथ बाँध, माथा झुकाय, उन प्रभु शिवको प्रणाम किया, और उस समय दुःखी मनसे कहा ॥ २० ॥ अर्जुन
बोला, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे करुणाकर ! हे शंकर ! हे सर्वेश ! आपको मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये ॥२१॥ हे प्रभो ! यह आपने क्या किया

अहो शिवश्शिवस्सोयं यो मे प्रभुतया वृतः ॥ त्रिलोकेशः स्वयं साक्षाद्धा कृतं किं मयाऽधुना ॥ १८ ॥ प्रभोर्बलवती माया मायिना
मपि मोहिनी ॥ किं कृतं रूपमाच्छाद्य प्रभुणा छलितो ह्यहम् ॥ १९ ॥ धियेति संविचार्य्यैवं साञ्जलिर्नतमस्तकः ॥ प्रणनाम प्रभुं
प्रीत्या तदोवाच स खिन्नधीः ॥ २० ॥ अर्जुन उवाच ॥ देवदेव महादेव करुणाकर शंकर ॥ ममापराधः सर्वेश क्षन्तव्यश्च त्वया पुनः
॥२१॥ किं कृतं रूपमाच्छाद्य च्छलितोऽस्मि त्वयाऽधुना ॥ धिङ् मां समरकर्तारं स्वामिना भवता प्रभो ॥ २२॥ नन्दीश्वर उवाच ॥
इत्येवं पाण्डवस्सोथ पश्चात्तापमवाप सः ॥ पादयोर्निपपाताशु शंकरस्य महाप्रभोः ॥ २३ ॥ अथेश्वरः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचर्ज़ुनं च
तम् ॥ समाश्वास्येति बहुशो महेशो भक्तवत्सलः ॥ २४ ॥ शंकर उवाच ॥ न खिद्य पार्थ भक्तोसि मम त्वं हि विशेषतः ॥ परीक्षार्थं
मया तेऽद्य कृतमेवं शुचञ्जहि ॥२५॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं स्वहस्ताभ्यामुत्थाप्य प्रभुरर्जुनम् ॥ विलज्जं कारयामास गणैश्च
स्वामिनो गणैः ॥ २६ ॥ पुनश्शिवोऽर्ज़ुनम्प्राह पाण्डवं वीरसम्मतम् ॥ हर्षयन् सर्वथा प्रीत्या शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २७ ॥

जो अपने रूपको छिपाकर मुझे छला, आप स्वामीके साथ युद्ध करनेवाले मुझे धिक्कारहै ॥२२॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार वह पांडव अर्ज़ुन पश्चात्ताप
करने लगा और महाप्रभु शिवजीके चरणोंमें गिरपडा ॥ २३ ॥ तब भक्तवत्सल महेश्वर प्रसन्नहो, उसको अनेकप्रकार आश्वासनकर अर्ज़ुनसे बोले॥ २४॥
शिवजी बोले, हे पार्थ ! तू खेद मत कर तू मेरा विशेष भक्त है, आज मैंने तेरी परीक्षा की तू शोकको त्याग दे ॥ २५ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहके
प्रभु शिवजीने अर्ज़ुनको अपने हाथोंसे उठाकर अपने गणोंसे उसे लज्जारहित कराया ॥२६॥ फिर भक्तवत्सल कल्याणकरनेवाले शिवजी वीरोंके माननीय

पांडव अर्जुनको प्रसन्न करतेहुए उससे बोले ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, हे पार्थ ! हे पांडवश्रेष्ठ ! मैं प्रसन्न हूं वर मांग, आज मैंने तेरे प्रहारोंसे तथा ताडनसे पूजन (सत्कार) माना है ॥ २८ ॥ इस समय अपनी इच्छासे तूने मेरा अपराध नहीं किया, तेरें लिये कुछ अदेय नहीं है जो इच्छा हो सो मांग ॥ २९ ॥ शत्रुओंमें तेरा यश, राज्य, स्थापन करनेके लिये यह कल्याण किया, इसका दुःख नहीं करना चाहिये, तू सम्पूर्ण खेदको त्याग दे ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार उन प्रभु शंकरनें अर्जुनसे कहा तब वह सावधानीसे भक्तिपूर्वक शिवजीसे बोला ॥ ३१ ॥ अर्जुन बोला, हे सुप्रभो ! हे सदाशिव!

शिव उवाच ॥ हे पार्थ पाण्डवश्रेष्ठ प्रसन्नोस्मि वरं वृणु ॥ प्रहारैस्ताडनैस्तेऽद्य पूजनम्मानितम्मया ॥ २८ ॥ इच्छया च कृतं मेऽद्य नापराधस्तवाधुना ॥ नादेयं विद्यते तुभ्यं यदिच्छसि वृणीष्व तत् ॥ २९ ॥ ते शत्रुषु यशोराज्यस्थापनाय शुभं कृतम् ॥ एतद्दुःखं न कर्तव्यं वैक्लव्यं च त्यजाखिलम् ॥ ३० ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तेन प्रभुणा शंकरेण सः ॥ उवाच शंकरं भक्त्या सावधानतया स्थितः ॥ ३१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ भक्तप्रियस्य शम्भोस्ते सुप्रभो किं समीहितम् ॥ वर्णनीयं मया देव कृपालुस्त्वं सदाशिव ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा संस्तुतिं तस्य शंकरस्य महाप्रभोः ॥ चकार पाण्डवस्सोथ सद्भक्तिं वेदसंमताम् ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नमस्ते देवदेवाय नमः कैलासवासिने ॥ सदाशिव नमस्तुभ्यं पञ्चवक्राय ते नमः ॥ ३४ ॥ कपर्दिने नमस्तुभ्यन्त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते ॥ मनः प्रसन्नरूपाय सहस्रवदनाय च ॥ ३५ ॥ नीलकंठ नमस्तेस्तु सद्योजाताय वै नमः ॥ वृषध्वज नमस्तेस्तु वामांगगिरिजाय च ॥ ३६ ॥

हे देव ! आप भक्तोंके प्रियहो आप शंभुकी चेष्टा मुझसे क्या वर्णन होसकती है, आप कृपालु हैं ॥ ३२ ॥ ऐसा कह अर्जुन, उन महाप्रभु शंकरकी स्तुतिको करने लगा, तथा वेदसम्मत सद्भक्ति करने लगा ॥ ३३ ॥ अर्जुन बोला, आप देवोंके देवको नमस्कार है, कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव ! आपको नमस्कार है, तथा पांचमुखवाले आपको नमस्कारहै, ॥ ३४ ॥ आप कपर्दीको नमस्कार है, तथा तीननेत्रवाले आपको नमस्कार है, प्रसन्नरूप आपको नमस्कार है, तथा सहस्रवदनवाले आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे नीलकंठ ! हे वृषभध्वज ! आपको नमस्कार है, सद्योजातरूप आपको नमस्कार है

वाम अंगमें जिनके पार्वती स्थितहैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे दशभुजाओंवाले आपको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है, डमरू तथा कपाल हाथमें लिये आपको नमस्कारहै, मुंडमालाधारी आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे शुद्धस्पटिकमणिके समान् प्रकाशित शुद्ध कपूर की समानं शरीरवाले ! आपको नमस्कार है, पिनाकपाणी आपको, तथा त्रिशूलधारी आपको नमस्कार है ॥३८॥ बाघंबर ओढे हुए आपको नमस्कारहै, हस्तीके चर्म धारी आपको नमस्कार है, अंगोंमें सर्प धारण करनेवाले आपको नमस्कार है, हे गंगाजीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे सुपाद आपके अर्थ नमस्कार है, तथा लाल चरणोंवाले आपको नमस्कार है, नन्दीगण आदिके सेव्य आपको नमस्कार है, गणेशरूप आपको नमस्कार

दशदोष नमस्तुभ्यन्नमस्ते परमात्मने ॥ डमरुकपालहस्ताय नमस्ते मुण्डमालिने ॥ ३७॥ शुद्धस्फटिकसंकाशशुद्धकर्पूरवर्ष्मणे ॥
पिनाकपाणये तुभ्यन्त्रिशूलवरधारिणे ॥ ३८ ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयाय गजाम्बरविधारिणे ॥ नागांगाय नमस्तुभ्यं गंगाधर नमोस्तु ते
॥ ३९ ॥ सुपादाय नमस्तेऽस्तु आरक्तचरणाय च ॥ नन्द्यादिगणसेव्याय गणेशाय च ते मनः ॥ ४० ॥ नमो गणेशरूपाय कार्ति
केयानुगाय च ॥ भक्तिदाय च भक्तानां मुक्तिदाय नमोनमः ॥४१॥ अगुणाय नमस्तेस्तु सगुणाय नमोनमः ॥ अरूपाय सरूपाय
सकलायाकलाय च ॥ ४२ ॥ नमः किरातरूपाय मदनुग्रहकारिणे ॥ युद्धप्रियाय वीराणां नानालीलानुकारिणे ॥ ४३ ॥ यत्किंचिद्द
श्यते रूपन्तत्तेजस्तावकं स्मृतम् ॥ चिद्रूपस्त्वं त्रिलोकेषु रमसेन्वयभेदतः ॥ ४४ ॥

है ॥ ४० ॥ गणेशरूप आपको नमस्कार है, तथा कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कारहै, भक्तोंको भक्तिदेनेवाले आपको नमस्कारहै, मुक्तिदेनेवाले आपको बारंबार नमस्कारहै ॥४१॥ अगुणरूप आपको तथा सगुणरूप आपको नमस्कार है, अरूप आपको तथा सरूप आपको नमस्कार है, कलासहित आपको तथा बिना कलावाले आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ किरातरूप आपको तथा मेरे अनुग्रह करनेवाले आपको तथा युद्धप्रिय आपको, वीरोंको अनेक लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ जो कुछ रूप दीखता है वह तुम्हारा ही तेज कहा है, आप तीनोंलोकोंमें चिद् (ज्ञान) स्वरूप

होकर अन्वयके भेदसे रमण करते हो ॥ ४४ ॥ आपके गुणोंकी संख्या नहीं है, जैसे भूमिके कण, आकाशके तारे, वर्षाके जलकणोंकी गणना नहीं है ॥४५॥ हे नाथ ! ऐसेही आपके गुणोंकी गणना करनेको वेदभी समर्थ नहीं है तो फिर मैं मूढबुद्धि किसप्रकार वर्णनकरसकता हूं ॥ ४६ ॥ हे महेशान ! हे महेश्वर ! आप जो हैं, सोहीहैं आपको नमस्कार है, आप मेरे ऊपर कृपा करनेके योग्य हैं, मैं आपका दास हूं, आप मेरे स्वामी हैं ॥ ४७ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा उस अर्जुनका वचन सुनकर, प्रभु शिवजी प्रसन्न होकर हँसते हुए अर्जुनसे फिर बोले ॥ ४८ ॥ शिवजी बोले, हे पुत्र ! बहुत कहनेसे क्या

गुणानान्ते न संख्यास्ति यथा भूरजसामिह ॥ आकाशे तारकाणां हि कणानां वृष्टचपामपि ॥ ४५ ॥ न ते गुणास्तु संख्यातुं वेदा वै सम्भवन्ति हि ॥ मन्दबुद्धिरहं नाथ वर्णयामि कथम्पुनः ॥ ४६ ॥ सोसि योसि नमस्तेऽस्तु कृपां कर्तुमिहार्हसि ॥ दासोहं ते महेशान स्वामी त्वं मे महेश्वर ॥४७॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः प्रोवाच शंकरः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा विहसन्प्रभुरर्जुनम् ॥ ४८ ॥ शंकर उवाच ॥ वचसा किम्बहूक्तेन शृणुष्व वचनम्मम ॥ शीघ्रं वृणु वरम्पुत्र सर्वन्तच्च ददामि ते ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्तश्चार्जुनस्तेन प्रणिपत्य सदाशिवम् ॥ साञ्जलिर्नतकः प्रेम्णा प्रोवाच गद्गदाक्षरम् ॥ ५० ॥ अर्जुन उवाच ॥ किं ब्रूयां त्वं च सर्वेषामन्तर्यामितया स्थितः ॥ तथापि वर्णितं मेऽद्य श्रूयतां च त्वया विभो ॥ ५१ ॥ शत्रूणां संकटं यच्च तद्गतन्दर्शनात्तव ॥ ऐहिकीं च परां सिद्धिम्प्राप्नुयां वै तथा कुरु ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य शंकरम्भक्तवत्सलम् ॥ नतस्कन्धोऽर्जुनस्तत्र बद्धाञ्जलिरुपस्थितः ॥५३॥ शिवोपि च तथाभूतञ्ज्ञात्वा पाण्डवमर्जुनम् ॥ निजभक्तवरं स्वामी महातुष्टो बभूव ह ॥ ५४ ॥

प्रयोजन है, मेरा वचन सुनो, शीघ्रही वर मांगो, मैं तुझे सबकुछ देताहूं ॥ ४९ ॥ नन्दीश्वर बोले, इस प्रकार शिवजीके वचन सुन अर्जुनने सदाशिवको प्रणाम करके अंजलि बांध नम्रहो प्रेमसे गद्गद होकर कहा ॥ ५० ॥ अर्जुन बोला, हे विभो ! मैं क्या कहूं ? आप सबोंके अन्तर्यामी हैं तोभी आप आज मेरी प्रार्थना सुनियें ॥ ५१ ॥ जो कुछ शत्रुओंका संकट था सो सब आपके दर्शनसे दूरहुआ, जिसप्रकार मैं इस लोककी सिद्धिको पाऊं सो करो ॥ ५२ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कह कंधे झुकाये हाथ बांधे वह अर्जुन उन भक्तवत्सल शिवजीको नमस्कार कर बैठगया ॥ ५३ ॥ स्वामी शिवजीभी

पांडव अर्जुनको अपना परमभक्त जानकर बडे संतुष्ट हुए ॥ ५४ ॥ अपना पाशुपत अस्त्र जो सबसे दुर्जय था वह अर्जुनको दिया और शिवजी यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले, मैंने अपना अस्त्र (पाशुपतास्त्र) तुझको दिया इससे तू दुर्जय होगा, इस अस्त्रसे सब शत्रुओंके विजयको प्राप्तहो ॥ ॥ ५६ ॥ और मैं श्रीकृष्णजीसे भी कहूंगा वह तुम्हारी सहायता करेंगे, वह मेरे भक्त तथा आत्माहैं और कार्यके करनेवाले हैं ॥ ५७ ॥ हे भारत ! मेरे प्रभावसे तू निष्कंटक (विनाउपद्रव) राज्य कर और निरन्तर अपने भाइयोंसे अनेकप्रकारके धर्म करो ॥ ५८ ॥ नन्दीश्वर बोले, ऐसा कहकर

अस्त्रम्पाशुपतं स्वीयन्दुर्जयं सर्वदाखिलैः ॥ ददौ तस्मै महेशानो वचनश्चेदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ स्वं महास्त्रम्मया दत्तन्दुर्जयस्त्वम्भविष्यति ॥ अनेन सर्वशत्रूणां जयकृत्यमवाप्नुहि ॥ ५६ ॥ कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यन्ते करिष्यति ॥ स वै ममात्मभूतश्च मद्भक्तः कार्य्यकारकः ॥ ५७ ॥ मत्प्रभावान्भारत त्वं राज्यन्निष्कण्टकं कुरु ॥ धर्म्मान्नानाविधान्भ्रात्रा कारय त्वं च सर्वदा ॥ ५८ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वा निजहस्तं च धृत्वा शिरसि तस्य सः ॥ पूजितो ह्यर्जुनेनाशु शंकरोन्तरधीयत ॥ ५९ ॥ अथार्जुनः प्रसन्नात्मा प्राप्यास्त्रं च वरं प्रभोः ॥ जगाम स्वाश्रमे मुख्यं स्मरन्भक्त्या गुरुं शिवम् ॥ ६० ॥ सर्व्वे ते भ्रातरः प्रीतास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ मिलित्वा तं सुखं प्रापुर्द्रौपदी चाति सुव्रता ॥ ६१ ॥ शिवं परं च सन्तुष्टम्पाण्डवाः सर्व एव हि ॥ नातृप्यन्सर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा हर्षमुपागताः ॥ ६२ ॥ आश्रमे पुष्पवृष्टिश्च चन्दनेन समन्विता ॥ पपात सुकरार्थं च तेषाञ्चैव महात्मनाम् ॥ ६३ ॥ धन्यं च शंकरं चैव नमस्कृत्य शिवम्मुदा ॥ अवधिं चागतं ज्ञात्वा जयश्चैव भविष्यति ॥ ६४ ॥

शंकर (शिवजी) उस अर्जुनके शिरपर हाथ धर अर्जुनसे सत्कार कियेहुए अन्तर्धान होगये ॥ ५९ ॥ और अर्जुन प्रसन्नहो शिवजीके सुन्दर अस्त्रको पाकर भक्तिसे मुख्य शिव गुरुको स्मरण करताहुआ अपने आश्रमको आया ॥ ६० ॥ उससे मिलकर वे सब भाई बडे प्रसन्न हुए, जैसे गयेहुए प्राण आगये और पतिव्रता द्रौपदीने बडा सुख पाया ॥ ६१ ॥ वे सब युधिष्ठिर आदि पांडव शिवजीको परम संतुष्टहुआ जान तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर बडे हर्षको प्राप्त हुए और उस हर्षसे तृप्त न हुये ॥ ६२ ॥ उन महात्मा पांडवोंके आश्रममें चन्दनसे युक्तहुई फूलोंकी वर्षा मंगलके निमित्त हुई ॥ ६३ ॥ शिवजी को धन्यहै,

यह कह आनन्दके साथ नमस्कार किया और अवधिको आया जानकर उन्होंने विजयकी इच्छा की ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णजी अर्जुनको आयाहुआ सुन उनसे मिलनेको आये और बडे सुखको प्राप्त हुए ॥ ६५ ॥ और बोले, इसीकारण मैंने कहाथा कि शंकर सब दुःखोंको नष्ट करनेवाले हैं, वह मुझसे सेवन किये जातेहैं, आपभी उनका नित्य सेवन करिये ॥ ६६ ॥ इस प्रकार किरातनामक शिवजीका अवतार तुमसे कहा, उसको सुनकर तथा सुनाकर मनुष्य सब मनोरथोंको प्राप्त होताहै ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां तृ० श० रु० किरातेश्वरावतारवर्णनं नामै

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णश्श्रुत्वार्जुनमथागतम् ॥ मेलनाय समायातश्श्रुत्वा सुखमुपागतः ॥ ६५ ॥ अतश्चैव मयाख्यातः शंकरः सर्वदुःखहा ॥ स सेव्यते मया नित्यं भवद्भिरपि सेव्यताम् ॥ ६६ ॥ इत्युक्तस्ते किराताह्वोवतारश्शंकरस्य वै ॥ तं श्रुत्वा श्रावयन्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ इत्यष्टाशीत्यवताराः (८८) इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ नन्दीश्वर उवाच ॥ अवताराञ्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्परान् ॥ ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै नानोतिकारकान्मुने ॥ १ ॥ सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ॥ उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥२॥ केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशंकरः ॥ वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥ ३ ॥ वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने ॥ सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ॥ ४ ॥ अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः ॥ सर्वानन्दकरं पुंसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने ॥ ५ ॥

कचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ (८८ अवतार समाप्त हुए) नन्दीश्वर बोले, हे मुने ! सर्वव्यापक शिवजीके अनेक लीला करनेवाले, ज्योतिर्लिंगस्वरूप बारह संख्यावाले, परम अवतारोंको सुनो ॥ १ ॥ सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन अवतार, तथा उज्जयिनीमें महाकाल, ओंकारमें अमरेश्वर ॥ २ ॥ हिमालय पर्वतपर केदार, तथा डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ तथा गौतमीके तटपर त्र्यम्बक ॥ ३ ॥ चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुंबंधमें रामेश, तथा शिवालयमें घुश्मेश अवतार है ॥ ४ ॥ हे मुने ! यह परमात्मा शिवके बारह अवतार हैं, मनुष्योंको दर्शन करने तथा

स्पर्श करनेसे परम आनन्द देनेवालेहैं ॥ ५ ॥ हे मुने ! उनमेंसे पहला सोमनाथ चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजन करनेसे क्षय
तथा कुष्ठ आदि रोगोंका नाश होताहै ॥ ६ ॥ सोमेश (सोमनाथ) नामक शिवका अवतार सुन्दर सौराष्ट्र देशमें लिंगरूपसे स्थित है उसको पहले
चन्द्रमाने पूजा था ॥ ७ ॥ वहां चन्द्रकुंड है जो सब पापोंका नाश करने वाला है, बुद्धिमान् पुरुष वहां स्नान करके सब रोगोंसे छूट जाता
है ॥ ८ ॥ शिवजीके आत्मस्वरूप सोमनाथ महालिंगका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे छूटता है और भुक्ति तथा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

तत्राद्यस्सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयंकरः क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ॥६॥ शिवावतारस्सोमेशो लिङ्गरूपेण संस्थितः ॥
सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ॥ ७ ॥ चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशकम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते
॥ ८ ॥ सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम् ॥ दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥ मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारश्शं
करस्य वै ॥ द्वितीयः श्रीगिरौ तात भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥ संस्तुतो लिंगरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ॥ गतस्तत्र महाप्रीत्या स
शिवः स्वगिरेर्मुने ॥ ११ ॥ ज्योतिर्लिंगं द्वितीयन्तद्दर्शनात्पूजनान्मुने ॥ महासुखकरं चान्ते मुक्तिदन्नात्र संशयः ॥ १२ ॥ महा
कालाभिधस्तातावतारश्शङ्करस्य वै ॥ उज्जयिन्यां नगर्य्यां च बभूव स्वजनावनः ॥ १३ ॥ दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् ॥
उज्जयिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम् ॥ १४ ॥

हे तात ! शिवजीका दूसरा श्रीगिरि पर्वतपर मल्लिकार्जुन नामक अवतार है जो भक्तोंको मनोवांछित फलका देनेवाला है ॥ १० ॥ हे मुने !
पुत्रके दर्शनके हेत, लिंगके रूपसे स्तुति कियेगये थे, वहांसे शिवजी, बडी प्रसन्नतापूर्वक अपने कैलासपर्वतको गयेथे ॥ ११ ॥ हे मुने ! यह दूसरा
ज्योतिर्लिंगहै उसके दर्शन करनेसे बडा सुख प्राप्त होताहै और अन्तसमय निःसन्देह मुक्तिका देनेवालाहै ॥ १२ ॥ हे तात ! उज्जयिनी नगरीमें अपने
परिवारकी रक्षाके अर्थ शिवजीका महाकाल नामक अवतार हुआहै ॥ १३ ॥ जिसने उज्जयिनीमें प्राप्तहुए ब्राह्मणोंके द्वेषी महानाशक वेदधर्मके

नष्ट करनेवाले दूषण नामक दैत्यको ॥ १४॥ जो वेदविप्रके पुत्रको मारने आया था, जो वेदविप्रका पुत्र शिवजीका ध्यान करता रत्नमाल देशमें रहता था, वहां उस राक्षसको हुंकारमात्रसे शिवजीने उसी समय नष्ट करदिया ॥ १५ ॥ तब महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगके स्वरूपसे उस दैत्यको मारकर अपने भक्तोंको पालन करनेवाले देवताओंसे प्रार्थना कियेहुए शिवजी वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ इन महाकालनामक लिंगका दर्शन कर तथा यत्नपूर्वक पूजनकर सब कामोंको प्राप्त हो अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होताहै ॥१७ ॥ ओंकार नामक शिवजीका चौथा अवतार है, वह भक्तोंके इच्छित फलका देनेवाला है ॥ १८ ॥ हे मुने ! अपने पार्थिव लिंगके अनुसार भक्तिसहित विधिपूर्वक स्थापित महादेव प्रगट हुए और विन्ध्यके मनोरथ सिद्ध किये ॥१९॥ वहां देवताओंसे प्रार्थना कियेहुए दो रूप धारण करके स्थित हुए, भक्तवत्सल लिंगरूप शिवजी भोग और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! प्रणवमें ओंकार नामक उत्तम लिंग है, वहां परमेश्वर नामक पार्थिवरूप हुए ॥ २१ ॥ हे मुने ! जिनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फल मिलतेहैं, हे महामुने ! यह महादिव्य ज्योतिर्लिंग तुमसे वर्णन किया ॥ २२ ॥ पांचवां केदारेश नामक अवतार ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे केदारमें स्थितहै ॥२३॥ हे मुने !

वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् ॥ भस्मसात्कृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम्॥ १५ ॥ तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ॥ देवैस्स प्रार्थितोः तिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ॥ १६ ॥ महाकालाह्वयं लिंगं दृष्ट्वाभ्यर्चर्य प्रयत्नतः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ॥ १७॥ ओङ्कारः परमेशानो धृतः शम्भोः परमात्मनः ॥ अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफल प्रदः ॥ १८ ॥ विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिंगात्पार्थिवान्मुने ॥ प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ॥ १९ ॥ देवैस्संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो लिंगरूपो वै भक्तवत्सलः ॥ २० ॥ प्रणवे चैव चोंकारनामासील्लिंगमुत्तमम् ॥ परमेश्वरनामासीत्पार्थिवश्च मुनीश्वर ॥ २१ ॥ भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेयो योपि दृष्टोर्चितो मुने ॥ ज्योतिर्लिंगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ॥ २२ ॥ केदारेशोवतारस्तु पंचमः परमश्शिवः॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण केदारे संस्थितस्स च ॥ २३ ॥ नरनारायणाख्यौ याववतारौ हरेर्मुने ॥ तत्प्रार्थितश्शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ॥ २४ ॥

जो नरनारायण नामक विष्णुभगवानके अवतार हैं, केदार व हिमालय पर्वतपर उनसे प्रार्थना कियेहुए शिवजी ॥ २४ ॥ उन दोनोंसे पूजन किये गये केदारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए हैं और दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवालेहैं ॥ २५ ॥ हे तात ! वह शिवका अवतार सबका ईश्वर तथा सब कामनाओंका देनेवाला और इस खंडका स्वामी है ॥ २६ ॥ महाप्रभु शिवजीका भीमशंकर नामक छठा अवतार बडी लीला करनेवाला भीम असुरको नाश करनेवाला हुआ ॥ २७ ॥ जिसने भक्तोंको दुःख देनेवाले उस अद्भुत दैत्यको मारकर सुदक्षिण नामक कामरूप देशके राजाकी रक्षाकी ॥ २८ ॥

ताभ्यां च पूजितो नित्य केदारेश्वरसंज्ञकः ॥ भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि ॥ २५ ॥ अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोपि विशेषतः ॥ सर्वकामप्रदस्तात सोवतारश्शिवस्य वै ॥ २६ ॥ भीमशंकरसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः ॥ अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः ॥ २७॥ सुदक्षिणाभिधम्भक्तङ्कामरूपेश्वरन्नृपम् ॥ यो ररक्षाद्भुतं हत्वासुरन्तं भक्तदुःखदम् ॥ २८ ॥ भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितस्स्वयम् ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शंकरः ॥ २९ ॥ विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ॥ सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ॥ ३० ॥ पूजितस्सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिस्सदा ॥ कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ॥ स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ॥ ३२ ॥ काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः ॥ निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ॥ ३३ ॥

वह भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध हो, डाकिनीमें स्वयं लिंगस्वरूपसे स्थित हुए और सुदक्षिण भक्तने उनकी बडी स्तुति की ॥ २९ ॥ हे मुने ! विश्वेश्वर नामक सातवां अवतार काशीमें हुआ, जो सब ब्रह्मांडका स्वरूप और भुक्ति तथा मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३० ॥ उनकी पूजा विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंने की, वह कैलासपति और भैरव रूपसे ॥ ३१ ॥ तथा ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे वहांपर स्थितहैं, और मुक्तिके देनेवाले स्वयं सिद्धस्वरूप तथा अपनी पुरीमें स्वामी हैं ॥ ३२ ॥ काशी और विश्वनाथको भक्तिसे पूजनेवाले तथा उनके नामको जपनेवाले अपने कर्मोंसे रहित हो कैवल्य (मोक्ष) पदके भागी

होतेहैं ॥ ३३ ॥ त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार गौतमीके किनारे हुआ है, जो गौतमकी प्रार्थनासे प्रगट हुए हैं ॥ ३४ ॥ शशिमौलि गौतमकी प्रार्थनासे
ज्योतिर्लिंग सहित वहां अचल हो उन मुनिकी प्रीति और कामनासे वहां स्थित हुएहैं ॥ ३५ ॥ उन शिवजीके दर्शन तथा स्पर्श करनेसे सब इच्छाएँ पूरी
होतीहैं, पश्चात् मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ३६ ॥ वहां शिवजीके अनुग्रहसे गौतमकी प्रीतिके निमित्त गौतमी गंगाके नामसे प्रसिद्ध पवित्रकरनेवाली नदी स्थितहै
॥ ३७ ॥ वहांपर नौवां वैद्यनाथ नामक अवतार कहा है जहांपर अनेक लीला करनेवाले प्रभु शिवजी रावणके निमित्त प्रगट हुए थे ॥ ३८ ॥ उस समय

त्र्यम्बकाख्योऽवतारो यः सोष्टमो गौतमीतटे ॥ प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ॥ ३४ ॥ गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिंग
स्वरूपतः ॥ स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ॥ ३५ ॥ तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्च महेशितुः ॥ सर्वे कामाः प्रसि
ध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो ॥ ३६ ॥ शिवानुग्रहतस्तत्र गंगा नाम्ना तु गौतमी ॥ संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ॥ ३७ ॥
वैद्यनाथावतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः ॥ आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ ३८ ॥ तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः ॥
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः ॥ ३९ ॥ वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोभूज्जगत्त्रये ॥ दर्शनात्पूजनाद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स
हि ॥ ४० ॥ वैद्यनाथेश्वरशिवमहात्म्यमनुशासनम् ॥ पठतां शृण्वतां चापि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥ ४१ ॥ नागेश्वरावतारस्तु दशमः
परिकीर्तितः ॥ आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानान्दण्डदस्सदा ॥ ४२ ॥ हत्वा दारुकनामानं राक्षसन्धर्मघातकम् ॥ स्वभक्तं वैश्यनाथं च
प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ॥ ४३ ॥ लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपधृक् ॥ सन्तस्थौ साम्बिकश्शम्भुर्बहुलीलाकरः परः ॥ ४४ ॥

शिवजीको रावण लिये जाता था वहां बहाना कर ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे चिताभूमिमें स्थित हुए ॥ ३९ ॥ और तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए
वह दर्शन तथा भक्तिपूर्वक पूजनसे भुक्ति तथा मुक्तिके देनेवालेहैं ॥ ४० ॥ हे मुने ! वैद्यनाथेश्वर शिव इस माहात्म्य तथा अनुशासनको पढने तथा सुनने
वालोंको भुक्ति और मुक्ति देनेवालेहैं ॥ ४१ ॥ दसवाँ नागेश्वर नामक अवतार कहा है जो अपने भक्तोंको अर्थ दुष्टोंको दंड देनेको प्रगट हुए हैं ॥ ४२ ॥
जिन्होंने धर्मके नाशक दारुक नामक राक्षसको मारकर सुप्रिय नामक अपने भक्त वैश्यकी रक्षा की ॥ ४३ ॥ अनेक लीला करनेवाले शम्भु पार्वतीसमेत

संसारके उपकारके अर्थ ज्योतिर्लिंग रूप धारण कर वहां स्थित हुए ॥ ४४ ॥ हे मुने ! उस नागेश्वरनामक शिवजीके लिंगका दर्शन तथा पूजन करके महापातकोंके समूह शीघ्रही नष्ट होतेहैं ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिवजीका ग्यारहवाँ रामेश्वर नामक अवतार हुआहै जो रामचन्द्रका प्रिय करनेवाला तथा रामचन्द्रसे स्थापित हुआ है ॥ ४६ ॥ ज्योतिर्लिंग स्वरूप भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने रामचन्द्रसे सन्तुष्ट होकर उन्हें जयका वरदान दिया ॥ ४७ ॥ हे मुने ! रामचन्द्रसे प्रार्थना किये हुए तथा रामचन्द्रसे अतिसेवा कियेहुए ज्योतिर्लिंग स्वरूपसे सेतुबन्धमें स्थित हुए हैं ॥ ४८ ॥ पृथ्वीपर रामेश्वरकी

तद्दृष्ट्वा शिवलिंगन्तु मुने नागेश्वराभिधम् ॥ विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः ॥ ४५ ॥ रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः ॥ रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने ॥ ४६ ॥ ददौ जयवरम्प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः ॥ आविर्भूतस्स लिंगस्तु शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ४७ ॥ रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपतः ॥ सन्तस्थौ सेतुबन्धे च राम संसेवितो मुने ॥ ४८ ॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४९ ॥ तं च गंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यो नरः ॥ रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ५० ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्लभानपि ॥ अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशश्शंकरस्य हि ॥ नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ॥ ५२ ॥ दक्षिणस्यान्दिशि मुने देवशैलसमीपतः ॥ अविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभुः ॥ ५३ ॥ सुदेह्यमारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने ॥ तुष्टस्तद्भक्तितश्शम्भुर्योरक्षद्भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥

महिमा बडी अद्भुत है, वे भोग तथा मुक्तिके देनेवाले और भक्तोंकी कामना देनेवालेहैं ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य उन रामेश्वर महादेवको श्रेष्ठभक्तिपूर्वक गंगाजलसे स्नान कराताहै वह जीवन्मुक्त होताहै ॥५०॥ इस संसारमें देवताओंसेभी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर पीछे परमज्ञानको प्राप्त हो कैवल्यमोक्षको पाताहै ॥ ५१ ॥ शिवजीका घुश्मेश्वर नामक बारहवां अवतारहै जो भक्तोंके ऊपर दयाकरनेवाला और घुश्माको आनन्ददेनेवाला है ॥ ५२ ॥ हे मुने ! दक्षिणदिशामें देवशैलके समीप सरोवरमें घुश्माके प्रियकरनेवाले प्रभु महादेवजी प्रगट हुए ॥ ५३ ॥ हे मुने ! जिन भक्तवत्सल शम्भुने सुदेह्य दैत्यसे मारेहुए

शिव महापुराण - कोटिरुद्र संहिता ४

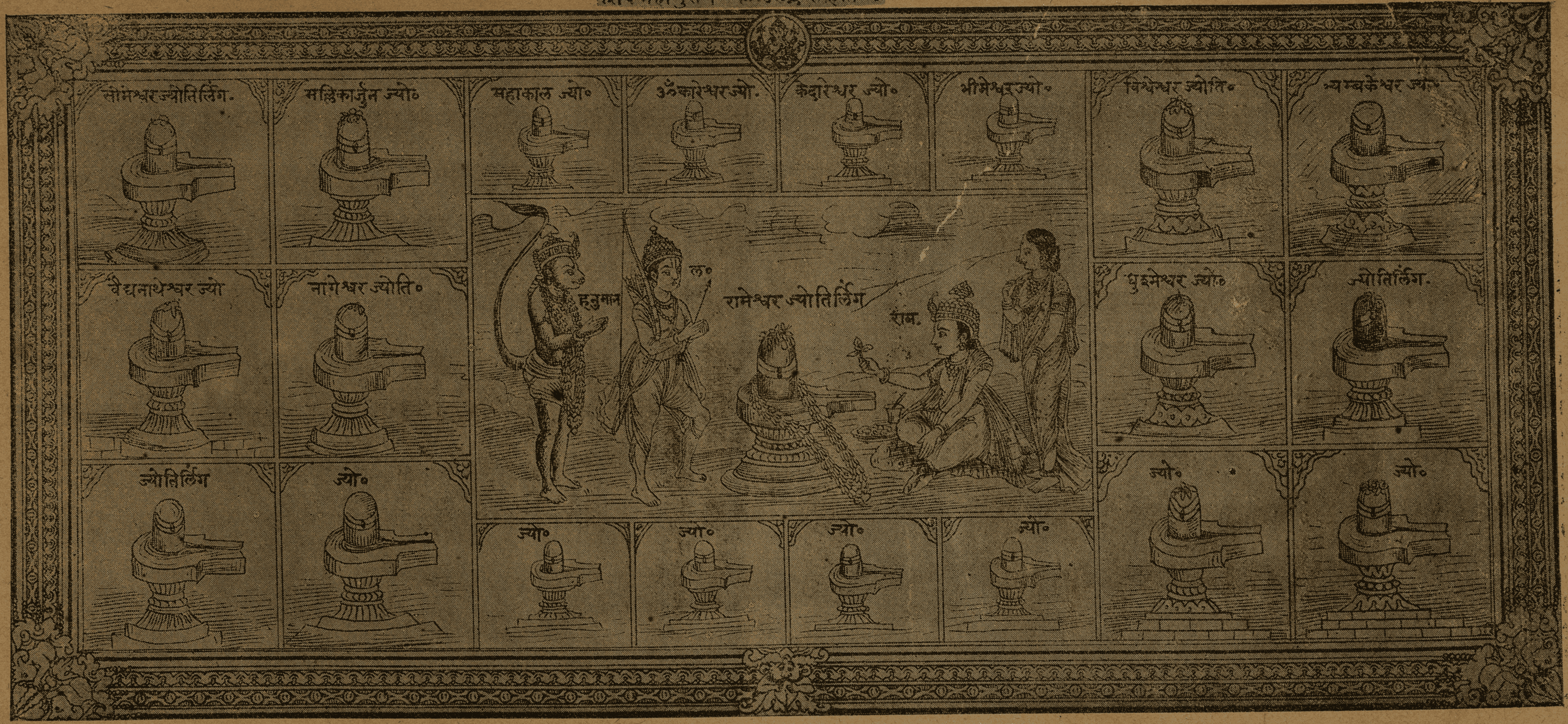
सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग.
मल्लिकार्जुन ज्यो०
महाकाल ज्यो०
ॐकारेश्वर ज्यो.
केदारेश्वर ज्यो०
भीमेश्वर ज्यो०
विश्वेश्वर ज्योति०
त्र्यम्बकेश्वर ज्यो०
वैद्यनाथेश्वर ज्यो
नागेश्वर ज्योति०
हनुमान
ल०
रामेश्वर ज्योतिर्लिंग
राम.
घुश्मेश्वर ज्यो०
ज्योतिर्लिंग.
ज्योतिर्लिंग
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०

शिव महापुराण - कोटिरुद्र संहिता ४

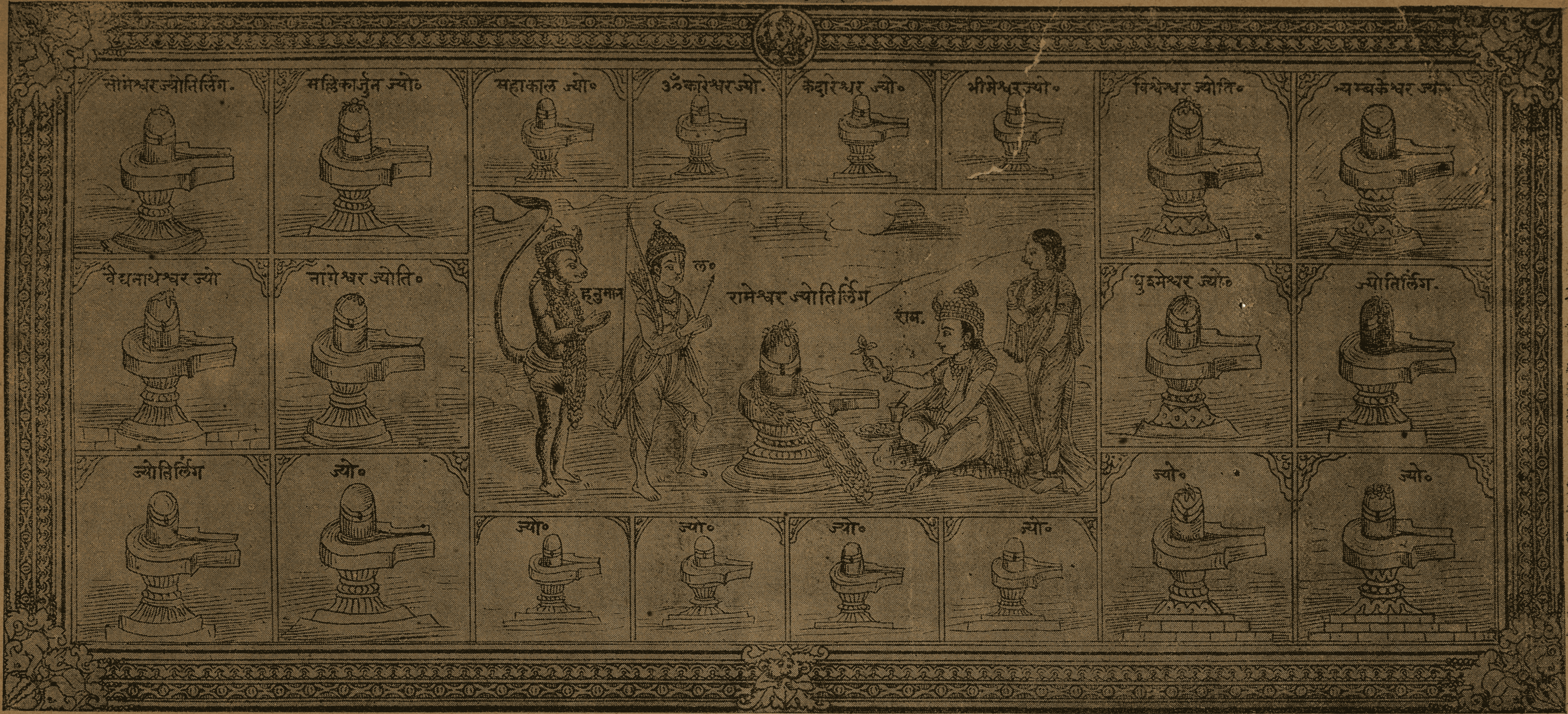
सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग.
मल्लिकार्जुन ज्यो॰
महाकाल ज्यो॰
ॐकारेश्वर ज्यो.
केदारेश्वर ज्यो॰
भीमेश्वर ज्यो॰
विश्वेश्वर ज्योति॰
त्र्यम्बकेश्वर ज्यो॰
वैद्यनाथेश्वर ज्यो
नागेश्वर ज्योति॰
हनुमान
ल॰
रामेश्वर ज्योतिर्लिंग
राम.
घुश्मेश्वर ज्यो॰
ज्योतिर्लिंग.
ज्योतिर्लिंग
ज्यो॰
ज्यो॰
ज्यो॰
ज्यो॰
ज्यो॰
ज्यो॰
ज्यो॰

दोहा–पूर्ण सच्चिदानंद घन, शंकरदेव महेश । तिनके पद बंदन करहुँ, काटैं कठिन कलेश ॥

जो सम्पूर्ण विकारोंसे रहित अपनी मायासे सम्पूर्ण भुवनोंको धारण कियेहुए हैं जिनके करुणाकटाक्षसे स्वर्ग और अपवर्गके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं पूर्ण बोध सुखजिन को योगीजन सदा हृदयमें देखतेहैं ऐसे पार्वतीको अर्द्धांगमें धारण करनेवाले तेजस्वरूप शंकरको सदा प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥ कृपाकी मनोहरदृष्टिवाले, कुछ हास्यसे मनोहर मुखकमलवाले, चन्द्रमाकी कलाकी समान उज्ज्वल, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, घोर तीनों तापोंके शान्त करनेवाले, स्फुरायमान परमसुखदायक सच्चिदानंदरूप शरीरवाले, पार्वतीकी भुजाओंसे आलिंगित शंकरका शरीर हमारा मंगल करै ॥ २ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! आपने लोकोंके हितकी कामनासे बहुत अच्छी बात कही, अब अनेक आख्यानों सहित शिवजीके अवतारोंके माहात्म्यको ॥ ३ ॥ फिर हमसे कहिये हे तात ! लिंगसम्बन्धी शिवजीका उत्तम माहात्म्य प्रेमसे कहिये; शिवके भक्तोंमें आप धन्य और उत्तम हैं ॥ ४ ॥ प्रभो ! आपके मुखकमलसे निकलेहुए शिवके अमृतरूपी मनोहर यशको सुनतेहुए हम तृप्त नहीं होते इस कारण उसे फिर कहिये ॥ ५ ॥ पृथिवीके प्रत्येक तीर्थोंमें जितने शुभलिंग हैं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ चतुर्थी कोटिरुद्रसंहिता प्रारभ्यते ॥ यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्ग्गाभिधौ ॥ प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनस्तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥ १ ॥ कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ॥ करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मंगलम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ॥ शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ३ ॥ पुनश्च कथ्यतां तात शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ लिंगसम्बन्धि सुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥ ४ ॥ शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्तास्स्मो वयं प्रभो ॥ शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ॥ ५ ॥ पृथिव्यां यानि लिंगानि तीर्थेतीर्थे शुभानि हि ॥ अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ॥ ६ ॥

वा दूसरे स्थलोंमें जितने प्रसिद्ध लिंगहैं ॥ ६ ॥ वह वह परमेश्वरके दिव्य लिंग आप जानतेहैं हे व्यासजीके शिष्य ! लोकोंके हितकी कामनासे आप वर्णन करैं ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! लोकोंके हितकी कामनासे आपने अच्छी बात पूछी हे ब्राह्मणो ! आपके स्नेहसे मैं संक्षेपमें कहताहूं ॥ ८ ॥ हे मुने ! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी तो कोई संख्या नहीं करसकता यह भूमि और यह सब जगत् लिंगमय है ॥ ९ ॥ लिंगमय सब तीर्थ हैं सबकुछ लिंगमेंही प्रतिष्ठितहै उनकी संख्या नहीं होसकती तोभी मैं उन दिव्य ज्योतिर्लिंगोंको आपसे कहता हूं ॥ १० ॥ जोकुछ देखने योग्य वस्तु दीखतीहै वर्णन की जाती है तथा जिसको वर्णन करते हैं और स्मरण करते हैं वह सब शिवजीका स्वरूप है और कुछ नहीं है ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठऋषियो ! ! ! तथापि पृथिवीपर जितने दिव्यलिंग हैं जैसा मैंने सुनाहै उनको कहता हूं आप प्रीतिसे सुनैं ॥ १२ ॥ पातालमें तथा स्वर्गमें और पृथिवीपर शिवजीके ज्योतिर्लिंग हैं, देवता, असुर तथा मनुष्योंसे सबजगह शिवजीकी पूजा होतीहै ॥ १३ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! देवता, मनुष्य तथा दैत्यसहित तीनोंलोक महादेवसे व्याप्त हैं और वह शिवजी संसारके अनुग्रहके अर्थ लिंगरूपसें स्थित हैं ॥ १४ ॥ शिवजी लोकोंके अनुग्रहके हेतु सब तीर्थोंमें तथा और स्थलोंमें अनेक प्रकारके लिंग धारण

तानि तानि च दिव्यानि लिंगानि परमेशितुः ॥ व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया ॥ कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः ॥ ८ ॥ सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते ॥ सर्वलिंगमयी भूमिः सर्वलिंगमयं जगत् ॥ ९ ॥ लिंग मयानि तीर्थानि सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ॥ संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्ब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ यत्किंचिद्दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत् ॥ तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन ॥ ११ ॥ तथापि श्रूयताम्प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ॥ लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥ १२ ॥ पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ॥ सर्वत्र पूज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ॥ १३ ॥ त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् ॥ अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः ॥ १४ ॥ अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः ॥ दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ॥ १५ ॥

करते हैं ॥ १५ ॥ जहां जहां पर जब जब शिवके भक्तोंने भक्तिसहित शिवजीको स्मरण किया है, उसी समय वहां वहांपर अवतार लेकर उनके कार्य करके स्थित हुए हैं ॥ १६ ॥ और लोकोंके उपकारके अर्थ अपने लिंगको प्रगट किया है उस लिंगप्रतिमाको पूजकर मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ॥ १७ ॥ हे द्विजो ! पृथिवीपर जितने लिंग हैं उनकी गणना नहीं है तौ भी मैं मुख्य ज्योतिर्लिंगोंको कहता हूं ॥ १८ ॥ प्रधान स्थानोंमें जो मुख्य मुख्य लिंग प्रतिमाहैं उनको कहता हूं कि–जिनको सुनकर मनुष्य उसी समय पापोंसे छूटजाता है ॥ १९ ॥ हे सत्तम ! जितने २ मुख्य २ शिवके

यत्रयत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः ॥ तत्रतत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥ १६ ॥ लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्य कल्पयत् ॥ तल्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ॥ १७ ॥ पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते ॥ तथापि च प्रधानानि कथ्यंते च मया द्विजाः ॥ १८ ॥ प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ १९ ॥ ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ॥ तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥२०॥ सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ॥ उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ॥ वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २२ ॥ वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ॥ सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥ २३ ॥ द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥ २४ ॥ यंयं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ॥ प्राप्स्यंति कामं तंतं हि परत्रेह मुनीश्वराः ॥ २५ ॥

ज्योतिर्लिंगहैं मैं उन्हें अब वर्णन करता हूं उनको सुनकर प्राणी पापसे छूटजातेहैं ॥ २० ॥ सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, और उज्जयिनीमें महाकाल, तथा ओंकारमें परमेश्वर हैं ॥ २१ ॥ हिमालयपर्वतपर केदारनामक, डाकिनीमें भीमशंकर महादेव हैं, और वाराणसीमें विश्वेश्वरनाथ, गौतमी नदीके किनारे त्र्यम्बक हैं ॥२२॥ चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, और सेतुबंधमें रामेश, तथा शिवालयमें घुश्मेश नामवाले महादेव हैं ॥२३॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर इन पूर्वोक्त बारह नामोंका पाठ करता है वह सब पापोंसे छूटकर संपूर्ण सिद्धिको पाता है ॥२४॥ हे मुनीश्वरो ! मनुष्यश्रेष्ठ जिस

जिस मनोरथको उद्देश करके इसका पाठ करैंगे वे उसी उस मनोरथको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥ और जो शुभ आशयवाले मनुष्य विना इच्छासे उनको पढैंगे उनका माताके गर्भमें निवास नहीं होगा ॥ २६ ॥ इन ज्योतिर्लिंगोंके पूजन करनेसेही सब वर्णोंके दुःखका नाश होता है, इस लोकमें तथा परलोकमें निश्चयही मुक्ति होती है ॥ २७ ॥ इन ज्योतिर्लिंगोंपर चढी हुई नैवेद्य (मिष्टान्न) ग्रहण करना चाहिये और यत्नपूर्वक भोजन करना योग्य है, ऐसा करनेवालोंके संपूर्ण पाप उसी समय भस्म होते हैं ॥ २८ ॥ हे ब्राह्मणो ! इन ज्योतिर्लिंगोंके विशेष फलके कहनेको ब्रह्माआदि देवता भी समर्थ नहीं हैं और दूसरोंकी तो क्या कथा है ॥२९॥ जो पुरुष निरंतर छैमासपर्यंत एक ज्योतिर्लिंगका पूजन करता है, उसको माताके कोखमें

ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ॥ तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति ॥ २६ ॥ एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखना
शनम् ॥ इह लोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम् ॥ २७ ॥ ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः ॥ तत्कर्तुः सर्व्वपापानि भस्मसा
द्यान्ति वै क्षणात् ॥ २८ ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः ॥ विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा ॥ २९ ॥ एकं च
पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम् ॥ तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम् ॥ ३० ॥ हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति ॥
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ॥ ३१ ॥ सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः ॥ शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यन
पायिनीम् ॥ ३२ ॥ म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः ॥ द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत् ॥ ३३ ॥ ज्यो
तिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ॥ ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ३४ ॥

आनेका दुःख नहीं होता है ॥ ३० ॥ निकृष्टयोनिमें यदि उत्पन्न होनेवाला भी शिवके लिंगका दर्शन करै तो उसका दूसरा जन्म शुद्ध तथा श्रेष्ठकुलमें होता है ॥ ३१ ॥ वह सुन्दर कुलमें जन्मको प्राप्त हो, धनाढ्य और वेदमें पारंगत होकर श्रेष्ठ कर्म करनेसे अविनाशिनी मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरो ! म्लेच्छ तथा अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई क्यों न हो, शिवजीके पूजनेसे दूसरे जन्ममें द्विज होकर मुक्त होता है इस कारण महादेवका दर्शन करना योग्य है ॥ ३३ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! मैंने इन ज्योतिर्लिंगोंका कुछ फल कहा अब इनके उपलिंगोंके फलको कहता हूं आप सुनैं ॥ ३४ ॥

पृथिवीके और सागरके संयोगमें सोमेश्वरका उपलिंग अन्तकेश नामवाला कहा है ॥ ३५ ॥ भृगु कक्षमें मल्लिकार्जुनसे प्रगटहुआ, सुखदायक, रुद्रेश्वर नामक उपलिंग कहा है ॥ ३६ ॥ नर्मदा नदीके किनारे महाकाल ज्योतिर्लिंगसे उत्पन्न हुआ दुग्धेश नामक उपलिंग प्रसिद्धहै और वह सब पापोंका हरण करनेवाला कहा है ॥ ३७ ॥ ओंकारसे उत्पन्न हुआ कर्दमेश नामक उपलिंग बिन्दुसरोवरमें प्रसिद्ध है, और सब कामनाओं और फलों को देनेवाला है ॥ ३८ ॥ यमुनाके तटपर केदारेश्वर लिंगसे उत्पन्न हुआ भूतेश नामवाला उपलिंग है उसके दर्शन तथा पूजन करनेवालोंके महापाप दूर होते हैं ॥ ३९ ॥ भीमशंकरसे प्रकटहुआ भीमेश्वर नामक उपलिंग सह्यपर्वतपर प्रसिद्ध है वह बडे बलको बढानेवाला है ॥ ४० ॥ मल्लिका सरस्वतीके किनारे नागेश्वर महादेवसे प्रगट

सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम् ॥ मह्यास्सागरसंयोगे तल्लिंगमुपलिङ्गकम् ॥ ३५ ॥ मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृतम् ॥ रुद्रेश्वरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम् ॥ ३६ ॥ महाकालभवं लिंगं दुग्धेशामिति विश्रुतम् ॥ नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ॥ ३७ ॥ ॐकारजं च यल्लिंगं कर्दमेशमिति श्रुतम् ॥ प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८ ॥ केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे ॥ महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतान्तथा ॥ ३९ ॥ भीमशंकरसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् ॥ सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् ॥ मल्लिकासरस्वतीतीरेदर्शनात्पापहारकम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम् ॥ घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ४२ ॥ ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः ॥ दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ॥ ४३ ॥ एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च ॥ अन्यानि चापि मुख्यानि चापि मुख्यानि श्रूयंतामृषिसत्तमाः ॥४४॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हुआ भूतेश्वर नामक शिवालिंग है जिसके दर्शनसे पाप दूर होते हैं ॥ ४१ ॥ रामेश्वरसे प्रादुर्भूत हुए गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश शिवसे उत्पन्न हुए व्याघ्रेश्वर शिव कहे हैं ॥ ४२ ॥ हे द्विजातियो ! मैंने यह ज्योतिर्लिंगोंके समीपके लिंगोंका वर्णन किया जिनके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होते हैं और सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ ४३ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! यह वर्णन कियेहुए उपलिंग बडे प्रसिद्ध हैं तथा मुख्यताको प्राप्त हुए हैं और अब और भी प्रसिद्ध हुए लिंगोंको वर्णन करताहूं सुनो ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूतजी बोले, गंगाजीके तटपर बडी प्रसिद्ध हुई और मुक्तिकी देनेवाली काशीनगरी है वह लिंगमयी और शिवजीके निवासकी भूमी कही है ॥ १ ॥ वहां मुक्तिकी देनेवाली शिवजीकी मुख्य प्रतिमा है कृत्तिवास नाम शिव भी वहां हैं वहां निवास करनेवाला वृद्ध तथा बालक साक्षात् शिवके तुल्य होजाता है ॥ २ ॥ वहां तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध नामक शिवहैं और गंगासागरके संगममें संगमेश नामवाले महादेव हैं ॥ ३ ॥ भूतेश्वर नामक तथा नारिश्वरनामसे प्रसिद्ध जो निरंतर भक्तोंको सब वस्तुओंको देनेवाले शिव हैं यह कौशिकी नदीके समीप विराजमान हैं ॥४॥ गण्डकी नदीके तटपर वटुकेश्वर महादेव हैं और फल्गु नदीके समीप सुखदायी पूरेश्वर नामक हैं ॥ ५ ॥ तथा उत्तर नगरमें सिद्धनाथेश्वर हैं जो दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धि देनेवालेहैं और वहांपरही दूरेश्वर नामक शिवहैं ॥ ६ ॥ दधीचिको संग्राम भूमिमें प्रसिद्ध हुए शृंगेश्वर तथा वैद्यनाथ नामक और जप्येश्वरनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ७ ॥ गोपेश्वर तथा रंगेश्वर, वामेश्वर और नागेश कामेश विमलेश्वर नामवाले हैं ॥ ८ ॥ व्यासेश्वर, सुकेश तथा भांडेश्वर, हुंकारेश नामक शिवकी प्रतिमायें हैं ॥ ९ ॥ सुरोचन, भूतेश्वर तथा संगमेश नामसे प्रसिद्ध ज्योतिलिंग है, और यह बडे पापोंको नाश करनेवाले हैं ॥ १० ॥ तप्तका नदीके तटपर कुमारे

सूत उवाच ॥ गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा ॥ सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता ॥ १ ॥ लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम् ॥ कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो वृद्धबालकः ॥ २ ॥ तिलभाण्डेश्वरश्चैव दशाश्वमेध एव च ॥ गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः ॥ ३ ॥ भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थदः सदा ॥ नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्याः स समीपगः ॥४॥ वर्तते गण्डकीतीरे बटुकेश्वर एव सः ॥ पूरेश्वर इति ख्यातः फल्गुतीरे सुखप्रदः ॥ ५ ॥ सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम् ॥ दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा ॥ ६ ॥ शृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च ॥ जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ॥ ७ ॥ गोपेश्वरः समाख्यातः रंगेश्वर इति स्मृतः ॥ वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ॥ ८ ॥ व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि ॥ भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुंकारेशस्तथैव च ॥ ९ ॥ सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम् ॥ संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः ॥ १० ॥ ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च ॥ सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ॥ ११ ॥

श्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥ रामेश्वर, कुंभेश तथा नन्दीश्वर, पुंजेश, पूर्णामें पूर्णक हैं ॥ १२ ॥ और पहले प्रयागमें ब्रह्माजीसे स्थापित किये ब्रह्मेश्वर दशाश्वमेधतीर्थपर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके फलको देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ और वहांपर सोमेश्वर संपूर्ण आपत्तियोंको दूर करनेवाले हैं और भरद्वाजेश्वरजी ब्रह्मतेजके देनेवाले हैं ॥ १४ ॥ शूलटंकेश्वर महादेव साक्षात् कामनाके देनेवाले हैं और वहां माधवेश्वर शिव भक्तोंकी रक्षाके करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! साकेत (अयोध्या) में नागेश नामसे प्रसिद्ध हैं यह सूर्यवंशमें उत्पन्न हुये मनुष्योंको विशेष सुख देनेवाले हैं ॥ १६ ॥

रामेश्वर इति प्रोक्तः कुंभेशश्च परो मतः ॥ नन्दीश्वरश्च पुंजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ॥ १२ ॥ ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा ॥ दशाश्वमेधतीर्थे हि चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १३ ॥ तथा सोमेश्वरस्तत्र सर्व्वापद्विनिवारकः ॥ भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चःप्रवर्द्धकः ॥ १४ ॥ शूलटंकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः ॥ माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ॥ १५ ॥ नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः ॥ सूर्य्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः ॥ १६ ॥ पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशस्सुसिद्धिदः ॥ लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ॥ १७ ॥ कामेश्वरः शंभुलिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत् ॥ शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ॥ १८ ॥ तथा बटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः ॥ सिन्धुतीरे कपालेशो वक्रेशः सर्वपापहा ॥ १९ ॥ धौतपापेश्वरः साक्षादंशेन परमेश्वरः ॥ भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः ॥२०॥ नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः ॥ नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः ॥ २१ ॥

पुरुषोत्तम पुरीमें भुवनेशजी प्रसिद्ध हैं, लोकेशनाम महालिंग सम्पूर्ण आनन्द देनेवाला है ॥ १७ ॥ कामेश्वर नामक शिवका ज्योतिर्लिंग है तथा गंगेशजी परमशुद्धि करनेवाले हैं और शक्रेश्वर तथा शुक्रसिद्धजी लोकोंके हितकी इच्छासे स्थापित हुयेहैं ॥१८॥ वटेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए शिवजी सब कामनाओंके फलके देनेवाले हैं, और सिन्धुनदीके तीरपर कपालेश्वर, वक्रेशजी सब पापोंको हरनेवालेहैं ॥ १९ ॥ साक्षात् शिवस्वरूप धौतपापेश्वरजी, भीमेश्वरजी तथा सूर्येश्वरनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २० ॥ नन्देश्वरजी संसारसे पूजित हुए ज्ञानको देनेवाले हैं, नाकेश्वरजी महापुण्यके देनेवाले हैं, और रामेश्वरभी महापुण्य

फलदायकहैं ॥ २१ ॥ विमलेश्वरनामक तथा कंटकेश्वर, और धर्तुकेशजी पूर्णसागरके संयोगके निकट हैं ॥ २२ ॥ चन्द्रेश्वरजी चन्द्रमाकी कान्तिके
फलको देनेवाले कहेहैं, सिद्धेश्वर सब मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ बिल्वेश्वर तथा अन्धकेशजी विख्यात हैं, जहां पहले शिवजीने अन्धक दैत्यको
माराथा ॥ २४ ॥ शिवजीने अपने अंशसे यही स्वरूप धारण करके यहां स्थिति की है और शरणेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो संसारको नित्य सुखदायक हुयेहैं
॥ २५ ॥ कर्दमेशजी तथा कोटीश नामवाले और अर्बुदपर्वतपर अचलेशजी विख्यातहैं और सदा लोकोंको सुखदायक हैं ॥ २६ ॥ कौशिकी नदीके समीप

विमलेश्वरनामा वै कंटकेश्वर एव च ॥ पूर्णसागरसंयोगे धर्तुकेशस्तथैव च ॥२२॥ चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः ॥ सर्वका
मप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ॥ २३ ॥ बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च ॥ यत्र वा ह्यन्धको दैत्यः शंकरेण हतः पुरा
॥ २४ ॥ अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः ॥ शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदः सदा ॥२५॥ कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटी
शश्चार्बुदाचले ॥ अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा ॥ २६ ॥ नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः ॥ अनन्तेश्वरसं
ज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ॥ २७ ॥ योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा ॥ कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः ॥ २८ ॥
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम् ॥ चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च ॥२९॥ पूर्वस्यां दिशिजातानि शिवलिंगानियानि
च ॥ सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते॥३०॥दक्षिणस्यां दिशि तथा शिवलिंगानि यानि च ॥ संजातानि मुनिश्रेष्ठ तानि
ते कथयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नागेश्वरजी नित्य विराजमान हैं, तथा अनंतेश्वरजी कल्याणके शुभपात्र हैं ॥२७॥ योगेश्वरजी तथा वैद्यनाथजी और कोटीश्वरजी, सप्तेश्वरजी विख्यात हैं
॥२८॥ और भद्रनामक साक्षात् शिवजी भद्रेश्वरनामसे प्रसिद्ध हैं और चंडीश्वर तथा संगमेश्वर नामसे विख्यात हैं ॥ २९ ॥ पूर्वदिशामें विराजमानहुए जो
शिवजीके ज्योतिर्लिङ्ग हैं तथा औरभी जो सामान्य मूर्त्ति हैं उन सबको आपसे वर्णन किया ॥ ३० ॥ अब दक्षिणदिशाकी ओर जितने ज्योतिर्लिङ्ग हैं हे
मुनिश्रेष्ठ ! उन सबका वर्णन तुमसे करताहूं ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा०च०कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

सूतजी बोले, कि-ब्रह्मपुरीमें चित्रकूटपर्वतपर ब्रह्माजीसे स्थापनकिया, सब कामनाका पूर्ण करनेवाला मत्तगजेन्द्रक नाम ज्योतिर्लिङ्ग है ॥ १ ॥ और उसके पूर्व दिशामें कोटीशलिंग सब वरोंका देनेवाला है और गोदावरी नदीसे पश्चिमकी ओर पशुपतिनामक लिङ्ग है ॥ २ ॥ और दक्षिणदिशामें अत्रीश्वर महादेव संसारके उपकार करनेके निमित्त तथा अनसूयाके सुख देनेके अर्थ स्वयं प्रगट हुये ॥ ३ ॥ और साक्षात् शिवजीने अपने अंशसे रूप धारण कर वर्षाके अभावमें सब मनुष्योंको जिलाया ॥ ४ ॥ ऋषि बोले, हे बड़े भाग्यवान् सूतजी ! हे सुन्दरव्रतधारिन् ! यहां किस प्रकार परम दिव्यस्वरूप

सूत उवाच ॥ ब्रह्मपुर्यां चित्रकूटं लिंगं मत्तगजेन्द्रकम् ॥ ब्रह्मणा स्थापितं पूर्वं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ १ ॥ तत्पूर्वदिशि कोटीशं लिंगं सर्ववरप्रदम् ॥ गोदावर्य्याः पश्चिमे तल्लिंगं पशुपतिनायकम् ॥ २ ॥ दक्षिणस्यां दिशि कश्चिदत्रीश्वर इति स्वयम् ॥ लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च ॥ ३ ॥ प्रादुर्भूतः स्वयं देवो ह्यनावृष्ट्यामजीवयत् ॥ स एव शंकरः साक्षादंशेन स्वयमेव हि ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग कथमत्रीश्वरो हरः ॥ उत्पन्नः परमो दिव्यस्तत्त्वं कथय सुव्रत ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः कथयामि कथां शुभाम् ॥ यां कथां सततं श्रुत्वा पातकैर्मुच्यते ध्रुवम् ॥ ६ ॥ दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नाम यद्वनम् ॥ चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम् ॥ ७ ॥ तत्र च ब्रह्मणः पुत्रो ह्यत्रिनामा ऋषिः स्वयम् ॥ तपस्तेपेऽतिकठिनमनसूयासमन्वितः ॥ ८ ॥ पूर्वं कदाचित्तत्रैव ह्यनावृष्टिरभून्मुने ॥ दुःखदा प्राणिनां दैवाद्विकटा शतवार्षिकी ॥ ९ ॥ वृक्षाश्शुष्कास्तदा सर्वे पल्लवानि फलानि च ॥ नित्यार्थं न जलं क्वापि दृष्टमासीन्मुनीश्वराः ॥ १० ॥

अत्रीश्वरनाम शिव प्रगट हुए सो ठीक २ कहो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! आपने बहुत श्रेष्ठ प्रश्न किया मैं सुन्दर कथा कहताहूं जिस कथाको सुनकर मनुष्य निश्चय पापोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥ दक्षिणदिशाकी ओर चित्रकूटपर्वतके समीप कामद नामक बडा वन है, वह श्रेष्ठ तपस्वियोंको सुख देनेवाला है ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्माके पुत्र अत्रिऋषि स्वयं अनसूयाके सहित अतिकठिन तप करतेथे ॥ ८ ॥ हे मुने ! वहां एकसमय दैवयोगसे जीवोंको दुःखदायक भयानक सौवर्षकी अनावृष्टि हुई ॥ ९ ॥ हे ऋषियो ! संपूर्ण वृक्ष सब पत्ते और फल सूखगए, कहीं नाममात्रभी जल नहीं दीखताथा॥ १० ॥

ठंडी हवा कहीं नहीं चली दसौं दिशाओंमें गरम पवन चलनेलगी संपूर्ण पृथिवीपर अतिदुःखदायक बड़ा हाहाकार मचगया ॥ ११ ॥ प्राणियोंके उस सब हाहाकारको देखकर, पतिव्रता अत्रि ऋषिकी स्त्री अपने स्वामी (अत्रिऋषि) से यह बोली कि मुने ! अब अनावृष्टिका दुःख नहीं सहाजाता ॥ १२ ॥ यह सुन उस समय मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी तीनबार प्राणायाम करके स्वयं आसन बांध समाधिमें स्थित हुए ॥ १३ ॥ और ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रिने अपनी आत्मामें स्थित परमज्योतिस्वरूप निर्विकार शिवजीका आत्मासे ध्यान किया ॥ १४ ॥ स्वामी अत्रिजीके ध्यान करनेपर अन्नके विना दुःखी हो उनके

आर्द्रीभावो न लभ्येत खरा वाता दिशो दश ॥ हाहाकारो महानासीत्पृथिव्यां दुःखदोऽति हि ॥ ११ ॥ संवर्तं चैव भूतानां दृष्ट्वात्रिगृहि
णी प्रिया ॥ साध्वी चैवाब्रवीदत्रिं मया दुःखं न सह्यते ॥ १२ ॥ समाधौ च विलीनोभूदासने संस्थितः स्वयम् ॥ प्राणायामं त्रिरावृत्त्या
कृत्वा मुनिवरस्तदा ॥ १३ ॥ ध्यायति स्म परं ज्योतिरात्मस्थमात्मना च सः ॥ अत्रिर्मुनिवरो ज्ञानी शंकरं निर्विकारकम् ॥ १४ ॥
स्वामिनि ध्यानलीने च शिष्यास्ते दूरतो गताः ॥ अन्नं विना तदा ते तु मुक्त्वा तं स्वगुरुं मुनिम् ॥ १५ ॥ एकाकिनी तदा जाता
सानसूया पतिव्रता ॥ १६ ॥ सिषेवे सा च सततं तं मुदा मुनिसत्तमम् ॥ पार्थिवं सुन्दरं कृत्वा मंत्रेण विधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ मान
सैरुपचारैश्च पूजयामास शंकरम् ॥ तुष्टाव शंकरं भक्त्या संसेवित्वा मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रक्रम्य स्वामिनं शिवम् ॥
दण्डवत्प्रणिपातेन प्रतिप्रक्रमणं तदा ॥ १९ ॥ चकार सुचरित्रा सानसूया मुनिकामिनी ॥ दैत्याश्च दानवाः सर्वे दृष्ट्वा तु सुन्दरीं
तदा ॥ २० ॥ विह्वलाश्चाभवंस्तत्र तेजसा दूरतः स्थिताः ॥ अग्निं दृष्ट्वा यथा दूरे वर्तन्ते तद्वदेव हि ॥ २१ ॥

शिष्य अपने गुरु अत्रि मुनिको छोड अन्यत्र चलेगये ॥१५॥ तब वह पतिव्रता अनसूया अकेली रहगई ॥ १६ ॥ और नित्यही उन मुनिश्रेष्ठकी आनंदके साथ सेवा करतीथी और सुन्दर पार्थिव लिंगको बनाकर मंत्रोंसे विधिपूर्वक ॥१७॥ मानस उपचारोंसे शिवजीको पूजती और उनकी बारम्बार सेवा करके भक्तिसे स्तुति करतीथी ॥ १८ ॥ हाथ बांधेहुए स्वामी शिवकी प्रदक्षिणा करके दंडवत् प्रणाम करतीथी ॥ १९ ॥ वह श्रेष्ठ आचरणवाली मुनि अत्रिजीकी स्त्री शिवकीऐसी भक्ति करतीथी उस समय सम्पूर्ण दानव दैत्य उस सुन्दरी अनसूयाको देख ॥ २० ॥ जैसे अग्निको देख दूर स्थित रहतेहैं उसी प्रकार उसके

तेजसे व्याकुल हो दूर चलेगये ॥ २१ ॥ इसको देख कोई दैत्यभी धोरे न आया, अत्रिजी तप तथा अनसूया शिवजीका सेवन करनेलगी ॥ २२ ॥ हे विप्रेन्द्रो ! उस समय तक वह देवी मन, वाणी तथा कायाके संहित शिवजीकी विशेष सेवा करतीथी ॥ २३ ॥ जबतक कि, वह मुनि प्राणायाममें तत्पर रहतेथे, इस प्रकार उस समय वे दोनों वहां अपने अपने कार्यमें चित्त लगाये हुए ॥ २४ ॥ स्थित रहे, हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय और कोई वहां स्थित न रहा इसी प्रकार कुछ समय बीतनेपर अत्रि ऋषि ॥ २५ ॥ परम ध्यानमें ऐसे मग्न हुए कि, मानों कुछभी चेतना नहीं है और वह साध्वी

तथैनां च तदा दृष्ट्वा नायान्तीह समीपगाः ॥ अत्रेश्च तपसश्चैवानसूयाशिवसेवनम् ॥ २२ ॥ विशिष्यते स्म विप्रेन्द्रा मनोवाक्कायसंस्कृतम् ॥ तावत्कालं तु सा देवी परिचर्यां चकार ह ॥ २३ ॥ यावत्कालं मुनिवरः प्राणायामपरायणः ॥ तौ दम्पती तदा तत्र स्वस्वकार्यपरायणौ ॥ २४ ॥ संस्थितौ मुनिशार्दूल नान्यः कश्चित्परः स्थितः ॥ एवं जाते तदा काले ह्यत्रिश्च ऋषिसत्तमः ॥ २५ ॥ ध्याने च परमे लीनो न व्यबुध्यत किंचन ॥ अनसूयापि सा साध्वी स्वामिनं वै शिवं तथा ॥ २६ ॥ भेजे नान्यत्परं किंचिज्जानीते स्म च सा सती ॥ तस्यैव तपसा सर्वे तस्याश्च भजनेन च ॥ २७ ॥ देवाश्च ऋषयश्चैव गंगाद्यास्सरितस्तथा ॥ दर्शनार्थं तयोः सर्वाः परे प्रीत्या समाययुः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा च तत्तपस्सेवां विस्मयं परमं ययुः ॥ तयोस्तदद्भुतं दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम् ॥ २९ ॥ उभयोः किं विशिष्टं च तपसो भजनस्य च ॥ अत्रेश्चैव तपः प्रोक्तमनुसूयानुसेवनम् ॥ ३० ॥ तत्सर्वमुभयोर्दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम् ॥ पूर्वैश्च ऋषिभिश्चैव दुष्करं तु तपः कृतम् ॥ ३१ ॥

अनसूयाभी स्वामी शिवजीको सेवन करतीहुई ॥ २६ ॥ वह पतिव्रता ऐसी सेवा करतीथी कि, मानों और कुछभी नहीं जानती है उन अत्रिके तपसे तथा उस अनसूयाके शिवार्चनसे ॥ २७ ॥ संपूर्ण देवता तथा ऋषि, गंगा आदि नदियें यह सब परम प्रीतिसे उन दोनोंके दर्शन करनेको आये ॥ २८ ॥ उनके तप तथा शिवजीकी सेवाको देख बडे आश्चर्यको प्राप्त हुये और अत्रि तथा अनसूयाके श्रेष्ठ अद्भुत भजनको देखकर परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ कि, अत्रिजीके तप तथा अनसूयाजीका भजन इन दोनोंमें किसका तप वा भजन विशेष है ॥ ३० ॥ तब उन सबने सम्मतिकर भजनकोही

विशेष कहा यद्यपि पूर्वं ऋषियोंनेभी कठिन तपस्या कीहै ॥ ३१ ॥ परन्तु इसप्रकारका तप किसीने नहीं किया ऐसा सबने कहा यह अत्रि ऋषि
और अनसूया दोनोंही धन्यहैं ॥ ३२ ॥ यह दोनों स्त्री पुरुष परम प्रेमसे कठिन तपस्या कररहेहैं यह इनका तप बडा श्रेष्ठ और दुष्कर है ॥ ३३ ॥
त्रिलोकीमें ऐसा तप आजतक किसने किया यह बात नहीं जानीजाती उन दोनोंकी इसप्रकार प्रशंसा करके वे सब यथायोग्य ॥३४॥ अपने स्थानोंको
गये परन्तु गंगाजी न गईं, वह गंगाजी उस साध्वीसे शिवभजन करनेके कारण प्रसन्न हुईं और मोहित हो वहां रहगईं ॥ ३५ ॥ हे मुनीश्वरो ! गंगाजीने
कहा कि, मैं अनसूयाका उपकार करके जाऊंगी और इधर शिवजी अत्रि मुनिके ध्यानसे वहां स्थित रहगये ॥ ३६ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! इसप्रकार वहां पूर्ण

एतादृशं तु केनापि क्व कृतं नैतदब्रुवन् ॥ धन्योऽयं च मुनिर्धन्या तथेयमनसूयिका ॥ ३२ ॥ यदैताभ्यां परप्रीत्या क्रियते सुतपः
पुनः ॥ एतादृशं शुभं चैतत्तपो दुष्करमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ त्रिलोक्यां क्रियते केन साम्प्रतं ज्ञायते न हि ॥ तयोरेव प्रशंसां च कृत्वा ते
तु यथागतम् ॥ ३४ ॥ गतास्ते च तदा तत्र गंगा न गिरिशं विना ॥ गंगा मद्भजनप्रीता साध्वी धर्मविमोहिता ॥ ३५ ॥ कृत्वोपकारमे
तस्यागमिष्यामीत्युवाच सा ॥ शिवोऽपि ध्यानसम्बद्धो मुनेरत्रेर्मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ पूर्णांशेन स्थितस्तत्र कैलासं तं जगाम ह ॥ पंचा
शच्च तथा चात्र चत्वारि ऋषिसत्तमाः ॥ ३७ ॥ वर्षाणि च गतान्यासन् वृष्टिर्नैवाभवत्तदा ॥ यावच्चाप्यत्रिणा ह्येवं तपसा ध्यानमा
श्रितम् ॥ ३८ ॥ अनसूया तदा नैव गृह्णामीतीषणा कृता ॥ एवं च क्रियमाणे हि मुनिना तपसि स्थिते ॥ अनसूयासुभजने
यज्जातं श्रूयतामिति ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामनसूयात्रितपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
॥ सूत उवाच ॥ कदाचित्स ऋषिश्रेष्ठो ह्यत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ जागृतश्च जलं देहि प्रत्युवाच प्रियामिति ॥ १ ॥

अंशसे स्थित हो आप कैलासपर्वतको गये, इसप्रकार वहांपर चौअन ॥ ३७ ॥ वर्ष बीतगये और वर्षा न हुई और तबतक अत्रि मुनि उसीप्रकार ध्यानमें
समाधि लगाये रहे ॥ ३८ ॥ अनसूयानेभी विचार किया कि, जबतक स्वामी समाधिमें ध्यान लगाये रहैंगे तबतक मैंभी जल ग्रहण नहीं करूंगी
इसप्रकार ऋषिके तपमें स्थित होने और अनसूयाके भजन करनेपर जो हुआ सो सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु०
अनसूयातपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, किसी समय जब वह वेदके जान्नेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषि अत्रिजी समाधिसे जागे तब अपनी

पियासे बोले कि, जल लाओ ॥ १ ॥ तत्काल साध्वी अनसूया कमंडलुको ग्रहणकर बनको चली और विचारने लगी जल कहांसे लाऊं ? ॥ २ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं किधरसे जल लाऊं ? इसप्रकार विस्मयको प्राप्तहुई अनसूयाको गंगाजीने दर्शन दिया ॥ ३ ॥ इसप्रकारसे अनसूयाके पीछे २ जातीहुई सुन्दर शरीर धारण किये नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीने अनसूयासे कहा ॥ ४ ॥ गंगाजी बोली, हे देवि ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं अब तुम कहां जातीहो यह बतावो हे सुभगे ! तुम धन्य हो, सत्यही मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूंगी ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस समय उसका वचन सुनकर तपस्विनी

सापि साध्वी त्ववश्यं च गृहीत्वाथ कमण्डलुम् ॥ जगाम विपिने तत्र जलं मे नीयते कुतः ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कुतो
नीयेत वै जलम् ॥ इति विस्मयमापन्ना तां गंगां हि ददर्श सा ॥ ३ ॥ तामनुव्रजती यावत् साब्रवीच्च सदा हि ताम् ॥ गंगा सरिद्वरा देवी
बिभ्रती सुन्दरां तनुम् ॥ ४ ॥ गंगोवाच ॥ प्रसन्नास्मि च ते देवि कुत्र यासि वदाधुना ॥ धन्या त्वं सुभगे सत्यं तवाज्ञां च करोम्यहम् ॥
॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ तद्वचश्च तदा श्रुत्वा ऋषिपत्नी तपस्विनी ॥ प्रत्युवाच वचः प्रीत्या स्वयं सुचकिता द्विजाः ॥ ६ ॥ अनसूयो
वाच ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कुतो वा त्वं समागता ॥ तथ्यं ब्रूहि कृपां कृत्वा साध्वी सुप्रवदा सती ॥७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते च तया
तत्र मुनिपत्न्या मुनीश्वराः ॥ सरिद्वरा दिव्यरूपा गंगा वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ गंगोवाच ॥ स्वामिनः सेवनं दृष्ट्वा शिवस्य च परात्मनः ॥
साध्वि धर्मं च ते दृष्ट्वा स्थितास्मि तव सन्निधौ ॥९॥ अहं गंगा समायाता भजनात्ते शुचिस्मिते ॥ वशीभूता ह्यहं जाता यदिच्छसि
वृणीष्व तत् ॥१०॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते गंगया साध्वी नमस्कृत्य पुरः स्थिता ॥ उवाचेति जलं देहि चेत्प्रसन्ना ममाऽधुना ॥ ११ ॥

अत्रिऋषिकी स्त्री चकित हुई प्रीति से यह बोली ॥ ६ ॥ अनसूया बोली, हे कमलपत्रके समान नेत्रवाली ! तुम कौन हो और कहांसे आई हो, सो सब कृपाकर कहो, इस प्रकार उस साध्वी पतिव्रताने कहा ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! यह उस ऋषिपत्नीके कहनेपर दिव्यरूपवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोली ॥ ८ ॥ गंगाजी बोली, हे साध्वि ! तुम्हारी पतिकी सेवा तथा परमात्मा शिवकी भक्ति और तुम्हारे धर्मको देखके तुम्हारे समीप स्थित हुई हूं ॥ ९ ॥ हे पवित्रहास्यवाली ! मैं गंगानदी तुम्हारे भजनसे वशीभूत हुई यहां प्राप्त हुई हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥ १० ॥ सूतजी बोले, ऐसा

गंगाजीके कहनेपर वह साध्वी प्रणाम करके हाथ जोडे आगे खड़ी हो बोली, यदि तुम प्रसन्न हो तो जल दो ॥ ११ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर गंगाने कहा कि, एक गढा खोदो यह सुन शीघ्रही उसने गढ़ा खोदा और क्षणमात्रमें उसमें गंगाजी प्रवेश हुई ॥ १२ ॥ और वह प्रवेश करतेही उसी समय जलरूप होगईं तब अनसूया बड़े आश्चर्यमें प्राप्त हो उसमेंसे जल लेनेलगी ॥ १३ ॥ अत्रिमुनिकी स्त्री अनसूया संसारके सुखके कारण उन दिव्यरूपवाली गंगाजीसे यह वचन बोली ॥ १४ ॥ अनसूया बोली, हे गंगे ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और मुझपर कृपा है तो तुम तबतक ऐसेही स्थित रहो जबतक

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गर्तं कुर्विति साऽब्रवीत् ॥ शीघ्रं चायाच्च तत्कृत्वा स्थिता तत्क्षणमात्रतः ॥ १२ ॥ तत्र सा च प्रविष्टा च जलरूपमभूत्तदा ॥ आश्चर्य्यं परमं गत्वा गृहीतं च जलं तया ॥१३॥ उवाच वचनं चैतल्लोकानां सुखहेतवे ॥ अनसूया मुनेः पत्नी दिव्यरूपां सरिद्वराम् ॥ १४ ॥ अनसूयोवाच ॥ यदि त्वं सुप्रसन्ना मे वर्तसे च कृपा मयि ॥ स्थातव्यं च त्वया तावन्मत्स्वामी यावदाव्रजेत् ॥ ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इति श्रुत्वानसूयाया वचनं सुखदं सताम् ॥ गंगोवाच प्रसन्नाति ह्यत्रेर्दास्यसि मेऽनघे ॥ १६ ॥ इत्युक्ते च तया तत्र ह्यनपायि कृतन्तथा ॥ स्वामिने तज्जलं दिव्यं दत्त्वा तत्पुरतः स्थिता ॥ १७ ॥ स ऋषिश्चापि सुप्रीत्या स्वाचम्य विधिपूर्वकम् ॥ पपौ दिव्यं जलं तच्च पीत्वा सुखमवाप ह ॥ १८ ॥ अहो नित्यं जलं यच्च पीयते तज्जलं न हि ॥ विचार्येति च तेनाशु परितश्चावलोकितम् ॥ १९ ॥ शुष्कान्वृक्षान्समालोक्य दिशो रूक्षतरास्तथा ॥ उवाच तामृषिश्रेष्ठो न जातं वर्षणं पुनः ॥ २० ॥

मेरे स्वामी न आवैं ॥१५॥ सूतजी बोले, सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले अनसूयाके वचनको सुन अति प्रसन्नहुई गंगाजी बोली, हे निष्पापे ! तू मुझे अत्रिको देना ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर गंगाजीने अपना जल नाशरहित किया, अनसूया उस दिव्य जलको अपने स्वामीको देकर आगे स्थितहुई ॥ १७ ॥ और उन ऋषिने प्रीतिसे विधिपूर्वक आचमन करके दिव्य गंगाजलको पान किया और सुख पाया ॥१८॥ आश्चर्य है कि, नित्य जो जल पीतेथे यह वैसा नहीं है औरही प्रकारका है ऐसा उन ऋषिने विचार चारोंओर देखा ॥ १९ ॥ सूखे वृक्षोंको तथा सब दिशाओंको अति रूखा (जलरहित) देखकर ऋषिश्रेष्ठ,

अनसूयासे बोले कि, वर्षा अबभी नहीं हुई ॥२०॥ उनका वचन सुनकर, प्रियाने कहा कि, वर्षा नहीं हुई, फिर ऋषिने अपनी स्त्रीसे कहा कि, तुमने जल कहां प्राप्त किया ॥२१॥ हे मुनीश्वरो ! ऐसा ऋषिके कहनेपर उस समय बडे विस्मयको प्राप्तहुई अनसूया अपने मनमें चिन्ता करनेलगी ॥२२ ॥ कि, यदि मैं निवेदन करदूंगी तो मेरी अधिकता होगी और यदि नहीं बताती हूं तो मेरा पातिव्रत्य भंग होगा ॥ २३ ॥ और यह दोनों बातें हो नहीं सकतीं, अब मेरा निवेदन करना योग्य है ऐसा वह विचारही कररहीथी कि, फिर ऋषिने बारम्बार पूँछा ॥ २४॥ तब शिवजीके अनुग्रहसे बुद्धि पाकर

तदुक्तं तत् समाकर्ण्य नेतिनेति प्रियान्तदा ॥ तामुवाच पुनः सोऽपि जलं नीतं कुतस्त्वया ॥ २१ ॥ इत्युक्ते तु तदा तेन विस्मयं परमं गता ॥ अनसूया स्वमनसि सचिन्ता तु मुनीश्वराः ॥ २२ ॥ निवेद्यते मया चेद्वै तदोत्कर्षो भवेन्मम ॥ निवेद्यते यदा नैव व्रतभङ्गो भवेन्मम ॥ २३ ॥ नोभयं च तथास्याद्वै निवेद्यं तत्तथा मम ॥ इति यावद्विचार्येत तावत्पृष्टा पुनःपुनः ॥ २४ ॥ अथानुग्रहतः शंभोः प्राप्तबुद्धिः पतिव्रता ॥ उवाच श्रूयतां स्वामिन्यज्जातं कथयामि ते ॥ २५ ॥ अनसूयोवाच ॥ शंकरस्य प्रतापाच्च तवैव सुकृतैस्तथा ॥ गंगा समागतात्रैव तदीयं सलिलन्त्विदम् ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वचस्तदा श्रुत्वा मुनिर्विस्मयमानसः ॥ प्रियामुवाच सुप्रीत्या शंकरं मनसा स्मरन् ॥ २७ ॥ अत्रिरुवाच ॥ प्रिये सुन्दरि त्वं सत्यमथ वाचं व्यलीककाम् ॥ ब्रवीषि च यथार्थं त्वं न मन्ये दुर्लभन्त्विदम् ॥ २८ ॥ असाध्यं योगिभिर्यच्च देवैरपि सदा शुभे ॥ तच्चैवाद्य कथं जातं विस्मयः परमो मम ॥ २९ ॥

वह पतिव्रता यह बोली कि, हे स्वामिन् ! सुनिये जिसप्रकार हुआ सो सब वृत्तान्त आपसे कहतीहूं ॥ २५ ॥ अनसूया बोली, कि, महादेवके प्रतापसे तथा आपके पुण्योंसे यहांपर गंगाजी प्राप्त होगई उनहीका यह जल है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, उससमय यह वचन सुन ऋषि विस्मयाचित्त हो शिवको मनसे स्मरणकर प्रीतिसे अपनी स्त्रीके प्रति बोले ॥ २७ ॥ अत्रि बोले, हे प्रिये ! हे सुन्दरी ! क्या तुम निस्सन्देह सत्य वचन कहतीहो ? मैं ठीक नहीं मानताहूं कारण कि, यह बात अतिदुर्लभ है ॥ २८ ॥ हे शुभे ! यह बात योगियोंको तथा देवताओंकोभी निरन्तर दुर्लभ है सो आज यह किस प्रकार

हुआ मुझे बडा आश्चर्य है ॥ २९ ॥ मैं इसप्रकार यदि देखलूंगा तोही मानूंगा और किसी प्रकार नहीं मानूंगा ऐसा उनका वचन सुन वह अनसूया अपने पतिसे बोली ॥ ३० ॥ अनसूया बोली, हे महामुने ! हे नाथ ! यदि नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीके देखनेकी इच्छा हो तो आप मेरे साथ चलैं ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कह कर वह पतिव्रता पतिको साथ ले शीघ्रही शिवजीका स्मरण करतीहुई वहां पहुँची जहां निर्मल गंगाजी बहरहींथीं ॥ ३२ ॥ तब उस पतिव्रताने वहां पतिको गढेमें बहतीहुई साक्षात् दिव्यस्वरूपधारिणी गंगाजीके दर्शन कराये ॥ ३३ ॥ मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी वहां जाकर ऊपरतक जलसे पूर्ण

येद्येवं दृश्यते चेद्दै तन्मन्येहं न चान्यथा ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पतिं प्रिया ॥ ३० ॥ अनसूयोवाच ॥ आगम्यतां मया सार्द्धं त्वया नाथ महामुने ॥ सरिद्वराया गंगाया द्रष्टुमिच्छा भवेद्यदि ॥ ३१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु समादाय पतिं तं सा पतिव्रता ॥ गता द्रुतं शिवं स्मृत्वा यत्र गंगा सरिद्वरा ॥ ३२ ॥ दर्शयामास तां तत्र गंगां पत्ये पतिव्रता ॥ गर्ते च संस्थितां तत्र स्वयं दिव्यस्वरूपिणीम् ॥ ३३ ॥ तत्र गत्वा ऋषिश्रेष्ठो गर्तं च जलपूरितम् ॥ आकण्ठं सुन्दरं दृष्ट्वा धन्येयमिति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ किं मदीयं तपश्चैव किमन्येषां पुनस्तदा ॥ इत्युक्तो मुनिशार्दूलो भक्त्या तुष्टाव तां तदा ॥ ३५ ॥ ततो हि स मुनिस्तत्र सुस्नातः सुभगे जले ॥ आचम्य पुनरेवात्र स्तुतिं चक्रे पुनःपुनः ॥ ३६ ॥ अनसूयापि संस्नाता सुंदरे तज्जले तदा ॥ नित्यं चक्रे मुनिः कर्म सानसूयापि सुव्रता ॥ ३७ ॥ ततस्सोवाच तां गंगा गम्यते स्वस्थलं मया ॥ इत्युक्ते च पुनः साध्वी तामुवाच सरिद्वराम् ॥ ३८ ॥ अनसूयोवाच ॥ यदि प्रसन्ना देवेशि यद्यस्ति च कृपा मयि ॥ त्वया स्थेयं निश्चलत्वादस्मिन्देवि तपोवने ॥ ३९ ॥

सुन्दर गढेको देखकर धन्य है ऐसा बोले ॥ ३४ ॥ क्या यह मेरा तप है अथवा और किसीका ऐसा कहकर उस समय भक्तिसे गंगाजीकी स्तुति की ॥ ३५ ॥ और वहां मुनिने उस निर्मल जलमें अच्छीप्रकार स्नान किया और फिर आचमन करके बारम्बार स्तुति की ॥ ३६ ॥ अनसूयानेभी निर्मल जलमें उस समय स्नान किया इसप्रकार वह मुनि तथा अनसूयाजी दोनोंही नित्यकर्म गंगाजीमें करने लगे ॥ ३७ ॥ तब गंगाजी अनसूयासे बोलीं कि, मैं अपने स्थानको जातीहूं यह सुन उस पतिव्रताने फिर गंगाजीसे कहा ॥ ३८ ॥ अनसूया बोली, हे देवेशि ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और मुझपर तुम्हारी

कृपा है तो हे देवि ! इस तपोवनमें तुम निश्चल होकर निवास करो ॥ ३९॥ बडोंका यह स्वभाव होताहै कि, किसीको अंगीकार करके कभी नहीं छोडते, ऐसा कहके हाथ जोड वारम्वार उनकी स्तुति करने लगी ॥ ४० ॥ ऋषिनेभी उसी प्रकार प्रार्थना की कि, हे सरिद्वरे ! तुम यहां निवास करो हे देवि ! हमको सानुकूल होकर सनाथ करो ॥ ४१ ॥ उन मुनि तथा अनसूयाका ऐसा मनोहर वचन सुनकर प्रसन्नहुई नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी अनसूयासे कहने लगी ॥ ४२ ॥ गंगाजी बोली कि, यदि तुम अपने स्वामीके शिवार्चनरूप एक वर्षके फलको मुझे दो तो मैं देवताओंके उपकारके अर्थ यहां स्थित रहूंगी

महतां च स्वभावश्च नांगीकृत्य परित्यजेत् ॥ इत्युक्त्वा च करौ बद्ध्वा तां तुष्टाव पुनःपुनः ॥ ४० ॥ ऋषिश्चापि तथोवाच त्वया स्थेयं सरिद्वरे ॥ सानुकूला भव त्वं हि सनाथान्देवि नः कुरु ॥ ४१ ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा रम्यं गंगा सरिद्वरा ॥ प्रसन्नमानसा गंगाऽनसूयां वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥ गंगोवाच ॥ शंकरार्चनसंभूतफलं वर्षस्य यच्छसि ॥ स्वामिनश्च तदा स्थास्ये देवानामुपकारणात् ॥ ॥ ४३ ॥ तथा दानैर्न मे तुष्टिस्तीर्थस्नानैस्तथा च वै ॥ यज्ञैस्तथाथवा योगैर्यथा पातिव्रतेन च ॥ ४४ ॥ पतिव्रतां यथा दृष्ट्वा मनसः प्रीणनं भवेत् ॥ तथा नान्यैरुपायैश्च सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४५ ॥ पतिव्रतां स्त्रियं दृष्ट्वा पापनाशो भवेन्मम ॥ शुद्धा जाता विशेषेण गौरीतुल्या पतिव्रता ॥ ४६ ॥ तस्माच्च यदि लोकस्य हिताय तत्प्रयच्छसि ॥ तर्ह्यहं स्थिरतां यास्ये यदि कल्याणमिच्छसि ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वाऽनसूया सा पतिव्रता ॥ गंगायै प्रददौ पुण्यं सर्वं तद्वर्षसंभवम् ॥ ४८ ॥

॥ ४३ ॥ इस प्रकार मेरी सन्तुष्टि न दानसे न तीर्थमें स्नान करनेसे और न यज्ञोंसे न योगसे होतीहै जिसप्रकार मैं पातिव्रतधर्मसे सन्तुष्ट होतीहूं ॥ ४४ ॥ हे सति ! पतिव्रताको देखकर जैसा मेरा मन प्रसन्न होताहै वैसा और उपायोंसे नहीं होता, यह सत्य सत्य कहतीहूं ॥ ४५ ॥ पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नाश होताहै पतिव्रता स्त्री पार्वतीके समान पवित्र है ॥ ४६ ॥ इस कारण यदि तुम कल्याणकी इच्छा करती हो तो अपने पतिव्रत पुण्यके वर्षभरके फलको संसारके हितंकेलिये दान करो तो मैं यहां स्थिर रहूंगी ॥४७॥ सूतजी बोले, ऐसा वचन सुनकर उस पतिव्रता अनसूयाने अपने वर्षभरके

सब पुण्य गंगाजीको दिये ॥ ४८ ॥ बडे पुरुषोंका यह स्वभावही है कि, वे दूसरोंका हित करतेहैं यहांपर सुवर्ण चंदन गन्नेके रसका दृष्टान्त है ॥ ४९ ॥
अनसूयाका यह बडा पातिव्रत कर्म देखकर महादेव प्रसन्नहुए और पार्थिवलिंगमेंसे प्रगट हुये ॥ ५० ॥ शिवजी बोले, हे साध्वि हे ! पतिव्रते ! मैं तेरा
कर्म देखकर प्रसन्न हुआ हे प्रिये ! तू वर मांग कारण कि–तू मुझे अधिक प्यारी है ॥ ५१ ॥ तब वह दोनों स्त्री पुरुष, सुन्दर आकारवाले, तथा पांच
मुखसहित, शिवजीको देखकर बडा आश्चर्य करनेलगे ॥ ५२ ॥ और महाभक्तिमें तत्पर हो उन्हें नमस्कार करके तथा हाथ जोड स्तुति करके संसारके

महतां च स्वभावो हि परेषां हितमावहेत् ॥ सुवर्णं चन्दन चेक्षुरसस्तत्र निदर्शनम् ॥ ४९ ॥ एतद्दृष्ट्वानसूयं तत्कर्म पातिव्रतं महत् ॥
प्रसन्नोभून्महादेवः पार्थिवादाविराशु वै ॥ ५० ॥ शंभुरुवाच ॥ दृष्ट्वा ते कर्म साध्व्येतत् प्रसन्नोऽस्मि पतिव्रते ॥ वरं ब्रूहि प्रिये मत्तो
यतः प्रियतरासि मे ॥ ५१ ॥ अथ तौ दम्पती शंभुमभूतां सुन्दराकृतिम् ॥ पञ्चवक्त्रादिसंयुक्तं हरं प्रेक्ष्य सुविस्मितौ ॥ ५२ ॥ नत्वा
स्तुत्वा करौ वद्ध्वा महाभक्तिसमन्वितौ ॥ अवोचेतां समभ्यर्च्य शंकरं लोकशंकरम् ॥५३॥ दम्पती ऊचतुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना
जगदम्बिका ॥ अस्मिंस्तपोवने तिष्ठ लोकानां सुखदो भव ॥ ५४ ॥ प्रसन्ना च तदा गंगा प्रसन्नश्च शिवस्तदा ॥ उभौ तौ च स्थितौ
तत्र यत्रासीदृषिसत्तमः ॥ ५५ ॥ अत्रीश्वरश्च नाम्नासीदीश्वरः परदुःखहा ॥ गंगा सापि स्थिता तत्र तदा गर्तेथ मायया ॥ ५६ ॥
तद्दिनं हि समारभ्य तत्राक्षय्यजलं सदा ॥ हस्तमात्रे हि तद्गर्ते गंगा मन्दाकिनी ह्यभूत् ॥ ५७ ॥

कल्याण करनेवाले महादेवजीकी पूजा कर कहनेलगे ॥ ५३ ॥ वे स्त्री पुरुष बोले, हे देवोंके ईश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो प्रसन्न हुई जगत्की माता
पार्वतीसमेत इस तपोवनमें निवास करो और संसारको सुखदो ॥ ५४ ॥ उस समय प्रसन्न हुई गंगाजी तथा प्रसन्न हुये शिवजी इन दोनों देवताओंने वहां
स्थिति की जहां वह ऋषि रहतेथे ॥ ५५ ॥ दूसरोंके दुःख नाश करनेवाले शिवजी वहां अत्रीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए और वह गंगाजीभी अपनी मायासे
उस गढेमें स्थित हुई ॥ ५६ ॥ उस दिनसे लेकर वह अविनाशीरूपसे स्थित हुआ जल हाथ भरके गढेमें मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ५७ ॥

हे द्विजो ! वहांपर व दिव्य ऋषि अपनी स्त्रियोंसमेत प्रत्येक तीर्थोंसे आये, जो कि–पहले चलेगये थे वे सबभी प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥ यज्ञ यागोंमें तत्पर ऋषिजनोंने यव और व्रीहि लेकर वहां होम किया ॥ ५९ ॥ हे मुनीश्वरो ! उस समय उन कर्मोंसे सन्तुष्ट हुए मेघोंने वर्षा की और संसारमें परम आनन्द होनेलगा ॥ ६० ॥ यह अत्रीश्वर नामक शिवजीका माहात्म्य तुमसे कहा जो सुख देनेवाला तथा भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला और भक्तिका बढानेवाला है ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा० च० को० रुद्रसंहितायां अत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तत्रैव ऋषयो दिव्याः समाजग्मुस्सहांगनाः ॥ तीर्थात्तीर्थाच्च ते सर्वे ये पुरा निर्गता द्विजाः ॥ ५८ ॥ यवाश्च व्रीहयश्चैव यज्ञयागपरायणाः ॥ युक्ता ऋषिवरैस्तैश्च होमं चक्रुश्च ते जनाः ॥ ५९ ॥ कर्मभिस्तैश्च संतुष्टा वृष्टिं चक्रुर्घनास्तदा ॥ आनन्दः परमो लोके बभूवातिमुनीश्वराः ॥ ६० ॥ अत्रीश्वरस्य माहात्म्यमित्युक्तं वः सुखावहम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं भक्तिवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ कालंजरे निरौ दिव्ये नीलकण्ठो महेश्वरः ॥ लिंगरूपस्सदा चैव भक्तानन्दप्रदः सदा ॥ १ ॥ महिमा तस्य दिव्योस्ति श्रुतिस्मृतिप्रकीर्तितः ॥ तीर्थं तदाख्यया तत्र स्नानात्पातकनाशकृत् ॥ २ ॥ रेवातीरे यानि सन्ति शिवलिंगानि सुव्रताः ॥ सर्वसौख्यकराणीह तेषां संख्या न विद्यते ॥ ३ ॥ सा च रुद्रस्वरूपा हि दर्शनात्पापहारिका ॥ तस्यां स्थिताश्च ये केचित्पाषाणाः शिवरूपिणः ॥ ४ ॥ तथापि च प्रवक्ष्यामि यथान्यानि मुनीश्वराः ॥ प्रधानशिवलिंगानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ ५ ॥

सूतजी बोले, कालिंजर नामक सुन्दर पर्वतपर नीलकण्ठ महेश्वर लिंगरूपसे सदा स्थित रहतेहैं और भक्तोंको आनंद देनेवालेहैं ॥ १ ॥ उनकी महिमा परम दिव्य वेद और शास्त्रोंमें कही है, वहांपर नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है जहां स्नान करनेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २ ॥ हे सुन्दर व्रतवाले ! रेवानदीके तटपर जितने शिवके ज्योतिर्लिंग हैं उनकी संख्या नहीं है वे सब सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ वह शिवजीके समान रेवानदी दर्शनसे पापोंको हरण करनेवाली है, उसमें शिवस्वरूपसे जो पाषाणमूर्ति हैं ॥ ४ ॥ हे मुनीश्वरो ! उनकोभी कहताहूं तथा औरभी भुक्ति मुक्तिके देनेवाले प्रधान शिवजीके लिंगहैं उनकाभी

वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ आर्तेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग, पापको हरण करनेवालाहै तथा परमेश्वर सिंहेश्वर नामसे प्रसिद्धहैं ॥ ६ ॥ और वहां शर्मेश, कुमारेश्वर,
पुण्डरीकेश्वर, मण्डपेश्वर नामक लिंग हैं ॥ ७ ॥ नर्मदा नदीके किनारे तीक्ष्णेशनामक शिव दर्शनमात्रसे पापनाश करनेवाले हैं तथा धुन्धेश्वर नामवाले
पापनाशक शिव हैं ॥ ८ ॥ शूलेश्वर नामक, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर तथा सोमेश्वर नामसेभी प्रसिद्ध हैं ॥ ९ ॥ नीलकण्ठ, मंगलेश नामक शिव बडे मंगलके
स्थान हैं, कपीश्वरदेवका स्थापन हनुमानजीने कियाथा ॥ १० ॥ नन्दिक देवजी करोडों हत्याओंको नाश करनेवालेहैं सब कामनाओंके सिद्ध करनेवाले

आर्तेश्वरसुनामा हि वर्तते पापहारकः ॥ परमेश्वर इति ख्यातः सिंहेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥ शर्मेशश्च तथा चात्र कुमारेश्वर एव च ॥
पुण्डरीकेश्वरः ख्यातो मण्डपेश्वर एव च ॥७॥ तीक्ष्णेशनामा तत्रासीद्दर्शनात्पापहारकः ॥ धुंधुरेश्वरनामासीत्पापहा नर्मदातटे ॥ ८ ॥
शूलेश्वर इति ख्यातस्तथा कुंभेश्वरः स्मृतः ॥ कुबेरेश्वरनामापि तथा सोमेश्वरः स्मृतः ॥ ९ ॥ नीलकण्ठो मंगलेशो मंगलायतनो
महान् ॥ महाकपीश्वरो देवः स्थापितो हि हनूमता ॥१०॥ ततश्च नंदिको देवो हत्याकोटिनिवारकः ॥ सर्वकामार्थदश्चैव मोक्षदो हि
प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥ नन्दिकेशं च यश्चैव पूजयेत्परया मुदा ॥ नित्यं तस्याखिला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः ॥ १२ ॥ तत्र तीरे च यः
स्नाति रेवायां मुनिसत्तमाः ॥ तस्य कामाश्च सिध्यन्ति सर्वं पापं विनश्यति ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एवं तस्य च माहात्म्यं कथं तत्र
महामते ॥ नन्दिकेशस्य कृपया कथ्यतां च त्वयाधुना ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च कथयामि यथाश्रुतम् ॥ शौनका
द्याश्च मुनयः सर्वे हि शृणुतादरात् ॥१५॥ पुरा युधिष्ठिरेणैवं पृष्टश्च ऋषिसत्तमः ॥ यथोवाच तथा वच्मि भवत्स्नेहानुसारतः ॥ १६ ॥

तथा मोक्षके देनेवाले कहेहैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष नन्दिकेश शिवको बडी प्रीतिसे पूजताहै नित्य उसकी संपूर्ण सिद्धि होती हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १२ ॥
हे श्रेष्ठ मुनियो ! उनके समीप रेवानदीमें जो स्नान करताहै उसकी सब इच्छायें पूरी होतीहैं और सम्पूर्ण पाप दूर होतेहैं ॥ १३ ॥ ऋषि बोले, हे बडी
बुद्धिवाले ! इस प्रकार अब आप कृपा करके नन्दिकेश शिवके माहात्म्यको कहिये कि–किसप्रकार उनकी वहां स्थिति हुई ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, आपने
बहुत श्रेष्ठ प्रश्न किया, हे शौनक आदि मुनियो ! जैसा मैंने सुना है आपसे कहताहूं आदरसे श्रवण करो ॥ १५ ॥ पहले युधिष्ठिरने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीसे

रेवायाः पश्चिमे तीरे कर्णिकी नाम वै पुरी ॥ विराजते सुशोभाढ्या चतुर्वर्णसमाकुला ॥ १७ ॥ तत्र द्विजवरः कश्चिदुत्तस्य कुलसम्भवः ॥ काश्यां गतश्च पुत्राभ्यामर्पयित्वा स्वपत्निकाम् ॥ १८ ॥ तत्रैव स मृतो विप्रः पुत्राभ्यां च श्रुतन्तदा ॥ तदीयं चैव तत्कृत्यं चक्राते पुत्रकावुभौ ॥ १९ ॥ पत्नी च पालयामास पुत्रौ पुत्रहितैषिणी ॥ पुत्रौ च वर्जयित्वा च विभक्तं वै धनं तया ॥ २० ॥ स्वीयं च रक्षितं किंचिद्धनं मरणहेतवे ॥ ततश्च द्विजपत्नी हि कियत्कालं मृता च सा ॥ २१ ॥ कदाचित्क्रियमाणा सा विविधं पुण्यमाचरत् ॥ न मृता दैवयोगेन द्विजपत्नी च सा द्विजाः ॥ २२ ॥ यदा प्राणान्नमुमुचे माता दैवात्तयोश्च सा ॥ तद्दृष्ट्वा जननीकष्टं पुत्रकावूचतुस्तदा ॥ २३ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ किं न्यूनं विद्यते मातः कष्टं यद्विद्यते महत् ॥ व्रियतां तद्व्रतं प्रीत्या तदाशं करवावहे ॥ २४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वोक्तं तया तत्र न्यूनं तु विद्यते बहु ॥ तदेव क्रियते चेद्वै सुखेन मरणं भवेत् ॥ २५ ॥ ज्येष्ठपुत्रश्च यस्तस्यास्ते नोक्तं कथ्यतान्त्वया ॥ करिष्यामि तदेतद्धि तया च कथितन्तदा ॥ २६ ॥

यही पूंछाथा जैसा उन्होंने कहाथा सो आपके स्नेहसे मैं कहताहूं ॥ १६ ॥ रेवानदीसे पश्चिमकी ओर शोभायमान तथा चारों वर्णोंसे सेवित, कर्णिकी नामवाली नगरी वर्तमान है ॥ १७ ॥ वहां किसी उत्तके वंशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणश्रेष्ठने अपनी स्त्रीको दोनों पुत्रोंको सौंपकर काशीको गमन किया ॥ ॥ १८ ॥ और काशीमेंही वह ब्राह्मण मरगया फिर दोनों पुत्रोंने यह वृत्तान्त सुना और उसके श्राद्धआदि सब कृत्य करादिये ॥ १९ ॥ अपने पुत्रोंके हित करनेवाली उसकी स्त्रीने दोनों बालकोंका पालन लालन किया और कुछ धनको छोडकर उसने पुत्रोंको धन बाँटदिया ॥ २० ॥ कुछ अपना धन मरनेके हेतु बचाये रखा, थोडी दिनोंके पीछे वह ब्राह्मणकी स्त्री भी मरनेलगी ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणों ! अनेक प्रकारके पुण्य करनेपर भी उस ब्राह्मणीके दैवयोगसे प्राण न निकलसके ॥ २२ ॥ जब उनकी माताने प्रारब्धवश प्राण न छोडे तब मातके कष्टको देख वे दोनों पुत्र बोले ॥ २३ ॥ पुत्र बोले, हे मातः ! क्या और कुछ शेष रहा है जो तुमको इस समय बडा कष्ट होरहा है ? उस व्रतको हमैं बताओ हम प्रीतिसे करैंगे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, यह पुत्रोंका वचन सुन उसने कहा कि—थोडा बहुत व्रत शेष रहा है यदि वह करोगे तो सुखसे मरण होगा ॥ २५ ॥ उसका जो बडा पुत्र था उसने मातासे

कहा हे मातः ! जो तुम बताओगी वह मैं अवश्य करूंगा माताने कहा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणकी स्त्री बोली, हे पुत्र ! प्रीतिसे मेरा वचन सुन, पहले काशीजीमें
जानेकी मेरी इच्छा थी, परन्तु विना गयेही अब मरतीहूं ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! तू निरालसी हो मेरी अस्थियोंको गंगाजलमें सिराना, तब तेरा कल्याण
होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार माताके कहनेपर वह माताकी भक्ति करनेवाला पुत्र शुभव्रत करनेवाली मरनेमें तत्पर हुई
अपनी मातासे बोला ॥ २९ ॥ पुत्र बोला, हे मातः ! निस्सन्देह तुम सुखसे प्राणोंको छोडो मैं पहले तुम्हारा काम करूंगा, फिर अपना काम करूंगा ॥

द्विजपत्न्युवाच ॥ शृणु पुत्र वचः प्रीत्या पुरासीन्मे मनःस्पृहा ॥ काश्यां गंतुं तथा नासीदिदानीं म्रियते पुनः ॥ २७ ॥ ममास्थीनि
त्वया पुत्र क्षेपणीयान्यतन्द्रितम् ॥ गंगाजले शुभं तेद्य भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते च तया मात्रा स
ज्येष्ठतनयोब्रवीत् ॥ मातरं मातृभक्तिस्तु सुव्रतां मरणोन्मुखीम् ॥ २९ ॥ ॥ पुत्र उवाच ॥ मातस्त्वया सुखेनैव प्राणास्त्याज्या न
संशयः ॥ तव कार्यं पुरा कृत्वा पश्चात्कार्यं मदीयकम् ॥ ३० ॥ इति हस्ते जलं दत्त्वा यावत्पुत्रो गृहं गतः ॥ तावत्सा च मृता तत्र
हरस्मरणतत्परा ॥ ३१ ॥ तस्याश्चैव तु यत्कृत्यं तत्सर्वं संविधाय सः ॥ मासिकं कर्म कृत्वा तु गमनाय प्रचक्रमे ॥ ३२ ॥ द्वयोः
श्रेष्ठतमो यो वै सुवादो नाम विश्रुतः ॥ तदस्थीनि समादाय निस्सृतस्तीर्थकाम्यया ॥ ३३ ॥ संगृह्य सेवकं कंचित्तेनैव सहितस्तदा ॥
आश्वास्य भार्य्यापुत्राँश्च मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ३४ ॥ श्राद्धदानादिकं भोज्यं कृत्वा विधिमनुत्तमम् ॥ मंगलस्मरणं कृत्वा निर्ज
गाम गृहाद्द्विजः ॥ ३५ ॥ तद्दिने योजनं गत्वा विंशति ग्रामके शुभे ॥ उवासास्तं गते भानौ गृहे विप्रस्य कस्यचित् ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ ऐसा कह हाथसे जल छोडकर जभी वह घरमें गया तभी उसकी माता शिवका स्मरण करती हुई मरगई ॥ ३१ ॥ उसका जो कुछ कृत्य है
सो सब करके तथा महीने भरका सब कृत्य समाप्त करके वह काशीमें जानेको उद्यत हुआ ॥ ३२ ॥ दोनोंमें श्रेष्ठ जो सुवाद नामसे प्रसिद्ध बडा पुत्र था,
वह उसकी अस्थि लेकर तीर्थकी कामनासे ॥ ३३ ॥ सेवकको लेके अपनी स्त्री तथा पुत्रोंको धैर्य देकर, माताके हित करनेकी इच्छासे बाहर चला ॥
॥ ३४ ॥ श्राद्ध, दान आदिक ब्राह्मणभोजन और उत्तम मंगलाचरणोंको विधिपूर्वक करके वह ब्राह्मण अपने घरसे चला ॥ ३५ ॥ उसदिन बीसयोजन

चलकर, सूर्यअस्त होजानेपर शुभग्राममें किसी ब्राह्मणके घर निवास किया ॥३६॥ फिर उस ब्राह्मणने विधिपूर्वक संध्या आदि नित्यकर्म किया और वहां
अद्भुत कर्मवाले शिवकी स्तुति की ॥ ३७ ॥ इस समय सेवकके सहित उस ब्राह्मणको दोपहर रात वहां रहतेहुए बीतगई ॥ ३८ ॥ हे मुने ! इसी
अवसरमें वहां एक आश्चर्य हुआ सो आप आदरसे सुनो मैं आपसे कहता हूं ॥३९॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च०को० रु० नन्दिकेश्वरामहात्म्ये
ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ सूतजी बोले, उस आंगनमें वहां एक सुन्दर गाय बंधी थी उस समय वह ब्राह्मण रातमें बाहर आया ॥१॥

चक्रे सन्ध्यादि सत्कर्म स द्विजो विधिपूर्वकम् ॥ स्तवादि कृतवांस्तत्र शंभोरद्भुतकर्मणः ॥ ३७ ॥ सेवकेन तदा युक्तो ब्राह्मणः संस्थि
तस्तदा ॥ यामिनी च गता तत्र मुहूर्तद्वयसंमिता ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्रैकमाश्चर्य्यमभूत्तदा ॥ शृणुतादरतस्तच्च मुनयो वो वदा
म्यहम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः
॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ गौश्चैकाप्यभवत्तत्र ह्यंगणे बंधिता शुभा ॥ तदैव ब्राह्मणो रात्रावाजगाम बहिर्गतः ॥ १ ॥ स उवाच प्रियां
स्वीयां दृष्ट्वा गामंगणे स्थिताम् ॥ अदुग्धां खेदनिर्विण्णो दोग्धुकामो मुनीश्वराः ॥ २ ॥ गौः प्रिये नैव दुग्धा ते सेत्युक्ता वत्समान
यत् ॥ दोहनार्थं समाहूय स्त्रियं शीघ्रतरं तदा ॥ ३ ॥ वत्सं कीले स्वयं बद्धुं यत्नं चैवाकरोत्तदा ॥ ब्राह्मणस्स गृहस्वामी मुनयो दुग्ध
लालसः ॥ ४ ॥ वत्सोपि कर्षमाणश्च पादे वै पादपीडनम् ॥ चकार ब्राह्मणश्चैव कष्टं प्राप्तश्च सुव्रताः ॥ ५ ॥ तेन पादप्रहारेण स द्विजः
क्रोधमूर्छितः ॥ वत्सं च ताडयामास कूर्पैर्दृढतरं तदा ॥ ६ ॥

और गायको आंगनमें खडीहुई देख अपनी स्त्रीसे बोला हे मुनीश्वरो ! उस समय वह गायके न दुहनेसे खेदयुक्त हुआ उसे दुहना चाहता था ॥ २ ॥
हे प्रिये ! तेरी गाय नहीं दुही ऐसा कहनेपर वह स्त्री बछडेकों लाई तब उस ब्राह्मणने गाय दुहनेको शीघ्र अपनी स्त्रीको बुलाया ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वरो ! वह
घरका मालिक ब्राह्मण दूधकी लालसासे उस बछडेको खूँटेमें बांधनेका यत्न करनेलगा ॥ ४ ॥ हे शुभव्रतवाले ! उस कूदते हुए बछडेने लात मारके उसके
पैरको पीडित किया तब वह ब्राह्मण कष्टको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ उसके चरणके प्रहारसे वह क्रोधसे व्याकुल हो रस्सीसे बडे वेगसे उस बछडेको ताडन करने

लगा ॥ ६ ॥ उस ब्राह्मणसे पीडित हुआ वह बछडा भी कुछ कालमें शान्त हुआ, गाय दुहली परन्तु क्रोधसे उसने बछडेको न छोडा ॥ ७ ॥ उस समय
वह गाय दूध पिलानेको प्रीतिसे बडा रुदन करने लगी अपनी माताका डकराना सुन बछडा यह वचन कहने लगा ॥ ८ ॥ बछडा बोला, हे मातः !
तू क्यों रोरही है तुझे क्या दुःख उपस्थित हुआ है सो प्रीतिपूर्वक मुझसे कह, यह सुन गाय बोली ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! सुन मैं कुछ नहीं कह सकती उस
दुष्टने तुझे ताडन किया इस कारण मुझे भी दुख हुआहै ॥ १० ॥ सूतजी बोले, अपनी माताका वचन सुन उस बछडेने उसे समझाया और प्रारब्धके

वत्सोपि पीडितस्तेन श्रांतश्चैवाभवत्तदा ॥ दुग्धा गौर्मोचितो वत्सो न क्रोधेन द्विजन्मना ॥ ७ ॥ गौर्दोग्धुं च महत्प्रीत्या रोदनं चाक
रोत्तदा॥ दृष्ट्वा च रोदनं तस्या वत्सो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ वत्स उवाच ॥ कथं च रुद्यते मातः किन्ते दुःखमुपस्थितम् ॥ तन्निवेदय
मे प्रीत्या तच्छ्रुत्वा गौरवोचत ॥ ९ ॥ श्रूयतां पुत्र मे दुःखं वक्तुं शक्नोम्यहं न हि ॥ दुष्टेन ताडितस्त्वं च तेन दुःखं ममाप्यभूत् ॥ १० ॥
सूत उवाच ॥ स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा स वत्सः प्रत्यबोधयत् ॥ प्रत्युवाच स्वजननीं प्रारब्धपरिनिष्ठितः ॥११॥ किं कर्त्तव्यं क्व गंतव्यं कर्म
बद्धा वयं यतः ॥ कृतं चैव यथा पूर्वं भुज्यते च तथाधुना ॥ १२ ॥ हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते ॥ दुःखदाता न कोप्यस्ति
सुखदाता न कश्चन ॥ १३ ॥ सुखदुःखे परो दत्त इत्येषा कुमतिर्मता ॥ अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदोच्यते ॥ १४ ॥ स्वक
र्मणा भवेद्दुःखं सुखं तेनैव कर्मणा ॥ तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम् ॥१५॥ त्वं चैवाहं च जननी इमे जीवादयश्च ये ॥
ते सर्वे कर्मणा बद्धा न शोच्याः कर्हिचित्त्वया ॥ १६ ॥

ऊंपर सन्तोषकरके अपनी मातासे बोला ॥ ११ ॥ क्या करैं कहां जाय ? कारण कि—हम कर्मोंसे बँधेहुए हैं जैसा पहले करचुकेहैं वैसा अब भोगतेहैं ॥
॥ १२ ॥ हँसकर कर्म किया जाताहै और रोकर भोगाजाताहै कोई किसीको दुःखका देनेवाला नहीं और न कोई सुखका देनेवाला है ॥१३॥ सुख और
दुःख अपने कर्मके अनुकूल दूसराही देताहै ऐसी मेरी कुबुद्धि है और मैंभी यह मिथ्याज्ञान करताहूं जो सब कहा जाताहै ॥ १४ ॥ अपने कर्मसे दुःख
होताहै तथा उसी कर्मसे सुख होताहै इस कारण कर्मही पूजाजाताहै सबकुछ कर्ममेंही स्थित है ॥ १५ ॥ तू मेरी माता मैं तेरा पुत्र, ये जो जीवादिहैं

वे सब कर्मसे बंधे हैं इससे तुझे सोच नहीं करना चहिये ॥१६॥ सूतजी बोले, वह गाय इस प्रकार अपने पुत्रका ज्ञानसे युक्त वचन सुन पुत्रशोकसे व्याकुल दीनहुई यह वचन बोली ॥ १७ ॥ गौ बोली, हे वत्स ! मैं सब जानतीहूं कि–सब प्रजा कर्मके आधीन हैं तौभी मायासे फँसी हुई मैं दुःखको प्राप्त होतीहूं ॥ १८ ॥ और अत्यन्त रोदन करनेपरभी मेरेदुःखकी शान्ति नहीं हुई ऐसा माताका वचन सुन फिर बछडा उससे बोला ॥ १९ ॥ बछड़ा बोला, यदि तू ऐसा जानतीहै फिर क्यों रोतीहै कर्मकरके विना भोगे और कुछ साधन नहीं, अतः अब दुःखको त्यागन कर ॥ २० ॥ सूतजी बोले, ऐसा पुत्रका वचन सुन उसकी माता गाय अतिदुःखी हो गहरी साँस ले बछडेसे यह बोली ॥ २१ ॥ गौ बोली, मेरा दुःख तो उस समय जायगा जब वैसाही दुःख उस ब्राह्मणको होगा, यह मैं सत्य सत्य कहतीहूं ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! प्रातःकाल मैं उसको सींगोंसे मारूंगी जिससे शीघ्रही विदीर्ण कियाहुआ वह तत्काल प्राणोंसे छूटजायगा, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ बछडा बोला, पहले जो कुछ कर्म किया है सो अब भोगरहेहैं हे मातः ! इस ब्रह्महत्याका फल क्या पाओगी ? ॥ २४ ॥ पुण्य तथा पापोंके समान होनेपर इस संसारमें जन्म होताहै हे मातः ! और पाप पुण्य दोनोंके भोग नाश होनेपर मुक्ति प्राप्त

सूत उवाच ॥ एवं श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचनं ज्ञानगर्भितम् ॥ पुत्रशोकान्विता दीना सा च गौरब्रवीदिदम् ॥ १७ ॥ गौरुवाच ॥ वत्स सर्वं विजानामि कर्माधीनाः प्रजा इति ॥ तथापि मायया ग्रस्ता दुःखं प्राप्नोम्यहं पुनः ॥ १८ ॥ रोदनं च कृतं भूरि दुःखशान्तिर्भवेन्न हि ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसूं वत्सोऽब्रवीदिदम् ॥ १९ ॥ ॥ वत्स उवाच ॥ यद्येवं च विजानासि पुनश्च रुदनं कुतः ॥ कृत्वा च साध्यते किञ्चित्तस्माद्दुःखं त्यजाधुना ॥ २० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पुत्रवचः श्रुत्वा तन्माता दुःखसंयुता ॥ निःश्वस्याति तदा धेनुर्वत्सं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥ गौरुवाच ॥ मम दुःखं तदा गच्छेद्यथा दुःखं तथा विधम् ॥ भवेद्धि ब्राह्मणस्यापि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २२ ॥ प्रातश्चैव मया पुत्र शृंगाभ्यां हि हनिष्यते ॥ हतस्य जीवितं सद्यो यास्यत्यस्य न संशयः ॥ २३ ॥ वत्स उवाच ॥ प्रथमं यत्कृतं कर्म तत्फलं भुज्यतेऽधुना ॥ अस्याश्च ब्रह्महत्याया मातः किं फलमाप्स्यसे ॥ २४ ॥ समाभ्यां पुण्यपापाभ्यां भवेज्जन्म च भारते ॥ तयोः क्षये च भोगेन मातर्मुक्तिरवाप्यते ॥ २५ ॥

होतीहै ॥ २५ ॥ किसी समय कर्मोंका नाश तथा कभी भोग होताहै इसकारण तू ऐसा कर्म करनेमें उद्यत न हो ॥ २६ ॥ मैं तेरा पुत्र कहां ? और तू मेरी माता कहां ? मातापन तथा पुत्रत्वमें वृथा अभिमान है, अर्थात् न कोई किसीकी माता न कोई किसीका पुत्र है ऐसा विचार ॥ २७ ॥ कौन माता है ? कौन पिता ? तथा कौन स्वामी है ? कौन स्त्री है ? कोई भी किसीका नहीं है यह सब अपने अपने किये कर्मोंको भोगते हैं ॥ २८ ॥ हे माता ! ऐसा जान तुझको दुःख यत्नसे त्यागना चाहिये और परलोकके सुखकी इच्छासे अच्छे आचरण करना चाहिये ॥ २९ ॥ गौ बोली

कदापि कर्मणो नाशः कदा भोगः प्रजायते ॥ तस्माच्च पुनरेवं त्वं कर्म मा कर्तुमुद्यता ॥ २६ ॥ अहं कुतस्ते पुत्रोद्य त्वं माता कुत एव
च ॥ वृथाभिमानः पुत्रत्वे मातृत्वे च विचार्य्यताम् ॥ २७ ॥ क्व माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम् ॥ न कोऽपि कस्य
चास्तीह सर्वेपि स्वकृतंभुजः ॥ २८ ॥ एवं ज्ञात्वा त्वया मातर्दुःखं त्याज्यं सुयत्नतः ॥ सुभगाचरणं कार्यं परलोकसुखेप्सया ॥ २९ ॥
गौरुवाच ॥ एवं जानाम्यहं पुत्र माया मां न जहात्यसौ ॥ त्वद्दुःखेन सुदुःखं मे तस्मै दास्ये तदेव हि ॥ ३० ॥ पुनश्च ब्रह्महत्याया
नाशो यत्र भवेदिह ॥ तत्स्थलं च मया दृष्टं हत्या मे हि गमिष्यति ॥ ३१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा स्वमातुर्गोर्द्विजोत्तमाः ॥
मौनत्वं स्वीकृतं तत्र वत्सेनोक्तं न किञ्चन ॥ ३२ ॥ तयोस्तदद्भुतं वृत्तं श्रुत्वा पान्थो द्विजस्तदा ॥ हृदा विचारयामास विस्मितो
हि मुनीश्वराः ॥ ३३ ॥ इदमत्यद्भुतं वृत्तं दृष्ट्वा प्रातर्मया खलु ॥ गंतव्यं पुनरेवातो गंतव्यं तत्स्थलं पुनः ॥ ३४ ॥

हे पुत्र ! मैं यह जानती हूं परन्तु मुझे माया नहीं छोडती तेरे दुःख देनेके बदले उसे मैं घोर दुःख दूंगी ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् जहां ब्रह्महत्याका नाश होता है वहां जाऊंगी वह स्थान मैंने देखा है इससे मेरी ब्रह्महत्या नष्ट होगी ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! उस समय ऐसा अपनी माताका वचन सुन उस बछडेने मौन धारण किया और कुछ भी न कहा ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरो ! उन दोनों माता पुत्रोंका वचन सुनकर वह यात्री ब्राह्मण विस्मित हो अपने हृदयमें सोचने लगा ॥ ३३ ॥ कि—मैं प्रातःकाल इस अद्भुत समाचारको देखकर जाऊंगा तथा ब्रह्महत्या विनाशक स्थानको भी अवश्य

जाऊंगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! वह माताका भक्त ब्राह्मण ऐसा अपने हृदयमें विचार, सेवक सहित अतिविस्मित हो सोरहा ॥ ३५ ॥ प्रातःकाल होनेपर वह गृहका स्वामी उठा और उस पथिकको जगानेलगा और यह बोला ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला, हे पथिक ! तुम क्यों सोरहे हो ? पूर्ण प्रातःकाल होगया अपनी यात्रा करो जहां तुम्हारी जानेकी इच्छा हो उस देशको जाओ ॥ ३७ ॥ उस पथिकने कहा हे ब्रह्मन् ! सुनो मेरे शरीरमें तथा मेरे सेवकके शरीरमें कुछ व्यथा (पीडा) है इससे कुछ काल यहां ठहरके थोडी देरमें जाऊंगा ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार बहाना करके

॥ सूत उवाच ॥ विचार्येति हृदा विप्रः स द्विजाः सेवकेन च ॥ सुष्वाप तत्र जननीभक्तः परमविस्मितः ॥ ३५ ॥ प्रातःकाले तदा
जाते गृहस्वामी समुत्थितः ॥ बोधयामास तं पान्थं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ द्विज उवाच ॥ स्वपिषि त्वं किमर्थं हि प्रातःकालो
भवत्यलम् ॥ स्वयात्रां कुरु तं देशं गमनेच्छा च यत्र ह ॥ ३७ ॥ तेनोक्तं श्रूयताम्ब्रह्मञ्च्छरीरे सेवकस्य मे ॥ वर्तते हि व्यथा स्थित्वा
मुहूर्तं गम्यते ततः ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं च मिषं कृत्वा सुष्वाप पुरुषस्तदा ॥ तद्वृत्तमखिलं ज्ञातुमद्भुतं विस्मयावहम् ॥ ३९ ॥
दोहनस्य तदा काले ब्राह्मणः स्वसुतं प्रति ॥ उवाच गंतुकामश्च कार्यार्थं कुत्रचिच्च सः ॥ ४० ॥ पितोवाच ॥ मया तु गम्यते पुत्र
कार्यार्थं कुत्रचित्पुनः ॥ धेनुर्दोह्या त्वया वत्स सावधानादियं निजा ॥ ४१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणवरस्स जगाम च
कुत्रचित् ॥ पुत्रः समुत्थितस्तत्र वत्सं च मुक्तवांस्तदा ॥ ४२ ॥ माता च तस्य दोहार्थमाजगाम स्वयन्तदा ॥ द्विजपुत्रस्तदा वत्सं खिन्नं
कीलेन ताडितम् ॥ ४३ ॥ बंधनार्थं हि गोः पार्श्वमनयद्दुग्धलालसः ॥ पुनर्गौश्च तदा क्रुद्धा शृंगेनाताडयच्च तम् ॥ ४४ ॥

उस विस्मयदायक अद्भुत चरित्रके जाननेकी इच्छासे उस समय वह पुरुष सोरहा ॥ ३९ ॥ तब गाय दुहनेके समय उस ब्राह्मणने कहीं कार्यके निमित्त जानेकी इच्छासे अपने पुत्रसे कहा ॥ ४० ॥ पिता बोला, हे पुत्र ! मैं तो कार्यवश अन्यत्र जाताहूं हे वत्स ! तू यह अपनी गाय सावधानीसे दुह लेना ॥ ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहके वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहींको चलागया और उस समय उसके पुत्रने उठकर गाय दुहनेको बछडा खोला ॥ ४२ ॥ उसकी माताभी स्वयं गाय दुहनेको आई तब उस ब्राह्मणके पुत्रने कीलसे खिन्न हुए उस बछडेको ताडन किया ॥ ४३ ॥ दूध दुहनेकी इच्छासे गायके समीप

बांधनेको लाया तब क्रोधितहुई गायने उस बालकको सींगोंसे ताडन किया ॥ ४४ ॥ वहभी मर्मस्थानमें वेधित हुआ मूर्छाको प्राप्त होकर गिरपडा त्योंही सब लोग आगये और कहनेलगे कि गायने बालकको मार दिया ॥ ४५ ॥ हाय हाय ! करतेहुए वे वहां गये जहां उसके पिताआदि स्थित थे जबतक कुछ यत्न करते तबतक वह बालक मरगया ॥४६॥ उस बालकके मरनेपर वहां बडा हाहाकार मचा उसकी माता दुःखी होकर वारम्वार रुदन करनेलगी ॥ ४७ ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कौन मेरे दुःखको दूर करैगा ? ऐसा कहकर उसने रोके उस गायको ताडनकरके खोलदिया ॥ ४८ ॥ उस समय

पपात मूर्च्छां संप्राप्य सोपि मर्मणि ताडितः ॥ लोकाश्च मिलितास्तत्र गवा बालो विहिंसितः ॥ ४५ ॥ जलंजलं वदन्तस्ते पित्राद्या
यत्र संस्थिताः ॥ यत्नश्च क्रियते यावत्तावद्बालो मृतस्तदा ॥ ४६ ॥ मृते च बालके तत्र हाहाकारो महानभूत् ॥ तन्माता दुःखिता
ह्यासीद्रुरोद च पुनः पुनः ॥ ४७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति ॥ रुदित्वेति तदा गां च ताडयित्वा व्यमोच
यत् ॥ ४८ ॥ श्वेतवर्णा तदा सा गौर्द्रुतं श्यामा व्यदृश्यत ॥ अहो च दृश्यतां लोकाश्चुक्रुशुश्च परस्परम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणश्च तदा
पान्थौ दृष्ट्वाश्चर्यं विनिर्गतः ॥ यत्र गौश्च गतस्तत्र तामनु ब्राह्मणो गतः ॥ ५० ॥ ऊर्ध्वपुच्छं तदा कृत्वा शीघ्रं गौर्नर्मदां प्रति ॥
आगत्य नन्दिकस्यास्य समीपे नर्मदाजले ॥ ५१ ॥ संनिमज्य त्रिवारं तु श्वेतत्वं च गता हि सा ॥ यथागतं गता सा च ब्राह्मणो
विस्मयं गतः ॥ ५२ ॥ अहो धन्यतमं तीर्थं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥ स्वयं ममज्ज तत्रासौ ब्राह्मणस्सेवकस्तथा ॥ ५३ ॥

वह श्वेतवर्णवाली गाय शीघ्रही श्यामवर्णवाली होगई क्या आश्चर्य है ऐसा सब देखनेवाले मनुष्य परस्पर कहते थे ॥ ४९ ॥ उस समय वह पथिकब्राह्मण यह दृश्य देखकर आश्चर्यको प्राप्तहुआ, जहां वह गाय जानेलगी तहांही उसके पीछे पीछे वह ब्राह्मण चलागया ॥ ५० ॥ उस समय वह गाय ऊपरको पूँछकरके शीघ्र नर्मदानदीके समीप गई नन्दिकेश्वर महादेवके निकट उस नर्मदाके जलमें ॥ ५१ ॥ तीनवार गोता मारा और स्नान करतेही श्यामवर्णसे श्वेतवर्णको प्राप्त हुई और जिस स्थानसे आईथी फिर वहांही चलीगई यह लीला देख ब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ अहो ! यह ब्रह्महत्याका

निवारण करनेवाला तीर्थ धन्य है, वह ब्राह्मण उसमें सेवककेसहित स्नान करनेलगा ॥ ५३ ॥ उस नर्मदा नदीमें स्नान करके वे दोनों मार्गमें उस नदीकी प्रशंसा करतेहुए चलेगये तब मार्गमें उन्हें कोई, भूषणधारे स्त्री मिली ॥ ५४ ॥ उसने इस ब्राह्मणसे कहा हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हे पथिक ! विस्मयसे युक्तहुए तुम कहां जाते हो सो सब कपटको त्यागकर मेरे आगे सत्य कहो ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, उस समय ऐसा वचन सुन ब्राह्मणने सब ठीकठीक कह सुनाया, फिर उस ब्राह्मणसे वह स्त्री बोली कि–तुम यहां स्थित हो ॥ ५६ ॥ तब उसका वचन सुनकर वह स्थित रहा और नम्रस्वभाववाले ब्राह्मणने स्त्रीसे कुछ

निमज्य हि गतौ तौ च प्रशंसन्तौ नन्दीं च ताम् ॥ मार्गे च मिलिता काचित्सुन्दरी भूषणान्विता ॥ ५४ ॥ तयोक्तं तं च भोः पांथ कुतो यासि सुविस्मितः ॥ सत्यं ब्रूहि च्छलं त्यक्त्वा विप्रवर्य ममाग्रतः ॥ ५५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वचस्तदा श्रुत्वा द्विजेनोक्तं यथातथम् ॥ पुनश्चायं द्विजस्तत्र स्त्रियोक्तः स्थीयतां त्वया ॥ ५६ ॥ तयोक्तं च समाकर्ण्य स्थितस्स ब्राह्मणस्ततः ॥ प्रत्युवाच विनीतात्मा कथ्यते किं वदेति च ॥ ५७ ॥ सा चाह पुनरेवात्र त्वया दृष्टं स्थलं च यत् ॥ तत्राधुना क्षिपास्थीनि मातुः किं गम्यतेऽन्यतः ॥ ॥ ५८ ॥ तव माता पान्थवर्य्य साक्षाद्दिव्यमयं वरम् ॥ देहं धृत्वा द्रुतं साक्षाच्छंभोर्यास्यति सद्गतिम् ॥ ५९ ॥ वैशाखे चैव संप्राप्ते सप्तम्याश्च दिने शुभे ॥ सिते पक्षे सदा गंगा ह्यायाति द्विजसत्तम ॥ ६० ॥ अद्यैव सप्तमी या सा गंगारूपास्ति तत्र वै ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी सा गंगा मुनिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ निवृत्तश्च द्विजः सोपि मात्रस्थ्यर्द्धं स्ववस्त्रतः ॥ क्षिपेद्यावत्तत्र तीर्थे तावच्चित्रमभूत्तदा ॥ ६२ ॥

कथन करनेको कहा ॥ ५७ ॥ तब वह स्त्री कहने लगी कि, जो स्थल तुमने देखा है वहीं माताकी अस्थियें सिराओ और कहां जाते हो ॥ ५८ ॥ हे श्रेष्ठपथिक ! ऐसा करनेसे तेरी माता साक्षात् दिव्यमय शरीर धारण करके शीघ्रही शिवलोकमें मुक्तिको प्राप्तहोगी ॥ ५९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वैशाखमासमें, शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन वहां निरन्तर गंगाजी आतीहै ॥ ६० ॥ सो आज सप्तमी है वहां गंगा विद्यमान है हे मुनीश्वर ! इस प्रकार कह वह गंगारूपवाली देवी स्त्री अन्तर्धान होगई ॥ ६१ ॥ और उस ब्राह्मणने लौटकर माताकी आधी अस्थियें जभी वस्त्र खोलकर वहां सिराईं तभी यह विचित्र दृश्य हुआ कि ॥ ६२ ॥

उसकी माता दिव्यशरीरधारे यह कहतीहुई दीखी कि हे पुत्र तू धन्यहै कृतकृत्य है तूने अपने कुलको पवित्र किया ॥ ६३ ॥ तेरा धन धान्य तथा आयु वृद्धिको प्राप्तहो, ऐसी बारम्बार अपने पुत्रको अशीस देकर उसकी माता स्वर्गको प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥ वहां अधिक समयतक बडे सुखको भोगकर शिवजीके प्रसादसे वह श्रेष्ठगतिको प्राप्त हुई ॥ ६५ ॥ उसका पुत्र ब्राह्मण माताकी अस्थियें सिराकर प्रसन्नचित्त तथा शुद्धआत्मा होकर अपने घरको चलागया ॥ ॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कोटि रु० नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणीस्वर्गतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो !

दिव्यदेहत्वमापन्ना स्वमाता च व्यदृश्यत ॥ धन्योसि कृतकृत्योसि पवित्रं च कुलं त्वया ॥ ६३ ॥ धनं धान्यं तथा चायुर्वंशो वै वर्द्धतां तव ॥ इत्याशिषं मुहुर्दत्त्वा स्वपुत्राय दिवं गता ॥ ६४ ॥ तत्र भुक्त्वा सुखं भूरि चिरकालं महोत्तमम् ॥ शंकरस्य प्रसादेन गता सा ह्युत्तमां गतिम् ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणश्च सुतस्तस्याः क्षिप्त्वास्थीनि पुनस्ततः ॥ प्रसन्नमानसोऽभूत्स शुद्धात्मा स्वगृहं गतः ॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नंदिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणीस्वर्गतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं गंगा समायाता वैशाखे सप्तमीदिने ॥ नर्मदायां विशेषेण सूतैतद्वर्णय प्रभो ॥ १ ॥ ईश्वरश्च कथं जातो नन्दिकेशो हि नामतः ॥ वृत्तं तदपि सुप्रीत्या कथय त्वं महामते ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा नन्दिकेशाश्रितं वचः ॥ तदहं कथयाम्यद्य श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणी ऋषिका नाम्ना कस्यचिच्च द्विजन्मनः ॥ सुता विवाहिता कस्मैचिद्द्विजाय विधानतः ॥ ४ ॥

हे सूतजी ! वैशाखशुक्ल सप्तमीको नर्मदा नदीपर गंगाजी किसप्रकार आती हैं सो वर्णन करो ॥ १ ॥ हे बडीबुद्धिवाले ! ईश्वर, नन्दिकेश नामसे किस प्रकार प्रसिद्ध हुए यह समाचारभी आप प्रीतिसे कहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! आपने नन्दिकेशसम्बन्धी अच्छा प्रश्न किया सो मैं अब उसे वर्णन करताहूं जो सुननेमात्रसे पुण्यको बढानेवाला है ॥ ३ ॥ ऋषिका नामवाली ब्राह्मणी किसी ब्राह्मणकी कन्या, शास्त्रके विधानसहित एक ब्राह्मणको विवाही

गई ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ पूर्व कर्मके प्रभावसे वह पतिव्रताभी ब्राह्मणकी स्त्री, बाल्य अवस्थामें विधवा होगई ॥५॥ तब वह विप्रकी पत्नी, ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर, पार्थिवपूजनके सहित बडा कठिन तप करनेलगी ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें बडा मायावी मूढ़ नामक, एक बली दुष्ट दैत्य, कामके बाणसे पीडित हुआ उस स्थानमें गया ॥ ७ ॥ और तप करतीहुई अत्यन्त कामिनी तथा सुन्दररूपवाली उस स्त्रीको देखकर उसने अनेक प्रकारके लोभ दिखाय उसके साथ भोग करनेकी प्रार्थना की ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वरो ! तब शुभव्रत करनेवाली, शिवजीके ध्यानमें तत्परहुई उसने कामकी दृष्टिसे उसकीओर नहीं देखा ॥ ९ ॥

पूर्वकर्मप्रभावेण पत्नी सा हि द्विजन्मनः ॥ सुव्रतापि च विप्रेन्द्रा बालवैधव्यमागता ॥ ५ ॥ अथ सा द्विजपत्नी हि ब्रह्मचर्य्यव्रता
न्विता ॥ पार्थिवार्चनपूर्वं हि तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्नवसरे दुष्टो मूढनामाऽसुरो बली ॥ ययौ तत्र महामायी कामबाणेन
ताडितः ॥ ७ ॥ तपन्तीं तां समालोक्य सुन्दरीमतिकामिनीम् ॥ तया भोगं ययाचे स नानालोभं प्रदर्शयन् ॥ ८ ॥ अथ सा
सुव्रता नारी शिवध्यानपरायणा ॥ तस्मिन्दृष्टिं दधौ नैव कामदृष्ट्या मुनीश्वराः ॥ ९ ॥ न मानितवती तं च ब्राह्मणी सा तपोरता ॥
अतीव हि तपोनिष्ठासीच्छिवध्यानमाश्रिता ॥ १० ॥ अथ मूढः स दैत्येन्द्रः तया तन्व्या तिरस्कृतः ॥ चुक्रोध विकटं तस्यै पश्चा
द्रूपमदर्शयत् ॥ ११ ॥ अथ प्रोवाच दुष्टात्मा दुर्वचो भयकारकम् ॥ त्रासयामास बहुशस्तां च पत्नीं द्विजन्मनः ॥ १२ ॥ तदा सा
भयसंत्रस्ता बहुवारं शिवेति च ॥ बभाषे स्नेहतस्तन्वी द्विजपत्नी शिवाश्रया ॥ १३ ॥ विह्वलातीव सा नारी शिवनामप्रभाषिणी ॥
जगाम शरणं शम्भोः स्वधर्मावनहेतवे ॥ १४ ॥

तप करनेमें लगीहुई उस ब्राह्मणीने उस दैत्यका कुछ मान नहीं किया और शिवके ध्यानमें मग्न हो अत्यन्त तप करने लगी ॥ १० ॥ तब उस स्त्रीसे तिरस्कार कियाहुआ, मूर्ख वह दैत्यपति उसके ऊपर बडा क्रोध करनेलगा और पीछे अपना रूप दिखाया ॥ ११ ॥ और वह दुष्टआत्मा राक्षस उसे ब्राह्मणकी पत्नीको भय (त्रास) दिखाताहुआ, भयंकर दुर्वचन कहनेलगा ॥ १२ ॥ उस समय उस कृशांगी ब्राह्मणकी स्त्रीने भयभीत हो, प्रीतिसे अनेकबार शिवके आश्रय हो, शिवशिव उच्चारण किया ॥ १३ ॥ और अत्यन्त भयसे व्याकुल हो शिवनाम जपतेहुए, अपने धर्मकी रक्षाकरनेके कारण शिवजीकी

शरणमें गमन किया ॥ १४ ॥ शरणागतकी रक्षाके अर्थ श्रेष्ठ व्रत धारण करनेवाले शंकर उस स्त्रीके सुखके निमित्त उसीसमय प्रगट हुए ॥ १५ ॥ और भक्तवत्सल शिवजीने कामसे व्याकुलहुए उस मूढ नामक दैत्यपतिको उसीसमय भस्म करदिया ॥ १६ ॥ उस समय भक्तोंके रक्षा करनेमें चतुर बुद्धिवाले शिवजीने उसको कृपादृष्टिसे देखकर, "वर मांग" ऐसा कहा ॥ १७ ॥ वह पतिव्रता ब्राह्मणकी स्त्री महादेवके वचन सुन आनन्दके उत्पादक, शिवके सुन्दर रूपको देखनेलगी ॥ १८ ॥ कन्धे झुकायेहुए, शुभआशयवाली उस स्त्रीने सुखदायक परमेश्वर शिवको प्रणाम कर हाथ जोड उनकी स्तुति

शरणागतरक्षार्थं कर्तुं सद्वृत्तमाहितम् ॥ आनन्दार्थं हि तस्यास्तु शिव आविर्बभूव ह ॥ १५ ॥ अथ तं मूढनामानं दैत्येन्द्रं कामविह्व
लम् ॥ चकार भस्मसात्सद्यः शंकरो भक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ ततश्च परमेशानो कृपादृष्ट्या विलोक्य ताम् ॥ वरं ब्रूहीति चोवाच भक्तर
क्षणदक्षधीः ॥ १७ ॥ श्रुत्वा महेशवचनं सा साध्वी द्विजकामिनी ॥ ददर्श शांकरं रूपमानन्दजनकं शुभम् ॥ १८ ॥ ततः प्रणम्य तं
शंभुं परमेशं सुखावहम् ॥ तुष्टाव साञ्जलिः साध्वी नतस्कन्धा शुभाशया ॥ १९ ॥ ऋषिकोवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥
दीनबंधुस्त्वमीशानो भक्तरक्षाकरः सदा ॥ २० ॥ त्वया मे रक्षितो धर्मो मूढनाम्नोऽसुरादिह ॥ यदयं निहतो दुष्टो जगद्रक्षा कृता त्वया
॥ २१ ॥ स्वपादयोः परां भक्तिं देहि मे ह्यनपायिनीम् ॥ अयमेव वरो नाथ किमन्यदधिकं ह्यतः ॥ २२ ॥ अन्यदाकर्णय विभो
प्रार्थनां मे महेश्वर ॥ लोकानामुपकारार्थमिह त्वं संस्थितो भव ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वा महादेव मृषिका सा शुभव्रता ॥
तूष्णीमासाथ गिरिशः प्रोवाच करुणाकरः ॥ २४ ॥

की ॥ १९ ॥ ऋषिका बोली, हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! आप दीनोंके बन्धु तथा नित्य भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ २० ॥ आपने मूढ नामक दैत्यसे मेरा धर्म बचाया तथा संसारकी रक्षा करनेवाले आपने इस दुष्टको मारा ॥ २१ ॥ हे नाथ ! अपने चरणोंमें मेरी अविनाशिनी भक्तिप्रदान करो यही वरदान चाहतीहूं इससे अधिक और क्या कहूं ? ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे महेश्वर ! मेरी इस प्रार्थनाकोभी सुनो कि आप लोकोंके उपकारके अर्थ यहां विराजमान हूजिये ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार महादेवकी स्तुति करके वह शुभव्रतवाली ऋषिका चुप होरही तब दयालु शिवजी

कहनेलगे ॥ २४ ॥ शिवजी बोले, हे ऋषिके ! सुन्दर चारित्रवाली तू विशेषकर मेरी भक्ताहै, जो जो वरदान तूने मांगे सो सो मैंने सब तुझे दिये ॥ २५ ॥
इसी अवसरमें शिवजीको प्रगटहुआ जानकर विष्णु ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्नतापूर्वक वहां आये ॥ २६ ॥ उन सबोंने प्रीतिसे शिवको प्रणाम करके
पूजन किया तथा नम्रहुए सुन्दर चित्तवाले देवताओंने हाथ जोडकर स्तुति की ॥ २७ ॥ उसी समयपर मधुरस्वरवाली साध्वी गंगाजी उसकी प्रशंसा
करतीहुई प्रसन्न मनसे उसके समीप आय उस ऋषिकासे बोली ॥ २८ ॥ गंगाजी बोली, वैशाखके महीनेमें एकदिन तुम मेरे समीप स्थिति करनेका

गिरिश उवाच ॥ ऋषिके सुचरित्र षतः ॥ दत्ता वराश्च ते सर्वे तुभ्यं येये हि याचिताः ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नंतरे
तत्र हरिब्रह्मादयः सुराः ॥ शिवा मन्विताः ॥ २६ ॥ शिवं प्रणम्य सुप्रीत्या समानर्चुश्च तेऽखिलाः ॥ तुष्टुवुर्न
तका विप्राः करौ बद्धा सुचेतसः ये गंगा साध्वी तां स्वर्धुनी जगौ ॥ ऋषिकां सुप्रसन्नात्मा प्रशंसन्ती च तद्वि
धिम् ॥ २८ ॥ गंगोवाच ॥ म ासि दे त्वया वचः॥ स्थित्यर्थं दिनमेकं मे सामीप्यं कार्य्यमेव हि ॥ २९ ॥ सूत
उवाच ॥ गंगावचनमाकर्ण्य सा साध्वी प्राह सुव्रता ॥ तथास्त्विति वचः प्रीत्या लोकानां हितहेतवे ॥ ३० ॥ आनन्दार्थं शिवस्तस्याः
सुप्रसन्नश्च पार्थिवे ॥ तस्मिँल्लिंगे लयं यातः पूर्णांशेन तया हरः ॥ ३१ ॥ देवाः सर्वे सुप्रसन्नाः प्रशंसंति शिवं च ताम् ॥ स्वंस्वं धाम ययु
र्विष्णुब्रह्माद्या अपि स्वर्णदी ॥३२॥ तद्दिनात्पावनं तीर्थमासीदीदृशमुत्तमम् ॥ नन्दिकेशः शिवः ख्यातः सर्वपापविनाशनः ॥ ३३ ॥

वचन दो, अर्थात् वैशाखमें तुमको एकदिन मेरे समीप स्थिति करनी चाहिये ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, गंगाजीका वचन सुनकर वह श्रेष्ठव्रत करनेवाली
साध्वी लोकोंके हितके कारण बहुतअच्छा ऐसाही होगा, यह वचन बोली ॥ ३० ॥ उसके आनंदके अर्थ अति प्रसन्नहुए शिवजी उस पार्थिवलिंगमें पूर्ण
अंशसे लय होगये ॥ ३१ ॥ अति प्रसन्नहुए उन शिवजीको तथा उस साध्वीकी प्रशंसा करतेहुए ब्रह्माआदि सब देवता और गंगाजी अपने २ स्थानको
चलेगए ॥३२॥ उस दिनसे लेकर इस प्रकार वह उत्तम पवित्र तीर्थ होगया और संपूर्ण पापोंके नाशकरनेवाले नन्दिकेश नामक शिवजी प्रसिद्ध हुए ॥३३॥

हे द्विजो ! गंगाजीभी जो मनुष्योंके पाप निवारण करती हैं उन अपने पापोंको धोनेके निमित्त प्रतिवर्ष अपने शुभकी इच्छासे यहां वैशाखसप्तमीको आती है ॥ ३४ ॥ मनुष्य यहां स्नानकर और भली प्रकार नन्दिकेश शिवको पूजकर ब्रह्महत्याआदि समस्त पापोंसे छूटजाता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कोटि रु० नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणों ! पश्चिमदिशाकी भूमिमें जो जो लिंग प्रसिद्ध हैं उन संपूर्ण शिवके पार्थिवलिंगोंको श्रेष्ठ भक्तिसे सुनो ॥ १ ॥ कपिला नामवाली नगरीमें कालरामेश्वर नामक परमदिव्य शिवलिङ्ग

गंगापि प्रतिवर्षं तद्दिने याति शुभेच्छया ॥ क्षालनार्थं स्वपापस्य यद्गृहीतं नृणां द्विजाः ॥ ३४ ॥ तत्र स्नातो नरः सम्यङ् नंदिकेशं समर्च्य च ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते ह्यखिलैरपि ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या शिवलिंगानि तानि च ॥ पश्चिमायां दिशायां वै यानि ख्यातानि भूतले ॥ १ ॥ [illegible]र्यां तु कालरामेश्वराभिधे ॥ शिवलिंगे महादिव्ये दर्शनात्पापहारके ॥ २ ॥ पश्चिमे सागरे चैव महासिद्धेश्वरः स्मृतः [illegible] तथा मोक्षप्रदोऽपि हि ॥ ३ ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं सर्व्वकामफलप्र[illegible]शिवलिंगानि विद्यन्ते कोटिकोटिशः ॥ असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदेपदे ॥ ५ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन [illegible] ॥ शिवप्रत्यक्षलिंगानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ॥ ६ ॥ गोकर्णे शिवलिंगानां तीर्थानामपि सर्वशः ॥ वर्ण्यते महिमा [illegible]र्षिभिः ॥ ७ ॥

है जिसका दर्शन करनेसे पाप दूर होताहै ॥ २ ॥ पश्चिमसागरकी ओर महासिद्धेश्वर पार्थिवलिंग प्रसिद्ध है यह धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्षका देनेवाला है ॥ ३ ॥ पश्चिमके समुद्रके तीर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है जो ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाला है तथा सब कामनाओंका सिद्ध करनेवाला है ॥ ४ ॥ गोकर्णमें कोटियों पार्थिवलिंग हैं तथा पदपदमें असंख्य तीर्थ हैं ॥ ५ ॥ बहुत कहनेसे क्या है ? शिवके प्रत्यक्षहुये सब ज्योतिर्लिंग तथा तीर्थरूप जल यह सब गोकर्णनाथमें स्थितहैं ॥ ६ ॥ हे तात ! गोकर्णमें सब तीर्थोंकी तथा पार्थिवलिंगोंकी महिमा महर्षियोंने पुराणोंमें वर्णन कीहै ॥ ७ ॥

वह साक्षात लिंग सत्ययुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें अतिरक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण, तथा कलियुगमें श्यामवर्ण होगा ॥ ८ ॥ सात रसातल गुहाओंमें आक्रमण करनेवाले बडे बली गोकर्णजी घोर कलियुगके प्राप्त होनेपर कोमलताको प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥ गोकर्णनाथमें उन महापराक्रमी लिंगरूप शिवको पूजकर बडे २ पापकरनेवालेभी साक्षात शिवके पदको प्राप्त होंगे ॥ १० ॥ हे मुनियों ! गोकर्णमें जाकर पवित्र नक्षत्र तथा दिनमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करतेहैं वे शिवरूपही होतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ अथवा जबकभी जो मनुष्य गोकर्णमें जाकर शिवलिंगको पूजताहै, वह ब्रह्मके पदको प्राप्त

कृते युगे स हि श्वेतस्त्रेतायां सोतिलोहितः ॥ द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति ॥ ८ ॥ आक्रान्तसप्तपातालकुहरोपि महा
बलः ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति ॥ ९ ॥ महापातकिनश्चात्र समभ्यर्च्य महाबलम् ॥ शिवलिंगं च गोकर्णे प्रयाताश्शां
करम्पदम् ॥ १० ॥ गोकर्णे तत्र मुनयो गत्वा पुण्यर्क्षवासरे ॥ येऽर्चयन्ति च तं भक्त्या ते रुद्राः स्युर्न संशयः ॥ ११ ॥ यदा कदा
चिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः ॥ पूजयेच्छिवलिंगं तत [illegible] गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां शंकरो हितकाम्यया ॥
महाबलाभिधानेन देवः संनिहितस्सद [illegible] ॥ घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा ॥ तल्लिंगं स्थापयामास गोकर्णे गणना
यकः ॥ १४ ॥ विष्णुर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च वि [illegible] ॥ आदित्या वसवो दस्रौ शशांकश्च सतारकः ॥ १५ ॥ एते विमानगतयो देवाश्च
सह पार्षदैः ॥ पूर्वद्वारं निषेवन्ते तस्य [illegible] ॥ १६ ॥ यमो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पावकः ॥ पितृभिः सहरुद्रैश्च
दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥ १७ ॥ वरुणः सा [illegible] दिसरितां गणैः ॥ महाबलं च सेवन्ते पश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥ १८ ॥

होताहै ॥ १२ ॥ वहांपर शिवजी ब्रह्मा विष्णुआदि देवताओंके हित करनेकी इच्छासे महाबल नामसे प्रसिद्ध हुए सदा निवास करतेहैं ॥ १३ ॥ रावण राक्षसने घोरतपसे प्राप्तकर गोकर्णमें उनका लिङ्ग गणनायकरूपसे स्थापित कियाहै ॥ १४ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, महेन्द्र, विश्वेदेव तथा मरुद्गण, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार तथा तारागणसहित चन्द्रमा ॥ १५ ॥ यह विमानसे आयेहुए पार्षदोंसहित देवता उनकी प्रीतिके कारण पूर्वद्वारको सेवन करते हैं ॥ १६ ॥ यम, मृत्यु, चित्रगुप्त, तथा अग्नि यह देवता साक्षात् पितरों और रुद्रोंसहित दक्षिणके द्वारपर निवास करतेहैं ॥ १७ ॥ नदियोंके स्वामी वरुणदेवता गंगाआदि

नदियोंके सहित पश्चिमके द्वारको आश्रयकर महाबल शिवका सेवन करतेहैं ॥ १८ ॥ कुबेर, तथा वायु, देवेशी भद्रकालिकाजी, चण्डिका आदि माताओंके
सहित उत्तरद्वारको आश्रय करके उन शिवका सेवन करतेहैं ॥ १९ ॥ संपूर्ण देवता, गंधर्व, पितर, सिद्ध चारणों सहित और विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर,
गुह्यक, खग आदि ॥ २० ॥ अनेक पिशाच तथा वेताल महाबली दितिकेपुत्र (दैत्य) तथा नाग शेष आदि संपूर्ण सिद्ध तथा समस्त मुनिगण ॥ २१ ॥
उन महाबल नामवाले शिवको सदा प्रणाम करतेहैं और अभिलषित मनोरथोंको पातेहैं तथा सुखपूर्वक रमण करतेहैं ॥ २२ ॥ अनेक पुरुषोंने वहां सुन्दर

तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकालिक [illegible] ण्डकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिताः ॥ १९ ॥ सर्वे देवास्संगन्धर्वाः पितरः सिद्ध
चारणाः ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नर [illegible] ाः ॥ २० ॥ नानापिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः ॥ नागाश्शेषादयस्सर्वे
सिद्धाश्च मुनयोऽखिलाः ॥ २१ ॥ प्र [illegible] प्रणमन्ति महाबलम् ॥ लभन्त ईप्सितान्कामान्रमन्ते च यथासुखम् ॥ २२ ॥
बहुभिस्तत्र सुतपस्तप्तं सम्पूज्य तं विभु [illegible] ध्वा हि पर [illegible] सिद्धिरिहामुत्रापि सौख्यदा ॥ २३ ॥ गोकर्णे शिवलिंगं तु मोक्षद्वार
उदाहृतः ॥ महाबलाभिधानोऽसौ पूजितः संस्तुतो द्विजाः । २४ ॥ माघासितचतुर्दश्यां महाबलसमर्चनम् ॥ विमुक्तिदं विशेषेण सर्वेषां
पापिनामपि ॥ २५ ॥ अस्यां शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः ॥ आयांति सर्वदेशेभ्य श्चातुर्वर्ण्यमहाजनाः ॥ २६ ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च
बालाश्च चतुराश्रमवासिनः ॥ दृष्ट्वा तत्रत्य देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् ॥ २७ ॥

तप कियाहै तथा उन सर्वव्यापी शिवको पूजकर इसलोक तथा परलोकमें सुखदेनेवाली परम सिद्धिको प्राप्त किया है ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! गोकर्णनाथमें
शिवलिंगको मोक्षका द्वार कहा है, उन महाबलनामक शिवकी पूजा तथा स्तुति होतीहैं ॥ २४ ॥ माघमासकी कृष्णा चतुर्दशीको महाबलकी पूजा करनेसे
समस्त पापियोंकोभी विशेषकर मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥ २५ ॥ इस शिवतिथि (चतुर्दशी) को महोत्सवके देखनेकी इच्छासे अनेक देशोंसे चारों वर्णोंके मनुष्य
यहां आते हैं ॥ २६ ॥ चारों आश्रम वाले, स्त्रियां, बालक, वृद्ध यहां आकर देवेश महाबल नामक शिवका दर्शनकर सफलताको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

उन शिवजीके पार्थिवलिंगको पूज एक चांडाली महाबलके प्रतापसे उसीसमय शिवलोकको प्राप्त हुईथी ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० कोटि रु० महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! हे महाभाग ! हे प्रभो ! आप धन्य हैं वह चांडाली कौन थी आप उसकी कथाको कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! उस परमअद्भुत शिवकी महिमावाली सुननेवालोंको भक्ति बढानेवाली कथाको सद्भक्तिसे श्रवणकरो ॥२॥ वह चांडाली पहले जन्ममें सब लक्षणोंसे शोभित चन्द्रमाके समान मुखवाली सौमिनी नामवाली ब्राह्मणकी कन्या थी ॥ ३ ॥ हे द्विजो ! तब युवा होनेपर

महाबलप्रभावात्तु तच्च लिंगं शिवस्य तु ॥ सम्पूज्यैकाथ चाण्डाली शिवलोकं गता द्रुतम् ॥ २८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥ चाण्डाली का समाख्याता तत्कथां कथय प्रभो ॥ १॥ सूत उवाच ॥ द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या तां कथां परमाद्भुताम् ॥ शिवप्रभावसंमिश्रां शृण्वतां भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ चांडाली सा पूर्वभवेऽभवद्ब्राह्मणकन्यका ॥ सौमिनी नाम चन्द्रास्या सर्वलक्षणसंयुता ॥ ३ ॥ अथ सा समये कन्या युवतिः सौमिनी द्विजाः ॥ पित्रा दत्ता च कस्मैचिद्विधिना द्विजसूनवे ॥ ४ ॥ सा भर्तारमनुप्राप्य किंचित्कालं शुभव्रता ॥ रेमे तेन द्विजश्रेष्ठा नवयौवनशालिनी ॥५॥ अथ तस्याः पतिर्विप्रस्तरुणस्सुरुजार्दितः ॥ सौमिन्याः कालयोगात्तु पञ्चत्वमगम द्विजाः ॥ ६ ॥ मृते भर्तरि सा नारी दुःखितातिविषण्णधीः ॥ किंचित्कालं शुभाचारा सुशीलोवास सद्मनि ॥ ७ ॥ ततस्सा मन्मथाविष्टहृदया विधवापि च ॥ युवावस्थाविशेषेण बभूव व्यभिचारिणी ॥ ८ ॥

उस सौमिनी कन्याका उसके पिताने किसी ब्राह्मणके पुत्रके साथ विधिपूर्वक विवाह करदिया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! तब वह पतिव्रता नवीनयौवनवाली सौमिनी अपने पतिको प्राप्त हो कुछ समयतक उसके साथ रमण करनेलगी ॥ ५ ॥ हे द्विजो ! तब उसका पति वह युवक ब्राह्मण रोगसे पीडित हुआ कालके योगसे मृत्युको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ अपने पतिके मरजानेपर वह स्त्री अति दुःखी हुई और व्याकुलचित्त श्रेष्ठस्वभाववाली अच्छेआचरणसहित उस सौमिनीने कुछ समयतक अपने घरमें निवास किया ॥ ७ ॥ फिर वह विधवा कामदेवके बाणोंसे पीडित हो युवावस्थाकी विशेषतासे व्यभिचारिणी

होगई ॥ ८ ॥ उसके कुलके दूषित करनेवाले कुत्सित कर्मको जान उसके कुटुम्बी परस्परमें सम्मति कर बाल पकडके दूर लेजाकर उसे छोड आये॥९॥ अपनी इच्छासे (स्वतन्त्र) वनमें फिरतीहुई उस स्त्रीको देखकर किसी शूद्रने उसे अपनी स्त्री बनाया और घर लेआया ॥ १० ॥ तब वह नित्य मांस खाती मदिरा पीती थी, और मैथुनमें तत्परहुई उसने उस शूद्रसे कन्याको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ कभी उस व्यभिचारिणी सौमिनीने अपने पतिके कहीं चलेजानेपर मदिरा पानकर मांस खानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ उस समय बाहर गोठमें गायोंके साथ मेष (मेंढे) बंध रहेथे वहां रात्रिके गाढ अंधकारमें

तज्ज्ञात्वा गोत्रिणस्तस्या दुष्कर्म कुलदूषणम् ॥ समेतास्तत्यजुर्दूरं नीत्वा तां सकचग्रहाम् ॥ ९ ॥ कश्चिच्छूद्रवरस्तां वै विचरन्तीं निजेच्छया ॥ दृष्ट्वा वने स्त्रियं चक्रे निनाय स्वगृहं ततः ॥ १० ॥ अथ सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी ॥ अजीजनत्सुतान्तेन शूद्रेण सुरतप्रिया ॥ ११ ॥ कदाचिद्भर्तरि क्वापि याते पीतसुराथ सा ॥ इयेष पिशिताहारं सौमिनी व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥ ततो मेषेषु बद्धेषु गोभिस्सह बहिर्व्रजे ॥ निशामुखे तमोऽन्धे हि खड्गमादाय सा ययौ ॥ १३ ॥ अविमृश्य मदावेशान्मेषबुद्ध्याऽऽमिषप्रिया ॥ एकं जघान गोवत्सं क्रोशंतमतिदुर्भगा ॥ १४ ॥ हतं तं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समंगना ॥ भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा ॥ १५ ॥ सा मुहूर्तं शिवं ध्यात्वामिषभोजनलालसा ॥ छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहारमीप्सितम् ॥ १६ ॥ एवं बहुतिथे काले गते सा सौमिनी द्विजाः ॥ कालस्य वशमापन्ना जगाम यमसंक्षयम् ॥ १७ ॥ यमोऽपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम् ॥ निवर्त्य निरयावासाच्चक्रे चाण्डालजातिकाम् ॥ १८ ॥

वह तलवारको लेकर चलीगई ॥ १३ ॥ तब मांस चाहतीहुई उस अति दुर्भगाने मद्य (नशे) के चढावसे बिनाजाने मेषबुद्धिसे एक चिल्लातेहुए गायके बछडे को मारा ॥ १४ ॥ वह स्त्री उस मरेहुए पशुको घरमें लाय उसको गायका बछडा जान किसी पुण्यकर्मसे भयभीतहुई शिव शिव ऐसा कहनेलगी ॥ ॥ १५ ॥ उस मांसकी अभिलाषा करनेवालीने क्षणमात्र शिवजीका ध्यान करके उसी गायके बछडेको काटकर अभिलषित भोजन किया ॥ १६ ॥ हे द्विजो ! इसप्रकार बहुत दिन बीतनेपर वह सौमिनी कालके वशीभूत हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ यमराजनेभी उसके पूर्वजन्मके कर्म तथा धर्मको

देख नरकवाससे निवृत्त कर उसे चाण्डालजातिमें बनाया ॥ १८ ॥ वह यमपुरसे लौटकर चांडालीके गर्भमें प्राप्तहुई और नेत्रोंकी ज्योति न मिलनेसे जन्मसे अन्धी उत्पन्न हुई ॥ १९ ॥ जन्मसे अन्धी तथा बालकपनमें माता पिताके नष्ट होजानेसे उसे किसीने नहीं पाली न विवाही और बडे कुष्ठरोगसे पीडित हुई ॥ २० ॥ तब भूखसे व्याकुल, तथा दीन, नेत्रहीन, लकडी हाथमें ले चलनेवाली वह चांडालोंके जूंठे भोजनसे अपनी भूंखको शान्त करतीथी ॥ ॥ २१ ॥ ऐसे बडे कष्टसे अपनी बडी अवस्थाको काटकर बुढापेमें अति दुःखको प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ किसी समय उस चांडालीने शिवजीके उत्सवके दिन

साथ भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता ॥ ततो बभूव जन्मान्धा प्रशांतांगारमेचका ॥ १९ ॥ जन्मान्धा साथ बाल्येऽपि विध्वस्त पितृमातृका ॥ ऊढा न केनचिद्दुष्टा महाकुष्ठरुजार्दिता ॥ २० ॥ ततः क्षुधार्दिता दीना यष्टिपाणिर्गतेक्षणा ॥ चाण्डालोच्छिष्टपिंडेन जठराग्निमतर्पयत् ॥ २१ ॥ एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा स्वविपुलं वयः ॥ जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् ॥ २२ ॥ कदाचित्साथ चांडाली गोकर्णं तं महाजनान् ॥ आयास्यंत्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽन्वगान् ॥ २३ ॥ अथासावपि चांडाली वसनाशनतृष्णयां ॥ महाजनान् याचयितुं संचचार शनैःशनैः ॥ २४ गत्वा तत्राथ चांडाली प्रार्थयन्ती महजनान् ॥ यत्र तत्र चचारासौ दीनवाक्प्रसृताञ्जलिः ॥ २५ ॥ एवमभ्यर्थयंत्यास्तु चांडाल्याः प्रसृताञ्जलौ ॥ एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमंजरीम् ॥ २६ ॥ तामंजलौ निपतितां सा विमृश्य पुनःपुनः ॥ अभक्ष्यमिति मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा ॥ २७ ॥ तस्याः कराद्विनिर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमंजरी ॥ पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिंगस्य मस्तके ॥ २८ ॥

महाजन यात्रियोंको गोकर्णमें आता जाता हुआ जाना ॥ २३ ॥ तब वह चांडाली वस्त्र भोजनकी तृष्णासे उन यात्री महाजनोंसे मांगनेके निमित्त शनैः शनैः (धीरेधीरे) फिरनेलगी ॥२४॥ और वहां जाकर वह चांडाली हाथ जोड दीन वचन बोलतीहुई वैश्योंसे मांगती इधर उधर घूमनेलगी ॥२५॥ इस प्रकार प्रार्थना करतीहुई चांडालीके फैलेहुए हाथोंमें किसी पुण्यात्मा पथिकने बेलकी मंजरीको फेंकदिया ॥ २६ ॥ उसने बेलकी मंजरीको अंजलिमें गिरीहुई देख बारम्बार विचार कर व्याकुल हो उसे अभक्ष्य मानकर दूर फेंकदिया ॥ २७ ॥ उसके हाथसे छूटीहुई वह बेलकी मंजरी रात्रिमें किसी

शिवलिंगके मस्तकपर गिरी ॥ २८ ॥ उस चांडालीने चतुर्दशीकी रात्रिमें पथिकोंसे बारम्बार मांगनेपरभी दैवयोगसे कुछ भोजनभी नहीं पाया ॥ २९ ॥
इस प्रकार चतुर्दशीको अज्ञानसे निराहार पवित्र व्रत होगया और परम आनंद देनेवाला जागरण हुआ ॥ ३० ॥ तब प्रातःकाल वह स्त्री बडे शोकसे व्याकुल
और दुःखीहुई धीरे २ केवल अपने घरको लौटी ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंके उपवाससे थकितहुई पदपदमें गिरतीहुई उतनी वह भूमिको लांघकर मूर्छित हो-
गिरकर मरगई ॥ ३२ ॥ तब शिवजीकी कृपासे शीघ्रही शिवगणोंने सुन्दर विमानपर चढाकर उसको महादेवके परमपदको प्राप्त कराया ॥ ३३ ॥

सैवं शिवचतुर्दश्यां रात्रौ पान्थजनान्मुहुः ॥ याचमानाऽपि यत्किंचिन्न लेभे दैवयोगतः ॥ २९ ॥ एवं शिवचतुर्दश्या व्रतं जातं च निर्म
लम् ॥ अज्ञानतो जागरणं परमानन्ददायकम् ॥ ३० ॥ ततः प्रभाते सा नारी शोकेन महता वृता ॥ शनैर्निववृते दीना स्वदेशायैव
केवलम् ॥ ३१ ॥ श्रांता चिरोपवासेन निपतंती पदेपदे ॥ अतीत्य तावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥ ३२ ॥ अथ सा शंभुकृपया
जगाम परमं पदम् ॥ आरुह्य सुविमानं च नीतं शिवगणैर्द्रुतम् ॥ ३३ ॥ आदौ यदेषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाप्यसंती जगाद ॥
तेनेह भूयः सुकृतेन विप्रा महाबलस्थानमवाप दिव्यम् ॥ ३४ ॥ श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके ॥ कृत्वा जागरणं सा
हि चक्रे बिल्वार्चनं निशि ॥ ३५ ॥ अकामतः कृतस्यास्य पुण्यस्यैव च तत्फलम् ॥ भुनक्त्यद्यापि सा चैव महाबलप्रसादतः
॥ ३६ ॥ एवंविधं महालिंगं शंकरस्य महाबलम् ॥ सर्वपापहरं सद्यः परमानन्ददायकम् ॥ ३७ ॥ एवं वः कथितं विप्रा माहात्म्यं
परमं मया ॥ महाबलाभिधानस्य शिवलिंगवरस्य हि ॥ ३८ ॥

हे ब्राह्मणों ! पहले इस व्यभिचारिणी चांडाली स्त्रीने जो अज्ञानसे शिवजीके नामका उच्चारण कियाथा उसही पुण्यसे फिर दूसरे जन्ममें वह महाबल शिवके
दिव्य स्थानको प्राप्त हुई ॥ ३४ ॥ गोकर्णमें शिवतिथि (चतुर्दशी) को उपासना करके शिवजीके समीप जागरण करके रातमें बिल्वपत्रसे पूजन किया ॥
॥ ३५ ॥ विना इच्छा (अज्ञान) से कियेहुये पुण्यका यह फल है कि अबतकभी वह स्त्री महाबलके प्रसादसे भोगोंको भोगतीहै ॥ ३६ ॥ इस प्रकार
शिवजीका महाबल नामक महालिंग तत्काल सब पापोंका हरण करनेवाला तथा परमआनंदका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणों ! इसप्रकार मैंने तुमसे

महाबल नामक शिवलिंगका बडा माहात्म्य कहा ॥ ३८ ॥ अब औरभी उनका अद्भुत माहात्म्य कहताहूं कि जिसके सुननेमात्रसे शीघ्रही शिवजीमें भक्ति उत्पन्न होतीहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० चांडालीसद्गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, शोभायमान इक्ष्वाकुवंशमें बडा धर्मात्मा तथा सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नाम एक राजा था ॥ १ ॥ उस राजाकी धर्मवती पतिव्रता स्त्री राजा नलकी सती दमयन्तीकी समान मदयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ २ ॥ एक समय वह मित्रसह राजा शिकार खेलनेकी इच्छाकर बडी सेनाके सहित आखेटको सघन वनमें

अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं तस्य चाद्भुतम् ॥ श्रुतमात्रेण येनाशु शिवे भक्तिः प्रजायते ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चाण्डालीसद्गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीमतीक्ष्वाकुवंशे हि राजा परमधार्मिकः ॥ आसीन्मित्रसहो नाम श्रेष्ठस्सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥ तस्य राज्ञः सुधर्मिष्ठा मदयन्ती प्रिया शुभा ॥ दमयंती नलस्येव बभूव विदिता सती ॥ २ ॥ स एकदाहि मृगयास्नेही मित्रसहो नृपः ॥ महद्बलेन संयुक्तो जगाम गहनं वनम् ॥ ३ ॥ विहरंस्तत्र स नृपः कमठाह्वं निशाचरम् ॥ निजघान महादुष्टं साधुपीडाकरं खलम् ॥४॥ अथ तस्यानुजः पापी जयेयं छद्मनैव तम् ॥ मत्वा जगाम नृपतेरन्तिकं च्छद्मकारकः ॥ ५ ॥ तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम् ॥ चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः ॥ ६ ॥ अथ तस्मिन्वने राजा कियत्कालं विहृत्य सः ॥ निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीमाययौ मुदा ॥ ७ ॥ पितुः क्षयाहे सम्प्राप्ते निमंत्र्य स्वगुरुं नृपः ॥ वसिष्ठं गृहमानिन्ये भोजयामास भक्तितः ॥ ८ ॥ रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम् ॥ शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत् ॥ ९ ॥

गया ॥ ३ ॥ वहां विहार करतेहुए उस राजाने महादुष्ट साधुओंको पीडा देनेवाले क्रूर कमठनामक राक्षसको मारा ॥ ४ ॥ तब उसका भाई पापी इसको कपटसे जीतनेके अर्थ छलसे राजाके समीप आया ॥ ५ ॥ उस नम्र आकारवाले राक्षसको नौकरी करनेको आयाहुआ देख उसे राजाने अज्ञानसे रसोईका अध्यक्ष बनादिया ॥ ६ ॥ और उस वनमें राजा कुछ समयतक भ्रमण करके शिकार खेल वनसे लौट आनंदसे अपने नगरको आया ॥ ७ ॥ राजाने पिताके क्षयाह (मृत्युका दिन प्राप्त होनेपर अपने गुरु वसिष्ठजीको निमन्त्रण दे अपने घर बुलाय भक्तिपूर्वक भोजन कराया ॥ ८ ॥ उस समय कपटरूप

उस राक्षसने वसिष्ठजीके सामने मनुष्यके मांससे मिलेहुए शाकको परोसा, तब गुरुने यह देखकर कहा ॥ ९ ॥ गुरुजी बोले, हे राजन् ! तुझे धिक्कार है कपट करनेवाले दुष्ट तूने मेरे आगे मनुष्यका मांस परोसवाया इससे तू राक्षस होगा ॥ १० ॥ तब उन गुरु वसिष्ठजीने यह सब कौतुक राक्षससे कियाहुआ जान फिर विचारके उस शापको बारहवर्षतकका किया ॥ ११ ॥ वह राजा अनुचित शापको जान क्रोधसे व्याकुल हो जलकी अंजलि भरकर गुरुजीके शापदेनेको उद्यत हुआ ॥ १२ ॥ उस समय उसकी धर्मवाली पतिव्रता मदयन्ती स्त्रीने उस राजाके चरणोंमें पडकर उस शापको निवारण कराया ॥१३॥

गुरुरुवाच ॥ धिक् त्वां नरामिषं राजंस्त्वयैतच्छद्मकारिणा ॥ खलेनोपहृतं मह्यं ततो रक्षो भविष्यसि ॥ १० ॥ रक्षःकृतं च विज्ञाय तदैवं स गुरुस्तदा ॥ पुनर्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम् ॥ ११ ॥ स राजानुचितं शापं विज्ञाय क्रोधमूर्छितः ॥ जलांजलिं समादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ १२ ॥ तदा च तत्प्रिया साध्वी मदयन्ती सुधर्मिणी ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य शापं तं हि न्यवारयत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्तशापस्तु तस्या वचनगौरवात् ॥ तत्याज पादयोरंभः पादौ कल्मषतां गतौ ॥ १४ ॥ ततःप्रभृति राजाभूत्स लोकेस्मिन्मुनीश्वराः ॥ कल्मषांघ्रिरिति ख्यातः प्रभावात्तज्जलस्य हि ॥ १५ ॥ राजा मित्रसहः शापाद्गुरोर्ऋषिवरस्य हि ॥ बभूव राक्षसो घोरो हिंसको वनगोचरः ॥ १६ ॥ स बिभ्रद्राक्षसं रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ चखाद विविधाञ्जंतून् मानुषादीन्वनेचरः ॥ १७ ॥ स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ ॥ अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्पती ॥ १८ ॥ राक्षसः स नराहारः किशोरं मुनिनन्दनम् ॥ जग्धुं जग्राह शापार्त्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा ॥ १९ ॥

तब अपनी स्त्रीके वचनोंसे शापको हटाय राजाने अपने चरणोंमें जल छोडा तो वे चरण काले होगये ॥१४॥ हे मुनीश्वरो ! उस दिनसे लेकर इस लोकमें वह राजा उस गिरायेहुए जलके प्रतापसे कल्मषपाद नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥ इसप्रकार राजा मित्रसह अपने गुरु वसिष्ठ ऋषिके शापसे वनके बीचमें हत्यारा घोर राक्षस हुआ ॥ १६ ॥ वह राक्षसके रूपको धारे कालके समान वनमें फिरताहुआ मनुष्य आदि अनेक जीवोंको खानेलगा ॥ १७ ॥ उस कालके समान भयंकर राक्षसने कभी वनमें भ्रमण करतेहुए किशोरअवस्थावाले नवोढ मुनि स्त्रीपुरुषोंको देखा ॥ १८ ॥ वह मनुष्योंको भोजन करने

वाला राक्षस शापसे दुःखी हुआ बाल्यअवस्थावाले मुनिके पुत्रको खानेको इसप्रकार दौडा जैसे व्याघ्र मृगके बच्चेको पकडता है ॥ १९ ॥ उन मुनिकी स्त्रीने अपने स्वामीको कोखमें दैत्यसे पकड़ाहुआ देख भयभीत हो उस राक्षससे गिड़गिड़ाके मधुरवचन कह प्रार्थना की ॥ २० ॥ अनेकवार प्रार्थना करनेपरभी नराहारी निर्दयी वह दुष्ट राक्षस उस ब्राह्मणके पुत्रका सिर फाड़कर खागया ॥ २१ ॥ तब उस दीन साध्वी स्त्रीने अति दुःखी हो विलापकर अपने पतिकी अस्थियां इकट्ठी करके श्रेष्ठ चिता बनाई ॥ २२ ॥ अपने पतिके पीछे जानेवाली उस ब्राह्मणीने अग्निमें प्रवेश करके राक्षस आकारवाले राजाको

कुक्षौ गृहीतं भर्तारं दृष्ट्वा भीता च तत्प्रिया ॥ सा चक्रे प्रार्थनां तस्मै वदंती करुणं वचः ॥ २० ॥ प्रार्थ्यमानोऽपि बहुशः पुरुषादः स निर्घृणः ॥ चखाद शिर उत्कृत्य विप्रसूनोर्दुराशयः ॥ २१ ॥ अथ साध्वी च सा दीना विलप्य भृशदुःखिता ॥ आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे क्रिलोलबणाम् ॥ २२ ॥ भर्तारमनुगच्छन्ती संविशंती हुताशनम् ॥ राजानं राक्षसाकारं सा शशाप द्विजाङ्गना ॥ २३ ॥ अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वं संगतो भवेः ॥ तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा विवेश ज्वलनं सती ॥ २४ ॥ सोपि राजा गुरोश्शापमनुभूय कृतावधिम् ॥ पुनः स्वरूपमास्थाय स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ २५ ॥ ज्ञात्वा विप्रसतीशापं मदयन्ती रतिप्रियम् ॥ पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ २६ ॥ अनपत्यो विनिर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः ॥ विसृज्य सकलां लक्ष्मीं वनमेव जगाम ह ॥ २७ ॥ स्वपृष्ठतः समायान्तीं ब्रह्महत्यां सुदुःखदाम् ॥ ददर्श विकटाकारां तर्जयन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ २८ ॥

यह शाप दिया ॥ २३ ॥ कि आजसे लेकर तू जब स्त्रियोंमें संगम करैगा तभी तेरी मृत्यु होगी ऐसा कहकर वह सती अग्निमें प्रवेश करगई ॥ २४ ॥ वह राजा भी बारहवर्षकी अवधिपर्यन्त गुरु वसिष्ठजीके शापको भोगकर फिर अपने उसी रूपको प्राप्तकर प्रसन्न हो अपने घरको गया ॥ २५ ॥ उस समय मदयन्तीने ब्राह्मणीके शापको जान विधवा होजानेके भयसे संगम करनेमें प्रवृत्त हुए पतिको निवारण किया ॥ २६ ॥ सन्तानरहित राजा राज्यभोगोंमें शान्त (प्रसन्न) न हुआ और सब राजपाटको त्याग वनकोही चला गया ॥ २७ ॥ वहां उसने अपने पीछे आती हुई भयंकर आकारवाली बारंबार

डाटतीहुई अति दुःख देनेवाली ब्रह्महत्याको देखा ॥ २८ ॥ उस ब्रह्महत्यासे छूटनेकी इच्छासे व्याकुलचित्तवाले राजाने जप, व्रत, यज्ञ आदि अनेक उपाय किये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणों ! जब अनेक उपायोंसे तथा तीर्थोंमें स्नान करनेसे उस राजाकी ब्रह्महत्या नष्ट न हुई, तब वह राजा मिथिलापुरीको गया ॥ ३० ॥ उस ब्रह्महत्याकी परम चिन्तामें व्याकुल हुए तथा बाहर वनमें गयेहुए उस राजाने गौतम ऋषिको आताहुआ देखा ॥३१॥ उस राजाने निर्मल आकारवाले गौतममुनिके समीप जाय उनके दर्शनसे कुछ शान्तिको प्राप्त हो उन्हैं बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तब उन ऋषिसे कुशल पूंछा

तस्या निर्भद्रमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः ॥ चकार नानोपायान्स जपव्रतमखादिकान् ॥ २९ ॥ नानोपायैर्यदा राज्ञस्तीर्थस्नानादिभिर्द्विजाः ॥ न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलां स ययौ तदा ॥३०॥ बाह्योद्यानगतस्तस्याश्चिंतया परयार्दितः ॥ ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं पार्थिवश्च सः ॥ ३१ ॥ अभिसृत्य स राजेन्द्रो गौतमं विमलाशयम् ॥ तद्दर्शनात्तकिंचित्कः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥ अथ तत्पृष्टकुशलो दीर्घमुष्णं च निश्वसन् ॥ तत्कृपादृष्टिसंप्राप्तसुखः प्रोवाच तं नृपः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ मुने मां बाधते ह्येषा ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ अलक्षिता परैस्तात तर्जयंती पदेपदे ॥ ३४ ॥ यन्मया शापदग्धेन विप्रपुत्रश्च भक्षितः ॥ तत्पापस्य न शान्तिर्हि प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ३५ ॥ नानोपायाः कृता मे हि तच्छान्त्यै भ्रमता मुने ॥ न निवृत्ता ब्रह्महत्या मम पापात्मनः किमु ॥ ३६ ॥ अद्य मे जन्मसाफल्यं संप्राप्तमिव लक्षये ॥ यतस्त्वद्दर्शनादेव ममानन्दभरोऽभवत् ॥ ३७ ॥

हुआ राजा उनकी कृपादृष्टिसे सुख पाय गहरी तथा गरम श्वास लेकर उनसे बोला ॥ ३३ ॥ राजा बोला, हे मुने ! यह कठिन ब्रह्महत्या दूसरोंको न दीखतीहुई पदपदमें ताड़न करतीहुई मुझे बाधा देतीहै ॥ ३४ ॥ कारण कि शापसे वशीभूतहुए मैंने ब्राह्मणके पुत्रको भक्षण किया इससे सहस्रों प्रायश्चित्त करनेसे भी उस पापकी शान्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ हे मुने ! उस पापके दूर होनेके कारण मैंने भ्रमण करकर अनेक उपाय किये, तो भी मुझ पापीकी ब्रह्महत्या नहीं नष्ट हुई ॥ ३६ ॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ, इस प्रकार मैं जानताहूं कि आपके दर्शनमात्रसे मुझे परमआनन्द प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

हे महाभाग ! आज अपने चरणकमलोंकी शरणमें आयेहुए मुझे इस महापापसे दूर करो कि जिससे मैं सुख पाऊं ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, इसप्रकार राजासे प्रार्थना कियेहुए, दयालु गौतममुनिने घोर पापोंके दूर करनेवाले श्रेष्ठ उपायको बताया ॥ ३९ ॥ गौतमजी बोले, हे साधो ! हे राजेन्द्र ! तू धन्य है महापापोंसे भयको त्याग, कारण कि शिवजीके शासन करतेहुए शरणके अभिलाषी भक्तोंको भय कहाँ ॥ ४० ॥ हे महाभाग ! हे राजन् ! सुनो महापातकोंका नाश करनेवाला गोकर्ण नामक शिवका स्थानरूप क्षेत्र है ॥ ४१ ॥ वहाँ बडेसे बडे पापोंकीभी स्थिति नहीं रहसकती तहाँ महाबल नामसे प्रसिद्धहुये

अद्य मे तव पादाब्जशरणस्य कृतैनसः ॥ शान्तिं कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञा समादिष्टो गौतमः करुणार्द्रधीः ॥ समादिदेश घोराणामघानां साधु निष्कृतिम् ॥ ३९ ॥ गौतम उवाच ॥ साधु राजेन्द्र धन्योसि महाघेभ्यो भयन्त्यज ॥ शिवे शास्तरि भक्तानां क्व भयं शरणैषिणाम् ॥ ४० ॥ शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम् ॥ महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं शिवालयम् ॥ ४१ ॥ तत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्यो महतामपि ॥ महाबलाभिधानेन शिवः संनिहितः स्वयम् ॥ ४२ ॥ सर्वेषां शिवलिंगानां सार्वभौमो महाबलः ॥ चतुर्युगे चतुर्वर्णस्सर्वपापापहारकः ॥ ४३ ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रास्ति शिवलिंगं तन्महापातकनाशकम् ॥ ४४ ॥ तत्र गत्वा महापापाः स्नात्वा तीर्थेषु भूरिशः ॥ महाबलं च संपूज्य प्रयाताश्शांकरम्पदम् ॥ ४५ ॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम् ॥ गत्वा सम्पूज्य तल्लिंगं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाः ॥ ४६ ॥ तत्र सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकन्त्वमाप्नुयाः ॥ ४७ ॥

शिवजी स्वयं स्थित हैं ॥ ४२ ॥ वे महाबल, सम्पूर्ण शिवलिंगोंके सम्राट् (अध्यक्ष) हैं तथा चारों युगोंमें चारों वर्णोंके सब पापोंको हरण करनेवाले हैं ॥ ४३ ॥ पश्चिम समुद्रके समीप गोकर्णनामवाला उत्तम तीर्थ स्थित है तहां महापापोंको दूर करनेवाला शिवजीका ज्योतिर्लिंग है ॥ ४४ ॥ महापापीभी वहां जाकर तीर्थोंमें सम्यक्प्रकार स्नान करके महाबलको पूजकर शिवजीके पदको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उसी प्रकार तूभी गोकर्ण नामवाले शिवके स्थानमें जाकर महाबल लिंगको पूजकर सफलताको प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ वहां तूभी सब तीर्थोंमें स्नान करके महाबल शिवजीका पूजन करके

सम्पूर्ण पापोंसे छूट शिवलोकको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार महात्मा गौतममुनिसे आज्ञा दियाहुआ वह राजा प्रसन्नमन हो गोकर्णको
गया ॥ ४८ ॥ वहां तीर्थोंमें स्नान करके महाबलको पूज सम्पूर्ण पापोंसे छूट शिवजीके परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य इस प्रिय महाबलकी
कथाको सुनताहै, वह इक्कीस पीढीसहित शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इस प्रकार मैंने महाबल नामवाले शिवलिंगका समस्तपाप हरण करनेवाला
परम अद्भुत माहात्म्य तुमसे कहा ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० महाबलाह्वाशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

सूत उवाच ॥ इत्यादिष्टः स मुनिना गौतमेन महात्मना॥ महाहृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत ॥ ४८ ॥ तत्र तीर्थेषु सु स्नात्वा सम
भ्यर्च्य महाबलम् ॥ निर्धूताशेषपापौघोऽलभच्छंभोः परम्पदम् ॥ ४९ ॥ य इमां शृणुयान्नित्यं महाबलकथां प्रियाम् ॥ त्रिसप्तकुलजै
स्सार्द्धं शिवलोके व्रजत्यसौ ॥ ५० ॥ इति वश्च समाख्यातं माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ महाबलस्य गिरिशलिंगस्य निखिलाघहृत् ॥
॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलाह्वशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः ॥ महाबलस्य लिंगस्य श्राविते यं कथाद्भुता ॥ १ ॥ उत्तरस्यां दिशायां च
शिवलिंगानि यानि च ॥ तेषां माहात्म्यमनघ वद त्वं पापनाशकम् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः ॥
माहात्म्यं शिवलिंगानां प्रवदामि समासतः ॥ ३ ॥ गोकर्णं क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम् ॥ महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्त
रम् ॥ ४ ॥ तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ॥ ५ ॥

ऋषि बोले, हे महाभाग ! हे सूतजी ! शिवजीमें तत्परबुद्धिवाले आप धन्य हैं, आपने महाबल लिंगकी सुन्दर कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे पापरहित ! उत्तर
दिशाकीओर जो जो शिवके ज्योतिर्लिंग हैं उनके पापनाशक माहात्म्यको आप वर्णन करो ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणों ! आप आदरसे सुनो मैं
उत्तरदिशाके शिवलिंगोंके माहात्म्यको संक्षेपसे कहताहूं ॥ ३ ॥ महापातक नाश करनेवाला दूसरा गोकर्ण नामक क्षेत्र है तहां अतिविस्तारवाला पवित्र बडा
वन है ॥४॥ वहां चन्द्रभाल नामक श्रेष्ठ शिवका ज्योतिर्लिंग है वह सुन्दर भक्तिसे रावणने स्थापित किया है और सम्पूर्ण सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! सब संसारके हितके निमित्त दयाके समुद्र उन चन्द्रभाल शिवकी वहां वैद्यनाथजीके समान स्थिति है ॥ ६ ॥ गोकर्णमें स्नान करके चन्द्रभाल शिवका पूजन करके शिवलोकको प्राप्त होतेहैं यह सत्य है सत्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले चन्द्रभाल शिवकी महिमा बडी अद्भुत है व्यासजीसेभी वर्णन नहीं की जासकती है ॥ ८ ॥ चन्द्रभाल महादेवके ज्योतिर्लिंगकी महिमा तो बडी है, तथापि यथा किंचित सामर्थ्यके अनुसार वर्णन करताहूं सुनो ॥ ९ ॥ मिश्र ऋषिवर (मिश्रर्षि) तीर्थपर, दाधीच नामक शिवलिंग है उसे दाधीचमुनीशने परम प्रीतिसे

तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनीश्वराः ॥ सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च ॥ ६ ॥ स्नानं कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं
समर्च्य च ॥ शिवलोकमवाप्नोति सत्यंसत्यं न संशयः ॥ ७ ॥ चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाद्भुतः ॥ न शक्यो वर्णितुं
व्यासाद्भक्तस्नेहितरस्य हि ॥ ८ ॥ चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् ॥ यथाकथंचित्संप्रोक्तः परलिंगस्य वै शृणु ॥ ९ ॥ दाधीचं
शिवलिंगं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके ॥ दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः
॥ शिवलिंगं समर्चेद्वै दाधीचेश्वरमादरात् ॥ ११ ॥ दाधीचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् ॥ शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्रा
फलार्थिभिः ॥ १२ ॥ एवं कृते मुनिश्रेष्ठाः कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र गतिमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ नैमिषारण्यतीर्थे
तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम् ॥ ऋषीश्वरमिति ख्यातं शिवलिंगं सुखप्रदम् ॥ १४ ॥ तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि ॥ भुक्तिमुक्तिश्च
तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ॥ १५ ॥

स्थापित किया है ॥ १० ॥ वहां जाकर विधिपूर्वक अच्छी प्रकार स्नान करके दाधीचेश्वर नामवाले शिवलिंगको आदरसे पूजना चाहिये ॥ ११ ॥ वहांपर शीघ्र तीर्थयात्राके फल चाहनेवालोंको विधिपूर्वक शिवजीके प्रसन्नताके निमित्त दाधीच ऋषिकी मूर्तिको पूजना चाहिये ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! ऐसा करनेपर मनुष्य कृतकृत्य होता है, इस लोकमें पूर्ण सुखको भोगकर परलोकमें सद्गतिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ नैमिषारण्यमें तो सब ऋषियोंसे स्थापन कियाहुआ, ऋषीश्वर नामक सुखदायक ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरों ! उनके दर्शन करनेसे पापी मनुष्योंकोभी इसलोक तथा परलोकमें

भुक्ति मुक्ति प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥ हत्याहरण तीर्थपर पापनाशक पूजनीय विशेषकर कोटिहत्याओंको नाश करनेवाला शिवलिंग है ॥ १६ ॥ देवप्रयाग तीर्थमें ललितेश्वर नामक सब पापोंको दूर करनेवाले शिवलिंगकी पूजा सब पुरुषोंको करनी चाहिये ॥ १७ ॥ नयपाल नामक प्रसिद्ध पुरीमें पशुपतीश नामक प्रसिद्ध तथा सब कामनाओंको सिद्ध करनेवाला ज्योतिर्लिंग है ॥ १८ ॥ वह शिवलिंग, शिरकेभागस्वरूपसे स्थित है उसकी कथाको केदारेश्वरके इतिहासमें वर्णन करूंगा ॥ १९ ॥ उनके समीप मुक्तिनाथ नामक शिवलिंग बडा अद्भुत है उनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भुक्ति मुक्ति प्राप्त होती है॥ २०॥

हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम् ॥ पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम् ॥ १६ ॥ देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम् ॥
शिवलिंगं सदा पूज्यं नरैस्सर्वाघनाशनम् ॥ १७ ॥ नयपालाख्यपुर्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ॥ लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफल
प्रदम् ॥ १८ ॥ शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंगं तदस्ति हि ॥ तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ॥ १९ ॥ तदारान्मुक्तिनाथाख्यं
शिवलिंगं महाद्भुतम् ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ॥ २० ॥ इति वश्च समाख्यातं लिंगवर्णनमुत्तमम् ॥ चतुर्दिक्षु मुनि
श्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्य
वर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः ॥ तवाज्ञातं न विद्येत तस्मात्पृ
च्छामहे वयम् ॥ १ ॥ लिंगं च पूज्यते लोके तत्त्वया कथितं च यत् ॥ तत्तथैव न चान्यद्वा कारणं विद्यते त्विह ॥ २ ॥ बाणरूपा
श्रुता लोके पार्वती शिववल्लभा ॥ एतत्किं कारणं सूत कथय त्वं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! यह चारोंदिशाओंमें उत्तम लिंगोंका वर्णन आपसे कहा अब और क्या सुनना चाहतेहैं ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! आप व्यासजीके प्रसादसे सब वस्तुको जानते हैं आपको कुछ अज्ञात नहीं है इस कारण हम आपसे पूछते हैं ॥ १ ॥ संसारमें उन लिंगोंकी पूजा होती है जो आपने पहले बताये सो उसका कारण वही है क्या और इसका कोई कारण है ? ॥ २ ॥ हे सूतजी ! लोकमें शिवकी प्रिया पार्वती जोबाण रूपा कही है सो इसका क्या कारण है ? आपने

जैसा सुना है वैसा कहो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! हे श्रेष्ठ ऋषियो!मैंने व्यासजीसे जो कल्पभेदकी कथा सुनी है, उसीको आज तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥ ४ ॥ पहले दारुवनमें ब्राह्मणोंका जो वृत्तान्त हुआ सो सब अच्छी प्रकार सुनो जैसा मैंने सुना है वैसा कहता हूं ॥ ५ ॥ हे ऋषिसत्तम ! जहां दारु नामक श्रेष्ठ वन है तहां नित्य शिवके ध्यानमें तत्परहुए शिवभक्त ऋषिगण रहते थे ॥ ६ ॥ वे मुनीश्वर तीनोंकालोंमें निरन्तर शिवजीका पूजन करते, तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते थे ॥ ७ ॥ वे शिवजीके ध्यानमें परायण, शैव द्विजर्षिगण समिधाओंको लेनेके निमित्त कभी दारुवनमें

सूत उवाच ॥ कल्पभेदकथा चैव श्रुता व्यासान्मया द्विजाः ॥ तामेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ४ ॥ पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तं तु द्विजन्मनाम् ॥ तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥ दारुनामवनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः ॥ शिवभक्तास्सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥ ६ ॥ त्रिकालं शिवपूजां च कुर्वंति स्म निरन्तरम् ॥ नानाविधैः स्तवैर्दिव्यैस्तुष्टुवुस्ते मुनीश्वराः ॥ ७ ॥ ते कदाचिद्वने यातास्समिधाहरणाय च ॥ सर्वे द्विजर्षभाश्शैवाश्शिवध्यानपरायणाः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः ॥ विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ ९ ॥ दिगम्बरोतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः ॥ स चेष्टां सकदक्षां च हस्ते लिंगं विधारयन् ॥ १० ॥ मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् ॥ जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः ॥ विह्वला विस्मिताश्चान्यास्समाजग्मुस्तथा पुनः ॥ १२ ॥ आलिलिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्वा तथापराः ॥ परस्परं तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥ १३ ॥

आये ॥ ८ ॥ इसी अन्तरमें साक्षात् नीललोहित शंकर विकटरूप धारणकर उनकी परीक्षाके निमित्त प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ साक्षात् दिगम्बर अति तेजस्वी विभूतिभूषणसे शोभायमान कामियोंकी समान चेष्टाको किये हाथमें ज्योतिर्लिंगको धारणकिये ॥ १० ॥ स्वयं भक्तोंसे प्रसन्न हुए शिवजी मनसे उन वनवासी मुनियोंकी भलाई करनेको प्रसन्नतासे उस वनमें प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ उनको देखकर ऋषिपत्नी परम त्रासको प्राप्त हो व्याकुल हुई तथा कोई विस्मित हो वहां आईं ॥ १२ ॥ तथा कोई हाथ पकडके परस्पर आलिंगन करनेलगी इस प्रकार वे स्त्रियां परस्पर आलिंगन करनेसे अति प्रसन्न हुईं ॥ १३ ॥

इसी अवसरमें वे श्रेष्ठ ऋषिभी आगये उनके विरुद्ध रूपको देखकर वे दुःखी तथा क्रोधसे व्याकुल हुए ॥ १४ ॥ उस समय दुःखितहुए, शिवजीकी मायासे मोहित हो वे ऋषि आपसमें बोले कि, यह कौन है यह कौन है ? इस प्रकार कहने लगे ॥ १५ ॥ जिस समय वह अवधूत दिगंबर कुछ न बोले तो वे परम ऋषि उन भयंकर पुरुषसे कहने लगे ॥ १६ ॥ तुम वेदमार्गको लोप करनेवाले, विरुद्ध कार्यको करते हो इस कारण तुम्हारा यह लिंग भूमिपर गिरपडै ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उन ऋषियोंके कहनेपर उन अवधूत, अद्भुतरूपधारी शिवका वह लिंग उसी क्षण गिरपडा ॥ १८ ॥ और वह लिंग

एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्य्याः समागमन् ॥ विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ १४ ॥ तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोयं कोयं तथाऽब्रुवन् ॥ समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः ॥ १५ ॥ यदा च नोक्तवान् किंचित्सोवधूतो दिगम्बरः ॥ ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥ १६ ॥ त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपि यत् ॥ ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात् ॥ अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥ १८ ॥ तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्ददाह पुरः स्थितम् ॥ यत्रयत्र च तद्याति तत्रतत्र दहेत्पुनः ॥ १९ ॥ पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च ॥ भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ॥ २० ॥ लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेतिदुःखिताः ॥ न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ २१ ॥ न ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः ॥ दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२ ॥ तत्र गत्वा च ते सर्वे नत्वा स्तुत्वा विधिं द्विजाः ॥ तत्सर्वमवदन्वृत्तं ब्रह्मणे सृष्टिकारिणे ॥ २३ ॥

आगे स्थित हुआ अग्निके समान जलनेलगा और जहां जहां वह जाता तहां तहां जलाता था ॥ १९ ॥ वह लिंग पातालमें स्वर्गलोकमें भी उसी प्रकार प्रज्वलित हो भ्रमण करनेलगा कहींपर भी स्थिर न हुआ ॥२०॥ सम्पूर्ण लोक व्याकुल हुए तथा वे ऋषि दुःखित हुए, कोई देवता तथा ऋषि कल्याणको नहीं प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ जिन्होंने शिवजीको नहीं जाना वे संपूर्ण देवर्षि दुःखितहुए परस्पर मिलकर तत्काल ब्रह्माके शरणमें गये ॥ २२ ॥ वहां जाकर

वे सब ऋषिआदि ब्रह्माको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति करके सृष्टिकरनेवाले ब्रह्माजीसे वह सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी उनके वचनको सुनके शिवकी मायासे मोहित हुए ऋषिश्रेष्ठोंको जानकर शिवजीको प्रणाम कर उनसे बोले ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे ब्राह्मणों ! जाननेवाले भी आपलोग ऐसे निन्दित कामको करते हैं यदि विना जाननवाले ऐसा करैं तो कोई कहनेकी बात नहीं है ॥ २५ ॥ इसप्रकार शिवदेवसे विरोध करके कौन पुरुष अपनी कुशलता चाहताहै, जो मनुष्य मध्याह्नसमयमें प्राप्तहुये अभ्यागतका सत्कार नहीं करता है ॥ २६ ॥ तो वह अतिथि उसके पुण्यको

ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा शिवमायाविमोहितान् ॥ ज्ञात्वा ताञ्च्छंकरं नत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् ॥ २४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्वते गर्हितं द्विजाः ॥ अज्ञातारो यदा कुर्य्युः किं पुनः कथ्यते पुनः ॥ २५ ॥ विरुद्ध्यैवं शिवं देवं कुशलं कस्समीहते ॥ मध्याह्नसमये यो वै नातिथिं च परामृशेत् ॥ २६ ॥ तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयं च दुष्कृतं पुनः ॥ संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनः शिवमेव वा ॥ २७ ॥ यावल्लिंगं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् ॥ जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २८ ॥ भवद्भिश्च तथा कार्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह ॥ शिवलिंगस्य ऋषयो मनसा संविचार्य्यताम् ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुर्ब्रह्माणमृषयश्च वै ॥ किमस्माभिर्विधे कार्यं तत्कार्यं त्वं समादिश ॥ ३० ॥ इत्युक्तश्च मुनीशैस्तैस्सर्वलोकपितामहः ॥ मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१ ॥

लेकर तथा उसे अपने पापोंको देकर लौटजाता है, यदि साक्षात् शिवजी आवैं तो फिर क्या है ? ॥ २७ ॥ मैं तुमसे यह सत्य कहताहूं कि—जबतक तीनों लोकोंमें यह शुभ लिंग कहीं स्थिर नहीं होता है ॥ २८ ॥ तबतक आप ऐसे उपाय करैं कि—जिससे इसलोकमें स्वास्थ्य हो, हे ऋषियो !!! शिवके ज्योतिर्लिंगको मनसे ध्यान करो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, इसप्रकार कहेहुए वे ऋषि ब्रह्माजीसे बोले हे ब्रह्मन् ! अब हमको क्या करना उचित है ! सो आप आज्ञा करो ॥ ३० ॥उन मुनीश्वरोंके ऐसा कहनेपर वह सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी उस समय उन ऋषियोंसे स्वयं बोले ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले,हे देवताओ ! देवी पार्वतीकी आराधना करके पश्चात् शिवजीकी प्रार्थना करो,यदि पार्वती साक्षात् योनिरूपा होजायँ तो ज्योतिर्लिंग स्थिरताको प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ हे ऋषिसत्तम ! मैं उस विधिको इससमय कहताहूं आप सब सुनैं और इसी विधिको करो तब वह पार्वतीजी प्रसन्न होंगी ॥ ३३ ॥ एक घटको स्थापन करके उत्तम आठ दल करके दूर्वा, जौंके अंकुरोंसहित उसमें तीर्थोंके जलाको भरो ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् वेदमंत्रोंसे उस कलशको सेचनकर शास्त्रोक्त विधिसे शिवका स्मरण करके उसकी पूजा करो ॥ ३५ ॥ हे ऋषियो ! शतरुद्रिय मंत्रोंसे उस कलशके जलसे उस लिंगको स्नान कराय उक्त मंत्रोंसे मार्जन करके शान्तिको प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ फिर योनिरूपवाली गिरिजा तथा बाणको स्थापन कर वहां उसी लिंगका स्थापन और मार्जन करो ॥ ३७ ॥ और सुगन्ध तथा चन्दनोंसे, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजासे परमेश्वर शिवको सन्तुष्ट करो ॥ ३८ ॥ प्रणाम तथा पुण्य स्तुतियोंसे बाजे गानोंसे धूमकर मंगलाचरण करो तत्पश्चात् जयका उच्चारण कर ॥ ३९ ॥ यह प्रार्थना करो कि–हे देवेश ! हे संसारको प्रसन्न करनेवाले ! आप प्रसन्न हों आप संसारके कर्ता हैं तथा पालन करनेवाले है आपही अविनाशी, संहार करनेवालेहैं ॥ ४० ॥ हे महेश्वर ! आप

ब्रह्मोवाच ॥ आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराश्शिवम् ॥ योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥ तद्विधिम्प्रवदाम्यद्य सर्वे शृणुत सत्तमाः ॥ तामेव कुरुत प्रेम्णा प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ ३३ ॥ कुम्भमेकं च संस्थाप्य कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ॥ दूर्वायवांकुरैस्तीर्थोदकमापूरयेत्ततः ॥ ३४ ॥ वेदमंत्रैस्ततस्तं वै कुंभं चैवाभिमंत्रयेत् ॥ श्रुत्युक्तविधिना तस्य पूजां कृत्वा शिवं स्मरन् ॥ ३५ ॥ तल्लिंगं तज्जलेनाभिषेचयेत्परमर्षयः ॥ शतरुद्रियमंत्रैस्तु प्रोक्षितं शांतिमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ गिरिजां योनिरूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः ॥ तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभिमंत्रयेत् ॥ ३७ ॥ सुगन्धैश्चन्दनैश्चैव पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥ नैवेद्यादिकपूजाभिस्तोषयेत्परमेश्वरम् ॥ ३८ ॥ प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्वाद्यैर्गानैस्तथा पुनः ॥ ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा जयेति व्याहरेत्तथा ॥ ३९ ॥ प्रसन्नो भव देवेश जगदाह्लादकारक ॥ कर्ता पालयिता त्वञ्च संहर्ता त्वं निरक्षरः ॥ ४० ॥ जगदादिर्जगद्योनिर्जगदन्तर्गतोपि च ॥ शान्तो भव महेशान सर्वाँल्लोकांश्च पालय ॥ ४१ ॥

संसारके आदि हैं तथा जगत्के उत्पन्न करनेवाले, संसारके अन्तर्यामी हैं, आप शान्त हो तथा संपूर्णलोकोंको पालन करो ॥ ४१ ॥ इस विधिके करने पर निस्सन्देह स्वास्थ्य होगा, तीनों लोकोंमें विकार (उत्पात) न होगा किन्तु सुख होगा ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनकर वे देवता तथा ऋषि ब्रह्माजीको प्रणाम करके, सबलोकोंके सुखकी इच्छासे उन शिवजीकी शरणको प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ उस समय परमभक्तिसे पूजित और सत्कार कियेहुए शिवजी अति प्रसन्न होकर उन ऋषियोंसे बोले ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले, हे संपूर्णदेवताओ ! हे ऋषियो ! आप सब मेरे वचनको आदरसे सुनो, यदि

एवं कृते विधौ स्वास्थ्यं भविष्यति न संशयः ॥ विकारो न त्रिलोकेस्मिन्भविष्यति सुखं सदा ॥ ४२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते द्विजा देवाः प्रणिप्रत्य पितामहम् ॥ शिवं तं शरणं प्राप्तास्सर्वलोकसुखेप्सया ॥ ४३ ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तदा ॥ सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ॥ ४४ ॥ महेश्वर उवाच ॥ हे देवा ऋषयंः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ॥ योनिरूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ॥ ४५ ॥ पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा ॥ तया धृतं च मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति ॥ ४६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा ऋषिभिर्देवैस्सुप्रसन्नैर्मुनीश्वराः ॥ गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा ॥ ४७ ॥ प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च ॥ पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ मंत्रोक्तेन विधानेन देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ चक्रुः प्रसन्नां गिरिजां शिवं च धर्महेतवे ॥ ४९ ॥ समानर्चुर्विशेषेण सर्वे देवर्षयः शिवम् ॥ ब्रह्मा विष्णुः परे चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५० ॥

मेरा ज्योतिर्लिंग, योनिरूपसे धारण कियाजाय तो सुख होगा ॥ ४५ ॥ विना पार्वतीके और कोई मेरे ज्योतिर्लिंगको धारण करनेको समर्थ नहींहै उन देवी पार्वतीजीसे धारण कियाहुआ मेरा लिंग शीघ्रही शान्तिको प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! यह सुनकर देवता तथा ऋषियोंने ब्रह्माजीको ग्रहण कर उस समय, पार्वतीजीकी प्रार्थना की ॥ ४७ ॥ पार्वतीजी तथा शिवजीको प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी स्थापनाकी ॥ ४८ ॥ मंत्रोंमें कहीहुई विधिके अनुसार देवता तथा ऋषियोंने अपने धर्मके हेतु पार्वती तथा शिवजीको प्रसन्न किया ॥४९॥ ब्रह्मा विष्णु

तथा सब देवर्षि, त्रिलोकीके चर अचर सहित सबोंने शिवजीकी विशेष पूजा की ॥ ५० ॥ उस समय शिवजी प्रसन्न हुए और जगत्की माता पार्वतीजी सन्तुष्ट हुई और उन्होंने उस रूपसे उस लिंगको धारण किया ॥ ५१ ॥ उन योनिरूप पार्वतीमें लिंगके स्थापित होनेपर उस समय बड़ा आनंद होनेलगा और हे द्विजो ! वह ज्योतिर्लिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगया ॥ ५२ ॥ वे पार्वती तथा शिवकी प्रतिमा हाटकेश नामसे प्रसिद्ध हुई उनके पूजन करनेसे सब प्रकार लोकोंको सुख होताहै ॥ ५३ ॥ इस लोकमें संपूर्ण समृद्धि अति सुखदाई होतीहै और परलोकमें परम मुक्ति प्राप्त होतीहै इसमें कुछ सन्देह नहींहै

सुप्रसन्नः शिवो जातः शिवा च जगदम्बिका ॥ धृतं तया च तल्लिंगं तेन रूपेण वै तदा ॥ ५१ ॥ लोकानां स्थापिते लिंगे कल्याणं चाभवत्तदा ॥ प्रसिद्धं चैव तल्लिंगं त्रिलोक्यामभवद्द्विजाः ॥ ५२ ॥ हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवाशिवमित्यपि ॥ पूजनात्तस्य लोकानां सुखं भवति सर्वथा ॥ ५३ ॥ इह सर्वसमृद्धिः स्यान्नानासुखवहाधिका ॥ परत्र परमा मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां लिंगस्वरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ यथाभवल्लिंगरूपः संपूज्यास्त्रिभवे शिवः ॥ तथोक्तं वा द्विजाः प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अन्धकेश्वरलिंगस्य महिमानं वद प्रभो ॥ तथान्यच्छिवलिंगानां प्रीत्या वक्तुमिहार्हसि ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ पुराब्धिगर्तमाश्रित्य वसन् दैत्योऽन्धकासुरः ॥ स्ववशं कारयामास त्रैलोक्यं सुरसूदनः ॥ ३ ॥ तस्माद्गर्ताच्च निरसृत्य पीडयित्वा पुनः प्रजाः ॥ प्राविशच्च तदा दैत्यस्तं गर्तं सुपराक्रमः ॥ ४ ॥

वहां शिव पुरुष और पार्वती प्रकृति हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा० च० को० रु० लिंगरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! जिस प्रकार तीनों लोकोंमें ज्योतिर्लिंगरूप शिवजी पूजनीय हुए सो तुमसे प्रीतिपूर्वक कहा अब क्या तुम्हारी और सुननेकी इच्छा है? ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो ! अन्धकेश्वर नामक शिवजीकी तथा और शिवके ज्योतिर्लिंगोंकी महिमाको प्रीतिसे आप कहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले, पहले समुद्रके गर्तका आश्रय करके अन्धकासुर नाम दैत्यने निवास करके देवताओंको पीडा दे तीनोंलोकोंको अपने वशमेंकरलिया ॥ ३ ॥ बड़े पराक्रमवाले

उस दैत्यने उस गढेसे निकल सब प्रजाको पीडा दे फिर उसही गर्तमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ उस समय हे मुनीश्वरो ! संपूर्ण देवताओंने दुःखीहो बारम्बार शिवजीकी प्रार्थना करके शिवजीसे अपने सब दुःखोंको निवेदन किया ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, तब उन देवताओंके वचन सुनकर, दुष्टोंके नाशकरनेवाले सत्पुरुषोंको गति देनेवाले, परमेश्वर सन्तुष्ट हो यह बोले ॥ ६ ॥ शिवजी बोले, हे देवताओ ! मैं देवताओंको पीड़ा देनेवाले उस अन्धक दैत्यको मारूंगा तुम सेनाको लेकर चलो मैंभी अपने गणोंकेसहित आता हूं ॥ ७ ॥ उस गढ़ेसे देवता तथा ऋषियोंके द्वेषी, भयंकर दैत्यके, निकलनेपर वे देवता उस गर्तमें

देवाश्च दुःखिताः सर्वे शिवं प्रार्थ्य पुनःपुनः ॥ सर्वं निवेदयामासुस्स्वदुःखं च मुनीश्वराः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तेषां देवानां परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दुष्टहंता सतां गतिः ॥ ६ ॥ शिव उवाच ॥ घातयिष्यामि तं दैत्यमन्धकं सुरसूदनम् ॥ सैन्यं च नीयतान्देवा ह्यायामि च गणैस्सह ॥ ७ ॥ तस्माद्गर्तादंधके हि देवर्षिद्रुहि भीकरे ॥ निस्सृते च तदा तस्मिन्देवा गर्तमुपाश्रिताः ॥ ८ ॥ दैत्याश्च देवताश्चैव युद्धं चक्रुः सुदारुणम् ॥ शिवानुग्रहतो देवाः प्रबलाश्चाभवँस्तदा ॥ ९ ॥ देवैश्च पीडितः सोपि यावद्गर्तमुपागतः ॥ तावच्छूलेन संप्रोतः शिवेन परमात्मना ॥ १० ॥ तत्रत्यश्च तदा शंभुं ध्यात्वा संप्रार्थयत्तदा ॥ अन्तकाले च त्वां दृष्ट्वा तादृशो भवति क्षणात् ॥ ११ ॥ इत्येवं संस्तुतस्सोपि प्रसन्नः शंकरस्तदा ॥ उवाच वचनं तत्र वरं ब्रूहि ददामि ते ॥ १२ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा स दैत्यः पुनरब्रवीत् ॥ सुप्रणम्य शिवं स्तुत्वा सत्त्वभावमुपाश्रितः ॥ १३ ॥

प्रवेश करते हुये ॥ ८ ॥ दैत्योंने और देवताओंने परस्पर बड़ा भयंकर युद्ध किया, उससमय शिवजीके अनुग्रहसे देवता प्रबल होगये ॥ ९ ॥ देवताओंसे पीडितहुआ वह अन्धक दैत्य जभी उस गढेमें प्राप्त हुआ तभी परमात्मा शिवने अपने त्रिशूलमें उसे छेदन करलिया ॥ १० ॥ तब उस दैत्यने शिवजीका ध्यान करके उनकी प्रार्थना की हे शिवजी ! अन्तकालमें आपका दर्शन करके तत्काल मनुष्य आपके सदृश होजाताहै ॥ ११ ॥ उससमय इसप्रकार स्तुति कियेहुये शिवजी प्रसन्नहो यह वचन बोले, तू वर मांग मैं देताहूं ॥ १२ ॥ ऐसा वचन सुनकर वह दैत्य बल तथा भक्तिमें प्राप्तहो शिवजीको प्रणाम तथा

उनकी स्तुति करके फिर बोला ॥ १३ ॥ अन्धक बोला, हे देवोंके स्वामी ! यदि आप प्रसन्नहैं तो मुझे अपनी शुभभक्ति दो और विशेष कृपाकरके यहां स्थित होओ ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, उस दैत्यके ऐसा कहनेपर शिवजीने उसे उसगर्तमें डालदिया और स्वयं संसारके उपकारके अर्थ वहां लिंगरूपसे स्थित होगये ॥ १५ ॥ उस अन्धकेश नामवाले ज्योतिर्लिंगको जो मनुष्य नित्य पूजता है छैमासमेंही उसकी इच्छासिद्धि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ॥ १६ ॥ जो द्विज संसारके हित करनेवाले ज्योतिर्लिंगको अपनी वृत्तिके निमित्त छै मास पूजन करता है वह देवलक (पुजारी) कहाता है ॥ १७ ॥

अन्धक उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश स्वभक्तिं देहि मे शुभाम् ॥ कृपां कृत्वा विशेषेण संस्थितो भव चेह वै ॥१४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन दैत्यं तं तद्गर्ते चाक्षिपद्धरः ॥ स्वयं तत्र स्थितो लिंगरूपोऽसौ लोककाम्यया ॥ १५ ॥ अन्धकेशं च तल्लिंगं नित्यं यः पूजयेन्नरः ॥ षण्मासाज्जायते तस्य वांछासिद्धिर्न संशयः ॥ १६ ॥ वृत्त्यर्थं पूजयेल्लिंगं लोकस्य हितकारकम् ॥ षण्मासं यो द्विजश्चैव स वै देवलकः स्मृतः ॥ १७ ॥ यथा देवलकश्चैव स भवेदिह वै तदा ॥ देवलकश्च यः प्रोक्तो नाधिकारो द्विजस्य हि ॥ १८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवलकश्च कः प्रोक्तः किं कार्यं तस्य विद्यते ॥ तत्त्वं वद महाप्राज्ञ लोकानां हितहेतवे ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ दधीचिर्नाम विप्रो यो धर्मिष्ठो वेदपारगः ॥ शिवभक्तिरतो नित्यं शिवशास्त्रपरायणः ॥ २० ॥ तस्य पुत्रस्तथा ह्यासीत्स्मृतो नाम्ना सुदर्शनः ॥ तस्य भार्या दुकूला च नाम्ना दुष्टकुलोद्भवा ॥ २१ ॥ तद्वशे स च भर्तासीत्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥ सोऽपि नित्यं शिवस्यैव पूजां च स्म करोत्यसौ ॥ २२ ॥

जिस प्रकार देवलक है उसी प्रकार वह यहां होता है, देवलक जो कहा है उसमें द्विजका अधिकार नहीं है ॥ १८ ॥ ऋषि बोले, हे बडे बुद्धिमान ! देवलक किसको कहते हैं और उसका क्या कार्य होता है, सो आप संसारके उपकारके निमित्त कहैं ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, दधीचिनामवाला एक ब्राह्मण था जो धर्मात्मा वेदोंमें पारंगत, नित्य शिवजीकी भक्तिमें तत्पर तथा शिवके शास्त्रोंमें परायण था ॥ २० ॥ उसका पुत्र भी अपने पिताके समान गुणी सुदर्शननामसे प्रसिद्ध था, उसकी स्त्री दुष्टकुलमें उत्पन्न हुई दुकूला नामसे प्रसिद्ध थी ॥ २१ ॥ उसका पति उसके वशीभूत था और उसके चार पुत्र हुए

वह नित्य शिवका पूजन करता था ॥ २२ ॥ एक समय जातिवालोंके उत्सवके कारण दधीचिको दूसरे गांवमें निवास करना पडा और उसे कुटुम्बियोंने आग्रहसे नहीं आने दिया ॥ २३ ॥ तब वह शैवोंमें श्रेष्ठ दधीचि अपने पुत्रसे ऐसा कहकर कि, तुम प्रतिदिन शिवकी भक्तिमें तत्पर हो पूजन करना, प्रमाद न करना ऐसा समझाकर चले गये ॥ २४ ॥ उसके पुत्र सुदर्शनने भी शिवजीका पूजन किया, हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार बहुत समय बीतगया ॥ २५ ॥ होते होते कभी शिवरात्रि आई उस दिन सबोंने व्रत किया ॥ २६ ॥ उस समय दैववशात् वह सुदर्शन पूजाको करके घरको जाय शिवरात्रिको स्त्रीप्रसंग

दधीचेस्तु तदा ह्यासीद्ग्रामान्तरनिवेशनम् ॥ ज्ञातिसंयोगतश्चैव ज्ञातिभिर्न स मोचितः ॥ २३ ॥ कथयित्वा च पुत्रं स शिवभक्तिरतो भव ॥ इत्युक्त्वा स गतो मुक्तो दाधीचिश्शैवसत्तमः ॥ २४ ॥ सुदर्शनस्तत्पुत्रोऽपि शिवपूजां चकार ह ॥ एवं चिरतरः कालो व्यतीयाय मुनीश्वराः ॥ २५ ॥ एवं च शिवरात्रिश्च समायाता कदाचन ॥ तस्यां चोपोषितास्सर्वे स्वयं संयोगतस्तदा ॥ २६ ॥ पूजां कृत्वा गतस्सोऽपि सुदर्शन इति स्मृतः ॥ स्त्रीसंगं शिवरात्रौ तु कृत्वा पुनरिहागतः ॥ २७ ॥ न स्नानं तेन च कृतं तद्रात्र्यां शिवपूजनम् ॥ तेन तत्कर्मपाकेन क्रुद्धः प्रोवाच शङ्करः ॥ २८ ॥ महेश्वर उवाच ॥ शिवरात्र्यां त्वया दुष्ट सेवनं च स्त्रियाः कृतम् ॥ अस्नातेन मदीया च कृता पूजाविवेकिना ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा चैवं कृतं यस्मात्तस्मात्त्वं जडतां व्रज ॥ ममास्पृश्यो भव त्वं च दूरतः दर्शनं कुरु ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ इति शप्तो महेशेन दाधीचिस्स सुदर्शनः ॥ जडत्वं प्राप्तवान्सद्यश्शिवमायाविमोहितः ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्समये विप्रा दधीचिः शैवसत्तमः ॥ ग्रामान्तरात्समायातो वृत्तान्तं श्रुतवाँश्च सः ॥ ३२ ॥

करके फिर पूजागृहमें आया ॥ २७ ॥ उस रात्रिमें उसने विना स्नानकिये शिवका पूजन किया उस कर्मके करनेसे शंकर क्रोधित होकर बोले ॥ २८ ॥ शिवजी बोले, हे दुष्ट ! शिवरात्रिको तूने स्त्रीकेसाथ प्रसंग किया और फिर विवेकरहित तूने विना स्नानकिये मेरा पूजन किया ॥ २९ ॥ कारण कि जानकर तूने ऐसा पाप किया इससे तू जडताको प्राप्त हो मुझे स्पर्श अयोग्य हुआ, तू दूरसे दर्शन कर ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिवजीसे शाप दियाहुआ वह दधीचिँका पुत्र सुदर्शन शीघ्रही शिवकी मायासे मोहित हो जडताको प्राप्त होगया ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो इसी अवसरमें वह शैवोंमें श्रेष्ठ दधीचि

ग्रामान्तरसे आये और उस वृत्तान्तको सुना ॥ ३२ ॥ वह भी शिवके धिक्कारनेसे अति दुःखित हुए रोने लगे और बोले हाय पुत्रके कर्मरूप दुःखसे मैं नष्ट
हुआ ॥ ३३ ॥ वह सत्पुरुषोंमें माननीय दधीचि इस प्रकार बारम्बार कहतेथे कि इस कुपुत्रने मेरा उत्तम कुल नष्ट करदिया ॥ ३४ ॥ उस दुराचारी पुत्रने
अपनी स्त्रीकोभी शीघ्रही व्यभिचारिणी करदिया तब उसके पिताने पश्चात्ताप करके उसे धिक्कारा ॥ ३५ ॥ और उसके पिताने वहां अपने पुत्रके सुधार
के निमित्त भलीप्रकार अतिभक्तिसे सुन्दर विधियोंसे पार्वतीकी पूजा की ॥ ३६ ॥ तथा सुदर्शनने भी स्वयं चंडीके पूजनके विधानसहित महाभक्तिसे

शिवेन भर्त्सितः सोऽपि दुःखितोऽभूदतीव हि ॥ रुरोद हा हतोऽस्मीति दुःखेन सुतकर्मणा ॥ ३३ ॥ पुनःपुनरुवाचेति स दधीचि
स्सतां मतः ॥ अनेनेदं कुपुत्रेण हतं मे कुलमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ स पुत्रोऽपि हतो भार्यां पुंश्चलीं कृतवान्द्रुतम् ॥ पश्चात्तापमनुप्राप्य
स्वपित्रा परिभर्त्सितः ॥ ३५ ॥ तत्पित्रा गिरिजा तत्र पूजिता विधिभिर्वरैः ॥ सुयत्नतो महाभक्त्या स्वपुत्रसुखहेतवे ॥ ३६ ॥ सुदर्श
नोऽपि गिरिजां पूजयामास च स्वयम् ॥ चण्डीपूजनमार्गेण महाभक्त्या शुभैः स्तवैः ॥ ३७ ॥ एवं तौ पितृपुत्रौ हि नानोपायैः सुभ
क्तितः ॥ प्रसन्नां चक्रतुर्देवीं गिरिजां भक्तवत्सलाम् ॥ ३८ ॥ तयोः सेवाप्रभावेण प्रसन्ना चण्डिका तदा ॥ सुदर्शनं च पुत्रत्वे चकार
गिरिजा मुने ॥ ३९ ॥ शिवं प्रसादयामास पुत्रार्थे चण्डिका स्वयम् ॥ क्रुद्धाऽक्रुद्धा पुनश्चण्डी तत्पुत्रस्य प्रसन्नधीः ॥ ४० ॥ अथा
ज्ञाय प्रसन्नं तं महेशं वृषभध्वजम् ॥ नमस्कृत्य स्वयं तस्य ह्युत्सगे तं न्यवेशयत् ॥ ४१ ॥ घृतस्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा
स्वयम् ॥ त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥ ४२ ॥

शुभस्तोत्रोंसहित गिरिजाको पूजा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उन दोनों पितापुत्रोंने, भक्तवत्सला, देवी पार्वतीको अनेक उपायोंसे तथा सुन्दर भक्तिसे प्रसन्न किया
॥ ३८ ॥ हे मुने उस समय उन दोनों की सेवाके प्रभावसे देवी चण्डिका प्रसन्न होगई और सुदर्शनको अपना पुत्र बनाया ॥ ३९ ॥ देवी चंडिकाने
स्वयं उस सुदर्शन पुत्रके निमित्त शिवजीको प्रसन्न किया और उस पुत्रसे क्रोधितहुईभी चंडीजी अक्रोधित हो प्रसन्न हुई ॥ ४० ॥ और उन वृषभध्वज
महेशको प्रसन्नहुआ जान उन्हें नमस्कार करके स्वयं शिवजी आगे गोदमें उसको समर्पण किया ॥ ४१ ॥ और पार्वतीने उस पुत्रको स्वयं घृतसे स्नान

कराय एक ग्रंथीसे युक्तहुए तीनतारके यज्ञोपवीतको धारण कराया ॥ ४२ ॥ उस समय अम्बिकाने प्रीतिसे उस सुदर्शन पुत्रको यज्ञोपवीत दिया तथा सोलह अक्षरोंसे युक्त शिवगायत्रीका उपदेश दिया ॥ ४३ ॥ उस समय इस बालकने श्रीशब्दपूर्वक "ॐनमः शिवाय" इस मंत्रसे सोलहबार संकल्प तथा पूजा की ॥ ४४ ॥ स्नानसे आदि लेकर प्रणामपर्यन्त मंत्रों तथा बाजों सहित ऋषियोंके निकट शिवजीका पूजन किया ॥ ४५ ॥ प्रसन्नहुई चंडिकाने उस समय अनेक नाम मंत्रोंका पाठ कराया तब प्रसन्नात्मा शिवजी बोले ॥ ४६ ॥ हेपुत्र ! मेरे अर्पणकियाहुआ जो कुछ धन धान्यादिक है वह संपूर्ण तुमको ग्रहण करना

सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका ॥ उद्दिश्य शिवगायत्रीं षोडशाक्षरसंयुताम् ॥ ४३ ॥ तदोंनमः शिवायेति श्रीशब्दपूर्वकाय च ॥ वारान्षोडश संकल्पपूजां कूर्यादयं वटुः ॥४४॥ आस्नानादिप्रणामान्तं पूजयन्वृषभध्वजम् ॥ मंत्रवादित्रपूजाभिस्सर्षीणां सन्निधौ तथा ॥ ४५ ॥ नाममंत्राननेकांश्च पाठयामास वै तदा ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा चण्डिका च शिवस्तथा ॥ ४६ ॥ मदर्पितं च यत्किंचिद्धनधान्यादिकन्तथा ॥ तत्सर्वं च त्वया ग्राह्यं न दोषाय भविष्यति ॥ ४७ ॥ मम कृत्ये भवान्मुख्यो देवीकृत्ये विशेषतः ॥ घृततैलादिकं सर्वं त्वया ग्राह्यं मदर्पितम् ॥ ४८ ॥ प्राजापत्यं भवेद्यर्हि तर्ह्येको हि भवान्भवेत् ॥ तदा पूजा च सम्पूर्णान्यथा सर्वा च निष्फला ॥ ४९ ॥ तिलकं वर्तुलं कार्यं स्नानं कार्यं सदा त्वया ॥ शिवसन्ध्या च कर्तव्या गायत्री च तदीयिका ॥ ५० ॥ मत्सेवां प्रथमं कृत्वा कार्यमन्यत्कुलोचितम् ॥ एवं कृतेऽखिले भद्रं दोषाः क्षान्ता मया तव ॥ ५१ ॥

चाहिये इससे कुछ दोष नहीं होगा ॥ ४७ ॥ मेरे कार्यमें और विशेषकर देवीके कृत्यमें तुम मुख्य रहना अर्थात् पूजनमें आलस्य न करना, मेरे अर्पण कियेहुए घृत तेल आदिक सम्पूर्ण वस्तु तुम ग्रहण करो ॥ ४८ ॥ यदि प्राजापत्य व्रत होवै तो तू मुख्य होगा और उस समय पूजा सम्पूर्ण होगी, नहीं तो सब पूजन निष्फल होगा ॥ ४९ ॥ और तुम सदा वर्तुलाकार (गोल) तिलक लगाना तथा नित्य स्नान करना तुमको शिवजीकी सन्ध्या तथा शिवजीकी गायत्री जपनी योग्य है ॥ ५० ॥ पहले मेरी सेवा करना फिर अपने कुलोचित कार्य करना योग्य है, ऐसा करनेसे तेरा कल्याण होगा, मैंने तुम्हारे सबदोष

निवारण किये ॥ ५१ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके परमात्मा शिवने उस समय उसके चारो पुत्रोंको चारो दिशाओंमें अभिषिक्त किया, अर्थात् राज्यतिलक किया ॥ ५२ ॥ चण्डीने सुदर्शन पुत्रको अपने निकट स्थापन कर उसके और पुत्रोंको अनेक वरदान दे यह प्रेरणा की ॥ ५३ ॥ देवी बोली, तुम दोनोंके मध्यमें यह जो मेरा बटुक (भक्तबालक) है उसकी नित्य विजय होगी इसमें कुछ विचार न करना ॥ ५४ ॥ हे पुत्र ! जिसने तुझको पूजा मानों उसने मुझे पूजा, तुमको निरन्तर अपना कर्म करना योग्य है ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिव पार्वतीने उस महात्मा सुदर्शनको पुत्रोंसहित अनेक वरदान

॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तस्य पुत्राश्च चत्वारो वटुकास्तदा ॥ अभिषिक्ताश्चतुर्दिक्षु शिवेन परमात्मना ॥ ५२ ॥ चण्डी चैवात्मनिकटे पुत्रं स्थाप्य सुदर्शनम् ॥ तत्पुत्रान्प्रेरयामास वरान्दत्त्वा ह्यनेकशः ॥ ५३ ॥ देव्युवाच ॥ उभयोर्युवयोर्मध्ये वटुको यो भवेन्मम ॥ तस्य स्याद्विजयो नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ भवांश्च पूजितो येन तेनैवाहं प्रपूजिता ॥ कर्तव्यं हि भवद्भिश्च स्वीयं कर्म सदा सुत ॥ ५५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तस्मै वरा दत्तास्सपुत्राय महात्मने ॥ सुदशनाय कृपया शिवाभ्यां जगतां कृते ॥ ५६ ॥ शिवाभ्यां स्थापिता यस्मात्तस्मात्ते वटुकाः स्मृताः ॥ तपोभ्रष्टाश्च ये जाताः स्मृतास्तस्मात्तपोधमाः ॥ ५७ ॥ शिवयोः कृपया सर्वे विस्तारं बहुधा गताः ॥ तेषां च प्रथमा पूजा महापूजा महात्मनः ॥ ५८ ॥ तेन यावत्कृता नैव पूजा वै शंकरस्य च ॥ तावत्पूजा न कर्त्तव्या कृता चेन्न शुभापि सा ॥ ५९ ॥ शुभं वाप्यशुभं वापि वटुकं न परित्यजेत् ॥ प्राजापत्ये च भोज्ये वै वटुरेको विशिष्यते ॥ ६० ॥ शिवयोश्च तथा कार्ये विशेषोऽत्र प्रदृश्यते ॥ तदेव शृणु सुप्राज्ञ यथाहं वच्मि तेऽनघ ॥ ६१ ॥

किये ॥ ५६ ॥ कारण कि, शिव पार्वतीने उन्हैं स्थापित किया है इससे वे बटुक कहेगये तपोभ्रष्ट होनेसे वे तपोऽधम कहाये ॥५७॥ वे सब शिव पार्वतीकी कृपासे बहुत विस्तारको प्राप्त हुए उन सबोंमें भी उस महात्माकी परम पूजा हुई ॥ ५८ ॥ इस कारण उन्होंने जबतक शिवजीकी पूजा न की हो तबतक औरको पूजा नहीं करनी चाहिये, यदि और पूजा की जाय तो शुभदायक न होगी ॥ ५९ ॥ शुभकार्य हो अथवा अशुभ हो बटुकको त्यागन न करै कारण कि, प्राजापत्यभोज्यमें केवल बटुककोही विशेष कहा है ॥ ६० ॥ तथा शिव पार्वतीके कार्यमें एक बटुकही विशेष दीखता है सो हे बुद्धिमान !

हे निष्पाप ! जैसे मैं तुमसे कहताहूं सो सुनो ॥ ६१ ॥ उस श्रेष्ठ राजाके नगरमें अन्धकेशके समीप प्राजापत्यके नित्य भोजनवाले नियममें ॥ ६२ ॥ शिवजीके अनुग्रहके कारण जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ सो सब प्रीतिसे सुनो जैसा मैंने सुनाहै वैसा कहताहूं ॥ ६३ ॥ सन्तुष्ट हुए शिवजीने उस राजाको एक ध्वजा प्रदान की और उन देवोंकें स्वामी शिवजीने कृपाकरके राजासे कहा ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! मेरे प्राजापत्य यज्ञके संपूर्ण होनेपर रात्रिको ध्वजा गिरैगी और प्रातःकालको बढैगी ॥ ६५ ॥ अन्यथा मेरी यह ध्वजा रात्रिमें भी स्थिर होगी ऐसा राजासे कहके प्रसन्न हुए कृपासागर शिवजी अन्तर्द्धान

तस्यैव नगरे राज्ञो भद्रस्य नित्यभोजने ॥ नियमे प्राजापत्यस्य ह्यन्धकेशसमीपतः ॥ ६२ ॥ यज्जातमद्भुतं वृत्तं शिवानुग्रहकारणात् ॥ श्रूयतां तच्च सुप्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ६३ ॥ ध्वज एकश्च तद्राज्ञे दत्तस्तुष्टेन शंभुना ॥ प्रोक्तश्च कृपया राजा देवदेवेन तेन सः ॥ ६४ ॥ प्रातश्च वर्ध्यतां राजन्ध्वजो रात्रौ पतिष्यति ॥ मम त्वेवं च संपूर्णे प्राजापत्ये तथा पुनः ॥ ६५ ॥ अन्यथायं ध्वजो मे हि रात्रावपि स्थिरो भवेत् ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितश्शंभू राज्ञे तुष्टः कृपानिधिः ॥ ६६ ॥ तथेति नियमश्चासीत्तस्य राज्ञो महामुने ॥ प्राजापत्यं कृतं नित्यं शिवपूजाविधानतः ॥ ६७ ॥ स्वयं प्रातर्विवर्द्धेत ध्वजः सायं पतेदिति ॥ यदि कार्यं च सम्पूर्णं जातं चैव भवेदिह ॥ ६८ ॥ एकस्मिन्समये चात्र वटोः कार्यं पुरा ह्यभूत् ॥ ध्वजः स पतितो वै हि ब्रह्मभोजं विनापि हि ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वा तच्च तदा तत्र पृष्टा राज्ञा च पण्डिताः ॥भुञ्जते ब्राह्मणा ह्यत्र नोत्थितो वै ध्वजस्त्विति ॥ ७० ॥ कथं च पतितः सोऽत्र ब्राह्मणा ब्रूत सत्यतः ॥ ते पृष्टाश्च तदा प्रोचुर्ब्राह्मणाः पण्डितोत्तमाः ॥ ७१ ॥

होगये ॥ ६६ ॥ हे महामुने ! उस राजाका उसी प्रकार नियम हुआ तथा शिवकी पूजाके विधानसे प्राजापत्य (ब्रह्मभोज) किया ॥ ६७ ॥ और जब सम्पूर्ण कार्य समाप्त होगया तब प्रातःकाल वह ध्वजा स्वयं बढी तथा सायंकालमें वहां गिरपडी ॥ ६८ ॥ एक समय वहां बटुकका कार्य पहले होगया तो ब्रह्मभोजनके विना ही वह ध्वजा गिरी ॥ ६९ ॥ उस समय यह चरित्र देखके राजाने पंडितोंसे पूछा कि, अब यहां ब्राह्मण भोजन करतेहैं परन्तु ध्वजा तो नहीं उठी ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! वह ध्वजा क्यों इस प्रकार गिरगई सो सब सत्य सत्य कहो, इस प्रकार पूंछनेपर वे श्रेष्ठ पंडित ब्राह्मण उस समय बोले ॥ ७१ ॥

हे महाराज ! इस ब्रह्मभोजनमें पहले चण्डीके पुत्र बटुकको भोजन कराया, अतः शिवजी सन्तुष्ट हुए इस कारण पहलेही ध्वजा गिरी ॥ ७२ ॥ यह सुनकर
वह राजा तथा और भी सम्पूर्ण मनुष्य विस्मित हुये और वहां उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार शिवजीने उनकी महिमाको बढाया, इसी
कारण पहले विद्वानोंने बटुकोंको श्रेष्ठ कहा है ॥ ७४ ॥ उन बटुकोंसे ही पहले शिवकी पूजा करनी चाहिये, अन्यथा सफल नहीं होती शिवजीके वचनसे
इसमें और किसीका अधिकार नहीं है ॥ ७५ ॥ उत्तारण करना योग्य है जिससे कि–पूजा पूर्ण होवै, उनका इतनाही कार्य है और कुछ कार्य नहीं ॥

ब्रह्मभोजे महाराज वटुको भोजितः पुरा ॥ चण्डीपुत्रश्शिवस्तुष्टस्तस्माच्च पतितो ध्वजः ॥ ७२ ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिस्सोऽथ जनाश्चा
न्येऽपि सर्वशः ॥ अभवन्विस्मितास्तत्र प्रशंसां चक्रिरे ततः ॥ ७३ ॥ एवं च महिमा तेषां वर्द्धितः शङ्करेण हि ॥ तस्माच्च वटुकाः
श्रेष्ठाः पुरा विद्भिः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥ शिवपूजा तु तैः पूर्वमुत्तार्य्या नान्यथा पुनः ॥ अन्येषां नाधिकारोऽस्ति शिवस्य वचना
दिह ॥ ७५ ॥ उत्तारणं च कार्य्यं वै पूजा पूर्णा भवत्विति ॥ एतावदेव तेषां तु कार्यं नान्यत्तथैव च ॥ ७६ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं
यत्पृष्टं च मुनीश्वराः ॥ यच्छ्रुत्वा शिवपूजायाः फलं प्राप्नोति वै नरः ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वटु
कोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ज्योतिषां चैव लिंगानां माहात्म्यं कथयाधुना ॥ उत्पत्तिं च तथा
तेषां ब्रूहि सर्वं यथाश्रुतम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वन्तु विप्रा वक्ष्यामि तन्माहात्म्यं जनिं तथा ॥ संक्षेपतो यथाबुद्धि सद्गुरोश्च मया
श्रुतम् ॥ २ ॥ एतेषां चैव माहात्म्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ शक्यते न मुनिश्रेष्ठास्तथापि कथयामि वः ॥ ३ ॥

॥ ७६ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो आपने मुझसे पूंछा सो सब मैंने तुमसे कहदिया, जिसको सुनकर मनुष्य पूजाके फलको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इति
श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च॰को॰रु॰ बटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ऋषि बोले, अब ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्यको तथा उनकी उत्प
त्तिको, जैसा आपने सुना है उसी प्रकार वर्णन करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! सुनो, ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्यको तथा उत्पत्तिको संक्षेपसे अपनी
बुद्धिके अनुसार कहता हूं जैसा कि, मैंने अपने सद्गुरुसे सुना है ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इन शिवलिंगोंके माहात्म्यको सौ वर्षोंमें भी कहनेकी सामर्थ्य नहीं

होती तथापि मैं आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ हे मुने ! उन ज्योतिर्लिंगोंमेंसे सोमनाथ प्रथम कहे हैं सो आप पहले उनहीके माहात्म्यको सावधानीसे सुनो ॥ ॥ ४ ॥ हे मुनीश्वरो ! महात्मा दक्षने चन्द्रमाको अश्वनी आदि सत्ताईस कन्याओंका दान किया ॥ ५ ॥ यह कन्या, स्वामी चन्द्रमाको प्राप्त होकर अधिक शोभित हुईं और चन्द्रमा भी उन कन्याओंको पाकर निरन्तर शोभित हुआ ॥ ६ ॥ जैसे सुवर्णसे मणिकी शोभा होती है, तथा मणिसे सुवर्ण शोभित होता है, इसी प्रकार वे परस्पर शोभित हुए, उनका जो वृत्तान्त हुआ सो सुनो ॥ ७ ॥ चन्द्रमाको उन संपूर्ण स्त्रियोंमें रोहिणी नामवाली पत्नी जैसी

सोमनाथश्च तेषां वै प्रथमः परिकीर्तितः ॥ तन्माहात्म्यं शृणु मुने प्रथमं सावधानतः ॥ ४ ॥ सप्तविंशन्मिताः कन्या दक्षेण च महात्मना ॥ तेन चन्द्रमसे दत्ता अश्विन्याद्या मुनीश्वराः ॥ ५ ॥ चंद्रं च स्वामिनं प्राप्य शोभमाना विशेषतः ॥ चंद्रोऽपि चैव ताः प्राप्य शोभते स्म निरन्तरम् ॥ ६ ॥ हेम्ना चैव मणिर्भाति मणिना हेम चैव हि ॥ एवं च समये तस्य यज्जातं श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सर्वास्वपि च पत्नीषु रोहिणी नाम या स्मृता ॥ यथैका सा प्रिया चासीत्तथान्या न कदाचन ॥ ८ ॥ अन्याश्च दुःखमापन्नाः पितरं शरणं ययुः ॥ गत्वा तस्मै च यद्दुःखं तथा ताभिर्निवेदितम् ॥ ९ ॥ दक्षस्स च तथा श्रुत्वा दुःखं च प्राप्तवांस्तदा ॥ समागत्य द्विजाश्चन्द्रं शान्त्यावोचद्वचस्तदा ॥ १० ॥ दक्ष उवाच ॥ विमले च कुले त्वं हि समुत्पन्नः कलानिधे ॥ आश्रितेषु च सर्वेषु न्यूनाधिक्यं कथं तव ॥ ११ ॥ कृतं चेत्तत्कृतं तच्च न कर्तव्यं त्वया पुनः ॥ वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम् ॥ १२ ॥

प्रिया थी वैसी और कोई प्रिया न थी ॥ ८ ॥ और शेष वे कन्या दुःखी हुईं अपने पिताके शरणमें गईं, जाके उनसे अपने दुःखको निवेदन किया ॥९॥ उस समय उनके दुःखको सुनकर दक्षजी दुःखी हुए, हे ब्राह्मणो ! तब दक्षजी चन्द्रमाके समीप आकर उससे शांतिसे यह वचन बोले ॥ १० ॥ दक्षजी बोले, हे चन्द्रमा ! आप पवित्रकुलमें उत्पन्न हुएहैं, अपने सब आश्रितोमें आपकी न्यूनता और अधिकता कैसी ? ॥ ११ ॥ यदि आपने ऐसा कृत्य किया है तो अब फिर ऐसा कार्य न करना । न्यूनता, अधिकताके साथ व्यवहार करना नरकका देनेवाला कहा है ॥ १२ ॥

सूत उवाच ॥ दक्षश्चैवं च संप्रार्थ्य चंद्रं जामातरं स्वयम् ॥ जगाम मन्दिरं स्वं वै निश्चयं परमं गतः ॥ १३ ॥ चंद्रोऽपि वचनं तस्य न चकार विमोहितः ॥ शिवमायाप्रभावेण यया संमोहितं जगत् ॥ १४ ॥ शुभं भावि यदा यस्य शुभं भवति तस्य वै ॥ अशुभं च यदा भावि कथं तस्य शुभं भवेत् ॥ १५ ॥ चन्द्रोऽपि बलवद्भाविवशान्मेने न तद्वचः ॥ रोहिण्यां च समासक्तो नान्यां मेने कदाचन ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य स्वयं दुःखसमन्वितः ॥ प्रार्थयामास चन्द्रं स दक्षो दक्षस्सुनीतितः ॥ १७ ॥ दक्ष उवाच ॥ श्रूयतां चन्द्र यत्पूर्वं प्रार्थितो बहुधा मया ॥ न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते तेन चंद्रो वै क्षयी जातः क्षणादिह ॥ हाहाकारो महानासीत्तदेन्दौ क्षीणतां गते ॥ १९ ॥ देवर्षयस्तदा सर्वे किं कार्य्यं हा कथं भवेत् ॥ इति दुःखं समापन्ना विह्वला ह्यभवन्मुने ॥ २० ॥ विज्ञापिताश्च चन्द्रेण सर्वे शक्रादयस्सुराः ॥ ऋषयश्च वसिष्ठाद्या ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २१ ॥

सूतजी बोले, दक्षजी, इस प्रकार स्वयं अपने जामाता चन्द्रमासे प्रार्थना करके, अतिनिश्चयको प्राप्त हो अपने घरको चले गये ॥ १३ ॥ चन्द्रमाने भी उन शिवजीकी मायाके प्रभावसे मोहित हो दक्षके वचनोंपर ध्यान नहीं दिया, कारण कि, जिस मायासे संपूर्ण संसार मोहित होरहाहै ॥ १४ ॥ जिस समय जिसका शुभ होनेवाला होताहै उसका शुभ अवश्य होता है तथा जिसका अशुभ होनहार होता है, उसका शुभ किस प्रकार होसकता है ॥ १५ ॥ चन्द्रमाने भी बलवान् भावीके वशीभूत होकर उनका वचन नहीं माना और रोहिणीमें आसक्त हो और किसी स्त्रीका आदर न किया ॥ १६ ॥ यह सुनकर फिर भी वह विद्वान् दक्षजी दुःखित हो आकर चन्द्रमासे बड़ी नीतिके साथ प्रार्थना करने लगे ॥ १७ ॥ दक्षजी बोले, हे चन्द्रमा ! सुनो मैंने जो तुमसे अनेकप्रकार प्रार्थना की तोभी आपने नहीं मानी इस कारण तुमको क्षयी हो ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, उन दक्षके ऐसा कहतेही वह चन्द्रमा क्षणमात्रमें नाश होगये और चन्द्रमाके नाशको प्राप्त होनेपर बड़ा हाहाकार होने लगा ॥ १९ ॥ हे मुने ! उस समय सब देवता तथा ऋषि कहते थे कि, हाय अब कैसे कार्य होगा ? इस प्रकार दुःखित और अतिव्याकुल हुए ॥ २० ॥ तब चन्द्रामासे प्रेरणा कियेहुए संपूर्ण इन्द्र आदि देवता, तथा वसिष्ठआदि ऋषि

ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ २१ ॥ हे मुने ! उस समय वहां जाकर अतिव्याकुल हुए देवता और ऋषियोंने ब्रह्माजीसे वह संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २२॥
ब्रह्माजी भी उनका वचन सुनके बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुए तथा शिवमायाकी अतिप्रशंसा कर उनको सुनातेहुए यह बोले ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले, अहो !
यह सब संसारको दुःखदायक बड़ा कष्ट उपस्थित होगया, दक्षजीके शापसे नितान्त ही चन्द्रमा दूषित (क्षयी) हुआ ॥ २४ ॥ हे देवताओ !
हे ऋषियो ! उस दूषित चन्द्रमाने ऐसे अनेक कर्म किये हैं सो तुम चन्द्रमाके पहले कर्मोंको सुनो ॥ २५ ॥ उस दुष्टने बृहस्पतिके घर जाकर उनकी स्त्री

गत्वापि तु तदा प्रोचुस्तद्वृत्तं निखिलं मुने ॥ ब्रह्मणे ऋषयो देवा नत्वा नुत्वातिविह्वलाः ॥ २२ ॥ ब्रह्मापि तद्वचः श्रुत्वा विस्मयं परमं
ययौ ॥ शिवमायां सुप्रशस्य श्रावयंस्तानुवाच ह ॥ २३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो कष्टं महज्जातं सर्वलोकस्य दुःखदम् ॥ चन्द्रस्तु
सर्वदा दुष्टो दक्षश्च शप्तवानमुम् ॥ २४ ॥ सर्वं दुष्टेन चन्द्रेण कृतं कर्माण्यनेकशः ॥ श्रूयतामृषयो देवाश्चन्द्रकृत्यं पुरातनम् ॥ २५ ॥
बृहस्पतेर्गृहं गत्वा तारा दुष्टेन वै हृता ॥ तस्य भार्या पुनश्चैव स दैत्यान्समुपस्थितः ॥ २६ ॥ समाश्रितस्तदा दैत्यान्युद्धं देवैश्चकार
ह ॥ मयाऽत्रिणा निषिद्धश्च तस्मै तारां ददौ शशी ॥ २७ ॥ तां च गर्भवतीं दृष्ट्वा न गृह्णामीति सोऽब्रवीत् ॥ अस्माभिर्वारितो जीवः
कृच्छ्राज्जग्राह तां तदा ॥ २८ ॥ यदि गर्भं जहातीह गृह्णामीत्यब्रवीत्पुनः ॥ गर्भे मया पुनस्तत्र त्याजिते मुनिसत्तमाः ॥ २९ ॥
कस्यायं च पुनर्गर्भस्सोमस्येति च साऽब्रवीत् ॥ पश्चात्तेन गृहीता सा मया च वारितेन वै ॥ ३० ॥

ताराको हरण किया, फिर वह दैत्योंके समीप उपस्थित हुआ ॥ २६ ॥ दैत्योंके समीपमें जाके उनका देवताओंसे युद्ध कराया, मेरे तथा अत्रिके आग्रह
करनेपर उसने बृहस्पतिको तारा दी ॥ २७ ॥ ताराको गर्भवती देखकर बृहस्पतिने कहा कि, मैं इसे नहीं ग्रहण करता हूं तब हमारे निवारण करनेसे बृहस्प
तिने बड़ी कठिनतासे ताराको स्वीकार किया ॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि यह अपने गर्भको त्यागैगी तो मैं इसे ग्रहण करूंगा, यह बृहस्पतिने कहा, फिर
मैंने उसका गर्भ त्यागन कराया ॥ २९ ॥ फिर उससे पूंछा कि, यह किसका गर्भ है तब वह बोली कि, चन्द्रमाका गर्भ है, पीछे उन्होंने मेरे कहनेसे उसे

ग्रहण किया ॥ ३० ॥ इस प्रकार, चन्द्रमाके अनेक, दुष्ट चारित्र वर्णन किये, फिरभी वह उन चरित्रोंको अब भी करता है ॥ ३१ ॥ जो होगया सो तो होही गया वह अन्यथा नहीं होसकता, अब मैं इसके आगे तुमसे उपाय कहता हूं तुम आदरसे सुनो ॥ ३२ ॥ प्रभासनाम शुभक्षेत्रमें चन्द्रमाको देवताओं सहित जाना योग्य है, वहां जाकर मृत्युंजयके विधानसे शिवकी आराधना करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ वहां शिवजीकी प्रतिमाको स्थापन कर उनके आगे नित्य तप करै, पश्चात शिवजी प्रसन्न हो उसको अक्षय करैंगे ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, इसप्रकार वे देवर्षि उन ब्रह्माजीका वचन सुनकर वहांसे लौटकर वहां आये

एवंविधानि चन्द्रस्य दुश्चरित्राण्यनेकशः ॥ वर्ण्यंते किं पुनस्तानि सोऽद्यापि कुरुते कथम् ॥ ३१ ॥ यज्जातं तत्सुसंजातं नान्यथा भवति ध्रुवम् ॥ अतः परमुपायं वो वक्ष्यामि शृणुतादरात् ॥ ३२ ॥ प्रभासके शुभे क्षेत्रे व्रजेच्चन्द्रस्सदैवतैः ॥ शिवमाराधयेत्तत्र मृत्युंजयविधानतः ॥ ३३ ॥ निधायेशं पुरस्तत्र चन्द्रस्तपतु नित्यशः ॥ प्रसन्नश्च शिवः पश्चादक्षयं तं करिष्यति ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणस्ते सुरर्षयः ॥ संनिवृत्यापयुस्सर्वे यत्र दक्षविधू ततः ॥ ३५ ॥ गृहीत्वा ते ततश्चन्द्रं दक्षं चाश्वास्य निर्जराः ॥ प्रभासे ऋषयश्चक्रुस्तत्र गत्वाखिलाश्च वै ॥ ३६ ॥ आवाह्य तीर्थवर्याणि सरस्वत्यादिकानि च ॥ पार्थिवेन तदा पूजां मृत्युंजयविधानतः ॥ ३७ ॥ ते देवाश्च तदा सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः ॥ स्थाप्य चन्द्रं प्रभासे च स्वंस्वं धाम ययुर्मुदा ॥ ३८ ॥ चन्द्रेण च तपस्तप्तं षण्मासं च निरंतरम् ॥ मृत्युंजयेन मंत्रेण पूजितो वृषभध्वजः ॥ ३९ ॥ दशकोटिमितं मंत्रं समावृत्य शशी च तम् ॥ ध्यात्वा मृत्युंजयं मंत्रं तस्थौ निश्चलमानसः ॥ ४० ॥

जहां दक्ष और चन्द्रमा स्थित थे ॥ ३५ ॥ तब वे देवता, चन्द्रमाको ग्रहणकर, दक्षको आश्वासन दे, संपूर्ण ऋषि प्रभासतीर्थमें जाके वहां शिवार्चन करने लगे ॥ ३६ ॥ और सरस्वती आदि तीर्थवरोंका आवाहन करके उस समय पार्थिव तथा मृत्युंजय विधिके अनुसार पूजन किया ॥ ३७ ॥ वे सब देवता तथा ऋषि शुद्धचित्त हो चन्द्रमाको प्रभासक्षेत्रमें स्थापित करके प्रसन्नतासे अपने अपने धामको पधारे ॥ ३८ ॥ चन्द्रमाने छह मास पर्यंत निरन्तर तप किया और मृत्युंजयमन्त्रसे शिवजीका पूजन किया ॥ ३९ ॥ चन्द्रमाने, दश करोड संख्याक मन्त्रोंका पाठ करके निश्चलमनसे मृत्युञ्जयमन्त्रपूर्वक शिवका

ध्यान कर वहां स्थिति की ॥ ४० ॥ तब, उनको देख स्वामी, देवदेव शिवजी प्रसन्न हुए और भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले महादेव, प्रगट होकर अपने भक्त चन्द्रमासे यह बोले ॥ ४१ ॥ शिवजी बोले, हे चन्द्रमा ! आपका कल्याण हो तुमने जो मनसे चाहा है वह वर मांगो, मैं प्रसन्न हूं तुमको सम्पूर्ण, उत्तम वरदान दूंगा ॥ ४२ ॥ चन्द्रमा बोले, हे देवताओंके स्वामी ! हे शंकर ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे क्या अप्राप्य (दुर्लभ) है, तथापि मेरे शरीरके क्षयको निवारण करो ॥ ४३ ॥ आप मेरे अपराधको क्षमा करैं निरंतर मेरा कल्याण करैं, चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर शिवजी यह वचन बोले ॥

तं दृष्ट्वा शंकरो देवः प्रसन्नोऽभूत्ततः प्रभुः ॥ आविर्भूय विधुं प्राह स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥४१॥ शंकर उवाच ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यत्समीप्सितम् ॥ प्रसन्नोऽहं शशिन्सर्वं दास्ये वरमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ चंद्र उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश किमसाध्यं भवेन्मम ॥ तथापि मे शरीरस्य क्षयं वारय शंकर ॥ ४३ ॥ क्षंतव्यो मेऽपराधश्च कल्याणं कुरु सर्वदा ॥ इत्युक्ते च तदा तेन शिवो वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥ शिव उवाच ॥ पक्षे च क्षीयतां चन्द्र कला ते च दिनेदिने ॥ पुनश्च वर्द्धतां पक्षे सा कला च निरंतरम् ॥४५॥ सूत उवाच ॥ एवं सति तदा देवा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ऋषयश्च तथा सर्वे समाजग्मुर्द्रुतं द्विजाः ॥ ४६ ॥ आगत्य च तदा सर्वे चन्द्रायाशिषमब्रुवन् ॥ शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा प्रार्थयामासुरादरात् ॥ ४७ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव परमेश नमोऽस्तु ते ॥ उमया सहितश्शंभो स्वामिन्नत्र स्थिरो भव ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ ततश्चन्द्रेण सद्भक्त्या संस्तुतश्शंकरः पुरा ॥ निराकारश्च साकारः पुनश्चैवाभवत्प्रभुः ॥ ४९ ॥

॥ ४४ ॥ शिवजी बोले, हे चन्द्रमा ! एक पक्षमें तुम्हारी कला नित्यप्रति नष्ट होगी फिर एक पक्षतक वही कला दिनदिन बढैगी ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहनेपर उस समय हर्षसे प्रफुल्लित मनवाले सम्पूर्ण देवता और ऋषि, शीघ्रतासे आये ॥ ४६ ॥ तब वे सब आकर, चन्द्रमाको आशीर्वाद करने लगे तथा हाथ जोडकर शिवको नमस्कार करके उनसे आदरके साथ प्रार्थना करने लगे ॥ ४७ ॥ देवता बोले, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे परमेश ! हे शंभो ! हे स्वामिन् ! आपको नमस्कार है, आप पार्वतीके समेत यहां स्थिर हों ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, उस समय प्रथम चन्द्रमाने

श्रेष्ठभक्तिसे शंकरकी स्तुति की तो वह निराकार प्रभु शिवजी, साकार रूपधारी हुये ॥ ४९ ॥ और देवताओंसे प्रसन्न हो, क्षेत्रके माहात्म्यके कारण, चन्द्रमाकी कीर्ति प्रसिद्ध करनेके निमित्त, शिवजी वहां चन्द्रमाके नामसे विख्यात हुए ॥ ५० ॥ तीनों लोकोंमें सोमेश्वर नामसे विख्यात हुये, हे द्विजो ! उनके पूजन करनेसे क्षय कुष्ठ आदि रोगोंका नाश होताहै ॥ ५१ ॥ यह चन्द्रमा धन्य हैं तथा कृतकृत्य हैं कि जिनके नामसे साक्षात् शंकर स्वयं विख्यात हो संसारको पवित्र करते हुये स्थित हैं ॥ ५२ ॥ वहांपर उनके कुण्डकीभी उन सब देवताओंने प्रतिष्ठा की और शिव ब्रह्माने उस कुण्डका विभाग नहीं

प्रसन्नश्च स देवानां क्षेत्रमाहात्म्यहेतवे ॥ चन्द्रस्य यशसे तत्र नाम्ना चन्द्रस्य शंकरः ॥ ५० ॥ सोमेश्वरश्च नाम्नासीद्विख्यातो भुवनत्रये ॥ क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनाद्द्विजाः ॥ ५१ ॥ धन्योऽयं कृतकृत्योयं यन्नाम्ना शंकरस्स्वयम् ॥ स्थितश्च जगतां नाथः पावयञ्जगतीतलम् ॥ ५२ ॥ तत्कुंडं तैश्च तत्रैव सर्वैर्देवैः प्रतिष्ठितम् ॥ शिवेन ब्रह्मणा तत्र ह्यविभक्तं तु तत्पुनः ॥ ५३ ॥ चन्द्रकुण्डं प्रसिद्धं च पृथिव्यां पापनाशनम् ॥ तत्र स्नाति नरो यस्स सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ रोगास्सर्वे क्षयाद्याश्च ह्यसाध्या ये भवंति वै ॥ ते सर्वे च क्षयं यान्ति षण्मासं स्नानमात्रतः ॥ ५५ ॥ प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसंभवम् ॥ फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते ॥ ५६ ॥ सोमलिंगं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ लब्ध्वा फलं मनोभीष्टं मृतस्स्वर्गं समीहते ॥ ५७ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशयः ॥ ५८ ॥

किया ॥ ५३ ॥ पृथिवीपर पापोंके नाश करनेवाला, चन्द्रकुंड भी प्रसिद्ध है, जो मनुष्य वहां स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटता है ॥ ५४ ॥ संपूर्ण क्षय आदि जो असाध्य रोग हैं, वे सब वहां छह मास स्नान करनेसे नाशको प्राप्त होतेहैं ॥५५॥ जो पवित्र आत्मा, प्रभासतीर्थकी परिक्रमा करता है वह समस्त भूमिकी परिक्रमाके फलको प्राप्त होता है और मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गमें जाता है ॥ ५६ ॥ मनुष्य सोमनाथ लिंगका दर्शन करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, और मनोवांछित फल पाकर मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ मनुष्य जिनजिन फलोंकी कामनासे इस उत्तम

तीर्थंको करता है, उन उन सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५८ ॥ इस प्रकारके फलको देख, वे सब देवता तथा ऋषि, आनन्दके साथ, शिवको नमस्कार कर, क्षयरहित चन्द्रमाको लेकर गये ॥ ५९ ॥ और उस तीर्थंकी परिक्रमा करके सोमनाथकी प्रशंसा करतेहुये अपने २ धामको पधारे, और चन्द्रमा भी अपने पुरातन कार्यंको करनेलगे ॥ ६० ॥ हे मुनीश्वरो ! मैंने यह सब सोमनाथकी उत्पत्ति कही कि, जिस प्रकार सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुए ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इनकी उत्पत्तिको सुनताहै अथवा औरोंको सुनाता है वह सब कामनाओंको प्राप्त होता तथा संपूर्ण पापोंसे

इति ते त्वृषयो देवाः फलं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ मुदा शिवं नमस्कृत्य गृहीत्वा चन्द्रमक्षयम् ॥ ५९ ॥ परिक्रम्य च तत्तीर्थं प्रशसन्तश्च ते ययुः ॥ चंद्रश्चापि स्वकीयं च कार्य्यं चक्रे पुरातनम् ॥ ६० ॥ इति सर्वः समाख्यातः सोमेशस्य समुद्भवः ॥ एवं सोमेश्वरं लिंगं समुत्पन्नं मुनीश्वराः ॥ ६१ ॥ यः शृणोति तदुत्पत्तिं श्रावयेद्वा परान्नरः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मल्लिकार्जुनसंभवम् ॥ यः श्रुत्वा भक्तिमान्धीमान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ पूर्वं च कथितं यच्च तत्पुनः कथयाम्यहम् ॥ कुमारचरितं दिव्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ यदा पृथ्वीं समाक्रम्य कैलासं पुनरागतः ॥ कुमारस्स शिवापुत्रस्तारकारिर्महाबलः ॥ ३ ॥ तदा सुरर्षिरागत्य सर्वं वृत्तं जगाद ह ॥ गणेश्वरविवाहादि भ्रामयंस्तं स्वबुद्धितः ॥ ४ ॥

छूट जाता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च०को० रु० सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, अब इसके आगे मल्लिकार्जुनकी उत्पत्ति कहता हूं कि, जिसको सुनकर भक्तिमान् बुद्धिमान् पुरुष, संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ १ ॥ जिसको पूर्व कहदिया है, ऐसे समस्त पापोंके नाश करनेवाले सुन्दर, कुमार (स्वामिकार्तिक) के चरित्रको फिर वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ जिस समय पार्वतीके पुत्र, तथा तारकके शत्रु महाबली कुमार पृथ्वीकी परिक्रमा करके फिर कैलास पर्वतको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ उस समय देवर्षियोंने उनके समीप आय उनको अपनी

बुद्धिसे भ्रम कराय उनसे गणेश्वर के विवाह आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ यह वृत्तान्त सुनकर वह स्वामि कार्त्तिक, अपने मातापिताके निवारण करनेपर भी उन दोनों मातापिताको प्रणाम करके क्रौंच पर्वतको चलेगये ॥ ५ ॥ जिस समय उनकी माता पार्वती कुमारके वियोगसे दुःखी हुईं उस समय शुभ ज्ञान देनेवाले शिवजी उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! हे पार्वति ! हे सुभ्रु ! तुम क्यों दुःखी होती हो, दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र अवश्य आवेगा, तुम कठिन दुःखको त्यागन करो ॥ ७ ॥ जब वह पार्वती उनके कहनेसे न मानीं और अत्यन्त दुःखी हुईं तब शिवजीने देवर्षियोंको कुमारके समीप भेजा

तच्छ्रुत्वा स कुमारो हि प्रणम्य पितरौ च तौ ॥ जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि हि ॥ ५ ॥ कुमारस्य वियोगेन तन्माता
गिरिजा यदा ॥ दुःखितासीत्तदा शंभुस्तामुवाच सुबोधकृत् ॥ ६ ॥ कथं प्रिये दुःखितासि न दुःखं कुरु पार्वति ॥ आयास्यति सुतः
सुभ्रु त्यज्यतां दुःखमुत्कटम् ॥ ७ ॥ सा यदा च न तन्मेने पार्वती दुःखिता भृशम् ॥ तदा च प्रेषितास्तत्र शंकरेण सुरर्षयः ॥ ८ ॥
देवाश्च ऋषयस्सर्वे सगणा हि मुदान्विताः ॥ कुमारानयनार्थं वै तत्र जग्मुः सुबुद्धयः ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा च ते सर्वे कुमारं सुप्रणम्य
च ॥ विज्ञाप्य बहुधाप्येनं प्रार्थनां चक्रुरादरात् ॥ १० ॥ देवादिप्रार्थनां तां च शिवाज्ञासंकुलां गुरुः॥ न मेने स कुमारो हि महाहंकारविह्वलः
॥ ११ ॥ ततश्च पुनरावृत्य सर्वे ते हि शिवांतिकम् ॥ स्वंस्वं स्थानं गता नत्वा प्राप्य शंकरशासनम् ॥ १२ ॥ तदा च
गिरिजा देवी विरहं पुत्रसंभवम् ॥ शंभुश्च परमं दुःखं प्राप तस्मिन्ननागते ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ गणोंके सहित बुद्धिमान् वे देवता तथा ऋषि, प्रसन्न हो कुमारके लानेके अर्थ क्रौंच पर्वतपर गये ॥ ९ ॥ वहां वे सब जाकर कुमारको प्रणाम करके अनेकप्रकार उनको विज्ञापना दे आदरसे उनसे प्रार्थना करने लगे ॥ १० ॥ उस समय बडे अभिमानसे युक्त हुए कुमारने शिवजीकी आज्ञासे व्याप्तहुई उस देवता, ऋषियोंकी प्रार्थनाको न माना ॥ ११ ॥ इसके पीछे वे सब वहांसे लौटकर शिवके समीप गये, फिर शिवजीकी आज्ञाको पाय उनको नमस्कार करके अपने अपने लोकको गये ॥ १२ ॥ उस समय, कुमारके न आने पर देवी पार्वती पुत्रके विरहको प्राप्त हुईं और शिवजी भी बडे दुःखको

प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ तब, बडे दुःखी हुए दीन तथा लोकाचार करनेवाले वे दोनों शिव पार्वती बडे स्नेहसे वहां गये जहां कुमार पुत्र स्थित थे ॥ १४ ॥ वह स्वामिकार्तिक पुत्र, अपने मातापिताके आगमनको सुनकर, अप्रसन्न हो, क्रौंच पर्वतसे तीन योजन दूरको चलेगये ॥ १५ ॥ उन स्वामिकार्तिक पुत्रके क्रौंच पर्वतसे दूर चलेजानेपर वे दोनों शिव पार्वती ज्योतिरूपको आश्रय करके वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ पुत्रके स्नेहसे व्याकुल हुए वे दोनों शिव पार्वती, अपने पुत्र, कुमारके देखनेके निमित्त प्रत्येक पर्वमें जातेहैं ॥ १७ ॥ अमावास्याके दिन वहां साक्षात शिवजी स्वयं जातेहैं और पौर्णमासीके दिन

अथो सुदुःखितौ दीनौ लोकाचारकरौ तदा ॥ जग्मतुस्तत्र सुस्नेहात्स्वपुत्रो यत्र संस्थितः ॥ १४ ॥ स पुत्रश्च कुमाराख्यः पित्रोरागमनं गिरेः ॥ ज्ञात्वा दूरं गतोऽस्नेहाद्योजनत्रयमेव च ॥ १५ ॥ क्रौंचे च पर्वते दूरं गते तस्मिन्स्वपुत्रके ॥ तौ च तत्र समासीनौ ज्योतीरूपं समाश्रितौ ॥ १६ ॥ पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणिपर्वणि ॥ दर्शनार्थं कुमारस्य स्वपुत्रस्य हि गच्छतः ॥ १७ ॥ अमावास्यादिने शंभुस्त्वयं गच्छति तत्र ह ॥ पौर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम् ॥ १८ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य मल्लिकार्जुनसंभवम् ॥ लिंगं चैव शिवस्यैकं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ १९ ॥ तल्लिंगं यः समीक्षेत स सर्वैः किल्बिषैरपि ॥ मुच्यते नात्र सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २० ॥ दुःखं च दूरतो याति सुखमात्यंतिकं लभेत् ॥ जननीगर्भसंभूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ॥ २१ ॥ धनधान्यसमृद्धिश्च प्रतिष्ठारोग्यमेव च ॥ अभीष्टफलसिद्धिश्च जायते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

निश्चय वहांपर पार्वतीजी जाती हैं ॥ १८ ॥ उस दिनसे लेकर, मल्लिकार्जुनसे उत्पन्न हुआ शिवजीका ज्योतिर्लिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ ॥ १९ ॥ जो मनुष्य उस ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है और सब मनोरथोंको प्राप्त होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २० ॥ उसका दुःख दूर होजाता है और अति सुख प्राप्त होता है और माताके गर्भका दुःख उसे फिर नहीं प्राप्त होता ॥ २१ ॥ और उसके धन धान्यकी वृद्धि

तथा प्रतिष्ठा, आरोग्य, मनोरथोंकी सिद्धि भी प्राप्त होती है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २२ ॥ दूसरा मल्लिकाअर्जुन नामक, ज्योतिर्लिंग है जो दर्शनसे सम्पूर्ण सुखोंको देनेवाला है यह सब लोकोंके हितके कारण तुमसे कहा ॥२३॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को०रु० मल्लिकार्जुनद्वितीयलिंग वर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! आप व्यासजीके प्रसादसे सब कुछ जानते हैं, ज्योतिर्लिंगोंकी कथाको सुनकर हमारी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! इस कारण आप अति अनुपम कृपा करके इस समय हमसे तीसरे ज्योतिर्लिंगकी कथा कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले,

ज्योतिर्लिंगं द्वितीयं च प्रोक्तं मल्लिकसंज्ञितम् ॥ दर्शनात्सर्वसुखदं कथितं लोकहेतवे ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटि रुद्रसंहितायां मल्लिकार्जुनद्वितीयज्योतिर्लिंगवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सर्वं विजानासि वस्तु व्यास प्रसादतः ॥ ज्योतिषां च कथां श्रुत्वा तृप्तिर्नैव प्रजायते ॥ १ ॥ तस्मात्त्वं हि विशेषेण कृपां कृत्वातुलां प्रभो ॥ ज्योतिर्लिंगं तृतीयं च कथय त्वं हि नोऽधुना ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं श्रीमतां भवतां यदि ॥ गतश्च संगमं विप्रा धन्या वै साधुसंगतिः ॥ ३ ॥ अतो मत्वा स्वभाग्यं हि कथयिष्यामि पावनीम् ॥ पापप्रणाशिनीं दिव्यां कथां च शृणुतादरात् ॥ ४ ॥ अवंती नगरी रम्या मुक्तिदा सर्वदेहिनाम् ॥ शिवप्रिया महापुण्या वर्तते लोकपावनी ॥ ५ ॥ तत्रासीद्ब्राह्मणश्रेष्ठश्शुभकर्मपरायणः ॥ वेदाध्ययनकर्त्ता च वेदकर्मरतस्सदा ॥ ६ ॥ अग्न्याधानसमायुक्तश्शिवपूजारतस्सदा ॥ पार्थिवीं प्रत्यहं मूर्तिं पूजयामास वै द्विजः ॥ ७ ॥

हे ब्राह्मणों ! श्रीमान् आप ऋषियोंकी संगतिको प्राप्त हुआ मैं धन्य तथा कृतकृत्य हूं, कारण कि, सज्जनोंकी संगति बड़ाईके योग्य होती है ॥ ३ ॥ इससे मैं अपने सौभाग्यको मानकर पवित्र करनेवाली तथा पापोंको विनाश करनेवाली दिव्य कथाको कहताहूं आप आदरसे श्रवण करैं ॥ ४ ॥ एक अवन्ती नामवाली शिवकी प्रिय, बडी पवित्र, संसारको पवित्र करनेवाली तथा सब मनुष्योंको मुक्ति देनेवाली, रमणीक नगरी है ॥ ५ ॥ तहां शुभकर्मोंको करनेवाला, वेदाध्ययनमें तत्पर नित्य वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था ॥ ६ ॥ वह अग्निहोत्रमें तत्पर, सदाशिवके पूजनमें लगाहुआ,

ब्राह्मण प्रतिदिन, पार्थिव मूर्तिका पूजन करता था ॥ ७ ॥ सदा वेदोंके पढनेमें संयुक्त, तथा भलीभांति ज्ञानमें परायण वह ब्राह्मण, संपूर्ण कर्मोंके फलको प्राप्त हो सत्पुरुषोंकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसके चार पुत्रभी उसी प्रकार नित्य शिवकी पूजामें तत्पर, सदा मातापिताकी आज्ञा माननेवाले थे ॥ ९ ॥ उन चारोंमें बड़ा पुत्र देवप्रिय, तथा उससे छोटा मेधाप्रिय था, तीसरा सुकृत, चौथा धर्मात्मा सुव्रत था ॥ १० ॥ उनके पुण्यप्रतापसे, भूमिपर नित्य इस प्रकार सुख बढ़ता था जैसे शुक्लपक्षमें नित्य चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार उन चारोंके सुखदायक गुण

सर्वकर्मफलं प्राप्य द्विजो वेदप्रियस्सदा ॥ सतां गतिं समालेभे सम्यग्ज्ञानपरायणः ॥ ८ ॥ तत्पुत्रास्तादृशाश्चासंश्चत्वारो मुनिसत्तमाः ॥
शिवपूजारता नित्यं पित्रोरनवमास्सदा ॥ ९ ॥ देवप्रियश्च तज्ज्येष्ठः प्रियमेधास्ततः परम् ॥ तृतीयस्सुकृतो नाम धर्मवाही च सुव्रतः
॥ १० ॥ तेषां पुण्यप्रतापाच्च पृथिव्यां सुखमैधत ॥ शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धते च निरंतरम् ॥ ११ ॥ तथा तेषां गुणास्तत्र वर्द्धन्ते स्म
सुखावहाः ॥ ब्रह्मतेजोमयी सा वै नगरी चाभवत्तदा ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्जातं वृत्तमुत्तमम् ॥ श्रूयतां तद्द्विजश्रेष्ठाः कथयामि
यथाश्रुतम् ॥ १३ ॥ पर्वते रत्नमाले च दूषणाख्यो महासुरः ॥ बलवान्दैत्यराजश्च धर्मद्वेषी निरन्तरम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मणो वरदानाच्च जग
त्तुच्छीचकार ह ॥ देवाः पराजितास्तेन स्थानान्निस्सारितास्तथा ॥ १५ ॥ पृथिव्यां वेदधर्माश्च स्मृतिधर्माश्च सर्वशः ॥ स्फोटितास्तेन
दुष्टेन सिंहेनेव शशाः खलु ॥ १६ ॥ यावंतो वेदधर्माश्च तावंतो दूरतः कृताः ॥ तीर्थेतीर्थे तथा क्षेत्रे धर्मो नीतश्च दूरतः ॥ १७ ॥

वहां दिनदिन बढते थे उस समय वह नगरी, ब्रह्मतेजवाली होगई ॥ १२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इसी अवसरमें वहां जो उत्तम चरित्र हुआ सो सुनो, जैसा मैंने सुना है वैसा कहता हूं ॥ १३ ॥ रत्नमाल नामवाले पर्वतपर, निरंतर धर्मका नाश करनेवाला, बलवान्, दूषण नामक दैत्योंका राजा रहता था ॥ ॥ १४ ॥ उसने ब्रह्माजीके वरदानसे संसारभरको तुच्छ समझा, और देवताओंको पराजित करके उस स्थानसे निकाल दिया ॥ १५ ॥ उस दुष्टने पृथिवीपर वेदोंका धर्म तथा सम्पूर्ण स्मृतियोंका धर्म जैसे दुष्ट सिंहसे खरगोश नष्ट होते हैं उसी प्रकार नष्ट किया ॥ १६ ॥ जितने वैदिक धर्म थे वे सब दूर

कर दिये, प्रत्येक तीर्थोंमें तथा क्षेत्रोंमें भी धर्मको दूर किया ॥ १७ ॥ वहां एक अवंती नामक रमणीक नगरी बची थी, ऐसा विचार उस दैत्यने जो किया उसे सुनो ॥१८॥ वह दूषण नामवाला दैत्यराज, बड़ी सेनाके सहित, वहां स्थित हुए सब ब्राह्मणोंके ऊपर चढ़गया ॥१९॥ वहां आकर वह, ब्राह्मणोंका द्रोही महादुष्ट दैत्येन्द्र, चार दैत्यपतियोंको बुलाय यह वचन बोला ॥ २० ॥ दैत्य बोला, यह सब दुष्ट ब्राह्मण, मेरे वचनको क्यों नहीं पालन करते, वेदधर्ममें तत्परहुए इन सबोंको मेरे मतमें दंड देना चाहिये ॥ २१ ॥ हे श्रेष्ठ दैत्यो ! मैंने संसारमें सब देवताओं तथा राजाओंको पराजय किया है, क्या ?

अवंती नगरी रम्या तत्रैका दृश्यते पुनः ॥ इत्थं विचार्य तेनैव यत्कृतं श्रूयतां हि तत् ॥ १८ ॥ बहुसैन्यसमायुक्तो दूषणस्स महासुरः ॥
तत्रस्थान्ब्राह्मणान्सर्वानुद्दिश्य समुपाययौ ॥ १९ ॥ तत्रागत्य स दैत्येन्द्रश्चतुरो दैत्यसत्तमान् ॥ प्रोवाचाहूय वचनं विप्रद्रोही महा
खलः ॥ २० ॥ ॥ दैत्य उवाच ॥ किमेते ब्राह्मणा दुष्टा न कुर्वंति वचो मम ॥ वेदधर्मरता एते सर्वे दंड्या मते मम ॥ २१ ॥ सर्वे
देवा मया लोके राजानश्च पराजिताः ॥ वशे किं ब्राह्मणाश्शक्या न कर्तुं दैत्यसत्तमाः ॥ २२ ॥ यदि जीवितुमिच्छा स्यात्तदा धर्मं
शिवस्य च ॥ वेदानां परमं धर्मं त्यक्त्वा सुखसुभागिनः ॥ २३ ॥ अन्यथा जीवने तेषां संशयश्च भविष्यति ॥ इति सत्यं मया प्रोक्तं
तत्कुरुध्वं विशंकिताः ॥ २४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति निश्चित्य ते दैत्याश्चत्वारः पावका इव ॥ चतुर्दिक्षु तदा जाताः प्रलये च यथा
पुरा ॥ २५ ॥ ते ब्राह्मणास्तथा श्रुत्वा दैत्यानामुद्यमं तदा ॥ न दुःखं लेभिरे तत्र शिवध्यानपरायणाः ॥ २६ ॥ धैर्य्यं समाश्रितास्ते
च रेखामात्रं तदा द्विजाः ॥ न चेलुः परमध्यानाद्द्राकाः के शिवाग्रतः ॥ २७ ॥

यह ब्राह्मण वशमें नहीं होसकते ? ॥ २२ ॥ यदि, इनकी जीनेकी इच्छा हो तो यह शिवसम्बन्धी धर्मको तथा वैदिक परमधर्मको त्यागदेवैं तब सुखके भागी होंगे ॥ २३ ॥ नहीं तो इनके जीवनमें संशय होगा, यह सब मैंने सत्य कह दिया, तुम सब निर्भय होकर इस वचनका पालन करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा निश्चय करके वे चारों दैत्य, चारों दिशाओंमें प्रचंड प्रलयकी अग्निके समान प्रदीप्त हुए ॥ २५ ॥ शिवके ध्यानमें परायण हुए वे ब्राह्मण, उन दैत्योंके वैसे उद्यमको सुनकर कुछ भी दुःखको न प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ उस समय धैर्यको प्राप्तहुए वे ब्राह्मण, शिवके परमध्यानसे रेखामात्र

भी न टले, कारण कि, शिवके आगे वे नीच दैत्य क्या ? वस्तु थे ॥२७॥ इसी अवसरमें उन दैत्योंसे वह शुभनगरी व्याप्त होगई और उनसे पीडितहुए मनुष्य उन ब्राह्मणोंके समीपमें आये ॥ २८ ॥ लोक बोले, हे स्वामिन् ! ! ! अब क्या करना उचित है ? यह दुष्ट आगये, इनसे पीडित हुए हम बहुत लोग आपके समीपमें प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, उन पुरुषोंका वचन सुन वे वेदप्रियके, सदाशिवमें विश्वास करनेवाले चारों पुत्र उनसे बोले ॥ ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोले, हे लोको ! सुनो हमारे पास दुष्टोंको भय देनेवाला बल नहीं तथा वैसे शस्त्र नहीं हैं जिससे उनको निराश करैं ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तैस्तु व्याप्तासीन्नगरी शुभा ॥ लोकाश्च पीडितास्तैस्तु ब्राह्मणान्समुपाययुः ॥ २८ ॥ ॥ लोका ऊचुः ॥ स्वामिनः
किं च कर्त्तव्यं दुष्टाश्च समुपागताः ॥ हिंसिता बहवो लोका आगताश्च समीपतः ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तेषामिति वचश्श्रुत्वा
वेदप्रियसुताश्च ते ॥ समूचुर्ब्राह्मणास्तान्वै विश्वस्ताश्शंकरे सदा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ श्रूयतां विद्यते नैव बलं दुष्टभयावहम् ॥
न शस्त्राणि तथा संति यच्च ते विमुखाः पुनः ॥ ३१ ॥ सामान्यस्यापमानो नो ह्याश्रयस्य भवेदिह ॥ पुनश्च किं समर्थस्य शिवस्येह
भविष्यति ॥ ३२ ॥ शिवो रक्षां करोत्वद्यासुराणां भयतः प्रभुः ॥ नान्यथा शरणं लोके भक्तवत्सलतश्शिवात् ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥
इति धैर्यं समास्थाय समर्चां पार्थिवस्य च ॥ कृत्वा ते च द्विजाः सम्यक्स्थिता ध्यानपरायणाः ॥ दृष्टा दैत्येन तावच्च ते विप्रास्स
बलेन हि ॥ ३४ ॥ दूषणेन वचः प्रोक्तं हन्यतां वध्यतामिति ॥ तच्छ्रुतं तैस्तदा नैव दैत्यप्रोक्तं वचो द्विजैः ॥ वेदप्रियसुतैश्शं
भोर्ध्यानमार्गपरायणैः ॥ ३५ ॥

सामान्यके भी आश्रितका अपमान (निरादर) नहीं होता है फिर सर्व समर्थ शिवके आश्रितोंकी तो क्या है ! अर्थात् शिवके आश्रयसे कदापि हमको दुःख न होगा ॥ ३२ ॥ स्वामी शिवजी इस समय दैत्योंके भयसे रक्षा करैंगे कारण कि, संसारमें भक्तवत्सल शिवजीके विना कोई शरण नहीं है ॥ ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वे ब्राह्मण, धैर्यको धारण कराय, पार्थिव पूजन कर भलीभांति शिवध्यानमें तत्पर हुए, उस समय बलवान् दैत्यने जभी उनको देखा ॥ ३४ ॥ तब दूषण दैत्यने यह वचन कहा कि, इनको मारो मारो ! तब शिवके ध्यानमें परायणहुए वेदप्रियके पुत्र उन ब्राह्मणोंने दैत्यके

वचनोंको न सुना ॥ ३५ ॥ तत्पश्चात् जब ही उस दुष्टात्माने उन ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा की तबहीं पार्थिव स्थानसे शब्दके सहित गढ़ा हुआ ॥ ३६ ॥
उस गढ़ेसे विराट्रूपधारी महाकालनामसे प्रसिद्ध दुष्टोंके मारनेवाले तथा सत्पुरुषोंके रक्षक शिवजी प्रगट हुए ॥ ३७ ॥ हे दुष्ट दैत्य ! मैं तुम दुष्टोंके मारनेके
अर्थ महाकाल नामसे प्रगट हुआ हूं, तू इन ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग ॥ ३८ ॥ यह कहके उस समय महाकालरूपधारी शिवने सेनासहित उस दूषण
दैत्यको अपनी हुंकारसे शीघ्र भस्म करदिया ॥ ३९ ॥ उन परमात्मा शिवने कुछेक सेना मारी तथा कुछ स्वयं भागगई तथा दुष्ट दूषणको मारा ॥ ४० ॥

अथ यावत्स दुष्टात्माहन्तुमैच्छद्द्विजांश्च तान् ॥ तावच्च पार्थिवस्थाने गर्त्त आसीत्सशब्दकः ॥ ३६ ॥ गर्त्तात्ततस्समुत्पन्नः शिवो विकट
रूपधृक् ॥ महाकाल इति ख्यातो दुष्टहंता सतां गतिः ॥ ३७ ॥ महाकालस्समुत्पन्नो दुष्टानां त्वादृशामहम् ॥ खल त्वं ब्राह्मणानां हि
समीपाद्दूरतो व्रज ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा हुंकृतेनैव भस्मसात्कृतवांस्तदा ॥ दूषणं च महाकालः शंकरस्सबलं द्रुतम् ॥ ३९ ॥ कियत्सैन्यं
हतं तेन किंचित्सैन्यं पलायितम् ॥ दूषणश्च हतस्तेन शिवेनेह परात्मना ॥ ४० ॥ सूर्यं दृष्ट्वा यथा याति संक्षयं सर्वशस्तमः ॥ तथैव
च शिवं दृष्ट्वा तत्सैन्यं विननाश ह ॥ ४१ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ देवास्समाययुस्सर्वे हरिब्रह्मादयस्तथा ॥ ४२ ॥
भक्त्या प्रणम्य तं देवं शंकरं लोकशंकरम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः कृतांजलिपुटा द्विजाः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणांश्च समाश्वास्य सुप्रसन्न
शिवस्स्वयम् ॥ वरं ब्रूतेति चोवाच महाकालो महेश्वरः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा ते द्विजास्सर्वे कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ सुप्रणम्य शिवं
भक्त्या प्रोचुस्संनतमस्तकाः ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार सूर्यको देखकर चारोंओरसे अन्धकार नाशको प्राप्त होता है, उसी प्रकार शिवजीको देखकर वह सेना नष्ट हुई ॥ ४१ ॥ उस समय देवताओंकी
दुन्दुभि बजी तथा पुष्पोंकी वर्षा हुई, सम्पूर्ण ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवता वहां प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ उस समय ब्राह्मणोंने अंजलि बांधके भक्तिसे उन संसारके
कल्याण करनेवाले शंकर देवको प्रणाम करके अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतियां कीं ॥ ४३ ॥ तब महाकाल महेश्वर साक्षात शिवजी स्वयं प्रसन्न हो उन ब्राह्मणोंको
धैर्य देकर वर मांगो ऐसा बोले ॥ ४४ ॥ यह सुनके वे सब ब्राह्मण हाथ जोड़ेहुए मस्तक झुकाय शिवको प्रणाम करके भक्तिसे बोले ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण बोले, हे महाकाल ! हे महादेव ! हे दुष्टोंको दंड देनेवाले ! हे प्रभो ! हे शिवजी ! आप हमको संसाररूपी समुद्रसे मुक्तिप्रदान करो ॥ ४६ ॥ हे शिवजी ! हे शंभो ! हे प्रभो ! आप संसारकी रक्षाके अर्थ यहां ही स्थिति करैं तथा नित्य अपने दर्शन करनेवाले भक्त मनुष्योंको तारो ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर उन शिवजीने उन सबोंको सुन्दरगति देकर भक्तोंकी रक्षाके अर्थ वहां उस शोभायमान गढेमें निवास किया ॥ ॥ ४८ ॥ मुक्तिको प्राप्तहुए वे ब्राह्मण शिवलोकको गये और चारोंदिशाओंमें कोस भरतक ज्योतिर्लिंगोंके रूपमें स्थित हुए ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणो ! महा

॥ द्विजा ऊचुः ॥ महाकाल महादेव दुष्टदण्डकर प्रभो ॥ मुक्तिं प्रयच्छ नश्शंभो संसारांबुधितश्शिव ॥ ४६ ॥ अत्रैव लोकरक्षार्थं स्थातव्यं हि त्वया शिव ॥ स्वदर्शकान्नराञ्छंभो तारय त्वं सदा प्रभो ॥ ४७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तैश्शिवस्तत्र तस्थौ गर्ते सुशोभने ॥ भक्तानां चैव रक्षार्थं दत्त्वा तेभ्यश्च सद्गतिम् ॥ ४८ ॥ द्विजास्ते मुक्तिमापन्नाश्चतुर्दिक्षु शिवास्पदम् ॥ क्रोशमात्रं तदा जातं लिंगरूपिण एव च ॥ ४९ ॥ महाकालेश्वरो नाम शिवः ख्यातश्च भूतले ॥ तं दृष्ट्वा न भवेत्स्वप्ने किंचिद्दुःखमपि द्विजाः ॥ ५० ॥ यंयं काममपेक्ष्यैव तल्लिंगं भजते तु यः ॥ तंतं काममवाप्नोति लभेन्मोक्षं परत्र च ॥ ५१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं महाकालस्य सुव्रताः ॥ समुद्भवश्च माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कालेश्वरनामक शिवजी पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए उनके दर्शन करके स्वप्नमें भी कोई दुःखको प्राप्त नहीं होता ॥ ५० ॥ जो मनुष्य जिस जिस कामना करके उस ज्योतिर्लिंगका सेवन करता है वह उस मनोरथको प्राप्त होता है अन्तसमय मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ हे शोभनव्रतवाले ! मैंने यह सब महाकाल शिवकी उत्पत्ति तथा माहात्म्य वर्णन किया अब क्या और सुननेकी इच्छा है ? ॥५२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ऋषि बोले, हे अधिकबुद्धिवाले ! भक्तोंके रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगकी महिमाको फिर वर्णन करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणों !
भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक शिवलिंगकी भक्ति बढानेवाले माहात्म्यको आदरसे सुनो ॥ २ ॥ उज्जयिनीनगरीमें सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा
तत्त्वोंको जाननेवाला शिवका भक्त बड़ा जितेन्द्रिय चन्द्रसेन नामक राजा रहता था ॥ ३ ॥ हे द्विजो ! उस राजाका मणिभद्र नामक सब लोकोंमें नमस्कृत
महेश्वरका मुख्य गण, मित्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय, उस उदार बुद्धि गणाध्यक्ष, मणिभद्रने प्रसन्न हो उस राजाको बड़ी सुन्दर चिन्तामणि प्रदान की॥

ऋषय ऊचुः ॥ महाकालसमाह्वस्थज्योतिर्लिंगस्य रक्षिणः ॥ भक्तानां महिमानं च पुनर्ब्रूहि महामते ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुता
दरतो विप्रा भक्तरक्षाविधायिनः ॥ महाकालस्य लिंगस्य माहात्म्यं भक्तिवर्द्धनम् ॥२॥ उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनाह्वयो महान् ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञश्शिवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ तस्याभवत्सखा राज्ञो मणिभद्रो गणो द्विजाः ॥ गिरीशगणमुख्यश्च सर्वलोकनम
स्कृतः ॥ ४ ॥ एकदा स गणेन्द्रो हि प्रसन्नास्यो महामणिम् ॥ मणिभद्रो ददौ तस्मै चिंतामणिमुदारधीः ॥ ५ ॥ स वै मणिः कौस्तु
भवद्द्योतमानोर्कसन्निभः ॥ ध्यातो दृष्टः श्रुतो वापि मंगलं यच्छति ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तस्य कांतितलस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयं त्रपु ॥
पाषाणादिकमन्यद्वा द्रुतं भवति हाटकम् ॥ ७॥ स तु चिंतामणिं कंठे बिभ्रद्राजा शिवाश्रयः ॥ चन्द्रसेनो रराजाति देवमध्ये व भानु
मान् ॥ ८ ॥ श्रुत्वा चिंतामणिग्रीवं चन्द्रसेनं नृपोत्तमम् ॥ निखिलाः क्षितिराजानस्तृष्णाक्षुब्धहृदोऽभवन् ॥ ९ ॥ नृपा मत्सरिण
स्सर्वे तं मणिं चन्द्रसेनतः ॥ नानोपायैरयाचंत देवलब्धमबुद्धयः ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ कौस्तुभमणिके समान वह मणि सूर्यकी समान प्रकाशित हुई उसके ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुननेसे निश्चय कल्याण होता था ॥ ६ ॥
उस मणिकी कान्तिको स्पर्शकर कांसी ताँबे रांग पाषाणादिकी वस्तु सुवर्ण होजाती थी ॥ ७ ॥ वह शिवका भक्त राजा चन्द्रसेन, चिन्तामणिको अपने
कण्ठमें धारणकर देवताओंके बीचमें सूर्यके समान अत्यन्त शोभित हुआ ॥ ८ ॥ उन राजाओंमें श्रेष्ठ, चिन्तामणिग्रीवावाले राजा चन्द्रसेनको सुनकर
संपूर्ण राजा, तृष्णासे लोभित हृदयवाले हुए ॥ ९ ॥ वे सब, ईर्षा करनेवाले मूर्ख राजा, देवतासे प्राप्त हुई उस मणिको चन्द्रसेनसे अनेक उपायों करके मांगने

लगे ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! महाकालके दृढभक्त उस राजा चन्द्रसेनने उन सम्पूर्ण राजाओंकी प्रार्थनाको निष्फल किया ॥ ११ ॥ तब राजा चन्द्रसेनसे तिरस्कार कियेहुए सम्पूर्ण देशोंके राजा क्रोधित हुए ॥ १२ ॥ और वे सब राजा चतुरंगबल (सेना) के सहित राजा चन्द्रसेनको संग्राममें जीतनेको उद्यत हुए ॥ १३ ॥ सेना सहित कियेहुए संकेतोंको जाननेवाले उन सब एकात्रितहुए राजाओंने उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेरलिया ॥ १४ ॥ उस समय राजा चन्द्रसेन संपूर्ण राजाओंसे घिरीहुई अपनी नगरीको देखकर उन्हीं महाकालेश्वर शिवकी शरणमें गया ॥ १५ ॥ विकल्पशून्य, निराहारी, दृढ

सर्वेषां भूभृतां याच्ञा चंद्रसनेन तेन वै ॥ व्यर्थीकृता महाकालदृढभक्तेन भूसुराः ॥ ११ ॥ ते कदर्थीकृतास्सर्वे चन्द्रसेनेन भूभृता ॥ राजानस्सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे तदा ॥ १२ ॥ अथ ते सर्वराजानश्चतुरंगबलान्विताः ॥ चन्द्रसेनं रणे जेतुं संबभूवुः किलोद्यताः ॥ १३ ॥ ते तु सर्वे समेता वै कृतसंकेतसंविदः ॥ उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः ॥ १४ ॥ संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा निखिलराजभिः ॥ तमेव शरणं राजा महाकालेश्वरं ययौ ॥ १५ ॥ निर्विकल्पो निराहारस्स नृपो दृढनिश्चयः ॥ समानर्च महाकालं दिवा नक्तमनन्यधीः ॥ १६ ॥ ततस्स भगवाञ्छंभुर्महाकालः प्रसन्नधीः ॥ तं रक्षितुमुपायं वै चक्रे तं शृणुतादरात् ॥ १७ ॥ तदैव समये गोपी काचित्तत्र पुरोत्तमे ॥ चरंती सशिशुर्विप्रा महाकालांतिकं ययौ ॥ १८ ॥ पञ्चाब्दवयसं बालं वहन्ती गतभर्तृका ॥ राज्ञा कृतां महाकालपूजां सापश्यदादरात् ॥ १९ ॥ सा दृष्ट्वा सुमहाश्चर्यां शिवपूजां च तत्कृताम् ॥ प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥ २० ॥

निश्चयवाले तथा और किसी देवताकी उपासना न करनेवाले उस राजा चन्द्रसेनने रातदिन महाकालका पूजन किया ॥ १६ ॥ तब प्रसन्नहुये महाकाल नामक भगवान् शिवने जो उस राजाकी रक्षा करनेको उपाय किया उसे आदरसे श्रवण करो ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय कोई बालकसहित उस नगरमें भ्रमण करतीहुई गोपी महाकाल शिवके निकटमें प्राप्तहुई ॥ १८ ॥ वह विधवा गोपी पांचवर्षके बालकको लिये राजासे कीहुई महाकाल शिवजीकी पूजाको आदरसे देखनेलगी ॥ १९ ॥ वह गोपी राजासे कियेहुए, बडे आश्चर्यवाले शिवके पूजनको देख शिवको प्रणाम करके फिर अपने स्थानमें चलीगई ॥ २० ॥

यह सम्पूर्ण चरित्र देखकर उस गोपीके पुत्रने उत्कंठासे शिवके पूजन करनेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ उसने सूने शिबिरके मध्यमें रमणीक पाषाणको लाय
अपने दलके समीपमें शिवलिंगकी भक्तिसे पूजा की ॥ २२ ॥ गन्ध आभूषण वस्त्रोंसे तथा धूप, दीप, अक्षत आदिसे कृत्रिम पदार्थोंसे शिवजीका पूजन करके
नैवेद्य चढ़ाई ॥ २३ ॥ मनोहर बिल्वपत्र तथा पुष्पोंसे बारम्बार पूजन करके अनेक नृत्य वाद्य करके बारम्बार प्रणाम किया ॥ २४ ॥ उसी समय गोपीने
शिवकी भक्तिमें आसक्त चित्तवाले उस पुत्रको नम्रतासे भोजन करनेके लिये बुलाया ॥ २५ ॥ जब शिवपूजनमें लगेहुए उस बालकने बहुत बुलानेपरभी

एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा बल्लवीसुतः ॥ कुतूहलेन तां कर्त्तुं शिवपूजां मनो दधे ॥ २१ ॥ आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिबिरांतरे ॥
अविदूरे स्वशिबिराच्छिवलिंगं स भक्तितः ॥ २२ ॥ गन्धालंकारवासोभिर्धूपदीपाक्षतादिभिः ॥ विधाय कृत्रिमैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्प
यत् ॥ २३ ॥ भूयोभूयस्समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥ नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनःपुनः ॥ २४ ॥ एतस्मिन्समये पुत्रं
शिवासक्तसुचेतसम् ॥ प्रणयाद्गोपिका सा तं भोजनाय समाह्वयत् ॥ २५ ॥ यदाहूतोऽपि बहुशश्शिवपूजात्तमानसः ॥ बालश्च भोजनं
नैच्छत्तदा तत्र ययौ प्रसूः ॥२६॥ तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम् ॥ चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत् ॥ २७ ॥
आकृष्टस्ताडितश्चापि नागच्छत्स्वसुतो यदा ॥ तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिंगं च दूरतः ॥ २८ ॥ हाहेति दूयमानं तं निर्भर्त्स्य
स्वसुतं च सा ॥ पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी क्रोधसमन्विता ॥ २९ ॥ मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः ॥ देवदेवेति चुक्रोश
निपपात स बालकः ॥ ३० ॥ प्रनष्टसंज्ञः सहसा स बभूव शुचाकुलः ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥ ३१ ॥

भोजनकी इच्छा न की तब उसकी माता स्वयं वहां गई ॥ २६ ॥ उस पुत्रको शिवजीके आगे नेत्रमूंदे बैठाहुआ देख उसे हाथ पकड़के खींचा तथा क्रोधसे
ताड़न किया ॥ २७ ॥ जब खींचाहुआ तथा ताड़न कियाहुआ उसका पुत्र भोजनको न गया तो उसने शिवलिंगको दूर फेंककर उस पूजाको नष्ट किया॥
॥ २८ ॥ और क्रोधितहुई उस गोपीने हाहाकार करतेहुये दुःखीहुये अपने पुत्रको ललकारके फिर अपने घरमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ वह बालक शिवदे
वकी पूजाको मातासे नष्टकियाहुआ देख हे देव ! हे देव ! ऐसा कहताहुआ भूमिपर गिरा ॥ ३० ॥ वह एकसाथ मूर्च्छित हो शोकमें व्याकुल हुआ, तब

क्षणमात्रम चैतन्य हो उसने नेत्रोंको खोला ॥ ३१ ॥ जो उसी समय महाकाल नामक शिवजीका सुन्दर शिबिर बनगया, वहां उस बालकने शीघ्रही
शिवके अनुग्रहसे उसे देखा ॥ ३२ ॥ जिसके स्वर्णमय बडे बडे द्वार तथा सुन्दर कपाट और बन्दनवाल थे बडी सुन्दर स्वच्छ इंद्रनीलमणिकी वेदियोंसे
शोभायमान था ॥ ३३ ॥ अनेक अद्भुत तप्त सुवर्णके कलशोंके सहित तथा प्रकाशमान मणियोंके स्तम्भोंके समेत स्फटिक मणियोंसे जटित भूमितलोंसे
शोभित था ॥ ३४ ॥ तब गोपीके पुत्रने अपने किये हुए पूजन समेत कृपाके सागर शिवके रत्नजटित ज्योतिर्लिंगको उस मन्दिरके बीचमें देखा ॥ ३५॥

तदैव जातं शिबिरं महाकालस्य सुन्दरम् ॥ ददर्श स शिशुस्तत्र शिवानुग्रहतोऽचिरात् ॥ ३२ ॥ हिरण्मयबृहद्द्वारं कपाटवरतोरणम् ॥
महार्हनीलविमलवज्रवेदीविराजितम् ॥ ३३ ॥ संतप्तहेमकलशैर्विचित्रैर्बहुभिर्युतम् ॥ प्रोद्भासितमणिस्तंभैर्बद्धस्फटिकभूतलैः ॥ ३४ ॥
तन्मध्ये रत्नलिंगं हि शंकरस्य कृपानिधेः ॥ स्वकृतार्चनसंयुक्तमपश्यद्गोपिकासुतः ॥ ३५ ॥ स दृष्ट्वा सहसोत्थाय शिशुर्विस्मितमा
नसः ॥ संनिमग्न इवासीद्वै परमानंदसागरे ॥ ३६ ॥ ततः स्तुत्वा स गिरिशं भूयोभूयः प्रणम्य च ॥ सूर्ये चास्तं गते बालो निर्ज
गाम शिवालयात् ॥ ३७ ॥ अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरंदरपुरोपमम् ॥ सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रं परमोज्ज्वलम् ॥ ३८ ॥ सोन्तर्वि
वेश भवनं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ मणिहेमगणाकीर्णं मोदमानो निशामुखे ॥ ३९ ॥ तत्रापश्यत्स्वजननीं स्वपंतीं दिव्यलक्षणाम् ॥
रत्नालंकारदीप्तांगीं साक्षात्सुरवधूमिव ॥ ४० ॥

वह बालक यह चरित्र देखकर एकसाथ उठ विस्मिताचित्त हो क्षणमात्रको परमआनन्दरूपी समुद्रमें डूबगया ॥ ३६ ॥ उस समय वह बालक शिवजीकी
स्तुति करके तथा बारम्बार प्रणाम करके सूर्य अस्तहोनेपर उस शिवालयसे अपने घरको गया ॥ ३७॥ तत्पश्चात् वहां जाके अपने स्थानको इन्द्रके नगरकी
समान तथा तत्क्षण सुवर्णसे बनाहुआ अद्भुत बड़ा शोभायमान देखा ॥ ३८ ॥ वह सायंकालके समान संपूर्ण शोभावाले मणियोंके समुदाय तथा सुवर्णसे
आच्छादित भवन (घर) के भीतर प्रवेशित हुआ ॥ ३९॥ वहां उसने दिव्य लक्षणोंवाली रत्नोंके आभूषणोंसे दीप्यमान अंगोंवाली तथा साक्षात् देववधूके

समान स्थित सोतीहुई अपनी माताको देखा ॥ ४० ॥ हे ब्राह्मणो ! ! ! उस समय उस बालकने सुखसे पूर्णमन हो शिवकी दयाके पात्रवाली अपनी माताको वेगसे उठाया ॥४१॥ वह उठकर सब अद्भुत् अपूर्व चरित्रको देखकर बड़े आनन्दमें मग्न हुई तथा उसने अपने पुत्रको आलिंगन किया ॥४२॥ पुत्रके मुखसे गिरजापति शिवकी प्रसन्नताको सुन स्वामी शिवकी प्रार्थना करनेलगी जो रात दिन शिवको भजता है वह ऐसाही सुखी होता है ॥ ४३ ॥ उस राजाने भी नियम समाप्त कर रात्रिमें वहां आकर गोपीके पुत्रके शिवको प्रसन्न करनेवाले प्रभावको देखा ॥४४॥ मंत्री तथा पुरोहितोंके समेत स्थितहुये

अथो स तनयो विप्राश्शिवानुग्रहभाजनम् ॥ जवेनोत्थापयामास मातरं सुखविह्वलः ॥ ४१ ॥ सोत्थिताद्भुतमालक्ष्यापूर्वं सर्वमिवाभवत् ॥ महानंदसुमग्ना हि सस्वजे स्वसुतं च तम् ॥ ४२ ॥ श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः ॥ प्रभुं विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम् ॥ ४३ ॥ स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि ॥ ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषणम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा महीपतिस्सर्वं तत्सामात्यपुरोहितः ॥ आसीन्निमग्नो विधृतिः परमानंदसागरे ॥ ४५ ॥ प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चञ्चन्द्रसेनो नृपो हि सः ॥ शिवनामोच्चरन्प्रीत्या परिरेभे तमर्भकम् ॥ ४६ ॥ महामहोत्सवस्तत्र प्रबभूवाद्भुतो द्विजाः ॥ महेशकीर्तनं चक्रुस्सर्वे च सुखविह्वलाः ॥ ॥ ४७ ॥ एवमत्यद्भुताचाराच्छिवमाहात्म्यदर्शनात् ॥ पौराणां सम्भ्रमाच्चैवं सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ ४८ ॥ अथ प्रभाते युद्धाय पुरं संरुध्य संस्थिताः ॥ राजानश्चारवक्रेभ्यश्शुश्रुवुश्चरितं च तत् ॥ ४९ ॥

उस राजाने यह संपूर्ण चरित्र देखा और वह धैर्यरहित तथा परमआनंदसागरमें मग्न हुआ ॥ ४५ ॥ वह चन्द्रसेन राजा प्रेमसे आंसुओंको बहाताहुआ शिवजीके नामका उच्चारण करताहुआ प्रीतिसे उस बालकको आलिंगन करनेलगा ॥ ४६ ॥ हे द्विजो ! उस समय वहां बड़ा अद्भुत् बड़ा सुन्दर उत्सव हुआ संपूर्ण मनुष्योंने हर्षसे पूर्ण हो शिवका कीर्तन किया ॥ ४७ ॥ इस प्रकार उस अद्भुत चरित्रसे तथा शिवमाहात्म्यके देखनेसे नगरवासियोंकी वह रात्रि आश्चर्यसे क्षणमात्रमें बीतगई ॥ ४ ८ ॥ जब प्रातःकाल युद्ध करनेके निमित्त सब राजा उस नगरको घेरके स्थित हुये वहां उन्होंने दूतोंके मुखसे यह

चरित्र सुना ॥ ४९ ॥ जो जो वहां आयेथे, उन संपूर्ण राजाओंने मिलकर वह वृत्तान्त सुन अति आश्चर्य करके यह कहा ॥ ५० ॥ राजा बोले, यह अव्याकुल राजा चन्द्रसेन शिवका भक्त है महाकालकी नगरी उज्जयिनीका स्वामी होनेसे जीतनेके अयोग्य है ॥ ५१ ॥ जिसके नगरमें ऐसे बालक शिवके व्रत करनेवाले हैं तो फिर वह राजा चन्द्रसेन तो महेश्वरका सेवक है ॥ ५२ ॥ निश्चयही इस राजाके साथ विरोध करनेसे शिवजी क्रोध करैंगे और उनके क्रोध करनेसे हम सब विनाश होंगे ॥ ५३ ॥ इस कारण इस राजाके साथ अवश्य मिलाप करना योग्य है ऐसा करनेसे शिवजी हमारे ऊपर परम कृपा

ते समेताश्च राजानः सर्वे येये समागताः ॥ परस्परमिति प्रोचुस्तच्छ्रुत्वा चकिता अति ॥ ५० ॥ राजान ऊचुः ॥ अयं राजा चन्द्रसेनश्शिवभक्तोति दुर्जयः ॥ उज्जयिन्या महाकालपुर्याः पतिरनाकुलः ॥ ५१ ॥ ईदृशाश्शिशवो यस्य पुर्य्यां संति शिवव्रताः ॥ स राजा चन्द्रसेनस्तु महाशंकरसेवकः ॥५२॥ नूनमस्य विरोधेन शिवः क्रोधं करिष्यति ॥ तत्क्रोधाद्धि वयं सर्वे भविष्यामो विनष्टकाः ॥५३॥ तस्मादनेन राज्ञा वै मिलापः कार्य एव हि ॥ एवं सति महेशानः करिष्यति कृपां पराम् ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ इति निश्चित्य ते भूपास्त्यक्तवैरास्सदाशयाः ॥ सर्वे बभूवुस्सुप्रीता न्यस्तशस्त्रास्त्रपाणयः ॥५५॥ विविशुस्ते पुरीं रम्यां महाकालस्य भूभृतः ॥ महाकालं समानर्चुश्चंद्रसेनानुमोदिताः ॥ ५६ ॥ ततस्ते गोपवनितागेहं जग्मुर्महीभृतः ॥ प्रसंशंतश्च तद्भाग्यं सर्वे दिव्यमहोदयम् ॥ ५७ ॥ ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः ॥ महार्हविष्टरगताः प्रत्यनंदन्सुविस्मिताः ॥ ५८ ॥ गोपसूनोः प्रसादात्तत्प्रादुर्भूतं शिवालयम् ॥ संवीक्ष्य शिवलिंगं च शिवे चक्रुः परां मतिम् ॥ ५९ ॥

करैंगे ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा निश्चय करके उन सब राजाओंने वैरको त्यागा और सुमति ठानी, सब प्रसन्न हुये और हाथोंसे अस्त्र शस्त्र त्यागन किये ॥ ५५ ॥ और उन्होंने महाकालराजाकी रमणीक नगरीमें प्रवेश किया तथा चन्द्रसेनराजासे प्रसन्न हो महाकाल शिवकी पूजा की ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् वे राजा उसके भाग्यकी प्रशंसा करतेहुए दिव्य, तथा बड़े उदयवाले गोपीके गृहको गये ॥ ५७ ॥ तब राजा चन्द्रसेनने अभ्युत्थान करके उनकी पूजा की और वे बड़े सुन्दर आसनपर बैठेहुये अति विस्मित हो अधिक प्रसन्न हुये ॥ ५८ ॥ गोपीके पुत्रके प्रसादसे प्रगटहुये शिवालयको तथा शिवलिंगको

देखकर शिवजीमें परमबुद्धि लगाई ॥ ५९ ॥ तब उन प्रसन्नहुए तथा शिवजीकी कृपाकी अभिलाषा करनेवाले सम्पूर्ण राजाओंने उस गोपके पुत्रको
अधिक वस्तुयें प्रदान कीं ॥ ६० ॥ सम्पूर्ण राजाओंने सम्पूर्ण देशोंमें जो जो अधिक गोप स्थित थे उनमें उसीको राजा बनाया ॥ ६१ ॥ तब
इसी अवसरमें सब देवताओंसे पूजितहुए वानराधिपति तेजस्वी हनुमानजी प्रगट हुए ॥ ६२ ॥ उन हनुमानजीके प्रगट होनेसे आश्चर्यमें प्राप्तहुए वे राजा
भक्तिसे नम्रीभूत आकर उठकर प्रणाम करने लगे ॥ ६३ ॥ उन सबोंके मध्यमें बैठेहुए पूजित वानरोंके स्वामी हनुमानूजी उस गोपके पुत्रको आलिंगन

ततस्ते गोपशिशवे प्रीता निखिलभूभुजः ॥ ददुर्बहूनि वस्तूनि तस्मै शिवकृपार्थिनः ॥ ६० ॥ येये सर्वेषु देशेषु गोपास्तिष्ठंतिभू
रिशः ॥ तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः ॥ ६१ ॥ अथाऽस्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः ॥ प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरे
श्वरः ॥ ६२ ॥ ते तस्याभिगमादेव राजानो जातसंभ्रमाः ॥ प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ६३ ॥ तेषां मध्ये समाऽसीनः
पूजितः प्लवगेश्वरः ॥ गोपात्मजं तमालिंग्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ ॥ हनूमानुवाच ॥ सर्वे शृण्वन्तु भद्रं वो राजानो ये च
देहिनः ॥ ऋते शिवं नान्यतमो गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ६५ ॥ एवं गोपसुतो दिष्ट्या शिवपूजां विलोक्य च ॥ अमंत्रेणापि संपूज्य
शिवं शिवमवाप्तवान् ॥ ६६ ॥ एष भक्तवरश्शंभोर्गोपानां कीर्तिवर्द्धनः ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगानंते मोक्षमवाप्स्यति ॥ ६७ ॥ अस्य
वंशेऽष्टमो भावी नन्दो नाम महायशाः ॥ प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणस्स्वयम् ॥ ६८ ॥ अद्यप्रभृति लोकेस्मिन्नेष गोप
कुमारकः ॥ नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोकख्यातिं गमिष्यति ॥ ६९ ॥

करके राजाको देख यह बोले ॥ ६४ ॥ हनुमानूजी बोले, हे सम्पूर्णराजाओ ! हे मनुष्यो ! तुम सब मेरे कल्याणकारी वचनको सुनो, शिवजीके विना
और कोई मनुष्योंकी गति नहीं है ॥ ६५ ॥ इस प्रकार गोपका पुत्र स्वभावसे शिवके पूजनको देख विना मंत्रोंसे ही कल्याणकारी शिवको पूजकर उन्हें
प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥ यह गोपोंकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाला शिवका श्रेष्ठ भक्त यहां सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अंतसमयमें मोक्षको प्राप्त होगा ॥ ६७ ॥
इसके वंशमें आठवीं पीढीमें महायशस्वी नन्द नामक पुरुष उत्पन्न होंगे उनके पुत्ररूपमें स्वयं नारायण कृष्ण उत्पन्न होंगे ॥ ६८ ॥ आजसे लेकर यह

गोपीका पुत्र इस संसारमें श्रीकर नामसे लोकमें अधिक प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥६९॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके अञ्जनीके पुत्र शिवके अवतार हनुमान्‌जीने सब राजाओंको तथा राजा चन्द्रसेनको कृपादृष्टिसे देखा ॥ ७० ॥ आर उस बुद्धिमान् गोपके पुत्र श्रीकरको बड़ी प्रीतिसे शिवप्रिय शिवसम्बन्धी आचारका उपदेश दिया ॥ ७१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब अतिप्रसन्नहुए वे हनुमान्‌जी राजा चन्द्रसेनके तथा गोपपुत्र श्रीकर आदि सब मनुष्योंके देखते देखते अन्तर्धान हुये ॥ ७२ ॥ पूजित और प्रसन्नहुए राजा चन्द्रसेनका सत्कार करके अपने अपने स्थानको चलेगये ॥ ७३ ॥ हनुमान्‌जीसे उपदेश कियेहुए श्रीकरने महातेजवाले भी धर्मात्मा ब्राह्मणोंके सहित शिवजीका पूजन किया ॥ ७४ ॥ महाराजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर दोनोंने बड़ी प्रीतिसे महाकालको सेवन किया ॥ ७५ ॥ वह श्रीकर तथा चन्द्रसेन राजा समय समयपर महाकालका आराधन करके मोक्षको प्राप्त हुये ॥ ७६ ॥ इस प्रकार महाकाल शिवका ज्योतिर्लिंग सत्पुरुषोंको सुन्दरगति देनेवाला सब प्रकार दुष्टोंको मारनेवाला तथा भक्तोंके ऊपर दया करनेवाला है ॥ ७७ ॥ यह बड़ा पवित्र गोपनीय तथा सब सुखोंका देनेवाला, स्वर्गका तथा शिवभक्तिका बढ़ानेवाला इतिहास आपसे वर्णन किया ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च०को० रु० महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग ! सूतजी ! आपने निजभक्तोंके रक्षा करनेवाले महाकालनामक

सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुः शिवरूपो हरीश्वरः ॥ सर्वान्राज्ञश्चन्द्रसेनं कृपादृष्ट्या ददर्श ह ॥७०॥ अथ तस्मै श्रीकराय गोपपुत्राय धीमते ॥ उपादिदेश सुप्रीत्या शिवाचारं शिवप्रियम् ॥७१॥ हनूमानथ सुप्रीतः सर्वेषां पश्यतां द्विजाः ॥ चन्द्रसेनं श्रीकरं च तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७२ ॥ तं सर्वे च महीपालास्संहृष्टाः प्रतिपूजिताः ॥ चन्द्रसेनं समामंत्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥७३॥ श्रीकरोपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता ॥ ब्राह्मणैस्सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोस्समर्हणम् ॥ ७४ ॥ चंद्रसेनो महाराजः श्रीकरो गोपबालकः ॥ उभावपि परप्रीत्या महाकालं च भेजतुः ॥ ७५ ॥ कालेन श्रीकरस्सोपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः ॥ समाराध्य महाकालं भेजतुः परमं पदम् ॥ ७६ ॥ एवंविधो महाकालश्शिवालिंगस्सतां गतिः ॥ सर्वथा दुष्टहंता च शंकरो भक्तवत्सलः ॥ ७७ ॥ इदं पवित्रं परमं रहस्यं सर्वसौख्यदम् ॥ आख्यानं कथितं स्वर्ग्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥७८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहाम्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग श्राविता ह्यद्भुता कथा ॥ महाकालाख्यलिंगस्य निजभक्तसुरक्षिणः ॥१॥

शिवके ज्योतिर्लिंगकी कथा सुनाई ॥ १ ॥ हे जाननेवाले ! अब कृपाकरके संपूर्ण पापोंके दूर करनेवाले ओंकार शिवके चौथे ज्योतिर्लिंगका वर्णन करो ॥ ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! हे परमऋषियो ! ओंकारमें परमेश नामवाला ज्योतिर्लिंग जिस प्रकार कहा है वह प्रकार आपसे प्रीतिसे कहताहूं आप सुनें ॥ ३ ॥ किसी समय यहांपर परमभक्तिवाले मुनि भगवान् नारदजीने गोकर्ण नामक शिवके समीप जाकर उनकी सेवा की ॥ ४ ॥ फिर वह मुनिश्रेष्ठ नारदजी विन्ध्याचल पर्वतपर गये वहां उन्होंने बहुत मानपूर्वक शिवकी पूजा की ॥ ५ ॥ मुझमें सबकुछहै किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है, ऐसा अहंकार करके वह विन्ध्यपर्वत नारदजीके आगे स्थित हुआ ॥ ६ ॥ उस समय अहंकारके नाश करनेवाले नारदजीने ऐसा वचन सुन उसका निरादर करके वहां स्थिति की तो विन्ध्याचल इस प्रकार बोला ॥ ७ ॥ विन्ध्यने कहा, आपने मुझमें क्या न्यूनता देखी जो निश्वास लिया यह सुन महामुनि नारदजी यह वचन बोले ॥ ८ ॥ नारदजीने कहा, हां तुममें तो सबही गुणहैं, परन्तु सुमेरुपर्वत सबसे ऊंचा है तथा उसका देवताओंमें विभाग है, उनमें तुम्हारी गणना नहीं है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके नारदजी वहांसे अपने स्थानको चलेगये, विन्ध्याचल अपने मनमें इस प्रकार दुःखी हुआ कि, मेरा जीवन आदि

ज्योतिर्लिंगं चतुर्थं च कृपया वद वित्तम ॥ ॐकारं परमेशस्य सर्वपातकहारिणः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ ॐकारे परमेशाख्यं लिंग मासीद्यथा द्विजाः ॥ तथा वक्ष्यामि वः प्रीत्या श्रूयतां परमर्षयः ॥ ३ ॥ कस्मिंश्चित्समये चात्र नारदो भगवान्मुनिः ॥ गोकर्णाख्यं शिवं गत्वा सिषेवे परभक्तिमान् ॥ ४ ॥ ततस्स आगतो विन्ध्यं नगेशं मुनिसत्तमः ॥ तत्रैव पूजितस्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥ ५ ॥ मयि सर्वं विद्यते च न न्यूनं हि कदाचन ॥ इति भावं समास्थाय संस्थितो नारदाग्रतः ॥ ६ ॥ तन्मानं तत्तदा श्रुत्वा नारदो मानहा ततः ॥ निश्श्वस्य संस्थितस्तत्र श्रुत्वा विन्ध्योऽब्रवी दिदम् ॥ ७ ॥ ॥ विन्ध्य उवाच ॥ किं न्यूनं च त्वया दृष्टं मयि निश्श्वासकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्स महामुनिः ॥ ८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ विद्यते त्वयि सर्वं हि मेरुरुच्चतरः पुनः ॥ देवेष्वपि विभागोऽस्य न तवास्ति कदाचन ॥ ९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदस्तस्माज्जगाम च यथागतम् ॥ विन्ध्यश्च परितप्तो वै धिग्वै मे जीवितादिकम् ॥ १० ॥

धिक्कारयोग्य है ॥ १० ॥ विश्वेश्वर शिवका आराधन करके मैं तप करूंगा, ऐसा अपने मनमें निश्चय करके शंकरके शरणमें प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥
और बडी प्रीतिसे वहां गमन किया जहां ओंकार नामक शिव स्थित थे, वहांपर उसने पार्थिव शिवकी मूर्त्ति बनाई ॥ १२ ॥ उस समय छह मास पर्यन्त
नित्य शिवका आराधन करके शिवजीके ध्यानमें लीन हो उस तपके स्थानसे चलायमान न हुआ ॥ १३ ॥ इस प्रकार विन्ध्यके तपको देखकर शिवजी प्रसन्न
हुए तथा योगियोंको भी दुर्लभ अपने शरीरको दिखाया ॥ १४ ॥ और अति प्रसन्नहुए शिवजी बोले, तू मनोवांछित वरको मांग मैं तेरे तपसे प्रसन्न हूं

विश्वेश्वरं तथा शंभुमाराध्य च तपाम्यहम् ॥ इति निश्चित्य मनसा शंकरं शरणं गतः ॥ ११ ॥ जगाम तत्र सुप्रीत्या ह्योंकारो यत्र वै
स्वयम् ॥ चकार च पुनस्तत्र शिवमूर्तिं च पार्थिवीम् ॥ १२ ॥ आराध्य च तदा शंभुं षण्मासं स निरंतरम् ॥ न चचाल तपःस्थाना
च्छिवध्यानपरायणः ॥ १३ ॥ एवं विंध्यतपो दृष्ट्वा प्रसन्नः पार्वतीपतिः ॥ स्वरूपं दर्शयामास दुर्ल्लभं योगिनामपि ॥ १४ ॥ प्रसन्नस्स
तदोवाच ब्रूहि त्वं मनसेप्सितम् ॥ तपसा ते प्रसन्नोस्मि भक्तानामीप्सितप्रदः ॥ १५ ॥ विन्ध्य उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश बुद्धिं देहि
यथेप्सिताम् ॥ स्वकार्यसाधिनीं शंभो त्वं सदा भक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छुत्वा भगवाञ्छंभुश्चिचेत हृदये चिरम् ॥
परोपतापदं विन्ध्यो वरमिच्छति मूढधीः ॥ १७ ॥ किं करोमि यदेतस्मै वरदानं भवेच्छुभम् ॥ मद्दत्तं परदुःखाय वरदानं यथा न
हि ॥ १८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तथापि दत्तवाञ् शंभुस्तस्मै तद्वरमुत्तमम् ॥ विंध्यपर्वतराज त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १९ ॥

कारण कि, मैं भक्तोंकी कामना सिद्ध करनेवाला हूं ॥ १५ ॥ विन्ध्याचल बोला, हे देवताओंके ईश्वर ! हे शंभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे
मनोवांछित अपने कार्यको सिद्ध करनेवाली बुद्धिको प्रदान करो आप सदा भक्तवत्सल हैं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, यह सुन भगवान् शिवने बहुत देरतक
अपने हृदयमें विचारा कि, यह मूर्ख विन्ध्याचल दूसरोंको दुःखदेनेवाले वरकी इच्छा करता है ॥ १७ ॥ अब क्या करूं ? कि, जिससे इसका शुभ वरदान
होजाय कारण कि, मेरा दिया हुआ वरदान दूसरेके दुःखदेनेके अर्थ नहीं होता है ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, यह सोचते हुए भी शंभुने उसे वह वरदान

दिया कि, हे पर्वतोंके राजा विन्ध्याचल ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥१९॥ इसी प्रकार वहां श्रेष्ठबुद्धिवाले सम्पूर्ण देवता तथा ऋषियोंने शिवको पूजकर आप यहां स्थित होवैं, इस प्रकार कहा ॥२०॥ ऐसा देवताओंका वचन सुनके प्रसन्नहुये शिवजीने संसारके सुखके हेतु वहां उसी प्रकार स्थिति की ॥ २१ ॥ वहांपर ओंकारलिंग था वह दो रूपमें किया और वह सदाशिव प्रणवमें ओंकार नामवाले हुये ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पार्थिवमें जो प्रगट हुए परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए, यह दोनों ज्योतिर्लिंग भक्तोंके अभीष्ट देनेवाले तथा भुक्ति मुक्ति देनेवाले हुये ॥ २३ ॥ और देवता तथा ऋषियोंने उनकी पूजा

एवं च समये देवा ऋषयश्चामलाशयाः ॥ संपूज्य शंकरं तत्र स्थातव्यमिति चाब्रुवन् ॥२०॥ तच्छ्रुत्वा देववचनं प्रसन्नः परमेश्वरः ॥
तथैव कृतवान्प्रीत्या लोकानां सुखहेतवे ॥ २१ ॥ ॐकारं चैव यल्लिंगमेकं तच्च द्विधा गतम् ॥ प्रणवे चैव ॐकारनामासीत्स सदा
शिवः ॥ २२ ॥ पार्थिवे चैव यज्जातं तदासीत्परमेश्वरः ॥ भक्ताभीष्टप्रदौ चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रदौ द्विजाः ॥ २३ ॥ तत्पूजां च तदा
चक्रुर्देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ प्रापुर्वराननेकांश्च संतोष्य वृषभध्वजम् ॥ २४ ॥ स्वस्वस्थानं ययुर्देवा विन्ध्योऽपि मुदितोऽधिकम् ॥
कार्य्यं साधितवान्स्वीयं परितापं जहौ द्विजाः ॥ २५ ॥ य एवं पूजयेच्छंभुं मातृगर्भं वसेन्न हि ॥ यदभीष्टं फलं तच्च प्राप्नुयान्नात्र
संशयः ॥ २६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमोंकारप्रभवे फलम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि केदारं लिंगमुत्तमम् ॥ २७ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामोंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

की और शिवको पूजकर स्तुतिकर अनेक वरदान पाये ॥२४॥ हे द्विजो ! वे सब देवता अपने अपने स्थानको चलेगये विन्ध्यपर्वतने भी अधिक प्रसन्न हो अपने कार्यको साधा तथा दुःखको त्यागन किया ॥ २५ ॥ जो यहांपर शिवका पूजन करता है वह माताके गर्भमें फिर निवास नहीं करता तथा जो अभीष्टफल हैं उन्हें प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, यह सब ओंकारके माहात्म्यको तुमसे कहा अब इसके आगे केदार नामक श्रेष्ठ लिंगका वर्णन करता हूं ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभा० च० को० रु० ओंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूतजी बोले, हे द्विजो ! नरनारायण नामवाले जो विष्णुके अवतार हुये उन्होंने भरतखण्डमें बदरिकाश्रममें तप किया ॥ १ ॥ पूजन करनेके निमित्त उन दोनोंसे प्रार्थना कियेहुए शिवजी भक्तोंकी अधीनतासे नित्य पार्थिवलिंगमें विराजमान होते थे ॥ २ ॥ इस प्रकार शिवका पूजन करतेहुए शिवके भक्त, धर्मपुत्र, विष्णुके अवतार नरनारायणको बहुत समय बीतगया ॥ ३ ॥ एक समय वहां प्रसन्नहुए शिवजी यह बोले कि, मैं तुमसे प्रसन्न हूं मुझसे वर मांगो ॥ ४ ॥ उस समय शिवके ऐसा कहनेपर स्वयं नरनारायणने संसारके हितकी कामनासे वहां यह वचन कहा ॥ ५ ॥ नरनारायण बोले, हे देवेश !

सूत उवाच ॥ नरनारायणाख्यौ याववतारौ हरेर्द्विजाः ॥ तेपाते भारते खण्डे बदर्य्याश्रम एव हि ॥ १ ॥ ताभ्यां संप्रार्थितश्शंभुः पार्थिवे पूजनाय वै ॥ आयाति नित्यं तल्लिंगे भक्ताधीनतया शिवः ॥ २ ॥ एवं पूजयतोश्शंभुं तयोर्विष्णववतारयोः ॥ चिरकालो व्यतीयाय शैवयोर्धर्मपुत्रयोः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्समये तत्र प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नोस्मि वरो मे व्रियतामिति ॥ ४ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन नरो नारायणस्स्वयम् ॥ ऊचतुर्वचनं तत्र लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ ॥ नरनारायणावूचतुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया ॥ स्थीयतां स्वेन रूपेण पूजार्थं शंकरस्स्वयम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तदा ताभ्यां केदारे हिमसंश्रये ॥ स्वयं च शंकरस्तस्थौ ज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ ७ ॥ ताभ्यां च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः ॥ लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय वै ॥ ८ ॥ स्वयं स्थितस्तदा शंभुः केदारेश्वरसंज्ञकः ॥ भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं दर्शनादर्चनादपि ॥ ९ ॥ देवाश्च पूजयंतीह ऋषयश्च पुरातनाः ॥ मनोभीष्टं फलं तेते सुप्रसन्नान्महेश्वरात् ॥ १० ॥

हे शंकर ! यदि आप हमसे प्रसन्नहैं और हमको वर देना चाहते हैं तो आप स्वयं अपने रूपसे पूजाके निमित्त यहां स्थित होवैं ॥ ६ ॥ सूतजी बोले, उन दोनोंके ऐसा कहनेपर हिमसे आश्रित केदारमें साक्षात् महेश्वर, ज्योतिःस्वरूप हो स्वयं स्थित हुए ॥ ७ ॥ उन दोनोंसे पूजित हुये संपूर्ण संकट और भयके दूर करनेवाले शिवजी लोकोंके उपकारके निमित्त तथा भक्तोंके दर्शन करनेके अर्थ वहां पधारे ॥ ८ ॥ केदारेश्वर नामसे प्रसिद्ध स्वयं स्थित हुये शिवजी दर्शन करनेसे तथा पूजन करनेसे अपने भक्तोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ जो जो देवता तथा पुरातन ऋषि उनकी पूजा करते वे सब

प्रसन्नहुए शिवजीसे मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥ शिवके नित्य अर्चन करनेसे बदर्याश्रममें रहनेवाले सब स्ववांछित फल पाते थे कारण कि,
महेश्वर सदा भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले हैं ॥ ११ ॥ उस दिनसे लेकर जो भक्तिसे केदारेश्वरका दर्शन करतेहैं उनको स्वप्नमेंभी दुःख नहीं होता
॥ १२ ॥ पांडवोंको देखकर यहां देवदेवने महिषका रूप धारण कियाथा और मायाको करके उनके सामनेसे पलायमान हुए ॥ १३ ॥ तब पाण्डवोंने
उस महिषरूपकी पूंछ पकडली तब यह नीचेको मुखकर स्थित हुए तब इनकी वारंवार प्रार्थना की ॥ १४ ॥ तब यह भक्तवत्सल भगवान् उसीरूपसे वहां

भवस्य पूजनान्नित्यं बदर्याश्रमवासिनः ॥ प्राप्नुवन्ति यतः सोऽसौ भक्ताभीष्टप्रदः सदा ॥ ११ ॥ तद्दिनं हि समारभ्य केदारेश्वर एव
च ॥ पूजितो येन भक्त्या वै दुःखं स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥ १२ ॥ यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः ॥ मायामास्थाय तत्रैव
पलायनपरोऽभवत् ॥ १३ ॥ धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः ॥ पुच्छं चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनःपुनः ॥ १४ ॥
तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक् ॥ नयपाले शिरोभागो गतस्तद्रूपतः स्थितः ॥ १५ ॥ तथैव पूजनान्नित्यमाज्ञां चैवाप्य
दात्तथा ॥ पूजितश्च स्वयं शंभुस्तत्र तस्थौ वरानदात् ॥ १६ ॥ पूजयित्वा गतास्ते तु पाण्डवा मुदितास्तदा ॥ लब्ध्वा चित्तेप्सितं
सर्वं विमुक्तास्सर्वदुःखतः ॥ १७ ॥ तत्र नित्यं हरस्साक्षात्क्षेत्रे केदारसंज्ञके ॥ भारतीभिः प्रजाभिश्च तथैव परिपूज्यते ॥ १८ ॥
तत्रत्यं वलयं यो वै ददाति हरवल्लभः ॥ हररूपांतिकं तच्च हररूपसमन्वितम् ॥ १९ ॥ तथैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
जीवन्मुक्तो भवेत्सोपि यो गतो बदरीवने ॥ २० ॥

स्थित हुए और उस रूपका शिरोभाग नयपालमें प्रगट हुआ ॥ १५ ॥ तब वहां नित्य उनका पूजन करनेसे उनकी आज्ञा पाकर पाण्डवोंने बडी प्रसन्नता
प्रगट की और शिवजी उनसे पूजित हो उन्हें वर देकर वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ शंकरका पूजन कर वे पाण्डव प्रसन्न होकर वहांसे गये और सब दुःखोंसे
रहित हो उन्होंने अपना मन इच्छित फल पाया ॥ १७ ॥ उस केदारक्षेत्रमें शंकर नित्य स्थितहैं और भारतवासी सदा उनका पूजन करतेहैं ॥ १८ ॥
जो शिवकी प्रीतिके निमित्त वहां कंकन देतेहैं वह शिवके समीप जाकर शिवरूप होतेहैं ॥ १९ ॥ वहां शंकरका रूप देखकर प्राणी सब पापोंसे छूटजाता

है बदरी वन जानेवाले जीवन्मुक्त होजातेहैं ॥ २० ॥ यहां नरनारायणका दर्शन कर और केदारेश्वर शंकरका दर्शन कर अवश्यही मनुष्य मुक्तिका भागी होता है ॥ २१ ॥ जो भक्त केदारेश्वरके मार्गमें मृत्युको प्राप्त होजायँ वेभी मुक्त होजातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ जो वहां जाकर प्रेमसे केदारेश्वरका पूजन करतेहैं तथा जलपान करतेहैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस भरतखण्डमें नरनारायण तथा केदारेश्वरको परमभक्तिसे पूजकर तथा भक्ति करके सब जीव मुक्त होतेहैं ॥ २४ ॥ वह सर्वेश विशेषकर इस भूखण्डके स्वामी हैं केदारेश्वर शंकर सब कामना ओंके देनेवालेहैं इसमें सन्देह

दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य हि ॥ केदारेश्वरशंभोश्च मुक्तिभागी न संशयः ॥ २१ ॥ केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः ॥ तेऽपि मुक्ता भवंत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २२ ॥ गत्वा तत्र प्रीतियुक्तः केदारेशं प्रपूज्य च ॥ तत्रत्यमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विन्दति ॥ २३ ॥ खण्डेस्मिन्भारते विप्रा नरनारायणेश्वरः ॥ केदारेशः प्रपूज्यश्च सर्वैर्जीवैस्सुभक्तितः ॥ २४ ॥ अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः ॥ सर्वकामप्रदश्शंभुः केदाराख्यो न संशयः ॥ २५ ॥ एतद्वचस्समाख्यातं यत्पृष्टमृषिसत्तमाः ॥ श्रुत्वा पापं हरेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां केदारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भैमशंकरम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥ १ ॥ कामरूपाभिधे देशे शंकरो लोककाम्यया ॥ अवतीर्णः स्वयं साक्षात्कल्याणसुखभाजनम् ॥ २ ॥ यदर्थमवतीर्णोसौ शंकरो लोकशंकरः ॥ शृणुतादरतस्तच्च कथयामि मुनीश्वराः ॥ ३ ॥

नहीं ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! जो कुछ आपने पूँछा सो तुमसे सब कहदिया इसके सुन्नेसे सब पाप दूर होजातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को०रु० केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, अब इससे आगे भीमशंकर महादेवके माहात्म्यको कहताहूं जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य संपूर्ण अभीष्टको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ कामरूप देशमें लोकोंकी कामनाके अर्थ साक्षात् कल्याण और सुखके देनेवाले शिवजी स्वयं प्रकट हुयेहैं ॥ २ ॥ हे मुनीश्वरो ! संसारके कल्याण करनेवाले शंकरने जिस कारण यहां अवतार लियाहै सो आदरसे सुनो

मैं कहताहूं ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पहले सब प्राणियोंको दुःख देनेवाला सदा धर्मका नाश करनेवाला भीमनामक बडावीर राक्षस था ॥ ४ ॥ वह महाबली राक्षस कुंभकर्णसे कर्कटीराक्षसीमें उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी माताके सहित सह्यपर्वतपर निवास किया ॥ ५ ॥ संसारमें भय करनेवाले कुम्भकर्णको रामचन्द्रजीने जब मारा तब उस राक्षसीने अपने पुत्र सहित स्वयं सह्यपर्वतपर निवास किया ॥ ६ ॥ हे द्विजो ! एक समय बालकपनमें उस दुष्ट लोकोंको दुःख देनेवाले भयंकर पराक्रमवाले भीमने अपनी कर्कटी मातासे पूँछा ॥ ७ ॥ भीम बोला, हे माता ! मेरा पिता कौनहै तथा कहांहै

भीमो नाम महावीर्यो राक्षसोऽभूत्पुरा द्विजाः ॥ दुःखदस्सर्वभूतानां धर्मध्वंसकरस्सदा ॥ ४ ॥ कुंभकर्णात्समुत्पन्नः कर्कट्यां सुमहाबलः ॥ सह्ये च पर्वते सोऽपि मात्रा वासं चकार ह ॥ ५ ॥ कुंभकर्णे च रामेण हते लोकभयंकरे ॥ राक्षसी पुत्रसंयुक्ता सह्येऽतिष्ठत्स्वयं तदा ॥ ६ ॥ स बाल एकदा भीमः कर्कटीं मातरं द्विजाः ॥ पप्रच्छ च खलो लोकदुःखदो भीमविक्रमः ॥ ७ ॥ भीम उवाच ॥ मातर्मे कः पिता कुत्र कथं वैकाकिनी स्थिता ॥ ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं यथार्थं त्वं वदाधुना ॥ ८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टा तदा तेन पुत्रेण राक्षसी च सा ॥ उवाच पुत्रं सा दुष्टा श्रूयतां कथयाम्यहम् ॥ ९ ॥ कर्कट्युवाच ॥ पिता ते कुम्भकर्णश्च रावणानुज एव च ॥ रामेण मारितस्सोयं भ्रात्रा सह महाबलः ॥ १० ॥ अत्रागतः कदाचिद्वै कुम्भकर्णस्स राक्षसः ॥ मद्भोगं कृतवांस्तात प्रसह्य बलवान्पुरा ॥ ११ ॥ लंकां स गतवान् मां च त्यक्त्वात्रैव महाबलः ॥ मया न दृष्टा सा लंका ह्यत्रैव निवसाम्यहम् ॥ १२ ॥ पिता मे कर्कटो नाम माता मे पुष्कसी मता ॥ भर्ता मम विराधो हि रामेण निहतः पुरा ॥ १३ ॥

और तू क्यों अकेली स्थित हुईहै यह सब ठीक ठीक जाननेकी इच्छा है सो तू कह ॥ ८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उस पुत्रके पूँछनेपर वह दुष्ट राक्षसी अपने पुत्रसे बोली कि, मैं सब वर्णन करतीहूं ॥ ९ ॥ कर्कटी बोली, तेरा पिता रावणका भाई कुम्भकर्ण था उस महाबलीको भाईसहित रामचन्द्रजीने मारडाला ॥ १० ॥ हे पुत्र ! एक समय वह राक्षस कुंभकर्ण यहां आया था और उस बलवान्ने बलात्कार मेरेसाथ रमण किया ॥ ११ ॥ और वह महाबली कुंभकर्ण मुझे यहांही त्यागकर लंकापुरीको चलागया मैंने वह लंका नहीं देखी मैं यहींपर निवास करतीहूं ॥ १२ ॥ मेरा पिता कर्कटनामवाला

है और माता पुष्कसी है, मेरा पति विराध नामक रामचन्द्रने पहलेही युद्धमें मारदियाथा ॥ १३ ॥ अपने प्रिय स्वामीके मरजानेपर मैं अपने माता पिताके समीप रहनेलगी फिर मेरे माता पिताको ऋषिने भस्मकर मारदिया ॥ १४ ॥ तपस्वी अगस्त्यके शिष्यको भक्षण करनेको मेरे माता पिता गये तब क्रोधितहुए तीव्र प्रतापवाले उन महात्मा ऋषिने अपने तपोबलसे उनको भस्म करदिया ॥ १५ ॥ तबसे मैं अकेली दुःखीहुई आश्रय तथा सहायतारहित पहलेसे इस पर्वतपर रहतीथी ॥ १६ ॥ उसी समयमें यहां आकर रावणके भाई कुंभकर्णने मेरेसाथ भोग किया और वह मुझे छोडके चलागया

पित्रोः पार्श्वे स्थिता चाहं निहते स्वामिनि प्रिये ॥ पितरौ मे मृतौ चात्र ऋषिणा भस्मसात्कृतौ ॥ १४ ॥ भक्षणार्थं गतौ तत्र क्रुद्धेन सुमहात्मना ॥ सुतीक्ष्णेन सुतपसाऽगस्त्यशिष्येण वै तदा ॥ १५ ॥ साऽहमेकाकिनी जाता दुःखिता पर्वते पुरा ॥ निवसामि स्म दुःखार्ता निरालंबा निराश्रया ॥ १६ ॥ एतस्मिन्समये ह्यत्र राक्षसो रावणानुजः ॥ आगत्य कृतवान् संगं मां विहाय गतो हि सः ॥ १७ ॥ ततस्त्वं च समुत्पन्नो महाबलपराक्रमः ॥ अवलंब्य पुनस्त्वां च कालक्षेपं करोम्यहम् ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या भीमो भीमपराक्रमः ॥ क्रुद्धश्च चिंतयामास किं करोमि हरिं प्रति ॥ १९ ॥ पितानेन हतो मे हि तथा मातामहोह्यपि ॥ विराधश्च हतोऽनेन दुःखं बहुतरं कृतम् ॥ २० ॥ तत्पुत्रोहं भवेयं चेद्धरिं तं पीडयाम्यहम् ॥ इात कृत्वा मतिं भीमस्तपस्तप्तुं महद्ययौ ॥ २१ ॥ ब्रह्माणं च समुद्दिश्य वर्षाणां च सहस्रकम् ॥ मनसा ध्यानमाश्रित्य तपश्चक्रे महत्तदा ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादस्सूर्य्यें दृष्टिं दधत्पुरा ॥ संस्थितस्स बभूवाथ भीमो राक्षसपुत्रकः ॥ २३ ॥

॥ १७ ॥ तिसके पीछे तू महाबली पराक्रमी उत्पन्न हुआ तबसे तुझे अवलंबन करके मैं समय बिताती हूं ॥ १८ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उसका वचन सुनकर प्रबलपराक्रमी भीम भगवान्के ऊपर बडा क्रोधित हुआ और चिन्ता करनेलगा कि, मैं अब क्या करूं ॥ १९ ॥ रामचन्द्रने मेरे पिताको नानाको और विराधकोभी इस प्रकार हमको बडा दुःख दिया ॥ २० ॥ यदि मैं कुंभकर्णका पुत्र हूं तो हरिको अवश्य पीडा दूंगा, ऐसी मति कर वह भीम दैत्य परमतप करनेको चलागया ॥ २१ ॥ तब उसने ब्रह्माके उद्देशसे मनसे ध्यानमें मग्न हो सहस्रवर्षपर्यन्त बडा तप किया ॥ २२ ॥ वह भीम राक्षसका

पुत्र ऊपरको भुजा उठाय एकपैरसे खडाहुआ सूर्यमें दृष्टि लगायेहुए स्थित हुआ ॥ २३ ॥ उसके मस्तकपर परम भयानक तेज उत्पन्न हुआ तब उस तेजसे भस्महुये सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ २४ ॥ उन इन्द्रआदि देवताओंने ब्रह्माको प्रणाम करके अनेकस्तोत्रोंसे ब्रह्माजीकी स्तुति की और उनसे अपना दुःख निवेदन किया ॥ २५ ॥ देवता बोले, हे ब्रह्माजी ! राक्षसका तेज संसारको पीडा देनेके निमित्त उद्यत हुआ है, सो हे विधे ! जो वह दुष्ट राक्षस प्रार्थना करताहै आप उस वरको दीजिये ॥ २६ ॥ नहीं तो अब उसके प्रचंड तेजसे भस्महुये हम सब नाशको प्राप्त होंगे इस कारण उसकी

शिरसस्तस्य संजातं तेजः परमदारुणम् ॥ तेन दग्धास्तदा देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २४ ॥ प्रणम्य वेधसं भक्त्या तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥ दुःखं निवेदयांचक्रुर्ब्रह्मणे ते सवासवाः ॥ २५ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन्वै रक्षसस्तेजो लोकान्पीडितुमुद्यतम् ॥ यत्प्रार्थ्यते च दुष्टेन तत्त्वं देहि वरं विधे ॥ २६ ॥ नोचेदद्य वयं दग्धास्तीव्रतत्तेजसा पुनः ॥ यास्यामस्संक्षयं सर्वे तस्मात्तं देहि प्रार्थितम् ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इति तेषां वचश्श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ जगाम च वरं दातुं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ इति श्रुत्वा विधेर्वाक्यमब्रवीद्राक्षसो हि सः ॥ २९ ॥ भीम उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया ॥ अतुलं च बलं मेऽद्य देहि त्वं कमलासन ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तु नमश्चक्रे ब्रह्मणे स हि राक्षसः ॥ ब्रह्मा चापि तदा तस्मै वरं दत्त्वा गृहं ययौ ॥ ३१ ॥ राक्षसो गृहमागत्य ब्रह्माप्तातिबलस्तदा ॥ मातरं प्रणिपत्याशु स भीमः प्राह गर्ववान् ॥ ३२ ॥

प्रार्थनाको स्वीकार करो ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन देवताओंका वचन सुनके लोकपितामह ब्रह्माजी उसे वर देनेको चले और यह वचन बोले ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले, मैं प्रसन्नहूं वर मांग जो तेरे मनमें अभिलाषा हो कह तब ऐसा ब्रह्माजीका वचन सुन वह राक्षस कहने लगा ॥ २९ ॥ भीम बोला, हे देवताओंके स्वामी ! हे ब्रह्माजी ! यदि आप मुझसे प्रसन्नहैं तथा मुझे वर देना चाहतेहैं तो मुझे बडे बलको दो ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, यह कहके उस राक्षसने ब्रह्माजीको नमस्कार किया उस समय ब्रह्माजीभी उसे वरदान देकर अपने स्थानको गये ॥ ३१ ॥ तब वह राक्षस

ब्रह्माजीसे अतिबल प्राप्तकर अपने घर जाय अपनी माताको प्रणामकर अभिमानसे यह बोला ॥ ३२ ॥ भीम बोला, हे माता ! अब मेरे बलको देखना, इन्द्रआदि देवताओंकी विष्णुजी तथा उनके सहायकोंकी महाप्रलय करताहूं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके बडे पराक्रमी उस भीम राक्षसने पहले इन्द्रआदि सम्पूर्ण देवताओंको जीता और उन्हें अपने अपने स्थानसे निकालदिया ॥ ३४ ॥ फिर उस देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होनेवाले विष्णुभगवान्को युद्धमें जीता फिर आनंदसे रसातलके जीतनेका प्रारंभ किया ॥ ३५ ॥ पहले दक्षिणदिशामें कामरूपके स्वामीको जीतने गया उस राजाके साथ भयंकर

भीम उवाच ॥ पश्य मातर्बलं मेऽद्य करोमि प्रलयं महत् ॥ देवानां शक्रमुख्यानां हरेर्वै तत्सहायिनः ॥ ३३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रथमं भीमो जिग्ये देवान्सवासवान् ॥ स्थानान्निस्सारयामास स्वात्स्वात्तान्भीमविक्रमः ॥ ३४ ॥ ततो जिग्ये हरिं युद्धे प्रार्थितं निर्जरैरपि ॥ ततो जेतुं रसां दैत्यः प्रारंभं कृतवान्मुदा ॥ ३५ ॥ पुरा सुदक्षिणां तत्र कामरूपेश्वरं प्रभुम् ॥ जेतुं गतस्ततस्तेन युद्धमासीद्भयंकरम् ॥ ३६ ॥ भीमोऽथ तं महाराजं प्रभावाद्ब्रह्मणोऽसुरः ॥ जिग्ये वरप्रभावेण महावीरं शिवाश्रयम् ॥ ३७ ॥ स हि जित्वा ततस्तं च कामरूपेश्वरं प्रभुम् ॥ बबंध ताडयामास भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३८ ॥ गृहीतं तस्य सर्वस्वं राज्यं सोपस्करं द्विजाः ॥ तेन भीमेन दुष्टेन शिवदासस्य भूपतेः ॥ ३९ ॥ राजा चापि सुधर्मिष्ठः प्रियधर्मो हरप्रियः ॥ गृहीतो निगडैस्तेन ह्येकांते स्थापितश्च सः ॥ ४० ॥ तत्र तेन तदा कृत्वा पार्थिवीं मूर्त्तिमुत्तमाम् ॥ भजनं च शिवस्यैव प्रारब्धं प्रियकाम्यया ॥ ४१ ॥ गंगायास्तवनं तेन बहुधा च तदा कृतम् ॥ मानसं स्नानकर्मादि कृत्वा शंकरपूजनम् ॥ ४२ ॥

युद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ तब भीम राक्षसने ब्रह्माजीके प्रताप तथा वरके प्रभावसे बडे वीर शिवके आश्रयवाले उस महाराजाको युद्धमें जीता ॥ ३७ ॥ भयंकर पराक्रमी भीमने उस कामरूपेश्वर प्रभुको जीतकर बांधलिया और उसे ताडन किया ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस दुष्ट भीम राक्षसने शिवके दास कामरूपदेशके राजाका कोशसहित सर्वस्व छीनलिया ॥ ३९ ॥ धर्मात्मा शिवके भक्त धर्मप्रिय उस राजाकोभी बंधन (बेडी) से बांधकर एकान्तमें रक्खा ॥ ४० ॥ वहां कारागारमें उस राजाने उत्तम पार्थिवमूर्तिको बना कर अपने कल्याणकी इच्छासे शिवका भजन प्रारंभ किया ॥ ४१ ॥ उस समय उस

राजाने गंगाजीकी बहुत स्तुति की, मानसिक स्नान कर्मआदि करके शिवका पूजन किया ॥ ४२ ॥ उस राजर्षिने पार्थिवपूजनके विधानसे शंकरकी आराधना की और जैसा शास्त्रोंमें वर्णन है उस प्रकार विधिपूर्वक ध्यान किया ॥ ४३ ॥ मुद्रा आसनसहित उपचार तथा स्तोत्रोंसे सब प्रकार आनंदसे शिवजीकी सेवा की ॥ ४४ ॥ ओंकारके सहित पंचाक्षरवाले (ॐनमःशिवाय) मंत्रको जपनेलगा, उस समय उसने और किसी कार्यके करनेका अवसर नहीं पाया ॥ ४५ ॥ उसी समय उस राजाकी प्रिय पतिव्रता दक्षिणा नामक स्त्रीने प्रीतिसे पार्थिव विधानको किया ॥ ४६ ॥ उन दोनों स्त्री पुरुषोंने वहां

पार्थिवेन विधानेन चकार नृपसत्तमः ॥ तद्ध्यानं च यथा स्याद्वै कृत्वा च विधिपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्मुद्रासन पुरस्सरम् ॥ कृत्वा हि सकलं तच्च स भेजे शंकरं मुदा ॥ ४४ ॥ पंचाक्षरमयीं विद्यां जजाप प्रणवान्विताम् ॥ नान्यत्कार्यं स वै कर्तुं लब्धवानन्तरं तदा ॥ ४५ ॥ तत्पत्नी च तदा साध्वी दक्षिणा नाम विश्रुता ॥ विधानं पार्थिवं प्रीत्या चकार नृपवल्लभा ॥ ४६ ॥ दंपती त्वेकभावेन शंकरं भक्तशंकरम् ॥ भेजाते तत्र तौ नित्यं शिवाराधनतत्परौ ॥ ४७ ॥ राक्षसो यज्ञकर्मादि वरदर्पविमोहितः ॥ लोपयामास तत्सर्वं मह्यं वै दीयतामिति ॥ ४८ ॥ बहुसैन्यसमायुक्तो राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ चकार वसुधां सर्वां स्ववशे चर्षिसत्तमाः ॥ ४९ ॥ वेदधर्मं शास्त्रधर्मं स्मृतिधर्मं पुराणजम् ॥ लोपयित्वा च तत्सर्वं बुभुजे स्वयमूर्जितः ॥ ५० ॥ देवाश्च पीडितास्तेन सशक्रा ऋषयस्तथा ॥ अत्यंतं दुःखमापन्ना लोकान्निस्सारिता द्विजाः ॥ ५१ ॥

नित्य शिवके आराधनमें तत्पर होके भक्तोंके कल्याण करनेवाले शंकरकी एकभावसे सेवा की ॥ ४७ ॥ उस राक्षसने वरदानके अभिमानसे मोहित हो सम्पूर्ण यज्ञकर्म धर्मोंका लोप करके 'सब कुछ मुझेही दो' ऐसा प्रचार किया ॥ ४८ ॥ हे श्रेष्ठऋषियो ! दुष्टात्मा राक्षसोंकी सेनाके सहित उस राक्षसने सम्पूर्ण पृथिवी अपने वशमें कर ली ॥ ४९ ॥ वेदके धर्म, शास्त्रोंके धर्म, स्मृतियोंके धर्म और पुराणोंके धर्मोंको सर्वथा लोप करके स्वयं स्वतंत्र हो भोग भोगने लगा ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! उसने इन्द्र आदि देवता तथा ऋषियों और ब्राह्मणोंको पीडा दी और अति दुःखको प्राप्तहुए उन्हें अपने अपने

लोकोंसे निकालदिया ॥ ५१ ॥ तब व्याकुलहुये सब इन्द्रआदि देवता तथा ऋषि ब्रह्मा विष्णुको लेकर शिवकी शरणमें गये ॥ ५२ ॥ और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन्होंने महाकोशी नदीके समीप लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकरको प्रसन्न किया ॥ ५३ ॥ पार्थिव मूर्त्तिको बनाकर विधान सहित पूजके अनेक स्तोत्रोंसे तथा क्रमसे नमस्कार आदि उपचारोंसे पूजन किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार देवताओंकी स्तुतिआदिसे सन्तुष्टहुए शिवजी उन देवताओंसे यह बोले ॥ ५५ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! हे देवताओ ! हे सब ऋषियो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम सब वर मांगो मैं तुम्हारा क्या कार्य

ते ततो विकलास्सर्वे सवासवसुरर्षयः ॥ ब्रह्मविष्णू पुरोधाय शंकरं शरणं ययुः ॥ ५२ ॥ स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकैश्च शंकरं लोकशंकरम् ॥ प्रसन्नं कृतवंतस्ते महाकोश्यास्तटे शुभे ॥ ५३ ॥ कृत्वा च पार्थिवीं मूर्तिं पूजयित्वा विधानतः ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्नमस्कारादिभिः क्रमात् ॥ ५४ ॥ एवं स्तुतस्तदा शंभुर्देवानां स्तवनादिभिः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा तान्सुरानिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ शिव उवाच ॥ हे हरे हे विधे देवा ऋषयश्चाखिला अहम् ॥ प्रसन्नोस्मि वरं ब्रूत किं कार्यं करवाणि वः ॥ ५६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ते च तदा तेन शिवेन वचने द्विजाः ॥ सुप्रणम्य करौ बद्ध्वा देवा ऊचुश्शिवं तदा ॥ ५७ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं जानासि देवेश सर्वेषां मनसि स्थितम् ॥ अन्तर्यामी च सर्वस्य नाज्ञातं विद्यते तव ॥ ५८ ॥ तथापि श्रूयतां नाथ स्वदुःखं ब्रूमहे वयम् ॥ त्वदाज्ञया महादेव कृपादृष्ट्या विलोकय ॥ ५९ ॥ राक्षसः कर्कटीपुत्रः कुंभकर्णोद्भवो बली ॥ पीडयत्यनिशं देवान्ब्रह्मदत्तवरोर्जितः ॥ ६० ॥ तमिमं जहि भीमाह्वं राक्षसं दुःखदायकम् ॥ कृपां कुरु महेशान विलंबं न कुरु प्रभो ॥ ६१ ॥

करूं ॥ ५६ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार शिवजीके कहनेपर देवता हाथजोड प्रणाम करके शिवजीसे बोले ॥ ५७ ॥ देवता बोले, हे देवेश ! आप सबके मनकी बात जानते हैं आप सबके अन्तर्यामी हैं आपको कुछ अज्ञात नहीं है ॥ ५८ ॥ हे नाथ ! तौ भी सुनिये हम अपने दुःखको कहते हैं हे महादेव ! निवेदन आपकी आज्ञासे हम करते हैं आप कृपादृष्टिसे देखो ॥ ५९ ॥ कुम्भकर्णसे उत्पन्नहुआ कर्कटीका पुत्र बली राक्षस ब्रह्माके दिये वरदानसे रातदिन देवताओंको पीडा देता है ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! हे महेश्वर ! आप उस दुःख देनेवाले भीम राक्षसको मारो और हमपर

कृपा करो विलंब करना योग्य नहीं ॥ ६१ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके कहनेपर भक्तवत्सल शिवजी बोले, मैं उस दैत्यका वध करूंगा यह कहके फिर देवताओंसे बोले ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले, हे देवताओ ! तुम कामरूपेश्वरनामक राजासे जो मेरा बडा भक्त है कहो कि तुम्हारा काम शीघ्र होगा ॥ ६३ ॥ हे सुदक्षिण ! हे महाराज ! हे कामरूपेश्वर ! हे प्रभो ! तू मेरा विशेषभक्त है प्रीतिसे मेरे भजनको कर ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके वरदान पानेवाले तुम्हारे तिरस्कार करनेवाले उस दुष्ट भीम नामक राक्षसको अवश्य मारूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले, तब वे सब देवता

सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु सुरैस्सर्वैश्शंभुर्वै भक्तवत्सलः ॥ वधं तस्य करिष्यामीत्युक्त्वा देवांस्ततोऽब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शंभुरुवाच ॥ कामरूपेश्वरो राजा मदीयो भक्त उत्तमः ॥ तस्मै ब्रूतेति वै देवाः कार्य्यं शीघ्रं भविष्यति ॥ ६३ ॥ सुदक्षिण महाराज कामरूपेश्वर प्रभो ॥ मद्भक्तस्त्वं विशेषण कुरु मद्भजनं रतेः ॥ ६४ ॥ दैत्यं भीमाह्वयं दुष्टं ब्रह्मप्राप्तवरोर्जितम् ॥ हनिष्यामि न संदेहस्त्वत्तिरस्कारकारिणम् ॥ ६५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ ते निजरास्सर्वे तत्र गत्वा मुदान्विताः ॥ तस्मै महानृपायोचुर्यदुक्तं शंभुना च तत् ॥ ६६ ॥ तमित्युक्त्वा च वै देवा आनंदं परमं गताः ॥ महर्षयश्च ते सर्वे ययुश्शीघ्रं निजाश्रमान् ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ शिवोऽपि च गणैस्सार्द्धं जगाम हितकाम्यया ॥ स्वभक्तनिकटं गुप्तस्तस्थौ रक्षार्थमादरात् ॥ १ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र कामरूपेश्वरेण च ॥ अत्यंतं ध्यानमारब्धं पार्थिवस्य पुरस्तदा ॥ २ ॥

प्रसन्न हो वहां जाकर उस कामरूपेश्वर महाराजासे जो कुछ शंभुने कहाथा सो सब कहदिया ॥ ६६ ॥ उससे सब वृत्तान्त कहकर देवता हर्षको प्राप्त हुए तथा संपूर्ण महर्षियोंके सहित शीघ्र अपने अपने आश्रमको पधारे ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ सूतजी बोले, हितकी कामनासे शिवजी अपने गणोंके साथ वहां गये और उसकी रक्षाके अर्थ अपने भक्तके निकट गुप्त रहे ॥ १ ॥ इसी अवसरमें वहां उस समय कामरूपेश्वरने पार्थिवलिंगके आगे अत्यन्तध्यान करना प्रारंभ किया ॥ २ ॥

तब किसीने वहां जाकर राक्षससे निवेदन किया कि राजा इस प्रकार तुम्हारेलिये धारण क्रियाका प्रयोग करता है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, यह सुनकर वह राक्षस अतिक्रोधित हो उस राजाके मारनेकी इच्छासे तलवार ग्रहण करके राजाके समीप गया ॥ ४ ॥ वहां राक्षस पार्थिवलिंग आदिको स्थित हुआ देखकर तथा यह राजा कुछ कररहा है ऐसा उसका स्वरूप देख विचारने लगा ॥ ५ ॥ यह प्रयोग तो करता है आज कुटुम्बसहित इस राजाको बलात्कारसे मारूंगा ऐसा मनमें ठान वह महाक्रोध करताहुआ राक्षस उस राजासे बोला ॥ ६ ॥ भीम बोला, हे दुष्टात्मा ! हे राजन् ! तू इस समय क्या कररहा है ?

केनचित्तत्र गत्वा च राक्षसाय निवेदितम् ॥ राजा किंचित्करोत्येवं त्वदर्थं ह्याभिचारिकम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ राक्षसस्स च तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्तद्धननेच्छया ॥ गृहीत्वा करवालं च जगाम नृपतिं प्रति ॥ ४ ॥ तद्दृष्ट्वा राक्षसस्तत्र पार्थिवादिस्थितं च यत् ॥ तदर्थं तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा किंचित्करोत्यसौ ॥ ५ ॥ अत एनं बलादद्य हन्मि सोपस्करं नृपम् ॥ विचार्येति महाक्रुद्धो राक्षसः प्राह तं नृपम् ॥ ६ ॥ भीम उवाच ॥ रेरे पार्थिव दुष्टात्मन् क्रियते किं त्वयाधुना ॥ सत्यं वद न हन्यां त्वामन्यथा हन्मि निश्चितम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य कामरूपेश्वरश्च सः ॥ मनसीति चिचिन्ताशु शिवविश्वासपूरितः ॥ ८ ॥ भविष्यं यद्भवत्येव नास्ति तस्य निवर्तकः ॥ प्रारब्धाधीनमेवात्र प्रारब्धस्स शिवः स्मृतः ॥ ९ ॥ कृपालुश्शंकरश्चात्र पार्थिवे वर्तते ध्रुवम् ॥ मदर्थं न करोतीह कुतः कोयं च राक्षसः ॥ १० ॥ स्वानुरूपां प्रतिज्ञां स सत्यं चैव करिष्यति ॥ सत्यप्रतिज्ञो भगवाञ्छिवश्चेति श्रुतौ श्रुतः ॥ ११ ॥

तू सत्यसत्य कह तुझे मैं नहीं मारूंगा, अन्यथा मैं निश्चयही तुझे मारूंगा ॥ ७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस राक्षसका वचन सुन शिवके विश्वासमें पूर्णहुए उस कामरूपेश्वर राजाने अपने मनमें तत्काल विचारा ॥ ८ ॥ जो होनहार है वह अवश्य होगा उस होनीका निवारण करनेवाला कोई नहीं है, यहां सब कुछ प्रारब्धहीके अधीन है और शिवहीको प्रारब्ध कहतेहैं ॥ ९ ॥ वह दया करनेवाले शिवजी इस पार्थिवलिंगमें निश्चयही उपस्थितहैं क्या वे मेरेलिये कुछ न करैंगे, फिर यह राक्षस क्या है ॥ १० ॥ वह शिवजी अपने अनुकूल प्रतिज्ञाको सत्य करैंगे कारण कि भगवान् शिवजी सत्यप्रतिज्ञावाले हैं, ऐसा

शास्त्रोंमें सुना है ॥ ११ ॥ जब अतिकठिन कोई मेरे भक्तको पीडा देता है तब मैं उसकी रक्षाके लिये उस दुष्टको मारताहूं : यह प्रतिज्ञा है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १२ ॥ इस प्रकार धैर्यको धारण करके शंकर देवको ध्यान करके बडी भक्तिसे उस राजाने मनसे प्रार्थना की ॥ १३ ॥ हे महाराज शिवजी ! मैं तुम्हाराही हूं जैसे आपकी इच्छा हो वैसा करो मैं सत्यवचन कहताहूं आप मेरा हित करैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार सत्यके पाशमें बँधाहुआ वह राजा मनमें ध्यान करके उस राक्षसको तिरस्कार करताहुआ यह वचन बोला ॥ १५ ॥ राजा बोला, अपने भक्तोंके पालन करनेवाले सम्पूर्ण चर और अचर जगतके

मम भक्तं यदा कश्चित्पीडयत्यतिदारुणः ॥ तदाहं तस्य रक्षार्थं दुष्टं हन्मि न संशयः ॥ १२ ॥ एवं धैर्य्यं समालंब्य ध्यात्वा देवं च
शंकरम् ॥ प्रार्थयामास सद्भक्त्या मनसैव रसेश्वरः ॥ १३ ॥ त्वदीयोऽस्मि महाराज यथेच्छसि तथा कुरु ॥ सत्यं च वचनं ह्यत्र
ब्रवीमि कुरु मे हितम् ॥ १४ ॥ एवं मनसि स ध्यात्वा सत्यपाशेन मंत्रितः ॥ प्राह सत्यं वचो राजा राक्षसं चावमानयन् ॥ १५ ॥
नृप उवाच ॥ भजामि शंकरं देवं स्वभक्तपरिपालकम् ॥ चराचराणां सर्वेषामीश्वरं निर्विकारकम् ॥ १६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति
तस्य वचः श्रुत्वा कामरूपेश्वरस्य सः ॥ क्रोधेन प्रचलद्गात्रो भीमो वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ ॥ भीम उवाच ॥ शंकरस्ते मया ज्ञातः
किं करिष्यति वै मम ॥ यो मे पितृव्यकेनैव स्थापितः किंकरो यथा ॥ १८ ॥ तद्बलं हि समाश्रित्य विजेतुं त्वं समीहसे ॥ तर्हि त्वया
जितं सर्वं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १९ ॥ यावन्मया न दृष्टो हि शंकरस्त्वत्प्रपालकः ॥ तावत्त्वं स्वामिनं मत्वा सेवसे नान्यथा
क्वचित् ॥ २० ॥ मया दृष्टे च तत्सर्वं स्फुटं स्यात्सर्वथा नृप ॥ तस्मात्त्वं वै शिवस्येदं रूपं दूरतरं कुरु ॥ २१ ॥

स्वामी निर्विकार शिवदेवको भजताहूं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस कामरूपेश्वर राजाका वचन सुन वह भीम राक्षस क्रोधसे कम्पायमानशरीर हो यह वचन बोला ॥ १७ ॥ भीम बोला, तेरा शिव तेरा जानाहुआ है वह मेरा क्या करैगा ? जिसको मेरे पिताके भाई रावणने दासके समान रक्खा था ॥ १८ ॥ उसके बलको आश्रय करके तू जीतनेकी इच्छा करताहै तब तो तू सबही जीतचुका इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ जब तक तेरे पालन करनेवाले शिवको मैं नहीं देखता तबतक तू उसको स्वामी मानकर सेवा करताहै, मेरे देखनेपर तू पूजन नहीं करसकता ॥ २० ॥ हे राजा ! मुझसे देखने

पर वह सब प्रगट होजायगा, इस कारण तू इस शिवजीके रूपको दूरकर ॥ २१॥ नहीं तो तुझे बडा दंड होगा इसमें कुछ संशय नहीं है, भयंकर विक्रम वाला मैं तुम्हारे स्वामीको तीव्र भेंट दूंगा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस राक्षसका वचन सुनके शिवंजीमें दृढ विश्वास कर कामरूपेश्वर राजाने उससे यह वचन कहा ॥२३॥ राजा बोला, मैं नीच तथा दुष्ट हूं परन्तु शिवके पूजनको नहीं छोडूंगा, मेरे स्वामी सबसे ऊंचेहैं वहभी मुझे कभी नहीं त्यागेंगे ॥२४॥ सूतजी बोले, तब इस प्रकार उस शैवराजाका वचन सुनके शीघ्र उस राजासे हँसकर वह भीमराक्षस यह वचन बोला ॥ २५ ॥ वह उन्मत्त हुआ नित्य भीख

अन्यथा हि भयं तेऽद्य भविष्यति न संशयः ॥ स्वामिनस्ते करं तीक्ष्णं दास्येऽहं भीमविक्रमः ॥ २२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा कामरूपेश्वरो नृपः ॥ दृढं शंकरविश्वासो द्रुतं वाक्यमुवाच तम् ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ अहं च पामरो दुष्टो न मोक्ष्ये शंकरं पुनः ॥ सर्वोत्कृष्टश्च मे स्वामी न मां मुंचति कर्हिचित् ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वचस्तदा श्रुत्वा तस्य राज्ञश्शिवात्मनः ॥ तं प्रहस्य द्रुतं भीमो भूपतिं राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ ॥ भीम उवाच ॥ मत्तो भिक्षयते नित्यं स किं जानाति स्वाकृतिम् ॥ योगिनां का च निष्ठा वै भक्तानां प्रतिपालने ॥ २६ ॥ इति कृत्वा मतिं त्वं च दूरतो भव सर्वथा ॥ अहं च तव स स्वामी युद्धं वै करवावहै ॥ २७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्स नृपश्रेष्ठश्शंभुभक्तो दृढव्रतः ॥ प्रत्युवाचाभयो भीमं दुःखदं जगतां सदा ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ शृणु राक्षस दुष्टात्मन्मया कर्तुं न शक्यते ॥ त्वया विक्रियते तर्हि कुतस्त्वं शक्तिमानसि ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्सैन्यमादाय राजानं परिभत्स्र्य तम् ॥ करालं करवालं च पार्थिवे प्राक्षिपत्तदा ॥ ३० ॥

मांगता है इससे वह क्या अपनी आकृतिको जानसकता है भक्तोंके पालन करनेमें योगियोंकी क्या सामर्थ्य है ॥ २६ ॥ यह बुद्धिमें विचारकर तू उससे सब प्रकार दूर हो मैं तेरे स्वामीके साथ युद्ध करूंगा ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेपर वह शिवका भक्त दृढव्रतवाला श्रेष्ठ राजा निर्भय हो संसारको सदा दुःख देनेवाले भीम राक्षससे बोला ॥ २८ ॥ राजा बोला, हे राक्षस ! हे दुष्टात्मन् ! मैं ऐसा नहीं करसकता हूं तू ऐसा करसकता है कारण कि, तू शक्तिमान् है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेपर वह राक्षस सेनाको लेकर उस राजाको धिक्कार कर उस समय राजापर तीक्ष्ण तलवारको प्रहार

करनेलगा ॥ ३० ॥ अब तू भक्तोंको सुख देनेवाले अपने स्वामीके बलको देख, इस प्रकार महाबली वह राक्षसोंके सहित हँसके बोला ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जबतक तलवारने उस पार्थिव लिंगको स्पर्श नहीं किया तभी उस पार्थिवलिंगसे साक्षात् शिवजी स्वयं प्रगट हुये ॥ ३२ ॥ और बोले, कि, देखो मैं भीमेश्वर इसकी रक्षाके निमित्त प्रगट हुआ मेरे यह पहला नियम है कि, सदा अपने भक्तकी रक्षा करता हूं ॥ ३३ ॥ इससे मेरे भक्तोंको सुख देनेवाले बलको शीघ्र देख ऐसा कहके पिनाक अस्त्रसे उस तलवारके दो खण्ड करादिये ॥ ३४ ॥ फिर उस राक्षसने उनके ऊपर अपना त्रिशूल फेंका तो

पश्य त्वं स्वामिनोऽद्यैव बलं भक्तसुखावहम् ॥ इत्युवाच विहस्यैव राक्षसैस्स महाबलः ॥ ३१ ॥ करवालः पार्थिवं च यावत्स्पृशति
नो द्विजाः ॥ तावच्च पार्थिवात्तस्मादाविरासीत्स्वयं हरः ॥ ३२ ॥ पश्य भीमेश्वरोहं च रक्षार्थं प्रकटोऽभवम् ॥ मम पूर्वव्रतं ह्येतद्रक्ष्यो
भक्तो मया सदा ॥ ३३ ॥ एतस्मात्पश्य मे शीघ्रं बलं भक्तसुखावहम् ॥ इत्युक्त्वा स पिनाकेन करवालो द्विधा कृतः ॥ ३४ ॥ पुनश्चैव
त्रिशूलं स्वं चिक्षिपे तेन रक्षसा ॥ तच्छूलं शतधा नीतमपि दुष्टस्य शंभुना ॥ ३५ ॥ पुनश्शक्तिश्च निःक्षिप्ता तेन शंभूपरि द्विजाः ॥
शंभुना सापि बाणैस्स्वैर्लक्षधा च कृता द्रुतम् ॥ ३६ ॥ पट्टिशश्च ततस्तेन निःक्षिप्तो हि शिवोपरि ॥ शिवेन स त्रिशूलेन तिलशश्च
कृतं क्षणात् ॥ ३७ ॥ ततश्शिवगणानां च राक्षसानां परस्परम् ॥ युद्धमासीत्तदा घोरं पश्यतां दुःखकावहम् ॥ ३८ ॥ ततश्च पृथिवी
सर्वा व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥ समुद्राश्च तदा सर्वे चुक्षुभुस्समहीधराः ॥ ३९ ॥ देवाश्च ऋषयस्सर्वे बभूवुर्विकला अति ॥ ऊचुः
परस्परं चेति व्यर्थं वै प्रार्थितश्शिवः ॥ ४० ॥

शिवजीने उस दुष्टके त्रिशूलके सौ खण्ड करादिये ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब उस दैत्यने शंभुके ऊपर शक्तिका प्रहार किया उसको भी शिवने अपने बाणोंसे शीघ्र लाखों टुकडे करादिये ॥ ३६ ॥ फिर उसने महादेवके ऊपर पट्टिश अस्त्रका प्रहार किया उसे क्षणमात्रमें उन्होंने अपने त्रिशूलसे तिलके समान खंड खंड किया ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् शिवजीके गणोंका तथा राक्षसोंका; देखनेवालोंको भय देनेवाला बडा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ उस समय सम्पूर्ण पृथिवी व्याकुल होगई और पर्वतों सहित सब समुद्र चलायमान हुये ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि अति व्याकुल हुए और आपसमें कहने

लगे कि, व्यर्थही शिवकी प्रार्थना की ॥ ४० ॥ तब नारदजीने वहां आकर अंजलि बांध मस्तक झुकाय दुःख दूर करनेवाले शिवजीकी प्रार्थना की ॥ ४१ ॥ नारदजी बोले, हे नाथ ! हे विभ्रमकारक ! आप क्षमा करो एक तृणपर क्या कुठारका प्रयोग होता है आप इसे शीघ्र मारिये ॥ ४२ ॥ ऐसी प्रार्थना करनेपर उन प्रभु शिवने उन सम्पूर्ण राक्षसगणोंको हुंकाररूपी अस्त्रसे भस्म किया ॥ ४३ ॥ हे मुने ! शिवजीने क्षणमात्रमेंही उन राक्षसोंको भस्म किया, वहां सब देवताओंके देखते देखतेही वे तत्काल नष्ट हुये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार दावाग्नि सब वनको भस्म करती है उसी प्रकार क्रोधितहुए शिवजीने क्षणमात्रमें राक्षसोंका बल नष्ट करदिया ॥ ४५ ॥ उस समय भीमनामक राक्षसकी कौन भस्म है यह भी किसीने नहीं जाना वह राक्षस अपने परिवार सहित भस्म होगया नाम भी कहीं सुनाई न दिया ॥ ४६ ॥ तब शिवजीकी कृपासे सब मुनीश्वर शान्तिको प्राप्त हुए, इन्द्र आदि सब देवताओं सहित सम्पूर्ण संसार स्वास्थ्यको प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ महेश्वरकी क्रोधानल एकवनसे दूसरेवनमें निकली राक्षसोंके शरीरकी भस्म सम्पूर्ण वनमें व्याप्त हुई ॥ ४८ ॥ उस भस्मसे अनेककार्य संपादन करनेवालीं औषधियां उत्पन्न हुईं और उससे मनुष्योंके रूप तथा अनेक भेष जन्मान्तरमें बने ॥ ४९ ॥

नारदश्च समागत्य शंकरं दुःखदाहकम् ॥ प्रार्थयामास तत्रैव सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ४१ ॥ नारद उवाच ॥ क्षम्यतांक्षम्यतां नाथ
त्वया विभ्रमकारक ॥ तृणे कश्च कुठारो वै हन्यतां शीघ्रमेव हि ॥ ४२ ॥ इति संप्रार्थितश्शंभुः सर्वान्रक्षोगणान्प्रभुः ॥ हुंकारेणैव
चास्त्रेण भस्मसात्कृतवांस्तदा ॥ ४३ ॥ सर्वे ते राक्षसा दग्धाः शंकरेण क्षणं मुने ॥ बभूवुस्तत्र सर्वेषां देवानां पश्यतां द्रुतम् ॥ ४४ ॥
दावानलगतो वह्निर्यथा च वनमादहेत् ॥ तथा शिवेन क्रुद्धेन राक्षसानां बलं क्षणात् ॥ ४५ ॥ भीमस्यैव च किं भस्म न ज्ञातं केन
चित्तदा ॥ परिवारयुतो दग्धो नाम न श्रूयते क्वचित् ॥ ४६ ॥ ततश्शिवस्य कृपया शांतिं प्राप्ता मुनीश्वराः ॥ देवास्सर्वे च शक्राद्यास्स्वा
स्थ्यं प्रापाखिलं जगत् ॥ ४७ ॥ क्रोधज्वाला महेशस्य निस्ससार वनाद्वनम् ॥ राक्षसानां च तद्भस्म सर्वं व्याप्तं वनेऽखिलम् ॥४८॥
ततश्चौषधयो जाता नानाकार्यकरास्तथा ॥ रूपान्तरं ततो नृणां भवेद्वेषांतरं तथा ॥ ४९ ॥

हे द्विजो ! उसके लेपसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि सब दूर होते हैं ऐसा कोई कार्य नहीं है जो उस भस्मसे न होता हो ॥ ५० ॥ उन देवताओंने तथा मुनियोंने शिवजीकी विशेष प्रार्थना की कि, हे स्वामी ! आपको संसारके सुख देनेके कारण यहां निवास करना उचित है ॥ ५१ ॥ यह युद्ध न करनेवालोंको दुःख देनेवाला कुत्सित देश है और आपका दर्शन करके लोकोंका कल्याण होगा ॥ ५२ ॥ सब कुछ सिद्ध करनेवाले आप सदा भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध होंगे यह ज्योतिर्लिंग सब आपत्तियोंका निवारण करनेवाला तथा पूजनीय होगा ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले, लोकोंके हित करनेवाले स्वतंत्र

भूतप्रेतपिशाचादि दूरतश्च ततो व्रजेत् ॥ तन्न कार्यं च यच्चैव ततो न भवति द्विजाः ॥ ५० ॥ तैर्देवैः प्रार्थितश्शम्भुर्मुनिभिश्च विशेषतः ॥ स्थातव्यं स्वामिना ह्यत्र लोकानां सुखहेतवे ॥ ५१ ॥ अयं वै कुत्सितो देश अयोध्यालोकदुःखदः ॥ भवंतं च तदा दृष्ट्वा कल्याणं संभविष्यति ॥ ५२ ॥ भीमशंकरनामा त्वं भविता सर्वसाधकः ॥ एतल्लिंगं सदा पूज्यं सर्वापद्विनिवारकम् ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः ॥ तत्रैवास्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्यां वस्तुमात्रकम् ॥ चिदानन्दस्वरूपं च निर्विकारं सनातनम् ॥ २ ॥ तस्यैव कैवल्यरतेर्द्वितीयेच्छा ततोभवत् ॥ स एव सगुणो जातश्शिव इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

भक्तोंपर दया करनेवाले शिवजीने ऐसी प्रार्थना सुनके प्रीतिसे वहां निवास किया ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! इसके आगे बडे पापोंके नाश करनेवाले विश्वेश्वरके माहात्म्यको कहताहूं आप सुनैं ॥ १ ॥ इस संसारमें जो कुछ यह वस्तुमात्र दीखतीहै वह सब निर्विकार सनातन चिदानंदस्वरूप है ॥ २ ॥ और जब उसही कैवल्यरति (ज्ञानस्वरूप) परमेश्वरकी दूसरे होनेकी इच्छा उत्पन्न हुई तब वही सगुणरूपसे शिव कहाए ॥ ३ ॥

वह शिवही पुरुष तथा स्त्रीके भेदसे दो प्रकारके रूपवाले हुयेहैं, उनमें जो पुरुषहैं सो शिवहैं, तथा स्त्रीरूपा शक्तिके नामसे प्रसिद्धहैं ॥ ४ ॥ हे मुनिसत्तमो तब उन दोनों अदृष्ट हुए चिद् आनन्दस्वरूपोंके स्वभावसे प्रकृति तथा पुरुष प्रगट हुए, हे द्विजो ! जब उन्होंने जगत्के माता पिताको न देखा ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ तब वे प्रकृति और पुरुष बडे संशयको प्राप्त हुंए उस समय निर्गुण परमात्मासे यह वाणी प्रगट हुई कि, तप करना योग्य है, उस तपसेही उत्तम सृष्टि होगी ॥ ७ ॥ प्रकृतिपुरुष बोले, हे स्वामी ! हे शिवजी ! तप करनेको कोई स्थल नहीं है, अब हम दोनों कहां स्थित होकर आपकी आज्ञासे तप करैं

स एव हि द्विधा जातः पुंस्त्रीरूपप्रभेदतः ॥ यः पुमान्स शिवः ख्यातः स्त्रीशक्तिस्सा हि कथ्यते ॥ ४ ॥ चिदानन्दस्वरूपाभ्यां पुरुषावपि निर्मितौ ॥ ५ ॥ अदृष्टाभ्यां तदा ताभ्यां स्वभावान्मुनिसत्तमाः ॥ तावदृष्ट्वा तदा तौ च स्वमातृपितरौ द्विजाः ॥ ६ ॥ महासंशयमापन्नौ प्रकृतिः पुरुषश्च तौ ॥ तदा वाणी समुत्पन्ना निर्गुणात्परमात्मनः ॥ तपश्चैव प्रकर्तव्यं ततस्सृष्टिरनुत्तमा ॥ ७ ॥ प्रकृतिपुरुषावूचतुः ॥ तपसस्तु स्थलं नास्ति कुत्रावाभ्यां प्रभोऽधुना ॥ स्थित्वा तपः प्रकर्तव्यं तव शासनतश्शिव ॥ ८ ॥ ततश्च तेजसस्सारं पंचक्रोशात्मकं शुभम् ॥ सर्वोपकरणैर्युक्तं सुंदरं नगरं तथा ॥ ९ ॥ निर्माय प्रेषितं तत्स्वं निर्गुणेन शिवेन च ॥ अंतरिक्षे स्थितं तच्च पुरुषस्य समीपतः ॥ १० ॥ तदधिष्ठाय हरिणा सृष्टिकामनया ततः ॥ बहुकालं तपस्तप्तं तद्ध्यानमवलंब्य च ॥ ११ ॥ श्रमेण जलधाराश्च विविधाश्चाभवंस्तदा ॥ ताभिर्व्याप्तं च तच्छून्यं नान्यत्किंचिददृश्यत ॥ १२ ॥ ततश्च विष्णुना दृष्टं किमेतदृश्यतेऽद्भुतम् ॥ इत्याश्चर्यं तदा दृष्ट्वा शिरसः कम्पनं कृतम् ॥ १३ ॥ ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतः प्रभोः ॥ तद्बभूव महत्तीर्थं नामतो मणिकर्णिका ॥ १४ ॥

॥ ८ ॥ तब सम्पूर्ण तेजोंके साररूप पांच कोशपर्यंत सब साधनोंके सहित शोभायमान सुन्दर नगर ॥ ९ ॥ निर्गुण शिवने निर्माणकर अपनी प्रेरणासे अन्तरिक्ष (आकाश) में पुरुषके समीप स्थित किया ॥ १० ॥ फिर वहां स्थित होकर विष्णुने सृष्टि रचनेकी कामनासे शिवजीका ध्यान करके बहुत समयतक तप किया ॥ ११ ॥ तब उनके परिश्रमसे अनेक जलकी धाराएँ प्रगट हुईं, उनसे वह शून्य व्याप्त हुआ उस समय उसके सिवाय और कुछ नहीं दीखताथा ॥ १२ ॥ तब विष्णुने देखा कि, यह क्या अद्भुतसा दीखता है, इस प्रकार आश्चर्यसे देखकर शिरको कंपाया ॥ १३ ॥ शिरके कंपानेसे

विष्णुके कानसे एक मणि गिरपडी, वह मणिकर्णिका नामसे बडा तीर्थ प्रसिद्ध होगया ॥ १४ ॥ वह मणिकर्णिका जलरूप बहतीहुई जब पंचक्रोशी (पांच कोसतक) विस्तारवाली हुई, तब निर्गुण शिवने तत्काल उसको त्रिशूलपर धारण किया ॥ १५ ॥ विष्णुने वहांही अपनी स्त्रीके सहित शयन किया, शिवकी आज्ञासे उनकी नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ उन ब्रह्माजीने शिवजीकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टि रचनी प्रारंभ की और उस ब्रह्माण्डमें चौदह लोक रचे ॥ १७ ॥ मुनियोंने पचास करोड योजनके प्रमाणसे ब्रह्माण्डका विस्तार वर्णन कियाहै ॥ १८ ॥ ब्रह्माण्डमें अपने २ कर्मोंसे बँधेहुए

जलौघे प्लाव्यमाना सा पंचक्रोशी यदाभवत् ॥ निर्गुणेन शिवेनाशु त्रिशूलेन धृता तदा ॥ १५ ॥ विष्णुस्तत्रैव सुष्वाप प्रकृत्या स्वस्त्रिया सह ॥ तन्नाभिकमलाज्जातो ब्रह्मा शंकरशासनात् ॥ १६ ॥ शिवाज्ञां स समासाद्य सृष्टिं चक्रेऽद्भुतां तदा ॥ चतुर्दशमिता लोका ब्रह्मांडे यत्र निर्मिताः ॥ १७ ॥ योजनानां च पंचाशत्कोटिसंख्याप्रमाणतः ॥ ब्रह्मांडस्यैव विस्तारो मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥ १८ ॥ ब्रह्मांडे कर्मणा बद्धाः प्राणिनो मां कथं पुनः ॥ प्राप्स्यंतीति विचिन्त्यैतत्पंचक्रोशी विमोचिता ॥ १९ ॥ इयं च शुभदा लोके कर्मनाशकरी मता ॥ मोक्षप्रकाशिका काशी ज्ञानदा मम सुप्रिया ॥ २० ॥ अविमुक्तं स्वयं लिंगं स्थापितं परमात्मना ॥ न कदाचित्त्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशक ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वा च त्रिशूलात्स्वादवतार्य्य हरस्स्वयम् ॥ मोचयामास भुवने मर्त्यलोके हि काशिकाम् ॥ ॥ २२ ॥ ब्रह्मणश्च दिने सा हि न विनश्यति निश्चितम् ॥ तदा शिवस्त्रिशूलेन दधाति मुनयश्च ताम् ॥ २३ ॥

प्राणी मुझे किस प्रकार प्राप्त होंगे ऐसा विचारकर यह पंचक्रोशी उनसे पृथक् रक्खी है ॥ १९ ॥ यह पंचक्रोशी लोकमें कल्याण देनेवाली तथा कर्मोंकी नाश करनेवाली है; यही काशी मोक्षकी प्रकाशकरनेवाली ज्ञानकी देनेवाली है मेरी प्रिय नगरी है ॥ २० ॥ परमात्मा शिवने मुक्ति देनेवाले ज्योतिर्लिंगको स्वयं स्थापित किया और कहा, हे मेरे अंशवाले ज्योतिर्लिंग ! यह क्षेत्र तुमको कदापि त्यागना न चाहिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहकर शिवने स्वयं अपने त्रिशूलसे उतारके उस काशीको मर्त्यलोकमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर भी वह नाशको नहीं प्राप्त होती, हे मुनियो ! प्रलयकालमें भी

शिवजी उसे त्रिशूल पर धारण करते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! फिर ब्रह्माजीसे सृष्टि रचनेपर काशीको स्थापित करते हैं, कर्मबन्धनोंके आकर्षण करनेसे 'काशी' कहीजाती है ॥ २४ ॥ काशीमें अविमुक्तेश्वरलिंग सदा स्थित रहता है, वह महापाप करनेवाले मनुष्योंको भी मुक्ति देनेवाले हैं ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! काशीसे अन्यत्र जीवोंको सारूप्यादि मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु यहां प्राणियोंको सायुज्य उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ जिन प्राणियोंकी कहीं गति न हो उनकी वाराणसीपुरीमें गति होती है, महापुण्यदायक पंचक्रोशी कोटिहत्याओंकी नाशकरनेवाली है ॥ २७ ॥ यहां सब देवता

पुनश्च ब्रह्मणा सृष्टौ कृतायां स्थाप्यते द्विजाः ॥ कर्मणां कर्षणाच्चैव काशीति परिपठ्यते ॥ २४ ॥ अविमुक्तेश्वरं लिंगं काश्यां तिष्ठति सर्वदा ॥ मुक्तिदातृ च लोकानां महापातकिनामपि ॥ २५ ॥ अन्यत्र प्राप्यते मुक्तिस्सारूप्यादिर्मुनीश्वराः ॥ अत्रैव प्राप्यते जीवैः सायुज्या मुक्तिरुत्तमा ॥ २६ ॥ येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी ॥ पंचक्रोशी महापुण्या हत्याकोटिविनाशिनी ॥ २७ ॥ अमरा मरणं सर्वे वांछंतीह परे च के ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शंकरप्रिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा च श्लाघते चामूं विष्णुस्सिद्धाश्च योगिनः ॥ मुनयश्च तथैवान्ये त्रिलोकस्था जनाः सदा ॥ २९ ॥ काश्याश्च महिमानं वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ शक्नोम्यहं न सर्वं हि यथाशक्ति ब्रुवे ततः ॥ ३० ॥ कैलासस्य पतिर्यो वै ह्यंतस्सत्त्वो बहिस्तमाः ॥ कालाग्निर्नामतः ख्यातो निर्गुणो गुणवान्भवः ॥ प्रणिपातैरनेकैश्च वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ ॥ रुद्र उवाच ॥ विश्वेश्वर महेशान त्वदीयोऽस्मि न संशयः ॥ कृपां कुरु महादेव मयि त्वं साम्ब आत्मजे ॥ ३२ ॥

भी मरणकी इच्छा करते हैं, औरोंकी तो बातही क्या है यह सर्वदा शिवकी प्रिय तथा भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली है ॥ २८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, योगी तथा मुनि और त्रिलोकीके मनुष्य भी सदा काशीजीकी प्रशंसा करतेहैं ॥ २९ ॥ मैं काशीजीकी महिमा सौ वर्षोंमें भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं होसकता, तौभी यथाशक्ति वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुणवाले निर्गुण और अनेक गुणवान् कैलासपति कालाग्नि नामसे प्रसिद्ध रुद्रने अनेकप्रकारकी प्रार्थनासे इस प्रकार शंकरसे कहा था ॥ ३१ ॥ रुद्र बोले, हे विश्वके स्वामी ! हे महादेव ! हे महेश्वर ! मैं आपका हूं, इसमें संशय नहीं,

आप माता पार्वतीसहित मुझ पुत्रपर कृपा करैं ॥ ३२ ॥ हे जगत्के स्वामी ! हे जगत्पते ! आप सदा लोकोंके हितकी कामनासे यहांही निवास करैं और सबको
तारैं ऐसी प्रार्थना करताहूं ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार बुद्धिसम्पन्न रुद्रजी अविमुक्तक्षेत्रमें उन शिवकी बारम्बार प्रार्थना करके नेत्रोंसे आसुओंको बहाते
प्रसन्नतासे उनसे बोले ॥ ३४ ॥ अविमुक्त बोले, हे देवोंके देव! हे कालरूपी रोगकी औषधी ! तीनों लोकोंके पति ! आप ब्रह्मा विष्णुआदि देवतोंसे
निश्चयही सेवन करने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ हे देव ! आप काशीपुरीमें राजधानी (निवासस्थान) स्वीकार करैं मैं अचिन्त्य सुखके कारण ध्यान करताहुआ
यहां स्थित हूंगा ॥ ३६ ॥ आपही मुक्तिके देनेवाले तथा कामनाओंके देनेवाले हैं और कोई नहीं, इस कारण आप संसारके उपकारके निमित्त सदा पार्वतीके

स्थातव्यं च सदात्रैव लोकानां हितकाम्यया ॥ तारयस्व जगन्नाथ प्रार्थयामि जगत्पते ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ अविमुक्तेऽपि दान्तात्मा
तं संप्रार्थ्य पुनःपुनः ॥ नेत्राश्रूणि प्रमुच्यैव प्रीतः प्रोवाच शंकरम् ॥ ३४ ॥ अविमुक्त उवाच ॥ देवदेव महादेव कालामयसुभेषज ॥
त्वं त्रिलोकपतिस्सत्यं सेव्यो ब्रह्माच्युतादिभिः ॥ ३५ ॥ काश्यां पुर्य्यां त्वया देव राजधानी प्रगृह्यताम् ॥ मया ध्यानतया स्थेयमचिं
त्यसुखहेतवे ॥ ३६ ॥ मुक्तिदाता भवानेव कामदश्च न चापरः ॥ तस्मात्त्वमुपकाराय तिष्ठोमासहितस्सदा ॥ ३७ ॥ जीवान्भवाब्धेर
खिलांस्तारय त्वं सदाशिव ॥ भक्तकार्य्यं कुरु हर प्रार्थयामि पुनःपुनः ॥ ३८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन
शंकरः ॥ लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट् ॥ ३९ ॥ यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः ॥ तदारभ्य च सा काशी
सर्वश्रेष्ठतराभवत् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविं
शोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महापुरी ॥ तत्प्रभावं वदास्माकमविमुक्तस्य च प्रभो ॥ १ ॥

सहित निवास करैं ॥ ३७ ॥ हे सदाशिव ! आप सम्पूर्ण जीवोंको भवसागरसे निरन्तर उद्धार करो तथा भक्तोंके कार्यको करो, हे शिवजी ! ऐसी हम
वारंवार प्रार्थना करतेहैं ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन विश्वनाथसे प्रार्थना कियेहुए सबके राजा शिवजीनें लोकोंके उपकारके अर्थ वहां निवास
किया ॥ ३९ ॥ जिसदिनसे शिवजी काशीजीमें पधारे तभीसे वह काशीनगरी सबसे श्रेष्ठ होगई ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को०
रु० विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ऋषि बोले, हे प्रभो ! हे सूतजी ! यदि यह वाराणसी नगरी ऐसी पवित्रहै

तो इसके प्रभाव तथा अविमुक्त ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यको हमसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! मैं वाराणसीके माहात्म्य तथा विश्वेश्वर शिवकी सुन्दर महिमाको संक्षेपसे सम्यक्प्रकार वर्णन करताहूं आप सुनैं ॥ २ ॥ एक समय देवी पार्वतीने बडे आनन्दसे संसारके हितके निमित्त काशी तथा अविमुक्तलिंगके माहात्म्यको शिवजीसे पूंछा ॥ ३ ॥ पार्वती बोली, हे शिवजी ! आप लोकोंके हितकी कामनासे मेरे ऊपर कृपा करके इस क्षेत्रके सम्पूर्ण माहात्म्यको वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा पार्वतीका वचन सुनके देवोंके देव संसारके स्वामी शिवजी जीवोंके उपकारके हेतु उन पार्वतीजीसे

सूत उवाच ॥ वक्ष्ये संक्षेपतस्सम्यग्वाराणस्यास्सुशोभनम् ॥ विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं श्रूयतां च मुनीश्वराः ॥ २ ॥ कदाचित्पार्वती देवी शङ्करं परया मुदा ॥ लोककामनयापृच्छन्माहात्म्यमविमुक्तयोः ॥ ३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ममोपरि कृपां कृत्वा लोकानां हितकाम्यया ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जगत्प्रभुः ॥ प्रत्युवाच भवानीं तां जीवानां प्रियहेतवे ॥ ५ ॥ परमेश्वर उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां सुखदं शुभम् ॥ कथयामि यथार्थं वै माहात्म्यमविमुक्तयोः ॥ ६ ॥ इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ॥ सर्वेषामेव जंतूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वथा ॥ ७ ॥ अस्मिन्सिद्धास्सदा क्षेत्रे मदीयं व्रतमाश्रिताः ॥ नानालिंगधरा नित्यं मम लोकाभिकांक्षिणः ॥ ८ ॥ अभ्यस्यंति महायोगं जितात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ परं पाशुपतं श्रौतं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ९ ॥ रोचते मे सदा वासो वाराणस्यां महेश्वरि ॥ हेतुना येन सर्वाणि विहाय शृणु तद्भवम् ॥ १० ॥

बोले ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, हे भद्रे ! तुमने संसारको सुख देनेवाला मंगलकारी सुन्दर प्रश्न किया सो मैं अविमुक्त शिवके माहात्म्यको यथार्थरूपसे कहताहूं ॥ ६ ॥ यह वाराणसीनामक मेरा क्षेत्र सदा गोपनीय है और सब प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको मुक्तिदेनेवाला ॥ ७ ॥ इस मेरे क्षेत्रमें सिद्धगण सदा मेरे व्रतको आश्रय करतेहैं तथा अनेक लोकोंके उपकारकी इच्छा करनेवाले नानाप्रकारके चिह्न धारण करतेहैं ॥ ८ ॥ कोई जितेन्द्रिय होकर आत्माको वशमें करके महायोगका अभ्यास करतेहैं, भुक्ति तथा मुक्ति फलको देनेवाले और (श्रुतियोंमें कहे) परमपाशुपत योगमें तत्पर होतेहैं ॥ ९ ॥ हे महेश्वरि ! जिस

कारणसे मुझे सदा वाराणसीमें निवास अच्छा लगता है, सब विघ्नोंको छोडकर उसे निश्चयकर सुन ॥ १० ॥ जो मेरे भक्त तथा विज्ञानी हों वे दोनोंही मुक्तिके भागी हैं, उन दोनोंमें तीर्थोंके जानेकी अपेक्षा नहीं है, तीर्थ करने उन्हें दोनोंही समान हैं ॥ ११ ॥ वे जीवन्मुक्त हैं जहाँ कहींभी वे मरतेहैं तत्कालही मोक्षको प्राप्त होतेहैं, यह तुम मेरे इस वचनको निश्चयरूपसे जानो ॥ १२ ॥ हे देवि ! हे परमशक्ति ! इस परम उत्तम अविमुक्त नामक तीर्थमें जो विशेषताहै सो चित्त देकर सुनो ॥ १३ ॥ सब वर्ण तथा आश्रमवाले बालक, युवा, वृद्ध, कोईभी इस काशीपुरीमें मृत्युको प्राप्त हो तो निःसन्देह मुक्त होजातेहैं ॥

यो मे भक्तश्च विज्ञानी तावुभौ मुक्तिभागिनौ ॥ तीर्थापेक्षा च न तयोर्विहिताविहिते समौ ॥ ११ ॥ जीवन्मुक्तौ तु तौ ज्ञेयौ यत्र कुत्रापि वै मृतौ ॥ प्राप्नुतो मोक्षमाश्वेव मयोक्तं निश्चितं वचः ॥ १२ ॥ अत्र तीर्थे विशेषोस्त्यविमुक्ताख्ये परोत्तमे ॥ श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया ॥ १३ ॥ सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्द्धकाः ॥ अस्यां पुर्य्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥ १४ ॥ अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा ॥ विधवा वाथ वा वंध्या रजोदोषयुतापि वा ॥ १५ ॥ प्रसूता संस्कृता कापि यादृशी तादृशी द्विजाः ॥ अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ् नात्र सशयः ॥ १६ ॥ स्वेदजश्चांडजो वापि ह्युद्भिज्जोऽथ जरायुजः ॥ मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित् ॥ १७ ॥ ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः ॥ कर्मापेक्षा न देव्यत्र दानापेक्षा न चैव हि ॥१८॥ संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित् ॥ नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न ॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ अपवित्र अथवा पवित्र, कन्याहो वा विवाही, विधवाहो वा वन्ध्या, या रजके दोषवाली हो ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! प्रसूता हो वा कोई विना संस्कारवाली हो, चाहे जैसी क्यों न हो यदि इस क्षेत्रमें मरती है तो मोक्षकी भागी होती है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार इस क्षेत्रमें स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, वा जारसे उत्पन्नहुआ जीव मरकर मोक्षको पाताहै उस प्रकार और कहीं मुक्त नहीं होता ॥ १७ ॥ हे देवि ! इस क्षेत्रमें न ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्तिकी अपेक्षाहै, न कर्म की अपेक्षा है, न दानकी अपेक्षा है ॥ १८ ॥ न यहां संस्कारकी अपेक्षा है, न किसी ध्यानकी अपेक्षा

है, न नामकी अपेक्षा है, न श्रेष्ठ जातिकी अपेक्षाहै ॥ १९ ॥ मोक्षके देनेवाले मेरे क्षेत्रमें जो कोईभी मरता है वह निश्चयही मोक्षको प्राप्त होताहै ॥२०॥ हे प्रिये ! यह मेरा दिव्यपुर अतिगोपनीय है, हे पार्वति ! इसके माहात्म्यको ब्रह्मा आदि कभी नहीं जानते ॥ २१ ॥ कारण कि, यह क्षेत्र सबसे बडा है, इससे अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध है मरनेके उपरान्त नैमिषारण्य आदि तीर्थोंसे अधिक मोक्षको देनेवाला है ॥ २२ ॥ पण्डितोंने यह क्षेत्र धर्मका स्थान, मोक्षका स्थान, क्षेत्र तथा तीर्थोंका स्थान, कहा है ॥ २३ ॥ मनुष्य चाहै भोजन करता हो, सोता हो, क्रीडा करता हो तथा अनेक क्रियाओंको करता हो

मम क्षेत्रे मोक्षदे हि यो वा वसति मानवः ॥ यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम् ॥ २० ॥ एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं प्रिये ॥ ब्रह्मादयोऽपि जानंति माहात्म्यं नास्य पार्वति ॥ २१ ॥ महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम् ॥ सर्वेभ्यो नैमिषादिभ्यः परं मोक्षप्रदं मृते ॥ २२ ॥ धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषत्समम् ॥ क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं विदुर्बुधाः ॥ २३ ॥ कामं भुंजन्स्वपन्क्रीडन्कुर्वन्हि विविधाः क्रियाः ॥ अविमुक्ते त्यजन्प्राणाञ्जंतुर्मोक्षाय कल्पते ॥ २४ ॥ कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम् ॥ न च क्रतुसहस्रत्वं स्वर्गे काशीं पुरीं विना ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यते काशिका पुरी ॥ अव्यक्तलिंगं मुनिभिर्ध्यायते च सदाशिवः ॥ २६ ॥ यद्यत्फलं समुद्दिश्य तपन्त्यत्र नराः प्रिये ॥ तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि सम्यक्तत्तत्फलं ध्रुवम् ॥ २७ ॥ सायुज्यमात्मनः पश्चादीप्सितं स्थानमेव च ॥ न कुतश्चित्कर्मबंधस्त्यजतामत्र वै तनुम् ॥ २८ ॥

अविमुक्त शिवके समीप प्राणोंको छोडतेही अवश्य मोक्षका भागी होता है ॥ २४ ॥ सहस्रों पापोंको करके मनुष्योंका पिशाच होजाना श्रेष्ठ है परन्तु स्वर्गके हेतु काशीपुरीके विना अनेक यज्ञोंका करना श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥ इस कारण मुनिजन सम्पूर्ण यत्नोंसे काशीको सेवन करते हैं तथा अव्यक्तलिंगरूपी सदाशिवका ध्यान करते हैं ॥२६॥ हे प्रिये ! मनुष्य जिस २ फलके हेत यहां पर तप करतेहैं मैं उन्हें निश्चयही सम्यक् प्रकार उस उस फलको देता हूं ॥२७॥ तत्पश्चात् अपने सायुज्य (मुक्ति) को तथा अभिलषित स्थानको देता हूं.यहांपर शरीर छोडनेवालोंको कहीं भी कर्मबन्धन नहीं होता है ॥२८॥

देवता तथा ऋषियोंके सहित ब्रह्माजी, विष्णु, सूर्य तथा और सम्पूर्ण महात्मा भी यहां मेरी उपासना करते हैं ॥ २९ ॥ विषयोंमें प्रवृत्त अधर्म रुचिवाला पुरुष भी यदि इस क्षेत्रमें मरता है तो फिर संसारमें प्रवेश नहीं करता ॥ ३० ॥ फिर अभिमान रहित इन धैर्यवाले सत्त्वगुणी ईर्षारहित पुण्यात्मा पाप कर्म न करनेवाले पुरुषोंकी तो क्या कथा है, यह सब मुझमें लय होते हैं ॥ ३१ ॥ योगी पुरुष सहस्रों जन्मोंमें मोक्षको पाते हैं परन्तु यहां प्राण त्यागनेसे परममोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ हे पार्वति ! यहां काशी क्षेत्रमें भक्तोंने अनेक लिंगोंका स्थापन किया है और वे शिवलिंग सब कामनाओंको देनेवाले

ब्रह्मा देवर्षिभिस्सार्द्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः ॥ उपासते महात्मानस्सर्वे मामिह चापरे ॥ २९ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरुचिर्नरः ॥ इह क्षेत्रे मृतो यो वै संसारं न पुनर्विशेत् ॥ ३० ॥ किं पुनर्निर्ममा धीरास्सत्त्वस्था दंभवर्जिताः ॥ कृतिनश्च निरारंभास्सर्वे ते मयि भाविताः ॥ ३१ ॥ जन्मांतरसहस्रेषु जन्म योगी समाप्नुयात् ॥ तदिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ॥ ३२ ॥ अत्र लिंगान्यनेकानि भक्तैस्संस्थापितानि हि ॥ सर्वकामप्रदानीह मोक्षदानि च पार्वति ॥ ३३ ॥ पंचक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ समंताच्च तथा जंतोर्मृतिकालेऽमृतप्रदम् ॥ ३४ ॥ अपापश्च मृतो यो वै सद्यो मोक्षं समश्नुते ॥ सपापश्च मृतो यस्स्यात्कायव्यूहान्समश्नुते ॥ ॥ ३५ ॥ यातनां सोनुभूयैव पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ पातकं योऽविमुक्ताख्ये क्षेत्रेऽस्मिन्कुरुते ध्रुवम् ॥ ३६ ॥ भैरवीं यातनां प्राप्य वर्षाणामयुते पुनः ॥ ततो मोक्षमवाप्नोति भुक्त्वा पापं च सुन्दरि ॥ ३७ ॥ इति ते च समाख्याता पापाचारे च या गतिः ॥ एवं ज्ञात्वा नरस्सम्यक्सेवयेदविमुक्तकम् ॥ ३८ ॥

तथा मोक्षके देनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ यह क्षेत्र चारोंदिशाओंमें पांच कोशतक विस्तृत है, इसमें कहीं भी कोई प्राणी मरे तो यह क्षेत्र उसको अमृतका देनेवाला है ॥ ३४ ॥ पापरहित जो मनुष्य यहां मरता है वह शीघ्रही मोक्षको प्राप्त होता है तथा जो पापी यहां मरै तो वह कायव्यूहको पाकर ॥ ३५ ॥ उससे यातनाको भोगकर शीघ्रही मोक्षको प्राप्त होता है, जो मनुष्य इस अविमुक्त नामक क्षेत्रमें निश्चयकर पाप करता है ॥ ३६ ॥ हे सुन्दरि ! वह भैरवी यातनाको प्राप्त हो पापको भोगकर दशसहस्र वर्षमें फिर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार यहां पाप करनेसे जिसप्रकार गति होती है सो तुमसे

सब कही यह जानकर मनुष्य यहाँ अविमुक्तक्षेत्रका सेवन करतेहैं ॥ ३८ ॥ कोटिसौ कल्पोंमेंभी कर्म कियाहुआ क्षयको प्राप्त नहीं होता, शुभाशुभ कर्म अवश्यही भोगना पडता है ॥ ३९ ॥ केवल अशुभ (बुरा) कर्म नरक भोगनेको होता है और शुभ स्वर्गप्राप्तिके निमित्त होताहै और शुभ अशुभ दोनों प्रकारके कर्मोंसे मनुष्यका जन्म होता है ॥४०॥ पुण्य पापके न्यूनाधिक होनेमें अच्छे अथवा बुरे स्थानमें जन्म होता है, हे पार्वति ! दोनोंके क्षय होनेपर निश्चयही मुक्ति होती है ॥ ४१ ॥ हे महेश्वरि ! कर्मकाण्डमें तीन प्रकारके बन्धनमें डालनेवाले कर्म कहेहैं वे सञ्चित क्रियमाण और प्रारब्ध नामवालेहैं ॥

कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ३९ ॥ केवलं चाशुभं कर्म नरकाय भवेदिह ॥ शुभं स्वर्गाय जायेत द्वाभ्यां मानुष्यमीरितम् ॥ ४० ॥ जन्म सम्यगसम्यक् च न्यूनाधिक्ये भवेदिह ॥ उभयोश्च क्षयो मुक्तिर्भवेत्सत्यं हि पार्वति ॥ ४१ ॥ कर्म च त्रिविधं प्रोक्तं कर्मकाण्डे महेश्वरि ॥ संचितं क्रियमाणं च प्रारब्धं चेति बंधकृत् ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मसमुद्भूतं संचितं समुदाहृतम् ॥ भुज्यते च शरीरेण प्रारब्धं परिकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ अनेन जन्मना यच्च क्रियते कर्म सांप्रतम् ॥ शुभाशुभं च देवेशि क्रियमाणं विदुर्बुधाः ॥ ४४ ॥ प्रारब्धकर्मणो भोगात्क्षयश्चैव न चान्यथा ॥ उपायेन द्वयोर्नाशः कर्मणोः पूजनादिना ॥ ४५ ॥ सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीं पुरीं विना ॥ सर्वं च सुलभं तीर्थं दुर्लभा काशिका पुरी ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्मकृतं चेद्वै काशीदर्शनमादरात् ॥ तदा काशीं च संप्राप्य लभेन्मृत्युं न चान्यथा ॥ ४७ ॥

॥ ४२ ॥ पूर्वजन्ममें कियेहुए कर्मोंको संचित कहतेहैं और जो शरीरसे फलरूपमें भोगेजातेहैं वह प्रारब्ध कहातेहैं ॥ ४३ ॥ हे देवेशि ! इस जन्ममें जो शुभ और अशुभ कर्म इस समय कियेजातेहैं उनको पंडित क्रियमाण कहतेहैं ॥ ४४ ॥ उनमें प्रारब्ध कर्मका विनाश केवल भोगसेही होता है और किसी प्रकार नहीं होसकता संचित क्रियमाण इन दोनों कर्मोंका क्षय पूजनआदि उपायसे होताहै ॥ ४५ ॥ काशीके विना सम्पूर्ण कर्मोंका नाश नहीं होसकता, सब तीर्थ सुलभहैं परन्तु काशीपुरी दुर्लभहै ॥ ४६ ॥ यदि पूर्वजन्ममें आदरसे काशीजीका दर्शन कियाहो तो काशीजीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता

है और प्रकार काशीमें मरण नहीं होसकता ॥ ४७ ॥ जो पुरुष काशीजीमें जाकर गंगाजीमें स्नान करता है तो क्रियमाण तथा संचित कर्मका विनाश
होजाता है ॥ ४८ ॥ प्रारब्धकर्म विनाभोग किये नाश नहीं होता ऐसा निश्चय है, यदि यहाँ मृत्यु होजाय तो उस कर्मका क्षय होसकता है ॥ ४९ ॥
यदि पहले काशीका सेवन कियाहो पश्चात् पाप करै तो उस काशीसेवनके बीजसे बलात्कार फिर काशीजी प्राप्त होतीहै ॥ ५० ॥ उस समय सम्पूर्ण पाप
भस्म होजातेहैं इस कारण मनुष्य कर्मबन्धनकी काटनेवाली काशीजीको निश्चय ही सेवन करैं ॥ ५१ ॥ हे प्रिये ! जिसने एकभी ब्राह्मणको काशीजीमें वास
कराया वह काशीवासको पाय मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य काशीमें मृत्युको प्राप्त हुआ उसका जन्म नहीं होता, कामना और फलके

काशीं प्राप्य नरो यस्तु गंगायां स्नानमाचरेत् ॥ तदा च क्रियमाणस्य संचितस्यापि संक्षयः ॥ ४८ ॥ प्रारब्धं न विना भोगो नश्य
तीति सुनिश्चितम् ॥ मृतिश्च तस्य संजाता तदा तस्य क्षयो भवेत् ॥ ४९ ॥ पूर्वं चैव कृता काशी पश्चात्पापं समाचरेत् ॥ तद्बीजेन
बलवता नीयते काशिका पुनः ॥ ५० ॥ तदा सर्वाणि पापानि भस्मसाच्च भवंति हि ॥ तस्मात्काशीं नरस्सेवेत्कर्मनिर्मूलनीं ध्रुवम् ॥
॥ ५१ ॥ एकोऽपि ब्राह्मणो येन काश्यां संवासितः प्रिये ॥ काशीवासमवाप्यैव ततो मुक्तिं स विंदति ॥ ५२ ॥ काश्यां यो वै मृतश्चैव
तस्य जन्म पुनर्न हि ॥ समुद्दिश्य प्रयागे च मृतस्य कामनाफले ॥ ५३ ॥ ॥ संयोगश्च तयोश्चेत्स्यात्काशीजन्यं फलं वृथा ॥ यदि न
स्यात्तयोर्योगस्तीर्थराजफलं वृथा ॥ ५४ ॥ तस्मान्मच्छासनाद्विष्णुस्सृष्टिं साक्षाद्धि नूतनाम् ॥ विधाय मनसोद्दिष्टां तत्सिद्धिं यच्छति
ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ सूत वाच ॥ इत्यादि बहुमाहात्म्यं काश्यां वै मुनिसत्तमाः ॥ तथा विश्वेश्वरस्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ५६ ॥

उद्देश्यसे रहकर प्रयागमें मृत्युको प्राप्त हुए मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ५३ ॥ और यदि काशीमें कामना और फलके उद्देश्यसे मृत्युको प्राप्त हुआ है
तो उसे काशीका फल प्राप्त न होगा और यदि तीर्थराज प्रयागमें कामना और फलके उद्देश्यको छोडकर साधारण रीतिपर मृत्युको प्राप्त हुआ है तो उसे
तीर्थराजका फल नहीं होता ॥ ५४ ॥ इस कारण मेरी आज्ञासे साक्षात् विष्णुभगवान् मनके उद्देश्यकी की हुई नवीन सृष्टिको रचकर निश्चयही सिद्धिको
प्राप्त हुए ॥ ५५ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार काशीजीका बहुत माहात्म्य है तथा सत्पुरुषोंको भुक्ति मुक्तिके देनेवाले विश्वेश्वर महादेवका

भी बडा माहात्म्यहै ॥ ५६ ॥ अब मैं इसके आगे त्र्यम्बक देवका माहात्म्य वर्णन करताहूं जिसको सुनकर मनुष्य क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे छूटता है ॥ ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को०रु० काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! मैं पापोंके नाश करनेवाली कथाको कहता हूं सो आप सुनैं जैसा कि, मैंने श्रेष्ठ गुरु व्यासजीसे सुना है सो आपसे वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ पहले गौतमनामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, उनकी बडी धार्मिक अहल्यानामवाली स्त्री थी ॥ २ ॥ दक्षिणदिशाकी ओर जो ब्रह्मनामक पर्वत है वहां

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं त्र्यंबकस्य च ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतामृषयः श्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ कथयामि यथा व्यासात्सद्गुरोश्च श्रुता मया ॥ १ ॥ पुरा ऋषिवरश्चासीद्गौतमो नाम विश्रुतः ॥ अहल्या नाम तस्यासीत्पत्नी परमधार्मिकी ॥ २ ॥ दक्षिणस्यां दिशि हि यो गिरिर्ब्रह्मेति संज्ञकः ॥ तत्र तेन तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तथा ॥ ३ ॥ कदाचिच्च ह्यनावृष्टिरभवत्तत्र सुव्रताः ॥ वर्षाणां च शतं रौद्री लोका दुःखमुपागताः ॥ ४ ॥ आर्द्रं च पल्लवं न स्म दृश्यते पृथिवीतले ॥ कुतो जलं विदृश्येत जीवानां प्राणधारकम् ॥ ५ ॥ तदा ते मुनयश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ॥ पक्षिणश्च मृगास्तत्र गताश्चैव दिशो दश ॥ ६ ॥ तां दृष्ट्वा चर्षयो विप्राः प्राणायामपरायणाः ॥ ध्यानेन च तदा केचित्कालं निन्युस्सुदारुणम् ॥ ७ ॥ गौतमोऽपि स्वयं तत्र वरुणार्थे तपश्शुभम् ॥ चकार चैव षण्मासं प्राणायामंपरायणः ॥ ८ ॥

उन ऋषिने दशसहस्र वर्ष तप किया ॥ ३ ॥ हे शोभनव्रतवाले ऋषियो ! एक समय वहां सौ वर्षतक भयानक अनावृष्टि हुई उससे सब लोग दुःखको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ पृथ्वीपर गीलापन तथा पत्ता भी नहीं दीखताथा और जीवोंके प्राणोंका आश्रयरूप जलभी कहीं दिखाई नहीं देताथा ॥ ५ ॥ उस समय वहांके निवासी मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग आदि सब चारों ओरको चले गये ॥ ६ ॥ ऐसी भयंकर अनावृष्टिको देखकर ऋषि तथा ब्राह्मण प्राणायाममें तत्पर हुये, कोई २ ध्यानसे कठिन समयको बिताने लगे ॥ ७ ॥ गौतमजीने भी वहां प्राणायाममें तत्परहो वरुणदेवताके प्रसन्न होनेको छैः

मास पर्य्यन्त शुभ तप किया ॥ ८ ॥ तब प्रसन्नहुए वरुणजी उनको वर देनेको आये मैं प्रसन्नहूं वर मांगो वरदान दूंगा ऐसा वचन बोले ॥ ९ ॥
हे द्विजो ! उस समय गौतमजीने उनसे वर्षा होनेकी प्रार्थना की, तब वरुणजी उन मुनिसे यह बोले ॥ १० ॥ वरुणजी बोले, मैं दैवकी आज्ञाको लांघकर
वर्षा किस प्रकार करूं आप चतुरहैं और कुछ प्रार्थना कीजिये उसको मैं पूर्ण करूंगा ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन महात्मा वरुणजीका वचन
सुनके परोपकारी गौतममुनि यह वचन बोले ॥ १२ ॥ गौतमजी बोले, हे देवताओंके स्वामी ! यदि आप मुझसे प्रसन्नहैं और मुझे वर देना चाहतेहैं तो

ततश्च वरुणस्तस्मै वरं दातुं समागतः ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि च वचोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥ ततश्च गौतमस्तं वै वृष्टिं च प्रार्थयत्तदा ॥
ततस्स वरुणस्तं वै प्रत्युवाच मुनिं द्विजाः ॥ १० ॥ वरुण उवाच ॥ देवाज्ञां च समुल्लंघ्य कथं कुर्यामहं च ताम् ॥ अन्यत्प्रार्थय सुज्ञोऽ
सि यदहं करवाणि ते ॥ ११ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतद्वचनं तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥ परोपकारी तच्छ्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्र
वीत् ॥ १२॥ ॥ गौतम उवाच ॥ यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम ॥ यदहं प्रार्थयाम्यद्य कर्तव्यं हि त्वया तथा ॥ १३ ॥
यतस्त्वं जलराशीशस्तस्माद्देयं जलं मम ॥ अक्षयं सर्वदेवेश दिव्यं नित्यफलप्रदम् ॥ १४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रार्थितस्तेन
वरुणो गौतमेन वै ॥ उवाच वचनं तस्मै गर्तश्च क्रियतां त्वया ॥ १५ ॥ इत्युक्ते च कृतस्तेन गर्त्तो हस्तप्रमाणतः ॥ जलेन पूरितस्तेन
दिव्येन वरुणेन सः ॥ १६ ॥ अथोवाच मुनिं देवो वरुणो हि जलाधिपः ॥ गौतमं मुनिशार्दूलं परोपकृतिशालिनम् ॥ १७ ॥ वरुण
उवाच ॥ अक्षय्यं च जलं तेऽस्तु तीर्थभूतं महामुने ॥ तव नाम्ना च विख्यातं क्षितावेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥

जो मैं प्रार्थना करता हूं उसको वैसाही पूर्ण करैं ॥ १३ ॥ हे सब देवताओंके स्वामी ! कारण कि, आप जलराशिके स्वामी हैं इससे मुझे जल देवैं कारण
कि जलदान करना नित्य अक्षय तथा दिव्य फलका देनेवाला है ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन गौतम से प्रार्थना कियेहुये वरुणने उनसे यह वचन
कहा कि, तुम एक गढा खोदो ॥ १५ ॥ ऐसा कहनेपर गौतमने हाथभर गहरा गढा किया तब उन दिव्य वरुणजीने उसमें जलभर दिया ॥ १६ ॥
तब जलके स्वामी वरुण देवताने परोपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतम मुनिसे यह कहा ॥ १७ ॥ वरुणजी बोले, हे महामुने ! तुम्हारा यह गर्त्त अक्षय्य

जलवाला तीर्थ होगा तथा पृथिवीपर यह तीर्थ तुम्हारे नामसे विख्यात होगा ॥ १८ ॥ यहां पर दान हवन तथा तप किया हुआ देवताओंका पूजन तथा पितरोंका श्राद्ध किया हुआ सबही अक्षय फल देनेवाला होगा ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन महर्षिसे स्तुति किये हुये वरुणजी ऐसा वर देकर अन्तर्धान होगये गौतम मुनिने भी औरोंका उपकार करके सुख पाया ॥ २० ॥ बडे पुरुषोंका आश्रय मनुष्योंको गौरव प्राप्तिका हेतु होताहै इस कारण महात्मालोग बडोंके स्वरूपको देखते हैं और नीच पुरुष सज्जनोंकी संगति नहीं करते ॥ २१ ॥ यह प्राणी जैसे मनुष्यको सेवन करता है वैसेही फलको पाता है. बडोंकी सेवासे बडापन तथा नीचोंकी सेवा करनेसे नीचता प्राप्त होतीहै ॥ २२ ॥ सिंहके मन्दिरकी सेवा करनी मोतियोंको देनेवाली होतीहै,

अत्र दत्तं हुतं तप्तं सुराणां यजनं कृतम् ॥ पितॄणां च कृतं श्राद्धं सर्वमेवाक्षयं भवेत् ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवस्स्तुत
स्तेन महर्षिणा ॥ गौतमोऽपि सुखं प्राप कृत्वान्योपकृतिं मुनिः ॥ २० ॥ महतो ह्याश्रयः पुंसां महत्त्वायोपजायते ॥ महांतस्तत्स्वरूपं
च पश्यंति नेतरेऽशुभाः ॥ २१ ॥ यादृङ्नरं च सेवेत तादृशं फलमश्नुते ॥ महतस्सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा ॥ २२ ॥ सिंहस्य
मंदिरे सेवा मुक्ताफलकरी मता ॥ शृगालमंदिरे सेवा त्वस्थिलाभकरी स्मृता ॥२३॥ उत्तमानां स्वभावोयं परदुःखासहिष्णुता ॥ स्वयं
दुःखं च संप्राप्तं मन्यतेन्यस्य वार्यते ॥ २४ ॥ वृक्षाश्च हाटकं चैव चंदनं चेक्षुकस्तथा ॥ एते भुवि परार्थे च दक्षा एवं न केचन ॥२५॥
दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेंद्रियः ॥ एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्य्यते मही ॥ २६ ॥ ततश्च गौतमस्तत्र जलं प्राप्य सुदुर्लभम् ॥
नित्यनैमित्तिकं कर्म चकार विधिवत्तदा ॥२७॥ ततो व्रीहीन्यवांश्चैव नीवारानप्यनेकधा ॥ वापयामास तत्रैव हवनार्थं मुनीश्वरः ॥२८॥

गीदडके स्थानकी सेवा करनी अस्थियोंका लाभ करनेवाली कही है ॥ २३ ॥ उत्तम पुरुषोंका यह स्वभाव होताहै कि, वे दूसरोंके दुःखको नहीं सह सकते अपने आप दुःख पाना अच्छा मानते हैं और दूसरोंका दुःख दूर करते हैं ॥ २४ ॥ वृक्ष, बाजार, चंदन, गन्ना, तथा यह सब पृथिवीपर दूसरोंके निमित्तही बनेहैं और कोई नहीं ॥ २५ ॥ दया करनेवाले, अभिमान न करनेवाले, तथा उपकारी, जितेन्द्रिय, इन चारों पुण्यके स्तम्भोंसे भूमि धारण होरहीहै ॥ २६ ॥ उस समय गौतमने वहां बडी कठिनतासे जलपाय विधिपूर्वक नित्यनैमित्तिक शौच स्नानादि कर्म किया ॥ २७ ॥ तत्पश्चात् मुनीश्वरने

वहां व्रीहि (जौ) मुनि अन्न आदि अनेकप्रकारके धान्योंको हवन करनेके निमित्त बुवाया ॥ २८ ॥ तब वहाँपर अनेक प्रकारका अन्न, तथा नानाप्रकारके वृक्ष, भिन्न २ प्रकारके पुष्प, फल इत्यादि अनेक वस्तु होगईं ॥ २९ ॥ यह सुनकर वहां और भी सहस्रों ऋषि आये तथा अनेक पशु पक्षी और जीवभी प्राप्त हुये ॥ ३० ॥ भूमंडलमें वह वन अतिसुन्दर हुआ क्षय न होनेवाले जलके संयोगसे उत्पन्नहुई धान्य फलादि सम्पत्तिसे वहांके निवासियोंको अनावृष्टि दुःख देनेवाली नहीं हुई ॥ ३१ ॥ उस वनमें श्रेष्ठ कर्मोंमें तत्परहुए अनेकों ऋषि अपने शिष्य तथा भाई पुत्रोंसहित वहां निवास करने लगे ॥

धान्यानि विविधानीह वृक्षाश्च विविधास्तथा ॥ पुष्पाणि च फलान्येव ह्यासंस्तत्राप्यनेकशः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा ऋषयश्चान्ये तत्रायातास्सहस्रशः ॥ पशवः पक्षिणश्चान्ये जीवाश्च बहवोऽगमन् ॥ ३० ॥ तद्वनं सुंदरं ह्यासीत्पृथिव्या मंडले परम् ॥ तदक्षयकरायोगादनावृष्टिर्न दुःखदा ॥ ३१ ॥ ऋषयोऽपि वने तत्र शुभकर्मपरायणाः ॥ वासं चक्रुरनेके च शिष्य भार्य्यासुतान्विताः ॥ ३२ ॥ धान्यानि वापयामासुः कालक्रमणहेतवे ॥ आनंदस्तद्वने ह्यासीत्प्रभावाद्गौतमस्य च ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ कदाचिद्गौतमेनैव जलार्थं प्रेषिता निजाः ॥ शिष्यास्तत्र गता भक्त्या कमंडलुकरा द्विजाः ॥ १ ॥ शिष्याञ्जलसमीपे तु गतान्दृष्ट्वा न्यषेधयन् ॥ जलार्थमागतास्तत्र चर्षिपत्न्योप्यनेकशः ॥ २ ॥ ऋषिपत्न्यो वयं पूर्वं ग्रहीष्यामो विदूरतः ॥ पश्चाच्चैव जलं ग्राह्यमित्येवं पर्यभर्त्सयन् ॥ ३ ॥

॥ ३२ ॥ अपने समय काटनेके निमित्त अन्नको बोनेलगे गौतमजीके प्रभावसे उस वनमें बडा आनंद होने लगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! किसी समय गौतम मुनिने अपने शिष्योंको जल लानेके निमित्त भेजा तब वे कमंडलु (पात्र) हाथमें लिये भक्तिसे गर्तपर गये ॥ १ ॥ उस समय वहां जल लेनेके निमित्त आईहुईं अनेक ऋषियोंकी स्त्रियोंने जलके समीप गयेहुये उन शिष्योंको देखकर जल लेनेका निषेध किया ॥ २ ॥ पहले हम ऋषिपत्नी जलको भरलें पीछे तुम दूरसे जल

लेना इस प्रकार उन्हें ललकारने लगीं ॥ ३ ॥ तब उन शिष्योंने वहांसे लौटकर सब वृत्तांत ऋषिकी स्त्रीसे निवेदन किया फिर वह गौतमकी स्त्री उन सबोंको धैर्य देकर स्वयं उनके साथ जल लेनेको गईं ॥ ४ ॥ उस तपस्विनीने जल लेकर उन गौतम मुनिको दिया इसी प्रकार वह श्रेष्ठ ऋषि नित्य उस जलसे निर्वाह करनेलगे ॥ ५ ॥ उन पूर्वोक्त ऋषिपत्नियोंने क्रोध करके उस गौतमकी स्त्रीको ललकारा और वे सब दुष्ट आशयवाली स्त्रियें लौटकर अपनी अपनी पर्णशालामें गईं ॥ ६ ॥ तब उन कुटिलचित्तवालीं स्त्रियोंने वह सब वृत्तान्त विरुद्ध (उलटा) अपने अपने स्वामियोंके आगे निवेदन किया ॥ ७ ॥

परावृत्य तदा तैश्च ऋषिपत्न्यै निवेदितम् ॥ सा चापि तान्समादाय समाश्वास्य च तैः स्वयम् ॥ ४ ॥ जलं नीत्वा ददौ तस्मै गौतमाय तपस्विनी ॥ नित्यं निर्वाहयामास जलेन ऋषिसत्तमः ॥ ५ ॥ ताश्चैवमृषिपत्न्यस्तु क्रुद्धास्तां पर्यभर्त्सयन् ॥ परावृत्य गतास्स्वांस्तूटजान्कुटिलाशयाः ॥ ६ ॥ स्वाम्यग्रे विपरीतं च तद्वृत्तं निखिलं ततः ॥ दुष्टाशयाभिःस्त्रीभिश्च ताभिर्वै विनिवेदितम् ॥ ७ ॥ अथ तासां वचः श्रुत्वा भाविकर्मवशात्तदा ॥ गौतमाय च संक्रुद्धाश्चासंस्ते परमर्षयः ॥ ८ ॥ विघ्नार्थं गौतमस्यैव नानापूजोपहारकैः ॥ गणेशं पूजयामासुस्संक्रुद्धास्ते कुबुद्धयः ॥ ९ ॥ आविर्बभूव च तदा प्रसन्नो हि गणेश्वरः ॥ उवाच वचनं तत्र भक्ताधीनः फलप्रदः ॥ १० ॥ गणेश उवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत यूयं किं करवाण्यहम् ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा ऋषयस्तेऽब्रुवंस्तदा ॥ ११ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया यदि वरो देयो गौतमस्स्वाश्रमाद्बहिः ॥ निष्कास्य नो ऋषिभिः परिभर्त्स्य तथा कुरु ॥ १२ ॥

तब भावी कर्मके वशमें हो वे सब ऋषि अपनी अपनी स्त्रियोंके वचन सुनकर गौतमके ऊपर क्रोधित हुये ॥ ८ ॥ और क्रोधित हुये उन कुबुद्धिवाले ऋषियोंने गौतमके विघ्नके निमित्त अनेक पूजाके उपहारोंसहित गणेशजीका पूजन किया ॥ ९ ॥ तब प्रसन्न होकर गणेशजी प्रगट हुए और भक्तोंके आधीन होकर फलके देनेवाले गणेशजी यह वचन बोले ॥ १० ॥ गणेशजी बोले, मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम वर मांगो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूं ? उनका ऐसा वचन सुनकर वे ऋषि बोले ॥ ११ ॥ ऋषि बोले, यदि आप वर देना चाहतेहैं तो ऋषियोंसे धिक्कार दिलाकर गौतमको इस स्थानसे बाहर निकालो इसी

वरको आप पूर्ण करैं ॥ १२ ॥ सूतजी बोले, इसप्रकार उन ऋषियोंसे प्रार्थना कियेहुये वह गणेशजी हँसकर बोले, और सत्पुरुषोंके गति देनेवाले गजानन प्रीतिसे उनको समझाने लगे ॥ १३ ॥ गणेशजी बोले, हे सम्पूर्ण ऋषियो ! सुनो इस समय तुम उचित नहीं करतेहो, अपराधके विना उनसे क्रोध करनेमें हानि है ॥ १४ ॥ जिन्होंने पहले (अनावृष्टिकालमें) बडा उपकार किया है उनको दुःख देना हितकारी नहीं है यदि उनको दुःख दियाजायगा तो यहाँ तुम्हारा नाश होगा ॥ १५ ॥ श्रेष्ठ इस प्रकारका श्रेष्ठ तप करके उत्तम फल प्राप्त करतेहैं उससे विपरीत तुम स्वयं शुभफल त्यागके अपना अहित

सूत उवाच ॥ स एवं प्रार्थितस्तैस्तु विहस्य वचनं पुनः ॥ प्रोवाचेभमुखः प्रीत्या बोधयंस्तान्सतां गतिः ॥ १३ ॥ गणेश उवाच ॥ श्रूयतामृषयस्सर्वे युक्तं न क्रियतेऽधुना ॥ अपराधं विना तस्मै क्रुध्यतां हानिरेव च ॥ १४ ॥ उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं न हि ॥ यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह ॥ १५ ॥ ईदृशं च तपः कृत्वा साध्यते फलमुत्तमम् ॥ शुभं फलं स्वयं हित्वा साध्यते नाहितं पुनः ॥ १६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य ते मुनिसत्तमाः ॥ बुद्धिमोहं तदा प्राप्ता इदमेव वचोऽब्रुवन् ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कर्तव्यं हि त्वया स्वामिन्निदमेव न चान्यथा ॥ इत्युक्तस्तु तदा देवो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ गणेश उवाच ॥ असाधुस्साधुतां चैवसाधुश्चासाधुतां तथा ॥ कदाचिदपि नाप्नोति ब्रह्मोक्तमिति निश्चितम् ॥ १९ ॥ यदा च भवतां दुःखं जातं चानशनात्पुरा ॥ तदा सुखं प्रदत्तं वै गौतमेन महर्षिणा ॥ २० ॥ इदानीं वै भवद्भिश्च तस्मै दुःखं प्रदीयते ॥ नैतद्युक्ततमं लोके सर्वथा सुविचार्यताम् ॥ २१ ॥

साधते हो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा गणेशजीका वचन सुनके वे मुनिश्रेष्ठ उस समय बुद्धिके अज्ञानमें प्राप्तहुये फिर भी इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, हे स्वामिन् ! आप इसी वचनको पूर्ण कीजिये हम और कुछ नहीं चाहते यह सुनकर गणेश देवता यह वचन बोले ॥ १८ ॥ गणेशजी बोले, दुर्जन पुरुष सज्जनताको तथा सज्जन पुरुष दुष्टताको कदापि नहीं प्राप्त होते ऐसा ब्रह्माजीने कहा है सो निश्चय जानो ॥ १९ ॥ प्रथम जिस समय तुम सबोंको बिना भोजनसे दुःख हुआ उस समय महर्षि गौतमजीने तुम्हैं सुख दिया ॥ २० ॥ इस समय आप सब उनको दुःख

देतेहैं संसारमें यह सब प्रकार योग्य नहीं है विचार देखो ॥ २१ ॥ तुम सब स्त्रीके बलसे मोहित हो इस कारण मेरे वचनको नहीं मानते, उन गौतमका यह भी हित ही होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ फिर भी वह श्रेष्ठ मुनि आपको निश्चय सुख देंगे अतः उनको दुःख देना उचित नहीं है और वरदान मांगो ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, यद्यपि उन महात्मा गणेशजीने उन ऋषियोंसे यह वचन कहा तो भी उन्होंने न माना ॥ २४ ॥ उस समय भक्तिकी आधीनतासे वशीभूतहुए शिवजीके पुत्र गणेशजी उन दुष्टात्मा ऋषियोंसे उदासीन मनसे बोले ॥ २५ ॥ गणेशजी बोले, आप जो प्रार्थना करते हैं मैं

स्त्रीबलान्मोहिता यूयं न मे वाक्यं करिष्यथ ॥ एतद्धिततमं तस्य भविष्यति न संशयः ॥ २२ ॥ पुनश्चायमृषिश्रेष्ठो दास्यते वस्सुखं ध्रुवम् ॥ तारणं न च युक्तं स्याद्वरमन्यं वृणीत वै ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं तेन गणेशेन महात्मना ॥ यद्यप्युक्तमृषिभ्यश्च तदप्येते न मेनिरे ॥ २४ ॥ भक्ताधीनतया सोथ शिवपुत्रोब्रवीत्तदा ॥ उदासीनेन मनसा तानृषीन्दुष्टशेमुषीन् ॥ २५ ॥ ॥ गणेश उवाच ॥ भवद्भिः प्रार्थ्यते यच्च करिष्येऽहं तथा खलु ॥ पश्चाद्भावि भवेदेव इत्युक्त्वांतर्दधे पुनः ॥ २६ ॥ गौतमस्स न जानाति मुनीनां वै दुराशयम् ॥ आनन्दमनसा नित्यं पत्न्या कर्म चकार तत् ॥ २७ ॥ तदन्तरे च यज्जातं चरितं वरयोगतः ॥ तद्दुष्टर्षिप्रभावात्तु श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ २८ ॥ गौतमस्य च केदारे तत्रासन्व्रीहयो यवाः ॥ गणेशस्तत्र गौर्भूत्वा जगाम किल दुर्बला ॥ २९ ॥ कंपमाना च सा गत्वा तत्र तद्वरयोगतः ॥ व्रीहीन्संभक्षयामास यवांश्च मुनिसत्तमाः ॥ ३० ॥

निश्चयही उसी प्रकार करूंगा, पीछेसे जो होनहारहै सो होगा यह कहकर फिर अन्तर्धान होगये ॥ २६ ॥ वह गौतमजी उन मुनियोंके कपटभेदको नहीं जानतेथे आनंदसे अपनी स्त्रीके साथ नित्य कर्म करते थे ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वरो ! इसके पश्चात् उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे वरदानके कारण जो चरित्र हुआ सो सुनो ॥ २८ ॥ गौतमके केदारतीर्थके किनारे जो व्रीहि (जौ) जमेहुए थे वहांपर गणेशजी दुर्बल गौ बनके गये ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस वरके योगसे कांपती हुई वह गाय वहां जाकर जौ तथा व्रीहि (धानोंको) भक्षण करने लगी ॥ ३० ॥

दैववश इसी अवसरमें वहां गौतमजी आगये और उन दयालु मुनिने उस समय उस गायको तृणके स्तम्बसे निवारण किया ॥ ३१ ॥ उस तृणके स्तंबसे स्पर्श कीहुई वह गाय पृथिवीपर गिरगई और उस ऋषिके देखतेही देखते उसी समय मरगई ॥ ३२ ॥ तब कपटसे गुप्त रूपवाले वे ऋषि तथा दुष्ट ऋषिपत्नी सब परस्पर मिलके कहनेलगीं कि गौतमने यह क्या किया ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! गौतम जीभी अहल्याको बुलाकर विस्मितहो दुःखी चित्तसे यह बोले ॥ ३४ ॥ गौतमजी बोले, हे देवि ! क्या हुआ ! क्यों शिवजी कुपित होगये अब क्या करना चाहिये ? कहाँ जाँय यह गौकी हत्या लगी ॥

एतस्मिन्नन्तरे दैवाद्गौतमस्तत्र चागतः ॥ स दयालुस्तृणस्तम्बैर्वारयामास तां तदा ॥ ३१ ॥ तृणस्तंबेन सा स्पृष्टा पपात पृथिवी तले ॥ मृता च तत्क्षणादेव तदृषेः पश्यतस्तदा ॥ ३२ ॥ ऋषयश्छन्नरूपास्ते ऋषिपत्न्यस्तथाशुभाः ॥ ऊचुस्तत्र तदा सर्वे किं कृतं गौतमेन च ॥ ३३ ॥ गौतमोऽपि तथाहल्यामाहूयासीत्सुविस्मितः ॥ उवाच दुःखतो विप्रा दूयमानेन चेतसा ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच ॥ किं जातं च कथं देवि कुपितः परमेश्वरः ॥ किं कर्त्तव्यं क्व गन्तव्यं हत्या च समुपस्थिता ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्रा गौतमं पर्यभर्त्सयन् ॥ विप्रपत्न्यस्तथाऽहल्यां दुर्वचोभिर्व्यथां ददुः ॥ ३६ ॥ दुर्बुद्धयश्च तच्छिष्यास्सुतास्तेषां तथैव च ॥ गौतमं परिभर्त्स्यैव प्रत्यूचुर्धिग्वचो मुहुः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुखं न दर्शनीयं ते गम्यतां गम्यतामिति ॥ दृष्ट्वा गोघ्नमुखं सद्यस्सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ ३८ ॥ यावदाश्रममध्ये त्वं तावदेव हविर्भुजः ॥ पितरश्च न गृह्णंति ह्यस्मद्दत्तं हि किञ्चन ॥ ३९ ॥ तस्माद्गच्छान्यतस्त्वं च परिवारसमन्वितः ॥ विलंबं कुरु नैव त्वं धेनुहन्पापकारक ॥ ४० ॥

॥ ३५ ॥ सूतजी बोले, इसी अवसरमें उन ऋषि योंने गौतमको ललकारा तथा उनकी स्त्रियोंने अहल्याको खोटे वचनोंसे दुःख दिया ॥ ३६ ॥ दुष्टात्मा उनके शिष्य तथा ऋषियोंके पुत्रोंने गौतमको ललकारके तथा वारम्वार धिक्कारके यह वचन कहे ॥ ३७ ॥ ऋषि बोले, तुम्हारा मुख देखना योग्य नहीं है यहांसे चलेजाओ, गोहत्या करनेवाले मनुष्यके मुखको देखके तत्क्षण सचैल स्नान करै ॥ ३८ ॥ जबतक तुम आश्रमके मध्यमें रहोगे तबतक देवता तथा पितर हमारे दियेहुए बलि तर्पणआदि कुछ नहीं ग्रहण करैंगे ॥ ३९ ॥ हे गोहत्यारूपपापके करनेवाले गौतम ! इस कारण तुम परिवारसहित

यहांसे दूसरी जगह चलेजाओ देर मत करो ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, यह कहके उन सबोंने उनको पाषाणोंसे ताडन किया तथा गौतम और अहल्याको कठोर वचनोंसे दुःख दिया ॥ ४१ ॥ तब उन दुष्टोंसे ताडन कियेहुए गौतम मुनि यह बोले कि हे मुनियो ! मैं यहांसे जाताहूं और जगह निवास करूंगा ॥ ४२ ॥ उस समय यह कहके गौतमजी उस स्थानसे निकल गये और उनके कहनेसे जाकर एककोस दूरपर आश्रम बनाया और वहां रहनेलगे ॥ ४३ ॥ जबतक हमैं शाप रहैगा तबतक कुछ नहीं करना योग्य है दैविक तथा पितरसम्बन्धी वैदिक कर्ममें कुछ अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ अर्धमास

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते च तं सर्वे पाषाणैस्समताडयन् ॥ व्यथां ददुरतीवास्मै त्वहल्यां च दुरुक्तिभिः ॥ ४१ ॥ ताडितो भर्त्सितो दुष्टैर्गौतमो गिरमब्रवीत् ॥ इतो गच्छामि मुनयो ह्यन्यत्र निवसाम्यहम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा गौतमस्तस्मात्स्थानाच्च निर्गतस्तदा ॥ गत्वा क्रोशं तदा चक्रे ह्याश्रमं तदनुज्ञया ॥ ४३ ॥ यावच्चैवाभिशापो वै तावत्कार्य्यं न किंचन ॥ न कर्मण्यधिकारोऽस्ति दैवे पित्र्येऽथ वैदिके ॥४४॥ मासार्द्धं च ततो नीत्वा मुनीन्संप्रार्थयत्तदा ॥ गौतमो मुनिवर्य्यस्स तेन दुःखेन दुःखितः ॥ ४५ ॥ गौतम उवाच ॥ अनुकंप्यो भवद्भिश्च कथ्यतां क्रियते मया ॥ यथा मदीयं पापं च गच्छत्विति निवेद्यताम् ॥ ४६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते तदा विप्रा नोचुश्चैव परस्परम् ॥ अत्यंतं सेवया पृष्टा मिलिता ह्येकतस्स्थिताः ॥४७॥ गौतमो दूरतः स्थित्वा नत्वा तानृषिसत्तमान् ॥ पप्रच्छ विनयाविष्टः किं कार्यं हि मयाधुना ॥ ४८ ॥ इत्युक्ते मुनिना तेन गौतमेन महात्मना ॥ मिलितास्सकलास्ते वै मुनयोवाक्यमब्रुवन् ॥ ४९ ॥

वहां काटकर फिर उस दुःखसे व्याकुलहुए मुनिश्रेष्ठ गौतमजीने उन मुनियोंसे प्रार्थना की ॥ ४५ ॥ गौतम बोले, आप मेरेऊपर कृपा करैं और ऐसा उपाय बतावैं कि जिसप्रकार मेरा पाप दूरहो उसे मैं पूर्णकरूं ॥ ४६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मण आपसमें मिलके कुछ न बोले, फिर उन्होंने इकट्ठे होके मिलेहुए उन ऋषियोंसे अत्यन्त सेवासे पूंछा ॥ ४७ ॥ गौतमने दूर स्थित होके उन ऋषियोंको नमस्कार करके विनयके साथ उनसे पूंछा कि अब मुझे क्या करना योग्य है ॥ ४८ ॥ उन महात्मा गौतम मुनिके ऐसा कहनेपर वे सब मुनि मिलकर यह वचन बोले ॥ ४९ ॥ ऋषि बोले, प्रायश्चित्तके

बिना कदापि शुद्धि नहीं होती इसकारण तुम देहशुद्धिके अर्थ अवश्य प्रायश्चित्त करो ॥ ५० ॥ अपने पापको प्रकाश करके तीनवार सम्पूर्ण पृथिवीमें परिक्रमा करके फिर यहां आके महीनेभरतक व्रत करो ॥ ५१ ॥ और इस ब्रह्माके पर्वतकी एकसौएकवार परिक्रमा करके तुम्हारी शुद्धि होगी॥५२॥ अथवा तुम गंगाजीको तपसे लाकर गंगास्नान करो और कोटिसंख्याक पार्थिव लिंगोंको बनाके शिवदेवका पूजन करो ॥५३॥ पहले एकसौएक वार उक्त पर्वतकी परिक्रमा करो फिर गंगामें स्नान करके शुद्धि होगी ॥ ५४ ॥ तथा सौ घडोंसे पार्थिव लिंगको स्नान कराके तब निष्कृति (शुद्धि) होगी, इस

ऋषय ऊचुः ॥ निष्कृतिं हि विना शुद्धिर्जायते न कदाचन ॥ तस्मात्त्वं देहशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचर ॥ ५० ॥ त्रिवारं पृथिवीं सर्वां क्रम पापं प्रकाशयन् ॥ पुनरागत्य चात्रैव चर मासव्रतं तथा ॥ ५१ ॥ शतमेकोत्तरं चैव ब्रह्मणोऽस्य गिरेस्तथा ॥ प्रक्रमणं विधायैवं शुद्धिस्ते च भविष्यति ॥ ५२ ॥ अथ वा त्वं समानीय गंगास्नानं समाचर ॥ पार्थिवानां तथा कोटिं कृत्वा देवं निषेवय ॥ ५३ ॥ गंगायां च ततः स्नात्वा पुनश्चैव भविष्यति ॥ पुरा दश तथा चैकं गिरेस्त्वं क्रमणं कुरु ॥ ५४ ॥ शतकुंभैस्तथा स्नात्वा पार्थिवं निष्कृतिर्भवेत् ॥ इति तै ऋषिभिः प्रोक्तस्तथेत्योमिति तद्वचः ॥ ५५ ॥ पार्थिवानां तथा पूजां गिरेः प्रक्रमणं तथा ॥ करिष्यामि मुनि श्रेष्ठा आज्ञया श्रीमतामिह ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा सर्षिवर्यश्च कृत्वा प्रक्रमणं गिरेः ॥ पूजयामास निर्माय पार्थिवान्मुनिसत्तमः ॥ ५७ ॥ अहल्या च ततस्साध्वी तच्च सर्वं चकार सा ॥ शिष्याश्च प्रतिशिष्याश्च चक्रुस्सेवां तयोस्तदा ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

प्रकार उन ऋषियोंके कहने पर बहुत अच्छा यह गौतमने कहा ॥ ५५॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं तुम्हारी आज्ञासे पार्थिवपूजाको तथा पर्वतकी परिक्रमाको करूंगा ॥ ५६ ॥ यह कहके उन श्रेष्ठ गौतम ऋषिने पर्वतकी परिक्रमा करके पार्थिवलिंगोंका निर्माण करके पूजन किया ॥५७ ॥ फिर उस पतिव्रता अहल्याने वह सब पूजनादि किया, उस समय उनके शिष्य तथा शिष्योंके शिष्य, उन दोनोंकी सेवा करनेलगे ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सूतजी बोले, हे द्विजो ! उस समय स्त्रीके सहित गौतमजीके ऐसा करनेपर प्रसन्न हुए शिवजी अपने गणोंके सहित प्रगटहुये ॥ १ ॥ तब प्रसन्नहुए शिवजीने
कहा हे मुने ! वर मांगो मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्नहूं इस प्रकार दयाके सागर महादेव बोले ॥ २ ॥ तब वह मुनि महात्मा शम्भुके उस सुन्दर स्वरूपको
देखकर भक्तिसे उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नहो स्तुति करनेलगे ॥ ३ ॥ स्तुति करके तथा शिवको प्रणाम करके हाथ जोडके स्थित हुये गौतमजी बोले,
हे देव ! मुझे पापरहित करो इसप्रकार उन ऋषिने कहा ॥४॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन महात्मा गौतम ऋषिका वचन सुनके बडी प्रसन्नतासे आतुरहुए

सूत उवाच ॥ एवं कृते तु ऋषिणा सस्त्रीकेन द्विजाश्शिवः ॥ आविर्बभूव सशिवः प्रसन्नस्सगणस्तदा ॥ १ ॥ अथ प्रसन्नस्स शिवो
वरं ब्रूहि महामुने ॥ प्रसन्नोऽहं सुभक्त्या त इत्युवाच कृपानिधिः ॥ २ ॥ तदा तत्सुंदरं रूपं दृष्ट्वा शंभोर्महात्मनः ॥ प्रणम्य शंकरं
भक्त्या स्तुतिं चक्रे मुदान्वितः ॥ ३ ॥ स्तुत्वा बहु प्रणम्येशं बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः ॥ निष्पापं कुरु मां देवाब्रवीदिति स गौतमः ॥
॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गौतमस्य महात्मनः ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा शिवो वाक्यमुपाददे ॥ ५ ॥ शिव उवाच ॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि निष्पापोऽसिं सदा मुने ॥ एतैर्दुष्टैः किल त्वं च च्छलितोऽसि खिलात्मभिः ॥ ६ ॥ त्वदीयदर्शनाल्लोका
निष्पापाश्च भवंति हि ॥ किं पुनस्त्वं सपापोऽसि मद्भक्तिनिरतस्सदा ॥ ७॥ उपद्रवस्त्वयि मुने यैःकृतस्तु दुरात्मभिः ॥ ते पापाश्च दुरा
चारा हत्यावंतस्त एव हि ॥ ८ ॥ एतेषां दर्शनादन्ये पापिष्ठाः संभवंतु च ॥ कृतघ्नाश्च तथा जाता नैतेषां निष्कृतिः क्वचित् ॥ ९ ॥
सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै तेषां दुश्चरितं तदा ॥ बहूवाच प्रभुर्विप्राः सत्कदोऽसत्सु दंडदः ॥ १० ॥

शिवजी यह वचन बोले ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, हे मुने ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तथा सब प्रकार पापरहित हो, इन दुष्टात्मा पापी ऋषियोंने तुम्हारे
साथ कपट कियाहै ॥ ६ ॥ तुम्हारे दर्शनसे लोग निष्पाप होतेहैं फिर सदा मेरी भक्तिमें तत्परहुये तुम कैसे पापी होसकतेहो ? ॥ ७ ॥ हे मुने ! जिन
दुष्टात्माओंने तुम्हारे साथ उपद्रव किया है वेही पापीहैं तथा दुराचारी हैं वेही हत्या वालेहैं ॥ ८ ॥ उनके देखनेसे और लोग पापी तथा कृतघ्न हुयेहैं
उनका कहीं प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, हे विप्रो ! उस समय प्रभु सत्पुरुषोंको तारने वाले दुर्जनोंको दंड देनेवाले शिवजीने उन गौतमजीसे

उन कपटमुनियोंके बहुत दुश्चारित्र कहे ॥ १० ॥ वह गौतममुनि शिवजीके वचनको सुनके विस्मितहो हाथ जोड भक्तिसे शिवजीको प्रणाम करके फिर बोले ॥ ११ ॥ गौतमजी बोले हे महेश्वर ! उन ऋषियोंने मेरा बहुत उपकार किया, यदि ऐसा वे न करते तो आपका दर्शन कैसे होता ॥ १२ ॥ वे ऋषि धन्यहैं जिन्होंने मेरा अतिकल्याण किया उन्हींके दुःस्वभाव (कर्म) से मेरा बडा स्वार्थ हुआ ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उनका वचन सुन शिवजी अतिप्रसन्न होके शीघ्र गौतमको कृपादृष्टिसे देखकर यह बोले ॥ १४ ॥ शिवजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऋषे ! तुम धन्यहो तथा ऋषियोंमें श्रेष्ठहो

शर्वोक्तमिति स श्रुत्वा सुविस्मितमना ऋषिः ॥ सुप्रणम्य शिवं भक्त्या सांजलिः पुनरब्रवीत् ॥ ११ ॥ गौतम उवाच ॥ ऋषिभि
स्तैर्महेशान ह्युपकारः कृतो महान् ॥ यद्येवं न कृतं तैस्तु दर्शनं ते कुतो भवेत् ॥ १२ ॥ धन्यास्ते ऋषयो यैस्तु मह्यं शुभतरं कृतम् ॥
तद्दुराचरणादेव मम स्वार्थो महानभूत् ॥ १३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं तद्वचश्श्रुत्वा सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ गौतमं प्रत्युवाचाशु
कृपादृष्ट्या विलोक्य च ॥ १४ ॥ शिव उवाच ॥ ऋषिधन्योसि विप्रेंद्र ऋषिश्रेष्ठतरोऽसि वै ॥ ज्ञात्वा मां सुप्रसन्नं हि वृणु त्वं वरमु
त्तमम् ॥ १५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ गौतमोऽपि विचार्य्यैवं लोके विश्रुतमित्युत ॥ अन्यथा न भवेदेव तस्मादुक्तं समाचरेत् ॥ १६ ॥
निश्चित्यैवं मुनिश्रेष्ठो गौतमश्शिवभक्तिमान् ॥ सांजलिर्नतशीर्षो हि शंकरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ ॥ गौतम उवाच ॥ सत्यं नाथ
ब्रवीषि त्वं तथापि पंचभिः कृतम् ॥ नान्यथा भवतीत्यत्र यज्जातं जायतां तु तत् ॥ १८ ॥ यदि प्रसन्नो देवेश गंगा च दीयतां मम ॥
कुरु लोकोपकारं हि नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥

मुझे प्रसन्न जानकर उत्तम वर मांगो ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, गौतम मुनिने अपने चित्तमें यह विचारा कि—संसारमें ऐसा मेरा पाप प्रसिद्ध होगया है वह दूर नहीं होसकता है इस कारण जो मैंने सबोंके सामने कहा है उसे पूर्ण करना चाहिये ॥ १६ ॥ शिवकी भक्ति करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमजी ऐसा मनमें निश्चय करके हाथ जोड माथेको झुकायके शिवजीसे यह वचन बोले ॥ १७ ॥ गौतमजी बोले, हे स्वामी ! आप सत्य कहतेहैं तोभी जो पंचोंने करदिया वह वैसाही होता है अन्यथा नहीं होता, अब जो कुछ होगया है सो होजानेदो ॥ १८ ॥ हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगा जी दो और

संसारका उपकार करो आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा वचन कहके उनके चरणकमलोंको पकडके गौतमजीने संसारके उपकारकी इच्छासे देवोंके स्वामी शिवको प्रणाम किया ॥ २० ॥ तब उन शंकर देवने जो पृथिवी तथा स्वर्गलोकके सारको निकालके पहले रखाथा॥ ॥ २१ ॥ तथा विवाहमें जो ब्रह्माजीने दियाथा वह जो कुछ शेष गंगाजल बचाथा सो सब भक्तवत्सल शिवजीने उस मुनिको प्रदान किया ॥ २२ ॥ उस समय वहां गंगाजल परम सुन्दर स्त्रीके स्वरूपमें प्रगट हुआ तो श्रेष्ठ ऋषि गौतमने उनकी स्तुति करके प्रणाम किया ॥ २३ ॥ गौतम बोले, हे गंगे !

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं तस्य धृत्वा वै पादपंकजम् ॥ नमश्चकार देवेशं गौतमो लोककाम्यया ॥ २० ॥ ततस्तु शंकरो देवः पृथिव्याश्च दिवश्च सः ॥ सारं चैव समुद्धृत्य रक्षितं पूर्व मेव तत् ॥ २१ ॥ विवाहे ब्रह्मणा दत्तमवशिष्टं च किंचन ॥ तत्तस्मै दत्तवाञ्छंभुर्मुनये भक्तवत्सलः ॥ २२ ॥ गंगाजलं तदा तत्र स्त्रीरूपमभवत्परम् ॥ तस्याश्चैव ऋषिश्रेष्ठः स्तुतिं कृत्वा नतिं व्यधात् ॥ २३ ॥ ॥ गौतम उवाच ॥ धन्यासि कृतकृत्यासि पावितं भुवनं त्वया ॥ मां च पावय गंगे त्वं पतंतं निरये ध्रुवम् ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ शंभुश्चापि तदोवाच सर्वेषां हितकृच्छृणु ॥ गंगे गौतममेनं त्वं पावयस्व मदाज्ञया ॥ २५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंभोश्च गौतमस्य च ॥ उवाचैव शिवं गंगा शिवशक्तिर्हि पावनी ॥ २६ ॥ गंगोवाच ॥ ऋषिं तु पावयित्वाहं परिवारयुतं प्रभो ॥ गमिष्यामि निजस्थानं वचस्सत्यं ब्रवीमि ह ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्युक्तो गंगया तत्र महेशो भक्तवत्सलः ॥ लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगां वचोब्रवीत् ॥ २८ ॥

तुम धन्यहो, कृतकृत्य हो, तुमने सब लोकोंको पवित्र किया है नरकमें गिरेहुये मुझेभी निश्चय पवित्र करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, उस समय सबोंके हितकारी शिवजी बोले, हे गंगे ! सुनो तुम मेरी आज्ञासे इन गौतममुनिको पवित्र करो ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उन गौतम तथा शिवजीका वचन सुनके पवित्र करनेवाली शिवभक्तिसहित गंगाजी शिवजीसे यह वचन बोलीं ॥ २६ ॥ गंगाजी बोलीं, हे स्वामिन् ! मैं परिवार (कुटुंब) सहित गौतम मुनिको पवित्र करके अपने स्थानको चली जाऊंगी यह सत्य २ वचन कहती हूं ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा गंगाजीका वचन सुनके भक्तवत्सल शिवजी

लोकोंके उपकारके निमित्त फिर गंगाजीसे बोले ॥ २८ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! जबतक कलियुग रहै और अट्ठाईसवां वैवस्वतनामक मनु हो तबतक तुम यहां निवास करो ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, स्वामी शंकरका ऐसा वचन सुनके लोकोंको पवित्र करनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोलीं ॥ ३० ॥ गंगाजी बोलीं, हे स्वामिन् ! हे महेश्वर ! यदि मेरा माहात्म्य सबोंसे अधिक होगा, हे त्रिपुरान्तक ! तो मैं पृथिवीमें निवास करूंगी ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! औरभी सुनो मेरे समीपमें अपने गणोंके सहित तथा पार्वतीके समेत आप सुन्दर शरीरसे स्थित हों ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उनका

शिव उवाच ॥ त्वया स्थातव्यमत्रैव व्रजेद्यावत्कलिर्युगः ॥ वैवस्वतो मनुर्देवि ह्यष्टाविंशत्तमो भवेत् ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वामिनश्शंकरस्य तत् ॥ प्रत्युवाच पुनर्गंगा पावनी सा सरिद्वारा ॥ ३० ॥ गंगोवाच ॥ माहात्म्यमधिकं चेत्स्यान्मम स्वामिन्महेश्वर ॥ सर्वेभ्यश्च तदा स्थास्ये धरायां त्रिपुरान्तक ॥ ३१ ॥ किंचान्यच्च शृणु स्वामिन्वपुषा सुन्दरेण ह ॥ तिष्ठ त्वं मत्समीपे वै सगणस्सांबिकः प्रभो ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तस्या वचः श्रुत्वा शंकरो भक्तवत्सलः ॥ लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगा वचोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ शिव उवाच ॥ धन्यासि श्रूयतां गंगे ह्यहं भिन्नस्त्वया न हि ॥ तथापि स्थीयते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा स्वामिनः परमेशितुः ॥ प्रसन्नमानसा भूत्वा गंगा च प्रत्यपूजयत् ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवा ऋषयश्च पुरातनाः ॥ सुतीर्थान्यप्यनेकानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥ ३६ ॥ आगत्य गौतमं सर्वे गंगां च गिरिशं तथा ॥ जयजयेति भाषंतः पूजयामासुरादरात् ॥ ३७ ॥ ततस्ते निर्जरास्सर्वे तेषां चक्रुः स्तुतिं मुदा ॥ करान् बद्धानतस्कंधा हरिब्रह्मादयस्तदा ॥ ३८ ॥

वचन सुनके भक्तवत्सल शिवजी संसारके उपकार करनेके निमित्त फिर गंगाजीसे यह वचन बोले ॥ ३३ ॥ शिवजी बोले, हे गंगे ! तम धन्यहो मैं तुमसे भिन्न नहींहूं तथापि मैं यहां तुम्हारे साथ स्थिति करूंगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, स्वामी शिवजीका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नमनवाली गंगाजीने उनको पूजा ॥ ३५ ॥ इसी अन्तरमें देवता, पूर्वजऋषि, पुरानेतीर्थ, अनेकक्षेत्र आदि सब रूप धारकर वहां आये ॥ ३६ ॥ वहां आके सबोंने गौतम तथा गंगाजी तथा शिवजीकी जयहो जयहो इसप्रकार कह कहकर उन सबोंकी आदरसे पूजा की ॥ ३७ ॥ तब उन संपूर्ण देवताओंने प्रसन्नतासे उन तीनोंकी स्तुतिकी,

तब ब्रह्मा विष्णु आदि देवता हाथजोड अपने कंधेझुकाय पूजनेलगे ॥ ३८ ॥ उस समय उन देवताओंसे प्रसन्नहुई गंगाजी तथा शिवजी यह बोले, हे देवोंमें श्रेष्ठो ! तुम वर मांगो प्रियकामनासे हम सब कुछ देंगे ॥ ३९ ॥ देवता बोले, हे देवोंके स्वामी ! हे शिवजी ! हे गंगे ! यदि तुम दोनों प्रसन्नहो तो हमारे कल्याणके अर्थ तथा मनुष्योंके उपकारके निमित्त कृपाकरके यहां निवास करो ॥ ४० ॥ गंगाजी बोलीं, तुम सब सब संसारके उपकारके निमित्त यहां क्यों नहीं निवास करते मैं गौतम मुनिको पवित्र करके अपने स्थानको चलीजाऊंगी ॥ ४१ ॥ हे देवताओ ! जिसप्रकार तुम सबोंमें मेरा विशेष मान होवै, सब अधिक जानैं, उस प्रकार यदि प्रमाण करो तो मैं निस्सन्देह यहां निवास करूंगी ॥ ४२ ॥ सब देवता बोले, जब जब सबोंकी सहायता

गंगा प्रसन्ना तेभ्यश्च गिरिशश्चोचतुस्तदा ॥ वरं ब्रूत सुरश्रेष्ठा दद्वो वः प्रियकाम्यया ॥ ३९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना
त्वं सरिद्वरे ॥ स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम् ॥ ४० ॥ ॥ गंगोवाच ॥ यूयं सर्वप्रियार्थं च तिष्ठथात्र न किं पुनः ॥
गौतमं क्षालयित्वाहं गमिष्यामि यथागतम् ॥ ४१ ॥ भवत्सु मे विशेषोत्र ज्ञेयश्चैव कथं सुराः ॥ तत्प्रमाणं कृतं चेत्स्यात्तदा तिष्ठाम्यसं
शयम् ॥ ४२ ॥ ॥ सर्वे ऊचुः ॥ सिंहराशौ यदा स्याद्वै गुरुस्सर्वसुहृत्तमः ॥ तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ॥ ४३ ॥
एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह ॥ क्षालितं यद्भवेदेवं मलिनास्स्मः सरिद्वरे ॥ ४४ ॥ तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामस्स
र्वथा प्रिये ॥ त्वत्सकाशं महादेवि प्रोच्यते सत्यमादरात् ॥ ४५ ॥ अनुग्रहाय लोकानामस्माकं प्रियकाम्यया ॥ स्थातव्यं शंकरेणापि
त्वया चैव सरिद्वरे ॥ ४६ ॥ यावत्सिंहे गुरुश्चैव स्थास्यामस्तावदेव हि ॥ त्वयि स्नानं त्रिकालं च शंकरस्य च दर्शनम् ॥ ४७ ॥

करनेवाले बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होंगे तबतब (सिंहकी बृहस्पतिमें) हम सब यहां आवैंगे इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ४३ ॥ हे गंगाजी ! जब ग्यारहवर्षतक संपूर्ण संसारका पाप धुलनेसे हम मलिन होंगे ॥ ४४ ॥ हे प्रिये गंगे ! हे महादेवि ! उस पापके सब प्रकार विनाश करनेके निमित्त आदरसे तुम्हारे समीप हम सब आवैंगे यह सत्य जानो ॥ ४५ ॥ हे गंगाजी ! संसारके ऊपर दया करनेके कारण तथा हमारी भलाई करनेके निमित्त तुमको तथा शिवजीको यहां निवास करना उचितहै ॥ ४६ ॥ जबतक, बृहस्पति सिंहराशिपर रहैंगे तबतक हम यहां निवास करैंगे, तीनोंकाल तुममें स्नान करैंगे और शिवजीका

दर्शन करैंगे ॥ ४७ ॥ हम सब स्नानादि करके निस्सन्देह अपने संपूर्ण पापोंको छुडावेंगे फिर तुम्हारी आज्ञासे अपने २ स्थानोंको चलेजांयगे ॥४८॥
सूतजी बोले, इसप्रकार उन देवताओंसे तथा महर्षि गौतमसे प्रार्थना करनेपर यह शिवजी तथा गंगाजी वहां स्थित हुये ॥ ४९ ॥ वह गंगाजी गौतमीनामसे
प्रसिद्ध हुईं, और वह लिङ्ग त्र्यम्बकनामसे विख्यात हुआ उसके सेवन करनेसे महापाप नाश होजातेहैं ॥ ५० ॥ उस दिनसे लेकर सिंहकी बृहस्पतिमें संपूर्ण
देवता तथा तीर्थ वहां आतेहैं ॥ ५१ ॥ उन गौतमीजीके तटपर पुष्कर आदि सरोवर तथा गंगा आदि नदियां वासुदेव आदि अनेकदेवता निवास करतेहैं

कृत्वा स्वपापं निखिलं विमोक्ष्यामो न संशयः ॥ स्वदेशांश्च गमिष्यामो भवच्छासनतो वयम् ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थि
तस्तैस्तु गौतमेन महर्षिणा ॥ स्थितोऽसौ शंकरः प्रीत्या स्थिता सा च सरिद्वरा ॥ ४९ ॥ सा गंगा गौतमी नाम्ना लिंगं त्र्यंबकमी
रितम् ॥ ख्याता ख्यातं बभूवाथ महापातकनाशनम् ॥ ५० ॥ तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ आयांति सर्वतीर्थानि क्षेत्रा
णि दैवतानि च ॥ ५१ ॥ सरांसि पुष्करादीनि गंमाद्यास्सरितस्तथा ॥ वासुदेवादयो देवाः संति वै गौतमीतटे ॥ ५२ ॥ यावत्तत्र
स्थितानीह तावत्तेषां फलं न हि ॥ स्वप्रदेशे समायातास्तर्ह्येतेषां फलं भवेत् ॥ ५३ ॥ ज्योतिर्लिंगमिदं प्रोक्तं त्र्यंबकं नाम विश्रुतम् ॥
स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम् ॥ ५४ ॥ यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकनामकम् ॥ पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः
प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकं हि पूजितं गौतमेन ह ॥ सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम् ॥ ५६ ॥

॥ ५२ ॥ जबतक पूर्वोक्त देवता आदि गौतमी गंगाजीके समीप स्थित रहतेहैं तबतक उनको फल नहीं मिलता, जब अपने २ स्थलमें आतेहैं तो फल
मिलताहै ॥ ५३ ॥ यह त्र्यम्बकनामक ज्योतिर्लिंग विख्यात है, गौतमी गंगाजीके किनारेपर स्थितहै और संपूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ५४ ॥
जो मनुष्य त्र्यम्बकनामवाले ज्योतिर्लिंगका भक्तिसे दर्शन करताहै, स्तुति करके प्रणाम करताहै, उनकी पूजा करताहै, वह संपूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ॥५५॥
गौतम मुनिने इन ज्योतिर्लिङ्गकी पूजा कीहै यह इस लोकमें सब कामनाके सिद्ध करनेवाले हैं परलोकमें मुक्तिके देनेवालेहैं ॥ ५६ ॥

हे मुनीश्वरो ! जो तुमने पूंछा सो सब मैंने तुमसे कहसुनाया अब क्या और कुछ सुनना चाहतेहो ? उसको हम कहैंगे इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषि बोले, हे स्वामिन् ! गंगाजी कहांसे जलरूप होकर निकलीं, हे प्रभो ! उनका माहात्म्य कहांसे विशेष हुआ सो सब आप कहैं ॥ १ ॥ हे व्यासगुरुवाले सूतजी ! जिन दुष्टात्माओंने गौतममुनिको दुःख दिया उनको क्या फल मिलासो सब कहो ? ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस समय गौतमजीसे इस प्रकार प्रार्थना कीहुई

इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ॥ किमन्यदिच्छथ श्रोतुं तद् ब्रूयां वो न संशयः ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां
कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ गंगा च जलरूपेण कुतो जाता वद
प्रभो ॥ तन्माहात्म्यं विशेषेण कुतो जात वद प्रभो ॥ १ ॥ यैर्विप्रैर्गौतमायेव दुःखं दत्तं दुरात्मभिः ॥ तेषां किं च ततो जातमुच्यतां
व्याससद्गुरो ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संप्रार्थिता गंगा गौतमेन तदा स्वयम् ॥ ब्रह्मणश्च गिरेर्विप्रा द्रुतं तस्मादवातरत् ॥ ३ ॥
औदुंबरस्य शाखायास्तत्प्रवाहो विनिस्सृतः ॥ तत्र स्नानं मुदा चक्रे गौतमो विश्रुतो मुनिः ॥ ४ ॥ गौतमस्य च ये शिष्या अन्ये चैव
महर्षयः ॥ समागताश्च ते तत्र स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ५ ॥ गंगाद्वारं च तन्नाम प्रसिद्धमभवत्तदा ॥ सर्वपापहरं रम्यं दर्शनान्मु
निसत्तमाः ॥ ६ ॥ गौतमस्पर्द्धिनस्ते च ऋषयस्तत्र चागताः ॥ स्नानार्थं तांश्च सा दृष्ट्वा ह्यंतर्धानं गता द्रुतम् ॥ ७ ॥ मामेति गौत
मस्तत्र व्याजहार वचो द्रुतम् ॥ मुहुर्मुहुः स्तुवन् गंगां सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ८ ॥

गंगाजी स्वयं उस ब्रह्मगिरिसे शीघ्र निकलीं ॥ ३ ॥ गूलरकी शाखासे उनका प्रवाह निकला वहां प्रसिद्धहुए गौतम मुनिने आनंदसे स्नान किया ॥ ४ ॥ गौतम ऋषिके शिष्योंने तथा और मुनियोंने वहां आकर प्रसन्नतासे स्नान किया ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उस समय उसका नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हुआ वह रमणीयक्षेत्र दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पापोंको हरण करता है ॥ ६ ॥ गौतमजीके साथ द्वेष करनेवाले वे ऋषिभी स्नान करनेको वहां आये उनको देखकर गंगाजी शीघ्रही अन्तर्धान होगईं ॥७॥ तब वहां गौतमने हाथ जोड माथा नम्र करके वारम्वार गंगाजीकी स्तुति कर ऐसा मत करो, मत करो, इसप्रकार

शीघ्रतासे कहा ॥ ८ ॥ गौतमजी बोले, यह मुनि अभिमान और मदमें अन्धेहुए साधुहैं अथवा असाधुहैं, परन्तु इस (मेरे) पुण्यके प्रभावसे तुम इनको दर्शन दो ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! उस समय आकाशमण्डलसे गंगाजीकी यह वाणी हुई सो गंगाजीके उत्तम वचनको श्रवण करो ॥ १० ॥ यह ऋषि अतिदुष्टहैं, कृतघ्नीहैं, स्वामीके द्रोह करनेवालेहैं, धूर्तहैं, पाखंडीहैं, यह सदा दर्शनकेभी अयोग्यहैं ॥ ११ ॥ गौतमजी बोले, हे माता ! सुनो यह तो बडोंकी वाणी है इस कारण तुमको भगवान् शिवजीका सत्य वचन पालन करना उचितहै ॥ १२ ॥ जो मनुष्य अपकार करनेवालोंमें उपकार करता है मैं

गौतम उवाच ॥ इमे च श्रीमदांधाश्च साधवो वाप्यसाधवः ॥ एतत्पुण्यप्रभावेण दर्शनं दीयतां त्वया ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ ततो वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात् ॥ तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठा गंगावचनमुत्तमम् ॥ १० ॥ एते दुष्टतमाश्चैव कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः ॥ जाल्माः पाखंडिनश्चैव द्रष्टुं वर्ज्याश्च सर्वदा ॥ ११ ॥ गौतम उवाच ॥ मातश्च श्रूयतामेतन्महतां गिर एव च ॥ तस्मात्त्वया च कर्त्तव्यं सत्यं च भगवद्वचः ॥ १२ ॥ अपकारिषु यो लोक उपकारं करोति वै ॥ तन पूतो भवाम्यत्र भगवद्वचनं त्विदम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गौतमस्य महात्मनः ॥ पुनर्वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात् ॥ १४ ॥ कथ्यते हि त्वया सत्यं गौतमर्षे शिवं वचः ॥ तथापि संग्रहार्थं च प्रायश्चित्तं चरंतु वै ॥ १५ ॥ शतमेकोत्तरं चात्र कार्य्यं प्रक्रमणं गिरेः ॥ भवच्छासनतस्त्वेतैस्त्वद्धीनैर्विशेषतः ॥ १६ ॥ ततश्चैवाधिकारश्च जायते दुष्टकारिणाम् ॥ मद्दर्शने विशेषेण सत्यमुक्तं मया मुने ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चक्रुर्वै ते तथाऽखिलाः ॥ संप्रार्थ्य गौतमं दीनाः क्षंतव्यो नोऽपराधकः ॥ १८ ॥

उससे पवित्र होताहूं ऐसा भगवान्का वचन है ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, महात्मा गौतमजीका ऐसा वचन सुन फिरभी आकाशमण्डलसे गंगाजीकी वाणी निकली ॥ १४ ॥ हे गौतम मुने ! तुम सत्यही कल्याणकारी वचन कहतेहो तोभी ये अपने पापोंको दूर करनेके निमित्त प्रायश्चित्त करैं ॥ १५ ॥ तुम्हारी आज्ञासे तथा विशेषकर तुम्हारे आधीन होके इन सबोंको एकसौ एकबार पर्वतकी परिक्रमा करनी चाहिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! तब इन दुष्टात्माओंको मेरे दर्शन करनेका विशेष अधिकार होगा, यह मैंने सत्यसत्य कहा ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा गंगाजीका वचन सुनके उन सब मुनियोंने दीन हो गौतमजीकी

प्रार्थना की और कहा कि हमारा अपराध क्षमा करो ॥ १८ ॥ उनकी आज्ञासे उन्होंने उसी प्रकार किया तब गौतम मुनिने गंगाद्वारसे नीचेके स्थानका
कुशावर्त्तनाम प्रसिद्ध किया ॥ १९ ॥ फिर उन गौतमजीकी प्रसन्नताके कारण वह गंगाजी वहांसे प्रगट हुईं तब वह श्रेष्ठ तीर्थ कुशावर्त्तनामसे विख्यात हुआ
॥ २० ॥ जो मनुष्य वहां स्नान करताहै वह संपूर्ण पापोंको दूरकरके दुर्लभ विज्ञानको प्राप्त हो मोक्षका अधिकारी होताहै ॥ २१ ॥ जो पहले कृतघ्नीथे
वे ऋषि जब गौतमजीसे आपसमें मिले तब बडे लज्जित हुए ॥ २२ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! हमने और प्रकार सुनाहै सो वर्णन करतेहैं कि क्रोधितहुए

एवं कृते तदा तेन गौतमेन तदाज्ञया ॥ कुशावर्तं नाम चक्रे गंगाद्वारादधोगतम् ॥ १९ ॥ ततः प्रादुरभूत्तत्र सा तस्य प्रीतये पुनः ॥
कुशावर्त्तं च विख्यातं तीर्थमासीत्तदुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्र स्नातो नरो यस्तु मोक्षाय परिकल्पते ॥ त्यक्त्वा सर्वानघान्सद्यो विज्ञानं
प्राप्य दुर्लभम् ॥ २१ ॥ गौतमो ऋषयश्चान्ये मिलिताश्च परस्परम् ॥ लज्जितास्ते तदा ये च कृतघ्ना ह्यभवन्पुरा ॥ २२ ॥ ऋषय
ऊचुः ॥ अस्माभिरन्यथा सूत श्रुतं तद्वर्णयामहे ॥ गौतमस्तान्द्विजान् क्रुद्धश्शशापेति प्रबुध्यताम् ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजास्त
दपि सत्यं वै कल्पभेदसमाश्रयात् ॥ वर्णयामि विशेषेण तां कथामपि सुव्रताः ॥ २४ ॥ गौतमोपि ऋषीन्दृष्ट्वा तदा दुर्भिक्षपीडि
तान् ॥ तपश्चकार सुमहद्वरुणस्य महात्मनः ॥ २५ ॥ अक्षय्यं कल्पयामास जलं वरुणमायया ॥ ततो व्रीहीन् यवांश्चैव वापयामास
भूरिशः ॥ २६ ॥ एवं परोपकारी सं गौतमो मुनिसत्तमाः ॥ आहारं कल्पयामास तेभ्यः स्वतपसो बलात् ॥ २७ ॥ कदाचित्त
त्स्त्रियो दुष्टा जलार्थमपमानिताः ॥ ऊचुः पतिभ्यस्ताः क्रुद्धा गौतमेर्ष्याकरं वचः ॥ २८ ॥

गौतमजीने उन ऋषियोंको शाप दियाथा ऐसा जानो ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! हे शोभनव्रतवाले ! वहभी कल्पभेदके आश्रयसे सत्यहै मैं उस
कथाकोभी विशेषकरके वर्णन करताहूं ॥ २४ ॥ गौतमने उन ऋषियोंको अकालसे पीडितहुआ देखकर महात्मा वरुणका परमतप किया ॥ २५ ॥ तब
उन्होंने वरुणकी दयासे अविनाशी जलको प्राप्त किया और वहां अधिक जौ तथा धान्योंको बुवाया ॥ २६ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! इस प्रकार उन परोपकारी
गौतमने अपने तपोबलसे उन बोयेहुए धान्योंसे उन ऋषियोंके निमित्त भोजनकी कल्पना की ॥ २७ ॥ किसी समय उन ऋषियोंकी स्त्रियां जल लेनेके निमित्त

गई वह वहांसे तिरस्कारको प्राप्त हुई तब वह दुष्ट स्त्रियां क्रोधितहोके अपने अपने पतियोंसे गौतमके ईर्ष्याकारी वचन बोलीं ॥२८॥ तब कुटिल आशयवाले तथा विपरीत बुद्धिवाले उन ब्राह्मणोंने कृत्रिम गायको बनाकर उसे गौतमके धान्योंमें छोडदिया ॥ २९ ॥ तब गौतमजीने गायको अपने धान्योंके भक्षण करनेमें प्रवृत्त देखके शनैःशनैः उसको निवारण करतेहुए तृणसे ताडन किया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! वह गौ तृणके स्पर्शमात्रसेही भूमिपर गिरगई और भावी कर्मके वशसे उसी समय मरगई ॥ ३१ ॥ तब उन कपटबुद्धि ऋषियोंने वहांके निवासी ऋषियोंके साथ इकट्ठे होकर यह प्रसिद्ध किया कि गौतमने

ततस्ते भिन्नमतयो गां कृत्वा कृत्रिमां द्विजाः ॥ तद्धान्यभक्षणासक्तां चक्रुस्तां कुटिलाशयाः ॥ २९ ॥ स्वधान्यभक्षणासक्तां गां दृष्ट्वा
गौतमस्तदा ॥ तृणेन ताडयामास शनैस्तां संनिवारयन् ॥ ३० ॥ तृणसंस्पर्शमात्रेण सा भूमौ पतिता च गौः ॥ मृता ह्यभूत्क्षणं विप्रा
भाविकर्मवशात्तदा ॥ ३१ ॥ गौर्हता गौतमेनेति तदा ते कुटिलाशयाः ॥ एकत्रीभूय तत्रत्यैः सकला ऋषयोऽवदन् ॥ ३२ ॥ ततस्स
गौतमो भीतो गौर्हतेति बभूव ह ॥ चकार विस्मयं नार्यहल्याशिष्यैश्शिवानुगः ॥ ३३ ॥ ततस्स गौतमो ज्ञात्वा तां गां क्रोधसमा
कुलः ॥ शशाप तानृषीन् सर्वान् गौतमो मुनिसत्तमः ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच ॥ यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा मे विशेषतः ॥ शिवभक्त
स्य सततं स्युर्वेदविमुखास्सदा ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृति वेदोक्ते सत्कर्मणि विशेषतः ॥ मा भूयाद्भवतां श्रद्धा शैवमार्गे विमुक्तिदे ॥ ३६ ॥
अद्यप्रभृति दुर्मार्गे तत्र श्रद्धा भवेत्तु वः ॥ मोक्षमार्गविहीने हि सदा श्रुतिबहिर्मुखे ॥ ३७ ॥

गौ मारडाली ॥ ३२ ॥ तब गौतम भयभीतहुये शोक है गौ मरगई ! इस प्रकार विस्मय करनेलगे और उन शैव गौतमने अपनी स्त्री अहल्या तथा शिष्योंके सहित अति आश्चर्य किया ॥ ३३ ॥ पीछे गौतमने उस कपटकी गायको जानकर क्रोध किया और उन मुनिश्रेष्ठने उन संपूर्ण ऋषियोंको शाप दिया ॥ ३४ ॥ गौतमजी बोले, तुम सब वेदसे विमुख हो दुष्टआत्मावाले हो जो तुमने निरंतर शिवके भक्त मुझे विशेष कर दुःख दिया ॥ ३५ ॥ आजसे लेके तुम्हारी वैदिक कर्ममें तथा विशेषकर मुक्तिके देनेवाले शैव मार्गमें श्रद्धाभक्ति न होगी ॥ ३६ ॥ आजसे लेकर तुम्हारी खोटे मार्गमें श्रद्धा

होगी और मोक्ष मार्गसे रहित वेदोक्तधर्मसे विमुख पथमें रुचि होगी ॥ ३७ ॥ अबसे आगे तुम सबोंके मस्तक मृत्तिकासे लिप्त होंगे, हे ब्राह्मणो ! तुम माथेपर मृत्तिकाके लेपन करनेसे नरकमें पडोगे ॥ ३८ ॥ और तुम सब एक शिव देवताके उपासक न होगे, उन अद्वितीय शिवको औरोंके समान मानोगे ॥ ३९ ॥ तुम्हारी शिवकी पूजाआदि कर्ममें प्रीति न होगी तथा शिवकी निष्ठावाले भक्तोंमें शिवके पर्वोंमें भक्ति न रहैगी ॥ ४० ॥ आज मैंने जितने दुःखदायक शाप दिये हैं वे सर्वदा तुम्हारी संतानको भी प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे पुत्र पौत्र आदि सब शिवकी भक्तिसे विमुख होंगे

अद्यप्रभृति भालानि मृल्लिप्तानि भवन्तु वः ॥ स्रंसध्वं नरके यूयं भालमृल्लेपनाद्द्विजाः ॥ ३८ ॥ भवंतो मा भविष्यंतु शिवैकपरदेवताः ॥ अन्यदेवसमत्वेन जानंतु शिवमद्वयम् ॥ ३९ ॥ मा भूयाद्भवतां प्रीतिश्शिवपूजादिकर्मणि ॥ शिवनिष्ठेषु भक्तेषु शिवपर्वसु सर्वदा ॥ ४० ॥ अद्य दत्ता मया शापा यावंतो दुःखदायकाः ॥ तावंतस्संतु भवतां संततावपि सर्वदा ॥ ४१ ॥ अशैवास्संतु भवतां पुत्रपौत्रादयो द्विजाः ॥ पुत्रैस्सहैव तिष्ठंतु भवंतो नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ ततो भवंतु चाण्डाला दुःखदारिद्र्यपीडिताः ॥ शठा निन्दाकरास्सर्वे तप्तमुद्रांकितास्सदा ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इति शप्त्वा मुनीन् सर्वान् गौतमस्स्वाश्रमं ययौ ॥ शिवभक्तिं चकाराति स बभूव सुपावनः ॥ ४४ ॥ ततस्तैः खिन्नहृदया ऋषयस्तेखिला द्विजाः ॥ कांच्यां चक्रुर्निवासं हि शैवधर्मबहिष्कृताः ॥ ४५ ॥ तत्पुत्राश्चाभवन्सर्वे शैवधर्मबहिष्कृताः ॥ अग्रे तद्वद्भविष्यंति कलौ बहुजनाः खलाः ॥ ४६ ॥ इति प्रोक्तमशेषेण तद्वृत्तं मुनिसत्तमाः ॥ पूर्ववृत्तमपि प्राज्ञाः श्रुतं सर्वैस्तु चादरात् ॥ ४७ ॥

तुम सब अपने पुत्रोंके समेत निश्चयही नरकमें रहोगे ॥ ४२ ॥ तुम सदैवही चांडाल दुःख दारिद्र्यसे पीडित मूर्ख निन्दाकरनेवाले तथा सम्पूर्ण तप्त मुद्रासे चिह्नित होगे ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार संपूर्ण मुनियोंको शाप देकर गौतम मुनि अपने आश्रमको गये और अतिपवित्र होके शिवजीकी भक्ति करनेलगे ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे वे शापदियेहुए संपूर्ण ऋषि दुःखीमनसे शिवसम्बन्धी धर्मसे निराश हो कांचीपुरीमें निवास करनेलगे ॥ ४५ ॥ और उनके सब पुत्र भी शैव धर्मसे हीन हुये इसके आगे कलियुगमें उनके पौत्रादि बहुत मनुष्य इसी प्रकार दुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तमो ! हे बुद्धिमानो !

इस प्रकार मैंने उनका सब वृत्तान्त कह सुनाया और सबोंने उनका पहला वृत्तान्त भी आदरसे सुना ॥ ४७ ॥ यह सब गौतमी गंगाकी उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला श्रेष्ठ माहात्म्य भी मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ४८ ॥ यह त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंगका माहात्म्य कहा जिसको सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥ इसके आगे वैद्यनाथनामवाले शिवलिंगके पापनाशक माहात्म्यको सुनो मैं वर्णन करताहूं ॥५०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूतजी बोले, राक्षसोंमें श्रेष्ठ,

इति वश्च समाख्यातो गौतम्याश्च समुद्भवः ॥ माहात्म्यमुत्तमं चैव सर्वपापहरं परम् ॥ ४८ ॥ त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं ज्योतिर्लिंगस्य कीर्तितम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४९ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वैद्यनाथेश्वरस्य हि ॥ ज्योतिर्लिंगस्य माहात्म्यं श्रूयतां पापहारकम् ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ रावणो राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः ॥ आरराध हरं भक्त्या कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १ ॥ आराधितः कियत्कालं न प्रसन्नो हरो यदा ॥ तदा चान्यत्तपश्चक्रे प्रसादार्थं शिवस्य सः ॥२॥ ततश्चायं हिमवतस्सिद्धिस्थानस्य वै गिरेः ॥ पौलस्त्यो रावणश्श्रीमान् दक्षिणे वृक्षखंडके ॥ ३ ॥ भूमौ गर्तं वर कृत्वा तत्राग्निं स्थाप्य स द्विजाः ॥ तत्सन्निधौ शिवं स्थाप्य हवनं स चकार ह ॥४॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थंडिलेशयः ॥ शीते जलांतरस्थो हि त्रिधा चक्रे तपश्च सः ॥ ५ ॥

अभिमानी, सन्मान पानेवाले, रावणने कैलासपर्वतपर भक्तिसे शिवकी आराधना की ॥ १ ॥ जब कुछ कालतक आराधना करनेपर शिवजी प्रसन्न न हुये तब उसने शिवजीके प्रसन्न होनेके निमित्त और तप किया ॥ २ ॥ तब श्रीमान् पौलस्त्य रावणने सिद्धिके स्थानवाले हिमालयपर्वतके दक्षिण वृक्षखंडोंमें तप किया ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! वहां उसने भूमीमें गढा खोद उसमें अग्नि स्थापन कर उसके समीपमें शिवजीको पधारके हवन किया ॥ ४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्यमें स्थित हुआ, वर्षामें भूमीमें शयन करताहुआ, शीतकालमें जलके मध्यमें स्थित रहा इस प्रकार उसने तीन प्रकारका तप किया ॥ ५ ॥

इस प्रकार उस रावणने बहुत तप किया तोभी परमात्मा शिवजी प्रसन्न न हुये कारण कि वे दुष्टोंको दुष्प्राप्यहैं ॥ ६ ॥ तब उस दैत्योंके स्वामी महात्मा रावणने अपने शिरोंको काटके बलिदानपूर्वक शिवका पूजन करना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ उसने विधिपूर्वक शिवके पूजनमें एकएक शिर काटा, इसी प्रकार रावणने क्रमानुसार अपने नौ शिर काटे ॥ ८ ॥ तब एक शिरके शेष रहनेपर शिवजी प्रसन्न होगये और भक्तवत्सल महादेव सन्तुष्ट हो वहां प्रगट हुये ॥ ९ ॥ प्रभु सदाशिवने उसके शिरोंको पहलेके समान पूर्ण कर उसको अतुलबल तथा मनोरथोंको प्रदान किया ॥ १० ॥ वह राक्षस रावण उन शिवकी

चकारैवं बहु तपो न प्रसन्नस्तदापि हि ॥ परमात्मा महेशानो दुराराध्यो दुरात्मभिः ॥ ६ ॥ ततश्शिरांसि छित्त्वा च पूजनं शंकरस्य वै ॥ प्रारब्धं दैत्यपतिना रावणेन महात्मना ॥ ७ ॥ एकैकं च शिरश्छिन्नं विधिना शिवपूजने ॥ एवं सत्क्रमतस्तेन च्छिन्नानि नव वै यदा ॥ ८ ॥ एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नश्शंकरस्तदा ॥ आविर्बभूव तत्रैव संतुष्टो भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥ शिरांसि पूर्ववत्कृत्वा नीरुजानि तथा प्रभुः ॥ मनोरथं ददौ तस्मादतुलं बलमुत्तमम् ॥ १० ॥ प्रसादं तस्य संप्राप्य रावणस्स च राक्षसः ॥ प्रत्युवाच शिवं शंभुं नतस्कंधः कृतांजलिः ॥ ११ ॥ ॥ रावण उवाच ॥ प्रसन्नो भव देवेश लंकां च त्वां नयाम्यहम् ॥ सफलं कुरु मे कामं त्वामहं शरणं गतः ॥ १२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तश्च तदा तेन शंभुर्वै रावणेन सः ॥ प्रत्युवाच विचेतस्कः संकटं परमं गतः ॥ १३ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ वचो मे सारवत्तया ॥ नीयतां स्वगृहे मे हि सद्भक्त्या लिंगमुत्तमम् ॥ १४ ॥ भूमौ लिंगं यदा त्वं च स्थापयिष्यसि तत्र वै ॥ स्थास्यत्यत्र न संदेहो यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १५ ॥

प्रसन्नताको पाकर हाथ जोड कन्धे झुकाय नम्र हो कल्याणकारी शिवजीसे बोला ॥ ११ ॥ रावण बोला, हे देवोंके स्वामी ! आप प्रसन्नहो, मैं आपको लंकापुरीको लेजाऊंगा ऐसी मेरी इच्छाको पूर्ण करो, मैं आपकी शरणमें प्राप्त हूं ॥ १२ ॥ सूतजी बोले, उस समय रावणके ऐसा कहनेपर शिवजी विमनहो परम संकटमें प्राप्त होके यह बोले ॥१३॥ शिवजी बोले, हे राक्षसश्रेष्ठ ! तुम सारवाले मेरे वचनोंको सुनो श्रेष्ठभक्तिसे मेरे उत्तम ज्योतिर्लिंगको अपने घर लेजाओ ॥ १४ ॥ यदि तुम कहीं बीचमें मेरे लिंगको भूमिपर स्थापन करोगे तो यह वहीं स्थित रहैगा, इसमें जैसी तुम्हारी इच्छाहो वैसा करो ॥१५॥

सूतजी बोले, इस प्रकार उन शिवजीसे कहाहुआ वह राक्षसेश्वर रावण उसी प्रकार उस ज्योतिर्लिंगको लेकर अपने घरको चला ॥ १६ ॥ मार्गमें शिवजीकी मायासे रावणको लघुशंकाकी इच्छा हुई और वह पौलस्त्य रावण उस मूत्रके वेगको रोकनेको समर्थ न हुआ ॥ १७ ॥ उसने वहां एक गोपको देख उसे प्रार्थना करके ज्योतिर्लिंग देदिया और लघुशंका करनेलगा तब एक मुहूर्त बीतने पर वह गोप शिवलिंगके भारसे व्याकुल हुआ ॥ १८ ॥ और उसने उसके भारसे पीडित हो उसे वहां भूमिमें स्थापन किया तब वज्रसारसे उत्पन्नहुआ वह ज्योतिर्लिंग वहांही स्थित होगया, यह दर्शन करनेसे सब

सूत उवाच ॥ इत्युक्तश्शंभुना तेन रावणो राक्षसेश्वरः ॥ तथेति तत्समादाय जगाम भवनं निजम् ॥ १६ ॥ आसीन्मूत्रोत्सर्गकामो मार्गे हि शिवमायया ॥ तत्स्तंभितुं न शक्तोभूत्पौलस्त्यो रावणः प्रभुः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वैकं तत्र वै गोपं प्रार्थ्य लिंगं ददौ च तत् ॥ मुहूर्तके ह्यतिक्रांते गोपोभूद्विकलस्तदा ॥ १८ ॥ भूमौ संस्थापयामास तद्भारेणातिपीडितः ॥ तत्रैव तत्स्थितं लिंगं वज्रसारसमुद्भवम् ॥ सर्वकामप्रदं चैव दर्शनात्पापहारकम् ॥ १९ ॥ वैद्यनाथेश्वरं नाम्ना तल्लिंगमभवन्मुने ॥ प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ॥ २० ॥ ज्योतिर्लिंगमिदं श्रेष्ठं दर्शनात्पूजनादपि ॥ सर्वपापहरं दिव्यं भुक्तिवर्द्धनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र सर्वलोकहिताय वै ॥ रावणः स्वगृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम् ॥ प्रियायै सर्वमाचख्यौ सुखेनाति महासुरः ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वा सकला देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा ॥ परस्परं समामन्त्र्य शिवासक्तधियोऽमलाः ॥ २३ ॥

पापोंका दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाको पूर्ण करनेवाला है ॥ १९ ॥ हे मुने ! वह लिंग वैद्यनाथेश्वरनामसे प्रसिद्ध हुआ तीनोंलोकोंमें विख्यात है, सत्पुरुषोंको भुक्ति तथा भुक्तिका देनेवाला है ॥२०॥ भुक्तिको बढानेवाला उत्तम और दिव्य श्रेष्ठ इस ज्योतिर्लिंगके दर्शन और पूजनसे सब पाप दूर होते हैं ॥ २१ ॥ सब लोकोंके हितके अर्थ वैद्यनाथेश्वर लिंगके वहां स्थित होजानेपर अतिश्रेष्ठ वर पाय रावणने अपने घर जाके सुखपूर्वक सब वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कहा ॥ २२ ॥ यह सुनके इन्द्र आदि समस्त देवता तथा निर्मल बुद्धिवाले शिवभक्तिमें स्थितहुए सम्पूर्ण मुनियोंने परस्परमें सम्मति की ॥ २३ ॥

हे मुने ! उस समय ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता वहां आये और उन्होंने विशेष प्रीतिसे पूजा की ॥ २४ ॥ शिवको प्रत्यक्ष हुआ देखकें उन देवताओंने प्रतिष्ठाकर वैद्यनाथ ऐसा कहके नमस्कार स्तुति करके स्वर्गको गमन किया ॥ २५ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! वहां उस वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंगके स्थित होनेपर तथा रावणके घर चलेजानेपर क्या क्या चरित्र हुआ सो सब विस्तारपूर्वक कहो ? ॥२६॥ सूतजी बोले, रावणने अपने घर जाकर श्रेष्ठ वर पानेका वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कहा और वह अतिप्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ हे मुनियो ! यह सुनके इन्द्र आदि सब देवता तथा मुनि दुःखित होके परस्परमें कहने लगे

तस्मिन्काले सुरास्सर्वे हरिब्रह्मादयो मुने ॥ आजग्मुस्तत्र सुप्रीत्या पूजां चक्रुर्विशेषतः ॥ २४ ॥ प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः ॥ वैद्यनाथेति संप्रोच्य नत्वा नुत्वा दिवं ययुः ॥ २५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र रावणे च गृहं गते ॥ किं चरित्रमभूत्तात ततस्तद्वद विस्तरात् ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ रावणोपि गृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम् ॥ प्रियायै सर्वमाचख्यौ मुमोदाति महासुरः ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वा सकलं देवाश्शक्राद्या मुनयस्तथा ॥ परस्परं समूचुस्ते समुद्विग्ना मुनीश्वराः ॥ २८ ॥ देवादय ऊचुः ॥ रावणोयं दुरात्मा हि देवद्रोही खलः कुधीः ॥ शिवाद्वरं च संप्राप्य दुःखं दास्यति नोऽति सः ॥ २९ ॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः किं भविष्यति वा पुनः ॥ दुष्टश्च दक्षतां प्राप्तः किंकिंनो साधयिष्यति ॥ ३० ॥ इति दुःखं समापन्नाश्शक्राद्या मुनयस्सुराः ॥ नारदं च समाहूय पप्रच्छुर्विकलास्तदा ॥ ३१ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं कार्यं समर्थोसि कर्तुं त्वं मुनिसत्तम ॥ उपायं कुरु देवर्षे देवानां दुःखनाशने ॥ ३२ ॥ रावणोयं महादुष्टः किंकिं नैव करिष्यति ॥ क्व यास्यामो वयं चात्र दुष्टेनापीडिता वयम् ॥ ३३ ॥

॥ २८ ॥ देवता आदि बोले, यह दुष्टात्मा देवताओंका द्वेषी, खल, कुत्सितबुद्धिवाला रावण शिवसे वरदान पाकर हमको अतिदुःख देगा ॥ २९ ॥ अब हम क्या करैं कहां जायँ ? आगे कौन जानै क्या होगा ? यह दुष्ट रावण प्रवीणताको प्राप्त होकर हमारे निमित्त क्या क्या न साधैगा ? ॥ ३० ॥ इस प्रकार दुःखसे आतुरहुये इन्द्रादि देवता तथा मुनियोंने व्याकुलहो नारदजीको बुलाके यह पूंछा ॥ ३१ ॥ देवता बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे देवर्षे ! तुम सब काम करनेमें समर्थ हो, देवताओंके दुःख नाश करनेके अर्थ कोई उपाय करो ॥ ३२ ॥ यह महादुष्ट रावण आगेको क्या क्या न करैगा ? हम सब

दुःखसे पीडितहैं अब यहांसे कहां जायँ ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले, हे देवताओ ! दुःखको त्यागो मैं जाताहूं शिवजीकी कृपासे युक्ति करके देवताओंके
कार्यको करूंगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके वह देवर्षि नारदजी रावणके स्थानको गये वहां सम्पूर्ण सत्कारको प्राप्त हो रावणसे प्रीतिपूर्वक बोले
॥ ३५ ॥ नारदजी बोले, हे राक्षसोत्तम ! हे रावण ! तुम धन्यहो, शैवोंमें श्रेष्ठहो, तपस्वी हो, आज तुमको देखकर मेरा मन बडा प्रसन्न हुआ ॥ ३६ ॥
शिवजीकी आराधना सम्बन्धी अपना संपूर्ण वृत्तान्त कहो इस प्रकार नारदजीके पूंछनेपर वह रावण यह वचन बोला ॥ ३७ ॥ रावण बोला, हे महामुने!

नारद उवाच ॥ दुःखं त्यजत भो देवा युक्तिं कृत्वा च याम्यहम् ॥ देवकार्यं करिष्यामि कृपया शंकरस्य वै ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥
इत्युक्त्वा स तु देवर्षिरगमद्रावणालयम् ॥ सत्कारं समनुप्राप्य प्रीत्योवाचाखिलं च तत् ॥ ३५ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ राक्षसोत्तम
धन्यस्त्वं शैववर्य्यस्तपोमनाः ॥ त्वां दृष्ट्वा च मनो मेद्य प्रसन्नमति रावण ॥ ३६ ॥ स्ववृत्तं ब्रूह्यशेषेण शिवाराधनसंभवम् ॥ इति पृष्ट
स्तदा तेन रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ रावण उवाच ॥ गत्वा मया तु कैलासे तपोर्थं च महामुने ॥ तत्रैव बहुकालं वै तपस्ततं
सुदारुणम् ॥ ३८ ॥ यदा न शंकरस्तुष्टस्ततश्च परिवर्तितम् ॥ आगत्य वृक्षखंडे वै पुनस्ततं मया मुने ॥ ३९ ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्ये
तु वर्षासु स्थंडिलेशयः ॥ शीते जलांतरस्थो हि कृतं चैव त्रिधा तपः ॥ ४० ॥ एवं मया कृतं तत्र तपोत्युग्रं मुनीश्वर ॥ तथापि शंकरो
मह्यं न प्रसन्नोऽभवन्मनाक् ॥ ४१ ॥ तदा मया तु क्रुद्धेन भूमौ गर्तं विधाय च ॥ तत्राग्निं च समाधाय पार्थिवं च प्रकल्प्य च ॥ ४२ ॥
गंधैश्च चंदनैश्चैव धूपैश्च विविधैस्तदा ॥ नैवेद्यैः पूजितश्शम्भुरारार्तिकविधानतः ॥ ४३ ॥

मैंने तप करनेके लिये कैलासपर्वतपर जाकर बहुतकालतक अतिकठिन तप किया ॥ ३८ ॥ हे मुने ! तबभी शिवजी सन्तुष्ट नहीं हुये तो वहांसे लौटकर मैंने
वृक्षखंडमें आके फिर तप किया ॥ ३९ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निमें तपा, वर्षामें भूमिमें सोया, शीतकालमें जलके मध्यमें स्थित रहा, इस प्रकार तीन प्रकारका तप
किया ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने इस प्रकार वहां बडा कठिन तप किया तोभी शिवजी मुझसे कुछ प्रसन्न न हुये ॥ ४१ ॥ तब मैंने क्रोधितहो भूमिमें गढा
खोद उसमें अग्निका आधान करके वहां पार्थिवलिंग स्थापन किया ॥ ४२ ॥ गन्ध चन्दनसे अनेकधूप दीप तथा नैवेद्य और आर्तिक्यके विधानसे शिवजीकी

पूजा की ॥ ४३ ॥ प्रणामसे पवित्र स्तुतियोंसे गति और नृत्यसे बाजोंसे तथा मुखमें अंगुली समर्पण करके शंकरको संतुष्ट किया ॥ ४४ ॥ हे मुने! और भी अनेक उपायोंसे नानाप्रकारके शास्त्रोक्त विधानसे भगवान् शिवका पूजन किया ॥ ४५ ॥ तब भी सन्तुष्टहुए भगवान् सदाशिव सन्मुख नहीं हुये, तब मैं तपके श्रेष्ठ फलको न पाकर अतिदुःखी हुआ ॥ ४६ ॥ मेरे शरीर बलको धिक्कार है तथा मेरे तप करनेको भी धिक्कारहै यह कहके मैंने उस स्थापित की हुई अग्निमें बहुत हवन किया ॥ ४७ ॥ फिर मैंने यह विचारकी कि अग्निमें अपने शरीरको त्यागन करूंगा यह सोच उस पवित्र प्रज्वलित हुये अग्निमें अपने शिरोंको काटके चढाया ॥ ४८ ॥ सम्यक्प्रकार छेदन करके प्रत्येकको शुद्ध करके नौशिरोंको शिवजीके अर्पण किया ॥ ४९ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ नारदजी! जबहीं दशवें मस्तकको काटना प्रारम्भ किया तबहीं ज्योतिस्वरूप शिवजी अपने आप वहां प्रगट होगये ॥ ५० ॥ ऐसा मत करो ऐसा मत करो इस प्रकार प्रीतिसे शीघ्रही भक्तवत्सल शिवजी बोले, वर मांगो मैं प्रसन्न हूं तुमको मनोवांछित फल दूंगा ॥ ५१ ॥ उनके ऐसा कहनेपर उस समय मैंने शिवजीका दर्शन किया और हाथ जोडके भक्तिसे प्राणोंसे स्तुति की ॥ ५२ ॥ तब मैंने यह वर मांगा कि देवेश! यदि आप प्रसन्नहैं तो मुझे

प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैस्तोषितश्शंकरो मया ॥ गीतैर्नृत्यैश्च वाद्यैश्च मुखांगुलिसमर्पणैः ॥ ४४ ॥ एतैश्च विविधैश्चान्यैरुपायैर्भूरिभिर्मुने ॥ शास्त्रोक्तेन विधानेन पूजितो भगवान् हरः ॥ ४५ ॥ न तुष्टः सम्मुखो जातो यदा च भगवान् हरः ॥ तदाहं दुःखितोभूवं तपसोऽप्राप्य सत्फलम् ॥ ४६ ॥ धिक् शरीरं बलं चैव धिक् तपः करणं मम ॥ इत्युक्त्वा तु मया तत्र स्थापितेग्नौ हुतं बहु ॥ ४७ ॥ पुनश्चेति विचार्य्यैवं त्यक्षाम्यग्नौ निजां तनुम् ॥ संछिन्नानि शिरांस्येव तस्मिन् प्रज्वलिते शुचौ ॥ ४८ ॥ सुच्छित्वैकैकशस्तानि कृत्वा शुद्धानि सर्वशः ॥ शंकरायार्पितान्येव नवसंख्यानि वै मया ॥ ४९ ॥ यावच्च दशमं छेत्तुं प्रारब्धमृषिसत्तम ॥ तावदाविरभूत्तत्र ज्योतीरूपो हरस्स्वयम् ॥ ५० ॥ मामेति व्याहरत् प्रीत्या द्रुतं वै भक्तवत्सलः ॥ प्रसन्नश्च वरं ब्रूहि ददामि मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्ते च तदा तेन मया दृष्टो महेश्वरः ॥ प्राणतस्संस्तुतश्चव करौ बद्धा सुभक्तितः ॥ ५२ ॥ तदा वृतं मयैतच्च देहि मे ह्यतुलं बलम् ॥ यदि प्रसन्नो देवेश दुर्ल्लभं किं भवेन्मम ॥ ५३ ॥

अतुल बल दो जिससे मुझे कुछभी दुर्लभ न हो ॥ ५३ ॥ सन्तुष्टहुए कृपालु शिवने तथास्तु ऐसी वाणी कहके मुझे सब मनोवाञ्छित वर दिये ॥ ५४ ॥
तब परमात्मा शिवने वैद्यके समान अपनी अमोघदृष्टिसे देख मेरे शिरोंको जोडकर मिलादिया ॥५५॥ ऐसा करनेपर वह मेरा शरीर पहलेके समान होगया
और उनकी प्रसन्नतासे मैंने सब फल प्राप्त कर लिया ॥ ५६ ॥ तब मेरी प्रार्थनासे वह शिवजी यहां पधारे और तीनों लोकोंमें वैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध
हुए ॥ ५७ ॥ दर्शन करने तथा पूजनसे ज्योतिर्लिंग स्वरूप शिवजी संसारमें भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले तथा सबोंके हित करनेवालेहैं ॥ ५८ ॥ मैं उन

शिवेन परितुष्टेन सर्वं दत्तं कृपालुना ॥ मह्यं मनोभिलषितं गिरा प्रोच्य तथास्त्विति ॥ ५४ ॥ अमोघया सुदृष्ट्या वै वैद्यवद्योजिता
नि मे ॥ शिरांसि संधयित्वा तु दृष्टानि परमात्मना ॥ ५५ ॥ एवंकृते तदा तत्र शरीरं पूर्ववन्मम ॥ जातं तस्य प्रसादाच्च सर्वं प्राप्तं
फलं मया ॥ ५६ ॥ तदा च प्रार्थितो मे संस्थितोसौ वृषभध्वजः ॥ वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोभूज्जगत्त्रये ॥ ५७ ॥ दर्शनात्पूजना
ज्ज्योतिर्लिंगरूपो महेश्वरः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो लोके सर्वेषां हितकारकः ॥ ५८ ॥ ज्योतिर्लिंगमहं तद्वै पूजयित्वा विशेषतः ॥ प्रणिप
त्यागतश्चात्र विजेतुं भुवनत्रयम् ॥ ५९ ॥ सूत उवाच ॥ तदीयं तद्वचः श्रुत्वा देवर्षिर्जातसंभ्रमः ॥ विहस्य च मनस्येव रावणं नार
दोऽब्रवीत् ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ कथयामि हितं तव ॥ त्वया तदेव कर्त्तव्यं मदुक्तं नान्यथा क्वचित् ॥ ६१ ॥
त्वयोक्तं यच्छिवेनैव हितं दत्तं ममाधुना ॥ तत्सर्वं च त्वया सत्यं न मन्तव्यं कदाचन ॥ ६२ ॥ अयं वै विकृतिं प्राप्तः किंकिं नैव
ब्रवीति च ॥ सत्यं नैव भवेत्तद्वै कथं ज्ञेयं प्रियोस्ति मे ॥ ६३ ॥

ज्योतिर्लिंगको विशेष पूजके तथा प्रणाम करके तीनों लोकोंको जीतनेको यहां आयाहूं ॥ ५९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा रावणका वचन सुनके आश्चर्यमें प्राप्त
हुए नारदजी मनमें हँसके रावणसे बोले ॥ ६० ॥ नारदजी बोले, हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण ! सुनो तुम्हारे हितके कारण कहता हूं जो मैं कहूं उसी प्रकार
तुम करो और कहीं किसी प्रकार मत करना ॥ ६१ ॥ मैं तुमको हितकारी उपदेश देताहूं शिवजीने जो कुछ तुमसे कहा है उसे तुम किसी प्रकार सत्य
मत मानना ॥ ६२ ॥ विकारको (उन्मादको) प्राप्त हुए शिव क्या क्या नहीं कहते परन्तु वह एकभी बात सत्य नहीं होंती यह तुमने कैसे जाना कि

वह मेरे प्रिय हैं ॥६३॥ इस कारण तुम जाकर पहले उनका अहित करके फिर कार्य सिद्ध करो और तुम कैलासपर्वतके उखाडनेका यत्न करो ॥६४॥ यदि यह कैलासपर्वत उखडैगा तबहीं सब सफल होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६५ ॥ तुम परमनिश्चयको प्राप्त हो उसे उखाड और फिर पहलेके समान उसे स्थापित करके सुखसे यहां आओ आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ ६६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा नारदजीसे कहाहुआ वह रावण विधिवश मोहित हुआ अपने हितको मान उसी समय नारदमुनिके वाक्यको सत्य मानकर कैलासपर्वतको गया ॥ ६७ ॥ वहां जाकर उस कैलासपर्वतको

इति गत्वा पुनः कार्य्यं कुरु त्वं ह्यहिताय वै ॥ कैलासोद्धरणे यत्नः कर्तव्यश्च त्वया पुनः ॥ ६४ ॥ यदि चैवोद्धृतश्चायं कैलासो हि भविष्यति ॥ तदैव सफलं सर्वं भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥ पूर्ववत्स्थापयित्वा त्वं पुनरागच्छ वै सुखम् ॥ निश्चयं परमं गत्वा यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्स हितं मेने रावणो विधिमोहितः ॥ सत्यं मत्वा मुनेर्वाक्यं कैलासमगमत्तदा ॥ ६७ ॥ गत्वा तत्र समुद्धारं चक्रे तस्य गिरेस्स च ॥ तत्रस्थं चैव तत्सर्वं विपर्यस्तं परस्परम् ॥ ६८ ॥ गिरीशोपि तदा दृष्ट्वा किं जातमिति सोब्रवीत् ॥ गिरिजा च तदा शंभुं प्रत्युवाच विहस्य तम् ॥६९॥ गिरिजोवाच ॥ सच्छिष्यस्य फलं जातं सम्यग्जातं तु शिष्यतः ॥ शान्तात्मने सुवीराय दत्तं यदतुलं बलम् ॥ ७० ॥ सूत उवाच ॥ गिरिजायाश्च साकूतं वचः श्रुत्वा महेश्वरः ॥ कृतघ्नं रावणं मत्वा शशाप बलदर्पितम् ॥ ७१ ॥ महादेव उवाच ॥ रे रे रावण दुर्भक्त मा गर्वं वह दुर्मते ॥ शीघ्रं च तव हस्तानां दर्पघ्नश्च भवेदिह ॥ ७२ ॥

कम्पित करने लगा वहांपर स्थितहुए सब पदार्थ परस्पर उलट पलट होगये ॥ ६८ ॥ तब शिवजी कैलासको कम्पित देख यह क्या हुआ ? इस प्रकार बोले, पार्वतीजी भी हँसकर महादेवसे बोलीं ॥ ६९ ॥ पार्वतीजी बोली, सुन्दर शिष्यका यह फल मिला शिष्य करनेसे अच्छा फल प्राप्त हुआ, तुमने शान्तात्मा बडे पराक्रमी रावणको जो अतुलबल दियाहै उसका यह परिणाम है ॥ ७० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार पार्वतीजीके आक्षेपका वचन सुन शिवजीने बलसे अहंकारवाले उस रावणको कृतघ्न जानकर शाप दिया ॥ ७१ ॥ महादेव बोले, हे दुर्भक्त रावण ! हे दुष्ट बुद्धिवाले ! अभिमान मतकर

शीघ्रही तेरी भुजाओंके अहंकारका नाश करनेवाला कोई उत्पन्न होगा ॥ ७२ ॥ सूतजी बोले, उस समय वहां जो हुआ सो नारदजीने सब सुना और रावण भी प्रसन्नहो वहांसे अपने स्थानको चला गया ॥ ७३ ॥ तब वह बली रावण परम निश्चयकर बलसे मोहितहो शत्रुओंका दर्प चूर्णकर जगत्को वशमें करनेलगा ॥ ७४ ॥ शिवजीकी आज्ञासे प्राप्त हुए दिव्य बडे तेजस्वी अस्त्रसे रावणको कोई भी योद्धा जीतनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ ७५ ॥ इस प्रकार यह वैद्यनाथेश्वरका माहात्म्य वर्णन किया, इस माहात्म्यको सुननेवाले मनुष्योंका पाप भस्म होजाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च०

सूत उवाच ॥ इति तत्र च यज्जातं नारदः श्रुतवांस्तदा ॥ रावणोपि प्रसन्नात्माऽगात्स्वधाम यथागतम् ॥ ७३ ॥ निश्चयं परमं कृत्वा बली बलविमोहितः ॥ जगद्वशं हि कृतवान्रावणः परदर्पहा ॥ ७४ ॥ शिवाज्ञया च प्राप्तेन दिव्यास्त्रेण महौजसा ॥ रावणस्य प्रति भटो नालं कश्चिदभूत्तदा ॥ ७५ ॥ इत्येतच्च समाख्यातं वैद्यनाथेश्वरस्य च ॥ माहात्म्यं शृण्वतां पापं नृणां भवति भस्मसात् ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि नागेशाख्यं परात्मनः ॥ ज्योतीरूपं यथा जातं परमं लिंगमुत्तमम् ॥ १ ॥ दारुका राक्षसी काचित्पार्वती वरदर्पिता ॥ दारुकश्च पतिस्तस्या बभूव बलवत्तरः ॥ २ ॥ बहुभी राक्षसैस्तत्र चकार कदनं सताम् ॥ यज्ञध्वंसं च लोकानां धर्मध्वंसं तदाकरोत् ॥ ३ ॥ पश्चिमे सागरे तस्य वनं सर्वसमृद्धिमत् ॥ योजनानां षोडशभिर्विस्तृतं सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ दारुका स्वविलासार्थं यत्र गच्छति तद्वनम् ॥ भूम्या च तरुभिस्तत्र सर्वोपकरणैर्युतम् ॥ ५ ॥

को० रु० वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंग माहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, अब इसके उपरान्त परमात्मा शिवका नागेशनामक परम श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगका वर्णन करताहूं ॥ १ ॥ पार्वतीजीसे वर पाकर दारुकानाम एक राक्षसी बडी बलसे दर्पित होगई और उसका दारुकनामक बडा बलवान् पति था ॥ २ ॥ उस समय वह अनेक राक्षसोंको साथ ले सत्पुरुषोंको दुःख देता लोकोंके यज्ञका विध्वंस तथा धर्मका नाश करने लगा ॥ ३ ॥ उसका वन पश्चिमके समुद्रके समीप चारोंओर सोलह योजन विस्तारवाला सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शोभायमान था ॥ ४ ॥ दारुका राक्षसी अपने आनन्दके निमित्त

सुन्दर भूमिसेशोभित सर्वोंके उपकार योग्य उस वनमें भ्रमण करती थी ॥ ५ ॥ देवीने वह वन दारुकाको दिया था, वह राक्षसी अपने पतिके सहित स्वतंत्रतासे उस वनमें फिरती थी ॥ ६ ॥ तब उस दारुका स्त्रीके सहित स्थितहुआ वह दारुक राक्षस सर्वोंको भय दिखाने लगा ॥ ७ ॥ तब पीडितहुए वे सब लोग औंर्वऋषिकी शरणमें गये और उनको विशेष प्रीतिसे नमस्कार करके अपने २ शिरोंको झुकाय उनसे बोले ॥ ८ ॥ मनुष्य बोले, हे महर्षे ! हम सब दुष्ट राक्षसोंसे सतायेहुये हैं, हमको शरण दीजिये आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं और अपने तेजसे प्रकाशमान हैं ॥ ९ ॥ आपके सिवाय

दारुकायै ददौ देवी तद्वनस्यावलोकनम् ॥ प्रयाति तद्वनं सा हि पत्या सह यदृच्छया ॥ ६ ॥ तत्र स्थित्वा तदा सोपि सर्वेषां च भयं ददौ ॥ दारुको राक्षसः पत्न्या तया दारुकया सह ॥ ७ ॥ ते सर्वे पीडिता लोका और्वस्य शरणं ययुः ॥ नत्वा प्रीत्या विशेषेण तमूचुर्नतमस्तकाः ॥ ८ ॥ लोका ऊचुः ॥ महर्षे शरणं देहि नो चेद्दुष्टैश्च मारिताः ॥ सर्वं कर्तुं समर्थोसि तेजसा दीप्तिमानसि ॥ ९ ॥ पृथ्व्यां न वर्तते कश्चित्त्वां विना शरणं च नः ॥ यामो यस्य समीपे तु स्थित्वा सुखमवाप्नुमः ॥ १० ॥ त्वां दृष्ट्वा राक्षसास्सर्वे पलायंते विदूरतः ॥ त्वयि शैवं सदा तेजो विभाति ज्वलनो यथा ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं प्रार्थितो लोकैरौर्वो हि मुनिसत्तमः ॥ शोचमानः शरण्यश्च रक्षायै हि वचोऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ और्व उवाच ॥ पृथिव्यां यदि रक्षांसि हिंस्युर्वै प्राणिनस्तदा ॥ स्वयं प्राणैर्वियुज्येयू राक्षसा बलवत्तराः ॥ १३ ॥ यदा यज्ञा विहन्येरंस्तदा प्राणैर्वियोजिताः ॥ भवंतु राक्षसास्सर्वे सत्यमेतन्मयोच्यते ॥ १४ ॥

पृथिवीपर हमको ऐसा कोई नहीं दीखता जिसकी शरणमें जांय तथा जिसके समीपमें स्थित होके हम सुख पावैं ॥ १० ॥ तुमको देखकर सब राक्षस दूरसेही भागते हैं तुममें सदाही शिवजीका तेज अग्निके समान प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, उन सम्पूर्ण मनुष्योंने इस प्रकार और्व ऋषिकी प्रार्थनाकी तब शरणागतवत्सल वह मुनिश्रेष्ठ शोच करतेहुये उनकी रक्षाके अर्थ यह वचन बोले ॥ १२ ॥ और्वमुनि बोले, यदि भूमिपर बलवान् राक्षस प्राणियोंको मारैंगे तो वे स्वयंही मारे जांयगे ॥ १३ ॥ जब वे यज्ञोंका विध्वंस करैंगे तो वे सम्पूर्ण राक्षस अपने प्राणोंसे वियुक्त होंगे मैं यह सत्य कहता हूं ॥ १४ ॥

सूतजी बोले, संसारको सुख देनेवाले और्वमुनिने उन लोगोंसे यह कहके और प्रजाको धैर्य देकर तप किया ॥ १५ ॥ तब देवताओंने उसके शापका कारण जानके राक्षसोंके साथ युद्ध करनेका उद्योग किया ॥ १६ ॥ उस समय वहां युद्ध करनेके निमित्त इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अनेक शस्त्रोंको धारण करके सब प्रयत्नोंके सहित रणभूमिमें उपस्थित हुये ॥ १७ ॥ वहां उन देवताओंको देखकर वे संपूर्ण दुष्ट राक्षस विचारने लगे और परस्पर एकत्रित होके यह सम्मति करनेलगे ॥ १८ ॥ राक्षस बोले, अब हम क्या करैं ? कहां जायँ ? बडे संकटमें पडगये यदि युद्ध करैंगे तौ भी मरते हैं यदि युद्ध नहीं करैं तो भी नाश होंगे ॥ १९ ॥ यदि वैसेही (विना उपद्रवके) रहैं तो परस्पर क्या भक्षण करैंगे, अब सबप्रकार दुःख प्राप्त हुआ कौन इस दुःखको दूर करैगा ॥ २० ॥ सूतजी बोले, ऐसा शोचकर वे दारुक आदि सम्पूर्ण राक्षस किसी उपायको न जानके दुःखको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ तब ऐसा दुःख प्राप्त हुआ देखकर उस राक्षसीने उन राक्षसोंसे पार्वतीजीका दियाहुआ वर प्रकाशित किया ॥ २२ ॥ दारुका बोली, मुझसे आराधना की हुई पार्वतीने पहले वरदान दिया है कि तू अपने राक्षसोंको वनके सहित लेकर निस्सन्देह भ्रमण कर जहां तेरी जानेकी इच्छा हो जा ॥ २३ ॥ मैंने ऐसा वर पाया है फिर क्यों

सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं तेभ्यस्समाश्वास्य प्रजाः पुनः ॥ तपश्चकार विविधमौर्वो लोकसुखावहः ॥ १५ ॥ देवास्तदा ते विज्ञाय
शापस्य कारणं हि तत् ॥ युद्धाय च समुद्योगं चक्रुर्देवारिभिस्सह ॥ १६ ॥ सर्वैश्चैव प्रयत्नैश्च नानायुधधरास्सुराः ॥ सर्वे शक्रादयस्तत्र
युद्धार्थं समुपागताः ॥ १७ ॥ तान्दृष्ट्वा राक्षसास्तत्र विचारे तत्पराः पुनः ॥ बभूवुस्तेऽखिला दुष्टा मिथो ये यत्र संस्थिताः ॥ १८ ॥
राक्षसा ऊचुः ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं संकटं समुपागताः ॥ युद्ध्यते म्रियते चैव युद्ध्यते न विहन्यते ॥ १९ ॥ तथैव स्थीयते चेद्वै
भक्ष्यते किं परस्परम् ॥ दुःखं हि सर्वथा जातं क एनं विनिवारयेत् ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ विचार्येति च ते तत्र दारुकाद्याश्च राक्षसाः ॥ उपायं न विजानन्तो दुःखं प्राप्तास्सदा हि वै ॥ २१ ॥ दारुका राक्षसी चापि ज्ञात्वा दुःखं समागतम् ॥ भवान्याश्च वरं तञ्च
कथयामास सा तदा ॥ २२ ॥ दारुकोवाच ॥ मया ह्याराधिता पूर्वं भवपत्नी वरं ददौ ॥ वनं गच्छ निजैः सार्द्धं यत्र गंतुं त्वमिच्छसि ॥ २३ ॥ तद्वरश्च मया प्राप्तः कथं दुःखं विषह्यते ॥ जलं वनं च नीत्वा वै सुखं स्थेयं तु राक्षसैः ॥ २४ ॥

दुःख सहते हो तुम सब राक्षस जल और वनको लेकर सुखसे निवास करो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, उस समय उस दारुका राक्षसीका वचन सुनके सब राक्षस हर्षको प्राप्त हुए, निर्भय हो परस्पर मिलकर यह बोले ॥ २५ ॥ यह दारुका राक्षसी धन्य है कृतकृत्य है, इस रानीने हमको स्वयं जिलाया वे सब उसे प्रणामकरके आदरसे कहने लगे ॥ २६ ॥ हे देवि ! यदि तुम्हारी वहां जानेकी शक्ति हो तो जाना उचित है विचार क्या करती हो वहां जाकर नित्यही जलके स्थानमें सुखपूर्वक निवास करैंगे ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें वे सब मनुष्य देवतोंके साथ उन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेको आये जिन

सूत उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्या हर्षमागताः ॥ ऊचुस्सर्वे मिथस्ते हि राक्षसा निर्भयास्तदा ॥ २५ ॥ धन्येयं कृतकृत्येयं राज्ञ्या वै जीवितास्स्वयम् ॥ नत्वा तस्यै च तत्सर्वं कथयामासुरादरात् ॥ २६ ॥ यदि गंतुं भवेच्छक्तिर्गम्यतां किं विचार्यते ॥ तत्र गत्वा जले देवि सुखं स्थास्याम नित्यशः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नंतरे लोका देवैस्सार्द्धं समागताः ॥ युद्धाय विविधैर्दुःखैः पीडिता राक्षसैः पुरा ॥ २८ ॥ पीडिताश्च तदा तस्या भवान्या बलमाश्रिताः ॥ समग्रं नगरं नीत्वा जलस्थलसमन्वितम् ॥ २९ ॥ जयजयेति देव्यास्तु स्तुतिमुच्चार्य राक्षसी ॥ तत उड्डीयनं कृत्वा सपक्षो गिरिराड्यथा ॥ ३० ॥ समुद्रस्य च मध्ये सा संस्थिता निर्भया तदा ॥ सकलैः परिवारैश्च मुमुदेति शिवानुगा ॥ ३१ ॥ तत्र सिंधौ च ते स्थित्वा नगरे च विलासिनः ॥ राक्षसाश्च सुखं प्रापुर्निर्भयाश्च विजह्रिरे ॥ ३२ ॥ राक्षसाश्च पृथिव्यां वै नाजग्मुश्च कदाचन ॥ मुनेश्शापभयादेव बभ्रमुस्ते जले तदा ॥ ३३ ॥

राक्षसोंने पहले बडे दुःख और पीडा दी थी ॥ २८ ॥ तब उन पार्वतीजीके बलको आश्रितहुई वह राक्षसी जल तथा स्थल समेत संपूर्ण नगरको ले गई ॥ २९ ॥ और जय जय ऐसा कह स्तुति करके फिर पंखों सहित पर्वतोंके राजा हिमालयके समान वह उडी ॥ ३० ॥ वह शिवभक्तिशाली दारुका समुद्रके मध्यमें निर्भय हो और सम्पूर्ण परिवारके सहित अतिप्रसन्नतासे स्थित हुई ॥ ३१ ॥ तब वे विलासी राक्षस उस सिन्धुनगरमें स्थित होके सुख पानेलगे और निर्भय हो विहार करनेलगे ॥ ३२ ॥ और्व मुनिके शापके भयसे वे राक्षस भूमीपर कदापि नहीं आते केवल जलमेंही भ्रमण करते थे ॥ ३३ ॥

तब वे राक्षस उस नगरमें नावपर स्थितहुए नागारिक मनुष्योंको पकडके अपने बंधन गृहमें बंद करते तथा किसीको मार[भी]डालते थे ॥ ३४ ॥ तब भवानीके वरदानसे निर्भयहुए वे राक्षस वहां स्थित होकर भी मनुष्योंको पीडा देतेथे ॥ ३५ ॥ हे मुनीश्वरो ! जिस प्रकार वहां स्थलमें मनुष्योंको भय था उसी प्रकार उनको जलमें निकलके स्थितहुए राक्षसोंसे निरन्तर भय रहता था ॥ ३६ ॥ किसी समय वह राक्षसी जलसे स्थलमें जाके मनुष्योंको पीडा देनेके निमित्त मार्गको रोककर स्थित हुई ॥ ३७ ॥ इसी अन्तरमें वहां सब ओरसे मनुष्योंसे पूर्णहुई अनेकशुभ नावें उधर आईं ॥ ३८ ॥ उन भरीहुई

नौषु स्थिताञ्जनान्नीत्वा नगरे तत्र तांस्तदा ॥ चिक्षिपुर्बन्धनागारे कांश्चिज्जघ्नुस्तदा हि ते ॥ ३४ ॥ यथायथा पुनः पीडां चक्रुस्ते राक्षसास्तदा ॥ तत्र स्थिता भवान्याश्च वरदानाच्च निर्भयाः ॥ ३५ ॥ यथा पूर्वं स्थले लोके भयं चासीन्निरन्तरम् ॥ तथा भयं जले तेषामासीन्नित्यं मुनीश्वराः ॥ ३६ ॥ कदाचिद्राक्षसी सा च निस्सृता नगराज्जले ॥ रुद्ध्वा मार्गं स्थिता लोकपीडार्थं धरणौ च हि ॥ ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र नावो बहुतराः शुभाः ॥ आगता बहुधा तत्र सर्वतो लोकसंवृताः ॥ ३८ ॥ ता नावश्च तदा दृष्ट्वा हर्षं संप्राप्य राक्षसाः ॥ द्रुतं गत्वा हि तत्रस्थान्वेगात्संदध्रिरे खलाः ॥ ३९ ॥ आजग्मुर्नगरं ते च तानादाय महाबलाः ॥ चिंक्षिपुर्बन्धनागारे बद्ध्वा हि निगडैर्दृढैः ॥ ४० ॥ बद्धास्ते निगडैर्लोकास्संस्थिता बंधनालये ॥ अतीव दुःखमाजग्मुर्भर्त्सितास्ते मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥ तेषां मध्ये च योऽधीशस्स वैश्यस्सुप्रियाभिधः ॥ शिवप्रियश्शुभाचारश्शैवश्चासीत्सदातनः ॥ ४२ ॥ विना च शिवपूजां वै न तिष्ठति कदाचन ॥ सर्वथा शिवधर्मा हि भस्मरुद्राक्षभूषणः ॥ ४३ ॥

नावोंको देखकर वे दुष्ट राक्षस बडे हर्षको प्राप्त हुए और अतिशीघ्र जाकर उनमें स्थितहुए मनुष्योंको वेगसे पकडनेलगे ॥ ३९ ॥ तब उन सब मनुष्योंको पकडकर महाबली उन राक्षसोंने अपने नगरमें लाके दृढ बंधनोंसे बांधकर कारागारमें बंद किया ॥ ४० ॥ तब वैरियोंसे बंधे कारागारमें पडेहुये बारंबार राक्षसोंसे डाटेहुए वे मनुष्य बडे दुःखको प्राप्त हुये ॥ ४१ ॥ उनके मध्यमें जो उनका स्वामी सुप्रियनामवाला वैश्य था वह शिवजीका बडा भक्त, श्रेष्ठ आचरणवाला सज्जन शैव था ॥ ४२ ॥ सब प्रकार शिवधर्मका पालनकर्ता भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला वह सुप्रिय वैश्य किसी समयभी शिवजीके पूजनके

विना नहीं रहताथा ॥ ४३ ॥ जबतक शिवकी पूजा न हो तबतक वह भोजन नहीं करताथा इस कारण वह वैश्य वहां (कारागारमें) भी शिवका पूजन
करता था ॥ ४४ ॥ वह कारागारमें स्थितहो बहुतोंको शिक्षा देताथा, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! वह उन्हें शिवका मंत्र तथा पार्थिवपूजा सिखलाता था ॥४५॥
तब वे सब बन्धनमें पडेहुये मनुष्य अपनी कामनाको पूर्ण करनेवाली शिवपूजाको विधिपूर्वक करते थे, जैसा कि उन्होंने देखा तथा सुनाथा ॥ ४६ ॥
उनमेंसे कोई वहां उत्तम आसन बांधके शिवके ध्यानमें स्थित होते, कोई प्रसन्नतासे मानसिक शिवपूजन करतेथे ॥ ४७ ॥ हे मुनीश्वरो ! उनके स्वामी

यदि पूजा न जाता चेन्न भुनक्ति तदा तु सः ॥ अतस्तत्रापि वैश्योऽसौ चकार शिवपूजनम् ॥ ४४ ॥ कारागृहगतस्सोपि बहूंश्चाशिक्ष
यत्तदा ॥ शिवमंत्रं च पूजां च पार्थिवीमृषिसत्तमाः ॥ ४५ ॥ ते सर्वे च तदा तत्र शिवपूजां स्वकामदाम् ॥ चक्रिरे विधिवत्तत्र यथादृष्टं
यथाश्रुतम् ॥ ४६ ॥ केचित्तत्र स्थिता ध्याने बद्धासनमनुत्तमम् ॥ मानसीं शिवपूजां च केचिच्चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ४७ ॥ तदधीशेन
तत्रैव प्रत्यक्षं शिवपूजनम् ॥ कृतं च पार्थिवस्यैव विधानेन मुनीश्वराः ॥ ४८ ॥ अन्ये च ये न जानन्ति विधानं स्मरणं परम् ॥ नम
शिवाय मंत्रेण ध्यायंतश्शंकरं स्थिताः ॥ ४९ ॥ सुप्रियो नाम यश्चासीद्वैश्यवर्यशिवप्रियः ॥ ध्यायंश्च मनसा तत्र चकार शिवपूज
नम् ॥ ५० ॥ यथोक्तरूपीशंभुश्च प्रत्यक्षं सर्वमाददे ॥ सोपि स्वयं न जानाति गृह्यते न शिवेन वै ॥ ५१ ॥ एवं च क्रियमाणस्य
वैश्यस्य शिवपूजनम् ॥ व्यतीयुस्तत्र षण्मासा निर्विघ्नेन मुनीश्वराः ॥ ५२ ॥

सुप्रियने वहां प्रत्यक्षही पार्थिवकी विधिसे शिवजीका पूजन किया ॥ ४८ ॥ और जो मनुष्य अधिक विधान तथा स्मरण कीर्त्तनादि नहीं जानते थे वे
“नमः शिवाय” इस मंत्रसे शिवजीके ध्यानमें स्थित हुये ॥ ४९ ॥ सुप्रियनामक जो वैश्यवर्य है वह मनसे शिवका ध्यान करताहुआ वहां शिवका पूजन
करताथा ॥ ५० ॥ शास्त्रोक्त रूपवाले शिवजीभी प्रत्यक्ष होके सब उपहारको ग्रहण करतेथे, वह वैश्यभी स्वयं नहीं जानता कि शिवजी उपहारको ग्रहण
करतेहैं ॥ ५१ ॥ हे मुनिश्वरो ! इस प्रकार उस वैश्यको शिवपूजन करते करते विघ्नरहित छे महीने बीतगये ॥ ५२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! इसके आगे शिवजीका जो चरित्र हुआ सो सब सावधानचित्तसे सुनो ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, किसी समय उस दुष्टात्मा दारुक राक्षसके सेवकने उस
वैश्यके आगे शिवजीका सुन्दर रूप देखा ॥ १ ॥ तब उसने कौतुकसहित वह अद्भुतचरित्र यथार्थरूपसे राक्षसोंके राजा उस दारुकसे निवेदन किया ॥ २ ॥
उसी समय राक्षसोंका राजा वह बलवान् दारुक व्याकुल हो वहां आकर शीघ्रही उस वैश्यसे पूंछनेलगा ॥ ३ ॥ दारुक बोला, हे वैश्य ! तू क्या ध्यान

अतः परं च यज्जातं चरितं शशिमौलिनः ॥ तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठाः सावधानेन चेतसा ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्र
संहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनात्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ कदाचित्सेवकस्तस्य
राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ तदग्रे सुंदरं रूपं शंकरस्य ददर्श ह ॥ १ ॥ तस्मै निवेदितं राज्ञे राक्षसानां यथार्थकम् ॥ सर्वं तच्चारितं तेन
सकौतुकमथाद्भुतम् ॥ २ ॥ राजापि तत्र चागत्य राक्षासानां स दारुकः ॥ विह्वलस्सबलश्शीघ्रं पर्यपृच्छच्च तं विशम् ॥ ३ ॥ दारुक
उवाच ॥ किं ध्यायसि हि वैश्य त्वं सत्यं वद ममाग्रतः ॥ एवं सति न मृत्युस्ते मम वाक्यं च नान्यथा ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥
तेनोक्तं च न जानामि तच्छ्रुत्वा कुपितस्स वै ॥ राक्षसान्प्रेरयामास हन्यतां राक्षसा अयम् ॥ ५ ॥ तदुक्तास्ते तदा हंतुं नानायुधधरा
गताः ॥ द्रुतं तं वैश्यशार्दूलं शंकरासक्तचेतसम् ॥ ६ ॥ तानागतांस्तदा दृष्ट्वा भयवित्रस्तलोचनः ॥ शिवं सस्मार सुप्रीत्या तन्नामानि
जगौ मुहुः ॥ ७ ॥ वैश्यपतिरुवाच ॥ पाहि शंकर देवेश पाहि शंभो शिवेति च ॥ दुष्टादस्मात्त्रिलोकेश खलहन्भक्तवत्सल ॥ ८ ॥

करता है मेरे आगे सत्य सत्य कह सत्य सत्य बतानेसे तेरी मृत्यु नहीं होगी नहीं तो मैं मारडालूंगा ? ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, तब उस वैश्यने कहा मैं कुछ
नहीं जानता, ऐसा सुनके वह क्रोधित हुआ और उसने राक्षसोंको भेजा कि इस वैश्यको मारो ॥ ५ ॥ उसके कहनेपर वे राक्षस शीघ्रही अनेकशस्त्रोंको
धारण कर शिवमें आसक्त चित्तवाले उस वैश्यश्रेष्ठके मारनेको गये ॥ ६ ॥ तब उन राक्षसोंको आयाहुआ देख भयसे नेत्र मूंदेहुये वह वैश्य प्रीतिसे शिवको
स्मरण करनेलगा और बारंबार उनके नामोंका कीर्त्तन करनेलगा ॥ ७ ॥ वैश्यपति बोला, हे शंकर ! रक्षा करो, हे देवेश ! पालन करो, हे शम्भो !

ह शिव ! हे दुष्टोंके नाश करनेवाले ! हे भक्तवत्सल ! हे त्रिलोकेश ! इस दुष्ट राक्षससे रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे देव ! इस समय तुमहीं मुझे सर्वस्व हो,
हे प्रभो ! मैं तुम्हारे आधीन हूं तथा तुम्हाराहूं सर्वदा तुम्हारा प्राणहूं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, ऐसी प्रार्थना करनेपर वह शिवजी चारद्वारवाले उत्तम भवनके
सहित उस विवरसे प्रगट हुए ॥ १० ॥ उसने सिंहासनके मध्यमें ज्योतिःस्वरूप शिवके रूपको परिवार सहित अद्भुत आकारसे देखकर पूजन किया ॥ ११ ॥
तब पूजितहुए सदाशिव स्वयं प्रसन्नहुये उसको अपना पाशुपतास्त्र देकर राक्षसाधिपोंको मारने लगे ॥ १२ ॥ और उन सब राक्षसोंको कुटुम्ब और सेनासहित

सर्वस्वं च भवानद्य मम देव त्वमेव हि ॥ त्वदधीनस्त्वदीयोऽहं त्वत्प्राणस्सर्वदा प्रभो ॥ ९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रार्थितश्शंभु
र्विवरान्निर्गतस्तदा ॥ भवनेनोत्तमेनाथ चतुर्द्वारयुतेन च ॥ १० ॥ मध्ये ज्योतिस्स्वरूपं च शिवरूपं तदद्भुतम् ॥ परिवारसमायुक्तं दृष्ट्वा
चापूजयत्स वै ॥ ११ ॥ पूजितश्च तदा शंभुः प्रसन्नो ह्यभवत्स्वयम् ॥ अस्त्रं पाशुपतं नाम दत्त्वा राक्षसपुंगवान् ॥ १२ ॥ जघान सो
पकरणांस्तान्सर्वान्सगणान्द्रुतम् ॥ अरक्षच्च स्वभक्तं वै दुष्टहा स हि शंकरः ॥ १३ ॥ सर्वांस्तांश्च तदा हत्वा वरं प्रादाद्वनस्य च ॥
अत्यद्भुतकरश्शंभुस्स्वलीलात्तसुविग्रहः ॥ १४ ॥ अस्मिन्वने सदा वर्णधर्मा वै संभवंतु च ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां हि तथैव
च ॥ १५ ॥ भवंत्वत्र मुनिश्रेष्ठास्तामसा न कदाचन ॥ शिवधर्मप्रवक्तारश्शिवधर्मप्रवर्तकाः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्समये
सा वै राक्षसी दारुकाह्वया ॥ देव्याः स्तुतिं चकारासौ पार्वत्या दीनमानसा ॥ १७ ॥ प्रसन्ना च तदा देवी किं करोमीत्युवाच हि ॥
साप्युवाच पुनस्तत्र वंशो मे रक्ष्यतां त्वया ॥ १८ ॥

शीघ्रही मारडाला अपने भक्तकी रक्षा की कारण कि, वह सदाशिव दुष्टोंके मारनेवाले हैं ॥ १३ ॥ उस समय अतिअद्भुत चरित्र करनेवाले अपनी इच्छासे
शोभित शरीर धारण करनेवाले शिवजीने उस वनके उन संपूर्ण राक्षसोंको मारकर उस वनको वरदान दिया ॥ १४ ॥ कि इस वनमें सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य, शूद्र यह चारोंवर्ण अपने २ धर्मोंमें तत्पर होंगे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यह निरन्तर शिवकी भक्तिमें तत्परहुये शिवधर्मके उपदेश करनेवाले होंगे
तथा तमोगुणी न होंगे ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, इसी समयमें उस दीनमनवाली दारुकानामक राक्षसीने देवी पार्वतीकी स्तुति की ॥ १७ ॥ तब प्रसन्नहुई

पार्वतीजी उससे बोली कि मैं क्या कार्य करूं यह सुन वह राक्षसी बोलीकि तुम मेरे वंशकी रक्षा करो ॥ १८ ॥ तेरे वंशकी रक्षा करूंगी यह मैं सत्य सत्य कहतीहूं यह कहकर पार्वतीने शिवजीसे विग्रह किया ॥ १९ ॥ तब वरके वशीभूतहुये प्रभु सदाशिव क्रोधितहुए पार्वतीको देखकर बडी प्रीतिसे यह बोले जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥ २० ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार अपने पति शिवजीका वचन सुनके प्रसन्नहुईं पार्वतीजी हँसके यह वचन बोली ॥ २१ ॥ पार्वतीजी बोली, तुम्हारा वचन युगके अन्तमें सत्य होगा तबतक तामसी (तमोगुणवाली) सृष्टि उत्पन्नहो ऐसा मेरा मत है ॥ २२ ॥

रक्षयिष्यामि ते वंशं सत्यं च कथ्यते मया ॥ इत्युक्त्वा च शिवेनैव विग्रहं सा चकार ह ॥ १९ ॥ शिवोपि कुपितां देवीं दृष्ट्वा वरवशः प्रभुः ॥ प्रत्युवाचेति सुप्रीत्या यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वपतेश्शंकरस्य वै ॥ सुप्रसन्ना विहस्याशु पार्वती वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पार्वत्युवाच ॥ भवदीयं वचस्तथ्यं युगांते संभविष्यति ॥ तावच्च तामसी सृष्टिर्भवत्विति मतं मम ॥ २२ ॥ अन्यथा प्रलयस्स्याद्धै सत्यं मे व्याहृतं शिव ॥ प्रमाणीक्रियतां नाथ त्वदीयास्मि त्वदाश्रया ॥ २३ ॥ इयं च दारुका देवी राक्षसी शक्तिका मम ॥ बलिष्ठा राक्षसीनां च रक्षोराज्यं प्रशास्तु च ॥ २४ ॥ इमा राक्षसपत्न्यस्तु प्रसविष्यंति पुत्रकान् ॥ ते सर्वे मिलिताश्चैव वने वासाय मे मताः ॥ २५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्यास्स्वस्त्रियाः प्रभुः ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा शंकरो वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ इति ब्रवीषि त्वं वै चेच्छृणु मद्वचनं प्रिये ॥ स्थास्याम्यस्मिन्वने प्रीत्या भक्तानां पालनाय च ॥ २७ ॥

हे शिवजी ! हे स्वामी ! यदि मेरे कहनेके अनुसार न होगा तो प्रलय होगी मैंने सत्य २ कहा है मेरा वचन प्रमाण करो मैं तुम्हारी ही हूं तथा तुम्हारेही आश्रयमें हूं ॥ २३ ॥ यह दारुकादेवी जो राक्षसी है वह मेरी ही शक्तिहै राक्षसियोंमें बलिष्ठ हुईं वह राक्षसोंमें राज्य करैगी ॥ २४ ॥ यह संपूर्ण राक्षसोंकी स्त्रियां अपने पुत्रोंको उत्पन्न करैंगी वे सब मिलके वनमें निवास करैंगे ऐसी मेरी सम्मति है ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, प्रभु सदाशिव ऐसा अपनी स्त्री पार्वतीजीका वचन सुनके प्रसन्नचित्त हुए फिर यह वचन बोले ॥ २६ ॥ शिवजी बोले, हे प्रिये ! यदि तुम ऐसा कहती हो तो मेरा वचन सुनो मैं

भी अपने भक्तोंके पालन करनेके निमित्त प्रीतिसे इस वनमें निवास करूंगा ॥ २७ ॥ यहांपर जो मनुष्य अपने २ वर्णोंके धर्ममें स्थित होके प्रीतिसहित मेरा दर्शन करैगा वह चक्रवर्ती होगा ॥ २८ ॥ अन्यथा कलियुगकी समाप्तिमें सतयुगकी आदिमें वीरसेननामसे प्रसिद्ध हुआ अधिक सेनायुक्त राजा होगा ॥ २९ ॥ वह मेरी भक्तिसे बढाहुआ वीरसेन मेरा दर्शन करके चक्रवर्ती राजा होगा ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार वे दोनों शिव पार्वती परस्पर हास्य करके बडी लीला करनेवाले साक्षात् गिरजा और शिवजी वहां स्थित हुए ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूप नागेश्वरनामसे तथा

अत्र मे वर्णधर्मस्थो दर्शनं प्रीतिसंयुतम् ॥ करिष्यति च यो वै स चक्रवर्ती भविष्यति ॥ २८ ॥ अन्यथा कलिपर्याये सत्यस्यादौ नृपेश्वरः ॥ महासेनयुतो यो वै वीरसेनेति विश्रुतः ॥ २९ ॥ स मे भक्त्यातिविक्रांतो दर्शनं मे करिष्यति ॥ दर्शनं मे स कृत्वैव चक्रवर्ती भविष्यति ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्येवं दंपती तौ च कृत्वा हास्यं परस्परम् ॥ स्थितौ तत्र स्वयं साक्षान्महत्त्वकारकौ द्विजाः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्लिंगस्वरूपो हि नाम्ना नागेश्वरश्शिवः ॥ नागेश्वरी शिवा देवी बभूव च सतां प्रियौ ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वीरसेनः कथं तत्र यास्यते दारुकावने ॥ कथमर्चिष्यति शिवं त्वं तद्वद महामते ॥ ३३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ निषधे सुंदरे देशे क्षत्रियाणां कुले च सः ॥ महासेनसुतो वीरसेनश्चैव शिवप्रियः ॥ ३४ ॥ पार्थिवेशार्चनं कृत्वा तपः परमदुष्करम् ॥ चकार वीरसेनो वै वर्षाणां द्वादशावधिः ॥ ३५ ॥ ततः प्रसन्नो देवेशः प्रत्यक्षं प्राह शंकरः ॥ काष्ठस्य मत्स्यिकां कृत्वा त्रपुधातुविलेपनाम् ॥ ३६ ॥ विधाय योगमायां च दास्यामि वीरसेनक ॥ तां गृहीत्वा प्रविश्यैतं नृभिस्सह व्रजाधुना ॥ ३७ ॥

पार्वती देवी नागेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हुईं ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे बडी बुद्धिवाले सूतजी ! वह वीरसेन उस दारुकावनमें कैसे जायगा और किस प्रकार शिवजीको पूजैगा सो सब वर्णन करो ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले, वह शिवकी भक्ति करनेवाला महासेनका पुत्र वीरसेन राजा निषधनामवाले सुन्दर देशमें क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ ॥ ३४ ॥ उस वीरसेनने पार्थिव शिव पूजा करके बारह वर्षपर्यन्त बडा कठिन तप किया ॥ ३५ ॥ तब देवताओंके स्वामी प्रसन्न हुये सदाशिव प्रत्यक्ष होके बोले, हे वीरसेन ! रांगा धातुसे लेपन की हुई काष्ठकी मछली बनाके ॥ ३६ ॥ उसमें योगमाया करके वह तुझे दूंगा

उसको ग्रहण करके मनुष्योंके साथ उस विवरमें प्रवेश हो ॥ ३७ ॥ तब तू वहां जाके मुझसे कियेहुए विवरमें प्रवेश होके नागेश्वरका पूजन करके ॥ ३८॥ और पाशुपत अस्त्रको पाय उन राक्षसियोंको विनाश करना उस समय मेरे दर्शन करनेपर तुम्हैं किसी प्रकारकी न्यूनता न होगी ॥ ३९ ॥ तब पार्वतीका बलभी सम्पूर्ण होगा और जो उस वनमें म्लेच्छ रूप राक्षस हैं वे सब सदाचारी होजायँगे ॥ ४० ॥ सूतजी बोले, भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले प्रभु सदाशिव वीरसेन राजासे ऐसा कहके उसके ऊपर बडी कृपा करके वहां ही अन्तर्धान हुये ॥ ४१ ॥ इस प्रकार परमात्मा शिवसे वर प्राप्त करनेवाला वह वीरसेन

ततस्त्वं तत्र गत्वा च विवरे च कृते मया ॥ प्रविश्य च तदा पूजां कृत्वा नागेश्वरस्य च ॥ ३८ ॥ ततः पाशुपतं प्राप्य हत्वा च राक्षसीमुखान् ॥ मयि दृष्टे तदा किंचिन्न्यूनं ते न भविष्यति ॥ ३९ ॥ पार्वत्याश्च बलं चैव संपूर्णं वै भविष्यति ॥ अन्ये च म्लेच्छरूपा ये भविष्यंति वने शुभाः ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र वीरसेनं हि दुःखहा ॥ कृत्वा कृपां च महतीं तत्रैवांतर्दधे प्रभुः ॥ ४१ ॥ इति दत्तवरस्सोऽपि शिवेन परमात्मना ॥ शक्तस्सर्वं तदा कर्तुं संबभूव न संशयः ॥ ४२ ॥ एवं नागेश्वरो देव उत्पन्नो ज्योतिषां पतिः ॥ लिंगरूपस्त्रिलोकस्य सर्वकामप्रदस्सदा ॥ ४३ ॥ एतद्यश्शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात् ॥ सर्वान्कामानियाद्धीमान्महापातकनाशनान् ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि लिंगं रामेश्वराभिधम् ॥ उत्पन्नं च यथा पूर्वमृषयश्शृणुतादरात् ॥ १ ॥

सब कुछ करनेमें समर्थ हुआ इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार तीनों लोकोंकी कामना पूर्ण करनेवाले ज्योतिर्लिङ्गोंके स्वामी लिङ्गस्वरूप नागेश्वर देव उत्पन्न हुये ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य इस नागेशकी उत्पत्तिको नित्य श्रवण करता है वह बुद्धिमान् सब पापोंसे छूटके संपूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० नागेश्वरज्योतिर्लिङ्गोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ सूतजी बोले, अब इसके आगे रामेश्वरनामक ज्योतिर्लिङ्गको वर्णन करता हूं कि वह जिस प्रकार पहले उत्पन्न हुये हे ऋषियो ! सो सब आदरसे सुनो ॥ १ ॥

पहले त्रेतायुगमें सत्पुरुषोंके रक्षक विष्णु भगवान्‌ने पृथिवीमें रामावतार लिया ॥ २ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! बडी मायावाले रावणने उनकी स्त्री जानकीजीको हरण किया और उन सीताजीको अपने घर लंकापुरीमें ले गया ॥ ३ ॥ उस समय रामचन्द्रजी जानकीको ढूँढतेहुये किष्किन्धापुरीको गये वहां सुग्रीवके हितकारी मित्र होके उन्होंने बालीको मारा ॥४॥ सीताजीके खोजनेमें लगेहुए रामचंद्रजीने वहां कुछ दिनों निवास करके सुग्रीव हनुमान् आदि वानरोंके सहित तथा भाई लक्ष्मणके साथ विचार किया ॥ ५ ॥ तब उन राजपुत्र रामचन्द्रने जानकीजीको खोजके अर्थ हनुमान आदि वानरोंको चारोंओर

पुरा विष्णुः पृथिव्यां चावततार सतां प्रियः ॥ २ ॥ तत्र सीता हृता विप्रा रावणेनोरुमायिना ॥ प्रापिता स्वगृहं सा हि लंकायां जनकात्मजा ॥ ३ ॥ अन्वेषणपरस्तस्याः किष्किन्धाख्यां पुरीमगात् ॥ सुग्रीवहितकृद्भूत्वा वालिनं संजघान ह ॥ ४ ॥ तत्र स्थित्वा कियत्कालं तदन्वेषणतत्परः ॥ सुग्रीवाद्यैर्लक्ष्मणेन विचारं कृतवान्स वै ॥ ५ ॥ कपीन्संप्रेषयामास चतुर्दिक्षु नृपात्मजः ॥ हनुमत्प्रमुखान्रामस्तदन्वेषणहेतवे ॥६॥ अथ ज्ञात्वा गतां लंकां सीतां कपिवराननात् ॥ सीताचूडामणिं प्राप्य मुमुदे सोऽति राघवः ॥ ७ ॥ सकपीशस्तदा रामो लक्ष्मणेन युतो द्विजाः ॥ सुग्रीवप्रमुखैः पुण्यैर्वानरैर्बलवत्तरैः ॥ ८ ॥ पद्मैरष्टादशाख्यैश्च ययौ तीरं पयोनिधेः ॥ दक्षिणे सागरे यो वै दृश्यते लवणाकरः ॥ ९ ॥ तत्रागत्य स्वयं रामो वेलायां संस्थितो हि सः ॥ वानरैस्सेव्यमानस्तु लक्ष्मणेन शिवप्रियः ॥ १० ॥ हा जानकि कुतो याता कदा चेयं मिलिष्यति ॥ अगाधस्सागरश्चैवातार्या सेना च वानरी ॥ ११ ॥

भेजा ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके मुंहसे जानकीको लंकामें प्राप्तहुई जानके सीताजीकी चूडामणि लेके वह रामचन्द्र अति प्रसन्न हुये ॥ ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब वे रामचन्द्र हनुमान्‌जी तथा लक्ष्मण समेत, अतिबलवान्, पवित्र, अठारह पद्मसंख्यक, सुग्रीवआदि वानरोंके सहित दक्षिणमें खारी समुद्रके तीरपर पहुंचे ॥ ८ ॥ ९ ॥ वहां प्राप्त होके शिवभक्तिवाले रामचंद्रजी समुद्रके तटपर स्थितहो छोटे भाई लक्ष्मणजी तथा अनेक वानरोंसे सेवितहुये ॥ १० ॥ हा शोक ! जानकी कहां चलीगई जानै कब मिलैंगी यह कैसा गहरा समुद्रहै यह वानरोंकी सेना इसके तरनेमें असमर्थ है ॥ ११ ॥

वह महाबली तथा पराक्रमी पर्वत उखाडकर धारण करनेवाला रावणहै इन्द्रको जीतनेवाला (मेघनाद) उस रावणका पुत्र है इस प्रकार लंकानामक बडा कठिन गढ है ॥ १२ ॥ ऐसा विचारके उन रामचन्द्रजीको लक्ष्मणके सहित समुद्रके तटपर स्थित होके वनमें निवास करनेवाले अंगदआदिकोंने धैर्य देकर आश्वासन दिया ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें शैवोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी जल पीनेके अर्थ अपने भाई लक्ष्मणसे प्रीतिसे बोले ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी बोले, हे वीरोंके स्वामी भाई लक्ष्मण ! मैं प्यासाहूं जलकी इच्छा है इससे शीघ्रही किसी वानरसे जल मंगाके पिलाओ ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, यह

राक्षसो गिरिधर्त्ता च महाबलपराक्रमः ॥ लंकाख्यो दुर्गमो दुर्ग इंद्रजित्तनयोस्य वै ॥ १२ ॥ इत्येवं स विचार्यैव तटे स्थित्वा सलक्ष्मणः ॥
आश्वासितो वनौकोभिरंगदादिपुरस्सरैः ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र राघवश्शैवसत्तमः ॥ उवाच भ्रातरं प्रीत्या जलार्थी लक्ष्मणाभि
धम् ॥१४॥ राम उवाच ॥ भ्रातर्लक्ष्मण वीरेशाहं जलार्थी पिपासितः ॥ तदानय द्रुतं पाथो वानरैः कैश्चिदेव हि ॥१५॥ सूत उवाच ॥
तच्छ्रुत्वा वानरास्तत्र ह्यधावंत दिशो दश ॥ नीत्वा जलं च ते प्रोचुः प्रणिपत्य पुरः स्थिताः ॥ १६ ॥ वानरा ऊचुः ॥ जलं च
गृह्यतां स्वामिन्नानीतं तत्त्वदाज्ञया ॥ महोत्तमं च सुस्वादु शीतलं प्राणतर्पणम् ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ सुप्रसन्नतरो भूत्वा कृपादृष्ट्या
विलोक्य तान् ॥ तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽसौ स्वयं जग्राह तज्जलम् ॥ १८ ॥ स शैवस्तज्जलं नीत्वा पातुमारब्धवान्यदा ॥ तदा च स्मरणं
जातमित्थमस्य शिवेच्छया ॥ १९ ॥ न कृतं दर्शनं शंभोर्गृह्यते च जलं कथम् ॥ स्वस्वामिनः परेशस्य सर्वानंदप्रदस्य वै ॥ २० ॥

सुनके वे वानर वहांसे जल लेनेको दसो दिशाओंमें गये और जल लाके वे सब आगे स्थितहो प्रणामकरके यह बोले ॥ १६ ॥ वानर बोले, हे स्वामिन् ! जल ग्रहण करो हम आपकी आज्ञासे लेआये यह जल बडा श्रेष्ठ है अति स्वादिष्ट शीतल तथा प्राणोंको तृप्त करने वाला है ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, यह सुनके रामचन्द्रजीने बडे प्रसन्नहो उन वानरोंको कृपादृष्टिसे देखके स्वयं जल ग्रहण किया ॥ १८ ॥ जबहीं उन शैव रामचन्द्रने वह जल पीना प्रारम्भ किया तब उनको शिवकी इच्छासे यह स्मरण हुआ ॥ १९ ॥ कि अपने स्वामी, परेश, सम्पूर्ण आनन्दके देनेवाले, सदाशिवका दर्शन नहीं किया फिर

जल कैसे पिवूं ? ॥ २० ॥ ऐसा कहके उस समय रामचन्द्रजीने जल पिया पीछेसे रघुनाथजीने पार्थिव पूजन किया ॥ २१ ॥ विधिपूर्वक आवाहनादि सोलह उपचारोंकी कल्पना करके प्रीतिसे शंकरदेवकी पूजाकी ॥ २२ ॥ प्रणामोंसे तथा दिव्य स्तोत्रोंसे यत्नपूर्वक शिवजीको सन्तुष्टकर बडी भक्तिसे आनन्दके सहित शंकरकी प्रार्थनाकी ॥ २३ ॥ रामचन्द्रजी बोले, हे स्वामी ! हे शंभो ! हे महादेव ! हे भक्तवत्सल ! दीन मनवाले शरणमें प्रातहुए मुझ अपने भक्तकी सदा रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे भवसागरसे तारनेवाले ! यह. समुद्रका जल बडा अगाध है और बडा बलवान् पराक्रमी रावण बडा प्रबल

इत्युक्त्वा च जलं पीतं तदा रघुवरेण च ॥ पश्चाच्च पार्थिवीं पूजां चकार रघुनंदनः ॥ २१ ॥ आवाहनादिकांश्चैव ह्युपचारान्प्रकल्प्य वै ॥
विधिवत्षोडश प्रीत्या देवमानर्च शङ्करम् ॥ २२ ॥ प्रणिपातैस्स्तवैर्दिव्यैश्शिवं संतोष्य यत्नतः ॥ प्रार्थयामास सद्भक्त्या स रामश्शंकरं
मुदा ॥ २३ ॥ राम उवाच ॥ ॥ स्वामिञ्छंभो महादेव सर्वदा भक्तवत्सल ॥ पाहि मां शरणापन्नं त्वद्भक्तं दीनमानसम् ॥ २४ ॥
एतज्जलमगाधं च वारिधेर्भवतारण ॥ रावणाख्यो महावीरो राक्षसो बलवत्तरः ॥ २५ ॥ वानराणां बलं ह्येतच्चंचलं युद्धसाधनम् ॥
मम कार्यं कथं सिद्धं भविष्यति प्रियाप्तये ॥ २६ ॥ तस्मिन्देव त्वया कार्यं साहाय्यं मम सुव्रत ॥ साहाय्यं ते विना नाथ मम कार्य्यं
हि दुर्लभम् ॥ २७ ॥ त्वदीयो रावणोऽपीह दुर्ज्जयस्सर्वथाखिलैः ॥ त्वद्दत्तवरदृप्तश्च महावीरस्त्रिलोकजित् ॥ २८ ॥ अप्यहं तव
दासोऽस्मि त्वदधीनश्च सर्वथा ॥ विचार्येति त्वया कार्यः पक्षपातस्सदाशिव ॥ २९ सूत उवाच ॥ इत्येवं स च संप्रार्थ्य नमस्कृत्य
पुनः पुनः ॥ तदा जयजयेत्युच्चैरुद्घोषैश्शंकरेति च ॥ ३० ॥

राक्षस है ॥ २५ ॥ और युद्धकी साधनरूप वानरोंकी सेना चंचल है, मनोरथ प्रात होनेके निमित्त मेरा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ॥ २६ ॥ हे सुव्रत ! हे देव ! इस युद्धमें आप मेरी सहायता करैं, हे स्वामी ! तुम्हारी सहाय ताके विना मेरा कार्य दुर्लभ है ॥ २७ ॥ तुम्हारे दियेहुये वरसे अभिमानी बडा पराक्रमी तीनों लोकोंका जीतनेवाला तुम्हारा रावण सबको सबप्रकार दुर्जयहै ॥ २८ ॥ हे सदाशिव ! मैं तुम्हारा दासहूं तथा सब प्रकार तुम्हारे आधीनहूं ऐसा विचार मेरा पक्षपात करना योग्य है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, ऐसी प्रार्थना करके तथा बारम्बार नमस्कार करके हे शंकर ! आपकी सदा जय हो

जय हो ऐसा बडे ऊंचे स्वरसे कहा ॥ ३० ॥ इस प्रकार मन्त्र तथा ध्यानमें तत्परहुये रामचन्द्रजी वहां शिवकी स्तुति करके और फिर पूजा करके स्वामी शिवके आगे नृत्य करने लगे ॥ ३१ ॥ प्रेमसे आर्द्रहुये मनसे जब गल्लनाद (बडबड ऐसा मुंहका शब्द) किया तबहीं शंकर देव अतिप्रसन्न हुये ॥ ३२ ॥ तबहीं अंगों तथा परिवारसमेत ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शास्त्रोक्त निर्मल स्वरूपको धारण करके शीघ्रही प्रगट हुये ॥ ३३ ॥ तब रामचन्द्रजीकी भक्तिसे सन्तुष्टहुए शिवजी बोले, हे रामचन्द्र ! तुम्हारा कल्याणहो वर मांगो ऐसा कहने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय उनका स्वरूप देखके सम्पूर्ण लोग स्वयं

इति स्तुत्वा शिवं तत्र मंत्रध्यानपरायणः ॥ पुनः पूजां ततः कृत्वा स्वाम्यग्रे स ननर्त ह ॥ ३१ ॥ प्रेमविक्लिन्नहृदयो गल्लनादं यदाकरोत् ॥ तदा च शंकरो देवस्सुप्रसन्नो बभूव ह ॥ ३२ ॥ सांगस्सपरिवारश्च ज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ यथोक्तरूपममलं कृत्वाविरभवद्भुतम् ॥ ३३ ॥ ततस्संतुष्टहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः ॥ शिवमस्तु वरं ब्रूहि रामेति स तदाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा सर्वे पूतास्ततस्स्वयम् ॥ कृतवान्राघवः पूजां शिवधर्मपरायणः ॥ ३५ ॥ स्तुतिं च विविधां कृत्वा प्रणिपत्य शिवं मुदा ॥ जयं च प्रार्थयामास रावणाजौ तदात्मनः ॥ ३६ ॥ ततः प्रसन्नहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः ॥ जयोस्तु ते महाराज प्रीत्या स पुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शिवदत्तं जयं प्राप्य ह्यनुज्ञां समवाप्य च ॥ पुनश्च प्रार्थयामास सांजलिर्नतमस्तकः ॥ ३८ ॥ ॥ राम उवाच ॥ त्वया स्थेयमिह स्वामिंल्लोकानां पावनाय च ॥ परेषामुपकारार्थं यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ ३९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा ॥ रामेश्वरश्च नाम्ना वै प्रसिद्धो जगतीतले ॥ ४० ॥

पवित्र हुये और शिवधर्ममें तत्परहुये रामचंद्रने उनकी पूजा की ॥ ३५॥ अनेकों स्तुति तथा प्रीतिसे शिवको प्रणाम करके रावणके संग्राममें अपनी विजयकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ उस समय रामचन्द्रजीकी भक्तिसे प्रसन्नहुये महेश्वर बोले, हे महाराज ! तुम्हारी जय हो ऐसा प्रीतिसे कहने लगे ॥ ३७॥ शिवजीके दिये विजय वर तथा आज्ञाको पाके फिर रामचन्द्रजीने माथा झुकाय हाथ जोड प्रार्थना की ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रजी बोले, हे स्वामिन् ! हे शंकर ! यदि आप प्रसन्नहैं तो संसारके पवित्र करनेके लिये दूसरोंके उपकार करनेके अर्थ आप यहां निवास करैं ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके शिवजी वहांपर

लिंगरूप हुये और रामेश्वरनामसे पृथिवीमें प्रसिद्ध हुये ॥ ४० ॥ रामचन्द्रजीने शिवजीके प्रताप और बलसे समुद्रको तरके शीघ्र रावण आदि राक्षसोंको मारके उन जानकीजीको प्राप्त किया ॥ ४१ ॥ भूमिमें रामेश्वरकी महिमा अति अद्भुत है वे सदा भुक्ति मुक्तिके देनेवाले तथा भक्तोंको कामना देनेवालेहैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य दिव्य गंगाजलसे रामेश्वर शिवको सुन्दर भक्तिसे स्नान कराता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४३ ॥ इस लोकमें देवताओंको भी दुर्लभहुये सम्पूर्ण भोगोंको भोगके अन्तमें परमज्ञानको पाके निश्चयही कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिवके रामेश्वरनामक

रामस्तु तत्प्रभावाद्वै सिन्धुमुत्तीर्य चांजसा ॥ रावणादीन्निहत्याशु राक्षसान्प्राप तां प्रियाम् ॥ ४१ ॥ रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः ॥ ४२ ॥ दिव्यगंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यश्शिवम् ॥ रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ४३ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवानां दुर्लभानपि ॥ अंते प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ इति वश्च समाख्यातं ज्योतिर्लिंगं शिवस्य तु ॥ रामेश्वराभिधं दिव्यं शृण्वतां पापहारकम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं च घुश्मेशं ज्योतिर्लिंगमुदाहृतम् ॥ तस्यैव च सुमाहात्म्यं श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ १ ॥ दक्षिणस्यां दिशि श्रेष्ठो गिरिर्देवेति संज्ञकः ॥ महाशोभान्वितो नित्यं राजतेऽद्भुतदर्शनः ॥ २ ॥ तस्यैव निकटे कश्चिद्भारद्वाजकुलोद्भवः ॥ सुधर्मा नाम विप्रश्च न्यवसद्ब्रह्मवित्तमः ॥ ३ ॥ तस्य प्रिया सुदेहा च शिवधर्मपरायणा ॥ पतिसेवापरा नित्यं गृहकर्मविचक्षणा ॥ ४ ॥

दिव्य ज्योतिर्लिंगका तुमसे वर्णन किया जो इसका श्रवण करतेहैं उनके पाप हरण होतेहैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठो ! पहले जो घुश्मेशनामक ज्योतिर्लिंग कहा है उसके ही माहात्म्यको अब इसके आगे वर्णन करूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ दक्षिणदिशाकी ओर देवनामवाला बडी शोभासे युक्त नित्य सुन्दर दर्शनवाला श्रेष्ठ पर्वत शोभित होरहाहै ॥ २ ॥ उसके निकटमें कोई भारद्वाज कुलमें उत्पन्नहुआ वेदका जाननेवाला सुधर्मानामवाला ब्राह्मण रहता था ॥ ३ ॥ उसकी स्त्री शोभायमान शरीरवाली

शिव धर्ममें तत्परहुई नित्य पतिकी सेवा करनेवाली घरके कार्योंमें प्रवीण थी ॥ ४ ॥ और वह सुधर्मा ब्राह्मणश्रेष्ठ देवता अतिथियोंका पूजनेवाला, वेदमार्गमें तत्पर, नित्य अग्निहोत्र करनेमें तत्पर रहता था ॥ ५ ॥ तीनों कालकी संध्या करनेवाला, सूर्यके समान कांतिवाला, शिष्योंको पढानेवाला, वेद शास्त्रोंमें निपुण था ॥ ६ ॥ धनवान्, दूसरोंको दान देनेवाला, सज्जनोंके गुणोंका पात्र, शिवकर्मोंमें रुचिवाला, तथा नित्य शैव पुरुषोंका सत्कार करनेवाला, शैव था ॥ ७ ॥ धर्म करतेहुए उसकी बहुत आयु बीत गई उसके कोई पुत्र नहीं हुआ उसकी स्त्रीका ऋतुकाल निष्फल गया ॥ ८ ॥ इस कारण पदार्थज्ञानमें

सुधर्मा च द्विजश्रेष्ठो देवतातिथिपूजकः ॥ वेदमार्गपरो नित्यमग्निसेवापरायणः ॥ ५ ॥ त्रिकालसंध्यया युक्तस्सूर्य्यरूपसमद्युतिः ॥ शिष्याणां पाठकश्चैव वेदशास्त्रविचक्षणः ॥ ६ ॥ धनवांश्च परो दाता सौजन्यगुणभाजनः ॥ शिवकर्मरतो नित्यं शैवश्शैवजनप्रियः ॥ ॥ ७ ॥ आयुर्बहु व्यतीयाय तस्य धर्मं प्रकुर्वतः ॥ पुत्रश्च नाभवत्तस्य ऋतुः स्यादफलस्त्रियाः ॥ ८ ॥ तेन दुःखं कृतं नैव वस्तुज्ञानपरेण हि ॥ आत्मनस्तारकश्चात्माह्यात्मनः पावनश्च सः ॥ ९ ॥ इत्येवं मानसं धृत्वा दुःखं न कृतवांस्तदा ॥ सुदेहा च तदा दुःखं चकारापुत्रसम्भवम् ॥ १० ॥ नित्यं च स्वामिनं सा वै प्रार्थयद्यत्नसाधने ॥ पुत्रोत्पादनहेतोश्च सर्वविद्याविशारदम् ॥ ११ ॥ सोऽपि स्त्रियं तदाभर्त्स्य किं पुत्रश्च करिष्यति ॥ का माता कः पिता पुत्रः को बंधुश्च प्रियश्च कः ॥ १२ ॥ सर्वं स्वार्थपरं देवि त्रिलोक्यां नात्र संशयः ॥ जानीहि त्वं विशेषेण बुद्ध्या शोकं न वै कुरु ॥ १३ ॥

तत्परहुये उस ब्राह्मणने दुःख नहीं माना कारण कि आत्माही आत्माका तारनेवाला तथा पवित्र करनेवाला है ॥ ९ ॥ ऐसा मनमें विचार करके उस समय उसने दुःख नहीं किया परन्तु उसकी स्त्री सुदेहाने पुत्र न होनेका दुःख माना ॥ १० ॥ वह नित्यही सम्पूर्ण विद्याओंमें पंडिता अपने स्वामीसे पुत्र उत्पन्न करनेके हेतु प्रयत्न करनेकी प्रार्थना करती थी ॥ ११ ॥ वह अपनी स्त्रीको ललकारके यह कहता कि पुत्रका क्या करैगी, कौन माता है, कौन पिताहै, तथा कौन पुत्र है, कौन भाई है, कौन प्रिय (मित्र) है ॥ १२ ॥ हे देवि ! तुम इस त्रिलोकीमें यह सब स्वार्थमें विशेषही तत्पर जानो इसमें कुछ संशय नहीं है इस

कारण अपनी बुद्धिसे चिन्ता मत करो ॥ १३ ॥ हे दैवि ! हे शुभव्रते ! इस कारण निश्चयही तुम दुःखका त्यागन करो और नित्य मुझसे पुत्रोत्पादनके उपायको कहना योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ इस प्रकार इस स्त्रीको निवारण करके भगवान् शिवके धर्ममें तत्परहुये तथा परम सन्तुष्ट हुये उस ब्राह्मणने दुःख द्वन्द्वको त्यागा ॥ १५ ॥ किसी समय उसकी स्त्री सुदेहा प्रिय सखियोंकी गोष्ठीमें पडोसियोंके घर गई वहां विवाद होनेलगा ॥ १६ ॥ तब सुधर्माकी स्त्री सुदेहाको वहांकी स्त्रियोंने नारीस्वभावसे भर्त्सनाकी और उस सुदेहा ब्राह्मणकी स्त्रीसे दुर्वचन कहे॥ १७॥ द्विजस्त्री बोली, हे अपुत्रिणि ! तू क्यों अभिमान

तस्मादेवि त्वया दुःखं त्यजनीयं सुनिश्चितम् ॥ नित्यं मह्यं त्वया नैव कथनीयं शुभव्रते ॥ १४ ॥ एवं तां सन्निवार्य्यैव भगवद्धर्मतत्परः ॥ आसीत्परमसंतुष्टो द्वन्द्वदुःखं समत्यजत् ॥ १५ ॥ कदाचिच्च सुदेहा वै गेहे च सह वासिनः ॥ जगाम प्रियगोष्ठ्यर्थं विवादस्तत्र संगतः ॥ १६ ॥ तत्पत्नी स्त्रीस्वभावाच्च भर्त्सिता सा तया तदा ॥ उक्ता चेति दुरुक्त्या वै सुदेहा विप्रकामिनी ॥ १७॥ द्विज पत्न्युवाच ॥ अपुत्रिणि कथं गर्वं कुरुषे पुत्रिणी ह्यहम् ॥ मद्धनं भोक्ष्यते पुत्रो धनं ते कश्च भोक्ष्यते ॥ १८ ॥ नूनं हरिष्यते राजा त्वद्धनं नात्र संशयः ॥ धिग्धिक्त्वां ते धनं धिक्च धिक्ते मानं हि वन्ध्यके ॥ १९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ भर्त्सिता ताभिरिति सा गृहमागत्य दुःखिता ॥ स्वामिने कथयामास तदुक्तं सर्वमादरात् ॥ ॥ २० ॥ ब्राह्मणोऽपि तदा दुःखं न चकार सुबुद्धिमान् ॥ कथितं कथ्यतामेव यद्भावि तद्भवेत्प्रिये ॥ २१ ॥ इत्येवं च तदा तेन ह्याश्वस्तापि पुनः पुनः ॥ न तदा सात्यजद्दुःखं ह्याग्रहं कृतवत्यसौ ॥ २२ ॥

करती है ? मैं पुत्रवाली हूं मेरे धनको मेरा पुत्र भोगैगा तेरे धनको कौन भोगैगा ॥ १८ ॥ निश्चयही तेरे धनको राजा हरण करैगा इसमें संशय नहीं हे बांझ ! तुझे धिक्कार है तथा तेरे धनको तेरे मानको भी धिक्कार है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन स्त्रियोंसे ललकारीहुई वह अपने घरमें आकर अति दुःखी हो उनसे कहेहुए सब वृत्तान्तको आदरपूर्वक अपने स्वामीसे कहने लगी ॥ २० ॥ यह सुनके उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने मनमें कुछ दुःख नहीं किया और कहा कि, हे प्रिये ! कहने दो जो होनीहै वह होगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मणने उसे बारम्बार आश्वासन (धैर्य) दिया तौ भी उसने

दुःख नहीं त्यागा और फिर भी आग्रह करने लगी ॥ २२ ॥ सुदेहा बोली, हे देहधारियोंमें श्रेष्ठपते ! जिस किसी उपायसे तुम पुत्र उत्पन्न करो, तुम मेरे
प्रियहो, नहीं तो मैं अपना शरीर त्यागन करूंगी ॥ २३ ॥ सूतजी बोले उसका ऐसा वचन सुनके उसके आग्रहसे व्याकुलहुये उस सुधर्मा ब्राह्मणश्रेष्ठने
मनसे शिवको स्मरण किया ॥ २४ ॥ तब आलस्यरहित उस ब्राह्मणने अग्निके आगे दो फूल फेंके और उस दक्षिणपुष्पको पुत्रकी कामना देनेवाला है
ऐसा मनसे जाना ॥ २५ ॥ ऐसा प्रण करके वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे बोला कि, तू पुत्रके फल पानेके निमित्त इन दोनों पुष्पोंमेंसे एक पुष्प ग्रहण कर ॥

सुदेहोवाच ॥ यथा तथा त्वया पुत्रस्समुत्पाद्यः प्रियोऽसि मे ॥ त्यक्षामि ह्यन्यथाहं च देहं देहभृतां वर ॥ २३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥
एवमुक्तं तया श्रुत्वा सुधर्मा ब्राह्मणोत्तमः ॥ शिवं सस्मार मनसा तदाग्रहनिपीडितः ॥ २४ ॥ अग्नेरग्रेऽक्षिपत्पुष्पद्वयं विप्रो ह्यतंद्रित ॥
मनसा दक्षिणं पुष्पं तन्मेने पुत्रकामदम् ॥ २५ ॥ एवं कृत्वा पणं पत्नीमुवाच ब्राह्मणस्स च ॥ अनयोर्ग्राह्यमेकं ते पुष्पं पुत्रफलाप्तये
॥ २६ ॥ तया च मनसा धृत्वा पुत्रश्चैव भवेन्मम ॥ तदा च स्वामिना यच्च धृतं पुष्पं समेतु माम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा च तया तत्र नमस्कृ
त्य शिवं तदा ॥ नत्वा चाग्निं पुनः प्रार्थ्य गृहीतं पुष्पमेककम् ॥ २८ ॥ स्वामिना चिंतितं यच्च तद्गृहीतं तया न हि ॥ सुदेहया विमो
हेन शिवेच्छासंभवेन वै ॥ २९ ॥ तद्दृष्ट्वा पुरुषश्चैव निश्श्वासं पर्यमोचयत् ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजमुवाच निजकामिनीम् ॥ ३० ॥
सुधर्मोवाच ॥ निर्मितं चेश्वरेणैव कथं चैवान्यथा भवेत् ॥ आशां त्यज प्रिये त्वं च परिचर्य्यां कुरु प्रभोः ॥ ३१ ॥

॥ २६ ॥ उसने ऐसा अपने मनमें विचारा कि मेरे पुत्र हो फिर यह सोचा जो पुष्प स्वामीने धारण कियाहै वह पुष्प मुझे प्राप्त हो ॥ २७ ॥ ऐसा कहके
उस स्त्रीने शिवको तथा अग्निको प्रणाम और प्रार्थना करके एक पुष्प ग्रहण किया ॥ २८ ॥ उस सुदेहा स्त्रीने शिवकी इच्छासे उत्पन्नहुये मोहसे स्वामीने
जो पुष्प लेना विचाराथा सो नहीं लिया ॥ २९ ॥ यह देखके उस ब्राह्मणने दीर्घश्वांसली और शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके अपनी स्त्रीसे बोला
॥ ३० ॥ सुधर्मा बोला, जो ईश्वरने रचा है वह अन्यथा नहीं होसकता, हे प्रिये ! अब तू आशाको त्यागनकर प्रभु शिवकी सेवा कर ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा तु स्वयं विप्र आशां परिविहाय च ॥ धर्मकार्यरतस्सोऽभूच्छंकरध्यानतत्परः ॥ ३२ ॥ सा सुदेहाग्रहं नैव मुमोचात्मजकाम्य
या ॥ प्रत्युवाच पतिं प्रेम्णा सांजलिर्नतमस्तका ॥ ३३ ॥ सुदेहोवाच ॥ मयि पुत्रो न चास्त्वन्यां पत्नीं कुरु मदाज्ञया ॥ तस्यां नूनं
सुतश्चैव भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥ सूत उवाच ॥ तदैव प्रार्थितो वै स ब्राह्मणश्शैवसत्तमः ॥ उवाच स्वप्रियां तां च सुदेहां धर्म
तत्परः ॥ ३५ ॥ सुधर्मोवाच ॥ त्वदीयं च मदीयं च सर्वं दुःखं गतं ध्रुवम् ॥ तस्मात्त्वं धर्मविघ्नं च प्रिये मा कुरु सांप्रतम् ॥ ३६ ॥
सूत उवाच ॥ इत्येवं वारिता सा च स्वमातुः पुत्रिकां तदा ॥ गृहमानीय भर्तारं वृणु त्वेनामिदं जगौ ॥ ३७ ॥ सुधर्मोवाच ॥ इदानीं
वदसि त्वं च मत्प्रियेयं ततः पुनः ॥ पुत्रसूश्च यदा स्याद्वै तदा स्पर्द्धां करिष्यसि ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता तेन पतिना सा सुदेहा
च तत्प्रिया ॥ पुनः प्राह करौ बद्ध्वा सुधर्माणं पतिं द्विजाः ॥ ३९ ॥ (नाहं स्पर्द्धां भगिन्या वै करिष्ये द्विजसत्तम ॥ उपयच्छस्व
पुत्रार्थमिमामाज्ञापयामि च ॥) इत्येवं प्रार्थितस्सोऽपि सुधर्मा प्रियया तया ॥ घुश्मां तां समुपायंस्त विवाहविधिना द्विजः ॥ ४० ॥

ऐसा कहके वह ब्राह्मण स्वयम् आशाको त्याग धर्मकार्योंमें तत्पर तथा शिवजीके ध्यानमें प्रवृत्त होगया ॥ ३२ ॥ परन्तु उस सुदेहाने पुत्रकी इच्छासे आग्रह नहीं छोडा और हाथजोड माथा नवायके प्रेमसे अपने पतिसे कहा ॥ ३३ ॥ सुदेहा बोली, मुझमें पुत्र उत्पन्न नहीं होगा मेरी आज्ञासे तुम दूसरी स्त्री विवाहो उससे निश्चय पुत्र उत्पन्न होगा इसमें संशय नहीं ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, उस समय अपनी स्त्रीके प्रार्थना करनेपर शैवोंमें श्रेष्ठ धर्ममें तत्परहुये उस ब्राह्मणने उस अपनी स्त्रीसे कहा ॥ ३५ ॥ सुधर्मा बोला, हे प्रिये ! तेरा और मेरा संपूर्ण विघ्न दूर हुआ इस कारण निश्चयही अब तू धर्ममें विघ्न मत डालै ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार निवारण करनेपर वह उस समय अपनी बहिनको घर लाके अपने पतिसे बोली तुम इससे विवाह करो ॥ ३७ ॥ सुधर्मा बोला, हे प्रिये ! इसी समय तू ऐसा कहरही है इसके पीछे जब यह मेरी स्त्री होगी और जब पुत्रवती होगी तब ईर्षा करने लगैगी ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस पतिके ऐसा कहनेपर उसकी स्त्री सुदेहा हाथजोड कर फिर अपने पति सुधर्मासे बोली ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं इस बहिनसे किसी प्रकार ईर्षा नहीं करूंगी तुम अवश्य पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त इसे विवाहलो मैं आज्ञा देतीहूं इस प्रकार उस स्त्रीके प्रार्थना करनेपर उस

सुधर्मा ब्राह्मणने विवाहकी विधिसे उस घुश्मा कन्याको विवाहा ॥ ४० ॥ और उसको व्याहके पूर्व स्त्रीसे बोला, हे प्रिये ! हे अनघे ! यह तेरी छोटी बहिन है इसका अवश्य पोषण पालन करना उचितहै ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके वह धर्मात्मा शैवोंमें श्रेष्ठ सुधर्मा शीघ्र यथायोग्य अपने धर्मका संग्रह करने लगा ॥ ४२ ॥ उस स्त्रीने भी अपनी छोटी बहिनके साथ दासीके समान वर्ताव किया और विरोधभावको छोडके रात दिन उसकी सेवा की ॥ ४३ ॥ जो कनिष्ठा स्त्री थी वह अपनी बहिनकी आज्ञा पाय शीघ्रही नित्य एकसौ एक पार्थिवलिंग बनानेलगी ॥ ४४ ॥ और वह घुश्मा शास्त्रोक्त विधानसहित

ततस्तां परिणीयाथ प्रार्थयामास तां द्विजः ॥ त्वदीयेयं कनिष्ठा हि सदा पोष्यानघे प्रिये ॥ ४१ ॥ उक्त्वैव स च धर्मात्मा सुधर्मा शैवसत्तमः ॥ यथायोग्यं चकाराशु धर्मसंग्रहमात्मनः ॥ ४१ ॥ सा चापि मातृपुत्रीं तां दासीवत्पर्य्यवर्त्तत ॥ परित्यज्य विरोधं हि पुपोषाहर्निशं प्रिया ॥ ४३ ॥ कनिष्ठा चैव या पत्नी स्वस्त्रनुज्ञामवाप्य च ॥ पार्थिवान्सा चकाराशु नित्यमेकोत्तरं शतम् ॥ ४४ ॥ विधानपूर्वकं घुश्मा सोपचारसमन्वितम् ॥ कृत्वा तान्प्राक्षिपत्तत्र तडागे निकटस्थिते ॥ ४५ ॥ एवं नित्यं सा चकार शिवपूजां स्वकामदाम् ॥ विसृज्य पुनरावाह्य तत्सपर्य्याविधानतः ॥ ४६ ॥ कुर्वन्त्या नित्यमेवं हि तस्याश्शंकरपूजनम् ॥ लक्षसंख्याभवत्पूर्णा सर्वकामफलप्रदा ॥ ४७ ॥ कृपया शंकरस्यैव तस्याः पुत्रो व्यजायत ॥ सुन्दरस्सुभगश्चैव कल्याणगुणभाजनम् ॥ ४८ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः स विप्रो धर्मवित्तमः ॥ अनासक्तस्सुखं भेजे ज्ञानधर्मपरायणः ॥ ४९ ॥

सोलह उपचारोंसमेत उनका पूजन करके समीपमें स्थितहुये सरोवरमें सिरा देतीथी ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह नित्य विसर्जन करके फिर आवाहन करके उनकी पूजा विधिसे अपनी इच्छा पूर्ण करनेवाली शिवकी अर्चना करती थी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नित्य शंकरका पूजन करतेहुए उसे बहुत समय बीतगया और संपूर्ण कामनाके फल देनेवाली लक्ष संख्या पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥ तब शिवजीकी कृपासे उसके सर्वांग सुन्दर भाग्यवान् कल्याण और गुणोंका पात्र श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४८ ॥ उस पुत्रको देख बहुत प्रसन्न होकरभी वह धर्मात्मा सुखोंमें आसक्त न हुआ ज्ञान और धर्ममें परायण वह ब्राह्मण बडा

आनंदित हुआ ॥ ४९ ॥ तबसे वह सुदेहा उस घुश्मासे बडी ईर्षा करने लगी जो उसका हृदय पहले शीतल था वह फिर तलवारकें समान होगया ॥ ५० ॥ हे मुनीश्वरो ! इसके आगे जो दुःखदाई कुत्सितकर्म हुआ उसे सावधान मनसे श्रवण करो ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, कनिष्ठा (छोटी बहिन) के पुत्रको देखके बडी बहिन बडी दुःखी हुई और उसके सुखको न सहन कर वह उसके साथ विरोध करनेलगी ॥ १ ॥ निरंतर सब मनुष्य पुत्रवती उस घुश्माकी प्रशंसा करते उस समय वह उसकी प्रशंसा तथा पुत्रके रूपादिको न सहती ॥ २ ॥ माता पिताके श्रेष्ठगुणोंके पात्ररूप अति प्रिय उस पुत्रको देखके उसका हृदय प्रज्वलितहुई अग्निके समान होगया ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें उसके बडे होनेपर वहांके ब्राह्मण उसे अपनी कन्या देनेको आये तब सुधर्माने उसका विवाह विधिपूर्वक वहांहीं किया ॥ ४ ॥ वह सुधर्मा उस घुश्मा स्त्रीके साथ बडे आनंदको प्राप्त हुये संपूर्ण संबन्धी उस घुश्माका सन्मान करनेलगे ॥ ५ ॥ तब उसे देख वह सुदेहा मनमें जलतीहुई अति दुःखको प्राप्त हुई हा शोक ! मैं मरी ऐसा कहनेलगी ॥ ६ ॥ सुधर्माने घर आके बहूको तथा विवाहित पुत्रको देख

सुदेहा तावदस्यास्तु स्पर्द्धामुग्रां चकार सा ॥ प्रथमं शीतलं तस्या हृदयं ह्यसिवत्पुनः ॥ ५० ॥ ततः परं च यज्जातं कुत्सितं कर्म दुःखदम् ॥ सावधानेन मनसा श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ पुत्रं दृष्ट्वा कनिष्ठाया ज्येष्ठा दुःखमुपागता ॥ विरोधं सा चकाराशु न सहंती च तत्सुखम् ॥ १ ॥ सर्वे पुत्रप्रसूतिं तां प्रशशंसुर्निरन्तरम् ॥ तया तत्सह्यते न स्म शिशो रूपादिकं तथा ॥ २ ॥ सुप्रियं तनयं तं च पित्रोस्सद्गुणभाजनम् ॥ दृष्ट्वाऽभवत्तदा तस्या हृदयं तप्तमग्निवत् ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्राः कन्यां दातुं समागताः ॥ विवाहं तस्य तत्रैव चकार विधिवच्च सः ॥ ४ ॥ सुधर्मा घुश्मया सार्द्धमानन्दं परमं गतः ॥ सर्वे संबन्धिनस्तस्यां घुश्मायां मानमादधुः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा सा सुदेहा हि मनसि ज्वलिता तदा ॥ अत्यन्तं दुःखमापन्ना हा हतास्मीति वादिनी ॥ ६ ॥ सुधर्म्मा गृहमागत्य वधूं पुत्रं विवाहितम् ॥ उत्साहं दर्शयामास प्रियाभ्यां हर्षयन्निव ॥ ७ ॥

अपंनी स्त्रीसमेत हर्षकर उत्साहको दिखाया ॥७॥ उस समय घुश्मा अति प्रसन्न हुई और सुदेहा बडे दुःखको प्राप्त हुई उसके सुखको न सह दुःख करके वह
भूमीपर गिरी ॥८॥ तब घुश्माने उससे कहा कि यह दोनों बहू बेटे तुम्हारेहीहैं मेरे नहींहैं और वह बहू तथा बेटाभी प्रीतिसे उसको सास, माता मानते हैं॥
॥ ९ ॥ स्वामी सुधर्माभी उस ज्येष्ठाको प्यारी मानताथा, कनिष्ठाको नहीं मानता, तौभी वह ज्येष्ठा अपने हृदयमें द्वेषसहित रहती ॥ १० ॥ एक दिन
दुःखीहुई उस ज्येष्ठा सुदेहाने यह अपने मनमें विचारा कि, दुःखोंकी शान्ति किस प्रकार होगी ॥११॥ सुदेहा बोली, मेरे हृदयकी अग्नि दुःखसे उत्पन्नहुये

अभवद्धर्षिता घुश्मा सुदेहा दुःखमागता ॥ न सहंती सुखं तच्च दुःखं कृत्वापतद्भुवि ॥ ८ ॥ घुश्माऽवदद्वधूपुत्रौ त्वदीयौ न मदीयकौ ॥
वधूः पुत्रश्च तां प्रीत्या प्रसूं श्वश्रूममन्यत ॥ ९ ॥ भर्त्ता प्रियां तां ज्येष्ठां च मेने नैव कनिष्ठिकाम् ॥ तथापि सा तदा ज्येष्ठा स्वान्तर्म
लवती ह्यभूत् ॥ १० ॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सा सुदेहा च दुःखिनी ॥ हृदये संचिचिन्तेति दुःखशांतिः कथं भवेत् ॥ ११ ॥
सुदेहोवाच ॥ मदीयो हृदयाग्निश्च घुश्मानेत्रजलेन वै ॥ भविष्यति ध्रुवं शांतो नान्यथा दुःखजेन हि ॥ १२ ॥ अतोऽहं मारयाम्यद्य
तत्पुत्रं प्रियवादिनम् ॥ अग्रे भावि भवेदेवं निश्चयः परमो मम ॥ १३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ कदर्य्याणां विचारश्च कृत्याकृत्ये भवेन्न
हि ॥ कठोरः प्रायशो विप्राः सापत्नो भाव आत्महा ॥ १४ ॥ एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सुप्तं पुत्रं वधूयुतम् ॥ चिच्छिदे निशि चांगेषु
गृहीत्वा छुरिकां च सा ॥ १५ ॥ सर्वांगं खंडयामास रात्रौ घुश्मासुतस्य सा ॥ नीत्वा सरसि तत्रैवाक्षिपद्दृत्ता महाबला ॥ १६ ॥

घुश्माके आंसुओंसे निश्चयही शान्त होगी और कोई उपाय नहीं ॥ १२ ॥ इस कारण आज मैं मधुर भाषण करनेवाले उसके पुत्रको मारूंगी आगे जो
होनीहै सो होगी, ऐसा मेरा दृढ संकल्प है ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! कपटी पुरुषोंका विचार कर्तव्य अकर्तव्यमें नहीं होता है कारण कि
सापत्न (सौत) भाव विशेषकर कठोर तथा आत्मघात करनेवाला होता है ॥ १४ ॥ एक दिन उस ज्येष्ठाने छुरी लेकर रात्रिमें बहूके साथ सोतेहुये उस
पुत्रके अंगोंको छेदनकर उसे मारा ॥ १५ ॥ और अहंकारिणी उस महा अबलाने रात्रिमें घुश्माके पुत्रके सम्पूर्ण अंगोंको खण्ड खण्ड किया और उसी

समय सरोवरपै लेजाके वहां फेंकदिया ॥ १६ ॥ जहां घुश्मा नित्य ज्योतिर्लिंगोंको सिराती थी वहांही उसे फेंकके लौटआई और सुखसे सोगई ॥ १७ ॥ प्रातःकाल घुश्माने उठकर नित्यकर्म किये तथा श्रेष्ठ सुधर्माने भी स्वयं नित्यकर्म किये ॥ १८ ॥ इसी अवसरमें आनन्दसहित हृदयकी अग्नि शांत होने पर वह ज्येष्ठा घरके कार्यको करने लगी ॥ १९ ॥ प्रातःकाल उठके वह बहू रुधिरसे सनी तथा देहखंडोंसे युक्तहुई खाटको देखके बडे दुःखको प्राप्त हुई ॥ २० ॥ उसने अपनी साससे निवेदन किया कि तेरा पुत्र कहांगया शय्या रुधिरमें सनी है और वहां देहके खण्ड दीख पडतेहैं ॥ २१ ॥

यत्र क्षिप्तानि लिंगानि घुश्मया नित्यमेव हि ॥ तत्र क्षिप्त्वा समायाता सुष्वाप सुखमागता ॥ १७ ॥ प्रातश्चैव समुत्थाय घुश्मा नित्यं
तथाकरोत् ॥ सुधर्मा च स्वयं श्रेष्ठो नित्यकर्म समाचरत् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नंतरे सा च ज्येष्ठा कार्यं गृहस्य वै ॥ चकारानन्दसंयुक्ता
सुशांतहृदयानला ॥ १९ ॥ प्रातःकाले समुत्थाय वधूश्शय्यां विलोक्य सा ॥ रुधिरार्द्रां देहखंडैर्युक्तां दुःख मुपागता ॥ २० ॥ श्वश्रूं
निवेदयामास पुत्रस्ते च कुतो गतः ॥ शय्या च रुधिरार्द्रा वै दृश्यंते देहखंडकाः ॥ २१ ॥ हा हतास्मि कृतं केन दुष्टं कर्म शुचिव्रते ॥
इत्युच्चार्य रुरोदाति विविधं तत्प्रिया च सा ॥ २२ ॥ ज्येष्ठा दुःखं तदापन्ना हाहतास्मि किलेति च ॥ बहिर्दुःखं चकारासौ मनसा
हर्षसंयुता ॥ २३ ॥ घुश्मा चापि तदा तस्या वध्वा दुःखं निशम्य सा ॥ न चचाल व्रतात्तस्मान्नित्यपार्थिवपूजनात् ॥ २४ ॥ मनश्चै
वोत्सुकं नैव जातं तस्या मनागपि ॥ भर्तापि च तथैवासीद्यावद्व्रतविधिभवत् ॥ २५ ॥ मध्याह्ने पूजनांते च दृष्ट्वा शय्यां भयावहाम् ॥
तथापि न तदा किञ्चित्कृतं दुःखं हि घुश्मया ॥ २६ ॥

हे पवित्रव्रतवाली ! हाय ! हाय ! मैं मरगई यह ऐसा दुष्ट कार्य किसने किया, ऐसा कहकर वह उसकी स्त्री अति विलाप करके रोने लगी ॥ २२ ॥ उस समय ज्येष्ठाभी दुःखी हुई बोली, हा शोक ! मैं नष्ट हुई इस प्रकार वह बाहरसे दुःख करती तथा मनमें प्रसन्नताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ तब उस बधूके दुःखको सुनके वह घुश्मा नित्यके पार्थिवपूजनरूप उस व्रतसे चलायमान न हुई ॥ २४ ॥ उसका मन थोडाभी पुत्रशोकमें उत्कंठित नहीं हुआ तथा उसका पतिभी वैसाही स्थित रहा जबतक व्रतकी विधि समाप्तहुई ॥ २५ ॥ पूजन करनेके पश्चात् मध्याह्नकालमें उस भयानक शय्याको देखा तौभी उस घुश्माने

कुछ दुःख नहीं किया ॥ २६ ॥ यह विचारा कि जिसने उसे दिया है वहही उसकी रक्षा करैगा कारण कि वह भक्तोंके दया करनेवाले तथा कालके काल सत्पुरुषोंके गति हैं ऐसा विख्यातहै ॥ २७ ॥ यदि हमारी रक्षा करनेवाले ईश्वर प्रभु एकमात्र वह शंभुहैं तो क्या चिन्ता है ? कारण कि वह सदाशिव मालीके समान जिसको लगातेहैं उसको अलगभी करतेहैं ॥ २८ ॥ अब मेरी चिन्ता करनेसे क्या फल ? ऐसा तत्त्व विचारके उस समय शिवजीके विषे धैर्य करके कुछ दुःख नहीं किया ॥ २९ ॥ पहलेके समान स्वस्थचित्त हो वह पार्थिवलिंगोंको लेके शिवके नामोंका उच्चारण करती सरोवरके तीरमें गई॥

येनैव चार्पितश्चायं स वै रक्षां करिष्यति ॥ भक्तप्रियस्स विख्यातः कालकालस्सतां गतिः ॥ २७ ॥ यदि नो रक्षिता शंभुरीश्वरः प्रभुरेकलः ॥ मालाकार इवासौ यान्युङ्क्ते तान्वियुनक्ति च ॥ २८ ॥ अद्य मे चिंतया किं स्यादिति तत्त्वं विचार्य सा ॥ न चकार तदा दुःखं शिवे धैर्यं समागता ॥ २९ ॥ पार्थिवांश्च गृहीत्वा सा पूर्ववत्स्वस्थमानसा ॥ शंभोर्नामान्युच्चरंती जगामं सरसस्तटे ॥ ३० ॥ क्षिप्त्वा च पार्थिवांस्तत्र परावर्त्तत सा यदा ॥ तदा पुत्रस्तडागस्थो दृश्यते स्म तटे तया ॥ ३१ ॥ पुत्र उवाच ॥ मातरेहि मिलिष्यामि मृतोऽहं जीवितोऽधुना ॥ तव पुण्यप्रभावाद्धि कृपया शंकरस्य वै ॥ ३२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ जीवितं तं सुतं दृष्ट्वा घुंश्मा सा तत्प्रसूर्द्विजाः ॥ प्रहृष्टा नाभवत्तत्र दुःखिता न यथा पुरा ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्समये तत्र स्वाविरासीच्छिवो द्रुतम् ॥ ज्योतीरूपो महेशश्च संतुष्टः प्रत्युवाच ह ॥ ३४ ॥ शिव उवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि दुष्टया मारितो ह्ययम् ॥ एनां च मारयिष्यामि त्रिशूलेन वरानने ॥ ३५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ घुश्मा तदा वरं वव्रे सुप्रणम्य शिवं नता ॥ रक्षणीया त्वया नाथ सुदेहेयं स्वसा मम ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ वहांपर पार्थिवलिंगोंको चढाके जब वह लौटी तबहीं उसने तालावके किनारे स्थित हुये पुत्रको देखा ॥ ३१ ॥ पुत्र बोला, हे माता ! आओ मैं मिलूंगा तुम्हारे पुण्यके प्रतापसे तथा सदाशिवकी कृपासे अब मैं जीगया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, हे ब्राह्मणो ! उस पुत्रको जीवितहुआ देख उसकी माता घुश्मा न प्रसन्न हुई न दुःखित हुई किन्तु जैसी पहले थी उसी प्रकार रही ॥ ३३ ॥ इसी समय वहां ज्योतिस्स्वरूप महेश्वर सन्तुष्ट हो शीघ्रही प्रगट हुये और बोले ॥ ३४ ॥ शिवजी बोले हे वरानने ! मैं प्रसन्न हूं वर मांग उस दुष्टा सुदेहाने इस पुत्रको मारा था उसे मैं त्रिशूलसे मारूंगा ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले,

तब घुश्माने शिर नवाय शिवको प्रणाम करके वर मांगा कि, हे स्वामी ! उस मेरी बहिन सुदेहाकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले, उसने तेरा अपकार किया फिर तू उसका उपकार क्यों करती है ? कारण कि वह दुष्टा सुदेहा मारनेयोग्य है ॥ ३७ ॥ घुश्मा बोली, हे सदाशिव ! तुम्हारे दर्शनमात्रसे पाप दूर होता है इस समय तुमको देखके उसका पाप भस्म होजायगा ॥ ३८ ॥ जो पुरुष हानि करनेवालोंके साथ भलाई करता है उसकेभी दर्शनमात्रसे पाप नष्ट होजाता हैं ॥ ३९ ॥ हे देव ! हे सदाशिव ! ऐसा मैंने भगवान्का सुन्दर वचन सुना है, इस कारण जिसने ऐसा किया है तो करने दो ॥ ४० ॥

शिव उवाच ॥ अपकारः कृतस्तस्यामुपकारः कथं त्वया ॥ क्रियते हननीया च सुदेहा दुष्टकारिणी ॥ ३७ ॥ घुश्मोवाच ॥ तव दर्शनमात्रेण पातकं नैव तिष्ठति ॥ इदानीं त्वां च वै दृष्ट्वा तत्पापं भस्मतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥ अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति च ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत् ॥ ३९ ॥ इति श्रुतं मया देव भगवद्वाक्यमद्भुतम् ॥ तस्माच्चैवं कृतं येन क्रियतां च सदाशिव ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तु तया तत्र प्रसन्नोऽत्यभवत्पुनः ॥ महेश्वरः कृपासिंधुः समूचे भक्तवत्सलः ॥ ४१ ॥ शिव उवाच ॥ अन्यद्वरं ब्रूहि घुश्मे ददामि च हितं तव ॥ त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नोऽस्मि निर्विकारस्वभावतः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ सोवाच तद्वचश्श्रुत्वा यदि देयो वरस्त्वया ॥ लोकानां चैव रक्षार्थमत्र स्थेयं मदाख्यया ॥ ४३ ॥ तदोवाच शिवस्तत्र सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥ स्थास्येऽत्र तव नाम्नाहं घुश्मेशाख्यस्सुखप्रदः ॥ ४४ ॥ घुश्मेशाख्यं सुप्रसिद्धं लिंगं मे जायतां शुभम् ॥ इदं सरस्तु लिंगानामालयं जायतां सदा ॥ ४५ ॥

सूतजी बोले, उस घुश्माके ऐसा कहनेपर फिर अति प्रसन्नहुये दयासागर भक्तवत्सल महेश्वर यह वचन बोले ॥ ४१ ॥ शिवजी बोले, हे घुश्मे ! और कोई वर मांग तेरे मनोवांछित फलको दूंगा मैं तेरी भक्तिसे तथा विकारहीन स्वभावसे अति प्रसन्नहूं ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार शिवजीका वचन सुनके वह बोली, हे नाथ ! यदि तुम मुझे वर देना चाहते हो तो आप संसारकी रक्षाके अर्थ मेरी प्रार्थनासे यहांही निवास करैं ॥ ४३ ॥ उस समय वहां अतिप्रसन्नहुये शिवजी बोले कि, तुम्हारे नामसे (घुश्मेश नामसे) प्रसिद्ध हुआ मैं यहां निवास करूंगा ॥ ४४ ॥ यह मेरा घुश्मेशनामक शुभ ज्योति

लिंग प्रसिद्ध होजाय तथा यह सरोवर सदा ज्योतिर्लिंगोंका स्थान होगा ॥४५॥ इस कारण यह सरोवर शिवालयनामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा और दर्शन करनेसे संपूर्ण कामनाओंका देनेवाला होगा ॥ ४६ ॥ हे सुव्रते ! तुम्हारे वंशमें एकसौ एक पीढीतक ऐसेही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होंगे इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ४७ ॥ तथा सुन्दर स्त्रीवाले अतिधनी बडी अवस्थावाले बडे प्रवीण विद्यावाले बडे उदार पुत्र भुक्ति मुक्ति फलके भागी होंगे ॥ ४८ ॥ एकसौएक पीढीतक अधिक गुणी सन्तान होंगी, इसी प्रकार तेरे शोभायमान वंशका विस्तार होगा ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहकर शिवजी वहां लिंगस्वरूप हुये और

तस्माच्छिवालयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ सर्वकामप्रदं ह्येतद्दर्शनात्स्यात्सदा सरः ॥ ४६ ॥ तव वंशे शतं चैकं पुरुषावधि सुव्रते ॥ ईदृशाः पुत्रकाः श्रेष्ठा भविष्यंति न संशयः ॥ ४७ ॥ सुस्त्रीकास्सुधनाश्चैव स्वायुष्याश्च विचक्षणाः ॥ विद्यावंतो ह्युदाराश्च भुक्तिमुक्तिफलाप्तये ॥ ४८ ॥ शतमेकोत्तरं चैव भविष्यंति गुणाधिकाः ॥ ईदृशो वंशविस्तारो भविष्यति सुशोभनः ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा च शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा ॥ घुश्मेशो नाम विख्यातः सरश्चैव शिवालयम् ॥ ५० ॥ सुधर्मा स च घुश्मा च सुदेहा च समागताः ॥ प्रदक्षिणं शिवस्याशु शतमेकोत्तरं दधुः ॥ ५१ ॥ पूजां कृत्वा महेशस्य मिलित्वा च परस्परम् ॥ हित्वा चांतर्मलं तत्र लेभिरे परमं सुखम् ॥ ५२ ॥ पुत्रं दृष्ट्वा सुदेहा सा जीवितं लज्जिताभवत् ॥ तौ क्षमाप्याचरद्विप्रा निजपापापहं व्रतम् ॥ ५३ ॥ घुश्मेशाख्यमिदं लिंगमित्थं जातं मुनीश्वराः ॥ तद्दृष्ट्वा पूजयित्वा हि सुखं संवर्द्धते सदा ॥ ५४ ॥

घुश्मेश नामसे विख्यात हुये तथा वह सरोवर शिवालयनामसे विख्यात हुआ ॥ ५० ॥ उस समय सुधर्मा तथा घुश्मा सुदेहा यह सब वहां आये और एकसौएक बार शिवजीकी परिक्रमा की ॥ ५१ ॥ शिवजीका पूजन करके तथा परस्पर मिलके वहां मनकी मलिनताको त्यागन करके परम सुखको प्राप्त हुये ॥ ५२ ॥ उस समय वह सुदेहा पुत्रको जीवितहुआ देखके बडी लज्जित हुई हे विप्रो ! उसने उन दोनोंसे क्षमा मांगके अपने पापोंका दूर करनेवाला व्रत (प्रायश्चित्त) किया ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार घुश्मेशनामक ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ उनके दर्शन तथा पूजन करके सदा सुखकी वृद्धि होती

है ॥ ५४ ॥ हे ऋषियो ! इस प्रकार मैंने बारह संख्यावाली ज्योतिर्लिंगावली तुमसे कही यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाली तथा भोग और मुक्तिकी देनेवाली है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य इस ज्योतिर्लिङ्ग सम्बन्धी कथाको पढता है अथवा सुनता है वह सब पापोंसे छूटकर भुक्ति तथा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ इति द्वादशज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ व्यासजी बोले, ऐसा उन सूतजीका वचन सुनके मुनीश्वर लोकोंके हितकी कामनासे सूतजीकी प्रशंसा करके उनसे यह वचन बोले

इति वश्च समाख्याता ज्योतिर्लिंगावली मया ॥ द्वादशप्रमिता सर्वकामदा भुक्ति मुक्तिदा ॥ ५५ ॥ एतज्ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ इति द्वादशज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य च मुनीश्वराः ॥ समूचुस्तं सुप्रशस्य लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सर्वं विजानासि ततः पृच्छामहे वयम् ॥ हरीश्वरस्य लिंगस्य महिमानं वद प्रभो ॥२॥ चक्रं सुदर्शनं प्राप्तं विष्णुनेति श्रुतं पुरा ॥ तदाराधनतस्तात तत्कथा च विशेषतः ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतां च ऋषिश्रेष्ठा हरीश्वरकथा शुभा ॥ यतस्सुदर्शनं लब्धं विष्णुना शंकरात्पुरा ॥ ४ ॥ कस्मिंश्चित्समये दैत्याः संजाता बलवत्तराः॥ लोकांस्ते पीडयामासुर्धर्मलोपं च चक्रिरे ॥ ५ ॥ ते देवाः पीडिता दैत्यैर्महाबलपराक्रमैः ॥ स्वं दुःखं कथयामासुर्विष्णुं निर्जररक्षकम् ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! हे प्रभो ! तुम सब कुछ जानते हो इस कारण हम पूंछते हैं अब आप हरीश्वर नामवाले ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यको कहिये ॥ २ ॥ हे तात ! शिवजीकी आराधनासे पहले विष्णुजीने सुदर्शनचक्र प्राप्त किया है उसकी विशेष कथा सुनाओ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! हरीश्वरकी शुभ कथा सुनो जिन शंकरसे विष्णुने पूर्वमें सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ एक समय दैत्य अति बलवान् होगये और वे सब मनुष्योंको पीडा देनेलगे तथा धर्मका लोप करने लगे ॥ ५ ॥ तब उन महाबली पराक्रमी दैत्योंसे पीडितहुये देवताओंने उनकी रक्षा करनेवाले विष्णुसे

अपना दुःख कहा ॥ ६ ॥ देवता बोले, हे प्रभो ! आप दया करो हमें दैत्योंने अति पीडित किया है कहां जायँ ? क्या करैं अपनी शरणमें प्राप्त हुए ॥
॥ ७ ॥ दुःखी हुये देवताओंका ऐसा वचन सुनके शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके विष्णुजी यह वचन बोले ॥ ८ ॥ विष्णु बोले, हे देवताओ !
मैं शिवजीकी आराधना करके तुम्हारा कार्य करूंगा यह बलवान् शत्रु उद्योगसे अवश्यही जीतने योग्यहै ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, तब सामर्थ्यवान् विष्णु
भगवान्के ऐसा कहनेपर वे संपूर्ण देवता दुष्ट दैत्योंको मरा हुआ जान अपने २ स्थानोंको चलेगये ॥ १० ॥ विष्णुजी भी देवताओंके विजय लाभके

देवा ऊचुः ॥ कृपां कुरु प्रभो त्वं च दैत्यैस्संपीडिता भृशम् ॥ कुत्र यामश्च किं कुर्मश्शरण्यं त्वां समाश्रिताः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा देवानां दुःखितात्मनाम् ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ करिष्यामि च वः
कार्य्यमाराध्य गिरिशं सुराः ॥ बलिष्ठाश्शत्रवो ह्येते विजेतव्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तास्ते सुरास्सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ मत्वा दैत्यान्हतान्दुष्टान्ययुर्धाम स्वकंस्वकम् ॥ १० ॥ विष्णुरप्यमराणां तु जयार्थमभजच्छिवम् ॥ सर्वामराणामधिपं सर्व
साक्षिणमव्ययम् ॥ ११ ॥ गत्वा कैलासनिकटे तपस्तेपे हरिस्स्वयम् ॥ कृत्वा कुंडं च संस्थाप्य जातवेदसमग्रतः ॥ १२ ॥ पार्थिवेन
विधानेन मंत्रैर्नानाविधैरपि ॥ स्तोत्रैश्चैवाप्यनेकैश्च गिरिशं चाभजन्मुदा ॥ १३ ॥ कमलैस्सरसो जातैर्मानसाख्यान्मुनीश्वराः ॥
बद्ध्वा चैवासनं तत्र न चचाल हरिस्स्वयम् ॥ १४ ॥ प्रसादावधि चैवात्र स्थेयं वै सर्वथा मया ॥ इत्येवं निश्चयं कृत्वा समानर्च शिवं
हरिः ॥ १५ ॥ यदा नैव हरस्तुष्टो बभूव हरये द्विजाः ॥ तदा स भगवान्विष्णुर्विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १६ ॥

अर्थ समस्त देवताओंकें स्वामी सबके साक्षी अविनाशी शिवका भजन करने लगे ॥ ११ ॥ विष्णुजी स्वयं कैलासपर्वतके समीप जाकर वहां कुंड खोद अग्निको
स्थापन करके उसके आगे तप करने लगे ॥ १२ ॥ पार्थिव विधानके सहित तथा अनेकमंत्रोंसे अनेकस्तोत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका भजन करने लगे
॥ १३ ॥ हे मुनीश्वरो ! वहां विष्णुजी मानससरोवरमें उत्पन्नहुए कमलोंसे शिवको पूजने लगे और आसन बाँधके स्वयं स्थित हुए ॥ १४ ॥ शिवजीके
प्रसन्न होनेतक मैं सर्वथा यहां स्थित रहूंगा ऐसा निश्चयकर विष्णुजी सदाशिवकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब वह शिवजी विष्णुसे संतुष्ट

नहीं हुए तब भगवान् विष्णु विचारमें तत्पर हुए ॥ १६ ॥ और मनमें विचारकर अनेकप्रकार सेवा की तौ भी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी प्रसन्न न हुए ॥ १७ ॥ तब अधिक भक्तिमें तत्पर और अति विस्मितहुए विष्णुने प्रीतिसे शिवके सहस्रनामोंको पढके सदाशिवको सन्तुष्ट किया ॥ १८ ॥ एक २ नाम मंत्रका उच्चारणकर एक २ कमलको चढाकर शरणागत वत्सल शिवजीकी पूजा करने लगे ॥ १९ ॥ तब विष्णुजीके प्रेमकी परीक्षाके निमित्त सदाशिवने उन सहस्र कमलोंमेंसे एक कमल हरण करलिया ॥ २० ॥ उस समय विष्णुने यह मायारूपी अद्भुतचरित्र नहीं जाना एक कमलको न्यून जानकर वे उसे ढूंढने लगे ॥ २१ ॥ उन अचलव्रतधारी विष्णुने उस कमलके ढूंढनेको समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया और जब उसे न पाया तब शुद्धचित्त हो अपना नेत्र चढा दिया ॥२२॥ यह देख सम्पूर्ण दुःखके दूर करनेवाले सदाशिव प्रसन्न होगये और वहां प्रगट हो विष्णुसे यह वचन बोले ॥ २३ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं तुम मनोवाञ्छित वर मांगो तुमको इच्छाके अनुसार वरदान दूंगा तुमको अदेय वस्तु कुछ नहीं है ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा शिवका वचन सुनके विष्णु भगवान् बडे आनन्दको प्राप्त हुए और हाथ जोडकर शिवजीसे बोले ॥ २५ ॥ विष्णुजी बोले, हे नाथ ! आपके आगे

विचार्यैवं स्वमनसि सेवनं बहुधा कृतम् ॥ तथापि न हरस्तुष्टो बभूवोतिकरः प्रभुः ॥ १७ ॥ ततस्सुविस्मितो विष्णुर्भक्त्या परमयान्वितः ॥ सहस्रैर्नामभिः प्रीत्या तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १८ ॥ प्रत्येकं कमलं तस्मै नाममंत्रमुदीर्य च ॥ पूजयामास वै शंभुं शरणागतवत्सलम् ॥ १९ ॥ परीक्षार्थं विष्णुभक्तेस्तदा वै शंकरेण ह ॥ कमलानां सहस्रात्तु हृतमेकं च नीरजम् ॥ २० ॥ न ज्ञातं विष्णुना तच्च मायाकारणमद्भुतम् ॥ न्यूनं तच्चापि सञ्ज्ञाय तदन्वेषणतत्परः ॥ २१ ॥ बभ्राम सकलां पृथ्वीं तत्प्रीत्यै सुदृढव्रतः ॥ तदप्राप्य विशुद्धात्मा नेत्रमेकमुदाहरत् ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा स प्रसन्नोऽभूच्छंकरस्सर्वदुःखहा ॥ आविर्बभूव तत्रैव जगाद वचनं हरिम् ॥ २३ ॥ शिव उवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि हरे तुभ्यं वरं ब्रूहि यथेप्सितम् ॥ मनोऽभिलषितं दद्मि नादेयं विद्यते तव ॥ २४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं केशवः प्रीतमानसः ॥ महाहर्षसमापन्नो ह्यब्रवीत्सांजलिश्शिवम् ॥ २५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वाच्यं किं मे त्वदग्रे वै ह्यन्तर्यामी त्वमास्थितः ॥ तथापि कथ्यते नाथ तव शासनगौरवात् ॥ २६ ॥

क्या कहने योग्य है, आप सबके अन्तर्यामी होके स्थितहैं तौ भी आपकी आज्ञाके गौरवसे मैं कहता हूं ॥ २६ ॥ हे स्वामिन् ! हे सदाशिव ! दैत्योंने सम्पूर्ण संसारको पीडित किया है इससे मुझे सुख नहीं है दैत्योंके नाश करनेमें मेरा शस्त्र समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! मैं क्या करूं कहां जाऊं मेरा और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है इस कारण मैं आपकी शरणमें आया हूं ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहके परमात्मा शिवको नमस्कार करके दैत्योंसे पीडितहुए विष्णु स्वयं शिवजीके आगे स्थित हुए ॥ २९ ॥ सूतजी बोले ऐसा विष्णुका वचन सुनके देवोंके देव महेश्वरने विष्णुको तेजके समूहवाला

दैत्यैश्च पीडितं विश्वं सुखं नो नस्सदाशिव ॥ दैत्यान्हंतुं मम स्वामिन्स्वायुधं न प्रवर्त्तते ॥ २७ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मे रक्षकः परः ॥ अतोऽहं परमेशान शरणं त्वां समागतः ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा च नमस्कृत्य शिवाय परमात्मने ॥ स्थितश्चैवाग्रतश्शंभोः स्वयं च पुरुपीडितः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्देवदेवो महेश्वरः ॥ ददौ तस्मै स्वकं चक्रं तेजोराशिं सुदर्शनम् ॥ ३० ॥ तत्प्राप्य भगवान्विष्णुर्दैत्यांस्तान्बलवत्तरान् ॥ जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान्विना श्रमम् ॥ ३१ ॥ जगत्स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुस्सुखिनस्सुराः ॥ सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन्महासुखी ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किं तन्नामसहस्रं वै कथय त्वं हि शांकरम् ॥ येन तुष्टो ददौ चक्रं हरये स महेश्वरः ॥ ३३ ॥ तन्माहात्म्यम्मम ब्रूहि शिवसंवादपूर्वकम् ॥ कृपालुत्वं च शंभो र्हि विष्णूपरि यथातथम् ॥ ३४ ॥

अपना सुदर्शनचक्र दिया ॥ ३० ॥ उसको पाय भगवान् विष्णुने विना परिश्रमके ही सम्पूर्ण बलवान् उन दैत्योंको उस चक्रसे नष्ट किया ॥ ३१ ॥ सब संसार स्वास्थ्यको प्राप्त हुआ, देवता सुखी हुए, विष्णु भगवान् सुदर्शनचक्रको प्राप्त हो बडे सुखी हुए ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! वह कौनसा शिवसहस्रनाम है उसे कहो जिससे सन्तुष्ट होकर शिवजीने विष्णुको वह सुदर्शनचक्र दिया ॥ ३३ ॥ उस माहात्म्यको शिवके संवादपूर्वक कहो जो विष्णुके

दूर होता है यह सुदर्शनचक्र यह रूप तथा यह सहस्रनाम स्तोत्र महाफलका देनेवाला है ॥ १३ ॥ हे सुव्रत ! जो मनुष्य सदा उसे भक्तिसे सुनते हैं उनको मेरे प्रसादसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी अविनाशिनी सिद्धि होती है ॥ १४ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके सहस्रों सूर्यों के समान कान्तिवाले अपने चरणसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करनेवाले सुदर्शनचक्रको देवने दिया ॥ १५ ॥ उस समय विष्णुने उत्तरकी ओर मुख करके भली प्रकार संस्कारके सहित चक्रको ग्रहण किया और महादेवको नमस्कार करके विष्णुजी यह वचन बोले ॥ १६ ॥ विष्णुजी बोले, हे देव ! हे प्रभो ! हे लोकोंके कल्याण

ये शृण्वन्तिं सदा भक्त्या सिद्धिः स्यादनपायिनी ॥ कामानां सकलानां च प्रसादान्मम सुव्रत ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम् ॥ सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ १५ ॥ विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा ॥ नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो ॥ दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशंकर ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् ॥ प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ॥ १८ ॥ , ॥ शिव उवाच ॥ रूपं ध्येयं हरे मे हि सर्वानर्थप्रशान्तये ॥ अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ॥ १९ ॥ धार्य्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये ॥ त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ॥ २० ॥ अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः ॥ तेषां दुःखं न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥

करनेवाले ! सुनो मेरे ध्यान करने योग्य क्या है ? तथा पढने योग्य क्या है ? सो सब तुम दुःखोंके नाश करनेके निमित्त मुझसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, उन विष्णुके ऐसा पूंछनेपर संतुष्टहुए शिवजी मनमें प्रसन्न होके देवताओंकी सहायता करनेवाले विष्णुसे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ शिवजी बोले हे विष्णो ! संपूर्ण उपद्रवोंके शान्त होनेके लिये मेरे रूपका ध्यान करो तथा अनेक दुःखोंके नाश होनेके निमित्त सहस्रनामको पढो ॥ १९ ॥ हे विष्णो ! सम्पूर्ण कामनाओंके सिद्धिके लिये सदा मेरे इस चक्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शनचक्रको प्रयत्नसे धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ और जो मनुष्य इस शिवसहस्रनामस्तो

त्रको सदा पढैंगे तथा पढावेंगे उनको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥२१॥ यदि राजाओंसे संकट प्राप्त हो तो जो मनुष्य विधिपूर्वक अंगन्यास सहित सहस्रनामकी सौ आवृत्ति पाठ करै तो कल्याणको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ यह स्तोत्र रोगोंका नाशकरनेवाला विद्या तथा धनका देनेवाला है सम्पूर्ण मनोरथोंका देनेवाला तथा निरन्तर पवित्र शिवभक्तिका देनेवाला है ॥ २३ ॥ मनुष्य जिस श्रेष्ठ फलके उद्देश्य करके इस लोकमें पढैंगे सत्यही वह श्रेष्ठ फलको प्राप्त होंगे इसमें संशय नहीं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठके मेरी पूजा करके नित्य मेरे सन्मुख शिवसहस्रनामका पाठ करता है

राज्ञा च संकटे प्राप्ते शतावृत्तिं चरेद्यदा ॥ साङ्गं च विधिसंयुक्तं कल्याणं लभते नरः ॥२२॥ रोगनाशकरं ह्येतद्विद्यावित्तदमुत्तमम् ॥ सर्वकामप्रदं पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा ॥ २३ ॥ यदुद्दिश्य फलं श्रेष्ठं पठिष्यन्ति नरास्त्विह ॥ लप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥ यश्च प्रातस्समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् ॥ पठते मत्समक्षं वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ॥ २५ ॥ ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम् ॥ अन्ते सायुज्यमुक्तिं वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा तदा विष्णुं शंकरः प्रीतमानसः ॥ उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः ॥ २७ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ठ वरान्वृणु यथेप्सितान् ॥ भक्त्या वशीकृतो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ॥ सुप्रसन्नतरो विष्णुस्सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥

उससे सिद्धि दूर नहीं है ॥ २५ ॥ जो शिवसहस्रनामका पाठ करता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाली सम्पत्तिको पाता है अन्तमें सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होताहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा विष्णुसे कहके प्रसन्न मनहो शंकर विष्णु भगवान्‌को दोनों हाथोंसे स्पर्श करके फिर बोले ॥ २७ ॥ शिवजी बोले, हे देवोंमें श्रेष्ठ विष्णो ! मैं वर देताहूं तुम मनोभिलषित वरोंको स्वीकार करो हे शोभन व्रतवाले ! भक्तिसे इस स्तोत्रके पढनेसे निश्चयही शिवजी वशीभूत होते हैं ॥ २८॥ सूतजी बोले, इस प्रकार देवोंके देव शिवजीके कहनेपर उन देवदेव सदाशिवको नमस्कार

करके प्रसन्नहुए विष्णु हाथ जोडके यह वचन बोले ॥ २९ ॥ विष्णु बोले, हे नाथ ! हे प्रभो ! जैसी अब आपने कृपाकीहै इसी प्रकार दयालु होनेके कारण इसके आगे भी आपको वैसीही कृपा करनी उचितहै ॥ ३० ॥ हे महादेव ! आपमें सदा मेरी भक्ति रहै यही उत्तम वर चाहताहूं आप प्रसन्नहों और भक्तोंको दुःख न हो यही इच्छा करताहूं और कुछ इच्छा नहीं करता हूं ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार उन विष्णुका वचन सुन अत्यन्त दयावान् चन्द्रशेखर शिवजीने उनके अंगोंको स्पर्श किया तथा यह वचन कहा ॥ ३२ ॥ शिवजी बोले, हे विष्णो ! तुम्हारी मुझमें अविनाशिनी भक्ति

विष्णुरुवाच ॥ यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः परा ॥ कार्य्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो ॥ ३० ॥ त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम् ॥ नान्यमिच्छामि भक्तानामार्त्तयो नैव यत्प्रभो ॥ ३१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावान्सुतरां भवः ॥ पस्पर्श च तदंगं वै प्राह शीतांशुशेखरः ॥ ३२ ॥ शिव उवाच ॥ मयि भक्तिस्सदा ते तु हरे स्यादनपायिनी ॥ सदा वन्द्यश्च पूज्यश्च लोके भव सुरैरपि ॥ ३३ ॥ विश्वम्भरेति ते नाम सर्वपापहरं परम् ॥ भविष्यति न संदेहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥ ३४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रस्सर्वदेवेश्वरः प्रभुः ॥ पश्यतस्तस्य विष्णोस्तु तत्रैव च मुनीश्वराः ॥ ३५ ॥ जनार्दनोऽपि भगवान्वचनाच्छङ्करस्य च ॥ प्राप्य चक्रं शुभं तद्वै जहर्षाति स्वचेतसि ॥ ३६ ॥ कृत्वा ध्यानं च तच्छम्भोः स्तोत्रमेतन्निरन्तरम् ॥ पपाठाध्यापयामास भक्तेभ्यस्तदुपादिशत् ॥ ३७ ॥

रहैगी और संसारमें तुम देवताओंसे वन्दना करने योग्य तथा पूजनीय होंगे ॥ ३३ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णो ! मेरे प्रसादसे सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला तुम्हारा विश्वंभर नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! ऐसा कहके सब देवताओंके स्वामी प्रभु सदाशिव उन विष्णुके सन्मुखही वहांसे अन्तर्धान होगये ॥ ३५ ॥ शिवके वचनसे भगवान् विष्णुने भी शुभ चक्रको पाके अपने चित्तमें अतिहर्ष किया ॥ ३६ ॥ और वह

शिवका ध्यान करके शिवसहस्रनाम स्तोत्र निरन्तर पढने और पढाने तथा भक्तोंको उसीका उपदेश देनेलगे ॥ ३७ ॥ हे श्रेष्ठो ! जो तुमने पूंछा सो मैंने
सब कहा, सुननेवालोंके पापोंका दूर करनेवाला यह माहात्म्य है अब तुम इसके आगे क्या पूछना चाहते हो ? ॥ ३८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां
च० को० रु० शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग ! हे सुव्रत ! हे सूतजी ! तुम बडे ज्ञानी हो इससे
तुम शिवजीके चरित्रको विस्तारसे कहो ॥ १ ॥ पहले राजाओंने तथा ऋषि देवताओंने उनही देवोंमेंश्रेष्ठ शिवजीका आराधन किया है ॥ २ ॥ सूतजी

इति पृष्टं मयाख्यातं शृण्वताम्पापहारकम् ॥ अतः परं च किं श्रेष्ठाः प्रष्टुमिच्छथ वै पुनः ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां
कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसूत महाभाग ज्ञानवानसि
सुव्रत ॥ पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात् ॥ १ ॥ पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा ॥ आराधनञ्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य
हि ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि वः ॥ चारित्रं शांकरं रम्यं शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३ ॥ एतदेव
पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु नारद सुप्रीत्या शांकरं चरितं वरम् ॥
प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ रमया सहितो विष्णुश्शिवपूजां चकार ह ॥ कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवाप
हि ॥ ६ ॥ अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः ॥ तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरस्सदा ॥ ७ ॥ शिवपूजाकरा नित्यं मत्पुत्राः
परमर्षयः ॥ अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजनकारकाः ॥ ८ ॥

बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! तुमने अतिश्रेष्ठ प्रश्न किया मैं तुमसे मनोहर तथा श्रवणकर्ताओंको भुक्ति मुक्ति देनेवाले शिवजीके चरित्र वर्णन करताहूं सुनो ॥ ३ ॥
यहही नारदजीने पहले ब्रह्माजीसे पूछा था प्रसन्नहुए ब्रह्माजीने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे कहा ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे नारदजी ! प्रीतिसे सुनो आपके स्नेहसे
महापातकोंका नाश करनेवाला शिवजीका श्रेष्ठ चरित्र कहता हूं ॥ ५ ॥ लक्ष्मीजीके समेत विष्णुने शिवजीका पूजन किया उस समय महादेवकी कृपासे
वे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त हुये ॥ ६ ॥ हे तात ! शिवका पूजन करनेवाला मैं ब्रह्मा भी उन्हींकी कृपासे संसारकी सृष्टि करता हूं ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ ऋषियो !

मेरे पुत्र नित्यही शिवजीका पूजन करनेवाले हैं और भी जो ऋषि हुए हैं वे भी शिवपूजन करनेवाले हुए हैं ॥ ८ ॥ हे नारदजी ! तुम भी विशेष करके शिवका पूजन करनेवाले हो, वसिष्ठादि जो सप्तऋषिहैं वे भी शिवका पूजन करने वाले हैं ॥ ९ ॥ बडी पतिव्रता अरुंधती तथा लोपामुद्रा गौतमजीकी स्त्री अहल्या भी शिवके पूजन करनेवाली है ॥ १० ॥ दुर्वासा, विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशंपायन ॥ ११ ॥ यह सम्पूर्ण मुनि शिवजीके पूजन करनेवाले हैं और पराशर, व्यासजी निरंतर शिवके पूजन करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ उपमन्युभी परमात्मा शिवजीके महाभक्त हुये,

नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः ॥ सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याःशिवपूजनकारकाः ॥ ९ ॥ अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च ॥ अहल्या गौतमस्त्री च शिवपूजनकारिकाः ॥१०॥ दुर्वासाः कौशिकश्शक्तिर्दधीचो गौतमस्तथा ॥ कणादो भार्गवो जीवो वैशंपायन एव च ॥ ११ ॥ एते च मुनयस्सर्वे शिवपूजाकरा मताः॥तथा पराशरो व्यासश्शिवपूजारतस्सदा ॥ १२ ॥ उपमन्युर्महाभक्त शिवस्य परमात्मनः ॥ याज्ञवल्क्यो महाशैवो जैमिनिर्गर्ग एव च ॥ १३ ॥ शुकश्च शौनकाद्याश्च शङ्करस्य प्रपूजकाः ॥ अन्येऽपि बहवस्सन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ १४ ॥ अदितिर्देवमाता च नित्यं प्रीत्या चकार ह ॥ पार्थिवीं शैवपूजां वै सवधूः प्रेमतत्परा ॥ १५ ॥ शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा ॥ महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजकाः ॥ १६ ॥ गन्धर्वा किन्नराद्याश्चोपसुराश्शिवपूजकाः ॥ तथाऽसुरा महात्मानश्शिवपूजाकरा मताः ॥१७॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्सानुजस्ससुतो मुने॥शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा ॥ १८ ॥

याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा गर्गभी महाशैव थे ॥ १३ ॥ शुक्र तथा शौनक आदि ऋषिभी शिवजीके पूजन करनेवाले हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! औरभी बहुतसे ऋषि हैं वे भी शिवके उपासक हैं ॥ १४ ॥ देवताओंकी माता अदितिने अपनी बहूके समेत प्रेममें तत्पर होके प्रीतिसे पार्थिव शिवकी पूजा की ॥ १५ ॥ इन्द्र आदि लोकपालोंने तथा आठवसु और देवताओंने महाराजिकगण देवताओंने साध्योंने शिवका पूजन किया ॥ १६ ॥ गन्धर्व किन्नर आदिकतथा दैत्य महात्माभी शिवके उपासक मानेगये हैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! हिरण्यकशिपु दैत्यभी अपने भाई तथा पुत्र सहित नित्य शिवका पूजन करनेवाला था

विरोचन भी शिवकी पूजा करता था ॥ १८ ॥ हे तात ! बाणासुर तथा हिरण्याक्षके पुत्र वृषपर्वा दनु दैत्य दनुके पुत्र यह सब शिवके पूजन करनेवाले हुए हैं ॥ १९ ॥ शेषजी वासुकि तथा तक्षक और भी सर्पजातिके बडे नाग गरुड आदि पक्षी भी शिवके भक्त हुए हैं ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! सूर्य तथा चन्द्रमा यह दोनों देवता पृथिवीपर अपने अपने वंशके चलानेवाले हुए हैं वे अपने वंशके सहित शिवकी सेवा करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ हे मुने ! स्वायंभुव आदि जो मनु हैं वे शिववेष धारके शिवका विशेष पूजन करते थे ॥ २२ ॥ राजा प्रियव्रत तथा उसके पुत्र उत्तानपादके पुत्र और उसके वंशमें जो राजा

महाशैवः स्मृतो बाणो हिरण्यक्षसुतास्तथा॥ वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः ॥ १९ ॥ शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथा
परे ॥ शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ॥ २० ॥ सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यांवंशप्रवर्त्तकौ ॥ शिवसेवारतौ नित्यं सवंश्यौ तौ
मुनीश्वर ॥ २१ ॥ मनवश्च तथा चक्रुस्स्वायंभुवपुरस्सराः ॥ शिवपूजां विशेषेण शिववेषधरा मुने ॥ २२ ॥ प्रियव्रतश्च तत्पुत्रास्तथा
चोत्तानपात्सुतः ॥ तद्वंशाश्चैव राजानश्शिवपूजनकारकाः ॥ २३ ॥ ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नव योगिनः ॥ तद्भ्रातरः परे चापि
शिवपूजनकारकाः ॥२४॥ वैवस्वतसुतास्तार्क्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः ॥२५॥ ककुत्स्थश्चापि
मांधाता सगरश्शैवसत्तमः ॥ मुचुकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च ॥२६॥ भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः ॥ शिवपूजाकरा
ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ॥ २७ ॥ खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः ॥ विधितः पार्थिवीम्मूर्तिं शिवस्यापूजयत्सदा ॥ २८ ॥

हुये हैं वे भी शिवपूजन करनेवाले थे ॥ २३ ॥ ध्रुव, ऋषभ, भरत, नौ योगी तथा और जो उनके भाई हैं वे भी शिवके भक्त थे ॥२४॥ वैवस्वत मनुके पुत्र तार्क्ष्य तथा इक्ष्वाकु आदि राजा भी शिवपूजनमें प्रेम करनेवाले तथा निरंतर सुखके भोगनेवाले हुएहैं ॥२५॥ ककुत्स्थ, मांधाता, राजासगर, मुचुकुन्द, राजा हरिश्चन्द्र, कल्माषपाद भी महाशैवोंमें श्रेष्ठ हुए हैं ॥ २६ ॥ भगीरथ आदि अनेक राजा शिवके वेष धारण करनेवाले तथा शिवके पूजन करनेवाले हुये हैं ॥ २७ ॥ महाराजा खट्वांग जो देवताओंकी सहायता करनेवालेहैं उन्होंने विधिपूर्वक शिवकी पार्थिव मूर्त्ति बनाके सदा महादेवका पूजन किया

है ॥ २८ ॥ उनके पुत्र राजा दिलीप भी निरंतर शिवके पूजन करनेवाले हुए तथा उनके पुत्र रघु शैव होकर प्रीतिसे शिवका पूजन करते थे ॥ २९ ॥ रघुके पुत्र अज जो धर्मसे युद्ध करनेवाले थे वे भी शिवके परमभक्त थे, फिर उनके पुत्र महाराजा दशरथ विशेषकर शिवके उपासक थे ॥ ३० ॥ उन राजा दशरथने शिवकी पार्थिव मूर्त्तिको बनाकर पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे विशेषकर महादेवका पूजन किया ॥ ३१ ॥ और भक्तिवाले उन राजा दशरथने ऋष्यशृंग मुनिकी आज्ञा प्राप्त करके पुत्रेष्टि यज्ञ किया ॥ ३२ ॥ उनकी स्त्री कौशल्या रानीने आनन्दसे शिवकी

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा ॥ रघुस्तत्तनयः शैवः सुप्रीत्या शिवपूजकः ॥ २९ ॥ अजश्शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत् ॥ जातो दशरथो भूयो महाराजो विशेषतः ॥ ३० ॥ पुत्रार्थे पार्थिवीं मूर्त्तिं शैवीं दशरथो हि सः ॥ समानर्च विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ॥ ३१ ॥ पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान् ॥ ऋष्यशृङ्गमुनेराज्ञां संप्राप्य नृपसत्तमः ॥ ३२ ॥ कौसल्या तत्प्रिया मूर्त्तिं पार्थिवीं शांकरीं मुदा ॥ ऋष्यशृंगसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ॥ ३३ ॥ सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा ॥ पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ॥ ३४ ॥ शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुश्शुभंकरान् ॥ महाप्रतापिनो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ॥ ३५ ॥ ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञस्स्वयं हरिः ॥ चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ॥ ३६ ॥ कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मणः ॥ शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सुव्रताः ॥ ३७ ॥ रामस्ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् ॥ भस्मरुद्राक्षधारी च विरजागममास्थितः ॥ ३८ ॥

पार्थिवमूर्त्ति बनाके ऋष्यशृंग मुनिके वचनोंसे पुत्रप्राप्तिके हेत महादेवका पूजन किया ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सुमित्राने तथा राजाकी प्रिया कैकयीने भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके अर्थ शिवका पूजन किया ॥ ३४ ॥ हे मुने ! उन सब स्त्रियोंने शिवके प्रसादसे महाप्रतापी वीर अच्छे मार्गमें तत्पर हुये कल्याणकारी अपने अपने पुत्रोंको प्राप्त किया ॥ ३५ ॥ तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णुभगवान् उन दशरथ राजाके द्वारा चतुर्भुजी मूर्तिसे रामचन्द्रके रूपमें प्रगट हुये॥ ॥ ३६ ॥ रानी कौसल्याके पुत्र रामचंद्रजी, सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न, कैकयीके भरतजी उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ वह रामचन्द्रजी स्वभावसे नित्य

पार्थिव शिवका पूजन करतेथे और भस्म रुद्राक्ष धारण करके विरक्त मार्गमें स्थित हुए ॥ ३८ ॥ हे मुने ! उनके वंशमें जो अनुगामी सहित राजा उत्पन्न हुयेहैं वे सब शिवके पार्थिवलिंगको पूजतेथे ॥ ३९ ॥ हे मुने ! ऋषिपुत्र परमशैव महाराजा सुद्युम्न शिवजीके शापसे अपनी स्त्री तथा सेवकों सहित स्त्री हुये ॥ ४० ॥ फिर पार्थिव शिवके पूजन करनेसे वे पुरुष होगये एक मासपर्यन्त स्त्री तथा एक मासतक पुरुष रहतेथे इसप्रकार वे स्त्रीत्वसे निवृत्त होगये ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् अपने राज्यको छोड शिवके धर्ममें तत्पर हो शिववेश धारणकर भक्तिसे दुर्लभ मोक्षको प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥ राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्रभी

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने ॥ ते सर्वे पार्थिवं लिंगं शिवस्य समपूजयन् ॥ ३९ ॥ सुद्युम्नश्च महाराजश्शैवो मुनिसुतो मुने ॥ शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ॥ ४० ॥ पार्थिवेशसमर्चातः पुनस्सोऽभूत्पुमान्वरः ॥ मासं स्त्रीपुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं न्यवर्त्तत ॥ ४१ ॥ ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः ॥ शिववेषधरो भक्त्या दुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥ ४२ ॥ पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजस्सुपूजकः ॥ शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ॥ ४३ ॥ भरतस्तु महापूजां शिवस्यैव सदाकरोत् ॥ नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ॥४४॥ ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् ॥ अजीजनत्सुतान्पंच शिवधर्मपरायणान् ॥ ४५ ॥ तत्सुता यदुमुख्याश्च पंचापि शिवपूजकाः ॥ शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥ ४६ ॥ अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुं शिवं हि ते ॥ तद्वंश्या अन्यवंश्यांश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने ॥ ४७ ॥

शिवके पूजन करनेवाले हुये और शिवके पूजनके प्रभावसे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ राजा भरत सदाही शिवकी महापूजा करतेथे तथा महाशैव राजा नहुषभी निरंतर शिवके पूजनमें तत्पर रहतेथे ॥ ४४ ॥ राजा ययातिभी शिवकी पूजाके प्रभावसे सब इच्छाओंको प्राप्त हुये तथा उन्होंने शिवधर्ममें तत्पर होनेवाले पांचों पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ यदुवंशियोंमें मुख्य उनके पाँचों पुत्र शिवके पूजन करनेवाले हुये और महादेवके पूजनके प्रभावसे समस्त कामनाओंको प्राप्त हुये ॥ ४६ ॥ हे मुने ! औरभी जो महाभाग्यवान् राजा हुये उन्होंनेभी शिवको पूजा उनके वंशमें उत्पन्न होनेवाले

तथा और वंशमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंने भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले शिवको पूजा है ॥ ४७ ॥ महात्मा श्रीकृष्णजीने बदरीपर्वतपर सात महीनेतक स्वयं शिवका पूजन किया ॥ ४८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजीने प्रसन्नहुये शिवजीसे अनेकों दिव्य वरदानोंको पाय सम्पूर्ण जगत्को वशमें किया ॥ ४९ ॥ हे तात ! उनके पुत्र प्रद्युम्नजी सदाशिवकी पूजा करतेथे और जो कृष्णके वंशमें उत्पन्नहुये साम्ब आदिक वे सब शिवके भक्त थे ॥ ५० ॥ महाशैव राजा जरासंध तथा उनके वंशके मनुष्य शैव राजा निमि जनक तथा उनके पुत्रभी शिवके उपासक थे ॥ ५१ ॥ वीरसेनके पुत्र राजा नलनेभी शिवकी पूजा की

कृष्णेन च कृतं नित्यं बदरीपर्वतोत्तमे ॥ पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥ ४८ ॥ प्रसन्नाद्भगवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः ॥ सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात् ॥ ४९ ॥ प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरस्सदा ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवरास्साम्बाद्याश्शिवपूजकाः ॥ ५० ॥ जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा ॥ निमिश्शैवश्च जनकस्तत्पुत्राश्शिवपूजकाः ॥ ५१ ॥ नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै ॥ पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ॥ ५२ ॥ यतिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः ॥ स्वयं व्याघ्रादिभीरात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात् ॥ ५३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् ॥ चक्रवर्ती महाराजो दमयन्तीप्रियोऽभवत् ॥ ५४ ॥ इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवतानघ ॥ शाङ्करं चरितं दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

जो नल पहले जन्ममें वनके भील होकर मार्गकी रक्षा करनेवाले थे ॥ ५२ ॥ उसने पूर्वकालमें शिवके समीप स्थित हुये किसी संन्यासीकी रक्षा की और स्वयं दैववशात् रात्रिमें व्याघ्र आदिकोंके भक्षण करनेसे मरगया ॥ ५३ ॥ उसही पुण्यके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा नल हुआ और वह चक्रवर्ती महाराजा दमयन्तीके प्रियपति हुये ॥ ५४ ॥ हे तात ! हे पापरहित ! आपने जो पूंछा सो शिवका दिव्य चरित्र तुमसे वर्णन किया अब तुम क्या और कुछ पूंछना चाहते हो ? ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ऋषि बोले, हे तात ! हे सूतजी ! आप धन्यहैं कृतकृत्यहैं आपका जीवन सफलहै जिससे कि, आप महेश्वरकी शुभ कथाको सुनाते हैं ॥ १ ॥ हे सूतजी ! यद्यपि हमने बहुत ऋषियोंसे अतिश्रेष्ठ उपाख्यान सुने हैं तथापि हमारा संशय नहीं गया इस कारण आपसे कहतेहैं ॥ २ ॥ कौनसे व्रतसे सन्तुष्ट हुये शिवजी सच्चे सुखको देतेहैं सो कहो कारण कि आप शिवकृत्यमें कुशलहैं इससे हम पूंछते हैं ॥ ३ ॥ हे व्यासजीके शिष्य सूतजी ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य भुक्ति तथा मुक्तिको प्राप्त करता है उसे आप विस्तारसे कहो आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषिश्रेष्ठो ! दयालु आप सबोंने अच्छा प्रश्न किया जैसा मैंने सुना है सो सब शिवके चरणकमलोंको स्मरण करके कहताहूं ॥५॥ जिस प्रकार तुमने पूंछा है उसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु और पार्वतीजीने भी शिवजीसे पूंछा था ॥ ६ ॥ किसी समय उन सबोंने परमात्मा शिवजीसे यह पूंछा कि हे शिव ! किस व्रतसे सन्तुष्ट हुये आप भुक्ति और मुक्तिको देतेहैं ॥ ७ ॥ उस समय उन सबोंके तथा विष्णुभगवान्के पूंछनेपर जैसे शिवजीने कहाथा उसी प्रकार श्रोताओंके पाप हरनेवाले उपायको वर्णन करताहूं ॥ ॥ ८ ॥ शिवजी बोले, भोग तथा मुक्तिके देनेवाले मेरे अनेकों व्रतहैं परन्तु उनमें दश मुख्य व्रत हैं ॥ ९ ॥ वेदोंमें पारगामी जाबाल आदि मुनियोंने

ऋषय ऊचुः॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥ यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ॥ १ ॥ बहुभिश्चार्षिभिस्सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् ॥ सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ॥ २ ॥ केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् ॥ कुशलश्शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥ भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येन व्रतेन वै ॥ तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः ॥ स्मृत्वा शिवपदांभोजं कथयामि यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥ यथा भवद्भिः पृच्छेत तथापृष्टं हि वेधसा ॥ हरिणा शिवया चैव तथा वै शंकरं प्रति ॥ ६ ॥ कस्मिंश्चित्समये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने ॥ केन व्रतेन सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं च यच्छसि ॥ ७ ॥ इति पृष्टस्तदा तैस्तु हरिणा तेन वै तदा ॥ तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम् ॥ ८ ॥ शिव उवाच ॥ भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥ मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै ॥ ९ ॥ दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः ॥ तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैस्सदा ॥ १० ॥

दशही व्रत कहेहैं वे दश व्रत द्विजातियोंको यत्नपूर्वक सदा करने चाहिये ॥ १० ॥ हे विष्णो ! प्रत्येक अष्टमीको यत्नसे रात्रिमें भोजन करना चाहिये विशेषकर कालाष्टमीके दिन रात भोजनका त्याग करना चाहिये ॥ ११ ॥ हे विष्णो ! शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन भी भोजन त्यागना उचित है हे हरे ! कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन मेरा पूजन करके रात्रिमें भोजनकरै ॥ १२ ॥ शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको रात्रिमें भोजन करले और यदि कृष्णपक्षकी त्रयोदशी हो तो शिवव्रतधारियोंको कदापि भोजन करना न चाहिये ॥ १३ ॥ हे विष्णो ! दोनों पक्षोंमें सोमवारके दिन शिवव्रत करनेवालोंको रात्रिमेंही यत्नसे

प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम् ॥ कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ॥ ११ ॥ एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णो हि भोजनम् ॥ असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे ॥ १२ ॥ त्रयोदश्यां सितायां तु कर्तव्यं निशि भोजनम् ॥ असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ॥ १३ ॥ निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे ॥ उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिव तत्परैः ॥ १४ ॥ व्रतेष्वेतेषुसर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः ॥ यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥ १५ ॥ व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः ॥ व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः ॥ १६ ॥ मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति ॥ मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम् ॥ १७ ॥ शिवार्चनं रुद्रजप उपवासश्शिवालये ॥ वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा सनातनी ॥ १८ ॥ अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ शिवतुष्टिकरं चैतन्नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥

भोजन करना चाहिये ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इन सम्पूर्ण व्रतोंमें शैवोंको यथाशक्ति व्रतके समाप्त होनेके कारण भोजन कराना उचित है ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! यह सम्पूर्ण व्रत द्विजातियोंको नियमसे करने उचितहैं जो इन व्रतोंका त्यागन करते हैं वे दूसरे जन्ममें चोर होतेहैं ॥ १६ ॥ मुक्तिके मार्गको जाननेवालोंको यह व्रत नियमसे करने चाहिये कारण कि यह चारों बातें मुक्तिकी देनेवालीं कही हैं ॥ १७ ॥ शिवका पूजन रुद्रजप तथा शिवालयमें उपवास करना काशीमें मरण इनसे सनातनी मुक्ति होती है ॥ १८ ॥ कृष्णपक्षमें सोमवारकी अष्टमी तथा सोमवारकी चौदस हो तो यह दोनों शिवकी

प्रसन्न करनेवाली होती हैं इसमें कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! पूर्वोक्त चारों बातोंसे भी शिवरात्रिका व्रत बलवान् कहा है इस कारण भुक्ति मुक्तिके फल पानेवालोंको यह अवश्य करना चाहिये ॥ २० ॥ इस व्रतसे अधिक और कोई व्रत मनुष्योंका हितकारक नहीं है यह व्रत संपूर्ण मनुष्योंके उत्तम धर्मका साधन है ॥ २१ ॥ हे विष्णो ! कामनारहित तथा कामना करनेवाले चारोंवर्णों तथा चारों आश्रमोंके सब मनुष्यों तथा स्त्री बालकोंके धर्मका साधन यह व्रत कहा है ॥ २२ ॥ यह श्रेष्ठ व्रत सब दास दासियोंके संपूर्ण देवता आदि और सब देह धारी मनुष्योंका हित करनेवाला

चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे ॥ तस्मात्तदेव कर्तव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥ २० ॥ एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नॄणां हितावहम् ॥ एतद्व्रतन्तु सर्वेषां धर्मसाधनमुत्तमम् ॥ २१ ॥ निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणान्तथा ॥ वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे ॥ २२ ॥ दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च ॥ शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद्व्रतं वरम् ॥ २३ ॥ माघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा सातिकीर्तिता ॥ निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटिविनाशिनी ॥ २४ ॥ तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातरारभ्य केशव ॥ श्रूयतान्तन्मनो दत्त्वा सुप्रीत्या कथयामि ते ॥ २५ ॥ प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः ॥ समाचरेन्नित्यकृत्यं स्नानादिकमतन्द्रितः ॥ २६ ॥ शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥ नमस्कृत्य शिवं पश्चात्संकल्पं सम्यगाचरेत् ॥ २७ ॥ देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥ २८ ॥

है ॥ २३ ॥ माघके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी किसी और तिथीसे मिलीहुई तथा रात्रिमें व्याप्त होनेवाली हो तो उसे ग्रहण करना उचित है वह अतिश्रेष्ठ कही है तथा कोटि हत्या नाश करनेवाली है ॥ २४ ॥ हे केशव ! उस दिन प्रातःकालसे लेकर जो जो करना चाहिये उसे ध्यानदेके प्रीतिसे सुनो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २५ ॥ बुद्धिमान्को प्रातःकाल परम आनंदसहित उठके आलस्य रहितहो स्नान आदि नित्यकर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥ फिर शिवालयमें जाके विधिपूर्वक पूजनकर शिवको नमस्कार करके पश्चात् भलीप्रकार संकल्प करै ॥ २७ ॥ हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे नीलकंठ ! हे देव !

तुमको नमस्कार है मैं तुम्हारे शिवरात्रिके व्रतको करनेकी इच्छा करताहूं ॥ २८ ॥ हे देवेश ! तुम्हारे प्रभावसे यह व्रत निर्विघ्न समाप्त हो और काम क्रोध आदि शत्रु मुझे पीडा नहीं दें ॥ २९ ॥ इस प्रकार संकल्प करके पूजाकी वस्तुको लावै, फिर शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हुए ज्योतिर्लिङ्गको सुन्दर स्थानमें स्थापन करै ॥ ३० ॥ रात्रिमें वहां स्वयम् जाके श्रेष्ठ विधिको संपादन करके शिवजीके दाहिनी ओर वा पश्चिमभागवाले शुभस्थलमें ॥ ३१ ॥ पूजाके निमित्त उन द्रव्योंको शिवके समीप रखके फिर वहां व्रती मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करै ॥ ३२ ॥ भीतरके वस्त्र सहित शुभ वस्त्रको पहिनके तीनबार आचमनकर

तव प्रभावाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति॥कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि ॥२९॥ एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत्॥
सुस्थले चैव यल्लिंगं प्रसिद्धं चागमेषु वै ॥३०॥ रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा संपाद्य विधिमुत्तमम् ॥ शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे
॥३१॥ निधाय चैव तद्द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ ॥ पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ॥ ३२ ॥ परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वास
श्शुभन्तथा ॥ आचम्य च त्रिवारंहि पूजारंभं समाचरेत् ॥३३॥ यस्य मंत्रस्य यद्द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत् ॥ अमंत्रकं न कर्तव्यं पूजनं
तु हरस्य च ॥ ३४ ॥ गीतैर्वाद्यैस्तथानृत्यै र्भक्तिभावसमन्वितः ॥ पूजनं प्रथमे यामे कृत्वा मंत्रं जपेद्बुधः ॥ ३५ ॥ पार्थिवं च तदा श्रेष्ठ
विदध्यान्मंत्रवान्यदि ॥ कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्चात्स्थापनमाचरेत् ॥ स्तोत्रैर्ना
नाविधैर्देवं तोषयेद्वृषभध्वजम् ॥ ३७ ॥ माहात्म्यं व्रतसंभूतं पठितव्यं सुधीमता ॥ श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया ॥ ३८ ॥

पूजाको प्रारंभ करै ॥ ३३ ॥ जिस मंत्रका जो द्रव्य हो उसी मंत्रसे पूजा करै विना मंत्रके शिवका पूजन करना नहीं चाहिये ॥ ३४ ॥ गीत बाजे तथा नृत्यके सहित भक्तिभावसे पंडित पहले पहरमें पूजन करके "ॐ शिवाय नमः" इस मंत्रको जपै ॥ ३५ ॥ तब मंत्रको जपताहुआ श्रेष्ठ पार्थिव लिंगको निर्माण करै पश्चात् नित्य क्रिया करके पार्थिवलिंगको पूजै ॥ ३६ ॥ पहले पार्थिवलिंगको बनाके फिर स्थापन करै और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे शिवदेवको सन्तुष्ट करै ॥ ३७ ॥ फिर बुद्धिमान् भक्त व्रतसम्बन्धी माहात्म्यको पढै और व्रतकी समाप्तिकी इच्छासे माहात्म्यको सुनै ॥ ३८ ॥

चारों पहरोंमें आवाहनके क्रमसे विसर्जन पर्यन्त शिवकी चारोंमूर्तियोंका पूजन करै ॥ ३९ ॥ महा उत्सवपूर्वक प्रीतिसे जागरण करना उचितहै प्रातःकाल फिर स्नान करके शिवको स्थापनाकर उनका पूजन करै ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् कंधे झुकाय नम्रहो हाथजोड सदाशिवकी प्रार्थना करै संपूर्ण व्रतको समाप्त करके फिर उनको बारम्बार नमस्कार करके कहै ॥ ४१ ॥ हे स्वामिन् ! हे महादेव ! तुम्हारी आज्ञासे मैंने जो नियम किया था वह श्रेष्ठ व्रत समाप्त हुआ अब मैं आपको विसर्जन करताहूं ॥ ४२ ॥ हे देवेश ! हे सर्वाद्य ! यथाशक्ति कियेहुये इस व्रतसे सन्तुष्ट हो और मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ४३ ॥

चतुर्ष्वपि च यामेषु मूर्तीनां च चतुष्टयम् ॥ कृत्वावाहनपूर्वं हि विसर्गावधि वै क्रमात् ॥ ३९ ॥ कार्यं जागरणं प्रीत्या महोत्सव समन्वितम् ॥ प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिवम् ॥ ४० ॥ ततः संप्रार्थयेच्छंभुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ कृतसंपूर्ण व्रतको नत्वा तं च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया ॥ विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम् ॥ ॥ ४२ ॥ व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च ॥ सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि ॥ ४३ ॥ पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्त्वा दद्याद्दानं यथाविधि ॥ नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ॥ ४४ ॥ यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः ॥ भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ ४५ ॥ यामेयामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैर्हरे ॥ शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते ॥ ४६ ॥ प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे ॥ पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ॥ ४७ ॥ पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हरस्सदा ॥ तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ॥ ४८ ॥

शिवजीको पुष्पोंकी अंजलि देके विधिपूर्वक दान देवै और शिवको नमस्कार करके उस नियमको विसर्जन करै ॥ ४४ ॥ शैव ब्राह्मणोंको और विशेष करके संन्यासियोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराके उन्हें सन्तुष्ट करके स्वयं भोजन करै ॥ ४५ ॥ हे विष्णो ! श्रेष्ठ भक्तोंको जिस प्रकार प्रत्येक पहरमें शिवरात्रिके दिन विशेष पूजन करना उचितहै उस पूजनको तुमसे कहता हूं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो ! पहले पहरमें स्थापन कियेहुये पार्थिवलिंगको अनेक उपचारों सहित परम भक्तिसे पूजन करै ॥ ४७ ॥ पहले पांचद्रव्योंसे शिवको पूजै उस उस वस्तुके मंत्रोंसे पृथक् द्रव्योंको समर्पण करै ॥ ४८ ॥

और उस द्रव्यको समर्पण करके जलकी धारा चढावै पश्चात् विद्वान् व्रती जलधारासे द्रव्योंको उतारै ॥ ४९ ॥ वहां एकसौ आठबार (ओं नमःशिवाय) इस मंत्रको पढकर जलधारासे निर्गुण तथा सगुण शिवको पूजै॥५०॥गुरुके दियेहुए मन्त्रसे शिवका पूजन करै अथवा नाममंत्रसे सदाशिवको पूजै ॥५१॥ सुन्दर चन्दन तथा अखंडित चावलों और काले तिलोंसे परमात्मा शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५२ ॥ कमलोंसे तथा सौंफ और कनेरके पुष्पोंसे शिवकी अर्चना करै और शिवके आठों नाममंत्रोंसे उन्हैं पुष्प चढावै ॥ ५३ ॥ भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम, ईशान, यह आठ नाम हैं ॥ ५४ ॥

तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां ददेत वै ॥ पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद्बुधः ॥ ४९ ॥ शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया ॥ पूजयेच्च शिवं तत्र निर्गुणं गुणरूपिणम् ॥५०॥ गुरुदत्तेन मंत्रेण पूजयेद्वृषभध्वजम् ॥ अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ॥ ५१ ॥ चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः ॥ कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शंभोः परात्मनः ॥ ५२ ॥ पुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः ॥ अष्टभिर्नाममंत्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे ॥ ५३ ॥ भवः शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा ॥ उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ॥ ५४ ॥ श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यंतैर्नामभिः पूजयेच्छिवम् ॥ पश्चाद्धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ॥ ५५ ॥ आद्ये यामे च नैवेद्यं पक्वान्नं कारयेद्बुधः ॥ अर्घं च श्रीफलं दत्त्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ५६ ॥ नमस्कारं ततो ध्यानं जपः प्रोक्तो गुरोर्मनोः ॥ अन्यथा पंचवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम् ॥ ५७ ॥ धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ सुजलैस्तर्पणं चरेत् ॥ पंचब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ॥ ५८ ॥

श्रीपूर्वक चतुर्थ्यन्तनामोंसे (ॐभवाय नमः इत्यादि नामोंसे) शिवको पूजै तिसके पीछे धूप नैवेद्य चढावै ॥ ५५ ॥ पहले पहरमें पंडित मनुष्य पक्वान्न सहित नैवेद्य अर्पण करै अर्घ श्रीफल बेल नारियल चढाके ताम्बूल अर्पण करै ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् नमस्कार ध्यान गुरुमंत्र तथा मेरे मंत्रका जप करै अथवा पंचाक्षरमंत्रसे शिवको संतुष्ट करै ॥ ५७ ॥ धेनु मुद्राको दिखाके निर्मल जलसे शिवको तृप्त करै अपनी शक्तिके अनुसार पांच ब्राह्मणोंको भोजन

करावे ॥ ५८ ॥ और जबतक समय हो महोत्सवकरे इसके अनंतर सम्पूर्ण पूजाके फलोंको देके विसर्जन करै ॥ ५९ ॥ फिर दूसरे पहरके प्रारम्भमें
अच्छी प्रकार संकल्प करै अथवा एकही बार संकल्प करके पहलेके समान पूजन करै ॥ ६० ॥ उसी प्रकार पहले द्रव्योंसे करके जलकी धारा समर्पण
करै पहलेकी अपेक्षा दूने मंत्रोंका उच्चारण करके शिवजीको पूजै ॥ ६१ ॥ पहले रक्खेहुए तिल जौ चावल कमलोंसे शिवका पूजन करै और विशेषकर
बेलपत्रोंसे सदाशिवको पूजै ॥ ६२ ॥ वीजापूर (विजौरे नींबू) का अर्घ्य तथा (खीर) की नैवेद्य अर्पण करै हे विष्णो ! पहलेसे दूना मंत्रोंका पाठ

महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद्यामो भवेदिह ॥ ततः पूजाफलं तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत् ॥ ५९ ॥ पुनर्द्वितिये यामे च संकल्पं सुसमा
चरेत् ॥ अथवैकदैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम् ॥ ६० ॥ द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजां कृत्वा धारां समर्पयेत् ॥ पूर्वतो द्विगुणं मंत्रं
समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ॥ ६१ ॥ पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम् ॥ बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ६२ ॥ अर्घ्यं च
बीजपूरेण नैवेद्यं पायसन्तथा ॥ मंत्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन ॥ ६३ ॥ ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत् ॥
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि ॥ ६४ ॥ यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजनं चरेत् ॥ यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि
च ॥ ६५ ॥ धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि ॥ नैवेद्यापूपकैर्विष्णो शाकैर्नानाविधैरपि ॥ ६६ ॥ कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारात्रिक
विधिं चरेत् ॥ अर्घ्यं सदाडिमं दद्याद्विगुणं जपमाचरेत् ॥ ६७ ॥ ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम् ॥ उत्सवं पूर्ववत्कुर्या
द्यावद्यामावधिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ यामे चतुर्थे संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् ॥ प्रयोगादि पुनः कृत्वा पूजां विधिवदाचरेत् ॥ ६९ ॥

करै ॥ ६३ ॥ इसके पीछे ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्पकरै और सब पूजन दूसरे पहरकी समाप्ति पर्यन्त पहलेके समान करै ॥ ६४ ॥ फिर
तीसरे पहरमें पहलेके समान पूजन करै यवोंके स्थानमें गेहूं तथा आकके फूल चढावै ॥ ६५ ॥ हे विष्णो ! वहां विविधप्रकारकी धूप अनेकप्रकारके
दीपोंसे तथा पुयेके नैवेद्य तथा अनेकप्रकारके शाकोंसे ॥ ६६ ॥ शिवका पूजन करके कपूरसे आरती करै अनारका अर्घ्य दे पूर्वकी अपेक्षा दूना जप
करै ॥ ६७ ॥ फिर दक्षिणासहित ब्राह्मणोंके भोजनका संकल्प करै और तृतीय पहरकी समाप्ति पर्यन्त पूर्वके समान उत्सव करै ॥ ६८ ॥ चौथे पहरके

माषैः प्रियंगुभिर्मुद्गैस्सप्तधान्यैस्तथाथवा ॥ शंखीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ७० ॥ नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि ॥ अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ॥ ७१ ॥ अर्घं दद्यात्कदल्याश्च फलैनैवाथवा हरे ॥ विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च ॥ ७२ ॥ पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मंत्रजापं नरोत्तमः ॥ संकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद्बुधः ॥ ७३ ॥ गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः ॥ महोत्सवैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ॥ ७४ ॥ उदये च तथा जाते पुनस्स्नात्वार्चयेच्छिवम् ॥ नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ॥ ७५ ॥ नानाविधानि दानानि भोज्यं च विविधन्तथा ॥ ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया ॥ ७६ ॥ शंकराय नमस्कृत्य पुष्पाञ्जलिमथाचरेत् ॥ प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मंत्रैरेतैर्विचक्षणः ॥ ७७ ॥ तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ॥ कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु ॥ ७८ ॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ॥ कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे ॥ ७९ ॥

प्रारंभ होतेही उनका विसर्जन करै फिर आवाहनादि करके विधिपूर्वक पूजन कर ॥ ६९ ॥ उडद, कंगनी, मूंगसे अथवा सात धान्योंसे शंखी पुष्प, बेलपत्रसे परमेश्वरका पूजन करै ॥ ७० ॥ फिर शिवजीपर अनेकप्रकारके मिष्टान्न नैवेद्योंको चढावै अथवा उडदके बने पक्वान्नसे सदाशिवको संतुष्ट करै ॥ ७१ ॥ हे हरे ! केलेकी फलीका अर्घ्य दे अथवा ऋतुके अनेक फलोंसे शिवको अर्घ्य दे ॥ ७२ ॥ फिर विद्वान् व्रती मनुष्य पहलेसे दूना मंत्रका जप करै फिर यथाशक्ति ब्राह्मणोंके भोजनका संकल्प करै ॥ ७३ ॥ भक्तिसहित गीतवाद्योंसे तथा नृत्योंसे भक्तजनोंसहित बडे उत्सवोंसे अरुणके उदय पर्यन्त इसी प्रकार समयको बितावै ॥ ७४ ॥ सूर्यके उदय होनेपर फिर स्नान करके शिवका अर्चन करै फिर अनेकप्रकारकी पूजायोग्य भेटोंसे अपना अभिषेक करै ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके दान तथा विविधप्रकारका भोजन पहरोंकी संख्याके अनुसार ब्राह्मणोंको तथा संन्यासियोंको संकल्पानुसार करावै ॥ ७६ ॥ फिर शिवको नमस्कार करके पुष्पोंकी अंजलि ग्रहण करके बुद्धिमान् इन मन्त्रोंसे स्तुति करके प्रार्थना करै ॥७७॥ हे कृपानिधे ! हे शिवजी ! मैं तुम्हारा हूं तथा आपके प्राणवालाहूं सदा आपके चित्तवालाहूं ऐसा जानके जैसा योग्य हो सो करो ॥ ७८ ॥ हे भूतनाथ ! मैंने अज्ञानं

से वा ज्ञानसे जो जप पूजन आदि किया है उससे दयालु होनेके कारण आप मुझसे प्रसन्न होवैं ॥ ७९ ॥ इस व्रतसे जो फल होताहै उससे सब सुखदायक आप शंकर देव प्रसन्न हो ॥ ८० ॥ हे महादेव ! मेरे कुलमें आपका नित्य भजन होतारहै उस कुलमें मेरा जन्म न होवै जहां शिव देवका कीर्तन न होता हो ॥ ८१ ॥ इस प्रकार पुष्पोंकी अंजलिको समर्पण करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वादके तिलोंको ग्रहण करै तत्पश्चात शिवको विसर्जन करै ॥ ८२ ॥ इस प्रकार जिसने व्रत किया उससे शिवजी दूर नहीं होते उसका फल मैं नहीं कह सकता ऐसे भक्तको मुझे कुछ अदेय नहीं है ॥८३॥ यदि विना परिश्रम सेभी यह श्रेष्ठ व्रत कियाहो उसको भी मुक्तिबीज होताहै इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८४ ॥ मनुष्योंको भक्तिसे प्रत्येक मासमें यह व्रत करना योग्य है

अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च ॥ तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः ॥ ८० ॥ कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा ॥ माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं न हि देवता ॥ ८१ ॥ पुष्पांजलिं समर्प्यैवं तिलकाशिष एव च ॥ गृह्णीयाद्ब्राह्मणेभ्यश्च ततश्शंभुं विसर्जयेत् ॥ ८२ ॥ एवं व्रतं कृतं येन तस्माद्दूरो हरो न हि ॥ न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम ॥ ८३ ॥ अनायासतया चेद्वै कृतं व्रतमिदम्परम् ॥ तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा ॥ ८४ ॥ प्रतिमासं व्रतं चैव कर्तव्यं भक्तितो नरैः ॥ उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगफलं लभेत् ॥ ८५ ॥ व्रतस्य करणान्नूनं शिवोऽहं सर्वदुःखहा ॥ दद्मि भुक्तिं च मुक्तिं च सर्वं वै वाञ्छितं फलम् ॥ ८६ ॥ सूत उवाच ॥ इति शिववचनं निशम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम ॥ तदनु व्रतमुत्तमं जनेषु समचरदात्महितेषु चैतदेव ॥ ८७ ॥ कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतन्त्विदम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमनिरूपणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

पीछेसे उद्यापन करके पूर्णांग फलको प्राप्त करै ॥ ८५ ॥ इस व्रतके करनेसे निश्चयही मैं शिव समस्त दुःखोंको दूर करताहूं तथा उसे भुक्ति मुक्ति और संपूर्ण वाञ्छित फलोंको देताहूं ॥ ८६ ॥ सूतजी बोले, विष्णुभगवान् ऐसा शिवका हितकारी वचन सुनके अद्भुततेजको प्राप्त हुये तत्पश्चात् उन्होंने अपने हितकारी मनुष्योंके समीप यह श्रेष्ठ व्रत किया ॥ ८७ ॥ किसी समय विष्णुभगवान्ने भुक्ति मुक्ति देनेवाले दिव्य इस शिवरात्रिके व्रतको नारदजीसे कहाथा ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमनिरूपणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऋषि बोले, शिवरात्रिव्रतकी उद्यापनविधिको कहो जिसको करके साक्षात् शिव देवता निश्चयही प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! भक्तिसे आदर सहित शिवरात्रिके उद्यापनको सुनो जिसके करनेसे वह व्रत निश्चयही पूर्ण होता है ॥ २ ॥ शुभ शिवरात्रिका व्रत चौदह वर्षपर्यन्त करना चाहिये त्रयोदशीके दिन एक आवृत्ति भोजन करै और चौदसको उपोषण करै ॥ ३ ॥ शिवरात्रिके दिन नित्यकी विधिको समाप्त करके शिवके मंदिरमें जाके विधिपूर्वक पूजन करके ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् वहां शिवजीके समीपमें यत्नपूर्वक दिव्यमंडलको करावै जो मंडल गौरीतिलक नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहै

ऋषय ऊचुः ॥ उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च ॥ यत्कृत्वा शंकरस्साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतामृषयो
भक्त्या तदुद्यापनमादरात् ॥ यस्यानुष्ठानतः पूर्णं व्रतं भवति तद्ध्रुवम् ॥ २ ॥ चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ॥ एकभक्तं त्रयो
दश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् ॥ ३ ॥ शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्यं संपाद्य वै विधिम् ॥ शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥
ततश्च कारयेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः ॥ गौरीतिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ५ ॥ तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतोभद्रमण्डलम् ॥
अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥ कुंभास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया ॥ सवस्त्रास्सफलास्तत्र दक्षिणासहिताः
शुभाः ॥ ७ ॥ मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः ॥ मध्ये चैकश्च संस्थाप्यः सौवर्णो वापरो घटः ॥ ८ ॥ तत्रोमासहितां शंभु
मूर्तिन्निर्माय हाटकीम् ॥ पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्त्याथवा व्रती ॥ ९ ॥ निधाय वामभागे तु शिवामूर्त्तिमतन्द्रितः ॥ मदीयां दक्षिणे
भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ॥ १० ॥ आचार्यं वरयेत्तत्र चार्त्विग्भिस्सहितं शुचिम् ॥ अनुज्ञातश्च तैर्भक्त्या शिवपूचां समाचरेत् ॥ ११ ॥

॥ ५ ॥ उसके मध्यमें सुन्दर लिंगतोभद्रमंडलको बनावै, अथवा मंडपके भीतर सर्वतोभद्रचक्रको निर्माण करै ॥ ६ ॥ वहांपर प्राजापत्यनामसे वस्त्रों, फलों, और दक्षिणासहित शुभघडोंको स्थापन करै ॥ ७ ॥ मध्यमें सुवर्णका एक कलश अथवा दूसरा कलशभी स्थापनकरै इस प्रकार उस मंडलके समीपमें कलश यत्नसे स्थापन करने चाहिये ॥ ८ ॥ तहां व्रती एकपलभर अथवा आधेपलकी वा जैसी सामर्थ हो पार्वतीसमेत शिवजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनावै ॥ ९ ॥ आलस्यरहित हो बाईं ओर पार्वतीकी प्रतिमा स्थापन करके दाहिनी ओर शिवकी मूर्तिको स्थापन कर रात्रिमें पूजन करै ॥ १० ॥ वहां ऋत्विजोंके

सहित पवित्र आचार्यको वरण करै उनकी आज्ञासे भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करै ॥ ११ ॥ प्रत्येक पहरमें पूजाको करता हुआ रात्रिको जागरण करै इस प्रकार व्रती गीत नृत्य आदिसे संपूर्ण रात्रिको बितावै ॥ १२ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन कर शिवको सन्तुष्ट करके प्रातःकाल फिर पूजन करके विधिपूर्वक होम करै ॥ १३ ॥ यथाशक्ति प्राजापत्य व्रत विधान करै फिर प्रीतिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय भक्तिसे दान दे ॥ १४ ॥ ऋत्विजों (यज्ञ करानेवालों) को स्त्रीसहित वस्त्र आभूषणोंसे सजाके विधिपूर्वक पृथक् २ उन्हें दान दे ॥ १५ ॥ गायको बछडेसहित तथा संपूर्ण वस्तुओंके समेत विधानसे शिवजी

रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन् ॥ रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती ॥ १२ ॥ एवं सम्पूज्य विधिवत्संतोष्य प्रातरेव च॥पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि ॥१३॥ यथाशक्ति विधानं च प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ॥ १४ ॥ ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ अलंकृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥ गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम् ॥ उक्त्वाचार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति ॥ १६ ॥ ततस्सकुम्भां तन्मूर्त्तिं सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् ॥ सर्वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ॥ १७ ॥ ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम् ॥ कृतांजलिर्नतस्कन्धस्सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ॥ १८ ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि ॥ १९ ॥ मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव ॥ न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर ॥ २० ॥ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ॥ कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर ॥ २१ ॥

मुझसे प्रसन्न हों ऐसा कहके आचार्यको दे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे कलशों और वस्त्रोंसहित वृषभपर स्थितहुई शिवकी मूर्तिको समस्त आभूषण तथा वस्त्रों सहित आचार्यको देवै ॥ १७ ॥ फिर महाप्रभु, सदाशिव, देवदेवकी, प्रीतिसे हाथजोड कंधे झुकाय गद्गद वाणीसे इस प्रकार प्रार्थना करै ॥ १८ ॥ हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे देवेश ! इस व्रतसे मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १९ ॥ हे शिव ! मैंने भक्तिको अनुसरण करके यह आपका व्रत किया है सो हे शंकर ! न्यूनभी यह व्रत आपकी प्रसन्नतासे संपूर्णताको प्राप्त होवै ॥ २० ॥ हे शंकर ! मैंने अज्ञानसे अथवा ज्ञानसे जो कुछ जप पूजन

आदि किया है सो सब आपकी कृपासे सफल होवै ॥ २१ ॥ इस प्रकार पुष्पांजलि देके फिर परमात्मा शिवको नमस्कार करै फिर प्रार्थना करै॥ २२॥ इस प्रकार जिसने व्रत किया उसके व्रतमें न्यूनता नहीं होती और वह मनसे इच्छा कीहुई सिद्धिको प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० शिवरात्रिव्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ ऋषि बोले, हे सूतजी ! तुम्हारा वचन सुनके हम परमआनन्दको प्राप्त हुये उसही श्रेष्ठ व्रतको प्रीतिसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ १ ॥ हे सूतजी ! यहां पहले किसने यह श्रेष्ठ व्रत किया और

एवं पुष्पांजलिं दत्वा शिवाय परमात्मने ॥ नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनां पुनरेव च ॥ २२ ॥ एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते ॥ मनोभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवरात्रिव्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः ॥ विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम् ॥ १ ॥ कृतं पुरा च केनेह सूतैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतामृषयस्सर्वे कथयामि पुरातनम् ॥ इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३ ॥ पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद्गुरुद्रुहः ॥ कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ॥ ४ ॥ निरन्तरं वने गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः ॥ चौर्य्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन् ॥ ५ ॥ बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि ॥ महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ॥ ६ ॥ कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना ॥ न दुरात्मा स्म जानाति महद्वनानिवासकृत् ॥ ७ ॥

अज्ञानसेभी व्रत करके क्या श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे सम्पूर्ण ऋषियो ! मैं प्राचीन सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले निषादके इतिहासको वर्णन करताहूं ॥ ३ ॥ पहले वनमें एक गुरुद्रुहनामसे प्रसिद्ध कुटुंबी बलवान् दुष्ट हत्या आदि बुरे कर्मोंमें तत्पर भील रहताथा ॥ ४ ॥ वह नित्य वनमें जाकर मृगों (पशुओं) को मारताथा और वहां वनमें रहके अनेकचोरी करता था ॥ ५ ॥ उसने बालकपनसे लेके कुछभी शुभ कर्म नहीं किया इसी प्रकार वनमें निवास करतेहुये उस दुष्टात्मा व्याधको बहुत समय बीतगया ॥ ६ ॥ वहां निवास करतेहुए उसे शोभायमान शिवरात्रि

प्राप्त हुई परन्तु उस दुष्टात्माने उस बडे वनमें निवास करतेहुये यह नहीं जाना ॥ ७ ॥ उसी समय उसकी माता पिता स्त्रीने उस भीलसे प्रार्थना की, हे वनेचर ! हम भूंखसे व्याकुल हुये हैं हमको भोजन दो ॥ ८ ॥ ऐसी प्रार्थना सुनकर वह भील धनुष ले शीघ्रही मृगके मारनेको गया और सम्पूर्ण वनमें फिरा ॥ ९ ॥ दैवयोगसे उस समय उसने कुछभी नहीं पाया उस समय सूर्य अस्त होगये इससे वह दुःखी हुआ ॥ १० ॥ क्या करूं ? कहां जाऊं ? आज मुझे कुछभी भोजन नहीं मिला मेरे घरमें जो बालकहैं उनको तथा माता पिताको क्या भोजन कराऊंगा ॥ ११ ॥ मेरी जो स्त्री है उसके

एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा ॥ प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर ॥ ८ ॥ इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम् ॥ जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम् ॥ ९ ॥ दैवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचिदेव हि ॥ अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यस्स वै दुःखमुपागतः ॥ १० ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन ॥ बालाश्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥ मदीयं वै कलत्रं च तस्याः किंचिद्भविष्यति ॥ किंचिद्गृहीत्वा हि मया गंतव्यं नान्यथा भवेत् ॥ १२ ॥ इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः ॥ जलावतरणं यत्र तत्र गत्वा स्वयं स्थितः ॥ १३ ॥ अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति ॥ तं हत्वा स्वगृहं प्रीत्या यास्यामि कृतकार्यकः ॥ १४ ॥ इति मत्वा स वै वृक्षमेकं बिल्वेतिसंज्ञकम् ॥ समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ॥ १५ ॥ कदा यास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः ॥ इति बुद्धिं समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ॥ १६ ॥ तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागता ॥ तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ॥ १७ ॥

कुछ सन्तान होनेवाली है उसके निमित्तभी कुछ भोजन लेजाना उचित है विना भोजन लिये नहीं जाऊंगा ॥ १२ ॥ ऐसा विचारके वह भील सरोवरके समीप जाय जहां जलका घाट था वहां जाके स्वयं स्थित हुआ ॥ १३ ॥ अवश्यही इधर कोई जीव आवैगा उसे मार कृतकार्य हो आनंदसे अपने घरको जाऊंगा ॥ १४ ॥ ऐसा जान वह भील जल लेके एक बेलके वृक्षपर चढके स्थित हुआ ॥ १५ ॥ कब कोई जीव आवै कब मैं उसे मारूं ऐसा मनमें विचारकर भूंखा प्यासा वह व्याध स्थित रहा ॥ १६ ॥ तब रात्रिके पहले पहरमें एक हिरनी प्याससे व्याकुल हो चकितहुई हांफती

(किलोलकरती) वहां आई ॥ १७ ॥ हे विष्णो ! उस मृगीको देख उस भीलने उसके मारनेके लिये प्रसन्नहो शीघ्रही अपने धनुषपर बाण चढाया ॥ १८ ॥ इसप्रकार उसके करनेसे जल तथा बेलपत्र नीचे गिरा वहां शिवका ज्योतिर्लिंग था ॥ १९ ॥ इसप्रकार पहले पहरकी महादेवकी पूजा हुई उसके प्रतापसे उसके समस्त पाप नष्ट होगये ॥ २० ॥ उसके धनुषके शब्दको सुन वह हिरनी भीलको देख भयसे व्याकुलहो यह वचन बोली ॥२१॥ हिरनी बोली, हे व्याध ! क्या करनेकी इच्छा है ! तुम मेरे आगे सत्यसत्य कहो ऐसा मृगीका वचन सुनके वह भील कहनेलगा ॥ २२ ॥ व्याध बोला,

तां दृष्ट्वा च तदा तेन तद्वधार्थमथो शरः ॥ संहृष्टेन द्रुतं विष्णो धनुषि स्वे हि संदधे ॥ १८ ॥ इत्येवं कुर्वतस्तस्य जलं बिल्वदलानि च ॥ पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिंगमभूत्ततः ॥ १९ ॥ यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च ॥ तन्महिम्ना हि तस्यैव पातकं गलितन्तदा ॥ २० ॥ तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वा सा हरिणी भिया ॥ व्याधं दृष्ट्वा व्याकुला हि वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ मृग्युवाच ॥ किं कर्तुमिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः ॥ तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ कुटुम्बं क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वां तर्पयाम्यहम् ॥ दारुणं तद्वचश्श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम् ॥ २३ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम् ॥ इत्थं विचार्य्य सा तत्र वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ ॥ मृग्युवाच ॥ मन्मांसेन सुखं ते स्याद्देहस्यानर्थकारिणः ॥ अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥ उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह ॥ तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २६ ॥ परं तु शिशवो मेऽद्य वर्तंते स्वाश्रमेऽखिलाः ॥ भगिन्यै तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेथ वा ॥ २७ ॥

आज मेरा कुटुम्ब भूंखा है तुझे मारके मैं अपने कुटुम्बको तृप्त करूंगा ऐसा उसका वचन सुन उस कठिन दुष्टको देख वह हिरनी सोचनेलगी ॥ २३ ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कोई उपाय रचतीहूं ऐसा मनमें विचारके वह यह वचन बोली ॥ २४ ॥ मृगी बोली, अनर्थ करनेवाले मेरे शरीरके मांससे यदि तुमको सुख होवै तो इससे अधिक और क्या पुण्य है ! मैं निस्सन्देह धन्यहूं ॥ २५ ॥ इस लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है वह पुण्य सौ वर्षतक भी वर्णन नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ परन्तु आज मेरे सब बालक अपने स्थानमें हैं उन्हें बहिनको अथवा स्वामीको सौंपके तुम्हारे पास आऊंगी ॥ २७ ॥

हे वनचर ! तुम मेरा वचन झूंठ मत मानो मैं अवश्यही तुम्हारे समीप आऊंगी, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २८ ॥ सत्यसे भूमि स्थित है, सत्यसेही समुद्र
तथा सत्यसेही जलकी धारा है, सत्यमें सब कुछ स्थित है ॥ २९ ॥ सूतजी बोले, उस मृगीके ऐसा कहनेपरभी उस व्याधने उसका वचन न माना तो विस्मित
हो भयभीतहुई वह हिरनी फिर यह बोली ॥ ३० ॥ मृगीने कहा, हे व्याध ! मैं जो कुछ कहती हूं उसे सुन, मैं शपथ करती हूं यदि अपने घर जाके
तुम्हारे समीपमें नहीं आऊं तो ॥ ३१ ॥ वेदके बेचनेवाले तथा तीनों काल संध्या न करनेवाले ब्राह्मणको जो पाप होताहै तथा कामोंमें आसक्तहुई स्त्रियोंको

न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर ॥ आयास्येहं पुनश्चेह समीपं ते न संशयः ॥ २८ ॥ स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव
च वारिधिः ॥ सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वम्प्रतिष्ठितम् ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तोऽपि तया व्याधो न मेने तद्वचो यदा॥
तदा सुविस्मिता भीता वचनं साब्रवीत्पुनः ॥ ३० ॥ मृग्युवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि शपथं हि करोम्यहम् ॥ आगच्छेयं यथा
ते न समीपं स्वगृहाद्गता ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम् ॥ स्त्रियस्स्वस्वामिनो ह्याज्ञां समुल्लंघ्य क्रियान्विताः
॥ ३२ ॥ कृतघ्ने चैव यत्पापं तत्पापं विमुखे हरे ॥ द्रोहिणश्चैव यत्पापं तत्पापं धर्मलंघने ॥ ३३ ॥ विश्वासघातके तच्च तथा वै छलक
र्तरि ॥ तेन पापेन लिम्पामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ३४ ॥ इत्याद्यनेकशपथान्मृगी कृत्वा स्थिता यदा ॥ तदा व्याधस्स विश्वस्य
गच्छेति गृहमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् ॥ तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गतः ॥ ३६ ॥
तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता ॥ तस्या मार्गं विचिन्वन्ती ह्याजगाम जलार्थिनी ॥ ३७ ॥

अपने पतिकी आज्ञा उल्लंघन करनेसे जो पाप होताहै ॥ ३२ ॥ तथा कृतघ्नीको जो पाप होताहै और शिवसे विमुखहुए मनुष्यमें जो पाप लगता है, जो
द्रोहीको पाप होताहै, जो धर्मके तोडनेवालेको पाप होताहै ॥ ३३ ॥ तथा जो विश्वासघात करनेवाले, छल करनेवालेको पाप होता है मैं उस पापकी
भागी होऊं यदि मैं फिर यहां न आऊं॥ ३४॥ इत्यादि अनेक शपथोंको करके वह हिरनी जब स्थितहुई तो वह भील विश्वास करके जा ऐसा वचन बोला
॥ ३५ ॥ जबतक वह हिरनी प्रसन्न हो जल पीके अपने स्थानको गई तबतक पहला पहर उस व्याधेको विना निद्राके बीतगया ॥ ३६ ॥ तब उस मृगीकी

बहिन दूसरी हिरनी उत्कंठितहो उसकी खोज करती २ जल पीनेको वहीं आई ॥ ३७॥ उस हिरनीको देखकर भीलने स्वयं धनुष खैंचा तब पहलेके समान फिर जल और बिल्व पत्र शिवके ऊपर गिरे ॥ ३८ ॥ उससे दूसरे पहरकाभी महात्मा शिवका पूजन व्याधको सुख देनेवाला हुआ ॥ ३९ ॥ तब वह हिरनी उस भीलको देखके बोली हे वनेचर ! क्या करते हो उसने पहलेके समान कहा, यह सुनके वह मृगी फिर बोली ॥ ४० ॥ हिरनी बोली, हे व्याध ! सुनो मैं धन्यहूं मेरा देह धारण करना सफल हुआ, कारण कि, इस अनित्य शरीरसे उपकार होगा ॥४१॥ परन्तु मेरे बालबच्चे घरहैं उन्हें अपने स्वामीको

तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद्बाणस्य कर्षणम् ॥ पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥ ३८ ॥ यामस्य च द्वीतीयस्य तेन शंभोर्महात्मनः ॥ पूजा जाता प्रसंगेन व्याधस्य सुखदायिनी ॥ ३९ ॥ मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि वनेचर ॥ पूर्ववत्कथितं तेन तच्छुत्वाह मृगी पुनः ॥ ४० ॥ मृग्युवाच ॥ धन्याहं श्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम् ॥ अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भविष्यति ॥ ४१ ॥ परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्ठन्ति चार्भकाः ॥ भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः ॥ ४२ ॥ व्याध उवाच ॥ त्वया चोक्तं न मन्येहं हन्मि त्वां नात्र संशयः ॥ तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरे ॥ ४३ ॥ मृग्युवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम् ॥ ४४ ॥ परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुमान् ॥ वेदधर्मं समुल्लंघ्य कल्पितेन च यो व्रजेत् ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः ॥ पित्रोः क्षयाहमासाद्य शून्यं चैवाक्रमेदिह ॥ ४६ ॥ कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः ॥ तेन पापेन लिंपामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ४७ ॥

सौंपके फिर यहां आऊंगी ॥ ४२ ॥ भील बोला, तेरा कहना मैं नहीं मानूंगा, तुझे अवश्य मारूंगा इसमें संशय नहीं हे हरे ! यह सुन वह हिरनी सौगंध करतीहुई बोली ॥ ४३ ॥ मृगी बोली, हे भील ! सुनो यदि मैं फिर यहां न आऊं तो वाणीके विचलनेसे मेरा पुण्य दूर हो जाय ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य विवाहिता स्त्रीको छोडके और स्त्रीसे भोग करता है तथा जो वेदधर्मका उल्लंघन करके कल्पितहुए मार्गमें जाता है ॥ ४५ ॥ जो विष्णुकी भक्तिमें लगके शिवकी निन्दा करताहै तथा जो माता पिताके क्षयाह (मरणके दिन) को ब्राह्मण भोजन विना खाली जाने देता है ॥ ४६ ॥ दूसरेको दुःख देके

फिर पीछेसे मीठे वचन बनाताहै मैं उस पापसे लिप्त होऊं यदि लौटके मैं यहां न आऊंगी ॥ ४७ ॥ सूतजी बोले, वह भील इस प्रकार मृगीके कहनेपर तू जा ऐसा मृगीसे वचन बोला तब वह हिरनी प्रसन्नहुई जलको पी अपने घरको गई ॥ ४८ ॥ तबतक उस भीलको विना नींदके दूसरा पहरभी बीतगया, उस समय तीसरे पहरके आनेपर ॥ ४९ ॥ उनके आनेमें विलंब जानके वह व्याधा चकित हो उनकी खोजमें तत्पर हुआ तबहीं उसने उस पहरमें जलमार्गमें आताहुआ एक मृग देखा ॥ ५० ॥ उस हृष्टपुष्ट हिरनको देखके वह भील धनुषपर बाण चढाय उसे मारनेको उद्यत हुआ ॥ ५१ ॥ हे विष्णो ! उस

सूत उवाच ॥ इत्युक्तश्च तया व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः ॥ सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टाऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ॥ ४८ ॥ तावद्द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां विना गतः ॥ एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वा विलंबं चकितस्तदन्वेषणतत्परः ॥ तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः ॥५०॥ पुष्टं मृगं च तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरस्स वै ॥ शरं धनुषि संधाय हन्तुं तं हि प्रचक्रमे ॥ ५१ ॥ तदैवं कुर्व तस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित् ॥ तत्प्रारब्धवशाद्विष्णो पतितानि शिवोपरि ॥ ५२ ॥ तेन तृतीययामस्य तद्रात्रौ तस्य भाग्यतः ॥ पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम् ॥ ५३ ॥ श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः ॥ कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोब्रवीत् ॥ ५४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः ॥ द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ हरिण उवाच ॥ धन्योहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति ॥ यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥ ५६ ॥

समय उसके ऐसा करनेपर कुछ एक बेलपत्र उसके प्रारब्धवश शिवके ऊपर गिरे ॥ ५२ ॥ उनसे उस रात्रिमें उस भीलके भाग्यसे तीसरे पहरकी शिवकी पूजा होगई इस प्रकार शिवजीने उसके ऊपर कृपालुता दिखाई ॥५३॥ वहां उस शब्दको सुनके वह मृग बोला, हे भील ! तुम क्या करते हो तब वह व्याध बोला, कि मैं अपने कुटुम्बके अर्थ तुझे मारताहूं ॥५४॥ ऐसा भीलका वचन सुन वह हिरन प्रसन्नमनहो शीघ्रही उस व्याधेसे यह वचन बोला ॥५५॥ मृग बोला, मैं आज धन्यहूं पुष्टिवान् हूं जिससे तुम्हारी तृप्ति होगी जिसका अंग दूसरेके उपकारके निमित्त नहीं होता उसका सब कुछ निष्फल गया ॥५६॥

जो प्राणी सामर्थ्यहोके भी परोपकार नहीं करता उसकी सामर्थ्य व्यर्थ होतीहै वह परलोकमें नरकको जाता है ॥ ५७ ॥ परन्तु मैं अपने बाल बच्चोंको उनकी माताको सौंपके और उन सबको धैर्य देके फिर यहां आऊंगा ॥ ५८ ॥ ऐसा मृगके कहनेपर वह व्याध अपने चित्तमें विस्मित हुआ थोडा मन शुद्ध होने और पापसमूह नष्ट होनेसे वह भील यह वचन बोला ॥ ५९ ॥ व्याध बोला, जो जो जीव यहां आये वे सब तेरी समान कहके चलेगये वे ठग अभीतक भी नहीं लौटे ॥ ६० ॥ हे मृग ! तूभी संकटमें प्राप्त होके झूँठसे समयको बितावैगा मेरा जीवन आज किसप्रकार होगा ॥ ६१ ॥ मृग बोला,

यो वै सामर्थ्य युक्तश्च नोपकारं करोति वै ॥ तत्सामर्थ्यं भवेद्व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥ ५७ ॥ परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननीं शिशून् ॥ आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः ॥ ५८ ॥ इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मितोतीव चेतसि ॥ मनाक्शुद्धमना नष्टपापपुंजो वचोऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥ व्याध उवाच ॥ येये समागताश्चात्र तेते सर्वे त्वया यथा ॥ कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि वंचकाः ॥ ६० ॥ त्वं चापि संकटे प्राप्तो व्यलीकं च गमिष्यसि ॥ मम संजीवनं चाद्य भविष्यति कथं मृग ॥६१॥ मृग उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि ॥ सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ॥ ६२ ॥ यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलितं क्षणात् ॥ तथापि शृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ॥ ६३ ॥ सन्ध्यायां मैथुने घस्रे शिवरात्र्यां च भोजने ॥ कूटसाक्ष्ये न्यासहारे संध्याहीने द्विजे तथा ॥ ६४ ॥ शिवहीनं मुखं यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन् ॥ पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे ॥ ६५ ॥ असंपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः ॥ एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ६६ ॥

हे व्याध ! जो मैं कहताहूं सो सब सुनो मैं झूँठ नहीं कहता सत्यसे यह चर अचर ब्रह्मांड स्थित होरहाहै ॥ ६२ ॥ जिसकी वाणी असत्य होतीहै तत्क्षण उसका पुण्य नष्ट होताहै तौभी हे भील ! मेरी सच्ची प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ६३ ॥ संध्याके समय मैथुन करने तथा शिवरात्रिको दिनमें भोजन करनेसे झूंठी गवाही देने धरोहर मारनेमें तथा सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मणको जो पाप होताहै ॥ ६४ ॥ जिसका मुख शिवभजनरहितहै जो समर्थ होके भी उपकार करनेवाला नहीं है पर्वके दिन बेल तोडने अभक्ष्यके भक्षण करने ॥ ६५ ॥ शिवके विना पूजे भोजन करने तथा भस्म रहित अंग रहनेसे जो पाप होताहै

इन सबोंका पाप मुझे लगै यदि मैं फिर लौटके यहां न आऊं ॥ ६६ ॥ शिवजी बोले, ऐसा उस मृगका वचन सुनके जाओ शीघ्र आना ऐसा व्याधने कहा तब वह हिरन जल पीके अपने घरको चलागया ॥ ६७ ॥ तब वे सब अपने आश्रममें मिले और एक दूसरेको प्रणाम करके परस्पर उस सब वृत्तान्तको भलीप्रकार सुनके ॥ ६८ ॥ बोले, निश्चय ही वहां जाना उचित है इस प्रकार वे सत्यके पाशसे बंधेहुये बालकोंको धीरज दे वहां जानेको तैयार हुये ॥ ६९ ॥ उनमेंसे जो बडी हिरनी थी वह अपने स्वामीसे यह बोली, हे मृग ! तुम्हारे विना यह बालक यहां कैसे रहैंगे ॥ ७० ॥ हे स्वामिन् ! पहले तो

शिव उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज ॥ स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ॥ ६७ ॥ ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः ॥ वृत्तांतं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम् ॥ ६८ ॥ गन्तव्यं निश्चयेनेति सत्यपाशेन यंत्रिताः ॥ आश्वास्य बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ॥ ६९ ॥ मृगी ज्येष्ठा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीत् ॥ त्वां विना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यंति वै मृग ॥७०॥ प्रथमं तु मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो ॥ तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ॥ ७१ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्ठा वाक्यमब्रवीत् ॥ अहं त्वत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ॥ ७२ ॥ तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया ॥ भवत्यौ तिष्ठतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम् ॥७३॥ तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः ॥ प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक् ॥ ७४ ॥ बाला नाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः ॥ गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ॥ ७५ ॥

मैंने वहां प्रतिज्ञा की है इस कारण मुझे वहां जाना योग्य है तुम दोनों यहां ही रहो ॥ ७१ ॥ ऐसा उसका वचन सुनके कनिष्ठा [छोटी हिरनी] यह वचन बोली मैं तुम्हारी टहलनी अब जाती हूं तुम यहाँ स्थित रहो ॥ ७२ ॥ यह सुनके वह मृग बोला, मैं वहाँ जाता हूं तुम दोनों यहाँ स्थित रहो कारण कि, मातासे ही बालककी रक्षा होती है ॥ ७३ ॥ अपने स्वामीका वचन सुनके वे दोनों हिरनी अपने धर्मको देख उस बातको न मानतीहुईं अपने पतिसे प्रेमपूर्वक यह वचन बोलीं कि, वैधव्य (विधवापन) में जीना धिक्कार है ॥ ७४ ॥ तब वे सबही उन बालकोंको धैर्य दे उन्हैं पडोसियोंको सौंपके शीघ्र

वहां गये जहां वह श्रेष्ठ व्याध था ॥ ७५ ॥ वे सब बालक भी यह देखके उनके पीछे पीछे चलदिये इन माता पिताकी जो दशा होगी वह दशा हमारी भी होगी ॥७६॥ तब उन सबोंको देखके वह भील प्रसन्न हो धनुषपर बाण चढाने लगा तबभी फिर शिवके ऊपर जल तथा बेलपत्र गिरे ॥७७॥ इससे शिवजीके चौथे पहरका शुभ पूजन होगया उस समय उसका सब पाप भस्म होगया ॥ ७८ ॥ तब वे दोनों मृगी तथा मृग शीघ्र यह बोले, हे व्याधसत्तम ! तुम हमारे शरीरको सार्थक (सफल) करो और हमारे ऊपर कृपा करो ॥ ७९ ॥ शिवजी बोले, ऐसा उन सबोंका वचन सुनके वह

ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानुसमागताः ॥ एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माकं सा भवत्त्विति ॥ ७६ ॥ तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो बाणं धनुषि संदधे ॥ पुनश्च जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ॥ ७७ ॥ तेन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा ॥ तस्य पापन्तदा सर्वं भस्मसादभवत् क्षणात् ॥ ७८ ॥ मृगी मृगी मृगश्चोचुश्शीघ्रं वै व्याधसत्तम ॥ अस्माकं सार्थकं देहं कुरु त्वं हि कृपां कुरु ॥ ७९ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ इति तेषां वचश्श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ॥ शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ॥ ८० ॥ एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनास्सुसंमताः ॥ स्वीयेनैव शरीरेण परोपकरणे रताः ॥ ८१ ॥ मानुष्यं जन्म संप्राप्य साधितं किं मयाधुना ॥ परकायं च संपीडय शरीरं पोषितं मया ॥ ८२ ॥ कुटुम्बं पोषितं नित्यं कृत्वा पापान्यनेकशः ॥ एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यति ॥ ८३ ॥ कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम् ॥ इदानीं चिंतयाम्येवं धिग्धिक् च जीवनं मम ॥ ८४ ॥ इति ज्ञानं समापन्नो बाणं संवारयंस्तदा ॥ गम्यतां च मृगश्रेष्ठा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ॥ ८५ ॥

भील विस्मयको प्राप्त हो शिवपूजनके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ ८० ॥ यह परस्पर मिलेहुए ज्ञानरहित मृग धन्यहैं जो अपने शरीरसे परोपकार करनेमें तत्पर हैं ॥ ८१ ॥ अब मनुष्य जन्म पाके मैंने क्या फल पाया जो दूसरोंके शरीरको पीडा देके अपना शरीर पाला ॥ ८२ ॥ नित्यही अनेकों पाप करके अपना कुटुम्ब पाला, हाय ऐसे २ पाप करके मेरी क्या गति होगी ? ॥ ८३ ॥ मैं किस गतिको पाऊंगा जो मैंने जन्मसे पाप किये हैं इस समय ऐसी चिन्ता करता हूं मेरे जीवनको धिक्कार है धिक्कार है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार ज्ञानमें भराहुआ वह भील बाणको निवारण (निकाल) करके यह बोला,

हे मृगश्रेष्ठो ! तुम धन्यहो अपने स्थानको जाओ ॥ ८५ ॥ शिवजी बोले, तब उस भीलके ऐसा कहनेपर शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने पूजनीय
शास्त्रसम्मत अपना स्वरूप दिखाया ॥ ८६ ॥ उस समय कृपासे उस भीलको स्पर्श करके प्रीतिसे यह बोले, हे भील ! मैं इस व्रत करनेसे प्रसन्नहूं तू वर
माँग ॥ ८७ ॥ वह व्याध भी शिवके स्वरूपको देखके क्षणमात्रमें मुक्त हो मैंने सब कुछ प्राप्त करलिया ऐसा कहताहुआ शिवजीके चरणोंमें गिरा ॥८८॥
अति प्रसन्नहुये शिवने भी उसे गुह ऐसा नामदेके तथा कृपादृष्टिसे देख दिव्य वरदान दिये ॥ ८९ ॥ शिवजी बोले, हे व्याधर्षे ! सुन तू मनोवाञ्छित दिव्य

शिव उवाच ॥ इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नश्शंकरस्तदा ॥ पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास संमतम् ॥ ८६ ॥ संस्पृश्य कृपया शंभुस्तं
व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् ॥ वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक ॥ ८७ ॥ व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात् ॥ पपात
शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन् ॥ ८८ ॥ शिवोऽपि सुप्रसन्नात्मा नाम दत्त्वा गुहेति च ॥ विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरा
नदात् ॥८९॥ शिव उवाच ॥ शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुंक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् ॥ राजधानीं समाश्रित्य शृंगवेरपुरे पराम् ॥ ९० ॥
अनपाया वंशवृद्धिश्श्लाघनीयः सुरैरपि ॥ गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ॥ ९१ ॥ करिष्यति त्वया मैत्रीं मद्भक्तस्ने
हकारकः ॥ मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यासि दुर्लभाम् ॥ ९२ ॥ एतस्मिन्नंतरे ते तु कृत्वा शंकरदर्शनम् ॥ सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं
मृगयोनेः प्रेपदिरे ॥ ९३ ॥ विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा ॥ शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गताः ॥ ९४ ॥

भोगोंको प्राप्त हो तथा श्रृंगवेरपुरमें परम राजधानीको प्राप्त होके वहां निवासकर ॥ ९० ॥ हे व्याध ! तुम्हारे वंशकी वृद्धि अविनाशिनी होके देवतोंसे भी
प्रशंसनीय होगी और तुम्हारे घर साक्षात् रामचन्द्रजी निश्चयही पधारैंगे ॥ ९१ ॥ और वे मेरे भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले रामचंद्र तुम्हारे साथ मित्रता
करैंगे और तुम मेरी सेवामें चित्त लगाके, दुर्लभ मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ९२ ॥ इसी अवसरमें वे सब मृग शिवका दर्शन करके तथा शिवको प्रणाम करके
मृगयोनिसे सुन्दर मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ९३ ॥ उस समय वे दिव्य शरीर धारण करके विमानपर चढके, शिवजीके दर्शनमात्रसे शापसे छूटके स्वर्गधामको

सिधारे ॥ ९४ ॥ तब अर्बुदाचल पर्वतपर वे व्याधेश्वरनामक शिव प्रसिद्ध हुए वे दर्शनसे तथा पूजनसे तत्क्षण भोग और मोक्षके देनेवालेहैं ॥ ९५ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! वह भील भी उस दिनसे लेके संम्पूर्ण भोगोंको अनुभव करके रामचन्द्रकी कृपाको प्राप्त हो शिवकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ९६ ॥ वह भील अज्ञानसे शिवके व्रतको करके सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ यदि भक्ति करनेवाले मनुष्य शुभ मुक्तिको पाते हैं तो क्या आश्चर्य है ॥ ९७ ॥ संपूर्ण शास्त्रोंको तथा अनेकधर्मोंको विचारके यह सबसे अधिक शिवरात्रिके व्रतको कहा ॥ ९८ ॥ इस संसारमें अनेकप्रकारके व्रतहैं, अनेक

व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले ॥ दर्शनात्पूजनात्सद्यो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ९५ ॥ व्याधोपि तद्दिनान्नूनं भोगान्स सुरसत्तम ॥ भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान् ॥ ९६ ॥ अज्ञानात्स व्रतञ्चैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्तवान् ॥ किं पुनर्भक्तिसंपन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम् ॥ ९७ ॥ विचार्य्य सर्वशास्त्राणि धर्मांश्चैवाप्यनेकशः ॥ शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ९८ ॥ व्रतानि विविधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च ॥ दानानि च विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा ॥ ९९ ॥ तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः ॥ नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥ १०० ॥ तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः ॥ शिवरात्रिव्रतन्दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ १०१ ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ॥ व्रतराजेति विख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह ॥ अवस्था कीदृशी तत्र भवेदिति वदस्व नः ॥ १ ॥

तीर्थ हैं, अनेक दान हैं, तथा विविध यज्ञहैं ॥९९॥ तप भी बहुतहैं, तथा जप भी अनेकों हैं परंतु इस शिवरात्रि व्रतकी तुल्यताको प्राप्त नहीं होते॥ १००॥ इस कारण अपना हित चाहनेवालोंको यह अतिश्रेष्ठ दिव्य सदा भुक्ति मुक्तिका देनेवाला शिवरात्रिका व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ १०१ ॥ यह शुभ शिवरात्रिव्रत संपूर्ण कहा यह संपूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ (व्रतराज) प्रसिद्ध है अब और क्या ? सुनना चाहते हो ॥ १०२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च० को० रु० व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ऋषि बोले, तुमने जो मुक्ति कही उसमें क्या होता है

वहां कैसी अवस्था होती है यह सब हमसे कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, चार प्रकारकी मुक्ति होतीहै सुनो तुमसे कहता हूं वह संसारके क्लेशको हरण करनेवाली परम आनंदकी देनेवाली है ॥ २ ॥ सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य, और चौथी सायुज्य कही है जो शिवके व्रतसे प्राप्त होतीहै ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मुक्तिके देनेवाले केवल शिवजी ही कहेहैं वे ब्रह्मा विष्णु आदि मुक्तिके दाता नहीं हैं वे केवल धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गके देनेवालेहैं ॥ ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक तीनों गुणोंके अधीश्वरहैं और शिवजी तीनों गुणोंसे परेहैं, निर्विकारी परब्रह्म तुर्य (चौथे) प्रकृतिसे परेहैं ॥ ५ ॥ वे महादेव

सूत उवाच ॥ मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः ॥ संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ॥ २ ॥ सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा ॥ सायुज्या च्च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् ॥ ३ ॥ मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठाः केवलं शिव उच्यते ॥ ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः ॥ ४ ॥ ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाश्शिवस्त्रिगुणतः परः ॥ निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः ॥ ५ ॥ ज्ञानरूपोऽव्ययः,साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयस्स्वयम् ॥ कैवल्यमुक्तिदस्सोत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ॥ ६ ॥ कैवाल्याख्या पंचमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् ॥ तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥ ७ ॥ उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् ॥ यस्मिंश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥ ८ ॥ तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ॥ सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ॥ ९ ॥ विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा ॥ कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ॥ १० ॥

ज्ञानस्वरूप अविनाशी साक्षी ज्ञानगम्य स्वयं अद्वैत कैवल्य मुक्तिके देनेवाले तथा त्रिवर्ग (धर्मादि) के देनेवालेहैं ॥ ६ ॥ हे ऋषि श्रेष्ठो ! पाचवीं कैवल्यनामक मुक्ति है वह सब प्रकारसे मनुष्योंको दुर्लभ है अब मैं उसका लक्षण कहता हूं श्रवण करो ॥ ७ ॥ जिससे सब जगत् उत्पन्न होता है तथा जिससे यह जगत् पालन होताहै और जिसमें लय होजाता है जिसने यह सब कुछ विस्तार किया है ॥ ८ ॥ हे मुनीश्वरो ! वह ही शिवरूप कहे जातेहैं वे कलासहित तथा कलारहित दो प्रकारसे वेदमें वर्णन किये गये हैं ॥ ९ ॥ उनको विष्णु ब्रह्माने नहीं जाना और न उन्हें कुमार आदिने जाना न नारदजीने

जाना है ॥ १० ॥ और न व्यासजीके पुत्र शुकदेवने न मुनीश्वरोंने न उनसे पहले संपूर्ण देवताओंने और न वेदशास्त्रोंने उनको जानाहै ॥ ११ ॥ सत्य, ज्ञान, अनंत, सत्, चित्, आनंदस्वरूपहैं,तथा निर्गुण, निरुपाधि, अव्यय, शुद्ध, निरंजनहैं ॥ १२ ॥ वह परमात्मा न रक्तहैं न पीतहैं न श्वेत न नील न ह्रस्व न दीर्घ न स्थूल न सूक्ष्महैं ॥ १३ ॥ जहांसे वाणी मनके सहित प्राप्त न होके लौटती है वहही शिवसंज्ञक परब्रह्म कहा है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापक है उसी प्रकार यह भी सर्व व्यापक हैं, मायासे परे हैं पर आत्मा तथा द्वन्द्वरहित मत्सरहीन हैं ॥ १५ ॥ हे द्विजो ! इस लोकमें

शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः॥ तत्पूर्वैश्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि ॥११॥ सत्यं ज्ञानमनंतं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम् ॥
निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरंजनः ॥ १२ ॥ न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च ॥ न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूल
स्सूक्ष्म एव च ॥ १३ ॥ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥ तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम् ॥ १४ ॥ आकाशं व्या
पकं यद्वत्तथैव व्यापकन्त्विदम् ॥ मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ १५ ॥ तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद्ध्रुवम् ॥
भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥ १६ ॥ ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् ॥ तस्माच्छिवं च भजत मुक्त्यर्थ
मपि सत्तमाः ॥ १७ ॥ शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः ॥ भक्त्यैव बहवः सिद्धा मुक्तिं प्रापुः परां मुदा ॥ १८ ॥
ज्ञानमाता शंभुभक्तिर्मुक्तिभुक्तिप्रदा सदा॥ सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुरलक्षणा ॥ १९॥सा भक्तिर्विविधा ज्ञेया सगुणा निर्गुणा
द्विजाः ॥ वैधी स्वाभाविकी याया वरा सासा स्मृता परा ॥२० ॥

शिवज्ञानके उदय होनेसे अथवा शिवके भजन करनेसे वा सज्जनोंकी सूक्ष्म मतिसे उनकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तमो ! संसारमें ज्ञान कठिन है भजन सुगम माना गया है इस कारण मुक्तिके पानेके निमित्त शिवको भजो ॥ १७ ॥ शिवजी भजनके आधीनहैं ज्ञानकी आत्मा और मोक्षके देनेवाले तथा पर हैं बहुतसे सिद्ध भक्तिसेही आनन्दसहित परम मुक्तिको प्राप्त हुएहैं ॥ १८ ॥ शिवकी भक्ति ज्ञानकी माता तथा नित्य भुक्ति मुक्ति देनेवाली है जिसके प्रसादसे सुलभ होती है उसमें सत्यप्रेमके अंकुरकी लक्षणा कही है ॥ १९ ॥ हे द्विजो ! वह भक्ति सगुण और निर्गुणरूपसे अनेकप्रकारकी जाननी

जो जो वैधी और स्वाभाविकी है वही श्रेष्ठ और अधिक है ॥ २० ॥ और वह नैष्ठिकी अनैष्ठिकी इन भेदोंसे दो प्रकारकी कही है उसमें छः प्रकारकी नैष्ठिकी जाननी और अनैष्ठिकी एकही प्रकारकी कही है ॥ २१ ॥ फिर पंडितलोग विहिता अविहिता इन भेदोंसे अनेकप्रकारकी कहते हैं उन दोनोंमें भी अनेकप्रकार होनेसे विस्तार वर्णन नहीं किया जाता ॥ २२ ॥ वे दोनों श्रवणादिकके भेदसे नौ नौ अंगवाली हैं, यह शिवके प्रसादके विना अति कठिन है और उनकी प्रसन्नतासे सुगम है ॥ २३ ॥ हे द्विजो ! भक्ति और ज्ञान परस्पर भिन्न नहीं हैं ऐसा शिवजीने वर्णन किया है इस कारण भक्ति तथा ज्ञानके

नैष्ठिक्यनैष्ठिकीभेदाद्द्विविधैव हि कीर्तिता॥ षड्विधा नैष्ठिकी भेदाद्द्वितीयैकविधा स्मृता ॥ २१ ॥ विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ॥ तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते ॥ २२ ॥ ते नवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः ॥ सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ॥ २३ ॥ भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शंभुना वर्णिते द्विजाः ॥ तस्माद्भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुस्सर्वदा सुखम् ॥ २४ ॥ विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः ॥ शंभुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ॥ २५ ॥ तस्माद्भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः ॥ तयैव निखिलं सिद्धं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥ इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया ॥ तच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मुक्तिनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्च कः ॥ एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ॥ १ ॥

करनेवालेको नित्य सुख होता है उन दोनोंमें भेद मानना उचित नहीं है ॥ २४ ॥ हे द्विजो ! भक्तिके विरोधीको विज्ञान नहीं होता शम्भुकी भक्ति करनेवालेको शीघ्रही ज्ञानका उदय होता है ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस कारण महेश्वरकी भक्ति अवश्यही करनी चाहिये उसीसे सबकुछ सिद्ध होगा इसमें संशय नहीं ॥२६॥ जैसा तुमने मुझसे पूंछा उसी प्रकार सब मैंने कह दिया मनुष्य इसको सुनके सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है इसमें संशय नहीं ॥२७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां च०को० रु० मुक्तिनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ऋषि बोले, शिवजी कौन हैं और विष्णु कौन हैं, रुद्र

कौन हैं, तथा ब्रह्मा कौन हैं, इन सबोंमें निर्गुण कौन हैं हमारे इस सन्देहको दूर करो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, आदिसृष्टिमें जो निर्गुण परमात्मासे उत्पन्न हुये हैं वेद और वेदान्तके ज्ञाताओंने उनको ही शिव नामवाला कहाहै ॥ २ ॥ हे ज्ञानी ! उन शिवसे प्रकृति पुरुषके सहित उत्पन्न हुई तहां उन दोनों प्रकृतिपुरुषोंने मूलमें स्थितहुए जलमें तप किया ॥ ३ ॥ वह पंचकोशीनामसे विख्यातहुई सबोंको जो काशी अत्यन्त प्रिय है उसका जल सम्पूर्ण संसारभरमें व्याप्त होगया ॥ ४ ॥ यह जान वह विष्णु मायाके सहित उस जलमें सोगये वह हरि नारायणनामसे विख्यात हुए और प्रकृति नारायणी

सूत उवाच ॥ यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः ॥ तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदांतिनो विदुः ॥ २ ॥ तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता ॥ ताभ्यान्तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधीः ॥ ३ ॥ पंचक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा ॥ व्याप्तं च सकलं ह्येत्ततज्जलं विश्वतो गतम् ॥ ४ ॥ संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरिस्स वै ॥ नारायणेति विख्यातः प्रकृतिर्नारायणी मता ॥ ५ ॥ तन्नाभिकमले यो वै जातस्स च पितामहः ॥ तेनैव तपसा दृष्टस्स वै विष्णुरुदाहृतः ॥ ६ ॥ उभयोर्वादशमने यद्रूपं दर्शितं बुधाः ॥ महादेवेति विख्यातं निर्गुणेन शिवेन हि ॥ ७ ॥ तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कभालतः रुद्रो ॥ नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥ ८ ॥ ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत् ॥ स एव च शिवस्साक्षाद्भक्तवात्सल्यकारकः ॥ ९ ॥ शिवे त्रिगुणसम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि ॥ वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तद्भूषणे यथा ॥ १० ॥

नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ५ ॥ उनकी नाभिकमलमें जो उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजी कहाये उन्होंने जिनको तपसे देखा वह विष्णु हैं ॥ ६ ॥ हे पंडितो ! निर्गुण शिवने उन दोनों ब्रह्मा विष्णुके विवादको शान्त करनेके निमित्त जो रूप दिखाया वह महादेवनामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने कहा मैं शम्भु ब्रह्माके मस्तकसे प्रगट हूंगा तब लोकोंके अनुग्रह करनेवाले वे शम्भु रुद्रनामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ वह भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले साक्षात् शिव रूपरहित होकर भी सबोंके ध्यानके निमित्त रूपवान् हुए ॥ ९ ॥ तीनों गुणोंसे हीन शिवमें तथा सगुण रुद्रमें यथार्थमें कुछ भेद नहीं जैसे स्वर्णमें और उसके भूषणमें कुछ अन्तर

नहीं होता ॥ १० ॥ वे दोनोंही समानरूप और कर्मवाले समानही भक्तोंको गति देनेवाले हैं सबोंको तुल्य ही सेवन करनेयोग्य हैं तथा अनेक लीलाके करनेवालेहैं ॥ ११ ॥ अति पराक्रमवाले रुद्र सब प्रकार शिव रूपहीहैं वे ब्रह्मा विष्णुकी सहायता करनेवाले भक्तोंके कार्य करनेके हेत उत्पन्न हुये ॥१२॥ और जो उत्पन्न हुयेहैं वे क्रमानुसार सब लयको प्राप्त होतेहैं उसप्रकार रुद्र नहीं लय होते वे केवल शिवमेंही लय होतेहैं ॥ १३ ॥ वे सब सामान्य हुये रुद्रमें मिलके लय होजातेहैं परन्तु वह रुद्र उन विष्णु आदिमें मिलके लयको प्राप्त नहीं होतेहैं यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ १४ ॥ वे सब रुद्रको भजतेहैं परन्तु

समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ ॥ समानाखिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ ॥ ११ ॥ सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपराक्रमः ॥ उत्पन्नो भक्तकार्यार्थं हरिब्रह्मसहायकृत् ॥ १२ ॥ अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतो लयम् ॥ यांति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते ॥ १३ ॥ ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे ॥ इमान्रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम् ॥ १४ ॥ सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कंचिद्भजेन्न हि ॥ स्वात्मना भक्तवात्सल्याद्भजत्येव कदाच न ॥ १५ ॥ अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः ॥ तेनैव रुद्रं ते प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ॥ १६ ॥ रुद्रभक्तास्तु ये केचित्तत्क्षणं शिवतां गताः ॥ अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १७ ॥ अज्ञानं विविधं ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि ॥ तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजाः ॥ १८ ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतं यत्किंचिद्दृश्यते त्विह ॥ तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना ॥ १९ ॥

रुद्र किसीकोभी नहीं भजते परन्तु कभी कभी भक्तोंकी दयाके कारण अपने आप भजतेहैं ॥ १५ ॥ हे विद्वानों ! जो नित्य और देवताको भजतेहैं वे उसीमें लय होके बहुत समयमें रुद्रको प्राप्त होतेहैं ॥१६॥ परन्तु जो कोई रुद्रके भक्तहैं वे उसी समय शिवके भावको प्राप्त होतेहैं, उन रुद्रको और किसी देवताकी अपेक्षा नहीं होती यह सनातनी श्रुति है ॥१७॥ हे द्विजो ! अज्ञान तो अनेक प्रकारका है विज्ञान अनेक प्रकारका नहीं होता उसके भेदको मैं कहताहूं तुम आदरसे सुनो॥१८॥इस लोकमें ब्रह्मासे लेके तृणपर्यन्त जो कुछ दीखता है वह सब शिवरूपही है अनेकप्रकारकी कल्पना मिथ्या है ॥१९॥

सृष्टि होनेसे पहले शिवही हैं तथा सृष्टिके मध्यमेंभी शिवही कहेहैं और सृष्टिके अन्तमें भी शिवही होतेहैं सर्वशून्य होनेपरभी सदाशिव जानो ॥ २० ॥ हे मुनीश्वरो ! इससे शिव चार गुणवालेहैं वह दो प्रकारके होनेपर भी सर्वशक्तिमत्तासे सगुणहीहैं ऐसा जानो ॥ २१ ॥ जिसने विष्णुको सम्पूर्ण सनातन वेदोंका उपदेश अनेक वर्ण और मात्राओंसहित तथा अपना ध्यान और पूजन बताया है ॥ २२ ॥ इससे शंभु सम्पूर्ण विद्याओंके अधिपति वेदोंके निर्माण करनेवाले वेदोंके पति कहेहैं ॥ २३ ॥ वह साक्षात् शिवही सबके अनुग्रह करनेवाले उत्पन्न करनेवाले पालन करनेवाले विनाश करनेवाले साक्षी निर्गुणहैं ॥ २४ ॥ और सबोंके समयका प्रमाण है पर कालकी कलना नहीं वह स्वयं महाकालीसे सेवन कियेहुये साक्षात् महाकालहैं ॥ २५ ॥ ब्राह्मण लोग रुद्र तथा कालीकोही कहतेहैं उन दोनोंने सत्य लीलासहित इच्छासे सब कुछ प्राप्त किया है ॥ २६ ॥ उनका उत्पन्न करनेवाला तथा पालन करनेवाला विनाश करनेवाला कोई नहीं है किन्तु वे स्वयं सबके कारणहैं विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता कार्यभूतहैं ॥ २७ ॥ वे शिवजी स्वयं कार्य और कारणरूपहैं उनका कारण और कोई नहीं है वे एकभी अनेकताको प्राप्त होतेहैं तथा अनेकभी एकताको प्राप्त होतेहैं ॥ २८ ॥ एक बीज बाहर होके

सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ॥ सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तस्सर्वशून्ये तदा शिवः ॥ २० ॥ तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव
मुनीश्वराः ॥ स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्त्वाद्द्विधापि सः ॥ २१ ॥ येनैव विष्णवे दत्तास्सर्वे वेदास्सनातनाः ॥ वर्णा मात्रा ह्यनेकाश्च
ध्यानं स्वस्य च पूजनम् ॥ २२ ॥ ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छम्भुरुदाहृतः ॥ २३ ॥ स
एव शंकरः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः ॥ कर्ता भर्ता च हर्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ॥ २४ ॥ अन्येषां कालमानं च कालस्य कलना
न हि ॥ महाकालस्स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः ॥ २५ ॥ तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा कालीं प्रचक्षते ॥ सर्वं ताभ्यान्ततः प्राप्त
मिच्छया सत्यलीलया ॥ २६ ॥ न तस्योत्पादकः कश्चिद्भर्ता हर्ता न तस्य हि ॥ स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूताच्युतादयः ॥ २७ ॥
स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन ॥ एकोप्यनेकतां यातोप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् ॥ २८ ॥ एकं बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च
जायते ॥ बहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ॥ २९ ॥

फिर वह बीज होता है बहुत होनेपरभी सबकुछ वस्तुरूपसे स्वयं शिवरूपी महेश्वरहैं ॥२९॥ हे ऋषीश्वरो ! यह अतिश्रेष्ठ शिवज्ञान यथार्थरूपसे कहदिया
इसको ज्ञानीही पुरुष जानता है और कोई नहीं जानसकता ॥ ३० ॥ मुनि बोले, ज्ञानको लक्षण सहित वर्णन करो कि, जिसको जानके शिवरूपको
प्राप्त होतेहैं किसप्रकार वह शिवजी सबकुछहैं और किसप्रकार सब वस्तु शिवस्वरूप है ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले, यह सुनके पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी
शिवजीके चरणकमलोंको स्मरण करके उन मुनियोंसे यह वचन बोले ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां च० को० रु० सगुणनिर्गुणभे

एतत्परं शिवज्ञानं तत्त्वतस्तदुदाहृतम् ॥ जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः ॥ ३० ॥ मुनय ऊचुः ॥ ज्ञानं सलक्षणं ब्रूहि
यज्ज्ञात्वा शिवताम्व्रजेत् ॥ कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्वं वा शिव एव च ॥ ३१ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौरा
णिकोत्तमः ॥ स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं मुनींस्तानब्रवीद्वचः ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सगुणनिर्गु
णभेदवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ श्रूयतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं यथा श्रुतम् ॥ कथयामि महागुह्यं परमु
क्तिस्वरूपकम् ॥ १ ॥ कनारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च ॥ एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम् ॥ २ ॥ इति ज्ञानं सदा
ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत् ॥ शिवः सर्वमयो ज्ञेयस्सर्वज्ञेन विपश्चिता ॥ ३ ॥ आब्रह्मतृणपर्यन्तं यत्किंचिद्दृश्यते जगत् ॥ तत्सर्वं शिव
एवास्ति स देवः शिव उच्यते ॥४॥ यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम् ॥ सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन ॥ ५ ॥

दवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! परमगोपनीय परममुक्तिस्वरूप शिवका ज्ञान जैसा मैंने सुना है वैसा कहताहूं
तुम सब श्रवण करो ॥ १ ॥ शौनक नारद स्वामी कार्तिकेय तथा व्यासजी कपिलदेवजी इन सबोंके समुदायमें उन्होंने सब शास्त्रोंसे निश्चय करके कहा
है ॥ २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् शिवमय है ऐसा ज्ञान निरन्तर जानै तथा सर्वज्ञ विद्वान्को शिवको सब जगत्मय जानना चाहिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे लेके
तृणपर्यन्त जो कुछ यह संसार दीखता है वह सम्पूर्ण शिवही है ऐसा वह शिवदेव कहाता है ॥ ४ ॥ जिस समय उनकी इच्छा होती है तभी यह संसार

रचदेतेहैं वेही सबको जान तेहैं परन्तु उनको कोईभी नहीं जानता ॥ ५ ॥ इस जगत्को रचके स्वयं उसमें प्रवेश होके भी दूर स्थित रहतेहैं वे उसमें प्रवेश
नहीं होते और विना लिप्तहुये केवल ज्ञान स्वरूपवाले हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार जलमें अग्नि आदि तेजकी परछाई भान होतीहै, यथार्थमें उसका प्रवेश नहीं
है उसी प्रकार साक्षात् शिव स्वयं भान होतेहैं लिप्त नहीं हैं ॥ ७ ॥ यथार्थमें वह शुभ परब्रह्म स्वयं सबको आक्रमण करके भासते हैं बुद्धिका भ्रमही
अज्ञान है उसमें और कुछ दूसरा नहीं है ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण दर्शनोंमें मतिका भेद दीखता है परन्तु वेदान्ती नित्य परमेश्वरको अद्वैत ही कहतेहैं ॥ ९ ॥
अपने भी अंशका यह जीवात्मा अविद्यासे मोहित हो विवश हुआ मैं और हूं ऐसा जानता है परन्तु शिवजी उस अविद्यासे रहितहैं ॥ १० ॥ साक्षात्

रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतः स्थितः ॥ न तत्र च प्रविष्टोसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान् ॥ ६ ॥ यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिं
बता ॥ वस्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् ॥७॥ वस्तुतस्तु स्वयं सर्वं क्रमो हि भासते शुभः ॥ अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च
द्वयम्पुनः ॥८॥ दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते ॥ परं वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते ॥९॥ स्वस्याप्यंशस्य जीवोंशो ह्यविद्यामोहितोऽ
वशः ॥ अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः ॥१०॥ सर्वं व्याप्य शिवः साक्षाद् व्यापकः सर्वजन्तुषु ॥ चेतनाचेतनेशोऽपि सर्वत्र
शंकरस्स्वयम् ॥११॥ उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थं विचक्षणः ॥ वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत् ॥१२॥ यथाग्निर्व्यापकश्चैव
काष्ठे काष्ठे च तिष्ठति ॥ यो वै मंथति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम् ॥१३॥ भक्त्यादिसाधनानीह यः करोति विचक्षणः ॥ स वै पश्यत्यवश्यं
हि तं शिवं नात्र संशयः ॥१४॥ शिवः शिवः शिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन ॥ भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शङ्करस्सदा ॥ १५ ॥

सर्वव्यापी शिव सबको व्याप्त करके सब जीवोंमें स्थितहैं और वे चेतन अचेतनके स्वामी साक्षात् कल्याण करनेवालेहैं ॥ ११ ॥ जो पंडित मनुष्य उन
शिवके दर्शनके अर्थ उपाय करता है वह वेदान्तमार्गको आश्रय करके उनके दर्शनके फलको पाता है ॥ १२ ॥ जिसप्रकार अग्नि प्रत्येक काष्ठमें व्याप्त
होके स्थित होरहा है जो उस काष्ठको घिसता है वह निस्सन्देह उस अग्निको देखलेता है ॥ १३ ॥ जो विद्वान् मनुष्य भक्ति आदि साधनोंको करता है
वह अवश्यही उन शिवको देखलेता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १४ ॥ शिवहीहैं शिवहीहैं सर्वत्र शिवहीहैं और कुछ नहीं शंकर भ्रान्तिसे नानास्वरूपसे

निरंतर भासतेहैं ॥ १५ ॥ जिसप्रकार समुद्र, मृत्तिका, सुवर्ण, उपाधिसे अनेकभावको प्राप्त होतेहैं उसी प्रकार शिवभी उपाधिसे अनेकहैं ॥ १६ ॥ वास्तवमें कार्य और कारणमें कुछ भेद नहीं है केवल बुद्धिकी भ्रान्ति (अज्ञान) से अन्तर दीखता है उस बुद्धिकी भ्रान्तिके नाश होनेपर वह भेद दूर होता है ॥ १७ ॥ बीजसे वृक्ष अनेकताको प्रकाश करता है अन्तमें बीजही शेष रहता है उसका वृक्ष नष्ट होजाता है ॥ १८ ॥ ज्ञानी जीव बीजहैं विकृति (प्रकृति) वृक्ष माना है फिरभी उसकी निवृत्तिमें ज्ञानीही होता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ सब जगत शिव है तथ

यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः ॥ उपाधितो हि नानात्वं लभते शंकरस्तथा ॥ १६ ॥ कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते ॥ केवलं भ्रान्तिबुद्ध्यैव तदभावे स नश्यति ॥ १७ ॥ तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत् ॥ अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च नश्यति ॥ १८ ॥ ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतिर्मता ॥ तन्निवृत्तौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा ॥ १९ ॥ सर्वं शिवः शिवं सर्वं नास्ति भेदश्च कश्चन ॥ कथं च विविधं पश्यत्येकत्वं च कथं पुनः ॥ २० ॥ यथैकं चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाविधं जनैः ॥ जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः ॥ २१ ॥ सर्वत्र व्यापकश्चैव स्पर्शत्वं न विबध्यते ॥ तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै ॥ २२ ॥ साहंकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शंकरः स्वयम् ॥ जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्लिप्तः शंकरो महान् ॥ २३ ॥ यथैकं च सुवर्णादि मिलितं रजतादिना ॥ अल्पमूल्यं प्रजायेत तथा जीवोऽप्यहंयुतः ॥ २४ ॥

शिवहीमें सब जगत् है इन दोनोंमें कुछ भेद नहीं है किस प्रकार अनेक प्रकारका दीखता है और फिर किस प्रकार एकताही दीखती है ॥ २० ॥ जिस प्रकार मनुष्योंको एक सूर्यके जल आदिमें अनेक सूर्य दीखतेहैं उसी प्रकार वह शिव एकदा भ्रान्तिसे अनेक भासतेहैं ॥ २१ ॥ जैसे आकाश सब जगह व्यापक होकेभी स्पर्शतामें नहीं बद्ध होता उसी प्रकार सर्वव्यापक होकेभी वह परमात्मा कहींभी नहीं बद्ध होता ॥ २२ ॥ जीव अहंकारसहित है शिव स्वयं अहंकारसे मुक्तहैं जीव तुच्छ तथा कर्मका भोगनेवाला है शंकर महान् और निर्लिप्तहैं ॥ २३ ॥ जिस प्रकार एक सुवर्ण चांदी आदिसे मिलके स्वल्प

मूल्यवाला होजाता है उसी प्रकार शुद्धजीव अहंकार साहित होजाता है ॥ २४ ॥ जिस प्रकार सुवर्णादि खार (तेजाव, अग्नि) आदिसे शोधित किये शुद्धहो पहलेके समान मूल्यको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संस्कार करनेसे अहंकारी जीवभी शुद्ध होजाता है ॥ २५ ॥ पहले श्रेष्ठ गुरुको पाय भक्तिभावके सहित शिव बुद्धिसे पूजन तथा ऊंचे स्वरसे उनका स्मरण करै ॥ २६ ॥ ऐसी बुद्धि करनेसे देहसे सम्पूर्ण पाप आदि मल दूर होतेहैं तो अज्ञान नष्ट होजाता है जिस समय जीव ज्ञानवान् होता है ॥ २७ ॥ तब जीव अहंकारसे छूटके निर्मलबुद्धिमान् होता है फिर शिवके प्रसादसे शिवभावको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥

यथैव हि सुर्वणादि क्षारादेः शोधितं शुभम् ॥ पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः ॥ २५ ॥ प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः ॥ शिवबुद्ध्या करोत्युच्चैः पूजनं स्मरणादिकम् ॥ २६ ॥ तद्बुध्या देहतो याति सर्वपापादिको मलः ॥ तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा ॥ २७ ॥ तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान् ॥ शंकरस्य प्रसादेन याति शंकरताम्पुनः ॥ २८ ॥ यथाऽऽदर्शस्वरूपे च स्वीयरूपं प्रदृश्यते ॥ तथा सर्वत्रगं शंभुं पश्यतीति सुनिश्चितम् ॥ २९ ॥ जीवन्मुक्तस्स एवासौ देहःशीर्णः शिवे मिलेत् ॥ प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः ॥ ३० ॥ शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं न हि ॥ द्वंद्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः ॥ ३१ ॥ आत्मयोगेन तत्त्वानामथवा च विवेकतः ॥ यथा शरीरतो यायाच्छरीरं मुक्तिमिच्छतः ॥ ३२ ॥ सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च ॥ ज्ञानमूलन्तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिश्शिवस्य च ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार दर्पणमें अपना स्वरूप दीखता है उसी प्रकार शिवको सर्वत्र व्यापक जानतेहैं यह निश्चय जानो ॥ २९ ॥ वह जीव जीवन्मुक्त हो देहसे रहित हुआ शिवमें मिल जाता है देह प्रारब्धके वशसे प्राप्त होता है परन्तु ज्ञानी शरीरसे रहित माना गया है ॥ ३० ॥ प्रियवस्तुको पाय जो हर्ष नहीं करता और अप्रियको प्राप्त हो क्रोध नहीं करता है जिसकी सुख दुःखमें समानता होती है वह ज्ञानवान् कहाता है ॥ ३१ ॥ मुक्तिको चाहनेवाला पुरुष आत्माके योगसे अथवा तत्त्वोंके विचारसे अपने शरीरसे शरीरको त्यागता है ॥ ३२ ॥ जो सदाशिवमें लीन होताहै वह व्यथाओंसे मुक्त होके ज्ञानमूल अध्यात्मको

प्राप्त होता है और फिर उन शिवकी भक्ति मिलती है ॥ ३३ ॥ भक्तिसे प्रेम और प्रेमसे श्रवण होता है श्रवणसे सत्संग प्राप्त होता है सत्संगसे विद्वान् गुरु मिलताहै ॥ ३४ ॥ गुरुसे ज्ञान प्राप्त होनेपर निश्चयही मुक्त होताहै जो नित्य शिवको भजता है वह इसी प्रकार ज्ञानवान् होजाता है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य अतिभक्तिके सहित शिवका भजन करता है वह अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होताहै इसमें कुछ संशय मत जानो ॥ ३६ ॥ उन शंकर देवसे अधिक कोई देवता मुक्तिके प्राप्त होनेके निमित्त नहीं है जिनकी शरणमें आके संसारसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैंने ऋषियोंके समागमसे निश्चयकर

भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवणन्तथा ॥ श्रवणाच्चापि सत्संगस्सत्संगाच्च गुरुर्बुधः ॥ ३४ ॥ सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शंभुमेव सदा भजेत् ॥ ३५ ॥ अनन्यया च भक्त्या वै युक्तः शंभुं भजेत्पुनः ॥ अन्ते च मुक्तिमा याति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥ अतोऽधिको न देवोऽस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शंकरात् ॥ शरणं प्राप्य यच्चैव संसाराद्विनिवर्तते ॥ ३७ ॥ इति मे विविधं वाक्यमृषीणां च समागतैः ॥ निश्चित्य कथितं विप्रा धिया धार्यं प्रयत्नतः ॥ ३८ ॥ प्रथमं विष्णवे दत्तं शंभुना लिंगसम्मुखे ॥ विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु ॥ ३९ ॥ नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः ॥ व्यासाय नारदे नोक्तं तेन मह्यं कृपालुना ॥ ४० ॥ मया चैव भवद्भ्यश्च भवद्भिर्लोकहेतवे ॥ स्थापनीयं प्रयत्नेन शिवप्राप्तिकरं च तत् ॥ ४१ ॥ इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४२ ॥

यह अनेक ज्ञानके वाक्य कहे वे सब तुमको यत्नसे बुद्धिमें धारण करने चाहिये ॥ ३८ ॥ पहले शिवने अपने ज्योतिर्लिंगके सन्मुख विष्णुको यह ज्ञान दिया, फिर विष्णुने ब्रह्माको उपदेश किया, ब्रह्माने सनकादि ऋषियोंको दिया ॥ ३९ ॥ फिर वह ज्ञान सनकादिकोंने नारदसे कहा, नारदने व्यासजीको बताया, कृपालु व्यासजीने मुझे उपदेश दिया ॥ ४० ॥ मैंने तुम सबोंसे कहा तुम सबोंको संसारके कारण यत्नपूर्वक इसको रक्षित करना चाहिये यह ज्ञान शिवकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ४१ ॥ हे मुनीश्वरो ! जैसे तुमने पूंछा सो सब मैंने तुमसे कहदिया इसे यत्नसे छिपाना चाहिये अब क्या सुननेकी

इच्छा है ? ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले, यह सुनके वे संपूर्ण ऋषि परमहर्षको प्राप्त हुये और हर्षसे गद्गदवाणी सहित नमस्कार करके बारम्बार स्तुति करने लगे ॥ ४३ ॥ ऋषि बोले, हे व्यासजीके शिष्य ! हे सूतजी ! तुम शैवोंमें श्रेष्ठ धन्यहो आपने हम सबोंको परमतत्त्वरूपी शिवज्ञानको सुनाया ॥ ४४ ॥ आपकी कृपासे हमारे चित्तकी भ्रान्ति दूर होगई आपसे मुक्तिके देनेवाले शिवके ज्ञानको पाके सन्तुष्ट होगये ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले, हे द्विजो ! यह इतिहास नास्तिकसे तथा श्रद्धारहित शठ (दुष्ट) से तथा शिवकी भक्तिसे रहित तथा सुननेकी इच्छा न करनेवालेसे कदापि नहीं कहना योग्य है ॥

व्यास उवाच ॥ एतच्छुत्वा तु ऋषय आनन्दं परमं गताः ॥ हर्षगद्गदया वाचा नत्वा ते तुष्टुवुर्मुहुः ॥ ४३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ व्यासशिष्य नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥ श्रावितं नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव ॥ सन्तुष्टाश्शिवसज्ज्ञानं प्राप्य त्वत्तो विमुक्तिदम् ॥ ४५ ॥ सूत उवाच ॥ नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ॥ अभक्ताय महेशस्य नचाशुश्रूषवे द्विजाः ॥ ४६ ॥ इतिहासपुराणानि वेदाञ्छास्त्राणि चासकृत् ॥ विचार्य्योद्धृत्य तत्सारं मह्यं व्यासेन भाषितम् ॥ ॥ ४७ ॥ एतच्छुत्वा ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात् ॥ अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥ पुनश्श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुते पुनः ॥ तस्मात्पुनः पुनश्श्राव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ॥४९॥ आवृत्तयः पंच कार्याः समुद्दिश्य फलं परम् ॥ तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यासस्य वचनं त्विदम् ॥५०॥ न दुर्लभं हि तस्यैव येनेदं श्रुतमुत्तमम् ॥ पंचकृत्वस्तदावृत्त्या लभ्यते शिवदर्शनम् ॥ ५१ ॥

॥ ४६ ॥ इतिहास तथा पुराणोंको वेद और शास्त्रोंको बारंबार विचारके उनका सारांश निकालके व्यासजीने मुझसे कहा है ॥ ४७ ॥ इसे एकबार सुनके संपूर्ण पाप भस्म होतेहैं यह, जो भक्त नहीं है उसकी भक्ति तथा भक्तकी भक्तिको बढाताहै ॥ ४८ ॥ दो बार सुननेसे श्रेष्ठ भक्ति मिलतीहै, फिर सुननेसे मुक्ति होजातीहै इस कारण भोग तथा मुक्तिके चाहनेवाले मनुष्योंको बारम्बार सुनना चाहिये ॥ ४९ ॥ अधिक फलको उद्देश्य करके इसकी पांच आवृत्ति करनी चाहिये जो ऐसा करतेहैं वे मुक्तिको पातेहैं इसमें संशय नहीं ऐसा व्यासजीने कहा है ॥ ५० ॥ जिसने यह उत्तम इतिहास सुना

उसको कुछ दुर्लभ नहीं इसको पांच आवृत्ति पाठ करनेसे शिवका दर्शन प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ पहले राजा तथा ब्राह्मण वैश्य इस बुद्धिसे पांचवार सुनके परम सिद्धिको प्राप्त हुये हैं ॥ ५२ ॥ अब भी जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होके इसको सुनैगा वह शिवसंज्ञक विज्ञानको भुक्ति और मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनके वे ऋषि परम आनंदमें प्राप्त हो आदर सहित अनेक वस्तुओंसे सूतजीको पूजनेलगे ॥ ५४ ॥ और सन्देह रहित हुये सन्तुष्ट होके स्वस्तिवाचनपूर्वक नमस्कारोंसे तथा आशीर्वादोंसे बढानेलगे ॥ ५५ ॥ वे बुद्धिमान् ऋषि तथा सूतजी आपसमें शिव

पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः ॥ इदं श्रुत्वा पंचकृत्वो धिया सिद्धिं परां गताः ॥ ६२ ॥ श्रोष्यत्यद्यापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः ॥ विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्तिं मुक्तिं लभेच्च सः ॥ ६३ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दमागताः ॥ समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात् ॥ ६४ ॥ नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः संतुष्टाश्छिन्नसंशयाः ॥ ६५ ॥ परस्परं च संतुष्टाः सूतस्ते च सुबुद्धयः ॥ शंभुं देवं परं मत्वा नमंति स्म भजंति च ॥ ६६ ॥ एतच्छिवसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥ इयं हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा ॥ चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा ॥ ६८ ॥ एतां यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानंते परगतिं लभेत् ॥ ६९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्विंशतिसाहस्र्यां वैयासिक्यां संहितायां तदन्तर्गतायां चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ समाप्तेयं शिवमहापुराणान्तर्गतकोटिरुद्रसंहिता चतुर्थी ॥ ॥ ॥ ॥

देवताको अधिक मानके उन्हें नमस्कार करने तथा भजनेलगे ॥ ५६ ॥ यह शिव[illegible] विज्ञान शिवको अति प्रसन्न करनेवाला भुक्ति मुक्तिका देनेवाला तथा दिव्यभक्तिका बढानेवालाहै ॥ ५७ ॥ यह अतिपवित्र कोटिरुद्रनामवाली शिवपुराणकी चौथी संहिता परम आनंद देनेवाली मैंने कही ॥५८॥ जो मनुष्य सावधान होके भक्तिसे इसको सुनताहै अथवा सुनाताहै वह संपूर्ण भोगोंको भोगता है अंतसमय परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ ५९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां तदन्तर्गतायां चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

॥ अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० पञ्चम्युमासंहिता प्रारभ्यते ॥

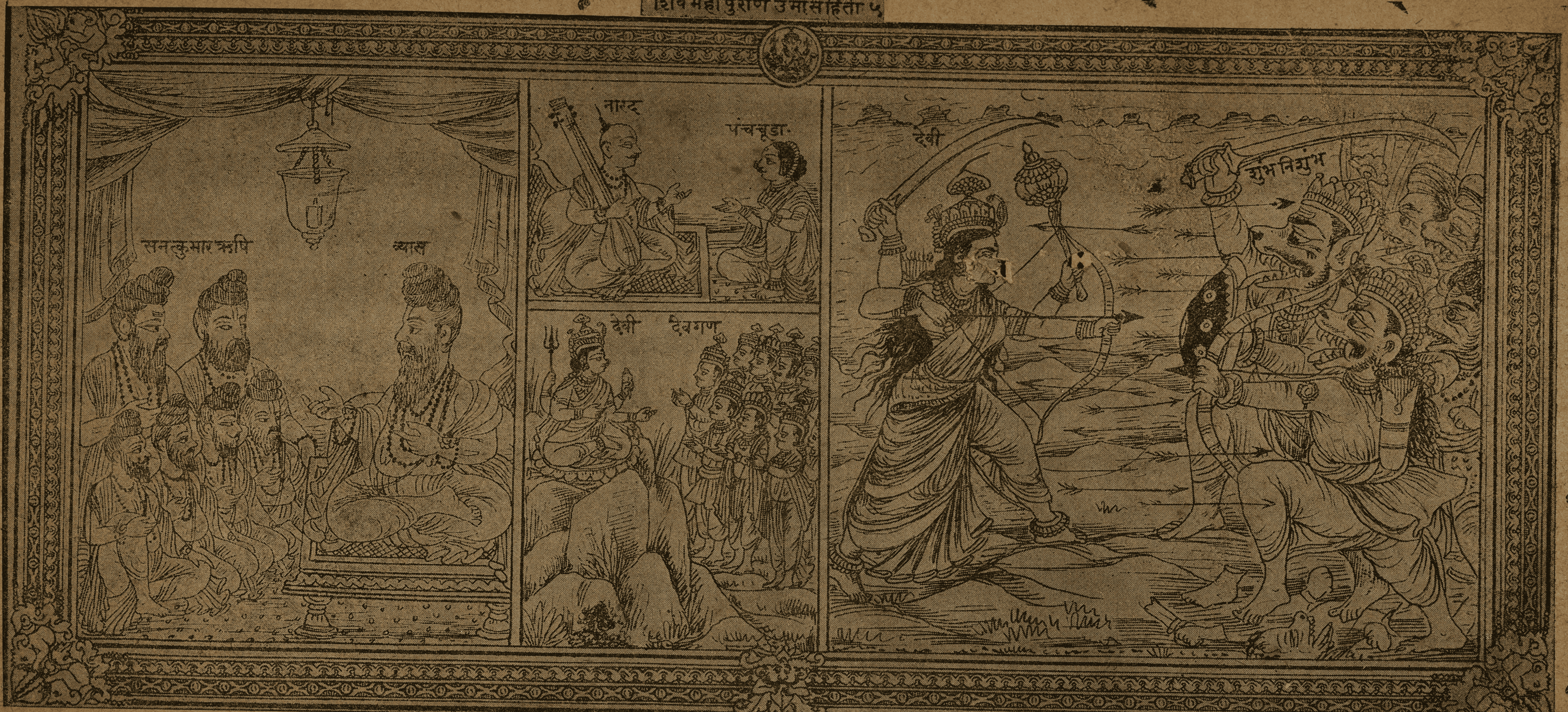
सनत्कुमार ऋषि
व्यास
नारद
पंचचूडा.
देवी
देवगण
देवी
शुंभ निशुंभ

शिवा शम्भु गणपति सुमिरि, गुरुपद रज हियलाय। उमा संहिताकी कथा, भाषा करत सुहाय ॥ १ ॥

जो परमात्मा सत्त्वगुणके आश्रयसे सातोंलोकोंको धारण तथा पालन करते हैं रजोगुणसे जो उत्पन्न करते, तमोगुणसे संहार करते तथा जो गुणमयी मायासेभी परे स्थितहैं, उन सत्‌चित् आनन्दरूप अनन्तबोधवाले निर्मल ब्रह्मा विष्णु आदि नामोंको धारण करनेवाले नित्य सत्वकी प्राप्तिसेही प्राप्त होनेवाले परिपूर्ण शिवका ध्यान करते हैं ॥ ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग सूतजी ! हे व्यासजीके शिष्य ! आपको नमस्कार है आपने चौथी कोटि रुद्रसंहिता हमको

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ अथ पञ्चम्युमासंहिता प्रारभ्यते ॥ यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान्स्रष्टा रजस्संश्रयस्संहर्त्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः ॥ सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि ॥१॥ ऋषय ऊचुः॥सूतसूत महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥ चतुर्थी कोटिरुद्राख्या श्राविता संहिता त्वया ॥ ॥ २ ॥ अथोमासंहितान्तःस्थनानाख्यानसमान्वितम् ॥ ब्रूहि शंभोश्चरित्रं वै साम्बस्य परमात्मनः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ महर्षयश्शौनकाद्याः शृणुत प्रेमतः शुभम् ॥ शांकरं चरितं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ॥ ४ ॥ इतीदृशं पुण्यप्रश्नं पृष्टवान् मुनिसत्तमः ॥ व्यासस्सनत्कुमारं वै शैवं सच्चरितं जगौ ॥ ५ ॥ ॥ सत्कुमार उवाच ॥ वासुदेवाय यत्प्रोक्तमुपमन्युमहर्षिणा ॥ तदुच्यते मया व्यास चरितं हि महेशितुः ॥ ६ ॥ पुरा पुत्रार्थमगमत्कैलासं शंकरालयम् ॥ वसुदेवसुतः कृष्णस्तपस्तप्तुं शिवस्य हि ॥ ७ ॥ अत्रोपमन्युं संदृष्ट्वा तपंतं शृंग उत्तमे ॥ प्रणम्य भक्त्या स मुनिं पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

सुनाई ॥ २ ॥ अब अनेकों आख्यानोंसे युक्त पार्वतीसहित शिवजीके चरित्रोंसे परिपूर्ण पांचवीं उमासंहिता वर्णन करो ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, हे शौनकादि महर्षियो ! तुम उस भुक्ति मुक्तिके देनेवाले शंकरके दिव्य चरित्रोंको सुनो ॥ ४ ॥ ऐसेही पहले मुनिश्रेष्ठ व्यासजीने इस पवित्र प्रश्नको सनत्कुमारजीसे किया था, तब उन्होंने उनसे शिवजीका परम चरित्र कहा था ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! महर्षि उपमन्युने जो श्रीकृष्णसे कहा था, वही मैं शंकरका चरित्र आपसे कहता हूं ॥ ६ ॥ पहले वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णजी पुत्रके निमित्त शिवजीका तप करनेको कैलासमें गये ॥ ७ ॥ वहां पर्वतके

उत्तम शृंगपर उपमन्युमहर्षिको तप करताहुआ देखकर प्रणामकर हाथजोड श्रीकृष्णजी पूंछने लगे ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे महाबुद्धिमान् शैवोंमें
श्रेष्ठ सन्मति उपमन्युजी मैं पुत्रके निमित्त इस पर्वतमें शंकरका तप करने आयाहूं ॥ ९ ॥ हे मुने ! आप आनन्दका करनेवाला शिवजीका माहात्म्य
सुनाओ, जिसको सुनकर मैं भक्तिसे शंकरका उत्तम तप आरंभ करूं ॥ १० ॥ सनत्कुमार बोले, हे व्यासजी ! ऐसा उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णजीका वचन
सुन वह प्रसन्नचित्त उपमन्युऋषि शिवको स्मरणकर कहने लगे ॥ ११ ॥ उपमन्यु बोले, हे श्रीकृष्णजी ! हे महाशैव ! तुम शिवजीकी महिमाको सुनो

श्रीकृष्ण उवाच ॥ उपमन्यो महाप्राज्ञ शैवप्रवर सन्मते ॥ पुत्रार्थमगमं तप्तुं तपोऽत्र गिरिशस्य हि ॥ ९ ॥ ब्रूहि शंकरमाहात्म्यं सदान
न्दकरं मुने ॥ यच्छ्रुत्वा भक्तितः कुर्य्यां तप ऐश्वरमुत्तमम् ॥ १० ॥ ॥ सत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य वासुदेवस्य धी
मतः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ह्युपमन्युस्स्मरञ्छिवम् ॥ ११ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ शृणु कृष्ण महाशैव महिमानं महेशितुः ॥
यमद्राक्षमहं शंभोर्भक्तिवर्द्धनमुत्तमम् ॥ १२ ॥ तपःस्थोऽहं समद्राक्षं शंकरं च तदायुधान् ॥ परिवारं समस्तं च विष्ण्वादीनमरादिकान् ॥
॥ १३ ॥ त्रिभिरंशैश्शोभमानमजस्रसुखमव्ययम् ॥ एकपादं महादंष्ट्रं सज्वालकवलैर्मुखैः ॥ १४ ॥ द्विसहस्रमयूखानां ज्योतिषाऽतिवि
राजितम् ॥ सर्वास्त्रप्रवराबाधमनेकाक्षं सहस्रपात् ॥ १५ ॥ यश्च कल्पान्तसमये विश्वं संहरति ध्रुवम् ॥ नावध्यो यस्य च भवेत्त्रैलो
क्ये सचराचरे ॥ १६ ॥ महेश्वरभुजोत्सृष्टं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ निर्ददाह द्रुतं कृत्स्नं निमेषार्द्धान्न संशयः ॥ १७ ॥

भक्तिकी बढानेवाली जिस महिमाको मैंने देखा है सो कहता हूँ ॥ १२ ॥ तप करतेहुए मैंने शिवजीको तथा उनके शस्त्रों और सम्पूर्ण परिवार और विष्णु
आदि देवताओंका दर्शन किया ॥ १३ ॥ ब्रह्मादि तीनों अंशोंसे शोभायमान नित्य सुखदायक अविनाशी एक चरणधारी बडी दंष्ट्रावाले अग्निके लपटोंसे
व्याप्त मुखोंसे शोभित हुये ॥ १४ ॥ दो सहस्र किरणोंकी कान्तिसे विराजमान सम्पूर्ण सुन्दर अस्त्रोंको धारण किये अनेक नेत्रवाले सहस्र चरणधारी ॥
॥ १५ ॥ जो प्रलयके समयमें निश्चय संसारको विनाश करते हैं जिनको चर अचर सहित तीनों लोकोंमें कोई अवध्य नहीं है ॥ १६ ॥ जिन महेश्वरने

भुजाओंसे उत्पन्नहुए चर अचर सहित इस त्रिलोक जगत्को आधे पलमें निस्सन्देह शीघ्र भस्म किया था ॥ १७ ॥ इस प्रकार शिवके समीपमें स्थित हो
तपमें मग्नहुए मैंने उन अविनाशी शंभुको तथा उनके गोपनीय दिव्य अस्त्रोंको देखा जिसके समान वा अधिक अस्त्र किसी जगह नहीं था ॥ १८ ॥
जो सब लोकोंमें त्रिशूल नामसे प्रसिद्ध है, अतिप्रचंड सम्पूर्ण शस्त्र अस्त्रोंका नाशकरनेवाला विजयास्त्र है ॥ १९ ॥ जो समस्त भूमण्डलको विदीर्ण करता
तथा जो समुद्रोंको सुखाता और सम्पूर्ण तारागणोंको गिराता है, इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥ जिस त्रिशूलास्त्रने प्रथम यौवनाश्व तथा अतिबली चक्रवर्ती
महातेजस्वी तीनों लोकोंको जीतनेवाले मांधाता राजाको मारा ॥ २१ ॥ तथा जिस अस्त्रने युद्धमें चारोंओरसे शत्रुओंके मारनेवाले राजाओंको बुलाके

तपःस्थो रुद्रपार्श्वस्थं दृष्टवानहमव्ययम् ॥ गुह्यमस्त्रं परं चास्य न तुल्यमधिकं क्वचित् ॥१८॥ यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलि
नः ॥ विजयाभिधमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनाशकम् ॥ १९ ॥ दारयेद्यन्महीं कृत्स्नां शोषयेद्यन्महोदधिम् ॥ पातयेदखिलं ज्योतिश्चक्रं यन्नात्र
संशयः ॥ २० ॥ यौवनाश्वो हतो येन मांधाता सबलः पुरा ॥ चक्रवर्तीं महातेजास्त्रैलोक्यविजयो नृपः ॥ २१ ॥ दर्पाविष्टो हैहयश्च निः
क्षिप्तो लवणासुरः ॥ शत्रुघ्नं नृपतिं युद्धे समाहूय समंततः ॥ २२ ॥ तस्मिन्दैत्ये विनष्टे तु रुद्रहस्ते गतं तु यत् ॥ तच्छूलमिति तीक्ष्णाग्रं
संत्रासजननं महत् ॥ २३ ॥ त्रिशिखां भृकुटीं कृत्वा तर्जयंतमिव स्थितम् ॥ विधूम्राऽनलसंकाशं बालसूर्यमिवोदितम् ॥ २४ ॥ सूर्य्य
हस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवांतकम् ॥ परशुं तीक्ष्णधारं च सर्पाद्यैश्च विभूषितम् ॥२५॥ कल्पान्तदहनाकारं तथा पुरुषविग्रहम् ॥ यत्तद्भा
र्गवरामस्य क्षत्रियान्तकरं रणे ॥२६॥ रामो यद्बलमाश्रित्य शिवदत्तश्च वै पुरा ॥ त्रिःसप्तकृत्वो नु क्षत्रं ददाह हर्षितो मुनिः ॥ २७ ॥

अभिमानी हैहय तथा लवणासुरको गिराया ॥ २२ ॥ उस दैत्यके मारे जानेपर वह तीक्ष्ण अग्रभाग युक्त भयका देनेवाला प्रबल त्रिशूल शिवजीके हाथमें
गया ॥ २३ ॥ तीन शिखावाली भृकुटीको धारके डाटतेहुएके समान स्थितहुए धुँयेरहित अग्निके समान तथा चढते सूर्यके उदय होनेके समान ॥ २४ ॥
सूर्यको हाथमें लिये विष्णु भगवान्की समान पाश (फांसा) हाथमें लिये यमराजके समान तीन धारवाले तथा सर्प आदिकोंसे शोभायमान परशु अस्त्रके
समान ॥ २५ ॥ तथा जो प्रलयकालमें दहनाकारवाला और जो परशुरामके संग्राममें क्षत्रियोंको मारनेवाला है ॥ २६ ॥ पहले शिवके दियेहुए जिसके

बलको आश्रय करके मुनि परशुरामने प्रसन्न हो इक्कीसवार क्षत्रियोंको भस्म किया ॥ २७ ॥ ऐसे सुदर्शन चक्रको तथा सहस्र मुखवाले सर्वव्यापक दो सहस्र
भुजाओंसहित पुरुषके आकारवाले शिवदेवको देखा ॥ २८ ॥ जो दो सहस्र नेत्रवाले प्रकाशित एक सहस्र चरणोंसे युक्त तथा करोडों सूर्योंकी समान
प्रकाशवाले तीनों लोकोंके भस्म करनेमें समर्थ ॥ २९ ॥ बडे उज्ज्वल सौ पर्वतोंके समान तीक्ष्ण वज्रको तथा बडी कान्तिवाले महाधनुषको तर्कसोंके
सहित सुन्दर पिनाकको ॥ ३० ॥ शक्ति तथा खड्ग पाश बडी दीप्तिवाले अंकुशको और बडी शोभायमान गदाको तथा और अनेक अस्त्रोंको धारे देखा

सुदर्शनं तथाचक्रं सहस्रवदनं विभुम् ॥ द्विसहस्रभुजं देवमद्राक्षं पुरुषाकृतिम् ॥ २८ ॥ द्विसहस्रेक्षणं दीप्तं सहस्रचरणाकुलम् ॥
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं त्रैलोक्यदहनक्षमम् ॥ २९ ॥ वज्रं महोज्वलं तीक्ष्णं शतपर्वमनुत्तमम् ॥ महाधनुः पिनाकं च सतूणीरं महा
द्युतिम् ॥ ३० ॥ शक्तिं खड्गं च पाशं च महादीप्तं समांकुशम् ॥ गदां च महतीं दिव्यामन्यान्यस्त्राणि दृष्टवान् ॥ ३१॥ तथा च लोक
पालानामस्त्राण्येतानि यानि च ॥ अद्राक्षं तानि सर्वाणि भगवद्रुद्रपार्श्वतः ॥ ३२ ॥ सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
विमानं दिव्यमास्थाय हंसयुक्तं मनोनुगम् ॥ ३३ ॥ वामपार्श्वे तु तस्यैव शंखचक्रगदाधरः ॥ वैनतेयं समास्थाय तथा नारायणः स्थितः
॥ ३४ ॥ स्वायंभुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा ॥ शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समं ययुः ॥ ३५ ॥ स्कंदश्शक्तिं समादाय
मयूरस्थस्सघंटकः ॥ देव्यास्समीपे संतस्थौ द्वितीय इव पावकः ॥ ३६ ॥ नंदी शूलं समादाय भवाग्रे समवस्थितः ॥ सर्वभूतगणाश्चैव
मातरो विविधाः स्थिताः ॥ ३७ ॥

॥ ३१ ॥ और लोकपालोंके जो अनेक अस्त्र थे उन सबोंको भगवान् शिवके समीप देखा ॥ ३२ ॥ शिवजीके दाहिनीओर साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजी
अपने मनके अनुकूल हंसके सहित दिव्य विमानमें चढके आये ॥ ३३ ॥ और उनके बाईंओर शंख चक्र गदाधारी साक्षात् नारायण गरुडपै चढके आये
॥ ३४ ॥ स्वायंभुव आदि मनु तथा भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवताभी इनके साथ आये ॥ ३५ ॥ और स्वामिकार्त्तिक घंटासहित मोरपै
चढे शक्तिको लेके दूसरी अग्निके समान देवी पार्वतीके समीपमें स्थित हुए ॥ ३६ ॥ नन्दी त्रिशूलको लेके शिवके आगे उपस्थित हुए तथा सम्पूर्ण भूतगण

और अनेक चण्डिका आदि मातायें स्थित हुईं ॥ ३७ ॥ उस समय उन देवताओंने चारोंओरसे महादेवको घेरके उन्हें नमस्कारकर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ ३८ ॥ इस संसारमें जो कुछ दीखता है अथवा सुना जाता है वह सब मैं भगवान् शिवके समीप देखके अति विस्मित हुआ ॥ ३९ ॥ और बडे धैर्यको धारणकर अनेक स्तुतियोंके साथ हाथजोड बडे आनन्दमें मग्न हुआ ॥ ४० ॥ अपने सन्मुख शिवजीको देखके मैंने भक्ति श्रद्धाके सहित आसुओंके कारण गद्गद (हीनस्वर) वाणीसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ४१ ॥ तब परमेश्वर शंकर अतिप्रसन्न हो प्रेमसहित मधुर वाणीसे हँसतेहुयेके

तेऽभिवाद्य महेशानं परिवार्य्य समंततः ॥ अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं तदा सुराः ॥ ३८ ॥ यत्किंचित्तु जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽथवा ॥ तत्सर्वं भगवत्पार्श्वे निरीक्ष्याहं सुविस्मितः ॥ ३९ ॥ सुमहद्धैर्य्यमालंब्य प्रांजालिर्विविधैः स्तवैः ॥ परमानन्दसंमग्नोऽभूवं कृष्णाहमद्धुरे ॥ ४० ॥ सम्मुखे शंकरं दृष्ट्वा बाष्पगद्गदया गिरा ॥ अपूजयं सुविधिवदहं श्रद्धासमन्वितः ॥ ४१ ॥ भगवानथ सुप्रीतश्शंकरः परमेश्वरः ॥ वाण्या मधुरया प्रीत्या मामाह प्रहसन्निव ॥ ४२ ॥ न विचालयितुं शक्यो मया विप्र पुनः पुनः ॥ परीक्षितोसि भद्रं ते भवान्भक्त्याऽन्वितो दृढः ॥ ४३ ॥ तस्मात्ते परितुष्टोऽस्मि वरं वरय सुव्रत ॥ दुर्लभं सर्वदेवेषु नादेयं विद्यते तव ॥ ४४ ॥ स चाहं तद्वचः श्रुत्वा शंभोः सत्प्रेमसंयुतम् ॥ देवं तं प्रांजलिर्भूत्वाऽब्रुवं भक्तानुकंपिनम् ॥ ४५ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ भगवन्यदि तुष्टोऽसि यदि भक्तिः स्थिरा मयि ॥ तेन सत्येन मे ज्ञानं त्रिकालविषयं भवेत् ॥ ४६ ॥ प्रयच्छ भक्तिं विपुलां त्वयि चाव्यभिचारिणीम् ॥ सान्वयस्यापि नित्यं मे भूरि क्षीरौदनं भवेत् ॥ ४७ ॥

समान मुझसे बोले ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम मुझसे पृथक् होनेको समर्थ नहीं हो मैंने तुम्हारी बारम्बार परीक्षा कर ली, तुम्हारा कल्याण हो तुम अटल भक्तिसे युक्त हो ॥ ४३ ॥ हे सुव्रत ! इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हूं, सम्पूर्ण देवताओंमें दुर्लभ वरको मांगो तुम्हारे देनेके अयोग्य कोई वस्तु नहींहै ॥ ४४ ॥ तब मैं उन शिवजीके प्रेमयुक्त वचनको सुन हाथ बांध भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले शिवजीसे बोला ॥ ४५ ॥ उपमन्यु बोला, हे भगवन् ! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तथा मुझमें आपकी भक्ति स्थिर है तो उस सत्यसे मेरा ज्ञान तीनों कालके विषयवाला हो ॥ ४६ ॥ और अपनेमें नाश न होनेवाली

अति गाढ भक्तिको प्रदानकरो, तथा वंशके सहित मुझे नित्यप्रति दूध भात प्राप्त होवै ॥४७॥ तथा हे विभो ! मुझे तुम्हारे आश्रमकी समीपता तथा निरन्तर तुम्हारे भक्तोंमें मेरी परस्पर प्रीति होवै ॥ ४८ ॥ मेरे ऐसा कहनेपर परमेश्वर शिवजी हँसकर मुझे कृपादृष्टिसे देखके मुझसे शीघ्र बोले ॥ ४९ ॥ शिवजी बोले, हे मुने ! हे उपमन्यो ! हे तात ! तुम जरा मरणके दोषोंसे पृथक् तथा स्वेच्छाचारी होओगे ॥ ५० ॥ मुनियोंमें पूजनीय तथा यश और धनसे पूर्ण शीलरूपगुण ऐश्वर्यवान् तथा क्षण क्षणमें प्रसन्नतायुक्त होगे ॥ ५१ ॥ हे मुने ! तुमको क्षीरसागरकी समीपता प्राप्त होगी जहां तुम जाना चाहोगे वहां

ममास्तु तव सान्निध्यं नित्यं चैवाश्रमे विभो ॥ तव भक्तेषु सख्यं स्यादन्योन्येषु सदा भवेत् ॥ ४८ ॥ एवमुक्तो मया शंभुर्विहस्य परमेश्वरः ॥ कृपादृष्ट्या निरीक्ष्याशु मां स प्राह यदूद्वह ॥ ४९ ॥ ॥ श्रीशिव उवाच ॥ उपमन्यो मुने तात वर्ज्जितस्त्वं भविष्यसि ॥ जरामरणजैर्दोषैस्सर्वकामान्वितो भव ॥ ५० ॥ मुनीनां पूजनीयश्च यशोधनसमान्वितः ॥ शीलरूपगुणैश्वर्य्यं मत्प्रसादात्पदेपदे ॥ ५१ ॥ क्षीरोदसागरस्यैव सान्निध्यं पयसां निधेः ॥ तत्र ते भविता नित्यं यत्रयत्रेच्छसे मुने ॥ ५२ ॥ अमृतात्मकं तत्क्षीरं यावत्संयाम्यते ततः ॥ इमं वैवस्वतं कल्पं पश्यसे बन्धुभिस्सह ॥ ५३ ॥ त्वद्गोत्रं चाक्षयं चास्तु मत्प्रसादात्सदैव हि ॥ सान्निध्यमाश्रमे तेऽहं करिष्यामि महामुने ॥ ५४ ॥ मद्भक्तिस्सुस्थिरा चास्तु सदा दास्यामि दर्शनम् ॥ स्मृतश्च भवता वत्स प्रियस्त्वं सर्वथा मम ॥ ५५ ॥ यथाकामसुखं तिष्ठ नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि ॥ सर्वं प्रपूर्णतां यातु चिंतितं नात्र संशयः ॥ ५६ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ एव मुक्त्वा स भगवान्सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ममेशानो वरान्दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५७ ॥

वहां नित्य प्राप्त होजाओगे ॥ ५२ ॥ जबतक वह अमृतमय क्षीरसागर रहेगा तबतक इस वैवस्वतकल्पको अपने भाई बन्धु सहित देखोगे ॥ ५३ ॥ मेरे प्रसादसे तुम्हारा गोत्र अक्षय (अविनाशी) हो हे महामुने ! मैं तुम्हारे आश्रममें निकटताको प्राप्त हूंगा ॥५४॥ हे वत्स ! सदा मेरी भक्ति अतिस्थिर होगी, नित्य मैं तुमको दर्शन दूंगा, तथा तुमसे स्मरण कियाहुआ प्रगट हूंगा और तू सब प्रकार मेरा प्रिय होगा ॥ ५५ ॥ तुम अपनी कामनाके अनुसार सुखसे रहो किसी प्रकारकी उत्कंठा नहीं करोगे तुम्हारा चाहाहुआ सब मनोरथ पूर्ण होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५६ ॥ उपमन्यु बोले, ऐसा कहके

कोटिसूर्यके समान कान्तिवाले वह भगवान् सदाशिव ईशान मुझे वरदान देके वहांही अन्तर्धान होगये ॥ ५७ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! इस प्रकार मैंने भुक्ति मुक्तिके देनेवाले परमेश्वर शंकरको परिवार सहित देखा ॥ ५८ ॥ और जो उन बुद्धिमान् देवदेव परमेश्वरने समाधि कहा सो सब मुझे प्राप्त हुआ ॥५९॥ प्रत्यक्ष उपस्थितहुए गन्धर्व अप्सरायें ऋषि तथा विद्याधरोंको सिद्धोंको देखो ॥ ६० ॥ चिकने पत्रोंसहित सुगन्धिवाले, सम्पूर्ण ऋतुओंके पुष्पों सहित तथा निरन्तर पुष्प और फलोंसे परिपूर्णहुए मनोहर वृक्षोंको देखो ॥ ६१ ॥ हे महाबाहो ! यह सम्पूर्ण भावसहित संसारमात्र उन देवदेव महात्मा शिवजीके

एवं दृष्टो मया कृष्ण परिवारसमन्वितः ॥ शंकरः परमेशानो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ५८ ॥ शंभुना परमेशेन यदुक्तं तेन धीमता ॥
तदवाप्तं च मे सर्वं देवदेवसमाधिना ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षं चैव ते जातान्गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ऋषीन्विद्याधरांश्चैव पश्य सिद्धान्व्यव
स्थितान् ॥ ६० ॥ पश्य वृक्षान्मनोरम्यान्स्निग्धपत्रान्सुगंधिनः ॥ सर्वर्त्तुकुसुमैर्युक्तान्सदापुष्पफलान्वितान् ॥ ६१ ॥ सर्वमे
तन्महाबाहो शंकरस्य महात्मनः ॥ प्रसादाद्देवदेवस्य विश्वं भावसमन्वितम् ॥ ६२ ॥ ममास्ति त्वखिलं ज्ञानं प्रसादाच्छूलपा
णिनः ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जानामि तत्त्वतः ॥ ६३ ॥ तमहं दृष्टवान्देवमपि देवाः सुरेश्वराः ॥ यं न पश्यंत्यनाराध्य को
न्यो धन्यतरो मया ॥ ६४ ॥ षड्विंशकमिति ख्यातं परं तत्त्वं सनातनम् ॥ एवं ध्यायंति विद्वांसो महत्परममक्षरम् ॥ ६५ ॥ सर्व
तत्त्वविधानज्ञः सर्वतत्त्वार्थदर्शनः ॥ स एव भगवान्देवः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ६६ ॥ यो निजाद्दक्षिणात्पार्श्वाद्ब्रह्माणं लोककारणम् ॥
वामादप्यसृजद्विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥ ६७ ॥

प्रसादसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६२ ॥ और महादेवके प्रसादसे मुझे सम्पूर्ण ज्ञान है भूत वर्तमान भविष्यत् सबको ठीक ठीक जानता हूं ॥६३॥ इन्द्रादि देवता भी विना आराधना किये जिनको नहीं देखसकते हैं उन महेश्वर देवको भी मैंने देखलिया इस कारण मुझसे अधिक कौन धन्य है ॥ ६४ ॥ छब्बीस परमसनातन तत्त्वहैं ऐसा प्रसिद्धहै इस प्रकार विद्वान् परम अक्षर ब्रह्मको ध्यान करतेहैं ॥ ६५ ॥ सम्पूर्ण तत्त्वोंके विधानको जाननेवाले तथा समस्त तत्त्वोंके अर्थको देखनेवाले वही भगवान् सदाशिव प्रधान पुरुषेश्वर हैं ॥ ६६ ॥ जिन्होंने अपने दाहिनेभागसे लोकके कारण ब्रह्माजीको तथा बांये भागसे संसारकी

रक्षाके अर्थ विष्णुको रचाहै ॥ ६७ ॥ प्रलयके प्राप्त होनेपर अपने हृदयसे शिवको उत्पन्न किया तत्पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण स्थावर जंगम सहित जगत्को
विनाश किया ॥ ६८ ॥ वही महादेव प्रलयकालके समय प्रलयाग्निके समान सम्पूर्ण प्राणियोंको भक्षण करतेहुए स्थितहैं ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ, सर्वभूतात्मा,
सर्वभूतोद्भव, सर्वव्यापक, सब देवताओंसे देखने योग्य वह सदाशिव हैं ॥ ७० ॥ इस कारण तुम पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त शिवका आराधन करो वह
भक्तवत्सल शिव तुमसे शीघ्र प्रसन्न होंगे ॥७१॥ इति श्रीशिवमहापु०भा०टीका० पंचम्यामुमासंहितायां स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ सनत्कुमारजी

कल्पान्ते चैव संप्राप्तेऽसृजद्रुद्रं हृदः प्रभुः ॥ ततस्समहरत्कृत्स्नं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ६८ ॥ युगांते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥
कालो भूत्वा महादेवो ग्रसमानस्स तिष्ठति ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञस्सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ॥ आस्ते सर्वगतो देवो दृश्यस्सर्वैश्च दैवतैः
॥ ७० ॥ अतस्त्वं पुत्रालाभाय समाराधय शंकरम् ॥ शीघ्रं प्रसन्नो भविता शिवस्ते भक्तवत्सलः ॥ ७१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
पंचम्यामुमासंहितायां कृष्णोपमन्युसंवादे स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यमु
पमन्योर्महात्मनः ॥ जातभक्तिर्महादेवे कृष्णः प्रोवाच तं मुनिम् ॥ १ ॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ उपमन्यो मुने तात कृपां कुरु ममो
परि ॥ येये शिवं समाराध्य कामानापुश्च तान्वद ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्योपमन्युस्स मुनिश्शैववरो महान् ॥ कृष्ण
वाक्यं सुप्रशस्य प्रत्युवाच कृपानिधिः ॥ ३ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ यैर्यैर्भवाराधनतः प्राप्तो हृत्काम एव हि ॥ तांस्तान्भक्तान्प्रवक्ष्यामि
शृणु त्वं वै यदूद्वह ॥ ४ ॥ शर्वात्सर्वामरैश्वर्य्यं हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ वर्षाणां दशलक्षाणि सोऽलभच्चन्द्रशेखरात् ॥ ५ ॥

बोले, महात्मा उपमन्यु मुनिका ऐसा वचन सुनके महादेवमें भक्ति उत्पन्न करके वह श्रीकृष्णजी उन उपमन्यु मुनिसे बोले ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले,
हे मुने ! उपमन्यो ! हे तात ! मेरे ऊपर कृपाकरो जिन जिन भक्तोंने शिवकी आराधना करके अपनी कामना पाई हैं उनको बताओ ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी
बोले, ऐसा सुन उन कृपानिधि शैवोंमें श्रेष्ठ महात्मा उपमन्यु मुनिने श्रीकृष्णजीकी प्रशंसा करके यह कहा ॥ ३ ॥ उपमन्यु बोले, हे श्रीकृष्णजी ! जिन
जिन भक्तोंने शिवकी आराधनासे अपने हृदयकी कामना पूर्ण की उन उन भक्तोंके नाम बताताहूं तुम सुनो ॥ ४ ॥ पहले हिरण्यकशिपुने चन्द्रशेखर

महादेवकी आराधनासे दशलक्ष वर्षोंमें सब देवताओंके ऐश्वर्यको प्राप्त किया ॥ ५ ॥ उसका पुत्र नन्दननामसे विख्यात हुआ उसने शिवके पूजनसे दश
हजार वर्षमें इन्द्रको नीचे किया ॥ ६ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! बडे युद्ध में विष्णुका घोर सुदर्शनचक्र तथा इन्द्रका वज्र भी उसके शरीरमें लगके टूटगया ॥ ७ ॥
संग्राममें अतिबलवान् उस बुद्धिमान् दैत्यके अंगमें चक्र वज्रमुख आदि शस्त्र पीडा नहीं देतेथे ॥ ८ ॥ उस बली दैत्यसे पंडित ब्राह्मण पीडितहुए तथा
देवताओंके वर पाये; हुए दैत्योंने सब देवताओंको मारा ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी शिवजीने शत सहस्र वर्षोंमें प्रसन्न हो बिजलीकी समान कान्तिवाले

तस्याऽथ पुत्रप्रवरो नन्दनो नाम विश्रुतः ॥ सः च शर्ववरादिन्द्रं वर्षायुतमधोनयत् ॥ ६ ॥ विष्णुचक्रं च तद्घोरं वज्रमाखण्डलस्य च ॥
शीर्णं पुराऽभवत्कृष्ण तदंगेषु महाहवे ॥ ७ ॥ न शस्त्राणि वहंत्यंगे धर्मतस्तस्य धीमतः ॥ ग्रहस्यातिबलस्याजौ चक्रवज्रमुखान्यपि
॥ ८ ॥ अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा ॥ देवदत्तवरा जघ्नुरसुरेन्द्रास्सुरान्भृशम् ॥ ९ ॥ तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रैलोक्येश्वरता
मदात् ॥ शतवर्षसहस्राणि सर्वलोकेश्वरो भवः ॥ १० ॥ तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ शिवः ॥ मम चानुचरो नित्यं भविष्यस्यब्रवी
दिति ॥ ११ ॥ कुशद्वीपे शुभं राज्यमददाद्भगवान्भवः ॥ स तस्मै शंकरः प्रीत्या वासुदेव प्रहृष्टधीः ॥ १२ ॥ धात्रा सृष्टश्शतमखो
दैत्यो वर्षशतं पुरा ॥ तपः कृत्वा सहस्रं तु पुत्राणामलभद्भवात् ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्य इति ख्यातो गीतो वेदेषु वै मुनिः ॥ आराध्य स
महादेवं प्राप्तवाञ्ज्ञानमुत्तमम् ॥१४॥ वेदव्यासस्तु यो नाम्ना प्राप्तवानतुलं यशः ॥ सोऽपि शंकरमाराध्य त्रिकालज्ञानमाप्तवान् ॥ १५ ॥

उस दैत्यको तीनों लोकोंका आधिपत्य दिया ॥ १० ॥ तथा शिवने दशसहस्र पुत्रोंको प्रदान किया और मेरा यह नित्य अनुचर रहैगा ऐसा कहा ॥ ११ ॥
और भगवान् शिवने उस कुशद्वीपमें शुभ राज्य दिया हे कृष्ण ! वह शंकर प्रीतिके सहित उसपर प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ फिर ब्रह्माजीने सौवर्षके पीछे उस
दैत्यको शतमखनामसे उत्पन्न किया तब उसने तप करके शिवजीसे सौ पुत्र पाये ॥ १३ ॥ वेदोंमें प्रसिद्धहुए याज्ञवल्क्यनामक मुनिने भी महादेवकी आराधना
करके उत्तम ज्ञान पाया ॥ १४ ॥ और जो वेदव्यासनामसे विख्यात हैं उन्होंने बहुत यश पाया और उन्होंने शिवकी पूजा करके तीनों कालका ज्ञान

पाया ॥ १५ ॥ इन्द्रसे तिरस्कार कियेहुए वालखिल्य ऋषियोंने शिवके प्रभावसे सबोंसे दुर्जय सोमरसके हरनेवाले गरुडको पाया ॥ १६ ॥ शिवके पूर्व क्रोधसे सम्पूर्ण जल नष्ट होगये तब देवताओंने समकपालसे यज्ञ करके जल प्रवृत्त किया ॥ १७ ॥ और अत्रिकी भार्या अनसूयाने तीनसौ वर्षतक निराहार मूसलोंपै सोके उन शिवकी कृपासे अपने पुत्रोंको पाया ॥ १८ ॥ दत्तात्रेय मुनि चन्द्रमा तथा दुर्वासा ऋषिको प्राप्त किया, तथा चित्रकूटपर्वतपरसे गंगाको प्रगट किया ॥ १९ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! विकर्णनेभी भक्तोंके सुख देनेवाले महादेवको प्रसन्न करके बड़ी सिद्धि पाई ॥ २० ॥ तथा अटलभक्तिवाले राजा

इन्द्रेण वालखिल्यास्ते परिभूतास्तु शंकरात् ॥ लेभिरे सोमहर्तारं गरुडं सर्वदुर्जयम् ॥ १६ ॥ आपः प्रनष्टाः सर्वाश्च पूर्वरोषात्कपर्दि
नः ॥ शर्वं समकपालेन देवैरिष्ट्वा प्रवर्तितम् ॥ १७ ॥ अत्रेर्भार्य्या चानसूया त्रीणि वर्षशतानि च ॥ मुशलेषु निराहारा सुप्त्वा शर्वात्त
तस्सुतान् ॥ १८ ॥ दत्तात्रेयं मुनिं लेभे चन्द्रं दुर्वाससं तथा ॥ गंगां प्रवर्तयामास चित्रकूटे पतिव्रता ॥ १९ ॥ विकर्णश्च महादेवं
तथाभक्तसुखावहम् ॥ प्रसाद्य महतीं सिद्धिमाप्तवान्मधुसूदन ॥ २० ॥ चित्रसेनो नृपश्शंभुं प्रसाद्य दृढभक्तिमान् ॥ समस्तनृपभीति
भ्योऽभयं प्रापातुलं च कम् ॥ २१ ॥ श्रीकरो गोपिकासूनुर्नृपपूजाविलोकनात् ॥ जातभक्तिर्महादेवे परमां सिद्धिमाप्तवान् ॥ २२ ॥
चित्राङ्गदो नृपसुतस्सीमन्तिन्याः पतिर्हरे ॥ शिवानुग्रहतो मग्नो यमुनायां मृतो न हि ॥ २३ ॥ स च तक्षालयं गत्वा तन्मैत्रीं प्राप्य
सुव्रतः ॥ आयातः स्वगृहं प्रीतो नानाधनसमन्वितः ॥ २४ ॥ सीमंतिनी प्रिया तस्य सोमव्रतपरायणा ॥ शिवानुग्रहतः कृष्ण लेभे
सौभाग्यमुत्तमम् ॥ २५ ॥ तत्प्रभावाद्व्रते तस्मिन्नेको द्विजसुतः पुरा ॥ कश्चित्स्त्रीत्वं गतो लोभात्कृतदाराकृतिश्छलात् ॥ २६ ॥

चित्रसेनने शंभुको प्रसन्न करके सम्पूर्ण राजाओंके भयसे बचके बडे अभयको पाया ॥ २१ ॥ श्रीकरनामक गोपिकाके पुत्रने राजाकी पूजाके देखनेमात्रसे महादेवमें भक्ति उत्पन्नकर परम सिद्धिको प्राप्त किया ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! सीमंतिनी रानीका पति राजा चित्रांगद यमुनाजीमें डूबनेपरभी शिवके अनुग्रहसे नहीं मरा ॥ २३ ॥ और वह श्रेष्ठ व्रतवाले राजपुत्र सर्पोंके स्थानको जाके उनके साथ मित्रता करके प्रसन्नहो अनेकधन सम्पत्तिसे भरपूर हो अपने घरको आये ॥ २४ ॥ ` कृष्ण ! सोमव्रतमें तत्परहुई उसकी भार्याने शिवकी दयासे बडा उत्तम सौभाग्य पाया ॥ २५ ॥ कभी उस सोमव्रतमें एक ब्राह्मणके

पुत्रने लोभके कारण कपटसे स्त्रीका आकार बनाया और उसके प्रभावसे वह स्त्रीपनको प्राप्त होगया ॥ २६ ॥ पहले कोई दुष्टा व्यभिचारिणी चंचुकाने गोकर्णमें ब्राह्मणसे धर्मकथाको सुनके शिवकी भक्तिसे बड़ी सुन्दर गति पाई ॥ २७ ॥ बिन्दुमें प्राप्तहुआ पापी चंचुकापति भी अपनी स्त्रीकी कृपासे शिवपुराणको सुनके शिवलोकको पहुंचा ॥ २८ ॥ पिंगलानाम वेश्या और मदरनामक नीच ब्राह्मण दोनों शिवको पूजके श्रेष्ठ गतिको प्राप्तहुए ॥ २९ ॥ महानन्दा नामवाली कोई वेश्या शिवके चरणोंमें तत्परहुई दृढभक्तिसे शिवको प्रसन्न करके शुभ गतिको प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ कैकेयी नामवाली ब्राह्मणकी

चंचुका पुंश्चली दुष्टा गोकर्णे द्विजतः पुरा ॥ श्रुत्वा धर्मकथां शंभोर्भक्त्या प्राप परां गतिम् ॥ २७ ॥ स्वस्त्र्यनुग्रहतः पापी बिंदुगो
चंचुकापतिः ॥ श्रुत्वा शिवपुराणं स सद्गतिं प्राप शांकरीम् ॥ २८ ॥ पिंगला गणिका ख्याता मदराह्वो द्विजाधमः ॥ शैवमृषभमभ्यर्च्य
लेभाते सद्गतिं च तौ ॥ २९ ॥ महानन्दाभिधा काचिद्वेश्या शिवपदादृता ॥ दृढात्पणात्सुप्रसाद्य शिवं लेभे च सद्गतिम् ॥ ३० ॥
कैकेयी द्विजबाला च सादराह्वा शिवव्रता ॥ परमं हि सुखं प्राप शिवेशव्रतधारणात् ॥ ३१ ॥ विमर्षणश्च नृपतिश्शिवभक्तिं विधाय
वै ॥ गतिं लेभे परां कृष्ण शिवानुग्रहतः पुरा ॥ ३२ ॥ दुर्जनश्च नृपः पापी बहुस्त्रीलंपटः खलः ॥ शिवभक्त्या शिवं प्राप निर्लिप्तः सर्व
कर्म्मसु ॥ ३३ ॥ सस्त्रीकश्शबरो नाम्ना शंकरश्च शिवव्रती ॥ चिताभस्मरतो भक्त्या लेभे तद्गतिमुत्तमाम् ॥ ३४ ॥ सौमिनी नाम
चाण्डाली संपूज्याज्ञानतो हि सा ॥ लेभे शैवीं गतिं कृष्ण शंकरानुग्रहात्परात् ॥ ३५ ॥ महाकालभिधो व्याधो किरातः परहिंसकः ॥
समभ्यर्च्य शिवं भक्त्या लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ॥ ३६ ॥

पुत्री तथा सादरा नामकी शिवव्रत करनेवाली विप्रकन्या महादेवके व्रत धारण करनेसे बडे सुखको प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ विमर्षणनामक राजानेभी पहले शिवभक्ति करके शिवकी कृपासे परम गति पाई ॥ ३२ ॥ दुर्जन पापी बहुत स्त्रियोंमें तत्पर दुष्ट राजा शिवकी आराधनासे सम्पूर्ण कर्मोंमें लिप्त न होके शिवको प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ शिवव्रत करनेवाला शंकर तथा शबरनामक पुरुष अपनी स्त्रीके सहित भक्तिसे चिताभस्मका लेपन करके उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण ! सौमिनीनामकी चांडालीने अज्ञानसे शिवको पूजके महादेवकी अतिकृपासे शिवसम्बन्धी गति पाई ॥ ३५ ॥ महाकाल

नामक दूसरोंको मारनेवाला व्याध (भील) भक्तिसे शिवको पूज श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ पहले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने शिवके अनुग्रहसे संसारमें मुक्ति देनेवाली शिवकी भक्ति तथा अपने मतको फैलाया ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रभी लोकोंके कल्याण करनेवाले शिवको पूजके मानों दूसरे ब्रह्माके समान क्षत्रिय ब्राह्मण हुए ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! शैवोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीभी भक्तिसे शिवको पूजके सब लोकोंके पितामह तथा सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता हुए ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! मार्कंडेय मुनिभी शिवके अनुग्रहसे चिरंजीवी महाप्रभु तथा शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ शोभायमान हुए ॥ ४० ॥ हे श्रीकृष्णजी ! पहले सब देवताओंके

दुर्वासा मुनिशार्दूलश्शिवानुग्रहतः पुरा ॥ तस्तार स्वमतं लोके शिवभक्तिं विमुक्तिदाम् ॥ ३७ ॥ कौशिकश्च समाराध्य शंकरं लोकशंकरम् ॥ ब्राह्मणोऽभूत्क्षात्रियश्च द्वितीय इव पद्मभूः ॥ ३८ ॥ शिवमभ्यर्च्य सद्भक्त्या विरंचिश्शैवसत्तमः ॥ अभूत्सर्गकरः कृष्ण सर्वलोकपितामहः ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयो मुनिवरश्चिरंजीवी महाप्रभुः ॥ शिवभक्तवरः श्रीमाञ्शिवानुग्रहतो हरे ॥ ४० ॥ देवेन्द्रो हि महाशैवस्त्रैलोक्यं बुभुजे पुरा ॥ शिवानुग्रहतः कृष्ण सर्वदेवाधिपः प्रभुः ॥ ४१ ॥ बलिपुत्रो महाशैवश्शिवानुग्रहतो वशी ॥ बाणो बभूव ब्रह्माण्डनायकस्सकलेश्वरः ॥४२॥ हरिश्शक्तिश्च सद्भक्त्या दधीचश्च महेश्वरः ॥ शिवानुग्रहतोऽभूवंस्तथा रामो हि शांकरः ॥ ४३ ॥ कणादो भार्गवश्चैव गुरुर्गौतम एव च ॥ शिवभक्त्या बभूवुस्ते महाप्रभव ईश्वराः ॥४४॥ शाकल्यश्शंसितात्मा च नववर्षशतान्यपि ॥ भवमाराधयामास मनोयज्ञेन माधव ॥ ४५ ॥ तुतोष भगवानाह ग्रंथकर्ता भविष्यसि ॥ वत्साक्षय्या च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये प्रभविष्यति ॥ ४६ ॥

स्वामी इन्द्रने शिवजीके अनुग्रहसे तीनों लोकोंको भोगा ॥ ४१ ॥ महाशैव बलिका पुत्र शिवके अनुग्रहसे जितेन्द्रिय हुआ तथा सबोंका स्वामी बाणासुर ब्रह्माण्डका नायक हुआ ॥ ४२ ॥ विष्णु, शक्ति, दधीचि तथा रामचन्द्र (परशुराम) भी शिवके अनुग्रहसे महाशैव हुये ॥ ४३ ॥ काणाद, भार्गव, गुरु, गौतम यह सब राजा शिवकी भक्तिसे बडे तथा सबके स्वामी हुए ॥४४॥ हे श्रीकृष्णजी ! प्रशंसनीय आत्मावाले शाकल्य ऋषिने नौसौवर्ष मनोयज्ञसे शिवका आराधन कर ॥ ४५ ॥ उन्हें सन्तुष्ट किया तो भगवान् शिव बोले हे वत्स ! तू ग्रन्थोंका कर्ता होगा तथा तीनों लोकमें तेरी अटलकीर्ति होगी ॥४६॥

हे ऋषिश्रेष्ठ ! और तेरा कुल ऋषियोंसे शोभायमान तथा अक्षय होगा और तुम सूत्रकार होओगे ॥ ४७ ॥ हे यदुनन्दन ! इस प्रकार उस मुनिश्रेष्ठने शिवसे वरदान पाया और तीनों लोकोंमें विख्यात और पूजनीय हुआ ॥ ४८ ॥ सतयुगमें सावर्णिनामसे प्रसिद्ध ऋषिने इसी स्थानमें साठसौवर्ष तप किया ॥ ४९ ॥ तब भगवान् शिव उनसे बोले हे अनघ ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हुआ तुम ग्रन्थकर्ता और लोकोंमें विख्यात अजर अमर होगे ॥ ५० ॥ इस प्रकार पहले पुण्यके बल पूजितहुए महादेवजी मनोवांछित शुभ कामनाओंको पूर्ण करतेहैं ॥ ५१ ॥ भगवान् शिवके जो गुणहैं उनको एक मुखसे

अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम् ॥ भविष्यसि ऋषिश्रेष्ठ सूत्रकर्ता ततस्ततः ॥ ४७ ॥ इत्येवं शंकरात्प्राप वरं मुनिवरस्स वै ॥ त्रैलोक्ये विततश्चासीत्पूज्यश्च यदुनन्दन ॥ ४८ ॥ सावर्णिरिति विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे ॥ इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतानि च ॥ ४९ ॥ तमाह भगवान्रुद्रस्साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ ग्रंथकृल्लोकविख्यातो भवितास्यजरामरः ॥ ५० ॥ एवंविधो महादेवः पुण्यपूर्वतरैस्ततः ॥ समार्चितश्शुभान्कामान्प्रददाति यथेप्सितान् ॥ ५१ ॥ एकेनैव मुखेनाहं वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ ये संति तान्न शक्नोमि ह्यपि वर्षशतैरपि ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां सनत्कुमारव्याससंवादे उपमन्यूपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सोब्रवीत्तं महामुनिम् ॥ विस्मयं परमं गत्वोपमन्युं शांतमानसम् ॥ १ ॥ वासुदेव उवाच ॥ धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वां स्तोतुमलं कृती ॥ यस्य देवादिदेवस्ते सान्निध्यं कुरुतेश्रमे ॥ २ ॥ दर्शनं मुनिशार्दूल दद्यात्स भगवाञ्छिवः ॥ अपि तावन्ममाप्येवं प्रसादं वा करोत्वसौ ॥ ३ ॥

वर्णन करनेको मैं सौ वर्षमें भी समर्थ नहीं होसकता ॥५२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० उपमन्यूपदेशोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उन उपमन्युऋषिका वचन सुन श्रीकृष्णजी अतिविस्मयको प्राप्तहो शान्तचित्त महामुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो कौन तुम्हारी स्तुति करनेको समर्थ है, जिन तुम्हारे आश्रमके समीप आदिदेव महादेव निवास करतेहैं ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

वे भगवान् शिव मुझेभीदर्शन देवैं तथा मेरे ऊपरभी प्रसन्न हों ॥ ३ ॥ उपमन्यु बोले, हे पुरुषोत्तम! थोडेही समयमें उनकी कृपासे तुम महादेवका दर्शन करलोगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ हे हरे! और सोलह महीनेमें तुम पार्वतीसमेत शिवजीसे श्रेष्ठ वरदान पाओगे, वह शिव तुम्हैं वर क्यों न देंगे ॥ ५ ॥ हे अच्युत! तुम सब देवताओंसे पूजनेयोग्य तथा गुणोंमें प्रशंसनीय हो, मैं श्रद्धायुक्त तुमसे जपनेयोग्य मन्त्र कहताहूं ॥ ६ ॥ उस जपके प्रभावसे सत्यही तुम शिवका दर्शन करलोगे तथा शिवजीसे अपने बलके समान पुत्रको पाओगे ॥ ७ ॥ हे हरे! "ॐ नमः शिवाय" यह जपनेयोग्य सम्पूर्ण कामनाओंका

उपमन्युरुवाच ॥ आचिरेणैव कालेन महादेवं न संशयः ॥ तस्यैव कृपया त्वं वै द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥ षोडशे मासि सुवरान् प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात् ॥ सपत्नीकात्कथं नो दास्यते देवो वरान्हरे ॥ ५ ॥ पूज्योसि दैवतैस्सर्वैः श्लाघनीयस्सदा गुणैः ॥ जाप्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि श्रद्दधानाय चाच्युत ॥ ६ ॥ तेन जपप्रभावेण सत्यं द्रक्ष्यसि शंकरम् ॥ आत्मतुल्यबलं पुत्रं लभिष्यसि महेश्वरात् ॥ ७ ॥ जपो नमश्शिवायेति मंत्रराजमिमं हरे ॥ सर्वकामप्रदं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रिताः कथाः ॥ दिनान्यष्टौ प्रयातानि मुहूर्तमिव तापस ॥ ९ ॥ नवमे तु दिने प्राप्ते मुनिना स च दीक्षितः ॥ मंत्रमध्यापितं शार्वमाथर्वशिरसं महत् ॥ १० ॥ जटी मुण्डी च सद्योऽसौ बभूव सुसमाहितः ॥ पादांगुष्ठोद्धृततनुस्तेपे चोर्द्ध्वभुजस्तथा ॥ ११ ॥ संप्राप्ते षोडशे मासि संतुष्टः परमेश्वरः ॥ पार्वत्या सहितश्शंभुर्ददौ कृष्णाय दर्शनम् ॥ १२ ॥ पार्वत्या सहितं देवं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ ब्रह्माद्यैस्स्तूयमानं तु पूजितं सिद्धकोटिभिः ॥ १३ ॥

देनेवाला भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला दिव्य मंत्रोंमें श्रेष्ठ मंत्र है ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे तापस! इस प्रकार महादेव सम्बन्धी कथाको कहते कहते उनको आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीतगये ॥ ९ ॥ नवेंदिन उन मुनिने उन्हैं दीक्षा दी तथा अथर्वशीर्षस्थ शिवका महामंत्र बताया ॥ १० ॥ और वे जटाधारी मुंडी सावधान चित्त हो ऊपरको भुजा उठाय पैरके अंगूठेपर सब शरीरका भार रखके तप करने लगे ॥ ११ ॥ सोलहवें महीनेके प्राप्त होनेपर पार्वतीकें समेत साक्षात् महादेवने श्रीकृष्णको दर्शन दिये ॥ १२ ॥ तीन नेत्रवाले चन्द्रशेखर ब्रह्मादि देवताओंसे स्तूयमान कोटिसिद्धोंसे

पूजित पार्वती सहित शिवदेवको ॥ १३ ॥ सुन्दर माला तथा वस्त्रधारी भक्तिसे नम्रहुए देव असुरोंसे विशेषतापूर्वक नमस्कार किये गये तथा अनेक आभूषणोंसे शोभायमान ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यवाले कान्त महेश अज अविनाशी अनेकगणोंसे व्याप्त सन्तुष्ट दोनों पुत्रोंके सहित प्रभु ॥ १५ ॥ ऐसे शंकरको देखके विस्मयसे विकसित नेत्रवाले श्रीकृष्णजीने हाथ जोड प्रसन्न हो ॥ १६ ॥ कंधे झुकाय अनेकप्रकारकी स्तुतियोंसे वाङ्मय सहस्रनामसे देवताओंके स्वामी शिवको सन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् गंधर्वोंसहित देवता तथा विद्याधर महोरग इन्होंने अपने मनके अनुकूल श्रेष्ठ स्तोत्रोंको तथा

दिव्यमाल्याम्बरधरं भक्तिनम्रैस्सुरासुरैः ॥ प्रणतं च विशेषेण नानाभूषणभूषितम् ॥ १४ ॥ सर्वाश्चर्यमयं कांतं महेशमजमव्ययम् ॥ नानागणान्वितं तुष्टं पुत्राभ्यां संयुतं प्रभुम् ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णः प्रांजलिर्दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ईदृशं शंकरं प्रीतः प्रणनाम महोत्सवः ॥ १६ ॥ नानाविधैः स्तुतिपदैर्वाङ्मयेनार्चयत्तदा ॥ सहस्रनाम्ना देवेशं तुष्टाव नतकंधरः ॥ १७ ॥ ततो देवास्सगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुमुचुः पुष्पवृष्टिं च साधुवादान्मनोनुगान् ॥ १८ ॥ पार्वत्याश्च मुखं दृष्ट्वा भगवान्भक्तवत्सलः ॥ उवाच केशवं तुष्टो रुद्रश्चाथ बिडौजसा ॥ १९ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ कृष्णं जानामि भक्तं त्वां मयि नित्यं दृढव्रतम् ॥ वृणीष्व त्वं वरान्मत्तः पुण्यां स्त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥ २० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णः प्रांजलिरादरात् ॥ प्राह सर्वेश्वरं शंभुं सुप्रणम्य पुनः पुनः ॥ २१ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ देवदेव महादेव याचेऽहं ह्युत्तमान्वरान् ॥ त्वत्तोऽष्टप्रमितान्नाथ त्वयोद्दिष्टान्महेश्वर ॥ २२ ॥ तव धर्म्मे मतिर्नित्यं यशश्चाप्रचलं महत् ॥ त्वत्सामीप्यं स्थिरा भक्तिस्त्वयि नित्यं ममास्त्विति ॥ २३ ॥

पुष्पवृष्टिको किया ॥ १८ ॥ पार्वतीके मुखको देखके भक्तवत्सल भगवान् रुद्र प्रसन्न हो श्रीकृष्णजीसे बोले ॥ १९ ॥ महादेव बोले, हे कृष्ण ! मैं तुमको अपना भक्त जानता हूं तुम मेरे दृढव्रतके धारण करनेवाले हो तीनों लोकोंमें दुर्लभ पवित्र वरोंको मुझसे ग्रहण करो ॥ २० ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उनका वचन सुनके श्रीकृष्णजी आदरपूर्वक अञ्जलिबांध सबके स्वामी शिवको बारम्बार प्रणामकर यह बोले ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! हे नाथ ! हे महेश्वर ! मैं आपसे प्रतिज्ञा कियेहुए आठ उत्तम वरोंको मांगता हूं ॥ २२ ॥ नित्य तुम्हारे धर्ममें मति तथा अटल यश आपकी

समीपता आपमें सदा स्थिर भक्ति हो ॥ २३ ॥ दश पुत्र हों तथा सग्रामम बलसे अभिमानी हमारे शत्रुओंका नाश हो ॥ २४ ॥ ह प्रभो ! शत्रुओंसे मेरा कहीं भी तिरस्कार न हो और मैं सब योगियोंमें अति प्रिय होऊँ ॥ २५ ॥ हे देवोंके स्वामी ! यह आठ वर मुझे प्रदान करो आपको नमस्कारहै तुम सबके ईश्वर तथा विशेषकर मेरे प्रभु हो ॥ २६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, श्रीकृष्णजीका ऐसा वचन सुनके भगवान् शिव उनसे यह बोले कि सब वर पूर्ण होंगे ॥ २७ ॥ तुम्हारा पुत्र साम्बनामवाला बली बडा पराक्रमी घोरप्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित सम्वर्तकनामसूर्यही मुनियोंसे शाप दियाहुआ होगा

स्त्रीणां मम दशाद्यानां पुत्राश्शंभो भवंतु वै ॥ वध्याश्च रिपवस्सर्वे संग्रामे बलदर्पिताः ॥ २४ ॥ अपमानो भवेन्नैव क्वचिन्मे शत्रुतः प्रभो ॥ योगिनामपि सर्वेषां भवेयमतिवल्लभः ॥ २५ ॥ इत्यष्टौ सुवरान्देहि देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ सर्वेश्वरस्त्वमेवासि मत्प्रभुश्च विशेषतः ॥ २६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तमाह भगवान्भवः ॥ सर्वं भविष्यतीत्येवं पुनस्स प्राह शूलधृक् ॥ २७ ॥ साम्बो नाम महावीर्य्यः पुत्रस्ते भविता बली ॥ घोरसंवर्तकादित्यश्शप्तो मुनिभिरेव च ॥ २८ ॥ मानुषो भवितासीति स ते पुत्रो भविष्यति ॥ यद्यच्च प्रार्थितं किंचित्तत्सर्वं च लभस्व वै ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं लब्ध्वा वरान्सर्वाञ्छ्रीकृष्णः परमेश्वरात् ॥ नानाविधाभिर्बह्वीभिस्स्तुतिभिस्समतोषयत् ॥ ३० ॥ तमाहाथ शिवा तुष्टा पार्वती भक्तवत्सला ॥ वासुदेवं महात्मानं शंभुभक्तं तपस्विनम् ॥ ३१ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ वासुदेव महाबुद्धे कृष्ण तुष्टास्मि तेऽनघ ॥ गृहाण मत्तश्च वरान्मनोज्ञान्भुवि दुर्लभान् ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वत्यास्स यदूद्वहः ॥ उवाच सुप्रसन्नात्मा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ३३ ॥

॥ २८ ॥ तू मनुष्य होगा इस प्रकार मुनियोंके शापसे वह सूर्य तुम्हारा पुत्र होगा जो कुछ तुमने इच्छा की सो सब प्राप्त करोगे ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार महादेवसे सम्पूर्ण वरोंको पाय श्रीकृष्णने अनेकप्रकारकी बडी स्तुतियोंसे शिवको सन्तुष्ट किया ॥ ३० ॥ तब उन महात्मा शिवके भक्त तपस्वी श्रीकृष्णसे सन्तुष्टहुई भक्तवत्सला पार्वतीजी बोलीं ॥ ३१ ॥ पार्वतीने कहा, हे महाबुद्धे ! हे वासुदेव ! हे कृष्ण ! हे अनघ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं पृथ्वीमें दुर्लभ मुझसे दिये सुन्दर वरोंको ग्रहण करो ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उन पार्वतीजीका वचन सुन वह श्रीकृष्णजी प्रसन्न हो भक्ति सहित

चित्तसे यह बोले ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, हे देवि ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो और इस मेरे सत्य तपसे मुझे वरदान देती हो तो मेरा ब्राह्मणोंमें कदापि द्वेष न हो ॥ ३४ ॥ और मैं सदा ब्राह्मणोंको पूजूं तथा सदा मुझसे माता पिता (शिवपार्वती) सन्तुष्ट रहैं ॥ ३५ ॥ और तुम्हारे दर्शनसे मेरी जहां तहां जानेपर सब प्राणियोंमें अनुकूलता रहै तथा मेरी योग्यकुलमें उत्पत्ति हो ॥ ३६ ॥ और मैं सदा सुरेन्द्र आदि देवताओंको तथा सहस्रों संन्यासी और अतिथियोंको सैकडों यज्ञोंसे तृप्त करूं ॥ ३७ ॥ सदा उन्हें श्रद्धासे पवित्रहुए भोजनको कराऊं और नित्य कुटुम्बियोंके साथ मेरी प्रीति हो ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ॥ देवि त्वं परितुष्टासि चेद्ददासि वरान्हि मे ॥ तपसाऽनेन सत्येन ब्राह्मणान्प्रति मास्मभूत् ॥ ३४ ॥ द्वेषः कदाचिद्भद्रं तु पूजयेयं द्विजान्सदा ॥ तुष्टौ च मातापितरौ भवेतां मम सर्वदा ॥३५॥ सर्वभूतेष्वानुकूल्यं भजेयं यत्र तत्रगः ॥ कुले प्रसूतिरुचिता ममास्तु तव दर्शनात् ॥ ३६ ॥ तर्पयेयं सुरेन्द्रादीन्देवान् यज्ञशतेन तु ॥ यतीनामतिथीनां च सहस्राण्यथ सर्वदा ॥ ३७ ॥ भोजयेयं सदा गेहे श्रद्धापूतं तु भोजनम् ॥ बांधवैस्सह प्रीतिस्तु नित्यमस्तु सुनिर्वृतिः ॥ ३८ ॥ देवि भार्य्यासहस्राणां भवेयं प्राणवल्लभः ॥ अक्षीणा काम्यता तासु प्रसादात्तव शांकरि ॥ ३९ ॥ आसां च पितरो लोके भवेयुः सत्यवादिनः ॥ इत्याद्याः सुवरास्संतु प्रसादा त्तव पार्वति ॥ ४० ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवी तं चाह विस्मिता ॥ एवमस्त्विवति भद्रं ते शाश्वती सर्वकामदा ॥ ४१ ॥ तस्मिंस्तांश्च वरान्दत्त्वा पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ तत्रैवांतश्च दधतुः कृत्वा कृष्णस्य सत्कृपाम् ॥ ४२ ॥ कृष्णः कृतार्थमात्मानममन्यत मुनीश्वर ॥ उपमन्योर्मुनेराशु प्रापाश्रममनुत्तमम् ॥ ४३ ॥

हे देवि ! हे शांकरि ! तुम्हारे प्रसादसे मैं सहस्रों स्त्रियोंका प्राणप्रिय होऊँ तथा उनमें मेरी अटल प्रीति हो ॥ ३९ ॥ हे पार्वति ! इनके पिता लोकमें सत्यवादी होवैं इत्यादि सब वर तुम्हारे प्रसादसे प्राप्त हों ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजी बोले, श्रीकृष्णका ऐसा वचन सुनके विस्मितहुई सनातनी सम्पूर्ण कामनाकी देनेवाली देवी पार्वतीने ऐसाही हो यह उनसे कहा ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णजीके ऊपर कृपाकर उनको सम्पूर्ण वरदान दे वे पार्वती शिव वहां ही अन्तर्द्धान होगये ॥४२॥ हे मुनीश्वर ! उस समय श्रीकृष्णजीने अपने आपको कृतार्थ माना और वह शीघ्रही उपमन्यु मुनिके श्रेष्ठ आश्रमको गये ॥४३॥

जब वहां श्रीकृष्णजीने उन उपमन्यु मुनिको शिरसे प्रणाम करके उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४४ ॥ वह मुनि उनसे बोले, हे जनार्दन ! उन शिवदेवसे अधिक संसारमें महादानी तथा क्रोधमें अति दुस्सह और कौन है ॥ ४५ ॥ हे गोविन्द ! हे देव ! ज्ञानमें तपमें शूरतामें वा पदमें उनसे अधिक कोई नहीं अब तुम शिवके ऐश्वर्य तथा कीर्त्तिको श्रवण करो ॥ ४६ ॥ यह सुन वह श्रीकृष्ण श्रद्धासे युक्त शिवकी भक्तिमें तत्पर हो शिवके माहात्म्यको पूछने लगे तब वह मुनीश्वर बोले ॥ ४७ ॥ उपमन्यु बोले, पहले ब्रह्मलोकमें महात्मा ब्रह्मयोगी दंडीने सहस्रनामसे भगवान् शिवकी स्तुति की

प्रणम्य शिरसा तत्र तं मुनिं केशिहा ततः ॥ तथा वृत्तं च तस्मै तत्समाचष्टोपमन्यवे ॥ ४४ ॥ स च तं प्राह कोऽन्यस्स्याच्छर्वाद्देवाज्जनार्दन ॥ महादानपतिर्लोके क्रोधे वाऽतीव दुस्सहः ॥ ४५ ॥ ज्ञाने तपसि वा शौर्य्ये स्थैर्य्ये वा पद एव च ॥ शृणु शंभोस्तु गोविन्द देवैश्वर्य्यं महायशाः ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तोऽभवच्छंभोस्तु भक्तिमान् ॥ पप्रच्छ शिवमाहात्म्यं स तं प्राह मुनीश्वरः ॥ ४७ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ भगवाञ्शंकरः पूर्वं ब्रह्मलोके महात्मना ॥ स्तुतो नामसहस्रेण दण्डिना ब्रह्मयोगिना ॥ ४८ ॥ सांख्याः पठंति तद्गीतं विस्तीर्णं च निघंटवत् ॥ दुर्ज्ञानं मानुषाणां तु स्तोत्रं तत्सर्वकामदम् ॥ ४९ ॥ स्मरन्नित्यं शंकरं त्वं गच्छ कृष्ण गृहं सुखी ॥ भविष्यसि सदा तात शिवभक्तगणाग्रणीः ॥ ५० ॥ इत्युक्तस्तं नमस्कृत्य वासुदेवो मुनीश्वरम् ॥ मनसा संस्मरञ्शंभुं केशवो द्वारकां ययौ ॥ ५१ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं कृष्णस्समाराध्य शंकरं लोकशंकरम् ॥ कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ सर्वाजेयोऽभवत्तथा ॥ ५२ ॥ तथा दाशरथी रामश्शिवमाराध्य भक्तितः ॥ कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ विजयी सर्वतोऽभवत् ॥ ५३ ॥

॥ ४८ ॥ सांख्यके जाननेवाले निघंटके समान विस्तृत मनुष्योंके दुर्ज्ञानवाले सांख्यके गीतको पढतेहैं परन्तु शिवका स्तोत्र सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ ४९ ॥ हे तात ! हे कृष्ण ! उसका नित्य स्मरणकर तुम शंकरके भावको प्राप्त होओगे और सदा घरमें सुखी तथा शिवभक्तोंके समुदायमें मुख्य होओगे ॥ ५० ॥ ऐसा कहनेपर वह श्रीकृष्णजी उन मुनिको नमस्कार करके मनसे शिवको स्मरणकर द्वारकापुरीको गये ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार श्रीकृष्णजी संसारके कल्याण करनेवाले शिवकी आराधना कर सबोंसे अजेय तथा कृतकृत्य हुए ॥ ५२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

दशरथके पुत्र रामचन्द्रजीभी भक्तिसे शिवको पूजके कृतार्थ तथा सबोंको जीतनेवाले हुए ॥ ५३ ॥ हे मुने ! पहले रामचन्द्रने पर्वतपै अति कठिन तप करके शिवजीसे ज्ञान तथा धनुषबाण प्राप्त करके :॥ ५४ ॥ समुद्रका पुल बांध कुटुम्बसहित रावणको मार जानकीको ले अपने घरको लौट सम्पूर्ण पृथ्वीको भोगा ॥ ५५ ॥ और परशुरामने तपसे सर्वव्यापी शिवको पूजके क्षत्रियोंसे नष्ट कियेहुए अपने पिताको देख अति दुःखित हो ॥ ५६ ॥ शिवजीसे तीक्ष्ण परशुको पाय शिवके प्रसादसे उस फरसेके द्वारा उन क्षत्रियोंको इक्कीसबार भस्म किया ॥५७॥ अबतक भी वह तपस्वी परशुराम अजेय अमर ज्योतिर्लिंगके

तपस्तप्त्वाऽतिविपुलं पुरा रामो गिरौ मुने ॥ शिवाद्धनुश्शरं चापं ज्ञानं वै परमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ रावणं सगणं हत्वा सेतुं बद्ध्वांभसां निधौ ॥ सीतां प्राप्य गृहं यातो बुभुजे निखिलां महीम् ॥ ५५ ॥ तथा च भार्गवो रामो ह्याराध्य तपसा विभुम् ॥ निरीक्ष्य दुःखितश्शर्वात्पितरं क्षत्रियैर्हतम् ॥ ५६ ॥ तीक्ष्णं स परशुं लेभे निर्ददाह च तेन तान् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वः क्षत्रांश्च प्रसन्नात्परमेश्वरात् ॥ ५७ ॥ अजेयश्चामरश्चैव सोऽद्यापि तपसां निधिः ॥ लिंगार्चनरतो नित्यं दृश्यते सिद्धचारणैः ॥ ५८ ॥ महेन्द्रपर्वते रामः स्थितस्तपसि तिष्ठति ॥ कल्पांते पुनरेवासावृषिस्थानमवाप्स्यति ॥ ५९ ॥ असितस्यानुजः पूर्वं पीडया कृतवांस्तपः ॥ मूलग्राहेण विश्वस्य देवलो नाम तापसः ॥ ६० ॥ पुरन्दरेण शप्तस्तु तपस्वी यश्च सुस्थिरम् ॥ अधर्म्यं धर्ममलभल्लिंगमाराध्य कामदम् ॥ ६१ ॥ चाक्षुषस्य मनोः पुत्रो मृगोऽभूत्तु मरुस्थले ॥ वसिष्ठशापाद्भूत्समदो दण्डकारण्य एकलः ॥ ६२ ॥ हृदये संस्मरन्भक्त्या प्रणवेन युतं शिवम् ॥ तस्मान्मृत्युमुखाकारो गणो मृगमुखोऽभवत् ॥ ६३ ॥

पूजनमें तत्पर हो सिद्ध चारणोंके सहित ॥५८॥ महेन्द्रपर्वतपर तप करनेमें स्थितहैं और प्रलयकालके पीछे फिरभी वह ऋषिके स्थानको पावैंगे ॥ ५९ ॥ पहले असितके भ्राताने अतिपीडासे तप किया और मूलग्राहसे विश्वासकरके देवलनामक तपस्वी ॥ ६० ॥ जो इन्द्रसे शाप दियागया था उसने कामनाको पूर्ण करनेवाले ज्योतिर्लिंगको पूज अधर्म योग्य कार्य करकेभी धर्म पाया ॥ ६१ ॥ चाक्षुष मनुका पुत्र मरुस्थल देशमें वसिष्ठजीके शापसे मृग होके दंडकारण्यमें अकेला विचरता ॥ ६२ ॥ अपने मनमें भक्तिसे ओंकारसहित शिवको स्मरण करने लगा, तब उससे मृगके मुखवाला तथा मृत्युमुख आकारवाला,

गण उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ फिर शिवने उसके शापको दूरकर उसे अजर अमर बनाया और प्रीतिसे गणेशका अनुगामी किया ॥६४॥ और स्वेच्छाचारी महासम्पत्तिवाले शिवजीने गार्ग्यको भूमिपर दुर्लभ महाक्षेत्र मोक्ष तथा कालज्ञान ॥ ६५ ॥ चतुष्पाद तथा निरंतर सरस्वतीके पारगामी होना और जिनके तुल्य और कोई नहीं था ऐसे सहस्र पुत्रोंको दिया ॥ ६६ ॥ प्रसन्नहुए शिवने पराशरको जरामृत्युरहित योगीन्द्र वेदव्यास पुत्र दिया ॥ ६७ ॥ और शंकरने मांडव्यको जीव देके फिर विसर्जन किया, तथा दशलक्ष वर्षतक त्रिशूलके अग्रभागपै रक्खा ॥ ६८ ॥ पहले कोई निर्धन गृहाश्रमी ब्राह्मण अपने

अजरामरतां नीतस्तीर्त्वा शापं पुनश्च सः ॥ शंकरेण कृतः प्रीत्या नित्यं लम्बोदरानुगः ॥ ६४ ॥ गार्ग्याय प्रददौ शर्वो मोक्षं च भुवि
दुर्लभम् ॥ कामचारी महाक्षेत्रं कालज्ञानं महर्द्धिमत् ॥ ६५ ॥ चतुष्पादं सरस्वत्याः पारगत्वं च शाश्वतम् ॥ न तुल्यं च सहस्रं तु
पुत्राणां प्रददौ शिवः ॥ ६६ ॥ वेदव्यासं तु योगीन्द्रं पुत्रं तुष्टः पिनाकधृक् ॥ पराशराय च ददौ जरामृत्युविवर्जितम् ॥ ६७ ॥
मांडव्यश्शंकरेणैव जीवं दत्त्वा विसर्जितः ॥ वर्षाणां दश लक्षाणि शूलाग्रादवरोपितः ॥ ६८ ॥ दरिद्रो ब्राह्मणः कश्चिन्निक्षिप्य
गुरुवेश्मनि ॥ पुत्रं तु गालवं यश्च पूर्वमासीद्गृहाश्रमी ॥ ६९ ॥ गुप्तो वा मुनिशालायां भिक्षुरायाति तद्गृहम् ॥ भार्य्यामुवाच यः
कश्चिदवश्यं निर्धनो यतः ॥ ७० ॥ स तु वाच्यो भवत्या च न दृश्यंत इति प्रियः ॥ अतिथेरागतस्यापि किं दास्यामि गृहे वसन्
॥ ७१ ॥ कदाचिदतिथिः कश्चित्क्षुत्तृषाक्षामतर्षितः ॥ तामुवाच स भर्ता ते क्व गतश्चेति तं च सा ॥ ७२ ॥ प्राह भर्ता मदीयस्तु
सांप्रतं न च दृश्यते ॥ स ऋषिस्तामुवाचेदं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ७३ ॥

पुत्र गालवको गुरुके घर फेंकके ॥ ६९ ॥ मुनिशालामें गुप्त होगया कारण उसके घर कई भिक्षुक आया करतेथे उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीसे कहा कि–जो कोई निर्धन भिक्षुक आवे ॥ ७० ॥ तो उससे तू यह कहना कि मेरा पति यहां नहीं दीखता है अतिथिके आनेपर मैं अपने घरमें रहके उसे क्या दूंगा ॥ ॥ ७१ ॥ किसी समय भूँख प्याससे व्याकुल कोई अतिथि आया और उस स्त्रीसे यह बोला कि, तेरा पति कहां गया ॥ ७२ ॥तब वह स्त्री उससे बोली

कि, इस समय मेरा पति यहां नहीं दीखता यह सुन उस भिक्षुकऋषिने दिव्यनेत्रसे जान यह कहा ॥ ७३ ॥ कि वहां घरमें छिपाहुआ तेरा पति मरा स्थित है, तब विश्वामित्रसे जताया हुआ उसका पुत्र गालव ॥ ७४ ॥ अपने घर आके मातासे अति कठिन शाप सुन शंकरदेवका आराधन कर तथा शिवकी पूजा कर ॥ ७५ ॥ वह अपने हृदयसे शंकरको स्मरण कर अपने घरसे निकलगया तब जातेहुए उस पुत्रको देखके उसके पिताने अञ्जलि बांधे हुए उससे कहा ॥ ७६ ॥ मैं महादेवके प्रसादसे कृतकृत्य हुआ तथा धनवान् और पुत्रवान् हुआ और मरके फिर जीवित हुआ ॥ ७७ ॥ उस प्रकार मैंने

गृहस्थितः प्रतिच्छन्नस्तत्रैव स मृतो द्विजः ॥ विश्वामित्राभ्यनुज्ञातस्तत्पुत्रो गालवस्तथा ॥ ७४ ॥ गृहमागत्य मातुस्स श्रुत्वा शापं सुदारुणम् ॥ आराध्य शंकरं देवं पूजां कृत्वा तु शांभवीम् ॥ ७५ ॥ गृहादसौ विनिष्क्रांतस्संस्मरञ्शंकरं हृदा ॥ अथ तं तनयं दृष्ट्वा पिता तं प्राह साञ्जलिम् ॥ ७६ ॥ महादेवप्रसादाच्च कृतकृत्योऽस्मि कृत्यतः ॥ धनवान्पुत्रवांश्चैव मृतोऽहं जीवितः पुनः ॥ ७७ ॥ इति वः कथितमशेषं नाहं शक्तः समासतो व्यासात् ॥ वक्तुं शंभोश्च गुणाञ्शेषस्यापि न मुखानि स्युः ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां कृष्णादिशिवभक्तोद्धारणशिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ ताततात महाभाग धन्यस्त्वं हि महामते ॥ अद्भुतेयं कथा शंभोः श्राविता परभक्तिदा ॥ १ ॥ पुनर्ब्रूहि कथां शंभोर्व्यासप्रश्नानुसारतः ॥ सर्वज्ञस्त्वं व्यासशिष्यः शिवतत्त्वविचक्षणः ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवमेव गुरुर्व्यासः पृष्टवान्मेऽजसंभवम् ॥ सनत्कुमारं सर्वज्ञं शिवभक्तं मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

तुमसे संक्षेपसे शिवका चरित्र कहा मैं विस्तारसे कहनेमें समर्थ नहीं हूं, कारण कि विस्तारपूर्वक शिवके गुण वर्णन करनेमें शेषजीके मुखभी समर्थ नहीं हैं॥ ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं०उ०सं० शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मुनि बोले, हे तात ! हे महाभाग ! हे महामते ! तुम धन्य हो तुमने परम भक्ति देनेवाली शिवजीकी अद्भुत कथा सुनाई ॥ १ ॥ व्यासजीके प्रश्नोंके अनुसार फिर शिवजीकी कथा कहो तुम सर्वज्ञ हो व्यासजीके शिष्य हो शिवतत्त्वमें प्रवीण हो ॥ २ ॥ सूतजी बोले, ऐसेही मेरे गुरु व्यासजीने ब्रह्मदेवके पुत्र सर्वज्ञ शिवभक्त मुनीश्वर सनत्कुमारसे पूंछा था ॥ ३ ॥

व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमारजी ! तुमने अनेक लीला विहार करनेवाले महेश शंकरकी यह शुभ कथा सुनाई ॥ ४ ॥ हे तात ! फिर विस्तारपूर्वक महादेवकी महिमाको वर्णन करो यह सुननेको मेरी बडी श्रद्धा उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ अनेकलीलासे विहार करनेवाले शिवजीकी महिमा तथा मायाने संसारमें जिन जिनको ज्ञानका हरण करके मोहित किया सो सब कहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे महाबुद्धिमान् व्यासजी ! शिवजीकी सुखदायक कथाको सुनो, जिसके सुननेमात्रसे शिवजीमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ शिवजी सबके स्वामी देव सबके आत्मा सबोंको देखनेवाले हैं उनकी महिमासे

व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ श्रावितेयं शुभा कथा ॥ शंकरस्य महेशस्य नानालीलाविहारिणः ॥ ४ ॥ पुनर्ब्रूहि महादेवमहिमानं विशेषतः ॥ श्रद्धा च महती श्रोतुं मम तात प्रवर्द्धते ॥ ५ ॥ महिम्ना येन शंभोस्तु येये लोके विमोहिताः ॥ मायया ज्ञानमाहृत्य नानालीलाविहारिणः ॥ ६ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे शांकरीं सुखदां कथाम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण शिवे भक्तिः प्रजायते ॥ ७॥ शिवस्सर्वेश्वरो देवस्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ महिम्ना तस्य सर्वं हि व्याप्तं च सकलं जगत् ॥ ८ ॥ शिवस्यैव परा मूर्तिर्ब्रह्मविष्णवीश्वरात्मिका ॥ सर्वभूतात्मभूताख्या त्रिलिंगा लिंगरूपिणी ॥९॥ देवानां योनयश्चाष्टौ मानुषी नवमी च या ॥ तिरश्चां योनयः पंच भवंत्येवं चतुर्दश ॥ १० ॥ भूता वा वर्तमाना वा भविष्याश्चैव सर्वशः ॥ शिवात्सर्वे प्रवर्तंते लीयंते वृद्धिमागताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां देवदानवभोगिनाम् ॥ गंधर्वाणां मनुष्याणामन्येषां वापि सर्वशः ॥ १२ ॥ बंधुर्मित्रमथाचार्य्यो रक्षन्नेताऽर्थवान्गुरुः ॥ कल्पद्रुमोऽथ वा भ्राता पिता माता शिवो ममः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण संसार व्याप्त हो रहा है ॥ ८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वरसम्बन्धी तीनों लिंगोंके स्वरूपवाली सब प्राणियोंकी आत्मभूतनामक वह शिवजीकीही परामूर्त्ति है ॥ ९ ॥ देवताओंकी योनि आठ तथा नौवीं मानुषी योनि है और पक्षियोंकी पांच योनि हैं इस प्रकार पन्द्रह पन्द्रह योनि होती हैं ॥ १० ॥ वर्तमान भूत भविष्य आदि सब प्रपंच शिवसे ही प्रगट होते हैं और वृद्धिको प्राप्त होके शिवमें ही लय होजाते हैं ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, चन्द्रमा, देवता, दैत्य, सर्प, गन्धर्व, मनुष्योंके तथा और सबोंके भी ॥ १२ ॥ बन्धु, मित्र, आचार्य, रक्षक, नेता तथा अर्थ बतानेवाला गुरु, कल्पवृक्ष वा भ्राता,

माता, पिता, शिवही हैं ॥ १३ ॥ शिवही पुरुषोंमें सर्वान्तर्यामी स्वयंवेद्य परसे भी पर जो वाणीसे कहनेमें असमर्थ तथा पर अनुपर हैं ॥ १४ ॥ हे मुने !
उनकी परमदिव्य माया सर्वत्र व्याप्त होरही है देवता दैत्य मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् उनकी मायाके आधीन है ॥ १५ ॥ उनके सहाय प्रबलमनसे
उत्पन्न होनेवाले कामदेवने वीर विष्णु आदि प्रबल देवताओंको भी वशीभूत किया ॥ १६ ॥ हे मुनीश्वर ! शिवजीकी मायाके प्रभावसे विष्णुने काममें
मोहित हो अनेकवार परस्त्री प्रसंग किया ॥ १७ ॥ इन्द्र देवताओंका स्वामी होके गौतमकी स्त्रीपै मोहित हो पाप करने लगे तो उस दुष्टात्माने गौतम मुनिका

शिवस्सर्वमयः पुंसां स्वयं वेद्यः परात्परः ॥ वक्तुं न शक्यते यश्च परं चानु परं च यत् ॥ १४ ॥ तन्माया परमा दिव्या सर्वत्र व्यापिनी मुने ॥ तदधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १५ ॥ कामेन स्वसहायेन प्रबलेन मनोभुवा ॥ सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्णवादिः प्रबलोऽपि हि ॥ १६ ॥ शिवमायाप्रभावेणाभूद्धरिः काममोहितः ॥ परस्त्रीधर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर ॥ १७ ॥ इन्द्रस्त्रिदशपो भूत्वा गौतमस्त्रीविमोहितः ॥ पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप मुनेस्तदा ॥ १८ ॥ पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितश्शिवमायया ॥ कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः ॥ १९ ॥ जगत्प्राणोऽपि गर्वेण मोहितश्शिवमायया ॥ कामेन निर्जितो व्यास चक्रेऽन्यस्त्रीरतिं पुरा ॥ ॥ २० ॥ चण्डरश्मिस्तु मार्तण्डो मोहितश्शिवमायया ॥ कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हयरूपधृक् ॥ २१ ॥ चन्द्रश्च मोहितश्शंभोर्मायया कामसंकुलः ॥ गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः ॥ २२ ॥ पूर्वं तु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ ॥ मोहितौ तावपि मुनी शिवमायाविमोहितौ ॥ २३ ॥

शाप पाया ॥ १८ ॥ जगत्में श्रेष्ठ अग्नि भी शिवकी मायासे मोहितहो गर्वसे कामके वशीभूत हुए और फिर शिवनेही उनका उद्धार किया ॥ १९ ॥
हे व्यासजी ! जगत्के प्राण विष्णु भी शिवकी मायासे मोहित होनेसे कामकें वशीभूत होनेसे परस्त्रीमें प्रेम करनेलगे ॥२०॥ तीव्र किरणोंवाले सूर्य भी शिवकी
मायासे मोहितहो काममें व्याकुल होके घोडीको देख शीघ्रही घोडेके रूप धारण करनेवाले हुए ॥ २१ ॥ शिवजीकी मायासे मोहित हुए कामसे व्याकुल
चन्द्रमाने भी गुरुपत्नीको हरण किया और शिवनेही उनका उद्धार किया ॥ २२ ॥ पहले घोर तपमें प्रवृत्त हुए दोनों मित्रावरुणनामक मुनि भी शिवकी

मायासे मोहितहो ॥ २३ ॥ तरुण (युवती) उर्वशी अप्सराको देख वे दोनों कामसे पीडित हुए तब मित्रने घडेमें अपना वीर्य छोडा और वरुणने जलमें छोडा ॥ २४ ॥ तब उस कुम्भसे मित्रके पुत्र वशिष्ठजी उत्पन्न हुए वरुणसे वडवानलके समान कान्तिवाले अगस्त्यजी उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ शिवकी मायासे मोहित हुए ब्रह्माके पुत्र दक्ष भी अपने भाइयों सहित वाणीके साथ भोग करनेकी इच्छावाले हुए ॥ २६ ॥ और ब्रह्माजीने अनेकबार शिवकी मायासे मोहित हो आसक्तहुई अपनी पुत्रियोंसे भोग करनेकी इच्छा की ॥ २७ ॥ शिवमायासे मोहित हुए महायोगी च्यवन ऋषिने भी काममें आसक्त हो

उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा कामुकौ सं बभूवतुः ॥ मित्रः कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥ २४ ॥ ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो
मित्रसंभवः ॥ अगस्त्यो वरुणाज्जातो वडवाग्निसमद्युतिः ॥ २५ ॥ दक्षश्च मोहितश्शंभोर्मायया ब्रह्मणस्सुतः ॥ भ्रातृभिस्स भगिन्यां
वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा ॥ २६ ॥ ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितश्शिवमायया ॥ अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च ॥ २७ ॥
च्यवनोऽपि महायोगी मोहितश्शिवमायया ॥ सुकन्यया विजह्रे स कामासक्तो बभूव ह ॥ २८ ॥ कश्यपः शिवमायातो मोहितः
कामसंकुलः ॥ ययाचे कन्यकां मोहाद्धन्वनो नृपतेः पुरा ॥ २९ ॥ गरुडः शांडिलीं कन्यां नेतुकामस्सुमोहितः ॥ विज्ञातस्तु तया
सद्यो दग्धपक्षो बभूव ह ॥ ३० ॥ विभांडको मुनिर्नारीं दृष्ट्वा कामवशं गतः ॥ ऋष्यशृंगसुतस्तस्य मृग्यां जातश्शिवाज्ञया ॥ ३१ ॥
गौतमश्च मुनिश्शंभोर्मायामोहिमानसः ॥ दृष्ट्वा शारद्वतीं नग्नां रराम क्षुभितस्तया ॥ ३२ ॥ रेतः स्कन्नं दधार स्वं द्रोण्यां चैव स
तापसः ॥ तस्माच्च कलशाज्जातो द्रोणश्शस्त्रभृतां वरः ॥ ३३ ॥

अपनी कन्यामें आसक्ति की ॥ २८ ॥ शिवमायासे मुग्धहो कश्यपने भी कामके वशमें हो अज्ञानसे धन्वा राजाकी कन्या मांगी ॥ २९ ॥ मुग्धहुए गरुडने शांडिली कन्याके लेनेकी इच्छा की फिर उस कन्याके ज्ञात होनेपर उनके पक्ष भस्म होगये ॥ ३० ॥ विभांडक मुनि भी स्त्रीको देख कामके वशीभूत हुए ऋष्यशृंगका पुत्र शिवकी आज्ञासे हिरनीमें पैदा हुआ ॥ ३१ ॥ शंभुकी मायासे मुग्ध हुए गौतम मुनिने भी शारद्वतीको नग्न देख कामसे व्याकुल हो उसके साथ रमण किया ॥ ३२ ॥ फिर उस तपस्वीने निकलेहुए अपने वीर्यको दोनेमें रक्खा तो उस कलशसे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥

शिवकी मायासे मोहित हुये महायोगी पराशरने दासकी कन्या कुमारी मत्स्योदरीसे विहार किया * ॥ ३४ ॥ विश्वामित्र मुनिने भी शिवकी मायासे मोहित हो कामके वशमेंहोनेसे वनमें मेनकाके साथ विहार किया ॥३५॥ चेतना रहित हो उन्होंने वसिष्ठसे विरोध किया फिर वह शिवके प्रसादसे ब्राह्मण हुए ॥ ३६ ॥ शिवमायाके वशमें रावण वैश्रवाने कामी हो कुबुद्धिसे सीताको हरण किया और वह मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ शंकरकी मायासे मोहितहुए मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिने कामवशहो भ्राताकी स्त्रीसे रमण किया उससे भरद्वाज उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! मैंने यह महात्मा शिवकी मायाका प्रभाव

पराशरो महायोगी मोहितश्शिवमायया ॥ मत्स्योदर्य्यां च चिक्रीडे कुमार्य्यां दाशकन्यया ॥ ३४ ॥ विश्वामित्रो बभूवाथ मोहित शिवमायया ॥ रेमे मेनकया व्यास वने कामवशं गतः ॥ ३५ ॥ वसिष्ठेन विरोधं तु कृतवान्नष्टचेतनः ॥ पुनः शिवप्रसादाच्च ब्राह्मणोऽभूत्स एव वै ॥ ३६ ॥ रावणो वैश्रवाः कामी बभूव शिवमायया ॥ सीतां जह्रे कुबुद्धिस्तु मोहितो मृत्युमाप च ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितश्शिवमायया ॥ भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ३८ ॥ इति मायाप्रभावो हि शंकरस्य महात्मनः ॥ वर्णितस्ते मया व्यास किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां शिवमायाप्रभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ॥ भगवंस्तान्समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ये पापनिरता जीवामहानरकहेतवः ॥ ते समासेन कथ्यंते सावधानतया शृणु ॥ २ ॥ परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसाऽनिष्टचिंतनम् ॥ अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम् ॥ ३ ॥

वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छाहै ॥३९॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं०उ० सं०शिवमायाप्रभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले, हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र ! जो पापी महानरकके कारण जीवहैं उनको वर्णन करो आपको नमस्कार है ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जो जीव पापोंमें तत्पर तथा महानरकके अधिकारीहैं उन्हें संक्षेपसे वर्णन करताहूं तुम सावधानहोके सुनो ॥ २ ॥ दूसरोंके धन तथा स्त्रीकी इच्छा तथा चित्तसे

---

* शिवकी श्रेष्ठता दिखानेको यह कथन है ।

बुरा विचारना बुरे कामका विचार तथा अभिनिवेश यह चार प्रकारका मानसिक कर्म है ॥ ३ ॥ विना संगत संभाषण करना असत्य अप्रिय बोलना पीछेमें पिशुनता (चुगलखोरी) यह चार प्रकारका वाचिक कर्म है ॥ ४ ॥ अभक्ष्यका भक्षण करना हिंसा झूंठे कार्यका करना दूसरोंके धनका हरण करना यह चार प्रकारका शारीरिक कर्म है ॥ ५ ॥ यह कायिक वाचिक मानसिक बारह प्रकारका कर्म कहाहै, अब आगे उनके भेदोंको वर्णन करताहूं कि, जिनका अनंत फल होता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले महादेवकी निन्दा करतेहैं नरकके समुद्रमें जाने योग्य उनको महापाप होता है ॥

अविबद्धप्रलापत्वमसत्यं चाप्रियं च यत् ॥ परोक्षतश्च पैशुन्यं चतुर्द्धा कर्म वाचिकम् ॥ ४ ॥ अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकार्य्यनिवेशनम् ॥ परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ॥ ५ ॥ इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसाधनम् ॥ अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनंतकम् ॥ ६ ॥ ये द्विषंति महादेवं संसारार्णवतारकम् ॥ सुमहत्पातकं तेषां निरयार्णवगामिनाम् ॥ ७ ॥ ये शिवज्ञानवक्तारं निन्दंति च तपस्विनम् ॥ गुरून्पितॄनथोन्मत्तास्ते यांति निरयार्णवम् ॥ ८ ॥ शिवनिन्दा गुरोर्निंदा शिवज्ञानस्य दूषणम् ॥ देवद्रव्यां पहरणं द्विजद्रव्यविनाशनम् ॥ ९ ॥ हरंति ये च संमूढाश्शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ॥ महांति पातकान्याहुरनन्तफलदानि षट् ॥ १० ॥ नाभिनन्दंति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम् ॥ न नमंत्यर्चितं दृष्ट्वा शिवलिंगं स्तुवंति न ॥ ११ ॥ यथेष्टचेष्टा निश्शंकास्संतिष्ठंते रमंति च ॥ उपचारविनिर्मुक्ताश्शिवाग्रे गुरुसन्निधौ ॥ १२ ॥

॥ ७ ॥ जो उन्मत्त मनुष्य शिवगाथाके करनेवाले तपस्वी तथा गुरु पितरोंकी निन्दा करतेहैं वे नरकको जातेहैं ॥ ८ ॥ शिवनिन्दा तथा गुरुकी निन्दा शिवज्ञानका दूषण द्विजोंके द्रव्यका नाश करना ॥ ९ ॥ तथा जो मूर्ख शिवज्ञानकी पुस्तकको हरण करते हैं यह छः अनन्त फलदायक पातक कहेहैं ॥ ॥ १० ॥ जो मनुष्य शिवपूजाको कल्पितहुआ देखके हर्षित नहीं होते हैं तथा शिवके पार्थिव लिंगको पूजितहुआ देख उनको नमस्कार नहीं करते स्तुति नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ जो अपनी अभिलाषाके अनुकूल निस्सन्देह स्थित रहते तथा रमण करतेहैं और शिवजीके आगे और गुरुके निकट उपचारसे

भ्रष्ट हो ॥ १२ ॥ जो पर्वोंमें स्थान और संस्कारकी पूजा नहीं करते हैं और कर्मयोगमें व्यवस्थित हो विधिपूर्वक गुरुओंकी पूजा नहीं करते ॥ १३ ॥ तथा जो शिवाचारवाले शिवजीके भक्तोंसे द्वेष करते हैं और जो शिवज्ञानको विना पूजे पढते व लिखतेहैं ॥ १४ ॥ अन्यायसे दान करते सुनते उच्चारण करते तथा लोभसे कुत्सित ज्ञानके नियमसे बुरी क्रीडा करते हैं ॥ १५ ॥ तथा अपनी इच्छाके अनुसार विना संस्कार किये स्थानोंमें सुवाते हैं, जो शिवकी ज्ञानकथामें आक्षेप करके और कुछ कहता है ॥ १६ ॥ तथा जो सत्य नहीं बोलता प्रदान नहीं करता और स्वयम् पवित्रहो वा अपवित्र स्थानमें कहता है वा सुनता है ॥ १७ ॥ और जो गुरुपूजाको विना कियेही शास्त्रोंको सुनना चाहता है तथा गुरुकी भक्ति प्रेमसे शुश्रूषा तथा आज्ञापालन नहीं करता है ॥ १८ ॥ और उनके वाक्यका आदर नहीं करता और उत्तर देता है और जो गुरुके कार्यमें असाध्य है ऐसा कह उसकी उपेक्षा करता है ॥ ॥ १९ ॥ जो पापी गुरु रोगी (दुःखी) असमर्थ तथा परदेशमें स्थितहुए वा वैरियोंसे तिरस्कार कियेहुएको मनुष्य छोड देता है ॥ २० ॥ और जो उनकी स्त्री पुत्र मित्रोंका तिरस्कार करता है, तथा श्रेष्ठवक्ता धर्मके दिखानेवाले गुरुकी भार्या, पुत्र, मित्रोंमें अवज्ञा करता है ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह

स्थानसंस्कारपूजां च ये न कुर्वंति पर्वसु ॥ विधिवद्वा गुरूणां च कर्म्मयोगव्यवस्थिताः ॥ १३ ॥ ये त्यजंति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषंति च ॥ असंपूज्य शिवज्ञानं येऽधीयते लिखंति च ॥ १४ ॥ अन्यायतः प्रयच्छंति शृण्वन्त्युच्चारयंति च ॥ विक्रीडंति च लोभेन कुज्ञाननियमेन च ॥ १५ ॥ असंस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयंति च ॥ शिवज्ञानकथाऽऽक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते ॥ १६ ॥ न ब्रवीति च यः सत्यं न प्रदानं करोति च ॥ अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति शृणोति च ॥ १७ ॥ गुरुपूजामकृत्वैव यश्शास्त्रं श्रोतुमिच्छति ॥ न करोति च शुश्रूषामाज्ञां च भक्तिभावतः ॥ १८ ॥ नाभिनन्दंति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति ॥ गुरुकर्मण्यसाध्यं यत्तदुपेक्षां करोति च ॥ १९ ॥ गुरुमार्त्तमशक्तं च विदेशं प्रस्थितं तथा ॥ वैरिभिः परिभूतं वा यस्संत्यजति पापकृत् ॥ २० ॥ तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करोति च ॥ एवं सुवाचकस्यापि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः ॥ २१ ॥ एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम ॥ सुमहत्पातकान्याहुश्शिवानिन्दासमानि च ॥ २२ ॥

सम्पूर्ण कर्म शिवकी निन्दाके समान महापाप कहे हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरापीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीसे गमन करनेवाला, तथा पांचवाँ इनके साथ मेल करनेवाला, यह माहापापी हैं ॥ २३ ॥ क्रोधसे, लोभसे, भयसे, द्वेषसे, जो ब्राह्मणके वधमें मर्मभेदी महादोषोंको कहैं वह ब्रह्महत्यारा होताहै ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मणको बुलाय दानदेके फिर लैलेताहै तथा जो निर्दोषीको दोष लगावै वह भी ब्रह्महत्यारा कहाता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य अपनी विद्याके अभिमानसे उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको निस्तेज करता है वह भी ब्रह्महत्यारा होता है ॥ २६ ॥ जो झूंठे गुणोंसे. बलात्कार अपने गुणोंको प्रगट करके आप उन्नतिके भावको प्राप्त होता है वह भी ब्रह्महत्यारा कहा है ॥ २७ ॥ बैलआदिसे तिरस्कृतहुईं गायोंका तथा गुरुसहित ब्राह्मणोंका विघ्न करता है उसको ब्रह्महत्यारा कहा है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य देवता, ब्राह्मण, गायोंके निमित्त प्रदान कीहुई भूमिको समयपाय नष्ट होनेपरभी हरण करता है उसको भी ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ २९ ॥ देवता ब्राह्मणका धन हरण करना तथा जो धन अन्यायसे उत्पन्न किया है वह भी ब्रह्महत्याके समान पाप जानना इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३० ॥ जो मूर्ख ब्राह्मण वेद पढके शिवके ब्रह्मज्ञानको त्यागन करता है वह मदिरापानके समान पाप कहा है ॥ ३१ ॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥ २३ ॥ क्रोधाल्लोभाद्भयाद्द्वेषाद्ब्राह्मणस्य वधे तु यः ॥ मर्मांतिकं महादोषमुक्त्वा सं ब्रह्महा भवेत् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणं यः समाहूय दत्त्वा यश्चाददाति च ॥ निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत् ॥ २५ ॥ यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम् ॥ उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥ मिथ्यागुणैर्य आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात् ॥ गुणानपि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत् ॥ २७ ॥ गवां वृषाभिभूतानां द्विजानां गुरुपूर्वकम् ॥ यस्समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ २८ ॥ देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः ॥ प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ॥ २९ ॥ देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत् ॥ ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः ॥ ३० ॥ अधीत्य यो द्विजो वेदं ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम् ॥ यदि त्यजति यो मूढः सुरापानस्य तत्समम् ॥ ३१ ॥

जिस किसी व्रतको नियमको तथा यज्ञको ग्रहण करके पंचमहायज्ञका त्यागन करना मदिरापानके समान कहा है ॥ ३२ ॥ माता पिताका त्यागन, झूंठी गवाही, ब्राह्मणसे झूंठ बोलना, शिवभक्तोंको मांस सेवन करना, अभक्ष्यका भक्षण करना ॥ ३३ ॥ तथा वनमें विना अपराधवाले जन्तुओंका मारना और जो साधु ब्राह्मणके निमित्त और धर्मके लिये प्राण नहीं त्यागता है ॥ ३४ ॥ गायोंके मार्गमें वनमें गांवमें जो अग्नि लगातेहैं यह ब्रह्महत्याके समान घोर पाप कहेहैं ॥ ३५ ॥ दीनका सर्वस्व हरण करना तथा पुरुष स्त्री हाथी घोडोंका तथा गौ भूमी चाँदी वस्त्र औषधि रसोंका ॥ ३६ ॥ चन्दन अगर कपूर

यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियमं यजनं तथा ॥ संत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम् ॥ ३२ ॥ पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम् ॥ आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥ ३३ ॥ वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातनम् ॥ द्विजार्थं प्रक्षिपेत्सा धुर्न धर्मार्थं नियोजयेत् ॥ ३४ ॥ गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्निः प्रदीयते ॥ इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ ३५ ॥ दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम् ॥ गोभूरजतवस्त्राणामौषधीनां रसस्य च ॥३६॥ चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ॥ विक्रयस्त्वविपत्तौ यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः ॥ ३७ ॥ हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे ॥ ३८ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥ कुमारीसाहसं घोरमद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ ३९ ॥ सवर्णायाश्च गमनं गुरुभार्य्यासमं स्मृतम् ॥ महापापानि चोक्तानि शृणु त्वमुपपातकम् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां महापातकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रमः ॥ अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिकत्वं कृतघ्नता ॥ १ ॥

कस्तूरी पट वस्त्रोंका विक्रय जो द्विजातियोंने ज्ञानसे किया ॥ ३७ ॥ हाथसे रक्खीहुई धरोहरका मारलेना सुवर्णके चुरानेके समान कहा है तथा वरयोग्य कन्याओंका समान वरके विषयमें प्रदान न करना ॥ ३८ ॥ पुत्र तथा मित्रकी स्त्रियोंमें बहिनोंमें गमन करना कुमारीके साथ बलात्कारसे गमन करना घोर मद्य पीनेवाली स्त्रीसे प्रसंग करना ॥ ३९ ॥ सवर्णासे गमन करना गुरुपत्नीके प्रसंगके समान कहा है यह महापाप कहेहैं अब तुम उपपातकोंको सुनो ॥४०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० महापातकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ सनत्कुमारजी बोले, ब्राह्मणके द्रव्यका हरण करना

दूसरेके भागका न देना अति अहंकार करना तथा अतिक्रोध करना पाखंड करना कृतघ्नता ॥ १ ॥ अत्यन्त विषयोंमें प्रवृत्ति कृपणता सज्जनोंसे ईर्षा करना दूसरोंकी स्त्रीसे गमन करना तथा श्रेष्ठोंकी कन्याओंमें दोष लगाना ॥ २ ॥ परिवित्ति परिवेत्ता तथा जिसके द्वारा जाना जाताहै उन दोनोंमें कन्याका दान करना तथा उन दोनोंको यज्ञ कराना ॥ ३ ॥ जो शिवके आश्रममें स्थितहुए वृक्षोंका तथा पुष्पोंके बागोंका नाश करना आश्रमोंमें स्थितहुए मनुष्योंको थोडीभी पीडा देता है ॥ ४ ॥ भृत्य परिवार सहित पशु धान्य तथा धनका दाय धान्य पशुओंका चुराना और जलका अपवित्र करना ॥ ५ ॥ यज्ञ बाग

अत्यंतविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरः ॥ परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम् ॥ २ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता च यया च परिविद्यते ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ॥ ३ ॥ शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम् ॥ यः पीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि ॥ ४ ॥ सभृत्यपरिवारस्य पशुधान्यधनस्य च ॥ कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा ॥ ५ ॥ यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयम् ॥ तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्म्मिणाम् ॥ ६ ॥ स्त्रीधनान्युपजीवंति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ॥ अरक्षणं च नारीणां मायया स्त्रीनिषेवणम् ॥ ७ ॥ कालागताप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम् ॥ निंदिताच्च धनादानं पण्यानां कूटजीवनम् ॥ ॥ ८ ॥ विषमारण्यपत्राणां सततं वृषवाहनम् ॥ उच्चाटनाभिचारं च धान्यादानं भिषक्क्रिया ॥ ९ ॥ जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारंभः सुकर्मसु ॥ मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत् ॥ १० ॥

सरोवरोंका तथा स्त्री और सन्तानका बेंचना तीर्थयात्रा तथा उपवासोंका व्रत उपनयन करनेवालोंका बेंचना ॥ ६ ॥ तथा जो स्त्रीधनोंसे वृत्ति करतेहैं तथा स्त्रियोंसे अत्यन्त जीतेहुएहैं तथा स्त्रियोंकी रक्षा करना छलसे स्त्रीका सेवन करना ॥ ७ ॥ समयपर आयेहुएको न देना धान्यवृद्धिका सेवन करना निन्दितसे धनका लेना व्यापारोंमें कूट जीवन ॥ ८ ॥ विषम वनोंके पत्रोंको तोडना बैलोंका वाहन उच्चाटन मारणका प्रयोग करना धान्यका लेना वैद्यक करना ॥ ॥ ९ ॥ तथा जिह्वाकी कामनाके भोगके अर्थ जिसकी सुकर्म करनेमें प्रवृत्तिहो जो वेदज्ञान आदिको नित्य मूलमात्र पढानेवाला है ॥ १० ॥

ब्राह्यआदि व्रतका त्यागन करना दूसरोंके आचारका सेवन करना बुरे शास्त्रोंका पढना शुष्क (निरर्थक) तर्कका अवलम्बन करना ॥ ११ ॥ देवता अग्नि गुरु साधुओंकी तथा ब्राह्मणकी चक्रवर्ती राजाओंकी प्रत्यक्षमें वा पीछे निन्दा ॥ १२ ॥ पितृयज्ञ देवयज्ञके त्यागनेवाले तथा जो अपने कर्मके त्यागनेवाले तथा दुराचारी नास्तिक पापी सदा झूंठ बोलनेवालेहैं ॥ १३ ॥ पर्वके समय दिनमें जलमें वियोनिमें तथा पशुकी योनिमें वा रजस्वलाकी योनिमें जो मैथुन करता है ॥ ॥ १४ ॥ जो स्त्री पुत्र मित्रोंके प्राप्त होनेपर आशाके तोडनेवालेहैं मनुष्योंसे अप्रिय (कटु) भाषण करनेवाले क्रूर समयके न जाननेवालेहैं ॥ १५ ॥ तालाव कूपोंका संक्रयोंका तथा रसोंका जो भेदन करनेवाला है और जो एक पंक्तिमें स्थित होनेवालोंके भोजनमें भेद करता है ॥ १६ ॥ इन पूर्वोक्त पापोंसे स्त्री तथा पुरुष उपपातकी कहातेहैं जो इन पापोंसे युक्तहैं तथा और भी जो पापी हैं उनको तुमसे वर्णन करता हूँ सुनो ॥ १७ ॥ जो गौ ब्राह्मण कन्याओंके स्वामी मित्र तपस्वियोंके कार्योंको बिगाडतेहैं वे नरकके अधिकारी कहेहैं ॥ १८ ॥ जो दूसरोंकी स्त्रियोंसे दुःखित होतेहैं तथा जो पराये द्रव्यके सूचकहैं तथा नित्य दूसरेके द्रव्यको हरनेवाले मिथ्या तोल करनेवालेहैं ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मणोंके दुःख देनेवाले

ब्राह्यादिव्रतसंत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ॥ असच्छास्त्राधिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ॥ ११ ॥ देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दया ब्राह्म
णस्य च ॥ प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामपि ॥ १२ ॥ उत्सन्नपितृदेवेज्या स्वकर्म्मत्यागिनश्च ये ॥ दुश्शीला नास्तिकाः
पापास्सदा वाऽसत्यवादिनः ॥ १३ ॥ पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु ॥ रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यःसमाचरेत् ॥ १४ ॥
स्त्रीपुत्रमित्रसंप्राप्तावाशाच्छेदकराश्च ये ॥ जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयवेदिनः ॥ १५ ॥ भेत्ता तडागकूपानां संक्रयाणां रसस्य
च ॥ एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ॥ १६ ॥ इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः ॥ युक्ता एभिस्तथान्येऽपि शृणु
तांस्तु ब्रवीमि ते ॥ १७ ॥ ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ विनाशयंति कार्य्याणि ते नरा नारकाः स्मृताः ॥ १८ ॥
परस्त्रियाभितप्यंते ये परद्रव्यसूचकाः ॥ परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः ॥ १९ ॥ द्विजदुःखकरा ये च प्रहारं चोद्धरंति ये ॥
सेवन्ते तु द्विजाश्शूद्रां सुरां बध्नंति कामतः ॥ २० ॥

तथा जो प्रहार करनेवालेहैं जो द्विज शूद्रस्त्रीको सेवन करते हैं और कामसे मदिराको बाँधतेहैं ॥ २० ॥ जो पापकर्ममें तत्परहैं क्रूर तथा जो मनुष्य
हिंसा करनेवाले हैं और जो अपनी आजीविकाके लिये दान यज्ञ आदिक कर्म करतेहैं ॥ २१ ॥ गौशाला (व्रज) अग्नि जल गलियोंमें वृक्षकी छाया
तथा पर्वतोंपर और बाग घरोंमें (शौचालयके अतिरिक्त) जो विष्ठा करतेहैं वा फेंकतेहैं ॥ २२ ॥ जो लज्जाके आश्रम तथा महलोंपर मद्यपान करनेवाले
छिद्रके ढूंढनेमें तत्परहुए क्रीडा करनेवाले सर्पोंके समान हैं ॥ २३ ॥ जो बांस ईंट पत्थर लकडियोंसे सींग और कीलोंसे रास्तेको रोक लेतेहैं तथा दूसरेकी

ये पापनिरताः क्रूराः येऽपि हिंसाप्रिया नराः ॥ वृत्त्यर्थं येऽपि कुर्वंति दानयज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २१ ॥ गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छाया
नगेषु च ॥ त्यजंति ये पुरीषाद्यानारामायतनेषु च ॥ २२ ॥ लज्जाश्रमप्रासादेषु मद्यपानरताश्च ये ॥ कृतकेलिभुजंगाश्च रन्ध्रान्वे
षणतत्पराः ॥ २३ ॥ वंशेष्टकाशिलाकाष्ठैः शृङ्गैश्शंकुभिरेव च ॥ ये मार्गमनुरुंधंति परसीमां हरंति ये ॥ २४ ॥ कूटशासनकर्तारः
कूटकर्म्मक्रियारताः ॥ कूटपाकान्नवस्त्राणां कूटसंव्यवहारिणः ॥ २५ ॥ धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्ता यः क्रयविक्रयी ॥ निर्दयोऽतीव
भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः ॥ २६ ॥ मिथ्या प्रवदतो वाच आकर्णयति यश्शनैः ॥ स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलश्शठः ॥ २७ ॥
ये भार्य्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ॥ भृत्यानतिथिबंधूंश्च त्यक्त्वाश्नंति बुभुक्षितान् ॥ २८ ॥ यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न
प्रच्छयति ॥ वृथापाकस्स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ २९ ॥

सीमा (हद) को हरण करतेहैं ॥२४॥ जो कपटसे शिक्षा करनेवाले छलके कर्म और व्यापारमें तत्परहैं कपटके पाक अन्न तथा वस्त्रोंका छलसे व्यवहार
करनेवालेहैं ॥ २५ ॥ जो धनुषका तथा शस्त्र शल्योंका बनानेवाला वा क्रय विक्रय करनेवाला है जो भृत्योंमें बडा निर्दयी है जो पशुओंका मारनेवाला
है ॥ २६ ॥ जो झूंठी बातको धीरे धीरे सुनाता है स्वामी मित्र गुरु इनका जो द्रोही है कपटी चपल ठग है ॥ २७ ॥ जो अपने स्त्री पुत्र मित्रोंको बालक
वृद्ध दुर्बल रोगियोंको भृत्य अतिथि बान्धवोंको भूंखा छोड स्वयम् भोजन करतेहैं ॥ २८ ॥ जो अपने आप मिष्टान्न खाता और ब्राह्मणोंको नहीं देता

है उसे वृथा पाक और ब्रह्मवादियोंमें निन्दित जानना चाहिये ॥ २९ ॥ जो स्वयम् नियमोंको स्वीकार करके जितेन्द्रिय न हो उनको त्यागन करते हैं जो संन्यासी होके घरमें निवास करनेवालेहैं और शिवप्रतिमाके भेदन करने वालेहैं ॥ ३० ॥ जो क्रूर पुरुष गायको ताडन करतेहैं तथा बारम्बार दमन करतेहैं जो दुर्बलोंको पोषण नहीं करतेहैं तथा उन्हैं निरंतर त्याग देते हैं ॥ ३१ ॥ तथा अतिभारसे पीडा देतेहैं और सहन न करतेहुएको जोततेहैं तथा विना भोजन करनेवाले पशुओंको जोतके बँधेहुओंको नहीं खोलता है ॥ ३२ ॥ जो भारसे घायल तथा रोगी भूंखे गाय बैलोंको यत्नपूर्वक नहीं पालतेहैं वे

नियमान्स्वयमादाय ये त्यजंत्यजितेन्द्रियाः ॥ प्रव्रज्यावासिता ये च हरस्यास्यप्रभेदकाः ॥ ३० ॥ ये ताडयंति गां क्रूरा दमयंते मुहुर्मुहुः ॥ दुर्बलान्ये न पुष्णंति सततं ये त्यजंति च ॥ ३१ ॥ पीडयंत्यतिभारेणा सहंतं वाहयंति च ॥ योजयन्नकृताहारान्न विमुंचति संयतान् ॥ ३२ ॥ ये भारक्षतरोगार्तान्गोवृषांश्च क्षुधातुरान् ॥ न पालयंति यत्नेन गोघ्नास्ते नारकास्स्मृताः ॥ ३३ ॥ वृषाणां वृषणान्ये च पापिष्ठा गालयंति च ॥ वाहयंति च गां वंध्यां महानारकिनो नराः ॥ ३४ ॥ आशया समनुप्राप्तान्क्षुत्तृष्णाश्रमकर्शितान् ॥ अतिथींश्च तथानाथान्स्वतन्त्रान्गृहमागतान् ॥ ३९ ॥ अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान् ॥ नानुकंपंति ये मूढास्ते यांति नरकार्णवम् ॥ ३६ ॥ गृहेष्वर्था निवर्तन्ते स्मशानादपि बांधवाः ॥ सुकृतं दुष्कृतं चैव गच्छंतमनुगच्छति ॥ ३७ ॥ अजाविको माहिषिकस्सामुद्रो वृषलीपतिः ॥ शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः ॥ ३८ ॥

गौहत्यारे पापी नरकके गामी होतेहैं ॥ ३३ ॥ जो पापी बैलोंके अंडकोशोंको कटवातेहैं तथा वंध्या गौको जोतते हैं वे पुरुष महानरकगामी होतेहैं ॥ ३४ ॥ अपनी आशासे प्राप्तहुए भूंख प्यास श्रमसे व्याकुलहुए अभ्यागत और अनाथोंको घरपै आयेहुए स्वतन्त्रोंको ॥ ३५ ॥ अन्नकी इच्छा करनेवाले वा दीनोंको बालक वृद्ध दुर्बल रोगियोंपर जो मूर्ख दया नहीं करतेहैं वे नरकसागरमें पडतेहैं ॥ ३६ ॥ घरमें धन पडे रहजातेहैं भाई बन्धु भी स्मशानसे लौट आतेहैं जीव पुण्य और पापका अनगामी होके जाता है ॥ ३७ ॥ बकरी तथा भैंसका क्रयविक्रय करनेवाला समुद्रपर रहनेवाला शूद्राका पति शूद्रके समान

क्षत्रिय वृत्ति करनेवाला नीच ब्राह्मण नरकगामी होताहै ॥ ३८ ॥ शिल्पी बढई वैद्य सुनार राजाकी पताका बनानेवाले कपटछलसे नौकरी करनेवाले
यह सब नरक गामी कहे हैं ॥ ३९ ॥ जो (योग्य) शास्त्रको उल्लंघन करके अपनी इच्छासे कर (महसूल) हरण करलेता है तथा जो दंडकी रुचिवाला
मनुष्य है यह नरकमें दुःख भोगते हैं ॥ ४० ॥ जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूंस लेनेवाले अपनी इच्छानुसार क्रय करनेवाले तथा तस्करोंसे पीडित होतीहै
वह राजा भी नरकमें पडताहै ॥४१॥ जो ब्राह्मण अन्यायमें स्थितहुए राजाका दान ग्रहण करते हैं वे घोर नरकमें जातेहैं इसमें कुछ संशय नहीं॥४२॥

शिल्पिनः कारवो वैद्या हेमकारा नृपध्वजाः ॥ भृतकाः कूटसंयुक्ताः सर्वे ते नारकाः स्मृताः ॥ ३९ ॥ यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयै
वाहरेत्करम् ॥ नरके पच्यते सोऽपि योपि दण्डरुचिर्नरः ॥ ४० ॥ उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ॥ यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे
पच्यते नरकेषु सः ॥ ४१ ॥ ये द्विजाः परिगृह्णंति नृपस्यान्यायवर्तिनः ॥ ते प्रयांति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ॥ ४२ ॥ अन्या
यात्समुपादाय द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति ॥ प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा ॥ ४३ ॥ पारदारिकचौराणां चंडानां विद्यते
त्वघम् ॥ परदाररतस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः ॥ ४४ ॥ अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाचौररूपिणम् ॥ अविचार्य्य नृपस्तस्माद्यात
यन्नरकं व्रजेत् ॥ ४५ ॥ घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरालवम् ॥ गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च ॥ ४६ ॥ तृणं काष्ठं पत्रपुष्प
मौषधं चात्मभोजनम् ॥ उपानच्छत्रशकटमासनं च कमंडलुम् ॥ ४७ ॥

जो राजा प्रजाओंसे अन्यायसे लेकर ब्राह्मणोंको देताहै वह राजा भी नरकोंमें पडता है ॥ ४३ ॥ पराई स्त्रियोंसे विषय तथा चोरी करनेवाले प्रचंडपुरुषोंको
तथा नित्य पराई स्त्रीमें तत्परहुए राजाको भी बडा पाप हो ताहै ॥ ४४ ॥ जो राजा विना चोरको चोरकी समान और चोरको विना चोरी करनेवाला
देखता है, विना विचारके मारता है वह राजा नरकको जाताहै ॥ ४५ ॥ घी, तेल, अन्न, पीनेकी वस्तु, मधु, मांस, शराव, अर्क, गुड, ईख (गन्ना),
शाक, दूध, दही, मूल, फल ॥ ४६ ॥ घास, काष्ठ, पत्र, फूल, औषधि, अपना भोजन, जूता, छाता, गाडी, आसन, कमंडल (लोटा) इनको ॥ ४७॥

ताम्बा, सीसा, रांगा, शस्त्र तथा शंख आदि जलसे उत्पन्नहुई वस्तुको वैद्य लकडी और जो घरकी वस्तु है ॥ ४८ ॥ ऊनी सूती रेशमी रामवास आदि व छालके बने मोटे बारीक वस्त्रोंको जो लोभसे चुरालेते हैं ॥ ४९ ॥ इत्यादि और भी अनेकप्रकारके द्रव्य हैं उनको थोडा भी हरण करके निश्चय ही नरकमें जाते हैं ॥ ५० ॥ जो कुछ भी हो सर्सोंमात्र भी पराई वस्तुको चुराके मनुष्य नरकमें पडते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मनुष्य इन पापोंसे नरक भोगनेके पश्चात् शरीरके कष्ट उठानेके निमित्त सम्पूर्ण आकारको पाता है ॥ ५२ ॥ पूर्वोक्त पापी शरीरके द्वारा मेरी आज्ञासे बडे भयानक यमके

ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शंखाद्यं च जलोद्भवम् ॥ वैद्यं च वैणवं चान्यद्गृहोपस्करणानि च ॥ ४८ ॥ और्णकार्पासकौशेयपट्टसूत्रोद्भवानि च ॥ स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरंति च ॥ ४९ ॥ एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ॥ नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्यालपकानि च ॥ ५० ॥ तद्वा यद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ॥ अपहृत्य नरा यांति नरकं नात्र संशयः ॥ ५१ ॥ एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रांतिसमनंतरम् ॥ शरीरयातनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यमलोकं व्रजंत्येते शरीरेण यमाज्ञया ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानास्सुदुःखिताः ॥ ५३ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम् ॥ धर्मराजः स्मृतश्शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ॥ ५४ ॥ नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ॥ प्रायश्चित्तैर्गुरुश्शास्ता न बुधैरिष्यते यमः ॥ ५५ ॥ पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ॥ नृपतिश्शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्म्मराट् ॥ ५६ ॥ तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥

दूतोंसे पकडके ले जायेहुए अतिदुःखित हो यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ५३ ॥ अधर्म करनेवाले देवता पक्षी मनुष्योंको अनेकभयानक वधोंसे धर्मराजको दंड देनेवाला कहाहै ॥ ५४ ॥ नियम सदाचारमें तत्परहुय अज्ञानसे गिरे जीवोंको अनेक प्रायश्चित्तोंसे गुरुही शिक्षा देनेवाला है ऐसे जीवोंकी शिक्षा देनेको पंडितोंने यमराजको नहीं कहा ॥ ५५ ॥ पराई स्त्रियोंसे प्रसंग करनेवाले तथा चोर अन्यायसे व्यवहार करनेवालोंको दंड देनेवाला राजा कहा है और गुप्त पाप करनेवालोंका धर्मराजा है ॥ ५६ ॥ इस कारण कियेहुए पापकी शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्त करना उचित है नहीं तो विना भोगे कोटि

कल्पोंमें भी पापोंका नाश नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य स्वयम् कर्म करता है वा कराता है अथवा अनुमोदन करता है उसके शरीरसे मनसे वाणीसे पापोंका फल मिलता है ॥ ५८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, सम्पूर्ण मनुष्य चार प्रकारके पापोंसे त्रासके उत्पन्न करनेवाले भयंकर यमराजके लोकको विवशहोके जाते हैं ॥ १ ॥ गर्भमें स्थितहुए उत्पन्न होनेवाले बालक युवा मध्यम स्त्री पुरुष नपुंसक आदि समस्त जीवोंको यह जानना चाहिये ॥ २ ॥ कि चित्रगुप्त आदि तथा वशिष्ठ आदि मुनियोंसे

यः करोति स्वयं कर्म्म कारयेच्चानुमोदयेत् ॥ कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अथ पापैर्नरा यांति यमलोकं चतुर्विधैः ॥ संत्रासजननं घोरं विवशास्सर्वदेहिनः ॥ १ ॥ गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजंतुषु ॥ २ ॥ शुभाशुभफलं चात्र देहिनां संविचार्यते ॥ चित्रगुप्तादिभिस्सर्वैर्वसिष्ठप्रमुखैस्तथा ॥ ३ ॥ न केचित्प्राणिनस्संति ये न यांति यमक्षयम् ॥ अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम् ॥ ४ ॥ तत्र ये शुभकर्माणस्सौम्यचित्ता दयान्विताः ॥ ते नरा यांति सौम्येन पूर्वं यमनिकेतनम् ॥ ५ ॥ ये पुनः पापकर्म्माणः पापा दानविवर्जिताः ॥ ते घोरेण पथा यांति दक्षिणेन यमालयम् ॥ ६ ॥ षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य तत् ॥ वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमवस्थितम् ॥ ७ ॥ समीपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्म्मणाम् ॥ पापिनामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण जीवोंका शुभ वा अशुभ कर्म विचारा जाताहै ॥ ३ ॥ ऐसे कोई प्राणी भी नहीं हैं जो यमके लोकको नहीं प्राप्त होतेहैं अपना कियाहुआ कर्म अवश्य ही भोगने योग्य होता है, ऐसा विचारना चाहिये ॥ ४ ॥ उनमेंसे जो शुभकर्म करनेवाले सौम्यचित्त कृपालु मनुष्य हैं वे यमलोकमें सौम्यमार्गसे पूर्वद्वारको जाते हैं ॥ ५ ॥ और जो पाप कर्म करनेवाले पापी दानशून्य पुरुष हैं वे घोर दक्षिणके मार्गसे यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥ छियासी सहस्र योजन कोसोंको लांघके अनेकरूपमें स्थितहुआ वैवस्वत पुर जानना चाहिये ॥ ७ ॥ यह नगर पुण्यात्माओंको अति निकटहुएके समान

प्रतीत होता है और पापी मनुष्योंको अतिदूरमें स्थितहुआ ज्ञात होता है और वे भयंकर मार्गसे जातेहैं ॥ ८ ॥ तीखे काँटोंसे व्याप्त तथा शर्करासे रचितहुए कहीं छुरेके धारके समान तीव्र पाषाणोंसे विरचित मार्गसे ॥ ९ ॥ कहीं बडी कीचडसे व्याप्त कहीं उरुतोक पापोंसे कहीं लोहेके सुईके तुल्य कुशाओंसे व्याप्तहुए मार्गसे ॥ १० ॥ तथा कहीं तटप्राय प्रदेशोंसे अतिकठिन पर्वत और वृक्षोंसे व्याप्तहुए कहीं तपेहुए अंगारयुक्त मार्गसे दुःखित हो यमलोकको जाते हैं ॥ ११ ॥ कहीं कठोर मढोंसे कहीं अतिकठिन टेलोंसे खूब तपीहुई बालूसे तथा तीक्ष्ण कीलोंसे ॥ १२ ॥ कहीं अनेक शाखाओंसे

तीक्ष्णकंटकयुक्तेन शर्कराविचितेन च ॥ क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणै रचितेन च ॥ ९ ॥ क्वचित्पंकेन महता उरुतोकैश्च पातकैः ॥ लोहसूचीनिभैर्दर्भैस्सम्पन्नेन पथा क्वचित् ॥ १० ॥ तटप्रायातिविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः ॥ प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखिताः ॥ ११ ॥ क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्टैस्सुदुष्करैः ॥ सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शंकुभिः ॥ १२ ॥ अनेकशाखाविततैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित् ॥ कष्टेन तमसा मार्गे नानालम्बेन कुत्रचित् ॥ १३ ॥ अयश्शृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः ॥ क्वचित्तप्त शिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेनच ॥ १४ ॥ क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकंठांतःप्रवेशया ॥ क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना ॥ १५ ॥ क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणैः ॥ क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैस्तथा ॥ १६ ॥ मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ॥ मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥ १७ ॥ पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः ॥ तीक्ष्णशृंगैश्च महिषैस्सर्वभूतैश्च श्वापदैः ॥ १८ ॥

विस्तृत बांसके वनोंसे कहीं कष्टदायक अंधकारसे तथा कहीं मार्गमें अनेक आधारोंसे ॥ १३ ॥ कहीं लोहेके तेज सिंघाडोंसे तथा कहीं दावानलसे कहीं तप्त शिलाओंसे कहीं बर्फसे व्याप्त ॥ १४ ॥ कहीं कंठपर्यन्त प्रवेश करने योग्य परितप्त बालूसे व्याप्त कहीं दूषित जलसे व्याप्त कहीं करीजकी अग्निसे व्याप्त ॥ १५ ॥ कहीं सिंह भेडिये व्याघ्र अतिभयंकर मच्छडोंसे कहीं बडी जोकोंसे तथा कहीं अजगरोंसे व्याप्त ॥ १६ ॥ कहीं भयानक मक्खियोंसे कहीं विषैले सर्पोंसे कहीं मतवाले बलमें उन्मत्तहुए प्रमाथी हस्तियोंसे ॥ १७ ॥ मार्गको खोदतेहुए तीक्ष्ण दाढोंवाले सूकरोंसे कहीं पैने सींगोंके भैंसोंसे

कहीं सम्पूर्ण हिंसक जन्तुओंसे ॥ १८ ॥ कहीं विकट डाकिनियोंसे तथा विकराल राक्षसोंसे तथा अतिघोर व्याधियोंसे पीडित होके जाते हैं ॥ १९ ॥
बडी धूलीसे व्याप्त बडे प्रचंड पवनसे कहीं बृहत् पाषाणकी वर्षासे निराश्रयहो पीडित होके ॥ २० ॥ कहीं विजलीके प्रपातसे जलते हुए जाते हैं कहीं
चारोंओरसे बडी बाणोंकी वर्षासे पीडित हुए ॥ २१ ॥ गिरतेहुए वज्रपातोंसे तथा अतिदारुण उल्काग्निपातसे और प्रदीप्त अंगारोंकी वर्षासे भस्म होते
हुए ॥ २२ ॥ बडी धूलिकी वर्षासे पूर्यमाणहो रोतेहैं कहीं घोर मेघोंसे बारम्बार भयभीत होतेहैं ॥ २३ ॥ तथा सबओरसे तीक्ष्ण शस्त्रोंकी वर्षासे

डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ॥ व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजंति हि ॥ १९ ॥ महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन
वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥२०॥ क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति च ॥ महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च
सर्वतः ॥ २१ ॥ पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः ॥ प्रदीप्तांगारवर्षेण दह्यमानाश्च संति हि ॥ २२ ॥ महता पांसुवर्षेण पूर्य्य
माणा रुदंति च ॥ महामेघवरैर्घोरैस्त्रस्यंते च मुहुर्मुहुः ॥ २३ ॥ निशितायुधवर्षेण विद्यमानाश्च सर्वतः ॥ महाक्षाराम्बुधाराभिस्सिच्य
माना व्रजंति च ॥ २४ ॥ महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च ॥ समंताद्बाध्यमानाश्च शुष्यंते संकुचन्ति च ॥ २५ ॥ इत्थं मार्गेण
रौद्रेण पाथेयरहितेन च ॥ निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥ २६ ॥ विषमेणैव महता निर्जनापाश्रयेण च ॥ तमोरूपेण कष्टेन
सर्वदुष्टाश्रयेण च ॥ २७ ॥ नीयंते देहिनस्सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥ यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥ २८ ॥ एकाकिनः
पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ॥ शोचंतस्स्वानि कर्म्माणि रुदंतश्च मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥

भेदितहुए तथा कहीं महाखारी समुद्रकी धारोंसे सिंचितहुए जातेहैं ॥२४॥ बडी ठंढी रूखी कठोर पवनसे चारोंतरफसे बाधित होके सूखते और सिकुडतेहैं
॥ २५ ॥ इस प्रकार भयंकर चबेना रहित आधारहीन कठिन सबओरसे जलशून्य मार्गसे ॥ २६ ॥ बडे विषम निर्जन आश्रयहीन अन्धकाररूपी कष्टसे
सम्पूर्ण दुष्टोंके आश्रयसे ॥२७॥ जो पापी मूर्ख प्राणी हैं वे यमराजके आज्ञाकारी महाघोर यमके दूतोंसे बलात्कार ले जाये जातेहैं ॥ २८ ॥ अकेले परा

धीन हुए मित्र बन्धुओंसे रहित अपने कर्मोंको सोचतेहुए बारम्बार रोतेहुए ॥ २९ ॥ प्रेत होके वस्त्ररहित कण्ठ ओष्ठ तालुसे शुष्क हुए विना सौम्य भयभीत हुए दह्यमान क्षुधासे व्याकुल हुए ॥ ३० ॥ कोई शृंखलासे बँधेहुए कोई पैरोंको ऊपर किये प्रबल यमके दूतोंसे खैंचके ले जाये जातेहैं ॥ ३१ ॥ तथा कोई हृदयसे नीचेको मुखकिये घसीटेहुए अतिदुःखित बालपाशोंसे बँधीहुई रस्सीसे खैंचे जातेहैं ॥ ३२ ॥ और कोई उत्तान जीव अंकुशसे माथेपै विदीर्णहुए दुःखित होतेहैं और काटोंके मार्गसे कहीं अंगारोंके मार्गसे जातेहैं ॥ ३३ ॥ पश्चात् भुजाओंसे बँधेहुए उदरसे पीडितहुए

प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकाः ॥ असौम्या भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः ॥ ३० ॥ बद्धाश्शृंखलया केचिदुत्तानपादका नराः ॥ कृष्यंते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ ३१ ॥ उरसाधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणास्सुदुःखिताः ॥ केशपाशनिबंधेन संकृष्यन्ते च रज्जुना ॥ ३२ ॥ ललाटे चांकुशेनान्ये भिन्नादुष्यंति देहिनः ॥ उत्तानाः कंटकपथा क्वचिदंगारवर्त्मना ॥ ३३ ॥ पश्चाद्बाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः ॥ पूरिताश्शृंखलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः ॥ ३४ ॥ ग्रीवापाशेन कृष्यंते प्रयांत्यन्ये सुदुःखिताः ॥ जिह्वांकुशप्रवेशेन रज्ज्वाकृष्यन्त एव ते ॥ ३५ ॥ नासाभेदेन रज्वा च त्वाकृश्यन्ते तथापरे ॥ भिन्नाः कपोलयो रज्ज्वाकृष्यंतेऽन्ये तथौष्ठयोः ॥ ३६ ॥ छिन्नाग्रपादहस्ताश्च च्छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ संछिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नांगसंधयः ॥ ३७ ॥ आभिद्यमानाः कुंतैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः ॥ इतश्चेतश्च धावंतः क्रंदमाना निराश्रयाः ॥ ३८ ॥ मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ कंटकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥ ३९ ॥

शृंखलाओंसे पूरित दोनों हाथोंमें कील ठुकी हुई ॥ ३४ ॥ तथा कोई ग्रीवा पाश (गर्दनके फांसे) से खेंचे जातेहैं और दुःखित हो जातेहैं और जिह्वांकुश प्रवेशवाली रस्सीसे खींचे जातेहैं ॥ ३५ ॥ तथा नासिका भेदवाली रस्सीसे खींचे जातेहैं कोई कपोलोंमें तथा ओष्ठोंमें रस्सीसे भेदित होके खींचे जातेहैं ॥ ३६ ॥ आगेके पैर हाथोंसे छिन्नहुए कोई कान ओठ नासिकासे छेदित तथा लिंग अंडकोशोंसे छेदित तथा अंगोंके जोडोंसे छिन्न भिन्न हुए ॥ ॥ ३७ ॥ अलकोंसे भिद्यमान हुए तथा बाणोंसे विदीर्ण हुए इधर उधरको दौडतेहुए तथा निराश्रय हो रोतेहुए ॥ ३८ ॥ कोई बारम्बार मुद्गरोंसे लोहेके

दंडोंसे बारम्बार ताडन किये तथा घोर जालते जलतेहुए सूर्यके समान कान्तिवाले अनेक काँटोंसे पीडित हुए ॥ ३९ ॥ भिन्दिपालोंसे भेदन किये जातेहैं,
रुधिर मवादसे टपकतेहुए विष्ठाके कीडोंसे नोचेहुए मनुष्य विवश हो लेजाये जातेहैं ॥ ४० ॥ जल तथा अन्नको मांगतेहुए भूंखे और छायाकी प्रार्थना करते
शीतसे व्याकुल अग्निको चाहते हुए ॥ ४१ ॥ दानहीन मनुष्य इस प्रकार प्रार्थना करते दुःखसे यमराजके घरको जातेहैं जो दानरूपी चबेनेको ग्रहण
करनेवालेहैं वे सुखसे यमलोकको जातेहैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार न्यायसे कष्टपूर्वक जब प्रेतपुरको प्राप्त होतेहैं तो दूतोंसे जतायेहुए यमराजके सम्मुख खडे

भिन्दिपालैर्विभिद्यंते स्रवंतः पूयशोणितम् ॥ शकृताक्रुमिदिग्धाश्च नीयंते विवशा नराः ॥ ४० ॥ याचमानाश्च सलिलमन्नं वापि
बुभुक्षिताः ॥ छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानलं पुनः ॥ ४१ ॥ दानहीनाः प्रयांत्येवं प्रार्थयंतस्सुखं नराः ॥ गृहीतदानपाथेया
स्सुखं यांति यमालयम् ॥ ४२ ॥ एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा ॥ प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यंते यमाग्रतः ॥ ४३ ॥ तत्र ये
शुभकर्म्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः ॥ स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च ॥ ४४ ॥ धन्या यूयं महात्मानो निगमोदितका
रिणः ॥ यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिस्सुकृतं कृतम् ॥ ४५ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ॥ स्वर्गं गच्छध्वममलं
सर्वकामसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगानंते पुण्यस्य संक्षयात् ॥ यत्किंचिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥ ४७ ॥
धर्म्मात्मानो नरा ये च मित्रभूता इवात्मनः ॥ सौम्यं सुखं प्रपश्यंति धर्मराजानमेव च ॥ ४८ ॥ ये पुनः क्रूरकर्म्माणस्ते पश्यंति
भयानकम् ॥ दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ४९ ॥

किये जातेहैं ॥ ४३ ॥ उनमें जो शुभकर्म करनेवाले प्राणीहैं, उनको यमराज स्वागत आसन देने पाद्य अर्घ्य प्रेम आदिसे सन्मान करतेहैं ॥ ४४ ॥
शास्त्रके अनुकूल कर्म करनेवाले तुम महात्मा धन्य हो जिन आप लोगोंने दिव्य सुखके लिये पुण्य किया ॥ ४५ ॥ दिव्य विमानपर चढके दिव्य स्त्रियोंके
भोगसे भूषित सब कामनाके देनेवाले निर्मल स्वर्गको जाओ ॥ ४६ ॥ वहां महाभोगोंको भोगके अन्तमें पुण्यके नाश होनेपर जो कुछ थोडा पाप हो तो
फिर यहां भोगोगे ॥ ४७ ॥ जो धर्मात्मा मित्रभूत ऐसी आत्मावाले पुरुषहैं वे धर्मराजके यहां सौम्य सुखको देखते हैं ॥ ४८ ॥ और जो क्रूर (बुरे)

कर्म करनेवाले हैं वे भयानक दंष्ट्रा और विकराल मुखवाले भृकुटीसे कुटिल दृष्टिवाले ॥ ४९ ॥ ऊपर केशयुक्त बडी दाढी मूछोंवाले ऊपरको कम्पायमान अधरवाले अठारह भुजावाले क्रुद्ध नीलअंजनके समुदायके समान ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण शस्त्रोंसे घिरेहुए हाथोंवाले सब प्रकारके दण्डसे डांटतेहुए बडे भैंसेपर चढेहुए जलतीहुई अग्निके समान नेत्रवाले ॥ ५१ ॥ रक्त माला और वस्त्रधारी सुमेरुपर्वतके समान ऊंचे प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाले समुद्रको पीतेहुएके समान स्थित हुए ॥ ५२ ॥ हिमालयपर्वतको निगलते हुएके समान अग्निको उगलते हुएके समान स्थित यमराजको तथा कालानलके समान

ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुमूर्ध्वप्रस्फुरिताधरम् ॥ अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ॥ ५० ॥ सवायुधोद्धृतकरं सर्वदण्डेन तर्जयन् ॥
महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥५१॥ रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम् ॥
॥ ५२ ॥ ग्रसंतमिव शैलेन्द्रमुद्गिरंतामिवानलम् ॥ मृत्युश्चैव समापस्थः कालानलसमप्रभः ॥ ५३ ॥ कालश्चांजनसंकाशः कृतांतश्च
भयानकः ॥ मारी चोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा ॥ ५४ ॥ विविधा व्याधयः कुष्ठा नानारूपा भयावहाः ॥ शक्तिशूलांकुशधराः
पाशचक्रासिपाणयः ॥ ५५ ॥ वज्रतुंडधरा रुद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः ॥ नानायुधधरास्सर्वे महावीरा भयंकराः ॥ ५६ ॥ असंख्याता
महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ॥५७॥ अनेन परिचारेण वृतं तं घोरदर्शनम् ॥ यमं पश्यंति
पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ॥ ५८ ॥

कान्तिवाले मृत्यु जिनके समीपमें स्थित है ॥ ५३ ॥ अंजनके समान काल भयानक यमराज मारी तथा उग्र महामारी तथा दारुण कालरात्रि ॥ ५४ ॥ अनेकप्रकारकी व्याधि अनेक रूपसे भयानक कुष्ठादि शक्ति त्रिशूल अंकुशधारी पाश चक्र खड्ग हाथोंमें लिये ॥ ५५ ॥ वज्र तथा तुंडधारी रुद्र छुरे तर्कस धनुषके धारण करनेवाले अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाले सब महावीर भयंकर ॥ ५६ ॥ असंख्यात महावीर कालाञ्जनके समान कान्तिवाले समस्त शस्त्रोंसे व्याप्त हाथोंवाले भयानक यमराजके दूत ॥ ५७ ॥ इस परिचारसे घिरेहुए भयंकर दर्शनवाले उन यमराजको तथा भयानक चित्रगुप्तको पापीलोग

देखते हैं ॥ ५८ ॥ और उन पापकर्म करनेवाले जीवोंको यमराज अत्यन्त ललकारता है और भगवान् चित्रगुप्त धर्मवाक्योंसे बोधन करतेहैं ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं०उ० सं० नरकलोकमार्गयमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ चित्रगुप्त बोले, अरे ! अरे ! पापकर्म करनेवाले दूसरोंके द्रव्यके हरनेवाले रूप और वीर्यसे गर्वितहुए दूसरोंकी स्त्रीसे प्रसंग करनेवाले ॥ १ ॥ जो तुमने यह कर्म कियाहै वह अब भोगते हो सो तुमने अपनी पीडाके अर्थ क्यों पाप किया ॥ २ ॥ अब तुम अपने कर्मोंसे पीडितहुए क्या आलाप करते हो अपने कर्मोंके फलोंको भोगो इसमें किसीका दोष नहीं है

निर्भर्त्सयति चात्यंतं यमस्तान्पापकर्म्मणः ॥ चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्म्मवाक्यैः प्रबोधयेत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकलोकमार्गयमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ भो भो दुष्कृतकर्म्माणः परद्रव्यापहारकाः ॥ गर्विता रूपवीर्य्येण परदारावमर्द्दकाः ॥ १ ॥ यत्स्वयं क्रियते कर्म तदिदं भुज्यते पुनः ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥ २ ॥ इदानीं किं प्रलप्यध्वे पीड्यमानास्स्वकर्म्मभिः ॥ भुज्यंतां स्वानि कर्म्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित् ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं ते पृथिवीपालास्संप्राप्तास्तत्समीपतः ॥ स्वकीयैः कर्म्मभिर्घोरैर्दुष्कर्म्मबलदर्पिणः ॥ ४ ॥ तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः ॥ संशिक्षयति धर्म्मज्ञो यमराजानुशिक्षया ॥ ५ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ॥ अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥ ६ ॥ राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः ॥ यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः ॥ ७ ॥ क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् ॥ तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इसी प्रकार अपने घोर दुष्कर्मोंसे दुष्कर्म तथा बलमें अभिमानी वे राजा उनके समीप प्राप्त होतेहैं ॥ ४ ॥ क्रोध सहित महाप्रभु धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराजकी आज्ञासे उन राजाओंको शिक्षा देता है ॥ ५ ॥ चित्रगुप्त बोलते हैं हे दुराचारी ! प्रजाके नाश करनेवाले राजाओ ! तुमने थोडे समयके राज्यके लिये क्यों पाप किया ॥ ६ ॥ हे राजाओ ! तुमने जो राज्य भोगनेके कारण मोहसे बलसे अन्यायसे प्रजाको दंड दिया है अब उसका फल भोगो ॥ ७ ॥ वह राज्य और स्त्री कहाँ है जिसके लिये तुमने पाप किया उन सबको त्यागके तुम अकेले स्थित हो ॥ ८ ॥

अब मैं तुम्हारा वह बल नष्ट हुआ देखता हूँ कि जिससे प्रजाको विध्वंस किया यमके दूतोंसे बांधे गयेहो अब कैसे हो ॥ ९ ॥ सनत्कुमार बोले, यमराजके इस प्रकार अनेक वचनोंसे प्राप्त हुए वे राजालोग मौन होके अपने कर्मोंको सोचते हैं ॥ १० ॥ धर्मराज यमराज राजाओंके उन कर्मोंको उद्देश करके उनके पापरूपी कीचडके शुद्ध होनेके निमित्त दूतोंसे यह कहते हैं ॥ ११ ॥ यमराज बोलतेहैं, हे चंड ! महाचंड ! तुम बलात्कारसे इन राजाओंको पकडकर क्रमसे नरकाग्नियोंमें गिराके नियमसे शुद्ध करो ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, उनकी आज्ञासे शीघ्र उन राजाओंको पकड दोनों पैरोंको जोरसे घुमाके

पश्यामि तद्बलं नष्टंयेन विध्वंसिताः प्रजाः ॥ यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत् ॥ ९ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते ॥ स्वानि कर्म्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठंति पार्थिवाः ॥ १० ॥ इति कर्म्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्म्मराडचमः ॥ तत्पापपंकशुद्ध्यर्थमिदं दूतान्ब्रवीति च ॥ ११ ॥ ॥ यमराज उवाच ॥ ॥ भोभोश्चण्ड महाचंड गृहीत्वा नृपतीन्बलात् ॥ नियमेन विशुद्ध्यध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥ १२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततश्शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः ॥ भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥ १३ ॥ सर्वप्रायेण महतातीव तप्ते शिलातले ॥ आस्फालयंति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमान् ॥ १४ ॥ ततस्स रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः ॥ निस्संज्ञस्स तदा देही निश्चेष्टस्संप्रजायते ॥ १५ ॥ ततस्स वायुना स्पृष्टस्स तैरुज्जीवितः पुनः ॥ ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपंति नरकार्णवे ॥ १६ ॥ अष्टाविंशतिसंख्याभिः क्षित्यधस्सप्तकोटयः ॥ सप्तमस्य तलस्यांते घोरे तमसि संस्थितः ॥ १७ ॥

ऊपरको लेके फिर नीचे फेंकके ॥ १३ ॥ सबोंसे बडे अत्यन्त तपे हुए शिलातलपर वज्रसे महावृक्षोंकी समान बडे वेगसे ताडन करते हैं ॥ १४ ॥ तब कानोंसे रुधिर टपकता है उस समय प्राणी जर्जर हुआ चेतनारहित तथा चेष्टारहित हो जाता है ॥ १५ ॥ तब वह वायुसे स्पर्श हुआ और उनसे जिलाया हुआ पापकी शुद्धिके अर्थ नरकोंमें फेंका जाता है ॥ १६ ॥ सात करोड अठाईस योजन पृथ्वीके नीचे सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारमें

स्थित होता है ॥ १७ ॥ प्रथम कोटि घोरनामक है उसके नीचे सुघोर है अतिघोर महाघोर पांचवीं घोररूप है ॥ १८ ॥ छठी तलातल नामक सातवीं
भयानक आठवीं कालरात्रि नौमी भयोत्कटा ॥ १९ ॥ उसके नीचे दशवीं चंड उससे नीचे महाचंड और चंडकोलाहल तथा प्रचंड चंडनामक ॥ २० ॥
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका कराला विकराला वीसवी वज्रा कही है ॥ २१ ॥ त्रिकोणा पंचकोणा सुदीर्घा अखिलार्त्तिदा समा भीमबला
आभोग्रा तथा आखिरकी दीप्तप्राया ॥ २२ ॥ इस प्रकार तुमसे घोर नरक कोटि नामसे कहीं यह अट्ठाईस पापोंकी यातना हैं ॥ २३ ॥ उनमेंसे क्रमसे पांच

घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ॥ अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पंचमी ॥ १८ ॥ षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी
च भयानका ॥ अष्टमी कालरात्रिश्च नवमी च भयोत्कटा ॥१९॥ दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः ॥ चण्डकोलाहलाचान्या
प्रचण्डा चण्डनायिका ॥ २० ॥ पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका ॥ कराला विकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता ॥ २१ ॥
त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा ॥ समा भीमबलाभोग्रा दीप्तप्रायेति चान्तिमी ॥२२॥ इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः
॥ अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मिकाः ॥२३॥ तासां क्रमेण विज्ञेयाः पंच पञ्चैव नायकाः ॥ प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतस्सं
निबोधत ॥ २४ ॥ रौरवः प्रथमस्तेषां रुवंते यत्र देहिनः ॥ महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदंति च ॥ २५ ॥ ततश्शीतं तथा चोष्णं
पंचाद्या नायकास्स्मृताः ॥ सुघोरस्सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः २६ ॥ महातमो विलोमश्च विलोपश्चापि कंटकः ॥ तीव्रवेगः
करालश्च विकरालः प्रकंपनः ॥ २७ ॥ महावक्रश्च कालश्च कालसूत्रः प्रगर्जनः ॥ सूचीमुखस्सुनेतिश्च खादकस्सुप्रपीडनः ॥ २८ ॥

पांच नायक यातना जाननीं इनमेंसे सब कोटियोंमें प्रत्येक नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २४ ॥ उनमेंसे पहला रौरव है जहाँ प्राणी रोते हैं महारौरवकी पीडासे बडे
पुरुष भी रुदन करते हैं ॥ २५ ॥ तब शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक हैं सुघोर सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा है ॥ २६ ॥ महातम, विलोम,
विलोप, कंटक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकंपन ॥ २७ ॥ महावज्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन ॥ २८ ॥

कुंभीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित ॥ २९ ॥ तीक्ष्णतुंड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजंतु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव ॥ ३० ॥ उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन ॥ ३१ ॥ और मेघ, वृष, शाल्म, सिंह, व्याघ्र, हाथीके मुखवाले, श्वान, सूकर, बकरे, भैंसे, घूंस, कोयल, भेडियेके मुखवाले ॥ ३२ ॥ मगर, कुंभीन, नक्र नामवाले, सर्प, कच्छप, कागनामक, गिद्ध, उल्लू, हलौक नामवाले, गीदड, ऊंट, कैंकडेनामवाले ॥ ३३ ॥ मेंडक, पूतिवक्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमिगन्धि, वपु ॥ ३४ ॥ अग्नीध्र,

कुंभीपाकस्सुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुणः ॥ अंगारराशिभवनं मेरुरसृक्प्रहितस्ततः ॥ २९ ॥ तीक्ष्णतुण्डश्च शकुनिर्महासंवर्तकः क्रतुः ॥
तप्तजंतुः पंकलेपः प्रतिमांसस्त्रपूद्भवः ॥ ३० ॥ उच्छ्वासस्सुनिरुच्छ्वासो सुदीर्घः कूटशाल्मलिः ॥ दुरिष्टस्सुमहावादः प्रवाहस्सुप्रतापनः
॥ ३१ ॥ ततो मेघो वृषः शाल्मस्सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ श्वसूकराजमहिषघूककोक वृकाननाः ॥ ३२ ॥ ग्राहकुंभीननक्राख्यास्सर्प
कूर्माख्यवायसाः ॥ गृध्रोलूकहलौकाख्याः शार्दूलक्रथकर्कटाः ॥३३॥ मंडूकाः पूतिवक्राश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकाः ॥ कणधूम्रस्तथाग्निश्च
कृमिगन्धिवपुस्तथा ॥ ३४ ॥ अग्नीध्रश्चाप्रतिष्ठश्च रुधिराभश्श्वभोजनः ॥ लाला भेक्षांत्रभक्षौ च सर्वभक्षः सुदारुणः ॥ ३५ ॥ कंटकस्सु
विशालश्च विकटः कटपूतनः ॥ अंबरीषः कटाहश्च कष्टा वैतरणी नदी ॥ ३६ ॥ सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः ॥ असितालवनं
घोरमस्थिभंगः सुपूरणः ॥ ३७ ॥ विलातसोऽसुयंत्रोऽपि कूटपाशः प्रमर्दनः ॥ महाचूर्ण्णोऽसुचूर्ण्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा ॥ ३८ ॥
पर्वतः क्षुरधारा च तथा यमलपर्वतः ॥ मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूपश्च शीतलः ॥ ३९ ॥ मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलांगलम् ॥
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम् ॥ ४० ॥

अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अंत्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण ॥ ३५ ॥ कंटक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अंबरीष, कटाह, कष्टदायक, वैतरणी नदी ॥ ३६ ॥ सुतप्तलोहशयन, एकवाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर, अस्थिभंग, सुपूरण ॥ ३७ ॥ विलातस, असुयंत्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय ॥ ३८ ॥ पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्र, विष्ठा, आसुओंका कूप, क्षारकूप, शीतल ॥ ३९ ॥ मूसल ऊखल यंत्र, शिलाशकट,

लांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशकटमंडप ॥ ४० ॥ संमोह, अस्थिभंग, तप्त, चलमय, गुड, बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, समल, मलात ॥ ४१ ॥ हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर, तम ॥ ४२ ॥ यह क्रमसे सातसौ नरक हैं और प्रतिकोटिमेंसे पांच पांच नायक हैं ॥ ४३ ॥ रौरवके सौ नरक कहें हैं चालीस सौ महानरकमंडल कहा है ॥ ४४ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे नरकोंकी स्थिति संख्यापूर्वक कही वैराग्य और उसकी पापगतिको भी सुनो ॥४५॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ०सं० नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी

संमोहमस्थिभंगश्च तप्तश्चलमयो गुडम् ॥ बहुदुःखं महाक्लेशः कश्मलं समलं मलात् ॥ ४१॥ हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः ॥ ४२ ॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पंचपंचकम् ॥ कोटीनामानुपूर्व्येण पंच पंचैव नायकाः ॥ ४३ ॥ रौरवाय प्रबोध्यंते नरकाणां शतं स्मृतम् ॥ चत्वारिंशच्छतं प्रोक्तं महानरकमण्डलम् ॥ ४४ ॥ इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया ॥ प्रसंख्यानाच्च वैराग्यं शृणु पापगतिं च ताम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच॥ एषु पापाः प्रपच्यंते शोष्यंते नरकाग्निषु ॥ यातनाभिर्विचित्राभिरास्वकर्म्मक्षयाद्भृशम् ॥ १ ॥ स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौधास्यंति धातवः ॥ तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः ॥ २ ॥ सुगाढं हस्तयोर्बद्ध्वा ततश्शृंखलया नराः ॥ महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३ ॥ ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलंति किंकरैः ॥ दोलंतश्चातिवेगेन विसंज्ञा यांति योजनम् ॥ ४ ॥ अंतरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः ॥ पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः ॥ ५ ॥

बोले, इन नरकोंमें पापीलोग गिराये जाते हैं अनेक प्रकारकी यातनाओंसे अपने कर्मोंके नाश होनेतक अत्यन्त नरकाग्नियोंमें सुखाये जाते हैं ॥ १ ॥ जिस प्रकार धातुओंको अपने मलको दूर करनेके अर्थ अग्निमें रखते हैं इसी प्रकार पापी मनुष्योंको पापोंके नाश होनेके निमित्त अपने कर्मानुसार नरकोंमें गिराते हैं ॥ २ ॥ यमके दूत पापियोंके हाथोंको शृंखलासे दृढ बांधके तत्पश्चात् महावृक्षकी शाखाओंमें लटकाते हैं ॥ ३ ॥ तब वे सब यत्नसे यमके किंकरोंसे फेंके हुए कांपते हैं अतिवेगसे काँपते हुए चेतनारहित योजनोंतक जातेहैं ॥ ४ ॥ फिर महाबली यमके दूत आकाशमें स्थित हुए उनके पैरोंमें

सौभार लोहा बांधते हैं ॥ ५ ॥ उस बडे भारसे अत्यन्त ताडन कियेहुए मनुष्य अपने कर्मोंको स्मरण करते हैं और निश्चल मौन स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ फिर उन पापियोंको घोर किंकर चारोंतरफसे अंकुशोंसे अग्निके समान दारुण लोहेके दंडोंसे मारते हैं ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् बारम्बार अतिदीप्त अग्निके तीव्र अंगारोंसे सब शरीरमें लिप्त किये जातेहैं ॥ ८ ॥ अत्यन्तलिप्त होनेसे अंगसे छेदित और जर्जरीकृत फिर क्रमसे शिर आदि अंगोंको विदीर्णकर ॥ ९ ॥ पकान्नके समान तपे हुए लोहेके कडाहोंमें पकाये जाते हैं और विष्ठासे पूर्णकूपमें तथा कीडोंके समूहमें ॥ १० ॥ फिर मेद (चर्बी) लोहू पीवसे पूर्ण हुई

तेन भारेण महता प्रभृशं ताडिता नराः ॥ ध्यायंति स्वानि कर्म्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ ६ ॥ ततोऽकुशैरग्निवर्णैर्लोहदण्डैश्च
दारुणैः ॥ हन्यंते किंकरैर्घोरैस्समन्तात्पापकर्म्मिणः ॥ ७ ॥ ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः ॥ समततः प्रलिप्यंते तीव्रेण तु
पुनःपुनः ॥ ८ ॥ द्रुतेनात्यंतलिप्तेन कृत्तांगा जर्जरीकृताः ॥ पुनर्विदार्य्य चांगानि शिरसः प्रभृति क्रमात् ॥ ९ ॥ वृंताकवत्प्रपच्यंते
तप्तलोहकटाहकैः ॥ विष्ठापूर्णे तथा कूपे कृमीणां निचये पुनः ॥ १० ॥ मेदोऽसृक्पूयपूर्णायां वाप्यां क्षिप्यति ते पुनः ॥ भक्ष्यंते कृमि
भिस्तीक्ष्णैर्लोहतुंडैश्च वायसैः ॥ ११ ॥ श्वभिर्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रैरौद्रैश्च विकृताननैः ॥ पच्यंते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्तांगारराशिषु ॥ १२ ॥
भिन्नाः शूलैस्सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्म्मणा ॥ तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्म्मभिरात्मनः ॥ १३ ॥ तिला इव प्रपीड्यंते चक्राख्ये
जनपिंडकाः ॥ भ्रज्यंते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा ॥ १४ ॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनःपुनः ॥ बहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीड्यो
रसि पादयोः ॥ १५ ॥ यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्याति सर्वतः ॥ निश्शेषनरकेष्वेवं क्रमंति क्रमशो नराः ॥ १६ ॥

बाउडीमें उनको फेंकतेहैं और वे तीक्ष्ण कीडों तथा लोहेकी चोंचनेवाले कागोंसे खाये जाते हैं ॥ ११ ॥ कुत्ते डांस भेडिये तथा भयानक विकृत मुखवाले व्याघ्रादि जीवोंसे काटेजाते और जलतेहुए अंगारोंके ढेरमें मछलीके समान पकाये जाते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्य पापकर्मसे अतितीक्ष्ण त्रिशूलसे छेदन हुए अपने घोर कर्मोंसे कोह्लमें डालके ॥ १३ ॥ जैसे चक्र (कोह्ल) में तिलोंको वैसे मनुष्योंके शरीर पीसेजाते हैं फिर तप्त घाममें तथा अनेकप्रकार लोहेके बर्तनोंमें भूजे जातेहैं ॥ १४ ॥ तेलसे भरेहुए गरम कडाहोंमें बारम्बार हृदयमें पैरोंमें पीडा देके जिह्वाको पकाते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार शरीरकी बडी

यातना है और पापी मनुष्य सम्पूर्ण नरकोंमें क्रमसे जातेहैं ॥ १६ ॥ हे व्यासजी ! सब नरकोंमें यमकी यातना विचित्र और अति कष्टकी देनेवाली है
वहां यमके दूतोंसे सब अंगोंमें कष्ट दिया जाता है ॥ १७ ॥ जलतेहुए अंगारोंको लेके मुखमें भरके ताडन किया जाता है तत्पश्चात् दीप्त अंगारों (राख)
से तथा ताम्बेसे जलाया जाता है ॥ १८ ॥ फिर अत्यन्त तपायेहुए घृतसे तथा तेलसे उसका मुख भरके इधर उधरसे पीडादेके माराजाता है ॥ १९ ॥
कहीं कहीं विष्ठा और कृमि [कीडों] से पूर्यमाण हुए अतिउग्र प्रदीप्त लोह शाल्मलीको लिप्टाते हैं ॥ २० ॥ फिर जलतेहुए बडे घनोंसे पृष्ठदेशमें ताडन

नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा यमयातना ॥ याम्यैश्च दीयते व्यास सर्वांगेषु सुकष्टदा ॥ १७ ॥ ज्वलदंगारमादाय मुखमापूर्य्य ताड्यते ॥
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनःपुनः ॥ १८ ॥ घृतेनात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम् ॥ इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य्य हन्यते
॥ १९ ॥ विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि पूर्य्यमाणाः क्वचित्क्वचित् ॥ परिष्वजंति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् ॥ २० ॥ हन्यंते पृष्ठदेशे च
पुनर्दीप्तैर्महाघनैः ॥ दन्तुरेणादिकंठेन क्रकचेन बलीयसा ॥२१॥ शिरःप्रभृति पीडयंते घोरैः कर्म्मभिरात्मजैः ॥ खाद्यंते च स्वमांसानि
पीयते शोणितं स्वकम् ॥२२॥ अन्नं पानं न दत्तं यैस्सर्वदा स्वात्मपोषकैः ॥ इक्षुवत्ते प्रपीडयंते जर्जरीकृत्य मुद्गरैः ॥२३॥ असितालवने
घोरे छिद्यन्ते खण्डशस्ततः ॥ सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलाग्ररोपिताः ॥ २४ ॥ संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यंते न म्रियन्ति च ॥ तथा
च तच्छरीराणि सुखदुःखसहानि च ॥ २५ ॥ देहादुत्पाद्य मांसानि भिद्यंते स्वैश्च मुद्गरैः ॥ दंतुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ २६ ॥

कियेजाते हैं बडे दातोंवाले अति कंठवाले बलवान् आरोंसे ॥ २१ ॥ अपने घोर कर्मोंके कारण उनके मांस खाये जाते हैं और रुधिर पिया जाता है इस
प्रकार पापीजन पीडित होतेहैं ॥ २२ ॥ अपनी आत्माकेही पोषण करनेवाले जिन्होंने अन्नदान कभी नहीं दिया, वे मुद्गरोंसे कूटेहुए ईखके समान पेरे जाते
हैं ॥ २३ ॥ फिर घोर असितालवनमें खंडखंड होके छेदित होते हैं और सुइयोंसे सब अंग भिन्न होते हैं तथा तपायेहुए त्रिशूलपर रक्खे जाते हैं ॥२४॥
वे बहुत चलायेहुए क्लेशित होते हैं परन्तु मरते नहीं और उनके शरीर सुख दुःखके सहने योग्य होते हैं ॥ २५ ॥ बलवान् दंतुर आकारवाले घोर दूतोंने

मुद्गरोंसे देहसे मांस उखाडके भेदन कियेजाते हैं ॥ २६ ॥ निरुच्छासनामक नरकमें विना श्वांसके स्थित होते हैं और उच्छ्वासमें मनुष्य बालूके घरमें ताडन किये जाते हैं ॥ २७ ॥ और रौरव नरकमें रोतेहुए मनुष्य अनेक बंधोंसे पीडित होते हैं महारौरवकी पीडासे बडे पुरुष भी रुदन करते हैं ॥ २८ ॥ पैरोंमें मुखमें गुदामें शिरमें नेत्रोंमें मस्तकमें तीक्ष्ण घनोंसे तथा अतितप्त हुई लोहशंकु (लोहकी कीलों) से ताडन किये जाते हैं ॥ २९ ॥ और अतितप्त रेतेमें बारम्बार गिराये जाते हैं अत्यन्त तपेहुए जन्तु पंकमें फेंके हुए मनुष्य स्वरहीन होके रोते हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! कुंभीपाकनरकोंमें सब प्रकार असह्य

निरुछासे निरुछ्वासास्तिष्ठंति नरके चिरम् ॥ उत्ताड्यंते तथोछ्वासे वालुकासदने नराः ॥ २७ ॥ रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधै र्वधैः ॥ महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदंति च ॥ २८ ॥ पत्सु वक्रे गुदे मुंडे नेत्रयोश्चैव मस्तके ॥ निहन्यंते घनैस्तीक्ष्णैस्सुतप्तैर्लोहशंकुभिः ॥ २९ ॥ सुतप्तवालुकायां तु प्रयोज्यंते मुहुर्मुहुः ॥ जंतुपंके भृशं तप्ते क्षिताः क्रन्दंति विस्वरम् ॥ ३० ॥ कुंभीपाकेषु पच्यंते तप्ततैलेषु वै मुने ॥ पापिनः क्रूरकर्म्माणोऽसह्येषु सर्वथा पुनः ॥ ३१ ॥ लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यंते दुःखदेषु वै ॥ नानास्थानेषु च तथा नरकेषु पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः ॥ पापी पुण्यविहीनश्च ताड्यते यमकिंकरैः ॥ ३३ ॥ लोहकुम्भे विनिः क्षिताः श्वसन्तश्च शनैश्शनैः ॥ महाग्निना प्रपच्यंते स्वपापैरेव मानवाः ॥ ३४ ॥ दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्धा प्रपीड्यंते शिलासु च ॥ क्षिप्यंते चान्धकूपेषु दश्यंते भ्रमरैर्भृशम् ॥ ३९ ॥ कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाश्शतशो जर्जरीकृताः ॥ सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यंते तदनंतरम् ॥ ३६ ॥

तपायेहुए तेलमें क्रूरकर्मकरनेवाले पापियोंको पकाते हैं ॥ ३१ ॥ और उन पापियोंको अति दुःखदायक लालाभक्ष नरकोंमें तथा अनेक स्थानके नरकोंमें बारम्बार गिराते हैं ॥ ३२ ॥ पुण्यहीन पापीमनुष्य महाक्लेशदायक सूचीमुखनामक नरकमें यमके दासोंसे गिराया जाता है, और ताडन किया जाता है ॥ ॥ ३३ ॥ लोहकुंभमें गिराये हुए शनैः शनैः सांस लेते हुए मनुष्य अपने पापोंसे महाग्नि द्वारा पकाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ रस्सी आदिसे दृढ बांधके शिलाओंपर ताडन किये जाते हैं तथा अंधकूपोंमें फेंके जाते हैं और भ्रमरोंसे अत्यन्त डँसे जाते हैं ॥ ३५ ॥ कीडोंसे सब अंगोंमें विदीर्ण हुए सैकडों जगहोंसे

घायल हो तत्पश्चात् अतितप्त राखके कूपोंमें फेंके जाते हैं ॥ ३६ ॥ और इस महाज्वालनरकमें पापी दुःखी होकें रोतेहैं और उसकी लपटसे भस्म हुए इधर उधर दौडते हैं ॥ ३७ ॥ और मुखोंद्वारा पीठपर लाके कन्धेपै रखके बाहु तथा पृष्ठसे वा उन दोनोंके मध्यभागसे अतिवेगसे खींचके ॥ ३८ ॥ पापरज्जुसे अत्यन्त बांधेहुए सब पापी महाज्वालनरकमें बद्धपिंड हुए सब यातनाओंको देखतेहैं ॥ ३९ ॥ रस्सियोंसे बांधेहुए और कीचडसे लिपटेहुए अन्ने उपलोंकी व भूसीकी अग्निमें पकाये जाते हैं और मरते नहीं हैं ॥ ४० ॥ और वे कठोर शिलाओंपर बडी जोरसे जाते हुए सैकडों स्थानोंमें ताडन करके

महाज्वालेऽत्र नरके पापाः क्रन्दंति दुःखिताः ॥ इतश्चेतश्च धावंति दह्यमानास्तदर्चिषा ॥ ३७ ॥ पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्यां विन्यस्तस्कंधयोजिते ॥ तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ॥ ३८ ॥ बद्धाः परस्परं सर्वे सुभृशं पापरज्जुभिः ॥ बद्धपिंडास्तु दृश्यंते महाज्वाले तु यातनाः ॥ ३९ ॥ रज्जुभिर्वेष्टिताश्चैव प्रलिप्ताः कर्दमेन च ॥ करीषतुषवह्नौ च पच्यंते न म्रियंति च ॥ ४० ॥ सुतीक्ष्णं चरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च ॥ आस्फाल्य शतशः पापाः पच्यंते तृणवत्ततः ॥ ४१ ॥ शरीराभ्यंतरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः ॥ भक्ष्यंते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद्भृशम् ॥ ४२ ॥ कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसास्थिराशिषु ॥ तिष्ठंत्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥ ४३ ॥ तप्तेन वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते ॥ अधोमुखोर्ध्वपादाश्च तातप्यंते स्म वह्निना ॥ ४४ ॥ वदनांतः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम् ॥ ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताडच्यंते समुद्गरैः ॥ ४५ ॥

तृणके समान भूंजे जातेहैं ॥ ४१ ॥ शरीरके भीतर गयेहुए अनेक तीव्र मुखवाले कीडोंसे अपने देहके नाश होनेके कारण अत्यन्त भक्षण किये जातेहैं ॥ ॥ ४२ ॥ और कृमी (कीडों) के समूहमें फेंकेहुए तथा पीव मांस अस्थिके ढेरमें डालेहुए पर्वतोंसे पीडित हुए दुःखी मनसे स्थित रहतेहैं ॥ ४३ ॥ और तपेहुए वज्रलेपसे शरीर लिप्त होता है और नीचेको मुख तथा ऊपरको पैर करके अग्निसे तपाये जातेहैं ॥ ४४ ॥ वे मुखके भीतर डालीहुई अतितप्त

लोहेकी गदाको वेवस होके खातेहैं और यमदूतोंके मुद्गरोंसे ताडन किये जातेहैं ॥ ४५ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार बुरे कर्म करनेवाले नरकोंमें दुःख भोगतेहैं अब मैं पापी पुरुषोंके तत्त्वको वर्णन करताहूं ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सामान्यतोनरकगतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, झूंठे शास्त्रमें प्रवृत्त हुआ पुरुष द्विजिह्वाख्य नरकमें जाता है और जिह्वाके समान आधेकोसतक फैले हुए हलोंसे पीडित होता है ॥ १ ॥ जो क्रूर मनुष्य अपने माता पिता गुरुको ललकारता है वह कीडोंसे मिलेहुए विष्ठासे मुख भरके माराजाता है ॥ २ ॥ और जो

इत्थं व्यास कुकर्म्माणो नरकेषु पचंति हि ॥ वर्णयामि विवर्णत्वं तेषां तत्त्वाय कर्म्मिणाम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सामान्यतो नरकगतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति ॥ जिह्वार्द्धकोशविस्तीर्णहलैस्तीक्ष्णः प्रपीड्यते ॥ १ ॥ निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम् ॥ विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमापूर्य्य हन्यते ॥ २ ॥ ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान् ॥ विद्रवंति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमंति च ॥ ३ ॥ कामायोद्वर्तनाभ्यंगं स्नानपानाम्बुभोजनम् ॥ क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः ॥ ४ ॥ पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयंत्रादिपीडनैः ॥ निरयाग्निषु पच्यंते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५ ॥ तेनतेनैव रूपेण ताड्यंते पारदारिकाः ॥ गाढमालिंग्य ते नारीं सुततां लोहनिर्मिताम् ॥ ६ ॥ पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्ति समंततः ॥ दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिंगंति रुदंति च ॥ ७ ॥

शिवके मंदिर बाग बाउडी कूप सरोवरोंको तथा जहां मनुष्य रमण करतेहैं ऐसे ब्राह्मणके स्थानको तोडतेहैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य कामके निमित्त मदमें डूबेहुए उद्वर्तन उबटन स्नान पान जल भोजन क्रीडा मैथुन द्यूतको करतेहैं ॥ ४ ॥ वे अनेक प्रकारके घोर कोलू आदिके पीडनसे दुःखी किये जातेहैं और प्रलयकालपर्यन्त नरकाग्नियोंमें पडतेहैं ॥५॥ और दूसरोंकी स्त्रियोंसे प्रसंग करनेवाले पुरुष उसी रूपसे ताडन किये जातेहैं और वे तपेहुए लोहेकी बनी स्त्रीको जोरसे आलिंगनकर पीडित होतेहैं ॥ ६ ॥ पहलेके समान आकारवाले पुरुष सब ओरसे जलतेहैं और व्यभिचारिणी स्त्रीको वेगसे आलिंगन करके रोतेहैं ॥ ७ ॥

जो सत्पुरुषोंकी निन्दा करतेहैं उनके अग्निके समान तप्त लोहेकी कीलोंसे तथा ताम्बेकी कीलोंसे कान भरे जातेहैं ॥ ८ ॥ और फिर रांग सीसा
आरकूट (पीतल) गलाकर जलोंसे दूध वा तपेहुए तेज तेलसे अथवा वज्रलेपसे ॥ ९ ॥ क्रमानुसार कानोंको भरके सम्पूर्ण नरकोंमें क्रमसे यह सम्पूर्ण
यातना (वेदना) चारोंओरसे प्राप्त कराई जातीहै ॥ १० ॥ और सब इन्द्रियोंके पापोंसे तथा प्रत्येक शरीरके कियेहुए पापोंसे क्रमानुसार कडी यातना
मिलती है ॥ ११ ॥ जो मूढ स्पर्शदोषसे परस्त्रीको स्पर्श करते हैं उनका हाथ अग्निके समान लाल धूलिसे अत्यन्त पूर्ण किया जाता है ॥ १२ ॥ और

ये शृण्वंति सतां निंदां तेषां कर्णप्रपूरणम् ॥ अग्निवर्णैरयःकीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥ ८ ॥ त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनःपुनः ॥
सुतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा पुनः ॥९॥ क्रमादापूर्य्य कर्णांस्तु नरकेषु च यातनाः ॥ अनुक्रमेण सर्वेषु भवंत्येताः समंततः ॥ १० ॥
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः ॥ भवंति घोराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च ॥ ११ ॥ स्पर्शदोषेण ये मूढास्स्पृशंति च
परस्त्रियम् ॥ तेषां करोऽग्निवर्णाभिः पांशुभिः पूर्य्यंते भृशम् ॥ १२ ॥ तेषां क्षारादिभिस्सर्वैश्शरीरमनुलिप्यते ॥ यातनाश्च महाकष्टास्स
र्वेषु नरकेषु च ॥ १३ ॥ कुर्वन्ति पित्रोर्भ्रूकुटिं करनेत्राणि ये नराः ॥ वक्त्राणि तेषां सांतानि कीर्य्यंते शंकुभिर्दृढम् ॥ १४ ॥ यैरिन्द्रियै
र्नरा ये च विकुर्वंति परस्त्रियम् ॥ इन्द्रियाणि च तेषां वै विकुर्वंति तथैव च ॥ १५ ॥ परदारांश्च पश्यंति लुब्धास्स्तब्धेन चक्षुषा ॥
सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम् ॥ १६ ॥ क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वा इहैव यमयातनाः ॥ भवंति मुनिशार्दूल सत्यंसत्यं न संशयः
॥ १७ ॥ देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते ॥ लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्य्यंते ॥ १८ ॥

उनका शरीर सम्पूर्ण तप्त राख आदिसे लेपन किया जाता है और सब नरकोंमें बडी कष्टदायक पीडा मिलतीहै ॥ १३ ॥ जो मनुष्य माता पिताको
भृकुटी हाथ आंख दिखाते हैं उनके मुख ऊपरतक कीलोंसे दृढ भरे जाते हैं ॥ १४ ॥ जिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पराई स्त्रीको दूषित करतेहैं उनकी वही
इंद्रिय विकारको प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ जो लोभी चंचल नेत्रसे दूसरोंकी स्त्रियोंको देखते हैं आगके समान लाल हुई सुइयोंसे तथा गरम राख आदिसे
उनका नेत्र पूर्ण होता है ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यहांपर क्रमसे यमराजकी यातना प्राप्त होती हैं यह सत्य है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १७ ॥ जो पुरुष

देवता अग्नि गुरु ब्राह्मणोंको विनादिये खाते हैं उनकी जिह्वा तथा मुख लोहेकी सैकडों कीलोंसे पूर्ण किया जाता है ॥ १८॥ जो मनुष्य देवता और बागके
फूलोंको लोभसे हाथसे लेकर सूंघते हैं फिर शिरपर धारण करते हैं ॥ १९ ॥ उनका शिर तप्त लोहेके कीलोंसे ठोका जाताहै और उनकी नासिका बहुत
राख आदिसे अत्यन्त भरी जाती है ॥ २० ॥ जो मनुष्य महात्मा धर्मात्मा उपदेशकको तथा देवता अग्नि गुरु भक्तोंको तथा सनातन धर्मशास्त्रकी निन्दा
करते हैं ॥ २१ ॥ उनके हृदय कण्ठ तथा जिह्वामें और दांतोंकी सन्धियोंमें तालुमें ओंठोंमें नासिकामें मस्तक तथा सब अंगोंके जोडमें ॥ २२ ॥

ये देवारामपुष्पाणि लोभात्संगृह्य पाणिना ॥ जिघ्रंति च नरा भूयः शिरसा धारयंति च ॥ १९ ॥ आपूर्य्यंते शिरस्तेषां तप्तैर्लोहस्य
शंकुभिः ॥ नासिका वातिबहुलैस्ततः क्षारादिभिर्भृशम् ॥ २० ॥ ये निंदन्ति महात्मानं वाचकं धर्म्मदेशिकम् ॥ देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्म्म
शास्त्रं च शाश्वतम् ॥ २१ ॥ तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दंतसन्धिषु ॥ तालुन्योष्ठे नासिकायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु ॥ २२ ॥
अग्निवर्णास्तु तप्ताश्च त्रिशाखा लोहशंकवः ॥ आखिद्यंते च बहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ॥ २३ ॥ ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्य्यंते हि समं
ततः ॥ यातनाश्च महत्यो वै शरीरस्याति सर्वतः ॥ २४ ॥ अशेषनरकेष्वेव क्रमंति क्रमशः पुनः ॥ ये गृह्णन्ति परद्रव्यं पद्भ्यां विप्रं
स्पृशंति च ॥ २५ ॥ शिवोपकरणं गां च ज्ञानादिलिखितं च यत् ॥ हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्य्यंते समंततः ॥ २६ ॥ नरकेषु च
सर्वेषु विचित्रा देहयातनाः ॥ भवंति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्भवाः ॥ २७ ॥ शिवायतनपर्य्यंते देवारामेषु कुत्रचित् ॥ समुत्सृजंति
ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव च ॥ २८ ॥

आगके समान लाल तपीहुई तीन शिखावाली लोहेकी कीलैं मुद्गरोंसे ठोंकी जाती हैं ॥ २३ ॥ फिर पीछेसे जलती हुई राखसे सब अंगमें लेप कियाजाता
है और सब शरीरमें यातना प्राप्त होती हैं ॥ २४ ॥ जो पराये धनको लेते तथा पैरोंसे ब्राह्मणको छूते हैं, वे क्रमसे सम्पूर्ण नरकोंमें जाते हैं ॥ २५ ॥
और जो शिवके पूजासंबंधी वस्तुको तथा गाय और ज्ञानके लेख (पुस्तक) को पैरोंसे छूते हैं उनके हाथ पैर आदि कीलोंसे ठोके जाते हैं ॥ २६ ॥
और उनको संपूर्ण नरकोंमें बहुत कष्टदायक हाथ पैरोंकी कडी पीडा प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ जो पापी शिवके मंदिरकी सीमामें देवताके बागमें कहींपर

विष्ठा या मूत्र करते हैं ॥ २८ ॥ उनकी उपस्थेन्द्रिय अंडकोष सहित लोहेकी मुद्गरोंसे पीसी जाती हैं, तथा अग्निके समान लाल सुइयोंसे पूर्ण की जाती हैं ॥ २९ ॥ तब उस पापीकी गुदामें और लिंगमें बडी गरम राख तथा खारी वस्तु भली भांतिसे पूर्ण की जाती है ॥ ३० ॥ और ऐसी वेदना प्राप्त होती है जिससे मन तथा संपूर्ण इन्द्रियोंको दुःख होता है जो मनुष्य धनहोनेपर भी अतितृष्णासे दान नहीं करते ॥ ३१ ॥ समयपर घरमें आये हुए अतिथि (अभ्यागत) का तिरस्कार करते हैं, इस कारण वे पापको पाय अपवित्र नरकमें जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो कुत्ते और कौवोंको बलि न देके भोजन करतेहैं

तेषां शिश्नं सवृषण चूर्ण्यंते लोहमुद्गरैः ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तथा त्वापूर्य्यंते पुनः ॥ २९ ॥ ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनःपुनः ॥ द्रुतेन पूर्य्यंते गाढं गुदे शिश्ने च देहिनः ॥ ३० ॥ मनस्सर्वेन्द्रियाणां च यस्माद्दुःखं प्रजायते ॥ धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छंति तृष्णया ॥ ३१ ॥ अतिथिं चावमन्यंते काले प्राप्ते गृहाश्रमे ॥ तस्मात्ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छंति निरयेऽशुचौ ॥ ३२ ॥ येऽन्नं दत्त्वा हि भुंजंति न श्वभ्यस्सह वायसैः ॥ तेषां च विवृतं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम् ॥ ३३ ॥ कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥ उपद्रवैर्बहुविधैरुग्रैरंतः प्रपीड्यते ॥ ३४ ॥ श्यामश्च शबलश्चैव यममार्गानुरोधकौ ॥ यौ स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥ ३५ ॥ ये वा वरुणवायव्या याम्या नैर्ऋत्यवायसाः ॥ वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णंतु मे बलिम् ॥ ३६ ॥ शिवामभ्यर्च्य यत्नेन हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ शैवैर्मन्त्रैर्बलिं ये च ददंते न च ते यमम् ॥ ३७ ॥

उनका कंठ और मुख दो कीलोंसे ताडित होताहै ॥ ३३ ॥ और कीडोंसे तथा हिंसक जन्तुओंसे तथा लोहेकी चोंचवाले काकोंसे तथा अनेक प्रकारके उग्र उपद्रवोंसे भीतर पीडित होता है ॥ ३४ ॥ श्याम और शबल नामवाले यमराजके मार्गको रोकनेवाले जो दो श्वान हैं मैं उन दोनोंको बलि देता हूं वे दोनों इस बलिको ग्रहण करैं ॥ ३५ ॥ और जो पश्चिमके वायव्य दिशाके तथा उत्तर और नैर्ऋत्यके पुण्यात्मा काक हैं, वे मेरी बलिको ग्रहण करैं ॥ ३६ ॥ जो यत्नपूर्वक शिवको पूजके विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके शिवके मंत्रोंसे बलिदान करते हैं वे यमराजको नहीं देखते हैं ॥ ३७ ॥

और स्वर्गलोकको जाते हैं इस कारण प्रतिदिन चार हाथका मंडल करके गंध अक्ष तादिसे सुगंधित कर ॥ ३८ ॥ ईशान दिशामें धन्वन्तरिवैद्यको तथा पूर्वमें इन्द्रके निमित्त डालै उत्तरमें यमको पश्चिममें सुदक्षोमको तथा दक्षिणमें पितरोंको ॥ ३९ ॥ प्राच्य दिशामें आर्यमा (सूर्य) को भागदे द्वारदेशमें धाता और विधाताको भागदे ॥ ४० ॥ श्वानोंके लिये तथा श्वपतियोंके अर्थ तथा पक्षियोंके अर्थ भूमिपर रखदे देवताओंसे पितर और मनुष्योंसे प्रेत और भूतोंसे गुह्यकोंसे ॥ ४१ ॥ पक्षी कृमि कीटोंसे गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होता है स्वाहाकार स्वधाकार तीसरा वषट्कार ॥ ४२ ॥ तथा हंतकार यह

पश्यंति त्रिदिवं यांति तस्माद्द्याद्दिनेदिने ॥ मण्डलं चतुरस्रं तु कृत्वा गंधादिवासितम् ॥ ३८ ॥ धन्वन्तर्यर्थमीशान्यां प्राच्यामिन्द्राय निःक्षिपेत् ॥ याम्यां यमाय वारुण्यां सुदक्षोमाय दक्षिणे ॥ ३९ ॥ पितृभ्यस्तु विनिक्षिप्य प्राच्यामर्यमणे ततः ॥ धातुश्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिःक्षिपेत् ॥ ४० ॥ श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद्भुवि ॥ देवैः पितृमनुष्यैश्च प्रेतैर्भूतैस्सगुह्यकैः ॥ ४१ ॥ वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते ॥ स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः ॥ ४२ ॥ हंतकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्टयम् ॥ स्वाहाकारं स्तनं देवास्स्वधां च पितरस्तथा ॥ ४३ ॥ वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा ॥ हंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ॥ ४४ ॥ यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्विकाम् ॥ करोति सततं काले साग्नित्वायोपकल्प्यते ॥ ४५ ॥ यस्तां जहाति वा स्वस्थस्तामिस्रे स तु मज्जति ॥ तस्माद्दत्त्वा बलिं तेभ्यो द्वारस्थश्चिंतयेत्क्षणम् ॥ ४६ ॥ क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम् ॥ भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात् ॥ ४७ ॥

चारों गऊके स्तनोंमें हैं स्वाहाकार स्तनमें है इस स्तनमें देवता स्वाहाकारको पितर स्वधाको पान करतेहैं ॥ ४३ ॥ वषट्कारको और देवता तथा भूतेश्वर और हंतकारको मनुष्य निरंतर पान करते हैं ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य आनुपूर्विक इस गायके श्रद्धासे निरंतर समयपर स्वभोजन देताहै वह साग्नित्वके लिये कल्पना किया जाता है ॥ ४५ ॥ और जो उस गायको त्यागताहै वह अस्वस्थहो तामिस्र नरकमें डूबता है इस कारण उन सबोंको बलिदेकर क्षणमात्र द्वारपर स्थित होके विचारै ॥ ४६ ॥ और यथाशक्ति अपने भोजनमेंसे भूंखे अभ्यागतको वा एक ग्राममें निवासी मनुष्यको विधिपूर्वक श्रेष्ठ अन्नसे भोजन

करावै ॥ ४७ ॥ जिसके घरसे अभ्यागत आशाहीन होके लौटजाता है वह उसको पाप देके और पुण्यको लेके चला जाता है ॥ ४८ ॥ तत्पश्चात् वह मनुष्य स्वादिष्ट भोजनको करता हुआ बहुत समयतक शृंखलायुक्त जिह्वाके वेगसे विंधाहुआ रहता है ॥ ४९ ॥ और जिह्वाके मांसको उचेलके तिलमात्र प्रमाणसे जन्तुओंके खानेको दिया जाता है और उनके रुधिरको भेदन करके ॥ ५० ॥ सम्पूर्ण शरीर क्रमानुसार कोडोंसे पीडित होता है, और वह प्राणी भूँख प्यासके अतिकष्टसे चला जाता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पापियोंकी अनेक यातना हैं और अंतमें जो उनको प्रात होताहै उसे संक्षेपसे सुनो ॥५२॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ ४८ ॥ ततोऽन्नं प्रियमेवाश्नन्नरः शृंखलवान्पुनः ॥ जिह्वावेगेन विद्धोत्र चिरं कालं स तिष्ठति ॥ ४९ ॥ यतस्तं मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः ॥ खादितुं दीयते तेषां भित्त्वा चैव तु शोणितम् ॥ ५० ॥ निश्शेषतः कशाभिस्तु पीड्यते क्रमशः पुनः ॥ बुभुक्षयातिकष्टं हि तथायाति पिपासया ॥ ५१ ॥ एवमाद्या महाघोरा यातनाः पापकर्म्मणाम् ॥ अंते यत्प्रतिपन्नं हि तत्संक्षेपेण संशृणु ॥ ५२ ॥ यः करोति महापापं धर्म्मं चरति वै लघु ॥ धर्म्मं गुरुतरं वापि तथावस्थे तयोः शृणु ॥ ५३ ॥ सुकृतस्य फलं नोक्तं गुरुपापप्रभावतः ॥ न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वितः ॥ ५४ ॥ तथोद्विग्नोतिसंतप्तो न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम् ॥ अभावादग्रतोऽन्यस्य प्रतिकल्पं दिनेदिने ॥ ५५ ॥ पुमान्यो गुरुधर्म्माऽपि सोपवासो यथा गृही ॥ वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थितः ॥ ५६ ॥

जो पुरुष बडे पापको तथा थोडे धर्मको करता है अथवा बहुत धर्मको करता है उन दोनोंकी उस अवस्थाको सुनो ॥ ५३ ॥ बडे पापके प्रभावसे पुण्यका फल नहीं मिलता उस पापसे वह बहुत भोगोंमें फँसाहुआ भी उनमें सुख नहीं पाताहै ॥ ५४ ॥ और दुःखितहुआ तथा जलताहुआ वह भोजन योग्य पदार्थोंसे सुख नहीं मानताहै और अपनेको उनका अभाव मानकर दूसरोंके आगे देख दुःख पाता है ॥ ५५ ॥ जो बहुत धर्म करनेवाला है वह मनुष्य

उपवासी गृहस्थीके समान धनवान् होके नियममें स्थित होके अपनी पीडाको नहीं जानता है ॥ ५६ ॥ ऐसे अतिघोर पाप हैं जिनसे मनुष्य पृथ्वीपै वज्रसे ताडितहुए पर्वतके समान सैकडों प्रकारसे भेदको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले, हे प्रभो ! पापी मनुष्य बडे दुःखसे पीडित हो यमके मार्गमें जाते हैं और जिनसे सुखपूर्वक यममार्गसे जाते हैं उन धर्मोंको कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जो शुभ वा अशुभ कर्म किया है वह निश्चय ही भोगा जाता है अब मैं सुखके देनेवाले उन धर्मोंको कहता हूं

तानि पापानि घोराणि संति यैश्च नरो भुवि ॥ शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ॥ कृतपापा नरा यांति दुःखेन महतान्विताः ॥ यममार्गे सुखं यैश्च तान्धर्म्मान्वद मे प्रभो ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यमविचारतः ॥ शुभाशुभमथो वक्ष्ये तान्धर्म्मान्सुखदायकान् ॥ २ ॥ अत्र ये शुभकर्म्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः ॥ सुखेन ते नरा यांति यममार्गं भयावहम् ॥ ३ ॥ यः प्रदद्याद् द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुके ॥ स नरोऽश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ॥ ४ ॥ छत्रदानेन गच्छंति यथा छत्रेण देहिनः ॥ शिबिकायाः प्रदानेन तद्वथेन सुखं व्रजेत् ॥ ५ ॥ शय्यासनप्रदानेन सुखं याति सुविश्रमम् ॥ आरामच्छायाकर्तारो मार्गे वा वृक्षरोपकाः ॥ व्रजन्ति यमलोकं त आतपेपि गतक्लमाः ॥ ६ ॥ यांति पुष्पगयानेन पुष्पारामकरा नराः ॥ देवायतनकर्तारः क्रीडंति च गृहोदरे ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ इस संसारमें जो श्रेष्ठकर्म करनेवाले सौम्यचित्त दयालुपुरुष हैं वे सुखसे भयंकर यममार्गको जातेहैं ॥ ३ ॥ जो श्रेष्ठब्राह्मणोंको जूता लकडी खडाऊं देता है वह मनुष्य बडे घोडेपर चढके सुखसे यमलोकको जाताहै ॥ ४ ॥ और छातेके दानकरनेसे मनुष्य छातेसे यममार्गको जातेहैं और पालकीके प्रदान करनेसे रथसे सुखपूर्वक जातेहैं ॥ ५ ॥ और शय्या आसनके प्रदान करनेसे विश्राम करके सुखसे जातेहैं, बागकी छाया करनेवाले प्राणी मार्गमें वृक्षोंकी छायासे धूपमें विना कष्टके यमराजके लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥ और पुष्पोंके बाग बनानेवाले मनुष्य पुष्पकविमानसे जातेहैं देवताओंके मंदिर

बनानेवाले घरके भीतर क्रीडा करतेहैं ॥ ७ ॥ तथा जो संन्यासियोंके आश्रमको तथा अनाथोंके घर बनानेवालेहैं वे मंडपोंके भीतर खेलतेहैं ॥ ८ ॥ देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मणोंके तथा माता पिताके पूजनेवाले मनुष्य पूज्यमानहुए सुखपूर्वक यथेच्छित मार्गसे यमलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ९ ॥ और दीपके दान करनेवाले सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाश करतेहुए जातेहैं, और क्राथके रसादिके दान करनेसे नीरोगहो सुखसे जातेहैं ॥ १० ॥ गुरुकी शुश्रूषा करनेवाले मनुष्य विश्राम करतेहुए जातेहैं दुःखी अनाथ ब्राह्मणोंको देनेवाले सुखसे अपने घरकी समान जातेहैं ॥ ११ ॥ और गौके देनेवाले सब कामनासे पूर्णहुए

कर्तारश्च तथा ये च यतीनामाश्रमस्य च ॥ अनाथमण्डपानां तु क्रीडंति च गृहोदरे ॥ ८ ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः ॥
पूज्यमाना नरा यांति कामुकेन यथासुखम् ॥ ९ ॥ द्योतयंतो दिशस्सर्वा यांति दीपप्रदायिनः ॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यांति निरा
मयाः ॥ १० ॥ विश्राम्यमाणा गच्छंति गुरुशुश्रूषका नराः ॥ आतोद्यविप्रदातारस्सुखं यांति स्वके गृहे ॥ ११ ॥ सर्वकामसमृद्धेन
यथा गच्छंति गोप्रदाः ॥ अत्र दत्तान्नपानानि तान्याप्नोति नरः पथि ॥ १२ ॥ पादशौचप्रदानेन सजलेन पथा व्रजेत् ॥ पादाभ्यंगं
च यः कुर्यादश्वपृष्ठेन गच्छति ॥ १३ ॥ पादशौचं तथाभ्यंगं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ यो ददाति सदा व्यास नोपसर्पति तं यमः
॥ १४ ॥ हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन् ॥ रौप्यानडुत्स्रग्दानेन यमलोकं सुखेन सः ॥ १५ ॥ इत्येवमादिभिर्दानैस्सुखं
यांति यमालयम् ॥ स्वर्गे तु विविधान्भोगान्प्राप्नुवंति सदा नराः ॥ १६ ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥ सद्यः प्रीति
करं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम् ॥ १७ ॥

मार्गसे जातेहैं वहांपर मनुष्य मार्गमें अपने दियेहुए अन्नपानोंको पाता है ॥ १२ ॥ पाद्यके प्रदान करनेसे प्राणी जलवाले मार्गसे जाते हैं जो पैरोंकी मालिश (उबटन) करता है वह घोडेके पीठपर जाता है ॥ १३ ॥ हे व्यासजी ! पाद्य अभ्यंग दीप अन्न समीप गमन इनको जो दान करता है उसको यमराजका कष्ट नहीं प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ सुवर्ण और रत्नके प्रदानसे दुर्गों [किलों] को तरता हुआ जाता है और चांदीआदिके प्रदान करनेसे सुखसे यमलोकको जाता है ॥ १५ ॥ इन दानोंसे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोकको जातेहैं और स्वर्गमें सदा अनेकप्रकारके भोगोंको प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ सब दानोंमें अन्नदान

बडा कहा है, निरन्तर प्रीति करनेवाला मनोहर बलबुद्धिका बढानेवाला है ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्न दानके समान और कोई दान नहीं है अन्नसे प्राणी उत्पन्न होतेहैं और उसके अभावमें मरजाते हैं ॥ १८ ॥ रक्त मांस चर्बी वीर्य यह क्रमसे अन्नसे बढते हैं और वीर्यसे सब प्राणी होते हैं इस कारण यह संसार अन्नमय है ॥ १९ ॥ सुवर्ण रत्न घोडा हाथी स्त्री माला चंदन आदि समस्त पदार्थोंके प्राप्त होनेपर भी भूखसे व्याकुल हुए रमण नहीं करसकते ॥ २० ॥ गर्भाशयमें स्थित तथा उत्पन्न हुए बालक वृद्ध मध्यम देवता दानव राक्षसादि सब भोजनको चाहते हैं ॥ २१ ॥ क्षुधा सम्पूर्ण रोगोंमें प्रबल

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम ॥ अन्नाद्भवंति भूतानि तदभावे म्रियंति च ॥ १८ ॥ रक्तं मांसं वसा शुक्रं क्रमादन्नात्प्रवर्धते ॥ शुक्राद्भवंति भूतानि तस्मादन्नमयं जगत् ॥ १९ ॥ हेमरत्नाश्वनागेन्द्रैर्नारीस्रक्चंदनादिभिः ॥ समस्तैरपि संप्राप्तैर्न रमंति बुभुक्षिताः ॥ २० ॥ गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥ आहारमभिकांक्षंति देवदानवराक्षसाः ॥ २१ ॥ क्षुधा निश्शेषरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ स चान्नौषधिलेपेन नश्यतीह न संशयः ॥ २२ ॥ नास्ति क्षुधासमं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधा समः ॥ नास्त्यरोगसमं सौख्यं नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥२३॥ अत एव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम् ॥ तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियंते सर्वदेहिनः ॥ २४ ॥ अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः ॥ तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत् ॥ २५ ॥ यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते पुण्यसंचयम् ॥ अन्नप्रदातुस्तस्यार्द्धं कर्तुश्चार्द्धं न संशयः ॥ २६ ॥

व्याधि कही है, वह निस्सन्देह अन्नरूपी औषधिके लेप करनेसे नष्ट होती है ॥ २२ ॥ क्षुधाके समान कोई दुःख नहीं, क्षुधाके समान कोई रोग नहीं और नीरोगके समान सुख नहीं तथा क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥ इसी कारण अन्नदानमें बडा पुण्य कहा है, कारण कि क्षुधाग्निसे तप्तहुए सम्पूर्ण प्राणी मरजाते हैं ॥ २४ ॥ अन्नका देनेवाला शास्त्रोंमें प्राणदाता कहा है, और प्राणदाता सर्वस्व दान करनेवाला कहा है इस कारण अन्नके प्रदानसे सब दानोंका फल मिलता है ॥ २५ ॥ जिसके अन्नपानसे पुष्ट हुआ शरीर पुण्योंको करता वह आधा पुण्य अन्नके दाताका तथा आधा करने

वालेका होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ तीनोंलोकमें भोग स्त्री वाहनादि जितने रत्न हैं उन सबोंको अन्नदाता इस लोकमें तथा परलोकमें पाता
है ॥ २७ ॥ यह शरीर धर्म अर्थ काम मोक्षोंका परम साधन है इस कारण अन्नपानसे सदा अपने शरीरको पोषण करै ॥ २८ ॥ सबलोग सबमें प्रतिष्ठित
हुए अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं कि, अन्नके समान और कोई दान न हुआ न होगा ॥ २९ ॥ हे मुने ! अन्नसे यह सारा विश्व जगत् धारण किया
जाता है और लोकमें अन्नही बलदायक है और अन्नमें ही प्राण प्रतिष्ठित हैं ॥ ३० ॥ अपने ऐश्वर्यकी इच्छासे अपने कुटुम्बको पीडा देकर भी भिक्षुक

त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च ॥ अन्नदानप्रदस्सर्वमिहामुत्र च तल्लभेत् ॥ २७ ॥ धर्म्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसा
धनम् ॥ तस्मादन्नेन पानेन पालयेद्देहमात्मनः ॥ २८ ॥ अन्नमेव प्रशंसंति सर्वमेव प्रतिष्ठितम् ॥ अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भवि
ष्यति ॥ २९ ॥ अन्नेन धार्य्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने ॥ अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः ॥ ३० ॥ दातव्यं भिक्षवे चान्नं
ब्राह्मणाय महात्मने ॥ कुटुंबं पीडयित्वापि ह्यात्मनो भूतिमिच्छता ॥ ३१ ॥ विददाति निधिश्रेष्ठं यो दद्यादन्नमर्थिने ॥ ब्राह्मणाया
र्तरूपाय पारलौकिकमात्मनः ॥ ३२ ॥ अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन्काले द्विजमुपस्थितम् ॥ श्रांतमध्वनि वृत्त्यर्थं गृहस्थो गृहमागतम् ॥
॥ ३३ ॥ अन्नदः पूजयेद्व्यासः सुशीलस्तु विमत्सरः ॥ क्रोधमुत्पतितं हित्वा दिवि चेह महत्सुखम् ॥ ३४ ॥ नाभिनिंदेदधिगतं न
प्रणुद्यात्कथंचन ॥ अपि श्वपाके शुनि वा नान्नदानं प्रणश्यति ॥ ३६ ॥

तथा महात्मा ब्राह्मणको अन्न देना उचित है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य याचक ब्राह्मण तथा दुःखीके अर्थ अन्नदान करता है वह अपने परलोक सम्बन्धी
श्रेष्ठ निधिको देता है ॥ ३२ ॥ अपनी भूतिको चाहनेवाला गृहस्थ भोजनके समय प्राप्तहुए वृत्तिके अर्थ मार्गमें विश्राम करते हुए अपने घरपर आये हुए
ब्राह्मणको पूजै ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! जो सुशील ईर्षासे रहित भोजन देनेवाला उत्पन्न हुए क्रोधको त्यागके पूजता है वह यहां तथा स्वर्गमें बडे सुखको
पाता है ॥ ३४ ॥ प्राप्तहुए जीवको किसी प्रकार निन्दा न करै और न ललकारै श्वपाकमें और कुत्तेमें भी किया हुआ अन्नदान नष्ट नहीं होता है ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य विश्रान्त हुए पहले कभी न दीखे हुए तथा मार्गमें स्थित हुएको विना क्लेशके अन्न देता है वह समृद्धिको पाता है ॥ ३६ ॥ हे महामुने ! जो पितरोंको देवताओंको ब्राह्मणोंको अभ्यागतोंको भोजनसे सन्तुष्ट करता है उसको बडे पुण्यका फल मिलता है ॥ ३७ ॥ अन्नपान शूद्र तथा ब्राह्मणमें विशेष फलदायक होता है उस समय गोत्र चरण स्वाध्याय तथा देशको नहीं पूंछना चाहिये ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके मांगनेपर भोजन देता है वह प्रलयकालपर्यन्त परम स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ अन्नदानकर्ताको इस लोकमें वृक्ष सब कामनाके अनुसार फल देनेवाले होते हैं उसी प्रकार स्वर्गमें

श्रांतायादृष्टपूर्वाय ह्यन्नमध्वनि वर्तते ॥ यो दद्यादपरिक्लिष्टं स समृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ पितॄन्देवांस्तथा विप्रानतिथींश्च महामुने ॥
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ३७ ॥ अन्नं पानं च शूद्रेऽपि ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं
देशमेव च ॥ ३८ ॥ भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं च यः पुमान् ॥ स याति परमं स्वर्गं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ अन्नदस्य च
वृक्षाश्च सर्वकामफलान्विताः ॥ भवंतीह यथा विप्रा हर्षयुक्तास्त्रिविष्टपे ॥ ४० ॥ अन्नदानेन ये लोकास्स्वर्गे विरचिता मुने ॥
अन्नदातुर्महादिव्यास्ताञ्छृणुष्व महामुने ॥ ४१ ॥ भवनानि प्रकाशंते दिवि तेषां महात्मनाम् ॥ नानासंस्थानरूपाणि नानाकामान्वि
तानि च ॥ ४२ ॥ सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ॥ हेमवाप्यः शुभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः ॥ ४३ ॥ घोषयंति च
पानानि शुभान्यथ सहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यमयाश्शैला वासांस्याभरणानि च ॥ ४४ ॥ क्षीरं स्रवंत्यस्सरितस्तथैवाज्यस्य पर्वताः ॥
प्रासादाः पाण्डुराभासाश्शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ४५ ॥

हर्षयुक्त ब्राह्मण सब कामफलके देनेवाले होतेहैं ॥ ४० ॥ हे मुने ! हे महामुने ! अन्नदान करनेसे स्वर्गमें जो दिव्यलोक रचे हैं उनको सुनो ॥ ४१ ॥ उन महात्माओंके अनेक स्थानोंसे विचित्र तथा अनेकप्रकारकी कामनाओंसे युक्त गृह स्वर्गमें शोभित होतेहैं ॥ ४२ ॥ तथा भवनमें स्थित हुए वृक्ष सब कामानुसार फल देनेवाले होते हैं सुवर्णके बाउडी तथा शुभकूप सब और दीर्घिका (झीलै) होती हैं ॥ ४३ ॥ और सहस्रों स्थानोंसे जल शब्द करतेहैं तथा भक्ष्य भोज्यमय शैल वस्त्र आभूषण ॥ ४४ ॥ तथा दूधके प्रवाहवाली नदी घीके पर्वत श्वेतवर्णवाले महल सुवर्णके समान दीप्यमान शय्या होती हैं ॥ ४५ ॥

अन्नदानकर्ता ऐसे लोकोंको जातेहैं इस कारण जो इस लोकमें तथा परलोकमें अपने ऐश्वर्यको चाहे वह अन्नदानी होवै ॥ ४६ ॥ अन्न देनेवाले पुण्यात्माओंको यह बडी कान्तिवाले लोक प्राप्त होतेहैं इस कारण मनुष्योंको विशेषकर निश्चय अन्नदान करना चाहिये ॥ ४७ ॥ अन्न साक्षात् ब्रह्मा तथा अन्नही विष्णु अन्न स्वयम् शिवजीहैं इस कारण अन्नके समान कोई दान न हुआ न होगा ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य बडे पापको करके पीछेसे अन्नदान करता है वह सब पापोंसे छूटके स्वर्गलोकको जाता है ॥४९॥ अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र, आसन यह आठ दान प्रेतलोकमें अतिप्रशंसनीय

तानन्नदाश्च गच्छंति तस्मादन्नप्रदो भवेत् ॥ यदीच्छेदात्मनो भव्यमिह लोके परत्र च ॥ ४६ ॥ एते लोकाः पुण्यकृतामन्नदानां महाप्रभाः ॥ तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ अन्नं प्रजापतिस्साक्षादन्नं विष्णुस्स्वयं हरः ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं त भविष्यति ॥ ४८ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ४९ ॥ अन्नपानाश्वगोवस्त्रशय्याच्छत्रासनानि च ॥ प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥ ५० ॥ एवं दानविशेषेण धर्म्मराजपुरं नरः ॥ यस्माद्याति विमानेन तस्माद्दानं समाचरेत् ॥ ५१ ॥ एतदाख्यानमनघमन्नदानप्रभावतः ॥ यः पठेत्पाठयेदन्यान्स समृद्धः प्रजायते ॥ ५२ ॥ शृणुयाच्छ्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्यो महामुने ॥ अक्षय्यमन्नदानं च पितॄणामुपतिष्ठति ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायामन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा ॥ सर्वेषां जीवपुंजानां तर्प्पणं जीवनं स्मृतम् ॥ १ ॥

कहेहैं ॥ ५० ॥ मनुष्य इन दानोंके करनेसे विमानके द्वारा धर्मराजके नगरको प्राप्त होता है इस कारण अवश्य दानकरना उचित है ॥ ५१ ॥ जोमनुष्य अन्नदानके प्रभाववाले निष्पाप इस इतिहासको पढता है अथवा औरोंको पढाताहै वह धनवान् होताहै ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! जो श्राद्धमें अक्षय्य अन्नदानकी महिमाको सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है वह पितरोंके समीप प्राप्त होता है ॥५३॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० अन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले, पानीका दान सब दानोंमें बडा तथा श्रेष्ठ है सर्वदा सम्पूर्ण जीवोंका तृप्त करनेवाला

जिलानेवाला कहाहै ॥ १ ॥ इस कारण अति स्नेहसे पौका दान करना उचित है और जलाश्रयोंका बनाना बडे आनन्दका देनेवाला है ॥ २ ॥ इस लोकमें तथा परलोकमें आनन्ददायक होता है यह सत्य २ है इसमें कुछ सन्देह नहीं इस कारण मनुष्यको बाउडी तथा कुओंको बनवाना चाहिये ॥ ३॥ जलसे भराहुआ कूप नित्य पापकर्ममें प्रवृत्तहुए मनुष्यके आधे पापको हरण करता है ॥ ४ ॥ जिसकी झील (गुफा) अथवा सरोवरमें गाय ब्राह्मण साधु मनुष्य सदा जल पीतेहैं उसका वंश तरजाता है ॥ ५ ॥ गरमीके समयमें जिसका विना वर्जित पानी स्थित रहता है वह बडे दुःख तथा घोर कठिनताको कभी भी नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ बनवायेहुए सरोवरोंके जो गुण कहे हैं उनको मैं वर्णन करताहूं जो तालाब बनानेवाला मनुष्य है वह तीनों लोकोंमें सर्वत्र पूजित होता है ॥ ७ ॥ अथवा मित्रके घरमें मित्रके दुःखरहित मैत्री तथा कीर्त्तिका फैलानेवाला तालाबोंका बनाना अतिश्रेष्ठ कहाहै ॥८॥ जिसने अपने शुभकार्यमें सरोवर बनवाया है उसका अनन्त पुण्य होता है बुद्धिमान् पुरुष धर्म अर्थ कामोंको इससेही सफल कहते हैं ॥ ९ ॥ सरोवर चार प्रकारके भूतोंका परम आश्रय है तडाग आदि सब जलाशय उत्तम लक्ष्मीको प्रदान करते हैं ॥ १० ॥ देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस,

प्रपादानमतः कुर्यात्सुस्नेहादनिवारितम् ॥ जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकरं भवेत् ॥ २ ॥ इह लोके परे वापि सत्यं सत्यं न संशयः ॥
तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागान्कारयेन्नरः ॥ ३ ॥ अर्द्धं पापस्य हरति पुरुषस्य विकर्मणः ॥ कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः
॥ ४ ॥ सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये ॥ गावः पिबंति विप्राश्च साधवश्च नरास्सदा ॥ ५ ॥ निदाघकाले पानीयं यस्य
तिष्ठत्यवारितम् ॥ सुदुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते ॥ ६ ॥ तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः ॥ त्रिषु लोकेषु
सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ७ ॥ अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्रार्तिवर्जितम् ॥ कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥ ८ ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ तडागं सुकृते येन तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ९ ॥ चतुर्विधानां भूतानां तडागः
परमाश्रयः ॥ तडागादीनि सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥ देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसाः ॥ स्थावराणि च
भूतानि संश्रयंति जलाशयम् ॥ ११ ॥

स्थावर, भूत (प्राणी) आदि सब जलाशयको आश्रय करतेहैं ॥ ११ ॥ जिसके सरोवरमें वर्षाकालमें जल रहता है उसको अग्निहोत्रके समान फल होता है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है ॥ १२ ॥ जिसके सरोवरमें शरदृतुमें जल रहता है उसको सहस्र गौ देनेका फल मिलता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १३ ॥ और जिसके सरोवरमें हेमन्त तथा शिशिरऋतुमें जल ठहरता है वह बहुत सुवर्णदानके यज्ञका फल पाता है ॥ १४ ॥ तथा वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें जिसके सरोवरमें पानी रहता है उसको बहुत रात्रियोंके अश्वमेधका फल बुद्धिमान कहते हैं ॥ १५ ॥ हे मुने ! व्यासजी ! मैंने जीवोंको सन्तुष्ट करनेवाले

प्रावृड्तौ तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ॥ अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्याह चात्मभूः ॥ १२ ॥ शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ॥ गोसहस्रफलं तस्य भवेन्नैवात्र संशयः ॥ १३ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति ॥ स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ १४ ॥ वसंते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति ॥ अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥ मुने व्यासाथ वृक्षाणां रोपणे च गुणाञ्छृणु ॥ प्रोक्तं जलाशयफलं जीवप्रीणनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशांस्तु तारयेत् ॥ कांतारे वृक्षरोपी यस्तस्माद्वृक्षांस्तु रोपयेत् ॥ १७ ॥ तत्र पुत्रा भवंत्येते पादपा नात्र संशयः ॥ परं लोकं गतस्सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान् ॥ १८ ॥ पुष्पैस्सुरगणान्सर्वान्फलैश्चापि तथा पितॄन् ॥ छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयंति महीरुहाः ॥ १९ ॥ किन्नरोरगरक्षांसि देवगंधर्वमानवाः ॥ तथैवर्षिगणाश्चैव संश्रयंति महीरुहान् ॥ २० ॥

जलाशयका फल कह दिया अब वृक्षोंके लगानेके गुणोंको सुनो ॥ १६ ॥ जो वनमें वृक्षोंको लगाता है वह बीतेहुए तथा आनेवाले सम्पूर्ण पितृवंशोंको तारता है इस कारण अवश्य वृक्षोंको लगवाना चाहिये ॥ १७ ॥ यह लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्ममें उसके पुत्र होते हैं इसमें संशय नहीं और वह भी मृत्युको प्राप्त होके अक्षयलोकोंको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ पुष्पोंसे समस्त देवगणोंको तथा फलोंसे पितरोंको छायासे अतिथियोंको इस प्रकार वृक्ष सबोंको पूजते हैं ॥ १९ ॥ किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषिगण यह सब वृक्षोंको आश्रय करते हैं ॥ २० ॥

लोकमें पुष्पितहुए तथा फलेहुए वृक्ष मनुष्योंको तृप्त करतेहैं इससे वे इस लोक तथा परलोकमें धर्मके पुत्र कहेहैं ॥ २१ ॥ सरोवर बनानेवाला बाग लगाने
वाला पंचयज्ञ करनेवाला जो द्विज है तथा जो सत्यवादी पुरुष है वह स्वर्गसे कदापि नहीं गिरता ॥ २२ ॥ सत्यही परब्रह्म है सत्यही परम तप है सत्यही
परम यज्ञ है और सत्यही परम शास्त्रहै ॥ २३ ॥ सत्यही सोतेहुओंमें जागता है सत्यही परमपद है सत्यनेही पृथ्वी धारण की है सत्यमेंही सब कुछ स्थित
है ॥ २४ ॥ तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि, पितरोंके पूजन जल विद्या आदि सब सत्यमेंही प्रतिष्ठित हैं ॥ २५ ॥ सत्यही यज्ञ तप दान ब्रह्मचर्य है और

पुष्पिताः फलवंतश्च तर्पयंतीह मानवान् ॥ इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥ २१ ॥ तडागकृद्वृक्षरोपी चेष्टयज्ञश्च यो
द्विजः ॥ एते स्वर्गान्न हीयंते ये चान्ये सत्यवादिनः ॥ २२ ॥ सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः ॥ सत्यमेव परो यज्ञस्सत्यमेव परं
श्रुतम् ॥ २३ ॥ सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ॥ सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥ तपो यज्ञश्च पुण्यं
च देवर्षिपितृपूजने ॥ आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २५ ॥ सत्यं यज्ञस्तपो दानं मंत्रा देवी सरस्वती ॥ ब्रह्मचर्य्यं
तथा सत्यमोंकारस्सत्यमेव च ॥ २६ ॥ सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ॥ सत्येनाग्निर्निर्दहति स्वर्गस्सत्येन तिष्ठति ॥ २७ ॥
पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ सत्येन वहते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयम् ॥ २८ ॥ अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ॥
लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ॥ २९ ॥ सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः ॥ प्रीयंते सत्यतस्सर्वे लोकाश्च सचराचराः ॥
॥ ३० ॥ सत्यमाहुः परं धर्म्मं सत्यमाहुः परं पदम् ॥ सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत् ॥ ३१ ॥

सत्यही ओंकार है और सत्यही मन्त्रवाली देवी सरस्वती है ॥ २६ ॥ सत्यसेही पवन चलता है सत्यसे सूर्य तपता है सत्यसे अग्नि जलता है सत्यसे स्वर्ग
मिलता है ॥ २७ ॥ सब वेदोंका पालन तथा संपूर्ण तीर्थोंमें स्नान करना आदि सत्यसे सब मिलता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २८ ॥ सहस्रों अश्वमेध
तथा लक्षों और यज्ञोंको तराजूमें एकओर रक्खो और एकओर सत्यको रक्खो तो सत्यहीमें विशेष होगा ॥ २९ ॥ सत्यसे देवता पितर मनुष्य सर्प राक्षस
आदि चर अचर सहित सम्पूर्ण लोक सत्यसेही प्रसन्न होतेहैं ॥ ३० ॥ सत्यही परमधर्म कहा है सत्यही परमपद कहा है और सत्यही परब्रह्म कहा है इस

कारण सदा सत्यको बोलै ॥ ३१ ॥ सत्यमें तत्परहुए मुनि अतिकठिन तप करके तथा सत्यरूपी धर्ममें प्रवृत्तहुए सिद्ध यह सब स्वर्गको प्राप्त हुएहैं ॥ ३२ ॥
अप्सराओंसे प्रविष्टहुए विमानोंसहित परिमाताओंको सदा सत्य कहना चाहिये कारण कि—सत्यसे अधिक कोई धर्म नहीं है ॥ ३३ ॥ अगाध बडे सिद्ध
पवित्र ह्रद सत्यरूपी तीर्थमें मनके सहित स्नान करना चाहिये वह परमस्थान कहा है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अपने लिये वा पराये लिये वा पुत्रके लियेभी
झूंठ नहीं बोलतेहैं वे मनुष्य स्वर्गके गामी होते हैं ॥ ३५ ॥ वेद यज्ञ तथा मन्त्र यह असत्यवादी ब्राह्मणोंमें नहीं शोभा देतेहैं इस कारण नित्य सत्य बोलै

मुनयस्सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ सत्यधर्मरतास्सिद्धास्ततस्स्वर्गं च ते गताः ॥ ३२ ॥ अप्सरोगणसंविष्टैर्विमानैः परिमात
भिः ॥ वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ॥ ३३ ॥ अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे ॥ स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं
तत्परमं स्मृतम् ॥ ३४ ॥ आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः ॥ अनृतं ये न भाषंते ते नरास्स्वर्गगामिनः ॥ ३५ ॥ वेदा
यज्ञास्तथा मंत्रास्संति विप्रेषु नित्यशः ॥ नोभांत्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥ ३६ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ तपसो मे
फलं ब्रूहि पुनरेव विशेषतः ॥ सर्वेषां चैव वर्णानां ब्राह्मणानां तपोधन ॥ ३७ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ प्रवक्ष्यामि तपोऽध्यायं सर्व
कामार्थसाधकम् ॥ सुदुश्चरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३८ ॥ तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम् ॥ तपोरता हि ये
नित्यं मोदंते सह दैवतैः ॥ ३९ ॥ तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ॥ तपसा प्राप्यते कामस्तपस्सर्वार्थसाधनम् ॥ ४० ॥
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ॥ ४१ ॥

॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले, हे तपोधन ! सब वर्णोंके तथा ब्राह्मणोंके तपके फलको मुझसे फिर कहो ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारजी बोले, संपूर्ण काम अर्थका
साधक द्विजातियोंको कठिनतासे करने योग्य तपके अध्यायको कहताहूं सो कहतेहुए मुझसे सुनो ॥ ३८ ॥ तपही बडा कहा है तपसेही अतिफल मिलता
है जो नित्य तपमें प्रवृत्तहैं वे देवताओंके सहित आनन्द करतेहैं ॥ ३९ ॥ तपसे स्वर्ग मिलता है और तप हीसे यश मिलता है तपसे काम प्राप्त होता है तपही
समस्त अर्थोंका साधनहै ॥ ४० ॥ तपसे मोक्ष प्राप्त होता है तपसे ज्ञान तथा विज्ञानकी सम्पत्ति मिलती है तपसे सौभाग्य और रूप मिलता है ॥ ४१ ॥

मनुष्य तपसे अनेकप्रकारकी वस्तुओंको पाता है बहुत क्या ? जो जो मनसे इच्छा करता है सो सब तपसे मिलजाता है ॥ ४२ ॥ विना तपसे कदापि ब्रह्मलोकको नहीं जासकते विना तपसे परमेश्वर शिवजीभी नहीं प्राप्त होसकते ॥ ४३ ॥ मनुष्य जिस कार्यको उद्देश्य करके तप करता है वह सब इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ मदिराको पान करनेवाला पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला ब्रह्महत्या करनेवाला गुरुपत्नीसे गमन करनेवालाभी तपसे तरजाता है और सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४५ ॥ सबोंके स्वामी शिव तथा सनातन विष्णु ब्रह्मा अग्नि इन्द्र और जो कोई तपसे युक्तहैं

नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः ॥ तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥ ४२ ॥ नातप्ततपसो यांति ब्रह्मलोकं कदाचन ॥ नातप्ततपसां प्राप्यश्शंकरः परमेश्वरः ॥ ४३ ॥ यत्काय किंचिदास्थाय पुरुषस्तपते तपः ॥ तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥ ॥ ४४ ॥ सुरापः पारदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ तपसा तरते सव सर्वतश्च विमुंचति ॥ ४५ ॥ अपि सर्वेश्वरःस्थाणुर्विष्णुश्चैव सनातनः ॥ ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्विताः ॥ ४६ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ तपसा दिवि मोदंते समेता दैवतैस्सह ॥ ४७ ॥ तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्रस्सुरेश्वरः ॥ तपसाऽपालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा ॥ ४८ ॥ सूर्य्या चन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहिते रतौ ॥ तपसैव प्रकाशंते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ ४९ ॥ न चास्ति तत्सुखं लोके यद्विना तपसा किल ॥ तपसैव सुखं सर्वमिति वेदविदो विदुः ॥ ५० ॥ ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपवत्त्वं तथैव च ॥ सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम् ॥ ५१ ॥ तपसा सृज्यते विश्वं ब्रह्मा विश्वं विना श्रमम् ॥ पाति विष्णुर्हरोऽप्यत्ति धत्ते शेषोऽखिलां महीम् ॥ ५२ ॥

॥ ४६ ॥ ऊर्ध्वरेतवाले अठासी सहस्र जो मुनि हैं वे सब तपसे देवताओंके सहित स्वर्गलोकमें आनंद करते हैं ॥ ४७ ॥ तपसे राज्य मिलता है और तपसे सुरेश्वर इन्द्रने प्रतिदिन सबको पालन किया है ॥ ४८ ॥ सब लोकोंके हित करनेवाले सूर्य और चन्द्रदेव नक्षत्र और ग्रहादि तपसेही प्रकाशित होते हैं ॥ ४९ ॥ संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है जो विना तपके प्राप्त होता है तपसेही सब सुख मिलता है इस प्रकार वेदके जाननेवाले कहते हैं ॥ ॥ ५० ॥ ज्ञान विज्ञान आरोग्य तथा रूपवत्ता सौभाग्य सुखादि तपसे निरंतर प्राप्त होतेहैं ॥ ५१ ॥ तपसे ब्रह्माजी विना परिश्रमके संसारको रचतेहैं

तथा विष्णु रक्षा करते हैं और शिवजी संहार करते हैं शेषजी सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! तपसेही गाधिके पुत्र विश्वामित्रजी क्षत्रिय ब्राह्मण हुए और तीनों लोकमें प्रसिद्ध होगये ॥ ५३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! यह तपका उत्तम माहात्म्य तुमसे कहा अब तपसे भी अतिश्रेष्ठ अध्ययनके माहात्म्यको श्रवण करो ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० तपोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने ! जो वनमें कन्द मूल फल खाके वनमें तप करता है उसके समान एक ऋचाके पढनेसे वह फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके पढनेसे

विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ॥ क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवे त्विदम् ॥ ५३ ॥ इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ शृण्वध्ययनमाहात्म्यं तपसोऽधिकमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां तपोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः ॥ योऽधीते ऋचमेकां हि फलं स्यात्तत्समं मुने ॥ १ ॥ श्रुतेरध्ययनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः ॥ तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते ॥ २ ॥ जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ॥ विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥ ३ ॥ तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः ॥ सम्बोधयति लोकं तं तस्मात्पूज्यः पुराणगः ॥ ४ ॥ सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठः पुराणवित् ॥ पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम् ॥ ॥ ५ ॥ मर्त्यबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञे कदाचन ॥ पुराणज्ञस्सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः ॥ ६ ॥

जो पुण्य प्राप्त करता है उसके पढनेसे दूना फल प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे मुने ! जिस प्रकार विना सूर्य और चन्द्रमाके जगत् प्रकाशरहित हो जाताहै उसी प्रकार विना पुराणके सब संसार प्रकाशहीन होता है इस कारण सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये ॥ ३ ॥ सदा अज्ञानसे तपेहुए लोकको शास्त्रसे समझता है और उनके अज्ञानको निराकरण करता है इस कारण पुराणवक्ता पूजनीय है ॥ ४ ॥ समस्त पात्रोंके मध्यमें पुराणवेत्ता अतिश्रेष्ठ है पतनसे रक्षा करता है इस कारण इसे पात्र कहा है ॥ ५ ॥ पुराणके जाननेवालोमें मनुष्यबुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिये कारण कि पुराणवेत्ता सर्वज्ञ

ब्रह्मा विष्णु शिव गुरु होता है ॥ ६ ॥ परलोकमें तथा इस लोकमें कल्याणके अर्थ धन धान्य सुवर्ण अनेकवस्त्र आदि पुराणके जाननेवालेको देना चाहिये ॥ ७ ॥ जो सज्जन पुराणके जाननेवाले सुपात्रको श्रेष्ठ पदार्थ बडे प्रेमसे अर्पण करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष सुपात्रके निमित्त भूमी गौ रथ हाथी शोभन घोडोंको देता है उसके पुण्यका फल सुनो ॥ ९ ॥ वह मनुष्य परलोक तथा इस जन्ममें अक्षय सब मनोरथोंको और अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है ॥ १० ॥ जो जुतीहुई तथा शुभफल देनेवाली भूमिको देता है वह अपने दश पहले तथा दश अगले वंशोंको तारता है

धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च ॥ देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्म्मणे ॥ ७ ॥ यो ददाति महाप्रीत्या पुराणज्ञाय सज्जनः ॥ पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम् ॥ ८ ॥ महीं गां वा स्यंदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान् ॥ यः प्रयच्छति पात्राय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९ ॥ अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्मनि ॥ अश्वमेधमखस्यापि स फलं लभते पुमान् ॥ १० ॥ महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टां फलवतीं शुभाम् ॥ स तारयति वै वंश्यान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ११ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्कामानंते दिव्यशरीरवान् ॥ विमानेन च दिव्येन शिवलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥ न यज्ञैस्तुष्टिमायांति देवाः प्रोक्षणकैरपि ॥ बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः ॥ १३ ॥ शंभोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम् ॥ विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फलम् ॥ १४ ॥ राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः ॥ सूर्यलोकं च भित्त्वाशु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १५ ॥ स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले ॥ भुंक्ते निष्कंटकं भोगान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ और इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगके अन्तमें सुन्दर शरीर पाय दिव्य विमानसे वह शिवलोकको पाता है ॥ १२ ॥ सब देवता इस प्रकार प्रोक्षण युक्त यज्ञोंसे तथा भेटोंसे पुष्पपूजासे संतुष्टिको नहीं प्राप्त होते हैं कि जिस प्रकार पुस्तक बांचनेसे प्रसन्न होतेहैं ॥ १३ ॥ जो शिवके मंदिरमें अथवा विष्णुके मंदिरमें वा सूर्यके अथवा किसी देवताके मंदिरमें धर्मपुस्तक बँचवाता है उसका भी फल सुनो ॥ १४ ॥ वह मनुष्य राजसूय अश्वमेध यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है और वह सूर्यलोकको भेदन करके ब्रह्मलोकको जाता है ॥ १५ ॥ वह तहां सैकडों कल्पोंतक रहके पृथ्वीपर राजा होता है और निष्कंटक

होके भोगोंको भोगता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १६ ॥ सैकडों अश्वमेधोंका जो फल कहा है उसके समान वह फलको पाता है जो देवताके आगे जप करता है ॥ १७ ॥ शिवजीके शुभमंदिरमें इतिहास और पुराणगाथाके विना शिव तथा और देवताओंके प्रसन्न करनेका और कोई उपाय नहीं ॥ १८ ॥ इस कारण सब यत्नसे पुराणकी पुस्तकका पढना तथा प्रेमसे उसका श्रवण करना चाहिये वह सब कामनाओंके फलका देनेवाला है ॥ १९ ॥ शिवके पुराण सुननेसे मनुष्य निष्पाप होता है और अतिभोगोंको भोगके शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ राजसूययज्ञसे तथा सौ अग्निष्टोम यज्ञ करनेसे जो

अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ॥ १७ ॥ इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोरायतने शुभे ॥ नान्यत्प्रीतिकरं शंभोस्तथान्येषां दिवौकसाम् ॥ १८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् ॥ तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम् ॥ १९ ॥ पुराणश्रवणाच्छंभोर्निष्पापो जायते नरः ॥ भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ॥ तत्पुण्यं लभते शंभोः कथाश्रवणमात्रतः ॥ २१ ॥ सर्वतीर्थावगाहेन गवां कोटिप्रदानतः ॥ तत् फलं लभते शंभोः कथाश्रवणतो मुने ॥ २२ ॥ ये शृण्वंति कथां शंभोस्सदा भुवनपावनीम् ॥ ते मनुष्या न मंतव्या रुद्रा एव न संशयः ॥ २३ ॥ शृण्वतां शिवसत्कीर्तिं सतां कीर्तयतां च ताम् ॥ पदाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥ २४ ॥ गंतुं निःश्रेयसं स्थानं येऽभिवांछन्ति देहिनः ॥ कथां पौराणिकीं शैवीं भक्त्या शृण्वंतु ते सदा ॥ २५ ॥ कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तस्सदा भवेत् ॥ नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम् ॥ २६ ॥

पुण्य होता है वह पुण्य शिवकी कथा सुननेसे मिलता है ॥ २१ ॥ हे मुने ! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा कोटिगायोंके दान करनेसे जो पुण्य होता है मनुष्य वह पुण्य शिवकी कथा सुननेसे पाता है ॥२२॥ जो मनुष्य लोकोंको पवित्र करनेवाली शिवजीकी कथाको सुनते हैं वे वास्तवमें मनुष्य नहीं मानने चाहिये किन्तु रुद्रही हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ शिवकी सुन्दर कीर्तिके सुननेवाले तथा कहनेवालोंके चरणकमलोंकी धूलिकोही मुनिगणोंने तीर्थ कहा है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य कल्याण करनेवाले स्थानको जाना चाहते हैं वे सदा भक्तिसे शिवपुराणकी कथाको सुनैं ॥ २५ ॥ यदि सदा पुराणकी

कथा सुननेमें असमर्थ हो तो प्रतिदिन जितेन्द्रियहोके मुहूर्त (क्षण) मात्र सुनै ॥ २६ ॥ हे मुने ! यदि मनुष्य प्रतिदिनके सुननेमें असमर्थ हो तो पुण्यमास आदिमें शिवकी कथा सुनै ॥ २७ ॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य शिवकी कथाको सुनता है वह कर्मरूपी बडे वनको भस्म करके संसारसे तरजाता है ॥ ॥ २८ ॥ जो पुरुष मुहूर्तमात्र वा आधे मुहूर्त वा क्षणभर शिवजीकी कथाको भक्तिसे सुनते हैं उनकी कदापि दुर्गति नहीं होती है ॥ २९ ॥ हे मुने ! जो सम्पूर्ण दानोंमें वा सब यज्ञोंमें पुण्य होता है वह फल शंभुके पुराण सुननेसे निश्चय होता है ॥ ३० ॥ हे व्यासजी ! विशेषकर कलियुगमें पुराणके

यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् ॥ पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छांकरीं कथाम् ॥ २७ ॥ शैवीं कथां हि शृण्वानः पुरुषो हि मुनीश्वर ॥ स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥ २८ ॥ कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा क्षणं च वा ॥ ये शृण्वंति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥ २९ ॥ यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ॥ शंभोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चलं भवेत् ॥ ३० ॥ विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते ॥ परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ॥ ३१ ॥ पुराणश्रवणं शंभोर्नामसंकीर्तनं तथा ॥ कल्पद्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः ॥ ३२ ॥ कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम् ॥ हिताय विदधे शंभुः पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ ३३ ॥ एकोऽजरामरस्स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान् ॥ शंभोः कथामृतापानात्कुलमेवाजरामरम् ॥ ३४ ॥ या गतिः पुण्यशीलानां यज्वनां च तपस्विनाम् ॥ सा गतिस्सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु ॥ ३५ ॥

श्रवणके विना मनुष्योंको मुक्ति ध्यानमें तत्पर और कोई परमधर्म नहीं कहा ॥ ३१ ॥ मनुष्योंको शिवके पुराणका सुनना तथा नामकीर्तन करना कल्पवृक्षके फलके समान मनोहर कहा है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ कलियुगमें धर्मआचारको त्यागनेवाले दुर्बुद्धिवाले मनुष्योंके हित करनेको शिवने पुराणनामक अमृतरस विधान किया है ॥ ३३ ॥ अमृतको पीकर एक ही मनुष्य अजर अमर होता है परन्तु शिवजीकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे सब कुल ही अजर अमर होजाताहै ॥ ३४ ॥ हे तात ! पुण्यात्माओंकी तथा यज्ञ करनेवाले और तपस्वियोंकी जो गति होतीहै वह गति एकसाथ

पुराण सुननेसे प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जब ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो यत्नपूर्वक योगशास्त्रोंको पढना चाहिये और पुराणशास्त्र सुनना चाहिये ॥ ३६ ॥ पुराणके सुननेसे पाप दूर होता है नित्य धर्म बढता है इस कारण ज्ञानी फिर संसारको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इसी कारण धर्म अर्थ कामके मिलने तथा मोक्षमार्गकी प्राप्तिके अर्थ यत्नसे पुराणोंको सुनना चाहिये ॥ ३८ ॥ यज्ञोंसे दानोंसे तपोंसे तथा तीर्थसेवासे जो फल मिलता है वह फल पुराण श्रवणसे मनुष्य पाता है ॥ ३९ ॥ यदि धर्ममार्गके दिखानेवाले पुराण न होते तो यहां इह लौकिक तथा पारलौकिक कथाको सुनानेवाला व्रती रहता ॥

ज्ञानावाप्तिर्यदा नस्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ॥ अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च ॥ ३६ ॥ पापं संक्षीयते नित्यं धर्म्मश्चैव विवर्द्धते ॥ पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥ ३७ ॥ अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः ॥ धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा ॥ ३८ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ॥ तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः ॥ ३९ ॥ न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु ॥ यद्यत्र यद्व्रती स्थाता चात्र पारत्रकीं कथाम् ॥ ४० ॥ षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽप्येकं शृणोति यः ॥ पठेद्वा भक्तिमुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ अन्यो न दृष्टस्सुखदो हि मार्गः पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ॥ शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति सूर्य्येण हीना इव जीवलोकाः ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शस्तानि घोरदानानि महादानानि नित्यशः ॥ पात्रेभ्यस्तु प्रदेयानि आत्मानं तारयंति च ॥ १ ॥ हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं द्विजोत्तम ॥ गृह्णंतो वै पवित्राणि तारयंति स्त्वमेव तम् ॥ २ ॥

॥ ४० ॥ जो छब्बीस पुराणोंमेंसे एकको भी सुनता है अथवा भक्तिसहित पढता है वह निस्सन्देह मुक्त होता है ॥ ४१ ॥ और कोई सुखदेनेवाला मार्ग नहीं देखा पुराणका मार्ग सदा श्रेष्ठ है विना शास्त्रके यह संसार इस प्रकार नहीं शोभित होता जिस प्रकार विना सूर्यके जीवलोक नहीं शोभा पाता ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेभाषाटीकायां पं० उ० सं० पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, घोर बडे दान जो कहे हैं महादान नित्य श्रेष्ठपात्रको देने चाहिये वे अपनेको तारते हैं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! सुवर्णदान गोदान भूमिदान यह पवित्र दान करनेवाले तथा लेनेवाले

दोनोंकोही तारते हैं ॥ २ ॥ सुवर्णदान गोदान पृथ्वीदान इन श्रेष्ठदानोंको करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ गोदान पृथ्वीदान सरस्वती (विद्या) दान तथा तुलादान यह प्रशंसनीय दान कहे हैं उनमें दो दान समान फलदायक हैं और सरस्वती अधिक कही है ॥ ४ ॥ नित्य दुहनेवाली गाय छत्र वस्त्र जूता अन्न पान आदि सब दान मांगनेवालोंको देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो संकल्प कियाहुआ धन ब्राह्मणोंको विना पीडितहुए याचकोंको दिया जाता है मनुष्य उस दानसे बुद्धिमान् होता है ॥ ६ ॥ सुवर्ण तिल हाथी कन्या दासी गृह रथ मणि तथा कपिला गायें येदश महादान हैं ॥ ७ ॥ ज्ञानी ब्राह्मण सदा इन सबोंको ग्रहण करके शीघ्र दाताओंको तथा अपने आपको तारता है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य शुद्धचित्तसे सुवर्णको दान करते हैं देवता उनको सबकुछ चारोंओरसे देते हैं ऐसा मैंने सुना है ॥ ९ ॥ अग्नि सब देवतामय कहा है और सुवर्ण अग्नि है इस कारण सुवर्णको देकर मानों सब देवता दिये ॥ १० ॥ पृथ्वीका दान महाश्रेष्ठ तथा सब कामनाओंके फलका देनेवाला है उसमें भी विशेषकर सुवर्णकी भूमिका दान अति श्रेष्ठ है जिसे पहले राजा रघुने किया था ॥ ११ ॥ जो मनुष्य दान कीहुई सुवर्णवती पृथ्वीको देखते हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे छूटके परमगतिको प्राप्त

सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ एतानि श्रेष्ठदानानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ तुलादानानि शस्तानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ द्वे तु तुल्यबले शस्ते ह्यधिका च सरस्वती ॥ ४ ॥ नित्यं ह्यनुदुहो गावश्छत्रं वस्त्रमुपानहौ ॥ देयानि याचमानेभ्यः पानमन्नं तथैव च ॥ ५ ॥ संकल्पविहितो योऽर्थो ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयते ॥ अर्थिभ्योऽपीडितेभ्यश्च मनस्वी तेन जायते ॥ ६ ॥ कनकं च तिला नागाः कन्या दासी गृहं रथः ॥ मणयः कपिला गावो महादानानि वै दश ॥ ७ ॥ गृहीत्वैतानि सर्वाणि ब्राह्मणो ज्ञानवित्सदा ॥ वदान्यांस्तारयेत्सद्यो ह्यात्मानं च न संशयः ॥ ८ ॥ सुवर्णं ये प्रयच्छंति नराश्शुद्धेन चेतसा ॥ देवतास्तं प्रयच्छंति समंतादिति मे श्रुतम् ॥ ॥ ९ ॥ अग्निर्हि देवतास्सर्वाः सुवर्णं च हुताशनः ॥ तस्मात्सुवर्णं दत्त्वा च दत्तास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ १० ॥ पृथ्वीदानं महाश्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम् ॥ सौवर्णं च विशेषेण यत्कृतं पृथुना पुरा ॥ ११ ॥ दीयमानां प्रपश्यंति पृथ्वीं रुक्मसमन्विताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यांति परमां गतिम् ॥ १२ ॥

होते हैं ॥ १२ ॥ हे मुने ! अब मैं सर्वोत्तम दानको कहता हूं कि जिससे यमराजके अतिदुःखदायक वनको नहीं देखते हैं ॥ १३ ॥ न्यायसे पैदा कियेहुए
धनसे खरीद वित्तशाठ्यसे वर्जित हो शुद्धमनसे विधिपूर्वक वनका दान करै ॥ १४ ॥ सब गुणोंसहित रेरभर तिलोंकी गाय बनाके सुन्दर तथा सब
लक्षणोंसे लक्षित गाय बछडा सुवर्णकी ॥ १५ ॥ आठ दलके कमलको बनाय उसमें कुंकुम आक शुभ अक्षतोंसे रुद्र आदि सब देवताओंको भक्तिसे पूजै
॥ १६ ॥ इस प्रकार रत्नसहित सुवर्ण सहित सब आभूषणोंसे भूषित उस धेनुको अपनी शक्तिसे पूजके ब्राह्मणको देवै ॥१७॥ फिर पीछेसे रात्रिमें भोजन

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि दानं सर्वोत्तमं मुने ॥ कांतारं यत्र पश्यंति यमस्य बहुदुःखदम् ॥ १३ ॥ कुर्यात्कांतारदानं हि विधिना शुद्धमा
नसः ॥ न्यायार्जितेन द्रव्येण वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १४ ॥ तिलप्रस्थमयीं कृत्वा धेनुं सर्वगुणान्विताम् ॥ धेनुवत्सं सुवर्णं च सुदि
व्यं सर्वलक्षणम् ॥ १५ ॥ पद्ममष्टदलं कृत्वा कुंकुमाक्ताक्षतैश्शुभैः ॥ पूजयेत्तत्र रुद्रादीन्सर्वान्देवान्सुभक्तितः ॥ १६ ॥ एवं संपूज्य
तां दद्याद्ब्राह्मणाय स्वशक्तितः ॥ सरत्नां सहिरण्यां च सर्वाभरणभूषिताम् ॥ १७ ॥ ततो नक्तं समश्नीयाद्दीपान्दद्यात्तु विस्तरात् ॥
कार्तिक्यामिति कर्तव्यं पूर्णिमायां प्रयत्नतः ॥ १८ ॥ एवं यः कुरुते सम्यग्विधानेन स्वशक्तितः ॥ यममार्गभयं घोरं नरकं च न
पश्यति ॥१९॥ कृत्वा पापान्यशेषाणि सबंधुस्ससुहृज्जनः ॥ दिवि संक्रीडते व्यास यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २० ॥ विधितो गोश्च दानं
वै सर्वोत्तममिह स्मृतम् ॥ न तेन सदृशं व्यास परं दानं प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥ प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां स्वर्णशृंगिकाम् ॥
कांस्यपात्रां रौप्यखुरां सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ २२ ॥

करै, और विस्तारपूर्वक दीपोंको देवै कार्त्तिककी पूर्णिमाको विशेषकर यह दान करना चाहिये ॥ १८ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार
सम्यक्विधिसे यह दान करता है वह यममार्गके भय तथा घोर नरकको नहीं देखता है ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! और वह कुटुम्बसहित तथा मित्रों सहित
सम्पूर्ण पापोंको करके भी जबतक चौदह इन्द्रहैं तबतक स्वर्गमें क्रीडा करता है ॥ २० ॥ हे व्यासजी ! इस लोकमें विधिपूर्वक गौका दान करना सब
दानोंमें श्रेष्ठ कहा है, उसके समान और कोई दान नहीं कहा ॥ २१ ॥ जो मनुष्य बछडे सहित सोनेके सींगोंसे युक्त कांस्यपात्रवाली तथा चांदीके

खुरवाली सब लक्षणोंसे अलंकृत कपिला गौको दान करता है ॥ २२ ॥ हे व्यासजी ! उन उन गुणोंसे वह गौ कामनाको पूर्ण करनेवाली होके परलोक तथा इस जन्ममें उस दाताको प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ संसारमें जो जो इष्टतम पदार्थ हैं तथा जो घरमें प्रिय वस्तुहै वह सब अक्षयलोककी अभिलाषासे गुणवान् ब्राह्मणको देना चाहिये ॥ २४ ॥ तुलापुरुषका दान सब दानोंमें उत्तम है अतः जो अपने कल्याणको चाहै तो तुला आरोहण अवश्य करै ॥ ॥ २५ ॥ जिस तुलादानको करके मनुष्य वधबन्धन सम्बन्धी पापोंसे छूटजाता है तुलादान बडे पुण्यका देनेवाला और सब पापोंको दूर करने वाला है॥

तैस्तैर्गुणैः कामदुघा भूत्वा सा गौरुपैति तम् ॥ प्रदातारं नरं व्यास परत्रेह च जन्मनि ॥ २३ ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यदस्ति दयितं गृहे ॥ तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ २४ ॥ तुलापुरुषदानं हि दानानां दानमुत्तमम् ॥ तुलासंरोहणं कार्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २५ ॥ यत्कृत्वा मुच्यते पापैर्वधबंधकृतोद्भवैः ॥ तुलादानं महत्पुण्यं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ २६ ॥ कृत्वा पापान्यशेषाणि तुलादानं करोति यः ॥ सर्वैस्तु पातकैर्मुक्तः स दिवं यात्यसंशयम् ॥ २७ ॥ पापं कृतं यद्दिवसे निशायां द्विसंध्ययोर्मध्यदिने निशांते ॥ कालत्रये कायमनोवचोभिस्तुलापुमान्वै तदपाकरोति ॥ २८ ॥ बालेन वृद्धेन मया हि यूना विजाग्रता ज्ञानपरेण पापम् ॥ तत्सर्वमेवाशु कृतं मदीयं तुलापुमान्वै हरतु स्मरारिः ॥ २९ ॥ पात्रे प्रयुक्तं द्रविणं मयाऽद्य प्रमाणपूर्णं निहितं तुलायाम् ॥ तेनैव सार्धं तु ममावशेषं कृताकृतं यत्सुकृतं समेतु ॥ ३० ॥

॥ २६ ॥ सम्पूर्ण पापोंको करके भी जो मनुष्य तुलादान करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो निस्सन्देह स्वर्गको जाता है ॥ २७ ॥ दिनमें रातमें वा दोनों सन्ध्याओंमें वा दुपहरमें अथवा रात्रिके अंतमें तीनों कालमें शरीर, मन, वाणीसे जो पाप किया हो तुलापुरुष उस पापको दूरकर देता है ॥ २८ ॥ बालक, वृद्ध, वा युवा मैंने जागतेहुए वा ज्ञानमें तत्पर होके जो पाप किया हो मेरे उस पापको तुलापुरुष शिवजी हरण करैं ॥२९॥ मैंने आज प्रमाणपूर्वक तुलामें रक्खाहुआ जो धन सुपात्रमें अर्पण किया है उसके समेत मेरा सम्पूर्ण कियाहुआ पाप अथवा विना किया हुआ पाप है वह भी चला जावै ॥ ३० ॥

सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उच्चारण करके वह धन ब्राह्मणोंको देवै तो सर्वदा हित होता है इससे अनेकोंको देवै एककोही नहीं देना चाहिये उससे विस्तार नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इसप्रकार उत्तम तुलापुरुषको देता है वह पापको नष्टकर जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक स्वर्गलोकमें वास करता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० दानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले, जिस एक दानके करनेसे सबोंका फल मिलता है सब दानोंमें श्रेष्ठ ऐसे दानको मनुष्योंके हितके लिये मुझसे कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, सुनो समयपर दियेहुए एक

सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुच्चार्य्य तं दद्यात् द्विजेभ्यः सर्वदा हितः ॥ नैकस्यापि प्रदातव्यं न निस्तारस्ततो भवेत् ॥ ३१ ॥ दद्यात्येवं तु यो व्यास तुलापुरुषमुत्तमम् ॥ हत्वा पापं दिवं तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सामान्यदानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ येनैकेन हि दत्तेन सर्वेषां प्राप्यते फलम् ॥ दानानां तन्ममाख्याहि मानुषाणां हितार्थतः ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु काले प्रदत्ताद्धै फलं विंदंति मानवाः ॥ एकस्मादपि सर्वेषां दानानां तद्वदामि ते ॥ २ ॥ दानानामुत्तमं दानं ब्रह्माण्डं खलु मानवैः ॥ दातव्यं मुक्तिकामैस्तु संसारोत्तारणाय वै ॥ ३ ॥ ब्रह्मांडे सकले दत्ते यत्फलं लभते नरः ॥ तदेकभावादाप्नोति सप्तलोकाधिपो भवेत् ॥ ४ ॥ यावच्चन्द्रदिवाकरौ नभसि वै यावत्स्थिरा मेदिनी तावत्सोऽपि नरः स्वबांधवयुतस्स्वर्गौकसामोकसि ॥ सर्वेष्वेव मनोनुगेषु ककुभिर्ब्रह्माण्डदः क्रीडते पश्चाद्याति पदं सुदुर्लभतरं देवैर्मुदे माधवम् ॥ ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि ब्राह्माण्डं यत्प्रमाणं यदात्मकम् ॥ यदाधारं यथाभूतं येनमे प्रत्ययो भवेत् ॥ ६ ॥

दानसे भी मनुष्य सब दानोंके फलको पालेते हैं वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ २ ॥ मुक्तिकी कामना करनेवाले मनुष्योंको संसारसे तरनेके अर्थ दानोंमें उत्तम ब्रह्मांडदान करना चाहिये ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके देनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है उसी प्रकार सब ब्रह्माण्डके एकभावसे सातौलोकोंका स्वामी होता है ॥ ४ ॥ जबतक आकाशमें चन्द्रमा सूर्य हैं तथा जबतक पृथ्वी स्थिर है तबतक वह ब्रह्मांडदाता मनुष्य अपने कुटुम्बसमेत देवताओंके स्थानमें सब मनोरथोंसमेत हर्षसे क्रीडा करता है पश्चात् देवताओंसे भी दुर्लभ विष्णु भगवान्‌के पदको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले, हे भगवन् ! जितने

प्रमाणवाला ब्रह्मांड है तथा जितना और जिस आधारवाला और जिस प्रकारका है सो सब कहो जिससे मुझे विश्वास हो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुने! सुनो ब्रह्मांड जितने विस्तार और परिमाण वाला है सो सब मैं संक्षेपसे कहता हूं जिसको सुन मनुष्य पापसे छूटता है ॥ ७ ॥ जो उसका कारणरूप अव्यक्त, व्यक्त, अनामय, शिव है उनसे कालसे दो प्रकारके हो ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ हे तात ! जैसे ब्रह्माजी चौदह भुवनवाले ब्रह्मांडको रचते हैं मैं उसका क्रम संक्षेपसे कहता हूं यत्नसे सुनो ॥ ९ ॥ जलके मध्यमें स्थित हुए उसका उचाव दूना है सात पाताल हैं तथा उसके ऊपर

सनत्कुमार उवाच ॥ मुने शृणु प्रवक्ष्यामि यदुत्सेधं तु विस्तरम् ॥ ब्रह्माण्डं तच्चु संक्षेपाच्छ्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ७ ॥ यत्तत्कारणमव्यक्तं व्यक्तं शिवमनामयम् ॥ तस्मात्संजायते ब्रह्मा द्विधाभूताद्धि कालतः ॥ ८ ॥ ब्राह्माण्डं सृजति ब्रह्मा चतुर्दशभवात्मकम् ॥ तद्वच्मि क्रमतस्तात समासाच्छृणु यत्नतः ॥ ९ ॥ पातालानि तु सप्तैव भुवनानि तथोर्द्ध्वतः ॥ उच्छ्रायो द्विगुणस्तस्य जलमध्ये स्थितस्य च ॥ १० ॥ तस्याधारः स्थितो नागस्स च विष्णुः प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मणो वचसो हेतोर्बिभर्ति सकलं त्विदम् ॥ ११ ॥ शेषस्यास्य गुणान् वक्तुं न शक्ता देवदानवाः ॥ योनंतः पठ्यते सिद्धैर्देवर्षिगणपूजितः ॥ १२ ॥ शिरःसाहस्रयुक्तस्स सर्वा विद्योतयन्दिशः ॥ फणामणिसहस्रेण स्वस्तिकामलभूषणः ॥ १३ ॥ मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ साग्निश्श्वेत इवाचलः ॥ स्रग्वी किरीटी ह्याभाति यस्सदेवैककुंडलः ॥ १४ ॥ सायं गंगाप्रवाहेण श्वेतशैलोपशोभितः ॥ नीलवासा मदोद्रिक्तः कैलासाद्रिरिवापरः ॥ १५ ॥

सात भुवन हैं ॥ १० ॥ उस ब्रह्मांडके आधारमें शेषजी स्थित हैं वह विष्णु कहे हैं वह ब्रह्माजीके वचनसे सब ब्रह्मांडको पालते हैं ॥ ११ ॥ उन शेषजीके गुणोंको वर्णन करनेमें देवता तथा दानव भी समर्थ नहीं हैं जो सिद्धोंसे देवता ऋषिगणोंसे पूजित हो अनंत कहे जातेहैं ॥ १२ ॥ वह शेषजी सहस्रफणोंसे युक्त सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए कल्याणकारी निर्मल आभूषणोंसहित ॥ १३ ॥ मदसे घूमतेहुए नेत्रवाले अग्निसहित पर्वतके समान शोभित मालाधारी मुकुटसाहित सदैव एक कुंडलधारे विराजते हैं ॥ १४ ॥ जो सन्ध्याकालमें गंगाके प्रवाहसे श्वेतपर्वतपै शोभित नीलवस्त्रधारे मदसे व्याप्त मानों दूसरे कैलासके

समान स्थित ॥ १५ ॥ पूँछमें हस्ताग्रको लगाये उत्तम मूसलको धारण किये स्वर्णके समान कान्तिवाली नागकन्याओंसे आदरपूर्वक पूजेजाते हैं ॥ १६ ॥ संकर्षणात्मक रुद्र विषाग्निके समान उज्ज्वल हैं कल्पान्तमें जिनके मुखोंसे बारम्बार अग्निकी लपटैं निकलती हैं और तीनों लोकोंको भस्म करके शान्त होती हैं ऐसा सुनते हैं ॥ १७ ॥ पातालके मूलमें स्थितहुए भूतेश सब गुणोंसे पूजित जो शेषजी भूमंडलको अपने पीठपर धारण करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ उनके वीर्यका प्रभाव वर्णन करनेको तथा अपना रूप बतानेको जाननेकी आकांक्षा सहित देवताभी समर्थ नहीं हैं ॥ १९ ॥ जिसकी फनोंपर मणिशिलाकी

लांगलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम् ॥ योऽर्च्यते नागकन्याभिस्स्वर्णवर्णाभिरादरात् ॥ १६ ॥ संकर्षणात्मको रुद्रो विषानलशिखोज्ज्वलः ॥ कल्पांते निष्क्रमन्ते यद्वक्त्रेभ्योऽग्निशिखा मुहुः ॥ दग्ध्वा जगत्त्रयं शान्ता भवंतीत्यनुशुश्रुम ॥ १७ ॥ आस्ते पातालमूलस्थस्स शेषः क्षितिमण्डलम् ॥ बिभ्रत्स्वपृष्ठे भूतेशश्शेषोऽशेषगुणार्चितः ॥ १८ ॥ तस्य वीर्यप्रभावश्च साकांक्षैस्त्रिदशैरपि ॥ न हि वर्णयितुं शक्यः स्वरूपं ज्ञातुमेव वा ॥ १९ ॥ आस्ते कुसुममालेव फणामणिशिलारुणा ॥ यस्यैषा सकला पृथ्वी कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ॥ २० ॥ यदा विजृम्भतेऽनंतो मदाघूर्णितलोचनः ॥ तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना ॥ २१ ॥ दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम ॥ अतलं वितलं चैव सुतलं च रसातलम् ॥ २२ ॥ तलं तलातलं चाग्र्यं पातालं सप्तमं मतम् ॥ भूमेरधस्सप्त लोका इमे ज्ञेया विचक्षणैः ॥ २३ ॥ उच्छ्रायो द्विगुणश्चैषां सर्वेषां रत्नभूमयः ॥ रत्नवन्तोऽथ प्रासादा भूमयो हेमसंभवाः ॥ २४ ॥ तेषु दानवदैतेया नागानां जातयस्तथा ॥ निवसंति महानागा राक्षसा दैत्यसंभवाः ॥ २५ ॥

लालिमासे युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी पुष्पोंकी मालाके समान स्थित है उनके पराक्रमको कौन कह सकता है ॥ २० ॥ जिस समय मदसे नेत्र घुमातेहुए शेषजी जम्भाई लेतेहैं उस समय पर्वत समुद्रोंसहित यह पृथ्वी चलायमान होती है ॥ २१ ॥ हे मुनिसत्तम ! प्रत्येक पाताल दश सहस्र योजनवाले हैं अतल, वितल, सुतल, रसातल ॥ २२ ॥ तल, तलातल, तथा सातवां पाताल माना है भूमिके नीचे यह सातलोक पंडितोंको जानना चाहिये ॥ २३ ॥ इनकी उँचाई दूनी है सब लोकोंकी भूमि तथा प्रासाद रत्नमय हैं और आंगन सुवर्णमय है ॥ २४ ॥ उनमें दानव तथा दैत्योंकी जाति और महानाग

राक्षस दैत्य आदि निवास करतेहैं ॥ २५ ॥ स्वर्गके सभामंडपके मध्यमें स्वर्गलोकसे भी अति मनोहर यह पाताल नारदजीने कहे हैं उनसे फिर स्वर्गमें
आता है ॥ २६ ॥ जहाँ अनेकभूषणोंसे शोभायमान दीवारोंमें बडी कान्तिवाली मणि हैं निर्मल आह्लादक ऐसा पाताल है उसकी समान और कौन होसकता
है ॥ २७ ॥ इधर उधरसे देवकन्याओंसे शोभित ऐसे पातालमें किसकी रुचि नहीं होती है ॥ २८ ॥ जहांपर दिनमें सूर्यकी किरणैं और रात्रिमें
चन्द्रमाकी कान्ति नहीं होती और न शीत घाम होता है वहां केवल मणितेज होता है ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! वहां भक्ष्य भोज्य अन्नपान आनंदसे

प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालानीति नारदः ॥ स्वर्लोकादतिरम्याणि तेभ्योऽसावागतो दिवि ॥ २६ ॥ नानाभूषणभूषासु मणयो यत्र
सुप्रभाः ॥ आह्लादकानि शुभ्राणि पातालं केन तत्समम् ॥ २७ ॥ पाताले कस्य न प्रीतिरितश्चेतश्च शोभितम् ॥ देवदानवकन्या
भिर्विमुक्तस्याभिजायते ॥ २८ ॥ दिवार्करश्मयो यत्र न भवंति विधोर्निशि ॥ न शीतमातपो यत्र मणितेजोऽत्र केवलम् ॥ २९ ॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि भुज्यंते मुदितैर्भृशम् ॥ यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ पुंस्कोकिलरुतं यत्र पद्मानि
कमलाकराः ॥ नद्यस्सरांसि रम्याणि ह्यन्योन्यविचराणि च ॥ ३१ ॥ भूषणान्यतिशुभ्राणि गंधाढ्यं चानुलेपनम् ॥ वीणावेणुमृदं
गानां स्वना गेयानि च द्विज ॥ ३२ ॥ दैत्योरगैश्च भुज्यंते पाताले वै सुखानि च ॥ तपसा समवाप्नोति दानवैस्सिद्धमानवैः ॥ ३३ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
तेषां मूर्द्धोपरिष्टाद्वै नरकांस्ताञ्छृणुष्व च ॥ मत्तो मुनिवर श्रेष्ठ पच्यंते यत्र पापिनः ॥ १ ॥

भोगेजाते हैं ऐसे आनंदमें समय बीतताहुआ भी नहीं जाना जाता है ॥ ३० ॥ जहां भ्रमरोंसे गूंजते हुए कमल तथा कमलसे युक्त स्वच्छ नदियां तथा
मनोहर सरोवर हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! अतिनिर्मल भूषण गंध सहित अनुलेपन वीणा वेणु मृदंगोंके गेयस्वर ॥ ३२ ॥ तपसे दैत्य सर्प दानव सिद्ध
मनुष्योंके सहित पातालमें मनुष्य सुखोंको भोगता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम
पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिवरश्रेष्ठ ! उन लोकोंके ऊपर जो नरक हैं उनको मुझसे सुनो जहांपर पापीजन दुःख भोगतेहैं ॥ १ ॥

रौरव, शूकर, रोध, ताल तथा विवसन, महाज्वाल, तप्तकुंभ, लवण, विलोहित ॥ २ ॥ वैतरणी, पूयवहा, कृमी, कृमिभोजन, घोर असिपत्रवन, दारुण लालाभक्ष ॥ ३ ॥ तथा पूयवह, बहिज्वाॅल, अधशिशर, सदंश, कालसूत्र, तमश्श्रावी, चिरोधन ॥ ४ ॥ श्वभोजन, रुष्ट, महारौरव, शाल्मलि इत्यादि वहाँ अनेक दुःखदायक नरकहैं ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! उनमें जो पापीपुरुष डालेजातेहैं मैं उनको क्रमसे कहता हूँ तुम सावधान होके सुनो ॥ ६ ॥ जो मनुष्य विना ब्राह्मण तथा विना देवता और गौओंके कूटसाक्ष्य (झूंठी ग्वाही) अताहद झूठेबोलता है वह रौरवनामके नरकमें जाता है ॥ ७ ॥ भ्रूणहत्या करने

रौरवश्शूकरो रोधस्तालो विवसनस्तथा ॥ महाज्वालस्तप्तकुंभो लवणोपि विलोहितः ॥ २ ॥ वैतरणी पूयवहा कृमिणः कृमिभोजनः ॥ असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षश्च दारुणः ॥ ३ ॥ तथा पूयवहः प्रायो बहिर्ज्वालो ह्यधश्शिराः ॥ संदंशः कालसूत्रश्च तमश्श्रावीचिरोधनः ॥ ४ ॥ श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली ॥ इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकाः ॥ ५ ॥ पच्यंते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ॥ क्रमाद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया शृणु ॥ ६ ॥ कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुरांश्च गाः ॥ सदाऽनृतं वदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥ भ्रूणहा स्वर्णहर्ता च गोरोधी विश्वघातकः ॥ सुरापो ब्रह्महंता च परद्रव्यापहारकः ॥ ८ ॥ यस्तत्संगी स वै याति मृतो व्यास गुरोर्वधात् ॥ ततः कुंभे स्वसुर्मातुर्गोश्चैव दुहितुस्तथा ॥ ९ ॥ साध्व्या विक्रयकृच्चाथ वार्द्धकी केशविक्रयी ॥ तप्तलोहेषु पच्यंते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥ १० ॥ अवमंता गुरूणां यः पश्चाद्भोक्ता नराधमः ॥ देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्च यः ॥ ११ ॥ अगम्यगामी यश्चांते याति सप्तबलं द्विज ॥ चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा ॥ १२ ॥

वाला सुवर्ण चुरानेवाला गायको रोकनेवाला विश्वघातक मदिरापीनेवाला ब्रह्महत्या करनेवाला दूसरेके द्रव्यका हरनेवाला ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! तथा जो इनका संग करनेवाला है ये सब तथा गुरुके वधसे और बहिन, माता, गौ पुत्रीके वधसे तप्त कुम्भनामक नरकोंमें जातेहैं ॥ ९ ॥ साध्वी स्त्रीका बेंचनेवाला वार्द्धकी (व्याज लेनेवाला) केशोंका बेंचनेवाला तथा जो भक्तोंको त्यागता है यह सब तप्तलोहनामक नरकोंमें पडतेहैं ॥ १० ॥ जो गुरुओंका तिरस्कार करनेवाला पीछे भोजन करनेवाला मनुष्योंमें नीच देवताओंको दूषित करनेवाला तथा जो देवताओंका विक्रय करनेवाला है ॥ ११ ॥ हे द्विज ! तथा

जो अगम्यके साथ गमन करनेवालाहै वह अन्तमें सत्तबलमें जाताहै चौर गोहत्या करनेवाला पतित तथा जो मर्यादाके तोडनेवाला ॥ १२ ॥ देव ब्राह्मण पितरोंसे द्वेष करनेवाला तथा जो रत्नोंमें मेल करनेवाला है यह कृमिभक्ष नरकको जातेहैं और वहाँ कीडोंको खावेहैं ॥ १३ ॥ जो नीच मनुष्य पितर देवताओं अतिथियोंके विना खाता है तथा जो शस्त्रकूट है वह लालाभक्ष नामवाले नरकको जाताहै ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण अन्त्यजके साथ सेवन करनेवाला दुर्जनोंसे ग्रहण करनेवाला विना याज्योंको यज्ञ करानेवाला तथा अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १५ ॥ तथा जो सोमरसके बेंचनेवालेहैं यह सब रुधिरौघ नरकमें जातेहैं मधुका हरण करनेवाला ग्रामकी हत्या करनेवाला क्रूर वैतरणी नदीको जाता है ॥ १६ ॥ जो नवीन यौवनमें उन्मत्त तथा मर्यादाके तोडनेवाले अपवित्रहैं तथा जो स्त्रीसे आजीविका करनेवालेहैं वे कृत्यनामक नरकको जातेहैं ॥ १७ ॥ जो वृथा वृक्षोंको काटनेवाला है वह असिपत्रवनको जाता है जो क्षुरभ्रक और मृगोंके मारनेवाले व्याध हैं वे वह्निज्वाल नरकमें जातेहैं ॥ १८ ॥ हे द्विज ! जो ब्राह्मण वा क्षत्रिय अथवा वैश्य आचारसे भ्रष्ट है तथा श्वपाकमें जो आग देनेवाला है यह सब अन्तमें पूर्वोक्त नरकोंमें जाते हैं ॥ १९ ॥ जो व्रतके लोप करनेवाले तथा जो अपने आश्रमसे भ्रष्ट हुएहैं यह सब अतिकठोर संदंश यातनाके मध्यमें पडते हैं ॥ २० ॥ जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्नमें वीर्यको स्खलित करतेहैं तथा जिन्होंने अपने पुत्रोंको

देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥ स याति कृमिभक्षं वै कृमीनत्ति दुरिष्टकृत् ॥ १३ ॥ पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यश्नाति नराधमः ॥
लालाभक्षं स यात्यज्ञो यश्शास्त्रकूटकृन्नरः ॥ १४ ॥ यश्चांत्यजेन संसेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो द्विजः ॥ अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्य
भक्षकः ॥ १५ ॥ रुधिरौघे पतंत्येते सोमविक्रयिणश्च ये ॥ मधुहा ग्रामहा याति क्रूरां वैतरणीं नदीम् ॥ १६ ॥ नवयौवनमत्ताश्च मर्या
दाभेदिनश्च ये ॥ ते कृत्यं यांत्यशौचाश्च कुलकाजीविनश्च ये ॥ १७ ॥ असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः ॥ क्षुरभ्रका मृगव्याधा
वह्निज्वाले पतंति ते ॥ १८ ॥ भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ॥ यात्यंते द्विज तत्रैव यः श्वपाकेषु वह्निदः ॥ १९ ॥
व्रतस्य लोपका ये च स्वाश्रमाद्विच्युताश्च ये ॥ संदंशयातनामध्ये पतंति भृशदारुणे ॥ २० ॥ वीर्यं स्वप्नेषु स्कंदेयुर्ये नरा ब्रह्मचारिणः ॥
पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतंति श्वभोजने ॥ २१ ॥

नहीं पढाया वे श्वभोजननामक नरकमें पडतेहैं ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त तथा और सैकडों व सहस्रों नरकहैं कि जिनमें पापी मनुष्य यातनाओंमें प्राप्त होके पडते हैं ॥ २२ ॥ यह तथा औरभी सहस्रों पाप हैं जिनको नरकोंमें पडके मनुष्य भोगतेहैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य कर्मसे तथा मनसे और वाणीसे वर्ण तथा आश्रमके विरुद्ध कर्म करते हैं वे नरकमें पडतेहैं ॥ २४ ॥ और वे नरकवासी पुरुष देवताओंसे स्वर्गमें नीचे किये हुए शिरोंसे देखे जातेहैं और नरकवासी जन नीचेको मुख करनेवाले सब देवताओंको देखतेहैं ॥ २५ ॥ जिस प्रकार स्थावर कृमिपाक पक्षी मृगहैं इसी प्रकार क्रमसे धार्मिक स्वर्गमोक्षवाले जीवहैं ॥ २६ ॥ जितने जन्तु स्वर्गमें हैं उतने ही नरकमें स्थितहैं प्रायश्चित्तसे विमुख पापीजन नरकको जाता है ॥ २७ ॥ स्वायम्भुव मनुने बडे पापोंसे बडे प्रायश्चित्त तथा छोटे पापोंके छोटे प्रायश्चित्त कहेहैं ॥ २८ ॥ उनमें जितने कर्म कहेहैं उन सबोंके समस्त प्रायश्चित्त हैं परन्तु शिवजीका स्मरण करना सब प्रायश्चित्तोंसे बडा है ॥ २९ ॥ इस प्रकार जिस पुरुषका प्रायश्चित्त होता है पाप करनेपर पश्चात्ताप कर शिवका स्मरण करना कहा है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल वा रात्रिमें अथवा सन्ध्यामें या मध्याह्न आदिकालमें शिवका स्मरण करता है वह पापोंसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ वह उन उमापति

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यंते यातनागताः ॥ २२ ॥ यथैव पापान्येतानि तथान्यानि
सहस्रशः ॥ भुज्यंते यानि पुरुषैर्नरकांतरगोचरैः ॥ २३ ॥ वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वंति ये नराः ॥ कर्मणा मानसा वाचा निरये तु
पतंति ते ॥ २४ ॥ अधश्शिरोभिर्दृश्यंते नारका दिवि दैवतैः ॥ देवानधोमुखान्सर्वानधः पश्यंति नारकाः ॥ २५ ॥ स्थावराः कृमि
पाकाश्च पक्षिणः पशवो मृगाः ॥ धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥ २६ ॥ यावंतो जंतवस्स्वर्गे तावंतो नरकौकसः ॥
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥ २७ ॥ गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा ॥ प्रायश्चित्तानि कालेय मनुस्स्वायम्भुवोऽ
ब्रवीत् ॥ २८ ॥ यानि तेषामशेषाणां कर्माण्युक्तानि तेषु वै ॥ प्रायाश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम् ॥ २९ ॥ प्रायाश्चित्तं तु यस्यैव पापं
पुंसः प्रजायते ॥ कृते पापेऽनुतापोऽपि शिवसंस्मरणं परम् ॥ ३० ॥ माहेश्वरमवाप्नोति मध्याह्नादिषु संस्मरन् ॥ प्रातर्निशि च संध्यायां
क्षीणपापो भवेन्नरः ॥ ३१ ॥ मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम् ॥ शिवस्य स्मरणादेव तस्य शंभोरुमापतेः ॥ ३२ ॥

शिवके स्मरण करनेसे सब दुःखोंसे दूर हो स्वर्गको तथा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! हे मुनिश्रेष्ठ ! तीनों लोकमें कहींपर पापोंका प्रायश्चित्त जप, होम, अर्चन, आदिक कुछ नहीं होते हों ॥ ३३ ॥ और जिसकी शिवजीमें मति लगी हो तो उसको जप, होम, अर्चन आदिमें जो पुण्य होता है सो सब तथा देवेन्द्रपदका फल मिलता है ॥ ३४ ॥ हे मुने ! जो मनुष्य रात दिन भक्तिसे शिवको स्मरण करताहै वह नरकको नहीं जाता और पापोंसे रहित होता है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह पाप और पुण्य नरक और स्वर्गके नामके अर्थ हैं इन दोनोंमें पाप दुःखके लिये और पुण्य सुखके निमित्त

पापान्तरायो विप्रेन्द्र जपहोमार्चनादि च ॥ भवत्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ॥ ३३ ॥ महेश्वरे मतिर्यस्य जमहोमार्चनादिषु ॥ यत्पुण्यं तत्कृतं तेन देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ ३४ ॥ पुमान्न नरकं याति यः स्मरन्भक्तितो मुने ॥ अहर्निशं शिवं तस्मात्स क्षीणाशेषपातकः ॥ ३५ ॥ नरकस्वर्गसंज्ञायै पापपुण्ये द्विजोत्तम ॥ ययोस्त्वेकं तु दुखायान्यत्सुखायोद्भवाय च ॥ ३६ ॥ तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ॥ तस्याद्दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम् ॥ ३७ ॥ मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखोपलक्षणः ॥ ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं तत्त्वाय कल्पते ॥ ३८ ॥ ज्ञानात्मकमिदं विश्वं सकलं सचराचरम् ॥ परविज्ञानतः किंचिद्विद्यते न परं मुने ॥ ३९ ॥ एवमेतन्मयाख्यातं सर्वं नरकमण्डलम् ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सांप्रतं मंडलं भुवः ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डवर्णने नरकोद्धारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

होता है ॥ ३६ ॥ और वही पुण्य प्रीतिके अर्थ होके फिर दुःखके लिये होता है इस कारण न कुछ दुःख देनेवाला है और न कुछ सुख देनेवाला है ॥ ॥ ३७ ॥ यह मनका परिणामही दुःख सुखका लक्षण है इससे ज्ञानही परब्रह्म है और ज्ञानही तत्त्वके अर्थ कल्पना किया जाता है ॥ ३८ ॥ हे मुने ! यह चर अचरसहित संपूर्ण संसार ज्ञानात्मक है पर विज्ञानसे अधिक और कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार मैंने संपूर्ण नरकोंका समुदाय कहदिया अब आगेको भूमंडलका वर्णन करता हूं ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं०उ०सं० ब्रह्माण्डवर्णनं नरकोद्धारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! सातद्वीप आदि सहित भूमिके मंडलको सम्यक् प्रकार मुझसे सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं ॥ १ ॥ जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक सातवां पुष्कर यह सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हैं ॥ २ ॥ लवण, इक्षुरस, घी, दही, दूधके समुद्र हैं इन सबोंके मध्यमें जम्बुद्वीप है॥ ॥ ३ ॥ हे व्यास ! उसके मध्यमें सुमेरु कनक पर्वत है वह सोलह योजन नीचे धँसा है और चौरासी योजन ऊँचाहै ॥ ४ ॥ तथा बत्तीस योजन शिखरमें विस्तार है यह पर्वत भूमिके ऊपर स्थित है इस प्रकार उसका विस्तार चारोंओरसे है ॥ ५ ॥ मूलमें सोलह सहस्र योजन कलीके आकारसे स्थित है इसके

सनत्कुमार उवाच ॥ पाराशर्य्य सुसंक्षेपाच्छृणु त्वं वदतो मम ॥ मण्डलं च भुवस्सम्यक् सप्तद्वीपादिसंयुतम् ॥ १ ॥ जबूः प्लक्षश्शा
ल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चश्च शाककः ॥ पुष्पकरस्सप्तमस्सर्वे समुद्रैस्सप्तभिर्वृताः ॥ २ ॥ लवणेक्षुरसौ सर्पिर्दधिदुग्धजलाशयाः ॥ जंबूद्वी
पस्समस्तानामेतेषां मध्यतः स्थितः ॥ ३ ॥ तस्यापि मेरुः कालेय मध्ये कनकपर्वतः ॥ प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः
॥ ४ ॥ चतुरशीतिमानैस्तैर्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥ भूमिपृष्ठस्थशैलोऽयं विस्तरस्तस्य सर्वतः ॥ ५ ॥ मूले षोडशसाहस्रः कर्णिकाका
रसंस्थितः ॥ हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ॥ ६ ॥ नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ दशसाहस्रिका ह्येते रत्न
वंतोऽरुणप्रभाः ॥ ७ ॥ सहस्रयोजनोत्सेधास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ॥ ८ ॥ हरिवर्षं ततोऽन्यद्वै
मेरोर्दक्षिणतो मुने ॥ रम्यकं चोत्तरे पार्श्वे तस्यांशे तु हिरण्मयम् ॥ ९ ॥ उत्तरे कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥ नवसाहस्रमेकैकमे
तेषां मुनिसत्तम ॥ १० ॥ इलावृतं तु तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ॥ मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रमुच्छ्रितम् ॥ ११ ॥

दक्षिणमें हिमालय हेमकूट निषधनामक पर्वत है ॥ ६ ॥ तथा उत्तरमें नील श्वेत शृंगी नामवाले पर्वत हैं यह सब दश सहस्र योजन तथा रत्नोंसहित और अरुणकी समान कान्तिवालेहैं ॥ ७ ॥ एक सहस्र योजन चौडाई तथा सहस्र योजन विस्तृतहैं पहला भारतवर्ष है इसके पीछे किंपुरुष कहा है ॥ ८ ॥ हे मुने ! उसके आगे सुमेरुपर्वतके दक्षिण ओर हारिवर्ष है उसके उत्तरकी ओर रम्यक तथा उसके बराबर हिरण्मय है ॥ ९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! और उत्तरमें कुरुदेश है जिस प्रकार भारतवर्ष है उसी प्रकार इन सबोंका विस्तार भी नौ सहस्र योजन कहा है ॥ १० ॥ उसके मध्यमें इलावृत तथा इसके मध्यमें

मेरुपर्वत स्थित है सुमेरुपर्वतके चारों तरफ वहां नौ सहस्र विस्तारवाला इलावृतहै ॥११॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहां चार पर्वत सुमेरुपर्वतसे विष्कम्भ (बुर्जीरूप) हैं और उससे मिलेहुए तथा सुमेरुपर्वतके समान ऊंचे हैं ॥ १२ ॥ पूर्वमें मन्दराचल तथा दक्षिणमें गन्धमादन और पश्चिमभागमें विपुल तथा उत्तरमें सुपार्श्वनामक पर्वत है ॥ १३ ॥ कदम्ब जामुन पीपल बड आदि पर्वतके ध्वजारूप ग्यारहसौ योजनमें विस्तृत हैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! जम्बुद्वीपनामके हेतुको सुनो वहां बडे वृक्ष शोभित होते हैं उसके स्वभावको तुमसे कहता हूं ॥ १५ ॥ उस जामुनके फल बडे हाथीके समान पर्वतके ऊपर गिरते हैं और

इलावृतमृषिश्रेष्ठ चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥ विष्कंभा रचिता मेरोर्योजिताः पुनरुच्छ्रिताः ॥ १२ ॥ पूर्वे हि मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः ॥ १३ ॥ कदंबो जंबुवृक्षश्च पिप्पलो वट एव च ॥ एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ॥ १४ ॥ जम्बूद्वीपस्य नाम्नो वै हेतुं शृणु महामुने ॥ विराजंते महावृक्षास्तत्स्वभावं वदामि ते ॥ १५ ॥ महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च ॥ पतंति भूभृतः पृष्ठे शीर्य्यमाणानि सर्वतः ॥ १६ ॥ रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ॥ परितो वर्तते तत्र पीयते तन्निवासिभिः ॥ १७ ॥ न स्वेदो न च दौर्गंध्यं न जरा चेन्द्रियग्रहः ॥ तस्यास्तटे स्थितानान्तु जनानां तत्र जायते ॥ १८ ॥ तीरमृत्स्नां च सम्प्राप्य मुखवायुविशोषिताम् ॥ जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥ १९ ॥ भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे ॥ वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्य इलावृतम् ॥ २० ॥ वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः ॥ विभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ॥ २१ ॥

पर्वतके चारोंओर फैले हैं ॥ १६ ॥ वहां उन फलोंके रससे जम्बुनदी विख्यातहै और उस पर्वतके चारोंतरफ बहरही है वहांके निवासियोंसे पान की जाती है ॥ १७ ॥ वहां उस नदीके समीपमें स्थितहुए जीवोंको पसीना दुर्गन्धि बुढापा तथा इन्द्रियपीडा नहीं होती है ॥ १८ ॥ मुखवायु (सांस) से सुखाईहुई तीरकी मृत्तिकाके स्नानको प्राप्त हो जाम्बुनदनामक सिद्धोंका भूषणरूप सुवर्ण होताहै ॥१९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सुमेरुके पूर्वमें भद्राश्व तथा पश्चिममें केतुमालनामक दोनों वर्ष हैं उन दोनोंके मध्यमें इलावृत वर्ष है ॥ २० ॥ पूर्वमें चैत्ररथ वन है तथा दक्षिणमें गन्धमादननामक वन है और पश्चिममें

विभ्राज और उसके उत्तरमें नन्दन वन है ॥ २१ ॥ अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस नामवाले यह चार सरोवर देवताओंके भोगने योग्य हैं ॥ २२ ॥
शीतांजन, कुरुंग, कुरर, तथा माल्यवान् यह एक एक मेरुके पूर्वमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, कपिल आदिक केसराचल
यह दक्षिणमें हैं ॥ २४ ॥ सिनी, वास, कुसुम्भ, कपिल, तथा नारद, नागादि यह पर्वत पश्चिममें हैं ॥ २५ ॥ शंखचूड, ऋषभ, हंस, काल, तथा जराद्य
यह पर्वत उत्तरमें हैं ॥ २६ ॥ सुमेरुके ऊपरिमध्यमें शांतकौंभनामक ब्रह्माजीका नगर है वह चौदह सहस्र योजन विस्तारवाला है ॥ २७ ॥ और उसके

अरुणोदं महाभद्रं शीतोदं मानसं स्मृतम् ॥ सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वशः ॥ २२ ॥ शीतांजनः कुरुंगश्च कुररो माल्यवां
स्तथा ॥ चैकैकप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः ॥२३॥ त्रिकूटश्शिशिरश्चैव पतंगो रुचकस्तथा ॥ निषधः कपिलाद्याश्च दक्षिणे केसरा
चलाः ॥२४॥ सिनी वासः कुसुंभश्च कपिलो नारदस्तथा ॥ नागादयश्च गिरयः पश्चिमे केसराचलाः ॥ २५ ॥ शंखचूडोऽथ ऋषभो
हंसो नाम महीधरः ॥ कालंजराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः ॥२६॥ मेरोरुपरि मध्ये हि शातकौंभं विधेः पुरम् ॥ चतुर्दशसहस्राणि
योजनानि च संख्यया ॥ २७ ॥ अष्टानां लोकपालानां परितस्तदनुक्रमात् ॥ यथादिशं यथारूपं पुरोऽष्टावुपकल्पिताः ॥ २८ ॥
तस्यां च ब्रह्मणः पुर्य्यां पातयित्वेन्दुमण्डलम् ॥ विष्णुपादविनिष्क्रांता गंगा पतति वै नदी ॥ २९ ॥ सीता चालकनंदा च चक्षुर्भद्रा
च वै क्रमात् ॥ सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा प्रत्यपद्यत ॥ ३० ॥ सीता पूर्वेण शैलं हि नन्दा चैव तु दक्षिणे ॥ सा चक्षुः पश्चिमे
चैव भद्रा चोत्तरतो व्रजेत् ॥ ३१ ॥ गिरीनतीत्य सकलांश्चतुर्दिक्षु महांबुधिम् ॥ सा ययौ प्रयता सूता गंगा त्रिपथगामिनी ॥ ३२ ॥

चारोंओर क्रमसे आठौ लोकपालोंके प्रत्येक दिशाके अनुसार तथा रूपके अनुसार आठ नगर विद्यमान हैं ॥ २८ ॥ उस ब्रह्माकी पुरीमें चन्द्रमंडलको
गिराके विष्णुके चरणसे निकलीहुई गंगाजी गिरी हैं ॥ २९ ॥ तथा वहां सीता अलकनन्दा चक्षुभद्रा यह क्रमसे गिरी हैं और चारों दिशाओंमें व्याप्तहुई हैं
॥ ३० ॥ पूर्वकी ओर सीता तथा पर्वतके दक्षिणमें अलकनन्दा पश्चिममें चक्षुर्नदी उत्तरकी ओर भद्रानदी बहती है ॥ ३१ ॥ तीन ओरको जानेवाली

वह गंगाजी सम्पूर्ण पर्वतोंको लांघके तथा चारों दिशाओंमें समुद्रको मिलतीहुई वहांसे गई है ॥३२॥ सुनील निषधनामक जो दो पर्वत और माल्यवान् गंधमादनहैं उनके मध्यमें प्राप्तहुआ सुमेरुपर्वत कलीके आकारसे शोभित होरहा है ॥ ३३ ॥ भारत, केतुमाल, भद्राश्व, तथा कुरु मर्यादालोकपर्वत यह लोकरूपी कमलके पत्र हैं ॥ ३४ ॥ दक्षिण तथा उत्तरके आयाममें जठर देवकूट और पूर्व तथा पश्चिमकी ओर गन्धमादन तथा कैलास पर्वतहैं ॥३५॥ सुमेरुके पूर्व पश्चिमकी ओर निषध नील पर्वत दक्षिण और उत्तरकी ओर प्राप्त हुएहैं तथा कलीके भीतर स्थित हैं ॥ ३६ ॥ मेरुसे आगे जठर आदिकहैं

सुनीलनिषधौ यौ तौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥ तेषां मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ३३ ॥ भारतः केतुमालश्च भद्राश्वः कुरवस्तथा ॥ पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादालोकपर्वताः ॥ ३४ ॥ जठरं देवकूटश्च आयामे दक्षिणोत्तरे ॥ गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चिमतो गतौ ॥ ३५ ॥ पूर्वपश्चिमतो मेरोर्निषधो नीलपर्वतः ॥ दक्षिणोत्तरमायातौ कर्णिकांतर्व्यवस्थितौ ॥ ३६ ॥ जठराद्याः स्थिता मेरोर्येषां द्वौ द्वौ व्यवस्थितौ ॥ केसराः पर्वता एते श्वेताद्याः सुमनोरमाः ॥ ३७ ॥ शैलानामुत्तरे द्रोण्यस्सिद्धचारणसेविताः ॥ सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ॥ ३८ ॥ सर्वेषां चैव देवानां यक्षगंधर्वरक्षसाम् ॥ क्रीडंति देवदैतेयाश्शैलप्रायेष्वहर्निशम् ॥ ३९ ॥ धर्मिणामालया ह्येते भौमास्स्वर्गाः प्रकीर्तिताः॥न तेषु पापकर्तारो यांति पश्यंति कुत्रचित् ॥ ४० ॥ यानि किंपुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ॥ न तेषु शोको नापत्त्यो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ॥ ४१ ॥ स्वस्थाः प्रजा निरातंकास्सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ॥ ४२ ॥

जिनमें दोदो पर्वत व्यवस्थितहैं यह श्वेत आदिक मनोहर पर्वतहैं ॥ ३७ ॥ और पर्वतोंके उत्तरमें नदियोंमें सिद्ध गुह्यकोंसे सेवित द्रोणी (डोंगी) हैं और उनमें मनोहर नगर तथा वनहैं ॥ ३८ ॥ सम्पूर्ण देवताओंके तथा यक्ष गन्धर्व राक्षसोंके समूह तथा देवता और दैत्य इन पर्वतोंपर रातदिन क्रीडा करतेहैं ॥ ३९ ॥ यह भूमि तथा स्वर्गमें स्थित धर्मात्माओंके स्थान कहेहैं इनमें पापीजन नहीं जाते न कहीं कुछ देख सकतेहैं ॥ ४० ॥ हे महामुने ! जो किंपुरुष आदिक नगरहैं उनमें आठ वर्षतक न शोक न आपत्ति न उद्वेग न क्षुधामय आदिक होता है ॥ ४१ ॥ स्वस्थ निर्द्वन्द्व सब दुःखोंसे रहित प्रजा

दश बारह सहस्रवर्षतक स्थिर आयुवाली होती है ॥ ४२ ॥ वहां सतयुग और त्रेता द्वापर ही वर्तते हैं और चारोंतरफ भूमिसम्बन्धी जल बहते हैं उन स्थानोंमें मेघ नहीं वर्षता केवल कल्पना होती है ॥ ४३ ॥ इन सातौ द्वीपोंमें सुन्दर (निर्मल जलवाली) स्वर्णकी वालुका समेत नदियाँ तथा सैकडों छोटी नदीं होतीहैं उनमें पुण्यात्मा मनुष्य क्रीडा करतेहैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० ब्रह्माण्डकथने जम्बुद्वीपवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले, अब मैं हिमालय पर्वतके दक्षिणमें भारतवर्षको कहता हूँ जहाँ समुद्रके उत्तरमें भारतीसृष्टी है ॥ १ ॥

कृतत्रेतादिकाश्चैव भौमान्यंभांसि सर्वतः ॥ न तेषु वर्षते देवस्तेषु स्थानेषु कल्पना ॥ ४३ ॥ सप्तस्वेतेषु नद्यश्च सुजातास्स्वर्णवालुकाः ॥ शतशस्संति क्षुद्राश्च तासु क्रीडारता जनाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने जम्बूद्वीपवर्षवर्णनं नाम सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वक्ष्येऽहं भारतं वर्षं हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ॥ उत्तरे तु समुद्रस्य भारती यत्र संसृतिः ॥ १ ॥ नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ॥ स्वर्गापवर्गयोः कर्मभूमिरेषा स्मृता बुधैः ॥ २ ॥ अतस्संप्राप्यते पुंभिस्स्वर्गो नरक एव च ॥ भारतस्यापि वर्षस्य नव भेदान्ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥ इंद्रद्युम्नः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गंधर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ४ ॥ अयं तु नवमस्तेषां द्वीपस्सागरसंभृतः ॥ योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ ५ ॥ पूर्वे किराता यस्य स्युर्दक्षिणे यवनाः स्थिताः ॥ पश्चिमे च तथा ज्ञेया उत्तरे हि तपस्विनः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भूयशः ॥ इज्यायुद्धपणासेवावर्तयंतो व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥

हे महामुने ! इसका विस्तार नौ सहस्र योजन है इसे पंडितोंने स्वर्ग और अपवर्गकी कर्मभूमि कहा है ॥ २ ॥ यहाँसे मनुष्योंको स्वर्ग तथा नरक मिलताहै भारतवर्षके नौ भेद मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ इन्द्रद्युम्न, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान् तथा नागद्वीप, सौम्य तथा गन्धर्व और वारुण ॥ ४ ॥ उनमेंसे यह सागरसे उत्पन्नहुआ नवमा द्वीप है यह सहस्रों योजन दक्षिणसे उत्तरको विस्तारवाला है ॥ ५ ॥ जिसके पूर्वमें किरातहैं तथा दक्षिणमें यवन स्थितहैं पश्चिममें और उत्तरमें तपस्वी लोग निवास करतेहैं ॥ ६ ॥ और मध्यमें अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, शूद्र, यज्ञ, युद्ध, वाणिज्य और सेवा आदि

अपने कर्मोंमें स्थित हो निवास करतेहैं ॥ ७ ॥ तहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्षपर्वत विंध्य, पारियात्र यह सात कुल पर्वतहैं ॥ ८ ॥ हे मुने ! वेद, स्मृति, पुराणआदि पारियात्र स्थानसे उत्पन्न हुएहैं वे दर्शनसे तथा स्पर्शसे सब पापोंको हरनेवालेहैं ॥ ९ ॥ नर्मदा सुरसा आदिक सात तथा और भी सहस्रों विंध्याचलसे उत्पन्नहुई सम्पूर्ण पापोंको हरनेवालीं श्रेष्ठ महानदी हैं ॥ १० ॥ गोदावरी भीमरथी तापी आदि नदीं ऋक्षपर्वतसे निकलींहैं और शीघ्र पाप और भयको हरण करनेवाली हैं ॥ ११ ॥ कृष्णावेणी आदिक नदीं सह्यपर्वतके चरणसे उत्पन्न हुई तथा कृतमाला ताम्रपर्णी आदिक नदी मलयाचलसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १२ ॥ त्रियामा, ऋषिकुल्या आदि नदीं महेन्द्रपर्वतसे निकलींहैं और ऋषिकुल्या कुमारी आदिक शुक्तिमत् पर्वतके पादसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १३ ॥ और इन मण्डलोंमें अनेक नगर वसतेहैं इन नदियोंके तथा अनेक सरोवरोंके पानी पीतेहैं ॥ १४ ॥ हे महामुने ! भारतवर्षमें सतयुग आदि चारों युग रहतेहैं इस प्रकार और द्वीपोंमें नहीं होसकते ॥ १५ ॥ यहाँपर पुण्यात्मा याज्ञिक दान देतेहैं और संन्यासी परलोकके निमित्त आदरसे तप करतेहैं ॥ १६ ॥ हे महामुने ! जम्बुद्वीपमें यह भूमि कर्मभूमि है यहाँपर भी भारतवर्ष श्रेष्ठ है यहाँसे अतिरिक्त और सब भोगकी भूमिहैं ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !

महेन्द्रो मलयस्सह्यः सुदामा चर्क्षपर्वतः ॥ विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ ८ ॥ वेदस्मृतिपुराणाद्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥
सर्वपापहरा ज्ञेया दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ९ ॥ नर्मदासुरसाद्याश्च सप्तान्याश्च सहस्रशः ॥ विंध्योद्भवा महानद्यस्सर्वपापहराश्शुभाः ॥
॥ १० ॥ गोदावरीभीमरथीतापीप्रमुखनिम्नगाः ॥ गिरेर्विनिर्गता ऋक्षात्सद्यः पापभयापहाः ॥ ११ ॥ सह्यपादोद्भवा नद्यः कृष्णावेण्या
दिकास्तथा ॥ कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥ १२ ॥ त्रियामा चर्षिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ॥ ऋषिकुल्याकुमार्य्या
द्याः शुक्तिमत्पादसंभवाः ॥ १३ ॥ नानाजनपदास्तेषु मंडलेषु वसन्ति वै ॥ आसां पिबंति पानीयं सरस्सु विविधेषु च ॥ १४ ॥
चत्वारि भारते वर्षे युगान्यासन्महामुने ॥ कृतादीनि न चान्येषु द्वीपेषु प्रभवंति हि ॥ १५ ॥ दानानि चात्र दीयंते सुकृतैश्चात्र याज्ञिकैः ॥
तपस्तपंति यतयः परलोकार्थमादरात् ॥ १६ ॥ यतो हि कर्मभूरेषा जम्बूद्वीपे महामुन ॥ अत्रापि भारतं श्रेष्ठमतोऽन्या भोगभूमयः
॥ १७ ॥ कदाचिल्लभते मर्त्यस्सहस्रैर्मुनिसत्तम ॥ अत्र जन्मसहस्राणां मानुष्यं पुण्यसंचयैः ॥ १८ ॥

यहाँपर मनुष्य सहस्रों जन्मोंके पुण्यसंचयसे मनुष्यजन्मको पाताहै ॥ १८ ॥ स्वर्ग अपवर्ग स्थानके मार्गभूत भारतभूमिभागमें वे देवता गीतोंको गातेहैं और फिर वे देवता पुरुष होतेहैं ॥ १९ ॥ और कभी मनुष्यके शरीरको पाय तथा कभी शिवके परमात्मरूपमें विहार करके समस्त कर्मके फलोंको प्राप्त होतेहैं मैं उनके शरीरत्वको प्राप्त होऊं जिससे भजन कर मोक्षको प्राप्त होजाऊं ॥ २० ॥ सुखोंसे युक्त शुभ कर्मोंमें प्रविष्ट हुए वे मनुष्य धन्यहैं कि जिनका जन्म भारतवर्षमें होता है कारण कि, वे स्वर्ग मोक्ष दोनोंके लाभको देनेवाले हैं ॥ २१ ॥ लक्षयोजनविस्तृत समस्त परिमंडल क्षीरसागरसे घिराहुआ जम्बुद्वीप

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ॥ गायंति देवाः किल गीतकानि भवंति भूयः पुरुषास्सुरास्ते ॥ १९ ॥ अवाप्य मानुष्यमयं कदाचिद्विहृत्य शंभोः परमात्मरूपे ॥ फलानि सर्वाणि तु कर्मजानि यास्याम्यहं तत्तनुतां हि तस्य ॥ २० ॥ आप्स्यंति धन्याः खलु ते मनुष्याः सुखैर्युताः कर्मणि सन्निविष्टाः ॥ जनुर्हि येषां खलु भारतेऽस्ति ते स्वर्गमोक्षोभयलाभवन्तः ॥ २१ ॥ लक्षयोजनविस्तारस्समस्तपरिमण्डलः ॥ जम्बूद्वीपो मया ख्यातः क्षारोदधिसुसंवृतः ॥ २२ ॥ संवेष्ट्य क्षारमुदधिं शतसाहस्रसम्मितम् ॥ ततो हि द्विगुणो ब्रह्मन्प्लक्षद्वीपः प्रकीर्तितः ॥ २३ ॥ गोमंतश्चैव चन्द्रश्च नारदो दर्दुरस्तथा ॥ सोमकस्सुमनाश्शैलो वैभ्राजश्चैव सत्तमः ॥ २४ ॥ वर्षाचलेषु रम्येषु सहितास्सततं प्रजाः ॥ वसंति देवगंधर्वा वर्षेष्वेतेषु नित्यशः ॥ २५ ॥ नाधयो व्याधयो वापि जनानां तत्र कुत्रचित् ॥ दश वर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः ॥ २६ ॥ अनुतप्ता शिखी चैव पापघ्नी त्रिदिवा कृपा ॥ अमृता सुकृता चैव सप्तैवात्र च निम्नगाः ॥ २७ ॥ क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र संति सहस्रशः ॥ ताः पिबंति सुसंहृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ॥ २८ ॥

मैंने कह दिया ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! क्षार (खारी) सागरको लपेटके शतसहस्रयोजन पारिमित जम्बूद्वीपसे दूना प्लक्षद्वीप कहाहै ॥ २३ ॥ गोमंत, चन्द्र, नारद, तथा दर्दुर, सोमक, सुमन, तथा वैभ्राजनामक श्रेष्ठ पर्वत हैं ॥ २४ ॥ इन मनोहर वर्षाचलोंमें निरंतर देवता गंधर्व सहित प्रजा निवास करती हैं ॥ २५ ॥ वहांपर मनुष्योंको आधि व्याधि कहीं भी नहीं है वहांपर मनुष्य दशसहस्र वर्षतक जीते हैं ॥ २६ ॥ और वहां अनुतप्ता शिखी पापघ्नी त्रिदिवा कृपा अमृता सुकृता यह सात नदी हैं ॥२७॥ वह छोटी नदी नथा सहस्रों पर्वत हैं वे नगरवासी उन निर्मल जलवाली नदियोंके जल पीतेहैं ॥२८॥

हे महामुने ! वहां भी सातौ स्थानोंमें चारों युगोंकी अवस्था नहीं किन्तु निरंतर त्रेतायुगके समान काल रहता है ॥ २९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र रहते हैं उसके मध्यमें कल्पवृक्षके समान बडा वृक्ष है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वह वृक्ष पिलखनका है इस कारण प्लक्षद्वीपनामसे प्रसिद्ध हुआ है वहां परलोक शंकर भगवान् शिवजीके लिये यज्ञ करते हैं ॥ ३१ ॥ और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मा वैदिक यंत्र मंत्रोंसे यज्ञ करते हैं अब तुम संक्षेपसे शाल्मलिद्वीपको सुनो ॥ ३२ ॥ वहां सात पर्वत हैं मुझसे उनका नाम सुनो श्वेत हरित जीमूत तथा रोहित ॥ ३३ ॥ हे मुने ! वैकल मानस

न तत्रापि युगावस्था यथा स्थानेषु सप्तसु ॥ त्रेतायुगसमः कालस्सर्वदैव महामुने ॥ २९ ॥ विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ कल्पवृक्षसमानस्तु तन्मध्ये सुमहातरुः ॥ ३० ॥ प्लक्षस्तन्नामसंज्ञो वै प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम ॥ इज्यते तत्र भगवाञ्छंकरो लोकशंकरः ॥ ३१ ॥ हरिश्च भगवान्ब्रह्मा यन्त्रैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः ॥ संक्षेपेण तथा भूयश्शाल्मलिं त्वं निशामय ॥ ३२ ॥ सप्तवर्षाणि तत्रैव तेषां नामानि मे शृणु ॥ श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥ ३३ ॥ वैकलो मानसश्चैव सुप्रसभस्सप्तमो मुने ॥ शाल्मलेन तु वृक्षेण द्वीपः शाल्मलिसंज्ञकः ॥ ३४ ॥ द्विगुणेन समुद्रेण सततं संवृतः स्थितः ॥ वर्षाभिव्यंजका नद्यस्तासां नामानि मे शृणु ॥ ३५ ॥ शुक्ला रक्ता हिरण्या च चन्द्रा शुभ्रा विमोचना ॥ निवृत्तिः सप्तमी तासां पुण्यतोयाः सुशीतलाः ॥ ३६ ॥ सप्तैव तानि वर्षाणि चतुर्वर्णायुतानि च ॥ भगवन्तं सदा शंभुं यजंते विविधैर्मखैः ॥ ३७ ॥ देवानां तत्र सान्निध्यमतीव सुमनोरमे ॥ एष द्वीपस्समुद्रेण सुरोदेन समावृतः ॥ ३८॥ द्विगुणेन कुशद्वीपः समंताद्व्याप्यतः स्थितः ॥ वसंति तत्र दैतेया मनुजैस्सह दानवाः ॥ ३९ ॥

और सातवाँ सुप्रसभ है यहाँ सेमलके वृक्षसे शाल्मलिनामक द्वीप प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥ यह द्विगुण समुद्रसे निरन्तर घिराहुआ है और पर्वतोंसे उत्पन्नहुईं नदींहैं उन नदियोंके नाम मुझसे सुनो ॥ ३५ ॥ शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चन्द्रा, शुभ्रा, विमोचना, निवृत्ति, उनमें सातवीं पवित्र जलवाली सुशीतला नदीहै ॥ ३६ ॥ और सात पर्वत तथा चारौं वर्ण वहाँ निवास करते हैं सदा भगवान् शिवको अनेक यज्ञोंसे प्रसन्न करतेहैं ॥ ३७ ॥ इस मनोहर द्वीपमें देवताओंकी अति समीपता है यह द्वीप सुरोदनामवाले समुद्रसे घिरा हुआ है ॥३८॥ इस द्वीपसे दूना कुशद्वीप है वहाँ मनुष्यों सहित दानव दैत्य निवास करतेहैं ॥३९॥

तथा देवता गंधर्व यक्ष किंपुरुष आदि तथा चारोंवर्ण अपने अपने कर्मानुष्ठानमें तत्परहैं ॥ ४० ॥ और वहाँ कुशद्वीपमें ब्रह्मा और विष्णुको तथा सब कामनाके पूर्ण करनेवाले शिवजीको यजन करतेहैं ॥ ४१ ॥ कुशेशय, हरि, द्युतिमान्, तथा पुष्पवान्, मणिद्रुम, हेमशैल, सातवाँ मन्दराचलहै ॥४२॥ और सात नदी हैं उनके नाम तत्त्वसे सुनो धूतपापा शिवा पवित्रा तथा संमिति ॥ ४३ ॥ विद्या दंभा मही आदि यह सब पापोंको हरनेवाली नदीहैं तथा और भी निर्मल जलवाली सुवर्णकी वालुसहित सहस्रों नदीहैं ॥ ४४ ॥ कुशद्वीपमें कुशोंका स्तम्भहै यह द्वीप घृतोदनामक समुद्रसे घिराहै हे महाभाग !

तथैव देवगन्धर्वा यक्षाः किंपुरुषादयः ॥ वर्णास्तत्रैव चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥ ४० ॥ तत्रैव च कुशद्वीपे ब्रह्माणं च जनार्दनम् ॥ यजंति च तथेशानं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४१ ॥ कुशेशयो हरिश्चैव द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ॥ मणिद्रुमो हेमशैलस्सप्तमो मन्दराचलः ॥ ४२ ॥ नद्यश्च सप्त तासां तु नामानि शृणु तत्त्वतः ॥ धूतपापा शिवा चैव पवित्रा संमितिस्तथा ॥ ४३ ॥ विद्या दंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ॥ अन्यास्सहस्रशस्संति शुभापो हेमवालुकाः ॥ ४४ ॥ कुशद्वीपे कुशस्तम्बो घृतोदेन समावृतः ॥ क्रौञ्चद्वीपो महाभाग श्रूयतां चापरो महान् ॥ ४५ ॥ द्विगुणेन समुद्रेण दधिमंडेन चावृतः ॥ वर्षाचला महाबुद्धे तेषां नामानि मे शृणु ॥ ४६ ॥ क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः ॥ दिवावृतिर्मनश्चैव पुण्डरीकश्च दुन्दुभिः ॥ ४७ ॥ निवसंति निरान्तका वर्षशैलेषु तेषु वै ॥ सर्वसौवर्णरम्येषु सुहृद्देवगणैः प्रजाः ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ संति तत्र महानद्यस्सप्तान्यास्तु सहस्रशः ॥ ४९ ॥

अब दूसरा क्रौंचद्वीप सुनो ॥ ४५ ॥ यह दूने दधिमंडनामक समुद्रसे घिराहै हे महाबुद्धे ! जो इसके निकटवर्ती पर्वतहैं उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ४६ ॥ क्रौंच, वामन, तीसरा अंधकारक, दिवावृत्ति, मन, पुंडरीक, दुन्दुभिनामकहैं ॥ ४७ ॥ सबओर सुवर्णसे मनोहर हुए उन वर्ष पर्वतोमें मित्र देवगणोंसहित प्रजा निर्भय होरहतीहैं ॥ ४८ ॥ वहांपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, परस्पर मिले स्वकर्म निष्ठहो निवास करतेहैं सात महानदी और सहस्रों नदीहैं ॥४९॥

गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, शान्ति, पुंडरीका नामवालीं जिनके निर्मल जलको सब मनुष्य पीतेहैं ॥ ५० ॥ वहां पर योगरुद्र स्वरूपवाले
भगवान् शिव पूजे जातेहैं और दधिमण्डोदक समुद्र उससे द्विगुण शाकद्वीपसे घिरा है ॥ ५१ ॥ वहाँ सात पर्वतहैं उनके नाम सुनो उसके पूर्वमें उदय
गिरि है और उसके पश्चिममें जलधारपर्वत है ॥ ५२ ॥ पीछे अस्तितगिरि अविकेश केशरी नामवाले हैं वहाँ शाकनामक महावृक्ष सिद्ध और गन्धर्वोंसे
सेवितहै ॥ ५३ ॥ वहाँपर चारों वर्णोंसमेत पवित्र नगरहैं और बडी पवित्र सम्पूर्ण पाप भयोंको दूर करने वाली नदी हैं ॥ ५४ ॥ सुकुमारी कुमारी

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ॥ शांतिश्च पुंडरीका च याः पिबन्ति पयश्शुभम् ॥ ५० ॥ भगवान्पूज्यते तत्र योगरुद्रस्व
रूपवान् ॥ दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ॥ ५१ ॥ द्विगुणेनाद्रयस्सप्त तेषां नामानि मे शृणु ॥ पूर्वे तत्रोदयगिरिर्जलधारः
परे यतः ॥ ५२ ॥ पृष्ठतोऽस्तगिरिश्चैव ह्यविकेशश्च केसरी ॥ शाकस्तत्र महावृक्षस्सिद्धगंधर्वसेवितः ॥ ५३ ॥ तत्र पुण्या जनपदा
श्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ॥ नद्यश्चात्र महापुण्यास्सर्वपापभयापहाः ॥ ५४ ॥ सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा ॥ इक्षुश्च रेणुका
चैव गभस्तिस्सप्तमी तथा ॥ ५५ ॥ अन्यास्सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने ॥ महीधरास्तथा संति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५६ ॥
धर्महानिर्न तेष्वस्ति स्वर्गादागत्य मानवाः ॥ वर्षेषु तेषु पृथिवीं विहरन्ति परस्परम् ॥ ५७ ॥ शाकद्वीपे तु वै सूर्य्यः प्रीत्या
जनपदैस्सदा ॥ यथोक्तैरिज्यते सम्य क्कर्मभिर्नियतात्मभिः ॥ ५८ ॥ क्षीरोदेनावृतस्सोऽपि द्विगुणेन समंततः ॥ क्षीराब्धिस्सर्वतो व्यास
पुष्कराख्येन संवृतः ॥ ५९ ॥ द्विगुणेन महावर्षस्तत्र ख्यातोऽत्र मानसः ॥ योजनानां सहस्राणि पंचैवोर्ध्वसमुच्छ्रितः ॥ ६० ॥

नलिनी तथा वेणुका इक्षुरेणुका सातवीं गभस्तिनामवाली है ॥ ५५ ॥ हे महामुने ! और भी वहाँ हजारों क्षुद्र नदीहैं तथा सैकडों हजारों पर्वत हैं॥
॥ ५६ ॥ उनमें धर्मकी हानि नहीं होती है यहाँपर मनुष्य स्वर्गसे आके इन इन पर्वतोंमें आपसमें विहार करतेहैं ॥ ५७ ॥ शाकद्वीपमें सदा संयममें
तत्परहुए शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले नगरवासी प्रीतिसे सूर्य भगवान्का यजन करतेहैं ॥ ५८ ॥ यह शाकद्वीप द्विगुणे क्षीरसागरसे घिराहुआ है हे व्यासजी !
यह क्षीरसागर पुष्कर नामवाले द्वीपसे घिरा है ॥ ५९ ॥ और वहाँ दूना महावर्ष है और यहाँ मानससरोवर विख्यात है और इसका पांच सहस्र योजन

उंचाव है ॥ ६० ॥ और लक्ष योजन चारोंतरफसे कंकणके आकारवाला है पुष्करद्वीपका घेरा मध्यसे विभाग करता है ॥ ६१ ॥ इससे ही द्वीपवर्षके समान वलयाकार है वहाँपर मनुष्य दशसहस्र वर्षतक जीते हैं ॥ ६२ ॥ हे मुने ! वे व्याधिरहित शोकहीन तथा रागद्वेषसे वर्जितहैं उनमें अधर्म वध बन्धन आदि नहीं होता ॥६३॥ और न उनमें असत्य झूंठ रहता है उस द्वीपकी वसति सदा तुल्यवेषवाली रहती है और मनुष्य सुवर्णके समान कान्तिवाले होते हैं ॥ ६४ ॥ हे कालेय यहाँ स्वर्गके समान भौमवर्ष है तथा इसमें सबको सुख देनेवाला जरारोगवर्जित समय होता है ॥६५॥ हे महामुने ! पुष्करमें धातकी

तानि चैव तु लक्षाणि सर्वतो वलया कृतिः ॥ पुष्करद्वीपवलयो मध्येन विभजंति च ॥ ६१ ॥ तेनैव वलयाकारा द्वीपवर्षसमाकृतिः ॥
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः ॥ ६२ ॥ निरामया वीतशोका रागद्वेषविवर्जिताः ॥ अधर्मो न मतस्तेषां न बंधवधकौ मुने ॥
॥ ६३ ॥ सत्यानृते न तस्यास्तां सदैव वसतिस्सदा ॥ तुल्यवेषास्तु मनुजा हेमवर्णैकरूपिणः ॥ ६४ ॥ वर्षश्चायं तु कालेय भौम
स्वर्गोपमो मतः ॥ सर्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्जितः ॥ ६५ ॥ पुष्करे धातकीखण्डे महावीते महामुने ॥ न्यग्रोधं पुष्करद्वीपे
ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ तस्मिन्निवसते ब्रह्मा पूज्यमानस्सुरासुरैः ॥ स्वादूदकेनांबुधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥ ६७ ॥ एवं द्वीपा
स्समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः॥द्वीपाश्चैव समुद्राश्च समाना द्विगुणैः परैः ॥ ६८ ॥ उक्तातिरिक्तता तेषां समुद्रेषु समानि वै ॥ पयांसि
सर्वदाऽल्पत्वं जायते न कदाचन ॥ ६९ ॥ स्थालीस्थमग्निसंयोगादधःस्थं मुनिसत्तम ॥ तथेन्दु वृद्धौ सलिलमूर्द्धगं भवति
ध्रुवम् ॥ ७० ॥ उदयास्तमने त्विंदोर्वर्द्धंत्यापो ह्रसन्ति च ॥ अतो न्यूनातिरिक्ताश्च पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ७१ ॥

खण्डमें महाबीतमें न्यग्रोधनामक ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है ॥६६॥ उस स्थानमें देवता तथा दैत्योंसे पूज्यमान हुए ब्रह्माजी निवास करतेहैं और पुष्करद्वीप स्वादूदकनामक समुद्रसे घिराहुआ है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार सातद्वीप सातौ समुद्रोंसे घिरेहुएहैं द्वीप और समुद्र भी समान कहेहैं ॥६८॥ और उन समुद्रोंमें यह अधिकता है कि उनका जल थोडा कदापि नहीं होता है ॥६९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार अग्निके संयोगसे जल ऊपर जाताहै उसी प्रकार चन्द्रमाके बढनेपर समुद्रोंका जल निश्चय ऊपरको उफनता है ॥ ७० ॥ चन्द्रमाके उदय और अस्त होनेपर समुद्रके जल बढते तथा घटतेहैं इस कारण शुक्ल और

कृष्णपक्षमें वृद्धि और न्यूनता होती है ॥ ७१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण (एकसौ दश) समुद्रोंकी वृद्धि और क्षय तुम्हारे आगे कहे ॥ ७२ ॥ हे विप्र !
पुष्करद्वीपमें प्रजा अपने आप प्राप्त हुए भोजनको सदा करती हैं ॥ ७३ ॥ अपने अंगका देनेवाला तथा जिसके आगे लोककी स्थिति नहीं है वह स्थान
सब जन्तुओंसे वर्जित है सुवर्णकी द्विगुणी भूमि है ॥ ७४ ॥ और वहाँ लोकालोक पर्वत सहस्र पर्वतोंके समान ऊंचा और दश सहस्र योजन विस्तृत है
॥ ७५ ॥ हे महामुने ! यह सब द्वीपोंसहित तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी द्वीप और पर्वतोंसहित पचास कोटि योजन विस्तारवाली है ॥ ७६ ॥

अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ शतशस्तु दशोत्तरम् ॥ समुद्राणां मुनिश्रेष्ठ सर्वेषां कथितं तव ॥ ७२ ॥ भोजनं पुष्करद्वीपे प्रजास्सर्वाः सदैव हि ॥
खंडस्य कुर्वते विप्र तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥ ७३ ॥ स्वांगदो यस्य पुरतो नास्ति लोकस्य संस्थितिः ॥ द्विगुणा हिरण्मयी भूमिस्सर्वजं
तुविवर्जिता ॥७४॥ लोकालोकस्ततश्शैलस्सहस्राण्यचलो हि सः ॥ उच्छ्रयेण हि तावंति योजनायुतविस्तृतः ॥७५॥ तमश्चांडकटाहेन
सेयमुर्वी महामुने ॥ पंचाशत्कोटिविस्तारा सद्वीपा समहीधरा ॥ ७६ ॥ आधारभूता सर्वेषां सर्वभूतगुणाधिका ॥ सेयं धात्री च कालेय
सर्वेषां जगतामिला ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यासुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने सप्तद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखा भासयंति हि ॥ तावत्प्रमाणा पृथिवी भूलोकस्स तु गीयते ॥ १ ॥ भूमेर्योजनलक्षे
तु संस्थितं रविमण्डलम् ॥ योजनानां सहस्राणि सदैव परिसंख्यया ॥ २ ॥ शशिनस्तु प्रमाणाय जगतः परिचक्षते ॥ रवेरूर्ध्वं शशी
तस्थौ लक्षयोजनसंख्यया ॥ ३ ॥ ग्रहाणां मण्डलं कृत्स्नं शशेरुपरि संस्थितम् ॥ सनक्षत्रं सहस्राणि दशैव परितोपरि ॥ ४ ॥

और सबोंकी आधारभूत सब भूत गुणोंसे अधिक सब लोकोंकी धारण करनेवाली इला है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं०
ब्रह्मांडकथने सप्तद्वीपवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, जहांतक सूर्य और चन्द्रमाकी किरणैं प्रकाशित होती हैं वहाँ तक पृथ्वी
है और वह भूलोक कहा जाता है ॥ १ ॥ भूमीसे लक्ष योजनकी दूरी पर सूर्यमंडल सहस्र योजनके अन्तरमें (घेरेमें) स्थित है ॥ २ ॥ चन्द्रमाके
प्रमाणको वर्णन करते हैं कि सूर्यके ऊपर लक्ष योजनकी दूरीपर चन्द्रमा है ॥ ३ ॥ और चन्द्रमाके ऊपर दश सहस्र योजनपर चारोंओर नक्षत्रों सहित

सस्पूर्ण ग्रहोंका मंडल स्थित है ॥ ४ ॥ और उससे आगे बुध फिर उसके आगे शुक्र उससे ऊपर मंगलका मंडल है, उसके ऊपर बृहस्पति बृहस्पतिके ऊपर शनैश्चरकी स्थिति है ॥ ५ ॥ तिसके ऊपर एक लाख योजनपर सप्तर्षियोंका मंडल विराजमान है और सप्तर्षियोंसे शत सहस्र योजनपर ध्रुवका ग्रह ॥ ॥ ६ ॥ यह सम्पूर्ण नक्षत्रमंडलके मेढीभूत होके (वेण्याकारसे) स्थित हैं भूमिसे ऊपर और ध्रुवसे नीचे भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोक यह तीन लोक जानने चाहिये ॥ ७ ॥ जहाँपर एक कोटि योजनपर वे कल्पवासी ऋषि निवास करते हैं और ध्रुवसे ऊपर महर्लोक है जहाँ यह वक्ष्यमाण ब्रह्माके सातपुत्र निवास करते हैं ॥ ८ ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पंचशिख ॥ ९ ॥ इनसे ऊपर दो लक्षके अंतरपर शुक्र स्थित हैं और शुक्रसे दो लक्ष योजन नीचे बुध स्थित हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! बुधसे दशलक्ष योजन ऊपरको मंगल स्थित हैं और मंगलसे दो लक्ष योजनपर बृहस्पति स्थित हैं ॥ ॥ ११ ॥ और बृहस्पतिसे दो लक्ष योजन ऊपर शनैश्चर स्थित हैं यह सातौ ग्रह अपनी अपनी राशीपर स्थित हुए हैं ॥ १२ ॥ उनसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तऋषि स्थित हैं और तेरह लक्ष योजन ऊपरको ध्रुवकी स्थिति कही है ॥ १३ ॥ जनलोकसे आगे चतुर्गुणोत्तर अर्धमें (अर्धमार्गमें)

बुधस्तस्मादथो काव्यस्तस्माद्भौमस्य मण्डलम् ॥ बृहस्पतिस्तदूर्ध्वं तु तस्योपरि शनैश्चरः ॥ ५ ॥ सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षेणैकेन
संस्थितम् ॥ ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं ध्रुवः स्थितः ॥ ६ ॥ मेढीभूतस्स यस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥ भूर्भुवःस्वरिति
ज्ञेयं भुव ऊर्ध्वं ध्रुवादवाक् ॥ ७ ॥ एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ॥ ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकस्संतैते ब्रह्मणस्सुताः ॥ ८ ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥ कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा ॥ ९ ॥ उपरिष्टात्ततश्शुक्रो द्विलक्षाभ्यंतरे स्थितः ॥
द्विलक्षयोजनं तस्मादधः सोमसुतः स्मृतः ॥ १० ॥ द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं भौमस्स्थितो मुने ॥ द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं जीवः
स्थितो गुरुः ॥ ११ ॥ द्विलक्षयोजनं जीवादूर्ध्वं सौरिर्व्यवस्थितः ॥ एते सप्तग्रहाः प्रोक्तास्स्वस्वराशिव्यवस्थिताः ॥ १२ ॥ रुद्रलक्षै
र्योजनतस्सप्तोर्ध्वमृषयः स्थिताः ॥ विश्वलक्षैर्योजनतो ध्रुवस्थितिरुदाहृता ॥ १३ ॥ चतुर्गुणोत्तरे चार्द्धे जनलोकात्तपः स्मृतम् ॥
वैराजा यत्र देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः ॥ १४ ॥

तपलोककी स्थिति कही है जहाँपर बैराज तथा दाहरहित देवता स्थित हैं ॥ १४ ॥ तपोलोकसे छःगुना सत्यलोक वर्तमान है उसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये जहाँपर निर्मलचित्त ॥ १५ ॥ सत्य और धर्ममें तत्पर ज्ञानी ब्रह्मचारी भूलोकसे जानेवाले मनुष्य निवास करते हैं ॥ १६ ॥ और भुवर्लोकमें मुनि देवता सिद्ध रहते हैं स्वर्गलोकमें देवता बारह आदित्य मरुत् आठ वसु अश्विनीकुमार निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहांपर विश्वेदेव रुद्र साध्य नाग पक्षी आदिक नवग्रह पापरहित ऋषिगण निवास करते हैं ॥ १८ ॥ हे व्यासजी ! यह सात महालोक तुमसे कहे सात पाताल हैं इस प्रकार ब्रह्मांडका

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको व्यवस्थितः ॥ ब्रह्मलोकः स विज्ञेयो वसंत्यमलचेतसः ॥ १५ ॥ सत्यधर्मरताश्चैव ज्ञानिनो ब्रह्मचारिणः ॥ यद्गामिनोऽथ भूलोकान्निवसंति हि मानवाः ॥ १६ ॥ भुवर्लोके तु संसिद्धा मुनयो देवरूपिणः ॥ स्वर्गलोके सुरादित्या मरुतो वसवोऽश्विनौ ॥ १७ ॥ विश्वेदेवास्तथा रुद्रास्साध्या नागाः खगादयः ॥ नवग्रहास्ततस्तत्र ऋषयो वीतकल्मषाः ॥ १८ ॥ एते सप्त महालोकाः कालेय कथितास्तव ॥ पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्य च विस्तरः ॥ १९ ॥ दधिवृक्षफलं यद्वद्वृत्तिश्चोर्ध्वमधस्तथा ॥ एतदंडकटाहेन सर्वतो वै समावृतम् ॥ २० ॥ पयसा दशगुणेन सर्वतस्तत्समावृतम् ॥ वह्निना वायुना चापि नभसा तमसा तथा ॥ २१ ॥ भूतादिनापि महता दिग्गुणोत्तरवेष्टितः ॥ महांतं च समावृत्य प्रधानं पुरुषः स्थितः ॥२२॥ अनंतस्य न तस्यास्ति संख्यापि परमात्मनः ॥ तेनानंत इति ख्यातः प्रमाणं नास्ति वै यतः ॥ २३ ॥ हेतुभूतस्समस्तस्य प्रकृतिस्सा परा मुने ॥ अंडानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च ॥ २४ ॥ ईदृशानां प्रभूतानि तस्मादव्यक्तजन्मनः ॥ दारुण्यग्निस्तिले तैलं पयस्सु च यथा घृतम् ॥ २५ ॥

विस्तार कहा ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कैथाका फल ऊपर है और उसकी बाड नीचे है उसी प्रकार अंडकटाहसे सब ब्रह्माण्ड चारोंओरसे घिररहा है ॥ २० ॥ यह ब्रह्माण्ड दशगुणें जलसे तथा अग्नि वायु आकाश तथा अंधकारसे सबओरसे व्याप्त होरहा है ॥ २१ ॥ और बडे महत्तत्त्व आदिसे दशगुण अधिक घिराहुआ है प्रधान महत्तत्त्वको व्याप्त होके पुरुष स्थित हैं ॥ २२ ॥ और उन अनंत परमात्मा पुरुषकी संख्या और-नाप नहीं है इसी कारण वे अनंतनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे मुने ! वह सम तथा कारणभूतहैं और उनकी वह प्रकृति है सहस्रों अंडोंके सैकडों सहस्र ॥ २४ ॥ अनेक समुदाय उस अव्यक्त

पुरुषसे उत्पन्न हुए हैं जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि तिलोंमें तेल दूधमें घी स्थित है ॥ २५ ॥ उसी प्रकार यह अपने आपको जाननेवाले परमात्मा सब ब्रह्मांडको व्याप्त होके स्थित हैं और आदिबीजसे उत्पन्न होते हैं तब उनसे पीछे अंडज होते हैं ॥ २६ ॥ अंडजोंसे पुत्र फिर और सबोंके बीज इनसे महत आदि विशेष फिर देवता आदि होते हैं ॥ २७ ॥ जिस प्रकार बीजसे वृक्ष है वृक्षसे बीज है यही वृक्षका प्रगट होना और अभाव कहाजाता है तथा सूर्यसे सूर्यकान्तमणि उस्से अग्निकी उत्पत्ति होती है ॥ २८ ॥ उसी प्रकार ब्रह्मसत्तासे सृष्टि उत्पन्न होती है उस विषयमें शिवजी कामना नहीं करते हैं शिव

तथासौ परमात्मा वै सर्वं व्याप्यात्मवेदनः ॥ आदिबीजात्प्रसुवते ततस्तेभ्यः परेण्डजाः ॥ २६ ॥ तेभ्यः पुत्रास्तथान्येषां बीजान्य
न्यानि वै ततः ॥ महदादयो विशेषांतास्तद्भवंति सुरादयः ॥ २७ ॥ बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः ॥ सूर्य्यकांतमणेः सूर्य्या
द्यद्वद्वह्निः प्रजायते ॥ २८ ॥ तद्वत्संजायते सृष्टिः शिवस्तत्र न कामयेत् ॥ शिवशक्तिसमायोगे देवाद्याः प्रभवंति हि ॥ २९ ॥ तथा
स्वकर्मणैकेन प्ररोहमुपयांति वै ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स शिवः परिगीयते ॥ ३० ॥ तस्मादुद्धरते सर्वं यस्मिंश्च लयमेष्यति ॥
कर्ता क्रियाणां सर्वासां स शिवः परिगीयते ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ छिंधि मे संशयं महत् ॥ सन्ति लोका हि
ब्रह्मांडादुपरिष्टान्नै वा मुने ॥ ३२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्मांडादुपरिष्टाच्च संति लोका मुनीश्वर ॥ तान्छृणु त्वं विशेषेण वच्मि
तेऽहं समागतः ॥ ३३ ॥ विधिलोकात्परो लोको वैकुंठ इति विश्रुतः ॥ विराजते महादीप्त्या यत्र विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥ ३४ ॥

और शक्तिके संयोगमें देवता आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ उसी प्रकार वे अपने २ एक कर्मसे प्रादुर्भावको प्राप्त होते हैं और वह शिवजी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, नामोंसे प्रसिद्ध होते हैं ॥ ३० ॥ उनसे सब जगत् प्रगट होता है और उनमें ही लय हो जाता है वह शिव संपूर्ण क्रियाओंके कर्ता कहेजाते हैं ॥ ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले हे सर्वज्ञ ! हे मुने ! हे सनत्कुमारजी ! तुम मेरे सन्देहको निवृत्त करो इस ब्रह्माण्डके ऊपर और लोक हैं या नहीं ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनीश्वर ! ब्रह्माण्डके ऊपर जो लोक हैं तुम उनको विस्तारपूर्वक सुनो मैं तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजीके लोकसे परे

वैकुंठलोक है जहाँ साक्षात् विष्णु बडी शोभाके साथ निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ उसके ऊपर बडा अद्भुत कौमारलोक है जहाँपर सुन्दर कान्तिवाले शिवके पुत्र स्वामिकार्त्तिकजी निवास करते हैं ॥ ३५ ॥ उसके आगे (ऊपर) परमदिव्य उमालोक विराजमान है जहाँपर तीनों देवताओंकी उत्पन्न करनेवाली शिवाशक्ति शोभित होती हैं ॥ ३६ ॥ वह रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुणवाली प्रकृति, परसेभी पर, निर्गुण, स्वयं देवी, निर्विकार, शिवात्मिका है ॥ ३७ ॥ उस लोकके ऊपर सनातन शिवलोक है यह सदा अविनाशी परम रमणीक महाशोभासे युक्त रहता है ॥ ३८ ॥ जहाँपर तीनों देवताओंके उत्पन्न करनेवाले

तस्योपरिष्टात्कौमारो लोको हि परमाद्भुतः ॥ सेनानीः शंभुतनयो राजते यत्र सुप्रभः ॥ ३५ ॥ ततः परमुमालोको महादिव्यो विराजते ॥ यत्र शक्तिर्विभात्येका त्रिदेवजननी शिवा ॥ ३६ ॥ परात्परा हि प्रकृती रजस्सत्त्वतमोमयी ॥ निर्गुणा च स्वयं देवी निर्विकारा शिवात्मिका ॥ ३७ ॥ तस्योपरिष्टाद्विज्ञेयश्शिवलोकस्सनातनः ॥ अविनाशी महादिव्यो महाशोभान्वितस्सदा ॥ ३८ ॥ विराजते परं ब्रह्म यत्र शंभुर्महेश्वरः ॥ त्रिदेवजनकस्स्वामी सर्वेषां त्रिगुणात्परः ॥ ३९ ॥ तत ऊर्ध्वं न लोकाश्च गोलोकस्तत्समीपतः ॥ गोमातरस्सुशीलाख्यास्तत्र संति शिवप्रियाः ॥ ४० ॥ तत्पालः कृष्णनामा हि राजते शंकराज्ञया ॥ प्रतिष्ठितश्शिवेनैव शक्त्या स्वच्छन्दचारिणा ॥ ४१ ॥ शिवलोकोऽद्भुतो व्यास निराधारो मनोहरः ॥ अतिनिर्वचनीयश्च नानावस्तुविराजितः ॥ ४२ ॥ शिवस्तु तदधिष्ठाता सर्वदेवशिरोमणिः ॥ विष्णुब्रह्महरैस्सेव्यः परमात्मा निरञ्जनः ॥ ४३ ॥

सबके स्वामी त्रिगुणसे परे परब्रह्म शंभु महेश्वर विराजमान हैं ॥ ३९ ॥ उसके ऊपर और कोई लोक नहीं है, शिवलोकके समीप गोलोक है वहाँ शिवप्रिय सुशीलाख्य गोमाता निवास करती हैं ॥ ४० ॥ वहाँ शिवकी आज्ञासे उनके पालन करनेवाले श्रीकृष्णजी विराजमान हैं, स्वतंत्र शिवने तथा शक्तिने वह लोक स्थापित किया है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार शिवलोक अद्भुत निराधार मनोहर अनिर्वचनीय और अनेक वस्तुओंसे शोभायमान है ॥ ४२ ॥ और उसके अधिष्ठाता सब देवताओंके शिरोमणि विष्णु, ब्रह्मा, शिवजीसे सेवन करने योग्य परमात्मा निरंजन शिव देव हैं ॥ ४३ ॥

हे तात ! इस प्रकार तुमसे संपूर्ण ब्रह्मांडकी स्थिति कही उससे ऊपर जो लोक स्थित हैं उनको क्या और सुननेकी इच्छा है ? ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमारजी ! हे सत्तम ! तुम उसकी प्राप्तिको वर्णन करो जहाँसे प्राप्त होके शिवकी भक्तिमें तत्परहुए मनुष्य नहीं लौटते हैं ॥१॥ सनत्कुमारजी बोले, हे पराशरके पुत्र व्यासजी ! शुभगतिको तथा शुद्ध भक्तोंके और तपस्वियोंके पवित्र व्रतको प्रेमसे सुनो ॥२॥ जो शुद्ध कर्म करनेवाले शुद्ध तपमें युक्तहुए मनुष्य शिवको पूजतेहैं वे सदा सब प्रकारसे वन्दना करने योग्यहैं

इति ते कथिता तात सर्वब्रह्मांडसंस्थितिः ॥ तदूर्ध्वं लोकसंस्थानं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्तिं वद सत्तम ॥ यद्गत्वा न निवर्तंते शिवभक्तियुता नराः ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पराशरसुत व्यास शृणु प्रीत्या शुभां गतिम् ॥ व्रतं हि शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम् ॥ २ ॥ ये शिवं शुद्धकर्माणस्सुशुद्धतप सान्विताः ॥ समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते सर्वथान्वहम् ॥ ३ ॥ नातप्ततपसो यांति शिवलोकमनामयम् ॥ शिवानुग्रहसद्धेतुस्तप एव महामुने ॥ ४ ॥ तपसा दिवि मोदन्ते प्रत्यक्षं देवतागणाः ॥ ऋषयो मुनयश्चैव सत्यं जानीहि मद्वचः ॥ ५ ॥ सुदुर्द्धरं दुराराध्यं सुधुरं दुरतिक्रमम् ॥ तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ६ ॥ सुस्थितस्तपसि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा ॥ देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तास्तपसा दुर्लभं फलम् ॥ ७ ॥ येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तपः ॥ ततस्संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशयः ॥ ८ ॥

॥३॥ हे महामुने ! विना तप करनेवाले नीरोग शिवलोकको नहीं जातेहैं शिवके अनुग्रहका आदि कारण तपही कहा है ॥४॥ तपसे देवतागण प्रत्यक्ष होके स्वर्गमें आनन्द करते तथा ऋषि मुनि भी हर्ष करतेहैं यह मेरा वचन सत्य जानो ॥ ५ ॥ जो अतिकठिन दुराराध्य धुरधारी अतिकठिनतासे अतिक्रमण करने योग्य है सो सब तपसे साधनीय होता है केवल तपही दुःसाध्य है ॥ ६ ॥ तपमें ब्रह्माजी स्थितहैं तथा तपमें विष्णु और शिवजी प्रवृत्तहैं तथा सम्पूर्ण देवता और देवियोंने दुर्लभ फल तपसे पाया है ॥७॥ जिस जिस भावमें स्थित होके तप कियाजाता है उन उनको यह फल इस लोकमें प्राप्त होता है इसमें कुछ

संशय नहीं ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! सात्त्विक, राजस, तामस, यह तीन प्रकारका तप जानना चाहिये तपही सबका साधन कहा है ॥ ९ ॥ देवताओंका तथा संन्यासियोंका और ब्रह्मचारियोंका सत्त्वगुणी तप कहाहै दैत्यों और मनुष्योंका रजोगुणी तप होता है राक्षसोंका तथा दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्योंका तमोगुणी तप कहा है ॥ १० ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने तीन प्रकारका तपका फल कहा है जप, ध्यान, तथा भक्तिसे देवतोंका शुभ अर्चन करना ॥ ११ ॥ वह सात्त्विक तप सम्पूर्ण फलोंका साधक कहा है वह इस लोकमें तथा परलोकमें मनोवांछाको सिद्ध करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ कामना फलको उद्देश

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ विज्ञेयं हि तपो व्यास सर्वसाधनसाधनम् ॥ ९ ॥ सात्त्विकं दैवतानां हि यतीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च ॥ तामसं राक्षसानां हि नराणां क्रूरकर्मणाम् ॥ १० ॥ त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तितश्शुभम् ॥ ११ ॥ सात्त्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम् ॥ इह लोके परे चैव मनोभिप्रेतसाधनम् ॥ १२ ॥ कामनाफलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते ॥ निजदेहं सुसंपीड्य देहशोषकदुस्सहैः ॥ १३ ॥ तपस्तामसमुद्दिष्टं मनोभिप्रेतसाधनम् ॥ १४ ॥ उत्तमं सात्त्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला ॥ स्नानं पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम् ॥ १५ ॥ व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दानं क्षांतिर्दमो दया ॥ १६ ॥ वापीकूपतडागादेः प्रासादस्य च कल्पना ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं यज्ञस्सुतीर्थान्याश्रमाः पुनः ॥ १७ ॥ धर्मस्थानानि चैतानि सुखदानि मनीषिणाम् ॥ सुधर्मः परमो व्यासः शिवभक्तेश्च कारणम् ॥ १८ ॥

करके देहशोषण तपोंसे अपने शरीरको पीडित करके जो किया जाता है वह राजस तप कहलाताहै ॥ १३ ॥ जो मनोरथ सिद्ध होनेके निमित्त किया जाता है वह तामस तप कहाहै ॥ १४ ॥ सात्त्विकतपको उत्तम जानै निश्चलहुई धर्मकी बुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुद्ध, शौच, हिंसा न करना ॥ १५ ॥ व्रत, उपवास चर्या, मौन, इन्द्रियोंका निरोध, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, दान, क्षान्ति, दम, दया ॥ १६ ॥ बाउडी, कूप, सरोवर आदिका तथा महलका बनाना, कृच्छ्र चान्द्रायणयज्ञ श्रेष्ठतीर्थ और आश्रम ॥ १७ ॥ हे व्यासजी ! यह (इतने) धर्मके स्थानहैं बुद्धिमानोंको सुख

देनेवालेहैं यह बडा श्रेष्ठ धर्म है और शिवभक्तिका कारणहै ॥१८॥ संक्रान्ति विषुवत् योग नाद मुक्तमें प्रयोग करना चाहिये तीनों कालमें ध्यान ज्योति उन्मनीभाव यह धारणाहै ॥ १९ ॥ रेचक, पूरक, कुम्भक, यह तीन प्रकारका प्राणायाम कहाहै नाडीसंचारका जानना तथा प्रत्याहारका रोकना ॥ २० ॥ चौथा अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसहित अधोबुद्धि यह पूर्वोत्तम परमज्ञानका साधन कहा है ॥ २१ ॥ काष्ठावस्था मृतावस्था हरितावस्था यह तीन अवस्था कहीहैं यह नानाप्रकारकी उपलब्धि और सम्पूर्ण पापोंकी नाश करनेवालीं कहीं हैं ॥ २२ ॥ नारी शय्या तथा पान वस्त्र धूप लेपन

संक्रांतिविषुवद्योगो नादमुक्ते नियुज्यताम् ॥ ध्यानं त्रिकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा ॥ १९ ॥ रेचकः पूरकः कुम्भः प्राणायाम स्त्रिधा स्मृतः ॥ नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम् ॥ २० ॥ तुरीयं तदधो बुद्धिरणिमाद्यष्टसंयुतम् ॥ पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम् ॥ २१ ॥ काष्ठावस्था मृतावस्था हरिता वेति कीर्तिताः ॥ नानोपलब्धयो ह्येतास्सर्वपापप्रणाशनाः ॥ २२ ॥ नारी शय्या तथा पानं वस्त्रधूपविलेपनम् ॥ ताम्बूलभक्षणं पंच राजैश्वर्य्यविभूतयः ॥ २३ ॥ हेमभारस्तथा ताम्रं गृहाश्च रत्नधेनवः ॥ पांडित्यं वेदशास्त्राणां गीतनृत्यविभूषणम् ॥२४॥ शंखवीणामृदंगाश्च गजेन्द्रश्छत्रचामरे ॥ भोगरूपाणि चैतानि एभिश्शक्तोऽनुरज्यते ॥ २५ ॥ आदर्शवन्मुने स्नेहैस्तिलवत्स निपीडचते ॥ अरं गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहितः ॥ २६ ॥ जानन्नपीह संसारे भ्रमते घटियंत्रवत् ॥ सर्वयोनिषु दुःखार्तस्स्थावरेषु चरेषु च ॥ २७ ॥ एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु ॥ कालांतरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ २८ ॥

ताम्बूल भक्षण यह पांच राजैश्वर्य विभूतिहैं ॥ २३ ॥ हेमभार तथा ताम्र गृह रत्न धेनु वेदशास्त्रोंका पांडित्य गीत नृत्य आभूषण ॥ २४ ॥ शंख, वीणा, मृदंग, गजेन्द्र, छत्र, चामर, यह भोगरूपहैं इनमें आसक्तहुआ अनुरागको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ हे मुने ! जो संसारीहै वह दर्पणके समान तथा तेलके अर्थ तिलोंके समान पेला जाता है भ्रमणको प्राप्त हो इस प्रकार इसको ज्ञानसे मोहित करता है ॥ २६ ॥ जानताहुआ भी इस संसारमें घडीके यन्त्रके समान भ्रमण करता है स्थावर चर आदि सब योनियोंमें दुःखी होके पर्यटन करता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण योनियोंमें भ्रमण करके काला

न्तरके वशसे अतिदुर्लभ मनुष्य जन्मको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ व्युत्क्रमसे भी पुण्यके गौरवसे मनुष्य जन्मको पाता है कर्मोंके बडे और छोटेपनसे अति अद्भुत गति कहीहै ॥ २९ ॥ जो पुरुष स्वर्ग मोक्षके साधक मनुष्यजन्मको पाकर अपने कल्याणको नहीं करता है वह मरके बहुत कालतक शोचता है ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण देवता और असुरोंमें मनुष्य जन्म अतिदुर्लभ है उस मनुष्य जन्मको पाके ऐसा करना चाहिये कि जिससे नरकमें न जावै ॥ ३१ ॥ यदि दुर्लभ मनुष्य जन्मको पाके स्वर्ग और अपवर्गके लाभके लिये उद्यम नहीं होताहै तो वह मनुष्यजन्म वृथा कहाहै ॥ ३२ ॥ हे व्यासजी ! सम्पूर्ण धर्म,

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात् ॥ विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ॥ २९ ॥ मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ॥ नाचरत्यात्मनः श्रेयस्स मृतश्शोचते चिरम् ॥ ३० ॥ देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यं चातिदुर्लभम् ॥ तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ॥ ३१ ॥ स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं वृथा तज्जन्म कीर्तितम् ॥ ३२ ॥ सर्वस्य मूलं मानुष्यं चतुर्वर्गस्य कीर्तितम् ॥ संप्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्नादनुपालयेत् ॥ ३३ ॥ धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् ॥ यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षेत्स्वयं ततः ॥ ३४ ॥ मानुष्येऽपि च विप्रत्वं यः प्राप्य खलु दुर्लभम् ॥ नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ३५ ॥ द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूरियमुच्यते ॥ इतस्स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः ॥ ३६ ॥ देशेऽस्मिन्भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ॥ न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वंचितः ॥ ३७ ॥

अर्थ, काम, मोक्षका आदि कारण मनुष्य जन्मकहाहै इस कारण उसे प्राप्त होके धर्मसे यत्नपूर्वक उसका पालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि सब पदार्थोंके साधन करनेवाले धर्मके मूल मनुष्य जन्मको पाके अपने लाभके अर्थ प्रयत्न होवै तो स्वयं मूलको रक्षा करै ॥ ३४ ॥ मनुष्य जन्ममें भी जो दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाके अपने कल्याणको नहीं करता है उससे अधिक जड कौन है ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण द्वीपोंमें यह कर्मभूमि कही जाती है यहाँसे अर्जितहुआ स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस भारतवर्षमें अस्थिर मनुष्य जन्मको पाय यदि अपने कल्याणको नहीं किया तो उसने अपनी आत्माको वंचित किया

(ठगा) ॥ ३७ ॥ हे विप्र ! यह कर्मभूमि कही है और यह फलभूमि कही है यहाँपर जो कर्म किया जाता है वह स्वर्गमें भोगा जाता है ॥ ३८ ॥
जबतक शरीरकी स्वस्थता होवै तबतक धर्म करै क्योंकि विना स्वस्थ हुआ औरोंकी प्रेरणासे कुछ भी नहीं करनेका उत्साह करता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य
विना निश्चल शरीरसे निश्चलधर्मको सिद्ध नहीं करता है उसका ध्रुव (उपस्थित) नष्ट होगया और अध्रुव (अनुपस्थित) तो नष्टही है ॥ ४० ॥ आयुके
खण्डखंड होके उसके आगे नष्ट होते चले जातेहैं फिर भी दिन और रात्रिके उपदेशसे क्यों नहीं जागते ॥ ४१ ॥ जब यह नहीं मालूम है कि कब किसकी

कर्मभूमिरियं विप्र फलभूमिरसौ स्मृता ॥ इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते ॥ ३८ ॥ यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ॥
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित्कर्तुमुत्सहेत् ॥ ३९ ॥ अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं यो न प्रसाधयेत् ॥ ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव
च ॥ ४० ॥ आयुषः खंडखंडानि निपतंति तदग्रतः ॥ अहोरात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ॥ ४१ ॥ यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा
कस्य भविष्यति ॥ आकस्मिके हि मरणे धृतिं विंदति कस्तथा ॥ ४२ ॥ परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम् ॥ न ददाति
कदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥ ४३ ॥ गृहीतदानपाथेयः सुखं याति यमालयम् ॥ अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहिते पथि ॥
॥ ४४ ॥ येषां कालेय पुण्यानि परिपूर्णानि सर्वतः ॥ गच्छतां स्वर्गदेशं हि तेषां लाभः पदेपदे ॥ ४५ ॥ इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्या
त्पापं विवर्जयेत् ॥ पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ॥ ४६ ॥

मृत्यु होगी अकस्मात् मरण होनेपर फिर कौन ऐश्वर्यको ढूंढता है ॥ ४२ ॥ जब सब धनादिको त्यागन करके अकेला यह प्राणी निश्चय चला जायगा
तो क्यों पाथेय (मार्ग भोजन) के अर्थ यह धनदान नहीं करता है ॥ ४३ ॥ जिसने दानरूपी चबेना बांधा है वह सुखसे यमलोकको जाता है नहीं
तो प्राणी पाथेय (चबेना) रहित मार्गमें दुःखी होता है ॥ ४४ ॥ हे व्यासजी ! जिन पुरुषोंके पुण्य सब ओरसे परिपूर्णहैं स्वर्गलोकमें जानेवाले उन
मनुष्योंको पदपदमें लाभ होता है ॥ ४५ ॥ यह जानके मनुष्य सदा पुण्य करै और पापको त्यागै पुण्यसे देवतापनको प्राप्त होता है पापसे नरकको जाता

है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य कुछभी शिवकी शरणमें प्राप्त होतेहैं वे भी यमराजको तथा घोर नरकको नहीं देखतेहैं ॥ ४७ ॥ पापोंसे और महामोहके कारण
थोडे समयतक शिवकी आज्ञासे नरकमें निवास करतेहैं तत्पश्चात् शिवलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ४८ ॥ और जो सम्पूर्णभावसे शिवको प्राप्त होतेहैं वे जलसे
कमलपत्रके समान पापसे लिप्त नहीं होतेहैं ॥ ४९ ॥ जिन्होंने शिवनाम तथा हरहर ऐसा नाम कहा है हे मुनिसत्तम ! उनको नरकोंसे और यमराजसे
कुछ भय नहीं रहता ॥ ५० ॥ परलोकका "चबेना" निरामय मोक्षका उपाय पुण्यसमूहका एक मात्र स्थान "शिव" यह दो अक्षर कहेहैं ॥ ५१ ॥ यह

ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाश्शरणं शिवम् ॥ तेऽपि घोरं न पश्यंति यमं न नरकं तथा ॥ ४७ ॥ किंतु पापैर्महामोहैः किंचित्काले शिवा
ज्ञया ॥ वसंति तत्र मानुष्यास्ततो यांति शिवास्पदम् ॥ ४८ ॥ ये पुनस्सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् ॥ न ते लिम्पंति पापेन पद्मपत्र
मिवाम्भसा ॥ ४९ ॥ उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च ॥ न तेषां नरकाद्भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ॥ ५० ॥ परलोकस्य पाथेयं
मोक्षोपायमनामयम् ॥ पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ ५१ ॥ शिवनामैव संसारमहारोगैकशामकम् ॥ नान्यत्संसाररोगस्य
शामकं दृश्यते मया ॥ ५२ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कसः ॥ शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ॥ ५३ ॥
तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः ॥ शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासं
हितायां मनुविशेषकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं निसर्गाद्ब्राह्मणो भवेत् ॥ ईश्वरस्य
मुखात्क्षत्रं बाहुभ्यामूरुतो विशः ॥ १ ॥

शिव नामही संसारके महारोगोंका एक मात्र शान्त करनेवाला है और कोई उपाय मैंने संसाररोगका शान्त करनेवाला नहीं देखा ॥ ५२ ॥ पहले सहस्रों
ब्रह्महत्या करके शिव शिव ऐसा निर्मल नाम सुनके मोक्षको प्राप्त हुएहैं ॥५३॥ इस कारण विद्वान् निरंतर शिवजीके विषयमें भक्तिको बढावै हे महाप्राज्ञ !
मनुष्य शिवभक्तिसे भुक्ति और मुक्ति दोनोंको पाता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पंचम्यामुमासंहितायां मनुविशेषकथनं नाम विंशो
ऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजी बोले, ब्राह्मणका जन्म दुष्प्राप्य है ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण होता है और भुजाओंसे क्षत्रिय तथा जंघाओंसे वैश्य ॥ १ ॥

और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुएहैं इस प्रकार उसके मुखसे सुना गया है नीचेके स्थानसे क्यों स्थितिको प्राप्त होतेहैं सो वर्णन करो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! पापसे मनुष्य अपने स्थानसे गिरजातेहैं इस कारण प्रवीण मनुष्य श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त होके उसकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणत्वसे क्षत्रिय योनिमें उत्पन्न होता है वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो क्षत्रियत्वको सेवन करता है ॥ ४ ॥ उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य अधर्मके सेवन करनेसे सहस्रों जन्मोंमें घूमता है और अन्धकारमें प्रवेश करता है ॥ ५ ॥ इस कारण मनुष्य अधिक स्थानको प्रमाद (असावधानी) से नाश नहीं करै, दुःखोंको प्राप्त होके भी निरंतर अपने स्थानकी रक्षा करै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण जन्म पाके ब्राह्मण्यको तिरस्कार करता है वा जो भोज्य और अभोज्यको नहीं जानता वह मनुष्य क्षत्रिय होता है ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् शूद्र जिस कर्मसे वैश्य होता है यह सब तुमसे कंहता हूं कि, जिससे उत्तम वर्ण होजाता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार शूद्रकर्म बताया है उसे शूद्र होके करना चाहिये तीनों वर्णोंमें नित्य विधिपूर्वक सेवाको ॥ ९ ॥ चाहनेवाला शूद्र भी वैश्यकी योनिको पाताहै और जो वैश्य अपने धनसे विधिपूर्वक करके ॥ १० ॥ अग्निहोत्र कर्म कराय शेषान्नका भोजन करनेवाला है वह वैश्य क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होता है इसमें

पद्भ्यां शूद्रस्समुत्पन्न इति तस्य मुखाच्छ्रुतिः ॥ किमु स्थितिमधःस्थानादाप्नुवन्ति ह्यतो वद ॥ २ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ दुष्कृतेन तु कालेय स्थानाद्भ्रश्यन्ति मानवाः ॥ श्रेष्ठं स्थानं समासाद्य तस्माद्रक्षेत पण्डितः ॥ ३ ॥ यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रयोन्यां प्रसूयते ॥ ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रियत्वं निषेवते ॥ ४ ॥ अधर्मसेवनान्मूढस्तथैव परिवर्तते ॥ जन्मान्तरसहस्राणि तमस्याविशते यतः ॥ ५ ॥ तस्मात्प्राप्य परं स्थानं प्रमाद्यन्न तु नाशयेत् ॥ स्वस्थानं सर्वदा रक्षेत्प्राप्यापि विपदो नरः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य ब्राह्मण्यं योऽवमन्यते ॥ भोज्याभोज्यं न जानाति स पुमान्क्षत्रियो भवेत् ॥ ७ ॥ कर्मणा येन मेधावी शूद्रो वैश्यो हि जायते ॥ तत्ते वक्ष्यामि निखिलं येन वर्णोत्तमो भवेत् ॥ ८ ॥ शूद्रकर्म यथोद्दिष्टं शूद्रो भूत्वा समाचरेत् ॥ यथावत्परिचर्य्यां तु त्रिषु वर्णेषु नित्यदा ॥ ९ ॥ कुरुते कामयानस्तु शूद्रोऽपि वैश्यतां व्रजेत् ॥ यो योजयेद्धनैर्वैश्यो जुह्वानश्च यथाविधिं ॥ १० ॥ अग्निहोत्रमुपादाय शेषान्न कृतभोजनः ॥ स वैश्यः क्षत्रियकुले जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥

कुछ सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ जो क्षत्रिय संस्कार युक्त दक्षिणासहित यज्ञोंको कर स्वर्गकी इच्छासे सदा त्रेताग्निकी शरणमें अध्ययन करता है ॥ १२ ॥ और गीले हाथ पैरोंवाला क्षत्रिय धर्मसे नित्य भूमीको पालता है और धर्ममें तत्पर हो ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे प्रसंग करताहै ॥ १३ ॥ सब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादिका आतिथ्य करता है भूतोंको तथा गौ ब्राह्मण आत्माके अर्थ प्रदान करताहै तथा संग्राममें नष्ट होता है ॥ १४ ॥ इस कर्मसे अग्निमंत्रसे पवित्रात्मा वह क्षत्रिय ब्राह्मण होजाता है और विधिविधानसे ब्राह्मण होके याजक (यज्ञकरानेवाला) होता है ॥ १५ ॥ नित्य अपने कर्मोंमें आरूढ सत्यवादी

क्षत्रियो जायते यज्ञैस्संस्कृतैराप्तदक्षिणैः ॥ अधीते स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणं सदा ॥ १२ ॥ आर्द्रहस्तपदो नित्यं क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ऋतुकालाभिगामी च स्वभार्य्यांधर्मतत्परः ॥ १३ ॥ सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य भूतेभ्यो दीयतामिति ॥ गोब्राह्मणात्मनोऽर्थं हि संग्रामाभिहतो भवेत् ॥ १४ ॥ तेनाग्निमन्त्रपूतात्मा क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ॥ विधितो ब्राह्मणो भूत्वा याजकस्तु प्रजायते ॥ १५ ॥ स्वकर्मनिरतो नित्यं सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ प्राप्यते विपुलस्स्वर्गो देवानामपि वल्लभः ॥१६॥ ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं कृच्छ्रेण साध्यते नरैः ॥ ब्राह्मण्यात्सकलं प्राप्य मोक्षश्चापि मुनीश्वर ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो धर्मतत्परः ॥ साधनं सर्ववर्गस्य रक्षेद्ब्राह्मण्यमुत्तमम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ संग्रामस्येह माहात्म्यं त्वयोक्तं मुनिसत्तम ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं ब्रूहि त्वं वदतां वर ॥ १९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥ न तत्फलमवाप्नोति संग्रामे यदवाप्नुयात् ॥ २० ॥

जितेन्द्रिय होके देवतोंको भी दुष्प्राप्य ऐसे विपुलस्वर्गको पाता है ॥ १६ ॥ हे मुनीश्वर ! ब्राह्मणत्व अतिदुर्लभ है यह मनुष्योंको कठिनतासे मिलताहै और ब्राह्मण्यसे सब कुछ मोक्ष पर्यन्त भी प्राप्त होने योग्य है ॥ १७ ॥ इस कारण ब्राह्मण धर्ममें तत्पर होके सब यत्नोंसे सब वर्गोंके साधन श्रेष्ठ ब्राह्मण्यकी रक्षा करै ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! यह माहात्म्य तुमने कहा अब मैं संग्रामके माहात्म्यको सुनना चाहता हूं हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! तुम विस्तारसे वर्णन करो ॥ १९ ॥ सनत्कुमारजी बोले, क्षत्रिय अत्यन्त दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको करके भी उस फलको नहीं पाता जो फल

संग्राममें प्राप्त करता है ॥ २० ॥ तत्त्वके जाननेवाले यज्ञकर्मवेत्ताओंने ऐसा कहा है सो सब शस्त्रजीवियोंके फलको तुमसे वर्णन करता हूं ॥ २१ ॥ शूर सेनामें प्रवेश करके युद्ध करनेवाला क्षत्रियहै वह जो कुछ इच्छा करता है सो धर्मलाभ, अर्थलाभ, यशोलाभ आदि सबको पाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने सन्मुख दानादि देकर युद्धके वाहनपर चढता है उसके धर्म अर्थ काम तथा दक्षिणासहित यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ जो युद्धमें पराजित नहीं होता है वह विष्णुलोकमें प्राप्त होता है और अश्वमेधोंके फलको पाता है ॥ २४ ॥ जो क्षत्रिय शस्त्रोंको विना छोडे सेनाके मुखमें सन्मुख होके

इति तत्त्वविदः प्राहुर्यज्ञकर्मविदस्सदा ॥ तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत्फलं शस्त्रजीविनाम् ॥ २१ ॥ धर्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव चं ॥ यश्शूरो वांछते युद्धं विमृन्दन्परवाहिनीम् ॥ २२ ॥ तस्य धर्मार्थकामाश्च यज्ञश्चैव सदक्षिणः ॥ परं ह्यभिमुखं दत्त्वा तद्यानं योऽधिरोहति ॥ २३ ॥ विष्णुलोके स जायेत यश्च युद्धेऽपराजितः ॥ अश्वमेधानवाप्नोति चतुरो न मृतस्स चेत् ॥ २४ ॥ यस्तु शस्त्रमनुत्सृज्य म्रियते वाहिनीमुखे ॥ सम्मुखो वर्तते शूरस्स स्वर्गान्न निवर्तते ॥ २५ ॥ राजा वा राजपुत्रो वा सेनापतिरथापि वा ॥ हतः क्षात्रेण यः शूरस्तस्यं लोकोऽक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥ यावंति तस्य रोमाणि भिद्यन्तेऽस्त्रैर्महाहवे ॥ तावतो लभते लोकान्सर्वकामदुघाऽक्षयान् ॥ २७ ॥ वीरासनं वीरशय्या वीरस्थानस्थितिस्स्थिरा ॥ सर्वदा भवति व्यास इह लोके परत्र च ॥ २८ ॥ गवार्थे ब्राह्मणार्थे च स्थानस्वाम्यर्थमेव च ॥ ये मृतास्ते सुखं यांति यथा सुकृतिनस्तथा ॥ २९ ॥ यः कश्चिद्ब्राह्मणं हत्वा पश्चात्प्राणान्परित्यजेत् ॥ तत्रासौ स्वपतेर्युद्धे स स्वर्गान्न निवर्तते ॥ ३० ॥

मरजाता है वह शूर स्वर्गसे नहीं गिरता है ॥ २५ ॥ राजा हो वा राजपुत्र हो अथवा सेनापति हो जो शूर क्षत्रियसे मारागया उसको अक्षयलोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ बडे युद्धमें अस्त्रोंसे उसके जितने रोम भेदित होते हैं सब कामनाके देनेवाले उतने अक्षयलोकोंको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ हे व्यासजी ! वीरासन वीरशय्या वीरस्थान स्थिति सर्वदा इस लोकमें तथा परलोकमें स्थिर होती है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य गौके अर्थ ब्राह्मणके अर्थ तथा स्थान और स्वामीके अर्थ मरते हैं वे इस प्रकार सुखको प्राप्त होते हैं जिस प्रकार पुण्यात्मा पाते हैं ॥ २९ ॥ जो कोई ब्राह्मणको भी युद्धमें मारके अपने पतिके

युद्धमें प्राणोंको छोडता है वह स्वर्गसे पतित नहीं होताहै ॥ ३० ॥ युद्धमें राक्षस आदिसे तथा हाथियोंसे मारे हुएकी भी उत्तम गति होती है यदि द्विज गौ स्वामीके अर्थ प्राणत्याग किया जाय तो अक्षय गति होती है ॥ ३१ ॥ सामर्थ्यवान् मनुष्य इस संसारमें सैकडों यज्ञ करनेमें समर्थ हो सकता है परन्तु युद्धमें अपने शरीरका त्यागन करना बडा कठिन है ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण वर्णोंका और विशेषकर क्षत्रियका युद्ध पुण्यका देनेवाला स्वर्गका देनेवाला रूपज्ञ और सर्वतोमुख कहा है ॥ ३३ ॥ अब मैं सनातन युद्ध धर्मको विस्तारसे कहता हूं कि, जैसेको प्रहार करना चाहिये और जैसेको छोडना चाहिये ॥ ॥ ३४ ॥ युद्धके सन्मुख आतेहुए मारनेकी इच्छा करनेवाले वेदान्ती आततायी ब्राह्मणको भी मारडाले उसके मारनेसे ब्रह्महत्यारा नहीं होता ॥ ३५ ॥

क्रव्यादैर्दंतिभिश्चैव हतस्य गतिरुत्तमा ॥ द्विजगोस्वामिनामर्थे भवेद्विपुलदाक्षया ॥३१॥ शक्नोत्विह समर्थश्च यष्टुं क्रतुशतैरपि ॥ आत्मदेहपरित्यागः कर्तुं युधि सुदुष्करः ॥ ३२ ॥ युद्धं पुण्यतमं स्वर्ग्यं रूपज्ञं सर्वतोमुखम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥ ३३ ॥ भृशं चैव प्रवक्ष्यामि युद्धधर्मं सनातनम् ॥ यादृशाय प्रहर्तव्यं यादृशं परिवर्जयेत् ॥३४॥ आततायिनमायांतमपि वेदांतगं द्विजम् ॥ जिघांसंतं जिघांसेत्तु न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ ३५ ॥ हंतव्योऽपि न हंतव्यः पानीयं यश्च याचते ॥ रणे हत्वातुरान्व्यास स नरो ब्रह्महा भवेत् ॥ ॥ ३६ ॥ व्याधितं दुर्बलं बालं रुग्यनाथौ कृपणं ध्रुवम् ॥ धनुर्भग्नं छिन्नगुणं हत्वा वै ब्रह्महा भवेत् ॥ ३७ ॥ एवं विचार्य्य सद्धीमान्भवेत्प्रीत्या रणप्रियः ॥ स जन्मनः फलं प्राप्य परत्रेह प्रमोदते ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां रणफलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ व्यास उवाच ॥ विधिं तात वदेदानीं जीवजन्मविधानतः ॥ गर्भे स्थितिं च तस्यापि वैराग्यार्थं मुनीश्वर ॥ १ ॥

हे व्यासजी ! जो पानीको मांगता हो ऐसे मारने योग्य मनुष्यको भी नहीं मारना चाहिये संग्राममें रोगियोंको मारनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यारा होता है ॥३६॥ व्याधिग्रसित दुर्बल बालक स्त्री अनाथ कृपण निश्चल जिसका धनुष टूटा हो अथवा प्रत्यंचा टूटी हो ऐसे पुरुषको जो संग्राममें मारता है वह ब्रह्महत्यारा होता है ॥३७॥ ऐसा विचारके जो बुद्धिमान् पुरुष प्रीतिसे संग्राम प्रिय होता है वह अपने जन्मके फलको पाके इस लोकमें तथा परलोकमें आनन्द करता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां रणफलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ व्यासजी बोले, हे मुनीश्वर ! हे तात ! इस समय जीवके जन्मको

तथा जीवकी गर्भमें स्थितिको वैराग्यके निमित्त विधिविधानसे वर्णन करो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! सुनो संक्षेपसे सब शास्त्रोंके साररूप वैराग्यको वर्णन करता हूं जो मुमुक्षुके भवसागरके बंधनको काटनेवाला है ॥ २ ॥ पाकपात्रके मध्यमें अन्न पृथक् है और जल पृथक् है अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर वह अन्न स्थापन करने योग्य है ॥ ३ ॥ जलके नीचे स्थितहुआ अग्नि शनैः शनैः जलको फूँकता है और वायुसे फूँकाहुआ अग्नि जलको अत्यन्त गरम करदेता है ॥ ४ ॥ फिर वह भोजन गरमजलसे सब ओरसे पकता है तब वह पकके दो भागमें होताहै मैल पृथक् और रस पृथक् होजाता है ॥ ५ ॥ वह किट्ट (फोकस) बारहो मलोंसे विभक्तहुआ शरीरसे बाहर होजाता है और रस देहमें फैल जाता है उसीसे शरीर पुष्ट होता है ॥ ६ ॥ कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दांत, लिंग, गुदा, नख, मलाश्रय, कफ, पसीना, विष्ठा, मूत्र यह बारह मल कहे हैं ॥ ७ ॥ हृदयकमलमें चारों तरफसे समस्त नाडी बँधीहुई हैं हे मुने ! वे नाडी रसकी वहन करनेवाली हैं उसकी विधिको वर्णन करता हूं ॥ ८ ॥ प्राणवायु उन नाडियोंके मुखमें उस सूक्ष्म रसको स्थापन करता है फिर उस रससे वे नाडी प्राणवायुको पूरण करती हैं ॥ ९ ॥ फिर वे सब नाडी चारोंओर देहमें जाती हैं तत्पश्चात् वह रस

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास समासेन शास्त्रसारमशेषतः ॥ वदिष्यामि सुवैराग्यं मुमुक्षोर्भवबंधकृत् ॥ २ ॥ पाकपात्रस्य मध्ये तु पृथगन्नं पृथग्जलम् ॥ अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि ॥ ३ ॥ जलस्याधस्स चाग्निर्हिं स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ॥ ४ ॥ तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यते पुनः ॥ द्विधा भवति तत्पक्कं पृथाक्किट्टं पृथग्रसः ॥ ५ ॥ मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्भवेत् ॥ रसस्तु देहे सरति स पुष्टस्तेन जायते ॥ ६ ॥ कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ताः शिश्नो गुदं नखाः ॥ मलाश्रयः कफः स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृताः ॥ ७ ॥ हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यस्समंततः ॥ ज्ञेया रसप्रवाहिन्यस्तत्प्रकारं ब्रुवे मुने ॥ ८ ॥ तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं प्राणस्स्थापयते रसम् ॥ रसेन तेन नाडीस्ताः प्राणं पूरयते पुनः ॥ ९ ॥ पुनः प्रयांति संपूर्णास्ताश्च देहं समंततः ॥ ततस्स नाडीमध्यस्थश्शरीरेणात्मना रसः ॥ १० ॥

नाडीके मध्यमें स्थित हो शरीर और आत्मासे पकाया जाता है ॥ १० ॥ पकनेके पीछे फिर दो पाक बनते हैं पहले त्वचा जिससे सब शरीर लिपटताहै और फिर रुधिर होता है ॥ ११ ॥ लोहू, रोम, मांस, मांससे बाल; स्नायु, स्नायुसे अस्थियां, मज्जा, और अस्थिसे नख उत्पन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ मज्जा कारणवैकल्य होता है और शुक्र (वीर्य) प्रसवात्मक होता है इस प्रकार बारहं प्रकारका भोजनका परिपाक कहा ॥ १३ ॥ अन्नसे वीर्य और वीर्यसे देह बनता है जब दोषरहित योनिमें पडाहुआ ऋतुकालमें ॥ १४ ॥ वायुसे स्पर्श कियाहुआ वीर्य स्त्रीरक्तकी ऐक्यताको प्राप्त होता है वीर्यके त्यागनकालमें

पच्यते पच्यमानाच्च भवेत्पाकद्वयं पुनः ॥ त्वक् तया वेष्ट्यते पूर्वं रुधिरं च प्रजायते ॥ ११ ॥ रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाः स्नायुश्च मांसतः ॥ स्नायुतश्च तथास्थीनि;नखा मज्जास्थिसंभवाः ॥१२॥ मज्जाकारणवैकल्यं शुक्रं हि प्रसवात्मकम् ॥ इति द्वादशधान्नस्य परिणामः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥ शुक्रोऽन्नाज्जायते शुक्राद्दिव्यदेहस्य संभवः ॥ ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्दोषं योनिसंस्थितम् ॥१४॥ तद्वा तद्वायुसंस्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ॥ विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः ॥ १५ ॥ संवृतः प्रविशेद्योनिं कर्मभिस्स्वैर्नियोजितः ॥ तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कलिलं भवेत् ॥ १६ ॥ पंचरात्रेण कलिलं बुद्बुदाकारतां व्रजेत् ॥ बुद्बुदस्सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत्पुनः ॥ १७ ॥ ग्रीवा शिरश्च स्कंधौ च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पाणिपादन्तथापार्श्वे कटिर्गात्रं तथैव च ॥ १८ ॥ द्विमासाभ्यन्तरेणैव क्रमशस्संभवेदिह ॥ त्रिभिर्मासैः प्रजायंते सर्वे ह्यंकुरसंधयः ॥१९॥ मासैश्चतुर्भिरंगुल्यः प्रजायंते यथाक्रमम् ॥ मुखं नासा च कर्णौ मासैः पंचभिरेव च ॥ २० ॥

जीव कारणसे युक्त होके ॥ १५ ॥ अपने कर्मोंसे लगायाहुआ योनिमें प्रवेश करता है तो वह शुक्र और रज एकमें स्थित होके एक दिनमें कलिल (वीर्य और रजका समुदायरूप) होजाता है ॥ १६ ॥ फिर वह कलिल पांच रात्रिमें बुद्बुदके आकारको प्राप्त होता है फिर वह बुद्बुद सातरात्रिमें मांसपेशी होती है ॥ १७ ॥ गरदन शिर दोनों कन्धे पीठ वक्ष पेट तथा हाथ पैर दोनों पार्श्व कमर गात्र ॥ १८ ॥ यह सब दो महीनेके भीतर क्रमसे होजातेहैं और तीन महीनेमें सब अंकुरकी सन्धि होजातीहैं ॥ १९ ॥ चार महीनेमें यथाक्रम सब अंगुली होती हैं और पांच महीनेमें मुख नासिका कान

होजातेहैं ॥ २० ॥ और फिर दन्तोंकी पंक्ति तथा गुह्य नख प्रगट होतेहैं और छे महीनेके भीतर कानोंमें छिद्र होजाता है ॥ २१ ॥ सात महीनेमें गुदा मेह उपस्थेन्द्रिय नाभि तथा सब अंगोंमें सन्धि होजातीहैं ॥ २२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार जीव अंग और प्रत्यंगसे पूर्णहुआ परिपक्व होके माताके पेटमें जेरमें लिपटा हुआ स्थित रहता है ॥ २३ ॥ फिर वह माताके भोजनसे चुरानेयोग्य छे प्रकारके रससे नाभिनालमें बँधाहुआ प्रतिदिन बढता है ॥ ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् वह जीव इस शरीरके सम्पूर्ण होजानेपर स्मृतिको प्राप्त होता है सुख और दुःखको तथा निद्रा और स्वप्नको और पहले कियेहुए कर्मको जानता है ॥ २५ ॥ मरके मैं फिर पैदा हुआ और पैदा होके फिर मरा इस प्रकार मैंने अनेक योनियें देखी हैं ॥ २६ ॥ अब मैं उत्पन्न होतेही संस्कारको प्राप्त होतेमात्रही इस शरीरसे ऐसे कल्याणको करूँगा कि जिससे फिर गर्भमें न आना पडै ॥ २७ ॥ इस प्रकार गर्भमें स्थित होके विचारताहै कि मैं गर्भसे निकलके संसारसे लौटानेवाले शिवके ज्ञानको अन्वेषण करूँगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार कर्मवश बडे गर्भके दुःखसे पीडितहुआ वह जीवात्मा मोक्षके उपायको विचारता हुआ ॥ २९ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे दबाहुआ कोई पुरुष दुःखसे स्थित होता है उसी प्रकार जेरसे लिपटाहुआ जीव दुःखसे

दन्तपंक्तिस्तथा गुह्यं जायंते च नखाः पुनः ॥ कर्णयोस्तु भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यंतरेण तु ॥ २१ ॥ पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चाभ्युपजायते ॥ संधयो ये च गात्रेषु मासैर्जायंति सप्तभिः ॥ २२ ॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णः परिपक्वस्स तिष्ठति ॥ उदरे मातुराच्छन्नो जरायौ मुनिसत्तम ॥ २३ ॥ मातुराहारचौर्य्येण षड्विधेन रसेन तु ॥ नाभिनालनिबद्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ॥ २४ ॥ ततस्स्मृतिं लभेज्जीवस्संपूर्णेऽस्मिञ्शरीरके ॥ सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुराकृतम् ॥ २५ ॥ मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ॥ नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि जायता ॥ २६ ॥ अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च ॥ श्रेयोऽमुना करिष्यामि येन गर्भे न संभवः ॥ २७ ॥ गर्भस्थश्चिंतयत्येवमहं गर्भाद्विनिस्सृतः ॥ अन्वेष्यामि शिवज्ञानं संसारविनिवर्तकम् ॥ २८ ॥ एवं स गर्भदुःखेन महता परिपीडितः ॥ जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिंतयन् ॥ २९ ॥ यथा गिरिवराक्रांतः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति ॥ तथा जरायुणा देही दुःखं तिष्ठति वेष्टितः ॥ ३० ॥

स्थित रहता है ॥ ३० ॥ जैसे समुद्रमें गिरके व्याकुल और दुःखी होता है वैसे गर्भके जलसे सिक्तांग हो निरन्तर व्याकुल होताहै ॥ ३१ ॥ जिसप्रकार लोहेके कलशेमें रक्खाहुआ पदार्थ अग्निसे पकाया जाता है उसी प्रकार गर्भके कुंभमें पडाहुआ जीवात्मा पेटकी अग्निसे पकाया जाता है ॥ ३२ ॥ अग्निसे तपीहुई सुइयोंसे नित्य छेदेहुएको जो दुःख होता है उसी प्रकार गर्भाशयमें स्थितहुए जीवको दुःख प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ मनुष्योंको गर्भवाससे अधिक कष्ट दुःख कहीं नहीं मिलता यह दुःख अतिघोर तथा अतिसंकटका देनेवाला होता है ॥३४॥ यह पापियोंका बडा दुःख तपसे कहा धर्मात्माओंका केवल

पतितस्सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः ॥ गर्भोदकेन सिक्तांगस्सर्वदाकुलितस्तदा ॥ ३१ ॥ लोहकुंभे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना ॥ गर्भकुंभे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना ॥ ३२ ॥ सूचीभिरग्निवर्णाभिर्निर्भिन्नस्य निरंतरम् ॥ यद्दुःखं जायते तस्य तत्र संस्थस्य चाधिकम् ॥ ३३ ॥ गर्भावासात्परं दुःखं कष्टं नैवास्ति कुत्रचित् ॥ देहिनां दुःखबहुलं सुघोरमतिसंकटम् ॥ ३४ ॥ इत्येतत्सुमहद्दुःखं पापिनां परिकीर्तितम् ॥ केवलं धर्मबुद्धीनां सप्तमासैर्भवस्सदा ॥ ३५ ॥ गर्भात्सुदुर्लभं दुःखं योनियंत्रनिपीडनात् ॥ भवेत्पापात्मनां व्यास न हि धर्मयुतात्मनाम् ॥ ३६ ॥ इक्षुवत्पीडयमानस्य यंत्रेणैव समंततः ॥ शिरसा ताडयमानस्य पापमुद्गरकेण च ॥ ३७ ॥ यंत्रेण पीडिता यद्वन्निस्साः रास्युस्तिलाः क्षणात् ॥ तथा शरीरं निस्सारं योनियंत्रनिपीडनात् ॥ ३८ ॥ अस्थिपादतुलास्तंभं स्नायुबन्धेन यंत्रितम् ॥ रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम् ॥ ३९ ॥ केशरोमनखच्छन्नं रोगायतनमातुरम् ॥ वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टकभूषितम् ॥ ४० ॥

सात मासमें जन्म होता है ॥ ३५ ॥ हे व्यासजी ! पापियोंको योनियंत्रके पीडन करनेसे गर्भसे अति कठिन दुःख प्राप्त होता है परन्तु धर्मात्माओंको नहीं होता ॥ ३६ ॥ कोनयंत्रसे सबओर ईखके समान पीडित कियेहुएके समान पापमुद्गरसे शिरमें ताडन कियेहुएके समान ॥ ३७ ॥ तथा जैसे कोहूलूसे पेले हुए तिल निस्सार होजातेहैं उसी प्रकार योनियन्त्रके पीडन करनेसे शरीर निस्सार होजाता है ॥ ३८ ॥ अस्थि पाद तुला स्तम्भ स्नायुबन्धनसे बँधाहुआ रक्त मांस मृत्तिकासे लिप्त हुआ विष्ठा मूत्र द्रव्यका पात्र ॥ ३९ ॥ बाल रोम नखोंसे ढकेहुए रोगके स्थान आतुर मुखही एक महाद्वारवाले गवाक्ष अष्टकसे

शोभायमान ॥४०॥ दोनों ओंठरूपी कपाटवाले तथा जिह्वारूपी अर्गला (धन्ना) सहित भोग तृष्णारूपी रोगसे ग्रसित मूढ रागद्वेषके वशमें पडेहुए ॥ ४१ ॥
अंग और प्रत्यंगोंसे युक्त जेरसे लिपटे विना प्रगटहुए संकटसे योनिमार्गसे निकले हुए ॥ ४२ ॥ विष्ठा मूत्रसे सिक्तांग विकोशिकसे उत्पन्नहुए अस्थिपंजरसे
विख्यातहुए शरीरको जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ तीनसौ पैंसठ पेशी तथा चारोंओरसे साढेतीन करोड रोंगटोंसे व्याप्त हुआ ॥ ४४ ॥ शरीर स्थूल और
सूक्ष्म साढेतीन करोड नाडियोंसे दृश्य और अदृश्य कहा है ॥ ४५ ॥ विना स्वेद मधुवाली नाडियोंके मध्यमें स्थित होके जीव बाहर निकलता है इसके

ओष्ठद्वयकपाटं च तथा जिह्वार्गलान्वितम् ॥ भोगतृष्णातुरं मूढं रागद्वेषवशानुगम् ॥४१॥ संवर्तितांगप्रत्यंगं जरायुपरिवेष्टितम् ॥ संकटे
नाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम् ॥४२॥ विण्मूत्ररक्तसिक्तांगं विकोशिकसमुद्भवम् ॥ अस्थिपञ्जरविख्यातमस्मिञ्ज्ञेयं कलेवरम् ॥४३॥
शतत्रयं षष्ट्यधिकं पंचपेशीशतानि च ॥ सार्द्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समंताद्रोमकोटिभिः ॥ ४४ ॥ शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्याऽदृश्या हि
तास्स्मृताः ॥ एतावतीभिर्नाडीभिः कोटिभिस्तत्समंततः ॥४५ ॥ अस्वेदमधुभिर्याभिरंतस्थः स्रवते बहिः ॥ द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ता विंश
तिश्च नखाः स्मृताः ॥ ४६ ॥ पित्तस्य कुडवं ज्ञेयं कफस्याथाढकं स्मृतम् ॥ वसायाश्च पलं विंशत्तदर्धं कपिलस्य च ॥ ४७॥ पंचार्द्धं
तु तुला ज्ञेया पलानि दश मेदसः ॥ पलत्रयं महारक्तं मज्जायाश्च चतुर्गुणम् ॥ ४८ ॥ शुक्रोर्द्धं कुडवं ज्ञेयं तद्बीजं देहिनां बलम् ॥
मांसस्य चैकपिंडेन पलसाहस्रमुच्यते ॥४९॥ रक्तं पलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रं यत्प्रमाणतः ॥ अंजलयश्च चत्वारश्चत्वारो मुनिसत्तम ॥ ५० ॥

बत्तीस दांत और वीस नख कहेहैं ॥ ४६ ॥ इस शरीरमें पित्त एक कुडव (पावभर) कफका सार एक आटक (चारसेर) चरबी वीस पल (१६० तोले)
दशपल कपिलत्व होता है ॥ ४७ ॥ मेदनामक चरबीका भार साढे पांच तुला और दशपल (सौपलकी एक तुला होती है) तीन पल इस शरीरमें महारक्त
मज्जा इससे चौगुनी अर्थात् बारह पल जाननी ॥ ४८ ॥ वीर्य इसमें आधा कुडव यही बीज और देहधारियोंका बल है इस देहमें सहस्र पल मांसका
परिमाण कहा है यह पूरे शरीरका विवरण है ॥ ४९ ॥ सौ पल इसमें रक्त होता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! चारचार अंजली इसमें विष्ठा मूत्र जानना ॥५०॥

इस प्रकार नित्य विशुद्धआत्माको यह अपवित्र अनित्य शरीररूपी गृह कर्मबंधनसे बना है ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे महाबुद्धे ! हे मुने ! हे व्यासजी ! सुनो मैं देहकी अपवित्रताको और स्वभावके महत्वको संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ कारण कि, यह शरीर वीर्य और रजके संयोगसे उत्पन्न होता है, और नित्य विष्ठा तथा मूत्रसे परिपूर्ण होता है इसीसे यह अपवित्र कहा है ॥ २ ॥ जिस प्रकार भीतर विष्ठासे पूर्णहुआ घडा बाहरसे शुद्ध नहीं हो सकता उसी प्रकार यह शुद्ध कियाहुआ शरीर भी अपवित्र कहा है ॥

इति देहगृहं ह्येतन्नित्यस्यानित्यमात्मनः ॥ अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबंधाद्विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमा
संहितायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे देहस्याशुचितां मुने ॥ महत्त्वं च
स्वभावस्य समासात्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥ शुक्रशोणितसंयोगाद्देहस्संजायते यतः ॥ नित्यं विण्मूत्रसंपूर्णस्तेनायमशुचिस्स्मृतः ॥ २ ॥
यथांतर्विष्ठया पूर्णश्शुचिमान्न बहिर्घटः ॥ शोध्यमानो हि देहोऽयं तेनायमशुचिस्ततः ॥ ३ ॥ संप्राप्यातिपवित्राणि पंचगव्यं हवींषि
च ॥ अशुचित्वं क्षणाद्यांति किमन्यदशुचिस्ततः ॥ ४ ॥ हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च ॥ अशुचित्वं प्रयांत्याशु किमन्य
दशुचिस्ततः ॥ ५ ॥ हे जनाः किन्न पश्यंति यन्निर्याति दिनेदिने ॥ स्वदेहात्कश्मलं पूतिस्तदाधारः कथं शुचिः ॥ ६ ॥ देहस्संशो
ध्यमानोऽपि पंचगव्यकुशांबुभिः ॥ घृष्यमाण इवांगारो निर्मलत्वं न गच्छति ॥ ७ ॥ स्रोतांसि यस्य सततं प्रभवंति गिरेरिव ॥
कफमूत्रपुरीषाद्यैस्सदेहश्शुध्यते कथम् ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ अति पवित्र पंचगव्य तथा हवि आदि भी जिसको प्राप्त होके क्षणमात्रमें अपवित्रताको प्राप्त होजाते हैं उससे अधिक और क्या अपवित्र है ? ॥ ॥ ४ ॥ हृदयके योग्य मनोहर अन्नपान भी जिसको प्राप्त होके शीघ्रही अपवित्र होजाते हैं, उससे अपवित्र और क्या है ? ॥ ५ ॥ हे मनुष्यो ! ! क्या ? तुम नहीं देखते हो कि, जो प्रतिदिन अपने शरीरसे मल मूत्रादि निकलता है उसका आधार कैसे पवित्र होसकता है ॥ ६ ॥ पंचगव्य तथा कुशाओंके जलोंसे शोधन किया हुआ भी शरीर घिसेहुए अंगारेके समान निर्मल नहीं होसकता ॥७॥ पर्वतके समान जिस शरीरसे कफ मूत्र विष्ठा आदिके

स्रोत निरंतर बहते हैं वह शरीर किस प्रकार शुद्ध हो सकता है ॥८॥ संपूर्ण अपवित्रताके कोष शरीरका कोई स्थान भी विष्ठा और मूत्रके चर्मके समान पवित्र नहीं है ॥ ९ ॥ अपने देहके मलके स्रोतोंसे मलको निकालके हाथ मिट्टी तथा जलसे शुद्ध किया जाता है तौ भी यह इस शरीरका अवयव रूप कर अपवित्रताके पात्र (शरीर) से अलग नहीं होताहै ॥ १० ॥ यत्नपूर्वक श्रेष्ठ गंध धूप आदिसे भलीभांति संस्कार कियाहुआ भी यह देह नमाई हुई कुत्तेकी पूँछके समान अपने स्वभावको नहीं छोडता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार जातिसे काली वस्तु किसी उपायसे श्वेत नहीं हो सकती उसी प्रकार शुद्ध कीहुई भी यह

सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते ॥ शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विण्मूत्रस्य दृतेरिव ॥ ९ ॥ सृष्ट्वात्मदेहस्रोतांसि मृत्तोयैः शोध्यते करः ॥ तथाप्यशुचिभांडस्य न विभ्रश्यति किं करः ॥ १० ॥ कायस्सुगंधधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ॥ न जहाति स्वभावं स श्वपुच्छमिव नामितम् ॥ ११ ॥ यथा जात्यैव कृष्णोर्थः शुक्लस्स्यान्न ह्युपायतः ॥ संशोध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला ॥ १२ ॥ जिघ्रन्नपि स्वदुर्गंधं पश्यन्नपि स्वकं मलम् ॥ न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ॥ १३ ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं येनेदं छादितं जगत् ॥ शीघ्रं पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्यते ॥ १४ ॥ स्वदेहस्य विगंधेन न विरज्येत यो नरः ॥ विरागकारणं तस्य किमेतदुपदिश्यते ॥ १५ ॥ सर्वस्यैव जगन्मध्ये देह एवाशुचिर्भवेत् ॥ तन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥ गंधलेपापनोदार्थं शौचं देहस्य कीर्तितम् ॥ द्वयस्यापगमाच्छुद्धिश्शुद्धस्पर्शाद्विशुध्यति ॥ १७ ॥

मूर्त्ति निर्मल नहीं होसकती ॥ १२ ॥ यह संसार अपने दुर्गंधिको सूँघकर और अपने मलको देखकर भी नासिकाको पीडा देके भी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ आश्चर्य है अज्ञानका यह माहात्म्य है कि, जिसने यह संसार आच्छादन करलिया है कि, अपने शरीरके दोषको देखके भी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥ जो मनुष्य अपने शरीरकी दुर्गन्धिसे वैराग्यको नहीं प्राप्त होता उसके विरागका कारण और क्या उपदेश किया जाय ? ॥ १५ ॥ संसारमें सब मनुष्योंका शरीरही अपवित्र है उसके मलके अवयव स्पर्शसे पवित्र वस्तु भी अपवित्र होजाती है ॥ १६ ॥ गंधलेपके दूरकरनसे देहकी पवित्रता कही है

और दोनोंके नाश होजानेसे शुद्धि होती है शुद्ध वस्तुके स्पर्श होनेसे पवित्र होजाता है ॥ १७ ॥ गंगाजीके जलसे पर्वतके समान मृत्तिकाके भारसे भी मृत्युपर्यन्त चाहे शौच करै परन्तु स्वभावसे दूषितहुआ मनुष्य कदापि शुद्ध नहीं होता है ॥ १८ ॥ दुष्टात्मा तीर्थ स्नानोंसे अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होसकता, क्या तीर्थमें धोईहुई कुत्तेकी पूँछ शुद्धिको प्राप्त होसकती है ? ॥ १९ ॥ अन्तः स्वभावसे दुष्टहुए पुरुषको अग्निमें प्रवेश होनेपर न तो स्वर्ग न अपवर्ग मिलता है, केवल देह भस्म होजाता है ॥ २० ॥ भावसे दुष्टहुआ मनुष्य सम्पूर्ण गंगाजलसे अथवा मृत्तिकाके पर्वतसे भलीभांति जन्मभर स्नान करै परन्तु वह कदापि शुद्ध नहीं होसकता ऐसा हम कहते हैं ॥ २१ ॥ स्वभावसे दुष्टहुआ मनुष्य चाहे अग्निको जलाके घी वा तेलसे सींचे और कईबार प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेशकर भस्म होजाय परन्तु धर्म या और किसी श्रेष्ठ फलको नहीं पाता ॥२२॥ गंगा आदि तीर्थोंमें मत्स्य आदि रहते हैं देवालयमें नित्य पक्षी गण निवास करते हैं ऐसे ही भावहीन पुरुष तीर्थस्नानसे तथा दानसे कुछ फल नहीं पाते हैं ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंमें भावकी शुद्धि परम शौच कही है जिस प्रकार भावसे स्त्रीको और प्रकार आलिंगन करते हैं आर पुत्रीको और भावसे आलिंगन करतेहैं ॥ २४ ॥ अभिन्न वस्तुओंमें भी चित्तकी

गंगातोयेन सर्वेंण मृद्भारैः पर्वतोपमैः ॥ आमृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति ॥ १८ ॥ तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति ॥ श्वदृतिः क्षालिता तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति ॥ १९ ॥ अंतर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम् ॥ न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम् ॥ २० ॥ सर्वेण गांगेन जलेन सम्यङ् मृत्पर्वतेनाप्यथ भावदुष्टः ॥ आजन्मनः स्नानपरो मनुष्यो न शुध्यतीत्येव वयं वदामः ॥ २१ ॥ प्रज्वाल्य वह्निं घृततैलसिक्तं प्रदक्षिणावर्तशिखं महांतम् ॥ प्रविश्य दग्धस्त्वपि भावदुष्टो न धर्ममाप्नोति फलं न चान्यत् ॥ २२ ॥ गंगादितीर्थेषु वसंति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम् ॥ भावोज्झितास्तेन फलं लभंते तीर्थावगाहाच्च तथैव दानात् ॥ २३ ॥ भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाण सर्वकर्मसु ॥ अन्यथाऽऽलिंग्यते कांता भावेन दुहितान्यथा ॥ २४ ॥ मनसो भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ॥ अन्यथैव सुतं नारी चिन्तयत्यन्यथा पतिम् ॥ २५ ॥

वृत्ति भेदको प्राप्त होती है जिस प्रकार स्त्री पुत्रको और प्रकार तथा पतिको और प्रकार विचारती है ॥ २५ ॥ इस भावकी महिमाको सब प्रकार देखो
कि, चाहे स्त्रीसे चिपटाहुआ भी हो परन्तु स्त्रीभावसे रहित पुरुषको कामना नहीं होती ॥ २६ ॥ यदि काम, क्रोध, लोभकी चिन्ता मनमें विद्यमान हो तो
अनेकभोज्य तथा मनोहर भोजन भी नहीं खाये जाते ॥ २७ ॥ उस भावसेही मनुष्य कामादि तीनोंमें प्रवृत्त होताहै और भावसेही छूट जाता है भावसे
शुद्ध आत्मा स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ केवल एक भावसे शुद्ध जीव जलाताहुआ होम करताहुआ स्तुति करताहुआ मरजावै तो ज्ञानकी

पश्यध्वमस्य भावस्य महाभाग्यमशेषतः ॥ परिष्वक्तोपि यन्नार्य्या भावहीनं न कामयेत् ॥ २६ ॥ नाद्याद्विविधमन्नाद्यं भक्ष्याणि
सुरभीणि च ॥ यदि चिंतां समाधत्ते चित्ते कामादिषु त्रिषु ॥ २७ ॥ गृह्यते तेन भावेन नरो भावाद्विमुच्यते ॥ भावतश्शुचिशुद्धात्मा
स्वर्गं मोक्षं च विंदति ॥ २८ ॥ भावेनैकात्मशुद्धात्मा दहञ्जुह्वन्स्तुवन्मृतः ॥ ज्ञानावाप्तेरवाप्याशु लोकान्सुबहुयाजिनाम् ॥ २९ ॥
ज्ञानामलांभसा पुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः ॥ अविद्यारागविण्मूत्रलेपगंधविशोधनम् ॥ ३० ॥ एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि स्मृतम् ॥
त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसन्निभम् ॥ ३१ ॥ ज्ञात्वैवं दोषवद्देहं यः प्राज्ञश्शिथिलो भवेत् ॥ देहभोगोद्भवाद्भावाच्छमचित्तः
प्रसन्नधीः ॥ ३२ ॥ सोऽतिक्रामति संसारं जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥ संसारं कदलीसारदृढग्राह्यवतिष्ठते ॥ ३३ ॥ एवमेतन्महाकष्टं जन्म
दुःखं प्रकीर्तितम् ॥ पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च ॥ ३४ ॥

प्राप्तिसे शीघ्र अति याज्ञिकोंके लोकोंको प्राप्त होके ॥ २९ ॥ ज्ञानरूपी निर्मल जलसे तथा श्रेष्ठ वैराग्यरूपी मृत्तिकासे मनुष्योंकी अविद्या रागरूपी विष्ठा मूत्र
लेप दुर्गंधिकी शुद्धि होती है ॥ ३० ॥ इस प्रकार यह शरीर स्वभावसेही अपवित्र कहा है केवल निस्सार केलेके समान चिकनी त्वचामात्र सार है
॥ ३१ ॥ इस प्रकार दोषयुक्त देहको जानकर जो बुद्धिमान् शिथिल होताहै और देहके भोगोंसे उत्पन्न हुए भावसे शान्तचित्त और प्रसन्न होताहै ॥ ३२॥
वह संसारको उल्लंघन करता है और जीवन्मुक्त होजाता है और संसाररूपी केलेके सारको ग्रहण करके स्थित होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार मनुष्योंको

अज्ञानके दोषसे तथा अनेककर्मके वशसे महाकष्टदायक जन्मका दुःख कहा है ॥ ३४ ॥ करोडों ग्रन्थोंमें जो कहा है सो आधे श्लोकमें कहता हूँ
"मेरा है" यह अत्यन्त दुःखका मूल है "मेरा नहीं" यह परम सुख है ॥ ३५ ॥ ममताहीन अनेकों सहस्रों बँधेहुए राजा इससेही परमधामको प्राप्त होगये ॥
॥ ३६ ॥ योनियन्त्रकी पीडासे मूर्च्छितहुए दुःखसे गर्भमें स्थितहुए जीवकी जो स्मृति थी सो नष्ट होजाती है ॥ ३७ ॥ जन्मसे ही इस प्राणीको बाहरकी
वायुके तथा मोह संगके स्पर्शमात्रसे घोर ज्वर उत्पन्न होता है ॥ ३८ ॥ फिर उस बडे ज्वरसे मोह उत्पन्न होता है उससे मूढके शीघ्रही स्मृतिका नाश

श्लोकार्द्धेन तु वक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥ ममेति परमं दुःखं न ममेति परं सुखम् ॥ ३५ ॥ बहवोपीह राजानः परं लोकमितो
गताः ॥ निर्ममत्वसमेतास्तु बद्धाश्शतसहस्रशः ॥ ३६ ॥ गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा च तस्य प्रणश्यति ॥ संमूर्छितेन दुःखेन
योनियन्त्रनिपीडनात् ॥ ३७ ॥ बाह्येन वायुना वास्य मोहसङ्गेन देहिनः ॥ स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरस्समुपजायते ॥ ३८ ॥ तेन ज्वरेण
महता सम्मोहश्च प्रजायते ॥ सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशश्शीघ्रं संजायते पुनः ॥ ३९ ॥ स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य स्मृतिर्नोऽपूर्वकर्मणः ॥
रतिः संजायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि ॥ ४० ॥ रक्तो मूढश्च लोकोऽयं न कार्य्यें सम्प्रवर्तते ॥ न चात्मानं विजानाति न परं न च
दैवतम् ॥ ४१ ॥ न शृणोति परं श्रेयस्सति कर्णेऽपि सन्मुने ॥ न पश्यति परं श्रेयस्सति चक्षुषि तत्क्षमे ॥ ४२ ॥ समे पथि शनैर्गच्छन्
स्खलतीव पदेपदे ॥ सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ॥ ४३ ॥ संसारे क्लिश्यते तेन गर्भलोभवशानुगः ॥
गर्भस्मृतेन पापेन समुज्झितमतिः पुमान् ॥ ४४ ॥

होता है ॥ ३९ ॥ और स्मृतिके नाश होजानेसे उस जीवको अपने पूर्वकर्मोंकी स्मृति नहीं रहती और शीघ्र उसी जन्ममें प्रीति होजाती है ॥ ४० ॥
अनुरक्त हुआ मूढ इस संसारके सुकार्य (कर्त्तव्यो) में प्रवृत्त नहीं होता है और न अपने आपको न परदैवतको जानता है ॥ ४१ ॥ हे सन्मुने ! कानोंके
होनेपर भी अपने कल्याणको नहीं सुनता है और समर्थ नेत्रके होने पर भी परम कल्याणको नहीं देखता है ॥ ४२ ॥ समान मार्गमें शनैः शनैः जाता
हुआ भी पद पदमें स्खलित होता है पंडितोंसे जताया हुआ भी तथा बुद्धि होनेपर भी नहीं जानता है ॥ ४३ ॥ गर्भमें स्मरण हुए उस पापसे गर्भके

लोभवश हो बुद्धिसे भ्रष्ट हुआ पुरुष संसारमें क्लेशको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार शिवजीने तपके कथनके अर्थ बडा श्रेष्ठ शास्त्र कहा जो स्वर्ग और मोक्षका साधनहै ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य संपूर्ण मनोरथोंके साधनेवाले इस शिवज्ञानके होनेपर अपने कल्याणको नहीं करते सो यह बडा आश्चर्य है ॥ ४६ ॥ बाल्यावस्थामें इन्द्रियवृत्तिके प्रगट न होनेसे बडा दुःख है कारण कि इच्छा करताहुआ भी कुछ कहने और दुःख निराकरणार्थ उपाय करनेमें नहीं समर्थ होता है ॥ ४७ ॥ दांतोंके निकलनेमें बडा कष्ट तथा थोडे रोगसे और बालग्रह तथा अनेकप्रकारके बालरोगोंसे अतिपीडा होती है ॥ ४८ ॥ कहीं भूँख

इत्थं महत्परं दिव्यं शास्त्रमुक्तं शिवेन तु ॥ तपसः कथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ॥ ४५ ॥ ये सत्यस्मिञ्छिवे ज्ञाने सर्वकामार्थ
साधने ॥ न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ॥ ४६ ॥ अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः ॥ इच्छन्नपि न शक्नोति
वक्तुं कर्त्तुं प्रतिक्रियाम् ॥ ४७ ॥ दंतोत्थाने महद्दुःखमल्पेन व्याधिना तथा ॥ बालरोगश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ॥ ४८ ॥
क्वचित्क्षुत्तृट्परीतांगः क्वचित्तिष्ठति संरटन् ॥ विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालस्समाचरेत् ॥ ४९ ॥ कौमारे कर्णपीडायां मातापित्रोश्च
साधनैः ॥ अक्षराध्ययनाद्यैश्च नानादुःखं प्रवर्तते ॥ ५० ॥ बाल्ये दुःखमतीत्यैव पश्यन्नपि विमूढधीः ॥ न कुर्वीतात्मनः श्रेयस्तदत्र
महदद्भुतम् ॥ ५१ ॥ प्रवृत्तेन्द्रियवृत्तित्वात्कामरोगप्रपीडनात् ॥ तदप्राप्ते तु सततं कुतस्सौख्यं तु यौवने ॥ ५२ ॥ ईर्ष्यया च महद्दुःखं
मोहाद्रक्तस्य तस्य च ॥ नेत्रस्य कुपितस्येव त्यागी दुःखाय केवलम् ॥ ५३ ॥

प्याससे व्याकुल शरीर हुआ कहीं रोरोकर स्थित हुआ वह बालक अज्ञानसे विष्ठा मूत्र आदिको भक्षण करता है ॥ ४९ ॥ कौमार अवस्थामें कानोंकी पीडामें माता पिताके साधनोंसे तथा अक्षराभ्यास करने आदिसे अनेकदुःख होते हैं ॥ ५० ॥ बाल्यावस्थामें दुःखको भोगके भी यह सब देखता हुआ मूर्खजन जो अपने कल्याणको नहीं करता है यह बडा आश्चर्य है ॥ ५१ ॥ इन्द्रियवृत्तिके प्रगट होनेसे काम रोगमें पीडन होनेके कारण उसके न प्राप्त होनेपर भी दुःख होता है इससे यौवनमें भी कहाँ ? सुख है ॥ ५२ ॥ मोहसे अनुरक्त हुए युवा मनुष्यको ईर्षासे बडा दुःख होता है कुपितहुए नेत्रके

समान त्यागनेवाला केवल दुःखके लिये होता है ॥ ५३ ॥ रात्रिमें कामाग्निसे व्याकुलहुआ निद्राको नहीं पाता और दिनमें धनके संग्रह करनेकी चिन्तासे
कहाँ ? सुख है ॥ ५४ ॥ स्त्रियोंमें मन लगाये हुए मनुष्यकी जो वीर्यकी बिन्दुहैं वे सुखके अर्थ नहीं मानी हैं वे स्वेदजके समानहैं ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार
कीडोंसे करोदेहुए कुष्ठी वानरकी खुजलीके संतापसे जो दशा होती है उसी प्रकार स्त्रियोंमें आसक्त होनेवालेकी दशा होती है ॥ ५६ ॥ कपोलमें
दुर्गंधिके दूर होनेसे वा मुखशुद्धिमें जैसा सुख माना गया है वैसा सुख स्त्रियोंमें मानना चाहिये उनमें अधिक सुख नहीं है ॥५७॥ विष्ठा और मूत्रके त्यागन
करनेसे जैसा सुख होता है वैसा सुख स्त्री प्रसंगमें जानना चाहिये परन्तु मूर्खोंने और प्रकार कल्पना कियाहै ॥ ५८ ॥ कुवस्तुवाली समस्त दोषोंकी पात्र
स्त्रियोंमें अणुमात्र भी सुख नहीं है ऐसा पंचचूडाने कहा है ॥ ५९ ॥ सन्मान तिरस्कारोंसे, वियोग प्रियसंगतिसे और यौवन बुढापेसे ग्रस्त है फिर निर्द्वन्द्व
सुख कहाँ ? ॥ ६० ॥ बली श्वेतकेश सिरहिलने आदिसे शिथिल देहयुक्त हुए सम्पूर्ण कार्योंमें सामर्थ्यहीन मनुष्यको बुढापेने शिथिल किया ॥ ६१ ॥
जो स्त्रीपुरुषोंका मनोहर यौवन पहले परस्पर प्रिय था वहही बुढापेमें उन दोनोंको भी प्रिय नहीं होता ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य बुढापेसे अपने आपको अपूर्वके

न रात्रौ विंदते निद्रां कामाग्निपरिवेदितः ॥ दिवापि च कुतस्सौख्यमर्थोपार्जनचिंतया ॥ ५४ ॥ स्त्रीष्वध्यासितचित्तस्य ये पुंसः
शुक्रबिन्दवः ॥ ते सुखाय न मन्यन्ते स्वेदजा इव ते तथा ॥ ५५ ॥ कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनो वानरस्य च ॥ कंडूयनाभितापेन
यद्भवेत्स्त्रीषु तद्विदः ॥ ५६ ॥ यादृशं मन्यते सौख्यं गंडे पूतिविनिर्गमात् ॥ तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते ॥ ५७ ॥
विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम् ॥ तादृशं स्त्रीषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा ॥ ५८ ॥ नारीष्ववस्तुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु
च ॥ नाणुमात्रं सुखं तासु कथितं पंचचूडया ॥ ५९ ॥ सम्माननावमानाभ्यां वियोगेनेष्टसंगमात् ॥ यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यम
नुपद्रवम् ॥ ६० ॥ वलीपालितखालित्यैश्शिथिलीकृतविग्रहम् ॥ सर्वक्रियास्वशक्तिं च जरया जर्जरीकृतम् ॥ ६१ ॥ स्त्रीपुंसयौ
वनं हृद्यमन्योऽन्यस्य प्रियं पुरा ॥ तदेव जरयाग्रस्तमनयोरपि न प्रियम् ॥ ६२ ॥ अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितम् ॥ यः
पश्यन्नपि रज्यते कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ६३ ॥

समान परिवर्त्तित हुआ देखके भी अनुराग करता है उससे मूर्ख और कौन है ॥ ६३ ॥ बुढापेमें ग्रस्तहुआ मनुष्य पुत्र पुत्री भाई बन्धु आदिमें आसक्त
होनेसे कठोर भृत्योंसे भी तिरस्कार पाता है ॥ ६४ ॥ अति बुढापेमें ग्रस्त हुआ मनुष्य धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष आदिके साधनेमें असमर्थ होता है इस कारण
युवा अवस्थामेंही धर्म करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० संसारचिकित्सायां देहाशुचित्वबाल्याद्यवस्थादुःखवर्णनं
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले, हे मुने ! स्त्रियोंके जो दोष पंचचूडा अप्सराने कहेहैं वे सब मुझसे संक्षेपसे कहो यदि आप मुझसे सन्तुष्ट

जराभिभूतः पुरुषः पुत्रीपुत्रादिबांधवैः ॥ आसक्तत्वाद्दुराधर्षैर्भृत्यैश्च परिभूयते ॥ ६४ ॥ धर्ममर्थं च कामं वा मोक्षं वातिजरातुरः ॥
अशक्तस्साधितुं तस्माद्युवा धर्मं समाचरेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां संसारचिकित्सायां देहाशुचित्व
बाल्याद्यवस्थादुःखवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ कुत्सितं योषिदर्थं यत्संप्रोक्तं पंचचूडया ॥ तन्मे ब्रूहि
समासेन यदि तुष्टोऽसि मे मुने ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स्त्रीणां स्वभावं वक्ष्यामि शृणु विप्र यथातथम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण
भवेद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ २ ॥ स्त्रियो मूलं हि दोषाणां लघुचित्ताः सदा मुने ॥ तदासक्तिर्न कर्तव्या मोक्षेप्सुभिरतन्द्रितैः ॥ ३ ॥ अत्रा
प्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पंचचूडया ॥ ४ ॥ लोकान्परिचरन्धीमान्देवर्षिर्नारदः पुरा ॥ ददर्शा
प्सरसं बालां पंचचूडामनुत्तमाम् ॥ ५ ॥ पप्रच्छाप्सरसं सुभ्रूं नारदो मुनिसत्तमः ॥ संशयो हृदि मे कश्चित्तन्मे ब्रूहि सुमध्यमे ॥ ६ ॥

हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे ब्राह्मण ! सुनो मैं स्त्रियोंके स्वभावको विधिपूर्वक वर्णन करता हूं जिसके श्रवणमात्रसे उत्तम वैराग्य उत्पन्न होजाता
है ॥ २ ॥ हे मुने ! हलके चित्तवाली स्त्रियां दोषोंका मूलहैं इससे तन्द्रारहित मोक्षके चाहनेवालोंको स्त्रियोंमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये ॥ ३ ॥
इस विषयमें व्यभिचारिणी पंचचूडासे कहेहुए नारदजीके संवादरूप पुराने इतिहासको वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ पहले सब लोकोंमें फिरतेहुए बुद्धिमान्
देवर्षि नारदजीने बाला सुन्दर पंचचूडा नामवाली अप्सराको देखा ॥ ५ ॥ तो मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उस सुन्दर भौंवाली अप्सरासे यह पूंछा हे सुमध्यमे !

मेरे मनमें कुछ सन्देह है उसे निवृत्त करो ॥ ६ ॥ ऐसा कहनेपर वह सुन्दर अप्सरा उस ब्राह्मणसे बोली यदि मुझे समर्थ जानते हो तो विषय होजानेपर कहूँगी ॥ ७ ॥ नारदजी बोले हे भद्रे ! मैं तुझे किसी अविषयमें किसी प्रकार नहीं प्रवृत्त करूंगा हे सुमध्यमे ! तुमसे स्त्रियोंके स्वभावको सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले, इस प्रकार उन देवर्षि नारदजीका वचन सुनके वह सुन्दर अप्सरा उन मुनिश्रेष्ठ देवर्षि मुनीश नारदजीसे बोली ॥ ९ ॥ पंचचूडा बोली, हे मुने ! सुनो कोई स्त्री सती स्त्रीकी निन्दा करनेमें नहीं समर्थ है वे स्त्रियां जैसे स्वभाववालीहैं सो सब विदित है ॥ १० ॥ हे देवर्षे !

एवमुक्ता तु सा विप्रं प्रत्युवाच वराप्सरा ॥ विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसेऽथ माम् ॥ ७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन ॥ स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं सुमध्यमे ॥ ८ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा ॥ प्रत्युवाच मुनीशं तं देवर्षिं मुनिसत्तमम् ॥ ९ ॥ पंचचूडोवाच ॥ मुने शृणु न शक्या स्त्री सती वै निंदितुं स्त्रिया ॥ विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृश्यश्च स्वभावतः ॥ १० ॥ न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं प्रश्नमीदृशम् ॥ इत्युक्ता साऽभवत्तूष्णीं पंचचूडाप्सरोवरा ॥ ११ ॥ अथ देवर्षिवर्यो हि श्रुत्वा तद्वाक्यमुत्तमम् ॥ प्रत्युवाच पुनस्तां वै लोकानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ मृषावादे भवेद्दोषस्सत्ये दोषो न विद्यते ॥ इति जानीहि सत्यं त्वं वदातस्तत्सुमध्यमे ॥ १३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इत्युक्ता सा कृतमती रभसा चारुहासिनी ॥ स्त्रीदोषाञ्शाश्वतान्सत्यान्भाषितुं संप्रचक्रमे ॥ १४ ॥

मुझे ऐसे प्रश्नमें प्रवृत्त करनेको योग्य नहीं हो ऐसा कहनेपर वह सुन्दर अप्सरा मौन होगई ॥ ११ ॥ तब देवर्षिश्रेष्ठ नारदजी उस उत्तम वचनको सुनके लोकोंके हितकी कामनासे फिर उससे बोले ॥ १२ ॥ नारदजी बोले, हे सुमध्यमे ! झूंठ बोलनेमें दोष होता है सत्यमें दोष नहीं ऐसा तू जान इस कारण सत्य सत्य कह ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा कहनेपर वह निश्चितबुद्धि सुन्दर हास्य करनेवाली अप्सरा वेगसे सनातन स्त्री दोषोंको सत्यसत्य कहने

लगी ॥ १४ ॥ पंचचूडा बोली, हे नारदजी ! कुलीन, नाथवालीं, रूपवालीं स्त्रियैं भी मर्यादामें नहीं रहतीहैं यह स्त्रियोंमें दोष है ॥ १५ ॥ स्त्रियोंसे अधिक पापी और कोई नहीं स्त्रियैं पापोंका मूलहैं ऐसा तुम जानो ॥ १६ ॥ स्त्रियाँ जानेहुए धनवाले प्रत्येक रूपवाले यथेप्सित यतियों (संन्यासियों) के समीप प्राप्त होके भी प्रतीक्षा करनेमें नहीं समर्थ होती ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! हम स्त्रियोंका यह बडा बुरा धर्म है कि पापी मनुष्यको भी लज्जा त्यागन करके भजतीहैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य स्त्रीको चाहता है तथा उनके समीप जाता है थोडी भी सेवा करता है स्त्रियां उसीको चाहतीहैं ॥ १९ ॥ मनुष्योंके विना अर्थी होनेसे तथा पतियोंके डरसे विना मर्यादावालीं स्त्रियां स्वामीकी मर्यादामें ठहरतीहैं ॥ २० ॥ इन स्त्रियोंका कोई अमान्य नहीं, और इनमें अवस्थाका निश्चयन है सुरूप वा कुरूप मनुष्यको भोगतीहैं ॥ २१ ॥ न तो भयसे न चिल्लानेसे अथवा न अर्थके निमित्त तथा न ज्ञाति कुल सम्बन्धसे स्त्रियां पतिकी मर्यादामें स्थित रहतीहैं ॥ २२ ॥ कुलीन स्त्रियां यौवनमें वर्तमान हुई यथेच्छित आभूषण वस्त्र पानेवालीं व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संगतिको अभिलाषा करती हैं ॥ २३ ॥ जो नित्य बहुत मानी हुई प्रिय स्त्रियां रक्षा की जातीहैं वे स्त्री भी कुब्जे अन्धे जड बौने लंगडे मनुष्यमें आसक्त होतीहैं ॥ २४ ॥

॥ पंचचूडोवाच ॥ कुलीना नाथवंत्यश्च रूपवंत्यश्च योषितः ॥ मर्यादासु न तिष्ठंति स दोषः स्त्रीषु नारद ॥ १५ ॥ न स्त्रीभ्यः किंचिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति हि ॥ स्त्रियो मूलं हि पापानां तथा त्वमपि वेत्थ ह ॥ १६ ॥ समाज्ञातानर्थवतः प्रतिरूपान् यथेप्सितान् ॥ यतीनन्तरमासाद्य नालं नार्य्यः प्रतीक्षितुम् ॥ १७ ॥ असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो ॥ पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे ॥ १८ ॥ स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति ॥ ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छंति योषितः ॥ १९ ॥ अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्पति जनस्य च ॥ मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठंति भर्तृषु ॥ २० ॥ नासां कश्चिदमान्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः ॥ सुरूपं वा कुरूपं वा पुमांसमुपभुंजते ॥ २१ ॥ न भयादथ वाक्रोशान्नार्थहेतोः कथंचन ॥ न ज्ञातिकुलसम्बन्धास्त्रियस्तिष्ठंति भर्तृषु ॥ ॥ २२ ॥ यौवने वर्तमानानामिष्टाभरणवाससाम् ॥ नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः ॥ २३ ॥ या हि शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः ॥ अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामने ॥ २४ ॥

हे देवर्षे ! हे मुने ! और भी जो कुत्सित मनुष्यहैं उनमें आसक्त होजातीहैं इससे संसारमें स्त्रियोंको कोई अगम्य नहीं है ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि किसी प्रकार मनुष्योंकी गति नहीं होवै तो स्त्रियां परस्पर आसक्त होजातीहैं अपने पतियोंमें नहीं प्रवृत्त होतीहैं ॥ २६ ॥ पुरुषोंके न मिलनेसे कुटुम्बके भयसे तथा वध और बंधनके भयसे स्त्री हताश रहतीहैं ॥ २७ ॥ चञ्चल स्वभाववालीं दुश्चेष्टावालीं स्त्री उस प्रकार भावसे दुर्ग्राह्य होतीहैं जैसे बुद्धिमान् पुरुषके रतिके ग्रहण करनेसे वशमें होतीहैं ॥ २८ ॥ काष्ठोंसे अग्नि नहीं तृप्त होती है नदियोंसे समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियोंसे नहीं तृप्त होता

पंगुष्वपि च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिता नराः ॥ स्त्रीणामगम्यो लोकेषु नास्ति कश्चिन्महामुने ॥ २५ ॥ यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन्कथंचित्रोपपद्यते ॥ अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न च तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २६ ॥ अलाभात्पुरुषाणां च भयात्परिजनस्य च ॥ वधबन्धभयाच्चैव ता भग्नाशा हि योषितः ॥ २७ ॥ चलस्वभावा दुश्चेष्टा दुर्ग्राह्या भावतस्तथा ॥ प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथारातिपरिग्रहात् ॥ २८ ॥ नाग्निस्तुष्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ॥ नान्तकस्सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ २९ ॥ इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ॥ दृष्ट्वैव पुरुषं सद्यो योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ ३० ॥ सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा सुगन्धं मलवर्जितम् ॥ योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रीणां दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ३१ ॥ कायानामपि दातारं कर्त्तारं मानसांत्वयोः ॥ रक्षितारं न मृष्यंति भर्तारं परमं स्त्रियः ॥ ३२ ॥ न कामभोगात्परमान्नालंकारार्थसंचयात् ॥ तथा हितं न मन्यन्ते यथा रतिपरिग्रहात् ॥ ३३ ॥ अन्तकश्शमनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ॥ क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥ ३४ ॥

और स्त्रियां पुरुषोंसे तृप्त नहीं होतीहैं ॥ २९ ॥ हे देवर्षे ! सम्पूर्ण स्त्रियोंका यह और भी रहस्य है कि मनुष्यको देखकर शीघ्रही स्त्रीकी योनि गीली होजाती है ॥ ३० ॥ अच्छी प्रकार स्नान किये तथा सुगंधि युक्त निर्मल मनुष्यको देखके फूटे वर्तनसे जलके समान स्त्रियोंकी योनि बहने लगती है ॥ ॥ ३१ ॥ स्त्री शरीरके सुख देनेवाले मान और शान्तिके करनेवाले परम रक्षाकरनेवाले स्वामीको भी सहन नहीं करतीहैं ॥ ३२ ॥ न काम भोगसे तथा न अलंकार धनके संचय करनेसे उस प्रकारका हित मानतीहैं जिस प्रकार रति परिग्रहसे हित मानतीहैं ॥ ३३ ॥ काल, शान्त करनेवाला मृत्यु, पाताल,

बडवानल, अग्नि, क्षुरधारा, विष, सर्प, अग्नि यह एकओर तथा एक तरफ स्त्री हैं ॥ ३४ ॥ हे नारदजी ! ब्रह्माजीने जहाँसे पंचमहाभूत उत्पन्न किये तथा
जहाँसे लोक उत्पन्न किये, जहाँसे पुरुष तथा स्त्री निर्माण की परन्तु वहां स्त्रियोंमें सदा दोषही विधान किया है ॥ ३५॥ सनत्कुमारजी बोले, ऐसा उसका
वचन सुनके नारदजी सन्तुष्टचित्तहो यह सब सत्यमानके स्त्रियोंमें विरक्त होगये ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पंचचूडासे कहाहुआ स्त्रीस्वभाव तुमसे
आदरसे कह दिया क्या ? और कुछ वैराग्यका कारण सुनना चाहते हो ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम

यतश्च भूतानि महांति पंच यतश्च लोको विहितो विधात्रा ॥ यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिताः सदैव दोषः प्रमदासु नारद ॥ ३५ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या नारदस्तुष्टमानसः ॥ तथ्यं मत्वा ततस्तद्वै विरक्तोभूद्धि तासु च ॥ ३६ ॥ इत्युक्तः स्त्री
स्वभावस्ते पंचचूडोक्त आदरात् ॥ वैराग्यकारणं व्यास किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहि
तायां स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ त्वत्सकाशान्मया मुने ॥ स्त्रीस्वभावः
श्रुतः प्रीत्या कालज्ञानं वदस्व मे ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इदमेव पुराऽपृच्छत्पार्वती परमेश्वरम् ॥ श्रुत्वा नानाकथां दिव्यां
प्रसन्ना सुप्रणम्य तम् ॥ २ ॥ पार्वत्युवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन ज्ञातं मे सकलं मतम् ॥ यथार्चनं तु ते देव यैर्मंत्रैश्च यथाविधि ॥
॥ ३ ॥ अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्रं प्रति प्रभो ॥ मृत्युचिह्नं यथा देव किं प्रमाणं यथायुषः ॥ ४ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले, हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमारजी ! हे मुने ! तुम्हारे समीप मैंने प्रेमसे स्त्रियोंका स्वभाव सुना अब मुझसे कालज्ञानको
कहो ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले, यही पहले पार्वतीने शिवको प्रणाम कर अनेकप्रकारकी दिव्य कथाको सुनकर शिवजीसे पूंछा था ॥ २ ॥
पार्वतीजी बोलीं हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे मैंने सब कुछ जान लिया हे देव ! जिस प्रकार यन्त्रों और मंत्रोंसे विधिपूर्वक तुम्हारा पूजन होता है सो सब
कहो ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! हे देव ! मुझे अब भी कालचक्रके विषयमें एक संशय है कि जैसे मृत्युका चिह्न तथा आयुका प्रमाण होता है सो कहो ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! यदि मैं तुम्हारी प्रिया हूँ तो मुझसे कहो इस प्रकार उस देवीसे पूँछेहुए शिवजी कहने लगे ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, हे प्रिये ! हे देवेशि ! मैं तुझसे उस सत्य शास्त्रका वर्णन करताहूँ कि जिससे मनुष्योंका काल जाना जाता है ॥ ६ ॥ दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, अयन, वत्सर आदि बाहिरी तथा भीतरी स्थूल वा सूक्ष्म चिह्नोंसे जैसे मृत्युचिह्न जाना जाता है ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! हे पार्वती ! ठीकठीक सुनो मैं अब लोकोंके उपकारके अर्थ तथा वैराग्यके अर्थ तुमसे कहता हूँ ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! यदि अकस्मात् चारोंओरसे पीला शरीर ऊपरको लाल होजाय तो छेमासके भीतर मृत्यु जानै ॥ ९ ॥

तथा कथय मे नाथ यद्यहं तव वल्लभा ॥ इति पृष्टस्तया देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ ५ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये ॥ येन शास्त्रेण देवेशि नरैः कालः प्रबुध्यते ॥ ६ ॥ अहः पक्षं तथा मासमृतुं चायनवत्सरौ ॥ स्थूलसूक्ष्मगतैश्चिह्नैर्बहिरंतर्गतैस्तथा ॥ ७ ॥ तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि ॥ लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना ॥ ८ ॥ अकस्मात्पांडुरं देहमूर्द्ध्वरागं समंततः ॥ तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ ९ ॥ मुखं कर्णौ तथा चक्षुर्जिह्वास्तम्भो यदा भवेत् ॥ तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये ॥ १० ॥ रौरवानुगतं भद्रे ध्वनिं नाकर्णयेद्द्रुतम् ॥ षण्मासाभ्यंतरे मृत्युर्ज्ञातव्यः कालवेदिभिः ॥ ११ ॥ रविसोमाग्निसंयोगाद्यदोद्योतं न पश्यति ॥ कृष्णं सर्वं समस्तं च षण्मासं जीवितं तथा ॥ १२ ॥ वामहस्तो यदा देवि सप्ताहं स्पंदते प्रिये ॥ जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः ॥ १३ ॥ उन्मीलयंति गात्राणि तालुकं शुष्यते यदा ॥ जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः ॥ १४ ॥

हे प्रिये ! और जब मुख, कान, आँख, जिह्वा, स्तम्भन होवै तो भी छे मासके भीतर मृत्यु होती है ॥ १० ॥ हे भद्रे ! यदि जनसमूहसे कीहुई ध्वनिको शीघ्र न सुन सकै तो कालवेत्ताओंको छे मासके भीतर मृत्यु जाननी चाहिये ॥ ११ ॥ औरं जो सूर्य चन्द्रमा अग्निके संयोगसे प्रकाशको नहीं देखसकै और सब वस्तु काली काली दीख पडैं तो छे महीने जीवन शेष जानै ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! हे देवि ! जो बायाँ हाथ एक सप्ताहतक फडकतारहै तो उसका जीवन एक महीनेतक शेषहै इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जब सब गात्र टूटतेहैं और तालु सूखता है तब उसका एक मासका जीवन शेष जानै इसमें

संशय नहीं ॥ १४ ॥ त्रिदोषमें (वात, पित्त, कफके दोषमें) जिसकी नासिका बहती है तो एक पक्ष जीवन है यदि मुख कण्ठ सूखता है तो छे मासकी
आयु शेष जानै ॥ १५ ॥ हे भामिनि ! हे द्विजो ! जिस मनुष्यकी जिह्वा स्थूल होजाय और दांत एक साथ कोटको प्राप्त होजाय तो इन लक्षणोंसे छे
मासकी मृत्युको जानै ॥ १६ ॥ जल, तेल, घी, अथवा स्वच्छ दर्पणमें यदि अपने आपको न देख सकै वा अपनी मूर्त्ति विकृत हुई दीखै ॥ १७ ॥
तो कालचक्रके जाननेवालेको उसकी छै मासकी आयु जाननी चाहिये हे देवेशि ! और भी मृत्यु चिह्नोंको सुनो जिससे मृत्यु जानी जाती है ॥ १८ ॥

नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम् ॥ वक्त्रं कंठं च शुष्येत षण्मासांते गतायुषः ॥ १५ ॥ स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजाः क्लिद्यंति
भामिनि ॥ षण्मासाज्ज्ञायते मृत्युश्चिह्नैस्तैरुपलक्षयेत् ॥ १६ ॥ अंबुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वरवर्णिनि ॥ न पश्यति यदात्मानं विकृतं
पलमेव च ॥ १७ ॥ षण्मासायुस्स विज्ञेयः कालचक्रं विजानता ॥ अन्यच्च शृणु देवेशि येन मृत्युर्विबुद्ध्यते ॥ १८ ॥ शिरोहीनां यदा
छायां स्वकीयामुपलक्षयेत् ॥ अथ वा छायया हीनं मासमेकं न जीवति ॥ १९ ॥ आंगिकानि मयोक्तानि मृत्युचिह्नानि पार्वति ॥
बाह्यस्थानि ब्रुवे भद्रे चिह्नानि शृणु सांप्रतम् ॥ २० ॥ रश्मिहीनं यदा देवि भवेत्सोमार्कमण्डलम् ॥ दृश्यते पाटलाकारं मासार्द्धेन
विपद्यते ॥ २१ ॥ अरुंधती महायानमिंदुं लक्षणवर्जितम् ॥ अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति ॥ २२ ॥ दृष्टे ग्रहे च दिङ्मोहः
षण्मासाज्जायते ध्रुवम् ॥ उतथ्यं न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम् ॥ २३ ॥

जो मनुष्य अपनी छायाको विना शिरकी देखै अथवा अपनी परछाईं न देख सकै तो वह एक मास भी नहीं जी सकता ॥ १९ ॥ हे पार्वति ! हे भद्रे !
यह अंग सम्बन्धी मृत्युके चिह्न मैंने कहे अब बाहरी चिह्नोंको कहता हूं सुनो ॥ २० ॥ हे देवि ! जब चन्द्रमा और सूर्यका मंडल किरणोंसे हीन लाल
आकारवाला दीखै तो वह आधे महीनेमें मरता है ॥ २१ ॥ जो अरुन्धती महायान नागवीथी चन्द्रमा तथा तारागणको न देख सकै वह एक महीनेतक
जीता है ॥ २२ ॥ ग्रहोंके दीखनेपर भी दिशाओंका मोह होजाय तो छः महीनेमें मृत्यु होती है यदि उतथ्य वा ध्रुव सूर्यमण्डलको न देखसकै ॥ २३ ॥

और यदि रात्रिमें धनुष देखै वा मध्याह्न कालमें उल्कापात देखै तथा गिद्ध और काकोंसे लिपटता दीखै तो वह निश्चय छे मासमें मरजाता है ॥ २४ ॥ यदि स्वर्ग मार्गवाले ऋषिगण आकाशमें न दीख पड़ें तो कालवेत्ता पुरुषोंको उसकी आयु छे मासकी जाननी चाहिये ॥ २५ ॥ जो एकाएकी राहुसे ग्रस्तहुए सूर्य अथवा चन्द्रमाको देखता है वह निश्चय छे मासमें अथवा दिशाओंके चक्रको भ्रान्ति सहित दीखताहै वह निश्चय छे मासमें मरजाता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य नीलवर्णवाली मक्खियोंसे अकस्मात् व्याप्त होता है उसकी एक मासकी आयु जाननी चाहिये ॥ २७ ॥ जब गिद्ध, काक, कबूतर, यह शिरको

रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्याह्ने चोल्कपातनम् ॥ वेष्टचते गृध्रकाकैश्च षण्मासायुर्न संशयः ॥ २४ ॥ ऋषयस्स्वर्गपंथाश्च दृश्यंते नैव चाम्बरे ॥ षण्मासायुर्विजानीयात्पुरुषैः कालवेदिभिः ॥ २५ ॥ अकस्माद्राहुणा ग्रस्तं सूर्य्यं वा सोममेव च ॥ दिक्चक्रं भ्रांतवत्पश्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम् ॥ २६ ॥ नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद्वेष्टचते पुमान् ॥ मासमेकं हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ॥२७॥ गृध्रः काकः कपोतश्च शिरश्चाक्रम्य तिष्ठति ॥ शीघ्रं तु म्रियते जंतु र्मासैकेन न संशयः ॥ २८ ॥ एवं चारिष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः ॥ मानुषाणां हितार्थाय संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥ २९ ॥ हस्तयो रुभयोर्देवि यथा कालं विजानते ॥ वामदक्षिणयोर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम् ॥ ३० ॥ एवं पक्षौ स्थितौ द्वौ तु समासात्सुरसुंदरि ॥ शुचिर्भूत्वा स्मरन्देवं सुस्नातस्संयतेन्द्रियः ॥ ३१ ॥ हस्तौ प्रक्षाल्य दुग्धेनालक्तकेन विमर्दयेत् ॥ गंधैः पुष्पैः करौ कृत्वा मृगयेच्च शुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ कनिष्ठामादितः कृत्वा यावदंगुष्ठकं प्रिये ॥ पर्वत्रयक्रमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ॥ ३३ ॥

आक्रमण करके बैठते हैं तो निस्सन्देह वह प्राणी एक मासमें शीघ्र मर जाता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार मनुष्योंके हितके निमित्त बाहरी मृत्युका भेद तुमसे कहा अब मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ २९ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार बायें वा दाहिने दोनों हाथोंके मध्यमें काल प्रत्यक्ष होता है सो कहा ॥ ३० ॥ हे सुर सुन्दरि ! इस प्रकार वे दोनों पक्ष स्थित हैं उस समय पवित्र होके शिवदेवको स्मरण करता हुआ भलीभांति स्नानकर तथा जितेन्द्रिय हो ॥ ३१ ॥ हाथ धोके दूध वा अलक्तसे केश मलै गंध और पुष्पोंसे हाथ पूर्णकर शुभ तथा अशुभको चिन्तवन करै ॥ ३२ ॥ हे प्रिये ! कनिष्ठिकासे लेके अंगुष्ठपर्यन्त

दोनों हाथोंमें तीन पर्वके क्रमसे ॥ ३३ ॥ प्रतिपदादि तिथिको गिनके पूर्वकी ओर मुखकर संपुट आकार वाले हाथोंसे ॥ ३४ ॥ एक सौ आठ बार नवात्मक (नौ अक्षरका) मंत्र जपै और प्रत्येक पर्वमें यत्नपूर्वक हाथोंको देखै ॥ ३५ ॥ जिस पर्व (पोरी) में भौंरेके समान वह रेखा दीख पडै हे प्रिये ! कृष्णपक्षमें अथवा शुक्लपक्षमें उसी तिथिमें मृत्यु जाननी चाहिये ॥ ३६ ॥ हे प्रिये ! अब नादसे प्रगट हुए काललक्षणको संक्षेपसे कहता हूं सुनो गमन आगमनको जानकर कर्म करना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे सुश्रोणि ! आत्मविज्ञान चार प्रकार यत्नसे जानै अर्थात् क्षण, त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठकालिक ॥

प्रतिपदादिविन्यस्य तिथिं प्रतिपदादितः ॥ संपुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिङ्मुखसंस्थितः ॥३४॥ स्मरेन्नवात्मकं मंत्रं यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ निरीक्षयेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्पर्वणि सा रेखा दृश्यते भृंगसन्निभा ॥ तत्तिथौ हि मृतिर्ज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ॥ ३६ ॥ अधुना नादजं वक्ष्ये संक्षेपात्काललक्षणम् ॥ गमागमं विदित्वा तु कर्म कुर्याञ्छृणु प्रिये ॥ ३७ ॥ आत्मविज्ञानं सुश्रोणि चारं ज्ञात्वा तु यत्नतः ॥ क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेषं काष्ठकालिकम् ॥ ३८ ॥ मुहूर्तकं त्वहोरात्रं पक्षमासर्तुवत्सरम् ॥ अब्दं युगं तथा कल्पं महाकल्पं तथैव च ॥ ३९ ॥ एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः ॥ वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम् ॥ ४० ॥ दिनानि पंच चारभ्य पंचविंशद्दिनावधि ॥ वामाचारगतौ नादः प्रमाणं कथितं तव ॥ ४१ ॥ भूतरंध्रदिशश्चैव ध्वजश्च वरवर्णिनि ॥ वामचारगतौ नादः प्रमाणं कालवेदिनः ॥४२॥ ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि ॥ प्रमाणं दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्यं प्राणवेदिभिः ॥ ४३ ॥ भूतसंख्या यदा प्राणान्वहंते च इडादयः ॥ वर्षस्याभ्यंतरे तस्य जीवितं हि न संशयः ॥ ४४ ॥

॥ ३८ ॥ मुहूर्त, दिनरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, वत्सर, अब्द, युग, कल्प, महाकल्प ॥ ३९ ॥ आदि इस परिपाटीसे वह सदाशिव काल (समय) हरण करते हैं, वाम दक्षिणके मध्य यह तीन मार्ग कहे हैं ॥ ४० ॥ पांच दिनोंसे प्रारम्भ कराके पचीस दिनोंतक वामचारगतिमें नाद होता है यह नादप्रमाण तुमसे कहा ॥ ४१ ॥ हे सुन्दरवर्णवाली ! भूत, रंध्र, दिशा, ध्वजा, रूप, नाद, कालवेत्ताको वामचारगतिमें जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे भामिनि ! यदि उसमें ऋतुके विकारभूत गुण प्रतीत हो तो प्राणवेत्ताओंने दक्षिण प्रमाणवाला नाद कहाहै ॥ ४३ ॥ और जब भूत संख्यक इडा आदि नाडी प्राणोंको

वहन करती हैं तो वर्षके भीतर उसकी मृत्यु होजाती है इसमें संशय नहीं ॥ ४४ ॥ दश दिनतक बराबर चलनेसे वह वर्षभर जीता है, और पन्द्रह दिनतक चलनेसे एक वर्षतक आयु शेष जानै ॥ ४५ ॥ और वीस दिनके प्रवाहसे छे मासकी आयु शेष जानै यदि पच्चीस दिनतक वाम नाडी वहन करती है ॥ ४६ ॥ तो उसका जीवन तीन महीने गतायु जानै और छब्बीस दिनके मानसे दो मास जीवन शेष कहा है ॥ ४७ ॥ और जो बाईओरमें सत्ताईस दिनतक अविश्रान्तं नाडी चलती हो तब एक मासका जीवन कहा है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वाम वायुके प्रमाणसे नादका प्रमाण जानना चाहिये और

दशघस्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति ॥ पंचदशप्रवाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम् ॥ ४५ ॥ विंशद्दिनप्रवाहेण षण्मासं लक्षयेत्तदा ॥ पंचविंशद्दिनमितं वहते वामनाडिका ॥ ४६ ॥ जीवितं तु तदा तस्य त्रिमासं हि गतायुषः ॥ षाडशद्दिनमानेन मासद्वयमुदाहृतम् ॥ ४७ ॥ सप्तविंशद्दिनमितं वहतेत्यतिविश्रमा ॥ मासमेकं समाख्यातं जीवितं वामगोचरे ॥ ४८ ॥ एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः ॥ सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः ॥ ४९ ॥ चतुस्स्थाने स्थिता देवि षोडशैताः प्रकीर्तिताः ॥ तेषां प्रमाणं वक्ष्यामि साम्प्रतं हि यथार्थतः ॥ ५० ॥ षड्दिनान्यादितः कृत्वा संख्यायाश्च यथाविधि ॥ एतदंतर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम् ॥ ५१ ॥ षड्दिनानि यदा रूढं द्विवर्षं च स जीवति ॥ मासानष्टौ विजानीयाद्दिनान्यष्ट च तानि तु ॥ ५२ ॥ प्राणः सप्तदशे चैव विद्धि वर्षं न संशयः ॥ सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः ॥ ५३ ॥ अष्टघस्रप्रभेदेन द्विवर्षं हि स जीवति ॥ चतुर्मासा हि विज्ञेयाद्चतुर्विंशद्दिनावधिः ॥ ५४ ॥

दाहिनीओर क्रमसे चार दिनतक. जीवन जाने ॥ ४९ ॥ हे देवि ! चार स्थानमें नाडी स्थित होती है, सो सब यह सोलह नाडी कही हैं अब मैं उनका ठीक ठीक प्रमाण कहता हूँ ॥ ५० ॥ छे दिवससे लेकर विधिपूर्वक संज्ञातक इसके अन्तर्गत दिनोंमें वामरन्ध्रमें प्राण प्रकाशित होता है ॥५१॥ जब छे दिनतक नादप्राण चढा रहै तो वह मनुष्य दो वर्ष आठ महीने और आठ दिनतक जीता है ॥ ५२ ॥ और जो सत्रह दिनतक प्राण आरूढ रहै तो वह वर्षभर सात महीने और छे दिनतक ज़ीता रहता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥ और आठ दिन बराबर चलनेसे वह दो वर्ष चार महीने और चौवीस

दिनोंतक जीता है ॥ ५४ ॥ और जब नौ दिन इधरही प्राणवायु चलै तो पाँच महीने और बारह दिन इधरही बाण चले तौ दो महीने तक जीवन होता है ॥ ५५ ॥ जो प्राण पहलेके समान कहे हैं उनका काल पहलेके समान कहा है और जो अन्तर्गत दिन कहे हैं उससे मास कहते हैं ॥ ५६ ॥ ग्यारह दिन इधर चलनेपर वह एक वर्ष और नौ महीने तथा आठ दिनतक जीता है ॥ ५७ ॥ बारह दिन इधर चलनेपर एक वर्ष और सात महीने छे दिनतक जीता है ॥ ५८ ॥ जब तेरह दिनतक इधर नाडी चलती है तो उसकी आयु एक वर्ष चार महीने ॥ ५९ ॥ और चौबीस दिनकी शेष जानो, इसमें संशय

यदा नवदिनं प्राणा वहंत्येव त्रिमासकम् ॥ मासद्वयं च द्वे मासे दिना द्वादश कीर्तिताः ॥ ५५ ॥ पूर्ववत्काथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम् ॥ अवांतरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते ॥ ५६ ॥ एकादश प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति ॥ मासा नव तथा प्रोक्ता दिनान्यष्टमितान्यपि ॥ ५७ ॥ द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति ॥ मासान्न सप्त विजानीयात्षड्घस्त्रांश्चाप्युदाहरेत् ॥ ५८ ॥ नाडी यदा च वहति त्रयोदशदिनावधि ॥ सम्वत्सरं भवेत्तस्य चतुर्मासाः प्रकीर्तिताः ॥ ५९ ॥ चतुर्विंशद्दिनं शेषं जीवितं च न संशयः ॥ प्राणवाहा यदा वामे चतुर्दशदिनानि तु ॥ ६० ॥ सम्वत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः ॥ चतुर्विंशद्दिनान्येव जीवितं च न संशयः ॥ ६१ ॥ पंचदशप्रवाहेण नव मासान्स जीवति ॥ चतुर्विंशद्दिनान्येव कथितं कालवेदिभिः ॥ ६२ ॥ षोडशाहप्रवाहेण दशमासान्स जीवति ॥ चतुर्विंशद्दिनाधिक्यं कथितं कालवेदिभिः ॥ ६३ ॥ सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम् ॥ अष्टादशदिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि ॥ ६४ ॥ वामचारं यदा देवि ह्यष्टादशदिनावधिः ॥ जीवितं चाष्टमासं तु घस्रा द्वादश कीर्तिताः ॥ ६५ ॥

नहीं जब वाममें चौदह दिन प्राण बहन करते हैं तो ॥ ६० ॥ उसका एक वर्ष छे मास चौबीस दिनतक जीवन शेष होता है इसमें संशय नहीं ॥ ६१ ॥ और पन्द्रह दिनके प्रवाहसे वह नौ महीने और चौबीस दिन जीता है, ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है ॥ ६२ ॥ और सोलह दिनके प्रवाहसे दश महीने चौबीस दिन जीवन शेष रहता है ॥ ६३ ॥ हे साधकेश्वरि! सत्रह दिन प्रवाहसे नौ महीने और अठारह दिनतक जीवन शेष कहा है ॥ ६४ ॥ हे देवि !

जब अठारह दिनोंतक वामचार होता है तो आठ महीने बारह दिन जीवन शेष रहता है ॥ ६५ ॥ हे देवि ! जब तेईस दिनतक प्राण प्रवाह होता है तो चौबीस दिनोंतक जीवन शेष रहता है यह निश्चय जानो ॥ ६६ ॥ और चार महीने तथा छे दिन अधिक कहे हैं और चौबीस प्रवाहसे वह तीन महीने अठारह दिनतक जीता है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार प्राणके संचारसे अवान्तर दिनमें जो काल होता है सो तुमसे कहा ॥ ६८ ॥ वामसंचार तो कहा अब दक्षिणसंचारको सुनो, जो अट्ठाइस प्रवाहसे दक्षिण संचार हो तो पन्द्रह दिनोंतक जीता है ॥ ६९ ॥ दश दिनके प्रवाहसे दश दिनमें मरजाता है और तीस दिनके प्रवाहसे पांच दिनमें मरता है ॥ ७० ॥ हे देवि ! जब इकतीस दिन नित्य प्राण चलते हैं तो निस्सन्देह तीन दिनतक उसका जीवन शेष जानो ॥

चतुर्विंशद्दिनान्यत्र निश्चयेनावधारय ॥ प्राणवाहो यदा देवि त्रयोविंशद्दिनावधिः ॥ ६६ ॥ चत्वारः कथिता मासाः षड्दिनानि तथोत्तरे ॥ चतुर्विंशप्रवाहेण त्रीन्मासांश्च स जीवति ॥ ६७ ॥ दिनान्यत्र दशाष्टौ च संहरंत्येव चारतः ॥ अवांतरदिने यस्तु संक्षेपात्ते प्रकीर्तितः ॥ ६८ ॥ वामचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम् ॥ अष्टाविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति ॥ ६९ ॥ प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते ॥ त्रिंशद्दस्रप्रवाहेन् पञ्चाहेन विपद्यते ॥ ७० ॥ एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम् ॥ दिनत्रयं तदा तस्य जीवितं हि न संशयः ॥ ७१ ॥ द्वात्रिंशत्प्राणसंख्या च यदा हि वहते रविः ॥ तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि न संशयः ॥ ७२ ॥ दक्षिणः कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते ॥ एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले ॥ ७३ ॥ धावमानप्रवाहेण दिनमेकं स जीवति ॥ चक्रमेतत्परासोर्हिं पुराविद्भिरुदाहृतम् ॥ ७४ ॥ एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः ॥ लोकानां च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंचम्यामुमासंहितायां कालज्ञानवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ ७१ ॥ और जब सूर्य बत्तीस संख्याको वहन करता है तो उसका जीवन दो दिन शेष रहता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ७२ ॥ दक्षिण प्राण तो तुमसे कहा अब मध्यस्थ प्राणका वर्णन करता हूँ जब वायुका प्रवाह एक भागसे मुख मण्डलमें ॥ ७३ ॥ दौडतेहुए प्रवाहसे होता है तो वह एक दिन जीता है, पूर्ववेत्ताओंने यह कालचक्र कहा है ॥ ७४ ॥ हे देवि ! गतायु पुरुषोंका यह कालचक्र लोकोंके हितके निमित्त वर्णन किया क्या और कुछ सुनना चाहती हो ? ॥ ७५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० कालज्ञानवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पार्वतीजी बोलीं, हे देव ! तुमने कालज्ञान तो यथार्थ वर्णन किया अब योगी कालका वचन विधिपूर्वक कहो ॥ १ ॥ जिस प्रकार काल सब प्राणियोंमें निकट होजाता है और उस आयेहुए कालको मृत्यु कैसे वंचित करती है ॥ २ ॥ हे देव ! यह सब मेरे ऊपर प्रेम करके कहो हे सर्वोंके सुख देनेवाले ! तुम योगियोंके हितके अर्थ वर्णन करो ॥ ३ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! हे शिवे ! सुनो जो तुमने पूँछा सो सब मनुष्योंके हितार्थ मैं संक्षेपसे कहता हूं ॥ ॥४॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन तत्त्वोंका संयोग ही पांचभौतिक शरीर कहा है ॥ ५ ॥ आकाश सर्वव्यापी तथा सबोंमें स्थित है आकाशमेंही सब लय होजाते हैं और आकाशसेही प्रगट होते हैं ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि ! उस आकाशके वियोगसे सदा अपने धामको प्राप्त होतेहैं और उस सन्निपातकी स्थिरता नहीं है ॥ ७ ॥ वे सम्पूर्ण ज्ञानी मनुष्य वहां तप और मंत्रके बलसे सबकुछ जानलेते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ पार्वतीजी बोलीं, उन आपसे जो आकाश नष्ट होता है तथा आपने स्वर्गका एक स्वामी घोररूपी कराल काल भस्म किया और आपने स्तोत्रोंसे स्तुति करनेपर सन्तुष्ट हो फिर उसे अपनी प्रकृतिको प्राप्त कराया ॥ ९ ॥ और आपने उस कालसे अनेककथा वर्णन की, और यह कहा कि, तुम अदृश्य (गुप्त) रूपहोके मनुष्योंका

देव्युवाच ॥ कथितं तु त्वया देव कालज्ञानं यथार्थतः ॥ कालस्य वचनं ब्रूहि यथा तत्त्वेन योगिनः ॥ १ ॥ कालस्तु सन्निकृष्टो हि वर्तते सर्वजंतुषु ॥ यथा चास्य न मृत्युश्च वंचते कालमागतम् ॥ २ ॥ तथा कथय मे देव प्रीतिं कृत्वा ममोपरि ॥ योगिनां च हिताय त्वं ब्रूहि सर्वसुखप्रद ॥ ३ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पृष्टोहं यत्त्वया शिवे ॥ समासेन च सर्वेषां मानुषाणां हितार्थतः ॥ ४ ॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥ एतेषां हि समायोगः शरीरं पांचभौतिकम् ॥ ५ ॥ आकाशस्तु ततो व्यापी सर्वेषां सर्वगः स्थितः ॥ आकाशे तु विलीयंते संभवंति पुनस्ततः ॥ ६ ॥ वियोगे तु सदा कस्य स्वं धाम प्रतिपेदिरे ॥ तस्य न स्थिरता चास्ति सन्निपातस्य सुंदरि ॥ ७ ॥ ज्ञानिनोऽपि तथा तत्र तपोमंत्रबलादपि ॥ ते सर्वे सुविजानंति सर्वमेतन्न संशयः ॥ ८ ॥ देव्युवाच ॥ खं तेन यन्नश्यति घोररूपः कालः करालस्त्रिदिवैकनाथः ॥ दग्धस्त्वया त्वं पुनरेव तुष्टः स्तोत्रैः स्तुतः स्वां प्रकृतिं स लेभे ॥ ९ ॥ त्वया स चोक्तः कथया जनानामदृष्टरूपः प्रचरिष्यसीति ॥ दृष्टस्त्वया तत्र महाप्रभावः प्रभोर्वरात्ते पुनरुत्थितश्च ॥ १० ॥

प्रचार करोगे और उस कालमें तुमने बडा प्रभाव देखा वह काल तुम्हारे वरसे फिर उठ खडा हुआ ॥ १० ॥ हे काल ! यहां ऐसी कोई वस्तु है जिससे यह काल मारा जाता है अब यह सब मुझसे कहो हे महेश ! आप योगियोंमें श्रेष्ठ तथा प्रभु अपने आधीन परोपकारसे शरीरधारी हैं ॥ ११ ॥ शिवजी बोले, यह काल श्रेष्ठ देवतोंसे तथा दैत्य और यक्ष राक्षस सर्प मनुष्योंसे भी नहीं मारा जासकता जो ध्यान समाधिमें तत्परहुए योगीजन देहधारी होते हैं, वे सुखसे कालको मार सकते हैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले, तीनोंलोकोंके स्वामी शिवका यह वचन सुनके पार्वतीजी हँसके बोलीं, कि; हे नाथ ! सत्य २

तदद्य भोः काल इहास्ति किंचिन्निहन्यते येन वदस्व तन्मे ॥ त्वं योगिवर्यः प्रभुरात्मतंत्रः परोपकारात्ततनुर्महेश ॥ ११ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ न हन्यते देववरैस्तु दैत्यैस्सयक्षरक्षोरगमानुषैश्च ॥ ये योगिनो ध्यानपरास्सदेहा भवंति ते घ्नंति सुखेन कालम् ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा त्रिभुवनगुरोः प्राह गौरी विहस्य सत्यं त्वं मे वद कथमसौ हन्यते येन कालः ॥ शंभुस्तामाह सद्यो हिमकरवदने योगिनो ये क्षिपंति कालव्यालं सकलमनघास्तच्छृणुष्वैकचित्ता ॥ १३ ॥ शंकर उवाच ॥ पंचभूतात्मको देहस्सदा युक्तस्तु तद्गुणैः ॥ उत्पाद्यते वरारोहे तद्विलीनो हि पार्थिवः ॥ १४ ॥ आकाशाज्जायते वायुर्वायोस्तेजश्च जायते ॥ तेजसोऽम्बु विनिर्दिष्टं तस्माद्धि पृथिवी भवेत् ॥ १५ ॥ पृथिव्यादीनि भूतानि गच्छंति क्रमशः परम् ॥ धरा पंचगुणा प्रोक्ता ह्यापश्चैव चतुर्गुणाः ॥ १६ ॥ त्रिगुणं च तथा तेजो वायुर्द्विगुण एव च ॥ शब्दैकगुणमाकाशं पृथिव्यादिषु कीर्तितम् ॥ १७ ॥

कहो जिससे काल मारा जाता है तब शिवजी शीघ्र उनसे कहने लगे हे चन्द्रमाकी किरणोंके समान मुखवाली ! जो योगी कालरूपी सर्पको नष्ट करतेहैं हे अनघे ! यह सब एक चित्त होके सुनो ॥ १३ ॥ शिवजी बोले, हे वरारोहे ! पंचभूतात्मक शरीर सदा उनके गुणोंसे युक्त होके उत्पन्न होता है और फिर यह पार्थिव शरीर उन उनमें लय होता है ॥ १४ ॥ आकाशसे वायु उत्पन्न होता है और वायुसे अग्नि और अग्निसे जल जलसे पृथिवी होती है ॥ ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पंचभूत क्रमसे आगेको प्राप्त होजाते हैं उनमें पृथिवी पांचगुनी और जल चार गुणा कहाहै ॥ १६ ॥ तथा तेज तिगुना, वायु

दुगना, और आकाश केवल शब्दगुणवाला और पृथिवी आदिमें व्यापक कहा है ॥ १७ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, पांचवां गंध, यह जब अपने २ गुणको त्यागन करतेहैं तब प्राणी मरजाता है ॥ १८ ॥ और जब अपने गुणोंको स्वीकार करतेहैं यह प्रगट होना कहाता है हे देवेशि ! इस प्रकार यह पंचभूतोंको जानो ॥ १९ ॥ हे देवि ! इस कारण कालके जीतनेकी इच्छा करनेवाले योगीको यत्नपूर्वक अपने २ कालमें अंशोंसे उत्पन्नहुए गुण विचारने चाहिये ॥ २० ॥ देवी बोलीं, हे प्रभो ! हे योगवेत्ता ! कौन ध्यानसे अथवा कौन मन्त्रसे काल जीता जाता है यह सब मुझसे कहो ॥ २१ ॥ शिवजी

शब्दस्स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पंचमः ॥ विजहाति गुणं स्वं स्वं तदा भूतं विपद्यते ॥ १८ ॥ यदा गुणं विगृह्णाति प्रादुर्भूतं तदुच्यते ॥ एवं जानीहि देवेशि पंचभूतानि तत्त्वतः ॥ १९ ॥ तस्माद्धि योगिना नित्यं स्वस्वकालेंऽशजा गुणाः ॥ चिंतनीयाः प्रयत्नेन देवि कालजिगीषुणा ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ कथं जेजीय्यते कालो योगिभिर्योगवित्प्रभो ॥ ध्यानेन चाथ मन्त्रेण तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ ॥ २१ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया ॥ परज्ञानप्रकथनं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ २२ ॥ श्रद्धानाय दातव्यं भक्तियुक्ताय धीमते ॥ अनास्तिकाय शुद्धाय धर्मनित्याय भामिनि ॥ २३ ॥ सुश्वासेन सुशय्यायां योगं युंजीत योगवित् ॥ दीपं विनांधकारे तु प्रजाः सुप्तेषु धारयेत् ॥ २४ ॥ तर्जन्या पिहितौ कर्णौ पीडयित्वा मुहूर्त्तकम् ॥ तस्मात्संश्रूयते शब्दस्तुदन्वह्निसमुद्भवः ॥ २५ ॥ सन्ध्यातो भुक्तमेवं हि चावसन्नं क्षणादपि ॥ सर्वरोगान्निहंत्याशु ज्वरोपद्रवकान्बहून् ॥ २६ ॥

बोले, हे देवि ! सुनो योगियोंके हितार्थ मैं कहता हूँ यह ज्ञानका कथन जिस किसीको नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥ हे भामिनि ! श्रद्धावाले भक्ति करनेवाले बुद्धिमान् जो नास्तिक न हों ऐसे शुद्ध धर्मात्मा पुरुषको इसका उपदेश देना चाहिये ॥ २३ ॥ योगी श्रेष्ठ स्वास रोक सुन्दर आसन पर बैठ योगका प्रयोग करै और जब सब लोग सो जाँय दीपक बुझाकर अन्धकारमें योगको धारण करै ॥ २४ ॥ एक मुहूर्त्त भरतक कानोंको तर्जनी अंगुलीसे ढके रहैं उससे अग्निसे प्रेरितहुआ शब्द सुनाई देता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस शब्दके संयमसे भुक्तहुए क्षणमात्र नष्टहुए शब्दको ध्यान करनेवाला शीघ्रही

ज्वर उपद्रव आदि सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है ॥२६॥ जो मनुष्य नित्य इस प्रकार दो घडीतक आकारको देखता है शब्द सुनता है वह इच्छानुसार मृत्युको जीतकर यहां अपनी अभिलाषासे भ्रमण करता है ॥ २७ ॥ वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी होके सम्पूर्ण सिद्धिको प्राप्त होता है जिस प्रकार वर्षाकालके मेघ आकाशमें शब्दनाद करतेहैं ऐसा वह शब्द है ॥ २८ ॥ उसको सुनके योगी शीघ्र संसारके बंधनसे छूट जाता है और वह नित्य योगोंसे सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म होजाता है ॥ २९ ॥ हे देवि ! यह शब्दब्रह्मविधिका क्रम तुमसे कहा जैसे धान्यका इच्छक मनुष्य कूडे कर्कटको छोड देता है तैसे योगी सम्पूर्ण

यश्चोपलक्षयेन्नित्यमाकारं घटिकाद्वयम् ॥ जित्वा मृत्युं तथा कामं स्वेच्छया पर्य्यटेदिह ॥ २७॥ सर्वज्ञस्सर्वदर्शी च सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ यथा नदति खेऽब्दो हि प्रावृडद्भिस्सुसंयतः ॥ २८ ॥ तं श्रुत्वा मुच्यते योगी सद्यः संसारबन्धनात् ॥ ततस्स योगिभिर्न्नित्यं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो भवेत् ॥ २९॥ एष ते कथितो देवि शब्दब्रह्मविधिक्रमः ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्बन्धमशेषतः ॥ ३० ॥ शब्दब्रह्म त्विदं प्राप्य ये केचिदन्यकांक्षिणः ॥ घ्नंति ते मुष्टिनाकाशं कामयंते क्षुधां तृषाम् ॥ ३१ ॥ ज्ञात्वा परमिदं ब्रह्म सुखदं मुक्तिकारणम् ॥ अबाह्यमक्षरं चैव सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥ ३२ ॥ मोहिताः कालपाशेन मृत्युपाशवशंगताः ॥ शब्दब्रह्म न जानंति पापिनस्ते कुबुद्धयः ॥ ३३ ॥ तावद्भ्रवंति संसारे यावद्धाम न विंदते ॥ विदिते तु परे तत्त्वे मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ ३४ ॥ निद्रालस्यं महाविघ्नं जित्वा शत्रुं प्रयत्नतः ॥ सुखासने स्थितो नित्यं शब्दब्रह्माभ्यसन्निति ॥ ३५ ॥

बंधनको त्याग देता है ॥ ३० ॥ जो कोई इस शब्दब्रह्मको पाके भी अन्यकी इच्छा करतेहैं वे मानो अपनी मुट्ठीसे आकाशको भेदन करतेहैं और क्षुधा तथा तृष्णाको चाहतेहैं ॥ ३१ ॥ परमसुखके देनेवाले मुक्तिके कारण अबाह्य अक्षर (अविनाशी) सम्पूर्ण उपाधिसे रहित इस शब्दब्रह्मको जानके सुख पातेहैं ॥ ॥ ३२ ॥ कालके फांसेसे मोहितहुए तथा मृत्युके वशीभूतहुए जो मनुष्य शब्दब्रह्मको नहीं जानतेहैं वे पापी और जडबुद्धि हैं ॥ ३३ ॥ तभीतक संसारमें भ्रमतेहैं जबतक परमधामको नहीं ढूँढते, परमतत्त्वके विदित होनेपर जन्मरूपी बन्धनसे छूटजाते हैं ॥ ३४ ॥ निद्रा—आलस्य—रूपी महाविघ्नकारी शत्रुको

यत्नसे जीतकर सुखपूर्वक आसनपर बैठाहुआ योगी नित्य शब्दब्रह्मका अभ्यास करै॥ ३५ ॥ सौ वर्षकी आयुवाला मनुष्य अपनी आयु पर्यन्त अभ्यास करै तो वायुकी वृद्धि आरोग्यता मृत्युञ्जय शरीरकी स्तम्भताको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ वृद्ध जनोंमें भी इस बातका विश्वास दीखता है, फिर युवा पुरुषकी तो बातही क्या है इसमें न ओंकार है न मन्त्र है न कोई बीज है और न अक्षर है ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! हे देवि ! यह अनाहत उच्चारणमें न आनेवाला परमकल्याणदायक शब्दब्रह्म है, योगीजन यत्नपूर्वक शुभबुद्धिसे इसे निरन्तर ध्यान करते हैं ॥ ३८ ॥ प्राणवेत्ताओंसे जानेहुए नौ शब्द उससे निकलतेहैं

शतवृद्धः पुमाह्लँब्ध्वा यावदायुस्समभ्यसेत् ॥ मृत्युञ्जयवपुस्तम्भ आरोग्यं वायुवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ प्रत्ययो दृश्यते वृद्धे किं पुनस्तरुणे जने ॥ न चोंकारो न मन्त्रोऽपि नैव बीजं न चाक्षरम् ॥ ३७ ॥ अनाहतमनुच्चार्य्यं शब्दब्रह्म शिवं परम् ॥ ध्यायन्ते देवि सततं सुधिया यत्नतः प्रिये ॥३८॥ तस्माच्छब्दा नव प्रोक्ताः प्राणविद्भिस्तु लक्षिताः ॥ तान्प्रवक्ष्यामि यत्नेन नादसिद्धिमनुक्रमात् ॥३९॥ घोषं १ कांस्यं २ तथा शृंगं ३ घण्टां ४ वीणा ५ दिवंशजान् ६ ॥ दुन्दुभिं ७ शंखशब्दं ८ तु नवमं मेघगर्जितम् ९ ॥ ४० ॥ नव शब्दान्परित्यज्य तुंकारं तु समभ्यसेत् ॥ ध्यायन्नेवं सदा योगी पुण्यैः पापैर्न लिप्यते ॥ ४१ ॥ न शृणोति यदा शृण्वन्योगाभ्यासेन देविके ॥ म्रियतेभ्यसमानस्तु योगी तिष्ठेद्दिवानिशम् ॥ ४२ ॥ तस्मादुत्पद्यते शब्दो मृत्युजित्सप्तभिर्दिनैः ॥ स वै नवविधो देवि तं ब्रवीमि यथार्थतः ॥ ४३ ॥

उनको तथा नादसिद्धिको यत्नसे कहता हूँ सुनो ॥ ३९ ॥ घोष, कांस्य (कासा) शब्द, शृंग, घण्टा, वीणा, बाँसुरीसे उत्पन्न होनेवाले तथा दुन्दुभि, शंख और नौवा मेघका गर्जना यह शब्द हैं ॥४०॥ इन नौ शब्दोंको त्यागके तुंकारको अभ्यास करै, इस प्रकार सदा ध्यान करताहुआ योगी पुण्य और पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४१ ॥ हे देवि ! जब योगाभ्याससे सुनताहुआ भी नहीं सुनता है, मृत्युके समीप आनेपर अभ्यास करनेवाला योगी रात दिन इसी प्रकार स्थित हो ॥४२॥ तो उससे सात दिनोंमें मृत्युको जीतनेवाला शब्द उत्पन्न होता है और वह नौ प्रकारका कहा है उसको यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ ॥४३॥

पहला घोषनाद होता है वह परम आत्माका शुद्ध करनेवाला तथा सम्पूर्ण व्याधियोंका हरनेवाला वशी आकर्षण करनेवाला उत्तम नाद कहा है ॥ ४४ ॥ द्वितीय कांस्य नाद होता है वह प्राणियोंकी गतिको रोकता है विषको तथा सम्पूर्ण भूतग्रहोंको बाँधता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५ ॥ तीसरा श्रृंगनाद करता है वह आभिचारिक है उसको शत्रुके उच्चाटनमें तथा शत्रुके मारणमें प्रयोग करै ॥ ४६ ॥ चौथा घण्टानाद है इसे शिव कहते हैं यह सम्पूर्ण देवतोंका आकर्षण करनेवाला तथा भूमिपर मनुष्योंको वशमें करनेवाला है ॥ ४७ ॥ और योगीको उससे आकृष्टहुईं यक्ष और गन्धर्वोंकी कन्या यथेच्छित

प्रथमं नादते घोषमात्मशुद्धिकरं परम् ॥ सर्वव्याधिहरं नादं वश्याकर्षणमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ द्वितीयं नादते कांस्यस्तम्भयेत्प्राणिनां गतिम् ॥ विषं भूतग्रहान्सर्वान्बध्नीयान्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ तृतीयं नादते श्रृंगमभिचारि नियोजयेत् ॥ विद्विडुच्चाटने शत्रोर्मारणे च प्रयोजयेत् ॥४६॥ घंटानादं चतुर्थं तु वदते परमेश्वरः ॥ आकर्षस्सर्वदेवानां किं पुनर्मानुषा भुवि ॥४७॥ यक्षगन्धर्वकन्याश्च तस्याकृष्टा ददंति हि ॥ यथेप्सितां महासिद्धिं योगिने कामतोऽपि वा ॥ ४८ ॥ वीणा तु पंचमो नादः श्रूयते योगिभिस्सदा ॥ तस्मादुत्पद्यते देवि दूरदर्शनमेव हि ॥ ४९ ॥ ध्यायतो वंशनादं तु सर्वतत्त्वं प्रजायते ॥ दुन्दुभिं ध्यायमानस्तु जरामृत्युविवर्जितः ॥ ५० ॥ शंखशब्देन देवेशि कामरूपं प्रपद्यते ॥ योगिनो मेघनादेन न विपत्संगमो भवेत् ॥ ५१ ॥ यश्चैकमनसा नित्यं तुंकारं ब्रह्मरूपिणम् ॥ किमसाध्यं न तस्यापि यथामति वरानने ॥ ५२ ॥ सर्वज्ञस्सर्वदर्शी च कामरूपी व्रजत्यसौ ॥ न विकारैः प्रयुज्येत शिव एव न संशयः ॥ ५३ ॥

महासिद्धिको देती हैं ॥ ४८ ॥ पाँचवां वीणानाद योगियोंसे सुनाजाता है हे देवि ! उस नादसे दूरदर्शन उत्पन्न होता है ॥ ४९ ॥ वंशनादको ध्यान करनेसे सब तत्त्वोंको जानलेता है दुन्दुभिको ध्यानकरनेवाला जरा मृत्युसे रहित होता है ॥ ५० ॥ हे देवेशि ! शंख शब्दसे इच्छानुसार रूपको प्राप्त होता है और मेघनादसे योगीको विपत्तिका संगम नहीं होता है ॥ ५१ ॥ हे वरानने ! जो एक मनसे नित्य ब्रह्मरूपी तुंकारको ध्यान करता है उसे इच्छानुसार कुछ भी असाध्य नहीं रहता है ॥ ५२ ॥ वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी तथा कामरूपी होके भ्रमण करता है और कभी विकारोंसे युक्त नहीं होता वह

साक्षात् शिवही होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३ ॥ हे परमेशानि ! यह नौ प्रकारका शब्द ब्रह्मस्वरूप तुमसे कहा अब क्या सुनना चाहती हो ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं०उ० सं० कालवंचनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥ पार्वतीजी बोलीं, हे प्रभो ! यदि तुम प्रसन्न हो तो योगाकाशसे प्राप्तहुए वायुके पदको जैसे योगी प्राप्त होता है सो सब मुझसे कहो ॥ १ ॥ शिवजी बोले, पहले मैं योगियोंके हितकी कामनासे सब कहा अब जैसे योगी कालको जीतके वायुका लिंग होता है ॥ २ ॥ सो कहता हूं हे सुन्दरि ! उससे दिनको जानके जो योगी प्राणायाममें तत्पर होता है वह आधे महीनेमें ही

एतत्ते परमेशानि शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ॥ नवधा सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कालवंचनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ ॥ देव्युवाच ॥ वायोस्तु पदमाप्नोति योगाकाशसमुद्भवम् ॥ तन्मे सर्वं समाचक्ष्व प्रसन्नस्त्वं यदि प्रभो ॥ १ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ पुरा मे सर्वमाख्यातं योगिनां हितकाम्यया ॥ कालं जिगाय यस्सम्यग्वायो लिंगं यथा भवेत् ॥ २ ॥ तेन ज्ञात्वा दिनं योगी प्राणायामपरः स्थितः ॥ स जयत्यागतं कालं मासार्द्धेनैव सुंदरि ॥ ३ ॥ हृत्स्थो वायुस्सदा वह्नेर्दीपकस्सोऽनुपावकः ॥ स बाह्याभ्यंतरो व्यापी वायुस्सर्वगतो महान् ॥ ४ ॥ ज्ञानविज्ञानमुत्साहः सर्वं वायोः प्रवर्तते ॥ येनेह निर्जितो वायुस्तेन सर्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥ धारणायां सदा तिष्ठेज्जरामृत्युजिघांसया ॥ योगी योगरतः सम्यग्धारणाध्यानतत्परः ॥ ६ ॥ लोहकारो यथा भस्त्रामापूर्य्य मुखतो मुने ॥ साधयेद्वायुना कर्म तद्वद्योगी समभ्यसेत् ॥ ७ ॥ देवस्सहस्रके नेत्रपादहस्तसहस्रकः ॥ ग्रंथीन्हि सर्वमावृत्य सोऽग्रे तिष्ठेद्दशांगुलम् ॥ ८ ॥

आयेहुए कालको जीतता है ॥ ३ ॥ हृदयमें स्थितहुआ वायु सदा अग्निका प्रदीप्त करनेवाला है वह अनुपावक सर्वव्यापी बडावायु बाहर और भीतर व्याप्त हो रहा है ॥ ४ ॥ ज्ञान, विज्ञान, उत्साह, यह सब वायुसे उत्पन्न होते हैं जिसने यहां वायुको जीता उसने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया ॥ ५ ॥ योगी जरा, मृत्युके विनाशकी इच्छासे सदा धारणामें स्थित होवै और भलीभांति योगमें तत्पर होके धारणा और ध्यानमें प्रवृत्त होवै ॥ ६ ॥ हे मुने ! जिस प्रकार लुहार अपने मुखसे धौंकनीको भरके वायुसे सब कर्मको साधता है उसी प्रकार योगी अभ्यास करै ॥ ७ ॥ तो सहस्र मस्तकवाला सहस्रों नेत्र

पैर हाथोंवाला वह योगी सब ग्रन्थियोंको भेटकर दश अंगुल आगे स्थित होताहै ॥ ८ ॥ शिरके सहित व्याहृतिपूर्वक गायत्रीको जपै तीन बार प्राणोंका
रोकना प्राणायाम कहा जाता है ॥ ९ ॥ चन्द्रमा और सूर्यादि ग्रह जाते आते लौटतेहैं परन्तु योग और ध्यानमें तत्पर होनेवाले योगी आजतक भी नहीं
लौटे ॥ १० ॥ हे देवि ! सौवर्ष तप करके जो द्विज कुशाके अग्रभागके समान जलको पीता है तो ब्राह्मणोंके एक प्राणायामके समान फलको पाता है
॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल उठके एक प्राणायामको भी करता है वह सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके शीघ्रही ब्रह्मलोकको जाता है ॥ १२ ॥ जो सदा
आलस्यरहित होके एकान्तमें प्राणायाम करता है वह जरा मृत्युको जीतकर वायुमें प्राप्त होनेवाला तथा आकाशचारी होता है ॥ १३ ॥ वह सिद्धके रूप

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ त्रिवारमायतप्राणाः प्राणायामस्स उच्यते ॥ ९ ॥ गतागता निवर्तंते चन्द्रसूर्य्यादयो
ग्रहाः ॥ अद्यापि न निवर्तंते योगध्यानपरायणाः ॥ १० ॥ शतमब्दं तपस्तप्त्वा कुशाग्रापः पिबेद्द्विजः ॥ तदाप्नोति फलं देवि विप्राणां
धारणैकया ॥ ११ ॥ यो द्विजः कल्यमुत्थाय प्राणायामैकमाचरेत् ॥ सर्वं पापं निहंत्याशु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥ योऽतंद्रि
तस्सदैकांते प्राणायामपरो भवेत् ॥ जरां मृत्युं विनिर्जित्य वायुगः खेचरीति सः ॥१३॥ सिद्धस्य भजते रूपं कांतिं मेधां पराक्रमम् ॥
शौर्य्यं वायुसमो गत्या सौख्यं श्लाघ्यं परं सुखम् ॥ १४ ॥ एतत्कथितमशेषं वायोस्सिद्धिं यदाप्नुते योगी ॥ यत्तेजसोऽपि लभते तत्ते
वक्ष्यामि देवेशि ॥ १५ ॥ स्थित्वा सुखासने स्वे शेते जनवचनहीने तु ॥ शशिरवियुतया तेजः प्रकाशयन्मध्यमे देशे ॥ १६ ॥ वह्निगतं
भ्रूमध्ये प्रकाशते यस्त्वतंद्रितो योगी ॥ दीपैर्हीनध्वांते पश्येन्न्यूनमसंशयं लोके ॥ १७ ॥

तथा कान्ति बुद्धि पराक्रमको और शूरताको प्राप्त करता है वह वायुके समान गतिको पाता है और सुख श्लाघा तथा परमसुखको पाता है ॥ १४ ॥
हे देवेशि ! जिस प्रकार योगी वायुसिद्धिको प्राप्त होताहै सो सब तुमसे कहदिया और जैसे उसके तेजसे सिद्धि मिलती है यह सब तुमसे कहता हूँ ॥१५॥
मनुष्योंकी बोलचालसे रहित अपने सुखके आसनपर सोतेहुए और मध्यमदेशमें जहाँ चन्द्रमा तथा सूर्यके मिले हुए तेजका प्रकाश होता हो ॥ १६ ॥
वहां आलस्यरहित योगी अग्निके तेजको भ्रूमध्यमें प्रकाशित कर देखै जैसे दीपकोंसे अन्धकार वर्जित होकर लोकमें निस्सन्देह प्रकाश होताहै ॥१७॥

और योगी नेत्रोंको अंगुलियोंसे कुछएक मसलके तारोंको देख उनको एकभावसे आधे मुहूर्ततक ध्यान करै ॥ १८ ॥ तिसके पीछे अन्धकारमें ईश्वरकी श्वेत रक्त पीत कृष्ण तथा इन्द्रके धनुषके समान कान्तिको देखता है ॥ १९ ॥ भौंके मध्यमें ललाटमें स्थितहुए बालसूर्यके समान तेजको जानके कांमांगी योगी कामरूपधारी होके क्रीडा करता है ॥ २० ॥ कारणके शान्त करने वेशको तथा दूसरेके शरीरमें प्रवेशको अणिमा आदि गुणोंकी प्राप्ति तथा मनसे सब कुछ देख लेना ॥ २१ ॥ दूरसे सुननेके विज्ञानको तथा स्वयं अदृश्य हो जाना अनेकरूपधारी होना तथा निरन्तर अभ्यासके योगसे आकाशमें

नेत्रे करशाखाभिः किंचित्संपीड्य यत्नतो योगी ॥ तारं पश्यन्ध्यायेन्मुहूर्तमर्द्धं तमेकभावोऽपि ॥ १८ ॥ ततस्तु तमसि ध्यायन्पश्यते ज्योतिरैश्वरम् ॥ श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णमिन्द्रधनुष्प्रभम् ॥ १९ ॥ भ्रुवोर्मध्ये ललाटस्थं बालार्कसमतेजसम् ॥ तं विदित्वा तु कामांगी क्रीडते कामरूपधृक् ॥ २० ॥ कारणप्रशमावेशं परकायप्रवेशनम् ॥ अणिमादिगुणावाप्तिर्मनसा चावलोकनम् ॥ २१ ॥ दूरश्रवण विज्ञानमदृश्यं बहुरूपधृक् ॥ संतताभ्यासयोगेन खेचरत्वं प्रजायते ॥ २२ ॥ श्रुताध्ययनसंपन्ना नानाशास्त्रविशारदाः ॥ ज्ञानिनोऽपि विमुह्यंते पूर्वकर्मवशानुगाः ॥२३॥ पश्यंतोऽपि न पश्यंति शृण्वाना बधिरा यथा ॥ यथांधा मानुषा लोके मूढाः पापविमोहिताः ॥२४॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यते प्रायणाय ॥ २५ ॥ एष ते कथितः सम्यक्तेजसो विधिरुत्तमः ॥ कालं जित्वा यथा योगी चामरत्वं प्रपद्यते ॥ २६ ॥ पुनः परतरं वक्ष्ये यथा मृत्युर्न जायते ॥ सावधानतया देवि शृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ २७ ॥

विचरनेके भावको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ शास्त्रोंके अध्ययन करनेवाले अनेकशास्त्रोंमें निपुण ज्ञानीलोग भी पूर्व कर्मोंके वशसे मोहित होते हैं ॥ २३ ॥ पापसे मोहितहुए मूढ लोग लोकमें देखते हुएभी नहीं देखते सुनतेहुए जैसे बहिरे और अन्धे होतेहैं तैसे रहतेहैं ॥ २४ ॥ उन बडे सूर्यके समान दीप्त अन्धकारसे परे परमात्मा पुरुषको मैं जानता हूँ इस प्रकार उनको जानके मृत्युसे छूटजाता है मोक्ष होनेके लिये इससे अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है ॥ २५ ॥ हे देवि ! यह तेजकी उत्तमविधि तुमसे कही कि जिस प्रकार योगी कालको जीतकर अमरपनको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ हे देवि ! और फिर

वर्णन करता हूँ जैसे मृत्यु नहीं होती है सावधानहो एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ २७ ॥ हे देवि ! भूतोंकी तथा योगियोंकी ध्यान करनेवालोंकी तुरीया (चौथी) गति होतीहै । स्थिरचित्तवाला योगी सुखासनपर यथास्थानमें स्थित हो ॥ २८ ॥ उन्नत शरीरवाला वह योगी करसंपुटको बांधकें चोंचके समान आकारवाले मुखसे धीरे धीरे वायुको पान करै ॥ २९ ॥ क्षणमात्रमें जीवको देनेवाले तालुमें स्थितहुए जल टपकतेहैं उस अमृतके समान शीतल जलको वायुसे लेकर सूँघै ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रतिदिन पान करताहुआ योगी मृत्युके वशमें नहीं होता सुन्दर शरीरवाला महातेजस्वी प्यास और भूंखसे

तुरीया देवि भूतानां योगिनां ध्यानिनां तथा ॥ सुखासने यथास्थानं योगी नियतमानसः ॥ २८ ॥ समुन्नतशरीरोऽपि स बद्धा करसंपुटम् ॥ चञ्च्वाकारेण वक्रेण पिबन्वायुं शनैश्शनैः ॥ २९ ॥ प्रस्रवंति क्षणादापस्तालुस्था जीवदायिकाः ॥ ता जिघ्रेद्वायुना दायामृतं तच्छीतलं जलम् ॥ ३० ॥ पिबन्ननुदिनं योगी न मृत्युवशगो भवेत् ॥ दिव्यकायो महातेजाः पिपासाक्षुद्विवर्जितः ॥ ॥ ३१ ॥ बलेन नागस्तुरगो जवेन दृष्ट्या सुपर्णस्सुश्रुतिस्तु दूरात् ॥ आकुंचिताकुंडलिकृष्णकेशो गंधर्वविद्याधरतुल्यवर्णः ॥ ३२ ॥ जीवेन्नरा वर्षशतं सुराणां सुमेधसा वाक्पतिना समत्वम् ॥ एवं चरन् खेचरतां प्रयाति यथेष्टचारी सुखितस्सदैव ॥ ३३ ॥ पुनरन्य त्प्रवक्ष्यामि विधानं यत्सुरैरपि ॥ गोपितं तु प्रयत्नेन तच्छृणुष्व वरानने ॥ ३४ ॥ समाकुंच्याभ्यसेद्योगी रसनां तालुकं प्रति ॥ किंचित्कालांतरेणैव क्रमात्प्राप्नोति लंबिकाम् ॥ ३५ ॥

वर्जित होता है ॥ ३१ ॥ बलमें हाथीकी समान वेगमें घोडेकी समान दृष्टिमें पक्षीकी समान दूरसे श्रवण यह सब प्राप्त होता है तैसे कुंडलीसे लेके कृष्ण केशोंको सकोडताहुआ गन्धर्व विद्याधरके समान वर्णवाला होकर ॥ ३२ ॥ बुद्धिमें बृहस्पतिसे समताको पाय वह मनुष्य देवताओंकें सौ वर्षतक जीता है इस प्रकार सुखसे सदा स्वेच्छाचारी होके आकाशचारी भावको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे वरानने ! अब और दूसरी विधिको वर्णन करता हूँ जो देवताओंसे भी छिपाहुआ है सो सब यत्नसे सुनो ॥ ३४ ॥ योगी अपनी जीभको तालुमें सकोडके लगानेका अभ्यास करै तो थोडे कालके पश्चात् वह

क्रमसे लम्बायमान होजाती है ॥ ३५ ॥ तब स्पर्श कीहुई वह जिह्वा शीतल अमृतको टपकाती है उस अमृतको जो योगी नित्य पान करता है वह अमर होजाता है ॥ ३६ ॥ रेफाग्र तथा लम्बकाग्र सहित जैसे हाथसे निचोडनेसे रस टपकता है ऐसे निर्मल कमलकी बिन्दुसे खींचाहुआ वह देवताओंका आनन्द करनेवाला अमृत परपदमें गिरता है संसारसे तारनेवाले पापोंके नाश करनेवाले कालसे तारनेवाले साररूपी अमृतसे जिसने यह शरीर पवित्र किया देवताओंको आनंद देनेवाला वह क्षुधा और प्याससे रहित और अमर होताहै ॥ ३७ ॥ हे पार्वति ! उन चारों योगियोंसे युक्तहुई यह पृथ्वीही क्या ? किन्तु सम्पूर्ण संसारमात्र सुख पानेके लिये होता है योगसेही संसार धारण होता है प्राणी स्वप्नमें भी जो कुछ दुःख स्वर्गमें अथवा भूमीपर पाता है वह इन

ततः प्रस्रवते सा तु संस्पृष्टा शीतलां सुधाम् ॥ पिबन्नेव सदा योगी सोऽमरत्वं हि गच्छति ॥ ३६ ॥ रेफाग्रं लंबकाग्रं करतलघटनं
शुभ्रपद्मस्य बिन्दोस्तेनाकृष्टा सुधेयं पतति परपदे देवतानंदकारी ॥ सारं संसारतारं कृतकलुषतरं कालतारं सतारं येनेदं प्लावितांगं
स भवति न मृतः क्षुत्पिपासाविहीनः ॥ ३७॥ एभिर्युक्ता चतुर्भिः क्षितिधरतनये योगिभिर्वै धरैषा धैर्य्यान्नित्यं कुतोऽन्तः सकलमपि
जगद्यत्सुखप्रापणाय ॥ स्वप्ने देही विधत्ते सकलमपि सदा मानयन्यच्च दुःखं स्वर्गे ह्येवं धरित्र्याः प्रभवति च ततो वा स किञ्चिच्चतु
र्णाम् ॥ ३८ ॥ तस्मान्मंत्रैस्तपोभिर्व्रतनियमयुतैरौषधैर्योगयुक्ता धात्री रक्ता मनुष्यैर्नयविनययुतैर्धर्मविद्भिः क्रमेण ॥ भूतानामादि
देवो न हि भवति चलः संयुतो वै चतुर्णां तस्मादेवं प्रवक्ष्ये विधिमनुगदितं छायिकं यच्छिवाख्यम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
पञ्चम्यामुमासंहितायां कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ ॥ देव्युवाच ॥ देवदेव महादेव कथितं कालवंचनम् ॥
शब्दब्रह्मस्वरूपं च योगलक्षणमुत्तमम् ॥ १ ॥

चारोंको मानकर समर्थ होता है और दुःखसे निवृत्त होता है ॥ ३८ ॥ इस कारण मंत्रोंसे तपसे व्रत और नियम सहित औषधियोंसे नीति विनय युक्त धर्मात्मा मनुष्योंसे क्रमानुसार रक्तहुई और योगसे प्रयुक्तहुई यह धात्री श्रेष्ठ फल देतीहै और भूतोंके आदिदेव शिवजी चारोंसे युक्त होके चलायमान नहीं होतेहैं इस कारण विधिसहित शिवनामक छायापुरुषको कहता हूँ जो साक्षात् शिवरूप है ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायां पं० उ० सं० कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ पार्वतीजी बोलीं, हे देवोंके देव ! हे महादेव ! कालके दूरकरनेवाले शब्द ब्रह्मस्वरूप उत्तम योग लक्षणको

संक्षेपसे वर्णन किया ॥ १ ॥ अब छायापुरुषके श्रेष्ठ ज्ञानको योगियोंके हितकी कामनासे विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥ शिवजी बोले, हे देवि ! सुनो अब छायापुरुषके लक्षणको कहता हूँ जिसको भलीभांति जानकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ३ ॥ हे सुन्दर वर्णवाली ! सूर्य वा चन्द्रमाको पीछे करके श्वेत वस्त्र धार माला पहन गन्ध धूपादिसे सुगन्धित होके ॥ ४ ॥ सब मनोरथोंके सिद्ध करनेवाले मेरे नौ अक्षरवाले "ॐ नमो भगवते रुद्राय" महामन्त्रको स्मरण करै और अपनी छायाको देखै ॥ ५ ॥ श्वेतवर्ण स्वरूपी उस छायाको देखके फिर आकाशमें एक भाव होके आदिकारण शिवको देखै

कथितं ते समासेनच्छायिकं ज्ञानमुत्तमम् ॥ विस्तरेण समाख्याहि योगिनां हितकाम्यया ॥ २ ॥ ॥ शंकर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामिच्छायापुरुषलक्षणम् ॥ यज्ज्ञात्वा पुरुषः सम्यक्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ सूर्य्यं हि पृष्ठतः कृत्वा सोमं वा वरवर्णिनि ॥ शुक्लाम्बरधरस्रग्वी गंधधूपादिवासितः ॥ ४ ॥ संस्मरेन्मे महामंत्रं सर्वकामफलप्रदम् ॥ नवात्मकं पिंडभूतं स्वां छायां संनिरीक्षयेत् ॥ ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तां पुनराकाशे श्वेतवर्णस्वरूपिणीम् ॥ स पश्यत्येकभावस्तु शिवं परमकारणम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मप्राप्तिर्भवेत्तस्य कालविद्भिरितीरितम् ॥ ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥ शिरोहीनं यदा पश्येत्षड्भिर्मासैर्भवेत्क्षयः ॥ समस्तं वाङ्मयं तस्य योगिनस्तु यथा तथा ॥ ८ ॥ शुक्ले धर्मं विजानीयात्कृष्णे पापं विनिर्दिशेत् ॥ रक्ते बंधं विजानीयात्पीते विद्विषमादिशेत् ॥ ९ ॥ विवाहो बंधुनाशस्स्याद्धितुंडे चैव क्षुद्भयम् ॥ विकटौ नश्यते भार्य्या विजंघे धनमेव हि ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ तो उसको ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूटजाता है इसमें संशय नहीं ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है ॥ ७ ॥ यदि उस छायाको शिर हीन देखै तो छे मासमें उसका नाश होता है सम्पूर्ण ही उस योगीका जैसा वाणीमय शास्त्र होताहै वैसा फल होता है ॥ ८ ॥ उसके शुक्लवर्ण होनेपर धर्मकी वृद्धि जानै कृष्णवर्णमें पाप कहाहै और रक्तवर्णमें बंधन और पीतवर्ण दीखै तो शत्रुको प्राप्त जानै ॥ ९ ॥ बिना नासिकाकी छाया होनेपर विवाह और बन्धुका नाश तथा क्षुधाका भय होता है कमरहीन होनेपर भार्या नष्ट होती है जंघारहित होनेपर धन नष्ट होता है ॥ १० ॥

चरणोंके अभावमें विदेश होता है हे महेश्वरि ! यह सब छायापुरुषका फल मैंने कहा यह मनुष्यको यत्नसे विचारना चाहिये ॥ ११ ॥ हे महेश्वरि ! उस
छायापुरुषको भलीभांति देखके आत्मासे आत्मामें प्रवेश करके अपने हृदयमें मेरा नवात्मक मन्त्र जपै ॥ १२॥ एक वर्षके बीतनेपर मन्त्र जपनेवालेको ऐसी
वस्तु कोई नहीं जिसे वह सिद्ध नहीं कर सकता और अणिमा आदि आठौं सिद्धियोंको तथा खेचरत्वको प्राप्त होता है॥ १३॥अब और दुष्प्राप्य शक्तिज्ञानको
वर्णन करता हूँ जिससे ज्ञानियोंको लोकमें आगे स्थितहुआसा प्रत्यक्ष दीखताहै॥ १४॥सर्पाकारकी कुण्डली जो जाननेके योग्य नहीं है सो लिखते हैं वह मार्गमें

पादाभावे विदेशस्स्यादित्येतत्कथितं मया ॥ तद्विचार्य्यं प्रयत्नेन पुरुषेण महेश्वरि ॥ ११ ॥ सम्यक्तं पुरुषं दृष्ट्वा संनिवेश्यात्मनात्म
नि ॥ जपेन्नवात्मकं मंत्रं हृदयं मे महेश्वरि ॥ १२ ॥ वत्सरे विगते मंत्री तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥ अणिमादिगुणानष्टौ खेचरत्वं प्रपद्यते
॥ १३ ॥ पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि शक्तिं ज्ञातुं दुरासदाम् ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते लोके ज्ञानिनामग्रतः स्थितम् ॥ १४ ॥ अज्ञेया लिख्यते
लोके या सर्पीकृतकुण्डली ॥ सा मात्रा यानसंस्थापि दृश्यते न च पठ्यते ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डमूर्ध्निगा या च स्तुता वेदैस्तु नित्य
शः ॥ जननी सर्वविद्यानां गुप्तविद्येति गीयते ॥ १६ ॥ खेचरा सा विनिर्दिष्टा सर्वप्राणिषु संस्थिता ॥ दृश्यादृश्याचला नित्या
व्यक्ताव्यक्ता सनातनी ॥ १७ ॥ अवर्णा वर्णसंयुक्ता प्रोच्यते बिंदुमालिनी ॥ तां पश्यन्सर्वदा योगी कृतकृत्योऽभिजायते ॥ १८ ॥
सर्वतीर्थकृतस्नानाद्धवेदानस्य यत्फलम् ॥ सर्वयज्ञफलं यच्च मालिन्या दर्शनात्तदा ॥ १९ ॥

स्थितहुई मात्रा दीखती है किन्तु पढी नहीं जाती ॥ १५॥ ब्रह्माण्डके मस्तक (आकाश) में व्याप्तहुई नित्य वेदोंमें स्तुति कीहुई सम्पूर्ण विद्याओंकी उत्पन्न
करनेवाली गुप्तविद्यानामसे कही जाती है ॥ १६ ॥ वह आकाशमें स्थितहुई सब प्राणियोंमें स्थित होनेवाली दृश्य तथा अदृश्यहुई अचल नित्य व्यक्त और
अव्यक्त सनातनी कही है ॥ १७ ॥ बिना वर्णवाली तथा वर्णसे संयुक्तबिन्दुमालिनी कही है योगी उसको भलीभांति निरन्तर देखके कृतकृत्य होता है
॥ १८ ॥ सब तीर्थोंपै स्नान करनेसे तथा दानके देनेसे जो फल होता है तथा जो सब यज्ञोंका फल होता है सो फल मालिनी रेखाके देखनेसे प्राप्त होता

है ॥ १९ ॥ सब तीर्थोंमें स्नान करके सब दानोंको देकर जो फल मिलता है सो सब निस्सन्देह प्राप्त होता है यह मैंने सत्य सत्य कहा ॥ २० ॥ हे महेशानि ! हे देवि ! मनुष्य सब यज्ञोंके करनेसे जो फल पाता है सो इससे मिलता है बहुत कहनेसे क्या है ? इससे मनुष्य सब मनोरथोंको पाता है॥ ॥ २१ ॥ इस कारण बुद्धिमान् योगके ज्ञानका नित्य अभ्यास करै अभ्याससे सिद्धि उत्पन्न होती है और अभ्याससे योग बढता है ॥ २२ ॥ अभ्याससे ज्ञान मिलता है अभ्याससे मोक्ष प्राप्त होता है अतः बुद्धिमान्‌को मोक्षके निमित्त निरंतर योगाभ्यास करना चाहिये ॥ २३ ॥ हे देवि ! यह भुक्ति मुक्तिके

प्राप्नोत्यत्र न संदेहस्सत्यं वै कथितं मया ॥ सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वा दत्त्वा दानानि सवशः ॥ २० ॥ सर्वेषां देवि यज्ञानां यत्फलं तल्लभेत्पुमान् ॥ किं बहूक्त्या महेशानि सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ २१ ॥ तस्माज्ज्ञानं यथायोगमभ्यसेत्सततं बुधः ॥ अभ्यासाज्जायते सिद्धिर्योगोऽभ्यासात्प्रवर्धते ॥ २२ ॥ संवित्तिर्लभ्यतेऽभ्यासादभ्यासान्मोक्षमश्नुते ॥ अभ्यासस्सततं कार्यो धीमता मोक्षकारणम् ॥ २३ ॥ इत्येतत्कथितं देवि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ किमन्यत्पृच्छ्यते तत्त्वं वद सत्यं ब्रवीमि ते ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा ब्रह्मपुत्रवचनं परमार्थदम् ॥ प्रसन्नोऽभूदति व्यासः पाराशर्यो मुनीश्वराः ॥ २५ ॥ सनत्कुमारं सर्वज्ञं ब्रह्मपुत्रं कृपानिधिम् ॥ व्यासः परमसंतुष्टः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततस्तुष्टाव तं व्यासः कालेयस्स मुनीश्वरः ॥ सनत्कुमारं मुनयः सुरविज्ञानसागरम् ॥ २७ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मत्वं मे त्वया कृतम् ॥ नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं ब्रह्मवित्तमः ॥ २८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इति स्तुत्वा स कालेयो ब्रह्मपुत्रं महामुनिम् ॥ तूष्णीं बभूव सुप्रीतः परमानंदनिर्भरः ॥ २९ ॥

फल देनेवाले योगाभ्यासको तुमसे कहा अब क्या ? तत्त्व पूँछती हो सो सत्यसत्य कहूंगा ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! परमार्थके देनेवाले ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारके ऐसे वचनको सुनके पराशरके पुत्र व्यासजी प्रसन्न होगये ॥ २५ ॥ व्यासजीने अतिसंतुष्ट होके सर्वज्ञ ब्रह्माके पुत्र कृपालु सनत्कुमारको बारम्बार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तब उन देव विज्ञानके सागर सनत्कुमारजीकी मुनियोंने तथा कालेय मुनि व्यासजीने स्तुति की ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआ तुमने मुझे ब्रह्मत्वको प्राप्त कराया तुमको नमस्कार है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वह व्यासजी

महामुनि ब्रह्मपुत्रकी स्तुति करके परमानंदमें अतिप्रसन्न होके मौन होगये ॥ २९ ॥ वह सनत्कुमारजी और उनको आमंत्रण करके उन व्यासजीसे पूजेगये और अतिप्रसन्न हो वे सनत्कुमारजी तथा व्यासजी अपने अपने लोकको चले गये ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! यह सुखदायक परमार्थयुक्त ज्ञानका बढानेवाला सनत्कुमार और व्यासजीका संवाद तुमसे कहा ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० छायापुरुषदर्शनवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ शौनकजी बोले, परमार्थको देनेवाला सनत्कुमार और व्यासजीके संवादका बडा इतिहास जो तुमने कहा सो मैंने सुना ॥ १ ॥ अब

ब्रह्मपुत्रस्तमामंत्र्य पूंजितस्तेन शौनकः ॥ ययौ स्वधाम सुप्रीतो व्यासोऽपि प्रीतमानसः ॥ ३० ॥ इति मे वर्णितो विप्राः सुखदः परमार्थयुक् ॥ सनत्कुमारकालेयसंवादो ज्ञानवर्द्धनः ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां छायापुरुषदर्शनवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ श्रुतं मे महदाख्यानं यत्त्वया परिकीर्तितम् ॥ सनत्कुमारकालेयसंवादं परमार्थदम् ॥ १ ॥ अतोऽहं श्रोतुमिच्छांमि यथा सर्गस्तु ब्रह्मणः ॥ समुत्पन्नं तु मे ब्रूहि यथा व्यासाच्च ते श्रुतम् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ मुने शृणु कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतविस्तराम् ॥ ३ ॥ यश्चैनां पाठयेत्तां च शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ॥ स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ प्रधानं पुरुषो यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानपुरुषो भूत्वा निर्ममे लोकभावनः ॥ ५ ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥ तं वै विद्धि मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ६ ॥

मैं यह सुनना चाहता हूं कि जैसे ब्रह्माकी सृष्टि उत्पन्न हुई है सो व्यासजीसे जो तुमने सुना है सो मुझसे कहो॥२॥ सूतजी बोले, हे मुने ! मुझसे वक्ष्यमाण अति अद्भुत शास्त्रके विस्तारवाली बहुत अर्थवाली सब पापोंको दूरकरनेवाली सुन्दर कथाको सुनो ॥ ३ ॥ जो मनुष्य इसको पढ़ाता है अथवा आद्योपान्त सुनता है वह अपने वंशको धारण करके स्वर्गलोकमें जाता है ॥ ४ ॥ जो नित्य सत असत् स्वरूप प्रधान पुरुष हैं वह लोकोंके उत्पन्न करनेवाले प्रधान पुरुष होके सृष्टिको उत्पन्न करने लगे ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले नारायणमें तत्पर अतुल तेजवाले उन ब्रह्माजीको

मनुको जानो. मनुके पश्चात् उन प्रभु वैराजपुरुषने सब प्रजाको उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ नारायणकी रचीहुई अमैथुनी प्रजा आयुवाली कीर्तिवाली प्रशंसनीय
हुई ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुमसे आदि सृष्टिकी रचनाको कहा मनुष्य इस आदिसर्गको जानके मनोवांछित गतिको प्राप्त होते हैं ॥२८॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० आदिसृष्टिवर्णनं नामैकोनात्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥ सूतजी बोले, प्रजाके रचनेपर आपव प्रजापतिपुरुषने अयो
निज शतरूपा नामवाली भार्य्याको पाया ॥ १ ॥ आकाशको व्याप्त करके स्थित होनेवाले प्रजापतिकी महिमासे धर्ममें वह महात्मा तथा शतरूपा उत्पन्न

नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजः ॥ आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्चाभवत्ततः ॥ २७ ॥ इत्येवमादिसर्गस्ते वर्णितो
मुनिसत्तम ॥ आदिसर्गं विदित्वैवं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायामादिसर्गवर्णनं नाम
एकोनात्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ संसृष्टासु प्रजास्वेव आपवोऽथ प्रजापतिः ॥ लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयो
निजाम् ॥ १ ॥ आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ॥ धर्मेणैव महात्मा स शतरूपाप्यजायत ॥ २ ॥ सा तु वर्षशतं तप्त्वा तपः
परमदुश्चरम् ॥ भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥ स वै स्वायंभुवो जज्ञे पुरुषो मनुरुच्यते ॥ तस्यैकसप्ततियुगं मन्वंतरमिहो
च्यते ॥ ४ ॥ वैराजात्पुरुषाद्वीरा शतरूपा व्यजायत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरकायामजायताम् ॥ ५ ॥ काम्या नाम महाभागा कर्द
मस्य प्रजापतेः ॥ काम्यापुत्रास्त्रयस्त्वासन्सम्राट्साक्षिरविट्प्रभुः ॥ ६ ॥ उत्तानपादोऽजनयत्पुत्राञ्छक्रसमान्प्रभुः ॥ ध्रुवं च तनयं
दिव्यमात्मानंदसुवर्च्चसम् ॥ ७ ॥ धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सुनीतिर्नाम विश्रुता ॥ उत्पन्ना चापि धर्म्मेण ध्रुवस्य जननी तथा ॥ ८ ॥

हुई ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक अति कठिन तप करके दीप्त तपस्वी पतिको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ वह पुरुष स्वायंभु मुनिसे उत्पन्न हुए और मनु कहलाये उनकी
इकहत्तर युगवाली मन्वन्तर संज्ञा कही जाती है ॥ ४ ॥ उन विराट्पुरुषसे वीरा शतरूपा उत्पन्न हुई और वीरकामें प्रियव्रत तथा उत्तानपाद उत्पन्न हुए ॥
॥ ५ ॥ कर्दम प्रजापतिसे काम्यानाम महाभागा उत्पन्न हुई काम्याके सम्राट् साक्षि अविट् प्रभु नामवाले तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ प्रभु उत्तानपादने
इन्द्रके समान पुत्रोंको उत्पन्न किया और अतितेजस्वी अपने आनंद देनेवाले सुन्दर ध्रुवनामक पुत्रको भी उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ सुन्दर कमरवाली धर्मकी

कन्या सुनीतिनामसे विख्यात हुई वह धर्मसे उत्पन्न हुई और ध्रुवकी माता हुई ॥ ८ ॥ उस ध्रुव बालकने दिव्य तीन सहस्र वर्षतक अविनाशी स्थानकी याचनासे वनमें तप किया ॥ ९ ॥ तब प्रभु ब्रह्माजीने प्रसन्न होके उनको सप्तर्षियोंके आगे अपने समान अचल स्थान दिया ॥ १० ॥ फिर उन ध्रुवसे पुष्टि तथा धान्य नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए पुष्टिने समुत्था स्त्रीसे पापरहित ॥ ११ ॥ रिपु रिपुंजय विप्र वृकल वृषतेजस नामवाले पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया रिपुकी स्त्रीने चाक्षुषनामवाले सब दिशाओंमें प्रसिद्ध पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ चाक्षुष मनुने पुष्करिणी स्त्रीमें वरुणको उत्पन्न किया मनुसे

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि कानने ॥ तपस्तेपे स बालस्तु प्रार्थयन्स्थानमव्ययम् ॥ ९ ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतस्स्थानमात्मसमं प्रभुः ॥ अचलं चैव पुरतस्सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ १० ॥ तस्मात्पुष्टिश्च धान्यश्च ध्रुवात्पुत्रौ व्यजायताम् ॥ पुष्टिरेवं समुत्थायाः पंचपुत्रानकल्मषान् ॥ ११ ॥ रिपुं रिपुंजयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम् ॥ रिपोरेवं च महिषी चाक्षुषं सर्वतोदिशम् ॥ १२ ॥ अजीजनत्पुष्करिण्यां वरुणं चाक्षुषो मनुः ॥ मनोरजायन्त दश नड्लायां महौजसः ॥ १३ ॥ कन्यायां हि मुनिश्रेष्ठ वैश्यजन्म प्रजापतेः ॥ पुरुर्मासः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवित्कविः ॥ १४ ॥ अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्चातिमन्युस्सुयशा दश ॥ पूरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ १५ ॥ अंगं सुमनसं ख्यातिं स्मृतिमंगिरसं गयम् ॥ अंगात्सुनीथा भार्य्या वै वेनमेकमसूयत ॥ १६ ॥ अपचारेण वेनस्य कोपस्तेषां महानभूत् ॥ हुंकारेणैव तं जघ्नुर्मुनयो धर्मतत्पराः ॥ १७ ॥ अथ प्रजार्थमृषयः प्रार्थिताश्च सुनीथया ॥ सारस्वतास्तदा तस्य ममंथुर्दक्षिणं करम् ॥ १८ ॥

नड्वला स्त्रीमें बडे तेजस्वी दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस कन्यामें वैश्योत्पन्न प्रजापतिसे पुरु, मास, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवित्, कवि ॥ १४ ॥ अग्निष्टोम, अतिरात्र, अतिमन्यु, सुयश नामवाले दश पुत्र उत्पन्न हुए पुरुसे आग्नेयी कन्याने बडी कान्तिवाले छे पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ अंग, सुमनस्, ख्याति, स्मृति, अंगिरस, गय नामवाले यह पुत्रहैं फिर अंगसे सुनीथा स्त्रीने एक वेननामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ वेनके दुराचारसे उन मुनियोंको बडा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन धर्मात्मा ऋषियोंने वेनको हुंकारसे मार दिया ॥ १७ ॥ तब सुनीथाने सन्तान होनेके निमित्त उन ऋषियोंसे

प्रार्थना की तब ज्ञानी मुनियोंने उसके दाहिने हाथको मथा ॥१८॥ वेनके हाथके मथनेपर उससे पृथु उत्पन्न हुए वह धनुष्धारी कवच पहने तेजमें सूर्यके समान हुए ॥ १९ ॥ वह विष्णुका अवतार प्रजापालनके कारण तथा धर्मकी रक्षा करनेके अर्थ और दुष्टोंको दंड देनेके निमित्त हुआ ॥ २० ॥ वेनके पुत्र क्षत्रपूर्वज पृथुने पृथ्वीकी रक्षा किई वह राजसूययज्ञ करनेवालोंमें पहला राजा हुआ ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! उससे ज्ञानी सूत मागध नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए उस राजाने सबके हितके अर्थ इस पृथ्वीको दुहा ॥ २२ ॥ वह राजा देवता ऋषि दैत्य राक्षस मनुष्य आदि सबोंकी आजीविकाका देनेवाला

वेनस्य पाणौ मथिते संबभूव ततः पृथुः ॥ स धन्वी कवची जातस्तेजसादित्यसन्निभः ॥ १९ ॥ अवतारस्स विष्णोर्हि प्रजापालनहेतवे ॥ धर्मसंरक्षणार्थाय दुष्टानां दंडहेतवे ॥ २० ॥ पृथुर्वैन्यस्तदा पृथ्वीमरक्षत्क्षत्रपूर्वजः ॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यस्स वसुधापतिः ॥ २१ ॥ तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ तेनेयं गौर्मुनिश्रेष्ठ दुग्धा सर्वहिताय वै ॥ २२ ॥ सर्वेषां वृत्तिदश्चाभूद्देवर्षिसुररक्षसाम् ॥ मनुष्याणां विशेषेण शतयज्ञकरो नृपः ॥ २३ ॥ पृथोः पुत्रौ तु जज्ञाते धर्मज्ञौ भुवि पार्थिवौ ॥ विजिताश्वश्च हर्यक्षो महावीरौ सुविश्रुतौ ॥ २४ ॥ शिखंडिनी चाजनयत्पुत्रं प्राचीनबर्हिषम् ॥ प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिवीतलचारिणः ॥ २५ ॥ समुद्रतनया तेन धर्मतस्सुविवाहिता ॥ रेजेऽधिकतरं राजा कृतदारो महाप्रभुः ॥२६॥ समुद्रतनयायास्तु दश प्राचीनबर्हिषः ॥ बभूवुस्तनया दिव्या बहुयज्ञकरस्यवै ॥ २७ ॥ सर्वे प्राचेतसा नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ अपृथग्धर्माचरणास्तेऽतप्यंत महत्तपः ॥ २८ ॥

तथा सौ यज्ञ करनेवाला हुआ ॥ २३ ॥ पृथुके विजिताश्व हर्यक्ष नामवाले धर्मात्मा पृथ्वीपर विख्यात बडे पराक्रमी शास्त्रोंके जाननेवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ शिखंडिनीने प्राचीनबर्हिष पुत्रको उत्पन्न किया उसके पृथिवीतलमें भ्रमण करनेवाला प्राचीनाग्र कुशा नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उसने समुद्रकी पुत्रीको धर्मसे विवाहा तब महाप्रभु राजा स्त्रीको प्राप्त होके अत्यन्त शोभित हुए ॥ २६ ॥ तब अनेकयज्ञ करनेवाले प्राचीनबर्हिष राजाके समुद्रकी कन्यासे दश दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ वे सब प्राचेतस नामवाले धनुर्वेदके पारगामी अपने अपने धर्माचरणमें तत्पर हुए और उन्होंने बडा

तप किया ॥ २८ ॥ वे दश सहस्र वर्षतक समुद्रके जलमें शयन करके शिवके मन्त्रको जपतेहुए शिवके ध्यानमें तत्पर हुए ॥ २९ ॥ पृथिवीमें तप करनेपर वहां वृक्ष उत्पन्न होगये तब विना रक्षा कीहुई पृथ्वीपर प्रजाका क्षय होने लगा ॥ ३० ॥ उन वृक्षोंको देखके वे सब श्रेष्ठ वरोंको प्राप्त हो तप करनेसे निवृत्त होगये हे मुनिश्रेष्ठ ! तब तपके बलवाले उन वृक्षोंको जलानेकी इच्छा करनेवाले वे क्रोध करने लगे ॥ ३१ ॥ और उन प्राचेतसोंने अपने मुखोंसे अग्नि, पवनको उत्पन्न किया तब वायुने उन वृक्षोंको उखाड डाला अग्निने उनको भस्म किया ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् वृक्षोंके विनाशको देख कुछेक वृक्षोंके शेष रहनेपर प्रतापी सोमराजा उनके समीप जाके यह बोले ॥ ३३ ॥ सोम बोले, हे प्राचीनबर्हिषके पुत्रो ! कोपको दमन करो यह वरवर्णिनी नामवाली वृक्षोंकी कन्या अनुभव कीहुई है ॥ ३४ ॥ भविष्यको जाननेवाले मैंने उसको गर्भमें पोषण किया सो हे महाभाग ! यह सोमवंशको बढानेवाली तुम्हारी भार्या होवै ॥ ३५ ॥ इसमें सृष्टिकर्त्ता महातेजस्वी पुरातन ब्रह्मपुत्र विद्वान् दक्षप्रजापति उत्पन्न होंगे ॥३६॥ तुम्हारे आधे तेजसे तथा मेरे इस तेजसे ब्रह्मतेजोमय राजा प्रजाको बढावैगा ॥३७॥ तब सोमके वचनसे उन प्रचेतसोंने वृक्षोंसे उत्पन्नहुई उस वरवर्णिनी भार्याको प्रीतिपूर्वक धर्मसे ग्रहण किया ॥३८॥

दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ रुद्रगीतं जपंतश्च शिवध्यानपरायणाः ॥ २९ ॥ तपश्चरत्सु पृथिव्यामभवंश्च महीरुहाः ॥ अरक्ष्यमाणायां पृथ्व्यां बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३० ॥ तान्दृष्ट्वा तु निवृत्तास्ते तपसो लब्धसद्वराः ॥ चुक्रुधुर्मुनिशार्दूल दग्धुकामास्तपोबलाः ॥ ३१ ॥ प्राचेतसा मुखेभ्यस्ते प्रासृजन्नग्निमारुतौ ॥ वृक्षानुन्मूल्य वायुस्तानदहद्धव्यवाहनः ॥ ३२ ॥ वृक्षक्षयं ततो दृष्ट्वा किंचिच्छेषेषु शाखिषु ॥ उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रतापवान् ॥ ३३ ॥ सोम उवाच ॥ कोपं यच्छत राजानस्सर्वे प्राचीनबर्हिषः ॥ अनुभूतानुकन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥ ३४ ॥ भविष्यं जानता सा तु धृता गर्भेण वै मया ॥ भार्य्या वोऽस्तु महाभागास्सोमवंशविवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥ अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान्दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ सृष्टिकर्ता महातेजा ब्रह्मपुत्रः पुरातनः ॥ ३६ ॥ युष्माकं तेजसार्द्धेन मम चानेन तेजसा ॥ ब्रह्मतेजोमयो भूपः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥ ३७ ॥ ततस्सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ॥ भार्य्यां धर्मेण तां प्रीत्या वृक्षजां वरवर्णिनीम् ॥ ३८ ॥

उस कन्यासे उन प्रचेतोंके दक्षनाम प्रजापति उत्पन्न हुए हे मुने ! वह महातेजस्वी सोमके अंशसे उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ तब दक्षने मनसे अचर तथा चर
दो पैरवाले तथा चौपाये जीवोंको उत्पन्न करके मैथुनीसृष्टिकी रचना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ तब दक्षने वीरण प्रजापतिकी वीरणी नामवाली
पतिव्रता कन्याको धर्मसे विधिपूर्वक विवाहा ॥ ४१ ॥ उस कन्यासे उन्होंने पुण्यात्मा दश सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया वे सब नारदजीके उपदेशसे विरक्त
होगये ॥ ४२ ॥ यह सुनकर फिर उन्होंने उसी कन्यामें सुबलाश्व नामवाले सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ वे सब भी नारदमुनिके उपदेशसे अपने

तेभ्यस्तस्यास्तु संजज्ञे दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ सोऽपि जज्ञे महातेजास्सोमस्यांशेन वै मुने ॥ ३९ ॥ अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ
चतुष्पदः ॥ संसृज्य मनसा दक्षो मैथुनीं सृष्टिमारभत् ॥ ४० ॥ वीरणस्य सुतां नाम्ना वीरणीं स प्रजापतेः ॥ उपयेमे सुविधिना
सुधर्मेण पतिव्रताम् ॥ ४१ ॥ हर्य्य श्वानयुतं तस्यां सुतान्पुण्यानजीजनत् ॥ ते विरक्ता बभूवुश्च नारदस्योपदेशतः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रु
त्वा स पुनर्दक्षस्सुबलाश्वानजीजनत् ॥ नामतस्तनयांस्तस्यां सहस्रपरिसंख्यया ॥ ४३ ॥ तेऽपि भ्रातृपथा यातास्तन्मुनेरुपदेशतः ॥
नागमन्पितृसान्निध्यं विरक्ता भिक्षुमार्गिणः ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा शापमाक्रुद्धो मुनये दुस्सहं ददौ ॥ कुत्रचिन्न लभस्वेति संस्थितिं
कलहप्रिय ॥ ४५ ॥ सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स पश्चादसृजत्स्त्रियः ॥ महाज्वालास्वरूपेण गुणैश्चापि मुनीश्वरः ॥ ४६ ॥ ददौ स
दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ द्वे चवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा ॥ ४७ ॥ द्वे कृशाश्वाय विदुषे मुनये मुनिसत्तम ॥ शिष्टास्सो
माय दक्षोऽपि नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥ ४८ ॥

भाइयोंके मार्गमें गये अर्थात् विरक्त होगये विरक्त और भिक्षुक होके अपने पिताके समीपमें नहीं गये ॥ ४४ ॥ यह सुनके क्रोधित हो दक्षने मुनि नारदको
यह शाप दिया हे कलहप्रिय ! तुम कहींभी स्थितिको नहीं पाओगे ॥ ४५ ॥ हे मुनीश्वर ! तत्पश्चात् ब्रह्माजीसे शान्त कियेहुए दक्षने अपने गुणोंसे
महाज्वालास्वरूपवाली स्त्रियोंको उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ और उन्होंने दश स्त्रियोंको धर्मको दिया और तेरह कश्यपको ऐसेही दो ब्रह्माके पुत्रको तथा दो
अंगिराको ॥ ४७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रभु दक्षने दो कन्या विद्वान् कृशाश्व मुनिको दीं और श्रेष्ठ चन्द्रमाको नक्षत्र नामवाली सत्ताईस कन्या प्रदान कीं ॥ ४८ ॥

ताभ्यो दक्षस्य पुत्रीभ्यो जाता देवासुरादयः ॥ बहवस्तनयाः ख्यातास्तैस्सर्वैः पूरितं जगत् ॥ ४९ ॥ ततः प्रभृति विप्रेन्द्र प्रजा मैथुनसंभवाः ॥ संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥ ५० ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्षश्चोक्तस्त्वया पुरा ॥ कथं प्राचेतसत्वं हि पुनर्लेभे महातपाः ॥ ५१ ॥ एतं मे संशयं सूत प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥ चित्रमेतत्स सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥ ५२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु वर्तते ॥ कल्पेकल्पे भवंत्येते सर्वे दक्षादयो मुने ॥ ५३ ॥ इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम् ॥ प्रजावानायुषा पूर्णस्स्वर्गलोके महीयते ॥ ५४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ सृष्टिं तु विस्तरेणेमां सूतपुत्र वदाशु मे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ यदा न ववृधे सा तु वीरणस्य प्रजापतिः ॥ सुतां सुतपसा युक्तामाह्वयत्सर्गकारणात् ॥ ॥ २ ॥ स मैथुनेन धर्मेण ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥ ताः शृणु त्वं महाप्राज्ञ कथयामि समासतः ॥ ३ ॥

तब उन दक्षकी कन्याओंसे प्रसिद्धहुए देवता असुर आदि बहुत पुत्र उत्पन्नहुए उनसे यह संसार पूर्ण होगया ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तबसे लेकमें मैथुनीसृष्टि उत्पन्न हुई संकल्पसे दर्शनसे स्पर्शसे पहली सृष्टि कही है ॥ ५० ॥ शौनकजी बोले, हे महातपस्वी ! पहले तुमने यह कहा कि ब्रह्माके अंगूठेसे दक्ष उत्पन्नहुए फिर उन्होंने प्राचेतसभावको कैसे प्राप्त किया ॥ ५१ ॥ हे सूतजी ! मेरे इस सन्देहको निवारण करनेके योग्य हो यह आश्चर्य है कि वह किस प्रकार सोमके श्वशुर हुए ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले, हे मुने ! प्राणियोंकी उत्पत्ति और निषेध नित्य होता रहता है और प्रत्येक कल्पमें संपूर्ण दक्ष आदि यह मुनि होतेहैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य दक्षप्रजापति की चर और अचरसहित इस सृष्टिको जानता है वह सन्तानयुक्त आयुसे पूर्ण होके स्वर्गलोकमें जाता है ॥५४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ शौनकजी बोले, हे सूतपुत्र ! देवताओंकी तथा दैत्योंकी गन्धर्व सर्प राक्षसोंकी इस सृष्टिको शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, जब वीरण प्रजापतिकी प्रजा न बढी तो सृष्टिके कारण तपमें प्रवृत्तहुई कन्याको बुलाया ॥ २ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तब उसने मैथुनके धर्मसे अनेकप्रजाको उत्पन्न किया उसको सुनो मैं संक्षेपसे वर्णन करताहूँ ॥ ३ ॥

दक्षप्रजापतिने उस वीरिणीके आश्रयसे वीर्यवान् पांच सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ इनको उत्पन्नहुए देखके नारदजी उनसे बोले, सब उत्पन्न हुई मनुष्योंकी सृष्टि ब्रह्माजीसे अथवा कश्यपसे दक्षकी कन्याओंमें उत्पन्न होगी ऐसा सुना है यह उन सबोंसे कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ तुम सब बालक हो विनाजाने कैसे सृष्टिको करोगे किसी दिशाको नहीं जानते हो इस कारण उस पृथिवीभरको जानो ॥ ७ ॥ ऐसा कहनेपर वे सब बलसे संपूर्ण दिशाओंके जाननेको चले गये पृथिवीके अन्तको न पाय फिर वे अपने पिताके घरको नहीं लौटकर आये ॥ ८ ॥ ऐसा जानके फिर दक्षने पांचसौ पुत्रोंको उत्पन्न किया उनसे

तस्यां पुत्रसहस्राणिं वीरिण्यां पंच वीर्यवान् ॥ आश्रित्य जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥ ४ ॥ एतान्मृष्टांस्तु तान्दृष्ट्वा नारदः प्राह वै मुनिः ॥ सर्वं स तु समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ॥ ५ ॥ श्रुतवान्वा कश्यपाद्वै पुंसां सृष्टिर्भविष्यति ॥ दक्षस्येव दुहितृषु तस्मात्तान ब्रवीत्तु सः ॥ ६ ॥ अजानंतः कथं सृष्टिं बालिशा वै करिष्यथ ॥ दिशं कांचिदजानंतस्तस्माद्विज्ञाय तां भुवम् ॥ ७ ॥ इत्युक्ताः प्रययुस्सर्वे आशां विज्ञातुमोजसा ॥ तदंतं न हि संप्राप्य न निवृत्ताः पितुर्गृहम् ॥ ८ ॥ तज्ज्ञात्वा जनयामास पुनः पंचशतान्सुतान् ॥ तानुवाच पुनस्सोऽपि नारदस्सर्वदर्शनः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भुवो मानमजानंतः कथं सृष्टिं करिष्यथ ॥ सर्वे हि बालिशाः किं हि सृष्टिं कर्तुं समुद्यताः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ तेऽपि तद्वचनं श्रुत्वा निर्यातास्सर्वतोदिशम् ॥ सुबलाश्वा दक्षसुता हर्यश्वा इव ते पुरा ॥ ११ ॥ अनंतं पुष्करं प्राप्य गतास्तेऽपि पराभवम् ॥ अद्यापि न निवर्तंतेसमुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १२ ॥ तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः ॥ प्रयातो नश्यति मुने तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥ १३ ॥

भी सब कुछ देखनेवाले नारदजी यह बोले ॥ ९ ॥ नारदजीने कहा तुम सब भूमीके मानको नहीं जानते हो तो सृष्टिको किस प्रकार करोगे तुम सब बालक किस प्रकार सृष्टि करनेमें उद्यत हो ॥ १० ॥ सूतजी बोले, वे सब भी उनके वचनको सुनके सब दिशाओंमें चले गये, जैसे सुबलाश्व और हर्यश्वनामवाले दक्षके पुत्र पहले निकल गये थे ॥ ११ ॥ अनंत पुष्करको प्राप्त होके वे भी तिरस्कारको प्राप्त हुए और समुद्रोंसे जैसे नदियाँ तैसे अबतक भी नहीं लौटे ॥ १२ ॥ हे मुने ! उस दिनसे लेके भाई अपने भाईके खोजनेमें प्रवृत्त होके चला जाय तो और नष्ट होजायगा सो सृष्टिका कार्य न हुआ ॥ १३ ॥

उन पुत्रोंको नष्टहुआ जानके उन दक्षप्रजापतिने क्रोधसे महात्मा नारदजीको शाप दिया ॥ १४ ॥ हे कलहप्रिय ! तुम कहीं भी स्थितिको नहीं पाओगे और लोकमें तुम्हारी समीपतासे सदा कलह होगा ॥ १५ ॥ तब दक्षप्रजापतिजी ब्रह्माजीसे शान्त किये गये फिर उन्होंनें साठ कन्याओंको वीरणीमें उत्पन्न किया ऐसा हमने सुना है ॥ १६ ॥ तब उन्होंने दश कन्या धर्मको दीं तेरह कश्यपको तथा सत्ताईस सोमको और चार कन्या अरिष्ट नेमिको दीं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार दो कन्या ब्रह्मपुत्रको तथा दो अंगिराको और दो विद्वान् कृशाश्वको दीं उन सब कन्याओंके नाम मुझसे सुनो ॥ १८ ॥ हे मुने ! अरुंधती

तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय पुत्रान्दक्षः प्रजापतिः ॥ स च क्रोधाद्ददौ शापं नारदाय महात्मने ॥ १४ ॥ कुत्रचिन्न लभस्वेति संस्थितिं कलहप्रिय ॥ तव सान्निध्यतो लोके भवेच्च कलहस्सदा ॥ १५ ॥ सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स दक्षस्तु प्रजापतिः ॥ कन्याः षष्टचसृजत्पश्चाद्वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ १६ ॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ संप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ १७ ॥ द्वे चैवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा ॥ द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥ १८ ॥ अरुंधती व सुर्य्यामिर्लम्बा भानुर्मरुत्वती ॥ संकल्पा च मुहूर्ता च संध्या विश्वा च वै मुने ॥ १९ ॥ धर्मपत्न्यो मुने त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायास्साध्यान्साध्या व्यजायत ॥ २० ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वंतो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ भानोस्तु भानवस्सर्वे मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥ २१ ॥ लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागविथी च यामिजा ॥ पृथिवीविषमस्तस्यामरुन्धत्यामजायत ॥ २२ ॥ संकल्पायास्तु सत्यात्मा जज्ञे संकल्प एव हि ॥ अयादयावसोः पुत्रा अष्टौ तान्छृणु शौनक ॥ २३ ॥

वसु यामि लम्बा भानु मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता संध्या विश्वा ॥ १९ ॥ हे मुने ! यह तो धर्मपत्नी हैं और इनकी सन्तानको सुनो, विश्वाके विश्वेदेव तथा साध्याके साध्यगण उत्पन्न हुए ॥ २० ॥ मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे अष्ट वसु भानुसे द्वादश भानु और मुहूर्तासे मुहूर्तज उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ लम्बासे घोष यामिजासे नागवीथी और अरुन्धतीसे पृथिवी विषम उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ संकल्पासे सत्यवादी संकल्प हुए हे शौनकजी ! अयादि आठ वसुके

जो पुत्र हैं उनके नाम सुनो ॥ २३ ॥ अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास, नामवाले यह आठ वसु कहे हैं ॥ २४ ॥ अयके पुत्र वैतंड तथा श्रम और शान्तमुनि हुए; और ध्रुवका पुत्र संसारमें विख्यात सर्वोत्पादक भगवान् काल हुआ ॥ २५ ॥ सोमके पुत्र भगवान् वर्चा जिससे वर्चस्वी होता है धरके पुत्र द्रविण तथा हुतहव्य हुए ॥ २६ ॥ मनोहरासे शिशिर प्राण रमण पुत्र उत्पन्न हुए और अनिलकी शिवा नामवाली भार्या थी जिसका पुत्र पुरोजवनामसे विख्यात हुआ ॥ २७ ॥ तथा अनिलके और भी दो पुत्र अविज्ञातगतिसे श्रियावृत, सरकंडोंके वनमें अग्निपुत्र कुमार नामवाले हुए ॥ ॥ २८ ॥ उनके शाख विशाख तथा पीछेसे नैगमेय पुत्र हुए तथा कृत्तिकाकी सन्तान कार्त्तिकेय हुए ॥ २९ ॥ और प्रत्यूषके पुत्र देवल ऋषिनामसे हुए

अयो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ॥ प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवाऽष्टा च नामतः ॥ २४ ॥ अयस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शांतो
मुनिस्तथा ॥ ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रभावनः ॥ २५ ॥ सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते ॥ धरस्य पुत्रो द्रविणो
हुतहव्यवहस्तथा ॥ २६ ॥ मनोहरायाश्शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥ अनिलस्य शिवा भार्य्या यस्याः पुत्राः पुरोजवः ॥ २७ ॥
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियावृते ॥ २८ ॥ तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ॥२९॥ प्रत्यूषस्य त्वभूत्पुत्र ऋषिर्नाम्ना तु देवलः ॥ द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि प्रजावन्तौ मनीषिणौ
॥३०॥ बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ॥ योगसिद्धा जगत्कृत्स्नं समंताद्व्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥ प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य
च ॥ विश्वकर्मा महाभाग तस्य जज्ञे प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वार्द्धकिः ॥ भूषणानां च सर्वेषां
कर्ता शिल्पवतां वरः ॥ ३३ ॥ यस्सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह ॥ मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥ ३४ ॥

तथा देवलके भी बुद्धिमान् प्रजावाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ तब बृहस्पतिकी बहिन ब्रह्मचारिणी सुन्दर स्त्री योगसिद्धा सम्पूर्ण संसारमें चारोंओर भ्रमण करने लगी ॥ ३१ ॥ हे महाभाग ! वसुओंमें आठवें प्रभासकी स्त्रीने विश्वकर्मा प्रजापति पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ वह सहस्रों शिल्पोंका करनेवाला तथा देवताओंका कारीगर और सम्पूर्ण आभूषणोंका बनानेवाला शिल्पवानोंमें श्रेष्ठ हुआ ॥ ३३ ॥ जिसने सब देवताओंके विमानोंको बनाया

तथा जिन महात्माके शिलसे संपूर्ण मनुष्य जीवते हैं ॥ ३४ ॥ दूसरा मत कहते हैं रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान् ॥ ३५ ॥ हे मुने ! सरूपासे उत्पन्नहुए पुत्रकी स्त्रीने कोटि रुद्रोंको उत्पन्न किया परन्तु उनमें ग्यारह मुख्य हुए उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ३६ ॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, रुद्र, वीर्यवान्, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित ॥ ३७ ॥ वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, यह ग्यारह तीनों लोकोंके स्वामी रुद्र कहे हैं ॥ ३८ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार अतितेजस्वी रुद्रोंकी सौ संख्या कही अब कश्यपकी पत्नियोंके नाम सुनो ॥ ३९ ॥

मतांतरमाह ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ ३५ ॥ सरूपायां प्रसूतस्य स्त्रियां रुद्राश्च कोटिशः ॥ तत्रैकादशमुख्यास्तु तन्नामानि मुने शृणु ॥ ३६ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् ॥ हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ३७ ॥ वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ३८ ॥ शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ॥ शृणु कश्यपपत्नीनां नामानि मुनिसत्तम ॥ ३९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥ सूत उवाच ॥ अदितिर्दितिश्च सुरसारिष्टेला दनुरेव च ॥ सुरभिर्विनता चेला ताम्रा क्रोधवशा तथा ॥ १ ॥ कद्रूर्मुनिश्च विप्रेंद्र तास्त्वपत्यानि मे शृणु ॥ पूर्वमन्वंतरे श्रेष्ठे द्वादशासन्सुरोत्तमाः ॥ २ ॥ तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेंतरे ॥ उपस्थिते सुयशसश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥ ३ ॥ हिताय सर्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥ आगच्छतस्तु तानूचुरदितिं च प्रविश्य वै ॥ ४ ॥ मन्वंतरे प्रसूयामस्सतां श्रेयो भविष्यति ॥ एवमुक्तास्तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ ५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले, अदिति, दिति, सुरसा, आरिष्टेला, दनु, सुरभि, विनता, इला, ताम्रा, क्रोधवशा ॥ १ ॥ कद्रू, मुनि यह नाम कहे हे विप्रेन्द्र ! उनसे जो सन्तान हुई उनके नाम सुनो पहले श्रेष्ठ मन्वन्तरमें बारहसंख्यक तुषित नामवाली देवता हुईं ॥ २ ॥ वे सब आपसमें बोले कि, वैवस्वतमन्वन्तरके उपस्थित होनेपर तथा यशस्वी चाक्षुष मनुके अन्तरमें ॥ ३ ॥ सब लोकोंके हितके अर्थ परस्पर मिलके आतेहुए उनसे प्रवेश हो यह बोले ॥४॥ हम सब अदितिके गर्भमें प्रवेश होके मन्वन्तरमें उत्पन्न होंगे तो सत्पुरुषोंका

कल्याण होगा. ऐसा कहके वे सब चाक्षुष मनुके अन्तरमें ॥ ५ ॥ वे सब मरीचिके पुत्र कश्यपसे अदितिमें उत्पन्न हुए और फिर दक्षकन्यासे विष्णु, इन्द्र भी उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ अर्यमा, धाता, त्वष्टा तथा पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्रावरुण ॥ ७ ॥ अंश, भग तथा अतितेजस्वी बारह सूर्य हुए और चाक्षुष मन्वन्तरमें जो पहले तुषितानामवाले देवता हुए थे ॥ ८ ॥ चाक्षुष मनुके अन्तरमें वही पहले बारह आदित्य कहे हैं हे शौनक ! यह क्रमसे अदितिकी सन्तानैं कही हैं ॥ ९ ॥ जो श्रेष्ठ व्रतवाली सत्ताईस सोमपत्नी कही हैं उनकी अति तेजस्वी दीप्तिनामक सन्तान कही है ॥ १० ॥ और अरिष्टनेमिकी

मारीचात्कश्यपाज्जातास्तेऽदित्यां दक्षकन्यया ॥ तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ॥ ६ ॥ अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ विवस्वान्सविता चैव मित्रावरुण एव च ॥ ७ ॥ अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ चाक्षुषस्यांतरे पूर्वमासन्ये तुषितास्सुराः ॥ ८ ॥ पुरैव तस्यांतरे तु आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ इति प्रोक्तानि क्रमशोऽदित्यपत्यानि शौनक ॥ ९ ॥ सप्तविंशति याः प्रोक्तास्सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ॥ तासामपत्यान्यभवन्दीप्तयोऽमिततेजसः ॥ १० ॥ अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥ बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो यास्सुताः स्मृताः ॥ ११ ॥ कृशाश्वस्य तु देवर्षे देवप्रहरणाः स्मृताः ॥ भार्य्यायामर्चिषि मुने धूम्रकेशस्तथैव च ॥ १२ ॥ स्वधा सती च द्वे पत्न्यौ स्वधा ज्येष्ठा सती परा ॥ स्वधासूत पितॄन्वेदमथर्वाङ्गिरसं सती ॥ १३ ॥ एते युगसहस्रांते जायंते पुनरेव हि ॥ सर्वदेवनिकायाश्च त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥ १४ ॥ यथा सूर्य्यस्य नित्यं हि उदयास्तमयाविह ॥ एवं देवनिकास्ते संभवंति युगे युगे ॥१५॥ दित्यां बभूवतुः पुत्रौ कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

स्त्रियोंके सोलह पुत्र हुए विद्वान् बहुपुत्रकी जो चार कन्या कही हैं ॥ ११ ॥ हे देवर्षे ! हे मुने ! कृशाश्वके देव प्रहरण कहे हैं तथा अर्चिष भार्यामें धूम्रकेश हुए ॥ १२ ॥ उनकी स्वधा और सती दो स्त्री हुईं उनमें स्वधा ज्येष्ठा और सती कनिष्ठा थी स्वधाने पितरोंको उत्पन्न किया और सतीने वेद और अंगिराको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ यह सर्व देवताओंके निकाय तेंतीस कामनासे उत्पन्न होनेवाले सहस्र युगके अन्तमें नित्य उत्पन्न होते हैं ॥१४॥ जैसे यहां सूर्यका उदय और अस्त सदा होता है वैसे वे देवनिकाय भी प्रत्येक युगमें उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ कश्यपसे दितिमें दो पुत्र उत्पन्न हुए जो हिरण्यकशिपु तथा

हिरण्याक्ष नामवाले महापराक्रमी थे ऐसा हमने सुना है ॥ १६ ॥ विप्रचित्तिसे सिंहिकाकन्या उत्पन्न हुई. हिरण्यकशिपुके चार पुत्र अतितेजस्वी हुए ॥ ॥ १७ ॥ अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद और प्रह्लाद नामवाले हुए उनमें प्रह्लाद विष्णुका भक्त हुआ ॥ १८ ॥ सूर्यासे अनुह्लादके पुलोमा महिष हुए ह्लादके धमनि भार्यासे वातापि और इल्वल पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ संह्लादकी कृति स्त्रीने पंचजननामक पुत्रको उत्पन्न किया प्रह्लादके पुत्र विरोचन तथा उनके पुत्र बलि हुए ॥ २० ॥ हे मुनीश्वर ! बलिके अशनासे सौ पुत्र उत्पन्न हुए वह बली महाशैव तथा शिवजीकी भक्तिमें तत्पर ॥ २१ ॥ दानशील उदार पवित्र

सिंहिका ह्यभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः॥ १७॥अनुह्लादश्च ह्लादश्च संह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥
प्रह्लादश्चानुजस्तत्र विष्णुभक्तिविचारधीः॥ १८॥ अनुह्लादस्य सूर्यायां पुलोमा महिषस्तथा॥ह्लादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम् ॥
॥१९॥ संह्लादस्य कृतिर्भार्यासूत पंचजनं ततः ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥ २० ॥ बलेः पुत्रशतं त्वासीदशनायां
मुनीश्वर ॥ बलिरासीन्महाशैवः शिवभक्तिपरायणः ॥२१॥ दानशील उदारश्च पुण्यकीर्तितपाः स्मृतः ॥ तत्पुत्रो बाणनामा यस्सोऽपि
शैववरस्सुधीः ॥ यस्संतोष्य शिवं सम्यग्गाणपत्यमवाप ह ॥ २२ ॥ सा कथा श्रुतपूर्वा ते बाणस्य हि महात्मनः ॥ कृष्णं यस्समरे
वीरस्सुप्रसन्नं चकार ह ॥२३॥ हिरण्याक्षसुताः पंच पंडितास्सुमहाबलाः ॥ कुकुरः शकनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा ॥ २४ ॥ महानादश्च
विक्रांतः कालनाभस्तथैव च ॥ इत्युक्ता दितिपुत्राश्च दनोः पुत्रान्मुने शृणु ॥२५॥ अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥ अयोमुखश्शं
बरश्च कपोलो वामनस्तथा ॥ २६ ॥ वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिरौ ॥ स्वर्भानुर्वृषपर्वा च ॥ विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ २७ ॥

कीर्त्तिवाले तपस्वी हुए बलिका ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर जो शैव और बुद्धिमान् था जिसने भलीभाँति शिवको सन्तुष्ट करके गणपतिका पद प्राप्त किया ॥ २२॥ महात्मा बाणासुरकी वह कथा तुमने पहलेही सुनली है कि जिस वीरने युद्धमें श्रीकृष्णजीको प्रसन्न किया था ॥ २३ ॥ हिरण्याक्षके पाँच पुत्र पंडित महाबली कुकुर, शकुनि, भूतोंका सन्ताप देनेवाला ॥ २४॥ महानाद, विक्रांत, कालनाभ नामवाले हुए हे मुने ! अब दितिके पुत्रोंको तथा दनुके पुत्रोंको सुनो ॥ २५ ॥ दनुके सौ पुत्र तीव्र पराक्रमवाले हुए अयोमुख, शंबर, कपोल तथा वामन ॥ २६ ॥ वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिर, स्वर्भानु,

वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ॥२७॥ यह सब दनुके पुत्र कश्यपसे उत्पन्नहुए हे मुने ! हे निष्पाप ! सुनो मैं प्रसंगसे उन पुत्रोंको वर्णन करता हूँ ॥२८॥ स्वर्भानुकी प्रभा नामवाली कन्या हुई तथा पुलोमाकी शची पुत्री उपदानवी हयशिरा शर्म्मिष्ठा यह वृषपर्वाकी कन्या हुईं ॥२९॥ पुलोमा और पुलोमिका यह दोनों वैश्वानरकी पुत्रीं हुईं और उन दोनोंके मारीचिसे बडी पराक्रमी अनेक सन्तानैं हुईं ॥३०॥ फिर उन दोनोंके साठ सहस्र पुत्र दानवोंको आनंद देनेवाले बडे तपसे मरीचिसे उत्पन्नहुए ॥ ३१ ॥ दानवोंके महाबली पौलोम कालखंज पुत्र हुए देवताओंके अवध्य हिरण्यपुरवासी पुत्र हुए ॥ ३२ ॥

एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादनुजज्ञिरे ॥ एषां पुत्राञ्च्छृणु मुने प्रसंगाद्वच्मि तेऽनघ ॥ २८ ॥ स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥ उपदानवी हयशिरा शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ २९ ॥ पुलोमा पुलोमिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥ बह्वपत्ये महावीर्य्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ३० ॥ तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः ॥ मरीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥ ३१ ॥ पौलोमाः कालखंजाश्च दानवानां महाबलाः ॥ अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ॥ ३२ ॥ पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना ॥ सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेस्सुतास्तथा ॥ ३३ ॥ दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥ सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ॥ ३४ ॥ राहुः शल्यो सुबलिनो बलश्चैव महाबलः ॥ वातापिर्नमुचिश्चैवाथेल्वलः स्वसृपस्तथा ॥ ३५ ॥ अजिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥ शरमाणश्शरकल्पश्च एते वंशविवर्द्धनाः ॥ ३६ ॥ एषां पुत्राश्च पौत्राश्च दनुवंशविवर्द्धनाः ॥ वहवश्च समुद्भूता विस्तरत्वान्न वर्णिताः ॥ ३७ ॥

जिनको पितामहके प्रसादसे अर्जुनने मारा था और विप्रचित्तिके सिंहिकासे अनेक पुत्र हुए ॥३३॥ वे दैत्य और दानवके संयोगसे अतिपराक्रमी महाबली सैंहिकेय नामसे प्रसिद्ध तेरह पुत्र उत्पन्नहुए ॥ ३४ ॥ सुबलि, राहु, शल्य, बल, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, तथा स्वसृप ॥ ३५ ॥ अजिक, नरक, कालनाभ शरमाण, शरकल्प, यह वंशके बढानेवाले पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ इनके पुत्र तथा पौत्र दनुवंशके बढानेवाले बहुत उत्पन्नहुए विस्तार होनेके कारण

नहीं वर्णन किये ॥ ३७ ॥ संह्रादके कुलमें दैतेय निवातकवच हुए और उसी कुलमें तपसे शुद्धात्मा मरुतहुए ॥ ३८ ॥ ताम्रासे महासत्ववाले षण्मुख आदि पुत्र कहे हैं, तथा काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, तथा शुकी ॥ ३९ ॥ गृद्धिकाश्वी, उलूकी, यह ताम्रा कन्यासे कहे हैं काकीने काकोंको उत्पन्न किया तथा उलूकीने प्रत्येक उलूकोंको उत्पन्न किया ॥४०॥ तथा श्येनीने श्येनोंको और भासीने भासोंको गृद्धीने गृद्धोंको और शुकीने शुकोंको, सुग्रीवीने शुभ पक्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥ कश्यपकी स्त्री ताम्राने घोडे ऊंट गधोंको उत्पन्न किया, इस प्रकार यह ताम्राका वंश वर्णन किया ॥४२॥ विनताके

संह्रादस्य तु दैतेया निवातकवचाः कुले ॥ उत्पन्ना मरुतस्तस्मिंस्तपसा भावितात्मनः ॥ ३८ ॥ षण्मुखाद्या महासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ॥ काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी च शुकी तथा ॥ ३९ ॥ गृद्धिकाश्वी ह्युलूकी च ताम्रा कन्याः प्रकीर्तिताः ॥ काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान् ॥ ४० ॥ श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृद्धी तु गृध्रकान् ॥ शुकी शुकानजनयत्सुग्रीवी शुभपक्षिणः ॥ ४१ ॥ अश्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्च ताम्रा च कश्यपप्रिया ॥ जनयामास चेत्येवं ताम्रावंशाः प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥ विनतायाश्च पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तस्था ॥ सुपर्णः पततां श्रेष्ठो नारुणस्स्वेन कर्मणा ॥ ४३ ॥ सुरसायास्सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥ अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥ येषां प्रधाना राजानः शेषवासुकितक्षकाः ॥ ऐरावतो महा पद्मः कंबलाश्वतरावुभौ ॥ ४५ ॥ ऐलापुत्रस्तथा पद्मः कर्कोटकधनंजयौ ॥ महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रो बलाहकः ॥ ४६ ॥ कुहरः पुष्पदन्तश्च दुर्मुखस्सुखस्तथा ॥ बहुशः खररोमा च पाणिरित्येवमादयः ॥ ४७ ॥

अरुण गरुड दो पुत्र उत्पन्न हुए, सुपर्ण धर्मात्मा पक्षियोंमें श्रेष्ठ हुए परन्तु अरुण अपने कर्मसे उत्तम नहीं हुए ॥ ४३ ॥ सुरसाके अतितेजस्वी सहस्र सर्प हुए और वे अनेक फनवाले आकाशचारी महात्मा हुए ॥ ४४ ॥ जिनके शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म तथा कम्बल और अश्वतर यह दोनों प्रधान राजा हुए ॥ ४५ ॥ ऐलाके पद्म, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक ॥ ४६ ॥ कुहर, पुष्पदन्त, दुर्मुख तथा सुमुख, बहुश,

खररोमा, पाणि आदिक पुत्र हुए ॥ ४७ ॥ क्रोधवशाके अनेक गण सब दंष्ट्रावाले जीव तथा अण्डज, पक्षी, जल जन्तु हुए, वराहीके पशु हुए ॥ ४८ ॥ अनायुषाके महाबली पचास पुत्र हुए वह बल, वृक्ष, विक्षर तथा बृहत् हुए ॥ ४९ ॥ सुरभिने शशा तथा भैंसोंको उत्पन्न किया, इलाने वृक्षों बेलों तथा सम्पूर्ण तृणजातिको उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ खशाने यक्ष राक्षसोंको तथा अप्सरस मुनिको उत्पन्न किया आरिष्टाने प्रभावसे मानवोत्तम सर्पोंको उत्पन्न किया ॥५१॥ हे मुनीश्वरो ! ! यह कश्यपके कुलवाले तुमसे वर्णन किये जिनके पुत्र पौत्र सैकडों सहस्रों हुए ॥५२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां

गणाः क्रोधवशायाश्च तस्यास्सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥ अंडजाः पक्षिणोऽब्जाश्च वराह्याः पशवो मताः ॥ ४८ ॥ अनायुषायाः पुत्राश्च पंचाशच्च महाबलाः ॥ अभवन्बलवृक्षौ च विक्षरोऽथ बृहंस्तथा ॥ ४९ ॥ शशांस्तु जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥ इला वृक्षाँल्ल ता वल्लीस्तृणजातीस्तु सर्वशः ॥ ५० ॥ खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ अरिष्टासूत सर्पांश्च प्रभावैर्मानवोत्तमान् ॥ ५१ ॥ एते कश्यपदायादाः कीर्तितास्ते मुनीश्वर ॥ येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्या मुमासंहितायां कश्यपवंशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एष मन्वन्तरे तात सर्गस्स्वारोचिषे स्मृतः ॥ वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ ॥ १ ॥ जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥ पूर्वं यानथ ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान्सप्त मानसान् ॥ ॥ २ ॥ पुत्रान्वै कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥ तेषां विरोधो देवानां दानवानां महानृषे ॥ ३ ॥ दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं समुपस्थिता ॥ स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ ४ ॥

पं० उ० सं० कश्यपवंशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले, हे तात ! स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो सृष्टि हुई सो कही वैवस्वतमनुके बडे वारुणयज्ञके विस्तार होनेपर ॥ १ ॥ हवन करतेहुए ब्रह्माजीकी रचना कहते हैं पहले उत्पन्नहुए सात मानस जिन ब्रह्मर्षियोंको ॥ २ ॥ साक्षात् ब्रह्माने अपने पुत्र कल्पना किया और उन देवता तथा दैत्योंके विरोधमें ॥ ३ ॥ दिति अपने पुत्रोंके नाश होजानेपर कश्यपके समीप गई कश्यप प्रसन्न हो

---

१ यह उत्पत्ति कश्यपजीकी प्रजापातिके सामर्थ्यसे है कारण कि, ब्रह्माजीने इनको यह सामर्थ्य दी है "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्तः" वह ज्ञानमार्गसे सब जीवोंके उत्पन्न होनेके कारणको जानते थे, इससे जिस २ में उनकी सामर्थ्यपडी वही वही उनकी स्त्री कहाई, इसलिये इस कथामें शंकाका अवकाश न जानना.

उससे आराधना किये गये ॥ ४ ॥ और उसे वरसे छला तब उस दितिने यह वर मांगा कि, इन्द्रके वध करनेके निमित्त सामर्थ्ययुक्त अतितेजस्वी पुत्र
होवै ॥ ५ ॥ तब महातपस्वीने प्रार्थना करनेपर उसे वर दिया और सौ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य आदि नियमको कहा ॥ ६ ॥ तब पवित्र सुन्दर वर्णवाली उसने
गर्भ धारण किया और ब्रह्मचर्यादि नियमका पालन किया ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् वह प्रशंसनीय व्रतवाले कश्यपजी दितिमें गर्भ धारण करके प्रसन्न मन हो
तप करनेको चल दिये ॥ ८ ॥ तब इन्द्र उसके अन्तरमें प्राप्त होनेकी इच्छा करनेलगे फिर इन्द्रने निन्यानवें वर्षमें उसका अन्तर देखा ॥ ९ ॥ वह दिति

वरेणच्छंदयामास सा च वव्रे वरं तदा ॥ पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥ ५ ॥ स तस्यै च वरं प्रादात्प्रार्थितं सुमहातपाः ॥ ब्रह्म
चर्य्यादिनियमं प्राह चैव शतं समाः ॥ ६ ॥ धारयामास गर्भं तु शुचिस्सा वरवर्णिनी ॥ ब्रह्मचर्य्यादिनियमं दितिर्दध्रेतथैव वै ॥ ७ ॥
ततस्त्वाधाय सोऽदित्यां गर्भं तं शंसितव्रतः ॥ जगाम कश्यपस्तप्तुं तपस्संहृष्टमानसः ॥८॥ तस्याश्चैवांतरं प्रेप्सुस्सोऽभवत्पाकशासनः ॥
ऊनवर्षे शते चास्या ददर्शान्तरमेव सः ॥ ९ ॥ अकृत्वा पादयोः शौचं दितिरर्वाक्शिरास्तदा ॥ निद्रामाहारयामास भाविनोऽर्थस्य गौर
वात् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरे शक्रस्तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥ वज्रपाणिस्तु तं गर्भं सप्तधा हि न्यकृन्तत ॥ ११ ॥ स पाट्यमानो
गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥ रुदन्तं सप्तधैकैकं मारोदीरिति तान्पुनः ॥ चकर्त वज्रपाणिस्तान्नैव मम्रुस्तथापि ते ॥ १२ ॥ ते तमूचुः
पात्यमानास्सर्वे प्रांजलयो मुने ॥ नो जिघांससि किं शक्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥ १३ ॥ इंद्रेण स्वीकृतास्ते हि भ्रातृत्वे सर्व एव च ॥
तत्यजुर्दैत्यभावं ते विप्रर्षे शंकरेच्छया ॥१४॥ मरुतो नाम ते देवा बभूवुस्सुमहाबलाः ॥ खगा एकोनपंचाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१५॥

पैरोंकी पवित्रता न करके नीचेको शिर किये, होनेवाले अर्थके गौरवसे निद्राको प्राप्त हुई ॥ १० ॥ इसी अवसरमें इन्द्रने उसके गर्भमें प्रवेश करके उस
गर्भके सात खण्ड किये ॥ ११ ॥ वज्रसे काटाहुआ वह गर्भ रोने लगा रोतेहुए उन सात खण्डोंको देख उनसे इन्द्र बोला कि, मत रोओ इंद्रके काटनेपर
भी वे न मरे ॥ १२ ॥ हे मुने ! तब गिरायेहुए वे सब हाथ जोडके इंद्रसे बोले, हे इन्द्र ! तुम हमें मारनेकी इच्छा न करो हम मरुत तुम्हारे भाई हैं ॥
॥ १३ ॥ हे विप्रर्षे ! तब इन्द्रने उनको भ्रातृत्त्वसे स्वीकार किया और उन्होंने शिवकी इच्छासे दैत्यभावको त्यागन किया ॥ १४ ॥ वे महाबली

मरुतनामवाले आकाशगामी इन्द्रके सहायक उश्वास पवन देवता हुए ॥ १५ ॥ उन बढेहुओंको प्रजापतिने क्रमसे उतने राज्य पृथक् पृथक् दिये उसको सुनो ॥ १६ ॥ अरिष्ट, पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य, धनाध्यक्ष, उनका यह सब जगत् है ॥ १७ ॥ हे महामुने! यह भूतसर्ग तुमसे भली भांति कहा अब क्रमसे राज्योंका विभाग सुनो मैं वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने पृथुवैन्यको अधिराज्यमें स्थापित कर क्रमसे राज्योंका देना प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका वृक्षोंका तथा नक्षत्र और ग्रहोंका यज्ञोंका तथा तपोंका राजा सोमको किया ॥ २० ॥ जलोंके राज्यमें वरुणको अभिषिक्त

तेषामेव प्रवृद्धानां हरिः प्रादात्प्रजापतिः ॥ क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वं शृणुष्व तत् ॥ १६ ॥ अरिष्टपुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः
प्रजापतिः ॥ पर्जन्यस्तु धनाध्यक्षस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ भूतसर्गमिमं सम्यगवोचं ते महामुने ॥ विभागं शृणु राज्यानां
क्रमशस्तं ब्रुवेऽधुना ॥ १८ ॥ अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ॥ ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ द्विजानां
वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ॥ यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २० ॥ अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् ॥ आदि
त्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ २१ ॥ प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम् ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥
॥ २२ ॥ वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम् ॥ २३ ॥ यक्षाणां राक्षसानां
च पार्थिवानां तथैव च ॥ सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ २४ ॥ शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् ॥ मृगाणामथ
शार्दूलं गोवृषं तु गवामपि ॥ २५ ॥ वनस्पतीनां वृक्षाणां वटं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ इति दत्तं प्रजेशेन राज्यं सर्वत्र वै क्रमात् ॥ २६ ॥

किया राजाओंके आधिपत्यमें प्रभु वैश्रवणको स्थापित किया आदित्योंके राज्यमें विष्णुको वसुओंके राज्यमें पावकको ॥ २१ ॥ प्रजापतियोंके राज्यमें दक्षको मरुतोंके राज्यमें इंद्रको दैत्योंके तथा दानवोंके राज्यमें अतितेजस्वी प्रह्लादको ॥ २२ ॥ पितरोंके राज्यमें वैवस्वतको तथा यमको नियुक्त किया माताओंके तथा व्रतोंके मंत्रोंके और गौओंके ॥ २३ ॥ यक्षोंके तथा राक्षसोंके पार्थिवोंके तथा सम्पूर्ण भूत पिशाचोंके राज्यमें शूलपाणि शिवजीको नियुक्त किया ॥ २४ ॥ शैलोंके राज्यमें हिमालयको नदियोंके राज्यमें समुद्रको मृगोंके राज्यमें सिंहको गाय बैलोंके राज्यमें गोवृषको ॥ २५ ॥ वनस्पति और वृक्षोंके

राज्यमें वटको नियुक्त किया इस प्रकार क्रमसे ब्रह्माजीने सर्वत्र राज्य दिया ॥ २६ ॥ सर्वव्यापक सबके अन्तर्यामी विश्वपतिने पूर्वदिशामें वैराज्य प्रजापतिके पुत्रको स्थापित किया ॥ २७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दक्षिण दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र सुधन्वाको स्थापित किया ॥ २८ ॥ और पश्चिमदिशामें रजसके पुत्र अच्युतको और महात्मा केतुमंतको ॥ २९ ॥ तथा पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र हिरण्यरोमाको भी राज्य दिया और उत्तर दिशामें राजा दुर्धर्षको अभिषिक्त किया ॥ ३० ॥ हे शौनक ! यह उन पृथुवैन्यका वर्णन किया यह स्थान बडा ऋद्धिवाला प्राचीन कहा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः ॥ स्थापयामास सर्वात्मा राज्ये विश्वपतिर्विभुः ॥ २७ ॥ तथैव मुनिशार्दूल कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ दक्षिणस्यां तथा पुत्रं सुधन्वानमचीक्लृपत् ॥ २८ ॥ पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ॥ केतुमन्तं महात्मानं राजानं व्यादिशत्प्रभुः ॥ २९ ॥ तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ उदीच्यां दिशि राजानं दुर्धर्षं सोऽभ्यषेचयत् ॥ ३० ॥ तस्य विस्तरमाख्यातं पृथोर्वैन्यस्य शौनक ॥ महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ शौनक उवाच ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि विस्तरेणानुकीर्तय ॥ यावंतो मनवश्चैव श्रोतुमिच्छामि तानहम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव ततस्स्वारोचिषस्तथा ॥ उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ २ ॥ एते च मनवः षट् ते संप्रोक्ता मुनिपुंगव ॥ वैवस्वतो मुनिश्रेष्ठ सांप्रतं मनुरुच्यते ॥ ३ ॥ सावर्णिश्च मनुश्चैव ततो रौच्यस्तथा परः ॥ तथैव ब्रह्मसावर्णिश्चत्वारो मनवस्तथा ॥ ४ ॥ तथैव धर्मसावर्णी रुद्रसावार्णिरेवच ॥ देवसावर्णिराख्यात इंद्रसावर्णिरेव च ॥ ५ ॥

पं० उ० सं० सर्गवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ शौनकजी बोले, सम्पूर्ण मन्वन्तरोंको विस्तारसे वर्णन करो जितने मनुहैं उन सबोंको मैं सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ सूतजी बोले स्वायम्भुव मनु तथा स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह छे मनु तुमसे कहे हे मुनिश्रेष्ठ ! अब वैवस्वत मनुको कहतेहैं ॥ ३ ॥ सावर्णि मनु तिसके पीछे रौच्य तथा ब्रह्मसावर्णि यह चार मनुहैं ॥ ४ ॥ और धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि,

और इन्द्रसावर्णि कहेहैं ॥ ५ ॥ बीतेहुए तथा वर्त्तमान और विना आयेहुए जो मनु मैंने सुनेहैं वे सब तुमसे कहे ॥ ६ ॥ हे मुनि ! तीनों कालके यह चौदह मनु कहे जिन्होंका सहस्र युगपर्यन्त कल्प निर्माण किया जाता है ॥ ७ ॥ हे शौनक ! उनके ऋषि तथा पुत्र देवगणों आदि यशस्वियोंको क्रमसे वर्णन करता हूं प्रीतिसे सुनो ॥ ८ ॥ मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ, यह सात ब्रह्माके पुत्रहैं ॥९॥ हे मुने ! उत्तर दिशामें सप्तर्षि तथा स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यामानामवाले देवता भी निवास करते थे ॥१०॥ आग्नीध्र, तथा अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्,

अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ कीर्तिता मनवश्चापि मयैवैते यथा श्रुताः ॥ ६ ॥ मुने चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ॥ प्रोक्तानि निर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्य्ययः ॥ ७ ॥ ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणांस्तथा ॥ शृणु शौनक सुप्रीत्या क्रमशस्तान्यशस्विनः ॥ ८ ॥ मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणस्सुताः ॥ ९ ॥ उत्तरस्यां दिशि तथा मुने सप्तर्षयस्तथा ॥ यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायंभुवेंतरे ॥ १० ॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥ ज्योतिष्मान्धृतिमान्हव्यः सवनश्शुभ्र एव च ॥ ११ ॥ स्वायंभुवस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः ॥ कीर्तिता मुनिशार्दूल तत्रेन्द्रो यज्ञ उच्यते ॥ १२ ॥ प्रथमं कथितं तात दिव्यं मन्वंतरं तथा ॥ द्वितीयं ते प्रवक्ष्यामि तन्निबोध यथातथम् ॥ १३ ॥ ऊर्जस्तंभः परस्तंभ ऋषभो वसुमांस्तथा ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमांश्चैव रोचिष्मान्सप्तमस्तथा ॥ १४ ॥ एते महर्षयो ज्ञेयास्तत्रेन्द्रो रोचनस्तथा ॥ देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेंऽतरे ॥ १६ ॥

हव्य, सवन, शुभ्र ॥ ११ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महात्मा स्वायम्भुव मनुके दश पुत्र कहेहैं उनमें इन्द्र यज्ञ नामवाला है ॥ १२ ॥ हे तात ! पहला दिव्य मन्वन्तर कहा अब दूसरा मन्वन्तर वर्णन करता हूँ उसको ठीकठीक सुनो ॥ १३॥ ऊर्जस्तम्भ, परस्तम्भ, ऋषभ, तथा वसुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सातवाँ रोचिष्मान् ॥ १४ ॥ यह महार्षि जाननेके योग्यहैं उनमें रोचननामक इन्द्रहै और स्वारोचिष मन्वन्तरमें तुषित नामवाले देवता कहेहैं ॥ १५ ॥

हरि, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्त्ति, अयस्मय, प्रथित, मनस्यु, नभ, सूर्य ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह महात्मा स्वारोचिष मनुके दश पुत्र बडे वीर्य और पराक्रमवाले कहेहैं ॥ १७ ॥ हे मुने ! यह दूसरा मन्वन्तर तुमसे कहा अब तीसरा मन्वन्तर तुमसे कहता हूँ उसको विधिपूर्वक सुनो ॥ १८ ॥ वासिष्ठनामवाले सात वसिष्ठके पुत्रहैं, ऊर्ज नामवाले महातेजस्वी देव हिरण्यगर्भके पुत्र कहेहैं ॥ १९ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! मैं यह ऋषि वर्णन करता हूं तुम सुनो उत्तम दश मनुके पुत्र कहेहैं ॥ २० ॥ वे इष, ऊर्जित, ऊर्ज, मधु, "माधव" शुचि, शुक्र, वह, नभस्, नभ ॥ २१ ॥ ऋषभ आदिहैं उनमें सत्यवेद श्रुत

हरिघ्नस्सुकृतिर्ज्योतिरयोमूर्तिरयस्मयः ॥ प्रथितश्च मनस्युश्च नभस्सूर्यस्तथैव च ॥ १६ ॥ स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः ॥ कीर्तिता मुनिशार्दूल महावीर्यपराक्रमाः ॥ १७ ॥ द्वितीयमेतत्कथितं मुने मन्वन्तरं मया ॥ तृतीयं तव वक्ष्यामि तन्निबोध यथातथम् ॥ १८ ॥ वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम महौजसः ॥ १९ ॥ ऋषयोऽत्र समाख्याताः कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥ औत्तमेया ऋषिश्रेष्ठ दश पुत्रा मनोः स्मृताः ॥ २० ॥ इष ऊर्जित ऊर्जश्च मधुर्माधव एव च ॥ शुचिश्शुक्रवहश्चैव नभसो नभ एव च ॥ २१ ॥ ऋषभस्तत्र देवाश्च सत्यवेदश्रुतादयः ॥ तत्रेन्द्रस्सत्यजिन्नाम त्रैलोक्याधिपतिर्मुने ॥ ॥ २२ ॥ तृतीयमेतत्परमं मन्वंतरमुदाहृतम् ॥ मन्वंतरं चतुर्थं ते कथयामि मुने शृणु ॥ २३ ॥ गार्ग्यः पृथुस्तथा वाग्मी जन्यो धाता कपीनकः ॥ कपीवान्सप्त ऋषयः सत्या देवगणास्तथा ॥ २४ ॥ तत्रेंद्रस्त्रिशिखो ज्ञेयो मनुपुत्रान्मुने शृणु ॥ द्युतिपोतस्सौतपस्यस्तपश्शूलश्च तापनः ॥२५॥ तपोरतिरकल्माषो धन्वी खड्गी महानृषिः ॥ तामसस्य स्मृता एते दश पुत्रा महाव्रताः ॥ २६ ॥

आदि देवता हुए हे मुने ! उस समय सत्यजितनामक तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र हुआ ॥२२॥ यह तीसरा मन्वन्तर कहा हे मुने ! अब चौथा मन्वन्तर तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ २३ ॥ गार्ग्य, पृथु, वाग्मी, जन्य, धाता, कपीनक, कपीवान् इसमें यह सात ऋषि कहेहैं और सत्य देवगणहैं ॥ २४ ॥ हे मुने ! उनमें त्रिशिख नामवाले इन्द्र कहेहैं अब मनुके पुत्रोंको सुनो द्युतिपोत, सातपस्य, तप, शूल, तापन ॥२५॥ तपोरति, अकल्माष, धन्वी, खड्गी, महानृषि,

यह महाव्रतवाले तामसके दश पुत्र कहेहैं ॥ २६ ॥ यह मैंने चौथे तामस मन्वन्तरका वर्णन किया हे तात ! अब पांचवाँ मन्वंतर सुनो ॥ २७ ॥ देवबाहु, जय, मुनि, वेदशिर, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु, सोमप ॥ २८ ॥ यह सत्यनेत्रवाले दूसरे सप्तर्षि कहेहैं और भूत, रज, तप, प्रकृति, यह देवताहैं ॥ २९ ॥ उस समय विभुनामक तीनों लोकोंके स्वामी इंद्र कहेहैं और तामसके सहोदर भाई रैवत नामवाले मनुहैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! अर्जुन, पंक्तिविंध्य यह दयाके पुत्र बडे तपसे युक्तहुए सुमेरुपर्वतके ऊपर निवास करतेहैं ॥ ३१ ॥ छठा मन्वंतर कहतेहैं रुचि प्रजापतिके पुत्र रौच्यनाम मनु कहे

तामसस्यांतरं चैव मनो मे कथितं तव ॥ चतुर्थं पंचमं तात शृणु मन्वंतरं परम् ॥ २७ ॥ देवबाहुर्जयश्चैव मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमपाः ॥२८॥ सत्यनेत्ररताश्चान्ये एते सप्तर्षयोपरे ॥ देवाश्च भूतरजसस्तपःप्रकृयस्तथा ॥ २९ ॥
तत्रेंद्रो विभुनामा च त्रैलोक्याधिपतिस्तथा ॥ रैवताख्यो मनुस्तत्र ज्ञेयस्तामससोदरः ॥ ३० ॥ अर्जुनः पंक्तिविंध्यो वा दयायास्त
नया मुने ॥ महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे वसंति हि ॥३१॥ रुचेः प्रजापतिः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥ भूत्या चोत्पादितो देव्यां
भौत्यो नामाभवत्सुतः ॥ ३२ ॥ अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवस्स्मृताः ॥ अनागताश्च सप्तैव स्मृता दिवि महर्षयः ॥ ३३ ॥
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाजः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥ ३४ ॥ रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमान्सु
बहुश्रुतः ॥ भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥ ३५ ॥ गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान्गौतमः कृपः ॥ कौशिको गालवश्चैव
रुरुः काश्यप एव च ॥ ३६ ॥ एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ॥ देवाश्चानागतास्तत्र त्रयः प्रोक्तास्स्वयंभुवा ॥ ३७ ॥

गयेहैं इनसे भूतिनामक स्त्रीमें भौत्यनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ यह आपसे अनागत सात मनु इस कल्पमें वर्णन किये इसी प्रकार अनागत महर्षि भी द्युलोकमें सातहैं ॥ ३३ ॥ सातवें मन्वंतरमें कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, यह सप्तर्षिहैं ॥३४॥ आगे होनेवाले जमदग्निके पुत्र परशुराम आत्रेय व्यास बहुश्रुत भरद्वाज वंशीदीप्तिमान् महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ॥ ३५ ॥ गौतमसुत शरद्वान्, कृपाचार्य, कौशिकवंशी गालव, काश्यपवंशी रुरु ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आगे यह सात महात्मा ऋषि होनेवालेहैं इनमें स्वयम्भुने तीनही अनागत देवता मानेहैं ॥ ३७ ॥

वे मरीचसुत महात्मा कश्यपजीके पुत्र होंगे विरोचनपुत्रबलि उनका इन्द्र होगा ॥ ३८ ॥ विषांग, अवनीवान्, सुमन्त, धृतिमान्,वसु, सूरि, सुरा, विष्णु राजा सुमति ॥ ३९ ॥ हे शौनक ! यह सावर्णि मनुके दश पुत्र होंगे यह आठवाँ मन्वंतर कहा अब नौमा सुनो ॥ ४० ॥ सुनो पहले दक्षसावर्णिमनुको कहता हूँ पुलस्त्यवंशी मेधातिथि, कश्यपवंशी वसु ॥ ४१ ॥ भृगुवंशी ज्योतिष्मान, बुद्धिमान् अंगिरा, वशिष्ठवंशी सवन, अत्रिवंशी हव्य ॥ ४२ ॥ और पुलह यह सप्तऋषि रोहित मन्वंतरके अन्तरमें होंगे हे महामुने ! इनमें देवताओंके तीन गणहैं ॥ ४३ ॥ वे दीक्षापुत्र प्रजापति रोहितके पुत्र होंगे धृष्टकेतु, दीप्तिकेतु,

मरीचेश्चैव पुत्रास्ते कश्यपस्य महात्मनः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिंद्रो भविष्यति ॥ ३८ ॥ विषाङ्गश्चावनीवांश्च सुमंतो धृतिमा
न्वसुः ॥ सूरिः सुराख्यो विष्णुश्च राजा सुमतिरेव च ॥ ३९ ॥ सावर्णेश्च मनोः पुत्रा भविष्या दश शौनक ॥ इहाष्टमं हि कथितं
नवमं चान्तरं शृणु ॥ ४० ॥ प्रथमं दक्षसावर्णिं प्रवक्ष्यामि मनुं शृणु ॥ मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः कश्यप एव च ॥ ४१ ॥
ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव धृतिमानंगिरास्तथा ॥ सवनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्य एव च ॥ ४२ ॥ पुलहस्सप्त इत्येते ऋषयो रौहितेंतरे ॥
देवातानां गणास्तत्र त्रय एव महामुने ॥ ४३ ॥ दीक्षापुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ॥ धृष्टकेतुर्दीप्तकेतुः पंचहस्तो निराकृतिः
॥ ४४ ॥ पृथुश्रवा भूरिद्युम्नो ऋचीको बृहतो गयः ॥ प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः ॥ ४५ ॥ दशमे त्वथ पर्य्यायै द्विती
यस्यांतरे मनोः ॥ हविष्मान्पुलहश्चैव प्रकृतिश्चैव भार्गवः ॥ ४६ ॥ आयो मुक्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चाव्ययस्स्मृतः ॥ पौलस्त्यः
प्रयतिश्चैव भामारश्चैव कश्यपः ॥ ४७ ॥ अंगिरानेनसस्सत्यः सप्तैते परमर्षयः ॥ देवतानां गणाश्चापि द्विषिमंतश्च ये स्मृताः ॥
॥ ४८ ॥ तेषामिन्द्रस्स्मृतः शंभुस्त्वयमेव महेश्वरः ॥ अक्षत्वानुत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान् ॥ ४९ ॥

पंचहस्त, निराकृति ॥ ४४ ॥ पृथुश्रवा, भूरिद्युम्न, ऋचीक, बृहत, गय, यह प्रथम सावर्णिके नौ पुत्र महातेजस्वी होंगे ॥ ४५ ॥ जब दूसरे मनुके अंतरमें दशमा मनु होगा उसमें पुलहवंशी हविष्मान्, भृगुवंशी प्रकृति ॥ ४६ ॥ अत्रिवंशी आयोमुक्ति, वशिष्ठवंशी अव्यय, पुलस्त्यवंशी प्रयति, कश्यपवंशी भासार, ॥ ४७ ॥ अंगिरावंशी अनेनस् यह सात परमर्षि होंगे इसमें द्विष्मन्त नामवाले देवताओंके गण होंगे ॥ ४८ ॥ उनके इंद्र साक्षात शम्भु होंगे अक्षत्वान्,

उत्तमौजा, वीर्यवान्, भूरिषेण ॥ ४९ ॥ शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, अर्चि यह मनुके दश पुत्र होंगे ॥ ५० ॥ जब तीसरेके अंतरमें ग्यारहवाँ मनु होगा उसमेंके सात ऋषि तुमसे कहता हूं ॥ ५१ ॥ कश्यपवंशी हविष्मान्, वरुणवंशी बपुष्मान्, अत्रिवंशी वशिष्ठ, अंगिरावंशी अनय ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यवंशी चारुधृष्य, निस्वर और तेजस अग्नि यह सात ऋषि और तीन देवताओंके गण होंगे ॥ ५३ ॥ यह ब्रह्माके पुत्र वैधृत कहावेंगे सर्वग, सुशर्मा, देवानीक, क्षेमक ॥ ५४ ॥ दृढेषु, खंडक, दर्श,कुहू, बाहू यह मनुपुत्र होंगे यह तीसरे सावर्णिमनुके नौ पौत्र होंगे ॥५५॥ चतुर्थ सावर्णिके ऋषि

शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ॥ भूरिद्युम्नः सुवर्चार्चिर्दश त्वेते मनोस्सुताः ॥ ५० ॥ एकादशे तु पर्याये तृतीयस्यांतरे मनोः ॥ तस्यापि सप्त ऋषयः कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥ ५१ ॥ हविष्मान्कश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव वारुणः ॥ आत्रेयोऽथ वसिष्ठश्च ह्यनयस्त्वंगिरास्तथा ॥ ५२ ॥ चारुधृष्यश्च पौलस्त्यो निःस्वरोऽग्निस्तु तैजसः ॥ सप्तैते ऋषयः प्रोक्तास्त्रयो देवगणास्स्मृताः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मणस्तु सुतास्ते हि त इमे वैधृताः स्मृताः ॥ सर्वगश्च सुशर्म्मा च देवानीकस्तु क्षेमकः ॥ ५४ ॥ दृढेषुः खंडको दर्शः कुहुर्बाहुर्मनोः स्मृताः ॥ सावर्णस्य तु पौत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥ ५५ ॥ चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन्सप्त निबोध मे ॥ द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयस्सुतपास्तथा ॥ ५६ ॥ अंगिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी कश्यपस्तथा ॥ तपोधनश्च पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः ॥ ५७ ॥ भार्गवस्सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तपसो निधिः ॥ पंच देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणस्सुताः ॥ ५८ ॥ ऋतधामा तदिन्द्रो हि त्रिलोकीराज्यकृत्सुखी ॥ द्वादशे चैव पर्याये भाव्ये रौच्यांतरे मुने ॥ ५९ ॥ अंगिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यो हव्यवांस्तु यः ॥ पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सवः ॥ ६० ॥ निष्प्रपंचस्तथात्रेयो निर्देहः कश्यपस्तथा ॥ सुतपाश्चैव वासिष्ठस्सप्तैवैते महर्षयः ॥ ६१ ॥

सुनो वशिष्ठपुत्र द्युति, अत्रिगोत्री सुतपा ॥ ५६ ॥ तपोमूर्ति अंगिरा, तपस्वी कश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पुलह ॥ ५७ ॥ और सातवें तपोनिधि भार्गव, ये सप्तर्षि जानने ब्रह्माजीके मानसी पुत्र पांच इसमें देवता जानने ॥ ५८ ॥ त्रिलोकीका राज्य करनेवाला ऋतधामानामक इन्द्र होगा, फिर बारहवें रौच्यनाम मन्वन्तरमें ॥ ५९ ॥ धृतिमान् अंगिरा, हव्यवान् पौलस्त्य, तत्त्वदर्शी पौलह, निरुत्सव भार्गव, ॥ ६० ॥ प्रपंच रहित आत्रेय, निर्देह कश्यप,

वशिष्ठवंशी सुतपा, यह सप्तर्षि होंगे ॥ ६१ ॥ स्वयंभूने इसमें देवताओंके तीन गण कहे हैं इनके इन्द्रका नाम दिवस्पति होगा विचित्र, चित्र ॥ ६२ ॥ नय, धर्म, धृतोंध्र, सुनेत्र क्षत्रवृद्धक निर्भय सुतपा द्रोण यह रौच्य मनुके पुत्र होंगे ॥ ६३ ॥ * चौदहवें सत्यमनुके पर्यायमें कश्यपवंशी आग्नीध्र, पुलस्त्यवशी मागध, ॥६४॥ भृगुवंशी अतिवाह्य, शुचिनामा आंगिरस, अत्रिगोत्री युक्त वशिष्ठके पोते ॥६५॥ अजित और पुलह यह अन्तके मन्वन्तरमें सात ऋषि होंगे पवित्रको आदि लेकर चाक्षुष देवता होंगे इस मन्वन्तरमें शुचिनामक इन्द्र होगा ॥ ६६ ॥ इन अतीत अनागत महर्षियोंको जो सदा

त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयंभुवा ॥ दिवस्पतिस्तमिन्द्रो वै विचित्रश्चित्र एव च ॥ ६२ ॥ नयो धर्मो धृतोंध्रश्च सुनेत्रः क्षत्रवृद्धकः ॥ निर्भयस्सुतपा द्रोणो मनो रौच्यस्य ते सुताः * ॥ ६३ ॥ चतुर्दशे तु पर्याये सत्यस्यैवांतरे मनोः ॥ आग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः ॥ ६४ ॥ भार्गवोऽप्यतिवाह्यश्च शुचिरांगिरसस्तथा ॥ युक्तश्चैव तथात्रेयः पौत्रो वाशिष्ठ एव च ॥ ॥ ६५ ॥ अजितः पुलहश्चैव ह्यंत्यास्सप्तर्षयश्च ते ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ॥ ६६ ॥ एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते ॥ अतीतानागतानां वै महर्षीणां नरैस्सदा ॥ ६७ ॥ देवतानां गणाः प्रोक्ताश्शृणु पंच महामुने ॥ तुरंगभीरुर्बुध्नश्च तनुग्रोऽनूग्र एव च ॥ ६८ ॥ अतिमानी प्रवीणश्च विष्णुस्संक्रंदनस्तथा ॥ तेजस्वी सबलश्चैव सत्यस्त्वेते मनोस्सुताः ॥ ६९ ॥ भौमस्यैवाधिकारे वै पूर्वकल्पस्तु पूर्यते ॥ इत्येतेऽनागताऽतीता मनवः कीर्तिता मया ॥ ७० ॥

प्रातःकाल उठकर कीर्तन करते हैं वे सुख पाते हैं ॥ ६७ ॥ हे महामुने ! इस चौदहवें मनुमें देवताओंके पांच गण होंगे और तुरंगभीरु बुध्न तनुग्र, अनूग्र ॥ ६८ ॥ अतिमानी प्रवीण विष्णु संक्रन्दन तेजस्वी सबल यह सत्य मनुके पुत्र होंगे ॥ ६९ ॥ भौम मनुके अधिकारमें पूर्वकल्प पूर्ण होजाता है यह

---

* यहां एक मन्वंतर किसी प्रकार छूट गया है सो हमने ग्रन्थांतरसे त्रुटि पूर्ण की है तेरहवां मनु आत्मज्ञानी सावर्णि होगा चित्रसेन विचित्र आदि उसके पुत्र होंगे ॥ १ ॥ सुकर्म सुत्राम नामवाले देवता और दिवस्पति नामवाला इन्द्र होगा निर्मोक तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे ॥ २ ॥

* मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ १ ॥ देवाःसुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ २ ॥

मैंने तुमसे भूत और भविष्यके मनु कीर्तन किये ॥ ७० ॥ यह सनत्कुमारने व्यासजीके प्रति कीर्तन किये हैं, जो व्यासजी महातेजस्वी हैं यह मनु अपने
धर्मसे सहस्रयुगतक पालना करते हैं ॥ ७१ ॥ पीछे तपसे युक्त प्रजाके सहित वे ब्रह्मलोकको जाते हैं, सत्तर चौकडी और एक चौकडी युगतक एक
मन्वन्तरकी स्थिति रहती है ॥ ७२ ॥ यह आपसे कीर्त्तिके बढानेवाले चौदह मनु कहे हैं सब मनुओंके संहारके अन्तमें फिर सृष्टि होती है ॥ ७३ ॥
सौ वर्षमें भी उनका अन्तर कोई नहीं कह सकता सौ हजार युगकी पूर्तिमें कल्प समाप्त होता है ॥ ७४ ॥ उस समय सूर्यकी किरणोंसे सब प्राणी दग्ध

उक्तास्सनत्कुमारेण व्यासायामिततेजसा ॥ पूर्णे युगसहस्रांते परिपाल्यः स्वधर्मतः ॥ ७१ ॥ प्रजाभिस्तपसा युक्ता ब्रह्मलोकं व्रजंति
ते ॥ युगानि सप्ततिस्त्वेकं साग्राण्यंतरमुच्यते ॥ ७२ ॥ चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु संहारांते पुन
र्भवः ॥ ७३ ॥ न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ पूर्णे शतसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ॥ ७४ ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि
दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सदादित्यगणैर्मुने ॥ ७५ ॥ प्रविशंति सुरश्रेष्ठ हरिं नारायणं परम् ॥ स्रष्टारं सर्व
भूतानां कल्पांतेषु पुनःपुनः ॥ ७६ ॥ भूयोपि भगवान् रुद्रस्संहर्ता काल एव हि ॥ कल्पांते तत्प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै
॥ ७७ ॥ ॥ इति ते कथितं सर्वं मन्वंतरसमुद्भवम् ॥ विसर्गं पुण्यमाख्यानं धन्यं कुलविवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्वमन्वंतरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां
महाऋषेः ॥ तस्य भार्याऽभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी सुरेणुका ॥ १ ॥

होने लगते हैं हे मुने ! तब सत् आदित्य आदि ब्रह्माजीको आगे करके ॥७५॥ सुरोंमें श्रेष्ठ हरि नारायणमें प्रवेश करजाते हैं यह कल्पान्तमें सब भूतोंको
बारंबार उत्पन्न करते हैं ॥ ७६ ॥ फिरभी कालस्वरूप भगवान् शिव कल्पान्तमें संहार करनेवाले हैं अब वैवस्वत मन्वन्तरको वर्णन करूंगा ॥ ७७ ॥
इस प्रकार यह मन्वन्तरोंकी उत्पत्ति सहित प्रशंसनीय कुलके बढानेवाला विसर्ग सम्बन्धी पवित्र इतिहास तुमसे कहा ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटी
कायां पं० उ० सं० सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले,महर्षि कश्यपसे दाक्षायणीमें विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए उनकी

स्त्री संज्ञा त्वाष्ट्री सुरेणुका देवी हुई ॥ १ ॥ हे मुने ! वह रूप यौवनकी विस्तार करने वाली अपने पतिके महादुस्सह तेजसे सन्तुष्ट नहीं हुई ॥ २ ॥
अतितेजस्वी सूर्यके तेजको न सहनेवाली सुन्दरवर्णयुक्त वह संज्ञा दह्यमान हो उद्वेग करने लगी ॥ ३ ॥ हे ऋषे ! उस समय सूर्यने इस संज्ञामें तीन सन्तान
उत्पन्न किये पहले मनु श्राद्धदेव प्रजापति ॥ ४ ॥ तथा यम और यमुना यह दोनों एकसाथ उत्पन्न हुए इस प्रकार उसमें सूर्यसे तीन सन्तान उत्पन्न हुईं॥
॥ ५ ॥ संज्ञाने सूर्यके उस गोलाकार स्वरूपको देख न सहके अपनी शुभ छायाको निर्माण किया ॥ ६ ॥ वह मायारूपी छाया भक्तिपूर्वक संज्ञासे यह

मुनेऽसहिष्णुना तेन तेजसा दुस्सहेन च ॥ भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ॥ २ ॥ आदित्यस्य हि तद्रूपमसहिष्णुस्सुतेजसः ॥
दह्यमाना तदोद्वेगमकरोद्वरवर्णिनी ॥ ३ ॥ ऋषेऽस्यां त्रीण्यपत्यानि जनयामास भास्करः ॥ संज्ञायां तु मनुः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः
॥ ४ ॥ यमश्च यमुना चैव यमलौ संबभूवतुः ॥ एवं हि त्रीण्यपत्यानि तस्यां जातानि सूर्य्यतः ॥ ५ ॥ संवर्तुलं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा
विवस्वतः ॥ असहंती ततश्छायामात्मनस्साऽसृजच्छुभाम् ॥ ६ ॥ मायामयी तु सा संज्ञामवोचद्भक्तितश्शुभे ॥ किं करोमीह कार्य्यं
ते कथयस्व शुचिस्मिते ॥ ७ ॥ ॥ संज्ञोवाच ॥ अहं यास्यामि भद्रं ते ममैव भवनं पितुः ॥ त्वयैतद्भवने सत्यं वस्तव्यं निर्विका
रतः ॥ ८ ॥ इमौ मे बालकौ साधू कन्या चेयं सुमध्यमा ॥ पालनीयाः सुखेनैव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ९ ॥ छायोवाच ॥
आकेशग्रहणाद्देवि सहिष्येऽहं सुदुष्कृतम् ॥ नाख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता साऽग
मद्देवी व्रीडिता सन्निधौ पितुः ॥ पित्रा निर्भर्त्सिता तत्र नियुक्ता सा पुनः पुनः ॥ ११ ॥

बोली हे शुभे ! हे शुचिस्मिते ! तेरा क्या ? कार्य करूं सो सब कह ॥ ७ ॥ संज्ञा बोली, मैं अपने पिताके घरको जाती हूं तेरा कल्याण हो तुम यहां
विना विकारसे निवास करो ॥ ८ ॥ यह मेरे दोनों श्रेष्ठ बालक तथा यह मध्यमा कन्या भी सुखसे पालनी चाहिये यदि तू मेरा हित चाहती है ॥ ९ ॥
छाया बोली, हे देवि ! केश ग्रहणपर्यन्त मैं कठिनाईको सहूँगी और तेरा रहस्यवृत्त सूर्यसे न कहूंगी हे देवि ! तू सुखसे जा ॥ १० ॥ सूतजी बोले,

ऐसा कहके वह संज्ञा देवी लज्जित हो पिताके समीप चली गई तब पितासे बारम्बार ललकारी हुई वहीं जानेको नियुक्त की गई ॥ ११ ॥ तब अपने स्वरूपको छिपाय घोडी बनके उत्तर कुरुदेशोंमें प्राप्त होके मनुष्योंके मध्यमें विचरने लगी ॥ १२ ॥ सूर्यने संज्ञाको मान उस छायामें सावर्णिमनु नामवाले सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ संज्ञासे प्रार्थना कीहुई वह छाया अपने पुत्रमें नित्य अधिक स्नेह करती थी उतना स्नेह पहले पुत्रोंमें नहीं करती थी ॥ १४ ॥ छोटा भाई तो असमर्थ था अतः यम उसको नहीं सहताथा बाल्यावस्थासे तथा अर्थके गौरव होनेसे क्रोधित होके ॥ १५ ॥ जब वैवस्वत

अगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपं ततस्स्वकम् ॥ कुरूंस्तदोत्तरान्प्राप्य नृणां मध्ये चचार ह ॥ १२ ॥ संज्ञां तां तु रविर्मत्वा छायायां
सुसुतं तदा ॥ जनयामास सावर्णिं मनुं वै संविता किल ॥ १३ ॥ संज्ञाऽनुप्रार्थिता छाया सा स्वपुत्रेऽपि नित्यशः ॥ चकाराभ्य
धिकं स्नेहं न तथा पूर्वजे सुते ॥ १४ ॥ अनुजश्चाक्षमस्तत्तु यमस्तं नैव चक्षमे ॥ स सरोषस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥
॥ १५ ॥ छायां संतर्जयामास यदा वैवस्वतो यमः ॥ तं शशाप ततः क्रोधाच्छाया तु कलुषीकृता ॥ १६ ॥ चरणः पततामेष
तवेति भृशरोषितः ॥ यमस्ततः पितुस्सर्वं प्रांजलिः प्रत्यवेदयत् ॥ १७ ॥ भृशं शापभयोद्विग्नस्संज्ञावाक्यैर्विचेष्टितः ॥ मात्रा स्नेहेन
सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥ १८ ॥ स्नेहमस्मास्वपाकृत्य कनीयांसं बिभर्त्ति सा ॥ तस्मान्मयोद्यतः पादस्तद्भवान् क्षंतुमर्हति ॥ १९ ॥
शप्तोहमस्मि देवेश जनन्या तपतांवर ॥ तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥ २० ॥ सवितोवाच ॥ असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र
कारणम् ॥ येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २१ ॥

यमने छायाको धिक्कारा तो क्रोधित हुई छायाने उसे शाप दिया ॥ १६ ॥ कि अत्यन्त रोषितहुआ तेरा यह चरण गिरजाय तिसके पीछे यमने हाथ जोड़के अपने पितासे सब निवेदन करदिया ॥ १७ ॥ शापके भयसे अतिदुःखी हुआ तथा संज्ञाके वाक्योंसे चेष्टित हो यमने कहा सम्पूर्ण पुत्रोंमें माताको समान स्नेहसे वर्तना चाहिये ॥ १८ ॥ वह माता हममें स्नेह हटाके छोटे भाईको पालतीहै इस कारण मैंने चरणका प्रहार किया उसे आप क्षमा करनेके योग्यहैं ॥ १९ ॥ हे देवेश ! हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ! मुझे माताने शापदिया हे गोपते ! तुम्हारे प्रसादसे मेरा चरण नहीं गिरैगा ॥ २० ॥ सूर्य बोले, हे पुत्र ! इसमें

निस्सन्देह बड़ा कारण होगा जिससे धर्मात्मा सत्यवादी तुमको क्रोध आगया ॥ २१ ॥ और तेरी माताका वचन मिथ्या करनेको नहीं शक्य है अवश्य ही कृमि कीड़े चरणके मांसको लेके पृथ्वीपर जायँगे ॥ २२ ॥ हे तात ! हे प्रभो ! वह शाप सत्य होगा और तू रक्षित होगा अब निस्सन्देह अपने मनको सावधान करो ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वर ! इस प्रकार सूर्यने यमनामक अपने पुत्रसे कहके अपनी स्त्री छायासे क्रोधितहो यह कहा ॥ २४ ॥ सूर्य बोले, हे कुबुद्धि ! हे चंडि ! हे प्रिये ! यह तूने क्या किया ? क्यों तेरा इसमें अत्यन्त प्रेमहै यह कहनेके योग्य है ॥ २५ ॥ सूतजी बोले, वह छाया

न शक्यते तन्मिथ्या वै कर्त्तुं मातृवचस्तव ॥ कृमयो मांसमादाय गमिष्यंति महीतले ॥ २२ ॥ तद्वाक्यं भविता सत्यं त्वं च त्रातो
भविष्यसि ॥ कुरु तात न संदेहं मनश्चाश्वास्य स्वं प्रभो ॥ २३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तनयं सूर्य्यो यमसंज्ञं मुनीश्वर ॥
आदित्यश्चाब्रवीत्तान्तु छायां क्रोधसन्वितः ॥ २४ ॥ सूर्य उवाच ॥ हे प्रिये कुमते चंडि किं त्वयाऽऽचरितं किल ॥ किं तु मेऽभ्य
धिकः स्नेह एतदाख्यातुमर्हसि ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ सा रवेर्वचनं श्रुत्वा यथा तथ्यं न्यवेदयत् ॥ २६ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा
सूर्योऽगात्त्वष्टुरन्तिकम् ॥ पप्रच्छ तं क्व संज्ञेति त्वष्टा सूर्यमथाब्रवीत् ॥ २७ ॥ त्वष्टोवाच ॥ तवातितेजसा दग्धा इदं रूपं न शोभते ॥
असहंती च तत्संज्ञा वने वसति शाद्वले ॥ २८ ॥ श्लाघ्या योगबलोपेता योगमासाद्य गोपते ॥ अनुकूलस्तु देवेश संदिश्यात्ममयं
मतम् ॥ २९ ॥ रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कांतं यथा भवेत् ॥ सूत उवाच ॥ तच्छ्रुत्वाऽपगतः क्रोधो मार्तण्डस्य विवस्वतः ॥ ३० ॥

सूर्यका यह वचन सुनके सब ठीक ठीक निवेदन करने लगी ॥ २६ ॥ सूतजी बोले, उस छायाका यह वचन सुनके सूर्य त्वष्टाके समीप गये और उसको पूछनेलगे कि संज्ञा कहांहै तब त्वष्टा बोले ॥ २७ ॥ त्वष्टा कहनेलगे कि तुम्हारे अतितेजसे जलतीहुई उसे यह रूप शोभित नहीं हुआ अतः तुम्हैं सहन न करतीहुई वह संज्ञा तृणयुक्त वनमें निवास करती है ॥ २८ ॥ हे गोपते ! हे देवेश ! योगको प्राप्त होके योगबलसे प्राप्तहुई वह संज्ञा श्लाघा करने योग्य है अपने मतको कहके अनुकूल होओ ॥ २९ ॥ उसपर कृपा करो आज्ञा दो अब तुम्हारे रूपको मैं ऐसा निर्वर्तन करूंगा कि जिससे आपका रूप मनोहर

होजायगा सूतजी बोले, यह सुनके सूर्य भगवान्‌का क्रोध दूर होगया ॥ ३० ॥ तब मुनिने भ्रमियंत्र (शान धरनेका गोल पहिया) आरोपण करके सूर्यदेवका विकट तेज छीलदिया तब उस तेजके कम होजानेसे सूर्यदेवका रूप शोभा पाने लगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार परम मनोहर रूप होजानेसे सूर्यदेव बहुत शोभित होतेभये और फिर योगमें स्थित होकर अपनी भार्याको देखा ॥ ३२ ॥ कि वह अपने नियम और तेजसे सब प्राणियोंसे अदृष्य होरही है, तब मैथुनकी इच्छासे सूर्य अश्वरूप धारणकर वहाँ गये ॥ ३३ ॥ तब उसने परपुरुषकी इच्छासे यह न होने दिया उस समय सूर्यका वीर्य उसकी नासिकापर दो खण्ड हो गिरा ॥ ३४ ॥ उससे देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार युगल जन्मे उनमें नासत्य और दस्र दोनोंके नाम हुए ॥ ३५ ॥ उन दोनोंको सूर्यने अपने परममनोहर रूपसे दर्शन दिया, तब वह संज्ञा अपने पतिको देख परम प्रसन्न हुई ॥ ३६ ॥ और प्रसन्न हो वह सती पतिके सहित घर आई और दोनों स्त्री पुरुष पूर्वसे भी अधिक प्रसन्न हो वहाँ रहने लगे ॥ ३७ ॥ यमराज उस कर्मसे मनमें पीडित हो धर्मसे प्रजाको प्रसन्न करने लगे ॥ ३८ ॥ इस कर्मसे धर्मराजकी महाकान्ति प्राप्त हुई इनको पितरोंका आधिपत्य तथा लोकपालत्व प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ और तपोधन सावर्णिमनुको प्रजापतिका पद मिला

भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास वै मुनिः ॥ ततो विभ्राजितं रूपं तेजसा संवृतेन च ॥ ३१ ॥ कृतं कांततरं रूपं त्वष्ट्रा तच्छुशुभे तदा ॥ ततोभियोगमास्थाय स्वां भार्य्यां हि ददर्श ह ॥ ३२ ॥ अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ सोऽश्वरूपं समास्थाय गत्वा तां मैथुनेच्छया ॥ ३३ ॥ मैथुनाय विचेष्टंतीं परपुंसोभिशंकया ॥ मुखतो नासिकायां तु शुक्रं तत् व्यदधान्मुने ॥ ३४ ॥ देवौ ततः प्रजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ॥ नासत्यौ तौ च दस्रौ च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥ ३५ ॥ तौ तु कांतेन रूपेण दर्शयामास भास्करः ॥ आत्मानं सा तु तं दृष्ट्वा प्रहृष्टा पतिमादरात् ॥ ३६ ॥ पत्या तेन गृहं प्रायात्स्वं सती मुदितानना ॥ मुमुदातेऽथ तौ प्रीत्या दंपती पूर्वतोधिकम् ॥ ३७ ॥ यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ धर्मेण रंजयामास धर्मराज इमा प्रजाः ॥ ३८ ॥ लेभे स कर्मणा तेन धर्मराजो महाद्युतिः ॥ पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ॥ ३९ ॥ मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णिस्स तपोधनः ॥ भाव्यः स कर्मणा तेन मनोस्सावर्णिकेंतरे ॥ ४० ॥

वह इस कर्मसे मनुसावर्णिके अंतरमें भाव्य मनु होंगे ॥ ४० ॥ वह इस समय सुमेरुपर्वतपर घोर तप कर रहेहैं इन सूर्यकी जो छोटी श्रेष्ठ कन्या यमी थी ॥ ४१ ॥ वह लोकोंकी पवित्र करनेवाली यमुना हुई लोकमें इनको मनु वा सावर्णि मनु कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जो इन देवताओंके जन्मको सुनता वा धारण करता है उसकी आपत्ति दूर होकर उसको यश मिलता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले, वैवस्वतमनुके पश्चात् नौ पुत्र उनके समान महोन्नत, धीर, क्षत्रिय धर्ममें तत्पर हुए ॥ १ ॥ उनके नाम इक्ष्वाकु, शिबि, नाभाग, धृष्ट, शर्याति,

मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः ॥ यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी॥४१॥अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥
मनुरित्युच्यते लोके सावर्णिरिति चोच्यते ॥ ४२ ॥ य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्धारयेत्तु वा ॥ आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयात्सुमहद्यशः
॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मन्वन्तरकीर्तने वैवस्वतवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सूत उवाच ॥
मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः ॥ पश्चान्महोन्नता धीराः क्षत्रधर्मपरायणाः ॥१॥ इक्ष्वाकुः शिबिनाभागौ धृष्टः शर्यातिरेव च ॥
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः करूषश्च प्रियव्रतः ॥ २ ॥ अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ॥ अनुत्पन्नेषु पुत्रेषु तत्रेष्ट्यां मुनिपुं
गव ॥ ३ ॥ सा हि दिव्यांबरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ दिव्यसंहनना चैवमिला जज्ञे हि विश्रुता ॥ ४ ॥ तामिडेत्येव होवाच मनुर्दण्ड
धरस्तथा ॥ अनुगच्छस्व मामेति तमिडा प्रत्युवाच ह ॥ ५ ॥ इडोवाच ॥ धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ मित्रावरुणयो
रंशैर्जातास्मि वदतां वर ॥ ६ ॥ तयोस्सकाशं यास्यामि न मे धर्मे रुचिर्भवेत् ॥ एवमुक्त्वा सती सा तु मित्रावरुणयोस्ततः ॥ ७ ॥

नरिष्यन्त, नाभाग, करूष, प्रियव्रत ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पुत्रकी कामनासे मनु प्रजापतिने यज्ञ किया, और पुत्रेष्टिमें पुत्रोंके न उत्पन्न होनेपर ॥ ३ ॥ उस यज्ञसे सुन्दर वस्त्र धारण किये तथा सुन्दर आभूषणोंसे सुशोभित दिव्य आसनपर विराजमान; इला उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥ तब दंडधारी मनुने उस इडासे कहा कि, यहां मत आओ मत आओ तब उनसे इडा बोली ॥ ५ ॥ इडाने कहा हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह वाक्य धर्म युक्त है पुत्रकी कामनां करनेवाले प्रजापतिके मित्रावरुणके अंशोंसे मैं उत्पन्न हुई हूँ ॥ ६ ॥ मैं उनके समीप जाती हूं मेरी इस धर्ममें रुचि न होगी ऐसा कहके वह सती मित्रावरुणके

समीप जाके अंजलि बांध यह वचन बोली हे महामुने ! मैं मनुके यज्ञमें तुम्हारे अंशोंसे उत्पन्न हुई हूं ॥ ७ ॥ ८ ॥ तुम दोनोंके समीप आई हूं मुझे बताओ क्या करूं ? हे विभो ! और पुत्रोंको उत्पन्न करो उनसे तुम्हारा वंश चलैगा ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, ऐसा कहतीहुई साध्वी मनुके यज्ञमें उत्पन्नहुई उस इडासे वे दोनों मित्रावरुण नामवाले मुनी आदरसे कहने लगे ॥ १० ॥ मित्रावरुण बोले, हे धर्मज्ञे ! हे सुश्रोणि ! हे सुन्दर वर्णवाली ! तुम्हारी इस दीनतासे तथा दमसे सत्यसे हम दोनों प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ हे महाभागे ! तुम हम दोनोंकी प्रसिद्धिको पाओगी और तुमहीं मनु वंश चलानेवाला पुत्र

गत्वांतिकं वरारोहा प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ अंशैस्तु युवयोर्जाता मनुयज्ञे महामुनी ॥ ८ ॥ आगता भवतोरंति ब्रूतं किं करवाणि वाम् ॥ अन्यान्पुत्रान्सृज विभो तैर्वंशस्ते भविष्यति ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ तां तथावादिनीं साध्वीमिडां मन्वध्वरोद्भवाम् ॥ मित्रावरुणानामानौ मुनी ऊचतुरादरात् ॥ १० ॥ मित्रावरुणावूचतुः ॥ अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ॥ सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ द्वौ वरवर्णिनि ॥ ११ ॥ आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं चैव गमिष्यसि ॥ मनोर्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥ १२ ॥ सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ जगत्प्रियो धर्मशीलो मनुवंशविवर्द्धनः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छंती पितुरंतिके ॥ बुधेनांतरमासाद्य मैथुनायोपमंत्रिता ॥ १४ ॥ सोमपुत्रात्ततो जज्ञे तस्यां राजा पुरूरवाः ॥ पुत्रोऽतिसुन्दरः प्राज्ञ उर्वशीपतिरुन्नतः ॥ १५ ॥ जनयित्वा च सा तत्र पुरूरवसमादरात् ॥ पुत्रं शिवप्रसादात्तु पुनस्सुद्युम्नतां गतः ॥ १६ ॥

होगी ॥ १२ ॥ सुद्युम्ननामसे विख्यात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध संसारके प्रिय धर्मशील मनुके वंशके बढानेवाले होओगे ॥ १३ ॥ सूतजी बोले, ऐसा सुनके लौटीहुई पिताके समीप जातीहुई वह बुधसे अन्तर पाय मैथुनके लिये प्रवृत्त हुई ॥ १४ ॥ तब उसमें सोमपुत्र (बुध) से पुरूरवानामवाला अति सुन्दर बुद्धिमान् श्रेष्ठ उर्वशीका पति पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ वह वहां पुरूरवा पुत्रको उत्पन्न करके शिवके प्रसादसे फिर सुद्युम्नभावको प्राप्त हुई ॥ १६ ॥

सुद्युम्नके दायाद पुत्र तीन परम धार्मिक उत्कल, गय, और विनताश्व हुए ॥ १७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उत्कलके उत्कल ब्राह्मण तथा विनताश्वके पश्चिमी ब्राह्मण गयके पुर्वियें गयनामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १८ ॥ हे तात ! मनुके दिवाकरके शरीरमें प्रवेश करनेपर मनुने पृथिवीको दश क्षेत्ररूपमें विभक्त किया ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुनामक श्रेष्ठ दायादने मध्यदेशको पाया और महात्मा वसिष्ठजीके वचनसे बडी प्रतिष्ठाको पाया ॥ २० ॥ फिर सुद्युम्नने उन पुरूरवाको धर्मराज्यकी पदवी दी और वहांका राज्य दिया ॥२१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! और जो स्त्री पुरुषके लक्षणवाले प्रभु नरिष्यन्त थे उससे शक,नभगके पुत्र हुए ॥२२॥ अम्बरीष

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ उत्कलश्च गयश्चापि विनताश्वश्च वीर्यवान् ॥१७॥ उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमाः ॥ दिक्पूर्वा मुनिशार्दूल गयस्य तु गयाः स्मृताः ॥ १८ ॥ प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरतनुं तदा ॥ दशधा तत्र तत्क्षेत्रमकरोत्पृथिवीं मनुः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुः श्रेष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ वसिष्ठवचनादासीत्प्रतिष्ठानं महात्मनः ॥ २० ॥ प्रतिष्ठां धर्मराज्यस्य सुद्युम्नोथ ततो ददौ ॥ तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २१ ॥ मानवो यो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणः प्रभुः ॥ नरिष्यंताच्छकाः पुत्रा नभगस्य सुतोऽभवत् ॥ २२ ॥ अंबरीषस्तु बाह्लेयो बाह्लकं क्षेत्रमाप्तवान् ॥ शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः ॥ २३ ॥ पुत्रस्सुकन्या कन्या च या पत्नी च्यवनस्य हि ॥ आनर्तस्य हि दायादो रैभ्यो नाम स रैवतः ॥ २४ ॥ आनर्तविषये यस्य पुरी नाम कुशस्थली ॥ महादिव्या सप्तपुरीमध्ये या सप्तमी मता ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीत्ककुद्मी ज्येष्ठ उत्तमः ॥ तेजस्वी सुबलः पारो धर्मिष्ठो ब्रह्मपालकः ॥ २६ ॥

बाह्लेयने बाह्लक क्षेत्रको पाया शर्यातिने मिथुनको पाया और आनर्त्तनामसे विख्यात हुए ॥ २३ ॥ और सुकन्या पुत्री च्यवन ऋषिकी पत्नी हुई आनर्त्तके दायाद रैभ्य रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ २४ ॥ जिनकी कुशस्थली नामवाली पुरी आनर्त्तविषयमें बसी जो बडी सुन्दर तथा सातों पुरियोंमें सातवीं मानी गई ॥ २५ ॥ उनके सौ पुत्र हुए उनमें ककुद्मी सबसे बडा और श्रेष्ठ तेजस्वी अतिबली पारगामी धर्मात्मा ब्राह्मणोंका पालन करनेवाला हुआ ॥ २६ ॥

ककुद्मीके रेवतीनामक कन्या हुई जो बडी रूपवती मानो दूसरी लक्ष्मी थी ॥ २७ ॥ सर्वाधीश ककुद्मी राजा अपनी कन्याके सहित वरके अन्वेषण करनेको ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप गये ॥ २८ ॥ उस समय वहां गंधर्वलोग गा रहे थे यह अवसर पाय वहां क्षणमात्र स्थित हुए और ब्रह्माजीके समीपमें गाना नाच देखने सुनने लगे ॥ २९ ॥ उस समय क्षणमात्रके समान बहुत युग बीत गये कि, ककुद्मी राजाने कुछ नहीं जाना ॥ ३० ॥ तब उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कार करके हाथ जोड विनीत हो परमात्मा चतुराननसे अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३१ ॥ उनके अभिप्रायको सुनके ब्रह्माजी हँसके

ककुद्मिनस्तु संजाता रेवती नाम कन्यका ॥ महालावण्यसंयुक्ता दिव्यलक्ष्मीरिवापरा ॥ २७ ॥ प्रष्टुं कन्यावरं राजा ककुद्मी कन्यया सह ॥ ब्रह्मलोके विधेस्सम्यक्सर्वाधीशो जगाम ह ॥ २८ ॥ आवर्तमाने गांधर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ शुश्राव तत्र गांधर्वं नर्तने ब्रह्मणोऽतिके ॥ २९ ॥ मुहूर्तभूतं तत्काले गतं बहुयुगं तदा ॥ न किंचिद्बुबुधे राजा ककुद्मी मुनयस्स तु ॥ ३० ॥ तदासौ विधिमानम्य स्वाभिप्रायं कृतांजलिः ॥ न्यवेदयद्विनीतात्मा ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३१ ॥ तदभिप्रायमाकर्ण्य स प्रहस्य प्रजापतिः ॥ ककुद्मिनं महाराजं समाभष्य समब्रवित् ॥३२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु राजन्रैभ्यसुत ककुद्मिन्पृथिवीपते ॥ मद्वचः प्रीतितस्सत्यं प्रवक्ष्यामि विशेषतः ॥ ३३ ॥ कालेन संहृतास्ते वै वरा ये ते कृता हृदि ॥ न तद्गोत्रं हि तत्रास्ति कालस्सर्वस्य भक्षकः ॥ ३४ ॥ त्वत्पुर्य्यपि हता पुण्यजनैस्सा राक्षसैर्नृप ॥ अष्टाविंशद्वापरेऽद्य कृष्णेन निर्मिता पुनः ॥ ३५ ॥ कृता द्वारावती नाम्ना बहुद्वारा मनोरमा ॥ भोजवृष्ण्यंधकैर्गुप्ता वासुदेवपुरोगमैः॥३६॥तद्गच्छ तत्र प्रीतात्मा वासुदेवाय कन्यकाम् ॥ बलदेवाय देहि त्वमिमां स्वतनयां नृप ॥ ३७ ॥

महाराज ककुद्मीसे यह बोले ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे राजन् ! हे रैभ्यके पुत्र पृथिवीपते ! हे ककुद्मिन् ! मेरा वचन प्रीतिसे सुनो मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ३३ ॥ जो वर तुम चाहते हो वे कालने हरण करलिये वहां उनका गोत्र भी नहीं रहा कारण कि, काल सबका भक्षक है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! पुण्यजनों (राक्षसों) ने तुम्हारी पुरी भी नष्ट करदी अट्ठाईसवें द्वापरमें अब फिर कृष्णने पुरी निर्माण की है ॥ ३५ ॥ उस द्वारावती नामवाली अनेक द्वारवाली मनोहर गुप्तपुरीको वासुदेव आदि भोज वृष्णि अन्धक वंशियोंने बनाया है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! वहां प्रसन्न मनसे जाओ और अपनी कन्या

बलदेवको प्रदान करो ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले, ऐसी आज्ञा पाय वह राजा ब्रह्माको नमस्कार करके उस कन्याको लेके उस पुरीको गये बहुत युगोंको बीता जान कन्याके विषयमें विस्मित हुये ॥ ३८ ॥ तब उसने उस युवती रेवती नामवाली अपनी कन्याको विधिविधानसे श्रीकृष्णजीके भाई बलरामको प्रदान किया ॥ ३९ ॥ तब महाप्रभु वह राजा सुमेरुपर्वतके सुन्दर शिखरपर गये और वहाँ तपमें स्थित हो शिवका आराधन करने लगे ॥ ४० ॥ ऋषि बोले, वहाँ ब्रह्मलोकमें बहुत युगोंतक स्थितहुए वह रेवत युवाही मर्त्यलोकको प्राप्त हुए यह मुझे बडा संशय है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले, हे मुनीश्वरो ! वहाँ ब्रह्माके

सूत उवाच ॥ इत्यादिष्टो नृपोऽयं तं नत्वा तां च पुरीं गतः ॥ गतान्बहून्युगाञ्ज्ञात्वा विस्मितः कन्यया युतः ॥ ३८ ॥ ततस्तु युवतीं
कन्यां तां च स्वां सुविधानतः ॥ कृष्णभ्रात्रे बलायाशु प्रादात्तत्र स रेवतीम् ॥ ३९ ॥ ततो जगाम शिखरं मेरोर्दिव्यं महाप्रभुः ॥
शिवमाराधयामास स नृपस्तपसि स्थितः ॥ ४० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ तत्र स्थितो बहुयुगं ब्रह्मलोके स रेवतः ॥ युवैवागान्मर्त्यलो
कमेतन्नः संशयो महान् ॥ ४१ ॥ सूत उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा विकारास्तत्र संति वै ॥ अपमृत्युर्न केषांचिन्मुनयो ब्रह्मणोऽ
तिके ॥ ४२ ॥ अतो न राजा संप्राप जरां मृत्युं च सा सुता ॥ स युवैवागतस्तत्र संमंत्र्य तनयावरम् ॥ ४३ ॥ गत्वा द्वारावतीं दिव्यां
पुरीं कृष्णविनिर्मिताम् ॥ विवाहं कारयामास कन्यायाः स बलेन हि ॥ ४४ ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद्धार्मिकस्य महाप्रभोः ॥ कृष्ण
स्यापि सुता जाता बहुस्त्रीभ्योऽमितास्ततः ॥ ४५ ॥ अन्ववायो महांस्तत्र द्वयोरपि महात्मनोः ॥ क्षत्रिया दिक्षु सर्वासु गता हृष्टास्सु
धार्मिकाः ॥ ४६ ॥ इति प्रोक्तो हि शर्यातेर्वंशोऽन्येषां वदाम्यहम् ॥ मानवानां हि संक्षेपाच्छृणुतादरतो द्विजाः ॥ ४७ ॥

समीप जरा, क्षुधा, प्यास वा विकार तथा किसीकी अकालमृत्यु आदि कुछ नहीं होती ॥ ४२ ॥ इस कारण वह राजा तथा कन्या जरा और मृत्युको नहीं प्राप्त हुए और वह अपनी श्रेष्ठ कन्याको साथ लेके युवा ही वहाँसे आये ॥ ४३ ॥ और श्रीकृष्णजीसे रचीहुई द्वारावती सुन्दर पुरीमें जाके बलरामके साथ अपनी कन्याका विवाह कराया ॥ ४४ ॥ तब उन महाप्रभु बलरामके सौ पुत्र उत्पन्न हुए और श्रीकृष्णजीके अनेक स्त्रियोंसे बहुत पुत्र हुए ॥ ४५ ॥ वहाँ उन दोनों महात्माओंका बडा वंश चला बडे धर्मात्मा क्षत्रिय हृष्ट होके सब दिशाओंमें चले गये ॥ ४६ ॥ हे द्विजो ! इस प्रकार शर्यातिका वंश कहा अब

और मनुष्योंके वंशको संक्षेपसे कहता हूँ तुम आदरसे सुनो ॥४७॥ नाभाग दिष्टके पुत्र हुए और ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए अपने क्षत्रिय वंशको स्थापन करके
ब्राह्मणके कर्मोंमें प्रवृत्त हुए ॥४८॥ धृष्टसे धार्ष्ट हुए वे भूमि पै ब्रह्मत्वकी अधिकतासे क्षत्रियत्वहीन हुए करूषके युद्ध करनेवाले कारूष क्षत्रिय हुए ॥४९॥
मनुका पुत्र नृग हुआ वह महादानी अनेक धनोंको तथा गौओंको ब्राह्मणोंके निमित्त प्रीतिसे देनेवाला था ॥ ५० ॥ जो गोदानके व्यत्यय (बदल) से,
अपनी कुबुद्धिसे तथा पापसे गिरगट हुआ और उसका श्रीकृष्णने उद्धार किया ॥ ५१ ॥ उसके प्रयातिनामक धर्मात्मा श्रेष्ठ एक पुत्र हुआ ऐसा मैंने जो

नाभागो दिष्टपुत्रोऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः ॥ स्वक्षत्रवंशं संस्थाप्य ब्रह्मकर्मभिरावृतः ॥ ४८ ॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ ४९ ॥ नृगो यो मनुपुत्रस्तु महादाता विशेषतः ॥ नानावसूनां सुप्रीत्या विप्रेभ्यश्च गवां
तथा ॥ ५० ॥ गोदानव्यत्ययाद्यस्तु स्वकुबुद्ध्या स्वपापतः ॥ कृकलासत्वमापन्नः श्रीकृष्णेन समुद्धृतः ॥ ५१ ॥ तस्यैकोभूत्सुतः श्रेष्ठः
प्रयातिर्धर्मवित्तथा ॥ इति श्रुतं मया व्यासात्तत्प्रोक्तं हि समासतः ॥ ५२ ॥ वृषघ्नस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालया
मास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ५३ ॥ स एकदाऽऽगतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली ॥ श्रुत्वा गोक्रंदनं बुद्धो हंतुं तं खड्ग
धृग्ययौ ॥ ५४ ॥ अजानन्नहनद्बभ्रोःशिरश्शार्दूलशंकया ॥ निश्चाक्राम सभीर्व्याघ्रो दृष्ट्वा तं खड्गिनं प्रभुम् ॥ ५५ ॥ मन्यमानो हतं
व्याघ्रं स्वस्थानं स जगाम ह ॥ रात्र्यां तस्यां भ्रमापन्नो वर्षवातविनष्टधीः ॥ ५६ ॥

व्यासजीसे सुना सो सब संक्षेपसे कहा ॥ ५२ ॥ वृषघ्ननामक मनुपुत्रको गुरुने गोपाल बनाया और वह बीरासन बांधे रात्रिमें गायोंको पालन करने लगा
॥ ५३ ॥ वह बली किसीसमय गायोंके मारनेके निमित्त गोशालामें आयेहुए व्याघ्रको देख गायोंके रुदनको सुन जागके उसके मारनेको खड्ग धारण करके
गया ॥ ५४ ॥ और सिंहके भ्रमसे विनाजाने बभ्रु (गायके बछडे) के शिरको काट दिया तभी उन खड्गधारी प्रभुको देख वह व्याघ्र भयभीत हो बाहर
निकल गया ॥ ५५ ॥ वह व्याघ्रको मराहुआ जानके अपने स्थानको आये उस रात्रिमें वर्षा पवनसे बुद्धि नष्ट होगई तथा भ्रममें पड गये ॥ ५६ ॥

वह रात्रिके बीतनेपर उठके उस गोष्ठमें गया और उसने बभ्रुको मरा देख तथा व्याघ्रको न माराहुआ देख अतिदुःख किया ॥ ५७ ॥ उस वृत्तान्तको सुनके गुरुने उस अपराधीको शाप दिया अकामसे विना विचारके काम करनेसे तू शूद्र होगा क्षत्रिय न रहैगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार कुलाचार्य गुरुने उसे क्रोधसे शाप दिया तब वह पृषध्र निकलके सघनवनमें चला गया ॥ ५९ ॥ और वह कष्टसे व्याकुलहो योग धारण करताहुआ विरक्त होगया और वनकी अग्निमें शरीरको भस्म कर परमगतिको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ और वह शिवकी दयासे मनुका पुत्र कवि बुद्धिमान् हुआ इस लोकमें दिव्य सुखको भोगके दुर्लभ

व्युष्टायां निशि चोत्थाय प्रगे तत्र गतो हि सः ॥ अद्राक्षीत्स हतां बभ्रुं न व्याघ्रं दुःखितोऽभवत् ॥ ५७ ॥ श्रुत्वा तद्वृत्तमाज्ञाय तं शशाप कृतागसम् ॥ अकामतोविचार्य्यैति शूद्रो भव न क्षत्रियः ॥ ५८ ॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्य्येण कोपतः ॥ निस्सृतश्च पृषध्रस्तु जगाम विपिनं महत् ॥ ५९ ॥ निर्व्विण्णः स तु कष्टेन विरक्तोऽभूत्स योगवान् ॥ वनाग्नौ दग्धदेहश्च जगाम परमां गतिम् ॥ ॥ ६० ॥ कविः पुत्रो मनोः प्राज्ञाश्शिवानुग्रहतोऽभवत् ॥ इह भुक्त्वा सुखं दिव्यं मुक्तिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुनवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ पूर्वतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतस्सुतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ १ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्य्यावर्ते नृपा द्विजाः ॥ तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत् ॥ २ ॥ तत्कर्म शृणु तत्प्रीत्या यज्जातं वंशतो विधेः ॥ श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टो ह्यकृते श्राद्धकर्म्मणि ॥ ३ ॥ भक्षयित्वा शशं शीघ्रं शशादत्वमतो गतः ॥ इक्ष्वाकुणा परित्यक्तश्शशादो वनमाविशत् ॥ ४ ॥

मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० मनुनवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकुनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इक्ष्वाकुके अत्यन्त दक्षिणा देनेवाले सौ पुत्र हुए ॥ १ ॥ हे द्विजो ! उनके आगे आर्यावर्त्तमें अनेक राजा हुए उनमें सबसे बडा विकुक्षि अयोध्याका राजा हुआ ॥ २ ॥ उसके कर्मको प्रीतिसे सुनो जो ब्रह्माके वंशमें हुआ है श्राद्धकर्ममें प्रवृत्त होके श्राद्धकर्मके विना करनेपरही ॥ ३ ॥ यह शीघ्रही खरगोशको भक्षण करके शशादत्वको प्राप्त हुआ तब इक्ष्वाकुसे त्यागाहुआ शशाद वनमें प्रवेश करताहुआ ॥ ४ ॥

इक्ष्वाकुके स्थित होनेपर वसिष्ठके वचनसे वह राजा हुआ और उसके शकुनि आदि पन्द्रह पुत्र ॥ ५ ॥ उत्तरापथ देशके रक्षा करनेवाले राजा हुए और अयोधका पुत्र वीर्यवान् ककुत्स्थ नामवाला हुआ ॥ ६ ॥ ककुत्स्थका पुत्र अरिनाभ और पृथुका पुत्र विष्टराश्व हुआ उससे इन्द्र प्रजापति हुआ ॥ ७ ॥ इन्द्रके युवनाश्व उसके श्राव प्रजापति हुए बुद्धिमान् श्रावस्तक उत्पन्न हुए जिसने श्रावस्ती नगरी रची श्रावस्तके दायाद महायशस्वी बृहदश्व हुए ॥८॥ उनके पुत्र युवनाश्व उनके पुत्र कुवलाश्व जो धुंधुके वधसे धुन्धुमारराजा नामसे प्रसिद्ध हुए ॥९॥ कुवलाश्वके धनुषधारी सौ पुत्र हुए तब पिताने राज्यमें कुवलाश्वको

इक्ष्वाकौ संस्थिते राजा वसिष्ठवचनादभूत् ॥ शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चदश स्मृताः ॥ ५ ॥ उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः ॥
अयोधस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥ ६ ॥ अरिनाभः ककुत्स्थस्य पृथुरेतस्य वै सुतः ॥ विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादिंद्रः
प्रजापतिः ॥ ७ ॥ इंद्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य प्रजापतिः ॥ जज्ञे श्रावस्तकः प्राज्ञः श्रावस्ती येन निर्मिता ॥ श्रावस्तस्य तु
दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ ८ ॥ युवनाश्वस्सुतस्तस्य कुवलाश्वश्च तत्सुतः ॥ स हि धुंधुवधाद्भूतो धुंधुमारो नृपोत्तमः ॥ ९ ॥
कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ बभूवाथ पिता राज्ये कुवलाश्वं न्ययोजयत् ॥ १० ॥ पुत्रसंक्रामितश्रीकोवनं राजा
समाविशत् ॥ तमुत्तंकोऽथ राजर्षिं प्रयांतं प्रत्यवारयत् ॥ ११ ॥ उत्तंक उवाच ॥ भवता रक्षणं कार्यं पृथिव्या धर्मतः शृणु ॥ त्वया
हि पृथिवी राजन्रक्ष्यमाणा महात्मना ॥ १२ ॥ भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गंतुमर्हसि ॥ ममाश्रमसमीपे तु हिमेषु मरुधन्वसु ॥१३॥
समुद्रवालुकापूर्णो दानवो बलदर्पितः ॥ देवतानामवध्यो हि महाकायो महाबलः ॥ १४ ॥

नियुक्त किया ॥ १० ॥ पुत्रको राज्य लक्ष्मीका भार सौंपके राजा वनको जानेलगा तब उस राजर्षिके उत्तंकने निवारण किया ॥ ११ ॥ उत्तंक बोले, हे राजन् ! तुमको धर्मसे पृथ्वीकी रक्षा करनी चाहिये तुम महात्मासे पालन कीहुई पृथ्वी ॥ १२ ॥ निर्द्वन्द्व होगी इससे तुम वनमें जानेके योग्य नहीं हो मेरे आश्रमके समीप मरुधन्वनामक हिमोंपर ॥१३॥ समुद्रकी बालुके पूर्ण होनेपर बलसे दर्पित देवतोंसे अवध्य बडे शरीरवाला महाबली दानव ॥१४॥

भूमिके मध्यमें बालुके भीतर स्थितहुआ मधु राक्षसका पुत्र दारुण धुन्धुनामक ॥ १५ ॥ कठिन तप करके लोकोंके नाश करनेके अर्थ शयन करताहै
वह वर्षभरके पीछे जब अपनी श्वासको छोडता है ॥ १६ ॥ तो पर्वत वन काननसहित सम्पूर्ण पृथ्वी हिलती है स्फुलिंगसहित अंगारोंसाहित धूमसहित
आगके समान चिनगारी उडतीहैं ॥ १७ ॥ हे महाबाहो ! हे राजन् ! इस कारण मैं उस आश्रममें रहनेको समर्थ नहीं हूँ इस्से लोकोंके हितकी कामनासे
उसे निवारण (दूर) करो ॥ १८ ॥ हे पृथिवीपते ! अब उसके मारनेपर लोक स्वस्थ होंगे तुम हीं उस दैत्यके मारनेमें समर्थ हो ॥ १९ ॥ हे अनघ !

अंतर्भूमिगतस्तत्र वालुकांतर्हितः स्थितः ॥ राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुंधुनामा सुदारुणः ॥ १५ ॥ शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय
दारुणम् ॥ संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं विमुंचति ॥ १६ ॥ यदा तदाभूश्चलति सशैलवनकानना ॥ सविस्फुलिंगं सांगारं
सधूममपि वारुणम् ॥ १७ ॥ तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिंस्स्थातुं स्व आश्रमे ॥ तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया ॥ १८ ॥
लोकास्स्वस्था भवंत्वद्य तस्मिन्विनिहते त्वया ॥ त्वं हि तस्य वधायैव समर्थः पृथिवीपते ॥ १९ ॥ विष्णुना च वरो दत्तो महान्पूर्वे
युगेऽनघ ॥ तेजसा स्वेन ते विष्णुस्तेज आप्याययिष्यति ॥ २० ॥ पालने हि महाधर्मः प्रजानामिह दृश्यते ॥ न तथा दृश्यतेऽ
रण्ये मा तेऽभूद्बुद्धिरीदृशी ॥ २१ ॥ ईदृशो न हि राजेन्द्र क्वचिद्धर्मः प्रविद्यते ॥ प्रजानां पालने यादृक् पुरा राजर्षिभिः कृतः ॥ २२ ॥
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तंकेन महात्मना ॥ कुवलाश्वः सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥ २३ ॥ भगवन्न्यस्तशस्त्रोहमयं तु तनयो मम ॥
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ २४ ॥

पहले युगमें विष्णुने तुमको बडा वरदान दिया है इससे विष्णु भगवान् अपने तेजसे तुम्हारे तेजको परिपूर्ण करैंगे ॥ २० ॥ इस लोकमें ऐसा कोई धर्म
नहीं दीखता है जैसा कि प्रजाके पालन करनेमें महाधर्म है वन जानेकी तुम्हारी बुद्धि मत हो ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा कोई भी कहीं धर्म नहीं है
जैसा प्रजाके पालन करनेमें पहले राजर्षियोंने किया है ॥ २२ ॥ इस प्रकार महात्मा उत्तंकके कहनेपर उस राजर्षिने धुन्धुदैत्यके निवारण करनेको उनको
अपना पुत्र दिया ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने शस्त्र त्याग दिये हैं यह मेरा पुत्र निस्सन्देह धुन्धुदैत्यको मारनेवाला होगा ॥ २४ ॥

ऐसा कहके अपने पुत्रको दैत्यको मारनेकी आज्ञा दे वह राजा तप करनेको चला गया उत्तंकसहित कुवलाश्व भी धुन्धुदैत्यके मारनेको गया ॥ २५ ॥
उस समय प्रभु विष्णु भगवान्ने उत्तंकके नियोगसे लोकोंके हितकी इच्छासे अपने तेजसे उसमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ उस दुर्धर्ष कुवलाश्वके जानेपर
आकाशमें बडा शब्द हुआ कि, यह श्रीमान् राजपुत्र धुन्धुमार होगा ॥ २७ ॥ तब उसके ऊपर देवताओंने दिव्य मालाओंकी चारोंओरसे वर्षा की और
जयजीव ऐसा कह कहके उसकी प्रशंसा की ॥ २८ ॥ जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजाने अपने पुत्रोंके सहित वालुकाके मध्यसे समुद्रको खोदा ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा पुत्रमादिश्य ययौ स तपसे नृपः ॥ कुवलाश्वश्च सोत्तङ्को ययौ धुन्धुविनिग्रहे ॥२५॥ तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः ॥
उत्तंकस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥ २६ ॥ तस्मिन्प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ॥ एष श्रीमान्नृपसुतो धुन्धुमारो
भविष्यति ॥ २७ ॥ दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवास्समंतात्समवारयन् ॥ प्रशंसां चक्रिरे तस्य जय जीवेति वादिनः ॥ २८ ॥ स गत्वा जयतां
श्रेष्ठस्तनयैस्सह पार्थिवः ॥ समुद्रं खनयामास वालुकार्णवमध्यतः ॥ २९ ॥ नारायणस्य विप्रर्षेस्तेजसाप्यायितस्तु सः ॥ बभूव सुम
हातेजा भूयो बलसमन्वितः ॥ ३० ॥ तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकांतर्गतस्तु सः ॥ धुन्धुरासादितो ब्रह्मन् दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ॥
॥ ३१ ॥ मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकान्संवर्तयन्निव ॥ वारि सुस्राव वेगेन विधोः कधिरिवोदये ॥ ३२ ॥ ततोऽनलैरभिहतं दग्धं पुत्रशतं
हि तत् ॥ त्रय एवावशिष्टाश्च तेषु मध्ये मुनीश्वर ॥ ३३ ॥ ततस्स राजा विप्रेन्द्र राक्षसं तं महाबलम् ॥ आससाद महातेजा धुन्धुं
विप्रविनाशनम् ॥ ३४ ॥ तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ॥ वह्निबाणेन वार्ह्निं तु शमयामास वारिणा ॥ ३५ ॥

ब्रह्मर्षि नारायणके तेजसे व्याप्तहुआ वह राजा महातेजस्वी बलसे युक्त हुआ ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! खोदतेहुए उसके पुत्रोंने पश्चिम दिशाको आश्रय करके
वालुके भीतर स्थितहुए उस धुन्धुदैत्यको प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ क्रोधसे मुखकी अग्निसे लोकोंको व्याकुल करताहुआ चन्द्रमाके उदयमें समुद्रके समान वेगसे
जलको टपकाने लगा ॥ ३२ ॥ उसकी अग्निसे वे सौ पुत्र नष्ट होगये हे मुनीश्वर ! उनके मध्यमेंसे तीन पुत्र ही शेष रहे ॥ ३३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! तब
उस राजाने महाबली ब्राह्मणोंको नाश करनेवाले उस धुन्धु राक्षसको पाया ॥ ३४ ॥ उस महातेजस्वी राजाने उसके जलवाले वेगको अग्निबाणसे पान

करके जलबाणसे अग्निको शान्त किया ॥ ३५ ॥ अपने बलसे बडे शरीरवाले उस जलके राक्षसको मारके राजाने उत्तंकके विहित कर्मोंका निरीक्षण किया ॥ ३६ ॥ हे महामुने ! उत्तंकने उस राजाको वर दिया तथा अक्षय धन हो शत्रुओंसे कभी पराजय न हो ॥ ३७ ॥ तथा धर्ममें निरन्तर मति हो तथा स्वर्गमें अक्षय वास हो जो पुत्र राक्षसोंसे मारे गये हैं उनको अक्षय स्वर्गलोकका वास हो यह वर दिया ॥ ३८ ॥ उसके तीन पुत्र शेष रहे उनमें दृढाश्व बडा और हंसाश्व कपिलाश्व पुत्र छोटे थे ॥ ३९ ॥ धुंधुमारके पुत्र दृढाश्व हुए उनके पुत्र हर्यश्व हर्यश्वके पुत्र निकुंभ जो सदा धर्ममें तत्पर थे ॥ ४० ॥

तं निहत्य महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ॥ उत्तंकस्येक्षयामास कृतं कर्म नराधिपः ॥ ३६ ॥ उत्तंकस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महामुने ॥ अददच्चाक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥ ३७ ॥ धर्मे मतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ॥ पुत्राणां चाक्षयं लोकं रक्षसा ये तु संहताः ॥ ३८ ॥ तस्य पुत्रास्त्रयाशिष्टाः दृढाश्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ हंसाश्वकपिलाश्वौ च कुमारौ तत्कनीसौ ॥ ३९ ॥ धौंधुमारिर्दृढाश्वो यो हर्य्यश्वस्तस्य चात्मजः ॥ हर्य्यश्वस्य निकुंभोभूत्पुत्रो धर्मरतस्सदा ॥ ४० ॥ संहताश्वो निकुंभस्य पुत्रो रणविशारदः ॥ अक्षाश्वश्च कृताश्वश्च संहताश्वसुतोऽभवत् ॥ ४१ ॥ तस्य हैमवती कन्या सतां मान्या वृषद्वती ॥ विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥ ४२ ॥ लेभे प्रसेनजिद्भार्य्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ॥ अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ॥ ४३ ॥ तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः ॥ मांधाता युवनाश्वस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ४४ ॥ तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशबिंदुसुताऽभवत् ॥ पतिव्रता च ज्येष्ठा च भातॄणामयुतं च सः ॥ ४५ ॥

निकुंभके पुत्र युद्धमें निपुण संहताश्व हुए संहताश्वके पुत्र अक्षाश्व कृताश्व नामवाले हुए ॥ ४१ ॥ उसके सत्पुरुषोंसे माननीय वृषद्वती हैमवती कन्या तीनों लोकोंमें विख्यात हुई और उसका पुत्र प्रसेनजित हुआ ॥ ४२ ॥ प्रसेनाजितने गौरीनाम पतिव्रता भार्याको पाया उसको भर्ताने शाप देके बाहुदा नामवाली नदी बनाया ॥ ४३ ॥ उसका पुत्र युवनाश्व बडा राजा हुआ युवनाश्वका पुत्र मांधाता तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ ॥ ४४ ॥ उसकी चैत्ररथी स्त्री

शशाबिन्दुकी पुत्री हुई वह पतिव्रता दश सहस्र भाइयोंमें बडी थी ॥ ४५ ॥ तब उससे मांधाताने धर्मात्मा पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामवाले दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४६ ॥ पुरुकुत्सका पुत्र विद्वान् कवि त्र्य्यारुणि नामवाला हुआ उसका पुत्र महाबली सत्यव्रतनामक हुआ ॥ ४७ ॥ इसने महात्माओंके साथ पाणिग्रहणके मंत्रोंमें विघ्न किया है इसने दूसरेसे विवाहीहुई एक स्त्रीको हरण किया ॥ ४८ ॥ बलसे कामसे मोह हर्ष तथा मदकी अधिकतासे तथा इच्छासे किसी नगरवासीकी कन्याको हर लिया ॥ ४९ ॥ त्र्य्यारुणि राजा अधर्म करनेवाले उस पुत्रसे चलाजा ऐसा क्रोधसे बारम्बार कहता हुआ ॥

तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ तदा ॥ पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुंदं च धार्मिकम् ॥ ४६ ॥ पुरुकुत्ससुतस्त्वासीद्विद्वांस्त्र्य्यारुणिः कविः ॥ तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबली ॥ ४७ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां विघ्नं चक्रे महात्मभिः ॥ येन भार्य्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहः परस्य वै ॥ ४८ ॥ बलात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्च यदोत्कटात् ॥ जहार कन्यां कामाच्च कस्य चित्पुरवासिनः ॥ ४९ ॥ अधर्मसंगिनं तं तु राजा त्र्य्यारुणिस्त्यजन् ॥ अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः ॥ ५० ॥ पितरं सोऽब्रवीन्मुक्तः क्व गच्छामीति वै तदा ॥ वस श्वपाकनिकटे राजा प्राहेति तं तदा ॥ ५१ ॥ स हि सत्यव्रतस्तेन श्वपाकवसथांतिके ॥ पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरो धर्मपालेन भूभुजा ॥ ५२ ॥ ततस्त्र्य्यारुणी राजा विरक्तः पुत्रकर्म्मणा ॥ स शंकरतपः कर्त्तुं सर्वं त्यक्त्वा वनं ययौ ॥ ५३ ॥ ततस्तस्य स्वविषये नावर्षत्पाकशासनः ॥ समा द्वादश विप्रर्षे तेनाधर्मेण वै तदा ॥ ५४ ॥ दारांस्तस्य तु विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ संत्यज्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ ५५ ॥ तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन च ॥ ५६ ॥

॥ ५० ॥ तब उस युक्तने अपने पितासे यह कहा कि, मैं कहां जाऊं तब राजाने उससे यह कहा तू कुत्तोंके खानेवालोंके निकट बस ॥ ५१ ॥ धर्मसे पालन करनेवाले अपने पिता राजासे छोडाहुआ वह सत्यव्रत श्वपाक स्थानके निकट बसने लगा ॥ ५२ ॥ तब त्र्य्यारुणी राजा अपने पुत्रके कर्मसे विरक्त हो सबकुछ छोडके शिवका तप करनेको वनमें चला गया ॥ ५३ ॥ हे विप्रर्षे ! उस समय उसके राज्यमें उस अधर्मसे बारह वर्षतक मेघ नहीं वर्षा ॥ ५४ ॥ महातपस्वी विश्वामित्र अपनी स्त्रीको त्यागके सागरके समीपमें कठिन तप करने लगे ॥ ५५ ॥ उसकी पत्नीने मध्यम औरसपुत्रको गलेमें बांधके पुत्रोंके

पोषण करनेके निमित्त उसे सौ गायोंको लेके बेंचा ॥ ५६ ॥ गलेमें बँधेहुए अपने पुत्रको बेंचतीहुई उस स्त्रीको देख उस समय धर्मात्मा सत्यव्रतने उस महर्षिके पुत्रको छुडाया ॥ ५७ ॥ विश्वामित्रकी सन्तुष्टिके अर्थ महाबाहु सत्यव्रतने उसका पालन किया ॥ ५८ ॥ उस दिनसे लेके वह विश्वामित्रका पुत्र गलबन्धनसे गालवनामवाला बडा तपस्वी हुआ ॥५९॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ०सं० सप्तात्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ सूतजी बोले, उस समय सत्यव्रत अपनी भक्ति कृपा और प्रतिज्ञासे विश्वामित्रकी स्त्रीको पोषण करने लगा ॥ १ ॥ हे मुने ! वह मृग वराह वनचर महिष आदि जीवोंको मारकर

तां तु दृष्ट्वा गले बद्धं विक्रीणंतीं स्वमात्मजम् ॥ महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोचयामास तं तदा ॥ ५७ ॥ सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य
चाकरोत् ॥ विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुक्रोशार्थमेव च ॥ ५८ ॥ तदारभ्य स पुत्रस्तु विश्वामित्रस्य वै मुनेः ॥ अभवद्गालवो नाम गल
बंधान्महातपाः ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुवंशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥
सत्यव्रतस्तु तद्भक्त्या कृपया च प्रतिज्ञया ॥ विश्वामित्रकलत्रं च पोषयामास वै तदा ॥१॥ हत्वा मृगान्वराहांश्चम हिषांश्च वनेचरान् ॥
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे तन्मांसं चाक्षिपन्मुने ॥ २ ॥ तीर्थं गां चैव रात्रं च तथैवांतःपुरं मुनिः ॥ याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्य
रक्षत ॥ ३ ॥ सत्यव्रतस्य वाक्याद्वा भाविनोर्थस्य वै बलात् ॥ वसिष्ठोऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः ॥ ४ ॥ पित्रा तु तं तदा
राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम् ॥ न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन च ॥ ५ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ न च
सत्यव्रतस्थस्य तमुपांशुमबुद्ध्यत ॥६॥ तस्मिन्स परितोषाय पितुरासीन्महात्मनः ॥ कुलस्य निष्कृतिं विप्र कृतवान्वै भवेदिति ॥७॥

विश्वामित्रके आश्रमके समीप उनके मांसको रख आता ॥ २ ॥ इधर मुनि वशिष्ठजी उसके पिताके तीर्थस्थान गौरात्र अन्तःपुर (रनवास) की याजक और उपाध्यायोंके सहित रक्षा करने लगे ॥ ३ ॥ सत्यव्रतके वचनसे वा होनेवाले कार्यके बलसे वशिष्ठने उस क्रोधको अपने मनमेंही धारण किया ॥ ४ ॥ जिस समय पिताने उस पुत्रको अपने राज्यसे निकाला तब कारणवश वशिष्ठजीने उसको निवारण न किया ॥ ५ ॥ जो कि पाणिग्रहणके मंत्रोंकी सातवें पदमें निष्ठा होती है सत्यव्रतने उस बातका लेश भी न जाना ॥ ६ ॥ तब वह अपने पिताके परितोषके निमित्त वहाँ स्थित हुआ कि कुलकी निष्कृति

कैसे होगी ॥ ७ ॥ पिताके त्यागनेपर वशिष्ठजीने उसको निवारण नहीं किया मैं इसके पुत्रको अभिषेक करूंगा ऐसा कहने पर भी मुनि न बोले ॥ ८ ॥ उस बलीने बारह वर्षतक उस दीक्षाको धारण किया जब एक समय उसको कहीं मांस न मिला तो महात्मा वशिष्ठकी ॥ ९ ॥ सब कामनाकी देनेवाली गौको उस राजकुमारने देखा तब वशिष्ठपर क्रोध होने तथा लोभ मोह और क्षुधाके कारण ॥ १० ॥ चाण्डाल धर्मको प्राप्त होकर उसने उसको हत किया * उसके मांसको स्वयं भी तथा विश्वामित्रकी सन्तानको खवादिया यह जानकर वशिष्ठजी महाक्रोधित हुए और महाक्रोध कर वशिष्ठजीने तिस प्रति

न तं वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ॥ अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्यां नैवाब्रवीन्मुनिः ॥ ८ ॥ स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली ॥ अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ९ ॥ सर्वकामदुहां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥ तां वै क्रोधाच्च लोभाच्च श्रमाद्वै च क्षुधान्वितः ॥ १० ॥ दाशधर्मगतो राजा तां जघान स वै मुने ॥ स तं मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजम् ॥ ११ ॥ भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठो ह्यस्य चुक्रुधे ॥ उवाच च मुनिश्रेष्ठस्तं तदा क्रोधसंयुतः ॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ पातयेयमहं क्रूरं तव शंकुमयोमयम् ॥ यदि ते द्वाविमौ शंकू नश्येतां वै कृतौ पुरा ॥ १३ ॥ पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ॥ अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १४ ॥ त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुरिति स स्मृतः ॥ विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ॥ १५ ॥ तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशंकवे ॥ छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ॥ १६ ॥

कहा ॥ १२ ॥ ११ ॥ वशिष्ठजी बोले, मैं तेरे ऊपर बडे कठिन लोहमय शंकु गिराऊंगा चाहे पहले यह दो शंकु गिरजायँ ॥ १३ ॥ पर पिताको दुःख देने और गोवध करने अप्रोक्षित मांस खानेसे तैंने तीन अपराध कियेहैं ॥ १४ ॥ इससे तू त्रिशंकु होगा यह कहतेही वह त्रिशंकु होगया जो कि उसने विश्वा मित्रकी दाराओंको पाला था जब वे आये ॥ १५ ॥ तब विश्वामित्रने त्रिशंकुको वर दिया और उसने उनके कहनेसे यह वर मांगा

---

* वशिष्ठ और विश्वामित्रके वैरके कारण यह अधर्म कार्य अनसमझोंने किये हैं यह गौ ऋषि वशिष्ठकी पुण्यरूपा थी न कि लौकिक गाय थी ।

कि शरीरसहित स्वर्गको जाऊं ॥ १६ ॥ बारह वर्षकी अनावृष्टि बीतनेपर विश्वामित्रने उस त्रिशंकुको राज्यपर बैठाय यज्ञ कराया ॥ १७ ॥ देवता तथा वशिष्ठजीके निवारण करनेपर भी महर्षि विश्वामित्रने उसे शरीरसहित स्वर्गको चढाया ॥ १८ ॥ उसकी सत्यरथानामक केकयके वंशमें उत्पन्न होनेवाली स्त्रीने निष्पापी हरिश्चन्द्रनामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ वह राजा हरिश्चन्द्रजी त्रैशंकव कहलाये और राजसूययज्ञके करनेवाले चक्रवर्त्ती विख्यात हुए ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वनामक हुए रोहितके पुत्र वृक और वृकसे बाहु उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ उस राजाको हैहय और तालजंघने निकालदिया वह

अनावृष्टिभये चास्मिञ्जाते द्वादशवार्षिके ॥ अभिषिच्य पितृ राज्ये याजयामास तं मुनिः ॥ १७ ॥ मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥ सशरीरं तदा तं तु दिवमारोहयत्प्रभुः ॥ १८ ॥ तस्य सत्यरथा नाम भार्या केकयवंशजा ॥ कुमारं जनयामास हरिश्चंद्रमकल्मषम् ॥ १९ ॥ स वै राजा हरिश्चन्द्रो त्रैशंकव इति स्मृतः ॥ आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥ २० ॥ हरिश्चंद्रस्य हि सुतो रोहितो नाम विश्रुतः ॥ रोहितस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥ २१ ॥ हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यंति स्म तं नृपम् ॥ नात्मार्थे धार्मिको विप्रः स हि धर्मपरोऽभवत् ॥ २२ ॥ सगरं ससुतं बाहुर्जज्ञे सह गरेण वै ॥ और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ २३ ॥ आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥ जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजंघान्सहैहयान् ॥ २४ ॥ शकान्बहूदकांश्चैव पारदांतगणान्खशान् ॥ सुधर्मं स्थापयामास शशास वृषतः क्षितिम् ॥ २५ ॥ शानक उवाच ॥ स वै गरेण सहितः कथं जातस्तु क्षत्रियात् ॥ जितवानेतदाचक्ष्व विस्तरेण हि सूतज ॥ २६ ॥

धर्मात्मा विप्र केवल अपने लियेही धर्ममें तत्पर नहीं हुआ किन्तु औरोंके लिये भी धर्ममें प्रवृत्त हुआ ॥ २२ ॥ बाहुने गरेके सहित सगरनामक पुत्रको भृगुवंशी और्वके आश्रममें भार्गवसे रक्षित होकर उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ उस सगर राजाने भार्गवसे आग्नेयास्त्र लेके हैहय सहित तालजंघको मार पृथिवीको जीता ॥ २४ ॥ और शक नामवाले, बहूदक, पारदा, तगण, खश, आदि देशोंमें अपने धर्मको स्थापित किया और पृथिवीकी धर्मसे पालना करने लगा ॥ २५ ॥ शौनकजी बोले, हे सूतजी ! वह गरके सहित उस क्षत्रियसे कैसे उत्पन्न हुआ और सबोंको कैसे जीता यह सब विस्तारसे कहो ॥ २६ ॥

सूतजी बोले, हे मुने ! जिस प्रकार पारीक्षितके पूँछनेपर वैशंपायन मुनिने कहा था सो सब मैं कहता हूँ तुम एक मनसे सुनो ॥ २७ ॥ पारीक्षितजी बोले, हे मुने ! वह राजा सगरके सहित किस प्रकार उत्पन्न हुए और उन्होंने कैसे बहुतोंको मारा यह आप कहनेके योग्य हो ॥ २८ ॥ वैशंपायनजी बोले, हे तात ! हे विशांपते ! शकोंके सहित हैहय और तालजंघोंने व्यसनवाले राजा बाहुका सब राज्य हरण करलिया ॥ २९ ॥ यवन पारद काम्बोज तथा पाह्लव बहूदक नामवाले राक्षसोंके पांच गण कहे हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! राक्षसोंके यह पांच गण हैं इन्होंने अति पराक्रम करके बाहुका राज्य हैहयोंको

सूत उवाच ॥ पारीक्षितेन संपृष्टो वैशंपायन एव च ॥ यदाचष्ट स्मतद्वक्ष्ये शृणुष्वैकमना मुने ॥ २७ ॥ ॥ पारीक्षितो उवाच ॥ कथं
स सगरो राजा गरेण सहितो मुने ॥ जातस्स जघ्निवान्भूयानेतदाख्यातुमर्हसि ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बाहोर्व्यसनिनस्तात
हृतं राज्यमभूत्किल ॥ हैहयैस्तालजंघैश्च शकैस्सार्द्धं विशांपते ॥ २९ ॥ यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पाह्लवास्तथा ॥ बहूदकाश्च
पंचैव गणाः प्रोक्ताश्च रक्षसाम् ॥ ३० ॥ एते पंच गणा राजन् हैहयार्थेषु रक्षसाम् ॥ कृत्वा पराक्रमान् बाहो राज्यं तेभ्यो ददुर्बलात् ॥
॥ ३१ ॥ हतराज्यस्ततो विप्राः स वै बाहुर्वनं ययौ ॥ पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत् ॥ ३२ ॥ पत्नी या यादवी तस्य
सगर्भा पृष्ठतो गता ॥ सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वं सुतेष्यया ॥ ३३ ॥ सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा ज्वलनं चावरोहत ॥ और्वस्तां भार्गवो
राजन्कारुण्यात्समवारयत् ॥ ३४ ॥ तस्याश्रमे स्थिता राज्ञी गर्भरक्षणहेतवे ॥ सिषेवे मुनिवर्यं तं स्मरन्ती शंकरं हृदा ॥ ३५ ॥
एकदा खलु तद्गर्भो गरेणैव सह च्युतः ॥ सुमुहूर्त्ते सुलग्ने च पंचोच्चग्रहसंयुते ॥ ३६ ॥

देदिया ॥ ३१ ॥ राज्यके नष्ट होजानेसे वह राजा बाहु पत्नीके सहित दुःखी हो वनको चलागया और वहां उसने प्राणोंको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ उसकी यादवीनामक गर्भिणी स्त्री उसके साथ चली वह उसकी सौतने पुत्रकी ईर्षासे उसे गर (विष) देदिया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! वह भार्या पतिकी चिता बनाय सती होने लगी तबही दयासे भार्गव और्वने उसे निवारण किया ॥ ३४ ॥ तब वह गर्भकी रक्षा करनेके निमित्त उन भार्गवके आश्रममें स्थित हुई और वह रानी हृदयसे शिवका ध्यान करके उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगी ॥ ३५ ॥ एक समय श्रेष्ठ मुहूर्त्तमें शुभलग्नमें पांच उच्चके ग्रह स्थित

होनेपर गरके समेत उससे बालकका जन्म हुआ ॥३६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सब प्रकार प्रबल हुई उस लग्नमें महाबाहु सगरनामक राजा उत्पन्न हुआ ॥३७॥ और्वने उन महात्माके जातकर्मादि संस्कार करके क्रमशः वेदशास्त्रोंको पढाय तत्पश्चात् अस्त्रोंको सिखाया ॥ ३८ ॥ तब वह महाभाग राजा सगर देवताओंसे दुर्लभ आग्नेयास्त्रको विधिसहित प्रीतिसे सीखने लगा ॥ ३९ ॥ उसने अस्त्रके बलसे तथा बलसे प्रौढ हो क्रोध करके शीघ्रही हैहय राजोंको नष्ट किया ॥ ४० ॥ कीर्त्तिमानोंमें श्रेष्ठ सगरने लोकोंमें कीर्त्ति फैलाई और पृथ्वीपर धर्म स्थापन किया ॥ ४१ ॥ तब ताडन कियेहुए वे शक यवन काम्बोज पाह्लव

तस्मिँल्लग्ने च बलिनि सर्वथा मुनिसत्तम ॥ व्यजायत महाबाहुस्सगरो नाम पार्थिवः ॥ ३७ ॥ और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा
महात्मनः ॥ अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ३८ ॥ आग्नेयं तं महाभागो ह्यमरैरपि दुस्सहम् ॥ जग्राह विधिना
प्रीत्या सगरोसौ नृपोत्तमः ॥ ३९ ॥ स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥ हैहयान्विजघानाशु संक्रुद्धोऽस्त्रबलेन च ॥ ४० ॥
आजहार च लोकेषु कीर्त्तिं कीर्तिमतां वरः ॥ धर्मं संस्थापयामास सगरोऽसौ महीतले ॥ ४१ ॥ ततश्शकास्सयवनाः काम्बोजाः
पाह्लवास्तथा ॥ हन्यमानास्तदा ते तु वसिष्ठं शरणं ययुः ॥ ४२ ॥ वसिष्ठो वंचनां कृत्वा समयेन महाद्युतिः ॥ सगरं वारयामास
तेषां दत्वाभयं नृपम् ॥ ४३ ॥ सगरस्स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥ धर्मं जघान तेषां वै केशान्यत्वं चकार ह ॥ ४४ ॥
अर्द्धं शकानां शिरसो मुंडं कृत्वा व्यसर्जयत् ॥ यवनानां शिरस्सर्वं कांबोजानां तथैव च ॥ ४५ ॥ पारदा मुंडकेशाश्च पाह्लवाश्श्म
श्रुधारिणः ॥ निस्स्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ ४६ ॥

वशिष्ठकी शरणमें गये ॥ ४२ ॥ समय पाय कान्तिवान् वसिष्ठने वंचना करके उन राजाओंको अभय दे सगरको निवारण किया ॥ ४३ ॥ सगरने अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरुके वचनको सुनके उन राजाओंका धर्म नष्ट किया तथा केशच्छेदन कराया ॥ ४४ ॥ शकोंके आधे शिरको तथा यवन और काम्बोजोंके सम्पूर्ण शिरको मुंडन कराके विसर्जन किया ॥४५॥ उस महात्माने पारदोंके केश मुण्डन करके और पाह्लवोंको डाढी मूछ धराके निकाल दिया ॥४६॥

हे तात ! उस राजाने सब पृथिवीको जीता तथा उन राजाओंके धर्मको जीता और वे सब क्षत्रिय धर्महीन कर दिये ॥ ४७ ॥ उस धर्मविजयी राजाने इस पृथ्वीको जीतके वाजिमेधयज्ञ करनेको घोडा छोडा ॥ ४८ ॥ हे मुने ! उस राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके सहित छोडाहुआ वह घोड़ा पूर्व दक्षिण समुद्रकी ओर गया ॥ ४९ ॥ तब स्वार्थसाधक देवराज इन्द्रने उस घोडेको समुद्रके किनारे हरलिया, और भूमिमें प्रवेशित किया ॥ ५० ॥ तब महाराजा सगरने उस घोडेके खोजनेके लिये चारों ओरसे उस स्थानको पुत्रोंसे खुदवाया ॥५१॥ तब वहां बडे समुद्रके खोदनेपर उन्होंने आदिपुरुष

जिता च सकला पृथ्वी धर्मतस्तेन भूभुजा ॥ सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्महीनाः कृताः पुरा ॥ ४७ ॥ स धर्मविजयी राजा विजित्वेमां वसुंधराम् ॥ अश्वं संस्कारयामास वाजिमेधाय पार्थिवः ॥ ४८ ॥ तस्य चारयतस्सोऽश्वस्समुद्रे पूर्वदक्षिणे ॥ गतः षष्टिसहस्रैस्तु तत्पुत्रै रन्वितो मुने ॥ ४९ ॥ देवराजेन शक्रेण सोऽश्वो हि स्वार्थसाधिना ॥ वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ ५० ॥ महाराजोऽथ सगरस्तद्धयान्वेषणाय च ॥ स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास सर्वतः ॥ ५१ ॥ आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ तमादिपुरुषं देवं कपिलं विश्वरूपिणम् ॥५२॥ तस्य चक्षुस्समुत्थेन वह्निना प्रतिबुध्यतः ॥ दग्धाः षष्टिसहस्राणि चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५३॥ हर्षकेतुस्सुकेतुश्च तथा धर्मरथोपरः॥शूरः पंचजनश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः॥५४॥प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिः पंच वरान्स्वयम् ॥ वंशं मेधां च कीर्तिंश्च समुद्रं तनयं धनम् ॥५५॥ सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तस्य तेन वै ॥ तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥ ५६ ॥

विश्वरूपी उन कपिलदेवको पाया ॥ ५२ ॥ उनके नेत्रोंकी अग्निसे वे साठ हजार पुत्र भस्म हुए केवल चार पुत्र शेष रहे ॥ ५३ ॥ हर्षकेतु सुकेतु तथा धर्मरथ और शूर पंचजन यह उसके वंश चलानेवाले राजा हुए ॥ ५४ ॥ तब भगवान् हरिने स्वयम् राजा सगरको पांच वर दिये वंशवृद्धि, मेधा, कीर्ति, समुद्रका पुत्र और धन ॥ ५५ ॥ वह उस कर्मसे समुद्रके भावको प्राप्त हुए और उस अश्वमेधके घोडेको समुद्रसे पाया ॥ ५६ ॥

वह महायशस्वी सौ अश्वमेधोंके फलको प्राप्त हुआ और वहाँ सुव्रतवाले देवताओंको तथा शिवकी विभूतियोंको यजन करने लगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिव
महापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ शौनकजी बोले, वीर महाबली विक्रान्त सगरके साठ
हजार पुत्र किस विधिसे उत्पन्न हुए सो सब कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, तपसे भस्म हुएहैं पाप जिनके ऐसी सगरकी दो स्त्रीं थीं उन दोनोंको मुनिश्रेष्ठ
और्वने सन्तुष्ट हो वरदान मांगनेको कहा ॥ २ ॥ एकने वेगवाले साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा दूसरीने वंशकर्त्ता एक सुन्दर पुत्रको मांगा ॥३॥ तब उसने

आजहाराश्वमेधानां शतं स तु महायशाः ॥ ईजे शंभुविभूतीश्च देवतास्तत्र सुव्रताः ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासं
हितायां सत्यव्रतादिसगरपर्यंतवंशवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ शौनक उवाच ॥ सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महाबलाः ॥
विक्रांताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ॥ और्वस्तयो
र्वरं प्रादात्तोषितो मुनिसत्तमः ॥ २ ॥ षष्टिपुत्रसहस्राणि एका वव्रे तरस्विनाम् ॥ एकं वंशकरं त्वेका यथेष्टं वरशालिनी ॥ ३ ॥ त
त्रैवागत्य तांल्लब्ध्वा पुत्राञ्शूरान्बहूंस्तदा ॥ सा चैव सुषुवे तुम्बं बीजपूर्णं पृथक्कृतम् ॥ ४ ॥ ते सर्वे हि स्वधात्रीभिर्ववृधुश्च यथा
क्रमम् ॥ घृतपूर्णेषु कुम्भेषु कुमाराः प्रीतिवर्द्धनाः ॥ ५ ॥ कपिलाग्निप्रदग्धानां तेषां तत्र महात्मनाम् ॥ एकः पंचजनो नाम पुत्रो
राजा बभूव ह ॥ ६ ॥ ततः पंचजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् ॥ दिलीपस्तनयस्तस्य पुत्रो यस्य भगीरथः ॥ ७ ॥ यस्तु गंगां
सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ॥ समुद्रमानयच्चेमां दुहितृत्वमकल्पयत् ॥ ८ ॥

घर आके उन शूर अनेक पुत्रोंसे युक्त बीजोंसे पूर्णहुए एक तोम्बेको उत्पन्न किया और फिर पृथक् किया उसमें बीजरूपसे सब बालक थे ॥ ४ ॥ प्रीतिके
बढानेवाले वे कुमार क्रमसे घृतसे पूर्णहुए घडोंमें रक्खेगये और अपनी धाइयोंसे बढने लगे ॥ ५ ॥ वहाँ कपिलदेवकी अग्निसे भस्महुए उन महात्मा ओंमें
एक पंचजननामक पुत्र राजा हुआ ॥ ६ ॥ तब उनसे वीर्यवान् अंशुमान् हुए उनके पुत्र दिलीप हुए उनके वंशमें भगीरथ हुए ॥ ७ ॥ जिन प्रभुने

नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको उतारा और समुद्रने मानकर इन गंगाजीको अपनी पुत्री किया ॥ ८ ॥ भगीरथके पुत्र राजा श्रुतसेन हुए उसके परम धर्मात्मा
नाभागनामक पुत्र हुए ॥ ९ ॥ नाभागके पुत्र अंबरीष उनके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए सिन्धुद्वीपके दायाद वीर्यवान् अयुताजित् हुए ॥ १० ॥ अयुताजित्के पुत्र
महायशस्वी ऋतुपर्ण हुए वह दिव्याक्ष हृदयके जाननेवाले राजा नलके मित्र हुए ॥ ११ ॥ ऋतुपर्णके पुत्र कान्तिमान् अनुपर्ण हुए उनके पुत्र कल्माषपाद
मित्रसह हुए ॥ १२ ॥ कल्माषपादके पुत्र सर्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध हुए उनके पुत्र अनरण्य हुए ॥ १३ ॥ अनरण्यके पुत्र विद्वान् मुंडिद्रुह हुए उनके पुत्र

भगीरथसूतो राजा श्रुतसेन इति श्रुतः ॥ नाभागस्तु सुतस्तस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ९ ॥ अंबरीषस्तु नाभागिस्सिंधुद्वीपस्ततोऽ
भवत् ॥ अयुताजित्तु दायादस्सिंधुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥ १० ॥ आयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ॥ दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा
नलसखोऽभवत् ॥ ११ ॥ ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदनुपर्णो महाद्युतिः ॥ तस्य कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥ १२ ॥ कल्मा
षपादस्य सुतस्सर्वकर्मेति विश्रुतः ॥ अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतस्सर्वशर्मणः ॥ १३ ॥ अनरण्यसुतो राजा विद्वान्मुंडिद्रुहोऽभवत् ॥
निषधस्तस्य तनयो रतिः खट्वाङ्ग इत्यपि ॥ १४ ॥ येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥ त्रयोऽपि संचिता लोका बुद्ध्या
सत्येन चानघ ॥ १५ ॥ दीर्घबाहुस्सुतस्तस्य रघुस्तस्याभवत्सुतः ॥ अजस्तस्य तु पुत्रोऽभूत्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १६ ॥ रामो
दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा यो महायशाः ॥ स विष्ण्वंशो महाशैवः पौलस्त्यो येन घातितः ॥ १७ ॥ तच्चरित्रं च बहुधा पुराणेषु प्रवर्णि
तम् ॥ रामायणे प्रसिद्धं हि नातः प्रोक्तं तु विस्तरात् ॥ १८ ॥

निषध, रति, खट्वांग, हुए ॥ १४ ॥ हे अनघ ! जिसने स्वर्गसे इस लोकमें आके जीवनको पाय बुद्धिसे तीनों लोक संचित किये ॥ १५ ॥ उनके पुत्र
दीर्घबाहु इनके पुत्र रघु हुए रघुके पुत्र अज उनसे दशरथ हुए ॥ १६ ॥ दशरथसे धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्र उत्पन्न हुए वह विष्णुके अंश महाशैव थे
जिन्होंने रावणको मारा ॥ १७ ॥ उन रामचन्द्रका जीवनचरित्र अनेक पुराणोंमें तथा विशेषकर रामायणमें प्रसिद्ध है इस कारण विस्तारसे नहीं कहा ॥ १८ ॥

रामचन्द्रके पुत्र कुश हुए कुशसे अतिथि उत्पन्न हुए उनके पुत्र निषध हुए ॥ १९ ॥ निषधके पुत्र नल हुए नलके पुत्र नभ हुए नभके पुत्र पुण्डरीक उनके पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥ २० ॥ क्षेमधन्वाके पुत्र प्रतापी देवानीक और उनसे अहीनगुनामक पुत्र हुए ॥ २१ ॥ अहीनगुके दायाद सहस्वान् उनके पुत्र वीरसेन जो इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ वीरसेनके दायाद पारियात्र हुए उनके पुत्र बलाख्य उनके पुत्र स्थल हुए ॥ २३ ॥ उनके सूर्यके अंशसे उत्पन्नहुआ प्रतापी यक्षनामक पुत्र हुआ उनका पुत्र अगुण उनसे विधृति ॥२४॥ उनका पुत्र हिरण्यनाभ उनका पुत्र योगाचार्य वह जैमिनि मुनिक ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यपि विश्रुतः ॥ अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ १९ ॥ निषधस्य नलः पुत्रो नभाः पुत्रो नलस्य तु ॥ नभसः पुंडरीकश्च क्षेमधन्वा ततस्स्मृतः ॥ २० ॥ क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ॥ आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥ २१ ॥ अहीनगोस्तु दायादस्सहस्वान्नाम वीर्यवान् ॥ वीरसेनात्मजस्तस्य यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः ॥ २२ ॥ वीरसेनस्य दायादः पारियात्रो बभूव ह ॥ ततो बलाख्यस्तनयस्स्थलस्तस्मादभूत्सुतः ॥ २३ ॥ अर्कांशसंभवस्तस्मात्पुत्रो यक्षः प्रतापवान् ॥ तत्सुतस्त्वगुणस्त्वासीत्तस्माद्विधृतिरात्मजः ॥ २४ ॥ हिरण्यनाभस्तत्पुत्रो योगाचार्य्यो बभूव ह ॥ स शिष्यो जैमिनिमुनेर्ह्यात्मविद्याविशारदः ॥२५॥ कौशिल्यो याज्ञवल्क्योथ योगमध्यात्म्यसंज्ञकम् ॥ यतोऽध्यगान्नृपवराद्धृदयग्रंथिभेदनम् ॥ २६ ॥ तत्सुतो पुष्यनामा हि ध्रुवसंज्ञस्तदात्मजः ॥ अग्निवर्णस्सुतस्तस्य शीघ्रनामा सुतस्ततः ॥ २७ ॥ मरुन्नामा सुतस्तस्य योगसिद्धो बभूव ह ॥ असावास्तेऽद्यापि प्रभुः कलापग्रामसंज्ञके ॥ २८ ॥ तद्वासिभिश्च मुनिभिः कलेरंते स एव हि ॥ पुनर्भावयिता नष्टं सूर्य्यवंशं विशेषतः ॥ २९ ॥

शिष्य और आत्मविद्यामें प्रवीण हुआ ॥ २५ ॥ जिन राजासे हृदयकी ग्रंथिके छेदन करनेवाले अध्यात्मयोगको कौशल्य याज्ञवल्क्यने प्राप्त किया ॥ २६ ॥ उनका पुत्र पुष्य नामक हुआ फिर उनका पुत्र ध्रुवसंज्ञक उनका पुत्र अग्निवर्ण उनका पुत्र शीघ्रनामक हुआ ॥ २७ ॥ उनका पुत्र मरुत् हुआ उनका पुत्र योगसिद्ध हुआ वह स्वामी अब भी कलापग्राममें स्थितहै ॥ २८ ॥ कलियुगके अन्तमें वह कलापग्रामनिवासी मुनियोंके साथ नष्टहुए सूर्यवंशको फिर

उद्धार करैगा ॥ २९ ॥ उनका पुत्र पृथुश्रुत उसका पुत्र संधि तथा उनका पुत्र अमर्षण उनका पुत्र मरुत्वान् हुआ ॥ ३० ॥ उसका पुत्र विश्व उनका
पुत्र प्रसेनजित् हुआ उनका पुत्र तक्षक उनका पुत्र बृहद्बल ॥ ३१ ॥ यह बीतेहुए इक्ष्वाकुवंशीय कहे अब धर्मात्मा आगामी वंशियोंको सुनो ॥ ३२ ॥
बृहद्बलका पुत्र बृहद्रण होगा उसका पुत्र उरुक्रिय होगा ॥ ३३ ॥ उसका पुत्र वत्सवृद्ध उनका पुत्र प्रतिव्योम उसका भावी पुत्र भानु दिवाकर वाहिनीपति
होगा ॥ ३४ ॥ उसका पुत्र सहदेव महावीर होगा उसका पुत्र बृहदश्व उसका पुत्र भानुमान् ॥ ३५ ॥ भानुमान्का भावी पुत्र प्रतीकाश्व उसका पुत्र सुप्रतीक

पृथुश्रुतश्च तत्पुत्रस्संधिस्तस्य सुतः स्मृतः ॥ अमर्षणस्सुतस्तस्य मरुत्वांस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ३० ॥ विश्वसाह्वस्सुतस्तस्य तत्सुतोऽ
भूत्प्रसेनजित् ॥ तक्षकस्तस्य तनयस्तत्सुतो हि बृहद्बलः ॥ ३१ ॥ एत इक्ष्वाकुवंशीया अतीताः संप्रकीर्तिताः ॥ शृणु तानागता
न्भूतांस्तद्वंश्यान्धर्मवित्तमान् ॥ ३२ ॥ बृहद्बलस्य तनयो भविता हि बृहद्रणः ॥ बृहद्रणसुतस्तस्योरुक्रियो हि भविष्यति ॥ ३३ ॥
वत्सवृद्धस्सुतस्तस्य प्रतिव्योमसुतस्ततः ॥ भानुस्तत्तनयो भावी दिवाको वाहिनीपतिः ॥ ३४ ॥ सहदेवस्सुतस्तस्य महावीरो भवि
ष्यति ॥ तत्सुतो बृहदश्वो हि भानुमांस्तत्सुतो बली ॥ ३५ ॥ सुतो भानुमतो भावी प्रतीकाश्वश्च वीर्यवान् ॥ सुप्रतीकस्सुतस्तस्य
भविष्यति नृपोत्तमः ॥ ३६ ॥ मरुदेवस्सुतस्तस्य सुनक्षत्रो भविष्यति ॥ तत्सुतः पुष्करस्तस्यांतरिक्षस्तत्सुतो द्विजाः ॥ ३७ ॥
सुतपास्तत्सुतो वीरो मित्रचित्तस्य चात्मजः ॥ बृहद्भाजस्सुतस्तस्य बर्हिनामा तदात्मजः ॥ ३८ ॥ कृतंजयस्सुतस्तस्य तत्सुतो हि रणं
जयः ॥ संजयस्तु मयस्तस्य तस्य शाक्यो हि चात्मजः ॥ ३९ ॥ शुद्धोदस्तनयस्तस्य लांगलस्तु तदात्मजः ॥ तस्य प्रसेनजित्पुत्रो
तत्सुतः शूद्रकाह्वयः ॥ ४० ॥ रुणको भविता तस्य सुरथस्तत्सुतः स्मृतः ॥ सुमित्रस्तत्सुतो भावी वंशनिष्ठांत एव हि ॥ ४१ ॥

राजर्षि होगा ॥ ३६ ॥ उनका पुत्र मरुदेव उनका पुत्र सुनक्षत्र होगा उनका पुत्र पुष्कर उनका पुत्र अन्तरिक्ष ॥ ३७ ॥ उनका पुत्र सुतप उसका पुत्र
वीर उसका पुत्र मित्रजित उसका पुत्र बृहद्भोज उसका पुत्र बहिर्नामक ॥ ३८ ॥ उसका पुत्र कृतंजय उसका पुत्र रणंजय उसका मय उसका पुत्र शाक्य
॥ ३९ ॥ उसका पुत्र शुद्धोद उसका पुत्र लांगल उसका पुत्र प्रसेनजित् उसका पुत्र शूद्रक ॥ ४० ॥ उसका पुत्र रुणक होगा उसका पुत्र सुरथ उसका

पुत्र सुमित्र होगा वह वंशनिष्ठाको समाप्त करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥ सुमित्रके पश्चात् इक्ष्वाकुवंशके विचित्र वीर्यवाले धर्मात्मा शुभकर्म करनेवाले राजाओंकी समाप्ति होगी ॥ ४२ ॥ उनका शुभ वंश सुमित्र राजाको प्राप्त हो कलियुगमें विश्रामको प्राप्त होगा फिर ब्राह्म सतयुगमें बढैगा ॥ ४३ ॥ यह वैवस्वत वंशमें अतिदक्षिणावाले इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्नहुए राजा विशेष करके वर्णन किये ॥४४॥ आदित्य विवस्वान्की तथा प्रजाको पुष्टि देनेवाले देव श्राद्धदेवकी पवित्र सृष्टि वर्णन की ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य सूर्यकी इस सृष्टिको पढताहै अथवा सुनता है वह सन्तानवाला होके सायुज्य परम सुखको भोगता है ॥४६॥

सुमित्रांतोन्वयोऽयं वै इक्ष्वाकूणां भविष्यति ॥ राज्ञां वैचित्रवीर्य्याणां धर्म्मिष्ठानां सुकर्म्मणाम् ॥ ४२ ॥ सुमित्रं प्राप्य राजानं स तद्वंशश्शुभः कलौ ॥ संस्थां प्राप्स्यति तद्ब्राह्मे वर्द्धिष्यति पुनः कृते ॥ ४३ ॥ एतद्वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ ४४॥ पुण्येयं परमा सृष्टिरादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥ ४५ ॥ पठञ्छृण्वन्निमां सृष्टिमादित्यस्य च मानवः ॥ प्रजावानेति सायुज्यमिह भुक्त्वा सुखं परम् ॥ ४६॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य श्राद्धदेवः सूर्य्यान्वयमनुत्तमम् ॥ पर्य्यपृच्छन्मुनिश्रेष्ठश्शौनकस्सूतमादरात् ॥ १॥ ॥ शौनक उवाच ॥ सूतसूत चिरं जीव व्यासशिष्य नमोस्तु ते ॥ श्राविता परमा दिव्या कथा परमपावनी ॥ २ ॥ त्वया प्रोक्तः श्राद्धदेवस्सूर्य्यः सद्वंशवर्द्धनः ॥ संशयस्तत्र मे जातस्तं ब्रवीमि त्वदग्रतः ॥ ३ ॥ कुतो वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्प्रीत्या छिंधि मे संशयं त्विमम् ॥ ४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पंचम्यामुमासंहितायां वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥ व्यासजी बोले, इस प्रकार श्राद्धदेव उत्तम सूर्यवंशको सुनके मुनिश्रेष्ठ शौनकजी आदरसे सूतजीसे पूँछने लगे ॥ १ ॥ शौनकजी बोले, हे चिरञ्जीव ! हे व्यासजीके शिष्य ! हे सूतजी ! तुमको नमस्कार है तुमने परम दिव्य अतिपवित्र करनेवाली कथा सुनाई ॥ २ ॥ तुमने जो शुभ वंशका बढानेवाला श्राद्धदेव सूर्य कहा उसमें मुझे सन्देह हुआ सो तुम्हारे आगे मैं कहता हूँ ॥३॥ आदित्य विवस्वान्को श्राद्धदेवत्व कहांसे मिला यह मैं प्रीतिसे सुनना चाहता हूँ मेरे इस सन्देहको दूर करो॥४॥

हे प्रभो ! श्राद्धके माहात्म्यको और उसके फलको कहो जिससे प्रसन्नहुए पितर उसको कल्याणसे युक्त करतेहैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! यह पितरोंकी उत्पत्ति सुनना चाहता हूँ तुम अतिकृपा करके मुझसे कहो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले, हे शौनक ! वह सम्पूर्ण पितरोंकी उत्पत्ति प्रीतिसहित तुमसे कहता हूँ जो मार्कण्डेयने भीष्मसे कही है ॥ ७ ॥ और जो सनत्कुमारने बुद्धिमान् मार्कंडेयसे कही है वह सब कामनाके फलोंकी देनेवाली उत्पत्ति तुमसे वर्णन करताहूँ ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरसे पूँछेहुए धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ शरशय्यापर स्थितहुए भीष्मजीने जो कुछ कहा सो मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर

श्राद्धस्यापि च माहात्म्यं तत्फलं च वद प्रभो ॥ प्रीताश्च पितरो येन श्रेयसा योजयंति तम् ॥ ५ ॥ एतच्च श्रोतुमिच्छामि पितृणां सर्गमुत्तमम् ॥ कथय त्वं विशेषेण कृपां कुरु महामते ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ वच्मि तत्तेऽखिलं प्रीत्या पितृसर्गं तु शौनक ॥ मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते ॥ ७ ॥ गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय धीमते ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरेण संपृष्टो भीष्मो धर्मभृतां वरः ॥ शरशय्यास्थितः प्रोचे तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पुष्टिकामेन पुंसा वै कथं पुष्टिरवाप्यते ॥ एतच्छ्रोतुं समिच्छामि किं कुर्वाणो न सीदति ॥ १० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरेण संपृष्टं प्रश्नं श्रुत्वा स धर्मवित् ॥ भीष्मः प्रोवाच सुप्रीत्या सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥ ११ ॥ भीष्म उवाच ॥ ये कुर्वंति नराश्श्राद्धान्यपि प्रीत्या युधिष्ठिर ॥ श्राद्धैः प्रीणाति तत्सर्वं पितृणां हि प्रसादतः ॥ १२ ॥ श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामास्सदा नराः ॥ अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥ १३ ॥ पितुः पिता महश्चैव त्रिषु पिंडेषु नित्यदा ॥ पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम् ॥ १४ ॥

बोले, पुष्टि चाहनेवाले पुरुषको किस प्रकार पुष्टि प्राप्त होती है और क्या कर्म करके मनुष्य दुःखी नहीं होता यह सब सुनना चाहताहूँ ॥ १० ॥ सूतजी बोले, युधिष्ठिरसे पूँछेहुए उस प्रश्नको सुनके धर्मात्मा वह भीष्म सब सुननेवालोंसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ भीष्मजी बोले, हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य प्रेमसे श्राद्धोंको करतेहैं तो उन श्राद्धोंसे पितरोंके प्रसादसे सब प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ श्रेष्ठ फलके चाहनेवाले मनुष्य सदा पिता और पितामहको और प्रपितामहको तीनों पिंडोंमें श्राद्ध करतेहैं ॥ १३ ॥ पितर धर्मकी कामना करनेवाले तथा सन्तानकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको प्रजा तथा धर्मको नित्य देतेहैं ॥ १४ ॥

हे युधिष्ठिर ! पुष्टिकी इच्छा करनेवालेको पुष्टि देतेहैं ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर बोले, किसीके पितर स्वर्गमें तथा किसीके नरकमें होतेहैं मनुष्योंको नित्यही कर्मानुसार फल मिलता है ॥ १६ ॥ उन पितरोंको दियेहुए पिण्डश्राद्ध आदि किस प्रकार पहुंचतेहैं और वे नरकमें स्थितहुए पितर फल देनेमें कैसे समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥ देवता भी स्वर्गमें पितरोंको पूजते हैं ऐसा मैंने सुना है यह मेरी सुननेकी इच्छा है मुझसे विस्तारसे कहो ॥ १८ ॥ भीष्मजी बोले, हे अरिन्दम ! इस विषयमें तुमसे कहूंगा जैसा मैंने सुना है और जिस प्रकार दूसरे लोकमें प्राप्तहुए मेरे पिताने कहा है ॥ १९ ॥ श्राद्धके समय मैंने अपने

पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वर्तंते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः ॥ प्राणिनां नियतं चापि कर्मजं फलमुच्यते ॥ १६ ॥ तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन् ॥ कथं शक्तास्तमाहर्त्तुं नरकस्थाः फलं पुनः ॥ १७ ॥ देवा अपि पितॄन्स्वर्गे यजंत इति मे श्रुतम् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण ब्रवीहि मे ॥ १८ ॥ भीष्म उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम ॥ पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै ॥ १९ ॥ श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिंडस्समुद्यतः ॥ मत्पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत ॥ २० ॥ नैष कल्पविधिर्दृष्ट इति निश्चित्य चाप्यहम् ॥ कुशेष्वेव ततः पिंडं दत्तवानविचारयन् ॥ २१ ॥ ततः पिता मे संतुष्टो वाचा मधुरया तदा ॥ उवाच भारतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयानघ ॥ २२ ॥ त्वया दायादवानस्मि धर्मज्ञेन विपश्चिता ॥ तारितोहं तु जिज्ञासा कृता मे पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥ प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेण पार्थिवः ॥ प्रजास्तदनु वर्तंते प्रमाणाचरितं सदा ॥ २४ ॥ शृणु त्वं भारतश्रेष्ठ वेदधर्मांश्च शाश्वतान् ॥ प्रमाणं वेदधर्मस्य पुत्र निर्वर्त्तितं त्वया ॥ २५ ॥

पिताको पिंडदान किया तो पिताने मेरे हाथसे पिंडभेदन करके हाथमें पिंड मांगा ॥ २० ॥ ऐसी कल्पकी विधि नहीं देखी ऐसा निश्चय करके मैंने विना विचारे वह पिंड कुशाओं पर ही दिया ॥ २१ ॥ तब सन्तुष्टहुए मेरे पिता मुझसे मधुरवाणीसे बोले, हे अनघ ! भारतश्रेष्ठ ! मैं सन्तुष्ट हुआ ॥ २२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम धर्मात्मा विद्वान्से मैं भाग लेनेवाला हूं और तारागया हूं ऐसी मेरी जिज्ञासा की ॥ २३ ॥ राजा जिस प्रकार धर्माचरणसे प्रमाण करता है उस प्रकार प्रमाणके अनुसार आचरणसे प्रजा पीछे चलती है ॥ २४ ॥ हे भारतश्रेष्ठ ? हे पुत्र ! तुम सनातन वेद धर्मोंको सुनो तुमने वेदधर्मका

प्रमाण सम्पादन किया ॥ २५ ॥ इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हुआ और प्रीतिसे उत्तम तीनोंलोकोंमें दुर्लभ वरको देता हूं स्वीकार करो ॥ २६ ॥
जबतक तुम जीनेकी इच्छा करोगे तबतक तुम्हारी मृत्यु न होगी और तुम्हारी आज्ञा पाके मृत्यु होगी ॥ २७ ॥ और जो तुम इच्छा करते हो सो उत्तम
वर दूंगा हे भारतश्रेष्ठ ! जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो ॥ २८ ॥ ऐसा उनके कहनेपर अभिवादन करके हाथ जोड कृतकृत्य हुआ मैं यह बोला, हे मानद !
तुम्हारे प्रसन्न होनेपर मैं एक प्रश्नको पूँछता हूं उसको तुम स्वयम् कहो ॥ २९ ॥ तब वह मुझसे यह बोले जो तुम चाहते हो वह मैं दूंगा मेरे पूँछने

तस्मात्तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या वरमनुत्तमम् ॥ ददामि त्वं प्रतीक्षस्व त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २६ ॥ न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमि
च्छसि ॥ त्वत्तोभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता पुनः ॥ २७ ॥ किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम् ॥ तद् ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते
मनसि वर्तते ॥ २८ ॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तु अभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ अवोचं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि मानद ॥ प्रश्नं पृच्छामि वै कंचि
द्वाच्यस्स भवता स्वयम् ॥ २९ ॥ स मामुवाच तद् ब्रूहि यदीच्छसि ददामि ते ॥ इत्युक्तेथ मया तत्र पृष्टः प्रोवाच तन्नृपः ॥ ३० ॥
शंतनुरुवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि प्रश्नं तेऽहं यथार्थतः ॥ पितृकल्पं च निखिलं मार्कण्डेयेन मे श्रुतम् ॥ ३१ ॥ यत्त्वं पृच्छसि
मां तात तदेवाहं महामुनिम् ॥ मार्कण्डेयमपृच्छं हि स मां प्रोवाच धर्मवित् ॥ ३२ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन्मया
दृष्टं कदाचित्पश्यता दिवम् ॥ विमानं महदायांतमन्तरेण गिरेस्तदा ॥ ३३ ॥ तस्मिन्विमाने पर्यक्षं ज्वलितांगारवर्चसम् ॥ महातेजः
प्रज्वलंतं निर्विशेषं मनोहरम् ॥ ३४ ॥ अपश्यं चैव तत्राहं शयानं दीप्ततेजसम् ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् ॥ ३५ ॥

पर वह राजा यह कहने लगे ॥ ३० ॥ शंतनु बोले, हे तात ! सुनो मैं तुम्हारे प्रश्नको ठीक २ कहता हूं सम्पूर्ण पितृकल्प मैंने मार्कंडेयसे पहले सुनाहै
॥ ३१ ॥ हे तात ! जो तुम मुझसे पूँछते हो वहही पहले मैंने महामुनि मार्कंडेयसे पूँछा था तो वह धर्मात्मा मुझसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ मार्कंडेय मुनि
बोले, हे राजन् ! सुनो कभी आकाशको देखतेहुए मैंने पर्वतके अन्तरसे आतेहुए बडे विमानको देखा ॥ ३३ ॥ उस विमानमें प्रत्यक्ष जलतेहुए अंगारेके समान
प्रज्वलितहुए अनुपम मनोहर महातेजस्वी ॥ ३४ ॥ शयन करतेहुए प्रदीप्त तेजवाले अग्निमें रक्खीहुई अग्निके समान अंगुष्ठमात्र पुरुषको मैंने देखा ॥ ३५ ॥

तब मैंने उन प्रभुको शिरसे प्रणाम करके यह पूंछा हे प्रभो ! मैं तुमको कैसे जानूं ॥ ३६ ॥ तब वह धर्मात्मा मुझसे बोले, हे मुने ! ऐसा कोई तप नहीं है जिससे तुम ब्रह्माके पुत्र मुझको जानोगे ॥ ३७ ॥ मुझको सनत्कुमार नामवाला जानो मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ? ब्रह्माके और जो पुत्र हैं वे मेरे छोटे भाई हैं ॥ ३८ ॥ हमारे सात दुर्धर्ष भाई हैं जिनके वंश प्रतिष्ठित हैं हम सब आत्मामें आत्माको स्थिर करके यतिधर्म करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ हे मुने ! जब मैं उत्पन्न हुआ तबसे कुमारनामसे प्रसिद्ध हुआ हूं इस कारण मेरा सनत्कुमार नाम विख्यात हुआ ॥ ४० ॥ मेरे दर्शनकी इच्छासे तुमने जो

सोऽहं तस्मै नमः कृत्वा प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥ अपृच्छं चैव तमहं विद्यामस्त्वां कथं विभो ॥ ३६ ॥ स मामुवाच धर्मात्मा ते न तद्विद्यते तपः ॥ येन त्वं बुध्यसे मां हि मुने वै ब्रह्मणस्सुतम् ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारमिति मां विद्धि किं करवाणि ते ॥ ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्राः कनीयांसस्सु ते मम ॥ ३८ ॥ भ्रातरस्सप्त दुर्धषा येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ॥ वयं तु यतिधर्माणस्संयम्यात्मानमात्मनि ॥ ३९ ॥ यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विश्रुतः ॥ तस्मात्सनत्कुमारं मे नामैतत्कथितं मुने ॥ ४० ॥ यद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकांक्षया ॥ एष दृष्टोऽस्मि भद्रं ते कं कामं करवाणि ते ॥ ४१ ॥ इत्युक्तवन्तं तं चाहं प्रावोचं त्वं शृणु प्रभो ॥ पितॄणामादिसर्गं च कथयस्व यथातथम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्तस्स तु मां प्राह शृणु सर्वं यथातथम् ॥ वच्मि ते तत्त्वतस्तात पितृसर्गं शुभावहम् ॥ ४३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ देवान्पुरासृजद्ब्रह्मा मां यक्षध्वं स चाह तान् ॥ तमुत्सृज्य तमात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः ॥ ४४ ॥ ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ ॥ तस्मात्किंचिदजानंतो नष्टसंज्ञाः पितामहम् ॥ ४५ ॥

तप किया इससे मैंने दर्शन दिये, तुम्हारा कल्याण हो अब तुम्हारा क्या मनोर्थ पूर्ण करूं ? ॥ ४१ ॥ ऐसा कहते हुए उनसे मैंने कहा हे प्रभो ! सुनो पितरोंके आदिसर्गको यथार्थ कहो ॥ ४२ ॥ ऐसा कहनेपर वह मुझसे बोले, हे तात ! सुनो मैं तुमसे सम्पूर्ण शुभदायक पितृसर्गको ठीक ठीक कहता हूँ ॥ ४३ ॥ सनत्कुमारजी बोले, पहले ब्रह्माजीने देवताओंको उत्पन्न किया और उनसे यह बोले कि, तुम मुझे पूजो तब फलके चाहनेवाले देवताओंने ब्रह्माजीको त्यागके आत्मा (अपने) का यजन किया ॥ ४४ ॥ तब उन्हें ब्रह्माजीने यह शाप दिया कि, तुम चेतनासे हीन होगे इससे नष्टसंज्ञ होवे

ब्रह्माको कुछ न जानते हुए ॥ ४५ ॥ और नम्रहुए सब उनसे बोले, हे ब्रह्माजी ! हमपर दया करो ऐसा सुन ब्रह्माजीने उनसे प्रायश्चित्तके लिये कहा ॥
॥ ४६ ॥ तथा यह कहा कि, तुम सब अपने पुत्रोंसे पूँछो तो ज्ञानको पाओगे ऐसा सुन नष्ट संज्ञावाले वे सब अपने पुत्रोंसे पूँछने लगे ॥ ४७ ॥
हे अनघ ! तब उनके पुत्रोंने यह कहा हे पुत्रो ! चेतनासे युक्त होके तुम प्रायश्चित्तके निमित्त जाओ ॥४८ ॥ तब शाप दियेहुए उन देवताओंने पुत्रोंकी
इच्छासे ब्रह्माजीसे पूँछा कि हमारे पुत्रोंने हमको पुत्रक ऐसा सम्बोधन क्यों किया ॥ ४९ ॥ तब सन्देह करनेवाले उन देवताओंसे ब्रह्माजीने कहा हे सब

प्रोचुस्तं प्रणतास्सर्वे कुरुष्वानुग्रहं हि नः ॥ इत्युक्तस्तानुवाचेदं प्रायश्चित्तार्थमेव हि ॥ ४६ ॥ पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवा
प्स्यथ ॥ इत्युक्ता नष्टसंज्ञास्ते पुत्रान्पप्रच्छुरोजसा ॥ ४७ ॥ प्रायश्चित्तार्थमेवाधिलब्धसंज्ञा दिवौकसः ॥ गम्यतां पुत्रका एवं पुत्रैरु
क्ताश्च तेऽनघ ॥ ४८ ॥ अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रकामेन वेधसम् ॥ पप्रच्छुरुक्ताः पुत्रैस्ते गतास्ते पुत्रका इति ॥ ४९ ॥ ततस्तान
ब्रवीद्देवो देवान्ब्रह्मा ससंशयान् ॥ शृणुध्वं निर्जरास्सर्वे यूयं न ब्रह्मवादिनः ॥ ५० ॥ तस्माद्यदुक्तं युष्माकं पुत्रैस्तैर्ज्ञानिसत्तमैः ॥
मंतव्यं संशयं त्यक्त्वा तथा न च तदन्यथा ॥ ५१ ॥ देवाश्च पितरश्चैव यजध्वं त्रिदिवौकसः ॥ परस्परं महाप्रीत्या सर्वकामफलप्रदाः
॥ ५२ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ततस्ते छिन्नसंदेहाः प्रीतिमंतः परस्परम् ॥ बभूवुर्मुनिशार्दूल ब्रह्मवाक्यात्सुखप्रदाः ॥ ५३ ॥ ततो
देवा हि प्रोचुस्तान्यदुक्ताः पुत्रका वयम् ॥ तस्माद्भवंतः पितरो भविष्यथ न संशयः ॥ ५४ ॥ पितृश्राद्धे क्रियां कश्चित्करिष्यति न
संशयः ॥ श्राद्धैराप्यायितस्सोमो लोकानाप्याययिष्यति ॥ ५५ ॥

देवताओ ! सुनो तुम ब्रह्मवादी नहीं हो ॥ ५० ॥ इस कारण ज्ञानी तुम्हारे पुत्रोंने जो कुछ कहा उसे निस्सन्देह मानो अन्यथा न करा इनके ज्ञानमें तुम
बालक हो ॥ ५१ ॥ तुम सब आपसमें अति प्रेमसे संपूर्ण कामनाके देनेवाले देवता और पितरोंका पूजन करो ॥५२॥ सनत्कुमारजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ !
तब वे ब्रह्माजीके वचनसे सन्देहरहित हो परस्पर प्रीति करनेवाले सुखदायक हुए ॥ ५३ ॥ तब देवताओंने उनसे कहा जो कि, तुमने हमको पुत्रक ऐसा
कहा है इससे तुम पितर होओगे इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ५४ ॥ पितृश्राद्धमें कोई भी मनुष्य क्रियाको न छोडैगा श्राद्धोंसे तृप्तहुए सोम लोकोंको तृप्त

करेंगे ॥ ५५ ॥ समुद्र पर्वत वन स्थावर जंगमोंसे व्याप्त हो जो मनुष्य पुष्टिकी कामनासे श्राद्ध करेंगे ॥५६॥ प्रसन्न कियेहुए पितर उनको सदा पुष्टिको देंगे जो श्राद्धमें नाम गोत्रसे तीन पिंडोंको दान करेंगे ॥ ५७ ॥ तो सब जगह वर्तमानहुए निरंतर श्राद्धदानसे तृप्त कियेहुए सर्वव्यापक पितर प्रपितामह आदि श्राद्धकर्ताकी सब कामना पूर्ण करते हैं ॥ ५८ ॥ यह प्रकार सुनकर उन्होंने कहा इनका वचन सत्य हो हम सब देवता परस्परमें पुत्र और पितर हुए ॥५९॥ इस प्रकार वे पितर देवता धर्मसे पुत्रभावको प्राप्त हुए और परस्पर संसारमें पितर नामसे प्रसिद्ध हुए ॥६०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां

समुद्रं पर्वतवनं जंगमाजंगमैर्वृतम् ॥ श्राद्धानि पुष्टिकामैश्च ये करिष्यंति मानवाः ॥ ५६ ॥ तेभ्यः पुष्टिप्रदाश्चैव पितरः प्रीणितास्सदा ॥ श्राद्धे ये च प्रदास्यंति त्रीन्पिंडान्नामगोत्रतः ॥ ५७ ॥ सर्वत्र वर्तमानास्ते पितरः प्रपितामहाः ॥ भावयिष्यंति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः ॥ ५८ ॥ इति तद्वचनं सत्यं भवत्वथ दिवौकसः ॥ पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥ ५९ ॥ एवं ते पितरो देवा धर्मतः पुत्रतां गताः ॥ अन्योन्यं पितरो वै ते प्रथिताः क्षितिमण्डले ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणेपञ्चम्यामुमासंहितायां श्राद्धकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सप्त ते तपतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणास्स्मृताः ॥ चत्वारो मूर्त्तिमंतो वै त्रयश्चैव ह्यमूर्तयः ॥१॥ तान्यजंते देवगणा आद्या विप्रादयस्तथा ॥ आप्याययंति ते पूर्वं सोमं योगबलेन वै ॥ २ ॥ तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः॥सर्वेषां राजतं पात्रमथ वा रजतान्वितम् ॥३॥ दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धे प्रीणाति वै पितॄन् ॥ वह्नेराप्यायनं कृत्वा सोमस्य तु यमस्य वै ॥४॥ उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः ॥ पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयंति तम् ॥ ५ ॥

पं० उ० सं० श्राद्धकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ! स्वर्गमें वे सात पितृगण कहेहैं उनमें चार मूर्तिवाले तथा तीन बिनमूर्तिवालेहैं ॥ १ ॥ आद्यदेवगण तथा ब्राह्मण उनको पूजतेहैं तब वे पितर पहले योगबलसे सोमको तृप्त करतेहैं ॥ २ ॥ इस कारण चाँदीके पात्र तथा चांदीसहित श्राद्धका दान विशेषकर योगियोंको देना उचितहै ॥ ३ ॥ श्राद्धमें पुरोहितको प्रदान कियाहुआ स्वधा पितरोंको तृप्त करताहै अग्निका तथा सोम और यमका आह्वान (बुलाना) करके ॥ ४ ॥ अग्निमें वा अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके जो मनुष्य भक्तिसे पितरोंको

सन्तुष्ट करताहै तो पितर उसको सन्तुष्ट करतेहैं ॥ ५ ॥ प्रसन्नहुए पितर पुष्टि अधिक सन्तान स्वर्ग आरोग्य वृद्धि तथा और भी इच्छित पदार्थ देतेहैं ॥६॥ हे मुने ! हे विप्रर्षे ! देवकार्यसे भी पितरोंका कार्य विशेष कहाहै तुम पितरोंके भक्तहो इससे अजर अमर होओ ॥ ७ ॥ हे महामुने ! वह गति योगसे भी नहीं मिलती जो गति पितृभक्तकी होतीहै इससे विशेषकर पितृभक्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥ मार्कंडेयजी बोले, ऐसा कहके वह देवताओंके स्वामी देवताओंसे भी दुर्लभ विज्ञानसहित नेत्र देकर योगकी गतीको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ हे भीष्म ! सुनो पहले भारद्वाजके पुत्र ब्राह्मण योगधर्मको प्राप्त होके दुराचारसे

यच्छंति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥ स्वर्गमारोग्यवृद्धिं च यदन्यदपि चेप्सितम् ॥ ६ ॥ देवकार्य्यादपि मुने पितृकार्य्यं विशिष्यते ॥ पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे तेन त्वमजरामरः ॥ ७ ॥ न योगेन गतिस्सा तु पितृभक्तस्य या मुने ॥ पितृभक्तिर्विशेषेण तस्मात्कार्य्या महामुने ॥ ८ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवमुक्त्वाऽऽशु देवेशो देवानामपि दुर्लभम् ॥ चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं जगाम यौगिकीं गतिम् ॥ ९ ॥ शृणु भीष्म पुरा भूयो भारद्वाजात्मजा द्विजाः ॥ योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै ॥ १० ॥ वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च ॥ स्वसृपः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा ॥ ११ ॥ कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गर्गस्य चाभवन् ॥ पितर्य्युपरते सर्वे प्रवसंतस्तदाभवन् ॥ १२ ॥ विनियोगाद्गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन् ॥ समानवत्सां कपिलां सर्वेऽन्यायागतास्तदा ॥ ॥ १३ ॥ तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत ॥ क्रूरा बुद्धिस्समुत्पन्ना तां गां वै हिंसितुं तदा ॥ १४ ॥

फिर भ्रष्ट होगये ॥ १० ॥ वे वाग्दुष्ट क्रोधन हिंस्र पिशुन कवि स्वसृप पितृवर्त्ती नामवाले थे तथा नामके अनुसार कर्म करनेवाले थे ॥ ११ ॥ हे तात ! विश्वामित्रके पुत्र और गर्गके शिष्य हुए पिताके मरजानेपर सब प्रवास करनेवालेहुये ॥ १२ ॥ गुरुके विनियोगसे समान वत्सरवाली दोहनशील कपिला ❀ गौकोपालतेहुए वे सब अन्यायको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ हे भारत ! मार्गमें मूर्खता मोहसे वा उस समय भूँखसे व्याकुलहो उनकी उस गायके

---

* यह गौ ऋषिके पुण्यकी निर्मित थी इन गौओंकी समान न थी उस पुण्यको इन्होंने अन्यायसे मुक्त किया ।

मारनेको दुष्टबुद्धि उत्पन्न हुई ॥ १४ ॥ कवि तथा स्वसृषने उस गौको उनसे मांगा, पर उन्होंने न दी और वे इनको निवारण करनेमें समर्थ न हुए ॥ १५ ॥ उनमेंसे जो नित्य श्राद्ध आह्निक करनेवाला था वह पितृवर्त्ती था, वह पितरोंकी भक्तिमें तत्परहुआ सबोंसे क्रोधसे बोला ॥ १६ ॥ यदि और करनेको असमर्थ हो तो पितरोंको उद्देश करके यह कार्य साधन करो, तुम सब सावधान होके श्राद्ध करो ॥ १७ ॥ इस प्रकार यह गौ निस्सन्देह धर्मको प्राप्त होगी धर्मसे पितरोंको पूजके तुमको अधर्म नहीं होगा ॥ १८ ॥ हे भारत ! ऐसा कहनेपर उन सबोंने उस गायको स्नान कराकर पितरोंको समर्पण

तां कविस्स्वसृषश्चैव याचेते नैति वै तदा ॥ न चाशक्यास्तु ताभ्यां वा तदा वारयितुं निजाः ॥ १५ ॥ पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः ॥ स सर्वानब्रवीत्कोपात्पितृभक्तिसमन्वितः ॥ १६ ॥ यद्यशक्यं प्रकर्तव्यं पितॄनुद्दिश्य साध्यताम् ॥ प्रकुर्वंतो हि श्राद्धं तु सर्वे एव समाहिताः ॥ १७ ॥ एवमेषा च गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः ॥ पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मो नो भविष्यति ॥ १८ ॥ एवमुक्ताश्च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां तदा ॥ पितृभ्यः कल्पयित्वा तु ह्युपायुंजत भारत ॥ १९ ॥ उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन् ॥ शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सा वै गृह्यतामिति ॥ २० ॥ आर्तवत्स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः ॥ मिथ्योपचारतः पापमभूत्तेषां च गोघ्नताम् ॥२१॥ ततः कालेन कियता कालधर्ममुपागताः ॥ ते सप्त भ्रातरस्तात बभूवुस्स्वायुषःक्षये ॥२२॥ ते वै क्रूरतया हैंस्र्यात्स्वानार्य्यत्वाद्गुरोस्तथा ॥ उग्रहिंसाविहाराश्च जातास्सप्त सहोदराः ॥ २३ ॥ लुब्धकस्य सुतास्तावद्बलवंतो मनस्विनः ॥ जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः ॥ २४ ॥ स्वधर्मनिरतास्सर्वे मृगा मोहविवर्जिताः ॥ आसन्नुद्वेगसंविग्ना रम्ये कालंजरे गिरौ ॥ २५ ॥

करके कार्य साधा ॥ १९ ॥ पश्चात् सबोंने उन गुरुसे निवेदन किया कि, सिंहने वनमें गाय मारडाली आप इस बछियाको ग्रहण करो ॥ २० ॥ तब उस दुःखित वत्सको ब्राह्मणने ग्रहण किया मिथ्या उपचारसे उन सबको गौहत्या करनेका पाप लगा ॥ २१ ॥ हे तात ! तब कुछ समयके बीतनेपर कालके धर्ममें प्राप्तहुए ये सातोंभाई आयुके विनाशमें प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ अपनी दुष्टतासे वे सब हत्या करनेसे तथा अपनी दुर्जनतासे बडी हिंसासे विहार करनेवाले सगे सात भाई हुए ॥ २३ ॥ दशार्ण देशोंमें वे सातों बली बुद्धिमान् लुब्धकके पुत्र धर्ममें प्रवीण व्याधे हुए ॥ २४ ॥ अपने धर्ममें तत्पर मोहवर्जित

उद्वेगसे युक्त वे सातों मृगोंकी समान कालंजरपर्वतपर विहार करने लगे ॥ २५ ॥ तब उस मरणात्मक ज्ञानको स्मरण करके वे वनचर निर्द्वन्द्व हो शान्त होगये ॥ २६ ॥ वे सब व्याधे शुभकर्म करनेवाले अधर्माचरणसे हीन जातिस्मरणवाले होगये ॥ २७॥ पूर्वजन्ममें गुरुकुलोंमें जो धर्म सुना था उसी प्रकार संसारसे निवृत्त होनेकी बुद्धिमें स्थितहुए ॥ २८ ॥ और उन्होंने तपस्वियोंसे पर्वतोंमें भोजन पाय वहाँही प्राणोंको त्यागा हे भारत ! उन पतित व्याधोंके जो स्थान हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वह स्थान अब भी कालंजरपर्वतपर दीखतेहैं वे उस कर्मसे शुभ और अशुभसे वर्जित हुए ॥ ३० ॥ पीछे हिरन हुए

तमेवार्थमनुध्याय ज्ञानं मरणसंभवम् ॥ आसन्वनचराः क्षांता निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥ २६ ॥ ते सर्वे शुभकर्माणस्सद्धार्माणो वनेचराः ॥ विधर्माचरणैर्हीना जातिस्मरणसिद्धयः ॥ २७ ॥ पूर्वजातिषु यो धर्मः श्रुतो गुरुकुलेषु वै ॥ तथैव चास्थिता बुद्धौ संसारेऽप्यनिवर्तने ॥ २८ ॥ गिरिमध्ये जहुः प्राणाँल्लब्धाहारास्तपस्विनः ॥ तेषां तु पतितानां च यानि स्थानानि भारत ॥ २९ ॥ तथैवाद्यापि दृश्यंते गिरौ कालंजरे नृप ॥ कर्मणा तेन ते जाताः शुभाशुभविवर्जकाः ॥ ३० ॥ शुभाऽशुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः ॥ शुभे देशे शरद्वीपे सप्तै वासञ्जलौकसः ॥ ३१ ॥ त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो धर्मधारिणः ॥ निस्संगा निर्ममाश्शांता निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥ ३२ ॥ निवृत्तिनिर्वृताश्चैव शकुना नामतः स्मृताः ॥ ते ब्रह्मचारिणस्सर्वे शकुना धर्मचारिणः ॥ ३३ ॥ जातिस्मरास्सुसंवृद्धास्सप्तैव ब्रह्मचारिणः॥स्थिता एकत्र सद्धर्मा विकाररहितास्सदा॥३४॥विप्रयोनौ तु यन्मोहान्मिथ्यापचरितं गुरौ॥तिर्य्यग्योनौ तथा जन्म श्राद्धाज्ज्ञानं च लेभिरे ॥ ३५ ॥ तथा तु पितृकार्य्यार्थं कृतं श्राद्धं व्यवस्थितैः ॥ तदा ज्ञानं च जातिं च क्रमात्प्राप्तं गुणोत्तरम् ॥ ३६ ॥

फिर और शुभ तथा अशुभके होनेसे चकवेकी योनिको प्राप्त हुए फिर शुभदेशमें शरद्वीपमें सातों जलजीव (चकवे) ॥ ३१ ॥ बने धर्माचरण करनेवाले निसंग ममतारहित शान्त निर्द्वन्द्व निष्परिग्रही वे मुनि सहचरी धर्मको छोड ॥ ३२ ॥ निवृत्तिसे निवृत्त हो धर्माचारी वे शकुन नामवाले पक्षी ब्रह्मचारी हुए ॥ ३३ ॥ वे वृद्ध सात ब्रह्मचारी एक स्थानमें स्थित हो तथा सदा निर्विकारी हुए ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी योनिमें गुरुके विषयमें जो मिथ्या अपचार किया इससे पक्षीकी योनिमें जन्म हुआ फिर श्राद्ध करनेसे उन्होंने यह ज्ञान पाया ॥ ३५ ॥ और उन्होंने व्यवस्थितचित्त हो पितरोंके कार्यके अर्थ श्राद्ध

किया तो क्रमसे ज्ञानको और जातिस्मरणके उत्तम गुणको प्राप्त किया ॥ ३६ ॥ पूर्वज आदि गुरुकुलोंमें जो ब्रह्म ज्ञान सुना था उसी प्रकारका ज्ञान उनमें स्थित रहा इस कारण ज्ञानका अभ्यास करना उचित है ॥ ३७ ॥ वे सुमना सुवाक् शुद्ध पंचम छिद्र दर्शक स्वतन्त्र सुयज्ञ कुलीन नामवाले हुए॥ ॥ ३८ ॥ हे महामुने ! वनमें फिरनेवाले धर्मात्मा उन पक्षियोंका जिस प्रकार उत्तम आचरण हुआ उसे सुनो ॥ ३९ ॥ नीप देशोंका स्वामी प्रभावशाली शोभायमान अन्तःपुरसे युक्त राजा उस वनमें एक समय आया ॥ ४० ॥ सुखीराज्यसे युक्त शोभासे जातेहुए उस राजाको देखकर उस स्वतन्त्र चकवेने यह

पूर्वजा दिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै ॥ तथैव संस्थितज्ञाना तस्माज्ज्ञानं समभ्यसेत् ॥ ३७ ॥ सुमनाश्च सुवाक्छुद्धः पंचमश्छिद्रदर्शकः ॥ स्वतंत्रश्च सुयज्ञश्च कुलीना नामतः स्मृताः ॥ ३८ ॥ तेषां तत्र विहंगानां चरतां धर्मचारिणाम् ॥ सुवृत्तमभवत्तत्र तच्छुणुष्व महामुने ॥ ३९ ॥ नीपानामीश्वरो राजा प्रभावेण समन्वितः ॥ श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्राविवेश ह ॥ ४० ॥ स्वतंत्रश्चक्रवाकस्स स्पृहयामास तं नृपम् ॥ दृष्ट्वा यांतं सुखोपेतं राज्यशोभासमान्वितम् ॥ ४१ ॥ यद्यस्ति सुकृतं किंचित्तपो वा नियमोऽपि वा ॥ खिन्नोहमुपवासेन तपसा निश्चलेन च ॥ ४२ ॥ तस्य सर्वस्य पूर्णेन फलेनापि कृतेन हि ॥ सर्वसौभाग्यपात्रश्च भवेयमहमीदृशः ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तु चक्रवाकौ द्वावासतुस्सहचारिणौ ॥ आवां वै सचिवौ स्याव तव प्रियहितैषिणौ ॥ ४४ ॥ तथेत्युक्त्वा तु तस्यासीत्तदा योगात्मनो गतिः ॥ एवं तौ चक्रवाकौ च स्ववाक्यं प्रत्यभाषताम् ॥ ४५ ॥ यस्मात्कर्मब्रुवाणस्त्वं योगधर्ममवाप्य तम् ॥ एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे ॥ ४६ ॥

इच्छा की ॥ ४१ ॥ यदि कोई पुण्य वा तप नियम है जो निश्चल तपसे उपवाससे व्याकुल हुआ मैं ॥ ४२ ॥ उस सबके पूर्ण फलसे ऐसा सौभाग्यका पात्र होजाऊँ ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, तत्पश्चात् दोनों चकवे सहचारी हो यह बोले, कि हम दोनों तुम्हारे प्रिय हितैषी मन्त्री होवैं ॥ ४४ ॥ ऐसा हो यह कहनेसे उसकी योगात्मासे वैसी गति होगई तब वे दोनों चकवे इस प्रकार अपने वचनोंको कहने लगे ॥४५॥ जो कुछ कर्म करके तुमने योगधर्मको

प्राप्त किया है फिर ऐसी बात कहते हो इससे मेरा वचन सुनो ॥ ४६ ॥ हे तात ! तुम उत्तम काम्पिल्यनगरके राजा होंगे और योगके व्यभिचारके कारण यह दोनों चकवे तुम्हारे मंत्री होंगे ॥ ४७ ॥ तीनोंने राज्यविषयक मन लगानेके कारण जब कुछ न कहा तब उनका चतुर सहचारी फिर बोला, और उस सुमनाने उनपर प्रसन्नता प्रगट की ॥ ४८ ॥ भो तुम्हारा शाप मिटजायगा तुम फिर योगको प्राप्त होगे सर्वसत्ववाला यह सुयज्ञ फिर योगको प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ पितरोंके प्रसादसे तुमको पुण्यकी प्राप्ति रहैगी, जो कि तुमने गौको प्रोक्षण कर धर्मसे पितरोंके अर्थ अर्पण किया था ॥ ५० ॥ हम सबको

राजा त्वं भविता तात कांपिल्ये नगरोत्तमे ॥ एतौ ते सचिवौ स्यातां व्यभिचारप्रधर्षितौ ॥ ४७ ॥ न तानूचुस्त्रयो राज्यं चतुरस्सहचारिणः ॥ स प्रसादं पुनश्चक्रे तन्मध्ये सुमनाब्रवीत् ॥ ४८ ॥ अंतवाँ भविता शापः पुनर्योगमवाप्स्यथ ॥ सर्वसत्त्वः सुयज्ञश्च स्वतंत्रोऽयं भविष्यति ॥ ४९ ॥ पितृप्रसादाद्युष्माभिस्संप्राप्तं सुकृतं भवेत् ॥ गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्यश्चोपकल्पिताः ॥ ५० ॥ अस्माकं ज्ञानसंयोगस्सर्वेषां योगसाधनम् ॥ इदं च कार्यं संरब्धं श्लोकमेकमुदाहृतम् ॥ ५१ ॥ पुरुषान्तारितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ ॥ इत्युक्त्वा स तु मौनोभूद्विहंगस्सुमना बुधः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ लोकानां स्वस्तये तात शन्तनुप्रवरात्मज ॥ इत्युक्तं तच्चरित्रं मे किं भूयश्श्रोतुमिच्छसि ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पितृसर्गवर्णनं सप्तव्याधगतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ भीष्म उवाच ॥ मार्कण्डेय महाप्राज्ञ पितृभक्तिभृतां वर ॥ किं जातं तु ततो ब्रूहि कृपया मुनिसत्तम ॥ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ते धर्मयोगनिरतास्सप्त मानसचारिणः ॥ वाय्वंबुभक्षास्सततं शरीरमुपशोषयन् ॥ २ ॥

ज्ञानका संयोग योगका साधन प्राप्त हुआ इस कार्यके लिये उदाहरणमें एक श्लोक होगा ॥ ५१ ॥ किसी पुरुषसे उस श्लोकको सुनकर तुम फिर पूर्वयोगको प्राप्त होगे यह कहकर सुमन नामवाला पंडित विहंग मौन होगया ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, हे तात ! हे शन्तनुके पुत्र ! लोकोंके कल्याणके निमित्त यह मैंने चरित्र कहा अब क्या सुनना चाहतेहैं ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्याधगतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

भीष्मजी बोले, हे महाप्राज्ञ ! हे पितृभक्तोंमें श्रेष्ठ ! हे मुनिश्रेष्ठ मार्कंडेयजी ! इसके पीछे क्या हुआ सो कृपा करके कहो ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, वे

सातों धर्मयोगमें तत्पर हो मानससरोवरमें विचरतेहुए निरन्तर पवन जलको भक्षण करके अपना शरीर सुखानेलगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार इन्द्र नन्दनवनमें
विहार करतेहैं इस प्रकार वह राजा वहाँ क्रीडा करके अपने अन्तःपुरकी स्त्रीजनोंके सहित अपने नगरको गया ॥ ३ ॥ उसका अनूहनामक परम धर्मात्मा
पुत्र था उसको राज्यपर बैठाय वैभ्राज राजा वनको चलागया ॥ ४ ॥ और जहाँ वे सहचारी थे वहाँ तप करने लगा इस प्रकार वायु भक्षण कर महातप
किया ॥ ५ ॥ उस राजाके तपसे प्रकाशित हुआ वह वन विभ्राजित नामसे प्रसिद्ध हुआ और योगसिद्धिका देनेवाला हुआ ॥ ६ ॥ वहीं योगधर्मवाले

स राजांतःपुरवृतो नन्दने मघवा इव ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र सभार्य्यस्स्वपुरं ययौ ॥ ३ ॥ अनूहो नाम तस्यासीत्पुत्रः परमधा
र्मिकः ॥ तं वैभ्राजः सुतं राज्ये स्थापयित्वा वनं ययौ ॥४॥ तपः कर्तुं समारेभे यत्र ते सहचारिणः ॥ स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महा
तपाः ॥ ५ ॥ ततो विभ्राजितं तेन विभ्राजं नाम तद्वनम् ॥ बभूव सुप्रसिद्धं हि योगसिद्धिप्रदायकम् ॥ ६ ॥ तत्रैव ते हि शकुनाश्चत्वारो
योगधर्मिणः ॥ योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहत्यागकृतोऽभवन् ॥ ७ ॥ कांपिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः ॥ जातास्सप्त महात्मानस्सर्वे
विगतकल्मषाः ॥८॥ स्मृतिमंतोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः ॥ स्वतन्त्रस्याह्वयो जातो ब्रह्मदत्तो महौजसः ॥ ९ ॥ छिद्रदर्शी सुने
त्रस्तु वेदवेदांगपारगौ ॥ जातौ श्रोत्रियदायादौ पूर्वजातिसहोषितौ ॥ १० ॥ पंचालो बहृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह ॥ द्विवेदः पुंडरी
कश्च छंदोगोऽध्वर्युरेव च ॥ ११ ॥ ततो राजा सुतं दृष्ट्वा ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये तु परां गतिमवाप्तवान् ॥ १२ ॥

उन चारों पक्षियोंने तथा योगसे भ्रष्टहुए उन तीनों पक्षियोंने अपनी देह त्यागन करदी ॥ ७ ॥ ब्रह्मदत्तको आदि लेकर विगत होगया है पाप जिनका ऐसे
वे सातों महात्मा कांपिल्यनगरमें उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ उनमें वे चार तो स्मृतिवाले हुए और तीन मोहित हुए महातेजस्वी ब्रह्मदत्त स्वतन्त्ररूपसे हुआ ॥९॥
छिद्रदर्शी और सुनेत्र वेदवेदांगके पारगामी हुए यह पूर्वजातिमें साथ रहनेके कारण श्रोत्रियके पुत्र हुए ॥ १० ॥ पंचाल बहुकृच् होकर आचार्यत्व करने
लगा द्विवेद और पुंडरीक छन्दोगा और अध्वर्यु हुए ॥ ११ ॥ इस ओर राजाने अपने पुत्र ब्रह्मदत्तको पापरहित देखकर उसको राज्यमें अभिषेक कर

परमगति प्राप्त की ॥ १२ ॥ इधर पंचाल पुंडरीकने अपने दोनों पुत्रोंको मंदिरमें स्थापन कर वनमें जाय परमगति पाई ॥ १३ ॥ हे भारत ! ब्रह्मदत्तकी भार्याका नाम सन्नति था वह एक भावको प्राप्त हो भर्ताके साथ नित्य रमण करनेलगी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! शेषचक्रवाक उसी कांपिल्य नगरमें दरिद्री श्रोत्रियकुलमें जन्मे ॥ १५ ॥ धृतिमान् महात्मा तत्त्वदर्शी निरुत्सुक यह चारों वेदाध्ययन सम्पन्न तथा छिद्रदर्शी हुए ॥ १६ ॥ वे चारों योग सिद्ध परस्पर शंकरको आमंत्रण कर और उनके चरणकमलोंको प्रणाम कर युक्तरूप हो चलेगये अर्थात् पूर्वजातिका स्मरण होनेसे वे चारों चलेगये ॥ १७ ॥

पंचालः पुण्डरीकस्तु पुत्रौ संस्थाप्य मन्दिरे ॥ विविशतुर्वनं तत्र गतौ परमिकां गतिम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मदत्तस्य भार्य्या तु सन्नतिर्नाम भारत ॥ सा त्वेकभावसंयुक्ता रेमे भर्त्रा सहैव तु ॥ १४ ॥ शेषास्तु चक्रवाका वै कांपिल्ये सहचारिणः ॥ जाताः श्रोत्रियदायादा दरिद्रस्य कुले नृप ॥ १५ ॥ धृतिमान्सुमहात्मा च तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ वेदाध्ययन सम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः ॥ १६ ॥ ते योग निरतास्सिद्धाः प्रस्थितास्सर्व एव हि ॥ आमंत्र्य च मिथः शंभोः पदाम्भोजं प्रणम्य तु ॥ १७ ॥ ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च ॥ करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यति ॥ १८ ॥ इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सह मंत्रिणम् ॥ श्रावयेथ समागम्य ब्रह्मदत्त मकल्मषम् ॥ १९ ॥ प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान् ॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम् ॥ योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृत्तिमाययुः ॥ २० ॥ चतुर्णं तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत् ॥ २१ ॥

चलते समय वे चारों अपने पितासे बोले, हम आपकी आजीविकाका विधान किये जातेहैं जिस्से तुम्हारा निर्वाह होजाय ॥ १८ ॥ बडे अर्थवाला यह श्लोक मंत्रियोंके सहित राजाको सुनाना तो प्रसन्न हो पापरहित ब्रह्मदत्त तुमको ग्राम और बहुतसे भोग्य पदार्थ देगा यह कहकर वे सब अपने गुरुकी पूजाकर योगधर्मको प्राप्त होकर मोक्ष होगये ॥ १९ ॥ २० ॥ इन महात्मा चारों ब्राह्मणोंका पिता पुत्रोंसे वह श्लोक पढकर कृतकृत्य होगया ॥ २१ ॥

वह श्लोक जाकर उसने राजा और राजमंत्रियोंको सुनाया कि दशार्णदेशमें सात व्याधे हुए कालिंजरपर्वतमें सात हिरन हुए ॥ २२ ॥ शरद्वीपमें चक्रवाक
मानससरोवरमें सात हंस हुए वही कुरुक्षेत्रमें वेदपारगामी ब्राह्मण हुए ॥ २३ ॥ उनमें चार दीर्घमार्ग मोक्षको चलेगये तुम कैसे दुःख पाते हो यह सुनतेही
राजा ब्रह्मदत्त मोहको प्राप्त होगया ॥ २४ ॥ पुंडरीक और पांचाल इसके मंत्री भी मोहको प्राप्तहुए तब वह उस सरोवरको स्मरण कर योगको प्राप्त हो॥
॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दानकर अपने विष्वक्सेन पुत्रको राज्यमें अभिषेक कर ॥ २६ ॥ ब्रह्मदत्त स्त्रीसहित वनको चलागया और योगबलसे

श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ ॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ॥ २२ ॥ चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि
मानसे ॥ तेऽभिजातः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ २३ ॥ प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥ तच्छ्रुत्वा मोहमगमद्ब्रह्मदत्तो
नराधिपः ॥ २४॥ सचिवश्चास्य पांचालः पुण्डरीकश्च भारत ॥ ततस्ते तत्सरस्स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च ॥ २५ ॥ ब्राह्मणं विपुलै
रथैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिन्दमम् ॥ २६ ॥ जगाम ब्रह्मदत्तो हि सदारो वनमेव ह ॥ प्राप्य
योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ २७ ॥ पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन
कर्मणा ॥ २८ ॥ क्रमं प्रणीय पांचाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् ॥ योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः ॥ २९ ॥ शूरा ये
सम्प्रपद्यन्ते अपुनर्भवकांक्षिणः ॥ पापम्प्रणाशयन्त्वद्य तच्छम्भोः परमम्पदम् ॥ ३० ॥ शारीरे मानसे चैव पापे वाग्जे महामुने ॥
कृते सम्यगिदम्भक्त्या पठेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ३१ ॥

वहाँ उत्तमगतिको प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ धर्मात्मा पुंडरीक भी उत्तम सांख्ययोगको पाकर उस कर्मसे शुद्ध हो योगगतिको प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ इसी क्रमसे
पांचाल भी उत्तम शिक्षाको पाकर महातपसे यश और योगकी उत्तमगतिको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ जो शूर मोक्ष होनेकी इच्छासे शिवको स्मरण करतेहैं
वे शिवजीके परमपदको प्राप्त होजातेहैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! इस अध्यायके पाठ करनेसे वचन मन शरीरसे कियाहुआ पाप नाश होजाता है जो श्रद्धासे

पढते हैं ॥ ३१ ॥ शिवनामके कीर्तन करनेसे ही सब पाप दूर होजाते हैं इस कारण उन देवदेवका नाम सदा उच्चारण करै ॥ ३२ ॥ जैसे जलमें कच्चा बर्तन नष्ट होजाता है ऐसे शिवनामसे सब पाप दूर होजाते हैं इस कारण संचित और समान पापोंमें ॥ ३३ ॥ पापशांतिके लिये शिवनाम अवश्य जपना चाहिये हे मुने ! श्रद्धालु मनुष्योंको सब काम फलकी प्राप्तिके लिये यह नाम जपना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो पुष्टिके लिये इस अध्यायको पढता और सुनता है वह सब पापोंसे रहित हो मोक्षको जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० द्विचत्वारिंशो

मुच्यते सर्वपापेभ्यश्शिवनामानुकीर्तनात् ॥ उच्चार्य्यमाण एतस्मिन्देवदेवस्य तस्य वै ॥ ३२ ॥ विलयं पापमायाति ह्यामभाण्डमिवाम्भसि ॥ तस्मात्तत्संचिते पापे समनंतरमेव च ॥ ३३ ॥ जप्तव्यमेतत्पापस्य प्रशमाय महामुने ॥ नरैः श्रद्धालुभिर्भूयस्सर्वकामफलाप्तये ॥ ३४ ॥ पुष्टयर्थमिममध्यायं पठेदेनं शृणोति वा ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो मोक्षं याति न संशयः ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पितृकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ शौनक उवाच ॥ आचार्य्यपूजनं ब्रूहि सूत व्यासगुरोऽधुना ॥ ग्रन्थस्य श्रवणान्ते हि किं कर्तव्यं तदप्यहो ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्याचार्य्यं श्रुत्वा कथां पराम् ॥ ग्रन्थान्ते विधिवद्दद्यादाचार्य्याय प्रसन्नधीः ॥ २ ॥ ततो वक्तारमानम्य संपूज्य च यथाविधि ॥ भूषणैर्हस्तकर्णानां वस्त्रैस्सौम्यादिभिस्सुधीः ॥ ३ ॥ शिवपूजासमाप्तौ तु दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ॥ कृत्वासनं सुवर्णस्य पलमानस्य साम्बरम् ॥ ४ ॥ तत्रास्थाप्य शुभं ग्रंथं लिखितं ललिताक्षरैः ॥ आचार्याय सुधीर्दद्यान्मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ ५ ॥

ऽध्यायः ॥ ४२ ॥ शौनकजी बोले, हे सूतजी ! हे व्यासजीके शिष्य ! अब आचार्यके पूजनको कहो तथा ग्रन्थके सुननेके पीछे क्या करना चाहिये ? यह भी कहो ॥ १ ॥ सूतजी बोले, परम कथाको सुनके भक्तिसे विधिपूर्वक आचार्यको पूजे और प्रसन्न होके ग्रन्थके अन्तमें आचार्यको विधिपूर्वक दान दे ॥ २ ॥ तत्पश्चात् पुराण वक्ताको प्रणाम करके विधिपूर्वक हाथ कानोंके भूषणोंसे तथा रेशमीन सूती आदिके वस्त्रोंसे पूजके ॥ ३ ॥ शिवजीके पूजनकी समाप्तिमें ब्राह्मणको वत्ससहित गाय देवै और वस्त्रसहित पलभर सोनेके आसनको बनाय ॥ ४ ॥ उसपर मनोहर अक्षरोंसे लिखेहुए शुभ ग्रन्थको स्थापित

करै, और आचार्यको दे तो संसारके बंधनोंसे मुक्त होता है ॥ ५ ॥ हे मुने ! ग्राम राज्य घोडा आदि तथा यथाशक्ति और पदार्थ भी महात्मा वाचकको देने चाहिये ॥ ६ ॥ हे शौनक मुने ! यह पुराण विधिपूर्वक सुननेसे सफल होता है सो सब मैंने सत्य सत्य कहा ॥ ७ ॥ हे मुने ! इससे भक्तिपूर्वक विधानसे सुनना चाहिये यह पुराण शास्त्रके अर्थोंसे युक्त पुण्यका देनेवाला तथा मनोहर कहा है ॥८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्यासपूजनप्रकारो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ मुनि बोले, हे महाबुद्धे ! हे प्रभो ! हे दयासागर ! हे सूतजी ! हे स्वामिन् ! व्यासजीकी उत्पत्ति

ग्रामो गजो हयश्चापि यथाशक्त्यपराणि च ॥ मुने सर्वाणि देयानि वाचकाय महात्मने ॥ ६ ॥ विधानसहितं सम्यक्छ्रुतं हि सफलं स्मृतम् ॥ पुराणं शौनकमुने सत्यमेवोदितं मया ॥ ७ ॥ तस्माद्विधानदुक्तं तु शृणुयाद्भक्तितो मुने ॥ पुराणं निगमार्थाढ्यं पुण्यदं हृदयं श्रुतेः ॥ ८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां व्यासपूजनप्रकारो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ व्यासोत्पत्तिं महाबुद्धे ब्रूहि सूत दयानिधे ॥ कृपया परया स्वामिन्कृतार्थान्निष्कुरु प्रभो ॥ १ ॥ व्यासस्य जननी प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ विवाहिता तु सा देवी राज्ञा शन्तनुना किल ॥ २ ॥ तस्यां जातो महायोगी कथं व्यासः पराशरात् ॥ सन्देहोऽत्र महाञ्जातस्तं भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्योगी पराशरः ॥ यदृच्छया गतो रम्यं यमुनायास्तटं शुभम् ॥ ४ ॥ निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनन्तदा ॥ नयस्व यमुनापारं जलयानेन मामरम् ॥ ५ ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन निषादस्स्वसुतां जगौ ॥ मत्स्यगन्धाममुं बाले पारं नावा नय द्रुतम् ॥ ६ ॥

वर्णन करो और हमको अपनी परम कृपासे कृतार्थ करो ॥ १ ॥ व्यासकी माता सत्यवती नामवाली कही है वह देवी राजा शन्तनुसे विवाही थी ॥२॥ उसमें पराशरसे महायोगी व्यासजी कैसे उत्पन्न हुए इस विषयमें मुझे बडा सन्देह उत्पन्न हुआ उसे आप छेदन करने योग्य हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, एक समय तीर्थयात्राको जातेहुए योगी पराशरजी अपनी इच्छासे यमुनाके सुन्दर मनोहर तीरपर प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ तब वे महात्मा भोजन करतेहुए निषादसे बोले, तुम मुझे शीघ्र नावसे यमुनाके पार ले चलो ॥ ५ ॥ इस प्रकार उन मुनिके कहनेपर वह निषाद (मल्लाह) मत्स्यगंधानामक अपनी पुत्रीसे बोला,

हे बाले ! उन मुनिको शीघ्र नावसे पार ले जा ॥ ६ ॥ हे महाभागे ! यह तपस्वी पराशर दृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्नहुए धर्मके सागर चारों वेदोंके पारगामी पार होनेकी इच्छा करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार पितासे जताईहुई मत्स्यगंधा नौकामें बैठेहुए सूर्यकी कांतिवाले महामुनि पराशरजीको पार करने लगी ॥ ८ ॥ समय योगसे महायोगी उस कन्यामें कामातुर होगये जो अप्सराओंके रूपको भी देखके कदापि नहीं मोहित हुए ॥ ९ ॥ ग्रहण करनेकी इच्छावाले उन मुनिने उस मनोहर कन्याके दक्षिण हाथको अपने दक्षिण हाथसे स्पर्श किया ॥ १० ॥ तब विशाल नेत्रवाली कन्याने कुछ हँसके यह वचन कहा कि, यह सत्पुरुषोंसे निन्दित कर्म क्यों करते हो ? ॥ ११ ॥ हे महामते ! तुम वसिष्ठजीके मनोहर कुलमें उत्पन्न हुए हो हे ब्रह्मन् ! मैं निषादसे उत्पन्न हुई हूं हम दोनोंका संग कैसे होगा ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रथम तो मनुष्यका जन्म दुर्लभ है उसमें विशेषकर ब्राह्मणत्व फिर उसमें तपस्वी होना अतिदुर्लभ है ॥ १३ ॥ विद्यासे सुन्दर शरीरसे वाणीसे कुल तथा शीलसे युक्त होकर भी कामबाणोंके वशमें हुए बडा आश्चर्य है ॥ १४ ॥ दुष्कर्म करनेमें प्रवृत्तहुए भी योगी इन मुनिके शापके भयसे इनको निवारण करनेको कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं है ॥ १५ ॥ एसा अपने मनमें विचारके उन

तापसोयं महाभागे दृश्यन्तीगर्भसंभवः ॥ तितीर्षुरस्ति मर्धाब्धिश्चतुराम्नायपारगः ॥ ७ ॥ इति विज्ञापिता पित्रा मत्स्यगन्धा महा
मुनिम् ॥ संवाहयति नौकायामासीनं सूर्य्यरोचिषम् ॥ ८ ॥ कालयोगान्महायोगी तस्यां कामातुरोऽभवत् ॥ दृष्ट्वा योऽप्सरसां रूपं
न कदापि विमोहितः ॥ ९ ॥ ग्रहीतुकामः स मुनिर्दाशकन्यां मनोहराम् ॥ दक्षिणेन करेणैतामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥ १० ॥ तमुवाच
विशालाक्षी वचनं स्मितपूर्वकम् ॥ किमिदं क्रियये कर्म वाचंयम विगर्हितम् ॥ ११ ॥ वसिष्ठस्य कुले रम्ये त्वं जातोऽसि महामते ॥
निषादजा त्वहम्ब्रह्मन्कथं संगो घटेत नौ ॥ १२ ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म ब्राह्मणत्वं विशेषतः ॥ तत्रापि तापसत्वं च दुर्लभं मुनिसत्तम
॥ १३ ॥ विद्यया वपुषा वाचा कुलशीलेन चान्वितः ॥ कामबाणवशं यातो महदाश्चर्यमत्र हि ॥ १४ ॥ प्रवृत्तमप्यसत्कर्म कर्तुमेनं
न कोऽपि ह ॥ भुवि वारयितुं शक्तः शापभीत्यास्य योगिनः ॥ १५ ॥ इति संचिन्त्य हृदये निजगाद महामुनिम् ॥ तावद्धैर्यं कुरु
स्वामिन्यावत्त्वां पारयामि न ॥ १६ ॥

महामुनिसे बोली हे स्वामिन् ! जबतक मैं तुमको पार न करूं तबतक धैर्य धारण करो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उस कन्याका वचन सुनके योगिराज
पराशरने वेगसे हाथको छोडा और वे सिंधुके पार गये ॥ १७ ॥ फिर कामसे पीडितहुए मुनिने उस कन्याको ग्रहण किया. तब कांपतीहुई वह कन्या
उन करुणासागर पराशरसे बोली ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं दुर्गंधियुक्त कालेवर्ण वाली निषाद (मल्लाह) से उत्पन्न हुई हूं और आप परमोदार विचारशील
योगियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १९ ॥ कांच और सुवर्णके समान हम दोनोंका संग नहीं घटता है, समान जाति आकारवालोंकी संगति सुखकी देनेवाली होती है ॥

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या योगिराजः पराशरः ॥ तत्याज पाणिंतरसा सिन्धोः पारं गतः पुनः ॥ १७ ॥ पुनर्जग्राह तां
बालां मुनिः कामप्रपीडितः ॥ कंपमाना तु सा बाला तमुवाच दयानिधिम् ॥ १८ ॥ दुर्गन्धाहं मुनिश्रेष्ठ कृष्णवर्णा निषादजां ॥
भवांस्तु परमोदारविचारो योगिसत्तमः ॥ १९ ॥ नावयोर्घटते सङ्गो काचकांचनयोरिव ॥ तुल्यजात्याकृतिकयोः संगः सौख्यप्रदो
भवेत् ॥ २० ॥ इत्युक्तेन तया तेन क्षणमात्रेण कामिनी ॥ कृता योजनगंधा तु रम्यरूपा मनोरमा ॥ २१ ॥ पुनर्जग्राह तां बालां
स मुनिः कामपीडितः ॥ ग्रहीतुकामं तं दृष्ट्वा पुनः प्रोवाच वासवी ॥ २२ ॥ रात्रौ व्यवायः कर्तव्यो न दिवेति श्रुतिर्जगौ ॥ दिवासंगे
महान्दोषो निन्दा चापि दुरासदा ॥ २३ ॥ तस्मात्तावत्प्रतीक्षस्व यावद्भवति यामिनी ॥ पश्यन्ति मानवाश्चात्र पिता मे च तटे
स्थितः ॥ २४ ॥ तयोक्तमिदमाकर्ण्य वचनं मुनिपुंगवः ॥ नीहारं कल्पयामास सद्यः पुण्यबलेन वै ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ ऐसा उस कन्याके कहनेपर क्षणमात्रमें उन मुनिने उस कन्याको मनोहर सुंदर रूपवाली तथा एक योजनतक सुगंधियुक्त कामिनी बनाया ॥
॥ २१ ॥ कामसे पीडितहुए मुनिने फिर उसे पकडा तब ग्रहण करनेकी इच्छावाले मुनिको देख वासवी यह बोली ॥ २२ ॥ रात्रिमें मैथुन करना चाहिये,
दिनमें कदापि विषय न करना उचित है ऐसा वेदमें कहा है दिनके प्रसंगमें बडा दोष तथा बडी निन्दा होती है ॥ २३ ॥ इस कारण तबतक प्रतीक्षा करो
जबतक रात्रि होवै, कारण कि यहां मनुष्य देखैंगे और मेरा पिता भी तटपर स्थितहै ॥ २४ ॥ उस कन्यासे कहेहुए वचनको सुन उन मुनिश्रेष्ठने अतिशीघ्र

पुण्यके बलसे कोहरेकी कल्पना किया ॥ २५ ॥ रात्रिके समान अन्धकारसे युक्त कोहरेके प्रगट होनेपर विषयसे चकितहुई वह कन्या फिर उन मुनिसे बोली ॥ २६ ॥ हे योगिन् ! हे स्वामिन् ! यदि सफल वीर्यवाले तुम मुझे भोगके चले जाओगे तो गर्भ रहजानेपर मेरी क्या गति होगी ? ॥ २७ ॥ हे महाबुद्धे ! मेरा कन्याव्रत नष्ट होगा और लोक हँसैंगे तब मैं पितासे क्या कहूंगी ? ॥ २८ ॥ पराशर बोले, हे बाले ! हे प्रिये ! कामसे उत्पन्नहुए रसोंके सहित मेरे साथ स्वतन्त्र होके रमणकर, और अपनी अभिलाषाको कह मैं अभी पूर्ण करूंगा ॥ २९ ॥ मेरी आज्ञाके सत्य करनेसे तू सत्यवती नामवाली तथा सम्पूर्ण योगी और देवताओंसे बन्दनीय होगी ॥ ३० ॥ सत्यवती बोली, यदि मेरे माता पिता तथा पृथिवीपर और मनुष्य न जानैं तथा मेरा कन्याधर्म नष्ट न होवै तो मुझे स्वीकार करो ॥ ३१ ॥ हे नाथ ! मेरे अद्भुत शक्तिवाला तुम्हारे समान पुत्र होवै और मेरे अंगमें नित्य सुगन्ध तथा नित्य नवीन नवीन यौवन होवै ॥ ३२ ॥ पराशर बोले, हे प्रिये ! सुनो तुम्हारा सब मनोरथ पूर्ण होगा, और तेरे विष्णुके अंशसे युक्त महायशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ३३ ॥ इसमें कुछ कारण जान, जिससे मैं कामसे पीडित हुआ हूं, अप्सराओंके रूपको भी देखके मेरा मन कभी भी नहीं मोहित हुआ ॥ ३४ ॥

नीहारे च समुत्पन्ने तमसा रात्रिसंनिभे ॥ व्यवायचकिता बाला पुनः प्रोवाच तम्मुनिम् ॥ २६ ॥ योगिन्नमोघवीर्य्यस्त्वं भुक्त्वा गन्तासि मां यदि ॥ सगर्भा स्यां तदा स्वामिन्का गतिर्मे भवेदिति ॥ २७ ॥ कन्याव्रतं महाबुद्धे मम नष्टं भविष्यति ॥ हसिष्यन्ति तदा लोकाः पितरं किं ब्रवीम्यहम् ॥ २८ ॥ ॥ पराशर उवाच ॥ रम बाले मया सार्द्धं स्वच्छन्दं कामजै रसैः ॥ स्वीयाभिलाषमाख्याहि पूरयाम्यधुना प्रिये ॥ २९ ॥ मदाज्ञासत्यकरणान्नाम्ना सत्यवती भव ॥ वन्दनीया तथाशेषैर्योगिभिस्त्रिदशैरपि ॥ ३० ॥ ॥ सत्यवत्युवाच ॥ जानते न पिता माता न वान्ये भुवि मानवाः ॥ कन्याधर्मो न मे हन्याद्यदि स्वीकुरु मान्तदा ॥ ३१ ॥ पुत्रश्च त्वत्समो नाथ भवेदद्भुतशक्तिमान् ॥ सौगन्ध्यं सर्वदांगे मे तारुण्यं च नवंनवम् ॥ ३२ ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु प्रिये तवाभीष्टं सर्वं पूर्णं भविष्यति ॥ विष्णवंशसंभवः पुत्रो भविता ते महायशाः ॥ ३३ ॥ किंचिद्वै कारणं विद्धि यतोऽहं कामपीडितः ॥ दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं नामुह्यन्मे मनः क्वचित् ॥ ३४ ॥

मत्स्यगन्धा तुझको देखके मैं मोहके वशमें प्राप्त हुआ हूं हे बाले ! मस्तकपर लिखाहुआ ब्रह्माका लेख मिथ्या नहीं होता है ॥ ३५ ॥ हे वरारोहे ! तेरे पुराणोंका कर्त्ता वेदशाखाके विभागका करनेवाला तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कीर्त्तिवाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ३६ ॥ हे महामुने ! ऐसा कहके उस मनोहर अंगवालीको भोगके योगमें प्रवीण मुनि पराशरजी शीघ्र यमुनाके जलमें स्नान करके चलेगये॥ ३७॥उसने भी शीघ्र बारह आत्मा (सूर्य) के समान कान्तिवाले गर्भको धारण किया, और सूर्यजाद्वीपमें कामदेवके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ जो बायें हाथमें कमण्डलको धारे तथा दाहिने हाथमें

मीनगन्धां समालक्ष्य त्वां मोहवशगोऽभवम् ॥ न बाले भालपट्टस्थो ब्रह्मलेखोऽन्यथा भवेत् ॥ ३५ ॥ पुराणकर्ता पुत्रस्ते वेदशाखाविभागकृत् ॥ भविष्यति वरारोहे ख्यातकीर्तिर्जगत्त्रये ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा तां सुरम्याङ्गीं भुक्त्वा योगविशारदः ॥ वव्राज शीघ्रं यमुनाजले स्नात्वा महामुने ॥ ३७ ॥ सापि गर्भं दधाराशु द्वादशात्मसमप्रभम् ॥ असूत सूर्य्यजाद्वीपे कामदेवमिवात्मजम् ॥ ३८ ॥ वामे कमण्डलुं बिभ्रद्दक्षिणे दण्डमुत्तमम् ॥ पिशंगीभिर्जटाभिश्च राजितो महसां चयः ॥ ३९ ॥ जातमात्रस्तु तेजस्वी मातरं प्रत्यभाषत ॥ गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ४० ॥ मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किंचिद्धृदीप्सितम् ॥ संस्मृतश्चागमिष्यामि त्वदिच्छापूर्तिहेतवे ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा मातृचरणावभिवाद्य तपोनिधिः ॥ जगाम च तपः कर्त्तुं तीर्थं पापविशोधनम् ॥ ४२ ॥ सापि पित्रन्तिकं याता पुत्रस्नेहाकुला सती ॥ स्मरन्ती चरितं सूनोर्वर्णयन्ती स्वभाग्यकम् ॥ ४३ ॥

उत्तम दण्डको धारण किये पीतवर्णवाली जटाओंसे विराजमान साक्षात् तेजोंके समूह युक्त था ॥ ३९ ॥ वह तेजस्वी उत्पन्न होतेही अपनी मातासे बोला, हे माता ! तुम भी यथेच्छ जाओ इसके पीछे मैं भी यथाकाम जाऊंगा ॥ ४० ॥ हे माता ! जब तेरा कोई मनोवांछित कार्य होगा तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त स्मरण करतेही मैं आऊंगा ॥ ४१ ॥ ऐसा कहके वह तपोनिधि माताके चरणोंको प्रणाम करके तप करनेको पापोंके दूर करनेवाले तीर्थको चलेगये ॥ ४२ ॥ और वह उनकी माता भी पुत्रके स्नेहमें व्याकुल हुई अपने पुत्रके चरित्रको स्मरण करतीहुई तथा अपने भाग्यको वर्णन करती

अपने पिताके समीप चली गई ॥ ४३ ॥ कारण कि, वह बालक द्वीपमें उत्पन्न हुआ इससे द्वैपायन नाम हुआ, वेदशाखाके विभाग करनेसे वेदव्यास कहलाये ॥ ४४ ॥ पहले तो धर्म काम अर्थ मोक्ष देनेवाले तीर्थराज (प्रयाग) को, नैमिषारण्यको, कुरुक्षेत्रको, गंगाद्वारको, तथा अवन्तिका पुरीको गये ॥ ४५ ॥ अयोध्या, मथुरा, द्वारकापुरी, अमरावती, सरस्वती, सिन्धुगंग, गंगासागरके संगमकों गये ॥ ४६ ॥ कांची त्र्यम्बक सप्तगोदावरीके तटको कालंजरको प्रभासको तथा बदरिकाश्रमको ॥ ४७ ॥ महालय और ओंकारक्षेत्रको तथा पुरुषोत्तमको, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर ॥ ४८ ॥

द्वीपे जातो यतो बालस्तेन द्वैपायनोऽभवत् ॥ वेदशाखाविभजनाद्वेदव्यासः प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥ तीर्थराजं प्रथमतो धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ॥ नैमिषं च कुरुक्षेत्रं गंगाद्वारमवन्तिकाम् ॥ ४५ ॥ अयोध्यां मथुरां चैव द्वारकाममरावतीम् ॥ सरस्वतीं सिन्धुसङ्गं गंगासागरसंगमम् ॥ ४६ ॥ काञ्चीं च त्र्यम्बकं चापि सप्तगोदावरीतटम् ॥ कालंजरं प्रभासं च तथा बदरिकाश्रमम् ॥ ४७ ॥ महालयन्तथोंकारक्षेत्रं वै पुरुषोत्तमम् ॥ गोकर्णं भृगुकच्छं च भृगुतुंगं च पुष्करम् ॥ ४८ ॥ श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च ॥ गत्वावगाह्य विधिना चचार परमन्तपः ॥४९॥ एवन्तीर्थान्यनेकानि नानादेशस्थितानि ह ॥ पर्य्यटन्कालिकासूनुः प्रापद्वाराणसीम्पुरीम् ॥ ५० ॥ यत्र विश्वेश्वरः साक्षादन्नपूर्णा महेश्वरी ॥ भक्तानाममृतन्दातुं विराजेते कृपानिधी ॥ ५१ ॥ प्राप्य वाराणसीतीर्थं दृष्ट्वाथ मणिकर्णिकाम् ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं तत्याज स मुनीश्वरः ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वा लिंगानि सर्वाणि विश्वेशप्रमुखानि च ॥ स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥ ५३ ॥ नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीः सर्वाः प्रणम्य च ॥ सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम् ॥ ५४ ॥

श्रीपर्वत आदि तीर्थोंको तथा धारातीर्थको जाके वहां परमतप करनेलगे ॥४९॥ इसी प्रकार अनेक देशोंमें स्थितहुए अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करतेहुए व्यासजी वाराणसीपुरीमें प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ जहां साक्षात विश्वेश्वरनाथ तथा महेश्वरी अन्नपूर्णा यह दोनों कृपाके सागर भक्तोंको अमृत देनेको विराजतेहैं ॥५१॥ वाराणसी तीर्थको प्राप्त होके मणिकर्णिकाके दर्शन करके उन मुनीश्वरने कोटिजन्मोंके अर्जित हुए पापोंको त्यागा ॥ ५२ ॥ विश्वेश आदि सम्पूर्ण ज्योतिलिंगोंका दर्शन करके समस्त कुण्डोंमें तथा वापी कूप सरोवरोंमें स्नान करके ॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण विनायकोंको प्रणाम कर तथा समस्त गौरियों (देवियों) को

नमस्कार कर कालराज पापभक्षण करनेवाले भैरवको पूजके ।। ५४ ।। दण्डनायकादि मुख्य गणोंकी यत्नसे स्तुति करके आदिकेशव मुख्यकेशवोंको सन्तुष्ट करके ।। ५५ ।। लोलार्क मुख्य सूर्योंको बारम्बार दण्डवत् करके तथा आलस्यहीन हो सम्पूर्ण तीर्थोंमें पिण्डदान करके ॥ ५६ ॥ उन पुण्यात्मा वेदव्यासने व्यासेश्वरनामक ज्योतिर्लिंगको स्थापन किया, हे विप्रो ! जिनके दर्शन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओंमें बृहस्पतिकी समान होजाता है ।। ५७ ।। विश्वेश आदि ज्योतिर्लिंगोंको भक्तिसे पूजके वे बारम्बार विचारनेलगे कि, कौनसा लिंग शीघ्र सिद्धिका देनेवाला है ।। ५८ ॥ जिन महादेवका आराधन करके

दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः ॥ आदिकेशवमुख्यांश्च केशवान्परितोष्य च ॥ ५५ ॥ लोलार्कमुख्यसूर्यांश्च प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ कृत्वा पिण्डप्रदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥ ५६ ॥ स्थापयामास पुण्यात्मा लिंगं व्यासेश्वराभिधम् ॥ यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः ॥ ५७ ॥ लिंगान्यभ्यर्च्य विश्वेशप्रमुखानि सुभक्तितः ॥ असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम् ॥ ॥ ५८ ॥ यमाराध्य महादेवं विद्याः सर्वा लभेमहि ॥ पुराणकर्तृताशक्तिर्ममास्तु यदनुग्रहात् ॥ ५९ ॥ श्रीदमोंकारनाथं व कृत्तिवासेश्वरं किमु ॥ केदारेशन्तु कामेशं चन्द्रेशं वा त्रिलोचनम् ॥ ६० ॥ कालेशं वृद्धकालेशं कलशेश्वरमेव वा ॥ ज्येष्ठेशं जम्बुकेशं वा जैगीषव्येश्वरन्तु वा ॥ ६१ ॥ दशाश्वमेधमीशानं द्रुमिचण्डेशमेव वा॥ दक्षेशं गरुडेशं वा गोकर्णेशं गणेश्वरम् ॥ ६२ ॥ प्रसन्नवदनेशं वा धर्म्मेशं तारकेश्वरम् ॥ नन्दिकेशं निवासेशं पत्रीशं प्रीतिकेश्वरम् ॥ ६३ ॥ पर्वतेशं पशुपतिं हाटकेश्वरमेव वा ॥ बृहस्पतीश्वरं वाथ तिलभाण्डेशमेव वा ॥ ६४ ॥ भारभूतेश्वरं किं वा महालक्ष्मीश्वरं तु वा ॥ मरुतेशन्तु मोक्षेशं गङ्गेशं नर्मदेश्वरम् ॥ ६५ ॥

मैं सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त करूं तथा जिनके अनुग्रहसे मेरे पुराण बनानेकी शक्ति उत्पन्न हो ॥ ५९ ॥ श्रीमान् ओंकारनाथको वा कृत्तिवासेश्वरको, केदारेशको, कामेश, वा चन्द्रेश, त्रिलोचनको ॥ ६० ॥ कालेशको, वृद्धकालेश, वा कलशेश्वरको, ज्येष्ठेश, जम्बुकेश, वा जैगीषव्येश्वरको ॥ ६१ ॥ दशाश्वमेध शिवको, द्रुमिचण्डेशको, दक्षेश, गरुडेश, गोकर्णेश, गणेश्वर ॥ ६२ ॥ प्रसन्नवदनेश, वा धर्मेश, तारकेश्वरको, नन्दिकेश, निवासेश, पत्रीश, प्रीतिकेश्वर ।। ६३ ।। पर्वतेश, पशुपति, हाटकेश्वर, बृहस्पतीश्वर, वा तिलभाण्डेश ।। ६४ ।। भारभूतेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश, मोक्षेश, गंगेश,

नर्मदेश्वर ॥ ६५ ॥ कृष्णेश शिवको, रत्नेश्वर, यामुनेश, लांगलीश श्रीमद्विश्वेश्वरप्रभुको ॥ ६६ ॥ अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश, व्याघ्रेश्वर, वराहेश, विघ्नेश्वर ॥ ६७ ॥ वरुणेश, विधीश, हरिकेश्वर, भवानीश, कपर्दीश, कन्दुकेश, अजेश्वर ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वर, वीरेश्वर, नादेश, कपिलेश, भुवनेश्वर ॥ ६९ ॥ वाष्कुलीश महादेवको वा सिद्धीश्वर, विश्वेदेवेश्वर, वीरभद्रेश, भैरवेश्वर ॥ ७० ॥ अमृतेश, सतीश, पार्वतीश्वर, सिद्धेश्वर, मतंगेश, भूतीश्वर ॥ ॥ ७१ ॥ आषाढीश, प्रकामेश, तथा कोटिरुद्रेश्वर, मदालसेश्वर, तिलपर्णेश्वर ॥ ७२ ॥ हिरण्यगर्भेश, वा श्रीमध्यमेश्वर, इत्यादि कोटिलिंगोंके मध्यमें

कृष्णेशं परमेशानं रत्नेश्वरमथापि वा ॥ यामुनेशं लांगलीशं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥ ६६ ॥ अविमुक्तेश्वरं वाथ विशालाक्षीशमेव वा ॥ व्याघ्रेश्वरं वराहेशं विघ्नेश्वरमथापि वा ॥ ६७ ॥ वरुणेशं विधीशं वा हरिकेशेश्वरन्तु वा ॥ भवानीशं कपर्दीशं कन्दुकेशमजेश्वरम् ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वरं वाथ वीरेश्वरमथापि वा ॥ नादेशं कपिलेशं च भुवनेश्वरमेव वा ॥ ६९ ॥ वाष्कुलीशं महादेवं सिद्धीश्वरमथापि वा ॥ विश्वेदेवेश्वरं वीरभद्रेशं भैरवेश्वरम् ॥ ७० ॥ अमृतेशं सतीशं वा पार्वतीश्वरमेव वा ॥ सिद्धेश्वरं मतंगेशं भूतीश्वरमथापि वा ॥ ७१ ॥ आषाढीशं प्रकामेशं कोटिरुद्रेश्वरन्तथा ॥ मदालसेश्वरं चैव तिलपर्णेश्वरं किमु ॥ ७२ ॥ किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम् ॥ इत्यादिकोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये ॥ ७३ ॥ इति चिन्तातुरो व्यासः शिवभक्तिरतात्मवान् ॥ क्षणं विचारयामास ध्यानसुस्थिरचेतसा ॥ ७४ ॥ आज्ञातं विस्मृतं तावन्निष्पन्नो मे मनोरथः ॥ सिद्धैः संपूजितं लिंगं धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ॥ ७५ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्य चेतो निर्मलतामियात् ॥ उद्धाटितं सदैवास्ति द्वारं स्वर्गस्य यत्र हि ॥ ७६ ॥ अविमुक्ते महाक्षेत्रे सिद्धक्षेत्रे हि तत्परम् ॥ यत्रास्ते परमं लिंगं मध्यमेश्वरसंज्ञकम् ॥ ७७ ॥

किनकी उपासना करूं ॥ ७३ ॥ इस प्रकार चिन्तामें मग्नहुए व्यासजी शिवभक्तिमें प्रेम करतेहुए क्षणमात्र ध्यानसे स्थितचित्त हो यह विचारने लगे ॥ ॥ ७४ ॥ अहो ? जान लिया मैं भूल गया था अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया सिद्धोंसे पूजित तथा धर्म, अर्थ,काम, मोक्षका देनेवाला यह (मध्यमेश्वर) लिंग है ॥ ७५ ॥ जिसके दर्शन स्पर्श करनेसे चित्त निर्मलताको प्राप्त होता है जहाँपर स्वर्गका द्वार सदैव खुलाहै ॥ ७६ ॥ अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें

जहाँ मध्यमेश्वरनामक परम लिंग है ॥ ७७ ॥ काशीमें मध्यमेश्वर लिंगसे अधिक और कोई लिंग नहीं है जिनके दर्शन करनेके निमित्त सम्पूर्ण देवता प्रत्येक पर्वमें आते हैं ॥ ७८ ॥ इस कारण मध्यमेश्वरनामक महादेव सदा ही सेवनीय हैं हे विप्रो ! उनके आराधन करनेसे अनेक मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ७९ ॥ जो मध्यमेश्वरनामक शिव अपनी नगरीके सुखके अर्थ काशीके मध्यमें प्रधानतासे स्थित रहतेहैं ॥ ८० ॥ तुम्बरुनामक गंधर्व तथा देवर्षि नारदजी उन महादेवका आराधन करके गानविद्यामें प्रवीण होगये ॥ ८१ ॥ और इनहींका आराधन करके विष्णुभगवान् मोक्षके दाता होगये और इनहींकी

न मध्यमेश्वरादन्यल्लिंगं काश्यां हि विद्यते ॥ यद्दर्शनार्थमायान्ति देवाः पर्वणिपर्वणि ॥ ७८ ॥ अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसं
ज्ञकः ॥ अस्याराधानतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः ॥ ७९ ॥ यः प्रधानतया काश्या मध्ये तिष्ठति शङ्करः ॥ स्वपुरीजनसौख्यार्थ
मतोऽसौ मध्यमेश्वरः ॥ ८० ॥ तुम्बुरुर्नाम गंधर्वो देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ अमुमाराध्य संपन्नौ गानविद्याविशारदौ ॥ ८१ ॥ अमुमेव
समाराध्य विष्णुर्मोक्षप्रदोऽभवत् ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्रष्टृपालकहारकाः ॥ ८२ ॥ धनाधीशः कुबेरोऽपि वामदेवो हि शैवराट् ॥
खट्वांगो नाम भूपालोऽनपत्योऽपत्यवानभूत् ॥ ८३ ॥ अप्सराश्चन्द्रभामाख्या नृत्यन्ती निजभावतः ॥ सदेहा कोकिलालापा लिंग
मध्ये लयं गता ॥ ८४ ॥ श्रीकरो गोपिकासूनुः सेविता मध्यमेश्वरम् ॥ गाणपत्यं समालेभे शिवस्य करुणात्मनः ॥ ८५ ॥ भार्गवो
गीष्पतिश्चोभौ देवौ दैत्यसुरार्चितौ ॥ विद्यापारंगमौ जातौ प्रसादान्मध्यमेशितुः ॥ ८६ ॥ अहमप्यत्र संपूज्य मध्यमेश्वरमीश्वरम् ॥
पुराणकर्तृताशक्तिं प्राप्स्यामि तरसा ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

कृपासे ब्रह्मा, विष्णु, शिव सृष्टिके उत्पन्न कर्त्ता, पालनकर्त्ता संहारकर्त्ता, हुए ॥ ८२ ॥ धनाधीश कुबेर वामदेव शैवराट् तथा खट्वांगनामक राजा यह सन्तानहीन भी सन्तानवाले हुए ॥ ८३ ॥ अपने भावसे नाचतीहुई चन्द्रभामानामवाली कोयलके समान गानेवाली अप्सरा अपने देहसहित लिंगके मध्यमें लयको प्राप्त हुई ॥ ८४ ॥ श्रीकरनामक गोपिकाके पुत्रने मध्यमेश्वरको सेवन करके दयालु शिवके गाणपत्यको पाया ॥ ८५ ॥ भार्गव, और बृहस्पति, देवता तथा दैत्योंसे पूजित यह दोनों देवता महादेवकी कृपासे विद्यामें पारंगत हुए ॥ ८६ ॥ मैं भी यहाँ मध्यमेश्वर शिवको

पूजके निश्चय वेगसे पुराणोंके रचनेकी शक्तिको प्राप्त होऊंगा ॥ ८७ ॥ ऐसी बुद्धि ठान वह धीर सत्यवतीके पुत्र व्रती व्यासजी गंगाजीके जलमें स्नान करके नियमको ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ कहीं तो पत्तोंको भक्षण कर तथा कहीं फल शाकका भोजन कर तथा कहीं पवनका भक्षण कर तथा कहीं जलका आहार करके तथा कहीं निराहार व्रती रहनेलगे ॥ ८९ ॥ इत्यादि नियमोंसे वह धर्मात्मा योगी तीनों कालमें अनेक वृक्षोंके फलोंसे मध्यमेश्वर शिवको पूजने लगे ॥ ९० ॥ इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर व्यासजी गंगाजीके जलमें स्नान करके जबहीं मार्गमें आये ॥ ९१ ॥ तबहीं उन पुण्यात्माने

इति कृत्वा मतिं धीरो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ भागीरथ्यम्भसि स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती ॥ ८८ ॥ क्वचित्पर्णाशनो भूत्वा फलशाकाशनः क्वचित् ॥ वातभुग्जलभुक्कापि क्वचिन्निरशनव्रती ॥ ८९ ॥ इत्यादिनियमैर्योगी त्रिकालं मध्यमेश्वरम् ॥ पूजयामास धर्म्मात्मा नानावृक्षोद्भवैः फलैः ॥ ९० ॥ इत्थं बहुतिथे काले व्यतीते कालिकासुतः ॥ स्नात्वा त्रिपथगातोये यावदायाति स प्रगे ॥ ९१ ॥ मध्यमेश्वरमीशानं भक्ताभीष्टवरप्रदम् ॥ तावद्ददर्श पुण्यात्मा मध्येलिंगं महेश्वरम् ॥ ९२ ॥ उमाभूषितवामांगं व्याघ्रचर्म्मोत्तरीयकम् ॥ जटाजूटचलद्गंगातरंगैश्चारुविग्रहम् ॥ ९३ ॥ लसच्छारदबालेन्दुचन्द्रिकाचन्दितालकम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कर्पूरार्जुनविग्रहम् ॥ ९४ ॥ कर्णान्तायतनेत्रं च विद्रुमारुणदच्छदम् ॥ पंचवर्षाकृत बालं बालकोचितभूषणम् ॥ ९५ ॥ दधानं कोटिकन्दर्प्पदर्पहानितनुद्युतिम् ॥ नम्रं प्रहसितास्याब्जं गायन्तं साम लीलया ॥ ९६ ॥ करुणापारपाथोधिं भक्तवत्सलनामकम् ॥ आशुतोषमुमाकान्तं प्रसादसुमुखं हरम् ॥ ९७ ॥

भक्तोंके मनोवांछित वरके देनेवाले मध्यमेश्वर शिवको ज्योतिर्लिंगके मध्यमें देखा ॥ ९२ ॥ पार्वतीसे भूषित वामांगवाले व्याघ्रचर्मके वस्त्रधारी जटाजूटमें चलायमान गंगाकी तरंगोंसे मनोहर शरीरयुक्त ॥ ९३ ॥ शोभायमान शरदऋतुके बालचन्द्रमाकी किरणोंसे विराजमान भस्मसे सर्वांग लिप्त होनेवाले कर्पूरके समान श्वेतशरीरवाले ॥ ९४ ॥ कानोंपर्यंत विशाल नेत्रवाले, मूँगोंके समान लाल होंठोंवाले, पांचवर्षके आकारवाले, बालकोंके योग्य भूषण पहनेहुए ॥ ९५ ॥ कोटि कामदेवके दर्पको नाशकरनेवाली शरीरकी छबिवाले नम्र खिलेहुए कमलके समान मुखवाले लीलासे सामवेद गातेहुए ॥ ९६ ॥ करुणाके अपार

समुद्र भक्तवत्सल नामवाले शीघ्र सन्तुष्टि करनेवाले पार्वतीके पति प्रसादसे सुन्दर मुखवाले साक्षात् शिवजीको ॥ ९७ ॥ योगियोंको भी अगम्य दीनबंधु चिदात्मक उनका दर्शन करके प्रेमसे गद्गदहुई वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ९८ ॥ वेदव्यासजी बोले, हे देवोंके देव ! हे महाभाग ! हे शरणागतवत्सल ! हे वाणी, मन, कर्मसे भी दुर्लभ ! हे योगियोंके भी अगोचर ! ॥ ९९ ॥ हे उमापते ! वेदभी तुम्हारी महिमाको नहीं जानते हैं तुमहीं संसारके उत्पादक पालक तथा विनाश करनेवाले हो ॥ १०० ॥ हे सदाशिव ! तुम सब देवताओंमें प्रथम हो, सच्चिदानन्द ईश्वर हो सर्वज्ञ हो और तुम्हारा नाम गोत्र कुछ

समालोक्य स्तुतिं चक्रे प्रेमगद्गद्या गिरा ॥ योगिनामप्यगम्यन्तं दीनबन्धुं चिदात्मकम् ॥ ९८ ॥ वेदव्यास उवाच ॥ देवदेव महाभाग शरणागतवत्सल ॥ वाङ्मनःकर्मदुष्पाप योगिनामप्यगोचर ॥ ९९ ॥ महिमानं न ते वेदा विदामासुरुमापते ॥ त्वमेव जगतः कर्ता धर्ता हर्ता तथैव च ॥ १०० ॥ त्वमाद्यः सर्वदेवानां सच्चिदानंद ईश्वरः ॥ नामगोत्रे न वा ते स्तः सर्वज्ञोऽसि सदाशिव ॥ १०१ ॥ त्वमेव परमं ब्रह्म मायापाशनिवर्तकः ॥ गुणत्रयैर्न लिप्तस्त्वं पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १०२ ॥ न ते जन्म न वा शीलं न देशो न कुलं च ते ॥ इत्थंभूतोपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः काममावहेः ॥ १०३ ॥ न ब्रह्मा न च लक्ष्मीशो न च सेन्द्रा दिवौकसः ॥ न योगीन्द्रा विदुस्तत्त्वं यस्य तं त्वामुपास्महे ॥ १०४ ॥ त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं गौरीशस्त्वं पुरान्तकः ॥ त्वं बालस्त्वं युवा वृद्धस्तं त्वां हृदि युनज्म्यहम् ॥ ॥ १०५ ॥ नमस्तस्मै महेशाय भक्तध्येयाय शम्भवे ॥ पुराणपुरुषायाद्धा शंकराय परात्मने ॥ १०६ ॥

नहीं है ॥ १०१ ॥ तुमहीं परब्रह्म मायाके फांसेसे निवृत्त करनेवाले हो जैसे जलसे कमलपत्र तैसे तुम तीनों गुणोंसे लिप्त नहीं हो ॥१०२॥ न तुम्हारा जन्म है न शील और न देश न तुम्हारा कुल है इस प्रकारके ईश्वर होकर भी तुम त्रिलोकीके मनोरथ पूर्ण करते हो ॥ १०३ ॥ तुम न ब्रह्माही न विष्णुही और न इन्द्रसहित देवता हो और न योगीन्द्र ही तुम्हारे तत्त्वको जानतेहैं फिर किस प्रकार तुम्हारी उपासना करें ॥ १०४ ॥ तुमसे सबहैं तथा तुमहीं सम्पूर्ण तुमहीं पुरान्तक शिव हो तुमहीं बालक तथा युवा तथा वृद्ध हो तुमको मैं अपने हृदयमें धारण करता हूँ ॥ १०५ ॥ उन महेश भक्तोंसे ध्यान करनेयोग्य

शम्भु पुराणपुरुष शंकर परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ १०६ ॥ ऐसी स्तुति करके वे व्यासजी दंडवत् करके भूमिपर गिरपडे तबही बालक प्रसन्न होके वेदव्याससे बोले ॥ १०७ ॥ हे योगिन् ! जो तुम्हारे मनमें हो सो वर अंगीकार करो मुझे कुछ अदेय नहीं है कारण कि मैं भक्तोंके आधीन हूँ ॥ १०८॥. प्रसन्नात्मा महातपस्वी मुनि व्यासजी उठके यह बोले, हे प्रभो ! सर्वज्ञ आपको क्या ? अज्ञात है ॥ १०९ ॥ तुम सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्व सबकुछ देनेवाले हो आप दैन्यकारिणी याञ्चामें मुझे क्यों प्रयुक्त करते हो ॥ ११० ॥ इस प्रकार निर्मल चित्तवाले उन व्यासजीका वचन सुनके वह बालरूपधारी महादेव

इति स्तुत्वा क्षितौ यावद्दण्डवन्निपपात सः ॥ तावत्स बालो हृष्टात्मा वेदव्यासमभाषत ॥ १०७ ॥ वरं वृणीष्व भो योगिन्यस्ते मनसि वर्तते ॥ नादेयं विद्यते किंचिद्भक्ताधीनो यतोऽस्म्यहम् ॥ १०८ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्व्यासो महातपाः ॥ प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ १०९ ॥ सर्वान्तरात्मा भगवाञ्छर्वः सर्वप्रदो भवान् ॥ याच्ञां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ ११० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामलचेतसः ॥ शुचि स्मित्वा महादेवो बालरूपधरोऽब्रवीत् ॥ १११ ॥ बाल उवाच ॥ त्वया ब्रह्मविदां श्रेष्ठ योऽभिलाषः कृतो हृदि ॥ अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥ ११२ ॥ कण्ठे स्थित्वा तव ब्रह्मन्नन्तर्याम्यहमीश्वरः ॥ सेतिहासपुराणानि सम्यङ्निर्यापयाम्यहम् ॥ ११३ ॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ॥ वर्षं त्रिकालं पठनात्कामदं शम्भुसद्मनि ॥ ११४ ॥ एतत्स्तोत्रस्य पठनं विद्याबुद्धिविवर्द्धनम् ॥ सर्वसंपत्करं प्रोक्तं धर्मदं मोक्षदं नृणाम् ॥ ११५ ॥ प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शांकरम् ॥ वर्षं पठन्निदं स्तोत्रं मूर्खोऽपि स्याद्बृहस्पतिः ॥ ११६ ॥

पवित्र हास्य करके यह बोले ॥ १११ ॥ बालक बोले, हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! तुमने जो अभिलाषा अपने मनमें की है वह अतिशीघ्र पूर्ण होगी इसमेंसंशय नहीं है ॥ ११२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं अन्तर्यामी ईश्वर तुम्हारे कण्ठमें स्थित होके इतिहास पुराणोंको निर्माण कराऊँगा ॥ ११३॥ यह पुण्य अभिलाषाष्टक स्तोत्र तुमने कहा यह शिवके स्थानमें एकवर्ष तीनों काल पढनेसे सब कामनाका देनेवाला होगा ॥ ११४ ॥ इस स्तोत्रका पाठ मनुष्योंकी विद्या तथा बुद्धिका बढानेवाला संपूर्ण सम्पत्ति करनेवाला धर्म और मोक्षका देनेवाला कहा है ॥ ११५ ॥ प्रातः काल उठके भलीभाँति स्नान कर शिवके ज्योति

लिंगको पूजके वर्षभरतक इस स्तोत्रको पढै तो मूर्ख भी बृहस्पति होजाता है ॥ ११६ ॥ स्त्री वा पुरुष नियमसे पार्थिवलिंगके समीप वर्षभर इस स्तोत्रको जपै तो उसकी विद्या बुद्धि बढती है ॥ ११७ ॥ ऐसा कहके वह बालक महादेव पार्थिवलिंगमें लय होगये व्यासजीभी आसुओंको छोडतेहुए शिवके प्रेममें तत्पर हुए ॥ ११८ ॥ इस प्रकार मध्यमेश्वर महादेवसे वर पाय व्यासजी अपनी लीलासे अठारह पुराणोंको निर्माण करके ॥ ११९ ॥ ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव तथा भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कंडेय ॥ १२० ॥ आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वाराह, वामनाख्य, कौर्म, मात्स्य, गारुड ॥ १२१ ॥ स्कान्द

स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ ॥ वर्षं जप्तमिदं स्तोत्रं बुद्धिं विद्याञ्च वर्द्धयेत् ॥ ११७ ॥ इत्युक्त्वा स महादेवो बालो लिंगे न्यलीयत ॥ व्यासोऽपि मुंचन्नश्रूणि शिवप्रेमाकुलोऽभवत् ॥ ११८ ॥ एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात् ॥ अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया ॥ ११९ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा ॥ भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ॥ १२० ॥ आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लिंगं वाराहमेव च ॥ वामनाख्यं ततः कौर्मं मात्स्यं गारुडमेव च ॥ १२१ ॥ स्कान्दं तथैव ब्रह्माण्डाख्यं पुराणं च कीर्तितम् ॥ यशस्यं पुण्यदं नृणां श्रोतृणां शांकरं यशः ॥ १२२ ॥ सूत उवाच ॥ अष्टादशपुराणानाम्पूर्वं नामोदितन्त्वया ॥ कुरु निर्वचनं तेषामिदानीं वेदवित्तम ॥ १२३ ॥ व्यास उवाच ॥ अयमेव कृतः प्रश्नस्तण्डिना ब्रह्मयोनिना ॥ नन्दिकेश्वरमुद्दिश्य स यदाह ब्रवीमि तत्॥१२४॥नन्दिकेश्वर उवाच॥यत्र वक्ता स्वयन्तण्डे ब्रह्मा साक्षाच्चतुर्मुखः॥तस्माद्ब्राह्मं समाख्यातं पुराणं प्रथमं मुने॥१२५॥

तथा ब्रह्मांडनामक पुराण कहेहैं यह शिवके यशको सुननेवाले मनुष्योंको कीर्त्ति तथा पुण्यके देनेवाले कहेहैं ॥ १२२ ॥ सूतजी बोले, हे वेदवित्तम ! तुमने पहले जो अठारह पुराणोंका नाम कहा अब उन सबोंका निर्वचन करो ॥ १२३ ॥ व्यासजी बोले, यही प्रश्न ब्रह्माके पुत्र तंडीने नन्दिकेश्वरसे किया था उन्होंने जो कहा है सो मैं वर्णन करता हूँ ॥ १२४॥ नंदिकेश्वर बोले, हे तंडि मुने ! जिसमें साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्माजी वक्ता हैं इससे यह पहला

ब्राह्मपुराण कहा है ॥ १२५ ॥ जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य कहा है इससे दूसरा पाद्मपुराण कहा है ॥ १२६ ॥ पराशरने विष्णुको बोधन करानेवाला पुराण कहा है वह पुराण पुत्र और पिताके भेदसे व्यासजीका कहा जाता है इसीसे वह वैष्णवपुराण कहाजाता है ॥ १२७ ॥ जिसके पहले और उत्तरखंडमें शिवका बहुत चरित्र है इसको शैवपुराण पुराणज्ञ कहतेहैं ॥ १२८ ॥ जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है वह देवी भागवतपुराण कहा है इसमें देवीपुराणकी गणना नहीं है ॥ १२९ ॥ नारदजीसे कहाहुआ नारदीयपुराण कहाजाता है जिस प्रकरणमें मार्कंडेय महामुनि वक्ता हुए ॥ १३० ॥ वह सातवाँ मार्कंडेयपुराण कहलाया अग्नियोगसे आग्नेय भविष्य उक्ति होनेसे भविष्यपुराण कहा है ॥ १३१ ॥ ब्रह्माके विवर्तनसे ब्रह्मवैवर्त पुराण कहलाता है ज्योतिर्लिंगके चरित्र कहनेसे लिंगपुराण कहाजाताहै ॥ १३२ ॥ हे मुने ! वराहके चरित्र वर्णन होनेसे वाराह बारहवां पुराण कहाजाता है जिसमें स्कन्द श्रोताहैं और साक्षात् महेश्वर स्वयं वक्ता हैं ॥ १३३ ॥ वह स्कांदपुराण कहाहै वामनके अवतार वर्णन होनेसे वामन तथा कूर्मके अवतार होनेसे कौर्म मत्स्यसे कीर्तन कियाहुआ मात्स्यपुराण कहाजाताहै ॥ १३४ ॥ जिसको स्वयं गरुड कहनेवालेहैं वह गारुडपुराण है ब्रह्माण्डके चरित्र कहनेसे ब्रह्मांडपुराण कहाहै॥ १३५॥

पद्मकल्पस्य महात्म्यन्तत्र यस्यामुदाहृतम् ॥ तस्मात्पाद्मं समाख्यातं पुराणं च द्वितीयकम् ॥ १२६ ॥ पराशरकृतं यत्तु पुराणं विष्णुबोधकम् ॥ तदेव व्यासकथितं पुत्रपित्रोरभेदतः १२७ ॥ यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु ॥ शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञा वदन्ति च ॥ १२८ ॥ भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते ॥ तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवीपुराणकम् ॥ १२९ ॥ नारदोक्तं पुराणन्तु नारदीयं प्रचक्षते ॥ यत्र वक्ताऽभवत्तण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ १३० ॥ मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सत्तमम् ॥ अग्नियोगात्तदाग्नेयं भविष्योक्तेर्भविष्यकम् ॥१३१॥ विवर्तनाद्ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥ लिंगस्य चरितोक्तत्वात्पुराणं लिंगमुच्यते ॥ १३२ ॥ वराहस्य च वाराहं पुराणं द्वादशं मुने ॥ यत्र स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः ॥ १३३ ॥ तत्तु स्कान्दं समाख्यातं वामनस्य तु वामनम् ॥ कौर्मं कूर्म्मस्य चरितं मात्स्यं मत्स्येन कीर्तितम् ॥ १३४ ॥ गरुडस्तु स्वयं वक्ता यत्तद्गारुडसंज्ञकम् ॥ ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ॥ १३५ ॥

सूतजी बोले, यहही प्रश्न मैंने बुद्धिमान् व्यासजीसे किया तो मैंने सब पुराणोंका निर्वचन सुना था ॥ १३६ ॥ इस प्रकार सत्यवतीमें पराशरसे व्यासजी उत्पन्न हुए और उन्होंने पुराणसंहिता तथा उत्तम महाभारत रचा ॥ १३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! पराशरसे तथा फिर शन्तनुसे सत्यवतीका संयोग हुआ इसमें संशय करनेयोग्य नहीं हो ॥ १३८ ॥ यह आश्चर्य करानेवाली कारणसहित उत्पत्ति कही बडे पुरुषोंके चरित्रमें बुद्धिमानोंके गुणोंका ग्रहण करना चाहिये ॥ १३९ ॥ जो मनुष्य इस परम रहस्यको सुनताहै तथा पढता है वह सब पापोंसे छूटकर ऋषिलोकमें जाताहै ॥ १४० ॥ इति श्रीशिवमहापुरा

सूत उवाच॥ अयमेव मयाऽकारि प्रश्नो व्यासाय धीमते ॥ ततः सर्वपुराणानां मया निर्वचनं श्रुतम् ॥ १३६ ॥ एवं व्यासः समुत्पन्नः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥ १३७ ॥ पराशरेण संयोगः पुनः शन्तनुना यथा ॥ सत्यवत्या इह ब्रह्मन्नः संशयितुमर्हसि ॥ १३८ ॥ सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताश्चर्य्यकारिणी ॥ महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या विचक्षणैः ॥ १३९ ॥ इदं रहस्यं परमं यः शृणोति पठत्यपि ॥ स सर्वपापनिर्मुक्त ऋषिलोके महीयते ॥ १४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चाम्यामुमासंहितायां व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ मुनय ऊचुः ॥ श्रुत्वा शंभोः कथा रम्या नानाख्यानसमन्विता ॥ नानावतार संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणाम् ॥१॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ चरित्रं जगदंबाया भगवत्या मनोहरम् ॥ २ ॥ परब्रह्म महेशस्य शक्तिराद्या सनातनी ॥ उमा या समभिख्याता त्रैलोक्यजननी परा ॥ ३ ॥ सती हैमवती तस्या अवतारद्वयं श्रुतम् ॥ अपरा नवतारांस्त्वं ब्रूहि सूत महामते ॥ ४ ॥ को विरज्येत मतिमान् गुणश्रवणकर्मणि ॥ श्रीमातुर्ज्ञानिनो यानि न त्यजन्ति कदाचन ॥ ५ ॥

णभाषाटीकायां पं० उ० सं० व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ मुनि बोले, अनेक इतिहासोंसे पूर्ण अनेक अवतारोंसे संयुक्त मनुष्योंको भुक्ति मुक्तिकी देनेवाली शिवजीकी मनोहर कथा सुनी ॥ १ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस समय भगवती जगदम्बाका मनोहर चरित्र तुमसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ परब्रह्म महेश्वरकी आद्य (पहली) सनातनी शक्ति त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पार्वती कही हैं ॥ ३ ॥ दूसरी सती हैमवती हैं यह उन गौरीके दो अवतार सुनेहैं हे महामते ! सूतजी ! अब तुम और अवतारोंको कहो ॥ ४ ॥ गुणश्रवण कर्ममें कौन बुद्धिमान् विरागको प्राप्त होताहै

जितने ज्ञानीहैं वे कदापि श्रीमाताकी कथाको नहीं त्यागतेहैं ॥ ५ ॥ सूतजी बोले, तुम महात्मा धन्य हो तथा नित्य कृतकृत्य हो जो पराम्बा पार्वतीके बडे चरित्रको पूँछते हो ॥ ६ ॥ मुनियोंने इस कथाके सुननेवाले तथा पूँछनेवाले तथा बाँचनेवालोंके चरणकमलोंकी रजको ही तीर्थ कहा है ॥ ७ ॥ वे धन्यहैं उनकी सन्तान तथा कुल धन्य है जिनका चित्त श्रीदेवीके संवादमें प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य समस्त कारणोंकी कारण देवीकी स्तुति नहीं करतेहैं वे मायाके गुणोंसे मोहित हतभाग्य होतेहैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ९ ॥ जो करुणासागरमयी महादेवीको नहीं भजतेहैं वे संसाररूपी अन्धकूपमें पडतेहैं ॥ १० ॥ जैसे गंगाजीको छोडके तृप्तिके अर्थ मरुस्थलके जलमें जाता है वैसेही देवीको छोडके उससे भिन्न और देवताओंके निकट जाता है ॥ ॥ ११ ॥ जिसके स्मरणमात्रसे चारों पदार्थ विना परिश्रमके प्राप्त होतेहैं कौन पुरुष ऐसी देवीको त्यागता है ॥ १२ ॥ पहले यहही महात्मा सुरथने मेधासे पूंछा था तो मेधाने जैसे कहा सो सब तुमसे कहताहूं सुनो ॥ १३ ॥ पहले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें विरथनामक राजा हुआ उसका पुत्र सुरथ महाबल और पराक्रमयुक्त हुआ ॥ १४ ॥ वह दानमें निपुण सत्यवादी अपने धर्ममें कुशल कृती देवीका भक्त दयासागर प्रजाका पालन करनेवाला हुआ ॥ १५ ॥

सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महात्मानः कृतकृत्याः स्थ सर्वदा ॥ यत्पृच्छथ पराम्बाया उमायाश्चरितं महत् ॥ ६ ॥ शृण्वतां पृच्छतां चैव तथा वाचयतां च तत् ॥ पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥ ७ ॥ ते धन्या कृतकृत्याः स्युर्धन्या तेषां प्रसूः कुलम् ॥ येषां चित्तं भवेल्लीनं श्रीदेव्यां परसंविदि ॥ ८ ॥ ये न स्तुवन्ति देवेशीं सर्वकारणकारणाम् ॥ मायागुणैर्मोहितास्स्युर्हतभाग्या न संशयः ॥ ९ ॥ न भजन्ति महादेवीं करुणारससागराम् ॥ अन्धकूपे पतन्त्येते घोरे संसाररूपिणि ॥ १० ॥ गंगां विहाय तृप्त्यर्थं मरुवारि यथा व्रजेत् ॥ विहाय देवीं तद्भिन्नं तथा देवान्तरं व्रजेत् ॥ ११ ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ अनायासेन लभते कस्त्यजेत्तां नरोत्तमः ॥ १२ ॥ एतत्पृष्टः पुरा मेधास्सुरथेन महात्मना ॥ यदुक्तं मेधसा पूर्वं तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ १३ ॥ स्वारोचिषेन्तरे पूर्वं विरथो नाम पार्थिवः ॥ सुरथस्तस्य पुत्रोऽभून्महाबलपराक्रमः ॥ १४ ॥ दानशौण्डः सत्यवादी स्वधर्म्मकुशलः कृती ॥ देवीभक्तो दयासिन्धुः प्रजानां परिपालकः ॥ १५ ॥

इन्द्रके समान तेजवाले उस राजाके पृथ्वीके शासन करनेपर नवीन राजा उसके राज्य लेनेमें तत्पर हुए ॥ १६ ॥ उन्होंने उस राजाकी कोलानामवाली राजधानीको घेरलिया तब उन राजाओंके साथ बडा भयंकर युद्ध होनेलगा ॥ १७ ॥ उन प्रबल शत्रुओंने उस राजाको जीतलिया और उसका संपूर्ण राज्य हरके उसे कोलासे निकाल दिया ॥ १८ ॥ तब वह राजा अपने नगरको प्राप्त होके अपने मंत्रियोंके समेत राज्य करनेलगा वहां भी महापक्षवाले शत्रुओंने उसे पराजय किया ॥ १९ ॥ दैववशात् शत्रुभावको प्राप्तहुए मंत्री आदि गणोंने कोशमें स्थितहुआ सब धन अपने आधीन करलिया ॥ २० ॥

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ॥ बभूवुर्नव ये भूपाः पृथ्वीग्रहणतत्पराः ॥ १६ ॥ कोलानाम्नीं राजधानीं रुरुधुस्तस्य भूपतेः ॥ तैस्समन्तुमुलं युद्धं समपद्यत दारुणम् ॥ १७ ॥ युद्धे स निर्जितो भूपः प्रबलैस्तैर्द्विषद्गणैः ॥ उज्जासितश्च कोलाया हत्वा राज्यमशेषतः ॥ १८ ॥ स राजा स्वपुरीमेत्याकरोद्राज्यं स्वमंत्रिभिः ॥ तत्रापि च महापक्षैर्विपक्षैस्स पराजितः ॥ १९ ॥ दैवाच्छत्रुत्वमापन्नैरमात्यप्रमुखैर्गणैः ॥ कोशास्थितं च यद्वित्तं तत्सर्वं चात्मसात्कृतम् ॥ २० ॥ ततस्स निर्गतो राजा नगरान्मृगयाछलात् ॥ असहायोऽश्वमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ २१ ॥ इतस्ततस्तत्र गच्छन्राजा मुनिवराश्रमम् ॥ ददर्श कुसुमारामभ्राजितं सर्वतोदिशम् ॥ २२ ॥ वेदध्वनिसमाकीर्णं शान्तजन्तुसमाश्रितम् ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैस्समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ २३ ॥ व्याघ्रादयो महावीर्या अल्पवीर्यान्महामते ॥ तदाश्रमे न बाधन्ते द्विजवर्य्यप्रभावतः ॥ २४ ॥ उवास तत्र नृपतिर्महाकारुणिको बुधः ॥ सत्कृतो मुनिनाथेन सुवचोभोजनासनैः ॥ २५ ॥ एकदा स महाराजश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ अहो मे हीनभाग्यस्य दुर्बुद्धेर्हीनतेजसः ॥ २६ ॥

तब वह असहाय राजा आखेटके बहाने घोडेपर चढके सघन वनमें निकलगया ॥ २१ ॥ वहां उधर इधर जातेहुए राजाने चारोंओरसे पुष्पवाटिकासे शोभायमान मुनिका आश्रम देखा ॥ २२ ॥ वेदध्वनिसे गुंजारित शांत प्राणियोंसे व्याप्त शिष्य प्रशिष्य तथा उनके शिष्योंसे सब ओर घिराहुआ वह आश्रम था ॥ २३ ॥ हे महामते ! मुनिके प्रभावसे उस आश्रममें महावीर्यवान् व्याघ्र आदि थोडे बलवाले जीवोंको पीडा नहीं देते थे ॥ २४ ॥ वहां परमदयालु निपुण राजाने निवास किया तब सुन्दर भोजन पानसे मुनिनाथने उसका सत्कार किया ॥ २५ ॥ किसी समय वह महाराज बडी कठिन चिन्ताको प्राप्त

हुआ कि, अहो भाग्यहीन दुर्बुद्धि तेजहीन मेरा ॥ २६ ॥ संपूर्ण राज्य मदमें प्रगल्भ शत्रुओंने हरण किया मेरे पूर्वजोंसे रक्षितहुआ राज्य अब शत्रुओंसे भोगा जाता है ॥ २७ ॥ इस चैत्रवंशमें मुझ सरीका कोई राजा नहीं हुआ अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किस प्रकार राज्यको पाऊं ? ॥ २८ ॥ और मेरे सनातन अमात्य और मंत्री हैं वे न जानै अब किस राजाको प्राप्त होके स्थित हैं ॥ २९ ॥ और राज्यको नष्ट करके अब न जानै कौन गतिको प्राप्त हैं संग्रामभूमिमें बडे उत्साहवाले शत्रुवर्गके छेदन करनेवाले ॥ ३० ॥ मेरे जो महाशूर भट हैं वे और राजाको भजते हैं पर्वतके समान ऊँचे हाथी

हृतं राज्यमशेषेण शत्रुवर्गैर्मदोद्धतैः ॥ मत्पूर्वै रक्षितं राज्यं शत्रुभिर्भुज्यतेऽधुना ॥ २७ ॥ मादृशश्चैत्रवंशेस्मिन्न कोप्यासीन्महीपतिः ॥
किं करोमि क्क गच्छामि कथं राज्यं लभेमहि ॥ २८ ॥ अमात्या मंत्रिणश्चैव मामका ये सनातनाः ॥ न जाने कं च नृपतिं समासाद्या
धुनासते ॥ २९ ॥ विनाश्य राज्यमधुना न जाने कां गतिं गताः ॥ रणभूमिमहोत्साहा अरिवर्गनिकर्तनाः ॥ ३० ॥ मामका ये महा
शूरा नृपमन्यं भजन्ति ते ॥ पर्वताभा गजा अश्वा वातवद्वेगगामिनः ॥ ३१ ॥ पूर्वपूर्वार्जितः कोशः पाल्यते तैर्नवाधुना ॥ एवं मोहवशं
यातो राजा परमधार्मिकः ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र वैश्यः कश्चित्समागतः ॥ राजा पप्रच्छ कस्त्वं भोः किमर्थमिह चागतः ॥
॥ ३३ ॥ दुर्मना लक्ष्यसे कस्मादेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम् ॥ इत्याकर्ण्य वचो रम्यं नरपालेन भाषितम् ॥ ३४ ॥ दृग्भ्यां विमुंचन्नश्रूणि
समाधिर्वैश्यपुंगवः ॥ प्रत्युवाच महीपालं प्रणयावनतां गिरम् ॥ ३५ ॥ ॥ वैश्य उवाच ॥ समाधिर्नाम वैश्योहं धनिवंशसमुद्भवः ॥
पुत्रदारादिभिस्त्यक्तो धनलोभान्महीपते ॥ ३६ ॥

पवनके समान वेगवाले घोडे वे भी ॥ ३१ ॥ तथा पूर्व पूर्वजोंसे अर्जितहुआ कोश भी वे अब पालते हैं या नहीं इस प्रकार वह परमधर्मात्मा राजा मोहके वशमें प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ इसी अवसरमें वहां कोई वैश्य प्राप्त हुआ तब राजाने उससे पूँछा कि, तुम कौन हो किसलिये यहां आयेहो ॥ ३३ ॥ इस समय तुम क्यों दुःखितमन ज्ञात होते हो यह मुझसे कहो ऐसे मनोहर राजाके वचन सुनके ॥ ३४ ॥ तब समाधिनामक वैश्यश्रेष्ठ अपने नेत्रोंसे आंसुओंको गिराताहुआ प्रणयसे नम्रहुई वाणीसे राजासे बोला ॥ ३५ ॥ वैश्य बोला, हे राजन् ! मैं समाधिनामक वैश्य हूं और धनीके वंशमें उत्पन्न हुआ और धनके

लोभसे पुत्र स्त्री आदिसे त्यागन हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! अपने कर्मसे दुःखित हो वनमें आया हूं वह मैं पुत्र तथा पौत्रोंकी तथा स्त्रियोंकी ॥ ३७ ॥ हे करुणासागर प्रभो ! भाइयोंकी और भाईके पुत्रोंकी तथा और मित्रोंकी भलीभांति कुशल नहीं जानता हूं ॥ ३८ ॥ राजा बोला, जिन दुराचारी धनके लोभी पुत्र आदिने तुमको निकाल दिया उनमें तुम मूर्ख जन्तुके समान क्यों प्रीति करते हो ? ॥ ३९ ॥ वैश्य बोला, हे राजन् ! तुमने भलीभांति सारगर्भित वचन कहा तथापि स्नेहपाशसे मेरा मन अत्यन्तही मोहित होता है ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार मोहमें व्याकुलहुए वे दोनों वैश्य और राजा मुनिवर्य

वनमभ्यागतो राजन्दुःखितः स्वेन कर्मणा ॥ सोहं पुत्रप्रपौत्राणां कलत्राणां तथैव च ॥ ३७ ॥ भ्रातॄणां भ्रातृपुत्राणां परेषां सुहृदां तथा ॥ न वेद्मि कुशलं सम्यक् करुणासागर प्रभो ॥ ३८ ॥ राजोवाच ॥ निष्कासितो यैः पुत्राद्यैर्दुर्वृत्तैर्धनगार्धिभिः ॥ तेषु किं भवता प्रीतिः क्रियते मूर्खजन्तुवत् ॥ ३९ ॥ वैश्य उवाच ॥ सम्यगुक्तं त्वया राजन्वचः सारार्थबृंहितम् ॥ तथापि स्नेहपाशेन मोह्यतेऽतीव मे मनः ॥४०॥ एवं मोहाकुलौ वैश्यपार्थिवौ मुनिसत्तम ॥ जग्मतुर्मुनिवर्यस्य मेधसः सन्निधिन्तदा ॥ ४१॥ स वैश्यराजसहितो नरराजः प्रतापवान् ॥ प्रणनाम महाधीरः शिरसा योगिनां वरम् ॥ ४२ ॥ बद्धाञ्जलिमिमां वाचमुवाच नृपतिर्मुनिम् ॥ भगवन्नावयोर्मोहं छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ अहं राज्यश्रिया त्यक्तो गहनं वनमाश्रितः ॥ तथापि हृतराज्यस्य तोषो नैवाभिजायते ॥ ४४ ॥ अयं च वैश्यस्स्वजनैर्दाराद्यैर्निष्कृतो गृहात् ॥ तथाप्येतस्य ममता न निवृत्तिं समश्नुते ॥ ४५ ॥ किमत्र कारणं ब्रूहि ज्ञानिनोरपि नो मनः ॥ मोहेन व्याकुलं जातं महत्येषां हि मूर्खता ॥ ४६ ॥

मेधसके निकट गये ॥ ४१ ॥ उस वैश्यराजसमेत प्रतापी धीर राजाने मस्तक झुकाय योगिराजको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तब अंजलि बाँध वह राजा मुनिसे यह वचन बोला हे भगवन् ! इस समय तुम हम दोनोंके संशयको छेदन करनेके योग्य हो ॥ ४३ ॥ मैं राज्यलक्ष्मीसे छूटाहुआ सघन वनमें आया तौ भी राज्यके हरण होनेपर भी मुझे संतोष नहीं होता है ॥ ४४ ॥ और यह वैश्य अपने कुटुम्बी द्वारा आदिसे घरते निकाला गया है तो भी इसकी ममता दूर नहीं हुई ॥ ४५ ॥ इसमें क्या कारण है सो कहो ? कि, ज्ञानी भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हुआ यह अतिमूर्खता है ॥ ४६ ॥

ऋषि बोले, महामाया जगत्की धारण करनेवाली सनातनी शक्तिरूपा देवी सबोंके मनोंको आकर्षण करके मोहित करती है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! जिसकी मायासे मोहितहुए ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी परमतत्त्वको नहीं जानते हैं फिर मनुष्योंकी क्या कथा है ॥ ४८ ॥ वह देवी सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती तथा पालन करती और वहही तीनोंगुणधारी परमेश्वरी समय पाकर विनाश करती है ॥ ४९ ॥ हे नृपसत्तम ! वह वरदेनेवाली कामरूपिणी देवी जिसके ऊपर प्रसन्न होती है वहही मोहको दूर करता है और प्रकार मनुष्य मोहको नहीं दूर करसकता ॥ ५० ॥ राजा बोला, हे मुने ! वह महामायानामक

ऋषि रुवाच ॥ महामाया जगद्धात्री शक्तिरूपा सनातनी ॥ सा मोहयति सर्वेषां समाकृष्य मनांसि वै ॥ ४७ ॥ ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे यन्मायामोहिताः प्रभो ॥ न जानन्ति परन्तत्त्वं मनुष्याणां च का कथा ॥ ४८ ॥ सा सृजत्यखिलं विश्वं सैव पालयतीति च ॥ सैव संहरते काले त्रिगुणा परमेश्वरी ॥ ४९ ॥ यस्योपरि प्रसन्ना सा वरदा कामरूपिणी ॥ स एव मोहमत्येति नान्यथा नृपसत्तम ॥ ५० ॥ राजोवाच ॥ का सा देवी महामाया या च मोहयतेऽखिलान् ॥ कथं जाता च सा देवी कृपया वद मे मुने ॥ ५१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जगत्येकार्णवे जाते शेषमास्तीर्य योगराट् ॥ योगनिद्रामुपाश्रित्य यदा सुष्वाप केशवः ॥ ५२ ॥ तदा द्वावसुरौ जातौ विष्णोः कर्णमलेन वै ॥ मधुकैटभनामानौ विख्यातौ पृथिवीतले ॥ ५३ ॥ प्रलयार्कप्रभौ घोरौ महाकायौ महाहनू ॥ दंष्ट्राकरालवदनौ भक्षयन्तौ जगन्ति वा ॥ ५४ ॥ तौ दृष्ट्वा भगवन्नाभिपङ्कजे कमलासनम् ॥ हननायोद्यतावास्तां कस्त्वं भोरिति वादिनौ ॥ ५५ ॥

कौन देवी है जो सबोंको मोहित करती है वह देवी किस प्रकार उत्पन्न हुई यह सब कृपा करके मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ ऋषि बोले, जगत्के एकार्णव (प्रलय) होनेपर जब योगिराट् भगवान् केशव योगनिद्राको प्राप्त होके शेषको आस्तरण कर शयन करनेलगे ॥ ५२ ॥ उस समय विष्णुके कर्णमलसे पृथिवीमें विख्यात मधुकैटभ नामवाले दो दैत्य उत्पन्न होगये ॥ ५३ ॥ प्रलयकालके सूर्यके समान घोर महाकाय बडी ठोंडीवाले दंष्ट्रासे भयंकर मुखवाले लोकोंको भक्षण करतेहुए ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! नाभिकमलमें भगवान्को देखके अरे तू कौनहै ऐसा कहके नारायणको मारनेके अर्थ उद्यत हुए ॥ ५५ ॥

उन दैत्योंको देखके ब्रह्माजीने समुद्रमें शयन करतेहुए नारायणको तथा परमेश्वरीको सन्तुष्ट किया ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे महामाये ! शरणागतवत्सले ! हे जगदम्बिके ! इन भयंकरस्वरूप दैत्योंसे रक्षाकरो ॥ ५७ ॥ महामाया, योगनिद्रा, पार्वती, सती, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, परासेपरा, तुमको नमस्कार करता हूं ॥ ५८ ॥ तीनों देवताओंकी उत्पन्न करनेवाली नित्य भक्तोंको मनोवांछित फल देनेवाली सब देवताओंकी पालन करनेवाली करुणा वरुणालयाको नमस्कार करता हूं ॥ ५९ ॥ तुम्हारे प्रभावसे मैं ब्रह्मा तथा विष्णु शिव संसारको उत्पन्न करते रक्षा करते तथा प्रलयकालमें संहार करते हैं

समालोक्य तु तौ दैत्यौ सुरज्येष्ठो जनार्दनम् ॥ शयानं च पयोम्भोधौ तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥ ५६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रक्षरक्ष महामाये शरणागतवत्सले ॥ एताभ्यां घोररूपाभ्यां दैत्याभ्यां जगदम्बिके ॥ ५७ ॥ प्रणमामि महामायां योगनिद्रामुमां सतीम् ॥ कालरात्रिं महारात्रिं मोहरात्रिं परात्पराम् ॥५८॥ त्रिदेवजननीं नित्यां भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ॥ पालिनीं सर्वदेवानां करुणावरुणालयाम् ॥ ५९ ॥ त्वत्प्रभावादहं ब्रह्मा माधवो गिरिजापतिः ॥ सृजत्यवति संसारं काले संहरतीति च ॥ ६० ॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्विमला मता ॥ तुष्टिः पुष्टिस्त्वमेवाम्ब शान्तिः क्षान्तिः क्षुधा दया ॥ ६१ ॥ विष्णुमाया त्वमेवाम्ब त्वमेव चेतना मता ॥ त्वं शक्तिः परमा प्रोक्ता लज्जा तृष्णा त्वमेव च ॥ ६२ ॥ भ्रान्तिस्त्वं स्मृतिरूपा त्वं मातृरूपेण संस्थिता ॥ त्वं लक्ष्मीर्भवने पुंसां पुण्याचारप्रवर्तिनाम् ॥ ६३ ॥ त्वं जातिस्त्वं मता वृत्तिर्व्याप्तिरूपा त्वमेव हि ॥ त्वमेव चित्तिरूपेण व्याप्य कृत्स्नं प्रतिष्ठिता ॥ ६४ ॥ सा त्वमेतौ दुराधर्षावसुरौ मोहयाम्बिके ॥ प्रबोधय जगद्योने नारायणमजं विभुम् ॥ ६५ ॥

॥ ६० ॥ हे माता ! तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा, तुम लज्जा, तुमहीं निर्मूल बुद्धि हो, तुमहीं शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा और तुमहीं दया हो ॥ ६१ ॥ हे माता ! तुमहीं विष्णुकी माया तुमहीं चेतना तुमहीं शक्ति तुमहीं परम लज्जा तुमहीं तृष्णा हो ॥६२॥ तुम भ्रांति हो तुम स्मृति तथा तुमहीं माताके रूपसे स्थित हुई हो तुमहीं पुण्याचारमें प्रवृत्त होनेवाले मनुष्योंके गृहमें लक्ष्मी हो ॥ ६३ ॥ तुम जाति हो तुम वृत्ति और व्याप्तिरूपा हो तुमहीं चितिरूपसे सब जगत्में व्याप्त होके स्थित हो॥ ६४ ॥हे अम्बिके ! हे जगत्योने ! वह तुम इन प्रगल्भ दैत्योंको मोहित करो तथा अज, विभु, नारायणको जगाओ ॥६५॥

ऋषि बोले, वह महाविद्या, जगद्धात्री, सर्वविद्याधिदेवता, देवी ब्रह्मासे प्रार्थितहुई मधुकैटभके नाश करनेमें प्रवृत्त हुई ॥ ६६ ॥ तब फाल्गुनमासकी शुक्ला द्वादशीको वह उत्पन्न हुई और महाकालीनामसे प्रसिद्ध त्रिलोकीके मोहनेवाली शक्ति विख्यात हुई ॥ ६७ ॥ तिसके पीछे आकाशवाणी हुई कि हे ब्रह्मन् ! मत डरो अब मैं आज मधुकैटभ दैत्योंको मारके तुम्हारे दुःखको दूर करूंगी ॥६८॥ ऐसा कहके वह माया देवी विष्णुके नेत्र मुखसे निकलके अब्जजन्मा ब्रह्माजीके दर्शनको प्राप्त हुई ॥ ६९ ॥ और देवोंके देव जनार्दन भगवान् उठे और उन्होंने मधुकैटभनामक दैत्योंको आगे देखा ॥ ७० ॥ तब उन

ऋषिरुवाच ॥ ॥ ब्रह्मणा प्रार्थिता सेयं मधुकैटभनाशने ॥ महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता ॥ ६६ ॥ द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभून्नृप ॥ महाकालीति विख्याता शक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी ॥ ६७ ॥ ततोऽभवद्वियद्वाणी मा भैषीः कमलासन ॥ कण्टकं नाशयाम्यद्य हत्वाजौ मधुकैटभौ ॥ ६८ ॥ इत्युक्त्वा सा महामाया नेत्रवक्त्रादितो हरेः ॥ निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ६९ ॥ उत्तस्थौ च हृषीकेशो देवदेवो जनार्दनः ॥ स ददर्श पुरो दैत्यौ मधुकैटभसंज्ञकौ ॥ ७० ॥ ताभ्यां प्रववृत्ते युद्धं विष्णोरतुलतेजसः ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धमभूत्तदा ॥ ७१ ॥ महामायाप्रभावेण मोहितौ दानवोत्तमौ ॥ जजल्पतू रमाकान्तं गृहाण वरमीप्सितम् ॥ ७२ ॥ ॥ नारायण उवाच ॥ मयि प्रसन्नौ यदि वां दीयतामेष मे वरः ॥ मम वध्यावुभौ नान्यं युवाभ्यां प्रार्थये वरम् ॥ ७३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एकार्णवां महीं दृष्ट्वा प्रोचतुः केशवं वचः ॥ आवां जहि न यत्रासौ धरणी पयसाऽऽप्लुता ॥ ७४ ॥ तथास्तु प्रोच्य भगवांश्चक्रमुत्थाप्य सूज्ज्वलम् ॥ चिच्छेद शिरसी कृत्वा स्वकीयजघने तयोः ॥ ७५ ॥

दैत्योंके साथ अतुलतेजवाले विष्णुका युद्ध हुआ पांच सहस्र वर्ष बाहुयुद्ध हुआ ॥ ७१ ॥ तब महामायाके प्रभावसे वे दानवोत्तम मोहित हुए और विष्णुसे यह बोले कि, मनोवांछित वरको ग्रहण करो ॥ ७२ ॥ नारायण बोले, यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो तो मुझे यह वर दो कि, तुम दोनों मुझसे मारने योग्य होओ मैं तुमसे और वर नहीं मांगता हूं ॥ ७३ ॥ ऋषि बोले, एक समुद्रवाली पृथ्वीको देखके विष्णुसे यह वचन बोले जहां भूमि जलसे व्याप्त न हो वहां तुम हम दोनोंको मारो ॥ ७४ ॥ ऐसाही हो यह कहके भगवान्ने उज्ज्वल सुदर्शनचक्रको उठाके उन दैत्योंको अपनी जंघापर स्थापित करके इनके

शिरोंको काटडाला ॥ ७५ ॥ हे महामते ! हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे कालिकाकी उत्पत्ति वर्णन की अब महालक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ७६ ॥ निर्विकार, साकार, निराकार, देवी, पार्वती देवतोंके दुःख नाश होनेके अर्थ प्रत्येक युगमें प्रगट होती है ॥ ७७ ॥ उन देवीका शरीर धरना सब इच्छाका वैभव है और वह लीलासे भक्तोंके गुण वर्णन करनेके हेतुसे होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ऋषि बोले, दैत्यवंशमें शिरोमणि रंभासुरनामक दैत्य हुआ उससे महातेजस्वी महिषासुरनामक दैत्य

एवन्ते कथितो राजन्कालिकायास्समुद्भवः ॥ महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महामते ॥ ७६ ॥ निर्विकारापि साकारा निराकारापि देव्युमा ॥ देवानां तापनाशार्थं प्रादुरासीद्युगेयुगे ॥ ७७ ॥ यदिच्छावैभवं सर्वं तस्या देहग्रहः स्मृतः ॥ लीलया सापि भक्तानां गुणवर्णनहेतवे ॥ ७८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ आसीद्रंभासुरो नाम दैत्यवंशशिरोमणिः ॥ तस्माज्जातो महातेजा महिषो नाम दानवः ॥ ॥ १ ॥ स संग्रामे सुरान्सर्वान्निर्जित्य दनुजाधिपः ॥ चकार राज्यं स्वर्लोके महेन्द्रासनसंस्थितः ॥ २ ॥ पराजितास्ततो देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ब्रह्मापि तान्समादाय ययौ यत्र वृषाकपी ॥ ३ ॥ तत्र गत्वा सुरास्सर्वे नत्वा शंकरकेशवौ ॥ स्ववृत्तं कथयामासुर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ४ ॥ भगवन्तौ वयं सर्वे महिषेण दुरात्मना ॥ उज्जासिताश्च स्वर्लोकान्निर्जित्य समरांगणे ॥ ५ ॥ भ्रमामो मर्त्यलोकेऽस्मिन्न लभेमहि शं क्वचित् ॥ कांकां न दुर्दशां नीता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ६ ॥

उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस दैत्यराजने संग्राममें संपूर्ण देवतोंको जीतके स्वर्गलोकमें इन्द्रके आसनपर बैठ राज्य किया ॥ २ ॥ तब पराजितहुए देवता ब्रह्माकी शरणमें गये ब्रह्माजी भी उन देवताओंको लेके वहां गये जहां विष्णु, शिवथे ॥ ३ ॥ वहां जाय सब देवताओंने शिव केशवको प्रणामकर क्रमसे विधिपूर्वक अपना वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! दुष्टात्मा महिषासुरने युद्धभूमिमें जीतके हम सबोंको स्वर्गलोकसे निकालदिया ॥ ५ ॥ हम सब इस मर्त्यलोकमें

फिरते हैं परन्तु कहीं भी शान्ति नहीं पाते हैं हम इन्द्र आदि देवता कौन कौन दुर्दशाको नहीं प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र,
अग्नि, पवन, गन्धर्व, विद्याधर, चारण ॥ ७ ॥ इन देवताओंके तथा और भी देवतोंके कर्त्तव्य कर्मको वह दैत्यपक्षको अभय देनेवाला पापात्मा महिषासुर
स्वयं करता है ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! इस कारण तुम शरणमें प्राप्तहुए हम देवतोंकी रक्षा करने योग्य हो और तुम दोनों उस दैत्यके मारनेके उपायको विचारो
॥ ९ ॥ ऐसा देवतोंका वचन सुनके क्रोधसे नेत्र घुमातेहुए विष्णु शिव अतिक्रोध करने लगे ॥ १० ॥ तब अतिक्रोधमें पूर्णहुए विष्णु तथा शिवके मुखसे

सूर्य्याचन्द्रमसौ पाशी कुबेरो यम एव च ॥ इन्द्राग्निवातगन्धर्वा विद्याधरसुचारणाः ॥ ७ ॥ एतेषामपरेषां च विधेयं कर्म सोऽसुरः ॥
स्वयं करोति पापात्मा दैत्यपक्षभयंकरः ॥ ८ ॥ तस्माच्छरणमापन्नान्देवान्नस्त्रातुमर्हथः ॥ वधोपायं च तस्याशु चिन्तयेथां युवां प्रभू ॥
॥ ९ ॥ इति देववचः श्रुत्वा दामोदरसतीश्वरौ ॥ चक्रतुः परमं कोपं रोषाघूर्णितलोचनौ ॥ १० ॥ ततोतिकोपपूर्णस्य विष्णोश्शंभोश्च
वक्रतः ॥ तथान्येषां च देवानां शरीरान्निर्गतं महः ॥ ११ ॥ अतीव महसः पुंजं ज्वलन्तं दशदिक्षु च ॥ अपश्यंस्त्रिदशास्सर्वे दुर्गा
ध्यानपरायणाः ॥ १२ ॥ सर्वदेवशरीरोत्थं तेजस्तदतिभीषणम् ॥ संघीभूयाभवन्नारी साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ १३ ॥ शंभुतेजस उत्पन्नं
मुखमस्याः सुभास्वरम् ॥ याम्येन बाला अभवन्वैष्णवेन च बाहवः ॥१४॥ चन्द्रमस्तेजसा तस्याः स्तनयुग्मं व्यजायत ॥ मध्यमैन्द्रेण
जंघोरू वारुणेन बभूवतुः ॥ १५ ॥ भूतेजसा नितंबोभूद्ब्राह्मेण चरणद्वयम् ॥ आर्केण चरणांगुलयः करांगुलयश्च वासवात् ॥ १६ ॥

तथा और देवताओंके भी शरीरसे तेज निकला ॥ ११ ॥ दुर्गाके ध्यानमें तत्परहुए सब देवतोंने दसौ दिशाओंमें प्रज्वलित हुए अतितेजके समूहको देखा ॥
॥ १२ ॥ सब देवताओंके शरीरोंसे उत्पन्नहुआ वह अतिभयंकर तेज एकत्रित होके महिषासुरके मारनेवाली साक्षात स्त्रीरूपमें होगया ॥ १३ ॥ इन देवीका
कान्तिमान् मुख शिवके तेजसे उत्पन्न हुआ, यमके तेजसे बाल, तथा विष्णुके तेजसे भुजा होगई ॥ १४ ॥ और चन्द्रमाके तेजसे उसके दोनों स्तन हुए,
इन्द्रके तेजसे मध्य भाग तथा वरुणके तेजसे दोनों जंघा हुईं ॥ १५ ॥ पृथ्वीके तेजसे नितंब तथा ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण हुए सूर्यके तेजसे चरणोंकी

अंगुली इन्द्रके तेजसे हाथकी अंगुली हुई ॥ १६ ॥ कुबेरके तेजसे नासिका प्रजापतिके तेजसे दांत अग्निके तेजसे तीनों नेत्र संध्याके तेजसे दोनों भौंहैं ॥
॥ १७ ॥ पवनके तेजसे दोनों कान तथा और देवताओंके तेजसे भी वह पद्मालया परमेश्वरी उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ तब सम्पूर्ण देवताओंके तेजपुंजसे
उत्पन्नहुई उस देवीको देखके सब देवता हर्षको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ शस्त्रहीन उसे देखके ब्रह्मा आदि देवताओंने शस्त्रयुक्त करनेकी मनमें ठानी ॥ २० ॥
तब शिवजीने महेशानीको त्रिशूल समर्पण किया, भगवान् कृष्णने शंख सुदर्शनचक्र और वरुणने पाश दिया ॥ २१ ॥ अग्निने शक्ति पवनने धनुष दिया

कुबेरतेजसा नासा रदनाश्च प्रजापतेः ॥ पावकीयेन नयनत्रयं सान्ध्येन भ्रूद्वयम् ॥ १७ ॥ आनिलेन श्रवोद्वन्द्वं तथान्येषां स्वरोकसाम्
॥ तेजसां संभवः पद्मालया सा परमेश्वरी ॥ १८ ॥ ततो निखिलदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ॥ तामालोक्य सुरास्सर्वे परं हर्षं
प्रपेदिरे ॥ १९ ॥ निरायुधां च तां दृष्ट्वा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवेश्वराः ॥ सायुधान्तां शिवां कर्तुं मनः सन्दधिरे सुराः ॥ २० ॥ ततः शूलं महेशानो
महेशान्यै समर्पयत् ॥ चक्रं च कृष्णो भगवाञ्छंखं पाशं च पाशभृत् ॥ २१ ॥ शक्तिं हुताशनोऽयच्छन्मारुतश्चापमेव च ॥
बाणपूर्णेषुधी चैव वज्रघण्टे शचीपतिः ॥ २२ ॥ यमो ददौ कालदण्डमक्षमालां प्रजापतिः ॥ ब्रह्मा कमण्डलुं प्रादाद्रोमरश्मीन्दिवाकरः
॥ २३ ॥ कालः खड्गन्ददौ तस्यै फलकं च समुज्ज्वलम् ॥ क्षीराब्धी रुचिरं हारमजरे च तथाम्बरे ॥ २४ ॥ चूडामणिं कुण्डले
च कटकानि तथैव च ॥ अर्द्धचन्द्रं च केयूरान्नूपुरौ च मनोहरौ ॥ २५ ॥ ग्रैवेयकमंगुलीषु समस्तास्वंगुलीयकम् ॥ विश्वकर्मा च परशुं
ददौ तस्यै मनोहरम् ॥ २६ ॥ अस्त्राण्यनेकानि तथाभेद्यं चैव तनुच्छदम् ॥ सुरम्यसरसां मालां पंकजं चाम्बुधिर्ददौ ॥ २७ ॥

इन्द्रने बाणोंसे पूर्ण तर्कस तथा वज्रघण्टभी दिये ॥ २२ ॥ यमने कालदण्ड तथा ब्रह्माजीने अक्षकी माला दी ब्रह्मने कमण्डलु दिया सूर्यने रोमरश्मियोंको
दिया ॥ २३ ॥ कालने खड्ग तथा उज्वल फलक दिया क्षीरसागरने सुन्दरहार अजर अम्बर ॥ २४ ॥ चूडामणि तथा कुण्डल कटक अर्धचन्द्र केयूर
मनोहर नूपुर दिये ॥ २५ ॥ ग्रीवाके आभूषण तथा सब अंगुलियोंके आभूषण दिये विश्वकर्माने उसको मनोहर परशु प्रदान किया ॥ २६ ॥ समुद्रने

अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच सुरम्य सरसमाला और कमल दिये ॥२७॥ हिमालयने सिंह तथा अनेकप्रकारके रत्न दिये और कुबेरने उसको मदिरासे पूर्णहुए पात्रको सौंपा ॥ २८ ॥ सर्पोंके राजा शेषजीने सुन्दर रचनासे युक्त अनेकसुन्दर मणियोंसे गुम्फित नागहार दिया ॥ २९ ॥ इन पूर्वोक्त तथा और भी देवतोंसे प्रदान कियेहुए आभूषणोंसे तथा शस्त्रोंसे सत्कृतहुई देवीने ऊंचेस्वरसे बारम्बार अट्टहास किया ॥ ३० ॥ उसके भयंकर शब्दसे पूर्णहुई आकाशस्थली पूरित होगई और बडी प्रतिध्वनि हुई तब तीनों लोक व्याकुल हुए ॥ ३१ ॥ चारों समुद्र चलायमान हुए तथा भूमिभी कांपनेलगी तब

ददौ सिंहं च हिमवान्रत्नानि विविधानि च ॥ सुरया पूरितं पात्रं कुबेरोऽस्यै समर्पयत् ॥ २८ ॥ शेषश्च भोगिनां नेता विचित्ररचनाञ्चितम् ॥ ददौ तस्यै नागहारं नानासन्मणिगुंफितम् ॥ २९ ॥ एतैश्चान्यैस्सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ सत्कृतोच्चैर्ननादासौ साट्टहासं पुनःपुनः ॥ ३० ॥ तस्या भीषणनादेन पूरिता च नभःस्थली ॥ प्रतिशब्दो महानासीच्चुक्षुभे भुवनत्रयम् ॥ ३१ ॥ चेलुः समुद्राश्चत्वारो वसुधा च चचाल ह ॥ जयशब्दस्ततो देवैरकारि महिषार्दितैः ॥ ३२ ॥ ततोऽम्बिकां परां शक्तिं महालक्ष्मीस्वरूपिणीम् ॥ तुष्टुवुस्ते सुरास्सर्वे भक्तिगद्गदया गिरा ॥ ३३ ॥ लोकं संक्षुब्धमालोक्य देवतापरिपन्थिनः ॥ सन्नद्धसैनिकास्ते च समुत्तस्थुरुदायुधाः ॥ ३४ ॥ महिषोऽपि च तं शब्दमभ्यधावद्रुषान्वितः ॥ स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां रुचा ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र महिषासुरपालिताः ॥ समाजग्मुर्महावीराः कोटिशो धृतहेतयः ॥ ३६ ॥ चिक्षुरश्चामरोदग्रौ करालोद्धतवाष्कलाः ॥ ताम्रोग्रास्योग्रवीर्याश्च बिडालोऽन्धक एव च ॥ ३७ ॥

महिषासुरसे पीडितहुए देवतोंने जयजयकार किया ॥ ३२ ॥ फिर सब देवताओंने महालक्ष्मीस्वरूपिणी अंबिका पराशक्तिको गद्गदवाणीसे सन्तुष्ट किया ॥ ॥ ३३ ॥ लोकोंको व्याकुलहुआ देखके शस्त्रोंको ग्रहण करके देवताओंके विरोधी तैयार हुए सैनिक उठ खडेहुए ॥३४॥ और महिषासुर भी उस शब्दको सुनके क्रोध करताहुआ दौडा तब उसने देवीको अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको व्याप्त करतीहुई देखा ॥ ३५ ॥ इसी अवसरमें वहां महिषासुरसे पालित महावीर शस्त्रधारी करोडों योधा आये ॥ ३६ ॥ चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, बाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, बिडाल, अन्धक ॥ ३७ ॥

दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र, बडी ठोंडीवाले यह तथा औरभी युद्धमें निपुण अनेक शूर आये ॥ ३८ ॥ और संग्राममें शस्त्र अस्त्रोंके सहित देवीके साथ युद्ध
करनेलगे इस प्रकार युद्ध करतेहुए उनका समय बीता ॥ ३९ ॥ शत्रु वर्गके हाथसे फेंकेहुए अनेक शस्त्र और अस्त्रोंके समूह महामायाके प्रभावसे क्षणमात्रमें
निष्फल होगये ॥ ४० ॥ तब उस देवीने चिक्षुर आदि शत्रुओंको उनके गणोंसहित गदा बाणोंसे तथा त्रिशूल शक्ति परशुओंसे मारा ॥ ४१ ॥ इस
प्रकार उस महिषासुरने अपनी सेनाके मरनेपर देवीके श्वाससे उत्पन्नहुए उन गणोंको ताडन किया ॥ ४२ ॥ किसीको खुरोंसे ताडन करनेलगा किसीको

दुर्धरो दुर्मुखश्चैव त्रिनेत्रश्च महाहनुः ॥ एते चान्ये च बहवः शूरा युद्धविशारदाः ॥ ३८ ॥ युयुधुः समरे देव्या सह शस्त्रास्त्रपारगाः ॥
इत्थं कालो व्यतीयाय युध्यतोर्भीषणस्तयोः ॥ ३९ ॥ अरिवर्गकरक्षिप्ता नानाशस्त्रास्त्रराशयः ॥ महामायाप्रभावेण विफला अभ
वन् क्षणात् ॥ ४० ॥ ततो जघान सा देवी चिक्षुरप्रमुखानरीन् ॥ सगणान्गदया बाणैः शूलशक्तिपरश्वधैः ॥ ४१ ॥ एवं स्वीयेषु
सैन्येषु हतेषु महिषासुरः ॥ देवीनिःश्वाससंभूतान्भावयामास तान्गणान् ॥ ४२ ॥ अताडयत्खुरैः कांश्चित्कांश्चिच्छृङ्गद्वयेन च ॥
लांगूलेन च तुण्डेन भिनत्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ४३ ॥ इत्थं देवीगणान्हत्वाभ्यधावत्सोऽसुराधिपः ॥ सिंहं मारयितुन्देव्यास्ततोऽसौ
कुपिताऽभवत् ॥ ४४ ॥ कोपात्सोपि महावीर्यः खुरकुट्टितभूतलः ॥ शृङ्गाभ्यां शैलमुत्पाट्य चिक्षेप प्रणनाद च ॥ ४५ ॥ वेगेन
विष्वग् भ्रमता प्रक्षिप्ता गुरवोऽद्रयः ॥ आकाशतो महीमध्ये निपेतुर्नृपसत्तम ॥ ४६ ॥ शृंगभिन्नाः पयोवाहाः खण्डंखण्डमयासिषुः ॥
लांगूलेनाहतश्चाब्धिर्विष्वगुद्वेलमस्पदत् ॥ ४७ ॥

दोनों सींगोंसे मारनेलगा तथा किसीको पूंछसे और किसीको बारम्बार नासिकासे भेदन करनेलगा ॥ ४३ ॥ इस प्रकार देवीके गणोंको मारकर वह
दैत्यराज महिषासुर देवीके सिंहको मारनेको दौडा तब वह देवी कुपितहुई ॥ ४४ ॥ वहभी महापराक्रमी अपने खुरोंसे पृथ्वीको कूटकर तथा सींगोंसे
पर्वतको उखाडकर फेंकनेलगा और शब्द करनेलगा ॥ ४५ ॥ हे नृपसत्तम ! उस दैत्यने बडे वेगसे चारोंओर भ्रमण करके बडेबडे पहाड आकाशसे पृथ्वी
पर फेंके ॥ ४६ ॥ सींगोंसे विदीर्णहुए समुद्र खंड खंड होगये और पूंछसे ताडितहुआ समुद्र चारोंतरफसे किनारोंसे टूटफूटकर बहनेलगा ॥ ४७ ॥

इस प्रकार क्रोधितहुए उस महिषासुरको देखकर देवताओंको अभय देनेवाली अम्बिकाने उस दैत्यके मारनेके उपायको सोचा ॥ ४८ ॥ तब ईश्वरीपाशको उठाके उसके ऊपर फेंककर महिषासुरको बांधनेलगी तब उसने अपने महिषासुरके रूपको त्यागन किया ॥ ४९ ॥ तब वह छली शीघ्रही सिंह होगया अम्बिका जबही उसके शिरको काटनेलगी तबहीं वह खड्ग हाथमें लेके खडा होगया ॥ ५० ॥ तब देवीने ढाल तलवार लिये उसको बाणोंसे ताडन किया तब वह हाथी बनके सूंडसे सिंहको छेदन करनेलगा ॥ ५१ ॥ तब देनीने अपनी महाखड्गसे इसके हाथको काटा तब फिर उस राक्षसने अपना रूप बदल लिया ॥ ५२ ॥ और चर अचर सहित तीनों लोकोंको क्षोभित किया तब मानविक्रमा महामाया चंडिका क्रोधितहुई ॥ ५३ ॥ और घूर्णितनेत्रवाली देवी बारम्बार मधुपान करती हास्य करनेलगी और बलवीर्यमदसे प्रगल्भ वह दैत्य गर्जने लगा ॥ ५४ ॥ और पर्वतोंको उखाडकर उसके ऊपर फेंकनेलगा और वह देवी बाणोंकी पंक्तिके घातसे उन दैत्योंको शीघ्रतासे चूर्ण करनेलगी ॥ ५५ ॥ मधुके मदसे उत्पन्नहुए मुखमें रागवाली व्याकुल इन्द्रियवाली वह देवी मेघके समान गंभीर वाणीसे बोली ॥ ५६ ॥ देवी बोली, हे मूर्ख ! अरे नष्टबुद्धे ! तू मेरे आगे व्यर्थ क्यों हठ करता है मेरे आगे

एवं क्रुद्धं समालोक्य महिषासुरमम्बिका ॥ विदधे तद्वधोपायं देवानामभयंकरी ॥ ४८ ॥ ततः पाशं समुत्थाप्य क्षिप्त्वा तस्योपरी
श्वरी ॥ बबन्ध महिषं सोऽपि रूपन्तत्याज माहिषम् ॥ ४९ ॥ ततः सिंहो बभूवाशु मायावी तच्छिरोम्बिका ॥ यावद्भिनत्ति तावत्स
खड्गपाणिर्बभूव ह ॥ ५० ॥ सचर्म्मासिकरं तं च देवी बाणैरताडयत् ॥ ततो गजवपुर्भूत्वा सिंहं चिच्छेद शुण्डया ॥ ५१ ॥ ततोऽस्य
च करं देवी चकर्त स्त्रमहासिना ॥ अधारि च पुना रूपं स्वकीयं तेन रक्षसा ॥ ५२ ॥ तदैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
ततः क्रुद्धा महामाया चण्डिका मानविक्रमा ॥ ५३ ॥ पपौ पुनःपुनः पानं जहासोद्भ्रान्तलोचना ॥ जगर्ज चासुरः सोपि बलवीर्यमदो
द्धतः ॥ ५४ ॥ तस्या उपरि चिक्षेप शैलानुत्पाट्य सोऽसुरः ॥ सा च बाणावलीघातैश्चूर्णयामास सत्वरम् ॥ ५५ ॥ वारुणीमदसं
जातमुखरागाऽऽकुलेन्द्रिया ॥ प्रोवाच परमेशानी मेघगंभीरया गिरा ॥ ५६ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ रे मूढ रे हतप्रज्ञ व्यर्थं किं कुरुषे
हठम् ॥ न मदग्रेऽसुराः केपि स्थास्नवो जगतीत्रये ॥ ५७ ॥

तीन लोकमें कोई देवता नहीं ठहरसकते ॥ ५७ ॥ ऋषि बोले, ऐसा कहके सर्व कलाओंसे पूर्ण देवीने कूदके दैत्यको पैरोंसे कुचलके उसके कंठको तीव्र त्रिशूलसे भेदन किया ॥ ५८ ॥ तब देवीके चरणोंसे आक्रमण हुआ अपने भैंसेरूप मुखसे आधा निकलाहुआ वह देवीके वीर्यसे घिरगया ॥ ५९ ॥ आधे निकलेहुए युद्ध करतेहुए महानीच उस दैत्यको देख महाखड्गसे उसका शिर काट देवीने पृथ्वीपर गिराया ॥ ६० ॥ तब नीचेको मुख किये त्राहि त्राहि ऐसा कहतेहुए संग्रामसे डरेहुए उस दैत्यके गण हाहाकार मचाके भाग निकले ॥ ६१ ॥ उस समय इंद्र आदि सम्पूर्ण देवतोंने देवीको सन्तुष्ट किया

ऋषिरुवाच ॥ एवमाभाष्य कूर्दित्वा देवी सर्वकलामयी ॥ पदाक्रम्यासुरं कण्ठे शूलेनोग्रेण साऽभिनत् ॥ ५८ ॥ ततस्तच्चरणाक्रान्तस्स स्वकीयमुखात्ततः ॥ अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ॥ ५९ ॥ अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महाधमः ॥ महासिना शिरो भित्त्वा न्यपाति धरणीतले ॥ ६० ॥ हाहाशब्दं समुच्चार्य्यावाङ्मुखास्तद्गणास्ततः ॥ पलायन्त रणाद्भीतास्त्राहित्राहीति वादिनः ॥ ६१ ॥ तुष्टुवुश्च तदा देवीमिन्द्राद्याः सकलाः सुराः ॥ गन्धर्वा गीतमुच्चैरुर्ननृतुर्नर्तकीजनाः ॥ ६२ ॥ एवन्ते कथितो राजन्महालक्ष्म्याः समुद्भवः ॥ सरस्वत्यास्तथोत्पत्तिं शृणु सुस्थेन चेतसा ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां माहिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यवतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ आसीच्छुम्भासुरो दैत्यो निशुंभश्च प्रतापवान् ॥ त्रैलोक्यमोजसाक्रान्तं भ्रातृभ्यां सचराचरम् ॥ १ ॥ ताभ्याम्प्रपीडिता देवा हिमवन्तं समाययुः ॥ जननीं सर्वभूतानां कामदात्रीं ववन्दिरे ॥ २ ॥

गन्धर्वोंने गीत गाये नर्तकोंने नृत्य किया ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे महालक्ष्मीकी उत्पत्ति कही अब स्वस्थचित्तसे सरस्वतीकी उत्पत्ति सुनो॥ ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० महिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यवतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले, प्रतापी शुम्भासुर तथा निशुम्भदैत्य हुए उन दोनोंके तेजसे चर अचर सहित तीनोंलोक व्याकुल होगये ॥ १ ॥ तब उन दैत्योंसे पीडितहुए देवता हिमालयके समीप गये और सब प्राणियोंकी उत्पन्न करनेवाली कामनाको पूर्ण करनेवाली पार्वतीको नमस्कार किया ॥ २ ॥

देवता बोले, हे दुर्गे ! हे महेशानि ! हे आत्मीयजनप्रिये ! तुम्हारी जय हो, त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाली तुम पार्वतीको नमस्कार है ॥ ३ ॥ मुक्तिकी देनेवाली पराम्बाको नमस्कार है, हे सम्पूर्ण जगतकी उत्पत्ति स्थिति विनाश करनेवाली ! तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे कालिकारूपसम्पन्ने ! हे ताराकृते ! तुमको नमस्कार है छिन्नमस्तास्वरूपा तथा श्रीविद्याको प्रणाम है ॥ ५ ॥ हे भुवनेशि ! हे भैरवाकृते ! तुमको नमस्कार है, बगलामुखीको नमस्कार है, धूमावतीको नमस्कार है ॥ ६ ॥ त्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार है, मांतगी तुमको नमस्कार है, तथा अजितारूप तुमको नमस्कार है, विजयाको नमस्कार है ॥ ७ ॥ जया, मंगला, विलासिनी, तुमको नमस्कार है, हे दोग्ध्रीरूपे ! तुमको नमस्कार है, हे घोराकृते ! तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे विनापराजित आकारवाली ! तुमको नमस्कार है, हे नित्याकारे ! तुमको नमस्कार है, शरणागतको पालन करनेवाली रुद्राणी तुमको नमस्कार है ॥ ९ ॥ वेदान्तवेद्याको नमस्कार है, तुम परमआत्माको नमस्कार है, अनन्तकोटिब्रह्माण्डोंकी नायका तुमको नमस्कार है ॥ १० ॥ इस प्रकार देवताओंसे स्तुति कीहुई शिवा पार्वती प्रसन्न और वर देनेवाली होके सब देवताओंसे बोलीं कि, तुम क्यों स्तुति करते हो ॥ ११ ॥ तब पार्वतीजीके शरीरसे एक कन्या प्रगट हुई और

देवा ऊचुः ॥ जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये ॥ त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमोनमः ॥ ३ ॥ नमो मुक्तिप्रदायिन्यै पराम्बायै नमोनमः ॥ नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके ॥४६॥ कालिकारूपसंपन्ने नमस्ताराकृते नमः ॥ छिन्नमस्तास्वरूपायै श्रीविद्यायै नमोस्तु ते ॥ ५ ॥ भुवनेशि नमस्तुभ्यं नमस्ते भैरवाकृते ॥ नमोस्तु बगलामुख्यै धूमावत्यै नमोनमः ॥ ६ ॥ नमस्त्रिपुरसुन्दर्य्यै मातङ्ग्यै ते नमोनमः ॥ अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमोनमः ॥ ७ ॥ जयायै मंगलायै ते विलासिन्यै नमोनमः ॥ दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते ॥ ८ ॥ मनोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमोनमः ॥ शरणागतपालिन्यै रुद्राण्यै ते नमोनमः ॥ ९ ॥ नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने ॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमोनमः ॥ १० ॥ इति देवैः स्तुता गौरी प्रसन्ना वरदा शिवा ॥ प्रोवाच त्रिदशान्सर्वान्युष्माभिः स्तूयतेऽत्र का ॥ ११ ॥ ततो गौरीतनोरेका प्रादुरासीत्कुमारिका ॥ सोवाच मिषतां तेषां शिवशक्तिं परादरात् ॥ १२ ॥

उन देवताओंके सन्मुख शिवशक्तिसे बोली ॥ १२ ॥ हे माता ! प्रबलहुये निशुंभ तथा शुंभ दैत्योंसे पीडितहुए सम्पूर्ण स्वर्गवासी देवता मेरी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ उस देवीके शरीरकोशसे जो निकली इस कारण वह शुंभदैत्यको नाश करनेवाली देवी कौशिकीनामसे प्रसिद्ध हुई ॥ १४ ॥ और वही उग्रतारिका कही है तथा वही महोग्रतारिका कही है कारण कि, वह प्रगटहुई इस कारण पृथ्वीपर मातंगी कहलाई ॥ १५ ॥ और वह सब देवताओंसे बोली कि, तुम सब निर्भय होके रहो मैं स्वतंत्र हो विना आश्रयके तुम्हारा कार्य पूर्ण करूंगी ॥ १६ ॥ ऐसा कहके वह देवी तत्क्षण अन्तर्धान होगई

स्तोत्रं मे क्रियते मातः समस्तैः स्वर्गवासिभिः ॥ निशुंभशुंभदैत्याभ्यां प्रबलाभ्यां प्रपीडितैः ॥ १३ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्या निर्गता तेन कौशिकी ॥ नाम्ना सा गीयते साक्षाच्छुंभासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥ सैवोग्रतारिका प्रोक्ता महोग्रतारिकापि च ॥ प्रादुर्भूता यतः सा वै मातंगीत्युच्यते भुवि ॥ १५ ॥ बभाषे निखिलान्देवान्यूयं तिष्ठत निर्भयाः ॥ कार्यं वः साधयिष्यामि स्वतन्त्राहं विनाश्रयम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी तरसान्तर्हिताऽभवत् ॥ चण्डमुण्डौ तु तान्देवीमद्राष्टां सेवकौ तयोः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा मनोहरं तस्या रूपं नेत्रसुखावहम् ॥ पेततुस्तौ धरामध्ये नष्टसंज्ञौ विमोहितौ ॥ १८ ॥ गत्वा व्याजह्रतुः सर्वं राज्ञे वृत्तान्तमादितः ॥ दृष्टा काचिन्मया पूर्वा नारी राजन्मनोरमा ॥ १९ ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये संस्थिता सिंहवाहिनी ॥ समन्ताद्देवकन्याभिः सेविता बद्धपाणिभिः ॥ २० ॥ कुरुते पादसंवाहं काचित्संस्कुरुते कचान् ॥ पाणिसंवाहनं काचित्काचिन्नेत्राञ्जनं न्यधात् ॥ २१ ॥ काचिद्गृहीत्वा हस्तेनादर्शं दर्शयते मुखम् ॥ नागवल्लीं ददात्येका लवंगैलादिसंयुताम् ॥ २२ ॥

और उन दोनों दैत्योंके चण्ड मुण्ड नामवाले सेवकोंने उस देवीको देखा ॥ १७ ॥ नेत्रोंको सुख देनेवाले मनोहर देवीके रूपको देखके चेतनारहित मोहितहुए वे दोनों भूमीपर गिरपडे ॥ १८ ॥ और राजाके निकटजाके आद्योपान्त संपूर्ण वृत्तान्त कहा हे राजन् ! हमने एक मनोहर अपूर्व स्त्री देखी है ॥ ॥ १९ ॥ हिमालयके मनोहर शिखरपर स्थितहुई सिंहके वाहनवाली हाथ जोडेहुए देवकन्याओंसे सब ओरसे सेवित हुई है ॥ २० ॥ कोई देवकन्या पैर दबाती है और कोई बालोंको काढती मलती है कोई हाथ मलती है तथा कोई आंखोंमें सुरमा लगा रही है ॥ २१ ॥ कोई अपने हाथसे शीशेको ग्रहण

करके मुख दिखला रही है और एक स्त्री लौंग आदिसे युक्त पान देरही है ॥ २२ ॥ कोई सखी पीकदानको हाथमें लेके आगे खडी है और कोई आभूषण वस्त्रोंसे सब अंगोंको भूषित कर रही है ॥ २३ ॥ केलेके स्तम्भके समान जंघावाली तोतेके समान नासिकावाली तथा सर्पके समान भुजावाली शब्दायमान मंजीरेके समान चरणोंवाली सुन्दर मेखलासे युक्त ॥२४॥ सुन्दर कस्तूरीके समान सुगन्धवाली मोतियोंके हारसे चलायमान स्तनोंवाली ग्रीवाके आभूषणोंसे शोभायमान गर्दनवाली विजलीके समान कान्तिसे दीप्यमान ॥ २५ ॥ आधे चन्द्रमाको धारण करनेवाली देवी मणिजटित कुण्डलोंको धारण करनेवाली सुन्दर वेणीवाली विशाल नेत्रोंवाली तीन नेत्रोंसे भूषित ॥२६॥ साक्षरा मालासे शोभायमान कंकणसे शोभायमान हाथोंवाली, स्वर्णकी कान्तिसे विराजमान

पद्तग्रहं करे कृत्वा स्थिता काचित्सखी पुरः ॥ भूषयत्यखिलांगानि काचिद्भूषाम्बरादिभिः ॥ २३ ॥ कदलीस्तंभजंघोरुः कीरनासाऽहिदोर्लता ॥ रणन्मञ्जीरचरणा रम्यमेखलया युता ॥ २४ ॥ लसत्कस्तूरिकामोदमुक्ताहारचलस्तनी ॥ ग्रैवेयकलसद्ग्रीवा ललन्तीदाममण्डिता ॥ २५ ॥ अर्द्धचन्द्रधरा देवी मणिकुण्डलधारिणी ॥ रम्यवेणिर्विशालाक्षी लोचनत्रयभूषिता ॥ २६ ॥ साक्षरा मालिकोपेता पणिराजितकंकणा ॥ स्वर्णोर्मिकांगुलिर्भ्राजत्पारिहार्य्यलसत्करा ॥ २७ ॥ शुभवस्त्रावृता गौरी पद्मासनविराजिता ॥ काश्मीरबिन्दु तिलका चन्द्रालंकृतमस्तका ॥ २८ ॥ तडिद्द्युतिर्महामूल्याम्बरचोलोन्नमत्कुचा ॥ भुजैरष्टाभिरुत्तुंगैर्धारयन्ती वरायुधान् ॥ २९ ॥ तादृशी नासुरी नागी न गन्धर्वी न दानवी॥ विद्यते त्रिषु लोकेषु यादृशी सा मनोरमा ॥ ३० ॥ तस्मात्संभोगयोग्यत्वं तस्यास्त्वय्येव शोभते ॥ नारीरत्नं यतः सा वै पुंरत्नं च भवान्प्रभो ॥ ३१ ॥

अंगुलीवाली, पारिहार्यसे भूषित करोंवाली ॥ २७ ॥ सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छन्न गौरी पद्मासनपर विराजमान केशरकी बिन्दुसहित तिलकधारे चन्द्रमासे शोभायमान मस्तकवाली ॥ २८ ॥ बिजलीके समान कान्तिवाली महामूल्यवाले वस्त्र तथा चोलीसे भूषित कुचोंवाली ऊंची आठ भुजाओंसे सुन्दर शस्त्रोंको धारण करतीहुई है ॥२९॥ ऐसी न कोई आसुरी है न नागकन्या है न कोई गान्धर्वी न दानवी तीनों लोकोंमें है जैसी वह मनोहर (सुन्दर) है ॥३०॥ हे प्रभो ! इस कारण उस कन्याके भोगनेयोग्य तुमहीं हो कारण कि वह स्त्रीरत्न है और तुम पुरुषरत्न हो ॥ ३१ ॥

ऐसा चंड मुंड दैत्योंका वचन सुनके उस दैत्यराजने उस देवीके पास सुग्रीवनामक दूतको भेजा और कहा ॥ ३२ ॥ हे दूत ! हिमालयपर्वतपर जाओ वहां कोई सुन्दरी है मेरा वचन मानके यत्नसे उसको ले आवो ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जतायाहुआ दैत्योंमें श्रेष्ठ सुग्रीव हिमालयपर्वतपर जाके महेश्वरी जगदम्बासे बोला ॥ ३४ ॥ दूत बोला, हे देवि ! शुम्भासुर दैत्य तथा उसका छोटाभाई निशुम्भ महाबल पराक्रमसे तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ३५॥ हे देवेश्वरि ! उससे भेजाहुआ मैं तुम्हारे निकट आया हूं और उसने जो कुछ कहा है उसको अब सुनो ॥ ३६ ॥ मैंने संग्राममें इन्द्रादि देवताओंको जीतके उनके

इत्युक्तं चण्डमुण्डाभ्यां निशम्य स महासुरः ॥ दूतं सुग्रीवनामानं प्रेषयामास तां प्रति ॥ ३२ ॥ गच्छ दूत तुषाराद्रौ तत्रास्ते कापि सुन्दरी ॥ सा नेतव्या प्रयत्नेन कथयित्वा वचो मम ॥ ३३ ॥ इति विज्ञापितस्तेन सुग्रीवो दानवोत्तमः ॥ गत्वा हिमाचलं प्राह जगदम्बां महेश्वरीम् ॥ ३४ ॥ ॥ दूत उवाच ॥ देवि शुंभासुरो दैत्यो निशुंभस्तस्य चानुजः ॥ विख्यातस्त्रिषु लोकेषु महाबलपराक्रमः ॥ ३५ ॥ चारोहं प्रेषितस्तेन सन्निधिन्ते समागमम् ॥ स यज्जगौ सुरेशानि तत्समाकर्णयाधुना ॥ ३६ ॥ इन्द्रादीन्समरे जित्वा तेषां रत्नान्यपाहरम् ॥ देवभागं स्वयं भुञ्जे यागे दत्तं सुरादिभिः ॥ ३७ ॥ स्त्रीरत्नं त्वामहं मन्ये सर्वरत्नोपरि स्थितम् ॥ सा त्वं ममानुजं मां वा भजतात्कामजै रसैः ॥ ३८ ॥ इति दूतोक्तमाकर्ण्य वचनं शुंभभाषितम् ॥ जगाद सा महामाया भूतेशप्राणवल्लभा ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं वदसि भो दूत नानृतं किंचिदुच्यते ॥ परन्त्वेका कृता पूर्वं प्रतिज्ञा तान्निबोध मे ॥ ४० ॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मां जयति संगरे ॥ उत्सहे तमहं कर्तुं पतिं नान्यमिति ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

रत्नोंको हरण किया और यज्ञमें देवादिसे दियेहुए देवभागको मैं स्वयं भोगता हूँ ॥ ३७ ॥ मैं तुम स्त्रीरत्नको सब रत्नोंमें श्रेष्ठ जानता हूँ वह तुम मेरे छोटे भाईको अथवा मुझे कामसे उत्पन्नहुए रसोंसे भजो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार शुम्भके सन्दे[illegible]वाले दूतके वचनको सुन शिवकी प्राणप्रिया महामाया वह देवी बोली ॥ ३९ ॥ देवी बोली, हे दूत ! तू सत्य कहता है इसमें कुछ असत्य नहीं है परन्तु मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है उसको सुनो ॥ ४० ॥ जो मेरे अहंकारको दूर करैगा और जो मुझे युद्धमें जीतैगा मैं निश्चय उसे पति करना चाहतीहूं औरको नहीं ॥ ४१ ॥

सो तुम ऐसा मेरा वचन शुम्भ और निशुम्भ दैत्यसे कहो इसमें जैसा उचित हो वैसा वह करै ॥४२॥ ऐसा देवीका वचन सुनके सुग्रीवनामक दैत्यने वहां जाके विस्तारसे राजासे कहदिया ॥४३॥ तब दूतका वचन सुनके भैरव शासना करनेवाला शुम्भदैत्य क्रोधसहित बली सेनापति धूम्राक्षसे बोला ॥ ४४ ॥ हे धूम्राक्ष ! हिमालयपर्वतपर कोई सुन्दरी है वहां शीघ्र जाके जैसे वह यहां आवै वैसे उस स्त्रीको लाओ ॥४५॥ हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! उसके लानेमें कुछ भय मत करना यदि वह युद्ध करनेकी इच्छा करै तो यत्नसे युद्ध करना चाहिये ॥४६॥ इस प्रकार जतायाहुआ धूम्रलोचनसंज्ञक दैत्य हिमालयपर जाके पार्वतीके

स त्वं कथय शुंभाय निशुंभाय वचो मम ॥ यथा युक्तं भवेदेवं विदधातु तथाऽत्र सः ॥ ४२ ॥ इत्थं देवीवचः श्रुत्वा सुग्रीवो नाम
दानवः ॥ राज्ञे विज्ञापयामास गत्वा तत्र सविस्तरम् ॥ ४३ ॥ अथ दूतोक्तमाकर्ण्य शुंभो भैरवशासनः ॥ धूम्राक्षं प्राह सक्रोधः सेनान्यं
बलिनां वरम् ॥ ४४ ॥ हे धूम्राक्ष तुषाराद्रौ वर्तते कापि सुन्दरी ॥ तामानय द्रुतं गत्वा यथा यास्यति सात्र वै ॥ ४५ ॥ तस्या आन
यने भीतिर्न कार्य्याऽसुरसत्तम ॥ युद्धं कार्यं प्रयत्नेन यदि सा योद्धुमिच्छति ॥ ४६ ॥ एवं विज्ञापितो दैत्यो धूम्रलोचनसंज्ञकः ॥
गत्वा हिमाचलं प्राह भुवनेशीमुमांशजाम् ॥४७॥ भर्तुर्ममान्तिकं गच्छ नोचेत्त्वां घातयाम्यहम् ॥ षष्ट्याऽसुराणां सहितः सहस्राणां
नितंबिनि ॥४८॥ देव्युवाच ॥ दैत्यराट्प्रेषितो वीर हंसि चेत्किं करोमि ते ॥ परन्त्वसाध्यं गमनं मन्ये संग्राममन्तरा ॥ ४९ ॥ इत्यु
क्तस्तामन्वधावद्दानवो धूम्रलोचनः ॥ हुंकारोच्चारणेनैव तन्ददाह महेश्वरी ॥५०॥ ततः प्रभृति सा देवी धूमावत्युच्यते भुवि ॥ आराधिता
स्वभक्तानां शत्रुवर्गनिकर्तिनी ॥ ५१ ॥ धूम्राक्षे निहते देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ चर्विंतास्तद्गणास्सर्वेऽपलायन्तावशेषिताः ॥ ५२ ॥

अंशसे उत्पन्नहुई तीनों लोकोंकी स्वामिनी देवीसे यह बोला ॥ ४७ ॥ हे नितंबिनी ! मेरे स्वामीके समीप चल नहीं तो मैं साठसहस्र दैत्योंके समेत तुझे नष्ट करूंगा ॥४८॥ देवी बोली, हे दैत्यराजके भेजे वीरदूत ! यदि मुझे तू मार डालैगा तो मैं तेरा क्या करूंगी ? परन्तु संग्रामके विना वहां जाना असाध्य मानतीहूं ॥४९॥ ऐसा सुन वह धूम्रलोचन उसके ऊपर दौडा तब महेश्वरी देवीने अपनी हुंकारसेही उसे भस्म करदिया ॥५०॥ उस दिनसे लेके वह देवी संसारमें धूमावती नामसे विख्यातहुई और अपने भक्तोंसे आराधन कीहुई शत्रुवर्गकी नाश करनेवाली है ॥५१॥ देवीसे धूम्राक्ष दैत्यके मारनेपर अतिक्रोध करनेवाले उसके वाहन

(सिंह) ने सब राक्षसगणोंको भक्षण किया और शेष भाग गये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार देवीसे मारेहुए दैत्यको सुन प्रतापी शुम्भदैत्य दोनों ओंठोंको मिस
मिसाताहुआ बडा क्रोध करनेलगा ॥ ५३ ॥ और क्रमसे चण्ड मुण्ड रक्तबीज दैत्योंको भेजा वे आज्ञा दियेहुए दैत्य वहां गये जहां देवी स्थित थी ॥
॥ ५४ ॥ सिंहपै चढीहुई अणिमा आदि सिद्धियोंसे आश्रित अपनी कान्तिसे सब दिशाओंको प्रकाशित करतीहुई भगवतीको देखके वे दैत्य बोले ॥ ५५ ॥
हे देवि ! अतिशीघ्र शुम्भ निशुम्भ दैत्योंके चरणोंमें जा नहीं तो गणों और वाहनसे युक्त तुझको मारडालैंगे ॥ ५६ ॥ हे वामे ! आठ लोकपाल आदिसे

इत्थं देव्या हतं दैत्यं श्रुत्वा शुंभः प्रतापवान् ॥ चकार बहुलं कोपं सन्दष्टोष्ठपुटद्वयः ॥ ५३ ॥ चण्डं मुंडं रक्तबीजं प्रैषयत्क्रमतोऽ
सुरान् ॥ तेपि चाज्ञापिता दैत्या ययुर्यत्राम्बिका स्थिता ॥ ५४ ॥ सिंहारूढां भगवतीमणिमादिभिराश्रिताम् ॥ भासयंतीं दिशो भासा
दृष्ट्वोचुर्दानवर्षभाः ॥ ५५ ॥ हे देवि तरसा मूलं याहि शुंभनिशुंभयोः ॥ अन्यथा घातयिष्यामः सगणां त्वां सवाहनाम् ॥ ५६ ॥
वृणीष्व तं पतिं वामे लोकपालादिभिः स्तुतम् ॥ प्रपत्स्यसे महानंदं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५७ ॥ इत्युक्तमाकलय्याम्बा स्मयित्वा
परमेश्वरी ॥ उदाजहार सा देवी सूनृतं रसवद्वचः ॥ ५८ ॥ देव्युवाच ॥ अद्वितीयो महेशानः परब्रह्म सदाशिवः ॥ यत्तत्त्वन्न विदुर्वेदा
विष्णवादीनां च का कथा ॥ ५९ ॥ तस्याहं प्रकृतिः सूक्ष्मा कथमन्यं पतिम्वृणे ॥ सिंही कामातुरा नैव जम्बुकं वृणुते क्वचित् ॥
॥ ६० ॥ करेणुर्गर्दभं नैव द्वीपिनी शशकं न वा ॥ मृषा वदत भो दैत्या मृत्युव्यालनियंत्रिताः ॥ ६१ ॥

स्तुति कियेहुए उस पतिको वरण कर देवताओंसे भी दुर्लभ हुए बडे आनन्दको प्राप्त होगी ॥ ५७ ॥ ऐसा वचन सुनके वह देवी परमेश्वरी कुछ हँसकर
सत्य तथा मधुर वचन बोली ॥ ५८ ॥ देवी बोली, अद्वितीय महेशान परब्रह्म वह सदाशिवहैं जिनके भेदको वेद भी नहीं जानतेहैं फिर विष्णु आदि
देवताओंकी तो क्या ? कथाहै ॥५९॥ मैं उस परमात्माकी परम सूक्ष्म प्रकृति हूँ और पतिको किस प्रकार वरण करूँ कामसे पीडितहुई सिंही गीदडको नहीं
वरण करसकती ॥६०॥ हथनी गधेको और गैंडेकी स्त्री खरगोशको नहीं वरण करती हे मृत्युरूपी सर्पसे बँधेहुए दैत्यो ! तुम मिथ्या बोलते हो ॥६१॥

तुम पातालको जाओ और यदि शक्ति हो तो युद्ध करो ऐसा क्रोधयुक्त वचन सुनके वे आपसमें बोले, ॥ ६२ ॥ हम अपने मनमें तुझे अबला
जानके नहीं मारतेहैं अब जो तेरे मनमें इच्छा हो तो स्थिर होके मृत्युके मुखमें आ ॥ ६३ ॥ इसप्रकार उनके विवाद करते हुए कलह बढगई और
संग्राममें दोनों दलोंमें तीक्ष्ण बाण वर्षने लगे ॥ ६४ ॥ इस प्रकार उन दैत्योंसे युद्ध करके परमेश्वरी देवीने लीलासे चंड—मुंड दैत्योंके साथ रक्तबीजनामक
महादैत्यको मार दिया ॥ ६५ ॥ उस भगवतीमें द्वेषबुद्धिको करके भी यह देवताओंके लोकको प्राप्त हुए जिस लोकको उनके भक्त जातेहैं ॥ ६६ ॥

यूयं प्रयात पातालं युध्यध्वं शक्तिरस्ति चेत् ॥ इति क्रोधकरं वाक्यं श्रुत्वोचुस्ते परस्परम् ॥ ६२ ॥ अबलां मनसि ज्ञात्वा न हन्मो
भवतीं वयम् ॥ अथो स्थिरैहि पञ्चास्ये युद्धेच्छा मानसेऽस्ति चेत् ॥ ६३ ॥ तेषामेवं विवदतां कलहः समवर्द्धत ॥ ववृषुः समरे
बाणा उभयोर्दलयोश्शिताः ॥ ६४ ॥ एवं तैः समरं कृत्वा लीलया परमेश्वरी ॥ जघान चण्डमुण्डाभ्यां रक्तबीजं महासुरम् ॥ ६५ ॥
द्वेषबुद्धिं विधायापि त्रिदशस्थि तयोऽप्यमी ॥ अन्तेऽप्रापन्परं लोकं यँल्लोकं यान्ति तज्जनाः ॥ ६६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
पञ्चम्यामुमासंहितायां धूम्रलोचनचण्डमुण्डरक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ धूम्राक्षं चण्डमुण्डं
च रक्तबीजासुरन्तथा ॥ भगवन्निहतन्देव्या श्रुत्वा शुम्भः सुरार्दनः ॥ १ ॥ किमकार्षीत्ततो ब्रह्मन्नेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम् ॥ शुश्रूषवे
जगद्योनेश्चरित्रं पापनाशनम् ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हतानिमान्दैत्यवरान्महासुरो निशम्य राजन्महनीयविक्रमः ॥ अजिज्ञपत्स्वी
यगणान्दुरासदान्प्रणाभिधोच्चारणजातसंमदान् ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० धूम्रलोचनचंडमुंडरक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥ हे भगवन् ! देवताओंको पीडा देनेवाले
शुम्भ दैत्यने धूम्राक्ष चंड मुंड तथा रक्तबीज दैत्यको देवीसे माराहुआ सुनके ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! फिर उसने क्या किया यह जगत्की उत्पन्न करनेवाली
देवीके पापनाशक चरित्रको सुननेकी इच्छा करनेवाले मुझसे सब कहो ॥ २ ॥ ऋषि बोले, हे राजन् ! महापराक्रमी दैत्यराजने इन पूर्वोक्त दैत्योंको

नष्टहुआ सुनके दुर्धर्ष संग्रामके नाम लेतेही उत्पन्नहुए मदवाले अपने गणोंको जताया ॥ ३ ॥ बलसे युक्त मेरी आज्ञासे परस्पर मिलेहुए विजय चाहनेवाले
कालकेय वंशमें उत्पन्नहुए कालकेय असुर मौर्य दौर्हृद नामवाले तथा और भी दैत्य युद्ध करनेको जावें ॥ ४ ॥ उन दैत्योंको आज्ञा देकर निशुम्भ शुम्भ
दैत्य रथपर चढके चले और वे दैत्य सबल उन दोनोंकी आज्ञासे विनाशवाले पतंगोंके समान उठ खडे हुए ॥ ५॥ उस समय मृदंग मर्दल भेरिका डिण्डिम
झर्झर आनक आदि बाजे बजने लगे संग्रामप्रिय योद्धा युद्धस्थलमें हर्ष करने लगे और जिन्हें अपने प्राण प्रिय थे वे संगरसे लौटने लगे ॥ ६ ॥ कवचसे

बलान्वितास्संमिलिता ममाज्ञया जयाशया कालकवंशसंभवाः ॥ सकालकेयासुरमौर्य्यदौर्हृदास्तथा परेप्याशु प्रयाणयन्तु ते ॥ ४ ॥
निशुंभशुंभौ दितिजान्निदेश्य तान्रथाधिरूढौ निरयांबभूवतुः ॥ बलान्यनूखुर्बलिनोस्तयोर्धराद्विनाशवन्तः शलभा इवोत्थिताः ॥५॥
प्रसादयामास मृदंगमर्दलं सभेरिकाडिण्डिमझर्झरानकम् ॥ रणस्थले संजहृषू रणप्रिया असुप्रियाः संगरतः पराययुः ॥ ६ ॥ भटाश्चते
युद्धपटावृतास्तदा रणस्थलीं मापुरपापविग्रहाः ॥ गृहीतशस्त्रास्त्रचया जिगीषया परस्परं विग्रहयन्त उल्बणम् ॥ ७ ॥ गजाधिरूढा
स्तुरगाधिरोहिणो रथाधिरूढाश्च तथापरेऽसुराः ॥ अलक्षयन्तः स्वपराञ्जनान्मुदाऽसुरेशसंगे समरेऽभिरेभिरे ॥ ८ ॥ ध्वनिः शतघ्नी
जनितो मुहुर्मुहुर्बभूव तेन त्रिदशाः समेजिताः ॥ महान्धकारः समपद्यताम्बरे विलोक्यते नो रथमण्डलं रवेः ॥ ९ ॥ पदातयो निर्व
व्रुर्हि कोटिशः प्रभूतमाना विजयाभिलाषिणः ॥ रथाश्वगा वारणगा अथापरेऽसुरा निरीयुः कति कोटिशो मुदा ॥ १० ॥

आच्छादित विना पापवाले शस्त्र अस्त्रोंको ग्रहण कियेहुए विजयकी इच्छासे परस्पर कवचोंको पहिनातेहुए वे सम्पूर्ण योद्धा संग्राम भूमिको प्राप्त हुए ॥
॥ ७ ॥ हाथियोंपर चढेहुए तथा घोडोंपर चढेहुए तथा कोई दैत्य रथोंपर चढेहुए अपने और दूसरे मनुष्योंको आनंदसे देखतेहुए दैत्योंके युद्धमें चारों
ओरसे फिरने लगे ॥ ८ ॥ उस समय बारम्बार बन्दूकोंके शब्द होने लगे उस नादसे सब देवता मिलकर तयार हुए तब आकाशमें बडा अन्धकार होगया
और सूर्यका मंडल भी नहीं दीखता था ॥ ९ ॥ अतिमानी विजयकी इच्छा करनेवाले करोडों पैदल और अनेक कोटि रथी सवार तथा हाथीपर चढेहुए

आये ॥ १० ॥ काले पर्वतोंके समान मतवाले हाथी संग्राममें चिंघारने लगे छोटे पर्वतोंके समान ऊँट गलगल शब्दको करने (बलबलाने) लगे ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ देशोंमें उत्पन्नहुए विशाल कंठके आभरणवाले गतिके जाननेवाले घोडे हिनहिनाने लगे हाथियोंके मस्तकपर पैरोंको रखतेहुए आकाशमार्गमें पक्षियोंकी समान शीघ्रतासे दौडने लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार शत्रुके बलको देखके उस समय देवीने आक्रमण किया और धनुषको प्रत्यंचा सहित किया तथा शत्रुको दुःख देनेवाली घंटाको बजाया और सिंह भी बडे केशोंको कँपाता हुआ गर्जने लगा ॥ १३ ॥ उस समय निशुंभ हिमालय पर्वतपर स्थित हुई सुन्दर

अशुक्क शैला इव मत्तवारणा अतानिषुश्चीत्कृतिशब्दमाहवे ॥ क्रमेलकाश्चापि गलद्गलध्वनिं वितन्वते क्षुद्रमहीधरोपमाः ॥ ११ ॥ हयाश्च
ह्रेषन्त उदग्रभूमिजा विशालकण्ठाभरणा गतेर्विदः ॥ पदानि दन्तावलमूर्ध्नि बिभ्रतः सुडिड्यिरे व्योमपथा यथाऽवयः ॥ १२ ॥ समीक्ष्य
शत्रोर्बलमित्थमापतच्चकार सज्यं धनुरम्बिका तदा ॥ ननाद घण्टां रिपुसाददायिनीं जगर्ज सिंहोऽपि सटां विधूनयन् ॥ १३ ॥ ततो
निशुंभस्तुहिनाचलस्थितां विलोक्य रम्याभरणायुधां शिवाम् ॥ गिरं बभाषे रसनिर्भरां परां विलासिनीभावविचक्षणो यथा ॥ १४ ॥
भवादृशीनां रमणीयविग्रहे दुनोति कीर्णं खलुमालतीदलम् ॥ कथं करालाहवमातनोष्यसे महेशि तेनैव मनोज्ञवर्ष्मणा ॥ १५ ॥
इतीरयित्वा वचनं महासुरो बभूव मौनी तमुवाच चण्डिका ॥ वृथा किमात्थासुर मूढ संगरं कुरुष्व नागालयमन्यथा व्रज ॥ १६ ॥
ततोतिरुष्टः समरे महारथश्चकार बाणावलिवृष्टिमद्भुताम् ॥ घनाघनाः संववृषुर्यथोदकं रणस्थले प्रावृडिवागता तदा ॥ १७ ॥

आभूषण तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाली देवीको देखकर विलासिनी स्त्रीके भावमें प्रवीण पुरुषके समान अति मधुरवाणी बोला ॥ १४ ॥ हे महेशि ! तुम सरीखोंके मनोहर शरीरमें लिप्तहुआ मालतीका दल (पत्ता) हमको दुःख देता है और तुम सुगंधसे लिप्तहुए मनोहर शरीरसे क्यों भयंकर युद्धको विस्तार करती हो ॥ १५ ॥ ऐसा वचन कहकर वह दैत्यराज चुप रहा तब उससे देवी चांडिका बोली, हे मूर्ख दैत्य ! वृथा क्या कहता है ? युद्धकर अन्यथा नागलोकको जा ॥ १६ ॥ तब अतिरुष्टहुआ महारथ दैत्य युद्धमें अद्भुतबाणोंकी वर्षा करनेलगा और संग्राम भूमिमें जैसे मेघ जलको वर्षाते हैं तैसे

बाणोंको वर्षाया तब वर्षाके समान समय होगया ॥ १७ ॥ तीव्र बाणोंसे त्रिशूल, परशे शस्त्रोंसे भिन्दिपाल, परिघ, धनुषोंसे तापे, प्रास, क्षुरनामक बडी
खड्गोंसे मदमें प्रगल्भ होके युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥ उस युद्धमें गंडस्थलसे भिन्नहुए काले पर्वतोंके समान बडे हाथी भ्रमण करनेलगे चलायमान
पवनसे स्वच्छ तथा काली शुंभ और निशुंभकी पताका फहराने लगीं ॥ १९ ॥ देहसे भिन्नहुए दैत्य मच्छलीके समान और कंधोंसे शून्यहुए भयंकर
घोडोंके समूहको संग्राममें कालिकाने परास्त किया तथा अवशिष्टहुए दैत्योंको सिंहने परास्त किया ॥ २० ॥ और उन मारेहुए दैत्योंके मध्यसे रक्त

शरैश्शितैश्शूलपरश्वधायुधैः सभिन्दिपालैः परिघैश्शरासनैः ॥ भुशुण्डिकाप्रासक्षुरप्रसंज्ञकैर्महासिभिः संयुयुधे मदोद्धतैः ॥ १८ ॥
विबभ्रमुस्तत्समरे महागजा विभिन्नकुंभा असिताद्रिसन्निभाः ॥ चलद्बलाकाधवला विकेतवो विसेतवः शुंभनिशुंभकेतवः ॥ १९ ॥ विभि
न्नदेहा दितिजा झषोपमा विकन्धरा वाजिगणा भयंकराः ॥ परासवः कालिकया कृता रणे मृगारिणा चाशिषतापरेऽसुराः ॥ २० ॥
विसुस्रुवूरक्तवहास्तदन्तरे सरिच्चयास्तत्र विपुप्लुवे हतैः ॥ कचा भटानां जलनीलिकोपमास्तदुत्तरीयं सितफेनसंनिभम् ॥ २१ ॥
तुरंगसादी तुरगाधिरोहिणं गजस्थितानभ्यपतन्गजारुहः ॥ रथी रथेशं खलु पत्तिरङ्घ्रिगान्समप्रतिद्वन्द्विकलिर्महानभूत् ॥ २२ ॥
ततो निशुंभो हृदये व्यचिन्तयत्करालकालोयमुपागतोऽधुना ॥ भवेद्दरिद्रोऽपि महाधनो महाधनो दरिद्रो विपरीतकालतः ॥ २३ ॥
जडो भवेत्स्फीतमतिर्महामतिर्जडो नृशंसो बहुमन्तुसंस्तुतः ॥ पराजयं यान्ति रणे महाबला जयंति संग्राममुखे च दुर्बलाः ॥ २४ ॥

गिरनेलगा और रक्तकी बहानेवाली नदियाँ बहने लगीं और योधाओंके केश जल नील (काई) के समान थे और उनके वस्त्र श्वेत फेनोंके समान थे
॥२१॥ घोडोंके चढनेवाले घोडोंपर चढनेवालोंसे और हाथीपर चढेहुए हाथी पै चढनेवालोंसे तथा रथी रथारोहियोंसे पैदल चलनेवाले प्यादोंसे इस प्रकार
परस्पर घमासान लडाई होने लगी ॥ २२ ॥ उस समय निशुंभ दैत्य अपने हृदयमें विचारनेलगा कि अब यह बडा भयंकर काल प्राप्त होगया इस
विपरीत कालसे दारिद्री बडे धनी तथामहाधनी दारिद्री होगये ॥ २३ ॥ जड मनुष्य तीव्र बुद्धिवाला होता है तथा बडी बुद्धिवाला मूर्ख तथा हत्यारा

अनेक मानियोंसे प्रशंसित होता है तथा संग्राममें महाबली पराजयको प्राप्त होते हैं और दुर्बल विजयको पाते हैं ॥ २४ ॥ मनुष्योंकी जीत तथा हार परमेश्वरकी इच्छासे विना परिश्रमके होती है, कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा विष्णु तथा शिव भी समयको लांघके नहीं जी सकते ॥ २५ ॥ युद्धके सन्मुख जाके वीर अपने हृदयमें भागना श्रेष्ठ नहीं मानते हैं परन्तु युद्धमें इस देवीसे मेरा विजय कैसे होगा कि, जिसने मेरी सब सेना नष्ट करदी ॥२६॥ यह देवी निश्चयही देवताओंके कार्य सिद्ध करनेको और दैत्यबलके नाश करनेको आई हैं और यह पुराण मूर्त्ति पराप्रकृति शिवा हैं यह लौकिकी स्त्री नहीं होसकती

जयोऽजयो वा परमेश्वरेच्छया भवत्यनायासत एव देहिनाम् ॥ न कालमुल्लंघ्य शशाक जीवितुं महेश्वरः पद्मजनी रमापतिः ॥ २५ ॥
उपेत्य संग्राममुखं पलायनं न साधु वीरा हृदयेऽनुमन्वते ॥ परंतु युद्धे कथमेतया जयो विनाशितं मे सकलं बलं यया ॥ २६ ॥ इयं हि
नूनं सुरकर्म साधितुं समागता दैत्यबलं च बाधितुम् ॥ पुराणमूर्तिः प्रकृतिः परा शिवा न लौकिकीयं वनिता कदापि वा ॥ २७ ॥
वधोऽपि नारीविहितोऽयशस्करः प्रगीयते युद्धरसं लिलिक्षुभिः ॥ तथाप्यकृत्वा समरं कथं मुखं प्रदर्शयामोऽसुरराजसन्निधौ ॥ २८ ॥
विचारयित्वेति महारथो रथं महान्तमध्यास्य नियन्तृचोदितम् ॥ ययौ द्रुतं यत्र महेश्वरांगना सुरांगनाप्रार्थितयौवनोद्गमा ॥२९॥ अवो
चदेनां स महेशि किं भवेदेभिर्हतैर्वेतनजीविभिर्भटैः ॥ तवस्ति कांक्षा यदि योद्धुमावयोस्तदा रणः स्याद्धृतयुद्धसत्पटैः ॥ ३० ॥ उवाच
कालीं प्रति कौशिकी तदा समीक्ष्यतामेष दुराग्रहोऽनयोः ॥ करोति कालो विपदागमे मतिं विभिन्नवृत्तिं सदसत्प्रवर्तकः ॥ ३१ ॥

॥ २७ ॥ युद्धरसके पानेवालोंसे स्त्रीसे कियाहुआ वध भी दुष्कीर्त्तिका करनेवाला कहा जाता है और युद्धको विना किये दैत्यराजके समीप कैसे मुख दिखावेंगे ॥ २८ ॥ वह महारथ ऐसा विचारकर सारथिसे प्रेरणा कियेहुए बडे रथको ठहराके वहाँ शीघ्र गया जहाँ देवांगनाओंसे प्रार्थित यौवनमें प्राप्तहुई साक्षात् पार्वतीजी थीं ॥ २९ ॥ वहाँ जाके वह यह बोला, हे महेशि ! इन वेतनसे जीनेवाले योद्धाओंके मारनेसे क्या ? फल है यदि तेरी युद्ध करनेकी इच्छा है तो कवचोंको उतार कर हम दोनोंका युद्ध होना चाहिये ॥ ३० ॥ तब वह कौशिकी कालीसे बोली, देखो इन दोनोंका दुराग्रह अच्छे और

बुरे मार्गमें प्रवृत्त करानेवाला काल विपत्तिके आनेपर विपरीत मतिको करता है ॥ ३१ ॥ उस समय निशुम्भ चंडिकाको तथा कालिकाको सहस्रों बाणोंसे ताडन करनेलगा तब पार्वतीने दैत्योंसे फेंकेहुए बाणोंको अपने बाणोंसे सहस्रों खंड किये ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे उस दैत्यने उज्ज्वल खड्गको तथा ढालको उठाय कण्ठीरवके मस्तकमें ताडन किया तब अम्बिकाने इस प्रकार महाखड्गसे उसको भेदन किया जैसे वृक्ष काटनेवाला कुल्हाडेसे वृक्षको काटता है ॥ ॥ ३३ ॥ खड्गके टूटजानेपर उसने बाणको फेंका वह बाण भी देवीके वक्षःस्थलमें लगा फिर उसने हृदयमें त्रिशूल मारा उसे भी देवीने मुष्टिको मारकै तोड दिया ॥ ३४ ॥ फिर मरणमें तत्परहुआ वह महारथ गदाको लेके देवीके ऊपर दौडा तब देवीने उसे भी त्रिशूलकी धारासे चूर्ण किया फिर उसके त्रिशूलको दूसरी धारासे तोडा ॥ ३५ ॥ तब देवी भयंकर सर्पोंके समान तथा शत्रुओंके रुधिर चूसनेवाले अपने शिलीमुख ताम विषसे बुझेहुए तीक्ष्ण बाणोंसे निशुम्भको मारकर भूमिपर लाई ॥ ३६ ॥ मानबलसे युक्त छोटे भाईके मरनेपर वह दैत्यराज क्रोधसे पूर्ण हो रथपर स्थित हुआ आठौ भुजाओंसे संयुक्त शुंभ दैत्य वहाँ गया जहाँपर शिवकी प्रिया थी ॥ ३७ ॥ और उस समय शत्रुओंके दमन करनेवाले शंखको बजाया और दुस्सह धनुषके शब्दको

ततो निशुंभोऽभिजघान चण्डिकां शरैस्सहस्रैश्च तथैव कालिकाम् ॥ विभेद बाणानसुरप्रचोदितान्सहस्रखण्डं स्वशरोत्करैः शिवा ॥ ॥ ३२ ॥ ततः समुत्थाय कृपाणमुज्ज्वलं स चर्म्म कण्ठीरवमूर्ध्न्यताडयत् ॥ बिभेद तं चापि महासिनाम्बिका यथा कुठारेण तरुं तरुच्छिदः ॥ ३३ ॥ स भिन्नखड्गो निचखान मार्गणं पराम्बिकावक्षसि सोऽपि चिच्छिदे ॥ पुनस्त्रिशूलं हृदयेऽक्षिपत्तदप्यचूर्णयन्मुष्टिनिपातनेन सा ॥ ३४ ॥ गदां समादाय पुनर्महारथोऽभ्यधावदम्बां मरणोन्मुखोऽसुरः ॥ अचूर्णयत्तामपि शूलधारया पुनस्त्रिशूलं विददार सोऽन्यया ॥ ३५ ॥ ततोम्बिका भीमभुजंगमोपमैस्सुरद्विषां शोणितचूषणोचितैः ॥ निशुम्भमात्मीयशिलीमुखै शितैर्निहत्य भूमीमनयद्द्विषोक्षितैः ॥ ३६ ॥ निपातितेऽमानबलेऽसुरप्रभुः कनीयसि भ्रातरि रोषपूरितः ॥ रथस्थितो बाहुभिरष्टभिर्वृतो जगाम यत्र प्रमदा महेशितुः ॥ ३७ ॥ अवादयच्छंखमरिन्दमं तदा धनुस्स्वनं चापि चकार दुःसहम् ॥ ननाद सिंहोऽपि सटां विधूनयन्बभूव नादत्रयनादितन्नभः ॥ ३८ ॥

किया उसी समय सिंह भी बडे केशोंको कँपाय शब्द करन लगा तब आकाश तीनोंके नादसे गूंज गया ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे जगदम्बिकाने अट्टहास किया उससे सम्पूर्ण दैत्य त्रास करनेलगे उस समय देवताओंने जयजयकार किया तब अम्बिकाने कहा कि तू संग्राममें स्थिर हो ॥ ३९ ॥ तब उस दैत्यराजने प्रदीप्त अग्निवाली बडी शक्तिको छोडा उसे भी देवीने नष्ट किया शुंभसे फेंकेहुए बाणोंको पार्वतीने भेदन किया और पार्वतीसे छोडे हुए सहस्रों बाणोंको उस दैत्यने काटडाला ॥ ४० ॥ तब चण्डिकाने त्रिशूलको उठाय उस महादैत्यको मारा तब वह मूर्छित हो ऐसे गिरपडा जैसे इन्द्रसे पक्ष छेदन किया हुआ

ततोऽट्टहासं जगदंम्बिकाकरोद्वितत्रसुस्तेन सुरारयोऽखिलाः ॥ जयेति शब्दं जगदुस्तदा सुरा यदाम्बिकोवाच रणे स्थिरो भव ॥ ३९ ॥ स दैत्यराजो महतीं ज्वलच्छिखां मुमोच शक्तिं निहता च सोल्कया ॥ बिभेद शुंभप्रहिताञ्छराञ्छिवा शिवेरितान्सोपि सहस्रधा शरान् ॥ ४० ॥ त्रिशूलमुत्क्षिप्य जघान चण्डिका महासुरं तं स पपात मूर्च्छितः ॥ विभिन्नपक्षो हरिणा यथा नगः प्रकंपयन् द्यां वसुधां स वारिधिम् ॥ ४१ ॥ ततो मृषित्वा त्रिशिखोद्भवां व्यथां विधाय बाहूनयुतं महाबलः ॥ स कालिकां सिंहयुतां महेश्वरीं जघान चक्रैरमरक्षयंकरैः ॥ ४२ ॥ तदस्तचक्राणि विभिद्य लीलया त्रिशूलमुद्गूर्य्य जघान सासुरम् ॥ शिवा जगत्पावनपाणिपङ्कजादु पात्तमृत्यू परमं पदं गतौ ॥ ४३ ॥ हते तस्मिन्महवीर्य्ये निशुंभे भीमविक्रमे ॥ शुंभे च सकला दैत्या विविशुर्बलिसद्मनि ॥ ४४ ॥ भक्षिता अपरे कालीसिंहाद्यैरमरद्विषः ॥ पलायितास्तथान्ये च दशदिक्षु भयाकुलाः ॥ ४५ ॥

पर्वत स्वर्गलोक तथा समुद्रोंसहित पृथिवीको कँपाताहुआ गिरता है ॥ ४१ ॥ तब वह महाबली त्रिशूलके दुःखको सहके दश सहस्र भुजाकर देवताओंके नाश करनेवाले चक्रोंसे कालिकाको तथा सिंहसे युक्त महेश्वरीको ताडन करने लगा ॥ ४२ ॥ उसके चक्रोंको लीलासे भेदन करके और त्रिशूलको उठाय देवीने उस दैत्यको मार दिया तब पार्वतीके लोकपावन करकमलोंसे मृत्यु पाय वे दोनों दैत्य परमधामको सिधारे ॥ ४३ ॥ उस महापराक्रमी निशुंभके तथा भयंकर विक्रमयुक्त शुंभदैत्यके भी मरनेपर सम्पूर्ण देवताओंने स्वर्गलोकमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ और शेष दैत्योंको काली तथा सिंह आदिने भक्षण

किया और कुछ दैत्य भयभीत हो दशोदिशाओंमें भागगये ॥ ४५ ॥ उस समय नदियां स्वच्छ जलवाली तथा ठीकस्थानमें बहनेवाली हुईं सुखदायक पवन चलने लगी आकाश निर्मल होगया ॥ ४६ ॥ देवताओंने तथा ब्रह्मर्षियोंने फिर यज्ञ आरंभ किया और इन्द्रादि समस्त देवता सुखी होगये ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! जो मनुष्य पार्वतीके परम पवित्र दैत्यराजके वधसहित पुण्यचरित्रको श्रद्धासे श्रवण पठन करताहै ॥ ४८ ॥ वह इस लोकमें देवताओंसे भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको अनुभवकर परलोकमें महामायाके प्रसादसे पार्वतीके स्थानको जाता है ॥ ४९ ॥ ऋषि बोले, हे राजन् ! इस प्रकार शुंभनिंशुभासुरको

बभूवुर्मार्गवाहिन्यस्सरितः स्वच्छपाथसः ॥ ववुर्वाताः सुखस्पर्शा निर्मलत्वं ययौ नभः ॥४६॥ पुनर्यागः समारेभे देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥
सुखिनश्चाभवन्सर्वे महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥ ४७ ॥ पवित्रं परमं पुण्यमुमायाश्चरितं प्रभो ॥ दैत्यराजवधोपेतं श्रद्धया यः समभ्य
सेत् ॥ ४८ ॥ स भुक्त्वेहाखिलान्भोगांस्त्रिदशैरपि दुर्लभान् ॥ परत्रोमालयं गच्छेन्महामायाप्रसादतः ॥ ४९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥
एवन्देवी समुत्पन्ना शुंभासुरनिबर्हिणी प्रोक्ता सरस्वती साक्षादुमांशाविर्भवा नृप ॥ ९० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहि
तायां निशुंभशुंभवधोपाख्याने सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णनं नामाष्टश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मुनय ऊचुः ॥ उमाया भुवनेशान्यास्सूत
सर्वार्थवित्तम ॥ अवतारं समाचक्ष्व यतो जाता सरस्वती ॥ १ ॥ या गीयते परब्रह्ममूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ निराकारापि साकारा नित्या
नन्दमयी सती ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तापसाः शृणुत प्रेम्णा चरित्रं परमं महत् ॥ यस्य विज्ञानमात्रेण नरो याति परां गतिम् ॥ ३ ॥

मारने वाली साक्षात् पार्वतीके अंशसे उत्पन्नहुई देवी सरस्वती उत्पन्न हुई यह चारित्र आपसे सब कहदिया ॥ ५० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० निशुम्भशुम्भवधोपाख्याने सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णनं नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मुनि बोले, सम्पूर्ण अर्थोंके जाननेवाले हे सूतजी ! भुवनेशानी पार्वतीके अवतारको कहो कि जिससे सरस्वती उत्पन्न हुई ॥१॥ जो देवि ! परब्रह्म मूलप्रकृति ईश्वरी निराकार तथा साकार नित्य आनन्दमयी सती कहलातीहै ॥२॥ सूतजी बोले, हे तपस्वियो !! देवीके परम चरित्रको प्रेमसे सुनो जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

एक समय देवता और दैत्योंमें परस्पर बडा युद्ध हुआ उस समय महामायाके प्रभावसे देवताओंकी विजय हुई ॥ ४ ॥ तब गर्वितहुए देवता अपनी प्रशंसा करने लगे कि हम धन्यहैं हम धन्यवादके योग्यहैं दैत्य हम सबोंका क्या ? करैंगे ॥ ५ ॥ जो दैत्य हमारे दुस्सह प्रतापको देखके भागो भागो ऐसा कहके भयभीत होके नागलोकको चले गये ॥ ६ ॥ हम देवतोंका बल तथा दैत्यवंशका नाश करनेवाला तेज धन्य है भाग्य धन्य है इस प्रकार सब आपसमें कहने लगे ॥ ७ ॥ तिसके पीछे उस समय कूटरूप अपूर्वतेज प्रगट हुआ उसको देखके सब देवता विस्मित हुए ॥ ८ ॥ उस परमश्याम मानके तोडनेवाले

देवदानवयोर्युद्धमेकदासीत्परस्परम् ॥ महामायाप्रभावेणामराणां विजयोऽभवत् ॥ ४ ॥ ततोऽवलिप्ता अमरास्स्वप्रशंसां वितेनिरे ॥ वयं धन्या वयं धन्याः किं करिष्यंति नोऽसुराः ॥ ५ ॥ ये प्रभावं समालोक्यास्माकं परमदुःसहम् ॥ भीता नागालयं याता यातयातेति वादिनः ॥ ६ ॥ अहो बलमहो तेजो दैत्यवंशक्षयंकरम् ॥ अहो भाग्यं सुमनसामेवं सर्वेऽभ्यवर्णयन् ॥ ७ ॥ तत आविरभूत्तेजःकूटरूपन्तदैव हि ॥ अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा विस्मिता अभवन्सुराः ॥ ८ ॥ किमिदं किमिदं चेति रुद्धकण्ठास्समब्रुवन् ॥ अजानन्तः परं श्यामानुभावं मानभञ्जनम् ॥ ९ ॥ तत आज्ञापयद्देवान्देवानामधिनायकः ॥ यात यूयं परीक्षध्वं याथातथ्येन किन्विति ॥ १० ॥ सुरेन्द्रप्रेरितो वायुर्महसः सन्निधिं गतः ॥ कस्त्वं भोरिति सम्बोध्यावोचदेनं च तन्महः ॥ ११ ॥ इति पृष्टस्तदा वायुर्महसातिगरीयसा ॥ वायुरस्मि जगत्प्राणस्साभिमानोऽब्रवीदिदम् ॥ १२ ॥ जंगमाजंगमं सर्वमोतप्रोतमिदं जगत् ॥ मय्येव निखिलाधारे चालयाम्यखिलं जगत् ॥ ॥ १३ ॥ तदोवाच महातेजः शक्तोऽसि यदि चालने ॥ धृतमेतत्तृणं वायो चालयस्व निजेच्छया ॥ १४ ॥

तेजको न जानके यह क्या ? है यह क्या ? है ऐसा कंठसे रुकके कहनेलगे ॥ ९ ॥ तब देवताओंके स्वामी इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी कि तुम जाओ वह क्या है ? यथार्थ उसकी परीक्षा करो ॥ १० ॥ देवेन्द्रसे भेजेहुए पवन उस तेजके समीप गये तब वह तेज उनसे बोला कि तुम कौन हो ॥ ११ ॥ उस प्रति तेजके ऐसा पूंछनेपर वह वायु अभिमानके सहित यह बोला कि जगत्का प्राण मैं वायु हूं ॥ १२ ॥ यह सब स्थावर जंगमरूप जगत् सर्वाधाररूप मुझमेंही ओतप्रोत होरहा है और मैंही सब जगत्को चलाता हूं ॥ १३ ॥ तब वह तेज बोला, हे वायो ! यदि तुम चलानेमें समर्थ हो तो इस धरेहुए

तृणको अपनी इच्छासे चलाओ ॥ १४ ॥ यह सुन वायुने सब यत्नसे परिश्रम किया और जब वह तृण अपने स्थानसे न चला तब यह लज्जितहुए ॥
॥ १५ ॥ उस समय वायु मौन होके इन्द्रकी सभामें गये और अपने तिरस्कारके सब समाचारको कहा ॥ १६ ॥ कि, हम सब अपनी आत्मामें वृथाही
सर्वेशत्वको मानते हैं परन्तु क्षुद्रवस्तुमें भी कुछ नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ तब वायुने समस्त देवताओंको वहां भेजा जब वे सब देवता जाननेमें समर्थ
नहीं हुए तब इन्द्र स्वयम् वहां गये ॥ १८ ॥ इन्द्रको आताहुआ देख वह अतिदुःसह तेज तत्क्षण अन्तर्द्धान होगया तब इन्द्र विस्मित हुए ॥ १९ ॥

ततः सर्वप्रयत्नेनाकरोद्यत्नं सदागतिः ॥ न चचाल यदा स्थानात्तदासौ लज्जितोऽभवत् ॥ १५ ॥ तूष्णीं भूत्वा ततो वायुर्जगामेन्द्र
सभां प्रति ॥ कथयामास तद् वृत्तं स्वकीयाभिभवान्वितम् ॥ १६ ॥ सर्वेशत्वं वयं सर्वे मृषैवात्मनि मन्महे ॥ न पारयामहे किंचिद्वि
धातुं क्षुद्रवस्त्वपि ॥ १७ ॥ ततश्च प्रेषयामास मरुत्वान्सकलान्सुरान् ॥ न शेकुस्ते यदा ज्ञातुं तदेन्द्रः स्वयमभ्यगात् ॥ १८ ॥
मघवन्तमथायान्तं दृष्ट्वा तेजोतिदुःसहम् ॥ बभूवान्तर्हितं सद्यो विस्मितोऽभूच्च वासवः ॥ १९ ॥ चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं श्रये ॥
इति संचिन्तयामांस सहस्राक्षः पुनःपुनः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र निर्व्याजकरुणातनुः ॥ तेषामनुग्रहं कर्तुं हर्तुं गर्वं शिवांगना ॥
॥ २१ ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्नस्थे दिवाकरे ॥ प्रादुरासीदुमा देवी सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ २२ ॥ महोमध्ये विराजन्ती भास
यन्ती दिशो रुचा ॥ बोधयन्ती सुरान्सर्वान्ब्रह्मैवाहमिति स्फुटम् ॥ २३ ॥ चतुर्भिर्दधती हस्तैर्वरपाशांकुशाभयान् ॥ श्रुतिभिस्सेविता
रम्या नवयौवनगर्विता ॥ २४ ॥

जिसका ऐसा चरित्र है उसके ही शरण मैं जाता हूं इस प्रकार इन्द्र बारम्बार विचारने लगे ॥ २० ॥ उसी अन्तरमें वहां निर्व्याज करुणाके शरीरवाली
पार्वती उनके ऊपर दया करनेको तथा अभिमान दूर करनेको ॥ २१ ॥ चैत्रशुक्ला नवमीको मध्याह्नकालमें सच्चिदानन्दरूपिणी साक्षात् पार्वती देवी प्रगट
हुईं ॥ २२ ॥ तेजके मध्यमें शोभायमान अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशित करती मैं ही ब्रह्म हूं इस प्रकार प्रत्यक्ष सब देवताओंको जताती
हुईं ॥ २३ ॥ चारों हाथोंमें सुन्दर पाश अंकुशादिको धारण करती हुई वेदोंसे सेवित मनोहर नवीन यौवनसे गर्वित ॥ २४ ॥

लालवस्त्र धारण करनेवाली रक्त सुगंध लगाये कोटिकामदेवके समान कोटिचन्द्रमाके समान कान्तिवाली ॥ २५ ॥ सर्वान्तर्यामिरूपिणी सब प्राणियोंकी साक्षिणी परब्रह्मस्वरूपिणी महामाया यह बोली ॥ २६ ॥ पार्वतीजी बोलीं, मेरे आगे अभिमान (गर्व) करनेको न ब्रह्मा न विष्णु न संहारक शिवही समर्थ हैं फिर और देवताओंकी क्या ? कथा है ॥ ॥ २७ ॥ मैं ही परब्रह्म परमज्योति प्रणवद्वन्द्वरूपिणी हूँ मैं ही सब कुछ हूं मुझसे भिन्न और कोई नहीं है ॥ २८ ॥ निराकारा भी साकार तथा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी तर्कनाके अयोग्य गुणवाली नित्य कार्य और कारणके रूपवाली हूं ॥ २९ ॥ कभी

रक्ताम्बरपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ कोटिकंदर्प्पसंकाशा चन्द्रकोटिसमप्रभा ॥ २५ ॥ व्याजहार महामाया सर्वान्तर्य्यामिरूपिणी।
साक्षिणी सर्वभूतानां परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २६ ॥ ॥ उमोवाच ॥ न ब्रह्मा न सुरारातिर्न पुरारातिरीश्वरः ॥ मदग्रे गर्वितुं किंचित्का
कथान्यसुपर्वणाम् ॥ २७ ॥ परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी ॥ अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन ॥ २८ ॥
निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ॥ अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥ २९ ॥ कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः ॥
कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥ ३० ॥ विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगत्पाताहमच्युतः ॥ रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी
॥ ३१ ॥ कालिकाकमलावाणीमुखास्सर्वा हि शक्तयः ॥ मदंशादेव संजातास्तथेमास्सकलाः कलाः ॥ ३२ ॥ मत्प्रभावाज्जितास्सर्वे
युष्माभिर्दितिनन्दनाः ॥ तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥ ३३ ॥ यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः ॥ तथैव
सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी ॥ ३४ ॥

स्त्रीके आकारवाली होती हूँ तथा कभी पुरुषके आकारमें होजाती हूं कभी दोनों आकारयुक्त होती हूं इस प्रकार सब आकारवाली महेश्वरी हूं ॥ ३० ॥ सृष्टिके कर्त्ता ब्रह्मा मैं हूँ, जगत्के रक्षक विष्णु मैं हूँ संहारकर्त्ता शिव भी मैं हूँ सब जगत्की मोहनेवाली मैंही हूं ॥ ३१ ॥ कालिका कमला वाणी आदि सम्पूर्ण शक्ति तथा यह सब कलायें मेरेही अंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ और मेरेही प्रभावसे तुमने सब दैत्योंको जीता ऐसी मुझे न जानके तुम सब वृथा अभिमान करते हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक काठकी स्त्री (पुतली) को नचाताहै उसी प्रकार मैं परमेश्वरी सम्पूर्ण प्राणियोंको नचाती हूं ॥ ३४ ॥

मेरे भयसे पवन चलताहै, अग्नि जलता है, तथा सब लोकपाल निरन्तर अपने अपने कर्मोंको करतेहैं ॥३५॥ मैं स्वतन्त्र हो अपनी लीलासे कभी देवताओंको
जिता देती हूं कभी दैत्योंको जिता देती हैं ॥ ३६ ॥ वेद शास्त्र मेरेही उस उस रूपको अविनाशी परंधाम मायातीत परसेपर वर्णन करते हैं ॥ ३७ ॥
मेरा सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका रूप कहा है एक मायासे युक्त दूसरा मायासे रहित कहा है ॥ ३८ ॥ हे देवताओ ! ऐसी मुझे जानके अपने
अपने गर्वको त्यागके नम्र हो मुझ सनातनी प्रकृतिको भजो ॥ ३९ ॥ ऐसा दयासे युक्त देवीका वचन सुन देवतागण भक्तिसे कन्धोंको नम्रकर परमेशानी

मद्भयाद्वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक् ॥ लोकपालाः प्रकुर्वंति स्वस्वकर्माण्यनारतम् ॥ ३५ ॥ कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्म
नाम् ॥ करोमि विजयं सम्यक्स्वतन्त्रा निजलीलया ॥ ३६ ॥ अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम् ॥ श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपन्तु
ममैव हि ॥ ३७ ॥ सगुणं निर्गुण चेति मद्रूप द्द्विविधं मतम् ॥ मायाशबलितं चैकं द्वितीयन्तदनाश्रितम् ॥ ३८ ॥ एवं विज्ञाय मां देवा
स्स्वं स्वं गर्वं विहाय च ॥ भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम् ॥ ३९ ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा करुणागर्भितं सुराः ॥ तुष्टुवुः
परमेशानीं भक्तिसंनतकन्धराः ॥ ४० ॥ क्षमस्व जगदीशानि प्रदीद परमेश्वरि ॥ मैवं भूयात्कदाचिन्नो गर्वो मातर्दयां कुरु ॥ ४१ ॥
ततःप्रभृति ते देवा हित्वा गर्वं समाहिताः ॥ उमामाराधयामासुर्यथापूर्वं यथा विधि ॥४२॥ इति वः कथितो विप्रा उमाप्रादुर्भवो मया ॥
यस्य श्रवणमात्रेण परमं पदमश्नुते ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायामुमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽ
ध्यायः ॥ ४९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे दुर्गाचारितमन्वहम् ॥ अपरं च महाप्राज्ञ तत्त्वं वर्णय नोऽद्भुतम् ॥ १ ॥

देवीकी स्तुति करने लगे ॥४०॥ हे जगदीशानि ! क्षमा करो हे परमेश्वरि ! हे माता ! प्रसन्न हो हमपर दया करो हमारा ऐसा गर्व कभी न होगा ॥४१॥
उस दिनसे लेके वे देवता सावधान हो गर्वको त्याग विधिपूर्वक पहलेके समान पार्वतीकी आराधना करने लगे ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैंने तुमसे यह
पार्वतीकी उत्पत्ति कही जिसके सुननेमात्रसे परमपद प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं०उ० सं० उमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपंचा
शत्तमोऽध्यायः॥४९॥ मुनि बोले, हे महाबुद्धिमान् ! हम सब क्रमशः दुर्गाके चारित्रको सुनना चाहते हैं, अब हमसे अद्भुत दूसरे तत्त्वको वर्णन करो ॥१॥

हे समस्त अर्थोंके वेत्ता ! हे सूतजी ! तुम्हारे कमलमुखसे अमृतके समान अनेक कथाओंको सुननेसे हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥ २ ॥ सूतजी बोले, महाबली रुरुके दुर्गमनामक पुत्रने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको पाया ॥ ३ ॥ तथा वह पृथ्वीपर देवताओंसे अजेय बलको पाय अनेक उपद्रवोंको करने लगा इससे स्वर्गमें देवता भी काँपने लगे ॥ ४ ॥ वेदोंके नष्ट होजानेपर सम्पूर्ण क्रिया नष्ट होने लगीं और देवताओं समेत ब्राह्मण दुराचारी होगये ॥ ५ ॥ उस समय न दान होता था न उग्रतप होता न याग होता तथा न हवन होता था और पृथिवीपर सौ वर्षकी अनावृष्टि हुई ॥ ६ ॥ तीनोंलोकोंमें

शृण्वतान्त्वन्मुखाम्भोजात्कथा नाना सुधोपमाः ॥ न तृप्यति मनोऽस्माकं सूत सर्वार्थवित्तमं ॥ २ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ दुर्गमः प्रथितो नाम्ना रुरुपुत्रो महाबलः ॥ ब्रह्मणो वरदानेन चतस्रोऽलभत श्रुतीः ॥ ३ ॥ देवाजेयबलं चापि संप्राप्य जगतीतले ॥ करोति स्म बहूत्पातान्दिवि देवाश्चकम्पिरे ॥ ४ ॥ सर्वा नष्टेषु वेदेषु क्रिया नष्टा बभूव ह ॥ ब्राह्मणाश्च दुराचारा बभूवुस्ससुरास्तदा ॥ ५ ॥ न दानं न तपोऽत्युग्रं न यागो हवनं न हि ॥ अनावृष्टिस्ततो जाता पृथिव्यां शतवार्षिकी ॥ ६ ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रिषु लोकेषु दुःखिताः ॥ अभवंश्च जनास्सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता भृशम् ॥ ७ ॥ सरितः सागराश्चैव वापीकूपसरांसि च ॥ निर्जला अभवन्सर्वे संशुष्का वृक्षवीरुधः ॥ ८ ॥ ततो दृष्ट्वा महादुःखं प्रजानां दीनचेतसाम् ॥ त्रिदशाश्शरणं याता योगमायां महेश्वरीम् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः ॥ रक्षरक्ष महामाये स्वकीयास्सकलाः प्रजाः ॥ कोपं संहर नूनन्त्वं लोका नंक्ष्यंति चान्यथा ॥ १० ॥ यथा शुंभो हतो दैत्यो निशुंभश्च महाबलः ॥ धूम्राक्षश्चण्डमुण्डौ च रक्तबीजो महाबलः ॥ ११ ॥

बडा हाहाकार मचगया, सबलोग दुःखित और भूँख प्याससे अत्यन्त पीडित होनेलगे ॥ ७ ॥ नदी समुद्र तथा बावडी कूप सरोवर भी जलसे शून्य होगये और वृक्ष और लतायें सूख गईं ॥ ८ ॥ ऐसे दीन प्रजाके महादुःखको देखकर सब देवता योगमाया महेश्वरीकी शरणमें गये ॥ ९ ॥ देवता बोले, हे महामाये ! अपनी संपूर्ण प्रजाकी रक्षाकरो रक्षाकरो और तुम निश्चय ही क्रोधको दूर करो नहीं तो लोक नष्ट होजायँगे ॥ १० ॥ जिस प्रकार शुंभदैत्य

और महाबली निशुंभासुरको मारा तथा जैसे धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड,महाबली रक्तबीज ॥ ११ ॥ तथा मधुकैटभदैत्य महिषासुर आदि दैत्योंको मारा है वैसे हे कृपासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! इस दैत्यको शीघ्र मारो ॥ १२ ॥ बालकोंका अपराध पदपदमें होता है तो संसारमें केवल माताके विना कौन पुरुष सह सकता है? ॥ १३ ॥ जिस जिस समय देवताओंको तथा ब्राह्मणोंको दुःख होता है उस उस समय तुम अवतार लेके मनुष्योंको सुखी करती हो ॥ १४ ॥ ऐसा उन देवताओंका दीनवचन सुनके करुणामयी पार्वतीजीने अपना अनन्त अक्षमय रूप दिखाया ॥ १५ ॥ चारों हाथोंमें धनुषबाण तथा पद्म और

स मधुः कैटभो दैत्यो महिषासुर एव च ॥ तथैवामुं कृपासिन्धो दीनबन्धो जहि द्रुतम् ॥ १२ ॥ अपराधो भवत्येव बालकानां पदे पदे ॥ सहते को जनो लोके केवलं मातरं विना ॥ १३ ॥ यदायदाभवद्दुःखं देवानां ब्रह्मणान्तथा ॥ तदातदावतीर्याशु कुरुषे सुखिनो जनान् ॥१४॥ इति विक्लवितन्तेषां समाकर्ण्य कृपामयी ॥ अनन्ताक्षमयं रूपन्दर्शयामास साम्प्रतम् ॥ १५ ॥ धनुर्बाणौ तथा पद्मं नानामूलफलानि च ॥ चतुर्भिर्दधती हस्तैः प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥ १६ ॥ ततो दृष्ट्वा प्रजास्तप्ताः करुणापूरितेक्षणा ॥ रुरोद नव घस्राणि नव रात्रीस्समाकुला ॥ १७ ॥ मोचयामास दृष्टिभ्यो वारिधाराः सहस्रशः ॥ ताभिः प्रतर्प्पिता लोका औषध्यः सकला अपि ॥ १८ ॥ अगाधतोयास्सरितो बभूवुः सागरा अपि ॥ रुरुहुर्धरणीपृष्ठे शाकमूलफलानि च ॥ १९ ॥ विततार करस्थानि सुमनोभ्यः फलानि च ॥ गोभ्यस्तृणानि रम्याणि तथान्येभ्यो यथार्हतः ॥ २० ॥ सन्तुष्टा अभवन्सर्वे सदेवद्विजमानुषाः ॥ ततो जगाद सा देवी किमन्यत्करवाणि वः ॥ २१ ॥

अनेकप्रकारके फल मूल धारण करतीहुई प्रसन्न मुखकमलवाली ॥ १६ ॥ दुःखित प्रजाको देखके दयासे पूरित नेत्रवाली वह पार्वती व्याकुल हो नौदिन तथा नौ रात रोईं ॥ १७ ॥ और उसने नेत्रोंसे सहस्रों जलकी धारा छोडी उनसे लोकोंको तृप्त किया उससे सम्पूर्ण औषधियां ॥ १८ ॥ तथा अगाध जलवाली नदी समुद्र बहने लगे और भूमिपर शाक फल मूल उपजे ॥ १९ ॥ पुण्यात्माओंके अर्थ सुन्दर फल तथा पशुओंके निमित्त औरोंके अर्थ भी मनोहर तृण विस्तृत हुए ॥ २० ॥ तब समस्त देवता ब्राह्मणों समेत सन्तुष्ट हुए. उस समय देवीने कहा अब तुम्हारा और क्या कार्य करूँ ? ॥ २१ ॥

उस समय सब देवता एकत्रित होके बोले कि, हे देवि ! तुमने सम्पूर्ण मनुष्योंको सन्तुष्ट किया अब कृपाकर दुर्गमसे हरण कियेहुए वेदोंको दिवाओ ॥ २२ ॥ ऐसाही होगा यह कहके अपने स्थानको जाओ इस प्रकार बोली मैं तुम्हारे वेदोंको अतिशीघ्रही दिलाऊँगी ॥ २३ ॥ तब प्रसन्नहुए देवता जगत्की उत्पन्न करनेवाली खिलेहुए कमलके समान नेत्रवाली देवीको प्रणाम करके अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २४ ॥ उस समय स्वर्ग आकाश तथा भूमिपर बडा कोलाहल मचगया. उस शब्दको सुन उस दैत्यने चारोंओरसे नगरीको घेर लिया ॥ २५ ॥ तब शिवा देवी देवताओंकी रक्षा करनेके अर्थ तेजोमय चक्रको धारणकर स्वयम् नगरसे बाहर गई ॥ २६ ॥ उसी समय देवी और दैत्य दोनोंमें युद्ध होनेलगा. युद्धमें शरीरके छेदन करनेवाले तीव्र बाणोंको वर्षाया ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें उस देवीके शरीरसे सुन्दर मूर्त्तियां प्रगट हुई—काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी ॥ २८ ॥ भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी, मातंगी, यह दशौ महाविद्या देवी शस्त्रसहित निकलीं ॥ २९ ॥ तिसके पीछे वे असंख्यात दिव्यमूर्त्तिवाली मातायें होगईं यह सब चन्द्रमाकी लेखाको धारण करनेवाली बिजलीकें समान कान्तिवाली थीं ॥ ३० ॥ तब मातृगणोंसे अतिभयंकर युद्ध होने लगा. उन देवियोंने दैत्योंके सौ

समेत्योचुस्तदा देवा भवत्या तोषिता जनाः ॥ वेदान्देहि कृपां कृत्वा दुर्गमेण समाहृतान् ॥ २२ ॥ तथास्त्विति प्रभाष्याह यातयात
निजालयम् ॥ वितरिष्यामि वो वेदानचिरेणैव कालतः ॥ २३ ॥ ततः प्रमुदिता देवास्स्वं स्वं धाम समाययुः ॥ सुप्रणम्य जगद्योनिं
फुल्लेन्दीवरलोचनाम् ॥ २४ ॥ ततः कोलाहलो जातो दिवि भूम्यन्तरिक्षके ॥ तच्छ्रुत्वा रौरवः सद्यो न्यरुणत्सर्वतः पुरीम् ॥ २५ ॥
ततस्तेजोमयं चक्रं विधाय परितः शिवा ॥ रक्षणार्थं देवतानां स्वयं तस्माद्बहिर्गता ॥ २६ ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः
॥ ववृषुः समरे बाणान्निशितान्कंकटच्छिदः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नं तरे तस्याः शरीराद्रम्यमूर्त्तयः ॥ काली तारा छिन्नमस्ता
श्रीविद्या भुवनेश्वरी ॥ २८ ॥ भैरवी बगला धूम्रा श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी ॥ मातंगी च महाविद्या निर्गता दश सायुधाः ॥ २९ ॥
असंख्यातास्ततो जाता मातरो दिव्यमूर्त्तयः ॥ चन्द्रलेखाधरास्सर्वास्सर्वा विद्युत्समप्रभाः ॥ ३० ॥ ततो मातृगणैर्युद्धं प्रावर्तत भयंकरम् ॥
रौरवीयं हतन्ताभिर्दलमक्षौहिणीशतम् ॥ ३१ ॥

अक्षौहिणी दलको नष्ट किया ॥ ३१ ॥ तब उसने दुर्गम दैत्यको त्रिशूलधारासे मारा वह दैत्य जड खुदेहुए वृक्षकी समान भूमिपर गिरपडा ॥ ३२ ॥
इस प्रकार दुर्गमासुरनामक दैत्यको मारके उससे चारों वेद ले देवीने उन देवताओंको प्रदान किये ॥ ३३ ॥ देवता बोले, हे अम्बिके ! हमारे लिये
तुमने अनन्ताक्षिमयरूप धारण किया इस कारण मुनिगण तुमको शताक्षी कहैंगे ॥ ३४ ॥ अपनी देहसे उत्पन्नहुए शाकसे सब लोकोंका पालन किया इससे
तुम्हारा शाकंभरी नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ३५ ॥ हे शिवे ! जिस कारण कि, तुमने दुर्गमनामवाले दैत्यको मारा अतः मनुष्य तुमको दुर्गा भगवती कहैंगे ॥

जघान सा तदा दैत्यं दुर्गमं शूलधारया ॥ पपात धरणीपृष्ठे खातमूलद्रुमो यथा ॥ ३२ ॥ इत्थं हत्वा तदा दैत्यं दुर्गमासुरनामकम् ॥
आदाय चतुरो वेदान्ददौ देवेभ्य ईश्वरी ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ अस्मदर्थं त्वया रूपमनन्ताक्षिमयं धृतम् ॥ मुनयः कीर्तयिष्यन्ति
शताक्षीन्त्वामतोऽम्बिके ॥ ३४ ॥ आत्मदेहसमुद्भूतैः शाकैर्लोका भृता यतः ॥ शाकंभरीति विख्यातन्तत्ते नाम भविष्यति ॥ ३५ ॥
दुर्गमाख्यो महादैत्यो हतो यस्मात्ततः शिवे ॥ दुर्गां भगवतीं भद्रां व्याहरिष्यंति मानवाः ॥ ३६ ॥ योगनिद्रे नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु
महाबले ॥ नमो ज्ञानप्रदे तुभ्यं विश्वमात्रे नमो नमः ॥ ३७ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यैर्या बोध्यते परमेश्वरी ॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायि
कायै नमो नमः ॥ ३८ ॥ वाङ्मनःकायदुष्प्रापां सूर्यचन्द्राग्निलोचनाम् ॥ स्तोतुं न शक्नुमो मातस्त्वत्प्रभावाबुधा वयम् ॥ ३९ ॥
मादृशानमरान्दृष्ट्वा कः कुर्यादीदृशीन्दयाम् ॥ वर्जयित्वा सुरेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥ ४० ॥ त्रिलोकी नाभिभूयेत बाधाभिश्च
निरन्तरम् ॥ एवं कार्यस्त्वया यत्नोऽस्माकं वैरिविनाशनम् ॥ ४१ ॥

॥ ३६ ॥ हे योगनिद्रे ! हे महाबले ! हे ज्ञानकी देनेवाली ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है लोकोंकी मातारूप तुमको नमस्कार है ॥ ३७ ॥
जो आदि वाक्योंसे बोधन कीजाती हो वह परमेश्वरी तुम हो, अनंतकोटि ब्रह्माण्डनायका तुमको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे माता ! तेरे प्रभावको न
जाननेवाले हम वाणी मन देहसे दुष्प्राप्य सूर्य चन्द्रमा अग्निके समान नेत्रवाली तुमको स्तुति करनेको नहीं समर्थ होसकते ॥ ३९ ॥ हम सरीखे देवताओंको
देखके सुरेशानी शताक्षी माताको छोड और कौन ऐसी दयाको करसकता है ? ॥४०॥ तीनों लोक कभी वैरियोंकी बाधासे तिरस्कारको न पावैं इसप्रकार

हमारे शत्रुओंके नाश करनेमें तुमको यत्न करना चाहिये ॥ ४१ ॥ देवी बोली, जिस प्रकार बछडोंको देख गायें व्यग्र होके दौडतीहैं उसी प्रकार तुमको देखके मैं व्याकुल हो दौडती हूँ ॥ ४२ ॥ तुमको बालकोंके समान देखनेवाली तथा अपने प्राणोंको भी देनेवाली मुझे तुमको बिना देखे एक क्षण युगके समान बीतता है ॥ ४३ ॥ भक्तिके करनेवाले तुमको तुम्हारे दुःखोंको दूर करनेवाली मुझ देवीके स्थित होनेपर कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार पहले दैत्योंको मारा है उसी प्रकार अब दैत्योंको मारूँगी इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये मैं सत्यसत्य कहतीहूं ॥ ४५ ॥ जिस समय

देव्युवाच ॥ ॥ वत्सान्दृष्ट्वा यथा गावो व्यग्रा धावन्ति सत्वरम् ॥ तथैव भवतो दृष्ट्वा धावामि व्याकुला सती ॥ ४२ ॥ मम युष्मानपश्यन्त्या पश्यन्त्या बालकानिव ॥ अपि प्राणान्प्रयच्छन्त्याः क्षण एको युगायते ॥ ४३ ॥ कापि चिन्ता न कर्त्तव्या युष्माभिर्भक्तिशालिभिः ॥ भवत्यां मयि तिष्ठन्त्यां संहरन्त्यां निजापदः ॥ ४४ ॥ यथा पूर्वं हता दैत्या हनिष्यामि तथाऽसुरान् ॥ संशयो नात्र कर्त्तव्यस्सत्यंसत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ४५ ॥ यदा शुंभो निशुंभश्चापरौ दैत्यौ भविष्यतः ॥ तदाहं नन्दभार्यायां यशोदायां यशोमयी ॥ ॥ ४६ ॥ योनिजं रूपमास्थाय जनिष्ये गोपगोकुले ॥ हनिष्याम्यसुरौ तन्मां व्याहरिष्यन्ति नन्दजाम् ॥ ४७ ॥ भ्रामरं रूपमास्थाय वधिष्याम्यरुणं यतः ॥ भ्रामरीति च मां लोके कीर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ४८ ॥ कृत्वा भीमं पुना रूपं रक्षांस्यत्स्याम्यहं यदा ॥ भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ ४९ ॥ यदायदाऽसुरोत्थैवं बाधा भुवि भविष्यति ॥ तदातदावतीर्याहं शं करिष्याम्यसंशयम् ॥ ५० ॥ या शताक्षी स्मृता देवी सैव शाकंभरी मता ॥ सैव प्रकीर्तिता दुर्गा व्यक्तिरेकैव त्रिष्वपि ॥ ५१ ॥

शुम्भ और निशुम्भ दैत्य होंगे उस समय मैं नन्दकी भार्या यशोदाके रूपमें ॥ ४६ ॥ योनिजरूपको धार गोकुलमें गोपोंके यहां उत्पन्न होऊंगी और उन दोनों दैत्योंको मारूँगी इस कारण सब मुझे नन्दजा कहैंगे ॥ ४७ ॥ भ्रमररूपको धार अरुणको मारूँगी इस कारण लोकमें मनुष्य मुझे भ्रामरी कहैंगे ॥ ॥ ४८ ॥ फिर मैं भीमरूपको धारण करके राक्षसोंको भक्षण करूंगी इस कारण मेरा नाम भीमादेवी विख्यात होगा ॥ ४९ ॥ जब जब पृथ्वीपर दैत्योंकी बाधा होवैगी तब तब मैं अवतार लेके निस्सन्देह कल्याण करूंगी ॥ ५० ॥ जो देवी शताक्षी है वही शाकंभरी देवी कही है. वही दुर्गा तथा तीनों लोकोंमें

एक व्यक्ति कही है ॥ ५१ ॥ शताक्षीके समान पृथ्वीपर और कोई दयालु देवता नहीं है जिसने दुःखित तथा रोती हुई प्रजाको देखके सम्पूर्ण दुःखोंको शान्त किया ॥५२॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पं० उ० सं० शताक्ष्याद्यवतारवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ मुनि बोले, हे व्यासजीके शिष्य ! हे महाभाग ! हे पौराणिकोत्तम ! हे सूतजी ! हम शिवजीके और इतिहासको सुनना चाहतेहैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजीने महात्मा व्याससजीसे जो जगदम्बा पार्वतीजीका श्रेष्ठ क्रियायोग कहा है उसको सुनना चाहतेहैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले, तुम महात्मा धन्य हो तथा देवीकी भक्तिमें दृढव्रत हो, अब

न शताक्षीसमा काचिद्दयालुर्भुवि देवता ॥ दृष्ट्वाऽरुदत्प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी ॥ ५२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां शताक्ष्याद्यवतारवर्णनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ मुनय ऊचुः ॥ व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ॥ अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः ॥ १ ॥ उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम् ॥ प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः ॥ पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्यं शृणुतादरात् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते ॥ उमायाश्श्रोतुमिच्छामि क्रियायोगं महाद्भुतम् ॥ ४ ॥ कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत् ॥ प्रियं यच्च पराम्बायास्तदशेषं वदस्व मे ॥ ५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ द्वैपायन यदेतत्त्वं रहस्यं परिपृच्छसि ॥ तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं मे वर्णयिष्यतः ॥ ६ ॥ ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च ॥ त्रयो मार्गास्समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ॥ ७ ॥ ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः ॥ यस्तु बाह्यार्थसंयोगः क्रियायोगः स उच्यते ॥ ८ ॥

पराशक्तिके परमगुप्त रहस्यको आदरसे सुनो ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले, हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे महामते ! पार्वतीके अतिसुन्दर क्रियायोगको सुनना चाहता ॥ ४ ॥ उसका क्या लक्षण है ? तथा उसके करनेपर क्या फल होता है ? जो पराम्बाका अतिप्रिय है वह सब वर्णन करो ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी ! जो तुम रहस्यको पूंछते हो हे महाबुद्धे ! सो सब सुनो मैं वर्णन करताहूं ॥ ६ ॥ ज्ञानयोग क्रियायोग तथा भक्तियोग यह श्रीमाताके तीन मार्ग भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले कहेहैं ॥ ७ ॥ चित्तका आत्मासे जो संयोग होता है वह ज्ञानयोग कहाता है और जो बाहरके

अर्थोंका संयोग है वह क्रियायोग कहलाता है ॥ ८ ॥ देवी तथा आत्माका जो एक होजाना है वह भक्तियोग कहा गया है, वह तीनों योगोंको क्रिया योग कहलाता है ॥ ९ ॥ कर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे ज्ञान होता है, ज्ञानसे मुक्ति होती है ऐसा शास्त्रोंमें निश्चय है ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! योगही मुक्तिका प्रधान कारण है और क्रियायोग योगका परमध्येय साधन है ॥ ११ ॥ प्रकृतिको माया जानै, सनातन ब्रह्मको मायावी जानै, उन दोनोंके अभिन्न शरीरको जानके संसारबंधनसे मुक्त होजाता है ॥ १२ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य पाषाण तथा काष्ठका अथवा मृत्तिकासे देवीके मन्दिरको बनवाता है

भक्तियोगो मतो देव्या आत्मनश्चैक्यभावनम् ॥ त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगस्स उच्यते ॥ ९ ॥ कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या
ज्ञानं प्रजायते ॥ ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ १० ॥ प्रधानं कारणं योगो विमुक्तेर्मुनिसत्तम ॥ क्रियायोगस्तु योगस्य
परमन्ध्येयसाधनम् ॥ ११ ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायाविं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥ १२ ॥
यस्तु देव्यालयं कुर्यात्पाषाणन्दारवन्तथा ॥ मृन्मयं वाथ कालेय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ अहन्यहनि योगेन जयतो यन्महाफलम् ॥
॥ १३ ॥ प्राप्नोति तत्फलन्देव्या यः कारयति मन्दिरम् ॥ सहस्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्रकम् ॥ स तारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धाम
कारयन् ॥ १४ ॥ कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ श्रीमातुर्मन्दिरारम्भक्षणादेव प्रणश्यति ॥ १५ ॥ नदीषु च यथा
गंगा शोणः सर्वनदेषु च ॥ क्षमायां च यथा पृथ्वी गांभीर्य्ये च यथोदाधिः ॥ १६ ॥ ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्य्यो विशिष्यते ॥
तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराम्बा विशिष्ये ॥ १७ ॥

उसके पुण्यके फलको सुनो प्रतिदिन योगके यजन करनेसे जो महाफल प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ उस फलको वह प्राप्त करता है जो देवीके मन्दिरको बनवाता है. श्रीमाताके धामको बनवानेवाला धर्मात्मा अपने आगामी सहस्र कुलको तथा बीतेहुए सहस्रकुलको तारता है ॥ १४ ॥ थोडे अथवा बहुत कोटि जन्मके कियेहुए पाप श्रीमाताके मन्दिर बनवानेके प्रारम्भ करनेसेही नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गंगाजी और जैसे सब नदोंमें शोण तथा क्षमामें पृथ्वी और गम्भीरतामें जैसे समुद्र है ॥१६॥ जिस प्रकार सम्पूर्ण ग्रहोंमें सूर्य विशेष कहा है उसी प्रकार समस्त देवताओंमें पराम्बा अधिक कही है ॥१७॥

जो सब देवताओंमें मुख्य है ऐसी देवीके मन्दिरको जो बनवाता है वह जन्म जन्ममें प्रतिष्ठाको पाता है ॥ १८ ॥ वाराणसीमें कुरुक्षेत्रमें प्रयाग और पुष्करमें तथा गंगा समुद्रके तीरपर नैमिषारण्यमें अमरकण्टकमें ॥ १९ ॥ महापवित्र श्रीपर्वतमें गोकर्णमें तथा ज्ञानपर्वतमें मथुरामें अयोध्यामें द्वारावतीमें ॥ २० ॥ इत्यादि पवित्र स्थानोंमें अथवा जिस किसी स्थलमें भी हो माताका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य बन्धनसे मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ जितने वर्ष ईंटोंकी चुनाई रहती है उतने सहस्र वर्ष वह मणिद्वीपमें निवास करता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष सब लक्षणोंसे युक्त देवीजीकी प्रतिमाको बनवाता है वह

सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्याः कारयेद्गृहम् ॥ प्रतिष्ठां समवाप्नोति स च जन्मनिजन्मनि ॥ १८ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा ॥ गंगासमुद्रतीरे च नैमिषेऽमरकण्टके ॥ १९ ॥ श्रीपर्वते महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते ॥ मथुरायामयोध्यायां द्वारवत्यां तथैव च ॥ २० ॥ इत्यादिपुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ॥ कारयन्मातुरावासं मुक्तो भवति बन्धनात् ॥ २१ ॥ इष्टकानां तु विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति ॥ तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते ॥ २२ ॥ प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलक्षणलक्षिताः ॥ स उमायाः परं लोकं निर्भयो व्रजति ध्रुवम् ॥ २३ ॥ देवीमूर्तिं प्रतिष्ठाप्य शुभर्तुग्रहतारके ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः ॥ २४ ॥ ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पात्पुरुषाः कुले ॥ तांस्तांस्तारयते देव्या मूर्तिं संस्थाप्य शोभनाम् ॥ २५ ॥ त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद्भवेन्मुनिपुंगव ॥ तत्कोटिगुणितं पुण्यं श्रीदेवीस्थापनाद्भवेत् ॥ २६ ॥ मध्ये देवीं स्थापयित्वा पञ्चायतनदेवताः ॥ चतुर्दिक्षु स्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते ॥ २७ ॥

निर्भय हो पार्वतीके परमलोकको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ शुभ ऋतु और ग्रह तथा नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठित करके मनुष्य योगमायाके प्रसादसे कृतकृत्य होता है ॥ २४ ॥ उस कुलमें जो होंगे तथा जो मनुष्य कल्पसे लेके होचुकेहैं देवीके शोभन मूर्त्तिको स्थापन करके मनुष्य उन सबोंको तार देता है ॥ २५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोकीके स्थापन करनेसे जो पुण्य होता है उससे करोडगुणा पुण्य श्रीदेवीके स्थापन करनेसे होता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य मध्यमें देवीको स्थापन करके चारों दिशाओंमें पञ्चायतन (गणेश गौरी आदि) देवताओंको स्थापन करता है उसका पुण्य नहीं गिना जासकता है ॥२७॥

चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणमें विष्णुके कोटिनाम जपनेसे जो फल मिलता है उससे सौ कोटि गुण अधिक फल है ॥ २८ ॥ जो फल शिवनामके जपनेसे मिलताहै उससे करोड गुना अधिक फल श्रीदेवीके नाम जपनेसे मिलता है ॥ २९ ॥ देवीके प्रसाद बनानेसे भी पुण्य मिलता है जिसने तीनों देवमयी जगन्माता देवीको स्थापित किया ॥ ३० ॥ श्रीमाताकी कृपासे उसे कुछ दुर्लभ नहीं होता उसके पुत्र पौत्र आदि बढतेहैं और सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनसे भी उत्तम मूर्ति स्थापन करनेकी इच्छा करतेहैं वे भी मुनियोंसे दुर्लभ पार्वतीके लोकको जातेहैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष बनेहुए

विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तरम् ॥ २८ ॥ शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटिगुणोत्तरम् ॥ श्रीदेवीनामजापात्तु ततः कोटिगुणोत्तरम् ॥ २९ ॥ देव्याः प्रासादकरणात्पुण्यन्तु समवाप्यते ॥ स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रयीमयी ॥ ३० ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिच्छ्रीमातुः करुणावशात् ॥ वर्द्धंते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम् ॥ ३१ ॥ मनसा ये चिकीर्षंति मूर्तिंस्थापनमुत्तमम् ॥ तेत्युमायाः परं लोकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम् ॥ ३२ ॥ क्रियमाणन्तु यः प्रेक्ष्य चेतसा ह्यनुचिन्तयेत् ॥ कारयिष्याम्यहं यर्हि संपन्मे संभविष्यति ॥ ३३ ॥ एवन्तस्य कुलं सद्यो याति स्वर्गं न संशयः ॥ महामायाप्रभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रये ॥ ३४ ॥ श्रीपराम्बां जगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः ॥ ते मनुष्या न मन्तव्यास्साक्षाद्देवीगणाश्च ते ॥ ३५ ॥ ये व्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम् ॥ उमेति द्व्यक्षरं नाम ब्रुवते ते शिवागणाः ॥ ३६ ॥ नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम् ॥ पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥ ३७ ॥

मन्दिरको देखके अपने चित्तसे यह विचारता है कि, जब मेरे संपत्ति होजायगी तो मैं भी देवीके मन्दिरको बनवाऊंगा ॥ ३३ ॥ इसप्रकार शीघ्रही उसका कुल स्वर्गलोकको जाता है इसमें संशय नहीं और महामायाके प्रभावसे उसे तीनों लोकोंमें क्या ? दुर्लभ है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य जगत्की उत्पन्न करनेवाली श्रीपराम्बाका केवल आश्रय करतेहैं उनको मनुष्य नहीं मानना चाहिये किन्तु वे साक्षात् देवीके गणहैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य जागतेहुए सोतेहुए वा रात दिन स्थित होतेहुए भी उमा यह दो अक्षरके नामको उच्चारण करतेहैं वे शिवाके गण होतेहैं ॥ ३६ ॥ जो नित्यके तथा नैमित्तक कर्ममें पुष्पोंसे तथा

धूपसे और दीपकसे परा शिवा देवीको पूजतेहैं वे पार्वतीके स्थानको जातेहैं ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य नित्य देवीके मण्डपको गोबरसे अथवा मृत्तिकासे लीपते तथा मार्जन करतेहैं वे उमाके लोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ जिन्होंने देवी माताका रमणीक सुन्दर मन्दिर बनवायाहै ऐसे कुलीन मनुष्योंको माता अनेक आशीर्वाद देती है ॥ ३९ ॥ मुझसे प्रेम करनेवाले मनुष्य सौ वर्ष बिना आपत्तिके जीवैं इस प्रकार श्रीमाता रातदिन अशीश देतीहैं ॥ ४० ॥ जिसने महादेवी पार्वतीकी शुभमूर्त्ति बनवाई दश सहस्र वर्षपर्यन्त उसके कुलके मनुष्य मणिद्वीपमें निवास करतेहैं ॥ ४१ ॥ महामायाकी मूर्तिको स्थापन करके

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाथ वा ॥ उपलिंपन्ति मार्जन्ति ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ॥ ३८ ॥ यैर्देव्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम् ॥ तत्कुलीनाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति ॥ ३९ ॥ मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाग्जनाः ॥ नापदामयनानीत्थं श्रीमाता वक्त्यहर्निशम् ॥ ४० ॥ येन मूर्तिर्म्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा ॥ नरायुतन्तत्कुलजं मणिद्वीपे महीयते ॥ ४१ ॥ स्थापयित्वा महामायामूर्तिं सम्यक्प्रपूज्य च ॥ यंयं प्रार्थयते कामं तंतं प्राप्नोति साधकः ॥ ४२ ॥ यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूर्तिमुत्तमाम् ॥घृतेन मधुनाक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः ॥ ४३ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलैः ॥ एकवर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ॥ ४४ ॥ धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ॥ नीराजनं चरेद्देव्यास्साज्यकर्पूरवर्तिभिः ॥ ४५ ॥ कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वामायां वा पंचदिक्तिथौ ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं गंधपुष्पैर्विशेषतः ॥ ४६ ॥

भलीभाँति पूजके साधक जिस जिस मनोरथको करता है उस उसको निश्चय पाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य श्रीमाताकी उत्तम मूर्त्तिको स्थापन कर उसे घीसे अथवा शहद आदिसे स्नान कराता है उसके फलको कौन गिन सकता है? ॥ ४३ ॥ चन्दन, अगर, कपूर, जटामांसी, नागरमोथा आदिसे युक्त जलसे अथवा एकवर्णवाली गायोंके दूधसे परमेश्वरी देवीको स्नान करावै ॥ ४४ ॥ फिर अठारह वस्तु मिश्रित धूपसे उत्तम आहुति देवै और घी तथा कपूरकी बत्तियोंसे देवीकी आर्ती करै ॥ ४५ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीको तथा नवमीको वा अमावस्याको वा पंचदिक् (लोक) पालोंकी तिथिमें गंध, पुष्पोंसे जगत्की

धारण करनेवाली देवीको विशेष पूजै ॥ ४६ ॥ देवीसूक्तको अथवा श्रीसूक्तको पढकर अथवा देवीसूक्तको पढके अथवा मूलमंत्रको (नवार्ण) को पढके ॥ ४७ ॥ विष्णुक्रान्ता तथा तुलसीके पुष्पोंको छोडके संपूर्ण पुष्प देवीकी प्रीतिके करनेवाले हैं विशेष कर कमलोंको चढावै ॥ ४८ ॥ जो देवीको स्वर्णपुष्प अर्पण करता है अथवा चाँदीके पुष्प समर्पण करता है वह कोटि सिद्धोंके सहित परमधामको जाता है ॥ ४९ ॥ पूजनकी समाप्तिमें दासोंको सदा पाप क्षमापन करना उचित है कि, हे परमेशानि ! हे जगदानन्ददायिनि ! प्रसन्न हो ॥ ५० ॥ मंत्र पढनेवाला इन वाक्योंसे स्तुति कर देवीकी

संपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथ वा पठन् ॥ देवीसूक्तमथो वापि मूलमन्त्रमथापि वा ॥ ४७ ॥ विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाखिलं सुमम् ॥ देवीप्रीतिकरं ज्ञेयं कमलन्तु विशेषतः ॥ ४८ ॥ अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा ॥ स याति परमं धाम सिद्धकोटिभिरन्वितम् ॥ ४९ ॥ पूजनान्ते सदा कार्यं दासैरेनःक्षमापनम् ॥ प्रसीद परमेशानि जगदानन्ददायिनि ॥५०॥ इति वाक्यैस्स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः ॥ ध्यायेत्कण्ठीरवारूढां वरदाभयपाणिकाम् ॥ ५१ ॥ इत्थं ध्यात्वा महेशानीं भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ॥ नानाफलानि पक्कानि नैवेद्यत्वे प्रकल्पयेत् ॥ ५२ ॥ नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः ॥ स निर्धूयाखिलं पङ्कं निर्मलो मानवो भवेत् ॥ ५३ ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां यो भवानीव्रतं चरेत् ॥ भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥ ५४ ॥ अस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीमुमां शंकरसंयुताम् ॥ ५५ ॥

भक्तिमें तत्पर हो मयूरपर आरूढ हुई वरदेनेवाली अभय करनेवाली देवीका ध्यान करै ॥५१॥ इस प्रकार भक्तोंके इच्छित फलोंको देनेवाली महेशानीको ध्यान करके अनेक प्रकारके पकेहुए फलोंको तथा नैवेद्यको अर्पण करै ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य परमात्मा शम्भुशक्तिकी नैवेद्यको भक्षण करता है वह सम्पूर्ण पापरूपी कीचडको धोके निर्मलचित्त होजाता है ॥ ५३ ॥ जो पुरुष चैत्रशुक्ला तृतीयाको भवानीके व्रतको करता है वह संसारके बंधनसे छूटके परमपदको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ और पूर्वोक्त तृतीयाको निपुण दोलोत्सव करै और जगतकी धारण करनेवाली शिवसमेत पार्वतीको पूजै ॥ ५५ ॥

ॐ 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' यह मंत्र है।

पुष्पोंसे, कुंकुमसे, वस्त्रोंसे, तथा कर्पूर, अगर, चन्दनसे, धूप, दीप, नैवद्यसे, तथा और भी सुन्दर गंधोंसे पूजन करै ॥ ५६ ॥ तत्पश्चात् महामाया महेश्वरी श्रीगौरी शिवजीसे युक्त सब कल्याणोंकी करनेवाली देवीको आन्दोलन करै ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य इस तिथिमें प्रतिवर्ष नियमसे व्रत तथा आन्दोलन करता है पार्वतीजी उसे सब अभीष्ट देती हैं ॥ ५८ ॥ वैशाखके शुक्लपक्षमें जो अक्षय तृतीया होती है उस दिन जो आलस्यरहित हो जगदम्बाके व्रतको करता है ॥ ५९ ॥ मल्लिका, मालती, चम्पा, जपा, बन्धूक, कमलोंसे तथा पुष्पोंसे शिवके समेत पार्वतीको पूजता है ॥ ६० ॥ वह करोडजन्मके कियेहुए मन वाणी देहसे उत्पन्नहुए पापोंको दूर करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों अक्षय वर्गोंको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाको महेश्वरीके व्रतको करके परमप्रीतिसे देवीको पूजता है उसको कुछ असाध्य नहीं रहता ॥ ६२ ॥ आषाढके शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन देवीके अतिप्रिय रथोत्सवको अपने वित्तके अनुसार करै ॥ ६३ ॥ पृथ्वीको रथ जानै और चन्द्रमा सूर्यको रथांग (पहिये) जानै वेदोंको घोडे तथा ब्रह्माजीको सारथी जानै ॥ ६४ ॥ अनेकमणिगणोंसे व्याप्त पुष्पमालासे विराजित हुए रथको इस प्रकार कल्पना करके इसमें पार्वतीजीको स्थापित करै ॥ ६५ ॥

कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ धूपैर्दीपैस्सनैवेद्यैः स्रग्गन्धैरपरैरपि ॥ ५६ ॥ आन्दोलयेत्ततो देवीं महामायां महेश्वरीम् ॥ श्रीगौरीं शिवसंयुक्तां सर्वकल्याणकारिणीम् ॥ ५७ ॥ प्रत्यब्दं कुरुते योस्यां व्रतमान्दोलनं तथा ॥ नियमेन शिवा तस्मै सर्वमिष्टं प्रयच्छति ॥ ५८ ॥ माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याऽक्षयाभिधा ॥ तस्यां यो जगदम्बाया व्रतं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ५९ ॥ मल्लिकामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ॥ कुसुमैः पूजयेद्गौरीं शंकरेण समन्विताम् ॥ ६० ॥ कोटिजन्मकृतं पापं मनोवाक्कायसम्भवम् ॥ निर्धूय चतुरो वर्गानक्षयानिह सोऽश्नुते ॥ ६१ ॥ ज्येष्ठे शुक्लतृतीयायां व्रतं कृत्वा महेश्वरीम् ॥ योऽर्चयेत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ॥ ॥ ६२ ॥ आषाढशुक्लपक्षीयतृतीयायां रथोत्सवम् ॥ देव्याः प्रियतमं कुर्य्याद्यथावित्तानुसारतः ॥ ६३ ॥ रथं पृथ्वीं विजानीयाद्रथांगे चन्द्रभास्करौ ॥ वेदानश्वान्विजानीयात्सारथिं पद्मसंभवम् ॥ ६४ ॥ नानामणिगणाकीर्णं पुष्पमालाविराजितम् ॥ एवं रथं कल्पयित्वा तस्मिन्त्संस्थापयेच्छिवाम् ॥ ६५ ॥

लोकोंकी रक्षा करनेको तथा लोकोंके देखनेको पराम्बिका देवी रथके मध्यमें स्थित हुई है बुद्धिमान् पुरुष ऐसी भावना करै ॥ ६६ ॥ रथके धीरे धीरे चलनेपर जय ! जय !! शब्द उच्चारण करै हे देवि ! हे दीनवत्सले ! हम शरणागत जनोंकी रक्षा करो ॥ ६७ ॥ इस प्रकार वाक्योंसे तथा अनेकबाजोंके शब्दोंसे भगवतीको सन्तुष्ट करै और रथको सीमाके अन्ततक ले जाके वहां रथको पूजै ॥ ६८ ॥ फिर अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन देवीको अपने घरलावै और सैकडों प्रणाम करके जगदम्बिकाकी प्रार्थना करै ॥ ६९ ॥ जो विद्वान् इस प्रकार पूजन, व्रत, रथोत्सवको करता है वह इस लोकमें सम्पूर्ण

लोकसंरक्षणार्थाय लोकं द्रष्टुं पराम्बिका ॥ रथमध्ये संस्थितेति भावयेन्मतिमान्नरः ॥ ६६ ॥ रथे प्रचलिते मन्दं जयशब्दमुदीरयेत् ॥ पाहि देवि जनानस्मान्प्रपन्नान्दीनवत्सले ॥ ६७ ॥ इति वाक्यैस्तोषयेच्च नानावादित्रनिस्वनैः ॥ सीमान्ते तु रथं नीत्वा तत्र संपूजयेद्रथे ॥ ६८ ॥ नानास्तोत्रैस्ततः स्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववेश्मनि ॥ प्रणिपातशतं कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम् ॥ ६९ ॥ एवं यः कुरुते विद्वान्पूजाव्रतरथोत्सवम् ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्सोन्ते देवीपदं व्रजेत् ॥ ७० ॥ शुक्लायान्तु तृतीयायामेवं श्रावणभाद्रयोः ॥ यो व्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ॥ ७१ ॥ मोदते पुत्रपौत्राद्यैर्धनाद्यैरिह सन्ततम् ॥ सोऽन्ते गच्छेदुमालोकं सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ ७२ ॥ आश्विने धवले पक्षे नवरात्रव्रतं चरेत् ॥ यत्कृते सकलाः कामास्सिद्ध्यन्त्येव न संशयः ॥ ७३ ॥ नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावं वक्तुमीश्वरः ॥ चतुरास्यो न पंचास्यो न षडास्यो न कोऽपरः ॥ ७४ ॥ नवरात्रव्रतं कृत्वा भूपालो विरथात्मजः ॥ हृतं राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः ॥ ७५ ॥

भोगोंको भोगके अन्तमें देवीके पदको पाता है ॥ ७० ॥ और इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपदकी शुक्ला तृतीयाको जो माताका व्रत और विधिपूर्वक पूजन करता है ॥ ७१ ॥ वह पुत्र पौत्र आदिसे तथा धन आदिसे सदा आनन्द करताहै और अन्तमें सब लोकोंके ऊपर स्थितहुए उमालोकको जाता है ॥ ७२ ॥ आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रिके व्रतको करना चाहिये जिसके करनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होतेहैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ७३ ॥ नवरात्रिव्रतके प्रभाव वर्णन करनेको न ब्रह्मा न पंचानन (शिव) तथा न स्वामिकार्त्तिक न और कोई देवता समर्थ हैं ॥ ७४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! नवरात्रिके व्रतको करके विरथके

पुत्र राजा सुरथने अपने हरण कियेहुए राज्यको पाया ॥ ७५ ॥ और इसीके प्रभावसे बुद्धिमान् ध्रुवसन्धिके पुत्र अयोध्याके स्वामीराजा सुदर्शनने भी छिनेहुए राज्यको पाया ॥ ७६ ॥ और इस श्रेष्ठ व्रतको करके महेश्वरीकी आराधना कर संसारबन्धनसे मुक्त हो वह समाधि वैश्य मुक्तिका भागी हुआ ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य तृतीया तथा पंचमी में तथा सप्तमी वा अष्टमीको नवमी अथवा चतुर्दशीको देवीका पूजन करता है ॥ ७८ ॥ और आश्विनके शुक्लपक्षमें विधानसे व्रत करता है उसकी सब मनोकामना देवी भगवती नित्य पूर्ण करती है ॥ ७९ ॥ जो कार्त्तिकके वा मार्गशीर्षके पौषके वैशाखके

ध्रुवसंधिसुतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः ॥ सुदर्शनो हृतं राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः ॥ ७६ ॥ व्रतराजमिमं कृत्वा समाराध्य महेश्वरीम् ॥ संसारबन्धनान्मुक्तः समाधिर्मुक्तिभागभूत् ॥ ७७ ॥ तृतीयायां च पञ्चम्यां सप्तम्यामष्टमीतिथौ ॥ नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ॥ ७८ ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः ॥ तस्य सर्वं मनोभीष्टं पूरयत्यनिशं शिवा॥ ७९ ॥ यः कार्तिकस्य मार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा ॥ तपस्यस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् ॥ ८० ॥ लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैर्धूपैस्सुगन्धितैः ॥ पूजयेन्मङ्गलान्देवीं स सर्वं मंगलं लभेत् ॥ ८१ ॥ सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्य्यमेतन्महाव्रतम् ॥ विद्याधनसुताप्त्यर्थं विधेयं पुरुषैरपि ॥ ८२ ॥ उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यन्यानि यान्यपि ॥ देवीप्रियाणि कार्याणि स्वभक्त्यैवं मुमुक्षुभिः ॥ ८३ ॥ संहितेयं महापुण्या शिवभक्तिविवर्द्धिनी ॥ नानाख्यानसमायुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदा शिवा ॥ ८४ ॥ य एनां शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ८५ ॥

कृष्णपक्षकी तृतीयाको व्रत करता है ॥ ८० ॥ और लोहित करवीर आदिके पुष्पोंसे पुष्प, धूप, सुगंधोंसे मंगलादेवीको पूजता है वह सम्पूर्ण मंगलको पाता है ॥ ८१ ॥ यह महाव्रत सौभाग्यकी प्राप्तिके निमित्त सदा स्त्रियोंको करना चाहिये और विद्या, धन, पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये मनुष्योंको भी करना चाहिये ॥ ८२ ॥ इसी प्रकार औरभी उमा महेश्वर आदि व्रत भी जो देवीको प्रियहैं वे भी मुक्ति चाहनेवालोंको भक्तिसे करने चाहिये ॥ ८३ ॥ यह शिवभक्तिकी बढानेवाली अनेक इतिहासोंसे पूर्ण भोग्य और मोक्षोंको देनेवाली महापुण्यदायक संहिता है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य इस संहिताको

भक्तिसे सुनता है अथवा सुनाता है, पढता है वा पढाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ जिसके घरमें यह सुन्दर अक्षरोंसे लिखीहुई संहिता स्थित हो और विधिपूर्वक पूजित होती है वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है ॥ ८६ ॥ और उसे भूत, प्रेत, पिशाच, आदि दुष्टोंसे कुछ भी भय नहीं होता. पुत्र, पौत्र आदि संपत्ति विस्तृत होती है इसमें कुछ संशय नहीं ॥८७॥ इस कारण शिवभक्तिके चाहनेवालोंको यह महापुण्य मनोहर “उमासंहिता”

यस्य गेहे स्थिता चेयं लिखिता ललिताक्षरैः ॥ संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स आप्नुयात् ॥ ८६ ॥ भूतप्रेतपिशाचादिदुष्टेभ्यो न भयं क्वचित् ॥ पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिं लभत्येव न संशयः ॥ ८७ ॥ तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा ॥ श्रोतव्या पठितव्या च शिवभक्तिमभीप्सुभिः ॥ ८८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां क्रियायोगनिरूपणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ समाप्तेयं पञ्चम्युमासंहिता ॥

नित्य सुननी चाहिये और पढनी चाहिये॥ ८८ ॥इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां पंचम्यामुमासंहितायां क्रियायोगनिरूपणं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१ ॥

दोहा—श्रीशंकरके पदकमल, प्रेम सहित मनलाय ॥ उमासंहिताको तिलक, भाषा लिखों बनाय ॥ १ ॥
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद ॥ भजन करत हरिको तहाँ, बुध ज्वालापरसाद ॥ २ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास, “श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-यन्त्रालय-बंबई.

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायुते पञ्चम्युमासंहिता समाप्ता ॥

अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० षष्ठी कैलाससंहिता प्रारभ्यते।

शिव महा पुराण कैलास संहिता ६

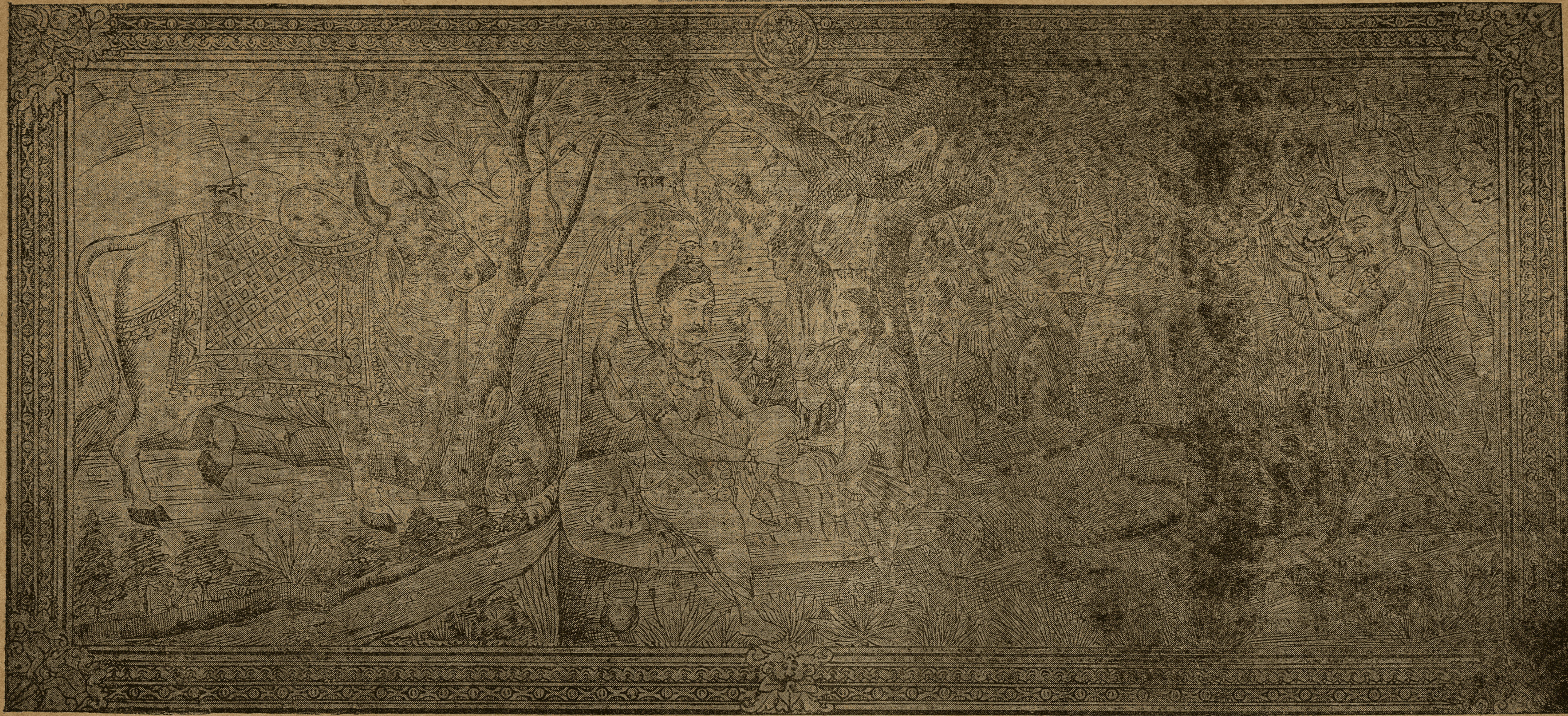

दोहा–शुद्ध सच्चिदानन्दमय, निर्गुण सगुण स्वरूप । सो ज्वालापरसादपर, कृपा करहु सुरभूप ॥ १ ॥
सुमिरि भवानी शंकरहि, गणपति शारद ध्याय । छठी संहिताकी सुभग, भाषा लिखत बनाय ॥ २ ॥

मंगलके देनेहारे विशुद्धस्वरूप आदिमाया शक्तिसहित पार्षद गजानन और स्कन्द सहित प्रकृतिपुरुषके ईश सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लयके कारण शिवको नमस्कारहै ॥ १ ॥ ऋषि बोले, हमने परम मनोहर अनेक आख्यानोंसे युक्त ‘उमासंहिता’ सुनी अब आप शिवतत्त्वकी बढानेवाली “कैलाससंहिता” कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले, हे पुत्र ! प्रेमसे तुम कैलाससंहिताको सुनो तुम्हारे स्नेहसे मैं परमदिव्य शिवतत्त्वकी बढानेवाली कथा कहताहूं ॥ ३ ॥ एक समय हिमालयपर्वतपर स्थित हो तप करतेहुए मुनियोंने काशीपुरीमें जानेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ उस पर्वतसे चलकर वे मुनि काशीमें प्राप्त हुए और स्नान करनेकी इच्छासे मणिकर्णिकाको आकर देखा ॥ ५ ॥ वहां स्नानकर देवता और गंगाजीको तर्पण कर वे मुनि देवेश्वर विश्वेश्वरके दर्शनको गये ॥ ६ ॥ वहां पहुँचकर परमभक्तिसे उन्होंने शिवजीको नमस्कार किया और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे उन वेदपारगामी ऋषियोंने शिवजीकी स्तुति की ॥ ७ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमः शिवाय ॥ अथ षष्ठी कैलाससंहिता प्रारभ्यते ॥ नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे ॥ प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ श्रुतोमासंहिता रम्या नानाख्यानसमन्विता ॥ कैलाससंहिताम्ब्रूहि शिवतत्त्वविवर्द्धिनीम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ ॥ शृणुत प्रीतितो वत्साः कैलासाख्यां हि संहिताम् ॥ शिवतत्त्वपरान्दिव्यां वक्ष्ये वः स्नेहतः पराम् ॥ ३ ॥ हिमवच्छिखरे पूर्व्वं तपस्यन्तो महौजसः ॥ वाराणसीङ्गन्तुकामा मुनयः कृतसाम्विदः ॥ ४ ॥ निर्गत्य तस्मात्सम्प्राप्य गिरेः काशीं समाहिताः ॥ स्नातव्यमेवेति तदा ददृशुर्मणिकर्णिकाम् ॥ ५ ॥ तत्र स्नात्वा सुसन्तर्प्य देवादीनथ जाह्नवीम् ॥ दृष्ट्वा स्नात्वा मुनीशास्ते विश्वेशं त्रिदशेश्वरम् ॥ ६ ॥ नमस्कृत्याथ सम्पूज्य भक्त्या परमयान्विताः ॥ शतरुद्रादिभिः स्तुत्वा स्तुतिभिर्व्वेदपारगाः ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन्होंने अपनी आत्माको कृतार्थ माना, शिवभक्तिमें तत्परहुए पूर्ण अर्थवाले शिवमें मन लगाय स्थितहुए ॥ ८ ॥ उसी समय पंचक्रोशीके देखनेकी इच्छासे सूतजीको आएहुए देखकर प्रसन्न हो ऋषियोंने उनको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ वह सूतजी भी साक्षात् विश्वेश्वर देव २ उमापतिको नमस्कार कर उन ऋषियोंसहित मुक्तिमण्डपमें आये ॥ १० ॥ जब वहां सूतजी बैठे तब उन महात्मा श्रेष्ठ पुराण जाननेवाले सूतजीका अर्घ्यादिसे सब मुनीश्वर पूजन करनेलगे ॥ ११ ॥ तब सूतजीने प्रसन्नतासे उन मुनियोंकी ओर देखा जो सुन्दर व्रतसे युक्त थे उनसे कुशल पूँछी, तब उन्होंने अपनी

आत्मानं मेनिरे सर्वे कृतार्था वयमित्युत ॥ शिवप्रीत्या सुपूर्णार्थाश्शिवभक्तिरतास्सदा ॥ ८ ॥ तस्मिन्नवसरे सूतं पञ्चक्रोशदिदृक्षया ॥ गत्वा समागतं वीक्ष्य मुदा ते तं ववन्दिरे ॥ ९ ॥ सोपि विश्वेश्वरं साक्षाद्देवदेवमुमापतिम् ॥ नमस्कृत्याथ तैस्साकम्मुक्तिमण्डपमाविशत् ॥ १० ॥ तत्रासीनम्महात्मानं सूतम्पौराणिकोत्तमम् ॥ अर्घ्यादिभिस्तदा सर्व्वे मुनयस्समुपाचरन् ॥ ११ ॥ ततः सूतः प्रसन्नात्मा मुनीनालोक्य सुव्रतान् ॥ पप्रच्छ कुशलन्तेपि प्रोचुः कुशलमात्मनः ॥ १२ ॥ ते तु संहृष्टहृदयं ज्ञात्वा तं वै मुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थाव गत्यर्थमूचुः प्रास्ताविकं वचः ॥ १३ ॥ मनुय ऊचुः ॥ व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ॥ धन्यस्त्वं शिवभक्तो हि सर्वविज्ञान सागरः ॥ १४ ॥ भवन्तमेव भगवान्व्यासस्सर्वजगद्गुरुः ॥ अभिषिच्य पुराणानां गुरुत्वे समयोजयत् ॥ १५ ॥ तस्मात्पौराणिकी विद्या भवतो हृदि संस्थिता ॥ पुराणानि च सर्वाणि वेदार्थम्प्रवदन्ति हि ॥ १६ ॥ वेदाः प्रणवसम्भूताः प्रणवार्थो महेश्वरः ॥ अतो महेश्वरस्थानं त्वयि धिष्ण्यम्प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ त्वन्मुखाब्जपारिस्यन्दन्मकरंदेमनोहरम् ॥ प्रणवार्थामृतं पीत्वा भविष्यामो गतज्वराः ॥ १८ ॥

कुशल उनसे सुनाई ॥ १२ ॥ वे सब मुनीश्वर सूतजीको देखकर प्रसन्न हुए और प्रणवके अर्थ जाननेवाले प्रस्तावनाके वचन बोले ॥ १३ ॥ मुनि बोले, हे महाभाग ! व्यासशिष्य ! हे पुराण जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम धन्यहो शिवके भक्तहो सब विज्ञानके समुद्र हो ॥ १४ ॥ तुमको सबके गुरु भगवान् व्यासजीने पुराणोंमें अभिषेककर पुराणज्ञाता गुरु करदिया है ॥ १५ ॥ इसप्रकार पौराणिकी कथा तुम्हारे हृदयमें स्थित है और सम्पूर्ण पुराण वेदार्थकोही कथन करते हैं ॥ १६ ॥ वेद ओंकारसे है और ओंकाररूप शिवसेहै इस कारण महेश्वरका स्थान तुमसे प्रतिष्ठित है ॥ १७ ॥ तुम्हारे मुखकमलसे निकला हुआ

कथारूपी मनोहर मकरन्द अपूर्व अमृत है उसे पानकर हम ज्वररहित होजायँगे ॥ १८ ॥ विशेषकर तुम्हारे सिवाय हमारा कोई गुरु नहीं है आप कृपा कर महेश्वरका परमज्ञान कहो ॥ १९ ॥ यह उनके वचन सुन व्यासजीके प्रिय सूतजी गणेशजी, स्वामिकार्त्तिक, पार्वती, महेश ॥ २० ॥ शिलादतनय देव नन्दीश सुयशाके पति सनत्कुमार आदि व्यासजीको प्रणाम करके बोले ॥ २१ ॥ सूतजी बोले, हे पापरहित मुनियो ! तुम भाग्यशाली और धन्य हो जो तुम्हारी ऐसी दृढमति है यह दुष्कर्मचारियोंकी नहीं होती ॥ २२ ॥ हमारे गुरु व्यासजीने नैमिषारण्यवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया है सो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २३ ॥ आप जिसके सुननेसे मनुष्योंकी शिवमें भक्ति होती है सावधान हो प्रसन्नतासे सुनो ॥ २४ ॥ स्वारोचिष मन्वन्तरके अन्तमें दृढव्रत तपस्या करनेवाले ऋषि सर्व सिद्धिके दाता नैमिषारण्यमें ॥ २५ ॥ यज्ञपति रुद्रका सहस्र वार्षिक यज्ञ करनेलगे और ऐश्वर्य जाननेकी इच्छासे परमभावसे प्रणाम करतेहुए ॥ २६ ॥ व्यासजीके दर्शनकी इच्छासे वे सब उस स्थानमें रहने लगे और शिवभक्तिमें तत्पर हो भस्म रुद्राक्ष नित्य धारण किया ॥ ॥ २७ ॥ भगवान् व्यासजी उनकी प्रीतिभावको देख वह नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए साक्षात् सब जगत्के गुरु पराशर ऋषिके तपके फल सर्वात्मा

विशेषतो गुरुस्त्वं हि नान्योऽस्माकं महामते ॥ परं भावं महेशस्य परया कृपया वद ॥ १९ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो व्यासप्रियस्सुधीः ॥ गणेशं षण्मुखं साक्षान्महेशानं महेश्वरीम् ॥ २० ॥ शिलादतनयं देवं नन्दीशं सुयशापतिम् ॥ सनत्कुमारं व्यासं च प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ साधुसाधु महाभागा मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा सापि दुष्कृताम् ॥ २२ ॥ पाराशर्येण गुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ॥ मुनीनामुपदिष्टं यद्वक्ष्ये तन्मुनिपुंगवाः ॥ २३ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ सावधाना भवन्तोद्य शृण्वन्तु परया मुदा ॥ २४ ॥ स्वारोचिषेन्तरे पूर्वं तपस्यंतो दृढव्रताः ॥ ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते ॥ २५ ॥ दीर्घसत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम् ॥ प्रीणयन्तः परं भावमैश्वर्यं ज्ञातुमिच्छवः ॥ २६ ॥ निवसन्ति स्म ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः ॥ शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणः ॥ २७ ॥ तेषां भावं समालोक्य भगवान्बादरायणः ॥ प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पराशरतपःफलम् ॥ २८ ॥

प्रगटहुए ॥ २८ ॥ उनको देखकर सब मुनियोंके मन और नेत्र प्रसन्न होगये और अगौनी आदि करके सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन किया ॥ २९ ॥ और व्यासजीके निमित्त सोनेका आसन दिया, जिस समय वह उस सोनेके विष्टरमें सुखपूर्वक बैठगये तब महामुनि व्यासजीने गंभीरवाणीसे उनसे कहा ॥ ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले, तुम्हारे इस यज्ञमें कुशल है ? क्या तुमने यज्ञपतिका सम्यक्प्रकारसे पूजन किया है ? ॥ ३१ ॥ तुमने इस यज्ञमें परमेश्वरको किस निमित्त भक्तिभावसे पूजा है जो पार्वती सहित संसारभयके छुटानेहारे हैं ॥ ३२ ॥ तुम्हारी प्रवृत्ति शुश्रूषा पूर्वहीसे मुझको विदित होती है जो मुक्तिके निमित्त परमभावसे शिवका आराधन किया है ॥ ३३ ॥ जिस समय महातेजस्वी व्यासजीने ऐसा कहा तब नैमिषारण्यवासी महापराक्रमी ऋषि ॥ ३४ ॥ उन महातेजस्वी पराशरके पुत्र शिवके प्रेममें तत्पर व्यासजी महात्माको प्रणाम करके बोले ॥ ३५ ॥ ऋषि बोले, हे भगवन् ! हे मुनिशार्दूल ! हे नारायणके अंशसे उत्पन्न ! हे कृपासागर ! हे महाप्राज्ञ सब विद्याके अधिपति ! हे प्रभो ! ॥ ३६ ॥ तुम सब जगत्के स्वामी महादेव सृष्टिकर्ताके माया शक्ति और गणोंके सहित प्रसादके सागर हो ॥ ३७ ॥ तुम्हारे चरणकमलके मकरन्दके स्वादमें भ्रमररूप मतवाले आपके चरणकमलके दर्शन करनेसे हम कृतकृत्य

तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रहृष्टवदनेक्षणाः ॥ अभ्युत्थानादिभिस्सर्वैरुपचारैरुपाचरन् ॥ २९ ॥ सत्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शुभम् ॥
सुखोपविष्टः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे ॥ प्राह गंभीरया वाचा पाराशर्य्यो महामुनिः ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ कुशलं किं नु युष्मा
कम्प्रब्रूतास्मिन्महामखे ॥ अर्चितः किं नु युष्माभिस्सम्यगध्वरनायकः ॥ ३१ ॥ किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः ॥ स्वर्चितो
भक्तिभावेन साम्बस्संसारमोचकः ॥३२॥ युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भाति शुश्रूषापूर्वमेव हि ॥ परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोश्शिवस्य च ॥ ३३ ॥
एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यासेनामिततेजसा ॥ मुनयो नैमिषारण्यवासिनः परमौजसः ॥ ३४ ॥ प्रणिपत्य महात्मानं पाराशर्य्यं महा
मुनिम् ॥ शिवानुरागसंहृष्टमानसं च तमब्रुवन् ॥ ३५ ॥ मुनय ऊचुः ॥ ॥ भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज ॥ कृपानिधे
महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो ॥ ३६ ॥ त्वं हि सर्वजगद्भर्तुर्महा देवस्य वेधसः ॥ साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधिस्स्वयम् ॥
॥ ३७ ॥ त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ॥ कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात् ॥ ३८ ॥

होगये हैं ॥ ३८ ॥ तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन पापियोंको दुर्लभ है हम आज उसे प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! इस नैमिषारण्य महाक्षेत्रमें ओंकारके अर्थ प्रकाश करनेहारे दीर्घयज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ ४० ॥ परमेश्वरको सुनना जानना चाहिये ऐसा निश्चय करके परस्पर महेश्वरका परमभाव विचारते हैं ॥ ४१ ॥ हे प्रभो ! परन्तु हम उसको नहीं जानते, इस कारण आपकी शरण हुए हैं आप हम अल्पबुद्धिवाले सबके मनके सन्देह दूर करनेको योग्य हो ॥ ४२ ॥ तुम्हारे सिवाय त्रिलोकीमें इस सन्देहका दूर करनेवाला कोई नहीं हैं आप इस कारण अपार भ्रमके सागरमें डूबतेहुए हमको

त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम् ॥ दुर्लभं लब्धमस्माभिस्त्वस्मात्सुकृतिनो वयम् ॥ ३९ ॥ अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसंज्ञके ॥ दीर्घसत्रान्वितास्सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः ॥ ४० ॥ श्रोतव्यः परमेशान इति कृत्वा विनिश्चिताः ॥ परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितुः ॥ ४१ ॥ अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद्भवान्प्रभो ॥ छेत्तुमर्हति तान्सर्वान्संशयानल्पचेतसाम् ॥ ४२ ॥ त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता न हि जगत्त्रये ॥ तस्मादपारगंभीरव्यामोहाब्धौ निमज्जतः ॥ ४३ ॥ तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे ॥ शिवसद्भक्तितत्त्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम् ॥ ४४ ॥ एवमभ्यर्थितस्तत्र मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ सर्ववेदार्थविन्मुख्यः शुकतातो महामुनिः ॥ वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणवं परमेश्वरम् ॥ ४५ ॥ ध्यात्वा हृत्कर्णिकामध्ये साम्बं संसारमोचकम् ॥ प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्याजहार महा ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां व्यासशौनकादिसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमैः ॥ दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ १ ॥

॥ ४३ ॥ हे दयानिधे ! आप शिवज्ञानरूपी नौकासे तार दीजिये, शिवभक्तिके तत्त्व जाननेकी हमको श्रद्धा है ॥ ४४ ॥ जब उन वेदके जाननेवालोंने इस प्रकार व्यासजीकी प्रार्थना की तब सम्पूर्ण वेदार्थके जाननेवालोंमें मुख्य शुकदेवजीके तात महामुनि व्यासजी वेदान्तके सार सर्वस्व ओंकाररूप परमेश्वर ॥४५॥ संसारके छुटानेहारेको पार्वतीसहित हृदयकमलमें ध्यान करके प्रसन्न मन हो वह तपोनिधि कहने लगे ॥४६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजी बोले, हे महाभाग्यवान् ब्राह्मणो ! आपने बहुत अच्छी वार्त्ता पूँछी, प्रणव अर्थका प्रकाश करनेहारा

शिवका ज्ञान बडा दुर्लभ है ॥ १ ॥ जिनके ऊपर त्रिशूलधारी भगवान् प्रसन्न होजाते हैं उन्हींको प्रणवके अर्थका प्रकाशक शिवज्ञान ॥ २ ॥ प्राप्त होता
है, इसमें सन्देह नहीं शिवभक्तिसे हीनोंको नहीं होता ऐसी श्रुति है यह निश्चय है ॥ ३ ॥ तुमने दीर्घयोगसे भगवान् अम्बिकापतिकी उपासना की है यह
मैंने निश्चय देख लिया ॥ ४ ॥ इस कारण मैं तुमसे पुरातन इतिहास कहता हूँ हे आस्तिको ! यह परमपवित्र उमामहेशका सम्वाद है ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें
जगन्माता सती दाक्षायणीने पिताके यज्ञमें अपने शरीरको शिवकी निन्दा सुनकर त्यागन किया ॥ ६ ॥ और हिमालयके यहां तपके प्रभावसे जन्म लिया

येषां प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरायुधः ॥ तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ २ ॥ जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः ॥
शिवभक्तिविहीनानामिति तत्त्वार्थनिश्चयः ॥ ३ ॥ दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिकापतिः ॥ उपासित इतीदं मे दृष्टमद्य विनिश्चि
तम् ॥ ४ ॥ तस्माद्वक्ष्यामि युष्माकमितिहासम्पुरातनम् ॥ उमामहेशसम्वादरूपमद्भुतमास्तिकाः ॥ ५ ॥ पुराखिलजगन्माता सती
दाक्षायणी तनुम् ॥ शिवनिन्दाप्रसङ्गेन त्यक्त्वा च जनकाध्वरे ॥ ६ ॥ तपःप्रभावात्सा देवी सुताऽभूद्धिमवद्गिरेः ॥ शिवार्थमतपत्सा
वै नारदस्योपदेशतः ॥ ७ ॥ तस्मिन्भूधरवर्य्ये तु स्वयंवरविधानतः ॥ देवेशे च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा ॥ ८ ॥ तथैकस्मिन्मह
देवी समये पतिना सह ॥ सूपविष्टा महाशैले गौरी देवमभाषत ॥ ९ ॥ महादेव्युवाच ॥ भगवन्परमेशान पञ्चकृत्यविधायक ॥ सर्वज्ञ
भक्तिसुलभ परमामृतविग्रह ॥ १० ॥ दाक्षायणीन्तनुं त्यक्त्वा तव निन्दाप्रसंगतः ॥ आसमद्य महेशान पुत्री हिमवतो गिरेः ॥ ११ ॥

और नारदके उपदेशसे शिवके निमित्त तप किया ॥ ७ ॥ उन हिमालयने स्वयम्वरके विधानसे शिवजीको व्याह दिया विवाहके उपरान्त देवी देवने महासुख
पाया ॥ ८ ॥ एक समय महादेवी पतिके साथ बैठी थीं कि उस समय महाशैलपर बैठेहुए देवसे कहने लगीं ॥ ९ ॥ महादेवी बोलीं, हे देव ! हे परमेश !
हे पंचकृत्यविधायक ! हे सर्वज्ञ ! हे भक्तिसुलभ ! हे परमअमृतस्वरूप ! ॥ १० ॥ आपकी निन्दासे मैं दाक्षायणी शरीर त्यागन करके हिमालयकी पुत्री

हुई हूँ ॥ ११ ॥ हे महेशान ! मन्त्रदीक्षाके विधानसे आप मुझको विशुद्धतत्त्वमें स्थित कीजिये ॥ १२ ॥ जब शशिभूषण शंकरसे इस प्रकार देवी पार्वतीने कहा तब शिवजीने बडी प्रसन्नतासे देवीसे कहा ॥ १३ ॥ शिवजी बोले, यदि तुम्हारी ऐसी मति है तो तुम धन्य हो, मैं कैलासशिखरमें जाकर तुमको विशुद्धतत्त्वमें स्थित करूंगा ॥ १४ ॥ तब हिमालयसे शिवजी कैलासपर्वतमें गये वहां दीक्षाविधानके क्रमसे प्रणवादिके महामंत्रोंको ॥ १५ ॥ देवीसे वर्णनकर और शुद्ध आत्मामें स्थित करके देवीके साथ महादेवजी देवोद्यानमें गये ॥१६॥ तब सुमालिनी आदि देवीकी मुख्य सखियोंने कल्पवृक्षसे उत्पन्नहुए

कृपया परमेशान मंत्रदीक्षाविधानतः ॥ मां विशुद्धात्मतत्त्वस्थां कुरु नित्यं महेश्वर ॥ १२ ॥ इति सम्प्रार्थितो देव्या देवः शीतांशुभूषणः ॥ प्रत्युवाच ततो देवीं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ महादेव उवाच ॥ धन्या त्वं देवदेवेशि यदि जातेदृशी मतिः ॥ कैलासशिखरं गत्वा करिष्ये त्वां च तादृशीम् ॥ १४ ॥ ततो हिमवतो गत्वा कैलासम्भूधरेश्वरम् ॥ जगौ दीक्षाविधानेन प्रणवादीन्मनून् क्रमात् ॥ १५ ॥ उक्त्वा मंत्रांश्च तान्देवीं कृत्वा शुद्धात्मनि स्थिताम् ॥ सार्द्धं देव्या महादेवो देवोद्यानं गतोऽभवत् ॥ १६ ॥ ततः सुमालिनीमुख्यैर्देव्याः प्रियसखीजनैः ॥ समाहृतैः प्रफुल्लैस्तैः पुष्पैः कल्पतरूद्भवैः ॥१७॥ अलंकृत्य महादेवीं स्वांकमारोप्य शंकरः ॥ प्रहृष्टवदनस्तस्थौ विलोक्य च तदाननम् ॥ १८ ॥ ततः प्रियकथा जाताः पार्वतीपरमेशयोः ॥ हिताय सर्वलोकानां साक्षाच्छ्रुत्यर्थसम्मिताः ॥ १९ ॥ तदा सर्वजगन्माता भर्तुरंकं समाश्रिता ॥ विलोक्य वदनं भर्तुरिदमाह तपोधनाः ॥ २० ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ उपदिष्टास्त्वया देव मंत्रास्सप्रणवा मताः ॥ तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चितम् ॥ २१ ॥

नवीन खिलेहुए पुष्प लाकर ॥ १७ ॥ देवीको अलंकृत किया. तब शिवजी पार्वतीको अपनी गोदीमें लेकर उनका सुन्दर मुख देखकर महाप्रसन्न हुए ॥ ॥ १८ ॥ तब पार्वती परमेश्वरसे प्रिय कथा पूँछने लगी, जो कथा सब लोकोंकी हितकारिणी और श्रुतिके अर्थसे युक्त थी ॥ १९ ॥ तब सब जगत्की माता अपने स्वामीके अंकमें स्थित हो और मुख देखकर कहने लगीं ॥२०॥ पार्वती बोलीं, हे देव ! आपने ओंकार सहित मन्त्र उपदेश किये,इस कारण

प्रथम मैं प्रणवका अर्थ जाननेकी इच्छा करतीहूं ॥ २१ ॥ प्रणव किसप्रकारसे उत्पन्न हुआ और वह किसप्रकार प्रणव कहाजाता है. उसकी कितनी मात्राहैं और किस प्रकार वेदके आदिमें कहाजाता है ॥ २२ ॥ उसके कितने देवताहैं और किस प्रकार वेदादिकी भावना कीजाती है, कितने प्रकारकी क्रिया हैं और व्याप्य व्यापकता किस प्रकार है ॥ २३ ॥ इन मन्त्रोंमें अनुक्रमसे पांच ब्रह्म किसप्रकार स्थित रहते हैं, कितनी कलाहैं और प्रपंचात्मकता क्याहै ॥ २४ ॥ वाच्य वाचकका सम्बन्ध और स्थान किसप्रकारहै ? हे शिव ! इसका अधिकारी कौन है इसका विषय क्या है ॥ २५ ॥ क्या इसका

कथम्प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणव उच्यते ॥ मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते ॥ २२ ॥ देवताः कति च प्रोक्ताः कथं वेदादिभावना ॥ क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम् ॥ २३ ॥ ब्रह्माणि पंच मंत्रेऽस्मिन्कथं तिष्ठंत्यनुक्रमात् ॥ कलाः कति समाख्याताः प्रपंचात्मकता कथम् ॥ २४ ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव ॥ कोऽत्राधिकारी विज्ञेयो विषयः क उदाहृतः ॥ २५ ॥ सम्बन्धः कोत्र विज्ञेयः किं प्रयोजनमुच्यते ॥ उपासकस्तु किंरूपः किं वा स्थानमुपासनम् ॥ २६ ॥ उपास्यं वस्तु किंरूपं किं वा फलमुपासितुः ॥ अनुष्ठानविधिः को वा पूजास्थानं च किं प्रभो ॥ २७ ॥ पूजायां मण्डलं किं वा किं वा ऋष्यादिकं हर ॥ न्यासजातविधिः को वा को वा पूजाविधिक्रमः ॥ २८ ॥ एतत्सर्वं महेशान समाचक्ष्व विशेषतः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा ॥ २९ ॥

सम्बन्ध और क्या इसका प्रयोजन है इसका उपासक कैसा है और उपासनाका स्थान क्या है ॥ २६ ॥ उपास्य वस्तु किस प्रकारकी है उपासनावालेको क्या फल मिलता है इसके अनुष्ठानकी विधि और पूजाका क्या स्थान है ॥ २७ ॥ पूजाके मण्डल और उनके ऋषि आदिक क्याहैं, उनके न्यासकी विधिका क्या क्रम है ॥ २८ ॥ हे शिव ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो यह सब वर्णन कीजिये मैं तत्त्व सुननेकी इच्छा करती हूं ॥ २९ ॥

जब देवीने इस प्रकार पूँछा तब पार्वतीकी प्रशंसा कर शिवजी कहने लगे ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ शिवजी बोले, हे देवि! जो कुछ तुमने मुझसे पूँछाहै, वह मैं तुमसे कहताहूं जिसके श्रवणमात्रसे जीव साक्षात् शिव होजाता है ॥ १ ॥ प्रणवात्मकके अर्थका जाननाही मेरा ज्ञान है वह प्रणवात्मक मन्त्र सब विद्याओंका बीज है ॥ २ ॥ वह वटवृक्ष और उसके बीजके समान महासूक्ष्म और बहुत स्थूलहै, वही वेदका आदि वेदका सार मेरा रूपहै ॥ ३ ॥ वही देव तीनों गुणोंसे परे सर्वज्ञ और सबका करनेवाला है ॐ इस एकाक्षर मन्त्रमें सर्वगत

इति देव्या समापृष्टो भगवानिन्दुभूषणः ॥ सम्प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां देवीदेवसंवादे देवीकृतप्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वम्परिपृच्छसि ॥ तस्य श्रवणमात्रेण जीवस्साक्षाच्छिवो भवेत् ॥ १ ॥ प्रणवार्थपरिज्ञानमेव ज्ञानं मदात्मकम् ॥ बीजन्तत्सर्वविद्यानां मंत्रम्प्रणवनामकम् ॥ २ ॥ अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् ॥ वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः ॥ ३ ॥ देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ॥ ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोहं सर्वगश्शिवः ॥ ४ ॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः ॥ समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ॥५॥ सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ॥ तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः ॥६॥ शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः ॥ वच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः ॥७॥ तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्षयो विदुः ॥ वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना विपश्चितः ॥ ८ ॥ अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम् ॥ निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम् ॥ ९ ॥

शिवजी विद्यमानहैं ॥ ४ ॥ जो कुछ यह वस्तु है वह सब गुण और प्रधानके संयोगसे समस्त समष्टिरूप विराट्व्यस्त व्यष्टिरूप स्थावर जंगमात्मक प्रणवार्थही है ॥ ५ ॥ इस कारण वह एक अक्षर ब्रह्मही सम्पूर्ण अर्थका साधक है, इसी सर्वार्थ साधकतासे ॐ ऐसे आकारयुक्त प्रणवसे शिवजी प्रथम सब जगत निर्माण करते हैं ॥ ६ ॥ शिव प्रणवरूप और प्रणव शिवरूप है वाच्य और वाचकमें कुछ भेद नहीं होता है ॥ ७ ॥ इस कारण गुरुको ब्रह्मऋषि एकाक्षररूप कहते हैं; वाच्य वाचककी एकता मानतेहुए विद्यावानोंको ही मैं प्राप्त होता हूं ॥ ८ ॥ हे परमेश्वरि ! इस कारण प्रणवको सबका कर्ता जानो.

मुमुक्षु, मुक्त निर्गुण परमेश्वरको निर्विकार जानते हैं ॥ ९ ॥ हे देवी ! सब मंत्रोंके शिरोमणि इस ओंकारको ही मैं प्राण त्यागन करनेवाले जीवोंके
निमित्त काशीमें देता हूं ॥ १० ॥ हे अम्बिके ! आदिमें प्रणवोद्धार वर्णन करता हूं जिसके विज्ञानमात्रसे परमासिद्धि होती है ॥ ११ ॥ प्रथम अकारके
आश्रित निवृत्ति कलाका उद्धार करै उकारमें ईंधन कलाका मकारमें काल कलाका नादमें दण्ड और बिन्दुमें ईश्वर कलाका उद्धार करै ॥१२॥ इस प्रकार
पांचवर्णरूप प्रणवका उद्धार होता है, यह तीनमात्रा और बिन्दु नादात्मा जपनेवालोंको महामुक्ति देनेवाला है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत

एनमेव हि देवेशि सर्वमंत्रशिरोमणिम् ॥ काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे ॥ १० ॥ तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारम
म्बिके ॥ यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत् ॥ ११ ॥ निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम् ॥ कालं समुद्धरेत्पश्चाद्दंडमी
श्वरमेव च ॥ १२ ॥ वर्णपंचकरूपोयमेवं प्रणव उद्धृतः ॥ त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा ॥ १३ ॥ ब्रह्मादिस्थावरा
न्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः ॥ १४ ॥ आद्यम्वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः ॥ मकारं
मध्यतश्चैव नादांतं तस्य चोमिति ॥ १५ ॥ जलवद्वर्णमाद्यन्तु दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम ॥
॥ १६ ॥ अकारश्चाप्युकारोयं मकारश्च त्रयं क्रमात् ॥ तिस्रो मात्रास्समाख्याता अर्द्धमात्रा ततः परम् ॥ १७ ॥ अर्द्धमात्रा महे
शानि बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥ वर्णनीया न वै चाद्धा ज्ञेया ज्ञानिभिरेव सा ॥ १८ ॥ ईशानस्सर्वविद्यानामित्याद्याश्श्रुतयः प्रिये ॥
मत्त एव भवन्तीति वेदास्सत्यम्वदन्ति हि ॥ १९ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंका यह प्राण है, इसीसे इसको प्रणव कहते हैं ॥ १४ ॥ अकार उकार मकार क्रमसे यह तीनमात्रा और पीछे आधीमात्रा है इस प्रकार
ओम् होता है तो ॥ १५ ॥ हे पार्वति ! यह जलकी समान दक्षिण उत्तरमें स्थित है, हे मुनिश्रेष्ठ ! मध्यमें मकार है इस प्रकार ओंकारकी स्थिति है ॥
॥ १६ ॥ अकार उकार मकार यह तीनमात्रा हैं इसके पीछे आधी मात्रा है ॥ १७ ॥ हे महेशानि ! वह आधी मात्राही नादबिन्दु स्वरूपवाली है,
वह साक्षात् वर्णन नहीं होसकती, केवल ज्ञानी उसको जान सकतेहैं ॥ १८ ॥ हे पार्वति ! यह आधीमात्रा बिन्दु और नादके स्वरूपवाली है

“ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानाम्” और “ यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं” इत्यादि श्रुति हैं । यह सब मुझसे ही होता है वेदोंने यह वार्ता सत्य कही है ॥ १९ ॥ इस कारण वेदके आदिमें ओंकारात्मक भी मैं ही विद्यमान हूं, ओंकार मेरा वाचक होनेसे वेदकी आदिमें कहाजाता है ॥ २० ॥ अकार इसका महान् बीज है इसीके रजोगुणसे ब्रह्मा होते हैं, उकार उसकी प्रकृति योनि है, सत्वगुणंके पालन करनेवाले हरि हैं ॥ २१ ॥ मकार पुरुष बीज है, इसके तमोगुण युक्त संहारकर्ता शिव हैं, बिन्दूरूप साक्षात् महेश्वर देव हैं, उससे तिरोभाव होता है ॥ २२ ॥ और नादरूप सबके अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शिव हैं, नादको मस्तकमें विचारकेहीं शिव वहां ध्यान करनेके योग्य हैं, यह परेसे परे मंगलरूप ॥ २३ ॥ सर्वज्ञ सबके कर्ता सर्वेश निर्मल अविनाशी अद्वैत हैं, निर्देश करनेके अयोग्य सत्आसनसे परे साक्षात् परब्रह्म हैं ॥२४॥ अकारादि सब वर्णोंमें क्रमसे व्यापक हैं अकारकी अपेक्षासे ओंकार व्यापक है, उकारसे अकार वर्ण नीचे भागमें व्याप्तहै, इसी प्रकार इन वर्णोंमें भी भावना करै ॥ २५ ॥ अकारादि पांच वर्णोंमें जो पांच ब्रह्मस्वरूप सद्य, वामदेव, घोर, पुरुष ईशान हैं वह क्रमसे मेरी मूर्तिही हैं ॥ २६ ॥ सद्यस् से होनेवाले अकाररूप शिवमें आठकला वर्णन कीहैं, उकारमें वामदेवरूप

तस्माद्वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः ॥ वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते ॥ २० ॥ अकारस्तु महद्बीजं रजस्स्रष्टा चतुर्मुखः ॥
उकारः प्रकृतिर्योनिस्सत्त्वं पालयिता हरिः ॥ २१ ॥ मकारः पुरुषो बीजी तमस्संहारको हरः ॥ बिन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृतः
॥ २२ ॥ नादस्सदाशिवः प्रोक्तस्सर्वानुग्रहकारकः ॥ नादमूर्द्धनि संचिन्त्यः परात्परतरः शिवः ॥ २३ ॥ स सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वेशो
निर्मलोऽव्ययः ॥ अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः ॥ २४ ॥ अकारादिषु वर्णेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम् ॥ व्याप्यन्त्वधस्तनं
वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत् ॥ २५ ॥ सद्यादीशानपर्य्यंतान्यकारादिषु पंचसु ॥ स्थितानि पंच ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात् ॥ २६ ॥
अष्टौ कलास्समाख्याता अकारे सद्यजाश्शिवे ॥ उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः ॥ २७ ॥

तेरह कला हैं ॥ २७ ॥ मकारमें अघोररूपिणी आठ कला स्थितहैं, बिन्दुमें पुरुषगोचर चार कला हैं ॥ २८ ॥ नादमें ईशानरूप पांचकला स्थितहैं. आगे कहे छः पदार्थोंकी एकताके अनुसंधानसे प्रणवकी प्रपंचात्मकता होती है ॥ २९ ॥ मन्त्र यन्त्र देवता विश्वगुरु और शिष्य यह छः पदार्थहैं. हे प्रिये ! इनका अर्थ सुनो ॥ ३० ॥ पूर्वकथित प्रणव मन्त्र पांच वर्णकी समष्टि है, वही यन्त्रताको प्राप्त होता है उसके मण्डलका क्रम कहतेहैं ॥ ३१ ॥ यन्त्र देवतारूप है, देवता विश्वरूप है, और विश्वरूप गुरु है, और शिष्य गुरुकाही शरीर है ॥ ३२ ॥ "ओमितीदं सर्वम्" अर्थात् यह सब ओंकाररूपही है,

अष्टावघोररूपिण्यो मकारे संस्थिताः कलाः ॥ बिन्दौ चतस्रस्संभूताः कलाः पुरुषगोचराः ॥ २८ ॥ नादे पंच समाख्याताः कला ईशानसंभवाः ॥ षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपंचात्मकतोच्यते ॥ २९ ॥ मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपंचो गुरुरेव च ॥ शिष्यश्च षट्पदार्था नामेषामर्थं शृणु प्रिये ॥ ३० ॥ पंचवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः ॥ स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम् ॥ ३१ ॥ यन्त्रं तु देवतारूपं देवता विश्वरूपिणी ॥ विश्वरूपो गुरुः प्रोक्तश्शिष्यो गुरुवपुस्स्मृतः ॥ ३२ ॥ ओमितीदं सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति च श्रुतेः ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धोप्ययमेवार्थ ईरितः ॥ ३३ ॥ आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम् ॥ विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ॥ ३४ ॥ स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम् ॥ अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम् ॥ ३५ ॥ विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ॥ सम्बन्धं शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः ॥ ३६ ॥ जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च ॥ वाच्यवाचकभावोत्र सम्बन्धस्समुदीरितः ॥ ३७ ॥

ऐसी श्रुति कहती है. वाच्य वाचकके सम्बन्धका यही अर्थ है ॥ ३३ ॥ अवस्थान कहतेहैं आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धिचक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति और शान्त कला क्रमसे ॥ ३४ ॥ यह स्थान कहेहैं. हे देवि ! शान्त्यातीतकोही परात्पर कहते हैं, जिसे दृढ वैराग्य हो वही इसमें अधिकारी है ॥ ३५ ॥ हे देवि ! मैं ही इसका विषय हूं; जीव ब्रह्मकी एक भावना करै. हे देवि ! विषय तो कहा, अब सम्बन्ध सुनो ॥ ३६ ॥ जीवात्माकी मेरे सहित प्रणवकी

एकता होती है, बोध्य बोधकभाव अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकताका बोधक प्रणव है यहही संबन्ध है ॥ ३७ ॥ व्रतादिमें निरत शान्त तपस्वी जितेन्द्रिय पवित्र आचरणवाला ब्राह्मण और वेदमें निष्ठायुक्त ॥ ३८ ॥ विषयोंसे विरक्त इस लोक परलोककी इच्छासे दीन देवता ब्राह्मणोंमें भक्तिवाला शिवका व्रतधारी ॥ ३९ ॥ संपूर्ण शास्त्रके अर्थ और तत्त्वको जानने वाले वेदान्तज्ञानके पारगामी यति बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यके पास जाकर ॥ ४० ॥ दीर्घदण्डकी तुल्य प्रणामादिसे यत्नपूर्वक संतुष्ट करके शान्त्यादि गुणसे युक्त शीलवान् शक्ति आदि गुणसे युक्त शिष्य ॥ ४१ ॥ बुद्धिमान् ऐसा जाने

व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः ॥ ३८ ॥ विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च ॥ देवानां ब्राह्मणेपीह भक्तिमांश्च शिवव्रती ॥ ३९ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम् ॥ आचार्य्यमुपसंगम्य यतिं मतिमतां वरम् ॥ ४० ॥ दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतस्सुधीः ॥ शान्त्यादिगुणसंयुक्तः शिष्यस्सौशील्यवान्वरः ॥ ४१ ॥ यो गुरुः स शिवःप्रोक्तो यश्शिवस्स गुरुः स्मृतः ॥ इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत् ॥ ४२ ॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ॥ समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये ॥ ४३ ॥ शुक्लपक्षे तु पंचम्यामेकादश्यां तथापि वा ॥ प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रियस्सुधीः ॥ ४४ ॥ गुरुमाहूय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च ॥ क्षौरं च कारयित्वाथ कक्षोपस्थविवर्जितम् ॥ ४५ ॥ केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानसः ॥ सक्तुं प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च ॥ ४६ ॥ सायमौपासनं कृत्वा गुरुणा सहितो द्विजः ॥ शास्त्रोक्तदक्षिणान्दत्त्वा शिवाय गुरुरूपिणे ॥ ४७ ॥

कि, जो गुरु हैं सो शिव हैं और जो शिव हैं सो गुरु हैं ऐसा मनमें निश्चयकर उनसे अपना विचार निवेदन करै ॥४२॥ गुरुकी आज्ञासे बारह दिनतक पयोव्रत (जलपानमात्र) करै समुद्रके किनारे अथवा पर्वत वा शिलामें ॥ ४३ ॥ शुक्लपक्षकी पंचमी अथवा एकादशीके दिन बुद्धिमान्को उचित है कि, पवित्रचित्तसे प्रातःकाल नित्यक्रियाके उपरान्त स्नान करै ॥ ४४ ॥ और गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके बगल और उपस्थको छोडकर क्षौरकर्म कराय ॥ ४५ ॥ केश डाढी मूँछ नखोंको दूर कराय जितेन्द्रिय हो स्नानकर सायंसन्ध्या करके ॥ ४६ ॥ सक्तु (सत्तु) को भोजन कर फिर

स्नानकर संध्या करै, इस प्रकार गुरुसहित ब्राह्मण सन्ध्याकालकी उपासना करके शिवरूप गुरुके निमित्त वस्त्र और दक्षिणा दे ॥ ४७ ॥ अपने सूत्रकी
विधिसे होमका द्रव्य लेकर विधिपूर्वक लौकिकादि भेदसे अग्न्याधान करै ॥ ४८ ॥ जो आहिताग्नि प्राजापत्ययज्ञके अनुसार हवन करचुकता है उसको उचित
है कि वह सर्वस्व धनकी दक्षिणा देकर इस वेदोक्त वैश्वानर अग्निको ॥ ४९ ॥ आत्मामें धारणकर ब्राह्मण घरसे निकलकर संन्यासी होजाय. समिधा,
अन्न, घृतयुक्त चरु लेकर ॥५०॥ पुरुषसूक्तके एक मन्त्रसे हवन करै, फिर अपने सूक्तके विधानसे स्विष्टकृत् सम्बन्धिनी आहुतियोंसे हवन करै ॥ ५१ ॥

होमद्रव्याणि संपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः ॥ ४८ ॥ आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्ये
ष्टिनाहिते ॥ श्रौते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणम् ॥ ४९ ॥ अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ श्रपयित्वा चरुं
तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ॥ ५० ॥ पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान् ॥ हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ ५१ ॥
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः ॥ स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ॥ यावद्ब्राह्ममुहूर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ॥ ५२ ॥
ततः स्नात्वा यथा पूर्वं श्रपयित्वा चरुं ततः ॥ पौरुषं सूक्तमारभ्य विरजान्तं हुनेद्बुधः ॥ ५३ ॥ वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन
वा ॥ तत्र मुख्यं वामदेव्यं गर्भयुक्तो यतो मुनिः ॥ ५४ ॥ होमशेषं समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत् ॥ ततोग्निमात्मन्यारोप्य प्रातस्स
न्ध्यामुपास्य च ॥ ५५ ॥ सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं प्राविशेत्क्रमात् ॥ एषणानां त्रयं त्यक्त्वा प्रेषमुच्चार्य च क्रमात् ॥ ५६ ॥

तन्त्रके आगे उत्तरकी ओर आसनपर स्थित हो, अजिनवस्त्र धारणकर कुशपै बैठे जबतक ब्राह्ममुहूर्त रहै तबतक दृढमन करके गायत्रीका जप करै ॥५२॥
फिर स्नान करके चरु निर्माणकर पुरुषसूक्तसे लेकर विरजाहोमपर्यन्त आहुति दे ॥ ५३ ॥ वामदेव अथवा शौनकमंत्रसे हवन करै, इनसे वामदेवका मत
श्रेष्ठ है. कारण कि वह गर्भमें स्थित हो मुक्त होकर जीवन्मुक्त विचरेहैं ॥ ५४ ॥ शेष हवनको समाप्त करके फिर प्रातःकालकी उपासनाका हवन करै,
फिर अग्निको आत्मामें आरोपण कर प्रातःकाल संध्या करके ॥ ५५ ॥ सूर्यके उदय होनेपर क्रमसे गायत्रीका जप करै, लोकेषणा, पुत्रेषणा, वित्तेषणा,

इन तीनोंको त्यागनकर क्रमसे प्रेषका उच्चारण करै ॥ ५६ ॥ शिखा और उपवीत त्यागनकर कटिसूत्रादि त्यागकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर गमन करे॥ ॥ ५७ ॥ लोक वृत्तिके निर्वाहके निमित्त दंड और कौपीन ग्रहण करै और जो विरक्तहो लोक वृत्ति कठिनहो ऐसा विचारकर यहभी ग्रहण न करै ॥ ॥ ५८ ॥ गुरुके समीप जाकर दण्डके समान तीन प्रणाम करै, फिर उठकर गुरुके चरणोंके निकट बैठे ॥ ५९ ॥ तब गुरु विरजाअग्निसे उत्पन्नहुई श्वेतभस्म उस शिष्यके विधिपूर्वक मलकर ॥ ६० ॥ "अग्निरितिभस्म, वायुरितिभस्म" इत्यादि मन्त्रोंसे तिलक धारण करावै और हृदय कमलमें तुम्हारे

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिकं ततः ॥ विसृज्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोपि वा ॥ ५७ ॥ गृह्णीयाद्दण्डकौपीनाद्युचितं
लोकवर्तने ॥ विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकवृत्तिविचारणे ॥ ५८ ॥ गुरोः समीपं गत्वाथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम् ॥ समुत्थाय ततस्तिष्ठे
द्गुरुपादसमीपतः ॥ ५९ ॥ ततो गुरुः समादाय विरजानलजं शितम् ॥ भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्य यथाविधि ॥ ६० ॥ अग्नि
रित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ॥ हृत्पंकजे समासीनं मां त्वया सह चिन्तयेत् ॥ ६१ ॥ हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य
प्रीतमानसः ॥ ऋष्यादिसहितं तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत् ॥ ६२ ॥ प्रणवं त्रिःप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत् ॥ षड्विधार्थं परिज्ञानस
हितं गुरुसत्तमः ॥ ६३ ॥ द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ तदधीनो भवेन्नित्यं वेदान्तं सम्यगभ्यसेत् ॥ ६४ ॥
मामेव चिंतयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि ॥ विशुद्धे निर्विकारे वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम् ॥ ६५ ॥ शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ॥
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः ॥ ६६ ॥

सहित मेरा (शिव पार्वतीका) ध्यान करै ॥ ६१ ॥ प्रसन्नमनसे शिष्यके मस्तकपर हाथ धरकर ऋषि आदि स्मरणकर उसके दक्षिण कर्णमें मन्त्र उच्चारण करै ॥ ६२ ॥ सूक्ष्म आदि पूर्वोक्त तीन प्रकारके प्रणवको और उसके अर्थको उपदेश करै, फिर शिष्य छः प्रकारके प्रणवके अर्थ जाननेको दंडवत् करै ॥ ६३ ॥ बारह प्रकारसे गुरुको प्रणाम करै, और सदा गुरुके अधीन रहकर वेदान्तका नित्य अभ्यास करै ॥ ६४ ॥ और अपने आत्मामें नित्यही मुझ परमात्माका ध्यान करै । जो विशुद्ध निर्विकार शुद्ध अविनाशीहैं ॥ ६५ ॥ शम दमादि धर्ममें निरत वेदान्तके ज्ञानके पारगामी अभिमानरहित यति है

वही पुरुष इसमें अधिकारीहै ॥ ६६ ॥ हृदय पुण्डरीकमें विराजमान स्वच्छ शोकरहित उज्ज्वल अष्टपत्र कमलके समान मकरन्दयुक्त कर्णिकासे शोभायमान ॥ ६७ ॥ हृदयकमलके मध्यमें आधारशक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरक हृदयके तत्वान्तमय आधारको विचारकर दहरप्रकाशकी भावना करै ॥ ॥ ६८ ॥ " ॐ " यह एकाक्षर उच्चारण तुम्हारे सहित मेरा उत्कण्ठासे स्मरण करताहुआ उस दहराकाशके बीचमें नित्य मेरा स्मरण करै ॥ ६९ ॥ हे प्रिये ! इस प्रकार उपासना करनेवालेको मेरे लोककी गति प्राप्त होती है, मुझसे ज्ञानको प्राप्त हो मेरेही सायुज्यको प्राप्त होजाता है ॥ ७० ॥ इति

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदम्परम् ॥ अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम् ॥ ६७ ॥ आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्वांतमयं पदम् ॥ विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत् ॥ ६८ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह ॥ चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ६९ ॥ एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ॥ मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि संन्यासाह्निककर्म च ॥ तव स्नेहान्महादेवि संप्रदायानुरोधतः ॥ १ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय शिरसि श्वेतपंकजे ॥ सहस्रारे समासीनं गुरुं संचिंतयेद्यतिः ॥ २ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं द्विनेत्रं वरदाभये ॥ दधानं शिवसद्भावमेवात्मनि मनोहरम् ॥ ३ ॥ भावोपनीतैः संपूज्य गन्धादिभिरनुक्रमात् ॥ बद्धांजलिपुटो भूत्वा नमस्कुर्याद्गुरुं ततः ॥ ४ ॥

श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ शिवजी बोले, अब मैं संन्यास और आह्निककर्म कहता हूं हे महादेवी ! तुम्हारे आग्रहसे मैं सम्प्रदायके अनुसार कहता हूं ॥ १ ॥ हे प्रिये ! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर यति अपने शिरमें सहस्रदलवाले श्वेतकमलमें बैठेहुए गुरुका ध्यान करै ॥ २ ॥ शुद्ध स्फटिकके समान दो नेत्रोंवाले वरदायक अभयदाता शिवके समान साधुभावको धारण करनेवाले अतिमनोहर भावनासे युक्त ॥ ३ ॥ अनेकभावोंसे

गन्धादिद्वारा उनका पूजन करै और हाथ जोडकर गुरुको नमस्कार करै ॥ ४ ॥ प्रातःसे संध्या तक और सन्ध्याकालसे प्रातःकालतक जो कुछ मैं करता हूं हे जगन्नाथ ! वह तुम्हारा पूजन ही है ॥ ५ ॥ ऐसा गुरुसे कह उनकी आज्ञा लेकर प्राण रोककर जितेन्द्रिय हो आसनपर बैठे ॥ ६ ॥ मूलसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत छः चक्रका ध्यान करै जो करोड बिजलीके समान सर्वतेजोमय है ॥ ७ ॥ उसके मध्यमें मुझ सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म सदाशिव अनामयका चिन्तन करै ॥ ८ ॥ फिर वह मतिमान् वह मैं हूं ऐसा विचार ध्यानकर फिर उठ बैठे फिर बाहर दूर जहाँतक इच्छाहो चलाजाय ॥ ९ ॥

प्रातःप्रभृति सायान्ते सायादिप्रातरंततः ॥ यत्करोमि महादेव तदस्तु तव पूजनम् ॥५॥ प्रतिविज्ञाप्य गुरवे लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः ॥
निरुद्धप्राण आसीनो विजितात्मा जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ मूलादिब्रह्मरंध्रांतं षट्चक्रं परिचिंतयेत् ॥ विद्युत्कोटिसमप्रख्यं सर्वतेजोमयं
परम् ॥ ७ ॥ तन्मध्ये चिंतयेन्मां च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ निर्गुणं परमं ब्रह्म सदाशिवमनामयम् ॥ ८ ॥ सोहमस्मीति मतिमान्मदैक्यमनुभूय च ॥ बहिर्निर्गत्य च ततो दूरं गच्छेद्यथासुखम् ॥ ९ ॥ वस्त्रेणाच्छाद्य मतिमाञ्छिरो नासिकया सह ॥ विशोध्य देहं विधिवत्तृणमाधाय भूतले ॥ १० ॥ गृहीतशिश्न उत्थाय ततो गच्छेज्जलाशयम् ॥ उद्धृत्य वार्यथान्यायं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ११ ॥
हस्तौ पादौ च संशोध्य द्विराचम्योमितिस्मरन् ॥ उत्तराभिमुखो मौनी दन्तधावनमाचरेत् ॥ १२ ॥ तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं
विना ॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखं संशोधयेत्ततः ॥ १३ ॥ द्विराचम्य मृदा तोयैः कटिशौचं विधाय च ॥ अरुणोदयकाले तु स्नानं
कुर्यान्मृदा सह ॥ १४ ॥ गुरुं संस्मृत्य मां चैव स्नानसंध्याद्यमाचरेत् ॥ विस्तारभयतो नोक्तमत्र द्रष्टव्यमन्यतः ॥ १५ ॥

फिर नासिकाको वस्त्रसे आच्छादन कर देहको विधिपूर्वक शोधनकर पृथ्वीमें तृण रखकर ॥ १० ॥ मल त्यागन करे, फिर पीछे शिश्नको ग्रहण करके उठे औ सरोवरके निकट जाय जलसे विधिपूर्वक शुद्ध करै ॥ ११ ॥ विधिपूर्वक शौचकर हाथ पैर धोय दो बार आचमन करै और मौन धारण कर उत्तर दिशाकीओर मुख कर दन्तधावन करै ॥ १२ ॥ एकादशी और अमावसको छोडकर तृण और पर्णोंमें सदा दन्तधावन करै, फिर बारह कुल्लोंसे मुख शुद्ध करै ॥ १३ ॥ फिर मिट्टीसे हाथ धो दो आचमन करै, कटि शौच करके अरुणोदयके समय मृत्तिका सहित स्नान करै ॥ १४ ॥ गुरुको और

मुझको स्मरण करके स्नान और सन्ध्यादि करै विस्तारके भयसे विशेष नहीं कहा, यत्नसे पद्धतियोंमें देखो ॥ १५ ॥ और शंखमुद्रा बाँधकर ओंकारसे
अभिषेक करै, शिरमें बारह छः तीनबार जल छिडकै ॥ १६ ॥ फिर किनारेपर आकर कौपीन प्रक्षालन कर दो बार आचमन करै, और ओंकारसेही
वस्त्र और अंगका मार्जन करै ॥ १७ ॥ अंगोछेसे पहिले मुख पोंछकर पीछे शिर पोंछे फिर सब देहको गुरुके निकटही वस्त्रसे पोंछे ॥ १८ ॥ फिर
मौनी होकर दूसरी कौपीनको बाँधै, फिर भस्म धारण करै. हे प्रिये ! उसकी विधि कहते हैं ॥ १९ ॥ और दो आचमनकर सद्योजातादि मन्त्रसे भस्मको

आबध्य शंखमुद्रां च प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ शिरसि द्वादशावृत्त्या तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ १६ ॥ तीरमागत्य कौपीनं प्रक्षाल्याचम्य
च द्विधा ॥ प्रोक्षयेत्प्रणवेनैव वस्त्रमंगोपमार्जनम् ॥ १७ ॥ मुखम्प्रथमतो मृज्य शिर आरभ्य सर्वतः ॥ तेनैव मार्जयेद्देहं स्थित्वा च
गुरुसन्निधौ ॥ १८ ॥ आबध्याद्यामतः शुद्धं कौपीनं च सडोरकम् ॥ ततः संधारयेद्भस्म तद्विधिः प्रोच्यतेऽद्रिजे ॥ १९ ॥ द्विराचम्य
समादाय भस्म सद्यादिमंत्रतः ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैरभिमंत्र्य स्पृशेत्तनुम् ॥ २० ॥ आपोवेत्यभिमंत्र्याथ जलं तेनैव सेचयेत् ॥
ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा मानस्तोकेति मंत्रतः ॥ २१ ॥ समद्य कमलद्वन्द्वं कुर्यादेकं तु पंचधा ॥ शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु परमेश्वरि ॥
॥ २२ ॥ ईशानादिसमारभ्य सद्यान्तं पंचभिः क्रमात् ॥ उद्धूल्य कवलं पश्चात्प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ २३ ॥ सर्वांगं च ततो हस्तौ
प्रक्षाल्यान्यत्समाहरेत् ॥ समर्च्य पूर्ववत्तत्तु त्रिपुण्ड्रांस्तेन धारयेत् ॥ २४ ॥ त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च प्रणवेन शिवेन च ॥ शिरस्यथ
ललाटे च वक्षसि स्कन्ध एव च ॥ २५ ॥

ग्रहण करै । और ‘अग्निरितिभस्म’ इस प्रकारके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर शरीर स्पर्श करै ॥ २० ॥ “आपो वा इदं सर्वं” इस मन्त्रसे भस्ममें जल मिलावै
‘ॐ आपो ज्योति०’ ऐसा कहकर, ‘मानस्तोके’ इत्यादि मन्त्रोंसे ॥ २१ ॥ जल मिलाकर दो कमल मिलावै, उसके पांच भाग करके हे परमेश्वरि ! शिर,
मुख, गुह्य, हृदय, चरण ॥ २२ ॥ इन स्थानोंमें ईशानसे लेकर सद्योजात पांच मन्त्रोंतक उस कमलको शरीरमें लगाकर प्रणवसे अभिषेक करै ॥ २३ ॥
फिर सम्पूर्ण अंग और हाथोंको प्रक्षालन कर दूसरी भस्म ग्रहण करै उसे पूर्ववत् शरीरमें लगाय त्रिपुण्ड्र धारण करै ॥ २४ ॥ “त्र्यायुषं जमदग्नेः”

इत्यादि, "त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादि, प्रणव अथवा शिवनामक मन्त्रोंसे शिर, ललाट, वक्षस्थल, स्कन्ध, ॥ २५ ॥ नाभि, दोनों भुजा संधि तथा पृष्ठ स्थानमें क्रमसे लगावै, फिर हाथ धोकर आचमन करै ॥ २६ ॥ पंचाक्षर उच्चारणकर अपने गुरुकी भावना करै, आगे कहेहुए प्रकारसे छः प्राणायाम करै ॥ २७ ॥ फिर आगे कहीहुई विधिके अनुसार ऋषि आदिका स्मरणकर दहने हाथमें जल लेकर बायें हाथसे नासिकादि द्वारको रोककर बारह बार प्रणवसे अभिमंत्रित करै ॥ २८ ॥ इस प्रकार जलको तीन बार अभिमंत्रित कर शिरपै छिडक फिर पान करै, और सावधान मन हो ओंकाररूपी ईश्वरका ध्यान करै ॥ २९ ॥ सूर्यमण्डलमें स्थित सम्पूर्ण तेजोमय परम आठ भुजायुक्त चार मुख अर्द्धांगमें नारी अद्भुतरूप ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यके गुणोंसे

नाभौ बाह्वोः संधिषु च पृष्ठे चैव यथाक्रमम् ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ च ततो द्विराचम्य यथाविधि ॥ २६ ॥ पंचीकरणमुच्चार्य भावयेत्स्वगुरुं बुधः ॥ वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ २७ ॥ दक्ष हस्तेन संगृह्य जलं वामेन पाणिना ॥ समाच्छाद्य द्विषड्वारं प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥ २८ ॥ एवं त्रिवारं संप्रोक्ष्य शिरसि त्रिः पिबेत्ततः ॥ समाहितेन मनसा ध्यायन्नोंकारमीश्वरम् ॥ २९ ॥ सौरमण्डलमध्यस्थं सर्वतेजोमयं परम् ॥ अष्टबाहुं चतुर्वक्रमर्द्धनारीकमद्भुतम् ॥ ३० ॥ सर्वाश्चर्य्यगुणोपेतं सर्वालंकारशोभितम् ॥ एवं ध्यात्वाथ विधिवद्द्यादर्घ्यत्रयं ततः ॥ ३१ ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा द्विषड्वारं तु तर्पयेत् ॥ पुनराचम्य विधिवत्प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ ३२ ॥ पूजासदनमागच्छेन्मनसा संस्मरञ्छिवम् ॥ द्वारमासाद्य प्रक्षाल्य पादौ मौनी द्विराचमेत् ॥ ३३ ॥ प्रविशेद्विधिना तत्र दक्षपादपुरस्सरम् ॥ मण्डपान्तस्सुधीस्तत्र मण्डलं रचयेत्क्रमात् ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां सन्या साचारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः ॥ मनोभिलषिते तत्र वितानविततांम्बरे ॥ १ ॥

युक्त सम्पूर्ण अलंकारोंसे शोभित शिवका इस प्रकार विधिपूर्वक ध्यानकर तीन अर्घ्य दे ॥ ३१ ॥ एकसौ आठ मन्त्र जपकर बारहबार तर्पण करै फिर आचमनकर तीन प्राणायाम करै ॥ ३२ ॥ और मौन हो विधिपूर्वक ऋषि आदिको स्मरण करै फिर पूजास्थानमें आकर मौन हो पांव धोय ॥ ३३ ॥ विधिपूर्वक दो आचमन करै,और पूजामण्डपमें जानेको प्रथम दक्षिण चरण उठावै पीछे मंडलकी रचना करै ॥ ३४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ शिवजी बोले, गन्धर्व रसादिसे पृथ्वीकी विधिपूर्वक परीक्षा करके मनोभिलषित मनोहर वितान (चंदोवा)

तानै ॥ १ ॥ और पृथ्वीको लीपकर दर्पणके समान चिकनी कर दे, दो अरत्नी (हाथभर) के चार अस्र (चौकोन) स्थानके मण्डपकी कल्पना करके
॥ २ ॥ तालपत्र लेकर उसीके समान लम्बे और चौंडे स्थानमें बराबर तेरह भाग करै ॥ ३ ॥ उस चतुरस्र मण्डलमें उस पत्रको रखकर पश्चिमकी ओर
मुखकर बैठे उसके पूर्वभागमें कलावा लेकर ॥ ४ ॥ पूर्वसे दक्षिण उत्तरके क्रमसे चौदह डोरे रक्खै. हे देवेशि ! ऐसा करनेसे उस कोठेमें एकसौ उनहत्तर
कोठे हो जायँगे ॥ ५ ॥ उन कोष्ठोंके बीचकी जो कर्णिका है उससे आठ कोष्ठकके बाहर उस मध्यकोष्ठका दलाष्टक होता है ॥ ६ ॥ श्वेतवर्णके दल

सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे ॥ अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥ तालपत्रं समादाय तत्समायामविस्तरम् ॥ तस्मि
न्भागान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम् ॥३॥ तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थितः ॥ तत्पूर्वभागे सुदृढं सूत्रमादाय रंजितम् ॥
॥ ४ ॥ प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत् ॥ सूत्राणि देवदेवेशि नवषष्ट्युत्तरं शतम् ॥ ५ ॥ कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य
मध्यकोष्ठं तु कर्णिका ॥ कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते ॥ ६ ॥ दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत् ॥ पीतरूपां
कर्णिकां च कृत्वा रक्तं च वृत्तकम् ॥ ७ ॥ वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि ॥ रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत् ॥ ८ ॥
कर्णिकायां लिखेद्यंत्रं प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ अधः पीठं समालिख्य श्रीकण्ठं च तदूर्द्धतः ॥ ९ ॥ तदुपर्य्यमरेशं च महाकालं च
मध्यतः ॥ तन्मस्तकस्थं दण्डं च तत ईश्वरमालिखेत् ॥ १० ॥ श्यामेन पीठं पीतेन श्रीकण्ठं च विचित्रयेत् ॥ अमरेशं महाकालं
रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात् ॥ ११ ॥ कुर्यात्सुधूम्रं दण्डं च धवलं चेश्वरं बुधः ॥ एवं यंत्रं समालिख्य रक्तं सद्येन वेष्टयेत् ॥ १२ ॥

श्यामाग्र कल्पना करै. पीली उसकी कर्णिका करके लाल और पीली भी रंगे ॥७॥ हे सुरेश्वरी ! कमलके दलोंको लाल और पीला करके क्रमसे दंतसंधिको
लाल और काली करै ॥ ८ ॥ कर्णिकामें प्रणवअर्थका प्रकाश यन्त्र लिखै, नीचे पीठ और ऊपर श्रीकण्ठ लिखै ॥ ९ ॥ उसके ऊपर अमरेश मध्यमें
महाकाल और महाकालके मस्तकके समीप दंड लिखकर फिर ईश्वरको लिखै ॥ १० ॥ श्यामरंगसे सिंहासन पीतरंगसे श्रीकंठको चित्रित करै, अमरेशको
लाल और महाकालको कृष्णवर्ण ॥ ११ ॥ दंडको धूम्रवर्ण ईश्वरको धवल करै, इस प्रकार लालयंत्र लिखकर सद्योजात मंत्रसे आच्छादन करै ॥ १२ ॥

हे ईश्वरि ! उस्से उठेहुए नादसे ईशानको भेद करै, आग्नेयादि क्रमसे उसकी बाह्यपंक्तिको ग्रहण करै ॥ १३ ॥ हे सुन्दरी ! उसके कोनको चार कोटोंका श्वेत और लाल धातुसे रंगकर ॥ १४ ॥ चार द्वार कल्पना करै, उसके इधर उधरके कोष्ठ पीतरंगसे परिपूर्ण करै ॥ १५ ॥ आग्नेय दिशाके कोष्ठके आगे चार अस्र (चौकोन) प्रमाणमें आठ दलका कमल लिखै इसकी लाल पखरीकर पीली कर्णिका बनावै ॥ १६ ॥ मध्यमें बिन्दुयुक्त हकार लिखै फिर कमलके नैर्ऋतकी ओरके कोष्ठमें चार अस्रके मध्यसे ॥ १७ ॥ आठ दलका कमल बनावै उसे लाल रंगे कर्णिका पीली करै, शवर्गका तीसरा अक्षर (स)

तदुत्थेनैव नादेन विद्यादीशानमीश्वरि ॥ तद्बासपंक्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै ॥ १३ ॥ कोष्ठानि कोणभागेषु चत्वार्येतानि सुन्दरि ॥ शुक्लेनापूर्य्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः ॥ १४ ॥ आपूर्य्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत् ॥ ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वंद्वं पीतेनैव प्रपूरयेत् ॥ १५ ॥ आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्रके ॥ अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं रक्ताभं पीतकर्णिकम् ॥ १६ ॥ हकारं विलिखेन्मध्ये बिन्दुयुक्तं समाहितः ॥ पद्मस्य नैर्ऋते कोष्ठे चतुरस्रन्तदा लिखेत् ॥ १७ ॥ पद्ममष्टदलं रक्तं पीतकिंजल्ककर्णिकम् ॥ शवर्गस्य तृतीयन्तु षष्ठस्वरसमन्वितम् ॥ १८ ॥ चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादविभूषितम् ॥ एतद्बीजवरं भद्रे पद्ममध्ये समालिखेत् ॥ १९ ॥ पद्मस्येशानकोष्ठे तु तथा पद्मं समालिखेत् ॥ कवर्गस्य तृतीयं तु पंचमस्वरसंयुतम् ॥ २० ॥ विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुकण्ठे स्वलंकृतम् ॥ तद्बाह्यपंक्तित्रितये पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ २१ ॥ कोष्ठानि पंच गृह्णीयाद्गिरिराजसुते शिवे ॥ मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम् ॥ २२ ॥

छठे स्वरसंयुक्त (सू) लिखै ॥ १८ ॥ चौदहवां स्वर (औ) बिन्दुनादसे युक्त (औं) यह बीज है. हे भद्रे ! इसीको पद्ममध्यमें लिखै ॥ १९ ॥ इसी प्रकार कमलके ईशान कोष्ठमें लिखै कवर्गका तीसरा अक्षर (ग) पंचमस्वर उकारसहित (गु) लिखै ॥ २० ॥ उस ईशानादिशाके कमलके कण्ठभागमें बिन्दु लिखै, इसकी तीन जो बाहरपंक्ति हैं उनमें पूर्वदिशाके क्रमसे ॥ २१ ॥ हे पार्वति ! पांचकोष्ठ करके उनमें मध्यकोष्ठको पीला करै, और शेषवृत्तको

रक्तवर्ण करै ॥ २२ ॥ विधिका जाननेवाला कमलदलोंको लाल बनावै, और दलके बाहर छिद्रोंको कृष्णवर्णसे रँगे ॥ २३ ॥ और अग्निदिशाके चार
कोष्ठ शुक्ल रंगसे पूर्ण करै पूर्वकी ओर छः बिन्दुके सहित षट्कोण कृष्णवर्णसे लिखै ॥ २४ ॥ दक्षिणकी ओरसे उत्तरतक तीनकोनोंमें लालरंग और
श्वेतकान्ति युक्त अर्द्धचन्द्राकार पीतवर्ण पश्चिम कोनमें रँगे ॥ २५ ॥ चारोंबीजोंको क्रमसे नौकोनके प्रमाणसे क्रमसे लिखै, पूर्वकी ओर शुभ्रबिन्दु लिखै
दक्षिणमें कृष्णवर्ण ॥ २६ ॥ उत्तरकी ओर रक्तवर्ण उकार मकार पश्चिमकी ओर लिखै अकारको पीतवर्ण करै इस प्रकार चारोंवर्ण करके ॥ २७ ॥

दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥ दलबाह्ये तु कृष्णेन रंध्राणि परिपूरयेत् ॥२३॥ आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत् ॥
पूर्वे षड्बिन्दुसहितं षट्कोणं कृष्णमालिखेत् ॥ २४ ॥ रक्तवर्णं दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः ॥ श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्णं च
पश्चिमे ॥ २५ ॥ चतुरस्रं क्रमात्तेषु लिखेद्बीजचतुष्टयम् ॥ पूर्वे बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं तु दक्षिणे ॥ २६ ॥ उकारमुत्तरे रक्तं
मकारं पश्चिमे ततः ॥ अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ सर्वोर्द्ध्वपंक्त्यधः पंक्तौ समारभ्य च सुन्दरि ॥ पीतं श्वेतं च
रक्तं च कृष्णं चेति चतुष्टयम् ॥ २८ ॥ तदधो धवलं श्यामं पीतं रक्तं चतुष्टयम् ॥ अधस्त्रिकोणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने ॥ २९ ॥
एवन्दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि ॥ तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्तं विचित्रयेत् ॥ ३० ॥ पीतं रक्तं च कृष्णं च श्यामं श्वेतं च
पीतकम् ॥ आग्नेय्यादिसमारभ्य रक्तं श्यामं सितं प्रिये ॥ ३१ ॥ रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम् ॥ दक्षिणाद्यं महेशानि
पूर्वावधि समीरितम् ॥ ३२ ॥ नैर्ऋताद्यन्तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि ॥ वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम् ॥ ३३ ॥

हे सुन्दरी ! नीचेकी पंक्तिसे प्रारम्भ करके सब ऊपरकी पंक्ति चारों पीली, श्वेत, लाल और कृष्णवर्णकी करै ॥ २८ ॥ उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत,
रक्त, रंगसे रंगे. नीचेके त्रिकोणमें लाल, शुक्ल और पीतरंग करै ॥२९॥ हे ईश्वरी ! इस प्रकार दक्षिणसे प्रारम्भ करके सोमान्हतक करै, उसकी बाह्यपंक्तिमें
पूर्वादि मध्यरात्रमें विचित्र करै ॥ ३० ॥ पीला, लाल, कृष्ण, श्याम, श्वेत, पीत, रंग आग्नेयदिशासे प्रारम्भ करै. रक्त, श्याम, श्वेत ॥ ३१ ॥ और लाल
कृष्ण लाल यह छः रंग भरै. हे महेशानि ! यह दक्षिणसे आदि लेकर पूर्वतक करना चाहिये ॥३२॥ हे ईश्वरी ! नैर्ऋत दिशासे लेकर आग्नेय दिशापर्यन्त

और वरुणदिशासे दक्षिण दिशापर्यन्त ॥ ३३ ॥ हे महादेवि ! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत दिशातक हे परमेश्वरी ! पूर्वादिसे पश्चिम ॥ ३४ ॥ और ईशानसे लेकर वायव्यतक यह करै. हे पार्वति ! यह मैंने तुमसे मण्डलकी विधि कही ॥३५॥ मण्डल लिखे पीछे ब्रह्ममें तत्पर हो सूर्यकी पूजा करै ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ शिवजी बोले, दक्षिणमण्डलमें सुन्दर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्र मंत्रसे शुद्ध जलसे प्रोक्षणकरै ॥१॥ पहले प्रणव फिर आधारका उद्धार करै पीछे शक्ति कमलका उद्धार करै यह सब चतुर्थी विभक्तिके रहित अन्तमें 'नमः'लगाकर

वायव्याद्यं महादेवि नैर्ऋतावधि चेरितम् ॥ सोमाद्यं परमेशानि वारुणावधि चेरितम् ॥ ३४ ॥ ईशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यावधि चाम्बिके ॥ इत्युक्तो मण्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति ॥ ३५ ॥ एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिस्स्वतः ॥ सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्वस्तुतत्परः ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासमण्डलविधिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ दक्षिणे मंडलस्याथ वैयाघ्रं चर्मशोभनम् ॥ आस्तीर्य्य शुद्धतोयेन प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ १ ॥ प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत् ॥ तत्पश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यंतं नमोन्तकम् ॥ २ ॥ मनुमेवं समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुखः ॥ प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम् ॥ ३ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संधारयेत्ततः ॥ शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डलं रचयेत्पुनः ॥ ४ ॥ त्रिकोणवृत्तं बाह्ये तु चतुरस्रात्मकं क्रमात् ॥ अभ्यर्च्योमिति साधारं स्थाप्य शंखं समर्चयेत् ॥ ५ ॥ आपूर्य शुद्धतोयेन प्रणवेन सुगंधिना ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा ॥ ६ ॥ अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ शंखमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ ७ ॥

उच्चारण करै ॥ २ ॥ 'शक्तिकमलाय नमः' इत्यादि इसको उच्चारण कर ॥ ३ ॥ 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मंत्रोंसे भस्मको धारण करै, गुरुको शिरसे नमस्कार कर मंडलकी रचना करै ॥ ४ ॥ बाहरकी ओर त्रिकोण वृत्त क्रमसे चार अस्र (चौकोन) प्रमाण करै (ओम् अर्चन) इस मंत्रसे पीठको धारण कर शंखकी पूजाकरै ॥ ५ ॥ प्रणवसे शुद्ध सुगन्धित जलको अभिमंत्रित कर सातबार गंध पुष्पादिसे ओंकारसे पूजन करै ॥ ६ ॥ इस प्रकार अभि

मंत्रित कर धेनुमुद्रा दिखावै । इसी प्रकार अस्त्रमंत्रसे शंखमुद्रा दिखावै ॥ ७ ॥ स्वयं आत्माको गन्ध पुष्प पूजाकी सामग्रीसे शुद्धकर तीन प्राणायाम कर
ऋषि आदिका स्मरण करै ॥ ८ ॥ इस श्रीसौरमंत्रका देवभाग ऋषि गायत्री छंद सूर्य महेश्वर देवता हैं ॥ ९ ॥ 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इत्यादि बीज मंत्रोंसे छहों
अंगोंमें न्यास कर फिर अस्त्रमंत्रसे अग्निकोणके कमलको प्रोक्षण करै ॥ १० ॥ उस आग्नेयदिशाके कमलको विद्वान् महाउज्ज्वलता पूर्वक सारवस्तुसे
आराधना कर पूर्वादि दिशामें पूजन करै ॥ ११ ॥ कालाग्नि रुद्र आधार शक्ति अनन्त पृथ्वी रत्नद्वीप ॥ १२ ॥ संकल्प वृक्षका बगीचा मणिमय गृह

आत्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणानि च ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत् ॥ ८ ॥ अस्य श्रीसौरमंत्रस्य देवभाग ऋषि
स्ततः ॥ छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवस्सूर्यो महेश्वरः ॥ ९ ॥ देवता स्यात्षडंगानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत् ॥ ततस्संप्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रे
णाग्नेरगोचरम् ॥ १० ॥ तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि ॥ सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात् ॥ ११ ॥ अथ
कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम् ॥ अनन्तं पृथिवीं चैव रत्नद्वीपं तथैव च ॥ १२ ॥ संकल्पवृक्षोद्यानं च गृहं मणिमयं ततः ॥
रक्तपीठं च संपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात् ॥ १३ ॥ धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम् ॥ अधर्माद्यग्निकोणादिकोणेषु च समर्च
येत् ॥ १४ ॥ मायाधश्छदनं पश्चाद्विद्योर्ध्वच्छदनं ततः ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ॥ १५ ॥ पूर्वादिदिक्षु मध्ये च
दीप्तां सूक्ष्मां जयामपि ॥ भद्रां विभूतिं विमलाममोघां वैद्युतामपि ॥ १६ ॥ सर्वतोमुखसंज्ञां च कन्दनालं तथैव च ॥ सुषिरं च ततस्तं
तुकंटकांस्तदनंतरम् ॥ १७ ॥ मूलच्छदनकिंजल्कप्रकाशस्सकलात्मनः ॥ पंचग्रंथिकर्णिकां च दलानि तदनंतरम् ॥ १८ ॥

और चरणोंमें मन लगाय रक्त पीठका पूजन करै ॥ १३ ॥ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इन चारोंको और अधर्म अज्ञानादिको अग्निकोणके कोनेमें पूजन
करै ॥ १४ ॥ मायासे नीचेके भागका आच्छादन और विद्यासे ऊर्ध्वभागका आच्छादन कर और रज तम इनका विधिपूर्वक पूजन करै ॥ १५ ॥
पूर्वादि दिशाओंके मध्यमें दीप्तिमान् सूक्ष्म जयदायक भद्रानाम उज्ज्वल सफल विद्युत संबन्धी प्रकाशयुक्त है उसको ॥ १६ ॥ तथा सब ओर मुखवाली
संज्ञा कंदनाल सुषिर (छिद्र) तंतु कंटका ॥ १७ ॥ मूलसहित किंजल्क संपूर्ण आत्माका प्रकाश पंचग्रन्थीकी कर्णिका और इसके पीछे दल ॥१८॥

केसरसे ब्रह्मा विष्णु रुद्र अपने आत्मा तथा अन्तरात्माको भी पूंजन कर ज्ञानस्वरूप परमात्मामें आत्माद्वारा पूजन करै ॥ १९ ॥ इस प्रकार पूजन करके सौरनामक योगपीठकी पूजा करै. सिंहासनके ऊपर मूलमन्त्रसे मूर्ति स्थापन करै ॥ २० ॥ फिर मूलमंत्रसेही मूलाधारमें प्राणरोक आसनसे बैठ पिंगला नाडीके प्रभावसे आधारशक्तिको उठावै ॥ २१ ॥ मण्डलमें स्थित प्रकाशमान सिंदूरवत् अरुण देहधारी पार्वतीसहित भगवान्को पुष्पांजलि करै ॥ २२ ॥ जो देव रुद्राक्षकी माला पहिरें पाश खट्वांग कपाल अंकुश कमल शंख धारे चार मुख और बारह ॥ २३ ॥ नेत्रोंसे शोभित हैं उनके हृदयकमलके मध्यमें

केशरान् ब्रह्मविष्णू च रुद्रमात्मानमेव च ॥ अन्तरात्मानमपि च ज्ञानात्मपरमात्मनि ॥ १९ ॥ सम्पूज्य पश्चात्सौराख्यं योगपीठं
समर्चयेत् ॥ पीठोपरि समाकल्प्य मूर्त्तिं मूलेन मूलवित् ॥ २० ॥ निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः ॥ शक्तिमुत्थाप्य तत्तेजः
प्रभावात्पिंगलाध्वना ॥ २१ ॥ पुष्पांजलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः ॥ सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्द्धदयितस्य च ॥ २२ ॥
अक्षस्रक्पाशखट्वांगकपालांकुशपंकजम् ॥ शंखं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः ॥२३॥ राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पंकजोदरे ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रांह्रींसस्तदनन्तरम् ॥ २४ ॥ प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डं च ततः परम् ॥ आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया
॥ २५ ॥ मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्रास्संदर्शयेत्ततः ॥ विन्यस्यांगानि ह्रांह्रींह्रूंमंतेन मनुना ततः ॥ २६ ॥ पंचोपचारान्संकल्प्य मूले
नाभ्यर्चयेत्त्रिधा ॥ केशरेषु च पद्मस्य षडंगानि महेश्वरि ॥ २७ ॥ वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः ॥ द्वितीयावरणे पूज्याश्चं
तस्रो मूर्तयः क्रमात् ॥ २८ ॥ पूर्वाद्युत्तरपर्यंतं दलमूलेषु पार्वति ॥ आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ॥ २९ ॥

प्रथम प्रणवका उद्धार कर पीछे ह्रां-ह्रीं सः ॥ २४ ॥ फिर प्रकाशशक्तिके सहित सूर्य्यको आवाहन करता हूँ यह कह 'नमः' लगाकर आवाहन करै ॥ ॥ २५ ॥ मुद्रा आदिक स्थापन करके फिर मुद्राको दिखावै और अंगोंमें 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजोंसे अन्तके मंत्रसे न्यासकरै ॥ २६ ॥ पंच उपचारकर संकल्प करके मूलमन्त्रसे तीन बार पूजन करै । हे महेश्वरी ! पद्मके केसरोंमें और छहों अंगोंमें ॥ २७ ॥ अग्नि ईश्वर राक्षस वायु आदि चारोंकी मूर्तिको दूसरे आवरणमें क्रमसे पूजन करै ॥ २८ ॥ हे पार्वति ! पूर्वसे आदि लेकर उत्तरतक कमलदलके मूलमें आदित्य भास्करभानु रविको क्रमानुसार ॥२९॥

सूर्य ब्रह्मा रुद्र विष्णु और ईशानादिको तीसरे आवरणमें पूजै ॥ ३० ॥ सोम मंगल बुध महाबुद्धिमान् बृहस्पति तेजस्वी शुक्र शनैश्वर भयंकर राहु केतु इनको पूर्वादि दलके मध्यसे चारोंओर पूजै ॥ ३१ ॥ अथवा दूसरे आवरणमें बाहर आदित्योंका पूजन करै. तीसरे आवरणमें बारह राशियोंका पूजन करै ॥ ३२ ॥ सात समुद्र गंगाजीको इसके बारह तथा देवता ऋषि गन्धर्व पन्नग अप्सराओंके गण ॥ ३३ ॥ ग्रामणी यक्ष यातुधान (राक्षस) सप्त छन्दमें वालखिल्य ऋषियोंको लिखकर पूजन करै ॥ ३४ ॥ इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देवको पूजन करके पीछे सावधानीसे चतुरस्र

अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनः प्रिये ॥ ईशानादिषु संपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः ॥ ३० ॥ सोमं कुजं बुधं जीवं कविं मंदं तमस्तमः ॥ समंततो यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः ॥ ३१ ॥ अथवा द्वादशादित्यान्द्वितीयावरणे यजेत् ॥ तृतीयावरणे चैव राशीर्द्वादश पूजयेत् ॥ ३२ ॥ सप्तसागरगंगाश्च बहिरस्य समंततः ॥ ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ॥ ३३ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान् ॥ सप्तच्छन्दोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ॥ ३४ ॥ एव त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम् ॥ विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः ॥ ३५ ॥ स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम् ॥ पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः ॥ ३६ ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ॥ अर्घ्यपात्रं समादाय भूमध्यान्तं समुद्धरेत् ॥ ३७ ॥ ततो ब्रूयादिमं मंत्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम् ॥ शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥ ३८ ॥ सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ॥ पद्माभनेत्राय सुपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३९ ॥

(चौकोन) मंडल लिखै ॥ ३५ ॥ जिसमें सेरभर जल आजाय इस प्रकारका एक ताम्रपात्र स्थापन करके कुंकुमादि वस्तुओंको सुगन्धितकर उसमें जल भरै ॥ ३६ ॥ गन्ध पुष्पादिकोंसे पूजनकर जंघाओंके बल पृथ्वीमें बैठ अर्घ्यपात्र लेकर भाहोंके मध्यतक लेजाकर ॥ ३७ ॥ पीछे सूर्यका यह मन्त्र जो भुक्ति मुक्ति सिद्धिका देने हारा है पढकर अर्घ्य दे ॥ ३८ ॥ सिन्दूरके समान वर्णवाले सुन्दर मंडलसे शोभित हीरे आदिके आभूषणवाले आपको नमस्कार

है. कमलके समान नेत्रवाले, पंकजभू (ब्रह्मा) इन्द्र और नारायणके भी कारण आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ लाल रंगके चूर्णकी समान सुन्दर रंगकी जल माला कुंकुम कुश पुष्प यह सब सुवर्णके पात्रमें लेकर मैं अर्घ्य देता हूँ हे भगवन् ! आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४० ॥ ऐसा कहकर सूर्यमूर्त्ति भगवान्को अर्घ्य दे और इस अगले मन्त्रको पढकर सावधानीसे नमस्कार करै ॥ ४१ ॥ पार्वती गणोंके सहित संसारके आदि कारण शिवजीको नमस्कार है, रुद्र विष्णु ब्रह्मा सूर्य्य मूर्त्तिरूप आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ ऐसा कह नमस्कारकर अपने आसन पर स्थित हो ऋषि आदिको स्मरणकर हाथोंको जलसे

सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुङ्कुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम् ॥ प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा ततो दत्त्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्त्तये ॥ नमस्कुर्यादिमं मंत्रं पठित्वा सुसमाहितः ॥ ४१ ॥ नमश्शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे ॥ रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा नमस्कृत्य स्वासने समवस्थितः ॥ ऋष्यादिकं पुनः कृत्वा करं संशोध्य वारिणा ॥ ४३ ॥ पुनश्च भस्म संधार्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ न्यासजातम्प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये ॥ ४४ ॥ पंचोपचारैस्संपूज्य शिरसा श्रीगुरुम्बुधः ॥ प्रणवं श्रीचतुर्थ्यंतं नमोंतं प्रणमेत्ततः ॥ ४५ ॥ पंचात्मकं बिन्दुयुतं पंचमस्वरसंयुतम् ॥ तदेव बिन्दुसहितं पंचमस्वरवर्जितम् ॥४६॥ पंचमस्वरसंयुक्तं मंत्रीशं च सबिन्दुकम् ॥ उद्धृत्य बिन्दुसहितं संवर्तकमथोद्धरेत् ॥ ४७ ॥ एतैरेवं क्रमाद्बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद्बुधः ॥ भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिन्तथा ॥ ४८ ॥

शुद्धकर ॥ ४३ ॥ पूर्वोक्त विधानसे फिर भस्मको धारण करै, शिवभक्तिके निमित्त अंगन्यास करन्यासादि करै ॥ ४४ ॥ और बुद्धिमान्को उचित है कि, शिरसे नम्र हो गुरुको पंचोपचारसे पूजन करै ओं श्रीपूर्वक अन्तमें नमः उच्चारणकर चतुर्थी अन्तमें लगाय (ॐ श्रीगुरवे नमः) इस प्रकार उच्चारण करै ॥ ४५ ॥ पंचवर्णात्मक बिन्दुयुक्त पंचमस्वर उकारसहित और वहीं बिन्दुसहित पंचमस्वरसे रहित ॥ ४६ ॥ पंचमस्वरके सहित बिन्दुसहित मंत्रीशको उद्धार करके बिन्दुसहित क्षकारका उच्चारण करै ॥ ४७ ॥ क्रमसे इन बीजोंको उद्धारकर क्रमसे भुजा और दोनों जंघाओंमें देवताओंको प्रणाम ध्यान करै

भुजामें गुरु और गणपतिको और दोनों उरूमें ॥ ४८ ॥ दुर्गा और क्षेत्रपालको प्रणाम करै, हाथजोड ॐ अस्त्राय फट् यह उच्चारणकर षडंगन्यास करके हाथोंको छः बार शुद्ध करै ॥ ४९ ॥ (अपसर्पन्तु) यह मंत्र उच्चारणकर फिर प्रणव उच्चारणकर अस्त्रायफट् कहकर पृथ्वीमें तीन पार्ष्णिघात (ताडन) करके ॥ ५० ॥ भूमिके विघ्नोंको दूर करके और तीनताली बजाकर अन्तरिक्षमें प्राप्तहुए विघ्नोंको देखकर तथा स्वर्गके विघ्नोंको देखकर दूर करै ॥५१॥ प्राण रोककर स्थित हो हंसमन्त्रका उच्चारण करताहुआ हृदयमें स्थित जीव चैतन्यको सुषुम्णानाडीद्वारा परमेश्वरसे मिलावै ॥ ५२ ॥ द्वादश कमल हृदयमें

दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धांजलिपुटः स्थितः ॥ ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ॥ ४९ ॥ अपसर्पन्त्विति प्रोच्य
प्रणवं तदनंतरम् ॥ अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ॥ ५० ॥ उद्धृत्य विघ्नान्भूयिष्ठान्करतालत्रयेण तु ॥ अन्तरिक्षगता
न्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ॥ ५१ ॥ निरुद्धप्राण आसीनो हंसमंत्रमनुस्मरन् ॥ हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाड्या समानयेत् ॥
॥ ५२ ॥ द्वादशांतस्स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलान्तस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ॥ ५३ ॥ शोषदाहप्लवान्कुर्याद्रेचकादि
क्रमेण तु ॥ सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशद्वर्णनायुतैः ॥५४॥ वाय्वग्निसलिलाद्यैस्तैस्स्तवेदाद्यैरनुक्रमात् ॥ प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलीं
ब्रह्मरंध्रगाम् ॥ ५५ ॥ आनीय द्वादशांतस्थसहस्राराम्बुजोदरे ॥ चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ॥ ५६ ॥ संसिक्तायां तनौ भूय
श्शुद्धदेहस्सुभावनः ॥ सोहमित्यवतीर्याथ स्वात्मानं हृदयाम्बुजे ॥ ५७ ॥

स्थित उज्ज्वल सहस्रदलवाले महापद्ममें चिदात्मक चन्द्रमण्डलमें स्थित चिद्रूप परमेश्वरका ध्यान करै ॥ ५३ ॥ अब भूतशुद्धि कहते हैं—रेचक आदिके क्रमसे शोष और दाह दूर करके सोलह चौंसठ अथवा बत्तीस अकारादि वर्णोंसे ॥ ५४ ॥ वायु, अग्नि, जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदमंत्रोंसे सावधानहो विधिपूर्वक प्राणायाम करै, और ब्रह्मरंध्रतक जानेवाली कुण्डलीको जगावै ॥ ५५ ॥ बारह कमल और सहस्र कमलमें उसको लेजाय, जहां चन्द्रमण्डलसे अमृतकी धारा निकलती है ॥ ५६ ॥ उसमें शरीरको न्हवाकर देहशुद्धकर अपने हृदयकमलमें वह मैं हूं ऐसी भावना करै ॥ ५७ ॥

आत्मासे ही आत्माको अमृतीकरण करके संसृति धारसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करै, और सावधान रहै ॥ ५८ ॥ इस प्रकार योगी एकाग्र मनसे अन्तकी
मात्राको प्रणवसे संपुटित करके उस पूर्वोक्त मात्राको बहिर्भागमें स्थित करै ॥ ५९ ॥ फिर प्राणदृष्ट्यादिकोंको रोककर चित्तमें शंकरको स्मरण करते
भए मात्सर्यको छोडकर न्यास करै ॥ ६० ॥ फिर ऋषि आदिका स्मरणकर प्रणाम करै, प्रणवका ब्रह्मा ऋषि देवी गायत्री छंद सदाशिव परमात्मा देवता
है ॥ ६१ ॥ अकार बीज, उकार शक्ति है, मकार कीलक है, मोक्षके अर्थ प्रयोग किया जाता है ॥ ६२ ॥ दोनों अँगूठे लेकर हथेली तक शुद्धकर

आत्मन्यावेश्य चात्मानममृतं सृतिधारया ॥ प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः ॥ ५८ ॥ एकाग्रमानसो योगी विमृश्यात्तां च
मातृकाम् ॥ पुटितां प्रणवेनाथ न्यसेद्बाह्ये च मातृकाम् ॥ ५९ ॥ पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद्दृष्ट्यादिकं बुधः ॥ शंकरं संस्मरंश्चित्ते
संन्यसेच्च विमत्सरः ॥ ६० ॥ प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवि गायत्रमीरितम् ॥ छन्दोत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिवः ॥ ६१ ॥ अकारो
बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ॥ मकारः कीलकं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियुज्यते ॥ ६२ ॥ अंगुष्ठद्वयमारभ्य तलांतं परिमार्जयेत् ॥
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यासं समारभेत् ॥ ६३ ॥ दक्षहस्तास्थितांगुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम् ॥ वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क्र
मात् ॥ ६४ ॥ अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ॥ नमोन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ॥ ६५ ॥ अकारं पूर्वमुद्धृत्य
ब्रह्मात्मानमथाचरेत् ॥ ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः ॥ ६६ ॥ उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत् ॥ मकारं रुद्रसहितं
शिखायान्तु प्रविन्यसेत् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ॥ विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा ॥ ६८ ॥

हे देवेशि ! फिर ओम् ऐसा कहकर करन्यास करै ॥ ६३ ॥ दक्षिण हस्तके अँगूठेसे प्रारम्भ करै बायें हाथकी कनिष्ठिका तक दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदि
तौ क्रमसे न्यास करै ॥ ६४ ॥ ओंकार उकार और बिन्दु सहित मकार सबमें नमः अन्तमें लगाकर हृदयमें न्यासकरै ॥ ६५ ॥ पहले अकारका
उद्धारकर ब्रह्म आत्मा उच्चारणकरै " अं ब्रह्मात्मने नमः" इस प्रकार चतुर्थीके एक वचनसे अन्तमें नमः लगाकर हृदयमें स्पर्श करै ॥६६॥ और उकारका
विष्णु सहित ध्यान करके शिरदेशमें विनययोग करै । रुद्रसहित मकारको शिखादेशमें ॥ ६७ ॥ इस प्रकार 'अं ब्रह्मात्मने नमः' इत्यादि क्रमसे कहकर

कवचादिका विधान करै, नेत्रोंमें अस्त्र मन्त्रसे ॥ ६८ ॥ हे देवि ! सावधान होकर चित्त लगाय अंग मुख कलाके भेदसे पांच ईशानादिका न्यासकरै. उन
पूर्वोक्त ईशानादिका शिर वदन हृदय गुह्य और चरणोंमें न्यास करै ॥ ६९ ॥ ईशानकी पांच कलाको क्रमसे शरीरके पांचों स्थानोंमें न्यास करै फिर पूर्वादि
दिशाके योगसे चारों मुखोंमें पूर्वादि क्रमसे पुरुषकी ॥ ७० ॥ चारों कला स्थित करनी चाहिये. हृदय, कण्ठ, कंधा, नाभि, कोष, पीठ, छाती ॥७१॥
इन स्थानोंमें अघोरकी आठ कला स्थित करै पीछे पायुमें जानु (जंघा) ॥ ७२ ॥ स्फिक् (कूला) कमर पसवाडोंमें वामदेवकी तेरह कलाकी भावना

अंगवक्त्रकलाभेदात्पंच ब्रह्माणि विन्यसेत् ॥ शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत् ॥ ६९ ॥ ईशानस्य कलाः पंच पंचस्वेतेषु च
क्रमात् ॥ ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ॥ ७० ॥ चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे
च वक्षसि॥७१॥अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथाक्रमम् ॥ पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु ॥ ७२ ॥ जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु
वामदेवस्य भावयेत् ॥ सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ नेत्रेषु च यथाक्रमम् ॥७३॥ कीर्तितास्ताः कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयोः ॥ प्राणे शिरसि
बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥७४॥ अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः ॥ पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ॥ ७५ ॥
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः ॥ पार्श्वतोदरजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा ॥ ७६ ॥ इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ॥
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ न्यासवर्णनं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ ईश्वर उवाच ॥ स्ववामे चतुरस्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत् ॥ ओमित्यभ्यर्च्य तस्मिंस्तु शंखमस्त्रोपशोभितम् ॥ १ ॥

करै सद्योजातकी आठ कला यथाक्रमसे नेत्रोंमें कल्पना करै ॥ ७३ ॥ इन कलाओंकी हस्त, चरण, प्राण, शिर, बाहुमें कल्पना करै ॥ ७४ ॥ इस प्रकार
२८ कलाओंका न्यास करके पीछे बुद्धिमान् प्रणवका ध्यान करै ॥ ७५ ॥ दोनों बाहुकूर्पर (कौनी) तथा मणिबन्ध पार्श्व उदर जंघा पाद और पीठमें
॥ ७६ ॥ बुद्धिमान् इस प्रकार प्रणवको न्यास करके फिर परमात्माके बोध करानेहारा हंसन्यास करै ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां
कैलाससंहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ईश्वर बोले, अपने वामओर चतुरस्र (चौकोन) मंडलकी कल्पना करै और ओम् इस प्रकारसे अर्चनाकर शंखअस्त्रसे

अर्थात् अस्त्रमन्त्रसे शोधित करके ॥ १ ॥ उसको आधारपर रखकर प्रणवसे पूजन करै और चन्दनादि सुगन्धिवाले जलसे पूर्ण करके ॥ २ ॥ प्रणवसे सातबार गन्ध, धूप, पुष्पोंसे पूजन करै. इस प्रकार अभिमन्त्रित कर उसमें धेनुमुद्रा दिखावै ॥ ३ ॥ उसके आगे चौकोन शंखमुद्राकी कल्पना करै, उसके अन्तरमें अर्द्धचन्द्र और उसके अन्तरमें त्रिकोण ॥ ४ ॥ इस प्रकार षट्कोण मंडलकी कल्पना करै. उसके मध्यमें ओंकारसेही गन्ध पुष्पादि द्वारा पूजा करै ॥ ५ ॥ फिर उस आधारवाले अर्घ्यपात्रको स्थापनकर गन्धादिसे पूजन करै और पवित्रजलसे पूर्णकर उस पात्रमें डालै ॥ ६ ॥ कुशाके अग्रभाग,

स्थाप्य साधारकं तं तु प्रणवेनार्चयेत्ततः ॥ आपूर्य्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगंधिना ॥ २ ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा ॥
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ३ ॥ शंखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥ तदन्तरेर्द्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे ॥
॥ ४ ॥ षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत् ॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः ॥ ५ ॥ साधारमर्घ्यपात्रं च स्थाप्य
गंधादिनार्चयेत् ॥ आपूर्य्य शुद्धतोयेन तस्मिन्पात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ६ ॥ कुशाग्राण्यक्षताश्चैव यवव्रीहितिलानपि ॥ आज्यसिद्धार्थ
पुष्पाणि भसितं च वरानने ॥ ७ ॥ सद्योजातादिभिर्मंत्रैः षडंगैः प्रणवेन च ॥ अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैरभिमंत्र्य च वर्मणा ॥ ८ ॥
अवगुंठ्यास्त्रमंत्रेण संरक्षार्थं प्रदर्शयेत् ॥ धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ ९ ॥ स्वात्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणान्यपि ॥ पद्मस्ये
शानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम् ॥ १० ॥ गुर्वासनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत् ॥ गुरोर्मूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः ॥ ११ ॥
प्रणवं गुं गुरुभ्योन्ते नमः प्रोच्यापि देशिकम् ॥ समावाह्य ततो ध्यायेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम् ॥ १२ ॥

अक्षत, यव, व्रीहि, तिल, घृत, श्वेतसरसोंके पुष्प और भस्म हे वरानने ! ॥ ७ ॥ सद्योजातादि मन्त्र षडंग और प्रणवसे गन्ध पुष्पादिसे अभिमन्त्रित करके कवचमंत्रसे अभिमन्त्रित करै ॥ ८ ॥ अस्त्रमन्त्रसे उसे संयुक्तकर रक्षाके निमित्त धेनुमुद्रा दिखावै और अस्त्रमन्त्रसेही धेनुमुद्राको प्रोक्षण करै ॥ ९ ॥ अपने आत्मामें गन्ध पुष्पादि पूजाकी सामग्रीसे अस्त्रमन्त्रद्वारा प्रोक्षण करै; और कमलके ईशान ओरकी दिशामें कमलमें ओंकार उच्चारणपूर्वक ॥ १० ॥ "गुरुआसनाय नमः" इस प्रकार कहकर आसनकी कल्पना करै और गुरूपदेशके अनुसार वहां गुरुमूर्तिकी कल्पना करै ॥ ११ ॥ 'प्रणवं गुं गुरुभ्यो नमः'

इस प्रकार गुरुके प्रति कहकर दक्षिणदिशाके सन्मुख स्थित हो आवाहन कर ध्यान करै ॥ १२ ॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सौम्य शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल वरदायक अभय हाथवाले दो नेत्रयुक्त शिव शरीर ॥ १३ ॥ गुरुको ध्यान कर क्रमसे गन्ध पुष्प आदिसे पूजन करै और उस पद्मके नैर्ऋतकी ओरके पद्मपर स्थित गणेशके आसनके ऊपर ॥ १४ ॥ (गणानांत्वा) इत्यादि मंत्रसे मूर्त्ति कल्पितकर देवताको आवाहन कर एकाग्रमनसे ध्यान करै ॥ १५ ॥ लालवर्ण महाशरीरवाले सब गहनोंसे संयुक्त पाश अंकुश इष्ट दर्शन करकमलमें धारे हुए हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब विघ्नोंके नाश करनेवाले अस्त्ररूप

सुप्रसन्नमुखं सौम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥ वरदाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम् ॥ १३ ॥ एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पादिभिरनुक्रमात् ॥ पद्मस्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यासनोपरि ॥ १४ ॥ मूर्तिम्प्रकल्प्य तत्रैव गणानांत्वेति मंत्रतः ॥ समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥ १५ ॥ रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम् ॥ पाशांकुशेष्टदशनान्दधानङ्करपङ्कजैः ॥ १६ ॥ गजाननम्प्रभुं सर्वविघ्नौघघ्नमुपासितुः ॥ एवन्ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः ॥ १७ ॥ कदलीनारिकेलाम्रफललड्डुकपूर्वकम् ॥ नैवेद्यं च समर्प्याथ नमस्कुर्याद्गजाननम् ॥ १८ ॥ पद्मस्य वायुदिक्पद्मे संकल्प्य स्कान्दमासनम् ॥ स्कन्दमूर्तिम्प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद्बुधः ॥ १९ ॥ उच्चार्य्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम् ॥ उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ॥ २० ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गं मुकुटादिविभूषितम् ॥ वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम् ॥ २१ ॥ एवन्ध्यात्वाऽथ गंधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात् ॥ संपूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम् ॥ २२ ॥

प्रभु गणेशजीको ध्यानकर और षोडश उपचारसे पूजनकर ॥ १७ ॥ केलेकी फली नईवस्तु नारियल आम लड्डू और नैवेद्य समर्पणकर गणेशजीको नमस्कार करै ॥ १८ ॥ कमलके वायुकोणके पद्ममें स्कन्दका आसन कल्पित करै, उसपर स्कन्दकी मूर्त्ति कल्पनाकर स्कंदका आवाहन करै ॥ १९ ॥ स्कन्द गायत्री उच्चारण कर कुमारका आवाहन कर उदय होतेहुए सूर्यके समान कांतिमान मयूरके वाहनवाले ॥ २० ॥ चारभुजा उदार शरीर मुकुटादिसे विभूषित वर और अभयदाता शक्ति तथा मुकुटके धारण करनेवाले ॥ २१ ॥ स्कन्दजीको इस प्रकार ध्यानकर गन्धादि पुष्पोंसे विधिपूर्वक पूजा करके

पूर्वद्वारकी शाखामें स्थित ॥ २२ ॥ और अन्तःपुरके अधिप साक्षात् नन्दीश्वरकी पूजा करके जो सुवर्णके समान सम्पूर्ण आभरणसे ॥ २३ ॥ भूषितहैं बालचंद्रमाका मुकुट सौम्यमूर्त्ति तीननेत्र चारभुजा दीप्तिमान् शूल मृगी टंक और सुवर्णका वेत्र धारण किये सर्वज्ञ ॥ २४ ॥ चन्द्रमण्डलके समान मुख अथवा सिंहके समान मुखवाले नंदीको और उत्तरकी ओर मरुतोंकी कन्या उनकी भार्या ॥ २५ ॥ सुयशानामवाली शोभनव्रतवाली पार्वतीके चरणमंडलमें तत्पर हो चंदन पुष्पादि उपहारोंसे पूजन करै ॥ २६ ॥ पीछे उस कमलको अस्त्रमंत्रसहित शंखोदककी बिंदुओंसे प्रोक्षण करै, पीछे यथाविधि आधारादि

अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ॥ चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ २३ ॥ बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ दीप्तशूलमृगीटंकहेमवेत्रधरं विभुम् ॥ २४ ॥ चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्रमथापि वा ॥ उत्तरस्यान्तथा तस्य भार्यां च मरुतां सुताम् ॥ २५ ॥ सुयशां सुव्रतामम्बापादमण्डनतत्पराम् ॥ संपूज्य विधिवद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः ॥ २६ ॥ ततस्संप्रोक्षयेत्पद्मं सास्त्रशंखोदबिन्दुभिः ॥ कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमात् ॥ २७ ॥ आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि ॥ तस्याः पुरस्तादुत्कंठमनन्तं कुंडलाकृतिम् ॥ २८ ॥ धवलं पंचफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम् ॥ तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम् ॥ २९ ॥ धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च पदानि वै ॥ आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः ॥ ३० ॥ अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात् ॥ राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत् ॥ ३१ ॥ अधोर्द्ध्वच्छदनं पश्चात्कंदं नालं च कण्ठकान् ॥ दलादिकं कर्णिकाञ्च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत् ॥ ३२ ॥

आसन कल्पना करै ॥ २७ ॥ आधार शक्ति श्यामस्वरूप कल्याण रूपको नीचे पृथ्वीमें ध्यान करै उसके आगे ऊर्ध्वकंठमें कुंडलाकार अनंतको ध्यान करै ॥ २८ ॥ जो श्वेतशरीर पांच फणिमंडलसे युक्त आकाशको चाटतेहुए उनके समीपमें सिंहकेसे आकारवाले चारपांव युक्त ॥ २९ ॥ धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यके चरणोंको आसनपर कल्पित करै आग्नेयी आदि दिशा श्वेत पीत रक्त श्यामवर्ण ॥ ३० ॥ और अधर्मादिकोंको पूर्वादि दिशाके अनुक्रमसे पधरावै, राजावर्तमणि (उपरत्नका भेद) आदिकी इनके शरीरमें भावना करै ॥ ३१ ॥ पीछे नीचे और ऊंचेमें इस रत्नसे इन अनंतका आच्छादन कल्पना

करै पीछे स्कन्दको नालकंटक कमलके दल और कर्णिकाकी भावनाकर क्रमसे पूजन करै ॥ ३२ ॥ दलोंमें सिद्धिकी कल्पना करै और केसरोंमें शक्तिकी
कल्पना करै, और रुद्र तथा वामादि आठ शक्तियोंकी पूर्वादि दिशामें कल्पना करै ॥ ३३ ॥ कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नवशक्तिकी कल्पना करै,
वामादिक शक्तियोंको पूर्वादि दिशामें कल्पना कर पीछे मनोन्मनी शक्तिको ॥ ३४ ॥ कन्दमें, शिवात्मक धर्मनालमें, शिवाश्रयज्ञान कर्णिकाके ऊपर आग्नेय
मंडल चन्द्र सूर्य समबन्धिका ध्यान करै ॥ ३५ ॥ आत्मविद्या ज्ञान शिवब्रह्मात्मक तीन तत्त्व इससे परेहैं, सम्पूर्ण आसनोंपर सुखपूर्वक विचित्र उज्ज्वल

दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः ॥ रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ ३३ ॥ कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव
शक्तयः ॥ वामाद्या एव पूर्वादि तदन्तश्च मनोन्मनी ॥ ३४ ॥ कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ॥ कर्णिकोपरि वाह्नेयं
मंडलं सौरमैन्दवम् ॥ ३५ ॥ आत्मविद्या शिवाख्यं च तत्त्वत्रयमतः परम् ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥
परव्योमावकाशाख्यविद्ययातीव भास्वरम् ॥ परिकल्प्यासनं मूर्त्तः पुष्पविन्यासपूर्वकम् ॥ ३७ ॥ आधारशक्तिमारभ्य शुद्धवि
द्यासनावधि ॥ ॐकारादिचतुर्थ्यंतं नाममन्त्रं नमोन्तकम् ॥३८॥उच्चार्य पूजयेद्विद्वान्सर्वत्रैवं विधिक्रमः ॥ अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पंचब्रह्मा
णि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ विन्यसेत्क्रमशो मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ॥ आवाहयेत्ततो देवं पुष्पांञ्जलिपुटस्थितः ॥ ४० ॥ सद्योजातम्प्रप
द्यामीत्यारभ्योमन्तमुच्चरन् ॥ आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ॥ ४१ ॥

पुष्प स्थित करै ॥ ३६ ॥ और दहर विद्यासे महाउज्ज्वल आसन मूर्त्ति कल्पनाकर पुष्प रक्खै ॥ ३७ ॥ आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्धविद्यासे आस
नपर्यन्त ॐकारसहित चतुर्थी विभक्तिसे अन्तमें नमः लगाकर ॥ ३८ ॥ विद्वान् सब स्थानोंमें विधिपूर्वक पूजन करै अंग मुख और कलाके भेदसे उन
ईशानादि पांच ब्रह्मको पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ उनकी मूर्त्तिमें स्थितकर मुद्रा दिखावै फिर पुष्पाञ्जलि ग्रहणकर देवताओंका आवाहन करै ॥ ४० ॥ (सद्योजातं
प्रपद्यामि०) यहांसे आरम्भ कर (शिवोमे अस्तु सदाशिवोम्) यहांतक उच्चारण करै. मूलाधारसे उठेहुए नाद बारह चक्रकी ग्रन्थी तोडकर ॥ ४१ ॥

ब्रह्मरन्ध्रसे उच्चारणकर ओंकार गोचर परमेश्वरका ध्यान करै, शुद्ध स्फटिक मणिके समान कलारहित अक्षर ॥ ४२ ॥ दिव्य स्वरूप सब लोकोंके कारण सम्पूर्ण देवमय पर अन्तर बाहर सर्वत्र व्याप्त अणु महान् ॥ ४३ ॥ भक्तोंको विना प्रयत्नही दीखनेवाले ईश्वर अविनाशी ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि देवताओंको भी अगोचर ॥ ४४ ॥ वेदसार और विद्वानोंको प्राप्त होने योग्य आदि मध्य अन्तसे रहित भवरोगियोंको औषधी स्वरूप ॥ ४५ ॥ सावधान मनसे परमेश्वरको ध्यान करै आवाहन स्थापन सन्निरोध दर्शन ॥ ४६ ॥ और नमस्कार हाथ जोडकर करै और पृथक् २ मुद्रा बांधे साक्षात् निष्कल देव

ब्रह्मरन्ध्रांतमुच्चार्य ध्यायेदोंकारगोचरम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ॥ ४२ ॥ कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥ अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्पं महत्तमम् ॥ ४३ ॥ भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ ४४ ॥ वेदसारञ्च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम् ॥ आविर्मध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ४५ ॥ समाहितेन मनसा ध्यात्वैवं परमेश्वरम् ॥ आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम् ॥ ४६ ॥ नमस्कारं च कुर्वीत बध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ॥ ध्यायेत्सदाशिवं साक्षाद्देवं सकलनिष्कलम् ॥ ४७ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥ विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकुटभूषितम् ॥ ॥ ४८ ॥ शार्दूलचर्मवसनं किंचित्स्मितमुखाम्बुजम् ॥ रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ॥ ४९ ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ॥ दिव्यायुधवरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ५० ॥ पञ्चवक्त्रन्दशभुजञ्चन्द्रखण्डशिखामणिम् ॥ अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ५१ ॥

शिवका ध्यान करै ॥ ४७ ॥ शुद्धस्फटिक मणिके समान प्रसन्न शीतलकान्तियुक्त बिजलीके वलयके समान जटाओंके मुकुटसे शोभित ॥ ४८ ॥ शार्दूल चर्मका वस्त्र ओढे मुख कमलमें हास्य करतेहुए लाल कमलके समान हाथ चरण और अधरवाले॥ ४९ ॥ सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण गहने पहरे श्रेष्ठ दिव्य आयुधोंसे युक्त दिव्यगंधका लेप लगाये॥ ५० ॥ पांचमुख दशभुजा शिखामणिमें चन्द्रखण्ड धारे पूर्वका मुख महासौम्य बालसूर्यके समान कान्तिमान्॥ ५१ ॥

त्रिलोचन कमलके समान शोभायमान बालचन्द्रमा मस्तकपर शोभित दक्षिणका मुख नीलमेघके समान कान्तिमान् ॥ ५२ ॥ टेढी भृकुटी घोर लाल नेत्र कराल डाढैं दुष्प्रेक्ष्य होठ फडकते हुए ॥ ५३ ॥ उत्तरका मुख मूंगेके समान नील अलकोंसे शोभित सुन्दर विलासयुक्त तीन नेत्र अर्द्धचन्द्र मस्तकपर शोभित है ॥ ५४ ॥ पश्चिमका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान तीन उज्ज्वल नेत्रोंसे शोभित चन्द्ररेखा धारण करनेवाले सौम्य मंदहास्यसे मनोहर है ॥ ५५ ॥ पांचवां मुख स्फटिकके समान चंद्ररेखासे समुज्ज्वल अत्यन्त मनोहर खिले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ ५६ ॥ दक्षिणभागमें शूल, परशु, वज्र,

त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम्॥दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ॥५२॥ भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम् ॥ दंष्ट्रा
करालं दुष्प्रेक्ष्यं स्फुरिताधरपल्लवम् ॥५३॥ उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ॥ सद्विलासन्त्रिनयनं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥५४॥
पश्चिमम्पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरम् ॥ ५५ ॥ पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्व
लम् ॥ अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ ५६ ॥ दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ॥ ५७ ॥ पूर्व्वे पिनाकनाराचघण्टा
पाशांकुशोज्ज्वलम् ॥ निवृत्त्याजानुपर्य्यंतमानाभि च प्रतिष्ठया ॥ ५८ ॥ आकण्ठं विद्यया तद्वद्राललाटं तु शान्तया ॥ तदूर्ध्वं शान्त्यती
ताख्यकलया परया तथा ॥ ५९ ॥ पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलापञ्चकविग्रहम् ॥ ईशानमुकुटं देवम्पुरुषाख्यम्पुरातनम् ॥ ६० ॥
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ॥ सद्योजातं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥ ६१ ॥ मातृकामयमीशानम्पञ्चब्रह्ममयन्तथा ॥
ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयन्तथा ॥ ६२ ॥ पञ्चाक्षरमयन्देवं षडक्षरमयन्तथा ॥ अङ्गषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ॥ ६३ ॥

खंड, अग्निके समान उज्ज्वल ॥ ५७ ॥ वामओर नाराच घंटापाश और अंकुशसे उज्ज्वल जानुपर्यन्त निवृत्या नामकला, और नाभिमें प्रतिष्ठित नाम कलासे ॥ ५८ ॥ कंठपर्यन्त विद्या और ललाटपर्यन्त शान्तानाम कला और इससे ऊपर शान्त्यतीत परा कलासे युक्त ॥ ५९ ॥ पांचस्थानमें व्यापक होनेसे निवृत्यादि पंच कलामय शरीर है, ईशान देव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ॥ ६० ॥ अघोर हृदय है वामदेव गुह्य है सद्योजात चरण है इस प्रकार अडतीस कलामय उसकी मूर्त्ति है ॥ ६१ ॥ ईशान मातृकामय है तथा पंच ब्रह्ममय है ओंकारमय तथा हंस न्यासमयहै ॥ ६२ ॥ यह देव पंचाक्षरमय

तथा षडक्षर है छः अंगमय और जातिसे युक्त है ॥ ६३ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करै फिर मेरे वामभागमें तुम मनोन्मनीरूप गौरीको ‘ गौरीमिमाय ’ मंत्र और ॐकार सहित ध्यान करै ॥ ६४ ॥ हे ईश्वरि ! आवाहन कर पूर्ववत् नमस्कार करै. फिर हे देवि ! सावधान मन मौन होकर तुम्हारा ध्यान करै ॥ ६५ ॥ फूले कमलके समान कान्तियुक्त विस्तीर्ण नेत्रवाली पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख नील कुंचित केश ॥ ६६ ॥ नीलकमलके दलके समान अर्द्धचंद्र मस्तकपर धारे चौंडे घने ऊँचे और स्निग्ध पयोधरसे शोभित ॥ ६७ ॥ सूक्ष्मकटि, पुष्ट श्रेणीभाग, पीत और बारीक वस्त्रधारे, सम्पूर्ण गहने पहरे,

एवन्ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम् ॥ गौरीमिमायमन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः ॥ ६४ ॥ आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारांतमीश्वरि ॥ ध्यायेत्ततस्त्वान्देवेशि समाहितमना मुनिः ॥ ६५ ॥ प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम् ॥ पूर्णचन्द्राभवदनान्नीलकुंचितमूर्द्धजाम् ॥ ६६ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्याश्चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥ अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ ६७ ॥ तनुमध्याम्पृथुश्रोणीम्पीतसूक्ष्मतराम्बराम् ॥ सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥ ६८ ॥ विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ॥ सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ॥ ६९ ॥ हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे ॥ दण्डवच्चामरं हस्तं न्यस्यासीनां सुखासने ॥ ७० ॥ एवम्मान्त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ॥ स्नापयेच्छंखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ॥ ७१ ॥ भवे भवे नातिभव इति पाद्यम्प्रकल्पयेत् ॥ वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ॥ ७२ ॥ ज्येष्ठाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रम्प्रकल्पयेत् ॥ श्रेष्ठाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥ ७३ ॥ रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ॥ कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धन्दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ७४ ॥

माथेपर उज्ज्वल तिलक धारे ॥ ६८ ॥ विचित्र पुष्पोंसे शो[illegible]को [illegible] केश पाश, सब प्रकार गुणोंसे भरी कुछेक लज्जासे नीचामुख किये ॥६९॥ दक्षिणहाथमें क्रीडाके निमित्त सुवर्णका कमल लिये, दूसरा हाथ [illegible] शान, रु[illegible]र धारे ॥ ७० ॥ हे देवि ! जो इस प्रकार मनलगाय मेरा और तुम्हारा ध्यान करताहै और शंखके जलसे स्नान कराकर ॐकारसे प्रोक्षण [illegible] शाके भागमें सिद्ध होता है ॥ ७१ ॥ (भवेभवेनातिभवे) इस मंत्रसे पाद्य और “वामाय नमः” यह पढकर आचमन देवे ॥ ७२ ॥ (ज्येष्ठाय नमः) सर्वेशको पश्चिमके शुभ्र वस्त्र दे (श्रेष्ठाय नमः) कहकर यज्ञोपवीत दे ॥ ७३ ॥ (रुद्राय नमः) ऐसा कहकर

त्रिलोचन कमलके समान शोभायमान बालचन्द्रमा मस्तकपर शोभित दक्षिणका मुख नीलमेघके समान कान्तिमान् ॥ ५२ ॥ टेढी भृकुटी घोर लाल नेत्र कराल डाढैं दुष्प्रेक्ष्य होठ फडकते हुए ॥ ५३ ॥ उत्तरका मुख मूंगेके समान नील अलकोंसे शोभित सुन्दर विलासयुक्त तीन नेत्र अर्द्धचन्द्र मस्तकपर शोभित है ॥ ५४ ॥ पश्चिमका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान तीन उज्ज्वल नेत्रोंसे शोभित चन्द्ररेखा धारण करनेवाले सौम्य मंदहास्यसे मनोहर है ॥ ५५ ॥ पांचवां मुख स्फटिकके समान चंद्ररेखासे समुज्ज्वल अत्यन्त मनोहर खिले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ ५६ ॥ दक्षिणभागमें शूल, परशु, वज्र,

त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम्॥दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ॥५२॥ भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम् ॥ दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं स्फुरिताधरपल्लवम् ॥५३॥ उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ॥ सद्विलासन्त्रिनयनं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥५४॥ पश्चिमम्पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरम् ॥ ५५ ॥ पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्वलम् ॥ अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ ५६ ॥ दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ॥ ५७ ॥ पूर्व्वे पिनाकनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ॥ निवृत्त्याजानुपर्य्यंतमानाभि च प्रतिष्ठया ॥ ५८ ॥ आकण्ठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया ॥ तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा ॥ ५९ ॥ पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलापञ्चकविग्रहम् ॥ ईशानमुकुटं देवम्पुरुषाख्यम्पुरातनम् ॥ ६० ॥ अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ॥ सद्योजातं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥ ६१ ॥ मातृकामयमीशानम्पञ्चब्रह्ममयन्तथा ॥ ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयन्तथा ॥ ६२ ॥ पञ्चाक्षरमयन्देवं षडक्षरमयन्तथा ॥ अङ्गषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ॥ ६३ ॥

खंड, अग्निके समान उज्ज्वल ॥ ५७ ॥ वामओर नाराच घंटापाश और अंकुशसे उज्ज्वल जानुपर्यन्त निवृत्या नामकला, और नाभिमें प्रतिष्ठित नाम कलासे ॥ ५८ ॥ कंठपर्यन्त विद्या और ललाटपर्यन्त शान्तानाम कला और इससे ऊपर शान्त्यतीत परा कलासे युक्त ॥ ५९ ॥ पांचस्थानमें व्यापक होनेसे निवृत्यादि पंच कलामय शरीर है, ईशान देव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ॥ ६० ॥ अघोर हृदय है वामदेव गुह्य है सद्योजात चरण है इस प्रकार अडतीस कलामय उसकी मूर्त्ति है ॥ ६१ ॥ ईशान मातृकामय है तथा पंच ब्रह्ममय है ओंकारमय तथा हंस न्यासमयहै ॥ ६२ ॥ यह देव पंचाक्षरमय

तथा षडक्षर है छः अंगमय और जातिसे युक्त है ॥ ६३ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करै फिर मेरे वामभागमें तुम मनोन्मनीरूप गौरीको 'गौरीमिमाय'
मंत्र और ॐकार सहित ध्यान करै ॥ ६४ ॥ हे ईश्वरि ! आवाहन कर पूर्ववत् नमस्कार करै. फिर हे देवि ! सावधान मन मौन होकर तुम्हारा ध्यान
करै ॥ ६५ ॥ फूले कमलके समान कान्तियुक्त विस्तीर्ण नेत्रवाली पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख नील कुंचित केश ॥ ६६ ॥ नीलकमलके दलके समान
अर्द्धचंद्र मस्तकपर धारे चौंडे घने ऊँचे और स्निग्ध पयोधरसे शोभित ॥ ६७ ॥ सूक्ष्मकटि, पुष्ट श्रेणीभाग, पीत और बारीक वस्त्रधारे, सम्पूर्ण गहने पहरे,

एवन्ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम् ॥ गौरीमिमायमन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः ॥ ६४ ॥ आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारांतमी
श्वरि ॥ ध्यायेत्ततस्त्वान्देवेशि समाहितमना मुनिः ॥ ६५ ॥ प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम् ॥ पूर्णचन्द्राभवदनान्नील
कुंचितमूर्द्धजाम् ॥ ६६ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्याश्चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥ अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ ६७ ॥ तनुमध्या
म्पृथुश्रोणीम्पीतसूक्ष्मतराम्बराम् ॥ सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥ ६८ ॥ विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ॥
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ॥ ६९ ॥ हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे ॥ दण्डवच्चामरं हस्तं न्यस्यासीनां सुखा
सने ॥ ७० ॥ एवम्मान्त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ॥ स्नापयेच्छंखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ॥ ७१ ॥ भवे भवे नातिभव
इति पाद्यम्प्रकल्पयेत् ॥ वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ॥ ७२ ॥ ज्येष्ठाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रम्प्रकल्पयेत् ॥ श्रेष्ठाय नम
इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥ ७३ ॥ रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ॥ कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धन्दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ७४ ॥

माथेपर उज्ज्वल तिलक धारे ॥ ६८ ॥ विचित्र पुष्पोंसे शो केश पाश, सब प्रकार गुणोंसे भरी कुछेक लज्जासे नीचामुख किये ॥ ६९ ॥ दक्षिणहाथमें
क्रीडाके निमित्त सुवर्णका कमल लिये, दूसरा हाथ र धारे ॥ ७० ॥ हे देवि ! जो इस प्रकार मनलगाय मेरा और तुम्हारा ध्यान करताहै
और शंखके जलसे स्नान कराकर ॐकारसे प्रोक्षण सिद्ध होता है ॥ ७१ ॥ (भवेभवेनातिभवे) इस मंत्रसे पाद्य और "वामाय नमः" यह
पढकर आचमन देवे ॥ ७२ ॥ (ज्येष्ठाय नमः) शुभ्र वस्त्र दे (श्रेष्ठाय नमः) कहकर यज्ञोपवीत दे ॥ ७३ ॥ (रुद्राय नमः) ऐसा कहकर

आचमन करावे (कालाय नमः) कहकर सुन्दर ग ॥ (कलविकरणाय नमः) कहकर अक्षत, (बलविकरणाय नमः) कहकर पुष्प समर्पण करै ॥ ७५ ॥ (बलाय नमः) ऐसा कहकर धूप द मथनाय नमः) कह कर दीप दे ॥ ७६ ॥ ब्रह्म षडंग और मात्रासहित प्रणव शिव और शक्तिसहित क्रमसे ॥ ७७ ॥ मुझे और तुम्हैं मुद्रा दिखाय मेरे निमित्त पूजन करै, फिर तुम्हारे निमित्त ॥ ७८ ॥ जब तुम्हारी पूजा करै तब स्त्रीलिंग लगा दे, इतनाही भेद है और नहीं ॥ ७९ ॥ इस प्रकार थाविधि ध्यान और पूजन कर बुद्धिमान् मेरी आवरण पूजाका विधान करै ॥ ८० ॥

कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत् ॥ बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत् ॥ ७५ ॥ बलाय नम इत्युक्त्वा धूपन्दद्यात्प्रयत्नतः ॥ बलप्रमथनायेति सुदीपश्चैव दापयेत् ॥ ७६ ॥ ब्रह्मभिश्च षडंगैश्च ततो मातृकया सह ॥ प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ॥७७॥ मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यन्तुभ्यश्च वरवर्णिनि ॥ मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि ॥ ७८ ॥ यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा ॥ इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन ॥ ७९ ॥ एवन्ध्यानम्पूजनं च कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः ॥ ८० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवध्यानपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्रास्ति च महादेवि खल्वावरणपंचकम् ॥ पंचावरणपूजान्तु प्रारभेत यथाक्रमम् ॥ १ ॥ प्रथमम्पूजितौ यत्र तत्रैव क्रमशस्सुधीः ॥ गन्धाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥ २ ॥ पञ्च ब्रह्माणि परितो वृत्ते सम्पूजयेत्क्रमात् ॥ ईशानदेशे पूर्वे च दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ३ ॥ पश्चिमे च ततस्तस्मिन्षडंगानि समर्चयेत् ॥ आग्नेये च तथैशाने नैर्ऋते वायुदेशके ॥ ४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शिवजी बोले, हे महादेवि ! यही पांच आवरण हैं सो यथाक्रमसे पांच आवरण पूजाका आरम्भ करै ॥ १ ॥ जहां प्रथम पूजा की है, वहीं क्रमसे बुद्धिमान् जंघादिकसे गणेश और कार्तिकेयका पूजन करै ॥ २ ॥ फिर पंचब्रह्मके क्रमसे पूजा करै ईशानदेश नैर्ऋत्य पूर्व दक्षिण और उत्तरमें सदा ॥ ३ ॥ पश्चिम और षडंगमें पूजाकरै. आग्नेय ईशान नैर्ऋत्य वायव्य ॥ ४ ॥

मध्यमें नेत्र अस्त्र और इसी प्रकारसे पूर्वादि क्रमसे अस्त्रोंकी प्रतिष्ठा करै । यह प्रथम आवरण कहा और दूसरा आवरण सुनो ॥ ५ ॥ अनन्तको पूर्वदिशाके पत्रमें, सूक्ष्मको दक्षिणके शिवोत्तमको पश्चिमके और एक नेत्रको उत्तरके ॥ ६ ॥ एक रुद्रके ईशानके त्रिमूर्त्तिको आग्नेय दिशाके श्रीकंठको नैर्ऋत्य और शिखण्डीशको वायव्यमें पूजन करै ॥ ७ ॥ दूसरे आवरणमें उन चक्रवर्त्तियोंकी पूजा करनी चाहिये, पूर्वद्वारके मध्यमें वृष और ईशानका पूजन करै ॥ ८ ॥ दक्षिणकी ओर नन्दी और महाकालको उत्तरकी ओर पूजन करै, मृगीशको दाक्षिण और पश्चिमद्वारमें पूजे ॥ ९ ॥ उसके पूर्वकोष्ठ

मध्ये नेत्रन्तद्वदस्त्रम्पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ प्रथमावरणम्प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥ ५ ॥ अनन्तम्पूर्वदिक्पत्रे सूक्ष्मन्दक्षिणतस्तथा ॥
शिवोत्तमं पश्चिमत एकनेत्रन्तथोत्तरे ॥ ६ ॥ एकरुद्रन्तथैशाने त्रिमूर्तिं वह्निदिग्दले ॥ श्रीकण्ठं नैर्ऋते वायौ शिखण्डीशं समर्चयेत् ॥
॥ ७ ॥ द्वितीयावरणे चैव पूज्यास्ते चक्रवर्तिनः ॥ पूर्वद्वारस्य मध्ये तु वृषेशानम्प्रपूजयेत् ॥ ८ ॥ तद्दक्षिणे नन्दिनञ्च महाकालन्तदु
त्तरे ॥ भृंगीशन्दक्षिणद्वारपश्चिमे सम्प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥ तत्पूर्वकोष्ठे गन्धाद्यैस्सम्प्रपूज्य विनायकम् ॥ पश्चिमोत्तरकोष्ठे च वृषभन्दक्षिणे
गुहम् ॥ १० ॥ उत्तरद्वारपूर्वे तु प्रदक्षिणविधानतः ॥ नामाष्टकविधानेन पूजयेदुच्यते हि तत् ॥ ११ ॥ भवं शर्वं तथेशानं रुद्रम्पशुप
तिम्पुनः ॥ उग्रम्भीमम्महादेवन्तृतीयावरणन्त्विदम् ॥ १२ ॥ यो वेदादौ स्वर इति समावाह्य महेश्वरम् ॥ पूजयेत्पूर्वदिग्भागे कमले
कर्णिकोपरि ॥ १३ ॥ ईश्वरम्पूर्वदिक्पत्रे विश्वेशन्दक्षिणे ततः ॥ सौम्ये तु परमेशानं सर्वेशम्पश्चिमे यजेत् ॥ १४ ॥ दक्षिणे तु यजेद्रुद्र
मावोराजानमित्यृचा ॥ आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः कर्णिकायान्दलेषु च ॥ १५ ॥

गन्धादिसे गणेशजीका पूजन करै पश्चिमोत्तरके कोष्ठमें वृषभको और दक्षिणमें गुह (स्कंद) को पूजै ॥ १० ॥ उत्तर और पूर्वद्वारमें प्रदक्षिणके विधानसे आठ नामसे पूजै सो कहते हैं ॥ ११ ॥ भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम, महादेवको पूजै यह तीसरा आवरण है ॥१२॥ जो वेदके आदिमें स्वर स्वरूप है उस महेश्वरको आवाहन कर पूर्वदिशाके भागमें कमलकी कर्णिकाके ऊपर पूजन करै ॥ १३ ॥ ईश्वरको पूर्वदिशाके पत्रपर, विश्वेशको दक्षिणके पत्रपर परमेशको सौम्य पूर्वके पत्रपर सर्वेशको पश्चिमके पत्रपर ॥ १४ ॥ और दक्षिणके पत्रपर "आवो राजानम्" इस ऋचासे रुद्रके पूजनको

करै कर्णिकाके दलोंमें आवाहन कर ॥ १५ ॥ गंध पुष्पादिसे शिवको पूर्व हरको दक्षिण और शिवको उत्तर भवको पश्चिम दिशाके पत्रमें यथाक्रमसे पूजन करै ॥ १६ ॥ उत्तरकी ओर विष्णुको आवाहनकर गंध पुष्पादिसे पूजन करै 'प्रदविष्णुः' ऐसा मंत्र उच्चारण कर कर्णिकाके दलोंमें ॥ १७ ॥ पूर्वभागमें वासुदेव दक्षिणमें अनिरुद्ध उत्तरमें संकर्षण पश्चिममें प्रद्युम्नको पूजन करै ॥ १८ ॥ पश्चिमकी ओरके पद्ममें ब्रह्माजीको आवाहन कर उनका पूजन करै "ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तता०" इस मंत्रसे हिरण्यगर्भको पूर्वमें ॥ १९ ॥ विराजपुरुषको दक्षिणमें उत्तरमें पुरुषको और पश्चिममें कालको पूजन करै ॥

शिवः पूर्वे दक्षिणतो हर उत्तरतो मृडः ॥ भवः पश्चिमदिक्पत्रे पूज्या एते यथाक्रमम् ॥ १६ ॥ उत्तरे विष्णुमावाह्य गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥ प्रतद्विष्णुरिति प्रोच्य कर्णिकायान्दलेषु च ॥ १७ ॥ वासुदेवम्पूर्वभागे दक्षिणे चानिरुद्धकम् ॥ सौम्ये संकर्षणञ्चैव प्रद्युम्नम्पश्चिमे यजेत् ॥ १८ ॥ ब्रह्माणम्पश्चिमे पद्मे समावाह्य समर्चयेत् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्तत इति मंत्रेण मंत्रवित् ॥ १९ ॥ हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजन्दक्षिणे ततः ॥ उत्तरे पुष्करञ्चैव कालम्पश्चिमतो यजेत् ॥ २० ॥ सर्वोर्द्ध्वपंक्तौ पूर्वादिप्रदक्षिणविधानतः ॥ तत्तत्स्थानेषु संपूज्य लोकपालाननुक्रमात् ॥ २१ ॥ रान्तंपान्तं तथा ज्ञान्तं लान्तं लान्तमपूर्वकम् ॥ षान्तं सान्तञ्च वेदाद्यं श्रीबीजञ्च दशक्रमात् ॥ २२ ॥ बीजानि लोकपालानामेतैरेतान्समर्चयेत् ॥ नैर्ऋते चोत्तरे तद्वदीशानस्य च दक्षिणे ॥ २३ ॥ ब्रह्मविष्णू च विधिना पूजयेदुपचारकैः ॥ बाह्यरेखासु देवेशम्पञ्चमावरणे यजेत् ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ और पूर्वादि प्रदक्षिणके विधानसे ऊर्ध्वपंक्तिमें सबका यजन करै, उन स्थानोंमें क्रमसे लोकपालोंका यजन करै ॥ २१ ॥ ओं रां, ओं यां, ओं ज्ञां, ओं लां और अवर्णपूर्वक अं ओं औं षां, ओं सां और वेदके आदिमें ओं श्रींबीज ॥ २२ ॥ इन दश बीजोंद्वारा क्रमसे लोकपालोंका पूजन करै (शिवार्चनचंद्रिका और तंत्रसारमें ओं लां इंद्राय ओं रां अग्नये इस क्रमसे ओं मां, ओं क्षां, ओं वां, ओं यां ओं सां ओं हां, यह आठ बीज आठ लोकपालोंकी पूजाके कहेहैं) नैर्ऋत्य और उत्तरमें पूजन करै इसी प्रकार ईशानदेवका दक्षिणमें ॥ २३ ॥ और ब्रह्मा विष्णुका विधिपूर्वक षोडश उपचारसे पूजन करै ।

देवेशिको बाह्यरेखामें पांचवे आवरणमें यजन करै ॥ २४ ॥ श्रीमान् त्रिशूलको ईशानमें, वज्रको पूर्वदिशामें, परेशको आग्नेयकोणमें, बाणको दक्षिणमें ॥ ॥ २५ ॥ खड्गको नैर्ऋत्यदिशामें, पाशको पश्चिमदिशामें, अंकुशको वायव्यमें, पिनाकको उत्तरमें ॥ २६ ॥ रौद्र और क्षेत्रपालको पश्चिमदिशामें यजन करै, शिवकी प्रीतिके निमित्त सब विधिसे करै ॥ २७ ॥ हाथ जोडकर ध्यान कर और सर्वदा देव देवीको आदरसहित देखता रहै ॥ २८ ॥ इस कारण विघ्नशान्तिके निमित्त आवरणकी अर्चा करै, फिर देवेशकी अर्चना करके ओंकारयुक्त शिवको स्मरण करै ॥ २९ ॥ इस प्रकार गन्धादि उपचारोंसे विधिपूर्वक

श्रीमत्त्रिशूलमीशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे ॥ परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत् ॥२५॥ नैर्ऋते तु यजेत्खड्गम्पाशं वरुणगोचरे ॥ अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत् ॥ २६ ॥ पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत् ॥ यथाविधि विधानज्ञश्शिवप्रीत्यर्थमेव च ॥ २७॥ कृताञ्जलिपुटास्सर्वे चिन्त्याः स्मितमुखाम्बुजाः ॥ सादरं प्रेक्षमाणाश्च देवं देवीञ्च सर्वदा ॥ २८ ॥ इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वा विक्षेपशान्तये ॥ पुनरभ्यर्च्य देवेशम्प्रणवं च शिवं वदेत् ॥ २९ ॥ एवमभ्यर्च्य विधिवद्गन्धाद्यैरुपचारकैः ॥ उपचर्य्य ततो दद्यान्नैवेद्यं विधिसाधितम् ॥ ३० ॥ पुनराचमनीयं च दद्यादर्घ्यं यथा पुरा ॥ ततो निवेद्य पानीयन्ताम्बूलं चोपदेशतः ॥ ३१ ॥ नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ॥ ध्यात्वा देवं च देवीञ्च मनुमष्टोत्तरं जपेत् ॥ ३२ ॥ तत उत्थाय रचितपुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः ॥ जपेद्ध्यात्वा महादेवं यो देवानामिति क्रमात् ॥ ३३ ॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्त इत्यंतम्परमेश्वरि ॥ पुष्पाञ्जलिन्ततो दत्त्वा त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ॥ ३४ ॥ साष्टांगम्प्रणमेत्तं च भक्त्या परमयान्वितः ॥ पुनः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणमेत्पुनरेकधा ॥ ३५ ॥

शिवकी पूजा करके विधिपूर्वक नैवेद्य भेंट करै, ॥ ३० ॥ फिर आचमनीय और अर्घ्य पूर्वकालके समान प्रदान करै, फिर पानीय भोजनकी सामग्री और ताम्बूल निवेदन करै ॥ ३१ ॥ नीरांजनादिक करके शेष पूजाको समाप्त करै और देवीदेवका ध्यानकर एकसौ आठ मन्त्र जपै ॥ ३२ ॥ फिर उठकर पुष्पाञ्जलि ले (यो देवानामिति) नारायणीय उपनिषद्की छः ऋचोंका जप करै ॥ ३३ ॥ (यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः) यहांतक जपै. हे परमेश्वरि ! फिर पुष्पांजलि देकर तीन प्रदक्षिणा करै ॥ ३४ ॥ फिर परमभक्तिसे साष्टांग प्रणाम करै, फिर प्रदक्षिणा करके अनेक प्रकार प्रणाम करै ॥ ३५ ॥

आसनपर स्थित हो पूजन करके शिव महेश्वरादि देवके आठ नाम उच्चारण करके कहै हे भगवन् ! जो कुछ मैंने अच्छे वा बुरे कर्म कियेहैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन् शंभो ! वह सब आपहीका आराधन कियाहै, इस प्रकार शंखके जलको पुष्पोंपर दे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार पूजा समाप्त कर अर्थ सहित आठ नाम जपै, हे देवेशि ! सुनो वह तुम्हारी भक्तिसे कहता हूँ ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं०अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ईश्वर बोले, शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञपरमात्मा ॥ १ ॥ यह मुख्य आठ नाम परमात्मा शिवके नित्य प्रतिपादकहैं इसमें पितामहतक पहिले

स्थित्वासने समभ्यर्च्य देवं नामाष्टकेन च ॥ साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ॥ ३६ ॥ तत्सर्वं भगवञ्छम्भो भवदाराधनम्परम् ॥ इति शंखोदकेनैव सपुष्पेण समर्पयेत् ॥ ३७ ॥ पूज्यं पुनस्समभ्यर्च्य सार्थं नामाष्टकं जपेत् ॥ तदेव शृणु देवेशि संब्रुवे तव भक्तितः ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायामावरणपूजावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ संसारवैद्यस्सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ॥ १ ॥ नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ॥ आद्यन्तपञ्चकन्तत्र शान्त्यतीताद्यनुक्रमात् ॥ २ ॥ संज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात् ॥ उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ॥ ३ ॥ पदमेव हितं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ॥ पदानां परिवृत्तिः स्यान्मुच्यंते पदिनो यतः ॥ ४ ॥ परिवृत्त्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना ॥ आत्मान्तराभिधानं स्यात्पदाद्यं नामपंचकम् ॥ ५ ॥ अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः ॥ त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते ॥ ६ ॥ अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः ॥ अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ॥ ७ ॥

पांच नामोंनें शांतातीतके क्रमसे ॥२॥ पांच उपाधिके ग्रहण करनेसे शिवादि संज्ञा ग्रहण की है उपाधिके निवृत्त होनेसे यह संज्ञाभी निवृत्त होजातीहै ॥ ३ ॥ पद नित्य है और सदाशिवादि मूर्ति अनित्यहैं पदोंकाही विनिमय होता है इससे मूर्ति आदि छूटजाती है ॥ ४ ॥ और पदान्तरकी प्राप्तिमें फिर उपाधिसे उस पदकी प्राप्ति होती है जो यह आदिका पंचक आत्मान्तरके जाननेवाला हो तो ॥ ५ ॥ दूसरे तीन नामोंका जगत्के उपादानकारण प्रकृति आदिके योगसे तीन प्रकारकी उपाधि कहनेके कारण यह तीन नाम भी शिवरूपहीहैं ॥ ६ ॥ अनादि मलके संगके स्वभावसे अर्थात् जिस प्रकार जल स्वच्छ होता

है, स्वादिष्ठ होता है, परन्तु देशान्तरोंमें प्राप्त होनेसे खारी गदला होजाता है परन्तु स्वभावसे निर्मलहै, इसी प्रकार उपाधिरहित होनेसे वह एकही निर्मल शिव है उपाधियुक्त होनेसे अनेक नाम धारण करताहै नामोंका अर्थ कहतेहैं, अत्यन्त परिशुद्धआत्मा होनेसे महादेवको शिव कहतेहैं ॥ ७ ॥ अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणोंके एकही आधार होनेसे उन ईश्वरको शिवतत्त्वके जाननेवाले महात्मा शिव कहतेहैं ॥ ८ ॥ महेश्वरका अर्थ कहतेहैं तेईस तत्त्वसे परे प्रकृति है प्रकृतिसे परे पचीसवां पुरुष है ॥ ९ ॥ जिसको वाच्य वाचकके भावसे वेदके आदिमें ॐकार कहतेहैं वेदसेही जाननेके योग्य आत्मस्वरूप वेदान्तमें प्रतिष्ठित ॥ १० ॥ वही प्रकृतिमें उसके भोगके निमित्त लीन है उस प्रकृतिमें लीनहुए पुरुषसे जो परे हैं उसीको महेश्वर कहतेहैं ॥ ११ ॥ पुरुष और

अथवाऽशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ॥ शिव इत्युच्यते सद्भिश्शिवतत्त्वार्थवेदिभिः ॥ ८ ॥ त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः परा प्रकृतिरुच्यते ॥
प्रकृतेस्तु परम्प्राहुः पुरुषम्पञ्चविंशकम् ॥ ९ ॥ यद्वेदादौ स्वरम्प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ॥ वेदैकवेद्यं याथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ॥
॥ १० ॥ स एव प्रकृतौ लीनो भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः ॥ तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्समहेश्वरः ॥ ११ ॥ तदधीनप्रवृत्तित्त्वात्प्रकृतेः
पुरुषस्य च ॥ अथ वा त्रिगुणन्तत्त्वं मायेयमिदमव्ययम् ॥ १२ ॥ मायान्तु प्रकृतिम्विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम् ॥ मायाविमोचकोऽ
नन्तो महेश्वरसमन्वयात् ॥ १३ ॥ रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्द्रावयति यः प्रभुः ॥ रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ॥ १४ ॥ शिवतत्त्वा
दिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च ॥ व्याप्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृतः ॥ १५ ॥ जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ॥
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ॥ १६ ॥ निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ॥ उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारकः ॥ १७ ॥

प्रकृतिकी प्रवृत्ति उसके आधीन है अथवा त्रिगुणतत्त्वकी यह अविनाशी माया है ॥ १२ ॥ मायाको प्रकृति और मायीको महेश्वर जानना चाहिये, महेश्वरकी प्राप्तिसेही नारायण मायासे मोक्ष करतेहैं ॥ १३ ॥ रुत् (दुःख) को अथवा दुःखके कारणको दूर करनेसे उसका नाम रुद्र है, इसी कारण उनको रुद्र कहतेहैं, वही परमकारण शिवहैं ॥ १४ ॥ शिवके तत्त्वादि पर्यन्त शरीरादि घटादि इन सबमें व्याप्त होकर स्थित होनेके कारण शिवको विष्णु कहतेहैं ॥ १५ ॥ जगत्के पितृभूत ब्रह्मादिक और मूर्त्ति आत्मावाले होनेसे सबके पितामह वह पितामह कहलातेहैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार निदानका जाननेवाला वैद्य रोग

दूर करनेमें समर्थ होता है और उपाय औषधी जान सकता है, इसी प्रकार भोग मोक्ष प्रदानके अधिकारसे ॥ १७ ॥ संसारके ईश्वर स्थूलकारणके निवृत्त करनेहारे शिवतत्त्व ज्ञाताओंसे संसारवैद्य कहे जातेहैं ॥ १८ ॥ शब्दादि पंचक ज्ञानसिद्धिके निमित्त इन्द्रियोंके होनेपरभी जो त्रिकालमें होनेवाले सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म ॥ १९ ॥ जिसके जीव जाननेमें समर्थ नहीं होते, कारण कि वे मायासे ढकेहैं सम्पूर्णके होनेपरभी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके सिद्धि पदार्थोंमें॥ २०॥ जो जैसी है उस वस्तुको उसी प्रकार वह शिव विना यत्नके जाननेसे सर्वज्ञ कहाते हैं ॥ २१ ॥ वह इन सर्वज्ञादि सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हो सबके आत्मा

संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्त्तकः ॥ संसारवैद्य इत्युक्तस्सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः ॥ १८ ॥ दशार्द्धज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेषु च सत्स्वऽपि ॥ त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ॥ १९ ॥ अणवो नैव जानन्ति मायार्णवमलावृताः ॥ असत्स्वपि च सर्वेषु सिद्धसर्वार्थवेदिषु ॥ २० ॥ यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः ॥ अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ॥ २१ ॥ सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवस्स्वयम् ॥ २२ ॥ इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम् ॥ दत्त्वा पराङ्मुखार्घ्यञ्च पश्चादीशानमस्तके ॥ २३ ॥ पुनरभ्यर्च्य देवेशम्प्रणवेन समाहितः ॥ हस्तेन बद्धाञ्जलिना पूजापुष्पम्प्रगृह्य च ॥ २४ ॥ उन्मनान्तं शिवं नीत्वा वामनासापुटाध्वना ॥ देवीमुद्वास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना ॥ २५ ॥ शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च ॥ सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेद्धृदि ॥ २६ ॥ विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ॥ शंखार्घपात्रमंत्रांश्च हृदये विन्यसेत्क्रमात् ॥ २७ ॥

परेसे परे अपनेसे और परमात्मासे भी परे होनेसे स्वयं शिव परमात्मा कहातेहैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार प्रणवात्म अविनाशी महादेवको प्रणाम करके अपने सन्मुख अर्घ्य देकर ईशानके मस्तकमें ॥ २३ ॥ प्रणवसे युक्त देवेशको फिर पूजन करै अंजली बांधकर पूजाके फूलोंको ग्रहण कर ॥ २४ ॥ वामनासापुटके मार्गसे उन्मनी नाडीके अन्ततक शिवको ले जाकर और दक्षिणनासापुटके मार्गसे देवीको ले जाकर ॥ २५ ॥ मैं शिव हूं ऐसा अनुभव कर फिर हृदयमें सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको ध्यान करके ॥ २६ ॥ पीछे क्रमसे विद्या और गुरुकी पूजा करै, और शंख अर्घ्यपात्र तथा अन्य मंत्रोंको क्रमसे हृदयमें

धारण करै ॥ २७ ॥ फिर निर्माल्यको चण्डेशके आगे समर्पण कर फिर प्राणायाम कर ऋषि आदिका स्मरणकर ॥ २८ ॥ कैलासका प्रस्तरनामक जो मण्डल कहा है इसको पक्षमें वा महीने २ में पूजै ॥ २९ ॥ वा छः महीनेमें अथवा एक वर्षमें वा पर्वमें पूजै जो पूजा करनेमें समर्थ न हो तो सदा मेरे लिंगकी पूजा करै ॥ ३० ॥ हे देवी ! इस क्रममें कुछ विशेष भी है, उपदेशके दिनमें गुरुके सहित पूजित लिंगको ग्रहण करके कहै ॥ ३१ ॥ कि मैं जबतक शरीरमें प्राण रहेंगे शिवपूजन करूंगा इस प्रकार गुरुके निकट तीनबार प्रतिज्ञा करके शपथ करै ॥३२॥ पूर्वोक्तविधिके अनुसार नित्य शिवजीका

निर्माल्यञ्च समर्प्याऽथ चण्डेशायेशगोचरे ॥ पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत् ॥ २८ ॥ कैलासप्रस्तरो नाम मण्डलम्परिभाषितम् ॥ अर्चयेन्नित्यमेवैतत्पक्षे वा मासिमासि वा ॥ २९ ॥ षण्मासे वत्सरे वापि चातुर्मास्यादिपर्वणि ॥ अवश्यञ्च समभ्यर्चेन्नित्यं मल्लिङ्गमास्तिकः ॥ ३० ॥ तस्मिन्क्रमे महादेवि विशेषः कोऽपि कथ्यते ॥ उपदेशदिने लिंगम्पूजितं गुरुणा सह ॥ ३१ ॥ गृह्णीयादर्चयिष्यामि शिवमाप्राणसंक्षयम् ॥ एवन्त्रिवारमुच्चार्य्य शपथंगुरुसन्निधौ ॥ ३२ ॥ ततस्समर्चयेन्नित्यम्पूर्वोक्तविधिना प्रिये ॥ अर्घं समर्पयेल्लिंगमूर्द्धन्यर्घ्योदकेन च ॥ ३३ ॥ प्रणवेन समभ्यर्च्य धूपदीपौ समर्पयेत् ॥ ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यञ्च निवेदयेत् ॥ ३४ ॥ प्रक्षाल्य लिंगम्वेदीञ्च वस्त्रपूतैर्जलैस्ततः ॥ निःक्षिप्य पुष्पं शिरसि लिंगस्य प्रणवेन तु ॥ ३५ ॥ आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि ॥ विभाव्य सर्वं मनसा स्थापयेत्परमेश्वरम् ॥ ३६ ॥ पञ्चगव्यादिभिर्द्रव्यैर्यथाविभवसम्भृतैः ॥ केवलैर्वा जलैश्शुद्धैस्सुरभिद्रव्यवासितैः ॥ ३७ ॥ पावमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च ॥ ऋग्भिश्च सामभिर्वापि ब्रह्मभिश्चैव पञ्चभिः ॥ ३८ ॥

पूजन करै अर्घ्यजलके सहित लिंगके ऊपर जल चढावै ॥ ३३ ॥ ओंकारसे पूजनकर धूप दीप करै ईशान दिशामें चण्डका आराधन करै और निर्माल्य उनको निवेदन करै ॥ ३४ ॥ फिर वस्त्रसे पवित्र किये जलसे लिंग और वेदीको प्रक्षालन कर ओंकार उच्चारण कर लिंगके शिरपर फूल चढावे ॥ ३५॥ आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्ध विद्यासन पर्यन्त सबकुछ मनकी कल्पनाकर परमेश्वरको स्नान करावै ॥ ३६ ॥ पंचगव्यादिसे अपने ऐश्वर्यानुसार केवल शुद्ध जल अथवा सुगन्धित जलसे ॥३७॥ 'पवमानेन' इस अनुवाकसे अथवा (नमस्ते रुद्र) इस अनुवाकसे नीलसूक्त अथवा त्वरित लिंग सूक्तादि सूक्त

अथवा अथर्व शिरमंत्र अथवा ऋक् सामके मंत्रोंसे अथवा सद्योजातादि पांच मंत्रोंसे ॥ ३८ ॥ ओंकारसे देवदेव शिवको स्नान करावै विशेषकर अर्घ्यके नल और ओंकारसे स्नान करावै ॥ ३९ ॥ सुगंधित पुष्पोंको शोधन कर लिंगके ऊपर चढावै और सिंहासनपर लिंगको स्थापन कर सूर्यादिकी अर्चा करै ॥ ४० आधार शक्ति और अनन्त इन दोनोंको सिंहासनके नीचे पूजै पीछे सिंहासनको उससे ऊँचेपर यथाक्रमसे पूजन करके ॥ ४१ ॥ ऊपरकी ओरके ढकनेवाले सिंहासनके पादमें लिंगकी पूजा करै लिंगमें मूर्त्तिकी कल्पना कर तुम्हारे सहित मेरी पूजा करै ॥ ४२ ॥ यह सब कार्य यतिको मेरे

स्नापयेद्देवदेवेशं प्रणवेन शिवेन च ॥ विशेषार्घ्योदकेनापि प्रणवेनाभिषेचयेत् ॥ ३९ ॥ विशोध्य वाससा पुष्पं लिंगमूर्द्धनि विन्यसेत् ॥ पीठे लिंगं समारोप्य सूर्याद्यर्चां समाचरेत् ॥ ४० ॥ आधारशक्त्यनन्तौ द्वौ पीठाधस्तात्समर्चयेत् ॥ सिंहासनन्तदूर्ध्वन्तु समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ॥ ४१ ॥ अथोर्ध्वच्छदनम्पीठपादे स्कन्दं समर्चयेत् ॥ लिंगे मूर्तिं समाकल्प्य मान्त्वया सह पूजयेत् ॥ ४२ ॥ सम्यग्भक्त्या विधानेन यतिर्मद्ध्यानतत्परः ॥ एवम्मया ते कथितमतिगुह्यमिदम्प्रिये ॥ ४३ ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ॥ मम भक्ताय दातव्यं यतये वीतरागिणे ॥ ४४ ॥ गुरुभक्ताय शान्ताय मदर्थे योगभागिने ॥ ममाज्ञामतिलंघ्यैतद्यो ददाति विमूढधीः ॥ ४५ ॥ स नारकी मम द्रोही भविष्यति न संशयः ॥ मद्भक्तदानाद्देवेशि मत्प्रियश्च भवेद्ध्रुवम् ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्मत्सान्निध्यमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

ध्यानमें तत्पर हो सम्यक्भक्तिसे करना चाहिये हे प्रिये ! इस प्रकार यह मैंने तुमसे अतिगुह्य पूजाविधि वर्णनकी ॥ ४३ ॥ इसे यत्नपूर्वक छिपा रखना चाहिये, जिस तिसको नहीं देना चाहिये मेरे भक्त यतिराज द्वेषरहितको देना चाहिये ॥ ४४ ॥ जो गुरुभक्त शान्त और मेरे उद्योगमें तत्पर हो उसे दे, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके जो मूढ अभक्तोंको देता है ॥ ४५ ॥ वह मेरा द्रोही नरकमें जाता है इसमें सन्देह नहीं, हे देवेशि ! मेरे भक्तोंके निमित्त देनेसे वह पुरुष मेरा प्रिय होता है वह यहां सब भोगोंको भोगकर अन्तमें मेरे लोकको जाता है ॥ ४६ ॥

व्यासजी बोले, हे देवेशि ! इस प्रकार शिवजीके वचन सुन शिवजीकी वेदार्थ भरेहुए अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर ॥ ४७ ॥ परमेश्वरी श्रीमत् चरण कमलमें बारम्बार प्रणाम करने लगी, हे मुनियो ! प्रसन्न मन हो पार्वती महाहर्षितहुई ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! प्रणवके अर्थका प्रकाशक यह महागुप्त विधान है यह शिवका परमज्ञान दुःखका नाश करनेहारा है ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! महातपस्वी व्यासजी इस प्रकार वचन कहकर वेदवादी मुनियोंसे परमभक्तिसे पूजित होकर ॥५०॥ कैलासपर्वतका स्मरणकर उस तपोवनसे चलेगये, वे ऋषिभी प्रसन्न मन हो यज्ञके अन्तमें परमभक्तिसे परमेश्वर

व्यास उवाच ॥ एतच्छुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम् ॥ स्तुत्वा तु विविधैः स्तोत्रैर्देवम्वेदार्थगर्वितैः ॥ ४७ ॥ श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणवं परमेश्वरी ॥ अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः ॥ ४८ ॥ अतिगुह्यमिदम्विप्राः प्रणवार्थप्रकाशकम् ॥ शिवज्ञानपरं ह्येतद्भवतामार्तिनाशनम् ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः पाराशर्य्यो महातपाः ॥ पूजितः परया भक्त्या मुनिभिर्वेदवादिभिः ॥५०॥ कैलासाद्रिमनुसृत्य ययौ तस्मात्तपोवनात् ॥ तेऽपि प्रहृष्टहृदयास्सत्रान्ते परमेश्वरम् ॥ ५१ ॥ सम्पूज्य परया भक्त्या सोमं सोमार्द्धशेखरम् ॥ यमादियोगनिरताश्शिवध्यानपराभवन् ॥ ५२ ॥ गुहाय कथितं ह्येतद्देव्या तेनापि नन्दिने ॥ सनत्कुमारमुनये प्रोवाच भगवान् हि सः ॥ ५३ ॥ तस्माल्लब्धं मद्गुरुणा व्यासेनामिततेजसा ॥ तस्माल्लब्धमिदम्पुण्यम्मयापि मुनिपुंगवाः ॥ ५४ ॥ मया वश्श्रावितं ह्येतद्गुह्याद्गुह्यतरम्परम् ॥ ज्ञात्वा शिवप्रियान्भक्त्या भवतो गिरिशप्रियम् ॥ ५५ ॥ भवद्भिरपि दातव्यमेतद्गुह्यं शिवप्रियम् ॥ यतिभ्यश्शान्तचित्तेभ्यो भक्तेभ्यश्शिवपादयोः ॥ ५६ ॥

॥ ५१ ॥ चन्द्रशेखर शंकरका पूजन कर यमादि योगमें मन लगाय शिवध्यानमें परायण हुए ॥ ५२ ॥ देवीने यह कथा स्कन्दसे, स्कन्दने नन्दीसे, नन्दीने भगवान् सनत्कुमारसे कही सनत्कुमारने भगवान् महातेजस्वी व्यासजीसे कही ॥ ५३ ॥ उन महातेजस्वी गुरु व्यासजीसे यह पवित्र प्रसङ्ग मैंने प्राप्त किया, हे मुनिश्रेष्ठो ! ॥ ५४ ॥ हे मुनियो ! मैंने यह गुप्तसे गुप्त चरित्र तुमको सुनाया, और मैंने यह जानलिया कि तुम शिवके परमभक्त हो ॥ ॥ ५५ ॥ आपको भी यह प्रणवार्थप्रकाशक ज्ञान शिवके प्रियको देना चाहिये शान्तचित्त यति शिवचरणोंके भक्तको देना चाहिये ॥ ५६ ॥

पुराण कहनेवालोंमें श्रेष्ठ सूतजी यह वचन कहकर तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ ५७ ॥ सूतजीसे वे मुनीश्वर इस गुप्त रहस्यको ग्रहण कर काशीमें वासकर मुक्त हो शिवके धामको चलेगये ॥५८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं० नवमोऽध्यायः ॥९॥ व्यासजी बोले, सूतजीके चलेजानेपर वे सब मुनि महाविस्मयको प्राप्त हो परस्परमें कहनेलगे यह तो हमने भुलाही दिया जो वामदेवका मत पूर्वकालमें सूतजीने वर्णन किया है वह बडा कठिन है ॥ १ ॥ न जाने कब हमको मुनिश्रेष्ठका दर्शन होगा जो कि संसारसागरका पार करनेवाला है और हमारी यह इच्छा है, कि महेश्वरके

एतदुक्त्वा महाभागस्सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन चचार पृथिवीमिमाम् ॥ ५७ ॥ एतद्रहस्यम्परमं लब्ध्वा सूतान्मुनीश्वराः ॥ काश्यामेव समासीना मुक्ताश्शिवपदं ययुः ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां प्रणवार्थपद्धतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ सूते मुनयस्सुविस्मिता विचिन्त्य चान्योन्यमिदन्तु विस्मृतम् ॥ यद्वामदेवस्य मतम्मुनीश्वरप्रत्यूचितन्तत्खलु नष्टमद्य नः ॥ १ ॥ कदानुभूयान्मुनिवर्यदर्शनम्भवाब्धिदुःखौघहरम्परं हि तत् ॥ महेश्वराराधनपुण्यतोऽधुना मुनीश्वरस्सत्वरमाविरस्तु नः ॥२॥ इति चिन्तासमाविष्टा मुनयो मुनिपुंगवम् ॥ व्यासं संपूज्य हृत्पद्मे तस्थुस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥३॥ सम्वत्सरान्ते स पुनः काशीम्प्राप महामुनिः ॥ शिवभक्तिरतो ज्ञानी पुराणार्थप्रकाशकः ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वा सूतमायान्तम्मुनयो हृष्टचेतसः ॥ अभ्युत्थानासनार्घ्यादिपूजया समपूजयन् ॥ ५ ॥ सोपि तान्मुनिशार्दूलानभिनन्द्य स्मितोदरम् ॥ प्रीत्या स्नात्वा जाह्नवीये जले परमपावने ॥ ६ ॥ ऋषीन्संतर्प्य च सुरान्पितॄंश्च तिलतण्डुलैः ॥ तीरमागत्य सम्प्रोक्ष्य वाससी परिधाय च ॥ ७ ॥

आराधनके पुण्यप्रतापसे हमको सूतजीका दर्शन हो ॥ २ ॥ इस प्रकार चिंता करके वे मुनि व्यासजीको हृदयकमलमें धारण कर दर्शनकी इच्छासे स्थितहुए ॥ ३ ॥ एक सम्वत्सरके उपरान्त सूतजी फिर काशीमें आये जो शिवभक्तिमें तत्पर ज्ञानी पुराणके अर्थप्रकाश करनेवालेहैं ॥ ४ ॥ सूतजीको आता देख वे ऋषि बहुत प्रसन्न हुए अभ्युत्थान (आसन) और अर्घ्यसे उनकी पूजा करनेलगे ॥ ५ ॥ और सूतजी भी उन मुनिश्रेष्ठोंकी पूजासे प्रसन्नहुए उनका अभिनन्दन किया गंगाजीके परमपवित्र जलमें स्नानकर ॥ ६ ॥ ऋषि देवता और पितरोंको तिल जौसे तृप्तकर किनारेपर आय शरीर पोंछ कपडे

पहर ॥ ७ ॥ दो आचमन कर सद्योजातादि मंत्रोंसे भस्म लगाय फिर उद्धूलनादि क्रमका विधानकर ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमाला धारण कर नित्यक्रियाकर बुद्धिमान् सूतजी विधिपूर्वक अंगोंमें त्रिपुण्ड्र लगाय ॥ ९ ॥ विश्वेश्वर उमापतिको पुत्र और गणोंसहित पूजन कर और भक्तिसे बारम्बार नमस्कार करके ॥ १० ॥ कालभैरवनाथको विधिपूर्वक प्रणामकर तीन प्रकारसे प्रदक्षिणाकर पांच प्रकार नमस्कार कर ॥ ११ ॥ फिर प्रदक्षिणा कर पृथ्वीमें दण्डवत् प्रणामकर परमभक्तिसे भगवान्के चरणोंको प्रणाम कर स्तुति की ॥ १२ ॥ फिर एकसहस्र एकसौआठ पंचाक्षर विद्याको जपकर महेश्वरके सन्मुख स्थित

द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमंत्रतः ॥ उद्धूलनादिक्रमतो विधाय्याऽथ मुनीश्वरः ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमालाभरणः कृतनित्यक्रियस्सुधीः ॥ यथोक्तांगेषु विधिना त्रिपुण्ड्रं रचति स्म हं ॥ ९ ॥ विश्वेश्वरमुमाकान्तं ससुतं सगणाधिपम् ॥ पूजयामास सद्भक्त्या ह्यस्तौन्नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥ कालभैरवनाथं च संपूज्याथ विधानतः ॥ प्रदक्षिणीकृत्य पुनस्त्रेधा नत्वा च पञ्चधा ॥ ११ ॥ पुनः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ तुष्टाव परया स्तुत्या संस्मरंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ १२ ॥ श्रीमत्पंचाक्षरीम्विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ संजप्य पुरतः स्थित्वा क्षमापय्य महेश्वरम् ॥ १३ ॥ चण्डेशं सम्प्रपूज्याऽथ मुक्तिमण्डपमध्यतः ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ ॥ १४ ॥ एवं स्थितेषु सर्वेषु नमस्कृत्य समंत्रकम् ॥ अथ प्राह मुनीन्द्राणां भाववृद्धिकरम्वचः ॥ १५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महाप्राज्ञा मुनयश्शंसितव्रताः ॥ भवदर्थमिह प्राप्तोऽहन्तद्वृत्तमिदं शृणु ॥ १६ ॥ यदाहमुपदिश्याथ भवतः प्रणवार्थकम् ॥ गतस्तीर्थाटनार्थाय तद्वृत्तान्तम्ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

हो उनसे अपराध क्षमा कराय ॥ १३ ॥ मुक्तिमण्डपके मध्यमें चंडेश्वरका पूजनकर वेदपारगामी मुनियोंके दियेहुए आसनपर बैठे ॥ १४ ॥ इस प्रकार सबके बैठनेपर समन्त्र नमस्कार करके सूतजी भाववृद्धिके करनेहारे वचन उनसे बोले ॥ १५ ॥ सूतजी बोले, हे श्रेष्ठव्रतवाले ऋषियो ! तुम धन्य हो मैं तुम्हारे निमित्त यहां जिस कारणसे आयाहूं वह वृत्तान्त सुनो ॥ १६ ॥ जब मैं प्रणवके अर्थको तुमसे उपदेश कर तीर्थयात्रा करने गया उस वृत्तान्तको

तुमसे कहताहूं ॥ १७ ॥ मैं यहांसे चलकर दक्षिणसागरके किनारे गया वहां स्नान कर विधिपूर्वक कन्याकुमारी शिवादेवीका पूजन किया, हे ब्राह्मणो ! फिर सुवर्णमुखरीके किनारे गया ॥ १८ ॥ श्रीकालहस्तिशैलनामक परम अद्भुत नगरमें आकर सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान कर देवता ऋषियोंको ॥ ॥ १९ ॥ विधिपूर्वक तृप्त कर शिवको स्मरण कर चन्द्रमाकी कान्तिके समान प्रभावाले कालहस्तीशको तृप्तकर ॥ २० ॥ पश्चिमकी ओरको मुख पांच शिरवाले परमअद्भुत एकही बार दर्शनसे सब पापके क्षय करनेवाले ॥ २१ ॥ सब सिद्धिके देनेवाले भुक्ति मुक्तिके देने वाले त्रिगुणेश्वरको परमभक्तिसे

इतो निर्गत्य सम्प्राप्य तीरं दक्षपयोनिधेः ॥ स्नात्वा सम्पूज्य विधिवद्देवीं कन्यामयीं शिवाम् ॥ पुनरागत्य विप्रेन्द्रास्सुवर्णमुखरी
तटम् ॥ १८ ॥ श्रीकालहस्तिशैलाख्यनगरे परमाद्भुते ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा देवानृषीनपि ॥ १९ ॥ सन्तर्प्य विधिवद्भक्त्या समुदं
गिरिशं स्मरन् ॥ समर्च्य कालहस्तीशं चन्द्रकान्तसमप्रभम् ॥ २० ॥ पश्चिमाभिमुखम्पञ्चशिरसम्परमाद्भुतम् ॥ सकृद्दर्शनमात्रेण
सर्वाघक्षयकारणम् ॥ २१ ॥ सर्वसिद्धिप्रदम्भुक्तिमुक्तिदन्त्रिगुणेश्वरम् ॥ ततश्च परया भक्त्या तस्य दक्षिणगां शिवाम् ॥ २२ ॥
ज्ञानप्रसूनकलिकां समर्च्य हि जगत्प्रसूम् ॥ श्रीमत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ २३ ॥ जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा नत्वा
मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य गिरिम्प्रत्यहमादरात् ॥ आमोदतीव मनसि प्रत्यहन्नियमास्थितः ॥ २५ ॥ अनयञ्चतुरो मासाने
वन्तत्र मुनीश्वराः ॥ ज्ञानप्रसूनकलिकामहादेव्याः प्रसादतः ॥ २६ ॥ एकदा तु समास्तीर्य चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ आसनम्परमन्त
स्मिन्स्थित्वा रुद्धेन्द्रियो मुनिः ॥ २७ ॥

पूजनकर दक्षिणभागमें स्थित पार्वतीको ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानरूपी फूलकी छली है उन्हें भक्तिसे पूजन करके पंचाक्षरी विद्याको एक सहस्र एकसौ आठ ॥ ॥ २३ ॥ जप करके थोडीदेर प्रदक्षिणा कर बारम्बार नमस्कार करके ॥ २४ ॥ परमप्रसन्नतासे कालहस्तिशैलको प्रतिदिन प्रदक्षिणा करके इस प्रकारके नियममें स्थित हो उस क्षेत्रमें निवास करनेलगा ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार चार महीने उस स्थानमें बिताये ज्ञानरूपी मनुष्यकी कलिका महादेवीके प्रसादसे तृप्त हो ॥ २६ ॥ एक समय कंबलवस्त्र मृगचर्म कुशके ऊपर बिछाकर उस आसनके ऊपर इन्द्रिय रोककर स्थित हो मन साध ॥२७॥

परमानन्द चिदानन्दघनका समाधिमें ध्यान करताहुआ शांतचित्त होजानेसे परिपूर्ण शिवरूप होगया ॥ २८ ॥ इसी समय दयासागर मेरे गुरु
(व्यासजी) नीलेमेघके वर्ण बिजलीके समान पीली जटा धारण किये ॥ २९ ॥ ऊँचे (श्रेष्ठ) दंड कमण्डलु और मृगचर्म धारण किये सब शरीरमें
भस्म लगाये सम्पूर्ण लक्षणोंसे लक्षित ॥ ३० ॥ मस्तकमें त्रिपुण्ड्र लगाये रुद्राक्ष पहरे कमलदलके समान चौंडे दोनों नेत्र ॥ ३१ ॥ शोभासे परिपूर्ण
व्यासजी मेरे हृदयकमलमें प्रगट हुए हे आस्तिकमुनियो ! इस प्रकार भगवान् हृदयमें प्रादुर्भूत हुए तब मैं मोहित होगया ॥ ३२ ॥ पीछे नेत्र खोल मैं

समाधिमास्थाय सदा परमानंदचिद्घनः ॥ परिपूर्णशिवोस्मीति निर्व्यग्रहृदयोऽभवम् ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नेव समये सद्गुरुः करुणानि
धिः ॥ नीलजीमूतसङ्काशो विद्युत्पिङ्गजटाधरः ॥ २९ ॥ प्रांशुः कमण्डलूद्दण्डकृष्णाजिनधरस्स्वयम् ॥ भस्मावदातसर्वाङ्गस्सर्वलक्ष
णलक्षितः ॥ ३० ॥ त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षालङ्कृताकृतिः ॥ पद्मपत्रारुणायामविस्तीर्णनयनद्वयः ॥ ३१ ॥ प्रादुर्भूय हृदम्भोजे तदा
नीमेव सत्वरम् ॥ विमोहितस्तदैवासमेतदद्भुतमास्तिकाः ॥ ३२ ॥ तत उन्मील्य नयने विलापं कृतवानहम् ॥ आसीन्ममाश्रुपातश्च
गिरिनिर्झरसन्निभः ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नेव समये श्रुता वागशरीरिणी ॥ व्योम्नो महाद्भुता विप्रास्तामेव शृणुतादरात् ॥ ३४ ॥ सूतपुत्र
महाभाग गच्छ वाराणसीम्पुरीम् ॥ तत्रासन्मुनयः पूर्वमुपदिष्टास्त्वयाऽधुना ॥ ३५ ॥ त्वदुपागमकल्याणं कांक्षंते विवशा भृशम् ॥
तिष्ठन्ति ते निराहारा इत्युक्त्वा विरराम सा ॥ ३६ ॥ तत उत्थाय तरसा देवन्देवीञ्च भक्तितः ॥ प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रणम्य भुवि
दण्डवत् ॥ ३७ ॥ द्विषड्वारं गुरोराज्ञां विज्ञाय शिवयोरथ ॥ क्षेत्रान्निर्गत्य तरसा चत्वारिंशद्दिनान्तरे ॥ ३८ ॥

विलाप करनेलगा, पर्वतके झरनेके समान मेरे अश्रुपात होनेलगे ॥ ३३ ॥ इसी समय आकाशमें महाअद्भुत अशरीरिणी वाणी सुनी हे ब्राह्मणो ! उसे
आदरसे सुनो ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! सूतजीके पुत्र ! तुम काशीपुरीको जाओ वहां पहले तुमने जिन मुनियोंको उपदेश किया था वे अब ॥ ३५ ॥ विवश
होकर तुम्हारे शुभागमनकी अत्यन्त इच्छा करते हैं और निराहार हो व्रत करते हैं, ऐसा कहकर आकाशवाणी विरामको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ तब शीघ्रही
मैं उठकर देवको भक्तिपूर्वक प्रणामकर फिर शिवा शिवको बारह वार प्रदक्षिणा और दंडवत् प्रणाम करके ॥ ३७ ॥ गुरुकी आज्ञा सुनाकर उस क्षेत्रसे

चलकर चालीस दिनमें ॥ ३८ ॥ यहां आया हूं हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम मेरे ऊपर कृपा करो, मैं अब क्या कहूं सो आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३९ ॥
सूतजीके यह वचन सुनकर श्रेष्ठ ऋषि प्रसन्न मन हो बारम्बार व्यासजीको नमस्कार कर मुनिश्रेष्ठ सूतजीसे बोले ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां
ष० कै० सं० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले, हे महाभाग सूतजी ! तुम हमारे गुरु हो इससे हमपर दया करते हो हम तुमसे पूंछतेहैं ॥ १ ॥ शिष्योंके
ऊपर गुरु तो सदाही कृपादृष्टि करतेहैं और इसीसे आपने हमको अपना दर्शन दिया है ॥ २ ॥ इस कारण आपसे पूंछतेहैं कि पूर्वकालमें जो आपने

आगतोऽस्मि मुनिश्रेष्ठा अनुगृह्णन्तु मामिह ॥ मया किमद्य वक्तव्यं भवन्तस्तद्ब्रुवन्तु मे ॥ ३९ ॥ इति सूतवचश्श्रुत्वा ऋषयो हृष्टमा
नसाः ॥ अवोचन्मुनिशार्दूलं व्यासन्नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां सूतोपदेशो नाम दशमोऽ
ध्यायः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभागस्त्वमस्मद्गुरुरुत्तमः ॥ अतस्त्वां परिपृच्छामो भवतोऽनुग्रहो यदि ॥ १ ॥ श्रद्धालुषु
च शिष्येषु त्वादृशा गुरवस्सदा ॥ स्निग्धभावा इतीदं नो दर्शितम्भवताधुना ॥ २ ॥ विरजाहोमसमये वामदेवमतम्पुरा ॥ सूचि
तम्भवतास्माभिर्न श्रुतं विस्तरान्मुने ॥ ३ ॥ तदिदानीं श्रोतुकामाः श्रद्धया परमादरात् ॥ वयं सर्व्वे कृपासिंधो प्रीत्या तद्वक्तुमर्ह
सि ॥ ४ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो हृष्टतनूरुहः ॥ नमस्कृत्य महादेवं गुरोः परतरं गुरुम् ॥ ५ ॥ महादेवीं त्रिजननीं गुरुं व्यासञ्च
भक्तितः ॥ प्राह गम्भीरया वाचा मुनीनाह्लादयन्निदम् ॥ ६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ स्वस्त्यस्तु मुनयस्सर्व्वे सुखिनस्सन्तु सर्व्वदा ॥
शिवभक्ताः स्थिरात्मानश्शिवे भक्तिप्रवर्तकाः ॥ ७ ॥

विरजाहोममें वामदेवका मत हमसे सूचित किया है हे मुने ! वह हमने विस्तारसे नहीं सुना है ॥ ३ ॥ वही परमश्रद्धा और आदरसे हमारे सुननेकी इच्छा
है, हे कृपासागर ! सो प्रेमसे आप हमसे कहिये ॥ ४ ॥ उनके यह वचन सुन सूतजी प्रसन्नमन रोमांचित हो गुरुओंके परमगुरु महादेवजीको ॥ ५ ॥
और तीन लोककी जननीको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके मुनियोंको प्रसन्न करतेहुए गंभीर बाणीसे बोले ॥ ६ ॥ सूतजी बोले, हे मुनियो ! आपका मंगल

हो तुम सदा सुखी रहो तुम शिवके भक्त हो दृढमति सदाशिवकी भक्तिमें तत्पर हो भक्ति बढानेवाले हो ॥ ७ ॥ वह बडी विचित्र वार्त्ता मैंने अपने गुरुके
मुखसे सुनी थी, और इस गुप्त वार्ताके प्रगट होनेकी शंकासे मैंने आजतक किसीके सन्मुख यह नहीं कही ॥ ८ ॥ तुम दृढव्रत शिवके भक्त होनेसे
महाभागी हो इसी कारण मैं तुमसे कहताहूं मन लगाकर सुनो ॥ ९ ॥ पहिले रथन्तरकल्पमें महामुनि वामदेवजी गर्भसे उत्पन्न होतेही स्वयं शिवज्ञान
जाननेवालोंके गुरु हुए ॥ १० ॥ वेवेद, आगम, पुराण और सब शास्त्रके तत्त्वको जानते थे, देव असुर मनुष्यादि सब जीवोंके जन्मकर्मके जानने वालेथे ॥

तदतीव विचित्रं हि श्रुत गुरुमुखाम्बुजात् ॥ इतः पूर्वम्मया नोक्तं गुह्यप्राकट्यशंकया ॥ ८ ॥ यूयं खलु महाभागाश्शिवभक्ता दृढव्रताः ॥
इति निश्चित्य युष्माकं वक्ष्यामि श्रूयताम्मुदा ॥ ९ ॥ पुरा रथन्तरे कल्पे वामदेवो महामुनिः ॥ गर्भमुक्तश्शिवज्ञानविदां गुरुतमस्स्व
यम् ॥ १० ॥ वेदागमपुराणादिसर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ देवासुरमनुष्यादिजीवानां जन्मकर्म्मवित् ॥ ११ ॥ भस्मावदातसर्व्वांगो
जटामण्डलमण्डितः ॥ निराश्रयो निःस्पृहश्च निर्द्वन्द्वो निरहंकृतिः ॥ १२ ॥ दिगंबरो महाज्ञानी महेश्वर इवापरः॥ शिष्यभूतैर्मुनीन्द्रैश्च
तादृशैः परिवारितः ॥ १३ ॥ पर्य्यटन्पृथिवीमेतां स्वपादस्पर्शपुण्यतः ॥ पवित्रयन्परे धाम्नि निमग्नहृदयोन्वहम् ॥ १४ ॥ कुमारशि
खरम्मेरोर्दक्षिणं प्राविशन्मुदा ॥ यत्रास्ते भगवानीशतनयश्शिखिवाहनः ॥ १५ ॥ ज्ञानशक्तिधरो वीरस्सर्वासुरविमर्दनः ॥ गजावल्ली
समायुक्तस्सर्व्वैर्देवैर्नमस्कृतः ॥ १६ ॥ तत्र स्कन्दसरो नाम सरस्सागरसन्निभम् ॥ शिशिरस्वादुपानीयं स्वच्छागाधबहूदकम् ॥ १७ ॥

॥ ११ ॥ सब शरीरमें भस्म लगाये, जटामंडलसे मंडित, निराश्रय, इच्छारहित, द्वन्द्व और अहंकारहीन ॥ १२ ॥ दिगंबर महाज्ञानी दूसरे शिवकेही
समान शिष्य हुए बडे २ मुनियोंसे युक्त ॥ १३ ॥ अपने चरणस्पर्शसे पृथ्वीको पवित्र करतेहुए विचरतेथे और परधाम ब्रह्ममें प्रतिदिन मग्न रहते ॥ १४ ॥
उन्होंने प्रेमसे मेरुके दक्षिण कुमारशिखरनामक श्रृंगमें प्रवेश किया, जहां भगवान् शिवजीके पुत्र स्कन्दजी विराजतेहैं ॥ १५ ॥ ज्ञानशक्ति धारण करनेहारे
सम्पूर्ण असुरोंके नाशक वीर स्कन्द शक्तिसे युक्त सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हो विराजतेहैं ॥ १६ ॥ वहां स्कन्दनामक सागरके समान एक सरोवर है,

उसका ठंढा महास्वादिष्ठ जल है, अगाध और बहुत जलवाला है ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण आश्चर्यके गुणोंसे युक्त स्कन्दजीके समीपही वह सरोवरहै वहां महामुनि वामदेव शिष्योंसहित स्नान करिके ॥ १८ ॥ शिखरके ऊपर बैठे मुनिवृन्दोंसे सेवित कुमार जो उदित सूर्यके समान मोरपर स्थित ॥ १९ ॥ चार भुजा, उदार अंग, मुकुट आदिसे विभूषित, रत्नभूत दो शक्तियोंसे उपास्य, शक्ति कुकुटधारी ॥ २० ॥ वरदायक अभय हाथवाले स्कन्दको देखकर वह मुनीश्वर परमभक्तिसे पूजनकर स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ वामदेव बोले, प्रणवके प्रतिपादक प्रणवके अर्थके विधायक प्रणव अक्षरहीके बीजवाले प्रणवरूप आपको

सर्व्वाश्चर्य्यगुणोपेतं विद्यते स्वामिसन्निधौ ॥ तत्र स्नात्वा वामदेवस्सहशिष्यैर्महामुनिः ॥ १८ ॥ कुमारं शिखरासीनं मुनिवृन्दनिषेवितम् ॥ उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ॥ १९ ॥ चतुर्भुजमुदारांगं मुकुटादिविभूषितम् ॥ शक्तिरत्नद्वयोपास्यं शक्तिकुक्कुटधारिणम् ॥ २० ॥ वरदाभयहस्तञ्च दृष्ट्वा स्कन्दं मुनीश्वरः ॥ सम्पूज्य परया भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ २१ ॥ ॥ वामदेव उवाच ॥ ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविधायिने ॥ प्रणवाक्षरबीजाय प्रणवाय नमोनमः ॥ २२ ॥ वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविधायिने ॥ वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमोनमः ॥ २३ ॥ नमो गुहाय भूतानां गुहासु निहिताय च ॥ गुह्याय गुह्यरूपाय गुह्यागमविदे नमः ॥ २४ ॥ अणोरणीयसे तुभ्यं महतोपि महीयसे ॥ नमः परावरज्ञाय परमात्मस्वरूपिणे ॥ २५ ॥ स्कन्दाय स्कन्दरूपाय मिहिरारुणतेजसे ॥ नमो मन्दारमालोद्यन्मुकुटादिभृते सदा ॥ २६ ॥

नमस्कार है ॥ २२ ॥ वेदान्त अर्थके स्वरूप विज्ञान करनेवाले (वेदान्त अर्थके जाननेवाले) आत्मज्ञान स्वरूपके निमित्त नमस्कार है ॥ २३ ॥ सब प्राणियोंके अन्तरमें स्थित "यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्निति श्रुतेः" गुह्य अगुह्यरूप और गुह्य आगमके जाननेवाले आपको नमस्कारहै ॥ २४ ॥ सूक्ष्मसे और बडेसे बडे और पर अपरकें जाननेवाले परमात्मस्वरूप आपको नमस्कार है "अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् इति श्रुतेः" ॥ २५ ॥ स्कंदको स्कंद स्वरूप असुर शक्तिके शोषनेहारे सिन्दूरके समान लाल तेजवान् मंदार मालाका उज्ज्वल मुकुट धारण करनेवाले आपके

अर्थ नमस्कार है ॥ २६ ॥ शिवके शिष्य पुत्र शिवकाही कल्याण देनेहारे शिवके प्रिय शिव पार्वतीके आनन्दसागरके निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ गंगाके पुत्र कार्त्तिकेय ब्राह्मी आदि माताओंके प्यारे उमापुत्र शरकंडेके वनमें शयन करनेहारे आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ छः प्रकारके मंत्र तंत्रादिके शरीरवाले छः प्रकारके अर्थ विधान करनेवाले छहों मार्गसे परे षण्मुख आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २९ ॥ द्वादशात्मा बारहनेत्र बारह हाथ और बारह आयुधधारी द्वादशरूप आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ चतुर्भुज शांत शक्ति कुक्कुट धारण करनेहारे वरदायक अभयहस्त असुरोंके मारनेवालेके निमित्त

शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने ॥ शिवप्रियाय शिवयोरानन्दनिधये नमः ॥ २७ ॥ गांगेयाय नमस्तुभ्यं कार्तिकेयाय धीमते ॥ उमापुत्राय महते शरकाननशायिने ॥ २८ ॥ षडक्षरशरीराय षड्विधार्थविधायिने ॥ षडध्वातीतरूपाय षण्मुखाय नमोनमः ॥ ॥ २९ ॥ द्वादशायतनेत्राय द्वादशोद्यतबाहवे ॥ द्वादशायुधधाराय द्वादशात्मन्नमोस्तु ते ॥ ३० ॥ चतुर्भुजाय शान्ताय शक्तिकुक्कुटधारिणे ॥ वरदाय विहस्ताय नमोसुरविदारिणे ॥ ३१ ॥ गजावल्लीकुचालिप्तकुंकुमांकितवक्षसे ॥ नमो गजाननानन्दमहिमानंदितात्मने ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादिदेवमुनिकिन्नरगीयमानगाथाविशेषशुचिचिंतितकीर्त्तिधाम्ने ॥ वृन्दारकामलकिरीटविभूषणस्रक्पूज्याभिरामपदपंकज ते नमोस्तु ॥ ३३ ॥ इति स्कन्दस्तवन्दिव्यं वामदेवेन भाषितम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम् ॥ ३४ ॥ महाप्रज्ञाकरं ह्येतच्छिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥ आयुरारोग्यधनकृत्सर्व्वकामप्रदं सदा ॥ ३५ ॥

नमस्कारहै ॥ ३१ ॥ गजावल्ली (स्कन्दशक्ति) के कुचोंमें लिप्त कुंकुमसे अंकित हृदयवाले गजाननके आनन्द देनेवाले महाआनंदस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादि देवता ऋषि किन्नरोंसे जिनकी गाथा गाईजाती है, विशेष विचित्र कीर्त्तिके स्थान, देवताओंके निर्मल मस्तकके भूषण और फूलोंकी मालासे पूजित चरणकमलवाले आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ यह स्कन्दका दिव्यस्तोत्र वामदेवने कहा है जो इसे पढते सुनते हैं वह परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ वह महाबुद्धिका बढानेवाला शिवकी भक्तिका बढानेवाला आयु अरोग्य धन और सब कामनाओंका करनेवाला है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार देवताओंके सेनापति गुहकी स्तुति करके वामदेवने तीन प्रदक्षिणा कर पृथ्वीमें दण्डवत् की ॥ ३६ ॥ साष्टांग प्रणाम प्रदक्षिणा और दण्डवत कर वह ब्राह्मण विनयसे उनके निकट स्थित हुआ ॥ ३७ ॥ परमअर्थका भराहुआ वामदेवका स्तोत्र सुनकर महेश्वरपुत्र प्रभु स्कन्दजी प्रसन्न हुए ॥ ॥ ३८ ॥ स्कन्दजी बोले, कि मैं तुम्हारी पूजासे प्रसन्न हूँ तुमने अच्छी भक्तिसे स्तुति की अब मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ॥ ३९ ॥ हे मुनि ! तुम योगियोंमें मुख्य परिपूर्ण और इच्छारहित हो आपसरीखोंको इस लोकमें कुछ प्रार्थनीय नहीं है ॥ ४० ॥ तो भी आपसरीखे साधु लोक रक्षाके तथा

इति स्तुत्वा वामदेवो देवं सेनापतिं प्रभुम् ॥ प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ३६ ॥ साष्टांगं च पुनः कृत्वा प्रदक्षिणनमस्कृतम् ॥ अभवत्पार्श्वतस्तस्य विनयावनतो द्विजाः ॥ ३७ ॥ वामदेवकृतं स्तोत्रम्परमार्थविजृम्भितम् ॥ श्रुत्वाभवत्प्रसन्नो हि महेश्वरसुतः प्रभुः ॥ ३८ ॥ तमुवाच महासेनः प्रीतोस्मि तव पूजया ॥ भक्त्या स्तुत्या च भद्रन्ते किमद्य करवाण्यहम् ॥ ३९ ॥ मुने त्वं योगिनाम्मुख्यः परिपूर्णश्च निस्स्पृहः ॥ भवादृशां हि लोकेस्मिन्प्रार्थनीयं न विद्यते ॥ ४० ॥ तथापि धर्म्मरक्षायै लोकानुग्रहकांक्षया ॥ त्वादृशाः साधवस्सन्तो विचरन्ति महीतले ॥ ४१ ॥ श्रोतव्यमस्ति चेद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ तदिदानीमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहहेतवे ॥४२॥ इति स्कन्दवचः श्रुत्वा वामदेवो महामुनिः॥प्रश्रया वनतः प्राह मेघगम्भीरया गिरा ॥४३॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्परमेशस्त्वं परापरविभूतिदः ॥ सर्व्वज्ञस्सर्वकर्त्ता च सर्व्वशक्तिधरः प्रभुः ॥ ४४ ॥ जीवा वयं तु ते वक्तुं सन्निधौ परमेशितुः ॥ तथाप्यनुग्रहो यन्ते यत्त्वं वदसि मां प्रति ॥ ४५ ॥ कृतार्थोहं महाप्राज्ञ विज्ञानकणमात्रतः ॥ प्रेरितः परिपृच्छामि क्षन्तव्योतिक्रमो मम ॥ ४६ ॥

धर्मरक्षाके निमित्त पृथ्वीमें विचरते हैं ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो आपकी इच्छा हो सो कहिये जो सुननाहो वह कहो मैं लोकरक्षाके निमित्त उसे कहूँगा ॥ ॥ ४२ ॥ यह स्कन्दके वचन सुन महामुनि वामदेवजी प्रेमसे गद्गद हो मेघगम्भीर वाणीसे बोले ॥ ४३ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! आप पर अपरके स्वामी हो, परावरकी विभूति देनेवाले हो, तुम सर्वज्ञ सबके कर्त्ता सब शक्तिके धारण करनेवाले हो ॥ ४४ ॥ हम जीव आपके गुण कहनेमें असमर्थ हैं, यह आपका अनुग्रह है जो आप हमसे ऐसे कहते हो ॥ ४५ ॥ हे महाभाग ! मैं कृतार्थ हूँ आपके लवमात्र विज्ञानसे प्रेरित हो आपसे पूँछता हूँ मेरे

अतिक्रमको आप क्षमा करो ॥ ४६ ॥ प्रणवही साक्षात् परमेश्वरका वाचक है, वही देव पशुपति वाच्य हैं, जो पशुओं (जीव) के पापमोचक हैं॥ ४७॥ प्रणवद्वारा बुलायेहुए शिवजी क्षणमात्रमें पाप दूर करते हैं इस कारण शिवके प्रति प्रणवोपासन मात्रसे ही जीवोंके पाशमोचन होकर प्रणवकी वाचकताकी सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥ "ओमितीदं सर्वम्" अर्थात् यह सब ओंकारही स्वरूप है, ऐसा सनातन श्रुति कहती है 'ओमिति ब्रह्म सर्वं' इस प्रकार सबको श्रुति ब्रह्मस्वरूप कहती है ॥ ४९ ॥ हे देवसेनापते ! देवताओंके पति आपको नमस्कार है, यतियोंके पति परिपूर्णके निमित्त नमस्कार है ॥ ५० ॥ इस प्रकार इस जगतकी स्थितिमें शिवके सिवाय कोई दूसरा नहीं है सब रूप धारण करनेवाले व्यापक स्वामी महेश्वर शिव हैं ॥ ५१ ॥ समष्टि व्यष्टिके

प्रणवो हि परः साक्षात्परमेश्वरवाचकः ॥ वाच्यः पशुपतिर्देवः पशूनां पाशमोचकः ॥ ४७ ॥ वाचकेन समाहूतः पशून्मोचयते क्षणात् ॥ तस्माद्वाचकतासिद्धिः प्रणवेन शिवम्प्रति ॥ ४८ ॥ ॐ मितीदं सर्व्वमिति श्रुतिराह सनातनी ॥ ओमिति ब्रह्म सर्व्वं हि ब्रह्मेति च समब्रवीत् ॥ ४९ ॥ देवसेनापते तुभ्यन्देवानाम्पतये नमः ॥ नमो यतीनाम्पतये परिपूर्णाय ते नमः ॥ ५० ॥ एवं स्थिते जगत्यस्मिञ्छिवादन्यन्न विद्यते ॥ सर्व्वरूपधरः स्वामी शिवो व्यापी महेश्वरः ॥ ५१ ॥ समष्टिव्यष्टिभावेन प्रणवार्थः श्रुतो मया ॥ न जातुचिन्महासेन संप्राप्तस्त्वादृशो गुरुः ॥५२॥ अतः कृत्वानुकंपां वै तमर्थं वक्तुमर्हसि ॥ उपदेशविधानेन सदाचारक्रमेण च ॥५३॥ स्वाम्येकः सर्व्वजन्तूनां पाशच्छेदकरो गुरुः ॥ अतस्त्वत्कृपया सोऽर्थः श्रोतव्यो हि मया गुरो ॥ ५४ ॥ इति स मुनिना पृष्टः स्कन्दः प्रणम्य सदाशिवं प्रणववपुषं साष्टात्रिंशत्कलावरलक्षितम् ॥ सहितमुमया शश्वत्पार्श्वे मुनिप्रवरान्वितं गदितुमुपचक्राम श्रेयः श्रुतिष्वपि गोपितम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां वामदेवब्रह्मवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भावसे यह सब प्रणवार्थ ही है, ऐसा मैंने सुना है, हे स्कंदजी ! आपके समान कोई गुरु नहीं मिल सकता है ॥ ५२ ॥ मैंने प्रणवार्थ नहीं सुना इस कारण आप उपदेशके विधान और सदाचारके क्रमसे कृपाकर मुझे इसका अर्थ सुनाइये ॥ ५३ ॥ आपही सब जन्तुओंके पाश छेदन करनेसे गुरु हो इस कारण हे गुरो ! कृपाकर वह अर्थ मुझे सुनाइये ॥ ५४ ॥ जब मुनिने इस प्रकारसे पूँछा तौ स्कंदने प्रणवशरीर अडतीस कलायुक्त पार्वतीसहित शिवको प्रणाम करके मुनिके निमित्त वेदगुह्य ज्ञान कहना प्रारम्भ किया ॥ ५५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कै० सं० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

स्कंदजी बोले, हे महाभाग ! वामदेव मुनीश्वर ! आप धन्य हो तुम बहुत शिवके भक्त हो शिवज्ञान जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ तुमको त्रिलोकीमें कुछ भी अविदित नहीं है तोभी लोकानुग्रह करनेके हेतु मैं तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ इस लोकमें जीव अनेकप्रकारके शास्त्रोंसे मोहित होगये हैं, और परमेशकी विचित्र मायासे वंचित हैं ॥ ३ ॥ साक्षात् प्रणव अर्थ महेश्वरको नहीं जानते, जो सगुण निर्गुण ब्रह्म तीन देवका प्रगट करनेवाला परमदेव है ॥ ४ ॥ मैं दक्षिण भुजा उठाकर सौगन्धपूर्वक कहता हूँ यह सत्य है सत्य है और सत्य है ॥ ५ ॥ प्रणवके अर्थ साक्षात् शिवहीने प्रधानतासे कहे हैं, श्रुति,

श्रीब्रह्मण्य उवाच ॥ साधुसाधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर ॥ त्वमतीव शिवे भक्तश्शिवज्ञानवतां वरः ॥ १ ॥ त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित् ॥ तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः ॥ २ ॥ लोकेस्मिन्पशवस्सर्व्वे नानाशास्त्रविमोहिताः ॥ वञ्चिताः परमेशस्य माययातिविचित्रया ॥ ३ ॥ न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थम्महेश्वरम् ॥ सगुणन्निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनकम्परम् ॥ ४ ॥ दक्षिणम्बाहुमुद्धृत्य शपथम्प्रब्रवीमि ते ॥ सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ ५ ॥ प्रणवार्थश्शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्त्तितः ॥ श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च ॥ ६ ॥ यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ॥ ७ ॥ यस्माज्जगदिदं सर्व्वं विधिविष्णिवन्द्रपूर्व्वकम् ॥ सहभूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते ॥ ८ ॥ न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन ॥ यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्य्यो न चन्द्रमाः ॥ ९ ॥ यस्य भासो विभातीदञ्जगत्सर्वं समन्ततः ॥ सर्व्वैश्वर्य्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्व्वेश्वरस्स्वयम् ॥ १० ॥ यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः ॥ सर्व्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपो हि चिन्मयः ॥ ११ ॥

स्मृति, शास्त्र, पुराण और आगमोंमें यह बात कही है ॥ ६ ॥ जहां जाकर मनके सहित वाणी निवृत्त होजाती है, जिसके आनन्दको प्राप्तकर फिर विद्वान् कहींसे भयभीत नहीं होता ॥ ७ ॥ जिनसे ब्रह्मा रुद्र इन्द्र पूर्वक यह सम्पूर्ण जगत् होता है जो भूतेन्द्रिय सहित इस जगत्को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥ वह कभी भी कहींसे उत्पन्न नहीं होते हैं, जिस्में विद्युत् सूर्य और चन्द्रमा भी प्रकाश नहीं करते ॥ ९ ॥ जिसकी भाषासे यह सब जगत् प्रकाशमान होता है, वह सब ऐश्वर्यसे प्राप्त होनेसेही महेश्वर कहलाते हैं ॥ १० ॥ जो आकाशके मध्यमें रहनेहारे शम्भु मुमुक्षुओंसे ध्यान कियेजाते हैं, जो सर्वव्यापी

प्रकाशात्मस्वरूप चिन्मय हैं ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी पराशक्ति भावसे जानी जाती है वह निर्गुण और सगुण और निष्कल तथा शिवा हैं ॥ १२ ॥
जिनके तीन प्रकारके रूप हैं, स्थूल और सूक्ष्म और उससे परे हे मुने ! मुमुक्षुओंको उसका ध्यान करना चाहिये ॥ १३ ॥ वह सम्पूर्ण देवोंके आदिदेव
सनातन हैं, निष्कल हैं, जो ज्ञानाक्रियाके स्वभाववाले हैं उनको परमात्मा कहते हैं ॥ १४ ॥ उस देवाधिदेवकी मूर्त्ति साक्षात् सदाशिव हैं, वह देव पंचमंत्रके
शरीरवाले कलापंचकविग्रहवाले हैं ॥ १५ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रसन्न और शीतल कान्तिवाले पांचमुख दशभुजा पंचदश नयन ॥ १६ ॥

यस्य पुंसः परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ॥ निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ॥ १२ ॥ तदीयन्त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं
परन्ततः ॥ ध्येयं मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने ॥ १३ ॥ निष्कलस्सर्व्वदेवानामादिदेवस्सनातनः ॥ ज्ञानक्रियास्वभावो यः पर
मात्मेति गीयते ॥ १४ ॥ तस्य देवाधिदेवस्य मूर्त्तिस्साक्षात्सदाशिवः ॥ पञ्चमंत्रतनुर्देवः कलापञ्चकविग्रहः ॥ १५ ॥ शुद्धस्फटिकसं
काशः प्रसन्नः शीतलद्युतिः ॥ पंचवक्रो दशभुजस्त्रिपंचनयनः प्रभुः ॥ १६ ॥ ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः ॥ अघोरहृदयो
वामदेवगुह्यप्रदेशवान् ॥ १७ ॥ सद्यपादश्च तन्मूर्त्तिः साक्षात्सकलनिष्कलः ॥ सर्व्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडंगीकृतविग्रहः ॥ १८ ॥ शब्दा
दिशक्तिस्फुरितहृत्पंकजविराजितः ॥ स्वशक्त्या वामभागे तु मनोन्मन्या विभूषितः ॥ १९ ॥ मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्यासमार्गतः ॥
समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ॥ २० ॥ उपदेशक्रमो ह्यादौ वक्तव्यश्श्रूयतामयम् ॥ चातुर्व्वर्ण्यं हि लोकेस्मिन्प्रसिद्ध
म्मानुषे मुने ॥ २१ ॥ त्रैवर्णिकानामेवात्र श्रुत्याचारसमन्वयः ॥ शुश्रूषामात्रसारा हि शूद्राः श्रुतिबहिष्कृताः ॥ २२ ॥

ईशान देव मुकुट करके युक्त पुरातन पुरुष अघोर हृदय वामदेव गुह्यभूत मूर्तस्वरूप ॥ १७ ॥ सद्य पादतन्मूर्त्ति साक्षात् सम्पूर्ण निष्कलमूर्त्ति सर्वज्ञत्वादि छः
शक्ति और छः प्रकारसे शरीरका अंगीकार करनेवाले ॥ १८ ॥ शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरायमान हृदयकमलमें विराजित और मनोन्मनी अपनी शक्तिसे
वामभागमें विभूषित हैं ॥ १९ ॥ मंत्रादि छः प्रकारके अर्थ और उपन्यासके मार्ग समष्टि व्यष्टि भावके प्रणवात्मक अर्थको कहता हूं श्रवण करो ॥ २० ॥
प्रथम उपदेशका क्रम कहाजाता है, सो सुनिये हे मुनिराज ! इस लोकमें चारवर्ण विख्यात हैं ॥ २१ ॥ इनमें तीन वर्णोंको वेदका आचार कहा है,

शूद्रको वेदका अधिकार नहीं है, वह केवल सेवाही करै ॥ २२ ॥ और अपने आश्रममें रत सब तीनों वर्णोंको श्रुति स्मृतिका धर्मही अनुष्ठान करना चाहिये दूसरा नहीं ॥ २३ ॥ श्रुति स्मृतिकेही कहेहुए धर्मसे सिद्धिकी प्राप्ति होगी, वेदमार्गके दिखानेवाले परमेश्वरने ऐसा कहा है ॥ २४ ॥ वर्णाश्रमके आचाररूपी पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करै ऐसा करनेसे बहुतसे मुनिश्रेष्ठ उनकी सायुज्यताको प्राप्त होगये हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषि, यज्ञक्रियाके मार्गसे देवता, और पितर स्वधासे तृप्त होगयेहैं ऐसा श्रुति कहतीहै ॥ २६ ॥ इस प्रकार तीन ऋणसे मुक्त हो वानप्रस्थ आश्रमको प्राप्तहो शीत, उष्णता, सुख,

त्रैवर्णिकानां सर्व्वेषां स्वस्वाश्रमरतात्मनाम् ॥ श्रुतिस्मृत्युदितो धर्म्मोऽनुष्ठेयो नापरः क्वचित् ॥ २३ ॥ श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म्म कुर्व्वन्सिद्धिमवाप्स्यति ॥
इत्युक्तम्परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना ॥ २४ ॥ वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम् ॥ तत्सायुज्यं गतास्सर्वे बहवो मुनिसत्तमाः ॥ २५ ॥
ब्रह्मचर्य्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाध्वना ॥ पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत् ॥ २६ ॥ एवं ऋणत्रयान्मुक्तो वानप्रस्थाश्रमं गतः ॥
शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः ॥ २७ ॥ तपस्वी विजिताहारो यमाद्यं योगमभ्यसेत् ॥
यथा दृढतरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा ॥ २८ ॥ एवं क्रमेण शुद्धात्मा सर्व्वकर्म्माणि विन्यसेत् ॥ सन्यस्य सर्व्वकर्म्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत् ॥ २९ ॥
सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा ॥ सर्व्वोत्तमा हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम् ॥ ३० ॥
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया ॥ तव स्नेहान्महाप्राज्ञ सावधानतया शृणु ॥ ३१ ॥ सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदांतज्ञानपारगम् ॥
आचार्य्यमुपगच्छेत्स यतिर्म्मतिमतां वरम् ॥ ३२ ॥

दुःख सहनेवाला जितेन्द्रिय ॥ २७ ॥ तपस्वी आहार जीतनेवाला यम नियमादि योगका अभ्यास करै, जिस प्रकारसे बुद्धि निश्चल और दृढ होजाय ॥ ॥२८॥ इसी प्रकार शुद्धताके क्रमसे सब कर्म करै और सब काम्य कर्मोंका त्याग करके ज्ञानमयी पूजामें तत्पर होजाय ॥ २९ ॥ यह साक्षात ज्ञानमयी पूजा शिवजीकी ऐक्यता और जीवन्मुक्तिकी देनेहारी है यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियोंको जान्नी चाहिये ॥ ३० ॥ हे महाप्राज्ञ ! आपके स्नेहसे मैं कहता हूँ लोकके अनुग्रहसे उसका प्रकार कहताहूँ सो सावधान होकर सुनो ॥ ३१ ॥ सब शास्त्रके अर्थके तत्त्वको जान्नेवाले वेदान्तके पारगामी बुद्धिमान्

आचार्यके पास बुद्धिसम्पन्न यति जाकर ॥ ३२ ॥ बुद्धिमान् अनेक दण्ड और प्रणामसे उन्हैं संतुष्ट करै ॥ ३३ ॥ जो गुरू है वह शिवहै जो शिवहै सो गुरूहै ऐसा मनमें विचारकर अपना विचार गुरूसे निवेदन करै ॥ ३४ ॥ फिर गुरूकी आज्ञा पाकर बारहदिन पयोव्रत करै शुक्लपक्षकी चौथ वा दशमीको विधिपूर्वक ॥ ३५ ॥ स्नान करके प्रातःकृत्य कर शुद्धहो विधिपूर्वक गुरूको बुलाकर नान्दीश्राद्ध करै ॥ ३६ ॥ उसमें विश्वेदेवा सत्यवसु संज्ञावाले कहेहैं हे ऋषि ! श्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु और महेश यह तीन कहेहैं ॥ ३७ ॥ ऋषिश्राद्धमें देवक्षेत्र मनुष्य कहेहैं, द्रव्यश्राद्धमें वसु रुद्र आदित्य वर्णन कियेहैं ॥ ३८॥

तत्समीपमुपव्रज्य यथाविधि विचक्षणः ॥ दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतस्सुधीः ॥ ३३॥ योगुरुस्स शिवः प्रोक्तो यश्शिवस्स गुरुस्स्मृतः ॥ इति निश्चित्य मनसा स्वविचारन्निवेदयेत् ॥ ३४ ॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ॥ शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यां वा विधानतः ॥ ३५ ॥ प्रातः स्नात्वा विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियस्सुधीः ॥ गुरुमाहूय विधिना नांदीश्राद्धं समारभेत् ॥ ३६ ॥ विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञावंतः प्रकीर्त्तिताः ॥ देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः ॥ ३७ ॥ ऋषिश्राद्धे तु सम्प्रोक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः ॥ देवश्राद्धे तु वसुरुद्रादित्यास्सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ३८ ॥ चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः ॥ भूतश्राद्धे पंच महाभूतानि च ततः परम् ॥ ३९ ॥ चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः ॥ ४० ॥ मातृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही ॥ आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ ॥ ४१ ॥ प्रपितामहनामा च सपत्नीकाःप्रकीर्त्तिताः ॥ मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः ॥ ४२ ॥

मनुष्यश्राद्धमें चार सनकादिक कहेहैं भूतश्राद्धमें पांच महाभूत कहेहैं ॥ ३९ ॥ चक्षुरादि इन्द्रिय समूह और जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज यह चार प्रकारका भूतसमूह कहाहै, पितृश्राद्धमें बाप दादे परदादे यह तीन कहेहैं ॥ ४० ॥ मातृश्राद्धमें माता दादी परदादी कहीहै, आत्मश्राद्धमें अपने पिता पिता मह ॥ ४१ ॥ प्रपितामह सपत्नीक ग्रहण कियेहैं मातामह (नाना) के श्राद्धमें नाना परनाना बुड्ढे–परनानाका ग्रहण कियाहै ॥ ४२ ॥

प्रतिश्राद्धमें दो ब्राह्मण जिमावै, उनको बुलवाकर स्वयं आचमन कर पवित्रहो उनके चरण धोवै ॥ ४३ ॥ और इस प्रकार कहै सम्पूर्ण सम्पत्तिकी प्राप्तिके कारण, आपत्तियोंके दूर करनेको अग्नि, अपार संसारसागरके सेतु, ब्राह्मणोंके चरणोंकी रज मुझे पवित्र करै ॥ ४४ ॥ आपत्तिरूप अंधकार दूरकरनेको सूर्य्य, इच्छितपदार्थ देनेको कामधेनु, समस्त तीर्थोंके जलकी पवित्रमूर्त्ति, ब्राह्मणोंके चरणोंकी रज मेरी रक्षाकरै ॥ ४५ ॥ यह जपकर फिर पृथ्वीमें साष्टांग दंडवत करै, और शिवजीके सन्मुख पूर्वको मुखकर खडाहो उनके चरणोंका ध्यान करताहुआ ॥ ४६ ॥ पवित्र हाथकर शुद्धहो यज्ञोपवीत नवीन धारणकर दृढ

प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वोपकल्पितान् ॥ आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः ॥ ४३ ॥ समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ॥ अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः ॥ ४४ ॥ आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ॥ समस्ततीर्थांबुपवित्रमूर्त्तयो रक्षंतु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥ ४५ ॥ इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्टांगं भुवि दंडवत् ॥ स्थित्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन् ॥ ४६ ॥ सपवित्रकरश्शुद्ध उपवीती दृढासनः ॥ प्राणायामत्रयं कुर्य्याच्छ्रुत्वा तिथ्यादिकं पुनः ॥ ४७ ॥ मत्संन्यासांगभूतं यद्विश्वेदेवादिकं तथा ॥ श्राद्धमष्टविधं मातामहान्तं पार्वणेन वै ॥ ४८ ॥ विधानेन करिष्यामि युष्मदाज्ञापुरस्सरम् ॥ एवं विधाय संकल्पं दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ॥ ४९ ॥ उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत् ॥ पवित्रपाणिः संस्पृश्य पाणी ब्राह्मणयोर्वदेत् ॥ ५० ॥ विश्वेदेवार्थ इत्यादि भवद्भ्यां क्षण इत्यपि ॥ ५१ ॥ प्रसादनीय इत्यन्तं सर्व्वत्रैवं विधिक्रमः ॥ एवं समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ ५२ ॥

आसनपर बैठ तीन प्राणायाम कर तिथ्यादि सुनकर ॥ ४७ ॥ मेरे संन्यासका अंगभूत जो वैश्वदेवादि है सो क्रमसे करके पूर्वोक्त देवश्राद्ध आदि भेदसे मातामह पर्यन्त पार्वणश्राद्ध ॥ ४८ ॥ आपकी आज्ञासे विधिपूर्वक करूँगा ऐसा संकल्पकर कुशोंको उत्तरकी ओर त्यागन कर दे ॥ ४९ ॥ फिर ब्राह्मणोंका हाथ स्पर्शकर वरणका क्रम प्रारम्भ करै, पवित्रीको हाथोंसे छूकर ब्राह्मणोंसे कहै ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाके निमित्त आपका वरण किया है, क्षणमात्रको आप स्वीकार कीजिये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सबको प्रसन्न करै सर्वत्र यही क्रम है इस प्रकार वरण समाप्तकर मण्डलकी रचना रचै ॥ ५२ ॥

उत्तरसे लेकर दशौं मण्डलोंको अक्षतोंसे पूजन करै, उन मण्डलोपर ब्राह्मणोंको बैठालकर उनके चरणोंपर अक्षत डालै ॥ ५३ ॥ विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणोंको सम्बोधन कर उससे कहै यह आपके निमित्त पाद्यहै ऐसा कह कुश, पुष्प, अक्षत, जल, दे ॥ ५४ ॥ फिर पाद्य देकर मुख धुलाय उत्तरको मुखकर बैठाय आचमन कराय उनको श्रेष्ठ आसनोंपर बैठावै ॥ ५५ ॥ विश्वेदेवारूप ब्राह्मणोंके निमित्त यह आसनहै, ऐसा कह कुशाका आसन दे, फिर स्वयं कुश हाथमें लेकर स्थितहो ॥ ५६ ॥ और इस नांदीमुख श्राद्धमें विश्वेदेवाके निमित्त आप क्षण मात्र स्थित हूजिये ऐसा कहै ॥ ५७ ॥ आप दोनों

उदगारभ्य दश च कृत्वाभ्यर्चनमक्षतैः ॥ तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान्पादयोः पुनः ॥ ५३ ॥ विश्वेदेवादिनामानि ससंबोधनमुच्चरेत् ॥ इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः ॥ ५४ ॥ पाद्यं दत्त्वा स्वयमपि क्षालितांघ्रिरुदङ्मुखः ॥ आचम्य युग्मक्लृप्तांस्तानासनेषूपवेश्य च ॥ ५५ ॥ विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्येदमासनम् ॥ इति दर्भासनं दत्त्वा दर्भपाणिस्स्वयं स्थितः ॥ ५६ ॥ अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थ इत्यपि ॥ भवद्भ्यां क्षण इत्युक्त्वा क्रियतामिति संवदेत् ॥ ५७ ॥ प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत् ॥ वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुंगवौ ॥ ५८ ॥ संपूर्णमस्तुं संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान्प्रति ॥ भवन्तोऽनुगृह्णंत्विति प्रार्थयेद्द्विजपुंगवान् ॥ ५९ ॥ ततश्शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च ॥ अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्त्वा दर्भैः पृथक्पृथक् ॥ ६० ॥ परिस्तीर्य्य स्वयं तत्र परिषिच्योदकेन च ॥ हस्ताभ्यामवलंब्याथ पात्रं प्रत्येकमादरात् ॥ ६१ ॥ पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा तत्र व्यवस्थितान् ॥ देवादींश्च चतुर्थ्यन्ताननूद्याक्षतसंयुतान् ॥ ६२ ॥ उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्नं यजेत्पुनः ॥ न ममेति वदेदन्ते सर्वत्रायं विधिक्रमः ॥ ६३ ॥

स्वीकार कीजिये, हम स्वीकार करतेहैं ऐसा वे दोनों ब्राह्मण कहैं ॥ ५८ ॥ कि तुम्हारे संकल्पकी सिद्धि सम्पूर्णतासे हो तब ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करै कि आप अनुग्रह कीजिये ॥ ५९ ॥ तब शुद्ध केलेके पत्तोंमें धोकर बनायेहुए अन्नादि भोजनके पदार्थ परोसकर और पृथक् कुश बिछाकर ॥ ६० ॥ और जलसे छिडककर पीछे प्रत्येक पात्रको हाथमें लेकर ॥ ६१ ॥ आदरसे वे पात्र पृथ्वीमें रखकर (पृथ्वीते पात्रम्) यह मंत्र पढै देवता आदिको चतुर्थी विभक्ति उच्चारण करके ॥ ६२ ॥ अक्षत सहित जलको ग्रहण कर "देवाय स्वाहा" यह कहकर उस अन्नको त्यागन करदे, और 'इदं न मम' अन्तमें

ऐसा कहै, इस प्रकार सर्वत्र करै ॥ ६३ ॥ जिनके चरणकमलके स्मरणसे जिनके श्रीनामके जपसे न्यून कर्मभी पूर्ण होजाताहै उन महेश्वरको अम्बासहित नमस्कार करताहूँ ॥ ६४ ॥ ऐसे कहकर उनसे कहै जो कुछ मैंने कियाहै इस नान्दीमुखश्राद्धको आप यथायोग्य कहिये ॥६५॥ ब्राह्मण कहैं ऐसाहीहो, तब वह उन ब्राह्मणश्रेष्ठोंको प्रसन्नकर और अपने हाथसे जल छोड पृथ्वीमें दण्डवत् कर ॥ ६६ ॥ उठकर फिर कहै कि यह ब्राह्मणोंको अमृत स्वरूपहो, और हाथ जोडकर उदारबुद्धिसे परमप्रीतिसे प्रार्थना करै ॥ ६७ ॥ 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' 'अग्नाविष्णू सजोषसे' इत्यादिक ग्यारह अनुवाक (सहस्रशीर्षा)

यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि ॥ न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णन्तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥ ६४ ॥ इति जप्त्वा ततो ब्रूयान्मया कृतमिदं पुनः ॥ नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं च वदेत्ततः ॥ ६५ ॥ अस्त्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विजपुंगवान् ॥ विसृज्य स्वकरस्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ६६ ॥ उत्थाय च ततो ब्रूयादमृतम्भवतु द्विजान् ॥ प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदारधीः ॥ ६७ ॥ श्रीरुद्रं चमकं सूक्तं पौरुषं च यथाविधि ॥ चित्ते सदाशिवन्ध्यात्वा जपेद्ब्रह्माणि पञ्च च ॥ ६८ ॥ भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमापय्य द्विजान्पुनः ॥ तन्मन्त्रेण ततो दद्यादुत्तरापोशणं पुरः ॥ ६९ ॥ प्रक्षालितांघ्रिराचम्य पिण्डस्थानं व्रजेत्ततः ॥ आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ ७० ॥ नान्दीमुखोक्तश्राद्धांगं करिष्ये पिण्डदानकम् ॥ इति संकल्प्य दक्षादिसमारभ्योदकान्तिकम् ॥ ७१ ॥ नव रेखाः समालिख्य प्रागग्रान्द्वादश क्रमात् ॥ संस्तीर्य्य दर्भान्दक्षादिदेवादिस्थानपञ्चकम् ॥ ७२ ॥ तूष्णीं दद्यात्साक्षतोदं त्रिषु स्थानेषु च क्रमात् ॥ स्थानेष्वन्येषु मातृषु मार्ज्जयन्तास्ततः परम् ॥ ७३ ॥

इत्यादि पुरुषसूक्तको वा ईशानादि पांच ब्रह्मके नामोंको चित्तमें सदाशिवका ध्यानकर जपकरै ॥ ६८ ॥ भोजनके अन्तमें रुद्रसूक्तको समाप्त करके उन ब्राह्मणोंको 'अमृतापिधानमसीति' मंत्रसे जल देकर ॥६९॥ चरणधोय आचमन कर पिंडके स्थानमें स्वयं जाय और मौन हो पूर्वको बैठ तीन प्राणायाम करै ॥ ७० ॥ और कहै अब मैं नान्दीमुखश्राद्धके अंगरूप पिण्डदानको करूंगा, ऐसा संकल्पकर दक्षिणादिसे आरम्भकर उत्तरतक ॥ ७१ ॥ नौ रेखा लिखै उसके आगे क्रमसहित देवादिके पांच स्थानमें दो दो कुश बिछावै ॥ ७२ ॥ और अक्षत सहित जल मौन होकर तीन स्थानोंमें क्रमसे दे, दूसरे

स्थानमें माताओंको मार्जन करै इसके उपरान्त ॥७३॥ यहां पितर स्थित हों, ऐसा कहकर अक्षत जल समर्पण करै इसी क्रमसे देवताओंके पांचों स्थानोंमें समर्पण करै ॥ ७४ ॥ फिर चतुर्थ्यन्त उन उन देवताओंके नाम लेकर प्रत्येक उन पांचों स्थानोंमें पिंडदान करै ॥७५॥ पित्रादि पंचकस्थानमें मौनहो जल, चावल, चढावे, और अपने गृह्यसूत्रके अनुसार पिंड दे फिर श्रेष्ठगुणके निमित्त जल और चावल चढावै ॥ ७६ ॥ और हृदयकमलके मध्यमें सदाशिवका ध्यान करै 'यत्पादपद्मस्मरणात्' इत्यादि इस श्लोकको फिर पढै ॥ ७७ ॥ फिर ब्राह्मणोंको नमस्कार कर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा

अत्रेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्य च ॥ दद्यात्ततः क्रमेणैव देवादिस्थानपञ्चके ॥ ७४ ॥ तत्तद्देवादिनामानि चतुर्थ्यन्तान्युदीर्य्य च ॥ पिण्डत्रयं ततो दद्यात्प्रत्येकं स्थानपञ्चके ॥ ७५ ॥ स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥ दद्यादिदं साक्षतं च पितृसाड्गुण्यहेतवे ॥ ७६ ॥ ध्यायेत्सदाशिवं देवं हृदयाम्भोजमध्यतः ॥ तत्पादपद्मस्मरणादिति श्लोकं पठन्पुनः ॥ ७७ ॥ नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तितः ॥ दत्त्वा क्षमापय्य च तान्विसृज्य च ततः क्रमात् ॥ ७८ ॥ पिण्डानुत्सृज्य गोग्रासं दद्यान्नोचेज्जले क्षिपेत् ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा भुंजीत स्वजनैस्सह ॥ ७९ ॥ अन्येद्युः प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियस्सुधीः ॥ उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविवर्जितम् ॥ ८० ॥ केशश्मश्रुनखानेव कर्म्मावधि विसृज्य च ॥ समाष्टकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः ॥ ८१ ॥ स्नात्वा धौतपटश्शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यतः ॥ भस्म संधार्य्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥ ८२ ॥ तेन संप्रोक्ष्य संप्राप्य शुद्धदेहस्वभावतः ॥ होमद्रव्यार्थमाचार्य्यदक्षिणार्थं विहाय च ॥ ८३ ॥

देकर क्षमा कराय उनको विदा करै ॥ ७८ ॥ पिंडको छोडकर गौग्रास दे अथवा जलमें छोड दे फिर पुण्याहवाचनकर इष्टजनोंके संग भोजन करै ॥७९॥ दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और नित्यक्रिया व्रत करके बगल और उपस्थके बालोंको छोडकर क्षौरकर्म करावै ॥ ८० ॥ केश डाढी मूछ नखूनको कर्मकी विधिमें छोडकर अर्थात् गुह्यके बालोंको छोडकर विधिपूर्वक क्षौर कर्मके विधानसे करावै ॥८१॥ स्नानकर शुद्ध धोती पहर दो आचमन कर मौन हो विधिपूर्वक भस्म धारणकर पुण्याहवाचन करै ॥ ८२ ॥ प्रोक्षण कर शुद्ध देहके स्वभावसे होमद्रव्यके निमित्त और आचार्यकी प्रदक्षिणाके द्रव्य छोडकर ॥ ८३ ॥

और सम्पूर्ण द्रव्यजात शिव और ब्राह्मणोंके निमित्त और भक्तोंके निमित्त देकर गुरुरूप शिवके निमित्त ॥ ८४ ॥ वस्त्रादि दक्षिणा देकर प्रणामकर पृथ्वीमें दंडवत् करै डोरा कौपीन वस्त्र दंडादि धोयाहुआ पवित्र लेकर ॥ ८५ ॥ होमके द्रव्य और समिधादि क्रमसे लेकर समुद्रके किनारे, नदी, पर्वत, शिवालय ॥ ८६ ॥ वन, गोठ आदि उत्तम स्थानको विचारकर आचमन कर स्थित हो मानस जपरूप मंजरीको करके ॥ ८७ ॥ ब्रह्म मंत्र ओंकार सहित और नमो ब्रह्मणे ऐसा भी तीनबार जपकर "अग्निमीडे पुरोहितम्" उच्चारण करै ॥ ८८ ॥ फिर "महाव्रतमिति" और 'अग्निर्देवानामवमः'

द्रव्यजातं महेशाय द्विजेभ्यश्च विशेषतः ॥ भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे ॥ ८४ ॥ वस्त्रादिदक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ दोरकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितम्भुवि ॥ ८५ ॥ आदाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात् ॥ समुद्रतीरे नद्यां वा पर्व्वते वा शिवालये ॥ ८६ ॥ अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य्य स्थानमुत्तमम् ॥ स्थित्वाचम्य ततः पूर्व्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम् ॥ ८७ ॥ ब्राह्ममोंकारसहितं नमो ब्रह्मण इत्यपि ॥ जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीळे पुरोहितम् ॥ ८८ ॥ अथ महाव्रतमिति अग्निर्वै देवानामतः ॥ तथैतस्य समाम्नायमिषेत्वोर्ज्जेत्वा वेति तत् ॥ ८९ ॥ अग्न आयाहि वीतये शन्नो देवीरभिष्टये ॥ पश्चात्प्रोच्य मयरसतजभनलगैः सह ॥ ९० ॥ सम्मितं च ततः पञ्चसंवत्सरमयं ततः ॥ समाम्नायस्समाम्नातः अथ शिक्षां वदेत्पुनः ॥ प्रवक्ष्यामीत्युदीर्याथ वृद्धिरादैच्च सम्वदेत् ॥ ९१ ॥ अथातो धर्मजिज्ञासेत्युच्चार्य्य पुनरंजसा ॥ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा वेदादीनपि संजपेत् ॥ ९२ ॥ ब्रह्माणमिन्द्रं सूर्य्यञ्च सोमं चैव प्रजापतिम् ॥ आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानमतः परम् ॥ ९३ ॥

और इसका समाम्नाय 'इषेत्वोर्जेत्वा' ॥ ८९ ॥ "अग्नआयाहिवीतये" "शन्नोदेवी रभिष्टय०" फिर म य र स त ज भ न ल ग को उच्चारण कर ॥ ९० ॥ पांच सम्बत्सरमय सहित इनका समाम्नाय कहा है फिर शिक्षा को मैं कहूंगा ऐसा कहकर 'वृद्धिरादैच्' सूत्र कहै ॥ ९१ ॥ फिर "अथातो धर्मजिज्ञासा" यह सूत्र उच्चारण कर "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस ब्रह्मसूत्रको वा केवल वेदोंहीको उच्चारण कर जपकरै ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रजापति,

आत्मा, अंतरात्मा, ज्ञानात्मा ॥ ९३ ॥ परमात्मा इन सबके प्रथम ओंकार पीछे नमः लगाय चतुर्थीविभक्तियुक्त उच्चारण करके एक मुठी सत्तू ले ॥९४॥ उन्हें भोजन कर ओंकारसहित दो बार आचमन कर वक्ष्यमाण मंत्रोंसे नाभिको स्पर्श करै उन मंत्रोंमें प्रथम ओंकार अन्तमें नमः लगावै ॥ ९५ ॥ आत्मा, अंतरात्मा, ज्ञानात्माको अपने आत्माको और प्रजापतिको उच्चारणकर ॥ ९६ ॥ स्वाहा अन्तमें लगाकर जपकरै पीछे दूध, दही, घृतको, पृथक् २ तीन बार ओंकारसे चाटकर दो बार आचमनकर ॥ ९७ ॥ पूर्वको मुख करके दृढ चित्त हो स्थिर आसनपर बैठे और विधिपूर्वक तीन प्राणायाम करै॥

परमात्मानमपि च प्रणवाद्यं नमोंतकम् ॥ चतुर्थ्यन्तं जपित्वाऽथ सक्तुमुष्टिं प्रगृह्य च ॥ ९४ ॥ प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत् ॥ नाभिं मन्त्रान्वक्ष्यमाणन्प्रणवाद्यान्नमोन्तकान् ॥ ९५ ॥ आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानं परं पुनः ॥ आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम् ॥ ९६ ॥ स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक् ॥ त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधा पुनः ॥ ॥ ९७ ॥ प्रागास्य उपविश्याथ दृढचित्तः स्थिरासनः ॥ यथोक्तविधिना सम्यक्प्राणायामत्रयञ्चरेत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः ॥ गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत् ॥ १ ॥ नैर्ऋत्ये पूजयेद्देवं विघ्नेशं देवपूजितम् ॥ गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुविधानतः ॥ २ ॥ रक्तवर्णं महाकायं सर्व्वाभरणभूषितम् ॥ पाशांकुशाक्षाभीष्टञ्च दधानं करपंकजैः ॥३॥ एवमावाह्य सन्ध्याय शंभुपुत्रं गजाननम् ॥ अभ्यर्च्य पायसापूपनालिकेरगुडादिभिः ॥ ४ ॥

॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कैलाससंहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ स्कन्दजी बोले, फिर मध्याह्नसमयमें प्रसन्नमन हो स्नान करै, गंध, पुष्प, अक्षतादि पूजाके द्रव्योंको लावै ॥ १ ॥ नैर्ऋतकी ओर विधिसे देवपूजित विघ्नेश (गणेश)का पूजन करै (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे विधिपूर्वक आवाहन करे ॥ २ ॥ लालवर्ण महाकाय सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित पाश अंकुश अक्ष श्रेष्ठ हाथमें धारण कियेहुए ॥ ३ ॥ इस प्रकार शिवपुत्र प्रभु

गणेशजीको ध्यान करके क्रमसे गंधादिसे अर्चन करके खीर, पुये, नारियल मिष्टान्न आदि ॥ ४ ॥ नैवेद्यसे सन्तुष्ट कर ताम्बूलदे विघ्नेशकी प्रार्थना करै और सन्तुष्ट कर नमस्कार करै ॥ ५ ॥ अपने गृह्यसूत्रकी विधिसे आज्यके श्रेष्ठभागको अग्निमें हवन करै, आज्यभागके हवनमें जो अग्निमुख तंत्रहै ॥ ६ ॥ उसको करके (भूः स्वाहा) ऐसा कहकर श्रुवेसे पूर्णाहुति देकर हवन समाप्त करै और अपराह्नकी समाप्ति पर्यन्त गायत्रीका जप करता रहै ॥ ७ ॥ फिर स्नानपूर्वक संध्याकालकी संध्या समाप्त करके और संध्या समयका होम करके मौन हो गुरूकी आज्ञाले ॥ ८ ॥ समिधा अन्न घृतके चरुको एक जगह मिलाकर रुद्रसूक्त अथवा सद्योजातादि पांच मंत्रोंसे हवन करै ॥ ९ ॥ ईशानादि पंच ब्रह्ममंत्रोंसे उमा सहित महादेवका अग्निमें ध्यान करै (गौरीर्मिमाय) मंत्रसे हवन करके गौरीको स्मरण करताहुआ ॥ १० ॥ फिर (अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा) इस मंत्रसे एकवार आहुतीदे इस प्रकार हवनकर तंत्रको समाप्त करके फिर अग्निके उत्तरकी ओर ॥ ११ ॥ मौन होकर कुशके आसन वा मृगचर्मपर स्थितहो जबतक ब्रह्ममुहूर्त हो तबतक दृढमनसे गायत्री जपता रहै ॥ १२ ॥ फिर स्नान करै और जो जल स्नानमें अशक्त हो तो भस्मस्नान करै फिर उस चरुको मिलाकर अग्निपर रखकर ॥ १३ ॥ उसका जल पृथक्

नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम् ॥ परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नम्प्रार्थयेत्ततः ॥ ५ ॥ औपासनाग्नौ कर्त्तव्यं स्वगृह्योक्तविधा
नतः ॥ आज्यभागान्तमाग्नेयं मखतन्त्रमतः परम् ॥६॥ भूः स्वाहेतिऋृचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च ॥ गायत्रीं प्रजपेद्यावदपराह्णमतं
द्रितः ॥ ७ ॥ अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम् ॥ सायमौपासनं हुत्वा मौनी विज्ञापयेद्गुरुम् ॥ ८ ॥ श्रपयित्वा चरुन्त
स्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः ॥ जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः ॥ ९ ॥ ब्रह्मभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभावयेत् ॥ गौरीर्मिमायम
न्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन् ॥ १० ॥ ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत् ॥ हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रन्तु ततोऽग्नेरुत्तरे बुधः ॥ ११ ॥
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ॥ आब्राह्मं च मुहूर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः ॥ १२ ॥ ततः स्नात्वा त्वशक्तश्चेद्भस्मना
वा विधानतः ॥ श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्नावेवाभिघारितम् ॥ १३ ॥ उदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः ॥ अभिघार्य्य
व्याहृतीश्च रौद्रसूक्तञ्च पञ्च च ॥ १४ ॥

कर कुशपर बैठकर चरुको घृतसे मिश्रितकर व्याहृतीका उच्चारण कर रुद्रसूक्तका जप करै ॥१४॥ ईशानादि पञ्चब्रह्मको उच्चारण कर शिवके चरणकमलमें मन लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेवा ॥ १५ ॥ और ब्रह्मा इनके नामके अन्तमें नमः लगाकर आदिमें ओं लगा चतुर्थी विभक्तिसहित उच्चारण कर अर्थात् (ॐ प्रजापतये स्वाहा) इत्यादि इस प्रकार जप पुण्याहवाचन करके ॥ १६ ॥ तंत्रके सन्मुख (अग्नये स्वाहा) यह कहकर अग्निके मुखकी ओरसे निवृत्त हो पीछे 'प्राणाय स्वाहा, 'अपानाय स्वाहा' इत्यादि पंच आहुति देकर ॥ १७ ॥ और समिधा अन्न घृतके भेदसे शक्ति सहित हवन करै, पीछे चरु और घृतसे "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण कर हवन करै, फिर रुद्रसूक्त और पंचब्रह्मके मंत्रोंको जप करै ॥ १८ ॥ फिर महेशादि

जपेद्ब्रह्माणि सन्धार्य्य चित्तं शिवपदांबुजे ॥ प्रजापतिमथेन्द्रञ्च विश्वेदेवास्ततः परम् ॥ १५ ॥ ब्रह्माणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहांतान्प्रणवादिकान् ॥ संजप्य वाचयित्वाऽथ पुण्याहं च ततः परम् ॥ १६ ॥ परस्तात्तंत्रमग्नये स्वाहेत्यग्निमुखावधि ॥ निर्वर्त्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥ साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकृतं हुनेत् ॥ पुनश्च प्रजपेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च ॥१८॥ महेशादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः ॥ हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रन्तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना ॥ १९ ॥ तत्तद्देवान्समुद्दिश्य सांगं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ एवमग्निमुखाद्यं यत्कर्म्मतन्त्रम्प्रवर्त्तितम् ॥ २० ॥ अतः परं प्रजुहुयाद्विरजाहोममात्मनः ॥ षड्विंशतत्त्वरूपेस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये ॥ २१ ॥ तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन् ॥ तत्रात्मतत्त्वशुद्ध्यर्थं मन्त्रैरारुणकेतुकैः ॥ २२ ॥ पठ्यमानैः पृथिव्यादिपुरुषांतं क्रमान्मुने ॥ साज्येन चरुणा मौनी शिवपादाम्बुजं स्मरन् ॥ २३ ॥

चतुर्व्यूहके मंत्रोंको जप कर अपनी शाखाके मार्गसे महेशादि मंत्रोंसे हवन करै ॥ १९ ॥ तंत्रके ऊपर उन उन देवताओंके उद्देशसे हवि दे इस प्रकार अग्निमुखसे कर्मतंत्रको प्रवृत्त करै ॥ २० ॥ फिर अपनी शुद्धिके निमित्त विरजा हवन करै, प्रकृति आदि छब्बीस तत्त्व रूप इस देहमें लीन ॥ २१ ॥ आत्मशुद्धिके निमित्त विरजा होम करके कहै कि यह मेरे देहके तत्त्व शुद्ध होजायँ, ऐसा स्मरण करके फिर आत्मशुद्धिके निमित्त तैत्तिरीय आरण्यकके भद्र प्रपाठकमें अरुणकेतुक मन्त्र ॥२२॥ (अष्टयोनिमष्टपुत्रा) यहांसे (सत पुरुषा) यहांतक पढै, फिर घृत ले मौन हो शिवके चरणकमल स्मरण कर ॥२३॥

पृथ्वी आदि शब्दादि और वागादि पांच तथा श्रोत्रादि पांच इन्द्रिय, शिर, पाद, पीठ, उदर यह चार ॥ २४ ॥ और जंघाको योजन कर फिर त्वक् आदि सात धातु फिर प्राणादि पांच अन्नादि पांच कोश ॥ २५ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृतिपुरुष ॥ २६ ॥ पुरुषका भोक्तापन अर्थात प्रतिपन्न मनुष्यके भोगके निमित्त पांच तत्त्वके भी जो अन्तरमें वर्तमान हैं ॥ २७ ॥ वह पांच तत्त्व कहतेहैं नियति (स्थिति), काल सहित, राग, विद्या, कला पंचक हे मुनीश्वर ! यह मायासेही उत्पन्न हैं ॥ २८ ॥ श्रुतिमें प्रकृतिको मायाही कहा है, उसीसे यह तत्त्व उत्पन्न हुएहैं

पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पञ्चकं पुनः॥ श्रोत्राद्यश्च शिरः पार्श्वपृष्ठोदरचतुष्टयम ॥ २४ ॥ जंघां च योजयेत्पश्चात्त्वगाद्यं धातुसप्तकम् ॥ प्राणाद्यं पञ्चकं पश्चादन्नाद्यं कोशपञ्चकम् ॥ २५ ॥ मनश्चित्तं च बुद्धिश्चाहंकृतिः ख्यातिरेव च ॥ संकल्पन्तु गुणाः पश्चात्प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥ २६ ॥ पुरुषस्य तु भोक्तृत्वं प्रतिपन्नस्य भोजने ॥ अन्तरंगतया तत्त्वपंचकं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥ नियतिः कालरागश्च विद्या च तदनन्तरम् ॥ कला च पंचकमिदं मायोत्पन्नम्मुनीश्वर ॥ २८ ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता ॥ तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः ॥ २९ ॥ कालस्वभावो नियतिरिति च श्रुतिरब्रवीत् ॥ एतत्पञ्चकमेवास्य पञ्चकञ्चकमुच्यते ॥ ३० ॥ अजानन्पञ्चतत्त्वानि विद्वानपि च मूढधीः ॥ निपत्याधस्तात्प्रकृतेरुपरिष्टात्पुमानयम् ॥ ३१ ॥ काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्त्तते पार्श्वतोन्वहम् ॥ विद्यातत्त्वमिदं प्रोक्तं शुद्धविद्यामहेश्वरौ ॥ ३२ ॥ सदाशिवश्च शक्तिश्च शिवश्चेदं तु पञ्चकम् ॥ शिवतत्त्वमिदम्ब्रह्मन्प्रज्ञानब्रह्मवाग्यतः ॥ ३३ ॥

यही श्रुतिमें लिखा है ॥ २९ ॥ काल स्वभावकाही नाम नियति है यह श्रुतिमें लिखा है इसी पंचकका नाम पंचकंचुक कहा है ॥ ३० ॥ इन पांच तत्त्वोंके विना जाने विद्वान् भी मूढही होजाताहै, प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर यह पुरुष है ॥ ३१ ॥ ❀काकाक्षि न्यायके आश्रित होकर यह पुरुष नियत प्रकृतिमें वर्तता है इसीका नाम विद्यातत्त्व है शुद्ध विद्या महेश्वर ॥ ३२ ॥ सदाशिव शक्ति और शिव यही पंचक कहलाता है, प्रज्ञानंब्रह्म इस वाक्यसे

---

* जिस प्रकार काककी एकही चक्षु दोनों गोलकमें जाती है और दोनों नेत्रोंका कार्य करती है एकहीका दोनोंसे सम्बन्ध है यही काकाक्षि न्याय है।

यह शिवतत्वही कहा है ॥ ३३ ॥ हे मुनीश्वर! जो पृथ्वीसे आदि लेकर शिवतक तत्त्व हैं अपने कारण प्रकृतिमें लयके द्वारा इसकी शुद्धि करनी चाहिये॥ ॥ ३४ ॥ ग्यारह मंत्रोंको परस्मैपद पूर्वक शिवज्योति यहांतक उच्चारणकर ॥ ३५ ॥ 'इदं न मम' यह कहै इसीका नाम प्रकृति देवताके उद्देश्यसे त्याग है इसके उपरान्त (विविधै स्वाहा) (कपोतकाय स्वाहा) ॥ ३६ ॥ 'व्यापकाय परमात्मने इदं न मम' ऐसा कहै शिवाज्योति यहां चतुर्थी लगाकर और (विश्वाभूता इदम्) तथा ॥ ३७ ॥ (घसनोत्सुकायेदं) इस प्रकार चतुर्थी विभक्तिसे उच्चारण करै, "त्रैलोक्यव्यापिने परमात्मने देवाय इदं न मम" ऐसा कहै ॥ ३८ ॥ 'उत्तिष्ठ' इस मंत्रसे 'ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय स्वाहा' यह कहै ॥ ३९ ॥ फिर (त्रैलोक्यव्यापिने परमात्मने शिवाय इदं न ममं) इसप्रकार कहकर भागदे ॥ ४० ॥ अपने शाखामें कहे विधानके अनुसार तंत्रकर्मको करके गुरुके निमित्त घृत मिलेहुए चरुको किंचित् खवाकर ॥ ४१ ॥ सुवर्णादिकी दक्षिणा उनके निमित्त दे, फिर ब्रह्माको विदाकर प्रातः उपासना करके हवन करै ॥ ४२ ॥ 'संमां सिंचन्तुमरुतः' यह मंत्र जपकर मौन हो 'याते अग्न' इस मंत्रसे अग्निको प्रज्वलितकर ॥ ४३ ॥ हाथसे अद्वैत तेजवाले अपने आत्मामें अग्निको आरोपण करके फिर प्रातःकालकी संध्योपासना

पृथिव्यादिशिवांतं यत्तत्त्वजातं मुनीश्वर ॥ स्वकारणलयद्वारा शुद्धिरस्य विधीयताम् ॥ ३४ ॥ एकादशानां मन्त्राणाम्परस्मैपदपूर्वकम् ॥ शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तमिदम्पदमथोच्चरेत् ॥ ३५ ॥ न ममेति वदेत्पश्चादुद्देशत्याग ईरितः ॥ अतः परं विविद्यैति कपोतकायेति मन्त्रयोः ॥ ३६ ॥ व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि ॥ शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तं विश्वभूतपदम्पुनः ॥ ३७ ॥ घसनोत्सुकशब्दश्च चतुर्थ्यंतमथो वदेत् ॥ परस्मैपदमुच्चार्य्य देवाय पदमुच्चरेत् ॥ ३८ ॥ उत्तिष्ठस्वेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शब्दतः ॥ पुरुषाय पदम्ब्रूयादोंस्वाहेत्यस्य संवदेत् ॥ ३९ ॥ लोकत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परमात्मने ॥ शिवायेदं न मम च पदम्ब्रूयादतः परम् ॥ ४० ॥ स्वशाखोक्तप्रकारेण पुरस्तात्तन्त्रकर्म्म च ॥ निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुम्प्राश्य पुरोधसे ॥ ४१ ॥ प्रदद्याद्दक्षिणान्तस्मै हेमादिपरिबृंहिताम् ॥ ब्रह्माणमुद्वास्य ततः प्रातरौपासनं हुनेत् ॥ ४२ ॥ संमांसिञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रञ्जपेन्नरः ॥ याते अग्न इत्यनेन मन्त्रेणाग्नौ प्रताप्य च ॥ ४३ ॥ हस्तमग्नौ समारोप्य स्वात्मन्यद्वैतधामनि ॥ प्राभातिकीं ततः सन्ध्यामुपास्यादित्यमप्यथ ॥ ४४ ॥

करके और सूर्यको नमस्कार कर ॥ ४४ ॥ नाभितक जलमें प्रवेश करै, पीछे प्रवेश करावै और प्रेमसे सावधान हो उन मंत्रोंको जपता रहै ॥ ४५ ॥ और जो आहिताग्नि (अग्निहोत्री) प्रजापत्येष्टि करै वह सम्यक्प्रकारसे श्रौत वैश्वानरमें हवन करके सब वेद और दक्षिणा सहित सब देकर ॥ ४६ ॥ अग्निको आत्मामें आरोपण कर घरसे चलाजाय, संन्यासी होजाय सावित्रीके पहले पादका उच्चारण करके ॥ ४७ ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) ऐसा कहकर भूरोम् उच्चारण करै फिर गायत्रीके दूसरे पादका उच्चारण करके ॥ ४८ ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) ऐसा कहकर भुवरोम् ऐसा कहै फिर तीसरे पादका

उपस्थाय प्रविश्याप्सु नाभिदघ्नं प्रवेशयन् ॥ तन्मन्त्रान्प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः ॥ ४५ ॥ आहिताग्निस्तु यः कुर्य्यात्प्राजपत्येष्टिमाहिते ॥ श्रौते वैश्वानरे सम्यक्सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ ४६ ॥ अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ सावित्रीप्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च ॥ ४७ ॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत् ॥ द्वितीयम्पादमुच्चार्य्य सावित्रीमिति पूर्ववत् ॥ ४८ ॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिति संवदेत् ॥ तृतीयम्पादमुच्चार्य्य सावित्रीमित्यतः परम् ॥ ४९ ॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते सुवरोमित्युदीरयेत् ॥ त्रिपादमुच्चरेत्पूर्वं सावित्रीमित्यतः परम् ॥ ५० ॥ प्रवेशयामि शब्दान्ते भूर्भुवस्सुवरोमिति ॥ उदीरयेत्परम्प्रीत्या निश्चलात्मा मुनीश्वर ॥ ५१ ॥ इयम्भगवती साक्षाच्छंकरार्द्धशरीरिणी ॥ पंचवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्ज्वला ॥ ५२ ॥ नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रलेखावतंसिनी ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा दशायुधधरा शुभा ॥ ५३ ॥ हारकेयूरकटककिंकिणीनूपुरादिभिः ॥ भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा ॥ ५४ ॥ विष्णुना विधिना देवऋषिगंधर्व्वनायकैः ॥ मानवैश्च सदा सेव्या सर्व्वात्मव्यापिनी शिवा ॥ ५५ ॥

उच्चारणकर (सावित्रीं प्रवेशयामि) ॥ ४९ ॥ ऐसा कहताहुआ सुवरोम् कहै, फिर गायत्रीके तीन पाद उच्चारण कर ॥ ५० ॥ (सावित्रीं प्रवेशयामि) कहकर भूर्भुवः सुवरोम् ऐसा कहै ॥ ५१ ॥ यह भगवती साक्षात् शंकरके आधे शरीरवाली है पांचमुख दशभुजा पन्द्रहनेत्र उज्ज्वल शरीर ॥ ५२ ॥ नवरत्न किरीटसे प्रकाशित उदित चन्द्रमाके समान लेखावाली शुद्ध स्फटिकमणिके समान दश आयुध धारण किये ॥ ५३ ॥ हारकेयूर खँडुरा कौंधनी नूपुरादिसे भूषित शरीरवाली दिव्यवस्त्र रत्नोंके भूषण धारे ॥ ५४ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, देव, ऋषि, गन्धर्व, दानव और मनुष्योंसे सदा सेवनीय सबके आत्मामें

सदा व्यापकर रहनेवाले ॥ ५५ ॥ शिवा सदाशिव देवकी मनोहर धर्म पत्नीहैं जो जगन्माता तीन जगतकी उत्पन्न करनेवाली त्रिगुणात्मक निर्गुणाहै ॥५६॥ ऐसा विचारकर बुद्धिमान् गायत्रीका जप करै, यह आदिदेवी त्रिपदा ब्राह्मणत्व देनेवाली अजा है ॥ ५७ ॥ जो पापी शिवरूप गायत्रीको अन्यथा मानता है वह कल्पपर्यंत घोरनरकमें पडता है ॥ ५८ ॥ वह व्याहृतियोंसे उत्पन्नहुई उन्हींमें लय हो जाती है और वे व्याहृति प्रणवसे उत्पन्न होकर उसीमें लय होजातीहैं ॥ ५९ ॥ प्रणवही सब वेदकी आदि है प्रणवही शिवका वाचक है यह मंत्रोंका राजा महाबीजरूप मंत्र है ॥ ६० ॥ वह प्रणव शिव और

सदाशिवस्य देवस्य धर्मपत्नी मनोहरा ॥ जगदम्बा त्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा ॥ ५६ ॥ इत्येवं संविचार्य्याथ गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः ॥ आदिदेवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम् ॥ ५७ ॥ यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपिणीम् ॥ स पच्यते महाघोरे नरके कल्पसंख्यया ॥ ५८ ॥ सा व्याहृतिभ्यः संजाता तास्वेव विलयं गता ॥ ताश्च प्रणवसम्भूताः प्रणवे विलयं गताः ॥ ५९ ॥ प्रणवस्सर्ववेदादिः प्रणवः शिववाचकः ॥ मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः परः ॥ ६० ॥ शिवो वा प्रणवो ह्येषःप्रणवो वा शिवः स्मृतः ॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥ ६१ ॥ एनमेव महामन्त्रञ्जीवानाञ्च तनुत्यजाम् ॥ काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः ॥ ६२ ॥ तस्मादेकाक्षरन्देवं शिवं परमकारणम् ॥ उपासते यतिश्रेष्ठा हृदयाम्भोजमध्यगम् ॥ ६३ ॥ मुमुक्षवोऽपरे धीरा विरक्ता लौकिका नराः ॥ विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परमं शिवम् ॥ ६४ ॥ एवं विलाप्य गायत्रीं प्रणवे शिववाचके ॥ अहं वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाकं जपेत्पुनः ॥ ६५ ॥

शिवही प्रणवहैं, वाच्य वाचकमें कुछभी भेद नहींहै ॥ ६१ ॥ इसी महामंत्रको काशीमें शरीर त्यागन करनेवालोंको मरते समय उपदेश देकर शिवजी मुक्त करतेहैं ॥ ६२ ॥ इस कारण परमकारण देव एकाक्षरश्रेष्ठको जो यतिश्रेष्ठ हृदयकमलमें पूजतेहैं ॥ ६३ ॥ और जो दूसरे धीर, मुमुक्षु, विरक्त, तथा लौकिक पुरुष मनको विषयसे निवृत्तकर शंकरकी उपासना करतेहैं ॥ ६४ ॥ और गायत्रीको शिव वाचक ओंकारमें लय करके (अहं वृक्षस्येरेरिव) इस

अनुवाकको जपकर ॥ ६५ ॥ (यश्छंद सामऋषभः) इस अनुवाकको क्रमसे जपकर (श्रुतं मे गोपाये) तैत्तिरीय शाखाके उपनिषद्के अनुवाकोंको जपै पीछे 'उत्थितोहम्' कहै ॥ ६६ ॥ और तीनों इच्छाओंको त्यागै, पुत्रकी इच्छासे मैं पृथक् हुआ हूं इसी क्रमसे धनकी इच्छासे भी पृथक् हुआ हूं, ऐसा कह लोकेषणासे मैं पृथक् हुआ हूं ऐसा भी कहै, हे मुने ! क्रमसे पहले मंद फिर मध्यम और फिर अधिक शब्दसे जपै. पहले प्रणवका उद्धार करके सृष्टि स्थिति लयके क्रमसे करै ॥ ६७ ॥ उनका क्रम यह है (भूः संन्यस्तं भुवः संन्यस्तं सुवः सन्यस्तं) यह कहकर ॥ ६८ ॥ इन सब मंत्रोंके अंतमें मया लगादे

यश्छन्दसामृषभ इत्यनुवाकमुपक्रमात् ॥ गोपायांतं जपन्पश्चादुत्थितोहमितीरयेत् ॥ ६६ ॥ वदेज्जपेत्रिधा मन्दमध्योच्छ्रायक्रमान्मुने ॥ प्रणवम्पूर्व्वमुद्धृत्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ ६७ ॥ तेषामथ क्रमाद्ब्रूयाद्भूस्सन्यस्तम्भुवस्तथा ॥ संन्यस्तं सुवरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरन् ॥ ६८ ॥ सर्वमंत्राद्यः प्रदेशे मयेति च पदं वदेत् ॥ प्रणवं पूर्व्वमुद्धृत्य समष्टिव्याहृतीर्वदेत् ॥ ६९ ॥ समस्तमित्यतो ब्रूयान्मयेति च समब्रवीत् ॥ सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मंदादीति ततो मुने ॥ ७० ॥ प्रैषमंत्रांस्तु जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति संजपन् ॥ ७१ ॥ प्राच्यां दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदंजलिं ततः ॥ शिखां यज्ञोपवीतं च यत्रोत्पाट्य च पाणिना ॥ ७२ ॥ गृहीत्वा प्रणवं भूश्च समुद्रं गच्छ सम्वदेत् ॥ वह्निजायां समुच्चार्य्य सोदकाञ्जलिना ततः ॥ ७३ ॥ अप्सु हूयादथ प्रैषैरभिमंत्र्य त्रिधा त्वपः ॥ प्राश्य तीरे समागत्य भूमौ वस्त्रादिकं त्यजेत् ॥ ७४ ॥

जैसे (भुवः संन्यस्तं मया) पहले प्रणवका उच्चारण कर (भूर्भुवःस्वः) यह समष्टि व्याहृति उच्चारण करै ॥ ६९ ॥ (संन्यस्तं मया) ऐसा कहकर सदा शिवको हृदयमें ध्यान करके मंद मध्यम और ऊंचेस्वरसे जपै ॥ ७० ॥ इस प्रकार सावधान हो प्रेषमन्त्रको जपकर मुझसे सब प्राणियोंको अभय हो (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) ऐसा जप करै ॥ ७१ ॥ पूर्वदिशामें अंजलीसे जल लेकर छोडदे, शिखा यज्ञोपवीतको गायत्रीद्वारा हाथसे उखाडकर॥ ॥ ७२ ॥ ग्रहणकर ओंकार सहित (वह्निजाया स्वाहा) (ओं भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा) यह कहकर जल हाथमें लेकर ॥ ७३ ॥ प्रैषमंत्र अर्थात

---

१ यह संन्यासियोंका मंत्र है ।

(भूःसंन्यस्तं मया) उन मंत्रोंसे शिखा और यज्ञोपवीत जलमें डाल दे, फिर जलसे आचमनकर पृथ्वीमें वस्त्रादि भी त्यागन करै ॥ ७४ ॥ उत्तरको अथवा पूर्वको मुखकर सातपग चलै, कुछ दूर चलनेपर (ठहरो ठहरो) ऐसा आचार्य कहै ॥ ७५ ॥ तब लोकके व्यवहारके निमित्त हे भगवन्! दण्ड कौपीन स्वीकार कीजिये. ऐसा कहकर आचार्य अपने हाथसे दे ॥ ७६ ॥ आचार्यके वचन सुनकर डोरे सहित कौपीन काषायवस्त्रसे शरीरको ढककर दो बार आचमन करे फिर आचार्य उस शिष्यसे कहै ॥ ७७ ॥ (इन्द्रस्य वज्रोसि तत) इस मंत्रको जपताहुआ दण्डकी प्रार्थना 'सखाय मां' ऐसा जपता

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा गच्छेत्सप्तपदाधिकम् ॥ किञ्चिद्दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्ठेति संवदेत् ॥ ७५ ॥ लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च ॥ भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना ॥ ७६ ॥ दत्त्वा सुदोरं कौपीन काषायवसनं ततः ॥ आच्छाद्याचम्य च द्वेधा तं शिष्यमिति संवदेत् ॥ ७७ ॥ इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत् ॥ सम्प्रार्थ्य दण्डं गृह्णीयात्सखाय इति संजपन् ॥ ७८ ॥ अथ गत्वा गुरोः पार्श्वं शिवपादांबुजं स्मरन् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान् ॥ ७९ ॥ पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं निजम् ॥ कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठेद्गुरुपादसमीपतः ॥ ८० ॥ कर्म्मारम्भात्पूर्वमेव गृहीत्वा गोमयं शुभम् ॥ स्थूलामलकमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत् ॥ ८१ ॥ सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान् ॥ निक्षिप्य होमसम्पूर्त्तौ भस्म संगृह्य गोपयेत् ॥ ८२ ॥ ततो गुरुस्समादाय विरजानलजं सितम् ॥ भस्म तेनैव तं शिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात् ॥ ८३ ॥

हुआ दण्डग्रहण करै ॥ ७८ ॥ फिर शिवके चरणकमल जपताहुआ गुरुके निकट जाकर तीनबार पृथ्वीमें लेटकर प्रणाम करै ॥ ७९ ॥ फिर उठकर प्रेमसे गुरुको देखताहुआ और गुरुके चरणके निकट हाथ जोडकर स्थित हो ॥ ८० ॥ कर्मारम्भसे पहले ही गोबरको ग्रहणकर बडे आमलोंकी बराबर उसके गोले बनावै और उन्हैं सुखावै ॥ ८१ ॥ जब वे सूर्यकी किरणोंसे सूखजायँ तब उन्हैं होमाग्निके मध्यमें रखदे, होमकी पूर्णतामें उस भागको लेकर रख छोडै ॥ ८२ ॥ तब गुरु विरजाअग्निके बनेहुए श्वेतपिंडोंकी राखको 'अग्निरितिभस्म' इत्यादि मंत्रोंके क्रमसे ॥ ८३ ॥

सब अंगोंमें लगावै, शिरसे चरणोंतक और 'ईशानादि' पाँचमंत्रोंसे शिरसे आरम्भ कर ॥ ८४ ॥ सब प्रकार शरीरमें भस्म मलकर त्रिपुण्ड्र धारण करै । (त्रियायुषैः) और (त्र्यंबकं यजामहे) इन मंत्रोंसे शिरसे आरम्भ कर॥ ८५॥ श्रेष्ठभक्तिसे युक्त श्रेष्ठशिष्य हृदयकमलमें उमा सहित शिवका ध्यान करै॥ ८६॥ फिर गुरु प्रसन्न हो शिष्यके शिरपर हाथ रखकर ऋषि आदिका उच्चारणकर उसके दहने कानमें मंत्र कहै, तीन प्रकारसे प्रणवका उच्चारणकर॥ ८७॥ फिर कृपाकर उसके अर्थको कहै. गुरुको उचित है कि, अध्यायमें कहेहुए छः प्रकारके अर्थका ज्ञान करावै ॥ ८८ ॥ तब शिष्य बारह प्रकारसे पृथ्वीमें गुरुको प्रणामकर

मंत्रैरंगानि संस्पृश्य मूर्द्धादिचरणान्ततः ॥ ईशानाद्यैः पञ्चमंत्रैः शिर आरभ्य सर्व्वतः ॥ ८४ ॥ समुद्धृत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारये
त्ततः ॥ त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात् ॥ ८५ ॥ ततस्सद्भक्तियुक्तेन चेतसा शिष्यसत्तमः ॥ हृत्पंकजे समासीनं ध्याये
च्छिवमुमासखम् ॥ ८६ ॥ हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत् ॥ त्रिवारं प्रणवं दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतम् ॥ ८७ ॥ ततः
कृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्त्थमादिशेत् ॥ षड्विधार्त्थपरिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ॥ ८८ ॥ द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणमेद्भुवि
दण्डवत् ॥ तदधीनो भवेन्नित्यं नान्यत्कर्म्म समाचरेत् ॥ ८९ ॥ तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्त्थानुसारतः ॥ शिवज्ञानपरो भूया
त्सगुणागुणभेदतः ॥ ९० ॥ ततस्तेनैव शिष्येण श्रवणाद्यंगपूर्व्वकम् ॥ प्राभातिकाद्यनुष्ठानं जपान्ते कारयेद्गुरुः ॥ ९१ ॥ पूजां च
मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये ॥ शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत् ॥ ९२ ॥ देवन्नित्यमशक्तश्चेत्पूजितुं गुरुणा शुभम् ॥
स्फाटिकं पीठिकोपेतं गृह्णीयाल्लिंगमैश्वरम् ॥ ९३ ॥

और सदा अधीन होकर रहे उनके आज्ञा विना अन्य कार्योंको न आरम्भ करे ॥ ८९ ॥ और गुरुकी आज्ञासे शिष्य सदा वेदांतके ज्ञानमें तत्पर हो और सगुण अगुणके भेदसे शिवज्ञानमें तत्पर हो ॥ ९० ॥ वेदांतमार्गके अनुसार नित्यप्रति गुरुकेही अधीन हो और कर्म न करै. श्रवणादिके अंगपूर्वक शिवज्ञानमें तत्पर हो प्रातःकालिक अनुष्ठान जपके अंततक गुरु करावै ॥ ९१ ॥ और कैलास प्रस्तरनामवाले उस मण्डलमें शिवके कहे मार्गानुसार शिष्य पूजन करै ॥ ॥ ९२ ॥ गुरु पूजित देवके नित्यप्रति पूजन करनेमें असमर्थ हो तो स्फटिकके सिंहासन सहित एक ईश्वरीय लिंग ग्रहण करै. यदि प्रतिदिन देवको पूजन

करने और गुरुपूजनमें अशक्त हो तो स्फटिकमणिके शिवलिंगकी पूजा करै ॥ ॥ ९३ ॥ चाहै प्राण त्यागन होजाय शिर छेदन होजाय, परन्तु त्रिलोचन शिवजीकी पूजाके बिना भोजन न करै ॥ ९४ ॥ इस प्रकार तीन बार गुरुके निकट सौगन्ध करके शिष्य दृढमनसे शिवकी भक्ति करताहुआ ॥ ९५ ॥ उत्कण्ठित मनसे नित्य परमभक्तिसे उसी लिंगमें नित्य प्रसन्न हो शिवजीको पांच आवरणके मार्गसे पूजै ॥ ९६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! हे छः मुखवाले ! हे विज्ञान अमृतके समुद्र ! संसारके सब देवताओंके ईश्वर !

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ॥ न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयां भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ ९४ ॥ एवन्त्रिवारमुच्चार्य्य शपथं गुरुसन्निधौ ॥ कुर्य्याद्दृढमनाश्शिष्यश्शिवभक्तिं समुद्वहन् ॥ ९५ ॥ तत एव महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ पूजयेत्परया भक्त्या पञ्चावरणमार्गतः ॥ ९६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्षण्मुखाशेषविज्ञानामृतवारिधे ॥ विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभञ्जन ॥ १ ॥ षड्विधार्त्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम् ॥ के तत्र षड्विधा अर्त्थाः परिज्ञानञ्च किं प्रभो ॥ २ ॥ प्रतिपाद्यश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं मया गुह ॥ ३ ॥ एतमर्त्थमविज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः ॥ अद्याप्यहम्महासेन भ्रान्तश्च शिवमायया ॥ ४ ॥ अहं शिवपदद्वंद्वज्ञानामृतरसायनम् ॥ पीत्त्वा विगतसम्मोहो भविष्यामि यथा तथा ॥ ५ ॥ कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि ॥ कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पादाब्जशरणागते ॥ ६ ॥

शिवजीके पुत्र ! दीनोंके दुःख दूर करनेवाले ! ॥ १ ॥ छः प्रकारके अर्थका ज्ञान क्याहै ? वह कैसे इष्टका देनेवालाहै, छः प्रकारके अर्थ कौनसे हैं, और उनका ज्ञान क्या है ? ॥ २ ॥ इसका प्रतिपाद्य कौन है और उसके ज्ञानका फल क्या है ? हे स्कन्दजी ! आप इस अर्थको हमसे कहिये ॥ ३ ॥ इस अर्थके बिनाजाने जीव शास्त्रसे मोहितहुआ मैं शिवकी मायासे मोहित होरहा हूं ॥ ४ ॥ मैं शिवपदके अद्वैत ज्ञानामृत रसायनको पानकर जिससे मैं मोहरहित होजाऊं ॥ ५ ॥ इस प्रकार आप कृपारूपी अमृतकी दृष्टिसे मुझे देखकर मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूं ॥ ६ ॥

इस प्रकार मुनिके वचन सुन ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले प्रभु शिवशास्त्रसे विपरीत शास्त्र माननेवालोंको महात्रासदायक वचन कहने लगे ॥ ७ ॥ स्कंदजी बोले, हे मुनिशार्दूल ! जो कुछ तुमने पूँछा है, वह आदरपूर्वक समष्टि व्यष्टि भावसे महेश्वरका ॥ ८ ॥ प्रणवार्थ परिज्ञानरूप मैं विस्तारसे कहता हूं. हे सुव्रत ! उस एकहीके परिज्ञानमें छः प्रकारका अर्थ कहता हूं ॥ ९ ॥ पहिला मंत्ररूप, दूसरा यंत्ररूप, तीसरा देवार्थ, चौथा प्रपञ्चार्थ ॥ १० ॥ पांचवाँ गुरुरूपका दिखाया हुआ अर्थ और छठा शिष्यके आत्मानुरूप अर्थ यह छःप्रकारके अर्थ कहेहैं ॥ ११ ॥ हे मुनिसत्तम ! मन्त्रस्वरूपको श्रवण

इति श्रुत्वा मुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः ॥ प्राहान्यदर्शनमहासंत्रासजनकं वचः ॥ ७ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ श्रूयताम्मुनिशार्दूल
त्वया यत्पृष्टमादरात् ॥ समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञानम्महेशितुः ॥ ८ ॥ प्रणवार्त्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम् ॥ वदामि षड्विधार्थैक्यप
रिज्ञानेन सुव्रत ॥ ९ ॥ प्रथमो मंत्ररूपः स्याद्द्वितीयो मंत्रभावितः ॥ देवतार्त्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततः परम् ॥ १० ॥ चतुर्त्थः
पञ्चमार्त्थस्स्याद्गुरुरूपप्रदर्शकः ॥ षष्ठशिशष्यात्मरूपोऽथः षड्विधार्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ११ ॥ तत्र मन्त्रस्वरूपन्ते वदामि मुनिसत्तम ॥
येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः ॥ १२ ॥ आद्यस्स्वरः पंचमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः ॥ बिन्दुनादौ च पञ्चार्णाः प्रोक्ता वेदैर्न चा
न्यथा ॥ १३ ॥ एतत्समष्टिरूपो हि वेदादिस्समुदाहृतः ॥ नादस्सर्व्वसमष्टिः स्याद्बिंद्वाद्यं यच्चतुष्टयम् ॥ १४ ॥ व्यष्टिरूपेण संसिद्धं
प्रणवे शिववाचके ॥ यंत्ररूपं शृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि ॥ १५ ॥ सर्व्वाधस्ताल्लिखेत्पीठं तदूर्ध्वम्प्रथमं स्वरम् ॥ उवर्णं च तदूर्द्ध्व
स्थम्पवर्गान्तं तदूर्द्ध्वगम् ॥ १६ ॥ तन्मस्तकस्थं बिंदुं च तदूर्द्ध्वं नादमालिखेत् ॥ यंत्रे संपूर्णतां याति सर्व्वकामः प्रसिध्यति ॥ १७ ॥

कीजिये जिसके विज्ञानमात्रसे यह पुरुष ज्ञानी होजाताहै ॥ १२ ॥ पहला स्वर अकार पांचवां उकार और पवर्गके अन्तका मकार बिन्दु और नाद ये पांचवर्ण वेदमें ओंकारमें कहेहैं ॥ १३ ॥ यह समष्टिरूपही वेदमें ओंकार कहाजाता है, नाद सबकी समष्टि है, अकार उकार मकार ये बिंदुकी आदिमेंहैं ॥ १४ ॥ व्यष्टिरूपसे सिद्ध हो ओंकार शिवकी वाचकतामें सिद्ध है. हे महामतिमान् ! अब यन्त्ररूप सुनिये वह शिवलिंगस्वरूप है ॥ १५ ॥ संबसे नीचे पीठ लिखै, उसके ऊपर अकारको लिखै, फिर उवर्ण फिर मकार ॥ १६ ॥ उसके मस्तकपर बिन्दु और अर्धचन्द्राकार नाद लिखै, यंत्रमें पूर्ण होनेसे सब

काम सिद्ध होते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार यन्त्र लिखकर ओंकारसे ही वेष्टित करै उससे उठेहुए नादसे नादसमाप्ति पर्यन्त भेद करै ॥ १८ ॥ हे वामदेव ! अब शिवजीका कहा हुआ परमगूढ देवतार्थ तुम्हारे स्नेहसे कहता हूं ॥१९॥ (सद्योजातं प्रपद्यामि शिवोमे अस्तु सदाशिवोम्) साक्षात् श्रुतिने ब्रह्मपंचकका वाचक ओंकार कहा है ॥ २० ॥ प्रणव ब्रह्मरूपवाले सूक्ष्म पांच देवता हैं यह सब भी शिवकी मूर्त्तिहीहैं पृथक् नहीं जानने ॥ २१ ॥ शिवका पंचकमंत्र शिवकी मूर्तिकाभी वाचक है मूर्ति और मूर्तिमान्में विशेष भेद नहीं है ॥ २२ ॥ "ईशानो मुकुटो पेतः" यहाँसे आरम्भ कर यह पाँचों शिवजीके शरीर

एवं यंत्रं समालिख्य प्रणवेनैव वेष्टयेत् ॥ तदुत्थेनैव नादेन विद्यान्नादावसानकम् ॥ १८ ॥ देवतार्त्थम्प्रवक्ष्यामि गूढं सर्व्वत्र यन्मुने ॥ तव स्नेहाद्वामदेव यथा शंकरभाषितम् ॥ १९ ॥ सद्योजातम्प्रपद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवोम् ॥ इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपंचकवाचकम् ॥ २० ॥ विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यस्सूक्ष्माः पंचैव देवताः ॥ एता एव शिवस्यापि मूर्त्तित्वे नोपबृंहिताः ॥ २१ ॥ शिवस्य वाचको मन्त्रश्शिवमूर्त्तेश्च वाचकः ॥ मूर्त्तिमूर्त्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥ २२ ॥ ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदितः ॥ शिवस्य विग्रहः पञ्चवक्त्राणि शृणु सांप्रतम् ॥ २३ ॥ पंचमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात् ॥ उर्द्ध्वांतमीशानांतं च मुखपंचकमीरितम् ॥ २४ ॥ ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम् ॥ पुरुषाद्यं च सद्यांतं ब्रह्मरूपं चतुष्टयम् ॥ २५ ॥ पंच ब्रह्मसमष्टिस्स्यादीशानं ब्रह्म विश्रुतम् ॥ पुरुषाद्यं तु तद्व्यष्टिस्सद्योजातान्तिकं मुने ॥ २६ ॥ अनुग्रहमयं चक्रमिदं पंचार्त्थकारणम् ॥ परब्रह्मात्मकं सूक्ष्मं निर्विकारमनामयम् ॥ २७ ॥ अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरोभावादिगोचरः ॥ प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावराविमुक्तिदः ॥ २८ ॥

कहे हैं. अब पाँचों मुखोंको सुनो ॥ २३ ॥ पंचमादिसे प्रारम्भ कर सद्योजातादिके अनुक्रमसे ऊर्ध्व और ईशानतक शिवके पाँच मुख कहे हैं ॥ २४ ॥ यही ईशान देवके चतुर्व्यूह पदमें स्थित हैं पुरुषसे प्रारम्भ कर सद्योजाततक चतुष्टय ब्रह्मरूप है ॥ २५ ॥ और ईशाननामक विख्यात ब्रह्म मिलकर पंच ब्रह्म समष्टि कहलाती है. हे मुने ! पुरुषके आदिकी व्यष्टि सद्योजातके अन्ततक ॥ २६ ॥ अनुग्रहमय चक्र कहलाता है यही पंच अर्थका कारण है, यही परब्रह्मात्मक सूक्ष्म निर्विकार अनामय है ॥ २७ ॥ अनुग्रह भी दो प्रकारका है. एक तिरोभाव, एक प्रगटभाव, पहला और दूसरा जीवोंको पर अपर

मुक्तिका देनेहारा है ॥ २८ ॥ यह सदाशिवके दो कृत्य हैं. अनुग्रह सृष्टि आदि विभुके कृत्योंका पंचक कहाता है ॥ २९ ॥ हे मुने ! बस सृष्टि आदि कृतपंचकके सद्य आदि देवता कहे हैं, वह परब्रह्म स्वरूप पांचों कल्याणके देनेवाले हैं ॥ ३० ॥ अनुग्रहमय चक्र शांतिसे परे कलामय है वही सदाशिवमें अधिष्ठित होनेसे परमपद कहाता है ॥ ३१ ॥ भावितात्मा यतियोंको यह पद प्राप्त होता है जो सदाशिवकी उपासना करते हैं जिनका चित्त ओंकारमें आसक्त है ॥ ३२ ॥ वे सदाशिवकी कृपासे इस पदको प्राप्त होकर हे मुनीश्वरो ! वो ब्रह्मरूप देवके साथ अनेकप्रकारके भोग भोगकर ॥ ३३ ॥ महाप्रलयमें

एतत्सदाशिवस्यैव कृत्यद्वयमुदाहृतम् ॥ अनुग्रहेऽपि सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः ॥ २९ ॥ मुने तत्रापि सद्याद्या देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ परब्रह्मस्वरूपास्ताः पंच कल्याणदास्सदा ॥ ३० ॥ अनुग्रहमयं चक्रं शांत्यतीतकलामयम् ॥ सदाशिवाधिष्ठितं च परमं पदमुच्यते ॥ ३१ ॥ एतदेव पदं प्राप्यं यतीनां भावितात्मनाम् ॥ सदाशिवोपासकानां प्रणवासक्तचेतसाम् ॥ ३२ ॥ एतदेव पदं प्राप्य तेन साकं मुनीश्वराः ॥ भुक्त्वा सुविपुलान्भोगान्देवेन ब्रह्मरूपिणा ॥ ३३ ॥ महाप्रलयसंभूतौ शिवसाम्यं भजंति हि ॥ न पतंति पुनः क्वापि संसाराब्धौ जनाश्च ते ॥ ३४ ॥ ते ब्रह्मलोक इति च श्रुतिराह सनातनी ॥ ऐश्वर्य्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेव हि ॥ ३५ ॥ सर्व्वैश्वर्य्येण सम्पन्न इत्याहाथर्व्वणी शिखा ॥ सर्वैश्वर्य्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ॥ ३६ ॥ चमकस्य पदान्नान्यदधिकं विद्यते पदम् ॥ ब्रह्मपंचकविस्तारप्रपंचः खलु दृश्यते ॥ ३७ ॥ ब्रह्मभ्य एवं संजाता निवृत्त्याद्याः कला मताः ॥ सूक्ष्मभूतस्वरूपिण्यः कारणत्वेन विश्रुताः ॥ ३८ ॥ स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपंचस्यास्य सुव्रत ॥ पंचधावस्थितं यत्तद्ब्रह्मपंचकमिष्यते ॥ ३९ ॥

शिवकी साम्यताको प्राप्त होजाते और वे फिर संसारसागरमें नहीं गिरते ॥ ३४ ॥ (ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्तिसर्वे) यह श्रुति इसी अर्थको कहती है, यह सदाशिवका ऐश्वर्य समष्टि रूपही है ॥ ३५ ॥ वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है इस प्रकार: अथर्वशीर्षकी श्रुति कहतीहै, वही सब ऐश्वर्य देता है ॥ ३६ ॥ चमकाध्यायमें उसके स्थानसे कोई श्रेष्ठ नहीं कहा है ब्रह्मपञ्चकके विस्तारका नामही प्रपंच कहलाता है ॥ ३७ ॥ ब्रह्मसेही निवृत्ति आदि कला हुई हैं, यही सूक्ष्मभूतस्वरूप होकर कारणमें रहतीहैं ॥ ३८ ॥ हे सुव्रत ! इस स्थूलरूप स्वरूपवाले प्रपंचको पांच प्रकारसे स्थित होनेसे

ब्रह्मपंचक कहतेहैं ॥ ३९ ॥ पुरुष श्रोत्र वाणी शब्द और आकाश हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ईशानरूप ब्रह्मसे व्याप्त है ॥ ४० ॥ हे मुनि, प्रकृति, त्वक्, हाथ,
स्पर्श, वायु यह पांच पुरुषरूप ब्रह्मसे व्याप्त हैं ॥ ४१ ॥ अहंकार, चक्षु, चरण, रूप और पावक, यह पांचों अघोर ब्रह्मसे व्याप्तहैं ॥ ४२ ॥ बुद्धि, रसना,
पायु, रस, जल, यह ब्रह्म वामदेवसे नित्य व्याप्तहैं ॥ ४३ ॥ मन, नासिका; उपस्थ, गन्ध और भूमि, यह पांचों सद्यब्रह्मसे व्याप्तहैं, इस प्रकार पंचब्रह्ममय
जगत् है ॥ ४४ ॥ जो शिववाचक ॐकार यन्त्ररूपसे कहा है, यह पांचों वर्णोंकी समष्टि और बिन्दु आदि चारकी समष्टि कला प्रणव शिववाचक है ॥

पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ॥ व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम ॥ ४० ॥ प्रकृतिस्त्वक्च पाणिश्च स्पर्शो
वायुश्च पंचकम् ॥ व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रह्मणैव मुनीश्वर ॥ ४१ ॥ अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रूपं च पावकः ॥ अघोरब्रह्मणा व्याप्त
मेतत्पंचकमंचितम् ॥ ४२ ॥ बुद्धिश्च रसना पायू रस आपश्च पंचकम् ॥ ब्रह्मणा वामदेवेन व्याप्तं भवति नित्यशः ॥ ४३ ॥ मनो नासा
तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पंचकम् ॥ सद्येन ब्रह्मणा व्याप्तं पंचब्रह्ममयं जगत् ॥४४॥ यंत्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवश्शिववाचकः ॥ समष्टिः
पंचवर्णानां बिंद्वाद्यं यच्चतुष्टयम् ॥ ४५ ॥ शिवोपदिष्टमार्गेण यंत्ररूपं विभावयेत् ॥ प्रणवम्परमं मन्त्राधिराजं शिवरूपिणम् ॥ ४६ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवरूपप्रणववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततः परं
प्रवक्ष्यामि सृष्टिपद्धतिमुत्तमाम् ॥ सदाशिवान्महेशादिचतुष्कस्य वरानने ॥ १ ॥ सदाशिवस्समष्टिस्स्यादाकाशाधिपतिः प्रभुः ॥
अस्यैव व्यष्टितापन्नम्महेशादिचतुष्टयम् ॥ २ ॥ सदाशिवसहस्रांशान्महेशस्य समुद्भवः ॥ पुरुषाननरूपत्वाद्धायोरधिपतिश्च सः ॥ ३ ॥

॥ ४५ ॥ शिवके उपदेश किये मार्गसे उसका विचार यन्त्ररूपसे करना यही प्रणव–मंत्रराज और शिवरूप है ॥ ४६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां
षष्ठ्यां कैलाससंहितायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ईश्वर बोले, इसके उपरान्त अब सृष्टिकी उत्तम पद्धति कहताहूं जो महेशादि चतुष्टय और सदाशिवसे
होती है ॥ १ ॥ आकाशके अधिपति प्रभु समष्टिरूपहैं, महेशादि चार रूप इसीकी व्यष्टिहैं (महेश्वर रुद्र विष्णु ब्रह्मा) ॥ २ ॥ सदाशिवके सहस्रवें अंशसे

महेश्वरकी उत्पत्ति कही है, पुरुष अनन्तरूप होनेसे वायुका अधिपतिहै ॥ ३ ॥ वाममें मायाशक्तिसे युक्त सम्पूर्ण क्रियाओंका अधिपति है, इसीके ईश्वरादि चतुष्टय व्यष्टिरूपहैं ॥ ४ ॥ ईश विश्वेश्वर परमेश सर्वेश्वरही श्रेष्ठ तिरोभाव चक्र है ॥ ५ ॥ तिरोभाव भी दो प्रकारका है. एक रुद्रादि गोचर है, दूसरा जीवसमूहके शरीररूपसे स्थित है ॥ ६ ॥ वह जबतक पुण्य पाप शरीरमें स्थितहै तबतक रहता है, कर्मकी साम्यतामें एकही होता है. कारण कि जो विभु अनुग्रह करनेमें समर्थ है वह तिरोभाव कर्मकी साम्यतामें एकही है ॥ ७ ॥ और ईश्वरादि चारों देवता कहेहैं वह साक्षात् परब्रह्मात्मक निर्विकल्प

मायाशक्तियुतो वामे सकलश्च क्रियाधिकः ॥ अस्यैव व्यष्टिरूपं स्यादीश्वरादिचतुष्टयम् ॥ ४ ॥ ईशो विश्वेश्वरः पश्चात्परमेशस्ततः
परम् ॥ सर्व्वेश्वर इतीदन्तु तिरोधाचक्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥ तिरोभावो द्विधा भिन्न एको रुद्रादिगोचरः ॥ अन्यश्च देहभावेन पशुवर्गस्य
सन्ततेः ॥ ६ ॥ भोगानुरंजनपरः कर्मसाम्यक्षणावधि ॥ कर्मसाम्ये स एकः स्यादनुग्रहमयो विभुः ॥ ७ ॥ तत्र सर्व्वेश्वरा यास्ते देवताः
परिकीर्त्तिताः ॥ परब्रह्मात्मकाः साक्षान्निर्विकल्पा निरामयाः ॥ ८ ॥ तिरोभावात्मकं चक्रं भवेच्छान्तिकलामयम् ॥ महेश्वराधिष्ठितं
च पदमेतदनुत्तमम् ॥ ९ ॥ एतदेव पदं प्राप्यं महेशपदसेविनाम् ॥ माहेश्वराणां सालोक्यक्रमादेव विमुक्तिदम् ॥ १० ॥ महेश्वरसहस्रां
शाद्रुद्रमूर्तिरजायत ॥ अघोरवदनाकारस्तेजस्तत्त्वाधिपश्च सः ॥ ११ ॥ गौरीशक्तियुतो वामे सर्व्वसंहारकृत्प्रभुः ॥ अस्यैव व्यष्टिरूपं
स्याच्छिवाद्यथ चतुष्टयम् ॥ १२ ॥ शिवो हरो मृडभवौ विदितं चक्रमद्भुतम् ॥ संहाराख्यं महादिव्यं परमं हि मुनीश्वर ॥ १३ ॥ स
संहारस्त्रिधा प्रोक्तो बुधैर्नित्यादिभेदतः ॥ नित्यो जीवसुषुप्त्याख्यो विधेर्नैमित्तिकः स्मृतः ॥ १४ ॥

निरामयहैं ॥ ८ ॥ तिरोभावात्मक जो चक्र है सो शांतिकलामय है यह उत्तमपद महेश्वरसे अधिष्ठित है ॥ ९ ॥ महेश्वरके चरणोंकी सेवा करनेवाले इसही पदको प्राप्त होकर महेश्वरके भक्त सालोक्यको प्राप्त हो क्रमसे मुक्त होजातेहैं ॥ १० ॥ महेश्वरके सहस्रवें अंशसे रुद्रकी मूर्ति उत्पन्न हुई है, अघोरवदनके आकारवाले तेज तत्त्वके स्वामीहैं ॥ ११ ॥ वे प्रभु वामभागमें गौरीशक्ति धारण किये संहार करनेवालेहैं, इसीके व्यष्टिरूप शिवादि चारहैं ॥ १२ ॥ शिव, हर, मृड, भव, यह अद्भुत विदित चक्र है. हे मुनीश्वर ! यह संहारनामक महादिव्य चक्र है ॥ १३ ॥ और संहारनामक संहारचक्र नित्य नैमित्त

महाप्रलयके भेदसे तीन प्रकारका है. नित्य जिसमें जीव सुषुप्तिमें रहता है, उसका परब्रह्ममें लय होना नैमित्तिक है ॥ १४ ॥ और उसका परब्रह्ममें लय यहां संहार कहा है, ऐसा वेद कहता है जन्मके दुःख आदिसे शान्तहुए अपने स्वरूपोंको न जाननेवाले ॥ १५ ॥ जीवोंके विश्राम और कर्मोंके पापके निमित्त महातेजस्वी रुद्रने तीन प्रकारसे संहारकी कल्पना कीहै ॥ १६ ॥ यह तीनों संहारकृत्य रुद्रकेही हैं. संहारकालमें भी विभुके सृष्टिकी स्थिति लय तिरोभाव अनुग्रहरूप पंचकहैं ॥ १७ ॥ उसमें भवादिक देवता कहेहैं यह परब्रह्म स्वरूप लोकोंपर अनुग्रह करनेवालेहैं ॥ १८ ॥ यह संहारचक्र विद्यारूप

विलयस्तस्य तु महानिति वेदनिदर्शितः ॥ जीवानां जन्मदुःखादिशांतानामुषितात्मनाम् ॥ १५ ॥ विश्रांत्यर्थं मुनिश्रेष्ठ कर्मणां पाकहेतवे ॥ संहारः कल्पितस्त्रेधा रुद्रेणामिततेजसा ॥ १६ ॥ रुद्रस्यैव तु कृत्यानां त्रयमेतदुदाहृतम् ॥ संहृतावपि सृष्ट्यादिकृत्यानां पञ्चकं विभोः ॥ १७ ॥ मुने तत्र भवाद्यास्ते देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ परब्रह्मस्वरूपाश्च लोकानुग्रहकारकाः ॥ १८ ॥ संहाराख्यमिदं चक्रं विद्यारूपकलामयम् ॥ अधिष्ठितं च रुद्रेण पदमेतन्निरामयम् ॥ १९ ॥ एतदेव पदं प्राप्यं रुद्राराधनकांक्षिणाम् ॥ रुद्राणां तद्धि सालोक्यक्रमात्सायुज्यदम्मुने ॥ २० ॥ रुद्रमूर्त्तेस्सहस्रांशाद्विष्णोश्चैवाभवज्जनिः ॥ स वामदेवचक्रात्मा वारितत्त्वैकनायकः ॥ २१ ॥ रमाशक्तियुतो वामे सर्व्वरक्षाकरो महान् ॥ चतुर्भुजोऽरविंदाक्षः श्यामश्शंखादिचिह्नभृत् ॥ २२ ॥ अस्यैव वासुदेवादिचतुष्कं व्यष्टितां गतम् ॥ उपासनरतानां वै वैष्णवानां विमुक्तिदम् ॥ २३ ॥ वासुदेवोऽनिरुद्धश्च ततस्संकर्षणः परः ॥ प्रद्युम्नश्चेति विख्यातं स्थितिचक्रमनुत्तमम् ॥ २४ ॥ स्थितिस्सृष्टस्य जगतस्तत्कर्त्रा सह पालनम् ॥ आरब्धकर्म्मभोगान्तं जीवानां फलभोगिनाम् ॥ २५ ॥

कलामय हैं, यह निरामयपद रुद्ररूपसे अधिष्ठित है ॥ १९ ॥ रुद्रके आराधनकी इच्छा करनेवाले इस पदको प्राप्त होकर रुद्रके सलोकपदको क्रमसे प्राप्त हो सायुज्यको प्राप्त होतेहैं ॥ २० ॥ रुद्रमूर्तिके सहस्र अंशसे विष्णुका प्रादुर्भाव हुआ है वह वामदेव चक्रात्मा जलतत्त्वका नायक है ॥ २१ ॥ वामभागमें रमाशक्तिसे युक्त सबकी रक्षा करनेवाले यही चार भुजा कमललोचन श्यामवर्ण शंखचक्रादिधारीहैं ॥ २२ ॥ इन्हीं विष्णुके वासुदेव प्रद्युम्नादि चार व्यष्टि रूपहैं जो उपासक वैष्णवोंको मुक्ति देनेवालेहैं ॥ २३ ॥ वासुदेव अनिरुद्ध संकर्षण प्रद्युम्न नामसे विख्यात स्थितिचक्र कहा है ॥ २४ ॥ सृष्टिकी स्थिति

जगत्के कर्ता ब्रह्मादिका पालन फल भोगी जीवोंके प्रारब्ध कर्मके अन्ततकका भोग ॥ २५ ॥ रक्षा करनेवाले विष्णुकाही यह कृत्य वर्णन कियाहै और सृष्टिकी आदिस्थितिमें यह विभु विष्णुके पांच कृत्य कहे हैं ॥ २६ ॥ उसमें प्रद्युम्नादि देवता वर्णन किये हैं, यह निर्विकल्प निरातंक मुक्तिके आनन्दका करने वाला है ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह प्रतिष्ठारूप स्थिति चक्र है यही जनार्दनसे अधिष्ठित परमपद कहाजाता है ॥ २८ ॥ विष्णुके भक्त वैष्णव इसही पदको प्राप्त होते हैं, यह वैष्णवोंका चक्र सालोक्यादि पदका देनेहारा है ॥ २९ ॥ विष्णुके सहस्रवें भागसे पितामह उत्पन्न हुए हैं, जो सद्योजातके मुख

विष्णोरेवेदमाख्यातं कृत्यं रक्षाविधायिनः ॥ स्थितावपि तु सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचकं विभोः ॥ २६ ॥ तत्र प्रद्युम्नमुख्यास्ते देवताः परिकीर्तिताः ॥ निर्विकल्पा निरातंका मुक्तानंदकरास्सदा ॥ २७ ॥ स्थितिचक्रमिदं ब्रह्मन्प्रतिष्ठारूपमुत्तमम् ॥ जनार्दनाधिष्ठितं च परमं पदमुच्यते ॥ २८ ॥ एतदेव पदं प्राप्यं विष्णुपादाब्जसेविनाम् ॥ वैष्णवानां चक्रमिदं सालोक्यादिपदप्रदम् ॥ २९ ॥ विष्णोरेव सहस्रांशात्संबभूव पितामहः ॥ सद्योजातमुखात्मा यः पृथिवीतत्त्वनायकः ॥ ३० ॥ वाग्देवीसहितो वामे सृष्टिकर्त्ता जगत्प्रभुः ॥ चतुर्मुखो रक्तवर्णो रजोरूपस्वरूपवान् ॥३१॥ हिरण्यगर्भाद्यस्यैव व्यष्टिरूपं चतुष्टयम् ॥ हिरण्यगर्भोथ विराट् पुरुषः काल एव च ॥ ३२ ॥ सृष्टिचक्रमिदं ब्रह्मपुत्रादिऋषिसेवितम् ॥ सर्व्वकामार्थदं ब्रह्मन्परिवारसुखप्रदम् ॥३३॥ सृष्टिस्तु संहृतस्यास्य जीवस्य प्रकृतौ बहिः॥आनीय कर्मभोगार्थं साधनांगफलैस्सह ॥३४॥ संयोजनमितीदं तु कृत्यं पैतामहं विदुः ॥ जगत्सृष्टिक्रियाविज्ञा यावद्व्यूहं सुखावहम् ॥ ३५ ॥

आत्मा और पृथ्वीतत्त्वके नायक हैं ॥ ३० ॥ उस सृष्टिकर्त्ता जगत्के प्रभुके वामओर सरस्वती देवी स्थित हैं चार मुख रक्तवर्ण जो गुणरूप है ॥ ३१ ॥ हिरण्यगर्भादि चाररूप इन्हींके व्यष्टि स्वरूप हैं. हिरण्यगर्भ, विराट्पुरुष, काल ॥ ३२ ॥ यह सृष्टिचक्र ब्रह्माके पुत्र भृगु आदि मुनियोंसे सेवित है. हे ब्रह्मन् ! यह सब कामनाका देनेवाला तथा परिवार सुखका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ प्रकृतिमें लीनहुए जीवके कर्मभोगके निमित्त फिर बाहरसे लाकर भोगके साधन पुत्र कलत्रादि और उनके फलहिारदण्या ॥ ३४ ॥ उनके फल सुख दुःखादिसे संयुक्त करनेका नाम सृष्टि है, यह पितामहका कृत्य है.

जगत् सृष्टिकी क्रियाके ज्ञाताओंको यह व्यूह सुखका देनेवाला है ॥ ३५ ॥ हे मुनि ! जगत्की सृष्टिमें ईश्वरके यह कृत्यपंचक हैं. उसमें कालादि चार देवता वर्णन किये हैं ॥ ३६ ॥ पंडितजन इसको निवृत्तिरूप सृष्टिचक्र कहते हैं. यह सुन्दर पद पितामहसे अधिष्ठित है ॥ ३७ ॥ ब्रह्ममें मन लगानेवाले इसी पदको प्राप्त होते हैं, यह पितामहके सालोक्यादि मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३८ ॥ क्रमसे कहेहुए महेशादि चक्रोंके चतुष्कके इस चक्रमें गौणीवृत्तिसे प्रणवका बोध करानेहारा होता है ॥ ३९ ॥ जिसे वैभव श्रुति वर्णन करती है, ऐसे इस चक्रको पंचारचक्र कहते हैं "पंचारचक्रं परिवर्तते पृथु" ॥ ४० ॥

जगत्सृष्टावपि मुने कृत्यानां पंचकं विभोः ॥ अस्तिकालोदयस्तत्र देवताः परिकीर्त्तिताः ॥ ३६ ॥ निवृत्तिरूपमाख्यातं सृष्टिचक्रमिदं बुधैः ॥ पितामहाधिष्ठितं च पदमेतद्धि शोभनम् ॥ ३७ ॥ एतदेव पदं प्राप्यं ब्रह्मार्पितधियां नृणाम् ॥ पैतामहानामेतद्धि सालोक्यादिविमुक्तिदम् ॥ ३८ ॥ अस्मिन्नपि चतुष्के तु चक्राणां प्रणवो भवेत् ॥ महेशादिक्रमादेव गौण्या वृत्या स वाचकः ॥ ३९ ॥ इदं खलु जगच्चक्रं श्रुतिविश्रुतवैभवम् ॥ पञ्चारं चक्रमिति ह स्तौति श्रुतिरिदम्मुने ॥ ४० ॥ एकमेव जगच्चक्रं शम्भोश्शक्तिविजृंभितम् ॥ सृष्ट्यादिपंचावयवं पंचारमिति कथ्यते ॥ ४१ ॥ अलातचक्रभ्रमिवदविच्छिन्नलयोदयम् ॥ परितो वर्तते यस्मात्तस्माच्चक्रमितीरितम् ॥ ४२ ॥ सृष्ट्यादिपृथुसृष्टित्वात्पृथुत्वेनोपदृश्यते ॥ हिरण्मयस्य देवस्य शम्भोरमिततेजसः ॥ ४३ ॥ शक्तिकार्यमिदं चक्रं हिरण्यज्योतिराश्रितम् ॥ सलिलेनावृतमिदं सलिलं वह्निनावृतम् ॥ ४४ ॥ आवृतो वायुना वह्निराकाशेनावृतं महत् ॥ भूतादिना तथाकाशो भूतादिर्महतावृतः ॥ ४५ ॥ अव्यक्तेनावृतस्तद्वन्महानित्येवमास्तिकैः ॥ ब्रह्माण्डमिति संप्रोक्तमाचार्य्यैर्मुनिसत्तम ॥ ४६ ॥

शिव शक्तिसे युक्त एकही जगत्चक्र है और सृष्टिके पांच अवयवका नाम पंचार है ॥ ४१ ॥ अलातचक्ररूप अंगारेके समान लय और हृदयसे युक्त चारोंओरसे वर्तता है, इसी कारण इसको चक्र कहते हैं ॥ ४२ ॥ स्थूल सूक्ष्मादि पृथक् पृथक् होनेसे स्थूल देखनेमें आताहै महापराक्रमी शिवजीके हिरण्यमय रूपका ॥ ४३ ॥ शक्ति कार्यरूपी यह चक्र हिरण्यमय ज्योतिवाला है, यह जलसे व्याप्त हैं और जल अग्निसे व्याप्त है ॥ ४४ ॥ वह्नि वायुसे और आकाशसे आच्छादित है. आकाश भूतादि तामसाहंकारसे आवृत है, तामसाहंकार महत्तत्त्वसे आच्छादित है ॥ ४५ ॥ और प्रकृतिसे महान्

आच्छादित है ऐसा आस्तिक कहतेहैं. हे मुनिश्रेष्ठ ! इसीको आचार्य ब्रह्माण्ड कहते हैं ॥ ४६ ॥ इस चक्र संसारकी रक्षामें सात आवरण कहे हैं. चक्रसे दश गुणा जल ॥ ४७ ॥ ऊपर नीचेसे व्याप्त होरहा है. हे मुनिश्रेष्ठ ! इसीको ब्रह्माण्ड जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ इसही अर्थको हृदयमें करके चक्रके समीप वर्त्तनेसे हिरण्यमय स्वरूपको जलके मध्यमें वर्त्तनेसे श्रुतिने जलमध्यशायी कहा है ॥ ४९ ॥ अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति, सृष्टिसे निरन्तर एक शक्तियुक्त शिवलीला करते रहते हैं ॥ ५० ॥ हे मुनि ! बहुत कहनेसे क्या है ? मैं सार कहता हूँ । शिवही सम्पूर्ण शक्तिमान् हैं यह निश्चय है ॥

उक्तानि सप्तावरणान्यस्य विश्वस्य गुप्तये ॥ चक्राद्दशगुणाधिक्यं सलिलस्य विधीयते ॥ ४७ ॥ उपर्य्युपरि चान्योन्यमेवं दशगुणाधिकम् ॥ ब्रह्माण्डमिति विज्ञेयं तद्द्विजैर्मुनिनायक ॥ ४८ ॥ इममर्थमुरीकृत्य चक्रसामीप्यवर्त्तनात् ॥ सलिलस्य च तन्मध्ये इति प्राह श्रुतिस्स्वयम् ॥ ४९ ॥ अनुग्रहतिरोभावसंहृतिस्थितिसृष्टिभिः ॥ करोत्यविरतं लीलामेकश्शक्तियुतश्शिवः ॥५०॥ बहुनेहकिमुक्तेन मुने सारं वदामि ते॥शिव एवेदमखिलं शक्तिमानिति निश्चितम् ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलासंहितायामुपासनामूर्त्तिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वोपदिष्टं गुरुणा वेदार्थं मुनिपुंगवः ॥ परमात्मनि संदिग्धं परिपप्रच्छ सादरम् ॥ १ ॥ वामदेव उवाच ॥ ज्ञानशक्तिधर स्वामिन्परमानन्दविग्रह ॥ प्रणवार्थामृतं पीतं श्रीमुखाब्जात्परिस्रुतम् ॥ २ ॥ दृढप्रज्ञश्च जातोऽस्मि संदेहो विगतो मम ॥ किंचिदन्यन्महासेन पृच्छामि त्वां शृणु प्रभो ॥ ३ ॥ सदाशिवादिकीटांतरूपस्य जगतः स्थितिः ॥ स्त्रीपुंरूपेण सर्वत्र दृश्यते न हि संशयः ॥ ४ ॥ एवं रूपस्य जगतः कारणं यत्सनातनम् ॥ स्त्रीरूपं तत्किमाहोस्वित्पुरुषो वा नपुंसकम् ॥ ५ ॥

॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥ सूतजी बोले कि, गुरुके इसप्रकार उपदेशरूप वेदार्थको सुन परमात्मामें सन्देहकर मुनिश्रेष्ठ आदरपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥ वामदेव बोले, हे ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले स्वामिन् ! हे परमानन्दस्वरूप ! आपके मुखकमलसे ॐकाररूप अमृतका पान किया ॥ २ ॥ अब मैं दृढज्ञानसे युक्त होगया इस विषयमें मेरा सन्देह निवृत्त होगया हे महासेन ! अब थोडा और पूँछता हूँ ॥ ३ ॥ सदाशिवसे लेकर कीटतक जगत्के रूपकी स्थिति जो है वह सर्वत्र स्त्री पुरुष रूपसे दीखती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ इस प्रकार

रूपवान् जगत्के वही सनातनदेव कारण हैं, सो वह स्त्री, पुरुष, वा नपुंसक रूप हैं ॥ ५ ॥ अथवा मिलेहुए अथवा किसी और प्रकारके हैं, इसका निर्णय नहीं हुआ है, विद्वान् भी शास्त्रोंमें मोहित होकर अनेक प्रकारसे कहते हैं ॥ ६ ॥ और जगत्की सृष्टि कहनेवाली श्रुति जगत्के साथ जैसे एक भावको प्राप्त हो जिसको विष्णु ब्रह्मादिक देवता और सिद्ध नहीं जानते ॥ ७ ॥ यह सब जैसे एकमत हो वह आप कहिये, जानता हूँ, करता हूँ, यह व्यवहार दीखता है ॥ ८ ॥ यह ज्ञान क्रियात्मक व्यवहार सर्वानुभवसिद्ध है, वह देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारसे उत्पन्न है ॥ ९ ॥ अथवा महान् आत्माका

उत मिश्रं किमन्यद्वा न जातस्तत्र निर्णयः ॥ बहुधा विवदन्तीह विद्वांसश्शास्त्रमोहिताः ॥ ६ ॥ जगत्सृष्टिविधायिन्यः श्रुतयो जगता
सह ॥ विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धाश्च न विदन्ति हि ॥ ७ ॥ यथैक्यभावं गच्छेयुरेतदन्यच्च वेदय ॥ जानामीति करोमीति व्यवहारः
प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ स हि सर्वात्मसंसिद्धो विवादो नात्र कस्यचित् ॥ सर्वदेहेन्द्रियमनोबुध्यहंकारसंभवः ॥ ९ ॥ आहोस्विदात्मनो रूपं
महानत्रापि संशयः ॥ द्वयमेतद्धि सर्व्वेषां विवादास्पदमद्भुतम् ॥ १० ॥ उत्पाट्याज्ञानसंभूतं संशयाख्यं विषद्रुमम् ॥ शिवाद्वैतमहा
कल्पवृक्षभूमिर्यथा भवेत् ॥ ११ ॥ चित्तं मम यथा देव बोध्योऽस्मि कृपया तव ॥ कृपातस्तव देवेश दृढज्ञानी भवाम्यहम् ॥ १२ ॥
सूत उवाच ॥ श्रुत्वैवं मुनिना पृष्टं वचो वेदान्तनिर्वृतम् ॥ रहस्यं प्रभुराहेदं किंचित्प्रहसिताननः ॥ १३ ॥ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥
एतदेव मुने गुह्यं शिवेन परिभाषितम् ॥ अम्बायाः शृण्वतो देव्या वामदेव ममापि हि ॥ १४ ॥ तस्याः स्तन्यं तदा पीत्वा संतृप्तोऽस्मि
मुहुर्मुहुः ॥ श्रुतवान्निश्चलं तद्वै निश्चितं मे विचारितम् ॥ १५ ॥

रूप है, इसमें सन्देह है, इन्हीं दोनों बातोंसे सबमें अद्भुत विवाद होता है ॥ १० ॥ सो आप अज्ञानसम्भूत संशयरूपी विषवृक्षको उखाडकर ऐसा कीजिये, जिससे हमारे चित्तकी भूमि शिवके अद्वैत कल्पवृक्षके जन्मयोग्य होजाय ॥ ११ ॥ हे देव ! इस प्रकार हमको कृपाकर समुझाइये, हे देवेश ! आपकी कृपासे मैं दृढ ज्ञानी होजाऊँगा ॥ १२ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार मुनिसे पूँछेहुए उपनिषद्गर्भित रहस्यको प्रभु कुछेक हँसतेहुए बोले ॥ १३ ॥ स्कंदजी बोले, हे मुने ! इस गुह्यको शिवजीने कहा है हे वामदेव ! जिस समय शिवजी अम्बासे कहते थे ॥ १४ ॥ उस समय मैं अंबाका दूध पीताहुआ

स्वस्थचित्त था इससे वह मुझे विचारसे सब स्मरण है ॥ १५ ॥ सो मैं तुमसे दयापूर्वक कहता हूं हे वामदेवजी ! हे पुत्र ! वह परंगुत रहस्य सुनो ॥ ॥ १६ ॥ हे मुने ! कर्मके सत्तारूप तत्वसे आरंभ करके जो सविस्तार शास्त्रवाद है वह विचारवान् पुरुषके विवेकपूर्वक श्रवण करना चाहिये कारण यह शास्त्रवाद उनका ज्ञानका देनेवाला है ॥ १७ ॥ बडे विस्तारयुक्त शास्त्रवाद तुमने शिष्योंको उपदेश किये हैं, उसमें तुम्हारी समान कौन है ? अभीतक वह नीचबुद्धिके प्राणी कपिलादिके शास्त्रोंको पढकर ईश्वर नहीं है, ऐसा कहते हैं और उसका आशय नहीं जानते ॥ १८ ॥ जो वह शिवनिन्दा करनेवाले पूर्वमें छः मुनियोंके द्वारा शापित हुए हैं जिस कारणसे कि वे अन्यथावादी हैं, इस कारण उनकी वार्ता सुननी नहीं चाहिये ॥ १९ ॥ प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण

तत्ते वदामि दयया वामदेव महामुने ॥ महद्गुह्यं च परमं सुत त्वं शृणु सांप्रतम् ॥ १६ ॥ कर्मास्तितत्त्वादारभ्य शास्त्रवादस्सुविस्तरः ॥ यथाविवेकं श्रोतव्यो ज्ञानिना ज्ञानदो मुने ॥ १७ ॥ त्वयोपदिष्टा ये शिष्यास्तत्र को वा भवत्समः ॥ कापिलादिषु शास्त्रेषु भ्रमंत्यद्यापि तेऽधमाः ॥ १८ ॥ ते शप्ता मुनिभिः षड्भिश्शिवनिन्दापराः पुरा ॥ न श्रोतव्या हि तद्वार्त्ता तेऽन्यथावादिनो यतः ॥ १९ ॥ अनुमानप्रयोगस्याप्यवकाशो न विद्यते ॥ पंचावयवयुक्तस्य स तु धूमस्य दर्शनात् ॥ २० ॥ पर्व्वतस्याग्निमद्भावं वदंत्यत्रापि सुव्रत ॥ प्रत्यक्षस्य प्रपंचस्य दर्शनालंबनं त्वतः ॥ २१ ॥ ज्ञातव्यः परमेशानः परमात्मा न संशयः ॥ स्त्रीपुंरूपमयं विश्वं प्रत्यक्षेणैव दृश्यते ॥ ॥ २२ ॥ षट्कोशरूपः पिण्डो हि तत्र चाद्यत्रयम्भवेत् ॥ मात्रंशजं पुनश्चान्यात्पित्रंशजामिति श्रुतिः ॥ २३ ॥ एवं सर्व्वशरीरेषु स्त्रीपुंभावविदो जनाः ॥ परमात्मन्यपि मुने स्त्रीपुंभावं विदुर्बुधाः ॥ २४ ॥

उपमेय निगमन इन पांच अवयवोंसे युक्त क्षिति अंकुरादि कर्तृजन्य देखनेसे अनुमान प्रयोगका भी परमेश्वर रूपसिद्धिमें अवसर दीखता है ॥ २० ॥ जिस प्रकार उपरोक्त पंचावयव युक्त धूमके देखनेसे पर्वत अग्निवाला है, ऐसा कहते हैं इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रपंचके दर्शनके अवलम्बनसे ॥ २१ ॥ परमेश परमात्माको भी जानना चाहिये इसमें सन्देह नहीं स्त्री पुरुषरूप यह विश्व प्रत्यक्षही दीखता है ॥ २२ ॥ छैः कोशवाले इस शरीरमें तीन अस्थि, स्नायु, मज्जा, पितासे, और त्वचा, मांस, रुधिर, मातासे होती हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार सब शरीरोंमें स्त्री पुरुषभावके जाननेवाले पण्डित परमात्मामेंही स्त्री

पुरुषभावको जानते हैं ॥ २४ ॥ "सत्यं विज्ञानमानंदं ब्रह्म" इत्यादि परमात्माको सच्चिदानन्दरूप श्रुति प्रतिपादन करती है प्रपंचकी निवृत्ति करनेवाला शब्द सदात्मा कहाजाताहै ॥२५॥ "सदैव सौम्येदमग्र आसीत् इति श्रुतेः" और चित्शब्दसे जडपदार्थकी निवृत्ति प्रतीत होती है त्रिलिंगवर्ती भी सत्शब्दका इस ब्रह्ममें पुल्लिंगरूपसे व्यवहार होता है ॥ २६ ॥ क्योंकि प्रकाश पदार्थके पुल्लिंग होनेसे उसके वाची सत्शब्दके पुल्लिंग होनेपर ब्रह्ममें उसका व्यवहार करके पुल्लिंग कहाजाता है ज्ञानशब्दका पर्याय होनेसे चित्शब्द स्त्रीरूप होगया ॥ २७ ॥ प्रकाश और चित् यही दोनों जगत्की कारणताको प्राप्तहुएहैं

सच्चिदानंदरूपत्वं वदति ब्रह्मणः श्रुतिः ॥ असन्निवर्त्तकः शब्दः सदात्मेति निगद्यते ॥ २५ ॥ निवर्त्तनं जगत्त्वस्य चिच्छब्देन विधीयते ॥ त्रिलिंगवर्त्ती सच्छब्दः पुरुषोत्र विधीयताम् ॥ २६ ॥ प्रकाशवाची स भवेत्सत्प्रकाश इति स्फुटम् ॥ ज्ञानशब्दस्य पर्य्याय श्चिच्छब्दः स्त्रीत्वमागतः ॥ २७ ॥ प्रकाशश्चिच्च मिथुनं जगत्कारणतां गतम् ॥ सच्चिदात्मन्यपि तथा जगत्कारणतां गते ॥ २८ ॥ एकत्रैव शिवश्शक्तिरिति भावो विधीयते ॥ तैलवर्त्त्यादिमालिन्यात्प्रकाशस्यापि वर्त्तते ॥ २९ ॥ मालिन्यमशिवत्वं च चिताग्न्यादिषु दृश्यते ॥ एवं विवर्त्तकत्वेन शिवत्वं श्रुतिचोदितम् ॥ ३० ॥ जीवाश्रितायाश्चिच्छक्तेर्दौर्बल्यं विद्यते सदा ॥ तन्निवृत्त्यर्थमेवात्र शक्तित्वं सार्वकालिकम् ॥ ३१ ॥ बलवाञ्छक्तिमांश्चेति व्यवहारः प्रदृश्यते ॥ लोके वेदे च सततं वामदेव महामुने ॥ ३२ ॥ एवं शिवत्वं शक्तित्वं परमात्मनि दर्शितम् ॥ शिवशक्त्योस्तु संयोगादानंदस्सततोदितः ॥ ३३ ॥

इसी प्रकार सच्चिदात्मामें जगत्की कारणताको प्राप्त होनेमें ॥ २८ ॥ एक शिवही शक्तिभावको प्राप्तहुए हैं, कहीं तेल और बत्तीके मलीन होनेसे प्रकाश भी मलीन होजाता है ॥ २९ ॥ मलीनता और अशिवता चिता अग्निमें दीखती है इसीके विवर्त्तवाद होनेसे शिवत्व होता है, ऐसा श्रुतिने कहा है ॥ ३० ॥ यही चित्शक्ति जब जीवके आश्रित होती है, तब दुर्बल होजाती है उसके निवृत्त करनेके लिये सर्वकालिक चित्शक्तिपन कहा है ॥ ३१ ॥ शक्तिमान् बलवान् होता है, वह व्यवहार भी देखनेमें आता है हे वामदेव ! यह बात लोक वेदमें प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शिवत्व और शक्तित्व परमात्मामें

दिखाया गया है, शिव शक्तिकेही संयोगसे सदा आनन्द प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इसी उद्देश्य करके पापरहित मुनि शिवमें मन लगाकर शिवके अनामय लोकको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ उन शिव और शक्तिका सर्व आत्मतत्व "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" और 'तद्ब्रह्मेति' उपनिषदमें प्राप्तहुए वाक्योंसे बृंहि धातुके अर्थवाले ब्रह्मशब्दसे कहा है ऐसाही शारीरक मीमांसाके भाष्यमें कहा है "अस्ति तावद्ब्रह्म नित्यशुद्धमुक्तस्वभावसर्वज्ञसर्वशक्तिरिति" ॥ ३५ ॥ बृंहणत्व अर्थात् पूर्वमें कहे नित्य शुद्धत्वादिक सर्वव्यापित्व पंचब्रह्ममय सत्नाम शिव विग्रह है उसीमें प्रपञ्चकी प्रतीति ब्रह्मशब्दसे व्यवहार की जाती है ॥ ३६ ॥ प्रतिलोम अर्थात् सोहं इस प्रकारके एकारवाले हंसमें प्रणवकी प्राप्ति कहूंगा, हे वामदेव! सावधान होकर सुनो ॥ ३७ ॥ और व्यंजन सकारका हकारके

अतो मुने तमुद्दिश्य मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ शिवे मनस्समाधाय प्राप्ताश्शिवमनामयम् ॥ ३४ ॥ सर्वात्मत्वं तयोरेवं ब्रह्मेत्युपनिषत्सु च ॥ गीयते ब्रह्मशब्देन बृंहिधात्वर्थगोचरम् ॥ ३५ ॥ बृंहणत्वं बृहत्वं च सदा शंभ्वाख्यविग्रहे ॥ पंचब्रह्ममये विश्वप्रतीतिर्ब्रह्मशब्दिता ॥ ३६ ॥ प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ॥ तव स्नेहाद्वामदेव सावधानतया शृणु ॥ ३७ ॥ व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्ज्जनात् ॥ ओमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः ॥ ३८ ॥ महामन्त्रस्स विज्ञेयो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते ॥ ३९ ॥ आद्ये त्रिपंचरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु ॥ महामन्त्रो भवेदादौ स सकारो भवेद्यदा ॥ ४० ॥ हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थश्शिवः स्मृतः ॥ शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णयः ॥ ४१ ॥

वर्ज्जनसे ओँ इस प्रकारका स्थूल परमात्माका वाचक सूक्ष्म ॥ ३८ ॥ महामन्त्र होता है, ऐसा तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं उसका उद्धार मैं तुमसे कहताहूँ ॥ ३९ ॥ अ अं अः इन तीनों स्वरोंमें आदिस्वर अकारके (अ) इस प्रकारकी पन्द्रहवीं स्वरूपताको प्राप्त होनेपर आदि हकार व्यंजनमें हंके स्थित होनेपर और उसी प्रकार सोलहवें 'अ' रूप जिसकी आदि सकार हो तब वह (हंस) होता है और जब इसका उलटा अर्थात् आदिमें सकार हो तब महामन्त्र (सोहं) होता है यह उद्धार सूक्ष्म होनेसे महासूक्ष्म है ॥ ४० ॥ हंसही इसका उलटा हो जाताहै और सकारका अर्थ शिवहीहै कारण कि, वह सर्वनाम

विशुद्धस्वभाव शिवकेही बुद्धिविषय है यह शक्त्यात्मक महामन्त्र शिवकाही वाचक है यह निर्णय है ॥ ४१ ॥ गुरुके उपदेशकालमें सोहं शक्त्यात्मक शिव है 'शिवोहमस्मीति'। यह महामन्त्र जब जीवपर होता है ॥ ४२ ॥ तब शक्त्यात्मक और शिवांश पशु शिवकी एकतासे साम्यभाग होता है, शक्त्यात्मक और शिवांश होनेसे शिवकी समानताका भागी होता है (प्रज्ञानं ब्रह्म) इस वाक्यमें प्रज्ञानका अर्थ दीखता है ॥ ४३ ॥ प्रज्ञानशब्द निस्सन्देह चेतनका पर्याय है, हे मुने ! आत्मा चेतन है, यह शिवसूत्रोंमें लिखा हुआ है ॥ ४४ ॥ जो चेतन है जिसमें विश्वका सब ज्ञान और क्रिया स्थित हैं, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला परमात्मा कहा है ॥ ४५ ॥ इत्यादि शिवसूत्र और वार्तिकोंमें लिखा है और जीवस्वरूपमें ज्ञान और बन्ध यह दो लक्षण

गुरूपदेशकाले तु सोहंशक्त्यात्मकश्शिवः ॥ इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः ॥ ४२ ॥ शक्त्यात्मकाश्शिवांशश्च शिवैक्या
च्छिवसाम्यभाक् ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते ॥ ४३ ॥ प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्य्यायस्स्यान्न संशयः ॥ चैतन्यमात्मेति
मुने शिवसूत्रं प्रवर्त्तितम् ॥ ४४ ॥ चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम् ॥ स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यः स आत्मा परिकी
र्त्तितः ॥ ४५ ॥ इत्यादिशिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया ॥ ज्ञानं बंध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितुः ॥ ४६ ॥ ज्ञानमित्यात्मन
स्तस्य किंचिज्ज्ञानक्रियात्मकम् ॥ इत्याहाद्यपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम् ॥ ४७ ॥ एतद्द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पंदतां गतम् ॥ एतामेव
परां शक्तिं श्वेताश्वतरशाखिनः ॥ ४८ ॥

रहतेहैं ॥ ४६ ॥ आत्माकी उस विश्वके प्रपंचमें जो कुछ ज्ञानक्रियात्मक स्वतन्त्रता है वही आदि भेदसे जीवका लक्षण कहा है ॥ ४७ ॥ यही दोनों चैतन्य ज्ञानात्मक स्वतंत्रता मायाशक्तिके प्रथम सृष्टि प्रयोजन चेष्टाके रूपताको प्राप्त हुईं हैं इसीको श्वेताश्वतरोपनिषद्की शाखावाले पराशक्ति कहतेहैं, यथाहि (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवास्तु शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् इति) "जानता हूँ करता हूं यह व्यवहार देह इन्द्रियादिका है अथवा आत्माका है ? अब इस प्रश्नका उत्तर

कहतेहैं" ज्ञानक्रिया इच्छारूपही शंभुकी तीन दृष्टिहैं ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ यह शम्भुकी तीन दृष्टिही कर्त्ताके मनके बीचमें इन्द्रियद्वारा गोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो जान्ती और करतीहैं ॥ ५० ॥ इसी कारणसे यह निश्चय आत्माका रूप है, अब प्रपंचके साथ जो ओंकारकी एकता है सो कहताहूं ॥ ॥ ५१ ॥ (ओमितीदं सर्वम्) यह सनातनी तैत्तिरीयश्रुतिमें लिखा है (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः) इत्यादि उसीसे जगत्की सृष्टि कही है ॥ ५२ ॥ सुनो मैं इस श्रुतिका तात्पर्य कहता हूं हे वामदेव ! आपके स्नेहसे वर्णन करताहूं जिससे ज्ञान हो ॥ ५३ ॥ शिवशक्तिका योगही परमात्मा

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेत्यस्तुवन्मुदा ॥ ज्ञानक्रियेच्छारूपं हि शंभोर्दृष्टित्रयं विदुः ॥ ४९ ॥ एतन्मनोमध्यगं सदिन्द्रियज्ञानगोचरम् ॥ अनुप्रविश्य जानाति करोति च पशुः सदा ॥ ५० ॥ तस्मादात्मन एवेदं रूपमित्येव निश्चितम् ॥ प्रपंचार्थं प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम् ॥ ५१ ॥ ओँमितीदं सर्वमिति श्रुतिराह सनातनी ॥ तस्माद्वेतीत्युपक्रम्य जगत्सृष्टिः प्रकीर्तिता ॥ ५२ ॥ तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रूयतामिदम् ॥ तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थविजृंभितम् ॥ ५३ ॥ शिवशक्तिसमायोगः परमात्मेति निश्चितम् ॥ पराशक्तेस्तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा ॥ ५४ ॥ आनन्दशक्तिस्तज्जा स्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा ॥ ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पंचमी ॥ एताभ्य एव संजाता निवृत्त्याद्याः कला मुने ॥ ५५ ॥ चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दू प्रकीर्त्तितौ ॥ इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानशक्तेस्तु पंचमः ॥ ५६ ॥ स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्युकारस्तु मुनीश्वर ॥ इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पंचब्रह्मोद्भवं शृणु ॥ ५७ ॥

कहागया है, वह परमात्माही आकाशादि रूपसे परिणमित होता है जैसे उपादानकारण मृत्तिकाका अपनेसे अभिन्न घट आरम्भ करता है दूधस्वरूप उपादान दहीके आकारसे बदलता है रज्जुरूप उपादान अज्ञानसहित सर्पादि आकारसे परिणमित होते हैं, पराशक्तिसे चित्शक्ति ॥ ५४ ॥ उससे आनन्दशक्ति और उससे इच्छाशक्ति उत्पन्न हुईहै उससे ज्ञानशक्ति और उससे पांचवी क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई है हे मुने ! इन्हीं शक्तियोंसे निवृत्ति आदि कला हुई हैं ॥ ॥ ५५ ॥ चिदानन्दशक्तियोंसे नाद और बिन्दु उत्पन्न हुए हैं इच्छाशक्तिसे मकार और ज्ञानशक्तिसे पांचवां स्वर उकार ॥ ५६ ॥ हे मुनीश्वर ! क्रियाशक्तिसे

अकार स्वर हुआ है यह प्रणवकी उत्पत्ति हुई अब पंचब्रह्मकी उत्पत्ति सुनो ॥ ५७ ॥ शिवसे ईशान, ईशानसे पुरुषकी उत्पत्ति हुई है, उससे अघोर उससे वाम सद्योजात हुए हैं ॥ ५८ ॥ और इन्हीं अकारादिकोंकी मात्रासे अडतीस कला हुई हैं ईशानसे शान्त्यतीत कला उत्पन्न हुई हैं पुरुषसे शान्तिकला और अघोरसे विद्या उत्पन्न हुई है ॥ ५९ ॥ प्रतिष्ठा और निवृत्ति वामदेव और सद्योजातसे उत्पन्न हुईहैं ईश और चित्शक्ति मुखसे शिवके मिथुनपंचक हुए हैं ॥ ६० ॥ अनुग्रह तिरोभाव संहार स्थिति सृष्टिरूपादि कृत्योंका हेतुपंचक होता है, यह उस बातको जाननेवाले पण्डित मुनियोंने कहाहै ॥ ६१ ॥

शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः ॥ ततोऽघोरस्ततो वामस्सद्योजातोद्भवस्ततः ॥५८॥ एतस्मान्मातृकादष्टत्रिंशन्मातृसमुद्भवः ॥ ईशानाच्छान्त्यतीताख्या कला जाताथ पूरुषात् ॥ उत्पद्यते शान्तिकला विद्याऽघोरसमुद्भवा ॥ ५९ ॥ प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च वामसद्योद्भवे मते ॥ ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपञ्चकम् ॥ ६० ॥ अनुग्रहादिकृत्यानां हेतुः पञ्चकमिष्यते ॥ तद्विद्भिर्मुनिभिः प्राज्ञैर्वरतत्त्वप्रदर्शिभिः ॥ ६१ ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि ॥ कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम् ॥ ६२ ॥ वियदादिक्रमादासीदुत्पन्नम्मुनिपुङ्गव ॥ आद्यं मिथुनमारभ्य पञ्चमं यन्मयं विदुः ॥ ६३ ॥ शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पर्शगुणो मरुत् ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते ॥ ६४ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलं स्मृतम् ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता ॥ ६५ ॥ व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम् ॥ व्याप्यत्वं वैपरीत्येन गन्धादिक्रमतो भवेत् ॥ ६६ ॥ भूतपञ्चकरूपोऽयम्प्रपञ्चः परिकीर्त्यते ॥ विराट् सर्वसमष्ट्यात्मा ब्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ॥ ६७ ॥

वाच्य वाचकके सम्बन्धसे मिथुनपनेको प्राप्त होनेवाले कलावर्ण स्वरूपवाले इस पंचकमें भूतपंचक ॥ ६२ ॥ आकाशादि क्रमसे उत्पन्न हुआ है हे मुने ! आद्यमैथुनईश चित्शक्तिआत्मकसे आरंभकर भूतपंचकको चित्शक्त्यात्मक कहतेहैं ॥ ६३ ॥ आकाशमें शब्द गुण और वायुका शब्द स्पर्श गुण होताहै, शब्दस्पर्श रूप गुण प्रधानवाली अग्नि है ॥ ६४ ॥ शब्द स्पर्शरूप रस गुणवाला जल कहाता है, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पृथ्वीका गुण है ॥ ६५ ॥ यह सब गुण क्रम २ से अपने २ भूतोंमें व्यापक होरहे हैं और गन्धादिके क्रमसे विपरीततासे व्याप्त होरहे हैं ॥ ६६ ॥ यही भूतपंचकका रूप प्रपंच

कहलाता है और यही प्रपंच सम्पूर्ण समष्टि आत्मा विराट्में ब्रह्माण्ड कहाता है ॥ ६७ ॥ पृथ्वीतत्त्वसे लेकर शिवतत्त्वतक तत्त्वोंका समुदाय शक्तिसहित परमेश्वरमें लयकर जीवरूप विराट्में लीन होजाता है ॥ ६८ ॥ और सृष्टिके प्रारम्भमें फिर शक्तिसे निर्गत होते हैं और स्थूल प्रपंचरूपसे प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं ॥ ६९ ॥ अपनी इच्छासे जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त महेश्वरका उद्यत होनाहै उस पहले कार्यकोही जो क्रियात्मक होता है उसे शिवतत्त्व कहते हैं ॥ ७० ॥ सब कृत्यके अनुवर्तन होनेसे यही इच्छा शक्तितत्त्व कहाता है ज्ञान और क्रियाशक्तिमें ज्ञान अधिक होनेसे सदाशिवत्वहै, और ज्ञानकी

पृथवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावधि क्रमात् ॥ निलीय तत्त्वसंदोहे जीव एव विलीयते ॥ ६८ ॥ संशक्तिकः पुनस्सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः ॥ स्थूलप्रपञ्चरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम् ॥ ६९ ॥ निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्युक्तस्य महेशितुः ॥ प्रथमो यः परिस्पन्दश्शिवतत्त्वन्तदुच्यते ॥ ७० ॥ एषैवेच्छा शक्तितत्त्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात् ॥ ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः ॥ ७१ ॥ महेश्वरं क्रियोद्रेके तत्त्वं विद्धि मुनीश्वर ॥ ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धविद्यात्मकं मतम् ॥ ७२ ॥ स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्त्वविभेदधीः ॥ शिवो यदा निजं रूपं परमैश्वर्य्यपूर्वकम् ॥ ७३ ॥ निगृह्य माययाशेषपदार्थग्राहको भवेत् ॥ तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट्वेत्यभवच्छ्रुतिः ॥ ७४ ॥ अयमेव हि संसारी मायया मोहितः पशुः ॥ शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः ॥ ७५ ॥

अपेक्षा क्रियाके अधिक होनेमें महेश्वर ॥ ७१ ॥ तत्व अधिक जानना चाहिये, ज्ञान क्रियाशक्तिके समान होनेमें विशुद्ध ज्ञानस्वरूप शिवतत्व है ॥ ७२ ॥ और अपने अंगरूप अवयवोंमें भेदबुद्धिसे मायातत्व कहाता है, जिस समय शिव अपना परमैश्वर्यरूप अपनी मायासे ॥ ७३ ॥ छिपाकर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण करतेहैं, तब वह पुरुषनामक सृष्टि (पुरुष एवेद ँ सर्वँ यत्किंचिच्च जगत्यां जगदित्यादि) और (तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्) यह श्रुति प्रादुर्भूत होती है ॥ ७४ ॥ यही ईश्वरकी मायासे मोहित होकर जीवरूप हुआ मूढतासे अनेक कर्म कर्ता अपनेको सबसे भिन्न मानता है ॥ ७५ ॥

और जगत्को शिवसेअभिन्न नहीं मानता, इस प्रकार मोहित होजाता है जाने तो मोह न हो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार इन्द्रजाल विद्याके जाननेवालेको भ्रम नहीं होता इसी प्रकार गुरुके ऐश्वर्यसे ज्ञानयुक्त हो शिष्य शिवरूप होजाता है ॥ ७७ ॥ सम्पूर्ण कर्तृत्वरूप सर्वज्ञरूप स्वरूपवाली पूर्णत्व होनेसे नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूपवाली ॥ ७८ ॥ शिवकी पांच शक्ति संकोचयुक्त सूर्यरूपवालीहैं संकोचरूपसे नित्य प्रकाश करनेवालीहैं ॥ ७९ ॥ जीवकी कलानामविद्या राग काल नियति पंचतत्त्वके रूपसे कलामें होती है ॥ ८० ॥ कुछ कर्तापनका कारण कुछ तत्वका एक साधन जिसमें हो उसका नाम विद्या

शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि ॥ जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभो ॥ ७६ ॥ यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद्भ्रमः ॥ गुरुणा ज्ञापितैश्वर्यश्शिवो भवति चिद्घनः ॥ ७७ ॥ सर्वकर्तृत्वरूपा च सर्वजत्वस्वरूपिणी ॥ पूर्णत्वरूपानित्यत्वव्यापकत्वस्वरूपिणी ॥ ७८ ॥ शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचद्रूपभास्कराः ॥ ७९ ॥ अपि संकोचरूपेण विभांत्य इति नित्यशः ॥ पशोः कलाख्य विद्येति रागकालौ नियत्यपि ॥ तत्त्वपञ्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा ॥ ८० ॥ किंचित्कर्तृत्वहेतुस्स्यात्किंचित्तत्त्वैकसाधनम् ॥ सा तु विद्या भवेद्रागो विषयेष्वनुरंजकः॥८१॥कालो हि भावभावानां भासानां भासनात्मकः ॥ क्रमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरिति कथ्यते ॥ ॥ ८२ ॥ इदन्तु मम कर्तव्यमिदन्नेति नियामिका ॥ नियतिस्स्याद्विभोश्शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः ॥८३॥ एतत्पंचकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः ॥ पञ्चकञ्चुकमाख्यातमन्तरंगं च साधनम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवतत्त्ववर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वामदेव उवाच ॥ नियत्यधस्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति ॥ पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा ॥ १ ॥

और विषयोंमें प्रीति करानेका नाम राग है ॥ ८१ ॥ भाव और अभावोंके क्रमसे परिच्छेदक होकर वह भूतोंका आदि कहाजाता है ॥ ८२ ॥ यह मुझे कर्तव्य है यह नहीं उसीका नाम नियामक है विभुकी शक्तिका नाम नियति है, उसके त्यागसे यह जीव पतित होजाता है ॥ ८३ ॥ यह पांच इस जीवस्वरूपके आवरणहैं इसीको पंचकंचुक कहतेहैं यह अन्तरंग साधनवालेहैं ॥ ८४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! आपने प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुषहैं ऐसा पहले कहा है अब अन्यथा कैसे कहते हो ॥ १ ॥

और हे प्रभु ! मायासे संकुचितरूप आपने उससे नीचे कहा है, हे नाथ! मेरा यह सन्देह दूर करो ॥ २ ॥ स्कन्दजी बोले, यह अद्वैत शैववाद किसी प्रकार द्वैतको नहीं सहता द्वैत नश्वर और अद्वैत अविनाशी है ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ और सबका कर्ता तीन देव उत्पादक एक शिवही सच्चिदानन्द रूपवाला ब्रह्म है ॥ ४ ॥ वह शिवही अपनी मायासे इच्छासे संकुचित रूपके समान पुरुष होगया है ॥ ५ ॥ पांच कलादिके होनेसे यही भोक्ता है यही पुरुष प्रकृतिमें प्रकृतिके गुणोंको भोगता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार दोनों स्थानोंमें स्थितहोकर भी पुरुष किसी प्रकारका विरोध करनेवाला नहीं है और अपने रूपज्ञानादि

मायया संकुचद्रूपस्तदधस्तादिति प्रभो ॥ इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ २ ॥ ॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ अद्वैतशैववादोऽयं द्वैतन्न सहते क्वचित् ॥ द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतम्परमनश्वरम् ॥ ३ ॥ सर्वज्ञस्सर्वकर्ता च शिवस्सर्वेश्वरोऽगुणः ॥ त्रिदेवजनको ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४ ॥ स एव शंकरो देवस्स्वेच्छया च स्वमायया ॥ संकुचद्रूप इव सन्पुरुषस्संबभूव ह ॥ ५ ॥ कलादिपञ्चकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः ॥ प्रकृतिस्थः पुमानेष भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ॥ ६ ॥ इति स्थानद्वयान्तस्थः पुरुषो न विरोधकः ॥ संकुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीनां समष्टिमान् ॥ ७ ॥ सत्त्वादिगुणसाध्यं च बुध्यादित्रितयात्मकम् ॥ चित्तम्प्रकृतितत्त्वं तदासीत्सत्त्वादिकारणात् ॥ ८ ॥ सात्त्विकादिविभेदेन गुणाः प्रकृतिसम्भवाः॥गुणेभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणी ॥ ९ ॥ ततो महानहङ्कारस्ततो बुद्धीन्द्रियाणि च ॥ जातानि मनसो रूपं स्यात्संकल्पविकल्पकम् ॥ १० ॥ बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रं त्वक् चक्षुर्जिह्वा च नासिका ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः ॥ ११ ॥

संकुचित करताहुआ समष्टिमान् हो ॥ ७ ॥ सत्वादिगुण साध्यबुद्धि आदि त्रयात्मक चित्त है सत्वादिके कारणसे वही चित्तप्रकृति तत्व है ॥ ८ ॥ सात्विकादि भेदसे प्रकृतिके गुण उत्पन्न होतेहैं गुणोंसेही वस्तुओंको निरूपण करनेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥९॥ बुद्धिसे तीन प्रकारका अहंकार हुआ है उसका जीवन साधनात्मक वेगरूप अभिमान है इसका तीन प्रकारका शरीरहै सत्वादि और तैजसादिके भेदसे भी तीन प्रकारका है अहंकारसे और तेजसे मन, बुद्धि, इन्द्रिय उत्पन्न हुई हैं मनका रूप संकल्पविकल्पात्मक है ॥ १० ॥ बुद्धि इन्द्रिय श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका शब्दरूप स्पर्श रस गन्ध ॥११॥

प्रवृत्ति और बुद्धि इन्द्रियोंमें श्रोत्रके क्रमसे कही है, वैकारिक अहंकारसे कर्मेंद्रिय हुईहैं ॥ १२॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने वे सूक्ष्म कहींहैं, और कर्मेन्द्रिय अपने कार्यके सहितहैं ॥ १३ ॥ वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ और उनकी क्रिया बोलना ग्रहण करना जानना त्याग और आनन्द है ॥ १४ ॥ भूतादिकोंसे और अहंकारके क्रमसे तन्मात्रा हुईं उन्हींसे शब्दादि रूप हुएहैं ऐसी स्थितिहै ॥ १५ ॥ उन्हींसे क्रमपूर्वक आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है हे मुनिश्रेष्ठ ! यही पंचभूत कहातेहैं ॥ १६ ॥ अवकाश देना, वहन करना, पचाना वेग और धारण उनके व्यापारहैं ॥ १७ ॥ वामदेव बोले,

बुद्धीन्द्रियाणां कथितः श्रोत्रादिक्रमतस्ततः ॥ वैकारिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ॥ १२ ॥ तानि प्रोक्तानि सूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ कर्मेन्द्रियाणि ज्ञेयानि स्वकार्य्यसहितानि च ॥ १३ ॥ विप्रर्षे वाक्करौ पादौ पायूपस्थौ च तत्क्रियाः ॥ वचनादानगमनविसर्गानन्दसंज्ञिताः ॥ १४ ॥ भूतादिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात् ॥ तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः ॥ ॥ १५ ॥ तेभ्यश्चाकाशवाय्वग्निजलभूमिजनिः क्रमात् ॥ विज्ञेया मुनिशार्दूल पञ्चभूतमितीष्यते ॥ १६ ॥ अवकाशप्रदानं च वाहकत्वञ्च पावनम् ॥ संरम्भो धारणन्तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥ वामदेव उवाच ॥ भूतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथम्पुनः ॥ अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम ॥ १८ ॥ आत्मतत्त्वमकारस्स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम् ॥ शिवतत्त्वम्मकारस्स्याद्वामदेवेति चिंत्यताम् ॥१९॥ बिन्दुनादौ तु विज्ञेयौ सर्वतत्त्वार्थकावुभौ ॥ तत्रत्या देवता याश्च ता मुने शृणु साम्प्रतम् ॥ २० ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ ॥ ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयः श्रुतिविश्रुताः ॥ २१ ॥ इत्युक्तम्भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा ॥ तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम ॥ २२ ॥

आपने पहले भूतसृष्टि कही है फिर कलादि कैसे कहते हो ॥ १८ ॥ कि आत्मतत्व अकार होता है और विद्यातत्व उकार होता है यह बडा सन्देह है शिवतत्व मकार है हे वामदेव ! ऐसा विचारो ॥ १९ ॥ बिन्दु और नाद सब तत्वके अर्थ हैं हे मुने ! अब इनके देवता सुनिये ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव, ये साक्षात् श्रुतिप्रसिद्ध शिवकी मूर्तिहैं ॥ २१ ॥ यह आपने पहले कहा अब कहते हो यह तन्मात्रासे होती हैं इसमें मुझे महान्

सन्देह है ॥ २२ ॥ हे स्कंदजी ! कृपा करके यह संदेह दूर करो, यह मुनिके वचन सुन कुमार कहनेलगे ॥ २३ ॥ स्कंदजी बोले, हे मुने ! तस्माद्वा
यहांसे प्रारम्भकर भूतसृष्टिके क्रमसे जो मैं कहता हूं सो सब सावधानीसे सुनो ॥ २४ ॥ कलाओंसे पंचभूत उत्पन्न हुएहैं यह निश्चय है, स्थूल प्रपंचरूप
पाँचभूत शिवजीके शरीर हैं ॥ २५ ॥ शिव तत्वसे लेकर पृथ्वीके तत्वतक तत्वोंके क्रमसे तन्मात्राओंसे उत्पन्न होतेहैं सो क्रमसे कहतेहैं ॥ २६ ॥
भूतोंके उत्पन्न करनेके धर्मसे तन्मात्रा और कला एकही भूतोंका कारण हैं इनका कोई विरोध जानना नहीं चाहिये हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! ॥ २७ ॥

कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं कुमारः प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥ ॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ तस्माद्रेति
समारभ्य भूतसृष्टिक्रमे मुने ॥ ताञ्छृणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयादरात् ॥ २४ ॥ जातानि पञ्च भूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् ॥
स्थूलप्रपञ्चरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः ॥ २५ ॥ शिवतत्त्वादिपृथ्व्यन्तं तत्त्वानामुदयक्रमे ॥ तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि
क्रमान्मुने ॥ २६ ॥ तन्मात्राणां कलानामप्यैक्यं स्याद्भूतकारणम् ॥ अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर ॥ २७ ॥ स्थूलसूक्ष्मात्मके
विश्वे चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहाः ॥ सनक्षत्राश्च संजातास्तथान्ये ज्योतिषां गणाः ॥ २८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवता भूतजातयः ॥
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देवाश्च पितरोऽसुराः ॥ २९ ॥ राक्षसा मानुषाश्चान्ये जंगमत्वविभागिनः ॥ पशवः पक्षिणः कीटाः पन्नगादि
प्रभेदिनः ॥ ३० ॥ तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः ॥ गंगाद्यास्सरितस्सप्त सागराश्च महर्द्धयः ॥ ३१ ॥ यत्किंचिद्वस्तु
जातन्तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ॥ विचारणीयं सद्बुध्या न बहिर्मुनिसत्तम ॥ ३२ ॥

इस स्थूल सूक्ष्मात्मक संसारमें चन्द्र सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों सहित उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार और भी ॥ २८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवता भूतजाति
इंद्रादि दिक्पाल देवता पितर असुर ॥२९॥ राक्षस मनुष्य और अनेक प्रकारके जंगम प्राणी पशु, पक्षी, कीट, पतंगके भेदवाले ॥३०॥ वृक्ष गुल्म लता
औषधी आठों पर्वत गंगादि नदी सप्तसागर महर्षि ॥ ३१ ॥ जो कुछ वस्तुजात है सो सब इसीमें प्रतिष्ठित है हे मुनिराज ! यह बुद्धिसे विचारो ॥३२॥

यह स्त्रीपुरुषरूप संसार शिवशक्त्यात्मक है शिवज्ञानके जाननेवाले आप सरीखे पंडितोंके उपासना करने योग्य है ॥ ३३ ॥ (सर्वं ब्रह्म सर्वो वै रुद्रः) अर्थात् यह सब कुछ शिवही हैं ऐसा जानकर उपासना करनी चाहिये हे मुने ! ऐसा श्रुतिने कहा है इससे सदाशिवही प्रपंचात्मा है ॥ ३४ ॥ अडतीस कलाके त्यागमें सामर्थ्यवाले शिवकी अद्वैत भावनासे (सदाशिवोहं) ऐसी भावना करनेवाला गुरु शिवही है ॥ ३५ ॥ इस प्रकारका विचारवान् अच्छे शिष्यवाला गुरु शिवही है और प्रपंच देवता यन्त्र मंत्रात्मा गुरु शिवही है इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार आचार्यकी कृपासे सब बंधनरहित हो

स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं शिवशक्त्यात्मकं बुधैः ॥ भवादृशैरुपास्यं स्याच्छिवज्ञानविशारदैः ॥ ३३ ॥ सर्वं ब्रह्मेत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपि ॥ श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपञ्चात्मा सदाशिवः ॥ ३४ ॥ अष्टत्रिंशत्कलान्याससामर्थ्याद्वैतभावना ॥ सदाशिवोऽहमेवेति भावितात्मा गुरुः शिवः ॥ ३५ ॥ एवं विचारी सच्छिष्यो गुरुस्स्यात्स शिवस्स्वयम् ॥ प्रपञ्चदेवतायंत्रमंत्रात्मा न हि संशयः ॥ ३६ ॥ आचार्य्यकृपया विप्र संछिन्नाखिलबन्धनः ॥ शिशुः शिवपदासक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः ॥ समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थम्प्रचक्षते ॥ ३८ ॥ रागादिदोषरहितं वेदसारः शिवो दिशः ॥ तुभ्यम्मे कथितम्प्रीत्याऽद्वैतज्ञानं शिवप्रियम् ॥ ३९ ॥ यो ह्यन्यथैतम्मनुते मद्वचो मदगर्वितः ॥ देवो वा मानवस्सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपि वा ॥ ४० ॥ दुरात्मनस्तस्य शिरश्छिंद्यां समतया ध्रुवम् ॥ सच्छक्त्या रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः ॥ ४१ ॥ भवानेव मुने साक्षाच्छिवाद्वैतविदां वरः ॥ शिवज्ञानोपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः ॥ ४२ ॥

शिष्य शिवपदमें आसक्त होकर निश्चयही पूज्यात्मा होजाता है ॥ ३७ ॥ जो कुछ वस्तु है वह सब गुणप्रधान योगसे समस्त और पृथक् प्रणवके ही अर्थको कहती है ॥ ३८ ॥ रागादि दोषसे रहित वेदसार यही शिवजीका उपदेश है, यह अद्वैतज्ञान शिवका प्रिय है सो मैंने तुमसे कहा ॥ ३९ ॥ जो अन्यथा करै अथवा मदसे गर्वित हो इस मेरे उपदेशको जो अन्यथा माने, देवता मनुष्य सिद्ध गंधर्व कोई हो ॥ ४० ॥ मैं उस दुरात्मा शत्रुका सिर निश्चयही कालाग्निकी समान अपनी शक्तिसे छेदन करदूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ हे मुने ! तुमतो साक्षात् शिवके अद्वैतज्ञानके जाननेवाले हो

शिवज्ञानके उपदेश और शिवाचारके दिखाने वाले हो ॥ ४२ ॥ जिसकी देहकी भस्मके स्पर्शमात्रसे महापापी पिशाचत्वको प्राप्त हुए भी पापरहित होजातेहैं तथा तुम्हारी कृपासे उनको सद्गति होतीहै ॥ ४३ ॥ तीनलोकमें आप महाऐश्वर्यरूपसे शिव योगी कहाते हो तुम्हारे कटाक्षके सम्पर्कसे जीव शिवस्वरूप होजाता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४४ ॥ आपने जो मुझसे पूछा यह लोक शिक्षाके निमित्त है साधु लोकोपकारकोही विचरते हैं ॥ ४५ ॥ यह परमरहस्य सदा तुममेंही प्रतिष्ठित है, तुम श्रद्धाभक्तिसे प्रणवमें आदरपूर्वक ॥ ४६ ॥ मनको परमेश्वरमें लगाकर विभूति रुद्राक्ष सहित शिवाचरणको ग्रहण कराओ

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संछिन्नाघव्रजोऽशुचिः ॥ महापिशाचः सम्प्राप त्वत्कृपातस्सतां गतिम् ॥ ४३ ॥ शिवयोगीतिसंख्यातत्रिलोकविभवो भवान् ॥ भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशुः पशुपतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ तव तस्य मयि प्रेक्षा लोकशिक्षार्थमादरात् ॥ लोकोपकारकरणे विचरन्तीह साधवः ॥ ४५ ॥ इदं रहस्यम्परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि ॥ त्वमपि श्रद्धया भक्त्या प्रणवेष्वेव सादरम् ॥ ४६ ॥ उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे ॥ शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम् ॥ ४७ ॥ त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्राप्ताद्वैतभावतः ॥ विचरँल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि ॥ ४८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तं वेदान्तनिष्ठितमृषिस्तु विनम्रमूर्त्तिः ॥ भूत्वा प्रणम्य बहुशो भुवि दण्डवत्तत्पादारविन्दविहरन्मधुपत्वमाप ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवाद्वैतज्ञानकथनादिसृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ ४७ ॥ तुम शिवके आचरणको ग्रहण करतेहुए अद्वैतभावमें हो लोकरक्षाके निमित्त विचरते हुए अक्षयसुखको प्राप्त हो ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार स्कंदजीके कहे वेदांतयुक्त वचनको सुन वामदेव ऋषि नम्र हो बारंबार पृथ्वीमें प्रणाम करनेलगे, और उनके चरणारविंदमें विहार करतेहुए उनके मकरन्दरूपी रसको प्राप्त हुए अर्थात् परमतत्त्वको जानगये ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ष० कैलाससंहितायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शौनकजी बोले, इस प्रकार वेदांतके सार और परमरहस्यको सुनकर वामदेवने महेश्वरके पुत्रसे क्या कहा ॥ १ ॥ “वामदेव योगी सदाशिवज्ञानमें रहनेवाले परमधन्य हैं जिनके सम्बन्धसे यह दिव्यज्ञान देनेवाली परमपवित्र कथा उत्पन्न हुई है ॥ २ ॥ इस प्रकार उन मुनियोंके प्रेमगर्भित वचनोंको सुनकर प्रसन्न हो महापंडित सूतजी उन शिवजीमें मनलगानेवालोंसे बोले ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, तुम महादेवके भक्त धन्य हो लोकके उपकार करनेवाले हो हे मुनियो ! फिर भी उन दोनोंका संवाद सुनो ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्कंदजीके द्वैतनाशक वचन सुनकर महामुनि प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ कार्तिकेय शिवपुत्रको बारंबार

॥ शौनक उवाच ॥ श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्यम्परमाद्भुतम् ॥ किम्पृष्टवान्वामदेवो महेश्वरसुतं तदा ॥ १ ॥ धन्यो योगी वामदेवः शिवज्ञानरतस्सदा ॥ यत्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी ॥ २ ॥ इति श्रुत्वा मुनीनान्तद्वचनम्प्रेमगर्भितम् ॥ सूतः प्राह प्रसन्नस्ताञ्छिवासक्तमना बुधः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ धन्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारकाः ॥ शृणुध्वम्मुनयस्सर्वे संवादं च तयोः पुनः ॥ ४ ॥ श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम् ॥ अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्महान्मुनिः ॥ ५ ॥ नत्वा स्तुत्वा च विविधं कार्तिकेयं शिवात्मजम् ॥ पुनः पप्रच्छ तत्त्वं हि विनयेन महामुनिः ॥ ६ ॥ ॥ वामदेव उवाच ॥ भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ॥ गुरुत्वं कथमेतेषां यतीनाम्भावितात्मनाम् ॥ ७ ॥ जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धिस्सिध्यति यद्वशात् ॥ पारम्पर्य्यं विना नैषामुपदेशाधिकारिता ॥ ८ ॥ एवं च क्षौरकर्मांगं स्नानञ्च कथमीदृशम् ॥ इति विज्ञापय स्वामिन्संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ इति श्रुत्वा कार्तिकेयो वामदेववचः स्मरन् ॥ शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे ॥ १० ॥

स्तुति और प्रणाम करके महामुनि विनयसे फिर पूँछने लगे ॥ ६ ॥ वामदेव बोले, हे भगवन् ! हे सम्पूर्णतत्वके जाननेवाले ! हे षण्मुख ! हे अमृतस्वरूप ! इन पूर्वमें कहेहुये आत्मज्ञानियोंका गुरुत्व ॥ ७ ॥ और जीवोंकी भोग मोक्षादि सिद्धि जिसके कारणसे होती है परन्तु सम्प्रदायके ज्ञानके विना इनमें उपदेशकी अधिकारता नहीं है ॥ ८ ॥ इनके क्षौरकर्म और स्नान इस प्रकार क्यों हैं सो आप कहिये, मेरा यह सन्देह दूर करो ॥ ९ ॥ स्कंदजी इस

प्रकार सुनकर वामदेवके वचनको स्मरणकर शिवा शिवको मनमें प्रणामकर कहनेलगे ॥ १० ॥ स्कंदजी बोले, अब मैं योगपद कहताहूं जिससे गुरुतत्त्वकी प्राप्ति होती है, हे वामदेवजी ! यह परमगुप्त है तुम्हारे प्रेमसे कहताहूं सुनो ॥ ११ ॥ वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ मासके शुक्लपक्षके शुभ दिनमें ॥ १२ ॥ पंचमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालकी क्रियाकर गुरुकी आज्ञा पाय नियमित हो स्नानकर ॥ १३ ॥ पर्यंक शौच (इसकी विधि संन्यासपद्धति आदि ग्रन्थोंमें लिखी है) कर वस्त्रोंसे अंगको पोंछ दूने डोरे बांध कपडे पहर ॥ १४ ॥ चरण धोय दो बार आचमन कर सद्योजातादि

॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच ॥ योगपट्टम्प्रवक्ष्यामि गुरुत्वं येन जायते ॥ तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्यं विमुक्तिदम् ॥ ११ ॥ वैशाखे श्रावणे मासि तथाश्वयुजि कार्तिके ॥ मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ १२ ॥ पञ्चम्यां पौर्णमास्यां वा कृतप्राभातिकक्रियः ॥ लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा स्नात्वा नियतमानसः ॥ १३ ॥ पर्य्यंकशौचं कृत्वा तद्वाससांगं प्रमृज्य च ॥ द्विगुणं दोरमाबध्य वाससी परिधाय च ॥ १४ ॥ क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिमन्त्रतः ॥ धारयेद्धि समादाय समुद्धूलनमार्गतः ॥ १५ ॥ गृहीतहस्तो गुरुणा सानुकूलेन वै मुने ॥ सच्छिष्यः साञ्जलिस्स्वाभ्यां हस्ताभ्याम्प्राङ्मुखो यथा ॥ १६ ॥ तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मंडपे समलंकृते ॥ गुर्वासनवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे ॥ १७ ॥ अथ देशिक आदाय शंखं साधारमस्त्रतः ॥ विशोध्य तस्य पुरतः स्थापयेत्सानुकूलतः ॥ ॥ १८ ॥ साधारं शंखमपि च सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥ निःक्षिपेदस्त्रवर्मभ्यां शोधितं तत्र सज्जलम् ॥ १९ ॥ आपूर्य पूर्ववत्पूज्य षडंगोक्तक्रमेण च ॥ प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधैवाभिमन्त्रयेत् ॥ २० ॥

मंत्रोंसे भस्म भालमें लगाय फिर सब शरीरमें लगावै ॥ १५ ॥ हे मुने ! पूर्वको मुखकर अनुकूल गुरुके हाथमें हाथ दे फिर हाथ जोडकर शिष्य ॥ १६ ॥ सुन्दर अलंकृत मंदिरमें गुरुके दियेहुए मृगचर्मके आसनमें बठ ॥ १७ ॥ पीछे आचार्य आधारसहित शंखको अस्त्रमंत्रसे लाकर उसे शोध आगे स्थापन कर ॥ १८ ॥ फूलोंसे पूजन करै और कवच मंत्रोंसे शोधित जल और आधारसहित शंखको ॥ १९ ॥ भरकर षडंगके क्रमसे उसे पूजन करके फिर

सातबार उसे प्रणवसे अभिमंत्रित करै ॥ २० ॥ गन्ध पुष्पादिसे पूज धूप दीप दिखाय मुद्रा रक्षाकर कवचमंत्रसे ढकै ॥ २१ ॥ आचार्य धेनु और शंखमुद्रा दिखावे फिर अपने आगे शंखकी दक्षिण ओर पूजा और अर्घ्यके विधानसे उत्तम मण्डल करके उसको सुगंधित पुष्पोंसे पूजै ॥ २२ ॥ २३ ॥ आधारको शोधकर उसपर शुद्ध घट रक्खे, उसपर सूत लपेटे, उसे धूप देकर शुद्ध सुगंधित जलसे भरै ॥ २४ ॥ पीपल, पिलखन, जामन, आम, बड इन पांचोंकी छाल और इन्हीं पांचोंके पत्ते और हाथी, घोडे, रथ, बांवी और नदीके संगमस्थानकी मट्टी इनमें सुगन्धि मिलाकर कलशमें लेपन करै ॥ २५ ॥ वस्त्र

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपौ प्रदर्श्य च ॥ संरक्षास्त्रेण तं शंखं वर्मणाथावगुण्ठयेत् ॥ २१ ॥ धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः ॥ पुनस्स्वपुरतश्शंखं दक्षिणे देश उत्तमे ॥ २२ ॥ पूज्यार्घ्योक्तविधानेन सुन्दरम्मण्डलं शुभम् ॥ कुर्य्यात्सम्पूजयेत्तञ्च सुगन्धकुसुमादिभिः ॥ २३ ॥ साधारं शोधितं शुद्धं घटन्तन्तुपरिष्कृतम् ॥ धूपितं स्थापितं शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ॥ २४ ॥ पञ्चत्वक्पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चभिः ॥ मिलितं च सुगन्धेन लेपयेत्तम्मुनीश्वर ॥२५॥ वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः ॥ तं घटं वस्तुभिश्चान्यैस्संकुर्य्यात्समलंकृतम् ॥ २६ ॥ विन्यसेत्पञ्चरत्नानि घटे तत्र मुनीश्वर ॥ हिरण्यञ्चापि तेषां वाभावे भक्त्या प्रविन्यसेत् ॥ २७ ॥ नीलाख्यरत्नं च तथा रत्ने माणिक्यहेमनी ॥ प्रवालगोमेदके च पञ्चरत्नमिदं स्मृतम् ॥ २८ ॥ नृम्लस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः ॥ सम्यग्विधानतः प्रीत्या सानुकूलः समर्चयेत् ॥ २९ ॥ आधारशक्तिमारभ्य यजनोक्तविधानतः ॥ पञ्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत् ॥ ३० ॥ निवेद्य पायसान्नञ्च तांबूलादि यथा पुरा ॥ नामाष्टकार्चनान्तं च कृत्वा तमभिमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥

आमके पत्ते कुशका अग्र नारियल और फूल मिलावै इस प्रकार और वस्तुओंसे उस घटको अलंकृत करै ॥ २६ ॥ हे मुनीश्वर ! उस घटमें पंचरत्न डालै यदि पंचरत्न न हो तो भक्तिसे सोनाही डालै ॥ २७ ॥ नील, माणिक्य, सुवर्ण, मूंगा, गोमेद यह पांच रत्नहैं ॥ २८ ॥ नृम्लस्क प्रथम उच्चारण कर अंतमें ग्लूम् उच्चारण कर विधिपूर्वक प्रेमसे पूजा करै ॥ २९ ॥ आधारशक्तिसे आरम्भ करके यज्ञमें कही विधिके अनुसार देवको आवाहन कर पंचावरणके विधानसे पूजै ॥ ३० ॥ प्रथम कहे प्रकारसे खीर और ताम्बूलादिको निवेदनकर आठ नामोंसे पूजा करनेपर्यंत उसको अभिमंत्रण करै ॥ ३१ ॥

एकसौआठ ओंकार और ईशानादि पंच ब्रह्म सद्योजातादिसे ईशानपर्यंत मंत्रोंसे कलशको पूज ॥ ३२ ॥ अस्त्र और कवचके मंत्रोंसे आच्छादनकर वस्त्र और धूप दीपको दिखाकर धेनु और योनिमुद्रा दिखावै ॥ ३३ ॥ कुशोंसे मस्तकको ढक उसके शिरोभागके ईशानकी ओर चौकोन मंडलकी कल्पना करै ॥ ॥ ३४ ॥ उसके ऊपर मनोहर आसन रख उसपर अनुकूल शिष्यको बैठाय ॥ ३५ ॥ स्वस्तिवाचनपूर्वक कुम्भको उठाकर गुरु दहिने हाथसे शिष्यके मस्तकपर अभिषेक करै ॥ ३६ ॥ पहले ओंकारका उच्चारण कर शंखके जलसे पंचब्रह्म और सप्तब्रह्मसे युक्त करै ॥ ३७ ॥ मनोहर दीपकको दिखाकर

प्रणवाष्टोत्तरशतं ब्रह्मभिः पञ्चभिः क्रमात् ॥ सद्यादीशान्तमप्यस्त्रैरक्षितं वर्मणा पुनः ॥ ३२ ॥ अवगुंठ्य प्रदर्श्याथ धूपदीपौ च भक्तितः ॥ धेनुयोन्याख्यमुद्रे च सम्यक्तत्र प्रदर्शयेत् ॥ ३३ ॥ ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तके ॥ मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तदुपर्य्यासनं रम्यं कल्पयित्वा विधानतः ॥ तत्र संस्थापयेच्छिष्यं तं शिशुं सानुकूलतः ॥ ३५ ॥ ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ अभिषिंचेद्गुरुः शिष्यं प्रादक्षिण्येन मस्तके ॥ ३६ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः ॥ पञ्चभिश्चाभिषेकान्ते शंखोदेनाभिवेष्टयेत् ॥ ३७ ॥ चारुदीपं प्रदर्श्याथ वाससा परिमृज्य च ॥ नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत् ॥ ३८ ॥ क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुश्शिशुम् ॥ हस्ताभ्यामवलंब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः ॥ ३९ ॥ तदंगेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः ॥ आसने संप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम् ॥ ४० ॥ पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्त्वज्ञानाभिलाषिणम् ॥ स्वासनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम् ॥ ४१ ॥ गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ॥ समाधिमाचरेत्सम्यङ्मुहूर्त्तं गूढमानसः ॥ ४२ ॥ पश्चादुन्मील्य नयने सानुकूलेन चेतसा ॥ सांजलिं संस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः ॥ ४३ ॥

वस्त्रसे मार्जनकर नये डोरे, वस्त्र तथा कौपीन धारण करावै ॥ ३८ ॥ चरण धोय दो बार आचमनकर भस्म लगाय गुरु शिष्यका हाथ अपने हाथसे पकडकर मण्डपके मध्य ॥ ३९ ॥ आसनपर बैठाय जो आसन कि, उसीके निमित्त निर्माण किया है सुखसे बैठाय उसके अंगमें भस्म लगाय ॥ ४० ॥ पूर्वको मुखकिये अपने बन्धुके समान तत्त्वज्ञानकी इच्छा करनेवाले अपने शिष्यसे अपने आसनपर बैठाहुआ गुरु कहै (अमलात्मा भव) अर्थात् निर्मल आत्मा हो ॥ ४१ ॥ तब गरु मैं परिपूर्ण शिवहूं ऐसी अचल स्थितिसे दो घडीपर्यन्त मूढमनसे समाधिमें स्थित हो ॥ ४२ ॥ पीछे नेत्र उघाड सावधान

चित्त हो हाथ जोडकर बैठेहुए शिष्यको प्रेमसे देखे ॥ ४३ ॥ और भस्म लगेहुए अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रख दहने कानमें (हंसः सोहं) इस मन्त्रका उपदेश दे ॥ ४४ ॥ उसमें आदि हंके अर्थशक्ति आत्मा स्वयं शिव हैं वही मैं शिवहूं ऐसा अपनेको विचारै ॥ ४५ ॥ (यइति) अणुके अर्थ तत्त्वको उपदेश करके कहै ब्रह्मके परोक्षज्ञानके कहनेवाले महावाक्योंके तात्पर्यके आदरसे कहै ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! उन वाक्योंको मैं कहताहूं तुम प्रेमसे

स्वहस्तम्भसितालिप्तं विन्यस्य शिशुमस्तके ॥ दक्षश्रुतावुपदिशेद्धंसस्सोहमिति स्फुटम् ॥ ४४ ॥ तत्राद्याहंपदस्यार्थः शक्त्यात्मा स शिवस्स्वयम् ॥ स एवाहं शिवोस्मीति स्वात्मानं संविभावय ॥ ४५ ॥ य इत्यणोरर्थतत्त्वमुपदिश्य ततो वदेत् ॥ अवांतराणां वाक्यानामर्थतात्पर्यमादरात् ॥ ४६ ॥ वाक्यानि वच्मि ते ब्रह्मन्सावधानमतिश्शृणु ॥ तानि धारय चित्ते हि स ब्रूयादिति संस्फुटम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ शिष्यकरणविधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ "अथ महावाक्यानि" (१) प्रज्ञानं ब्रह्म (२) अहं ब्रह्मास्मि (३) तत्त्वमसि (४) अयमात्मा ब्रह्म (५) ईशावास्यमिदं सर्वम् (६) प्राणोऽस्मि (७) प्रज्ञानात्मा (८) यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह (९) अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि (१०) एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः (११) स यश्चायम्पुरुषो यश्चासावा दित्ये स एकः (१२) अहमस्मि परं ब्रह्म परं परपरात्परम् (१३) वेदशास्त्रगुरुत्वात्तु स्वयमानंदलक्षणम् (१४) सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः (१५) तत्त्वस्य प्राणोहमस्मि पृथिव्याः प्राणोहमस्मि (१६) अपां च प्राणोहमस्मि तेजसश्च प्राणोहमस्मि (१७) वायोश्च प्राणोहमस्मि आकाशस्य प्राणोहमस्मि (१८) त्रिगुणस्य प्राणोहमस्मि (१९) सर्वोऽहं सर्वात्मकोऽहं संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोहम् (२०) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (२१) सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम् (२२) योऽसौ सोहं हंसस्सोहमस्मि ॥ "इत्येवं सर्वत्र सदा ध्यायेदिति" ॥ "अथ महावाक्यानामर्थमाह" ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रबोधितः ॥ अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा परमेश्वरः ॥ १ ॥

सुनो, उनको तू चित्तमें धारण कर ऐसा स्फुट कहै ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायांअष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

स्कन्दजी बोले, अब महावाक्य कहतेहैं प्रज्ञानही ब्रह्म है (१) मैं ब्रह्महूं (२) वह तू है (३) यह आत्मा ब्रह्म है (४) यह सब जगत् ईश्वरसे अधिष्ठित

है, (५) मैंही प्राणहूं (६) आत्मा ज्ञान है (७) जो यहाँ सो वहां जो वहां सो यहाँ (८) वह विदित और अविदितसे परेहै (९) वही तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है (१०) वह जो इस पुरुषमें और आदित्यमें है वह एक है (११) परब्रह्म मैंही हूं (१२) परेसे परे वेदशास्त्रका गुरु सबका ज्ञाता स्वयं आनन्दलक्षण मैंही हूं (१३) सर्वभूत स्थित ब्रह्म मैंही हूं इसमें संदेह नहीं (१४) तत्त्वका प्राण मैंही हूं पृथ्वीका प्राण मैंही हूं (१५) जलोंका प्राण मैंही हूँ तेजका प्राण मैंही हूं (१६) वायु आकाशका प्राण मैंही हूं (१७) त्रिगुणका प्राण मैंही हूं (१८) सब सर्वात्मक मैंही हूं, संसारी भूत भविष्य वर्तमान सर्वात्मक होनेसे मैंही एक अद्वितीय हूं (१९) यह सब ब्रह्मरूप है (२०) मैं सब रूप मुक्तस्वरूप हूं (२१) जो यह है सो मैं हूं हंस मैं हूं (२२) इस प्रकार सर्वत्र सदा ध्यान करै इनका अर्थ कहते हैं, प्रज्ञान ब्रह्म इसका अर्थ इसमें पूर्वही कथन करदिया है ऐतरेय उपनिषदका यह

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ॥ हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्त्यात्मा संप्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥ शिवशक्त्योस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः ॥ ब्रह्मेति शिवशक्त्योस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम् ॥ ३ ॥ पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोहमस्मीति भावयेत् ॥ तत्त्वमित्यत्र तदिति सशब्दार्थः प्रबोधितः ॥ ४ ॥

वाक्य है प्रज्ञानशब्द भी चैतन्यका वाची है (ब्रह्मैष इन्द्रः) यहांसे लेकर (सर्वं तत्प्रज्ञानेत्र प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं, प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म) ऐसा सुनाजाता है अर्थात् यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है यही इंद्र है सब ओरसे प्रज्ञानेत्रवाले और प्रज्ञानरूप ब्रह्ममें उत्पत्ति स्थिति और लयमें भी स्थित है प्रज्ञारूप नेत्रवाला लोक है इससे प्रज्ञा (ब्रह्म) सब जगत्का आश्रय है इससे प्रत्यगात्मा ब्रह्म है, अब अहं ब्रह्मास्मिका अर्थ कहते हैं अहं पदका अर्थ शक्त्यात्मा परमेश्वर है, ॥ १ ॥ अकार सब वर्णोंमें अग्र प्रकाशमान परमशिव स्वरूप है हकार व्योमरूप शक्त्यात्मा वर्णन किया है ॥ २ ॥ शिवशक्तिके संयोगसे निरंतर आनंद होता है ब्रह्मेति इससे शिव और शक्तिका सर्वात्मकत्व प्रगट है ॥ ३ ॥ फिर पूर्वमें उपदेश किये (सोहमास्मि) अर्थात् वह मैं हूं इसकी भावना करै 'तत्त्वमसि' इस वाक्यार्थमें तत्पदका अर्थ भी शक्त्यात्मक जानना चाहिये, इसी प्रकार ब्रह्मास्मिका भी अर्थ ब्रह्मशब्दसे लेना ॥ ४ ॥

नहीं तो अहं ब्रह्मास्मीति इस मूलवाक्यमें शुद्ध ब्रह्मके अभेदकी भावना प्रतीत होती है उसके विवरणवाक्यमें शक्त्यात्मक अभेद भावनाका उपदेश है और जो कहो कि शुद्ध ब्रह्मकी अभेद भावनाके अभिप्रायसे (अहमस्मि) इस विवरणका तात्पर्य हो किन्तु शक्त्यात्मक अभेद नहीं है इसपर कहते हैं:कि अहंपदके अर्थभूत शक्त्यात्मक परमेश्वर है ऐसा पूर्व कहनेसे अलिंग भेदके विरोध शब्दमत होनेसे अहंपदार्थका अभेदान्वय नहीं होसक्ता, अहं शब्द पुल्लिंगहै और तत नपुंसकहै इस प्रकार एक दूसरेके विरुद्ध होनेसे दोनोंका अन्वय नहीं होसक्ता ॥ ५ ॥ कारण कि नहीं तो स्त्री पुरुषरूप जगत्का कारणभी अन्यथा होजायगा, इस कारण यहाँ तत्पदसे शक्त्यात्मकक्काही ग्रहण करना चाहिये (तत्त्वमसि) इस वाक्यसे और (स आत्मा) इस वाक्यसे सकी अनुवृत्तिकर सशक्त्यात्मा वही ब्रह्म तू है इस प्रकार (तद्ब्रह्मरूपं त्वममसि श्वेतकेतो) इस श्रुतिका अर्थ है, छान्दोग्यके छठे अध्यायमें उद्दालक ऋषिने यह सब कुछ

अन्यथा सोऽहमित्यत्र विपरीतार्थभावना ॥ अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम् ॥ एवमन्योन्यवैरुध्यादन्वयो न भवेत्तयोः ॥ ५ ॥
स्त्रीपुंरूपस्य जगतः कारणं चान्यथा भवेत् ॥ स तत्त्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना ॥ ६ ॥ अयमात्मेति वाक्ये च पुंरूपं पदयुग्म
कम् ॥ ईशेन रक्षणीयत्वादीशावास्यमिदं जगत् ॥ ७ ॥ प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत् ॥ यः स एवेति विद्वद्भिस्सिद्धान्ति
भिरिहोच्यते ॥ ८ ॥ उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ॥ इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ॥ ९ ॥

श्वेतकेतुके प्रति कहा है ॥ ६ ॥ (अयमात्माब्रह्म) इस महावाक्यमें तो दोनों पद पुल्लिंग हैं यह माण्डूक्योपनिषद्का पाठ है सो यह आत्मा ओंकारही है, शिवसे रक्षित होनेसे सम्पूर्ण जगत् ईशावास्यम् कहाजाता है ॥ ७ ॥ (प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा) इसका अर्थ यह है कि प्रज्ञानात्मकस्वरूप और प्राणपदार्थ भी मैंही हूँ इसका प्रकरण यह है कि, प्रतर्दनने दिवोदासके पुत्रके पास कहा था वह कौषीतकी ब्राह्मणके उपनिषद्का वाक्यहै यहाँ प्राणशब्दसे सिद्धान्तपक्षमें परब्रह्मकाही अर्थ है अन्यथा नहीं जो यहाँ कार्य कारण उपाधिसे युक्त चैतन्य संसारधर्मके समान भासमान है, अज्ञानियोंको वही अपने आत्मामें स्थित दूसरे लोकमें जगत्के कारणत्वमात्र प्राप्त है ऐसा विचार करै ॥ ८ ॥ जो कार्योपाधि जीव है वही कारणोपाधि ईश्वर है ऐसा सिद्धान्तवेत्ता कहतेहैं (यदमुत्र तदन्विह) इस वाक्यमें जो कारणोपाधि युक्त है वही कार्यउपाधिमें जीवरूपसे स्थित है वह अर्थ पंडितोंको पुरुष रूपसे सम्मत है, और जो शंका

करै कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक जो है सो उपाधिमान होनेसे ब्रह्म नहीं संसारी उससे पृथक् है सो नहीं जो कार्य कारणोपाधियुक्त संसारधर्मके समान दीखता है अज्ञानियोंको वही अपनी आत्मामें इष्ट है और जो दूसरे लोकमें है वह नित्य विज्ञानघन स्वभाव सब संसारके धर्मसे रहित ब्रह्म है जो वहां इस आत्मामें स्थित वही नामरूप कार्य कारण युक्त जानना चाहिये और नहीं यही भाष्यकारोंका सम्मत है वह कार्य और कारणसे भी अन्य है ॥ ९ ॥ अन्यदेव इस वाक्यमें मुक्तिफलकी भी जिस प्रकार विपरीतभावना होती है सो सुनो मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ (अन्यदेवेति) इस पूर्ववाक्यमें विदितसे इति शब्द (अयथाविदितादिति) अर्थमें अयथार्थतासे ॥ ११ ॥ (ज्ञातादिति) अर्थमें प्रवृत्ति होती है इसी प्रकार वाक्यान्तरमें 'अविदितादिति शब्दः' अपूर्वविदितादिति अर्थमें पूर्वमविज्ञातादिति अर्थमें जैसे प्रवृत्ति होती है इसी प्रकार भेदबुद्धिके निवृत्त भावसे फलकी विपरीत भावना होसक्की है यह स्पष्टहै और जो उस विदित (जो जाननेमें आवै) अविदित (जो जाननेमें न आवै) से परे शुद्ध कोई और सिद्ध हो तो उसकी सिद्धिमें सम्यक्फल सिद्धिकी प्राप्ति

अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि ॥ अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ॥ १० ॥ यथास्यात्तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां
मुने ॥ अयथाविदिताच्छब्दो पूर्ववद्विदितादिति ॥ ११ ॥ प्रवृत्तिस्स्यात्ताद्विदितात्तथैवाविदितात्परम् ॥ अन्यदेव हि संसिद्ध्यै न
भवेदिति निश्चितम् ॥ १२ ॥

नहीं होसक्की यह निश्चय है, इस कारण वस्तुसे कार्य कारणात्मक सब ब्रह्मही है उपाधिसे भेदव्यवहार है इससे भेद है बुद्धिके अभावसे फलहानि नहीं होसक्की यह निर्णय है यही वाक्य सामवेदके तवलकार उपनिषद्में कहा है कि वह सत्यही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नहीं जाना जाता आगमसेही जाना जाता है (अन्यदेवैतद्विदितादथो अविदितादपीति) जो ब्रह्मश्रोत्रका श्रोत्रादिरूप कहाहै और तिनका अविषयहै सो ब्रह्मविदित वस्तुसे औरही है, जो वस्तु ज्ञानरूप क्रियासे अतिशय व्याप्त होकर ज्ञानरूप क्रियाका विषय हो सो वस्तु कहीं कुछ किसी पुरुषको विदित होती है, इस प्रकारकी सब वस्तु विदितही है उससे ब्रह्म पृथक् है और विदितसे विपरीत अव्याकृत (स्पष्ट और व्याकृत) पूर्वोक्त कार्यके बीज (कारण) अविद्यारूप अविदित वस्तुसे भी ब्रह्म परे है विदितवस्तु परिछिन्न और दुःखरूप है इससे त्यागके योग्य है यहां विदितसे ब्रह्म पृथक् है इस कहेहुए ब्रह्मके ग्रहणकी अयोग्यता कही इसी प्रकार अविदितसे ब्रह्म

पृथक् है इस प्रकार कहेहुए ब्रह्मकी ग्रहणमें अयोग्यता कही इस प्रकार त्याग और ग्रहणकी अयोग्यताके निषेधसे अपनेसे भिन्न होनेसे शिष्यको ब्रह्मकी जिज्ञासा उत्पन्न की, और विचारवस्तुसे देखिये तो अपने आत्मासे अन्य वस्तुका विदित और अविदितसे अन्यपना सम्भव नहीं इससे आत्माही ब्रह्म है यंह वाक्यका अर्थ है ॥ १२ ॥ (एष ते आत्मेति) इस बृहदारण्यकके वाक्यका अर्थ करतेहैं यह तेरा अन्तर्यामी अन्तरमें स्थित शास्ता आत्मा नित्य और स्वयं शिवरूप है जो पृथ्वीमें स्थित होताहुआ पृथ्वीके अन्तरमें है जिसको पृथ्वी नहीं जानती और जिसका पृथ्वी शरीर है वही तेरा अन्तरात्मा अमृतस्वरूप है, अमृत और अन्तर्यामी शब्दसे परमात्माका ही ग्रहण है यह सिद्धान्त शारीरक भाष्यमें है (सयश्चायं पुरुष इति) इस तैत्तिरीय ब्रह्मवल्लीके अर्थको कहतेहैं जो आनन्दमय शम्भु आदित्यके देहमें स्थित है ॥ १३ ॥ जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष है वह प्रसिद्ध एकही है इसमें पृथक्ता नहीं है,

एष त आत्मांतर्यामी योऽमृतश्च शिवस्स्वयम् ॥ यश्चायम्पुरुषे शंभुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ॥ १३ ॥ स चाऽसौ सेति पार्थक्यं नैकं सर्वं
स ईरीतः ॥ सोपाधिद्वयमस्यार्थ उपचारात्तथोच्यते ॥ १४ ॥ त शम्भुनाथं श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्मयम् ॥ हिरण्यबाहव इति सर्वां
गस्योपलक्षलम् ॥ १५ ॥ अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः ॥ य एषोन्तरिति शंभुश्छान्दोग्ये श्रूयते शिवः ॥ १६ ॥
हिरण्यश्मश्रुवांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ॥ नखमारभ्य कशाग्रा सर्वत्रापि हिरण्मयः ॥ १७ ॥

यदि कहो कि सबके अधिष्ठान शम्भु परमात्माका पुरुषादि अधिष्ठान नहीं होसकता, उसपर कहते हैं पुरुषाधिष्ठित और आदित्याधिष्ठित स्वरूप दो उपाधि सहित होनेसे इस वाक्यका अर्थ आरोपसे कहते हैं ॥ १४ ॥ कारण कि उस शिवको श्रुति (एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः नमो हिरण्यबाहवे, हिरण्यवर्णाय, हिरण्यपतये) इत्यादि हिरण्यमय कहाती हैं वास्तवमें निर्गुण शिवको हिरण्यत्व नहीं होसक्ता, यदि कहो कि, हिरण्यबाहवे इसमें बाहुमात्रमें हिरण्यशब्द कहा है यह सर्वांगका उपलक्षण है ॥ १५ ॥ हिरण्यपति कैसे ? तो यह उत्तर है कि यदि सर्वांगका उपलक्षण न होता तो पतित्व हिरण्यपतित्व उपचारादिसे भी सम्भावित न होसक्ता, इसमें हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय सिद्ध है, यही छान्दोग्यमें है ॥ १६ ॥ (य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रु

हिंरण्यकेश आप्रणवात् सर्व एव सुवर्ण इति) अर्थात् जो यह आदित्यके अन्तर्गत सुवर्णके समान (नकि सुवर्ण) कारण कि देवमें सुवर्ण विकार नहीं होसक्ता पापरहित सुवर्ण अचेतनमें पापकी प्राप्ति नहीं फिर निषेध कैसा ? चक्षुके ग्रहण न होनेसे ज्योतिर्मयकाही अर्थ होता है इसी प्रकार आगे भी लगालेना सबके देहमें शयन करने अथवा अपनेसे जगत्को पूर्ण करनेसे उसे पुरुष कहते हैं वह सावधान चित्तवालोंको दीखता है ब्रह्मचर्यादि साधन करनेवालोंको केशादि कृष्ण रहते हैं, इसीसे कहा कि उस परमात्मा शिवके केशश्मश्रु प्रकाशमयहैं नखसे शिरतक सब ज्योतिरूप है ॥ १७ ॥ नखसे प्रारम्भकर केशके अग्रभागतक ज्योतिरूप तुरीय ब्रह्म परात्पर मैंही हूं इस वाक्यको तात्पर्य सुनिये मैं कहता हूँ ॥ १८ ॥ अहंपदका अर्थ शक्त्यात्मा शिव है वह मैं हूँ इस

अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम् ॥ इति वाक्यस्य तात्पर्यं वदामि श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥ अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिव
ईरितः ॥ स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवति ध्रुवम् ॥ १९ ॥ सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः ॥ परश्चाथापरश्चेति परात्पर
मिति त्रिधा ॥ २० ॥ रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ताः श्रुत्यैव नान्यथा ॥ तेभ्यश्च परमो देवः परशब्देन बोधितः ॥ २१ ॥ वेदशास्त्र
गुरूणां च वाक्याभ्यासवशाच्छिशोः ॥ पूर्णानन्दमयश्शंभुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि ॥ २२ ॥ सर्वभूतस्थितश्शम्भुस्स एवाहं न संशयः ॥
तत्त्वजातस्य सर्वस्य प्राणोस्म्यहमहं शिवः ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्त्वत्रयस्य च ॥ प्राणोस्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्र
हणान्मुने ॥ २४ ॥ आत्मतत्त्वानि सर्वाणि गृहीतानीति भावय ॥ पुनश्च सर्वग्रहणं विद्यातत्त्वशिवात्मनोः ॥ २५ ॥

योजनासे वाक्यार्थ होजाता है ॥ १९ ॥ सबसे उत्कृष्ट सबका आत्मा परब्रह्म कहाजाता है पर अपर परात्पर इन तीन भेदोंवाला है ॥ २० ॥ वही श्रुतिने रुद्र ब्रह्मा और विष्णु कहे हैं इन रुद्रादि तुरीयपर शब्दसे परब्रह्मका ज्ञान होता है ॥२१॥ वेद शास्त्र गुरुके वाक्योंके अभ्यास और शिष्यके हृदयमें पूर्णानंदमय शिव प्रादुर्भाव होते हैं ॥ २२ ॥ वही सब प्राणियोंमें स्थित शंभु मैं हूं इसमें संदेह नहीं सम्पूर्ण तत्त्वसमूहका एक मैंही शिव प्राण हूं ॥ ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर आत्मविद्या शिवाख्य तीन तत्त्वोंका वर्णन करै, हे मुने ! प्राणोस्मि इस अर्थप्रतिपादक वाक्यमें ॥ २४ ॥ पृथ्वी आदि गुणोंके अन्तर्ग्रहणसे पृथ्वीके प्राण मैं हूं वहांसे आरम्भकर त्रिगुणका भी प्राण मैंही हूं ऐसा कहनेसे सब आत्मतत्त्व गृहीत होते हैं ऐसी भावना करै, फिर आत्मविद्या

और शिवतत्त्वका सब प्रकार ग्रहण करके ॥ २५ ॥ मैं सब तत्त्वका प्राण हूं और सर्वात्मक होनेसे सब मैंही हूं संसारी जो कहा है उसका अर्थ कहते हैं जीवरूपसे अंतर प्रविष्ट होनेके कारण अन्तर्यामी होनेसे मैं जीव और संसरणशील हूं ॥ २६ ॥ (यद्भूतका अर्थ कहते हैं) उस जीवात्माका जो अतीत वर्तमान और भविष्य है वह सब मैंही हूं (सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोस्तु) (पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमोनमः) (विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यतः सर्वो ह्येष रुद्रः) ॥ २७ ॥ साक्षात् शिवके मुखसे निकलीहुई श्रुति यह सब विश्वादि रुद्रही है ऐसा कहती है इससे मुझमय होनेसे सब मेराही स्वरूप है सर्वात्मक होनेसे अद्वितीय हूं इस अर्थको कहते हैं ॥ २८ ॥ सबसे उत्कृष्ट अन्तर्यामी आदि गुणोंसे नित्ययुक्त होनेसे स जाति

तत्त्वयोश्चास्म्यहं प्राणस्सर्वस्सर्वात्मको ह्यहम् ॥ जीवस्य चान्तर्यामि त्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्वदा ॥ २६ ॥ यद्भूतं यच्च भव्यं यद्भविष्यत्सर्वमेव च ॥ मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ॥ २७ ॥ श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोद्गता ॥ सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ २८ ॥ स्वस्मात्परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेवहि ॥ सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्व्वमीरितः ॥ २९ ॥ पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेव हि ॥ पशवो मत्प्रसादेन मुक्तामद्भावमाश्रिताः ॥ ३० ॥ योऽसौ सर्वात्मकश्शम्भुस्सोऽहं स शिवोऽस्म्यहम् ॥ इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ॥ ३१ ॥ इतीशश्रुतिवाक्याभ्यामुपदिष्टार्थमादरात् ॥ साक्षाच्छिवैक्यदं पुंसां शिशोर्गुरुरुपादिशेत् ॥ ३२ ॥ आदाय शंखं साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना ॥ शोध्य तत्पुरतस्स्थाप्य चतुरस्रे समर्चिते ॥ ३३ ॥

विजातिभेद शून्य है इसी कारण अद्वितीय हूं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस वाक्यका अर्थ पूर्वही कहदिया है यह छान्दोग्यका वाक्य है जिस प्रकार उस ब्रह्मसे तेज जल आदि उत्पन्न हुए हैं इसीसे यह तज्ज कहाते हैं और प्रतिलोमसे लय होजाते हैं इससे (तज्जलानि शांत उपासीतेति) कहा है ॥ २९ ॥ इस प्रकार यह सब जगत् ब्रह्मरूप कहा है और सब पदार्थरूप होनेसे पूर्ण है पशु भी मेरे प्रसादसे मुक्त हो मेरे भावको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ जो यह है सो मैं हूं इसका अर्थ कहते हैं हे वामदेव ! जो शक्त्यात्मा शिव हैं वह भी मैंही हूं हंस शिव मैं हूं (योसावसौ पुरुषः सोहमस्मीति) यह ईशावास्यकी श्रुति है ॥ ॥ ३१ ॥ इस प्रकार गुरु आदरसे शिष्यके प्रति श्रुतिके अर्थोंका शिवपरत्व उपदेश करै ॥ ३२ ॥ आधारसहित शंखको ले और अस्त्र मंत्रसे युक्त भस्मसे

शुद्धकर उसके आगे चौकोन मंडलमें स्थापन कर ॥ ३३ ॥ ॐ उच्चारण कर गन्धादिसे पूज अस्त्र मंत्र और वस्त्रसे शुद्धकर सुगंधित जलभर ॐ इस मंत्रको पढै ॥ ३४ ॥ फिर ॐकारसे सातबार अभिमंत्रित कर जो किंचित् भी अन्तर करता है उसे भय होता है ॥ ३५ ॥ ऐसा श्रुतिका आशय है इससे भेद न करै, हे शिष्य ! इस कारण तू दृढात्मा और भयरहित हो इस प्रकार शिष्यसे कहै और देवका ध्यान करताहुआ शिष्यको देवरूपसे अर्चन करै ॥ ३६ ॥ षडध्व विधिके मार्गसे शिष्यके आसनको पूज शिवके आसन और शिवमूर्तिकी कल्पना करै ॥ ३७ ॥ शिर मुख हृदय गुह्य पादतक

ओमित्यभ्यर्च्य गन्धाद्यैरस्त्रं वस्त्रोपशोभितम् ॥ वासितं जलमापूर्य सम्पूज्योमिति मंत्रतः ॥ ३४ ॥ सप्तधैवाभिमंत्र्याथ प्रणवेन पुनश्च तम् ॥ यस्त्वन्तरं किंचिदस्ति कुरुते त्यतिभीतिभाक् ॥ ३५ ॥ इत्याह श्रुतिसत्तत्त्वं दृढात्मा गतभीर्भव ॥ इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्यायन्समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ शिष्यासनं सम्प्रपूज्य षडुत्थापनमार्गतः ॥ शिवासनं च संकल्प्य शिवमूर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरः पादावसानकम् ॥ मुण्डवक्त्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि ॥ ३८ ॥ अष्टत्रिंशन्मंत्ररूपाशिशिष्यदेहेऽथ मस्तके ॥ समावाह्य शिवं मुद्राः स्थापनीयाः प्रदर्शयेत् ॥३९॥ ततश्चाङ्गानि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ॥ कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकान् ॥ ४० ॥ पायसान्नञ्च नैवेद्यं समर्प्यो मग्निजायया ॥ गण्डूषाचमनार्घ्यादिधूपदीपादिक क्रमात् ॥ ४१ ॥ नामाष्टकेन सम्पूज्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वैवारुणिस्ततः ॥ ४२ ॥

पंचब्रह्मको स्थितकर मुण्ड और मुख सम्बन्धि प्रणवकी ॥ ३८ ॥ अडतीस ब्रह्मरूप कला शिष्यके देहमें स्थितकर उसके मस्तकमें शिवका आह्वान कर वे कला स्थापन करै मुद्रा दिखाकर ॥ ३९ ॥ षडंगोंका न्यास (सर्वज्ञानीत्यादि मंत्रोंसे करके) इन्हीं मंत्रोंसे आसनपूर्वक षोडश उपचारकी कल्पना करै ॥ ४० ॥ खीरको निवेदन करै (ओमग्निजायया—ओं स्वाहा) इस मन्त्रसे खीर निवेदन कर कुल्ला, आचमन, धूप दीपादि क्रमसे दे ॥ ४१ ॥ आठ नामोंसे पूजन कर वेदपाठी ब्राह्मणोंके सहित (ब्रह्मविदामाप्नोति परम्) इस अध्यायको और (भृगुर्वै वारुणिः) इस अध्यायको जपै ॥ ४२ ॥

(यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्) यहांसे आरम्भ कर (प्रकृतिलीनो यः परः स महेश्वरः) यहांतक जपै, और श्वेतकमल आदिकी बनीहुई॥ ४३॥ मालाको ले शिवके बनायेहुए पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्रमें स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ॥४४॥ ख्याति पूर्णाहुतिके अन्ततक शनैः जपताहुआ मनोहर सुगन्धि आदिसे युक्त जंघापर्यन्त लम्बी उस मालाको कण्ठदेशमें पहरा दे ॥ ४५ ॥ तिलक और सर्वांगमें चन्दनका लेपन विधिपूर्वक शिष्य करै जैसी संप्रदायकी विधिहो॥ ॥४६॥ श्रीपादादिनाम अपनी सम्प्रदायके अनुसार शिष्यका गुरु करै छत्र और पादुका दे दूर्वार्चनका प्रकार ॥ ४७ ॥ अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन

यो देवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः ॥ इत्यंतं तस्य पुरतः कह्लारादिविनिर्मिताम् ॥ ४३ ॥ आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्ष
निर्मिते ॥ शास्त्रे पंचाशिके रूपे सिद्धिस्कन्धं जपेच्छनैः ॥४४॥ ख्यातिः पूर्णोहमित्यंतं सानुकूलेन चेतसा ॥ देशिकस्तस्य शिष्यस्य
कण्ठदेशे समर्पयेत् ॥४५॥ तिलकं चन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः ॥ स्वसम्प्रदायानुगुणं कारयेच्च यथाविधि ॥ ४६ ॥ ततश्च देशिकः
प्रीत्या नामश्रीपादसंज्ञितम् ॥ छत्रञ्च पादुकां दद्याद्दूर्वाकल्पविकल्पनम् ॥४७॥ व्याख्यातृत्वञ्च कर्म्मादिगुर्वासनपरिग्रहम् ॥ अनुगृह्य
गुरुस्तस्मै शिष्याय शिवरूपिणे ॥ ४८ ॥ शिवोहमस्मीति सदा समाधिस्थो भवेति तम् ॥ सम्प्रोच्याथ स्वयं तस्मै नमस्कारं
समाचरेत् ॥ ४९ ॥ सम्प्रदायानुगुण्येन नमस्कुर्युस्तथापरे ॥ शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद्गुरुन्तथा ॥ गुरोरपि गुरुं तस्य
शिष्यांश्च स्वगुरोरपि ॥ ५० ॥ एवं कृतनमस्कारं शिष्यन्दद्याद्गुरुः स्वयम् ॥ सुशीलं यतवाचं तं विनयावनतं स्थितम् ॥ ५१ ॥
अद्य प्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव ॥ परीक्ष्य वत्सरं शिष्यमंगीकुरु विधानतः ॥ ५२ ॥

व्याख्यातृत्व शिवमंत्रोंका कर्मके आरम्भमें गुरुआसनका परिग्रह है गुरु उस शिवरूप शिष्यपर अनुग्रह करके कहै ॥ ४८ ॥ (शिवोहमस्मि) मैं सदाशिव हूं इस प्रकार समाधिमें स्थित सदा ध्यानकर इस प्रकार कहकर उसे स्वयं नमस्कार करै ॥४९॥ अपने संप्रदायके अनुगुण नमस्कार करै शिष्यभी उठकर क्रमसे गुरुको नमस्कार करै ॥ ५० ॥ इस प्रकार नमस्कार करनेपर सुशील वाणी रोकेहुए विनयसे नम्र हो स्थितहुए शिष्यको ॥ ५१ ॥ स्वयं गुरु जप कराकर कहै आजसे तुम प्राणियोंपर अनुग्रह करते रहना इस प्रकार एक वर्ष उसकी परीक्षा कर कहे मेरे वाक्य स्वीकार करते रहना ॥ ५२ ॥

रागादि दोषोंको छोड शिवध्यानमें तत्पर रहो सत्सम्प्रदायके लोगोंका संग करना दूसरोंका नहीं ॥५३॥ प्राणसंकट उदय होनेपरभी शिवपूजन विना किये भोजन मत करना गुरुभक्तिमें स्थित हो सुखी रहना ॥ ५४ ॥ इस प्रकारसे श्रेष्ठ ज्ञानसागर दयालु गुरु अनुकूल चित्तसे समान भावसे अपनेही तुल्य शिष्यको उपदेश दे ॥ ५५ ॥ हे मुनीश्वर ! हे वामदेवजी ! तुम्हारे स्नेहसे यह मैंने परम गुप्त योगपदका प्रकार कहा है ॥५६॥ ऐसा कहकर स्वयं स्कन्दने उनको क्षौर और स्नानविधिका क्रम यतियोंपर कृपाकर परम प्रीतिसे कहना प्रारम्भ किया ॥५७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां एको

रागादिदोषान्संत्यज्यशिवध्यानपरो भव ॥ सत्सम्प्रदायसंसिद्धैस्संगं कुरु न चेतरैः ॥ ५३ ॥ अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुंक्ष्वाप्राण संक्षयम् ॥ गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव ॥ ५४ ॥ इति क्रमाद्गुरुवरो दयालुर्ज्ञानसागरः ॥ सानुकूलेन चित्तेन समं शिष्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥ तव स्नेहान्मयायं वै वामदेव मुनीश्वर ॥ योगपट्टप्रकारस्ते प्रोक्तो गुह्यतरोऽपि हि ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा षण्मुखस्तस्मै क्षौरस्नानविधिक्रमम् ॥ वक्तुमारभत प्रीत्या यतीनां कृपया शुभम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां योगपट्टविधिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ क्षौरस्नानविधिं वक्ष्ये वामदेव महामुने ॥ यस्य सद्यो विधानेन शुद्धिस्स्याद्यतिनः परा ॥ १ ॥ योगपट्टप्रकारस्य विधिम्प्राप्य मुनीश्वर ॥ स शिष्यस्स्याद्व्रती पूर्णः क्षौरकर्म्मोद्यतो भवेत् ॥ २ ॥ गुरुं नत्वा विशेषेण लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः ॥ शिरस्संक्षाल्य चाचम्य सवासाः क्षौरमाचरेत् ॥ ३ ॥ क्षालयेद्वसनं पश्चान्मृदम्भोभिः क्षुरादिकम् ॥ तद्धस्तौ च मृदालिप्य क्षालयेति मृदं ददेत् ॥ ४ ॥

नविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ स्कन्दजी बोले, हे वामदेव ! हे मुने ! अब मैं स्नान और क्षौरकी विधि कहता हूँ कि जिससे यतियोंकी परमशुद्धि होती है ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! योगपदकी विधिको प्राप्त हो जब शिष्य पूर्णव्रती हो क्षौरकर्ममें उद्यत हो ॥ २ ॥ गुरुको नमस्कारकर उनकी आज्ञा ले शिरधोय आचमनकर वस्त्र पहरे क्षौर करावै ॥३॥ उस कपडेको मट्टी और जलसे धुवावै जो नापितके पास होता है हाथोंको मट्टीसे धोनेके निमित्त कहकर उसे मट्टी

दे ॥ ४ ॥ और शिव शिव उच्चारण करताहुआ दोनों हाथोंकी अनामिका और अँगूठेको अभिमंत्रित कर ॥ ५ ॥ नेत्रमूँद अस्त्रमन्त्र पढकर खोले और अस्तुरे कैंची आदिकी स्वच्छता देख अस्त्रमन्त्रसे बारहबार अभिमंत्रित कर प्रोक्षण करै ॥६॥ और प्रणवसे क्षुरेको ग्रहण कराय दहिनी ओरसे क्षौर करावै, पहले कुछ आगेके बाल दूर कराय पीछे और सब दूर करावै ॥७॥ एक पत्ता ले उसमें बालोंको रखकर दूर डाल दे वैसेही पृथ्वीमें न डाल दे मूँछ मुडाय हाथपर हाथरख नखोंको कतरवावै ॥८॥ फिर बेल, पीपल, तुलसी आदिके नीचेकी मट्टी ले बारहबार जलमें गोता लगाय किनारेपर जाय बैठकर ॥९॥

स्थापितम्प्रोक्षितन्तोयैश्शिवं शिवमितीरयन् ॥ स्वनेत्रे पिहिते चैवानामांगुष्ठाभिमंत्रिते ॥ ५ ॥ अस्त्रेणोन्मील्य संदृश्य क्षुरादिक्षौरसाधनम् ॥ अभिमन्त्र्य द्वादशाथ प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥ ६ ॥ क्षुरं गृहीत्वा तारेण दक्षभागे निकृन्तयेत् ॥ केशांश्च कांश्चिदग्रेषु वप्त्वा सर्वं च वापयेत् ॥ ७ ॥ पृथिव्यां पर्णमादाय विक्षिपेन्न भुवः स्थले ॥ श्मश्रूणिहस्तपादस्थनखानि च निकृंतयेत् ॥ ८ ॥ बिल्वाश्वत्थतुलस्यादिस्थाने संगृह्य मृत्तिकाम् ॥ द्विषट्वारं निमज्याप्सु तीरं मत्वोपविश्य च ॥ ९॥ शुद्धे देशे तु संस्थाप्य मृदं त्रेधा विभज्य च ॥ एवम्पुनस्त्रिधा कृत्वा प्रोक्ष्यास्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ॥ १० ॥ तत्रैकां मृदमादाय दापयित्वान्यपाणिना ॥ करौ द्वादशधा लिप्य प्रत्येकंकेन क्षालयेत् ॥ ११ ॥ पुनरेकाम्पादयोश्च मुखे चान्यां करे क्रमात् ॥ संलिप्याक्षाल्य चाम्भोभिः पुनश्च जलमाविशेत् ॥ १२ ॥ अन्यां मृदम्भागयित्वा शिरसि द्वादश क्रमात् ॥ आलिप्य मृदमास्यान्तन्निमज्य च पुनः पुनः ॥ १३ ॥ तीरं गत्वा तु गंडूषान्षोडशाचमनं द्विधा ॥ प्राणानायम्य च पुनः प्रणवं द्व्यष्टसंख्यया ॥ १४ ॥

तीन भागकर उस मृत्तिकाको शुद्धदेशमें रक्खै फिर एकके तीनभाग कर उसे प्रोक्षण कर अस्त्रमंत्रसे अभिमंत्रित करै ॥१०॥ फिर उसमेंसे एकभाग मृत्तिका ले हाथसे तोड उसे हाथोंमें बारहबार मल जलसे धोवै ॥ ११ ॥ फिर एकसे पैर एक डेलीसे मुख इस क्रमसे धोवै इस प्रकार मृत्तिका लेप जलसे धो फिर जलमें प्रवेश करै ॥ १२ ॥ फिरदूसरी मृत्तिकाका भाग करके बारहबार शिरसे मुख पर्यन्त लपेट बारम्बार गोता लगाकर ॥ १३ ॥ किनारेपर जाय

सोलह कुल्ले करै, और दोबार आचमनकर ॐकारपूर्वक सोलह प्राणायाम करै ॥१४॥ फिर शेष मृत्तिकाको भी ले उसके तीनभाग कर उसमेंसे एकभाग
ले कटिशौच और पादशौच करके दो आचमन कर ॥१५॥ ॐकारसहित सोलह प्राणायाम मौन होकर करै फिर दूसरे भागको ले ॐकारपूर्वक जंघामें
लगाय तीनबार प्रणवसे प्रोक्षण कर ॥ १६ ॥ सातबार अभिमन्त्रित करै और अभी रक्खीहुई पहली मृत्तिकासे अपना हाथ तीनबार मांजकर अपनी
कक्षामें सूर्यकी पवित्र मूर्त्ति देख ॥१७॥ दहने हाथसे बाईं कक्षा और बायेंसे दहनी कक्षाको दृढमतिवाला शिष्य हाथमें मट्टी ले जैसे हो वैसे मांजै ॥ १८ ॥

मृदमन्यां पुनस्त्रेधा विभज्य च तदेकया ॥ कटिशौचं पादशौचं विधायाचम्य च द्विधा ॥ १५ ॥ प्रणवेनाथ षोडश प्राणानायम्य
वाग्यतः ॥ पुनरन्यां स्वोरुदेशे त्रिधा विन्यस्य चोमिति ॥ १६ ॥ प्रोक्ष्याभिमंत्रयेत्सप्त स्वपाण्योस्तलमेकधा ॥ त्रिधालिप्याथ
सम्पश्येत्सूर्य्यमूर्तिं च पावनीम् ॥ १७ ॥ स्वकक्षयोः समालिप्य व्यत्यस्ताभ्यामथान्यया ॥ पाणिभ्याञ्च मृदा शिष्यस्सुमतिर्दृढ
मानसः ॥ १८ ॥ गृहीत्वान्यां मृदं शुद्धां तथासौ गुरुभक्तिमान् ॥ शिर आरभ्य पादान्तं विलिप्यादित्यदृष्टया ॥ १९ ॥ समुत्थाय
ततोऽसौ वै दण्डमादाय भूतले ॥ स्वगुरुं मन्त्रदम्भक्त्या संस्मरेज्ज्ञाननिष्ठया ॥ २० ॥ ततस्साम्बं महेशानं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥
संस्मरेद्भक्तितश्शिष्यः सर्वैश्वर्यपतिं शिवम् ॥ २१ ॥ त्रिवारम्प्रणमेत्प्रीत्या साष्टांगं च गुरुं शिवम् ॥ पञ्चाङ्गेनैकवारञ्च समुत्थाय
च वन्दयेत् ॥ २२ ॥ तीर्थं प्रविश्य तन्मध्ये निमज्योन्मज्य ताम्मृदम् ॥ स्कन्धे संस्थाप्य पूर्वोक्तप्रकारेण विलेपयेत् ॥ २३ ॥

फिर वह गुरुभक्तिवाला शिष्य दूसरी शुद्ध मृत्तिकाको ले उस तीसरे भागकी मृत्तिकासे सूर्यके सन्मुख शिरसे चरणोंतक मट्टी मलकर ॥१९॥ तीसरे भागकी
मट्टीको ले भूतलमेंसे उठ दंडले अपने मंत्रके देनेवाले गुरुको ज्ञाननिष्ठासे स्मरण कर ॥२०॥ पीछे चन्द्रशेखर महेशान सब ऐश्वर्यके पति महेशान शंकरको
पार्वती सहित भक्तिमान् शिष्य स्मरण करै ॥२१॥ फिर गुरु शिवका स्मरणकर साष्टांग तीन प्रणाम करै, शिर आदि पाँच अंगोंसे वा एक अंगसे फिर उठकर
प्रणाम करै ॥ २२ ॥ फिर तीर्थमें प्रवेश कर बारम्बार गोते लगाय उस मट्टीको कंधेपर रखकर पूर्व कहे अनुसार फिर शरीरमें लपेटे ॥ २३ ॥

उसमेंकी शेष बचीहुई मट्टीको ल जलम प्रवेशकर उसे मिलाकर सर्वांगमें लगावै॥ २४॥ फिर तीनबार ओम् कहकर शिवके चरणकमल स्मरण करताहुआ स्नान करै, कारण कि शिव संसारसागरसे तारनेवाले हैं ॥ २५॥ फिर आंखमुद्रासे अभिषेक कर बारह बार उच्चारणकर किनारेपर आय पहलेके विभाग किये तीसरे भागकी मट्टीसे हाथ पैर शुद्धकर फिर हाथ धो आचमन कर ओंस्मरण करता विरजा भस्म मिलेहुए जलको ओंकारसे अभिषेक करै, फिर अंगोंका उपमार्जन कर भस्मस्नान करने उपरान्त ॥ २६ ॥ हे मुने ! यथोक्तविधिके अनुसार सावधान होकर सर्वांगमें त्रिपुण्ड्र लगाय ॥ २७ ॥ फिर शुद्धमन हो मध्याह्न

तत्रावशिष्टं संगृह्य जलमध्ये प्रविश्य च ॥ विलोड्य सम्यक् तां तत्र सवागषु विलिप्य च ॥ २४ ॥ त्रिवारमोमिति प्रोच्य शिवपादाम्बुजं स्मरन् ॥ संसाराम्बुधिसंतारं सदा यद्विधितो हि सः ॥ २५ ॥ अभिषिच्योमिति जलं विरजाभस्मलोलितम् ॥ अंगोपमार्ज्जनं कृत्वा सुस्नायाद्भस्मना ततः ॥ २६ ॥ त्रिपुण्ड्रं च विधायाथ यथोक्तविधिना शुभम् ॥ यथोक्तांगेषु सर्वेषु सावधानतया मुने ॥ २७ ॥ ततश्शुद्धमना भूत्वा कुर्य्यान्मध्यदिनक्रियाः ॥ महेश्वरं नमस्कृत्य गुरूंस्तीर्थादिकानि च ॥ २८ ॥ सम्पूजयेन्महेशानं भक्त्या परमया मुने ॥ साम्बिकं ज्ञानदातारं पातारं त्रिभवस्य वै ॥ २९ ॥ ततोसौ दृढचेतस्को यतिः स्ववृषसंस्थितः ॥ भिक्षार्थम्प्रव्रजेच्छुद्धो विप्रवर्गेषु साधुषु ॥ ३० ॥ ततस्तत्र च शुद्धात्मा पञ्चधा परिकल्पितम् ॥ भैक्ष्यं यथोचित्तं कुर्य्याद्दूषितान्नं विवर्ज्जयेत् ॥ ३१ ॥ शौचं स्नानं तथा भिक्षां नित्यमेकान्तसेवनम् ॥ भिक्षोश्चत्वारि कर्म्माणि पञ्चमं नैव विद्यते ॥ ३२ ॥ अलाबुं वेणुपात्रं च दारवम्मृण्मयन्तथा ॥ भिक्षोश्चत्त्वारि पात्राणि पञ्चमन्नैव विद्यते ॥ ३३ ॥

समयकी क्रिया करै महेश्वर गुरु और तीर्थादिको नमस्कार करके ॥ २८ ॥ हे मुने ! परमभक्तिसे महेश्वरको पूजै यह पार्वती सहित ज्ञानके देनेवाले और तीनोंलोकके रक्षक हैं ॥२९॥ तब यह दृढचित्त यती अपने धर्ममें स्थित हुआ ब्राह्मण साधु जनोंमें भिक्षाके लिये गमन करै ॥ ३० ॥ वहां यह शुद्धात्मा पाँचरूपसे कल्पित भोजन करै, और पांच प्रकारसे कल्पित मंडलमें भोजन करै, दूषित अन्न न खाय ॥ ३१ ॥ करणत्रयसे पवित्रित स्नान तथा भिक्षा सदा एकान्तमें रहना ये चार कर्म भिक्षुका कहै पांचवां नहींहै ॥ ३२॥ अलाबु (तोंबी) बांसपात्र वा काठ वा मट्टीका पात्र यह चार प्रकारके पात्र हैं इसमें कोई

पात्र रक्खै, पांचवां पात्र नहीं है ॥३३॥ ताम्बूल खाना धातुका पात्ररखना वीर्यसेचन श्वेत वस्त्र धारण दिनमें सोना रातको भोजन यह छः कर्म यतियोंको
वर्जित हैं ॥ ३४ ॥ साक्षर न होनेसे यति राक्षसही है इससे यति कभी विपरीत आचरण न करै ॥३५॥ यति शुद्धिके लिये क्षौर स्नान यत्नसे करै मनसे
सदा शुद्ध सनातन शिवका स्मरण करै ॥३६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे आपके स्नेहके कारण यह मैंने क्षौर और स्नानकी विधि कही अब क्या सुननेकी
इच्छा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥ श्रीवामदेवजी बोले, जो यति मुक्तहैं उनका दाहकर्म

ताम्बूलं तैजसम्पात्रं रेतस्सेकं सिताम्बरम् ॥ दिवास्वापो हि नक्तान्नं यतीनां षड् विवर्जिताः ॥ ३४ ॥ साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्त
इति स्मृताः ॥ तस्माद्वै विपरीतं च कर्म्म नैवाचरेद्यतिः ॥ ३५ ॥ यतिः प्रयत्नतः कुर्यात्क्षौरस्नानं च शुद्धये ॥ संस्मरन्मनसा
शुद्धं परं ब्रह्म सदाशिवम् ॥ ३६ ॥ इत्येवम्मुनिशार्दूल तव स्नेहान्मयाखिलः ॥ क्षौरस्नानविधिः प्रोक्तः किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां क्षौरस्नानविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ वामदेव उवाच ॥
ये मुक्ता यतयस्तेषां दाहकर्म्म न विद्यते ॥ मृते शरीरे खननं तद्देहस्य श्रुतं मया ॥१॥ तत्कर्माचक्ष्व सुप्रीत्या कार्तिकेय गुरो मम ॥
त्वत्तोन्यो न हि संवक्ता त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥ पूर्णाहंभावमाश्रित्य ये मुक्ता देहपंजरात् ॥ ये तूपासनमार्गेण देहमुक्ताः परं
गताः ॥ ३ ॥ तेषां गतिविशेषञ्च भगवञ्छंकरात्मज ॥ वक्तुमर्हसि सुप्रीत्या मां विचार्य्य स्वशिष्यतः ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥
मुनिविज्ञप्तिमाकर्ण्य शक्तिपुत्रस्सुरारिहा ॥ प्राहात्यन्तरहस्यं तद्ब्रगुणा श्रुतमीश्वरात् ॥ ५ ॥

नहीं है मैंने सुना है केवल उनको शुद्धभूमिमें स्थापन कर देतेहैं ॥ १ ॥ हे गुरो ! इसका कारण क्या है सो आप प्रेमसे कहिये तीन लोकमें आपकी समान
वक्ता नहीं है ॥२॥ जो सर्वज्ञतासे परमेश्वरको प्राप्त हो देहपंजरसे मुक्त होगयेहैं और जो उपासनाके मार्गसे मुक्त हो परमपदको गयेहैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् !
विशेषकर आप प्रेमसे मुझे अपना शिष्य जान वह सब कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, असुरनिकन्दन स्कन्दजी यह उनके वचन सुन शिवजीसे सुनेहुए उस

परमरहस्यको मुनिसे कहने लगे ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले, हे मुने ! यह बडी गुह्य बात है ऋभुनाम शिव योगी मुनिके पूँछनेपर पिनाकपाणी सर्वज्ञ साक्षात् शिवजीने उनसे जो कथा वर्णन की है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही हम तुमसे कहतेहैं यह ज्ञान जिस किसीको देना नहीं चाहिये, हां शान्तचित्त शिवभक्तिसे युक्त शिष्यको देना चाहिये ॥ ७ ॥ जो कोई यति समाधिमें स्थितहो शिवभावसे देहको भोगताहुआ महाधैर्यवान् हो वही परिपूर्ण शिव होताहै ॥ ८ ॥ जो अधीरचित्तहो समाधिको नहीं जान्ता है उसके लिये उपाय कहताहूं सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ तीन पदार्थका ज्ञान अर्थात् ज्ञान ज्ञेय ज्ञातृ लक्षण

॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ इदमेव मुने गुह्यं भृगवे शिवयोगिने ॥ उक्तं भगवता सक्षात्सर्वज्ञेन पिनाकिना ॥ ६ ॥ वक्ष्ये तदद्य ते ब्रह्मन्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ देयं शिष्याय शान्ताय शिवभक्तियुताय वै ॥ ७ ॥ समाधिस्थो यतिः कश्चिच्छिवभावेन देहभुक् ॥ अस्ति चेत्स महाधीरः परिपूर्णश्शिवो भवेत् ॥ ८ ॥ अधैर्य्यचित्तो यः कश्चित्समाधिं न च विंदति ॥ तदुपायम्प्रवक्ष्यामि सावधानतया शृणु ॥ ९ ॥ त्रिपदार्थपरिज्ञानं वेदान्तागमवाक्यजम् ॥ श्रुत्वा गुरोर्मुखाद्योगमभ्यसेत्स यमादिकम् ॥ १० ॥ तत्कुर्वन्स यतिस्सम्यक्छिवध्यानपरो भवेत् ॥ नियमेन मुने नित्यं प्रणवासक्तमानसः ॥ ११ ॥ देहदौर्बल्यवशतो यद्यधैर्य्यधरो यतिः ॥ अकामश्च शिवं स्मृत्वा स जीर्णां स्वां तनुं त्यजेत् ॥ १२ ॥ सदाशिवानुग्रहतो नंदिना प्रेरिता मुने ॥ आतिवाहिकरूपिण्यो देवताः पंच विश्रुताः ॥ ॥ १३ ॥ आत्महन्ताकृतिः काचिज्ज्योतिःपुंजवपुष्मती ॥ अह्नोऽभिमानिनी काचिच्छुक्लपक्षाभिमानिनी ॥ १४ ॥ उत्तरायणरूपा च पंचानुग्रहतत्परा ॥ धूम्रा तमस्विनी रात्रिः कृष्णपक्षाभिमानिनी ॥ १५ ॥

त्रिपुटीके पदार्थके ज्ञान, वेदान्त शास्त्रोंके वाक्योंसे और गुरूके मुखसे श्रवणकर यम नियमके अभ्यास करता हुआ ॥ १० ॥ यम नियम करतेहुए शिव ध्यानमें परायण हो हे मुने ! नित्य प्रणवमें मन लगावै ॥ ११ ॥ देहकी दुर्बलताके वशसे कदाचित् अधीर हो अकाम शिवको स्मरण करताहुआ यति यदि प्राण त्यागन करदे ॥ १२ ॥ वह सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दिसे प्रेरित हो अतिवाहिकप्राण निकलनेपर पुण्यात्मा जीवोंको अर्चिरादि मार्गसे परलोकमें लेजानेवाले पाँच देवता ॥ १३ ॥ अग्निके और तेजोमात्राके अभिमानी कोई दिनके अभिमानी कोई शुक्लपक्षके अभिमानी ॥ १४ ॥ उत्तरायणके अभिमानी

यह पाँचौ अनुग्रहमें तत्परहो धूम्रा तपस्विनी रात्रि कृष्णपक्षके अभिमानी पाँच देवता हैं ॥ १५ ॥ दक्षिणायन रूपकरके पांच देवता प्रसिद्धहैं हे महामुने !
सावधानहो उनकी वृत्ति सुनो ॥ १६ ॥ वे पाँचों देवता दक्षिणायन रूप कर्मके अनुष्ठानमें तत्पर प्राणियोंको लेकर उसके पुण्यसे स्वर्गको जातेहैं ॥१७॥
और पुण्यक्षय होनेपर फिर मनुष्यलोकको प्राप्त हो पूर्वजन्मके समान जन्म लेते हैं ॥ १८ ॥ वहीं पांचों देवता भूतलसे आरम्भ कर पांच प्रकारसे मार्गको
विभक्तकर अग्नि आदिके क्रमसे ग्रहणकर यतिको सदाशिवके स्थानको लेजाकर ॥१९॥ शिवके चरणोंको प्रणामकर उसी कर्ममें लगायेहुए वे यति अनुग्रह

दक्षिणायनरूपेति विश्रुताः पंच देवताः ॥ तासां वृत्तिं शृणुष्वाद्य वामदेव महामुने ॥ १६ ॥ ताः पंचदेवता जीवान्कर्मानुष्ठानतत्प
रान् ॥ गृहीत्वा त्रिदिवं यांति तत्पुण्यवशतो मुने ॥ १७ ॥ भुक्त्वा भोगान्यथोक्तांश्च ते तत्पुण्यक्षये पुनः ॥ मानुषं लोकमासाद्य
भजते जन्म पूर्ववत् ॥ १८ ॥ ताः पुनः पंचधा मार्गं विभज्यारभ्य भूतलम् ॥ अग्न्यादिक्रमतां गृह्य सदाशिवपदं यतिः ॥ १९ ॥
निनीय वन्द्यचरणौ देवदेवस्य पृष्ठतः ॥ तिष्ठंत्यनुग्रहाकाराः कर्म्मण्येव प्रयोजिताः ॥ २० ॥ समागतमभिप्रेक्ष्य देवदेवस्सदा
शिवः ॥ विरक्तश्चेन्महामन्त्रतात्पर्यमुपदिश्य च ॥ २१ ॥ स्वसाम्यं च वपुर्दत्ते गाणपत्येभिषिच्य च ॥ अनुगृह्णाति सर्वेशश्शं
करः सर्वनायकः ॥ २२ ॥ मृगटंकत्रिशूलाग्र्यवरदानविभूषितम् ॥ त्रिनेत्रं चन्द्रशकलं गंगोल्लासिजटाधरम् ॥ २३ ॥ अधिष्ठितवि
मानाग्र्यं सर्वदं सर्वकामदम् ॥ इति शाखाविरक्तश्चेद्रुद्रकन्यासमावृतम् ॥ २४ ॥ नृत्यगीतमृदंगादिवाद्यघोषमनोहरम् ॥ दिव्याम्बर
स्रगालेपभूषणैरपि भूषितम् ॥२५॥ दिव्यामृतघटैः पूर्णं दिव्याम्भःपरिपूरितम् ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ २६ ॥

करनेवाले शिवमें स्थित होतेहैं और वहां स्थित होतेहैं ॥२०॥ देवदेव सदाशिव उस यतिको आयाहुआ देख जो विरक्त हुआ तो उसे महामन्त्रका उपदेश
कर ॥ २१ ॥ उसको गणपतिके पदका अभिषेक कर अपनी साम्यता देते हैं और सबके अधिपति शंकर अनुग्रह करतेहैं ॥ २२ ॥ मृगटंक श्रेष्ठ त्रिशूल
वरदानसे विभूषित तीन नेत्र चन्द्रखण्डसे शोभित गंगासे युक्त जटाधारी ॥ २३ ॥ सब कामके देनेहारे श्रेष्ठ विमानको उसके निमित्त देते हैं और जो ऐसा
नहीं है उसको रुद्रकन्यासे युक्त ॥२४॥ नृत्य गीत मृदंग आदि बाजोंसे मनोहर दिव्य वस्त्रमाला और आलेपन भूषणोंसे भूषित ॥ २५ ॥ दिव्य अमृतके

घडोंसे भरा सुन्दर पलंगसे शोभित करोड सूर्यके समान प्रकाश करोड चन्द्रमाके समान शीतल ॥ २६ ॥ मनके समान वेगवान् सब स्थानमें जानेवाला विमान देकर अनुग्रह करते हैं, उसके भी भोगोंके भोगनेपर भोगकौतूहलके क्षय होजानेपर ॥ २७ ॥ यतियोंको दुर्गम अपनी महातीव्र प्रकृति आदि (मूलप्रकृति महदादितत्त्व) का निपातन करके महासंसारके नाश करनेकी इच्छावाले प्रलय अग्निके समान प्रभावाले महेश्वर ॥ २८ ॥ अनुग्रह करके महामन्त्रके तात्पर्यको जो कि, पूर्ण अहंभावनारूप शिव मैं हूं ऐसी निश्चल समाधिका ॥ २९ ॥ अनुग्रह करके जो अपनी अमृतरूप सूर्यादि जगत्प्रकाशनादि

मनोवेगं सर्वगं च विमानमनुगृह्य च ॥ भुक्तभोगस्य तस्यापि भोगकौतूहलक्षये ॥ २७ ॥ निपात्य शक्तिं तीव्रतरां प्रकृत्या द्युति दुर्गमाम् ॥ कान्तारं दग्धुकामान्ताम्प्रलयानलसुप्रभाम् ॥ २८ ॥ अनुगृह्य महामंत्रतात्पर्य्यम्परमेश्वरः ॥ पूर्णोहं भावनारूपः शंभुरस्मीति निश्चलम् ॥ २९ ॥ अनुगृह्य समाधिश्च स्वदास्यस्पन्दरूपिणीः ॥ रव्यादिकर्म्मसामर्थ्यरूपाः सिद्धीरनर्गलाः ॥ ३० ॥ आयुः क्षये पद्मयोनेः पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ मुक्तिं च परमां तस्मै प्रयच्छति जगद्गुरुः ॥ ३१ ॥ एतदेव पदं तस्मात्सर्वैश्वर्य्यं समष्टिमत् ॥ मुक्तिघंटापथं चेति वेदांतानां विनिश्चयः ॥ ३२ ॥ मुमूर्षोस्तस्य मन्दस्य यतेस्सत्सम्प्रदायिनः ॥ यतयः सानुकूलत्वात्तिष्ठेयुः परितस्तदा ॥ ३३ ॥ ततस्सर्वे च ते तत्र प्रणवादीन्यनुक्रमात् ॥ उपदिश्य च वाक्यानि तात्पर्य्यं च समाहिताः ॥ ३४ ॥ वर्णयेयुः स्फुटं प्रीत्या शिवं संस्मारयन्सदा ॥ निर्गुणं परमज्योतिः प्रणम्य विलयावधि ॥ ३५ ॥ एतेषां सममेवात्र संस्कारक्रम उच्यते ॥ असंस्कृतशरीराणां दौर्गत्यं नैव जायते ॥ ३६ ॥

शक्तिरूप सिद्धि है ॥ ३० ॥ और ब्रह्माकी आयुके क्षय होनेपर भी पुनरावृत्तिसे रहित परममुक्ति उसको जगत्के गुरु प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥ यही पद है इसी कारणसे सम्पूर्ण समष्टि मान ऐश्वर्य मुक्तिका मार्ग है यही वेदान्तोंका निश्चय है ॥ ३२ ॥ जिस समय यतिके प्राणत्यागका समय हो और वह शिथिल हो उस समय श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले यति उसके चारों ओर स्थित हो ॥ ३३ ॥ क्रमसे प्रणवादि महावाक्योंके तात्पर्यको सावधान हो उपदेश करैं ॥ ३४ ॥ जबतक उसके प्राण विहीन हों तबतक महावाक्योंको ही वर्णन करना चाहिये शिवका प्रेमसे स्मरण कराना चाहिये ॥ ३५ ॥ इन सबका यहाँ संस्कार वर्णन

करते हैं उक्त लक्षणवाले यतियोंकी संस्कारके अभावमें भी दुर्गति नहीं होती है ॥ ३६ ॥ कारण कि वह सब कर्म छोडकर शिवपरायण होते हैं उन असंस्कृत शरीरवाले यतियोंके देहको दूषण करनेवाले राजाओंका राज्य नष्ट होजाता है ॥ ३७ ॥ और उस ग्रामके रहनेवाले भी महादुःखी होते हैं इन दोषोंके शान्त करनेका विधान कहते हैं ॥ ३८ ॥ (नम इरिण्याय च) यहाँसे आरम्भकर (नम आमीवकेभ्यः) यहांतक जपताहुआ ॥ ३९ ॥ जपके अन्तमें ॐकार उच्चारणकर देवतात्मक यतिके निमित्त कियाहुआ गर्त मट्टीसे पूर्ण करै, हे मुनीश्वर ! तब उस दोषकी शान्ति होती है ॥ ४० ॥ उस यतीके शरीरको

संन्यस्य सर्वकर्म्माणि शिवाश्रयपरा यतः ॥ देहं दूषयतस्तेषां राज्ञो राष्ट्रं च नश्यति ॥ ३७ ॥ तद्ग्रामवासिनस्तेऽपि भवेयुर्भृशदुःखिनः ॥ तद्दोषपरिहाराय विधानं चैवमुच्यते ॥ ३८ ॥ स तु नम इरिण्याय चेत्यारभ्य विनम्रधीः ॥ नम आमीवकेभ्यान्तं तत्काले प्रजपेन्मनुम् ॥ ३९ ॥ ॐमित्यन्ते जपन्देवयजनम्पूरयेत्ततः ॥ ततश्शान्तिर्भवेत्तस्य दोषस्य हि मुनीश्वर ॥ ४० ॥ पुत्रादयो यथा न्यायं कुर्य्युस्संस्कारमुत्तमम् ॥ वच्मि तत्कृपया विप्र सावधानतया शृणु ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्य स्नाप्य शुद्धोदैरभ्यर्च्य कुसुमादिभिः ॥ श्रीरुद्रचमकाभ्यां च रुद्रसूक्तेन च क्रमात् ॥ ४२ ॥ शंखं च पुरतः स्थाप्य तज्जलेनाभिषिच्य च ॥ पुष्पं निधाय शिरसि प्रणवेन प्रमार्जयेत् ॥ ४३ ॥ कौपीनादीनि संत्यज्य पुनरन्यानि धारयेत् ॥ भस्मनोद्धूलयेत्तस्य सर्वांगं विधिना ततः ॥ ४४ ॥ त्रिपुण्ड्रं च विधानेन तिलकं चन्दनेन च ॥ विरच्य पुष्पैर्मालाभिरलंकुर्य्यात्कलेवरम् ॥ ४५ ॥ उरःकण्ठशिरोबाहुप्रकोष्ठश्रुतिषु क्रमात् ॥ रुद्राक्षमालाभरणैरलंकुर्य्याच्च मंत्रतः ॥ ४६ ॥

सुगन्धित द्रव्योंसे मलकर पुत्रादिक उसका विधिपूर्वक संस्कार करैं उसकी विधि मैं कृपाकर कहता हूँ मन लगाकर सुनो ॥ ४१ ॥ उसकी पूजा और स्नान कराय शुद्धजल और पुष्पोंसे उसको पूजितकर रुद्रचमकाध्याय और रुद्रसूक्तके क्रमसे ॥ ४२ ॥ शंखको आगे स्थापन कर उसीके जलसे अभिषेक कर शिरपर फूल धर ओंकारसे मार्जन करै ॥ ४३ ॥ पुरानी कौपीन त्याग नई धारण कराकर कही विधिके अनुसार सर्वांगमें भस्म लगाय ॥ ४४ ॥ विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र और चन्दनसे तिलक लगावै पुष्पोंकी माला बनाकर उसके शरीरको अलंकृत कर ॥ ४५ ॥ छाती कण्ठ शिर बाहु और प्रकोष्ठ तथा कानोंमें

क्रमसे रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रपूर्वक पहराकर ॥४६॥ धूप दे उसको उठाय शिक्य (छींका वा डोली) के ऊपर रक्खै, ईशानादि पंच ब्रह्मात्मक रथमें स्थापन कर ॥ ४७ ॥ उस रथको पूज्य ओमादि पंचब्रह्मके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर सुगंधित पुष्प औरँ मालासे इसको सब प्रकार अलंकृत कर ॥ ॥ ४८ ॥ नृत्य और बाजे तथा ब्राह्मणोंके वेदपाठसे युक्त ग्रामकी प्रदक्षिणाकर उसे लेकर चलै ॥ ४९ ॥ ग्रामके पूर्व और उत्तरमें पवित्र वृक्षोंके निकट वे सब यति ॥ ५० ॥ उस देवयजन स्थानको दण्डमात्र प्रमाणसे खोदैं, ओंकार और व्याहृतिसे उस स्थानको प्रोक्षण कर ॥ ५१ ॥ क्रमसे शमीके पत्ते

सुधूपितं समुत्थाप्य शिक्योपरि निधाय च ॥ पंचब्रह्ममये रम्ये रथे संस्थापयेत्तनुम् ॥ ४७ ॥ ॐमाद्यैः पंचभिर्ब्रह्ममंत्रैस्सद्यादिभिः क्रमात् ॥ सुगंधकुसुमैर्माल्यैरलंकुर्य्याद्रथं च तम् ॥ ४८ ॥ नृत्यवाद्यैर्ब्राह्मणानां वेदघोषैश्च सर्वतः ॥ ग्रामम्प्रदक्षिणीकृत्य गच्छेत्प्रेतं तमुद्वहन् ॥ ४९ ॥ ततस्ते यतिनः सर्वे तथा प्राच्यामथापि वा ॥ उदीच्याम्पुण्यदेशे तु पुण्यवृक्षसमीपतः ॥ ५० ॥ खनित्वा देवयजनं दण्डमात्रप्रमाणतः ॥ प्रणवव्याहृतिभ्यां च प्रोक्ष्य चास्तीर्य्य च क्रमात् ॥ ५१ ॥ शमीपत्रैश्च कुसुमैरुत्तराग्रं तदूर्द्धतः ॥ आस्तीर्य दर्भांस्तत्पीठं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ५२ ॥ प्रणवेन ब्रह्मभिश्च पञ्चगव्येन तां तनुम् ॥ प्रोक्ष्याभिषिच्य रौद्रेण सूक्तेन प्रणवेन च ॥ ५३ ॥ शंखतोयेनाभिषिच्य मूर्ध्नि पुष्पं विनिःक्षिपेत् ॥ तद्गतस्यानुकूलोऽसौ शिवस्मरणतत्परः ॥ ५४ ॥ ॐमित्यथ समुद्धृत्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ गर्ते योगासने स्थाप्य प्राङ्मुखं स्याद्यथा तथा ॥ ५५ ॥ गंधपुष्पैरलंकृत्वा धूपगुग्गुलुना ततः ॥ विष्णो हव्यमिति प्रोच्य रक्षस्वेति वदन्ददेत् ॥ ५६ ॥

उत्तरकी ओर अग्रभाग कर बिछावैं, फिर कुशा बिछाय उसपर आसन मृगचर्मादि विछा कर फिर कुश बिछावै ॥५२॥ ओंकारयुक्त पंचब्रह्मके मंत्रोंसे पवित्रकर पंचगव्यसे उसके शरीरको प्रोक्षण कर रुद्रसूक्त और ॐकारसे अभिषेक कर ॥ ५३ ॥ पीछे शंखका जल छिडक शिरपर फूल रक्खै शिवका स्मरण करताहुआ अनुकूलतासे कार्य करै ॥ ५४ ॥ फिर ॐकारउच्चारणपूर्वक स्वस्तिवाचन कर उसे उठाय योगासनयुक्त स्थित उस यतिको जैसे बनै वैसे पूर्वकी ओर मुखकर बैठावै ॥ ५५ ॥ गन्ध पुष्प धूप और गूगलसे अलंकृत करै (विष्णो हव्यं रक्षस्व) यह कह उसे गर्तमें स्थापन कर ॥ ५६ ॥

दक्षिण हाथमें दंड वाममें कमंडलु दे ‘प्रजापतेनेति’ इस मंत्रसे कमंडलु ॥५७॥ जल सहित वाम हाथमें दे और (ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं) इस मंत्रसे मस्तकको छूकर रुद्रसूक्तका जप भौंके मध्यमें स्पर्श करता हुआ करै॥५८॥ फिर (मानोमहान्त) इत्यादि चार मन्त्रोंसे मस्तकको नारियलसे भेदकर गर्तको पूर्ण करै ॥५९॥ और पाँच ब्रह्म मंत्रोंसे उस स्थलको छूकर उन मंत्रोंका जप करै ‘यादेवानां’ यहांसे प्रारंभकर (यःपरः स महेश्वरः) ॥ ६० ॥ महादेव संसारके भेषज शिव सर्वज्ञ अपराधीन सबके अनुग्रह करनेवाले परमदेवको उमासहित जपकर ॥ ६१ ॥ एक हाथ चौडे और दो हाथ लम्बे मट्टीके आसनको बनाकर

दण्डं दक्षिणहस्ते तु वामे दद्यात्कमण्डलुम् ॥ प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योमंत्रेण सोदकम् ॥५७॥ ब्रह्मजज्ञानम्प्रथममितिमंत्रेण मस्तके ॥
स्पृशञ्जप्त्वा रुद्रसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये स्पृशञ्जपेत् ॥ ५८ ॥ मानोमहान्तमित्यादिचतुर्भिर्मस्तकन्ततः ॥ नालिकेरेण निर्भिद्यादवटं पूरयेत्ततः
॥ ५९ ॥ पंचभिर्ब्रह्मभिस्स्पृष्ट्वा जपेत्स्थलमनन्यधीः ॥ यो देवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः ॥ ६० ॥ इति जप्त्वा महादेवं सांबं
संसारभेषजम् ॥ सर्वज्ञमपराधीनं सर्वानुग्रहकारकम् ॥ ६१ ॥ एकारत्निसमुत्सेधमरत्निद्वयविस्तृतम् ॥ मृदा पीठं प्रकल्प्याथ गोमये
नोपलेपयेत् ॥ ६२ ॥ चतुरस्रं च तन्मध्ये गंधाक्षतसमन्वितैः ॥ सुगंधकुसुमैर्बिल्वैस्तुलस्या च समर्चयेत् ॥ ६३ ॥ प्रणवेन ततो
दद्याद्धूपदीपौ पयो हविः ॥ दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्य्याच्च पंचधा ॥ ६४ ॥ प्रणवं द्वादशावृत्त्या संजप्य प्रणमेत्ततः ॥ दिग्वि
दिक्क्रमतो दद्याद्ब्रह्मार्घ्यम्प्रणवेन च ॥ ६५ ॥ एवं दशाहपर्य्यन्तं विधिस्ते समुदाहृतः ॥ यतीनां मुनिवर्य्यार्थैकादशाहविधिं शृणु ॥
॥ ६६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां यतीनाम्मरणानन्तरदशाहपर्य्यंतकृत्यवर्णनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

गोबरसे लीपै ॥ ६२ ॥ उसके मध्यमें चौकोन गंध अक्षतसे युक्त सुगन्धित पुष्प बेल और तुलसीके पत्तोंसे पूजन करै ॥ ६३ ॥ पीछे ॐकारसे धूप दीप दूध हवि दे इस प्रकार हवि दे प्रदक्षिणाकर पांच विधिसे नमस्कार कर ॥ ६४ ॥ बारहबार ॐकारको जप प्रणाम करै, दिशा विदिशाओंमें क्रमसे प्रणव उच्चारण कर ब्रह्मार्घ दे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार दश दिन करता रहै, अब मुनिश्रेष्ठ यतियोंकी एकादशाह विधिको सुनो ॥६६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा टीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

स्कन्दजी बोले, फिर ग्यारहवें दिनके प्राप्त होनेमें जो विधि कही है हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपके स्नेहसे कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ वेदीका सम्मार्जन करके उस स्थानको लीप पुण्याहवाचन करै और इस स्थानको प्रोक्षण कर पश्चिमकी ओरसे प्रारंभ कर पांच मंडल पूर्वतक बनावै ॥ २ ॥ उत्तरकी ओर मुख करके मंडल बनावै, एक वितस्त लम्बे चौडे बनावै उनके मध्यका चौकोन हो ॥ ३ ॥ शेष मंडल बिंदुके आकार त्रिकोण षट्कोण और गोलक्रमसे बनावै, और पूजाके मार्गसे शंख आगे स्थापन कर ॥ ४ ॥ प्राणायाम और संकल्प करके देवताओंके ईश्वर पूर्वोक्त पांच देवताओंका पूजन करै; वे अतिवाहिक नामवाले पाँच देवता पूर्वमें कहे हैं ॥ ५ ॥ फिर उत्तरके दर्भोंको छोडकर जलस्पर्श करै, पश्चिमसे आरम्भ कर षट्उत्थानके विधानसे ॥ ६ ॥ उन मंडलोंके भीतर सिंघासनके समान फूल धारणकर ॐ ह्रीं ऐसा उच्चारणकर अग्निरूप अतिवाहिक देवताको ॥ ७ ॥ (आवाहयामि नमः) यहांतक ध्यान करके स्थापनादि प्रत्येक मुद्राक्रमसे दिखाकर ॥ ८ ॥ ह्रां ह्रीं आदि क्रमसे इनके अंग करै पाशअंकुश धारे अभीष्ट अभयदायक हाथ और चन्द्रकान्तमणिके समान कान्तिवाले ॥ ९ ॥ लाल अँगुलीकी छायासे सम्पूर्ण दिशा मंडलके रंगनेहारे लाल वस्त्र धारे कमलवत्

॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ एकादशेह्नि सम्प्राप्ते यो विधिस्समुदाहृतः ॥ तं वक्ष्ये मुनिशार्दूल यतीनां स्नेहतस्तव ॥ १ ॥ सम्मार्ज्य वेदीमालिप्य कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥ प्रोक्ष्य पश्चिममारभ्य पूर्वान्तम्पञ्च च क्रमात् ॥ २ ॥ मण्डलान्युत्तराशास्यः कुर्यात्स्वयमवस्थितः ॥ प्रादेशमात्रं संकल्प्य चतुरस्रं च मध्यतः ॥ ३ ॥ बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्ताकाराणि च क्रमात् ॥ शंखं च पुरतस्थाप्य पूजोक्तक्रममार्गतः ॥ ४ ॥ प्राणानायम्य संकल्प्य पूजयित्वा सुरेश्वरीः ॥ देवताः पञ्च पूर्वोक्ता अतिवाहिकरूपिणीः ॥ ५ ॥ संत्यज्योत्तरतो दर्भान्यश्च संस्पृशते ततः ॥ पश्चिमादि समारभ्य षडुत्थासनमार्गतः ॥ ६ ॥ मण्डलानि च तेष्वन्तः पुष्पाण्याधाय पीठवत् ॥ ॐ ह्रीमित्युक्त्वाग्निरूपान्तामतिवाहिकदेवताम् ॥ ७ ॥ आवाहयामि नम इत्यन्तं सर्वत्र भावयेत् ॥ दर्शयेत्स्थापनाद्यास्तु मुद्राः प्रत्येकमादरात् ॥ ८ ॥ ह्रांह्रीमित्यादिना कुर्य्यादासामंगानि च क्रमात् ॥ पाशांकुशाभयाभीष्टपाणिचन्द्रोपलप्रभाः ॥ ९ ॥ रक्तांगुलीयकच्छायरञ्जिताखिलदिङ्मुखाः ॥ रक्ताम्बरधराः करपदपंकजशोभिताः ॥ १० ॥

हस्त चरणोंसे शोभित ॥ १० ॥ तीन नेत्र सुन्दर प्रकाशित मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुकुटोंमें माणिक्य लगे उस पर चन्द्रमा रेखाकी शोभा ॥ ११ ॥ कुंडलोंसे शोभित कपोल पीन और ऊँचे पयोधर हार बाजूबन्द खडुए कौंधनीसे मनोहर ॥ १२ ॥ पतली कमर भारी नितम्ब लालरंगके दिव्यवस्त्र पहरे माणिक्यमय मंजरीसे शब्दायमान चरणवाली चरणांगुलीकी श्रेणीसे अधिक मनोहर इनके रूपका ध्यान करै ॥ १३ ॥ यदि कहो साक्षात् शिवही क्यों नहीं अनुग्रह करते इनको क्यों बनाया इसपर कहते हैं कि, शक्त्यात्मक मूर्त्तिरहित अनुग्रहसे क्या होसक्ता है इस कारण पूर्वोक्त महेशके ऐश्वर्यके समान शक्ति

त्रिनेत्रोल्लासिवदनपूर्णचन्द्रमनोहराः ॥ माणिक्यमुकुटोद्भासिचन्द्रलेखावतंसिताः ॥ ११ ॥ कुण्डलामृष्टगण्डाश्च पीनोन्नतपयोधराः ॥
हारकेयूरकटककांचीदाममनोहराः ॥ १२ ॥ तनुमध्याः पृथुश्रोण्यो रक्तदिव्याम्बरावृताः ॥ माणिक्यमयमंजीरसिंजत्पदसरोरुहाः ॥
पादांगुलीयकश्रेणीमंजुलातिमनोहराः ॥ १३ ॥ अनुग्रहेण मूर्तेन शिववत्किं नु साध्यते ॥ तस्माच्छक्त्यात्ममूर्तेन सर्वं साध्यं महेशवत्
॥ १४ ॥ सर्वानुग्रहकर्त्रैव स्वीकृताः पंचमूर्तयः ॥ सर्वकार्य्यकरा दिव्याः परानुग्रहतत्पराः ॥ १५ ॥ एवं ध्यात्वा तु ताः सर्वा अनुग्रह
पराश्शिवाः ॥ पादयोः पाद्यमेतासां दद्याच्छंखोदबिन्दुभिः ॥ १६ ॥ हस्तेष्वाचमनीयं च मौलिष्वर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ शंखोदबिन्दु
भिस्तासां स्नानकर्म्म च भावयेत् ॥ १७ ॥ रक्ताम्बराणि दिव्यानि सोत्तरीयाणि दापयेत् ॥ मुकुटादीन्यनर्घ्याणि दद्यादाभरणानि
च ॥ १८ ॥ सुवासितं च श्रीखण्डमक्षतांश्चातिशोभनान् ॥ सुरभीणि मनोज्ञानि कुसुमानि च दापयेत् ॥ १९ ॥ धूपं च परमामोदं
साज्यवर्तिं च दीपकम् ॥ सर्वं समर्पयामीति प्रणवं ह्रीमुपक्रमात् ॥ २० ॥

आत्मक मूर्त्तिसे सब सिद्ध होसक्ता है ॥ १४ ॥ यह पांच मूर्त्ति शिवके ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवने कल्पनाकी है यह सब कार्य करनेवाली दिव्य अनुग्रह करनेमें तत्पर हैं ॥ १५ ॥ उन सबका ध्यान करके इन पांचों देवताओंके चरणोंमें शंख जलके बिन्दुओंसे पाद्य दे ॥ १६ ॥ हाथमें आचमन और शिरपर अर्घ्य दे और शंखके जलके बिन्दुओंसे उनको स्नान करावै ॥ १७ ॥ दिव्य लाल वस्त्र डुपट्टा आदि उनको दे मुकुट और आभरण अर्पण करै ॥ ॥ १८ ॥ सुवासित चन्दन सुन्दर अक्षत और सुगंधिके मनोहर फल दे ॥ १९ ॥ परम सुगंधित धूप और घृतबत्ती दीपक (सर्वं समर्पयामि ॐ ह्रीं)

ऐसा कहकर अर्पण करै ॥ २० ॥ और अन्तमें नमः उच्चारण कर खीर और शहत दे घृत बूराके पुए केला गुड़ ॥२१॥ प्रत्येक सुगन्धित वस्तु केलेके पात्रमें रखकर (ॐ भूर्भुवःस्वः) इस मंत्रसे प्रोक्षणादि करै ॥ २२ ॥ (ॐ ह्रीं स्वाहा) इसको (वह्निजाया स्वाहा के) साथ उच्चारण कर खीर और नैवेद्य दे (पानीयं नमः) कह प्रेमसे अर्पण करै ॥२३॥ नैवेद्यको पूर्वभागमें रखदे हे मुनिराज ! स्थलको शोधकर कुल्ले आचमन और अर्घ्य दे ॥२४॥ ताम्बूल धूप दीप प्रदक्षिणा और नमस्कार करै यह सब विधान कर प्रेमसे शिरमें अंजली धरकर प्रणाम करै ॥ २५ ॥ और कहै हे माताओ ! तुम प्रसन्न

नमोऽन्तं च ततो दद्यात्पायसम्मधुनाप्लुतम् ॥ साज्यशर्करयापूपकदलीगुडपूरितम् ॥२१॥ प्रत्येकं कदलीपत्रे भरितं च सुवासितम् ॥ भूर्भुवस्स्वरिति प्रोच्य प्रोक्षणादीनि कारयेत् ॥ २२ ॥ ॐ ह्रीमिति समुच्चार्य्य नैवेद्यं वह्निजायया ॥ पानीयं नम इत्युक्त्वा परम्प्रेम्णा समर्पयेत् ॥ २३ ॥ तत उद्वासयेत्प्रीत्या पूर्वतो मुनिसत्तम ॥ स्थलं विशोध्य गंडूषाचमनार्घ्याणि दापयेत् ॥ २४ ॥ ताम्बूलं धूप दीपौ च प्रदक्षिणनमस्कृती ॥ विधाय प्रार्थयेद्देताश्शिरस्यंजलिमादधत् ॥ २५ ॥ श्रीमातरस्सुप्रसन्ना यतिं शिवपदैषिणम् ॥ रक्षणीयम्प्रब्रुवन्तु परमेशपदाब्जयोः ॥ २६ ॥ इति संप्रार्थ्य तास्सर्वा विसृज्य च यथागतम् ॥ तासाम्प्रसादमुद्धृत्य कन्यकाभ्यः प्रदापयेत् ॥ ॥ २७ ॥ गोभ्यो वा जलमध्ये वा निक्षिपेन्नान्यथा क्वचित् ॥ अत्रैव पार्वणं कुर्य्यान्नैकोद्दिष्टं यतेः क्वचित् ॥२८॥ अत्रायम्पार्वणश्राद्धे नियमः प्रोच्यते मया ॥ तं शृणुष्व मुनिश्रेष्ठ येन श्रेयो भवेत्ततः ॥२९॥ कर्ता स्नात्वा धृतप्राण उपवीती समाहितः ॥ सपवित्रकरस्त्वस्यां पुण्यतिथ्यामिति ब्रुवन् ॥३०॥ करिष्ये पार्वणं श्राद्धमिति संकल्प्य चोत्तरे ॥ दद्याद्दर्भानुत्तमांश्च ह्यासनार्थं जलं स्पृशेत् ॥ ३१ ॥

होकर शिवपदके चाहनेवाले इस यतिको परमेशके चरणकमलमें रक्षित करो ॥ २६ ॥ इस प्रकार उन सबकी प्रार्थना कर बिदा कर दे उनका प्रसाद लेकर कन्याओंको दे दे ॥ २७ ॥ अथवा गौ अथवा जलमें डाल दे कहीं फेंकै नहीं इस देवता पूजाके स्थानमें ही पार्वणश्राद्ध करै यतिका एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं होता ॥२८॥ पार्वणश्राद्धका नियम मैं कहता हूं, हे मुनिश्रेष्ठ ! सावधान हो सुनो जिससे कल्याण होगा ॥२९॥ श्राद्ध करनेवाला स्नानकर प्राणायामकर यज्ञोपवीत पहर सावधान हो पवित्र हाथकर अद्येत्यादि संकल्पकर उच्चारणकर पुण्यतिथिको नाम ले ॥ ३० ॥ कहे कि मैं पार्वणश्राद्ध करता हूं अपने उत्तर

भागमें ब्राह्मणोंके बैठनेको कुश दे जलका स्पर्शकर ॥ ३१ ॥ मलकर स्नान करेहुए चार ब्राह्मणोंको बुलाकर जो शिवभक्त और दृढव्रत हो ॥ ३२ ॥
उनसे कहै आप विश्वेदेवाके निमित्त हो प्रसन्नता कीजिये आत्मा अन्तरात्मा ॥ ३३ ॥ परमात्माके निमित्त आपको प्रसन्नता करनी चाहिये ऐसा कहकर उनके
चरणोंमें आदरसे वरण करै ॥ ३४ ॥ उनके चरण धोकर पूर्वदिशाको मुखकर बैठावै गन्धादिसे अलंकारकर शिवके सन्मुख भोजन करावै ॥ ३५ ॥
गोबरसे लीपकर उसपर कुश रखकर उन्हैं बिछाय मौन हो उनपर पिण्डदान करता हूं ॥ ३६ ॥ ऐसा संकल्प करै, पीछे तीनों मंडलकी पूजाकर अपने

तत्रोपवेशयेद्भक्त्या साभ्यंगं कृतमज्जनान् ॥ आहूय चतुरो विप्राञ्छिवभक्तान्दृढव्रतान् ॥ ३२ ॥ विश्वेदेवार्थं भवता प्रसादः
क्रियतामिति ॥ आत्मने भवता पश्चादन्तरात्मन इत्यपि ॥ ३३ ॥ परमात्मन इत्येवं प्रोच्य प्रार्थ्य च तान्यतिः ॥ श्रद्धया
चरणन्तेषां कुर्य्याद्याथार्थ्यमादरात् ॥ ३४ ॥ पादौ प्रक्षाल्य तेषान्तु प्राङ्मुखानुपवेश्य च ॥ गन्धादिभिरलंकृत्य भोजयेच्च शिवा
ग्रतः ॥ ३५ ॥ गोमयेनोपलिप्यात्र दर्भान्प्रागग्रकल्पितान् ॥ आस्तीर्य्य संयतप्राणः पिण्डानां च प्रदानकम् ॥ ३६ ॥ करिष्य इति
संकल्प्य मण्डलत्रयमर्च्य च ॥ आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मनमप्यतः ॥ ३७ ॥ चतुर्थ्यन्तं वदन्पश्चादिमं पिण्डमितीरयन् ॥ ददा
मीति च सम्प्रोच्य दद्यात्पिण्डान्स्वभक्तितः ॥ ३८ ॥ कुशोदकं ततो दद्याद्यथाविधिविधानतः ॥ तत उत्थाप्य वै कुर्य्यात्प्रदक्षिणनम
स्कृती ॥ ३९ ॥ ततो दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च यथाविधि ॥ नारायणबलिं कुर्य्यात्तस्मिन्नेव स्थले दिने ॥ ४० ॥ रक्षार्थमेव सर्वत्र
विष्णोः पूजाविधिः स्मृतः ॥ कुर्य्याद्विष्णोर्महापूजां पायसान्नं निवेदयेत् ॥ ४१ ॥

परमात्मा और अन्तरात्माके ॥ ३७ ॥ पिण्डोंको चतुर्थ्यंत पद उच्चारण करके देना चाहिये 'आत्मने इदं पिण्डं ददामि' ऐसा कहकर ॥ ३८ ॥ पिण्डोंपर
विधिपूर्वक कुशोंका जल दे यह विधान कर उठै और प्रदक्षिणा नमस्कार करै ॥ ३९ ॥ और ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दक्षिणा दे उसी स्थलमें उसी दिन
नारायणबलि करै ॥ ४० ॥ और सब ओरसे रक्षाके निमित्त नारायणकी पूजा करै, इस प्रकार विष्णुकी महापूजा कर पायस अन्न निवेदन करै ॥ ४१ ॥

वेदपाठी बारह ब्राह्मणोंको बुलावै, केशवादि बारह नामोंसे गन्ध अक्षतसे उनकी पूजा करै ॥४२॥ और उनको उपानद और छत्र दे और अनेक सत्कारसे
भक्तिपूर्वक उनको संतुष्ट करै ॥ ४३ ॥ फिर पृथ्वीमें पूर्वकी ओर अग्रभागकर कुशा बिछाय 'ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा कहकर
पायस अन्नकी बलि दे ॥ ४४ ॥ हे मुनीश्वर ! यह मैंने एकादशाहकी विधि कही, अब द्वादशाहकी विधि कहताहूं आदरसे सुनो ॥ ४५ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ सुब्रह्मण्य बोले, फिर बारहवें दिन उठकर प्रातःकालीन कृत्य करके अग्निहोत्र

द्वादशाथ समाहूय ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ केशवादिभिरभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ४२ ॥ उपानच्छत्रवस्त्रादि दत्त्वा तेभ्यो यथा
विधि ॥ सन्तोषयेन्महाभक्त्या विविधैर्वचनैश्शुभैः ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य्य दर्भान्पूर्वाग्रान्भूस्स्वाहा च भुवस्सुवः ॥ प्रणवादि प्रोच्य भूमौ
पायसान्नं बलिं हरेत् ॥ ४४ ॥ एकादशाहसुविधिर्मया प्रोक्तो मुनीश्वर ॥ द्वादशाहविधिं वक्ष्ये शृणुष्वादरतो द्विज ॥ ४५ ॥ इति
श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां यतीनामेकादशाहकृत्यवर्णनन्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ सुब्रह्मण्य उवाच ॥ द्वादशाहे
समुत्थाय प्रातः स्नात्वा कृताह्निकः ॥ शिवभक्तान्यतीन्वापि ब्राह्मणान्वा शिवप्रियान् ॥ १ ॥ विमन्त्र्य तान्समाहूय मध्याह्ने चाप्लुता
न्छुचीन् ॥ विधिवद्भोजयेद्भक्त्या स्वाद्वन्नैर्विविधैश्शुभैः ॥ २ ॥ सन्निधौ परमेशस्य पंचावरणमार्गतः ॥ पूजयेत्तस्य संस्थाप्य प्राणा
नायम्य वाग्यतः ॥ ३ ॥ महासंकल्पमार्गेण संकल्प्यास्मद्गुरोरिह ॥ पूजां करिष्य इत्युक्त्वा ततो दर्भानुपस्पृशेत् ॥ ४ ॥ पादौ प्रक्षाल्य
चाचम्य स्वयं कर्ता च वाग्यतः ॥ स्थापयेदासने तान्वै प्राङ्मुखान्भस्मभूषितान् ॥ ५ ॥

संपादन कर शिवके भक्त यति ब्राह्मण अथवा शिवजीके प्यारोंको ॥ १ ॥ निमन्त्रण करेहुओंको बुलावै वे स्नानसे पवित्र हों उनको अनेक प्रकारके स्वादिष्ट
अन्न भोजनको लावे ॥ २ ॥ और उस परमेशके निकट उनको बैठाकर पूर्वोक्त पंचावरणके पूजन प्रकारसे उनका पूजन करै तीन प्राणायाम करके उनका
पूजनकर वहां बैठावे ॥ ३ ॥ फिर महासंकल्पके अनुसार संकल्पकर आप हमारे गुरुहैं तुम्हारा पूजा करता हूं ऐसा कह कुशोंको छूकर ॥४॥ उनके चरण

धोकर आप मौन हो आचमन करै, पीछे भस्मसे शोभित पूर्वमुख उन ब्राह्मणोंको आसनपर बैठावै ॥५॥ शिव महेश्वरादिके क्रमसे ध्यान करै, शेषाचारको
परमगुरु परात्पर गुरु परमेष्ठी गुरुका ध्यानकर और अपने नाममें अम्बासहित बुद्धि करके ॥ ६ ॥ (सदाशिव इदमासनं) ऐसा कहकर उन्हैं आसन दे
(ॐ सदाशिवमावाहयामि नमः) इस प्रकार अपना २ नाम ले ॥ ७ ॥ उच्चारण करके अर्घ्यके जलसे पाद्य आचमन अर्घ्य वस्त्र गन्धाक्षत ॥ ८ ॥
देकर पुष्पोंसे अलंकारकर ॐकारपूर्वक नाममें चतुर्थी विभक्तिकर नमः लगावै और सुगन्धित पुष्पोंसे ॥ ९ ॥ धूप दीप देकर सम्पूर्ण आराधन करै

सदाशिवादिक्रमतो ध्यायेदष्टौ च तत्र तान् ॥ परया सम्भावनयेतरानपि मुने द्विजान् ॥ परमेष्ठिगुरुं ध्यायेत्सांबबुद्ध्या स्वनामतः ॥
गुरुश्च परमन्तस्मात्परापरगुरुं ततः ॥ ६ ॥ इदमासनमित्युक्त्वा चासनानि प्रकल्पयेत् ॥ प्रणवादि द्वितीयांते स्वस्य नाम समुच्चरन् ॥
॥ ७ ॥ आवाहयामि नम इत्यावाह्यार्घोदकेन तु ॥ पाद्यमाचमनं चार्घ्यं वस्त्रगन्धाक्षतानपि ॥ ८ ॥ दत्त्वा पुष्पैरलंकृत्य प्रणवाद्यष्टना
मभिः ॥ सचतुर्थीनमोऽन्तैश्च सुगन्धकुसुमैस्ततः ॥ ९ ॥ धूपदीपौ हि दत्त्वा च सकलाराधनं कृतम् ॥ सम्पूर्णमस्त्विति प्रोच्य
नमस्कुर्यात्समुत्थितः ॥ १० ॥ पात्राणि कदलीपत्राण्यास्तीर्याद्भिर्विशोध्य च ॥ शुद्धान्नपायसापूपसूपव्यञ्जनपूर्वकम् ॥ ११ ॥ दत्त्वा
पदार्थान्कदलीनालिकेरगुडान्वितान् ॥ पात्रासनानि च पृथग्दद्यात्सम्प्रोच्य च क्रमात् ॥ १२ ॥ परिषिच्य च सम्प्रोक्ष्य विष्णोर्हव्य
मिति ब्रुवन् ॥ रक्षस्वेति करस्पर्शं कारयित्वा समुत्थितः ॥ १३ ॥ आपोशनं समर्प्याथ प्रार्थयेत्तानिदम्प्रति ॥ सदाशिवादयः प्रीता
वरदाश्च भवन्तु मे ॥ १४ ॥

" सम्पूर्णमस्तु " ऐसा कह खडा होकर नमस्कार करै ॥ १० ॥ फिर पात्र और केलेके पत्तोंको जलसे धोकर परोसै. और उनपर शुद्ध अन्न खीर पुए सूप
व्यञ्जन (अनेक प्रकारकी मिठाई शाक पूरी कचौरी आदि सब व्यंजन) परोसै ॥११॥ कदली नारियलका गोला मिष्टान्न पदार्थोंको देकर भोजनपात्रके
नीचे कुश बिछादे और फिर सब वस्तुओंको देखकर ॥ १२ ॥ सबपर जल छिडक प्रोक्षण कर (विष्णो हव्यम्) यह कहताहुआ (रक्षस्व) उच्चारणकर
हाथसे अन्न स्पर्श कराकर उठे ॥ १३ ॥ और जल देकर उन ब्राह्मणोंकी प्रार्थना करे कि आप सदाशिवादिके रूप हो प्रसन्न होकर मुझे वर दो ॥१४॥

(ये देवादिव्येकादशस्थ) इस मंत्रको उच्चारण कर चावल छोड दे फिर उठकर नमस्कार करै और (सर्वत्र अमृतमस्तु) अर्थात् सबओर अमृत हो ऐसा
कहै ॥१५॥ और ब्राह्मणोंको प्रसन्नकर "गणानांत्वा' यहांसे आरम्भकर 'अग्निमीडे पुरोहितम्' वा (रुद्र चमकाध्याय) नमस्ते रुद्रमन्यवे अथवा (अग्नाविष्णू
सजोषसे) यह ग्यारह अनुवाक अथवा (परिणोरुद्रस्य हेतिः) यह छः ऋचा सद्योजातादि पंचब्रह्मके मंत्र पढै ॥ १६ ॥ फिर ब्राह्मण भोजन करै भोजन
करनेके उपरान्त शंकरके मंत्रोंसेही हाथ मुख धोनेको उन्हें जल दे ॥१७॥ आचमन कर चुकनेपर उन्हैं आसनपर बैठावै फिर शुद्धजल देकर कर्पूरादिसे ॥

ये देवा इति च ततो जम्वेदं साक्षतं त्यजेत् ॥ नमस्कृत्य समुत्थाय सर्वत्रामृतमस्त्विति ॥ १५ ॥ उक्त्वा प्रसाद्य च जपन्गणानांत्वेत्युप
क्रमात् ॥ वेदादीन् रुद्रचमकौ रुद्रसूक्तं च पंच च ॥ १६ ॥ ब्रह्माणि भोजनान्ते तु यावन्मन्त्रांश्च साक्षतान् ॥ दत्त्वोत्तरापोशनं च
हस्तांघ्रिमुखशोधनम् ॥ १७ ॥ कृत्वा चान्तान्स्वासनेषु स्थापयित्वा यथासुखम् ॥ शुद्धोदकम्प्रदायाथ कर्प्पूरादि यथोदितम् ॥ १८ ॥
मुखवासं दक्षिणां च पादुकासनपत्रकम् ॥ व्यजनं फलकान्दण्डं वैणवं च प्रदाय तान् ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैस्संतोष्याशिषमा
वहेत् ॥ पुनः प्रणम्य सम्प्रार्थ्य गुरुभक्तिमचंचलाम् ॥ २० ॥ सदाशिवादयः प्रीता गच्छन्तु च यथासुखम् ॥ इत्युद्वास्य द्वारदेशा
वधि सम्यगनुव्रजन् ॥२१॥ निरुद्धस्तः परावृत्य द्वास्थैर्विप्रैश्च बन्धुभिः ॥ दीनानाथैश्च सहितो भुक्त्वा तिष्ठेद्यथासुखम् ॥२२॥ विकृतं
न भवेत्क्वापि सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ प्रत्यब्दमेवं कुर्वाणो गुर्वाराधनमुत्तमम् ॥ इह भुक्त्वा महाभोगाञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

॥१८॥ मुख सुगंधितकर दक्षिणा छत्री और पादुका उनकी भेंट करै व्यजन (पंखा) छोटी चौकी मूढे वा कुरसी और बाँसकी छडी उनको देकर ॥१९॥
प्रदक्षिणा और नमस्कारसे उन्हें संतुष्टकर उनके आशीर्वाद ले फिर प्रणाम करके गुरुभक्ति हो यह उनसे प्रार्थना करै ॥२०॥ और कहै आप सदाशिवादि
प्रसन्न होकर यथेच्छगमन करो, ऐसा कह द्वारेतक उनके साथ जाय ॥ २१ ॥ जब वे ब्राह्मण कहैं जाओ जाओ जाओ घरमें बैठो तब लौटकर, द्वारेतक
बैठेहुए अतिथि ब्राह्मण बन्धु दीन और अनाथोंके सहित भोजन कर सुखपूर्वक स्थित हो ॥ २२ ॥ इसमें कोई विपरीत न होय यह सत्य २ है इस प्रकार

प्रतिवर्ष गुरुका आराधन करताहुआ यहाँ अनेक प्रकारके भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ सूतजी बोले, देव स्कन्दजी अपने शिष्य वामदेवपर इस प्रकार अनुग्रह कर प्रसन्नबुद्धि ज्ञानमें श्रेष्ठ महात्मा दूसरोंपर अनुग्रह करनेवाले फिर बोले ॥ २४ ॥ जो कुछ नैमिषारण्यके वासी मुनीश्वरोंसे पहले व्यासजीने कहा है तिससे यह व्यासजी आदिगुरुहैं और आप दूसरे गुरु जगत्प्रसिद्धहैं ॥ २५ ॥ और तुम्हारे मुखसे इसे सनत्कुमार सुनकर शिवभक्तिमें पूर्ण रहैंगे और व्यासजीसे कहैंगे तथा शिवभक्तिमें तत्पर व्यासजी शुकदेवसे कहैंगे ॥२६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक २ के चार चार शिष्य

॥ सूत उवाच ॥ ॥ एवं कृतानुग्रहमात्मशिष्यं श्रीवामदेवं मुनिवर्य्यमुक्त्वा ॥ प्रसन्नधीर्ज्ञानिवरो महात्मा कृत्वा परानुग्रहमाशु
देवः ॥ २४ ॥ यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां प्रोक्तं पुरा व्यासमुनीश्वरेण ॥ तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु द्वितीय आर्य्यो भुवने प्रसिद्धः
॥ २५ ॥ श्रुत्वा मुनीन्द्रो भवतो मुखाब्जात्सनत्कुमारः शिवभक्तिपूर्णः ॥ व्यासाय वक्ता स च शैववर्य्यश्शुकाय वक्ता भविता च
पूर्णः ॥ २६ ॥ प्रत्येकं मुनिशार्दूलं शिष्यवर्गचतुष्टयम् ॥ वेदाध्ययनसंवृत्तं धर्मस्थापनपूर्वकम् ॥ २७ ॥ वैशम्पायन एव स्यात्पैलो
जैमिनिरेव च ॥ सुमन्तुश्चेति चत्वारो व्यासशिष्या महौजसः ॥ २८ ॥ अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च पुलहः क्रतुरेव च ॥ तव शिष्या
महात्मानो वामदेव महामुने ॥ २९ ॥ सनकश्च सनन्दश्च सनातनमुनिस्ततः ॥ सनत्सुजात इत्येते योगिवर्य्याः शिवप्रियाः ॥ ३० ॥
सनत्कुमारशिष्यास्ते सर्ववेदार्थवित्तमाः ॥ गुरुश्च परमश्चैव परात्परगुरुस्ततः ॥ परमेष्ठिगुरुश्चैते पूज्यास्स्युश्शुकयोगिनः ॥ ३१ ॥

वेदके अध्ययनमें सम्पन्न और धर्मस्थापन करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ वैशंपायन, पैल, जैमिनी और सुमन्तु यह चार तेजस्वी व्यासके शिष्यहैं, यजुर्वेदमें शिव मन्त्रोंकी अधिकता होनेसे शिवशास्त्रका यही प्रधान ग्रन्थ कहा है ॥२८॥ वामदेवके शिष्य कहतेहैं अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, हे महामुने ! वामदेवजी यह आपके शिष्यहैं ॥ २९ ॥ और सनक, सनन्दन, सनातन मुनि और सनत्कुमार यह योगियोंमें श्रेष्ठ और शिवके प्रिय हैं ॥ ३० ॥ यही सनत्कुमारके चारों शिष्य सब वेदार्थके जाननेवालेहैं, गुरु परमगुरु परात्पर गुरु परमेष्ठी गुरु ये शुक योगीको भी पूज्यहैं औरोंकी तो बातही क्या है ॥ ३१ ॥

इदं प्रणवविज्ञानं स्थितं वर्गचतुष्टये ॥ सर्वोत्कृष्टनिदानं च काश्यां सन्मुक्तिकारणम् ॥ ३२ ॥ एतन्मण्डलमद्भुतं परशिवाधिष्ठानरूपं सदा वेदान्तार्थविचारपूर्णमतिभिः पूज्यं यतीन्द्रैः परम् ॥ वेदादिप्रविभागकल्पितमहाकाशादिनाप्यावृतन्त्वत्सन्तोषकरं तथास्तु जगतां श्रेयस्करं श्रीप्रदम् ॥ ३३ ॥ इदं रहस्यम्परमं शिवोदितं वेदान्तसिद्धान्तविनिश्चितम्परम् ॥ मत्तश्श्रुतं यद्भवता ततो मुने भवन्मतम्प्राज्ञतमा वदन्ति ॥ ३४ ॥ तस्मादनेनैव पथा गतश्शिवं शिवोहमस्मीति शिवो भवेद्यतिः ॥ पितामहादिप्रविभागमुक्तये नद्यो यथा सिन्धुमिमाः प्रयान्ति ॥ ३५ ॥ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवम्मुनीश्वरायैतदुपदिश्य सुरेश्वरः ॥ संस्मृत्य चरणाम्भोजे पित्रोस्सर्व्वसुरार्चिते ॥ ३६ ॥ कैलासशिखरम्प्राप कुमारश्शिखरावृतम् ॥ राजितम्परमाश्चर्य्यदिव्यज्ञानप्रदो गुरुः ॥ ३७ ॥ वामदेवोऽपि सच्छिष्यैस्संवृतश्शिखिवाहनम् ॥ सम्प्रणम्य जगामाशु कैलासम्परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥

यह ओंकारका ज्ञान शिष्यवर्गोंके निमित्त है यह चारों फलोंका देनेवाला सब उत्कृष्टका देनेवाला काशीमें श्रेष्ठ मुक्तिका दाता है ॥ ३२ ॥ यह पूर्वोक्त मुनिमंडल अद्भुत पर शिवके अधिष्ठान रूप है और वेदान्तके अर्थ विचारनेमें बुद्धिमान् यतियोंसे पूजित आर वेदादिके विभागसे कल्पित पंचमहाभूतोंसे आवृत अर्थात् प्रकृतिके विकारयुक्त होनेसे भी शिवकी कृपासे मायाके किये मोहके दूर करने और ज्ञान देनेसे संतोषदायक जगत्के कल्याणकारक और लक्ष्मीका देनेहारा है ॥ ३३ ॥ यह रहस्य पर शिवका कहाहुआ वेदान्तके सिद्धान्तका परं निश्चय है हे मुने ! मुझसे श्रवण करनेके कारण पंडित इसको वामदेवमत कहतेहैं ॥ ३४ ॥ इस कारण इसी मार्गसे चलते और शिवका ध्यान करतेहुए (शिवोहमस्मि) यह कहतेहुए यति शिवस्वरूपही होजाता है और ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिके भजनसे उन २ की साम्यतामुक्ति पाताहुआ मुक्त होजाता है जैसे सब नदी सागरमें पहुंचतीहैं ॥ ३५ ॥ सूतजी बोले, स्कन्दजी इस प्रकार वामदेवजीको उपदेशकर सब देवताओंसे पूजित अपने माता पिताके चरणकमल स्मरण कर ॥ ३६ ॥ कुमार स्कन्दजी शिखरोंसे युक्त कैलासके शिखरको गये (इसीसे इसका नाम कैलाससंहिता है यह पर्वत परम आश्चर्ययुत है यहीको वह दिव्यज्ञानदाता गुरु गये ॥ ३७॥ और वामदेवभी स्कन्दका

अनुसरण करते शिष्योंसहित प्रणामकर परमअद्भुत कैलासके शिखरपर जाकर ॥ ३८ ॥ वहां शिव पार्वतीके दर्शन करतेहीं कि जो चरण मायाके नाश करनेवाले और मोक्ष देनेवालेहैं ॥ ३९ ॥ भक्तिसे सब अंग पूर्ण हो अपने शरीरका भी स्मरण भूलगये और उनके चरणोंमें गिरपडे और बारंबार नमस्कार कर उठ ॥ ४० ॥ वेदं शास्त्रके आशयसे पूर्ण अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिकर मुनिराज देव देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ ४१ ॥ देव देवीके चरणकमल अपने शिरके ऊपर धारणकर उनकी पूर्ण अनुग्रहको प्राप्त हो वहीं सुखसे रहने लगे ॥ ४२ ॥ आप भी इस प्रकार प्रणवके अर्थरूप महेश्वरको जानकर यहीं

गत्वा कैलासशिखरम्प्राप्येशनिकटम्मुनिः ॥ ददर्श मोक्षदम्मायानाशञ्चरणमीशयोः ॥ ३९ ॥ भक्त्या चार्पितसर्वांगो विस्मृत्य स्वकलेवरम् ॥ पपात सन्निधौ भूयो भूयो नत्वा समुत्थितः ॥ ४० ॥ ततो बहुविधैः स्तोत्रैर्वेदागमरसोत्कटैः ॥ तुष्टाव परमेशानं साम्बिकं ससुतं मुनिः ॥ ४१ ॥ निधाय चरणाम्भोजन्देवदेव्योस्स्वमूर्द्धनि ॥ पूर्णानुग्रहमासाद्य तत्रैव न्यवसत्सुखम् ॥ ४२ ॥ भवन्तोऽपि विदित्वैवम्प्रणवार्थम्महेश्वरम् ॥ वेदगुह्यं च सर्वस्वन्तारकम्ब्रह्म मुक्तिदम् ॥ ४३ ॥ अत्रैव सुखमासीनाः श्रीविश्वेश्वरपादयोः ॥ सायुज्यरूपामतुलाम्भजध्वम्मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ४४ ॥ अहं गुरुपदाम्भोजसेवायै बादराश्रमम् ॥ गमिष्ये भवताम्भूयस्सत्सम्भाषणमस्तु मे ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां द्वादशाहकृत्यवर्णनपूर्व्वकव्यासादिशिष्यवर्गकथनन्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ इति कैलाससंहिता षष्ठी समाप्तिमगमत् ॥ ॥ ॐनमश्शिवाय ॥

सुखसे स्थित हो यह वेदमें गुप्त भक्तोंका सर्वस्व तारक मन्त्र मुक्तिदाता है ॥ ४३ ॥ तुम यहीं सुखसे रहो श्रीविश्वेश्वरके चरणकमलकी सायुज्ययुक्त उत्तम मुक्तिको भजन करो ॥ ४४ ॥ और मैं गुरुके चरणकमलकी सेवाके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाऊंगा आपसे मेरा फिर समागम हो हे मुनीश्वरो ! जो आपने पूंछा था सो सब तुमसे कह दिया ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण वेद वेदान्तका सार और परमतत्त्व शिवहीहैं (ईशानो ज्योतिरव्ययः एकोहि रुद्रो न द्वितीयः यो देवानां प्रभवोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः) इत्यादि श्रुतिसे एक शिवही अद्वितीयहैं अथर्वशीर्षके प्रथमखण्डमें लिखा है देवतोंने रुद्रसे पूँछा आप कौनहैं तब उन्होंने

कहा मैं ही एक जगत्की उत्पत्ति पालन करताहूं मुझसे अधिक कोई नहीं इसीके दूसरे तीसरे खण्डमें सब देवता शिवजीकी विभूति वर्णन किये हैं (यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वाभुवनानि विवेश तस्मै रुद्राय नमोस्तु ॥ तैत्तिरीय शाखा) जो रुद्र अग्नि जल औषधी और सब संसारमें व्याप्तहैं, उनको नमस्कार है इसी प्रकार रुद्राध्यायमें (नमः स्तुत्याय च) इस मंत्रमें सब वस्तुमें शिवका सद्भाव कहाहै (य एषोन्तर्हृदय आकाश०) आदि बृहदारण्यक (अथ यदिदमस्मिन्निति) इसमें शिवको सर्वेश लिखा है (ब्रह्मविष्णवग्निशुक्रार्कजलभूमिपुरोगमाः सुरासुरासः प्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वराः) यह ब्रह्माण्डपुराणमें है कि ब्रह्मा विष्णु अग्नि शुक्र सूर्य जल भूमि आदि सब उन्हीं शिवसे उत्पन्न हुए हैं, हरिवंशमें कैलासयात्रामें शिवजीने कहा है हे गोविन्द ! जो तुम्हारे नाम हैं सो मेरेही हैं (शिवं प्रस्तुत्य सर्वाणि हवा एतस्य नामधेयानि) आश्वलायनमें लिखा है शिवकी स्तुतिकर नामकरण करै, स्कंदपुराणमें लिखा है कि कोई ब्रह्मा कोई विष्णु कोई सूर्यादिकी मूर्त्तिकी उपासना करते हैं परन्तु (प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्त्तिषु) सब मूर्त्तियोंमें महादेवको प्रतिपादन करना चाहिये वही स्थित हैं कूर्ममें लिखा है (गोप्ताचैव जगच्छास्ता शक्तः शर्वो महेश्वरः ॥ यज्ञानां फलदो देवो महादेवनियोगतः) शिवहीको सब यज्ञोंके फलदाता लिखा है, महाभारत वनपर्व तीर्थयात्रामें (ततो गच्छेत्सुवर्णाक्षं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ यत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा ॥ वरांश्च सुबहून् लेभे दैवतैरपि दुर्लभान्) अर्थात् फिर सुवर्णाक्षको जाय जहां विष्णुने शिवकी आराधना कर अनेक वर पाये हैं, द्रोणपर्वमें अश्वत्थामाका लिंगार्चन है शान्तिपर्वमें भीष्मने कहा है (यं विष्णुरिन्द्रः सूर्यश्च ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ स्तुवंति विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ तमर्चयन्ति ये शश्वद्दुर्गाण्यतितरन्ति ते) जिनकी ब्रह्मा विष्णु इन्द्र सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिवजीका जो पूजन करता है उसके सब कष्ट दूर होजाते हैं फिर अनुशासनमें शिवसे ब्रह्मा विष्णुकी उत्पत्ति लिखी है (सोसृजद्दक्षिणादंगाद्ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ वामपार्श्वात्तथा विष्णुमादौ प्रभुरथासृजत् ॥ अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदाह्येको महेश्वरः) जब कुछ नहीं था तब एक शिव थे इत्यादि बहुत स्थलमें महाभारतमें शिवको सर्वेश्वर कहा है, हरिवंशमें श्रीकृष्णने शिवकी स्तुतिकर वर पाया है, वाल्मीकिमें (रौद्राय वपुषे नमः) उत्तरमें (ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्य वृषध्वजम्) और अश्वमेधमें रामचन्द्रने शिवाराधन किया है, यथा (विशेषाद्ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम् ॥ यज्ञेन यज्ञहंतारमश्वमेधेन शंकरम् ॥ और युद्धकाण्डमें (अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः) शिवके पूजनकी सर्वोत्कृष्टता

कही है, भागवतके चौथे स्कंधमें दक्षके यज्ञमें शिवके क्रोधशान्तिकी इच्छावाले देवतोंसे ब्रह्माने कहा है (नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बल वीर्ययोर्वा तस्यात्मतंत्रस्य कथां विधित्से इति ॥) अर्थात् मैं विष्णु तुम और ऋषि आदि कोई भी उन शिवकी महिमाको नहीं जानते अष्टमस्कंधमें (न ते गिरित्राऽखिललोकपालविरंचिवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्त भेदमिति (इसमें विष्णु ब्रह्मादिसे शिवकी उत्कृष्टता संपादनकी है, स्कंदमें (एषां त्रयाणामधिकः शिवं परं कारणम्) इन तीनों देवतोंसे अधिक शिव हैं इसी प्रकार पद्मपुराणमें (यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते ॥ यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः) इत्यादि चारों वेदोंने शिवकी स्तुति की है, विष्णुपुराणमें लिखा है (धिक् तेषां धिक् तेषां धिक् तेषां जन्म धिक् तेषाम् ॥ येषां न वसति हृदये कुमतिर्यथा विमोचको रुद्रः) जिनके हृदयमें शिवभक्ति नहीं उनको धिक्कार है ऋग्वेदमें (अन्तारिक्षंति तं जने रुद्रं परो मनीषया गृभ्णंति जिह्वया ससमिति) पुरुषसूक्तमें भी (उतामृतत्वस्येशान०) इससे ईशानपदसे शिवकाही बोध होता है, इसी प्रकार बौधायनसूत्र और कात्यायनसूत्रमें भी (रुद्रोह्येवैतत्सर्वं) और आश्वलायनमें (तस्मै शिवाय महते नमः सूक्ष्माक्षरात्मने) इससे शिवकी सर्वोत्कृष्टता संपादनकी है, पातंजलमें भी (पुरुषविशेष ईश्वरः) (तस्य वाचकः प्रणवः) यहां भी शिवकाही बोधक है यही वार्ता वायुसंहिताके सातवें अध्यायमें लिखी है, कौमुदीकारने इसी आशयसे सूत्रोंको शिवमूलक जानकर शिवका विषय स्पष्ट किया है, पद्मपुराणके गीतामाहात्म्यमें गीताके अठारह अध्यायोंको शिवकी मूर्त्ति नारायणने कहा है (ईश्वरः सर्वभूतानां) और 'तमेवं शरणं गच्छ' यह शिव परतत्त्व है रसेश्वर मुनिने भी कहा है (कल्पान्तरे कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान् महेश्वरः । सहसैवासृजद्विष्णुर्ब्रह्माणं च निजेच्छया) शिवने सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मा और विष्णुको उत्पन्न किया है, पराशर मुनिने कहा है जो और कहीं पुराणोंमें विष्णु आदि देवताकी उत्कृष्टता है वह शिवकी विभूतिकी उत्कृष्टतासे कही है, जगत्के निमित्त वे चाहैं किसी प्रकारसे प्रगट हों परन्तु कुछ भेद नहीं है सब पुराण शिवकाही वर्णन करते हैं (दश शैवपुराणानि सात्त्विकानि विदुर्बुधाः) जिनमें दशपुराण शिवकी अधिक महिमा कहनेसे सात्त्विकहैं वह ब्राह्मणोंको सुनने चाहिये चार वैष्णवपुराण क्षत्रियोंको सुनने चाहिये ब्रह्मपुराण वैश्योंको मंगल करनेहारा है (अद्यापि ब्रह्म विष्णुभ्यां न दृष्टोयं महेश्वरः ॥ पशूनां पतिरीशोऽयं ब्रह्माद्याः पशवः स्मृताः) इससे भी शिवकी सर्वोत्कृष्टता कही है, परन्तु पाशुपतोंके दो भेद हैं एक दो

श्रुतिके अनुसार चलते हैं एक स्वच्छन्द वाममार्गमें चलते हैं, स्वच्छन्दचारियोंका वेदविरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं है जो प्राणी वेदबाह्य होकर नास्तिक हुए जाते थे उनके मोहनेके निमित्त वाम आदि आगम देवतोंने बनायेहैं इस प्रकार श्रुति स्मृति पुराण इतिहाससे शिवकोही सर्वेश्वर परंतत्त्व जानकर भजते और नमस्कार करतेहैं इस प्रकारसे जो कोई इस संहिताको श्रवण करतेहैं वह यहाँ सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होकर अन्तमें परमभक्तिको पाकर अवश्य मुक्त होजातेहैं और जन्मजन्मान्तरमें उनकी शिवमें भक्ति होती है अर्थात् पूर्णभक्ति न होकर जिसका शरीरपात हो जाता है उसको दूसरे जन्ममें सिद्धि होती है जैसा गीतामें लिखा है और शिवगीतामें यही लिखा है (नमे भक्तो विनश्यति) ईत्यादि ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा–शिवशंकरको ध्यानधर, गिरिजहि शीश नवाय । कियो संहिताको तिलक, लखहिं सुजन चित लाय ॥

शशिबाणांकभूम्यब्दे कार्तिके कृष्णपंचमी ॥ गुरुवारे शिवं ध्यात्वा व्याख्यापूर्तिः कृता मया ॥ १ ॥

शुभमस्तु.

---

१ हमारे किये शिवगीताके टीकेमें इसका विवरण देखलेना, हमने जितनेः टीके निर्माण किये हैं किसी प्रकारका पक्षपात नहीं किया है, किन्तु तीनों देवताओंमें हमारी एकही दृष्टि है, हम न्यूनाधिक नहीं मानते हैं उपासना एकही देवताकी करनी उचित है, वह सब एकही रूप हैं, परन्तु उपासक रुचिके अनुसार भजन करते हैं, ईसी कारण व्यासजीने सबही देवताओंकी सबसे उत्कृष्ट महिमा वर्णन की है, चाहैं वह किसी प्रकारसे हो और कहीं २ स्पष्ट कहदिया है कि यह सब एक हैं सो बुद्धिमान् जानते हैं ।

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीका० षष्ठी कैलाससंहिता समाप्ता ॥

अथ श्रीशिवमहापुराणे भाषाटीकायुते सप्तमीवायवीयसंहितापूर्वखण्डं प्रारभ्यते ।

शिवमहापुराण वायवीयसंहिता

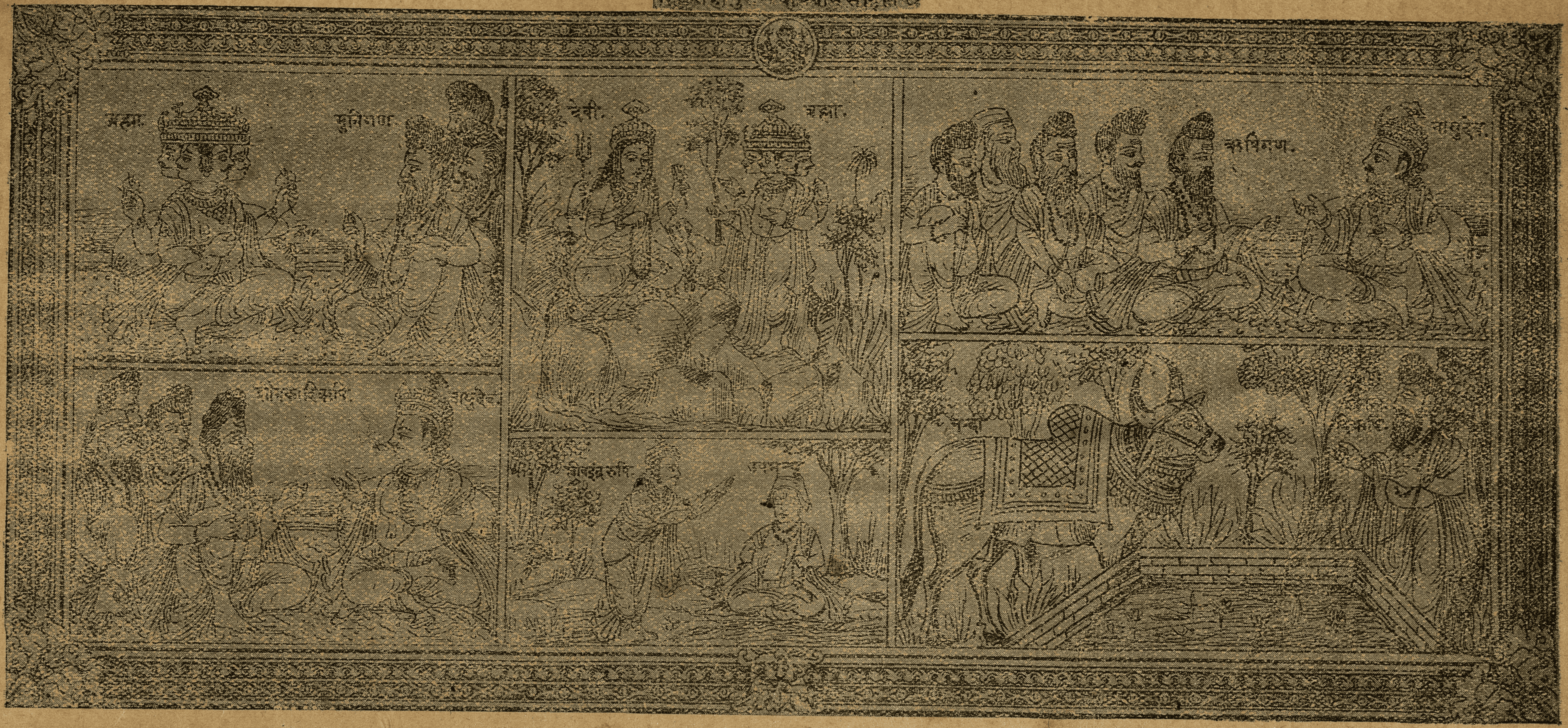
ब्रह्मा.
मुनिगण.
देवी.
ब्रह्मा.
ऋषिगण.
वायुदेव.
शौनकादिऋषि.
वायुदेव.
उपमन्युऋषि.
श्रीकृष्ण.

दोहा–श्रीमच्छंकर गौरिपति, वेदगम्य भगवान ॥ जगवन्दित तारण तरण, जनरञ्जन सुखदान ॥ १ ॥
कृपासिन्धु अशरण शरण, हरण सकल भयशूल ॥ शिव ज्वालापरसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ २ ॥
विघ्नविदारण सुखकरन, गणपति सिधिदातार ॥ चरणकमल रजको सदा, वन्दौ बारम्बार ॥ ३ ॥
नन्दीश्वर गिरिजा गिरिश, गङ्गाधर सुर ईश ॥ वानी जगरानी गिरहि, पुनि २ नावहुँ शीश ॥ ४ ॥
वायुसंहिताको करत, भाषा तिलक विचार ॥ कृपाकरहिं जन जान मोहिं, अभिमत फलदातार ॥ ५ ॥

व्यासजी बोले, शिव, गणपति, कार्तिकेय, प्रधान पुरुषेश्वर, सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले शंकरको प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ जिनकी

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ अथ सप्तमी वायवीयसंहिता प्रारभ्यते ॥ व्यास उवाच ॥ नमश्शिवाय सोमाय
सगणाय ससूनवे ॥ प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतहेतवे ॥ १ ॥ शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम् ॥ स्वामित्वं च विभुत्वं च
स्वभावं संप्रचक्षते ॥ २ ॥ तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम् ॥ महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम् ॥ ३ ॥ धर्मक्षेत्रे
महातीर्थे गंगाकालिंदिसंगमे ॥ प्रयागे नैमिषारण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ॥ ४ ॥ मुनयश्शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ॥ महौजसो
महाभागा महासत्रं वितेनिरे ॥ ५ ॥ तत्र सत्रं समाकर्ण्य तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ॥ साक्षात्सत्यवतीसूनोर्वेदव्यासस्य धीमतः ॥ ६ ॥
शिष्यो महात्मा मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित् ॥ ७ ॥

अद्वितीय शक्ति है, सर्वगामी जिनका ऐश्वर्य है स्वामी और व्यापकपन जिनका स्वभाव कहाजाताहै ॥ २ ॥ उन अजन्मा, विश्वके कर्ता, निरन्तर स्थित, अविनाशी, शिव, महादेव, महात्मा शिवकी शरण होता हूं ॥ ३ ॥ धर्मके स्थान महातीर्थ गंगा यमुनाके संगमवाले तथा ब्रह्मलोकके मार्गवाले प्रयाग तथा नैमिषारण्यमें ॥ ४ ॥ सत्यव्रतमें परायण शुद्धात्मावाले महातेजस्वी महाभाग्यवान् मुनियोंने महायज्ञका आरम्भ किया ॥५॥ उन अक्लिष्टकर्मा ऋषियोंके उस यज्ञके वृत्तान्तको सुनकर साक्षात् सत्यवतीपुत्र वेदव्यासके ॥६॥ शिष्य महात्मा बुद्धिमान् तीनोंलोकोंमें विख्यात तथा न्यायशास्त्रमें कहे पांच अवयवयुक्त

वाक्यके गुण दोष जाननेवाले ॥ ७ ॥ साक्षात् बृहस्पतिको भी वाक्यमें निरुत्तर करनेवाले, सुनानेवालोंमें पदवर्णनमें मनोहर मधुरता सम्पादन करनेवाले ॥
॥ ८ ॥ कथा कहनेमें बडे निपुण वक्ता, काल और नीतिके जाननेवाले, कवि पुराण जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सूतजी उस स्थानमें आये ॥९॥ सूतजीको आया
देखकर सब मुनि प्रसन्न होगये, उनको प्रेमपूर्वक विधिसे ऋषियोंने पूजा ॥ १० ॥ मुनियोंकी कीहुई उस पूजाको ग्रहणकर आत्मयुक्त सूतजी मुनियोंके
दियेहुए आसनपर विराजे ॥११॥ तब उन भावितात्मा मुनियोंकी संगतिसे सूतजी प्रसन्न हुए और मुनियोंका चित्त पुराणसम्बन्धी कथा सुननेको उत्कंठित

उत्तरोत्तरवक्ता च ब्रुवतोऽपि बृहस्पतेः ॥ मधुरः श्रवणानां च मनोज्ञपदपर्वणाम् ॥ ८ ॥ कथानां निपुणो वक्ता कालविन्नयवित्कविः ॥
आजगाम स तं देशं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा सूतमायांतं मुनयो हृष्टमानसाः ॥ तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रत्य
पादयन् ॥ १० ॥ प्रतिगृह्य सतां पूजां मुनिभिः प्रतिपादिताम् ॥ उद्दिष्टमासनं भेजे नियुक्तो युक्तमात्मनः ॥ ११ ॥ ततस्तत्संगमादेव
मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ सोत्कंठमभवच्चित्तं श्रोतुं पौराणिकीं कथाम् ॥ १२ ॥ तदा तमनुकूलाभिर्वाग्भिः पूज्य महर्षयः ॥ अतीवा
भिमुखं कृत्वा वचनं चेदमब्रुवन् ॥ १३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्नो भाग्यगौरवात् ॥ संप्राप्तोद्य महाभाग शैवराज
महामते ॥ १४ ॥ पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यक्षमीयिवान् ॥ तस्मादाश्चर्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम् ॥ १५ ॥ रत्नानामुरु
साराणां रत्नाकर इवार्णवः ॥ यच्च भूतं यच्च भव्यं यच्चान्यद्वस्तु वर्तते ॥ १६ ॥ न तवाविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ त्वमदृष्टव
शादस्मद्दर्शनार्थमिहागतः ॥ अकुर्वन्किमपि श्रेयो न वृथा गन्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

हुआ ॥ १२ ॥ तब ऋषि अनुकूल वचनोंसे सूतजीका सत्कार कर और उनको विशेषकर अपने सन्मुख कर यह वचन बोले ॥ १३ ॥ ऋषि बोले; हे
सर्वज्ञ रोमहर्षण सूतजी ! आप हमारे भाग्यके कारणही यहां प्राप्त हुए हो, हे महाभाग ! हे शैवराज ! हे महाबुद्धिमान् ! ॥१४॥ आपने समस्त पुराणोंकी
कथा साक्षात् व्यासजीसे प्राप्त की है, इससे आश्चर्यकी भरीहुई समस्त कथाओंके आप पात्रहैं ॥१५॥ जिस प्रकार समुद्रमें बडे मोलके रत्न रहतेहैं, इसी
प्रकार भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ वस्तु है ॥ १६ ॥ तीनों लोकोंमें तुमको कुछ भी अविदित नहीं है, आप हमारे प्रारब्धसेही यहां आनकर प्राप्त हुए

हो, अब आप हमारा कल्याण किये बिना यहांसे वृथा नहीं जासकते ॥ १७ ॥ इससे जो अत्यन्तही सुननेयोग्य हो पुण्यदायक सत्कथा ज्ञानकी संहितासे युक्त वेदान्तसारका सर्वस्व पुराण हमको सुनाइये ॥ १८ ॥ जब वेदवादी मुनियोंने सूतजीकी इस प्रकारसे प्रार्थना करी, तब सूतजी परम मनोहर न्याय युक्त सुन्दर वाणी बोले ॥ १९ ॥ सूतजी बोले, जब कि, आपने अनुग्रह करके इस प्रकार मेरा सत्कार किया है, तब मैं ऋषिपूजित पुराणको भली प्रकार कैसे नहीं कहसकता हूं ॥ २० ॥ महादेव, देवी, स्कन्दजी, गणेशजी, नंदी, तथा साक्षात् सत्यवतीपुत्र व्यासजीको प्रणाम करके ॥ २१ ॥ परमपुण्यका

तस्माच्छ्राव्यतरं पुण्यं सत्कथाज्ञानसंहितम् ॥ वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाशु नः ॥ १८ ॥ एवमभ्यर्थितस्सूतो मुनिभिर्वेदवादिभिः ॥ श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥ १९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ पूजितोऽनुगृहीतश्च भवद्भिरिति चोदितः ॥ कस्मात्सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥ २० ॥ अभिवंद्य महादेवं देवीं स्कंदं विनायकम् ॥ नंदिनं च तथा व्यासं साक्षात्सत्यवतीसुतम् ॥ २१ ॥ वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं वेदसंमितम् ॥ शिवज्ञानार्णवं साक्षाद्भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ २२ ॥ शब्दार्थन्यायसंयुक्तैरागमार्थैर्विभूषितम् ॥ श्वेतकल्पप्रसंगेन वायुना कथितं पुरा ॥ २३ ॥ विद्यास्थानानि सर्वाणि पुराणानुक्रमं तथा ॥ तत्पुराणस्य चोत्पत्तिं ब्रुवतो मे निबोधत ॥ २४ ॥ अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ॥ पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चेताश्चतुर्दश ॥ २५ ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेत्यनुक्रमात् ॥ अर्थशास्त्रं परं तस्माद्विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥ २६ ॥ अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम् ॥ आदिकर्त्ता कविस्साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः ॥ २७ ॥

देनेवाला वेदसम्मत शिवजीको ज्ञानका समुद्र साक्षात् भक्ति मुक्तिके फलका देनेवाला पुराण कहताहूं ॥ २२ ॥ जो शब्दार्थन्यायसे युक्त वेदार्थमें विभूषित है, तथा पहले वायुने श्वेतकल्पके प्रसंगमें वर्णन किया है ॥ २३ ॥ पुराणोंका अनुक्रम सब विद्याओंका स्थान है, उस कारण मेरे द्वारा आप पुराणकी उत्पत्ति सुनो ॥ २४ ॥ चारवेद उनको शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र, यह चौदह विद्याहैं ॥ २५ ॥ आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, यह चार और मिलानेसे अठारह विद्या होतीहैं ॥ २६ ॥ इन भिन्न भिन्न मार्गवाली अठारह विद्याओंके आदिकर्त्ता साक्षात्

शिव हैं, ऐसा श्रुति कहती है ॥ २७ ॥ उन सब जगत्के पतिने इस जगत्की उत्पत्ति करनेको पहले सनातन पुत्र ब्रह्माजीकी रचना की ॥ २८ ॥
उन विश्वयोनि प्रथमपुत्र ब्रह्माजीके निमित्त ईश्वरने सृष्टिके निमित्त पहले यह विद्या दी ॥ २९ ॥ पालन करनेकी शक्ति विष्णुजीको दी, यह मध्यमपुत्र
विष्णुजी हैं और ब्रह्माजीके भी रक्षक हैं ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने विद्याको प्राप्त हो प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सब शास्त्रोंके बीचमें प्रथम पुराणोंको प्रकाशित
किया ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त उनके मुखोंसे वेद निर्गतहुए; मत्स्यपुराणमें लिखा है कि एक अरब श्लोकोंमें प्रथम कल्पमें एकही पुराण था, जिससे त्रिवर्ग
साधन होता था यथाहि "पुराणमेकमेवासीत्तदाकल्पान्तरेऽनघ ॥ त्रिवर्गसाधनं पुण्यं कल्पकोटिप्रविस्तरम्" इसके उपरान्त ब्रह्माके मुखसे सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति

स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत् ॥ ब्रह्माणं विदधे साक्षात्पुत्रमग्रे सनातनम् ॥ २८ ॥ तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये ॥
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः ॥ २९ ॥ पालनाय हरिं देवं रशाशक्तिं ददौ ततः ॥ मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि
हि ॥३०॥ लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता ॥ प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराण ब्रह्मणा स्मृतम् ॥३१॥ अनंतरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य
विनिर्गताः ॥ प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत्ततः ॥३२॥ यदास्य विस्तरं शक्ता नाधिगंतुं प्रजा भुवि ॥ तदा विद्यासमासार्थं विश्वे
श्वरनियोगतः ॥३३॥ द्वापरांतेषु विश्वात्मा विष्णुर्विश्वंभरः प्रभुः ॥ व्यासनाम्ना चरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले ॥३४॥ एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च
द्वापरेद्वापरे द्विजाः ॥ निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम् ॥३५॥ स पुनर्द्वापरे चास्मिन्कृष्णद्वैपायनाख्यया ॥ अरण्यामिव
हव्याशी सत्यवत्यामजायत ॥ ३६ ॥ संक्षिप्य स पुनर्वेदांश्चतुर्द्धा कृतवान्मुनिः ॥ व्यस्तवेदतया लोके वेदव्यास इति श्रुतः ॥ ३७॥

हुई है ॥ ३२ ॥ जब पृथ्वीमें प्रजा इसके विस्तार कथन करनेमें समर्थ न हुई, तब उन विस्तृत विद्याओंके संक्षेप करनेके निमित्त विश्वेश्वरके निमित्त
विश्वेश्वरकी आज्ञासे ॥ ३३ ॥ द्वापरके अन्तमें विश्वात्मा सम्पूर्ण जगत्स्वरूप विष्णु भगवान् पृथ्वीमें अवतार ले व्यासनामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥
हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरमें वेदोंका विभाग होता है, और दूसरे पुराण निर्मित होतेहैं ॥३५॥ फिर द्वापरके अन्तमें कृष्णद्वैपायन नामसे अरणीमें
अग्निके समान यही सत्यवतीमें जन्मे ॥ ३६ ॥ फिर वेदोंका संक्षेपकर चार प्रकारसे विभक्त किया, वेदोंका अधिक विस्तार करनेसे लोकमें वेदव्यास नामसे

विख्यात हुए ॥ ३७ ॥ पीछे पुराणको संक्षिप्तकर चारलाख श्लोकोंमें किया, देवलोकमें अबभी उन पुराणोंका सौकरोड विस्तार है ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण अंग उपनिषद्सहित चारों वेदोंको जानता है, और पुराणोंको न जाने तो वह चतुर नहीं होता ॥ ३९ ॥ इतिहास और पुराणोंसे वेदोंका विस्तार करै थोडे पढेहुएसे वेद डरता है कि यह मेरी प्रतारणा करैगा ॥४०॥ उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तरकथा, वंशानुचारित जिसमें हो उसे पुराण कहते हैं ॥४१॥ तथा अठारहपुराण प्रसिद्ध हैं बृहत्‌ सूक्ष्मके भेदसे मुनियोंने कहे हैं ॥ ४२ ॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवत, भविष्य, नारदीय,

पुराणानाञ्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ॥ अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ३८ ॥ यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान्द्विजः ॥ न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥ ३९ ॥ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥ बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥ ४० ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥ ४१ ॥ दशधा चाष्टधा चैतत्पुराणमुपदिश्यते ॥ बृहत्सूक्ष्मप्रभेदेन मुनिभिस्तत्त्ववित्तमैः ॥ ४२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥ भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम् ॥ ४३ ॥ आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैंगं वाराहमेव च ॥ स्कान्दं च वामनं चैव कौर्म्मं मात्स्यं च गारुडम् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मांडं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः ॥ तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम् ॥ ४५ ॥ ग्रंथो लक्षप्रमाणं तद्व्यस्तं द्वादशसंहितम् ॥ निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ ४६ ॥ तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः ॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छञ्छिवमेव समाश्रयेत् ॥ ४७ ॥ तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय ॥ ४३ ॥ अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड ॥ ४४ ॥ और ब्रह्माण्डपुराण यह पुराणोंके नाम हैं, इनमें चौथा शिवपुराण भक्तोंके सब मनोरथ सिद्ध करनेहारा है ॥ ४५ ॥ इसके लक्ष श्लोक और बारह संहिता हैं, यह साक्षात्‌ शिवनिर्मित है और इसमें धर्म प्रतिष्ठित हैं ॥ ४६ ॥ इसमें कहे धर्मसे शिवभक्त तीन वर्णके मनुष्य शिवके प्रसादसे हुए ही जन्ममें मुक्त होजाते हैं ॥४७॥ इस कारण मुक्तिकी इच्छा करनेवाले

शिवका ही आश्रय करनेसे देवताओंकी भी मुक्ति होजाती है, इसमें सन्देह नहीं ॥४८॥ जो वेदसम्मत शिवपुराण है मैं संक्षेपसे इसके भेद वर्णन करता हूं आप श्रवण कीजिये ॥ ४९ ॥ विद्येश्वर, रुद्र, विनायक, उमा, मातृसंहिता, रुद्रैकादश ॥ ५० ॥ कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीय संहिता ॥ ५१ ॥ धर्मसंहिता यह बारह संहिता इस पुराणमें हैं इसमें विद्येश्वरसंहिता दशसहस्र ॥ ५२ ॥ रुद्रविनायक उमा और मातृसंहिता प्रत्येक आठ २ सहस्र हैं, रुद्रैकादश ॥ ५३ ॥ तेरह सहस्र और कैलाससंहिता छः सहस्र, शतरुद्र तीन सहस्र, सब अर्थ ज्ञानसे युक्त कोटि रुद्र ॥ ५४ ॥

यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंमितम् ॥ तस्य भेदान्समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ४९ ॥ विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम् ॥ औमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा ॥५० ॥ कलासं शतरुद्रं च कोटिरुद्राख्यमेव च ॥ सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततः परम् ॥ ५१ ॥ धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादश संहिताः ॥ विद्येशं दशसाहस्रमुदितं ग्रंथसंख्यया ॥ ५२ ॥ रौद्रं वैनायकं चौमं मातृकाख्यं ततः परम् ॥ प्रत्येकमष्टसाहस्रं त्रयोदशसहस्रकम् ॥ ५३ ॥ रुद्रैकादशकाख्यं यत्कैलासं षट्सहस्रकम् ॥ शतरुद्रं त्रिसाहस्रं कोटिरुद्रं ततः परम् ॥ ५४ ॥ सहस्रैर्नवभिर्युक्तं सर्वार्थज्ञानसंयुतम् ॥ सहस्रकोटिरुद्राख्यमेकादशसहस्रकम् ॥ ५५ ॥ चतुस्सहस्रसंख्येयं वायवीयमनुत्तमम् ॥ धर्मसंज्ञं पुराणं यत्तद्द्वादशसहस्रकम् ॥ ५६ ॥ तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः ॥ पुराणं वेदसारं तद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ शैवन्तत्र पुराणं वै चतुथ सप्तसंहितम् ॥ ५८ ॥ विद्येश्वराख्या तत्राद्या द्वितीया रुद्रसंहिता ॥ तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ॥५९ ॥

नौ सहस्र श्लोक, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता ग्यारह सहस्र ॥ ५५ ॥ वायु संहिता चार सहस्र, धर्मसंहिता बारह सहस्र ॥ ५६ ॥ इस प्रकार शाखाभेदसे शिवपुराणके एक लक्ष श्लोक हैं, यह वेदोंका सार पुराण भुक्ति मुक्ति देनेवाला है ॥ ५७ ॥ व्यासजीने इसको चौबीस सहस्र श्लोकोंमें संक्षेप किया है, यह शिवपुराण चौथा सात संहिताभेदोंसे युक्त है ॥ ५८ ॥ इसमें पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्र चौथी कोटिरुद्र ॥ ५९ ॥

पाँचवीं उमा, छठी कैलाससंहिता, और सातवीं वायुसंहिता है ॥ ६० ॥ इसमें विद्येश्वर दो २००० सहस्र, रुद्रसंहिता १०५०० दशहजार पांचसौ ॥ ६१ ॥ शतरुद्रसंहिता २१८० दी हजार एकसौ अस्सी, कोटिरुद्रसंहिता २२४० दोहजार दोसो चालीस, उमा संहिता १८४० एक हजार आठसौ चालीस ॥ ॥ ६२ ॥ कैलाससंहिता १२४० एक हजार दोसौ चालीस, वायुसंहिता ४००० चारसहस्र ॥ ६३ ॥ इस प्रकार संख्या भेदसे यह शिवपुराण परम्परासे चौबीस सहस्र है परम पुण्यदायक है ॥ ६४ ॥ और वायुसंहितामें जो चारसहस्र श्लोक कहे हैं, उस वायुसंहिताके दो भाग हैं, सो मैं तुमसे वर्णन करूंगा

पंचमी कथिता चोमा षष्ठी कैलाससंहिता ॥ सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह ॥ ६० ॥ विद्येश्वरं द्विसाहस्रं रौद्रं पंचशतायुतम् ॥ त्रिंशत्तथा द्विसाहस्रं सार्द्धैकशतमीरितम् ॥ ६१ ॥ शतरुद्रन्तथा कोटिरुद्रं व्योमयुगाधिकम् ॥ द्विसाहस्रं च द्विशतं तथौमं भूसहस्रकम् ॥ ६२ ॥ चत्वारिंशत्साष्टशतं कैलासं भूसहस्रकम् ॥ चत्वारिंशच्च द्विशतं वायवीयमतः परम् ॥ ६३ ॥ चतुस्साहस्रसंख्याकमेवं संख्याविभेदतः ॥ श्रुतम्परमपुण्यन्तु पुराणं शिवसंज्ञकम् ॥ ६४ ॥ चतुःसहस्रकं यत्तु वायवीयमुदीरितम् ॥ तदिदं वर्त्तयिष्यामि भागद्वयसमन्वितम् ॥ ६५ ॥ नावेदविदुषे वाच्यमिदं शास्त्रमनुत्तमम् ॥ न चैवाश्रद्दधानाय नापुराणविदे तथा ॥ ६६ ॥ परीक्षिताय शिष्याय धार्मिकायानसूयवे ॥ प्रदेयं शिवभक्ताय शिवधर्मानुसारिणे ॥ ६७ ॥ पुराणसंहिता यस्य प्रसादान्मयि वर्त्तते ॥ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे विद्यावतारकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ पुरा कालेन महता कल्पेऽतीते पुनःपुनः ॥ अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि ॥ १ ॥

॥ ६५ ॥ यह श्रेष्ठ शास्त्र जो वेदका जाननेवाला न हो उसके प्रति न कहना चाहिये जो श्रद्धा न रखता हो जो पुराण न जानता हो उसके सामने कहना उचित नहीं ॥ ६६ ॥ जो परीक्षा कियाहुआ अपना शिष्य हो धर्मात्मा और निन्दारहित हो उस शिवधर्मानुरागी शिवके भक्तको यह पुराण देना चाहिये ॥ ॥ ६७ ॥ जिसके प्रसादसे यह पुराणसंहिता मेरे विषे वर्तमान है, उस महातेजस्वी व्यासजीको नमस्कार है ॥ ६८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहिताभाषाटीकायां पूर्वखण्डे विद्यावतारकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले, बहुत समय और अनेक कल्पोंके बीतनेपर जब यह श्वेतवाराह

कल्प उपस्थित हुआ तब सृष्टि निर्माण कर्ममें ॥ १ ॥ यह जगत् निर्माणकी वार्ता प्रवृत्त होने और प्रजाके ज्ञानयुक्त होनेमें षट्कुलोंमें उत्पन्न हुए वे मुनि सब परस्पर कहने लगे ॥ २ ॥ यह परब्रह्म है यह नहीं इस प्रकारका महाविवाद होने लगा; परन्तु ब्रह्मको निरूपण करना कठिन है इसमें कोई निश्चय न हुआ ॥ ३ ॥ तब वे सब अविनाशी ब्रह्माजीके देखनेके निमित्त गये जहां सुर असुरोंसे स्तुतिको प्राप्तहुए ब्रह्माजी विद्यमान थे ॥ ४ ॥ मनोहर सुमेरुके शृंगमें जहां अनेक देव दानव स्थित हैं, सिद्ध चारणोंसे युक्त यक्ष गन्धर्वोंसे सेवित ॥ ५ ॥ अनेक पक्षियोंसे भरे मणिमूँगोंसे युक्त निकुंज कंदरा छोटी गुहा

प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च ॥ मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् ॥ २ ॥ इदं परमिदं नेति विवादस्सुमहान
भूत् ॥ परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ॥ ३ ॥ तेऽभिजग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ॥ यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूय
मानस्सुरासुरैः ॥ ४ ॥ मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले ॥ सिद्धचारणसंवादे यक्षगंधर्वसेविते ॥ ५ ॥ विहंगसंघसंघुष्टे मणि
विद्रुमभूषिते ॥ निकुंजकंदरदरीगुहानिर्झरशोभिते ॥ ६ ॥ तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम् ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमा
यतम् ॥ ७ ॥ सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम् ॥ मत्तभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपम् ॥ ८ ॥ तरुणादित्यसंकाशं तत्र चारु महत्पु
रम् ॥ दुर्द्धर्षबलदृप्तानां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ९ ॥ तप्तजांबूनदमयं प्रांशुप्राकारतोरणम् ॥ निर्व्यूहवलभीकूटप्रतोलीशतमंडितम् ॥
॥ १० ॥ महार्हमणिचित्राभिर्लेलिहानमिवांबरम् ॥ महाभवनकोटीभिरनेकाभिरलंकृतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्निवसति ब्रह्मा सभ्यैः सार्द्धं
प्रजापतिः ॥ तत्र गत्वा महात्मानं साक्षाल्लोकपितामहम् ॥ १२ ॥

और झरनोंसे शोभित ॥ ६ ॥ वहां अनेक मृगोंसे भरापूरा ब्रह्मवन है जो दश योजनका विस्तारवाला और सौ योजनका लम्बा है ॥ ७ ॥ जिसमें सुन्दर रसयुक्त जलवाले सरोवर हैं, जहांके मनोहर फूले वृक्षोंपर मतवाले भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥ ८ ॥ लाल सूर्यके समान प्रकाशमान वहां एक महापुर है, जहां बडे दुर्धर्ष बलदृप्त दैत्य दानव राक्षसोंका ॥ ९ ॥ तपायेहुए सोनेके समान, ऊँचे प्राकार और तोरण ध्वजाओंसे शोभित खूँटी गोपानसी और सैकडों गलियोंसे शोभित ॥ १० ॥ महामोलकी चित्र विचित्र मणियोंसे आकाशको चाटतेहुए, करोडों भुवन समूहोंसे अलंकृत ॥ ११ ॥ उस स्थानमें साध्य देवताओंके

सहित ब्रह्माजी निवास करते हैं वहां आकर लोकपितामह ब्रह्माजीको ॥ १२ ॥ देवता ऋषियोंसे सेवित उन मुनियोंने देखा, जो शुद्ध सुवर्णके आभूषण पहरेहुए थे ॥ १३ ॥ प्रसन्न मुख सौम्यमूर्त्ति कमलपत्रके समान नेत्र दिव्य कान्तिसे युक्त दिव्यगन्धका अनुलेपन किये ॥ १४ ॥ दिव्य श्वेतवस्त्र पहरे दिव्यमालाओंसे विभूषित सुर असुर योगीन्द्र जिनके चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त हाथमें चमर लिये सूर्यकी प्रभाके समान सरस्वतीसे सेवित ॥ १६ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीको देख सब मुनि प्रसन्नमुख हो शिरपर अंजलि धर ब्रह्माजीकी स्तुति करनेलगे ॥ १७ ॥ ऋषि बोले,

ददृशुर्मुनयो देवा देवर्षिगणसेवितम् ॥ शुद्धचामीकरप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १३ ॥ प्रसन्नवदनं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ दिव्यकांतिसमायुक्तं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ १४ ॥ दिव्यशुक्लांबरधरं दिव्यमालाविभूषितम् ॥ सुरासुरेन्द्रयोगींद्रवंद्यमानपदांबुजम् ॥ १५ ॥ सर्वलक्षणयुक्तांग्या लब्धचामरहस्तया ॥ भ्राजमानं सरस्वत्या प्रभयेव दिवाकरम् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥ शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टुवुस्सुरपुंगवम् ॥ १७ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे ॥ पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १८ ॥ नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे ॥ त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारिणे ॥ १९ ॥ नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्मांडोदरवर्तिने ॥ तत्र संसिद्धकार्याय संसिद्धकरणाय च ॥ २० ॥ नमोस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने ॥ सर्वात्मदेहसंयोगवियोगविधिहेतवे ॥ २१ ॥ त्वयैव निखिलं सृष्टं संहृतं पालितं जगत् ॥ तथापि मायया नाथ न विद्मस्त्वां पितामह ॥ २२ ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति पालन संहार करनेहारे त्रिमूर्तिस्वरूप आपको नमस्कार है, पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्माके निमित्त नमस्कार है ॥ १८ ॥ प्रधान देह प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी विषम अवस्थाके करनेवाले तेईस महत् आदि विकार करके भी विकारहीन ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्डके उत्पन्नकर्ता होकर भी ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित होनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, उस ब्रह्माण्डमें महाभूतात्मक सृष्टि आदिके कर्ता और अपंचीकृत महाभूतके कर्ताको नमस्कार है ॥ २० ॥ सब लोकस्वरूप सब लोकके देखनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, सम्पूर्ण आत्मा देहके संयोगविधिके कारण ॥ २१ ॥ तुम्हींने यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न

करके पालन और संहार किया है, हे नाथ ! हे पितामह ! मायाके वशीभूत होकर हम आपको नहीं जानते ॥ २२ ॥ सूतजी बोले, जब इस प्रकार महाभागी ऋषियोंने ब्रह्माजीकी प्रार्थना की तब मुनियोंको प्रसन्न करतेहुए ब्रह्माजी गंभीरवाणीसे बोले ॥२३॥ ब्रह्माजी बोले, हे महापराक्रमी महातेजस्वी ऋषियो ! तुम सब मिलकर किस कारणसे यहाँ आये हो ॥ २४ ॥ जब देव ब्रह्माजीने उनके प्रति ऐसे वचन कहे तब वे ऋषि हाथ जोड विनययुक्त वाणीसे बोले ॥ २५ ॥ मुनि बोले, हे भगवन् ! हम सब बडेभारी अन्धकारसे आवृत होरहेहैं हम विवाद करके खिन्न होरहेहैं परन्तु हमने अबतक परमतत्त्वको

॥ सूत उवाच ॥ ॥ एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिरभिष्टुतः ॥ प्राह गंभीरया वाचा मुनीन् प्रह्लादयन्निव ॥२३॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥
ऋषयो हे महाभागा महासत्त्वा महौजसः ॥ किमर्थं सहितास्सर्वे यूयमत्र समागताः ॥ २४ ॥ तमेवंवादिनं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः ॥
वाग्भिर्विनयगर्भाभिस्सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन् ॥ ॥ २५ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ भगवन्नंधकारेण महता वयमावृताः ॥ खिन्ना विवदमानाश्च
न पश्यामोऽत्र यत्परम् ॥ २६ ॥ त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम् ॥ त्वया ह्यविदितं नाथ नेह किंचन विद्यते ॥ २७ ॥ कः
पुमान् सर्वसत्त्वेभ्यः पुराणः पुरुषः परः ॥ विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः ॥ २८ ॥ केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ॥
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ स्वसंदेहापनुत्तये ॥२९॥ एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मा विस्मयस्मेरवीक्षणः ॥ देवानां दानवानां च मुनीनामपि सन्निधौ ॥३०॥

न जाना ॥ २६ ॥ तुमहीं सब जगतके कर्ता सबके कारणके कारण हो; हे नाथ ! आपको इस जगत्में कुछभी अविदित नहीं है ॥ २७ ॥ सब जीवोंसे पुराना आपके सिवाय और कौन पुरुष है, विशुद्ध परिपूर्ण शाश्वत नित्य परमेश्वर ॥ २८ ॥ किस विचित्र कृत्यसे प्रथम जगत्को निर्माण करता है, हे महाप्राज्ञ ! सन्देह दूर करनेको तत्त्वसे कहिये और अन्तकालमें यह सब किसमें लय होजाता है, यह सब प्राणी किसके वशमें हैं; और इन सबका नियोजक कौन है, उस पुरुषको हम किस प्रकारसे देख सकतेहैं ॥ २९ ॥ जब उन्होंने विस्मययुक्त हो इस प्रकार ब्रह्माजीसे पूछा तब देवता दानव और

मुनियोंके निकटमें ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी उठकर बहुत काल ध्यान कर रुद्र इस प्रकार वाणी उच्चारण करते आनन्दसे पूरितशरीर हो हाथ जोड बोले ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले, जहाँ मनके सहित वाणी चलकर उसे प्राप्त न होकर लौट आतीहै, जिसके आनन्दको प्राप्त हो विद्वान् कहींसे भी भीत नहीं होता है ॥ १ ॥ जिससे यह सब ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्रादिक हुएहैं; और भूतेन्द्रियके सहित प्रथम उत्पन्न होतेहैं ॥ २ ॥ जो सृष्टि आदि कारणोंका ध्याता नारायण है, जो उनका भी पर कारण है उसके सिवाय और कोई बस्तु कोई भी

उत्थाय सुचिरं ध्यात्वा रुद्र इत्युद्धरन् गिरम् ॥ आनंदक्लिन्नसर्वांगः कृतांजलिरभाषत ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे मुनिप्रस्ताववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य सनसा सह ॥ आनंदं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्च न ॥ १ ॥ यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ॥ सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ॥ २ ॥ कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ॥ न संप्रसूयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचन ॥ ३ ॥ सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ॥ सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येयश्शंभुराकाशमध्यगः ॥ ४ ॥ योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे ॥ तत्प्रासादान्मया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ॥ ५ ॥ ईशो वृक्ष इवास्तब्धो य एको दिवि तिष्ठति ॥ येनेदमखिलं पूर्णं पुरुषेण महात्मना ॥ ६ ॥ एको बहूनां जंतूनां निष्क्रियाणां च सक्रियः ॥ य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ॥ ७ ॥ जीवैरेभिरिमाँल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते ॥ य एको भगवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ ८ ॥

किसीसे उत्पन्न नहीं होती ॥ ३ ॥ वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न स्वयं सर्वेश्वरहैं; सब मुमुक्षुओंसे ध्यान करनेयोग्य हृदयाकाशके मध्यमें स्थितहैं ॥ ४ ॥ जो प्रथम मुझ पुत्रको उत्पन्नकर ज्ञान प्रदान करता है, जिनके प्रसादसे यह मैंने प्रजापतिपद पाया है ॥ ५ ॥ जो एकही ईश्वर वृक्षकी नाईं निश्चल आकाशमें स्थित है, जिस महात्मा पुरुषसे यह सब ब्रह्माण्ड पूर्ण है ॥ ६ ॥ जो एक ही क्रियाहीन अनेक जीवोंसे सत्क्रिया कराता है, अर्थात् प्रेरक है, और जो एकही अनेक बीजरूप कर्मोंको कराता है, यही महेश्वरहै ॥ ७ ॥ जो ईश्वर सब जीवोंसे लोकोंको भरकर आप उनका शासक है, वही एक भगवान् रुद्र

है, दूसरा कोई नहीं है ॥ ८ ॥ जो सदा भक्तोंके हृदयमें स्थित होकर भी दूसरोंको न दीखताहुआ स्थित होता है ॥ ९ ॥ जो काल अर्थात् प्रसिद्ध
आत्मा और बुद्धिसे युक्त अनेक कारणोंको जो आकाशादिकहैं; उनमें वह एकही अनन्तशक्ति भगवान् स्थितहै ॥ १० ॥ सृष्टि उत्पन्न होनेके पूर्व जगत्
अन्धकारमें था; उस समय दिन रात सत् असत् कुछ नहीं था, केवल एक शिवही थे उसके समान वा अधिक नहीं है, उसकी पराशक्ति स्वाभाविकी है,
और उसमें नित्य ज्ञान और क्रिया रहती है ॥ ११ ॥ जो कुछ यह सम्पूर्ण भूत है, वह अक्षर कूटस्थ परमात्मा है वह अव्यक्त है, यद्यपि अक्षर अमृत

सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः ॥ अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ॥ ९ ॥ यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्य
खिलान्यपि ॥ अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति ॥ १० ॥ न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः ॥ स्वभाविकी परा
शक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि ॥ ११ ॥ यदिदं क्षरमव्यक्तं यदप्यमृतमक्षरम् ॥ तावुभावक्षरात्मानावेको देवः स्वयं हरः ॥ १२ ॥ ईशते
तदभिध्यानाद्योजनासत्त्वभावनः ॥ भूयो ह्यस्य पशोरन्ते विश्वमाया निवर्त्तते ॥ ॥ १३ ॥ यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च
चन्द्रमाः ॥ यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥१४॥ एको देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ॥ न तस्य परमं किंचित्पदं
समधिगम्यते ॥ १५ ॥ अयमादिरनाद्यन्तस्स्वभावादेव निर्मलः ॥ स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥ १६ ॥ अप्राकृतवपुः
श्रीमाँल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः ॥ अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः ॥ १७ ॥

स्वरूप है, वह अक्षर और आत्मा यह दोनों एकही महेश्वर देव एकहैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य सत्वभावसे उन शिवजीका ध्यान करताहै, तब अन्तसमय इस
जीवकी माया निवृत्त होजायगी, और मुक्त होजायगा ॥ १३ ॥ जिसमें बिजली सूर्य चन्द्रमा कोई भी अपना प्रकाश नहीं करते जिसकी कान्तिसे यह
सब जगत् प्रकाश कररहा है, यह श्रुति सनातन की है ॥ १४ ॥ एकही महादेव देवता जाननेके योग्य है उसका परमतत्त्व कुछ भी किसीसे जाना
नहीं जाता ॥ १५ ॥ यही आदि अन्तहीन स्वभावसे निर्मल है, यही स्वतन्त्र परिपूर्ण चर अचरको अपनी इच्छाके आधीन कियेहुए हैं ॥ १६ ॥
इन लक्ष्मीवान्का प्रकृतिका शरीर नहीं है, यह लक्ष्य और लक्षणसे वर्जित है स्वयं मायामें सम्बद्ध होकर भी यह भक्तोंके मुक्ति देनेहारे कालस्वरूप न

होकर भी कालके प्रेरक हैं ॥ १७ ॥ उनका स्थान सबसे ऊपर है; वह सबमें विराजते हैं; और सबमें निवास करके भी सबके जाननेवाले हैं; आगे कहे हुए छः मार्ग और सम्पूर्ण जगत्के पति हैं ॥ १८ ॥ उत्तरोत्तर प्राणियोंमें भी वही सबसे उत्कृष्ट हैं, उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं वह अनन्त महिमाकी भूमि और अपरिच्छिन्न ऐश्वर्यवाले हैं, शब्दादि विषयोंमें जो अमोघ अर्थात् शुद्ध बुद्धि हैं उससे और भक्तोंके निर्मल हितकारी ज्ञानसे सबमें व्यापक हैं; और आत्मा शक्तिके आनन्दके अमृत और प्रमोदके रसिक युवा अवस्था युक्त है, अनन्त अनन्दके पात्र मकरन्दके पानमें मधुव्रत ॥१९॥ बाल अखंड और जगत्के

सर्वोपरिकृतावासस्सर्वावासश्च सर्ववित् ॥ षड्विधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः ॥ १८ ॥ उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ॥
अनन्तानन्तसन्दोहमकरंदमधुव्रतः ॥ १९ ॥ अखंडजगदंडानां पिंडीकरणपंडितः ॥ औदार्यवीर्यगांभीर्य्यमाधुर्य्यमकरालयः ॥ २० ॥
नैवास्य सदृशं वस्तु नाधिकं चापि किंचन ॥ अतुलः सर्वभूतानां राजराजश्च तिष्ठति ॥ २१ ॥ अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते
जगत् ॥ अंतकाले पुनश्चेदं तस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥ २२ ॥ अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्वनियोजकः ॥ अयं तु परया भक्त्या
दृश्यते नान्यथा क्वचित् ॥ २३ ॥ व्रतानि सर्वदानानि तपांसि नियमास्तथा ॥ कथितानि पुरा सद्भिर्भावार्थं नात्र संशयः ॥ २४ ॥
हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः ॥ तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः ॥ २५ ॥ अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ॥
भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च ॥ २६ ॥

दण्डदानके पिंडीभाव करनेमें पंडितहैं उदारता वीरता गंभीरता और मधुरताके मकरालय अर्थात् सागर हैं ॥२०॥ इनकी बराबर न कोई वस्तु है न इनसे अधिक है, किसी वस्तुसे इनकी तुलना नहीं होसकती, यह राजोंके राजा होकर स्थित हैं ॥ २१ ॥ इन्हींसे चित्रकृत्यके समान यह जगत् प्रथम बनाया जाता है, और अन्तसमय यह जगत् फिर इन्हींमें लय होजाता है ॥२२॥ इन्हींके सब वशमें हैं और यही सबके निर्मुक्त करनेवाले हैं, यह परमभक्तिसे दीखते हैं, दूसरी प्रकारसे नहीं ॥ २३ ॥ व्रत और सब दान तप और नियम यह प्राचीन महात्माओंने और रुद्र तथा ईश्वरके ध्यानके निमित्त कहे हैं ॥ ॥ २४ ॥ विष्णुमें दूसरे सुर असुर बडे उग्र तप करके अबतक उनके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥ २५ ॥ वह पतित मूढ और कुत्सित दुर्जनोंकी दृष्टिमें

नहीं आना, भक्त उसको भीतर बाहर पूजनकर उससे सम्भाग करते हैं ॥ २६ ॥ जो यह स्थूल सूक्ष्म और सूक्ष्मसे भी परे रूप है, हम और देवता आदि स्थूलको देख सकतेहैं योगीजन सूक्ष्म रूपका दर्शन करतेहैं ॥ २७ ॥ इससे आगे जो नित्यज्ञान आनन्द और अविनाशी लक्षणयुक्त है उसको उसमें निष्ठा करनेवाले उसीमें तत्पर उसीका व्रत करनेवाले पातेहैं ॥ २८ ॥ बहुत कहनेसे क्या है जो गुप्तसे भी गुप्त परहै, वह शिवमें भक्ति करनी है; इसमें सन्देह नहीं कि, भक्ति करनेसे मुक्त होजाता है ॥ २९ ॥ ईश्वरके प्रसादसे उसमें भक्ति होती है; और भक्ति करनेसे ईश्वरसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है, जैसे अंकुरसे

तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ॥ अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः ॥ २७ ॥ ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानंदमव्ययम् ॥ तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तद्व्रतमाश्रितैः ॥ २८ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते ॥ २९ ॥ प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ॥ यथा चांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः ॥ ३० ॥ प्रसादपूर्विका एव पशोस्सर्वत्र सिद्धयः ॥ स एव साधनैरन्ते सर्वैरपि च साध्यते ॥ ३१ ॥ प्रसादसाधनं धर्मस्स च वेदेन दर्शितः ॥ तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयोः पुण्यपापयोः ॥ ३२ ॥ साम्यात्प्रसादसंपर्को धर्मस्यातिशयस्ततः ॥ धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः ॥३३॥ एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात् ॥ सांबे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते ॥३४॥ भावानुगुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्यते ॥ प्रसादात्कर्मसंत्यागः फलतो न स्वरूपतः ॥ ३५ ॥

बीज और बीजसे अंकुर होता है ॥ ३० ॥ इसी प्रकार प्राणियोंको ईश्वरसे भक्तिकी प्राप्ति होती है, यह सर्वत्र निश्चय है, यह शिव सब साधनोंसे अन्तमें साध लियेजातेहैं ॥ ३१ ॥ उनके प्रसन्न करने और साधनेका धर्म वेदने दिखादिया है, वह वेदके अभ्यासवशसे पूर्वजन्मके पाप और पुण्य समान होनेसे ॥ ३२ ॥ साम्यता होनेसे प्रसादकी प्राप्ति और धर्मकी अधिकता होती है, धर्मकी अधिकतासे जीवके पापका नाश होता है ॥ ३३ ॥ और इस प्रकार क्रमसे बहुत जन्मके कियेहुए पापोंके नाश होजानेसे साम्ब सर्वेश्वरमें ज्ञानपूर्वक भक्ति होती है ॥ ३४ ॥ उनके गुणोंका विचार करनेसे उनमें प्रसादकी प्राप्ति होती है,

प्रसादसे कर्मका त्याग होता है, कर्मत्यागका आशय उसके फलसे है, स्वरूपसे नहीं ॥ ३५ ॥ इस कारण कर्मफलके त्याग करनेसे शिवधर्ममें तत्पर होता है वह धर्म गुरुकी अपेक्षायुक्त और गुरुकी अपेक्षारहित होनेसे दो प्रकारका है ॥ ३६ ॥ उसमें गुरुकी अपेक्षा न करनेवालेसे गुरुकी अपेक्षा करनेवाला सौ गुणा अधिक है, जो कि, गुरुकी अपेक्षासे शिवधर्ममें तत्पर रहता है वह शिवज्ञानसे युक्त होजाता है ॥ ३७ ॥ ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे पुरुष संसारमें दोष देखने लगता है विषयोंमें वैराग्य होनेसे उन शिवके प्रेमका साधन होता है ॥ ३८ ॥ भावसिद्धियुक्त निष्ठा ध्यानकर्ममें ज्ञान होनेसे ज्ञान ध्यानसे युक्त पुरुषको

तस्मात्कर्मफलत्यागाच्छिवधर्मान्वयः शुभः ॥ स च गुर्वनपेक्षश्च तदपेक्ष इति द्विधा ॥ ३६ ॥ तत्रानपेक्षात्सापेक्षो मुख्यः शतगुणाधिकः ॥ शिवधर्मान्वयस्यास्य शिवज्ञानसमन्वयः ॥ ३७ ॥ ज्ञानान्वयवशात्पुंसः संसारे दोषदर्शनम् ॥ ततो विषयवैराग्यं वैराग्याद्भावसाधनम् ॥ ३८ ॥ भावसिद्ध्युपपन्नस्य ध्याने निष्ठा न कर्मणि ॥ ज्ञानध्यानाभियुक्तस्य पुंसो योगः प्रवर्तते ॥ ३९ ॥ योगेन तु परा भक्तिः प्रसादस्तदनंतरम् ॥ प्रसादान्मुच्यते जंतुर्मुक्तः शिवसमो भवेत् ॥ ४० ॥ अनुग्रहप्रकारस्य क्रमोऽयमविवक्षितः ॥ यादृशी योग्यता पुंसस्तस्य तादृगनुग्रहः ॥ ४१ ॥ गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जायमानस्तथापरः ॥ बालो वा तरुणो वाथ वृद्धो वा मुच्यते परः ॥ ४२ ॥ तिर्यग्योनिगतः कश्चिन्मुच्यते नारकोऽपरः ॥ अपरस्तु पदं प्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षये ॥ ४३ ॥ कश्चित्क्षीणपदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते ॥ कश्चिदध्वगतस्तस्मिन् स्थित्वास्थित्वा विमुच्यते ॥ ४४ ॥

योगकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ योगसे पराभक्ति इसके उपरान्त प्रसन्नता होती है, और उनकी प्रसन्नतासेही यह पुरुष मुक्त होकर शिवके समान होजाता है ॥ ४० ॥ यह अनुग्रह होनेका क्रम कथन किया, जैसी पुरुषकी योग्यता होगी वैसेही उसको प्रसादकी प्राप्ति होगी ॥ ४१ ॥ कोई गर्भमें स्थितही और कोई जन्म लेकर मुक्त होजाता है कोई बालक कोई तरुण और कोई वृद्ध होकर मुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥ कोई तिर्यक्योनिमें कोई नरकमें जाकर मुक्त होजाता है, कोई पाप पुण्यके क्षीण होनेसे अपने पदके क्षय होनेसे उस पदको प्राप्त हो मुक्त होता है ॥ ४३ ॥ कोई क्षीणपदहो फिर कर्मभूमिमें प्राप्त

होकर मुक्त होजाता है, कोई स्वर्गमें जाय वहां कुछ दिन रहनेके उपरान्त मुक्त होजाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण मनुष्योंकी एक प्रकारसे मुक्ति नहीं है, ज्ञान तथा भावके अनुसार शिवके प्रसादसे ही अत्यन्त आनन्द होता है ॥ ४५ ॥ इस कारण शिवजीके प्रसन्न करनेके निमित्त वाणी मनके द्वेषोंसे हीन होकर सदाशिवकाही ध्यान करतेहुए सदा प्रीति करते नीति और अग्निहोत्र करते हुए ॥ ४६ ॥ शिवमेंही निष्ठा, उन्हींमें तत्पर उसीमें युक्त और शिवका ही आश्रय करनेहारे सब क्रियाओंको करनेहारे मनसे शिवका ही ध्यान करनेहारे ॥ ४७ ॥ तुम दिव्य सहस्र वर्षका दीर्घ यज्ञका अनुष्ठान करो, यज्ञके

तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते ॥ ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः ॥ ४५ ॥ तस्मादस्य प्रसादार्थं वाङ्मनोदोषवर्जिताः॥ ध्यायंतश्शिवमेवैकं सदारतनयाग्नयः ॥ ४६ ॥ तन्निष्ठास्तत्परास्सर्वे तद्युक्तास्तदुपाश्रयाः ॥ सर्वक्रियाः प्रकुर्वाणास्तमेव मनसा गताः ॥ ४७ ॥ दीर्घसूत्रसमारब्धं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ सत्रांते मंत्रयोगेन वायुस्तत्र गमिष्यति ॥ ४८ ॥ स एव भवतां श्रेयः सोपायं कथयिष्यति ॥ ततो वाराणसी पुण्या पुरी परमशोभना ॥४९॥ गंतव्या यत्र विश्वेशो देव्या सह पिनाकधृक् ॥ सदा विहरति श्रीमान् भक्तानुग्रहकारणात् ॥ ५० ॥ तत्राश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मत्समीपं गमिष्यथ ॥ ततो वः कथयिष्यामि मोक्षोपायं द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ येनैकजन्मना मुक्तिर्युष्मत्करतले स्थिता ॥ अनेकजन्मसंसारबंधनिर्मोक्षकारिणी ॥ ५२ ॥ एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते ॥ यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसश्शुभः ॥ ५३ ॥

अन्तमें मंत्रपढनेसे वायु उस स्थानमें अवश्य आवेंगे, वही तुम्हारा मंगल और कल्याणका उपाय कहैंगे, फिर परम पवित्र पुण्यकी देनेहारी ॥४८॥ वाराणसी पुरीमें जाना जहां देवीके सहित पिनाकधारी शिवजी निवास करते हैं ॥ ४९ ॥ वह श्रीमान् भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले वहाँ सदा विहार करते हैं ॥ ॥ ५० ॥ वहाँ एक बडा आश्चर्य देखकर तुम मेरेसमीप आना हे ब्राह्मणो ! तब मुक्तिका उपाय उस समय तुमसे कहूंगा ॥ ५१ ॥ जिससे एकही जन्ममें तुम्हारी मुक्ति होजायगी, जो अनेक जन्मोंमें भ्रमनेवालोंको मोक्ष करदेती है ॥ ५२ ॥ यह मैंने मनोमयचक्र बनाया है, इसको मैं त्यागन करता हूँ; जहाँ

इसकी नेमि टूट जाय वही देश तप करनेके योग्य जानना ॥५३॥ ऐसा कहकर सूर्यके समान वह मनोमय चक्र देखकर महादेवजीको प्रणाम कर ब्रह्माजीने चक्र छोड दिया ॥ ५४ ॥ वे ब्राह्मण प्रसन्न हो ब्रह्माजीको प्रणाम कर उसके पीछे चले; उस चक्रकी नेमि जहाँ टूटी ॥ ५५ ॥ उस देशमें एक शिलाके ऊपर वह चक्र गिरा जिस वनमें उज्ज्वल जल था ऐसे वनमें वह पतित हुआ ॥५६॥ इसी कारणसे वह मुनिपूजित वन नैमिषारण्य नामसे विख्यात हुआ; अनेक यक्ष गन्धर्व विद्याधरोंसेयुक्त हुआ ॥ ५७ ॥ पुरूरवा राजा अठारह द्वीपका राज्य करता हुआ विलासके कारण देवसे प्रेरित हो उर्वशीके निकट

इत्युक्का सूर्यसंकाशं चक्रं दृष्ट्वा मनोमयम् ॥ प्रणिपत्य महादेवं विससज पितामहः ॥ ५४ ॥ तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम् ॥ प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ॥५५॥ चक्रं तदपि संक्षिप्तं श्लक्ष्णं चारुशिलातले॥ विमलस्वादुपानीये निपपात वने क्वचित् ॥ ५६ ॥ तद्वनं तेन विख्यातं नौमिषं मुनिपूजितम् ॥ अनेकयक्षगंधर्वविद्याधरसमाकुलम् ॥५७॥ अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः ॥ विलासवशमुर्वश्या यातो दैवेन चोदितः ॥ ५८॥ अक्रमेण हरन्मोहाद्यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥ मुनिभिर्यत्र संक्रुद्धैः कुशवज्रैर्निपातितः ॥ ५९ ॥ विश्वं सिसृक्षमाणा वै यत्र विश्वसृजः पुरा ॥ सत्रमारेभिरे दिव्यं ब्रह्मज्ञा गार्हपत्यगाः ॥ ६० ॥ ऋषिभिर्यत्र विद्वद्भिः शब्दार्थन्यायकोविदैः ॥ शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीदनुष्ठितः ॥ ६१ ॥ यत्र वेदविदो नित्यं वेदवादबहिष्कृतान् ॥ वादजल्पबलैर्घ्नंति वचोभिरतिवादिनः ॥ ६२ ॥

आया ॥ ५८ ॥ उसने अज्ञानसे धर्मके अतिक्रमणसे मुनियोंकी यज्ञशालाको हरण किया, तब मुनिने क्रोधकर वहाँ वज्रकी समान कुश निपातित किये थे ॥ ५९ ॥ और उसी स्थानपर पूर्वसमयमें ब्रह्माजीने सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छासे दिव्य यज्ञका आरम्भ किया; जो कि, ब्रह्मज्ञानी और गार्हपत्य अग्निवाले ॥ ६० ॥ विद्वान् ऋषि तथा शब्दार्थ और न्यायके पंडित तथा शक्ति ज्ञान और क्रियायोगकी विधि जाननेवालोंसें अनुष्ठीयमान ॥ ६१ ॥ जहाँ नित्य वेदके जाननेवाले वेदवादसे बाहर किये नास्तिक पुरुषोंको वेदवादके तथा जल्पके बलसे तथा अनेक प्रमाणोंसे जीतते हैं ॥ ६२ ॥

जहाँ स्फटिक मणिके पर्वतोंसे निकली शिलाओंसे अमृतके समान निर्मल जल निकलता है, जहाँके वृक्षोंपर रसीले फल लगते तथा अनेक जन्तु निवास करते थे ऐसा वह नैमिषारण्य मुनियोंके तपके योग्य होगया ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा०सं० पूर्वखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, उस देशमें वह महाभाग्य ऋषि महादेवकी पूजा कर यज्ञका आरंभ करनेलगे ॥ १ ॥ वह यज्ञ महर्षियोंको आश्चर्य करनेवाला प्रारम्भ हुआ उसके सब कृत्य आश्चर्यके थे ॥ २ ॥ जब बहुत समय बीतनेपर वह बडी दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्माजीके नियोगसे उस स्थानमें स्वयं वायु

स्फटिकमयमहीभृत्पादजाभ्यश्शिलाभ्यः प्रसरदमृतकल्पस्स्वच्छपानीयरम्यम् ॥ अतिरसफलवृक्षप्रायमव्यालसत्त्वं तपस उचितमासीन्नैमिषं तन्मुनीनाम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे नैमिषोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ सूत उवाच ॥ तस्मिन्देशे महाभागा मुनयश्शंसितव्रताः ॥ अर्चयंतो महादेवं सत्रमारेभिरे तदा ॥ १ ॥ तच्च सत्रं प्रववृते सर्वाश्चर्यं महर्षिणाम् ॥ विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥ २ ॥ अथ काले गते सत्रे समाप्ते भूरिदक्षिणे ॥ पितामहनियोगेन वायुस्तत्रागमत्स्वयम् ॥ ३ ॥ शिष्यस्स्वयंभुवो देवस्सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ॥ आज्ञायां मरुतो यस्य संस्थितास्सप्तसप्तकाः ॥ ४ ॥ प्रेरयञ्छश्वदंगानि प्राणाद्याभिः स्ववृत्तिभिः ॥ सर्वभूतशरीराणां कुरुते यश्च धारणम् ॥ ५ ॥ अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैश्च समन्वितः ॥ तियक्करादिभिर्मेध्यैर्भुवनानि बिभर्ति यः ॥ ६ ॥ आकाशयोनिर्द्विगुणः स्पर्शशब्दसमन्वयात् ॥ तेजसां प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥ ७ ॥ तमाश्रमगतं दृष्ट्वा मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ पितामहवचः स्मृत्वा प्रहर्षमतुलं ययुः ॥ ८ ॥

देवता आये ॥ ३ ॥ जो साक्षात् स्वयंभूदेवके शिष्य सबके प्रत्यक्ष इन्द्रियजित जिनकी आज्ञामें ४९ उनचास पवन स्थिर रहतेहैं ॥ ४ ॥ जो प्राणादि वृत्ति युक्त अपने अंगोंको प्रेरण करतेहैं; जोसब प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं ॥५॥ अणिमादि आठ सिद्धियोंके ऐश्वर्यसे युक्त तिरछी पडनेवाली सूर्यकी किरणोंसे संसारको धारण करता है ॥ ६ ॥ आकाशसे उत्पन्न होनेवाला शब्द और स्पर्शके गुणसे युक्त जिसका तत्त्व जाननेवाले अग्न्यादिकोंका कारण कहते हैं ॥ ७ ॥ दीर्घ यज्ञ करनेवाले ऋषि वायुदेवताको आश्रममें आया देखकर ब्रह्माके वचन स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

सब कोई उठकर वायुको प्रणाम कर उनके निमित्त बैठनेको सुवर्णका आसन देतेहुए ॥ ९ ॥ वह वायुदेवताने भी मुनियोंसे भलीप्रकार पूजित हो उन सबके वचनोंमें प्रसन्न हो उनसे सबकी कुशल पूँछी ॥ १० ॥ वायु बोले, हे ब्राह्मण ! क्या इस तुम्हारे यज्ञ कार्यमें कुशल है ? हे ब्राह्मणो ! यज्ञ बिगाडनेवाले देवशत्रु दैत्य तुम्हारे यज्ञमें विघ्न तौ नहीं करते ? ॥ ११ ॥ कोई प्रायश्चित्त अथवा अरिष्ट तो किसीको उपस्थित नहीं हुआ ? स्तोत्र और शस्त्रग्रहोंसे देवताओंको और पितृकर्मसे पितरोंको प्रीति होती है ॥ १२ ॥ इस प्रकार तुमने अर्चन कर विधिका अनुष्ठान किया है; अब महासत्रके निवृत्त होनेमें

अभ्युत्थाय ततस्सर्वे प्रणम्यांबरसंभवम् ॥ चामीकरमयं तस्मै विष्टरं समकल्पयन् ॥ ९ ॥ सोपि तत्र समासीनो मुनिभिस्सम्यगर्चितः ॥ प्रतिनंद्य च तान् सर्वान् पप्रच्छ कुशलं ततः ॥ १० ॥ वायुरुवाच ॥ अत्र वः कुशलं विप्राः कच्चिद्वृत्ते महाक्रतौ ॥ कच्चिद्यज्ञहनो दैत्या न बाधेरन्सुरद्विषः ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न कच्चित्समजायत ॥ स्तोत्रशस्त्रग्रहैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्मभिः ॥ १२ ॥ कच्चिदभ्यर्च्य युष्माभिर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः ॥ निवृत्ते च महासत्रे पश्चात्किं वश्चिकीर्षितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्ता मुनयः सर्वे वायुना शिवभाविना ॥ प्रहृष्टमनसः पूताः प्रत्यूचुर्विनयान्विताः ॥ १४ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अद्य नः कुशलं सर्वमद्य साधु भवेत्तपः ॥ अस्मच्छ्रेयोभिवृद्ध्यर्थं भवानत्रागतो यतः ॥ १५ ॥ शृणु चेदं पुरावृत्तं तमसाक्रांतमानसैः ॥ उपासितः पुरास्माभिर्विज्ञानार्थं प्रजापतिः ॥ १६ ॥ सोप्यस्माननुगृह्याह शरण्यश्शरणागतान् ॥ सर्वस्मादधिको रुद्रो विप्राः परमकारणम् ॥ १७ ॥

तुम्हारी क्या इच्छा है ? ॥ १३ ॥ जब शिवके भक्त वायुने सब मुनियोंसे इस प्रकार वचन कहे, तब वे ब्राह्मण प्रसन्नमनसे विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ॥ १४ ॥ मुनि बोले, आज हमारी कुशल हुई और आज हमारा तप सिद्ध हुआ, जो आप हमारे मंगलके निमित्त इस स्थानपर आये हो ॥ १५ ॥ इस पुरानी कथाको सुनिये कि, तपसे आक्रांत मनवाले महात्माओंने और हमने भी ज्ञानके निमित्त प्रजापतिकी उपासना की थी ॥ १६ ॥ सो शरण देनेमें साधु हमैं शरण आयाहुआ देख कृपा करके कहने लगे हे ब्राह्मणो ! रुद्रदेवता हम सबसे अधिकहैं, कारण कि, वही परमकारणस्वरूपहैं ॥ १७ ॥

उस तर्करहितको यथार्थतासे भक्तिमानही देखतेहैं; इनके प्रसादसे भक्ति होती है और इनकी प्रसन्नतासे परम सुख होता है ॥ १८ ॥ इस कारण शिवकी प्रसन्नताके निमित्त नैमिषारण्यमें मन्त्रयोगसे तुम परम कारण रुद्रका दीर्घ मन्त्रसे यजन करो ॥ १९ ॥ इसके प्रभावसे यज्ञके अन्तमें वायु उस स्थानमें आवैगा उसके प्रसादसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी इससे तुम्हारा मंगल होगा ॥ २० ॥ यह विचार कर हम सबको ब्रह्माजीने इस स्थानमें भेजा है; हे महाभाग ! हम तुम्हारे आनेकी वाट देखरहेहैं ॥ २१ ॥ हमने दिव्यसहस्रवर्षतक यहाँ यज्ञ किया है इस कारण तुम्हारे आगमनके सिवाय हमको और कुछ प्रार्थनीय

तमप्रतर्क्यं याथात्म्यं भक्तिमानेव पश्यति ॥ भक्तिश्चास्य प्रसादेन प्रसादादेव निर्वृतिः ॥ १८ ॥ तस्मादस्य प्रसादार्थं नैमिषे सत्रयोगतः ॥ यजध्वं दीर्घसत्रेण रुद्रं परमकारणम् ॥ १९ ॥ तत्प्रसादेन सत्रांते वायुस्तत्रागमिष्यति ॥ तन्मुखाज्ज्ञानलाभो वस्तत्र श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥ इत्यादिश्य वयं सर्वे प्रेषिताः परमेष्ठिना ॥ अस्मिन्देशे महाभाग तवागमनकांक्षिणः ॥२१॥ दीर्घसत्रं समासीना दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ अतस्तवागमादन्यत्प्रार्थ्यं नो नास्ति किंचन ॥ २२ ॥ इत्याकर्ण्य पुरावृत्तमृषीणां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वायुः प्रीतमना भूत्वा तत्रासीन्मुनिसंवृतः ॥ २३ ॥ ततस्तैर्मुनिभिः पृष्टस्तेषां भावविवृद्धये ॥ सर्गादि शार्वमैश्वर्यं समासादवदद्विभुः ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वायुसमागमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र पूर्वं महाभागा नैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रणिपत्य यथान्यायं पप्रच्छुः पवनं प्रभुम् ॥ १ ॥ नैमिषीया ऊचुः ॥ भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम् ॥ कथं च शिवभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ २ ॥

नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार दीर्घयज्ञ करनेवाले ऋषियोंसे वायु प्रसन्न होकर उन मुनियोंके बीचमें स्थित हुए ॥ २३ ॥ उनके भावकी वृद्धिके निमित्त उन मुनियोंसे पूछे जाकर वायुदेव सृष्टिकी उत्पत्ति शिवका ऐश्वर्य समास अर्थात् संक्षेपसे कहने लगे ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा०सं० पूर्वखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले, वे महाभाग्यवान् नैमिषारण्यके रहनेवाले प्रणामपूर्वक न्यायसे पवन देवतासे पूछने लगे ॥ १ ॥ नैमिषारण्यवासी मुनि बोले, आपने ईश्वरगोचर ज्ञानको किस प्रकारसे प्राप्त किया है, तुम अव्यक्तजन्मा शिवके शिष्य किस प्रकारसे हो ॥ २ ॥

वायु बोले, श्वेतलोहितनामवाले इक्कीसवें कल्पमें ब्रह्माजीने सृष्टिरचना करनेकी इच्छासे तप किया ॥ ३ ॥ उस उग्र तपसे शिवजीको बडा संतुष्ट किया तब वह बोलनेवालोंमें रूपवालोंमें श्रेष्ठ दिव्य कौमार अवस्थामें स्थित हो ॥ ४ ॥ श्वेतनामक मुनि होकर दिव्य वाणीसे बोले, देवदेवमहेश्वरने इस प्रकार उनको दर्शन दिया ॥ ५ ॥ ब्रह्माने उन वेदके पति शिवजीको प्रणाम करके गायत्रीके सहित उनसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त किया ॥ ६ ॥ तब यह विश्वकर्मा चतुर्मुख ज्ञानको प्राप्त होकर स्थावर जंगम सब प्राणियोंको निर्माण करने लगे ॥ ७ ॥ यह श्रवण करके ब्रह्माके मुखसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई उन्हींके मुखसे तपो

॥ वायुरुवाच ॥ एकोनविंशतिः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ॥ तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्रस्स्रष्टुकामोऽतपत्तपः ॥ ३ ॥ तपसा तेन तीव्रेण तुष्टस्तस्य पिता स्वयम् ॥ दिव्यं कौमारमास्थाय रूपं रूपवतां वरः ॥ ४ ॥ श्वेतो नाम मुनिर्भूत्वा दिव्यां वाचमुदीरयन् ॥ दर्शनं प्रददौ तस्मै देवदेवो महेश्वरः ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा पितरं ब्रह्मा ब्रह्मणोऽधिपतिं पतिम् ॥ प्रणम्य परमज्ञानं गायत्र्या सह लब्धवान् ॥ ६ ॥ ततस्स लब्धविज्ञानो विश्वकर्मा चतुर्मुखः ॥ असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७ ॥ यतश्श्रुत्वामृतं लब्धं ब्रह्मणा परमेश्वरात् ॥ ततस्तद्वदनादेव मया लब्धं तपोबलात् ॥ ८ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ किं तज्ज्ञानं त्वया लब्धं तथ्यात्तथ्यतरं शुभम् ॥ यत्र कृत्वा परां निष्ठां पुरुषस्सुखमृच्छति ॥ ९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा ॥ तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना ॥ १० ॥ अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते ॥ ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम् ॥ ११ ॥ अजडं च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि ॥ पशु पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रमात् ॥ १२ ॥

बलसे मैंने ज्ञानकी प्राप्ति की ॥ ८ ॥ मुनि बोले, कि वह तुमने अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान किस प्रकारसे प्राप्त किया जिसके करनेसे यह पुरुष परम सुखको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ वायु बोले, कुछ मैंने पूर्वकालसे शिवसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया है, सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उसमें अत्यन्त प्रेम करना चाहिये ॥ ॥ १० ॥ अज्ञानसे उत्पन्नहुआ दुःख ज्ञानसे निवृत्तही होजाता है ज्ञानं वस्तु परिच्छेदयुक्त है, और वह वस्तु तीन प्रकारकी है ॥ ११ ॥ अजड जीव जड

प्रकृति इन दोनोंकाही वह नियन्ता है, उसको पशु, पाश, पति क्रमसे तीन नामसे कहते हैं ॥ १२ ॥ अक्षर और क्षर तथा क्षर अक्षरसे परे इन्हीं तीनोंको
तत्त्वके जाननेवाले कहते हैं ॥ १३ ॥ अक्षरका नाम पशु है अर्थात् जीव है, और ब्रह्मज्ञानसे पाश प्रकृति क्षरण होजाती है इससे पाशका नाम क्षर है
जो क्षर अक्षरसे परे है उसको पति कहते हैं ॥१४॥ मुनि बोले, क्षर किसको कहते हैं और अक्षर किसको कहते हैं और उनसे परे क्या है हे तपोधन !
सो आप वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ वायु बोले, प्रकृतिका नाम क्षर है और पुरुषको अक्षर कहते हैं और जो उन दोनोंकी प्रेरणा करता है वह परेसे परे

अक्षरं च क्षरं चैवं क्षराक्षरपरं तथा ॥ तदेतत्त्रियतं भूम्ना कथ्यते तत्त्ववेदिभिः ॥ १३ ॥ अक्षरं पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः ॥
क्षराक्षरपरं यत्तत्पतिरित्यभिधीयते ॥ १४ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ किं तदक्षरमित्युक्तं किं च क्षरमुदाहृतम् ॥ तयोश्च परमं किं वा तदे
तद्ब्रूहि मारुत ॥ १५ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रकृतिः क्षरमित्युक्तं पुरुषोऽक्षर उच्यते ॥ ताविभौ प्रेरयत्यन्यस्स परः परमेश्वरः ॥ १६ ॥
मुनय ऊचुः ॥ कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मतः ॥ अनयोः केन सम्बन्धः कोयं प्रेरक ईश्वरः ॥ १७ ॥ वायुरुवाच ॥
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो मायया वृतः ॥ संबन्धो मूलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः ॥ १८ ॥ मुनयऊचुः ॥ केयं माया समाख्याता
किंरूपो मायया वृतः ॥ मूलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुतश्शिवः ॥ १९ ॥ वायुरुवाच ॥ माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो
मायया वृतः ॥ मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धिश्शिवता स्वतः ॥ २० ॥

परमेश्वर शिव है ॥ १६ ॥ मुनि बोले, वह प्रकृति क्या है और वह पुरुष कौन है? इनका क्या सम्बन्ध है ? और इनका प्रेरक कौन है ? ॥ १७ ॥
वायु बोले, मायाका नाम प्रकृति और पुरुष मायासे आवृत है, मल और कर्मके सम्बन्धसे रहित शिव सबके प्रेरक हैं और ईश्वर हैं ॥१८॥ मुनि बोले, यह
माया क्या वस्तु है, और मायासे ढककर क्या रूप होजाता है ? मल कैसा और कहांसे आया शिवतत्त्व क्या है और शिव कौन हैं ॥१९॥ वायु बोले,
माया शिवकी शक्ति है, मायासे आच्छादित शिवस्वरूप है, मल चित्स्वरूपको आच्छादक है, वह तम स्वयं कल्पना कियाहुआ है; और तमरहित विशुद्ध

शिव स्वरूपहै ॥ २० ॥ मुनि बोले, यह माया किस कारणसे व्यापीको आवृत करलेतीहै पुरुषको कैसे आवरण होता और किस प्रकारसे निवृत्त होजाताहै ॥ २१ ॥
वायु बोले, व्यापीको आवृति होती है जिस कारणसे कलादिमें यह होता है और इसका कारण कर्म है जो भुगाता है, मलके क्षय होनेसे यह निवृत्त
होजाता है ॥ २२ ॥ मुनि बोले, वह कलादि क्या है ? और कर्म क्या है ? आदि और अन्त क्या है ? उसका फल और आश्रय क्या है ? ॥ २३ ॥
भोग किसके निमित्त है और भोग क्या है, उस भोगका साधन क्या है, मलके क्षय होनेका क्या कारण है ? क्षीणमल पुरुष कैसा होता है ॥ २४ ॥

मुनय ऊचुः ॥ आवृणोति कथं माया व्यापिनं केन हेतुना ॥ किमर्थं चावृतिः पुंसः केन वा विनिवर्तते ॥ २१ ॥ वायुरुवाच ॥
आवृतिर्व्यापिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि ॥ हेतुः कर्मैव भोगार्थं निवर्तेत मलक्षयात् ॥ २२ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ कलादि
कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम् ॥ तत्किमादि किमन्तं वा किं फलं वा किमाश्रयम् ॥ २३ ॥ कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वा तद्भोग
साधनम् ॥ मलक्षयस्य को हेतुः कीदृक् क्षीणमलः पुमान् ॥ २४ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ कला विद्या च रागश्च कालो नियति
रेव च ॥ कलादयस्समाख्याता यो भोक्ता पुरुषो भवेत् ॥ २५ ॥ पुण्यपापात्मकं कर्म सुखदुःखफलं तु यत् ॥ अनादिमलभोगान्त
मज्ञानात्मसमाश्रयम् ॥ २६ ॥ भोगः कर्मविनाशाय भोगमव्यक्तमुच्यते ॥ बाह्यांतःकरणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् ॥ २७ ॥ भावा
तिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः ॥ क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमाञ्छिवसमो भवेत् ॥ २८ ॥

वायु बोले, रजोगुणसे उत्पन्न विषयोंके अभिलाष और विद्याका नाम राग है काल देवशक्ति है जो पुरुष भोक्ता हो उसको कलादि कही गई है ॥ २५ ॥
कर्म पुण्य और पापात्मक है जिसका फल सुख दुःख होता है, अनादि मलसे जो अविद्याका कियाहुआ है भोगके अन्ततक अज्ञानसे अपनी आत्मामें माना
जाता है ॥ २६ ॥ भोगकर्मके नाश करनेके वास्ते भोग्य वस्तुको प्रकृति कहते हैं; चक्षुरादि इंद्रिय बाह्य अंतःकरण मन इन्द्रियोंके द्वार और शरीर यह
भोगके साधन हैं ॥ २७ ॥ और अत्यन्त प्रीतिसे शिवके प्रसादकी प्राप्ति होनेसे तमोगुणका क्षय होता है, जब मल क्षीण हुआ तो यह पुरुष शिवके

समान होजाता है ॥ २८ ॥ मुनि बोले, कलादि पाँच तत्त्वोंका जो पृथक् कर्म है वह, क्या है ? क्या आत्मा भोक्ता नामसे प्रसिद्धहै ? जो पुरुष पृथक् है सो क्या आत्मा है ? जिसे भोक्ता कहते हैं ॥२९॥ वह अव्यक्त क्या आत्मा है ? और किस आकारसे भोक्ता है ? मुक्तिमें उसकी शरण क्या है और शरीर क्या है ? ॥ ३० ॥ वायु बोले, पुरुषके ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्ति विद्या है, और क्रियाकी व्यंजक कला है, काल उसका अवच्छेदक है और देवशक्ति उसकी नियन्ता है ॥ ३१ ॥ अव्यक्तका कारण सत्त्व रज तम तीनरूपसे प्रादुर्भूत होता है, तत्त्वज्ञाता इसीको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥

मुनय ऊचुः ॥ कलादिपंचतत्त्वानां किं कर्म पृथगुच्यते ॥ भोक्तेति पुरुषश्चेति येनात्मा व्यपदिश्यते ॥ २९ ॥ किमात्मकं तदव्यक्तं
केनाकारेण भुज्यते ॥ किं तस्य शरणं भुक्तौ शरीरं च किमुच्यते ॥ ३० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ दिक्क्रियाव्यंजका विद्या कालो रागः
प्रवर्तकः ॥ कालोऽवच्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका ॥ ३१ ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तत्त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ॥ प्रधानं प्रकृतिश्चेति
यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥ ३२ ॥ कलातस्तदभिव्यक्तमनभिव्यक्तलक्षणम् ॥ सुखदुःखविमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा ॥ ३३ ॥ सत्त्वं
रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिताः ॥ ३४ ॥ सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्त्विकं
स्मृतम् ॥ राजसं तद्विपर्यासात्स्तंभमोहौ तु तामसौ ॥ ३५ ॥ सात्त्विक्यूर्द्ध्वगतिः प्रोक्ता तामसी स्यादधोगतिः ॥ मध्यमा तु गतिर्या
सा राजसी परिपठ्यते ॥ ३६ ॥

॥३२॥ वह कला क्रियात्मक प्रभुशक्तिकी कथन वा प्रगट करनेहारी है, सृष्टिके प्रथम वह अनभिव्यक्तस्वरूप भी सृष्टिदशामें व्यक्तरूप होता है, विमोहित आत्मावाला पुरुष तीन प्रकारसे गुणोंको भोगता है सत्त्व, रज, तम, यह प्रकृतिके तीन गुण हैं वे सूक्ष्म रूपसे प्रकृतिमें स्थित हैं जैसे तिलोंमें तेल रहता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सुख और सुखका हेतु यह संक्षेपसे सात्विक कहा है; दुःख दुःखका हेतु राजस कहा है, प्रवृत्ति निवृत्ति की शून्यता अर्थात् स्तंभ और मोह तामस कहे हैं ॥ ३५ ॥ रजोगुणकी ऊर्ध्व गति और तमोगुणकी अधोगति कही है, और जो मध्यमा गतिहै उसीको राजसी कहते हैं ॥३६॥

तन्मात्रा शब्द स्पर्शादि पाँच और भूतपंचक पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय ॥३७॥ प्रधान बुद्धि अहंकार और मन यह चारों समाससे ही अव्यक्त और विकारी कहाते हैं ॥ ३८ ॥ उसके कारणदशामें प्राप्त होकर अव्यक्त होता है, कार्यदशामें प्राप्त होकर यह प्रगट होता है, यह शरीर घट आदिके समान प्रत्यक्ष होता है ॥३९॥ जैसे घटादिकार्य मृत्तिकासे भिन्न नहीं है उसी प्रकारसे यह व्यक्त शरीर आदि अव्यक्तसे भिन्न नहीं है ॥४०॥ इस कारणसे अव्यक्तही कार्योंका कारण है शरीर उसका आधार और भोग्य है, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ४१ ॥ ऋषि बोले, बुद्धि इन्द्रिय शरीरसे व्यतिरिक्त विदित होकर यथार्थमें किसी आत्मा शब्दका व्यवहार करते हैं, सो उसकी कहां स्थिति है ॥४२॥ वायु बोले, बुद्धि इन्द्रिय और शरीरसे अवश्य ही वह अचल और सर्वव्यापक पृथक् है उसीको आत्मा कहते हैं उसका हेतु जानना बडा कठिन है, अनेक जन्मकी परम्परासे जाना जाता है ॥ ४३ ॥ सत्पुरुषोंने बुद्धि इन्द्रिय और शरीरोंमें आत्मा नहीं मानी है, स्मृतिके विचरनेसे बुद्धिमें स्मरणताका आश्रय होना सम्भव नहीं है; कारण कि स्मृतिही बुद्धिका परिणाम है; और आश्रय आश्रयिभावमें भेद है, इन्द्रिय भिन्न होनेमें सदा एक अज्ञान न रहनेका हेतु है, जैसे नेत्र रूपको ग्रहण करता है स्पर्शको नहीं; और आत्मा तो प्रत्यक्ष योग सबहीको ग्रहण करता है; अथवा इन्द्रिय सन्निकर्षसे ग्रहण करता है स्वतः नहीं और देह जबतक है तभीतक ज्ञान है, और आत्मा तो

तन्मात्रापञ्चकं चैव भूतपंचकमेव च ॥ ज्ञानेंद्रियाणि पंचैक्यं पंच कर्मेन्द्रियाणि च ॥३७॥ प्रधानबुद्ध्यहंकारमनांसि च चतुष्टयम् ॥
समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम् ॥३८॥ तत्कारणदशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते ॥ व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत् ॥३९॥
यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते ॥ शरीरादि तथा व्यक्तमव्यक्तान्नातिभिद्यते ॥ ४० ॥ तस्मादव्यक्तमेवैक्यकारणं करणानि
च ॥ शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापि नेतरत् ॥ ४१ ॥ मुनय ऊचुः ॥ बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्य कस्यचित् ॥ आत्मश
ब्दाभिधेयस्य वस्तुतोऽपि कुतः स्थितिः ॥ ४२ ॥ वायुरुवाच ॥ बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेको विभोर्ध्रुवम् ॥ अस्त्येव कश्चिदात्मेति
हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ॥ ४३ ॥ बुद्धीन्द्रियशरीराणां नात्मता सद्भिरिष्यते ॥ स्मृतेरनियतज्ञानादयावद्देहवेदनात् ॥ ४४ ॥

शरीरनाश होनेपर भी अन्य शरीरमें जाता है नहीं तो कर्मभोग किस प्रकार भोग सकता है, इससे देहसे भिन्नही कोई आत्मा है ॥ ४४ ॥ इस कारण
बुद्धि आदिसे भिन्न कर्मफलका भोक्ता कोई आत्मा है, जो प्राणियोंका स्मर्ता सम्पूर्णका जाननेवाला जो वेद और वेदान्तमें अन्तर्यामी नामसे गायाजाता
है ॥ ४५ ॥ वह सबमें है और सबको व्याप्त कर स्थित होरहा है; तथापि कोई पुरुष उसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है ॥ ४६ ॥ नेत्र अथवा दूसरी
इन्द्रियोंसे कोई इसे ग्रहण नहीं करसक्ता, केवल योगाभ्यास द्वारा मनको शोधकरही महात्मा इसको जान सकते हैं ॥ ४७ ॥ यह स्त्री पुरुष अथवा नपुंसक
नहीं है; ऊपर नीचे और तिरछेमें भी नहीं है ॥४८॥ शरीरोंमें होकर भी शरीररहित चलवस्तुमें होकर भी अचल और अविनाशी है, श्रवणादिके अभ्याससे

अतः स्मर्तानुभूतानामशेषज्ञेयगोचरः ॥ अन्तर्य्यामीति वेदेषु वेदांतेषु च गीयते ॥४५॥ सर्वं तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः ॥
तथापि क्कापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते ॥४६॥ नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि ॥ मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते ॥४७॥
न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ॥ नैवोर्द्ध्वं नापि तिर्यक्च नाधस्तान्न कुतश्चन ॥ ४८ ॥ अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणु
मव्ययम् ॥ सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात् ॥ ४९ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक् ॥ अपृथग्ये तु पश्यंति ह्यस
म्यक्तेषु दर्शनम् ॥ ५० ॥ यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम् ॥ अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ॥ ५१ ॥ विपदां बीजभू
तेन पुरुषस्तेन संयुतः ॥ सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा ॥ ५२ ॥ अद्भिराप्लावितं क्षेत्रं जनयत्यंकुरं यथा ॥ अज्ञानात्प्ला
वितं कर्म देहं जनयते तथा ॥ ५३ ॥ अत्यंतमसुखावासास्स्मृताश्चैकांतमृत्यवः ॥ अनागता अतीताश्च तनवोऽस्य सहस्रशः ॥५४॥

धीर पुरुष इसे देख सकते हैं ॥ ४९ ॥ बहुत कहनेसे क्या है वह पुरुष इस देहसे पृथक् है; और जो देहसे मिला जानते हैं, उनको यथार्थ ज्ञान नहीं ॥
॥५०॥ जो यह शरीर कहाजाता है यह पुरुषसे भिन्न है; वह अवश्य अशुद्ध दुःखरूप और चल है, यदि पुरुषयुक्त होता तो इसमें यह दोष न होते ॥५१॥
विपत्तिके बीजरूप इस शरीरसे पुरुषका संयोग है, इस कारण कर्मानुसार सुखी दुःखी और मूढ जानाजाता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार पानी देनेसे खेतमेंसे
अंकुर निकल आता है, इसी प्रकार अज्ञानरूपी जलसे भीजनेके कारण देहसे अंकुरके समान कर्म उत्पन्न होतेहैं ॥५३॥ यह देह अत्यन्त असुखरूप रोगी

और अवश्य मृत्युमुखमें पतित होनेवाला है, इसके सहस्रों शरीर होगये और होंगे ॥५४॥ यह पुरुष एक शरीरके जीर्ण होनेसे दूसरेमें प्रवेश करतेहैं, कोई भी एक शरीरमें निरंतर नहीं रहने पाता है ॥५५॥ यह शरीरोंके साथ संयोगको प्राप्त होता है; और आकाशमें मेघाच्छादित चन्द्रमंडलके समान कभी प्रकाशित और कभी अप्रकाशित होता है ॥ ५६ ॥ अनेक देहभेदसे आत्माकी वृत्ति भिन्न २ दीखती है; शारिफल तथा सारपाशेके चिह्नके समान एक आकार होकर भी अनेक रूपका दीखता है, जैसे पाशेमें एक आकार होकर भी अनेक चिह्न दीखतेहैं ॥ ५७ ॥ उस पुरुषका न कोई हुआ है न आगेको

आगत्यागत्य शीर्णेषु शरीरेषु शरीरिणः ॥ अत्यंतवसतिः क्वापि न केनापि च लभ्यते ॥ ५५ ॥ छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैरेषु
लक्ष्यते ॥ चंद्रबिंबवदाकाशे तरलैरभ्रसंचयैः ॥ ५६ ॥ अनेकदेहभेदेन भिन्ना वृत्तिरिहात्मनः ॥ अष्टापदपरिक्षेपे ह्यक्षमुद्रेव लक्ष्यते
॥ ५७ ॥ नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् ॥ पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बंधुभिः ॥ ५८ ॥ यथा काष्ठं च काष्ठं च
समेयातां महोदधौ ॥ समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ ५९ ॥ स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ॥ तौ पश्यति परः
कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः ॥ ६० ॥ ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च पशवः परिकीर्तिताः ॥ पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥ ६१ ॥
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः ॥ लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ॥ ६२ ॥ अज्ञो जंतुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुः
खयोः ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ ६३ ॥

होगा, स्त्री और बन्धुओंका संगम मुसाफिरोंके समान है ॥५८॥ जैसे चलतेहुए दो काष्ठ समुद्रोंकी लहरोंसे मिलतेहैं, और मिलकर फिर अलग होजातेहैं इस प्रकार प्राणियोंका समागम है ॥५९॥ वह जीव शरीरको देखता है, शरीर आत्माको नहीं देख सकता है, और इस जीव और शरीरको कोई और देखता है परन्तु यह उसको नहीं देख सकते ॥ ६० ॥ ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सबकी पशुसंज्ञा है, सब पशुओंकेही निमित्त यह दृष्टान्त कहाहै ॥ ६१ ॥ जो कि यह पाशोंसे बँधता और सुख दुःख भोगता है इसीसे यह पशु है, यह ईश्वरके विलासका साधनहै ऐसा विद्वान् कहतेहैं ॥६२॥ यह प्राणी अज्ञानी

अनीश और सुख दुःखका स्थान है यह ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है ॥ ६३ ॥ सूतजी बोले, वायुके यह वचन सुन मुनि बडे प्रसन्न हुए शैवशास्त्रमें चतुर वायुसे प्रणाम कर कहने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ मुनि बोले, जो यह पशुकथन किया है, और जो तुमने पाशकथनं की है, इनसे विलक्षण इनका पति कौन है ॥१॥ वायु बोले, हाँ एक अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय विश्वका पति जगत्का निर्माण करनेहारा पशुकी पाश छुडाने हारा है ॥ २ ॥ उसके बिना यह जगत्की सृष्टि किस प्रकारसे होसकती है;

॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यानिलवचो मुनयः प्रीतमानसाः ॥ प्रोचुः प्रणम्य तं वायुं शैवागमविचक्षणम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ योऽयं पशुरिति प्रोक्तो यश्च पाश उदाहृतः ॥ आभ्यां विलक्षणः कश्चित्कोयमस्ति तयोः पतिः ॥ १ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अस्ति कश्चिदपर्यंतरमणीयगुणाश्रयः ॥ पतिर्विश्वस्य निर्माता पशुपाशविमोचनः ॥ २ ॥ अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत् ॥ अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपाशयोः ॥ ३ ॥ प्रधानपरमाण्वादि यावत्किंचिदचेतनम् ॥ तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥ ४ ॥ जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ॥ तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः ॥ ५ ॥ पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणपूर्वकम् ॥ अयथाकरणज्ञानमंधस्य गमनं यथा ॥ ६ ॥

इन पशु और पाशके अचेतन और अज्ञान होनेसे ॥ ३ ॥ प्रधान परमाणु आदिक जो कुछ भी यह अचेतन है चेतनसम्बन्धरूप बीजके विना उसका स्वयं कर्तृत्व किसीने देखा नहीं है ॥४॥ यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कर्ताके विना नहीं होसकता और कार्य अवयवरूप है जैसे जगतकर्त्तावाला है सावयवकार्यत्व होनेसे घटके समान है, इस कारण कार्यका कर्तृपन ईश्वरमें है पशु और पाश जीव और कर्ममें नहीं ॥ ५ ॥ स्वामी ईश्वरकी प्रेरणासे जीवमें भी कर्तापन देखाजाता है, परन्तु वह कर्त्तापन यथार्थ नहीं है जैसे अन्धा दूसरेके सहारेसे चलता है स्वयं नहीं, इसी प्रकार जीवका कर्तापन है ॥ ६ ॥

अपने आत्मा और प्रेरणा करनेवालेको पृथक् मानकर वह आत्मा उपासनाद्वारा उस ईश्वरसे अनुगृहीत हो अमृत होजाता है॥ ७॥पशुपाश और पतिका जो
तत्त्वसे अंतर है ब्रह्मज्ञानी उसको जानकर योनिसे मुक्त होजाता है ॥८॥ यह क्षर और अक्षर दोनों मिलकर व्यक्त अव्यक्तको धारण करते हैं विश्वका
बंधन छुडानेवाले ईश्वर हैं ॥ ९ ॥ भोगनेवाला भोग्य वस्तु और प्रेरणाकरनेवाला यह तीन हैं जाननेवालोंको इनसे परे औरके जाननेकी आवश्यंकता
नहीं ॥ १० ॥ तिलोंमें जैसे तेल, दहीमें जैसे घृत, स्रोतमें जैसे जल, अरणिमें जैसा अग्नि है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार अपने आत्मामें आत्मा विलक्षण

आत्मानं च पृथङ्मत्वा प्रेरितारं ततः पृथक् ॥ असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमृतत्वाय कल्पते ॥ ७ ॥ पशोः पाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति
पदं परम् ॥ ब्रह्मवित्तद्विदित्वैव योनिमुक्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ संयुक्तमेतद्द्वितयं क्षरमक्षरमेव च ॥ व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्वं
विश्वविमोचकः ॥ ९ ॥ भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता मंतव्यं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ॥ नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यं हि किंचन ॥ १० ॥
तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम् ॥ यथापःस्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः ॥ ११ ॥ एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मविल
क्षणम् ॥ सत्येन तपस चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति ॥ १२ ॥ य एको जालवानीश ईशानीभिस्स्वशक्तिभिः ॥ सर्वांल्लोकानिमान्
कृत्वा एक एव स ईशते ॥ १३ ॥ एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः ॥ १४ ॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ॥ तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः ॥ १५ ॥ द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ॥
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥ १६ ॥

रूपमें स्थित है, सत्य और तपयुक्त होनेसे दीखता है ॥ १२ ॥ जो एकही इन्द्रजालके समान मायासे युक्त ईश्वर वशमें करनेवाली अपनी शक्तियोंसे इन
सबको वश करके एक ही स्थित है ॥ १३ ॥ वह एकही रुद्र है दूसरा नहीं है, वही सृष्टिको उत्पन्न करके रक्षा करतेहैं, और संहार करतेहैं ॥ १४ ॥ सब
संसार इसके नेत्र और सब संसार इसका मुख है; और संसारकी भुजा चरण इस विराट्पुरुषके भुजा चरण हैं ॥ १५ ॥ द्यौ (स्वर्ग) और पृथ्वीको

उत्पन्न करनेहारा वह एकही देवता है, वही सब देवतोंका उत्पन्न और पालन करनेहारा है ॥ १६ ॥ जो देवताओंमें प्रथम ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, यही विश्वके उत्पादक सबसे अधिक रुद्र हैं "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" इति और "यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रो महार्षिः" इति श्रुतेः ॥ १७ ॥ मैं इस महान्त अमृतस्वरूप अचल पुरुषको जिसका आदित्यके समान वर्ण अन्धकारसे परेहै जो प्रभु है, जानता हूँ ॥ १८ ॥ इस परमात्मासे परे और कुछ भी नहीं है इससे अधिक सूक्ष्म और स्थूल कोई नहीं है, इसने सब जगत्को पूर्ण करलिया है ॥ १९ ॥ वह केवल एक वृक्षके समान स्तब्ध होकर स्वर्गमें स्थित है, उसके संकल्पसे यह चराचर जगत् होता है सबके मुख शिर गर्दन उसीके हैं यह सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है वह सर्वव्यापी भगवान् है इसीसे

हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम् ॥ विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः ॥ १७ ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतममृतं ध्रुवम् ॥
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् ॥ १८ ॥ अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः ॥ नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन
पूर्णमिदं जगत् ॥ १९ ॥ सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ॥ सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतश्शिवः ॥ २० ॥ सर्वतः पाणि
पादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥ सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २१ ॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासस्सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ सर्वस्य
प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥ २२ ॥ अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ॥ सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं
परम् ॥ २३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः ॥ गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः ॥ २४ ॥ तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमा
तिशयान्वितम् ॥ धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति ॥ २५ ॥

इनको सर्वगत और शिव कहते हैं ॥ २० ॥ सब ओर इन्हींके हस्त चरण नेत्र मुख शिर हैं, सब ओर इन्हींके कर्ण हैं और यह सबको आवरण करके स्थित हैं ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण इन्द्रिय गुणोंके अभ्यासरूप और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे वर्जित हैं, सबके प्रभु ईशान सबके शरणदाता और मित्र हैं ॥ २२ ॥ जो विना नेत्रके देखते विना कानके सुनते हैं जो सबको जानते और जिनका जाननेवाला कोई नहीं है उसीको पुराणपुरुष कहते हैं ॥ २३ ॥ यह सूक्ष्मसे सूक्ष्म महान्से महान् और अविनाशी है वही महेश्वर इस प्राणीके हृदयाकाशमें स्थित है ॥ २४ ॥ उस क्रतुहीन तथा यज्ञस्वरूप अत्यन्त

महिमासे युक्त ईशानदेवदेवको उसी परमात्माकी प्रसन्नतासे शोकरहित देखते हैं ॥ २५ ॥ वेद इस सर्वव्यापी परमात्माको जराहीन पुराणपुरुष सर्वगामी
मानतेहैं, ब्रह्मवादी कहते हैं, इसी परमात्मा शिवके ध्यानसे जन्म मरणका निरोध होजाता है ॥ २६ ॥ वह एकही अपनी शक्तिसे इस त्रिलोकीको विधान
करके पीछे संहार करता है ॥२७॥ वह प्रकृति विश्वकी उत्पन्न करनेहारी अजा अर्थात् अनादिसिद्ध है, वही शैवीप्रकृति कहलाती है, वह रजोगुणयुक्त
होनेसे लालवर्णकी सत्वगुणयुक्त होनेसे श्वेत और तमोगुणयुक्त होनेसे कृष्णवर्ण है, "अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लाम्" इति श्रुतेः ॥२८॥ यह अनेक प्रकारकी
प्रजाको उत्पन्न करती है; जीव इसको भोगताहुआ शयन करता है, और वह अज इसको भोगकर त्यागन करदेता है ॥२९॥ दो सुपर्ण अर्थात् परमात्मा

वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम् ॥ निरोधं जन्मनो यस्य वदंति ब्रह्मवादिनः ॥ २६ ॥ एकोऽपि त्रीनिमाँल्लोकान् बहुधा शक्ति
योगतः ॥ विदधाति विचेत्यंते विश्वमादौ महेश्वरः ॥ २७ ॥ विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्रा कृतिः परा ॥ तामजां लोहितां
शुक्लां कृष्णामेकां त्वजः प्रजाम् ॥ २८ ॥ जनित्रीमनुशेतेऽन्योजुषमाणस्स्वरूपिणीम् ॥ तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति
च ॥ २९ ॥ द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ ॥ एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥ ३० ॥ वृक्षेस्मिन्
पुरुषो मग्नो मुह्यमानश्च शोचति ॥ जुष्टमन्यं यदा पश्येदीशं परमकारणम् ॥ ३१ ॥ तदास्य महिमानं च वीतशोकस्सुखी
भवेत् ॥ छंदांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च ॥ ३२ ॥ मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः ॥ मायां तु प्रकृतिं
विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ ३३ ॥

और जीव समान अवस्थाके सखाहैं, देहरूपी वृक्षमें समानतासे स्थितहैं, एक जीव इसमें कर्मफलको भोगताहै; अर्थात इस वृक्षके फल खाता है; और दूसरा
परमात्मा देखता है, "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इति श्रुतेः ॥ ३० ॥ इस संसारवृक्षपर यह पुरुष मग्न हो उसके भोगोंको भोगताहुआ मोहसे शोच करता
है, जब निर्मल होकर ध्यान करता है; तो साक्षात् परमकारण ईश्वरके ज्ञानसे ॥ ३१ ॥ अपनी ईश्वरस्वरूपिणी मायाको देखकर शोकरहित होजाता है
तब आनन्द होता है, छन्द, यज्ञ, क्रतु, भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ भी है ॥३२॥ इस मायाको प्राप्त होकर वह माया निर्माण करता है माया प्रकृति

और मायी साक्षात् महेश्वर हैं ॥ ३३ ॥ इन्हींके अवयावोंसे सब जगत् व्याप्त होरहा है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म ईशानदेवको गर्भके मध्यमें ॥ ३४ ॥ सब संसारका
निर्माण करनेहारा और उसकी चेष्टा करानेहारा शिवही है यह जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ वही परमेश्वर कालस्वरूप है इसको और
संसारका रक्षक संसारका स्वामी जानकर मनुष्य कालपाशसे छूटजाता है ॥ ३६ ॥ घृतके परमाणुके समान शिवको परमसूक्ष्म जानकर कि, वह सब प्राणियोंके
अन्तरमें वर्तमान है ऐसा जान मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ३७ ॥ यह परदेव विश्वकर्मा महेश्वर हैं हृदयमें इनको स्थित जानकर यह प्राणी अमृत

तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः ॥ ३४ ॥ स्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च
तस्य तु ॥ शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शांतिमत्यंतमृच्छति ॥ ३५ ॥ स एव कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः ॥ तं विश्वाधिपतिं
ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ घृतात्परं मंडमिव सूक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम् ॥ सर्वभूतेषु गूढं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३७ ॥
एष एव परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः ॥ हृदये संनिविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते ॥ ३८ ॥ यदा समस्तं न दिवा न रात्रिर्न सदप्यसत् ॥
केवलश्शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनी ॥ ३९ ॥ नैनमूर्द्ध्वं न तिर्यक्च न मध्यं पर्यजिग्रहत् ॥ न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम
महद्यशः ॥ ४० ॥ अजातमिममेवैके बुद्ध्वा जन्मनि भीरवः ॥ रुद्रस्यास्य प्रपद्यंते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम् ॥ ४१ ॥ द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे
त्वनंते समुदाहृते ॥ विद्याविद्ये समाख्याते निहिते यत्र गूढवत् ॥ ४२ ॥ क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ॥ ते उभे ईशते यस्तु
सोऽन्यः खलु महेश्वरः ॥ ४३ ॥

होजाता है ॥ ३८ ॥ जब सम्पूर्ण दिन रात सत् असत् कुछ भी नहीं था तब केवल एक शिवही थे जिससे सनातनी प्रज्ञा होती है ॥ ३९ ॥ ऊँचे नीचे
तिरछे कोई भी इनको ग्रहण नहीं करसकता, उनकी सदृश कोई भी नहीं है जिनके नामका बडा २ यश है प्रतिमाके और उपमानके अर्थसादृश्य हैं मूर्त्तिके
यहांपर नहीं है; ॥ ४० ॥ अनेक जन्मसे डरनेवाले इस परमात्माको अजन्मा और एक जानकर रक्षाके निमित्त दक्षिणामुख रुद्रको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥
रक्षाका उपाय कहते हैं कि, ब्रह्ममें तत्पर दोही अक्षर हैं जो अनन्त हैं वे विद्या और अविद्यामें स्थित हो गूढ होरहे हैं ॥ ४२ ॥ अविद्यासे क्षर अर्थात्

संसारमें पडता है और विद्यासे अमृतको प्राप्त होता है, इन दोनोंका अधिपति महेश्वर ॥४३॥ एक ब्रह्माण्डके समान वह एक ही परमात्मा अनेक प्रपंचको उत्पन्न करता है, वह प्रतापी सबको उत्पन्न करके सबका आधिपत्य करते हैं ॥ ४४ ॥ वह ऊपर नीचे दिशाओंमें सबका आधिपत्य करके विराजमान होते हैं, जगत्के कारण होनेके स्वभावसे वह एक ही श्रेष्ठ स्थित है ॥ ४५ ॥ स्वभावरूप शब्द और अर्थोंको परिणाम न करतेहुए गुणोंके भोग्यत्व और भोक्तृत्वमें वह संसारमें अधिष्ठित है ॥ ४६ ॥ उस उपनिषद्में गूढ परात्पर ब्रह्म जगत् उत्पन्न करनेहारेको प्रथम देवता और ऋषियोंने जाना था ॥४७॥ वह प्रीतिसे जानाजाता है इस संसारका आश्रय है भाव अभाव अर्थात् संसारकी उत्पत्ति संहार करनेहारे कला और जगत्के उत्पन्न करनेहारे परमात्माको

एकैकं बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः ॥ सर्वाधिपत्यं कुरुते सृष्ट्वा सर्वान् प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ दिश ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक् भासयन् भ्राजते स्वयम् ॥ यो निःस्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति ॥ ४५ ॥ स्वभाववाचकान् सर्वान् वाच्यांश्च परिणामयन् ॥ गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्ठति ॥ ४६ ॥ ते वै गुह्योपनिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम् ॥ ब्रह्मयोनिं जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ॥ ४७ ॥ भावग्राह्यमनीहाख्यं भावाभावकरं शिवम् ॥ कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ ४८ ॥ स्वभावमेके मन्यंते कालमेके विमोहिताः ॥ देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यते जगत् ॥ ४९ ॥ येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः ॥ तेनेरितमिदं कर्म भूतैः सह विवर्तते ॥५०॥ तत्कर्म भूयशः कृत्वा विनिवृत्य च भूयशः ॥ तत्त्वस्य सह तत्त्वेन योगं चापि समेत्य वै ॥ ५१ ॥ अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैवं द्वाभ्यां चैकेन वा पुनः ॥ कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेव जगत् स्वयम् ॥ ५२ ॥

जो जानते हैं वे शरीरंबन्धनमें नहीं पडते ॥ ४८ ॥ कोई इसको स्वभाव और कोई काल कहते हैं परन्तु जानते नहीं मोहित हैं, यह उस देवकी महिमा है जिसने इस जगत्को भ्रममेंरक्खा है ॥४९॥ कालके भी कालरूप जिस परमात्माने नित्य जगत्को आवृत कररक्खा है तिनसे प्रेरितहुए यह कर्म भूतोंके साथ प्रकाश करते हैं ॥ ५० ॥ वह अनेक प्रकारके कर्म करके फिर लौट करके कलादि तत्त्व और सत्वगुणके आश्रित हो योगको प्राप्त होकर ॥५१॥ आठ आकाशादि मूर्त्ति तीन सत्वादिगुण दो विद्या और अविद्या अथवा एक कालसे ही अथवा अपने सत्वादि गुणोंसे इस सम्पूर्ण जगत्को ॥ ५२ ॥

गुणोंके अनुसार कर्मोंको आरम्भ कर स्वभावमें प्राणियोंको लगाकर कार्य कर्ता है उन कर्मोंके अभावमें कियेहुए कर्मोंका भी नाश होता है ॥ ५३ ॥ कर्मक्षय होनेसे सत्वसे फिर जन्म नहीं होता यह भोक्ता और भोगका आदियोग तुमसे वर्णन किया ॥ ५४ ॥ वह परमपुरुष त्रिकालसे अकल अर्थात् निर्गुण है, सबका जाननेवाला तीनों गुणोंका अधीश्वर परेसे परे साक्षात् ब्रह्म है ॥ ५५ ॥ उस विश्वरूप जगत्के उत्पन्न कर्ता शिव प्रजापति देवदेव जगत्पूज्यको स्वस्थचित्त होकर उपासना करते हैं ॥ ५६ ॥ कालादिकसे भी परे जिस परमात्मासे यह सब प्रपंच प्रारम्भ होता है धर्मके करनेहारे पापहारी ऐश्वर्यके

गुणैरारभ्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत् ॥ तेषामभावे नाशः स्यात्कृतस्यापि च कर्मणः ॥ ५३ ॥ कर्मक्षये पुनश्चान्यत्ततो याति स तत्त्वतः ॥ स एवादिस्स्वयं योगनिमित्तं भोक्तृभोगयोः ॥ ५४ ॥ परस्त्रिकालादकलस्स एव परमेश्वरः ॥ सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात्परात्परः ॥ ५५ ॥ तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम् ॥ देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे ॥ ५६ ॥ कालादिभिः परो यस्मात्प्रपंचः परिवर्तते ॥ धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च ॥ ५७ ॥ तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥ पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ॥ ५८ ॥ न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ॥ न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ॥ ५९ ॥ परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता ॥ ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ॥ ६० ॥ न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिंगं न चेशिता ॥ कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः ॥ ६१ ॥ न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ॥ न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ॥ ६२ ॥

ईश विश्वमें व्यापक ॥ ५७ ॥ ईश्वरोंके ईश्वर परम महेश्वर देवताओंके भी परम देवता पतियोंके पति भुवनेश्वर देवको भजते हैं ॥ ५८ ॥ उनको कार्य और साधनकी आवश्यकता नहीं है जगत्में उससे अधिक अथवा उसके समान कोई नहीं ॥ ५९ ॥ इसकी पराशक्ति अनेक प्रकारसे सुनीजाती है, उसमें ज्ञान बल और क्रिया है, जिससे यह सारा संसार हुआ है ॥ ६० ॥ उसका कोई स्वामी अथवा साक्षात् कहनेवाला चिह्न नहीं है, न कोई अधिपति है कार्य और कारणोंका भी वह स्वामी है ॥ ६१ ॥ न कोई उसका उत्पन्न करनेहारा और न कभी इसका जन्म है न मल और माया मिलेहुए जन्म होनेके

इसमें कारण है ॥ ६२ ॥ यह एक ही सब प्राणियोंमें गूढतासे व्यापक होरहा है, यही सब प्राणियोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है ॥ ६३ ॥
सब प्राणियोंमें रहनेहारा साक्षी चेतन और निर्गुण है यह एक ही बहुतसे योगियोंका वशी करनेहारा है ॥६४॥ वा विवश आत्मावाले निष्क्रिय पुरुषोंका
वश करनेहारा है, यह एक समयके अनुसार जीवोंमें प्रजा उत्पन्न करनेहारे बीजको करता है, जो मुक्तिकी इच्छावाले आत्मामें इसको देखते हैं उन्हीं
महात्माओंको सदा सुख मिलता है दूसरोंको नहीं यह नित्योंका नित्य और चेतनोंका चेतन करनेहारा है; यह एकही स्वयं कामनाहीन होकर दूसरोंको
अनेक काम देता है ॥६५॥ सांख्ययोगसे जाननेयोग्य कारणस्वरूप जगत्के पति शिवको इस प्रकार जानकर यह जीव सब कर्मबन्धनसे छूटजातेहैं॥६६॥

स एकस्सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः ॥ सर्वभूतांतरात्मा च धर्माध्यक्षस्स कथ्यते ॥ ६३ ॥ सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता
च निर्गुणः ॥ एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ॥ ६४ ॥ नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः ॥ एको
बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति ॥ ६५ ॥ सांख्ययोगाधिगम्यं यत्कारणं जगतां पतिम् ॥ ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैस्सर्वैरेव विमु
च्यते ॥ ६६ ॥ विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी ॥ प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ॥ ६७ ॥ ब्रह्माणं विदधे पूर्वं
वेदांश्चोपादिशत्स्वयम् ॥ यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः ॥ ६८ ॥ मुमुक्षुरस्मात्संसारात्प्रपद्ये शरणं शिवम् ॥ निष्कलं
निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् ॥ ६९ ॥ अमृतस्य परं सेतुं दग्धेंधनमिवानिलम् ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥
॥ ७० ॥ तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ ७१ ॥

संसारके कर्त्ता संसारके ज्ञाता जीवोंके कर्मबीजके ज्ञाता कालके करनेहारे गुणी प्रधान और जीवोंके पति गुणेश कर्म छुटानेवाले ॥ ६७ ॥ शिवने प्रथम
ब्रह्माको निर्माण कर उन्हें वेदोंका उपदेश दिया, उस देवको मैं अपनी आत्माकी बुद्धि और उसके प्रसादसे जानकर ॥ ६८ ॥ मुक्तिकी इच्छा करनेवाला
इस संसारसे छूटनेके निमित्त शिवकी शरण होता हूँ, जो कलारहित क्रियारहित निरंजन शान्त निन्दारहितहै ॥ ६९ ॥ जो अमृतकी मर्यादा दुःखरूपी
ईंधनको अग्नि है इनके विना दुःख दूर करानेका उपाय नहीं जब मनुष्य चर्मके समान आकाशको शरीरमें लपेट लेंगे ॥ ७० ॥ तब शिवके विना जाने

भी दुःखका अन्त होजायगा अर्थात् शिवके ज्ञानके विना दुःखका अन्त नहीं होता ॥ ७१ ॥ तपके प्रभाव और देवके प्रसादसे महर्षि जन संन्यासाश्रमके पवित्र और पापनाशन ज्ञानको ॥७२॥ जो वेदान्तमें परम गुप्त और पूर्वकल्पमें कहेहुएहैं जानतेहैं सो यह मैंने अपने बडे भाग्यके कारण ब्रह्माके मुखसेही श्रवण किया है ॥ ७३ ॥ यह श्रेष्ठ ज्ञान अशान्त पुरुषको देना नहीं चाहिये अपुत्र असुवृत्त सदाचरणहीन अशिष्यको यह ज्ञान न देना चाहिये ॥७४॥ जिसकी देव और गुरुमें परमभक्ति है उसी महात्माके निमित्त यह अर्थ कथन कियेहैं, उसी पुरुषको इनका अर्थ प्रकाशित होता है ॥ ७५ ॥

तपःप्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महर्षयः ॥ अत्याश्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ७२ ॥ वेदांते परमं गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम् ॥
ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेदं भाग्यगौरवात् ॥ ७३ ॥ नाप्रशांताय दातव्यमेतज्ज्ञानमनुत्तमम् ॥ न पुत्रायायाशुवृत्ताय नाशिष्याय च सर्व
था ॥ ७४ ॥ यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ ७५ ॥ अतश्च संक्षेपमिदं शृणुध्वं
शिवः परस्तात्प्रकृतेश्च पुंसः ॥ स सर्गकाले च करोति सर्वं संहारकाले पुनराददाति ॥ ७६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां
वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ कालादुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते ॥
न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचन विद्यते ॥ १ ॥ यदास्यांतर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम् ॥ सर्गसंहृतिमुद्राभ्यां चक्रवत्परिवर्तते ॥
॥ २ ॥ ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः ॥ यत्कृतां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य
जरयन्न प्रजाः ॥ अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयंकरः ॥ ४ ॥

इस कारण संक्षेपसे इसका यह तात्पर्य सुनो, कि शिवप्रकृतिसे परे पुरुष है; वह सृष्टिसमयमें सबकुछ प्रगट करता है; और संहारकालमें सब लय करदेता है ॥७६॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ मुनि बोले, कालसेही वस्तु उत्पन्न होती और कालसेही लय होजाती है काल कभी भी कहीं निरपेक्ष नहीं रहता है ॥ १ ॥ जब यह सारा विश्वमण्डल अन्तर्गत होजाताहै तब फिर उत्पन्न होताहै; यह उत्पत्ति और प्रलयचक्रके समान होती रहती है ॥ २ ॥ ब्रह्मा, हरि, रुद्र, तथा दूसरे देवता जिसके नियमको प्राप्त होकर उसे उल्लंघन नहीं करसकते ॥३॥ जो भूत भविष्य वर्तमान

कालका विभाग करके प्रजाको जराग्रस्त करताहुआ यह काल स्वच्छन्द और भयंकररूपसे वर्तता है ॥ ४ ॥ सो यह काल क्या वस्तु है किसके वशवर्ती
है और कौन इसके वशमें नहीं होसकता है हे मुनिश्रेष्ठ ! सो आप कहिये ॥ ५ ॥ वायु बोले, कला काष्ठा निमेष कलाओंकी वृद्धि कालका शरीर है; यह
कालात्माही महेश्वरका तेज कहलाता है ॥६॥ जिसको स्थावर जंगम कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, यह ईश्वरका नियोगरूप रूपसंसारका रक्षक है॥
॥ ७ ॥ उसकी अंशमयी शक्ति कालात्मारूप महात्मासे निकलकर प्रवेश करगई है; जैसे लोहेमें अग्नि प्रविष्ट होजाती है ॥८॥ इस कारण कालके वशमें

क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम् ॥ क एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण ॥ ५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ कलाकाष्ठानिमे
षादिकलाकलितविग्रहम् ॥ कालात्मेति समाख्यातं तेजो माहेश्वरं परम् ॥ ६ ॥ यदलंघ्यमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ नियो
गरूपमीशस्य बलं विश्वनियामकम् ॥ ७ ॥ तस्यांशांशमयी मुक्तिः कालातमनि महातमानि ॥ ततो निष्क्रम्य संक्रांता विसृष्टाग्नेरिवा
यसी ॥ ८ ॥ तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्ववशे स्थितः ॥ शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः ॥ ९ ॥ यतोऽप्रतिहतं
शार्वं तेजः काले प्रतिष्ठितम् ॥ महती तेन कालस्य मर्यादा हि दुरत्यया ॥ १० ॥ कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽतिवर्तितुमर्हति ॥ कालेन
तु कृतं कर्म न कश्चिदतिवर्तते ॥ ११ ॥ एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति ॥ तेऽपि नैवातिवर्तंते कालवेलामिवाब्धयः ॥
॥ १२ ॥ ये निगृह्येंद्रियग्रामं जयंति सकलं जगत् ॥ न जयंत्यपि ते कालं कालो जयति तानपि ॥ १३ ॥

संसार है; काल किसीके वशमें नहीं परन्तु वह काल शिवके वशमें है शिव कालके वशमें नहीं ॥ ९ ॥ जिस कारण कि कालमें शिवका अप्रतिहत तेज
प्रविष्ट है; इस कारण महत्से परे कालकी मर्यादा कोई नहीं मेट सकता ॥ १० ॥ अत्यन्त बुद्धिमानीसे भी कोई कालके मेटनेको समर्थ नहीं, कालके
कियेहुए कर्मको कोई नहीं मेट सकता ॥ ११ ॥ जो एकक्षत्र पृथ्वीको पराक्रमसे वश करके शासन करता है वह भी कालकी मर्यादाको नहीं मेट सकता,
जैसे सागर बेलाको ॥ १२ ॥ जो इन्द्रियसमूहको वशकर सब संसारको जीततेहैं वह कालको नहीं जीत सकते किन्तु काल उन्हें जीत लेता है ॥ १३ ॥

आयुर्वेद और रसायनके जाननेवाले वैद्य भी मृत्युको नहीं मेटसकते कारण कि, काल दुरतिक्रम है ॥ १४ ॥ लक्ष्मीरूप शील आदिसे प्राणी कुछ और ही विचारता है, और कालबलसे कुछ और ही कराता है ॥ १५ ॥ अप्रिय प्रिय और भी अचिंतित वस्तुओंका आना जाना प्राणियोंका संयोग वियोग काल ही करता है ॥ १६ ॥ जैसे ही कोई दुखी होता है, वैसेही दूसरा सुखी होता है, कालका स्वभाव और गति दुर्ज्ञेय है ॥ १७ ॥ जो युवा है सो वृद्ध होता है, जो बली है, सो निर्बल होजाता है, जो लक्ष्मीवान् है सो हीनलक्ष्मी होजाता है, कालकी गति विचित्रहै ॥१८॥ जाति शील बल चतुरता

आयुर्वेदविदो वैद्यास्त्वनुष्ठितरसायनाः ॥ न मृत्युमतिवर्तंते कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १४ ॥ श्रिया रूपेण शीलेन बलेन च कुलेन च ॥ अन्यच्चिंतयते जंतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात् ॥ १५ ॥ अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्यचिंतितगमागमैः ॥ संयोजयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः ॥ १६ ॥ यदैव दुःखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः ॥ दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालस्याहो विचित्रता ॥ १७ ॥ यो युवा स भवेद्वृद्धो यो बलीयान्स दुर्बलः ॥ यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीकः कालश्चित्रगतिर्द्विजाः ॥ १८ ॥ नाभिजात्यं न वै शीलं न बलं न च नैपुणम् ॥ भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधकः ॥ १९ ॥ ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यैरुपस्थिताः ॥ ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः ॥ २० ॥ फलंत्यकाले न रसायनानि सम्यक्प्रयुक्तान्यपि चौषधानि ॥ तान्येव कालेन समाहृतानि सिद्धिं प्रयांत्याशु सुखं दिशंति ॥ २१ ॥ नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा नाकालतः पुष्टिमग्र्यामुपैति ॥ नाकालतः सुखितं दुःखितं वा नाकालिकं वस्तु समस्ति किंचित् ॥ २२ ॥

यह कार्यके निमित्त पूर्ण नहीं होती, काल ही इसका प्रतिरोधक है ॥ १९ ॥ जो प्राणी बडे मनोहर गीत बाजेके शब्दोंसे स्थित होते हैं, और जो अनाथ पराया अन्नखाते हैं, कालका उनमें बराबर व्यवहार है ॥२०॥ अकालमें औषधी रसायन अच्छी प्रयोग करीहुई औषधी फल नहीं देती है, और वही कालमें लाईहुई सिद्धिको प्राप्त हो शीघ्र सुखको देती है ॥ २१ ॥ न प्राणी कालके विना मरता न जन्म लेता न पुष्ट होता है, कालके विना सुख दुःख नहीं, अकालिक कोई वस्तु समान नहीं है ॥ २२ ॥

कालसे ही ठंढी हवा चलती है, कालसे ही मेघोंसे वर्षा होती है, कालसे ही गरमी शान्त होती और कालसे ही सब सफल होता है ॥ २३ ॥ काल ही सबकी उत्पत्तिका हेतु है, कालसे ही खेती होती और कालसे ही नष्ट होती कालसे ही सब लोक जीते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे जो तत्त्वमें कालात्मा परमेश्वरका तत्त्व जानता है, वह कालात्माको अतिक्रमण कर निर्गुण परमात्माको प्रात होता है ॥ २५ ॥ न जिसको काल बंध मुक्ति है न जो पुरुषप्रकृति और विश्वस्वरूप है उस विचित्ररूप शिव परमात्मापुरुषके निमित्त नमस्कार है ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण० स० वा० सं० पूर्वखण्डे

कालेन शीतः प्रतिवाति वातः कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति ॥ कालेन चोष्मा प्रशमं प्रयाति कालेन सर्वं सफलत्वमेति ॥ २३ ॥ कालश्च सर्वस्य भवस्य हेतुः कालेन सस्यानि भवंति नित्यम् ॥ कालेन सस्यानि लयं प्रयांति कालेन संजीवति जीवलोकः ॥ २४ ॥ इत्थं कालात्मनस्तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः ॥ कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति ॥ २५ ॥ न यस्य कालो न च बंधमुक्ती न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम् ॥ विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै नमः परस्मै परमेश्वराय ॥ २६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे कालमहिमवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ केन मानेन कालेस्मिन्नायुस्संख्या प्रकल्प्यते ॥ संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोऽवधिः ॥१॥ वायुरुवाच ॥ आयुषोऽत्र निमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते ॥ संख्यारूपस्य कालस्य शांत्यतीतकलावधिः ॥ २ ॥ अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः ॥ तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश च पंच च ॥ ३ ॥ काष्ठास्त्रिंशत्कला नाम कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकः ॥ मुहूर्त्तानामपि त्रिंशदहोरात्रं प्रचक्षते ॥ ४ ॥ त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ५ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ऋषि बोले, इस कालमें किस प्रमाणसे आयुकी संख्याकी कल्पना की जाती है, संख्यारूप कालकी परमावधि क्या है ॥ १ ॥ वायु बोले, आयुका प्रथम मान यह निमेष है, संख्यावाले कालकी शान्त्यतीत सीमा है ॥ २ ॥ जितने समयमें पलक लगता है, उसको निमेष कहते हैं, पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है ॥ ३ ॥ तीस काष्ठाकी एक एक कला तीस कलाका मुहूर्त तीस मुहूर्तका दिन रात होता है ॥ ४ ॥ तीस दिनरातके

दो पक्षका महीना होता है ॥ ५ ॥ एक महीनेकी पितरोंकी दिनरात होती है, कृष्णपक्ष रात्रि शुक्लपक्ष दिन ॥ ६ ॥ छः महीनेका एक अयन दो अयनका
एक वर्ष यही लौकिकमानसे मनुष्योंका एक वर्ष है ॥ ७ ॥ मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिनरात होताहै यह शास्त्रका निश्चय है; दक्षिणायन रात्रि
और उत्तरायण दिन है ॥ ८ ॥ देवताओंका एक महीना मनुष्योंके तीस वर्षका होता है ऐसे द्वादश महीनोंका देवताओंका एक वर्ष होता है ॥ ९ ॥
मनुष्योंके तीनसौसाठ वर्षका देवताओंका एक वर्ष होता है ॥ १० ॥ उसी दिव्यवर्षसे युगसंख्या होती है भारतवर्षमें विद्वानोंने चार युग माने हैं ॥ ११ ॥

ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः ॥ ६ ॥ मासैस्तैरयनं षड्भिर्वर्षं द्वे चायनं मतम् ॥ लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो
मानुषः स्मृतः ॥ ७ ॥ एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ दक्षिणं चायनं रात्रिस्तथोदगयनं दिनम् ॥ ८ ॥ मास
स्त्रिंशदहोरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः ॥ संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा ॥ ९ ॥ त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षयुतान्यपि ॥
दिव्यस्संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः ॥ १० ॥ दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो
विदुः ॥ ११ ॥ पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥ द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः ॥ १२ ॥ चत्वारि तु सहस्राणि
वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छतीसंध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ १३ ॥ इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ॥ एकापायेन
वर्तंते सहस्राणि शतानि च ॥ १४ ॥ एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं च चतुर्युगम् ॥ चतुर्युगसहस्रं यत्स कल्प इति कथ्यते ॥ १५ ॥
चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरंतरमुच्यते ॥ कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्मनूनां परिवृत्तयः ॥ १६ ॥

सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग ॥ १२ ॥ इनमें चार हजार देवताओंके वर्षोंका सतयुग, इनमें चारसौ वर्षकी संध्या और चारसौ वर्षका संध्यांश होता
है युगके पूर्वमें संध्या और अन्तमें संध्यांश होता है ॥ १३ ॥ और दूसरे युगोंमें वर्ष और संध्या एक एक पाद कमती होती है; अर्थात् त्रेतायुग तीनहजार
वर्ष, संध्या संध्यांश तीनसौ वर्ष, द्वापर दोहजार वर्ष संध्या संध्यांश एक एकसौ वर्ष ॥ १४ ॥ इस प्रकार चारों युगसंध्या और संध्यांशके सहित बारह
सहस्र वर्ष होतेहैं, हजार चतुर्युगीका एक कल्प होता है ॥ १५ ॥ इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है, एक कल्पमें चौदह मनु होतेहैं ॥ १६ ॥

इस योगसे कल्प और मन्वन्तर सहस्रों बीत गयेहैं ॥३७॥ उन्हें कोई नहीं जान सकता, न उनकी संख्या कर सकता है, और क्रमसे कोई इनका बिस्तार नहीं कह सकता ॥ १८ ॥ एक कल्पका अव्यक्तसे प्रगट होनेवाले ब्रह्माजीका एक दिन होता है; सहस्र कल्पका ब्रह्माका एक वर्ष होता है ॥ १९ ॥ ऐसे आठ सहस्रवर्षका ब्रह्माका एक युग होता है, ब्रह्माके सहस्रयुगका एक सवन होता है ॥ २० ॥ और सहस्र सवनको तीन गुण करनेसे अर्थात् तीन सहस्र सवनका परमेष्ठी ब्रह्माका समय है इतने दिनकी आयु है, ब्रह्माके एक दिनमें चौदह इन्द्र होजातेहैं; एक महीनेमें चारसौ बीस इन्द्र होजातेहैं ॥२१॥

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वंतराणि च ॥ सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥ अज्ञेयत्वाच्च सर्वेंषामसंख्येयतया पुनः ॥
शक्यो नैवानुपूर्व्याद्धि तेषां वक्तुं सुविस्तरः ॥१८॥ कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षमि
मिहोच्यते ॥ १९ ॥ वर्षाणामष्टसाहस्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम् ॥ सवनं युगसाहस्र ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ॥ २० ॥ सवनानां सहस्रं च
त्रिगुणं त्रिवृतं तथा ॥ कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ २१ ॥ तस्य वै दिवसे यांति चतुर्दश पुरंदराः ॥ शतानि मासे
चत्वारि विंशत्या सहितानि च ॥ २२ ॥ अब्दे पंच सहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि पंच लक्षाणि चायुषि ॥
॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णो दने चैको विष्णू रुद्रदिने तथा ॥ ईश्वरस्य दिने रुद्रस्सदाख्यस्य तथेश्वरः ॥ २४ ॥ साक्षाच्छिवस्य तत्सं
ख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि पंचलक्षाणि चायुषि ॥ २५ ॥ तस्मिन्साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते ॥
यत्तत्सृष्टेस्समाख्यातं कालान्तरमिह द्विजाः ॥ एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥ रात्रिश्च तावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ॥२६॥

॥ २२ ॥ एक वर्षमें ५०४० पाँच हजार चालीस इन्द्र होतेहैं, पाँच लाख चालीस सहस्र इन्द्र ब्रह्माकी आयुमें होजातेहैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णुके एक दिन पर्यन्त रहतेहैं; और रुद्रके एक दिन पर्यन्त विष्णुकी स्थिति है; ईश्वरके एक दिनतक रुद्रकी स्थिति है जिसको सत् कहतेहैं ॥ २४ ॥ यही साक्षात शिवके किये कालकी संख्याहै, वही सत् नामवाले शिव हैं, इनकी अवस्थामें पूर्वोक्त क्रमसे पांच लाख चालीस सहस्र रुद्रादिक होतेहैं, सो अपनी २ अवस्थामें क्रमसे जानना ॥ २५ ॥ परन्तु उस साक्षात शिवमें वह काल प्रवृत्त नहीं होता है, हे ब्राह्मणो ! जो यह सृष्टिका कालान्तर वर्णन कियाहै

इतना काल उस परमात्माका एक दिन है और उस परमेशकी इतनी ही रात्रि जाननी ॥ २६ ॥ दिनमें सृष्टि और रात्रिमें प्रलय होती है, परन्तु उसको
दिनरात कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ यह व्यवहार लोकोंके हितकी इच्छासे किया जाता है प्रजा प्रजापति मूर्त्ति सुर असुर ॥ २८ ॥ इन्द्रिय इन्द्रियोंके अर्थ
पंचमहाभूत तन्मात्रा बुद्धि आदि इन्द्रिय और उनके देवता ॥ २९ ॥ यह उस परमेश्वरके दिनमें स्थित रहते हैं और उसके दिनके अवसानमें लय होजाते
हैं ॥ ३० ॥ जो विश्वात्मा है काल कर्मस्वभावादि अर्थमें जिसकी शक्तिका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता जिसकी आज्ञाके आधीन यह सब संसार है उस

अहस्तस्य तु या सृष्टी रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः ॥ अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ॥ २७ ॥ एषोपचारः क्रियते लोकानां
हितकाम्यया ॥ प्रजाः प्रजानां पतयो मूर्त्तयश्च सुरासुराः ॥ २८ ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पंच च ॥ तन्मात्राण्यथ
भूतादिर्बुद्धिश्च सह दैवतैः ॥ २९ ॥ अहस्तिष्ठंति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः ॥ अहरंते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥ ३० ॥
यो विश्वात्मा कर्मकालस्वभावाद्यर्थे शक्तिर्यस्य नोल्लंघनीया ॥ यस्यैवाज्ञाधीनमेतत्समस्तं नमस्तस्मै महते शंकराय ॥ ३१ ॥ इति
श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे कालप्रभावे त्रिदेवायुर्वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ मुनय ऊचुः ॥ कथं
जगदिदं कृत्स्नं विधाय च निधाय च ॥ आज्ञया परमां क्रीडां करोति परमेश्वरः ॥ १ ॥ किं तत्प्रथमसंभूतं केनेदमखिलं ततम् ॥
केन वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा ॥ २ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ शक्तिः प्रथमसम्भूता शांत्यतीतपदोत्तरा ॥ ततो माया ततोऽव्यक्तं
शिवाच्छक्तिमतः प्रभोः ॥ ३ ॥ शान्त्यतीतपदं शक्तेस्ततः शान्तिपदक्रमात् ॥ ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसम्भवः ॥ ४ ॥

महान् परमात्मा शंकरको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे ब्रह्माद्यायुःकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
ऋषि बोले, परमात्मा शिव किस प्रकारसे इस जगत्को निर्माण कर इसे प्रतिष्ठा करके अपनी शक्तिसहित किस प्रकारसे क्रीडा करते हैं ॥ १ ॥ यह जगत्
किस प्रकारसे पहले उत्पन्न हुआ और किससे विस्तृत है और किसकी महाकोखमें अन्तमें प्रवेश करजाता है ॥ २ ॥ वायु बोले, जिससे आगे शान्यतीत पद
है प्रथम ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई फिर शक्तिमान् शिवके समीपसे माया उससे अव्यक्त प्रकृति उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥ प्रथम उत्पन्न कीहुई शक्तिसे परे शान्त्यतीत

पद है उसके आगे शान्तिपद फिर विद्यापद इससे आगे प्रतिष्ठापद ॥४॥ और प्रतिष्ठापदके आगे निवृत्तिपद है, यह संक्षेपसे ईश्वरप्रेरित सृष्टि वर्णन की॥५॥
जिस क्रमसे यह उत्पन्न होतेहैं उसके प्रतिलोमसे संहार होता है इन पांच पदोंका उपदेश सृष्टिके अन्तरकी इच्छा नहीं करता ॥ ६ ॥ जिस कारणसे कि
यह जगत् पांच कलाओंसे व्याप्त है इससे जो अव्यक्त कारण है वह आत्मासे अधिष्ठित है महत्तसे लेकर विशेषतक उत्पत्ति होतीहै किन्तु उसमें अव्यक्त और
जीवका कर्तृत्व नहीं है ॥ ७ ॥ ८ ॥ प्रकृतिके अचेतन होने और जीवात्माके अज्ञानी होनेसे प्रधान परमाणु आदि जो कुछ भी अचेतन है ॥ ९ ॥

निवृत्तिपदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात् ॥ एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता ॥ ५ ॥ आनुलोम्यात्तथैतेषां प्रातिलोम्येन संहृतिः ॥
अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परस्स्रष्टा समिष्यते ॥ ६ ॥ कलाभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदं जगत् ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तदात्मना सम
नुष्ठितम् ॥ ७ ॥ महदादिविशेषांतं सृजतीत्यपि संमतम् ॥ किं तु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः ॥ ८ ॥ अचेतनत्वात्प्रकृ
तेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च ॥ प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥ ९ ॥ तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥ जगच्च कर्तृसा
पेक्षं कार्यं सावयवं यतः ॥ १० ॥ तस्माच्छक्तस्स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित् ॥ अनादिनिधनश्चायं महदैश्वर्यसंयुतः ॥ ११ ॥
स एव जगतः कर्ता महादेवो महेश्वरः ॥ पाता हर्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वयः ॥१२॥ परिणामः प्रधानस्य प्रवृत्तिः पुरुषस्य च ॥
सर्वं सत्यव्रतस्यैव शासनेन प्रवर्तते ॥१३॥ इतीयं शाश्वती निष्ठा सतां मनसि वर्तते ॥ न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः ॥१४॥

बुद्धिमानोंने कारणके विना उसका स्वयं कर्तापन देखा है यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कारण कि कार्य सावयव है ॥ १० ॥ इस कारण जो समर्थ स्वतंत्र
सर्वशक्तिमान् और सबका जाननेवाला है यह अनादिनिधन सदा ऐश्वर्यसे संयुक्त है ॥११॥ वही जगत्का कर्ता महादेव महेश्वर है, सबका पालक सबका
हर्ता और सबसे पृथक् है ॥ १२ ॥ महदादिका परिणाम करनेवाला है, उस सर्ववृत्तके शासनसेही यह सब प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ यह सत्पुरुषोंके मनका

दृढ निश्चय है, अल्पबुद्धिवाला उस पक्षका ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १४ ॥ जबतक कार्यका प्रारम्भ हो, और जबतक प्रलय होता है तबतक
ब्रह्माके सौ वर्ष बीतजातेहैं ॥ १५ ॥ यही अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी आयुका क्रम है जो उसके आयुका पहला आधा है उसको परार्द्ध कहतेहैं ॥ १६ ॥
जब दो परार्द्ध बीतजाते हैं तब ब्रह्माकी आयु समाप्त होजाती है, अव्यक्त आत्मा कार्यको लेकर आत्मामें स्थित होता है ॥१७॥ जब यह जगत् आत्मामें
स्थित हो विकारयुक्तसंहृत होजाता है, तब यह प्रधान और पुरुष साधर्मसे स्थित होतेहैं ॥ १८ ॥ तम और सत्वगुण यह दोनों समानतासे स्थित होतेहैं और

यावदादिसमारंभो यावद्यः प्रलयो महान् ॥ तावदप्येति सकलं ब्रह्मणः शरदां शतम् ॥ १५ ॥ परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणो
ऽव्यक्तजन्मनः ॥ तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ॥ १६ ॥ परार्द्धद्वयकालांते प्रलये समुपस्थिते ॥ अव्यक्तमात्मनः
कार्यमादायात्मनि तिष्ठति ॥ १७ ॥ आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ॥ साधर्म्येणाधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥१८॥ तमः
सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥ अनुद्रिक्तावनन्तौ तावोतप्रोतौ परस्परम् ॥ १९ ॥ गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये ॥
शांतवातैकनीरे च न प्राज्ञायत किंचन ॥ २० ॥ अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन्नेक एव महेश्वरः ॥ उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं
ततः ॥ २१ ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रधानपुरुषावुभौ ॥ प्रविश्य क्षोभयामास मायायोगान्महेश्वरः ॥ २२ ॥ ततः पुनरशेषाणां भूतानां
प्रभवाप्ययात् ॥ अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः ॥ २३ ॥

सबओर सबसे परस्पर पोहेहुएके समान वर्त्ततेहैं ॥ १९ ॥ गुणोंकी समानता होकर तमोमय होनेके कारण इनका विभाग नहीं होसकता है तब यह पवनसे
शान्त होकर निश्चल जलके समान जाने नहीं जाते ॥२०॥ उस जगत्की अप्रज्ञात दशामें वह एकही महेश्वर उस माहेश्वरी रात्रिमें स्थिति कर ॥२१॥
रात्रि व्यतीत होनेपर प्रधान और पुरुष इन दोनोंको मायायोगसे परमात्मा उसमें प्रविष्ट हो शोभित करतेहैं ॥ २२ ॥ पीछे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिके उद्देशसे
परमेष्ठीकी आज्ञासे उस अव्यक्तसे सृष्टि होतीहै ॥ २३ ॥

जिस परमात्माके मायाके एकही खण्डसे यह सम्पूर्ण उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सृष्टि विचित्र मनोरथोंसहित समाप्त होजाती है उस परमात्माको उस मार्गके जाननेवाले अध्वपति कहतेहैं, उस सब प्राणियोंमें विचक्षण परमात्माको नमस्कार है ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वायु बोले, प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषसे अधिष्ठित अव्यक्तसे बुद्धिको आदि लेकर विशेषपर्यन्त क्रमसे विकार उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उन विकारोंसे रुद्र विष्णु पितामह जगत्के कारणरूप तीन देवता उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ विश्वमें कहींभी न रुक नेवाली उनकी

विश्वोत्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य यस्यैकशक्तिशकले सकलस्समाप्तः ॥ आत्मानमध्वपतिमध्वविदो वदंति तस्मै नमः सकल लोकविलक्षणाय ॥ २४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वभागे सृष्टिपालनप्रलयकर्तृत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वायुरुवाच ॥ पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया ॥ बुध्यादयो विशेषांता विकाराश्चाभवन् क्रमात् ॥ १ ॥ ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ कारणत्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे ॥ २ ॥ सर्वतो भुवनव्याप्तिशक्तिमव्याहतां क्वचित् ॥ ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम् ॥ ३ ॥ सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम् ॥ प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः ॥ ४ ॥ कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पर्द्धा बुद्धिमोहिनाम् ॥ सर्गरक्षालयाचारं प्रत्येकं प्रददौ च सः ॥ ५ ॥ एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ॥ परस्परेण वर्द्धंते परस्परमनुव्रताः ॥ ६ ॥ क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ॥ नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥ ७ ॥

शक्ति हुई उनका अप्रतिहत ज्ञान अणिमादि सिद्धियोंके सहित हुआ ॥ ३ ॥ उत्पत्ति पालन लय क्रमसे तीनोंके यह कर्म हुए इन रुद्रादिके प्रभुत्वसे शिवमहेश्वर प्रसन्न होतेहैं ॥ ४ ॥ कल्पान्तरमें फिर भी बुद्धिकी और मोहकी अस्पर्धाको उत्पत्ति रक्षा और लयके निमित्त परमेश्वरने प्रदान किया ॥ ५ ॥ यह परस्पर उत्पन्न होकर परस्पर शक्तियोंको धारण करतेहैं; और परस्पर स्थितहो परस्पर शक्तियोंको बढातेहैं ॥ ६ ॥ कहीं ब्रह्मा कहीं विष्णु कहीं

रुद्रकी प्रशंसा होती है, इससे उनका ऐश्वर्य कुछ अधिक और न्यून नहीं होता है ॥ ७ ॥ और यह पर है यह श्रेष्ठ है यह न्यून है जो अल्पज्ञानी ऐसा कहतेहैं वे निस्सन्देह राक्षस और पिशाच होतेहैं ॥ ८ ॥ वह ब्रह्म काल विष्णु पुरुषरूप महेश्वर चतुर्व्यूहरूप तीनों गुणोंसे परेहैं वह सर्वात्मक सर्वाधारशक्तिकी उत्पत्तिके कारणहैं ॥ ९ ॥ सो इन ब्रह्मादिक तीनों देवता और प्रकृतिका वह आत्माहै; लीलासे ही जगत्‌की सृष्टिकर ईश्वरतामें स्थित होरहा है ॥ १० ॥ जो परमेश्वर सबसे परे निष्कल है यही सबका आधार सर्वात्मा सबमें अधिष्ठित है ॥ ११ ॥ इस कारण महेश्वर

मूर्खा निंदंति तान्वाग्भिः संरंभाभिनिवेशिनः ॥ यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न संशयः ॥ ८ ॥ देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः ॥
सकलस्सकलाधारशक्तेरुत्पत्तिकारणम् ॥ ९ ॥ सोयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे
व्यवस्थितः ॥ १० ॥ यस्सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः ॥ स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ॥ ११ ॥ तस्मान्महेश्वरश्चैव
प्रकृतिः पुरुषस्तथा ॥ सदाशिवभवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम् ॥ १२ ॥ प्रधानात्प्रथमं जज्ञे बुद्धिः ख्यातिर्मतिर्महान् ॥
महत्तत्त्वस्य संक्षोभादहंकारस्त्रिधाऽभवत् ॥ १३ ॥ अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणींद्रियाणि च ॥ वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु
सात्त्विकः ॥ १४ ॥ वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते ॥ बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंचकर्मेंद्रियाणि च ॥ १५ ॥ एकादशं मनस्तत्र
स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥ तमोयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्रसंभवः ॥ १६ ॥ भूतानामादिभूतत्वाद्भूतादिः कथ्यते तु सः ॥ भूतादेश्शब्दमात्रं
स्यात्तत्र चाकाशसंभवः ॥ १७ ॥

प्रकृतिपुरुष सदाशिव विष्णु ब्रह्मा यह सब शिवात्मकहैं ॥ १२ ॥ प्रधानसे पहले बुद्धि ख्याति और मति उत्पन्न हुई है, और महत्वके क्षोभसे तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ अहंकारसे पंचभूत और तन्मात्रा उत्पन्न हुई हैं; तथा इन्द्रिय उस अहंकारके विकारी होनेसे सत्त्वगुणसे सत्त्वहुआ ॥ १४ ॥ वह वैकारिक सर्ग एकसा यही प्रवृत्त होता है, बुद्धि आदि पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ॥ १५ ॥ और ग्यारहवाँ मन सत्व रज युक्त होनेसे उभयात्मक है, तमोयुक्त अहंकारसे भूतादि तन्मात्रा होतीहैं ॥ १६ ॥ भूतोंका आदिभूत होनेसे वह भूतोंकी आदि कहाता है. भूतादि अहंकारसे शब्दमात्रा होतीहै और

उससे आकाश होता है ॥ १७ ॥ आकाशसे स्पर्श और स्पर्शसे वायु हुई, वायुसे रूप रूपसे तेज और तेजसे रस हुआ ॥ १८ ॥ रससे जल जलसे गन्ध गन्धसे पृथ्वी हुई, और इन पंचमहाभूतोंसे सब चराचर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ पुरुषके अधिष्ठित होने और अव्यक्तके अनुग्रहसे महत्से लेकर विशेष पर्यन्त यह सब अंडको उत्पन्न करतेहैं ॥२०॥ जब ब्रह्मका कार्य और कारण सिद्ध हुआ तब इस अण्डमें ब्रह्मसंज्ञावाला क्षेत्र वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥२१॥ यही प्रथम शरीरी और उसीको पुरुष कहतेहैं वही प्राणियोंके आदिकर्ता ब्रह्मा सबसे पहिले उत्पन्न हुए ॥२२॥ उस सृष्टिकर्ताके अभिमानयुक्त ब्रह्माकी उपमा रहित ज्ञान वैराग्य लक्षणयुक्त धर्म और ऐश्वर्य करनेवाली बुद्धि ब्रह्मसम्बन्धी उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥ जो कुछ इसके मनमें इच्छा है वह सबकुछ अव्यक्तसे उत्पन्न होती है वह तीनों गुणोंको वशी कियेहुए है जो गुण कि, उसकी अपेक्षा करते हैं यह स्वभावसे ही सापेक्ष है ॥ २४ ॥ अपने आत्माको तीन प्रकारसे विभक्त कर त्रिलोकीमें प्रवृत्त होता है; इन्हीं तीन गुणोंसे उत्पन्न लय और पालन करता है ॥ २५ ॥ सृष्टिकर्ममें चतुर्मुख, संहारमें रुद्र, और पालनमें वह पुरुष सहस्रशिर कहाजाता है; इस प्रकार तीनों अवस्थामें स्वयंभू रहते हैं ॥२६॥ ब्रह्मत्वमें सत्त्वगुण और रजोगुण कालत्वमें तम और रज

आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः ॥ वायो रूपं ततस्तेजस्तेजसो रससंभवः ॥१८॥ रसादापस्समुत्पन्नास्तेभ्यो गन्धसमुद्भवः ॥
गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योन्यच्चराचरम् ॥१९॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥ महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति
ते ॥ २० ॥ तत्र कार्यं च करणं संसिद्धं ब्रह्मणो यदा ॥ तदंडे सुप्रवृद्धोऽभूत् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ २१ ॥ स वै शरीरी प्रथमः स
वै पुरुष उच्यते ॥ आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ २२ ॥ तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा ॥ धर्मैश्वर्यकरी बुद्धि
र्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिनः ॥ २३ ॥ अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम् ॥ वशी विकृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः ॥ २४ ॥
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ॥ सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्स्वयम् ॥ २५ ॥ चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चांत
कस्स्मृतः ॥ सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोवस्थास्स्वयंभुवः ॥ २६ ॥ सत्त्वं रजश्च ब्रह्मा च कालत्वे च तमो रजः ॥ विष्णुत्वे केवलं
सत्त्वं गुणवृद्धिंस्त्रिधा विभौ ॥ २७ ॥

है विष्णुत्वमें केवल सत्त्व रहता है इस प्रकार गुणवृद्धि तीन प्रकारकी हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मत्वमें लोकोंकी रचना होती है कालत्वमें संहार होता है, पुरुषत्वमें व्यापाररहित अर्थात् केवल दर्शनमात्रसे ही पालनकार्यकी सिद्धि होजाती है, इस प्रकार उस विभुके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार तीन प्रकार विभक्त होनेसे वह ब्रह्म त्रिगुण कहलाता है और चार प्रकारसे विभक्त होनेसे उसे चतुर्व्यूह कहते हैं ॥ २९ ॥ आदि होनेसे यह आदि देव है, और अजन्मा होनेसे अज कहलाता है और प्रजाकी रक्षा करनेसे यह प्रजापति कहलाता है ॥ ३० ॥ सुवर्णका जो मेरुपर्वत है यही उस महात्माका गर्भाशय है,

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि ॥ पुरुषत्वेऽप्युदासीनः कर्म च त्रिविधं विभोः ॥ २८ ॥ एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद्ब्रह्मा त्रिगुण उच्यते ॥ चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ॥ पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ३० ॥ हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं सुमहात्मनः ॥ गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चाऽपि पर्वताः ॥ ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नंडे त्विमे लोका अतावश्वमिदं जगत् ॥ चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥ ३२ ॥ अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्डं समावृतम् ॥ आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ॥ ३३ ॥ तेजो दशगुणेनैव वायुना बहिरावृतम् ॥ आकाशेनावृतो वायुः ख च भूतादिनावृतम् ॥ ३४ ॥ भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ॥ एतैरावरणैरण्डं सप्तभिर्बहिरावृतम् ॥ ३५ ॥ एत दावृत्त्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥ सृष्टिपालनविध्वंसकर्मकर्त्र्यो द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥

गर्भका जल समुद्र और पर्वतजरायु है ॥ ३१ ॥ इस अंडमें यह सब लोक रहते हैं इसके अन्तरमें विश्व स्थित है चन्द्रमा सूर्य नक्षत्र ग्रह वायुसहित स्थितहै ॥ ३२ ॥ यह अण्ड बाहर दशगुणा जलसे अधिक व्याप्त है, जलसे दशगुणा तेज व्याप्त है ॥ ३३ ॥ तेजसे दशगुणा वायु है सो व्याप्तहै, आकाशसे वायु ढका है, और आकाश पंचभूतसे वेष्टित है ॥ ३४ ॥ भूतादि महान्से और महान् प्रकृतिसे व्याप्त है; इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड प्रकृतिके सात आवरणोंसे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार यह आठ प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं; हे द्विजोत्तमो ! यही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं ॥ ३६ ॥

और परस्पर प्रादुर्भूत होकर परस्पर जगत्को धारण करते हैं, आधार और आधेयके भावसे वे विकार विकारियोंमें ॥ ३७॥ कछुयेके शरीरके समान फैलाते
और सकोडते हैं यही व्यक्त (प्रगट) सम्पूर्ण विकारोंको उत्पन्न करके फिर संहार करता है॥ ३८॥ यह सब जगत् पूर्वोक्त क्रमसे उत्पन्न हो अव्यक्तसेही
प्रगट होता है, और प्रलयकी प्राप्तिमें प्रतिलोम प्रकारसे लय हो जाता है ॥ ३९ ॥ कालके वशसे ही गुण विषम और सम उत्पन्न होते हैं गुणके साम्यमें
लय और विषमतामें सृष्टि होती है ॥ ४० ॥ यही पितामहका कारण घना अण्ड है ब्रह्मका क्षेत्र होनेसे इसको ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहाता है ॥ ४१ ॥

एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम् ॥आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु ॥३७॥ कूर्माँगानि यथा पूर्वं प्रसार्य्य विनियच्छति ॥
विकारांश्च तथाऽव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति ॥ ३८ ॥ अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते ॥ प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रातिलोम्ये
नुलीयते ॥ ३९ ॥ गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः समाः ॥ गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥ ४० ॥ तदिदं
ब्रह्मणो योनिरेतदडं घनं महत् ॥ ब्रह्मणः क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ४१ ॥ इतीदृशानामण्डानां कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः ॥
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ॥४२॥ तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः ॥ सृष्टाः प्रधानेन तथा लब्ध्वा शंभोस्तु
सन्निधिम् ॥ ४३ ॥ महेश्वरः पराव्यक्तादंडमव्यक्तसंभवम् ॥ अण्डाज्जज्ञे विभुर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृतास्त्विमे ॥४४॥ अबुद्धिपूर्वः कथितो
मयैष प्रधानसर्गः प्रथमः प्रवृत्तः ॥ आत्यंतिकश्च प्रलयोन्तकाले लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य ॥ ४५ ॥ यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म
प्रधानं प्रकृतेः प्रसूतिः ॥ अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं शुक्लं सुरक्तं पुरुषेण युक्तम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकारके करोडों सहस्रों अण्ड हैं, सर्व गत होनेसे तिर्यक् ऊर्ध्व और नीचे स्थित हैं ॥ ४२ ॥ उन्हीं स्थानोंमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव स्थितहैं,
प्रधानसे रचेजाकर शंभुकी सन्निधिको प्राप्त होकर जगत् रचते हैं ॥ ४३ ॥ व्यक्तसे भी परमेश्वर परे हैं; उसी व्यक्तसे अव्यक्तसंज्ञक अण्ड उत्पन्न
हुआ है अण्डसे विभु ब्रह्माजी हुए हैं जिन्होंने यह सब लोक निर्माण किये हैं ॥ ४४ ॥ यह जीवोंके आवरण विक्षेपपूर्वक मैंने प्रथमसर्गका वर्णन किया
और अन्तकालमें आत्यन्तिक प्रलय होजाती है यह सब चेष्टा ईश्वरकी लीलामात्रकी है ॥ ४५ ॥ जो कि अप्रमेय कारणभूत ब्रह्म है और प्रधानप्रकृतिसे

प्रादुर्भूत हुआ है वह आदिहीन मध्य और अन्तरहित अनन्तवीर्यवान् शुक्ल और लालवर्ण पुरुषसे युक्त है ॥४६॥ रजकी बुद्धि होनेसे लोककी सन्ततिकी वृद्धिके कारण है सृष्टिके आदिकालमें आठ विकारोंको उत्पन्न कर अन्तकालमें ग्रस लेते हैं ॥ ४७ ॥ प्रकृतिसे स्थापित किये कारणोंकी जहांतक स्थिति और जो फिर प्रवृत्ति है वह शिव अप्राकृतके ऐश्वर्य जानने जो यह महेश्वरके संकल्पमात्रसे उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे लोकोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मुनि बोले, सब मन्वन्तर और कल्पोंके सब भेद उनका आन्तारिक सर्ग और

उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकाल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून् ॥ अष्टौ विकारानपि चादिकाले सृष्ट्वा समश्नाति तथांतकाले ॥ ४७ ॥ प्रकृत्यवस्थापितकारणानां या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ॥ तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां ब्रह्मांडस्थितिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मुनय ऊचुः ॥ मन्वंतराणि सर्वाणि कल्पभेदांश्च सर्वशः ॥ तेष्वेवांतरसर्गं च प्रतिसर्गं च नो वद ॥१॥ वायुरुवाच ॥ कालसंख्याविवृत्तस्य परार्द्धो ब्रह्मणस्स्मृतः॥ तावांश्चैवास्य कालोन्यस्तस्यांते प्रतिसृज्यते ॥२॥ दिवसे दिवसे तस्य ब्रह्मणः पूर्वजन्मनः ॥ चतुर्दशमहाभागा मनूनां परिवृत्तयः ॥ ॥ ३ ॥ अनादित्वादनंतत्वादज्ञेयत्वाच्च कृत्स्नशः ॥ मन्वंतराणि कल्पाश्च न शक्या वचनात्पृथक् ॥ ४ ॥ उक्तेष्वपि च सर्वेषु शृण्वतां वो वचो मम ॥ किमिहास्ति फलं तस्मान्न पृथक् वक्तुमुत्सहे ॥ ५ ॥ य एव खलु कल्पेषु कल्पः संप्रति वर्तते ॥ तत्र संक्षिप्य वर्तंते सृष्टयः प्रतिसृष्टयः ॥ ६ ॥ यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहो नाम नामतः ॥ अस्मिन्नपि द्विजश्रेष्ठा मनवस्तु चतुर्दश ॥ ७ ॥

प्रतिसर्ग वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वायु बोले, पूर्व जो ब्रह्माकी आयुका काल वर्णन किया है उसका आधा परार्ध है, उतनाही इनका दूसरा समय है उसके अन्तमें संहार होता है ॥ २ ॥ उस आदिजन्मा ब्रह्माजीके दिन दिनमें चौदह मनु बीत जाते हैं ॥ ३ ॥ अनादि अनन्त और अज्ञेय होनेसे मन्वन्तर और कल्पोंका वर्णन करना अशक्य है ॥४॥ जो पूर्वमें कहे हैं उनमें एकका वर्णन करता हूँ सब पृथक् कहनेसे फल भी क्या है, इससे पृथक् नहीं कहते॥ ॥ ५ ॥ जो अनेक कल्पोंमें इस समय कल्प वर्तता है उसीमें संक्षिप्त होकर सृष्टिके भीतर सृष्टि वर्तती ॥ ६ ॥ और इस समयके वर्तमान कल्पका नाम

वाराह है, हे श्रेष्ठद्विजो ! इसमें भी चौदह मनु हैं ॥७॥ सात स्वयंभू आदि और सात सावर्णि आदि इनमें अब सातवां वैवस्वत मनु वर्तता है ॥ ८ ॥ सब मन्वन्तरोंमें उत्पत्ति और संहार समान भागसे होते हैं यह जाननेवालोंका तर्क है ॥ ९ ॥ जब पहले कल्पमें प्रलय हुई तब महापवनसे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट होगये ॥१०॥ और त्रिलोकीको तिनकेके समान अग्निके जलानेपर पीछे वर्षा होनेसे सागररूप सब जगत्के होनेपर ॥ ११ ॥ महाजलमें सब दिशाओंके मग्न होनेपर तरंगरूप भुजमंडलके तैरनेसे ॥१२॥ प्रलय जलके तीक्ष्ण नृत्य करनेपर ब्रह्मा नारायणरूपमें मिलकर सुखसे जलमें शयन कर गये ॥१३॥

स्वायंभुवादयस्सप्त सप्त सावर्णिकादयः ॥ तेषु वैवस्वतो नाम सप्तमो वर्तते मनुः ॥ ८ ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु सर्गसंहारवृत्तयः ॥ प्रायः समा भवंतीति तर्कः कार्यो विजानता ॥ ९ ॥ पूर्वकल्पे परावृत्ते प्रवृत्ते कालमारुते ॥ समुन्मूलितमूलेषु वृक्षेषु च वनेषु च ॥ १० ॥ जगंति तृणवत्त्रीणि देवे दहति पावके ॥ वृष्ट्या भुवि निषिक्तायां विवेलेष्वर्णवेषु च ॥ ११ ॥ दिक्षु सर्वासु मग्नासु वारिपूरे महीयसि ॥ तदद्भिश्चटुलाक्षेपैस्तरंगभुजमण्डलैः ॥ १२ ॥ प्रारब्धचण्डनृत्येषु ततः प्रलयवारिषु ॥ ब्रह्मा नारायणो भूत्वा सुष्वाप सलिले सुखम् ॥ ॥ १३ ॥ इमं चोदाहरन्मंत्रं श्लोकं नारायणं प्रति ॥ तं शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठास्तदर्थं चाक्षराश्रयम् ॥ १४ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥ अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥ १५ ॥ शिवयोगमयीं निद्रां कुर्वन्तं त्रिदशेश्वरम् ॥ बद्धांजलिपुटास्सिद्धा जनलोकनिवासिनः ॥ १६ ॥ स्तोत्रैः प्रबोधयामासुः प्रभातसमये सुराः ॥ यथा सृष्ट्यादिसमये ईश्वरं श्रुतयः पुरा ॥ ॥ १७ ॥ ततः प्रबुद्ध उत्थाय शयनात्तोयमध्यगात् ॥ उदैक्षत दिशः सर्वा योगनिद्रालसेक्षणः ॥ १८ ॥

और नारायणके प्रति श्लोकरूप इस मन्त्रको कहतेहुए हे मुनिश्रेष्ठो ! उस अक्षरके आश्रयको सुनो ॥१४॥ जलोंको नार कहते हैं, नरसूनु भी जलही जिस कारणसे कि वे जल उसके रहनेका स्थान है, इसीसे उसे नारायण कहते हैं ॥१५॥ शिव योगयुक्त निद्रा करतेहुए इस वैकुण्ठनाथको जनलोकनिवासी देवता हाथ जोडकर ॥१६॥ प्रातःकालके समय स्तोत्रोंसे जगाते हैं, जैसे सृष्टिके आरम्भमें श्रुतियें ईश्वरको जगाती हैं ॥ १७ ॥ पीछे जलके शयनसे प्रातःकाल

उठकर योगनिद्रासे आलस भरे नेत्रोंसे वह सब दिशा देखते हैं ॥ १८ ॥ जब अपने आत्माके सिवाय कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता; तब विस्मयको प्राप्त होकर
चिन्ता करते हैं ॥१९॥ वह मनोहर बडी भूमि कहां चली गई; अनेक प्रकारके महाशैल नदी नगर वन कहागये ॥ २० ॥ जब ब्रह्माने यह विचार कर
पृथ्वीकी स्थितिको न जाना तब अपने पिता त्रिलोचन शिवजीका स्मरण किया ॥ २१॥ अमित तेजस्वी शिवके स्मरणमात्रसेही उन धरणीपतिने जानलिया
कि, भगवती पृथ्वी जलमें मग्न होगई ॥२२॥ तब प्रजापतिने पृथ्वीके उद्धारकी इच्छासे जलक्रीडाके उचित दिव्य वाराहरूपको धारण किया ॥ २३ ॥

नापश्यत्स तदा किंचित्स्वात्मनो व्यतिरेकि यत् ॥ सविस्मय इवासीनः परां चिंतामुपागमत् ॥ १९ ॥ क्व सा भगवती या तु
मनोज्ञा महती मही ॥ नानाविधमहाशैलनदीनगरकानना ॥ २० ॥ एवं संचिंतयन्ब्रह्मा बुबुधे नैव भूस्थितिम् ॥ तदा सस्मार
पितरं भगवंतं त्रिलोचनम् ॥ २१ ॥ स्मरणाद्देवदेवस्य भवस्यामिततेजसः ॥ ज्ञातवान्सलिले मग्नां धरणीं धरणीपतिः ॥ २२ ॥
ततो भूमेस्समुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ जलक्रीडोचितं दिव्यं वाराहं रूपमस्मरत् ॥ २३ ॥ महापर्वतवर्ष्माणं महाजल
दनिःस्वनम् ॥ नीलमेघप्रतीकाशं दीप्तशब्दं भयानकम् ॥ २४ ॥ पीनवृत्तघनस्कंधपीनोन्नतकटीतटम् ॥ ह्रस्ववृत्तोरुजंघाग्रं सुतीक्ष्ण
पुरमण्डलम् ॥ २५ ॥ पद्मरागमणिप्रख्यं वृत्तभीषणलोचनम् ॥ वृत्तदीर्घमहागात्रं स्तब्धकर्णस्थलोज्ज्वलम् ॥ २६ ॥ उदीर्णोच्छ्वास
निश्वासघूर्णितप्रलयार्णवम् ॥ विस्फुरत्सुसटाच्छन्नकपोलस्कंधबंधुरम् ॥ २७॥ मणिभिर्भूषणैश्चित्रैर्महारत्नैः परिष्कृतम् ॥ विराजमानं
विद्युद्भिर्मेघसंघमिवोन्नतम् ॥ २८ ॥ आस्थाय विपुलं रूपं वाराहममितं विधिः ॥ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥ २९ ॥

जिनकी महापर्वतके समान देह महामेघके समान शब्द नीलमेघके समान भयानक दीप्तिमान् शब्द ॥ २४ ॥ दृढ और गोलाकार अंग घने कंधे पीन और
ऊंचा कमरका भाग ह्रस्व (छोटा) और भीषण जंघाका अग्रभाग सुतीक्ष्ण खुरमण्डल ॥२५॥ पद्मरागमणिके समान गोलाकार बडे शरीर स्तब्ध कान उज्ज्वल
कर्णका स्थान ॥२६॥ बढेहुए श्वांस निश्वाससे प्रलयकालके जलको क्षुभित करतेहुए स्फुरायमान केशोंकी छटासे कपोल और स्कंधसे युक्त ॥२७॥ मणियोंसे
चित्र विचित्र जिनकी शोभा ऐसी थी मानो मेघमें बिजलीसे शोभित हैं ॥२८॥ इस प्रकारसे ब्रह्माजी बडे वाराहरूपको प्राप्त हो पृथ्वीके उद्धारके निमित्त

पातालमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ तब वह पर्वतके समान वाराहजी बडे शोभित हुए मानो लिंगाकार महेशके चरणमूलको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ तब वह पृथ्वी धारण करनेवाले जलमें मग्नहुई पृथ्वीको डाढके ऊपर धारण कर सागरसे ऊपर आये ॥ ३१ ॥ उनको देखकर जनलोकनिवासी मुनि सिद्ध प्रसन्न हो नृत्य कर उनके मस्तकपर फूल वरसाने लगे ॥ ३२ ॥ वह फूलोंसे आवृत वाराहका रूप शोभित हुआ, जैसे पटवीजनोंसे अंजन (काला) पर्वत शोभित होता है ॥ ३३ ॥ तब वाराहजी उस बडी पृथ्वीको स्थापन कर अपने स्वरूपमें स्थित हो उसे स्थित करते हुए ॥ ३४ ॥ पृथ्वीको समान करके फिर

स तदा शुशुभेऽतीव सूकरो गिरिसंनिभः ॥ लिंगाकृतेर्महेशस्य पादमूलं गतो यथा ॥ ३० ॥ ततस्स सलिले मग्नां पृथिवीं पृथिवीधरः ॥ उद्धृत्यालिंग्य दंष्ट्राभ्यामुन्ममज्ज रसातलात् ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा मुनयस्सिद्धा जनलोकनिवासिनः ॥ मुमुदुर्ननृतुर्मूर्ध्नि तस्य पुष्पैरवाकिरन् ॥ २२ ॥ वपुर्महावराहस्य शुशुभे पुष्पसंवृतम् ॥ पतद्भिरिव खद्योतैः प्रांशुरंजनपर्वतः ॥ ३३ ॥ ततः संस्थानमानीय वराहो महतीं महीम् ॥ स्वमेव रूपमास्थाय स्थापयामास वै विभुः ॥ ३४ ॥ पृथिवीं च समीकृत्य पृथिव्यां स्थापयन्गिरीन् ॥ भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत् ॥ ३५ ॥ इति सह महतीं महीं महीध्रैः प्रलयमहाजलधेरधःस्थमध्यात् ॥ उपरि च विनिवेश्य विश्वकर्मा चरमचरं च जगत्ससर्ज भूयः ॥ ३६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वा० पू० सृष्ट्यादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ सर्गं चिंतयतस्तस्य तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ॥ प्रध्यानकाले मोहस्तु प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १ ॥ तमोमोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः ॥ अविद्या पञ्चमी चैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ २ ॥

पृथ्वीमें पर्वतोंको स्थापन कर पूर्वके समान सब भूरादि लोकोंकी कल्पना करते हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे यह महापृथ्वी प्रलयकालके महासमुद्रमेंसे निकाल और इसके ऊपर स्थापित कर उस विश्वकर्माने फिर चराचर जगत्की रचना की ॥ ३६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे वाराहरूपवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वायु बोले, इसके उपरान्त आदिमें सृष्टिरचनाकी इच्छासे ध्यानके समय ब्रह्माको तमोमय मोहकी प्राप्ति हुई ॥ ॥ १ ॥ वह मोह महामोह तामिस्र अन्धतामिस्र और पांचवीं अविद्या यह वस्तु उस महात्मासे प्रादुर्भूत हुई ॥ २ ॥

उनके ध्यान करनेसे पांच प्रकारसे यह जगत् प्रादुर्भूत हुआ और सर्व इस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त था जैसे बीजसे पूर्ण कुम्भबीज और अपने अवयवोंको आच्छादित करता है॥ ३॥बाहर और भीतर प्रकाशरहित निश्चल था, इसी कारण उन सृष्टिमें उत्पन्न होनेवालोंकी बुद्धि, इन्द्रिय, मुख आच्छादित हो रहे थे ॥ ४ ॥ इसी कारण वे आच्छादित आत्मावाले पर्वत और वृक्षही प्रारम्भमें हुए, इस कारण यह ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि सृष्टिके उपयोगी नहीं हुई ॥५॥ तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर दूसरी सृष्टिकी रचना की, तब उनके ध्यान करनेसे तिरछे चलनेवाले जीवोंकी सृष्टि प्रवाह आई ॥६॥ यह तिरछे चलनेवाले अन्तर ज्ञानवाले हैं बाहर अज्ञानसे आवृत हैं, इसी कारण सबको समान देखनेवाले पशु आत्मा हुए, इसी कारण उन्होंने असन्मार्ग ग्रहण किया ॥७॥ इनको भी सृष्टिके अनुपयोगी जानकर ब्रह्माने सृष्टिरचनाकी इच्छा की, तब ऊर्ध्वगामी सत्त्वगुणसे देवसर्गकी प्रवृत्ति हुई ॥८॥ वे सुखी, प्रसन्न, बाहर भीतर स्वच्छ, तेजस्वी, ज्ञानी हुए ॥९॥ फिर प्रधानके ध्यान करनेसे सात्त्विक संसारी प्रवाह उत्पन्न हुआ यह मनुष्योंकी सृष्टि उत्पन्न हुई, यह अनेक प्रकार दुःखसे व्याप्त है ॥१०॥ यह बाहर भीतरके प्रकाशवाले तमोगुण थोडा अधिक रजोगुणवाले हैं, यह पांचवां ईश्वरका अनुग्रहरूप सर्ग चारप्रकारसे विभक्त हुआ है ॥११॥

पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतस्त्वभिमानिनः ॥ सर्व्वतस्तमसातीव बीजकुम्भवदावृतः ॥ ३ ॥ बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ
एव च ॥ तस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुखानि करणानि च ॥ ४ ॥ तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥ तं दृष्ट्वाऽसाधकं ब्रह्मा
प्रथमं सर्गमीदृशम् ॥ ५ ॥ अप्रसन्नमना भूत्वा द्वितीयं सोऽभ्यमन्यत ॥ तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्य्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत ॥ ६ ॥
अन्तःप्रकाशास्तिर्य्यञ्च आवृताश्च बहिः पुनः ॥ पश्वात्मानस्ततो जाता उत्पथग्राहिणश्च ते ॥ ७ ॥ तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यमम
न्यत ॥ तदोर्ध्वस्रोतसो वृत्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥ ८ ॥ ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावादेव
संज्ञिताः ॥ ९ ॥ ततोऽभिध्यायतोऽव्यक्तादर्व्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ मनुष्यनामा सञ्जातः सर्गो दुःखसमुत्कटः ॥ १० ॥ प्रकाशाबहि
रन्तस्ते तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥ पञ्चमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा संव्यवस्थितः ॥ ११ ॥

विरोधभक्ति तपसामर्थ्य परमेश्वरके प्रसादकी प्राप्ति मंत्रादि साधनसे फलकी प्राप्ति होनी; इन चार प्रकारके मार्ग ग्रहण करनेवाले सब स्त्री धन आदिके अभिमानी हुए ॥ १२ ॥ वे खानेमें तत्पर अशील अर्थात् दुर्वृत्तभूत प्रेत पिशाचादि वर्णन किये हैं; परमेष्ठी ब्रह्माका यह पहला महान् सर्ग है ॥ १३ ॥ और दूसरा तन्मात्राका भूतसर्ग कहा है और तीसरा वैकारिक ज्ञान कर्मेन्द्रियरूप सर्ग है ॥ १४ ॥ यह प्रकृतिका सर्ग जड प्रकृतिका है चौथा सर्ग मुख्य है, जिसमें स्थावर मुख्य कहे गये हैं ॥ १५ ॥ जो तिर्यक् स्रोत है, यह पांचवीं तिर्यक् योनि है इसके उपरान्त छठा सर्ग ऊर्ध्वस्रोत है, जो देवसर्ग कहा

विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च ॥ तेऽपरिग्राहिणः सर्व्वे संविभागरताः पुनः ॥ १२ ॥ खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्त्तिताः ॥ प्रथमो महतः सर्गो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥ इत्येष प्रकृतेः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः ॥ मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥ तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स पञ्चमः ॥ तदूर्ध्वस्रोतसः षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥ ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः कौमारो नवमः स्मृतः ॥ १७ ॥ प्राकृताश्च त्रयः पूर्व्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्व्वकाः ॥ बुद्धिपूर्व्वं प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्याः पञ्च वैकृताः ॥ १८ ॥ अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥ सनन्दं सनकञ्चैव विद्वांसञ्च सनातनम् ॥ १९ ॥ ऋभुं सनत्कुमारञ्च पूर्व्वमेव प्रजापतिः ॥ सर्व्वे ते योगिनो ज्ञेया वीतरागा विमत्सराः ॥ २० ॥ ईश्वरासक्तमनसो न चक्रुः सृष्टये मतिम् ॥ तेषु सृष्ट्यनपेक्षेषु गतेषु सनकादिषु ॥ २१ ॥

है ॥ १६ ॥ पीछे नीचे चलनेवालोंके स्रोतकी प्राप्ति हुई यह सातवां मनुष्योंका स्रोत है, आठवां अनुग्रहसर्ग और नौवा कुमारसर्ग है ॥ १७ ॥ प्रकृतिके किये वे पहले तीन सर्ग अबुद्धिपूर्वक कहलाते हैं और पांच विकारी सर्ग बुद्धि पूर्वक प्रवृत्तहोते हैं ॥ १८ ॥ सबसे पहले ब्रह्माने अपने सनक सनंदन और सनातनको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ ऋभु और सनत्कुमार यह पांचों योगी राग और अभिमानसे रहित हैं ॥२०॥ यह ईश्वरमें मन लगानेके कारण

सृष्टि उत्पन्न करनेमें मन न लगाते हुए, जब वे सृष्टिकर्ममें मन न लगाकर चले गये ॥ २१ ॥ तब ब्रह्माने सृष्टि रचनेकी इच्छासे फिर तप किया, उनके उस तप करनेसे कुछ भी फल न हुआ ॥ २२ ॥ तब बहुत समय बीतनेके कारण दुःखसे क्रोध आगया और क्रोधसे उनके नेत्रोंसे आंसू गिरे ॥ २३ ॥ उन आंसुओंकी बूँदोंसे प्रेत उत्पन्न हुए, उन सबको आंसुओंसे उत्पन्न देखकर ब्रह्माजीने अपनी निन्दा की ॥ २४ ॥ तब क्रोध और मोहके कारण ब्रह्माको तीव्र मूर्च्छा होगई और महाक्रोधके कारण प्रजापतिने अपना शरीर त्याग दिया ॥२५॥ तब प्राणेश्वर भगवान् नीललोहित महाप्रसन्नता करनेके निमित्त

स्रष्टुकामः पुनर्ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्त्तत ॥ २२ ॥ ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत ॥
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥ २३ ॥ ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन् ॥ सर्व्वांस्तानश्रुजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मा
नमानिंदत ॥ २४ ॥ तस्य तीव्राऽभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ॥ मूर्च्छितस्तु जहौ प्राणान्क्रोधाविष्टः प्रजापतिः ॥२५॥ ततः प्राणेश्वरो
रुद्रो भगवान्नीललोहितः ॥ प्रसादमतुलं कर्त्तुं प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात् ॥ २६ ॥ दशधा चैकधा चक्रे स्वात्मानं प्रभुरीश्वरः ॥ ते तेनोक्ता
महात्मानो दशधा चैकधा कृताः ॥ २७ ॥ यूयं सृष्टा मया वत्सा लोकानुग्रहकारणात् ॥ तस्मात्सर्व्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च
॥ २८ ॥ प्रजासन्तानहेतोश्च प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥ एवमुक्ताश्च रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः ॥ २९ ॥ रोदनाद्द्रावणाच्चैव ते रुद्रा नामतः
स्मृताः ॥ ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते महात्मकाः ॥ ३० ॥ ततो मृतस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ घृणी ददौ पुनः प्राणा
न्ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः ॥ ३१ ॥ प्रहृष्टवदनो रुद्रः प्राणप्रत्यागमाद्विभोः ॥ अभ्यभाषत विश्वेशो ब्रह्माणं परमं वचः ॥ ३२ ॥

प्रजापतिके मुखसे प्रगट हुए ॥२६॥ और आप अपने ग्यारह रूप किये और आप स्वयं उन ग्यारहके प्रति कहने लगे॥२७॥हे वत्स ! तुमको मैंने सृष्टिके कारण उत्पन्न किया है इस कारण सब लोकोंके स्थापन और हित करनेके लिये ॥ २८ ॥ और प्रजाकी सृष्टिके निमित्त तुम निरंतर यत्न करो यह वचन श्रवणकर वे सब रोने और परस्पर भागने लगे ॥ २९ ॥ रोदन और द्रावण (पलायन करना) से वे सब रुद्र कहलाये जो रुद्र हैं वही प्राण हैं, जो प्राण हैं वही महात्मा हैं ॥३०॥ तब परमेष्ठी ब्रह्माके शरीर त्यागनेसे दया करके शिवने फिर उनके निमित्त प्राणोंको दिया ॥ ३१ ॥ फिर उनके प्राण शरीरमें

आजानेसे रुद्र प्रसन्न हुए तब विश्वेश ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ ३२ ॥ हे जगत्के गुरु महाभाग्यवान् ब्रह्माजी ! आप भय मत करो, मैंने तुमको प्राण दिये, आप अब सुखसे उठिये ॥ ३३ ॥ स्वप्नके समान इस मनोहर वाक्यको सुनकर फूले हुए नेत्रोंसे ब्रह्माजी शिवको शनैः शनैः देखने लगे ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकारसे प्राण आगये तब मनोहर और गम्भीरवाणीसे हाथ जोडकर ब्रह्माजी बोले ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! कहिये आप मेरे मनको आनन्द देते हो आप कौन हो, क्या तुम विश्वमूर्त्ति एकादशात्मा स्थित हो ॥ ३६ ॥ उनके यह वचन सुनके ब्रह्माको मुखसे स्पर्श करतेहुए सुरेश्वर बोले ॥ ३७ ॥

मामैर्मामैर्महाभाग विरिंच जगतां गुरो ॥ मया ते प्राणिताः प्राणाः सुखमुत्तिष्ठ सुव्रत ॥ ३३ ॥ स्वप्नानुभूतमिव तच्छ्रुत्वा वाक्यं मनोहरम् ॥ हरं निरीक्ष्य शनकैर्नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः ॥ ३४ ॥ तथा प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा तमुद्दिश्य कृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥ त्वं हि दर्शनमात्रेण चानन्दयसि मे मनः ॥ को भवान् विश्वमूर्त्या वा स्थित एकादशात्मकः ॥ ३६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः ॥ स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्माणं सुमुखाभ्यां सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ मां विद्धि परमात्मानं तव पुत्रत्वमागतम् ॥ एते चैकादश रुद्रास्त्वां सुरक्षितुमागताः ॥ ३८ ॥ तस्मात्तीव्रामिमाम्मूर्च्छां विधूय मदनुग्रहात् ॥ प्रबुद्धस्व यथापूर्वं प्रजा वै स्रष्टुमर्हसि ॥ ३९ ॥ एवं भगवता प्रोक्तो ब्रह्मा प्रीतमना ह्यभूत् ॥ नामाष्टकेन विश्वात्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ४० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे ॥ नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने ॥ शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः ॥ ४१ ॥ ईशाय वसवे तुभ्यं नमस्स्पर्शमयात्मने ॥ पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे ॥ भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ॥ ४२ ॥

मैं परमात्मा हूँ तुम्हारे पुत्ररूप होकर प्रगट हुआ हूँ, और यह ग्यारह रुद्र तुम्हारी रक्षा करनेको आये हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण हमारे अनुग्रहसे इस महामूर्च्छाको त्यागन करके जागृत होकर तुम सृष्टिरचना करो ॥ ३९ ॥ जब शंकरने यह वार्त्ता कही तब ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए; और आठ नामसे परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ ब्रह्मा बोले, भगवान् रुद्र सूर्यके समान महातेजवालेके निमित्त नमस्कार है, भवदेव रसगुणस्वरूप जलात्माके निमित्त नमस्कार है, शर्व पृथ्वीरूप सदा मनोहर नन्दीरूप ॥ ४१ ॥ ईश वायुरूप स्पर्शात्माके निमित्त नमस्कारहै, पशु अर्थात् जीवोंके पति अग्निके समान तेजस्वी दैत्योंको भीमरूप

शब्दमात्रायुक्त आपको नमस्कार है ॥४२॥ उग्र स्वरूप यजमानात्माके निमित्त नमस्कार है, महादेव सोम और अमृतमूर्त्तिके निमित्त नमस्कारहै ॥४३॥
लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकारसे महादेवको प्रणाम कर अत्यन्त मनोहर वाणीसे विश्वपतिकी प्रार्थना करनेलगे ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हे भूत भविष्य
वर्तमानके अधिपति मेरे पुत्र महेश्वर ! हे कामनाशन ! तुम मेरे शरीरसे सृष्टिके निमित्त उत्पन्न हुए हो ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! इस कारण तुम मेरे कार्यमें
जिसमें कि, मैं व्याकुल हूँ आप सहायता कीजिये और प्रजा रचिये ॥४६॥ जब उन्होंने इस प्रकार त्रिपुरमर्दनकी याचना करी तब बहुत अच्छा कहकर

उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः ॥ महादेवाय सोमाय नमोस्त्वमृतमूर्तये ॥ ४३ ॥ एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
प्रार्थयामास विश्वेशं गिरा प्रणतिपूर्वया ॥ ४४ ॥ भगवन् भूतभव्येश मम पुत्र महेश्वर ॥ सृष्टिहेतोस्त्वमुत्पन्नो ममांगेऽनंगनाशनः ॥
॥ ४५ ॥ तस्मान्महति कार्येऽस्मिन् व्यापृतस्य जगतत्प्रभो ॥ सहायं कुरु सर्वत्र स्रष्टुमर्हसि स प्रजाः ॥ ४६ ॥ तेनैषां पावितो देवो
रुद्रस्त्रिपुरमर्दनः ॥ बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः ॥ ४७ ॥ ततस्स भगवान् ब्रह्मा हृष्टं तमभिनंद्य च ॥ स्रष्टुं तेनाभ्यनुज्ञा
तस्तथान्याश्चासृजत्प्रजाः ॥ ४८ ॥ मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मनसैव च ॥ पुरस्ताद
सृजद्ब्रह्मा धर्मं संकल्पमेव च ॥ ४९ ॥ इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा द्वादशादौ प्रकीर्तिताः ॥ सह रुद्रेण संभूताः पुराणा गृहमेधिनः ॥ ५० ॥
तेषां द्वादश वंशाः स्युर्दिव्या देवगणान्विताः ॥ प्रजावन्तः क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥ ५१ ॥ अथ देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च
चतुष्टयम् ॥ सह रुद्रेण सिसृक्षुरंभस्येतानि वै विधिः ॥ ५२ ॥

शिवने उनके वचन स्वीकार किये ॥ ४७ ॥ तब भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हो उन्हें नमस्कार कर उनकी आज्ञासे दूसरी प्रजाकी रचना करने लगे ॥ ४८ ॥
मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष,अत्रि, वशिष्ठ, इन ऋषियोंको मनसे उत्पन्न किया, सब सृष्टिके पहले ब्रह्माने धर्म और संकल्पकी रचना
की ॥ ४९ ॥ यह बारह ब्रह्माके पुत्र कहेहैं, यह पुराणपुरुष गृहमेधी रुद्रके साथ उत्पन्न हुएहैं ॥ ५० ॥ उनके दिव्य देवताओंसे पूजित बारह वंश हैं,
वे प्रजावाले क्रियावाले महर्षियोंसे अलंकृतहैं ॥ ५१ ॥ फिर देवता असुर पितर मनुष्य इन चारोंकी रुद्रके साथ ब्रह्माजीने रचनेकी इच्छासे ॥ ५२ ॥

स सृष्ट्यर्थं समाधाय ब्रह्मात्मानमयूयुजत् ॥ मुखादजनयद्देवान् पितॄंश्चैवोपपक्षतः ॥५३॥ जघनादसुरान् सर्वान् प्रजनादपि मानुषान् ॥
अवस्करे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे ॥ ५४ ॥ पुत्रास्तमोरजःप्रायाः बलिनस्ते निशाचराः ॥ सर्पा यक्षास्तथा भूता गंधर्वाः
संप्रजज्ञिरे ॥ ५५ ॥ वयांसि पक्षतस्सृष्टाः पक्षिणो वक्षसोऽसृजत् ॥ मुखतोजांस्तथा पार्श्वादुरगांश्च विनिर्ममे ॥५६॥ पद्भ्यां चाश्वान्स
मातंगान् शरभान् गवयान् मृगान् ॥ उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यंकूनन्यांश्च जातयः ॥ ५७ ॥ औषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥
गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्सोम रथंतरम् ॥ ५८ ॥ अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥ यजूंषि त्रैष्टुभं छंदःस्तोमं पंचदशं
तथा ॥ ५९ ॥ बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥ सामानि जगतीछंदस्स्तोमं सप्तदशं तथा ॥ ६० ॥ वैरूप्यमतिरात्रं च
पश्चिमादसृजन् मुखात् ॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ॥ ६१ ॥ अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ उच्चावचानि भूतानि
गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ ६२ ॥ यक्षाः पिशाचा गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगाः ॥ ६३ ॥

सृष्टिके निमित्त समाधान करके अपनी आत्माको युक्त किया, मुखसे देवता और कक्षासे पितरोंको उत्पन्न किया ॥५३॥ जंघाओंसे सब असुरोंको, और शिश्न स्थानसे मनुष्योंको उत्पन्न किया, उनके गुदस्थानसे क्षुधाविष्ट राक्षस उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ वे पुत्र रज तमसे युक्त और बली निशाचर हैं, सर्प यक्ष और भूत गन्धर्व सब उन्हींसे उत्पन्न होगये ॥ ५५ ॥ शब्द करनेवाले पक्षी दोनों कक्षासे उत्पन्न हुए, और दूसरे पक्षी छातीसे उत्पन्न हुए, मुखसे बकरी तथा पार्श्वस्थानसे सर्पोंको उत्पन्न किया ॥ ५६ ॥ पैरोंसे घोडे हाथी शरभ और गवय मृगोंको उत्पन्न किया, ऊंट खिच्चड न्यंकू (बहु शृंगवाले मृग) तथा दूसरी जाति ॥ ५७ ॥ औषधी फल फूल यह सब वस्तु उनके रोमकूपोंसे उत्पन्न हुईं, गायत्री ऋग्वेद त्रिवृत्साम रथन्तर ॥५८॥ और अग्निष्टोम यज्ञोंको प्रथम मुखसे उत्पन्न किया, यजुर्वेद त्रिष्टुप्छन्द पंचदश स्तोम ॥ ५९ ॥ बृहत्सामके स्थान और उक्थ दक्षिण मुखसे उत्पन्न हुए, साम जगतीछन्द सत्रह स्तोम ॥ ६० ॥ वैरूप्य और अतिरात्र पश्चिम मुखसे प्रगट हुए, एकविंश २१ पृष्ठ्यनामक अथर्ववेद आप्तोर्याम क्रतु ॥ ६१ ॥ यज्ञविशेष और वैराज साम उत्तरके मुखसे प्रगट हुए, और भी ऊंचे नीचे प्राणी उनके शरीरसे प्रगट हुए ॥ ६२ ॥ यक्ष पिशाच गन्धर्व और अप्सराओंके गण नर

किन्नर राक्षस वय पशु मृग सर्प ॥ ६३ ॥ सर्वथा विनाशशून्य जो यह स्थावर जंगमादि जगतहै उनकी अवस्था और कर्म सृष्टिसे पहले उत्पन्न हुए ॥ ॥ ६४ ॥ वे बारंवार जन्म लेकर उन्हीं कर्मोंको प्राप्त होतेहैं, हिंसक जीव हिंसकर्में मृदु क्रूर धर्म अधर्म सत्य झूंठमें ॥६५॥ वे अपने २ कर्मानुरूप प्राप्त होतेहैं; अर्थात् कर्मानुरूप जन्म पातेहैं, और उसमें प्रसन्न रहतेहैं, महाभूतोंमें अनेकपन इन्द्रियोंके अर्थ और मुक्ति ॥ ६६ ॥ इनमें स्वयं ब्रह्मा कर्मानुसार पुरुषोंको लगातेहैं, भूतोंके नाम रूप प्राकृत अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न हुओंका पूर्वके अनुसारही नाम और कर्म विधान किया ॥ ६७॥ ब्रह्मा यह सब वेदोंके

अव्ययं चैव यदिदं स्थाणु स्थावरजंगमम् ॥ तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्टानि प्रपेदिरे ॥ ६४ ॥ तान्येव ते प्रपद्यंते
सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥ ६५ ॥ तद्भाविताः पप्रद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ महाभूतेषु
नानात्वमिंद्रियार्थेषु मुक्तिषु ॥ ६६ ॥ विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधत्स्वयम् ॥ नाम रूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपंचनम् ॥
॥ ६७ ॥ वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममेऽसौ पितामहः ॥ आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु वृत्तयः ॥ ६८ ॥ शर्वर्य्यंते प्रसूतानां तान्ये
वैभ्यो ददावजः ॥ यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥ ६९ ॥ दृश्यंते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ इत्येष करणो
द्भूतो लोकसर्गस्स्वयंभुवः ॥ ७० ॥ महदाद्यो विशेषांतो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ॥ चंद्रसूर्यप्रभाजुष्टो ग्रहनक्षत्रमंडितः ॥ ७१ ॥ नदी
भिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च स मंडितः ॥ पुरैश्च विविधैरम्यैस्स्फीतैर्जनपदैस्तथा ॥ ७२ ॥ तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तो ब्रह्मा चरति सर्ववित् ॥
अव्यक्तबीजप्रभव ईश्वरानुग्रहे स्थितः ॥ ७३ ॥

वचनोंके अनुसारही बनते थे, गोत्र, नाम और वेदविहित वृत्तियां ॥ ६८ ॥ ब्रह्माकी रात्रिप्रलयके अन्तमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको देतेहुए । जैसे ऋतु ऋतुके लिंग सृष्टिके अन्तरमें नानारूप होतेहैं ॥ ६९ ॥ वे वैसेही युगादिकोंमें हुआ करतेहैं, यह कारणसे उत्पन्न हुआ ब्रह्माका लोकसर्ग है, ॥ ७० ॥ महतसे लेकर विशेषतक प्रकृतिका किया कार्य है, चन्द्रमा सूर्यकी कान्ति मिला ग्रह नक्षत्रसे मण्डित ॥ ७१ ॥ नदी समुद्र पर्वतोंसे व्याप्त अनेक पुरोंसे मनोहर श्रेष्ठ जनपदोंसे व्याप्त ॥ ७२ ॥ ब्रह्मरूपी वनमें सर्ववित ब्रह्म विचरता है, अव्यक्त बीजसे उत्पन्न हुआ ईश्वरके अनुग्रहसे स्थित है ॥ ७३ ॥

बुद्धिरूपी महास्कन्ध महाशाखा इन्द्रिय अन्तरकी कोटरा महाभूत प्रमाण विशेषरूपी निर्मल पत्ते ॥७४॥ धर्माधर्मरूपी फूलोंसे भरा सुख दुःखरूपी फलोंका देनेवाला सर्वभूतोंका उपजीवी यह सनातन ब्रह्मरूपी वृक्ष है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण कहते हैं स्वर्ग उसका शिर आकाश नाभि चन्द्रमा सूर्य उसके नेत्र हैं, दिशा कान पृथ्वी चरण इस प्रकार वह अचिन्त्यात्मा सब प्राणियोंका निर्माण करनेहारा है ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण उसके मुखसे, क्षत्रिय भुजासे, वैश्य जंघाओंसे, और शूद्र चरणोंसे, ऐसे सब वर्ण शरीरसे उत्पन्न हुए हैं ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम

बुद्धिस्कंधमहाशाख इन्द्रियांतरकोटरः ॥ महाभूतप्रमाणश्च विशेषामलपल्लवः ॥ ७४ ॥ धर्माधर्मसुपुष्पाढ्यः सुखदुःखफलोदयः ॥ आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ॥ ७५ ॥ द्यां मूर्द्धानं तस्य विप्रा वदंति खं वै नाभिं चंद्रसूर्यौ च नेत्रे ॥ दिशः श्रोत्रे चरणौ च क्षितिं च सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रणेता ॥ ७६ ॥ वक्रात्तस्य ब्राह्मणास्संप्रसूतास्तद्वक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागात् ॥ वैश्या ऊरुभ्यां तस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखंडे सृष्टिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भवता कथिता सृष्टिर्भवस्य परमात्मनः ॥ चतुर्मुखमुखात्तस्य संशयो नः प्रजायते ॥ १ ॥ देवश्रेष्ठो विरूपाक्षो दीप्तश्शूलधरो हरः ॥ कालात्मा भगवान् रुद्रः कपर्दी नीललोहितः ॥ २ ॥ सब्रह्मकमिमं लोकं सविष्णुमपि पावकम् ॥ यः संहरति संक्रुद्धो युगांते समुपस्थिते ॥ ३ ॥ यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रणामं कुरुतो भयात् ॥ लोकसंकोचकस्यास्य यस्य तौ वशवर्तिनौ ॥ ४ ॥ योऽयं देवः स्वकादंगाद्ब्रह्मविष्णू पुरासृजत् ॥ स एव हि तयोर्नित्यं योगक्षेमकरः प्रभुः॥५॥

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ऋषि बोले, आपने परमात्मा शिवकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे कथन की इसमें हमको महासंदेह है ॥ १ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ विरूपाक्ष शूल धारण करनेहारे कालात्मक भगवान् रुद्र जटाधारी नीललोहितहैं ॥ २ ॥ जो शिव ब्रह्मा विष्णु और अग्निसहित इस लोकको युगान्तरमें क्रोधकर संहार करतेहैं ॥ ३ ॥ जिसको ब्रह्मा विष्णु सदा भयसे प्रणाम करतेहैं; लोकके संकोच करनेवाले इनके वशमें ब्रह्मा और विष्णु भी रहते हैं ॥ ॥ ४ ॥ इसी देवने पूर्वकालमें अपने शरीरसे पहले ब्रह्मां और विष्णुको उत्पन्न किया, वही प्रभु इन दोनोंका मंगल विधान करते हैं ॥ ५ ॥

फिर वह आदि देव पुरातन रुद्र भगवान् अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्माजीके पुत्र किस प्रकारसे हुए ॥६॥ प्रजापति और विष्णु यह दोनों रुद्रके अंगसे उत्पन्न हुएहैं
ऐसा पहले हमने सुनाहै ॥७॥ फिर किस प्रकारसे सम्पूर्ण गुण पदार्थोंके पंचमहाभूतोंके प्रादुर्भूत परस्परभावसे उत्पन्न हुएहैं ॥८॥ ऐसी कोई वार्ता नहीं जो
आपने न पूँछी हो ऐसी वह बात नहीं जो आपने न सुनी हो; भगवान्के शिष्य होकर आपने सब बात सुनीहै ॥९॥ जिस प्रकार भगवान् ब्रह्माने तुम्हारे प्रति
कहा है सो तुम हमसे सब कहो हे मारुत ! यथायोग्य आप हमसे सब वृत्तान्त कहिये हम श्रद्धालु हैं और ईश्वरका यश सुनना चाहते हैं ॥ १० ॥

स कथं भगवान् रुद्र आदिदेवः पुरातनः ॥ पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्च विष्णुश्च रुद्रस्यैतौ परस्परम् ॥
सृष्टौ परस्परस्यांगादिति प्रागपि शुश्रुम ॥ ७ ॥ कथं पुनरशेषाणां भूतानां हेतुभूतयोः ॥ गुणप्रधानभावेन प्रादुर्भावः परस्परात् ॥८॥
नापृष्टं भवता किंचिन्नाश्रुतं च कथंचन ॥ भगवच्छिष्यभूतने भवता सकलं स्मृतम् ॥ ९ ॥ तत्त्वं वद यथा ब्रह्मा मुनीनामवदद्विभुः॥
वयं श्रद्धालवस्तात श्रोतुमीश्वरसद्यशः ॥ १० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ स्थाने पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिः प्रश्नकोविदैः ॥ इदमेव पुरा पृष्टो मम
प्राह पितामहः ॥ ११ ॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा रुद्रसमुद्भवः ॥ यथा च पुनरुत्पत्तिर्ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम् ॥ १२ ॥ त्रयस्ते कारणा
त्मानो जातास्साक्षान्महेश्वरात् ॥ चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यंतहेतवः ॥ १३ ॥ परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः ॥ तच्छक्त्या
धिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः ॥ १४ ॥ पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोपि त्रिषु कर्मसु ॥ ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा ॥
॥ १५ ॥ तथाप्यन्योन्यमात्सर्यादन्योन्यातिशयाशिनः ॥ तपसा तोषयित्वा स्वं पितरं परमेश्वरम् ॥ १६ ॥

वायु बोले, हे ब्राह्मणो ! आप पंडित हो. तुमने भली बात पूँछी, यही वार्ता पहले मैने पितामहसे पूँछी थी ॥ ११ ॥ सो मैं तुमसे रुद्रकी उत्पत्ति कहूँगा;
और जिस प्रकार ब्रह्मा विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति हुई है ॥१२॥ यह तीनों कारणात्मा साक्षात् महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं यही चराचर विश्वकी उत्पत्ति पालन
प्रलयके कारण हैं ॥ १३ ॥ परम ऐश्वर्यसे संयुक्त परमेश्वरसे भावित परमेश्वरकी शक्तिसे नित्य अधिष्ठित उस कार्य करनेमें समर्थ हैं ॥ १४ ॥ परमेश्वरने
इन तीनोंको तीन कर्मोंमें नियुक्त किया है; उत्पत्ति करनेमें ब्रह्मा, रक्षा करनेमें भगवान् विष्णु, संहार करनेमें रुद्र हैं ॥ १५ ॥ तथापि अन्योन्य अतिशय

पराक्रमी होनेसे एक दूसरेका उत्कर्ष नहीं सहते हैं, तपसे अपने पिता परमेश्वरको संतुष्ट करके ॥ १६ ॥ उस परमेश्वरकी प्रसन्नतासे सर्वज्ञताको प्राप्त होकर ब्रह्मा और नारायणको पूर्वं कल्पान्तरमें रुद्रने प्रगट किया ॥ १७ ॥ दूसरे कल्पमें ब्रह्माने रुद्र और विष्णुको उत्पन्न किया, एक कल्पमें विष्णुने रुद्र और ब्रह्माको उत्पन्न किया है ॥ १८ ॥ नारायणको ब्रह्मा ब्रह्माको शिव इस प्रकार कल्प कल्पमें ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ १९ ॥ परस्पर हित करनेवालेकी इच्छासे उत्पन्न होते हैं, उन्हीं कल्पान्तरोंके वृत्तान्तको लेकर महर्षियोंने ॥ २० ॥ उनके परस्पर उत्पन्न होनेका प्रभाव वर्णन किया है, आप इस पापकी

लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत् ॥ १७॥ कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः ॥ विष्णुश्च भगवान्रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः ॥ १८ ॥ नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणमसृजत्पुनः ॥ एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९॥ परस्परेण जायंते परस्परहितैषिणः ॥ तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः ॥ २० ॥ प्रभावः कथ्यते तेषां परस्परसमुद्भवात् ॥ शृणु तेषां कथां चित्रां पुण्यां पापप्रमोचिनीम् ॥ २१ ॥ कल्पे तत्पुरुषे वृत्तां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ पुरा नारायणो नाम कल्पे वै मेघवाहने ॥ २२ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धराम् ॥ तस्य भावं समालक्ष्य विष्णोर्विश्वजगद्गुरुः ॥ २३ ॥ सर्वस्सर्वात्मभावेन प्रददौ शक्तिमव्ययाम् ॥ शक्तिं लब्ध्वा तु सर्वात्मा शिवात्सर्वेश्वरात्तदा ॥ २४ ॥ ससर्ज भगवान् विष्णुर्विश्वं विश्वसृजा सह ॥ विष्णोस्तद्वैभवं दृष्ट्वा सृष्टस्तेन पितामहः ॥ २५ ॥ ईर्ष्यया परया ग्रस्तः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ गच्छ विष्णो मया ज्ञातं तव सर्गस्य कारणम् ॥ आवयोरधिकश्चास्ति स रुद्रो नात्र संशयः ॥ २६ ॥

नाश करनेहारी कथाको श्रवण कीजिये ॥ २१ ॥ जो तत्पुरुष कल्पमें हुए ब्रह्माजीकी नारायणसे वार्ता हुई है पहले मेघवाहन कल्पमें नारायण ॥ २२ ॥ दिव्य सहस्रवर्ष मेघरूप होकर शिवको धारण करते हुए; जगत्के गुरुने उन विष्णु भगवान्की अत्यन्त भक्ति देखकर ॥ २३ ॥ सब प्रकारसे उनको नाशरहित सामर्थ्य दी इस प्रकार यह सर्वेश्वर शिवसे वह शक्तिको प्राप्त होकर ॥ २४ ॥ ब्रह्माके सहित भगवान् विष्णु जगत्की रचना करनेलगे, ब्रह्माने यह विष्णुका ऐश्वर्य देख कर ॥ २५ ॥ ईर्षापरवश हो विष्णु भगवान्से यह वचन कहे हे विष्णु ! जाओ हमने आपकी सृष्टिका कारण जानलिया, इसमें सन्देह नहीं

भगवान् रुद्र तुमसे अधिक बली हैं ॥ २६ ॥ उसी देवादिदेव परमात्माकी सामर्थ्यसे तुम जगत्के उत्पन्न और पालन करनेहारे परमार्थसे हो ॥ २७ ॥ मैं त्रिदश देवनायक रुद्रको तपसे आराधन कर तुम्हारे सहित सब जगत्की रचना करूँगा इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी विष्णुके प्रति भर्त्सनाके वचन कह और समझाकर तपसे शिवजीके निकट प्राप्त हो बोले ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! देवताओंके ईश्वर ! विश्वेश्वर ! महेश्वर ! तुम्हारे बाँये अंगसे विष्णु और दक्षिणांगसे मैं उत्पन्न हुआ हूं ॥३०॥ मेरे साथ भगवान् विष्णुने जगत उत्पन्न कियाहै परन्तु तुम्हारे बलके आश्रय हो मेरा तिरस्कार

तस्य देवाधिदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ स्रष्टा त्वं भगवानाद्यः पालकः परमार्थतः ॥ २७ ॥ अहं च तपसाराध्य रुद्रं त्रिदशनायकम् ॥ त्वया सह जगत्सर्वं स्रक्ष्याम्यत्र न संशयः ॥ २८ ॥ एवं विष्णुमुपालभ्य भगवानब्जसम्भवः ॥ एवं विज्ञापयामास तपसा प्राप्य शंकरम् ॥ २९ ॥ भगवन् देवदेवेश विश्वेश्वर महेश्वर ॥ तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम् ॥ ३० ॥ मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः ॥ स मत्सरादुपालब्धस्त्वदाश्रयबलान्मया ॥३१ ॥ मद्भावान्नाधिकस्तेति भावस्त्वयि महेश्वरे ॥ त्वत्त एव समुत्पत्तिरावयोस्सदृशी यतः ॥ ३२ ॥ तस्य भक्त्या यथापूर्वं प्रसादं कृतवानसि ॥ तथा ममापि तत्सर्वं दातुमर्हसि शंकर ॥ ३३ ॥ इति विज्ञापितस्तेन भगवान् भगनेत्रहा ॥ न्यायेन वै ददौ सर्वं तस्यापि स घृणानिधिः ॥ ३४ ॥ लब्ध्वैवमीश्वरादेव ब्रह्मा सर्वात्मतां क्षणात् ॥ त्वरमाणोथ संगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम् ॥ ३५ ॥ क्षीरार्णवालये शुभ्रे विमाने सूर्यसंनिभे ॥ हेमरत्नान्विते दिव्ये मनसा तेन निर्मिते ॥ ३६ ॥

करते हैं ॥ ३१ ॥ हे महेश्वर ! क्या उनकी भक्ति तुम्हारे ऊपर मुझसे अधिक है, हम दोनोंकी आपसे तुल्य उत्पत्ति है ॥ ३२ ॥ विष्णुकी भक्तिसे जैसे आपने पूर्वमें प्रसन्नता की है उसी प्रकार हे महेश्वर ! मुझे भी वह सब सामर्थ्य दीजिये ॥३३॥ जब इसप्रकार भगदेवताके नेत्र हरनेहारे भगवान्की प्रार्थना करी, तब कृपानिधि शिवने हँसकर ब्रह्माको भी यह सब सामर्थ्य दी ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्माजी शिवसे क्षणमात्रमें सर्वात्मताको प्राप्त होकर बहुत शीघ्रतासे विष्णुजीके समीप गये ॥ ३५ ॥ जहां सुन्दर क्षीरसागरमें सुन्दर सूर्यके समान विमान जिसमें सुवर्ण और रत्न जडे मनसे ही निर्मित ॥३६॥

विष्णुके ही बनाए हुएमें अनंत नागकी शय्यापर शयन करतेहुए, कमललोचन, चार भुजा, उदार अंग, सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित ॥ ३७ ॥ शंख चक्र गदा धारे, सौम्य चन्द्रमाके बिंबके समान मुखवाले, छाती श्रीवत्ससे शोभित, प्रसन्न मुख, मधुर हास्य ॥ ३८ ॥ स्त्रीरूपधारी पृथ्वीसे जिनके रक्तचरण कमल स्पर्शित हैं क्षीरसागरमें अमृतके समान योगनिद्रामें शयन करतेहुए ॥ ३९ ॥ तमोगुण होनेसे कालरुद्र, रजसे व्याप्त होनेसे सुवर्णके अंडसे सम्भूत हिरण्यगर्भ, सत्त्वगुण होनेसे सब स्थानमें व्यापक विष्णु, निर्गुणरूपसे महेश्वर ॥ ४० ॥ परमपुरुषको देखकर बडी चपलतासे ब्रह्माजी कहने लगे, हे विष्णो !

अनंतभोगशय्यायां शयानं पंकजेक्षणम् ॥ चतुर्भुजमुदारांगं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ३७ ॥ शंखचक्रधरं सौम्यं चंद्रबिंबसमाननम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं देवं प्रसन्नमधुरस्मितम् ॥ ३८ ॥ धरामृदुकरांभोजस्पर्शरक्तपदांबुजम् ॥ क्षीरार्णवामृतमिव शयानं योगनिद्रया ॥ ३९ ॥ तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम् ॥ सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम् ॥ ४० ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा प्रगल्भमिदमब्रवीत् ॥ ग्रसामि त्वामहं विष्णो त्वमात्मानं यथा पुरा ॥ ४१ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिबुद्ध्य पितामहम् ॥ उदैक्षत महाबाहुस्स्मितमीषच्चकार च ॥ ४२ ॥ तस्मिन्नवसरे विष्णुर्ग्रस्तस्तेन महात्मना ॥ सृष्टश्च ब्रह्मणा सद्यो भ्रुवोर्मध्यादयत्नतः ॥ ४३ ॥ तस्मिन्नवसरे साक्षाद्भगवानिन्दुभूषणः ॥ शक्तिं तयोरपि द्रष्टुमरूपो रूपमास्थितः ॥ ४४ ॥ प्रसादमतुलं कर्तुं पुरा दत्तवरस्तयोः ॥ आगच्छत्तत्र यत्रेमौ ब्रह्मनारायणौ स्थितौ ॥ ४५ ॥ अथ तुष्टुवतुर्देवं प्रीतौ भीतौ च कौतुकात् ॥ प्रणेमतुश्च बहुशो बहुमानेन दूरतः ॥ ४६ ॥

जिस प्रकार पूर्वमें तुमने मुझे ग्रस लिया था इसी प्रकार मैं तुमको ग्रसता हूँ ॥ ४१ ॥ ब्रह्माके यह वचन सुन विष्णु भगवान् जागकर ब्रह्माको देखने लगे और वे महाबाहु कुछ हँसे भी ॥ ४२ ॥ उसी अवसरमें ब्रह्माजीने विष्णुको ग्रस लिया, तब वह तत्काल ब्रह्माके भौंके बीचसे विनाही यत्नके प्रगट होगये ॥ ४३ ॥ उसी अवसरमें चंद्रमौलि भगवान् उन दोनोंकी शक्ति देखनेको रूपहीन होकर भी रूपमें स्थित हुए ॥ ४४ ॥ और पूर्वकालमें वर पायेहुए उन दोनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छा की जहां यह दोनों स्थित थे वहीं शिव गये ॥ ४५ ॥ तब इस कौतुकसे प्रसन्न और भयको प्राप्त हो ब्रह्मा और नारायण

शिवकी स्तुति करने लगे और दूरसे बडे मानसे उनको प्रणाम करने लगे ॥ ४६ ॥ और भगवान् पिनाकधारी शिवजी इन दोनोंपर अनुग्रह कर उनको आदरसे देखतेहुए वहांही अन्तर्द्धान होगये ॥ ४७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे शेषशायिनारायणवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वायु बोले, प्रत्येक कल्पमें रुद्रके आविर्भावका कारण कहता हूं जिससे सन्तान विच्छिन्न होनेसे भी ब्रह्माकी सृष्टि प्रवृत्त होती है॥ १॥ ब्रह्माण्डसे उत्पन्नहुए ब्रह्माजीने कल्प २ में प्रजाकी रचना करके जब देखा कि प्राणी नहीं बढते तब मोहितहो दुःखी हुए ॥२॥ उसके दुःखकी शान्ति

भवोपि भगवानेतावनुगृह्य पिनाकधृक् ॥ सादरं पश्यतोरेव तयोरंतरधीयत ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुरणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखंडे ब्रह्मविष्णुसृष्टिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रतिकल्पं प्रवक्ष्यामि रुद्राविर्भावकारणम् ॥ यतो विच्छिन्नसंतानाब्रह्मसृष्टिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ कल्पेकल्पे प्रजाः सृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्मांडसंभवः ॥ अवृद्धिहेतोर्भूतानां मुमोह भृशदुःखितः ॥ २ ॥ तस्य दुःखप्रशांत्यर्थं प्रजानां च विवृद्धये ॥ तत्तत्कल्पेषु कालात्मा रुद्रो रुद्रगणाधिपः ॥ ३ ॥ निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः ॥ पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोनुजः ॥४॥ स एव भगवानीशस्तेजोराशिरनामयः ॥ अनादिनिधनो धाता भूतसंकोचको विभुः ॥ ५ ॥ परमैश्वर्यसंयुक्तः परमेश्वरभावितः ॥ तच्छक्त्याधिष्ठितश्शश्वत्तच्चिह्नैरपि चिह्नितः ॥ ६ ॥ तन्नामनामा तद्रूपस्तत्कार्यकरणक्षमः ॥ तत्तुल्यव्यवहारश्च तदाज्ञापरिपालकः ॥ ७ ॥ सहस्रादित्यसंकाशश्चन्द्रावयवभूषणः ॥ भुजंगहारकेयूरवलयो मुंजमेखलः ॥ ८ ॥

और प्रजावृद्धिके निमित्त उस २ कल्पमें कालात्मा रुद्रगणाधिप ॥ ३ ॥ परमेश्वरसे प्रेरित हो भगवान् नीललोहित पुत्ररूप होकर ब्रह्मापर ब्रह्मानुज हो अनुग्रह करतेहैं ॥ ४ ॥ वही भगवान् ईश्वर तेजकी राशि निरामयहैं, अनादिनिधन सबके निर्माण करनेहारे जगत्के संकोच करनेहारे सर्वव्यापक ॥ ५ ॥ परम ऐश्वर्यसे संयुक्त परमेश्वरसे भावित अर्थात् प्रेरित होकर शिवभक्ती और उनके चिन्होंसे चिह्नित ॥ ६ ॥ उसीके नामपर नामवाले उसीके रूप उसीके कार्य करनेमें समर्थ उन्हींके तुल्य व्यवहार और उन्हींकी आज्ञाके पालन करनेहारे ॥ ७ ॥ सहस्र सूर्यके समान चन्द्रमाके खंडके भूषण धारण करनेहारे

सर्पोंके हार बाजूबद कंगन और मुंजमेखलायुक्त ॥८॥ जलन्धरनामक देवता विरंच इन्द्र इनके कपालके खण्डसे उज्ज्वल गंगाकी ऊंची तरंगोंसे गीले पिंगल मुख और केश ॥ ९ ॥ भग्न हुए डाढरूपी अंकुरोंसे प्रान्तभागको आक्रमण किये जिनका रमणीय कैलासपर्वत है; दक्षिण काननके पार्श्वान्तमें मण्डलाकार कुण्डल शोभितहैं ॥ १० ॥ महावृषभ जिनकी सवारी है, महामेघके समान गम्भीर शब्द महाअग्निके समान तेज महाबली और पराक्रमी ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे घोरमहारूप धारण किये वह ब्रह्माके पुत्र महेश्वर ब्रह्माको ज्ञान देकर उनके साथ सृष्टि करतेहैं ॥ १२ ॥ इस कारण रुद्रकी प्रसन्नतासे प्रत्येक

जलंधरविरिंचेन्द्रकपालशकलोज्ज्वलः ॥ गङ्गातुंगतरंगार्द्रपिंगलाननमूर्द्धजः ॥ ९ ॥ भग्नदंष्ट्रांकुराक्रान्तप्रान्तकान्तधराधरः ॥ सव्य श्रवणपार्श्वांतमंडलीकृतकुण्डलः ॥ १० ॥ महावृषभनिर्याणो महाजलदनिःस्वनः ॥ महानलसमप्रख्यो महाबलपराक्रमः ॥ ११ ॥ एवं घोरमहारूपो ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः ॥ विज्ञानं ब्रह्मणे दत्त्वा सर्गे सहकरोति च ॥ १२ ॥ तस्माद्रुद्रप्रसादेन प्रतिकल्पं प्रजापतेः ॥ प्रवाहरूपतो नित्या प्रजासृष्टिः प्रवर्तते ॥ १३ ॥ कदाचित्प्रार्थितः स्रष्टुं ब्रह्मणा नीललोहितः ॥ स्वात्मना सदृशान् सर्वान् ससर्ज मनसा विभुः ॥ १४ ॥ कपर्दिनो निरातंकान्नीलग्रीवाँस्त्रिलोचनान् ॥ जरामरणनिर्मुक्तान् दीप्तशूलवरायुधान् ॥ १५ ॥ तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत् ॥ तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान् रुद्रमाह पितामहः ॥ १६ ॥ नमस्ते देवदेवेश मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ॥ अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा मृत्युसमन्विताः ॥ १७ ॥ इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं परमेश्वरः ॥ नास्ति मे तादृशस्सर्गस्सृज त्वमशुभाः प्रजाः ॥ १८ ॥

कल्पमें प्रजापतिके प्रवाहरूपसे नित्यप्रति सृष्टिकी प्रवृत्ति होती है ॥ १३ ॥ किसी समय प्रजा रचनेके निमित्त ब्रह्माजीने शिवजीकी प्रार्थना की, तब प्रभुने अपनी आत्माके समान उन सबकी रचना की ॥ १४ ॥ जटाजूटधारी निर्भय नीललोहित त्रिलोचन जरामरणरहित दीप्तिमान् त्रिशूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये रुद्र प्रगट किये ॥ १५ ॥ उन्होंने चौदह भुवनोंको आच्छादित करदिया, इस प्रकारसे रुद्रोंको देखकर उनसे ब्रह्माजी बोले ॥ १६ ॥ हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है. आप ऐसी प्रजाकी रचना मत कीजिये आपका मंगल हो; आप मरण धर्मयुक्त दूसरी प्रजा निर्माण कीजिये ॥ १७ ॥ यह सुनकर परमेश्वर

हँसतेहुए ब्रह्मासे बोलें; मेरी ऐसी प्रजा नहीं होसकती, ऐसी प्रजाकी रचना तुम करो ॥ १८ ॥ जो महात्मा महाबली हमने मनसे रचे हैं यह सब सृष्टि मेरे साथ यज्ञमें विचरण करेगी ॥ १९ ॥ इस प्रकार संसारके भूतेश्वर शिवजी ब्रह्माके प्रति वचन कहकर रुद्रोंके साथ प्रजा रचनेकी इच्छासे निवृत्त हुए ॥ २० ॥ उस दिनसे देवादिदेवने जरा मरणहीन प्रजाकी आप रचना न की और जबतक प्रलय हो तबतक आप अचल ठूँठके समान ऊर्ध्ववीर्य होकर स्थित हुए ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे रुद्रोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वायु बोले, जब फिर भी प्रजा रचनेसे न बढी तब ब्रह्माने

ये त्विमे मनसा सृष्टा महात्मानो महाबलाः ॥ चरिष्यंति मया सार्द्धं सर्व एव हि याज्ञिकाः ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा विश्वकर्माणं विश्वभूतेश्वरो हरः ॥ सह रुद्रैः प्रजासर्गान्निवृत्तात्मा व्यतिष्ठत ॥ २० ॥ ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते प्रजाः शुभाः ॥ उर्द्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे रुद्राविर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वायुरुवाच ॥ यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त वेधसः ॥ तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ १ ॥ न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात् ॥ तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः ॥ २ ॥ ततस्स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥ प्रजानामेव वृध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वरः ॥ ३ ॥ प्रसादेन विना तस्य न वर्द्धेरन्निमाः प्रजाः ॥ एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥ तदाद्या परमा शक्तिरनंता लोकभाविनी ॥ आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५ ॥ निर्गुणा निष्प्रपंचा च निष्कला निरुपप्लवा ॥ निरंतरतरा नित्या नित्यमीश्वरपार्श्वगा ॥ ६ ॥

मैथुनीसृष्टि बनानेकी इच्छा की ॥ १ ॥ पूर्वकालमें ईश्वरसे स्त्रियोंका कुल प्रगट नहीं हुआ था इस कारण ब्रह्माने भी मैथुनीसृष्टि न की थी ॥ २ ॥ जब ब्रह्माने स्त्री पुरुष संयोगरूप मैथुनीसृष्टि रचना की, और विचारा कि प्रजावृद्धिके निमित्त परमेश्वरसे पूछना चाहिये ॥ ३ ॥ उनकी प्रसन्नताके विना यह प्रजा न बढैगी, यह विचार ब्रह्माने तप करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥ तब आद्या परमाशक्ति अनंत लोकोंकी करनेहारी सूक्ष्मतर शुद्धभावगम्य मनोहर ॥ ५ ॥ निर्गुण प्रपंचरहित निष्कल उपद्रवरहित निरंतर दिव्य और सदा ईश्वरके समीप रहनेवाली जो शक्ति उसे युक्त है ॥ ६ ॥

उस परम शक्तियुक्त भगवान् त्रिलोचनदेवको मनमें विचारकर ब्रह्माजी महातप करने लगे ॥७॥ जब ब्रह्माजीने महाकठिन तप किया तब थोडेही समयमें शिवजी संतुष्ट होगये ॥८॥ तब किसी एक अपने अंशसे कल्पितमूर्त्तिमें प्रवेश कर अर्ध नारी आधे पुरुष होकर ब्रह्माके निकट आये ॥९॥ उन परमदेव अंधकारसे परे अविनाशी अद्वितीय जो कहनेमें न आवै अनिर्देश्य और अज्ञानियोंके दर्शनमें न आनेवाले ॥१०॥ सबलोकके विधाता सब लोकके ईश्वर सब लोककी बनानेहारी परमशक्तिसे युक्त ॥११॥ तर्क और आभासज्ञानरहित पराक्रमसे अतुलनीय अजर स्थाणु निर्गुण शान्त महामहिमाके स्थान ॥१२॥

तया परमया शक्त्या भगवंतं त्रियम्बकम् ॥ संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ ७ ॥ तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः॥ अचिरेणैव कालेन पिता संप्रतुतोष ह ॥ ८ ॥ ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि ॥ अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम् ॥ अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः ॥ १० ॥ सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ॥ सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥ ११ ॥ अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम् ॥ अचलं निर्गुणं शांतमनंतमहिमास्पदम् ॥ १२ ॥ सर्वगं सर्वदं सर्वसदसव्द्यक्तिवर्जितम् ॥ सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥ १३ ॥ प्रणम्य दंडवद्ब्रह्मा समुत्थाय कृतांजलिः ॥ श्रद्धाविनयसंपन्नैः श्राव्यैः संस्कारसंयुतैः ॥ १४ ॥ यथार्थयुक्तसर्वार्थैर्वेदार्थपरिबृंहितैः ॥ तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर ॥ जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप ॥ १६ ॥ जय प्रकृति कल्याणि जय प्रकृतिनायिके ॥ जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि ॥ १७ ॥

सब कुछ देनेहारे सबके जानेहारे व्याप्त सत् असत् व्यक्तिसे रहित सम्पूर्ण अपमानसे रहित शरणदाता निरन्तर कल्याणस्वरूपको ॥१३॥ देखतेही ब्रह्माजी खडे हुए; और हाथ जोडकर श्रद्धाविनयसे सम्पन्न सुनने योग्य संस्कारयुक्त ॥ १४ ॥ तथा यथार्थतासे जिसमें वेदार्थ भरा है, इस प्रकार सूक्ष्मअर्थोंके भरे स्तोत्रोंसे शिव पार्वतीको सन्तुष्ट करने लगे ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले, देव महादेव जयेश्वर महेश्वर आपकी जय हो सब गुणोंमें श्रेष्ठ सब देवताओंके अधिपति आपकी जय हो ॥ १६ ॥ हे कल्याणी प्रकृति ! आपकी जय हो, प्रकृतिनायक ! आपकी जय हो, प्रकृतिसे दूर अंगवाली स्वभावसे सुन्दरीकी

जय हो ॥ १७ ॥ अमोघमहामाय अमोघमनोरथ अमोघमहालील अमोघमहाबलिष्ठकी जय हो ॥ १८ ॥ विश्व और जगन्माताकी जय हो, विश्व जगन्मयरूपके निमित्त नमस्कार, संसार और भुवनोंकी माता विश्व और जगत्‌की सखी ॥ १९ ॥ निरन्तर ऐश्वर्यसे पूर्ण निरन्तरकाभी लय करनेहारी शांताकार और सदा एकमात्र शाश्वतके अनुगमन करनेवाली ॥ २० ॥ तीन आत्मा ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनकी रचनेहारी ब्रह्मादि देवताओंको पालनेहारी और उन्हीं तीनों आत्माओंकी संहार करनेहारी तीनों आत्माओंकी स्वामिनीकी जय हो ॥ २१ ॥ जिसके अवलोकनमात्रसेही जगत्‌के कारण अव्यक्त

जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ ॥ जयामोघमहालील जयामोघमहाबल ॥ १८ ॥ जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मये ॥ जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि ॥ १९ ॥ जय शाश्वतिकैश्वर्ये जय शाश्वतिकालय ॥ जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतिकानुग ॥ २० ॥ जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि ॥ जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके ॥ २१ ॥ जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण ॥ जयोपेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक ॥ २२ ॥ जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्वले ॥ जय स्थूलात्मशक्त्येशे जय व्याप्तचराचरे ॥ २३ ॥ जय नानैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय ॥ जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठानुगकदंबक ॥ २४ ॥ जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि ॥ जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमे ॥ २५ ॥ जय प्रादेशिकैश्वर्यवीर्यशौर्यविजृंभण ॥ जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव ॥ २६ ॥

आदि प्रगट होगये; निग्रहसे युक्त कटाक्षसे उठीहुई अग्निसे जिसने भौतिक तत्त्वको भस्म कर दिया उसकी जय हो ॥ २२ ॥ जिसको देवतादिक भी नहीं जानते, आत्माके दर्शनमें जिसके नेत्र उज्ज्वल हैं स्थूलात्मा शक्तिके अंशसे चराचर विश्वमें व्याप्त आपकी जय हो ॥ २३ ॥ अनेक प्रकार और एक प्रकारसे भी जिन्होंने संसारके तत्त्वको जयकर रक्खा है, उनकी जय हो; जिनके दोनों चरण राक्षसोंके शिरोंपर धरे गयेहैं ॥ २४ ॥ उपासना करनेवालोंकी रक्षा करनेमें चतुरकी जय हो, आप संसाररूपी वृक्षको अंकुरित होतेही नाश करते हो आपकी जय हो ॥ २५ ॥ ऐश्वर्य और शूरतायुक्तोंके मदके नाशकर्ता

आपकी जय हो; विश्वसे बहिर्भूत अर्थात् पृथक् और दूसरेके ऐश्वर्यसे हीन आपकी जय हो ॥ २६ ॥ उत्पन्न कियेहुए पंचमहाभूतोंके प्रयोग अर्थात् स्थापनमें परब्रह्मस्वरूप और पंचमहाभूतके ज्ञानरूपी अमृतस्रोत बहानेवाली आपकी जय हो ॥ २७ ॥ अतिघोर संसाररूपी महाज्वररोगके औषधीस्वरूप वैद्यराज आपकी जय हो, अनादि कालके अज्ञान मल और अन्धकारके नाश करनेको चांदनीरूपी तुम्हारी जय हो ॥ २८ ॥ त्रिपुरको कालाग्निस्वरूपकी जय हो हे त्रिपुरभैरवी ! तुम्हारी जय हो तीनों गुणोंसे पृथक् और तीनों गुणोंके दूर करनेवाली आपकी जय हो ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण शत्रुओंके नाशक सर्वज्ञ

जय प्रणीतपंचार्थप्रयोगपरमामृत ॥ जय पंचार्थविज्ञानसुधास्तोत्रस्वरूपिणि ॥२७॥ जयातिघोरसंसारमहारोगभिषग्वर ॥ जयानादि मलाज्ञानतमःपटलचंद्रिके ॥२८॥ जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि ॥ जय त्रिगुणनिर्मुक्ते जय त्रिगुणमर्दिनि ॥२९॥ जय प्रथम सर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिक ॥ जय प्रचुरदिव्यांग जय प्रार्थितदायिनि ॥ ३० ॥ क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं च नो वचः ॥ तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपंतं क्षमस्व माम् ॥ ३१ ॥ विज्ञाप्यैवंविधैः सूक्तैर्विश्वकर्मा चतुर्मुखः ॥ नमश्चकार रुद्राय रुद्राण्यै च मुहुर्मुहुः ॥ ॥ ३२ ॥ इदं स्तोत्रवरं पुण्यं ब्रह्मणा समुदीरितम् ॥ अर्द्धनारीश्वरं नाम शिवयोर्हर्षवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥ य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या यस्य कस्यापि शिक्षया ॥ स तत्फलमवाप्नोति शिवयोः प्रीतिकारणात् ॥ ३४ ॥

सबको बोधिकाकी जय हो दिव्यज्ञानसे युक्त आपकी जय हो; मनोवांछादि अर्थ देनेवाली भगवतीकी जय हो ॥ ३० ॥ हे देव ! कहां तो आपका परम धाम कहां हम और कहां हमारे वचनहैं; तो भी शक्तिसे वचन उच्चारण करनेवाले मुझे आप क्षमा कीजिये ॥ ३१ ॥ विश्वकर्मा चतुर्मुख इस प्रकार श्रेष्ठ सूक्तोंसे भगवान्की स्तुति कर रुद्र और रुद्राणीको बारंबार नमस्कार करनेलगे ॥ ३२ ॥ यह सुन्दर स्तोत्र ब्रह्माजीका कहाहुआ है, यह अर्धनारीश्वर स्तोत्र इसमें आधी रुद्राणीकी स्तुति है; आधी शिवकी है यह शिवका आनन्द बढानेहारा है ॥ ३३ ॥ जो किसी मनोरथकी इच्छासे इस स्तोत्रको कीर्तन

करता है वह शिवा शिवकी प्रसन्नतासे उस फलको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण भुवन और प्राणियोंके उत्पन्न करनेहारे जन्म विनाशहीन शरीरवाले श्रेष्ठ नर और युवतीके शरीर धारण करनेवाले शिव पार्वतीको प्रणाम करता हूँ ॥ ३५॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा०सं० पूर्वखण्डे रुद्रब्रह्मसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वायु बोले, तब महादेव महामेघके शब्दके समान मधुर गम्भीर तथा मनोहर वाणीसे बोले ॥ १ ॥ जिस वाणीके यह अर्थ सम्पन्न थे, जो राजलक्षणसे युक्त थी, सम्पूर्ण विषयोंके आरम्भके रक्षा करने तथा निर्मल करनेमें चतुर थी ॥ २ ॥ उस अत्यन्त मनोहर उदार

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम् ॥ नरवरयुवतीवपुर्द्धराभ्यां सततमहं प्रणतोऽस्मि शंकराभ्याम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पू० शिवशिवास्तुतिवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वायुरुवाच ॥ अथ देवो महादेवो महाजलदनादया ॥ वाचा मधुरगंभीरशिवदश्लक्ष्णवर्णया ॥ १ ॥ अर्थसंपन्नपदया राजलक्षणयुक्तया ॥ अशेषविषयारंभरक्षाविमलदक्षया ॥२॥ मनोहरतरोदारमधुरस्मितपूर्वया ॥ संबभाषे सुसंपीतो विश्वकर्माणमीश्वरः ॥३॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वत्सवत्स महाभाग मम पुत्र पितामह ॥ ज्ञातमेव मया सर्वं तव वाक्यस्य गौरवम् ॥ ४ ॥ प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना ॥ तपसाऽनेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः ॥ ससर्ज वपुषो भागाद्देवीं देववरो हरः ॥ ६ ॥ यामाहुर्ब्रह्मविद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम् ॥ परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥ यस्यां न खलु विद्यंते जन्ममृत्युजरादयः ॥ या भवानी भवस्यांगात्समाविरभवत्किल ॥ ८ ॥

हास्यपूर्वक वाणीसे प्रसन्न हो वह ईश्वर ब्रह्माजीसे बोले ॥ ३ ॥ ईश्वर बोले, हे वत्स ! हे महाभाग ! मेरे पुत्र ब्रह्माजी, तुम्हारे वाक्यका भेद मैंने सब जान लिया ॥ ४ ॥ प्रजाओंकी वृद्धिके निमित्त तुमने महातप किया है, इससे तपसे मैं प्रसन्न होकर तुमको यह वर देता हूं ॥ ५ ॥ इस प्रकारके वचन कह वह परमोदार स्वभावसेही वह मधुर वचन बोलनेवाले अपने शरीरसे देवी देवकी रचना करने लगे ॥ ६ ॥ विद्वान् जिसको ब्रह्म कहतेहैं वह देवी दिव्य गुणोंसे युक्त है, वह परमात्मा भव शिवकी परमशक्ति है॥ ७॥ जिसको जन्म मृत्यु और जरादिक कुछ नहीं है जो भवानी शिवके अंगसे प्रगट हुई है॥ ८॥

जिसके निकट जाकर इन्द्रिय मन वाणी सहित निवृत्त होजाती है, वह अपने स्वामीके शरीरसे प्रगट हुईसी दीखती है ॥ ९ ॥ जो यह सब जगत्को अपनी महिमासे व्याप्त करके स्थित होती है शरीरियोंके समान वह देवी विचित्र रूपयुक्त है ॥ १० ॥ यह सम्पूर्ण जगत् अपनी मायासे मोहित करती है वह परमार्थसे उत्पन्न न होकर भी ईश्वरसे प्रगट हुई है ॥ ११ ॥ जिसके परमभावको देवता भी नहीं जानते वह जगत्के स्वामी देवताके अंगसे विभक्त हुई है ॥१२॥ इस परमेश्वरी सर्वलोकेश्वरी सर्वज्ञोंमें प्राप्त सूक्ष्म सत् असत् व्यक्तिसे हीनको देखकर ॥१३॥ अपनी इस कान्तिसे जगत्को प्रकाश करतीहुई दीखी तब महादेवीको प्रणाम करके विराट्ने प्रार्थना की ॥ १४ ॥ ब्रह्मा बोले, हे देवि ! मैं सृष्टिके प्रथम उस देवसे उत्पन्न कियागया हूं हे सर्व जगन्मयि ! मैं प्रजासृष्टिमें नियुक्त होकर सब जगत्की रचना करता हूँ ॥ १५ ॥ हे देवी ! यह सब देवता मैंने मनसे निर्माण किये हैं परन्तु बारंबार बन करके फिर वृद्धिको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ १६ ॥ इस कारण अब मैं मैथुनीसृष्टि करनेकी इच्छा करता हूँ मुझे इस प्रकारसे अपनी प्रजाके बढानेकी इच्छा है ॥ १७ ॥ प्रथम तुमसे स्त्रियोंका कुल प्रगट नहीं हुआ है इस कारण नारीकुल उत्पन्न करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ॥ १८ ॥

यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेंद्रियैः सह ॥ सा भर्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत ॥ ९ ॥ या सा जगदिदं कृत्स्नं महिम्ना व्याप्य
तिष्ठति ॥ शरीरिणीव सा देवी विचित्रं समलक्ष्यत ॥ १० ॥ सर्वं जगदिदं चैषा संमोहयति मायया ॥ ईश्वरात्सैव जाताभूदजाता
परमार्थतः ॥ ११ ॥ न यस्या परमो भावः सुराणामपि गोचरः ॥ विश्वामरेश्वरी चैव विभक्ता भर्तुरंगतः ॥ १२ ॥ तां दृष्ट्वा परमेशानीं
सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥ सर्वज्ञां सर्वगां सूक्ष्मां सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ॥ १३ ॥ परमां निखिलं भासा भासयन्तीमिदं जगत् ॥ प्रणिपत्य
महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् ॥ १४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवि देवेन सृष्टोऽहमादौ सर्वजगन्मयि ॥ प्रजासर्गे नियुक्तश्च सृजामि
सकलं जगत् ॥ १५ ॥ मनसा निर्मिताः सर्वे देवि देवादयो मया ॥ न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ १६ ॥ मिथुन
प्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ॥ संवर्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥ १७ ॥ न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ॥
तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते ॥ १८ ॥

सब प्रकारकी शक्तियोंकी उत्पत्ति तुमसे ही है इस कारण सब जगह सबको सब शक्ति देनेहारी तुमही हो ॥ १९ ॥ हे वरदाता सुरेश्वरी ! मैं तुम्हीं वरदान देनेवालीकी प्रजावृद्धिके निमित्त प्रार्थना करता हूं कि अपने एक अंशसे चराचरकी वृद्धि करो ॥ २० ॥ हे संसारके भय दूर करनेहारी ! मेरे अपने अंशसे उत्पन्न किये पुत्र दक्षकी तुम कन्या हो, जब ब्रह्मयोनि ब्रह्माने उनसे यह प्रार्थना करी ॥ २१ ॥ तब उसने अपनी भ्रूके मध्यसे एक शक्ति अपनी प्रतापशाली प्रगट की; उसको देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ शिवजी प्रसन्न हो बोले ॥२२॥ तू अब तपस्या करके ब्रह्माका आराधन कर और उनके मनोरथ

सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः ॥ तस्मात्सर्वत्र सर्वेषां सर्वशक्तिप्रदायिनीम् ॥ १९ ॥ त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम् ॥ चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे ॥ २० ॥ दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि ॥ एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना ॥ २१ ॥ शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ॥ तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः ॥ २२ ॥ ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम् ॥ तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ॥ २३ ॥ ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत् ॥ दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् ॥ २४ ॥ विवेश देहं देवस्य देवश्चांतरधीयत ॥ तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः ॥ ॥ २५ ॥ प्रजासृष्टिश्च विप्रेंद्रा मैथुनेन प्रवर्तते ॥ ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुंगवाः ॥ २६ ॥ एतद्वस्सर्वमाख्यातं देव्याः शक्तिसमुद्भवम् ॥ पुण्यवृद्धिकरं श्राव्यं भूतसर्गानुषंगतः ॥ २७ ॥

पूर्ण कर इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञाको वह शक्ति शिरपर धारण कर तप करने लगी ॥२३॥ और ब्रह्माके वचनसे वह देवी दक्षकी कन्या हुई और वह ब्रह्मरूपिणी ब्रह्माके निमित्त महान् शक्ति देकर ॥ २४ ॥ देवके देहमें लय होगई; और देव शिव तत्काल अन्तर्द्धान हुए उस दिनसे इस लोकमें स्त्रीसंभोग प्रतिष्ठित हुआ है ॥२५॥ हे देवेन्द्र ! मैथुनधर्मसे प्रजाकी सृष्टि यह प्रवृत्त हुई है, हे मुनिश्रेष्ठ ! इससे ब्रह्माजीने भी आनन्द और संतोष पाया ॥ २६ ॥ देवीसे शक्तिकी उत्पत्ति तुम्हारे प्रति सब वर्णन की यह पुण्यरूप वृद्धि करनेवाली उत्पत्तिकी कथा सुनने योग्य है ॥ २७ ॥

जो इस देवीरूप शक्तिकी कथाको नित्य कीर्त्तन करता है उसको सब प्रकारके पुण्य और श्रष्ठ पुत्रोंकी प्राप्ति होती है ॥२८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषा
टीकायां स०वा०सं० पूर्वखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥वायु बोले, इसं प्रकार ब्रह्माजी ईश्वरसे परे शक्तिको प्राप्त होकर मैथुनीप्रजा करनेकी
इच्छा करने लगे ॥१॥ अपने आधे शरीरसे नारी और आधेसे पुरुष होगये जो नारीरूप था उससे शतरूपा प्रगट हुई ॥२॥ और पुरुषके आधे शरीरसे
विराट् हुआ उसको प्रथमपुरुष स्वायंभुवमनु कहते हैं ॥३॥ देवी शतरूपा महातप करके दीप्तिमान् महायशस्वी अपने स्वामीको प्राप्त हुई॥४॥उस शतरूपासे

य इदं कीर्तयेन्नित्यं देव्याः शक्तिसमुद्भवम् ॥ पुण्यं सर्वमवाप्नोति पुत्रांश्च लभते शुभान् ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां
वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीशक्त्युद्भवो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वायुरुवाच ॥ एवं लब्ध्वा परां शक्तिमीश्वरादेव शाश्वतीम् ॥ मैथुनप्रभवां सृष्टिं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ १ ॥ स्वयमप्यर्द्धतो नारी चार्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ यार्द्धेन नारी सा तस्माच्छतरूपा
व्यजायत ॥ २ ॥ विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥ ३ ॥ सा देवी शतरूपा तु
तपः कृत्वा सुदुश्चरम् ॥ भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत ॥ ४ ॥ तस्मात्तु शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ
पुत्रवतां वरौ ॥५॥ कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जातास्त्विमाः प्रजाः ॥ आकूतिरेका विज्ञेया प्रसूतिरपरा स्मृता ॥ ६ ॥ स्वायंभुवः
प्रसूतिं च ददौ दक्षाय तां प्रभुः ॥ रुचेः प्रजापतिश्चैव चाकूतिं समपादयत् ॥ ७ ॥ आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ॥
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्तितं जगत् ॥ ८ ॥

प्रिय व्रत और उत्तानपादं दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ और दो महाभाग्यवान् कन्या हुई जिनसे यह महाभाग्यवती प्रजा उत्पन्न हुई उनमें एक आकूति
दूसरी का नाम प्रसूति था ॥ ६ ॥ स्वायंभुवमनुने प्रसूतिको दक्षके निमित्त दिया और रुचि प्रजापतिको अपनी आकूति कन्या दे दी ॥ ७ ॥ आकूतिमें
रुचि प्रजापतिसे मानसी एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा है, इन्हींसे यह जगत् वृद्धिको प्राप्त है ॥ ८ ॥

और स्वायंभुवकी प्रसूति कन्यामें लोकोंकी माताएँ चौवीस कन्याएँ प्रगट हुईं ॥ ९ ॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति यह तेरह कन्या ॥१०॥ धर्मको व्याही गईं. और उनसे छोटी ग्यारह कन्या ॥११॥ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनुसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा ॥ १२ ॥ यह क्रमसे भृगु शिव, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ, पावक, पितरोंको ॥ १३ ॥ व्याहीगईं यह मुनि मुनियोंमें श्रेष्ठ थे, काम, दर्पनिलय, संतोष, लाभ, श्रुत, दंडसमय, बोध, अप्रमाद, विलय व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश यह तेरह पुत्र

स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः ॥ चतस्रो विंशतिः कन्या दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः ॥९॥ श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया
तथा ॥ बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिस्सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥१०॥ पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य
एकादश सुलोचनाः ॥११॥ ख्यातिः सत्यर्थसंभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥१२॥
भृगुश्शर्वो मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्योऽत्रिर्वशिष्ठश्च पावकः पितरस्तथा ॥ १३ ॥ ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो
मुनिसत्तमाः ॥ कामाद्यास्तु यशोंता ये ते त्रयोदश सूनवः ॥ १४ ॥ धर्मस्य जज्ञिरे तास्तु श्रद्धाद्यास्सुसुखोत्तराः ॥ दुःखोत्तराश्च
हिंसायामधर्मस्य च संततौ ॥ १५ ॥ निकृत्यादय उत्पन्नाः पुत्राश्च धर्मलक्षणाः ॥ नैषां भार्याश्च पुत्रा वा सर्वे त्वनियमाः स्मृताः ॥
॥ १६ ॥ स एष तामसस्सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥ या सा दक्षस्य दुहिता रुद्रस्य दयिता सती ॥ १७ ॥

॥ १४ ॥ धर्मके उत्पन्न हुए, और श्रद्धा आदिमें उत्पन्न हुए थे, और सुखरूप थे और दुःख देनेवाली सन्तान अधर्मके हिंसामें उत्पन्न हुईं ॥ १५ ॥ वे अधर्मके पुत्र निकृति आदि उत्पन्न हुए हैं विष्णुपुराणमें लिखा है कि अधर्मकी हिंसा भार्यामें अनृतकी उत्पत्ति हुई और निकृति कन्या हुई उससे भय नरक प्रगट हुए, इन्हींके माया और वेदनामक एक जोडा उत्पन्न हुआ है, मायासे प्राणहारी मृत्यु हुई वेदनाने रौरवसे दुःख उत्पन्न किया; मृत्युके व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध उत्पन्न हुए, यह सब दुःखरूप हैं, इनके भार्या पुत्र नहीं कारण कि यह सत्यधर्मसे रहित हैं ॥ १६ ॥ यह अधर्मरूप तामसी सृष्टि है;

और जो सती दक्षकी कन्या रुद्रको व्याही गई ॥ १७ ॥ वह अपने स्वामीकी निन्दा सुनकर अपनी देहको त्यागन करतीहुई, भाईसहित कुटुम्बसहित दक्ष और दक्षकी भार्याकी निन्दा करके शरीर त्यागकर ॥ १८ ॥ वह हिमालयके यहां मेनास्त्रीमें पुत्रीरूप हो प्रगट हुई, रुद्रने उस सतीको और अपने समान रुद्रोंको देख कर ॥ १९ ॥ जैसे अपने समान असंख्य जीव रचे सो तुमसे पूर्वमें कथन करही चुकेहैं; भृगु ऋषिसे ख्याति स्त्रीमें नारायणकी प्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ धाता और विधातानामक देवता मन्वन्तरमें विचरनेवाले हुए, उनके पुत्र और पौत्रादि अनेक हुए ॥ २१ ॥ स्वायंभुवमनुके अन्तर

भर्तृनिन्दाप्रसंगेन त्यक्त्वा दाक्षयिणीं तनुम् ॥ दक्षं च दक्षभार्य्यां च विनिंद्य सह बन्धुभिः ॥ १८ ॥ सा मेनायामाविरभूत्पुत्री हिमवतो गिरेः ॥ रुद्रस्तु तां सतीं दृष्ट्वा रुद्रांस्त्वात्मसमप्रभान् ॥ १९ ॥ यथासृजदसंख्यातांस्तथा कथितमेव च ॥ भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ॥ २० ॥ देवौ धातृविधातारौ मन्वंतरविधारिणौ ॥ तयोर्वै पुत्रपौत्राद्याश्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१ ॥ स्वायंभुवेंऽतरे नीताः सर्वे ते भार्गवा मताः ॥ मरीचेरपि संभूतिः पौर्णमासमसूयत ॥ २२ ॥ कन्याचतुष्टयं चैव महीयांसस्तदन्वयाः ॥ येषां वंशे समुत्पन्नो बहुपुत्रस्स कश्यपः ॥ २३ ॥ स्मृतिश्चांगिरसः पत्नी जनयामास वै सुतौ ॥ आग्नीध्रं शरभश्चैव तथा कन्याचतुष्टयम् ॥ २४ ॥ तदीयाः पुत्रपौत्राश्च येतीतास्ते सहस्रशः ॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दन्तोग्निरभत्सुतः ॥ पूर्वजन्मनि योगस्त्यस्स्मृतः स्वायंभुवेंऽतरे ॥ २५ ॥ तत्संततीया बहवः पौलस्त्या इति विश्रुताः ॥ क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः ॥ २६ ॥ कर्दमश्चासुरिश्चैव सहिष्णुश्चेति ते त्रयः ॥ त्रेताग्निवर्चसस्सर्वे येषां वंशः प्रतिष्ठितः ॥ २७ ॥

में वे सब भार्गववंशी कहलाये; मरीचि ऋषिके सम्भूति स्त्रीमें पौर्णमास पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ और चार कन्या उत्पन्न हुईं; उनका वंश बहुत बढा; जिनके वंशमें बहुत पुत्रवाला कश्यप उत्पन्न हुआ॥ २३ ॥स्मृति नामक अंगिराकी स्त्रीमें दो पुत्र आग्नीध्र और शरभ उत्पन्न हुए और चार कन्या हुईं॥ २४ ॥ उनके पुत्र पौत्रभी सहस्रों हुए, पुलस्त्यकी प्रीतिनामक भार्यामें दन्तअग्नि पुत्र हुआ जो पूर्वजन्ममें स्वायंभुव मन्वंतरमें अगस्त्य हुए थे ॥ २५ ॥ उसकी बहुत सन्तान हुई वह सब पौलस्त्य कहलाती थी, पुलह प्रजापतिकी क्षमा स्त्रीमें ॥ २६ ॥ कर्दम, आसुरी और सहिष्णु, हुए यह सब त्रेताग्निके समान

हुए, इनका वंश बहुत चला ॥ २७ ॥ क्रतुकी सन्ततिने क्रतुके समान बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये, इनके भार्या पुत्र नहीं हुए, यह सब ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए ॥ २८ ॥ यह साठहजार वालखिल्य कहलाये, सूर्यको घेरकर यह सब अरुणके आगे चलतेहैं ॥ २९ ॥ अत्रिकी भार्या अनुसूयाके पांच सन्तान हुईं, एक कन्या श्रुतिनाम जो कि शंखपदनाम ऋषिकी माता हुई ॥ ३० ॥ सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम यह पांच सन्तान अत्रिसे उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र और पौत्र बहुत हुए वे सब आत्रेय कहाये, स्वायंभुव मन्वंतरमें यह सैकडों बीतगये ॥ ३२ ॥ ऊर्जामें वशिष्ठके सात

क्रतोः क्रतुसमान्भार्या सन्नतिस्सुषुवे सुतान् ॥ नैषां भार्याश्च पुत्राश्च सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ २८ ॥ षष्टिस्तानि सहस्राणि वालखिल्या इति स्मृताः ॥ अनूरोरग्रतो यांति परिवार्य्य दिवाकरम् ॥ २९ ॥ अत्रेर्भार्यानसूया च पञ्चात्रेयानसूयत ॥ कन्यकां च श्रुतिं नाम माता शंखपदस्य च ॥ ३० ॥ सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिश्शनैश्चरः ॥ सोमश्च पंचमस्त्वेते पंचात्रेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यात्रेयाणां महात्मनाम् ॥ स्वायंभुवेंऽतरेऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥ ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे ॥ ज्यायसी च स्वसा तेषां पुंडरीका सुमध्यमा ॥ ३३ ॥ रजो गात्रोर्द्ध्वबाहू च सवनश्चानयश्च यः ॥ सुतपाश्शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ३४ ॥ गात्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ॥ स्वायंभुवेंऽतरेऽतीतान्यर्बुदानि शतानि च ॥ ३५ ॥ इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबंधः प्रकीर्तितः ॥ समासाद्विस्तराद्वक्तुमशक्योऽयमिति द्विजाः ॥ ३६ ॥ योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणो मानसस्सुतः ॥ स्वाहा तस्य प्रिया लेभे पुत्रांस्त्रीनमितौजसः ॥ ३७ ॥

पुत्र उत्पन्न हुए और उनकी बडी बहन पुंडरीका हुई ॥ ३३ ॥ रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनय, सुतप, शुक्र, यह सातसात ऋषि कहाये ॥ ३४ ॥ इन वशिष्ठवंशियोंके नामसेही उनके गोत्र कहलाये, स्वायंभुव मन्वंतरके बीतनेमें यह सैकडों अरव संख्यावाले हुए ॥ ३५ ॥ यह तुमको क्रमसे ऋषिसर्ग श्रवण कराया, यह संक्षेपसे कहा है विस्तारसे तो कोई इसे कथन नहीं करसक्ता ॥ ३६ ॥ जो यह रुद्रात्मक अग्नि ब्रह्माके मनसे उत्पन्न कहाजाता है, उसकी

स्वाहा स्त्रीमें महापराक्रमी तीन पुत्र उत्पन्न हुएहैं ॥ ३७ ॥ वे पावक, पवमान और शुचि कहलातेहैं, विना मथीहुई पवमान कहलाती है, बिजलीकी अग्नि पावक कहाती है ॥ ३८ ॥ और जो सूर्यमें तपती है उसका नाम शुचि और सौर कहा है, हव्यवाह, कव्यवाह, सहरक्षा यह तीन अग्निहैं ॥ ३९ ॥ इनके पुत्र क्रमसे देवता पितर और असुर हुएहैं, इनके पुत्र और पात्र उनचासहैं ॥ ४० ॥ काम्यकर्म नैमित्तिककर्म और निरन्तरकर्ममें स्थित रहते हैं, यह सब तपस्वी और सब व्रतके धारण करनेवालेहैं ॥ ४१ ॥ यह सब रुद्रात्मक और रुद्रके भक्तहैं इस कारण अग्निके मुखमें कोई कुछभी देतेहैं ॥ ४२ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिरित्येष ते त्रयः ॥ निर्मंथ्यः पवमानस्स्याद्वैद्युतः पावकस्स्मृतः ॥ ३८ ॥ सूर्ये तपति यश्चासौ शुचिः सौर उदाहृतः ॥ हव्यवाहः कव्यवाहः सहरक्षा इति त्रयः ॥ ३९ ॥ त्रयाणां क्रमशः पुत्रा देवपितृसुराश्च ते ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नैव ते ॥ ४० ॥ काम्यनैमित्तिकाजस्त्रकर्मसु त्रिषु संस्थिताः ॥ सर्वे तपस्विनो ज्ञेयाः सर्वे व्रतभृतस्तथा ॥ ४१ ॥ सर्वे रुद्रात्मकाश्चैव सर्वे रुद्रपरायणाः ॥ तस्मादग्निमुखे यत्तद्धुतं स्यादेव केनचित् ॥ ४२ ॥ तत्सर्वं रुद्रमुद्दिश्य दत्तं स्यान्नात्र संशयः ॥ इत्येवं निश्चयोग्नीनामनुक्रांतो यथातथम् ॥ ४३ ॥ नातिविस्तरतो विप्राः पितॄन्वक्ष्याम्यतः परम् ॥ यस्मात्षड्तवस्तेषां स्थानं स्थानाभिमानिनाम् ॥ ४४ ॥ ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ यस्मादृतुषु सर्वे हि जायंते स्थास्नुजंगमाः ॥ ४५ ॥ तस्मादेते पितर आर्तवा इति च श्रुतम् ॥ एवं पितॄणामेतेषामृतुकालाभिमांनिनाम् ॥ ४६ ॥

वह सब रुद्रके उद्देश्यसे दियाहुआ कहलाता है इसमें सन्देह नहीं यह अग्निका यथाक्रमसे वंश कहाहै ॥ ४३ ॥ हे विप्रो ! सो संक्षेपसे कहा है अब पितरोंका वंश कहताहूं ब्रह्माके पितृवर्ष्म अर्थात् पितरोंके देहमें होनेसे वसन्त आदि षट्ऋतु अपने पितरोंको कहतेहैं "पितर अथर्तव्रः पितरः प्रजापतिः पितरं पितृयज्ञेनायजंतेति श्रुतेः" जिस कारण कि उन स्थानके अभिमानियोंकी छः ऋतु स्थान हैं ॥ ४४ ॥ इस कारण पितरोंको ऋतुभी कहतेहैं, यह वेदकी श्रुति है, 'ऋतवः खलु वै पितर इति श्रुतेः' जिस कारण कि सब ऋतुओंमें स्थावर और जंगम उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ इस कारण यह पितर भी ऋतु

कहलातेहैं क्योंकि पितरोंको यजन ऋतुओंकी आदिमें होता है इस कारण ऋतुकालके अभिमानी इन पितरोंका ॥४६॥ ऋतुपन आर्त्तवत्व और पितृत्व वर्णन किया है, सब मन्वंतरोंमें वे पितर ऐश्वर्यको प्राप्त हो आकाशके संगको प्राप्त होकर स्थित होते हैं, अग्निष्वात्त, अग्निकर्ममें तत्पर, बार्हिषद, कुशोंपर बैठनेवाले दो प्रकारके पितर हैं ॥ ४७ ॥ यह अयज्वा यज्ञ न करनेहारे और यज्वा यज्ञकर्त्ता गृहस्थियोंके पितर हैं, पितरोंकी स्वधाके दो पुत्री लोक विख्यात हुईं ॥ ४८ ॥ मेना और धरणी जिन्होंने विश्व धारण कर रक्खा है यह पितरोंकी कन्या हैं अग्निष्वात्तोंकी कन्या मेना और बर्हिषद पितरोंकी

अत्मैश्वर्या महात्मानस्तिष्ठंतीहाभ्रसंगमात् ॥ आग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः ॥ ४७ ॥ अयज्वानश्च यज्वानः क्रमात्ते
गृहमेधिनः ॥ स्वधासूत पितृभ्यश्च द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥ ४८ ॥ मेनां च धरणीं चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम् ॥ अग्निष्वात्तसुता
मेना धरणी बर्हिषत्सुता ॥ ४९ ॥ मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं क्रौंचमेव च ॥ गौरीं गंगां च सुषुवे भवांगाश्लेषपावनीम् ॥ ५० ॥
मेरोस्तु धरणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ॥ मंदरं सुषुवे पुत्रं चित्रसुन्दरकन्धरम् ॥ ५१ ॥ स एव मंदरः श्रीमान्मेरुपुत्रस्तपो
बलात् ॥ साक्षाच्छ्रीकंठनाथस्य शिवस्यावसथं गतः ॥ ५२ ॥ सासूत धरणी भूयस्त्रिशत्कन्याश्च विश्रुताः ॥ वेलां च नियतिं चैव
तृतीयामपि चायतिम् ॥ ५३ ॥ आयतिर्नियतिश्चैव पत्न्यौ द्वे भृगुपुत्रयोः ॥ स्वायंभुवेंऽतरे पूर्वं कथितस्ते तदन्वयः ॥ ५४ ॥ सुषुवे
सागराद्वेला कन्यामेकामनिंदिताम् ॥ सवर्णां नाम सामुद्रीं पत्नीं प्राचीनबर्हिषः ॥ ५५ ॥

धरणी कन्या है ॥ ४९ ॥ मेना हिमालयकी पत्नी हुई, जिसने मैनाक और क्रौंच दो पुत्र और पार्वती और शिवके अंगस्पर्शसे पवित्र गंगाको उत्पन्न किया॥ ॥ ५० ॥ मेरुकी धरणी पत्नी हुई, जिसने दिव्य औषधीसे युक्त चित्र विचित्र कंदरावाले मंदरपर्वतको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ वही मेरुका पुत्र कान्तिमान् मंदराचल तपके बलसे साक्षात् श्रीकंठनाथ शिवके आवासस्थानकी संगतिको प्राप्त हुआ ॥५२॥ धरणीके तीन कन्या उत्पन्न हुईं वेला, नियति और आयति ॥ ५३ ॥ आयति और नियति यह दोनों भृगुके दो पुत्रोंको व्याही गईं स्वायंभुव मन्वन्तरके पूर्वमें भृगु पुत्रोंका वंश कहा है ॥५४॥ सागरसे वेलाके

एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई उसका नाम सवर्णा था, वह प्राचीनबर्हिकी पत्नी हुई ॥ ५५ ॥ उस समुद्र कन्याके प्राचीनबर्हिसे दश पुत्र हुए, उन दशोंका नाम प्रचेता हुआ, वे धनुर्वेदके पारगामी हुए ॥५६॥ जिनका स्वायंभुवमनुके समय दक्ष पुत्र हुआ था, वे शिवके शापसे चाक्षुषनामक मन्वन्तरके समयमें हुए थे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मण ! इस प्रकार यह ब्रह्मपुत्र महात्मा धर्मात्माओंका यह वृत्तान्त न तो मैंने बहुत संक्षेपसे न बहुत विस्तारसे कहा है ॥ ५८ ॥ यह दिव्य देवचरित्र है, क्रियावाले प्रजावाले महाऋद्धिसे अलंकृत ॥ ५९ ॥ यह प्रजाओंका सन्निवेश ब्रह्मासे प्रगट हुआ है, विस्तारसे तो कोई सौ करोड

सामुद्री सुषुवे पुत्रान्दश प्राचीनबर्हिषः ॥ सर्वे प्राचेतसा नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ५६ ॥ येषां स्वायंभुवे दक्षः पुत्रत्वम
गमत्पुरा ॥ त्रियम्बकस्य शापेन चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥ ५७ ॥ इत्येते ब्रह्मपुत्राणां धर्मादीनाम्महात्मनाम् ॥ नातिसंक्षेपतो विप्रा
नाति विस्तरतः क्रमात् ॥ ५८ ॥ वर्णिता वै मया वंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥ क्रियावंतः प्रजावंतो महर्द्धिभिरलंकृताः ॥ ५९ ॥
प्रजानां संनिवेशोऽयं प्रजापतिसमुद्भवः ॥ न हि शक्यः प्रसंख्यातुं वर्षकोटिशतैरपि ॥६०॥ राज्ञामपि च यो वंशो द्विधा सोऽपि प्रव
र्तते ॥ सूर्यवंशस्सोमवंश इति पुण्यतमः क्षितौ ॥ ६१ ॥ इक्ष्वाकुरम्बरीषश्च ययातिर्नाहुषादयः ॥ पुण्यश्लोकाः श्रुता येऽत्र तेऽपि तद्वं
शसंभवाः ॥ ६२ ॥ अन्ये च राजऋषयो नानावीर्यसमन्विताः ॥ किं तैः फलमनुत्क्रांतैरुक्तपूर्वैः पुरातनैः ॥ ६३ ॥ किं चेश्वरकथा
वृत्ता यत्र तत्रान्यकीर्तनम् ॥ न सद्भिः संमतं मत्वा नोत्सहे बहुभाषितुम् ॥ ६४ ॥

वर्षमें भी नहीं कहसक्ता है ॥ ६० ॥ राजाओंका भी वंश दो प्रकार से है, वह पवित्र वंश पृथ्वीमें चन्द्र सूर्यनामसे विख्यात है ॥६१॥ इक्ष्वाकु, अंबरीष, ययाति, नहुषादिक वे पवित्र चरित्रवाले राजा इन वंशोंमें प्रगट हुए हैं ॥ ६२ ॥ दूसरे राजर्षि अनेकप्रकारके बल वीर्यसे युक्त हुए हैं उनके क्रमसे वर्णन करनेका क्या प्रयोजन है, कारण कि पूर्वमें उनका वर्णन करचुके हैं ॥६३॥ और शिव कथाके प्रसंगमें जहां तहां उनका कीर्तन भी हुआ है, सत्पुरुषोंके

मन न लगनेके कारण उन सबको वर्णन करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ६४ ॥ कारण कि संगसे ईश्वरके प्रभाव प्रगट करनेमें उनकी कथा आगई है और प्रसंगसे यह सृष्टि आदिका वर्णन किया, अब बहुत विस्तारसे क्या है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे स्वायंभुववंश कथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ऋषि बोले, दक्षकी कन्या देवी सती दक्षके यज्ञमें अपना शरीर त्यागन करके वह मेनामें जन्म ले किस प्रकार हिमालयकी पुत्री हुई ॥ १ ॥ महात्मा दक्षने रुद्रकी क्यों निंदा की और उसमें क्या निमित्त था, जिसमें रुद्र निंदित हुए ॥ २ ॥ और शिवके शापसे

प्रसंगादीश्वरस्यैव प्रभावद्योतनादपि ॥ सर्गादयोऽपि कथिता इत्यत्र तत्प्रविस्तरैः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीय
संहितायां पूर्वखण्डे सृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवी दक्षस्य तनया त्यक्त्वा दाक्षायणी तनुम् ॥
कथं हिमवतः पुत्री मेनायामभवत्पुरा ॥ १ ॥ कथं च निन्दितो रुद्रो दक्षेण च महात्मना ॥ निमित्तमपि किं तत्र येन स्यान्निंदितो
भवः ॥ २ ॥ उत्पन्नश्च कथं दक्षो अभिशापाद्भवस्य तु ॥ चाक्षुषस्यांतरे पूर्वं मनोः प्रब्रूहि मारुत ॥ ३ ॥ वायुरुवाच ॥ शृण्वंतु कथ
यिष्यामि दक्षस्य लघुचेतसः ॥ वृत्तं पापात्प्रमादाच्च विश्वामरविदूषणम् ॥ ४ ॥ पुरा सुरासुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ कदाचिद्द्रष्टु
मीशानं हिमवच्छिखरं ययुः ॥ ५ ॥ तदा देवश्च देवी च दिव्यासनगतावुभौ ॥ दर्शनं ददतुस्तेषां देवादीनां द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥
तदानीमेव दक्षोऽपि गतस्तत्र सहामरैः ॥ जामातरं हरं द्रष्टुं द्रष्टुं चात्मसुतां सतीम् ॥ ७ ॥ तदात्मगौरवाद्देवो देव्या दक्षे समागते ॥
देवादिभ्यो विशेषेण न कदाचिदभूत्स्मृतिः ॥ ८ ॥

दक्ष फिर कैसे उत्पन्न होगये, हे मारुत ! चाक्षुषमन्वन्तरके पूर्वमें हुए इस वृत्तान्तको कथन करो ॥ ३ ॥ वायु बोले, तुमसुनो; मैं लघुचित्तवाले दक्षकी कथा कहताहूं जो उसने पाप और प्रमादसे जगत्के देवताको दूषित करनेको चरित्र किया ॥ ४ ॥ प्रथम सब सुर असुर सिद्ध परमर्षि शिवके दर्शन करनेको हिमालयके शिखरपर गये ॥ ५ ॥ उस समय शिव पार्वती दिव्य आसनपर विराजमान थे; हे ब्राह्मणो ! उन दोनोंने देवता आदिको दर्शन दिया ॥ ६ ॥ उस समय दक्षभी देवताओंके सहित वहां गये; उनके मनमें भी शिव और अपनी कन्याके दर्शनोंकी अभिलाषा थी ॥ ७ ॥ तब देवीके यहां दक्षके आनेके

निमित्त अपने गौरवके कारण विशेष करके किसी देवतासेभी उनका स्मरण न किया ॥ ८ ॥ तब उस दक्षने उस पुत्रीका परमभाव न जानकर शिवके विरोधके कारण उस मूर्खने अपनी पुत्रीसे भी वैर माना ॥ ९ ॥ उसी वैरके कारण दुर्दैवसे प्रेरित होकर दक्षने यज्ञमें द्वेषके कारण अपनी पुत्रीको न बुलाया ॥ १० ॥ दूसरे सब जमाइयोंको क्रमसे बुलाया और सैकडों प्रकारसे पृथक् पृथक् उनकी पूजा करी ॥ ११ ॥ उन सबके मेलको नारदजीसे सुनकर पार्वती शिवको पूँछ दक्षके घर विमानमें बैठ चलीगई ॥ १२ ॥ तब चारों ओरसे निकटवर्ती विमानको देख जो कि लक्षणसे युक्त सुखसे आरोहण करनेके योग्य अत्यन्त मनोहर थे ॥ १३ ॥ तपायेहुए सुवर्णके समान चित्र विचित्र रत्नोंसे शोभित चंदोवोंमें मोती लटकतेहुए मालाओंसे अलंकृत ॥ १४ ॥ तप्त सुवर्णकी खुंटियोंसे संकीर्ण सैकडों रत्नोंके स्तंभोंसे व्याप्त रत्नोंसे जडी सीढी मूंगोंसे स्तम्भ और तोरण जटितहैं ॥ १५ ॥ फूल विछेहुए अनेक सिंहासनोंसे शोभित जिनमें महारत्न जडेहैं, जिसके झरोखोंमें हीरेकी किरण पडती है और मणिकी रचनासे छिद्ररहितहैं ॥ १६ ॥ मणिदण्डसे मनोहर महावृषभके चिह्नसे युक्त जिसके आगेका भार मेघाकार ध्वजासे शोभित था ॥ १७ ॥ रत्नजटित चोल वस्त्रसे जिनके अंग रक्षितहैं, चित्र विचित्र वेत्र हाथमें लिये

तस्य तस्याः परं भावमज्ञातुश्चापि केवलम् ॥ पुत्रीत्येवं विमूढस्य तस्यां वैरमजायत ॥ ९ ॥ ततस्तेनैव वैरेण विधिना च प्रचोदितः ॥
नाजुहाव भवं दक्षो दीक्षितस्तामपि द्विषन् ॥ १० ॥ अन्याञ्जामातरस्सर्वानाहूय स यथाक्रमम् ॥ शतशः पुष्कलामर्चाश्चकार च
पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ तथा तान्संगतान्छ्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा ॥ ययौ रुद्राय रुद्राणी विज्ञाप्य भवनं पितुः ॥ १२ ॥ अथ संनि
हितं दिव्यं विमानं विश्वतोमुखम् ॥ लक्षणाढ्यं सुखारोहमतिमात्रमनोहरम् ॥ १३ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं चित्ररत्नपरिष्कृतम् ॥ मुक्तामय
वितानाग्र्यं स्रग्दामसमलंकृतम् ॥ १४ ॥ तप्तकांचननिर्व्यूहं रत्नस्तंभशतावृतम् ॥ वज्रकलिपतसोपानं विद्रुमस्तंभतोरणम् ॥ १५ ॥
पुष्पपट्टपरिस्तीर्णं चित्ररत्नमहासनम् ॥ वज्रजालकिरच्छिद्रमच्छिद्रमणिकुट्टिमम् ॥ १६ ॥ मणिदंडमनोज्ञेन महावृषभलक्ष्मणा ॥
अलंकृतपुरोभागमभ्रशुभ्रेण केतुना ॥ १७ ॥ रत्नकंचुकगुप्तांगैश्चित्रवेत्रैकपाणिभिः ॥ अधिष्ठितमहाद्वारमप्रधृष्यैर्गणेश्वरैः ॥ १८ ॥

गणेश्वरोंसे भी धर्षणके अयोग्य द्वारपालोंसे व्याप्त ॥ १८ ॥ मृदंग, ताल, गीत, वेणु, वीणाके बजानेमें चतुर मनोहर वेष और वचन बोलनेवाली स्त्रियोंसे
व्याप्त ॥ १९ ॥ इस विमानपर महादेवी अपनी सखियोंके साथ चढी, दंडीमें हीरे जडेहुए चमर व्यजन ॥ २० ॥ दो रुद्रकन्या ग्रहणकर उनके ऊपर
व्यजन करनेलगीं तब उन चामरोंके बीचमें पार्वतीका मुख शोभित हुआ ॥ २१ ॥ जैसे युद्धकरते हुए दो हंसोंके बीचमें कमल शोभित होता है, चन्द्रमाके
समान छत्र उनके मस्तकके ऊपर सुमालिनीने धारण किया ॥ २२ ॥ वह मोतियोंकी झालरसे युक्त उस छत्रको प्रेमसे धारण करनेलगी, वह उज्ज्वल

मृदंगतालगीतादिवेणुवीणाविशारदैः ॥ विदग्धवेषभाषैश्च बहुभिः स्त्रीजनैर्वृतम् ॥ १९ ॥ आरुरोह महादेवी सह प्रियसखीजनैः ॥
चामरव्यजने तस्या वज्रदंडमनोहरे ॥ २० ॥ गृहीत्वा रुद्रकन्ये द्वे विवीजतुरुभे शुभे ॥ तदाचामरयोर्मध्ये देव्या वदनमाबभौ ॥ २१ ॥
अन्योन्यं युध्यतोर्मध्ये हंसयोरिव पंकजम् ॥ छत्रं शशिनिभं तस्याश्चूडोपरि सुमालिनी ॥ २२ ॥ धृतमुक्तापरिक्षिप्तं बभार प्रेमनिर्भरा ॥
तच्छत्रमुज्ज्वलं देव्या रुरुचे वदनोपरि ॥ २३ ॥ उपर्यमृतभांडस्य मंडलं शशिनो यथा ॥ अथ चाग्रे समासीना सुस्मितास्या
शुभावती ॥ २४ ॥ अक्षद्यूतविनोदेन रमयामास वै सतीम् ॥ सुयशाः पादुके देव्याश्शुभे रत्नपरिष्कृते ॥ २५ ॥ स्तनयोरंतरे कृत्वा
तदा देवीमसेवत ॥ अन्या कांचनचार्वंगी दीप्तं जग्राह दर्पणम् ॥ २६ ॥ अपरा तालवृन्तं च परा तांबूलपेटिकाम् ॥ काचित्क्रीडा
शुकं चारु करेऽकुरुत भामिनी ॥ २७ ॥ काचित्तु सुमनोज्ञानि पुष्पाणि सुरभीणि च ॥ काचिदाभरणाधारं बभार कमलेक्षणा ॥ २८ ॥

छत्र देवीके मस्तकके ऊपर शोभित हुआ ॥ २३ ॥ जिस प्रकार अमृतके पात्रके ऊपर चन्द्रमा शोभित होता है और मनोहर हास्ययुक्त शुभावती इसके
आगे स्थित थी ॥ २४ ॥ यह अक्ष अर्थात् पाशेके विनोदसे पार्वतीको प्रसन्न करनेलगी सुयशाने रत्नभूषित देवीकी पादुका ग्रहण की ॥ २५ ॥
दूसरी किसी मनोहर अंगवालीने दर्पण ग्रहण किया; इस प्रकार स्तनोंके अन्तरसे उनकी सेवा करनेलगी ॥ २६ ॥ किसीने तालका पंखा और किसीने
पानदान ग्रहण किया किसीने क्रीडाशुकको हाथमें लिया ॥ २७ ॥ किसीने मनोहर २ फूल ग्रहण किये किसी कमलनेत्रीने आभूषणोंको धारण किया ॥ २८ ॥

किसीने आलेपन और फूलोंको धारण किया और दूसरीं भी अपने २ योग्य काम करती थीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार अपने समयमें वे सब देवीकी सेवा करनेलगीं; उनके बीचमें: वह परमेश्वरी अत्यन्त शोभित होनेलगी ॥ ३० ॥ जिस प्रकार तारोंके बीचमें शरद ऋतुका चन्द्रमा शोभा पाता है; इसके उपरान्त शंखनादके पीछे ॥ ३१ ॥ प्रस्थानका बडा भारी बाजा बजनेलगा; फिर ताल स्वरसे और भी बाजे बजने लगे ॥ ३२ ॥ काहलनाम और भी सैकडों बाजे बजनेलगे और शिवके समान तेजधारी आयुध लिये गणेशोंके समूह ॥ ३३ ॥ एक सहस्र आठ सौ आगे चले उनके बीचमें

काचिच्च पुनरालेपं सुप्रसूनं शुभांजनम् ॥ अन्याश्च सदृशास्तास्ता यथास्वमुचितक्रियाः ॥ २९ ॥ आवृत्त्य तां महादेवीमसेवंत समंततः ॥ अतीव शुशुभे तासामंतरे परमेश्वरी ॥ ३० ॥ तारापरिषदो मध्ये चंद्रलेखेव शारदी ॥ ततः शंखसमुत्थस्य नादस्य समनंतरम् ॥ ३१ ॥ प्रास्थानिको महानादः पटहः समताडयत ॥ ततो मधुरवाद्यानि सह तालोद्यतैस्स्वनैः ॥ ३२ ॥ अनाहतानि सन्नेदुः काहलानां शतानि च ॥ सायुधानां गणेशानां महेशसमतेजसाम् ॥ ३३ ॥ सहस्राणि शतान्यष्टौ तदानीं पुरतो ययुः ॥ तेषां मध्ये वृषारूढो गजारूढो यथा गुरुः ॥ ३४ ॥ जगाम गणपः श्रीमान् सोमनंदीश्वरार्चितः ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्दिवि दिव्यसुखा घनाः ॥ ३५ ॥ ननृतुर्मुनयस्सर्वे मुमुदुः सिद्धयोगिनः ॥ ससृजुः पुष्पवृष्टिं च वितानोपरि वारिदाः ॥ ३६ ॥ तदा देवगणैश्चान्यैः पथि सर्वत्र संगता ॥ क्षणादिव पितुर्गेहं प्रविवेश महेश्वरी ॥ ३७ ॥ तां दृष्ट्वा कुपितो दक्षश्चात्मनः क्षयकारणात् ॥ तस्या यवीयसीभ्योऽपि चक्रे पूजाम सत्कृताम् ॥ ३८ ॥ तदा शशिमुखी देवी पितरं सदसि स्थितम् ॥ अंबिका युक्तमव्यग्रमुवाचाकृपणं वचः ॥ ३९ ॥

वृषभपर आरूढ हुए हाथीपर चढेहुए गुहके समान ॥ ३४ ॥ गणपति सोम बन्दी देवताओंसे पूजित हो चले; और आकाशसे कर्णसुखदायक देवताओंके नगाडे बजनेलगे मेघ गर्जने लगे ॥ ३५ ॥ मुनि नृत्य करनेलगे; सिद्ध योगी प्रसन्न होनेलगे, मेघोंसे विमानके ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी ॥ ३६ ॥ तब मार्गमें दूसरे अनेक देवताओंसे सम्मिलित हो क्षणमात्रमें महेश्वरी पिताके घर पहुँची ॥ ३७ ॥ उसको देखतेही दक्षने अपने नाशके निमित्त क्रोध किया, उस सतीकी दूसरी छोटी बहनोंने भी असत्कारकी पूजाका वर्ताव किया ॥ ३८ ॥ तब वह चंद्रमुखी देवी सभामें बैठेहुए अपने पितासे युक्तियुक्त और कृपणतारहित

वचन कहनेलगी ॥ ३९ ॥ देवी बोली, ब्रह्मासे लेकर पिशाचतक जिसकी आज्ञाके वशवर्ती हैं, उस देवादिदेवकी पूजा हमारे पिताने न की ॥ ४० ॥ सो हो परन्तु मुझ ज्येष्ठपुत्रीका सत्कार क्या इस प्रकारका होना चाहिये, पिताने सत्कार करनेयोग्योंका निरादर कर बडा गर्हित कार्य किया है यह कहनेपर दक्षजी क्रोधकर बोले ॥ ४१ ॥ तुझसे श्रेष्ठ और गौरवयुक्त मेरी पुत्रीहैं, उनका मैं सदा सत्कार करताहूं ॥ ४२ ॥ और जो उनके श्रेष्ठ भर्ता हैं वे भी मेरे सदा मान्यहैं, वे सब तेरे स्वामी शिवसे गुणोंमें अधिकहैं ॥ ४३ ॥ और शिव तो उद्योगहीन तमोगुणप्रधान हैं, तू उन्हींकी स्त्री है इसी कारण मैं

देव्युवाच ॥ ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्याज्ञावशवर्तिनः ॥ स देवस्सांप्रतं तात विधिना नार्चितः किल ॥४०॥ तदास्तां मम ज्यायस्याः पुत्र्याः पूजां किमीदृशीम् ॥ असत्कृतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हितम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः क्रोधादमर्षितः ॥ त्वत्तः श्रेष्ठा विशिष्टाश्च पूज्या बालाः सुता मम ॥४२॥ तासां तु ये च भर्त्तारस्ते मे बहुमता मुदा ॥ गुणैश्चाप्यधिकास्सर्वैर्भर्तुस्ते त्र्यंबकादपि ॥ ॥ ४३ ॥ स्तब्धात्मा तामसश्शर्वस्त्वमिमं समुपाश्रिता ॥ तेन त्वामवमन्येऽहं प्रतिकूलो हि मे भवः ॥ ४४ ॥ तथोक्ता पितरं दक्षं क्रुद्धा देवी तमब्रवीत् ॥ शृण्वतामेव सर्वेषां ये यज्ञसदसि स्थिताः ॥ ४५ ॥ अकस्मान्मम भर्तारमजाताशेषदूषणम् ॥ वाचा दूषयसे दक्ष साक्षाल्लोकमहेश्वरम् ॥ ४६ ॥ विद्याचौरो गुरुद्रोही वेदेश्वरविदूषकः ॥ त एते बहुपाप्मानस्सर्वे दंड्या इति श्रुतिः ॥ ४७ ॥ तस्मादत्युत्कटस्यास्य पापस्य सदृशो भृशम् ॥ सहसा दारुणो दंडस्तव दैवाद्भविष्यति ॥ ४८ ॥ त्वया न पूजितो यस्माद्देवदेवस्त्रियंबकः ॥ तस्मात्तव कुलं दुष्टं नष्टमित्यवधारय ॥ ४९ ॥

तेराभी तिरस्कार करताहूं, कारण कि शिव मेरे प्रतिकूलहैं ॥४४॥ इस प्रकार कहनेपर दक्षसे क्रोधितहो देवी बोलीं, उस समय सब सभासद उनके वचन सुननेलगे ॥ ४५ ॥ जो कि सब दोषोंसे रहित मेरे स्वामी साक्षात् लोकमहेश्वरको तुम वाणीसे निन्दा करते हो ॥ ४६ ॥ विद्याचोर, गुरुका द्रोही, देवदेवेश्वरको निंदा करनेवाला इन पापियोंको शीघ्र दंड देना चाहिये यह श्रुति है ॥ ४७ ॥ इस कारण इस पापका महादण्ड अकस्मात्‌ही दैवसे तुमको प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥ जिस कारण कि तुमने देवदेव शिवजीका पूजन न किया; इस कारण तुम अपने दुष्टकुलको नष्ट हुआ जानो ॥ ४९ ॥

यह कहकर अविनाशी सती अपने पिताको त्यागकर और उसके शरीरको भी त्याग करके हिमालय पर्वतको गई ॥५०॥ उस श्रेष्ठ पर्वतने पुण्यके प्राप्त होने और श्रेष्ठ कन्या प्राप्त होनेके निमित्त महातप किया था ॥ ५१ ॥ इसी कारण ईश्वरीने उस पर्वतराजपर कृपा की और योगमायाके आश्रयहो अपनी इच्छासे उनको पिता किया ॥ ५२ ॥ जिस समय सती भयविह्वलहो दक्षकी निंदा कर चली उसी समय मंत्रोंकी शक्ति हानि होनेसे यज्ञविध्वंस होगया ॥५३॥ शिवने देवीका वहांसे गमन सुनकर दक्ष और भृगु आदि ऋषियोंको क्रोधकर शाप दिया ॥५४॥ जिस कारण दक्षने मेरे कारण अपनी पुत्रीका निरादरकर दूसरी अपनी सब कन्याओंका सत्कार किया है; और उनके स्वामीजनोंकी पूजा की है ॥५५॥ इसी कारण वैवस्वतमन्वंतरमें यह तेरे जामाता योनिसे उत्पन्न न होनेवालेभी जन्म धारण करेंगे ॥ ५६ ॥ और चाक्षुषमन्वंतरमें दक्ष मनुष्योंका राजा होगा, प्राचीनबर्हिषका पोता और प्रचेताका पुत्र होगा ॥ ५७ ॥ हे दुर्मते ! उस स्थानमें तुझको विघ्न करूंगा, तेरे धर्म अर्थ काममें बारंबार विघ्न किया जायगा ॥ ५८ ॥ जब महातेजस्वी रुद्रने दक्षके प्रति ऐसा कहा तब वह ब्रह्माके सम्बन्धी शरीर त्याग दुःखी हो पृथ्वीमें गिरपडा ॥५९॥ फिर चाक्षुष मन्वंतरमें दक्षप्रचेताके उत्पन्नहुए प्राचीनबर्हिके पोते

इत्युक्त्वा पितरं रुष्टा सती संत्यक्तसाध्वसा ॥ तदीयां च तनुं त्यक्त्वा हिमवंतं ययौ गिरिम् ॥५०॥ स पर्वतवरः श्रीमाँल्लब्धपुण्यफलोदयः॥
तदर्थमेव कृतवान् सुचिरं दुश्चरं तपः ॥ ५१ ॥ तस्मात्तमनुगृह्णाति भूधरेश्वरमीश्वरी ॥ स्वेच्छया पितरं चक्रे स्वात्मनो योगमायया
॥५२॥ यदा गता सती दक्षं विनिंद्य भयविह्वला ॥ तदा तिरोहिता मंत्रा विहतश्च ततोऽध्वरः ॥ ५३ ॥ तदुपश्रुत्य गमनं देव्यास्त्रिपुर
मर्दनः ॥ दक्षाय च ऋषिभ्यश्च चुकोप च शशाप तान् ॥ ५४ ॥ यस्मादवमता दक्ष मत्कृतेऽनागसा सती ॥ पूजिताश्चेतराः सर्वाः
स्वसुता भर्तृभिः सह ॥ ५५ ॥ वैवस्वतेंऽतरे तस्मात्तव जामातरस्त्वमी ॥ उत्पत्स्यंते समं सर्वे ब्रह्मयज्ञेष्वयोनिजाः ॥ ५६ ॥ भविता
मानुषो राजा चाक्षुषस्य त्वमन्वये ॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥५७॥ अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते ॥ धर्मार्थ
कामयुक्तेषु कर्मस्वपि पुनः पुनः ॥ ५८ ॥ तेनैवं व्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा ॥ स्वायंभुवीं तनुं त्यक्त्वा पपात भुवि दुःखितः ॥५९॥
ततः प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसाम् ॥ ६० ॥

प्रचेताके पुत्र कहाये ॥ ६० ॥ वे भृगु आदिभी वैवस्वतमन्वंतरमें ब्रह्मयज्ञमें वरुणसम्बन्धी शरीरको प्राप्त हो जन्में ॥ ६१ ॥ उस समय दुरात्मा दक्ष
जब यज्ञके निमित्त प्रवृत्त हुआ उस समय वैवस्वतमन्वंतरमें शिवने विघ्न किया ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षशाप
वर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ऋषि बोले, जब दुरात्मा दक्ष यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए तब महेशने किस प्रकारसे विघ्न किया यह हमारे सुननेकी
इच्छा है ॥१॥ वायु बोले, संसार और जगत्की माता देवीके तपोबलसे घरमें आनेके कारण हिमालय बहुत प्रसन्न हुए ॥२॥ उनके साथ जब शिवका

भृग्वादयोऽपि जाता वै मनोर्वैवस्वतस्य तु ॥ अंतरे ब्रह्मणो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ६१ ॥ तदा दक्षस्य धर्मार्थं यज्ञे तस्य दुरा
त्मनः ॥ महेशः कृतवान्विघ्नं मना वैवस्वते सति ॥ ६२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सतीदेहत्यागो
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं दक्षस्य धर्माथ प्रवृत्तस्य दुरात्मनः ॥ महेशः कृतवान् विघ्नमेतदिच्छाम वेदि
तुम् ॥ १ ॥ वायुरुवाच ॥ विश्वस्य जगतो मातुरपि देव्यास्तपोबलात् ॥ पितृभावमुपागम्य मुदिते हिमवद्गिरौ ॥२॥ देवेऽपि तत्कृतो
द्वाहे हिमवच्छिखरालये ॥ संक्रीडति तया सार्द्धं काले बहुतरे गते ॥ ३ ॥ वैवस्वतेंऽतरे प्राप्ते दक्षः प्राचेतसः स्वयम् ॥ अश्वमेधेन
यज्ञेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत ॥ ४ ॥ तता हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमाहरत् ॥ गंगाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते ॥ ५ ॥ तस्य
तस्मिन्मखे देवाः सर्वे शक्र पुरोगमाः ॥ गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ॥६॥ आदित्या वसवो रुद्रास्साध्यास्सह मरुद्गणैः ॥
ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा ॥ ७ ॥

विवाह होगया तब हिमालयके शिखरको चलेगये; वहां पार्वतीके साथ विहार करतेहुए जब बहुत समय होगया ॥ ३ ॥ तब वैवस्वत मन्वंतरके प्राप्त
होनेमें स्वयं प्रचेताके पुत्र दक्षने अश्वमेधयज्ञ करनेकी इच्छा की ॥४॥ जब हिमालयके पृष्ठदेशमें दक्ष यज्ञ करनेलगे, जहां गंगाद्वार है और ऋषि मुनि सिद्ध
वहां निवास करतेहैं ॥५॥ तब उनके यज्ञमें ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओंने जानेकी इच्छा की ॥६॥ आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत् देवता, सोमपान करने

वाले तथा वृतपान करनेवाले पितर धूमपान करनेवाले ॥ ७ ॥ अश्विनीकुमार दूसरे पितर महर्षि यह विष्णुसहित सब कोई यज्ञभाग लेनेको आये ॥८॥ जब शिवके विना और सम्पूर्ण देवता आगये तब दधीचिने क्रोधकर दक्षसे कहा ॥ ९ ॥ दधीचि बोले, अपूज्योंके पूजनेसे और पूजनेयोग्योंके न पूजनेसे मनुष्यको बडा पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥१०॥ जहां असत् पुरुषोंकी सम्मति और सत्पुरुषोंका निरादर है उसके ऊपर शीघ्रही दैवका किया हुआ दंड पतित होताहै ॥११॥ विप्रर्षिने यह वचन कहकर फिर दक्षसे कहा, परमपूजनीय पशुपतिका आपने पूजन किस कारणसे न किया ॥ १२ ॥ दक्ष

अश्विनौ पितरश्चैव तथा चान्ये महर्षयः ॥ विष्णुना सहिताः सर्वे स्वागता यज्ञभागिनः ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा देवकुलं सर्वमीश्वरेण विनागतम् ॥ दधीचो मन्युनाविष्टो दक्षमेवमभाषत ॥ ९ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ अप्रपूज्ये चैव पूजा पूज्यानां चाप्यपूजने ॥ नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥ १० ॥ असतां संमतिर्यत्र सतामवमतिस्तथा ॥ दंडो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥ पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नार्चयसे प्रभुम् ॥ १२ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ संति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः ॥ एकादशावस्थिता ये नान्यं वेद्मि महेश्वरम् ॥ १३ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ किमेभिरमरैरन्यैः पूजितैरध्वरे फलम् ॥ राजा चेदध्वरस्यास्य न रुद्रः पूज्यते त्वया ॥ १४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्रष्टा यः प्रभुरव्ययः ॥ ब्रह्मादयः पिशाचांता यस्य कैंकर्यवादिनः ॥ १५ ॥ प्रकृतीनां परश्चैव पुरुषस्य च यः परः ॥ चिंत्यते योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

बोले, हमारे यहां शूल हाथमें लिये जब ग्यारह रुद्र विद्यमान हैं जो जटाजूट धारण कियेहैं फिर और महेश्वर कौनसे ह हम उनको नहीं जानते ॥१३॥ दधीचि बोले इन देवताओंके यज्ञमें पूजनेसे क्या फल है, जो यज्ञके राजा महेश्वरका पूजन न किया ॥ १४ ॥ जो प्रभु अविनाशी ब्रह्मा विष्णु औ देवताओंके भी उत्पन्न करनेवाले हैं, ब्रह्मासे लेकर पिशाचतक जिसके दास हैं ॥ १५ ॥ जो प्रकृति और पुरुषसे परे हैं, जिसके योगी और तत्वदर्शी

ऋषि विचार करते हैं ॥ १६ ॥ जो अक्षर परब्रह्म सत् असत् स्वरूप हैं; अनादि मध्य निधन तर्कनारहित सनातन हैं ॥ १७ ॥ और जो महेश्वर उत्पत्ति
पालन नाश करते हैं, उन शंकरात्माके सिवाय यज्ञमें दूसरी वस्तु नहीं देखता हूं ॥ १८ ॥ दक्ष बोले, हे भगवन् ! यह सुवर्णपात्रमें विधिपूर्वक मंत्र पढी
हुई हवि रक्खी है; यह यज्ञेश महापराक्रमी विष्णुका भाग है सो विभागकर आहुति दीजिये ॥१९॥ दधीचि बोले, जिस कारण कि तुमने सब देवताओंके
पूजनीय शंकरकी आराधना नहीं की है, इस कारणसे यह तुम्हारा यज्ञ न होगा ॥ २० ॥ यह कहकर दधीचि ऋषि महाक्रोधकर उस यज्ञशालासे

अक्षरं परमं ब्रह्म ह्यसच्च सदसच्च यत् ॥ अनादिमध्यनिधनमप्रतर्क्यं सनातनम् ॥ १७ ॥ यः स्रष्टा चैव संहर्ता भर्ता चैव
महेश्वरः ॥ तस्मादन्यं न पश्यामि शंकरात्मानमध्वरे ॥ १८ ॥ दक्ष उवाच ॥ एतन्मखेशस्य सुवर्णपात्रे हविः समस्तं
विधिमंत्रपूतम् ॥ विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य भागं प्रभोर्विभज्यावहनीयमद्य ॥ १९ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ यस्मान्नाराधितो रुद्रस्सर्व
देवेश्वरेश्वरः ॥ तस्माद्दक्ष तवाशेषो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा वचनं क्रुद्धो दधीचो मुनिसत्तमः ॥ निर्गम्य च ततो
देशाज्जगाम स्वकमाश्रमम् ॥ २१ ॥ निर्गतेऽपि मुनौ तस्मिन्देवा दक्षं न तत्यजुः ॥ अवश्यमनुभावित्वादनर्थस्य तु भाविनः ॥२२॥
एतस्मिन्नेव काले तु ज्ञात्वैतत्सर्वमीश्वरात् ॥ दग्धुं दक्षाध्वरं विप्रा देवी देवमचोदयत् ॥ २३ ॥ देव्या संचोदितो देवो दक्षाध्वरजिघां
सया ॥ ससर्ज सहसा वीरं वीरभद्रं गणेश्वरम् ॥ २४ ॥ सहस्रवदनं देवं सहस्रकमलेक्षणम् ॥ सहस्रमुद्गरधरं सहस्रशरपाणिकम् ॥
॥ २५ ॥ शूलटंकगदाहस्तं दीप्तकार्मुकधारिणम् ॥ चक्रवज्रधरं घोरं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ २६ ॥

निकल अपने आश्रमको चलेगये ॥२१॥ मुनिके जानेपर भी देवताओंने दक्षको त्यागन न किया कारण कि उन्होंने अवश्य होनहार अनर्थको जानलिया
था ॥ २२ ॥ इसी अवसरमें यह सब वार्ता ईश्वरसे श्रवणकर दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके निमित्त पार्वतीने शिवसे प्रार्थना की हे ब्राह्मणो ! ॥ २३ ॥
जिस समय दक्षका यज्ञ नष्ट करनेको देवीने कहा तब शिवजीने वीरभद्र गणेश्वरको निर्माण किया ॥ २४ ॥ उनके सहस्र मुख सहस्र नेत्रकमल सहस्र मुद्गर
धारण किये सहस्र बाण हाथोंमें लिये ॥ २५ ॥ शूल, टंक, गदा, तथा दीप्तिमान् धनुष धारण किये चक्र, वज्र धारे आधा चन्द्रमा शिरपर धरे ॥२६॥

वज्रसे प्रकाशमान हाथ, बिजलीकी प्रभासे प्रकाशित शिर कराल डाढैं धारण किये महामुख और बडा पेट ॥ २७ ॥ बिजलीके समान जीभ लम्बे ओष्ठ मेघ और सागरके समान शब्द व्याघ्रचर्म ओढे जिनमेंसे रुधिर निकलताथा ॥२८॥ दोनों कपोलोंके निकट मंडलाकार कुण्डल धारण किये श्रेष्ठ देवताओंके समान मुण्डमालासे शोभायमान शिर ॥ २९ ॥ शब्दायमान नूपुर और बाजूबन्द धारे रत्नके संचयसे दीप्तिमान् बडे हारसे व्याप्त हृदय महाशरभ शार्दूल और सिंहके समान पराक्रमी ॥ ३० ॥ बडे श्रेष्ठ मतवाले हाथीके समान जिनका आलस भरा गमन है ॥ ३१ ॥ शंख चामर कुंदके फूल चन्द्रमा और

कुलिशोद्योतितकरं तडिज्ज्वलितमूर्द्धजम् ॥ दंष्ट्राकरालं बिभ्राणं महावक्रं महोदरम् ॥२७॥ विद्युज्जिह्वं प्रलंबोष्ठं मेघसागरनिःस्वनम् ॥ वसानं चर्म वैयाघ्रं महद्रुधिरनिस्रवम् ॥ २८ ॥ गण्डद्वितयसंसृष्टमण्डलीकृतकुण्डलम् ॥ वरामरशिरोमालावलीकलितशेखरम् ॥ २९ ॥ रणन्नूपुरकेयूरमहाकनकभूषितम् ॥ रत्नसंचयसंदीप्तं तारहारावृतोरसम् ॥ ३० ॥ महाशरभशार्दूलसिंहैः सदृशविक्रमम् ॥ प्रशस्तमत्तमातंगसमानगमनालसम् ॥ ३१ ॥ शंखचामरकुंदेन्दुमृणालसदृशप्रभम् ॥ सतुषारमिवाद्रीन्द्रं साक्षाज्जंगमतां गतम् ॥ ३२ ॥ ज्वालामालापरिक्षिप्तं दीप्तमौक्तिकभूषणम् ॥ तेजसा चैव दीप्यंतं युगांत इव पावकम् ॥३३॥ स जानुभ्यां महीं गत्वा प्रणतः प्रांजलिस्ततः॥ पार्श्वतो देवदेवस्य पर्य्यतिष्ठद्गणेश्वरः ॥ ३४ ॥ मन्युना चासृजद्भद्रां भद्रकालीं महेश्वरीम् ॥ आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन गंतुं सहैव तु ॥ ३५ ॥ तं दृष्ट्वावस्थितं वीरभद्रं कालाग्निसन्निभम् ॥ भद्रया सहितं प्राह भद्रमस्त्विति शंकरः ॥ ३६ ॥ स च विज्ञापयामास सह देव्या महेश्वरम् ॥ आज्ञापय महादेव किं कार्यं करवाण्यहम् ॥ ३७ ॥

मृणालके समान कान्तिवाले मानो साक्षात् हिमालय पर्वतही चलनेवाला होगया है ॥ ३२ ॥ मोतीके भूषणोंकी दीप्तिकी ज्वालाका समूह फैल रहा है और तेजसे युगान्तकी अग्निके समान व्याप्त हैं ॥ ३३ ॥ सो वह वीरभद्र जानुओंसे पृथ्वीमें बैठ हाथजोड शिवको प्रणाम करनेलगे; और यह गणेश्वर देवके समीपमें स्थित हुए ॥ ३४ ॥ उसी अवसरमें देवीने क्रोधसे अपने कर्मकी साक्षीके निमित्त भद्रकाली महेश्वरीको उसके साथ जानेको उत्पन्न किया ॥ ॥ ३५ ॥इस प्रकार कालाग्निके समान भद्रको देखकर भद्रके सहित शिवजीने कहा कि तुम्हारा मंगल हो ॥ ३६ ॥ तब उसने देवीके सहित महेश्वरसे

कहा हे महादेव ! कहिये मैं आपका कौन प्रिय कार्य करूं ॥ ३७ ॥ तब त्रिपुरके मारनेवाले शिवने पार्वतीके प्रियकी इच्छासे महागम्भीर वाणीसे महाबाहु वीरभद्रसे कहा ॥ ३८॥ देवदेव बोले, तुम प्राचेतस दक्षका यज्ञ बहुत शीघ्र नाश करदो, हे गणेश्वर ! भद्रकालीके साथ जाकर तुम यह कृत्य करो ॥ ३९॥ मैंभी देवीके साथ रैभ्य आश्रमके समीपसे हे गणेश ! तुम्हारा दुःसह पराक्रम देखता रहूंगा ॥ ४० ॥ जो कनखलके वृक्ष गंगाद्वारतक स्थितहैं वे सुवर्ण शृंग पर्वत और मेरुमंदरके समानहैं ॥ ४१ ॥ उसी स्थानमें दक्षका यज्ञ होता है, उस यज्ञका नाश तुम बहुत शीघ्र करो ॥४२॥ जब इस प्रकार शंकरने

ततस्त्रिपुरहा प्राह हैमवत्याः प्रियेच्छया ॥ वीरभद्रं महाबाहुं वाचा विपुलनादया ॥ ३८ ॥ ॥ देवदेव उवाच ॥ प्राचेतसस्य दक्षस्य यज्ञं सद्यो विनाशय ॥ भद्रकाल्या सहासि त्वमेतत्कृत्यं गणेश्वर ॥ ॥ ३९ ॥ अहमप्यनया सार्द्धं रैभ्याश्रमसमीपतः ॥ स्थित्वा वीक्षे गणेशान विक्रमं तव दुःसहम् ॥ ४० ॥ वृक्षाः कनखले ये तु गंगाद्वारसमीपगाः ॥ सुवर्णशृंगस्य गिरेर्मेरुमंदरसंनिभाः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्प्रदेशे दक्षस्य यज्ञः संप्रति वर्तते ॥ सहसा तस्य यज्ञस्य विघातं कुरु मा चिरम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्ते सति देवेन देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥ भद्रं भद्रां च संप्रेक्ष्य वत्सं धेनुरिवौरसम् ॥ ४३ ॥ आलिंग्य च समाघ्राय मूर्ध्नि षड्वदनं यथा ॥ सस्मिता वचनं प्राह मधुरं मधुरं स्वयम् ॥ ४४ ॥ देव्युवाच ॥ वत्स भद्र महाभाग महाबलपराक्रम ॥ मत्प्रियार्थं त्वमुत्पन्नो मम मन्युं प्रमार्जय ॥ ४५ ॥ यज्ञेश्वरमनाहूय यज्ञकर्मरतोऽभवत् ॥ दक्षो वैरेण तं तस्माद्भिंधि यज्ञं गणेश्वर ॥ ४६ ॥ यज्ञलक्ष्मीमलक्ष्मीं त्वं भद्र कृत्वा ममाज्ञया ॥ यजमानं च तं हत्वा वत्स हिंसय भद्रया ॥ ४७ ॥

कहा तब हिमालयपुत्री पार्वतीने भद्र और भद्राको अपने औरसपुत्रके समान देखकर कि जैसे गो बछडेको देखती है ॥ ४३ ॥ आलिंगनकर कार्तिकेयके समान उसका शिर सूंघा और हँसकर मधुरस्वरसे कहनेलगी ॥ ४४ ॥ देवी बोली, हे पुत्र ! भद्र महाभाग पराक्रमी तू मेरे प्रियके निमित्त उत्पन्न हुआ है; इस कारण क्रोध मत शान्तकर ॥४५॥ जो कि इसने यज्ञेश्वरको विना बुलाये यज्ञकर्म प्रारम्भ किया है और उसने वैर किया है इस कारण हे गणेश्वर ! उसका यज्ञ नष्ट करदो ॥ ४६ ॥ हे भद्रे ! मेरी आज्ञासे यज्ञलक्ष्मीको अलक्ष्मीस्वरूप करके भद्रके साथ जाकर उस यजमानको भी नष्ट करदो ॥ ४७ ॥

चित्रकर्मा शिव पार्वतीकी उस सम्पूर्ण आज्ञाको मस्तकपर धारण कर नमस्कार कर भद्रने जानेकी तइयारी की ॥ ४८ ॥ तब स्मशानवासी भगवान् वीर भद्रने क्रोध करके देवीके क्रोध दूर करनेकी इच्छा की ॥ ४९ ॥ तब वीरभद्रने अपने रोमसे सहस्रों गणोंको उत्पन्न किया और दक्षिणकी भुजासे सौ करोड गणेश्वरोंको उत्पन्न किया चरण, ऊरु, जंघा, पीठ, पार्श्व, मुखवाले गुह्य गुल्फ शिर ॥ ५० ॥ मध्य कण्ठ मुख पेटसे ॥ ५१ ॥ वे गणेश्वर भद्रने उत्पन्न किये; जिनका पराक्रम भद्रके समान था उससे उस स्थानका आकाश सब आच्छादित होगया ॥ ५२ ॥ उन सबके सहस्र २ हाथ उनमें सहस्र२आयुध

अशेषामिव तामाज्ञां शिवयोश्चित्रकृत्ययोः ॥ मूर्ध्नि कृत्वा नमस्कृत्य भद्रो गंतुं प्रचक्रमे ॥४८॥ अथैष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः ॥ वीरभद्रो महादेवो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥ ४९ ॥ ससर्ज रोमकूपेभ्यो रोमजाख्यान्गणेश्वरान् ॥ दक्षिणाद्भुजदेशात्तु शतकोटिगणेश्वरान् ॥ ५० ॥ पादात्तथोरुदेशाच्च पृष्ठात्पार्श्वान्मुखाद्गलात् ॥ गुह्याद्गुल्फाच्छिरोमध्यात्कंठादास्यात्तथोदरात् ॥ ५१ ॥ तदा गणेश्वरैर्भद्रैर्भद्रतुल्यपराक्रमैः ॥ संछादितमभूत्सर्वं साकाशविवरं जगत् ॥ ५२ ॥ सर्वे सहस्रहस्तास्ते सहस्रायुधपाणयः ॥ रुद्रस्यानुचरास्सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः ॥ ५३ ॥ शूलशक्तिगदाहस्ताष्टंकोपलशिलाधराः ॥ कालाग्निरुद्रसदृशास्त्रिनेत्राश्च जटाधराः ॥ ५४ ॥ निपेतुर्भृशमाकाशे शतशस्सिंहवाहनाः ॥ विनेदुश्च महानादाञ्जलदा इव भद्रजाः ॥ ५५ ॥ तैर्भद्रैर्भगवान्भद्रस्तथा परिवृतो बभौ ॥ कालानलशतैर्युक्तो यथांते कालभैरवः ॥ ५६ ॥ तेषां मध्ये समारुह्य वृषेंद्रं वृषभध्वजः ॥ जगाम भगवान्भद्रश्शुभमभ्रं यथा भवः ॥ ५७ ॥ तस्मिन्वृषभमारूढे भद्रे तु भसितप्रभः ॥ बभार मौक्तिकं छत्रं गृहीतासितचामरः ॥ ५८ ॥

लिये, वे सब रुद्रके अनुचर रुद्रहीके समान बली थे ॥ ५३ ॥ शूल शक्ति और गदा हाथमें लिये टंक उपल शिला धारे वे कालाग्निकी समान तीन नेत्र और जटाधारी थे ॥ ५४ ॥ वीरभद्रसे उत्पन्न गणमेघके समान शब्द करनेलगे और सिंहोंपर चढकर आकाशमें विचरनेलगे ॥५५॥ कल्याणयुक्त भगवान् उन गणोंके साथ शोभित हुए, जैसे प्रलयमें सैकडों कालानलसे भैरव शोभितहैं ॥५६॥ शिवजी उनके बीचमें वृषके ऊपर चढकर चले और ऐसे शोभित हुए मानो श्वेतमेघपर जातेहैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार कान्तिमान् वीरभद्रके वृषपर चढनेसे भसितप्रभने मोतियोंका छत्र उनके ऊपर धारण किया और

श्वेतचामरभी ग्रहण किये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार वीरभद्रके निकट भसितप्रभ महाशोभित हुआ; जिस प्रकार जगत् गुरुके पार्श्वमें पर्वतराज शोभित होता है ॥ ५९ ॥ श्वेतचामर धारण करनेवालेसे वीरभद्र इस प्रकार शोभित हुए जैसे सुन्दर वर्णवाले चन्द्रमासे शिवजी शोभित होतेहैं, तब महातेजस्वी भानुकम्प गणेश्वरने वीरभद्रके आगे शंख बजाया, वह शंख सुवर्ण और रत्नोंसे अलंकृत था ॥ ६० ॥ ६१ ॥ तब आकाशसे देवताओंके नगाडे बजनेलगे और मेघोंसे उन सबके शिरोंपर फूलोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ६२ ॥ मधुवाले फूल फूलनेलगे और उनकी सुगन्धि निकलनेलगी शीतल मंद सुगंध पवन मार्गमें

स तदा शुशुभे पार्श्वे भद्रस्य भसितप्रभः ॥ भगवानिव शैलेन्द्रः पार्श्वे विश्वजगद्गुरोः ॥ ५९ ॥ सोऽपि तेन बभौ भद्रः श्वेतचामरपाणिना ॥ बालसोमेन सौम्येन यथा शूलवरायुधः ॥ ६० ॥ दध्मौ शंखं सितं भद्रं भद्रस्य पुरतः शुभम् ॥ भानुकंपो महातेजा हेमरत्नैरलंकृतः ॥ ६१ ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्दिव्यसंकुलनिस्वनाः ॥ ववृषुश्शतशो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं बलाहकाः ॥ ६२ ॥ फुल्लानां मधुगर्भाणां पुष्पाणां गंधबंधवः ॥ मार्गानुकूलसंवाहा ववुश्च पथि मारुताः ॥ ६३ ॥ ततो गणेश्वराः सर्वे मत्ता युद्धबलोद्धताः ॥ ननृतुर्मुमुदुर्नेदुर्जहसुर्जगदुर्जगुः ॥ ६४ ॥ तदा भद्रगणांतःस्थो बभौ भद्रः स भद्रया ॥ यथा रुद्रगणांतःस्थस्त्र्यम्बकोंबिकया सह ॥ ६५ ॥ तत्क्षणादेव दक्षस्य यज्ञवाटं हिरणमयम् ॥ प्रविवेश महाबाहुर्वीरभद्रो महानुगः ॥ ६६ ॥ ततस्तु दक्षप्रतिपादितस्य क्रतुप्रधानस्य गणप्रधानः ॥ प्रयोगभूमिं प्रविवेश भद्रो रुद्रो यथांते भुवनं दिधक्षुः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वीरभद्रोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बहनेलगी ॥ ६३ ॥ तब वे गणेश्वर सब युद्धके निमित्त मत्त होगये तब वे प्रसन्नहो नाचने शब्द करने हँसने और गाने लगे ॥ ६४ ॥ तब वीरभद्र गणेश्वरोंके बीचमें स्थित हो भद्रकालीसहित प्रसन्न हुए जैसे रुद्रगणोंके बीचमें त्र्यंबक पार्वतीसहित शोभित होतेहैं ॥ ६५ ॥ उसी समय दक्षकी सुवर्णमय यज्ञवेदीमें अनुचरोंसहित वीरभद्र प्रविष्ट हुए ॥ ६६ ॥ तब उस प्रधान गणने दक्षके कियेहुए यज्ञकी प्रयोगभूमिमें प्रवेश किया जिस प्रकारसे रुद्र अन्तमें संसारके भस्म करनेको प्रवेश करतेहैं ॥६७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षयज्ञकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वायु बोले; तब विष्णु आदि महातेजस्वी देवताओंका वह चित्र विचित्र ध्वजाओंसे शोभित महायज्ञ देखा ॥ १ ॥ सीधे कुशोंसे आच्छादित प्रज्वलित अग्निसे युक्त सुवर्णके पात्रोंसे सब ओरसे शोभित ॥ २ ॥ यज्ञमें कर्म करनेवाले ऋषियोंसे व्याप्त वेदके कहेहुए विधानसे युक्त ॥ ३ ॥ सहस्रों देवांगनाओंसे युक्त अप्सराओंसे शोभित वेणु वीणाके शब्दसे युक्त वेदके शब्दोंसे वृद्धिको प्राप्त ॥ ४ ॥ दक्षका यज्ञ देखकर प्रतापवान् वीरभद्र गम्भीरशब्दसे सिंहनाद करने लगा जैसे मेघ शब्द करता है ॥ ५ ॥ तब आकाशको पूर्ण करताहुआ किलकिला शब्द गणेश्वरोंके द्वारा उच्चारण होकर सागरका तिरस्कार करनेलगा ॥

॥ वायुरुवाच ॥ ततो विष्णुप्रधानानां सुराणाममितौजसाम् ॥ ददर्श च महत्सत्रं चित्रध्वजपरिच्छदम् ॥ १ ॥ सुदर्भऋजुसंस्तीर्णं सुसमिद्धहुताशनम् ॥ कांचनैर्यज्ञभांडैश्च भ्राजिष्णुभिरलंकृतम् ॥ २ ॥ ऋषिभिर्यज्ञपटुभिर्यथावत्कर्मकर्तृभिः ॥ विधिना वेददृष्टेन स्वनुष्ठितबहुक्रमम् ॥ ३ ॥ देवांगनासहस्राढ्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ वेणुवीणारवैर्जुष्टं वेदघोषैश्च बृंहितम् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा दक्षाध्वरे वीरो वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ सिंहनादं तदा चक्रे गंभीरो जलदो यथा ॥ ५ ॥ ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव ॥ गणेश्वरैः कृतो यज्ञे महान्न्यकृतसागरः ॥६॥ तेन शब्देन महता ग्रस्ताः सर्वे दिवौकसः ॥ दुद्रुवुः परितो भीताः स्रस्तवस्त्रविभूषणाः ॥७॥ किंस्विद्भग्नो महामेरुः किंस्वित्संदीर्यते मही ॥ किमिदं किमिदं वेति जजल्पुस्त्रिदशा भृशम् ॥८॥ मृगेन्द्राणां यथा नादं गजेंद्रा गहने वने ॥ श्रुत्वा तथाविधं केचित्तत्यजुर्जीवितं भयात् ॥ ९ ॥ पर्वताश्च व्यशीर्यंत चकम्पे च वसुंधरा ॥ मरुतश्च व्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ उस शब्दसे सब देवता व्याकुल होगये और व्याकुल होकर भागनेलगे, उस समय उनके भूषण वस्त्र स्खलित होगये ॥ ७ ॥ क्या महामेरु भिन्न होगया, या पृथ्वी विदीर्ण होती है, यह क्या है क्या है ? ॥८॥ जैसे सिंहोंके शब्दको हाथी गहन वनमें सुनकर व्याकुल होतेहैं इस प्रकार शब्द सुनकर भयके मारे अनेक प्राणी अपना जीवन त्यागन करनेलगे ॥ ९ ॥ पर्वत फटनेलगे, पृथ्वी कांपने लगी, पवन चलायमान हुएथे, सागर क्षुभित होगया॥ १०॥

अग्नियोंकी दीप्ति जाती रही सूर्य प्रभाहीन होगये; ग्रह नक्षत्र तारोंका प्रकाश जातारहा ॥ ११ ॥ इसी समय उस उज्ज्वल यज्ञस्थानमें वीरभद्र प्राप्त होकर दूसरे गण और कालीको साथ लिये आये ॥ १२ ॥ उनको देखकर दक्ष डरकर भी यथायोग्य स्थित रहा और क्रोध करके बोला तुम कौन हो और क्या करनेकी इच्छा है ॥ १३ ॥ तब उस दुरात्मा दक्षके वचन सुनकर महातेजस्वी वीरभद्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे ॥ १४ ॥ हँसतेहुए उस दक्ष और देवता ऋत्विजोंको देखकर अर्थयुक्त सम्भ्रांतिहीन उचित वचन बोले ॥ १५ ॥ वीरभद्र बोले, हम सब अमितपराक्रमी शिवजीके

अग्नयो नैव दीप्यंते न च दीप्यति भास्करः ॥ ग्रहाश्च न प्रकाशंते नक्षत्राणि च तारकाः ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञवाटं तदुज्ज्वलम् ॥ संप्राप भगवान्भद्रो भद्रैश्च सह भद्रया ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा भीतभीतोऽपि दक्षो दृढ इव स्थितः ॥ क्रुद्धवद्वचनं प्राह को भवान् किमिहेच्छसि ॥ १३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षस्य च दुरात्मनः ॥ वीरभद्रो महातेजा मेघगंभीरनिस्स्वनः ॥ १४ ॥ स्मयन्निव तमालोक्य दक्षं देवाश्च ऋत्विजः ॥ अर्थगर्भमसंभ्रान्तमवोचदुचितं वचः ॥ १५ ॥ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः ॥ भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागो नस्संप्रदीयताम् ॥ १६ ॥ अथ चेदध्वरेऽस्माकं न भागः परिकल्पितः ॥ कथ्यतां कारणं तत्र युध्यतां वा मयामरैः ॥ १७ ॥ इत्युक्तास्ते गणेंद्रेण देवा दक्षपुरोगमाः ॥ ऊचुर्मन्त्राः प्रमाणं नो न वयं प्रभवस्त्विति ॥ ॥ १८ ॥ मन्त्रा ऊचुस्सुरा यूयं मोहोपहतचेतसः ॥ येन प्रथमभागार्हं न यजध्वं महेश्वरम् ॥ १९ ॥ मंत्रोक्ता अपि ते देवाः सर्वे संमूढचेतसः ॥ भद्राय न ददुर्भागं तत्प्रहाणमभीप्सवः ॥ २० ॥

अनुचरहैं; अपने भागकी इच्छासे आयेहैं सो आप हमारा भाग दीजिये ॥ १६ ॥ और जो हमारा भाग इसमें नहीं कल्पित किया है तौ कारण क्या है ? यदि भाग न दो तौ हमारे साथ युद्ध करो ॥ १७ ॥ जब वीरभद्रने ऐसा कहा तो वे दक्षको आदि लेकर सब देवता कहनेलगे कि यज्ञकर्मके साधनरूप वेदमन्त्र हमको प्रमाण हैं हम स्वयं यज्ञमें भागविधान नहीं करसकते ॥ १८ ॥ उस समय मंत्र कहनेलगे हे देवताओ ! तुम अन्धकारयुक्त चित्तवाले हो जिससे प्रथमभागके उचित महेश्वरका भाग प्रदान नहीं किया ॥ १९ ॥ जब उन मंत्रोंने ऐसा कहा तब अज्ञानको प्राप्तहुए वे देवता वीरभद्रके प्रहारकी

इच्छा करके भाग न देतेहुए ॥२०॥ जब अत्यन्त श्रेष्ठ सत्यतायुक्त मंत्रोंका वाक्यभी वृथा हुआ तब वे मन्त्र सनातन ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ २१ ॥
तब वीरभद्रने विष्णु आदि सब देवताओंसे कहा तुमने बलसे गर्वित होकर मन्त्रोंका प्रमाण न किया ॥ २२ ॥ जिस कारणसे कि इस यज्ञमें तुमने हमारा
तिरस्कार किया है, इस कारण जीवनके सहित मैं तुम्हारा गर्व नष्ट करूंगा ॥ २३ ॥ यह कह भगवान् क्रोधकर नेत्रकी अग्निसे जलानेलगे, वह यज्ञवाट
और अन्नके ढेर त्रिपुरके समान भस्म होने लगे ॥ २४ ॥ तब वे सब गणेश्वर पर्वतके समान शरीरवाले उन स्तम्भोंको उखाड कर हवन करनेवालोंके

यदा तथ्यं च पथ्यं च स्ववाक्यं तद्वृथाऽभवत् ॥ तदा ततो ययुर्मंदा ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २१ ॥ अथोवाच गणाध्यक्षो देवा
न्विष्णुपुरोगमान् ॥ मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः ॥ २२ ॥ यस्मादस्मिन् मखे देवैरित्थं वयमसत्कृताः ॥ तस्माद्वो
जीवितैस्सार्द्धमपनेष्यामि गर्वितम् ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् क्रुद्धो व्यदहन्नेत्रवह्निना ॥ यक्षवाटं महाकूटं यथातिस्रः पुरो हरः ॥
॥ २४ ॥ ततो गणेश्वरास्सर्वे पर्वतोदग्रविग्रहाः ॥ यूपानुत्पाट्य होतॄणां कंठेष्वाबध्य रज्जुभिः ॥ २५ ॥ यज्ञपात्राणि चित्राणि
भित्त्वा संचूर्ण्य वारिणि ॥ गृहीत्वा चैव यज्ञांगं गंगास्रोतसि चिक्षिपुः ॥ २६ ॥ तत्र दिव्यान्नपानानां राशयः पर्वतोपमाः ॥
क्षीरनद्योऽमृतस्रावाः सुस्निग्धदधिकर्दमाः ॥ २७ ॥ उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि सुरभीणि च ॥ रसवन्ति च पानानि लेह्यचो
ष्याणि तानि वै ॥ २८ ॥ वीरास्तद्भुंजते वक्रैर्विलुंपंति क्षिपंति च ॥ वज्रैश्चक्रैर्महाशूलैश्शक्तिभिः पाशपट्टिशैः ॥ २९ ॥ मुसलैर
सिभिष्टंकैर्भिंदिपालैः परश्वधैः ॥ उद्धतांस्त्रिदशान्सर्वाँल्लोकपालपुरस्सरान् ॥ ३० ॥

कंठमें रस्सीसे बाँधने लगे ॥ २५ ॥ जितने यज्ञपात्र चित्र विचित्र थे उन सबको तोड फाड कर जलमें डालदिया, और यज्ञका अंग (वा अश्व) ग्रहण
करके गंगाके स्रोतमें डालदिया ॥ २६ ॥ और जो दिव्य अन्न और पानके ढेर पडे थे दूधकी नदी अमृतरसभरी और दधिकी कुल्या ॥ २७ ॥ अनेक
प्रकारके मांस मनोहर सुगन्धिवाले भोज्यपदार्थ रसयुक्त पीनेके पदार्थ लेह्य और चोष्य पदार्थ ॥ २८ ॥ इन सबको वीरभद्रके अनुचर खाने और फेंकने
लगे, वज्र चक्र महाशूल शक्ति प्राश पट्टिश ॥२९॥ मूसल असि (तलवार) टंक भिन्दिपाल परशे उठायेहुए लोकपालादि सहित सब देवताओंको ॥ ३० ॥

वे वीरभद्रके अंगसे उत्पन्न हुए बली बीर चूर्ण करनेलगे, छेदन करो, भेदन करो, नष्ट करो शीघ्र विदीर्ण करो ॥ ३१ ॥ हरण करो, प्रहार करो, पाटदो,
नष्ट करो, इस प्रकार शूरोंके कानोंको भयदायक शब्द होने लगे ॥ ३२ ॥ जहाँ तहाँ समरमें गणोंके शब्द होनेलगे, किसीके फैलेहुए नेत्र दाँत
ओठ तालू टूटेहुए ॥ ३३ ॥ आश्रमोंसे खैंचकर तपस्वियोंको मारने लगे; स्रुवोंको लेकर अग्नि और जलमें डालदिया ॥ ३४ ॥ कलशोंको भेदन छेदन
कर मणिवेदी नष्ट करदी, गाते शब्द करते और बारंबार हंसतेहैं, रुधिररूपी सुराको पान करतेहुए वे श्रेष्ठ गण नृत्य करने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार इन्द्रके

बिभिदुर्बलिनो वीरा वीरभद्रांगसंभवाः ॥ छिंधि भिंधि क्षिप क्षिप्रं मार्यतां दार्यतामिति ॥ ३१ ॥ हरस्व प्रहरस्वेति पाटयोत्पाटयेति
च ॥ संरंभप्रभवाः क्रूराश्शब्दाः श्रवणशंकवः ॥ ३२ ॥ यत्रतत्र गणेशानां जज्ञिरे समरोचिताः ॥ विवृत्तनयनाः केचिद्दष्टदंष्ट्रोष्ठता
लवः ॥ ३३ ॥ आश्रमस्थान्समाकृष्य मारयन्ति तपोधनान् ॥ स्रुवानपहरन्तश्च क्षिपन्तोग्निं जलेषु च ॥ ३४ ॥ कलशानपि भिन्दंत
श्छिदंतो मणिवेदिकाः ॥ गायंतश्च नदन्तश्च हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ रक्तासवं पिबन्तश्च ननृतुर्गणपुंगवाः ॥ ३५ ॥ निर्मथ्य सेंद्रानमरान्
गणेन्द्रान्वृषेन्द्रनागेन्द्रमृगेन्द्रसाराः ॥ चक्रुर्बहून्यप्रतिमप्रभावाः सहर्षरोमाणि विचेष्टितानि ॥ ३६ ॥ नन्दंति केचित्प्रहरन्ति केचि
द्धावन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ॥ नृत्यन्ति केचिद्विहसन्ति केचिद्वलगन्ति केचित्प्रमथा बलेन ॥ ३७ ॥ केचिज्जिघृक्षंति घनान्स
तोयान्केचिद्ग्रहीतुं रविमुत्पतंति ॥ केंचित्प्रसर्तुं पवनेन सार्द्धमिच्छंति भीमाः प्रमथा वियत्स्थाः ॥ ३८ ॥ आक्षिप्य केचिच्च वरायुधानि महा
भुजंगानिव वैनतेयाः ॥ भ्रमंति देवानपि विद्रवंतः खमंडले पर्वतकूटकल्पाः ॥ ३९ ॥

सहित सब देवताओंको वह वृषेन्द्र हाथी और सिंहके समान पराक्रमवाले पीडन करके अनेक ऐसी चेष्टा करनेलगे कि जिससे रुएं खडे होजातेथे ॥ ३६ ॥
कोई शब्द करते, कोई प्रहार करते, कोई दौडते, कोई प्रलाप करते कोई नाचते, कोई हंसते, कोई गण अपशब्द करते ॥ ३७ ॥ कोई मदसे कोई
जलवाले मेघोंको सूंघते, कोई सूर्यके पकडनेको आकाशमें कूदते, कोई पवनके साथ चलनेकी इच्छा करतेथे; कोई बडे भयंकर गण आकाशमें स्थित
हुए ॥ ३८ ॥ कोई श्रेष्ठ आयुध धारण करके ऐसे चलतेथे जैसे गरुड सर्पोंको लियेजातेहैं, कोई देवताओंको विद्रावित करते घूमने लगे, कोई आकाश

मंडलमें पर्वतके समान स्थित हुए ॥३९॥ कोई घर उखाड २ कर उनके झरोखे और वेदी नष्ट करने लगे, यह सब वस्तु जलोंमें डालकर वे प्रलयकालके मेघके समान गण शब्द करनेलगे ॥ ४० ॥ द्वारोंके किवाड चौखट उखाडकर दिवाल और शाला विध्वंस करनेलगे तथा वलभी (जिससे ढकाजाताहै) गोपानसी छज्जा और झरोखे सब नष्ट करदिये अहो ! यज्ञवाट नष्ट किया गया यह अनाप्तवाक्यके समान सब अर्थशून्य हुआ ॥ ४१ ॥ हा नाथ ! तात ! पिता ! पुत्र ! भ्राता ! माता ! मातुल ! सब ऐसा शब्द करनेलगे, जब इस प्रकारसे घर तोडेगये तो स्त्री अनेक प्रकारसे अनाथवत् शब्द करनेलगीं ॥४२॥

उत्पाट्य चोत्पाट्य गृहाणि केचित्सजालवातायनवेदिकानि ॥ विक्षिप्यविक्षिप्य जलस्य मध्ये कालांबुदाभाः प्रमथा निनेदुः ॥ ४० ॥ उद्वर्तितद्वारकपाटकुड्यं विध्वस्तशालावलभीगवाक्षम् ॥ अहो बताभज्यत यज्ञवाटमनाथवद्वाक्यमिवायथार्थम् ॥ ४१ ॥ हा नाथ तातेति पितः सुतेति भ्रातर्ममाम्बेति च मातुलेति ॥ उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्यो ह्यनाथशब्दान्बहुशः प्रचक्रुः ॥ ४२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे यज्ञविध्वंसनो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ततस्त्रिदशमुख्यास्ते विष्णुशक्रपुरोगमाः ॥ सर्वे भयपरित्रस्ता दुद्रुवुर्भयविह्वलाः ॥१॥ निजैरदूषितैरंगैर्दृष्ट्वा देवानुपद्रुतान् ॥ दंड्यानदंडितान्मत्वा चुकोप गणपुंगवः ॥ २ ॥ ततस्त्रिशूलमादाय शर्वशक्तिनिबर्हणम् ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्महाबाहुर्मुखाज्ज्वालाः समुत्सृजन् ॥ ३ ॥ अमरानपि दुद्राव द्विरदानिव केसरी ॥ तानभिद्रवतस्तस्य गमनं सुमनोहरम् ॥ ४ ॥ वारणस्येव मत्तस्य जगाम प्रेक्षणीयताम् ॥ ततस्तत्क्षोभयामास महत्सुरबलं बली ॥ ५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षयज्ञमथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥ वायु बोले, तब विष्णु इन्द्र आदिके सहित वे सम्पूर्ण देवता सब भयसे व्याकुल हो पलायन करनेलगे ॥ १ ॥ अनेक अदूषित अंगोंसे देवताओंको पलायन करता देखकर दण्ड देनेयोग्योंको दंडित न देख वीरभद्रने क्रोध किया ॥ २ ॥ तब सब शक्ति दूर करनेवाले त्रिशूलको धारण कर ऊपरको दृष्टि किये महाभुजावाले मुखसे आग निकालतेहुए ॥ ३ ॥ देवताओंपर ऐसे दौडे जिस प्रकार सिंह हाथियोंपर दौडताहै, जिस समय उनके ऊपर चले तौ उनका मनोहर गमन ॥ ४ ॥ मतवाले हाथीके समान देखने

योग्य होगया, तब उस बलीने देवताओंका बल क्षुभित करदिया ॥ ५ ॥ जिस प्रकार महाबली मत्त हाथी महासरोवरको मथन करके नील पाण्डुर और
लोहित वर्ण करदेताहै ॥ ६ ॥ इस प्रकार व्याघ्र चर्म ओढे सुवर्णके तार लगेहुए छेदन भेदन मारन दारन और नष्ट भ्रष्ट तथा मथन करतेहुए ॥ ७ ॥
वीरभद्र कांसमें लगीहुई अग्निके समान देवताओंमें विचरनेलगे, उस २ स्थानमें महावेगसे शूल धारणकर विचरतेहुए ॥ ८ ॥ उस एक वीरभद्रको सब
देवता सहस्रके समान मानने लगे; इधर भद्रकाली क्रोधकर युद्धमें मत्त होगई ॥९॥ अग्नि निकलतेहुए शूलसे देवताओंको युद्धमें मारनेलगी; उसके साथ

महासरोवरं यद्वन्मत्तो वारणयूथपः ॥ विकुर्वन्बहुधा वर्णान्नीलपांडुरलोहितान् ॥ ६ ॥ बिभ्रद्व्याघ्राजिनं वासो हेमप्रवरतारकम् ॥ छिन्द
न्भिन्दन्नदाक्छिन्दन्दारयन्प्रमथन्नपि ॥७॥ व्यचरद्देवसंघेषु भद्रोऽग्निरिव कक्षगः ॥ तत्रतत्र महावेगाच्चरंतं शूलधारिणम् ॥ ८ ॥ तमेकं
त्रिदशाः सर्वे सहस्रमिव मेनिरे ॥ भद्रकाली च संक्रुद्धा युद्धवृद्धमदोद्धता ॥ ९ ॥ मुक्तज्वालेन शूलेन निर्बिभेद रणे सुरान् ॥ स तया
रुरुचे भद्रो रुद्रकोपसमुद्भवः ॥ १० ॥ प्रभयेव युगांताग्निश्चलया धूमधूम्रया ॥ भद्राकाली तदा युद्धे विद्रुतत्रिदशा बभौ ॥११॥ कल्पे
शे ।नलज्वालादग्धाविश्वजगद्यथा ॥ तदा सवाजिनं सूर्यं रुद्रान्रुद्रगणाग्रणीः ॥ १२ ॥ भद्रो मूर्ध्नि जघानाशु वामपादेन लीलया ॥
असिभिः पावकं भद्रः पट्टिशैस्तु यमं यमी ॥ १३ ॥ रुद्रान्दृढेन शूलेन मुद्गरैर्वरुणं दृढैः ॥ परिघैर्निर्ऋतिं वायुं टंकैष्टंकधरः स्वयम् ॥
॥ १४ ॥ निर्बिभेद रणे वीरो लीलयैव गणेश्वरः ॥ सर्वान्देवगणान्सद्यो मुनीञ्छंभोर्विरोधिनः ॥ १५ ॥

शिवजीके क्रोधसे उत्पन्नहुए वीरभद्र क्रोधित हुए ॥ १० ॥ धूमसे धूम्र हुए युगान्त अग्निकी प्रभाके समान भद्रकाली युद्धमें देवताओंको विद्रावित करती
शोभित हुई ॥ ११ ॥ जिस प्रकार कल्पाग्निसे जगत् नष्ट होजाताहै जिस प्रकार वह रुद्रके गणोंमें अग्रणीने घोडे सहित सूर्यपर ॥ १२ ॥ बायें चरणसे
खेलसेही शिरमें प्रहार किया; तलवारसे पावक, और पट्टिशसे यमको ॥ १३ ॥ दृढ शूलसे रुद्रोंको, मुद्गरसे वरुणको, परिघसे निर्ऋतिको, टंकसे वायुको, उस
टंकधरने प्रहार किया ॥१४॥ इस प्रकार उस गणेश्वरने लीलासेही सबको विदीर्ण किया; जो शिवजीसे विरोध करनेवाले थे उन सबको नष्ट किया ॥१५॥

तब सरस्वतीके शोभायमान नासिकाके अग्रभागको और देवताओंकी माता अदितिके हाथके अग्रभाग छेदन करदिये ॥ १६ ॥ इस प्रकार अग्निकी भुजा कुठारसे काटडाली और अग्निकी दो अंगुल जिह्वाको छेदन कर हविमें डालदिया ॥ १७ ॥ और वीरभद्रने इसी प्रकार स्वाहादेवीके दक्षिण नासापुटको काटलिया और वायें स्तनका चूचुक काटलिया ॥ १८ ॥ और भगदेवताके कमलपत्रके समान बडे वेगसे वीरभद्रने नेत्र उखाड डाले ॥ १९ ॥ और पूषादेवताकी मुक्तावलीके समान दांतोंकी पंक्ति धनुषकी कोटिसे तोड डाली, इस कारण वह स्पष्ट वचन बोलनेमें असमर्थ होगये ॥ २० ॥ फिर चन्द्रमा

ततो देवः सरस्वत्या नासिकाग्रं सुशोभनम् ॥ चिच्छेद करजाग्रेण देवमातुस्तथैव च ॥१६॥ चिच्छेद च कुठारेण बाहुदंडं विभावसोः॥
अग्रतो द्व्यंगुलां जिह्वां मातुर्देव्या लुलाव च॥ १७ ॥ स्वाहादेव्यास्तथा देवो दक्षिणं नासिकापुटम् ॥ चकर्त करजाग्रेण वामं च
स्तनचूचुकम् ॥ १८ ॥ भगस्य विपुले नेत्रे शतपत्रसमप्रभे ॥ प्रसह्योत्पाटयामास भद्रः परमवेगवान् ॥ १९ ॥ पूष्णो दशनरेखां च
दीप्तां मुक्तावलीमिव ॥ जघान धनुषः कोट्या स तेनास्पष्टवागभूत् ॥ २० ॥ ततश्चंद्रमसं देवः पादांगुष्ठेन लीलया ॥ क्षणं कृमिवदा
क्रम्य घर्षयामास भूतले ॥ २१ ॥ शिरश्चिच्छेद दक्षस्य भद्रः परमकोपतः ॥ क्रोशंत्यामेव वैरिण्यां भद्रकाल्यै ददौ च तत् ॥ २२ ॥
तत्प्रहृष्टा समादाय शिरस्तालफलोपमम् ॥ सा देवी कदुकक्रीडां चकार समरांगणे ॥ २३ ॥ ततो दक्षस्य यज्ञस्त्री कुशीला भर्तृभि
र्यथा ॥ पादाभ्यां चैव हस्ताभ्यां हन्यते स्म गणेश्वरैः ॥ २४ ॥ अरिष्टनेमिनं सोमं धर्मं चैव प्रजापतिम् ॥ बहुपुत्रं चांगिरसं कृशाश्वं
काश्यपं तथा ॥ २५ ॥ गले प्रगृह्य बलिनो गणपाः सिंहविक्रमाः ॥ भर्त्सयंतो भृशं वाग्भिर्निजघ्नुर्मूर्ध्नि मुष्टिभिः ॥ २६ ॥

देवताको चरणके अंगूठेसे ही लीलासे कीटके समान पृथ्वीमें घुमानेलगे ॥ २१ ॥ और फिर दक्षका शिर वीरभद्रने छेदन करडाला, वैरिणी दक्षपत्नीके हाहाकार करनेपरभी उस शिरको भद्रकालीको दिया ॥ २२ ॥ उसने तालफलके समान वह शिर लेकर बडा आनन्द माना उस शिरसे देवी उस समरमें गेंदका खेल करनेलगी ॥ २३ ॥ तब कुशीला स्त्रीके समान दक्षकी स्त्री हाथ और पैरोंसे गणेश्वरोंसे ताडित होनेलगी ॥ २४ ॥ अरिष्टनेमि सोम धर्म और प्रजापतिको बहुत पुत्रवाले अंगिरस भृशाश्व कश्यप इन ऋषियोंका ॥ २५ ॥ सिंहके समान महाबली गण गला पकडकर वाणीसे भर्त्सना करते और

शिरमें घूंसे मारने लगे ॥ २६ ॥ भूत वेतालोंसे धर्षित हुए स्त्री पुत्र और कुटुम्ब ऐसे व्याकुल हुए जैसे कलियुगमें जार बलसे कुलस्त्रियोंको नष्ट करतेहैं
॥ २७ ॥ वह कलशोंके टूटने और स्तम्भोंके भग्न होनेसे आनन्दहीन स्थान होगया, महाशाला जलने लगी द्वारेकी तोरण तोड डाली गई ॥ २८ ॥
देवताओंकी सेना छिन्नभिन्न और तपस्वी ताडित हुए, वेदके शब्दसे शान्त मनुष्योंसे हीन ॥ २९ ॥ आतुर स्त्रियोंसे क्रन्दमान सम्पूर्ण यज्ञ सम्भारसे हीन
वह नष्ट भ्रष्ट हुआ यज्ञस्थान शून्य वनके समान होगया ॥ ३० ॥ शूलके वेगसे नष्ट हो किसीकी बाहु किसीकी छाती नष्ट होगई कोई कोई शिर टूटनेसे

धर्षिता भूतवेतालैर्दारास्सुतपरिग्रहाः ॥ यथा कलियुगे जारैर्बलेन कुलयोषितः ॥ २७ ॥ तच्च विध्वस्तकलशं भग्नयूपं गतोत्सवम् ॥
प्रदीपितमहाशालं प्रभिन्नद्वारतोरणम् ॥ २८ ॥ उत्पाटितसुरानीकं हन्यमानं तपोधनम् ॥ प्रशान्तब्रह्मनिर्घोषं प्रक्षीणजनसंचयम् ॥
॥ २९ ॥ क्रन्दमानातुरस्त्रीकं हताशेषपरिच्छदम् ॥ शून्यारण्यनिभं जज्ञे यज्ञवाटं तदार्दितम् ॥ ३० ॥ शूलवेगप्ररुग्णाश्च भिन्नबाहूरु
वक्षसः ॥ विनिकृत्तोत्तमांगाश्च पेतुरुर्व्यां सुरोत्तमाः ॥ ३१ ॥ हतेषु तेषु देवेषु पतितेषु सहस्रशः ॥ प्रविवेश गणेशानः क्षणादाहवनी
यकम् ॥ ३२ ॥ प्रविष्टमथ तं दृष्ट्वा भद्रं कालाग्निसंनिभम् ॥ दुद्राव मरणाद्भीतो यज्ञो मृगवपुर्धरः ॥ ३३ ॥ स विस्फार्य्य महच्चापं
दृढज्याघोषभीषणम् ॥ भद्रस्तमभिदुद्राव विक्षिपन्नेव सायकान् ॥ ३४ ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्टं धनुरम्बुदसंनिभम् ॥ नादयामास च
ज्यां द्यां खं च भूमिं च सर्वशः ॥ ३५ ॥ तमुपश्रुत्य सन्नादं हतोऽस्मीत्येव विह्वलम् ॥ शरेणार्धेन वक्रेण स वीरोऽध्वरपूरुषम् ॥३६॥

पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सहस्रों देवताओंके पतित होनेमें गणेश क्षणमात्रमें यज्ञस्थानमें आये जहाँ अग्नि प्रज्वलित होगई थी ॥ ३२ ॥
उन कालाग्निके समान रुद्रको प्रवेश करताहुआ देखकर यज्ञ मरणके भयसे मृगरूप धारणकर पलायन करगया ॥ ३३ ॥ तब वह दृढ धनुषको धारण कर
बाण छोडतेहुए वीरभद्र उसके पीछे हुए ॥ ३४ ॥ जिस समय मेघके समान धनुष कर्णपर्यन्त खैंचा उस शब्दसे दिशा और भूमि शब्दायमान होगई ॥
॥ ३५ ॥ उस शब्दको सुनकर मैं मरा यह कहकर यज्ञ विह्वल होगया, जब वीरभद्रने अर्द्धचन्द्र बाणसे मृगरूपसे धावमान होतेहुए ॥ ३६ ॥

महाभयसे चरणस्खलित होते कम्पायमान होते कान्तिहीन यज्ञपुरुषका शिर छेदनकर दिया ॥ ३७॥ इस प्रकार तब यज्ञपुरुषकी यह प्रथम अवज्ञा देख विष्णुजी
महाक्रोधकर युद्ध करनेको उद्यत हुए ॥ ३८ ॥ तब उनको सब पक्षियोंके राजा सर्पभोजी गरुडजी बडे वेगसे शिर झुकाय वहन करने लगे ॥ ३९ ॥
और इन्द्र आदि देवता जो मरनेसे शेष रहेथे वे सब विष्णुकी प्राणपनसे सहाय करनेलगे ॥ ४० ॥ वीरभद्रने विष्णुके साथ उन देवताओंको देख गीदडके
समान लघु जान निर्भय हो स्वयं सिंहके समान उनका हास्य किया ॥ ४१ ॥ इतिश्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे देवदण्डवर्णनं

महाभयस्खलत्पादं वेपन्तं विगतत्विषम् ॥ मृगरूपेण धावन्तं विशिरस्कं तदाकरोत् ॥ ३७ ॥ तमीदृशमवज्ञातं दृष्ट्वा वै सूर्यसंभवम् ॥
विष्णुः परमसंक्रुद्धो युद्धायाभवदुद्यतः ॥३८॥ तमुवाह महावेगात्स्कन्धेन नतसंधिना ॥ सर्वेषां वयसां राजा गरुडः पन्नगाशनः॥३९॥
देवाश्च हतशिष्टा ये देवराजपुरोगमाः ॥ प्रचक्रुस्तस्य साहाय्यं प्राणांस्त्यक्तुमिवोद्यताः ॥ ४० ॥ विष्णुना सहितान्देवान्मृगेन्द्रः क्रोष्टु
कानिव ॥ दृष्ट्वा जहास भूतेन्द्रो मृगेन्द्र इव विव्यथः ॥ ४१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवदंडवर्णनं
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ तस्मिन्नवसरे व्योम्नि समाविरभवद्रथः ॥ सहस्रसूर्यसंकाशश्चारुचीरवृषध्वजः ॥ १ ॥ अश्वरत्नद्वयोदारो
रथचक्रचतुष्टयः ॥ सञ्चितानेकदिव्यास्त्रशस्त्ररत्नपरिष्कृतः ॥ २ ॥ तस्यापि रथवर्यस्य स्यात्स एव हि सारथिः ॥ यथा च त्रैपुरे युद्धे
पूर्वं शार्वरथे स्थितः ॥ ३ ॥ स तं रथवरं ब्रह्मा शासनादेव शूलिनः ॥ हरेस्समीपमानीय कृताञ्जलिरभाषत ॥४॥ भगवन्भद्र भद्रांग
भगवानिन्दुभूषणः ॥ आज्ञापयति वीरस्त्वां रथमारोढुमव्ययः ॥ ५ ॥

नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उसी समय आकाशमें एक रथ प्रगट हुआ, सहस्र सूर्यके समान उसका प्रकाश सुन्दर वीर वृषकी ध्वजासे युक्त ॥ १ ॥
दो श्रेष्ठ घोडे उसमें जुतेहुए तीक्ष्ण चार पहिये अनेक दिव्य अस्त्रोंसे भरा और रत्नोंसे युक्त ॥ २ ॥ इस रथके ऊपर वही ब्रह्मा सारथि हुए थे ॥ ३ ॥
ब्रह्मा शिवजीकी आज्ञासे उस रथको लेकर विष्णुजीके निकट लाये हाथ जोडकर वीरभद्रसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् वीरभद्र ! कल्याणयुक्त इन्दुभूषण

भगवान् अविनाशी शिवने आपको रथपर चढनेकी आज्ञा की है ॥ ५ ॥ और रैभ्यके आश्रमके समीप पार्वतीके सहित शिवजी हे महाबाहो ! आपका दुःसह पराक्रम देखतेहैं ॥ ६ ॥ रणकुंजर वह वीर ब्रह्माके यह वचन सुनकर पितामहसे अनुगृहीत हो उस दिव्य रथपर चढे ॥ ७ ॥ जब उस श्रेष्ठ रथपर ब्रह्मा सारथि स्थित हुए तब वीरभद्रकीशोभा त्रिपुरारीके समान बढनेलगी ॥८॥ तब चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्वल अपना दीप्तिमान् शंख महाबली भानुकंपने मुखपर रखकर बजाया ॥ ९ ॥ उस शंखका सागरके समान महा शब्द सुनतेही देवताओंकी जठरानल भयसे बल उठी ॥ १० ॥ यक्ष, विद्याधर, सर्प,

रैभ्याश्रमसमीपस्थस्त्र्यंबकोंऽबिकया सह ॥ सम्पश्यते महाबाहो दुस्सहं ते पराक्रमम् ॥६॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स वीरो गणकुंजरः ॥ आरुरोह रथं दिव्यमनुगृह्य पितामहम् ॥७॥ तथा रथवरे तस्मिन्स्थिते ब्रह्मणि सारथौ ॥ भद्रस्य ववृधे लक्ष्मी रुद्रस्येव पुरद्विषः ॥ ॥ ८ ॥ ततः शंखवरं दीप्तं पूर्णचंद्रसमप्रभम् ॥ प्रदध्मौ वदने कृत्वा भानुकंपो महाबलः ॥ ९ ॥ तस्य शंखस्य तं नादं भिन्नसारससंन्निभम् ॥ श्रुत्वा भयेन देवानां जज्वाल जठरानलः ॥ १० ॥ यक्षविद्याधराहीन्द्रैः सिद्धैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥ क्षणेन निबडीभूताः साकाशविवरा दिशः ॥ ११ ॥ ततः शार्ङ्गेण चापाङ्कात्स नारायणनीरदः ॥ महता बाणवर्षेण तुतोद गणगोवृषम् ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा विष्णुमायांतं शतधा बाणवर्षिणम् ॥ स चाददे धनुर्जैत्रं भद्रो बाणसहस्रमुक् ॥ १३ ॥ समादाय च तद्दिव्यं धनुस्समरभैरवम् ॥ शनैर्विस्फारयामास मेरुं धनुरिवेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्य विस्फार्य्यमाणस्य धनुषोऽभून्महास्वनः ॥ तेन स्वनेन महता पृथिवीं समकंपयत् ॥ १५ ॥ ततः शरवरं घोरं दीप्तमाशीविषोपमम् ॥ जग्राह गणपः श्रीमान्स्वयमुग्रपराक्रमः ॥ १६ ॥

सिद्ध, वह युद्ध देखनेको क्षणमात्रमें स्थित हुए जिससे आकाश भर गया ॥ ११ ॥ तब नारायणने शार्ङ्गधनुष चढाकर बाणोंकी धारसे उस वीरभद्रको व्याकुल करना प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ सैकडों बाण छोडतेहुए विष्णुको आता देख वीरभद्रने सहस्र बाण छोडनेवाला जैत्र धनुष धारण किया॥ १३ ॥ और उस दिव्यसमरमें भयंकर रूप धारणकर शनैःशनैः धनुषको विस्फारण करनेलगा मानो ईश्वर धनुषके समान मेरु धारण करतेहैं ॥ १४ ॥ उसके धनुष चढानेका महाशब्द हुआ, जिस शब्दसे पृथ्वी कांपगई ॥ १५ ॥ तब दीप्तिमान् सर्पके समान भयंकर बांण बडे पराक्रमी श्रीमान् गणराजने ग्रहण किया ॥ १६ ॥

बाण निकालनेमें उनकी भुजा और तरकसकी ओरं वीरभद्रका मुख था, तब यह विदित होताथा मानो बिलमेंसे महासर्प निकलनेकी इच्छा करतेहैं ॥१७॥ वह उस समय उनके हाथमें निकालाहुआ बाण महा शोभित हुआ, जैसे बालसर्प महासर्पसे पकडाहो ॥ १८ ॥ रुद्रके समान पराक्रमी वीरभद्रने महा तीक्ष्णबाणसे क्रोधकर विष्णुके ललाटमें आघात किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार ललाटमें ताडित हो पूर्वसे अवमानित हुए विष्णु वीरभद्रपर क्रोधित हुए, जैसे सिंहपर वृषभ क्रोधित हो ॥२०॥ तब विष्णुने वज्रके समान कठिन बाणसे इन गणराजकी भुजंगराजके समान महा भुजाओंमें आघात किया ॥२१॥

बाणोद्धारे भुजो ह्यस्य तूणीवदनसंगतः ॥ प्रत्यदृश्यत वल्मीकं विवेक्षुरिव पन्नगः ॥ १७ ॥ समुद्धृतः करे तस्य तत्क्षणं रुरुचे शरः ॥ महाभुजंगसंदष्टो यथा बालभुजङ्गमः ॥१८॥ शरेण घनतीव्रेण भद्रो रुद्रपराक्रमः ॥ विव्याध कुपितो गाढं ललाटे विष्णुमव्ययम् ॥ ॥ १९ ॥ ललाटेऽभिहतो विष्णुः पूर्वमेवावमानितः ॥ चुकोप गणपेंद्राय मृगेंद्रायेव गोवृषः ॥ २० ॥ ततस्त्वशनिकल्पेन क्रूरास्येन महेषुणा ॥ विव्याध गणराजस्य भुजे भुजगसन्निभे ॥२१॥ सोऽपि तस्य भुजे भूयः सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ विससर्ज शरं वेगाद्वीरभद्रो महाबलः ॥ २२ ॥ स च विष्णुः पुनर्भद्रं भद्रो विष्णुं तथा पुनः ॥ स च तं स च तं विप्राश्शरैस्तावनुजघ्नतुः ॥ २३ ॥ तयोः परस्परं वेगाच्छरानाशु विमुंचतोः ॥ द्वयोस्समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा तुमुलं युद्धं तयोरेव परस्परम् ॥ हाहाकारो महानासीदाकशे खेचरेरितः ॥ २५ ॥ ततस्त्वनलतुंडेन शरेणादित्यवर्चसा ॥ विव्याध सुदृढं भद्रो विष्णोर्महति वक्षसि ॥ ॥ २६ ॥ स तु तीव्रप्रपातेन शरेण दृढमाहतः ॥ महतीं रुजमासाद्य निपपात विमोहितः ॥ २७ ॥

तब वीरभद्रनेभी सूर्यके समान प्रकाशमान अपनी भुजासे शीघ्रगामी बाण छोडा ॥ २२ ॥ इस प्रकार विष्णु वीरभद्रको वीरभद्र विष्णुको बाणोंसे परस्पर ताडित करनेलगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार परस्पर महावेगसे बाण छोडतेहुए उनका महा भयंकर रोमहर्षण युद्ध होनेलगा ॥ २४ ॥ उन दोनों जयकी इच्छा करनेवालोंका भयंकर युद्ध देखकर आकाशमें आकाशगामी जीवोंका महा हाहाकार होनेलगा ॥ २५ ॥ तब अग्नि और सूर्यके समान तेजवाले बाणसे वीरभद्रने विष्णुकी छातीमें आघात किया ॥ २६ ॥ तब विष्णुजी उस बाणके महातीक्ष्ण आघातसे दृढजीवित होकरभी मोहित हो पृथ्वीमें गिरे ॥२७॥

फिर एक क्षणमात्रमें संज्ञाको प्राप्त हो विष्णुजी उठे, और वीरभद्रके ऊपर सब दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करनेलगे ॥ २८ ॥ वीरभद्रने विष्णुके धनुषसे छूटेहुए उन सब अस्त्रोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे एक साथ निवारण करदिया ॥ २९ ॥ तब विष्णुने अपने नामसे अंकित जो कहीं भी हत न हुआ ऐसा बाण क्रोधसे लालनेत्रकर वीरभद्रके ऊपर छोडा वीरभद्रने उस बाणको अपने भद्रनाम बाणसे ॥ ३० ॥ विदीर्ण कर उसके सौ खण्ड करदिये; और अपने निकट आने न देकर मार्गमें नष्ट करदिया फिर एक बाणसे शार्ङ्गधनुष, दो बाणोंसे गरुडको ॥ ३१ ॥ एक निमेषान्तरमें छेदन करदिया, यह बात अद्भुत हुई, तब

पुनः क्षणादिवोत्थाय लब्धसंज्ञस्तदा हरिः ॥ सर्व्याण्यपि च दिव्यास्त्राण्यथैनं प्रत्यवासृजत् ॥ २८ ॥ स च विष्णुर्धनुर्मुक्तान्सर्वाञ्छर्व
चमूपतिः ॥ सहसा वारयामास घोरैः प्रतिशरैः शरान् ॥ २९ ॥ ततो विष्णुस्स्वनामांकं बाणमव्याहतं क्वचित् ॥ ससर्ज क्रोधरक्ता
क्षस्तमुद्दिश्य गणेश्वरम् ॥ तं बाणं बाणवर्येण भद्रो भद्राह्वयेण तु ॥ ३० ॥ अप्राप्तमेव भगवांश्चिच्छेद शतधा पथि ॥ अथैकेनेषुणा
शार्ङ्गं द्वाभ्यां पक्षौ गरुत्मतः ॥ ३१ ॥ निमेषादेव चिच्छेद तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततो योगबलाद्विष्णुर्देहाद्देवान्सुदारुणान् ॥ ३२ ॥
शंखचक्रगदाहस्तान् विससर्ज सहस्रशः ॥ सर्वांस्तान्क्षणमात्रेण त्रैपुरानिव शंकरः ॥ ३३ ॥ निर्ददाह महाबाहुर्नेत्रसृष्टेन वह्निना ॥
ततः क्रुद्धतरो विष्णुश्चक्रमुद्यम्य सत्वरः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्वीरे समुत्स्रष्टुं तदानीमुद्यतोऽभवत् ॥ तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य पुरतः समुप
स्थितम् ॥ ३५ ॥ स्मयन्निव गणेशानो व्यष्टंभयदयत्नतः ॥ स्तंभितांगस्तु तच्चक्रं घोरमप्रतिमं क्वचित् ॥ ३६ ॥ इच्छन्नपि समुत्स्रष्टुं
न विष्णुरभवत्क्षमः ॥ श्वसन्निवैकमुद्धृत्य बाहुं चक्रसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

विष्णु भगवानने योगबलसे अपने शरीरसे बडे दारुण ॥ ३२ ॥ शंख चक्र गदा धारणकिये सहस्रों देवता उत्पन्न किये, जिस प्रकार शिवने त्रिपुरका दाह कियाथा इस प्रकार क्षणमें वीरभद्रने ॥ ३३ ॥ नेत्राग्निसे उनको भस्म करदिया; तब क्रोधकर विष्णु भगवानने चक्र धारण किया ॥ ३४ ॥ और उस वीरके ऊपर छोडनेकी इच्छा की उस चक्रका अपने सामने स्थित देख ॥ ३५ ॥ वीरभद्र हँसतेहुए यत्नविनाही स्थित रहे, वह महाघोर चक्र जिसकी समान कोई नहीं था; उसे धारण करतेही विष्णुका अंग स्तंभित होगया ॥ ३६ ॥ और इच्छा करकेभी उस चक्रके छोडनेको समर्थ न हुए, शब्द करतेहुए एक

भुजासे उस चक्रको उठाये ॥ ३७ ॥ विष्णुजी आलसयुक्त हो पाषाणकी समान निश्चल हुए, जैसे शरीररहित जीव शृंगरहित बैल ॥ ३८ ॥ डाढरहित जैसे सिंह इसी प्रकारसे विष्णुजी स्थित हुए, इन्द्रादि देवता विष्णुजीको ऐसी दशामें देख वीरभद्रसे ऐसे बद्ध होगये जैसे वृषभ सिंहसे बद्ध होजातेहैं ॥ ॥ ३९ ॥ परन्तु क्रोधकर फिर आयुधले वीरभद्रके सन्मुख हुए; इन्हें सिंहके समान वीरभद्रने क्षुद्र मृगोंकी समान देखकर ॥ ४० ॥ साक्षात् शिवजीके शरीररूप वीरने अपने गणोंसे व्याप्त होकर घोर अट्टहाससे उनको स्तम्भित करदिया ॥ ४१ ॥ उस समय वज्रसहित इन्द्रका दहिना हाथ वज्र छोडनेकी

अतिष्ठदलसो भूत्वा पाषाण इव निश्चलः ॥ विशरीरो यथा जीवो विशृङ्गो वा यथा वृषः ॥ ३८ ॥ विदंष्ट्रश्च यथा सिंहस्तथा विष्णुरवस्थितः ॥ तं दृष्ट्वा दुर्दशापन्नं विष्णुमिंद्रादयः सुराः ॥ समुन्नद्धा गणेन्द्रेण मृगेंद्रेणेव गोवृषाः ॥ ३९ ॥ प्रगृहीतायुधा योद्धुं क्रुद्धाः समुपतस्थिरे ॥ तान्दृष्ट्वा समरे भद्रः क्षुद्रानिव हरिर्मृगान् ॥ ४० ॥ साक्षाद्रुद्रतनुर्वीरो वरवीरगणावृतः ॥ अट्टहासेन घोरेण व्यष्टंभयदर्निंदितः ॥ ४१ ॥ तथा शतमखस्यापि सवज्रो दक्षिणः करः ॥ सिसृक्षोरेव उद्धत्रश्चित्रीकृत इवाभवत् ॥ ४२ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां सरक्ता अपि बाहवः ॥ अलसानामिवारंभास्तादृशाः प्रतियांत्युत ॥ ४३ ॥ एवं भगवता तेन व्याहताशेषवैभावात् ॥ अमराः समरे तस्य पुरतः स्थातुमक्षमाः ॥४४॥ स्तब्धैरवयवैरेव दुद्रुवुर्भयविह्वलाः ॥ स्थितिं न चक्रिरे युद्धे वीरतेजोभयाकुलाः ॥ ४५ ॥ विद्रुतां त्रिदशान्वीरान्वीरभद्रो महाभुजः ॥ विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वर्षैरिवाचलान् ॥४६॥ बहवस्तस्य वीरस्य बाहवः परिघोपमाः ॥ शस्त्रैश्चकाशिरे दीप्तैः साग्निज्वाला इवोरगाः॥४७॥ अस्त्रशस्त्राण्यनेकानि स वीरो विसृजन्बभौ॥ विसृजन्सर्वभूतानि यथादौ विश्वसंभवः ॥४८॥

इच्छा करतेही चित्रकी समान होगया ॥ ४२ ॥ और सबकी भी भुजा आयुध उठायेहुए आलसी पुरुषोंकी समान स्तम्भित होगई ॥ ४३ ॥ इस प्रकार भगवान् वीरभद्रने उनके ऐश्वर्य नष्ट करदिये; तब युद्धमें देवता उनके सामने खडे न होसके ॥ ४४ ॥ और स्तब्ध अंग होजानेसे भयसे व्याकुल हो पलायन करनेलगे ॥४५॥ महाभुजावाले वीरभद्रने उनको पलायन करता देख उनको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध किया, जैसे मेघ वर्षासे पर्वतोंको ताडित करता है ॥४६॥ उस वीरकी परिघकी समान अनेक भुजा दीप्त अस्त्रोंसे प्रकाश करनेलगीं; जैसे अग्निकी ज्वालासहित सर्प हों ॥ ४७ ॥ वह वीर अनेक अस्त्र शस्त्र वर्षा

करते शोभित हुए; जिस प्रकार प्रथम सब प्राणियोंको उत्पन्न करते ब्रह्माजी शोभित होतेहैं ॥ ४८ ॥ जैसे किरणोंसे सूर्य पृथ्वीको आच्छादन करता है, इसी प्रकार क्षणमात्रमें उस वीरने दिशाओंको आच्छादन करदिया ॥४९॥ आकाशमें उन वीरभद्रके सुवर्णभूषित बाण ऊपरको जातेहुए बिजलीकी समान शोभित हुए ॥ ५० ॥ वे बडे बाण उनको लगकर इस प्रकार रुधिर पानकर प्राणोंसे हीन करनेलगे जैसे मैंडकोंको सर्प भक्षण कर तेहैं ॥ ५१ ॥ किसीका मुख, किसीकी भुजा, किसीके पार्श्वभाग कटकर पृथ्वीमें गिरनेलगे ॥ ५२ ॥ बाणोंसे मथित शरीर बाहु और शरीरकी संधि भिन्न होनेसे आंखें फैलायेहुए

यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम् ॥ तथा वीरः क्षणादेव शरैः प्राच्छादयद्दिशः ॥४९॥ खमंडले गणेन्द्रस्य शराः कनक
भूषिताः ॥ उत्पतंतस्तडिद्रूपैरुपमानपदं ययुः ॥५०॥ महांतस्ते सुरगणान् मंडूकानिवडुंडुभाः ॥ प्राणैर्वियोजयामासुः पपुश्च रुधिरा
सवम् ॥ ५१ ॥ निकृत्तबाहवः केचित्केचिल्लूनवराननाः ॥ पार्श्वे विदारिताः केचिन्निपेतुरमरा भुवि ॥ ५२ ॥ विशिखोन्मथितैर्गात्रै
र्बहुभिश्छिन्नसन्धिभिः ॥ विवृत्तनयनाः केचिन्निपेतुर्भूतले मृताः ॥ गां प्रवेष्टुमिवेच्छंतः खं गंतुमिव लिप्सवः ॥ ५३ ॥ अलब्धात्म
निरोधानां व्यलीयंत परस्परम् ॥ भूमौ केचित्प्रविविशुः पर्वतानां गुहाः परे ॥५४॥ अपरे जग्मुराकाशं परे च विविशुर्जलम् ॥ तथा
संछिन्नसर्वांगैस्स वीरस्त्रिदशैर्बभौ ॥ ५५ ॥ परिग्रस्तप्रजावर्गो भगवानिव भैरवः ॥ दग्धत्रिपुरसंव्यूहस्त्रिपुरारिर्यथाभवत् ॥ ५६ ॥
एवं देवबलं सर्वं दीनं बीभत्सदर्शनम् ॥ गणेश्वरसमुत्पन्नं कृपणं वपुराददे ॥५७॥ तदा त्रिदशवीराणामसृक्सलिलवाहिनी ॥ प्रावर्तत
नदी घोरा प्राणिनां भयशंसिनी ॥ ५८ ॥

कोई पृथ्वीमें गिरपडे पृथ्वीमें प्रवेशकी इच्छावाले आकाशमें जानेकी इच्छावाले ॥ ५३ ॥ कहीं अपनी रक्षा न पानेसे परस्पर अन्तर्धान होगये कोई पृथ्वीमें प्रवेश करगये, कोई पर्वतकी गुहामें ॥ ५४ ॥ कोई आकाशमें और कोई जलमें प्रवेश करगये, इस प्रकार देवताओंके अंग छेदनकर वीरभद्र शोभित हुआ ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार भगवान् भैरव प्रजा संहारकर शोभित होतेहैं, अथवा जैसे त्रिपुरको भस्मकर भगवान् शंकर शोभित हुए थे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे देवताओंकी सब सेना दीन और भयंकर दर्शनवाली होगई; और गणेश्वरके कियेहुए दीन शरीरको धारण किया ॥ ५७ ॥ तब उन देवताओंके शरीरसे

प्राणियोंको भय देनेहारी घोर रुधिरनदी प्रवाहित हुई ॥ ५८ ॥ तब यज्ञभूमि रुधिरसे व्याप्त होगई, जैसे शुम्भको मारकर लाल वस्त्र धारे काली शोभित होती है ॥ ५९ ॥ उस बडे भयंकर संग्रामके होनेसे भयसे व्याकुल हो पृथ्वी चलायमान होगई ॥ ६० ॥ महालहरोंके गम्भीर आवर्तसे समुद्र भी चलायमान हुआ; उस समय उल्कापात और वृक्षोंकी शाखा टूटने लगीं ॥ ६१ ॥ सब दिशा धूलिमयी और कर्कश पवन चलनेलगी, अहो ! यह अश्वमेध विधिहीन हुआ ॥ ६२ ॥ जिसमें स्वयं ब्रह्माके पुत्र दक्षप्रजापति यजमान और धर्मादिक सभासद और भगवान् गरुडध्वज रक्षा करनेवाले साक्षात् इन्द्रादिक देवता भागके ग्रहण करनेवालेहैं ॥ ६३ ॥ तथापि यजमानका यज्ञ ऋत्विजोंसहित विध्वंस होकर उसका शीघ्र शिर छेदन किया गया और अनिष्ट फल मिला ॥ ६४ ॥ इस कारण अवैदिक और ईश्वरसे बहिष्कृत कार्य न करना चाहिये, तथा असतोंसे युक्त कार्य कभी भी न करना चाहिये ॥ ६५ ॥ महापुण्यकर अनेक यज्ञोंको करकेभी महेश्वरमें भक्ति न होनेके कारण उसका फल नहीं मिलता है ॥ ६६ ॥ जो पाप करने उपरान्त भी भक्तिसे शिवका यजन करताहै वह सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ बहुत कहनेसे क्या है वह दान और तप वृथा है, और होम वृथा है, जिसमें

रुधिरेण परिक्लिन्ना यज्ञभूमिस्तदा बभौ ॥ रक्तार्द्रवसना श्यामा हतशुंभेव कौशिकी ॥ ५९ ॥ तस्मिन्महति संवृत्ते समरे भृशदारुणे ॥ भयेनेव परित्रस्ता प्रचचाल वसुन्धरा ॥ ६० ॥ महोर्मिकलिलावर्तश्चुक्षुभे च महोदधिः ॥ पेतुश्चोल्का महोत्पाताः शाखाश्च मुमुचुर्द्रुमाः ॥ ६१ ॥ अप्रसन्ना दिशः सर्वाः पवनश्चाशिवो ववौ ॥ अहो विधिविपर्यासस्त्वश्वमेधोयमध्वरः ॥ यजमानस्स्वयं दक्षो ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ॥ ६२ ॥ धर्मादयस्सदस्याश्च रक्षिता गरुडध्वजः ॥ भागांश्च प्रतिगृह्णंति साक्षादिंद्रादयः सुराः ॥ ६३ ॥ तथापि यजमानस्य यज्ञस्य च सहर्त्विजः ॥ सद्य एव शिरश्छेदस्साधु संपद्यते फलम् ॥ ६४ ॥ तस्मान्नावेदनिर्दिष्टं न चेश्वरबहिष्कृतम् ॥ नासत्परिगृहीतं च कर्म कुर्यात्कदाचन ॥ ६५ ॥ कृत्वापि सुमहत्पुण्यमिष्ट्वा यज्ञशतैरपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति भक्तिहीनो महेश्वरे ॥ ६६ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या यजति यश्शिवम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन वृथा दानं वृथा तपः ॥ वृथा यज्ञो वृथा होमः शिवनिन्दारतस्य तु ॥ ६८ ॥

शिवकी निन्दा होती है ॥ ६८ ॥ तब नारायण, रुद्र, लोकपाल आदि देवता उस समरमेंसे वीरभद्रके महाबाणोंसे व्यथित हो पलायन करगये ॥ ६९ ॥ कोई चलायमान हुआ; किसीके बाल नुचगये, कोई बैठगये, किसीके अवयव शिथिल होगये, कोई भिन्नमुख होकर गिरगये, कोई देववीर नष्ट होगये ॥ ॥ ७० ॥ कोई देवता ऐसे व्याकुल हुए कि उनके वस्त्र आभूषण अस्त्र शस्त्र सब गिरगये और दीन होकर गिरपडे तथा मद दर्प और बल सब नष्ट होगया ॥ ७१ ॥ इस प्रकार कुपथगामी अप्रधृष्य उस दक्षके यज्ञको नष्ट करके अक्षत शरीर वीरभद्र गणोंके बीचमें ऐसे शोभित हुए जैसें ऋषभोंके बीचमें सिंह

ततः सनारायणकास्सरुद्राः सलोकपालास्समरे सुरौघाः ॥ गणेंद्रचापच्युतबाणविद्धाः प्रदुद्रुवुर्गाढरुजाभिभूताः ॥ ६९ ॥ चेलुः क्वचित्केचन शीर्णकेशाः सेदुः क्वचित्केचन दीर्घगात्राः ॥ पेतुः क्वचित्केचन भिन्नवक्त्रा नेशुः क्वचित्केचन देववीराः ॥७०॥ केचिच्च तत्र त्रिदशा विपन्ना विस्रस्तवस्त्राभरणास्त्रशस्त्राः ॥ निपेतुरुद्भ्रासितदीनमुद्रा मदं च दर्पं च बलं च हित्वा ॥ ७१ ॥ समुत्पथप्रस्थितम प्रधृष्यो विक्षिप्य दक्षाध्वरमक्षतात्मैः ॥ बभौ गणेशस्स गणेश्वराणां मध्ये स्थितः सिंह इवर्षभाणाम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वायुरुवाच ॥ इति सञ्छिन्नभिन्नांगा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ क्षणात्कष्टां दशामेत्य त्रेसुः स्तोकावशोषिताः ॥१॥ त्रस्तांस्तान्समरे वीरान् देवानन्यांश्च वै गणाः ॥ प्रमथाः परम क्रुद्धा वीरभद्रप्रणोदिताः ॥ २ ॥ प्रगृह्य च तथा दोषं निगडैरायसैर्दृढैः ॥ बबन्धुः पाणिपादेषु कंधरेषूदरेषु च ॥ ३ ॥ तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा भद्रमद्रीन्द्रजानुतम् ॥ सारथ्याल्लब्धवात्सल्यः प्रार्थयन् प्रणतोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

शोभित होता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे दक्षशिवगणयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वायु बोले इस प्रकार छिन्न भिन्न अंग होकर विष्णु आदि देवता क्षणमात्रमें महाकष्टको प्राप्त होकर शेष बचेहुए शोच करनेलगे ॥ १ ॥ इस प्रकारसे जब वे वीर व्याकुल हुए तब उन वीरोंको व्याकुल देख, वीरभद्रसे प्रेरितहुए प्रमथोंने बडा क्रोध किया ॥ २ ॥ गण निज २ अपराधोंके अनुसार देवताओंको पकडकर दृढ लोहेकी जंजीरोंसे बांधने लगे, जब हाथ पैर कन्धे उदर बांधेगये ॥ ३ ॥ तब उस समय ब्रह्माजीने पार्वतीके प्रियकारी वीरभद्रसे सारथी होकर प्रिय

होनेसे प्रार्थनापूर्वक यह वचन कहे ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! अब क्रोध मत करो, यह देवता नष्ट होचुकेहैं हे सुव्रत ! अपने रुओंसे उत्पन्नहुए गणोंके सहित प्रसन्न होकर क्षमा करो ॥ ५ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माजीने यह वचन कहे तब वीरभद्र ब्रह्माजीके गौरवसे शान्तहुए ॥ ६ ॥ और देवता अवकाश पाकर उस देवदेव शिवके मंत्रीके निमित्त शिरपर अंजलि धारणकर अनेक स्तुतियोंसे प्रसन्न करने लगे ॥७॥ देवता बोले, शिव शान्तस्वरूप यज्ञनाशक त्रिशूलधारीके निमित्त नमस्कार है, रुद्र भद्र रुद्रोंके पति रुद्रमूर्ति ॥ ८ ॥ कालाग्नि रुद्ररूप काल और कामदेवका शरीर हरनेवाले देवता और दुरात्मा दक्षका शिर हरने

अलं क्रोधेन भगवन्नष्टाश्चैते दिवौकसः ॥ प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैस्सह सुव्रत ॥ ५ ॥ एवं विज्ञापितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ शमं जगाम संप्रीतो गणपस्तस्य गौरवात् ॥६॥ देवाश्च लब्धावसरा देवदेवस्य मंत्रिणः ॥ धारयन्तोऽञ्जलीन्मूर्ध्नि तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥७॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवाय शान्ताय यज्ञहन्त्रे त्रिशूलिने ॥ रुद्रभद्राय रुद्राणां पतये रुद्रभूतये ॥ ८ ॥ कालाग्निरुद्ररूपाय काल कामांगहारिणे ॥ देवतानां शिरोहन्त्रे दक्षस्य च दुरात्मनः ॥९॥ संसर्गादस्य पापस्य दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ शासिताः समरे वीर त्वया वयमनिन्दिताः ॥ १० ॥ दग्धाश्चामी वयं सर्वे त्वत्तो भीताश्च भो प्रभो ॥ त्वमेव गतिरस्माकं त्राहि नश्शरणागतान् ॥ ११ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ तुष्टस्त्वेवं स्तुतो देवान् विसृज्य निगडात्प्रभुः ॥ आनयद्देवदेवस्य समीपममरानिह ॥१२॥ देवोपि तत्र भगवानन्तरिक्षे स्थितः प्रभुः ॥ सगणः सर्वगः शर्वस्सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा परमेशानं देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ प्रीता अपि च भीताश्च नमश्चक्रुर्महेश्वरम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तानमरान्भीतान्प्रणतार्तिहरो हरः ॥ इदमाह महादवः प्रहसन् प्रेक्ष्य पार्वतीम् ॥ १५ ॥

वाले ॥९॥ और दुःसह कर्म करनेवाले हे वीर ! पापी दक्षके संसर्गसे निरपराध हमारी तुम्हारी द्वारा शासना हुई ॥ १० ॥ और अब हम दग्ध होकर आपसे बहुत डर गये हैं, तुमहीं गति हमारी हो, सो हम शरणमें आयोंकी रक्षा करो ॥ ११ ॥ वायु बोले, इन देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो प्रभुने उनकी जञ्जीर खोल दी और देवताओंको देवके समीपमें लाये ॥ १२ ॥ उस समय भगवान् देवभी अन्तरिक्षमें स्थित थे, सर्वगामी गणेश्वर महेश्वर सर्व लोकके पति गणोंसहित ॥ १३ ॥ विष्णु आदि देवता उन परमपुरुषको देखकर प्रसन्न और भयभीत हुए प्रीतिपूर्वक नमस्कार करने लगे ॥ १४ ॥ दीनोंके दुःख दूर

करनेहारे उन देवताओंको भयभीत और प्रणत देखकर पार्वतीको देख महादेवजी हँसतेहुए बोले ॥ १५ ॥ महादेव बोले, हे देवताओ ! मत डरो, हमारी अपमान अब जाता रहा तुम हमारीही प्रजा हो कृपा करके तुमपर अनुग्रहके निमित्त दण्डविधान किया है ॥ १६ ॥ तुम देवताओंका अपराध हमने क्षमा किया और हमारे क्रोध करनेपर तुम्हारी स्थिति और जीवन नहीं होसकता ॥ १७ ॥ वायु बोले, जब महातेजस्वी शिवजीने ऐसा कहा तब वे सब देवता भय त्याग प्रसन्न हो नृत्य करने लगे ॥ १८ ॥ तब प्रसन्नमन और हर्षसे विह्वल होकर देवता शंकरकी स्तुति करनेलगे ॥ १९ ॥ देवता बोले, हे देव !

॥ महादेव उवाच ॥ माभैष्ट त्रिदशास्सर्वे यूयं वै मामिकाः प्रजाः ॥ अनुग्रहार्थमेवेह धृतो दंडः कृपालुना ॥ १६ ॥ भवतां निर्ज्जराणां
हि क्षान्तोऽस्माभिर्व्यतिक्रमः ॥ क्रुद्धेष्वस्मासु युष्माकं न स्थितिर्न च जीवितम् ॥ १७ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ इत्युक्तास्त्रिदशास्सर्वे
शर्वेणामिततेजसा ॥ सद्यो विगतसन्देहा ननृतुर्विबुधा मुदा ॥ १८ ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वानन्दविह्वलमानसाः ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्तुं
शंकरस्य दिवौकसः ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वमेव देवाखिललोककर्ता पाता च हर्ता परमेश्वरोऽसि ॥ कविष्णुरुद्राख्यस्वरूपभेदै रज
स्तमस्सत्त्वधृतात्ममूर्त्ते ॥ २० ॥ सर्वमूर्त्ते नमस्तेऽस्तु विश्वभावन पावन ॥ अमूर्त्ते भक्तहेतोर्हि गृहीताकृतिसौख्यद ॥ २१ ॥ चंद्रो
ऽगदो हि देवेश कृपातस्तव शंकर ॥ निमज्जनान्मृतः प्राप सुखं मिहिरजाजलिः ॥ २२ ॥ सीमन्तिनी हतधवा तव पूजनतः प्रभो ॥
सौभाग्यमतुलं प्राप सोमवारव्रतात्सुतान् ॥ २३ ॥

आपही सब लोकके करनेवाले रक्षक और सहार करनेवाले परमेश्वर हो, सत् रज तम तीन गुणोंको आश्रय कर आप ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह तीन मूर्ति धारण करते हो ॥ २० ॥ हे विश्वभावन ! हे परमपवित्र सर्वमूर्त्ति ! आपको प्रणाम है, आप मूर्त्तिरहित हो, हे सुखदायक ! भक्तोंके निमित्तही आप आकृति ग्रहण करते हो ॥ २१ ॥ हे शंकर ! आपकी कृपासे ही चन्द्रमा रोगरहित हुआ है और निमज्जन करके मृतहुए जाजलिने आपकी कृपासे सुख पाया ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! सीमन्तिनी गतधवा होगई थी पर आपके पूजनके प्रभावसे अतुल सौभाग्यको प्राप्त हुई और पुत्रोंकी प्राप्ति उमादेवीके प्रभावसे

उसनेकी ॥ २३ ॥ हे देव ! आपने श्रीकरको अपना उत्तम पद दिया और राजाओंके भयसे आपने सुदर्शनको छुडाया ॥ २४ ॥ कृपानिधि आपने स्त्रीसहित मेदुरको तारा, विधवा शारदाको कृपासे आपने सधवा किया ॥ २५ ॥ आपने भद्रायुषकी विपत्ति दूरकर उसे सुख दिया आपकी सेवासे सौमिनी संसारसागरसे मुक्त होगई ॥ २६ ॥ विष्णुजी बोले, हे शिवजी ! आपही रज, सत्व और तमोगुणसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, यह तीन मूर्ति धारणकर जनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति पालन और संहार करते हो ॥ २७ ॥ आप सबके गर्वके हरनेवाले सबके तेजोंके विलासी सब विद्यादिकमें गूढ

श्रीकराय ददौ देवः स्वीयं पदमनुत्तमम् ॥ सुदर्शनमरक्षस्त्वं नृपमंडलभीतितः ॥ २४ ॥ मेदुरं तारयामास सदारं च घृणानिधिः ॥ शारदां विधवां चक्रे सधवां क्रियया भवान् ॥ २५ ॥ भद्रायुषो विपत्तिं च विच्छिद्य त्वमदाः सुखम् ॥ सौमिनी भवबन्धाद्वै मुक्ताऽभू त्तव सेवनात् ॥ २६ ॥ विष्णु रुवाच ॥ त्वं शंभो कहरीशाश्च रजस्सत्त्वतमोगुणैः ॥ कर्ता पाता तथा हर्ता जनानुग्रहकांक्षया ॥ २७ ॥ सर्वगर्वापहारी च सर्वतेजोविलासकः ॥ सर्वविद्यादिगूढश्च सर्वानुग्रहकारकः ॥ २८ ॥ त्वत्तः सर्वं च त्वं सर्वं त्वयि सर्वं गिरीश्वर ॥ त्राहि त्राहि पुनस्त्राहि कृपां कुरु ममोपरि ॥ २९ ॥ अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रणिपत्य कृतांजलिः ॥ एवं त्ववसरं प्राप्य व्यज्ञापयत शूलिने ॥ ३० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जय देव महादेव प्रणतार्तिविभंजन ॥ ईदृशेष्वपराधेषु कोऽन्यस्त्वत्तः प्रसीदति ॥ ३१ ॥ लब्धा त्मानो भविष्यंति ये पुरा निहता मृधे ॥ प्रत्यापत्तिर्न कस्य स्यात्प्रसन्ने परमेश्वरे ॥ ३२ ॥ यदिदं देवदेवानां कृतमन्तुषु दूषणम् ॥ तदिदं भूषणं मन्ये त अंगीकारगौरवात् ॥ ३३ ॥

सबपर अनुग्रह करनेवाले हो ॥ २८ ॥ हे ! गिरीश्वर आपहीसे सब कुछ है तुममें ही सब स्थित है रक्षा करो रक्षा करो, हमारी कृपाकर रक्षा करो ॥ ॥ २९ ॥ उसी समय ब्रह्माजी प्रणामकर हाथजोड अवसर पाकर शिवजीसे कहने लगे ॥ ३० ॥ ब्रह्मा बोले, हे महादेव ! दासोंके दुःख दूर करनेवाले आपकी जय हो, ऐसे अपराध करनेपर आपके सिवाय दूसरा कौन है जो प्रसन्न होसकता है ॥ ३१ ॥ जो देवता युद्धमें मृतक हुए हैं वे फिर जी उठैं, परमेश्वरके प्रसन्न होनेमें फिर किसको आपत्ति होसकती है ॥ ३२ ॥ और हे देव ! जो यह देवताओंके अंगोंमें दूषण हुए हैं, सो आपके अंगीकारके

गौरवसे मैं इनको भूषण मानता हूं ॥ ३३ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माने ऐसा कहा तब पार्वतीके मुखको देख हँसतेहुए शिवजीने ब्रह्माके पुत्ररूपसे प्रार्थना करनेसे नष्ट हुआ देवताओंका शरीर फिर पूर्ववत् करादिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उसी समय वे विष्णु इन्द्रादिक सब देवता अपने पूर्व शरीरको प्राप्त होकर परमेश्वरको प्रणाम करने लगे; और वागीशादि देवियें जो देवमाताएँ दण्डित हुईं थीं उन सबके अंग शिवजीने पूर्वके समान करदिये ॥ ३६ ॥ और दक्षका स्वयं भगवान् ब्रह्माजीने शिवकी आज्ञासे बूढे छागकी समान मुख करदिया ॥ ३७ ॥ वहभी चेतनाको प्राप्त हो उठकर हाथ जोड डरके कारण अनेक

इति विज्ञाप्यमानस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ विलोक्य वदनं देव्या देवदेवस्स्मयन्निव ॥३४॥ पुत्रभूतस्य वात्सल्याद्ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ॥ देवादीनां यथापूर्वमंगानि प्रददौ प्रभुः ॥ ३५ ॥ प्रमथाद्यश्च या देव्यो दंडिता देवमातरः ॥ तासामपि यथापूर्वाण्यंगानि गिरिशो ददौ ॥ ३६ ॥ दक्षस्य भगवानेव स्वयं ब्रह्मा पितामहः ॥ तत्पापानुगुणं चक्रे जरच्छागमुखं मुखम् ॥ ३७॥ सोऽपि संज्ञां ततो लब्ध्वा स दृष्ट्वा जीवितः सुधीः ॥ भीतः कृताञ्जलिः शंभुं तुष्टाव प्रलपन्बहु ॥ ३८ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ जय देव जगन्नाथ लोकानुग्रहकारक ॥ कृपां कुरु महेशानापराधं मे क्षमस्वह ॥ ३९ ॥ कर्त्ता भर्त्ता च हर्ता च त्वमेव जगतां प्रभो ॥ मया ज्ञातं विशेषेण विष्ण्वादिसकलेश्वरः ॥ ४० ॥ त्वयैव विततं सर्वं व्याप्तं सृष्टं च नाशितम् ॥ न हि त्वदधिकाः केचिदीशास्तेऽच्युतकादयः ॥ ४१ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ तं तथा व्याकुलं भीतं प्रलपंतं कृतागसम् ॥ स्मयान्निवावदत्प्रेक्ष्य मा भैरिति घृणानिधिः ॥ ४२ ॥ तथोक्तो ब्रह्मणस्तस्य पितुः प्रियचिकीर्षया ॥ गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्षयमीश्वरः ॥ ४३ ॥

वचन कहते परमेश्वरकी स्तुति करने लगा ॥ ३८ ॥ दक्षने कहा हे जगत्पति लोकानुग्रह करनेवाले ! आपकी जय हो, हे महेशान ! कृपाकर मेरे अपराध क्षमा करो ॥ ३९ ॥ हे प्रभो ! आपही जगत्के कर्ता भर्ता और दुःख हरनेवालेहो मैंने विशेषकर जानलिया कि आप विष्णु आदि सबके ईश्वर हो ॥४०॥ आपने ही सब जगत्का विस्तार किया है, आपही उत्पत्ति और नाश करते हो, वे विष्णु आदि आपसे कोई विशेष नहीं हैं ॥ ४१ ॥ वायु बोले, इस प्रकार अपराधसे व्याकुल और डराहुआ दक्षको देखकर सतहुए करुणानिधि शिवजी बोले, भय मत करो ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार कहा तब दक्षके

पिता ब्रह्माके प्रियकी इच्छासे शिवजीने दक्षके निमित्त अक्षय गणपतित्व प्रदान किया ॥ ४३ ॥ तब ब्रह्माजी आदि देवता हाथ जोड महादेवको प्रणामकर नम्रवाणीसे गिरिजापति महादेवकी स्तुति करनेलगे ॥ ४४ ॥ हे शंकर ! हे देवेश ! हे दीनानाथ ! हे महाप्रभो ! हे महेशान ! कृपाकर हमारे अपराध क्षमा करो ॥ ४५ ॥ हे यज्ञपालक ! हे यज्ञके अधिपति ! हे यज्ञके विध्वंसकर्ता ! हे महेशान ! कृपाकर हमारे अपराध क्षमा करो ॥४६॥ हे देवदेव ! हे परमेशान ! हे भक्तोंके प्राणपोषण करनेवाले ! हे दुष्टोंके दण्ड देनेवाले स्वामी ! कृपा करो आपको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! जो दुष्ट आपको

ततो ब्रह्मादयो देवा अभिवंद्य कृतांजलि ॥ तुष्टुवुः प्रश्रया वाचा शंकरं गिरिजाधिपम् ॥ ४४ ॥ ॥ ब्रह्मादय ऊचुः ॥ जय शंकर देवेश
दीनानाथ महाप्रभो ॥ कृपां कुरु महेशानापराधं नो क्षमस्व वै ॥ ४५ ॥ मखपाल मखाधीश मखविध्वंसकारक ॥ कृपां कुरु महे
शानापराधं नः क्षमस्व वै ॥४६॥ देवदेव परेशान भक्तप्राणप्रपोषक ॥ दुष्टदण्डप्रद स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥ त्वं प्रभो
गर्वहर्ता वै दुष्टानां त्वामजानताम् ॥ रक्षको हि विशेषेण सतां त्वत्सक्तचेतसाम् ॥४८॥ अद्भुतं चरितं ते हि निश्चितं कृपया तव ॥
सर्वापराधः क्षंतव्यो विभवो दीनवत्सलाः ॥४९॥ ॥ वायुरुवाच ॥ इति स्तुतो महादेवो ब्रह्माद्यैरमरैः प्रभुः ॥ स भक्तवत्सलस्स्वामी
तुतोष करुणोदधिः ॥ ५० ॥ चकारानुग्रहं तेषां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ ददौ वरांश्च सुप्रीत्या शंकरो दीनवत्सलः ॥५१॥ स च तत
स्त्रिदशाञ्छरणागतान् परमकारुणिकः परमेश्वरः ॥ अनुगतस्मितलक्षणया गिरा शमितसर्वभयः समभाषत ॥५२॥ ॥ शिव उवाच ॥
यदिदमाग इहाचरितं सुरैर्विधिनियोगवशादिव यन्त्रितैः ॥ शरणमेव गतानवलोक्य वस्तदखिलं किल विस्मृतमेव नः ॥ ५३ ॥

नहीं जानते उनके गर्व आप दूर करते हो और अपने भक्त सत्पुरुषोंके विशेषकर आप रक्षकहैं ॥४८॥ आपकी कृपासे हमने निश्चय किया है कि आपके अद्भुत चरित्रहैं, हे दीनवत्सलविभु ! आप हमारे सब अपराध नाश करो ॥ ४९ ॥ वायुबोले, जब ब्रह्मादिक देवताओंने इस प्रकारसे प्रभुकी स्तुति की तब करुणासागर भक्तवत्सल स्वामी प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ और उन ब्रह्मादिक देवताओंपर कृपा की और दीनवत्सल शंकरने प्रेमसे उनको आया हुआ देख मनोहर हास्यभरी वाणीसे उनके सब भय दूर करके वचन कहे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ शिवजी बोले, जो यह चरित्र हुआ है सो यह दैवाधीनतासे हुआ है, क्योंकि

प्रारब्धसे यह प्राणी दैवके वशमें है, तुमको शरणमें आया देख हमने तुम्हारे सब अपराध क्षमा करदिये ॥ ५३ ॥ परन्तु तुमने यह कर्म मनमें विना विचारे लज्जारहित होकर किया, विष्णु ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता यह सब अब अपने २ स्थानोंको प्रस्थान करो ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सुरेश्वर देवताओंके प्रति यह वचन कहकर दक्षयज्ञके सम्बन्धसे रहित हो गिरिजा तथा दूसरे गणोंसहित आकाशमें स्थित हो अन्तर्धान हुए ॥ ५५ ॥ तब वे देवता भी व्यथारहित हो तथा यज्ञ भी पूर्णशरीर हो भद्र सुभद्रका पराक्रम कहतेहुए शीघ्रही सुखपूर्वक आकाशमार्गमें प्रसन्नतासे गये तथा ब्रह्मा इन्द्र आदि भी गये ॥ ५६ ॥

तदिह यूयमपि प्रकृतं मनस्यविगणय्य विमर्दमपत्रपाः ॥ हरिविरिंचिसुरेन्द्रमुखास्सुखं व्रजत देवपुरं प्रति संप्रति ॥५४॥ इति सुरानभिधाय सुरेश्वरो निकृतदक्षकृतक्रतुरक्रतुः ॥ सगिरिजानुचरस्सपरिच्छदःस्थित इवाम्बरतोन्तरधाद्धरः ॥ ५५ ॥ अथ सुरा अपि ते विगतव्यथाः कथितभद्रसुभद्रपराक्रमाः ॥ सपदि खेन सुखेन यथासुखं ययुरनेकमुखा मघवन्मुखाः ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे गिरिशानुनयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अन्तर्धानगतो देव्या सह सानुचरो हरः ॥ क्व यातः कुत्र वा वासः किं कृत्वा विरराम ह ॥ ॥ १ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ महीधरवरः श्रीमान् मंदरश्चित्रकंदरः ॥ दयितो देवदेवस्य निवासस्तपसोऽभवत् ॥२॥ तपो महत्कृतं तेन वोढुं स्वशिरसा शिवौ ॥ चिरेण लब्धं तत्पादपंकजस्पर्शजं सुखम् ॥ ॥ ३ ॥ तस्य शैलस्य सौन्दर्य्यं सहस्रवदनैरपि ॥ न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥ ४ ॥ शक्यमप्यस्य सौन्दर्य्यं न वर्णयितुमुत्सहे ॥ पर्वतान्तरसौन्दर्य्यं साधारणविधारणात् ॥ ५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ऋषि बोले, जिस समय अनुचरोंसहित शिवजी अन्तर्धान हुए, तब कहां गये और क्या करनेलगे ॥ १ ॥ वायु बोले, श्रीमान् मन्दर चित्र विचित्र धातु और कंदराओंसे शोभित है, वह शिवजीके तप करनेयोग्य उनका निवासस्थान था ॥ २ ॥ उस पर्वतने शिवजीके निवास करनेके निमित्त बडा तप किया, बहुत समयके उपरान्त उसने शिवजीके चरणकमलका स्पर्श पाया ॥३॥ उस पर्वतकी सुन्दरता सहस्रमुखसे भी विस्तारपूर्वक सौकरोड वर्षमें नहीं कहसक्के ॥ ४ ॥ सुमेरुपर्वत भी इसके सामने सुन्दरतामें साधारण है॥ ५॥

परन्तु हाँ इतना कहसक्तेहैं कि यह पर्वतश्रेष्ठ ऋद्धि और सुन्दरतासे परिपूर्ण शिवजीके निवासके कारणसे हुआहै ॥ ६ ॥ इसी कारण शिवजीने पार्वतीके प्रियकी इच्छासे अत्यन्त सुन्दर यह पर्वत अन्तःपुररूप कियाहै ॥ ७ ॥ उसकी मेखलारूप पृथ्वी श्रेष्ठ पत्थर और वृक्ष हैं, वहां शिव सदा निवास करतेहैं, इससे वह सम्पूर्ण जगत्का तिरस्कार करतेहैं ॥ ८ ॥ जगत्के माता पिताको स्थान आदिके उपभोग और उनके निवासके पुण्य संस्कार पानादि देनेसे वह चारों ओर फैलरहाहै ॥ ९ ॥ लघु और शीतल स्पर्शवाले निर्मल निर्झरोंके जलसे मानो पर्वतोंके अधिराज्यमें यह पर्वत अभिषेक कियाजाताहै ॥१०॥

इदन्तु शक्यते वक्तुमस्मिन्पर्वतसुन्दरे ॥ ऋद्ध्या कयापि सौन्दर्यमीश्वरावासयोग्यता ॥६॥ अत एव हि देवेन देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥ अतीव रमणीयोयं गिरिरन्तःपुरीकृतः ॥ ७ ॥ मेखलाभूमयस्तस्य विमलोपलपादपाः ॥ शिवयोर्नित्यसान्निध्यान्न्यक्कुर्वंत्यखिलं जगत् ॥ ८ ॥ पितृभ्यां जगतो नित्यं स्नानपानोपयोगतः ॥ अवाप्तपुण्यसंस्कारः प्रसरद्भिरितस्ततः ॥ ९ ॥ लघुशीतलसंस्पर्शैरच्छाच्छैर्निर्झराम्बुभिः ॥ अधिराज्ये नु चाद्रीणामद्रिरेषोऽभिषिच्यते ॥ १० ॥ निशासु शिखरप्रान्तर्वर्तिना स शिलोच्चयः ॥ चन्द्रेणाचलसाम्राज्यच्छत्रेणेव विराजते ॥ ११ ॥ स शैलश्चंचलीभूतैर्बालैश्चामरयोषिताम् ॥ सर्वपर्वतसाम्राज्यचामरैरिव वीज्यते ॥ १२ ॥ प्रातरभ्युदिते भानौ भूधरो रत्नभूषितः ॥ दर्पणे देहसौभाग्यं द्रष्टुकाम इव स्थितः ॥ १३ ॥ कूजद्विहंगवाचालैर्वातोद्भूतलताभुजैः ॥ विमुक्तपुष्पैः सततं व्यालम्बिमृदुपल्लवैः ॥१४॥ लताप्रतानजटिलैस्तरुभिस्तापसैरिव ॥ जयाशिषा सहाभ्यर्च्य निषेव्यत इवाद्रिराट् ॥१६॥

रात्रिके समय चारोंओर फैलाहुआ यह मंदरपर्वत चन्द्रमासे शोभित होताहै, मानो साम्राज्यका छत्र धारण कियेहैं ॥ ११ ॥ वह पर्वत चंचल हुए चौरी गौओंके चमरोंसे मानो सम्पूर्ण पर्वत चामरोंसे साम्राज्यके कारण वीज्यमान होताहै ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेसे रत्नोंसे भूषित वह पर्वत दर्पणमें मानो अपने देहके सौभाग्यको अवलोकन कररहाहै ॥ १३ ॥ वाचाल विहंगोंसे कूजित लतारूपी भुजाओंसे चलायमान होकर सदा फूलोंसे विमुक्त कोमल पत्तोंसे युक्त ॥ १४ ॥ लताओंके समूहोंसे व्याप्त वृक्षोंसे तपस्वियोंके समान युक्त जयके आशीर्वादसे पूजित हो मानो यह पर्वतराज स्थितहै ॥ १५ ॥

ऊपर नीचेको मुखकिये शृंगोंसे व्याप्त तथा तिरछे शृंगोंसे युक्त प्रतापित होकर मानों पृथ्वीको पृष्ठसे उठायाहै ॥ १६ ॥ सब दिशाओंमें व्याप्त हो माना
आकाशमें घूम रहा है, इस प्रकार मानो सब जगत्को देखताहुआसा नृत्य कररहा है ॥ १७ ॥ गुहारूपी मुखसे प्रतिदिन जागृत होकर मानो बडे उदरोंसे
युक्तहै, सदा नवीन सुन्दरतासे मानो जंभाई ले रहा है ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण जगत्को ग्रास करता हुआ सागरको पीताहुआसा अपने हृदयका अन्धकार मानो
उगलताहुआ मेघोंसे मानो आकाशको भक्षण करताहुआ ॥ १९ ॥ उसके निवासकी भूमि मानो दर्पणके समान उज्ज्वल है, वृक्षोंकी छाया मनोहर छायासे

अधोमुखैरूर्द्ध्वमुखैश्शृंगैस्तिर्यङ्मुखैस्तथा ॥ प्रपतन्निव पाताले भूपृष्ठादुत्पतन्निव ॥ १६ ॥ परीतः सर्वतो दिक्षु भ्रमन्निव विहायसि ॥
पश्यन्निव जगत्सर्वं नृत्यन्निव निरन्तरम् ॥ १७ ॥ गुहामखैः प्रतिदिनं व्यात्तास्यो विपुलोदरैः ॥ अजीर्णलावण्यतया जृंभमाण
इवाचलः ॥ १८ ॥ ग्रसन्निव जगत्सर्वं पिबन्निव पयोनिधिम् ॥ वमन्निव तमाऽन्तस्थं माद्यन्निव खमम्बुदैः ॥ १९ ॥ निवास
भूमयस्तास्ता दर्पणप्रतिमोदराः ॥ तिरस्कृतातपास्स्निग्धाश्रमच्छायामहीरुहाः ॥ २० ॥ सरित्सरस्तडागादिसंपर्कशिशिरानिलाः ॥
तत्र तत्र निषण्णाभ्यां शिवाभ्यां सफलीकृताः ॥ २१ ॥ तमिमं सर्वतः श्रेष्ठं स्मृत्वा साम्बस्त्रियम्बकः ॥ रैभ्याश्रमसमीपस्थश्चान्तर्धानं
गतो ययौ ॥ २२ ॥ तत्रोद्यानमनु प्राप्य देव्या सह महेश्वरः ॥ रराम रमणीयासु दिव्यान्तःपुरभूमिषु ॥ २३ ॥ तथा गतेषु कालेषु
प्रवृद्धासु प्रजासु च ॥ दैत्यौ शुंभनिशुंभाख्यौ भ्रातरौ संबभूवतुः ॥ २४ ॥ ताभ्यां तपोबलाद्दत्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ अवध्यत्वं जग
त्यस्मिन्पुरुषैरखिलैरपि ॥ २५ ॥ अयोनिजा तु या कन्या ह्यंबिकांशसमुद्भवा ॥ अजातपुंस्पर्शरतिरविलंघ्यपराक्रमा ॥ २६ ॥

श्रमके दूरकरनेवाले ॥ २० ॥ नंदी, सरोवर, तलाव आदिके सम्पर्कसे ठंडी पवनवाले जिधर तिधर स्थितहुए, शिवसे सफल कीहुई भूमिवाले ॥ २१ ॥
ऐसे इस पर्वतश्रेष्ठको पार्वतीसहित शिवजी स्मरणकर अन्तर्धान हुएही रैभ्य आश्रमसे गये ॥ २२ ॥ देवीके सहित महेश्वर उस उद्यानमें प्राप्त होकर मनोहर
दिव्य अन्तःपुरकी भूमिमें रमण करनेलगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार समयके बीतनेसे और प्रजाके बढनेसे शुम्भ निशुम्भनामक दो भाई उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥
ब्रह्माजीने तपस्यासे यह बरदान दिया कि तुम इस जगत्में सम्पूर्ण पुरुषोंसे अवध्य होगे ॥ २५ ॥ परन्तु जो अम्बिकाके अंगसे उत्पन्न हुई अयोनिजा

कन्या है; जिसने कभी पुरुषका स्पर्श नहीं किया उसका तुम कभी उल्लंघन नहीं करना ॥ २६ ॥ यदि उसकी कामना करोगे तो युद्धमें मृत्युको प्राप्त होगे, इस प्रकार ब्रह्माके कहनेसे उन्होंने स्वीकार किया ॥ २७ ॥ तबसे युद्धमें ब्रह्मादिक देवताओंको जीतकर जगत्को वेद और वषट्कारसे रहित करदिया ॥ २८ ॥ तब उन दोनोंके मारनेके निमित्त ब्रह्माने देवेशसे प्रार्थना करी; कि एकांतमें अम्बाकी निन्दा करके जैसे हो वैसे क्रोध उत्पन्न कराओ ॥ २९ ॥ उसके वर्ण और कोशकी शक्तिसे एक कन्या उत्पन्न करके शुम्भनिशुम्भके मारनेको देवताओंके निमित्त दीजिये ॥ ३० ॥ जब भगवान्

तया तु नौ वधः संख्ये तस्यां कामाभिभूतयोः ॥ इति चाभ्यर्थितो ब्रह्मा ताभ्याम्प्राह तथास्त्विति ॥२७॥ ततःप्रभृति शक्रादीन्विजित्य समरे सुरान् ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं जगच्चक्रतुरक्रमात् ॥२८॥ तयोर्वधाय देवेशं ब्रह्माभ्यर्थितवान्पुनः ॥ विनिंद्यापि रहस्यं वां क्रोधयित्वा यथा तथा ॥ २९ ॥ तद्वर्णकोशजां शक्तिमकामां कन्यकात्मिकाम् ॥ निशुम्भशुंभयोर्हंत्रीं सुरेभ्यो दातुमर्हसि ॥ ३० ॥ एवमभ्यर्थितो धात्रा भगवान्नीललोहितः ॥ कालीत्याह रहस्यं वां निन्दयन्निव सस्मितः ॥ ३१ ॥ ततः क्रुद्धा तदा देवी सुवर्णा वर्णकारणात् ॥ स्मयन्ती चाह भर्तारमसमाधेयया गिरा ॥ ३२ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ईदृशे मम वर्णेस्मिन्न रतिर्भवतोऽस्ति चेत् ॥ एतावन्तं चिरं कालं कथमेषा नियम्यते ॥ ३३ ॥ अरत्या वर्तमानोऽपि कथं च रमसे मया ॥ न ह्यशक्यं जगत्यस्मिन्नीश्वरस्य जगत्प्रभोः ॥ ३४ ॥ स्वात्मारामस्य भवतो रतिर्न सुखसाधनम् ॥ इति हेतोः स्मरो यस्मात्प्रसभं भस्मसात्कृतः ॥ ३५ ॥

नीललोहितकी इस प्रकार प्रार्थना करी तब हँसकर शिवजीने अम्बाकी निन्दा करतेहुए काली ऐसा शब्द रहस्य ससयमें उच्चारण किया ॥ ३१ ॥ तब शिवजीसे अपने वर्णकी निन्दा सुनकर देवी बहुत क्रुद्ध हुई और हँसतीहुई अपने स्वामीसे असमाधेय वाणीसे बोलीं ॥ ३२ ॥ जो इस प्रकारके मेरे वर्णमें आपकी प्रीति नहीं है; तो इतने महासमयसे यह बात क्यों रोक रक्खी है ॥ ३३ ॥ जब मुझमें अरुचि है तो मेरे साथ क्यों रमते हो ? हे प्रभो ! तुमको इस जगत्में तो कुछभी अशक्य नहीं है ॥ ३४ ॥ स्वात्मामें रमण करनेवाले आपको रति सुखका साधन नहींहै, यही कारणहै कि आपने कामदेवको

भस्म करदिया ॥ ३५ ॥ जो स्त्री सर्वांगसुन्दरी भी हो यदि स्वामी उससे प्रीति न करे तो उसके सब दूसरे गुणभी वृथा होजातेहैं ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको यही इसलोक और परलोकमें फलदायक है कि स्वामी प्रसन्नहो; इसके अन्यथा होनेसे नारीका जन्म वृथा है ॥ ३७ ॥ इस कारण जो कि एकान्तमें आपने मेरी निन्दा की इस कारण मैं इस शरीरके वर्ण को त्यागन कर दूसरे वर्णको धारण करूंगी, अथवा स्वयं न रहूंगी ॥ ३८ ॥ यह कहकर देवी रोषसे व्याप्त हो अपने आसनसे उठकर तप करनेकी इच्छासे स्वामीसे आज्ञा मांगनेलगी; कारण कि स्त्री धर्मशास्त्रकी आज्ञासे स्वतंत्र नहींहै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार

या च नाभिमता भर्तुरपि सर्वांगसुन्दरी ॥ सा वृथैव हि जायेत सर्वैरपि गुणान्तरैः ॥३६॥ भर्तुर्भोगैकशेषो हि सर्ग एवैष योषिताम् ॥ तथासत्यन्यथाभूता नारी कुत्रोपयुज्यते ॥ ३७ ॥ तस्माद्वर्णमिमं त्यक्त्वा त्वया रहसि निन्दितम् ॥ वर्णान्तरं भजिष्ये वा न भजिष्यामि वा स्वयम् ॥३८॥ इत्युक्त्वोत्थाय शयनाद्देवी साचष्ट गद्गदम् ॥ ययाचेऽनुमतिं भर्तुस्तपसे कृतनिश्चया ॥३९॥ तथा प्रणयभंगेन भीतो भूतपतिः स्वयम् ॥ पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत ॥ ४० ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अजानती च क्रीडोक्तिं प्रिये किं कुपितासि मे ॥ रतिः कुतो वा जायेत त्वत्तश्चेदरतिर्मम ॥४१॥ माता त्वमस्य जगतः पिताहमधिपस्तथा ॥ कथं तदुपपद्येत त्वत्तो नाभिरतिर्मम ॥ ४२ ॥ आवयोरभिकामोऽपि किमसौ कामकारितः ॥ यतः कामसमुत्पत्तः प्रागेव जगदुद्भवः ॥ ४३ ॥ पृथग्जनानां रतये कामात्मा कल्पितो मया ॥ ततः कथमुपालब्धः कामदाहादहं त्वया ॥ ४४ ॥ मां वै त्रिदशसामान्यं मन्यमानो मनोभवः ॥ मनाक्परिभवं कुर्वन्मया वै भस्मसात्कृतः ॥ ४५ ॥

प्रीतिभंग होनेसे स्वयं शिवजी भीतहुए; और चरणोंकी और प्रणाम करतेहुए भवानीसे कहने लगे ॥ ४० ॥ हे प्रिये ! क्रीडाविलासकी वार्ता विना जाने तुम मेरे ऊपर क्यों क्रोध करती हो; जो तुममें मेरी प्रीति नहींहै तो किसमें है ॥ ४१ ॥ तुम इस जगत्की माता और मैं पिता हूं; फिर तुममें मेरी प्रीति क्यों न हो ॥ ४२ ॥ हमारी तुम्हारी प्रीति क्या कामके निमित्त है अर्थात् नहींहै; कारण कि कामकी उत्पत्तिसे पहलेही जगत्की उत्पत्ति हुई है ॥४३॥ कामको तो मैंने पृथक् जनोंके निमित्त उत्पन्न कियाहै सो कामके दाहका तुमने किसप्रकारसे मुझै ताना दिया ॥ ४४ ॥ कामदेवने मुझै सामान्य देवता

जानकर थोडा तिरस्कार ज्योंही किया कि मैंने उसे भस्म करदिया ॥४५॥ हमारा तुम्हारा विहार तो इस जगत्की रक्षाके निमित्त है; इस कारण जगत्की रक्षाके निमित्त मैंने विलासोक्ति कथन की ॥ ४६ ॥ सो वह कार्य शीघ्रही प्रगट होजायगा, हे भगवति ! क्रोध मतकरो, तुममें मेरी महान् प्रीति है; इस बातको तुम क्यों नहीं जान्ती हो; इस प्रकार शिवने पार्वतीको प्रसन्न भी किया परन्तु वह कालीशब्दको अपने हृदयमें धारण करके क्रोधसे यह वचन बोली ॥ ४७ ॥ देवी बोली, हे भगवन् ! मैंने आपकी लगतीहुई वार्ता प्रथमही सुनलीहै, जिससे आपने प्रथम मुझे वंचित कियाहै ॥ ४८ ॥ जो स्त्री भर्ताको अप्रिय होकर अपने प्राणोंको त्यागन नहीं करती वह कुलांगनाओंमें और सत्पुरुषोंमें निन्दाको पाती है ॥ ४९ ॥ मेरा शरीर गोरा नहीं है इस कारण

विहारोप्यावयोरस्य जगतस्त्राणकारणात् ॥ ततस्तदर्थं त्वय्यद्य क्रीडोक्तिं कृतवानहम् ॥४६॥ स चायमचिरादर्थस्तवैवाविष्करिष्यते ॥
क्रोधस्य जनकं वाक्यं हृदि कृत्वेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ श्रुतपूर्वं हि भगवंस्तव चाटु वचो मया ॥ येनैवमतिधीराहमपि
प्रागभिवंचिता ॥ ४८ ॥ प्राणानप्यप्रिया भर्तुर्नारी या न परित्यजेत् ॥ कुलांगना शुभा सद्भिः कुत्सितैव हि गम्यते ॥ ४९ ॥ भूयसी
च तवाप्रीतिरगौरमिति मे वपुः ॥ क्रीडोक्तिरपि कालीति घटते कथमन्यथा ॥ ५० ॥ सद्भिर्विगर्हितं तस्मात्तव कार्ष्ण्यमसंमतम् ॥
अनुत्सृज्य तपोयोगात्स्थातुमेवेह नोत्सहे ॥ ५१ ॥ शिव उवाच ॥ यद्येवंविधतापस्ते तपसा किं प्रयोजनम् ॥ ममेच्छया स्वेच्छया वा
वर्णान्तरवती भव ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ नेच्छामि भवतो वर्णं स्वयं वा कर्तुमन्यथा ॥ ब्रह्माणं तपसाराध्य क्षिप्रं गौरी
भवाम्यहम् ॥ ५३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ मत्प्रसादात्पुरा ब्रह्मा ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्पुरा ॥ तमाहूय महादेवि तपसा किं करिष्यसि ॥ ५४ ॥

आपकी मुझमें प्रीति नहीं है तो फिर विलासादिमें भी ‘काली’ यह शब्द कैसे संगत होसकता है ॥ ५० ॥ स्त्रियोंका असत्कार सर्वथा सत्पुरुषोंने निन्दित किया है; इससे तपके योगसे इसको विना त्यागे मैं यहाँ नहीं रह सकती ॥ ५१ ॥ शिवजी बोले, जो यही इच्छा है तो तप करनेका क्या प्रयोजन है; हमारी इच्छा वा अपनी इच्छासे तुम अपना दूसरा वर्ण करलो ॥ ५२ ॥ देवी बोली मैं आपसे स्वयं अन्यथा वर्ण करनेकी इच्छा नहीं करतीहूं, ब्रह्माको तपसे आराधन कर गौरी बनूंगी ॥५३॥ ईश्वर बोले; हमारीही कृपासे तो ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्त हुएहैं. हे महादेवी ! तपसे उन्हें बुलाकर क्या करोगी ॥५४॥

देवी बोली सब ब्रह्मादि देवताओंने आपसे यद्यपि वर पाया है तौ भी आपकी आज्ञाद्वारा तपसे ब्रह्माको आराधन करके ॥ ५५ ॥ पहले मैं. सतीनामक दक्षकी दुहिता हुई थीं, तब भी मैंने तपसे जगत्के पती आपकोही प्राप्त किया था ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार अब भी उन्हें तपसे सन्तुष्ट कर गौरी होनेकी इच्छा करतीहूं कहो इसमें क्या दोष है ॥ ५७ ॥ जब महादेवीने ऐसा कहा तब महादेवने हँसतेहुए देवताओंकी कार्यकी इच्छासे उनको निषेध न किया॥ ॥ ५८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ तब पतिव्रता अम्बाने शिवकी प्रदक्षिणा करके वियोगके

॥ देव्युवाच ॥ त्वत्तो लब्धपदा एव सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥ तथाप्याराध्य तपसा ब्रह्माणं त्वन्नियोगतः ॥५५॥ पुरा किल सती नाम्ना दक्षस्य दुहिता भवम् ॥ जगतां पतिमेवं त्वां पतिं प्राप्तवती तथा ॥ ५६ ॥ एवमद्यापि तपसा तोषयित्वा द्विजं विधिम् ॥ गौरी भवितुमिच्छामि को दोषः कथ्यतामिह ॥ ५७ ॥ एवमुक्तो महादेव्या वामदेवः स्मयन्निव ॥ न तां निर्बंधयामास देवकार्यचिकीर्षया ॥५८॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवमन्दरगिरिनिवासक्रीडोक्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य पतिमम्बा पतिव्रता॥नियम्य च वियोगार्तिं जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ १ ॥ तपः कृतवती पूर्वं देशे यस्मिन्सखीजनैः ॥ तमेव देशमवृणोत्तपसे प्रणयात्पुनः ॥ २ ॥ ततः स्वपितरं दृष्ट्वा मातरं च तयोर्गृहे ॥ प्रणम्य वृत्तं विज्ञाप्य ताभ्यां चानुमता सती ॥ ॥ ३ ॥ पुनस्तपोवनं गत्वा भूषणानि विसृज्य च ॥ स्नात्वा तपस्विनो वेषं कृत्वा परमपावनम् ॥ ४ ॥ संकल्प्य च महातीव्रं तपः परमदुश्चरम् ॥ सदा मनसि सन्धाय भर्तुश्चरणपंकजम् ॥ ५ ॥

दुःखको रोक हिमालयको गमन किया ॥ १ ॥ जहाँ पहले अपनी सखियोंके साथ तपस्या की थी उसी देशके तपके निमित्त पार्वतीने श्रेष्ठ माना ॥ २ ॥ तब वहाँ अपने माता और पिताको देखकर यह सब समाचार सुनाकर ॥ ३ ॥ फिर तपोवनमें जाकर सब भूषणोंको उतार स्नानकर परम पवित्र तपस्विनीवेष धारण किया ॥ ४ ॥ संकल्प करके महादुश्चर तपस्या करना प्रारम्भ किया और शिवजीके चरणोंमें मन लगाया ॥ ५ ॥

बाह्य विधानसे स्नानादि कर उसी क्षणिक[१]लिंगके तीनों कालमें पुष्प फलादिसे उनकी पूजा करने लगी ॥ ६ ॥ इस प्रकार तपके फलसे ब्रह्ममूर्तिमें शिवजी प्राप्त होकर ब्रह्माजीसे मुझको मनइच्छित फलको देंगे ॥ ७ ॥ जब इस प्रकार तप करते २ बहुत समय बीत गया तब कोई महाव्याघ्र दुष्टभावसे उस स्थानमें आया ॥ ८ ॥ जब वह दुरात्मा उसके बहुत समीपमें गया; तब उसका शरीर चित्रकी समान स्तब्ध होगया ॥ ९ ॥ इस प्रकार दुष्ट भावसे आये हुए उस व्याघ्रको देखकर दूसरे मनुष्योंकी समान देवी स्वभावसे व्यथित न हुई ॥ १० ॥ और वह भूँखसे व्याकुल सर्वांगसे स्तब्ध होकर यही विचारने

तमेव क्षणिके लिंगे ध्यात्वा बाह्यविधानतः ॥ त्रिसन्ध्यमभ्यर्चयन्ती वन्यैः पुष्पैः फलादिभिः ॥ ६ ॥ स एव ब्रह्मणो मूर्तिमास्थाय
तपसः फलम् ॥ प्रदास्यति ममेत्येवं नित्यं कृत्वाऽकरोत्तपः ॥ ७ ॥ तथा तपश्चरन्तीं तां काले बहुतिथे गते ॥ दुष्टः कश्चिन्महाव्याघ्रो
दुष्टभावादुपागमत् ॥ ८ ॥ तथैवोपगतस्यापि तस्यातीवदुरात्मनः ॥ गात्रं चित्रार्पितमिव स्तब्धं तस्यास्सकाशतः ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वापि
तथा व्याघ्रं दुष्टभावादुपागतम् ॥ न पृथग्जनवद्देवी स्वभावेन विविच्यते ॥ १० ॥ स तु विष्टब्धसर्वांगो बुभुक्षापरिपीडितः ॥ ममा
मिषं ततो नान्यदिति मत्वा निरन्तरम् ॥ ११ ॥ निरीक्ष्यमाणः सततं देवीमेव तदाऽनिशम् ॥ अतिष्ठदग्रतस्तस्या उपासनमिवाच
रत् ॥ १२ ॥ देव्याश्च हृदये नित्यं ममैवायमुपासकः ॥ त्राता च दुष्टसत्त्वेभ्य इति प्रववृते कृपा ॥ १३ ॥ तस्या एव कृपायोगात्सद्यो
नष्टमलत्रयः ॥ बभूव सहसा व्याघ्रो देवीं च बुबुधे तदा ॥ १४ ॥ न्यवर्तत बुभुक्षा च तस्यांगस्तम्भनं तथा ॥ दौरात्म्यं जन्मसिद्धं
च तृतिश्च समजायत ॥ १५ ॥

लगा कि इसके सिवाय दूसरा मेरा भोजन नहीं: है ॥ ११ ॥ सो रात दिन देवीकोही देखता रहता था और आगे खडाहुआ उसकी उपासनासी करता रहता था ॥ १२ ॥ पार्वतीके मनमें सदा यह बात रहती कि यह मेरा उपासक है और दुष्ट जीवोंसे रक्षा करता है यह जानकर कृपा की ॥ १३ ॥ पार्वतीकी कृपादृष्टिसे उसके पाप दूर होगये तब उस महाव्याघ्रने देवीको जाना ॥ १४ ॥ भूँख और अंगका स्तम्भन होगया, दुरात्मापन जानेसे जन्मकी

---

[१] क्षणिक लिंग मृत्तिकालिंग ।

सिद्धि और तृप्ति होगई ॥ १५ ॥ तब परमभावसे अपनेको कृतार्थ जानकर वह सतीका उपासक होकर परमेश्वरीकी सेवा करनेलगा ॥ १६ ॥ दुष्ट तथा दूसरे जीवोंका निवारण करनेवाला होकर मनमें विचारने लगा ॥ १७ ॥ उधर देवीका तप महावृद्धिको प्राप्त होनेलगा; तब देवता और दैत्य तपसे व्याकुल हो ब्रह्माकी शरण गये ॥ १८ ॥ शत्रुसे पीडित होनेका अपना दुःख ब्रह्माजीसे देवताओंने निवेदन किया जैसा कि शुम्भ निशुम्भने वरदानसे दुःख दिया है ॥ १९ ॥ विधाता देवताओंके दुःख सुन कृपा करके दैत्य वधके हेतुवाली कथाको स्मरणकर ॥ २० ॥ देवताओंसे प्रार्थित देवीके तपोवनमें गये और

तदा परमभावेन ज्ञात्वा कार्तार्थ्यमात्मनः ॥ सद्योपासक एवैष सिषेवे परमेश्वरीम् ॥ १६ ॥ दुष्टानामपि सत्त्वानां तथान्येषान्दुरात्मनाम् ॥ स एव द्रावको भूत्वा विचचार तपोवने ॥ १७ ॥ तपश्च ववृधे देव्यास्तीव्रं तीव्रतरात्मकम् ॥ देवाश्च दैत्यनिर्बन्धाद्ब्रह्माणं शरणं गताः ॥ १८ ॥ चक्रुर्निवेदनं देवाः स्वदुःखस्यारिपीडनात् ॥ यथा च ददतुः शुम्भनिशुम्भौ वरसम्मदात् ॥ १९ ॥ सोऽपि श्रुत्वा विधिर्दुःखं सुराणां कृपयान्वितः ॥ आसीद्दैत्यवधायैव स्मृत्वा हेत्वाश्रयां कथाम् ॥ २० ॥ सामरः प्रार्थितो ब्रह्मा ययौ देव्यास्तपोवनम् ॥ संस्मरन्मनसा देवदुःखमोक्षं स्वयत्नतः ॥ २१ ॥ ददर्श च सुरश्रेष्ठः श्रेष्ठे तपसि निष्ठिताम् ॥ प्रतिष्ठामिव विश्वस्य भवानीं परमेश्वरीम् ॥ २२ ॥ ननाम चास्य जगतो मातरं स्वस्य वै हरेः ॥ रुद्रस्य च पितुर्भार्यामार्यामद्रीश्वरात्मजाम् ॥ २३ ॥ ब्रह्माणमागतं दृष्ट्वा देवी देवगणैः सहः ॥ अर्घ्यं तदर्हं दत्त्वाऽस्मै स्वागताद्यैरुपाचरत् ॥ २४ ॥ तां च प्रत्युपचारोक्तिं पुरस्कृत्याभिनन्द्य च ॥ पप्रच्छ तपसो हेतुमजानन्निव पद्मजः ॥ २५ ॥

दुःख दूर करनेवाले देवको अपने मनमें स्मरण करनेलगे ॥ २१ ॥ तब ब्रह्माजीने तप करनेमें तत्पर पार्वतीको देखा, मानो भवानी परमेश्वरी सब जगत्की प्रतिष्ठा है ॥ २२ ॥ तब जगत्की और अपनी भी जननी पार्वतीकी ब्रह्माजीने वंदना की क्योंकि यह रुद्रकी प्रिय भार्या श्रेष्ठ पर्वतराजकी पुत्री हैं ॥ २३ ॥ जब देवीने देवताओंके सहित ब्रह्माको आता देखा तब उनके योग्य अर्घ्य और स्वागतसे पूजन किया ॥ २४ ॥ उस पूजासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी अजानकी

समान तपका कारण पूछने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देवी ! इस तीव्र तपसे तुम किस बातकी इच्छा करती हो; क्योंकि सब फलोंकी सिद्धि तौ तुम्हारे अधीन है ॥ २६ ॥ जो परमेश्वर जगत्के स्वामीहैं सो तुम्हारे भर्ता हैं; ऐसे स्वामीको प्राप्त होकर सबही तपके फल प्राप्तहैं ॥ २७ ॥ अथवा यह सब तुम्हारी क्रीडाका विलास है; परन्तु यह आश्चर्यकी बात है तुम अपने स्वामीका वियोग किस प्रकार सहन करती हो ॥ २८ ॥ देवी बोली, जब कि सृष्टिकी आदिमें आपकी देवदेवसे उत्पत्ति सुनी जातीहै, इस कारण प्रजाओंमें तुम मेरे प्रथम पुत्र हो ॥ २९ ॥ जब फिर प्रजाकी वृद्धिकी इच्छा हुई तब

॥ ब्रह्मोवाच ॥ तीव्रेण तपसानेन देव्या किमिह साध्यते ॥ तपःफलानां सर्वेषां त्वदधीना हि सिद्धयः ॥ २६ ॥ यश्चैव जगतां भर्ता
तमेव परमेश्वरम् ॥ भर्तारमात्मना प्राप्य प्राप्तश्च तपसः फलम् ॥ २७ ॥ अथ वा सर्वमेवैतत्क्रीडाविलसितं तव ॥ इदन्तु चित्रं देवस्य
विरहं सहसे कथम् ॥ २८ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ सर्गादौ भवतो देवादुत्पत्तिः श्रूयते यदा ॥ तदा प्रजानां प्रथमस्त्वं मे प्रथमजः सुतः ॥
॥ २९ ॥ यदा पुनः प्रजावृद्ध्यै ललाटाद्भवतो भवः ॥ उत्पन्नोऽभूत्तदा त्वं मे गुरुः श्वशुरभावतः ॥ ३० ॥ यदा भवद्भिरिन्द्रस्ते पुत्रो
मम पिता स्वयम् ॥ तदा पितामहस्त्वं मे जातो लोकपितामह ॥ ३१ ॥ तदीदृशस्य भवतो लोकयात्राविधायिनः ॥ वृत्तवन्तः पुरे भर्त्रा
कथयिष्ये कथं पुनः ॥ ३२ ॥ किमत्र बहुना देहे यश्चाय मम कालिमा ॥ त्यक्त्वा सत्त्वविधानेन गौरी भवितुमुत्सहे ॥ ३३ ॥
॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतावता किमर्थेन तीव्रं देवि तपः कृतम् ॥ स्वेच्छैव किमपर्याप्ता क्रीडेयं हि तवेदृशी ॥ ३४ ॥

आपके मस्तकसे शिव प्रादुर्भूत हुएहैं इस कारण श्वशुरभावसे तुम मेरे गुरु हो ॥ ३० ॥ जब कि यह हिमालय मेरे पिता तुम्हारे पुत्रहैं तब हे लोकपितामह ! इस रिस्तेसे तुम मेरे पितामह हो ॥ ३१ ॥ सो इस प्रकार लोकयात्रा विधान करनेवाले आपसे जो वार्ता गुप्त स्वामीसे हुई है वह कैसे कहसकतीहूं ॥ ३२ ॥ बहुत कहनेसे क्या है इस मेरे देहमें जो कालिमा है सो यह त्यागकर आपके वचनसे गौरी होनेकी इच्छा करतीहूं ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देवी ! केवल इतनीही बातके लिये तुमने क्यों तीव्र तपस्या की अपने आपही उस रूपको क्यों न धारण किया; अथवा तुम्हारी क्रीडाही इस प्रकारकी है ॥ ३४ ॥

हे जगन्मातः ! आपकी क्रीडा लोकके निमित्त होती है; सो इस क्रीडासे कोई हमारा हित करनेके लिये कार्य करो ॥ ३५ ॥ निशुम्भ शुम्भ नाम दो दैत्योंको मैंने वर दिया है; वह मत्त होकर देवताओंको बाधा देतेहैं; तुमसेही उनका वध होगा ॥ ३६ ॥ इसमें देर करनेका काम नहीं क्षणमात्रको स्थिर हो वह तुम्हारेही उस शरीरसे नष्ट होंगे तुम्हारी शक्तिसे उन दोनोंकी मृत्यु होगी ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे जब ब्रह्माजीने गिरिनन्दिनी देवीसे प्रार्थना की तब उस पूर्वत्वचाके आवरणको छोडकर वह तत्काल गौरी होगई ॥ ३८ ॥ वह त्वचाका कोश देवीने मनसेही त्याग दिया तब उससे कौशिकी नामवाली

क्रीडाऽपि च जगन्मातस्तव लोकहिताय वै ॥ अतो ममेष्टमनया फलं किमपि साध्यताम् ॥ ३५ ॥ निशुंभशुंभनामानौ दैत्यौ दत्त
वरौ मया ॥ दृप्तौ देवान्प्रबाधेते त्वत्तो लब्धस्तयोर्वधः ॥ ३६ ॥ अलं विलंबनेनात्र त्वं क्षणेन स्थिरा भव ॥ शक्तिर्विसृज्यमानाऽद्य
तयोर्मृत्युर्भविष्यति ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणाभ्यर्थिता चैव देवी गिरिवरात्मजा ॥ त्वक्कोशं सहसोत्सृज्य गौरी सा समजायत ॥ ३८ ॥ सा
त्वक्कोशात्मनोत्सृष्टा कौशिकी नाम नामतः ॥ काली कालाम्बुदप्रख्या कन्यका समपद्यत ॥ ३९ ॥ सा तु मायात्मिका शक्तिर्योग
निद्रा च वैष्णवी ॥ शंखचक्रत्रिशूलादिसायुधाष्टमहाभुजा ॥ ४० ॥ सौम्या घोरा च मिश्रा च त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥ अजातपुंस्पर्श
रतिरधृष्या चातिसुन्दरी ॥ ४१ ॥ दत्ता च ब्रह्मणे देव्या शक्तिरेषा सनातनी ॥ निशुंभस्य च शुंभस्य निहंत्री दैत्यसिंहयोः ॥ ४२ ॥
ब्रह्मणापि प्रहृष्टेन तस्यै परमशक्तये ॥ प्रबलः केसरी दत्तो वाहनत्वे समागतः ॥ ४३ ॥ विन्ध्ये च वसतिं तस्याः पूजामासवपूर्वकैः ॥
मांसैर्मत्स्यैरपूपैश्च निर्वर्त्यासौ समादिशत् ॥ ४४ ॥

काली कालमेघकी समान प्रादुर्भूत हुई ॥ ३९ ॥ वही कन्या मायात्मिका शक्ति तथा वैष्णवी योगनिद्रारूप शंख, चक्र, त्रिशूल, बाण, मुशल, घंटा, लांगल, कार्मुक, हाथमें लिये आठ भुजायुक्त हुई ॥ ४० ॥ सौम्यता और घोरतासे युक्त तीन नेत्र और चन्द्रमा शिरपर धारे पुरुष स्पर्शसे हीन धर्षण करनेके अयोग्य महासुन्दरी ॥ ४१ ॥ हुई तब ब्रह्माजीने उसे सनातनशक्ति प्रदान करी जो शुम्भ निशुम्भ महाबली दैत्योंके मारनेमें समर्थ थी ॥ ४२ ॥ और प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उस परमशक्तिके निमित्त प्रबल सिंह वाहन दिया ॥ ४३ ॥ विंध्याचलमें रहनेको स्थान, आसव मांस अपूप मत्स्य यह सब इनकी

पूजाके निमित्त ब्रह्माजीने कल्पित किया ॥ ४४ ॥ वह शक्ति विश्वकर्मा ब्रह्माजीके सम्मत होकर अपनी माता गौरी और ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ ४५ ॥ तथा अपनेसे उत्पन्नहुई, अपने समान अनेक शक्तियोंके सहित उन राक्षसोंको मारनेके निमित्त विंध्याचलमें आई ॥ ४६ ॥ समर करके वहां दोनों दुष्ट दैत्योंका वध किया, उसके बाण और कामबाणसे उनके मन और अंग छिन्न भिन्न होगये ॥४७॥ और पुराणोंमें वर्णन होनेके कारण विस्तारसे वह युद्ध यहां नहीं कहा यह दूसरी जगह देखना, मैं प्रसंगको वर्णन करताहूं ॥४८॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥

सा चैव संमता शक्तिर्ब्रह्मणो विश्वकर्मणः ॥ प्रणम्य मातरं गौरीं ब्रह्माणं चानुपूर्वशः ॥ ४५ ॥ शक्तिभिश्चापि तुल्याभिः स्वात्मजाभिरनेकशः ॥ परीता प्रययौ विन्ध्यं दैत्येन्द्रौ हन्तुमुद्यता ॥४६॥ निहतौ च तया तत्र समरे दैत्यपुंगवौ ॥ तद्बाणैः कामबाणैश्च च्छिन्नभिन्नांगमानसौ ॥४७॥ तद्युद्धविस्तरश्चात्र न कृतोऽन्यत्र वर्णनात् ॥ ऊहनीयं परस्माच्च प्रस्तुतं वर्णयामि वः ॥ ४८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीगौरत्वभवनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ उत्पाद्य कौशिकीं गौरी ब्रह्मणे प्रतिपाद्य ताम् ॥ तस्य प्रत्युपकाराय पितामहमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ दृष्टः किमेष भवता शार्दूलो मदुपाश्रयः ॥ अनेन दुष्टसत्त्वेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम् ॥ २ ॥ मय्यर्पितमना एष भजते मामनन्यधीः ॥ अस्य संरक्षणादन्यत्प्रियं मम न विद्यते ॥ ३ ॥ भवितव्यमनेनातो ममान्तःपुरचारिणा ॥ गणेश्वरपदं चास्मै प्रीत्या दास्यति शंकरः ॥ ४ ॥ एनमग्रेसरं कृत्वा सखीभिर्गन्तुमुत्सहे ॥ प्रदीयतामनुज्ञा मे प्रजानां पतिना त्वया ॥ ५ ॥

॥ २५ ॥ वायु बोले, तब गौरीने कौशिकी नाम अपनी शक्ति उत्पन्न करके ब्रह्माके निमित्त कार्यमें लगाकर उनके प्रत्युपकारके निमित्त ब्रह्माजीसे कहा ॥ ॥ १ ॥ देवी बोली, क्या आपने मेरी उपासना करनेवाले इस शार्दूलको देखाहै ? इसने दुष्ट जीवोंसे मेरे तपोवनकी रक्षा कीहै ॥ २ ॥ यह मुझहीमें मन लगाये अनन्य बुद्धिसे मेरा भजन करताहै, इसकी रक्षाके सिवाय दूसरा मेरा प्रियकार्य नहींहै ॥ ३ ॥ यह हमारे अन्तःपुरमें विचरनेवाला होगा; शिवजी प्रसन्नहो इसके निमित्त गणेश्वर पद देंगे ॥ ४ ॥ सो मैं इसको आगे करके सखियोंके संग जानेकी इच्छा करतीहूं, आप प्रजापति मुझको इसमें

अनुज्ञा दो ॥ ५ ॥ इस प्रकार वचन सुन हँसतहुीई देवीको मुग्धा जानकर उस शार्दूलके दुष्ट चरित्रका वर्णन करतेहुए ब्रह्माजी बोले ॥ ६ ॥ हे देवि ! कहां तो यह क्रूर मृग और कहां तुम्हारा अनुग्रह, साक्षात् सर्पके मुखमें तुम अमृत क्यों सींचतीहो ॥ ७ ॥ यह व्याघ्रही नहींहै, किन्तु यह कोई दुष्ट निशाचर है, इसने गौ और तपस्वी ब्राह्मणोंको भक्षण करलियाहै ॥८॥ यह अनेक कामरूप धारण किये तृप्तहो विचरता रहताहै सो यह अपने पापोंका फल भोगेगा ॥९॥ सो ऐसे दुरात्माओंमें कृपा करनी नहीं चाहिये; इस पापी दुरात्माने तुम्हारे साथ ऐसा क्या कियाहै ॥१०॥ देवी बोली, हे ब्रह्मन् !

इत्युक्तः प्रहसन्ब्रह्मा देवीम्मुग्धामिव स्मयन् ॥ तस्य तीव्रैः पुरावृत्तैर्दौरात्म्यं समवर्णयत् ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पशौ देवि मृगाः
क्रूराः क्व च तेऽनुग्रहः शुभः ॥ आशीविषमुखे साक्षादमृतं किं निषिच्यते ॥ ७ ॥ व्याघ्रमात्रेण सन्नेष दुष्टः कोऽपि निशाचरः ॥
अनेन भक्षिता गावो ब्राह्मणाश्च तपोधनाः ॥ ८ ॥ तर्पयंस्तान्यथाकामं कामरूपी चरत्यसौ ॥ अवश्यं खलु भोक्तव्यं फलं पापस्य
कर्मणः ॥ ९ ॥ अतः किं कृपया कृत्यमीदृशेषु दुरात्मसु ॥ अनेन देव्याः किं कृत्यं प्रकृत्या कलुषात्मना ॥ १० ॥ ॥ देव्युवाच ॥
यदुक्तं भवता सर्वं तथ्यमस्त्वयमीदृशः ॥ तथापि मां प्रपन्नोऽभून्न त्याज्यो मामुपाश्रितः ॥ ११ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अस्य भक्तिम
विज्ञाय प्राग्वृत्तं ते निवेदितम् ॥ भक्तिश्चेदस्य किं पापैर्न ते भक्तः प्रणश्यति ॥ १२ ॥ पुण्यकर्मापि किं कुर्य्यात्त्वदीयाज्ञानपेक्षया ॥
अजा प्रज्ञा पुराणी च त्वमेव परमेश्वरी ॥ १३ ॥ त्वदधीना हि सर्वेषां बंधमोक्षव्यवस्थितिः ॥ त्वदृते परमा शक्तिः संसिद्धिः कस्य
कर्मणा ॥ १४ ॥ त्वमेव विविधा शक्तिः भवानामथ वा स्वयम् ॥ अशक्तः कर्मकरणे कर्ता वा किं करिष्यति ॥ १५ ॥

जो कुछ आपने कहाहै वह सभी सत्यहै तोभी यह मेरी शरण आयाहै, उपासक है इससे मैं इसका त्याग नहीं करसकती ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले, इसकी भक्तिको विनाजाने हमने पूर्वचरित्र उसका वर्णन कियाहै जो इसमें भक्तिहै तो फिर पापोंसे क्याहै तुम्हारे भक्तोंका नाश नहीं होता ॥ १२ ॥ तुम्हारी आज्ञाकी अपेक्षा न करके पुण्यकर्मभी क्या करसकताहै ? हे परमेश्वरी ! तुम्हीं प्रज्ञा बुद्धि और पुराणी हो ॥ १३ ॥ तुम्हारे अधीनही सब जगत्की बंध मोक्ष और स्थिति है, तुम्हारे विना किसके कर्ममें परम सिद्धि प्राप्त होसकतीहै ॥ १४ ॥ तुम्हीं अजन्मा अनेक प्रकारकी शक्ति और भावोंकी भावना करनेवाली

हो, तुम्हारे विना कर्मके करनेमें आसक्त होकर कर्ता क्या करसकता है ॥ १५ ॥ विष्णुको मुझे तथा दूसरे देवता दानव राक्षसोंको तुम्हारीही आज्ञासे ऐश्वर्य प्राप्त हुआहै ॥ १६ ॥ असंख्य ब्रह्मा हरि और शिव व्यतीत होगयेहैं, और तुम्हारी आज्ञासे आगेकोभी सैकडों होंगे ॥ १७ ॥ हे देवेशि ! तुम्हारी आराधनाके विना पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् अर्थ धर्म काम मोक्ष कोई भी हम देवताओंमें प्राप्त नहीं करसकता ॥ १८ ॥ ब्रह्मत्व और स्थावरत्वका वह शीघ्र पति होजाताहै, जो तुम्हें पूजताहै सुकृत और दुष्कृतमें आपहीकी व्यवस्था होतीहै ॥ १९ ॥ जगत्के स्वामी परमात्मा शिवकी तुमहीं अनादिमध्यनिधन

विष्णोश्च मम चान्येषां देवदानवरक्षसाम् ॥ तत्तदैश्वर्यसम्प्राप्त्यै तवैवाज्ञा हि कारणम् ॥ १६ ॥ अतीताः खल्वसंख्याता ब्रह्माणो हरयो भवाः ॥ अनागतास्त्वसंख्यातास्त्वदाज्ञानुविधायिनः ॥ १७ ॥ त्वामनाराध्य देवेशि पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लब्धुं न शक्यस्ममाभिरपि सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ १८ ॥ व्यत्यासोऽपि भवेत्सद्यो ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः ॥ सुकृतं दुष्कृतं चापि त्वयैव स्थापितं यतः ॥ १९ ॥ त्वं हि सर्वजगद्भर्तुश्शिवस्य परमात्मनः ॥ अनादिमध्यनिधना शक्तिराद्या सनातनी ॥ २० ॥ समस्तलोकयात्रार्थं मूर्तिमाविश्य कामपि ॥ क्रीडसे विविधैर्भावैः कस्त्वां जानाति तत्त्वतः ॥ २१ ॥ अतो दुष्कृतकर्माऽपि व्याघ्रोऽयं त्वदनुग्रहात् ॥ प्राप्नोतु परमां सिद्धिमत्र कः प्रतिबन्धकः ॥ २२ ॥ इत्यात्मनः परं भावं स्मारयित्वानुरूपतः ॥ ब्रह्मणाभ्यर्थिता गौरी तपसोऽपि न्यवर्तत ॥ २३ ॥ ततो देवीमनुज्ञाप्य ब्रह्मण्यन्तर्हिते सति ॥ देवीं च मातरं दृष्ट्वा मेनां हिमवता सह ॥ २४ ॥ प्रणम्याश्वास्य बहुधा पितरौ विरहासहौ ॥ तपःप्रणयिनो देवी तपोवनमहीरुहान् ॥ २५ ॥

आदि सनातनी शक्ति हो ॥ २० ॥ सम्पूर्ण लोककी यात्राके निमित्त किसी मूर्तिमें प्रवेश करके अनेक प्रकारसे तुम क्रीडा करतीहो, तुमको कौन जानसकताहै ॥ २१ ॥ इस कारण यह पापिष्ठ व्याघ्रभी तुम्हारे अनुग्रहसे परम सिद्धिको प्राप्त होगा; इसमें प्रतिबन्धक कौन होसकता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार योग्यतासे अपना परमरूप स्मरण कराकर ब्रह्माके कहनेसे गौरी तप करनेसे निवृत्त हुईं ॥ २३ ॥ तब देवीसे पूंछ ब्रह्माजी अन्तर्धान हुए, तब देवीने हिमालयके सहित मेना माताको देखकर ॥ २४ ॥ विरह न सहनेवाले माता पिताको प्रणाम कर और तपोवनके वृक्षोंको बडे प्यारसे नम्रीभूत हुए देखकर ॥ २५ ॥

जो कि देवीके वियोगमें पुष्परूपी आंसू छोडतेथे और उनकी शाखापर बैठेहुए जो पक्षी शब्द करतेथे वही मानो ॥ २६ ॥ रुदन करतेहैं, और बहुत दीनतासे व्याकुल होरहेहैं, उन्हें देखकर सखियोंसे कहतीहुई और अपने स्वामीके शीघ्र दर्शन प्राप्त होनेके निमित्त ॥२७॥ निजपुत्रकी समान उस व्याघ्रको आगे किये अपनी देहकी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान करती ॥ २८ ॥ गौरी मन्दरपर्वतको गईं जहां सब जगत्के विधाता कर्ता रक्षक तथा संहारकर्ता स्वामी शंकर थे ॥ २९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे देवीब्रह्मसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषि बोले,

विप्रयोगशुचेवाग्रे पुष्पबाष्पं विमुंचतः ॥ तत्तुच्छाखासमारूढविहगोदीरितै रुतैः ॥ २६ ॥ व्याकुलं बहुधा दीनं विलापमिव कुर्वतः ॥
सखीभ्यः कथयंत्वेवं सत्त्वरा भर्तृदर्शने ॥ २७ ॥ पुरस्कृत्य च तं व्याघ्रं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम् ॥ देहस्य प्रभया चैव दीपयन्ती दिशो
दश ॥ २८ ॥ प्रययौ मंदरं गौरी यत्र भर्ता महेश्वरः ॥ सर्वेषां जगतां धाता कर्ता पाता विनाशकृत् ॥ २९ ॥ इति श्रीशिवमहापु
राणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे व्याघ्रगतिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कृत्वा गौरं वपुर्दिव्यं देवी
गिरिवरात्मजा ॥ कथं ददर्श भर्तारं प्रविष्टा मन्दिरं सती ॥ १ ॥ प्रवेशसमये तस्या भवनद्वारगोचरैः ॥ गणेशैः किं कृतं देवस्तान्दृष्ट्वा
किन्तदाऽकरोत् ॥ २ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ प्रवक्तुमंजसाऽशक्यः तादृशः परमो रसः ॥ येन प्रणयगर्भेण भावो भाववतां हृतः ॥ ३ ॥
द्वास्थैस्ससंभ्रमैरेव देवो देव्यागमोत्सुकः ॥ शंकमाना प्रविष्टान्तस्तश्च सा समपश्यत ॥४॥ तैस्तैः प्रणयभावैश्च भवनान्तरवर्त्तिभिः ॥
गणेन्द्रैर्वन्दिता वाचा प्रणनाम त्रियम्बकम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार गिरिजादेवी गौर शरीर करके मन्दरपर्वतमें स्थित स्वामीको जिसप्रकार देखने लगी ॥ १ ॥ प्रवेश करनेके समय उनके भवनके द्वारे रहनेहारे गणेशजीने क्या किया सो कहो ॥ २ ॥ वायु बोले, सम्पूर्णतः वह चित्तके आनन्द करनेवाली वार्ता हम नहीं कहसकते; जिस प्रणय युक्तियोंसे शिवजीने उनमें मन लगाया ॥ ३ ॥ देवीके आगमनकी उत्कंठा करनेवाले देवने द्वारपालोंको नियुक्त करादिया था, वह संभ्रमरहित द्वारपालोंसे शंकमान प्रवेश करती हुई उन शिवको देखनेलगी ॥ ४ ॥ महलके भीतर उन अनेक प्रकारके प्रणय नम्रताभावसे वर्तनेवाले गणेन्द्रोंसे नमस्कृत होकर उसने शिवको प्रणाम

किया ॥ ५ ॥ जबतक वह प्रणामकर उठने न पाईं तबतक शिवने उनको भुजाओंसे ग्रहणकर हृदयसे लगालिया ॥६॥ यद्यपि वह अपनी गोदमें बैठातेथे परन्तु वह पलंगपर बैठगईं; परन्तु हँसती हुई देवीको पलंगपरसे बलपूर्वक शिवने गोदमें बैठाया ॥ ७ ॥ हँसतेहुए खुले नेत्रोंसे मानो उनका मुख पान करने लगे उनसे बात करनेको शिवजीने पूर्व वचन कहे ॥ ८ ॥ शिवजी बोले, हे सर्वांगसुन्दरी ! क्या वह तुम्हारी पूर्वदशा व्यतीत होगई; कोपके कारण जिसके द्वारा कोई समझानेका उपाय न हुआ था॥९॥ हे सुभ्रू ! अपनी इच्छासे भी 'काली' न कि दूसरे वर्णवाली यह शब्द तुम्हारे स्वभावसे हरणहुए

प्रणम्य नोत्थिता यावत्तावत्तां परमेश्वरः ॥ प्रगृह्य दोर्भ्यामाश्लिष्य परितः परया मुदा ॥ ६ ॥ स्वांके धर्तुं प्रवृत्तोऽपि सा पर्य्यंके न्यषीदत ॥ पर्य्यंकतो बलाद्देवीं सोङ्कमारोप्य सुस्मिताम् ॥ ७ ॥ सस्मितो विवृतैर्नेत्रैस्तद्वक्त्रं प्रपिबन्निव ॥ तया संभाषणायेशः पूर्वभाषितमब्रवीत् ॥ ८ ॥ देवदेव उवाच ॥ सा दशा च व्यतीता किं तव सर्वांगसुन्दरि ॥ यस्यामनुनयोपायः कोऽपि कोपान्न लभ्यते ॥ ॥ ९ ॥ स्वेच्छयापि न कालीति नान्यवर्णवतीति च ॥ त्वत्स्वभावाद्धृतं चित्तं सुभ्रु चिंतावहं मम ॥१०॥ विस्मृतः परमो भावः कथं स्वेच्छांगयोगतः ॥ न सम्भवन्ति ये तत्र चित्तकालुष्यहेतवः ॥ ११ ॥ पृथग्जनवदन्योन्यं विप्रियस्यापि कारणम् ॥ आवयोरपि यद्यस्ति नास्त्येवैतच्चराचरम् ॥ १२ ॥ अहमग्निशिरोनिष्ठस्त्वं सोमशिरसि स्थिता ॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वमावाभ्यां समधिष्ठितम् ॥ ॥ १३ ॥ जगद्धिताय चरतोः स्वेच्छाधृतशरीरयोः ॥ आवयोर्विप्रयोगे हि स्यान्निरालम्बनं जगत् ॥ १४ ॥ अस्ति हेत्वन्तरं चात्र शास्त्रयुक्तिविनिश्चितम् ॥ वागर्थमिव मे वैतज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १५ ॥

मेरे चित्तकी चिन्ता उत्पन्न करता है ॥ १० ॥ अपनी इच्छाके बलसे तुमने हमारा परमभाव भुला दिया; जिसके कारणसे चित्तमें कलुषताके कारण नहीं होतेहैं ॥ ११ ॥ वे साधारण मनुष्योंके समान एक दूसरेके विप्रियके कारण होतेहैं, परन्तु जो हमारा तुम्हारा प्रेम है वह चराचरमें नहींहै ॥ १२ ॥ मैं अग्निका धारण करनेवाला हूँ, तू सोमरूप शिरमें स्थितहै, इस प्रकार अग्निषोमात्मक जगत् हमसेही स्थितहै ॥१३॥ हम दोनों स्वेच्छासे शरीर धारण कर जगत्के हितके निमित्त विचरतेहैं; हम दोनों वियोगमें जगत् निरालम्ब होजाताहै ॥१४॥ इसमें शास्त्रयुक्तिसे निश्चय कियाहुआ दूसरा हेतुहै; यह स्थावर

जंगमात्मक जगत् वाणी और अर्थमय अर्थात् नामरूपात्मक है ॥ १५ ॥ तुम साक्षात् अमृतमय वाणी हो और मैं अमृतरूप अर्थ हूं सो वियोग होनेसे यह
अमृत किसी प्रकार प्राप्त नहीं होसकता ॥ १६ ॥ विद्याके ज्ञानसे तुम और तुम्हारे ज्ञानसे मै जानाजाता हूं; विद्या और वेद्य आत्मावाले हम दोनोंका
वियोग कैसे होसकता है ॥ १७ ॥ मैं अपनेही व्यापारसे इस जगत्को उत्पन्न और संहार नहीं करताहूं; सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति प्रलय तुम्हारी आज्ञासे
होती है सो वह आज्ञारूप तुम हो ॥१८॥ आज्ञाका साररूप ऐश्वर्य है; उसका लक्षण स्वतंत्रता है; आज्ञासे वियुक्त होकर ऐश्वर्य क्योंकर प्राप्त होसकताहै
॥ १९ ॥ वियोग दशामें हम दोनों किसी प्रकार नहीं रहसकतेहैं, तौ भी वियोग हुआ यह कैसी अद्भुत बात है, दूसरोंपर अनुग्रह करनेके सिवाय इसमें

त्वं हि वागमृतं साक्षादहमर्थामृतं परम् ॥ द्वयमप्यमृतं कस्माद्वियुक्तमुपपद्यते ॥ १६ ॥ विद्याप्रत्यायिका त्वं मे वेद्योऽहं प्रत्ययात्तव ॥
विद्यावेद्यात्मनोरेव विश्लेषः कथमावयोः ॥ १७ ॥ न कर्मणा सृजामीदं जगत्प्रतिसृजामि च ॥ सर्वस्याज्ञैकलभ्यत्वादाज्ञा त्वं
हि गरीयसी ॥ १८ ॥ आज्ञैकसारमैश्वर्य्यं यस्मात्स्वातंत्र्यलक्षणम् ॥ आज्ञया विप्रयुक्तस्य चैश्वर्य्य मम कीदृशम् ॥ १९ ॥ न कदा
चिदवस्थानमावयोर्विप्रयुक्तयोः ॥ देवानां कार्य्यमुद्दिश्य लीलोक्तिं कृतवानहम् ॥ २० ॥ त्वयाप्यविदितं नास्ति कथं कुपित
वत्यसि ॥ ततस्त्रिलोकरक्षार्थे कोपो मय्यपि ते कृतः ॥ २१ ॥ यदनर्थाय भूतानां न तदस्ति खलु त्वयि ॥ इति प्रियंवदे साक्षादी
श्वरे परमेश्वरे ॥ २२ ॥ शृंगारभावसाराणां जन्मभूमिरकृत्रिमा ॥ स्वभर्त्रा ललितन्तथ्यमुक्तं मत्वा स्मितोत्तरम् ॥ २३ ॥ लज्जया न
किमप्यूचे कौशिकी वर्णनात्परम् ॥ तदेव वर्णयाम्यद्य शृणु देव्याश्च वर्णनम् ॥ २४ ॥

और प्रयोजन नहींहै; यह सृष्टिके प्रवृत्त करनेको हमारा विलास वृथा नहींहै, देवताओंके कार्यके कारण लीलासेही मैंने वह वचन कहाथा ॥ २० ॥
और तुम्हैंभी वह वार्ता विदित थी फिर किस कारण क्रोध किया क्या त्रिलोकी की रक्षाके निमित्तही मेरे ऊपर क्रोध किया था ॥ २१ ॥ कारण कि
जिसमें प्राणियोंका अनर्थ हो वह वस्तु तुझमें नहींहै, इस प्रकार प्रिय बोलनेवाले ईश्वरसे ॥ २२ ॥ शृंगारभावकी सारभूत स्वाभाविक सुन्दरी परमेश्वरी
अपने स्वामीके कहेहुए सत्य वचनोंको सुनकर ॥२३॥ लज्जासे कौशिकीचरित्र वर्णनके विना कुछ न बोली, वही मैं कहताहूं देवीका वर्णन सुनो॥२४॥

देवी बोली, जो मैंने कौशिकी बनाई है क्या वह तुमने नहीं देखी, वैसी कन्या संसारमें न हुई और न होगी ॥ २५ ॥ उसका पराक्रम बल विन्ध्याचल पर्वतमें विजय और युद्धमें शुम्भ निशुम्भका वध है ॥ २६ ॥ भजन करनेवाले लोकोंको प्रत्यक्ष फलका देना देवताओंकी रक्षामें ब्रह्माका नियुक्त करना॥ ॥ २७ ॥ इस प्रकार कहते हुए देवीकी आज्ञासे सखीने वह व्याघ्र लाकर आगे खडा करदिया ॥ २८ ॥ उसे देखकर देवी फिर बोलीं कि; हे देव ! यह मैं भेंट लाईहूं, इस व्याघ्रको देखो; इसकी समान मेरा कोई उपासक नहीं है ॥ २९ ॥ इसने दुष्ट जीवोंसे मेरे तपोवनकी रक्षा की थी यह मेरा अत्यन्त भक्त और रक्षा करनेसे निश्चित है ॥ ३० ॥ यह अपना देश त्यागनकर प्रसन्नताके निमित्त आया है जो मुझमें प्रीति है और मुझमें प्रेम करते हो तो ॥ ॥ ३१ ॥ हे ईश्वर ! अन्तःपुरके द्वारेपर नन्दीकी आज्ञासे रक्षा करनेवालोंके चिह्नोंके सहित यह स्थित हो ॥ ३२ ॥ वायु बोले, इस प्रकार मधुर और नम्रता भरे देवीके वचन सुनकर 'मैं प्रसन्न हूं' शिवने यह वचन कहे, तब तत्काल उस व्याघ्रको दिखाया ॥ ३३ ॥ वह सुवर्णका डंडा लिये रत्नजटित विचित्र कंचुक पहरे सर्पकी समान छुरी लिये गणेशकी रक्षा करनेयोग्य शरीर धारे स्थित हुआ ॥ ३४ ॥

॥ देव्युवाच ॥ किं देवेन न सा दृष्टा या सृष्टा कौशिकी मया॥ तादृशी कन्यका लोके न भूता न भविष्यति ॥२५॥ तस्या वीर्यं बलं विन्ध्यनिलयं विजयं तथा ॥ शुंभस्य च निशुंभस्य मारणे च रणे तयोः ॥२६॥ प्रत्यक्षफलदानं च लोकाय भजते सदा ॥ लोकानां रक्षणं शश्वद्ब्रह्मा विज्ञापयिष्यति ॥ ॥ २७ ॥ इति संभाषमाणाया देव्या एवाज्ञया तदा ॥ व्याघ्रः सख्या समानीय पुरोऽवस्थापितस्तदा ॥ २८ ॥ तं प्रेक्ष्याह पुनर्देवी देवानीतमुपायनम् ॥ व्याघ्रं पश्य न चानेन सदृशो मदुपासकः ॥२९॥ अनेन दुष्टसंघेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम् ॥ अतीव मम भक्तश्च विश्रब्धश्च स्वरक्षणात् ॥३०॥ स्वदेशं च परित्यज्य प्रसादार्थं समागतः ॥ यदि प्रीतिरभून्मत्तः परां प्रीतिं करोषि मे ॥ ३१ ॥ नित्यमन्तःपुरद्वारि नियोगान्नन्दिनः स्वयम् ॥ रक्षिभिस्सह तच्चिह्नैर्वर्ततामयमीश्वर ॥ ३२ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ मधुरं प्रणयोदर्कं श्रुत्वा देव्याः शुभं वचः ॥ प्रीतोऽस्मीत्याह तं देवस्स चादृश्यत तत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ बिभ्रद्वेत्रलतां हैमीं रत्नचित्रं च कंचुकम् ॥ छुरिकामुरगप्रख्यां गणेशो रक्षवेषधृक् ॥ ३४ ॥

जिस कारण कि इसने उमासहित महादेव और नन्दीको प्रसन्न किया इसी कारण इसका नाम सोमनन्दी हुआ ॥ ३५ ॥ शशिशेखर शिवजी इस प्रकार देवीका प्रिय करके गौरीको दिव्य भूषणोंसे भूषित करनेलगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार कैलासपति चन्द्रमौलि गिरिजा गौरीको गौरवयुक्त और सर्वमनोहारिणी करके अपने पर्यंकमें बैठाय अनेक प्रकारके भूषणसे भूषित करनेलगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे सत्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ऋषि बोले, देवीके समाधान करनेके समय शिवजीने यह वार्ता क्यों कही कि यह जगत् अग्नीषोमात्मक और वागर्थात्मक है ॥ १ ॥

यस्मात्सोमो महादेवो नन्दी चानेन नन्दितः ॥ सोमनन्दीति विख्यातस्तस्मादेष समाख्यया ॥ ३५ ॥ इत्थं देव्याः प्रियं कृ॰ । देवश्चार्द्धेन्दुभूषणः ॥ भूषयामास तन्दिव्यैर्भूषणै रत्नभूषितैः ॥ ३६ ॥ ततस्स गौरीं गिरिशो गिरीन्द्रजां सगौरवां सर्वमनोहरां हरः ॥ पर्य्यंकमारोप्य वरांगभूषणैर्विभूषयामास शशांकभूषणः ॥३७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ देवीं समादधानेन देवेनेदं किमीरितम् ॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वं वागर्थात्मकमित्यपि ॥ १ ॥ आज्ञैकसारमैश्वर्य्यमाज्ञा त्वमिति चोदितम् ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामो यथावदनुपूर्वशः ॥ २ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः ॥ सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शान्तिकरी तनुः ॥ ॥ ३ ॥ अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम् ॥ भूतसूक्ष्मेषु सर्वेषु त एव रसतेजसी ॥ ४ ॥ द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्य्यात्मा चानलात्मिका ॥ तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका ॥ ५ ॥ विद्युदादिमयन्तेजो मधुरादिमयो रसः ॥ तेजोरसविभेदैस्तु धृतमेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

ऐश्वर्य एक आज्ञाकेही सारवाला है और तुम आज्ञास्वरूप हो सो इस वार्ताको हमारी क्रमसे सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥ वायु बोले, जो रुद्रका घोर तेजस्वी शरीर है उसीको अग्नि कहतेहैं, और सोम शक्तिका अमृतमय शरीर है, यही शक्तिका शान्तिमय शरीर है ॥ ३ ॥ उस अमृतमें जिसकी प्रतिष्ठा है वह स्वयं तेजकी विद्या कला है, वेही रस और तेज पृथ्वी आदि परमाणुओंमें स्थित रहतेहैं ॥ ४ ॥ और दो प्रकारकी तैजसी वृत्ति सूर्यात्मा रूप तथा अग्निकी आत्मा रूप है इसी प्रकार यह वृत्ति सोमात्मक है ॥ ५ ॥ तेज वैद्युतमय है और रस मधुरादिमय है तेज और रसके भेदसेही यह चराचर जगत्

धारण कियागया है ॥ ६ ॥ अग्निसेही अमृतकी उत्पत्ति होती है "अग्नेराप इति श्रुतेः" घृत वा अमृतसे ही अग्निकी वृद्धि होती है "अमृतं वा आज्यमिति श्रुतेः" इसी कारण अग्नि और सोम देवताकी दीहुई हवि जगत्के हितके निमित्त है ॥ ७ ॥ हविके अर्थ धान्यकी संपत्ति होती है, धान्यकी वृद्धिके निमित्त वृष्टि होतीहै, इसी कारण हवि श्रेष्ठ वर्षाके निमित्त है; इसीसे अग्नि सोम द्वारा जगत धारण कियागया है ॥ ८ ॥ वह अग्नि ऊपरको प्रज्वलित होता है जहांतक शान्त अमृत है; जहांतक अग्निका स्थान है वहांसे सोमसे उत्पन्नहुआ अमृत नीचे गिरता है ॥ ९ ॥ इसी कारण कालाग्निके नीचे और शक्तिके ऊपरसे ऊर्ध्वशक्ति मात्रसे उतनाही ऊपरको दहन और नीचेको अमृतद्वारा प्लावन होता है ॥ १० ॥ आधारशक्तिसे धारण कियाहुआ यह कालाग्नि ऊर्ध्वगामी है; इसी प्रकार शिवशक्तिके स्थानवाला सोम नीचेको चलता है ॥ ११ ॥ ऊपर शिव नीचे शक्ति, ऊपर शक्ति नीचे शिव है; इस प्रकार शिवशक्तिसेही सब जगत व्याप्त है ॥ १२ ॥ एकबारही जो अग्निसे दग्ध होकर यह जगत् भस्म हुआ था इसीसे यह भस्म अग्निका वीर्य कहलाता है ॥ १३ ॥ जो इस प्रकार भस्मका भाव जानकर भस्मसे स्नान करता है और 'अग्निरिति भस्म' 'वायुरिति भस्म' यह मन्त्र उच्चारण करता है वह बंधनसे छूटजाता है ॥ १४ ॥ अग्निका वीर्य वह भस्म सोमसे प्लावित होकर योगसम्बन्धके विना प्रकृतिके अधिकारके निमित्त कल्पित होता है ॥ १५ ॥

अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ॥ अत एव हि विक्रान्तमग्नीषोमं जगद्धितम् ॥ ७ ॥ हविषे सस्यसम्पत्तिर्वृष्टिः सस्याभिवृद्धये ॥ वृष्टेरेव हविस्तस्मादग्नीषोमधृतं जगत् ॥ ८ ॥ अग्निरूर्द्ध्वं ज्वलत्येष यावत्सौम्यं परामृतम् ॥ यावदग्न्यास्पदं सौम्यममृतं च स्रवत्यधः ॥ ९ ॥ अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्द्ध्वतः ॥ यावदादहनं चोर्द्ध्वमधश्चाप्लावनं भवेत् ॥ १० ॥ आधारशक्त्यैव धृतः कालाग्निरयमूर्द्ध्वगः ॥ तथैव निम्नगः सोमश्शिवशक्तिपदास्पदः ॥ ११ ॥ शिवश्चोर्द्ध्वमधश्शक्तिरूर्द्ध्वं शक्तिरधः शिवः ॥ तदित्थं शिवशक्तिभ्यान्नाव्याप्तमिह किञ्चन ॥ १२ ॥ असकृच्चाग्निना दग्ध जगद्यद्भस्मसात्कृतम् ॥ अग्नेर्वीर्यमिदं चाहुस्तद्वीर्यं भस्म यत्ततः ॥१३॥ यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वा स्नाति च भस्मना ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्बद्धः पाशात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ अग्नेर्वीर्यं तु यद्भस्म सोमेनाप्लावितम्पुनः ॥ अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते ॥ १५ ॥

योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समन्ततः ॥ शाक्तेनामृतवर्षेण चाधिकारान्निवर्तयेत् ॥ १६ ॥ अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सदा ॥ शिवशक्त्यमृतस्पर्शे लब्धं येन कुतो मृतिः ॥ १७ ॥ यो वेद दहनं गुह्यं प्लावनं च यथोदितम् ॥ अग्नीषोमपदं हित्वा न स भूयोऽभिजायते ॥ १८ ॥ शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसौम्यामृतेन यः ॥ प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १९ ॥ हृदि कृत्वेममर्थं वै देवेन समुदाहृतम् ॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वं जगदित्यनुरूपतः ॥ २० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे भस्मतत्त्ववर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ ॥ वायुरुवाच ॥ निवदयामि जगतो वागर्थात्म्यं कृतं यथा ॥ षडध्ववेदनं सम्यक् समासान्न तु विस्तरात् ॥ १ ॥ नास्ति कश्चिदशब्दार्थो नापि शब्दो निरर्थकः ॥ ततो हि समये शब्दस्सर्वस्सर्वार्थबोधकः ॥ २ ॥ प्रकृतेः परिणामोऽयं द्विधा शब्दार्थभावना ॥ तामाहुः प्राकृतीं मूर्तिं शिवयोः परमात्मनोः ॥ ३ ॥ शब्दात्मिका विभूतिर्या सा त्रिधा कथ्यते बुधैः ॥ स्थूला सूक्ष्मा परा चेति स्थूला या श्रुतिगोचरा ॥ ४ ॥

योगयुक्तिसे वह भस्म सब प्रकार प्लावित होकर अमृत वर्षानेवाले शरीरके अधिकारसे निवृत्त होता है ॥ १६ ॥ सो यह अमृतका संगम मनुष्योंको मृत्युके जीतनेके निमित्त है, शिवशक्तिसे अमृतका सँग प्राप्त होनेसे फिर मृत्यु कहांहै ॥१७॥ जो कोई इस गुप्त अग्निके प्लावनको जानता है जो कि शास्त्रोक्त है वह अग्निसोममय जगतको छोडकर फिर जन्म नहींलेता ॥१८॥ जो शिवाग्निसे शरीरको दग्ध करके शक्तिसोमके अमृतसे उसे योगमार्ग दैवशास्त्रके द्वारा प्लावित करै वह अमृत होजाताहै ॥१९॥ इस अर्थको हृदयमें धारण करके शिवजीने यह जगत् अग्नीषोमात्मकहै ऐसा उच्चारण किया ॥२०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ वायु बोले, अब मैं जगतकी वागर्थात्मकता कहताहूं जिससे छः मार्गोंका ज्ञान होजाता है, सो विस्तारसे न कहकर संक्षेपसे वर्णन करताहूं ॥ १ ॥ कोई भी शब्द अर्थरहित नहीं है, संकेतके जाननेसे सब शब्द सब अर्थके कहनेवालेहैं; गवादिपद संकेतके विना गौ आदिका ज्ञान नहीं होता ॥ २ ॥ यह प्रकृतिका परिणाम शब्दार्थ रूपसे दो प्रकारका कहा है, इसीको परमात्मा शिवा शिवकी विभूति वा प्रकृति कहतेहैं ॥ ३ ॥ जो शब्दात्मिका विभूति है उसको पंडितोंने तीन प्रकारकी कहा है स्थूल सूक्ष्म और अपरा जो स्थूल है सो श्रवणके प्रत्यक्ष

गोचर है ॥ ४ ॥ और सूक्ष्म चिन्तामयी अर्थात् मनमयी कहलाती है, चिन्तासे रहित परा है सो ही शिवतत्त्वका आश्रय लिये क्रियाशक्ति है ॥ ५ ॥ ज्ञानशक्तिके योगसे ईश्वरकी इच्छाके साथ सम्पूर्ण शक्तियोंका समष्टि आत्माशक्ति तत्त्वनामवाला है ॥ ६ ॥ वह सम्पूर्ण कार्यसमूहकी मूलप्रकृति है, वही विशुद्धमार्गस्वरूपा कुण्डलिनी माया है ॥७॥ वह विभागस्वरूप है उसीसे षडध्वात्मा विस्तृत होता है, उसमें तीनमार्ग शब्दके और तीन अर्थोंके भी हैं ॥ ॥ ८ ॥ वे सम्पूर्ण पुरुषोंकी निजशुद्धिके अनुरूपसे लय भोगके विनियोगके निमित्त पूर्णहैं लयभोगके अधिकार सब तत्वोंके विभागसे है ॥९॥ कलाओंसे

सूक्ष्मा चिन्तामयी प्रोक्ता चिंतया रहिता परा ॥ या शक्तिः सा परा शक्तिश्शिवतत्त्वसमाश्रया ॥ ५ ॥ ज्ञानशक्तिसमायोगादिच्छोपोद्बलिका तथा ॥ सर्वशक्तिसमष्ट्यात्मा शक्तितत्त्वसमाख्यया ॥६॥ समस्तकार्यजातस्य मूलप्रकृतितां गता ॥ सैव कुण्डलिनी माया शुद्धाध्वपरमा सती ॥ ७ ॥ सा विभागस्वरूपैव षडध्वात्मा विजृंभते ॥ तत्र शब्दास्त्रयोऽध्वानस्त्रयश्चार्थाः समीरिताः ॥८॥ सर्वेषामपि वै पुंसां नैजशुद्ध्यनुरूपतः ॥ लयभोगाधिकारास्स्युस्सर्वतत्त्वविभागतः ॥ ९ ॥ कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम् ॥ परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः ॥ १० ॥ कलाश्च ता निवृत्त्याद्याः पर्य्याप्ता इति निश्चयः ॥ मंत्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः ॥ ११ ॥ भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात् ॥ अत्रान्योन्यं च सर्वेषां व्याप्यव्यापकतोच्यते ॥ १२ ॥ मंत्राः सर्वैः पदैर्व्याप्ता वाक्यभावात्पदानि च ॥ वर्णैर्वर्णसमूहं हि पदमाहुर्विपश्चितः ॥ १३ ॥

वे तत्व यथायोग्य विभक्तहैं, प्रकृतिकी आदिमें परिणामसे वेही पांच प्रकारकेहैं ॥ १० ॥ वह कलानिवृत्ति आदि इसमें पर्याप्तहैं, यह निश्चय है शब्दाध्वोंको कहते हैं मन्त्राध्व, पदाध्व और वर्णाध्व, (मन्त्राध्व अर्थात् अपने ज्ञानद्वारा मोक्ष प्राप्तिका मार्ग) ॥ ११ ॥ भुवनाध्व चतुर्दश भुवनरूप, तत्त्वाध्व महदादि तत्त्वस्वरूप, कालाध्व निवृत्त्यादि पंचकरूप इन सब शब्द और अर्थोंकी परस्पर व्याप्यव्यापकता कहीजाती है ॥ १२ ॥ सब मन्त्र पदोंसे व्याप्त हैं और मन्त्रोंका वाक्यस्वरूप होनेसे और वाक्योंका पदसमूह होनेसे वे पद वर्णोंसे व्याप्तहैं, वर्णोंके समूहका नाम पद विद्वानोंने कहा है ॥ १३ ॥

वर्णोंसे जगत् व्याप्त होरहा है, कारण कि उन वर्णोंकी सब भुवनोंमें प्राप्ति है, भुवन भी तत्वोंके समूहसे क्रमसे ब्रह्माण्डके बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥ १४ ॥
और वे अपने कारणतत्त्वोंसे अनेक प्रकार व्याप्त हैं; और जो इस ब्रह्माण्डके अन्तरमें ब्रह्माण्ड है ॥१५॥ वह शैवशास्त्र पुराणोंमें प्रतिपादन किये हैं और
जो तत्त्व सांख्ययोगमें प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तथा और जो अनेक शिव शास्त्रमें प्रसिद्ध हैं वे सब तत्त्व निवृत्ति आदि कलाओंसे यथावत् व्याप्त हैं ॥ १७ ॥
प्रथम पराप्रकृतिके आदिमें पांचप्रकारके परिणामवाले हैं वे कलानिवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शांति, विशुद्धरूप हैं ॥ १८ ॥ इन कलाओंसे परे वह पराशक्ति

वर्णास्तु भुवनैर्व्याप्तास्तेषां तेषूपलंभनात् ॥ भुवनान्यपि तत्त्वौघैरुत्पत्त्यांतर्बहिःक्रमात् ॥ १४ ॥ व्याप्तानि कारणैस्तत्त्वैरारब्धत्वाद
नेकशः ॥ अंतराद्युत्थितानीह भुवनानि तु कानिचित् ॥ १५ ॥ पौराणिकानि चान्यानि विज्ञेयानि शिवागमे ॥ सांख्ययोगप्रसिद्धानि
तत्त्वान्यपि च कानिचित् ॥१६॥ शिवशास्त्रप्रसिद्धानि ततोन्यान्यपि कृत्स्नशः ॥ कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम् ॥१७॥
परस्याः प्रकृतेरादौ पंचधा परिणामतः ॥ कलाश्च ता निवृत्त्याद्या व्याप्ताः पंचयथोत्तरम् ॥ १८ ॥ व्यापिकातःपरा शक्तिरविभक्ता षड
ध्वनाम् ॥ परप्रकृतिभावस्य तत्सत्त्वाच्छिवतत्त्वतः ॥ १९ ॥ शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम् ॥ व्याप्तमेकेन तेनैव मृदा
कुंभादिकं यथा ॥ २० ॥ शैवं तत्परमं धाम यत्प्राप्यं षड्भिरध्वभिः ॥ व्यापिकाऽव्यापिका शक्तिः पंचतत्त्वविशोधनात् ॥ २१ ॥
निवृत्त्या रुद्रपर्य्यन्तं स्थितिरण्डस्य शोध्यते ॥ प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं तु यावदव्यक्तगोचरम् ॥ २२ ॥ तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विश्वेश्व
रावधि ॥ शान्त्या तदूर्ध्वं मध्वान्ते विशुद्धिः शान्त्यतीतया ॥ २३ ॥

षडध्वोंमें अविभक्त होकर व्याप्त होरही है पर प्रकृतिभावका वह सत्त्वादि शिवतत्त्वरूपसे ॥ १९ ॥ इन षडध्वोंमें विद्यमान है शक्तिको आदि ले पृथ्वीतक
शिवतत्त्वसे प्रगट है, यह सब उसी एकसे व्याप्त है, जैसे घटादिमें मृत्तिका ॥ २० ॥ जो षडध्वसे प्राप्त होता है वही शिवका परमधाम है शिवके स्थानमें
प्राप्त करनेवाली और व्याप्तिकी शक्ति पांच तत्त्वोंके शोधनेसे जानीजाती है ॥ २१ ॥ और निवृत्तिकलासे रुद्रपर्यन्त अंडकी स्थिति शोधीजाती है, प्रति
ष्ठाकलासे उससे ऊपर जहांतक अव्यक्त है शोधा जाता है ॥ २२ ॥ विद्यासे उससे ऊपर विद्येश्वर तक शुद्ध होता है, शान्तिसे उससे ऊर्ध्वअध्वपर्यन्त और

शान्तातीतसे विशुद्धि शुद्ध होती है ॥२३॥ जिसको पर प्रकृतिके योगसे परमव्योम कहते हैं, इन्हीं पांच तत्वोंसे सब जगत् व्याप्त है ॥२४॥ साधकोंको उसीमें सब देखना चाहिये अध्वव्याप्तिको विनाजाने जो शुद्धि करनेकी इच्छा करता है ॥२५॥ वह वञ्चित होता है; और उसे शुद्धिका फल नहीं मिलता, उसका श्रम वृथा है केवल अधोयोनिमें जानेके निमित्त है ॥२६॥ शक्तिपातके योगसे तत्वके विना तत्वसे वह व्याप्ति और विशुद्धि कोई भी जाननेको समर्थ नहीं है ॥२७॥ शक्तिही आज्ञा शिवसम्बन्धिनी चिद्रूपा परमेश्वरी है जिसके कारण (साधन) भूत होकर सबमें शिव अधिष्ठित हैं ॥२८॥ न आत्मा न

यामाहुः परमं व्योम परप्रकृतियोगतः ॥ एतानि पंचतत्त्वानि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥२४॥ तत्रैव सर्वमेवेदं द्रष्टव्यं खलु साधकैः ॥ अध्वव्याप्तिमविज्ञाय शुद्धिं यः कर्तुमिच्छति ॥ २५ ॥ स विप्रलम्भकः शुद्धेर्नालम्प्रापयितुं फलम् ॥ वृथा परिश्रमस्तस्य निरयायैव केवलम् ॥२६॥ शक्तिपातसमायोगादृते तत्त्वानि तत्त्वतः ॥ तद्व्याप्तिस्तद्विशुद्धिश्च ज्ञातुमेवं न शक्यते ॥ २७ ॥ शक्तिराज्ञा परा शैवी चिद्रूपा परमेश्वरी ॥ शिवोऽधितिष्ठत्यखिलं यया कारणभूतया ॥ २८ ॥ नात्मनो नैव मायैषा न विकारो विचारतः ॥ न बंधो नापि मुक्तिश्च बंधमुक्तिविधायिनी ॥ २९ ॥ सर्वैश्वर्यपराकाष्ठा शिवस्य व्यभिचारिणी ॥ समानधर्मिणी तस्य तैस्तैर्भावैर्विशेषतः ॥ ३० ॥ स तयैव गृही सापि तेनैव गृहिणी सदा ॥ तयोरपत्यं यत्कार्यं परप्रकृतिजं जगत् ॥ ३१ ॥ स कर्ता कारणं सेति तयोर्भेदो व्यवस्थितः ॥ एक एव शिवः साक्षाद्द्विधाऽसौ समवस्थितः ॥ ३२ ॥ स्त्रीपुंसभावेन तयोर्भेद इत्यपि केचन ॥ अपरे तु परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी ॥ ३३ ॥

माया और न यह विकारहै जो विचारकर देखाजाय तो न बंधहै न मुक्तिहै और बंध मुक्तिका विधान करनेवाली है ॥ २९ ॥ सब ऐश्वर्यकी परा काष्ठा शिवकी अव्यभिचारिणी शक्ति है, विशेषकर शिवके उन २ भावोंकी समानधर्मिणी है ॥ ३० ॥ वह शिव उससे गृही (गृहस्थी) और वह शक्ति उनसे सदागृहिणी है उनकी सन्तान जो कार्यहै वही परप्रकृतिसे उत्पन्नहुआ जगत् है ॥ ३१ ॥ वही कर्ता शिवहै, शक्ति कारणरूपसे कल्पित है, इसीसे वह जगत्के माता पिता कहेहैं, यही इतना इनका भेद है,एकही यह शिव दो प्रकारसे स्थित हैं ॥ ३२ ॥ स्त्री पुरुषरूपसे कोई उसमें भेद कहतेहैं, कोई परा

शक्ति शिवमें नित्य मिली कहतेहैं ॥ ३३॥ जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा सूर्यसे भिन्न और अभिन्न है, इसी प्रकार वह शक्तिहै, इस कारण शिवही परम कारण हैं उनकी आज्ञा वह परमेश्वरी है ॥ ३४॥ उसीसे वह शिवकी अविनाशिनी मूलप्रकृति प्रेरितहोकर त्रिगुणात्मक होतीहै, महामाया मायाके भेदसे वह प्रकृति त्रिगुणात्मक होकर ॥ ३५ ॥ कार्यके भेदसे तीन प्रकारकी होकर षडध्वोंको प्रगट करतीहै, वही वाणी और अर्थमय षडध्व है जिससे सब जगत् व्याप्त है ॥ ३६ ॥ शास्त्रोंमें इसीका महाविस्तार कहाहै ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे षडध्वकथनं नामैकोनत्रिंशो

प्रभेव भानोश्चिद्रूपा भिन्नैवेति व्यवस्थितिः ॥ तस्माच्छिवः परो हेतुस्तस्याज्ञा परमेश्वरी ॥ ३४ ॥ तयैव प्रेरिता शैवी मूलप्रकृतिरव्यया ॥ महामाया च माया च प्रकृतिस्त्रिगुणेति च ॥ ३५ ॥ त्रिविधा कार्यवेधेन सा प्रसूते षडध्वनः ॥ स वागर्थमयश्चाध्वा षड्विधो निखिलं जगत् ॥ ३६ ॥ अस्यैव विस्तरं प्राहुः शास्त्रजातमशेषतः ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वागर्थात्मकत्ववर्णनं नाम नवैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ चरितानि विचित्राणि गुह्याणि गहनानि च ॥ दुर्विज्ञेयानि देवैश्च मोहयंति मनांसि नः ॥ १ ॥ शिवयोस्तत्त्वसम्बन्धे न दोष उपलभ्यते ॥ चरितैः प्राकृतो भावस्तयोरपि विभाव्यते ॥ २ ॥ ब्रह्मादयोऽपि लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥ निग्रहानुग्रहौ प्राप्य शिवस्य वशवर्तिनः ॥ ३ ॥ शिवः पुनर्न कस्यापि निग्रहानुग्रहास्पदम् ॥ अतोन्नतिशतैश्वर्यं तस्यैवेति विनिश्चितम् ॥ ४ ॥ यद्येवमीदृशैश्वर्य्यं तत्तु स्वातन्त्र्यलक्षणम् ॥ स्वभावसिद्धं चैतस्य मूर्तिमत्तास्पदं भवेत् ॥ ५ ॥

ऽध्यायः ॥ २९ ॥ ऋषि बोले शिवजीके चरित्र बडे विचित्र और गहन हैं यह देवताओंकोभी जाननेको अशक्य हैं, हमारे मन मोहित करतेहैं ॥ १ ॥ शिवा शिवके तत्वज्ञानमें कोई दोष विदित नहीं होता; उन दोनोंके चरित्रमें विशेषकर प्रकृतिसंभव भाव रहता है ॥ २ ॥ यद्यपि ब्रह्मादिकभी लोकोंकी उत्पत्ति पालन और प्रलयके कारणहैं परन्तु वे निग्रह अनुग्रहको प्राप्त होकर शिवके वशवर्ती हैं ॥ ३ ॥ परन्तु शिव किसीके निग्रह अनुग्रहके स्थान नहींहैं, इस कारण शिवका ऐश्वर्य किसीके आधीन नहीं यह निश्चय है ॥ ४ ॥ जो कि यह इस प्रकारका ऐश्वर्य है, यही स्वतंत्रताका लक्षण है; सो इनका स्थान

मूर्तिमान् कैसे होसकताहै ॥ ५ ॥ जगत्के कारण होनेसे स्वतंत्रकी मूर्ति नहीं होसकती, मूर्तिमें कार्यत्व होनेसे विनाहेतु उसकी सिद्धि होसकतीहै ॥ ६ ॥ सर्वत्र निर्गुणभाव कहाहै दूसरा नहीं फिर निर्गुण और सगुण एकहीमें दो कैसे स्थित होसकतेहैं ॥ ७ ॥ परम परमात्माका निर्गुण स्वभाव है; फिर वह स्वभावके विपरीत सगुण कैसे होसकक्ताहै ॥ ८ ॥ और स्वतंत्रकी इच्छासे यदि उसका स्वभाव विपरीत होजाय तो वह ईशान अपने नित्य स्वरूपको अनित्य क्यों नहीं करता ॥ ९ ॥ मूर्ति आत्मावाला जो कोई सगुण है वह निर्गुण शिवसे अन्य है यह सबकुछ सर्वत्र शिवसेही अधिष्ठित है ॥ १० ॥

न मूर्तिश्च स्वतंत्रस्य घटते मूलहेतुना ॥ मूर्तेरपि च कार्यत्वात्तत्सिद्धिः स्यादहैतुकी ॥ ६ ॥ सर्वत्र परमो भावोऽपरमश्चान्य उच्यते ॥ परमापरमौ भावौ कथमेकत्र संगतौ ॥ ७ ॥ निष्फलो हि स्वभावोऽस्य परमः परमात्मनः ॥ स एव सकलः कस्मात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ॥ ८ ॥ स्वभावो विपरीतश्चेत्स्वतंत्रः स्वेच्छया यदि ॥ न करोति किमीशानो नित्यानित्यविपर्ययम् ॥ ९ ॥ मूर्तात्मा सकलः कश्चित्स चान्यो निष्फलः शिवः ॥ शिवेनाधिष्ठितश्चेति सर्वत्र लघु कथ्यते ॥ १० ॥ मूर्त्यात्मैव तदा मूर्तिः शिवस्यास्य भवेदिति ॥ तस्य मूर्तौ मूर्तिमतोः पारतंत्र्यं हि निश्चितम् ॥११॥ अन्यथा निरपेक्षेण मूर्तिः स्वीक्रियते कथम् ॥ मूर्त्तिस्वीकरणं तस्मान्मूर्तौ साध्य फलेप्सया ॥१२॥ न हि स्वेच्छाशरीरत्वं स्वातंत्र्यायोपपद्यते ॥ स्वेच्छैव तादृशी पुंसां यस्मात्कर्मानुसारिणी ॥१३॥ स्वीकर्तुं स्वेच्छया देहं हातुं च प्रभवन्त्युत ॥ ब्रह्मादयः पिशाचांताः किं ते कर्मातिवर्तिनः ॥१४॥ इच्छया देहनिर्माणमिन्द्रजालोपमं विदुः ॥ अणिमादिगुणैश्वर्य्यवशीकारानतिक्रमात् ॥१५॥ विश्वरूपं दधद्विष्णुर्दधीचेन महर्षिणा ॥ युध्यता समुपालब्धस्तद्रूपं दधता स्वयम् ॥१६॥

जब कभी इन शिवकी मूर्ति होजाय तो उस मूर्तिमें वह मूर्तिमान् परतंत्र होसकताहै यह निश्चय है ॥११॥ नहीं तो निरपेक्षकी कल्पना मूर्ति किस प्रकार होसक्तीहै; इसकारण मूर्तिसाध्य फलकी इच्छासे मूर्तिका स्वीकार होताहै; स्वेच्छासेही भगवान् मूर्ति धारण करें तो परतन्त्रता नहीं होसकती; कारण कि अपनी इच्छाभी पुरुषोंको कर्मानुसारिणी होतीहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ अपनी इच्छासे देहको धारण करने और त्यागनेको समर्थ ब्रह्मासे लेकर पिशाच पर्यंत हैं क्या वे कर्मके वशवर्ती हैं ॥१४॥ इच्छासे देहका निर्माण इन्द्रजालके समान है, अणिमादि गुण ऐश्वर्य वशीकरनेसे ॥१५॥ युद्ध करतेहुए दधीचि

ऋषिके साथ विष्णुने विश्वरूप धारण किया ॥ १६ ॥ परन्तु परमात्मा शिवका सबसे अधिक ऐश्वर्य होनेसे यदि शरीर धारण करैं तो हमको वेभी दूसरोंके समान विदित होंगे ॥ १७ ॥ परम कारण शिवको सबका अनुग्रह करनेवाला कहाहै; वह देवतादिकोंके निग्रह करनेवाले सबके अनुग्राहक किस प्रकार होसकतेहैं ॥ १८ ॥ ब्रह्माका पाँचवाँ शिर देवने भेदन किया यहभी किसी कल्पकी कथाहै; पुत्र होकर भी उन्होंने शिवकी निन्दा की यह कुमति और हठ की ॥ १९ ॥ और विष्णुके नृसिंहरूपको शरभरूपसे शान्त किया और चरणोंसे आक्रमण करके नखकी तीक्ष्णतासे उनके हृदयको विदारण किया॥

सर्वस्मादधिकस्यापि शिवस्य परमात्मनः ॥ शरीरवत्तयान्यात्मसाधर्म्यं प्रतिभाति नः ॥ १७ ॥ सर्वानुग्राहकं प्राहुश्शिवं परमकारणम् ॥ स निगृह्णाति देवानां सर्वानुग्राहकः कथम् ॥ १८ ॥ चिच्छेद बहुशो देवो ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ शिवनिन्दां प्रकुर्वंतं पुत्रेति कुमतेर्हठात् ॥ १९ ॥ विष्णोरपि नृसिंहस्य रभसा शरभाकृतिः ॥ बिभेद पद्भ्यामाक्रम्य हृदयं नखरैः खरैः ॥ २० ॥ देवस्त्रीषु च देवेषु दक्षस्याध्वरकारणात् ॥ वीरेण वीरभद्रेण न हि कश्चिददण्डितः ॥ २१ ॥ पुरत्रयं च सस्त्रीकं सदैत्यं सह बालकैः ॥ क्षणेनैकेन देवेन नेत्राग्नेरिंधनीकृतम् ॥ २२ ॥ प्रजानां रतिहेतुश्च कामो रतिपतिस्स्वयम् ॥ क्रोशतामेव देवानां हुतो नेत्रहुताशने ॥ २३ ॥ गावश्च कश्चिद्दुग्धौघं स्रवन्त्यो मूर्ध्नि खेचराः ॥ सरुषा प्रेक्ष्य देवेन तत्क्षणे भस्मसात्कृतः ॥ २४ ॥ जलंधरासुरोदीर्णश्चक्रीकृत्य जलं पदा ॥ बद्ध्वानंतेन यो विष्णुं चिक्षेप शतयोजनम् ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ देवताओंकी स्त्री और देवताओंमें दक्षके यज्ञके कारणसे वीरभद्र वीरने सबको दंडित किया ॥ २१ ॥ कोई न छोडा स्त्रीसहित त्रिपुर दैत्य और वहांके बालकोंको क्षणमात्रमें उन देवादिदेवने त्रेताग्निका ईंधन करदिया अर्थात् भस्म करदिया ॥ २२ ॥ और प्रजाओंकी प्रीतिके निमित्त स्वयं रतिपति कामदेवको देवताओंके निषेध करते २ नेत्रके हुताशनमें हवन करदिया ॥ २३ ॥ और जो गौ उनके शिरपर दूध डालतीथीं उनको भी क्रोधसे देवने भस्म करदिया; अर्थात् अदृश्य करदिया ॥ २४ ॥ जलंधर एक बडा असुर था, इसने जलको पैरोंसे चक्राकार करके अनंतसे बाँधकर विष्णुको सौ योजन फेंक

दिया ॥ २५ ॥ उसी जलंधरको जिन शिवने त्रिशूलसे मारदिया, उसी चक्रको तपस्यासे लेकर भगवान् महापराक्रमी हुए ॥२६॥ और दैत्योंके कुलको दयारहित हो नष्ट करदेतेहैं, त्रिशूलसे अंधकासुरका हृदय अग्निके समान तप्त किया ॥ २७ ॥ और कण्ठसे कालरूप स्त्रीको उत्पन्न कर दारुकको मारा, गौरीकी त्वचासे कौशिकीको उत्पन्न कराकर ॥२८॥ शुंभ और निशुंभका रणमें मरण कराया; स्कंदपुराणमें स्कंदका महा आख्यान श्रवण कियाहै॥ २९॥ जो कि उन्होंने महाबली तारकासुरका वध किया, ब्रह्माकी प्रार्थनासे देवादिदेव मंदराचलके अन्तःपुरमें गये ॥ ३० ॥ वहां बहुत दिनोंतक विहार करके

तमेव जलसंधायी शूलेनैव जघान सः ॥ तच्चक्रं तपसा लब्ध्वा लब्धवीर्य्यो हरिस्सदा ॥ २६ ॥ जिघांसतां सुरारीणां कुलं निर्घृणचेतसाम् ॥ त्रिशूलेन्धकस्योरः शिखिनैवोपतापितम् ॥ २७ ॥ कण्ठात्कालांगनां सृष्ट्वा दारुकोपि निपातितः ॥ कौशिकीं जनयित्वा तु गौर्य्यास्त्वक्कोशगोचराम् ॥ २८ ॥ शुंभस्सह निशुंभेन प्रापितो मरणं रणे ॥ श्रुतं च महदाख्यानं स्कान्दे स्कन्दसमाश्रयम् ॥२९॥ वधार्थे तारकाख्यस्य दैत्येन्द्रस्येन्द्रविद्विषः ॥ ब्रह्मणाभ्यर्थितो देवो मन्दरान्तःपुरं गतः ॥ ३० ॥ विहृत्य सुचिरं देव्या विहाराऽतिप्रसङ्गतः ॥ रसां रसातलं नीतामिव कृत्वाभिघां ततः ॥३१॥ देवीं च वंचयंस्तस्यां स्ववीर्यमतिदुर्वहम् ॥ अविसृज्य विसृज्याग्नौ हविः पूतमिवामृतम् ॥ ३२ ॥ गंगादिष्वपि निक्षिप्य वह्निद्वारा तदंशतः ॥ तत्समाहृत्य शनकैस्तोकंस्तोकमितस्ततः ॥ ३३ ॥ स्वाहया कृत्तिकारूपात्स्वभर्त्रा रममाणया ॥ सुवर्णीभूतया न्यस्तं मेरौ शरवणे क्वचित् ॥३४॥ संदीपयित्वा कालेन तस्य भासा दिशो दश ॥ रञ्जयित्वा गिरीन्सर्वान्कांचनीकृत्य मेरुणा ॥ ३५ ॥

प्रसंगसे अपने आघातसे पृथ्वीको रसातलमें प्राप्त हुईके समान करदिया ॥ ३१ ॥ और अपने बडे पराक्रमसे देवीको वंचित करतेहुए अपने अमोघवीर्यको उनमें न त्यागनकर अग्निमें हविसे पवित्र अमृतके समान त्यागन किया ॥ ३२ ॥ और फिर अग्निद्वारा उसके अंशसहित गंगामें प्राप्त कराया, सो शनैः शनैः हरणकर थोडा २ इधर उधरसे ले ॥ ३३ ॥ अग्निकी स्त्री स्वाहाद्वारा जो कृत्तिकाके रूपसे अपने भर्तासे रमणकी इच्छा करती थी, स्वीकार किया गया फिर जो मेरुपर्वतमें शरकंडोंके वनमें सुवर्णके समान रक्खा गया था ॥ ३४ ॥ कुछ दिनोंमें उससे दशोंदिशा प्रदीप्त होगई; सब पर्वतोंको रंजित कर

सुमेरुको सुवर्णमय करादिया ॥ ३५ ॥ तब बहुतकाल पीछे उस तेजसे कुमारोंके निदर्शनरूप सुकुमार शरीर कुमार अवस्थाको प्राप्त मनोहर शरीर एक बालक उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ उसका मनोहर शिवरूप देखकर देवासुरादि सब लोक विस्मित और मोहित होगये ॥ ३७ ॥ पुत्रदर्शनकी इच्छासे स्वयं शिवजी वहां आये देवीसहित हास्यमुखवाले उसको गोदीमें बैठाकर विवशहो ॥ ३८ ॥ अन्तरात्मासे पुत्रके मुखका पान करनेलगे, उस समय वीतराग तपस्वियोंने देवका दर्शनकर ॥ ३९ ॥ अपने हृदय और अंगमें कुमारको नृत्य कराकर उसकी क्रीडाका अनुभव कर परस्पर वार्ता करके ॥ ४० ॥

ततश्चिरेण कालेन संजाते तत्र तेजसि ॥ कुमारे सुकुमारांगे कुमाराणां निदर्शने ॥३६॥ तच्छैशवं स्वरूपं च तस्य दृष्ट्वा मनोहरम् ॥ सह देवासुरैर्लोकैर्विस्मिते च विमोहिते ॥ ३७ ॥ देवोऽपि स्वयमायातः पुत्रदर्शनलालसः ॥ सह देव्यांकमारोप्य ततोऽस्य स्मेरमाननम् ॥ ३८ ॥ पीतामृतमिव स्नेहविवशेनान्तरात्मना ॥ देवेष्वपि च पश्यत्सु वीतरागैस्तपस्विभिः ॥३९॥ स्वस्य वक्षःस्थले स्वैरं नर्तयित्वा कुमारकम् ॥ अनुभूय च तत्क्रीडां संभाव्य च परस्परम् ॥ ४० ॥ स्तन्यमाज्ञापयन्देव्याः पाययित्वामृतोपमम् ॥ तवावतारो जगतां हितायेत्यनुशास्य च ॥४१॥ स्वयन्देवश्च देवी च न तृप्तिमुपजग्मतुः ॥ ततः शक्रेण संधाय बिभ्यता तारकासुरात् ॥ ४२ ॥ कारयित्वाभिषेकं च सेनापत्ये दिवौकसाम् ॥ पुत्रमन्तरतः कृत्वा देवेन त्रिपुरद्विषा ॥ ४३ ॥ स्वयमंतर्हितेनैव स्कन्दमिन्द्रादिरक्षितम् ॥ तच्छक्त्या क्रौञ्चभेदिन्या युधि कालाग्निकल्पया ॥ ४४ ॥ छेदितं तारकस्यापि शिरश्शक्रभिया सह ॥ स्तुतिं चक्रुर्विशेषेण हरिधातृमुखाः सुराः ॥ ४५ ॥

दूध पीनेकी आज्ञा दी, तब देवीने अमृतके समान दूध पिलाकर तुम्हारा अवतार जगत्के हितके निमित्त है, ऐसा कहकर ॥ ४१ ॥ देवी और देव किसी प्रकारसे तृप्त न हुए तब इन्द्रसे सम्मतिकर जो कि तारकासुरसे भयभीत होरहेथे ॥ ४२ ॥ देवताओंके सेनापतिके पदमें उनका अभिषेक कराय त्रिपुरहन्ता शिवने पुत्रको अन्तरित करके ॥ ४३ ॥ अर्थात् युद्धमें कालाग्निकी समान क्रौंचविदारिणी शक्ति देकर इन्द्रसे रक्षित कराय स्वयं शिव अन्तर्धान हुए ॥ ॥ ४४ ॥ युद्धमें कालाग्निके समान क्रौंचपर्वतको विदीर्ण करनेवाली उस शक्तिसे कुमारने इन्द्रके भयसहित तारकासुरका शिर छेदन करडाला और

विधाता विष्णु आदि विशेषकर उनकी स्तुति करनेलगे ॥४५॥ इसी प्रकार महाबली रावणने जब अपनी भुजाओंसे पर्वतश्रेष्ठ कैलास उठालिया ॥४६॥ तब शूलधारी शिवने उसका यह अपराध न सहकर चरणके अंगूठेसे रावणको पृथ्वीमें दाबदिया ॥ ४७ ॥ कोई ब्रह्मचारी व मार्कण्डेय उनका भक्त जब आयुहीन हुआ तब शिवने तत्काल आकर बचाया; यमने उनके चरणोंको प्रणाम किया ॥ ४८ ॥ वृषेन्द्र अपने वाहनको न जानकर वडवानलकोही वृषभ जानकर प्रलयके समय गला पकडकर ले आये ॥ ४९ ॥ और वह वृत्त आनन्ददायक जो कि लोकमें विदित नहीं हैं; उनमें केवल अंगको

तथा रक्षोधिपः साक्षाद्रावणो बलगर्वितः ॥ उद्धरन्स्वभुजैर्दीर्घैः कैलासं गिरिमात्मनः ॥४६॥ तदागोऽसहमानस्य देवदेवस्य शूलिनः॥ पदांगुष्ठपरिस्पन्दान्ममज्ज मृदितो भुवि ॥४७॥ बटोः केनचिदर्थेन स्वाश्रितस्य गतायुषः ॥ त्वरयागत्य देवेन पादांतं गमितोन्तकः ॥ ॥ ४८ ॥ स्ववाहनमविज्ञाय वृषेन्द्रं वडवानलः ॥ सगलग्रहमानीतस्ततोऽस्त्येकोदकं जगत् ॥४९॥ अलोकविदितैस्तैस्तैर्वृत्तैरानन्द सुन्दरैः ॥ अंगहारस्वसेनेदमसकृच्चालितं जगत् ॥ ५० ॥ शान्त एव सदा सर्वमनुगृह्णाति चेच्छिवः ॥ सर्वाणि पूरयेदेव कथं शक्तेन मोचयेत् ॥ ५१ ॥ अनादिकर्म वैचित्र्यमपि नात्र नियामकम् ॥ कारणं खलु कर्मापि भवेदीश्वरकारितम् ॥ ५२ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन नास्तिक्यं हेतुकारकम् ॥ यथा ह्याशु निवर्तेत तथा कथय मारुत ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्व खण्डे शिवतत्त्वप्रश्नो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ स्थाने संशयितं विप्रा भवद्भिर्हेतुचोदितैः ॥ जिज्ञासा हि न नास्तिक्यं साधयेत्साधुबुद्धिषु ॥ १ ॥

चलानेसेही जगत्को चलायमान करदिया, निर्गुणमें यह सब कैसे सम्भवहैं ॥ ५० ॥ जो शान्त होकर शिव सदा सबके ऊपर अनुग्रह करते हैं तो समर्थ होकर सबको एकबार मुक्त क्यों नहीं करदेते ॥ ५१ ॥ जो कहो प्रारब्ध कर्म रहनेसे सब किस प्रकार मुक्त होसकतेहैं; तौ दुःख प्राप्तिमें कर्मोंका कारण भी तो ईश्वरका कराया होता है ॥ ५२ ॥ बहुतसी नास्तिकताके हेतुकी तर्कसे क्या है जिस प्रकार हमारा सन्देह दूर हो; हे पवनदेव ! सो तुम कहो ॥ ५३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ वायु बोले, हे ब्राह्मणो ! आपने हेतु देकर उचितही सन्देह

क्रिया है; बुद्धि सावधान करनेके निमित्त जिज्ञासा है नास्तिकता नहीं है ॥ १ ॥ सत्पुरुषोंके मोहका दूर करनेवाला प्रमाण इसमें कहताहूं, शिवकी प्रसन्नताके विना असत् पुरुषोंको अन्यथा भाव होता है ॥ २ ॥ परिपूर्ण स्वभाव शिवका परानुग्रहके सिवाय और कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ ३ ॥ पराये अनुग्रहके कर्ममें स्वभावही समर्थ है, निःस्वभावसे तो कुछभी नहीं होसकता ॥ ४ ॥ यह पशुपाशात्मक जगत् सब उत्तमोंके अनुग्रह करनेके योग्य है; दूसरोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही शिवकी आज्ञा होती है ॥ ५ ॥ वही पति आज्ञा देनेवाला सदा सबपर अनुग्रह कर्ता है; उन्हींके निमित्त उक्त प्रयो

प्रमाणमत्र वक्ष्यामि सताम्मोहनिवर्तकम् ॥ असतां त्वन्यथाभावः प्रसादेन विना प्रभोः ॥ २ ॥ शिवस्य परिपूर्णस्य परानुग्रहमन्तरा ॥ न किंचिदपि कर्तव्यमिंति साधु विनिश्चितम् ॥ ३ ॥ स्वभाव एव पर्य्याप्तः परानुग्रहकर्मणि ॥ अन्यथा निस्स्वभावेन न किमप्यनुगृह्यते ॥ ४ ॥ परं सर्वमनुग्राह्यं पशुपाशात्मकं जगत् ॥ परस्यानुग्रहार्थं तु पत्युराज्ञासमन्वयः ॥ ५ ॥ पतिराज्ञापकः सर्वमनुगृह्णाति सर्व्वदा ॥ तदर्थमर्थस्वीकारे परतंत्रः कथं शिवः ॥ ६ ॥ अनुग्राह्यनपेक्षोऽस्ति न हि कश्चिदनुग्रहः ॥ अतः स्वातन्त्र्यशब्दार्थाननपेक्षत्वलक्षणः ॥ ७ ॥ एतत्पुनरनुग्राह्यं परतंत्रं तदिष्यते ॥ अनुग्रहादृते तस्य भुक्तिमुक्त्योरनन्वयात् ॥ ८ ॥ मूर्तात्मानोऽप्यनुग्राह्याः शिवाज्ञाननिवर्तनात् ॥ अज्ञानाधिष्ठितं शम्भोर्न किंचिदिह विद्यते ॥ ९ ॥ येनोपलभ्यतेऽस्माभिस्सकलेनापि निष्कलः ॥ स मूर्त्यात्मा शिवः शैवमूर्तिरित्युपचर्यते ॥ १० ॥ न ह्यसौ निष्कलः साक्षाच्छिवः परमकारणम् ॥ साकारेणानुभावेन केनाप्यनुपलक्षितः ॥ ११ ॥

जनके स्वीकारमें शिव अनुग्रह करनेसे किसप्रकार परतन्त्र होसकतेहैं ॥ ६ ॥ जो अनुग्रहमें अनपेक्ष हो तौ कैसे अनुग्रह होसकताहै, इस कारण स्वतंत्र शब्दका यह अर्थ नहीं कि उसे किसीकी अपेक्षा न हो ॥ ७ ॥ और जो अनुग्रह करनेवालेको परतन्त्र कहो तो अनुग्रहके विना भुक्ति मुक्तिका भी अन्वय न होगा ॥ ८ ॥ शिवकी आज्ञाके निवृत्त न होनेसे मूर्ति आत्मावालेभी अनुग्रह करनेके योग्य हैं; इस संसारमें ऐसा कोईभी नहीं जो शिवकी आज्ञामें अधिष्ठित न होगा ॥ ९ ॥ जिस सगुणके द्वारा निर्गुणकी हम प्राप्ति करतेहैं वही मूर्ति आत्मावाले शिवकी मूर्ति कहीहै ॥ १० ॥ यह परम कारण शिव

निर्गुणही नहींहै; इसके सच्चिदानंद स्वरूपको तो कोई नहीं जानसकता ॥ ११ ॥ उसके स्वरूपका साधक प्रमाणगम्य श्रवण मनन आदि लभ्यमात्र है इसमें प्रत्यक्ष दर्शनके अन्तरवाली अपेक्षा बुद्धि न करनी चाहिये ॥१२॥ कोई साक्षात् आत्माके उपलक्षणवाली मूर्तिहै तो मूर्तिआत्मावाले । शिवका मूर्ति उपलक्षण है ॥ १३ ॥ जैसे काष्ठादिमें न आरूढहुई अग्नि नहीं दीखती, इसी प्रकार शिवभी मूर्तिमें अनारूढहुए नहीं दीखते यह स्थिति है ॥ १४ ॥ जैसे 'अग्नि लाओ' कहनेपर इसपर जलताहुआ काष्ठखण्ड लायाजाता है; केवल अग्नि कोई नहीं लासकता इसी प्रकार मूर्तिवाले शिव पूज्यहैं ॥ १५ ॥

प्रमाणगम्यतामात्रं तत्स्वभावोपपादकम् ॥ न तावतात्रोपेक्षाधीरुपलक्षणमंतरा ॥१२॥ आत्मोपमोल्वणं साक्षान्मूर्तिरेव हि काचन ॥ शिवस्य मूर्तिर्मूर्त्यात्मा परस्तस्योपलक्षणम् ॥ १३ ॥ यथा काष्ठेष्वनारूढो न वह्निरुपलभ्यते ॥ एवं शिवोऽपि मूर्त्यात्मन्यनारूढ इति स्थितिः ॥ १४ ॥ यथाग्निमानयेत्युक्ते ज्वलत्काष्ठादृते स्वयम् ॥ नाग्निरानीयते तद्वत्पूज्यो मूर्त्यात्मना शिवः ॥१५॥ अत एव हि पूजादौ मूर्त्यात्मपरिकल्पनम् ॥ मूर्त्यात्मनि कृतं साक्षाच्छिव एव कृतं यतः ॥१६॥ लिंगादावपि तत्कृत्यमर्चायां च विशेषतः ॥ तत्तन्मूर्त्यात्मभावेन शिवोऽस्माभिरुपास्यते ॥ ॥ १७ ॥ यथानुगृह्यते सोऽपि मूर्त्यात्मा पारमेष्ठिना ॥ तथा मूर्त्यात्मनिष्ठेन शिवेन पशवो वयम् ॥ १८ ॥ लोकानुग्रहणायैव शिवेन परमेष्ठिना ॥ सदाशिवादयस्सर्वे मूर्त्यात्मानोऽप्यधिष्ठिताः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार पूजाकी आदिमें मूर्तिआत्मावाले शिवका पूजन होताहै; मूर्तिआत्मामें कियेहुए साक्षात् शिवकाही पूजन होताहै ॥ १६ ॥ लिंगादिकी प्रतिमा बनाकर उस २ मूर्तिके भावमें पूजा विशेषसे हम शिवकी उपासना करतेहैं ॥ १७ ॥ जिस प्रकार वह मूर्ति आत्मा परमेश्वर निर्गुण हमपर अनुग्रह करतेहैं, इसी प्रकार मूर्ति आत्मामें निष्ठित परमेश्वरकी हम जीव उपासना करते हैं ॥१८॥ शिव परमात्माने लोकोंपर अनुग्रह करनेके निमित्तही सदाशिवादि मूर्ति आत्मासे स्थित हुएहैं, वह मूर्ति आत्माके भावसे स्वयं अनुग्रहको प्राप्त होकर शिवसे अधिष्ठित हो दूसरी आत्माओंपर अनुग्रह करतेहैं ॥ १९ ॥

आत्मा भोग और मोक्षके निमित्त विशेष करके है, तत्वरूप होनेसे उन मूर्तिआत्मक स्वरूपमें शिवकी प्राप्ति है ॥ २० ॥ भोग कर्मोंके विपाकसे होताहै, वह सुख दुःख रूपहै, जब शिवमें कर्म नहींहै तो भोग कैसे होसकताहै ॥ २१ ॥ शिव सबहीपर अनुग्रह करतेहैं, किसीका निग्रह नहीं करते, जो निग्रहके दोष हैं वे शिवमें नहीं हैं ॥ २२ ॥ और जो ब्रह्मादिकमें कहीं निग्रह देखागयाहै वह भी शिवने लोकके हितके निमित्तही कियाहै ॥ २३ ॥ शिवको इस जगत्का आधिपत्यहै इसमें सन्देह नहीं श्रीकण्ठनामकी शिवकी मूर्ति क्रीडा करतीहुई जगत्में स्थितहै ॥२४॥ दोषपूर्वक ही देवता ब्रह्मादिको यथायोग्य

आत्मनामेव भोगाय मोक्षाय च विशेषतः ॥ तत्त्वातत्त्वस्वरूपेषु मूर्त्यात्मसु शि[illegible]न्वयः ॥ २० ॥ भोगः कर्मविपाकात्मा सुखदुःखात्मको मतः ॥ न च कर्म शिवेऽस्तीति तस्य भोगः किमात्मकः ॥२१॥ सर्वं शिवोऽनुगृह्णाति न निगृह्णाति किंचन ॥ निगृह्णतां तु ये दोषाश्शिवे तेषामसंभवात् ॥ २२ ॥ ये पुनर्निग्रहाः केचिद्ब्रह्मादिषु निदर्शिताः ॥ तेऽपि लोकहितायैव कृताः श्रीकण्ठमूर्तिना ॥२३॥ ब्रह्माण्डस्याधिपत्यं हि श्रीकण्ठस्य न संशयः ॥ श्रीकण्ठाख्यां शिवो मूर्तिं क्रीडतीमधितिष्ठति ॥२४॥ सदोषा एव देवाद्या निगृहीता यथोदितम् ॥ ततस्तेपि विपाप्मानः प्रजाश्चापि गतज्वराः ॥२५॥ निग्रहोऽपि स्वरूपेण विदुषां न जुगुप्सितः ॥ अत एव हि दण्ड्येषु दण्डो राज्ञां प्रशस्यते ॥ २६ ॥ यत्सिद्धिरीश्वरत्वेन कार्यवर्गस्य कृत्स्नशः ॥ न स चेदीशतां कुर्याज्जगतः कथमीश्वरः ॥ २७ ॥ ईशेच्छा च विधातृत्वं विधेराज्ञापनं परम् ॥ आज्ञावश्यमिदं कुर्यान्न कुर्यादिति शासनम् ॥ २८ ॥ तच्छासनानुवर्तित्वं साधुभावस्य लक्षणम् ॥ विपरीतमसाधोः स्यान्न सर्वं तत्तु दृश्यते ॥ २९ ॥

दंडित कियाथा, इससे वे पापरहित होगये और प्रजा दुःखरहित होगई ॥ २५ ॥ इस प्रकारका निग्रह पंडितोंको निन्दित नहीं है, इसी प्रकार राजोंकी दंडयोग्योंमें दंड करनेकी प्रशंसा कहीहै ॥ २६ ॥ जो सिद्धि ईश्वरके कार्यसे नित्य होतीहै यदि वह अपनी ईश्वरता न करै तो जगत्के ईश्वर किस प्रकार कहेजाँय ॥ २७ ॥ ईश्वरता विधातापन यह विधिकी आज्ञा कही हैं; यह इस प्रकार करो; इसका नाम आज्ञा है; यह मत करो इसका नाम अनुशासन है ॥ २८ ॥ उसके शासनके अनुसार वर्तना साधुभावका लक्षण है, विपरीत करनेका नाम असाधुपन है; यह बात सबमें नहीं दीखती ॥२९॥

यदि साधुपनकी रक्षा करनेकी इच्छा हो तो विपरीतता छोडो, और सामादि उपायके विफल होनेसे अन्तमें दण्ड होताही है ॥ ३० ॥ दण्डके पीछे अनुशासन करनाही हितका लक्षण है, इससे विपरीत करनेकाही नाम अहित है ॥ ३१ ॥ सदा सबके हितमें रहना यही ईश्वरमें दृष्टान्त है, फिर असतपुरुषोंके निग्रह करनेसे वह किस प्रकार दूषित होसकता है ॥ ३२ ॥ अयुक्त करनेवाले अज्ञानी लोकमें निन्दित होतेहैं, जो कर्म लोकको उत्तेजित करता है उसे अयुक्त कहतेहैं ॥ ३३ ॥ लोकमें सबका निग्रह विद्वेषपूर्वक नहीं है, जो पिता पुत्रको निग्रहपूर्वक शिक्षा देता है वह द्वेषी नहीं कहाता है ॥ ३४ ॥

साधु संरक्षणीयं चेद्विनिवर्त्यमसाधु यत् ॥ निवर्तते च सामादेरंते दण्डो हि साधनम् ॥ ३० ॥ हितार्थलक्षणं चेदं दण्डान्तमनुशासनम् ॥ अतो यद्विपरीतं तदहितं संप्रचक्षते ॥ ३१ ॥ हिते सदा निषण्णानामीश्वरस्य निदर्शनम् ॥ स कथं दुष्यते सद्भिरसतामेव निग्रहात् ॥ ३२ ॥ अयुक्तकारिणो लोके गर्हणीयाविवेकिता ॥ यदुद्वेजयते लोकन्तदयुक्तं प्रचक्षते ॥ ३३ ॥ सर्वोऽपि निग्रहो लोके न च विद्वेषपूर्वकः ॥ न हि द्वेष्टि पिता पुत्रं यो निगृह्याति शिक्षयेत् ॥ ३४ ॥ माध्यस्थेनापि निग्राह्यान्यो निगृह्णाति मार्गतः ॥ तस्याप्यवश्यं यत्किंचिन्नैर्घृण्यमनुवर्तते ॥ ३५ ॥ अन्यथा न हिनस्त्येव सदोषानप्यसौ परान् ॥ हिनस्ति चायमप्यज्ञान्परं माध्यस्थ्यमाचरन् ॥ ३६ ॥ तस्माद्दुःखात्मिकां हिंसां कुर्वाणो यः सनिर्घृणः ॥ इति निर्बंधयंत्येके नियमो नेति चापरे ॥ ३७ ॥ निदानज्ञस्य भिषजो रुग्णो हिंसां प्रयुंजतः ॥ न किंचिदपि नैर्घृण्यं घृणैवात्र प्रयोजिका ॥ ३८ ॥ घृणापि न गुणायैव हिंस्रेषु प्रतियोगिषु ॥ तादृशेषु घृणी भ्रान्त्या घृणान्तरितनिर्घृणः ॥ ३९ ॥

दूसरे पक्षकी सहायता छोडकर मध्यस्थ होकर निग्रह करना अथवा मार्गसे अर्थात् न्यायसे निग्रह करना उसमें भी अवश्य कुछ कठोरता रहतीहै ॥ ३५ ॥ जो निर्घृणता न हो तो वह दूसरे दोषियोंको भी न मारै वह अत्यन्त मध्यस्थता धारण किये अज्ञोंको दण्ड देतेहैं ॥ ३६ ॥ इस कारण जो दुःखात्मक हिंसा करता है वह निर्घृण है, ऐसा कोई नियम कहतेहैं, परन्तु दूसरे इस बातको नहीं मानते ॥ ३७ ॥ निदानका जाननेवाला वैद्य रोगका नाश करताहुआ कुछ भी निर्घृणी (कठोर) नहीं होसकता, प्रत्युत दयाही करताहै ॥ ३८ ॥ मारने योग्य प्रतियोगियोंपर दया करना गुण नहीं है, शीघ्र ऐसे जीवोंमें दयावाला

भ्रान्तिसे दयारहित हो निर्घृणी होता है ॥ ३९ ॥ रक्षा करनेयोग्य विरोधियोंकी उपेक्षा करनी भी दोष है,शक्ति होनेपर उपेक्षा करनेसे रक्ष्य वस्तु शीघ्र नष्ट
होजातीहै ॥४०॥ सर्पके मुखमें जातीहुई रक्ष्य वस्तुको देखकर जो उपेक्षा करता है दोष देखकर उपेक्षा करनेवाला अवश्य निर्घृणी है ॥ ४१ ॥ इस कारण
सर्वथा दया करना गुण है; यह वार्ता सत्य नहीं कार्य होनेपर दया सम्मत है, अन्यथा असम्मत है ॥ ४२ ॥ यह सत्य है कि मूर्ति आत्मावालेमें रागादि
दोष होतेहैं परन्तु यह दूसरोंमें होतेहैं; शिवमें सर्वथा नहीं है अग्निमें कालिमासहित तांबा रक्खाजाय तो ॥ ४३ ॥ ताम्र संसर्गके कारणसे यह अग्नि दूषित

उपेक्षापीह दोषाय रक्ष्येषु प्रतियोगिषु ॥ शक्तौ सत्यामुपेक्षातो रक्ष्यस्सद्यो विपद्यते ॥ ४० ॥ सर्पस्याऽऽस्यगतम्पश्यन्यस्तु रक्ष्यमु
पेक्षते ॥ दोषाभासान्समुत्प्रेक्ष्य फलतः सोऽपि निर्घृणः ॥ ४१ ॥ तस्माद् घृणा गुणायैव सर्वथेति न संमतम् ॥ संमतं प्राप्तकामित्वं
सर्वं त्वन्यदसम्मतम् ॥ ४२ ॥ मूर्त्यात्मस्वपि रागाद्या दोषाः सन्त्येव वस्तुतः ॥ तथापि तेषामेवैते न शिवस्य तु सर्वथा ॥ अग्नावपि
समाविष्टं ताम्रं खलु सकालिकम् ॥ ४३ ॥ इति नाग्निरसौ दुष्येत्ताम्रसंसर्गकारणात ॥ नाग्नेरशुचिसंसर्गादशुचित्वमपेक्षते ॥ ४४ ॥
अशुचेस्त्वग्निसंयोगाच्छुचित्वमपि जायते ॥ एवं शोध्यात्मसंसर्गान्न ह्यशुद्धः शिवो भवेत् ॥ ४५ ॥ शिवसंसर्गतस्त्वेष शोध्यात्मैव
हि शुध्यति ॥ अयस्यग्नौ समाविष्टे दाहोऽग्नेरेव नायसः ॥ ४६ ॥ मूर्त्तात्मन्येवमैश्वर्य्यमीश्वरस्यैव नात्मनाम् ॥ न हि काष्ठं ज्वल
त्यूर्द्ध्वमग्निरेव ज्वलत्यसौ ॥ ४७ ॥ काष्ठस्यांगारता नाग्नेरेवमत्रापि योज्यताम् ॥ अत एव जगत्यस्मिन्काष्ठपाषाणमृत्स्वपि ॥ ४८ ॥
शिवावेशवशादेव शिवत्वमुपचर्यते ॥ मैत्र्यादयो गुणा गौणास्तस्मात्ते भिन्नवृत्तयः ॥ ४९ ॥

नहीं होती, अशुचि सम्पर्कसे अग्नि अपवित्र नहीं होती ॥ ४४ ॥ परन्तु अपवित्र वस्तु अग्निके संयोगसे शुद्ध होजाती है इस प्रकार आत्मसंसर्गसे शुद्ध
करनेसे शिव किसी प्रकार अशुद्ध नहीं है ॥ ४५ ॥ शिवसंसर्गसे शोधनेसे आत्मा शुद्ध होजाता है, अग्निमें लोहा रखनेसे अग्निका दाह होताहै लोहेका
नहीं ॥४६॥ इसी कारणसे मूर्ति आत्मामें शिवकाही ऐश्वर्य है अनात्माका नहीं, काष्ठ ऊपरको नहीं जलता है किन्तु अग्निही ऊपरको जलता है॥४७॥
काष्ठमें अंगारता है, अग्निमें नहीं; इसी प्रकार ईश्वरमें लगालेना चाहिये, इस प्रकार इस जगत्में काष्ठ पाषाण मृत्तिकामें ॥४८॥ शिवके आवेशसे शिवत्व

कहाजाताहै मैत्री क्षमा चतुरता यह गुण गौणहैं; कारण कि यह चित्तकी वृत्तिहैः॥ ४९ ॥ उन गुणोंसे युक्त वे चित्तकी वृत्तियाँ जीवोंको गुण और दोषके निमित्त होती हैं जो गौण और अगौण है वह सब अनुग्रह करतेहुए शिवकी गुण वृत्तिरूप माया विलासका रूप होनेसे गुण और दोषके निमित्त नहीं होती है ॥ ५० ॥ संसारमोचनरूप अनुग्रह शब्दार्थको विद्वान् गौण नहीं कहते किन्तु उसे शिवकी आज्ञामय जानतेहैं ॥ ५१ ॥ उनकी आज्ञाका करना हित है और जो हितहै सो अनुग्रह है, इन सबको नियुक्त करतेहुए शिव सबके अनुग्रह करनेवालेहैं ॥ ५२ ॥ जो उपकारक शब्दका अर्थ है उसीको अनुग्रह

तैर्गुणैरुपरक्तानां दोषाय च गुणाय च ॥ यत्तु गौणमगौणं च तत्सर्वमनुगृह्णतः ॥ न गुणाय न दोषाय शिवस्य गुणवृत्तयः ॥ ५० ॥
न चानुग्रहशब्दार्थं गौणमाहुर्विपश्चितः ॥ संसारमोचनं किं तु शैवमाज्ञामयं हितम् ॥ ५१ ॥ हितं तदाज्ञाकरणं यद्धितं तदनुग्रहः ॥
सर्वं हिते नियुञ्जावः सर्वानुग्रहकारकः ॥ ५२ ॥ यस्तूपकारशब्दार्थस्तमप्याहुरनुग्रहम् ॥ तस्यापि हितरूपत्वाच्छिवः सर्वोपकारकः ॥
॥ ५३ ॥ हिते सदा नियुक्तं तु सर्वं चिदचिदात्मकम् ॥ स्वभावप्रतिबन्धं तत्समं न लभते हितम् ॥ ५४ ॥ यथा विकासयत्येव रविः
पद्मानि भानुभिः ॥ समं न विकसन्त्येव स्वस्वभावानुरोधतः ॥ ५५ ॥ स्वभावोऽपि हि भावानां भाविनोऽर्थस्य कारणम् ॥ न हि
स्वभावो नश्यन्तमर्थं कर्तृषु साधयेत् ॥ ५६ ॥ सुवर्णमेव नांगारं द्रावयत्यग्निसंगमः ॥ एवं पक्कमलानेव मोचयेन्न शिवः परान् ॥
॥ ५७ ॥ यद्यथा भवितुं योग्यं तत्तथा न भवेत्स्वयम् ॥ विना भावनया कर्ता स्वतन्त्रस्सन्ततो भवेत् ॥ ५८ ॥

कहते हैं, उसके हितरूप होनेसे शिव सबके अनुग्रह करनेवालेहैं ॥५३॥ वह चित् अचिदात्मक सदा सबके हितमें नियुक्तहैं वह स्वभावमें प्राप्त हुए प्राणी उस हितको समरूपसे प्राप्त नहीं होते ॥५४॥ जिस प्रकार सूर्यकी किरणसे कमल खिलता है, परन्तु वे कमल स्वभावके अनुसार बराबर नहीं खिलते ॥५५॥ पदार्थोंका स्वभावही भावी अर्थका कारण है, कोई भी स्वभावसे होनेवाले अर्थको विपरीत नहीं करसकता ॥५६॥ जिस प्रकारसे अग्निका संगम सुवर्णकोही द्रुत करता है, अंगारको नहीं, इसी प्रकार पूर्ण दोषवालोंको शिव त्यागदेतेहैं अपक्क मलवालोंको नहीं ॥ ५७ ॥ जो जैसे होने को योग्यहैं वह वैसा स्वयं

नहीं होता विना चेतन क्रियाके वह कर्ता स्वतन्त्र कैसे होसकता है ॥ ५८ ॥ जो निर्मल स्वभावके समान सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाला है; और जो स्वभावसे मलिन है उसी आत्माकी जीव संज्ञा है ॥ ५९ ॥ फिर अन्यथा यह अपने नियमसे नहीं चलसकते, ईश्वरके विपरीत नहीं करसकते; इससे शिवस्वरूप कैसे होसकतेहैं कर्म और मायाके होनेसे इसको संसारनामसे विद्वानोंने कहा है ॥६०॥ कर्म और मायाका अनुबन्ध कारण जीवकोही है; और वह जीवोंके स्वभावानुसार मलसे होता है उपाधिसे नहीं ॥ ६१ ॥ और उस आगन्तुक मलकी उपाधिभी किसी कारणसे अवश्य होती है जो इसमें कारण है सो अनेक स्वभावोंसे विचित्र होती है, कार्यके भेदसे कल्पना नहीं होसकती; जो कर्म और मायाका अनुबन्ध है वह स्वभावसेही विचित्र है ॥ ६२ ॥

स्वभावविमलो यद्वत्सर्वानुग्राहकश्शिवः ॥ स्वभावमलिनास्तद्वदात्मानो जीवसंज्ञिताः ॥ ५९ ॥ अन्यथा संसरन्त्येते नियमान्न शिवः
कथम् ॥ कर्ममायानुबन्धोस्य संसारः कथ्यते बुधैः ॥६०॥ अनुबन्धोऽयमस्यैव न शिवस्येतिहेतुमान् ॥ स हेतुरात्मनामेव निजो नाग
न्तुको मलः ॥ ६१ ॥ आगन्तुकत्वे कस्यापि भाव्यं केनापि हेतुना ॥ योऽयं हेतुरसावेकस्त्वविचित्रस्वभावतः ॥ ६२ ॥ आत्मतायाः
समत्वेऽपि बद्धा मुक्ताः परे यतः ॥ बद्धेष्वेव पुनः केचिल्लयभोगाधिकारतः ॥ ६३ ॥ ज्ञानैश्वर्यादिवैषम्यं भजन्ते सोत्तराधराः ॥
केचिन्मूर्त्यात्मतां यान्ति केचिदासन्नगोचराः ॥६४॥ मूर्त्यात्मसु शिवाः केचिदध्वनां मूर्द्धसु स्थिताः ॥ मध्ये महेश्वरा रुद्रास्त्ववाची
नपदे स्थिताः ॥ ६५ ॥ आसन्नेऽपि च मायायाः परस्मात्कारणात्त्रयम् ॥ तत्राप्यात्मा स्थितोऽधस्तादन्तरात्मा च मध्यतः ॥ ६६ ॥
परस्तात्परमात्मेति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ वर्तन्ते वसवः केचित्परमात्मपदाश्रयाः ॥ ६७ ॥

आत्मताके समान होनेमें भी कोई बद्ध और मुक्त है, उनमें कोई लयके अधिकारसे कोई भोगके अधिकारसे ॥ ६३ ॥ ऊँच नीच भावको आश्रित हो ज्ञान ऐश्वर्य आदि विषम तारतम्यको प्राप्त होतेहैं; कोई मूर्तिरूपताको और कोई समीपताको प्राप्त होतेहैं ॥ ६४ ॥ कोई मूर्त्यात्मामें मंगलरूप हो, षडध्वसे ऊपर स्थित रहतेहैं, मध्यमें महेश्वर और रुद्ररूप हो उससे नीचे पदमें स्थित होतेहैं ॥ ६५ ॥ निकट होनेके समावेशमें तीन कारणहैं, उसमें भी आत्मा नीचे अन्तरात्मा मध्यमें॥६६॥और परमात्मा ऊर्ध्वमें स्थितहै, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तथा परमात्माके आश्रित कोई दूसरे इस जीवपदको प्राप्त होतेहैं॥६७॥

कोई अन्तरात्मा पदमें कोई आत्मपदमें स्थितहैं, शान्त्यतीतपदमें शिवके भक्त और शान्तिमें माहेश्वर (महेश्वरके उपासक) स्थित होतेहैं ॥ ६८ ॥ विद्यामें रौद्र प्रतिष्ठामें वैष्णव निवृत्तिमें आत्मा ब्रह्मा और ब्रह्मपुत्र स्थितहैं ॥ ६९ ॥ देवयोनि आठ उत्तमहैं, मनुष्य योनि मध्यमहैं पशु आदि पांच अधमयोनिहैं (पशु, पक्षी, सर्प, कृमि, दंश) इस प्रकार यह चौदह योनिहैं ॥ ७० ॥ ऊँचे नीचे योनियोंमें जाना यह जीवका निज मल सत्वादि गुणहै, भोगमें पहले वह कर्म आम अर्थात् कच्चे कहेहैं, और पीछे भोगने पर पक्कता होजाती है ॥ ७१ ॥ मलभी कच्चे और पक्के संसारके कारण होतेहैं, कच्चे

अन्तरात्मपदे केचित्केचिदात्मपदे तथा ॥ शान्त्यतीतपदे शैवाः शान्ते माहेश्वरे ततः ॥ ६८ ॥ विद्यायान्तु यथा रौद्राः प्रतिष्ठायां तु वैष्णवाः ॥ निवृत्तौ च तथात्मानो ब्रह्मा ब्रह्मांगयोनयः ॥ ६९ ॥ देवयोन्यष्टकं मुख्यं मानुष्यमथ मध्यमम् ॥ पक्ष्यादयोऽधमाः पंच योनयस्ताश्चतुर्दश ॥ ७० ॥ उत्तराधरभावोऽपि ज्ञेयस्संसारिणो मलः ॥ यथामभावो मुक्तस्य पूर्वं पश्चात्तु पक्कता ॥ ७१ ॥ मलोऽप्यामश्च पक्कश्च भवेत्संसारकारणम् ॥ आमे त्वधरता पुंसां पक्के तूत्तरता क्रमात् ॥ ७२ ॥ पश्वात्मानस्त्रिधाभिन्ना एकद्वित्रिमलाः क्रमात् ॥ अत्रोत्तरा एकमला द्विमला मध्यमा मताः ॥ त्रिमलास्त्वधमा ज्ञेया यथोत्तरमधिष्ठिताः ॥ ७३ ॥ त्रिमलानधितिष्ठंति द्विमलैकमलाः क्रमात् ॥ इत्थमौपाधिको भेदो विश्वस्य परिकल्पितः ॥ ७४ ॥ एकद्वित्रिमलान्सर्वाञ्छिव एकोऽधितिष्ठति ॥ अशिवात्मकमप्येतच्छिवेनाधिष्ठितं यथा ॥७५॥ अरुद्रात्मकमित्येवं रुद्रैर्जगदधिष्ठितम् ॥ अण्डान्ता हि महाभूमिश्शतरुद्राद्यधिष्ठिता॥७६॥

होनेसे नीचे और पक्के होजानेपर क्रमसे ऊर्ध्वगति होती है, अर्थात् भोग चुकनेपर अधोयोनि नहीं मिलती ॥ ७२ ॥ पशु आत्मा भी एक मल अर्थात् सत्वप्रधान, द्विमल अर्थात् सत्व रज प्रधान, त्रिमल अर्थात् सत्त्व रज तम प्रधानके भेदसे तीन प्रकारकेहैं; उनमें एक मलवाले उत्तम दो मलवाले मध्यम और तीन मलवाले अधम जानने ॥७३॥ दो मल और एक मलवाले क्रमसे तीन मलवाले अधिष्ठित होतेहैं, इस प्रकार जगत्में उपाधिभेद कल्पित है ॥७४॥ एक दो तीन अर्थात् सब गुणवालोंके शिव अधिपतिहैं; अशिवात्मक भी यह जगत् शिवसे जैसे अधिष्ठितहै ॥ ७५ ॥ इसी प्रकार अरुद्रात्मक जगत्

रुद्रसे अधिष्ठित है अण्डपर्यन्त यह महाभूमि रुद्रमें अधिष्ठित है ॥ ७६ ॥ मायापर्यन्त यह जगत् देवताओंसे अधिष्ठित है अंगुष्ठमात्र पुरुषोंसे चारोंओरसे व्याप्त है ॥ ७७ ॥ महामायाके अवसानवाला स्वर्गभवनके अधिपति वामादि देवताओंसे अधिष्ठित है, सम्बन्धरहित होकर भी पूर्व कहेहुए अध्वाके अन्तरमें रहनेवालोंसे अधिष्ठित है ॥७८॥ वेही साक्षात् स्वर्ग और अन्तरिक्षमें रहनेवालेहैं, और पृथ्वीमें रहनेवाले देवता देवताओंके व्रत करनेवालोंसे स्तुति कियेगयेहैं ॥ ७९ ॥ इस प्रकारसे कच्चे तीन मलोंके पृथक् २ पकनेसे कारणभूत संसारमें आवागमनका रोग पुरुषोंको प्रवृत्त होता है ॥ ८० ॥ इस रोगकी औषधी

मायान्तमन्तरिक्षं तु ह्यमरेशादिभिः क्रमात् ॥ अंगुष्ठमात्रपर्यन्तैस्समंतात्संततं ततम् ॥ ७७ ॥ महामायावसाना द्यौर्वाय्व्याद्यैर्भुवनाधिपैः ॥ अनाश्रितान्तैरध्वान्तर्वर्त्तिभिस्समधिष्ठिताः ॥ ७८ ॥ ते हि साक्षाद्दिविषदस्त्वन्तरिक्षसदस्तथा ॥ पृथिवीषद इत्येवं देवा देवव्रतैः स्तुताः ॥ ७९ ॥ एवन्त्रिभिर्मलैरामैः पक्वैरेव पृथक्पृथक् ॥ निदानभूतैस्संसाररोगः पुंसां प्रवर्तते ॥८०॥ अस्य रोगस्य भैषज्यं ज्ञानमेव न चापरम् ॥ भिषगाज्ञापकः शम्भुश्शिवः परमकारणम् ॥ ८१ ॥ अदुःखेनाऽपि शक्तोऽसौ पशून्मोचयितुं शिवः ॥ कथं दुःखं करोतीति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८२ ॥ दुःखमेव हि सर्वोऽपि संसार इति निश्चितम् ॥ कथं दुःखमदुःखं स्यात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ॥ ८३ ॥ न हि रोगी ह्यरोगी स्याद्भिषग्भैषज्यकारणात् ॥ रोगार्तं तु भिषग्रोगाद्भैषजैस्सुखमुद्धरेत् ॥ ८४ ॥ एवं स्वभावमलिनान्स्वभावाद्दुःखिनः पशून् ॥ स्वाज्ञौषधविधानेन दुःखान्मोचयते शिवः ॥ ८५ ॥

आज्ञासे प्राप्त हुआ ज्ञान है, इसकी आज्ञा देनेवाले वैद्य शिव परमकारणहैं ॥ ८१ ॥ जो विना प्रयासके शिव जीवोंके दुःख दूर करनेमें समर्थहैं, तौ फिर दुःख क्यों करतेहैं; इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ८२ ॥ संसारमें सबहीको दुःख है यह निश्चय है कारण कि संसार दुःखमय है फिर स्वभावके विपरीत दुःख अदुःख कैसे होसकता है ॥ ८३ ॥ वैद्यकी औषधीसे रोग अरोग नहीं होता किन्तु जातारहता है; परन्तु वैद्य रोगसे व्याकुल रोगीको सुख करके रोग दूर करता है ॥ ८४ ॥ इसी प्रकार स्वभांवसे मलीन और स्वभावसे दुःखी जीवोंको अपनी आज्ञाकी औषधी विधानसे शिव दुःखसे मुक्त

करदतेहैं ॥ ८५ ॥ रोगमें वैद्य कारण नहीं, शिव संसारके कारणहैं; इस विषमतामें भी शिवका दोष नहीं है ॥ ८६ ॥ जिसमें स्वभावसे दुःख है फिर किस प्रकार इसके कारणरूपी शिव स्वाभाविक बलसंयुक्त पुरुषोंको इस संसारसे पृथक् करैं ॥८७॥ जो संसारका कारणहै वह मल माया और अचेतनता है, वह शिवके साक्षी होनेसे स्वयं प्रवृत्त होतीहै ॥ ८८ ॥ जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) मणि निकट होनेसे लोहेको खैंचती है; और अतिनिकट होनेसे लोहा चलायमान होता है इसी प्रकार शिवके सान्निध्यसे जगत् चलता है ॥ ८९ ॥ इस सहकारी निकटताको निवृत्त करनेको कोई समर्थ नहीं है, अज्ञात

न भिषक्कारणं रोगे शिवः संसारकाणम् ॥ इत्येतदपि वैषम्यं न दोषायास्य कल्पते ॥८६॥ दुःखे स्वभावसंसिद्धे कथन्तत्कारणं शिवः ॥ स्वाभाविको मलः पुंसां स हि संसारयत्यमून् ॥ ८७ ॥ संसारकारणं यत्तु मलं मायाद्यचेतनम् ॥ तत्स्वयं न प्रवर्तेत शिवसान्निध्यमन्तरा ॥ ८८ ॥ यथा मणिरयस्कांतस्सान्निध्यादुपकारकः ॥ अयसश्चलतस्तद्वच्छिवोऽप्यस्येति सूरयः ॥ ८९ ॥ न निवर्तयितुं शक्यं सान्निध्यं सदकारणम् ॥ अधिष्ठाता ततो नित्यमज्ञातो जगतश्शिवः ॥ ९० ॥ न शिवेन विना किंचित्प्रवृत्तमिह विद्यते ॥ तत्प्रेरितमिदं सर्वं तथापि न स मुह्यति ॥ ९१ ॥ शक्तिराज्ञात्मिका तस्य नियन्त्री विश्वतोमुखी ॥ तया ततमिदं शश्वत्तथापि स न दुष्यति ॥ ९२ ॥ अनिदं प्रथमं सर्वमीशितव्यं स ईश्वरः ॥ ईशनाच्च तदीयाज्ञा तथापि स न दुष्यति ॥ ९३ ॥ योऽन्यथा मन्यते मोहात्स विनश्यति दुर्मतिः ॥ तच्छक्तिवैभवादेव तथापि स न दुष्यति ॥ ९४ ॥ एतस्मिन्नंतरे व्योम्नः श्रुता वागशरीरिणी ॥ सत्यमोममृतं सौम्यमित्याविरभवत्स्फुटम् ॥ ९५ ॥

हुए शिवकी इसमें सदा प्रतिष्ठा रहतीहै ॥९०॥ शिवके विना इस जगत्में कुछभी प्रवृत्त नहीं होता, यद्यपि यह सब उसीकी प्रेरणा है, तथापि वह दुःखी नहीं होता ॥ ९१ ॥ उनकी आज्ञा आत्मिकाशक्ति सब ओरसे व्याप्त है, तौ भी उसमें कोई दोष नहीं है ॥ ९२ ॥ जिसमें यह वस्तु प्रथम नहीं जो सबसे प्रथम सबका वश करनेवाला वही ईश्वर है, ईश होनेसे उसकी आज्ञा है; तथापि वह दूषित नहीं होता ॥ ९३ ॥ जो अज्ञानसे अन्यथा मानता है वह दुर्मति नष्ट होता है, यह सब उसीकी शक्तिका वैभव है तौ भी वह दूषित नहीं है ॥ ९४ ॥ इसी समय आकाशसे वेदवाणी ऋषियोंके मध्यमें हुई;

“सत्यम् ओम् अमृतं सत्यम्” अर्थात् यह सत्य है इस प्रकार स्फुट सुनाई दी ॥ ९५ ॥ तब वे ऋषि परम प्रसन्न हुए इनके सब सन्देह मिटगये; और वे मुनि विस्मित हो पवनदेवको प्रणाम करनेलगे ॥९६॥ इस प्रकार पवनदेव मुनियोंको सन्देहरहित करके अभी इनको पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ यह जानकर बोले ॥ ९७ ॥ वायु बोले, परोक्ष अपरोक्ष दो प्रकारका ज्ञान होता है, परोक्ष अस्थिर और अपरोक्ष निश्चल है ॥ ९८ ॥ हेतु और उपदेशयुक्त वाक्यको परोक्ष कहतेहैं; अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान श्रेष्ठ अनुष्ठानसे होता है ॥९९॥ अपरोक्ष ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता ऐसा निश्चय करके तुम श्रेष्ठ अनुष्ठानकी

ततो हृष्टतराः सर्व्वे विनष्टाशेषसंशयाः ॥ मुनयो विस्मयाविष्टाः प्रणेमुः पवनं प्रभुम् ॥९६॥ तथा विगतसन्देहान्कृत्वापि पवनो मुनीन् ॥
नैते प्रतिष्ठितज्ञाना इति मत्वैवमब्रवीत् ॥ ९७ ॥ वायुरुवाच ॥ परोक्षमपरोक्षं च द्विविधं ज्ञानमिष्यते ॥ परोक्षमस्थिरं प्राहुरपरोक्षं तु
सुस्थिरम् ॥ ९८ ॥ हेतूपदेशगम्यं यत्तत्परोक्षं प्रचक्षते ॥ अपरोक्षं पुनः श्रेष्ठादनुष्ठानाद्भविष्यति ॥ ९९ ॥ नापरोक्षादृते मोक्ष इति
कृत्वा विनिश्चयम् ॥ श्रेष्ठानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥१००॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
ज्ञानोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किं तच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं मोक्षो येनापरोक्षितः ॥ तत्तस्य साधनं वायो वक्तुमर्हसि
मारुत ॥ १ ॥ वायुरुवाच ॥ शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ॥ यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः ॥ २ ॥ स तु
पंचविधो ज्ञेयः पंचभिः पर्वभिः क्रमात् ॥ क्रियातपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरैः ॥ ३ ॥ तैरेव सोत्तरैस्सिद्धो धर्मस्तु परमो मतः ॥
परोक्षमपरोक्षं च ज्ञानं यत्र च मोक्षदम् ॥ ४ ॥

सिद्धिके निमित्त यत्न करो ॥१००॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे शिवतत्त्वकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ ऋषि बोले, हे पवनदेव ! वह कौनसा श्रेष्ठ अनुष्ठान है जिससे अपरोक्षज्ञान होकर मुक्ति प्राप्त होती है; उसके साधन क्याहैं सो आप हमसे कहो ॥ १ ॥ वायु बोले, शिवकी उपासनाही परमधर्म है वही श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा है, जिससे मोक्षके देनेवाले शिव अपरोक्ष होतेहैं ॥२॥ यह पांच खण्डमें होनेसे पांच प्रकारका है, क्रिया जप तप ध्यान और केवल ज्ञान आत्मासे विचार करना ॥ ३ ॥ उन उत्कृष्ट धर्मान्तरोंके सहित सिद्धहुआ धर्म अपरम कहलाताहै, जिससे परोक्ष

और अपरोक्ष मोक्षका देने वाला ज्ञान होता है ॥ ४ ॥ परम और अपरम यह दोनों धर्म वेदमें कहेहैं, धर्ममें वेदही हमको परम प्रमाण है ॥ ५ ॥ पाशुपत योग पर्यन्त परमधर्म उपनिषद् भागमें स्थित है और अपरम यागादि धर्म यह श्रुतिके मुख अर्थात् अन्तरमें स्थित है ॥ ६ ॥ जो परमधर्म है उसमें मायापाशरहित आत्माओंका अधिकार है और यागादि साधारण धर्म होनेसे इसमें सबका अधिकार है ॥ ७ ॥ यह अपर धर्म परम धर्मका साधन है; यह धर्मशास्त्रोंमें अंगोंसहित पुष्ट कियाहै ॥ ८ ॥ उसमें आद्य जो शिवधर्म है जो श्रेष्ठ अनुष्ठान कहागया है इतिहास पुराणोंमें कुछ उसका कथन है

परमोऽपरमश्चोभौ धर्मौं हि श्रुतिचोदितौ ॥ धर्मशब्दाभिधेयेर्थे प्रमाणं श्रुतिरेव नः ॥ ५ ॥ परमो योगपर्यन्तो धर्मः श्रुतिशिरोगतः ॥
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखोत्थितः ॥ ६ ॥ अपश्वात्माधिकारत्वाद्यो धर्मः परमो मतः ॥ साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिका
रतः ॥ ७ ॥ स चायं परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम् ॥ धर्मशास्त्रादिभिस्सम्यक् सांग एवोपबृंहितः ॥ ८ ॥ शैवो यः परमो धर्मः
श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ॥ इतिहासपुराणाभ्यां कथंचिदुपबृंहितः ॥ ९ ॥ शैवागमैस्तु संपन्नः सहांगोपांगविस्तरः ॥ तत्संस्काराधिकारैश्च
सम्यगेवोपबृंहितः ॥ १० ॥ शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च संस्कृतः ॥ श्रुतिसारमयः श्रौतस्स्वतंत्र इतरो मतः ॥ ११ ॥
स्वतंत्रो दशधा पूर्वं तथाष्टादशधा पुनः ॥ कामिकादिसमाख्याभिस्सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः ॥ १२ ॥ श्रुतिसारमयो यस्तु शतकोटि
प्रविस्तरः ॥ परं पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते ॥ १३ ॥ युगावर्तेषु शिष्येत योगाचार्य्यस्वरूपिणा ॥ तत्रतत्रावतीर्णेन शिवेनैव
प्रवर्त्यते ॥ १४ ॥ संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः ॥ रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः ॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ शैव शास्त्रोंमें इसका सांगोपांग विस्तार है, शिवदीक्षा लेनेके संस्कारभी सब वर्णन कियेहैं ॥ १० ॥ श्रुति और स्मृतिके भेदसे शैवशास्त्र दो प्रकारका है, वेद शास्त्रमय श्रौत और दूसरा स्वतंत्र है ॥ ११ ॥ स्वतन्त्र पहले दश और पीछे अठारह प्रकारका हुआ, कामिकादि नामसे लेकर सिद्धान्त संज्ञावाला सिद्ध है ॥ १२ ॥ जो वेदसार मय है उसका सौ करोडका विस्तार है; जिसमें पाशुपत व्रत परमज्ञान कहाजाताहै ॥ १३ ॥ जो युगयुगमें योगाचार्यका अवतार लेकर शिवजी जहाँ तहाँ शिष्यवर्गोंको लेकर उपदेश करतेहैं ॥ १४ ॥ उसीको संक्षेप करके रुरु दधीचि अगस्त्य और महायशस्वी उपमन्युने

कहाहै ॥ १५ ॥ वह संहिताओंके प्रवृत्त करनेवाले पशुपति व्रतधारी कहेजातेहैं, उनके सन्तान गुरुजन सहस्रों हुए ॥ १६ ॥ उन्होंने चारप्रकारसे
परमधर्म कहाहै, उनमें पाशुपतयोग शिवके प्रत्यक्ष करनेमें दृढ है ॥ १७ ॥ इस कारण पाशुपत योगही श्रेष्ठ अनुष्ठान है, उसका उपाय जो ब्रह्माने कहाहै
सो कहतेहैं ॥ १८ ॥ यह अष्टांगयोग शिवनेही कल्पना कियाहै, उस योगसे एकसाथही शैवीबुद्धि प्रगट होती है ॥ १९ ॥ उस बुद्धिके होनेसे शीघ्रही
परमज्ञान प्राप्त होजाताहै, जिसको यह ज्ञान होता है शिव उसके ऊपर शीघ्रही प्रसन्न होजातेहैं ॥ २० ॥ उनके प्रसादसेही परमयोगकी प्राप्ति होती है;

ते च पाशुपता ज्ञेयास्संहितानां प्रवर्तकाः ॥ तत्संततीया गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६ ॥ तत्रोक्तः परमो धर्मश्चर्याद्यात्मा चतु
र्विधः ॥ तेषु पाशुपतो योगः शिवं प्रत्यक्षयेद्दृढम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं योगः पाशुपतो मतः ॥ तत्राप्युपायको युक्तो ब्रह्मणा
स तु कथ्यते ॥ १८ ॥ नामाष्टकमयो योगश्शिवेन परिकल्पितः ॥ तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते ॥ १९ ॥ प्रज्ञया परमं
ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम् ॥ प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ॥ २० ॥ प्रसादात्परमो योगो यः शिवं चापरोक्षयेत् ॥
शिवापरोक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते ॥ २१ ॥ ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्तः शिवसमो भवेत् ॥ ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव पृथगुच्यते
॥ २२ ॥ शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ॥ २३ ॥ नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य
प्रतिपादकम् ॥ आद्यन्तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीताद्यनुक्रमात् ॥ २४ ॥ संज्ञाः सदाशिवादीनां पंचोपाधिपरिग्रहात् ॥ उपाधिविनिवृत्तौ
तु यथास्वं विनिवर्तते ॥ २५ ॥ पदमेव हि तन्नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ॥ पदानां प्रतिकृत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः ॥ २६ ॥

जो शिवको अपरोक्ष करदेताहै; शिवके प्रत्यक्ष होनेसे संसारका कारण छूटजाताहै ॥ २१ ॥ तब वह संसारसे मुक्त होकर शिवके समान होजाता है ब्रह्माने
जो उपाय कहाहै वह पृथक् २ कहागयाहै ॥ २२ ॥ शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, ब्रह्मा, संसारके वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह मुख्य नाम हैं ॥ २३ ॥
यह आठ नाम नित्य शिवके प्रतिपादक हैं शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह पांच और (शान्त्यतीतपदे शैवाः) यहाँसे लेकर ॥ २४ ॥ तीन यह पांच
उपाधिके ग्रहण करनेसे वह शिवादिकी संज्ञा धारण करतेहैं, उपाधि दूर होनेसे सब भेद निवृत्त होजाता है ॥ २५ ॥ वह पद नित्यहै और पदवाले अनित्यहैं,

पदोंकी परिवृत्तिमें पदवाले मुक्त होजातेहैं ॥ २६ ॥ परिवृत्तिके अन्तरमें उपाधिसे फिर पदकी प्राप्ति होतीहै, आदिके पाँच नाम आत्मान्तरके नामवालेहैं ॥ २७ ॥ और संसारवैद्य सर्वज्ञ परमात्मा यह तीन नाम मायाके अवलम्बन वशसे होतेहैं, तीन प्रकारके उपाधि वचनसे शिवकाही ग्रहण है ॥ २८ ॥ अनादि गुणका सम्बन्ध प्रागभावसे और स्वभावसे सम्बन्धवाले अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा यह शिवही कहेजातेहैं ॥ २९ ॥ अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणका धन जो ईश्वरहै वही शिवतत्त्वके जाननेवाले महात्माओंने शिव कहाहै ॥ ३० ॥ तेईस तत्वोंसे प्रकृति परे है, और प्रकृतिसे भी परे वह पचीसवाँ पुरुष है

परिवृत्त्यन्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते ॥ आत्मान्तराभिधानं स्याद्यदाद्यं नामपञ्चकम् ॥२७॥ अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादियोगतः ॥
त्रिविधोपाधिवचनाच्छिव एवानुवर्तते॥२८॥अनादिमलसंश्लेषः प्रागभावात्स्वभावतः॥ अत्यंतं परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥२९॥
अथवाशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ॥ शिव इत्युच्यते सद्भिश्शिवतत्त्वार्थवादिभिः ॥ ३० ॥ त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता ॥
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥ ३१ ॥ यं वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ॥ वेदैकवेद्ययाथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ॥
॥ ३२ ॥ तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः ॥ तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३३ ॥ अथवा त्रिगुणं तत्त्वमुपेयमिद
मव्ययम् ॥ मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ मायाविक्षोभकोऽनंतो महेश्वरसमन्वयात् ॥ कालात्मा परमात्मादिः
स्थूलः सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥ रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्द्रावयति नः प्रभुः ॥ रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ॥ ३६ ॥

॥ ३१ ॥ जिसको वाच्य वाचकके भावसे वेदके प्रारंभमें ओंकार कहतेहैं, 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' जो वेद और उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित है वही प्रकृतिमें लीन होकर भोगके निमित्त प्रतिष्ठित हुआहै ॥ ३२ ॥ प्रकृतिलीनसे जो परेहै वही महेश्वर है, इसीके आधीन प्रवृत्ति है, प्रकृतिपुरुषकी वश्यता उसीके आधीनहै ॥ ३३ ॥ अथवा त्रिगुणतत्व है यह अविनाशीकी माया है माया प्रकृति और मायावाले महेश्वर कहेजातेहैं ॥ ३४ ॥ मायाके विक्षोभ करनेवाले नारायण पुरुषहैं वह महेश्वरके सम्बन्धसे युक्तहैं वह कालात्मा परमात्मा आदि स्थूल सूक्ष्म कहेजातेहैं ॥ ३५ ॥ रुत् दुःख वा दुःखके हेतुको नाश करनेसे

वह रुद्र कहातेहैं, वही परम कारण शिवहैं यह सत्पुरुषोंने कहा है ॥ ३६ ॥ शिवतत्वसे प्रारम्भकर भूमिपर्यन्त शरीरादि और घटादि ब्याप्त करके शिव
अधिष्ठितहैं, इसीसे उनको रुद्र कहतेहैं ॥ ३७ ॥ जो मूर्तिआत्मके हैं जगत्के पितृभूतहैं वही शिव सबके पितृभावमें होनेसे पितामह कहलातेहैं ॥ ३८ ॥
जिस प्रकार निदानका जाननेवाला वैद्य रोगका निवर्तक है; अनेक प्रकार औषधीयुक्त उपाय करता है, ऐसेही प्रकृतिके कर्म ज्ञानरूप उपायोंसे मुमुक्षु और
कामुकोंको क्रमसे लय और मोक्ष भोगके अधिकारानुसार प्रवृत्त करता है ॥ ३९ ॥ इससे ईश्वर नित्य संसारके मूलका निवृत्त करनेहारा है, जगत्पति है,
इस कारण सब तत्वके ज्ञाता उसे संसारवैद्य कहतेहैं ॥ ४० ॥ शब्दादि विषयोंके दश ज्ञानसिद्धिके अर्थ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके होनेमें भी त्रिकालमें

तत्त्वादिभूतपर्यन्तं शरीरादिष्वतन्द्रितः ॥ व्याप्याधितिष्ठति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः ॥ ३७ ॥ जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्म
नामपि ॥ पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ॥ ३८ ॥ निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ॥ उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधि
कारतः ॥ ३९ ॥ संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः ॥ संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः ॥ ४० ॥ दशार्थज्ञानसिद्ध्यर्थ
मिन्द्रियेष्वेषु सत्स्वपि ॥ त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ॥ ४१ ॥ अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः ॥ अस
त्स्वपि च सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु ॥ ४२ ॥ यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः ॥ अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ॥
॥ ४३ ॥ सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात् ॥ स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ॥ ४४ ॥ नामाष्टकमिदं चैव
लब्ध्वाचार्यप्रसादतः ॥ निवृत्त्यादिकलाग्रन्थि शिवाद्यैः पंचनामभिः ॥ ४९ ॥

होनेवाले स्थूल और सूक्ष्म भावोंको विशेष करके ॥ ४१ ॥ जीवगण जीवतत्वके मलके कारणको नहीं जान सकतेहैं और सम्पूर्ण अर्थोंके ज्ञान न
होनेके हेतु होनेपरभी ॥ ४२ ॥ जो वस्तु जिस प्रकार स्थित है वह उसी प्रकार सदाशिव विना यत्नके यथार्थ जानतेहैं, इस कारण उनको सर्वज्ञ कहतेहैं
॥ ४३ ॥ वह सर्वात्मा सदा इन परमगुणोंसे युक्त रहता है, अपनेसे पर आत्माओंका विरह होनेसे वह शिव परमआत्मा है; अर्थात् अन्य जीवोंकी आत्मासे
पृथक् है ॥ ४४ ॥ आचार्य गुरुकी कृपासे इन आठ नामोंको अर्थसहित प्राप्त करके, शिवादिक पांच नामोंसे निवृत्ति आदि कल्प ग्रन्थियोंको ॥४५॥

यथाक्रमसे छेदन करके और शोधकर अपने अधिष्ठान क्रमसे सबकुछ करके इन नामोंको आवर्तन करके उद्घात अर्थात् प्राणवायुसे अपानवायुका अभिघातकर मूलाधारसे वायुको प्रेरण कर वायुसे शिरको ताडन करता अथवा प्राणसे प्रेरित होकर यदि अपान पीडित होकर शिरतक जाकर निवृत्त होजाय उसीका नाम उद्घात है और उससे रहितका नाम निरुद्घात है ॥ ४६ ॥ इससे हृदय कण्ठ तालु भ्रूमध्य ब्रह्मरन्ध्रसे युक्त इन कला ग्रन्थिरूप भूत इन्द्रिय मनोबुद्धि वासना कर्मवायु और अविद्या इन पुरीके आकार आठोंको भेदन कर और मध्यनाडी सुषुम्नासे[1] ॥ ४७ ॥ द्वादशदल युक्त हृदयकमलमें स्थित चन्द्रके ऊपर

यथास्वं क्रमशश्छित्त्वा शोधयित्वा यथागुणम् ॥ गुणितैरेव सोद्घातैरनिरुद्धैरथापि वा ॥ ४६ ॥ हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमन्विताम् ॥ छित्त्वा पुर्यष्टकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया ॥ ४७ ॥ द्वादशांतःस्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि ॥ संहृत्यं वदनं पश्चाद्यथासंस्करणं लयात् ॥ ४८ ॥ शाक्तेनामृतवर्षेण संसिक्तायां तनौ पुनः ॥ अवतार्य स्वमात्मानममृतात्माकृतिं हृदि ॥ ४९ ॥ द्वादशांतःस्थितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपंकजे ॥ समासीनं महादेवं शंकरम्भक्तवत्सलम् ॥ ५० ॥ अर्द्धनारीश्वरं देवं निर्मलं मधुराकृतिम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥ ५१ ॥ ध्यात्वा हि मानसे देवं स्वस्थचित्तोऽथ मानवः ॥ शिवनामाष्टकेनैव भावपुष्पैस्समर्चयेत् ॥ ५२ ॥ अभ्यर्चनान्ते तु पुनः प्राणानायम्य मानवः ॥ सम्यक्चित्तं समाधाय शार्वं नामाष्टकं जपेत् ॥ ५३ ॥

शिवके प्रभावमें अपने आत्माको लेजाकर पीछे चाहैं उसे उतारे वा न उतारे, अपने कारणमें यथायोग्य लय होजानेसे ॥ ४८ ॥ शक्तिकी अमृतवर्षासे सींचनेपर फिर अपने शरीरमें अमृतामृतक आत्माको हृदयमें उतारकर ॥ ४९ ॥ द्वादशदल हृदयकमलमें इन्दु (चन्द्र) से ऊपर श्वेतकमलमें भक्तवत्सल शंकरको स्थित हुए देखै ॥ ५० ॥ अर्धनारीश्वर देव जो निर्मल और मधुरमूर्ति युक्तहैं; शुद्धस्फटिकमणिके समान प्रसन्न शीतल कान्तिमान्को ॥ ५१ ॥ नामाष्टकसे हृदयमें ध्यान करके यह मनुष्य स्वस्थचित्त हो शिवके आठों नाम और भक्तिरूप फूलोंसे पूजा करै ॥ ५२ ॥ फिर यह मनुष्य प्राणोंको रोककर

१-इडा, पिंगलाके, बीचमें सुषुम्ना है यह मलरहित ब्रह्मस्वरूपिणी है इसके बाईओर इडा दाहिनी ओर पिंगला नाडी है ।

विशेषकर चित्तको सावधान कर नामाष्टकका जप करै ॥ ५३ ॥ नाभिमें आठ आहुतिका हवन कर नमस्काररूप पूर्ण आहुति देकर पीछे आठ पुष्पोंके प्रदानसे अन्तका पूजन कर ॥५४॥ हाथमें जल लेकर उसके देनेसे अपने आत्माको निवेदन करे इस प्रकार करनेसे पाशुपत ज्ञान शीघ्रही प्राप्त होजाता है ॥५५॥ और इस व्रतकी उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है पीछे परम योगको प्राप्त होकर मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ऋषि बोले, हे भगवन् ! हम पाशुपत व्रतके सुननेकी इच्छा करतेहैं जिसको ब्रह्मा

नाभौ चाष्टाहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुत्या नमस्ततः ॥ अष्टपुष्पप्रदानेन कृत्वाभ्यर्च्चनमंतिमम् ॥ ५४ ॥ निवेदयेत्स्वमात्मानं चुलुकोदकवर्त्मना ॥ एवं कृत्वा चिरादेव ज्ञानं पाशुपतं शुभम् ॥ ५५ ॥ लभते तत्प्रतिष्ठां च वृत्तं चानुत्तमं तथा ॥ योगं च परमं लब्ध्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखंडे श्रेष्ठानुष्ठानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
ऋषय ऊचुः ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो व्रत पाशुपतं परम् ॥ ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्वा सर्वे पाशुपताः स्मृताः ॥ १ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥
रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम् ॥ व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम् ॥ २ ॥ कालश्चैत्री पौर्णमासी देशः शिवपरिग्रहः ॥
क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तश्शुभलक्षणः ॥ ३ ॥ तत्र पूर्वं त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ॥ अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ ४ ॥ पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ ५ ॥ दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ ६ ॥

दिकभी करके पाशुपत होगये ॥ १ ॥ वायु बोले, सब पापका दूर करनेवाला रहस्य मैं तुमसे वर्णन करताहूं,यह पाशुपत व्रत अथर्वशिरस् उपनिषद्में प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ काल इसका चैत्रकी पूर्णमासी शिवस्वीकृत देश क्षेत्र आराम (बगीचा) श्रेष्ठ लक्षण युक्त इसमें कहा है ॥ ३ ॥ उसमें पहले त्रयोदशीके दिन स्नानादि करके अग्निहोमके उपरान्त और अपने आचार्यकी पुजाके उपरान्त प्रणामकर उनसे आज्ञा ले ॥ ४ ॥ विशेष पूजा कर स्वयं शुक्लवस्त्र धारण करके शुक्ल यज्ञोपवीत श्वेत माला श्वेत चन्दन धारणकर ॥ ५ ॥ कुशासनपर बैठ मुट्ठीमें कुशोंको ले उत्तर वा पूर्वको मुखकर तीन प्राणायाम करके देवी और

देवको उनके विज्ञापन किये मार्गसे ध्यान करके ॥ ६ ॥ मैं दीक्षित होकर यह व्रत करताहूं यह संकल्प करै, जबतक शरीरपात हो अथवा बारह वर्षतक
॥ ७ ॥ छः वर्ष तीन वर्ष अथवा बारह मासतक छः तीन अथवा एकही महीने ॥ ८ ॥ बारह दिन, अथवा छः दिन, तीन दिन, वा एकही दिनके
व्रतका संकल्प करके ॥ ९ ॥ विरजाहोमके निमित्त विधिपूर्वक अग्निको लेकर घी समिधा और चरुसे यथायोग्य हवन कर ॥ १० ॥ पूर्ण आहुतिके
उपरान्त फिर तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे उन समिधा आदिका मूलमन्त्र (पंचाक्षर) से हवन करे ॥ ११ ॥ और यह तत्व मेरे देहके शुद्ध हों ऐसा स्मरण

व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः ॥ यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा ॥ ७ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ॥
तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा ॥ ८ ॥ दिनद्वादशकं वाऽथ दिनषट्कमथापि वा ॥ तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ॥ ९ ॥
अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात् ॥ हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम् ॥ १० ॥ पूर्णामापूर्य तां भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमु
द्दिशन् ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः ॥ ११ ॥ तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्ध्यंतामित्यनुस्मरन् ॥ पंचभूतानि तन्मात्राः पंच
कर्मेन्द्रियाणि च ॥ १२ ॥ ज्ञानकर्मविभेदेन पंचकर्मविभागशः ॥ त्वगादिधातवस्सप्त पंच प्राणादिवायवः ॥ १३ ॥ मनो बुद्धिरहं
ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषौ ॥ रागो विद्याकले चैव नियतिः काल एव च ॥ १४ ॥ माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ॥ शक्तिश्च
शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः ॥ १५ ॥ मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजा भवेत् ॥ शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि
जायते ॥ १६ ॥ अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमंत्र्य च ॥ विन्यस्याग्नौ च सम्प्रोक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ॥ १७ ॥

करताजाय, पंचभूत तन्मात्रा पंच कर्मेन्द्रिय ॥ १२ ॥ ज्ञान और कर्मके भेदसे इनके पांच २ विभागहैं, त्वचादि सात धातु प्राणादि वायु ॥ १३ ॥
मन बुद्धि अहंकार गुण प्रकृति पुरुष राग विद्या कला नियति काल ॥ १४ ॥ माया शुद्ध विद्या महेश्वर सदाशिव शक्ति और शिवतत्व यह क्रमसे तत्व
कहेहैं ॥ १५ ॥ इन विरज (मलरहित) मन्त्रोंसे हवन करनेसे हवन करनेवाला पापरहित होजाता है शिवके अनुग्रहको प्राप्त होकर ज्ञानवान् होजाता है ॥
॥ १६ ॥ फिर गोबर लाय उसका पिंड कर मंत्र पढकर सूंघकर उसे अग्निमें रख उसदिन व्रती हविष्य अन्न खाय ॥ १७ ॥

फिर प्रातःकाल चतुर्दशीके दिन सब पहले दिनका कृत्य करके उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत कर ॥ १८ ॥ फिर पर्वके दिन यह सब कृत्यकर होमके पीछे रुद्राग्निको शान्तकर यत्नपूर्वक भस्मको ग्रहण करै ॥ १९ ॥ फिर जटायुक्त वा मुंडित वा केवल शिखामात्र धारण कियेहुए स्नान कर यदि लोकलज्जारहित हो तो दिगम्बर होजाय ॥ २० ॥ अथवा काषाय वस्त्र वा चर्म चीरवस्त्र धारण करै, एक वस्त्र धारै, वल्कल वा, मेखला दंड धारण कियेरहै ॥ २१ ॥ फिर चरण धोय दो बार आचमन कर अपने शरीरको उस हवनकी भस्मसे भूषित करै ॥ २२ ॥ 'अग्निरितिभस्म' यह

प्रभाते तु चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ॥ दिने तस्मिन्निराहारः कालं शेषं समापयेत् ॥ १८ ॥ प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म यत्नतः ॥ १९ ॥ ततश्च जटिलो मुण्डी शिखैकजट एव वा ॥ भूत्वा स्नात्वा ततो वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः ॥ २० ॥ अपि काषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथ वा ॥ एकाम्बरो वल्कली वा भवेद्दण्डी च मेखली ॥ २१ ॥ प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम् ॥ संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् ॥ २२ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात् ॥ विमृज्यांगानि मूर्द्धादिचरणांतानि तैस्स्पृशेत् ॥ २३ ॥ ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा ॥ २४ ॥ ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥ शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत् ॥ २५ ॥ कुर्यात्त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं विनिवर्तयेत् ॥ २६ ॥ तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिस्सनातनः ॥ २७ ॥

छः अथर्ववेदके मन्त्र हैं, इनसे शिरसे लेकर चरणतक स्पर्श करै ॥ २३ ॥ फिर इसी क्रमसे भस्मको सर्वांगमें लगावै ओंकारयुक्त शिवका उच्चारण करै ॥ २४ ॥ फिर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्रसे त्रिपुंड्र लगावै इस प्रकार शिवभावको प्राप्तहो शिवयोगका आचरण करै ॥ २५ ॥ तीनों संध्याओंमें इस पाशुपत व्रतको करै, यह भुक्ति मुक्तिका देनेवाला पशुत्व दूर करता है ॥ २६ ॥ इस पाशुपत व्रतसे पशुपन त्याग करै लिंगमूर्ति सनातन महादेवका पूजन

करै ॥ २७ ॥ आठ दलका सुवर्णका कमल नौ रत्नोंसे अलंकृत कर कर्णिका और केसरके सहित पद्मासनकी कल्पना करै ॥ २८ ॥ यह ऐश्वर्य होनेपर
करै, तथा इसके अभावमें लाल श्वेत कमल स्थित करै, यदि यहभी न होसके तो केवल भावनाका कमल स्थित करै ॥ २९ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें
एक छोटी लिंगमूर्ति स्फटिककी करके क्रमसे पूजन करै ॥ ३० ॥ विधिपूर्वक उस लिंगको स्थापन करके और शुद्ध करके पंचमुखके प्रकारसे आसन
मूर्तिको कल्पना करके ॥ ३१ ॥ पंचगव्यादि पवित्र विस्तारपूर्वक यथायोग्य सहस्र कलशोंसे स्नान करावै ॥ ३२ ॥ गन्धद्रव्य कपूर चन्दनादि कुंकुम

पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलंकृतम् ॥ कर्णिकाकेशरोपेतमासनं परिकल्पयेत् ॥ २८ ॥ विभवे तदभावे तु रक्तं सितमथापि वा ॥ पद्मं त
स्याप्यभावे तु केवलं भावनामयम् ॥ २९ ॥ तत्पद्मकर्णिकामध्ये कृत्वा लिंगं कनीयसम् ॥ स्फाटिकं पीठिकोपेतं पूजयेद्विधिवत्क्रमात्
॥ ३० ॥ प्रतिष्ठाप्य विधानेन तल्लिंगं कृतशोधनम् ॥ परिकल्प्यासनं मूर्तिं पंचवक्त्रप्रकारतः ॥ ३१ ॥ पंचगव्यादिभिः पूर्णैर्यथाविभ
वसंभृतैः ॥ स्नापयेत्कलशैः पूर्णैरष्टापदसमुद्भवैः ॥ ३२ गंधद्रव्यैस्सकर्पूरैश्चन्दनाद्यैस्सकुंकुमैः ॥ सवेदिकं समालिप्य लिंगं भूषणभूषि
तम् ॥ ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तैः श्वेतैस्तथोत्पलैः ॥ नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैस्सुगंधिभिः ॥ ३४ ॥ पुण्यैः प्रशस्तैः
पत्रैश्च चित्रैर्दूर्वाक्षतादिभिः ॥ समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानतः ॥ ३५ ॥ धूपं दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत् ॥ निवे
दयित्वा विभवे कल्याणं च समाचरेत् ॥ ३६ ॥ इष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्जितानि च ॥ सर्वद्रव्याणि देयानि व्रते तस्मि
न्विशेषतः ॥ ३७ ॥ श्रीपत्रोत्पलपद्मानां संख्या साहस्रिकी मता ॥ प्रत्येकमपरा संख्या शतमष्टोत्तरं द्विजाः ॥ ३८ ॥

यह सब वस्तु वेदी सहित लिंगको चढाकर भूषणसे भूषित करै ॥ ३३ ॥ बिल्वपत्र, श्वेतपद्म, रक्तपद्म, नीलकमल, तथा दूसरे सुगन्धित पुष्प ॥ ३४ ॥
पवित्र श्रेष्ठ बिल्वपत्र चित्रदूर्वा अक्षत महापूजाके विधानसे यथालाभ पूजित कर ॥ ३५ ॥ धूप दीप अर्घ्य नैवेद्य प्रदान करै; इस प्रकार शिवको निवेदनकर
कल्याणकी प्रवृत्ति करै ॥ ३६ ॥ और जो न्यायपूर्वक उपार्जन कीहुई अपनेको इष्ट वस्तु हों वह सब द्रव्य इस व्रतमें विशेषकर देने चाहिये ॥ ३७ ॥
श्रीपत्र, उत्पल और कमल यह सहस्र चढाने चाहिये अथवा कमती संख्या १०८ चढाने चाहिये ॥ ३८ ॥

उसमेंभी विशेषकर बेलपत्रको न त्यागै; एकही सुवर्णका कमल सहस्र कमलोंसे विशेष है ॥ ३९ ॥ और नीलोत्पलादि कमल बेलपत्रके समान हैं, और दूसरे फूलोंमें नियम नहींहै; यथालाभ निवेदन करै ॥ ४० ॥ अष्टांग अर्घ्य श्रेष्ठ है विशेषकर धूप देनी, चन्दन लगाना, कृष्ण अगरु अघोरनामक मुखमें, सद्योजातमें मनशिला, वामदेव मुखमें चन्दन, पौरुषमें हरिताल ॥ ४१ ॥ ईशानमें भस्म, इस प्रकार कोई आचार्य आलेपन कहतेहैं, कोई धूपान्तरके विधानसे धूप नहीं मानतेहैं, कि अघोरके मुखमें श्वेत अगरु, पुरुषके मुखमें काला अगुरु ॥ ४२ ॥ सद्योजातके मुखमें गुग्गुल, सौम्यके मुखमें सुगन्धिद्रव्य,

तत्रापि च विशेषेण न त्यजेद्बिल्वपत्रकम् ॥ हैममेकं परं प्राहुः पद्मं पद्मसहस्रकात् ॥ ३९ ॥ नीलोत्पलादिष्वप्येतत्समानं बिल्वपत्रकैः ॥ पुष्पान्तरे न नियमो यथालाभं निवेदयेत् ॥ ४० ॥ अष्टाङ्गमर्घ्यमुत्कृष्टं धूपालेपौ विशेषतः ॥ चन्दनं वामदेवाख्ये हरितालं च पौरुषे ॥ ४१ ॥ ईशाने भसितं केचिदालेपनमितीदृशम् ॥ न धूपमिति मन्यन्ते धूपान्तरविधानतः ॥ सितागुरुमघोराख्ये मुखे कृष्णागुरुं पुनः ॥ ४२ ॥ पौरुषे गुग्गुलं सव्ये सौम्ये सौगंधिकं मुखे ॥ ईशानेऽपि ह्युशीरादि देयाद्धूपं विशेषतः ॥ ४३ ॥ शर्करामधुकर्पूरकापिलाघृतसंयुतम् ॥ चंदनागुरुकाष्ठाद्यं सामान्यं संप्रचक्षते ॥ ४४ ॥ कर्पूरवर्तिराज्याढ्या देया दीपावलिस्ततः ॥ अर्घ्यमाचमनं देयं प्रतिवक्रमतः परम् ॥ ४५ ॥ प्रथमावरणे पूज्यौ क्रमाद्धेरम्बषण्मुखौ ॥ ब्रह्मांगानि ततश्चैव प्रथमावरणेऽर्चिते ॥ ४६ ॥ द्वितीयावरणे पूज्या विघ्नेशाश्चक्रवर्तिनः ॥ तृतीयावरणे पूज्या भवाद्या अष्टमूर्तयः ॥ ४७ ॥

ईशानमें उशीरादिकी धूप विशेष करके देनी चाहिये ॥ ४३ ॥ शर्करा, मधु, कपूर, कपिलागौके घृतमें मिलाकर देनी चाहिये; चन्दन अगुरु काष्ठादि यह सामान्य कहां है ॥ ४४ ॥ कर्पूर वर्ति घीका दीपक देने चाहिये, इसके उपरान्त प्रत्येक मुखकी ओर अर्घ्य और आचमन देना चाहिये ॥ ४५ ॥ प्रथम आवरणमें क्रमसे गणेश और कार्तिकेयका पूजन करना चाहिये; फिर ब्रह्मा प्रभृति अंगादिका पूजन करै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार प्रथम आवरणकी पूजा करनेपर दूसरे आवरणमें चक्रवर्ती विघ्नेशकी पूजा करनी चाहिये; तीसरे आवरणमें भव आदि अष्ट मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

---

१ 'कृष्णगुरुमघोराख्ये वक्रे सद्ये मनःशिलाम्' । इत्यधिकः पाठः ।

चौथे आवरणमें महादेवादियोंकी तथा ग्यारह रुद्रोंकी सब गणेश्वरोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥ पद्मके बाहर पाँच आवरणके क्रमसे अस्त्र और अनुचरोंके साथ दश दिक्पालोंकी पूजा करनी ॥ ४९ ॥ ब्रह्माके मानसिक पुत्र और सब ग्रह सब देव देवी और सर्व आकाशचारी ॥५०॥ सब पातालवासी और सब मुनीश्वर सब मुख्य योगीश्वर पांचवें आवरणमें मातृकाओंके साथ पूजै ॥ ५१ ॥ गणोंके सहित क्षेत्रपाल और यह सब चराचर जगत् शिवकी प्रीतिसे शिवकी विभूति जानकर पूजै ॥ ५२ ॥ आवरण पूजाके अन्तमें परमेश्वरको पूजनकर घृत व्यंजन युक्त हवि शाकादि मनोहर वस्तु निवेदन करै

महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्तयः ॥ चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व एव गणेश्वराः ॥ ४८ ॥ बहिरेव तु पद्मस्य पंचमावरणे क्रमात् ॥ दश
दिक्पतयः पूज्याः सास्त्राः सानुचरास्तथा ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः सर्वेऽपि ज्योतिषां गणाः ॥ सर्वा देव्यश्च देवाश्च सर्वे सर्वे
च खेचराः ॥ ५० ॥ पातालवासिनश्चान्ये सर्वे मुनिगणा अपि ॥ योगिनो हि मखास्सर्वे पतंगा मातरस्तथा ॥ ५१ ॥ क्षेत्रपालाश्च
सगणाः सर्वं चैतच्चराचरम् ॥ पूजनीयं शिवप्रीत्या मत्त्वा शंभुविभूतिमत् ॥ ५२ ॥ अथावरणपूजांते संपूज्य परमेश्वरम् ॥ साज्यं सव्यं
जनं हृद्यं हविर्भक्त्या निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ मुखवासादिकं दत्त्वा ताम्बूलं सोपदंशकम् ॥ अलंकृत्य च भूयोऽपि नानापुष्पविभूषणैः ॥
॥ ५४ ॥ नीराजनांते विस्तीर्य पूजाशेषं समापयेत् ॥ चषकं सोपकारं च शयनं च समर्पयेत् ॥ ५५ ॥ चन्द्रसंकाशहारं च शयनीयं
समर्पयेत् ॥ आद्यं नृपोचितं हृद्यं तत्सर्वमनुरूपतः ॥ ५६ ॥ कृत्वा च कारयित्वा च हित्वा च प्रतिपूजनम् ॥ स्तोत्रं व्यपोहनं जप्त्वा
विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ॥ ५७ ॥ प्रदक्षिणां प्रणामं च कृत्वात्मानं समर्पयेत् ॥ ततः पुरस्ताद्देवस्य गुरुविप्रौ च पूजयेत् ॥ ५८ ॥

॥ ५३ ॥ मुखसुगन्धिके निमित्त ताम्बूल रोचक द्रव्यसहित दे, फिर अनेक प्रकारके पुष्प और भूषणोंसे अलंकार करके ॥ ५४ ॥ नीराजनके अन्तमें पूजाका विस्तार समाप्त करै, फिर सामग्रीसहित पानपात्र दे, और शयन निवेदन करै ॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान हार उज्ज्वल शयन स्थानमें रक्खै और भी योग्य सब पदार्थ राजोंकी समान स्थित करै ॥ ५६ ॥ आप यह कार्य करै या ऋत्विजोंसे कराकर हवन और पूजनके पीछे प्रार्थना स्तोत्र जप कर पंचाक्षरी विद्याको जपै ॥ ५७ ॥ प्रदक्षिणा करे और परमात्माकी पूजा करै, फिर शिवके सन्मुखही गुरु ब्राह्मणोंका पूजन करै ॥ ५८ ॥

फिर अर्घ्य और आठ फूल देकर देवको लिंगसे विसर्जन कर अग्निमन्त्रसे अग्निकी रक्षा कर उसे भी विदा करै ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसे यह सब कृत्य प्रतिदिन करै, फिर सब सामग्रीसहित कमलयुक्त लिंग ॥ ६० ॥ अपने गुरुको देदे अथवा शिवालयमें स्थापन करै, फिर वह व्रती दूसरे अपने गुरुजनोंका पूजन कर ॥ ६१ ॥ समर्थ हो तो भक्त ब्राह्मण और दीनोंको सन्तुष्ट करे आप यातो भोजन न करे, अथवा फल मूल भोजन करे ॥ ६२ ॥ दूध पीवै वा भिक्षा खाय, केवल एकवार भोजन करे, रात्रिमें सदा नियत भोजन करै और पवित्र हो पृथ्वीपर शयन करै ॥ ६३ ॥ भस्म वा तृणपर शयन करै

दत्त्वार्घ्यमष्टौ पुष्पाणि देवमुद्वास्य लिंगतः ॥ अग्नेश्चाग्निं सुसंयम्य ह्युद्वास्य च तमप्युत ॥ ५९ ॥ प्रत्यहं च जनस्त्वेवं कुर्यात्सेवां पुरोदिताम् ॥ ततस्तत्साम्बुजं लिंगं सर्वोपकरणान्वितम् ॥ ६० ॥ समर्पयेत्स्वगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये ॥ संपूज्य च गुरून्विप्रान्व्रतिनश्च विशेषतः ॥ ६१ ॥ भक्तान्द्विजांश्च शक्तश्चेद्दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥ स्वयं चानशने शक्तः फलमूलाशनोऽथ वा ॥ ६२ ॥ पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथा ॥ नक्तं युक्ताशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः ॥ ६३ ॥ भस्मशायी तृणेशायी चीराजिनधृतोऽथ वा ॥ ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ६४ ॥ अर्कवारे तथार्द्रायां पंचदश्यां च पक्षयोः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तूपवसेदपि ॥ ६५ ॥ पाखण्डिपतितोदक्यास्सूतकान्त्यजपूर्वकान् ॥ वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ॥ ६६ ॥ क्षमादानदयासत्याहिंसाशीलः सदा भवेत् ॥ संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा ॥ ६७ ॥ कुर्यात्त्रिषवणस्नानं भस्मस्नानमथापि वा ॥ पूजां वैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा ॥ ६८ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती ॥ प्रमादात्तु तथाचारे निरूप्य गुरुलाघवे ॥ ६९ ॥

अथवा चीर वा आजिन मृगचर्मपर शयन करै; ब्रह्मचर्यपूर्वक इस व्रतको समाप्त करै ॥ ६४ ॥ रविवार आर्द्रा नक्षत्रके दिन अमावस पूर्णमासी अष्टमी और चतुर्दशीको सामर्थ्य हो तो उपवास करै ॥ ६५ ॥ पाखंड, पतित, उदक्या, रजस्वला, सूतिका आदि अपवित्रोंको मनसे भी स्मरण न करै न वाणीसे उच्चारण करै ॥ ६६ ॥ क्षमा, दान, दया, सत्य, अहिंसा, और शीलयुक्त सदा रहै, सन्तुष्ट शान्त और तप तथा ध्यानमें सदा मन लगावै ॥ ६७ ॥ तीनों काल स्नान करै, अथवा भस्म स्नान करै, मन वचन कर्मसे विशेष पूजा करै ॥ ६८ ॥ बहुत कहनेसे क्या व्रती कुछभी अमंगल वातको न करै;

प्रमाद होजानेसे आचारमें उस गुरु लघुका विचार कर ॥ ६९ ॥ पूजा होम यज्ञादिसे उसका उचित प्रायश्चित्त करै. जबतक व्रत समाप्त न हो कुछभी
प्रमाद न करै ॥ ७० ॥ गोदान वृषोत्सर्ग पूजा धनके अनुसार सब कामनासे रहित हो भक्त शिवकी प्रीतिके निमित्त सब करै ॥ ७१ ॥ यह इस व्रतकी
विधि संक्षपसे सामान्य कहीहै, प्रतिमासमें जो विशेष है सो क्रमसे कहताहूं ॥७२॥ वैशाखमें हीरेका लिंग, ज्येष्ठमें मरकतका, आषाढमें मोतीका, श्रावणमें
नीलमका ॥ ७३ ॥ भाद्रपदमें पद्मरागमणिका, आश्विनमें गोमेदका ॥ ७४ ॥ कार्तिकमें मूंगेका, अगहनमें वैडूर्यका, पौषमें पुष्परागका, माघमें द्युमणि

उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः ॥ आसमाप्तेर्व्रतस्यैवमाचरेन्न प्रमादतः ॥ ७० ॥ गोदानं च वृषोत्सर्गं कुर्यात्पूजां च
संपदा ॥ भक्तश्च शिवप्रीत्यर्थं सर्वकामविवर्जितः ॥ ७१ ॥ सामान्यमेतत्कथितं व्रतस्यास्य समासतः ॥ प्रतिमासं विशेषं च प्रव
दामि यथाश्रुतम् ॥ ७२ ॥ वैशाखे वज्रलिंगं तु ज्येष्ठे मारकतं शुभम् ॥ आषाढे मौक्तिकं विद्याच्छ्रावणे नीलनिर्मितम् ॥ ७३ ॥
मासे भाद्रपदे चैव पद्मरागमयं परम् ॥ आश्विने मासि विद्याद्वै लिंगं गोमेदकं वरम् ॥ ७४ ॥ कार्तिक्यां वैद्रुमं लिंगं वैदूर्यं मार्गशी
र्षके ॥ पुष्परागमयं पौषे माघे द्युमणिजन्तथा ॥ ७५ ॥ फाल्गुने चन्द्रकान्तोत्थं चैत्रे तद्व्यत्यययोथ वा ॥ सर्वमासेषु रत्नानामलाभे
हैममेव वा ॥ ७६ ॥ हैमाभावे राजतं वा ताम्रजं शैलजन्तथा ॥ मृन्मयं वा यथालाभं जातुषं चान्यदेव वा ॥ ७७ ॥ सर्वगंधमयं वाथ
लिंगं कुर्याद्यथारुचि ॥ व्रतावसानसमये समाचरितनित्यकः ॥ ७८ ॥ कृत्वा वैशेषिकीं पूजां हुत्वा चैव यथा पुरा ॥ संपूज्य च तथाचार्यं
व्रतिनश्च विशेषतः ॥ ७९ ॥ देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ॥ ८० ॥

(सूर्यकान्त) का ॥७५॥ फाल्गुनमें चन्द्रकान्तमणिका, चैत्रमेंभी इसी मणिका, अथवा रत्न न मिलै तो सब महीनोमें सुवर्णलिंगकी पूजा करै ॥७६॥
उसके अभावमें चांदी तांबा अथवा शिलाके लिंगका पूजन करै, यह भी न हो तो मट्टीका वा और किसी वस्तुका पूजै ॥ ७७ ॥ सबही मूर्ति गन्धमय
बनावै, अथवा जैसी रुचि होवै सो बनावै, व्रतके अन्तमें अपना नित्यकर्म समाप्त करके ॥ ७८ ॥ विशेष पूजा और हवन करके सदाचरणयुक्त व्रती पुरुष
शिव और आचार्यका विशेष पूजन कर ॥ ७९ ॥ आचार्यकी आज्ञासे पूर्व वा उत्तरमुख होकर बैठे; कुशका आसन कुशाही हाथमें लिये प्राण अपान

वायुको रोककर ॥८०॥ शक्तिके अनुसार मूलमन्त्रको जपकर उमासहित त्र्यंबकदेवका ध्यान कर आज्ञा लेकर हाथ जोडकर कहै ॥८१ ॥ हे भगवन्!
आपकी आज्ञासे अब इस व्रतको त्यागताहूं, यह कहकर लिंगमूलके कुशोंको उत्तरभागसे विसर्जन करै ॥ ८२ ॥ फिर दण्ड जटा चीर मेखलाको भी
त्यागन करै फिर विधिपूर्वक आचमन कर पंचाक्षरमन्त्रका उच्चारण करै ॥ ८३ ॥ जो देहान्ततक इस दीक्षाको सावधानीसे करताहै और इस व्रतको
करताहै वह नैष्ठिक व्रती कहाताहै ॥ ८४ ॥ वही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ महापाशुपत व्रती कहाताहै, वही तपस्वियोंमें श्रेष्ठ और महाव्रती है ॥ ८५ ॥

जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वा साम्बं त्रियम्बकम् ॥ अनुज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ ८१ ॥ समुत्सृजामि भगवन्व्रतमे
तत्त्वदाज्ञया ॥ इत्युक्त्वा लिंगमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्त्यजेत् ॥ ८२ ॥ ततो दण्डजटाचीरमेखला अपि चोत्सृजेत् ॥ पुनराचम्य विधि
वत्पंचाक्षरमुदीरयेत् ॥ ८३ ॥ यः कृत्वात्यंतिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः ॥ व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकः स्मृतः ॥ ८४ ॥
सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा ॥ स एव तपतां श्रेष्ठः स एव च महाव्रती ॥ ८५ ॥ न तेन सदृशः कश्चित्कृतकृत्यो
मुमुक्षुषु ॥ यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम् ॥ ८६ ॥ योऽन्वहं द्वादशाहं वा व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ सोऽपि नैष्ठिकतुल्यः
स्यात्तीव्रव्रतसमन्वयात् ॥ ८७ ॥ घृताक्तो यश्चरेदेतद्व्रतं व्रतपरायणः ॥ द्वित्रैकदिवसं वापि स च कश्चन नैष्ठिकः ॥ ८८ ॥ कृत्यमि
त्येव निष्कामो यश्चरेद्व्रतमुत्तमम् ॥ शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित् ॥ ८९ ॥ भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसं
भवैः ॥ पापैस्सुदारुणैस्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९० ॥

उसके समान मुमुक्षुओंमें कोई कृतकृत्य नहीं है जो यति नैष्ठिक हो, वह उत्तम नैष्ठिक है ॥ ८६ ॥ जो बारह दिनतक भोजन न करके इस व्रतको करै
वहभी तीव्र व्रतके कारण नैष्ठिकके तुल्य होजाताहै ॥८७॥ जो घृत शरीरमें लगाकर इस व्रतको करता है दो तीन वा एक दिन भी करता है वहभी नैष्ठिक
है ॥ ८८ ॥जो कोई निष्काम हो इस व्रतको करता है, और जो निरन्तर अपनी आत्मा शिवको अर्पण कियेहै, उसके समान कोई दूसरा नहीं है॥८९॥
विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापापसे उत्पन्नहुए पापोंसे शीघ्र छूटजाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ९० ॥

रुद्र अग्निका जो परम वीर्य है, वही भस्म कहलाता है इस कारण सब कालमें भस्मयुक्त वीर्यवान् होता है ॥ ९१ ॥ जो पुरुष भस्मनिष्ठहैं उनके अग्निके संगमसे सब दोष दूर होजातेहैं, भस्मस्नानसे पवित्रहुआ पुरुष भस्मनिष्ठ कहाजाता है ॥ ९२ ॥ जिसके शरीरमें भस्म लगा है और जिसका त्रिपुंड्र भस्मसे दीप्तिमान् है, भस्म स्नान करनेसे यह पुरुष भस्मनिष्ठ कहाता है ॥ ९३ ॥ भूत प्रेत पिशाच और बडे २ भयंकर रोग भस्मनिष्ठके समीपसे दूर भागजातेहैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ९४ ॥ कल्मष (पाप) दूर करनेसे और भासमान होनेसे यह भस्म कहलाता है, वह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्यकी देनेहारी तथा परम

रुद्राग्निर्यत्पर वीर्य्यन्तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥ ९१ ॥ भस्मनिष्ठस्य नश्यन्ति दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ ९२ ॥ भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः ॥ भस्मस्नायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ ९३ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च रोगाश्चातीव दुस्सहाः ॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ॥९४॥ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ॥ भूतिभूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परम् ॥ ९५ ॥ किमन्यदिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणम् ॥ व्रती च भस्मना स्नातस्स्वयं देवो महेश्वरः ॥ ९६ ॥ परमास्त्रं च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरम् ॥ धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः ॥ ९७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा पाशुपतव्रतम् ॥ धनवद्भस्म संगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे पशुपतिव्रतविधानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ धौम्याग्रजेन शिशुना क्षीरार्थं हि तपः कृतम् ॥ तस्मात् क्षीरार्णवो दत्तस्तस्मै देवेन शूलिना ॥ १ ॥

रक्षा करनेवाली है ॥ ९५ ॥ अधिक भस्मका माहात्म्य क्या कहैं व्रती भस्मसे स्नान कर स्वयं महेश्वर होजाता है ॥ ९६ ॥ यही भस्म परमेश्वरी और शैवोंका परम अस्त्र है; इसने उपमन्युकी तपमें आपदा निवारण की है ॥ ९७ ॥ इस कारण सब प्रकारके यत्नसे पाशुपत व्रत करना चाहिये, धनके समान भस्मका संग्रह करना चाहिये और भस्मस्नानमें प्रीति करनी चाहिये ॥ ९८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० पूर्वखण्डे पूजाविधिनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले, धौम्यके बडे भ्राता उपमन्युने बालावस्थामें दूधके निमित्त तप किया था उसे शिवजीने प्रसन्न

हो क्षीरसागर दिया ॥ १ ॥ परन्तु उस बालकको शिवशास्त्रकी प्रवक्तृता किस प्रकार प्राप्त हुई और वह किस प्रकार शिवका सद्भाव जानकर तपमें निरत हुआ ॥ २ ॥ तप करनेके समय उनको किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने रुद्राग्निके परमवीर्य भस्मसे कैसे रक्षा प्राप्त की सो कहो ॥ ३ ॥ वायु बोले, यह उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं था, जो ऐसा तप किया था, यह महात्मा व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे ॥ ४ ॥ जन्मान्तरमें भी सिद्ध थे परन्तु किसी कारणसे अपने पदसे प्रारब्धसे भ्रष्ट हो मुनिकुमारताका प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ महादेवके प्रसाद और होनेवाले भाग्यके बलसे दुग्धकी इच्छाके व्याजसे तपकर महादेवकी कृपाके द्वारताको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ इसी कारण शिवजीने उनके निमित्त गणेशत्व कुमारत्वके सहित दुग्धका सागर प्रदान किया ॥ ७ ॥ इसीसे शिवके अनुग्रहके कारण इनको ज्ञानशास्त्र प्राप्त हुआ, और कुमार अवस्थामेंही उसके धारणकी शक्ति प्राप्त हुई ॥८॥ इसीसे उसको कुमार अवस्थामें शिवशास्त्रकी वक्तृता हुई जसे ज्ञानसागर कुमारके मुखसे नन्दीने ज्ञान पाया था ॥ ९ ॥ इसी प्रकार शिवज्ञानकी प्राप्तिमें इसका कारण देखा है; दुग्धके कारण साक्षात् अपनी माताके शोकभरे वचन सुने ॥ १० ॥ किसी समय उसने अपने मामाके आश्रममें बहुत थोडा २ दूध पिया, मातुलके पुत्रसे

स कथं शिशुको लेभे शिवशास्त्रप्रवक्तृताम् ॥ कंथ वा शिवसद्भावं ज्ञात्वा तपसि निष्ठितः ॥ २ ॥ कथं च लब्धविज्ञानस्तपश्चरणपर्वणि
॥ रुद्राग्नेर्यत्परं वीय लभे भस्म स्वरक्षकम् ॥ ३ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ न ह्येष शिशुकः कश्चित्प्राकृतः कृतवांस्तपः ॥ मुनिवर्यस्य
तनयो व्याघ्रपादस्य धीमतः ॥ ४ ॥ जन्मान्तरेण ससिद्धः केनापि खलु हेतुना ॥ स्वपदप्रच्युतो दिष्ट्या प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥
॥ ५ ॥ महादेवप्रसादस्य भाग्यापन्नस्य भाविनः ॥ दुग्धाभिलाषप्रभवद्वारतामगमत्तपः ॥ ६ ॥ अतः सर्वगणेशत्वं कुमारत्वं च शाश्वतम्
॥ सह दुग्धाब्धिना तस्मै प्रददौ शंकरः स्वयम् ॥ ७ ॥ तस्य ज्ञानागमोप्यस्य प्रसादादेव शांकरात् ॥ कौमारं हि परं साक्षाज्ज्ञानं
शक्तिमयं विदुः ॥ ८ ॥ शिवशास्त्रप्रवक्तृत्वमपि तस्य हि तत्कृतम् ॥ कुमारो मुनितो लब्धज्ञानाब्धिरिव नन्दनः ॥ ९ ॥ दृष्टं तु
कारणं तस्य शिवज्ञानसमन्वये ॥ स्वमातृवचनं साक्षाच्छोकजं क्षीरकारणात् ॥ १० ॥ कदाचित्क्षीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे ॥
इष्यया मातुलसुतं संतृप्तक्षीरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

इसनें ईर्षाकी जो कि क्षीरपानसे तृप्त था ॥ ११ ॥ दूध पीकर मामाके पुत्रको आनन्दसे बैठा देख व्याघ्रपादका पुत्र उपमन्यु प्रेमसे मातासे बोला॥ १२॥ उपमन्यु बोला, हे मातः ! हे महाभागे ! हे तपस्विनी ! मुझेभी स्वादिष्ठ गौका दूध दो मैं थोडासा नहीं पियूंगा गरम गरम ला ॥ १३ ॥ वायु बोले, पुत्रके वचन सुन उसकी तपस्विनी माता व्याघ्रपादकी स्त्री बडी दुःखी हुई ॥ १४ ॥ आदरसे पुत्रको आलिंगनकर लाडलडाय अपनेको निर्धन मान दुःखसे विलाप करनेलगी ॥ १५॥ इधर महाकान्तिमान् उपमन्यु बालक बारंबार दूधकी याद करके बारंबार रोकर उससे दूध माँगनेलगा ॥ १६ ॥ द्विजस्त्री तपस्विनी उसके उस हठको जानकर उसकी शांतिके लिये एक उपाय रचतीभई ॥ १७ ॥ जो बीज उञ्छवृत्तिसे प्राप्त कियेथे उनको देखकर और पीसकर उस मनस्विनीने उसमें जल मिलाया ॥ १८॥ बेटा आओ आओ ऐसा सामपूर्वक वचन कहकर उसे आलिंगनकर दुःखसे बनावटी दूध दिया ॥ १९ ॥ वह बालक माताके दिये बनावटी दूधको पीकर व्याकुल हो मातासे बोला यह दूध नहीं है ॥ २० ॥ तब वह देख पुत्रका शिर सूंघ दुःखी हो अपने हाथसे

पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा वै मातुलात्मजम् ॥ उपमन्युर्व्याघ्रपादिः प्रीत्या प्रोवाच मातरम् ॥ १२ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपास्विनि ॥ गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्ण पिबाम्यहम् ॥ १३ ॥ वायुरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी ॥ व्याघ्रपादस्य महिषी दुःखमापत्तदा च सा ॥ १४ ॥ उपलाल्याथ सुप्रीत्या पुत्रमालिंग्य सादरम् ॥ दुःखिता विललापाथ स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः ॥ १५ ॥ स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युस्स बालकः ॥ देहिदेहीति तामाह रुदन्भूयो महाद्युतिः ॥ १६ ॥ तद्धठं सा परिज्ञाय द्विजपत्नी तपस्विनी ॥ शान्तये तद्धठस्याथ शुभोपायमरीरचत् ॥ १७ ॥ उञ्छवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्त्रयं दृष्ट्वा च सा तदा ॥ बीजपिष्टमथालोड्य तोयेन कलभाषिणी ॥ १८ ॥ एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततस्सुतम् ॥ आलिंग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः ॥ १९ ॥ पीत्वा च कृत्रिम क्षीरं मात्रा दत्तं स बालकः ॥ नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः ॥ २० ॥ दुःखिता सा तदा प्राह संप्रेक्ष्याघ्राय मूर्द्धनि ॥ संमार्ज्य नेत्र पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते ॥ २१ ॥

पुत्रके कमलसमान नेत्रोंके आंसू पोंछ बोली ॥ २१ ॥ माता बोली, नदियाँ सब रत्नोंसे पूण स्वर्ग पातालमें सबको प्राप्त हैं पर जो भाग्यहीन और शिवभक्तिरहित हैं वे उन्हे नहीं देखपाते ॥ २२ ॥ राज्य स्वर्ग मोक्ष दूधके भोजन वे प्राणी नहीं प्राप्त करसकते जिनपर शिवजी प्रसन्न नहींहैं ॥ २३ ॥ यह सब शंकरकी कृपासे मिलतेहैं औरदेवतासे नहीं औरदेवताओंमें मन लगानेवाले दुःखसे व्याकुल हो भटकतेहैं ॥ २४ ॥ हम वनवासियोंको दुग्ध कहां प्राप्त होसकता है ? हे पुत्र ! कहां तो दूधके साधन और कहां हम वनवासी ॥ २५ ॥ सब प्रकारके अभाव होनेसे दरिद्रतासे मैं भाग्यहीन हूं जो

॥ जनन्युवाच ॥ तटिनी रत्नपूर्णास्तास्स्वर्गपातालगोचराः ॥ भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे ॥ २२ ॥ राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम् ॥ न लभन्ते प्रियाण्येषां न तुष्यति यदा शिवः ॥ २३ ॥ भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेवप्रसादजम् ॥ अन्यदेवेषु निरता दुःखार्ता विभ्रमन्ति च ॥ २४ ॥ क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा ॥ क्व दुग्धसाधनं वत्स क्व वयं वनवासिनः ॥ २५ ॥ कृत्स्नाभावेन दारिद्यान्मया ते भाग्यहीनया ॥ मिथ्यादुग्धमिदं दत्तम्पिष्टमालोड्य वारिणा ॥ २६ ॥ त्वं मातुलगृहे स्वल्पं पीत्वा स्वादु पयः शृतम् ॥ ज्ञात्वा स्वादु त्वया पीतं तज्जातीयमनुस्मरन् ॥ २७ ॥ दत्तं न पय इत्युक्त्वा रुदन् दुःखीकरोषि माम् ॥ प्रसादेन विना शंभोः पयस्तव न विद्यते ॥ २८ ॥ पादपंकजयोस्तस्य साम्बस्य सगणस्य च ॥ भक्त्या समर्पितं यत्तत्कारणं सर्वसम्पदाम् ॥ २९ ॥ अधुना वसुदोस्माभिर्महादेवो न पूजितः ॥ सकामानां यथाकामं यथोक्तफलदायकः ॥ ३० ॥

कि मैंने जलमें पिठी डालकर तुझको असत्य दुध बनाकर दिया था ॥ २६ ॥ तैंने मामाके घरमें औटाहुआ थोडा दुग्ध पान किया था इससे तुझे उसका स्वाद विदित था उसको स्मरणकर ॥ २७ ॥ 'मुझे दूध नहीं दिया' ऐसा कह रोताहुआ मुझे दुःखी करता है ! बिना शिवकी कृपासे तुझको दूधकी प्राप्ति न होगी ॥ २८ ॥ उन्हीं शिवके चरणकमलकी पार्वती और गणोंके सहित आराधना करो; जो उनको भक्तिसे कुछभी समर्पण कियाजाय वह सब सम्पत्तियोंका कारण है ॥ २९ ॥ हमने धन देनेवाले शिवको नहीं पूजा वह कामनावालोंको यथायोग्य फल देतेहैं ॥ ३० ॥

धनके उद्देश्यसे हमने पहले शंकरको नहीं पूजा इससे हम दरिद्री हुए और तुमको दूध नहीं मिलसकता ॥ ३१ ॥ हे पुत्र ! पूर्व जन्ममें शिवके उद्देश्यसे वा प्रभु विष्णुके उद्देश्यसे जो दियाजाता है वही मिलता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शोकादिका सूचक माताका सत्य वचन सुनकर बालक होकरभी पश्चात्ताप करते हुए प्रगल्भतासे बोले ॥ ३३ ॥ उपमन्यु बोले, हे मातः ! शोक मत करो, यदि साम्बशिव हैं तो हे महाभागे ! शोक त्यागो सब भला होगा ॥ ३४ ॥ हे मातः ! मेरे वचन सुनो यदि कहीं महादेव हैं तो शीघ्र वा देरमें मैं उन्हें प्रसन्न कर दूधका सागर लेआऊंगा, जो कि कभी घटैगा नहीं ॥ ३५ ॥

धनान्युद्दिश्य नास्माभिरितः प्रागर्चितः शिवः ॥ अतो दरिद्रास्संजाता वयं तस्मान्न ते पयः ॥ ३१ ॥ पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत ॥ तदेव लभ्यते नान्यद्विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ॥ ३२ ॥ वायुरुवाच ॥ इति मातृवचः श्रुत्वा तथ्यं शोकादिसूचकम् ॥ बालोप्यनुतपन्नंतः प्रगल्भमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ शोकेनालमितो मातः सांबो यद्यस्ति शंकरः ॥ त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति ॥ ३४ ॥ शृणु मातर्वचो मेद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित् ॥ चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥ ३५ ॥ वायुरुवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य बालकस्य महामतेः ॥ प्रत्युवाच तदा माता सुप्रसन्ना मनस्विनी ॥ ३६ ॥ ॥ मातोवाच ॥ शुभं विचारितं तात त्वया मत्प्रीतिवर्द्धनम् ॥ विलंबं मा कृथास्त्वं हि भज सांबं सदाशिवम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्मादधिकोऽस्त्येव शिवः परमकारणम् ॥ तत्कृतं हि जगत्सर्वं ब्रह्माद्यास्तस्य किंकराः ॥ ३८ ॥ तत्प्रसादकृतैश्वर्या दासास्तस्य वयं प्रभोः ॥ तं विनान्यं न जानीमश्शंकरं लोकशंकरम् ॥ ३९ ॥ अन्यान्देवान्परित्यज्य कर्मणा मनसा गिरा ॥ तमेव सांबं सगणं भज भावपुरस्सरम् ॥ ४० ॥

वायु बोले, इस प्रकार उस महामति बालकके वचन सुन प्रसन्न हो उसकी बुद्धिमती माता बोली ॥ ३६ ॥ माता बोली, हे तात ! मेरी प्रीतिकी बढाने वाली शुभवार्ता तुमने विचारी तू देर मतकर साम्बशिवका भजन कर ॥ ३७ ॥ परमकारण शिवजी सबसे अधिकहैं सारा जगत् उन्हींका कियाहुआ है ब्रह्मा आदिक उनके दासहैं ॥ ३८ ॥ उन्हींकी प्रसन्नतासे कियेहुएऐश्वर्य हम उस प्रभुके दासहैं, उस लोकके कल्याण करनेवाले शंकरके सिवाय अन्यको हम नहीं जानतीं ॥ ३९ ॥ औरदेवताओंको छोडकर मन वचन कर्मसे उसी शिवको पार्वतीसहित गणेशहित परम प्रीतिसे भजन करना चाहिये ॥ ४० ॥

उस देवाधिदेव वरदायी मंगलदायी शिवका "नमः शिवाय" यही मन्त्र वाचक है ॥ ४१ ॥ ॐकार सहित जो सातकरोड मन्त्रहैं वह इसीमें लय होकर
फिर इसीमेंसे निकलतेहैं ॥ ४२ ॥ अपने अधिकारकी अपेक्षासे सुप्रसादसहित वे मन्त्रहैं, अर्थात् अधिकारियोंके अनुसार पृथक् २ हैं परन्तु यह मन्त्र
ईश्वरकी आज्ञासे सबके अधिकारका है ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार शिव सम्पूर्ण उत्कृष्ट और निकृष्ट आत्माओंको रक्षा करनेमें समर्थ होतेहैं, उसी प्रकार यह
मन्त्र है ॥ ४४ ॥ यह मन्त्र सब दूसरे मंत्रोंसे प्रबल है, यह सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है इससे परे फिर और इच्छा करनी नहीं ॥ ४५ ॥ इस कारण

तस्य देवाधिदेवस्य शिवस्य वरदायिनः ॥ साक्षान्नमश्शिवायेति मंत्रोऽयं वाचकः स्मृतः ॥ ४१ ॥ सप्तकोटिमहामंत्राः सर्वे सप्रणवाः
परे ॥ तस्मिन्नेव विलीयंते पुनस्तस्माद्विनिर्गताः ॥ ४२ ॥ सप्रसादाश्च ते मंत्राः स्वाधिकाराद्यपेक्षया ॥ सर्वाधिकारस्त्वेकोऽयं मंत्र
एवेश्वराज्ञया ॥ ४३ ॥ यथा निकृष्टानुत्कृष्टान्सर्वानप्यात्मनः शिवः ॥ क्षमते रक्षितुं तद्वन्मंत्रोऽयमपि सर्वदा ॥ ४४ ॥ प्रबलश्च
तथा ह्येष मंत्रो मन्त्रान्तरादपि ॥ सर्वरक्षाक्षमोऽप्येष नापरः कश्चिदिष्यते ॥ ४५ ॥ तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा पंचाक्षरपरो भव ॥
तस्मिञ्जिह्वांतरगते न किंचिदिह दुर्लभम् ॥४६॥ अघोरास्त्रं च शैवानां रक्षाहेतुरनुत्तमम् ॥ तच्च तत्प्रभवं मत्वा तत्परो भव नान्य
था ॥ ४७ ॥ भस्मेदन्तु मया लब्धं पितुरेव तवोत्तमम् ॥ विरजानलसंसिद्धं महाव्यापन्निवारणम् ॥ ४८ ॥ मंत्रं च ते मया दत्तं गृहाण
मदनुज्ञया ॥ अनेनैवाशु जप्तेन रक्षा तव भविष्यति ॥ ४९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ एवं मात्रा समादिश्य शिवमस्त्वित्युदीर्य च ॥ विसृष्ट
स्तद्वचो मूर्ध्नि कुर्वन्नेव तदा मुनिः ॥ ५० ॥

हे पुत्र ! और मन्त्रोंको छोडकर पंचाक्षर मन्त्र जपनेमें तत्पर हो; यह मन्त्र जिह्वाके अन्तर्गत होनेसे फिर कुछ दुर्लभ नहीं रहता ॥ ४६ ॥ यह शैवोंके
रक्षाका हेतु परमदुर्लभ अघोरास्त्र है; वह इसीसे उत्पन्न हुआ है ऐसा जानकर उसमें तत्पर हो ॥ ४७ ॥ तुम्हारे पिताके समीपमें मैंने यह भस्म प्राप्त की है
जो विरजाअग्निसे उत्पन्न होनेके कारण सिद्ध और महाआपत्तिको दूर करनेहारा है इसे लगाओ ॥ ४८ ॥ यह जो तुझे मैंने मन्त्र दिया है इसको मेरी
आज्ञासे ग्रहण कर इसीके जप करनेसे तेरी रक्षा होगी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार माताने आज्ञा दे 'शिवस्तु' (तेरा कल्याण हो) ऐसा उच्चारणकर बिदा किया

और वह मुनि उसकी आज्ञाको शिरपर धारणकर ॥ ५० ॥ और प्रणामकर तप करनेके निमित्त चलागया, तब माताने उसके प्रति वचन कहे कि देवता
तेरा मंगल करें ॥ ५१ ॥ इस प्रकार माताकी आज्ञासे उसने दुश्वर तप करना प्रारंभ किया. हिमालय पर्वतको प्राप्त हो वायुभक्षण करताहुआ हो ॥ ५२ ॥
आठ इष्टकाओं (ईंटों) का स्थान बनाय मृत्तिकाका लिंग निर्माणकर वहां गण और पार्वतीके सहित महादेवका आवाहन कर ॥ ५३ ॥ भक्तिपूर्वक पंचाक्षर
मन्त्रसेही वनके उत्पन्न हुए पत्र और पुष्पोंसे बहुत कालतक पूजा करताहुआ परमतप प्रारम्भ किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार शिवमें मन लगाये उपमन्यु ब्राह्मण-
श्रेष्ठको इकले तप करतेहुए कृशशरीर (देख उस तप करतेहुए बालकके तपमें) ॥ ५५ ॥ मरीचि ऋषिके शापसे पिशाचपनको प्राप्त हुए कुछ मुनि राक्षसभावसे

तां प्रणम्यैवमुक्त्वा च तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ तमाह च तदा माता शुभं कुर्वंतु त सुराः ॥ ५१ ॥ अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे स दुश्वरम् ॥
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः ॥ ५२ ॥ अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिंगं च मृन्मयम् ॥ तत्रावाह्य महादेवं सांबं सगणमव्य
यम् ॥ ५३ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव पत्रैः पुष्पैर्वनोद्भवैः ॥ समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः ॥ ५४ ॥ ततस्तपश्चरन्तं तं बालमेका
किनं कृशम् ॥ उपमन्युं द्विजवरं शिवसंसक्तमानसम् ॥ ५५ ॥ पुरा मरीचिना शप्ताः केचिन्मुनिपिशाचकाः ॥ संपीड्य राक्षसैर्भावैस्तपसो
विघ्नमाचरन् ॥ ५६ ॥ स च तैः पीड्यमानोऽपि तपः कुर्वन्कथञ्चन ॥ सदा नमः शिवायेति क्रोशति स्मार्तनादवत् ॥ ५७ ॥ तन्नाद
श्रवणादेव तपसो विघ्नकारिणः ॥ ते तं बालं समुत्सृज्य मुनयस्समुपाचरन् ॥ ५८ ॥ तपसा तस्य विप्रस्य चोपमन्योर्महात्मनः ॥
चराचरं च मुनयः प्रदीपितमभूज्जगत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युतपोवर्णनं नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ वायुरुवाच ॥ अथ सर्वे प्रदीप्तांगा वैकुण्ठं प्रययुर्द्रुतम् ॥ प्रणम्याहुश्च तत्सर्वं हरये देवसत्तमाः ॥ १ ॥

पीडित कर उसके तपमें विघ्न करनेलगे ॥ ५६ ॥ वह उनसे पीडित होकर भी किसी प्रकारसे तप करताहुआ और सदा 'नमः शिवाय' इस प्रकार आर्त
नादके समान शब्द करनेलगा ॥ ५७ ॥ उस शब्दको श्रवण करके वह तपके विघ्न करनेवाले मुनि पिशाचभावको त्याग करके उसीकी सेवा करनेलगे ॥ ५८ ॥
तब उस महात्मा ब्राह्मणकुमार उपमन्युके तपसे चराचर और मुनि तथा जगत् प्रदीप्त होगया ॥ ५९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०वा० सं० पूर्व
खण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ वायु बोले, तब सब देवता प्रदीप्त अंग हो वैकुण्ठमें नारायणके पास झट गये और प्रणामकर सब हाल कहनेलगे ॥ १ ॥

उनके यह वचन सुन भगवान् पुरुषोत्तम यह क्या है इस वार्ताको विचारकर और उसका कारण जानकर ॥ २ ॥ शिवके देखनेकी इच्छासे
मंदरपर्वतको गये, और देवको देख प्रणामकर हाथजोड बोले, विष्णु बोले ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! कोई उपमन्युनामक ब्राह्मण दुग्ध पानेके निमित्त
जगत्को दग्ध करता है, तप करतेहुए इसको आप निवारण करो ॥ ४ ॥ विष्णुजीके यह वचन सुनकर देव महेश्वर बोले, तुम अपने स्थानको जाओ
मैं बालकको निवारण करूंगा ॥ ५ ॥ शिवजीके वचन सुनकर देववल्लभ विष्णुजी उन सब देवताओंका समाधानकर अपने लोकको गये ॥ ६ ॥ इसी

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ किमिदन्त्विति संचिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः ॥ २ ॥ जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वर
दिदृक्षया ॥ दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाच सुकृतांजलिः ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ भगवन्ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरिति श्रुतः ॥ क्षीरार्थमदहत्सर्वं
तपसा तन्निवारय ॥ ४ ॥ वायुरुवाच ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोः प्राह देवो महेश्वरः ॥ शिशुं निवारयिष्यामि तत्त्वं गच्छ स्वमाश्र
मम् ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं स विष्णुर्देववल्लभः ॥ जगामाश्वास्य तान्सर्वान्स्वलोकममरादिकान् ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवः पिना
की परमेश्वरः ॥ शक्रस्य रूपमास्थाय गन्तुं चक्रे मतिं ततः ॥ ७ ॥ अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः ॥ सह
सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ॥ ८ ॥ स वारणश्चारु तदा विभुं तं निवीज्य वालव्यजनेन दिव्यम् ॥ दधार शच्या
सहितं सुरेंद्रं करेण वामेन शितातपत्रम् ॥ ९ ॥ रराज भगवान्सोमः शक्ररूपी सदाशिवः ॥ तेनातपत्रेण यथाचन्द्रबिंबेन मन्दरः ॥
॥ १० ॥ आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः ॥ जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ ११ ॥

अवसरमें देवदेव शिवजी इंद्रके रूपसे उस स्थानमें जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ ७ ॥ तब शिवजी श्वेत हाथीपर चढकर उस ब्राह्मणके आश्रममें गये,
इन्द्रका वेष शिवने धारण किया सुर असुर सिद्ध महोरग उनके साथ हुए ॥ ८ ॥ तब उस विभुके निमित्त बाल व्यजनसे वीजित किया गया और वाम
हाथमें शचीसहित सुरेन्द्रके ऊपर श्वेत छत्र धारण कियागया ॥ ९ ॥ उमासहित इन्द्ररूपधारी शिव महाशोभित हुए और छत्रसे चन्द्रमण्डलसे शोभित
मंदरके समान शोभित हुए ॥ १० ॥ इस प्रकार वह परमेश्वर इन्द्रके स्वरूपको प्राप्त होकर अनुग्रह करनेको उपमन्युके आश्रममें प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

उन परमईशान इन्द्ररूपधारी शिवको देखकर महा मुनियोंमें श्रेष्ठ उपमन्यु प्रणाम करके स्वयं बोला ॥ १२ ॥ उपमन्यु बोले, हे देवेश्वर ! आपने स्वयं आकर मेरा आश्रम पवित्र किया जो आप जगत्पति देवतोंमें श्रेष्ठ इन्द्र प्राप्त हुएहो ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर उपस्थितहुए उस ब्राह्मणको इन्द्ररूपधारी शिव मेघ गंभीरवाणीसे बोले ॥ १४ ॥ हे सुव्रत ! मैं तेरे इस तपसे बहुत प्रसन्न हुआहूं तू वर मांग हे महामुने ! धौम्यके अग्रज ! मैं तेरे सब मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ १५ ॥ जब इस प्रकार इन्द्रने कहा तब वह मुनिश्रेष्ठ 'शिवमें भक्ति हो' यही हाथजोड बोला ॥ १६ ॥ यह सुनकर इन्द्र बोले, तुम नहीं

तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम् ॥ प्रणम्य शिरसा प्राह महामुनिवरः स्वयम् ॥ १२ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ पावितश्चाश्रमस्सोऽयं मम देवेश्वर स्वयम् ॥ प्राप्तो यत्त्वं न्नाथ भगवन्देवसत्तम ॥ १३ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्त्वा स्थितं प्रेक्ष्य कृतांजलिपुटं द्विजम् ॥ प्राह गंभीरया वाचा शक्ररूपधरा हरः ॥ १४ ॥ शक्र उवाच ॥ तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ॥ ददामि चेप्सितान्सर्वान्धौम्याग्रज महामुने ॥ १५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिपुंगवः ॥ वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ १६ ॥ तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १७ ॥ मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ॥ ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥ १८ ॥ रुद्रेण निर्गुणेनापि किं ते कार्यं भविष्यति ॥ देवपङ्क्तिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥ १९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा प्राह स मुनिर्जपन्पंचाक्षरं मनुम् ॥ मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम् ॥ २० ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ त्वयैवं कथित वं भवनिंदारतेन वै ॥ प्रसंगादेव देवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः ॥ २१ ॥

जानते कि मैं देवताओंका राजा हूं तीनलोकका अधिपति इन्द्र हूं सब देवता मुझको नमस्कार करतेहैं ॥ १७ ॥ हे विप्रऋषि ! तू मेरा भक्त हो सदा मेरी अर्चा कर तेरा कल्याण हो मैंही तुझको सबकुछ दूंगा तू निर्गुण रुद्रको त्यागदे ॥ १८ ॥ निर्गुण रुद्रसे तेरा क्या कार्य बनैगा जो देवताओंकी पंक्तिसे बाहर हो पिशाचपनेको प्राप्त हुएहैं ॥ १९ ॥ वायु बोले, यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रको जपते हुए वह मुनि धर्ममें विघ्न मानकर इन्द्रसे बोले ॥ २० ॥ उपमन्यु बोले,

शिवनिन्दामें तत्पर आपनें प्रसंगसे महात्मा रुद्रका निर्गुणपन कथन किया ॥ २१ ॥ पर सब देवताओंके अधिपति रुद्रको तुम नहीं जानतेहो, जो ब्रह्मा विष्णु महेशकेभी उत्पादक प्रकृतिसे परे हैं ॥ २२ ॥ जिनको ब्रह्मवादी सत् असत् व्यक्त अव्यक्त रूपसे कथन करतेहैं, तथा नित्य एक अनन्त कहतेहैं उन्हींसे वर मांगूगा ॥ २३ ॥ हेतुवादसे रहित, सांख्य योगके अर्थ देनेवाले परमरूप हैं, ऐसा जानकर जिनकी उपासना की जाती है उन्हींसे वर मांगूगा ॥ २४ ॥ सब कारणके कारण शिवसे परे कोई तत्त्व नहीं है, ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंके निर्माता गुणसे परे वह विभु हैं ॥ २५ ॥ बहुत

त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकं प्रकृतेः परम् ॥२२॥ सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥ २३ ॥ हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम् ॥ उपासते यं तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्वृणोम्यहम् ॥ ॥ २४ ॥ नास्ति शंभोः परं तत्त्वं सवकारणकारणात् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां स्रष्टुर्गुणपराद्विभोः ॥ २५ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन मया ह्यानुमितं महत् ॥ भवांतरे कृतं पांप श्रुता निन्दा भवस्य चेत् ॥ २६ ॥ श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत् ॥ स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम ॥ निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतं कलेवरम् ॥ ॥ २८ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितस्स्वयम् ॥ क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः ॥ २९ ॥ भस्मादाय तदा घोरमघोरास्त्राभिमंत्रितम् ॥ विसृज्य शक्रमुदिश्य ननाद स मुनिस्तदा ॥ ३० ॥

कहनेसे क्या है यह बात मैंने भलीप्रकार जानलीहै कि, यदि शिवकी निन्दा सुनीजाय तो जानलो जन्मान्तरमें पाप कियेहैं ॥ २६ ॥ शिवकी निन्दा सुनतेही उसको तत्काल मारकर उसी समय अपना देह त्यागन करदे, तो वह शिवलोकको जाता है ॥ २७ ॥ हे सुराधम ! मेरी दूधकी इच्छा योंही रहै, मैं तुमको शिवास्त्रसे मारकर अपना देह त्यागन करूंगा ॥ २८ ॥ वायु बोले, यह कहकर उपमन्युने स्वयं प्राण त्यागकी इच्छा की और दूधकी इच्छा त्यागकर इन्द्रके मारनेको उद्यत हुए ॥ २९ ॥ घोर भस्म ले उसको अघोर अस्त्रसे अभिमंत्रितकर इन्द्रके उद्देश्यसे मुनिने बडा शब्द कर त्यागा ॥ ३० ॥

और शिवके चरणकमलोंको स्मरणकर अपना देह त्याग करनेको उद्यत हुए और उपमन्यु आग्नेयी धारण करके स्थित हुए ॥ ३१ ॥ जब उपमन्यु इस प्रकार स्थित हुए तो भगदेवताके नेत्रहारी शिवजीने सौम्यतासे उस योगीकी धारणाको निवारण किया ॥ ३२ ॥ और उस छोडेहुए अघोरास्त्रको शिवजीकी आज्ञासे शिवके प्रिय नन्दीने ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उसी समय परमेश्वर अपने स्वरूपमें स्थित होकर उस उपमन्युको अपना चन्द्रभाल रूप दिखातेहुए ॥ ३४ ॥ सहस्रों दूधके सागर अमृतके सागर दही घीके सागर ॥ ३५ ॥ फल भक्ष्य भोज्योंके सागर तथा पूओंके पर्वत प्रभुने उस बालकको

स्मृत्वा शंभुपदद्वंद्वं स्वदेहं दुग्धुमुद्यतः ॥ आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः ॥ ३१ ॥ एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा ॥
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः ॥ ३२ ॥ तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नंदीश्वरनियोगतः ॥ जगृहे मध्यतः क्षिप्त नंदी शंकरवल्लभः ॥
॥ ३३ ॥ स्वं रूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः ॥ दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम् ॥ ३४ ॥ क्षीराणवसहस्रं च पीयूषार्णवमेव
वा ॥ दध्यादेरणवांश्चव घृतोदार्णवमेव च ॥ ३५ ॥ फलाणव च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा ॥ अपूपानां गिरिं चैव दशयामास स
प्रभुः ॥ ३६ ॥ एवं स ददृशे देवो दव्या साद्ध वृषोपरि ॥ गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः ॥ ३७ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पुष्प
वृष्टिः पपात च ॥ विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशा दश ॥ ३८ ॥ अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः ॥ पपात दण्डवद्भूमौ भक्ति
नम्रेण चेतसा ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः ॥ एह्येहीति तमाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान् ॥ ४० ॥ शिव उवाच ॥
भक्ष्यभोज्यान्यथाकामं बान्धवैर्भुक्ष्व सर्वदा ॥ सुखी भव सदा दुःखान्निर्मुक्तो भक्तिमान्मम ॥ ४१ ॥

दिखाये ॥ ३६ ॥ जब उसने शंकरको देवीके साथ वृषपर स्थित देखा कि जिनके चारोंओर गणेश्वर स्थित हैं और त्रिशूलादिसे युक्त हैं ॥ ३७ ॥ तब देवताओंकी दुंदुभी बजी, फूलोंकी वर्षा हुई, विष्णु ब्रह्मा इन्द्रादि देवताओंसे सब दिशा आच्छादित होगई ॥ ३८ ॥ इधर उपमन्युभी आनन्दके सागरमें मग्न हो भक्तिसे नम्र हो दण्डकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ ३९ ॥ इसी अवसरमें भगवान् शंकरने 'यहां आओ यहां आओ' कहकर हँसतेहुए उसे बुलाय शिर सूंघ अनेक वर दिये ॥ ४० ॥ शिवजी बोले, हे पुत्र ! तुम यथायोग्य भक्ष्य भोज्य अपने बांधवोंसहित सदा भोगो सदा सुखी रहो दुःखोंसे

रहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर हो ॥ ४१ ॥ हे महाभाग उपमन्यु ! यह पार्वती तुम्हारी माता है, मैंने तुमको पुत्र बनाकर क्षीरसागर दियाहै ॥ ४२ ॥ मधु दही अन्न घृत भात फल इनके सागर मैंने तुमको दिये ॥ ४३ ॥ मालपुओंके पर्वत भक्ष्य भोज्यके सागर मैंने तुमको दिये हे महामुने ! तुम इनको ग्रहण करो ॥ ४४ ॥ तुम्हारे पिता महादेव और माता जगदम्बा है, मैंने तुमको अमरपन और निरन्तरका गाणपत्य दिया ॥ ४५ ॥ अब तुम प्रसन्न होकर जो जो मनमें हो सो सो वर मांगो, मैं प्रसन्न होकर दूंगा, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ४६ ॥ वायु बोले, महादेवजी ऐसा कह अपने

उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती ॥ मया पुत्रीकृतो ह्यद्य दत्तः क्षीरोदकार्णवः ॥ ४२ ॥ मधुनश्चार्णवश्चैव दध्यन्नार्णव एव च ॥ आज्यौदनार्णवश्चैव फलाद्यर्णव एव च ॥ ४३ ॥ अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवस्तथा ॥ एत दत्ता मया ते हि त्वं गृह्णीष्व महामुने ॥ ४४ ॥ पिता तव महादेवो माता वै जगदम्बिका ॥ अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥ ४५ ॥ वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलषितान्परान् ॥ प्रसन्नोऽहं प्रदास्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४६ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्त्वो महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् ॥ मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत् ॥ ४७ ॥ देवी च गुहवत्प्रीत्या मूर्ध्नि तस्य कराम्बुजम् ॥ विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमव्ययम् ॥ ४८ ॥ क्षीराब्धिरपि साकारः क्षीरं स्वादु करे दधत् ॥ उपस्थाय ददौ पिण्डीभूतं क्षीरमनश्वरम् ॥ ४९ ॥ योगैश्वर्यं सदा तुष्टिं ब्रह्मविद्यामनश्वराम् ॥ समृद्धिं परमान्तस्मै ददौ संतुष्टमानसः ॥ ५० ॥ अथ शंभुः प्रसन्नात्मा दृष्ट्वा तस्य तपोमहः ॥ पुनर्ददौ वरं दिव्यं मुनये ह्युपमन्यवे ॥ ५१ ॥

हाथोंसे उपमन्युको आलिंगन कर शिर सूंघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है' यों कह देवीको निवेदन किया ॥ ४७ ॥ देवीने भी अपने कमलसे हाथोंसे प्रेमसे कुमारकी समान उसका शिर सूंघ उसको अविनाशी कुमारत्व दिया ॥ ४८ ॥ क्षीराब्धिभी साकाररूपसे स्वादुक्षीर हाथमें धारण किए, वह अविनाशी दूध पिण्डाकार उसके हाथमें समर्पण किया [यह पिण्डाकार दूधके सागरका सूक्ष्म सार था] ॥ ४९ ॥ योग, ऐश्वर्य, सदातुष्टि, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या, परमसमृद्धि, सन्तुष्टमनसे उसको प्रदान की ॥ ५० ॥ फिरभी प्रसन्न हो शिवजी उसका तप तेज देखकर उमपन्यु मुनिको दिव्य वर देनेलगे ॥ ५१ ॥

व्रत पाशुपत ज्ञान व्रतयोग तत्त्वसे देकर निरन्तर वक्तृत्व और चतुरताभी मुनिराजको दी ॥ ५२ ॥ वह भी दिव्य वर और निरन्तर रहनेवाला कुमारत्व
प्राप्त करके उन शिवा शिवसे वर पाय बडे प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ तब प्रसन्नचित्त हो हाथजोड प्रणामकर महेश्वर देवदेवसे वर माँगनेलगा ॥ ५४ ॥
उपमन्यु बोले, हे देवदेवेश ! हे परमेश्वर ! प्रसन्न हो हे परमेश्वर ! प्रसन्नहो अपनी परम अव्यभिचारिणी भक्ति मुझको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे महादेव !
अपने सम्बन्धियोंमें मुझे सदा श्रद्धा दीजिये अपने दासोंमें परमस्नेह और सदा उनकी समीपता दीजिये ॥ ५६ ॥ यह कहने उपरान्त प्रसन्न मन हो वह

व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः ॥ ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वपाटवं सुचिरं परम् ॥ ५२ ॥ सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च
सर्वदा ॥ तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत् ॥ ५३ ॥ ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृतांजलिः ॥ ययाचे स वरं विप्रो
देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ५४ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर ॥ स्वभक्तिन्देहि परमान्दिव्यामव्यभिचारि
णीम् ॥ ५५ ॥ श्रद्धान्देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा ॥ स्वदास्यं परमं स्नेहं सान्निध्यं चैव सर्वदा ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा
हर्षगद्गदया गिरा ॥ स तुष्टाव महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः ॥ ५७ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ॥ प्रसीद
करुणासिंधो साम्ब शंकर सर्वदा ॥ ५८ ॥ वायुरुवाच ॥ एवमुक्तो महादेवः सर्वेषां च वरप्रदः ॥ ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं
मुनिसत्तमम् ॥ ५९ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि सर्वं दत्तं मया हि ते ॥ दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो
ह्यसि ॥ ६० ॥ अजरश्चामरश्चैव भव त्वन्दुःखवर्जितः ॥ यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ उपमन्यु सहर्ष गद्गदवाणीसे महादेवको प्रसन्न करनेलगा ॥ ५७ ॥ उपमन्यु बोला, हे देवदेव ! महादेव ! हे शरणागतवत्सल ! हे करुणासागर !
साम्ब शंकर ! प्रसन्न हो ॥ ५८ ॥ वायु बोले, सबके वर देनेवाले महादेवजी ऐसा कहकर प्रसन्नमन हो मुनिश्रेष्ठ उपमन्युसे बोले ॥ ५९ ॥ शिवजी बोले,
हे पुत्र उपमन्यु ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं मैंने तुझे सब दिया तू मेरा दृढ भक्त है यह मैंने जानलिया ॥ ६० ॥ तुम दुःखसे रहित होकर अजर अमर हो,

महायशस्वी तेजसे युक्त ज्ञानसे युक्त हो ॥ ६१ ॥ तुम्हारे बांधव और कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहैंगे हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारी मुझमें निरन्तर भक्ति होगी ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य समीपता करूंगा तुम मेरे समीप सदा आनन्दसे विहार करोगे ॥ ६३ ॥ कोटि सूर्यके समान कांतिवाले भगवान् शिवजी यह कहकर और उसको वर देकर अन्तर्धान होगये ॥ ६४ ॥ उपमन्युभी प्रसन्न हो उनसे वरदान पाकर महासुखीहो अपनी माताके समीप गये ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पूर्वखण्डे उपमन्युचरित्रवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ॥ ६२ ॥ सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम ॥ उपकंठं मम त्वं वै सानन्दं विहरिष्यासि ॥ ६३ ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ईशानस्स वरान्दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ६४ ॥ उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य तस्माद्वराद्वरान् ॥ जगाम जननीस्थानं सुखं प्रापाधिकं च सः ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे वैयासिक्यां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां तदन्तर्गतायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ समाप्तोऽयं सप्तम्या वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डः ॥ श्रीः ॥

दो०—उन्निससे पैंसठ सुभग, सम्वत् भादों मास । शुक्लचतुर्थी वार शशि, पूरण शंभुविलास ॥ १ ॥
पूर्वभाग यह संहिता,वायु ऋषिन संवाद । सो सब भाषामें कियो, द्विज ज्वालापरसाद ॥ २ ॥
साम्बशम्भु निजगणसहित, सदा रहैं अनुकूल । प्रतिदिनकृपाकटाक्षते,वृद्धिसुमंगलमूल ॥ ३ ॥
मंगल श्रोताके भवन,मंगल वक्तागेह । जो बाँचै श्रवणन करैं, कथा सुसहित सनेह ॥ ४ ॥
तिन्हैं देहिं शिवकृपाकर, नित्यपदारथ चारि । तासेभजियेशंकरहिं, जगजंजालविचारि ॥ ५ ॥

वायुसंहिताका पूर्वखण्ड पूर्ण हुआ.

दोहा–जै गणपति मंगल करन, हरन सकल दुख शूल । द्विजज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ १ ॥

सम्पूर्ण संसाररूपी चक्रके भ्रमणके कारण भवानी पार्वतीके स्तनयुगलोंके कुम्कुमसे अंकित वक्षस्थलवाले शंकरको नमस्कार है ॥१॥ सूतजी बोले, जब कि, वायुदेवताने शंकरसे इस प्रकार उपमन्युके प्रसादकी प्राप्ति वर्णन की और नियमसे मध्याह्नके समय वायुदेवता उठे ॥ २ ॥ तब नैमिषारण्यके रहनेवाले वे सब मुनि यह बात पूंछनी चाहिये ऐसा निश्चय करके ॥ ३ ॥ प्रतिदिनका पूर्वकी समान नियम समाप्त करके फिर वायुको आयाहुआ देखकर

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगौरीशंकराभ्यां नमः ॥ अथ सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डः प्रारभ्यते ॥ ॐनमस्समस्तसंसारचक्रभ्रमणहेतवे ॥ गौरीकुचतटद्वन्द्वकुंकुमांकितवक्षसे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ उक्त्वा भगवतो लब्धप्रसादादुपमन्युना ॥ नियमादुत्थितो वायुर्मध्ये प्राप्ते दिवाकरे ॥ २ ॥ ऋषयश्चापि ते सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ अथायमर्थः प्रष्टव्य इति कृत्वा विनिश्चयम् ॥ ३ ॥ कृत्वा यथा स्वकं कृत्यं प्रत्यहं ते यथा पुरा ॥ भगवंतमुपायांतं समीक्ष्य समुपाविशन् ॥ ४ ॥ अथासौ नियमस्यांते भगवानम्बरोद्भवः ॥ मध्ये मुनिसभायास्तु भेजे क्लृप्तं वरासनम् ॥ ५ ॥ सुखासनोपविष्टश्च वायुर्लोकनमस्कृतः ॥ श्रीमद्विभूतिमीशस्य हृदि कृत्वेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ तं प्रपद्ये महादेवं सर्वज्ञमपराजितम् ॥ विभूतिस्सकलं यस्य चराचरमिदं जगत् ॥ ७ ॥ इत्याकर्ण्य शुभां वाणीमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥ विभूतिविस्तरं श्रोतुमूचुस्ते परमं वचः ॥ ८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ उक्तं भगवता वृत्तमुपमन्योर्महात्मनः ॥ क्षीरार्थेनापि तपसा यत्प्राप्तं परमेश्वरात् ॥ ९ ॥ दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ धौम्याग्रजस्ततस्तेन कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ १० ॥

सब उसके समीप उपस्थित हुए ॥ ४ ॥ तब वायुदेवता भी नियमके पीछे मुनियोंकी सभामें श्रेष्ठ आसनपर बैठे ॥ ५ ॥ जब लोकनमस्कृत वायु अपने आसनपर उपस्थित हुए, तब भगवान्की विभूतिको हृदयमें धारण कर यह वचन बोले ॥ ६ ॥ मैं उन सर्वज्ञ, कहीं पराजय न होनेवाले महादेवकी शरण होता हूँ जिनकी यह सब चराचर जगत् विभूति है ॥७॥ पापरहित ऋषि इस प्रकार उनकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर विभूतिका विस्तार सुननेकी इच्छासे यह परम वचन बोले ॥ ८ ॥ आपने महात्मा उपमन्युका चारित्र वर्णन किया गौदूधके निमित्त तप कर परमेश्वरसे उन्होंने वर पाये ॥ ९ ॥ और भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रने धौम्यके बडे भ्राता इन उपमन्युका दर्शन किया आर उनकी आज्ञासे पाशुपत व्रत किया ॥ १० ॥ और परमज्ञान प्राप्त किया, यह हमने पहले सुना है, सो कृष्णजीको किस प्रकारसे पाशुपत ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ वायु बोले, यद्यपि सनातन वायुदेव अपनी इच्छासे प्रगट हुए थे परन्तु मनुष्यदेहकी निन्दा जानकर उन्होंने लोकसंग्रहके निमित्त देहशुद्धि की ॥ १२ ॥ वह पुत्रप्राप्तिके निमित्त उन मुनिके आश्रममें तप करने गये थे वहां उन्होंने उन मुनिका दर्शन किया ॥ १३ ॥ कि जिनके सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगीहुई थी, मस्तकपर त्रिपुंड्र लगाहुआथा, रुद्राक्ष मालासे अलंकृत जटा

प्राप्तं च परमं ज्ञानमिति प्रागेव शुश्रुम ॥ कथं स लब्धवान् कृष्णो ज्ञानं पाशुपतं परम् ॥ ११ ॥ वायुरुवाच ॥ स्वेच्छया ह्यवती
र्णोंपि वासुदेवस्सनातनः ॥ निंदयन्निव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः ॥ १२ ॥ पुत्रार्थं हि तपस्तप्तुं गतस्तस्य महामुनेः ॥ आश्रमं
मुनिभिर्दृष्टं दृष्टवांस्तत्र वै मुनिम् ॥ १३ ॥ भस्मावदातसर्वांगं त्रिपुंड्रांकितमस्तकम् ॥ रुद्राक्षमालाभरणं जटामंडलमंडितम् ॥ १४ ॥
तच्छिष्यभूतैर्मुनिभिश्शास्त्रैर्वेदमिवावृतम् ॥ शिवध्यानरतं शांतमुपमन्युं महाद्युतिम् ॥ १५ ॥ नमश्चकार तं दृष्ट्वा हृष्टसर्वतनूरुहः ॥
बहुमानेन कृष्णोऽसौ त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणाम् ॥ स्तुतिं चकार सुप्रीत्या नतस्कंधः कृताञ्जलिः ॥ १६ ॥ तस्यावलोकनादेव मुनेः
कृष्णस्य धीमतः ॥ नष्टमासीन्मलं सर्वं मायाजं कार्ममेव च ॥ १७ ॥ ततः क्षीणमलं कृष्णमुपमन्युर्यथाविधिः ॥ भस्मनोद्धूल्य तं
मन्त्रैरग्निरित्यादिभिः क्रमात् ॥ १८ ॥ अथ पाशुपतं साक्षाद्व्रतं द्वादशमासिकम् ॥ कारयित्वा मुनिस्तस्मै प्रददौ ज्ञानमुत्तमम् ॥ १९ ॥

मंडलसे मण्डित ॥ १४ ॥ और अपने मुनिरूप शिष्योंसे शास्त्रोंसे वेदकी समान शोभायमान थे, शिवके ध्यानमें तत्पर शान्त महाकान्तिमान् उपमन्युजीको देखा ॥ १५ ॥ उनको देखतेही श्रीकृष्णजीके रोम खडे होगये और प्रणाम कर बडे आदरसे श्रीकृष्णजीने उनकी तीन प्रदक्षिणा कीं, और हाथ जोड शिर झुकाय बडे प्रेमसे उनकी स्तुति की ॥ १६ ॥ उन मुनिराजके दर्शनमात्रसे माया और कर्म्मसम्बन्धी देहका मल महानुभाव श्रीकृष्णजीका दूर होगया ॥ १७ ॥ तब उपमन्युने मायाविकारसे रहित श्रीकृष्णजीके शरीरको 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोंसे भस्मसे लिप्त कर ॥ १८ ॥ बारह महीनेका साक्षात् पाशुपत

व्रत कराकर उनको श्रेष्ठज्ञान दिया ॥ १९ ॥ उसी दिनसे बडे २ व्रतस्नात मुनि दिव्य पाशुपत ज्ञानवाले उनके समीप नित्य निवास करने लगे ॥ २० ॥ तब परमशक्तिमान् श्रीकृष्णजी गुरुकी आज्ञासे साम्बपुत्रके निमित्त शंकरकी तपस्या करने लगे ॥ २१ ॥ उस तपस्यासे एक वर्षके उपरान्त बडी शोभासे युक्त शंकरने पार्वती और गणोंसहित दर्शन दिया ॥ २२ ॥ जब सुन्दर आकृति शंकर वर देनेको प्रगट हुए, तब श्रीकृष्णने हाथ जोड उनकी स्तुति की॥ ॥ २३ ॥ तब शिवजीने श्रीकृष्णके तपसे प्रसन्नचित्त हो उनको वर दिया, और उन्होंने अव्यग्रतासे अम्बा और गणोंसे सहित उनको पुत्र दिया ॥२४॥

तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयश्शंसितव्रताः ॥ दिव्याः पाशुपतास्सर्वे परिवृत्योपतस्थिरे ॥ २० ॥ ततो गुरुनियोगाद्वै कृष्णः परमशक्तिमान् ॥ तपश्चकार पुत्रार्थं सांबमुदिश्य शंकरम् ॥ २१ ॥ तपसा तेन वर्षांते दृष्टोऽसौ परमेश्वरः ॥ श्रिया परमया युक्तस्सांबश्च सगणशिवः ॥ २२ ॥ वरार्थमाविर्भूतस्य हरस्य शुभगाकृतेः ॥ स्तुतिं चकार नत्वासौ कृष्णः सम्यक्कृतांजलिः ॥ २३ ॥ सांबं सगणमव्यग्रो लब्धवान्पुत्रमात्मनः ॥ तपसा तुष्टचित्तेन दत्तं विष्णोश्शिवेन वै ॥ २४ ॥ यस्मात्सांबो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः ॥ तस्माज्जांबवतीसूनुं सांबं चक्रे स नामतः ॥ २५ ॥ तदेतत्कथितं सर्वं कृष्णस्यामितकर्मणः ॥ महर्षेर्ज्ञानलाभश्च पुत्रलाभश्च शंकरात् ॥ ॥ २६ ॥ य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ॥ स विष्णोर्ज्ञानमासाद्य तेनैव सह मोदते ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिश्शिवः ॥ कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ १ ॥

जिस कारण महादेवजीने अम्बासहित उनको पुत्र दिया इसीसे जाम्बवतीके पुत्रको उन्होंने साम्ब नाम रक्खा ॥ २५ ॥ यह हमने आपसे महापराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षिसे ज्ञान लाभ और शंकरसे पुत्र लाभकी कथा कही ॥ २६ ॥ जो इसे नित्य कीर्तन करते सुनते और सुनातेहैं, वह विष्णुके ज्ञानको प्राप्त हो उनके साथ आनन्द करतेहैं ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे वायुसंहिताभाषाटीकायामुत्तरखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ऋषि बोले, वह पाशुपत ज्ञान

क्या है शिवजी पशुपति क्यों कहातेहैं महात्मा श्रीकृष्णजीने उपमन्युसे कैसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ हे शंकरके शरीरवायु ! हमसे यह सब कहो, आपकी समा त्रिलोकीमें इसका कोई समर्थ वक्ता नहीं है ॥ २ ॥ सूतजी बोले, वायुदेवता इस प्रकार उन ऋषियोंके वचन सुन ईशान शिवको स्मरण कर इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥ वायु बोले, प्रथम श्रीमहेशने मन्दरपर्वतमें देवीके निमित्त पाशुपत ज्ञान वर्णन किया ॥ ४ ॥ वही वार्ता विश्वयोनि श्रीकृष्णने पूँछी थीं; सुरादिको पशुत्व किस प्रकारसे है और शिवको उनका पतित्व किस प्रकार है ॥ ५ ॥ जैसे उपमन्यु मुनिने श्रीकृष्णको यथोक्त उपदेश दिया है वह

एतत्सर्वं समाचक्ष्व वायो शंकरविग्रह ॥ त्वत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां
महर्षीणां प्रभंजनः ॥ संस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥ वायुरुवाच ॥ पुरा साक्षान्महेशेन श्रीकंठाख्येन मन्दरे ॥
देव्यै देवेन कथितं ज्ञानं पाशुपतं परम् ॥ ४ ॥ तदेव पृष्टं कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना ॥ पशुत्वं च सुरादीनां पतित्वं च शिवस्य
च ॥ ५ ॥ यथोपदिष्टं कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना ॥ तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतंद्रिताः ॥ ६ ॥ पुरोपमन्युमासीनं विष्णुः
कृष्णवपुर्धरः ॥ प्रणिपत्य यथान्यायमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देव्यै देवेन भाषितम् ॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूतिं वास्य कृत्स्नशः ॥ ८ ॥ कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः ॥ कैः पाशैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च
ते कथम् ॥ ९ ॥ इति संचोदितः श्रीमानुपमन्युर्महात्मना ॥ प्रणम्य देवं देवीं च प्राह पृष्टो यथा तथा ॥ १० ॥ उपमन्युरुवाच ॥
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्य शूलिनः ॥ पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः ॥ ११ ॥

मैं संक्षेपसे कहता हूँ तुम मन लगाकर सुनो ॥ ६ ॥ एक समय उपमन्यु बैठेहुए थे कि, वह कृष्णरूपधारी विष्णु प्रणामकर न्यायसे इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! जो शिवने पार्वतीके प्रति दिव्य पाशुपत ज्ञान और उसकी सब विभूति वर्णन किया है वह मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥ वह देव पशुपति किस प्रकारसे हैं, और पशु कौन कहलाते हैं, किन पाशोंसे बाँधे जाते और किस प्रकारसे मुक्त होजाते हैं ॥ ९ ॥ जब महात्मा श्रीमान् उपमन्युजीसे इस प्रकार कहा गया तब देव देवीको प्रणाम कर वह प्रसन्न हो बोले ॥ १० ॥ उपमन्यु बोले, ब्रह्मासे आदि

लेकर देवदेव शूलधारी शंकरके संसारवशवर्ती सब पशु कहलाते हैं ॥ ११ ॥ उनके पति होनेसे देवदेव पशुपति कहलाते हैं, वह पशुपति मल और मायादिकोंके पाशोंसे उनको बाँधता है ॥ १२ ॥ और वही उपासना कियेजानेपर भक्तोंके पाश मोचन करता है, यह मायाके कर्म और गुण चौवीस तत्त्वके हैं ॥ १३ ॥ यही विषयकहलाते हैं जिनसे यह जीव बँधाहुआ है, ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब पर्यन्त पशुओंको बाँधकर शिवजी ॥ १४ ॥ इन पाशोंसे बाँधकर जगतका कार्य कराते हैं; उन महेश्वरकी आज्ञासे वह प्रकृति पुरुषोंके उचित ॥ १५ ॥ बुद्धिको उत्पन्न करती है, उससे अहंकार दस इन्द्रिय मन सूक्ष्म

तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ॥ मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः ॥ १२ ॥ स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा अमी ॥ १३ ॥ विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यतान् पशून्बद्ध्वा महेश्वरः ॥ १४ ॥ पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम् ॥ तस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् ॥ १५ ॥ बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहंकारमहंकृतिः ॥ इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रापञ्चकं तथा ॥ १६ ॥ शासनाद्देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः ॥ तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा ॥ १७ ॥ महाभूतान्यशेषाणि भावयंत्यनुपूर्वशः ॥ ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् ॥ १८ ॥ महाभूतान्यशेषाणि जनयंति शिवाज्ञया ॥ अध्यवस्यति वै बुद्धिरहंकारोभिमन्यते ॥ १९ ॥ चित्तं चेतयते चापि मनः संकल्पयत्यपि ॥ श्रोत्रादीनि च गृह्णंति शब्दादीन्विषयान् पृथक् ॥ २० ॥ स्वानेव नान्यान्देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै ॥ वागादीन्यपि यान्यासंस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च ॥ २१ ॥

कलात्मक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पंचतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं ॥ १६ ॥ कल्याणदायक शिवकी आज्ञासे तन्मात्रा भी उसीके महाशासनसे होती हैं ॥ १७ ॥ और यथाक्रमसे महाभूत उत्पन्न होते हैं, ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंसे देहकी संगति है ॥ १८ ॥ यह शिवकी आज्ञासे महाभूत सबोंको उत्पन्न करते हैं, उसीसे निश्चयात्मक बुद्धि अहंकार कहीजाती है ॥ १९ ॥ वह चित्तको चैतन्य और मनको संकल्पयुक्त करतीहै श्रोत्र और शब्दादिको पृथक् ग्रहण करती है ॥ २० ॥ अपनेही बलसे न कि, दूसरेसे दिव्य देव शिवकी आज्ञाके बलसे जो वागादि इन्द्रियहैं वे सब कर्मेन्द्रियहैं ॥ २१ ॥

वे शिवकी आज्ञासे सब अपने २ कर्मको ग्रहण करतीहैं; शब्दादिक भी ग्रहण करते और वचनादि किये जातेहैं ॥ २२ ॥ शिवकी आज्ञाको कोई उल्लंघन नहीं करसकता है, और वह सबसे प्रबल हैं; वेही सब प्राणियोंको अवकाश देतेहैं ॥२३॥ परमेश्वरकी आज्ञासे ही आकाश सर्वगामी है; प्राणादिसे तथा नामभेदसे अन्तर बाहर जगत्को ॥ २४ ॥ शिवकी आज्ञासे पवन धारण करता है; देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्यको लेजानेवाला है ॥ २५ ॥ और पाकादि करनेवाला अग्नि परमेश्वरकी आज्ञासे वर्तता है; और उन्हींकी आज्ञासे जल सब जगत्का जीवन करतेहैं ॥ २६ ॥ यह पृथ्वी उन्हींकी

यथा स्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिच्छिवाज्ञया ॥ शब्दादयोपि गृह्यंते क्रियन्ते वचनादयः ॥ २२ ॥ अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी ॥ अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति ॥ २३ ॥ आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः ॥ प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैरंतर्बहिर्जगत् ॥ २४ ॥ बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभंजनः ॥ हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ॥ २५ ॥ पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात् ॥ संजीवनाद्यं सर्वस्य कुर्वंत्यापस्तदाज्ञया ॥ २६ ॥ विश्वम्भरा जगन्नित्यं धत्ते विश्वेश्वराज्ञया ॥ देवान्पात्यसुरान् हंति त्रिलोकमभिरक्षति ॥ २७ ॥ आज्ञया तस्य देवेन्द्रः सर्वैर्देवैरलंघ्येया ॥ आधिपत्यमपां नित्यं कुरुते वरुणस्सदा ॥ ॥ २८ ॥ पाशैर्बध्नाति च यथा दंड्यांस्तस्यैव शासनात् ॥ ददाति नित्यं यक्षेंद्रो द्रविणं द्रविणेश्वरः ॥ २९ ॥ पुण्यानुरूपं भूतेभ्यः पुरुषस्यानुशासनात् ॥ करोति संपदः शश्वज्ज्ञानं चापि सुमेधसाम् ॥ ३० ॥

आज्ञासे नित्य जगतको धारण करती है देवताओंकी रक्षा असुरोंका मारना त्रिलोकीकी रक्षा ॥ २७ ॥ उनकी सब देवताओंसे अलंघनीय आज्ञासे इन्द्र देवताओंका और वरुण जलोंका आधिपत्य करतेहैं ॥ २८ ॥ जीवोंको व्याधियोंसे पीडा और मरेहुए जीवोंको यातना और धर्म त्यागनेवालोंको अनेक दुःख शिवकी आज्ञासे धर्मराज प्रदान करतेहैं. विधिहीन कर्म करनेवालोंके कर्म निर्ऋति हरण करलेतेहैं; वही शिवकी आज्ञासे निशाचरोंका आधिपत्य करतेहैं; और परमेश्वरकी आज्ञासे बांधनेयोग्य प्राणियोंको पाशोंसे बांधतेहैं और दंड देतेहैं; और यक्षपति कुबेर सबको धन देतेहैं ॥२९॥ और शिवकी आज्ञासे

जैसा जिसका पुण्य है वैसाही उसको द्रव्य देतेहैं, और बुद्धिमानोंको सम्पत्ति और ज्ञान भी देते हैं ॥ ३० ॥ ईशानदेव शिवकी आज्ञासे असाधुओंका निग्रह करते हैं और शिवकी आज्ञासे शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ जिस शिवकी मूर्तिको अन्तकरी तामसीमूर्ति कहते हैं, जिनकी शासनासे ब्रह्माजी सारे जगत्को निर्माण करते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार तीन अपनी मूर्तियोंसे रक्षा (पालन) उत्पत्ति और संहार करते हैं; शिवकी आज्ञासे विष्णु पालते हैं ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा उत्पन्न करते और अपने शरीरसे उत्पन्न करके ग्रास करते हैं, उन्हींकी शासनासे सब जगत्को अन्तमें हरण करतेहैं ॥ ३४ ॥

निग्रहं चाप्यसाधूनामीशानश्शिवशासनात् ॥ धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः ॥ ३१ ॥ यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंतकरीं
हरेः ॥ सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः ॥ ३२ ॥ अन्याभिर्मूर्तिभिः स्वाभिः पाति चांते निहन्ति च ॥ विष्णुः पालयते विश्वं
कालकालस्य शासनात् ॥ ३३ ॥ सृजते त्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभिः ॥ हरत्यंते जगत्सर्वं हरस्तस्यैव शासनात् ॥ ३४ ॥
सृजत्यपि च विश्वात्मा त्रिधा भिन्नस्तु रक्षति ॥ कालः करोति सकलं कालस्संहरति प्रजाः ॥ ३५ ॥ कालः पालयते विश्वं कालका
लस्य शासनात् ॥ त्रिभिरंशैर्जगद्बिभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ॥ ३६ ॥ दिवि वर्षत्यसौ भानुर्देवदेवस्य शासनात् ॥ पुष्णात्योषधिजा
तानि भूतान्याह्लादयत्यपि ॥ ३७ ॥ देवैश्च पीयते चंद्रश्चंद्रभूषणशासनात् ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ॥ ३८ ॥
खेचरा ऋषयस्सिद्धा भोगिनो मनुजा मृगाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च ॥ ३९ ॥ नद्यस्समुद्रा गिरयः काननानि
सरांसि च ॥ वेदाः सांगाश्च शास्त्राणि मंत्रस्तोममखादयः ॥ ४० ॥

वह विश्वात्मा उत्पन्न करके तीन प्रकारसे होकर जगत्की रक्षा करता है यह सबकुछ कालही करके पीछे कालही संहार करताहै ॥ ३५ ॥ काल कालकी शासनासे यह कालही जगत्को पालता है ग्रहण करलेता है यह तीन अंशोंसे जगत्को धारण कर तेजसेही वृष्टि करते हुए ॥ ३६ ॥ यही सूर्यरूप हो अन्तरिक्षसे वर्षा करता है और शिवकी आज्ञा मानता है. वह सब औषधियोंको पुष्ट और प्राणियोंको प्रसन्न करता हुआ ॥ ३७ ॥ यह चन्द्रमा महादेवकी आज्ञासे देवतोंसे पियाजाता है. आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुत ॥ ३८ ॥ खेचर, ऋषि, सिद्ध, सर्प, मनुष्यादि, पशु, पक्षी, कीटादिस्थावरादि ॥ ३९ ॥ नदी, समुद्र,

पर्वत, वन, सरोवर, अंगसहित, वेद, शास्त्र, मंत्र स्तोमयज्ञ ॥ ४० ॥ काल अग्निसे आदि लेकर शिवतक अधिपतियोंके सहित भुवन असंख्य ब्रह्माण्ड और उनके आवरण ॥ ४१ ॥ भूत भविष्य वर्तमान सम्पूर्ण होते हैं, दिशा विदिशा कालके भेद कलादि ॥ ४२ ॥ जो कुछ इस जगत्में देखा वा सुना जाता है; वह सब शिवकी आज्ञा और बलसे स्थित है ॥ ४३ ॥ उन्हींकी आज्ञाके बलसे यह धरा स्थित है; यह पर्वत जलधर और समुद्र स्थित हैं, ज्योतिर्गण इन्द्रादिक देवता चराचर सब उन्हींकी आज्ञासे है ॥ ४४ ॥ उपमन्यु बोले, यह श्रीशिवजी महाराजके चरित्र महाआश्चर्य मय

कालाग्न्यादिशिवांतानि भुवनानि सहाधिपैः ॥ ब्रह्मांडान्यप्यसंख्यानि तेषामावरणानि च ॥ ४१ ॥ वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नशः ॥ दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ॥ ४२ ॥ यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ तत्सर्वं शंकरस्याज्ञाबलेन समधिष्ठितम् ॥ ४३ ॥ आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः ॥ ज्योतिर्गणाः शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरं चिरं वा चिदचिद्यदस्ति ॥ ४४ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः ॥ आज्ञाकृतं शृणुष्वैतच्छ्रुतं श्रुतिमुखे मया ॥ ४५ ॥ पुरा किल सुराः सेंद्रा विवदंतः परस्परम् ॥ असुरान्समरे जित्वा जेताहमहमित्युत ॥ ४६ ॥ तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक् ॥ स्वलक्षणैर्विहीनांगः स्वयं यक्ष इवाभवत् ॥ ४७ ॥ स तानाह सुरानेकं तृणमादाय भूतले ॥ य एतद्विकृतं कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित् ॥ ४८ ॥ यक्षस्य वचनं श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः ॥ किंचित्क्रुद्धो विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः ॥ ४९ ॥

हैं, और उनके अमित अर्थात् अनन्त कार्य; जो कुछ वेदादि शास्त्रमें मैंने श्रवण किये हैं, उसे तुम सुनो ॥ ४५ ॥ प्रथम देवताओंने इन्द्रके सहित दैत्योंको जीतकर परस्पर यह विवाद किया कि, हमने जीता हमने जीता है ॥ ४६ ॥ तब उनके बीचमें अतिश्रेष्ठ वेशको धारण करनेवाले महेश्वरने कहा जो कि अपने लक्षणसे विहीन अंगवाले होकर भी यक्षराजके समान हुए थे ॥ ४७ ॥ तब वह एक तृण पृथ्वीमें रखकर देवताओंसे बोले जो इस तृणको चलायमान करदे वही दैत्योंका जीतनेवाला है ॥ ४८ ॥ यक्षके वचन सुनकर वज्रधारी इन्द्र कुछ हँसकर उस तृणके उठानेका उद्योग करने लगे ॥ ४९ ॥

परन्तु उस तृणके उठानेको मनसे भी न समर्थ हुए, तब उसके छेदन करनेको इन्द्रने वज्र छोडा ॥ ५० ॥ वह इन्द्रका वज्र उस तृणरूपी वज्रसे तिरस्कृतहो
उसके तेजको न सहताहुआ पृथ्वीपर गिरा ॥ ५१ ॥ उसी प्रकार और भी महाबली लोकपाल उस तृणके ऊपर अपने सहस्रों आयुध त्यागने लगे ॥
॥ ५२ ॥ उस समय महाअग्नि प्रज्वलित हुई और प्रचंड पवन चलने लगा और प्रलयकालके उपस्थित होनेके समान समुद्र चलायमान हुआ ॥५३॥
इस प्रकार उस तृणके उद्देशसे हे कृष्ण ! वह देवताओंका सब पराक्रम व्यर्थ होगया ॥ ५४ ॥ तब देवेन्द्रने असहनशील होकर यक्षसे पूँछा तुम कौनहो ?

न तत्तृणमुपादातुं मनसापि च शक्यते ॥ यथा तथापि तच्छेत्तुं वज्रं वज्रधरोऽसृजत् ॥ ९० ॥ तद्वज्रं निजवज्रेण संसृष्टमिव सर्वतः ॥
तृणेनाभिहतं तेन तिर्यगग्रं पपात ह ॥ ९१ ॥ ततश्चान्ये सुसंरब्धा लोकपाला महाबलाः ॥ ससृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः
॥ ९२ ॥ प्रजज्वाल महावह्निः प्रचंडः पवनो ववौ ॥ प्रवृद्धोऽपांपतिर्यद्वत्प्रलये समुपस्थिते ॥ ९३ ॥ एवं देवैस्समारब्धं तृणमुद्दिश्य
यत्नतः ॥ व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै ॥ ९४ ॥ तदाह यक्षं देवेंद्रः को भवानित्यमर्षितः ॥ ततस्स पश्यतामेव तेषामंतर
धादथ ॥ ९९ ॥ तदंतरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा ॥ आविरासीन्नभोरंगे शोभमाना शुचिस्मिता ॥९६॥ तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवाः
शक्रपुरोगमाः ॥ प्रणम्य यक्षं पप्रच्छुः कोऽसौ यक्षो विलक्षणः ॥ ९७ ॥ साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचरः ॥ तेनेदं भ्रम्यते
चक्रं संसाराख्यं चराचरम् ॥ ९८ ॥ तेनादौ क्रियते विश्वं तेन संह्रियते पुनः ॥ न तन्नियन्ता कश्चित्स्यात्तेन सर्वं नियम्यते ॥ ९९ ॥

तब वह उन सबके देखतेही अन्तर्धान होगये ॥ ५५ ॥ उसी समय एक सुवर्णमयी देवी दिव्य भूषण पहरे शोभायमान मन्दमुस्कानसे युक्त आकाशमें
प्रादुर्भूत हुई ॥ ५६ ॥ उसको देखकर इन्द्र आदि सब देवता विस्मयको प्राप्त होगये; और उसे प्रणामकर पूँछने लगे, वह यक्ष कौन था ॥ ५७ ॥
तब वह देवी हास्यकर बोली कि, वह तुम्हारी इन्द्रियोंका गोचर नहीं है; वह यह संसाररूपी चराचरयुक्त चक्रभ्रमण करता है ॥ ५८ ॥ वही आदिमें

संसारकी रचनाकर फिर उसे संहार करतेहैं, उसका कुछ नियम नहीं है और उससे सबका नियम होता है ॥ ५९ ॥ यह कहकर वह (जगज्जननी) महादेवी वहाँही अन्तर्द्धान होगई; और सब देवता भी प्रणामकर स्वर्गको चले गये ॥६०॥ इति श्रीशिवमहापुराणे स० वा० सं० भाषाटीकायामुत्तरखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! सुनिये जिसप्रकारकी शिव परमात्माकी मूर्तिसे यह चराचर जगत् व्याप्त होरहा है ॥ १ ॥ वह यह शिवही अपनी मूर्तियोंसे अधिष्ठित हो वह अमित आत्मा जो कुछ भी है उसको जानरहा है ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णुरुद्र महेशान सदाशिव यह उसीकी मूर्ति

इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवांतरधत्त वै ॥ देवाश्च विस्मिताः सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययुः ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ उपमन्युरुवाच ॥ शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ १ ॥ स शिवस्सर्वमेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः ॥ अधितिष्ठत्यमेयात्मा ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम् ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशानस्सदाशिवः ॥ मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम् ॥ ३ ॥ अथान्याश्चापि तनवः पंच ब्रह्मसमाह्वयाः ॥ तनूभिस्ताभिराव्याप्तमिह किंचिन्न विद्यते ॥४॥ ईशानः पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च ॥ ब्रह्माण्येतानि देवस्य मूर्त्तयः पंच विश्रुताः ॥ ५ ॥ ईशानाख्या तु या तस्य मूर्त्तिराद्या गरीयसी ॥ भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ॥ ६ ॥ स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या या मूर्त्तिर्मूर्त्तिमतः प्रभोः ॥ गुणाश्रयात्मकं भोग्यमव्यक्तमधितिष्ठति ॥ ७ ॥ धर्माद्यष्टांगसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः ॥ अधितिष्ठत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यंतपूजिता ॥ ८ ॥ वामदेवाह्वयां मूर्तिं महादेवस्य वेधसः ॥ अहंकृतेरधिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः ॥ ९ ॥

हैं, जिससे सारा जगत् विस्तारको प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥ जैसे और शिवकी पंच ब्रह्ममूर्ति हैं, उनसे भी सब जगत् व्याप्त है, ऐसा कुछ नहीं जहां कुछ न हो ॥ ४ ॥ ईशान पुरुष घोर वामदेव सद्योजात यह ईशाननामकी पांच मूर्ति जगत्में विख्यातहैं ॥ ५ ॥ जो उनकी पहली ईशाननामकी श्रेष्ठ मूर्ति है वह प्रकृतिकी भोक्ता होकर क्षेत्रज्ञमें स्थित है ॥ ६ ॥ और जो मूर्तिमान् स्थाणुकी मूर्ति तत्पुरुष नामवाली है; वह गुणाश्रय होकर भोगती है और अव्यक्तमें स्थित है ॥७॥ धर्मादि अष्टांगसे संयुक्त शिवजीके बुद्धितत्त्वमें अत्यन्त पूजित अघोरमूर्ति स्थित रहती है ॥८॥ और जो विधाता वा महादेवनामक

मूर्ति है उसको शास्त्रके जाननेवाले अहंकारमें स्थित रहनेवाली कहतेहैं ॥ ९ ॥ अमित तेजस्वी शंकरकी जो सद्योजात मूर्ति है; बुद्धिमान् उसको मनमें स्थिति करनेवाली कहतेहैं ॥ १० ॥ श्रोत्र वाणी शब्दकी विभु और आकाशकी जो सबकी ईश्वरी मूर्ति है उसको पंडित 'ईशा' कहतेहैं ॥ ११ ॥ त्वचा, हाथ, स्पर्शवायुकी ईश्वरी जो ईश्वरकी मूर्ति है उसको पुराणके जाननेवाले पुरुष कहतेहैं ॥ १२ ॥ चक्षु चरण और अग्निके रूपमें शिवकी अघोर मूर्ति स्थित है; यह बुद्धिमान् कहतेहैं ॥ १३ ॥ रसना वायु रस और जलकी ईश्वरी वामदेवनामक मूर्ति उसके जाननेवालोंने कही है ॥ १४ ॥

सद्योजाताह्वयां मूर्त्तिं शम्भोरमितवर्चसः ॥ मनसः समधिष्ठात्रीं मतिमंतः प्रचक्षते ॥ १० ॥ श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च ॥ ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः ॥ ११ ॥ त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम् ॥ पुरुषाख्यं विदुस्सर्वे पुराणार्थ विशारदाः ॥ १२ ॥ चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च ॥ अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः ॥ १३ ॥ रसनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च ॥ ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्त्तिं तन्निरतां विदुः ॥ १४ ॥ घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा ॥ सद्योजाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते ॥ १५ ॥ मूर्तयः पंच देवस्य वंदनीयाः प्रयत्नतः ॥ श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥ १६ ॥ तस्य देवादिदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ॥ तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ १७ ॥ शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः ॥ ईशानश्च महादेवो मूर्त्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥ १८ ॥ भूम्यंभोग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ॥ अधिष्ठिता महेशस्य शर्वाद्यैरष्ट मूर्त्तिभिः ॥ १९ ॥ चराचरात्मकं विश्वं धत्ते विश्वंभरात्मिका ॥ शार्वी शिवाह्वया मूतारिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ २० ॥

घ्राण उपस्थ गन्ध पृथ्वीकी अधीश्वरी उनकी सद्योजात मूर्ति कहीगई है ॥ १५ ॥ यह देवकी पांच मूर्ति यत्नसे कहनी चाहिये; जो मंगलकी इच्छा करनेवाले मनुष्यहैं उनको यह सदा मंगल देनेवाली है ॥ १६ ॥ उस देवाधिदेवकी यह अष्टमूर्तिमयहै, और जैसे सूत्रोंमें मणि पोहीहुई है इस प्रकार उनमें विश्व ओतप्रोत है ॥ १७ ॥ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव, यह उनकी आठ मूर्तियेंहैं ॥ १८ ॥ भूमि, जल, अग्नि, मरुत्, व्योम, क्षेत्रज्ञ, अर्क, निशाकर, (चन्द्रमा) यह महेश्वरकी आठ मूर्तियें कल्पितहैं ॥ १९ ॥ यह पृथ्वी चराचरात्मक जगत्को धारण करतीहै; यह शिवकी शिवात्मक

मूर्ति है; यह शास्त्रका निश्चय है ॥ २० ॥ जलात्मक इस सारे जगत्का जीवन है, इस परमात्मा शिवकी मूर्ति भावी कहलाती है ॥ २१ ॥ बाहर भीतर
जगत्को व्याप्तकर उनकी तेजोमयी शुभमूर्ति है; और घोररूप उनकी रौद्रामूर्ति है ॥ २२ ॥ पवन सारे जगत्को स्पंदन करताहुआ इसको भरण पोषण
करता है और उग्रमूर्ति उसकी उग्र कहलाती है ॥ २३ ॥ और सबके अवकाश देनेवाली उनकी आकाशात्मक मूर्ति है और सब प्राणियोंको भय देनेवाली
उनकी भीममूर्ति है ॥ २४ ॥ सब क्षेत्रनिवासियोंके अन्तःकरणमें सर्वात्मासे स्थित है, वह जीवोंकी पाश काटनेहारी शिवकी पशुपति मूर्ति है ॥ २५ ॥

संजीवनं समस्तस्य जगतस्सलिलात्मिका ॥ भावीति गीयते मूर्तिभवस्य परमात्मनः ॥ २१ ॥ बहिरंतर्गता विश्वं व्याप्य तेजोमयी
शुभा ॥ रौद्री रुद्राव्यया मूर्तिरास्थिता घोररूपिणी ॥ २२ ॥ स्पंदयत्यनिलात्मदं बिभार्ति स्पंदते स्वयम् ॥ औग्रीति कथ्यते सद्भिर्मूर्ति
रुग्रस्य वेधसः ॥ २३ ॥ सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिका ॥ मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवृंदस्य भेदिका ॥ २४ ॥ सर्वात्मनाम
धिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ॥ मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पशुपाशनिकृंतनी ॥ २५ ॥ दीपयंती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया ॥ ईशानाख्या महे
शस्य मूर्तिर्दिवि विसर्पति ॥ २६ ॥ आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ॥ महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया ॥ २७ ॥ आत्मा
तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः॥व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्व तस्माच्छिवात्मकम् ॥२८॥ वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यंति वै यथा ॥
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत् ॥ २९ ॥ सवाभयप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा ॥ सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः ॥३०॥

सूर्यनामसे उनकी मूर्ति सारे जगत्को प्रकाश करती है, वह ईशान नामवाली शिवकी मूर्ति स्वर्गमें चलतीहै ॥ २६ ॥ जो चन्द्रमा किरणोंसे जगत्को तृप्त
करता है वह चन्द्रमूर्तिहै महादेवकी वह मूर्ति महादेवसंज्ञक है ॥ २७ ॥ इनमें आठवीं शिवकी व्यापकमूर्ति है, और इतर मूर्तियोंसे भी व्यापकमूर्ति होनेके
कारण यह जगत् शिवात्मक है ॥ २८ ॥ जैसे वृक्षकी जडमें सींचनेसे शाखा फूलती फलतीहैं, इसी प्रकार शिवकी पूजासे इनका शरीररूपी जगत् पुष्ट
होता है ॥ २९ ॥ सबको अभय देना प्रधान है; और सबका अनुग्रह विधायक और सब उपकारका कारण शिवका आराधन कहा है ॥ ३० ॥

जिस प्रकार पुत्र और पौत्रादिकी प्रीतिसे पिता प्रसन्न होता है, इसी प्रकार सबकी प्रीतिसे शंकर प्रसन्न होतेहैं ॥ ३१ ॥ जब कि, कोई किसी देहधारीका निग्रह करतेहैं वे अष्टमूर्तिका निग्रह करतेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्तिरूपसे सब जगत्को व्याप्त करके स्थितहुए परम कारणरूप शिवजीका सर्वभावसे भजन करो ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सं० वायवीयसंहिताभाषाटीकायामुत्तरखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! परमेश अमिततेजस्वी शिवने जिस प्रकार अपनी मूर्तियोंसे यह विश्व व्याप्त करलिया है; वह मैंने सुना ॥ १ ॥ अब मेरे यह जाननेकी इच्छा है कि उन

यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ॥ तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥ ३१ ॥ देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः ॥ अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः ॥ ३२ ॥ अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमाधिष्ठाय स्थितं शिवम् ॥ भजस्व सर्वभावेन रुद्रः परमकारणम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ भगवन्परमेशस्य शर्वस्यामिततेजसः ॥ मूर्तिभिर्विश्वमेवेदं यथा व्याप्तं तथा श्रुतम् ॥ १ ॥ अथैतज्ज्ञातुमिच्छामि याथात्म्यं परमेशयोः ॥ स्त्रीपुंभावात्मकं चेदं ताभ्यांकथमधिष्ठितम् ॥ २ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ श्रीमद्विभूतिं शिवयोर्याथात्म्यं च समासतः ॥ वक्ष्ये तद्विस्तराद्वक्तुं भवेनापि न शक्यते ॥ ३ ॥ शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवश्च शक्तिमान् ॥ तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम् ॥ ४ ॥ वस्तु किंचिदसद्रूपं किंचिद्वस्तु चिदात्मकम् ॥ द्वयं शुद्धमशुद्धं च परं चापरमेव च ॥ ५ ॥ यत्संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्रसमन्वितम् ॥ तदेवाशुद्धमपरमितरं तु परं शुभम् ॥ ६ ॥ अपरं च परं चैव द्वयं चिदचिदात्मकम् ॥ शिवस्य च शिवायाश्च स्वाम्यं चैतत्स्वभावतः ॥ ७ ॥

स्त्री पुरुषरूपसे यह जगत् किस प्रकारसे अधिष्ठित है ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, श्रीशिवकी विभूति यथायोग्य संक्षेपसे कहता हूँ; और विस्तारसे तो स्वयं शिव भी कहनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥ शक्तिका नाम महादेवी और महादेव शक्तिमान्हैं; उनकी विभूतिका लेशही यह चराचरात्मक विश्व है ॥ ४ ॥ जो कुछ चैतन्य और जो कुछ जडात्मक है; वे दोनों शुद्ध और अशुद्ध पर वा अपर ॥ ५ ॥ जो कि यह अचिच्चक्रके सहित चिच्चक्र भ्रमण करती है; वह अपर अशुद्ध और परशुद्ध है ॥ ६ ॥ अपर और यह दोनों चित् और अचित्रूपहैं; यह शिव और शिवाके स्वाभाविक तादात्म्यसे है ॥ ७ ॥

शिवके वशमें संसार है और संसारके वशमें शिव नहीं हैं; एषणा करनेसे शिवाशिव इसके पतिहैं और विश्वेश्वर कहातेहैं ॥ ८ ॥ जैसे शिव वैसी देवी और जैसी देवी तैसे शिवहैं; चन्द्रमा और चांदनीके समान येहैं इनका अन्तर जानना उचित नहीं है ॥ ९ ॥ चांदनीके बिना चन्द्रमा नहीं शोभित होता और चन्द्रके बिना चांदनी नहीं शोभित होती; ऐसेही बिना शक्तिके शिव शोभित नहीं होते ॥ १० ॥ जैसे बिना 'प्रभा' के भानु नहीं विदित होता और 'प्रभा' सूर्यसे अत्यन्त शोभित होती है ॥ ११ ॥ इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान्की परस्पर सापेक्ष स्थिति है, शिवके बिना शक्ति और शक्तिके बिना

शिवयोर्वै वशे विश्वं न विश्वस्य वशे शिवौ॥ ईशितव्यमिदं यस्मात्तस्माद्विश्वेश्वरौ शिवौ ॥ ८ ॥ यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः ॥ नानयोरंतरं विद्याच्चंद्रचन्द्रिकयोरिव ॥ ९ ॥ चंद्रो न खलु भात्येष यथा चंद्रिकया विना ॥ न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः ॥ १० ॥ प्रभया हि विनायद्वद्भानुरेष न विद्यते ॥ प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया ॥ ११ ॥ एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता ॥ न शिवन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः ॥ १२ ॥ शक्तौ यया शिवो नित्यं भुक्तौ मुक्तौ च देहिनाम् ॥ आद्या सैका परा शक्तिश्चिन्मयी शिवसंश्रया ॥ १३ ॥ यामाहुरखिलेशस्य तैस्तैरनुगुणैर्गुणैः ॥ समानधर्मिणीमेव शिवस्य परमात्मनः ॥ ॥ १४ ॥ सैका परा च चिद्रूपा शक्तिः प्रसवधर्मिणी ॥ विभज्य बहुधा विश्वं विदधाति शिवेच्छया ॥ १५ ॥ सा मूलप्रकृतिर्माया त्रिगुणा च त्रिधा स्मृता ॥ शिवया च विपर्यस्तं यया ततमिदं जगत् ॥ १६ ॥ एकधा च द्विधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ शक्तयः खलु भिद्यंते बहुधा व्यवहारतः ॥ १७ ॥

शिव नहीं ॥ १२ ॥ जिसके द्वारा शिव समर्थ हो देहधारियोंको भुक्ति मुक्ति देतेहैं वही आद्या चित्शक्ति परानामक शिवके आश्रय है ॥ १३ ॥ जिसको सब जगत्के पति परमात्मा शिवकी उन २ गुणोंसे युक्त समान धर्मिणी शक्ति कहतेहैं ॥ १४ ॥ वह एक पराचित्शक्ति प्रसवधर्म युक्त है, जो शिवकी इच्छासे संसारको बहुत प्रकारसे विभक्त करती है ॥ १५ ॥ वही मूलप्रकृति माया त्रिगुण और तीन प्रकारकी कही है, यह सब जगत उन्हीं शिवासे विस्तृत होरहा है ॥ १६ ॥ एक प्रकार दो प्रकार सौ सहस्र प्रकार व्यवहारसे अनेक प्रकार शक्ति भेदको प्राप्त होतीहैं ॥ १७ ॥

शिवकी इच्छासे परा शक्ति शिवतत्त्वकी एकताको प्राप्त हुई, आदि सृष्टिमें इस प्रकार स्फुरायमान होती है, तब क्रिया नामवाली शक्ति शक्तिमान्से प्रादुर्भूत हुई उस शक्तिके क्षोभको प्राप्त होनेसे प्रथम नादकी उत्पत्ति हुई ॥१८॥ १९ ॥ नादसे बिन्दु और बिन्दुसे देव सदाशिव हुए, उससे महेश्वर हुए और शुद्धविद्या महेश्वरसे ॥२०॥ वह वाणीकी ईश्वरी शक्ति जो शिवकी वागीशाशक्ति कहलाती है, वर्ण और स्वरूपसे मातृका कहलाती है॥२१॥ फिर अन्तके समावेशसे मायासे कालकी नियति; कला और विद्याकी उत्पत्ति हुई; और कलासे राग तथा पुरुष हुए ॥ २२ ॥ और फिर मायासे त्रिगुणात्मक अव्यक्त उत्पन्नहुआ,

शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता ॥ ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव ॥ १८ ॥ ततः क्रियाख्यया शक्त्या शक्तौ शक्तिमदुत्थया ॥ तस्यां विक्षोभ्यमाणायामादौ नादः समुद्भवौ॥ १९ ॥ नादाद्विनिःसृतो बिंदुर्बिंदोर्देवस्सदाशिवः ॥ तस्मान्महेश्वरो जातः शुद्धविद्या महेश्वरात् ॥ २० ॥ सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्या हि शूलिनः ॥ या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेपि विजृंभिते ॥ २१ ॥ अथानंतसमावेशान्माया कालमवासृजत् ॥ नियतिश्च कलां विद्यां कलातो रागपूरुषौ ॥ २२ ॥ मायातः पुनरेवाभूदव्यक्तं त्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिगुणाच्च ततो व्यक्ताद्विभक्ताः स्युस्त्रयो गुणाः ॥ २३ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चेति यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥ गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यो गुणेशाख्यास्त्रिमूर्त्तयः ॥ २४ ॥ अभवन्महदादीनि तत्त्वानि च यथाक्रमम् ॥ तेभ्यस्स्युरण्डपिण्डानि त्वसंख्यानि शिवाज्ञया ॥ अधिष्ठितान्यनन्ताद्यैर्विद्येशैश्चक्रवर्त्तिभिः ॥ २५ ॥ शरीरांतरभेदेन शक्तेर्भेदाः प्रकीर्तिताः ॥ नानारूपास्तु विज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥ २६ ॥ रुद्रस्य रौद्री सा शक्तिर्विष्णोर्वै वैष्णवी मता ॥ ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रोक्ता चेन्द्रस्यैंद्रीति कथ्यते ॥ २७ ॥

त्रिगुणसे व्यक्त और उनसे त्रिगुण विभक्त हुएहैं ॥ २३ ॥ सत, रज, तम, जिनसे कि, यह सब जगत् व्याप्त है गुणोंके क्षुभित होनेसे गुणेशकी तीन मूर्तिहैं ॥ २४ ॥ फिर यथाक्रमसे महत् आदि तत्त्व हुए, उनसे शिवकी आज्ञासे असंख्य अण्डके पिंड हुए, वह चक्रवर्ती अनन्त और विद्येशोंसे अधिष्ठितहैं ॥ ॥ २५ ॥ शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके भेद कहे गयेहैं, स्थूल सूक्ष्मके भेदसे वे अनेक रूपवाले जानने ॥ २६ ॥ रुद्रकी रौद्री विष्णुकी वैष्णवी ब्रह्माकी

ब्रह्माणी और इन्द्रकी ऐन्द्री शक्ति कहीजाती है ॥ २७ ॥ बहुत कहनेसे क्या है जो कुछ यह जगत् है यह शक्ति और आत्मासे व्याप्त है जैसे देह अन्तरात्मासे ॥ २८ ॥ इस कारण यह सब स्थावर जंगमात्मक जगत शक्तिमय है, यह परमाशक्ति परमात्मा शिवकी कला है ॥ २९ ॥ इसी प्रकार यह पराशक्ति शिवकी आज्ञाके वशीभूत चराचर जगत्की रचना करती है, यह निश्चय है ॥ ३० ॥ ज्ञानक्रियाकी इच्छावाली अपनी तीन मूर्तियोंसे वा शक्तिसे वह शक्तिमान् ईश्वर सदा विश्वको व्याप्त कर, स्थित होता है ॥ ३१ ॥ यह इस प्रकार है, यह इस प्रकार नहीं है, ऐसी आत्मिकाशक्ति है वह

किमत्र बहुनोक्तेन यद्विश्वमिति कीर्तितम् ॥ शक्त्यात्मनैव तद्व्याप्तं यथा देहोंऽतरात्मना ॥२८॥ तस्माच्छक्तिमयं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ कला या परमा शक्तिः कथिता परमात्मनः ॥ २९ ॥ एवमेषा परा शक्तिरीश्वरेच्छानुयायिनी ॥ स्थिरं चरं च यद्विश्वं सृजतीति विनिश्चयः ॥ ३० ॥ ज्ञानक्रिया चिकीर्षाभिस्तिसृभिस्स्वात्मशक्तिभिः ॥ शक्तिमानीश्वरः शश्वद्विश्वं व्याप्याधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ इदमित्थमिदं नेत्थं भवेदित्येवमात्मिका ॥ इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्य्यनियामिका ॥ ३२ ॥ ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं करणं कारणं तथा ॥ प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ॥ ३३ ॥ यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत् ॥ कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात्संकल्परूपिणी ॥ ३४ ॥ यथा शक्तित्रयोत्थानं शक्तिप्रसवधार्मिणी ॥ शक्त्या परमया नुन्ना प्रसूते सकलं जगत् ॥ ३५ ॥ एवं शक्तिसमायोगाच्छक्तिमानुच्यते शिवः ॥ शक्तिशक्तिमदुत्थं तु शाक्तं शैवमिदं जगत् ॥ ३६ ॥

महेशकी इच्छाशक्ति नित्य कार्यकी नियामिका है ॥ ३२ ॥ ज्ञानशक्ति उसका कार्यकारण करण और प्रयोजन तत्त्वरूपसे बुद्धिरूपमें स्थित होती है ॥ ॥ ३३ ॥ और क्रियाशक्ति जिसने जगत्को अपने वशमें कर रक्खाहै इच्छित मनोरथोंको देती है, संकल्परूपिणी शक्ति क्षणमात्रमें सबकुछ संकल्पित करलेती है ॥ ३४ ॥ शक्तिके अनुसार उत्पन्न धर्मवाली शक्ति तिनमें शक्तिका उत्थान करती है यहां परमशक्तिसे प्रेरित हो सब जगत्को उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार शक्तिके योगसे शिव शक्तिमान् कहातेहैं, शक्तिसे शक्तिमान् शाक्तिक होता है; इसीसे यह शिवसम्बन्धी जगत् शाक्तिक कहलाता है ॥ ३६ ॥

जैसे कि, पिता माताके विना पुत्र नहीं होता इसी प्रकार शिवा शिवके विना यह चराचर जगत् उत्पन्न नहीं होता, स्त्री पुरुषोंसे उत्पन्न हुआ यह जगत् स्त्री पुरुषात्मक है ॥ ३७ ॥ स्त्री और पुरुषकी विभूति स्त्री पुरुषोंसे अधिष्ठित है, परमात्मा शिव और वह शिवा कहलाती है ॥ ३८ ॥ शिव सदाशिव कहलातेहैं, वह मनोन्मनी शिवा कहाती है, शिव महेश्वर और शिवा माया कहलातीहै ॥ ३९ ॥ परमेशान पुरुष और परमेश्वरी प्रकृति कहाती है; महेश्वर साक्षात् रुद्र और रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहाती है ॥ ४० ॥ विष्णु विश्वेश्वर देव शिवहैं, और लक्ष्मी विश्वेश्वरी देवी शिवाहैं; ब्रह्मा शिवसे प्रगट शिवहैं,

यथा न जायते पुत्रः पितरं मातरं विना ॥ तथा भवं भवानीं च विना नैतच्चराचरम् ॥ स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च ॥ ३७ ॥
स्त्रीपुंसयोर्विभूतिश्च स्त्रीपुंसाभ्यामधिष्ठितम् ॥ परमात्मा शिवः प्रोक्तश्शिवा सा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ शिवस्सदाशिवः प्रोक्तः
शिवा सा च मनोन्मनी ॥ शिवो महेश्वरो ज्ञेयः शिवा मायेति कथ्यते ॥ ३९ ॥ पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी ॥ रुद्रो महे
श्वरस्साक्षाद्रुद्राणी रुद्रवल्लभा ॥ ४० ॥ विष्णुर्विश्वेश्वरो देवो लक्ष्मीर्विश्वेश्वरप्रिया ॥ ब्रह्मा शिवो यदा स्रष्टा ब्रह्माणी ब्रह्मणः
प्रिया ॥ ४१ ॥ भास्करो भगवाञ्छंभुः प्रभा भगवती शिवा ॥ महेंद्रो मन्मथारातिः शची शैलेंद्रकन्यका ॥ ४२ ॥ जातवेदा महादेवः
स्वाहा शर्वार्द्धदेहिनी ॥ यमस्त्रियंबको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका ॥ ४३ ॥ निर्ऋतिर्भगवानीशो नैर्ऋती नगनंदिनी ॥ वरुणो भगवा
न्रुद्रो वारुणी भूधरात्मजा ॥ ४४ ॥ बालेंदुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोहरा ॥ यक्षो यज्ञशिरोहर्ता ऋद्धिर्हिमगिरीन्द्रजा ॥ ४५ ॥
चंद्रार्धशेखरश्चंद्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा ॥ ईशानः परमेशानस्तदार्या परमेश्वरी ॥ ४६ ॥

और ब्रह्माणी ब्रह्माकी प्रिया शिवा है ॥ ४१ ॥ भास्कर भगवान् शिव हैं; उनकी प्रभा भगवती शिवा है; महेन्द्र शिव और शची शिवा है ॥ ४२ ॥ अग्नि महादेव और स्वाहा शिवा है; यम शिव और उनकी प्रिया भवानीरूप है ॥ ४३ ॥ निर्ऋति शिव और उनकी प्रिया शिवा है, वरुण रुद्र और उनकी प्रिया रुद्राणी है ॥ ४४ ॥ वायु शिव और उनकी प्रिया शिवा है, यक्ष शिव और ऋद्धि शिवा है ॥ ४५ ॥ चन्द्रमा शिव और रोहिणी शिवा है, ईशान

शिव और उसकी प्रिया शिवा है ॥ ४६ ॥ अनन्त शिव और उनकी प्रिया शिवा है, कालाग्नि रुद्र शिव और काली शिवा हैं ॥ ४७ ॥ पुरुषनामक मनु शिव और शतरूपा शिवा है, दक्ष साक्षात् महादेव और प्रसूति महादेवी है ॥ ४८ ॥ रुचि शिव और आकूतिको पंडितोंने भवानी कहा है. भृगु शिव और ख्याति पार्वती है ॥ ४९ ॥ मरीचि शिव सम्भूति पार्वती अंगिरा शिव और स्मृति पार्वती है ॥ ५० ॥ पुलस्त्य शिव और प्रीति शिवा है; पुलह शिव और उनकी प्रिया शिवा है ॥ ५१ ॥ क्रतु शिव और सन्नति शिवा है; अत्रि शिव और अनसूयाको विद्वानोंने पार्वती कहा है ॥५२॥ कश्यपरूप

अनंतवलयोऽनंतो ह्यनंतानंतवल्लभा ॥ कालाग्निरुद्रः कालारिः काली कालांतकप्रिया ॥ ४७ ॥ पुरुषाख्यो मनुश्शंभुः शतरूपा शिव
प्रिया ॥ दक्षस्साक्षान्महादेवः प्रसूतिः परमेश्वरी ॥ ४८ ॥ रुचिर्भवो भवानी च बुधैराकूतिरुच्यते ॥ भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रि
नयनप्रिया ॥ ४९ ॥ मरीचिर्भगवान्रुद्रः संभूतिश्शर्ववल्लभा ॥ गंगाधरोंऽगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता ॥ ५० ॥ पुलस्त्यः शश
भृन्मौलिः प्रीतिः कांता पिनाकिनः ॥ पुलहस्त्रिपुरध्वंसी तत्प्रिया तु शिवप्रिया ॥ ५१ ॥ क्रतुध्वंसी क्रतुः प्रोक्तः संनतिर्दयिता विभोः
त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः ॥ ५२ ॥ कश्यपः कालहा देवो देवमाता महेश्वरी ॥ वसिष्ठो मन्मथारातिर्देवी साक्षादरुं
धती ॥ ५३ ॥ शंकरः पुरुषास्सर्वे स्त्रियस्सर्वा महेश्वरी ॥ सर्वे स्त्रीपुरुषास्तस्मात्तयोरेव विभूतयः ॥ ५४ ॥ विषयी भगवानीशो
विषयः परमेश्वरी ॥ श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता शूलवरायुधः ॥ ५५ ॥ प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा ॥ प्रष्टा स एव विश्वात्मा
बालचंद्रावतंसकः ॥ ५६ ॥ द्रष्टव्यं वस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा ॥ द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखंडशिखामणिः ॥ ५७ ॥

शिव; और महेश्वरी देवमाता अदिति है, वसिष्ठ कामारि शिव, और अरुन्धती साक्षात् देवी भवानीहै ॥ ५३ ॥ सब पुरुष शंकर हैं और सब स्त्रियें पार्वती हैं इस कारण सब स्त्री और पुरुष उनकी विभूति हैं ॥ ५४ ॥ विषयी भगवान् शिव हैं और विषय परमेश्वरी हैं, उमारूप सब श्राव्य है, और शिव श्रोतारूपहैं ॥५५॥ जितनी प्रष्टव्यरूप वस्तु है पार्वती वह सब धारण करती हैं, और प्रष्टा वह विश्वात्मा बालचन्द्रमाधारी शिवहैं ॥ ५६ ॥ दृष्टयोग्य सब

वस्तु शिवकी वल्लभा धारण करती है, और चन्द्रमौलि शिव सबके द्रष्टा देखनेवाले हैं ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण रस समूह महादेवी है, और रसलेनेवाले महाशिव हैं, सम्पूर्ण प्रिय समूह पार्वती और प्रीतिरूप शिव हैं ॥ ५८ ॥ माननेयोग्य वस्तुको महादेवी धारण करती हैं, और महादेव विश्वात्मा महेश्वर मन्ता माननेवाले हैं ॥ ५९ ॥ धारणयोग्य सब वस्तुको पार्वती धारण करती हैं, और धारण करानेहारे चन्द्रशेखर भगवान् शिव हैं ॥ ६० ॥ शिव सब प्राणियोंके प्राणरूप हैं, और जलरूपिणी पार्वती माता प्राणोंकी स्थितिरूप हैं ॥ ६१ ॥ त्रिपुरारीपियारी देवी क्षेत्रताको धारण करती हैं, और भगवान्

रसजातं महादेवी देवो रसयिता शिवः ॥ प्रेयजातं च गिरिजा प्रेयांश्चैव गराशनः ॥ ५८ ॥ मंतव्यवस्तुतां धत्ते सदा देवी महेश्वरी ॥
मंता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः ॥५९॥ बोद्धव्यवस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा ॥ देवस्स एव भगवान्बोद्धा मुग्धेन्दुशेखरः ॥
॥ ६० ॥ प्राणः पिनाकी सर्वेषां प्राणिनां भगवान्प्रभुः ॥ प्राणस्थितिस्तु सर्वेषामंबिका चांबुरूपिणी ॥ ६१ ॥ बिभर्ति क्षेत्रतां देवी
त्रिपुरांतकवल्लभा ॥ क्षेत्रज्ञत्वं तदा धत्ते भगवानंतकांतकः ॥ ६२ ॥ अहः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रिया निशा ॥ आकाशः शंकरो
देवः पृथिवी शंकरप्रिया ॥ ६३ ॥ समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेंद्रकन्यका ॥ वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया ॥ ६४ ॥
पुल्लिंगमखिलं धत्ते भगवान्पुरशासनः ॥ स्त्रीलिंगं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा ॥ ६५ ॥ शब्दजालमशेषं तु धत्ते सर्वस्य
वल्लभा ॥ अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥ ६६ ॥ यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ॥ सा सा विश्वेश्वरी देवी
सस सर्वो महेश्वरः ॥ ६७ ॥ यत्परं यत्पवित्रं च यत्पुण्यं यच्च मंगलम् ॥ तत्तदाह महाभागास्तयोस्तेजोविजृंभितम् ॥ ६८ ॥

अन्धकरिपु क्षेत्रज्ञताको धारण करते हैं ॥ ६२ ॥ शूलधारी शिव दिन और रात्रि पार्वती हैं, आकाश शंकर और पृथ्वी उनकी प्रिया है ॥ ६३ ॥ शिव सागर और पार्वती वेला हैं, वृक्ष शिव और लता उनकी प्रिया पार्वती हैं ॥ ६४ ॥ पुरारि सब पुल्लिंगके धारण करनेवाले हैं, और देवप्रिया शिवा सब स्त्रीलिंगको धारण करती हैं ॥ ६५ ॥ पार्वती सम्पूर्ण शब्दजाल धारण करती हैं; और चन्द्रशेखर सब अर्थरूपको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥ जिस जिस पदार्थकी जो जो शक्ति है वह वह विश्वेश्वरी और वह वह पदार्थ शिव हैं ॥ ६७ ॥ जो परम पवित्र पुण्य और मंगलरूप है वह सब शिवा शिवके ही

तेजसे प्रादुर्भूत है ॥ ६८ ॥ यथा दीप्तिमान् दीपकी शिखासे घर दीप्तिमान् होता है, इसी प्रकार इन दोनोंके तेजसे व्याप्तहो जगत् दीप्तिमान् होता है ॥ ॥ ६९ ॥ तृणसे लेकर शिवमूर्तितक वही स्थित हैं, उन्हीं शिवा शिवके सन्निकर्षसे यह सब चलायमान होता है ऐसी श्रुति है ॥ ७० ॥ यह दोनों सम्पूर्ण आकारयुक्त और सम्पूर्ण तेजके विधान करने वाले हैं, यह पूजनीय नमस्कार योग्य और सदा विचारके योग्य हैं ॥ ७१ ॥ हे कृष्ण ! जिस प्रकार यह प्राज्ञ परमेश्वरकी याथात्म्यता तुमसे वर्णन की है, यह इतना ही नहीं ॥ ७२ ॥ उन शिवा शिवका माहात्म्य हम नहीं कहसकते; वह तो

तथा दीपस्य दीप्तस्य शिखा दीपयते गृहम् ॥ तथा तेजस्तयोरेतद्व्याप्य दीपयते जगत् ॥ ६९ ॥ तृणादिशिवमूर्त्यंतं विश्वख्या
तिशयक्रमः ॥ सन्निकर्षक्रमवशात्तयोरिति परा श्रुतिः ॥ ७० ॥ सर्वाकारात्मकावेतौ सर्वश्रेयोविधायिनौ ॥ पूजनीयौ नमस्कार्यौ
चिंतनीयौ च सर्वदा ॥ ७१ ॥ यथाप्रज्ञमिदं कृष्ण याथात्म्यं परमेशयोः ॥ कथितं हि मया तेऽद्य न तु तावदियत्तया ॥ ७२ ॥
तत्कथं शक्यते वक्तुं याथात्म्यं परमेशयोः ॥ महतामपि सर्वेषां मनसोऽपि बहिर्गतम् ॥ ७३ ॥ अंतर्गतमनन्यानामीश्वरार्पितचे
तसाम् ॥ अन्येषां बुद्ध्यनारूढमारुढं च यथैव तत् ॥ ७४ ॥ येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती सा परा मता ॥ अप्राकृतां परामन्यां गुह्यां
गुह्यविदो विदुः ॥ ७५ ॥ यतो वाचो निवर्त्तंते मनसा चेंद्रियैस्सह ॥ अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी ॥ ७६ ॥ सैवेह परमं
धाम सैवेह परमा गतिः ॥ सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः ॥ ७७ ॥ तां प्राप्तुं प्रयतंतेऽत्र जितश्वासा जितेंद्रियाः ॥ गर्भकारा
गृहद्वारं निश्छिद्रं घटितुं यथा ॥ ७८ ॥

ब्रह्मादिके मनसे भी परे हैं ॥ ७३ ॥ जो अनन्य मन है, जिन्होंने ईश्वरमें मन लगादियाहै उन्हींकी बुद्धिमें यह आरूढ होते हैं औरोंके नहीं ॥ ७४ ॥ जो कहीहुई मुक्तिकी विभूति है, वह प्रकृतिसे उत्पन्न और अपरा नामवाली है और गुप्तभेदसे जाननेवाले दूसरीको अप्राकृत और मुक्ति कहते हैं ॥ ७५ ॥ जहाँ मन इन्द्रियोंके संग पहुँचकर वाणी निवृत्त होजाती है वही परमेश्वरकी अप्राकृत विभूति है ॥ ७६ ॥ वही परमधाम और वही परागति है, वही पराकाष्ठा वही परमेष्ठीकी विभूति है ॥ ७७ ॥ उसके प्राप्त करनेको श्वास और इन्द्रिय जीतकर योगी यत्न करतेहैं, और शरीरके सब छिद्रोंको रोक गर्भके

आकारके समान करलेतेहैं ॥ ७८ ॥ वह शिवा शिवकी विभूति संसाररूपी सर्पके काटेहुओंको संजीवनी है उसको प्राप्तकर विद्वान् कहींसे भीत नहीं होता
है ॥ ७९ ॥ जो तत्त्वसे पर और अपर विभूतिको जानता है वह अपराविभूतिको उल्लंघनकर पराविभूतिको प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ हे कृष्ण ! यह तुमसे
शिवा शिवका याथात्म्य वर्णन किया तुम शिवके भक्त होनेसे उनके रहस्य सुननेके योग्य हो ॥ ८१ ॥ जो शिष्य न हो, शठ हो, अभक्त हो उनके
निमित्त ऐसे अर्थोंका उच्चारण न करै, यह वेदका अनुशासन है ॥ ८२ ॥ हे कल्याणस्वरूप ! इससे तुम यदि यह किसीसे कहो तो अपने समान वा

संसाराशीविषालीढमृतसंजीवनौषधम् ॥ विभूतिं शिवयोर्विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ॥ ७९ ॥ यः परामपरां चैव विभूतिं वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽपरो भूतिमुल्लंघ्य परां भूतिं समश्नुते ॥ ८० ॥ एतत्ते कथितं कृष्ण याथात्म्यं परमात्मनोः ॥ रहस्यमपि योग्योऽसि भर्गभक्तो
भवानिति ॥ ८१ ॥ नाशिष्येभ्योऽप्यशैवेभ्यो नाभक्तेभ्यः कदाचन ॥ व्याहरेदीशयोर्भूतिमिति वेदानुशासनम् ॥ ८२ ॥ तस्मात्त्वम
तिकल्याण परेभ्यः कथयेन्न हि ॥ त्वादृशेभ्योऽनुरूपेभ्यः कथयैतन्न चान्यथा ॥ ८३ ॥ विभूतिमेतां शिवयोर्योग्येभ्यो यः प्रदाप
येत् ॥ संसारसागरान्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ कीर्तनादस्य नश्यंति महान्त्यः पापकोटयः ॥ त्रिश्चतुर्धासमभ्यस्तैर्विन
श्यंति ततोऽधिकाः ॥ ८५ ॥ नश्यंत्यनिष्टरिपवो वर्द्धन्ते सुहृदस्तथा ॥ विद्या च वर्द्धते शैवी मतिस्सत्ये प्रवर्तते ॥८६॥ भक्तिः परा
शिवे साम्बे सानुगे सपरिच्छदे ॥ यद्यदिष्टतमं चान्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८७ ॥

अधिकारियोंसे कहना अन्यथा नहीं ॥ ८३ ॥ इस शिवकी विभूतिको जो योग्यके निमित्त देता है वह संसारसागरसे मुक्त हो शिवके सायुज्यको पाता है
॥ ८४ ॥ इसके कीर्तनसे बडे २ पाप नष्ट हो जातेहैं और तीन चार बार अभ्यास करनेसे उससे भी अधिक पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ८५ ॥ उसके अरिष्ट
और शत्रु नाश होकर मित्रगण बढतेहैं, शैवी विद्या पढकर सत्यमें उसकी मति प्रवृत्त होती है ॥ ८६ ॥ शिवा शिवमें पराभक्ति होती है और उनके कुटुम्ब

वर्गगणादिमें स्नेह होता है जिसका अभिलाष करै सो पूर्ण होता है; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८७ ॥ इसको पवित्र हो शिवमें भक्तिकर यदि कीर्तन करै तो पूर्वजन्मके प्रबल कर्मोंके फल भी नष्ट होजातेहैं; बारम्बार अभ्यास करनेवालोंको कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे शिवतत्त्वकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ उपमन्यु बोले, यह चराचर विश्व उस देवदेवका निग्रह है, जीव पाशबन्धनमें पडनेके कारण उसको नहीं जानतेहैं ॥ १ ॥ हे यदुनन्दन ! उस एकहीको बहुत प्रकारसे कहतेहैं ॥ २ ॥ अपर ब्रह्मरूपहीपर ब्रह्मरूपहै उसे कोई महादेव

अन्तः शुचिः शिवे भक्तो विस्रब्धः कीर्तयेद्यदि ॥ प्रबलैः कर्मभिः पूर्वैः फलं चेत्प्रतिबध्यते ॥ पुनः पुनः समभ्यस्येत्तस्य नास्तीह दुर्ल्लभम् ॥ ८८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे गौरीशंकरविभूतियोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ विग्रहं देवदेवस्य विश्वमेतच्चराचरम् ॥ तदेवं न विजानंति पशवः पाशगौरवात् ॥ १ ॥ तमेकमेव बहुधा वदंति यदुनंदन ॥ अजानन्तःपरं भावमविकल्पं महर्षयः ॥ २ ॥ अपरं ब्रह्मरूपं च परं ब्रह्मात्मकं तथा ॥ केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं परम् ॥ ३ ॥ भूतेंद्रियांतःकरणप्रधानविषयात्मकम् ॥ अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ॥ ४ ॥ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्यभिधीयते ॥ उभे ते ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभोः ॥ विद्याऽविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते ॥ ५ ॥ विद्यां तु चेतनां प्राहुस्तथाविद्यामचेतनाम् ॥ विद्याऽविद्यात्मकं चैव विश्वं विश्वगुरोर्विभोः ॥ ६ ॥ रूपमेव न संदेहो विश्वं तस्य वशे यतः ॥ भ्रांतिर्विद्या परा चेति शार्वं रूपं परं विदुः ॥ ७ ॥ अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रांतिरुच्यते ॥ यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्येति परिकीर्त्यते ॥ ८ ॥

अनादि निधन कहतेहैं ॥ ३ ॥ भूत इन्द्रिय अन्तःकरण प्रधान विषयात्मक अपर ब्रह्मरूपहीपर ब्रह्मात्मकहै, वही चिदात्मक ॥ ४ ॥ बृहत् और बृंहण होनेसे वह परम कहलाताहै, वे दोनों ब्रह्माके अधिपति ब्रह्मके रूपहैं, कोई विद्या अविद्यास्वरूपा ईश्वर कहतेहैं ॥ ५ ॥ चेतना विद्या और अचेतना अविद्या कहाती है, यह विश्वके गुरुका विद्या और अविद्यात्मक रूप है ॥ ६ ॥ इसमें सन्देह नहीं; यह उसीका रूप है और विश्व उसके वशमें स्थित है, भ्रांति विद्यापर यह सब शिवकाही रूप है ॥ ७ ॥ अर्थोंमें यथार्थ बुद्धिके न होनेका नाम भ्रान्ति है जो अर्थाकार संवित्ति है उसको विद्या कहतेहैं ॥८॥

विकल्परहित तत्त्वपद कहाता है इसके विपरीत तत्त्वको वेदवादी असत् कहतेहैं ॥ ९ ॥ सत्पुरुषोंने सत्य और साधुमें सत् शब्दका प्रयोग किया है, इससे विपरीत वेदवादियोंने असत शब्दको कहा है, यह सदसदात्मक जगत उस परमेष्ठीका शरीर है; जो यह सत् और असत् कहाजाता है, उनके पति होनेसे शिव सत् असत्के पति कहातेहैं; उसको क्षर अक्षरात्मक कहा है, वह क्षर अक्षरसे परे भी कहाजाता है ॥ १० ॥ सब प्राणी क्षर अर्थात् नाशवान्हैं, कूटस्थका नाम अक्षर है (चिदात्मा) यह दोनों रूप उस परमेशके वशमें हैं ॥ ११ ॥ उससे परे शान्त शिव क्षर अक्षरसे परे कहेगयेहैं; समष्टि व्याष्टिरूप

विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते ॥ वैपरीत्यादसच्छब्दः कथ्यते वेदवादिभिः ॥ ९ ॥ तयोः पतित्वात्तु शिवः सदसत्पतिरुच्यते ॥ क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं परे ॥१०॥ क्षरस्सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उभे ते परमेशस्य रूपे तस्य वशे यतः ॥ ११ ॥ तयोः परः शिवः शांतः क्षराक्षरापरस्स्मृतः ॥ समष्टिव्यष्टिरूपं च समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥ १२ ॥ वदंति मुनयः केचिच्छिवं परमकारणम् ॥ समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं तथैव च ॥ १३ ॥ ते रूपे परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात् ॥ तयोः कारणभावेन शिवं परमकारणम् ॥ १४ ॥ कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥ जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते कैश्चिदीश्वरः ॥ १५ ॥ या पिंडेष्वनुवर्तेत सा जातिरिति कथ्यते ॥ व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूपं तं पिण्डजातेः समाश्रयम् ॥ १६ ॥ जातयो व्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः ॥ यतस्ततो महादेवो जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः ॥ १७ ॥

(मिलाहुआ और अलग २) समष्टि व्यष्टिका कारण है ॥ १२ ॥ कोई मुनि शिवको परमकारण कहतेहैं, समष्टिको अव्यक्त और व्यष्टिको व्यक्त कहतेहैं ॥ १३ ॥ परमेश्वरकी इच्छासे यह दोनों उसीके रूप हैं, उनके कारणके अभावसे शिव ही परम कारणहैं ॥ १४ ॥ कारण अर्थके जाननेवाले समष्टि व्यष्टि कारण कहतेहैं, कोई कहतेहैं ईश्वरजाति और व्यक्तिस्वरूपी हैं ॥ १५ ॥ जो पिंडोंमें वर्तती है, वह जाति कहाती है, वह व्यक्ति आवृत्तिरूप सब पिंडजातिमें स्थित है ॥१६॥ जाति और व्यक्ति उसीकी आज्ञासे परिपालित है, इस कारणसे महादेव जाति और व्यक्ति स्वरूपवाले कहेगयेहैं ॥१७॥

प्रधानपुरुष व्यक्त कलात्मा शिव कहाजाता है, प्रधानप्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष है ॥ १८ ॥ बुद्धिमान् तेईस तत्त्वोंका नाम व्यक्त कहतेहैं, कालकार्यके प्रपंचके परिणाम करनेहीका एक कारण है ॥ १९ ॥ यही ईश अधिपति विधाता प्रवर्तन और निवर्तन करनेवाला है; यही आविर्भाव (प्रगट) तिरोभाव (गुप्त) करनेका एक कारण है ॥ २० ॥ इस कारण प्रधानपुरुष प्रगटही कालके स्वरूपवालेहैं, उनका कारण और नेता एक विधाता महेश्वर है ॥ २१ ॥ कोई विराट् हिरण्यगर्भात्मा (ब्रह्मा) ईश है ऐसा कहतेहैं, कि ब्रह्मलोकका विश्वात्मा विराट् है ॥ २२ ॥ कविजन अन्तर्यामी और परको शिव कहतेहैं,

प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः क्षेत्रज्ञं पुरुषं तथा ॥१८॥ त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः ॥ कालः कार्य्यप्रपंचस्य परिणामैककारणम् ॥ १९ ॥ एषामीशोऽधिपो धाता प्रवर्तकनिवर्तकः ॥ आविर्भावतिरोभावहेतुरेकः स्वराडजः ॥ २० ॥ तस्मात्प्रधानपुरुषव्यक्तकालस्वरूपवान् ॥ हेतुर्नेताधिपस्तेषां धाता चोक्तो महेश्वरः ॥ २१ ॥ विराड्हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते ॥ हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्विश्वात्मको विराट् ॥ २२ ॥ अंतर्यामी परश्चेति कथ्यते कविभिश्शिवः ॥ प्राज्ञस्तैजसविश्वात्मेत्यपरे संप्रचक्षते ॥ २३ ॥ तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः ॥ माता मानं च मेयं च मतिं चाहुरथापरे ॥ २४ ॥ कर्ता क्रिया च कार्य्यं च करणं कारणं परे ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यात्मेत्यपरे संप्रचक्षते ॥ २५ ॥ तुरीयमपरे प्राहुस्तुर्यातीतमितीतरे ॥ तमाहुर्विगुणं केचिद्गुणवन्तं परे विदुः ॥ २६ ॥ केचित्संसारिणं प्राहुस्तमसंसारिणं परे ॥ स्वतंत्रमपरे प्राहुरस्वतंत्रं परे विदुः ॥ २७ ॥ घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः ॥ रागवंतं परे प्राहुर्वीतरागं तथा परे ॥ २८ ॥

कोई प्राज्ञ तेजसे विश्वात्मा कहतेहैं ॥ २३ ॥ कोई उसको तुरीय कोई उसको सौम्य कहतेहैं, कोई माता मान और मेय और मति कहतेहैं ॥ २४ ॥ कर्ता क्रिया, कारण करण कार्य ऐसा दूसरे कहतेहैं, कोई उसको जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आत्मक कहतेहैं ॥ २५ ॥ कोई उसे तुरीय और कोई तुर्यातीत कहतेहैं, कोई निर्गुण कोई सगुण कहतेहैं ॥ २६ ॥ कोई संसारी कोई असंसारी कहतेहैं, कोई स्वतन्त्र कोई अस्वतंत्र जानतेहैं ॥ २७ ॥ कोई घोर कोई सौम्य

जानतेहैं, कोई रागयुक्त और कोई रागहीन कहतेहैं ॥ २८ ॥ कोई निष्क्रिय और कोई क्रियारूप कहतेहैं, कोई इन्द्रियरहित कोई सेन्द्रिय कहतेहैं ॥
॥ २९ ॥ कोई अचल और कोई चल कहतेहैं, कोई अरूप कोई रूपवान कहतेहैं ॥ ३० ॥ कोई अदृश्य कोई दृश्य कहतेहैं कोई वाच्य कोई अवाच्य
कोई शब्दात्मक कोई शब्दातीत कहतेहैं ॥ ३१ ॥ कोई चिन्तायुक्त कोई चिन्तारहित कोई ज्ञानात्मक कोई विज्ञानस्वरूप कहतेहैं ॥ ३२ ॥ कोई ज्ञेय
कोई अज्ञेय कोई एक और कोई अनेकरूप कहतेहैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस परमेष्ठीकी अनेक प्रकारसे कल्पना करतेहुए; अनेक प्रकारसे विश्वासके कारण

निष्क्रियं च परे प्राहुः सक्रियं चेतरे जनाः ॥ निरिंद्रियं परे प्राहुः सेंद्रियं च तथापरे ॥ २९ ॥ ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तमध्रुवमितीतरे ॥
अरूपं केचिदाहुर्वै रूपवंतं परे विदुः ॥ ३० ॥ अदृश्यमपरे प्राहुर्दृश्यमित्यपरे विदुः ॥ वाच्यमित्यपरे प्राहुरवाच्यमिति चापरे ॥
शब्दात्मकं परे प्राहुश्शब्दातीतमथापरे ॥ ३१ ॥ केचिच्चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहितं परे ॥ ज्ञानात्मकं परे प्राहुर्विज्ञानमिति चापरे ॥
॥ ३२ ॥ केचिज्ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन ॥ परमेके तमेवाहुरपरं च तथा परे ॥ ३३ ॥ एवं विकल्प्यमानं तु याथात्म्यं परमे
ष्ठिनः ॥ नाध्यवस्यंति मुनयो नानाप्रत्ययकारणात् ॥ ३४ ॥ ये: पुनस्सर्वभावेन प्रपन्नाः परमेश्वरम् ॥ ते हि जानंत्ययत्नेन शिवं
परमकारणम् ॥ ३५ ॥ यावत्पशुर्नैव पश्यत्यनीशं कविं पुराणं भुवनस्येशितारम् ॥ तावद्दुःखे वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिंश्चक्रनेमिक्र
मेण ॥ ३६ ॥ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥ तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परममुपैति
साम्यम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पशुपतित्वज्ञानयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मुनिजन भी निश्चय नहीं करसकतेहैं ॥ ३४ ॥ और जो सर्वभावसे परमेश्वरकी शरण हुएहैं, वह बिना यत्नकेही परमकारण शिवको जानतेहैं ॥ ३५ ॥
जबतक यह जीव दूसरे ईशरहित कवि पुराणपुरुष संसारके वश करनेवाले परमात्माको नहीं देखताहै तबतक पाशबद्ध होकर चक्रनेमिके समान संसारदुःखमें
भ्रमण करता रहता है ॥ ३६ ॥ जिस समय सबके साक्षात् हिरण्यगर्भ जगत्के कर्ता ईश्वर पुरुष ब्रह्मस्वरूपको देखता है तब वह पुरुष पुण्य पापको दूर
कर निरंजन कल्मषरहित शिवके तादात्म्यको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उपमन्यु बोले, इन शिवको बन्धनका लेश नहीं है, प्रकृति माया बुद्धि तथा अहंकारका कियाहुआ भी नहीं है ॥ १ ॥ न इसका मानसी बन्धन न चित्तका बन्धन न इन्द्रियात्मक न तन्मात्रा न आकाशात्मक बन्ध है ॥ २ ॥ काल न कला न अविद्या न नियति न राग न द्वेष यह अमिततेजस्वी शिवमें नहीं है ॥ ३ ॥ न कोई आग्रह न कुशल न अकुशल कर्म उनका विपाक सुख दुःख और उनके फल अति आयु भोग रूप ॥ ४ ॥ विपाकके समान वासनासे इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है; भोग भोगोंके संस्कार तीन कालके गोचरता उसमें नहीं ॥ ५ ॥ उसका कारण कर्त्ता आदि अन्त मध्य कर्म करण अकार्य

॥ उपमन्युरुवाच ॥ न शिवस्याणवो बंधः कार्यो मायेय एव वा ॥ प्राकृतो वाथ बोद्धा वा ह्यहंकारात्मकस्तथा ॥ १ ॥ नैवास्य मानसो बंधो न चैत्तो नेंद्रियात्मकः ॥ न च तन्मात्रबंधोऽपि भूतबंधो न कश्चन ॥ २ ॥ न च कालः कला चैव न विद्या नियतिस्तथा ॥ न रागो न च विद्वेषः शंभोरमिततेजसः ॥ ३ ॥ न चास्त्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाऽकुशलान्यपि ॥ कर्माणि तद्विपाकश्च सुखदुःखे च तत्फले ॥ ४ ॥ आशयैर्नापि संबंधः संस्कारैः कर्मणामपि ॥ भोगैश्च भोगसंस्कारैः कालत्रितयगोचरैः ॥ ५ ॥ न तस्य कारणं कर्ता नादिरंतस्तथांतरम् ॥ न कर्म करणं वापि नाकार्यं कार्यमेव च ॥६॥ नास्य बंधुरबंधुर्वा नियंता प्रेरकोऽपि वा ॥ न पतिर्न गुरुस्त्राता नाधिको न समस्तथा ॥ ७ ॥ न जन्ममरणे तस्य न कांक्षितमकांक्षितम् ॥ न विधिर्न निषेधश्च न मुक्तिर्न च बंधनम् ॥ ॥ ८ ॥ नास्ति यद्यदकल्याणं तत्तदस्य कदाचन ॥ कल्याणं सकलं चास्ति परमात्मा शिवो यतः ॥ ९ ॥ स शिवस्सर्वमेवेदमधिष्ठाय स्वशक्तिभिः ॥ अप्रच्युतस्स्वतो भावः स्थितः स्थाणुरतः स्मृतः ॥ १० ॥

कार्य कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ इनका बन्धु शत्रु नियंता प्रेरक अति गुरु भ्राता अधिक सम कोई नहीं है ॥ ७ ॥ इनके जन्म मरण कांक्षित अकांक्षित कुछ नहीं है; विधि निषेध मुक्ति बन्धन कुछ नहीं है ॥ ८ ॥ जो जो अकल्याणी वस्तु है वह उसमें कुछ नहीं हैं; और उस परमात्मा शिवमें सब कल्याण निवास करतेहैं ॥ ९ ॥ वह यह सबकुछ शिवही अपनी शक्तिसे अधिष्ठितहैं कभी च्युत नहीं होनेवाला स्वयं भावसे स्थाणु हो स्थित है ॥ १० ॥

जिस कारणसे कि यह स्थावर जंगमात्मक जगत् शिवसे अधिष्ठितहै;वह शिव सर्वरूपसे स्थित होताहै उसको जानकर फिर शोच नहीं करना पडता है ॥११॥
सर्वरुद्र पुरुष परममहान्के निमित्त नमस्कार है; वह हिरण्यबाहु भयवान् हिरण्यपति ईश्वरहैं ॥ १२ ॥ वह अंबिकाके पति ईशान पिनाकी वृषवाहनहैं, एक
रुद्र परब्रह्म पुरुष कृष्ण पिंगलहैं ॥ १३ ॥ वह बालाग्रमात्र हृदयके मध्य दहरस्थानमें है उसको विचारना चाहिये, वह हिरण्यकेश पद्माक्ष अरुण ताम्ररूपहैं
॥ १४ ॥ जो यह देव नीललोहित विचरतेहैं, सौम्य और घोररूप मित्र अक्षर अमृत अव्यय ॥१५॥ वह विशेष परम भगवान् अन्तकके अन्तक अचे

शिवेनाधिष्ठितं यस्माज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वरूपः स्मृतश्शर्वस्तथा ज्ञात्वा न मुह्यति ॥ ११ ॥ शर्वो रुद्रो नमस्तस्मै पुरुषः सत्परो
महान् ॥ हिरण्यबाहुर्भगवान्हिरण्यपतिरीश्वरः ॥ १२ ॥ अंबिकापतिरीशानः पिनाकी वृषवाहनः ॥ एको रुद्रः परं ब्रह्म पुरुषः कृष्ण
पिंगलः ॥ १३ ॥ बालाग्रमात्रो हृन्मध्ये विचिंत्यो दहरांतरे ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षो ह्यरुणस्ताम्र एव च ॥ १४ ॥ योऽवसर्पत्यसौ देवो
नीलग्रीवो हिरण्मयः ॥ सौम्यो घोरस्तथा मिश्रश्चाक्षरश्चामृतोऽव्ययः ॥ १५ ॥ स पुंविशेषः परमो भगवानन्तकांतकः ॥ चेतनाचेतनो
न्मुक्तः प्रपंचाच्च परात्परः ॥ १६ ॥ शिवेनातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यें विलोकिते ॥ लोकेशातिशयत्वेन स्थितं प्राहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥
प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् ॥ उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम् ॥ १८ ॥ कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ
गुरुः ॥ सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः ॥ १९ ॥ शुद्धा स्वाभाविकी तस्य शक्तिस्सर्वातिशायिनी ॥ ज्ञानमप्रतिमं नित्यं
वपुरत्यंतनिर्मितम् ॥ २० ॥ ऐश्वर्यमप्रतिद्वंद्वं सुखमात्यन्तिकं बलम् ॥ तेजःप्रभावो वीर्यं च क्षमा कारुण्यमेव च ॥ २१ ॥

तनको चेतन करनेवाला मुक्त प्रपञ्चसे परे ॥ १६ ॥ लोकमें अतिशय ज्ञानैश्वर्य देखनेसे उसमें अतिशय भक्ति होनेसे स्थिति होती है, ऐसा विद्वान् कहते
हैं ॥ १७ ॥ कल्पके आदि उत्पन्नहुए ब्रह्माको वही वेदका उपदेश करतेहैं ॥ १८ ॥ कालके अवच्छेदसे युक्त होनेसे वह गुरुओंका भी गुरु है, कालके
अवच्छेदसे रहित वह सबका ईश है॥ १९ ॥उसकी स्वाभाविकी सिद्ध अतिशय शक्तिहै. और अत्यन्त निर्मल ज्ञान उनको सदा प्राप्त है॥ २० ॥सजातीय द्विती

यादि रहित उनका ऐश्वर्य है; अत्यन्त सुख और बल है, तेज प्रभाव वीर्य करुणा ॥ २१ ॥ यह सृष्टिकी आदिमें सब प्राप्त है; उसको कुछ प्रयोजन
नहीं रहता; पर जीवोंके ऊपर अनुग्रह करनेकोही उनको कर्मोंका फल देता है ॥ २२ ॥ उस परमात्मा शिवका वाचक ॐकार है शिव रुद्रादि
शब्दोंका प्रणव (ओंकार) ही पर है ॥ २३ ॥ प्रणव वाच्य शिवकी भावना और जप करनेसे जो सिद्धि है वही परा प्राप्त होती है; इसमें सन्देह नहीं ॥
॥ २४ ॥ इस कारण शास्त्रज्ञाता उसे एकाक्षर कहते हैं, बुद्धिमान् वाच्य वाचककी एकता मानतेहुए ध्यान करते हैं ॥ २५ ॥ इसकी वेदके शिरोरूप

परिपूर्णस्य सर्गाद्यैर्नात्मनोऽस्ति प्रयोजनम् ॥ परानुग्रह एवास्य फलं सर्वस्य कर्मणः ॥ २२ ॥ प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमा
त्मनः ॥ शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परस्स्मृतः ॥ २३ ॥ शंभोः प्रणववाच्यस्य भवनात्तज्जपादपि ॥ या सिद्धिस्सा परा प्राप्या
भवत्येव न संशयः ॥ २४ ॥ तस्मादेकाक्षरं देवमाहुरागमपारगाः ॥ वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना मनस्विनः ॥ २५ ॥ अस्य मात्राः
समाख्याताश्चतस्रो वेदमूर्द्धनि ॥ अकारश्चाप्युकारश्च मकारो नाद इत्यपि ॥ २६ ॥ अकारं बह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते ॥ मकारः
सामनादोस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृता ॥ २७ ॥ अकारश्च महाबीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुखः ॥ उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः ॥
॥ २८ ॥ मकारः पुरुषो बीजं तमः संहारको हरः ॥ नादः परः पुमानीशो निर्गुणो निष्क्रियः शिवः ॥ २९ ॥ सर्वं तिसृभिरेवेदं मात्रा
भिर्निखिलं त्रिधा ॥ अभिधाय शिवात्मानं बोधयत्यर्द्धमात्रया ॥ ३० ॥

चार मात्रा कही हैं, अकार उकार मकार और नाद ॥ २६ ॥ अकार ऋग्वेद उकार यजुर्वेद मकार साम और नाद अथर्व वेद है ॥२७॥ अकार महाबीज
रजोगुणयुक्त ब्रह्मा चतुर्मुख जगत्के उत्पादक हैं; उकार प्रकृति योनि सत्त्वगुण है, उसका पालक विष्णु है ॥ २८ ॥ मकार पुरुष बीज तम है; उससे संहार
कर्ता हर हैं, नाद परपुरुष ईश निर्गुण निष्क्रिय शिव हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार यह तीन मात्राओंसे तीन प्रकारहो आधी मात्रासे अपने शिव आत्माको

यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित् ॥ वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ उपमन्युरुवाच ॥
शक्तिस्स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा ॥ एकानेकस्य रूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥ १ ॥ अनंताः शक्तयो यस्या इच्छाज्ञान
क्रियादयः ॥ मायाद्याश्चाभवन्वह्नेर्विस्फुलिंगा यथा तथा ॥ २ ॥ सदाशिवेश्वराद्या हि विद्याऽविद्येश्वरादयः ॥ अभवन्पुरुषाश्चास्याः प्रकृ
तिश्च परात्परा ॥ ३ ॥ महदादिविशेषांतास्त्वजाद्याश्चापि मूर्त्तयः ॥ यच्चान्यदस्ति तत्सर्वं तस्याः कार्य्यं न संशयः ॥ ४ ॥ सा शक्ति
स्सर्वगा सूक्ष्मा प्रबोधाऽऽनंदरूपिणी ॥ शक्तिमानुच्यते देवश्शिवश्शीतांशुभूषणः ॥ ५ ॥ वेद्यश्शिवश्शिवा विद्या प्रज्ञा चैव श्रुतिः
स्मृतिः ॥ धृतिरेषा स्थितिर्निष्ठा ज्ञानेच्छाकर्मशक्तयः ॥ ६ ॥ आज्ञा चैव परं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे ॥ शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वं शक्ति
कृतं यतः ॥ ७ ॥ माया च प्रकृतिर्जीवो विकारो विकृतिस्तथा ॥ असच्च सच्च यत्किंचित्तया सर्वमिदं ततम् ॥ ८ ॥

बोधक करता है ॥ ३० ॥ उससे परे कोई नहीं है, अपर कोई नहीं है उससे सूक्ष्म और बृहत् कोई नहीं है; वह वृक्षके समान स्तब्ध एकही स्वर्गमें स्थित है; उसी पुरुषने यह सब पूर्ण कर रक्खा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ उपमन्यु बोले, विद्या विश्व लक्षणवाली उस परमात्माकी स्वाभाविकी शक्ति है वह एकही अनेक स्वरूपसे प्रकाश होता है जैसे सूर्यकी कान्ति ॥ १ ॥ उसके इच्छा ज्ञान क्रियादिक अनन्त शक्ति हैं; और मायासे प्रादुर्भूत होते हैं, जैसे अग्निसे अग्निके फुलिंग प्रगट होते हैं ॥ २ ॥ सदाशिव ईश्वरादि और अनेक विश्वेश्वरादि और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और परेसे परे प्रकृति ॥ ३ ॥ महत्से आदि लेकर विशेष पर्यन्त और ब्रह्मादिक मूर्ति और भी जो कुछ है वह सब उसीका रूप है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ वही सर्वगामिनी सूक्ष्मा शक्ति है, प्रबोधानंदस्वरूपवाली है, वही देव शक्तिमान् शिव शीतांशु भूषणधारी है ॥ ५ ॥ जानने योग्य शिव और शिवा विद्या हैं, वही प्रज्ञा श्रुति और स्मृति है, धृती वही हैं, स्थिति निष्ठा ज्ञान इच्छा कर्म शक्ति है ॥ ६ ॥ आज्ञा उनकी परब्रह्म है दो विद्या हैं पर और अपर शुद्ध विद्या शुद्ध कला सर्वशक्तिका कियाहुआ है ॥ ७ ॥ माया प्रकृति जीव विकार विकृति असत् सत् जो कुछ भी है

उससे भी यह सब जगत् विस्तृत होरहा है ॥ ८ ॥ उसी देवीने यह चराचरात्मक सब ब्रह्माण्ड मोहित कर रक्खा है; और बिना प्रयत्नके लीलाहीसे मुक्त करती हैं ॥ ९॥ इसी सत्ताईस प्रकारवाली मायासे वह देवेश विश्वको व्याप्त कर स्थित हैं, उन्हींसे मुक्ति प्रवृत्त होती है ॥१०॥ पूर्वकालमें कोई ब्रह्मवादी मुनि संशययुक्त मनसे परस्पर विचार करने लगे ॥ ११ ॥ किस कारणसे हम कहाँसे उत्पन्न होकर किस प्रकारसे जीवित हैं, किस प्रकार हमारी प्रतिष्ठा और हम किससे अधिष्ठित हैं ॥ १२ ॥ और सब रात्रियोंमें हम किसके द्वारा सुखसे वर्त्तते हैं वह उल्लंघन करने अयोग्य संसारकी व्यवस्था किसने की है

सा देवी मायया सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम् ॥ मोहयत्यप्रयत्नेन मोचयत्यपि लीलया ॥ ९ ॥ अनया सह सर्वेशः सप्तविंशप्रकारया ॥
विश्वं व्याप्य स्थितस्तस्मान्मुक्तिरत्र प्रवर्तते ॥ १० ॥ मुमुक्षवः पुरा केचिन्मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ संशयाविष्टमनसो विमृशंति यथात
थम् ॥ ११ ॥ किं कारणं कुतो जाता जीवामः केन वा वयम् ॥ कुत्रास्माकं संप्रतिष्ठा केन वाधिष्ठिता वयम् ॥ १२ ॥ केन वर्तामहे
शश्वत्सुखेष्वन्येषु चानिशम् ॥ अविलंघ्या च विश्वस्य व्यवस्था केन वा कृता ॥ १३ ॥ कालस्य भावो नियतिर्यदृच्छा नात्र युज्यते ॥
भूतानि योनिः पुरुषो योगी चैषां परोऽथ वा ॥ १४ ॥ अचेतनत्वात्कालादेश्चेतनत्वेपि चात्मनः ॥ सुखदुःखानि भूतत्वादनीशत्वाद्वि
चार्यते ॥ १५ ॥ तद्ध्यानयोगानुगतां प्रपश्यञ्छक्तिमैश्वरीम् ॥ पाशविच्छेदिकां साक्षान्निगूढां स्वगुणैर्भृशम् ॥ १६ ॥ तया विच्छिन्नपा
शास्ते सर्वकारणकारणम् ॥ शक्तिमंतं महादेवमपश्यन्दिव्यचक्षुषा ॥ १७ ॥ यः कारणान्यशषाणि कालात्मसहितानि च ॥ अप्रमेयोऽ
नया शक्त्या सकलं योऽधितिष्ठति ॥ १८ ॥ ततः प्रसादयोगेन योगेन परमेण च ॥ दृष्टेन भक्तियोगेन दिव्यां गतिमवाप्नुयुः ॥ १९ ॥

॥ १३ ॥ कालस्वभाव नियति (दैव) यदृच्छा इसमें युक्त नहीं की जाती है, प्राणियोंकी योनि पुरुष इनका योग और पर ॥ १४ ॥ अचेतन होनेसे कालादिका और चेतन होनेसे जीवका सुख दुःखसे आविर्भूत होनेसे अनीशत्त्व विचार कर ॥ १५ ॥ वे ध्यानयोगको प्राप्तहो उसकी ईश्वरीशक्ति देखनेलगे, जो पाशके विच्छेद करनेवाली और अपने गुणोंसे गुप्त उससे विच्छिन्न पाशबंधन होवे सबके कारणके कारण शक्तिमान् महादेवको दिव्य चक्षुसे देखनेलगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो सम्पूर्णके कारण कालात्मा सहित हैं अप्रमेय हैं; वही एक इस शक्तिके सहित स्थित हैं ॥ १८ ॥ फिर प्रसादयोग परमयोग तथा

दृढभक्ति योगसे दृढगतिको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ इस कारणसे भक्तिपूर्वक जो शिवको हृदयमें देखते हैं, उन्हींको निरन्तर शान्ति होती है, दूसरोंको नहीं, यह श्रुति है ॥ २० ॥ शक्तिमान्का शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता है, इस कारण शक्ति और शक्तिमान्के प्रसादसे परमसुखकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ मुक्तिकी प्राप्तिमें ज्ञान और कर्मका कोई विवक्षित नहीं है; उनके प्रसन्न होनेमें वह मुक्ति हाथमें स्थित है ॥ २२ ॥ देव दानव पशु विहंग कीट कृमि सब उनकी प्रसन्नतासे मुक्त होजातेहैं ॥ २३ ॥ गर्भसे उत्पन्नहुआ बालक वा तरुण वृद्ध मृतक होताहुआ स्वर्गमें स्थित वा नरकगामी ॥ २४ ॥ पतित

तस्मात्सह तथा शक्त्या हृदि पश्यंति ये शिवम् ॥ तेषां शाश्वतिकी शांतिर्नेतरेषामिति श्रुतिः ॥ २० ॥ न हि शक्तिमतश्शक्त्या विप्रयोगोऽस्ति जातुचित् ॥ तस्माच्छक्तेः शक्तिमतस्तादात्म्यान्निर्वृतिर्द्वयोः ॥ २१ ॥ क्रमो विवक्षितो नूनं विमुक्तौ ज्ञानकर्मणोः ॥ प्रसादे सति सा मूर्तिर्यस्मात्करतले स्थिता ॥ २२ ॥ देवो वा दानवो वापि पशुर्वा विहगोऽपि वा ॥ कीरो वाथ कृमिर्वापि मुच्यते तत्प्रसादतः ॥ २३ ॥ गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा ॥ वृद्धो वा म्रियमाणो वा स्वर्गस्थो वाथ नारकी ॥ २४ ॥ पतितो वापि धर्मात्मा पंडितो मूढ एव वा ॥ प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्र संशयः ॥ २५ ॥ अयोग्यानां च कारुण्याद्भक्तानां परमेश्वरः ॥ प्रसीदति न संदेहो विगृह्य विविधान्मलान् ॥ २६ ॥ प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः ॥ अवस्थाभेदमुत्प्रेक्ष्य विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ २७ ॥ प्रसादपूर्विका येयं भुक्तिमुक्तिविधायिनी ॥ नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना ॥ २८ ॥ अनेकजन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम् ॥ विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः ॥ २९ ॥

धर्मात्मा पंडित, मूर्ख, देवके प्रसादसे तत्काल मुक्त होजाताहै; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ जो अयोग्य है उनके ऊपर करुणाकृपा करके वह परमेश्वर उनके पाप दूरकर उनपर प्रसन्न होजातेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ प्रसादसेही वह भक्ति और भक्तिसे मुक्ति होजाती है; अधिकार भेदको देखकर विद्वान् उसमें मोहित नहीं होतेहैं ॥ २७ ॥ प्रसादपूर्वक वह भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है, वह मुक्ति एक जन्ममें मनुष्योंको प्राप्त नहीं होती है ॥ २८ ॥ श्रुतिके अनुसार

वर्तनेवाले अनेक जन्ममें सिद्ध हुए; विरक्त और संसारसे जागनेवालोंके ऊपर परमेश्वर सन्तुष्ट होजातेहैं ॥ २९ ॥ देवेशके प्रसन्न होनेपर यह जीव
उस भक्तिमें प्रवृत्त होता है. मेरे स्वामी शिवहैं; पूर्वकालमें इस सूक्ष्म भक्तिहीके द्वारा ॥ ३० ॥ तपसे विवश होकर यह मनुष्य शैवधर्ममें तत्पर होता
है; उसके प्रयोग और अभ्याससे भक्तिमें तत्परता होती है ॥ ३१ ॥ उस परमभक्तिसे परमप्रसादकी प्राप्ति होती है. प्रसादसेही सब पाशबन्धनसे मुक्ति
मुक्तकी और निर्वृति होजाती है ॥ ३२ ॥ जिस मनुष्यका शिवमें अल्पभाव हो वह भी तीन जन्ममें मुक्त होजाता है; फिर उसे योनियन्त्रकी पीडा नहीं

प्रसन्ने सति देवेशे पशौ तस्मिन्प्रवर्तते ॥ अस्ति नाथो ममेत्यल्पा भक्तिर्बुद्धिपुरस्सरा ॥ ३० ॥ तपसा विविधैश्शैवैर्धर्मैस्संयुज्यते
नरः ॥ तत्प्रयोगे तदभ्यासस्ततो भक्तिः परा भवेत् ॥ ३१ ॥ परया च तया भक्त्या प्रसादो लभ्यते परः ॥ प्रसादात्सर्वपाशेभ्यो
मुक्तिर्मुक्तस्य निर्वृतिः ॥ ३२ ॥ अल्पभावोऽपि यो मर्त्यस्सोऽपि जन्मत्रयात्परम् ॥ न योनियंत्रपीडायै भवेन्नैवात्र संशयः ॥ ३३ ॥
सांगाऽनंगा च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते ॥ सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः ॥ ३४ ॥ शिवरूपादिचिंता या सा सेवा
मानसी स्मृता ॥ जपादिर्वाचिकी सेवा कर्मपूजादि कायिकी ॥ ३५ ॥ सेयं त्रिसाधना सेवा शिवधर्मश्च कथ्यते ॥ स तु पंचविधः
प्रोक्तः शिवेन परमात्मना ॥ ३६ ॥ तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति समासतः ॥ कर्मलिङ्गार्चनाद्यं च तपश्चान्द्रायणादिकम् ॥ ३७ ॥
जपस्त्रिधा शिवाभ्यासश्चिन्ता ध्यानं शिवस्य तु ॥ शिवागमोक्तं यज्ज्ञानं तदत्र ज्ञानमुच्यते ॥ ३८ ॥

होती ॥ ३३ ॥ बाह्य और मनके उपचार सहित जो सेवाहै; उसीका नाम भक्ति है; वह मन वाणी कायाके साधनसे तीन प्रकारकी है ॥ ३४ ॥
शिवरूप चिन्तनका नाम मानसी सेवा है, जपादि वाचिकी सेवा है; कर्मपूजा कायिकपूजा कहलाती है ॥ ३५ ॥ यही त्रिसाधना सेवा शिवधर्म कहलाता
है; वह धर्म परमात्मा शिवने पांच प्रकारका कहा है ॥ ३६ ॥ तप कर्म जप ज्ञान और ध्यानरूपसे संक्षेपसे कहा है, कर्म पूजालिंगकी अर्चा आदि तप
चान्द्रायणादि ॥ ३७ ॥ तीन प्रकारका जप यह है शिवशास्त्रमें अभ्यास शिवकी चिन्ता करना ध्यान है, शिवशास्त्रमें कहा जो ज्ञान है वही यहां ज्ञान

शब्दसे व्यवहार किया है जो श्रीकण्ठ शिवने पार्वतीके प्रति शास्त्र कहा है ॥ ३८ ॥ वह उनका दयापूर्वक कहाहुआ शिवभक्तोंको एक साधन है ॥ ३९ ॥ इस कारण परम कारुणिक शिवमें भक्ति बढानी चाहिये और कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विषयोंके संगको त्यागन करैं ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! शिवजीका कहाहुआ जो वेदसार ज्ञान है, जो उन्होंने अपने भक्तोंके मुक्तिके लिये कहा है, सो मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ जो अभक्त अज्ञानी अयोगी हैं उनको वह ज्ञान प्राप्त नहीं होसकता; पांच

श्रीकंठेन शिवेनोक्तं शिवायै च शिवागमः ॥ शिवाश्रितानां कारुण्याच्छ्रेयसामेकसाधनम् ॥ ३९ ॥ तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिं शिवे परम कारणे ॥ त्यजेच्च विषयासंगं श्रेयोऽर्थी मतिमान्नरः ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्व कथन्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवेन परिभाषितम् ॥ वेदसारे शिवज्ञानं स्वाश्रितानां विमुक्तये ॥ १ ॥ अभक्तानामबुद्धीनामयुक्तानामगोचरम् ॥ अर्थैर्दशार्द्धैः संयुक्तं गूढमप्राज्ञनिंदितम् ॥ २ ॥ वर्णाश्रमकृतैर्द्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् ॥ वेदात्षडंगादुद्धृत्य सांख्याद्योगाच्च कृत्स्नशः ॥ ३ ॥ शतकोटिप्रमाणेन विस्तीर्णं ग्रंथसंख्यया ॥ कथितं परमेशेन तत्र पूजा कथं प्रभोः ॥ ४ ॥ कस्याधिकारः पूजादौ ज्ञानयोगादयः कथम् ॥ तत्सर्वं विस्तरादेव वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥ ५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम् ॥ स्तुतिनिंदादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ ६ ॥

सर्गोंसे युक्त जिसकी मूढता देखकर वह मूर्ख निंदा करतेहैं ॥ २ ॥ कहीं वर्णाश्रमके धर्मोंसे विपरीत और कहीं समान, षडंग वेद और सांख्य योगसे जो सम्पूर्ण ग्रहण कियागया ॥ ३ ॥ जिस ग्रन्थकी संख्या प्रमाणसे सौ करोड है; उसको परमेश्वरने कहा है हे प्रभो ! उसमें पूजा किस प्रकार कथन कीहै ॥ ॥ ४ ॥ पूजादिमें किसका अधिकार है, और वह ज्ञान योगादि किस प्रकार है ? हे सुव्रत ! सो हमसे आप सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ५ ॥ उपमन्यु बोले, जो शिवने शास्त्र कहा है, उसको संक्षेप करके जो कि निंदा स्तुतिसे रहित हैं, जिनके श्रवणसे शीघ्रही विश्वास होता है ॥ ६ ॥

जो गुरुके प्रसादसे प्राप्त होता और अनायाससेही जिससे मुक्ति होजाती है, उसको संक्षेपसे कहता हूँ विस्तारसे तो कोई नहीं कह सकता ॥ ७ ॥ जिस समय स्थाणु शिव सत्कार्य करणसे युक्त हो सृष्टि रचनेकी इच्छा करने लगे तब स्वयं ही प्रगट हुए ॥ ८ ॥ तब देवाधिदेव शंकरने देवताओंके देवता ब्रह्माजीको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ तब ब्रह्माजीने उत्पन्न होकर देवाधिदेव अपने पिताको देखा तब शिवने उन उत्पन्न हुए ब्रह्माजीको आज्ञा दी ॥ १० ॥ रुद्रदेवसे देखेहुए ब्रह्माजी संसारकी रचना करने लगे, और वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी उन्होंने पृथक् २ की ॥ ११ ॥ यज्ञके निमित्त सोमकी रचना की,

गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम् ॥ कथयिष्ये समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ॥ ७ ॥ सिसृक्षया पुराव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः ॥ सत्कार्यकारणोपेतस्स्वयमाविरभूत्प्रभुः ॥ ८ ॥ जनयामास च तदा ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः ॥ देवानां प्रथमं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मापि पितरं देवं जायमानं न्यवैक्षत ॥ तं जायमानं जनको देवः प्रापश्यदाज्ञया ॥ १० ॥ दृष्टो रुद्रेण देवोऽसावसृजद्विश्वमीश्वरः ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थां च चकार स पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ सोमं ससर्ज यज्ञार्थे सोमाद्द्यौस्समजायत ॥ धरा च वह्निः सूर्यश्च यज्ञो विष्णुश्शचीपतिः ॥१२॥ ते चान्ये च सुरा रुद्रं रुद्राध्यायेन तुष्टुवुः ॥ प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानामग्रतः प्रभुः ॥ १३ ॥ अपहृत्य स्वलीलार्थं तेषां ज्ञानं महेश्वरः ॥ तमपृच्छंस्ततो देवाः को भवानिति मोहिताः ॥ १४ ॥ सोऽब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः ॥ आसं प्रथममेवाहं वर्त्तामि च सुरोत्तमाः ॥ १५ ॥ भविष्यामि च मत्तोन्यो व्यतिरिक्तो न कश्चन ॥ अहमेव जगत्सर्वं तर्पयामि स्वतेजसा ॥ १६ ॥

सोमसे स्वर्ग हुआ. पृथ्वी, वह्नि, सूय, यज्ञ, शचीपति इन्द्र ॥ १२ ॥ वह सब देवता प्रादुर्भूत हो रुद्राध्यायसे देवको सन्तुष्ट करने लगे, तब वह प्रभु देवताओंके सन्मुख प्रसन्न होकर स्थित हुए ॥ १३ ॥ तब महेश्वरने लीलाके निमित्त उनके ज्ञानको हरण करलिया, तब देवता कहने लगे आप कौन हो, ऐसा कह मोहित होगये ॥ १४ ॥ तब भगवान् रुद्रने कहा मैंही एक पुरातन देव हूँ, हे देवताओ ! सबसे पहले मैं ही था और मैंही सर्वत्र वर्तमान हूँ ॥ १५ ॥ और आगे भी मैंही हूंगा, मुझसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, मैंही अपने तेजसे सब जगत्को तृप्त करता हूँ ॥ १६ ॥

मुझसे अधिक और समान कोई नहीं है जो ऐसा जानता है वह मुक्त होजाता है, भगवान् रुद्र ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान होगये, जब विष्णु आदि
देवताओंने उनको न देखा तब वह ऊपरको भुजा उठाय अथर्व शिरके मन्त्रोंसे तथा सामके मन्त्रोंसे ॥ १७ ॥ उनको सन्तुष्ट करने लगे, अथर्व शिरमें
कहेहुए पाशुपत व्रतको करके सब देवताओंने अपने शरीरमें भस्म लगाई ॥ १८ ॥ तब उनके प्रसन्न करनेके निमित्त पशुपति ईश्वर ॥ १९ ॥ गण और
पार्वतीसहित उस स्थानमें आनकर प्राप्त हुए जिनको निद्रा और श्वासके जीतनेवाले पापरहित योगी ॥ २० ॥ हृदयमें देखतेहैं, उन देवदेवका दर्शन

मत्तोऽधिकः समो नास्ति मां यो वेद स मुच्यते ॥ इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवांतरधत्त सः ॥ अपश्यंतस्तमीशानं स्तुवंतश्चैव साम
भिः ॥ १७ ॥ व्रतं पाशुपतं कृत्वा त्वथर्वशिरासि स्थितम् ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगा बभूवुरमरास्तदा ॥ १८ ॥ अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां
पतिरीश्वरः ॥ १९ ॥ सगणश्चोमया सार्द्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः ॥ यं विनिद्रा जितश्वासा योगिनो दग्धकिल्बिषाः ॥ २० ॥ हृदि
पश्यंति तं देवं ददृशुर्देवपुंगवाः ॥ यामाहुः परमां शक्तिमीश्वरेच्छानुवर्तिनीम् ॥ २१ ॥ तामपश्यन्महेशस्य वामतो वामलोचनाम् ॥
ये विनिर्धूतसंसाराः प्राप्ताः शैवं परं पदम् ॥ २२ ॥ नित्यसिद्धाश्च ये वान्यं ते च दृष्टा गणेश्वराः ॥ अथ तं तुष्टुवुर्देवा देव्या सह महे
श्वरम् ॥ २३ ॥ स्तोत्रैर्माहेश्वरैर्दिव्यैः श्रौतैः पौराणिकैरपि ॥ देवोऽपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः ॥ २४ ॥ तुष्टोऽस्मीत्याह
सुप्रीतस्स्वभावमधुरां गिरम् ॥ अथ सुप्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम् ॥ अर्थमहत्तमं देवाः पप्रच्छुरिममादरात् ॥ २५ ॥

देवताओंने किया, जिसको ईश्वरकी इच्छाके अनुवर्तनेवाली ईश्वरकी परम शक्ति कहते हैं ॥ २१ ॥ उस वामलोचनाको शिवके वामांगमें उन्होंने दर्शन
किया, जो संसारसे विरक्तहो शैवपदको प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ जो नित्य सिद्ध हैं; उन गणेश्वरोंका भी दर्शन किया तब देवता देवीके सहित महेश्वरकी
प्रार्थना करने लगे ॥ २३ ॥ और शिवसम्बंधी दिव्य तथा महेश्वर सम्बन्धी पुराणके श्लोकोंसे स्तुति करने लगे, वृषध्वज देवने भी कृपा करके देवताओंको
देखकर ॥ २४ ॥ कहा मैं प्रसन्न हूँ यह प्रसन्नहो स्वभावसे कोमलवाणीसे बोले तब प्रसन्न मनहो शिवको प्रणाम कर उन अधिक प्रार्थनीय देवको देवता

आदरसें कहने लगे ॥ २५ ॥ देवता बोले, हे भगवन् ! किस मार्गसे आप पृथ्वीमें पूजे जाते हैं और पूजामें किसका अधिकार है सो आप तत्त्वसे
कहिये ॥ २६ ॥ तब शिवजी हँसतेहुए देवीजीको देखकर अपना घोर सूर्यात्मक रूप दिखाने लगे ॥ २७ ॥ जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यके गुणोंसे युक्त सर्व
तेजोमय अपने सब मूर्ति ग्रह और देवताओंसे युक्त ॥ २८ ॥ आठ भुजा, चार मुख, अर्धनारीका अद्भुत स्वरूप शिवका देखकर विष्णु आदि सब देवता
॥ २९ ॥ शिवको सूर्य और देवीको चन्द्रमा जानकर, सम्पूर्ण चराचर पंचभूतरूप ॥ ३० ॥ उनको देख अर्घ्य देकर स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥

देवा ऊचुः ॥ भगवन्केन मार्गेण पूजनीयोऽसि भूतले ॥ कस्याधिकारः पूजायां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥२६॥ ततः सस्मितमालोक्य देवीं
देववरोहरः ॥ स्वरूपं दर्शयामास घोरं सूर्यात्मकं परम् ॥ २७ ॥ सर्वैश्वर्यगुणोपेतं सर्वतेजोमयं परम् ॥ शक्तिभिर्मूर्तिभिश्चांगैर्ग्रहैर्देवैश्च
संवृतम् ॥ २८ ॥ अष्टबाहुं चतुर्वक्रमर्द्धनारीकमद्भुतम् ॥ दृष्ट्वैवमद्भुताकारं देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ २९ ॥ बुद्ध्वा दिवाकरं देवं देवीं चैव
निशाकरम् ॥ पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वा नमश्चक्रुस्तस्मै चार्घ्यं प्रदाय वै ॥ ३१ ॥ सिंदूरवर्णाय
सुमण्डलाय सुवर्णवर्णाभरणाय तुभ्यम् ॥ पद्माभनेत्राय सपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३२ ॥ सुरत्नपूर्णं ससुवर्णतोयं सकुं
कुमाद्यं सकुशं सपुष्पम् ॥ प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥ ३३ ॥ नमश्शिवाय शांताय सगणायादिहेतवे ॥
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ॥ ३४ ॥ यश्शिवं मण्डले सौरे संपूज्यैव समाहितः ॥ प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने प्रदद्यादर्घ्यमुत्तमम् ॥
॥ ३५ ॥ प्रणमेद्वा पठेदेतांञ्छ्लोकाञ्छ्रुतिमुखानिमान् ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिद्भक्तश्चेन्मुच्यते दृढम् ॥ ३६ ॥

सिंदूरवर्ण मण्डलाकार सुवर्ण और हीरे जडे आभरणोंसे युक्त कमलनेत्र कमलयोनि सहित ब्रह्मादि नारायणके कारणके निमित्त ॥ ३२ ॥ रत्न और
सुवर्णसे पूर्ण कुंकुम कुश पुष्पामिला जल सुवर्णपात्रमें लेकर भगवान्के निमित्त देकर बोले, भगवान् प्रसन्नहो ॥ ३३ ॥ शिवको साम्बगणोंके सहित
नमस्कार है; रुद्र विष्णु ब्रह्म सूर्य मूर्तिके निमित्त नमस्कार है ॥ ३४ ॥ जो शिवको सूर्यमण्डलमें सावधान होकर पूजता है, प्रातःकाल मध्याह्न और
सन्ध्याको अर्घ्य देता है ॥ ३५ ॥ जो प्रणाम करते वा इस स्तोत्रको पढते सौ बार कहते हैं उनको कुछ दुर्लभ नहीं रहता, और दृढभक्ति होनेसे मुक्त

होजाते हैं ॥ ३६ ॥ उस कारण भक्तिसे नित्य आदित्यरूप शिवका पूजन करै; धर्म काम मुक्तिके कारण मन, वचन, कर्मसे ऐसा करै ॥ ३७ ॥ तब मण्डलमें स्थित शिव देवताओंको देखकर सब शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शास्त्र देकर अन्तर्धान होगये ॥ ३८ ॥ उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंकी पूजाका अधिकार जानकर वे देवता प्रणाम कर यथायोग्य स्थानमें गये ॥ ३९ ॥ फिर जब बहुत काल बीतनेपर वह शास्त्र छिपगया, तब शिवके अंकमें बैठीहुई परमेश्वरीने फिर पूँछा ॥ ४० ॥ तब उनकी प्रेरणासे चन्द्रमौलि देवने उस शास्त्रका सार निकालकर कहा ॥ ४१ ॥ परमेष्ठीके नियोगसे उसको लोकमें वर्णन किया;

तस्माद्भ्यर्चयेन्नित्यं शिवमादित्यरूपिणम् ॥ धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा ॥ ३७ ॥ अथ देवान्समालोक्य मण्डलस्थो महेश्वरः ॥ सर्वागमोत्तरं दत्त्वा शास्त्रमंतरधाद्धरः ॥ ३८ ॥ तत्र पूजाधिकारोऽयं ब्रह्मक्षत्रविशामिति ॥ ज्ञात्वा प्रणम्य देवेशं देवा जग्मुर्यथागतम् ॥ ३९ ॥ अथ कालेन महता तस्मिञ्छास्त्रे तिरोहिते ॥ भर्तारं परिपप्रच्छ तदंकस्था महेश्वरी ॥ ४० ॥ तया स चोदितो देवो देव्या चन्द्रविभूषणः ॥ अवदत्करमुद्धृत्य शास्त्रं सर्वागमोत्तरम् ॥ ४१ ॥ प्रवर्तितं च तल्लोके नियोगात्परमेष्ठिनः ॥ मयागस्त्येन गुरुणा दधीचेन महर्षिणा ॥ ४२ ॥ स्वयमप्यवतीयोर्व्यां युगावर्तेषु शूलधृक् ॥ स्वाश्रितानां विमुक्त्यर्थं कुरुते ज्ञानसंततिम् ॥ ४३ ॥ ऋभुस्सत्यो भार्गवश्च ह्यंगिराः सविता द्विजाः ॥ मृत्युः शतक्रतुर्धीमान्वसिष्ठो मुनिपुंगवः ॥४४॥ सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुंगवः ॥ शततेजास्स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः ॥ ४५ ॥ स्वरक्षश्चारुणिर्धीमांस्तथा चैव कृतंजयः ॥ कृतंजयो भरद्वाजो गौतमः कविरुत्तमः ॥ ४६ ॥ वाचःस्रवा मुनिस्साक्षात्तथा सूक्ष्मायणिः शुचिः ॥ तृणबिंदुर्मुनिः कृष्णः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः ॥ ४७ ॥

मैं गुरु अगस्त्य, और महर्षि दधीचिने इसे प्रवृत्त किया ॥ ४२ ॥ युगकी आदिमें शिवजी अवतार धारण कर अपने भक्तोंको मुक्तिके निमित्त ज्ञानप्रदान करतेहैं ॥ ४३ ॥ ऋभु सत्य भार्गव अंगिरा सविता मृत्यु इन्द्र धर्म मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ॥ ४४ ॥ सारस्वत त्रिधाम त्रिवृत मुनिश्रेष्ठ शततेज स्वयं धर्मरूप नारायण ॥ ४५ ॥ अपने सुन्दर धर्मके रक्षक कृतंजय मामतेय भरद्वाज कविश्रेष्ठ गौतम ॥ ४६ ॥ वाचःश्रवा मुनि सूक्ष्मायणि शुचि तृणबिन्दु मुनि कृष्ण

शक्ति शांक्तेय उत्तर ॥ ४७ ॥ जातूकर्ण्य हरि साक्षात् कृष्णद्वैपायन मुनि यह व्यासकल्प योगेश्वरोंको क्रमसे सुनै ॥ ४८ ॥ लिंगपुराणके सातवें अध्यायमें द्वापरके अन्तमें व्यासके अवतार और योगाचार्यके अवतार तथा कलियुगमें शिवका अवतार होता है, वह सब लिखा है ॥ ४९ ॥ प्रत्येक अवतारमें विभुके चार२ शिष्य होतेहैं; उनके शिष्य और प्रशिष्य सहस्रों हुएहैं ॥ ५० ॥ उनके सम्भाषणसे लोकमें और आज्ञा करणादिसे भाग्यवाले अत्यन्त भक्ति करके मुक्त होजातेहैं ॥५१॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स॰ वा॰ सं॰ उत्तरखण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, सब युगोंके प्रारम्भमें

जातूकर्ण्यो हरिस्साक्षात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ व्यासावताराञ्छृण्वंतु कल्पयोगेश्वरान्क्रमात् ॥ ४८ ॥ लैंगे व्यासावतारा हि द्वापरां
तेषु सुव्रताः ॥ योगाचार्यावताराश्च तथा शिष्येषु शूलिनः ॥ ४९ ॥ तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः स्युर्महौजसः ॥ शिष्यास्तेषां
प्रशिष्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥ तेषां संभावनाल्लोके शैवाज्ञाकरणादिभिः ॥ भाग्यवंतो विमुच्यंते भक्त्या चात्यंतभाविताः ॥
॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्वज्ञाने व्यासावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
॥ कृष्ण उवाच ॥ युगावर्तेषु सर्वेषु योगाचार्यच्छलेन तु ॥ अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन्वद ॥ १ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥
श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्रः कंक एव च ॥ लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च ॥ २ ॥ दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव
च ॥ सुपालको गौतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ॥ ३ ॥ गोकर्णश्च गुहावासी शिखंडी चापरः स्मृतः ॥ जटामाली चाट्टहासो दारुको
लांगुली तथा ॥ ४ ॥ महाकालश्च शूली च दंडी मुण्डीश एव च ॥ सविष्णुस्सोमशर्मा च लकुलीश्वर एव च ॥ ५ ॥ एते वारा
हकल्पेऽस्मिन्सप्तमस्यांतरे मनोः ॥ अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात् ॥ ६ ॥

योगाचार्यके छलसे शिवके अवतार और उनके शिष्योंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कंक लौगाक्षि महामाया जैगीषव्य ॥ २ ॥ दधिवाह, ऋषभ, मुनि, उग्र, अत्रि, सुबालक, गौतम, वेदशिरा मुनि ॥ ३ ॥ गोकर्ण, गुहावासी, शिखंडी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली ॥ ४ ॥ महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डी, सहिष्णु सोमशर्मा, नकुलीश्वर ॥ ५ ॥ यह सातवें वैवस्वतमनुके अन्तर वाराहकल्पमें हुए; युगोंके

क्रमसे अट्ठाईसही योगाचार्य हुएहैं ॥ ६ ॥ एक एकके शान्त चित्तवाले चार चार शिष्य हुएहैं, शान्तको आदि लेकर रुष्यतक शिष्योंको यथाक्रमसे कहता हूँ ॥ ७ ॥ श्वेतः, श्वेतशिखा, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान ॥ ८ ॥ विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम ॥ ९ ॥ सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सुधामा, विरज, शंखपाद, वैरज ॥ १० ॥ सारस्वत, मेघ, मेघवाह, कपिल, आसुरी, पंचशिखा, बाष्कल ॥ ११ ॥ पाराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतु, शृंग, तपोधन ॥ १२ ॥ लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष, लम्बकेश, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि ॥ १३ ॥ सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरज, अत्रि, उग्र, गुरु, श्रेष्ठ, श्रवण, अविष्टक ॥ १४ ॥ कुणी, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ॥ १५ ॥ उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानील, वाचश्रवा, सुवीर, श्यामाश्व, यतीश्वर ॥ १६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाशि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कबन्ध, कुश, कन्धर ॥ १७ ॥ प्लव, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, वल्लभी, मधुपिंग, श्वेतकेतु ॥ १८ ॥

शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारश्शांतचेतसः ॥ श्वेतादयश्च रुष्यांतांस्तान्ब्रवीमि यथाक्रमम् ॥ ७ ॥ श्वेतश्श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेत
लोहितः ॥ दुन्दुभिश्शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ॥ ८ ॥ विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः ॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमो
दुरतिक्रमः ॥ ९ ॥ सनत्कुमारस्सनकः सनंदश्च सनातनः ॥ सुधामा विरजाश्चैव शंखश्चांडज एव च ॥ १० ॥ सारस्वतश्च मेघश्च
मेघवाहस्सुवाहकः ॥ कपिलश्चासुरिः पंचशिखो बाष्कल एव च ॥ ११ ॥ पराशराश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा ॥ बलबन्धुर्निरामित्रः
केतुश्शृंगस्तपोधनः ॥ १२ ॥ लंबोदरश्च लंबश्च लम्बात्मा लंबकेशकः ॥ सर्वज्ञस्समबुद्धिश्च साध्यसिद्धिस्तथैव च ॥ १३ ॥ सुधामा
कश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ॥ अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवणोथ श्रविष्टकः ॥ १४ ॥ कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनश्च बृहस्पतिः ॥ १५ ॥ उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महाऽनिलः ॥ वाचःश्रवाः सुवीरश्च श्यावकश्च यती
श्वरः ॥ १६ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा ॥ सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः ॥ १७ ॥ प्लक्षो दार्भाय
णिश्चैव केतुमान्गौतमस्तथा ॥ भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ १८ ॥

उशिज, बृहदश्व, देवलकपि, शालहोत्र, सुवेश, शम्बूक, आश्वलायन, शरद्वसु, छगलकुण्ड, कर्णकुम्भ, प्रवाहुक, उलूक, विद्युत, शंबुक, आश्वलायन ॥१९॥ अक्षपाद, कणाद, उलूकवत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक, रुष्य ॥ २० ॥ यह योगाचार्य महेशके शिष्यहैं, इन सबकी संख्या ११२ एकसौ बारह होती है ॥२१॥ यह सब पाशुपतव्रतयुक्त भस्म अंगमें लगानेवाले सर्व शास्त्रार्थके तत्त्वके जाननेवाले वेदवेदांगके पारगामी ॥२२॥ शिवके आश्रममें प्रीति करनेवाले

उशिजो बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥ शालिहोत्रः सुवेषश्च युवनाश्वः शरद्वसुः[1] ॥ १९ ॥ अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च ॥ कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च ॥ २० ॥ एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः ॥ संख्या च शतमेतेषां सह द्वादशसंख्यया ॥ २१ ॥ सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदांगपारगाः ॥ २२ ॥ शिवाश्रमरतास्सर्वे शिवज्ञानपरायणाः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः ॥ २३ ॥ सर्वद्वंद्वसहा धीराः सर्वभूतहिते रताः ॥ ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेंद्रियाः ॥ २४ ॥ रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुंड्रांकितमस्तकाः ॥ शिखाजटास्सर्वजटा अजटा मुंडशीर्षकाः ॥ २५ ॥ फलमूलाशनप्रायाः प्राणायामपरायणाः ॥ शिवाभिमानसंपन्नाः शिवध्यानैकतत्पराः ॥ २६ ॥ समुन्मथितसंसारविषवृक्षांकुरोद्गमाः ॥ प्रयातुमेव सन्नद्धाः परं शिवपुरं प्रति ॥ २७ ॥

शिव ज्ञानपरायण सम्पूर्ण संगसे हीन एक शिवमेंही मन लगानेवाले ॥ २३ ॥ शीतोष्णादि द्वन्द्वके सहनेवाले सर्वभूतके हितकारी सीधे मृदु स्वस्थ जितक्रोध जितेन्द्रिय ॥ २४ ॥ रुद्राक्षकी मालाके आभरण धारण करनेवाले मस्तकमें त्रिपुंड्र लगाये शिखामात्र जटाधारी जटा तथा जटारहित मुण्डशिर ॥ २५ ॥ फल मूल भोजी प्राणायाममें परायण शैवमार्गके अभिमानमें तत्पर शिवकेही ध्यानमें तत्पर ॥ २६ ॥ संसाररूपी विषवृक्षके अंकुर नष्ट करनेवाले शिवके पुरमें

---

[1] छगलःकुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहुकः । उलूको विद्युतश्चैव शम्बुकश्चाश्वलायनः ॥ इत्यधिकं पद्यं कपुस्तके ।

जानेको कटिबद्ध हैं ॥ २७ ॥ इन श्वेतादिको अपना आचार्य मानकर नित्य शिवका अर्चन करै वह शिवके स्थानको चलाजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे नवमोऽध्यायः ॥९॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! हे सर्वयोगीन्द्र ! हे गणेश्वर ! हे मुनीश्वर ! कार्तिकेयके समान बुद्धिमान् सब ज्ञानके निधि हे गुरो ! ॥ १ ॥ प्रायः तुम पृथ्वीमें मनुष्योंके कर्मबन्धन नष्ट करनेको ही प्रगट हुए हो, तुम परमेश्वर ही महर्षिका शरीर धारण कर इस स्थानमें स्थित हुए हो ॥ २ ॥ नहीं तो इस जगत्में देवता तुम्हारे सिवाय चिदात्मक ईश्वरका परमभाव कौन

सदेशिकानिमान्मत्वा नित्यं यश्शिवमर्चयेत् ॥ स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवस्य योगावतारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ कृष्ण उवाच ॥ भगवन्सर्वयोगींद्र गणेश्वर मुनीश्वर ॥ षडाननसमप्रख्य सर्वज्ञाननिधे गुरो ॥ १ ॥ प्रायस्त्वमवतीर्योर्व्यां पाशविच्छित्तये नृणाम् ॥ महर्षिवपुरास्थाय स्थितोऽसि परमेश्वर ॥ २ ॥ अन्यथा हि जगत्यस्मिन् देवो वा दानवोऽपि वा ॥ त्वत्तोन्यः परमं भावं को जानीयाच्छिवात्मकम् ॥ ३ ॥ तस्मात्तव मुखोद्गीर्णं साक्षादिव पिनाकिनः ॥ शिवज्ञानामृतं पीत्वा न मे तृप्तमभून्मनः ॥ ४ ॥ साक्षात्सर्वजगत्कर्तुर्भर्तुरंकं समाश्रिता ॥ भगवन्किन्तु पप्रच्छ भर्तारं परमेश्वरी ॥ ५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण तद्वक्ष्यामि यथातथम् ॥ भवभक्तस्य युक्तस्य तव कल्याणचेतसः ॥ ६ ॥ महीधरवरे दिव्ये मंदरे चारुकंदरे ॥ देव्या सद महादेवो दिव्यो ध्यानगतोऽभवत् ॥ ७ ॥

जान सकता है ॥ ३ ॥ इस कारण शिवके समान साक्षात् तुम्हारे मुखसे निकलेहुए शिवज्ञानामृतका पान करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥ साक्षात् जगत् पतिकी गोदीमें बैठीहुई परमेश्वरीने किस प्रकारसे प्रश्न किया ॥५॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! तुमने अच्छी बात पूँछी, इनको मैं यथायोग्य वर्णन करता हूँ, शिवकी भक्तिसे युक्त होकर तुम कल्याणचित्तवाले हो ॥ ६ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ मंदरपर्वतमें जिसकी सुन्दर कंदरा है, देवीके सहित महादेव

दिव्य वनमें गये ॥ ७ ॥ उस समय शोभन हास्यवाली देवीकी प्रिय सखी शुभावती फूलेहुए मनोहर फूल तोडकर लाई ॥ ८ ॥ उस समय शिवने देवीको गोदमें बैठाकर उन पुष्पोंसे अलंकृत कर महाप्रसन्नता प्रगट की ॥ ९ ॥ तब अन्तःपुरमें विचरनेवाली दिव्य भूषणवाली देवी और अन्तरंग गणेन्द्र, सब लोकोंकी महेश्वरी भगवती ॥ १० ॥ और सब लोकोंके महेश्वर परिपूर्ण भर्ता देव शंकर और देवीको चमर हाथमें लेकर सेवा करने लगे ॥ ११ ॥ तब उन दोनोंके विनोदके निमित्त प्रियकथा प्रारम्भ हुई. जो कि, लोककी रक्षाके निमित्त थी जो कि, शिवकी शरणमें आये थे ॥ १२ ॥ उस समय

तदा देव्याः प्रियसखी सुस्मितास्या शुभावती ॥ फुल्लान्यतिमनोज्ञानि पुष्पाणि समुदाहरत् ॥ ८ ॥ ततः स्वमंकमारोप्य देवीं देववरो रहः॥ अलंकृत्य च तैः पुष्पैरास्ते हृष्टतरः स्वयम् ॥ ९ ॥ अथांतःपुरचारिण्यो देव्यो दिव्यविभूषणाः ॥ अंतरंगा गणेंद्राश्च सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥ १० ॥ भर्तारं परिपूर्णं च सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ चामरासक्तहस्ताश्च देवीं देवं सिषेविरे ॥ ११ ॥ ततः प्रियाः कथा वृत्ता विनोदाय महेशयोः ॥ त्राणाय च नृणां लोके ये शिवं शरणं गताः ॥ १२ ॥ तदा वसरमालोक्य सर्वलोकमहेश्वरी ॥ भर्तारं परिपप्रच्छ सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ १३ ॥ देव्युवाच ॥ केन वश्यो महादेवो मर्त्यानां मंदचेतसाम् ॥ आत्मतत्त्वाद्यशक्तानामात्मनामकृतात्मनाम् ॥ १४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ न कर्मणा न तपसा न जपैर्नासनादिभिः ॥ न ज्ञानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना ॥ १५ ॥ श्रद्धा मय्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना ॥ वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यस्संभाष्य एव च ॥ १६ ॥ साध्या तस्मान्मयि श्रद्धा मां वशीकर्तुमिच्छता ॥ श्रद्धा हेतुस्स्वधर्मस्य रक्षणं वर्णिनामिह ॥ १७ ॥

सर्वलोक महेश्वरी समयको देखकर सर्वलोकके महेश्वर अपने स्वामीसे पूँछने लगी ॥ १३ ॥ देवी बोली, हे महादेव ! मंदचित्तवाले मनुष्योंके वशमें किस प्रकारसे होसकतेहो ? जो अल्पभक्ति अल्पशक्ति अल्पमानसिक बल अकृत बुद्धि हैं उनके कैसे वशीभूतहो ॥ १४ ॥ ईश्वर बोले, कर्म जप तप समाधि और ज्ञानसे भी विना श्रद्धाके वशीभूत नहीं होसकता हूँ ॥ १५ ॥ जो पुरुषोंकी मुझमें श्रद्धा है, तौ जिस किसी उपायसे वशी करना देखना छूना सम्भाषण करना हो ॥ १६ ॥ तो मुझे वश करनेको श्रद्धा करनी चाहिये, श्रद्धाही अपने धर्मका हेतु है, और अपने वर्णकी रक्षा है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार वर्तता है, उसीकी श्रद्धा मुझमें होगी दूसरेकी नहीं॥ १८॥ आश्रमवालोंको सम्पूर्ण शास्त्रकी सिद्धि ब्रह्माने पूर्वकालमें मेरी ही आज्ञासे कल्पना की है ॥ १९॥ वह ब्रह्माका उपनयन यागादि गायत्रीरूप धर्म बहुत वित्त और क्रियारूप है उसमें फल तो अधिक नहीं है; परन्तु क्लेश और परिश्रम बहुत है, उस बडेभारी धर्मसे दुर्लभ श्रद्धाको प्राप्त होकर ॥ २०॥ जो वर्णाश्रमी अनन्यमनसे मुझको प्राप्त होते हैं उनको सुखमार्गसे धर्म कामार्थकी तथा मुक्तिकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ वर्णाश्रमके आचारकी मैंने फिर कल्पना की है, उन वर्णाश्रमोंमें जो मेरी भक्ति करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

स्ववर्णाश्रमधर्मेंथ वर्तते यस्तु मानवः ॥ तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित् ॥ १८ ॥ आम्नायसिद्धमाखिलं धर्ममाश्रमि
णामिह ॥ ब्रह्मणा कथितं पूर्वं ममैवाज्ञापुरस्सरम् ॥ १९॥ स तु पैतामहो धर्मो बहुवित्तक्रियान्वितः ॥ नात्यन्तफलभूयिष्ठः क्लेशायाससम
न्वितः ॥ तेन धर्मेण महतां श्रद्धां प्राप्य सुदुर्लभाम् ॥ २० ॥ वर्णिनो ये प्रपद्यंते मामनन्यसमाश्रयाः ॥ तेषां सुखेन मार्गेण धर्मकामार्थ
मुक्तयः ॥ २१ ॥ वर्णाश्रमसमाचारो मया भूयः प्रकल्पितः ॥ तस्मिन्भक्तिमतामेव मदीयानां तु वर्णिनाम् ॥ २२ ॥ अधिकारो न
चान्येषामित्याज्ञा नैष्ठिकी मम ॥ तदाज्ञतेन मार्गेण वर्णिनो मदुपाश्रयाः ॥ २३ ॥ मलमायादिपाशेभ्यो विमुक्ता मत्प्रसादतः ॥
पुरं मदीयमासाद्य पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ परमं मम साधर्म्यं प्राप्य निर्वृतिमाययुः ॥ २४ ॥ तस्माल्लब्ध्वाप्यलब्ध्वा वा वर्णधर्मं मये
रितम् ॥ आश्रित्य मम भक्तश्चेत्स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ २५ ॥ अलब्धलाभ एवैष कोटिकोटिगुणाधिकः ॥ तस्मान्मे मुखतो लब्धं
वर्णधर्मं समाचरेत् ॥ २६ ॥ ममावतारा हि शुभे योगाचार्यच्छलेन तु ॥ सर्वांतरेषु सन्त्यायें संततिश्च सहस्रशः ॥ २७ ॥

उसमें सबका अधिकार नहीं है, यह मेरी नैष्ठिकी बुद्धि निश्चयवती है वर्णाश्रम धर्मवाले मेरे उपदेश किये मार्गसे ॥ २३ ॥ मेरे प्रसादसे मल मायादिके पाशसे मुक्त होजाते हैं । फिर आगमनसे रहित मेरे पुरको प्राप्त होकर मेरे परम साधर्म्यको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ यह मेरा कहाहुआ धर्म लेकर मेरे भक्तोंका आश्रय कर वर्णधर्मको कर अपनी आत्माको उद्धार करै ॥ २५ ॥ अज्ञानधर्मसे करोड २ गुना अधिक धर्म जानकर करनेसे होता है; इस कारण मेरे मुखसे सुनकर धर्म करै ॥ २६ ॥ हे शुभे ! योगाचार्यके छलसे मेरे अवतार सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें सहस्रों होते हैं ॥ २७ ॥

हे सुरेश्वरि ! जो अबुद्ध हैं, अभक्तहैं, उनको यह ज्ञान दुर्लभ है इस कारण यत्नसे इस ज्ञानको आश्रय करना चाहिये ॥ २८ ॥ वही हानि वही महाछिद्र वही मोह वही अन्ध और मूर्खता है, जो मोक्षमार्गके सिवाय दूसरी जगह श्रम करै ॥ २९ ॥ हे सुरेश्वरी ! ज्ञान क्रिया पूजा और योग यह सनातन चतुष्पाद धर्म कहा गया है ॥३०॥ जीवोंको कर्मानुसार फल देनहारे शिवका ज्ञान पशुपति ज्ञान है; पूर्वोक्त छः मार्ग शुद्धिकी विधिसे उसकी क्रिया कही जाती है ॥ ३१ ॥ वर्णाश्रमसे प्रयुक्तहुए मुझसे ही विधान कियेहुए मेरे अर्चनादि धर्मकी चर्या कहाती है ॥ ३२ ॥ मेरे ही कहे मार्गके अनुसार मुझमें

अयुक्तानामबुद्धीनामभक्तानां सुरेश्वरि ॥ दुर्लभं संततिज्ञानं ततो यत्नात्समाश्रयेत् ॥ २८ ॥ सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहस्सांधमूकता ॥ यदन्यत्र श्रमं कुर्य्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि ॥ चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मस्सनातनः ॥ ३० ॥ पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ॥ षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते ॥३१॥ वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च ॥ ममार्चनादिधर्मस्य चर्य्या चर्य्येति कथ्यते ॥ ३२ ॥ मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः ॥ वृत्त्यंतरनिरोधो यो योग इत्यभिधीयते ॥ ३३ ॥ अश्वमेधगणाच्छ्रेष्ठं देवि चित्तप्रसाधनम् ॥ मुक्तिदं च तथा ह्येतद्दुष्प्राप्यं विषयैषिणाम् ॥ ३४ ॥ विजितेंद्रियवर्गस्य यमेन नियमेन च ॥ पूर्वपापहरो योगो विरक्तस्यैव कथ्यते ॥ ३५ ॥ वैराग्याज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते ॥ ॥ ३६ ॥ योगज्ञः पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥ दया कार्याथ सततमहिंसा ज्ञानसंग्रहः ॥ ३७ ॥ सत्यमस्तेयमास्तिक्यं श्रद्धा चेंद्रियनिग्रहः ॥ अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ ३८ ॥

ही चित्त लगानेसे अन्य स्थानमें वृत्तियोंको न जाने देनेका नाम योग है ॥ ३३ ॥ हे देवी ! चित्तका निर्मल होना सौ अश्वमेधके यज्ञसे भी श्रेष्ठ है, यही मुक्ति देनेवाला विषयी पुरुषोंको असाध्य है ॥ ३४ ॥ जिसने यम नियम करके इन्द्रियें जीत ली हैं, वह सब पाप हरनेवाला योग विरक्तोंको कहते हैं ॥ ३५ ॥ वैराग्यसे ज्ञान और ज्ञानसे योग प्रवृत्त होता है ॥३६॥ योगका जाननेवाला पतित भी मुक्त होजाता है, इसमें सन्देह नहीं सदा दया करनी, अहिंसा, ज्ञानका संग्रह करना ॥ ३७ ॥ सत्य बोलना, चोरी न करनी,आस्तिकपना, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह पढना, पढाना, यज्ञ करना, कराना ॥ ३८ ॥

ध्यान ईश्वरभाव सदा ज्ञानशीलता जो ब्राह्मण इस प्रकार ज्ञानयोगकी सिद्धिके निमित्त वर्तता है ॥ ३९ ॥ वह शीघ्रही ज्ञानको प्राप्तहो योगको जानता है, हे प्रिये ! क्षणमात्रमें योगी ज्ञानाग्निसे इस देहको भस्म करके ॥४०॥ मेरे प्रसादसे कर्मयोगका जाननेवाला पाशबंधनको छोड देगा, पुण्य और अपुण्यात्मक कर्ममुक्तिका प्रतिबंधक रोकनेवालाहै, इस कारण योगी पुण्य और अपुण्यसे अलग रहै ॥ ४१ ॥ फलकी कामनासे जो कर्म किया जावै वह बन्धनको प्राप्त करता है, कर्ममात्रका न करना त्याग नहीं किन्तु कर्मफलके त्यागका नाम कर्मत्याग है ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! प्रथम कर्मयज्ञसे बाहर मेरी पूजा करै,

ध्यानमीश्वरभावश्च सततं ज्ञानशीलता ॥ य एवं वर्त्तते विप्रो ज्ञानयोगस्य सिद्धये ॥ ३९ ॥ अचिरादेव विज्ञानं लब्ध्वा योगं च विंदति ॥ दग्ध्वा देहमिमं ज्ञानी क्षणाज्ज्ञानाग्निना प्रिये ॥ ४० ॥ प्रसादान्मम योगज्ञः कर्मबंधं प्रहास्यति ॥ पुण्यः पुण्यात्मकं कर्म मुक्तेस्तत्प्रतिबंधकम् ॥ तस्मान्नियोगतो योगी पुण्यापुण्यं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥ फलकामनया कर्मकरणात्प्रतिबध्यते ॥ न कर्ममात्रकरणात्तस्मात्कर्मफलं त्यजेत् ॥ ४२ ॥ प्रथमं कर्मयज्ञेन बहिः सम्पूज्य मां प्रिये ॥ ज्ञानयोगरतो भूत्वा पश्चाद्योगं समभ्यसेत् ॥ ४३ ॥ विदिते मम याथात्म्ये कर्मयज्ञेन देहिनः ॥ न यजंति हि मां युक्ताः समलोष्टाश्मकांचनाः ॥ ४४ ॥ नित्ययुक्तो मुनिः श्रेष्ठो मद्भक्तश्च समाहितः ॥ ज्ञानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ अथाविरक्तचित्ता ये वर्णिनो मदुपाश्रिताः ॥ ज्ञानचर्याक्रियास्वेव तेऽधिकुर्य्युस्तदर्हकाः ॥ ४६ ॥ द्विधा मत्पूजनं ज्ञेयं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ वाङ्मनःकायभेदाच्च त्रिधा मद्भजनं विदुः ॥ ४७ ॥

फिर ज्ञानयज्ञमें प्रीति करताहुआ योग करै ॥ ४३ ॥ मुझे यथार्थ जानकर देहधारी कर्म यज्ञद्वारा फिर वे भक्त यजन नहीं करते, उनको मट्टी कांचन बराबर होता है ॥ ४४ ॥ नित्य युक्त होकर मेरे भक्त ज्ञानयोगमें रत होकर मेरे सायुज्यको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ जो विरक्त चित्त, वर्णधर्मी मेरी उपासना करते हैं, ज्ञानचर्या क्रिया करतेहैं वेभी उसके करनेके योग्यहैं; वे उसको करें ॥ ४६ ॥ बाहर, भीतर, भीतर, बाहर, वाणी मन कायाके भेदसे

तीन प्रकारसे मेरा भजन होता है ॥ ४७ ॥ जप, कर्म, तप, ध्यान, ज्ञान, पांच प्रकारसे सत्पुरुषोंने कहा है वही भजन है ॥ ४८ ॥ दूसरेमें हमारी अर्चा (पूजा) जो दूसरोंसे ज्ञात होतीहै बाह्य पूजा कहाती है और जो अपने आप जानता है वह अभ्यन्तर पूजन कहाता है ॥४९॥ मनोमय चित्त है उसको मनोमात्र कहतेहैं; अर्थात् इतनेहीके योग्य मन है; मेरे नाममें जिसकी वाणी निरतहै वही सार्थक है; और जो मेरे नामसे रहित है वह कुछ नहीं ॥ ॥ ५० ॥ वह मेरे शासनसे आदेशके लिये लिंग और त्रिपुंड्रादिसे अंकित हो मेरा भजन करता है वह कायासे पूजन है दूसरा नहीं ॥ ५१ ॥ मेरी

तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं वेत्यनुपूर्वशः ॥ पंचधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः ॥ ४८ ॥ अन्यात्मविदितं बाह्यमस्मदभ्यर्चनादिकम् ॥ तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यंतरमुदाहृतम् ॥ ४९ ॥ मनोमत्प्रवणं चित्तं न मनोमात्रमुच्यते ॥ मन्नामनिरता वाणी वाङ्मता खलु नेतरा ॥ ५० ॥ लिंगैर्मच्छासनादिष्टैस्त्रिपुंड्रादिभिरंकितः ॥ ममोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ॥ ५१ ॥ मदर्चा कर्म विज्ञेयं बाह्ये यागादिनोच्यते ॥ मदर्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम् ॥ ५२ ॥ जपः पंचाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव च ॥ रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ॥ ५३ ॥ ध्यानम्मद्रूपचिंताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः ॥ ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ॥ ५४ ॥ बाह्ये वाभ्यंतरे वाथ यत्र स्यान्मनसो रतिः ॥ प्राग्वासनावशाद्देवि तत्त्वनिष्ठां समाचरेत् ॥ ५५ ॥ बाह्यादाभ्यंतरं श्रेष्ठं भवेच्छतगुणाधिकम् ॥ असंकरत्वाद्दोषाणां दृष्टानामप्यसम्भवात् ॥ ५६ ॥

अर्चा करनी यही बाह्य कर्म है, मेरी आज्ञासे रहित यज्ञादि कर्म नहीं. मेरे निमित्त देहको शोषण करनाही तप है, अन्य नही ॥ ५२ ॥ जप पञ्चाक्षरका अभ्यास प्राणायामका अभ्यास रुद्राध्यायका अभ्यास करनाही अभ्यास है; पंचाक्षरादिरहित वेदाभ्यास कुछ नहीं है ॥५३॥ ध्यान मेरे रूपकी चिन्ताही समाधि है आत्माके निमित्त समाधि नहीं है; मेरे शास्त्रके अर्थका ज्ञानही ज्ञान है; दूसरे अर्थोंका जानना नहीं ॥ ५४ ॥ बाह्य अभ्यन्तर जहां प्रीति हो हे देवि ! पूर्व जन्मके वासना अनुसार वही प्रीति करे ॥ ५५ ॥ बाह्यसे अभ्यन्तर पूजा सौ गुणी अधिक फल देती है; कारण कि उसमें दोषकी प्राप्ति

नहीं होसकती, वहां बाहरके दोष नहीं दीखते ॥ ५६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें अशुद्धि है वह पवित्र भी अपवित्र है ॥ ५७ ॥ बाह्य और अभ्यन्तरमें जो भावपूर्वक भजन करना है वही भजन है, और भावरहित भजन नहीं है. हे देवि ! वह तो विप्रलम्भका कारण है ॥ ५८ ॥ कृतकृत्य और नित्य तृप्त मनुष्योंसे मेरा क्या होसकता है ? जो बाहर भीतर एकसा हो उसके भावमें ग्रहण करता हूँ ॥ ५९ ॥ हे देवि ! एकात्मासे भाव करनाही क्रिया है; यही मेरा सनातन धर्म है; मन वचन कर्मसे कहीं किसी फलकी अपेक्षा न करनी ॥६०॥ हे देवि ! फलके उद्देशसे मेरा आश्रय लघु कहाता है, फलार्थी फलके

शौचमाभ्यंतरं विद्यान्नबाह्यं शौचमुच्यते ॥ अंतःशौचविमुक्तात्मा शुचिरप्यशुचिर्यतः ॥ ५७ ॥ बाह्यमाभ्यंतरं चैव भजनं भावपूर्वकम् ॥
न भावरहितं देवि विप्रलंभैककारणम् ॥५८॥ कृतकृत्यस्य पूतस्य मम किं क्रियते नरैः॥बहिर्वाभ्यंतरं वाथ मया भावो हि गृह्यते ॥५९॥
भावैकात्मा क्रिया देवि मम धर्मस्सनातनः ॥ मनसा कर्मणा वाचा ह्यनपेक्ष्य फलं क्वचित् ॥ ६० ॥ फलोद्देशेन देवेशि लघुर्मम समा
श्रयः ॥ फलार्थी तदभावे मां परित्यक्तुं क्षमो यतः ॥ ६१ ॥ फलार्थिनोऽपि यस्यैव मयि चित्तं प्रतिष्ठितम् ॥ भावानुरूपफलदस्तस्याप्य
हमनिन्दिते ॥ ६२ ॥ फलानपेक्षया येषां मनो मत्प्रवणं भवेत् ॥ प्रार्थयेयुः फलं पश्चाद्भक्तास्तेऽपि मम प्रियाः ॥ ६३ ॥ प्राक् संस्कार
वशादेव ये विचिंत्य फलाफले ॥ विवशा मां प्रपद्यंते मम प्रियतमा मताः ॥६४॥ मल्लाभान्न परो लाभस्तेषामस्ति यथातथम् ॥ ममापि
लाभस्तल्लाभान्नापरः परमेश्वरि ॥ ६५ ॥ मदनुग्रहतस्तेषां भावो मयि समर्पितः ॥ फलं परमनिर्वाणं प्रयच्छति बलादिव ॥ ६६ ॥

अभावसे मुझे छोडनेको समर्थ होता है ॥ ६१ ॥ जिस फलकी इच्छा करनेवालेका मुझमें चित्त स्थित है, हे निन्दारहित ! उसको मैं भावके अनुसार फल देता हूँ ॥ ६२ ॥ और जिनका मन फलकी अपेक्षा त्यागकर मुझमें लगाहुआ है, और पीछे फलकी इच्छा करतेहैं वे भी भक्त मेरे प्रियहैं ॥ ६३ ॥ जो पहले फलके संस्कारके वशसे फलाफलकी चिन्ता करके विवश हो मुझको प्रात होतेहैं वे मेरे अत्यन्त प्यारे हैं ॥६४॥ मेरे लाभसे अधिक उनको और कुछ लाभ नहीं है. हे परमेश्वरि ! उनके लाभसे अधिक और मुझेभी कुछ लाभ नहीं है ॥६५॥ जिनका भाव मुझमें है उनपर मेरी कृपा होती है; और मैं

अतिबलसे उनको निर्वाणपद देता हूँ ॥ ६६ ॥ जिन महात्माओंने मुझमें चित्त लगा रक्खा है, जो मेरे अनन्य भक्तहैं उन मेरे धर्माधिकारियोंके आठ प्रकारके लक्षणहैं ॥ ६७ ॥ मेरे भक्तजनोंसे प्रीति पूजा अनुमोदन स्वयं अर्चा करनी, मेरे निमित्तही अंगोंकी चेष्टा करनी ॥६८॥ मेरे कथा श्रवणमें भक्ति स्वरनेत्र अंगकी विक्रिया मेरे निमित्त करनी, नित्य मेराही स्मरण और मेराही जो आश्रय करता है ॥ ६९ ॥ इस प्रकारका चिह्न जिस म्लेच्छमें भी वर्तता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनि यति और पंडित है ॥ ७० ॥ मुझे चतुर्वेदी प्रिय नहीं है; परन्तु जो मेरा भक्त चाण्डालहै वह श्रेष्ठ है. उसकी दीहुई

महात्मनामनन्यानां मयि सन्यस्तचेतसाम् ॥ अष्टधा लक्षणं प्राहुर्मम धर्माधिकारिणाम् ॥ ६७ ॥ मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् ॥ स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे चांगचेष्टितम् ॥ ६८ ॥ मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्रांगविक्रियाः ॥ ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति ॥ ६९ ॥ एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ॥ स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स यतिस्स च पंडितः ॥ ७० ॥ न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः ॥ तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ ७१ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥७२॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवभक्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ इश्वर उवाच ॥ अथ वक्ष्यापि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम् ॥ विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मसमासतः ॥ १ ॥ त्रिः स्नानं चाग्निकार्यं च लिंगार्चनमनुक्रमम् ॥ दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा ॥ २ ॥ सत्यं संतोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजंतुषु ॥ ह्रीश्रद्धाध्ययनं योगस्सदाध्यापनमेव च ॥ ३ ॥

पूजादिको मैं ग्रहण करता हूँ, उसका संस्कार मेरे समान है ॥ ७१ ॥ पत्र, पुष्प, फल जल जो कुछभी भक्तिसे मुझे देता है, उसको मैं नाश नहीं करता ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ महादेवजी बोले, हे देवेशि ! अधिकारीभक्त पंडित ब्राह्मणश्रेष्ठोंके वर्ण धर्मको समाससे कहता हूँ ॥ १ ॥ त्रिकाल, स्नान अग्निकार्य, लिंगार्चन, दान, ईश्वरभाव सर्वत्र दया करनी ॥ २ ॥ सत्य, सन्तोष,

आस्तिक्य, सब प्राणियोंकी हिंसासे पृथक्ता, लज्जा, श्रद्धा, वेदपाठ, योग करना ॥ ३ ॥ व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, श्रवण, तप, क्षमा, शौच, शिखा, जनेऊ, पगडी, दुपट्टा धारण करना ॥४॥ निषिद्ध वस्तुको सेवन न करना, भस्म रुद्राक्षका धारण करना, पर्वमें पूजा विशेषकर चतुर्दशीमें पूजन करना ॥ ५ ॥ ब्रह्मकूर्च विधिसे गव्यका पान विधिपूर्वक महीने २ में करना; और उसीसे मुझे स्नान कराय विशेष पूजा करनी ॥ ६ ॥ सर्व क्रिया अन्नका त्याग श्राद्धान्नका छोड देना, बासी अन्नको छोड देना; और विशेषकर यावक (कुलथी व्रीहिका भेद) का त्याग करे ॥ ७ ॥ मद्य, मद्यकी गन्ध, मेरे अर्पण

व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवणं च तपः क्षमा ॥ शौचं शिखोपवीतं च उष्णीषं चोत्तरीयकम् ॥ ४ ॥ निषिद्धासेवनं चैव भस्मरुद्राक्ष धारणम् ॥ पर्वण्यभ्यर्चनं देवि चतुर्दश्यां विशेषतः ॥ ५ ॥ पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि ॥ अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये ॥ ६ ॥ सर्वक्रियान्नसन्त्यागः श्रद्धान्नस्य च वर्जनम् ॥ तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषतः ॥ ७ ॥ मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ॥ सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ८ ॥ क्षमा शांतिश्च सन्तोषस्सत्यमस्तेयमेव च ॥ ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम् ॥ ९ ॥ सर्वसंगनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः ॥ लिंगानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशनं तथा ॥ १० ॥ वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते ॥ रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ११ ॥ अध्यापनं याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः ॥ वैश्यस्य च विशेषेण मया नात्र विधीयते ॥ १२ ॥ रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा ॥ दुष्टपक्षिमृगाणां च दुष्टानां शातनं नृणाम् ॥ १३ ॥

कीहुई नैवेद्यका त्याग सर्व वर्णोंमें सामान्य और विशेष करके ब्राह्मणोंका धर्म है ॥ ८ ॥ क्षमा शान्ति संतोष सत्य चोरी न करनी ब्रह्मचर्य मेरा ज्ञान वैराग्य भस्मका सेवन ॥ ९ ॥ सबके संगसे निवृत्ति विशेष करके यह दश बात करनी उचितहैं; योगियोंके लिंग यहहैं; दिनमें भिक्षा मांग लेनी ॥ १० ॥ यह वानप्रस्थ आश्रमोंका भी समानही धर्म है; योगी और यह एक धर्म करतेहैं, सब ब्रह्मचारियोंको रात्रिमें भोजन न करना चाहिये ॥ ११ ॥ पढाना यज्ञ कराना प्रतिग्रह यह क्षत्रियको करना नहीं विशेष कर वैश्यके लिये मैंने अनुज्ञापन नहीं किया है ॥ १२ ॥ सब वर्णोंकी रक्षा करनी, युद्धमें शत्रुओंका

वध, दुष्टपक्षी मृगोंका और दुष्ट मनुष्योंका निग्रह करना ॥ १३ ॥ सब जगह अविश्वास, केवल मेरे योगमें विश्वास करना, समय पर स्त्रीके संग (ऋतुकालमें गमन) सेनाका रक्षण ॥ १४ ॥ सदा दूत भेजकर लोकका वृत्तान्त जानना; अस्त्र वस्त्र कंचुक धारण, भस्म धारण करना ॥ १५ ॥ मेरे आश्रममें स्थित राजोंका यह धर्म है, गोरक्षा वाणिज्य कृषि यह कर्म वैश्योंका है ॥ १६ ॥ इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी शूद्रका धर्म है; बाग लगाना मेरे क्षेत्रका आश्रय ॥ १७ ॥ धर्मपत्नीमें गमन गृहस्थोंको उचित है; ब्रह्मचर्य करना वनमें स्थित यति और ब्रह्मचारी जनोंको उचित है ॥ १८ ॥ स्त्रीजनोंको भर्ताकी

अविश्वासश्च सर्वत्र विश्वासो मम योगिषु ॥ स्त्रीसंसर्गश्च कालेषु चमूरक्षणमेव च ॥ १४ ॥ सदा संचारितैश्चारैर्लोकवृत्तांतवेदनम् ॥ सदास्त्रधारणं चैव भस्मकंचुकधारणम् ॥ १५ ॥ राज्ञां ममाश्रमस्थानामेष धर्मस्य संग्रहः ॥ गोरक्षणं च वाणिज्यं कृषिर्वैश्यस्य कथ्यते ॥ १६ ॥ शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते ॥ उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः ॥ १७ ॥ धर्मपत्न्यास्तु गमनं गृहस्थस्य विधीयते ॥ ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ १८ ॥ स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्यस्सनातनः ॥ ममार्चनं च कल्याणि नियोगो भर्तुरस्ति चेत् ॥ १९ ॥ या नारी भर्तृशुश्रूषां विहाय व्रततत्परा ॥ सा नारी नरकं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ २० ॥ अथ भर्तृविहिनाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम् ॥ व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्या नक्तभोजनम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मचर्यं सदा स्नानं भस्मना सलिलेन वा ॥ शांतिर्मौनं क्षमा नित्यं संविभागो यथाविधि ॥ २२ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां विशेषतः ॥ एकादश्यां च विधिवदुपवासो ममार्चनम् ॥ २३ ॥

शुश्रूषाके सिवाय दूसरा धर्म नहीं है. हे कल्याणि ! स्वामीकी आज्ञा लेकर स्त्री मेरा पूजन करै ॥ १९ ॥ जो नारी भर्ताकी शुश्रूषा छोडकर व्रत करती है, वह स्त्री नरकको जाती है; इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ स्वामीसे रहित स्त्रियोंका धर्म संक्षेपसे कहता हूं, व्रत दान तप शौच पृथ्वीमें सोना रात्रिमें भोजन ॥ २१ ॥ ब्रह्मचर्यसे रहना, भस्म वा जलसे स्नान करना शान्ति मौन क्षमा संविभाग दुष्टोंसे पृथक् रहना विधिपूर्वक ॥ २२ ॥ अष्टमी चौदश

और पौर्णमासीमें विशेष करके एकादशीमें विधिपूर्वक मेरा अर्चन करना उचित है ॥ २३ ॥ यह संक्षेपसे मैंने अपने आश्रमके स्थित होनेकी विधि कही.
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यती, ब्रह्मचारी ॥ २४ ॥ उसी प्रकार वानप्रस्थ, गृहस्थ और शूद्र स्त्रियोंका यही सनातन धर्म है ॥ २५ ॥ हे देवि ! तुम्हें मेरा
ध्यान और सदा षडक्षरका जप करना चाहिये; यही वेदोक्त सब धर्मोंका सार है ॥ २६ ॥ और जो मनुष्य लोकमें अपनी इच्छासे व्रत धारण करनेवाले
हैं अत्यन्त भाव और पूर्व संस्कारसे युक्त हैं ॥ २७ ॥ जो स्त्रियादि विषयोंमें विरक्त और अनुरक्त हैं, वे पापसे लिप्त नहीं होते जैसे पद्मपत्र जलसे लिप्त

इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम् ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ २४ ॥ तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च
सुन्दरि ॥ शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः॥२५॥ ध्येयस्त्वयाहं देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः ॥ वेदोक्तमखिलं धर्ममिति धर्मार्थ
संग्रहः ॥ २६ ॥ अथ ये मानवा लोके स्वेच्छया धृतविग्रहाः ॥ भावातिशयसंपन्नाः पूर्वसंस्कारसंयुताः ॥ २७ ॥ विरक्ता वानुरक्ता
वा स्त्र्यादीनां विषयेष्वपि ॥ पापैर्न ते विलिंपंते पद्मपत्रमिवांभसा ॥ २८ ॥ तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम् ॥ मत्प्रसादा
द्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात् ॥ २९ ॥ नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम् ॥ न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ॥
॥ ३० ॥ तथेह परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ॥ तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः ॥ ३१ ॥ मद्भक्तानां हितार्थाय मानुषं
भावमाश्रिताः ॥ रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ ममानुशासनं यद्वद्ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम् ॥ तथा नराणामन्येषां त
न्नियोगः प्रवर्तकः ॥ ३३ ॥ ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च ॥ तदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३४ ॥

नहीं होता ॥ २८ ॥ उन विशुद्ध विवेकियोंको आत्मविज्ञान मेरे प्रसादसे प्राप्त होता है. कारण कि, आश्रमधर्म रक्षण करना कठिन ॥ २९ ॥ उनके
निमित्त कृत्य अकृत्य समाधिपरायण विधिनिषेध कुछ नहीं है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार मुझे परिपूर्णको कुछ साध्य नहीं है; इसी प्रकार कृतकृत्य हुओंको
कोई कार्य शेष नहीं रहता ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तोंहीके हित करनेके निमित्त मनुष्यभावमें आश्रितहुए रुद्रलोकसे आयेहुए मनुष्य रुद्ररूप ही हैं ॥ ३२ ॥
मेरी जो आज्ञा ब्रह्मादिको प्रवृत्त करनेवाली है; इसी प्रकार मेरी आज्ञा दूसरे मनुष्योंको भी प्रवृत्त करती है ॥ ३३ ॥ मेरी आज्ञाका धारण और मुझमें

अत्यन्त भाव लगाना जो करते हैं उनके दर्शनमात्रसेही सब पाप क्षय होजाते हैं ॥ ३४ ॥ उन्हैं अच्छे फलदेनेवाले विश्वास प्रवृत्त होते हैं; मुझमें प्रेम
करनेवाले पुरुषोंके पहले ही अर्थ विदित होजाते हैं ॥ ३५ ॥ कंप स्वेद अश्रुपात कण्ठ और स्वर गद्गद आनन्द उपलब्धि अकस्मात् बारंबार होतीहै ॥
॥ ३६ ॥ उन सब अव्यभिचारी लिंगोंकरके मंद मध्य उत्तमभावसे वे मनुष्य श्रेष्ठ जानने चाहिये ॥ ३७ ॥ जैसे अग्नि युक्त होनेसे वह लोहा केवल
लोहाही नहीं रहता है, वैसेही मेरे निकट होनेसे; फिर वे केवल मनुष्य ही नहीं किन्तु मेरा रूप होजाते हैं ॥ ३८ ॥ हाथ पैर आदिसे युक्त रूद्ररूप धारण

प्रत्ययाश्च प्रवर्तंते प्रशस्तफलसूचकाः ॥ मयि भाववतां पुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः ॥ ३५ ॥ कंपस्वेदोऽश्रुपातश्च कंठे च स्वरवि
क्रिया ॥ आनंदाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ॥ ३६ ॥ स तैर्व्यस्तैस्समस्तैर्वा लिंगैरव्यभिचारिभिः ॥ मंदमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते
नरोत्तमाः ॥ ३७ ॥ यथायोग्निसमावेशान्नायो भवति केवलम् ॥ तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ॥ ३८ ॥ हस्तपादादिसाध
र्म्याद्रुद्रान्मर्त्यवपुर्धरान् ॥ प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पंडितः ॥ ३९ ॥ अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः ॥ आयुः श्रियं
कुलं शीलं हित्वा निरयमावहेत् ॥ ४० ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेशानामपि तूलायते पदम् ॥ मत्तोन्यदनपेक्षाणामुद्धृतानां महात्मनाम् ॥ ४१ ॥
अशुद्धं बौद्धमैश्वर्यं प्राकृतं पौरुषं तथा ॥ गुणेशानामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम् ॥ ४२ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयःप्राप्त्यैकसा
धनम् ॥ मयि चित्तसमासंगो येन केनापि हेतुना ॥ ४३ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ इत्थं श्रीकंठनाथेन शिवेन परमात्मना ॥ हिताय जग
तामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ॥ ४४ ॥

करनेवाले पुरुषोंको साधारणरूप जानकर निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मूर्खचित्तवाले मनुष्य उनका तिरस्कार करते हैं, उनकी आयु शील
कुल नष्ट होकर नरककी प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशोंका पद तोला जाय तो लघु होजाता है, मुझसे सिवाय अनपेक्ष उद्धृत महात्माओंका
॥ ४१ ॥ अशुद्ध बुद्धिका ऐश्वर्य प्राकृत पुरुषार्थ गुणोंकी ईशता गुणातीत पदकी इच्छा करनेवालोंको छोडनी चाहिये ॥ ४२ ॥ बहुत कहनेसे क्या है
मंगलकी प्राप्तिका एक ही साधन है कि, किसी प्रकारसे मुझमें चित्त लगाना ॥ ४३ ॥ उपमन्यु बोले, जब इस प्रकार श्रीकण्ठ परमात्मा शिवने ज्ञानार्थ

सारसंग्रह कहा ॥ ४४ ॥ विज्ञानसंग्रहमें इतिहास पुराण आदि विद्याओंका व्याख्यान कहा है ॥ ४५ ॥ ज्ञान ज्ञेय जानने योग्य अनुष्ठान करनेयोग्य साधन साध्य षडर्थोंका यह संग्रह वर्णन किया है ॥ ४६ ॥ गुरुसे प्राप्तहुआ शिवजीका ज्ञान जीवोंको जानना उचित है, लिंगार्चनादिका अनुष्ठान भक्तोंको करना उचित है ॥ ४७ ॥ शिवमंत्रादिका साधन शिवकी समानता षडर्थ संग्रहके ज्ञानसे प्राणी सर्वज्ञ होजाता है ॥ ४८ ॥ पहले यज्ञादि कर्म भक्ति और धनके अनुसार कर पहले बाह्य और फिर शिवका अन्तर पूजन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ जिसकी अन्तर पूजनमें प्रीति है और बाह्य कर्ममें गौरवसे नहीं

विज्ञानसंग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ सेतिहासपुराणानि विद्या व्याख्यानविस्तरः ॥ ४५ ॥ ज्ञानं ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम् ॥ साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहस्त्वेष संग्रहः ॥ ४६ ॥ गुरोरधिकृतं ज्ञानं ज्ञेयं पाशः पशुः पतिः ॥ लिंगार्चनाद्यनुष्ठेयं भक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः ॥ ४७ ॥ साधनं शिवमंत्राद्यं साध्यं शिवसमानता ॥ षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते ॥ ४८ ॥ प्रथमं कर्म यज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ बाह्येभ्यर्च्य शिवं पश्चादंतर्यागरतो भवेत् ॥ ४९ ॥ रतिरभ्यंतरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात् ॥ न कर्म करणीयं हि बहिस्तस्य महात्मना ॥ ५० ॥ ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः ॥ नांतर्न च बहिः कृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ॥ ५१ ॥ तस्मात्क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्याज्ञानं चापि परित्यजेत् ॥ ५२ ॥ नैकाग्रं चेच्छिवे चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा ॥ एकाग्रमेव चेच्चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा ॥ ५३ ॥ तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वा कृत्वा वांतर्बहिः क्रमात् ॥ येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत् ॥ ५४ ॥ शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठितधियां सताम् ॥ परत्रेह च सर्वत्र निर्वृतिः परमा भवेत् ॥ ५५ ॥

है; उस महात्माको बाह्य कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५० ॥ जो शिवके भक्त ज्ञानामृतसे तृप्त हैं हे कृष्ण ! इनको बाहर भीतर कुछ भी कृत्य नहीं है ॥ ५१ ॥ इस कारण क्रमसे बाह्य और आन्तरको छोडकर ज्ञानसे ज्ञेय पदार्थको जानकर ज्ञानको भी छोडदे ॥ ५२ ॥ जो शिवमें एकाग्र चित्त न हो तो कर्मसे भी क्या है, जो चित्त एकाग्र हो तो कर्म न करनेसे भी सब कुछ है ॥ ५३ ॥ इस कारण अन्तर बाहर कर्म करके अथवा न करके जिस किसी उपायसे शिवमें चित्त लगावै ॥ ५४ ॥ शिवमें चित्त लगानेवाले बुद्धिसे युक्तोंको यहाँ वहाँ सर्वत्र निवृत्ति अत्यन्त होती है ॥ ५५ ॥

' ॐ नमः शिवाय ' इस मंत्रमें; यह सब सिद्धि होती है, इस कारण परावरकी विभूतिके प्राप्त होनेको वह मन्त्र प्राप्त करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकादशोऽध्यायः ॥११॥ श्रीकृष्ण बोले, हे महर्षियोंमें श्रेष्ठ ! सर्वज्ञ ज्ञानके सागर मैं पंचाक्षर माहात्म्यको सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, पंचाक्षर मंत्रका माहात्म्य तो सौ करोड वर्षमें भी विस्तारसे नहीं कह सकते, इससे संक्षेपसे सुनो ॥ २ ॥ वेद और शैव शास्त्रमें प्रणव सहित षडक्षर मंत्र सब लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ है, यह ॐकार युक्त षडक्षर सबसे सदा उत्तम है, सब शिवभक्तोंके

इहोन्नमः शिवायेति मंत्रेणानेन सिद्धयः ॥ स तस्मादधिगंतव्यः परावरविभूतये ॥ ५६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे शिवज्ञानवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञानमहोदधे ॥ पंचाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥ अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु ॥ २ ॥ वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः[1] ॥ सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसाधकः ॥ ३ ॥ तदल्पाक्षरमर्थाढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम् ॥ आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम् ॥ ४ ॥ नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरंजकम् ॥ सुनिश्चितार्थं गंभीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम् ॥ ५ ॥ मन्त्रं सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसिद्धये ॥ प्राहोन्नमः शिवायेति सर्वज्ञस्सर्वदेहिनाम् ॥ ६ ॥ तद्बीजं सर्वविद्यानां मंत्रमाद्यं षडक्षरम् ॥ अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण अर्थके प्रकाश करनेवाला है ॥३॥ इसमें थोडे अक्षर गंभीर अर्थ वेदका सार है, मुक्तिका देनेवाला है; आज्ञा सिद्ध सन्देह रहित यह शिवात्मक वाक्य है ॥ ४ ॥ अनेक सिद्धियोंसे युक्त दिव्य लोकके चित्तोंका प्रसन्न करनेवाला निश्चित अर्थ गंभीर परमेश्वरके वाक्यहैं ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण अर्थकी सिद्धिके निमित्त मुखसे सुखपूर्वक वाक्य उच्चारण करना चाहिये; ' ॐ नमः शिवाय ' यह सब देहधारियोंको सर्वज्ञता दायक है ॥ ६ ॥ यह षडक्षर मंत्र

---

[1] मंत्रःस्थितः सदामुख्योलोकेपंचाक्षरःस्मृतः । सर्वमंत्राधिकश्चायमोंकाराद्यःषडक्षरः इत्यधिकः ।

सब विद्याओंका बीज है, अतिसूक्ष्म महान् अर्थवाला वटके वृक्षके समान जानना उचित है ॥ ७ ॥ वह देव तीनों गुणोंसे परे हैं, 'ओम्' इस एकाक्षर मंत्रमें ही सर्वज्ञ शिव स्थित हैं ॥ ८ ॥ ईशानादि सूक्ष्म ब्रह्मके एकाक्षर नाम 'नमः शिवाय' इस मंत्रमें यथायोग्य स्थित है, इस षडाक्षर मंत्रमें पंचब्रह्मयोतकशरीरयुक्त शिव ॥ ९ ॥ वाच्य वाचकके भावसे साक्षात् स्वभावसे स्थितहैं, प्रमेय होनेसे वाच्य शिव और मन्त्र उनका वाचक है ॥१०॥ यह वाच्य वाचकभाव अनादि कालका है जिस प्रकार यह घोर संसारसागर अनादि कालसे है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार अनादि कालसे शिव संसारके मोचक हैं जिस

देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ॥ ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः ॥ ८ ॥ इशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु ॥ मंत्रे नमश्शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम् ॥ मंत्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पंचब्रह्मतनुः शिवः ॥ ९ ॥ वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः ॥ वाच्यश्शिवोप्रमेयत्वान्मंत्रस्तद्वाचकस्स्मृतः ॥ १० ॥ वाच्यवाचकभावोऽयमनादिस्संस्थितस्तयोः ॥ यथाऽनादिप्रवृत्तोयं घोरसंसारसागरः ॥ ११ ॥ शिवोऽपि हि तथानादिस्संसारान्मोचकः स्थितः ॥ व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षः स्वभावतः ॥ १२ ॥ तद्वत्संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवस्स्मृतः ॥ असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत् ॥ १३ ॥ अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरषस्य च ॥ प्रधानपरमाण्वादियावत्किंचिदचेतनम् ॥ १४ ॥ न तत्कर्त्तृं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥ धर्माधर्मोपदेशश्च बंधमोक्षौ विचारणात् ॥ १५ ॥ न सर्वज्ञं विना पुंसामादिसर्गः प्रसिद्ध्यति ॥ वैद्यं विना निरानंदाः क्लिश्यंते रोगिणो यथा ॥ १६ ॥ तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णस्सदाशिवः ॥ अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसारसागरात् ॥ १७ ॥

प्रकार व्याधिको औषध सदासे चली आती है और रोगकी शत्रु है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार संसार दोषके दूर करनेको शिवजी दृढ हैं, इन जगन्नाथके न होनेसे अन्धकारभूत संसार होजाता है ॥ १३ ॥ जैसे शिवके न होनेसे जगत्की सृष्टि कैसे होती ? क्योंकि प्रकृति अचेतन और पुरुष अज्ञात है, प्रधान परमाणु आदि जो कुछ अचेतन है ॥१४॥ बुद्धिमानोंने कारणके बिना उसका स्वयं कर्तृत्व नहीं देखा है, धर्माधर्मका उपदेश बन्धमोक्ष विचारणा ॥१५॥ सृष्टिकी आदिमें सर्वज्ञके बिना नहीं होसकती; जैसे वैद्यके बिना अरोगी आनन्द रहतेहैं ॥ १६ ॥ इसी प्रकार शिवके विना जीव जगत् आनन्दरहित होतेहैं

इस कारण शिव परिपूर्ण और अनादि सर्वज्ञहैं वही नाथ और संसारसागरसे रक्षा करनेवालेहैं ॥ १७ ॥ वह आदि अन्त मध्यसे रहित स्वभावसे निर्मल प्रभुहैं, सर्वज्ञ परिपूर्ण शिवको शास्त्रोंमें लिखा है ॥ १८ ॥ उनके अभिधातका यह मन्त्र है, और वह अभिधेय कहलाते हैं, अभिधान और अभिधेय होनेसे मन्त्र सिद्ध और पर शिवहैं ॥ १९ ॥ इतनाही शिवका ज्ञान और इतनाही परम पदहै; जो 'ओं नमः शिवाय' षडक्षर मन्त्रका ध्यान करै ॥ २० ॥ वह शिवप्रोक्त विधिवाक्य है, अर्थवाद नहीं है; जो सर्वज्ञ और स्वभावसे निर्मल है ॥ २१ ॥ लोकको अनुग्रह करनेवाले मृषा कैसे होसकतेहैं; जो वस्तु गुण दोषोंसे जैसी स्थित है ॥ २२ ॥ जितना फल पूर्ण है सर्वज्ञ उसको वैसाही कहता है; जो राग अज्ञानादि दोषोंसे ग्रस्त होकर असत्य कहता है ॥ ॥ २३ ॥ वे ईश्वरमें नहींहैं फिर वह अन्यथा कैसे कह सकता है. जिस कारण कि, सर्वज्ञ शिवसे वह दोषोंके दोष नहीं हुएहैं उसमें निर्माण किये निर्मल वाक्यही प्रमाण हैं, इसमें सन्देहनहीं ॥ २४ ॥ इस कारण बुद्धिमान्को ईश्वरके वाक्यमें सदा श्रद्धा करनी चाहिये, यथार्थ पुण्य और पापमें श्रद्धा न करनेवाला नरकको जाता है ॥ २५ ॥ और जो स्वर्ग अपवर्गके निमित्त सुन्दर वचन मुनिजनोंने कहेहैं, उनको ही सुभाषित कहतेहैं ॥ २६ ॥

आदिमध्यांतनिर्मुक्तस्स्वभावविमलः प्रभुः ॥ सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयश्शिवागमे ॥ १८ ॥ तस्याभिधानमंत्रोऽयमभिधेयश्च स
स्मृतः ॥ अभिधानाभिधेत्वान्मंत्रास्सिद्धः पराश्शिवः ॥ १९ ॥ एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम् ॥ यदोंनमश्शिवायेति शिववाक्यं
षडक्षरम् ॥ २० ॥ विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम् ॥ यस्सर्वज्ञस्सुसंपूर्णः स्वभावविमलः शिवः ॥ २१ ॥ लोकानुग्रहकर्त्ता
च स मृषार्थं कथं वदेत् ॥ यद्यथावस्थितं वस्तु गुणदोषैः स्वभावतः ॥२२॥ यावत्फलं च तत्पूर्णं सर्वज्ञस्तु यथा वदेत् ॥ रागाज्ञानादि
भिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत् ॥ २३ ॥ ते चेश्वरे न विद्येते ब्रूयात्स कथमन्यथा ॥ अज्ञाताशेषदोषेण सर्वज्ञेन शिवेन यत् ॥ प्रणीतममलं
वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः ॥ २४ ॥ तस्मादीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता ॥ यथार्थपुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः ॥ २५ ॥
स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम् ॥ वाक्यं मुनिवरैः शांतैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम् ॥ २६ ॥

और जो राग द्वेष अनृत क्रोध काम तृष्णाके अनुसारी वाक्यहैं जो नरकके हेतु वाक्यहैं; उनको दुर्भाषित कहतेहैं ॥ २७ ॥ जो सत्कारयुक्त मनोहरतायुक्त हैंतो भी उनसे क्या है, जो अविद्या रागके वाक्यहैं; वह संसारक्लेशके कारणहैं ॥ २८ ॥ जिनके सुननेसे मंगल होकर और रागादि संक्षय होता है, वह कठिनाक्षरयुक्त भी महाशोभित वाक्यहैं ॥ २९ ॥ जिस कारणसे कि, मन्त्रके बहुत्व होनेपर सर्वज्ञ शिवने निर्मल मन्त्र निर्माण किये जिसकी समान कोई भी नहीं है ॥ ३० ॥ सांगवेदशास्त्र षडक्षर मन्त्रमें स्थित है, इसकी बराबर कोई मन्त्र भी नहीं है ॥ ३१ ॥ सात करोड महामन्त्र और भी अनेक

रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत् ॥ वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते ॥ २७ ॥ संस्कृतेनापि किं तेन मृदुना ललितेन वा ॥ अविद्यारागवाक्येन संसारक्लेशहेतुना ॥ २८ ॥ यच्छ्रुत्वा जायते श्रेयो रागादीनां च संशयः ॥ विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमितिशोभनम् ॥ २९ ॥ बहुत्वेपि हि मंत्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यः ॥प्रणीतो विमलो मन्त्रो न तेन सदृशः क्वचित् ॥ ३० ॥ सांगानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे ॥ न तेन सदृशस्तस्मान्मंत्रोऽप्यस्त्यपरः क्वचित् ॥ ३१ ॥ सप्तकोटिमहामंत्रैरुपमंत्रैरनेकधा ॥ मंत्रः षडक्षरो भिन्नस्सूत्रं वृत्यात्मना यथा ॥ ३२ ॥ शिवज्ञानानि यावंति विद्यास्थानानि यानि च ॥ षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ॥ ॥ ३३ ॥ किं तस्य बहुभिर्मंत्रैश्शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥ यस्योन्नमः शिवायेति मंत्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥ ३४ ॥ तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम् ॥ येनोन्नमश्शिवायेति मंत्राभ्यासः स्थिरीकृतः ॥ ३५ ॥ नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम् ॥ जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥३६॥ अंत्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ पंचाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपंजरात् ॥ ३७ ॥

प्रकारके मन्त्र षडक्षर भिन्न मन्त्रोंमें यह ऐसे ऐसे प्रोतहैं जैसे वृत्तिमें सूत्र ओतप्रोत रहता है ॥ ३२ ॥ जितने शिवज्ञानके विद्यास्थानहैं वह समाससे षडक्षर सूत्रके भाष्यहैं ॥ ३३ ॥ उसके अनेक मन्त्र और शास्त्रके बहुत विस्तारसे क्या है जिसके 'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र हृदयमें स्थित है ॥ ३४ ॥ उसने सब शास्त्रादि और कृत्यकी पूर्ति करली 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका जिसने अभ्यास दृढ करलिया है ॥ ३५ ॥ 'नमः' युक्त "शिवाय" यह तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके आगे वर्तते हैं उसका जीना सफल है ॥ ३६ ॥ नीच, अधम, मूर्ख वा पंडित भी पंचाक्षर जपमें जो निष्ठावाला है वह

पापके पंजरसे छूट जाता है ॥ ३७ ॥ यह वचन देवीके पूँछनेपर शंकरने कहे थे सम्पूर्ण मनुष्योंके हितके निमित्त और कलियुगमें उत्पन्न होनेवालोंके हितके निमित्त विशेषकर शंकरने यह वचन कहेहैं द्विजोंके लिये यह विशेष जानने ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ देवी बोली, जो कि कलियुगके दुर्जयकालके प्राप्त होनेपर अपुण्यरूपी अन्धकारसे आच्छन्न लोकके धर्मसे पराङ्मुख होने ॥ १ ॥ वर्णके आचारके क्षीण होने और वर्णसंकर धर्मके उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण अधिकारके संदिग्ध होनेपर और निश्चयके विपरीत होनेपर ॥

इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना ॥ हिताय सर्वमर्त्यानां द्विजानां तु विशेषतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ देव्युवाच ॥ कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे ॥ अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे ॥ १ ॥ क्षीणे वर्णाश्रमाचारे संकटे समुपस्थिते ॥ सर्वाधिकारे संदिग्धे निश्चिते वापि पर्यये ॥ २ ॥ तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते ॥ केनोपायेन मुच्यंते भक्तास्तव महेश्वर ॥ ३ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पंचाक्षरीं मम ॥ भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यंते कलिजा नराः ॥ ४ ॥ मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्तुमगोचरैः ॥ दूषितानां कृतघ्नानां निंदकानां छलात्मनाम् ॥ ५ ॥ लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम् ॥ मम पंचाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी ॥ ६ ॥ मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले ॥ पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ और गुरु शिष्यके क्रम बिगडनेपर उपदेश विधान नष्ट होनेपर हे महेश्वर ! तुम्हारे भक्त किस प्रकारसे मुक्त होतेहैं ॥ ३ ॥ महेश्वर बोले, मेरी पंचाक्षरी विद्याको हृदयमें धारणकर भक्ति करके भावितात्मावाले पुरुष कलियुगमें मुक्त होजातेहैं ॥ ४ ॥ मन वाणी कर्मसे उत्पन्नहुए दोष करके जो कहने और स्मरण करनेके अगोचर हैं, जो दूषित, कृतघ्न, निर्दयी, दुष्टात्माहैं ॥ ५ ॥ तथा लोभी जो कुटिल नामवाले मुझमें मन लगाते भक्ति करतेहैं उनको मेरी संसारभयतारिणी पंचाक्षरी विद्या है ॥ ६ ॥ हे देवि ! मैंने पृथ्वीतलमें एक बार प्रतिज्ञा की है कि, कैसा भी पतितहो मेरा भक्त इस विद्यासे मुक्त

होजाता है ॥ ७ ॥ देवी बोली, जो मनुष्य कर्मके योग्य और सर्वथा पतित हो तो वह कर्मयोग्य जो कुछ कर्म करता है वह नरककेही निमित्त होतेहैं तो पतित इस विद्यासे कैसे छूट सकता है ? ॥ ८ ॥ ईश्वर बोले, हे सुन्दरी ! तुमने पूँछा सो बहुत अच्छा पूँछा, यह रहस्यकी बात है, जो मैंने आजतक तुमसे नहीं कही थी ॥ ९ ॥ मन्त्रपूर्वक मुझको पतित और मोहितभी पूजन करै तो मेरे पंचाक्षर विना वह नरकको जायगा ॥ १० ॥ जल वायु भक्षण करनेवाले जो व्रतसे कर्षितहैं इन व्रतोंसे मेरे लोकका समागम नहीं है ॥ ११ ॥ भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रसे जो मेरी पूजा करै वह एकही बारकी पूजामें

देव्युवाच ॥ कर्मायोग्यो भवेन्मर्त्यः पतितो यदि सर्वथा ॥ कर्मायोग्येन यत्कर्म कृतं च नरकाय हि ॥ ततः कथं विमुच्येत पतितो विद्ययाऽनया ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तथ्यमेतत्त्वया प्रोक्तं तथा हि शृणु सुंदरि ॥ रहस्यमिति मत्वैतद्गोपितं यन्मया पुरा ॥ ९ ॥ समंत्रकं मां पतितः पूजयेद्यदि मोहितः ॥ नारकी स्यान्न सन्देहो मम पंचाक्षरं विना ॥ १० ॥ अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ॥ तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति मम लोकसमागमः ॥ ११ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यो हि मां सकृदर्चयेत् ॥ सोऽपि गच्छेन्मम स्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात् ॥१२॥ तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा ॥ पंचाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥१३॥ बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पाशात्पंचाक्षरेण यः ॥ पूजयेन्मां स मुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥१४॥ अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पंचाक्षरेण यः ॥ पूजयेत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः ॥ १५ ॥ षडक्षरेण वा देवि तथा पंचाक्षरेण वा ॥ स ब्रह्मांगेन मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते ॥ १६ ॥

इस मंत्रके गौरवसे मेरे स्थानको प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥ इस कारण तप यज्ञ व्रत नियम पंचाक्षरसे अर्चन करनेके कोटि अंशकी भी समान नहीं है ॥ ॥ १३ ॥ बँधाहुआ वा मुक्तहुआ कर्मसे मुक्त जो मनुष्य पंचाक्षरसे मेरी पूजा करता है वह मुक्त होजाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ रुद्रभक्तिरहित, अथवा रुद्रभक्तियुक्त जो एकबार पंचाक्षरसे मेरी पूजा करता है, वह मूर्ख मनुष्य भी मुक्त होजाता है ॥ १५ ॥ हे देवि ! षडक्षर वा पंचाक्षरसे ब्रह्मरूप

मंत्रसे जो मनुष्य मेरा पूजन करता है वह उस भक्तिपूजासे मुक्त होजाता है ॥ १६ ॥ जो पतित या अपतित इस मंत्रसे मेरा पूजन करै; मेरे क्रोध जीतेहुए
गुरुमंत्र लियेहुए वा उससे रहित ॥१७॥ विना गुरुके मंत्र लियेसे गुरुमन्त्र लेकर जप करता है वह करोड गुना अधिक फल होता है; इस कारण हे देवि !
इसको लेकर गुरुमन्त्रसे मुझे पूजन करै ॥ १८ ॥ जो गुरुमन्त्र ले मैत्र्यादि गुणयुक्त हो मेरा पूजन करता है; ब्रह्मचर्ययुक्त हो भक्तिसे रत होता है; वह
मेरे सदृश गुणोंको प्राप्त होता है ॥१९॥ बहुत कहनेसे क्याहै सब भक्त और अधिकारी मेरे पंचाक्षर मन्त्रमें प्रीति करनेवाले जो हैं वे सब श्रेष्ठहैं ॥२०॥

पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ मम भक्तो जितक्रोधो सलब्धोऽलब्ध एव वा ॥ १७ ॥ अलब्धालब्ध एवेह कोटिको
टिगुणाधिकः ॥ तस्माल्लब्ध्वैव मां देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ १८ ॥ लब्ध्वा संपूजयेद्यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः ॥ ब्रह्मचर्यरतो भक्त्या
मत्साहृश्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन भक्तास्सर्वेधिकारिणः ॥ मम पंचाक्षरे मंत्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः ॥ २० ॥ पंचाक्ष
रप्रभावेण लोकवेदमहर्षयः ॥ तिष्ठंति शाश्वता धर्मा देवास्सर्वमिदं जगत् ॥ २१ ॥ प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ॥ सर्वं प्रकृति
मापन्नं तत्र संलयमेष्यति ॥ २२ ॥ एकोऽहं संस्थितो देवि न द्वितीयोऽस्ति कुत्रचित् ॥ तदा वेदाश्च शास्त्राणि सर्वे पंचाक्षरे स्थिताः ॥
॥ २३ ॥ ते नाशं नैव संप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः ॥ ततस्सृष्टिरभून्मत्तः प्रकृत्यात्मप्रभेदतः ॥ २४ ॥ गुणमूर्त्यात्मनां चैव
ततोवांतरसंहृतिः ॥ तदा नारायणश्शेते देवो मायामयीं तनुम् ॥२५॥ आस्थाय भोगिपर्यंकशयने तोयमध्यगः ॥ तन्नाभिपंकजाज्जातः
पंचवक्त्रः पितामहः ॥ २६ ॥

पंचाक्षरके प्रभावसे लोक वेद महर्षि और शाश्वत धर्म तथा सब देवता और यह जगत् स्थितहै ॥ २१ ॥ जब प्रलय होनेपर स्थावर जंगम जगत् नष्ट
होजाता है, सब प्रकृतिको प्राप्त होकर लीन होजातेहैं ॥ २२ ॥ हे देवि ! उस समय एक मैंही स्थित रहताहूं, दूसरा कुछ नहीं रहता; उस समय वेद शास्त्र
और सब वस्तुजात पंचाक्षरमें स्थित रहती हैं ॥ २३ ॥ उसी अंशसे प्राप्त हो मेरी शक्तिसे अनुपालितहो गुणोंकी कीहुई मूर्ति और अवान्तर प्रलय होनेसे
॥ २४ ॥ प्रकृति और आत्माके भेदसे सृष्टि होती है उस समय मायामय शरीर धारण कर नारायण शयन करतेहैं ॥ २५ ॥ वह शेषशय्यापर स्थितहो

जब शयन करतेहैं; तब उनके नाभिकमलसे पंचमुख ब्रह्माजी जन्म लेतेहैं ॥ २६ ॥ वह त्रिलोकी निर्माण करनेको असहाय होनेके कारण असमर्थ होतेहैं, तब उन्होंने प्रथम मानसी दश मुनियोंको उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ उनकी सिद्धि बढानेके लिये मुझसे ब्रह्माजी बोले, हे महादेव ! मेरे पुत्रको आप शक्ति दीजिये ॥ २८ ॥ जब ब्रह्माजीने इस प्रकार मेरी प्रार्थना की तब मैंने क्रमसे ब्रह्माके प्रति पंचाक्षरका उपदेश किया ॥ २९ ॥ ब्रह्माने पांचों मुखसे उसको ग्रहण किया; और वाच्य वाचकके भेदसे मुझे महेश्वर जाना ॥ ३० ॥ उसका विविधप्रयोग जानकर सिद्ध मन्त्रयुक्त हो मैंने प्रजापति पुत्रोंके

सिसृक्षमाणो लोकांस्त्रीन्न सक्तो ह्यसहायवान् ॥ मुनीन्दश ससर्जादौ मानसानमितौजसः ॥ २७ ॥ तेषां सिद्धिविवृद्ध्यर्थं मां प्रावाच पितामहः ॥ मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर ॥ २८ ॥ इत्येवं प्रार्थितस्तेन पंचवक्त्रधरो ह्यहम् ॥ पंचाक्षराणि क्रमशः प्रोक्तवान्पञ्चयोनये ॥ २९ ॥ स पंचवदनैस्तानि गृह्णँल्लोकपितामहः ॥ वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्मां महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ज्ञात्वा प्रयोगं विधिवत्सिद्धमंत्रः प्रजापतिः ॥ पुत्रेभ्यः प्रददौ मंत्रं मंत्रार्थं च यथातथम् ॥ ३१ ॥ ते च लब्ध्वा मंत्ररत्नं साक्षाल्लोकपितामहात् ॥ तदाज्ञतेन मार्गेण मदाराधनकांक्षिणः॥३२॥ मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः ॥ मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भक्तै रक्षितस्सदा ॥ ३३ ॥ तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकं स्रष्टुं समुत्सुकाः॥दिव्यं वर्षसहस्रं तु वायुभक्षास्समाचरन् ॥ ३४ ॥ तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम् ॥ ऋषिं छंदश्च कीलं च बीजशक्तिं च दैवतम्॥३५॥न्यास षडंगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः॥प्रोक्तवानहमार्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये॥३६॥

वास्ते मन्त्र और उनका अर्थ प्रदान किया ॥ ३१ ॥ साक्षात् लोकपितामहसे वे मन्त्रको प्राप्तहो उनकी आज्ञासे उसी मार्गसे शिवका आराधन करनेलगे ॥ ३२ ॥ मेरुके मनोहर शिखरपर एक मुञ्जवान् नाम पर्वत है; वह मेरा प्रिय और मेरे भक्तोंसे आराधित है ॥ ३३ ॥ उसके निकट वे ऋषि सृष्टिकी इच्छाकर तपस्या करने लगे; दिव्य सहस्र वर्षतक वे वायु भक्षण कर तप करते रहे ॥ ३४ ॥ उनकी ऐसी भक्ति देखकर मैं शीघ्र प्रत्यक्ष हुआ ऋषिछन्द कीलकबीज शक्तिदेवता ॥ ३५ ॥ न्यासषडंग दिग्बन्ध सम्पूर्ण विनियोग मैंने जगत्सृष्टिकी वृद्धिके निमित्त उन आर्योंके प्रति वर्णन किया ॥ ३६ ॥

तबसे बढेहुए वे ऋषि मन्त्रके माहात्म्यसे देवता असुर मनुष्योंकी सृष्टि विस्तार करने लगे ॥ ३७ ॥ इस परमविद्याका स्वरूप इस समय कहाजाता है पहले "नमः" पीछे "शिवाय" कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ यह पञ्चाक्षरी विद्या सब वेदशास्त्रके शिरोभूतहै; और सम्पूर्ण शब्दजातका यह बीजहै ॥ ३९ ॥ पहले मेरे मुखसे निकलनेके कारण यह मेरी वाचक है; सुवर्णके रंगकी समान पीत और ऊँचे पयोधरवाली ॥ ४० ॥ चार भुजा तीन नेत्र बालसूर्यके समान प्रकाशमान पद्मदल हाथमें लिये मनोहर वरदायक अभय देनेवाली ॥ ४१ ॥ सब लक्षणसे सम्पूर्ण गहने पहरे श्वेतपद्मधारे नीलकुंचित बालोंसे युक्त

ततस्ते मंत्रमाहात्म्यादृषयस्तपसेधिताः ॥ सृष्टिं वितन्वते सम्यक्सदेवासुरमानुषीम् ॥ ३७ ॥ अस्याः परमविद्यायास्स्वरूपमधुनोच्यते ॥ आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवाय तु ततः परम् ॥ ३८ ॥ सैषा पंचाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिरोगता ॥ सर्वजातस्य सर्वस्य बीजभूता सनातनी ॥ ३९ ॥ प्रथमं मन्मुखोद्गीर्णा सा ममैवास्ति वाचिका ॥ तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा ॥ ४० ॥ चतुर्भुजा त्रिनयना बालेंदुकृतशेखरा ॥ पद्मोत्पलकरा सौम्या वरदाभयपाणिका ॥ ४१ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ सितपद्मासनासीना नीलकुंचितमूर्द्धजा ॥ ४२ ॥ अस्याः पंचविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रश्मिमंडलाः ॥ पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च ॥ ॥ ४३ ॥ पृथक्प्रयोज्या यद्येते बिंदुनादविभूषिताः ॥ अर्द्धचंद्रनिभो बिंदुर्नादो दीपशिखाकृतिः ॥ ४४ ॥ बीजं द्वितीयं बीजेषु मंत्रस्यास्य वरानने ॥ दीर्घपूर्वं तुरीयस्य पंचमं शक्तिमादिशेत् ॥ ४५ ॥ वामदेवो नाम ऋषिः पंक्तिश्छंद उदाहृतम् ॥ देवता शिव एवाहं मंत्रस्यास्य वरानने ॥ ४६ ॥ गौतमोऽत्रिर्वरारोहे विश्वामित्रस्तथांगिराः ॥ भरद्वाजश्च वर्णानां क्रमशश्चर्षयः स्मृताः ॥ ४७ ॥

॥ ४२ ॥ इसके सूर्यमण्डलकी समान स्फुरायमान पांच वरणहैं, पीत कृष्ण धूम्र स्वर्णकी समान रक्तवर्ण ॥ ४३ ॥ यह बिन्दुनादसे पृथक् प्रयुक्त करने चाहिये; अर्धचन्द्रके आकार बिंदु और नाददीप शिखाके समान है ॥४४॥ बीजोंमें जो मंत्रोंकेहैं, इसका दूसरा बीज है, प्रथम दीर्घ और चौथा पांचवाँ शक्ति जाननी उचित है ॥ ४५ ॥ इसका वामदेवऋषि पंक्तिछंद और हे वरानने ! मैं शिव देवता हूँ ॥ ४६ ॥ हे वरानने ! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र,

अंगिरा, और भरद्वाज क्रमसे इन वर्णोंके ऋषिहैं ॥ ४७ ॥ गायत्री अनुष्टुप् त्रिष्टुप् बृहती विराट् पांचोंके छन्दहैं, इन्द्र, रुद्र, हरि, ब्रह्मा, स्कन्द यह पांच देवता हैं ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! मेरे पांचमुख उन पांचोंके स्थानहैं, पूर्वादिसे लेकर ऊपरतक यथाक्रमसे जानना (दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) ॥ ४९ ॥ पहला चौथा और दूसरा वर्ण (न, वा, म) उदात्त हैं पांचवाँ (य) तीसरा (शि) यह अनुदात्त है. नकार वकार उदात्त मकार यकार स्वरित शिकार अनुदात्त रुद्राध्यायमें ऐसा पाठ होनेसे व्याकरणरीतिसे ऐसेही सिद्ध है ॥ ५० ॥ मूलविद्या शिव और पंचाक्षर सूत्र है इसके नाम जानै शिवरूप

गायत्र्यनुष्टुप् त्रिष्टुप् च छंदांसि बृहती विराट् ॥ इन्द्रो रुद्रो हरिर्ब्रह्मा स्कंदस्तेषां च देवताः ॥ ४८ ॥ मम पंचमुखान्याहुः स्थाने तेषां वरानने ॥ पूर्वादिश्चोर्द्ध्वपर्यंतं नकारादि यथाक्रमम् ॥ ४९ ॥ उदात्तः प्रथमो वर्णश्चतुर्थश्च द्वितीयकः ॥ पंचमः स्वरितश्चैव तृतीयो निहतः स्मृतः ॥ ५० ॥ मूलविद्या शिवं शैवं सूत्रं पंचाक्षरं तथा ॥ नामान्यस्य विजानीयाच्छैवं मे हृदयं महत् ॥५१॥ नकारश्शिर उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते ॥ शिकारः कवचं तद्वद्वकारो नेत्रमुच्यते ॥ ५२ ॥ यकारोऽस्त्रं नमस्स्वाहा वषट् हुंवौषडित्यपि ॥ फडित्यपि च वर्णानामन्तेऽङ्गत्वं यदा तदा ॥ ५३ ॥ तत्रापि मूलमंत्रोऽयं किंचिद्भेदसमन्वयात् ॥ तत्रापि पंचमो वर्णो द्वादशस्वर भूषितः ॥ ५४ ॥ तस्मादनेन मंत्रेण मनोवाक्कायभेदतः ॥ आवयोरर्चनं कुर्य्याज्जपहोमादिकं तथा ॥ ५५ ॥ यथाप्रज्ञ यथाकालं यथाशास्त्रं यथामति ॥ यथाशक्ति यथासंपद्यथायोगं यथारति ॥ ५६ ॥ यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता ॥ येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं नयिष्यते ॥ ५७ ॥

(कल्याणदायक) मेरा हृदय है ॥ ५१ ॥ नकार शिव, मकार शिखा, शिकार कवच, वकार नेत्र कहलातेहैं ॥ ५२ ॥ यकार अस्त्र, नमः स्वाहा, वषट् हुं वौषट् फट् यह वर्णोंके अंगमें स्थितहैं ॥ ५३ ॥ तुम्हारा भी मूलमन्त्र इसमें किंचित् भेदसे संयुक्त है, उसमें पांचवां वर्ण बारहवें स्वर (एकार) से भूषित है ॥ ५४ ॥ इस कारण इस मन्त्रसे मन वाणी कायाके भेदसे हमारा अर्चन जप होम आदि करना चाहिये ॥ ५५ ॥ जैसे बुद्धि श्रद्धासमय और चतुराई शक्ति सम्पत् योग और जैसी प्रीति हो ॥ ५६ ॥ जब कभी जहां कहीं भक्तिसे जिस किसीने पूजा की हो, हे देवी ! वह मुक्तिकी लेजाने

वाली है ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरि ! मुझमें मन लगाकर जिसने जो कुछ किया है मेरा प्रिय शिवतत्व क्रम वा आक्रमसे किसीने जाना है ॥ ५८ ॥ तो भी मेरे भक्त जो अत्यन्त विवश नहीं हैं; उनके निमित्त मैंने शास्त्रमें यह नियम किया है ॥ ५९ ॥ सो पहलेमें मन्त्र ग्रहणकी सुन्दर विधि कहता हूँ, जिसके विना जप निष्फल और जिसके करनेसे सफल होता है सो कहता हूँ ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां ० वा० सं० उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ईश्वर बोले, हे वरानने ! आज्ञाहीन (उपदेश हीन) श्रद्धाहीन, क्रियाहीन, आज्ञाके निमित्त दक्षिणासे हीन जप क्रियाहुआ सदा निष्फल

मय्यासक्तेन मनसा यत्कृतं मम सुन्दरि ॥ मत्प्रियं च शिवं चैव क्रमेणाप्यक्रमेण वा ॥ ५८ ॥ तथापि मम भक्ता ये नात्यंतविवशाः पुनः ॥ तेषां सर्वेषु शास्त्रेषु मयैव नियमः कृतः ॥ ५९ ॥ तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम् ॥ यं विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत् ॥ ६० ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने ॥ आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम् ॥ १ ॥ आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं ममात्मकम् ॥ एवं चेद्दक्षिणायुक्तं मंत्रसिद्धिर्महत्फलम् ॥ २ ॥ उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम् ॥ जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम् ॥ ३ ॥ तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः ॥ वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च ॥ ४ ॥ आचार्यं पूजयेद्विप्रः सर्वदातिप्रयत्नतः ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ॥ ५ ॥ भूषणानि च वासांसि धान्यांनि च धनानि च ॥ एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति ॥ ६ ॥

है ॥ १ ॥ आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध जो मेरे आत्मक मन्त्रहैं, और दक्षिणायुक्तहैं वे मन्त्र सिद्ध महाफलके देनेहारेहैं ॥ २ ॥ यह ब्राह्मण तत्त्ववेदी गुरुके पास जाकर जो कि जप करनेमें तत्पर सद्गुणसे युक्त ध्यानयोगमें परायण है ॥ ३ ॥ उसके भावशुद्धिसे युक्तहो प्रयत्नसे सन्तुष्ट करै, वाणी मन काया तथा धनसे सन्तुष्ट करै ॥४॥ वह शिष्य सदा प्रयत्नसे आचार्यकी पूजा हाथी घोडे रथ रत्न अनेक प्रकारके क्षेत्र गृह ॥ ५ ॥ भूषण वस्त्र धान्य

धन ऐश्वर्य होनेमें यह सब वस्तु गुरुको दान करै ॥ ६ ॥ जो अपनी सिद्धिकी इच्छा हो तो धनकी शठता न करै पीछे अपनेको और अपने परिच्छ
दको भी निवेदन करदे ॥ ७ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन कर यथाशक्ति वंचना रहित होकर गुरुसे मन्त्र और ज्ञान ग्रहण करै ॥ ८ ॥ इसप्रकार गुरु
सन्तुष्ट होकर अपने शिष्यको एक वर्षतक देखे, जब वर्षदिनतक अहंकाररहित शुश्रूषा करै; पवित्र और व्रती रहे ॥ ९ ॥ तब उसे शब्द होनेके निमित्त
घृतसे पूर्ण घटसे स्नान करावै, मन्त्र शुद्ध जलसे जो कि, पवित्र द्रव्ययुक्त हो ॥ १० ॥ अलंकार कर सुन्दर वेष गन्ध मालायुक्त पुण्याहवाचनकर

वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदिच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ पश्चान्निवेद्य स्वात्मानं गुरवे सपरिच्छदम् ॥ ७ ॥ एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्ति
त्ववंचयन् ॥ आददीत गुरोर्मंत्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु ॥ ८ ॥ एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम् ॥ शुश्रूषुमनहंकारं स्नातं
शुचिमुपोषितम् ॥ ९ ॥ स्नापयित्वा विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुंभघृतेन वै ॥ जलेन मंत्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च ॥ १० ॥ अलंकृत्य सुवेषं च
गंधस्रग्वस्त्रभूषणैः ॥ पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥ ११ ॥ समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा ॥ शुचौ देशे गृहे
वापि काले सिद्धिकरे तिथौ ॥ १२ ॥ नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते ॥ अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि ॥ १३ ॥
स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकांतेऽतिप्रसन्नधीः ॥ उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मंत्रमुत्तमम् ॥ १४ ॥ शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु
प्रियोऽस्त्विति ॥ एवं दद्याद्गुरुर्मंत्रमाज्ञां चैव ततः परम् ॥ १५ ॥ एवं लब्ध्वा गुरोर्मंत्रमाज्ञां चव समाहितः ॥ संकल्प्य च जपेन्नित्यं
पुरश्चरणपूर्वकम् ॥ १६ ॥ यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥ १७ ॥

ब्राह्मणोंकी पूजा कर ॥ ११ ॥ समुद्रके तट नदी गोष्ठ देवालय पवित्र देश या घरमें सिद्धि करनेवाले समय और पवित्र तिथिमें ॥ १२ ॥ शुभयोग
नक्षत्रमें सब दोष रहित अनुग्रह करके मेरा ज्ञान विधिपूर्वक दे ॥ १३ ॥ एकान्तमें अति प्रसन्न मनसे इस प्रकार हमारा मन्त्र बारंबार उच्चारणकर ॥ १४ ॥
शिव हो, मंगल हो, शुभ हो, प्रिय हो, इस प्रकार गुरु उच्चारण करके आज्ञा दे ॥ १५ ॥ इसप्रकार गुरुसे सावधान मन्त्र हो ग्रहण कर पुरश्चरण पूर्वक संकल्प
देकर जपै ॥ १६ ॥ जीवन पर्यंत एकसहस्र एक सौ आठ मंत्र जप करता रहै और अनन्य मन होकर कार्य करनेसे परमगतिका अधिकारी होता है ॥ १७ ॥

मंत्रमें जितने अक्षर हैं, उतनेही लक्ष जप करै जो रात्रिमें भोजन करै संयम करै वह पुरश्चरणी कहाता है ॥ १८ ॥ जो पुरश्चरण करके नित्य जप करता है इसकी समान लोकमें कोई नहीं वह सिद्ध सिद्धिका देनेवालाहै ॥ १९ ॥ पवित्र देशमें स्नानकर सुन्दर आसन बांधकर तुमको और अपने गुरुको हृदयमें विचारकर ॥ २० ॥ उत्तर वा पूर्वको मुखकर मौनधारे एकाग्र मनसे दहन प्लवनादिसे पंचतत्त्वोंको विशुद्ध कर ॥ २१ ॥ मंत्र न्यासादिसे सब कलायुक्त शरीरकर हमारे तुम्हारे शरीरका ध्यान करताहुआ प्राण अपानको रोककर ॥ २२ ॥ विद्यास्थान अपना रूप ऋषि छंद देवता बीज शक्ति

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात् ॥ नक्ताशी संयमी यस्स पौरश्चरणिकः स्मृतः ॥ १८ ॥ यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः ॥ तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ॥ १९ ॥ स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ॥ त्वया मां हृदि संचिंत्य संचिंत्य स्वगुरुं ततः ॥ २० ॥ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ॥ विशोध्य पंचतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः ॥ २१ ॥ मंत्रन्यासादिकं कृत्वा सफलीकृतविग्रहः ॥ आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च ॥ २२ ॥ विद्यास्थानं स्वकं रूपमृषिञ्छन्दोऽधिदैवतम् ॥ बीजं शक्तिं तथा वाक्यं स्मृत्वा पंचाक्षरीं जपेत् ॥ २३ ॥ उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशु चैवमध्यमम् ॥ अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः ॥ २४ ॥ उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम् ॥ अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः ॥ २५ ॥ यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः ॥ मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपस्स्मृतः ॥ २६ ॥ जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा ॥ अपरैरश्रुतः किंचिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते ॥ २७ ॥ धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ॥ शब्दार्थचिंतनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥ २८ ॥

वाचकको स्मरणकर पंचाक्षरीविद्याका जप करै ॥ २३ ॥ मानस जप उत्तम है; जिसमें होठ हलते हैं वह मध्यम और वाचकको जिसमें शब्द निकले उसके जाननेवाले अधम कहते हैं ॥ २४ ॥ रुद्रदेवतावाले उत्तम; विष्णुदेवताके मध्यम; ब्रह्मादेवताके मंत्र अधम होते हैं ॥ २५ ॥ ऊंचे नीचे स्वरसे वा शीघ्रतासे स्पष्ट अक्षर पदसे मंत्रको उच्चारण करै यह जप वाचक कहाता है ॥ २६ ॥ जिसमें जिह्वा हलै और किंचित् उच्चारण किया जाय दूसरे जनोंको स्पष्ट सुनाई न दे उसको उपांशु जप कहते हैं ॥ २७ ॥ जो बुद्धिमेंही अक्षर और पदका ध्यान तथा पद अक्षर अर्थका चिन्तवन किया जाय उसे मानसी

जप कहते हैं ॥ २८॥ वाचिकसे एक, उपांशुसे सौ, मनसे सहस्र गुणा और आदि अन्तमें प्राणायामसे युक्त जप सगर्भ करनेसे उससे भी सौ गुणा फल होता है ॥ २९ ॥ आदि अन्तमें प्राणायाम जप करनेसे सगर्भ जप कहाता है, अगर्भके भी आदि अन्तमें प्राणायाम करना अवश्य है ॥३०॥ चालीस आवृत्ति करके प्राणायाम कर, मंत्र और मन्त्रार्थका जाननेवाला बुद्धिमान् शक्तिके अनुसार मंत्रका जप करै ॥ ३१ ॥ पांच तीन वा एक प्राणायाम करै, अगर्भ और सगर्भमें सगर्भ मंत्र श्रेष्ठ कहा है ॥ ३२ ॥ सगर्भसे भी सहस्रगुणा ध्यान जप कहाजाता है, इस पांच विधिमें शक्तिसे कोई एक जप करना चाहिये

वाचिकस्त्वेक एवस्यादुपांशुः शतमुच्यते ॥ साहस्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः ॥ २९ ॥ प्राणायामसमायुक्तस्सगर्भो जप उच्यते ॥ आद्यंतयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ॥३०॥ चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्य संस्मरेत् ॥ मंत्रं मंत्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत् ॥ ३१ ॥ पंचकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते ॥ ३२ ॥ सगर्भादपि साहस्रं :सध्यानो जप उच्यते ॥ एषु पंचविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ॥ ३३ ॥ अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम् ॥ रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ॥ ३४ ॥ शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ॥ स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥ ३५ ॥ पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ॥ कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनंतगुणितं भवेत् ॥ ३६ ॥ त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ॥ सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ॥ ३७ ॥ पंचविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ॥ अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचारफलप्रदा ॥ ३८ ॥

॥ ३३ ॥ उंगलीसे जप करनेसे एक गुणा, रेखासे आठ गुणा, जिये पोतेसे दश गुणा ॥ ३४ ॥ शंखमणिसे सौ गुणा, मूँगोंसे हजार गुणा, स्फटिकसे दश सहस्र गुणा, मोतियोंसे लाख गुणा ॥ ३५ ॥ कमलगट्टोंसे दश लाख गुणा, सुवर्णसे करोड गुणा; कुशग्रंथि और रुद्राक्षसे अनन्त फल होता है ॥ ३६ ॥ तीस दानोंकी माला जप करनेसे धन देनेवाली है; सत्ताईस दानोंकी पुष्टिदेनेवाली है ॥३७॥ पच्चीससे मुक्ति,पन्द्रहसे अभिचार फलसिद्धि होती है ॥३८॥

अंगूठेसे मोक्ष तर्जनीसे जप करनेसे शत्रुका नाश मध्यमासे धनकी प्राप्ति और अनामिका शान्तिकरने वाली है ॥ ३९ ॥ इसमें एक सौ आठ दानोंकी
माला उत्तम है सौकी उत्तम और पचास दानोंकी मध्यम माला होती है ॥ ४० ॥ चौअन रुद्राक्षकी माला हृदयको हितकारी है, इस प्रकार मालासे
जपकर किसीको न दिखावै ॥ ४१ ॥ कनिष्ठिका दुःख नाश करनेवाली जप करनेमें श्रेष्ठ है; अंगूठेके साथ और उंगलियोंके सहित जप करना
चाहिये ॥ ४२ ॥ जो अंगूठेके विना जप है वह निष्फल है, घरमें जप समान है, गोठेमें सौ गुणा ॥ ४३ ॥ पुण्यवन अथवा बगीचेमें जप करनेसे सहस्र

अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम् ॥ मध्यमां धनदां शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका ॥ ३९ ॥ अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादु
त्तमोत्तमा ॥ शतसंख्योत्तमा माला पंचाशद्भिस्तु मध्यमा ॥ ४० ॥ चतुःपंचाशपक्षैस्तु हृच्छ्रेष्ठा हि प्रकीर्तिता ॥ इत्येवं मालया
कुर्याज्जपं कस्मै न दर्शयेत् ॥ ४१ ॥ कनिष्ठा क्षरणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना ॥ अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिस्सह ॥ ४२ ॥
अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः ॥ गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं विदुः ॥ ४३ ॥ पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते ॥
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ॥ ४४ ॥ कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ॥ सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिंदोर्दीपस्य च जलस्य
च ॥ ४५ ॥ विप्राणां च गवां चव सन्निधौ शस्यते जपः ॥ तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम् ॥ ४६ ॥ पश्चिमं धनदं
विद्यादौत्तरं शांतिदं भवेत् ॥ सूर्य्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्निधौ ॥ ४७ ॥ अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत् ॥
उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ॥ ४८ ॥

गुणा फल मिलता है ॥ ४४ ॥ देवालयमें करोड गुणा, मेरे निकट अनन्त फल कहा है; सूर्य अग्नि रुद्र चन्द्रमा दीपक जल ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण और
गौओंके निकट जप करना श्रेष्ठ है; पूर्व मुख होकर वशीकरण, दक्षिणकी ओर अभिचार ॥४६॥ पश्चिमकी ओर धनदायक; उत्तरकी ओर शान्तिदायक,
सूर्य अग्नि ब्राह्मण देवता गुरु जनोंके निकट ॥ ४७ ॥ और भी प्रशस्त जनोंके निकट विमुख होकर मंत्र न जपै, पगडी कुरता नंगा, खुलेबाल, कंठ लपेटे

हुए ॥ ४८ ॥ अपवित्र हाथ अशुद्ध रोना क्रोध मद छींक थूकना जँभाई लेना ॥ ४९ ॥ कुत्ते तथा नीच आदमियोंका दर्शन जपमें न करै, और जो दर्शन होजाय तो आचमन करै, अथवा मेरा तुम्हारा स्मरण करै ॥ ५० ॥ तारोंको देखै वा प्राणायाम करै, बिना बैठे सोते चलते हुए ॥ ५१ ॥ गली अमंगल स्थान अन्धकारमें जप न करै, पावोंको फैलाकर वा कुक्कुट आसनसे जप न करै ॥ ५२ ॥ सवांग अथवा खाटपर बैठकर चिंतासे व्याकुल समर्थ हो तो इनपर भी न जपै, अशक्त हो तो शक्तिके अनुसार जपै ॥५३॥ बहुत कहनेसे क्या है, संक्षेपसे मुझसे सुनिये; सदाचारयुक्त शुद्धतासे जपता

अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्क्वचित् ॥ क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे ॥ ४९ ॥ दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ॥ आचमेत्संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह ॥ ५० ॥ ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम् ॥ अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा ॥ ५१ ॥ रथ्यायामाशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे ॥ प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासन एव वा ॥ ५२ ॥ यानशय्याधिरूढो वा चिंताव्याकुलितोऽथ वा ॥ शक्तश्चेत्सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत् ॥ ५३ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु ॥ सदाचारो जपञ्छुद्धं ध्यायन्भद्रं समश्नुते ॥ ५४ ॥ आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम् ॥ आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ॥ ॥ ५५ ॥ आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥ परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान्भवेत् ॥ ५६ ॥ यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः ॥ तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः ॥५७॥ सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते ॥ सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम् ॥ ५८ ॥ आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैः सदाचारादविच्युतः ॥ न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत् ॥ ५९ ॥

हुआ ध्यान करनेसे मंगलको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ आचार्य ही परमधर्म आचार्य ही परमधन आचार्य ही परमविद्या, और आचार्य ही परमगति है ॥ ॥ ५५ ॥ आचारहीन पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दूसरे लोकमें भी सुख नहीं मिलता, इससे पुरुषको आचारवान् होना युक्त है ॥ ५६ ॥ जिसको वेदशास्त्रमें जो कर्म विधान करदिया है उसको वही कर्म करना चाहिये दूसरा नहीं ॥ ५७ ॥ सत्पुरुषोंसे आचरित होनेसे सदाचार कहाता है; सदाचारही आस्तिक्यका मूलकारण है ॥ ५८ ॥ आस्तिक्य होकर प्रमादादिसे सदाचारसे भ्रष्ट होजाय तो भी वह दूषित नहीं होता, इसकारण आस्तिकताको प्राप्त

होना चाहिये ॥ ५९ ॥ जो सुकृत दुष्कृतसे यहां सुख दुःख हो वैसाही परलोकमें होगा इस मतिका नाम आस्तिक्यता है ॥ ६० ॥ हे प्रिये ! और भी गुप्तरहस्य कहताहूं; यह नास्तिक जीवोंका कहना न चाहिये ॥ ६१ ॥ सदाचारहीन पतित अन्त्यजके रक्षा करनेको कलियुगमें पंचाक्षरसे बढकर कोई मन्त्र नहीं है ॥ ६२ ॥ चलते खडे होते अथवा स्वेच्छासे कर्म करते हुए; अशुचि वा शुचिमें भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ॥ ६३ ॥ जो पुरुष आचार रहित है अविशुद्ध षडध्ववालोंका यदि गुरुने उपदेश न दिया हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ॥६४॥ अंत्यज, मूर्ख, मूढ पतित, निर्मर्याद

यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि ॥ तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते ॥६०॥ रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये ॥
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथ वा पशोः ॥ ६१ ॥ सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च ॥ पंचाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं
कलौ युगे ॥ ६२ ॥ गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ॥ अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयन्न च निष्फलः ॥ ६३ ॥ अनाचारवतां
पुंसामविशुद्धषडध्वनाम् ॥ अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥ ६४ ॥ अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्यच ॥
निर्मर्यादस्य च नीचस्य मंत्रोऽयं न च निष्फलः ॥ ६५ ॥ सर्व्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम् ॥ सिध्यत्येव न संदेहो
नापरस्य तु कस्य चित् ॥ ६६ ॥ न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये ॥ अस्यात्यंतमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तस्सदोदितः ॥ ६७ ॥
न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः ॥ सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भवष्यति ॥ ६८ ॥ सिद्धेन गुरुणादिष्टस्सुसिद्ध
इति कथ्यते ॥ असिद्धेनापि वा दत्तस्सिद्धसाध्यस्तु केवलः ॥ ६९ ॥

और नीच पुरुषोंको भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ॥ ६५ ॥ किसी अवस्थामें हो जो मेरी परमभक्ति करता है वह सिद्ध होजायगा इसमें संदेह नहीं, दूसरे किसीको सिद्धि नहीं होगी ॥ ६६ ॥ हे प्रिये ! लग्न तिथि नक्षत्र वार योगादि सोते जागते कोई मेरे भक्तको अपेक्षा नहीं है ॥ ६७ ॥ इसका कोई शत्रु नहीं होता, इसे सुसिद्ध सिद्ध वा असाध्य कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥६८॥ सिद्ध गुरुके आदेशको प्राप्तहो सुसिद्ध कहलाता है, और असिद्धसे

भी लियाहुआ स्वयंही पढाहुआ साध्यसे सिद्ध होजाता है ॥ ६९ ॥ असाधित वा साधित इसमें संदेह नहीं वह सिद्ध होजाता है, मुझमें मन्त्र तथा गुरुमें जो श्रद्धासे अतिवर्तता है ॥ ७० ॥ इस कारण मंत्रांतरोंको छोडकर वियोगके अनधिकारसे हृदयको मनोहर पंचाक्षरी विद्याका आश्रय करै ॥ ७१ ॥ मंत्रांतरोंके सिद्ध होनेमें यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता है, और इस महामंत्रके सिद्ध होनेमें दूसरे सब मंत्र स्वयं सिद्ध होजातेहैं ॥ ७२ ॥ हे महेश्वरि ! जिस प्रकार देवतोंके प्राप्त होनेपर भी मैं प्राप्त नहीं हूँ परंतु मेरे प्राप्त होनेमें वे सब स्वयं प्राप्त होजाते हैं, यह मन्त्रोंविषे समान विधि है ॥ ७३ ॥ जो और

असाधितस्साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः ॥ श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मंत्रे तथा गुरौ ॥ ७० ॥ तस्मान्मंत्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः ॥ आश्रयेत्परमां विद्यां साक्षात्पंचाक्षरीं बुधः ॥ ७१ ॥ मंत्रान्तरेषु सिद्धेषु मंत्र एष न सिध्यति ॥ सिद्धे त्वस्मिन्महामंत्रे ते च सिद्धा भवंत्युत ॥ ७२ ॥ यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि ॥ मयि लब्धे तु ते लब्धा मंत्रेष्वेषु समो विधिः ॥ ॥ ७३ ॥ ये दोषास्सर्वमंत्राणां न तेस्मिन्संभवंत्यपि ॥ अस्य मंत्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात् ॥ ७४ ॥ तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रतियोगिषु ॥ सहसा विनियुंजीत तस्मादेष महाबलः ॥ ७५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना ॥ हिताय जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा ॥ ७६ ॥ य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे पंचाक्षरमहिमवर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवन्मंत्रमाहात्म्यं भवता कथितं प्रभो ॥ तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा ॥ १ ॥

मन्त्रोंमें दोष हैं वे इसमें नहीं होते हैं, इस मन्त्रके प्रवर्तनसे जाति आदिकी अपेक्षा नहीं है ॥ ७४ ॥ तथापि क्षुद्रफल और शत्रुओंमें एक साथ इसको नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि इसका महाफल है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार महादेव शूलधारीने महादेवीके प्रति जगत्के हितके निमित्त पंचाक्षरकी विधि कही है ॥७६॥ जो इसे भक्तिसे कीर्तन करता है और श्रवण करता है वह सब पापोंसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होताहै ॥७७॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! आपने मंत्रका माहात्म्य कहा और साक्षात् श्रुतिसम्मत उसके प्रयोगका

विधान सुनाया ॥ १ ॥ इस समय मंत्रग्रहणमें शिवसंस्कारके सुननेकी इच्छा करता हूँ जो कि आपने सूक्ष्मतासे कही है सो विस्तारसे कहिये ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, मैं सब कर्म दूर करनेवाली विधि कहता हूं वह परमपवित्र संस्कार शिवने कहा है ॥ ३ ॥ क्योंकि पूजामें मनुष्योंको सब प्रकारसे संस्कार करना उचित है; छः मार्गका शोधनही संस्कार कहलाता है ॥ ४ ॥ जिससे विज्ञान होताहै और पाशबन्धन क्षय होता है इस कारण संस्कारको दीक्षा भी कहते हैं ॥ ५ ॥ शिवशास्त्रमें शाम्भवी शाक्ती मांत्री (मंत्रसम्बन्धी) तीन प्रकारकी दीक्षा शिवने वर्णन की है ॥ ६ ॥ गुरुके दर्शनमात्रसे स्पर्श

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम् ॥ मंत्रसंग्रहणे किंचित्सूचितन्न तु विस्मृतम् ॥ २ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम् ॥ संस्कारं परम पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ॥ ३ ॥ सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिषु नरो यतः ॥ संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम् ॥ ४ ॥ दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबंधनम् ॥ तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते ॥ ५ ॥ शांभवी चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे ॥ दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ॥ ६ ॥ गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि ॥ सद्यस्संज्ञा भवेज्जंतोः पाशोपक्षयकारिणी ॥ ७ ॥ सा दीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा ॥ तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशोपक्षयभेदतः ॥ ८ ॥ यया स्यान्निर्वृतिः सद्यस्सैव तीव्रतरा मता ॥ तीव्रा तु जीवतोत्यंतं पुंसः पापविशोधिका ॥ ९ ॥ शक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु ॥ गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ॥ १० ॥ मांत्री क्रियावती दीक्षा कुंडमंडलपूर्विका ॥ मंदमंदतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः ॥ ११ ॥

और सम्भाषण करनेसे तत्काल जन्तुकी पाशक्षयकारिणी संज्ञा होजाती है ॥७॥ वही शांभवी दीक्षा कहाती है, सो दो प्रकारकी है, सो पाशक्षयके भेदसे तीव्रा और तीव्रतरा नामवाली है ॥ ८ ॥ जिससे शीघ्र निवृत्ति हो वह तीव्रतरा है; और पुरुषोंकी पाप शोधनेवाली तीव्रा दीक्षा है ॥९॥ शक्तिज्ञानवाली वह दीक्षा है कि शिष्यके देहमें प्रवेश करके योगमार्गद्वारा जो गुरुसे की जाती है वह ज्ञानचक्षुसे होती है ॥ १० ॥ क्रियावती मांत्री दीक्षा कुण्डमण्डलसे पूर्व मंद और मंदतरके उद्देशसे गुरुको बहिर्भागमें करनी चाहिये ॥ ११ ॥

शक्ति सामर्थ्यके अनुसार शिष्य अनुग्रहके योग्यहै; शैवधर्मके अनुसार उसका मूल होनेसे संक्षेपसे योग्य है ॥ १२ ॥ जहां शक्ति पतित नहीं होती है, वहां
शक्ति नहीं होती; न विद्या न शिवाचार न मुक्ति और न सिद्धि होती है ॥ १३ ॥ इस कारण शक्तिपातके बडे चिह्नोंको देखकर ज्ञान अथवा क्रियासे
गुरु शिष्यको शुद्ध करै ॥ १४ ॥ जो मोहसे नष्ट होजाताहै; इस प्रकार सब प्रकारसे गुरु शिष्यकी परीक्षा करै ॥ १५ ॥ अत्यन्त प्रबोध आनंदकी प्राप्ति
होनी शक्तिपातका लक्षण है; कारण कि वह पराशक्ति प्रबोधानंदरूपवाली है ॥ १६ ॥ अन्तःकरणकी विक्रिया आनन्दबोधका लिंग है; जिससे कि

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ॥ शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समासतः ॥१२॥ यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते ॥
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः ॥ १३ ॥ तस्माल्लिंगानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः ॥ ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुश्शिष्यं
विशोधयेत् ॥ १४ ॥ योऽन्यथा कुरुते मोहात्स विनश्यति दुर्मतिः ॥ तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् ॥ १५ ॥ लक्षणं शक्ति
पातस्य प्रबोधानंदसंभवः ॥ सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधानंदरूपिणी ॥ १६ ॥ आनंदबोधयोर्लिंगमंतःकरणविक्रियाः ॥ यथा
स्यात्कंपरोमांचस्वरनेत्रांगविक्रियाः ॥ १७ ॥ शिष्योपि लक्षणैरेभिः कुर्याद्गुरुपरीक्षणम् ॥ तत्संपर्कैः शिवार्चादौ संगतैर्वाथ तद्गतैः
॥ १८ ॥ शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोर्गौरवकारणात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत् ॥ १९ ॥ यो गुरुस्स शिवः प्रोक्तो यः
शिवः स गुरुः स्मृतः ॥ गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः ॥ २० ॥ यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः ॥ शिवविद्या
गुरूणां च पूजया सदृशं फलम् ॥ २१ ॥ सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमंत्रमयो गुरुः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत् ॥ २२ ॥

कम्प रोमाञ्च स्वर नेत्रादिके विकार होतेहैं ॥ १७ ॥ इन शिष्योंके लक्षणोंसे उसकी परीक्षा करनी उचित है, उसको सम्पर्कसे शिवका अर्चादिकमें अपनी
गति वा उसकी गतिसे परीक्षा करै ॥ १८ ॥ शिक्षणीय होनेसे शिष्य, गौरवके कारणसे गुरु कहाता है, इस कारण सब प्रयत्नसे गुरुका गौरव करना
चाहिये ॥ १९ ॥ जो गुरु है सो शिव है, जो शिव है सो गुरु है, गुरु वा शिव दोनों विद्या हैं, और जो विद्या है सोई गुरु है, शिव विद्या और गुरुके
पूजनका बराबर फल है ॥२०॥२१॥ यह गुरु सब देवतात्मक और मन्त्रमय है, इस कारण सब प्रयत्नसे गुरुकी आज्ञा शिरपर धारण करै ॥ २२ ॥

कल्याणकी इच्छा करनेवाला जो गुरुकी आज्ञाको मनसेभी उल्लंघन नहीं करता और गुरुकी आज्ञाका पालन करता है, वह ज्ञानसम्पत्तिको पाता है ॥ ॥ २३ ॥ चलते स्थित होते सोते भोजन करते तथा दूसरे कर्माचरण करनेमें सब कार्य गुरुकी आज्ञासे करने चाहियें ॥ २४ ॥ गुरुके घर वा उनके सन्मुख यथेष्ट आसनपर न बैठे, गुरु साक्षात् देवताहै उनका घर देवमंदिरहै ॥ २५ ॥ जिस प्रकार पापियोंके संग वा पापसे पतित होजाता है, इसी प्रकार आचार्यके संगसे सब पापका नाश होकर उसके धर्मफलका भागी होता है जिस प्रकार अग्निके सम्पर्कसे सोनेका मैल त्यागा जाता है ॥ २६ ॥

श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत् ॥ गुर्वाज्ञापालको यस्माज्ज्ञानसंपत्तिमश्नुते ॥ २३ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्नान्यत्कम समाचरेत् ॥ समक्षं यदि कुर्वीत सर्वं चानुज्ञया गुरोः ॥ २४ ॥ गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ॥ गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमंदिरम् ॥ २५ ॥ पापिनां च यथा संगात्तत्पापात्पतितो भवेत्[1] ॥ यथेह वह्निसंपर्कान्मलं त्यजति कांचनम् ॥ २६ ॥ तथैव गुरुसंपर्कात्पापं त्यजति मानवः ॥ यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुंभो विलीयते ॥ २७ ॥ तथा पापं विलीयेत ह्याचार्यस्य समीपतः ॥ यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ॥ २८ ॥ तथायमपि संतुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत् ॥ मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् ॥ २९ ॥ तस्य क्रोधेन दह्यंते ह्यायुःश्रीज्ञानसक्रियाः ॥ तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ॥ ३० ॥ यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ॥ ३१ ॥

इसी प्रकार गुरुके संगसे मनुष्यके पाप दूर होतेहैं जैसे अग्निके सम्पर्कसे घृतकुम्भ लय होता है ॥ २७ ॥ इसी प्रकार आचार्यके सम्पर्कसे पाप लय होजातेहैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे काठको जलाती है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार संतुष्ट हुए गुरु क्षणमात्रमें पाप नष्ट करदेतेहैं, मन वचन कर्मसे गुरुको क्रोधित न करे ॥ २९ ॥ गुरुके क्रोधसे आयु श्री ज्ञान सत्क्रिया नष्ट होजाती हैं, जो गुरुको क्रोध करनेवालेहैं उनके यज्ञ निष्फल होजातेहैं ॥ ३० ॥ इसमें सन्देह

---

[1] तद्वदाचार्यसंगेन तद्धर्मफलभाग्भवेत् ।

नहीं उनके यम नियम नष्ट होजातेहैं, गुरुके विरुद्ध वचन मनुष्य कभी न कहै ॥ ३१ ॥ और जो मोहसे कहता है वह नरकको जाता है मन वचन कर्मसे गुरुकी सेवा बुद्धिमान करै ॥ ३२ ॥ और कल्याणकी इच्छावाला मिथ्याचार न करै, जो गुरुका एक दुर्गुण विख्यात करता है; उसमें सौ दुर्गुण होतेहैं; और गुरुके गुण विख्यात करनेसे सब पुण्योंका फल होता है गुरुका हित और प्रिय करै, चाहै यह कहैं वा न कहैं ॥ ३३ ॥ सामने वा पीछे उनके हितकारी कार्य करै इस प्रकार आचारवान् भक्त नित्य श्रेष्ठ मनसे ॥ ३४ ॥ गुरुका प्रिय करताहुआ शिष्य शिवधर्मोंको करै, तब शिष्य शैवधर्मके योग्य

वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः ॥ ३२ ॥ श्रेयोर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत्[1] ॥ गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ॥ ३३ ॥ असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत् ॥ इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ३४ ॥ गुरुप्रियकरः शिष्यः शैवधर्मांस्ततोऽर्हति ॥ गुरुश्चेद्गुणवान्प्राज्ञः परमानंदभासकः ॥ ३५ ॥ तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः ॥ संवित्संजननं तत्त्वं परमानंदसंभवम् ॥ ३६ ॥ तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानंददर्शकः ॥ न पुनर्नाममात्रेण संविदारहितस्तु यः ॥ ३७ ॥ अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम् ॥ एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥ ३८ ॥ यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥ तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ॥ ३९ ॥

होता है जो गुरु आनंददायक विद्वान् हो ॥ ३५ ॥ तत्त्वज्ञानी शिवभक्त हो तो वही मुक्ति दे सक्ताहै दूसरा नहीं ब्रह्मज्ञानका उत्पन्न करनेवाला तत्त्वके परमानंदसे प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥ वह तत्त्व जिसने जाना है वही परमानन्दका दिखानेवाला है ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु नहीं तार सकता ॥ ३७ ॥ ऐसे दोनों गुरु शिष्य परस्पर तारनेमें समर्थ होतेहैं, शिला कहीं शिलाको तार सकती है ? इसी प्रकार मूर्ख गुरु शिष्यको तार नहीं सकता उन नाममात्रके ज्ञानियोंको नाममात्रही मुक्ति होती है ॥ ३८ ॥ और जिन्होंने तत्त्व जाना है वे स्वयं मुक्तहैं; और दूसरोंको भी मुक्त करसकतेहैं तत्त्वके बिना ज्ञान कहां

---

[1] नैर्गुण्येख्यापितेतस्यनैर्गुण्यशतवान्भवेत् । गुणेपिख्यापितेतस्यसर्वपुण्यफलंलमेत् । देशिकाकृतिमास्थायपशोपाशानशेषतः । छित्त्वापरं पदं देवोनयत्येवमितिश्रुतिः ।

और ज्ञानके बिना आत्मज्ञान नहीं ॥ ३९ ॥ आत्मज्ञानके विनाही तो इसकी पशुसंज्ञा है, पशुओंसे प्रेरित होकर इस प्रकार पशुपना निवृत्त नहीं होस
कता ॥ ४० ॥ इस कारण तत्त्वज्ञानीही संसारसे मुक्त कर सकताहै सब लक्षणसे संयुक्त सर्वशास्त्रका जाननेवाला भी ॥४१॥ सब उपाय जानकर भी यदि
तत्त्वज्ञानसे हीन हो तो निष्फल है जिस गुरुकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ ४२ ॥ उसके दर्शनसे परानन्द होता है, इससे जिसके संगसे
प्रबोधानंदकी प्राप्ति हो ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् उसीको गुरु करै दूसरेको नहीं, अच्छे शिष्यको विनयाचार चतुरतासे युक्त हो गुरुको उचित प्रकारसे ॥४४॥

परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते ॥ पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ॥ ४० ॥ तस्मात्तत्त्वविदे वेह मुक्तो मोचक इष्यते ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ॥ ४१ ॥ सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः ॥ यस्यानुभवपर्यंता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ॥
॥ ४२ ॥ तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते ॥ तस्माद्यस्यैव संपर्कात्प्रबोधानंदसंभवः ॥ ४३ ॥ गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मति
मान्नरः ॥ स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ॥ ४४ ॥ यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः ॥ ज्ञाते तस्मिन्स्थिरा भक्तिर्या
वत्तत्त्वं समाश्रयेत् ॥ ४५ ॥ न तु तत्त्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षेत कथंचन ॥ यत्रानंदः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते ॥ ४६ ॥ वत्सराद
पि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ॥ गुरुमन्यं प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम् ॥ गरोर्भ्रातॄंस्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि ॥ ४७ ॥
तत्रादावुपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ गुरुमाराधयेत्प्राज्ञं शुभगं प्रियदर्शनम् ॥४८॥ सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रांतमानसम् ॥ तोषयेत्तं
प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ॥४९॥ तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोसौ भवेद्यथा ॥ तस्मिन्प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ॥५०॥

तबतक बराबर सेवा करनी चाहिये जबतक ज्ञानकी प्राप्ति हो उसके जाननेसे जो स्थिर भक्ति हो तो उसका आश्रय करै ॥ ४५ ॥ उस गुरुको न कभी
छोडै न उपेक्षा करै, जहां थोडा भी आनन्द और प्रबोध न हो ॥ ४६ ॥ तौ एक वर्षके उपरांत दूसरा गुरु करले दूसरे गुरुके पास जाकर भी पहले
गुरुका तिरस्कार न करै, गुरुके भ्राता पुत्र बोधक प्रेरक ॥ ४७ ॥ उनके पास जाकर वेदपाठी ब्राह्मण पंडित गुरुका आराधन करै जो कि प्रियदर्शन हो
॥ ४८ ॥ सब अभय देनेवाले करुणायुक्त मन वचन कर्मसे ऐसे गुरुको प्रसन्न करै ॥ ४९ ॥ जब तक वह प्रसन्नहो तबतक शिष्य गुरुकी शुश्रूषा करता

रहै; उनके प्रसन्न होतेही शिष्यके सब पाप क्षय होजातेहैं ॥ ५० ॥ इस कारण धन रत्न क्षेत्र गृह भूषण वस्त्र शय्या आसन ॥ ५१ ॥ परमगतिकी इच्छा
हो तो ये चित्तके अनुसार गुरुको निवेदन करै, धनकी शठता न करै ॥ ५२ ॥ वही माता पिता भ्राता बन्धु धन सुख सखा मित्रहै, उससे सब उन गुरुको
निवेदन करै ॥ ५३ ॥ फिर कुटुम्बादि सहित पीछे उसे अपनी आत्माको निवेदन करदे जलसे उसको सब समर्पण कर नित्य उनके वशमें रहै ॥ ५४ ॥
जिस समय उस शिवस्वरूप आचार्यके निमित्त अपनी आत्मा प्रदान करदी तब यह शरीरी शिवस्वरूप होता है, फिर इसका जन्म नहीं होता ॥ ५५ ॥

तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ॥ भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च ॥ ५१ ॥ एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या
वित्तानुसारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥ ५२ ॥ स एव जनको माता भर्ता बंधुर्धनं सुखम् ॥ सखा मित्रं च
यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ निवेद्य पश्चात्स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम् ॥ समर्प्य सोदकं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत् ॥
॥ ५४ ॥ यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने ॥ तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः ॥ ५५ ॥ गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं
वर्षमेकं परीक्षयेत् ॥ ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्विवर्षं च त्रिवर्षकम् ॥ ५६ ॥ प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः ॥ उत्तमांश्चाधमे कृत्वा
नीचानुत्तमकर्मणि ॥ ५७ ॥ आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्त्यपि ॥ ते योग्याः संयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ॥ ५८ ॥
अहिंसका दयावंतो नित्यमुद्युक्तचेतसः ॥ अमानिनो बुद्धिमंतस्त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदाः ॥ ५९ ॥ ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः
स्थिरचेतसः ॥ शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ॥ ६० ॥

आचार्यस्वरूपको प्राप्त होकर यह पशु तब सब पापोंको छेदन कर परमपदको प्राप्त होता है यह श्रुति है गुरु अपने शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करै, ब्राह्मण
क्षत्रिय वैश्यकी क्रमसे तीन वर्ष परीक्षा करै ॥ ५६ ॥ प्राण द्रव्यके प्रदान करनेसे समासम आदेशसे उत्तमोंको अधम अधमको नीच नीचोंको श्रेष्ठ
यथायोग्य कर्ममें लगावै ॥ ५७ ॥ जो फट कारनेसे वा ताडन कियेहुए विषादको प्राप्त नहीं होतेहैं वेही शिवसंस्कारके कर्ममें योग्य संयत और शुद्ध हैं ॥
॥ ५८ ॥ अहिंसा और दयायुक्त नित्य उद्युक्त चित्तवाले मानरहित बुद्धिसम्पन्न स्थिरबुद्धि हितप्रियवादी ॥ ५९ ॥ सीधे मृदु स्वच्छ विनीत स्थिरचित्त

शौचाचारयुक्त शिवके भक्त ब्राह्मणहैं ॥ ६० ॥ इस प्रकार वाणी मन कर्मसे यथायोग्य न्यायपूर्वक शुद्धबोधयुक्त होने चाहिये, यह शास्त्रका निश्चय है, उन्हींका संस्कार करै ॥ ६१ ॥ शिवके संस्कार कर्ममें स्त्रियोंका स्वतः अधिकार नहीं है; ईश्वरमें भक्ति स्वामीकी आज्ञासेही करनी चाहिये ॥ ६२ ॥ यदि स्वामीसे हीन हो तो पुत्रकी आज्ञासे और कन्याका पिताकी आज्ञासे पूजामें अधिकार है;शूद्र अन्त्यज और विशेषकर पतित ॥ ६३ ॥ संकरजातियोंकी अध्व (षडध्व) शुद्धि नहीं कही है जो वे परमभावसे परमकारण शिवमें मन लगावें ॥ ६४ ॥ पादोदक जलप्रदानसेही कर्मबन्धनसे छूट जातेहैं,

एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ ६१ ॥ नाधिकारः स्वतो नार्य्याः शिवसंस्कारकर्मणि ॥ नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे ॥ ६२ ॥ तथैव भर्तृहीनाया पुत्रादेरभ्यनुज्ञया ॥ अधिकारो भवत्येव कन्यायाः पितुराज्ञया ॥ शूद्राणां मर्त्यजातीनां पतितानां विशेषतः ॥ ६३ ॥ तथा संकरजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते ॥ तेप्यकृत्रिमभावाश्चेच्छिवे परमकारणे ॥ ६४ ॥ पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्युः पापविशोधनम् ॥ अत्रानुलोमजाता ये युक्ता एव द्विजातिषु ॥ ६५ ॥ तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम् ॥ या तु कन्या स्वपित्राद्यैश्शिवधर्मे नियोजिता ॥६६॥ सा भक्ताय प्रदातव्या नापराय विरोधिने ॥ दत्ता चेत्प्रतिकूलाय प्रमादाद्बोधयेत्पतिम् ॥ ६७ ॥ अशक्ता तं परित्यज्य मनसा धर्ममाचरेत् ॥ यथा मुनिवरं त्यक्त्वा पतिमत्रिं पतिव्रता ॥ ६८ ॥ कृतकृत्याऽभवत्पूर्वं तपसाराध्य शंकरम् ॥ यथा नारायणं देवं तपसाराध्य.पांडवान् ॥ ६९ ॥

मूर्धावसिक्त ब्राह्मण वा वर्णसंकरजाति जो तीन वर्णोंमें हो ॥ ६५ ॥ उनकी माताके कुलके समान शुद्धि करनी चाहिये जो कन्या पितादिकने शिवधर्ममें नियुक्त की है ॥ ६६ ॥ वह शिवभक्तके ही निमित्त देनी चाहिये विरोधीके निमित्त नहीं; और जो प्रतिकूलको मूलसे देदीजाय, वह अपने पतिको समझावै ॥ ६७ ॥ और जो असमर्थ हो तो उसे त्याग मनसे धर्माचरण करती रहै, जिस प्रकारसे कि मुनिश्रेष्ठ अत्रि अपने पतिको छोडकर पतिव्रता ॥ ॥६८॥ अनुसूया शंकरको आराधनकर कृतकार्य हुई (शिवपूजनमात्रमें त्यागना है सर्वथा नहीं) जिस प्रकार नारायण देवको तपसे आराधन कर ॥६९॥

गुरुजनोंसे नियुक्त होकर द्रौपदीने पांच पांडव पति पाये, जो अस्वतंत्रतासे दोष होजाय वह परमार्थसे नहीं होता ॥ ७० ॥ शिवधर्ममें नियुक्त होकर शिवशासनके गौरवसे वह दोष नहीं लगता बहुत कहनेसे क्या है जो कोई भी शिवका आश्रय करै ॥ ७१ ॥ और उसका संस्कार गुरुके अधीन हो तो संस्कारमें भेद नहीं पडता है; गुरुके दर्शनस्पर्शन भाषणसे ॥ ७२ ॥ जिसको प्रज्ञा होती है उसका कहीं पराजय नहीं है जो योगमार्गसे मनसेही संस्कार करता है ॥ ७३ ॥ वह गुह्य नहीं कहा जासकता कारण कि, वह क्रियागुरु मुखमें ही क्रियावान् जो कुण्डमण्डपपूर्वक संस्कार करता है वह संक्षेपसे

पतीँल्लब्धवती धर्मे गुरुभिर्न नियोजिता ॥ अस्वातन्त्र्यकृतो दोषो नेहास्ति परमार्थतः ॥ ७० ॥ शिवधर्मे नियुक्तायाश्शिवशासनगौरवात् ॥ बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः ॥ ७१ ॥ संस्कार्यो गुर्वधीनश्चेत्संस्क्रिया न प्रभिद्यते ॥ गुरोरालोकनादेव स्पर्शात्संभाषणादपि ॥ ७२ ॥ यस्य संजायते प्रज्ञा तस्य नास्ति पराजयः ॥ मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना ॥ ७३ ॥ स नेह कथितो गुह्यो गुरुवक्त्रैकगोचरः ॥ क्रियावान्यस्तु संस्कारः कुंडमंडपपूर्वकः ॥ स वक्ष्यते समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ॥ ७४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे दीक्षाविधाने गुरुमाहात्म्यं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते ॥ देशिकः प्रथमं कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ॥ १ ॥ परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ॥ शिल्पिशास्त्रोक्तमार्गेण मंडपं तत्र कल्पयेत् ॥ २ ॥ कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुंडानि परिकल्पयेत् ॥ अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तत्रैशान्यां पुनः क्रमात् ॥ ३ ॥ प्रधानकुंडं कुर्वीत यद्वा पश्चिमभागतः ॥ प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥

कहतेहैं उसका विस्तार नहीं कहसकते ॥ ७४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ उपमन्यु बोले, पुण्य दिनमें दोषरहित पवित्र देशमें जो देशिक (साधक) समयाह्वय संस्कार करै (अर्थात् उसे मन्त्रग्रहणादिसे अध्यायके अंतमें प्रगट करैंगे) ॥ १ ॥ गन्ध वर्ण रसादिसे पहले भूमिकी परीक्षा कर शिवशास्त्रमें कहे विधानसे मण्डपकी कल्पना करै ॥ २ ॥ वेदी बनाकर उसके मध्यमें कुण्डकी कल्पना करै, आठ दिशाओंमें ईशान दिशाके क्रमसे ॥ ३ ॥ प्रधानकुण्ड बनावै, या पश्चिम ओरसे बनावै, उसमें एक प्रधान करके शोभाकी कल्पना करै ॥ ४ ॥

उसमें शामियाना ध्वजा और मालाओंसे कल्पना करै; वेदीके मध्यमें एक शुभलक्षण मण्डप बनावै, ॥ ५ ॥ रक्त हेमादिके चूर्णसे ईश्वरका आवाहन करै, और निर्धन हो तो सिंदूर, शालि, नीवारके चूर्णसे आवाहन करै ॥ ६ ॥ एक हाथ या दो हाथका चौडा श्वेत वा लाल कमल बनावै, उसमें आठ दल कल्पना करै ॥ ७ ॥ उसके आधे स्थानमें केसर और आधेमें दलकी कल्पना करै ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारकी शोभाकी कल्पना ईशानकी ओर करै, एक हाथ वा आधे हाथका वेदीमें मण्डल कल्पना करै ॥ ९ ॥ व्रीहि, चावल, सरसों, तिल, पुष्प, कुशा, बिछावै वहां लक्षणसंयुक्त शिवघट स्थापन करै ॥

वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः ॥ वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलं शुभलक्षणम् ॥ ५ ॥ रक्तहेमादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनोचितम् ॥
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्द्धनः ॥ ६ ॥ एकहस्तं द्विहस्तं वा सितं वा रक्तमेव वा ॥ एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाष्टांगुला मता ॥
॥ ७ ॥ केसराणि तदर्द्धानि शेषं चाष्टदलादिकम् ॥ द्विहस्तस्य तु पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम् ॥ ८ ॥ कृत्वा शोभोपशोभाढ्यमै
शान्यां तस्य कल्पयेत् ॥ एकहस्तं तदर्द्धं वा पुनर्वेद्यां तु मंडलम् ॥ ९ ॥ व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तृते ॥ तत्र लक्षणसंयुक्तं
शिवकुंभं प्रसाधयेत् ॥ १० ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा ॥ गंधपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वांकुराचितम् ॥ ११ ॥ सित
सूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम् ॥ शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चं सद्रव्यं सपिधानकम् ॥ १२ ॥ भृंगारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा ॥
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापि वा ॥ १३ ॥ तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले ॥ अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्धनीम् ॥
॥ १४ ॥ मंडलस्य ततः प्राच्यां मंत्रकुंभे च पूर्ववत् ॥ कृत्वा विधिवदीशस्य महापूजां समाचरेत् ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ वह घट सोनाका या चांदीका या तांबाका या मट्टीका होना चाहिये उसको गन्ध पुष्प अक्षत कुश दूर्वाके अंकुरोंसे अर्चना करै ॥ ११ ॥ श्वेतसूत्रको कण्ठमें बांधकर दो नये वस्त्रोंसे उसे ढाक दे; शुद्ध जलसे पूर्ण, कूर्च (दर्भमुष्टियुक्त) पिधान (छादन) द्रव्य ॥ १२ ॥ झारी कटोरा शंख चक्र और सूत्रके विना सब वस्तु पद्मके ॥ १३ ॥ उत्तरदलमें उस कमलको कल्पना करै, और शिवशास्त्रमें कहेहुए विधानसे चन्दनके जलसे अग्रभागकी ओरसे आचमन करै ॥ १४ ॥ फिर उस मण्डलके पूर्व और पूर्ववत् मन्त्र कुम्भकी पूजा करै, इस प्रकार विधिपूर्वक ईश्वरकी महापूजा करै ॥ १५ ॥

नदी, गोष्ठ, सागर अथवा पर्वतके किनारे देवागार घर वा मनोहरदेशमें ॥ १६ ॥ मण्डपादिके बिना पूर्वोक्त सब विधान करके फिर अग्निका मण्डल तथा स्थंडिल करै ॥ १७ ॥ प्रसन्नमुख गुरुपूजाके घरमें प्रवेश करके सब मङ्गलसे संयुक्त हो यह नित्य विधि करै ॥ १८ ॥ मण्डलके मध्यमें शिवकी महापूजा करके शिवके कुम्भमें शिवका आवाहन कर पूजा करै ॥ १९ ॥ यज्ञरक्षा करनेवाले ईश्वरके पश्चिम मुखसे ध्यान करके ईश्वरके दक्षिण ओर अस्त्रवर्धनी (सनाल पात्रका) पूजन करै ॥ २० ॥ मन्त्रके जाननेवाला मन्त्रका कुम्भमें स्थापन करै; सब मुद्रादिक करके मन्त्रयागको करै ॥ २१ ॥

अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ ॥ देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे ॥ १६ ॥ कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं विना वा मंडपादिकम् मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः ॥ १७ ॥ प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः ॥ सर्वमंगलसंयुक्तः समाचरित नैत्यकः ॥ १८ ॥ महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः ॥ शिवकुंभे तथा भूयः शिवमावाह्य पूजयेत् ॥ १९ ॥ पश्चिमाभिमुखं ध्यात्वा यज्ञरक्षकमीश्वरम् ॥ अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे ॥ २० ॥ मन्त्रकुंभे च विन्यस्य मन्त्रं मंत्रविशारदः ॥ कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मंत्रयागं समाचरेत् ॥ २१ ॥ ततश्शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः ॥ प्रधानकुंडे परितो जहुयुश्चापरे द्विजाः ॥ २२ ॥ आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते ॥ प्रधानकुंड एवाथ जुहुयादेशिको त्तमः ॥ २३ ॥ स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्तोत्रं मंगलवाचनम् ॥ जपं च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ॥ २४ ॥ नृत्यं गीतं च वाद्यं च मंगलान्यपराणि च ॥ पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ २५ ॥ पुण्याहं कारयित्वाथ पुनः संपूज्य शंकरम् ॥ प्रार्थयेद्देशिको देवं शिष्यानुग्रहकाम्यया ॥ २६ ॥

फिर वह मुख्य आचार्य शिव अग्निमें हवन करके प्रधानकुण्डमें चारोंओर दूसरे ब्राह्मण हवन करैं ॥ २२ ॥ आचार्यसे चतुर्थांश वा (चौथाई) होम करना चाहिये, और फिर प्रधान आचार्य प्रधानकुण्डमें हवन करै ॥ २३ ॥ दूसरे वेदपाठ और मंगलवाचक स्तोत्र पाठ करैं शिवभक्त जप विधिपूर्वक करैं ॥ २४ ॥ नृत्य गीत बाजे मंगल और सभाओंमें बैठनेवालोंका विधानपूर्वक पूजन करै ॥ २५ ॥ पुण्याहवाचन करके फिर शंकरका पूजन कर शिष्यके अनुग्रहकी

इच्छाकर आचार्यकी प्रार्थना करै ॥ २६ ॥ हे देवदेव! प्रसन्न होकर मेरी देहमें प्रवेश करो; हे कृपानिधे! हे ईश ! मुझे दुःखसे छुडाइये ॥ २७ ॥ तब मैं यह कहता हूँ इस अनुज्ञाको प्राप्त होकर आचार्य हविष्य भक्षण करनेवाले व्रती शिष्यको बुलाकर एक बार भोजन कियेहुए या व्रती प्रातःकाल स्नान करके अपना कृत्य किये हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ पश्चिम द्वारके आगे दक्षिण मण्डलकी ओर कुशाके आसनपर बैठेहुए उत्तरमुख शिष्यको करके ॥ ॥ ३० ॥ और स्वयं प्राक् (पूर्वदिशा) को मुख कर स्थित हो ऊँचा शरीर करै, हाथ जोडै शिष्यको मुद्रा अस्त्रसे शिरपर जलसे प्रोक्षण कर ॥ ३१ ॥

प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम् ॥ विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे ॥ २७ ॥ अथ चैवं करोमीति लब्धानुज्ञस्तु देशिकः ॥ आनीयोपोषितं शिष्यं हविष्याशिनमेव वा ॥ २८ ॥ एकाशनं वा विरतं स्नातं प्रातःकृतक्रियम् ॥ जपंतं प्रणवं देवं ध्यायंतं कृतमंगलम् ॥ २९ ॥ द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमंडले दक्षिणस्य वा ॥ दर्भासने समासीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम् ॥ ३० ॥ स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्द्ध्वकायं कृतांजलिम् ॥ संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्धन्यस्त्रेण मुद्रया ॥ ३१ ॥ पुष्पक्षेपेण संताड्य बध्नीयाल्लोचनं गुरुः ॥ दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण मंत्रितेन नवेन च ॥ ३२ ॥ ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्वारेण मंडलम् ॥ सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत्त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ॥३३॥ ततस्सुवर्णसंमिश्रं दत्त्वा पुष्पांजलिं प्रभोः॥प्राङ्मुखश्चोदङ्मुखो वा प्रणमेद्दंडवत्क्षितौ ॥३४॥ ततस्संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत् ॥ संताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबंधनम् ॥ ३५ ॥ स दृष्ट्वा मंडलं भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम् ॥ अथासीनं शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे ॥ ३६ ॥ उपवेश्यात्मनस्सव्ये शिष्यं दर्भासने गुरुः ॥ आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत् ॥ ३७ ॥

फूलोंके मारनेसे इनको ताडन कर तथा नेत्रोंको नये अभिमन्त्रित दुपट्टेसे बांध ॥३२॥ शिष्यको द्वारेकी ओरसे गुरु प्रवेश करावै; और वह शिष्य गुरुकी प्रेरणासे शिवकी तीन प्रदक्षिणा करै ॥ ३३ ॥ फिर सुवर्ण मिलीहुई प्रभुको पुष्पांजलि देकर उत्तर पूर्वमुख होकर प्रणाम करै; दण्डवत् पृथ्वीमें गिरपडै ॥ ३४ ॥ फिर मूलशस्त्र गुरु पूर्ववत् शिष्यके शिरको छिडककर और पुष्प ताडनकर नेत्रबन्धन खोल दे ॥ ३५ ॥ वह उस मंगलको देख दण्डवत शिवको प्रणाम करै फिर आचार्य शिष्यको दक्षिण मण्डलकी ओर बैठा देख ॥३६॥ और गुरु शिष्यको अपनी दाहिनी ओर कुशापर बैठेहुए महादेवकी

आराधना कराय शिव हाथसे उसे स्पर्श करै ॥ ३७ ॥ शिवके तेजयुक्त हाथको शिवमन्त्रका उच्चारण करता हुआ शिवके अभिमान संयुक्त हो शिष्यके
मस्तकपर धरै ॥ ३८ ॥ उसी हाथसे आचार्य सम्पूर्ण अंगोंको आलम्बन करै, और शिष्य भी आचार्यको ईश्वर जान प्रणाम करै ॥ ३९ ॥ फिर शिवालयमें
देवको विधिपूर्वक पूजन कर तीन आहुतिसे हवन कर शिष्यको आगे स्थित कर ॥ ४० ॥ उसको दर्भके अग्रभागसे स्पर्श करतेहुए आत्माको विधानकर
महादेवको प्रणाम कर नाडीसंधान करै ॥ ४१ ॥ शिवशास्त्रके कहे विधानसे प्रणायाम करके शिष्यके देहमें प्रवेशके निमित्त स्मरण करके मन्त्रोंको तृप्त करै

शिवतेजोमयं पाणिं शिवमंत्रमुदीरयेत् ॥ शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके ॥ ३८ ॥ सर्वांगालंबनं चैव कुर्यात्तेनैव देशिकः ॥
शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतिमीश्वरम् ॥ ३९ ॥ ततश्शिवानले देवं समभ्यर्च्य यथाविधि ॥ हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा
पुरा ॥ ४० ॥ दर्भाग्रैः संस्पृशंस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत् ॥ नमस्कृत्य महादेवं नाडीसंधानमाचरेत् ॥ ४१ ॥ शिवशास्त्रोक्तमार्गेण
कृत्वा प्राणस्य निर्गमम् ॥ शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृत्वा मंत्रांस्तु तर्पयेत् ॥ ४२ ॥ संतर्पणाय मूलस्य तेनैवाहुतयो दश ॥ देयास्तिस्रस्त
थांगानामंगैरेव यथाक्रमम् ॥ ४३ ॥ ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रायाश्चित्ताय देशिकः ॥ पुनर्दशाहुतीन्कुर्यान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥ ४४ ॥
पुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः ॥ हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत् ॥ ४५ ॥ तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च
ततः पुनः ॥ कृत्वा तथैव विप्रत्वं जनयेदस्य देशिकः ॥ ४६ ॥ राजन्यं चैवमद्धृत्य कृत्वा विप्रं पुनस्तयोः ॥ रुद्रत्वं जनयेद्विप्रे
रुद्रनामैव साधयेत् ॥ ४७ ॥ प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोस्स्वात्मानमात्मनि ॥ शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरंतं विस्फुलिंगवत् ॥ ४८ ॥

॥ ४२ ॥ मूलमन्त्रके तृप्त करनेको विनियोगकर दश आहुति देकर उसी मूलमंत्रसे अंगके देवताओंको उन उन मूलमंत्रोंसे तृप्त करै ॥ ४३ ॥ फिर आचार्य
प्रायश्चित्तकी पूर्णाहुति देकर फिर मूलमंत्रसे दश आहुति प्रदान करै ॥ ४४ ॥ फिर आचार्य शिवको पूज प्रणामकर आचमन कर फिर यथायोग्य अपनी
जाति वैश्यका उद्धार करै ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार क्षत्रका उद्धार करै फिर इसको विप्रत्व उत्पन्न कराकर आचार्य ॥ ४६ ॥ इसके राजन्य और वैश्यताका
उद्धार करके ब्राह्मण होनेपर; रुद्रत्व उत्पन्न करै और रुद्रकाही साधन करै ॥ ४७ ॥ अपने शिष्यको प्रोक्षण और ताडन करके अपनी आत्मासे आत्मामें

स्फूर्यमाण होतेहुए विस्फुलिंगके समान शिवात्मकको स्मरण करके ॥ ४८ ॥ मंत्रसे गुरुनाडीद्वारा वायुको रेचन अर्थात् निकालता हुआ सुषुम्ना नाडीसे निकालकर कुम्भकसे प्रवेश कराय शिष्यके हृदयमें ॥ ४९ ॥ मंत्र प्रवेश कराय नीलबिन्दुका स्मरण करताहुआ अपने तेजसे मल दूर करै प्रकाशको चिन्तन करै ॥ ५० ॥ गुरु इस वायुको इसी नाडीके द्वारा लेकर संहारमुद्रासे पूरकसे निविष्टकर आत्मासे आत्माका एकीभाव करै ॥ ५१ ॥ फिर कुम्भकनाडीसे जैसे रेचक किया था वैसे करके उस पवनको शोधकर शिष्यके हृदयमें स्थित करै ॥५२॥ फिर उस शिष्यको स्पर्श कर शिवसे ग्रहण किये यज्ञोपवीतको

नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः ॥ निर्गम्य प्रविशेन्नाड्या शिष्यस्य हृदयं तथा ॥ ४९ ॥ प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभं स्मरन् ॥ स्वतेजसापास्तमलं ज्वलंतमनुचिंतयेत् ॥ ५० ॥ तमादाय तया नाड्या मंत्री संहारमुद्रया ॥ पूरकेण निवेश्यैनमेकीभावार्थमात्मनः ॥ ५१ ॥ कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा ॥ तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये तन्निवेशयेत् ॥ ५२ ॥ तमालभ्य शिवाल्लब्धं तस्मै दत्त्वोपवीतकम् ॥ हुत्वाऽऽहुतित्रयं पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ ५३ ॥ देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्य वरासने ॥ कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धांजलिरुदङ्मुखम् ॥ ५४ ॥ स्वस्तिकासनमारूढं विधाय प्राङ्मुखः स्वयम् ॥ वरासनस्थितो मंत्रैर्महामंगलनिःस्वनैः ॥ ५५ ॥ समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसादितम् ॥ ध्यायमानः शिवं शिष्यमाभिषिंचेत देशिकः ॥ ५६ ॥ अथापनुद्य स्नानांबु परिधाय सितांबरम् ॥ आचान्तोलंकृतश्शिष्यः प्रांजलिर्मंडपं व्रजेत् ॥ ५७ ॥ उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविष्टरे ॥ संपूज्य मंडले देवं करन्यासं समाचरेत् ॥ ५८ ॥

शिष्यको ग्रहण कराय तीन आहुतिसे हवन कर पीछे पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ देवके दक्षिण ओर शिष्यको सुन्दर आसनपर बैठाय कुशाके फूलोंके बिछौनेपर उत्तरको मुखकर हाथ जोडेहुए शिष्यको ॥ ५४ ॥ स्वस्तिकासनसे बिठाकर प्राङ्मुख (पूर्वमुख) बैठकर अच्छे मंगलके मंत्र पढकर सुन्दर आसन पर बैठाय ॥ ५५ ॥ पहले सिद्ध किये पूर्ण घटको लाकर आचार्य शिवके ध्यान करतेहुए शिष्यके ऊपर जल छिडकै ॥ ५६ ॥ फिर स्नानके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण कर सब शरीरसे अलंकृतहो शिष्य हाथ जोडकर मण्डपमें जाय ॥५७॥ फिर गुरु उसको यथायोग्य कुशासनपर बैठाकर मण्डलमें

देवको पूजन कराकर न्यास करै ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त भस्म हाथमें ले शिवका ध्यान करताहुआ आचार्य हाथसे शिष्यका ग्रहण कर उस बालक शिष्यको शिवका उच्चारण करावै ॥ ५९ ॥ फिर शिवाचार्य उस शिष्यको संकलीकरण मातृका न्यासके मार्गसे कराकर ॥ ६० ॥ तब शिवनामक आसनका ध्यान करके शिष्यको वह आचार्य न्यायपूर्वक आवाहन कर मनसे शिवको अर्चन करै ॥ ६१ ॥ और हाथ जोडकर शिवकी प्रार्थना करे कि, आप यहां नित्य स्थित रहिये, ऐसा शिवके प्रति कहकर उस महातेजस्वी रूपको स्मरण करै ॥ ६२ ॥ फिर शिवका पूजन कर शिवात्मक शैवी आज्ञाको

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायन्मनसि देशिकः ॥ समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ॥ ५९ ॥ अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम् ॥ सकलीकरणं कृत्वा मातृकान्यासवर्त्मना ॥ ६० ॥ ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः ॥ तत्रावाह्य यथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ॥ ६१ ॥ प्रार्थयेत्प्रांजलिर्देवं नित्यमत्र स्थितो भव ॥ इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ॥ ६२ ॥ संपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम् ॥ कर्णे शिष्यस्य शनकैश्शिवमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ६३ ॥ स तु बद्धांजलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः ॥ शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यश्शिवाचार्यस्य शासनात् ॥ ६४ ॥ ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः ॥ उच्चारयित्वा च सुखं तस्मै मंगलमादिशेत् ॥ ६५ ॥ ततस्समासान्मन्त्रार्थं वाच्यवाचकयोगतः ॥ समादिश्येश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ॥ ६६ ॥ अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ ॥ भक्त्यैवमभिसंधाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत् ॥ ६७ ॥ वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ॥ न त्वनभ्यर्च्य भुंजीय भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ ६८ ॥

प्राप्त होकर शिष्यके कानमें शनैः शनैः शिवमन्त्रका उच्चारण करै ॥ ६३ ॥ वह शिष्य मन्त्रमें मन लगायेहुए शिवमन्त्रको श्रवण कर शिवाचार्यके शासनसे शनैः शनैः उस मन्त्रको उच्चारण करै ॥ ६४ ॥ फिर मन्त्रबोलनेमें चतुर शक्तिमन्त्रको उच्चारण कराकर सुखपूर्वक शिष्यके निमित्त मंगलाचार करावै ॥ ६५ ॥ फिर वाच्य वाचकके योगसे मन्त्रार्थको कई मासतक (आदेशकर) ईश्वरके रूपको वर्णन कर योगासनकी शिक्षा करै ॥ ६६ ॥ तब गुरुकी आज्ञासे शिष्य शिव अग्नि और गुरुके निकट महाभक्तिपूर्वक दीक्षा वाक्यका उच्चारण करै ॥ ६७ ॥ चाहै प्राण जाते रहैं, चाहै शिरका छेदन होजाय परन्तु

विना शिवार्चन किये भोजन करना उचित नहीं ॥६८॥ निरन्तर भोग लगानेवाला शिष्य जबतक उसका मोह दूरहो तबतक उन्हींकी निष्ठा और परायण होकर देवका आराधन करता रहै ॥ ६९ ॥ तब वह समय नामवाला शिवके आश्रममें अधिकारी होगा, सदा गुरुकी आज्ञा पालन कर उनके वशमें रहै ॥ ७० ॥ इसके उपरान्त करन्यास कर अपने हाथसे भस्म लगाकर शिष्यके प्रति उस भस्मको और अभिमन्त्रित रुद्राक्षको गुरु दे ॥७१॥ अथवा देवकी प्रतिमा वा लिंगात्मक लेकर पूजा होम जप ध्यान और साधन करै ॥ ७२ ॥ वह शिष्य भी शिवाचार्यसे इन वस्तुओंको बहुत मानसे लेकर कभी

स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः ॥ तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥ ६९ ॥ ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे ॥ लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत् ॥ ७० ॥ अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः ॥ दद्याच्छिष्याय मूलेन रुद्राक्षं चाभिमन्त्रितम् ॥ ७१ ॥ प्रतिमा वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा ॥ पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभजे ॥ ७२ ॥ सोपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः ॥ आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा ॥ ७३ ॥ आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः ॥ रक्षयेत्पूजयेच्छंभुं मठे वा गृह एव वा ॥ ७४ ॥ अतःपरं शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः ॥ भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः ॥ ॥ ७५ ॥ यदुक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम् ॥ शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत् ॥ ७६ ॥ शिवागमस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा ॥ देशिकादेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः ॥ ७७ ॥

आचार्यकी आज्ञाको उल्लंघन न करै ॥ ७३ ॥ और भक्तिपूर्वक शिर झुकाय आचार्यसे सम्पूर्ण ज्ञानको प्राप्तकर शम्भुको रक्षा करता हुआ मठ अथवा घरमें पूजै ॥ ७४ ॥ तब आचार्य इसको शिवका आचार बतावै; भक्ति श्रद्धा और प्रज्ञाके अनुसार सब करता रहै ॥ ७५ ॥ जो कहा जो कुछ आज्ञा दी है वा जो कुछ और कहा है वह शिवाचार्यके वचनको समयपर शिरसे धारण करै ॥ ७६ ॥ शिवशास्त्रका ग्रहण बांचना, श्रवण करना, यह सब

---

१ महामंत्रोपमंत्राणां वर्ततेऽवयवात्मनः । प्रधानावयवत्वे तु सोध्वा पंचपदात्मकः १ सप्तकोटिमहामंत्रा मंत्राध्वा समुदाहृतः ।

आचार्यकी आज्ञासे करै, अपनी वा दूसरेकी इच्छासे नहीं ॥ ७७ ॥ यह समयनामक संस्कार संक्षेपसे कहा है, यह परम साधन मनुष्योंको साक्षात् शिवपुरकी प्राप्ति करनेवाला है ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरान्त गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर सब बन्धनकी निवृत्तिके निमित्त षडध्व शुद्धि करै ॥ १ ॥ कला तत्त्व भुवन वर्ण पद मन्त्र यह संक्षेपसे षडध्व वर्णन कियागया है ॥ २ ॥ निवृत्ति प्रतिष्ठा विद्या शांति शान्त्यतीत यह पण्डितोंद्वारा पञ्चकलामार्ग कहा जाता है; इन पांच कलाओंकरके पांच मार्ग

इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः ॥ साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम् ॥ ७८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखंडे शिष्यसंस्कारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं समावेक्ष्य गुरुः शिष्यस्य योग्यताम् ॥ षडध्वशुद्धिं कुर्वीत सर्वबंधविमुक्तये ॥ १ ॥ कलां तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम् ॥ मंत्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते ॥ २ ॥ निवृत्त्याद्याः कलाः पंच कलाध्वा कथ्यते बुधैः ॥ व्याप्ताः कलाभिरितरे त्वध्वानः पंच पंचभिः ॥ ३ ॥ शिवतत्त्वादिभूम्यंतं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः ॥ षड्विंशत्संख्ययोपेतः शुद्धाशुद्धोभयात्मकः ॥ ४ ॥ आधाराद्युन्मनांतश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः ॥ विना भेदोपभेदाभ्यां षष्टिसंख्यासमन्वितः ॥ ५ ॥ पंचाशद्रुद्ररूपास्तु वर्णा र्णाध्वसंज्ञिताः ॥ अनेकभेदसंपन्नः पदाध्वा समुदाहृतः ॥ ६ ॥ सर्वोपमंत्रैर्मंत्राध्वा व्याप्तः परमविद्यया ॥ यथा शिवो न तत्त्वेषु गण्यते तत्त्वनायकः ॥ ७ ॥

व्याप्तहैं ॥ ३ ॥ शिवतत्त्वसे पृथ्वीतक तत्त्वमार्ग कहा है; यह शुद्ध अशुद्ध दो भेदोंसे छब्बीस संख्यायुक्त है ॥ ४ ॥ आधारादि उन्मन लोकतक भुवनाध्व कहाता है, भेद उपभेदके विना यह ६० संख्यासे युक्त है ॥ ५ ॥ ककारादि १५ स्पर्श, यकरादि चार अन्त; स्थ शषसहादि ऊष्मादि, यह ५० रुद्ररूप वर्णाध्व कहाता है फिर पदाध्वतो अनेक भेदवाला है ॥ ६ ॥ जो महामन्त्र उपमन्त्रोंके अवयवोंसे युक्त है, वह प्रधान अवयव होनेपर पंचपदात्मक (ईशानादि) (पंचमंत्ररूप) सात करोड महामंत्र मंत्राध्व कहातेहैं, परम विद्यासे सब मंत्रोंसे मंत्राध्व वर्तमान है जैसे तत्त्वपति शिवकी तत्त्वमें गणना नहीं होती ॥ ७ ॥

इसी प्रकार यह मन्त्रपति मंत्राध्वमें नहीं गिनेजाते, कलाध्वका व्यापकत्व और व्याप्यत्व तथा दूसरे मार्गोंका भी ॥ ८ ॥ जो तत्त्वसे नहीं जानता है, वह अध्वशोधनके योग्य नहीं है अध्वका रूप छैः प्रकारका जो नहीं जानता है ॥ ९ ॥ उससे व्याप्य व्यापकता नहीं जानीजाती, इस कारण अध्वस्वरूप व्याप्य व्यापकता ॥ १० ॥ यथायोग्य जानकर अध्वशुद्धि करै, वह पूर्वके समान कुण्डमण्डलतक करके ॥ ११ ॥ दो हाथके प्रमाण बनाकर पूर्वकी ओर कलशमण्डल धरै तब शिवाचार्य स्नानकर शिष्यके सहित नित्य क्रियाकर ॥ १२ ॥ शिवके मण्डलमें प्रवेशकर पूर्ववत् पूजा करै, तब चार प्रस्थसे

मंत्राध्वनि न गण्येत तथासौ मंत्रनायकः ॥ कलाध्वनो व्यापकत्वं व्याप्यत्वं चेतराध्वनाम् ॥ ८ ॥ न वेत्ति तत्त्वतो यस्स नैवार्हत्यध्वशोधनम् ॥ षड्विधस्याध्वनो रूपं न येन विदितं भवेत् ॥ ९ ॥ व्याप्यव्यापकता तेन ज्ञातुमेव न शक्यते ॥ तस्मादध्वस्वरूपं च व्याप्यव्यापकतां तथा ॥ १० ॥ यथावदवगम्यैव कुर्य्यादध्वविशोधनम् ॥ कुंडमंडलपर्यंतं तत्र कृत्वा यथा पुरा ॥ ११ ॥ द्विहस्तमानं कुर्वीत प्राच्यां कलशमंडलम् ॥ ततः स्नातशिवाचार्यः सशिष्यः कृतनैत्यकः ॥ १२ ॥ प्रविश्य मंडलं शंभोः पूजां पूर्ववदाचरेत् ॥ तत्राढकावरैस्सिद्धं तंदुलैः पायसं प्रभोः ॥ १३ ॥ अर्द्धं निवेद्य होमार्थं शेषं समुपकल्पयेत् ॥ पुरतः कल्पिते वाथ मंडले वर्णिमंडिते ॥ ॥१४॥ स्थापयेत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च देशिकः ॥ तेषु ब्रह्माणि मूलार्णैर्बिन्दुनादसमन्वितैः ॥ १५ ॥ नमआद्यैर्यकारांतैः कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥ ईशानं मध्यमे कुंभे पुरुषं पुरतः स्थिते ॥ १६ ॥ अघोरं दक्षिणे वामे वामं सद्यं च पश्चिमे ॥ रक्षां विधाय मुद्रां च बद्ध्वा कुंभाभिमंत्रणम् ॥ १७ ॥ कृत्वा शिवानलैर्होमं प्रारभेत यथा पुरा ॥ यदर्द्धं पायसं पूर्वं होमार्थं परिकल्पितम् ॥ १८ ॥

कुछ अधिक चावलसे खीर बनाकर ॥ १३ ॥ आधी होमके निमित्त रखकर शेषके भाग कल्पना करै अपने आगे वर्णोंसे मण्डित मण्डल कल्पित करै ॥ ॥ १४ ॥ पूर्वादि चारों दिशाओंमें और एक बीचमें ऐसे पांच कलश आचार्य कल्पित करै, उनमें पंचब्रह्मके मूलमंत्र बिन्दुनादके सहित ॥ १५ ॥ कल्पविधानका जाननेवाला यकारपर्यन्त नमस्कारादि करै, मध्यमके कुम्भमें ईशान आगेकेमें पुरुष ॥ १६ ॥ दक्षिणकी ओर अघोर वाम और वाम पश्चिममें सद्योजातकी कल्पनाकर रक्षाकर मुद्राविधान कर घडोंका अभिमंत्रण करै ॥ १७ ॥ और पहलेके समान शिवाग्निमें हवनकी कल्पना करै, जो पहले

आधी खीर होमके निमित्त रक्खी है ॥ १८ ॥ वह हवनकर शेष शिष्यके भोजनके निमित्त कल्पित करै, पूर्वके समान मन्त्रोंका तर्पण करके ॥ १९ ॥ पूर्णाहुति करके उनको प्रदीप्त करै ॐकारसे परे हुंकार अर्थात् "ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा" ॥ २० ॥ यह प्रदीपनकर यथाक्रमसे अंग करै, दीपन कर्ममें उनको तीन आहुति दे ॥ २१ ॥ एक एक मंत्रमें उन प्रदीप्त मूर्त्तिका विचार करै, ब्राह्मणकी कन्याके कातेहुए सूतको त्रिगुण करके ॥ २२ ॥ उस सूत्रको सूत्रसे अभिमंत्रित कर उस बालक शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बांधै, चरणके अंगुष्ठ पर्यन्त ऊर्ध्व शरीरकर बैठेहुए ॥ २३ ॥ उसके तालके मध्यमें प्राप्त हुई सुषुम्ना नाडीको इस लम्बे किये सूत्रसे योजित करै, अर्थात् चरणसे लेकर शिखापर्यन्त ले, फिर मंत्रका जाननेवाला मूलमंत्रसे शान्तमुद्रासे ग्रहण कर ॥ २४ ॥ उसके निकट तीन आहुतिसे हवन कर निकटताकी प्राप्ति करै, और पूर्वके समान पुष्प फेंकनेसे शिष्यके हृदयको ताडना कर ॥ ॥ २५ ॥ चैतन्यको ग्रहण कर शान्त्यतीत आदि बारह नाम अथवा ग्यारह तत्त्वोंके आधार ईश्वर जिसके अन्तमें हैं, (एकादश नव तीन आदि तत्त्व श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें लिखे हैं) "अथवा एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तं व्यवस्थितम् । शिवगीतायाम्" उसे धारण कर सूत्रको सूत्रसे संयुक्त कर अस्त्रवर्मसे उसकी रक्षा कर ॥ २६ ॥ उस शिष्यकी देहमें उस सूत्रको लपेट कर विचार करै, जाति आयु भोगरूप तीन मूलभाग और भोग भोक्तृत्व

हुत्वा शिष्यस्य तच्छेषं भोक्तुं समुपकल्पयेत् ॥ तर्पणांतं च मंत्राणां कृत्वा कर्म यथा पुरा ॥ १९ ॥ हुत्वा पूर्णाहुतिं तेषां ततः कुर्य्यात्प्रदीपनम् ॥ ॐकारादनु हुंकारं ततो मूलं फडंतकम् ॥ २० ॥ स्वाहांतं दीपने प्राहुरंगानि च यथाक्रमम् ॥ तेषामाहुतयस्तिस्रो देया दीपनकर्मणि ॥ २१ ॥ मंत्रैरेकैकशस्तैस्तु विचिन्त्या दीप्तमूर्त्तयः ॥ त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य द्विजकन्याकृतं सितम् ॥ २२ ॥ सूत्रं सूत्रेण संमंत्र्य शिखाग्रे बंधयेच्छिशोः ॥ चरणांगुष्ठपर्य्यंतमूर्द्ध्वकायस्य तिष्ठतः ॥ २३ ॥ लंबयित्वा तु तत्सूत्रं सुषुम्णां तत्र योजयेत् ॥ शांतया मुद्रयादाय मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥ २४ ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्यास्सान्निध्यमुपकल्पयेत् ॥ हृदि संताड्य शिष्यस्य पुष्पक्षेपेण पूर्ववत् ॥ ॥ २५ ॥ चैतन्यं समुपादाय द्वादशांते निवेद्य च ॥ सूत्रं सूत्रेण संयोज्य संरक्ष्यास्त्रेण वर्मणा ॥ २६ ॥ अवगुंठ्याथ तत्सूत्रं शिष्यदेहं विचिंतयेत् ॥ मूलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम् ॥ २७ ॥

लक्षणवाले ॥२७॥ उस शिष्यके विषय इन्द्रिय भोगादिके उत्पन्नकी भावना करै, आकाशादि पंचमहाभूतोंके रूपवाली जो शान्त्यतीतादि कला हैं ॥२८॥ वह शान्त्यतीतानामसे उस सूत्रमें युक्त करके नमस्कारयुक्त उनकी पूजा करै, अथवा पूर्वमें कहे क्रमसे आकाशादिके बीजमन्त्रोंसे कृत्य करके ॥ २९ ॥ फिर मलादिके तत्वोंकी व्याप्तिको देखै, कालव्याप्तिको मलादिमें हवन करके कला उद्दीप्त करै ॥३०॥ शिष्यको शिर और देहमें सूत्रको यथाक्रम ताडना कर यथाक्रम सब कार्य करै, शांत्यतीत पदमें सूत्रका मन्त्र पढता हुआ चिह्नित करै ॥ ३१ ॥ इस प्रकार क्रमसे शांत्यतीत करताहुआ तीन आहुतियोंसे

विषयेन्द्रियदेहादिजनकं तस्य भावयेत् ॥ व्योमादिभूतरूपिण्यः शांत्यतीतादयः कलाः ॥ २८ ॥ सूत्रे स्वनामभिर्योज्यः पूज्यश्चैव नमोयुतैः ॥ अथ वा बीजभूतैस्ततत्कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात् ॥ २९ ॥ ततो मलादेस्तत्त्वादौ व्याप्तिं समवलोकयेत् ॥ कलाव्याप्तिं मलादौ च हुत्वा संदीपयेत्कलाः ॥ ३० ॥ शिष्यं शिरसि संताड्य सूत्रं देहे यथाक्रमम् ॥ शांत्यतीतपदे सूत्रं लाञ्छयेन्मंत्रमुच्चरन् ॥ ३१ ॥ एवं कृत्वा निवृत्त्यन्तं शांत्यतीतमनुक्रमात् ॥ हुत्वाहुतित्रयं पश्चान्मण्डले च शिवं यजेत् ॥ ३२ ॥ देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्योत्तरामुखम् ॥ सदर्भे मंडले दद्याद्धोमशिष्टं चरुं गुरुः ॥ ३३ ॥ शिष्यस्तद्गुरुणा दत्तं सत्कृत्य शिवपूर्वकम् ॥ भुक्त्वा पश्चाद्द्विराचम्य शिवमंत्रमुदीरयेत् ॥ ३४ ॥ अपरे मंडले दद्यात्पंचगव्यं तथा गुरुः ॥ सोऽपि तच्छक्तितः पीत्वा द्विराचम्य शिवं स्मरेत् ॥ ३५ ॥ तृतीये मंडले शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ॥ प्रदद्याद्दंतपवनं यथाशास्त्रोक्तलक्षणम् ॥ ३६ ॥ अग्रेण तस्य मृदुना प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ वाचं नियम्य चासीनश्शिष्यो दंतान्विशोधयेत् ॥ ३७ ॥

हवनकर मंडलमें शिवका यजन करै ॥ ३२ ॥ देवके दक्षिण और उत्तरको मुखकर शिष्यको बैठावै, दर्भसहित मंडलमें होमसे बचेहुए चरुको गुरु उसे प्रदान करै ॥ ३३ ॥ और शिष्य गुरुके दियेहुए मंगलपूर्वक उस चरुको सत्कारसे लेकर भोजन करके दो बार आचमन कर शिवमंत्रका उच्चारण करै ॥३४॥ तब गुरु दूसरे मंडलमें पंचगव्य दे, वह शिष्य उसे भी भक्तिके अनुसार पानकर दो बार आचमनकर शिवका स्मरण करै ॥ ३५ ॥ फिर पूर्वके समान शिष्यको तीसरे मंडलमें बैठाकर शास्त्रोक्त दतौन (दंतशोधन) करनेको दे ॥३६॥ और उसके आगे मृदुतापूर्वक उत्तर वा पूर्वको मुख कर बाणीको रोककर

बैठेहुए शिष्य दांतोंको शुद्ध करै ॥ ३७ ॥ फिर दांतोंको धोकर पवन त्यागकर आचमन कर दांतोंको शुद्ध करै, और शिवका स्मरण करै, और हाथ जोडकर आचार्यकी आज्ञासे शिवके मण्डलमें प्रवेश करै ॥ ३८ ॥ जब कि, गुरुने दांतोंकी पवन त्यागे उसको देखलिया हो तो पूर्व उत्तर पश्चिमके अग्रभागमें शिवके विना वा शिवसे इतर ॥ ३९ ॥ अप्रशस्त दक्षिणादि दिशाओंकी ओर बैठे तो गुरु उस दोषकी शान्तिके अर्थ मूलमन्त्रसे सौ वा पचास आहुति दे ॥ ४० ॥ फिर शिष्यको ग्रहण कर उसके कानमें मन्त्र जपकर देवके दक्षिणभागमें उस शिष्यको बैठावै ॥ ४१ ॥ जो कि श्रेष्ठ बिछौने बिछे

प्रक्षाल्य दंतपवनं त्यक्त्वाचम्य शिवं स्मरेत् ॥ प्रविशेद्देशिकादिष्टः प्रांजलिः शिवमंडलम् ॥ ३८ ॥ त्यक्तं तद्दन्तपवनं दृश्यते गुरुणा यदि ॥ प्रागुदक्पश्चिमे वाग्रे शिवमन्यच्छिवेतरम् ॥ ३९ ॥ अप्रशस्ताशामुखे तस्मिन्गुरुस्तद्दोषशांतये ॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलमंत्रतः ॥ ४० ॥ ततः शिष्यं समालभ्य जपित्वा कर्णयोः शिवम् ॥ देवस्य दक्षिणे भागे तं शिष्यमधिवासयेत् ॥ ४१ ॥ अहतास्तरणास्तीर्णे स दर्भशयने शुचिः ॥ मंत्रितेऽन्तः शिवं ध्यायञ्शयीत प्राक्छिरा निशि ॥ ४२ ॥ शिखायां बद्धसूत्रस्य शिखया तच्छिखां गुरुः ॥ आबंध्याहतवस्त्रेण तमाच्छाद्य च वर्मणा ॥ ४३ ॥ रेखात्रयं च परितो भस्मना तिलसर्षपैः ॥ कृत्वास्त्रजप्तैस्तद्बाह्ये दिगीशानां बलिं हरेत् ॥ ४४ ॥ शिष्योऽपि परतोऽनश्नन्कृत्वैवमधिवासनम् ॥ प्रबुध्योत्थाय गुरवे स्वप्नं दृष्टं निवेदयेत् ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवदीक्षाविधानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ ततः स्नानादिकं सर्वं समाप्याचार्यचोदितः ॥ गच्छेद्बद्धांजलिर्ध्यायञ्छिवमण्डलपार्श्वतः ॥ १ ॥

कुशाके शयनसे पवित्र हो उसे मन्त्रित कर अन्तःकरणमें शिवका ध्यान करताहुआ पूर्वको शिरकर रात्रिमें शयन करै ॥ ४२ ॥ सूत्रसे बंधीहुई उसकी शिखाको शिखाके अग्रभागसे बांधकर उस प्रोक्षित वस्त्रसे उसे लपेट कर और वर्मसे आच्छादन कर ॥ ४३ ॥ और भस्म तिल सरसोंसे बाह्यकी ओर बलिको हरण करै ॥ ४४ ॥ शिष्य भी विना भोजन किये सोवै, फिर उठकर शिष्य को जो स्वप्न दीखैं सो गुरु निवेदन करै ॥ ४५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ फिर आचार्यकी प्रेरणासे सब स्नानादि कृत्य करके शिवमंडलके स्थानसे ध्यान

करताहुआ हाथ जोडकर चले ॥ १ ॥ फिर पूर्व दिनमें जो किया था वह सब पूजाके बिना करके नेत्र बन्धनतक गुरु मंडलको दिखावै ॥ २ ॥ नेत्र बंधेहुए शिष्यपर फूलोंकी वर्षा करनेपर जहां उसके नामके पुष्प गिरैं वहीं कह दे ॥३॥ फिर पूर्वके समान मंडलमें निर्माल्यको प्राप्त करके ईशानदेवको पूजन कर शिवकी अग्निमें हवन करै ॥ ४ ॥ और जो शिष्यने दुःस्वप्न देखा हो तो उस दोषकी शान्तिके लिये सौ वा पचास आहुतिसे मूलविद्यासे हवन करै ॥ ५ ॥ फिर शिखामें सूत्रको बांधकर जैसे पहले लम्बायमान किया था वैसे करै आधारपूजा इत्यादि निवृत्तिकलाके आश्रय हैं ॥६॥ उस वागीश्वरी

अथ पूजां विना सर्वं कृत्वा पूर्वदिने यथा ॥ नेत्रबंधनपर्य्यंतं दर्शयेन्मण्डलं गुरुः ॥ २ ॥ बद्धनेत्रेण शिष्येण पुष्पावकिरणे कृते ॥
यत्रापतंति पुष्पाणि तस्य नामाऽस्य संदिशेत् ॥ ३ ॥ तं चोपनीय निर्माल्यमंडलेऽस्मिन्यथा पुरा ॥ पूजयेदेवमीशानं जुहुयाच्च
शिवानले ॥ ४ ॥ शिष्येण यदि दुःस्वप्नो दृष्टस्तद्दोषशांतये ॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ५ ॥ ततः सूत्रं शिखाबद्धं
लंबयित्वा यथा पुरा ॥ आधारपूजाप्रभृति यन्निवृत्तिकलाश्रयम् ॥ ६ ॥ वागीश्वरीपूजनांतं कुर्याद्धोमपुरस्सरम् ॥ अथ प्रणम्य वागीशं
निवृत्तेर्व्यापिकां सतीम् ॥ ७ ॥ मण्डले देवमभ्यर्च्य हुत्वा चैवाहुतित्रयम् ॥ प्रापयेच्च शिशोः प्राप्तिं युगपत्सर्वयोनिषु ॥ ८ ॥ सूत्रदेहे
ऽथ शिष्यस्य ताडनप्रोक्षणादिकम् ॥ कृत्वात्मानं समादाय द्वादशांते निवेद्य च ॥ ९ ॥ ततोऽप्यादाय मूलेन मुद्रया शास्त्रदृष्टया ॥
योजयेन्मनसाचार्यो युगपत्सर्वयोनिषु ॥ १० ॥ देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः ॥ जात्यैकया च मानुष्या योनयश्च चतु
र्दश ॥ ११ ॥ तासु सर्वासु युगपत्प्रवेशाय शिशोर्द्धिया ॥ वागीशान्यां यथान्यायं शिष्यात्मानं निवेशयेत् ॥ १२ ॥

पूजातक होम करै, फिर वागीश्वरीको प्रणाम करके जो सती निवृत्तिमें व्याप्त हैं ॥७॥ मंडलमें देवको पूजनकर तीन आहुति देकर एक साथही सब योनियोंमें शिष्यकी प्राप्तिकी प्रार्थना करै ॥ ८ ॥ फिर शिष्यके सूत्र देहमें ताडन प्रोक्षण आदि करै और आत्माको सावधान करै द्वादशान्तमें निवेदनकर ॥ ९ ॥ तब शास्त्रमें कही मुद्रासे मूलमंत्रको ग्रहण कर आचार्य मनसे युक्तकर एक साथ सब योनियोंमें योजित करै ॥ १० ॥ देवताओंकी आठ जाति और तिरछे चलनेवाले जीवोंकी पांच जाति एक मानुषी योनि ॥ ११ ॥ इन सबमें शिष्यको एक साथही प्रवेश कर यथायोग्य शिष्यकी आत्मामें वागीश्वरीको निविष्ट

करै ॥ १२ ॥ गर्भप्राप्तिके निमित्त देवको प्रणाम कर पूजन करै, हवन कर न्यायपूर्वक उस गर्भको स्मरण करै ॥ १३ ॥ प्राप्तकी उत्पत्ति और कर्मकी अनुवृत्ति है सीधापन भोगकी प्राप्ति और परम प्रीति करै ॥ १४ ॥ जाति आयु और भोग संस्कारकी सिद्धि तथा निष्कृतिके निमित्त आचार्य तीन आहुतिका होम करके प्रार्थना करै ॥ १५ ॥ भोक्तृत्वविषयसंग मल उसके कार्यको शोधन यह सब विधि कर शिष्यके जाति आयु भोगरूप तीन पाशोंको छेदन करै ॥ १६ ॥ निकृतिके बद्ध और पाशके अत्यन्त भेदसे शिष्यको यह संस्कार करके उसको केवल स्वच्छ जाने, और चैतन्य करै ॥ १७ ॥

गर्भनिष्पत्तये देवं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ हुत्वा चैव यथान्यायं निष्पन्नं तदनुस्मरेत् ॥ १३ ॥ निष्पन्नस्यैवमुत्पत्तिमनुवृत्तिं च कर्मणा ॥ आर्जवं भोगनिष्पत्तिः कुर्यात्प्रीतिं परां तथा ॥ १४ ॥ निष्कृत्यर्थं च जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धये ॥ हुत्वाहुतित्रयं देवं प्रार्थयेद्देशिकोत्तमः ॥ १५ ॥ भोक्तृत्वविषयासंगमलं तत्कायशोधनम् ॥ कृत्वैवमेव शिष्यस्य छिंद्यात्पाशत्रयं ततः ॥ १६ ॥ निकृत्या परिबद्धस्य पाशस्यात्यंतभेदतः ॥ कृत्वा शिष्यस्य चैतन्यं स्वच्छं मन्येत केवलम् ॥ १७ ॥ हुत्वा पूर्णाहुतिं वह्नौ ब्रह्माणं पूजयेत्ततः ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्मै शिवाज्ञामनुसंदिशेत् ॥ १८ ॥ पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम् ॥ प्रतिबंधो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी ॥ १९ ॥ इत्यादिश्य तमभ्यर्च्य विसृज्य च विधानतः ॥ समभ्यर्च्य महादेवं जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ २० ॥ निवृत्त्या शुद्धमुद्धृत्य शिष्यात्मानं यथा पुरा ॥ निवेश्यात्मनि सूत्रे च वागीशं पूजयेत्ततः ॥ २१ ॥ हुत्वाहुतित्रयं तस्मै प्रणम्य च विसृज्य ताम् ॥ कुर्यान्निवृत्तः संधानं प्रतिष्ठां कलया सह ॥ २२ ॥

फिर अग्निमें पूर्णाहुति करके ब्राह्मणोंका पूजन करै, फिर तीन आहुति ब्रह्मको देकर शिवाज्ञाका स्मरण करै ॥ १८ ॥ कि, हे पितामह ! यह तुम्हारी कृपाके द्वारा शिवके परमपदको जाय फिर इसका प्रतिबंधन करै; यह शिवकी आज्ञा बडी है ॥ १९ ॥ ऐसी आज्ञा दे उसे अर्चन कर और विधानपूर्वक विसर्जन कर महादेवका पूजन कर तीन आहुतिसे हवन करै ॥ २० ॥ और पूर्वके समान निवृत्तिसे अपने शिष्यको शुद्ध करके अपने आत्मामें स्थित कर सूत्रमें वागीश्वरीका पूजन करै ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त तीन आहुति देकर प्रणाम कर उसे विसर्जन कर प्रतिष्ठारूप कलाके सहित निवृत्तिका संधान

करके ॥ २२ ॥ संधानमें एकसाथ पूजा और तीन आहुतियोंका हवन करै; फिर पूर्वमें कही प्रतिष्ठाको आवाहन कर पूर्वोक्त कार्य करै,शिष्यकी आत्मामें प्रतिष्ठाके प्रवेशकी भावना करै ॥ २३ ॥ फिर पूर्वोक्त प्रतिष्ठाको आवाहन और शेषकार्य करै, उसमें ही अपने आत्माकी व्याप्ति और व्यापिकाको और वागीश्वरीकी भावना करै ॥ २४ ॥ जो पूर्णचन्द्रमाके समान है, शेष कार्य पूर्ववत् करै शिव परमात्माकी आज्ञाको विष्णुके प्रति कहै ॥ २५ ॥ और महामंत्रसे विष्णुका विसर्जन आदि करै, और पूर्वके समान उसमें भी प्रतिष्ठाको करके ॥ २६ ॥ इस विष्णुकी व्याप्ति और वागीश्वरीको क्रमसे

संधाने युगपत्पूजां कृत्वा हुत्वाहुतित्रयम् ॥ शिष्यात्मनः प्रतिष्ठायां प्रवेशं त्वथ भावयेत् ॥ २३ ॥ ततः प्रतिष्ठामावाह्य कृत्वाशेषं
पुरोदितम् ॥ तद्व्याप्तिं व्यापिकां तस्य वागीशानीं च भावयेत् ॥२४॥ पूर्णेंदुमंडलप्रख्यां कृत्वा शेषं च पूर्ववत् ॥ विष्णवे संविशेदाज्ञां
शिवस्य परमात्मनः ॥ २५ ॥ विष्णोर्विसर्जनाद्यं च कृत्वा शषं च विद्यया ॥ प्रतिष्ठामनुसंधाय तस्यां चापि यथा पुरा ॥ २६ ॥
कृत्वानुचिन्त्य तद्व्याप्तिं वागीशां च यथाक्रमम् ॥ दीप्ताग्नौ पूर्णहोमान्तं कृत्वा शेषं च पूर्ववत् ॥ २७ ॥ नीलरुद्रमुपस्थाप्य तस्मै
पूजादिकं तथा ॥ कृत्वा कर्म शिवाज्ञां च दद्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ॥ २८ ॥ ततस्तमपि चोद्वास्य कृत्वा तस्याथ शांतये ॥ विद्याकलां
समाधाय तद्व्याप्तिं चावलोकयेत् ॥ २९ ॥ स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च यथा पुरा ॥ बालार्कसदृशाकारां भासयंतीं दिशो
दश ॥ ३० ॥ ततः शेषं यथापूर्वं कृत्वा देवं महेश्वरम् ॥ अवाह्याराध्य हुत्वास्मै शिवाज्ञां मनसा दिशेत् ॥ ३१ ॥

चिंतन करै, और पूर्वहीके समान दीप्ताग्निमें हवन करके ॥ २७ ॥ नीलरुद्रके निकट उपस्थित हो उनकी पूजादिक करै यह कृत्य करके पूर्वोक्त मार्गसे शिवाज्ञाको दे ॥ २८ ॥ फिर नीलरुद्रको भी उद्वासन (विसर्जन) कर उसकी शान्तिके निमित्त विद्याकलामें समावेश करके उसकी व्याप्तिको भी अवलोकन करै ॥ २९ ॥ अपनी आत्माकी व्यापिका और वागीश्वरीकी जैसे पूर्वभावना की थी कि, सूर्यके समान प्रकाशमान दशों दिशाओंको प्रकाश करती हुईका ॥ ३० ॥ ध्यान कर फिर योग्यतानुसार सब कृत्य कर महादेव महेश्वरको आवाहन कर पूजन करके शिवकी आज्ञाको मनसे आदेश करै ॥ ३१ ॥

फिर महेश्वरको बिदाकर पहली कही पाँच कलाको शान्त्यतीत कलाको लेकर उसकी व्याप्तिको देखै ॥ ३२ ॥ अपनी आत्माकी व्याप्तिका और वागीश्वरीका चिन्तन करै; और नभोमंडलके समान पूर्ण कलाको भी पूर्वके समान ॥३३॥ शेष कर विधानसे पूजा कर शिवका पूजन कर उस शिष्यके निमित्त अमितकर्मा महादेवकी आज्ञा सुनावै ॥ ३४ ॥ उसमें भी पूर्वके समान शिवको शिरमें पूजन कर जो कि, वाणीके पति हैं प्रणाम कर विसर्जन करै ॥३५॥ तब शिवमंत्रसे पूर्वके समान शिष्यके शिरमें प्रोक्षण कर शान्त्यतीत कलाका लयशक्ति तत्त्वमें चिन्तन करै ॥ ३६ ॥ षडध्वसे परे सर्वमार्गमें व्याप्त परा

महेश्वरं तथोत्सृज्य कृत्वान्यां च कलामिमाम् ॥ शांत्यतीतां कलां नीत्वा तद्व्याप्तिमवलोकयेत् ॥ ३२ ॥ स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशां च विचिंतयेत् ॥ नभोमंडलसंकाशां पूर्णांतं चापि पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ कृत्वा शेषविधानेन समभ्यर्च्य सदाशिवम् ॥ तस्मै समादिशेदाज्ञां शंभोरमितकर्मणः ॥३४॥ तत्रापि च यथापूर्वं शिवं शिरसि पूर्ववत् ॥ समभ्यर्च्य च वागीशं प्रणम्य च विसर्जयेत् ॥ ३५ ॥ ततश्शिवेन सम्प्रोक्ष्य शिष्यं शिरासि पूर्ववत् ॥ विलयं शांत्यतीतायाः शक्तितत्त्वेऽथ चिंतयेत् ॥ ३६ ॥ षडध्वनः परे पारे सर्वाध्वव्यापिनीं पराम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशां शैवीं शक्तिञ्च चिन्तयेत् ॥ ३७ ॥ तदग्रे शिष्यमानीय शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥ प्रक्षाल्य कर्त्तरीं पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ॥ ३८ ॥ कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं सह सूत्रेण देशिकः ॥ ततस्तां गोमये न्यस्य शिवाग्नौ जुहुयाच्छिखाम् ॥ ॥ ३९ ॥ वौषडंतेन मूलेन पुनः प्रक्षाल्य कर्तरीम् ॥ हस्ते शिष्यस्य चैतन्यं तद्देहे विनिवर्तयेत् ॥ ४० ॥ ततः स्नातं समाचांतं कृतस्वस्त्ययनं शिशुम् ॥ प्रवेश्य मंडलाभ्यासं प्रणिपत्य च दंडवत् ॥ ४१ ॥

स्वरूपमान करोड सूर्यके समान प्रकाश शैवी शक्तिका चिन्तन करै ॥ ३७ ॥ उसके आगे शिष्यको लाकर शुद्ध स्पटिकमणिके समान निर्मल कैंचीको शिवशास्त्रके अनुसार धोकर ॥ ३८ ॥ उस सूत्रके सहित आचार्य उसकी शिखाका छेदन करै फिर उस शिखाको गोबरमें रखकर शिवाग्निमें हवन करदे ॥ ३९ ॥ वौषट् अन्तमें लगाय मूलमन्त्रसे उस कैंचीको धोकर दोनों हाथ शिष्यके चैतन्य करनेको हृदयमें रक्खै ॥ ४० ॥ फिर स्नानादि कराकर उस

शिष्यके स्वस्तिवाचन कराय मंडलके समीप प्रवेश कर दंडके समान प्रणाम करके ॥ ४१ ॥ कर्म लोपादिकी शुद्धिके निमित्त यथायोग्य पूजा करके वाचकके मन्त्रमें तीन आहुति दे॥ ४२॥उपांशु उच्चारणके योग्य करके तीन आहुतियोंसे हवन करके फिर मन्त्रविकलताकी सिद्धिके निमित्त देवेशका पूजन करै ॥ ४३ ॥ फिर मनसे उच्चारणके योग्य तीन आहुति दे, अम्बाके सहित मंडलमें स्थित शिवका आराधन करके तीन आहुतियोंसे हवन कर हाथ जोड गुरु प्रार्थना करै ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे षडध्वमार्गकी शुद्धिहो इससे यह तुम्हारे अविनाशी परमधामको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ इस प्रकार

पूजां कृत्वा यथान्यायं क्रियावैकल्यशुद्धये ॥ वाचकेनैव मंत्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ ४२ ॥ उपांशूच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ पुनस्संपूज्य देवेशं मन्त्रवैकल्यशुद्धये ॥ ४३ ॥ मानसोच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ तत्र शंभुं सामाराध्य मंलडस्थं सहांबया ॥ हुत्वाहुतित्रयं पश्चात्प्रार्थयेत्प्रांजलिर्गुरुः ॥ ४४ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः ॥ कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम् ॥ ४५ ॥ इति विज्ञाप्य देवाय नाडीसंधानपूर्वकम् ॥ पूर्णांतं पूर्ववत्कृत्वा ततो भूतानि शोधयेत् ॥ ४६ ॥ स्थिरास्थिरे ततः शुद्ध्यै शीतोष्णे च ततः पदे ॥ ध्यायेद्व्याप्त्यैकताकारे भूतशोधनकर्मणि ॥ ४७ ॥ भूतानां ग्रंथिविच्छेदं कृत्वा त्यक्त्वा सहाधिपैः ॥ भूतानि स्थितियोगेन यो जपेत्परमे शिवे ॥ ४८ ॥ विशोध्यास्य तनुं दग्ध्वा प्लावयित्वा सुधाकणैः ॥ स्थाप्यात्मानं ततः कुर्याद्विशुद्धाध्व मयं वपुः ॥ ४९ ॥ तत्रादौ शान्त्यतीतां तु व्यापिकां स्वाध्वनः कलाम् ॥ शुद्धामेव शिशोर्मूर्ध्नि न्यसेच्छान्तिमुखे तथा ॥ ५० ॥

देवके निमित्त कहकर नाडी संधानपूर्वक पूर्वके समान पूर्णान्त करके फिर पंचमहाभूतोंको शोधै ॥ ४६ ॥ स्थिरमें स्थिरा शुद्धिको फिर इसके उपरान्त शीतोष्ण शुद्धि व्याप्तिके एकताके आकारमें तथा पंचभूतके शोधन कर्ममें ध्यान करै ॥ ४७ ॥ भूतोंकी ग्रन्थि विच्छेद करके और उनके स्वामियोंसहित त्याग करके योग करके भूतोंके स्थिति परम शिवमें युक्त करै ॥ ४८ ॥ इस शिष्यका मुख शोधन कर मंत्रसे शरीर दग्ध कर फिर अमृतके करणेसे सींचकर अपने आत्माको स्नान कराय विशुद्ध अध्वमय शरीर करके ॥४९॥ प्रथम शान्त्यतीत व्यापिका अपनी अध्वकलाको जो कि शुद्ध हो चुकी है उस शुद्धको

शिष्यके शिरमें न्यास करै ॥ ५० ॥ तथा शान्तिको मुखमें विद्यादिको गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त क्रमसे प्रतिष्ठा धारण करावै, उससे अधोभाग जानुमें न्यास करके निवृत्तिकी भी चिन्तना करै ॥ ५१ ॥ अपने बीज सूत्र मंत्रका न्यास कर उस शिवात्मक अंगको जानकर उस हृदय कमलमें देवका आवाहन कर पूजन करै ॥ ५२ ॥ और नित्य समीपमें स्थित हो गुरु शिष्यमें शिवकी आत्मा प्राप्तकर शिवके तेजोमय इसका शरीर कर उसके अणिमादि गुणोंको भी उसमें प्राप्त करै ॥ ५३ ॥ अणिमादि प्रसन्नहों ऐसा कहकर तीन आहुति दे, इसी प्रकार फिर भी इसमें गुण प्रतिपादन करै ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञता तृप्तिको और

विद्यां गलादिनाभ्यंतं प्रतिष्ठां तदधः क्रमात् ॥ जान्वंतं तदधो न्यस्येन्निवृत्तिं चानुचिंतयेत् ॥ ५१ ॥ स्वबीजैस्सूत्रमंत्रं च न्यस्यांगैस्तं शिवात्मकम् ॥ बुद्ध्वा तं हृदयांभोजे देवमावाह्य पूजयेत् ॥ ५२ ॥ आशास्य नित्यसांनिध्यं शिवस्वात्म्यं शिशौ गुरुः ॥ शिवतेजोमयस्यास्य शिशोरापादयेद्गुणान् ॥ ५३ ॥ अणिमादीन्प्रसीदेति प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ तथैव तु गुणानेव पुनरस्योपपादयेत् ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञतां तथा तृप्तिं बोधं चाद्यन्तवर्जितम् ॥ अलुप्तशक्तिं स्वातन्त्र्यमनंतां शक्तिमेव च ॥ ५५ ॥ ततो देवमनुज्ञाप्य सद्यादिकलशैस्तु तम् ॥ अभिषिंचेत देवेशं ध्यायन्हृदि यथाक्रमम् ॥ ५६ ॥ अथोपवेश्य तं शिष्यं शिवमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ लब्धानुज्ञः शिवाच्छैवीं विद्यामस्मै समादिशेत् ॥ ५७ ॥ ओङ्कारपूर्विकां तत्र संपुटान्तु नमोऽतगाम् ॥ शिवशक्तियुतांश्चैव शक्तिविद्यां च तादृशीम् ॥५८॥ ऋषिं छन्दश्च देवं च शिवतां शिवयोस्तथा ॥ पूजां सावरणां शम्भोरासनानि च सन्दिशेत् ॥ ५९ ॥ पुनः संम्पूज्य देवेशं यन्मया समनुष्ठितम् ॥ सुकृतं कुरु तत्सर्वमिति विज्ञापयेच्छिवम् ॥ ६० ॥

आद्यन्त वर्जित बोधको जिसकी शक्ति लुप्त नहीं हुई है, स्वतंत्र अनन्त शक्तिको स्थापन कर ॥ ५५ ॥ फिर देवकी प्रार्थना कर सद्यादि कलशोंसे उन देवेशको अभिषेक कर यथाक्रमसे ध्यान करता हुआ ॥ ५६ ॥ फिर उस शिष्यको बैठा और पूर्ववत् शिवकी पूजा कर शिवसे शैवी आज्ञाको प्राप्त कर इस शिष्यके निमित्त शैवी विद्या प्रदान करै ॥ ५७ ॥ उसमें पहले ओंकार और पीछे नमः लगाकर संपुट करै; शिवशक्तिके सहित उसी प्रकार विद्याशक्ति ऋषि च्छंद देवता कहकर शिवशक्तिके शिवा शिवकी शिवत्वको तथा शिवकी पूजाका संग्रह और आसन आदि दे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ फिर देवेशका पूजन

कर कहे जो मैंने अनुष्ठान कियाहै उस सबको सुकृत करो, यह शिवसे प्रार्थना कर ॥ ६० ॥ शिष्यके सहित गुरु पृथ्वीमें देवको दंडवत् करै प्रणाम कर उस मण्डलसे और अग्निसे विसर्जन करै ॥ ६१ ॥ फिर सभाके बैठनेवाले यथायोग्य क्रमसे पूजने चाहियें ॥ ६२ ॥ और धनके अनुसार ऋत्विजोंके सहित सभावालोंका सत्कार करै; जो अपना मंगल चाहै तौ धनकी शठता न करै ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरान्त नाममंत्र शिवमंत्रके साधनका विस्तार कहता हूँ, संस्कार मन्त्रका माहात्म्य कहनेमें जिसकी मैंने प्रथम

सहशिष्यो गुरुर्देवं दण्डवत्क्षितिमंडले ॥ प्रणम्योद्वासयेत्तस्मान्मंडलात्पावकादपि ॥ ६१ ॥ ततः सदसिकाः सर्वे पूज्याः पूजार्हकाः क्रमात् ॥ ६२ ॥ सेव्या वित्तानुसारेण सदस्याश्च सहर्त्विजः ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥ ६३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे षडध्वशुद्ध्यादिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि साधकं नाम नामतः ॥ संस्कारमन्त्रमाहात्म्यं कथने सूचितं मया ॥ १ ॥ संपूज्य मंडले देवं स्थाप्य कुंभे च पूर्ववत् ॥ हुत्वा शिष्यमनुष्णीषं प्रापयेद्भुवि मंडले ॥ २ ॥ पूर्वांतं पूर्ववत्कृत्वा हुत्वाहुतिशतं तथा ॥ संतर्प्य मूलमन्त्रेण कलशैर्देशिकोत्तमः ॥ ॥ ३ ॥ सन्दीप्य च यथापूर्वं कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात् ॥ अभिषिच्य यथापूर्वं प्रदद्यान्मंत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥ तत्र विद्योपदेशांतं कृत्वा विस्तरशः क्रमात् ॥ पुष्पाम्बुना शिशोः पाणौ विद्यां शैवीं समर्प्पयेत् ॥ ५ ॥ तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ भवत्येव महामंत्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ ६ ॥

सूचना दी थी ॥ १ ॥ मंडलमें देवको पूज और पूर्वके समान कुंभ स्थापन कर हवन कर पगडी टोपी रहित शिष्यको उस स्थानमें प्राप्त करै ॥ २ ॥ पूर्ववत् पूरा विधान करके सौ आहुति देकर श्रेष्ठ आचार्य दशांशसे मूल अंशोंको तृप्त कर ॥ ३ ॥ पूर्व कहे अनुसार दीप्ति करके तथा अभिषेक करके श्रेष्ठ मन्त्रप्रदान करै; फिरसे सब विद्याके उपदेश पर्यन्त करके पुष्पयुक्त जलसे बालकके हाथमें शैवीविद्याको समर्पण करै ॥ ४ ॥ ५ ॥ और कहै यह तुझे

यहाँ वहाँ सब सिद्धिकी देनेवाली हो; परमेष्ठीके प्रसादसे यह महामन्त्र सब फलप्रदान करै ॥ ६ ॥ यह कह देवकी पूजाकर आचार्य शिवसे आज्ञा पाय
साधन और विनियोग सब साधकको बतावै ॥७॥ यह गुरुका सन्देशा सुन मंत्रका साधक क्रमसे आगे विनियोगका मन्त्रसाधन करै ॥ ८ ॥ मूलमन्त्रका
साधन पुरश्चरण कहलाता है; क्योंकि विनियोगके कर्मसे यह पहले किया जाता है ॥ ९ ॥ मुमुक्षुको मन्त्रसाधन अत्यन्त नहीं करना चाहिये; और
करनेसे यहाँ वहाँ सब जगह उसको शुभ होता है ॥ १० ॥ शुभदिन शुभदेशमें शुभकालमें दोषसे रहित श्वेत दांत कर नख पवित्र कर स्नान कर स्नानके

इत्युक्त्वा देवमभ्यर्च्य लब्धानुज्ञः शिवाद्गुरुः ॥ साधनं शिवयोगं च साधकाय समादिशेत् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा गुरुसंदेशं क्रमशो मंत्रसा
धकः ॥ पुरतो विनियोगस्य मंत्रसाधनमाचरेत् ॥ ८ ॥ साधनं मूलमंत्रस्य पुरश्चरणमुच्यते ॥ पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः
॥ ९ ॥ नात्यन्तं करणीयन्तु मुमुक्षोर्मन्त्रसाधनम् ॥ कृतन्तु तदिहान्यत्र तस्यापि शुभदं भवेत् ॥ १० ॥ शुभेऽहनि शुभे देशे काले
वा दोषवर्जिते ॥ शुक्लदन्तनखः स्नातः कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ॥ ११ ॥ अलंकृत्य यथा लब्धैर्गंधमाल्यविभूषणैः ॥ सोष्णीषः सोत्तरासंगः
सर्वशुक्लसमाहितः ॥ १२ ॥ देवालये गृहेऽन्यस्मिन्देशे वा सुमनोहरे ॥ सुखेनाभ्यस्तपूर्वेण त्वासनेन कृतासनः ॥ १३ ॥ तनुं कृत्वा
त्मनः शैवीं शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ संपूज्य देवदेवेशं नकुलीश्वरमीश्वरम् ॥ १४ ॥ निवेद्य पायसं तस्मै समाप्याराधनं क्रमात् ॥ प्रणि
पत्य च तं देवं प्राप्तानुज्ञश्च तन्मुखात् ॥ १५ ॥ कोटिवारं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेच्छिवम् ॥ लक्षविंशतिकं वापि दशलक्षमथापि वा
॥ १६ ॥ ततश्च पायसाक्षारलवणैकमिताशनः ॥ अहिंसकः क्षमी शांतो दांतश्चैव सदा भवेत् ॥ १७ ॥

उपरान्त पूर्वकालकी क्रिया करके ॥ ११ ॥ यथालब्ध गन्धमाला भूषणसे अलंकार कर उष्णीष उत्तरासंग दुपट्टे सहित सब शुक्ल वस्त्र लिये ॥ १२ ॥
देवालयमें घरमें वा और किसी रमणीय पवित्र देशमें पूर्वासनपर बैठ सुखसे पूजा कर ॥ १३ ॥ अपने शरीरको शिवशास्त्रके मार्गसे शैव करके नकुलीश्वर
ईश्वर देवेशका पूजन कर ॥ १४ ॥ खीर उनको निवेदन करके पूजाका क्रम समाप्त कर देवको प्रणाम कर उनके मुखसे आज्ञा पाय ॥ १५ ॥ एक
करोड आधा करोड पचीस लाख शिवका जप करै ॥ १६ ॥ हिंसारहित क्षमायुक्त शान्त और दान्त, चतुर सदा हो; फिर खीर अथवा खारी नोन रहित

किसी दूसरे पदार्थका भोजन करै ॥ १७ ॥ जो खीर न मिलै तो फल मूलका ही भोजन करै, यह पदार्थ शिवने उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १८ ॥ चरु सत्तु कण यावकका भोजन करै; शाक, दूध, दही, घी, मूल, फल और जलका भोजन करै ॥ १९ ॥ भक्ष्य भोज्यादिको मूलमन्त्रसे अभिमंत्रित कर इस साधनमें विशेष मौन होकर भोजन करै ॥ २० ॥ आठसौ मन्त्र पढकर पवित्र किये जलसे व्रती स्नान करै; जो नदी नदका जलहो उसे अपनी शक्तिसे प्रोक्षण करै ॥ २१ ॥ नित्य तर्पण कर शिवाग्निमें हवन करै; सात पांच तीन आहुति द्वारा घृतसे ॥२२॥ आहुति दे इस प्रकार भक्तिसे जो शैव शिवकी

अलाभे पायसस्याश्नन्फलमूलादिकानि वा ॥ विहितानि शिवेनैव विशिष्टान्युत्तरोत्तरम् ॥ १८ ॥ चरुं भक्ष्यमथो सक्तुकणान्यावकमेव च ॥ शाकं पयो दधि घृतं मूलं फलमथोदकम् ॥१९॥ अभिमंत्र्य च मन्त्रेण भक्ष्यभोज्यादिकानि च ॥ साधनेऽस्मिन्विशेषेण नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२०॥ मन्त्राष्टशतपूतेन जलेन शुचिना व्रती ॥ स्नायान्नदीनदोत्थेन प्रोक्षयेद्वाथ शक्तितः ॥ २१ ॥ तर्पयेच्च तथा नित्यं जुहुयाच्च शिवानले ॥ सप्ताभिः पंचभिर्द्रव्यैस्त्रिभिर्वाथ घृतेन वा ॥ २२ ॥ इत्थं भक्त्या शिवं शैवो यः साधयति साधकः ॥ तस्येहामुत्र दुष्प्रापं न किंचिदपि विद्यते ॥२३॥ अथ वाहरहर्मंत्रं जपेदेकाग्रमानसः ॥ अनश्नन्नेव साहस्रं विना मन्त्रस्य साधनम् ॥ २४ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिन्न तस्यास्त्यशुभं क्वचित् ॥ इह विद्यां श्रियं सौख्यं लब्ध्वा मुक्तिं च विंदति ॥२५॥ साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिके तथा ॥ जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वा मंत्रेण च क्रमात् ॥२६॥ शुचिर्बद्धशिखस्सूत्री सपवित्रकरस्तथा ॥ धृतत्रिपुंड्रुद्राक्षो विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ॥२७॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे साधकसंस्कारमन्त्रमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

साधना करता है इसको यहाँ वहाँ प्राप्तिःहोनेमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ २३ ॥ अथवा एकाग्रमनसे प्रतिदिन मन्त्र जपै; विना सहस्र मन्त्र पढे भोजन न करै तब उसको कुछ दुर्लभ नहीं रहता न उसको कहीं अशुभ होता है; यहाँ इस विद्याके आश्रयसे सुखको प्राप्तहो मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ साधनविनियोग नित्य नैमित्तिकमें जल और भस्मसे स्नान कर मन्त्र जपै ॥ २६ ॥ पवित्र शिखा बाँध सूत्र (यज्ञोपवीत) पहरे, त्रिपुंड्र धारै, रुद्राक्ष पहरै, पंचाक्षरी विद्याका जप करै ॥ २७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उपमन्यु बोले, जब इस प्रकार शिष्य संस्कारको प्राप्त हो पाशुपतव्रत करै तब योग्य होनेपर आचार्य उसका अभिषेक करै नहीं, अन्यथा ॥ १ ॥ पूर्ववत् मंडल करके परमेश्वरका पूजन कर पूर्वादि दिशाओंमें चार और एक मध्यमें कलश स्थापन करै ॥ २ ॥ निवृत्ति कलाको आगे और प्रतिष्ठाको पीछे न्यास करके विद्या कलाको दक्षिण, शान्तिको उत्तर औ पराको मध्यमें स्थापन करै ॥ ३ ॥ फिर सब रक्षादि करके धेनुमुद्राको बांधकर घटोंको अभिमन्त्रित कर पूर्णाहुतितक हवन करै; जैसे पहिले किया है ॥ ४ ॥ और पगडीरहित शिष्यको मण्डलमें प्रवेश कराकर आचार्य पूर्ण होनेतक मन्त्रोंका तर्पणादि सब करै ॥ ५ ॥ फिर देवेशको पूज पूर्वके समान अनुज्ञा ले उस शिष्यको अभिषिक्त कर आसन पर बैठावै ॥ ६ ॥ उस पंचकलारूपीको ठीक कर मन्त्रयुक्त शरीरको करके शिष्यको शिवमें समर्पण करै ॥ ७ ॥ फिर निवृत्तिसे कुंभादिको उठाकर क्रमसे उन घडोंको उठाकर मध्यम घटपर्यन्त शिवमन्त्रसे उस शिष्यको अभिषिक्त करै ॥ ८ ॥ फिर आचार्य शिष्यको शिवके हाथमें समर्पण कर उसके शिरमें स्पर्श कर शिवभावको प्राप्त हो शिवाचार्य उसको आज्ञा दे ॥ ९ ॥ फिर उन देवका अलंकार कर शिवमंडलमें आराधना कर एकसौ आठबार आहुति देकर फिर पूर्णाहुति दे ॥ १० ॥ फिर देवेशका पूजन

उपमन्युरुवाच ॥ अथैवं संस्कृतं शिष्यं कृतपाशुपतव्रतम् ॥ आचार्यत्वेऽभिषिंचेत तद्योगत्वेन चान्यथा ॥ १ ॥ मण्डलं पूर्ववत्कृत्वा
संपूज्य परमेश्वरम् ॥ स्थापयेत्पंचकलशान्दिक्षु मध्ये च पूर्ववत् ॥ २ ॥ निवृत्तिं पुरतो न्यस्य प्रतिष्ठां पश्चिमे घटे ॥ विद्यां दक्षिणतः
शांतिमुत्तरे मध्यतः पराम् ॥ ३ ॥ कृत्वा रक्षादिकं तत्र बद्ध्वा मुद्रां च धैनवीम् ॥ अभिमंत्र्य घटान्हुत्वा पूर्णांतं च यथा पुरा ॥ ४ ॥
प्रवेश्य मंडले शिष्यमनुष्णीषं च देशिकः ॥ तर्पणाद्यं तु मंत्राणां कुर्यात्पूर्णावसानकम् ॥ ५ ॥ ततः संपूज्य देवेशमनुज्ञाप्य च पूर्ववत् ॥
अभिषेकाय तं शिष्यमासनं त्वधिरोहयेत् ॥ ६ ॥ सकलीकृत्य तं पश्चात्कलापंचकरूपिणम् ॥ न्यस्तमंत्रतनुं बद्ध्वा शिवं शिष्यं समर्प्प
येत् ॥७॥ ततो निवृत्तिकुंभादिघटानुद्धृत्य वै क्रमात् ॥ मध्यमान्ताच्छिवेनैव शिष्यं तमभिषेचयत् ॥ ८ ॥ शिवहस्तं समर्प्याथ शिशोः
शिरसि देशिकः ॥ शिवभावसमापन्नः शिवाचार्यं तमादिशेत् ॥ ९ ॥ अथालङ्कृत्य तं देवमाराध्य शिवमण्डले ॥ शतमष्टोरं हुत्वा
दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ १० ॥ पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रणम्य भुवि दंडवत् ॥ शिरस्यंजलिमाधाय शिवं विज्ञापयेद्गुरुः ॥ ११ ॥

कर पृथ्वीमें प्रणाम कर शिरसे अञ्जलि बांध शिवको विज्ञापन करै ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे प्रसादसे यह मैंने देशिक किया. हे देव ! इसके ऊपर कृपाकर इसको दिव्य आज्ञा प्रदान करो ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहकर शिष्यके सहित प्रणाम कर शिवको और दिव्य शिवशास्त्रको शिवके समान गुरुपूजन करै ॥ १३ ॥ फिर शिवको अनुज्ञप्ति कर शिवज्ञानकी पुस्तक वेदको दोनों हाथसे आचार्यके निमित्त दे ॥ १४ ॥ वह उस विद्याको शिरके ऊपर धरकर फिर विद्या आसनके ऊपर रखकर यथा योग्य प्रणामकर अर्चन वंदन करै ॥ १५ ॥ फिर गुरु उस शिष्यको राज्यके उपयोगी आसन छत्रादि दे. कारण कि, यह आचार्यपदवीको प्राप्त होकर राज्य प्राप्तिके योग्य भी हो सकता है ॥ १६ ॥ फिर पूर्वजोंसे आचरित कीहुई आज्ञाको दे; जैसे शिवशास्त्रमें लिखा है; और जैसा लोकोंमें पूजा जाता है ॥ १७ ॥ शिष्यको यत्नसे परीक्षा कर शिव शास्त्रके कहे लक्षणोंसे संस्कार करके शिवज्ञान दे अन्यथा नहीं ॥ ॥ १८ ॥ शिवकी प्रतिष्ठा भी यथायोग्य करनी चाहिये. उपदेश ऐसा दे कि पवित्रता सहनशीलता दया नित्य करना स्पृहा न करना, निन्दा न करना यह यत्नसे साधन करै ॥ १९ ॥ ऐसे उस शिष्यको समझाकर मंडलसे शिवको उठाकर शिवके घट अग्नि आदि और सभासदोंको भी सत्कार करके ॥ २० ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः ॥ अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम् ॥ १२ ॥ एवं विज्ञाप्य शिष्येण सह भूयः
प्रणम्य च ॥ शिवं शिवागमं दिव्यं पूजयेच्छिवद्गुरुः ॥ १३ ॥ पुनः शिवमनुज्ञाप्य शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ॥ उभाभ्यामथ पाणिभ्यां
दद्याच्छिष्याय देशिकः ॥ १४ ॥ स ताम्मूर्ध्नि समाधाय विद्यां विद्यासनोपरि ॥ अधिरोप्य यथान्यायमभिवंद्य समर्चयेत् ॥ १५ ॥
अथ तस्मै गुरुर्दद्याद्राजोपकरणान्यपि ॥ आचार्यपदवीं प्राप्तो राज्यं चापि यतोऽर्हति ॥ १६ ॥ अथानुशासनं कुर्यात्पूर्वैराचरितं
यथा ॥ यथा च शिवशास्त्रोक्तं यथा लोकेषु पूज्यते ॥ १७ ॥ शिष्यान्परीक्ष्य यत्नेन शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः ॥ संस्कृत्य च शिवज्ञानं
तेभ्यो दद्याच्च देशिकः ॥ १८ ॥ एवं सर्वमनायासं शौचं क्षांतिं दयां तथा ॥ अस्पृहामप्यसूयां च यत्नेन च विभावयेत् ॥ १९ ॥
इत्थमादिश्य तं शिष्यं शिवमुद्वास्य मंडलात् ॥ शिवकुंभानलादींश्च सदस्यानपि पूजयेत् ॥ २० ॥

एक साथही संस्कारोंको गुणी गुरु करै, वहां तीन वा दो प्रयोगोंका उपदेश किया है ॥ २१ ॥ उस प्रयोगकी आदिमें मार्गशुद्धिकी तरह कल्पना करै,
अभिषेकके बिना सम्पूर्ण समयके संस्कार करके ॥ २२ ॥ शिवका अर्चन कर मार्ग शुद्ध करके उसकी समाप्तिमें फिर देवकी पूजा करै ॥ २३ ॥ हवन
कर फिरसे तर्पण कर दीप्ति कर ईश्वरकी आज्ञा लेकर मंत्र शिष्यको समर्पण कर शिष्यके हाथसे सब कृत्य पूर्ण करावै ॥ २४ ॥ अथवा फिर सब मंत्र
संस्कारोंको चिन्तन करके अभिषेकमें समाप्त होनेवाली मार्गशुद्धिको गुरु करै ॥ २५ ॥ उसमें जो शान्त्यतीता आदि कलाओंमें विधान कहा है; वह तीनों

युगपद्वाथ संस्कारान्कुर्वीत सगणो गुरुः॥तत्र यत्र द्वयं वापि प्रयोगस्योपदिश्यते ॥२१॥ तदादावेव कलशान्कल्पयेदध्वशुद्धिवत् ॥ कृत्वा
समयसंस्कारमभिषेकं विनाखिलम् ॥२२॥ समभ्यर्च्य शिवं भूयः कृत्वा चाध्वविशोधनम् ॥ तस्मिन्परिसमाप्ते तु पुनर्देवं प्रपूजयेत् ॥
॥ २३ ॥ हुत्वा मंत्रन्तु संतर्प्य संदीप्याशास्य चेश्वरम् ॥ समर्प्य मंत्रं शिष्यस्य पाणौ शेषं समापयेत् ॥ २४ ॥ अथवा मंत्रसंस्कारमनु
चिंत्याखिलं क्रमात् ॥ अध्वशुद्धिं गुरुः कुर्यादभिषेकावसानिकम् ॥२५॥ तत्र यः शान्त्यतीतादिकलासु विहितो विधिः ॥ स सर्वोऽपि
विधातव्यस्तत्त्वत्रयविशोधने ॥२६॥ शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमुदाहृतम् ॥ शक्तौ शिवस्ततो विद्यात्तस्यास्त्वात्मा समुद्भवौ ॥२७॥
शिवेन शांत्यतीताध्वा व्याप्तस्तदपरः परः ॥ विद्यया परिशिष्टोऽध्वा ह्यात्मना निखिलः क्रमात् ॥२८॥ दुर्लभं शांभवं मत्वा मंत्रमूलं मनी
षिणः ॥ शाक्तं शंसीत संस्कारं शिवशास्त्रार्थपारगाः ॥ २९ ॥ इति ते सर्वमाख्यातं संस्काराख्यस्य कर्मणः ॥ चातुर्विध्यमिदं कृष्ण किं
भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे विशेषादिसंस्कृतिर्नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

तत्त्वोंके शोधनेमें सब करनी चाहिये ॥ २६ ॥ शिव विद्याके तत्त्व कहनेवाले तीन तत्त्व कहाते हैं, शक्तिमेंही शिवको जानना चाहिये, उसीका आत्मा प्रगट
हुआ है ॥ २७ ॥ शिवसेही शान्त्यतीतादि मार्ग और उस परे व्याप्त हैं; विद्यासे परिशेष मार्ग सब क्रमसे आत्मस्वरूप ॥ २८ ॥ शिवका मूलमंत्र दुर्लभ
मानकर मूलमंत्रको विद्वान् महात्मा जो शिवशास्त्रके पारगामीहैं; शक्तिसंस्कार कहतेहैं ॥ २९ ॥ यह संस्कार कर्मका चार प्रकारसे सब विधान तुमसे कहा है.
हे कृष्ण ! अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है सो तुम हमसे कहो॥ ३० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०वा०सं० उत्तरखण्डे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! शिवशास्त्रके अनुसार वर्तनेवालोंका जो नित्य नैमित्तिक कर्म है उसके सुननेकी मैं इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, प्रातःकालही शयनसे उठकर उमासहित शिवका ध्यान करके विचार कर अरुणोदय होनेपर अपने कर्मके निमित्त घरसे निकले ॥ २ ॥ उपद्रव रहित देशमें आवश्यक शौचादि करके निवृत्त होकर दंतधावन करै ॥ ३ ॥ दंतधावनके प्राप्त होनेपर (चतुर्दशी अष्टमी पौर्णमासी संक्रांति नंदातिथि नौमीको दंतधावन न करै) इन तिथियोंमें जलके बारह कुल्ले आत्माकी शुद्धिके निमित्त करने चाहियें ॥४॥ फिर विधिपूर्वक आचमन करके वारुण स्नान करै (अवगाहका नाम वारुण स्नान है) कि, मनसे विष्णुभगवान्का चिन्तन करै । नदी देवखात (सरोवर) ह्रद वा घरमें स्नान करै ॥ ५ ॥ उसके तटपर स्नानके द्रव्य गोमयादि स्थापन करै; बाह्यमलको दूरकर मट्टी और गोबरसे लीपै ॥ ६ ॥ बारबार स्नान कर उस वस्त्रको त्यागन कर वा धोकर सम्यक् स्नान कर राजाके समान शुद्ध वस्त्रको धारण करै ॥ ७ ॥ सुगंधि आदि स्नान, दांतोंकी शुद्धि, यह ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवाको न करनी चाहिये ॥ ८ ॥ यज्ञोपवीत पहरे शिखा बाँधे जलान्तरसे प्रवेश कर उसमें स्नान कर जलमें तीन मंडलके सदृश आकार करै ॥ ९ ॥ फिर जलमें मन्त्रहो शक्तिके अनुसार

कृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम् ॥ शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देवं सहाम्बया ॥ विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्गृहादभ्युदितेऽरुणे ॥ २ ॥ अबाधे विजने देशे कुर्य्यादावश्यकं ततः ॥ कृत्वा शौचं विधानेन दंतधावनमाचरेत् ॥ ३ ॥ अलाभे दंतकाष्ठानामष्टम्यादिदिनेषु च ॥ अपां द्वादशगंडूषैः कुर्यादास्यविशोधनम् ॥ ४ ॥ आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत् ॥ नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ गृहेऽपि वा ॥ ५ ॥ स्नानद्रव्याणि तत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम् ॥ व्यपोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत् ॥ ६ ॥ स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वा वाथ विशोध्य च ॥ सुस्नातो नृपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च ॥ ७ ॥ मलस्नानं सुगंधाद्यैः स्नानं दन्तविशोधनम् ॥ न कुर्याद्ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ॥ ८ ॥ सोपवीतश्शिखां बद्ध्वा प्रविश्य च जलांतरम् ॥ अवगाह्य समाचांतो जले न्यस्येत्त्रिमंडलम् ॥ ९ ॥ सौम्ये मन्त्रः पुनर्मंत्रं जपेच्छक्त्या शिवं स्मरेत् ॥ उत्थायाचम्य तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत् ॥ १० ॥

शिवका स्मरण करताहुआ मंत्र जपै; फिर उठ आचमन कर उसीसे अपने आत्माको अभिषिक्त करै ॥ १० ॥ गोशृंग कुश पलाशदल, (ढाकके पत्ते) अथवा कमलसे वा हाथसे पांच वा तीन बार अभिषेक कर ॥ ११ ॥ बगीचे आदि घर, वर्धनी वा कलश करके स्नानके समय जलोंको मंत्रोंसे अभिषेक करै ॥ १२ ॥ और जो वारुण (जल) स्नान करनेमें असमर्थ हो तौ शुद्ध भीजेहुए वस्त्रसे अपनी देहको शिरसे पैरोंतक शोधले ॥ १३ ॥ (यह कपिल स्नान है) भस्मसे अथवा आपोहिष्ठेत्यादि मंत्रोंसे वा शिवमंत्रके प्रोक्षणसे स्नान करै; और शिवके चिन्तन युक्त आत्मीय ज्ञान कहाता है ॥ १४ ॥

गोशृंगेण सदर्भेण पालाशेन दलेन वा ॥ पाद्मेन वाथ पाणिभ्यां पंचकृत्वस्त्रिरेव वा ॥ ११ ॥ उद्यानादौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा ॥ अवगाहनकालेऽद्भिर्मंत्रितैरभिषेचयेत् ॥१२॥ अथ चेद्वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा ॥ आर्द्रेण शोधयेद्देहमापादतलमस्तकम् ॥ ॥ १३ ॥ आग्नेयं वाथ वा मांत्रं कुर्यात्स्नानं शिवेन वा ॥ शिवचिंतापरं स्नानं युक्तस्यात्मीयमुच्यते ॥ १४ ॥ स्वसूत्रोक्तविधानेन मंत्राचमनपूर्वकम् ॥ आचरेद्ब्रह्मयज्ञांतं कृत्वा देवादितर्पणम् ॥ १५ ॥ मंडलस्थं महादेवं ध्यात्वाभ्यर्च्य यथाविधि ॥ दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे ॥१६॥ अथ वैतत्स्वसूत्रोक्तं कृत्वा हस्तौ विशोधयेत् ॥ करन्यासं ततः कृत्वा सकलीकृताविग्रहः ॥ १७ ॥ वामहस्तगतांभोभिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः ॥ कुशपुंजेन वाभ्युक्ष्य मूलमंत्रसमन्वितैः ॥ १८ ॥ आपोहिष्टादिभिर्मन्त्रैः शेषमाघ्राय वै जलम् ॥ वामनासापुटेनैव देवं संभावयेत्सितम् ॥ १९ ॥ अवमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ॥ कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम् ॥ २० ॥ तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ॥ भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि ॥ २१ ॥

अपने सूत्रमें कहे विधानसे मन्त्र तथा आचमनपूर्वक देवादिका तर्पण कर ब्रह्मयज्ञतक सब कृत्य करै ॥ १५ ॥ मण्डलमें स्थित महादेवका पूजन कर यथाविधि ध्यान करके आदित्यरूपी शिवके निमित्त अर्घ्य दे ॥१६॥ फिर अपने सूत्रोक्त विधान करके हस्त शुद्धि करै, और करन्यास कर सब शरीरको शोध ॥ १७ ॥ वाम हाथमें प्राप्तहुए जलसे गंध और सरसौं सहित कुश समूहसे मूलमन्त्रके सहित प्रोक्षण कर ॥ १८ ॥ आपोहिष्ठादि मंत्रोंसे शेष जलको सूंघकर बाँये नासापुटसे देहका पाप ग्रहणकर कृष्णवर्ण बाहर स्थित कर शिलापर ध्यान करै ॥ १९ ॥ २० ॥ फिर विशेष कर देवता और ऋषियोंका

तर्पण करै भूत और पितरोंके अर्थ यथायोग्य अर्घ्यको दे ॥ २१ ॥ वा लाल चन्दनके जलसे हाथमात्रसे सुन्दर भूमिमें रत्न चूर्णादिसे अलंकृत मंडलकी कल्पना करै ॥ २२ ॥ वहाँ अपने आवरणोंके सहित सूर्यका पूजन करै 'खखोल्काय' इस मन्त्रसे सब सुख सिद्धिके निमित्त पूजै ॥ २३ ॥ फिर मण्डल करके अंगोंकी पूजा करके वहाँ रक्खै और सुवर्णपात्रको मगधदेशके सेर (१२८ तोलेका) के परिमाण ॥ २४ ॥ गंध और लाल चन्दनके जलसे पूर्ण करै, लाल फूल, तिल, कुश अक्षतोंके सहित ॥ २५ ॥ दूर्वा चिरचिटा गव्य दूध वा जलसे पूर्ण कर जंघाके बल पृथ्वीमें बैठ मंडलमें देवको प्रणाम कर

रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम् ॥ सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम् ॥ २२ ॥ तत्र संपूजयेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ॥
खखोल्कायेति मंत्रेण सांगतस्सुखसिद्धये ॥ २३ ॥ पुनश्च मंडलं कृत्वा तदंगैः परिपूज्य च ॥ तत्र स्थाप्य हेमपात्रं मागधप्रस्थसं
मितम् ॥ २४ ॥ पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनयोगिना ॥ रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः ॥ २५ ॥ दूर्वापामार्गगव्यैश्च केवलेन
जलेन वा ॥ जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मंडले ॥ २६ ॥ कृत्वा शिरसि तत्पात्रं दद्यादर्घ्यं शिवाय तत् ॥ अथवांजलिना
तोयं सदर्भं मूलविद्यया ॥ २७ ॥ उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये ॥ कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ २८ ॥
बुद्ध्वेशानादि सद्यांतं पंचब्रह्ममयं शिवम् ॥ गृहीत्वा भसितं मंत्रैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥ २९ ॥ या दिनांतैश्शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणा
न्क्रमात् ॥ ततो मूलेन सर्वांगमालभ्य वसनान्तरम् ॥ ३० ॥ परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः ॥ जलैराच्छाद्य वासोऽ
न्यद्विराचम्य शिवं स्मरेत् ॥ ३१ ॥

॥ २६ ॥ उस पात्रको शिरपै करके अर्घ्य दे, अथवा कुश सहित मूलविद्यासे उस जलको अंजलिमें लेकर ॥ २७ ॥ आकाशमें स्थित सूर्यमूर्ति शिवके निमित्त अर्घ्य दे फिर हाथ धोकर करन्यास करके ॥ २८ ॥ ईशानको आदि लेकर सद्योजात पर्यंत पंचब्रह्ममय शिवको जानकर मन्त्रोंसे भस्म ग्रहण कर अंगोंको स्पर्श करै ॥ २९ ॥ फिर विपरीत क्रमसे शिर मुख गुह्य और चरणोंमें लगावै, फिर मूलमंत्रसे सर्वांगमें लगाय वस्त्र धारण करै ॥ ३० ॥ दो बार आचमन कर ग्यारह मन्त्रोंसे प्रोक्षण कर वस्त्र पहर दूसरे वस्त्रको जलसे आच्छादन कर दो आचमन कर शिवका स्मरण करै ॥ ३१ ॥

फिर मन्त्रानुष्ठानी करन्यास करके भस्मसे त्रिपुंड्रको लिखै; सुगंध जलसे माथेमें त्रिपुण्ड्र लगाय ॥ ३२ ॥ दीर्घ वा चार अंगुलसे बिन्दु वा अर्धचन्द्रके
समान माथेपर यथायोग्य त्रिपुण्ड्रको भस्मसे लगावै ॥ ३३ ॥ जैसे माथेपर लगावै वैसाही भुजा शिर और छातीपर लगावै, सर्वांगमें भस्म लगावै, वह
त्रिपुंड्रके समान न हो ॥ ३४ ॥ इस कारण एक त्रिपुण्ड्रको ही भस्म रहित मस्तकमें लिखै; रुद्राक्षोंको शिर कंठ हाथ कानोंमें धारण करै ॥ ३५ ॥
जो सुवर्ण वर्णके समान दूसरेका धारण किया न हो वह क्रमसे ब्राह्मणादिको श्वेत पीला लाल और श्याम वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ उसके न

पुनर्न्यस्तकरो मंत्री त्रिपुंड्रं भस्मना लिखेत् ॥ अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा ॥ ३२ ॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव
वा ॥ ललाटे यादृशं पुण्ड्रं लिखितं भस्मना पुनः ॥ ३३ ॥ तादृशं भुजयोर्मूर्ध्नि स्तनयोरंतरे लिखेत् ॥ सर्वांगोद्धूलनं चैव न समानं
त्रिपुंड्रकैः ॥ ३४ ॥ तस्मात्रिपुंड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना ॥ रुद्राक्षान्धारयेन्मूर्ध्नि कंठे श्रोत्रे करे तथा ॥ ३५ ॥ सुवर्णवर्णमच्छिन्नं
शुभं नान्यैर्धृतं शुभम् ॥ विप्रादीनां क्रमाच्छ्रेष्ठं पीतं रक्तमथासितम् ॥ ३६ ॥ तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम् ॥ तत्रापि नोत्तरं
नीचैर्धार्यं नीचमथोत्तरैः ॥ ३७ ॥ नाशुचिर्द्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत् ॥ इत्थं त्रिसंध्यमथवा द्विसंध्यं सकृदेव वा ॥ ३८ ॥
कृत्वा स्नानादिकं शक्त्या पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ पजास्थानं समासाद्य बद्ध्वा रुचिरमासनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायेदेवं च देवीं च प्राङ्मुखो
वाप्युदङ्मुखः ॥ श्वेतादीन्नकुलीशांतांस्तच्छिष्यान्प्रणमेद्गुरुम् ॥ ४० ॥ पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टकं जपेत् ॥ शिवो महे
श्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ ४१ ॥

होनेपर जो मिलसकै वही शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये; उसमें भी नीच पुरुषोंको ऊंचे वर्णके वस्त्र धारण करने न चाहियें न ऊंचोंको नीचे वर्णके वस्त्र
पहरने चाहिये ॥ ३७ ॥ अशुचिहो रुद्राक्ष धारण न करै, पूजादि समयमें सदा धारण करै. इस प्रकार तीनों संध्या, दोनों अथवा एक संध्यामें ॥ ३८ ॥
शक्तिसे रचनादि करके परमेश्वरकी पूजा करै, पूजास्थानमें आकर सुन्दर आसन बांधकर ॥ ३९ ॥ देव देवीको उत्तर वा पूर्व मुखकर ध्यान करे; पूर्वमें कहे
श्वेत आदिसे नकुलोशतक शिष्यों सहित गुरुको प्रणाम करै ॥ ४० ॥ फिर अपने गुरुदेवको प्रणाम कर नामाष्टक जपै, शिव महेश्वर रुद्र विष्णु पितामह ॥ ४१ ॥

संसार वैद्य सर्वज्ञ यही आठ नाम हैं; अथवा ग्यारहसे अधिक बार एक शिवकाही नाम जपै ॥ ४२ ॥ जिह्वाके अग्रभागमें व्याधिशान्तिके निमित्त उस तेजोराशिका ध्यान करके हाथ धोकर: और चन्दन आदिसे चर्चित कर न्यास करै, हाथ शोधनपूर्वक करन्यास करै ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण भाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उपमन्यु बोले—स्थिति, उत्पत्ति, लयके क्रमसे तीन प्रकारका न्यास कहा है. स्थितिन्यास गृहस्थियोंका, उत्पत्ति ब्रह्मचारियोंका ॥ १ ॥ यतियोंका संहृति न्यास और यही वनवासियोंका है और यही संहृति न्यास स्वामिहीन कुटुम्बिनीको करना

संसारवैद्यस्सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम् ॥ अथवा शिवमेवैकं जपित्वैकादशाधिकम् ॥ ४२ ॥ जिह्वाग्रे तेजसो राशिं ध्यात्वा व्याध्या
दिशांतये ॥ प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चंदनचर्चितौ ॥ प्रकुर्वीत करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे
सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ न्यासस्तु त्रिविधः
प्रोक्तः स्थित्युत्पत्तिलयक्रमात् ॥ स्थितिन्यासो गृहस्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥ यतीनां संहृतिन्यासो वनस्थानां तथैव च ॥
स एव भर्तृहीनायाः कुटुंबिन्याः स्थितिर्भवेत् ॥ २ ॥ कन्यायाः पुनरुत्पत्तिं वक्ष्ये न्यासस्य लक्षणम् ॥ अंगुष्ठादिकनिष्ठांतं स्थितिन्यास
उदाहृतः ॥ ३ ॥ दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामांगुष्ठान्तमेव च ॥ उत्पत्तिन्यास आख्यातो विपरीतस्तु संहृतिः ॥ ४ ॥ सबिंदुकान्नकारादी
न्वर्णान्न्यस्येदनुक्रमात् ॥ अंगुलीषु शिवं न्यस्येत्तलयोरप्यनामयोः ॥ ५ ॥ अस्त्रन्यासं ततः कृत्वा दशदिक्ष्वस्त्रमंत्रतः ॥ निवृत्त्यादि
कलाः पंच पंचभूतस्वरूपिणीः ॥ ६ ॥

चाहिये ॥ २ ॥ फिर कन्याकी उत्पत्ति और न्यासका लक्षण कहैंगे, अंगुष्ठसे लेकर कनिष्ठातक स्थितिन्यास कहा जाता है ॥ ३ ॥ और दक्षिण अंगुष्ठसे लेकर वाम अंगुष्ठतक उत्पत्ति न्यास कहा है, इसके विपरीत संहृति है ॥४॥ वाम अंगुष्ठसे लेकर दक्षिण अंगुष्ठतक बिन्दुके सहित नकारादिकोंको रखकर क्रमसे अंगुलियोंमें शिवको न्यास करतल और अनामिकामें ॥ ५ ॥ अस्त्रन्यास करके दश दिशाओंमें अस्त्रमंत्रसे निवृत्ति आदि पाँचकला पंचभूत स्वरूपवाली ॥ ६ ॥

पंचभूतके अधिपतियोंके साथ उन उनके चिह्नोंसे युक्त हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य ब्रह्मरन्ध्रमें आश्रयवाले ॥ ७ ॥ उस उस बीज मंत्रसे भावना करै उनके शोधनेके निमित्त पंचाक्षरी विद्याका जप करै; ॥ ८ ॥ वाणीको रोक प्राणवायुको शोध गुण संख्याके अनुसार अस्त्र और अस्त्र मुद्रासे भूतग्रन्थिको छेदन कर ॥ ९ ॥ सुषुम्ना नाड़ीसे प्राणवायुद्वारा आत्माको प्रेरित कर जो कि ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे निकलती है; उसको शिवतेजसे युक्त करै ॥ १० ॥ फिर वायुसे देहको सुखाय कालाग्निसे जलादे फिर ऊपरके भावसे कलाओंको संहार कर ॥ ११ ॥ अधिपतियों सहित विदग्ध कलाओंका स्पर्श कर अमृ

पंचभूताधिपैस्सार्द्धं तत्तच्चिह्नसमन्विताः ॥ हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमाश्रयाः ॥ ७॥ तत्तद्बीजेन संग्रंथीस्तत्तद्बीजेषु भावयेत् ॥ तासां विशोधनार्थाय विद्यां पंचाक्षरीं जपेत् ॥ ८ ॥ निरुद्ध्वा प्राणवायुं च गुणसंख्यानुसारतः ॥ भूतग्रंथिं ततश्छिद्यादस्त्रेणैवास्त्रमुद्रया ॥ ९ ॥ नाड्या सुषुम्नयात्मानं प्रेरितं प्राणवायुना ॥ निर्गतं ब्रह्मरंध्रेण योजपेच्छिवतेजसा ॥ १० ॥ विशोष्य वायुना पश्चाद्देहं कालाग्निना दहेत् ॥ ततश्चोपरिभावेन कलास्संहृत्य वायुना ॥ ११ ॥ देहं संहृत्य वै दग्धं कलास्स्पृष्ट्वा सहाब्धिना ॥ प्लावयित्वामृतैर्देहं यथास्थानं निवेशयेत् ॥ १२ ॥ अथ संहृत्य वै दग्धः कलासर्गं विनैव तु ॥ अमृतप्लावनं कुर्याद्भस्मीभूतस्य वै ततः ॥ १३ ॥ ततो विद्यामये तस्मिन्देहे दीपशिखाकृतिम् ॥ शिवान्निर्गतमात्मानं ब्रह्मरंध्रेण योजयेत् ॥ १४ ॥ देहस्यान्तःप्रविष्टं तं ध्यात्वा त्हृदयपंकजे ॥ पुनश्चामृतवर्षेण सिंचेद्विद्यामयं वपुः ॥ १५ ॥ ततः कुर्यात्करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ देहन्यासं ततः पश्चान्महत्या मुद्रया चरेत् ॥ १६ ॥

तसे देहको स्नान कराय कर यथास्थानमें स्थित करै ॥ १२ ॥ फिर कलासर्गके विना चतुर उसको संहार कर भस्मीभूतहुए उस देहको अमृतसे प्लावित करै ॥ १३ ॥ फिर उस विद्यामय शरीरमें दीपशिखाके समान आकारवाले शिवसे निर्गतहुए आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे संयुक्त करै ॥ १४ ॥ देहके अन्तरमें प्रविष्ट हुए शिवको हृदय कमलमें ध्यान करके फिर अमृतकी वर्षासे विद्यामय शरीरको सींचै ॥ १५ ॥ फिर करशोधनपूर्वक करन्यास करै, फिर देहन्यास करके

महतीमुद्रा करै ॥ १६ ॥ फिर शिवमार्गसे अंगन्यास करके हाथ पैरकी सन्धियोंमें वर्णन्यास करै ॥१७॥ फिर छः जातियुक्त षडंगन्यास करके आग्नेयादि दिशाओंमें क्रमसे दिग्बंधन करै ॥ १८ ॥ अथवा शिरमें पंचाङ्गन्यास करै; अथवा भूतशुद्धिके बिना षडंगन्यास करके ॥ १९ ॥ संक्षेपसे आत्मशोधन करके शिवभावको प्राप्त हो परमेश्वरका पूजन करै ॥ २० ॥ जिसको अवकाश है; और मतिका भ्रम नहीं है वह विस्तीर्ण कलासे न्यासकर्मका आचरण करै ॥ २१ ॥ प्रथम मातृकान्यास फिर ब्रह्मन्यास तीसरा प्रणवन्यास चौथा सोहंन्यास ॥ २२ ॥ पांचवां पंचाक्षरात्मक न्यास इनमें एक वा अनेक पूजा

अंगन्यासं ततः कृत्वा शिवोक्तेन तु वर्त्मना ॥ वर्णन्यासं ततः कुर्य्याद्धस्तपादादिसंधिषु ॥ १७ ॥ षडंगानि ततो न्यस्य जातिषट्क
युतानि च ॥ दिग्बंधमाचरेत्पश्चादाग्नेयादि यथाक्रमम् ॥ १८ ॥ यद्वा मूर्द्धादिपंचांगं न्यासमेव समाचरेत् ॥ तथा षडंगन्यासं च भूत
शुद्ध्यादिकं विना ॥ १९ ॥ एवं समासरूपेण कृत्वा देहात्मशोधनम् ॥ शिवभावमुपागम्य पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ २० ॥ अथ यस्यास्त्य
वसरो नास्ति वा मतिविभ्रमः ॥ स विस्तीर्णेन कल्पेन न्यासकर्म समाचरेत् ॥ २१ ॥ तत्राद्यो मातृकान्यासो ब्रह्मन्यासस्ततः परः ॥
तृतीयः प्रणवन्यासो हंसन्यासस्तदुत्तरः ॥ २२ ॥ पंचमः कथ्यते सद्भिर्न्यासः पंचाक्षरात्मकः ॥ एतेष्वेकमनेकं वा कुर्यात्पूजादि
कर्मसु ॥ २३ ॥ अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य आकारं च ललाटके ॥ इं ईं च नेत्रयोस्तद्वत् उं ऊं श्रवणयोस्तथा ॥ २४ ॥ ऋं ॠं कपोलयोश्चैव
ऌं ॡं नासापुटद्वये ॥ एमैमोष्ठद्वयोरोमौं दंतपंक्तिद्वयोः क्रमात् ॥ २५ ॥ अं जिह्वायामथो तालुन्यः प्रयोज्यो यथाक्रमम् ॥ कवर्गं
दक्षिणे हस्ते न्यसेत्पंचसु संधिषु ॥ २६ ॥ चवर्गं च तथा वामहस्तसंधिषु विन्यसेत् ॥ टवर्गं च तवर्गं च पादयोरुभयोरपि ॥ २७ ॥
पफौ तु पार्श्वयोः पृष्ठे नाभौ चापि बभौ ततः ॥ न्यसेन्मकारं हृदये त्वगादिषु यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

कर्ममें करै ॥ २३ ॥ अकार शिरमें रखकर आकार मस्तकमें इंईं नेत्रम उं ऊँ कानोंमें ॥ २४ ॥ और ऋं ॠँ कपोलोंमें ऌ ॡँ दोनों नासापुटमें एं ऐं दोनों ओष्ठोंमें; ओं औं दोनों दाँतोंकी पंक्तिमें ॥ २५ ॥ अं जिह्वामें अःको तालुमें यथाक्रमसे प्रयुक्त कर कवर्गको दक्षिण हस्तमें पाँचों संधियोंमें न्यास करै ॥ ॥ २६ ॥ चवर्गको वामहाथकी संधिमें न्यास करै, टवर्गको और तवर्गको दोनों चरणोंमें ॥ २७ ॥ प फको पृष्ठके पार्श्वभागमें नाभिमें ब भ को हृदयमें

मकारको और त्वचा आदिमें यथाक्रमसे ॥ २८ ॥ यकारको आदिले सकारतक सात सात धातुओंसे हकारको हृदयके अन्तमें क्षकारको दोनों भौंके बीचमें ॥ २९ ॥ इस प्रकार पचास वर्णोंको रुद्रमार्गसे प्रवेश कर अंग और मुखमें कलाके भेदसे पांच ब्रह्ममें न्यास करै ॥ ३० ॥ करन्यासादिभी क्रमसे करके वा न करके शिशुके मुख हृदय गुह्य चरणोंमें इनकी कल्पना करै ॥ ३१ ॥ फिर ऊर्ध्वमुख पश्चिम पर्यन्त करावै; ईशानकी पांच कला इन पाँचों मुखोंमें क्रमसे ॥ ३२ ॥ फिर चार मुखोंमें पुरुषोंकी कलाभी चार पूर्वादि क्रमके योगसे रखनी चाहिये ॥ ३३ ॥ हृदय, कंठ, कंधे, नाभि, कोख, पीठ, छातीमें

यकारादिसकारांतान्न्यसेत्सप्तसु धातुषु ॥ हंकारं तद्धृदयस्यांतः क्षकारं भ्रूयुगांतरे ॥ २९ ॥ एवं वर्णान्प्रविन्यस्य पंचाशद्रुद्रवर्त्मना ॥
अंगवक्त्रकलाभेदात्पंच ब्रह्माणि विन्यसेत् ॥ ३० ॥ करन्यासाद्यमपि तैः कृत्वा वाथ न वा क्रमात् ॥ शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि
कल्पयेत् ॥ ३१ ॥ ततश्चोर्द्धादिवक्त्राणि पश्चिमांतानि कल्पेयत् ॥ ईशानस्य कलाः पञ्च पंचस्वेतेषु च क्रमात् ॥ ३२ ॥
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ॥ चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ ३३ ॥ हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च
वक्षसि ॥ अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः ॥ ३४ ॥ पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु ॥ जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु
वामदेवस्य भावयेत् ॥ ३५ ॥ घ्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥ अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वानुपूर्वशः ॥ ३६ ॥
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ॥ बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः ॥ ३७ ॥ पार्श्वोदरोरुजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा ॥
इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ॥ ३८ ॥

अघोरकी आठ कला क्रमसे रखनी चाहिये ॥ ३४ ॥ पीछे तेरह कला पायु मेढ्र (लिंग) जानुओंमें जंघा स्फिक् कटि और पार्श्वस्थानमें वामदेवकी भावना करै ॥ ३५ ॥ सद्योजातकी कला आठ पाँव और हाथकी. नासिका शिर और बाहुमें कल्पका जाननेवाला कल्पना करै, इसप्रकार आनुपूर्वी अठतीस कलाओंका न्यास करके ॥ ३६ ॥ पीछे प्रणवज्ञाता बुद्धिमान् प्रणवन्यास करै, दोनों बाहु किहुनी मणिबंध (पहुँचा) ॥ ३७ ॥ पार्श्व, उदर, ऊरु, जंघा

---

१ "सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः "इत्यधिकोऽर्धः ॥

पादपृष्ठमें इस प्रकार न्यासमें चतुर प्रणवन्यास को ॥ ३८ ॥ करै फिर यथाशास्त्र हंसन्यास करै, जैसा शिवशास्त्रोंमें लिखा है, फिर हंसबीजका विभाग कर
नेत्र और घ्राणोंकोभी ॥ ३९ ॥ विभागकर ललाट और नासिकामें न्यास करै, कक्ष, स्कंध, पार्श्वभाग, स्तन, ॥ ४० ॥ कटि, पाणि, गुल्फ अथवा पंचां
गमार्गसे हंसन्यास करके पंचाक्षरी विद्याका न्यास करै ॥ ४१ ॥ उस पूर्वोक्तमार्गसे शिवत्वकी प्राप्ति होती है. अशिव होकर शिवका पूजन न करै, अशिव
होकर शिवका अभ्यास न करै ॥ ४२ ॥ अशिव होकर शिवका ध्यान न करै; अशिव होकर शिवको प्राप्त नहीं होसकता, इस कारण शैवतनु धारण कर

हंसन्यासं प्रकुर्वीत शिवशास्त्रे यथोदितम् ॥ बीजं विभज्य हंसस्य नेत्रयोर्घ्राणयोरपि ॥ ३९ ॥ विभज्य बाहुनेत्रास्यललाटे घ्राणयोर
पि ॥ कक्षयोः स्कन्धयोश्चैव पार्श्वयोस्तनयोस्तथा ॥ ४० ॥ कट्योः पाण्योर्गुल्फयोश्च यद्वा पंचांगवर्त्मना ॥ हंसन्यासमिमं कृत्वा न्यसे
त्पंचाक्षरीं ततः ॥ ४१ ॥ यथा पूर्वोक्तमार्गेण शिवत्वं येन जायते ॥ नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत् ॥ ४२ ॥ नाशिवस्तु
शिवं ध्यायेन्नाशिवम्प्राप्नुयाच्छिवम् ॥ तस्माच्छैवीं तनुं कृत्वा त्यक्त्वा च पशुभावनाम् ॥ ४३ ॥ शिवोऽहमिति संचिन्त्य शैवं कर्म
समाचरेत् ॥ कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तदुत्तरः ॥ ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पंच यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ४४ ॥ कर्मयज्ञरताः केचित्तपो
यज्ञरताः परे ॥ जपयज्ञरताश्चान्ये ध्यानयज्ञरतास्तथा ॥ ४५ ॥ ज्ञानयज्ञरताश्चान्ये विशिष्टाश्चोत्तरोत्तरम् ॥ कर्मयज्ञो द्विधा प्रोक्तः
कामाकामविभेदतः ॥ ४६ ॥ कामान्कामी ततो भुक्त्वा कामासक्तः पुनर्भवेत् ॥ अकामे रुद्रभवने भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥ ४७ ॥
तपोयज्ञरतो भूत्वा जायते नात्र संशयः ॥ तपस्वी च पुनस्तस्मिन्भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥ ४८ ॥

पशुभावना त्याग कर ॥ ४३ ॥ मैं शिवहूं यह विचारकर शैवकर्म करै; कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ यह क्रमसे पांच यज्ञ हैं ॥ ४४ ॥
कोई कर्मयज्ञमें प्रीति करनेवाले हैं कोई तपयज्ञमें प्रीति करनेवाले हैं कोई जपयज्ञमें प्रीति करतेहैं कोई ध्यानयज्ञमें प्रीति करनेवाले ॥ ४५ ॥ कोई ज्ञानयज्ञमें
प्रीति करनेवाले हैं यह पहलेसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं; काम अकामक भेदसे कर्मयज्ञ दो प्रकारका है ॥ ४६ ॥ कामी कामोंको भोगकर फिर कामासक्त होजाता है
और कामना रहित रुद्रलोकमें अनेक भोगोंको भोगकर फिर उस रुद्रभवनसे आकर ॥ ४७ ॥ तपयज्ञमें प्रीतिकरनेवाला पृथ्वीमें होता है इसमें संदेह नहीं;

और वह तपस्वी हो अनेक भोगोंको भोगकर वहांसे च्युत हो ॥ ४८ ॥ पृथ्वीमें जपध्यानमें प्रीति करनेवाला होता है; इसमें संदेह नहीं; जपध्यानमें प्रीति करनेवाला मनुष्य विशिष्टताके वशसे ॥ ४९ ॥ शीघ्र ज्ञानको प्राप्त होकर शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है; शिवकी आज्ञासे कर्मयज्ञ भी देहधारियोंको मुक्तिमें प्राप्त करता है ॥ ५० ॥ अकामी होकर कामना करनेसे बंधन होता है, इस कारण पांचों यज्ञोंमेंसे ध्यानज्ञानमें तत्पर होना चाहिये ॥ ५१ ॥ जिसको ज्ञान ध्यान है वह संसारसागरसे तरगया है. वह हिंसादि दोषोंसे छूटकर विशुद्ध चित्त हो जाता है ॥ ५२ ॥ उससे परे ध्यानयज्ञ अपवर्गके फलका

जपध्यानरतो भूत्वा जायते भुवि मानवः ॥ जपध्यानरतो मर्त्यस्तद्वैशिष्ट्यवशादिह ॥ ४९ ॥ ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ तस्मान्मुक्तो शिवाज्ञतः कर्मयज्ञोऽपि देहिनाम् ॥ ५० ॥ अकामः काम संयुक्तो बन्धायैव भविष्यति ॥ तस्मात्पञ्चसु यज्ञेषु ध्यानज्ञानपरो भवेत् ॥ ५१ ॥ ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥ हिंसादिदोषनिर्मुक्तो विशुद्धश्चित्तसाधनः ॥ ५२ ॥ ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ॥ बहिः कर्मकरा यद्वन्नातीव फलभागिनः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः ॥ ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ॥ ५४ ॥ यथेह कर्मणां स्थूलं मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥ ध्यानयज्ञरतास्तस्माद्देवान्पाषाणमृण्मयान् ॥५५॥ नात्यंतं प्रतिपद्यंते शिवयाथात्म्यवेदनात् ॥ आत्मस्थं यः शिवं त्यक्त्वा बहिरभ्यर्चयेन्नरः ॥ ५६ ॥ हस्तस्थं फलमुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः ॥ ज्ञानाद्ध्यानं भवेद्ध्यानाज्ज्ञानं भूयः प्रवर्तते ॥ ५७ ॥

देनेवाला है और बाह्य कर्म बड़े फलके देनेवाले नहीं होते ॥ ५३ ॥ नरेन्द्रके भवनमें यहांके कर्म करनेवाले जैसा ऐश्वर्य देखते हैं, इसी प्रकार ध्यान करनेवालोंका शरीर ऐश्वर्ययुक्त सूक्ष्म हो जाता है ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार यहाँ कर्मियोंने स्थूल मृत काष्ठादिसे ग्रहादि कल्पना किया है इसी प्रकारसे ध्यानयज्ञमें प्रीति करनेवाले पाषाणादि मृत्तिकाके देवताओंमें ॥ ५५ ॥ शिवकी यथार्थतासे देखने जाननेसे अत्यन्त प्रीति नहीं करते; अर्थात् वह अन्तर पूजन करते हैं. जो मनुष्य आत्मामें स्थित शिवको छोड बाह्य पूजा करता है ॥ ५६ ॥ वह हाथमें स्थित फलको छोड़कर अपनी किहुनीको चाटता है. ज्ञानसे

ध्यान और ध्यानसे ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ५७ ॥ इन दोनोंसे मुक्ति होती है. इस कारण ध्यानमें मन लगावै द्वादशान्त ब्रह्मरन्ध्र शिर ललाट और दोनों भौंके बीचमें ॥ ५८ ॥ नासिकाके अग्रभागमें मुखमें वा कन्धेमें वा हृदयमें नाभि वा निश्चल स्थानमें श्रद्धायुक्त मनसे ॥ ५९ ॥ बहिर्योगके उपचारसे देव और देवीका पूजन करै अथवा नित्य लिंगमें वा कृतक शिवमें पूजन करै ॥ ६० ॥ अग्निमें स्थंडिलमें भक्तिपूर्वक वित्तके अनुसार अन्तर बाहरमें परमेश्वरीकी पूजा करै; जो अन्तरयाग करते हैं वे बाह्यपूजा करैं, अथवा न करैं उन्हैं और आदेश नहीं है ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराण

तदुभाभ्यां भवेन्मुंक्तिस्तस्माद्ध्यानरतो भवेत् ॥ द्वादशान्ते तथा मूर्ध्नि ललाटे भ्रूयुगान्तरे ॥ ५८ ॥ नासाग्रे वा तथास्ये वा कन्धरे हृदये तथा ॥ नाभौ वा शाश्वतस्थाने श्रद्धाविद्धेन चेतसा ॥ ५९ ॥ बहिर्यागोपचारेण देवं देवा च पूजयेत् ॥ अथवा पूजयेन्नित्यं लिंगे वा कृतकेपि वा ॥ ६० ॥ वह्नौ वा स्थण्डिले वाथ भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ अथवांतर्बहिश्चैव पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ अंतर्यागरतः पूजां बहिः कुर्वीत वा न वा ॥ ६१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्तनित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः ॥ शिवशास्त्रे शिवेनैव शिवायै कथितस्य तु ॥ १ ॥ अंगमभ्यंतरं यागमग्निकार्यावसानकम् ॥ विधाय वा न वा पश्चाद्बहिर्यागं स चरेत् ॥ २ ॥ तत्र द्रव्याणि मनसा कल्पयित्वा विशोध्य च ॥ ध्यात्वा विनायकं देवं पूजयित्वा विधानतः ॥ ३ ॥ दक्षिणे चोत्तरे चैव नंदीशं सुयशं तथा ॥ आराध्य मनसा सम्यगासनं कल्पयेद्बुधः ॥ ४ ॥ आराधनादिकैर्युक्तस्सिंहयोगासनादिकम् ॥ पद्मासनं वा विमलं तत्त्वत्रयसमन्वितम् ॥ ५ ॥

भाषाटीकायां स० वा०सं० उत्तरखंडे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ उपमन्यु बोले, पूजाविधानकी व्याख्या संक्षेपसे कहता हूं; जो शिवशास्त्रमें शिवने ही पार्वतीके प्रति वर्णन की है ॥ १ ॥ हे अंग ! अभ्यन्तरयाग अग्निकार्यके अन्ततक करै; यह करनेके अन्तर बहिर्याग करै वा न करै ॥ २ ॥ उसमें द्रव्योंको मनसे कल्पित कर और शुद्ध कर विनायक देव (गणेश) का ध्यानकर विधानसे पूजन कर ॥ ३ ॥ दक्षिण और उत्तरमें नन्दीश और सुयशका आराधन कर मनसे आसन कल्पित करै ॥ ४ ॥ आराधनादिसे युक्तहो सिंहयोग आसन आदिकमें निर्मल पद्मासन वा तीन तत्त्वोंसे युक्तः ॥ ५ ॥

उसके ऊपर शिवको उमासहित मनोहरतासे युक्त ध्यान करै जो सब लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण अवयवोंसे शोभित हैं ॥६॥ सम्पूर्ण अतिशयसे संयुक्त सम्पूर्ण गहनोंसे भूषित लाल मुख हाथ चरण कुन्दके समान मनोहर हास्य ॥ ७ ॥ शुद्धस्फटिकमणिके समान निर्मल फूलेकमलके समान नेत्र चार भुजा उदार अंग उत्तम चन्द्रकला धारण किये ॥८॥ वरदायक अभय हाथवाले मृगकंटक घोर प्रलयमें संहार करनेहारे,सर्पोंके हारके खँडुएवाले, सुन्दर नीले गलेसे युक्त॥ ९ ॥ सम्पूर्ण उपमानसे रहित, सेवक और कुटुम्ब वर्गसे युक्त उन शिवके वामभागमें परमेश्वरी भगवतीका चिन्तन करै ॥१०॥ फूले कमलपत्रके

तस्योपरि शिवं ध्यायेत्सांबं सर्वमनोहरम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वावयवशोभनम् ॥ ६ ॥ सर्वातिशयसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ॥ रक्तास्य पाणिचरणं कुंदचंद्रस्मिताननम् ॥ ७ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं फुल्लपद्मत्रिलोचनम् ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गं चारुचंद्रकलाधरम् ॥ ८ ॥ वरदाभयहस्तं च मृगटंकधरं हरम् ॥ भुजंगहारवलयं चारुनीलगलांतरम् ॥ ९ ॥ सर्वोपमानरहितं सानुगं सपरिच्छदम् ॥ ततः संचिंतयेत्तस्य वामभागे महेश्वरीम् ॥ १० ॥ प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलाचनाम् ॥ पूर्णचंद्राभवदनां नीलकुंचितमूर्धजाम् ॥ ॥ ११ ॥ नीलोत्पलदलप्रख्यां चंद्रार्द्धकृतशेखराम् ॥ अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ १२ ॥ तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्म वराम्बराम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम् ॥ १३ ॥ विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ॥ सर्वतोऽनुगुणाकारां किंचिल्लज्जानताननाम् ॥ १४ ॥ हेमारविंदं विलसद्धानां दक्षिणे करे ॥ दंडवच्चापरं हस्ते न्यस्यासीनां महासने ॥ १५ ॥ पाशविच्छेदिकां साक्षात्सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ एवं देवं च देवीं च ध्यात्वासनवरे शुभे ॥ १६ ॥

समान कान्तिवाले विस्तीर्णनेत्र; पूर्णचन्द्रमाकी कान्तिके समान मुख, नीले घूँघरवाले केश ॥ ११ ॥ नीलकमलके दलके समान शिखरपर आधा चन्द्रमा धारण किये, चकोर घने ऊंचे स्निग्ध पुष्ट स्तनवाली ॥ १२ ॥ मध्यभागमें सूक्ष्म, पुष्ट नितम्ब सुन्दर सूक्ष्म वस्त्र धारे सम्पूर्ण गहनोंसे युक्त मस्तकके तिलकसे उज्ज्वल ॥ १३ ॥ विचित्र फूल गुथे बालोंके केशपाशसे शोभित सब ओरसे गुणोंसे युक्त कुछेक लज्जासे नम्रमुखवाली ॥ १४ ॥ दहिने हाथमें खिलेहुए कमलको धारण करे दंडके समान दूसरे हाथको रखकर महा आसनके ऊपर स्थित ॥ १५ ॥ साक्षात् जीवोंके कर्मबंधन छेदन करनेवाली सचि

दानंदस्वरूपवाली देवीका और देवका सुन्दर आसनमें ध्यान करके ॥ १६ ॥ सम्पूण उपचारयुक्त भक्ति भावसे फूलोंसे पूजा करै, अथवा कोई उनकी श्रेष्ठ मूर्ति कल्पित कर ॥ १७ ॥ जो शिवनामवाली हो तथा माहेश्वरी मूर्तिको कल्पना कर जो षडिंश वा श्रीकंठनामवाली हो उसे स्थापन कर ॥ १८ ॥ अपने शरीरमें मंत्रन्यासादि करके इस मूर्तिमें मूर्तिमान् शिवको जो कि सत् असत् से परे हैं ॥ १९ ॥ बाह्यक्रमसे ध्यान करके पूजाको निर्वर्तन करै पीछे नाभिमें समिधा घृत आदिके होम करनेकी भावना करै ॥ २० ॥ और भौंहके बीचमें शुद्ध दीप शिखाके आकारके समान शिवका ध्यान करै, इस प्रकार

सर्वोपचारवद्भक्त्या भावपुष्पैस्समर्च्चयेत् ॥ अथवा परिकल्प्यैवं मूर्तिमन्यतमां विभोः ॥ १७ ॥ शैवीं सदाशिवाख्यां वा तथा माहेश्वरीं पराम् ॥ षाडिंशकाभिधानां वा श्रीकंठाख्यामथापि वा ॥ १८ ॥ मंत्रन्यासादिकां चापि कृत्वा स्वस्यां तनौ यथा ॥ अस्यां मूर्तौ मूर्तिमंतं शिवं सदसतः परम् ॥१९॥ ध्यात्वा बाह्यक्रमेणैव पूजां निर्वर्त्तयेद्धिया ॥ समिदाज्यादिभिः पश्चान्नाभौ होमं च भावयेत् ॥ २० ॥ भ्रूमध्ये च शिवं ध्यायेच्छुद्धदीपशिखाकृतिम् ॥ इत्थमंगे स्वतंत्रे वा योगे ध्यानमये शुभे ॥ २१ ॥ अग्निकार्य्यावसानं च सर्वत्रैव समो विधिः ॥ अथ चिंतामयं सर्वं समाप्याराधनक्रमम् ॥ २२ ॥ लिंगे च पूजयेद्देवं स्थंडिले वानलेऽपि वा ॥ २३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पूजाविधानव्याख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ प्रोक्षयेन्मूलमंत्रेण पूजास्थानं विशुद्धये ॥ गन्धचन्दनतोयेन पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ १ ॥

अपने शरीरमें स्वतंत्रतापूर्वक योग ध्यानादिकी प्राप्ति कर ॥ २१ ॥ अग्निकार्य समाप्त होनेतक सबविधि शरीरमें करता रहै फिर यह चिन्तामय सब आराधनका क्रम समाप्त कर ॥२२॥ लिंग स्थंडिल अथवा अग्निमें देवकी पूजा करै ॥२३॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ उपमन्यु बोले, विशुद्धिके निमित्त पूजा स्थानको मूलमंत्रसे प्रोक्षण करै गंध चंदन जलके साथ पुष्प उसमें डालै ॥ १ ॥

अस्त्रसे विघ्नोंको दूर कर वर्मसे अवगुंठनकर अस्त्रको सब दिशाओंमें न्यासकर अर्चना (पूजा) स्थानको कल्पना करै ॥ २ ॥ उसपर कुशा बिछाय जलसे प्रक्षालन करै, सब पात्रोंको शुद्धकर द्रव्य शुद्धि करै ॥ ३ ॥ प्रोक्षणी पात्र अर्घ्यपात्र पाद्यपात्र आचमनीयपात्र यह चारों ॥ ४ ॥ धोकर प्रोक्षण करके उन्हें देखकर उनमें शुद्ध जल डालै; और यथालाभ होसके वह पुण्य द्रव्य उसमें सब डालै ॥ ५ ॥ रत्न, चांदी, सुवर्ण, गंध, पुष्प, अक्षतादि, फल पत्ते दर्भ और अनेक प्रकारके पवित्र द्रव्य ॥ ६ ॥ स्नानके जलमें और पान करनेके जलमें विशेष कर सुगंधि डालै; उसमें शीतल और मनोहर फूल

अस्त्रेणोत्सार्य वै विघ्नानवगुण्ठ्य च वर्मणा ॥ अस्त्रं दिक्षु प्रविन्यस्य कल्पयेदर्चनाभुवम् ॥ २ ॥ तत्र दर्भान्परिस्तीर्य्य क्षालयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ संशोध्य सर्वपात्राणि द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ ३ ॥ प्रोक्षणीमर्घ्यपात्रं च पाद्यपात्र मतः परम् ॥ तथैवाचमनीयस्य पात्रं चेति चतुष्टयम् ॥ ४ ॥ प्रक्षाल्य प्रोक्ष्य वीक्ष्याथ क्षिपेत्तेषु जलं शिवम् ॥ पुण्यद्रव्याणि सर्वाणि यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥ रत्नानि रजतं हेम गन्धपुष्पाक्षतादयः ॥ फलपल्लवदर्भांश्च पुण्यद्रव्याण्यनेकधा ॥ ६ ॥ स्नानोदके सुगन्धादि पानीये च विशेषतः ॥ शीतलानि मनोज्ञानि कुसुमादीनि निक्षिपेत् ॥ ७ ॥ उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत् ॥ जातिकंकोलकर्पूरबहुमूलतमालकान् ॥ ८ ॥ क्षिपेदाचमनीये च चूर्णयित्वा विशेषतः ॥ एलां पात्रेषु सर्वेषु कर्पूरं चन्दनं तथा ॥ ९ ॥ कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि ॥ आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितश्चार्घ्यपात्रके ॥ १० ॥ कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकान् ॥ प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं च यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ सर्वत्र मंत्रं विन्यस्य वर्मणावेष्टय बाह्यतः ॥ पश्चादस्त्रेण संरक्ष्य धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ १२ ॥

डालै ॥ ७ ॥ उशीर और चंदन यह पाद्यमें कल्पना करै; जायफल कंकोल कपूर तथा बहुमूल तमाल ॥ ८ ॥ इनके चूर्ण करके आचमनके जलमें डालै; सब पात्रोंमें इलायची कपूर चंदन रक्खै ॥ ९ ॥ कुशाग्र अक्षत व्रीहि यव तिल घृत सरसौं भस्म यह अर्घ्यपात्रमें रक्खै ॥ १० ॥ कुश पुष्प जो व्रीहि धान्य बहुमूल (शतावरी) तमाल और भस्म यह क्रमसे प्रोक्षणीपात्रमें डाले ॥ ११ ॥ सब प्रकार मन्त्रन्यास कर बाहर भाग कर्म मन्त्रसे आवेष्टित कर

फिर अस्त्रसे संरक्षित कर धेनुमुद्रा दिखावै ॥ १२ ॥ सब पूजाके द्रव्य प्रोक्षणीपात्रके जलसे प्रोक्षण कर मूलमंत्रसे तत्त्वपूर्वक शुद्ध करै ॥ १३ ॥ पात्रोंमें एक प्रोक्षणी न हो तो सब कर्मोंमें उत्तम साधक जलसे ही सामान्य अर्घ्य दे ॥ १४ ॥ फिर विनायक देवको क्रमसे भक्ष्य भोज्यादि द्वारा पूजाके विधानसे दक्षिणमें द्वारकी ओर पूजे ॥ १५ ॥ फिर अन्तःपुरके स्वामी साक्षात् नंदिकी पूजा करै; जो सुवर्ण पर्वतके समान सब गहनोंसे विभूषित हैं ॥ ॥ १६ ॥ बाल चन्द्रमाका मुकुट धारे मनोहर मूर्ति तीन नेत्र चार भुजा दीप्तिमान् शूल लिये मृगीटंक और तीक्ष्ण नेत्र धारण किये सब कुछ जाननेवाले

पूजाद्रव्याणि सर्वाणि प्रोक्षणीपात्रवारिणा ॥ सम्प्रोक्ष्य मूलमंत्रेण शोधयेद्विधिवत्ततः ॥ १३ ॥ पात्राणां प्रोक्षणीमेकामलाभे सर्वक
र्मसु ॥ साधयेदर्घ्यमद्भिस्तत्सामान्यं साधकोत्तमः॥१४॥ ततो विनायकं देवं भक्ष्यभोज्यादिभिः क्रमात् ॥ पूजयित्वा विधानेन द्वारपा
र्श्वेऽथ दक्षिणे ॥ १५ ॥ अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ॥ चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १६ ॥ बालेन्दुमुकुटं
सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ दीप्तशूलमृगीटंकतिग्मवेत्रधरं प्रभुम् ॥ १७ ॥ चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्रमथापि वा ॥ उत्तरे द्वारपा
र्श्वस्य भार्य्यां च मरुतां सुताम् ॥ १८ ॥ सुयशां सुव्रतामम्बां पादमण्डनतत्पराम् ॥ पूजयित्वा प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः ॥१९॥
संपूज्य लिङ्गं तैर्द्रव्यैर्निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ प्रक्षाल्य पुष्पं शिरसि न्यसेत्तस्य विशुद्धये ॥ २० ॥ पुष्पहस्तो जपेच्छक्त्या मंत्रं मंत्र
विशुद्धये ॥ ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यं तस्य दापयेत् ॥ २१ ॥ कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम् ॥ आधारशक्तिं
कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् शरीर हरि (मर्कट) वदन उत्तर द्वारके निकट मरुतकी कन्या ॥ १८ ॥ सुयशा नाम भार्य्याको जो सुंदर व्रत धारे पार्वतीके चरण दाबनेमें तत्पर है पूजन करके परमेष्ठीके अन्तरमें प्रवेश कर ॥ १९ ॥ उन द्रव्योंसे लिंगको पूजन कर निर्माल्यको ऊपरसे अलग कर और फूलको धोकर शिरपर शुद्धिकर रक्खे ॥ २० ॥ फूल हाथमें लेकर शक्तिसे विशुद्धिके निमित्त मंत्र जपै; ईशान दिशामें चण्डदेवको आराधन कर निर्माल्य उनपरसे उतार ले ॥ २१ ॥ पीछे आधारादि यथाक्रमसे आसन कल्पित करै; कल्याण और आधारशक्तिको पृथ्वीमें ध्यान करै ॥ २२ ॥

उसके आगे उत्कंठ और अनन्तको कुंडलाकार श्वेतरंग पाँच कणसे युक्त आकाशको चाटते हुए ॥ २३ ॥ उसके ऊपर भद्रासन लिंगाकार चार पादोंसे संयुक्त धर्म ज्ञान वैराग्य यह ऐश्वर्यके पद हैं ॥ २४ ॥ आग्नेयादि श्वेत रक्त पीत श्याम इन वर्णोंसे और अधर्मादि पूर्वसे लेकर उत्तरतक अनुक्रमसे ॥ २५ ॥ राजावर्त श्रेष्ठ जाति विशेषकी मणिके समान इनके शरीरमें भावना करै; इसके ऊर्ध्वभागमें कमलसे आच्छादित सुन्दर श्वेत पद्मासनको विचारै ॥ २६ ॥ कि, उसके आठ पत्र अणिमादि आठ गुण युक्त हैं और वामादि शक्तिके शर हैं तथा रुद्र वामादि शक्तियों करके ॥ २७ ॥ वेही बीज कहे गये हैं,

तस्याः पुरस्तादुत्कण्ठमनंतं कुण्डलाकृतिम् ॥ धवलं पंचफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम् ॥ २३ ॥ तस्योपर्यासनं भद्रं कण्ठीरवचतुष्पदम् ॥ धर्म्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यश्च पदानि वै ॥ २४ ॥ आग्नेयादिश्वेतरक्तपीतश्यामानि वर्णतः ॥ अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात् ॥ २५ ॥ राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत् ॥ अस्योर्द्ध्वच्छादनं पद्ममासनं विमलं सितम् ॥ २६ ॥ अष्टपत्राणि तस्याहुरणिमादिगुणाष्टकम् ॥ केसराणि च वामाद्या रुद्रा वामादिशक्तिभिः ॥ २७ ॥ बीजान्यपि च ता एव शक्तयोंतर्मनोन्मनीः ॥ कर्णिकापरवैराग्यं नालं ज्ञानं शिवात्मकम् ॥ २८ ॥ कन्दश्च शिवधर्मात्मा कर्णिकान्ते त्रिमण्डले ॥ त्रिमण्डलोपर्यात्मादितत्त्वत्रितयमासनम् ॥ २९ ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रास्तरणास्तृतम् ॥ आसनं कल्पयेद्दिव्यं शुद्धविद्यासमुज्ज्वलम् ॥ ३० ॥ आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम् ॥ नमस्कारं च कुर्वीत बद्ध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ॥ ३१ ॥ पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पं ततः परम् ॥ धूपं दीपं च तांबूलं दत्त्वाथ स्नापयेच्छिवौ ॥ ३२ ॥

अपर कर्णिका वैराग्य है शिवात्मकज्ञान उनका नाल है ॥ २८ ॥ शिव धर्मात्मारूपी उसका कंद है, कर्णिकाके अन्तमें तीन मण्डल और उनके ऊपर तीन तत्त्वादिका आसन है ॥ २९ ॥ सब आसनके ऊपर सुखपूर्वक विचित्र आसन बिछाहुआ है, शुद्ध विद्याका उज्ज्वल दिव्य आसन कल्पित करै ॥ ॥ ३० ॥ आवाहन स्थापन चित्तवृत्तिका निरोध निरीक्षण देखना और पृथक् पृथक् मुद्रा बाँधकर नमस्कार करना चाहिये ॥ ३१ ॥ पाद्य आचमन अर्घ्य और इसके उपरान्त गंध पुष्पका अर्चन धूप, दीप, ताम्बूल देकर शिवको अर्चन करै ॥ ३२ ॥

अथवा आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमंत्रसे और ब्रह्ममंत्र वेदसे संकलित करके ॥ ३३ ॥ परम कारण शिवको देवीके सहित आवाहन करै; जो कि देव शुद्ध स्फटिकमणिके समान निश्चल अक्षरस्वरूप ॥ ३४ ॥ सब लोकके कारण हैं; सर्व लोकमय और सबसे परे हैं; जो अन्तर बाहर सबमें व्याप्त सबसे अणु और महत् हैं ॥ ३५ ॥ वह अविनाशी भक्तोंको विना प्रयत्नके ही दीखे जाते हैं; ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि देवताओंके भी अगोचर हैं ॥ ३६ ॥ वेदके सार हैं और विद्वानोंको अगोचर हैं ऐसा हमने सुना है; आदि अन्त मध्यसे रहित संसार रोगियोंको औषधी स्वरूप ॥ ३७ ॥ यही

अथ वा परिकल्प्यैवमासनं मूर्तिमेव च ॥ सकलीकृत्य मूलेन ब्रह्मभिश्चापरैस्तथा ॥ ३३ ॥ आवाहयेत्ततो देव्या शिवं परमकारणम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निश्चलमक्षरम् ॥ ३४ ॥ कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ॥ अंतर्बहिःस्थितं व्याप्य ह्यणोरणु महत्तरम् ॥ ३५ ॥ भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ॥ ब्रह्मेंद्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ ३६ ॥ वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम् ॥ आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ३७ ॥ शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवार्थं जगति स्थिरम् ॥ पंचोपचारवद्भक्त्या पूजयेल्लिंगमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ लिंगमूर्तिर्महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमंगलम् ॥ ३९ ॥ पञ्चगव्यघृतक्षीरदधिमध्वादिपूर्वकैः ॥ मूलैः फलानां सारैश्च तिलसर्षपसक्तुभिः ॥ ४० ॥ बीजैर्यवादिभिश्शस्तैश्चूर्णैर्माषादिसंभवैः ॥ संस्नाप्यालिप्य पिष्टाद्यैः स्नापयेदुष्णवारिभिः ॥ ४१ ॥ घर्षयेद्बिल्वपत्राद्यैर्लेपगंधापनुत्तये ॥ पुनः संस्नाप्य सलिलैश्चक्रवर्त्त्युपचारतः ॥ ४२ ॥ सुगंधामलकं दद्याद्धारिद्रां च यथाक्रमम् ॥ ततः संशोध्य सलिलैर्लिंगं बेरमथापि वा ॥ ४३ ॥

शिवतत्त्व है; मंगलके निमित्त जगत्में स्थित है; पंचोपचारसे भक्तिपूर्वक लिंगके मस्तकमें पूजा करै ॥ ३८ ॥ परमात्मा शिवकी लिंगमूर्तिके स्नानकालमें मंगलके जय आदि शब्द करै ॥ ३९ ॥ पंचगव्य घी दही दूध मधु आदि पूर्वक फल और फलोंके सार तिल सरसोंके सत्तुओंकरके ॥ ४० ॥ यवादिके बीजोंकरके तथा उरद आदिके चूरणोंकरके प्रथम उबटन कर और पिठी आदिसे उबटन कर गरम जलसे स्नान करावै ॥ ४१ ॥ लेपगंधकी अनुपम पंक्तिके निमित्त बेलपत्रादिसे घर्षण करै, फिर चक्रवर्तीके उपचारसे जलोंसे स्नान कराय ॥ ४२ ॥ सुगंधियुक्त आँमले और हरिद्राको यथाक्रमसे दे तब

जलसे बेर लिंगकी मूर्तिको शुद्ध करके ॥ ४३ ॥ कुश और फूल जलके सहित हिरण्य आर रत्नोंके जलसे ही मंत्र सिद्धि न्हवावै ॥ ४४ ॥ यदि यह द्रव्य न मिलसकैं तो यथासंभव मंत्र पढ़कर जलोंसे श्रद्धासे शिवको स्नान करावै ॥ ४५ ॥ कलश शंख वा वर्धनी युक्त हाथमें कुश पुष्पके सहित मंत्रपूर्वक स्नान करावै ॥ ४६ ॥ पवमान रुद्र मंत्र नील रुद्राख्य मंत्र और त्वारित मंत्रोंसे लिंगसूक्त आदिसूक्त अथर्वशीर्ष ॥ ४७ ॥ ऋग् सामके मंत्र पंच ब्रह्म मंत्रसे ॐकारसे देवदेव शिवको प्रणाम करै ॥ ४८ ॥ जैसे शिवको इसी प्रकार देवीको प्रणाम करावै, उसमें कुछ विशेष नहीं है; क्योंकि वे दोनों समान हैं ॥

स्नापयेद्गंधतोयेन कुशपुष्पोदकेन च॥ हिरण्यरत्नतोयैश्च मंत्रसिद्धैर्यथाक्रमम् ॥ ४४ ॥ असंभवे तु द्रव्याणां यथासंभवसंभृतैः ॥ केवलै मंत्रतोयैर्वा स्नापयेच्छ्रद्धया शिवम् ॥ ४५ ॥ कलशेनाथ शंखेन वर्द्धन्या पाणिना तथा ॥ सकुशेन सपुष्पेण स्नापयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥ ॥ ४६ ॥ पवमानेन रुद्रेण नीलेन त्वारितेन च ॥ लिंगसूक्तादिसूक्तैश्च शिरसाथर्वणेन च ॥ ४७ ॥ ऋग्भिश्च सामभिः शैवैर्ब्रह्मभिश्चापि पंचभिः ॥ स्नापयेद्देवदेवेशं शिवेन प्रणवेन च ॥ ४८ ॥ यथा देवस्य देव्याश्च कुर्यात्स्नानादिकं तथा ॥ न तु कश्चिद्विशेषोऽस्ति तत्र तौ सदृशौ यतः ॥ ४९ ॥ प्रथमं देवमुद्दिश्य कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥ देव्यै पश्चात्प्रकुर्वीत देवदेवस्य शासनात् ॥ ५० ॥ अर्द्धनारीश्वरे पूज्ये पौर्वापर्यं न विद्यते ॥ तत्र तत्रोपचाराणां लिंगे वान्यत्र वा क्वचित् ॥ ५१ ॥ कृत्वाऽभिषेकं लिंगस्य शुचिना च सुगंधिना ॥ संमृज्य वाससा दद्यादंबरं चोपवीतकम् ॥ ५२ ॥ पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गंधं पुष्पं च भूषणम् ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पानीयं मुखशोधनम् ॥ ५३ ॥ पुनश्चाचमनीयं च मुखवासं ततः परम् ॥ मुकुटं च शुभं भद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम् ॥ ५४ ॥

॥ ४९ ॥ प्रथम देवके उद्देशोंसे स्नानादि क्रिया करके देवदेवकी आज्ञासे पीछे देवीकी शुश्रूषा करै ॥ ५० ॥ अर्धनारीश्वरके पूजनमें पूर्वापरका विचार है उन २ पूजनोंका लिंग वा दूसरे स्थानमें प्रयोग है ॥५१॥ सुगंधित पवित्र जलसे लिंगका अभिषेक कर वस्त्रसे पोंछ यज्ञोपवीत और दूसरे वस्त्र दे ॥५२॥ पाद्य आचमन अर्घ्य गंध पुष्प भूषण धूप दीप नैवेद्य जल मुख शोधनके पदार्थ ॥ ५३ ॥ फिर आचमन मुखके सुगन्धित पदार्थ देकर मुकुट शुभ आसन

सब रत्नोंसे अलंकृत कर ॥ ५४ ॥ विचित्र भूषण और अनेक प्रकारके रत्नोंकी माला अंजन चँवर छत्र तालकेपंखे दर्पण ॥ ५५ ॥ देकर नीराजन कर सब मंगलके बाजोंसे मंगलशब्दोंसे जयशब्दोंसे नीराजन कर ॥ ५६ ॥ सोना चाँदी तांबे वा मट्टीके पात्रमें कमलके सुन्दर पुष्प बीज दही अक्षत आदिसे ॥ ५७ ॥ त्रिशूल शंख दोनों कमल नंदि आवर्त और करीष (सूखा गोबर) में उत्पन्नहुए श्रीवत्स स्वस्तिक आदर्श (दर्पण) हीरे अग्नि आदिसे चिह्नित ॥ ५८ ॥ आठ दीपक चारों ओर और एक मध्यमें रखकर उसमें वामादिक नौ शक्तियोंका ध्यान कर पूजन करै ॥ ५९ ॥ कवचसे आच्छादन कर

भूषणानि पवित्राणि माल्यानि विविधानि च ॥ व्यजने चामरे छत्रं तालवृंतं च दर्पणम् ॥ ५५ ॥ दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्सर्वमंगलनिस्वनैः ॥ गीतनृत्यादिभिश्चैव जयशब्दसमन्वितैः ॥ ५६ ॥ हैमे च राजते ताम्रे पात्रे वा मृन्मये शुभे ॥ पद्मकैश्शोभितैः पुष्पैर्बीजैर्दध्यक्षतादिभिः ॥ ५७ ॥ त्रिशूलशंखयुग्माब्जनन्द्यावर्तैः करीषजैः ॥ श्रीवत्सस्वस्तिकादर्शवज्रैर्वह्न्यादिचिह्नितैः ॥ ५८ ॥ अष्टौ प्रदीपान्परितो विधायैकं तु मध्यमे ॥ तेषु वामादिकाश्चिन्त्याः पूज्याश्च नव शक्तयः ॥ ५९ ॥ कवचेन समाच्छाद्य संरक्ष्यास्त्रेण सर्वतः ॥ धेनुमुद्रां च संदर्श्य पाणिभ्यां पात्रमुद्धरेत् ॥ ६० ॥ अथ वारोपयेत्पात्रे पंचदीपान्यथाक्रमम् ॥ विदिक्ष्वपि च मध्ये च दीपमेकमथापि वा ॥ ६१ ॥ ततस्तत्पात्रमुद्धृत्य लिंगादेरुपरि क्रमात् ॥ त्रिः प्रदक्षिणयोगेन भ्रामयेन्मूलविद्यया ॥ ६२ ॥ दद्यादर्घ्यं ततो मूर्ध्नि भसितं च सुगंधितम् ॥ कृत्वा पुष्पांजलिं पश्चादुपहारान्निवेदयेत् ॥ ६३ ॥ पानीयं च ततो दद्याद्दत्त्वा वाचमनं पुनः ॥ पंचसौगंधिकोपेतं ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ६४ ॥

अस्त्रसे सब ओर रक्षा कर धेनुमुद्राको दिखाकर हाथसे उस पात्रको उठावै ॥ ६० ॥ अथवा पात्रके ऊपर दीपकोंको यथाक्रमसे रखकर विदिशाओंमें और मध्यमें एक दीपक क्रमसे रक्खै ॥ ६१ ॥ फिर उस पात्रको उठाकर लिंगादिके ऊपर क्रमसे तीन प्रदक्षिणाके योगसे मूलविद्यासे घुमावे ॥ ६२ ॥ फिर शिरके ऊपर अर्घ्य दे भस्म और सुगंध लगावै; फिर पुष्पांजलि करके उपहार निवेदन करै ॥ ६३ ॥ फिर आचमन और पानी ले और पाँच

सुगंधियुक्त ताम्बूल निवेदन करै ॥ ६४ ॥ प्रोक्षणीय पदार्थोंको प्रोक्षण करके गाना और नाट्य आदि करै लिंगादिमें शिवका ध्यान कर शक्तिके अनुसार
जप कर ॥ ६५ ॥ प्रदक्षिणा प्रणाम स्तुति आत्मसमर्पण कार्यकी विज्ञप्ति विनयपूर्वक करे ॥ ६६ ॥ अर्घ्य पुष्पांजलि देकर यथाविधि मुद्राको बाँध कर
फिर क्षमा कराय देवको विदा दे आत्मामें चिंतन करै ॥ ६७ ॥ पाद्य आदि मुखसुगंधिके सब कृत्य करै, अर्घ्यादि सब करै, अथवा संकट हो तो प्रीतिसे
पुष्पमात्र ही चढावै ॥ ६८ ॥ इतना ही परम धर्म है भावसे ही पुण्य होजाता है जबतक प्राण रहैं शिवके पूजन किये विना भोजन न करै ॥ ६९ ॥

प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीयानि गाननाट्यानि कारयेत् ॥ लिंगादौ शिवयोश्चिन्तां कृत्वा शक्त्या जपेच्छिवम्॥ ६५ ॥ प्रदक्षिणं प्रणामं च स्तवं
चात्मसमर्पणम् ॥ विज्ञापनं च कार्याणां कुर्याद्विनयपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ अर्घ्यं पुष्पांजलिं दत्त्वा बद्ध्वा मुद्रां यथाविधि ॥ पश्चात्क्ष
मापयेद्देवमुद्वास्यात्मनि चिंतयेत् ॥ ६७ ॥ पाद्यादिमुखवासांतमर्घ्याद्यं चातिसंकटे ॥ पुष्पविक्षेपमात्रं वा कुर्याद्भावपुरस्सरम् ॥ ६८ ॥
तावतैव परो धर्मो भावेन सुकृतो भवेत् ॥ असंपूज्य न भुञ्जीत शिवमाप्राणसंचरात् ॥६९॥ यदि पापस्तु भुंजीत स्वैरं तस्य न निष्कृ
तिः ॥ प्रमादेन तु भुंक्ते चेत्तदुद्गीर्य प्रयत्नतः ॥ ७० ॥ स्नात्वा द्विगुणमभ्यर्च्य देवं देवीमुपोष्य च ॥ शिवस्यायुतमभ्यस्येद्ब्रह्मचर्यपुरस्स
रम् ॥ ७१ ॥ परेद्युश्शक्तितो दत्त्वा सुवर्णाद्यं शिवाय च ॥ शिवभक्ताय वा कृत्वा महापूजां शुचिर्भवेत् ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापु
राणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शास्त्रोक्तशिवपूजनवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

यदि स्वच्छन्द हो विना पूजन किये भोजन करले तो फिर उसका विस्तार नहीं होता और जो प्रमादसे खाले तो उसको वमन करदे ॥ ७० ॥ स्नानादिसे
दूनी पूजा देव देवीकी करके और स्वयं व्रती होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक शिवके दश सहस्र मंत्र जपै ॥ ७१ ॥ दूसरे दिन शक्तिके अनुसार शिवको सुवर्णादि
चढ़ावै, व शिवभक्तकी महापूजा करनेसे पवित्र होताहै ॥ ७२ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

उपमन्यु बोले, और पूजाके क्रमलोपके भयसे जो पूर्वमें नहीं कहा है वह भी मैं विस्तारसे तो नहीं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ हविके निवेदनसे
पहले दीपदानके अनन्तर आवरण पूजा करै अथवा नीराजनके प्राप्त होनेपर करै ॥ २ ॥ फिर ईशानदेवसे सद्योजात तक हृदय आदि अस्त्रन्यासतक करके
शिवा और शिवकी प्रथम आवरणमें पूजा करै ॥ ३ ॥ ईशानमें पूर्वभाग दक्षिण और उत्तरमें पश्चिम आग्नेयी ईशान और नैर्ऋत्यमें ॥ ४ ॥ वायव्यमें
ईशानमें फिर चारों दिशाओंमें मन्त्रोंका संघात गर्भ आवरणके नामसे विख्यात है ॥ ५ ॥ हृदयादि अस्त्र पर्यन्त पूजन करै, उसके बाहर पूर्वमें इंद्र और

उपमन्युरुवाच ॥ अनुक्तं चात्र पूजायाः क्रमलोपभयादिव ॥ यत्तदन्यत्प्रवक्ष्यामि समासान्न तु विस्तरात् ॥ १ ॥ हविर्निवेदनात्पूर्वं
दीपदानादनन्तरम् ॥ कुर्यादावरणाभ्यर्चां प्राप्ते नीराजनेऽथ वा ॥ २ ॥ तत्रेशानादिसद्यांतं रुद्राद्यस्त्रांतमेव च ॥ शिवस्य वा शिवा
याश्च प्रथमावरणे जपेत् ॥ ३ ॥ ऐशान्यां पूर्वभागे च दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ पश्चिमे च तथाग्नेय्यामैशान्यां नैर्ऋते तथा ॥ ४ ॥
वायव्यां पुनरैशान्यां चतुर्दिक्षु ततः परम् ॥ गर्भावरणमाख्यातं मन्त्रसंघातमेव वा ॥ ५ ॥ हृदयाद्यस्त्रपर्यंतमथवापि समर्चयेत् ॥
तद्बहिः पूर्वतः शक्रं यमं दक्षिणतो यजेत् ॥ ६ ॥ वरुणं वारुणे भागे धनदं चोत्तरे बुधः ॥ ईशमैशेऽनलं स्वीये नैर्ऋते निर्ऋतिं यजेत्
॥ ७ ॥ मारुते मारुतं विष्णुं नैर्ऋते विधिमैश्वरे ॥ बहिःपद्मस्य वज्राद्यान्यब्जांतान्यायुधान्यपि ॥ ८ ॥ प्रसिद्धरूपाण्याशासु लोके
शानां क्रमाद्यजेत् ॥ देवं देवीं च संप्रेक्ष्य सर्वावरणदेवताः ॥ ॥ ९ ॥ बद्धांजलिपुटा ध्येयाः समासीना यथासुखम् ॥ सर्वावरणदेवानां
स्वाभिधानैर्नमोयुतैः ॥ १० ॥ पुष्पैः संपूजनं कुर्यान्नत्वा सर्वान्यथाक्रमम् ॥ गर्भावरणमेवापि यजेत्स्वावरणेन वा ॥ ११ ॥

यमको दक्षिणमें पूजै ॥ ६ ॥ वरुणको पश्चिम दिशामें, कुबेरको उत्तरमें, ईशको ईशान दिशामें, अग्निको आग्नेय दिशामें, नैर्ऋत्यको नैर्ऋत्य दिशामें पूजन
करै ॥ ७ ॥ मारुत दिशा वायव्यमें पवनको, विष्णुको नैर्ऋत्यमें, ब्रह्माको ईशानमें पूजै, और कमलके बाहर वज्रादिक और कमलादिक पूजै ॥ ८ ॥
प्रसिद्ध रूपवाले देवताओंको क्रमसे सब दिशाओंमें पूजै; देवी और देवको देखकर सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको ॥ ९ ॥ हाथ जोड कर ध्यान करै कि,
सुखपूर्वक बैठेहुए हैं, सम्पूर्ण आवरणके देवताओंको अपने नाम और नमस्कारसे ॥ १० ॥ फूलोंसे पूजन करके नमस्कार कर यथाक्रमसे स्मरण करके

गर्भावरणको भी अपने आवरणक साथ यजन करै ॥ ११ ॥ योग, ध्यान, जप, होम, बाह्य, अभ्यन्तर, भेदसे छः प्रकारकी हवि और शुद्ध अन्न देना चाहिये ॥ १२ ॥ पायस दही मिले हुए गुड और मधुसे युक्त इसमें एक वा अनेक नानाव्यंजनसे संयुक्त ॥ १३ ॥ गुड खांडसे युक्त दही उत्तम देना चाहिये, भक्षण योग्य मुख्य अपूप स्वाद युक्त फल ॥ १४ ॥ लालचंदन फूल शीतल पानी मनोहर तेलमें युक्त खांड पूगीफल ॥ १५ ॥ पानके पत्ते खैर (कत्थेसे) युक्त तथा गौरवर्ण सुवर्णके वर्णवाले पीले मनोहर शैल (शिलाजीत) का श्वेत चूर्ण न रूखा न दूषित ॥ १६ ॥ तथा कर्पूर कंकोल

योगे ध्याने जपे होमे बाह्ये वाभ्यंतरेऽपि वा ॥ हविश्च षड्विधं देयं शुद्धं मुद्गान्नमेव च ॥ १२ ॥ पायसं दधिसंमिश्रं गौडं च मधुनाप्लुतम् ॥ एतेष्वेकमनेकं वा नानाव्यंजनसंयुतम् ॥ १३ ॥ गुडखंडान्वितं दद्यान्मथितं दधि चोत्तमम् ॥ भक्ष्याण्यपूपमुख्यानि स्वादुमंति फलानि च ॥ १४ ॥ रक्तचंदनपुष्पाढ्यं पानीयं चातिशीतलम् ॥ मृदु एलारसाक्तं च खंडं पूगफलस्य च ॥ १५ ॥ दलानि नागवल्ल्याश्च युक्तानि खदिरादिभिः ॥ गौराणि स्वर्णवर्णानि विहितानि शिवानि च ॥ शैलमेव सितं चूर्णं नातिरूक्षं न दूषितम् ॥ ॥ १६ ॥ कर्पूरं चाथ कंकोलं जात्यादि च नवं शुभम् ॥ आलेपनं चन्दनं स्यान्मूलकाष्ठं रजोमयम् ॥ १७ ॥ कस्तूरिका कुंकुमं च रसो मृगमदात्मकः ॥ पुष्पाणि सुरभीण्येव पवित्राणि शुभानि च ॥ १८ ॥ निर्गंधान्युग्रगंधानि दूषितान्युषितानि च ॥ स्वयमेव विशीर्णानि न देयानि शिवार्चने ॥ १९ ॥ वासांसि च मृदून्येव तपनीयमयानि च ॥ विद्युद्वलयकल्पानि भूषजानि विशेषतः ॥ २० ॥ सर्वाण्येतानि कर्पूरनिर्यासागुरुचन्दनैः ॥ आधूपितानि पुष्पौघैर्वासितानि समंततः ॥ २१ ॥

जाति (चमेली) नये चंदनका आलेपन मूलकाष्ठ और रजयुक्त अर्थात् इनका चूर्ण कर मर्दन करै ॥ १७ ॥ कस्तूरी केशरयुक्त मृगमदनामक रस और मनोहर पवित्र पुष्प ॥ १८ ॥ गंध रहित उग्र गन्धवाले दूषित और अदूषित अपने आप गिरे हुए फूलोंसे शिवार्चन न करै ॥ १९ ॥ मृदुल वस्त्र नये और सुंदर सुवर्णके तारसे युक्त तथा बिजलीकी समान चमकीले भूषण विशेष कर दे ॥ २० ॥ यह सब और कपूर गोंद अगर चंदनसे धूप दियेहुए

और पुष्प समूहसे चारों ओर वासना दिये हुए ॥ २१ ॥ चंदन अगर कपूर कूट गूगलका चूर्ण घी और मधुकी बनाईहुई सिद्ध धूप श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ अथवा कपिलागौके सुगंधितयुक्त घृतकरके कपूर युक्त दीपक जलानेसे नित्य शोभा होती है ॥ २३ ॥ पंचगव्य मीठा दूध दही घृत यह कपिलासे उत्पन्न हुई वस्तु शिवके स्नान और पानमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ सुन्दर हाथीदांतके बने आसन सुवर्णके रत्न जड़े विचित्र विछौनोंसे युक्त ॥ २५ ॥ ऊंचे नीचे रमणीय शयनमें सुखके देनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ समुद्रगामिनी नदी वा नदका लायाहुआ जल वस्त्रसे छानाहुआ शीतल स्नान और पानमें श्रेष्ठ है ॥२७॥

चन्दनागुरुकर्पूरकाष्ठगुग्गुलुचूर्णकैः ॥ घृतेन मधुना चैव सिद्धो धूपः प्रशस्यते ॥ २२ ॥ कपिलासम्भवे नैव घृतेनातिसुगन्धिना ॥ नित्यं प्रदीपिता दीपाः शस्ताः कर्पूरसंयुताः ॥ २३ ॥ पञ्चगव्यं च मधुरं पयो दधि घृतं तथा ॥ कपिलासम्भवं शम्भोरिष्टं स्नाने च पानके ॥ २४ ॥ आसनानि च भद्राणि गजदंतमयानि च ॥ सुवर्णरत्नयुक्तानि चित्राण्यास्तरणानि च ॥ २५ ॥ मृदूपधानयुक्तानि सूक्ष्मतूलमयानि च ॥ उच्चावचानि रम्याणि शयनानि सुखानि च ॥ २६ ॥ नद्यस्समुद्रगामिन्या नदाद्वाम्भः समाहृतम् ॥ शीतञ्च वस्त्रपूतं तद्विशिष्टं स्नानपानयोः ॥ २७ ॥ छत्रं शशिनिभं चारु मुक्तादामविराजितम् ॥ नवरत्नचितं दिव्यं हेमदण्डमनोहरम् ॥ ॥ २८ ॥ चामरे च सिते सूक्ष्मे चामीकरपरिष्कृते ॥ राजहंसद्वयाकारे रत्नदंडोपशोभिते ॥ २९ ॥ दर्पणं चापि सुस्निग्धं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ समंताद्रत्नसञ्छन्नं स्रग्वरैश्चापि भूषितम् ॥ ३० ॥ गम्भीरनिनदः शंखो हंसकुंदेन्दुसन्निभः ॥ आस्वपृष्ठादिदेशेषु रत्नचामीकराचितः ॥ ३१ ॥ काहलानि च रम्याणि नानानादकराणि च ॥ सुवर्णनिर्मितान्येव मौक्तिकालंकृतानि च ॥ ३२ ॥

चन्द्रमाके समान छत्र मोतीमालासे विराजमान नवरत्नोंसे जटित सोनेके दंडसे मनोहर ॥२८ ॥ और सोनेकी दंडी लगे दिव्य चमर राजहंसके आकारक समान रत्नदंडोंसे शोभायमान ॥ २९ ॥ सुंदर दर्पण अनुलेपनके द्रव्य चारोंओर रत्न और फूलोंकी मालासे शोभित ॥ ३० ॥ हंस कुंद और चन्द्रमाके समान गंभीर नादवाला शंख मुख और पृष्ठादि स्थानोंमें रत्न और सोनेसे जटित ॥ ३१ ॥ गौके शृंगोंके आकारके समान दिव्य बाजे जिनमें अनेक

प्रकारके शब्द होते हैं, और सोनेसे निर्मित अनेक मोतियोंसे अलंकृत ॥ ३२ ॥ भेरी, मृदंग, मुरज, तिमिच्छ, पटह समुद्रके समान शब्दवाले रखने चाहिये ॥ ३३ ॥ मनोहर भांड और सब पात्र और उनके आधार सोनेके बनावै ॥ ३४ ॥ महेश परमात्मा शिवका स्थान शिल्पशास्त्रसे बनाहुआ राजोंकी सामग्रीसे युक्त होना चाहिये ॥३५॥ ऊंचे प्रकारसे भिन्न पर्वतके समान ऊंचा गोपुर अनेक रत्नसे युक्त सुवर्णके बने द्वारोंके किवाडोंसे शोभित ॥३६॥ तप्त सुवर्णके बनेहुए रत्न जडे सौ स्तंभोंसे मनोहर मोती माला और वितानसे मनोहर विद्रुम (मूंगे) जडी द्वारकी बंदनवारसे युक्त ॥३७॥ सुवर्णके बने

भेरीमृदंगमुरजतिमिच्छपटहादयः ॥ समुद्रकल्पसन्नादाः कल्पनीयाः प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ भांडान्यपि च रम्याणि पत्राण्यपि च कृत्स्नशः ॥ तदाधाराणि सर्वाणि सौवर्णान्येव साधयेत् ॥ ३४ ॥ आलयं च महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ राजावसथवत्कल्प्यं शिल्पशास्त्रोक्तलक्षणम् ॥ ३५ ॥ उच्चप्राकारसंभिन्नं भूधराकारगोपुरम् ॥ अनेकरत्नसंछन्नं हेमद्वारकपाटकम् ॥ ३६ ॥ तप्तजांबूनदमयं रत्नस्तम्भशतावृतम् ॥ मुक्तादामवितानाढ्यं विद्रुमद्वारतोरणम् ॥ ३७ ॥ चामीकरमयैर्दिव्यैर्मुकुटैः कुम्भलक्षणैः ॥ अलंकृतशिरोभागमस्त्रराजेनचिह्नितम् ॥ ३८ ॥ राजन्यार्हनिवासैश्च राजवीथ्यादिशोभितैः ॥ प्रोच्छ्रितप्रांशुशिखरैः प्रासादैश्च समंततः ॥ ३९ ॥ आस्थानस्थानवर्यैश्च स्थितैर्दिक्षु विदिक्षु च ॥ अत्यन्तालंकृतप्रांतमंतरावरणैरिव ॥ ४० ॥ उत्तमस्त्रीसहस्रैश्च नृत्यगेयविशारदैः ॥ वेणुवीणाविदग्धैश्च पुरुषैर्बहुभिर्युतम् ॥ ४१ ॥ रक्षितं रक्षिभिर्वीरैर्गजवाजिरथान्वितैः ॥ अनेकपुष्पवाटीभिरनेकैश्च सरोवरैः ॥ ४२ ॥ दीर्घिकाभिरनेकाभिर्दिग्विदिक्षु विराजितम् ॥ वेदवेदांततत्त्वज्ञैश्शिवशास्त्रपरायणैः ॥ ४३ ॥

दिव्य मुकुट कुंभ लक्षणोंसे युक्त, शिरोभागसे अलंकृत अस्त्रराजसे चिह्नित ॥ ३८ ॥ राजोंके योग्य वस्त्र और राजवीर्य आदिसे शोभित श्रेष्ठ और ऊंचे शिखर प्रासाद महलसे व्याप्त ॥ ३९ ॥ मनोहर स्थानोंसे युक्त जो दिशा विदिशाओंमें व्याप्त हैं और अन्तरके आवरणोंसे और प्रान्तभागोंसे अत्यन्त अलंकृत ॥ ४० ॥ नृत्य गीतके ज्ञाता सहस्रों उत्तम स्त्री और वेणु वीणामें चतुर बहुतसे पुरुषोंसे व्याप्त ॥ ४१ ॥ रक्षा करनेवाले वीर तथा हाथी घोड़ोंसे संयुक्त अनेक फुलवाडी और सरोवरोंसे युक्त॥४२॥अनेक बावडियोंमें सम्पूर्ण दिशाओंमें विराजमान वेदवेदाङ्गके जाननेवाले शिवशास्त्रमें परायण ॥४३॥

शिव आश्रममें प्रीति करनेवाले भक्त जिनमें शिवशास्त्रके लक्षण विद्यमान हैं, शांत हास्यमुख मनोहर सदाचारमें परायण ॥ ४४ ॥ शिवमहेश्वरके भक्त
ब्राह्मणोंसे सेवित इस प्रकार मनमें या बाहर शिवकी यथाशक्ति कल्पना कर ॥ ४५ ॥ शिलामय स्थान काष्ठ गजदन्त वा ईंटोंका वा केवल मृत्तिकाका
पुण्य वनमें वा पर्वतमें ॥ ४६ ॥ नदी देवालय अथवा दूसरे सुन्दर देश वा घरमें धनी वा दरिद्री अपनी शक्तिको वंचना न करता हुआ ॥ ४७ ॥
न्यायसे उत्पन्नहुए द्रव्योंसे भी जो भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करै उसको भी प्रत्ययवाय नहीं लगता है; कारण कि, प्रभु भावके वशमें हैं ॥ ४८ ॥

शिवाश्रमरतैर्भक्तैः शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः ॥ शांतैः स्मितमुखैः स्फीतैः सदाचारपरायणैः ॥ ४४ ॥ शैवैर्माहेश्वरैश्चैव श्रीमद्भिस्सेवित
द्विजैः ॥ एवमंतर्बहिर्वाथयथाशक्तिविनिर्मितैः ॥ ४५ ॥ स्थाने शिलामये दांते दारवे चेष्टकामये ॥ केवलं मृन्मये वापि पुण्यारण्येऽथ
वा गिरौ ॥ ४६ ॥ नद्यां देवालयेऽन्यत्र देशे वाथ गृहे शुभे ॥ आढ्यो वाथ दरिद्रो वा स्वकां शक्तिमवंचयन् ॥ द्रव्यैर्न्यायार्जितैरेव
भक्त्या देवं समर्च्चयेत् ॥ ४७ ॥ अथान्यायार्ज्जितैश्चापि भक्त्या चेच्छिवमर्च्चयेत् ॥ न तस्य प्रत्यवायोऽस्ति भाववश्यो यतः प्रभुः ॥
॥ ४८ ॥ न्यायार्जितैरपि द्रव्यैरभक्त्या पूजयेद्यदि ॥ न तत्फलमवाप्नोति भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ४९ ॥ भक्त्या वित्तानुसारेण शिवमु
द्दिश्य यत्कृतम् ॥ अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥ ५० ॥ भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोपि मानवः ॥ महाविभवसा
रोपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः ॥५१॥ सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः ॥ न तेन फलभाक्स स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ५२ ॥
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः ॥ गच्छेच्छिवपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिं शिवात्मिकाम् ॥ ५३ ॥

जो द्रव्य न्यायसे उत्पन्न किये हौं. परन्तु उसके द्वारा अभक्तिसे पूजन करै तो उसको फल नहीं मिलता, इसमें केवल भक्ति ही कारण है ॥ ४९ ॥
भक्ति और धनके अनुसार शिवके उद्देशसे जो कुछ किया है थोडा या बहुत उसका फल दरिद्री और धनीको बराबर मिलता है ॥ ५० ॥ भक्तिकी
प्रेरणासे थोडे धनवाला मनुष्य भी जो करै वह बहुत है, भक्तिहीनका महा ऐश्वर्यसे किया भी कुछ नहीं होता ॥ ५१ ॥ जो भक्तिहीन होकर सर्वस्व भी
देता है तो उसको फल नहीं मिलता है; इसमें भक्ति ही एक कारण है ॥ ५२ ॥ वेड २ तप और यज्ञों करके भी शिवके पुरको नहीं जा सकता, जो

भक्तिसे हीन हो ॥ ५३ ॥ हे कृष्ण ! यह गुप्तसे भी गुप्त बात है कि, सर्वत्र परमेश्वरमें भक्ति करै भक्तिसे ही युक्त होकर मुक्त होजाताहै ॥ ५४ ॥ शिवमंत्र जप ध्यान होम यज्ञ तप वेदश्रवण दान वेदपाठ यह सब भावके ही निमित्त हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ मनुष्य भावहीन होकर सब कुछ करनेसे भी मुक्त नहीं होता है, और भावयुक्त पुरुष सब न करनेसे भी मुक्त होजाता है ॥ ५६ ॥ सहस्र चांद्रायण सौ प्राजापत्य मासोंके व्रत तथा और दूसरे व्रत शिवभक्तको क्या फल देसकते हैं ॥ ५७ ॥ अभक्त मनुष्य इस लोकमें पर्वतोंके गुहामें थोडेसे भोगके निमित्त तप करते हैं परन्तु भक्त तो

गुह्याद्गुह्यतरं कृष्ण सर्वत्र परमेश्वरे ॥ शिवे भक्तिर्न संदेहस्तया भक्तो विमुच्यते ॥ ५४ ॥ शिव मंत्रजपो ध्यानं होमो यज्ञस्तपः श्रुतम् ॥ दानमध्ययनं सर्वे भावार्थं नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ भावहीनो नरस्सर्वं कृत्वापि न विमुच्यते ॥ भावयुक्तः पुनस्सर्वमकृत्वापि विमुच्यते ॥ ५६ ॥ चांद्रायणसहस्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा ॥ मासोपवासैश्चान्यैश्च शिवभक्तस्य किं पुनः ॥ ५७ ॥ अभक्ता मानवाश्चास्मिंल्लोके गिरिगुहासु च ॥ तपंति चाल्पभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते ॥ ५८ ॥ सात्त्विकं मुक्तिदं कर्म सत्त्वे वै योगिनः स्थिताः ॥ राजसं सिद्धिदं कुर्युः कर्मिणो रजसावृताः ॥ ५९ ॥ असुरा राक्षसाश्चैव तमोगुणसमन्विताः ॥ ऐहिकार्थं यजन्तीशं नराश्चान्येऽपि तादृशाः ॥ ६० ॥ तामसं राजसं वापि सात्त्विकं भावमेव च ॥ आश्रित्य भक्त्या पूजाद्यं कुर्वन्भद्रं समश्नुते ॥ ६१ ॥ यतः पापार्णवात्त्रातुं भक्तिर्नौरिव निर्मिता ॥ तस्माद्भक्त्युपपन्नस्य रजसा तमसा च किम् ॥ ६२ ॥ अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा ॥ शिवं प्रपन्नश्चेत्कृष्ण पूज्यस्सर्वसुरासुरैः ॥ ६३ ॥

भावसे ही मुक्त होजाता है ॥ ५८ ॥ सात्त्विक कर्म मुक्ति देनेवाला है, योगी सत्त्वमें ही स्थित है, रजोगुणसे आवृतलोग राजसी कर्म करते हैं ॥ ५९ ॥ असुर और राक्षस तमोगुणसे आवृत हैं और दूसरे मनुष्य जो यहांके कार्यके निमित्त शिवका भजन करते हैं वे भी वैसे ही हैं ॥ ६० ॥ तामस राजस सात्त्विक कोई हो भावहीके आश्रय हो पूजा करनेसे भक्त मंगलको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ पापरूपी सागरसे पार करनेको भक्ति नौकाके समान है, इस कारण भक्ति होजानेसे फिर सत्त्वगुण तमोगुणके भागसे क्या है ॥ ६२ ॥ अन्त्यज अधम मूर्ख वा पतित कोई हो हे कृष्ण ! शिवकी भक्ति करते ही

वह सुर असुरोंसे पूजित होजाता है ॥ ६३ ॥ इस कारण सब यत्नसे भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करै, कारण कि अभक्तोंको तो कहीं भी फल नहीं है ॥ ६४ ॥ हे कृष्ण ! महारहस्य कहता हूं हमारे वचन सुनो, वेदशास्त्र में वेदवादियोंने विचार कर यह निश्चय किया है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ उपमन्यु बोले, ब्रह्महत्यारा मद्यपीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, माता पिता वीर और गर्भका नष्ट करनेवाला ॥ १ ॥ चौरादिक कोई भी जो मंत्रके विना भक्तिसे परम कारणरूप शिवका भजन करनेवाला

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्यैव शिवमर्चयेत् ॥ अभक्तानां क्वचिदपि फलं नास्ति यतस्ततः ॥ ६४ ॥ वक्ष्याम्यतिरहस्यं ते शृणु कृष्ण वचो मम ॥ वेदैश्शास्त्रैर्वेदविद्भिर्विचार्य सुविनिश्चितम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्तपूजनवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्तेयीवा गुरुतल्पगः ॥ मातृहा पितृहा वापि वीरहा भ्रूणहापि वा ॥ १ ॥ संपूज्यामन्त्रकं भक्त्या शिवं परमकारणम् ॥ तैस्तैः पापैः प्रमुच्येत वर्षैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥ २ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पतितोऽपि यजेच्छिवम् ॥ भक्तश्चेन्नापरः कश्चिद्भिक्षाहारो जितेंद्रियः ॥ ३ ॥ कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या पंचाक्षरेण तु ॥ पूजयेद्यदि देवेशं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ॥ तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः ॥ ५ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत् ॥ सोपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमन्त्रस्य गौरवात् ॥ ६ ॥

है वह क्रमसे बारह वर्षमें उन २ पापोंसे छूट जाता है ॥ २ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे पतित पुरुषकोभी शिवका यजन करना चाहिये जो भक्त होगा वही मुक्त होजायगा दूसरा कोई नहीं भिक्षा भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय ॥ ३ ॥ जो कोई बडा पाप भी करचुका हो; और भक्तिसे पंचाक्षरका जप करै तो और देवेशका पूजन करै तौ सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ जल और वायुके भक्षण करनेवाले तथा दूसरे प्रकार व्रतसे कर्षित हुए इन व्रतोंसे भी उनको शिवलोककी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ५ ॥ भक्तिसे पंचाक्षरयुक्तहो जो एक बार भी शिवका पूजन करता है, शिवमंत्रके गौरवसे वह भी

शिवके स्थानको जाता है ॥६॥ इस कारण तप यज्ञ और सब और सर्वस्व दक्षिण यह शिवमूर्तिके अर्चनके करोड अंशके समान भी नहीं है ॥ ७ ॥ वद्ध वा मुक्त सबको पंचाक्षरका जप करना ही चाहिये बन्धनके पश्चात् भी जपसे पाशसे छूट जाता है,इससे पूजन करना चाहिये कुछ संदेह न करै ॥८॥ अरुद्र वा सरुद्र वा सूक्त वेदमंत्रसे जो शिवका पूजन करै वह मूढ वा पतित कैसाही हो एकबार ही मुक्त होजाता है ॥ ९ ॥ नित्य षडक्षर वा पंचाक्षर करके सद्योजातादि मंत्रोंके सहित भक्तिसे नित्य वेदमंत्र पढकर शिवका पूजन करै, शिवका भक्त क्रोधको जीते गुरुयुक्त वा गुरुहीन हो ॥ १० ॥ इनमें जो

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च सर्वे सर्वस्वदक्षिणाः ॥ शिवमूर्त्यर्चनस्यैते कोटचंशेनापि नो समाः ॥ ७ ॥ बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पश्चात्पञ्चाक्षरेण चेत् ॥ पूजयन्मुच्यते भक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ८ ॥ अरुद्रो वा सरुद्रो वा सूक्तेन शिवमर्चयेत् ॥ यः सकृत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः ॥ ९ ॥ षडक्षरेण वा देवं सूक्तमन्त्रेण पूजयेत् ॥ शिवभक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव च ॥ १० ॥ अलब्धाल्लब्ध एवात्र विशिष्टो नात्र संशयः ॥ स ब्रह्मांगेन वा तेन सहंसेन विमुच्यते ॥ ११ ॥ तस्मान्नित्यं शिवं भक्त्या सूक्तमंत्रेण पूजयेत् ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ॥ १२ ॥ येऽर्चयंति महादेवं विज्ञेयास्ते महेश्वराः ॥ ज्ञानेनात्मसहायेन नार्चितो भगवाञ्छिवः ॥ १३ ॥ स चिरं संसरत्यस्मिन्संसारे दुःखसागरे ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मूढो नार्चयते शिवम् ॥ १४ ॥ निष्फलं तस्य तज्जन्म मोक्षाय न भवेद्यतः ॥ दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम् ॥ १५ ॥

गुरुयुक्त है वही श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं, वह ब्रह्मांग वा हंसके सहित मुक्त होजाता है ॥ ११ ॥ इस कारण गुरुसे प्राप्तहुए मंत्र और सूक्तसे शिवका पूजन करै; एक काल दो काल वा तीन काल ॥ १२ ॥ जो महादेवका पूजन करते हैं उनको महेश्वर जानते हैं, अपने सहायकारी ज्ञानसे जिन्होंने भगवान् शिवका पूजन नहीं किया ॥ १३ ॥ वे बहुत कालतक दुःखके सागर इस संसारमें भ्रमण करेंगे, जो मूर्ख दुर्लभ मनुष्य देह पाकर शिवका पूजन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ उन्हींका जन्म निष्फल है कारण कि वह मुक्तिके निमित्त नहीं है; जो दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर शिवका पूजन करते हैं ॥ १५॥

उन्हींका जन्म सफल और वे मनुष्य कृतार्थ हैं, जो शिवभक्तिपरायण और शिवको प्रणाम करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ शिवका स्मरण करनेवाले हैं, वे दुःखके भागी नहीं होते; उनके मनोहर भवन उत्तम गहने भूषणवाली स्त्रियें ॥ १७ ॥ और तृप्तिपर्यंत धन शिवके पूजन करनेसे प्राप्त होता है, जो महाभाग्ययुक्त स्वर्गमें राज्यकी इच्छा करते हैं ॥१८॥ वे सम्पूर्ण समय शिवके चरणारविंदके भजनकी इच्छा करते हैं सौभाग्य मनोहररूप सत्त्व त्याग आर्द्रभाव॥ १९॥ शूरता जगतमें विख्याति शिवके पूजन करनेसे होती है; इस कारण सब छोडकर एक शिवमें ही मन लगावै ॥ २० ॥ जो अपना कल्याण चाहै तो

तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः ॥ भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥ १६ ॥ भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः ॥ भवनानि मनोज्ञानि विभ्रमाभरणाः स्त्रियः ॥ १७ ॥ धनं चातृप्तिपर्य्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम् ॥ ये वाञ्छन्ति महाभोगान्राज्यं च त्रिदशालये ॥ १८ ॥ ते वाञ्छन्ति सदाकालं हरस्य चरणाम्बुजम् ॥ सौभाग्यं कान्तिमद्रूपं सत्त्वं त्यागार्द्रभावता ॥ १९ ॥ शौर्यं च जगति ख्यातिश्शिवमर्च्चयतो भवेत् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य शिवैकाहितमानसः ॥ २० ॥ शिवपूजाविधिं कुर्याद्यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥ त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम् ॥ २१ ॥ त्वरितं व्याधिरभ्येति तस्मात्पूज्यः पिनाकधृक् ॥ यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा ॥ २२ ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शंकरम् ॥ न शिवार्च्चनतुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये ॥ २३ ॥ इति विज्ञाय यत्नेन पजनीयस्सदाशिवः ॥ द्वारयागं जवनिकां परिवारबलिक्रियाम् ॥ २४ ॥ नित्योत्सवं च कुर्वीत प्रासादे यदि पूजयेत् ॥ हविर्निवेदनादूर्द्ध्वं स्वयं चानुचरोऽपि वा ॥ २५ ॥

शिवपूजाविधिको करै, जीवन और यौवन शीघ्रतासे जाता है ॥ २१ ॥ और व्याधि शीघ्रतासे आती है इस कारण शिवका पूजन करना चाहिये; जबतक मरण और बुढापा नहीं आता ॥ २२ ॥ जबतक इन्द्रियोंमें विकलता न हो तबतक शंकरका पूजन करो, तीन लोकमें शिवके पूजनके समान दूसरा धर्म नहीं है ॥ २३ ॥ ऐसा जानकर यत्नसे सदाशिवकी पूजा करै, द्वारयाग कोमल वृक्षसमूह लगाना परिवार बलिक्रिया ॥ २४ ॥ और नित्य उत्सव करने

चाहिये; यदि मंदिरमें पूजा करै तो हवि निवेदनके अनन्तर स्वयं वा सेवक करके ॥ २५ ॥ प्रसादसे परिवारके निमित्त यथाक्रमसे प्रसाद दे, बाजोंके सहित निकल कर उनके सामने स्थित हुआ ॥ २६ ॥ पुष्प धूप दीप अन्न जलके सहित देना चाहिये, फिर उत्तरको मुख कर महापीठ आसनपर स्थित हो बलिपूजा दे ॥ २७ ॥ फिर वह जो अन्नादिक पहले देवके निमित्त प्रदान किया है, वह शेष रहाहुआ सब चंडके निमित्त देदे ॥ २८ ॥ फिर विधिपूर्वक हवन कर शेषपूजा समाप्त करै, विधिपूर्वक प्रयोग करके जहाँतक मंत्रका जप होसके तहाँतक करै ॥ २९ ॥ शिवशास्त्रमें कहेहुए नित्य उत्सवको

प्रासादपरिवारेभ्यो बलिं दद्याद्यथाक्रमम् ॥ निर्गम्य सह वादित्रैस्तदाशाभिमुखः स्थितः ॥ २६ ॥ पुष्पं धूपं च दीपञ्च दद्यादन्नं जलैः सह ॥ ततो दद्यान्महापीठे तिष्ठन्बलिमुदङ्मुखः ॥ २७ ॥ ततो निवेदितं देवे यत्तदन्नादिकं पुरा ॥ तत्सर्वं सावशेषं वा चण्डाय विनिवेदयेत् ॥ २८ ॥ हुत्वा च विधिवत्पश्चात्पूजाशेषं समापयेत् ॥ कृत्वा प्रयोगं विधिवद्यावन्मंत्रं जपं ततः ॥ २९ ॥ नित्योत्सवं प्रकुर्वीत यथोक्तं शिवशासने ॥ विपुले तैजसे पात्रे रक्तपद्मोपशोभिते ॥ ३० ॥ अस्त्रं पाशुपतं दिव्यं तत्रावाह्य समर्चयेत् ॥ शिवस्यारोप्य तत्पात्रं द्विजस्यालंकृतस्य च ॥ ३१ ॥ न्यस्तास्त्रवपुषा तेन दीप्तयष्टिधरस्य च ॥ प्रासादपरिवारेभ्यो बहिर्मंगलनिस्वनैः ॥ ३२ ॥ नृत्यगेयादिभिश्चैव सह दीपध्वजादिभिः ॥ प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा न द्रुतं चाविलम्बितम् ॥ ३३ ॥ महापीठं समावृत्य त्रिःप्रदक्षिणयोगतः ॥ पुनः प्रविष्टो द्वारस्थो यजमानः कृतांञ्जलिः ॥ आदायाभ्यंतरं नीत्वा ह्यस्त्रमुद्वासयेत्ततः ॥ ३४ ॥

करै, बडे चाँदी वा सोनेके पात्रमें जो रत्न और पद्मसे शोभित है ॥ ३० ॥ फिर दिव्य पाशुपत अस्त्रको आवाहनकर पूजै, फिर उस पात्रको अलंकृत ब्राह्मणके शिरपर धारण कर ॥ ३१ ॥ दीप्तिमान् यष्ठि धारण करनेवाले, अस्त्रसे न्यासयुक्त शरीर करके प्रसाद परिवारके निमित्त बाह्य मंगलके शब्दों करके ॥ ३२ ॥ तथा नृत्यगान कर दीप ध्वजादिके सहित न बहुत शीघ्रता न बहुत देरसे तीन प्रदक्षिणा करै ॥ ३३ ॥ महासिंहासनके चारोंओर तीन प्रदक्षिणा करै; फिर यजमान हाथ जोडकर द्वारपर स्थित होवे पूर्वोक्त आठ फूल लेकर भीतर लेजाकर फिर अस्त्रको उद्वासित (विसर्जन) करै ॥ ३४ ॥

और पूर्व कहीहुई क्रमसे प्रदक्षिणा आदि करके उन आठ फूलोंको लेकर पूजा समाप्त करै ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ उपमन्यु बोले, कुंड वा स्थंडिलमें जो किया जाता है उस अग्निकार्यको कहता हूँ, वेदीसे बाहर लोहपात्र अथवा मट्टीके नये पात्रमें ॥ १ ॥ विधिपूर्वक अग्निको धारण कर और संस्कारपूर्वक महादेवको आराधन करके होमकर्म प्रारम्भ करै ॥ २ ॥ दो हाथका अथवा एक हाथका कुंड करके गोल वा चौकोन वेदीका मंडल करै ॥ ३ ॥ कुंडके विस्तारके समान निम्न स्थानमें आठ दलका कमल उसमें लिखै; चार अंगुल

प्रदक्षिणादिकं कृत्वा यथापूर्वोदितं क्रमात् ॥ प्रादाय चाष्टपुष्पाणि पूजामथ समापयेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे सांगोपांगपूजाविधानवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥ वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे ॥ १ ॥ आधायाग्निं विधानेन संस्कृत्य च ततः परम् ॥ तत्राराध्य महादेवं होमकर्म समाचरेत् ॥ २ ॥ कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रमथापि वा ॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम् ॥ ३ ॥ कुण्डं विस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ॥ चतुरंगुलमुत्सेधं तस्य द्व्यंगुलमेव वा ॥ ४ ॥ वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभिमन्तः प्रचक्षते ॥ मध्यं च मध्यमांगुल्या मध्यमोत्तमपर्वणोः ॥ ५ ॥ अंगुलैः कथ्यते सद्भिश्चतुर्विंशतिभिः करः ॥ मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथापि वा ॥ ६ ॥ यथाशोभं प्रकुर्वीत श्लक्ष्णमिष्टं मृदा स्थिरम् ॥ अश्वत्थपत्रवद्योनिं गजाधारवदेव वा ॥ ७ ॥ मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा ॥ शोभनामग्नितः किंचिन्निम्नामुन्मीलिकां शनैः ॥ ८ ॥

अथवा दो अंगुल वेदीसे ऊंचा रहै ॥ ४ ॥ दो विलस्तकी उसकी ऊंची नाभि करै, मध्यमा अंगुलीके मध्य और प्रथम पोरुएकी बराबर मध्य कहाता है ॥ ५ ॥ इतनें प्रमाणको चतुर पुरुषोंने अंगुल कहा है; चौबीस अंगुलका एक हाथ उसमें तीन मेखला दो अथवा एक करै ॥ ६ ॥ जैसी शोभा अधिक हो उसी प्रकार मनोहर इष्ट सुन्दर मृत्तिकाकी बनावै; अश्वत्थपत्र (पीपलके पत्ते) वा हाथीके ओष्ठके समान उसकी योनि कल्पना करै कूर्मपृष्ठके समान दोनों पार्श्वोंमें अंगुलमात्र ऊंची व हाथीके ओष्ठवत् छिद्रयुक्त योनि सब कुंडोंमें बनावै, यह शान्तिसारमें लिखा है ॥ ७ ॥ मेखलाके मध्यभागसे

पश्चिम और दक्षिणकी ओरको शोभायमान अग्रभागसे कुछेक नीची दो प्रांतोंसे संयुक्त करै ॥८॥ अग्रभागसे कुंडकी ओरको कुछ मेखला छोडकर वेदीके नियमको उल्लंघन न करके उसे मृत्तिका वा रेतेकी करे ॥ ९ ॥ उसका मंडल गोबरसे करै, इसमें पात्रका मान नहीं कहा है, कुंड और मृत्तिकाकी वेदीको गोबरसे लीपै ॥ १० ॥ फिर धोकर पात्रको तपावै अथवा जलसे धो डालै, अपने सूत्रके कहे प्रकारसे कुंडादिको लिखै ॥ ११ ॥ उसे प्रोक्षण कर दर्भ (कुश) और पुष्पोंसे अग्निका आसन कल्पित करै, अर्चन और होमके वास्ते सब द्रव्योंकी कल्पना करै ॥ १२ ॥ धोनेकी वस्तुओंको धोकर प्रोक्षण

अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किंचिदुत्सृज्य मेखलाम् ॥ नोत्सेधनियमो वेद्याः सा मार्द्री वाथ सैकती ॥ ९ ॥ मंडलं गोशकृत्तोयैर्मानं पात्रस्य
नोदितम् ॥ कुंडं च मृन्मयं वेदिमालिंपेद्गोमयांबुना ॥ १० ॥ प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदंभसा ॥ स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुंडादौ
विलिखेत्ततः ॥ ११ ॥ संप्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरम् ॥ अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेत् ॥ १२ ॥ प्रक्षाल्य
क्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत् ॥ मणिजं काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागारसम्भवम् ॥ १३ ॥ अन्यं वाभ्यर्हितं वह्निं ततः साधार
मानयेत् ॥ त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य कुण्डादेरुपरि क्रमात् ॥ १४ ॥ वह्निबीजं समुच्चार्य त्वादधीताग्निमासने ॥ योनिमार्गेण वा तद्वदा
त्मनः संमुखेन वा ॥ १५ ॥ योनिप्रदेशगः सर्वं कुंडं कुर्याद्विचक्षणः ॥ स्वनाभ्यंतःस्थितं वह्निं तद्रंध्राद्विस्फुलिंगवत् ॥ १६ ॥ निर्गम्य
पावके बाह्ये लीनं बिंबाकृतिं स्मरेत् ॥ आज्यसंस्कारपर्यंतमन्वाधानपुरस्सरम् ॥ १७ ॥ स्वसूत्रोक्तक्रमात्कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥
शिवमूर्तिं समभ्यर्च्य ततो दक्षिणपार्श्वतः ॥ १८ ॥

करनेकी वस्तुओंको प्रोक्षण कर मणिसे उत्पन्न वा काष्ठसे उत्पन्न अथवा ऋत्विक्के अग्न्यागारसे आईहुई ॥ १३ ॥ अथवा दूसरे निंदारहित अग्निको आधारपात्रमें लावै, क्रमसे कुंडादिके ऊपर तीन प्रदक्षिणा कराकर ॥ १४ ॥ अग्निबीज (रम्) उच्चारण करके अग्निको आसनपर स्थापित करे; योनिमार्गसे अथवा अपने सन्मुखसे स्थापन करै ॥ १५ ॥ योनिके समीपमें स्थित हुआ चतुर पुरुष सबको कुंडमें स्थित करै अपनी नाभिमें स्थित अग्निको नाभिरन्ध्रसे विस्फुलिंगके समान ॥ १६ ॥ अग्निके बाह्य निकलने पर बिंबाकार चिन्तन करै; संस्कारयुक्त घृत आगे धारण कर ॥ १७ ॥ मंत्रके जानने

वाले अपने सूक्त और मूलमंत्रसे सब कृत्य करैं, शिवमूर्तिका पूजन कर फिर दक्षिण पार्श्वसे ॥ १८ ॥ मंत्रसे न्यास करके घृतमें धेनुमुद्राको दिखावै, स्रक् और स्रुवा यह धातुके भी बनाले, परन्तु काँसा लोहा और शीशेके ग्रहण न करै ॥ १९ ॥ देवदारुके अथवा स्मृति वा शिवशास्त्रमें जो विधान हो, ढाक आदिके पत्रमें अर्थात् दो पत्रोंके बीचमें जो तीसरा निकला हो और छिद्र रहित हो ॥ २० ॥ उनको कुशोंसे मार्जन कर वह्निमें तपाकर फिर प्रोक्षणसे और शिवमंत्रसे अपने सूत्रसे कहेहुए मंत्रोंसे प्रोक्षण कर ॥ २१ ॥ अग्नि संस्कारकी सिद्धिके निमित्त आठ बीजाक्षर मंत्रोंसे हवन करै, वह बीज यह हैं (भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं ड्रुं द्रुं) ॥ २२ ॥ यह सात बीज अग्निकी सात जीभके निमित्त एक एक हैं, त्रिशिखा तीन शिखावाली और मध्यमा जिह्वा बहुरूप

न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम् ॥ स्रुक्स्रुवौ तैजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायससैसकौ ॥ १९ ॥ यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा
शिल्पसम्मतौ ॥पर्णे वा ब्रह्मवृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते ॥ २० ॥ संमृज्य दर्भैस्तौ वह्नौ संताप्य प्रोक्षयेत्पुनः ॥ पारार्षर्च्यस्वसूत्रो
क्तक्रमेण शिवपूर्वकैः ॥ २१ ॥ जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसंस्कारसिद्धये ॥ भ्रुंस्तुंब्रुंश्रुं क्रमेणैव पुंड्रुंद्रमित्यतः परम् ॥ २२ ॥ बीजानि सप्त
सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः ॥ त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपसमाह्वया ॥ २३ ॥ रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता ॥
अतिरिक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा ॥ २४ ॥ स्वबीजानन्तरं वाच्या स्वाहांतश्च यथाक्रमम् ॥ जिह्वामंत्रैस्तु तैर्हुत्वाज्यं जिह्वास्त्वे
कैकशः क्रमात् ॥ २५ ॥ रं वह्नयेति स्वाहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम् ॥ सर्पिषा वा समिद्भिर्वा परिषेचनमाचरेत् ॥ २६ ॥

नामवाली है उसकी[1] एक शिखा दक्षिणको प्रज्वलित होती है एक वामओरको प्रज्वलित होती है, ईशानकी ओरकी ज्वालाका हिरण्य नाम, पूर्व ओरकी कनक जिह्वा कहलाती है ॥ २३ ॥ आग्नेयी दिशाकी रक्त नैर्ऋत्यकी कृष्ण दूसरी ओरको (दूसरी दिशामें जो ज्वाला स्थित है वह) सुप्रभा है, अतिरिक्त (वायव्यकी) मरुज्जिह्वा (अतिचंचल) अपने गुणानुरूप नामवाली है ॥ २४ ॥ बीजके अनन्तर स्वाहा शब्द लगाना चाहिये, एक जिह्वामें मन्त्रोंसे स्तुति कर क्रमसे हवन करे तथा भ्रुं ॐ त्रिशिखायै स्वाहा इत्यादि ॥ २५ ॥ रुं वह्नये स्वाहा, कहकर मध्यमें तीन आहुति दे, घी वा समिधा करके परिषेचन

---

[1] तस्याः शिखैका दक्षिणतो ज्वलन्ती वामतः परा । हिरण्या प्रागुदग्जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिता ।

करै ॥ २६ ॥ यह करनेसे वह शिवाग्नि होजाती है, वहाँ शिवके आसनका स्मरण करै वहाँ आवाहन कर अर्धनारीश्वर शिवका यजन करै, दीपक पर्यन्त सींचकर समिधापूर्वक होम करै ॥ २७ ॥ वे समिधा पलाश वा यज्ञिय वृक्षकी बारह अंगुलके प्रमाण होनी चाहिये टेढी न हों और स्वयं सूखी न हों अर्थात् गीली तोडीहुई त्वचासहित व्रणरहित समान हों ॥ २८ ॥ वा दश अंगुल बडी और कनुंगुलीके समान मोटी हों, यदि ऐसा भी न हो तो प्रादेशमात्र (एक बिलस्तभर) परिमाणवाली हों, उन सबका हवन करै ॥ २९ ॥ जो दूर्वादलके समान आकारवाली चार अंगुल परिमाण युक्त हों

एवं कृते शिवाग्निः स्यात्स्मरेत्तत्र शिवासनम् ॥ तत्रावाह्य यजेद्देवमर्धनारीश्वरं शिवम् ॥ दीपान्तं परिषिच्याथ समिद्धोमं समाचरेत् ॥ ॥ २७ ॥ ताः पालाश्यः परा वापि याज्ञिया द्वादशांगुलाः ॥ अवक्रा न स्वयं शुष्कास्सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥ २८ ॥ दशांगुला वा विहिताः कनिष्ठांगुलिसंमिताः ॥ प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि ॥ २९ ॥ दूर्वापत्रसमाकारां चतुरंगुलमायताम् ॥ दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणतः ॥३०॥ लाजांस्तथा सर्षपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा ॥ सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचोष्याणि सम्भवे ॥ ॥ ३१ ॥ दशैवाहुतयस्तत्र पञ्च वा त्रितयं च वा ॥ होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम् ॥ ३२ ॥ श्रुवेणाज्यं समित्याद्यास्त्रुचा शेषात्करेण वा ॥ तत्र दिव्येन होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा ॥३३॥ द्रव्येणैकेन वाऽलाभे जुहुयाच्छ्रद्धया पुनः ॥ प्रायश्चित्ताय जुहुयान्मंत्रयित्वाहुतित्रयम् ॥ ३४ ॥ ततो होमविशिष्टेन घृतेनापूर्य्य वै स्रुचम् ॥ निधाय पुष्पं तस्याग्रे श्रुवेणाधोमुखेन ताम् ॥ ३५ ॥

उनसे हवन कर पीछे घृतकी आहुति देकर सोलह उर्द वा एक एक ग्रास प्रमाण अन्न ॥ ३० ॥ खीलैं, सरसैं जौ तिल घीसे युक्त भक्ष्य लेह्य चोष्य ॥ ॥ ३१ ॥ पदार्थसे दश पांच वा तीन आहुति दे अथवा शक्तिअनुसार आहुति दे अथवा एक आहुति दे ॥ ३२ ॥ स्रुवेसे घी समिधा हाथसे वा स्रुवासे शेष हाथ करके देवतीर्थसे वा ऋषितीर्थसे हवन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ और सब द्रव्य न मिलसकें तो एक ही द्रव्यसे शक्तिके अनुसार हवन करै प्रायश्चित्तके निमित्त तीन आहुतिसे हवन करै ॥ ३४ ॥ फिर होमसे बचेहुए घृतसे स्रुवेको पूर्ण कर उसके आगे फूल रखकर अधोमुख स्रुवेसे ॥ ३५ ॥

उसको दर्भोंसे आच्छादन कर मूलमंत्रसे अंजलि बाँध खडेहो यव तुल्य धारामंत्रके अन्तमें वौषट् लगाकर हवन करै ॥ ३६ ॥ इस प्रकार पूर्णाहुति करके पूर्ववत् सिंचन करै फिर देवेशको बिदाकर अग्निकी रक्षा करे ॥ ३७ ॥ अथवा अग्निको भी विसर्जन कर नाभिमें धारण कर नित्य यजन करै, अथवा शिवशास्त्रके कहे मार्गसे अग्निको लाकर ॥ ३८ ॥ वागीश्वरीके गर्भोत्पन्न अग्निको विधिपूर्वक संस्कार कर यजन करै फिर पहले अग्निका आधान कर परिधियोंको धारण कर ॥ ३९ ॥ दो दो पात्रोंको रखकर शिवका यजन कर प्रोक्षणीपात्रको शुद्धकर तथा दूसरे जलसे धोने योग्योंको धोकर ॥ ४० ॥

सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनांजलिनोत्थितः ॥ वौषडंतेन जुहुयाद्धारां तु यवसंमिताम् ॥ ३६ ॥ इत्थं पूर्णाहुतिं कृत्वा परिषिंचेच्च पूर्व
वत् ॥ तत उद्वास्य देवेशं गोपयेत्तु हुताशनम् ॥ ३७ ॥ तमप्युद्वास्य वा नाभौ यजेत्संधाय नित्यशः ॥ अथ वा वह्निमानीय
शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ ३८ ॥ वागीशीगर्भसंभूतं संस्कृत्य विधिवद्यजेत् ॥ अन्वाधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च ॥ ३९ ॥
पात्राणि द्वन्द्वरूपेण निक्षिप्येष्ट्वा शिवं ततः ॥ संशोध्य प्रोक्षणीपात्रं प्रोक्ष्यतानि तदंभसा ॥ ४० ॥ प्रणीतापात्रमैशान्यां विन्यस्या
पूरितं जलैः ॥ आज्यसंस्कारपर्यंतं कृत्वा संशोध्य स्रुक्स्रुवौ ॥ ४१ ॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः ॥ कृत्वा पृथक्पृथग्घुत्वा
जातमग्निं विचिन्तयेत् ॥ ४२ ॥ त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृंगं द्विशीर्षकम् ॥ मधुपिंगं त्रिनयनं सकपर्देन्दुशेखरम् ॥ ४३ ॥ रक्तं
रक्ताम्बरालेपं माल्यभूषणभूषितम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सोपवीतं त्रिमेखलम् ॥ ४४ ॥ शक्तिमन्तं स्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे ॥
तोमरं तालवृंतं च घृतपात्रं तथेतरैः ॥ ४५ ॥

जलसे भरा प्रणीतापात्र ईशान दिशामें धरै, घृत संस्कारतक स्रुक और स्रुवेको शोधन कर ॥ ४१ ॥ गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन पृथक् २ करके अग्नि उत्पन्न होनेकी चिन्वा करै ॥ ४२ ॥ जिसके तीन चरण सात हाथ, चार शृंग दो शिर, मधुके समान पीले तीन नेत्र, जटाजूट माथेपर चन्द्रमा ॥ ४३ ॥ रक्त और लाल वस्त्र आलेपन और मालासे विभूषित सम्पूर्ण लक्षणसे सम्पन्न यज्ञोपवीत और मेखलासे संयुक्त ॥ ४४ ॥ शक्तिमान स्रुक् और स्रुवेको

दक्षिण हाथमें धारण किये तोमर पंखा घृतपात्र दूसरे हाथोंमें लिये ॥ ४५ ॥ तथा दूसरे पदार्थ हाथमें लिये हैं, इस प्रकार जातकर्ममें अग्निके आकारक
ध्यान करै नालापनयन (नालका छेदन) करके और सूतकको संशोधन करके ॥ ४६ ॥ रुचि नामवाली शिवाग्निका आहुतिपूर्वक शोधन कर माता
पिताको विदाकर तथा चोल और उपनयनादिकर्म करके ॥ ४७ ॥ आन्तोर्याम पर्यन्त इसके संस्कार करके आज्यधारादि होम स्विष्ठकृत् मंत्रोंसे करके ॥
॥ ४८ ॥ चार बीजसे संस्कार कर सिंचन करै, ब्रह्मा विष्णु शिवके ईश्वर तथा लोकेश ॥ ४९ ॥ और उनके अस्त्रों की पूजा यथाक्रमसे करै, धूप

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत् ॥ नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ॥ ४६ ॥ शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वाहुति
पुरस्सरम् ॥ पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चौलोपनयनादिकम् ॥ ४७ ॥ अन्तोर्यामावसानान्तं कृत्वा संस्कारमस्य तु ॥ आज्यधारादिहोमं
च कृत्वा स्विष्टकृतं ततः ॥ ४८ ॥ रमित्यनेन बीजेन परिषिंचेत्ततः परम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च ॥ ४९ ॥
तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम् ॥ धूपदीपादिसिद्ध्यर्थं वह्निमुद्धृत्य कृत्यवित् ॥ ५० ॥ साधयित्वाज्यपूर्वाणि द्रव्याणि
पुनरेव च ॥ कल्पयित्वासनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा ॥ ५१ ॥ संपूज्य देवं देवीं च ततः पूर्णांतमाचरेत् ॥ अथ वा स्वाश्रमोक्तं तु
वह्निकर्म शिवार्पणम् ॥ ५२ ॥ बुद्ध्वा शित्राश्रमी कुर्यान्न च तत्रापरो विधिः ॥ शिवाग्नेर्भस्म संग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा ॥ ५३ ॥
वैवाहोग्निभवं वापि पक्कं शुचि सुगंधि च ॥ कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत् ॥ ५४ ॥

दीपादिकी सिद्धिके निमित्त कृत्यका जाननेवाला अग्निका उद्धार कर ॥ ५० ॥ आज्य घृतके सहित सब पात्रोंको सिद्धकर अग्निमें आसनकी कल्पना कर
पूर्ववत् आवाहन कर ॥ ५१ ॥ देव देवीको पूजन कर पूर्णान्तकार्य करै; अथवा अपने आश्रममें कहे अग्निकर्मको शिवार्पण करै ॥ ५२ ॥ यह सब
जानकर शिवका भक्त करै, इसमें कोई दूसरी विधि नहीं कही है; जो शिवाग्नि अग्निहोत्रसे भस्म उत्पन्न हुई है वह ग्रहण करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ और
वैवाहिक अग्निकी भस्म भी पद्म और शुचि सुगंध युक्त है कपिला गौका गोबर जो गोबरकरनेमें पृथ्वीपर न गिरते हाथमें लेलिया है वह अच्छा है॥ ५४॥

बहुत पतला न हो; कठिन दुर्गंधयुक्त न हो न बहुत सूखा हो, वह अच्छा है और पृथ्वीमें पडा हो तो ऊपर नीचेकी ओरसे छोडकर बीचमेंसे ग्रहण करै ॥ ५५ ॥ उसे पिंडीभूत कर मूलमंत्रसे शिवाग्निमें डालदे न बहुत पकै और न अपक्क रहै ऐसे करके उसके श्वेत हो जानेपर ॥ ५६ ॥ पवित्र सुगंधियुक्त लेकर वस्त्रमें तोडकर भस्माधारमें रक्खै, अच्छी प्रकार कियेहुए अत्यन्त दृढ क्षालित और प्रोक्षण करनेपर मंत्रसे उस भस्मको पात्रमें रक्खै, चांदी आदि धातु काष्ठ मृत्तिका पत्थर ॥ ५७ ॥ अथवा और किसी वस्तुके पात्रमें भस्मको रखकर समान और शुद्धदेशमें धनके समान भस्मको रक्खै ॥ ५८ ॥

न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गधं न शोषितम् ॥ उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ॥ ५५ ॥ पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमंत्रतः ॥ अपक्कमतिपक्कं च संत्यज्य भसितं सितम् ॥ ५६ ॥ आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत् ॥ तैजसं दारवं वापि मृन्मयं शैल मेव च ॥५७॥ अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत् ॥ समे देशे शुभे शुद्धे धनवद्भस्म नि[1]क्षिपेत् ॥ ५८ ॥ न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत् ॥ न संस्पृशेच्च नीचांगैर्नोपेक्षेत न लंघयेत् ॥ ५९ ॥ तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मन्त्रतः ॥ कालेषूक्तेषु नान्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत् ॥ ६० ॥ भस्मसंग्रहणं कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति ॥ उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ॥ ॥ ६१ ॥ अग्निकार्ये कृते पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ॥ स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ॥ ६२ ॥ अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्ते तु मण्डले ॥ विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६३ ॥

और कहींको जाय तो स्वयं वा अनुचरके संग भस्म लेकर चले, अपवित्र और अयोग्य हाथमें भस्म न धरै, नीचांगके स्पर्शसे उपेक्षा और उल्लंघन न करै ॥ ५९ ॥ उस सेवकसे भस्म ले मंत्रसे युक्तकर आगे कहे समयके सिवाय कभी अयोग्यके निमित्त न दे ॥ ६० ॥ देवको बिदा करनेपर भस्मका संग्रह करै, जिस कारण कि उद्वासन (विसर्जन) करनेसे चंड भस्म होती है ॥ ६१ ॥ शिवशास्त्रके मार्गसे अग्निकार्यके किये पीछे अपने सूत्रमें कहे प्रकारसे बलिकर्म करै ॥ ६२ ॥ तब विद्यासनसे न्यास करके मंडलको लोपकर विद्याकोशकी प्रतिष्ठा कर क्रमसे पुष्पादिसे यजन करै ॥ ६३ ॥

---

[1] प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचारोपि वा ।

गुरुको भी मंडल विद्याको आगे करके आसन आदि करके पुष्पोंसे पूजै, और अनेक प्रकारसे गुरुकी पूजा करै ॥६४॥ फिर पूज्योंका पूजन और भूखोंको भोजन करावै, फिर सुखपूर्वक शुद्ध अन्नको स्वयं भोजन करै ॥६५॥ फिर आत्मशुद्धिके निमित्त निवेदन करने पर श्रद्धापूर्वक करै लोभसे चण्डको भी समर्पण करनेसे न बरज दे ॥ ६६ ॥ और गंधमाला आदि समर्पण करै; उसमें भी यह विधि कही है और चतुर पुरुष सब कार्योंमें अपनेको शिव जानें ॥६७॥ भोजन कर आचमन करके शिवका ध्यान करै, हृदयमें मूलमन्त्रका उच्चारण करै और योग्य शिवशास्त्रकी कथा आदिसे अपना समय व्यतीत करै ॥६८॥

विद्यायाः पुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम् ॥ तत्रासनवरं कृत्वा पुष्पाद्यैर्गुरुमर्चयेत् ॥ ६४ ॥ ततोनु पूजयेत्पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥ ततस्स्वयं च भुंजीत शुद्धमन्नं यथासुखम् ॥ ॥ ६५ ॥ निवेदितं च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये ॥ श्रद्दधानो न लोभेन न चण्डाय समर्पितम् ॥ ६६ ॥ गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः ॥ न तु तत्र शिवोस्मीति बुद्धिं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ६७ ॥ भुक्त्वाचम्य शिवं ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत् ॥ कालशेषं नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः ॥ ६८ ॥ रात्रौ व्यातीते पूर्वांशे कृत्वा पूजां मनोहराम् ॥ शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदति शोभनम् ॥ ६९ ॥ भक्ष्यभोज्यांबरालेपपुष्पमालादिकं तथा ॥ मनसा कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम् ॥ ७० ॥ ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिस्स्वपेत् ॥ गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः ॥ ७१ ॥ प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मात्रामाद्यामुदीरयेत् ॥ प्रणम्य मनसा देवं सांबं सगणमव्ययम् ॥ ७२ ॥ देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः ॥ शंखादिनिनदैर्दिव्यैर्देवं देवीं च बोधयेत् ॥ ७३ ॥

रात्रिके बीतनेपर पूर्वांशमें मनोहर पूजा करके शिवा शिवका शयन अतिमनोहर कल्पित करै ॥ ६९ ॥ भक्ष्य भोज्य सुन्दर आलेपन पुष्पमालादिक यह सब मनोहर कर्म मनसे करै ॥ ७० ॥ फिर पवित्र होकर आप देव और देवीके चरणोंकी ओर सोवै और वह गृहस्थ अपनी भार्याको भी वहीं शयन करावै, अथवा केवल आप ही शयन करै ॥ ७१ ॥ फिर प्रातःकालका समय जानकर आदिमंत्रका उच्चारण करै, मनसे गण सहित अम्बाके सहित देवको प्रणाम करके ॥ ७२ ॥ देशकाल उचित कार्यको करके शक्तिसे शौचादि करके शंखादिके शब्दसे देव और देवीको जगावै ॥ ७३ ॥

फिर उसी समयके खिलेहुए फूलोंसे जिनमें बहुत सुगन्धिहो शिवकी पूजा कर फिर पूर्वोक्त विधान करै॥ ७४॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे सप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥ उपमन्यु बोले, अब इसके उपरान्त शिव आश्रमके सेवन करनेवालोंको शिवशास्त्रके अनुसार नैमित्तिक विधि क्रमसे कहता हूँ ॥ १ ॥ सब महीने और दोनों पक्षोंमें अष्टमी चतुर्दशी तथा पर्वमें क्रमसे ॥ २ ॥ और तुला मेषकी संक्रान्तिमें और विशेषकर ग्रहणमें महापूजा करनी चाहिये, अथवा अपनी शक्तिसे अधिक करै ॥ ३ ॥ महीने २ में बौधायनविधिसे कहे संस्कार किये पंचगव्य (ब्रह्मकूर्च) को सिद्ध

ततस्तत्समयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगंधिभिः ॥ निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे अग्निकार्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवाश्रमनिषेविणाम् ॥ शिवशास्त्रोक्तमार्गेण नैमित्तिकविधिक्रमम् ॥ १ ॥ सर्वेष्वपि च मासेषु पक्षयोरुभयोरपि ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तथा पर्वणि च क्रमात् ॥ २ ॥ अयने विषुवे चैव ग्रहणेषु विशेषतः ॥ कर्तव्या महती पूजा ह्यधिका वापि शक्तितः ॥ ३ ॥ मासिमासि यथान्यायं ब्रह्मकूर्चं प्रसाध्य तु ॥ स्नापयित्वा शिवं तेन पिबेच्छेषमुपोषितः ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यादिदोषाणामतीव महतामपि ॥ निष्कृतिर्ब्रह्मकूर्चस्य पानान्नान्या विशिष्यते ॥ ५ ॥ पौषे तु पुष्यनक्षत्रे कुर्यान्नीराजनं विभोः ॥ माघे मघाख्ये नक्षत्रे प्रदद्याद् घृतकंबलम् ॥ ॥ ६ ॥ फाल्गुने चोत्तरान्ते वै प्रारभेत महोत्सवम् ॥ चैत्रे चित्रापौर्णमास्यां दोलां कुर्याद्यथाविधि ॥ ७ ॥ वैशाख्यां तु विशाखायां कुर्यात्पुष्पमहालयम् ॥ ज्येष्ठे मूलाख्यनक्षत्रे शीतकुम्भं प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

करै; उससे शिवको स्नान कराय शेष व्रती मनुष्य स्वयं पान करै ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यादि जो महादोष हैं उनकी निष्कृति ब्रह्मकूर्चके पान करनेसे होजाती है ॥ ५ ॥ पूसमें पुष्य नक्षत्रमें शिवका नीराजन करना चाहिये; और माघमें मघा नक्षत्रमें घृत और कम्बल दे ॥ ६ ॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र युक्त पौर्णमासीवाले फाल्गुनमें महोत्सव करै; और चैत्रके महीनेमें चित्रायुक्त पौर्णमासीको विधिपूर्वक दोला (झूला) यंत्र करै ॥ ७ ॥ वैशाखमें विशाखायुक्त पौर्णमासीको फूलोंका महामंदिर बनावै; ज्येष्ठमें मूल नक्षत्रमें शीतकुम्भका दान करै ॥ ८ ॥

आषाढ मासके उत्तराषाढमें पवित्र आरोपण करै; श्रावणमें प्राकृत आदि मण्डलोंकी कल्पना करै ॥ ९ ॥ श्रवण नक्षत्रमें और भाद्रपद नक्षत्रमें प्रोक्षण कर पूर्वाषाढ नक्षत्रके दिनमें जलक्रीडाको करै ॥ १० ॥ आश्विनमें पायस (खीर) और नये चावल दे; और शतभिषा नक्षत्रके दिन अग्निकार्य करै ॥ ॥ ११ ॥ कार्तिकी पूर्णमासीको कृत्तिकानक्षत्रके योगमें सहस्र दीपक दे; मार्गशीर्षमें आर्द्रा नक्षत्रके दिन घृतसे शिवको स्नान करावै ॥ १२ ॥ और इन समयोंमें यह करनेको असमर्थ हो तो उत्सव ही करै; आस्थान महापूजा अथवा अधिक पूजा करै ॥ १३ ॥ प्रशंसनीय कर्मोंमें जब कि, कल्याणकी

आषाढे चोत्तराषाढे पवित्रारोपणं तथा ॥ श्रावणे प्राकृतान्यानि मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥ श्रविष्ठाख्ये तु नक्षत्रे प्रौष्ठपद्यां ततः
परम् ॥ प्रोक्षयेच्च जलक्रीडां पूर्वाषाढाश्रये दिने ॥ १० ॥ आश्वयुज्यां ततो दद्यात्पायसं च नवोदनम् ॥ अग्निकार्यं च तेनैव कुर्याच्छत
भिषग्दिने ॥ ११ ॥ कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे दद्याद्दीपसहस्रकम् ॥ मार्गशीर्षे तथार्द्रायां घृतेन स्नापयेच्छिवम् ॥ १२ ॥ अशक्तस्तेषु
कालेषु कुर्यादुत्सवमेव वा ॥ आस्थानं वा महापूजामधिकं वा समर्चनम् ॥ १३ ॥ आवृत्तेऽपि च कल्याणे प्रशस्तेष्वपि कर्मसु ॥
दौर्मनस्ये दुराचारे दुःस्वप्ने दुष्टदर्शने ॥ १४ ॥ उत्पाते वाशुभेन्यस्मिन्रोगे वा प्रबलेऽथ वा ॥ स्नानपूजाजपध्यानहोमदानादिकाः
क्रियाः ॥ १५ ॥ निर्मितानुगुणाः कार्य्याः पुरश्चरणपूर्विकाः ॥ शिवानले च विहते पुनस्सन्धानमाचरेत् ॥ १६ ॥ य एवं शर्वधर्मिष्ठो
वर्तते नित्यमुद्यतः ॥ तस्यैकजन्मना मुक्तिं प्रयच्छति महेश्वरः ॥ १७ ॥ एतद्यथोत्तरं कुर्यान्नित्यनैमित्तिकेषु यः ॥ दिव्यं श्रीकंठनाथस्य
स्थानमाद्यं स गच्छति ॥ १८ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पकोटि शतन्नरः ॥ कालांतरेच्युतस्तस्मादौमं कौमारमेव च ॥ १९ ॥

प्रवृत्ति हो दौर्मनस्य दुराचार वा दुःस्वप्न दर्शनमें ॥ १४ ॥ प्रबल उत्पात वा प्रबल रोग वा कुछ और अशुभ हो तो स्नान पूजा जप होम दानादि क्रिया करै ॥ १५ ॥ पुरश्चरणपूर्वक निमित्तोंको गुणयुक्त करै; शिव अनलका जो विधान कहा है उसके समीप आकर कृत्य करै ॥ १६ ॥ जो इस प्रकार नित्ययुक्त शिवधर्मका अनुष्ठान करै; उसको एकही जन्ममें शिवजी मुक्ति देते हैं ॥ १७ ॥ जो नित्य नैमित्तिक कर्ममें यथोत्तर कर्म करते हैं वे नित्य श्रीकंठ आदि स्थानको जाते हैं ॥ १८ ॥ वहाँ सौ करोड कल्पतक महाभोगोंको भोगकर वह मनुष्य फिर कालान्तरमें वहाँसे आनकर औम कौमार ॥ १९ ॥

विष्णु रुद्र वा ब्रह्माके लोकको प्राप्त होता है, वहां बहुत कालतक रहकर यथेच्छ भोगोंको भोगकर ॥२०॥ फिर पांच स्थानको उल्लंघन कर ऊर्ध्वलोकमें जाकर श्रीकंठसे ज्ञानको प्राप्त हो फिर शिवपुरको जाता है ॥ २१ ॥ और यथोक्त आधे अनुष्ठानमें युक्त हो फिर दो बार करके ज्ञानको प्राप्त हों शिवके सायुज्यको प्राप्त होजाता है ॥२२॥ जिसने आधा अनुष्ठान किया हो वह देही देहके क्षयसे अंडपर्यन्त बुद्धिसे किये दोनों भुवनोंको अतिक्रमण कर॥२३॥ गिरिजापतिके पौरुष रुद्रस्थानको प्राप्त होकर अनेक सहस्रों युग अनेक भोगोंको भोग कर ॥ २४ ॥ फिर पुण्यक्षय होनेपर बडे कुलमें जन्म पाता है;

संप्राप्य वैष्णवं ब्राह्मं रुद्रलोकं विशेषतः ॥ तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्यथोदितान् ॥ २० ॥ पुनश्चोर्ध्वं गतस्तस्मादतीत्य स्थानपञ्चकम् ॥ श्रीकंठाज्ज्ञानमासाद्य तस्माच्छैवपुरं व्रजेत् ॥ २१ ॥ अर्द्धचर्य्यारतश्चापि द्विरावृत्त्यैवमेव तु ॥ पश्चाज्ज्ञानं समासाद्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ अर्द्धार्द्धचरितो यस्तु देही देहक्षयात्परम् ॥ अंडांतं वोर्द्ध्वमव्यक्तमतीत्य भुवनद्वयम् ॥ २३ ॥ संप्राप्य पौरुषं रौद्रस्थानमद्रीन्द्रजापतेः ॥ अनेकयुगसाहस्रं भुक्त्वा भोगाननेकधा ॥ २४ ॥ पुण्यक्षये क्षितिं प्राप्य कुले महति जायते ॥ तत्रापि पूर्वसंस्कारवशेन स महाद्युतिः ॥ २५ ॥ पशुधर्मान्परित्यज्य शिवधर्मरतो भवेत् ॥ तद्धर्मगौरवादेव ध्यात्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥ ॥ २६ ॥ भोगांश्च विविधान्भुक्त्वा विद्येश्वरपदं व्रजेत् ॥ तत्र विद्येश्वरैस्सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्बहून्क्रमात् ॥ २७ ॥ अण्डस्यांतर्बहिर्वाथ सकृदावर्तते पुनः ॥ ततो लब्ध्वा शिवज्ञानं परां भक्तिमवाप्य च ॥ २८ ॥ शिवसाधर्म्यमासाद्य न भूयो विनिवर्तते ॥ यश्चातीव शिवे भक्तो विषयासक्तचित्तवत् ॥ २९ ॥ शिवधर्मानसौ कुर्वन्नकुर्वन्वापि मुच्यते ॥ एकावृत्तो द्विरावृत्तस्त्रिरावृत्तो निवर्तकः ॥ ३० ॥

फिर भी पूर्वजन्मके संस्कारसे वह महाद्युतिमान् ॥२५॥ पशुधर्मको छोडकर शिवधर्ममें प्रीति करै; उसी धर्मके गौरवसे ध्यान करके शिवके लोकको जायगा ॥ २६ ॥ अनेक भोगोंको भोगकर विद्येश्वरके स्थानको जायगा; वहाँ विद्येश्वरके साथ क्रमसे बहुतसे भोगोंको भोगकर ॥ २७ ॥ ब्रह्माण्डके अंतर बाहरसे एकसाथही फिर लौटता है, फिर शिवज्ञानको प्राप्त हो परम भक्तिको प्राप्त कर ॥ २८ ॥ शिवके साथ धर्मको प्राप्त हो फिर संसारमें नहीं लौटता, जो विषयासक्तके चित्तके समान शिवमें अतीव आसक्त है ॥ २९ ॥ वह शिवके धर्मोंको करै, वा न करै किन्तु मुक्त हो जाता है. वह मुमुक्षु एक बार दो

वार अथवा तीन बार आकर ॥ ३० ॥ शिवधर्म करनेवाला मनुष्य फिर चक्रके समान संसारमें नहीं आता, इस कारण जैसेहो तैसे शिवके आश्रित हो रहै ॥ ३१ ॥ शिवधर्ममें बुद्धि कर यदि कल्याणके निमित्त मति करै जो हम किसी करके कुछ भी निर्बंध नहीं करते हैं ऐसा कहै इस स्थानमें निर्बंधन भी पापसे प्रकृतिके अथ नहीं रुचता है, अथवा दूसरोंको पुण्यसंस्कारके गौरवसे रुचता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ संसारका कारण इनको उस स्थानमें प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ जो अपना कल्याण चाहै तो शिवधर्मोंको करै ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टाविंशो

न पुनश्चक्रवर्ती स्याच्छिवधर्माधिकारवान् ॥ तस्माच्छिवाश्रितो भूत्वा येन केनापि हेतुना ॥ ३१ ॥ शिवधर्मे मतिं कुर्याच्छ्रेयसे चेत्कृतोद्यमः ॥ नात्र निर्बंधयिष्यामो वयं कंचन केनचित् ॥ ३२ ॥ निर्बन्धेभ्योऽतिवादेभ्यः प्रकृत्यैतन्न रोचते ॥ रोचते वा परेभ्यस्तु पुण्यसंस्कारगौरवात् ॥ ३३ ॥ संसारकारणं येषां न प्ररोढुमल भवेत् ॥ प्रकृत्यनुगुणं तस्माद्विमृश्यैतदशेषतः ॥ ३४ ॥ शिवधर्मेऽधिकुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥ ३५ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिकविधिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवंस्त्वन्मुखादेव श्रुतं श्रुतिसमंमया ॥ स्वाश्रितानां शिवप्रोक्तं नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवधर्माधिकारिणाम् ॥ काम्यमप्यस्ति चेत्कर्म वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ २ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अस्त्यैहिकफलं किञ्चिदामुष्मिकफलं तथा ॥ ऐहिकामुष्मिकञ्चापि तच्च पञ्चविधं पुनः ॥ ३ ॥ किंचित्क्रियामयं कर्म किंचित्कर्म तपोमयम् ॥ ४ ॥ जपध्यानमयं किंचित्किंचित्सर्वमयं तथा ॥ क्रियामयं तथा भिन्नं होमदानार्चनक्रमात् ॥ ५ ॥

ऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! तुम्हारे मुखसे मैंने श्रुतिके समान वचन सुने; जो अपने आश्रितोंको नित्य नैमित्तिक विधि शिवने कही है ॥ ॥ १ ॥ इस समय शिव धर्माधिकारियोंका जो काम्य कर्म है उसके सुननेकी मेरी इच्छा है सो कहिये ॥ २ ॥ उपमन्यु बोले, कुछ इस लोकका कुछ उस लोकका फल है, यहाँ और वहाँका कर्म पाँच प्रकारकाहै ॥ ३ ॥ कुछ क्रियामय कर्म कुछ तपोमय कर्म ॥ ४ ॥ कोई जप ध्यानमय और कोई कर्म

सर्वमय है क्रियामय कर्म भिन्न है; होम दान पूजाके क्रमसे ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण शक्तिवालोंका वा दूसरोंका यह कार्य सफल होता है, परमात्मा शिवकी शक्ति
और आज्ञा है ॥ ६ ॥ इस कारण आज्ञाधारी ब्राह्मण काम्यकर्म सदा करता रहै, अब दोनों लोकमें फल देनेवाले काम्यकर्मको कहताहूँ ॥ ७ ॥
जो महेश्वरके भक्तोंको क्रमसे अन्तर बाह्य कर्म करने चाहिये शिव वा महेश्वर इसमें कुछ भेद नहीं है ॥ ८ ॥ इस कारण शिव वा महेश्वरके भक्त भेदको
प्राप्त नहीं होते हैं, शिवके आश्रयमें रहनेवाले वे ज्ञानयज्ञरत मनुष्य ॥ ९ ॥ कर्मयज्ञके करनेवाले पृथ्वीमें माहेश्वर (शिवभक्त) कहलाते हैं, इस कारण

सर्वशक्तिमतामेव नान्येषां सफलं भवेत् ॥ शक्तिश्चाज्ञा महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ॥ ६ ॥ तस्मात्काम्यानि कर्माणि कुर्यादाज्ञाधरो
द्विजः ॥ अथ वक्ष्यामि काम्यं हि चेहामुत्र फलप्रदम् ॥ ७ ॥ शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमंतर्बहिः क्रमात् ॥ शिवो महेश्वरश्चेति नात्यंतमिह
भिद्यते ॥ ८ ॥ यथा तथा न भिद्यंते शैवा माहेश्वरा अपि ॥ शिवाश्रिता हि ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः ॥ ९ ॥ माहेश्वरास्समाख्याता
कर्मयज्ञरता भुवि ॥ तास्मादाभ्यंतरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः ॥ १० ॥ न तु प्रयोगो भिद्येत वक्ष्यमाणस्य कर्मणः ॥ परीक्ष्य भूमिं
विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ॥ ११ ॥ मनोभिलषिते तत्र वितानविततांबरे ॥ सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसंनिभे ॥ १२ ॥ प्राचीमुत्पादये
त्पूर्वं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥ एकहस्तं द्विहस्तं वा मंडलं परिकल्पयेत् ॥ १३ ॥ आलिखेद्विमलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ रत्नहेमादि
भिश्चूर्णैर्यथासंभवसंभृतैः ॥ १४ ॥ पंचावरणसंयुक्तं बहुशोभासमन्वितम् ॥ दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरेषु सशक्तिकाः ॥ १५ ॥
रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिदलतः क्रमात् ॥ कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः ॥ १६ ॥

शैव अभ्यन्तर और माहेश्वर बाह्यकर्म करते हैं ॥ १० ॥ आगे कहेहुए कर्मके प्रयोगमें भेद नहीं है, गंध वर्ण रसादिसे पृथ्वीको विधिपूर्वक परीक्षा करके॥
॥ ११ ॥ मनके अनुसार मनोहर वितान (चंदोवा) तानकर दर्पणके समान पृथ्वीको लीप ॥ १२ ॥ शास्त्रकी विधिसे पहले पूर्वको उत्पादन करै, एक
हाथ अथवा दो हाथका मंडलकल्पित करै ॥ १३ ॥ और आठ दलका कर्णिकायुक्त कमल लिखै यथायोग्य रत्न सुवर्णादिके चूर्णयुक्त ॥ १४ ॥
पंचावस्थाके सहित बहुत शोभासे संयुक्त दलोंमें सिद्धि और केसरोंमें शक्ति कल्पना करनी चाहिये ॥ १५ ॥ और आठ रुद्र वामदेवादि मूर्ति पूर्वादि दलके

क्रमसे स्थापन करै, कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नौ शक्ति कल्पित करै ॥ १६ ॥ कंदमें शिवात्मक धर्म और उसके नालमें शिवात्मक ज्ञान कल्पित करै, कर्णिकाके ऊपर आग्नेयमंडल सूर्य चंद्रमा ॥ १७ ॥ और उसके उपरान्त शिवविद्यात्मक तीन तत्त्व तथा सब आसनके ऊपर सुखपूर्वक विचित्र पुष्पोंसे युक्त ॥ १८ ॥ पंचावरणके सहित पार्वती सहित देवको पूजन करै, शुद्ध स्फटिक मणिके समान प्रसन्न शीतल कान्ति ॥ १९ ॥ बिजलीके समान जटामुकुटसे भूषित शार्दूलके चर्मका वस्त्र धारण किये कुछेक हँसता मुख ॥ २० ॥ लालपद्मके दलके समान हाथ पैरवाले सब लक्षणोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण

स्कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ॥ कर्णिकोपरि चाग्नेयं मंडलं सौरमैन्दवम् ॥ १७ ॥ शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमतः परम् ॥ सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमान्वितम् ॥ १८ ॥ पंचावरणसंयुक्तं पूजयेदंबया सह ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ॥ १९ ॥ विद्युद्वलयसंकाशजटामुकुटभूषितम् ॥ शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखांबुजम् ॥ २० ॥ रक्तपद्मदलप्रख्यपादपाणितलाधरम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वाभरणभूषितम् ॥ २१ ॥ दिव्यायुधवरैर्युक्तं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ पंचवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम् ॥२२॥ अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम् ॥ त्रिलोचनारविंदाढ्यं कृतबालेंदुशेखरम् ॥ २३ ॥ दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ॥ भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तेक्षणत्रयम् ॥२४॥ दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपल्लवम् ॥ उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ॥ २५ ॥ सविलासं त्रिनयनं चन्द्राभरणशेखरम् ॥ पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ २६ ॥

गहनोंसे युक्त ॥ २१ ॥ दिव्य श्रेष्ठ आयुधोंसे युक्त दिव्यगंधका अनुलेप लगाये, पाँचमुख दश भुजा चन्द्रखण्डधारे शिखामें मणि बांधे ॥ २२ ॥ इनका पूर्व मुख सौम्य और बालसूर्यके समान कान्तिवाला है, तीन नेत्र कमलके समान मनोहर, शिरपर बालचंद्रमा ॥ २३ ॥ दक्षिणका मुख नीले मेघके समान कान्तिमान् जिसकी टेढी भ्रुकुटी घोर तीन लालवर्ण दृष्टिसे युक्त हैं ॥ २४ ॥ दंष्ट्रा तीक्ष्णसे दुर्धर्ष, स्फूर्यमाण, अधरोष्ठ (होठ) उत्तरका विद्रुमके समान नीली अलकोंसे विभूषित ॥ २५ ॥ विलासपूर्वक तीन नेत्र शिरपर चन्द्रमाके आभरणसे संयुक्त पश्चिमका पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल

तीन नेत्रोंसे शोभित ॥ २६ ॥ चन्द्ररेखा धारण किये सौम्यमूर्ति मंदहास्यसे मनोहर पांचवा स्फटिकमणिके समान चंद्ररेखासे उज्ज्वल ॥ २७ ॥ अत्यन्त प्रिय दर्शनमूर्ति तीन नेत्रसे उज्ज्वल दक्षिणमें शूल परशु वज्र खड्ग अनलसे उज्ज्वल ॥ २८ ॥ सव्य हाथमें नाग नाराच घंटा पाश अंकुशसे युक्त है; निवृत्तिनामक कलासे जाने और प्रतिष्ठाकलासे नाभिबद्ध है ॥ २९ ॥ कंठपर्यंत विद्या करके और ललाटपर्यन्त शान्तिकलासे प्रतिष्ठित है; उसके ऊपर शान्त्यतीत कलासे पर कलासे युक्त हैं ॥ ३० ॥ उसके आगे पंचाध्वमें व्यापी कलापंचक शरीरवालेका ईशान मुकुट पुरातन पुरुष मुख है ॥ ३१ ॥

चन्द्ररेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम् ॥ पंचमं स्फटिकप्रख्यमिंदुरेखासमुज्ज्वलम् ॥ २७ ॥ अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ॥ दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम् ॥ २८ ॥ सव्ये च नागनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ॥ निवृत्त्याजानुसंबद्धमा नाभेश्च प्रतिष्ठया ॥ २९ ॥ आकंठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शांतया ॥ तदूर्द्धं शांत्यतीताख्यकलया परया तथा ॥ ३० ॥ पंचाध्वव्यापिनं साक्षात्कलापंचकविग्रहम् ॥ ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥ ३१ ॥ अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम् ॥ सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम् ॥ ३२ ॥ मातृकामयमीशानं पंचब्रह्ममयं तथा ॥ ॐकाराख्यमयं चैव हंसशक्त्या [1]समन्वितम् ॥ ३३ ॥ तथेच्छात्मिकया शक्त्या समारूढांकमंडलम् ॥ ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वामतश्च क्रियाख्यया ॥ ३४ ॥ तत्त्वत्रयमयं साक्षाद्विद्यामूर्तिं सदाशिवम् ॥ मूर्तिमूलेन संकल्प्य सकलीकृत्य च क्रमात् ॥ ३६ ॥

अधो हृदयनामक गुह्य स्थान है; महेश्वर और सद्योजात उनके चरण इस प्रकार अडतीस कलाकी उनकी मूर्ति है ॥ ३२ ॥ मातृकामय स्थान तथा पंचमय ब्रह्म, ॐकाराख्यमय तथा हंसशक्तिसे युक्त ॥ ३३ ॥ पंचाक्षरमय देवको छः अंग और छः जातिसे युक्त तथा इच्छा आत्मिक शक्तिसे जो कमंडलुमें आरूढ हैं, दक्षिणकी ओर ज्ञानाख्य शक्तिसे बाईंओर क्रियाशक्तिसे युक्त ॥ ३४ ॥ तीन तत्त्वमय साक्षात् विद्यामूर्ति सदाशिवको मूर्तिमूलसे संकल्प करके

---

[1] पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयन्तु वा । अङ्गषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ।

क्रमसे संकलनकर ॥ ३५ ॥ अर्घ पर्यन्त मूलमन्त्रसे यथायोग्य पूजन करके साक्षात् मूर्तिमान् शिवको परम शक्तिसे ॥ ३६ ॥ उसमें सत् असत् व्यक्तिसे महादेवको आवाहन करके पंच उपकरण करके परमेश्वरका पूजन करै ॥ ३७ ॥ वेदमें कहे षडंगोंके मंत्रसे तथा मातृकाभ्याससे, प्रणवपूर्वक शिव और शक्तिसे युक्त क्रमसे ॥ ३८ ॥ शान्त तथा दूसरे वेदमन्त्रोंसे अच्छी प्रकार परमदेवका पूजन करै अथवा केवल शिवमंत्रोंसे पूजन करै ॥ ३९ ॥ पाद्यादि मुख सुगंधि पर्यन्त स्नानके बिना करे, फिर यथाक्रमसे पंचावरण पूजाका आरम्भ करै ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे

संपूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया ॥ मूर्तिमंतं शिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह ॥ ३६ ॥ तत्रावाह्य महादेवं सदसद्व्यक्तिवर्जितम् ॥ पंचोपकरणं कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह ॥ प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ॥ ३८ ॥ शांतेन वा तथान्यैश्च वेदमंत्रैश्च कृत्स्नशः ॥ पूजयेत्परमं देवं केवलेन शिवेन वा ॥ ३९ ॥ पाद्यादिमुखवासांतं कृत्वा प्रस्थापनं विना ॥ पंचावरणपूजां तु ह्यारभेत यथाक्रमम् ॥ ४० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे काम्यकर्मवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ तत्रादौ शिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात् ॥ गंधाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥ १ ॥ ततो ब्रह्माणि परित ईशानादि यथाक्रमम् ॥ सशक्तिकानि सद्यांत प्रथमावरणे यजेत् ॥ २ ॥ षडंगान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात् ॥ शिवस्य च शिवायाश्च वाह्नेयादि समर्चयेत् ॥ ३ ॥ तत्र वामादिकान्रुद्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः ॥ अर्चयेद्वा न वा पश्चात्पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ ४ ॥ प्रथमावरणं प्रोक्तं मया ते यदुनंदन ॥ द्वितीयावरणं प्रीत्या प्रोच्यते श्रद्धया शृणु ॥ ५ ॥

काम्यवर्णनं नामैकोनात्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ उपमन्यु बोले, उसके आदिमें शिवके पार्श्वमें वा दक्षिण वामके क्रमसे गंध आदिसे पहले गणेशको, कार्तिकेयको देवके सन्मुख पूजन करै ॥ १ ॥ फिर पंचब्रह्म चारोंओरसे शक्तिपूर्वक सद्योजात पर्यन्त पहले आवरणकी पूजा करै ॥ २ ॥ फिर षडंगादि न्यास और हृदयादि न्यास क्रमसे करै शिव और शिवाका न्यासकर अग्नि आदि दिशाओंमें पूजन करै ॥ ३ ॥ वहां वामादि आठ देवताओंको आठ शक्तियोंके सहित पूजन करै, अथवा पीछे पूजन करै, फिर पूर्वादि क्रमसे पूजन करे ॥ ४ ॥ हे यदुनंदन ! यह प्रथम आवरणका वर्णन किया। अब दूसरे आवरणको

प्रेमसे कहता हूं सुनो ॥ ५ ॥ पूर्व दिशाको पत्रमें अनन्तको उनकी शक्तिको वामओरसे सूक्ष्मको दक्षिणदिशाके पत्रमें शक्तिके सहित पूजन करै ॥ ६ ॥ और पश्चिम दिशाके पत्रमें शक्तिसहित शिवको पूजै । इसी प्रकार उत्तर ओरके पत्रमें एक नेत्रका पूजन करै ॥ ७ ॥ एक रुद्र उनकी शक्तिको ईशान दिशाके दलमें पूजै, त्रिमूर्ति और उनकी शक्तिको अग्निकोणके दलमें पूजै ॥ ८ ॥ श्रीकंठको नैर्ऋत्य पत्रमें और उनकी शक्तिको वामओरमें यजन करै. इसी प्रकार वायव्यकी ओरसे पत्रमें शिखंडीशका पूजन करै ॥ ९ ॥ दूसरे आवरणमें सब चक्रवर्तियोंको पूजन करै, तीसरे आवरणमें शशिसहित आठ मूर्तियोंकी पूजा करै ॥ १० ॥ आठोंदिशामें क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करै. भव शर्व ईशान रुद्र पशुपति ॥ ११ ॥ उग्र भीम महादेव यह आठ मूर्ति क्रमसे हैं, इसके अनन्तर महादेवादिकोंको क्रमसे एकादशमूर्त्ति शक्तिके सहित पूजन करना चाहिये ॥ १२ ॥ महादेव शिव रुद्र शंकर नीललोहित ईशान विजय भीम देव भवोद्भव ॥ १३ ॥ कपालीश यह ग्यारहशक्ति कही जाती हैं, उनमें आठ आग्नेयादि दिशाओंमें क्रमसे पूजनी चाहिये ॥ १४ ॥ देवदेवको पूर्वपत्रमें ईशान और आग्नेयादि दिशाके मध्यमें भवोद्भव और कपालीशका पूजन करै. इसके उपरान्त ॥ १५ ॥ उस आवरणके आगेकी ओर वृषेन्द्रका

अनंतं पूर्वादिक्पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः ॥ सूक्ष्मं दक्षिणदिक्पत्रे सह शक्त्या समर्चयेत् ॥ ६ ॥ ततः पश्चिमदिक्पत्रे सह शक्त्या
शिवोत्तमम् ॥ तथैवोत्तरदिक्पत्रे चैकनेत्रं समर्चयेत् ॥७॥ एकरुद्रं च तच्छक्तिं पश्चादीशदलेऽर्चयेत् ॥ त्रिमूर्तिं तस्य शक्तिं च पूजयेदग्नि
दिग्दले ॥ ८ ॥ श्रीकण्ठं नैर्ऋते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः ॥ तथैव मारुते पत्रे शिखंडीशं समर्चयेत् ॥ ९ ॥ द्वितीयावरणे चेज्यास्स
र्वतश्चक्रवर्त्तिनः ॥ तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्तयः ॥ १० ॥ अष्टसु क्रमशो दिक्षु पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ भवः शर्वस्तथेशा
नो रुद्रः पशुपतिस्ततः ॥ ११ ॥ उग्रो भीमो महादेव इत्यष्टौ मूर्तयः क्रमात् ॥ अनंतरं ततश्चैव महादेवादयः क्रमात् ॥ शक्तिभिस्सह
संपूज्यास्तत्रैकादशमूर्तयः ॥१२॥ महादेवः शिवो रुद्रः शंकरो नीललोहितः ॥ ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः ॥१३॥ कप
र्दीशश्च कथ्यंते तथैकादशशक्तयः ॥ तत्राष्टौ प्रथमं पूज्या वाह्नेयादि यथाक्रमम् ॥१४॥ देवदेवः पूर्वपत्रे ईशानं चाग्निगोचरे ॥ भवोद्भवस्त
योर्मध्ये कपालीशस्ततः परम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्नावरणे भूयो वृषेन्द्रं पुरतो यजेत् ॥ नंदिनं दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे ॥ १६ ॥

पूजन करै, उसके दक्षिणमें नन्दि और महाकालको यजन करै ॥ १६ ॥ शासन करनेवाले शिवको अग्निकोणके पत्रमें मातृकाओंको दक्षिण ओरके पत्रमें, गजमुखको नैर्ऋतकी ओरके पत्रमें, षट्मुख कुमारको पश्चिमके पत्रमें ॥ १७ ॥ ज्येष्ठाके वायव्य दलमें, गौरीको उत्तर, चंडको ईशान शास्ता और नन्दीशके बीचमें मुनींद्र और वृषभका यजन करै ॥ १८ ॥ महाकालके उत्तरभागमें पिंगलका पूजन करै तथा शास्तृमातृसमूहके मध्यमें भृंगीश्वरका पूजन करे ॥ ॥ १९ ॥ मातृका और विघ्नेशके बीचमें वीरभद्रका पूजन करै स्कंद और गणेशके बीचमें सरस्वती देवीका यजन करै ॥ २० ॥ ज्येष्ठा और कुमारके

शास्तारं वह्निदिक्पत्रे मातॄर्दक्षिणदिग्दले ॥ गजास्यं नैर्ऋते पत्रे षण्मुखं वारुणे पुनः ॥ १७ ॥ ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चंडमैश्वरे ॥ शास्तृनन्दीशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत् ॥ १८ ॥ महाकालस्योत्तरतः पिंगलं तु समर्चयेत् ॥ शास्तृमातृसमूहस्य मध्ये भृंगीश्वरं ततः ॥ १९ ॥ मातृविघ्नेशमध्ये तु वीरभद्रं समर्चयेत् ॥ स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीम् ॥ २० ॥ ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये श्रियं शिवपदार्च्चिताम् ॥ ज्येष्ठागणाम्बयोर्मध्ये महामोटीं समर्च्चयेत् ॥ २१ ॥ गणाम्बाचण्डयोर्मध्ये देवीं दुर्गांप्रपूजयेत् ॥ अत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरसंहतिम् ॥ २२ ॥ रुद्रप्रथमभूताख्यां विविधां च सशक्तिकाम् ॥ शिवायाश्च सखीवर्ग्गं जपेद्ध्यात्वा समाहितः ॥ २३ ॥ एवं तृतीयावरणे वितते पूजिते सति ॥ चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समर्च्चयेत् ॥ २४ ॥ भानुः पूर्वदले पूज्यो दक्षिणे चतुराननः ॥ रुद्रो वरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले ॥ २५ ॥ चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ ॥ तस्यांगानि षडेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः ॥ २६ ॥

बीचमें शिवपदकी अर्चना करनेवाली लक्ष्मीको पूजै, ज्येष्ठागण और अम्बाके बीचमें महामोटीका पूजन करै ॥ २१ ॥ गण और चण्डके बीचमें दुर्गा देवीको पूजै, फिर इसी आवरणमें शिवके अनुचरोंके समूह ॥२२॥ रुद्रके प्रथम भूतनामक अनेक शक्ति और शिवाकी सखी वर्गको पूजै, और सावधानहो सबका ध्यान करै ॥ २३ ॥ इस प्रकार विस्तारसे तीसरे आवरणके पूजनपर चौथे आवरणका ध्यान कर पहले उसकी बाह्य पूजा करै ॥ २४ ॥ पूर्वदलमें भानु (सूर्य) और दक्षिण दलमें ब्रह्माका पूजन करै, रुद्र पश्चिम पत्रमें और विष्णुको उत्तरके पत्रमें पूजै ॥ २५ ॥ फिर चारों देवताओंके आवरण

उनके छः आदिमें दीप्तादि शक्तियोंके साथ पूजै ॥ २६ ॥ दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति विमला क्रमसे अमोघा, विद्युता, यह पूर्वादि क्रमसे स्थित हैं ॥ २७ ॥ दूसरे आवरणमें क्रमसे चार मूर्तिका पूजन करै, पूर्वसे लेकर उत्तर पर्यंत और उसके उपरान्त शक्ति यथाक्रमसे पूजै ॥ २८ ॥ आदित्य भास्कर भानु रवि अर्क ब्रह्मा रुद्र विष्णु विवस्वत॥२९॥ इनका विस्तार पूर्व दिशाके भागमें और दक्षिण दिशाके भागमें बोधिनी पश्चिम और आप्यायिनी उत्तरभागमें स्थित है ॥ ३० ॥ उषा, प्रभा, प्रज्ञा, संध्या, इनको ईशानादि कोणमें दूसरे आवरणमें यजन करै ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण ! चन्द्रमा, मंगल,

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात् ॥ अमोघा विद्युता चैव पूर्वादि परितः स्थिताः ॥ २७ ॥ द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात् ॥ पूर्वाद्युत्तरपर्यंताः शक्तयश्च ततः परम् ॥ २८ ॥ आदित्यो भास्करोभानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ॥ अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चैते विवस्वतः ॥ २९ ॥ विस्तारा पूर्वदिग्भागे सुतरां दक्षिणे स्थिताः ॥ बोधनी पश्चिमे भागे आप्यायिन्युत्तरे पुनः ॥ ३० ॥ उषां प्रभां तथा प्राज्ञां सन्ध्यामपि ततः परम् ॥ ऐशानादिषु विन्यस्य द्वितीयावरणे यजेत् ॥ ३१ ॥ सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम् ॥ बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम् ॥ ३२ ॥ शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं भयंकरम् ॥ समंततो यजेदेतांस्तृतीयावरणे क्रमात् ॥ ३३ ॥ अथवा द्वादशादित्या द्वितीयावरणे यजेत् ॥ तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ॥ ३४ ॥ सप्तसप्त गणांश्चैव बहिस्तस्य समंततः ॥ ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ॥ ३५ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान् ॥ सप्तच्छंदोमयांश्चैव लखिल्यांश्च पूजयेत् ॥ ३६ ॥

महाबुद्धिमान् बुध, बुद्धिमानोंमें सर्वोत्कृष्ट बृहस्पति तेजसागर शुक्र ॥ ३२ ॥ शनैश्चर, राहु, भयंकर धूम्रग्रह केतु, इनको चारोंओर तीसरें आवरणमें पूजै ॥ ३३ ॥ अथवा द्वादश आदित्योंको दूसरे आवरणमें यजन करै, तीसरे आवरणमें बारह राशिका पूजन करै॥ ३४ ॥ उसके बाहर चारोंओर सात २ गणोंको पूजै, ऋषि देवता गन्धर्व पन्नग अप्सराओंके गण ॥ ३५ ॥ ग्रामण्य, देवयोनि, यक्ष, यातुधान हयमुख, सप्तछंदोमय वालखिल्योंका पूजन करै॥ ३६ ॥

इस प्रकार तीसरे आवरणमें दिवाकरका पूजन कर तीन आवरणके सहित पीछे ब्रह्माका पूजन करै ॥ ३७ ॥ पूर्वमें हिरण्यगर्भ दक्षिणमें विराज,
पश्चिममें काल और उत्तरमें पुरुषका यजन करै ॥ ३८ ॥ हिरण्यगर्भ प्रथम कमलके समान ब्रह्मा कालजाति स्वभावसे अंजन पर्वतके समान कृष्ण
स्फटिकमणिके पुरुष ॥ ३९ ॥ राजस तामस सात्त्विक तीन गुण युक्त यह चार क्रमसे पहले आवरणमें स्थित हैं ॥ ४० ॥ दूसरे आवरणमें पूर्वादि
दिशाओंके क्रमसे सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातनको पूजै ॥ ४१ ॥ तीसरे आवरणमें प्रजापतिको पूजै, उसमें पूर्वमें हुए आठ जो दक्षादिक हैं तिनको

एवं तृतीयावरणे समभ्यर्च्य दिवाकरम् ॥ ब्रह्माणमर्चयेत्पश्चात्त्रिभिरावरणैः सह ॥ ३७ ॥ हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः ॥
कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषं चोत्तरे यजेत् ॥ ३८ ॥ हिरण्यगर्भः प्रथमो ब्रह्मा कमलसन्निभः ॥ कालो जात्यंजनप्रख्यः पुरुषः स्फटि
कोपमः ॥ ३९ ॥ त्रिगुणो राजसश्चैव तामसः सात्त्विकस्तथा ॥ चत्वार एते क्रमशः प्रथमावरणे स्थिताः ॥ ४० ॥ द्वितीयावरणे
पूज्याः पूर्वादिपरितः क्रमात् ॥ सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः ॥४१॥ तृतीयावरणे पश्चादर्चयेच्च प्रजापतीन् ॥ अष्टौ पूर्वांश्च
पूर्वादौ त्रीन्प्राक्पश्चादनुक्रमात् ॥४२॥ दक्षो रुचिर्भृगुश्चैव मरीचिश्च तथांगिराः ॥ पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च कश्यपः ॥ ४३ ॥
वसिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विमे ॥ तेषां भार्य्याश्च तैस्सार्द्धं पूजनीया यथाक्रमम् ॥ ४४ ॥ प्रसूतिश्च तथाऽऽकूतिः ख्यातिः
सम्भूतिरेव च ॥ धृतिः स्मृतिः क्षमा चैव सन्नतिश्चानसूयका ॥ ४५ ॥ देवमातारुन्धती च सर्वाः खलु पतिव्रताः ॥ शिवार्चनरतौ नित्यं
श्रीमत्यः प्रियदर्शनाः ॥ ४६ ॥ प्रथमावरणे वेदांश्चतुरो वा प्रपूजयेत् ॥ इतिहासपुराणानि द्वितीयावरणे पुनः ॥ ४७ ॥

पूर्व आदि देशमें पश्चिमसे आरम्भ कर अनुक्रमसे ॥ ४२ ॥ दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप ॥ ४३ ॥ वसिष्ठ यह
प्रजापति विख्यात हैं; उनकी भार्याओंके साथ उनकी यथाक्रमसे पूजा करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ प्रसूति, ख्याति, संभूति, धृति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति,
अनसूया ॥ ४५ ॥ देवमाता अदिति और अरुन्धती यह पतिव्रता हैं, शिवके पूजनमें नित्य श्रीमान् प्रियदर्शन हैं ॥ ४६ ॥ पहले आवरणोंमें चार वेदोंका

पूजन करै, इतिहास पुराणका दूसरे आवरणमें ॥ ४७ ॥ तीसरे आवरणके पीछे धर्मशास्त्रको आगे करके वैदिक सम्पूर्ण विद्या चारोंओरसे पूजित करै ॥ ॥ ४८ ॥ पूर्वादिके अगाड़ी वेद तथा वेदाङ्ग और दूसरे भी यथारुचि आठ या चार प्रकारसे पूजा करे ॥ ४९ ॥ इस प्रकार तीन आवरणसे युक्त ब्रह्माको पूजन करके दक्षिण और पश्चिमके पीछे आवरणपूर्वक रुद्रको यजन करै ॥ ५० ॥ उसको ब्रह्मषडंग प्रथमावरण कहते हैं, द्वितीयावरण विद्येश्वरमय है ॥ ५१ ॥ तीसरे आवरणमें जो भेद हैं सो कहते हैं, और पूर्वादि क्रमसे उनकी चार मूर्तिका पूजन करै ॥ ५२ ॥ तीन गुण युक्त सम्पूर्ण देवता प्रथम

तृतीयावरणे पश्चाद्धर्मशास्त्रपुरस्सराः ॥ वैदिक्यो निखिला विद्याः पूज्या एव समंततः ॥ ४८ ॥ पूर्वादिपुरतो वेदास्तदन्ये तु यथारुचि ॥ अष्टधा वा चतुर्धा वा कृत्वा पूजां समं ततः ॥ ४९॥ एवं ब्रह्माणमभ्यर्च्य त्रिभिरावरणैर्युतम् ॥ दक्षिणे पश्चिमे पश्चाद्रुद्रं सावरणं यजेत् ॥ ५० ॥ तस्य ब्रह्मषडंगानि प्रथमावरणं स्मृतम् ॥ द्वितीयावरणे चैव विद्येश्वरमयं तथा ॥ ५१ ॥ तृतीयावरणे भेदो विद्यते स तु कथ्यते ॥ चतस्रो मूर्तयस्तस्य पूज्याः पूर्वादितः क्रमात् ॥ ५२ ॥ त्रिगुणास्सकलो देवः पुरस्ताच्छिवसंज्ञकः ॥ राजसो दक्षिणे ब्रह्मा सृष्टिकृत्पूज्यते भवः ॥ ५३ ॥ तामसः पश्चिमे चाग्निः पूज्यस्संहारको हरः ॥ सात्त्विकस्सुखकृत्सौम्ये विष्णुर्विश्वपतिर्मृडः ॥ ॥ ५४ ॥ एवं पश्चिमदिग्भागे शम्भोः षड्विंशकं शिवम् ॥ समभ्यर्च्योत्तरे पार्श्वे ततो वैकुंठमर्चयेत् ॥ ५५ ॥ वासुदेवं पुरस्कृत्वा प्रथमावरणे यजेत् ॥ अनिरुद्धं दक्षिणतः प्रद्युम्नं पश्चिमे ततः ॥ ५६ ॥ सौम्ये संकर्षणं पश्चाद्व्यत्यस्तौ वा यजेदिमौ ॥ प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शुभम् ॥ ५७ ॥

शिवसञ्ज्ञक हैं; रजोगुणयुक्त ब्रह्मा दक्षिणमें पूजित होते हैं ॥ ५३ ॥ तमोगुणयुक्त पश्चिममें संहार करनेवाले शिव पूज्य हैं, सत्त्वगुणसे युक्त सुख करनेहारे विष्णु पूर्व दिशामें तथा विश्वपति शिव हैं ॥ ५४ ॥ इसप्रकार पश्चिम दिशामें शिवकी छब्बीस शिवमूर्तिको उत्तरपार्श्वमें पूजन करके वैकुण्ठका अर्चन करै ॥ ५५ ॥ वासुदेवके आगे प्रथम आवरणमें यजन करै; दक्षिणकी ओर अनिरुद्ध और पश्चिममें प्रद्युम्न ॥ ५६ ॥ पूर्वमें संकर्षण देव और पश्चिममें

लोटाकर इनको पूजै यह पहला आवरण कहा । अब दूसरेको सुनो ॥ ५७ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन राम, कृष्ण अश्वमुख ॥ ५८ ॥ इनको तीसरे आवरणके चक्रके पूर्वभागमें अर्चन करै, अव्याहत (नहीं हटनेवाले) नारायणनामक अस्त्रको दक्षिणमें पूजै ॥ ५९ ॥ पश्चिममें पांचजन्य उत्तरमें शार्ङ्गधनु, इस प्रकार तीसरे आवरणमें विष्णुनामक साक्षात् भगवान्को ॥ ६० ॥ महाविष्णु और सदाविष्णुको रक्षण करके पूजन करै, इस प्रकार विष्णुके चतुर्व्यूहको क्रमसे चार मूर्ति करके उनकी चारों शक्तिको क्रमसे पूजै ॥ ६१ ॥ आग्नेय दिशामें प्रभाको, और नैर्ऋतमें सरस्वतीको पूजै गण और

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोथ वामनः ॥ रामश्चान्यतमः कृष्णो भवानश्वमुखोपि च ॥ ५८ ॥ तृतीयावरणे चक्रुः पूर्वभागे समर्चयेत् ॥ नारायणाख्यं याम्येस्त्रं क्वचिदव्याहतं यजेत् ॥ ५९ ॥ पश्चिमे पांचजन्यं च शार्ङ्गं धनुरथोत्तरे ॥ एवं त्र्यावरणैः साक्षाद्विश्वाख्यं परमं हरिम् ॥ ६० ॥ महाविष्णुं सदाविष्णुं मूर्त्तीकृत्य समर्चयेत् ॥ इत्थं विष्णोश्चतुर्व्यूहक्रमान्मूर्तिचतुष्टयम् ॥ पूजयित्वा च तच्छक्तीश्चतस्रः पूजयेत्क्रमात् ॥ ६१ ॥ प्रभामाग्नेयदिग्भागे नैर्ऋते तु सरस्वतीम् ॥ गणांबिकां च वायव्ये लक्ष्मीं रौद्रे समर्चयेत् ॥ ६२ ॥ एवं भान्वादिमूर्त्तीनां तच्छक्तीनामनंतरम् ॥ पूजां विधाय लोकेशांस्तत्रैवावरणे यजेत् ॥ ६३ ॥ इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥ वायुं सोमं कुबेरं च पश्चादीशानमर्चयेत् ॥ ६४ ॥ एवं चतुर्थावरणं पूजयित्वा विधानतः ॥ आयुधानि महेशस्य पश्चाद्बाह्यं समर्चयेत् ॥ ६५ ॥ श्रीमत्त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे ॥ परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत् ॥ ६६ ॥ नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वारुणगोचरे ॥ अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत् ॥ ६७ ॥

अम्बिकाको वायव्यमें रौद्र (ईशान) में लक्ष्मीका पूजन करै ॥ ६२ ॥ इस प्रकारसे भानु आदि मूर्ति और उनकी शक्तिको पूजन करके उसी आवरणमें यजन करै ॥ ६३ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु; सोम, कुबेर पीछे ईशान देवका पूजन करै ॥ ६४ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक चौथे आवरणकी पूजा करके बाह्य स्थानमें महेश्वरके आयुधकी पूजा करै ॥ ६५ ॥ त्रिशूलको ईशानमें और वज्रको पूर्व दिशामें यजन करै, परशुको आग्नेयी दिशामें दक्षिण दिशामें बाणका अर्चन करै ॥ ६६ ॥ नैर्ऋत्यमें खड्ग और पश्चिममें पाशको यजन करै वायव्यमें अंकुशको उत्तरमें पिनाकको यजन करै ॥ ६७ ॥

पश्चिममें रौद्रस्वरूप क्षेत्रपालका पूजन करै पांचवें आवरणको बाहर भीतर पूज कर ॥ ६८ ॥ देवताओंको सम्पूर्ण आवरणके बाहर वा पांचवें माताओंके
साथ महोक्षको आगे पूजै ॥ ६९ ॥ फिर उसके चारोंओर देवयोनिको पूजन करै, आकाशके फिरनेहारे ऋषि सिद्ध दैत्य राक्षस ॥ ७० ॥ अनन्तादि
नागेंद्र और उन उन कुलमें उत्पन्नहुए नाग डाकिनी भूत वेताल प्रेत भैरव नायक ॥ ७१ ॥ और अनेक योनियोंमें उत्पन्नहुए पातालवासी नाग नदी समुद्र
गिरि कानन सरोवर ॥ ७२ ॥ पशु पक्षी वृक्ष कीटादि क्षुद्रयोनि अनेक आकारके मनुष्य क्षुद्र योनिके मृग ॥ ७३ ॥ अन्तर भुवन तथा करोडों ब्रह्माण्ड

पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत् ॥ पञ्चमावरणं चैव सम्पूज्यानन्तरं बहिः ॥ ६८ ॥ सर्वावरणदेवानां बहिर्वा पञ्चमेऽथवा ॥
पञ्चमे मातृभिस्सार्द्धं महोक्षं पुरतो यजेत् ॥ ६९ ॥ ततः समंततः पूज्यास्सर्वा वै देवयोनयः ॥ खेचरा ऋषयस्सिद्धा दैत्या यक्षाश्च
राक्षसाः ॥ ७० ॥ अनंताद्याश्च नागें नागैस्तत्तत्कुलोद्भवैः ॥ डाकिनीभूतवेतालप्रेतभैरवनायकाः ॥ ७१ ॥ पातालवासिनश्चान्ये
नानायोनिसमुद्भवाः ॥ नद्यस्समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ॥ ७२ ॥ पशवः पक्षिणो वृक्षाः कीटाद्याः क्षुद्रयोनयः ॥ नराश्च
विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयोनयः ॥ ७३ ॥ भुवनान्यन्तरण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः ॥ बहिरडान्यसंख्यानि भुवनानि सहाधिपैः ॥
॥ ७४ ॥ ब्रह्मांडाधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः ॥ यद्गौड यच्च मामेयं यद्वा शाक्तं ततः परम् ॥ ७५ ॥ यत्किञ्चिदस्ति शब्दस्य
वाच्यं चिदचिदात्मकम् ॥ तत्सर्वं शिवयोः पार्श्वे बुद्धा सामान्यतो यजेत् ॥ ७६ ॥ कृतांजलिपुटाः सर्वेऽचिंत्याः स्मितमुखास्तथा ॥
प्रीत्या संप्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा ॥७७॥ इत्थमावरणाभ्यर्चा कृत्वा विक्षेपशांतये ॥ पुनरभ्यर्च्य देवेशं पञ्चाक्षरमुदीरयेत् ॥७८॥

और अंडसे बाहर जो असंख्य अधिपतियोंसहित भुवन हैं ॥ ७४ ॥ वह ब्रह्माण्डके धारण करनेवाले दशोंदिशाओंमें स्थित हैं, जो गौण जो माया और जो
इस शक्तिसे परे हैं ॥ ७५ ॥ जो कुछ चित्–अचिदात्मक शब्दका वाच्य है, वह सब शिवके पार्श्वमें जानकर सामान्यतासे यजन करै ॥ ७६ ॥ हाथ
जोडे इन सबका चिन्तन करना योग्य है, यह सब देव और देवीको प्रीतिसे देखते हुए हैं ॥ ७७ ॥ इस प्रकार विघ्नशान्तिके निमित्त आवरणकी पूजा

कर, फिर देवेशकी अर्चा कर पंचाक्षरका उच्चारण करै ॥ ७८ ॥ फिर शिवा शिवके निमित्त अमृतके समान सुन्दर व्यंजनसे युक्त शुद्ध चरु निवेदन करै ॥ ७९ ॥ बत्तीस आढक अर्थात् ३ तीन मन आठ सेरका मुख्य चरु है, कमती आढकका अधम है यह सब अपने धनके अनुसार साधनकर श्रद्धासे निवेदन करै ॥ ८० ॥ फिर पानी और ताम्बूलके सहित सामग्री निवेदन करै फिर नीराजनादि करके पूजा शेष करै ॥ ८१ ॥ और उस यागके उपयोगी श्रेष्ठ द्रव्योंका साधन करै, ऐश्वर्यहो तो भक्तिमान प्राणीको धनका लोभ न करना चाहिये, जो शठ श्रद्धाभक्तिकी अपेक्षा नहीं करता और व्यंगसे अनुष्ठान करता है; उसके कोई काम्य कर्म नहीं फलते; यह सत्पुरुषोंके वचन हैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इस कारण शठता और उपेक्षाको छोड सर्वांग योगसे काम्यकर्म करै; यदि फल सिद्धिकी इच्छा होय तो ॥ ८४ ॥ इस प्रकार पूजाको समाप्त कर देव देवीको प्रणाम कर भक्तिसे मन समाधान कर पीछे स्तोत्र पढै ॥ ८५ ॥ फिर स्तोत्र जपके अन्तमें एकसौ आठ और एक सहस्र पंचाक्षर मंत्रको मन लगाकर जपै ॥ ८६ ॥ फिर विद्यागुरुकी पूजा यथा क्रमसे कर श्रद्धापूर्वक सभामें बैठनेवालोंका भी संस्कार करै ॥ ८७ ॥ सब आवरणके सहित देवेशको विदाकरके उस यज्ञकी सामग्री यज्ञके उपकरणों सहित

निवेदयेत्ततः पश्चाच्छिवयोरमृतोपमम् ॥ सुव्यञ्जनसमायुक्तं शुद्धं चारु महाचरुम् ॥ ७९ ॥ द्वात्रिंशदाढकैर्मुख्यमधमं त्वाढकावरम् ॥ साधयित्वा यथासंपच्छ्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ ८० ॥ ततो निवेद्य पानीयं तांबूलं चोपदंशकैः ॥ नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ॥ ८१ ॥ भोगोपयोग्यद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भक्तिमान्विभवे सति ॥ ८२ ॥ शठस्योपेक्षकस्यापि व्यंगं चैवानुतिष्ठतः ॥ न फलंत्येव कर्माणि काम्यानीति सतां कथा ॥ ८३ ॥ तस्मात्सम्यगुपेक्षां च त्यक्त्वा सर्वांगयोगतः ॥ कुर्यात्काम्यानि कर्माणि फलसिद्धिं यदीच्छति ॥ ८४ ॥ इत्थं पूजां समाप्याथ देवं देवीं प्रणम्य च ॥ भक्त्या मनस्समाधाय पश्चात्स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ८५ ॥ ततः स्तोत्रमुपास्यान्ते त्वष्टोत्तरशतावराम् ॥ जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्रोत्तरमुत्सुकः ॥ ८६ ॥ विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ॥ यथोदयं यथाश्रद्धं सदस्यानपि पूजयेत् ॥ ८७ ॥ तत उद्वास्य देवेशं सर्वैरावरणैः सह ॥ मण्डलं गुरवे दद्याद्यागोपकरणैस्सह ॥ ८८ ॥

मंडल गुरुके निमित्त दे ॥ ८८ ॥ अथवा यथायोग्य शिवके आश्रितोंको प्रदान करै अथवा शिवके निमित्त ही शिवक्षेत्रमें समर्पण करै ॥ ८९ ॥
वा शिवाग्निमें देवके निमित्त हवन करै यथायोग्य सम्पूर्ण आवरणोंके देवताओंकी पूजा करके ॥ ९० ॥ विसर्जन कर, यह याग योगेश्वरनामसे त्रिलोकीमें
विख्यात है इससे अधिक योग पृथ्वीमें कोई नहीं है ॥ ९१ ॥ और जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इससे असाध्यहो इस लोकका जो कुछ फल है ॥
॥ ९२ ॥ यह इसका फल नहीं है यह नहीं कहा जाता सम्पूर्ण श्रेयरूपका यही श्रेष्ठ साधन है ॥ ९३ ॥ पुरुषको जो इच्छाहो सो इसीसे होनेयोग्य है;

शिवाश्रितेभ्यो वा दद्यात्सर्वमेवानुपूर्वशः ॥ अथ वा तच्छिवायैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत् ॥ ८९ ॥ शिवाग्नौ वा यजेद्देवं होमद्रव्यैश्च सप्त
भिः ॥ समभ्यर्च्य यथान्यायं सर्वावरणदेवताः ॥ ९० ॥ एष योगेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ न तस्मादधिकः कश्चिद्यागोऽ
स्ति भुवने क्वचित् ॥९१॥ न तदस्ति जगत्यस्मिन्नसाध्यं यदनेन तु॥ ऐहिक वा फलं किंचिदामुष्मिकफलं तु वा ॥ ९२ ॥ इदमस्य
फलं नेदमिति नैव नियम्यते ॥ श्रेयोरूपस्य कृत्स्नस्य तदिदं श्रेष्ठसाधनम् ॥ ९३ ॥ इदं न शक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्च्यते ॥
चिंतामणेरिवैतस्मात्तत्तेन प्राप्यते फलम् ॥ ९४ ॥ तथापि क्षुद्रमुद्दिश्य फलं नैतत्प्रयोजयेत् ॥ लघ्वर्थी महतो यस्मात्स्वयं लघुतरो
भवेत् ॥ ९५ ॥ महद्वा फलमल्पं वा कृतं चेत्कर्म सिध्यति ॥ महादेवं समुद्दिश्य कृतं कर्म प्रयुज्यताम् ॥ ९६ ॥ तस्मादनन्यलभ्येषु
शत्रुमृत्युजयादिषु ॥ फलेषु दृष्टादृष्टेषु कुर्य्यादेतद्विचक्षणः ॥ ९७ ॥ महत्स्वपि च पातेषु महारोगभयादिषु ॥ दुर्भिक्षादिषु शांत्यर्थं
शांतिं कुर्य्यादनेन तु ॥ ९८ ॥ बहुना किं प्रलापेन महाव्यापन्निवारकम् ॥ आत्मीयमस्त्रं शैवानामिदमाह महेश्वरः ॥ ९९ ॥

चिन्तामणिके समान वह फल इसीसे प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥ तोभी क्षुद्रफलके निमित्त इसका प्रयोग करना उचित नहीं, बडा कार्य छोटेमें प्रवृत्त होनेसे
छोटा ही होजाता है ॥ ९५ ॥ बडेमें महत् या लघु कर्म कोई करो सिद्ध होजाता है महादेवके उद्देशसे जो कर्म किया है ॥ ९६ ॥ वह दूसरेसे प्राप्त
नहीं होता, शत्रु अथवा मृत्युके भय होनेमें दृष्ट अदृष्ट फलमें चतुर पुरुष इसको करै ॥ ९७ ॥ बडे पाप और महारोगभय आदिमें तथा दुर्भिक्षादिकी
शान्तिमें इसे करै ॥ ९८ ॥ बहुत कहनेसे क्या है यह महाव्याधिका निवारण करनेवाला है, महेश्वरने शैवोंको यह निज अस्त्र कहा है ॥ ९९ ॥

इससे अधिक कोई भी अपना रक्षा करनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर इस कर्मके करनेसे शुभ फल पाता है ॥ १०० ॥ और जो पवित्र तथा सावधान हो स्तोत्रमात्रका पाठ करता है; वह अपने अभीष्ट अर्थके आठवें अंशके फलको प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥ और जो सावधानहो उसके अर्थका विचार करता हुआ जप करता है तो आधे फलको प्राप्त होता है; इसमें संदेह नहीं; जो अर्थ विचार कर व्रती हो पर्व (अष्टमी व चतुर्दशी आदि) में पाठ करता है वह भी आधे फलको प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥ जो व्रती अर्थका अनुसंधान कर पर्वादिमें एक महीने स्तोत्रका पाठ करै वह सम्पूर्ण फलको प्राप्त होता है ॥

तस्मादितः परं नास्ति परित्राणमिहात्मनः ॥ इति मत्वा प्रयुंजानः कर्मेदं शुभमश्नुते ॥१००॥ स्तोत्रमात्रं शुचिर्भूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः ॥ सोप्यभीष्टतमादर्थादष्टांशफलमाप्नुयात् ॥ १०१ ॥ अर्थं तस्यानुसन्धाय पर्वण्यनशनः पठेत् ॥ अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां फलमर्द्धं समाप्नुयात् ॥ १०२ ॥ यस्त्वर्थमनुसंधाय पर्वादिषु तथा व्रती ॥ मासमेकं जपेत्स्तोत्रं स कृत्स्नं फलमाप्नुयात् ॥ १०३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शैवानां काम्यकर्मवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ उपमन्युरुवाच ॥ स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पंचावरणमार्गतः ॥ योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते ॥ १ ॥ जयजय जगदेकनाथ शंभो प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव ॥ अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचामपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम् ॥ २ ॥ स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित ॥ स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव ॥ ३ ॥ अनन्तकांतिसंपन्न जयासदृशविग्रह ॥ अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमंगल ॥ ४ ॥

॥ १०३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! पाँच आवरणके मार्गसे मैं तुम्हारे प्रति स्तोत्रको कहता हूँ जिससे यह योगेश्वरका पवित्र कर्म समाप्त होजाताहै ॥१॥ हे जगत्‌के एकनाथ शिव ! प्रकृतिसे मनोहर नित्य चित्स्वभाव कलुषके प्रपंचसे दूर मन और वचनकी गतिसे परे तत्त्वसे परे ॥ २ ॥ स्वभावसे निर्मल शरीर चेष्टावाले तुम्हारी जय हो, अपने तुल्य महाशक्तिमान् शुद्ध गुणके सागर आपकी जय हो ॥ ३ ॥ अनन्त कान्तिसे सम्पन्न असदृश शरीर अर्थात् जिनका शरीर किसीके समान नहीं; ऐसे आपकी जय हो. अतर्क्य

महिमाओंके आधार स्थिर मंगल आपकी जय हो ॥ ४ ॥ निरंजन निराधार निष्कारण उदययुक्त आपकी जय हो; निरन्तर परानन्द निवृत्तिके कारण
आपकी जय हो ॥ ५ ॥ परम ऐश्वर्ययुक्त आपकी जय हो, अति करुणाके स्थानकी जय, स्वतंत्र सर्वस्वकी जय, असदृश ऐश्वर्यवान् आपकी जय हो॥
॥ ६ ॥ महाविश्वमें व्याप्तकी जय, किसीसे न ढकेहुए आपकी जय हो, समस्तसे परे आपकी जय हो, अत्यन्त श्रेष्ठकी जय हो ॥ ७ ॥ अद्भुतकी जय,
अक्षुद्रकी जय, अक्षतरूपकी जय, अविनाशीकी जय, अमेयात्माकी जय, अभय और निर्मल स्वरूपकी जय हो ॥८॥ महाभुज महासार महागुण महावक्ता,

निरंजन निराधार जय निष्कारणोदय ॥ निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण ॥ ५ ॥ जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद ॥ जय
स्वतंत्रसर्वस्व जयासदृशवैभव ॥ ६ ॥ जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित् ॥ जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ॥ ७ ॥
जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय ॥ जयामेय जयामाय जयाभाव जयामल ॥ ८ ॥ महाभुज महासार महागुण महाकथ ॥
महाबल महामाय महारस महारथ ॥ ९ ॥ नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ॥ नमश्शिवाय शांताय नमश्शिवतराय ते॥ १० ॥ त्वद
धीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम् ॥ अतस्त्वद्विहिता माज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम् ॥ ११ ॥ अयं पुनर्जनो नित्यं भवदेकसमा
श्रयः ॥ भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं संप्रयच्छतु ॥ १२ ॥ जयांबिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि ॥ जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमवि
ग्रहे ॥ १३ ॥ जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वांतभंजिके ॥ जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे ॥ १४ ॥

महाबली, महामायी, महारस, महारथकी जय हो ॥ ९ ॥ परम देव परम हेतुके निमित्त नमस्कार, शिव शान्त अत्यन्त शिवरूपको नमस्कार है ॥१०॥
आपके ही अधीन यह सुर असुर सहित सम्पूर्ण जगत् है ॥ इस कारण तुम्हारी आज्ञाको कौन मेंट सकता है ॥ ११ ॥ यह आपका भक्त आप
हीके आश्रित है, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर आप हमपर अनुग्रह करो ॥ १२ ॥ हे अम्बिके ! जगन्माता सब जगत्में व्याप्त तुम्हारी जय हो;
अप्रतिहतऐश्वर्य और अनुपमशरीर तुम्हारी जय हो ॥ १३ ॥ वाणी मनसे परे अविद्याको नाश करनेवाली जन्म और जरासे हीन कालसे भी अधिक

तुम्हारी जय हो ॥१४॥ अनेक प्रकारकी अवस्थासे युक्त अनेक सुखरूपकी जय, अनेक महाबल और अनेक गुणसे बढीहुई तुम्हारी जय हो,॥१५॥ अनेक गुणोंमें स्थित लोकमहेश्वरीकी जय हो, विश्वसे अधिक आत्मामें स्थितकी जय, विश्वेश्वरकी प्रियाकी जय हो, संसारके देवतोंसे पूजित विश्वकी विस्तार करनेवाली ॥ १६ ॥ मंगलसे दिव्य शरीर और मंगलसे दीप्तिमान् तुम्हारी जय हो, मंगलके चरित्रवाली और मंगलकी देनेवाली ॥१७॥ परम कल्याणी गुणसमूहकी मूर्ति तुम्हारी जय हो शिवकी प्रिया विश्वात्मा पराशक्ति शिवशक्तिको नमस्कार है, तुमसे ही यह जगत् उत्पन्न होकर तुममें ही लय होजाता है

जयानेकविधानस्थे जयानेकसुखात्मिके ॥ जयानेकमहासत्त्वे जयानेकगुणोर्जिते ॥१५॥ जयानेकगुणात्मस्थे जयलोकमहेश्वरि ॥ जय
विश्वाधिकात्मस्थे जयविश्वेश्वरप्रिये ॥ जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृंभिणि ॥ १६ ॥ जय मंगलदिव्यांगि जय मंगलदीपिके ॥
जय मंगलचारित्रे जय मंगलदायिनि ॥ १७ ॥ नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये ॥ नमः शिवायैविश्वस्मात्परस्यै शिवशक्तये ॥
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते ॥ १८ ॥ त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोपि न शक्नुयात् ॥ जन्मप्रभृति देवेशि जनोयं त्वदुपा
श्रितः ॥ १९ ॥ अतोस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम् ॥ पंचवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥ २० ॥ वर्णब्रह्मकलादेहो
देवस्सकलनिष्कलः ॥ शिवभक्तिसमारूढः शांत्यतीतस्सदाशिवः ॥ भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु ॥ २१ ॥ सदा
शिवांकमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया ॥ जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् ॥ २२ ॥ शिवयोर्दयिता पुत्रौ देवौ हेरंबषण्मुखौ ॥
शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ ॥ २३ ॥

॥ १८ ॥ तुम्हारे विना फल देनेको ईश्वर भी समर्थ नहीं हैं, हे देवि ! जन्मसे लेकर यह सदा तुम्हारी उपासना करता है ॥ १९ ॥ सो इस अपने भक्तके मनोरथ सफल करो, पाँच मुख दश भुजा शुद्ध स्फटिकमणिके समान ॥ २० ॥ प्रणवादिके अन्तर्गत आकाशादि वर्ण ईशानादिमें निवृत्ति आदि कलारूप देहयुक्त होकर भी वह देव निष्कल है; शिवमूर्तिमें आरूढ शान्त्यतीत सदाशिव है, भक्तिपूर्वक मुझसे आराधना कियीहुई मनोभिलषित पदार्थ दे ॥ २१ ॥ और सदाशिवके अंकमें स्थित शिवानामक शिवकी इच्छाशक्ति सब लोककी जननी मेरे मनोरथोंको पूर्ण करै ॥ २२ ॥ शिवके प्रिय पुत्र गणेश

और कार्त्तिकेय शिवके अनुभावसे शिवरूप शिवके ज्ञानामृत पान कग्नेवाले ॥२३॥ शिवा शिवसे नित्य सत्कार पायेहुए तृप्त परस्परस्नेही, ब्रह्मादि देवताओंसे
सदा पूजित ॥ २४ ॥ सब लोककी रक्षा करनेको सदा उद्यत अपने अंशभेदसे अनेक अवतार अपनी इच्छासे करनेवाले ॥ २५ ॥ इन दोनोंका शिवा
शिवके निकट मैंने सदा पूजन किया है, उनकी आज्ञासे वे मेरे मनोरथोंको प्रदान करैं ॥ २६ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान ईशाननामक सदाशिव परमात्मा
शिवकी मूर्धाभिमानवाली मूर्ति है ॥ २७ ॥ शिवके अर्चनमें प्रीति करनेवाले शान्त शान्त्यतीत आकाशमें स्थित पंचाक्षरके अंतिम बीज पाँच कलाओंसे

तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ ॥ सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥ २४ ॥ सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ
सदा ॥ स्वेच्छावतारं कुर्वंतौ स्वांशभेदैरनेकशः ॥ २५ ॥ ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं
मे प्रयच्छताम् ॥ २६ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम् ॥ मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ॥ २७ ॥ शिवार्च
नरतं शांतं शांत्यतीतं मखास्थितम् ॥ पंचाक्षरांतिमं बीजं कलाभिः पंचभिर्युतम् ॥ २८ ॥ प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम् ॥
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे:प्रयच्छतु ॥ २९ ॥ बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥ पूर्ववक्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः ॥
॥ ३० ॥ शांत्यात्मकं मरुत्संस्थं शंभोः पादार्चने रतम् ॥ प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम् ॥ ३१ ॥ पूर्वभागे मया भक्त्या
शक्त्या सह समर्चितम् ॥ पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३२ ॥ अंजनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम् ॥ देवस्य दक्षिणं
वक्रं देवदेवपदार्चकम् ॥ ३३ ॥ विद्यापादं समारूढं वह्निमंडलमध्यगम् ॥ द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम् ॥ ३४ ॥

युक्त ॥ २८ ॥ पहले आवरणमें शक्तिके सहित प्रथम पूजित वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थनाको पूर्ण करै ॥ २९ ॥ बालसूर्यके समान कान्तिमान् पुरातन
पुरुष परमात्मा शिवके पूर्वमुखके अभिमानरूप हैं शान्ति आत्माके मरुतमें स्थित ॥ ३० ॥ शिवके पादार्चनमें प्रीति करनेवाले शिवके बीजोंमें तुरीयरूप
कलाओंमें चतुष्कलारूप ॥ ३१ ॥ पूर्वभागमें मैंने भक्ति और शक्ति सहित शिवका अर्चन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थनाको प्रदान करै ॥
॥ ३२ ॥ अंजनके समान कान्तिमान् अघोर घोर शरीरसे देवका दक्षिणमुख देवदेवपद करके अर्चित ॥ ३३ ॥ विद्यापादपर आरूढ वह्निमंडलके बीचमें

प्राप्त दूसरे शिवके बीजोंमें कलाओंमें अष्ट कलासे संयुक्त ॥ ३४॥ शिव दक्षिण दिशाके भागमें शक्तिके साथ पूजित पवित्र परब्रह्म मेरे मनके अभिलाषको प्रदान करै ॥ ३५ ॥ कुंकुमके क्षोदके समान वामनामक सुन्दर वेष धारण किये उत्तर मुख इनका प्रतिष्ठामें प्रतिष्ठित है ॥ ३६ ॥ वारिमंडलमें स्थित महादेवके पूजनमें प्रीतिमान् शिव बीजमें दूसरे तेरह कलासे संयुक्त ॥ ३७ ॥ देवेशको उत्तर दिग्भागमें शक्तिके सहित पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मेरे मनोभिलाषको प्रदान करै ॥ ३८ ॥ शंख चन्द्र और कुंदके समान श्वेत सद्यनामक मुख सौम्य लक्षणसे युक्त शिवके पश्चिम मुखको शिवके चरणोंमें

शंभोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ॥ पवित्रं मध्यमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३५ ॥ कुंकुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेषधृक् ॥ वक्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम् ॥ ३६ ॥ वारिमंडलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम् ॥ तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम् ॥ ३७ ॥ देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ॥ पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥ ३८ ॥ शंखकुंदेंदुधवलं संध्याख्यं सौम्यलक्षणम् ॥ शिवस्य पश्चिमं वक्रं शिव पादार्चने रतम् ॥ ३९ ॥ निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम् ॥ तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम् ॥४०॥ देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम् ॥ पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ॥४१॥ शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्तिशिवभाविते ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४२ ॥ शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्तिशिवाश्रिते ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४३ ॥ शिवस्य च शित्रायाश्च वर्मणा शिवभाविते ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४४ ॥ शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्तिशिवाश्रिते ॥ सत्कृत्य शित्रयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४५ ॥

प्रीति करनेवाले ॥ ३९ ॥ निवृत्ति पदकी निष्ठावाले पृथ्वीमें स्थित तीसरे शिव बीजोंमें प्रथम आठ कलाओंसे युक्त ॥ ४० ॥ देवका पश्चिम दिशामें शक्तिके सहित पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मनोवांछित प्रदान करैं ॥ ४१ ॥ शिव और शित्राकी मूर्ति हृदयमें भावित होनेपर उनकी आज्ञासे मेरे मनोभिलाष पूरे हों ॥ ४२ ॥ शिव और शिवाकी शिखामूर्ति शिवके आश्रय होनेपर शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरे मनोरथ पूर्ण करै ॥ ४३ ॥ शिव और शिवाकी शिवके आश्रित वर्ममूर्ति शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरी अभिलाषा पूरी करै ॥ ४४ ॥ शिव शिवाकी नेत्रमूर्त्ति शिवभावित हो,

शिवकी आज्ञाको पुरस्कार कर मेरे मनोरथ पूरे करै ॥ ४५ ॥ शिवा शिवकी अस्त्रमूर्तिके नित्य अर्चनमें तत्परहो शिवा शिवकी आज्ञाको पुरस्कार कर
मेरी अभिलाषाको पूर्ण करै ॥ ४६ ॥ वाम ज्येष्ठ रुद्र कालविकरण बलविकरण बलप्रमथन पर ॥ ४७ ॥ सर्वभूतको दमन करनेवाली वैसे ही आठ शक्ति
परमेशकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ ४८ ॥ फिर अनन्त सूक्ष्म शिव एकनेत्र एकरुद्र त्रिमूर्ति श्रीकंठ शिखण्ड ॥ ४९ ॥ और इसी प्रकार उनकी
आठ शक्ति जो दूसरे आवरणमें पूजी हैं, वे शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथोंको पूर्ण करैं ॥ ५० ॥ भावादिक आठ मूर्ति और उनकी शक्ति महादेवा

अस्त्रमूर्तीं च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ॥ ४६ ॥ वामौ ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विक
रणस्तथा ॥ बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः ॥ ४७॥ सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः ॥ प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु शिवयोरेव
शासनात् ॥ ४८ ॥ अथानंतश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः ॥ एकरुद्राख्यमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखंडकः ॥ ४९ ॥ तथाष्टौ शक्तय
स्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः ॥ ते मे कामं प्रयच्छंतु शिवयोरेव शासनात् ॥ ५० ॥ भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः ॥ महा
देवादयश्चान्येतथैकादशमूर्तयः ॥५१॥ शक्तिभिस्सहितास्सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशंतु फलमीप्सितम् ॥
॥ ५२ ॥ वृषराजो महातेजा महामेघसमस्वनः ॥ मेरुमंदरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ॥ ५३ ॥ सिताभ्रशिखराकारः ककुदा परिशो
भितः ॥ महाभोगींद्रकल्पेन वालेन च विराजितः ॥ ५४ ॥ रक्तास्यशृंगचरणौ रक्तप्रायविलोचनः ॥ पीवरोन्नतसर्वांगस्सुचारुगमनो
ज्ज्वलः ॥ ५५ ॥ प्रशस्तलक्षणः श्रीमान्प्रज्वलन्मणिभूषणः ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः ॥ ५६ ॥

दिक तथा दूसरी रुद्रकी ग्यारह मूर्ति ॥ ५१ ॥ शक्ति सहित जो सब तीसरे आवरणमें स्थित हैं वह शिवकी आज्ञाको आगे कर मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥
॥ ५२ ॥ वृषराज महातेजस्वी महामेघके समान शब्दवाले मेरुमंदर कैलास हिमाद्रिके शिखरके समान ॥५३॥ श्वेत मेघके शिखरके समान अपने कुमुदसे
शोभित महाभोगीन्द्रके समान पूंछ करके विराजमान ॥५४॥ लाल मुख शृंग चरण और लाल नेत्रसे युक्त पुष्ट और ऊंचे सर्वांगवाले सुन्दर गमनसे उज्ज्वल
॥ ५५ ॥ प्रशंसायुक्त लक्षणवाले श्रीमान् प्रज्वलित मणि और भूषणसे युक्त शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवा शिवके ध्वजा और वाहनसे युक्त॥५६॥

तथा उनके चरणोंके न्याससे जिनका अपर शरीर भावित है, गोराज पुरुष श्रीमान् शूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए उनकी आज्ञाको आगे कर यह मेरे मनोरथोंको पूरे करैं ॥ ५७ ॥ महातेजस्वी नन्दीश्वर पार्वतीके पुत्र गणेश वा कुमार नारायण आदि देवताओंसे नित्य नमस्कार कियेहुए मेरे मनोरथोंको पूरे करैं ॥ ५८ ॥ शिवके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ स्थित सर्वेश्वरके समान सब असुरोंके मारनेवाले ॥ ५९ ॥ सम्पूर्ण शिवधर्मोंकी अध्यक्षतामें अभिषेकित, शिवके प्रिय शिवमें आसक्त श्रीमान् शूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये ॥ ६० ॥ शिवके आश्रितोंमें संसक्त और

तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः ॥ गोराजपुरुषः श्रीमाञ्छ्रीमच्छूलवरायुधः ॥ तयोराज्ञां पुरुस्त्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ५७ ॥ नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः॥सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वंदितः ॥ ५८ ॥ शर्वस्यांतःपुरद्वारि सार्द्धं परिजनैः स्थितः ॥ सर्वेश्वरसमप्रख्यस्सर्वासुरविमर्दनः ॥ ५९ ॥ सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः ॥ शिवप्रियश्शिवासक्तश्श्रीमच्छूलवरायुधः ॥ ॥ ६० ॥ शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६१ ॥ महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः ॥ महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु ॥ ६२ ॥ शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवयोरर्चकस्सदा ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ॥६३॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः ॥ महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ६४ ॥ ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ॥ वाराही चैव माहेंद्री चामुंडा चंडविक्रमा ॥ ६५ ॥ एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः ॥ प्रार्थितं मे प्रयच्छंतु परमेश्वरशासनात् ॥ ६६ ॥

उन्हींके अनुरक्त शिवा शिवकी आज्ञाको सत्कार करके मनोरथ पूरे करैं ॥ ६१ ॥ महाकाल महाबाहु महादेवके समान दूसरे महादेवके आश्रितोंसे नित्य रक्षित ॥ ६२ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त सदा शिवा शिवके पूजनमें तत्पर शिवा शिवकी आज्ञाको पुरस्कार कर मेरे काम पूरे करैं ॥ ६३ ॥ सब शास्त्रार्थके तत्त्व जाननेवाले सब लोकोंके शासन करनेवाले विष्णुकी मूर्तिरूप महाशरीर महामोहका तनय मधु मांस और आसवके प्रिय उनकी आज्ञाको मानकर मेरे अभिलाष पूरे करो ॥ ६४ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी, वाराही माहेन्द्री तथा चंडविक्रमा चामुण्डा ॥ ६५ ॥ यह सात सब लोकोंकी

माता हैं, परमेश्वरकी आज्ञासे मेरा प्रिय करैं ॥ ६६ ॥ मत्तमातंगके समान गमन करनेवाले गंगा उमा और शंकरके पुत्र आकाशरूपी देह दिशारूपी बाहु सोम सूर्य और अग्निके समान नेत्रवाले ॥ ६७ ॥ नित्य ऐरावतादि दिग्गजोंसे पूजित शिवज्ञानके मदसे उद्भिन्न देवताओंको मंगल करनेवाले असुरोंको विघ्न करनेवाले विघ्नेश्वर ॥ ६८ ॥ शिवसे भावित शिवकी आज्ञाको आगेकर मेरे मनोरथ पूरे करें ॥ ६९ ॥ स्वामिकार्त्तिक शिवसे उत्पन्न शक्ति और वज्रके धारण करनेवाले प्रभु अग्निपुत्र देव अपर्णाके पुत्र ॥ ७० ॥ प्रभु गंगाके गणोंके अम्बा और कृत्तिकाके विशाखा शाखा और नैगमेयसे युक्त ॥ ७१ ॥

मत्तमातंगवदनो गंगोमाशंकरात्मजः ॥ आकाशदेहो दिग्बाहुस्सोमसूर्याग्निलोचनः ॥६७॥ ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः ॥
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ॥ ६८ ॥ विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु
कांक्षितम् ॥ ६९ ॥ षण्मुखश्शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः ॥ अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः ॥ ७० ॥ गंगायाश्च गणां
बायाः कृत्तिकानां तथैव च ॥ विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ॥ ७१ ॥ इंद्रजिच्चंद्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा ॥ शैलानां
मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा ॥ ७२ ॥ तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः ॥ कुमारस्सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ॥ ७३ ॥
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चकस्सदा ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ७४ ॥ ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजने
रता ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ७५ ॥ त्रैलोक्यवंदिता साक्षादुल्काकारा गणांबिका ॥ जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं
ब्रह्मणाऽभ्यर्थिता शिवात् ॥ ७६ ॥

इन्द्रजित चन्द्रसेनानी तारकासुरके जीतनेवाले पर्वतोंमें मेरुमुख्यको अपने तेजसे वेध करनेवाले ॥७२॥ तप्ते सुवर्णके समान शतपत्र दलके समान नेत्रवाले कुमार जो सुकुमारोंके रूप और उदाहरणरूप ॥ ७३ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त सदाशिवके पूजन करनेवाले हैं वह शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरी अभिलाषाको पूर्ण करैं ॥ ७४ ॥ ज्येष्ठ वरिष्ठ वरके देनेवाले शिवा शिवके पूजनमें प्रीति करनेवाले उनकी आज्ञाको पुरस्कृत कर मेरे मनोरथोंको प्रदान करैं ॥ ७५ ॥ त्रिलोकीसे नमस्कृत साक्षात् उल्काकारा गणअम्बिका जगत्की सृष्टिके बढानेको ब्रह्माके शिवसे प्रार्थना करनेपर ॥ ७६ ॥

विभागको प्रातहुए शिवाके भौंहसे निकलीहुई दाक्षायणी सती हैमवती उमा ॥ ७७ ॥ कौशिकीकी माता तथा भद्रकालीकी जननी अपर्णा और पाटलाकी जननी ॥ ७८ ॥ शिवार्चनमें नित्यप्रति प्रीति करनेवाली रुद्राणी रुद्रवल्लभा शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ ७९ ॥ सब गणोंका पति शिवके मुखसे उत्पन्न चंद्रशिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे निमित्त मंगलप्रदान करैं ॥ ८० ॥ वृषभनाम गणपति वृषवाह (शिव) के चरणोंका पूजन करनेवाले शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ ८१ ॥ श्रीमान् पिंगलनामक गणपति शिवमें आसक्त शिवका प्रिय शिवा शिवकी आज्ञासे

शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृताः ॥ दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा ॥ ७७ ॥ कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च ॥ अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च ॥ ७८ ॥ शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ७९ ॥ चंडः सर्वगणेशानः शंभोर्वदनसंभवः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ८० ॥ पिंगलो गणपः श्रीमाञ्छिवासक्तः शिवप्रियः ॥ आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु ॥ ८१ ॥ भृंगीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः ॥ प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरः सरम् ॥ ८२ ॥ वीरभद्रो महातेजा हिमकुंदेंदुसन्निभः ॥ भद्रकालीप्रियो नित्यं मातॄणां चाभिरक्षिता ॥ ८३ ॥ यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः ॥ उपेंद्रेंद्रयमादीनां देवानामंगतक्षकः ॥ ८४ ॥ शिवस्यानुचरः श्रीमाञ्छिवशासनपालकः ॥ शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ८५ ॥ सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा ॥ शिवयोः पूजने सक्ता सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥८६॥ विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ॥ शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ८७ ॥

मेरे मनोरथ पूरे करै ॥ ८२ ॥ शृंगीशनाम गणपति शिवके आराधनमें तत्पर अपने स्वामीकी आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूरे करै ॥ ८३ ॥ महातेजस्वी वीरभद्र हिमचंद्र और कुंदके समान कान्तिमान् भद्रकालीका नित्यप्रिय मातृकाओंसे रक्षित ॥ ८४ ॥ यज्ञ और दुरात्मा यज्ञका शिर हरनेवाला उपेन्द्र इन्द्र यम और देवताओंके अंगको तक्षक (काटनेवाले) श्रीमान् शिवके अनुचर शिवकी आज्ञाके पालनेवाले शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करैं॥ ८५॥ शिवके वाणीरूप कमलसे उत्पन्नहुई सरस्वती शिवा शिवके पूजनमें नित्य मेरे मंगलको प्रदान करै ॥ ८६ ॥ विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित लक्ष्मी शिवा

शिवके पूजनमें प्रीति करनेवाली शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ ८७ ॥ महामोटी महादेवीके चरणकमल पूजनेवाली उन्हीं पार्वतीकी
आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ ८८ ॥ कौशिकी सिंहके ऊपर चढीहुई पार्वतीकी परम पुत्री विष्णुकी निद्रा महामाया महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥
॥ ८९ ॥ निशुंभ शुंभकी मारनेवाली, मधु मांस आसवको प्यार करनेवाली माता देवीकी आज्ञा मानकर मेरी मनोकामना पूरीकरैं ॥ ९० ॥ रुद्र तथा
रुद्रके समान कान्तिमान् महापराक्रमी प्रमथगण तथा भूतनामवाले महाबली गण महादेवके समान कान्तिमान् ॥ ९१ ॥ नित्यमुक्त उपमा रहित निर्द्वंद्व

महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा ॥ तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ८८ ॥ कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः
परमा सुता ॥ विष्णोर्निद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी ॥ ८९ ॥ निशुंभशुंभसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया ॥ सत्कृत्य शासनं मातुस्सा
मे दिशतु कांक्षितम् ॥ ९० ॥ रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ॥ भूताख्याश्च महावीर्य्या महादेवसमप्रभाः ॥ ९१ ॥ नित्य
मुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः ॥ सशक्तयस्सानुचरास्सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ९२ ॥ सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥
परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः ॥९३॥ परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः ॥ शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ॥ ९४ ॥
सौम्याघोरास्तथा मिश्राश्चांतरालद्वयात्मिकाः ॥ विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ॥ ९५ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं
दिशंतु वै ॥ देव्या प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ॥ ९६ ॥ सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ॥ तृतीयावरणे शंभोर्भ
क्त्या नित्यं समर्चितः ॥ ९७ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ दिवाकरो महेशस्य मूर्त्तिर्दीप्तसुमंडलः ॥ ९८ ॥

उपद्रवरहित शक्ति और अनुचरों सहित सब लोकसे नमस्कृत ॥ ९२ ॥ सब लोकोंकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ परस्पर अनुरक्त और परस्पर
अनुव्रत ॥ ९३ ॥ परस्पर अतिस्निग्ध रूप परस्पर नमस्कार कियेहुए नित्य शिवके प्यारे शिवके लक्षणसे लक्षित ॥ ९४ ॥ सौम्य और घोर दो प्रकारसे
युक्त विरूप सुन्दररूप तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये ॥ ९५ ॥ शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरा मंगल करैं, देवीकी प्रिय सखीवर्ग सब देवीके
लक्षणोंसे लक्षित ॥ ९६ ॥ रुद्रकन्या और अनेक शक्तियोंसे युक्त तीसरे आवरणमें शिवभक्तिसे नित्य पूजित ॥ ९७ ॥ शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर

मुझको मंगल प्रदान करैं यह सूर्य शिवकीमूर्तियुक्त दीप्तमंडलवालाहै ॥ ९८ ॥ निर्गुण गुणोंसे युक्त गुणमात्र स्वरूप विकार रहित साधारणी जगत प्रकाश रूपवाली जिसकी विक्रिया है ॥ ९९ ॥ असाधारण कर्मवाले सृष्टिस्थिति लयके क्रमसे तीन आवरण चार अथवा पाँचसे विभक्त ॥ १०० ॥ चौथे आवरणमें शम्भुको अनुचरों सहित पूजकर शिवप्रिय शिवमें आसक्त शिवके चरणअर्चनमें प्रीति करनेवाले ॥ १०१ ॥ शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगलदें, सूर्यके हृदयादि षडंग आदित्यादि मूर्तियें ॥ १०२ ॥ आदित्य भास्कर भानु रवि यह क्रमसेहैं अर्क ब्रह्मा रुद्र विष्णु यह आदित्यकी

निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ॥ अविकारात्मकश्चाद्य एकस्सामान्यविक्रियः ॥ ९९ ॥ असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्ताः पंचधा पुनः ॥ १०० ॥ चतुथावरणे शंभोः पूजितश्चानुगैः सह ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥ १०१ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ दिवाकरषडंगानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः ॥ १०२ ॥ आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ॥ अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः ॥ १०३ ॥ विस्तरासुतराबोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः ॥ उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः ॥ १०४ ॥ सोमादिकेतुपयता ग्रहाश्च शिवभाविताः ॥ शिवयोराज्ञयानुज्ञा मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १०५ ॥ अथ वा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः ॥ ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः ॥ १०६ ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्चासुरास्तथा ॥ सप्तसप्तगणाश्चैते सप्तच्छंदोमया हयाः ॥ १०७ ॥ वालखिल्यादयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १०८ ॥

मूर्ति हैं ॥ १०३ ॥ और विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी, अपरा, उषा, प्रभा, प्राज्ञा, संध्या, यह शक्तिहैं ॥ १०४ ॥ और चंद्रमासे आदि लेकर शिवके भावितग्रह शिवा शिवकी आज्ञासे मुझे मंगल प्रदान करैं ॥१०५॥ अथवा बाहर आदित्य बारह राशि ऋषि देव गन्धर्व सर्प अप्सराओंके गण ॥ १०६ ॥ ग्रामणी योनि यक्ष राक्षस असुर सात सात गण छन्दोमय सूर्यके घोडे ॥ १०७ ॥ वालखिल्य गण और सब शिवके चरणपूजक

शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मुझे मंगल प्रदान करैं ॥ १०८ ॥ ब्रह्मा देवदेवकी मूर्ति भूमंडलके स्वामी चौंसठ गुणोंका ऐश्वर्य जो बुद्धितत्त्वमें स्थित है ॥ ॥ १०९ ॥ निर्गुण गुणसे संकीर्ण केवल गुणमात्र मूर्ति अविकारात्मक देव इसके उपरान्त दूसरे साधारण ॥ ११० ॥ और असाधारण कर्म सृष्टिकी लयस्थिति क्रमसे करनेवाले इस प्रकार चार और पाँच प्रकारसे विभक्त ॥ १११ ॥ चौथे आवरणमें शिव अनुचरोंके सहित पूजित हुए शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवके चरण पूजनमें प्रेम करनेवाले ॥ ११२ ॥ शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मेरे मंगलको दें, ब्रह्मा लोकपति विराट् काल पुरुष ॥ ११३ ॥

ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमंडलाधिपः ॥ चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥ १०९ ॥ निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ॥ अविकारात्मको देवस्ततस्साधारणः पुरः ॥११०॥ असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ वं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पंचधा पुनः ॥ १११ ॥ चतुर्थावरणे शंभोः पूजितश्च सहानुगैः ॥ शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवपादार्चने रतः ॥ ११२ ॥ सत्कृत्य शिवयो राज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ हिरण्यगर्भो लोकेशो विराद् कालश्च पूरुषः ॥ ११३ ॥ सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः ॥ प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः ॥ ११४ ॥ एकादश सपत्नीका धर्मस्संकल्प एव च ॥ शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः ॥ ११५ ॥ शिवाज्ञावशगास्सर्वे दिशंतु मम मंगलम् ॥ चत्वारश्च तथा वेदास्सेतिहासपुराणकाः ॥ ११६ ॥ धर्मशास्त्राणि विद्याभि वैदिकीभिस्समन्विताः ॥ परस्परविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ॥ ११७ ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ अथ रुद्रो महादेवः शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ॥ ११८ ॥

सनत्कुमार सनन्दन सनातन प्रजापति दक्षादि ब्रह्मपुत्र ॥ ११४ ॥ ग्यारह सपत्नी सहित धर्म और संकल्प शिवपूजामें प्रीति करनेवाले शिवभक्तिमें परायण ॥११५॥ सब शिवकी आज्ञासे माननेवाले मुझे मंगल प्रदान करैं, चार वेद इतिहास और पुराणके सहित ॥११६॥ धर्मशास्त्रादि वेदकी विद्याओंके सहित परस्पर अविरुद्ध अर्थवाले एक शिवकेही प्रतिपादन करनेवाले ॥११७॥ शिवा शिवकी आज्ञासे मुझे मंगल दें, रुद्र महादेव शिवकी बडी मूर्ति ॥ ११८ ॥

अग्निमंडलके अधीश्वर पुरुष ऐश्वर्यवान् प्रभु शिवके अभिमानसे सम्पन्न निर्गुण त्रिगुणात्मक ॥ ११९ ॥ केवल राजसिक सात्त्विक और तामसिक शिवके बीचमें विकार रहित हो प्रेम करनेवाले समान विकारवाले ॥ १२० ॥ असाधारण कर्मवाले सृष्टि आदि साधनसे पृथक् ब्रह्माके शिरछेदन करनेवाले उनके जनक और पुत्र ॥ १२१ ॥ तथा विष्णुके भी पिता पुत्र नियामक उनका नित्य बोध करनेवाले अनुग्रह करनेवाले प्रभु ॥ १२२ ॥ अण्डके भीतर बाहरवर्ती रुद्रलोक दोके स्वामी शिवके प्रिय शिवके चरणार्चनमें तत्पर ॥ १२३ ॥ शिवकी आज्ञाको मानकर मेरा मंगल करैं वेदोंके

वाह्नेयमंडलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान्प्रभुः ॥ शिवाभिमानसंपन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः ॥ ११९ ॥ केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः ॥ अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः ॥ १२० ॥ असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ॥ ब्रह्मणोपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः ॥ १२१ ॥ जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः ॥ बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः ॥ १२२ ॥ अंडस्यांतर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥ १२३ ॥ शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् ॥ तस्य ब्रह्म षडंगानि विद्येशांतं तथाष्टकम् ॥ १२४ ॥ चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः ॥ शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः ॥ शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १२९ ॥ अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः ॥ वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ॥ १२६ ॥ निर्गुणस्सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः ॥ अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः ॥ १२७ ॥ असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ॥ दक्षिणांगभवेनापि स्पर्द्धमानः स्वयंभुवा ॥ १२८ ॥

षडंग विद्येशोंके अष्टक ॥ १२४ ॥ चार मूर्तिके भेद शिवहैं, पूर्व जिसके ऐसे शिवके अर्चन करनेवाले शिव भव हर मृड तथा दूसरे शिवा शिवकी आज्ञा मानकर मुझे मंगलदे ॥ १२५ ॥ और विष्णु शिव और महेशके दूसरे शरीर जलतत्त्वके अधिपति साक्षात् जगत्के कारणमें स्थित ॥ १२६ ॥ निर्गुण महासत्त्व युक्त केवल गुणमूर्ति अविकाराभिमानी तीन ब्रह्मा विष्णु रुद्रमें समान विकारवाले ॥ १२७ ॥ असाधारण कर्म करनेवाले सृष्टि आदिके करनेसे

पृथक् दक्षिण अंगमें उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मासे स्पर्धमान ॥ १२८ ॥ साक्षात् आदि ब्रह्मा जो जगत्के स्रष्टाहैं और उनके स्रष्टा विष्णु दोनों लोकोंके स्वामी॥
॥ १२९ ॥ असुरोंको मारनेवाले [विष्णु] इन्द्रके अनुज भृगुके शापसे दश प्रकारसे प्रादुर्भूत ॥ १३० ॥ पृथ्वीका भार दूर करनेको पृथ्वीमें अवतार
लेते हैं, अप्रमेय बलसे युक्त मायावाले मायासे जगत्को मोहित करतेहुए ॥ १३१ ॥ उन महाविष्णुकी मूर्ति करके अथवा महाविष्णुकी मूर्ति जो नित्य
वैष्णवोंसे पूजितहैं वह तीनों मूर्तिसे युक्त आसनमें स्थित ॥ १३२ ॥ शिवके प्रिय शिवमें आसक्त शिवके पदार्चनमें प्रेम करनेवाले शिवकी आज्ञा माँगकर

आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु ॥ अंडस्यांतर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः ॥ १२९ ॥ असुरांतकरश्चक्री शक्रस्यापि
तथानुजः ॥ प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह ॥ १३० ॥ भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरत्क्षितौ ॥ अप्रमेयबलो मायी मायया
मोहयञ्जगत् ॥ १३१ ॥ मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा ॥ वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने ॥ १३२ ॥ शिव
प्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ॥ शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् ॥ १३३ ॥ वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः
परः ॥ संकर्षणस्समाख्याताश्चतस्रो मूर्तयो हरेः ॥ १३४ ॥ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥ रामत्रयं तथा कृष्णो
विष्णुस्तुरगवक्त्रकः ॥ १३५ ॥ चक्रं नारायणस्यास्त्रं पांचजन्यं च शार्ङ्गकम् ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १३६ ॥
प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता ॥ शिवयोः शासनादेता मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १३७ ॥ इंद्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्व
रुणस्तथा ॥ वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक् ॥ १३८ ॥

मुझे मंगल दें ॥ १३३ ॥ वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और संकर्षण यह हरिकी तीन मूर्ति हैं ॥ १३४ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम
तीनों तथा कृष्ण, विष्णु, हयग्रीव ॥ १३५ ॥ चक्र, नारायणके अस्त्र, पांचजन्य, शार्ङ्ग शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगलप्रदान करैं ॥
॥ १३६ ॥ प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मी शिवकी भक्तिवाली शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मंगलको प्रदान करैं ॥ १३७ ॥ इन्द्र अग्नि यम निर्ऋति वरुण

वायु सौम्य कुबेर ईशान शूलधारी ॥ १३८ ॥ सब शिवपूजनमें प्रेम करनेवाले शिवके सद्भावसे भावित शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मुझे मंगल प्रदान करैं ॥ १३९ ॥ त्रिशूल वज्र परशे बाण; खड्ग पाश अंकुश श्रेष्ठपिनाक आयुध ॥ १४० ॥ और भी देवके दिव्य आयुध और देवीके आयुध नित्यही शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरा कल्याण करैं ॥ १४१ ॥ वृषरूपधारी कामधेनुसे उत्पन्न महाबली धर्म बडवाग्निकी स्पर्धा करनेवाला पाँच गोमाताओंसे आवृतं ॥ १४२ ॥ तपसे परमेश्वरके वाहनत्वको प्राप्त हुआ, शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथोंको पूरा करैं ॥ १४३ ॥ नन्दा सुभद्रा सुरभि

सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशंतु मे ॥ १३९ ॥ त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ ॥ खड्गपाशांकुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः ॥ १४० ॥ दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वंतु मे सदा ॥ १४१ ॥ वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः ॥ वडवाख्यानलस्पर्द्धां पंचगोमातृभिर्वृतः ॥ १४२ ॥ वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसापरमेशयोः ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ॥ १४३ ॥ नंदा सुनंदा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ॥ पंच गोमातरस्त्वेताश्शिवलोके व्यवस्थिताः ॥ १४४ ॥ शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः ॥ शिवयोः शासनादेव दिशंतु मम वांछितम् ॥ १४५ ॥ क्षेत्रपालो महातेजा नीलजीमूतसन्निभः ॥ दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः ॥ १४६ ॥ रक्तोर्द्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान्भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ॥ रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः ॥ १४७ ॥ नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः ॥ भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः ॥ १४८ ॥

सुशीला यमुना यह पांचों गोमाता शिवलोकमें स्थित हैं ॥ १४४ ॥ नित्य शिवभक्तिमें तत्पर शिवके पूजनमें परायण शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथ पूरे करैं ॥ १४५ ॥ नीले बादलके समान महातेजस्वी क्षेत्रपाल डाढोंसे करालमुख स्फुरायमान लाल होठसे उज्ज्वल ॥ १४६ ॥ लाल वर्णके ऊपर उठेहुए बाल श्रीमान् टेढी भौंहसे कुटिल देखनेवाले लाल और गोल नेत्रोंवाले चन्द्रमा और सर्पके भूषणोंवाले ॥ १४७ ॥ नग्न और त्रिशूल पाश तलवार कपाल

हाथमें लिये भैरव भयदायक सिद्ध और योगियोंसे युक्त ॥ १४८ ॥ प्रत्येक क्षेत्रमें स्थित सत्पुरुषोंकी रक्षामें स्थित शिवकोही प्रणाम करनेवाले शिवके सद्भावसे भावित ॥ १४९ ॥ विशेषकर शिवके आश्रितोंको पुत्रके समान रक्षा करतेहुए शिवा शिवकी आज्ञाको मानकर मेरा मंगल करैं ॥ १५० ॥ तालजंघादिक अपने प्रथम आवरणमें अर्चितहैं; यह चारों शिवा शिवकी आज्ञामानकर मेरा मंगल करैं ॥ १५१ ॥ जो दूसरे भैरवादिक उनके चारों आवरणसे वेष्टितहैं, वे भी शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे ऊपर कृपा करैं ॥ १५२ ॥ नारदको आदि लेकर देव पूजित मुनि साध्य देवता और जनलोक

क्षेत्रेक्षेत्रे समासीनः स्थितो यो रक्षकस्सताम् ॥ शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः ॥ १४९ ॥ शिवाश्रितान्विशेषेण रक्षन्पुत्रानिवौरसान् ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ॥ १५० ॥ तालजंघादयस्तस्य प्रथमावरणेर्चिताः ॥ सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम् ॥ १५१ ॥ भैरवाद्याश्च ये चान्ये समंतात्तस्य वेष्टिताः ॥ तेऽपि मामनुगृह्णंतु शिवशासन गौरवात् ॥ १५२ ॥ नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः ॥ साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः ॥ १५३ ॥ विनिवृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः ॥ सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैस्सह ॥ १५४ ॥ सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः ॥ शिवयोराज्ञया मह्यं दिशंतु मम कांक्षितम् ॥ १५५ ॥ गंधर्वाद्याः पिशाचांताश्चतस्रो देवयोनयः ॥ सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः ॥ १५६ ॥ असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः ॥ अनंताद्याश्च नागेंद्रा वैनतेयादयो द्विजाः ॥ १५७ ॥ कूष्मांडाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे ॥ डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः ॥ १५८ ॥

निवासी ॥ १५३ ॥ विशेष अधिकारवाले महालोकके निवासी तथा दूसरे महर्षि देवताओंके सहित ॥ १५४ ॥ सम्पूर्ण शिवार्चनमें युक्त शिवकी आज्ञाके वशवर्ती शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मनोरथको पूरा करैं ॥ १५५ ॥ गन्धर्वोंको आदि लेकर पिशाच पर्यन्त देवयोनि सिद्ध विद्याधर तथा जो दूसरे आकाशचारीहैं ॥ १५६ ॥ असुर और राक्षस पातालवासी अनन्तादिक नागेन्द्र वैनतेयादि (गरुड) पक्षी ॥ १५७ ॥ कूष्माण्ड प्रेत वेताल ग्रह

भूतगण डाकिनी योगिनी शाकिनी आदि ॥ १५८ ॥ क्षेत्र आराम बगीचे तीर्थ स्थान द्वीप समुद्र नदी नद तथा दूसरे सरोवर ॥ १५९ ॥ पर्वत सुमेरु
कानन आदि चारोंओर पशु पक्षी वृक्ष कृमि कीटादि मृग ॥ १६० ॥ सब भुवन और भुवनोंके अधीश्वर अंडादिके आवरणोंके साथ आशा दश दिग्गज
॥ १६१ ॥ वर्ण पद मंत्र तत्त्व उनके अधिपति ब्रह्माण्डके धारण करनेवाले रुद्र, दूसरी शक्तिसे रहित रुद्र ॥ १६२ ॥ जो कुछ इस जगत्में है देखा और
अनुमान किया हुआहै, वह शिवा शिवकी आज्ञासे मेरे मंगलको प्रदान करै ॥ १६३ ॥ आगे शैवीविद्या जो पशुपाशकी मुक्त करनेवालीहै, पंचब्रह्म

क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च ॥ द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च ॥ १५९ ॥ गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि
समंततः ॥ पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः ॥ १६० ॥ भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः ॥ अण्डान्यावरणैस्सार्द्धं
मासाश्च दश दिग्गजाः ॥ १६१ ॥ वर्णाः पदानि मंत्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः ॥ ब्रह्मांडधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः ॥
॥ १६२ ॥ यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् ॥ सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥ १६३ ॥ अथ विद्या परा शैवी
पशुपाशविमोचिनी ॥ पंचार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता ॥ १६४ ॥ शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम् ॥ शैवाख्यं
शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसंमितम् ॥ १६५ ॥ शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः ॥ शिवाभ्यामविशेषेण सत्कृत्येह समर्चिताः
॥ १६६ ॥ ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥ १६७ ॥ श्वेताद्या नकुलीशांताः
सशिष्याश्चापि देशिकाः ॥ तत्संततीया गुरवो विशेषाद्गुरवो मम ॥ १६८ ॥

रूप होनेसे दिव्य और पशुविद्यासे बहिष्कृत ॥ १६४ ॥ शिवके धर्मानुसार शास्त्र और उसके उत्तर धर्मसे वह शिव धर्मनामक पुराण जो श्रुतिसम्मत है
॥ १६५ ॥ जो दूसरे शैव शास्त्र और कामादि चार विद्याहैं; शिवा शिवके निमित्त जो सत्कारसे पूजित है ॥ १६६ ॥ वह उनकी आज्ञासे मेरी अभीष्ट
सिद्धिको करैं, और भलीप्रकार अनुष्ठान किये इस मेरे कर्मको वे मानैं ॥ १६७ ॥ श्वेतको आदि लेकर नकुलीशतक शिष्य गुरु उनके सन्तानको

गुरुरूपसे विशेषकर मानैं ॥ १६८ ॥ शैव माहेश्वर ज्ञानकर्ममें परायण हमारे इस अच्छीप्रकार अनुष्ठान किये कर्मको मानैं ॥ १६९ ॥ जो कि सब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य क्रमसे वेदवेदांगके तत्त्व जाननेवाले सर्वशास्त्रमें पंडित ॥ १७० ॥ सांख्य, वैशेषिक, यौग, नैयायिक सौर (सूर्यके उपासक) ब्रह्माके उपासक, रुद्र विष्णुके उपासक दूसरे मनुष्य ॥ १७१ ॥ यह सब श्रेष्ठ पुरुष शिवकी आज्ञा माननेवाले मेरे इस श्रेष्ठ कर्मको फलके निमित्त मानै ॥ ॥ १७२ ॥ शिवके भक्त सिद्धान्त मार्गमें स्थित शैव पाशुपत महाव्रतधारी शैव और कापालिक शिवके भक्त ॥ १७३ ॥ शिवकी आज्ञाके माननेवाले

शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां सफलं साध्वनुष्ठितम् ॥ १६९ ॥ लौकिका ब्राह्मणास्सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ १७० ॥ सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः ॥ सौरा ब्राह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः ॥ १७१ ॥ शिष्टाः सर्वे विशिष्टाश्च शिवशासनयंत्रिताः ॥ कर्मेदमनुमन्यंतां ममाभिप्रेतसाधकम् ॥ १७२ ॥ शैवाः सिद्धांतमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा ॥ शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे ॥ १७३ ॥ शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात् ॥ सर्वे मामनुगृह्णंतु शंसंतु सफलक्रियाम् ॥ १७४ ॥ दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः ॥ अविरोधेन वर्ततां मंत्रश्रेयोऽर्थिनो मम ॥ १७५ ॥ नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः ॥ पाषंडाश्चातिपापाश्च वर्ततां दूरतो मम ॥ ॥ १७६ ॥ बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपिचिदास्तिकाः ॥ सर्वे मामनुगृह्णंतु संतः शंसंतु मंगलम् ॥ १७७ ॥ नमश्शिवाय सांबाय ससुतायादिहेतवे ॥ पंचावरणरूपेण प्रपंचेनावृताय ते ॥ १७८ ॥

पूजनीय मेरे ऊपरभी शिवकी आज्ञासे अनुग्रह करैं, और फलकी सत्क्रियाको प्रदान करैं ॥ १७४ ॥ दक्षिण ज्ञाननिष्ठ दक्षिण उदार ज्ञानयुक्तके मार्गमें गमन करनेवाले अस्सी हजार गृहस्थ; इस मेरे मंत्रके फल देनेमें एक सम्मतिसे वर्तैं ॥ १७५ ॥ नास्तिक शठ कृतघ्न तामस पाखण्डी पापी यह मुझसे दूर रहैं ॥ १७६ ॥ बहुतसी स्तुतिसे क्याहै जो कोईभी आस्तिकहैं वे सब मेरे ऊपर अनुग्रह कर और मंगलप्रदान करैं ॥ १७७ ॥ पुत्र और पार्वतीसहित

शिवको प्रणाम करताहूं, जो पंचावरणरूप प्रपंचमें प्राप्त नहीं होता ॥ १७८ ॥ ऐसा कहकर पृथ्वीमें शिवा शिवके निमित्त प्रणाम कर एकसौ आठ बार पंचाक्षरी विद्याको जपै ॥ १७९ ॥ इसी प्रकार शक्तिविद्याको जपकर और समर्पणकर पीछे क्षमा कराय पूजा शेष समाप्त करै ॥ १८० ॥ यह पुण्यतम स्तोत्र शिवा शिवको अत्यन्त प्याराहै, सबके अभीष्टका देनेहारा भुक्ति मुक्तिका एक साधनहै ॥ १८१ ॥ जो इसे नित्य कीर्तन करके सावधान होकर श्रवण करै वह पापोंको दूरकर शिवके सायुज्यको प्राप्त होताहै ॥ १८२ ॥ गौका मारनेवाला कृतघ्न वीरघाती और गर्भ हत्या करनेवाला शरणगत घाती,

इत्युक्त्वा दंडवद्भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम् ॥ जपेत्पंचाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम् ॥ १७९ ॥ तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम् ॥ कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् ॥ १८० ॥ एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम् ॥ सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम् ॥१८१॥ य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १८२ ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा ॥ शरणागतघाती च मित्रविश्रंभघातकः ॥१८३॥ दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा ॥ स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ १८४ ॥ दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च ॥ यदि संकीर्तयेदेतन्न ततो नार्थभाग्भवेत् ॥ १८५ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् ॥ स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः ॥ १८६ ॥ असंपूज्य शिवस्तोत्रं जपात्फलमुदाहृतम् ॥ संपूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते ॥ १८७ ॥ आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन्संकीर्तिते सति ॥ सार्द्धमंबिकया देवः श्रुत्वैवं दिवि तिष्ठति ॥ १८८ ॥

मित्रका विश्वासघात करनेवाला ॥ १८३ ॥ दुष्ट पापी माता पिताका मारनेवाला इस स्तुतिके जपनेसे उस २ पापसे छूट जाता है ॥१८४॥ दुःस्वप्नादि महा अनर्थ सूचन करनेवाले भयोंमें जो इसको कीर्तन करताहै, वह अनर्थभागी नहीं होताहै ॥१८५॥ आयु आरोग्य ऐश्वर्य और भी जो कुछ वांछितहै, इस स्तोत्रके जप करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण फलको प्राप्त होताहै ॥ १८६ ॥ शिवके स्तोत्रको विना पूजे जपसेही फलका होना इतना कहाहै; परन्तु जो पूजन कर जप करता है उसका फल कोईभी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ १८७ ॥ इस स्तोत्रके कीर्तन करतेही फलकी प्राप्ति होतीहै; इसके पाठमात्रसे देवी देवके

सहित स्वर्गलोकमें स्थित होता है ॥ १८८ ॥ इस कारण देवदेवको उमाके सहित आकाशमें पूजन कर हाथ जोड़कर खड़ाहो इस स्तोत्रका उच्चारण करै ॥ १८९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तमीवायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! यह तुम्हारे प्रति दोनों लोकमें सिद्धिका देनेवाला स्तोत्र कहा; यह क्रिया तप जप ध्यानका महासमुच्चय है ॥ १ ॥ अब शैवोंको यही फलका देनेहारा पूजा होम जप दानमय महान् कर्म कहते हैं ॥ २ ॥ मंत्रार्थका जाननेवाला प्रथम मंत्रार्थकी साधना करै; जो देखकर सिद्धकिया मंत्रहै वह अन्यथा फल नहीं देता ॥ ३ ॥

तस्मान्नभसि संपूज्य देवदेवं सहोमया॥ कृतांजलिपुटस्तिष्ठंस्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ १८९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवमहास्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ एतत्ते कथितं कृष्ण कर्मेहामुत्र सिद्धिदम् ॥ क्रियातपोजपध्यानसमुच्चयमयं परम् ॥ १ ॥ अथ वक्ष्यामि शैवानामिहैव फलदं नृणाम् ॥ पूजाहोमजपध्यानतपोदानमयं महत् ॥ ॥ २ ॥ तत्र संसाधयेत्पूर्वं मंत्रं मंत्रार्थवित्तमः ॥ दृष्टसिद्धिकरं कर्म नान्यथा फलदं यतः ॥ ३ ॥ सिद्धमंत्रोऽप्यदृष्टेन प्रबलेन तु केनचित् ॥ प्रतिबंधफलं कर्म न कुर्यात्सहसा बुधः ॥ ४ ॥ तस्य तु प्रतिबंधस्य कर्तुं शक्येह निष्कृतिः ॥ परीक्ष्य शकुनाद्यैस्तदादौ निष्कृतिमाचरेत् ॥ ५ ॥ योऽन्यथा कुरुते मोहात्कर्मैहिकफलं नरः ॥ न तेन फलभाक्स स्यात्प्राप्नुयाच्चोपहास्यताम् ॥ ६ ॥ अविस्रब्धो न कुर्वीत कर्म दृष्टफलं क्वचित् ॥ स खल्वश्रद्दधानः स्यान्नाश्रद्धः फलमृच्छति ॥ ७ ॥ नापराधोस्ति देवस्य कर्मण्यपि तु निष्फले ॥ यथोक्तकारिणां पुंसामिहैव फलदर्शनात् ॥ ८ ॥

सिद्धहुआ मंत्रभी किसी प्रबल अदृष्टसे प्रतिबद्ध होजाय तौ फिर सहसा न करै ॥ ४ ॥ उस प्रतिबन्धकी निष्कृति होसकतीहै, परीक्षाकर शकुनादिसे उसकी निष्कृति करे ॥ ५ ॥ जो मनुष्य मोहसे यहाँके फलदायक कर्मको अन्यथा करताहै वह उसका फल न पाकर उस हास्यताका भागी होताहै ॥ ६ ॥ फलांशमें विश्वासरहित इष्टफल कर्मको कभी न करै वह अवश्य अश्रद्धावाला होकर अश्रद्धाके फलको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ निष्फल कर्ममें देवका अपराध नहीं है, यथोक्त कर्म करनेवाले पुरुषोंको यही फल मिलता है ॥ ८ ॥

साधक सिद्धमन्त्र जिसने सब प्रतिबन्ध दूर कियेहैं; विश्वासी और श्रद्धावाला कर्म करके यथोक्त फलको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ अथवा उसकी फल
प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्यमें रत रहै रात्रिको हविष्य अन्न खीर वा फल खाय ॥ १० ॥ हिंसादिसे निषिद्ध अन्नको मनसे भी न स्वीकार करै; सदा भस्म
शरीरमें लगाय सुन्दर वेषसे पवित्र रहै ॥ ११ ॥ इस प्रकार आचार युक्तहो अनुकूल शुभदिनमें पूर्वोक्त लक्षणवाले देशमें पुष्पमालाओंसे अलंकृत ॥ १२ ॥
देशमें हाथके प्रमाण भूमिको गोबरसे लीपकर अपने तेजसे दीप्तिमान् श्रेष्ठ कमलको लिखै ॥ १३ ॥ तत्ते सुवर्णके समान आठदल और पराग (केसर) से

साधकः सिद्धमंत्रश्च निरस्तप्रतिबंधकः ॥ विश्वस्तः श्रद्धानश्च कुर्वन्नाप्नोति तत्फलम् ॥ ९ ॥ अथ वा तत्फलावाप्त्यै ब्रह्मचर्यरतो
भवेत् ॥ रात्रौ हविष्यमश्नीयात्पायसं वा फलानि वा ॥ १० ॥ हिंसादि यन्निषिद्धं स्यान्न कुर्यान्मनसापि तत् ॥ सदा भस्मानुलिप्तां
गस्सुवेषश्च शुचिर्भवेत् ॥ ११ ॥ इत्थमाचारवान्भूत्वा स्वानुकूले शुभेऽहनि ॥ पूर्वोक्तलक्षणे देशे पुष्पदामाद्यलंकृते ॥ १२ ॥ आलि
प्य शकृता भूमिं हस्तमानावरां यथा ॥ विलिखेत्कमले भद्रे दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १३ ॥ तप्तजांबूनदमयमष्टपत्रं सकेसरम् ॥ मध्ये
कर्णिकया युक्तं सर्वरत्नैरलंकृतम् ॥ १४ ॥ स्वाकारसदृशेनैव नालेन च समन्वितम् ॥ तादृशे स्वर्णनिर्माणे कंदे सम्यग्विधानतः ॥
॥ १५ ॥ तत्राणिमादिकं सर्वं संकल्प्य मनसा पुनः ॥ रत्नजं वाथ सौवर्णं स्फाटिकं वा सलक्षणम् ॥ लिङ्गं सवेदिकं चैव स्थापयि
त्वा विधानतः ॥ १६ ॥ तत्रावाह्य यजेद्देवं सांबं सगणमव्ययम् ॥ तत्र माहेश्वरी कल्प्या मूर्तिर्मूर्तिमतः प्रभोः ॥ १७ ॥ चतुर्भुजा
चतुर्वक्त्रा सर्वाभरणभूषिता ॥ शार्दूलचर्मवसना किंचिद्विहसितानना ॥ १८ ॥

युक्त मध्यमें कर्णिका और सम्पूर्ण रत्नोंसे अलंकृत ॥ १४ ॥ अपने ही आकारके समान तालसे युक्त उस प्रकार स्वर्णके बनेहुए कन्दमें भलीप्रकारसे
स्थित ॥ १५ ॥ वहां उसमें अणिमादि सिद्धियोंको मनसे संकल्पित कर रत्न सुवर्ण वा अच्छे लक्षणवाले स्फटिकमणिके लिंगको वेदीके सहित यत्नसे स्थापन
करके ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक अविनाशी देवको देवी गण आदिके सहित आवाहन कर उसमें प्रभुकी महेश्वरी मूर्तिकी कल्पना करके ॥ १७ ॥ चार भुजा चार

मुख सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित शार्दूल चर्मके वस्त्र धारे कुछेक हँसतेहुए मुखसे युक्त ॥ १८ ॥ वरदायक अभय हाथसे युक्त मृग टंक धारे अथवा आठभुजा मूर्तिका ध्यान करै जैसी रुचिहो वैसा करै ॥ १९ ॥ तब त्रिशूल परशु खङ्ग वज्र दक्षिण हाथमें और वांए हाथमें पाश अंकुश खेट नागको धारण किये ॥ २० ॥ बाल सूर्यके समान प्रत्येक मुख तीन लोचन उनका पूर्वमुख सौम्य अपने आकारके समानप्रभावाला ॥ २१ ॥ और दक्षिणकी ओरकां नींले मेघकें समान घोरदर्शन, उत्तरका मूंगेके समान नीली अलकोंसे विभूषित ॥२२॥ पश्चिमका पूर्ण चन्द्रमाके समान सौम्य चन्द्रकलाका

वरदाभयहस्ता च मृगटंकधरा तथा ॥ अथ वाष्टभुजा चिंत्या चिंतकस्य यथारुचि ॥ १९ ॥ तदा त्रिशूलपरशुखङ्गवज्राणि दक्षिणे ॥
वामे पाशांकुशौ तद्वत्खेटं नागं च बिभ्रती ॥ २० ॥ बालार्कसदृशप्रख्या प्रतिवक्त्रं त्रिलोचना ॥ तस्याः पूर्वमुखं सौम्यं स्वाकारस
दृशप्रभम् ॥ २१ ॥ दक्षिणं नीलजीमूतसदृशं घोरदर्शनम् ॥ उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम् ॥ २२ ॥ पश्चिमं पूर्णचंद्राभं
सौम्यमिंदुकलाधरम् ॥ तदंकमंडलारूढा शक्तिर्माहेश्वरी परा ॥ २३ ॥ महालक्ष्मीरिति ख्याता श्यामा सर्वमनोहरा ॥ मूर्तिं कृत्वै
वमाकारां सकलीकृत्य च क्रमात् ॥ २४ ॥ मूर्तिमंतमथावाह्य यजेत्परमकारणम् ॥ स्नानार्थे कल्पयेत्तत्र पंचगव्यं तु कापिलम् ॥
॥ २५ ॥ पंचामृतं च पूर्णानि बीजानि च विशेषतः ॥ पुरस्तान्मण्डलं कृत्वा रत्नचूर्णाद्यलंकृतम् ॥ २६ ॥ कर्णिकायां प्रविन्यस्येदी
शानकलशं पुनः ॥ सद्यादिकलशान्पश्चात्परितस्तस्य कल्पयेत् ॥ २७ ॥ ततो विद्येशकलशानष्टौ पूर्वादिवत्क्रमात् ॥ तीर्थाम्बुपूरि
तान्कृत्वा सूत्रेणावेष्ट्य पूर्ववत् ॥ २८ ॥

धारण करनेवाला उनके कमण्डलुमें आरूढ हुई महेश्वरकी अपरा शक्तिहै ॥ २३ ॥ वह महालक्ष्मी श्यामा नामसे प्रसिद्ध सबके मन हरनेहारी है,इसप्रकार मूर्तिबनाय संकल्पित कर ॥ २४ ॥ मूर्तिमान् परम कारणको आवाहनकर उनका पूजन करै, स्नानके निमित्त कपिला गौके पंचगव्यकी कल्पना करै ॥ ॥ २५ ॥ पंचामृतसे पूर्ण बीज विशेष करके आगे रत्नादिके चूर्णसे युक्त मण्डलको करके ॥ २६ ॥ कर्णिकामें ईशान कलशको स्थापन कर पीछे सद्यादि मूर्तियोंके कलशोंको उसके चारोंओर कल्पित करै ॥ २७ ॥ फिर विद्येशके आठों कलशोंको पूर्वदिशाके क्रमसे तीर्थोंके जलसे भर पूर्वके समान सूत्रसे

वेष्टितकर ॥ २८ ॥ उसमें मन्त्र और विधानके सहित पवित्र पुण्य वस्तुओंको डालकर चारोंओर उसे दुकूलादि वस्त्रसे आच्छादन कर ॥ २९ ॥ और उन मन्त्रोंको पढकर सर्वत्र मन्त्रन्यास करताहुआ जिस समय स्नानकालकी प्राप्ति हो तब सब मंगलके बाजोंके सहित ॥ ३० ॥ पंचगव्यादिसे परमेश्वरको स्नान करावै, फिर कुशाके जल और दूसरे सुवर्ण रत्नादि ॥ ३१ ॥ तथा जल गंध पुष्पादिसे सिद्ध किये हुए क्रमसे प्रतिमन्त्रसे उठाकर परमेश्वरको स्नान कराय ॥ ३२ ॥ गन्ध पुष्प दीपकसे पूजाकर्म पूर्ण करै, चार कर्षका एक पल होता है, ग्यारह पलसे कमती उवटनको द्रव्य नहीं होना चाहिये ॥ ३३ ॥

पुण्यद्रव्याणि निक्षिप्य समन्त्रं सविधानकम् ॥ दुकूलाद्येन वस्त्रेण समाच्छाद्य समंततः ॥ २९ ॥ सर्वत्र मंत्रं विन्यस्य तत्तन्मंत्रपुरस्सरम् ॥ स्नानकाले तु संप्राप्ते सर्वमंगलनिस्वनैः ॥ ३० ॥ पंचगव्यादिभिश्चैव स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ ततः कुशोदकाद्यानि स्वर्णरत्नोदकान्यपि ॥ ३१ ॥ गंधपुष्पादिसिद्धानि मन्त्रासिद्धानि च क्रमात् ॥ उद्धृत्योद्धृत्य मंत्रेण तैस्तैस्स्नाप्य महेश्वरम् ॥ ३२ ॥ गंधपुष्पादिदीपांश्च पूजाकर्म समाचरेत् ॥ पलावरः स्यादालेप एकादशपलात्तरः ॥ ३३ ॥ सुवर्णरत्नपुष्पाणि शुभानि सुरभीणि च ॥ नीलोत्पलाद्युत्पलानि बिल्वपत्राण्यनेकशः ॥ ४४ ॥ कमलानि च रक्तानि श्वेतान्यपि च शंभवे ॥ कृष्णागुरूद्भवो धूपः सकर्पूराज्यगुग्गुलः ॥ ३५ ॥ कपिलाघृतसंसिद्धा दीपाः कर्पूरवर्तिजाः ॥ पंच ब्रह्मषडंगानि पूज्यान्यावरणानि च ॥ ३६ ॥ नैवेद्यः पयसा सिद्धः स गुडाज्यो महाचरुः ॥ पाटलोत्पलपद्माद्यैः पानीयं च सुगंधितम् ॥ ३७ ॥ पंचसौगंधिकोपेतं तांबूलं च सुसंस्कृतम् ॥ सुवर्णरत्नसिद्धानि भूषणानि विशेषतः ॥ ३८ ॥

सुवर्ण रत्न पुष्प सुन्दर सुगन्धिसे युक्त नील उत्पल कमल तथा अनेक बेलपत्र ॥ ३४ ॥ लाल और श्वेत कमल जो मिलसकैं काली अगरकी धूप कपूर घी गूगल ॥ ३५ ॥ कपिलाके घृतसे सिद्धहुए दीपक कपूरकी बत्ती पंचब्रह्म षडंगादि पूजाके आवरण ॥ ३६ ॥ और दूधयुक्त गुड घृतका बनाया चरु निवेदन करै, लाल कमलके पत्रादिसे सुगन्धित जल करके ॥ ३७ ॥ पांच सुगन्धियोंसे युक्त ताम्बूल सुवर्ण रत्नोंसे सिद्धहुए अनेक भूषण ॥ ३८ ॥

विचित्र सूक्ष्म नये वस्त्र दर्शनके योग्य गान और वाद्यके सहित देने चाहिये ॥ ३९ ॥ और एक लाख संख्यायुक्त मूल मन्त्रका जप करना चाहिये एक वारसे अधिक अर्थात् तीन वारसे न्यून पूजा न करै, इसमें अधिक फल होता है ॥ ४० ॥ इससे दश संख्यायुक्त होम और प्रतिद्रव्यमें सौसे अधिक वार घोररूप शिवका स्मरण मारण उच्चाटनादिमें करना चाहिये ॥ ४१ ॥ शिवलिंग और शिवाग्निमें शान्ति और पुष्टिमें शान्ति युक्त प्रयोग करै ॥४२॥ मारणादि कर्ममें लोहेके स्रुवे बनाने चाहिये; और शिवाग्निमें तथा अन्य प्रतिमाओंमें सौम्य शरीर शंकरका स्मरण करै ॥ ४३ ॥ शान्ति आदिमें सुवर्णके

वासांसि च विचित्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च ॥ दर्शनीयानि देयानि गानवाद्यादिभिस्सह ॥ ३९ ॥ जपश्च मूलमंत्रस्य लक्षः परमसं
ख्यया ॥ एकावरा त्र्युत्तरा च पूजा फलवशादिह ॥ ४० ॥ दशसंख्यावरो होमः प्रतिद्रव्यं शतोत्तरः ॥ घोररूपशिवश्चिंत्यो मारणो
च्चाटनादिषु ॥ ४१ ॥ शिवलिंगे शिवाग्नौ च ह्यन्यासु प्रतिमासु च ॥ चिंत्यस्सौम्यतनुश्शंभुः कार्ये शांतिकपौष्टिके ॥ ४२ ॥ आयसौ
स्रुक्स्रुवौ कार्यौ मारणादिषु कर्मसु ॥ तदन्यत्र तु सौवर्णौ शांतिकाद्येषु कृत्स्नशः ॥ ४३ ॥ दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा ॥
चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापि वा ॥ ४४ ॥ जुहुयान्मृत्युविजये तिलै रोगोपशांतये ॥ घृतेन पयसा चैव कमलैर्वाथ केवलैः ॥ ४५ ॥
समृद्धिकामो जुहुयान्महादारिद्र्यशांतये ॥ जातीपुष्पेण वश्यार्थी जुहुयात्सघृतेन तु ॥ ४६ ॥ घृतेन करवीरैश्च कुर्यादाकर्षणं द्विजः ॥
तैलेनोच्चाटनं कुर्यात्स्तंभनं मधुना पुनः ॥ ४७ ॥ स्तंभनं सर्षपेणापि लशुनेन तु पातनम् ॥ ताडनं रुधिरेण स्यात्खरस्योष्ट्रस्य
चोभयोः ॥ ४८ ॥ मारणोच्चाटने कुर्याद्रोहिबीजैस्तिलान्वितैः ॥ विद्वेषणं च तैलेन कुर्याल्लांगलकस्य तु ॥ ४९ ॥

बनावै दूर्वा घृत गौके दूधमें मिलेहुए शहद करके घृतयुक्त चरु और केवल दूधसे ॥ ४४ ॥ मृत्युके जीतनेके निमित्त हवन करै; रोगशान्तिके निमित्त तेलसे हवन करै, घृत जल अथवा केवल कमलोंसे ॥४५॥ धनकी इच्छा करनेवाला शान्तिके निमित्त हवन करै, वशीकरणमें घृत और जाती (मालती) के पत्तोंसे हवन करै ॥ ४६ ॥ आकर्षणमें घृत और करवीर (कनेर) के फूलोंसे हवन करै; तेलसे उच्चाटन और मधुसे स्तम्भन करै ॥ ४७ ॥ सरसोंसे भी स्तम्भन करै लहसनसे पातन, खर और ऊंटके रुधिरसे ताडन करै ॥ ४८ ॥ तिलसे युक्त रोहि [रोहतकवृक्ष] के बीजोंसे मारण और उच्चाटन करै

लांगल (नारियल) के तेलसे विद्वेषण करै ॥ ४९ ॥ रोहिबीजसे बंधन और सेनाका स्तंभन करै; तथा लाल सरसोंसे मिलेहुए सम्पूर्ण द्रव्योंसे हवन करै ॥ ५० ॥ अभिचारमें हाथसे यत्नद्वारा उत्पन्न किये तेलसे हवन करै, कद्रूष नाम विशेष नाजसे और कपासकी टेंटसे ॥ ५१ ॥ सरसों और तेल मिलाकर अभिचारमें हवन करै; दूधसे हवन करनेसे ज्वरकी शान्ति और सौभाग्यफल मिलताहै ॥ ५२ ॥ मधु घृत दधिसे युक्त होम सब सिद्धिका करने वाला है, दूध चावल अथवा केवल चरुसे ॥ ५३ ॥ शान्ति और पुष्टिके निमित्त सात समिधाओंसे हवन करै, विशेष द्रव्योंसे होम ॥ ५४ ॥ वशीकरण

बंधनं रोहिबीजेन सेनास्तंभनमेव च ॥ रक्तसर्षपसंमिश्रैर्होमद्रव्यैरशेषतः ॥ ५० ॥ हस्तयंत्रोद्भवैस्तैलैर्जुहुयादाभिचारिके ॥ कटुकीतुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिभिरेव च ॥५१॥ सर्षपैस्तैलसंमिश्रैर्जुहुयादाभिचारिके ॥ ज्वरोपशांतिदं क्षीरं सौभाग्यफलदं तथा ॥ ५२ ॥ सर्वसिद्धिकरो होमः क्षौद्राज्यदधिभिर्युतैः ॥ क्षीरेण तंदुलैश्चैव चरुणा केवलेन वा ॥ ५३ ॥ शांतिकं पौष्टिकं वापि सप्तभिः समिदादिभिः ॥ द्रव्यैर्विशेषतो होमे वश्यमाकर्षणं तथा ॥ ५४ ॥ वश्यमाकर्षणं चैव श्रीप्रदं च विशेषतः ॥ बिल्वपत्रैस्तु हवनं शत्रोर्विजयदं तथा ॥ ५५ ॥ समिधः शांतिकार्येषु पालाशखदिरादिकाः ॥ करवीरार्कजाः क्रौर्यं कण्टकिन्यश्च विग्रहे ॥ ५६ ॥ प्रशांतः शांतिकं कुर्यात्पौष्टिकं च विशेषतः ॥ निर्घृणः क्रुद्धचित्तस्तु प्रकुर्यादाभिचारिकम् ॥ ५७ ॥ अतीवदुरवस्थायां प्रतीकारांतरं न चेत् ॥ आततायिनमुद्दिश्य प्रकुर्यादाभिचारिकम् ॥ ५८ ॥ स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य न कुर्यादाभिचारिकम् ॥ यद्यास्तिकस्सुधर्मिष्ठो मान्यो वा योऽपि कोपि वा ॥ ५९ ॥

और आकर्षण श्रीलाभमें करै; बेलपत्रसे हवन करनेसे शत्रुसे जय प्राप्त होताहै ॥५५॥ शान्तिकार्यमें ढाक और खैरकी समिधा करै, निग्रहमें करवीर आक और कंटकारिकी समिधा करै ॥ ५६ ॥ शान्त होकर शान्ति और पुष्टि कर्म करै, अभिचार कर्म दयारहित और क्रुद्धचित्त होकर करना चाहिये ॥ ५७ ॥ जो बहुत दुरवस्थामें पडा हो और कोई प्रतिकार न हो सकै तो आततायी (अग्नि देनेवाले शस्त्रपोण, धनहारी क्षेत्र और स्त्रीके हरनेवाले) के मारनेमें दोष नहीं है इनके उद्देशसे अभिचार करै, उसमें दोष न मानै ॥ ५८ ॥ परन्तु अपने देशके स्वामीपर अभिचार न करै; जो आस्तिक धर्मिष्ठ अथवा

माननीय कोई हो ॥ ५९ ॥ उसके ऊपर भी अभिचार न करै; और आततायी इन गुणोंसे युक्त हो तो उसपर भी न करै; मनसे वचनसे कर्मसे जो कोई
शिवके भक्तहैं उनके आश्रित हैं ॥ ६० ॥ तथा अपने राज्यके स्वामीके उद्देशसे अभिचार कर मनुष्य शीघ्रही पतित हो जाता है ॥ ६१ ॥ इस कारण
अपने राज्यके पालन करनेवाले और किसी शिवभक्तके ऊपर हिंसादिका उपचार न करै,जो अपना सुख चाहै तो॥६२॥और भी किसी उद्देशसे मारणादिक
करके पश्चात्तापसे संयुक्त हो प्रायश्चित्त करै ॥ ६३ ॥ निर्धन मनुष्य बाणलिंगकी मूर्तिको पूजै तौ धनी होता है; अथवा स्वयंउत्पन्नहुए लिंग अथवा

तमुद्दिश्यापि नो कुर्यादाततायिनमप्युत ॥ मनसा कर्म्मणा वाचा योऽपि कोपि शिवाश्रितः ॥ ६० ॥ स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य शिवा
श्रितमथापि वा ॥ कृत्वाभिचारिकं कर्म सद्यो विनिपतेन्नरः ॥ ६१ ॥ स्वराष्ट्रपालकं तस्माच्छिवभक्तं च कश्चन ॥ न हिंस्यादभिचा
राद्यैर्यदीच्छेत्सुखमात्मनः ॥ ६२ ॥ अन्यं कमपि चोद्दिश्य कृत्वा वै मारणादिकम् ॥ पश्चात्तापेन संयुक्तः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥
॥ ६३ ॥ बाणलिंगेऽपि वा कुर्यान्निर्धनो धनवानपि ॥ स्वयंभूतेऽथ वा लिंगे आर्षके वैदिकेऽपि वा ॥ ६४ ॥ अभावे हेमरत्नानाम
शक्तौ च तदर्जने ॥ मनसैवाचरेदेतद्द्रव्यैर्वा प्रतिरूपकैः ॥ ६५ ॥ क्वचिदंशे तु यः शक्तस्त्वशक्तः क्वचिदंशके ॥ सोऽपि शक्त्यनुसारेण
कुर्वंश्चेत्फलमृच्छति ॥ ६६ ॥ कर्मण्यनुष्ठितेऽप्यस्मिन्फलं यत्र न दृश्यते ॥ द्विस्त्रिर्वावर्त्तयेत्तत्र सर्वथा दृश्यते फलम् ॥ ६७ ॥ पूजो
पयुक्तं यद्द्रव्यं हेमरत्नाद्यनुत्तमम् ॥ तत्सर्वं गुरवे दद्याद्दक्षिणां च ततः पृथक् ॥ ६८ ॥ स चेन्नेच्छति तत्सर्वं शिवाय विनिवेदयेत् ॥
अथवा शिवभक्तेभ्यो नान्येभ्यस्तु प्रदीयते ॥ ६९ ॥

ऋषियोंके स्थापित किये श्रुतिप्रसिद्ध लिंगमें ॥ ६४ ॥ सुवर्ण रत्नादिसे उनकी पूजा करनेकी शक्ति न हो तो मनसे ही उन द्रव्योंकी कल्पना करै ॥६५॥
जो किसी अंशमें असमर्थ और किसी अंशमें समर्थ हो तो वह अपनी शक्तिकें अनुसार भी उस कार्यको करताहुआ उसके फलको प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥
जिस कर्मके अनुष्ठान करनेसे फल न दीखे तो वह दो या तीन वार करै, तो अवश्य फल होगा ॥६७॥ पूजामें उपयुक्त जो द्रव्य सुवर्ण रत्नादि है, वह सब
गुरूको दे और पीछेसे दक्षिणा भी दे ॥ ६८ ॥ और यदि गुरू इसकी इच्छा न करै तो शिवके निमित्त निवेदन करदे; अथवा शिवके भक्तोंको दे

दूसरोंको न दे ॥ ६९ ॥ और जो गुरु आदिकी अपेक्षा न करके स्वयं कार्य साधन करै सो भी इसी प्रकारसे आचरण करै; स्वयं उसको ग्रहण न करै॥ ॥ ७० ॥ और जो लोभसे पूजाद्रव्यको स्वयं ग्रहण कर लेता है वह मूर्ख अपने मनोरथको प्राप्त नहीं होता इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और देव (अर्चित किये लिंग) को नित्य स्वयं ग्रहण करै अथवा न करै, जो ग्रहण करै तो उस लिंगको नित्य स्वयं वा दूसरा पुरुष पूजा करता रहै; अर्थात देवादिसे आर्चित ज्योतिर्लिंगके द्रव्य ग्रहण करनेमें अपनी इच्छा है ले अथवा न ले; पुरुषार्थप्रबोधमें लिखा है कि ज्योतिर्लिंगके विना जो दूसरे लिंग पूजेजाते हैं उनके नैवेद्य और निर्माल्य भक्षणसे तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिये; बेरलिंग स्वयं प्रादुर्भूत हुए लिंग अथवा चन्द्रकान्त हृदयके लिंगका नैवेद्य भक्षण करनेसे चान्द्रायण व्रत करै; स्वयंभूलिंग बाणलिंग रत्ननिर्मित रसानिर्मित सिद्धोंके स्थापित किये लिंगमें चंडका अधिकार नहीं है, जहाँ चंडका अधिकार है वहाँ मनुष्योंको भोजन करना उचित नहीं ॥ ७२ ॥ जो क्लेशरहित इस कर्मको नित्य अनुष्ठान करता है वह फलहीनताको प्राप्त नहीं होता, इससे उत्तम और क्या वार्ता होगी ॥ ७३ ॥ तौ भी उद्देशसे कर्मके द्वारा उत्तम सिद्धिको कहता हूं; शत्रुसे आक्रान्त वा अनेक प्रकारकी व्याधियुक्त होनेसे ॥ ७४ ॥ और मृत्युके मुखमें भी प्राप्त होनेसे क्लेश रहित हो छूटजाता है, कृपण राजा और दरिद्री कुबेरवत् हो जाताहै ॥ ७५ ॥ विरूप कामसे रूपको

यः स्वयं साधयेच्छक्त्या गुर्वादिनिरपेक्षया ॥ सोऽप्येवमाचरेदत्र न गृह्णीयात्स्वयं पुनः ॥ ७० ॥ स्वयं गृह्णाति यो लोभात्पूजां
गद्रव्यमुत्तमम् ॥ कांक्षितं न लभेन्मूढो नात्र कार्या विचारणा ॥ ७१ ॥ अर्चितं यत्तु तल्लिंगं गृह्णीयाद्वा न वा स्वयम् ॥ गृह्णीयाद्यदि
तन्नित्यं स्वयं वान्योऽपि वार्चयेत् ॥७२॥ यथोक्तमेव कर्मैतदाचरेद्योऽनपायतः ॥ फलं व्यभिचरेन्नैवमित्यतः किं प्ररोचकम् ॥ ७३ ॥
तथाप्युद्देशतो वक्ष्ये कर्मणः सिद्धिमुत्तमाम् ॥ अपि शत्रुभिराक्रांतो व्याधिभिर्वाप्यनेकशः ॥ ७४ ॥ मृत्योरास्यगतश्चापि मुच्यते
निरपायतः ॥ पूजायतेऽतिकृपणो रिक्तो वैश्रवणायते ॥ ७५ ॥ कामायते विरूपोऽपि वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ शत्रुर्मित्रायते सद्यो
विरोधी किंकरायते ॥ ७६ ॥

प्राप्त होता और वृद्ध तरुण होजाता है, शत्रु मित्र होता और विरोधी दास हो जाता है ॥ ७६ ॥ अमृत विष होता है और विष अमृत होजाता है, समुद्र स्थल और स्थल समुद्र होजाता है ॥ ७७ ॥ पर्वत गर्त और गर्त पर्वत होजाता है, अग्नि सरोवर और सरोवर अग्नि होजाता है ॥ ७८ ॥ उद्यान वन और वन उद्यान होजाता है क्षुद्रमृग सिंह और सिंह क्रीडामृग होजाता है ॥ ७९ ॥ स्त्री स्वयं वश्या और लक्ष्मी सदास्थिर रहती है; स्वच्छन्द जानेवाली वाणी होजाती है, और कीर्ति गणिकारूप होजाती है अर्थात् सब जगह प्राप्त होती है ॥ ८० ॥ बुद्धि स्वच्छन्दचारिणी मन परम कठिन पदार्थको भी

विषायते यदमृतं विषमप्यमृतायते ॥ स्थलायते समुद्रोऽपि स्थलमप्यर्णवायते ॥ ७७ ॥ महीधरायते श्वभ्रं स च श्वभ्रायते गिरिः ॥ पद्माकरायते वह्निः सरो वैश्वानरायते ॥ ७८ ॥ वनायते यदुद्यानं तदुद्यानायते वनम् ॥ सिंहायते मृगः क्षुद्रः सिंहः क्रीडामृगायते ॥ ७९ ॥ स्त्रियोऽभिसारिकायन्ते लक्ष्मीः सुचरितायते ॥ स्वैरप्रेष्यायते वाणी कीर्तिस्तु गणिकायते ॥ ८० ॥ स्वैराचारायते मेधा वज्रसूचीयते मनः ॥ महावातायते शक्तिर्बलं मत्तगजायते ॥ ८१ ॥ स्तम्भायते समुद्योगैः शत्रुपक्षे स्थिता क्रिया ॥ शत्रुपक्षायतेऽरीणां सर्व एव सुहृज्जनः ॥ ८२ ॥ शत्रवः कुणपायन्ते जीवन्तोपि सबांधवाः ॥ आपन्नोपि गतारिष्टः स्वयं खल्वमृतायते ॥ ८३ ॥ रसायनायते नित्यमपथ्यमपि सेवितम् ॥ अनिशं क्रियमाणापि रतिस्त्वभिनवायते ॥ ८४ ॥ अनागतादिकं सर्वं करस्थामलकायते ॥ यादृच्छिकफलायन्ते सिद्धयोप्यणिमादयः ॥ ८५ ॥

विषय करनेवाला वज्रसूचीसदृश होजाता है शक्ति महावातके सदृश होजाती है बल मत्तगजके सदृश होजाता है ॥ ८१ ॥ उद्योगयुक्त शत्रु पक्षवालोंकी क्रिया शान्त होजाती है शत्रुओंके मित्र उनके शत्रु होजाते हैं ॥ ८२ ॥ शत्रु मृतकके समान आचरण करते हैं; और यही दशा जीतेहुए उनके बन्धुओंकी होजाती है, निकट आयाहुआ अरिष्ट दूर होजाता है ॥ ८३ ॥ सेवनकिया अपथ्य भी रसरूप होजाता है; रात दिन करनेसे भी रति नवीन होजाती है ॥ ८४ ॥ अनागत वृत्तान्त भी हाथमें स्थितके समान होजाता है, अणिमादिक सिद्धि इच्छा करतेही फलती हैं ॥ ८५ ॥

बहुत कहनेसे क्या है सब कामादिकी सिद्धिमें इस कार्यके करनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ॥ ८६ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां सप्तमी वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे ऐहिककर्मसिद्धिवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ उपमन्यु बोले, इसके उपरान्त अब केवल परलोकमें फल देनेवाली विधिको कहता हूं; जिसके समान त्रिलोकीमें कोई दूसरा कर्म नहीं है ॥ १ ॥ अत्यन्त पुण्यसे संयुक्त सम्पूर्ण देवताओंसे अनुष्ठान किया विशेष कर ब्रह्मा विष्णु और रुद्रसे अनुष्ठित ॥ २ ॥ इन्द्रादि लोकपाल सूर्यादि नवग्रह विश्वामित्र वसिष्ठ ब्रह्मवित् महर्षि ॥ ३ ॥ श्वेत अगस्त्य दधीचि तथा हमसरीखे

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वकामार्थसिद्धिषु ॥ अस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते त्वनवाप्यं न विद्यते ॥ ८६ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे ऐहिकसिद्धिकर्मवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि केवलामुष्मिकं विधिम् ॥ नैतेन सदृशं किंचित्कर्मास्ति भुवनत्रये ॥ १ ॥ पुण्यातिशयसंयुक्तः सर्वैर्देवैरनुष्ठितः ॥ ब्रह्मणा विष्णुना चैव रुद्रेण च विशेषतः ॥ २ ॥ इंद्रादिलोकपालैश्च सूर्याद्यैर्नवभिर्ग्रहैः ॥ विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः ॥ ३ ॥ श्वेतागस्त्यदधीचाद्यैरस्माभिश्च शिवाश्रितैः ॥ नंदीश्वरमहाकालभृंगीशाद्यैर्गणेश्वरैः ॥ ४ ॥ पातालवासिभिर्दैत्यैः शेषाद्यैश्च महोरगैः ॥ सिद्धैर्यक्षैश्च गंधर्वै रक्षोभूतपिशाचकैः ॥ ५ ॥ स्वंस्वं पदमनुप्राप्तं सर्वैरयमनुष्ठितः ॥ अनेन विधिना सर्वे देवा देवत्वमागताः ॥ ६ ॥ ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः ॥ रुद्रो रुद्रत्वमापन्न इंद्रश्चेंद्रत्वमागतः ॥ ७ ॥ गणेशश्च गणेशत्वमनेन विधिना गतः ॥ सितचंदनतोयेन लिंगं स्नाप्य शिवं शिवाम् ॥ श्वेतैर्विकसितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ ८ ॥

दूसरे शिवभक्त नन्दीश्वर महाकाल चण्डीशादि गणेश्वर ॥ ४ ॥ पातालवासी दैत्य शेषादि महासर्प सिद्ध यक्ष गंधर्व राक्षस भूत पिशाचोंने ॥ ५ ॥ अपने २ पद प्राप्त होनेको इसका अनुष्ठान किया है, इस विधिसे सब देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा ब्रह्मत्व और विष्णु विष्णुत्वको प्राप्त हुए हैं, रुद्र रुद्रत्व और इन्द्र इन्द्रत्वको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ गणेश गणेशत्वको इसी विधिसे प्राप्त हुए, श्वेत चन्दन जलसे शिवके लिंग और शिवाको स्नान

कराय श्वेत खिलेहुए कमलोंसे उनको पूज प्रणाम कर ॥ ८ ॥ उसमें लक्षण युक्त मनोहर पद्मासन करके ऐश्वर्य होनेपर सुवर्णादि और रत्नादि वा अपनी शक्तिसे ॥ ९ ॥ केसर समूहके मध्यमें कनीयस लिंगको स्थापन कर अंगूठेके समान मनोहर सर्व गन्धमय मनोहर दक्षिणकी ओर स्थापन करके बेलपत्रोंसे पूजित करै, दक्षिणओर अगर और पश्चिममें मैनशिल ॥ १० ॥ ११ ॥ उत्तरमें चंदन और पूर्वकी ओरके मुखपर हरिताल चढावै, रम्य और विचित्र सुगंधित फूलोंसे पूजन करै ॥ १२ ॥ धूप काला अगर और गूगल दे और सूक्ष्म विस्तृत उज्ज्वल वस्त्र प्रदान करै ॥१३॥ पायस घी मिले घीके दीपक

तत्र पद्मासनं रम्यं कृत्वा लक्षणसंयुतम् ॥ विभवे सति हेमाद्यै रत्नाद्यैर्वा स्वशक्तितः ॥ ९ ॥ मध्ये केसरजालस्य स्थाप्य लिंगं कनीयसम् ॥ अंगुष्ठप्रतिमं रम्यं सर्वगन्धमयं शुभम् ॥ १० ॥ दक्षिणे स्थापयित्वा तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत् ॥ अगुरुं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमे तु मनःशिलाम् ॥ ११ ॥ उत्तरे चंदनं दद्याद्धरितालं तु पूर्वतः ॥ सुगंधैः कुसुमै रम्यैर्विचित्रैश्चापि पूजयेत् ॥ १२ ॥ धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सर्वतश्च सगुग्गुलम् ॥ वासांसि चातिसूक्ष्माणि विकाशानि निवेदयेत् ॥ १३ ॥ पायसं घृतसंमिश्रं घृतदीपांश्च दापयेत् ॥ सर्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत्प्रदक्षिणाम् ॥ १४ ॥ प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वाचान्ते क्षमापयेत् ॥ सर्वोपहारसंमिश्रं ततो लिंगं निवेदयेत् ॥ १५ ॥ शिवाय शिवमंत्रेण दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ॥ एवं योऽर्चयते नित्यं पञ्चगन्धमयं शुभम् ॥ १६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ एतद्व्रतोत्तमं गुह्यं शिवलिंगमहाव्रतम् ॥ १७ ॥

प्रदान करै मंत्रसे सब निवेदन कर प्रदक्षिणा करै ॥ १४ ॥ प्रणाम और स्तुति कर देवेशसे अन्तमें क्षमा करावै सब पूजाकी सामग्री लिंगको निवेदन करै ॥ १५ ॥ शिवाके निमित्त सब वस्तु शिवमंत्रसे प्रदान करै, दक्षिणामूर्तिका आश्रय करै इस प्रकार जो नित्य पंचगंधमय शिवको पूजन करता है ॥१६॥ वह सब पापसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है, यह शिवलिंगका महाव्रत अति उत्तम और गुप्त है ॥ १७ ॥

तुम्हारी भक्तिसे तुमसे कहा है यह जिस तिसको देना नहीं चाहिये, शिवके भक्तोंको देना चाहिये ऐसा शिवने पहले कहा है ॥ १८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां सप्तमीवायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ उपमन्यु बोले, नित्य नैमित्तिक और काम्यव्रतकी सिद्धि कीर्तनकी, वह सब शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठासे प्राप्त होजाती है ॥ १ ॥ सब लोक लिंगमय और लिंगमेंही सब प्रतिष्ठित है, इस कारण लिंगकी प्रतिष्ठासे सब प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णु वा रुद्र कोई हो किसको लिंगकी प्रतिष्ठा छोडकर अपने पदमें स्थितिहुई है ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठाके प्रति और क्या कारण कहैं; क्योंकि शिवने स्वयं

भक्तस्य ते समाख्यातं न देयं यस्यकस्यचित् ॥ देयं च शिवभक्तेभ्यः शिवेन कथितं पुरा ॥ १८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे आमुष्मिककर्मविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ उपमन्युरुवाच ॥ नित्यान्नैमित्तिकात्काम्याद्याःसिद्धिरिह कीर्तिता ॥ सा सर्वा लभ्यते सद्यो लिंगबेरप्रतिष्ठया ॥ १ ॥ सर्वो लिङ्गमयो लोकस्सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ॥ तस्मात्प्रतिष्ठिते लिंगे भवेत्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेणान्येन केन वा ॥ लिंगप्रतिष्ठामुत्सृज्य क्रियते स्वपदस्थितिः ॥ ३ ॥ किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम् ॥ प्रतिष्ठितं शिवेनापि लिंगं वैश्वेश्वरं यतः ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परत्रेह च शर्मणे ॥ स्थापयेत्परमेशस्य लिंगं बेरमथापि वा ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ किमिदं लिंगमाख्यातं कथं लिंगी महेश्वरः ॥ कथं च लिंगभावोस्य कस्मादस्मिञ्छिवोऽर्च्यते ॥ ६ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अव्यक्तं लिंगमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम् ॥ अनाद्यनंतं विश्वस्य यदुपादानकारणम् ॥ ७ ॥ तदेव मूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका ॥ तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ ८ ॥

विश्वेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा की है ॥ ४ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे दोनों लोकोंके मंगलके निमित्त परमेश्वरकी लिंगमूर्ति स्थापन करै ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले, यह लिंग क्या वस्तु है और शिव किस प्रकार लिंगी (लिंगयुक्त) हैं; इसमें किस प्रकार लिंगभाव है, और इसमें शिव किस प्रकारसे पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ उपमन्यु बोले, यह लिंगकारण रूप और तीनों गुणोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान है, आदि और अन्त रहित संसारका उपादान कारण है ॥७॥ यही मायाकी आकाशात्मिका मूलप्रकृति है, इसीसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआहै ॥ ८ ॥

वह अशुद्ध तमोगुणी तिर्यक् पशु पक्षी आदि, शुद्ध सात्त्विक देवादि, शुद्ध अशुद्ध मिलेहुए मनुष्य आदि से तीन प्रकारका है;और उसमें शिव महेश्वर रुद्र विष्णु ब्रह्मा ॥ ९ ॥ भूत और इन्द्रिय आदि उत्पन्न होकर शिवकी आज्ञासे लीन होजातेहैं; इस कारणसे शिवलिंगीहैं और लिंगको आज्ञा देनेवाले हैं ॥ १० ॥ जिस कारणसे कि, उनकी आज्ञाके विना कोई कार्य करनेको समर्थ नहीं होता; और जिस कारणसे कि, उत्पन्नहुए जगत्का उसीमें लय होजाता है ॥ ॥ ११ ॥ इसीसे उसकी लिंगता है; और किसी प्रकारसे नहीं लिंग शिवका देह है; शिवा शिवसे वह अधिष्ठितहैं ॥ १२ ॥ इसी कारण उसमें पार्वती

अशुद्धं चैव शुद्धं यच्छुद्धाशुद्धं च तत्त्रिधा ॥ ततः शिवो महेशश्च रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ ९ ॥ भूतानि चेंद्रियैर्जाता लीयंतेऽत्र शिवाज्ञया ॥ अतएव शिवो लिंगो लिंगमाज्ञापयेद्यतः ॥ १० ॥ यतो न तदनाज्ञातं कार्याय प्रभवेत्स्वतः ॥ ततो जातस्य विश्वस्य तत्रैव विलयो यतः ॥ ११ ॥ अनेन लिंगतां तस्य भवेन्नान्येन केनचित् ॥ लिंगं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम् ॥ १२ ॥ अतस्तत्र शिवः साम्बो नित्यमेव समर्च्यते ॥ लिंगवेदी महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः ॥ १३ ॥ तयोः संपूजनादेव स च सा च समर्चितौ ॥ न तयोर्लिंगदेहत्वं विद्यते परमार्थतः ॥ १४ ॥ यतस्त्वेतौ विशुद्धौ तौ देहस्तदुपचारतः ॥ तदेव परमा शक्तिः शिवस्य परमात्मनः ॥ १५ ॥ शक्तिराज्ञां यदादत्ते प्रसूते तच्चराचरम् ॥ न तस्य महिमा शक्यो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ १६ ॥ येनादौ मोहितौ स्यातां ब्रह्मनारायणावपि ॥ पुरा त्रिभुवनस्यास्य प्रलये समुपस्थिते ॥ १७ ॥ वारिशय्यागतो विष्णुः सुष्वापानाकुलः सुखम् ॥ यदृच्छया गतस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १८ ॥

सहित शिव पूजे जातेहैं; देवी महादेवी और साक्षात् महेश्वर लिंगरूप हैं ॥ १३ ॥ उनके पूजनसे उन दोनोंका पूजन होजाता है; परमार्थसे तो उनके लिंगका देह नहीं है ॥ १४ ॥ जिस कारण कि, वे दोनों शुद्धहैं फिर देहके उपचारसे क्याहै वे केवल पूजनके निमित्तहैं; वह लिंगही परमात्मा शिवकी परम शक्तिहै ॥ १५ ॥ और शक्ति आज्ञाहै; जो चराचर जगतको उत्पन्न करती है उसकी महिमा कोई सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥ १६ ॥ जिससे पहले ब्रह्मा और नारायण दोनों मोहित होगये थे; पूर्वमें जब त्रिलोकीकी प्रलय होचुकी थी ॥ १७ ॥ जब जलमें विष्णु भगवान् सुखसे शयन करते थे; तब

लोकपितामह ब्रह्मा वहां अपनी इच्छासे आकर प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ और प्रसन्नतासे सोतेहुए विष्णुको देखा, तब ब्रह्माजी शिवकी मायासे मोहित हो विष्णुसे बोले ॥ १९ ॥ 'तुम कौन हो' यह कह क्रोधसे (विष्णुपर प्रहार कर और उठाकर उन्होंने क्षणमात्रमें) तीक्ष्ण हाथके प्रहारसे ताडित किया ॥ २० ॥ तब विष्णुने शयनसे उठकर ब्रह्माको देखा और मनमें क्रोधकर बाहर विना क्रोधके समान उनसे विष्णुने कहा ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम कहांसे आये और क्यों व्याकुल हो ? यह विष्णुकें प्रभुत्व गुणसूचक वचन सुन ॥ २२ ॥ रजोगुणसे वैर करतेहुए ब्रह्मा फिर बोले, मुझे तुम गुरु बनाकर शिष्यके समान

ददर्श पुण्डरीकाक्षं स्वपन्तं तमनाकुलम् ॥ मायया मोहितः शम्भोर्विष्णुमाह पितामहः ॥ १९ ॥ कस्त्वं वदेत्यमर्षेण प्रहृत्योत्थाप्य
माधवम् ॥ स तु हस्तप्रहारेण तीव्रेणाभिहतः क्षणात् ॥ २० ॥ प्रबुद्धोत्थाय शयनाद्ददर्श परमेष्ठिनम् ॥ तमाह चांतस्संक्रुद्धः स्वय
मक्रुद्धवद्धरिः ॥ २१ ॥ कुतस्त्वमागतो वत्स कस्मात्त्वं व्याकुलो वद ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा प्रभुत्वगुणसूचकम् ॥ २२ ॥ रजसा
बद्धवैरस्तं ब्रह्मा पुनरभाषत ॥ वत्सेति मां कुतो ब्रूषे गुरुः शिष्यमिवात्मनः ॥ २३ ॥ मां न जानासि किं नाथं प्रपंचो यस्य मे
कृतिः ॥ त्रिधात्मानं विभज्येदं सृष्ट्वाथ परिपाल्यते ॥ २४ ॥ सहरामि न मे कश्चित्स्रष्टा जगति विद्यते ॥ इत्युक्ते सति सोऽप्याह
ब्रह्माणं विष्णुरव्ययः ॥ २५ ॥ अहमेवादिकर्तास्य हर्ता च परिपालकः ॥ भवानपि ममैवांगादवतीर्णः पुराव्ययात् ॥ २६ ॥ मन्नियो
गात्त्वमात्मानं त्रिधा कृत्वा जगत्त्रयम् ॥ सृजस्यवसि चांते तत्पुनः प्रतिसृजस्यपि ॥ २७ ॥ विस्मृतोसि जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥
तवापि जनकं साक्षान्मामेवमवमन्यसे ॥ २८ ॥

वत्स यह कैसे बोलतेहो ॥ २३ ॥ मुझे क्या नहीं जानते यह सब सृष्टि मैंने की है; मैं प्रजापति हूं, अपने शरीरको तीन प्रकार करके मैं पालन करताहूं ॥ ॥ २४ ॥ और संहार करताहूं, मेरा स्रष्टा जगत्में कोई नहीं; यह कहनेपर अविनाशी विष्णु ब्रह्मासे बोले ॥ २५ ॥ मैंहीं आदिकर्ता हर्ता और पालन करने वाला हूं, तुमभी मेरे अविनाशी शरीरसे प्रादुर्भूत हुएहो ॥ २६ ॥ मेरी आज्ञासे ही तुमने अपनी आत्माको तीन प्रकारसे विभक्त कर तीन प्रकारसे जगत् उत्पन्न किया; उत्पन्न कर रक्षा करते और फिर संहार करतेहो ॥ २७ ॥ तुम नारायण जगन्नाथको भूलगये, तुम अपने उत्पन्न करनेवाले पिताका

(मेरा) ऐसा अपमान करते हो ॥ २८ ॥ इसमें तुम्हारा अपराध नहीं, तुम मेरी मायासे भ्रान्त होगये; मेरे प्रसादसे यह तुम्हारी भ्रान्ति शीघ्र जाती रहैगी ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मा ! तुम सत्य वचन श्रवण करो; मैं सम्पूर्ण देवताओंका ईश्वर हूं, कर्ता भर्ता हर्ता मेरे समान कोई समर्थ नहीं है ॥ ३० ॥ इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुका परस्पर विवाद होने लगा; और महाभयंकर रोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ ३१ ॥ रजोगुणसे वैरकर परस्पर मुष्टि आदिसे, युद्ध करनेलगे, उन दोनोंके अभिमान दूर करनेको ॥ ३२ ॥ मध्यमें ईश्वरका अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ, जो सहस्रों अग्निकी ज्वालासे व्याप्त अप्रमेय उपमा रहित ॥ ३३ ॥ क्षय वृद्धिसे निर्मुक्त आदि मध्य अन्तसे वर्जित था उसकी सहस्रों ज्वालाओंसे विष्णु ब्रह्मा मोहित होगये ॥ ३४ ॥ और युद्ध छोंडकर कहने लगे कि, यह क्याहै ? तब वे दोनों यथार्थता जान्नेको समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ तब दोनोंने उसके अन्तकी परीक्षा करनेकी इच्छा की ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजीने हंसका आकार जो सुन्दर पक्षयुक्त था धारण किया और मनके समान वेगगामी हो आकाशको चले ॥ ३७ ॥ विश्वात्मा नारायण भी नीलअंजनपर्वतके समान वाराहरूप धारण कर पातालको गये ॥ ३८ ॥ इसप्रकार सहस्रवर्षतक विष्णु नीचेको चलेगये और उन्होंने उस लिंगका अन्त नहीं देखपाया ॥ ३९ ॥

तवापराधो नास्त्यत्र भ्रांतोसि मम मायया ॥ मत्प्रसादादियं भ्रांतिरपैष्यति तवाचिरात् ॥ २९ ॥ शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो
ह्यहम् ॥ कर्ता भर्ता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः ॥ ३० ॥ एवमेव विवादोभूद्ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम् ॥ अभवच्च महायुद्धं भैरवं
रोमहर्षणम् ॥ ३१ ॥ मुष्टिभिर्निघ्नतोस्तीव्रं रजसा बद्धवैरयोः ॥ तयोर्दर्पापहाराय प्रबोधाय च देवयोः ॥ ३२ ॥ मध्ये समाविरभव
ल्लिंगमैश्वरमद्भुतम् ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यमप्रमेयमनौपमम् ॥ ३३ ॥ क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ तस्य ज्वालासहस्रेण
ब्रह्मविष्णू विमोहितौ ॥ ३४ ॥ विसृज्य युद्धं किं त्वेतदित्यचिंतयतां तदा ॥ न तयोस्तस्य याथात्म्यं प्रबुद्धमभवद्यदा ॥ ३५ ॥ तदा
समुद्यतौ स्यातां तस्याद्यंतं परीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ तत्र हंसाकृतिर्ब्रह्मा विश्वतः पक्षसंयुतः ॥ मनोनिलजवो भूत्वा गतस्तूर्द्ध्वं प्रयत्नतः ॥
॥ ३७ ॥ नारायणोपि विश्वात्मा नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ वाराहममितं रूपमास्थाय गतवानधः ॥ ३८ ॥ एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन्
विष्णुरधोगतः ॥ नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः ॥ ३९ ॥

और उतनेही समयतक ब्रह्मा ऊर्ध्वलोकतक चलेगये और अन्त न पाया, तब शान्त होकर नीचेको चले आये ॥ ४० ॥ उसी प्रकार विष्णु भगवान् शान्त और चेतनाहीन हो महाक्लेशसे फिर जलके ऊपर चले आये ॥ ४१ ॥ तब फिर आकर परस्पर एक दूसरेको देखने लगे, शिवकी मायासे मोहित होकर कृत्य अकृत्यका ज्ञान भूलगये ॥ ४२ ॥ कभी पीछे कभी आगे कभी पार्श्वमें स्थित हुए प्रणाम करके विचार करने लगे कि यह क्या है ? ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ उपमन्यु बोले, तब उसमेंसे एक महाशब्द लक्षण नाद

तावत्कालं गतश्चोर्द्ध्वं तस्यांतं ज्ञातुमिच्छया ॥ श्रांतोत्यंतमदृष्ट्वांतं पपाताधः पितामहः ॥ ४० ॥ तथैव भगवान् विष्णुः श्रांतः संविग्नलोचनः ॥ क्लेशेन महता तूर्णमधस्तादुत्थितोऽभवत् ॥ ४१ ॥ समागतावथान्योन्यं विस्मयस्मेरवीक्षणौ ॥ मायया मोहितौ शंभोः कृत्याकृत्यं न जग्मतुः ॥ ४२ ॥ पृष्ठतः पार्श्वतस्तस्य चाग्रतश्च स्थितावुभौ ॥ प्रणिपत्य किमात्मेदमित्यचिंतयतां तदा ॥ ४३ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अथाविरभवत्तत्र सनादं शब्दलक्षणम् ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ब्रह्मणः प्रतिपादकम् ॥ १ ॥ तदप्यविदितं तावद्ब्रह्मणा विष्णुना तथा ॥ रजसा तमसा चित्तं तयोर्यस्मात्तिरस्कृतम् ॥ २ ॥ तदा विभक्तमभवच्चतुर्द्धैकं तदक्षरम् ॥ अ उ मेति त्रिमात्राभिः परस्ताच्चार्द्धमात्रया ॥ ३ ॥ तत्राकारः श्रितो भागेज्वलल्लिंगस्य दक्षिणे ॥ उकारश्चोत्तरे तद्वन्मकारस्तस्य मध्यतः ॥ ४ ॥ अर्द्धमात्रात्मको नादः श्रूयते लिंगमूर्द्धनि ॥ विभक्तेपि तदा तस्मिन्प्रणवे परमाक्षरे ॥ ५ ॥

हुआ, ओम् एकाक्षर ब्रह्मका प्रतिपादक है ॥ १ ॥ परन्तु वहभी ब्रह्मा और विष्णुने न समझा, रजोगुण तमोगुणसे उनका चित्त तिरस्कृत था ॥ २ ॥ फिर वह एकही अक्षर चारप्रकारसे विभक्त हुआ अ उ म् यह तीन और आधीमात्रा देखी ॥ ३ ॥ उस लिंगके दक्षिणभागमें अकार स्थित था उत्तरमें उकार मध्यमें मकार ॥ ४ ॥ और अर्धमात्राका नाद लिंगके शिरोभागमें सुनाई दिया। इस प्रकार उस प्रणवरूप परमाक्षरके विभक्त होनेपर ॥ ५ ॥

उन दोनों देवताओंने विभागका अर्थ कुछ भी न जाना वेदात्मासे व्यक्त होकर वह ओंकार विकारको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ उसमें अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और नाद अथर्वकी श्रुति है ॥ ७ ॥ समाससे अपने आत्माका अर्थ ऋक्में प्राप्त है, रजोगुणकी मूर्तिमें ब्रह्माकी आदि क्रिया मूर्ति है ॥ ८ ॥ और उसकी आदि क्रियाओंमें लोकमें सृष्टि और उन तत्त्वोंमें अविनाशी आत्मा पंचब्रह्ममें सद्योजात कलादिकी और अध्वकी निवृत्ति ॥ ९ ॥ लिंगके दोनों भागोंमें विद्यमान तथा अधोभागमें बीजयोनि स्वरूप तीन कारणमें बीजस्वरूप है, चौंसठ गुणोंके ऐश्वर्य जो अणिमादिमें विद्यमानहैं ॥ १० ॥

विभागार्थं च तौ देवौ न किंचिदवजग्मतुः ॥ वेदात्मना तदाव्यक्तः प्रणवो विकृतिं गतः ॥ ६ ॥ तत्राकारो ऋगभवदुकारो यजुरव्ययः ॥ मकारस्साम संजातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः ॥ ७ ॥ ऋगयं स्थापयामास समासात्त्वर्थमात्मनः ॥ रजोगुणेषु ब्रह्माणं मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि ॥ ८ ॥ सृष्टिं लोकेषु पृथिवीं तत्त्वेष्वात्मानमव्ययम् ॥ कलाध्वनि निर्वृत्तिं च सद्यं ब्रह्मसु पंचसु ॥ ९ ॥ लिंगभागेष्वधोभागं बीजाख्यं कारणत्रये ॥ चतुःषष्टिगुणैश्वर्यं बौद्धं यदणिमादिषु ॥ १० ॥ तदित्थमर्थैर्दशभिर्व्याप्तं विश्वमृचा जगत् ॥ अथोपस्थापयामास स्वार्थं दशविधं यजुः ॥ ११ ॥ सत्त्वं गुणेषु विष्णुं च मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि ॥ स्थितिं लोकेष्वंतरिक्षं विद्यां तत्त्वेषु च त्रिषु ॥ १२ ॥ कलाध्वसु प्रतिष्ठां च वामं ब्रह्मसु पंचसु ॥ मध्यं तु लिंगभागेषु योनिं च त्रिषु हेतुषु ॥ १३ ॥ प्राकृतं च यथैश्वर्यं तस्माद्विश्वं यजुर्मयम् ॥ ततोपस्थापयामास सामार्थं दशधात्मनः ॥ १४ ॥ तमोगुणेष्वथो रुद्रं मूर्तिष्वाद्यं क्रियासु च ॥ संहृतिं त्रिषु लोकेषु तत्त्वेषु शिवमुत्तमम् ॥ १५ ॥ विद्याकलास्वघोरं च तथा ब्रह्मसु पंचसु ॥ लिंगभागेषु पीठोर्द्ध्वं बीजिनं कारणत्रये ॥ १६ ॥

इसप्रकार दश अर्थोंसे युक्त ऋचासे यह जगत् व्याप्त है. इसीप्रकार यजुने यह दशप्रकारसे अर्थको स्थापित किया है ॥ ११ ॥ गुणोंमें सत्त्वगुण मूर्तिविष्णु, क्रियाओंमें आदि क्रिया, लोकमें स्थिति, तीनों तत्त्वोंमें विद्या ॥ १२ ॥ अन्तरिक्ष कलाध्वमें प्रतिष्ठा और पंचब्रह्ममें वामरूप लिंगके भागोंमें मध्यभाग तीनों हेतुओंमें योनिरूप ॥ १३ ॥ और प्राकृत ऐश्वर्य यह सब ऐश्वर्य यजुर्वेदमय हैं । इसी प्रकार सामने दश प्रकारसे अपना अर्थ स्थापित किया है ॥ ॥ १४ ॥ गुणोंमें तम, मूर्तिमें रुद्र, क्रियोंमें आदिक्रिया, तीनों लोकमें संहार तत्त्वोंमें शिवतत्त्व ॥१५॥ कलाओंमें विद्याकला, और अघोर तथा पंचब्रह्ममें

ब्रह्मस्वरूप है, लिंग भागोंमें पीठ और ऊर्ध्व तीन करणमें बीजरूप ॥ १६ ॥ पौरुष और ऐश्वर्य इस प्रकारसे सामसे जगत स्थित है. अथर्वने प्रथम आत्माका निर्गुण ऐश्वर्य कहा है ॥ १७ ॥ और महेश्वरी सदाशिवकी मूर्तियोंमें कही है, परमात्मा शिवकी क्रियामें निष्क्रिया ॥ १८ ॥ भूतोंके ऊपर कृपादृष्टि है, जिससे सब प्राणी मुक्त होजाते हैं लोकमें भी जहां मनके रहित वाणी निवृत्त होजाती है ॥ १९ ॥ उसके ऊपर उन्मनलोकसे अलौकिक सोमलोक है, जहां सोमलोकमें उमाके सहित ईश्वर नित्य निवास करते हैं ॥ २० ॥ उसके ऊपर उन्मनलोकसे जहांसे जाकर यह प्राणी निवृत्त नहीं होता है; शान्त्यतीतमें शान्तिकलाओंमें व्यापिका कला ॥ २१ ॥ और पंचब्रह्ममें तत्पुरुष और ईशान लिंगके शिरोभागमें और भागोंमें नाद है ॥ २२ ॥ जहाँ आवाहन करके केवल निष्कल शिव आराधन किये जातेहैं, तत्त्वोंमें बिन्दुके और नादसे पराशक्तिके तत्त्वसे भी परे ॥२३॥ परमतत्त्व है; वास्तवमें परमार्थसे तत्त्व रहित है, मायाके विक्षोभ कारणसे तीनों कारणसे परे है ॥२४॥ अनन्तसे और शुद्धविद्यासे और महेश्वरसे परे सब विद्याओंके अधीश्वर सदाशिवसे परे कुछ नहीं है ॥ २५ ॥ सब मन्त्रोंके शरीरवाले देव तीन शक्तिसे युक्त जो पांचमुख दशभुजा साक्षात् कलारहित हैं ॥ २६ ॥

पौरुषं च तथैश्वर्यमित्थं साम्ना ततं जगत् ॥ अथाथर्वाह नैर्गुण्यमर्थं प्रथममात्मनः ॥ १७ ॥ ततो महेश्वरं साक्षान्मूर्तिष्वपि सदाशिवम् ॥ क्रियासु निष्क्रियस्यापि शिवस्य परमात्मनः ॥ १८ ॥ भूतानुग्रहणं चैव मुच्यंते येन जंतवः ॥ लोकेष्वपि यतो वाचो निवृत्ता मनसा सह ॥ १९ ॥ तदूर्ध्वमुन्मना लोकात्सोमलोकमलौकिकम् ॥ सोमस्सहोमया यत्र नित्यं निवसतीश्वरः ॥ २० ॥ तदूर्ध्वमुन्मना लोकाद्यं प्राप्तो न निवर्तते ॥ शांतिं च शांत्यतीतां च व्यापिकां वै कलास्वपि ॥ २१ ॥ तत्पूरुषं तथेशानं ब्रह्म ब्रह्मसु पंचसु ॥ मूर्द्धानमपि लिंगस्य नादभागेष्वनुत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रावाह्य समाराध्यः केवलो निष्कलः शिवः ॥ तत्तेष्वपि तदा बिंदोर्नादाच्छक्तेस्ततः परात् ॥ २३ ॥ तत्त्वादपि परं तत्त्व मतत्त्वं परमार्थतः ॥ कारणेषु त्रयातीतान्मायाविक्षोभकारणात् ॥ २४ ॥ अनंताच्छुद्धविद्यायाः परस्ताच्च महेश्वरात् ॥ सर्वविद्येश्वरा धीशान्न पराच्च सदाशिवात् ॥ २५ ॥ सर्वमंत्रतनोर्देवाच्छक्तित्रयसमन्वितात् ॥ पंचवक्त्राद्दश भुजात्साक्षात्सकलनिष्कलात् ॥ २६ ॥

उससे परे बिन्दु और उससे परे अर्धइन्दु, उससे परे निशाधीश (अर्धचन्द्र) उससे परे नाद ॥२७॥ उससे परे सुषुम्नेश, उससे परे ब्रह्मरन्ध्रेश्वर, उससे परे शक्ति, उससे शिवतत्त्व ॥ २८ ॥ उससे परे परमकारण साक्षात् स्वयं निष्कारण परम शिवहैं, कारणोंके विधान करनेवाले ध्येय अविनाशीके ध्यान करने वाले ॥ २९ ॥ परम आकाशके मध्यमें, स्थित परमात्माके ऊपर स्थित सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न सर्वेश्वर जिनका कोई ईश्वर नहीं ॥ ३० ॥ मायिक ऐश्वर्य और मानुषादि अशुद्धिसे पर अपरसे, त्याज्यसे, अविशुद्धमार्गके गोचर होनेसे परे ॥ ३१ ॥ शुद्धविद्या उससे परे उन्मना, उन्मनादिमें परमऐश्वर्य अनादि

तस्मादपि परार्द्धेन्दोरर्द्धेंदोश्च ततः परात् ॥ ततः परान्निशाधीशान्नादाख्याच्च ततः परात् ॥ २७ ॥ ततः परात्सुषुम्नेशाद्ब्रह्मरंध्रेश्वरादपि ॥
ततः परस्माच्छक्तेश्च परस्ताच्छिवतत्त्वतः ॥ २८ ॥ परमं कारणं साक्षात्स्वयं निष्कारणं शिवम् ॥ कारणानां च धातारं ध्यातारं ध्येय मव्ययम् ॥२९॥ परमाकाशमध्यस्थं परमात्मोपरि स्थितम् ॥ सर्वैश्वर्येण संपन्नं सर्वेश्वरमनीश्वरम् ॥ ३० ॥ ऐश्वर्याच्चापि मायेयादशुद्धा न्मानुषादिकात् ॥ अपराच्च परात्त्याज्यादधिशुद्धाध्वगोचरात् ॥ ३१ ॥ तत्पराच्छुद्धविद्याद्यादुन्मनांतात्परात्परात् ॥ परमं परमैश्वर्यमु न्मनाद्यमनादि च ॥ ३२॥ अपारमपराधीनं निरस्तातिशयं स्थिरम् ॥ इत्थमर्थैर्दशविधैरियमाथर्वणी श्रुतिः ॥ ३३ ॥ यस्माद्गरीयसी तस्माद्विश्वं व्याप्तमथर्वणात् ॥ ऋग्वेदः पुनराहेदं जाग्रद्रूपं मयोच्यते ॥ ३४ ॥ येनाहमात्मतत्त्वस्य नित्यमस्म्यभिधायकः ॥ यजुर्वे दोवदत्तद्वत्स्वप्नावस्था मयोच्यते ॥ ३५ ॥ भोग्यात्मना परिणता विद्यावेद्या यतो मयि ॥ साम चाह सुषुप्त्याख्यमेवं सर्वं मयोच्यते॥ ॥ ३६ ॥ ममार्थेन शिवेनेदं तामसेनाभिधीयते ॥ अथर्वाह तुरीयाख्यं तुरीयातीतमेव च ॥ ३७ ॥

हैं ॥ ३२ ॥ अपार पराधीनता रहित, समानता रहित साम्यके अतिशयसे स्थित दश अर्थोंसे युक्त अथर्वकी श्रुति है ॥ ३३ ॥ जिससे कि, यह अधिक है इससे अथर्वसे सब जगत् व्याप्त है सो जानो । ऋग्वेद कहता है, कि मैंने जाग्रद्रूपको कहा है ॥ ३४ ॥ जिस कारणसे कि, मैं आत्मतत्त्वका नित्य कहनेवाला हूं. यजुर्वेद कहता है कि, मैं स्वप्नावस्थाको कहता हूं ॥ ३५ ॥ जिससे कि, भोग आत्माकी परणति मुझमें सदा रहती है, साम कहता है मैं सुषुप्तिका कहनेवाला हूं ॥ ३६ ॥ कारण कि, शिवद्वारा मेरे तामसी अर्थसे यह कहीजाती है अथर्व कहता है कि, तुरीयातीत अवस्था मुझसे कही

जाती है ॥ ३७ ॥ इससे मैं अध्वतीत पदरूप हूं, अध्वात्मक जो त्रितयबिंब विद्यात्मक संज्ञावाला है ॥ ३८ ॥ वह त्रैगुण्यातीत वेदोंसे साध्य है, पदकी इच्छा करनेवालोंको शोधन करना चाहिये, अध्वोंसे परे तुरीयातीत निर्वाण परमपद है ॥ ३९ ॥ इससे परे निर्गुण होनेसे इस मार्गका विशोधन हो जाताहै, इन दोनोंका प्रमाणक नाद है और नादान्त मेरा रूपही है ॥ ४० ॥ इस कारण मेरे निमित्त स्वतन्त्रतासे प्रधान परमेश्वर जो कुछ वस्तु है वह सब गुण और प्रधानके योगसे ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण व्यस्त यह जगत् अँकारकेही अर्थको कहता है, एक यही ब्रह्मका अक्षर सम्पूर्ण अर्थका वाचक है ॥ ४२ ॥

मयाभिधीयते तस्मादध्वातीतपदोस्म्यहम् ॥ अध्वात्मकं तु त्रितयं शिवविद्यात्मसंज्ञितम् ॥ ३८ ॥ तत्त्रैगुण्यं त्रयीसाध्यं संशोध्यं च
पदैषिणा ॥ अध्वातीतं तुरीयाख्यं निर्वाणं परमं पदम् ॥ ३९ ॥ तदतीतं च नैर्गुण्याददध्वनोस्य विशोधकम् ॥ द्वयोः प्रमापको नादो
नादांतश्च मदात्मकः ॥ ४० ॥ तस्मान्ममार्थस्वातंत्र्यात्प्रधानः परमेश्वरः ॥ यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः ॥ ४१ ॥
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ॥ सर्वार्थवाचकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ॥ ४२ ॥ तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः ॥
शिवो हि प्रणवो ह्येष प्रणवो हि शिवः स्मृतः ॥ ४३ ॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः ॥ चिंतया रहितो रुद्रो वाचोयन्मनसा
सह ॥ ४४ ॥ अप्राप्य तन्निवर्तंते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः ॥ एकाक्षरादकाराख्यादात्मा ब्रह्माभिधीयते ॥ ४५ ॥ एकाक्षरादुकाराख्याद्विधा
विष्णुरुदीर्यते ॥ एकाक्षरान्मकाराख्याच्छिवो रुद्र उदाहृतः ॥ ४६ ॥ दक्षिणांगान्महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञिकः ॥ वामांगादभवद्वि
ष्णुस्ततो विद्येति संज्ञितः ॥ ४७ ॥ हृदयान्नीलरुद्रो भूच्छिवस्य शिवसंज्ञकः ॥ सृष्टेः प्रवर्तको ब्रह्मा स्थितेर्विष्णुर्विमोहकः ॥ ४८ ॥

इसीसे सब जगत्को विस्तार करता हूं। इसप्रकार पहले शिव करते हैं, यह शिव प्रणवरूप और प्रणव शिवरूप है ॥ ४३ ॥ वाच्य वाचकका अत्यन्त भेद नहीं है, रुद्रको अभक्तजन ध्यान नहीं करसकते, यह मनके सहित वाणीके अवाच्य होते हैं ॥ ४४ ॥ उस वाच्यको प्राप्त न होकर इंद्रियें निवृत्त होती हैं, वह एकाक्षर अकार ब्रह्माकी आत्मा कहाता है ॥ ४५ ॥ और एकाक्षर उकारसे विष्णु कहाता है, एकाक्षर मकारसे वह शिव रुद्र कहाता है ॥ ॥ ४६ ॥ महेशके दक्षिण अंगसे ब्रह्मा आत्मसंज्ञक उत्पन्न हुआ है, वाम अंगसे विद्यासंज्ञक विष्णु हुए ॥४७॥ शिवके हृदयसे शिवसंज्ञक नीलरुद्र हुएहैं,

सृष्टिके प्रवृत्त करनेवाले ब्रह्मा मोहित और पालन करनेवाले विष्णु ॥ ४८ ॥ और संहार करने तथा उन दोनोंको नियममें रखनेवाले रुद्र हैं ॥ ४९ ॥ इस कारण यह तीनों जगत्के कारण हैं, इन तीनों कारणके शिव परमकारण हैं ॥ ५० ॥ इस अर्थको बिना जाने रजोगुणके वशीभूत हो वैर करके लडतेहुए तुम दोनोंको ज्ञान देनेको मध्यमें लिंग उपस्थित हुआ है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार ओम् में जो अथर्वने कहा था सो तुमसे कहा। ऋक्, यजु, साम, तथा उनकी सहस्रों शाखा ॥ ५२ ॥ वेदोंमें अपने मुखसे स्वयं कही हैं, इस प्रकार प्रगट कहनेपर भी स्वप्नके समान वाणीसे उन वेदोंको कुछ निश्चय न

संहारस्य तथा रुद्रस्तयोर्नित्यं नियामकः ॥ ४९ ॥ तस्मात्त्रयस्ते कथ्यंते जगतः कारणानि च ॥ कारणत्रयहेतुश्च शिवः परमकारणम् ॥ ५० ॥ अर्थमेतमविज्ञाय रजसा बद्धवैरयोः ॥ युवयोः प्रतिबोधाय मध्ये लिंगमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥ एवमोमिति मां प्राहुर्यदिहोक्तमथर्वणा ॥ ऋचो यजूंषि समानि शाखाश्चान्याः सहस्रशः ॥ ५२ ॥ वेदेष्वेवं स्वयं वक्रैर्व्यक्तमित्यवदत्स्वपि ॥ स्वप्नानुभूतमिव तत्ताभ्यां नाध्यवसीयते ॥ ५३ ॥ तयोस्तत्र प्रबोधाय तमोपनयनाय च ॥ लिंगेपि मुद्रितं सर्वं यथा वेदैरुदाहृतम् ॥ ५४ ॥ तद्दृष्ट्वा मुद्रितं लिंगे प्रसादाल्लिंगिनस्तदा ॥ प्रशांतमनसौ देवौ प्रबुद्धौ संबभूवतुः ॥ ५५ ॥ उत्पत्तिं विलयं चैव याथात्म्यं च षडध्वनाम् ॥ ततः परतरं धाम धामवंतं च पूरुषम् ॥ ५६ ॥ निरुत्तरतरं ब्रह्म निष्कलं शिवमीश्वरम् ॥ पशुपाशमयस्यास्य प्रपंचस्य सदा पतिम् ॥ ५७ ॥ अकुतोभयमत्यंतमवृद्धिक्षयमव्ययम् ॥ बाह्यमाभ्यंतरं व्याप्तं बाह्याभ्यंतरवर्जितम् ॥ ५८ ॥

हुआ ॥ ५३ ॥ तब उनके ज्ञान देने और अन्धकारके दूर करनेके निमित्त लिंगमें यह बात सब मुद्रित[१] (अंकित) होगई जैसा कुछ वेदोंने कहा है ॥ ५४ ॥ तब उसको लिंगमें मुद्रित देख, शिवकी कृपासे उन दोनों देवताओंका मन शांत हुआ और ज्ञान हुआ ॥ ५५ ॥ तब लिंगके लिंगत्व और लिंगीकी लिंगिता और लिंगमें सम्पूर्ण जगत् और अपनी भी उत्पत्ति प्रलय षडध्वकी यथार्थता उससे परे परमधाम और उस धामवाले पुरुषको ॥ ५६ ॥ जो सबसे उत्कृष्ट ब्रह्म निष्कल ईश्वर पशुपाशमें इस प्रपंचके अधिपति ॥ ५७ ॥ सब ओरसे भय रहित वृद्धि क्षयसे हीन, अविनाशी बाहर भीतर व्याप्त

---

[१] मुद्रणका व्यवहार आदि सृष्टिमें भी था, इससे यह सूचित होताहै।

अभ्यन्तर वर्जित ॥ ५८ ॥ सबसे निरस्त निरन्तर विश्वलोकसे विलक्षण लक्षण निर्देशसे रहित वाणी और मनसे परे ॥ ५९ ॥ प्रकाश स्वरूप एक रस शान्त प्रसन्नरूप सदा उदित सब कल्याणके स्थान वैसेही शक्तिसे युक्त ॥ ६० ॥ विरूपाक्ष देवको जानकर ब्रह्मा और नारायण शिरपर हाथ धर अंजली बांध भयभीत हो वचन बोले ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देव ! मैं ज्ञानी अथवा अज्ञानी कैसाही हूं आपने ही पहले मुझे निर्मित किया है, इस प्रकार भ्रान्तिको प्राप्त होकर कौन अपराध करैगा ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे निकट होनेपर मेरा अज्ञान स्थित रहो अपने और पराये कृत्यको निर्भय होकर कौन

निरस्तातिशयं शश्वद्विश्वलोकविलक्षणम् ॥ अलक्षणमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ५९ ॥ प्रकाशैकरसं शांतं प्रसन्नं सततोदितम् ॥ सर्वकल्याणनिलयं शक्त्या तादृशयान्वितम् ॥ ६० ॥ ज्ञात्वा देवं विरूपाक्षं ब्रह्मनारायणौ तदा ॥ रचयित्वांजलिं मूर्ध्नि भीतौ तौ वाचमूचतुः ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अज्ञो वाहमभिज्ञो वा त्वयादौ देव निर्मितः ॥ ईदृशीं भ्रांतिमापन्न इति कोऽत्रापराध्यति ॥ ६२ ॥ आस्तां ममेदमज्ञानं त्वयि सन्निहिते प्रभो ॥ निर्भयः कोऽभिभाषेत कृत्यं स्वस्य परस्य वा ॥ ६३ ॥ आवयोर्देवदेवस्य विवादोऽपि हि शोभनः ॥ पादप्रणामफलदो नाथस्य भवतो यतः ॥ ६४ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ स्तोतुं देव न वागस्ति महिम्नः सदृशी तव ॥ प्रभोरग्रे विधेयानां तूष्णींभावो व्यतिक्रमः ॥ ६५ ॥ किमत्र संघटेत्कृत्यमित्येवावसरोचितम् ॥ अजानन्नपि यत्किंचित्प्रलप्य त्वां नतोऽस्म्यहम् ॥ ६६ ॥ कारणत्वं त्वया दत्तं विस्मृतं तव मायया ॥ मोहितोऽहंकृतश्चापि पुनरेवास्मि शासितः ॥ ६७ ॥ विज्ञापितैः किं बहुभिर्भीतोऽस्मि भृशमीश्वर ॥ यतोऽहमपरिच्छेद्यं त्वां परिच्छेत्तुमुद्यतः ॥ ६८ ॥

भाषण कर सकता है ॥ ६३ ॥ हे देवदेव ! हमारा विवाद भी शोभन है, जिससे फल देनेवाले आपके चरणोंको प्रणामके फलको प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥ विष्णु बोले, भगवन् ! जैसी आपकी महिमा है उसकी स्तुति करनेको हमारी वाणी समर्थ नहीं है, इस कारण आपके आगे मौनभाव करना व्यतिक्रम है ॥ ६५ ॥ इस संकटमें अवसरके उचित क्या कृत्य करना है; सो कुछ भी न जानतेहुए प्रलयमें भी आपको करते हैं ॥ ६६ ॥ जो आपने जगत्का कारणत्व दिया था वह मैं तुम्हारी मायासे भूलगया; मोहित होकर जब कार्य किया तब आपने मुझको फिर शासन किया ॥ ६७ ॥ हे ईश्वर ! बहुत

कहनेसे क्या है मैं इस समय भीत होरहा हूं; जो मैं अपरिच्छेद्यरूप तुमको परिच्छेद करनेको युक्त, हुआहूं ॥ ६८ ॥ हे महादेव ! आपको भीतोंका दुःख नाश करनेवाला कहाहै. हे शंकर! उस कारण आप मेरे अपराध दूर कीजिये ॥ ६९ ॥ जब उन दोनोंने शिवसे इस प्रकार कहा तब प्रसन्न हो अनुग्रह कर देव उनसे बोले ॥ ७० ॥ शिव बोले, हे वत्स ! ब्रह्मा विष्णु तुम मेरी मायासे मोहित होगये हो तुमने स्वामीपनमें अहंकार करके परस्पर वैरभाव किया ॥७१॥ और तुमने युद्ध पर्यन्त विवाद किया कि, हमसे अधिक कोई नहीं; इस कारणसे जगतके कारणभूत तुम्हारी प्रजा सृष्टि उच्छिन्न होगई॥ ७२॥

त्वामुशंति महादेवं भीतानामार्तिनाशनम् ॥ अतोऽव्यतिक्रमं मेऽद्य क्षंतुमर्हसि शंकर ॥ ६९ ॥ इति विज्ञापितस्ताभ्यामीश्वराभ्यां महेश्वरः ॥ प्रीतोऽनुगृह्य तौ देवौ स्मितपूर्वमभाषत ॥ ७० ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वत्सवत्स विधे विष्णो मायया मम मोहितौ ॥ युवां प्रभुत्वेऽहंकृत्य बद्धवैरौ परस्परम् ॥ ७१ ॥ विवादं युद्धपर्यंतं कृत्वा नोपरतौ किल ॥ ततश्छिन्ना प्रजासृष्टिर्जगत्कारणभूतयोः ॥ ७२ ॥ अज्ञानमानप्रभवाद्वैमत्याद्युवयोरपि ॥ तन्निवर्तयितुं युष्मद्दर्पमोहौ मयैव तु ॥ ७३ ॥ एवं निवारितावद्यलिंगाविर्भावलीलया ॥ तस्माद्भूयो विवादं च व्रीडां चोत्सृज्य कृत्स्नशः ॥ ७४ ॥ यथास्वं कर्म कुर्यातां भवंतौ वीतमत्सरौ ॥ पुरा ममाज्ञया सार्द्धं समस्तज्ञानसंहिताः ॥ ७५ ॥ युवाभ्यां हि मया दत्ता कारणत्वप्रसिद्धये ॥ मंत्ररत्नं च सूत्राख्यं पंचाक्षरमयं परम् ॥ ७६ ॥ मयोपदिष्टं सर्वं तद्युवयोरद्य विस्मृतम् ॥ ददामि च पुनः सर्वं यथापूर्वं ममाज्ञया ॥ ७७ ॥

तुम दोनोंके अज्ञानमान और विमतिसे यह हुआ अब तुम दोनों अपना मोह और दर्प दूर करो ॥ ७३ ॥ इसप्रकार लिंगके आविर्भावकी लीला करके उन दोनोंको निवारण किया । तब भय विषाद लज्जाको सब प्रकार छोडकर ॥ ७४ ॥ तुम अभिमान रहित हो, यथायोग्य कर्म करो; पहले मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण ज्ञानसंहिता ॥ ७५ ॥ जो कारणत्व सिद्धिके निमित्त मैंने तुमको दी है ? उसमें सूत्रनामक मंत्र रत्न जो पंचाक्षर मय है ॥ ७६ ॥ वह जो मैंने

तुमको प्रदान किया था क्या तुम उसको भूलगये परन्तु फिर भी मैं तुमको यथापूर्व सबप्रदान करताहूं, मेरी आज्ञासे कार्य करो ॥ ७७ ॥ जिससे कि तुम मेरी आज्ञाके विना सृष्टि रक्षणमें समर्थ नहीं, इस प्रकार महादेवने उन ब्रह्मा नारायणके प्रति कहकर ॥ ७८ ॥ ज्ञानसंहिताके सहित उनको मन्त्रराज दिया, वह महान् और दिव्य महेश्वरी आज्ञाको प्राप्त हो ॥ ७९ ॥ महार्थयुक्त मन्त्र रत्न और सम्पूर्ण कलाको प्राप्त हो महेश्वरके चरणारविन्दमें दण्डवत प्रणाम कर ॥ ८० ॥ आनन्दमें मग्न हो भयरहित स्थित हुए इसी समय चित्ररूप इन्द्रजालके समान ईश्वरका ॥ ८१ ॥ वह लिंग अन्तर्धान होगया और

यतो विना युवां तेन न क्षमौ सृष्टिरक्षणे ॥ एवमुक्त्वा महादेवो नारायणपितामहौ ॥ ७८ ॥ मंत्रराजं ददौ ताभ्यां ज्ञानसंहितया सह ॥ तौ लब्ध्वा महतीं दिव्यामाज्ञां माहेश्वरीं पराम् ॥ ७९ ॥ महार्थं मंत्ररत्नं च तथैव सकलाः कलाः ॥ दंडवत्प्रणतिं कृत्वा देवदेवस्य पादयोः ॥ ८० ॥ अतिष्ठतां वीतभयावानंदास्तिंमितौ तदा ॥ एतस्मिन्नंतरे चित्रमिंद्रजालवदैश्वरम् ॥ ८१ ॥ लिंगं क्वापि तिरोभूतं न ताभ्यामुपलभ्यते ॥ ततो विलप्य हाहेति सद्यः प्रणयभंगतः ॥ ८२ ॥ किमसत्यमिदं वृत्तमिति चोक्का परस्परम् ॥ अचिंत्यवैभवं शंभोर्विचिंत्य च गतव्यथौ ॥ ८३ ॥ अभ्युपेत्य परां मैत्रीमालिंग्य च परस्परम् ॥ जगद्व्यापारमुद्दिश्य जग्मतुर्देवपुंगवौ ॥ ८४ ॥ ततः प्रभृति शक्राद्याः सर्व एव सुरासुराः ॥ ऋषयश्च नरा नागा नार्यश्चापि विधानतः ॥ लिंगप्रतिष्ठां कुर्वंति लिंगे तं पूजयंति च ॥ ८५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहनिवारणं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

उन्होंने न जाना कि, कहां गया ? तब वह हाहाकार कर विलाप करके तत्काल प्रणयके भंगसे ॥ ८२ ॥ कहने लगे कि, यह क्या हुआ, क्या असत्य है वा सत्य है; तब शिवका अचिन्त्य वैभव विचारकर व्यथारहित होगये ॥ ८३ ॥ और परम मित्रताको प्राप्त हो परस्पर आलिंगन कर जगत्के व्यापारके उद्देशसे वह दोनों भी चलेगये ॥ ८४ ॥ उस दिनसे इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता और असुर ऋषि नर नाग नारी विधिपूर्वक लिंगकी प्रतिष्ठा और पूजन करने लगे ॥ ८५ ॥ इसि श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे लिंगाविर्भावकथनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

श्रीकृष्ण बोले, हे भगवन् ! मैं पूजाकी विधि श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं जो बेर लिंगका विधान शिवजीने कहाहै ॥ १ ॥ उपमन्यु बोले, अपने अनुकूल शुक्लपक्षका दिन प्राप्त होनेमें शिवशास्त्रके मार्गसे प्रमाणयुक्त लिंग बनावै ॥ २ ॥ स्थान स्वीकार कर पृथ्वीकी परीक्षाका विधान कर, लक्षण उद्धारपूर्वक दशोपचार करै ॥ ३ ॥ उन दशोपचारोंसे पहले विनायकको पूजकर स्थानशुद्धि आदि करके लिंगको स्थान आलयमें लावे ॥ ४ ॥ कुंमकुमादिसे रंगी कंचनकी शलाकासे लक्षणयुक्त चिह्न करके शिल्पशास्त्रके अनुसार लिखै ॥ ५ ॥ आठ स्थानकी मृत्तिका जलसे अथवा पंचामृतसे

श्रीकृष्ण उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ॥ लिंगस्यापि च बेरस्य शिवेन विहितं यथा ॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ अनात्मप्रतिकूले तु दिवसे शुक्लपक्षके ॥ शिवशास्त्रोक्तमागण कुर्याल्लिंगं प्रमाणवत् ॥ २ ॥ स्वीकृत्याथ शुभस्थानं भूपरीक्षां विधाय च ॥ दशोपचारान्कुर्वीत लक्षणोद्धारपूर्वकान् ॥३॥ तेषां दशोपचाराणां पूर्वं पूज्य विनायकम् ॥ स्थानशुद्ध्यादिकं कृत्वा लिंगं स्नानालयं नयेत् ॥ ४ ॥ शलाकया कांचनया कुंकुमादिरसाक्तया ॥ लक्षितं लक्षणं शिल्पशास्त्रेण विलिखेत्ततः ॥ ५ ॥ अष्टमृत्सलिलैर्वाथ पंच मृत्सलिलैस्तथा ॥ लिग पिंडिकया सार्द्धं पंचगव्यैश्च शोधयेत् ॥ ६ ॥ सवेदिकं समभ्यर्च्य दिव्याद्यं तु जलाशयम् ॥ नीत्वाधिवासये त्तत्र लिंगं पिंडिकया सह ॥ ७ ॥ अधिवासालये शुद्धे सर्वशोभासमन्विते ॥ सतोरणे सावरणे दर्भमालासमावृते ॥८॥ दिग्गजाष्टकसं पन्ने दिक्पालाष्टघटान्विते ॥ अष्टमंगलकैर्युक्ते कृतदिक्पालकार्चिते ॥ ९ ॥ तेजसं दारवं वापि कृत्वा पद्मासनांकितम् ॥ विन्यसेन्म ध्यतस्तत्र विपुलं पीठकालयम् ॥ १० ॥ द्वारपालान्समभ्यर्च्य भद्रादींश्चतुरः क्रमात् ॥ सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनंदश्च विनंदकः ॥ ११ ॥

पिंडिकाके सहित पंचगव्यसे लिंगको शोधै ॥ ६ ॥ दिव्य गंगाजलादिको पूजन कर, फिर पिंडिकाके सहित लिंगको लेकर अधिवासित करै ॥ ७ ॥ जब स्थान जो सब शोभासे युक्त शुद्ध होजाय तब बंदनवार और दर्भमालाओंसे शोभित करै ॥ ८ ॥ आठ दिग्गजसे सम्पूर्ण मंगलके द्रव्ययुक्त होने और मंगलद्रव्यसे दिक्पालोंके पूजित होनेपर ॥ ९ ॥ धातु अथवा काठका पद्मासनसे अंकित बडा पीठकालय मध्यमें स्थापन करे बनावै ॥ १० ॥ उसके चारोंओर भद्रादि द्वारपालोंका पूजन कर सुभद्र, विभद्र, सुनंद, विनंद ॥ ११ ॥

को स्नान कराके वेदीके साथ लिंगकी पूजा करके चारोंओर वस्त्रके अँगोछेसे लपेटकर ॥ १२ ॥ सहजमें जलको पोंछकर पीठिकाके ऊपर शयन करावै;
शिर पूर्वकी ओर सूत्र नीचेकी ओर पिंडिका पश्चिमकी ओर करके ॥ १३ ॥ वहांपर सम्पूर्ण मंगलसंयुक्त लिंगको स्थित करै, पांच तीन अथवा एक रात
॥ १४ ॥ लिंगकी पूजाकर फिर विसर्जन करके पूर्ववत् उठाकर उत्सवसे पूजनकर फिर स्नानके स्थानमें लावै ॥ १५ ॥ वहांभी मंडलके मध्यसे शयनका
स्थान करके शुद्ध जलसे स्नान कराय लिंगका पूजन करै ॥ १६ ॥ शुद्ध लिपीहुई पृथ्वीके ईशानकी ओर कमलको लिखकर शिवकुंभका साधन कर उसमें

स्नापयित्वा समभ्यर्च्य लिंगं वेदिकया सह ॥ सकूर्चाभ्यां तु वस्त्राभ्यां समावेष्ट्य समंततः ॥ १२ ॥ प्रापय्य शनकैस्तोयं पीठिको
परि शाययेत् ॥ प्राक्शिरस्कमधःसूत्रं पिंडिकां चास्य पश्चिमे ॥ १३ ॥ सर्वमंगलसंयुक्तं लिंगं तत्राधिवासयेत् ॥ पंचरात्रं त्रिरात्रं वा
प्येकरात्रमथापि वा ॥ १४ ॥ विसृज्य पूजितं तत्र शोधयित्वा च पूर्ववत् ॥ संपूज्योत्सवमार्गेण शयनालयमानयेत् ॥ १५ ॥ तत्रापि
शयनस्थानं कुर्यान्मंडलमध्यतः ॥ शुद्धैर्जलैः स्नापयित्वा लिंगमभ्यर्चयेत्क्रमात् ॥ १६ ॥ ऐशान्यां पद्ममालिख्य शुद्धलिप्ते महीत
ले ॥ शिवकुंभं शोधयित्वा तत्रावाह्य शिवं यजेत् ॥ १७ ॥ वेदीमध्ये सितं पद्मं परिकल्प्य विधानतः ॥ तस्य पश्चिमतश्चापि चंडि
कापद्ममालिखेत् ॥ १८ ॥ क्षौमाद्यैर्वाहतैर्वस्त्रैः पुष्पैर्दर्भैरथापि वा ॥ प्रकल्प्य शयनं तस्मिन्हेमपुष्पं विनिक्षिपेत् ॥ १९ ॥ तत्र लिंगं
समानीय सर्वमंगलनिःस्वनैः ॥ रक्तेन वस्त्रयुग्मेन सकूर्चेन समंततः ॥२०॥ सह पिंडिकयावेष्ट्य शाययेच्च यथा पुरा ॥ पुरस्तात्पद्ममा
लिख्य तद्दलेषु यथाक्रमम् ॥ २१ ॥ विद्येशकलशान्न्यस्येन्मध्ये शैवीं च वर्द्धनीम् ॥ परीत्य पद्मत्रितयं जुहुयुर्द्विजसत्तमाः ॥ २२ ॥

आवाहनकर शिवका पूजन करै ॥ १७ ॥ वेदीके मध्यमें विधानसे श्वेतकमलकी कल्पना करके उसके पश्चिमकी ओर चण्डिकाका कमल लिखै ॥ १८ ॥
रेशमीन आदि वस्त्र पुष्प वा दर्भसे शयन कल्पित कर सुवर्णके उसमें पुष्प डालै ॥ १९ ॥ उसमें सब मंगलके बाजोंसे युक्त लिंगको लाकर दो लाल वस्त्र
और कूर्चके सहित ॥ २० ॥ चारों ओरसे पिंडिकासे लपेटकर शयन करावै; उसके दलोंमें यथाक्रमसे आगे कमल लिखै ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें

विघ्नेश्वरके कलशोंको रखकर मध्यमें शैवी और वर्द्धनीके चारोंओर तीन पद्मोंको प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणश्रेष्ठ हवन कर ॥ २२ ॥ और वे आठ मूर्ति
कल्पना करीहुई पूर्वादिके क्रमसे स्थित हैं; उनके निकट चार अथवा सब दिशाओंमें जप करने और पाठ करनेवाले स्थित हों ॥ २३ ॥ वे जो ब्रह्मादिक
चार मूर्ति कल्पित करी हैं वे हवन करैं; और आचार्य उन सबसे प्रथम उनके आगे ईशान अथवा पश्चिममें ॥ २४ ॥ प्रधान होम सात द्रव्यसे यथायोग्य
करै; आचार्यसे आधे अथवा चौथाई दूसरे ब्राह्मण होम करैं ॥ २५ ॥ परन्तु प्रधान होम एक आचार्य अथवा गुरुही करै, पहले पूर्णाहुतिसे एकसौ आठ

ते चाष्टमूर्त्तयः कल्प्याः पूर्वादिपरितः स्थिताः ॥ चत्वारश्चाथ वा दिक्षु स्वध्येतारस्सजापकाः ॥ २३ ॥ जुहुयुस्ते विरंच्याद्याश्चतस्रो
मूर्तयः स्मृताः ॥ दैशिकः प्रथमं तेषामैशान्यां पश्चिमेऽथ वा ॥ २४ ॥ प्रधानहोमं कुर्वीत सप्तद्रव्यैर्यथाक्रमम् ॥ आचार्य्यात्पादमर्द्धं
वा जुहुयुश्चापरे द्विजाः ॥ २५ ॥ प्रधानमेकमेवात्र जुहुयादथ वा गुरुः ॥ पूर्वं पूर्णाहुतिं हुत्वा घृतेनाष्टोत्तरं शतम् ॥ २६ ॥ मूर्ध्नि मूलेन
लिंगस्य शिवहस्तं प्रविन्यसेत ॥ शतमर्द्धं तदर्द्धं वा क्रमाद्द्रव्यैश्च सप्तभिः ॥ २७ ॥ हुत्वाहुत्वा स्पृशेल्लिंगं वेदिकां च पुनःपुनः ॥
पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा क्रमाद्दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ २८ ॥ आचार्यात्पादमर्द्धं वा होतॄणां स्थपतेरपि ॥ तदर्द्धं देयमन्येभ्यः सदस्येभ्यश्च
शक्तितः ॥ २९ ॥ ततः श्वभ्रे वृषं हैमं कूर्चं वापि निवेश्य च ॥ मृदंभसा पंचगव्यैः पुनः शुद्धजलेन च ॥ ३० ॥

आहुति घृतकी दे ॥ २६ ॥ और मूल मंत्रसे शिवके मूर्धास्थानमें शिव हाथको रखकर सौ पचास अथवा पच्चीस आहुतिसे सात द्रव्योंसे ॥ २७ ॥
हवन करके लिंग और वेदिकाको बारंबार स्पर्श करके फिर पूर्णाहुतिसे हवन कर क्रमसे दक्षिणा दे ॥ २८ ॥ आचार्यसे आधी वा चौथाई दक्षिणा दूसरे
होताओंको दे और चौथाई शिल्पीको दे वा आधी दे, और उससे आधी यथाशक्ति दूसरे सभामें बैठनेवालोंको अपनी शक्तिसे दे ॥ २९ ॥ फिर श्वभ्र
(छिद्रस्थान) में सुवर्णके वृषको बैठा कर अथवा कूर्च (आसन वा कुशमुष्टि) में बैठाकर मृत्तिका जल पंचगव्य और फिर पवित्र जलसे ॥ ३० ॥

---

१ वर्द्धनी—नालसहित पात्र ।

शुद्धकर चंदनसे लिप्त कर उस छिद्रस्थानमें ब्रह्म शिलाको रक्खै, फिर नौ शक्तिके नामसे करन्यास करके ॥ ३१ ॥ हरितालादि धातु; बीज गंध औषधी आदि करके शिवशास्त्रके विधान करके ब्रह्मशिलापर सब वस्तु डालै ॥ ३२ ॥ क्षीर वृक्षसे उत्पन्न हुए प्रतिलिंगको स्थापन करके उसे स्थापन कर उसे स्थित जानकर और ब्रह्मशिलाको भी ॥ ३३ ॥ पहले कुछ जल छिडककर मूलमंत्रसे स्थापन करै और शक्तिका मूलमंत्र उच्चारण कर उसके साथ पिंडिकाको जड़कर ॥ ३४ ॥ सुधादिलेपद्रव्योंसे उसका बन्धन कर स्थानको शोधकर अर्घ और पुष्प देकर परदा डालदे ॥ ३५ ॥ फिर लिंगके सम्मुख यथायोग्य

शोधितां चंदनालिप्तां श्वभ्रे ब्रह्मशिलां क्षिपेत् ॥ करन्यासं ततः कृत्वा नवभिः शक्तिनामभिः ॥ ३१ ॥ हरितालादिधातूंश्च बीजगंधौषधैरपि ॥ शिवशास्त्रोक्तविधिना क्षिपेद्ब्रह्मशिलोपरि ॥ ३२ ॥ प्रतिलिंगं तु संस्थाप्य क्षीरं वृक्षसमुद्भवम् ॥ स्थितं बुद्ध्वा तदुत्सृज्य लिंगं ब्रह्मशिलोपरि ॥ ३३ ॥ प्रागुदक्प्रवरां किंचित्स्थापयेन्मूलविद्यया ॥ पिंडिकां चाथ संयोज्य शाक्तं मूलमनुस्मरन् ॥ ३४ ॥ बंधनं बंधकद्रव्यैः कृत्वा स्थानं विशोध्य च ॥ दत्त्वा चार्घ्यं च पुष्पाणि कुर्युर्जवनिकां पुनः ॥ ३५ ॥ यथायोग्यं निषेकादि लिंगस्य पुरतस्तदा ॥ आनीय शयनस्थानात्कलशान्विन्यसेत्क्रमात् ॥ ३६ ॥ महापूजामथारभ्य संपूज्य कलशान्दश ॥ शिवमंत्रमनुस्मृत्य शिवकुंभजलांतरे ॥ ३७ ॥ अंगुष्ठानामिकायोगादादाय तमुदीरयेत् ॥ न्यसेदीशानभागस्य मध्ये लिंगस्य मंत्रवित् ॥ ३८ ॥ शक्तिं न्यसेत्तथा विद्यां विद्येशांश्च यथाक्रमम् ॥ लिङ्गमूले शिवजलैस्ततो लिंगं निषेचयेत् ॥ ३९ ॥ वर्द्धन्यां पिंडिकालिंगं विद्येशकलशैः पुनः ॥ अभिषिच्यासनं पश्चादाधाराद्यं प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

निषेकादि कर उस शयनस्थानसे लाकर क्रमसे कलशोंपर रक्खै ॥ ३६ ॥ फिर महापूजाआरम्भकर दश कलशोंको पूजन कर शिवमंत्रोंको स्मरण कर शिवकुंभको जिसमें जल भरा है ॥ ३७ ॥ अंगूठे और अनामिकाके योगसे लाकर मन्त्रको उच्चारण करै और लिंगके मध्य ईशानभागमें मन्त्रका जाननेवाला उसे स्थित करै ॥ ३८ ॥ उसमें विद्याशक्ति और विद्येशका क्रमसे न्यास करै, लिंगके मूलमें शिवजलसे लिंगको सींचै ॥ ३९ ॥ वर्द्धनी पिंडिकासे लिंगको फिर विद्येशके कलशोंसे अभिषेक कर पीछे आधारादिकी कल्पना करै ॥ ४० ॥

पंचकल्पन्यास करके दीप्त लिंगको स्मरण करताहुआ हाथजोड पूर्वको मुखकर शिवाशिवको खड़ा होकर आवाहन करै ॥ ४१ ॥ वृषराजके ऊपर चढ़कर विमानमें वा आकाशमार्गसेदेवी और देवको शृंगारकर आताहुआ स्मरण करै, सम्पूर्ण आभरणोंकी शोभासे युक्त सम्पूर्ण मंगलके शब्दोंसे युक्त ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा विष्णु, महेश, सूर्य, इन्द्रादि देवों करके युक्त जिनके कि सम्पूर्ण अंग आनन्दसे क्लिन्न हो रहेहैं और हाथजोड़े शिरझुकाये हैं ॥४३॥ स्तुति नमस्कार करते नृत्य करतेहैं इस प्रकार ध्यान कर पंचोपचारसे पूजा कर समाप्त करै ॥ ४४ ॥ इस पंचोपचारसे अधिक कोई नहीं है सब प्रतिमाओंकी लिंगवत

कृत्वा पंचकलान्यासं दीप्तं लिङ्गमनुस्मरेत् ॥ आवाहयेच्छिवौ साक्षात्प्राञ्जलिः प्रागुदङ्मुखः ॥ ४१ ॥ वृषाधिराजमारुह्य विमानं वा
नभस्तलात् ॥ अलङ्कृतं सहायांतं देव्या देवमनुस्मरन् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वमंगलनिस्वनैः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशार्कशक्रा
द्यैर्देवदानवैः ॥ आनंदक्लिन्नसर्वांगैर्विन्यस्तांजलिमस्तकैः ॥ ४३ ॥ स्तुवद्भिरेव नृत्यद्भिर्नमद्भिरभितो वृतम् ॥ ततः पंचोपचारांश्च
कृत्वा पूजां समापयेत् ॥ ४४ ॥ नातः परतरः कश्चिद्विधिः पंचोपचारकात् ॥ प्रतिष्ठां लिंगवत्कुर्यात्प्रतिमास्वपि सर्वतः ॥ ४५ ॥
लक्षणोद्धारसमये कार्यं नयनमोचनम् ॥ जलाधिवासे शयने शाययेत्तान्त्वधोमुखीम् ॥ ४६ ॥ कुंभोदशायितां मंत्रैर्हृदि तां सन्नियो
जयेत् ॥ कृतालयां परामाहुः प्रतिष्ठामकृतालयात् ॥ ४७ ॥ शक्तः कृतालयः पश्चात्प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥ अशक्तश्चेत्प्रतिष्ठाप्य लिंगं
बेरमथापि वा ॥ ४८ ॥ शक्तेरनुगुणं पश्चात्प्रकुर्वीत शिवालयम् ॥ गृहार्चां च पुनर्वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ॥ ४९ ॥ कृत्वा कनीयसं
बेरं लिंगं वा लक्षणान्वितम् ॥ अयने चोत्तरे प्राप्ते शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ ५० ॥

पूजा करै ॥ ४५ ॥ लक्षण उद्धारके समय नेत्रोन्मीलन करना चाहिये, जलमें और शयनमें प्रतिमाओंको अधोमुखी शयन करावै ॥ ४६ ॥ कुम्भके उदरमें प्राप्तहुए मन्त्रोंको उन प्रतिमाओंके हृदयमें नियोजित करै, स्थान न बनानेसे स्थान बनाना श्रेष्ठ कहा है उससे प्रतिष्ठाविधि अधिक कही है ॥ ४७ ॥ जब समर्थ हो तब स्थान बनवाकर प्रतिष्ठाविधि करै; और जो असमर्थ हो तो लिंगमूर्तिको स्थापन करै वा बेर (मूर्ति) बनावै ॥ ४८ ॥ पीछे शक्तिके होनेपर शिवालय बनावै, गृहचर्यामें फिरभी प्रतिष्ठाकी उत्तम विधि कहेंगे ॥ ४९ ॥ छोटाबेर (मूर्ति) अथवा लिंगका लक्षणसे युक्त बनाकर उत्तरायणमें शुक्लपक्ष

शुभदिनमें ॥ ५० ॥ सुन्दर वेदी बनाकर उसमें पूर्वतक कमल लिखै, पुष्प पत्रादि वहां बखेरकर मध्यमें घड़ेको रखकर ॥ ५१ ॥ उसके चारोंओर चारों
दिशाओंमें चार कलश स्थापन करै पांच ब्रह्मके नाम उनके बीज पांचपांच ॥ ५२ ॥ स्थापित कर और पूजन कर मुद्रा दिखाकर रक्षा करै, मट्टी जलादिसे
पूर्ववत् बेरलिंगको शुद्धकर ॥ ५३ ॥ उत्तरमें स्थित सुन्दर आसनमें फूलोंसे आच्छादित कर स्थित करै, पुष्पको शिरपर रख प्रोक्षणीके जलसे प्रोक्षण
करै ॥ ५४ ॥ फिर जय शब्दादि फूलोंसे पूजन कर ईशानसे विद्येश्वरतकके कुम्भोंसे मूलमन्त्र पढकर स्नान करावै ॥ ५५ ॥ फिर पंचकलान्यास और

देवीं कृत्वा शुभे देशे तत्राब्जं पूर्ववल्लिखेत् ॥ विकीर्य पत्रपुष्पाद्यैर्मध्ये कुंभं निधाय च ॥ ५१ ॥ परितस्तस्य चतुरः कलशान् दिक्षु
विन्यसेत् ॥ पंच ब्रह्माणि तद्बीजैस्तेषु पंचसु पंचभिः ॥ ५२ ॥ न्यस्य संपूज्य मुद्रादि दर्शयित्वाभिरक्ष्य च ॥ विशोध्य लिंगं बेरं वा
मृत्तोयाद्यैर्यथा पुरा ॥ ५३ ॥ स्थापयेत्पुष्पसंछन्नमुत्तरस्थे वरासने ॥ निधाय पुष्पं शिरसि प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीजलैः ॥ ५४ ॥ समभ्यर्च्य
पुनः पुष्पैर्जयशब्दादिपूर्वकम् ॥ कुंभैरीशानविद्यांतैः स्नापयेन्मूलविद्यया ॥ ५५ ॥ ततः पंचकलान्यासं कृत्वा पूजां च पूर्ववत् ॥
नित्यमाराधयेत्तत्र देव्या देवं त्रिलोचनम् ॥ ५६ ॥ एकमेवाथ वा कुंभं मूर्तिमंत्रसमन्वितम् ॥ न्यस्य पद्मांतरे सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥
॥ ५७ ॥ अत्यंतोपहतं लिंगं विशोध्य स्थापयेत्पुनः ॥ संप्रोक्षयेदुपहतमनागुपहतं यजेत् ॥ ५८ ॥ लिंगानि बाणसंज्ञानि स्थापनी
यानि वा न वा ॥ तानि पूर्वं शिवेनैव संस्कृतानि यतस्ततः ॥ ५९ ॥ शेषाणि स्थापनीयानि यानि दृष्टानि बाणवत् ॥ स्वयमुद्भूत
लिंगे च दिव्ये श्चार्षे तथैव च ॥ ६० ॥

पूर्ववत् पूजा करके वहां देवीसहित त्रिलोचन शिवकी नित्य आराधना करै ॥ ५६ ॥ इसी प्रकार मूर्त्तिसे युक्त उस घटको दूसरे कमलमें रख फिर सब
पूजादिक करै ॥ ५७ ॥ और जो अत्यन्त दोषयुक्त लिंग हो उसे शोधकर फिर स्थापन करै, दोषयुक्तको प्रोक्षण करै और थोडे दोषयुक्त होनेसे यजन
करै ॥ ५८ ॥ जितने बाणसंज्ञक लिंग स्थापन करने योग्य हैं वे स्थापित हुएहों वा न हों वह पहलेही शिवसे संस्कृत होचुकेहैं ॥ ५९ ॥ जो बाणवत

देखेजायँ वह भी स्थापनके योग्य हैं; जो लिंग स्वयं प्रादुर्भूत देवता तथा ऋषिका स्थापित कियाहो ॥ ६० ॥ यदि पीठसे रहित हो तो प्रोक्षण कर पीठपर स्थित कर देना उचित है, उसपर स्थितकर यजन कराना प्रतिष्ठाकी विधि करनी उचित नहीं ॥ ६१ ॥ दग्ध विशीर्ण क्षत अंगवाले लिंगको जलाशयमें डाल देना चाहिये और जो सन्धान (जोड़ने) योग्य हो तो उसे जोड़कर प्रतिष्ठाविधि करै ॥ ६२ ॥ बेरसे वा विकलहुए लिंगसे देवपूजा करके उद्वासन (विसर्जन) कर हृदयमें संधान वा त्याग यथायोग्य करै ॥ ६३ ॥ एक दिन पूजाका व्यतिक्रम होजाय तो दूनी पूजा करै दो रात होनेपर महापूजा करै फिर

अपीठे पीठमावेश्य कृत्वा संप्रोक्षणं विधिम् ॥ यजेत्तत्र शिवं तेषां प्रतिष्ठा न विधीयते ॥ ६१ ॥ दग्धं श्लथं क्षतांगं च क्षिपेल्लिंगं जलाशये ॥ संधानयोग्यं संधाय प्रतिष्ठाविधिमाचरेत् ॥ ६२ ॥ बेराद्वा विकलाल्लिंगादेवपूजापुरस्सरम् ॥ उद्वास्य हृदि संधानं त्यागं वा युक्तमाचरेत् ॥ ६३ ॥ एकाहपूजाविहतौ कुर्याद्द्विगुणमर्चनम् ॥ द्विरात्रे च महापूजां संप्रोक्षणमतः परम् ॥ ६४ ॥ मासादूर्ध्वमनेकाहं पूजा यदि विहन्यते ॥ प्रतिष्ठा प्रोच्यते कैश्चित्कैश्चित्संप्रोक्षणक्रमः ॥ ६५ ॥ संप्रोक्षणे तु लिंगादेर्देवमुद्वास्य पूर्ववत् ॥ अष्टपञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदंभसा ॥ ६६ ॥ गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च ॥ प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६७ ॥ सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यस्य लिंगस्य मस्तके ॥ पंचवारं जपेन्मूलमष्टोत्तरशतं ततः ॥ ६८ ॥ ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठांतं संस्पृशेदपि ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्देवमावाह्य पूर्ववत् ॥ ६९ ॥

प्रोक्षण करै ॥ ६४ ॥ माससे अधिक अनेक दिन जो पूजा न की जाय तो उसमें किसी ऋषिका मत है कि, प्रतिष्ठा करै, कोई कहतेहैं प्रोक्षण करै ॥६५॥ लिंगादि प्रोक्षणमें देवको पूर्ववत् उद्वासन कर अथवा पांच बार मृत्तिका वा जलसे स्नान कराय ॥ ६६ ॥ अथवा गायोंके दूधसे वा कुशोंके जलसे शोधकर प्रोक्षणीके जलद्वारा एकसौ आठ मूलमन्त्रसे शुद्ध कर॥ ६७ ॥ पुष्प कुशायुक्त हाथ लिंगके मस्तकपर रखकर मूलमन्त्रको पांच बार और एकसौ आठ बार जपै ॥ ६८ ॥ फिर मूलमन्त्रसे मूर्धा आदि पीठपर्यन्त स्पर्श करै फिर पूर्ववत् देवका आवाहनकर महापूजा करै ॥ ६९ ॥

जब कि स्थापित लिंग न मिलै तो शिवस्थानमें अथवा जलमें अग्नि सूर्य अथवा आकाशमें भगवान शिवका पूजन करै ॥७०॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स०वा० सं०उत्तरखण्डे लिंगबेरप्रतिष्ठासंप्रोक्षणादिविधिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥ श्रीकृष्णजी बोले, ज्ञानक्रिया और पूजामें संग्रहग्रन्थोंसे सार लेकर जो आपने कहा वह वेदसम्मत मैंने श्रवण किया ॥ १ ॥ इस समय परम दुर्लभ योगके सुननेकी इच्छा करताहूं; उसका सांगोपांग अधिकार विधि प्रयोजन ॥ २॥ जो योगाभ्यासके त्यागसे विधिपूर्वकका किया मरण होताहै; वह योगसे साधन करनेको समर्थ होताहै.जिससे मनुष्य आतमहा नहीं होता॥ ३॥

अलब्धे स्थापिते लिंगे शिवस्थाने जलेऽथ वा ॥ वह्नौ रवौ तथा व्योम्नि भगवंतं शिवं यजेत् ॥ ७० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे प्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ज्ञाने क्रियायां चर्यायां सारमुद्धृत्य संग्रहात् ॥ उक्तं भगवता सर्वं श्रुतं श्रुतिसमं मया ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगं परमदुर्लभम् ॥ साधिकारं च सांगं च सविधिं सप्रयोजनम् ॥ २ ॥ यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपमर्दतः ॥ सद्यः साधयितुं शक्यं येन स्यान्नात्महा नरः ॥३॥ तच्च तत्कारणं चैव तत्कालकरणानि च ॥ तद्भेदतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण सर्वप्रश्नार्थवेदिना ॥ ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्ये शृणु समाहितः ॥ ५ ॥ निरुद्धवृत्त्यंतरस्य शिवे चित्तस्य निश्चला ॥ या वृत्तिः सा समासेन योगः स खलु पंचधा ॥ ६ ॥ मंत्रयोगः स्पर्शयोगो भावयोगस्तथापरः ॥ अभावयोगस्सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः ॥ ७ ॥ मंत्राभ्यासवशेनैव मंत्रवाच्यार्थगोचरः ॥ अव्याक्षेपा मनोवृत्तिर्मंत्रयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

उसके वह कारण और कालके कारण उसके भेदका तारतम्य यथायोग्य कहिये ॥ ४ ॥ उपमन्यु बोले, हे कृष्ण ! सब प्रश्नके जाननेवाले आपने अच्छा प्रश्न किया सो मैं क्रमसे सब कहताहूं आप सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ अन्तरकी वृत्तियोंको रोककर शिवमेंही निश्चल चित्त लगानेकी जो वृत्ति है उसीका नाम योग है, वह योग पांच प्रकारका है ॥ ६ ॥ मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग सबसे परे है ॥ ७ ॥ मन्त्रके अभ्याससे

मंत्रके वाच्यार्थ गोचर होकर जो मनकी वृत्ति स्थिर होजाती है इसका नाम मन्त्रयोग है ॥ ८ ॥ प्राणायामयुक्त वही मनोवृत्ति स्पर्शयोग कहाता है और मन्त्रार्थ विचार अभावमेंही मन्त्रके जपमात्र लक्षणवाले प्राणायामसे रहित भावयोग कहाता है ॥ ९ ॥ जिस योगसे सारा जगत् तिरोहितरूप होजाता है; यह अभावयोग कहाता है, कारण कि इसमें विद्यमान वस्तुकाभी मान नहीं होता ॥ १० ॥ एक उपाधिरहित शिवके तत्त्वमात्रके चिन्तन करनेवाली मनोवृत्ति जिसमें प्रपञ्चकी उपाधि नहीं है इसका नाम महायोग है ॥ ११ ॥ योगाधिकार करतेहैं देखनेयोग्य प्रजा पशु आदि सम्पत्तिकी प्राप्ति और वेदमें

प्राणायामसुखा सैव स्पर्शयोगोभिधीयते ॥ स मंत्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोगः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥ विलीनावयवं विश्वं रूपं संभाव्यते यतः ॥ अभावयोगः संप्रोक्तोऽनाभासाद्वस्तुनः सतः ॥ १० ॥ शिवस्वभाव एवैकश्चिंत्यते निरुपाधिकः ॥ यथा शैवमनोवृत्तिर्महायोग इहोच्यते ॥ ११ ॥ दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषये मनः ॥ यस्य तस्याधिकारोस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित् ॥ १२ ॥ विषयद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च ॥ दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः ॥ १३ ॥ अष्टांगो वा षडंगो वा सर्वयोगः समासतः ॥ यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्यं तथासनम् ॥ १४ ॥ प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च ॥ समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभिः ॥ १५ ॥ आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोथ धारणा ॥ ध्यानं समाधिर्योगस्य षडंगानि समासतः ॥ १६ ॥ पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशास्त्रे समीरितम् ॥ शिवागमेषु चान्येषु विशेषात्कामिकादिषु ॥ १७ ॥

सुने ज्योतिष्टोमादि स्वर्गसाध्य विपर्ययोंमें जिसका मन विरक्त है; उसीका योगमें अधिकार है दूसरेका नहीं ॥ १२ ॥ इस लोकके परलोकके दोनों विषयोंमें दोषको देख अर्थात् यहांके सुखभी शीघ्र नष्ट होजातेहैं और परलोकके सुखभी एकदिन नष्ट होजातेहैं, ऐसे ईश्वरके नियम विचार करनेसे मन शीघ्र विरक्त होजाता है ॥ १३ ॥ अष्टांग वा षडंग संक्षेपसे योगके अंग कहेहैं; यम, नियम और स्वस्तिक आदि आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि यह आठ अंगहैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह संक्षेपसे योगके छः अंग हैं ॥ १६ ॥ शिवशास्त्रोंमें इनके

योगशास्त्रेष्वपि तथा पुराणेष्वपि केषु च ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः ॥ यम इत्युच्यते सद्भिः पंचावयवयोगतः ॥ १८ ॥

पृथक् २ लक्षण कहे हैं, विशेष कर शिवशास्त्रोंमें कामिकादि कर्ममें वर्णन कियेहैं ॥ १७ ॥ योगशास्त्र तथा अन्य पुराणोंमें भी वर्णन कियेहैं इसमें हम संक्षेपसे कहते हैं, योगियाज्ञवल्क्य गीतामें लिखा है; यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह योगके अंग हैं; यम नियम दश प्रकारके हैं, आसनोंमें आठ उत्तम हैं, उनमें तीन उत्तम हैं, प्राणायामके तीन भेद और प्रत्याहार पांच प्रकारका है, धारणा पांच प्रकार और इसी प्रकार ध्यान है, तीन उसमें श्रेष्ठ हैं, समाधि एकरूप है, ऐसा कोई मुनि कहते हैं सो विस्तारसे सुनो, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह (दान नहीं लेना)दया, ऋजुता, क्षमा, धारणा परिमित भोजन, शौच करना यह यम कहाते हैं, और मन वचन कर्मसे सदा सब प्राणियोंमें जो अहित करना है वही हिंसा है, जिसमें सब प्राणियोंको क्लेश होता है, और जो हिंसा वेदमें कही है, यदि वह अभिचार कर्म है तो हिंसा है, प्राणियोंके हितकाही नाम सत्यहै, सत्य भाषणहीका नाम सत्य नहीं; मन वचन कर्मसे सब प्राणियोंमें सब प्रकारसे मैथुनके त्यागका नाम ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित यती नैष्ठिक कहाते हैं; ब्रह्मचर्यके होनेसे वह भी और वनवासी भी एक है, ब्रह्मचर्यविधि गृहस्थोंको भी कही है, इसप्रकार करनेसे राजा और गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहा सकते हैं, कोई पंडित कहते हैं कि, वैश्यवृत्ति करनेवालोंको नित्य गुरुकी शुश्रूषा करनाही ब्रह्मचर्य है, सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेका नाम दया है, तथा दूसरे विहित कार्योंमें मन वचन कर्मका प्रवृत्तिमें निवृत्ति एकरूप रहनेका नाम आर्जव है, जो प्रिय अप्रियमें समान रहते हैं, वही योगियोंने क्षमा कही है, अर्थ हानि बन्धुवियोग सम्पदाकी प्राप्ति इनमें सर्वत्र चित्तके स्थापनका नाम धृति है । मुनियोंको आठ ग्रास और वनवासियोंको सोलह ग्रास गृहस्थोंको और ब्रह्मचारियोंको यथेष्ठ खाना चाहिये, बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे शौच दो प्रकारका है, मृत्तिका जलसे बाह्य और भाव शुद्धिसे अन्तर पवित्रता होती है, धर्म और अध्यात्म विद्यासे मनकी शुद्धि होती है, तप सन्तोष आस्तिक्य दान ईश्वरका पूजन सिद्धान्त श्रवण लज्जा बुद्धि जप व्रत यह नियम हैं, इनको पृथक् २ सुनो, विधि अनुसार कृच्छ्रचान्द्रायणादि करके शरीरके सुखानेका नाम तप है, यदृच्छा लाभसेही

मेरी पूर्ति होगी ऐसी बुद्धिका नाम ऋषियोंने संतोष कहा है, जिसका धर्माधर्ममें विश्वास हो उसे आस्तिक कहते हैं, न्यायसे उत्पन्न किया जो दयासे किसीको दियाजाता है, और अर्थियोंको श्रद्धासे जो दिया जाता है उसका नाम दान है, जो स्वभावसे थोडा या बहुत शक्ति अनुसार भक्तिसे किया जाय वही ईश्वरपूजन है, जो राग और ममता दुष्टता आदि हिंसासे रहित कर्म किया जाता है वह तप ईश्वरपूजन है, सिद्धान्त श्रवण वेदान्त श्रवणका नाम है; क्षत्रियको भी ब्राह्मणके समान सिद्धान्त श्रवण करना उचित है, शील सत्पुरुषोंके आचरणवाले वैश्योंको भी यही उचित है, स्त्री और शूद्रोंको अपने धर्ममें स्थित तपस्वियोंके सिद्धान्त सुनना और पुराण सुनना कहा है, वैदिक लौकिक मार्गमें जो कल्पित कर्म हैं उसमें जो लज्जा है कि मैंने कुछ नहीं किया यही है, विहित मार्गोंमें श्रद्धासे जो मति होती है वह मति है जिसमें गुरुका उपदेश भी वेदबाह्य स्वीकार नहीं किया है, विधिमार्गसे मन्त्राभ्यासका नाम जप है, वेद वेदांग पुराण इतिहास पढनेपर जो अध्ययन है वह मन्त्रका अभ्यास जप कहाता है, जो प्रसन्न हो गुरुने उपदेश किया है उनकी अनुज्ञासे

शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्रणिधिरेव च ॥ इति पंचप्रभेदस्स्यान्नियमः स्वांशभेदतः ॥ १९ ॥ स्वस्तिकं पद्ममध्येंदुं वीरं योगं प्रसा
धितम् ॥ पर्यंकं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा ॥ २० ॥

धर्मपूर्वक अपनी सिद्धिके निमित्त उपायके ग्रहण करनेका नाम व्रत है, इसप्रकार औरोंके लक्षण भी शिवसंहिता आदि योगग्रन्थोंमें देखलेना. हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करनी, देह यात्राके बिना भोग साधनका स्वीकार न करना, इस पंचावयव नव योगको बुद्धिमानोंने यम कहाहै ॥१८॥ शौच तुष्टि तप जप ईश्वर अर्पणके निमित्त कर्मका करना । इसप्रकार अपने अंशके भेदसे नियम पांच प्रकारका है ॥ १९ ॥ स्वस्तिक पद्म अर्द्धेन्दु वीरासन योगप्रसाधित (अत्यन्त अभ्यास किया हुआ) यथेच्छा अपनी इच्छासे, कोई एक आसनका अभ्यास करै. इस प्रकार आसन आठ प्रकारका कहा है । जानु ऊरुके मध्यमें दोनों चरणोंके तलुओंको करके सीधा देह कर बैठजाय यह स्वस्तिक आसन है । दहने चरणमें बाई ऊरुको स्थित करके फिर बायें पैरकी ऊरु पृथ्वीमें धरके स्थित होनेका नाम वीरासन है । अर्द्धेन्दु अर्द्धचन्द्राकृति होता है । वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण स्थापन करके

प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनम् ॥ तद्रेचकं पूरकं च कुंभकं च त्रिधोच्यते ॥ २१ ॥ नासिकापुटमंगुल्या पीड्यैकमपरेण तु ॥ औदरं रेचयेद्वायुं तथायं रेचकः स्मृतः ॥ २२ ॥ बाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत् ॥ नासापुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम् ॥ ॥ २३ ॥ न मुंचति न गृह्णाति वायुमंतर्बहिःस्थितम् ॥ संपूर्णं कुंभवत्तिष्ठेद्चलः स तु कुंभकः ॥ २४ ॥ रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुतं न विलंबितम् ॥ तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः ॥ २५ ॥ रेचकादिषु योभ्यासो नाडीशोधनपूर्वकः ॥ स्वेच्छोत्क्रमणपर्यंतः प्रोक्तो योगानुशासने ॥ २६ ॥ कन्यकादिक्रमवशात्प्राणायामनिरोधनम् ॥ तच्चतुर्द्धोपदिष्टं स्यान्मात्रागुणविभागतः ॥ २७ ॥ कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः ॥ मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ॥ २८ ॥

बायाँ चरण दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थापन कर दक्षिण हाथ पीठकी ओर कर वाम ऊरुके ऊपर स्थित चरणके अंगुष्ठको ग्रहण कर तथा वाम हाथको पृष्ठभागमें कर दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थित बायें चरणके अँगूठेको ग्रहण कर हृदयसमीप ठोडी धरके नासिकाके अग्रभागको देखै, यह पद्मासन है इसी प्रकार मयूरासन सिद्धासन सिंहासन भद्रासनके भेद योगके ग्रन्थोंमें लिखेहैं ॥ २० ॥ अपने देहसे उत्पन्न हुई जो वायु श्वास प्रश्वास रूप है, उसकी गति रोकनेका नाम प्राणायाम है, वह रेचक कुम्भक और पूरक भेदसे तीन प्रकारका है ॥ २१ ॥ नासिकाको एक पुटको (इडा) अंगुलीसे बन्द करके दूसरे स्वर पिंगलामेंसे उदरकी वायु निकालनेका नाम रेचक है ॥ २२ ॥ और बाह्य पवनसे वायुको जो हृदयमें दूसरे नासापुटसे पूरण करना है वह पूरक प्राणायाम है ॥ २३ ॥ अन्तर और बाहर स्थित वायुको जब न ग्रहण किया जाता है न त्याग किया जाता है, और घटके समान अचल होता है उसीका नाम कुम्भक है ॥ २४ ॥ यह रेचकादि करनेमें न बहुत विलम्ब करना चाहिये न शीघ्रता करै, क्रमयोगसे उद्यत होकर साधक इसका अभ्यास करै ॥ २५ ॥ नाडीशोधनपूर्वक रेचकादिके अभ्यास करनेमें अपनी इच्छा जहांतक हो तहांतक यह उपक्रम करता रहै, न शीघ्रता करै न विलम्बता करै ऐसा योगशास्त्रमें कहा है ॥ २६ ॥ पहले छोटा फिर बडा, इस क्रमसे प्राणायाम करै वह मात्रा गुणके विभागसे चार प्रकारका है ॥ २७ ॥ सुकृत उद्घात है; (अर्थात प्राणवायुसे अपानके ताडित होनेपर नाभिमूलसे प्रेरित वा शिरपर्यन्त ताडित होना इसका नाम उद्घात है,) यह बारह मात्रावाला है और कनीय प्राणायाम

है; इसके विरुद्ध चौबीस मात्राका मध्यम प्राणायाम होता है ॥ २८ ॥ तीन उद्धातयुक्त छब्बीस मात्राका प्राणायाम उत्तम कहाता है; स्वेद कम्पादिसका
उत्पन्न करनेवाला चौथा प्राणायाम है यही बात पातञ्जलके २ पादके ४९ सूत्रमें कही है, जिसमें श्वास प्रश्वास वायुके गमनका अभाव हो वह प्राणायाम
बाह्य है, जहां वायुके अन्तर्गमनका अभाव हो सो आभ्यन्तर जहां दोनोंका स्तम्भ हो उसे स्तम्भवृत्ति कहते हैं, जैसे अग्निमें पडे उपलेपर जल डालनेसे
वह संकुचित होता है; तैसेही इसमें दोनोंका स्तम्भ होजाता है, सो अभ्यासकिये पुरुषसे होसकतेहैं; यही इसका विषय है; इसे देशपरिदृष्ट कहतेहैं, यही इसका
लक्षण है; इसे कालपरिदृष्ट कहतेहैं, जितने श्वास प्रश्वासोंका प्रथम उद्धात है; उतनेही ग्रहण कियेका दूसरा और उतनेही ग्रहण कियेका तीसरा है, ऐसेही

उत्तमस्तु त्रिरुद्धातः षड्विंशन्मात्रकः परः ॥ स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः ॥ २९ ॥ आनंदोद्भवरोमांचनेत्राश्रूणां विमोचनम् ॥
जल्पभ्रमणमूर्छाद्यं जायते योगिनः परम् ॥ ३० ॥ जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलंबितम् ॥ अंगुलीस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रेति
प्रकीर्तिता ॥ ३१ ॥ मात्राक्रमेण विज्ञेयाश्चोद्धातक्रमयोगतः ॥ नाडीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायामं समाचरेत् ॥ ३२ ॥ अगर्भश्च सगर्भश्च
प्राणायामो द्विधा स्मृतः ॥ जपं ध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ॥ ३३ ॥ अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ॥ तस्मा
त्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम् ॥ ३४ ॥

मृदु मध्य और तीव्र है; जहां ऐसा विचार हो उसे संख्या परिदृष्ट कहतेहैं (बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः) जो दीर्घ सूक्ष्मसे भिन्न हो और जिसमें श्वास
प्रश्वासकी गतिका रोध होजाय, वह चौथा है ॥ २९ ॥ इसमें आनन्दकी प्राप्ति रोमांच नेत्रोंसे आंसू निकलना जल्प भ्रमण मूर्च्छा आदि योगीको होते
हैं ॥ ३० ॥ न शीघ्रतासे न देरसे जानुके चारों ओर हाथ घुमाकर जितनी देरमें चुटकी बजाई जाय उसका नाम मात्रा है ॥ ३१ ॥ मात्राक्रमसे
उद्धातक्रम जानने चाहियें, और प्रथम नाडी शोधकर फिर प्राणायाम करै ॥ ३२ ॥ अगर्भ और सगर्भ भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है, जप ध्यानके विना
अगर्भ और जप ध्यानसे संयुक्त सगर्भ है ॥ ३३ ॥ अगर्भसे गर्भसंयुक्त प्राणायाम सौगुणा अधिक है इस कारण योगी सगर्भ प्राणायाम करतेहैं ॥ ३४ ॥

प्राणके विजयसे दश वायु जीते जातेहैं; प्राण अपान समान उदान व्यान ॥ ३५ ॥ नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनञ्जय यह दश वायु हैं; प्रयाण करता है, इससे इसको प्राण कहतेहैं ॥ ३६ ॥ जो कुछ भोजन कियाजाता है उसको नीचे लेजाता है इससे उसको अपान कहतेहैं, शरीरके अंगको व्याप्त करता है इससे उसे व्यान कहते हैं और शेषको बढाता हुआ ॥ ३७ ॥ मर्मस्थानोंको उद्वेजित करता है, इससे उदान कहाता है, सब अंगको समान करनेसे समान कहाता है ॥ ३८ ॥ मुखसे किसी वस्तुको उद्गार करनेवाला नाग, उन्मीलनमें कूर्म खांसी (छींक) में कृकल, और जंभाई देवदत्तसे

प्राणस्य विजयादेव जीयंते देहवायवः ॥ प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च ॥ ३५ ॥ नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते ॥ ३६ ॥ अवाङ्नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते ॥ व्यानो व्यानशयत्यंगान्यशेषाणि विवर्धयन् ॥ ३७ ॥ उद्वेजयाति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः ॥ समं नयति सर्वांगं समानस्तेन गीयते ॥ ३८ ॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः ॥ कृकलः क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ॥ ३९ ॥ न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः ॥ क्रमेणाभ्यस्यमानोयं प्राणायामप्रमाणवान् ॥ ४० ॥ निर्दहत्यखिलं दोषं कर्तुर्देहं च रक्षति ॥ प्राणे तु विजिते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत् ॥४१॥ विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते॥बहुभोजनसामर्थ्यं चिरादुच्छ्वासनं तथा ॥४२॥ लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् ॥ सर्वरोगक्षयश्चैव बलं तेजः सुरूपता ॥ ४३ ॥ धृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता ॥ तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः ॥ ४४ ॥ प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्वं विषयेष्विह ॥ ४५ ॥

होती है ॥ ३९ ॥ धनञ्जय पोषक पवन सर्वव्यापी है, वह मृतकको भी त्याग नहीं करता, क्रमसे अभ्यास कियाहुआ प्रमाणयुक्त प्राणायाम ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण दोष भस्मकर कर्ताके देहकी रक्षा करता है; सम्यक्प्रकारसे प्राण जय होनेपर उनके चिह्नोंसे देखले ॥ ४१ ॥ विष्ठा और मूत्र श्लेष्माकी अल्पता होती है, बहुत भोजनकी सामर्थ्य और विलम्बसे श्वास आता है ॥ ४२ ॥ लघुता शीघ्रगामीपन, उत्साह, स्वरकी मधुरता, सम्पूर्ण रोगोंका क्षय, बल तेजस्वरूप ॥ ४३ ॥ धृति, बुद्धि, तरुणाई, स्थिरता होती है; प्रसन्नता तप पापका क्षय यज्ञ दान व्रतादिक ॥ ४४ ॥ यह प्राणायामकी सोलहवीं कला भी

तो नहीं है; जिस समय इन्द्रिय प्रसन्न हो अपने २ विषयोंमें लगें ॥ ४५ ॥ उनको उन विषयोंसे हटाकर ग्रहण करनेका नाम प्रत्याहार है, मनको आदि लेकर इन्द्रिय ॥ ४६ ॥ ग्रहण कीहुई स्वर्ग और नरकके निमित्त होती हैं, इस कारण सुखकी इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् ज्ञान वैराग्यमें स्थित हो ॥ ॥ ४७ ॥ इन्द्रियरूपी घोड़ोंको रोककर आत्मासे आत्माका उद्धार करै; चित्तके स्थिर करनेका नाम धारणा है योग सूत्रमें [देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति] ऐसा लिखा है ॥ ४८ ॥ स्थान एक शिव ही है दूसरा नहीं कारण कि औरमें दोष हैं, समयकी अवधि करके स्थानमें मनको स्थितकर ॥ ४९ ॥ शिवरूपी लक्ष्यसे पृथक् न होने दे जो लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होती, वही धारणा है अन्यथा नहीं धारणासे प्रथम मनकी स्थिरता होती है ॥ ५० ॥

आहत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहार उच्यते ॥ नमःपूर्वाणींद्रियाणि स्वर्गं नरकमेव च ॥ ४६ ॥ निगृहीतनिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥
तस्मात्सुखार्थी मतिमाञ्ज्ञानवैराग्यमास्थितः ॥ ४७ ॥ इंद्रियाश्वान्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ धारणा नाम चित्तस्य स्थानब
न्धस्समासतः ॥ ४८ ॥ स्थानं च शिव एवैको नान्यद्दोषत्रयं यतः ॥ कालं कंचावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापितं मनः ॥ ४९ ॥ न तु
प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणास्यान्न चान्यथा ॥ मनसः प्रथमं स्थैर्यं धारणातः प्रजायते ॥ ५० ॥ तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारणाभ्यासयो
गतः ॥ ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते ॥ ध्येयावस्थितचित्तस्य
सदृशः प्रत्ययश्च यः ॥ ५२ ॥

इस कारण बुद्धिमान धारणा अभ्यासके योगसे मनको रोकै ध्यै–चिन्तायाम् धातुसे ल्युट् प्रत्यय करनेसे व्याकरणशास्त्रमें ध्यान बनता है, इससे बारंबार शिवका ध्यान करै ॥ ५१ ॥ एकाकार वृत्ति करके शिवमें स्थित चित्तका प्रत्ययान्तर रहित प्रवाहका नाम ध्यान है योगसूत्रमें (तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति) नाभि आदि स्थानोंमें देहके अवलम्बन ज्ञानकी जो स्थिरता और दूसरे ज्ञानका अभाव होना ध्यान है, याज्ञवल्क्यनें कहा है, जगत्के कारण अव्यक्त प्रकाशमान महापराक्रमी उनको मनसे देख कर सोहं वृत्ति करना उत्तम ध्यानहै, अथवा पर्यंक आसन कर शरीरको शिथिल कर, स्वयं शिवनासाके अग्रभागमें दृष्टि लगाकर निराकार परम शान्त परमात्मा ईश्वर नीरूप अमृतको भौंके बीचमें ध्यान करै, और सबको छोडकर एक कल्याणदायक शिवका

ही ध्यान करै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ परः 'शिवः ध्येयः' । परम शिव ही ध्यानके योग्य हैं इस अर्थमें अथर्व श्रुति समाप्त हुई है, वह शिवा शिव सबके स्वामी सबमें प्राप्त सबमें उदयरूप ॥ ५४ ॥ सर्वज्ञ निरन्तर ध्यानयोग्य अनेक रूपके भेदसे अनेक होकर भी एक हैं ॥ ५५ ॥ विमुक्ति प्रत्ययवाले और अणिमादि प्रत्ययवाले यह दो प्रकारके प्रत्ययके ध्यानके प्रयोजन कहे हैं ॥५६॥ ध्याता (ध्यान करनेवाला) ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) और जो ध्यानका प्रयोजन है यह चारों वार्ता जान कर योग जाननेवाला योग करै ॥ ५७ ॥ ज्ञान वैराग्यसे सम्पन्न श्रद्धा क्षमासे युक्त, ममता रहित

प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रवाहो ध्यानमुच्यते ॥ सर्वमन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकरः ॥ ५३ ॥ परो ध्येयोधिदेवेशः समाप्ताथर्वणी श्रुतिः ॥ तथा शिवा परा ध्येया सर्वभूतगतौ शिवौ ॥ ५४ ॥ तौ श्रुतौ स्मृतिशास्त्रेभ्यः सर्वगौ सर्वदोदितौ ॥ सर्वज्ञौ सततं ध्येयौ नानारूपविभेदतः ॥ ५५ ॥ विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्वः प्रत्ययश्चाणिमादिकम् ॥ इत्येतद्विविधं ज्ञेयं ध्यानस्यास्य प्रयोजनम् ॥ ५६ ॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम् ॥ एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत योगवित् ॥ ५७ ॥ ज्ञानवैराग्यसंपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ॥ निर्ममश्च सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः ॥ ५८ ॥ जपाच्छ्रांतः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रांतः पुनर्जपेत् ॥ जपध्यानाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिद्ध्यति ॥ ५९ ॥ धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम् ॥ ध्यानद्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥ ॥ ६० ॥ समाधिर्नाम योगांगमन्तिमं परिकीर्तितम् ॥ समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्तते ॥ ६१ ॥ यदर्थमात्रनिर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम् ॥ स्वरूपशून्यवद्ध्यानं समाधिरभिधीयते ॥ ६२ ॥

सदा उत्साहवान् ध्यान करनेवाला पुरुष होता है ॥ ५८ ॥ यह ध्यान करनेवालेके लक्षण कहे, जपसे थक जाय तो ध्यान करै, ध्यानसे थक जाय तौ फिर जप करै, जप ध्यानसे युक्त पुरुषको शीघ्र योग सिद्ध होजाता है ॥ ५९ ॥ बारह प्राणायामकी धारणा और बारह धारणाका ध्यान होता है, और बारह ध्यानकी समाधि होती है ॥६०॥ समाधि योगका अन्तिम अंग है,समाधिसे ही सर्वत्र प्रज्ञानका प्रकाश होता है (समाधिका लक्षण कहते हैं) ॥६१॥ ध्यातामें ध्येयके स्वभावका आवेश होजाता है उसे समाधि कहते हैं, अर्थात् अर्थमात्र स्वभावसे निर्भास नाम होता है, और वातरहित सागरके समान स्थित

होजाता है ध्यान और समाधिमें यह भेद है कि ध्यानमें ध्यातृ देह ध्यानकी त्रिपुटीका ज्ञान बना रहता है किन्तु समाधिमें नहीं रहता प्रश्न;—तौ संप्रज्ञात योग और समाधिमें क्या भेद है, उत्तर;—समाधिरूप योगका अंगांगियोग सम्बन्ध है, और संप्रज्ञात योगसे साक्षात्कारके उदय होनेसे समाधिके अगम्य विषय भी प्रतीत होते हैं; योगसूत्रमें (तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः) जिसमें ध्यानका संस्कारमात्र रह जाय और स्वरूपशून्यसा प्रतीत हो उसे समाधि कहतेहैं; स्वरूपशून्यके समान भाव होना; जैसे स्वच्छ स्फटिकमणि कुसुम आदिके योगसे उसी रूपकी प्रकाशित होती है; तद्वत ध्येयमात्रकी स्फूर्ति रहती है, और यही दीर्घकालतक रहनेसे संप्रज्ञात योग कहाता है; देहस्फूर्ति शून्यका नाम असंप्रज्ञात है, याज्ञवल्क्यने कहा है जीवात्मा परमात्माकी एक अवस्थाका नाम समाधि है ॥ ६२ ॥ ध्येयमें मन लगाकर स्थित हो समाधिमें स्थित हुआ योगी निर्वाण अग्निमें स्थितके

ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम् ॥ निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते ॥ ६३ ॥ न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति ॥ न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ॥६४॥ नवाभिमन्यते किंचिद्बुध्यते न च काष्ठवत् ॥ एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते ॥ ६५ ॥ यथा दीपो निवातस्थः स्पन्दते न कदाचन ॥ तथा समाधिनिष्ठोऽपि तस्मान्न विचलेत्सुधीः ॥ ६६ ॥ एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम् ॥ तदन्तराया नश्यति विघ्नाः सर्वे शनैःशनैः ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां वायुनैमिशेयर्षिसंवादे उत्तरखण्डे योगगतिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादः स्थानसंशयः ॥ अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रांतिदर्शनम् ॥ १ ॥

समान होजाता है ॥६३॥ उस समय वह न सुनता है न सूंघता है न रस लेता है न देखता है न स्पर्शको जानता है, न मनमें संकल्प करता है ॥६४॥ न कुछ मानता है काष्ठवत् स्थित होता है इस प्रकार शिवमें आत्मा लीन होजानेसें समाधिमें लीन होजानेसे समाधिमें स्थित कहाजाता है ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार पवनरहित स्थानमें धराहुआ दीपक कभी भी कम्पित नहीं होता है, इसी प्रकार समाधिमें स्थित हुआ कभी अपने स्थानसे चलायमान नहीं होसकता ॥ ६६ ॥ इस प्रकार योगी उत्तम योगका अभ्यास करते हैं तब उसमें अन्तर करनेवाले उनके सब विघ्न शनैः २ नष्ट होजाते हैं ॥ ६७ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा०सं० उत्तरखंडे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ उपमन्यु बोले, आलस्य तीक्ष्ण व्याधि प्रमाद स्थानसंशय अनवस्थित चित्त होना

अश्रद्धा भ्रांति दर्शन ॥ १ ॥ दुःख दुर्मनस्कता विषयोंमें चञ्चलता योग करनेवालोंके यह दश विघ्न उपस्थित होतेहैं ॥ २ ॥ आलस्य और शिथिलता मलबल योगियोंके देह और चित्तका है, धातुकी विषमतासे उत्पन्नहुए दोष और कर्मके दोषसे व्याधि होती है ॥ ३ ॥ योग साधनाके अभावका नाम प्रमाद है, वह ध्येय है, अथवा यह इस प्रकार आकारके विरुद्ध दो कोटिके ज्ञानका नाम संशय है ॥ ४ ॥ मन अप्रतिष्ठाहीका नाम अनवस्थिति है, अश्रद्धा भावसे रचीहुई वृत्ति योगमार्गमें ॥ ५ ॥ विपरीत मतिकाही नाम भ्रांति है, पुरुषोंको अज्ञानसे उत्पन्न हुआ दुःख है और चित्तसे उत्पन्न

दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता ॥ दशैते युञ्जतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥ आलस्यमलसत्त्वं तु योगिनां देहचेतनोः ॥ धातुवैषम्यजा दोषा व्याधयः कर्मदोषजाः ॥ ३ ॥ प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना ॥ इदं वेत्युभयाक्रान्तं विज्ञानं स्थानसंशयः ॥ ४ ॥ अप्रतिष्ठा हि मनसस्त्वनवस्थितिरुच्यते ॥ अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वै योगवर्त्मनि ॥ ५ ॥ विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रांतिरित्यभिधीयते ॥ दुःखमज्ञानजं पुंसां चित्तस्याध्यात्मिकं विदुः ॥ ६ ॥ आधिभौतिकमंगोत्थं यच्च दुःखं पुरा कृतैः ॥ आधिदैविकमाख्यातमशन्यस्त्रविषादिकम् ॥ ७ ॥ इच्छाविघातजं क्षोभं दौर्मनस्यं प्रचक्षते ॥ विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता ॥ ८ ॥ शान्तेष्वेतेषु विघ्नेषु योगासक्तस्य योगिनः ॥ उपसर्गाः प्रवर्तंते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः ॥ ९ ॥ प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः ॥ उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धयः ॥ १० ॥ सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते ॥ प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम् ॥ ११ ॥

हुआ दुःख आध्यात्मिक कहाता है ॥ ६ ॥ आधिभौतिक दुःख पूर्वकर्मके अनुसार शरीरसे उत्पन्न होता है, शस्त्रविषादिसे उत्पन्न हुए दुःख आधि कहाते हैं ॥ ७ ॥ इच्छाके विघातसे उत्पन्न क्षोभ दुर्मनता कहाती है विचित्र विषयोंमें चञ्चलताका नाम विभ्रम है ॥ ८ ॥ योगासक्त योगीके इन विघ्नोंके शांत होनेपर सिद्धिके सूचक दिव्य प्रतिभादि उपसर्ग प्रगट होते हैं ॥ ९ ॥ प्रतिभा (अर्थात् सूक्ष्मादि अर्थोंमें यथायोग्य स्वरूपका भान) श्रवण वार्ता सब वस्तुका दर्शन, आस्वाद, वेदना यह छः उपसर्ग योगके व्यय होनेसे शक्तिके ह्रास करनेवाले हैं ॥ १० ॥ सूक्ष्मको व्यतीत होनेमें जब विप्रकृष्टताकी

प्राप्ति होती है उसको प्रतिभा कहते हैं, जिसमें अर्थका यथायोग्य प्रकाश होता है ॥ ११ ॥ सब शब्दोंका श्रवण श्रवगत्वके प्रयत्नसे होता है, सब देहधारियोंकी बातोंके ज्ञान होनेका नाम वार्ता है ॥ १२ ॥ और विना प्रयत्न दिव्य पदार्थोंके दर्शनका नाम दर्शन है सम्पूर्ण दिव्य रसोंके आस्वादको स्वाद कहते हैं ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण स्पर्शोंके जाननेका नाम वेदना है, इसी प्रकार संपूर्ण दिव्यगंधोंके ज्ञानका नाम वेदना है; उस पुरुषको ब्रह्मलोकादितकके अधिपति ॥ १४ ॥ प्राप्त होकर अनेक रत्नोंको देते हैं, उसके मुखसे अनेक प्रकारकी स्वच्छन्द और मधुर वाणी प्रवृत्त होती है ॥ १५ ॥ सब रसायन

श्रवणं सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः ॥ वार्त्ता वार्त्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ १२ ॥ दर्शनं नामदिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः ॥ तथास्वादश्च दिव्येषु रसेष्वास्वाद उच्यते ॥ १३ ॥ स्पर्शनाधिगमस्तद्वद्वेदना नाम विश्रुता ॥ गन्धादीनां च दिव्यानामाब्रह्मभुवनाधिपाः ॥ १४ ॥ संतिष्ठन्ते च रत्नानि प्रयच्छंति बहूनि च ॥ स्वच्छन्दमधुरा वाणी विविधास्यात्प्रवर्तते ॥ १५ ॥ रसायनानि सर्वाणि दिव्याश्चौषधयस्तथा ॥ सिध्यंति प्रणिपत्यैनं दिशंति सुरयोषितः ॥ १६ ॥ योगसिद्धचैकदेशेऽपि दृष्टे मोक्षे भवेन्मतिः ॥ दृष्टमेतन्मया यद्वत्तद्वन्मोक्षो भवेदिति ॥ १७ ॥ कृशता स्थूलता बाल्यं वार्द्धक्यं चैव यौवनम् ॥ नानाचातिस्वरूपं च चतुर्णां देहधारणम् ॥ १८ ॥ पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंग्रहः ॥ एवमष्टगुणं प्राहुः पैशाचं पार्थिवं पदम् ॥ १९ ॥ जले निवसनं चैव भूम्यामेवं विनिर्गमः ॥ इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः ॥ २० ॥

और दिव्य औषधी उसको सिद्ध होती हैं तथा प्रणामकर देवांगना रसायनादि देती हैं ॥ १६ ॥ योग सिद्धिके एक देश ही देखने पर जिसकी मति मोक्षमें होजाती है, यह जिस प्रकार मैंने देखा है, उसी प्रकार मुक्ति होजाती है ॥ १७ ॥ कृशता स्थूलता बालकपन वृद्धि यौवन नानाजातिका स्वरूप चार विधिसे देह धारण करना ॥ १८ ॥ और पार्थिव अंशके बिना नित्य मनोहर गंधका संग्रह करना, इस प्रकार पिशाच (पिशाचोंके अधिपतिसे भुज्यमान) पार्थिवपदके आठ गुण कथन किये हैं ॥ १९ ॥ जलमें निवास, भूमिसे निकलना और इच्छा करनेसे समुद्रके पान करनेमें भी सामर्थ्य होनी ॥ २० ॥

जहां इस जगत्में जलकी इच्छा करै वहीं जलका दर्शन होना बिना घडेके हाथमें जलका आजाना ॥ २१ ॥ और जो विरस वस्तुके भी खानेकी इच्छा करै तो तत्काल उसमें विलक्षण रस होजाता है, जल तेज और वायुका देह धारण कर सकता है ॥ २२ ॥ अथवा पार्थिव शरीर छिद्ररहित धारण करसकता है, यह सोलह अद्भुत गुण जलके ऐश्वर्यके हैं ॥ २३ ॥ शरीरसे अग्नि निकालनी और अग्निके तापका भय न होना जो चाहै तो प्रयत्नके विना ही जगत्को भस्म करदे ॥ २४ ॥ अग्निका स्थापन वा अपने हाथमें अग्निका धारण जगत्को जलाकर फिर ज्योंका त्यों करदेना, मुखमेंही

यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रैव जलदर्शनम् ॥ विना कुम्भादिकं पाणौ जलसञ्चयधारणम् ॥ २१ ॥ यद्वस्तु विरसञ्चापि भोक्तुमिच्छति तत्क्षणात् ॥ रसादिकं भवेच्चान्यत्रयाणां देहधारणम् ॥ २२ ॥ निर्व्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवैश्च समन्वितम् ॥ तदिदं षोडशगुणमाप्यमैश्वर्यमद्भुतम् ॥ २३ ॥ शरीरादग्निनिर्माणं तत्तापभयवर्ज्जनम् ॥ शक्तिर्जगदिदं दग्धुं यदीच्छेदप्रयत्नतः ॥ २४ ॥ स्थापनं वानलस्याऽप्सु पाणौ पावकधारणम् ॥ दग्धे सर्गे यथापूर्वं मुखे चान्नादिपाचनम् ॥ द्वाभ्यां देहविनिर्माणमाप्यैश्वर्यसमन्वितम् ॥ २५ ॥ एतच्चतुर्विंशतिधा तैजसं परिचक्षते ॥ मनोजवत्वं भूतानां क्षणादन्तःप्रवेशनम् ॥ २६ ॥ पर्व्वतादिमहाभारधारणञ्चाप्रयत्नतः ॥ गुरुत्वञ्च लघुत्वञ्च पाणावनिलधारणम् ॥ २७ ॥ अंगुल्यग्रनिपाताद्यैर्भूमेरपि च कम्पनम् ॥ एकेन देहनिष्पत्तिर्युक्तं भोगैश्च तैजसैः ॥ २८ ॥ द्वात्रिंशद्गुणमैश्वर्य्यं मारुतं कवयो विदुः ॥ छायाहीनविनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ॥ २९ ॥

अन्नपानादिका पचा जाना, तेज और वायुसे शरीर निर्माण करनेकी सामर्थ्य होनी और ऐश्वर्ययुक्त होना ॥ २५ ॥ यह चौबीस प्रकारका तेज कहाता है, सो उसे होता है, मनके समान वेग होना क्षणमात्रमें प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होजाना ॥ २६ ॥ विना प्रयत्नके पर्वतका महाभार धारण करलेना, गुरुत्व लघुत्व होजाना, हाथमें पवनको धारण करलेना ॥ २७ ॥ अंगुलीके अग्रभाग रखते ही पृथ्वीको कंपित करदेना; एक वायुसे ही शरीर धारण करना, भोग और तेजसे युक्त होना ॥ २८ ॥ यह बत्तीस गुण ऐश्वर्य पवनके बुद्धिमानोंने कहे हैं । आकाशके ऐश्वर्य कहते हैं—छायाकी हीनता होनी

विनिष्पत्ति (असमाप्ति) इन्द्रियोंका दर्शन न होना ॥ २९ ॥ यथेच्छा आकाशमें चलाजाना इन्द्रियका अर्थमें समन्वय करना आकाश लंघन वा अपने देशमें उसका निवेश करना ॥ ३० ॥ आकाशको पिंडीभूत करलेना अशरीरपना पवनके ऐश्वर्यसे युक्त महान् चालीस गुण युक्त ॥ ३१ ॥ इन्द्रका ऐश्वर्य आकाशका ऐश्वर्य कहाता है। चन्द्रऐश्वर्य—यथाकाम प्राप्ति और यथाकाम सिद्धि ॥ ३२ ॥ सम्पूर्ण गुह्य अर्थोंका दर्शन होना सबका अभिभव होना कर्मके अनुसार किसीका निर्माण वशिता प्रियदर्शनता ॥ ३३ ॥ संसारका दर्शन इन्द्रभोगोंके सहित प्राप्ति यह चन्द्रमाका ऐश्वर्य मनोमय गुणसे अधिक

खेचरत्वं यथाकाममिन्द्रियार्थसमन्वयः ॥ आकाशलंघनं चैव स्वदेहे तन्निवेशनम् ॥ ३० ॥ आकाशपिण्डीकरणमशरीरत्वमेव च ॥ अनिलैश्वर्यसंयुक्तं चत्वारिंशद्गुणं महत् ॥ ३१ ॥ ऐन्द्रमैश्वर्यमाख्यातमाम्बरं तत्प्रचक्षते ॥ यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः ॥ ॥ ३२ ॥ सर्वस्याभिभवश्चैव सर्वगुह्यार्थदर्शनम् ॥ कर्मानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम् ॥ ३३ ॥ संसारदर्शनं चैव भोगैरैन्द्रैस्समन्वितम् ॥ एतच्चांद्रमसैश्वर्यं मानसं गुणतोऽधिकम् ॥ ३४ ॥ छेदनं ताडनं चैव बंधनं मोचनं तथा ॥ ग्रहणं सर्वभूतानां संसारवशवर्तिनाम् ॥ ३५ ॥ प्रसादश्चापि सर्वेषां मृत्युकालजयस्तथा ॥ आभिमानिकमैश्वर्यं प्राजापत्यं प्रचक्षते ॥ ३६ ॥ एतच्चान्द्रमसैर्भोगैः षट्पञ्चाशद्गुणं महत् ॥ सर्गः संकल्पमात्रेण त्राणं संहरणं तथा ॥ ३७ ॥ स्वाधिकारश्च सर्वेषां भूतचित्तप्रवर्तनम् ॥ असादृश्यं च सर्वस्य निर्माणं जगतः पृथक् ॥ ३८ ॥

४८ गुण हैं ॥ ३४ ॥ प्रजापतिऐश्वर्य—छेदन ताडन बंध मोक्ष संसार वशवर्ती सब प्राणियोंका ग्रहण ॥ ३५ ॥ सबके ऊपर प्रसन्नता मृत्यु और कालका जय करना; अभिमान युक्त प्रजापतिका कहा है ॥ ३६ ॥ यह चन्द्रमाके भोगोंसे छप्पन गुण अधिक हैं, संकल्पमात्रसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति पालनें और लय कर सकता है ॥ ३७ ॥ सब प्राणियोंके चित्तमें अपना अधिकार प्रवृत्त करसकता है; और सबसे पृथक् ही जगत्की उत्पत्ति कर सकता है ॥ ३८ ॥

शुभ अशुभके करनेमें समर्थ, प्राजापत्यके ऐश्वर्यसे संयुक्त है ६४ गुणयुक्त ब्रह्माका ऐश्वर्य कहाता है ॥ ३९ ॥ इस बुद्धिसे किये ऐश्वर्यको प्राकृत एश्वर्य कहते हैं, उसीसे परे गुणमय वैष्णवतत्त्व कहा है; उसीका यह तत्त्व भुवनमय स्थित है; यह सम्पूर्ण ब्रह्माके गुण जाननेको दूसरा समर्थ नहीं है ॥ ४० ॥ उनका पुरुषार्थ गुणयुक्त है, उससे परे गणेश पद है उसे किञ्चित् विष्णु जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण ज्ञानसिद्धि उपसर्ग युक्त हैं, उनको प्रयत्न और परम वैराग्यसे रोकनी चाहिये ॥ ४२ ॥ और जिसका चित्त प्रतिभा आदि अशुद्ध गुणोंमें लगा है उसको अव्यय सार्वकामिक ऐश्वर्य

शुभाशुभस्य करणं प्राजापत्यैश्च संयुतम् ॥ चतुष्षष्टिगुणं ब्राह्ममैश्वर्यं च प्रचक्षते ॥ ३९ ॥ बौद्धादस्मात्पर गौणमैश्वर्यं प्राकृतं विदुः ॥ वैष्णवं तत्समाख्यातं तस्यैव भुवनास्थितिः ॥ ब्रह्मणा तत्पदं सव वक्तुमन्यैर्न शक्यते ॥ ४० ॥ तत्पौरुषं च गौणं च गाणेशं पदमैश्वरम् ॥ विष्णुना तत्पदं किंचिज्ज्ञातुमन्यैर्न शक्यते ॥४१॥ विज्ञानसिद्धयश्चैव सर्वा एवौपसर्गिकाः ॥ निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु ॥ ४२ ॥ प्रतिभासेष्वशुद्धेषु गुणेष्वासक्तचेतसः ॥ न सिध्येत्परमैश्वर्यमभयं सार्वकामिकम् ॥ ४३ ॥ तस्माद्गुणांश्च भोगांश्च देवासुरमहीभृताम् ॥ तृणवद्यस्त्यजेत्तस्य योगसिद्धिः परा भवेत् ॥ ४४ ॥ अथ वानुग्रहेच्छायां जगतो विचरेन्मुनिः ॥ यथाकामं गुणान्भोगान्भुक्त्वा मुक्तिं प्रयास्यति ॥ ४५ ॥ अथ प्रयोगं योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहितः ॥ शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः ॥ विजने जंतुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते ॥ ४६ ॥ सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गन्धधूपादिवासिते ॥ मुक्तपुष्पसमाकीर्णे वितानादिविचित्रिते ॥ ४७ ॥ कुशपुष्पसमित्तोयफलमूलसमन्विते ॥ नाग्न्यभ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपि वा ॥ ४८ ॥

सिद्ध नहीं होते, और निरन्तर भय रहता है ॥ ४३ ॥ इस कारण गुण और भोग देवता असुर राजाओंके तृणके समान त्याग देनेसे यशयोग सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ अथवा जगत्के अनुग्रहकी इच्छा हो तो मुनि होकर विचरै यथाकाम भोगोंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ४५ ॥ अब योगका प्रयोग मैं कहता हूं, सावधान होकर श्रवण करो, शुभकालमें सुन्दर शिव क्षेत्रादिदेशमें मनुष्य रहित स्थानमें जन्तुओंके शब्द और बाधासे रहित ॥ ४६ ॥ अच्छी तरह लिप्त हुए स्थलमें गंध और धूपसे सुवासित रक्खेहुए फूलोंसे युक्त वितानादिसे विचित्र ॥ ४७ ॥ कुश पुष्प जल फल मूल करके

युक्त अग्नि जल और शुष्क पत्तोंकी निकटतासे रहित ॥ ४८ ॥ दंश मशक सर्प श्वापदकी संकुलतासे हीन दुष्ट मृगोंसे आकीर्ण दुर्जनोंके भयसे युक्त जो न हो ॥ ४९ ॥ श्मशान चौराहा बमई जीर्ण स्थान चैत्य नदी नद समुद्रोंके किनारे अथवा गलीके निकट स्थिति न करै ॥ ५० ॥ जीर्ण उद्यान, गोठ, अनिष्ट, निन्दित, अजीर्ण अम्लरसके उद्गार विष्ठा मूत्रसे दूषित ॥ ५१ ॥ छर्दि अतिसार अतिभोजन श्रमसे युक्त अति चिन्तासे व्याकुल अति क्षुधा प्याससे युक्त तथा अपने गुरुके कार्यमें व्यग्र हुआ योगाभ्यास न करै ॥ ५२ ॥ युक्त आहार विहार और युक्त कर्ममें चेष्टा करनी, युक्त समय सोना और जागना

न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले ॥ न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जनावृते ॥ ४९ ॥ श्मशाने चैत्यवल्मीके जीर्णागारे चतुष्पथे ॥ नदीनदसमुद्राणां तीरे रथ्यांतरेऽपि वा ॥ ५० ॥ न जीर्णोद्यानगोष्ठादौ नानिष्टे न च निंदिते ॥ नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते ॥ ५१ ॥ न च्छर्द्यामातिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते ॥ न चातिचिंताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासितः ॥ नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगमाचरेत् ॥ ५२ ॥ युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु ॥ युक्तनिद्राप्रबोधश्च सर्वायासविवर्जितः ॥ ५३ ॥ आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचिं[1] ॥ पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यसेदासनेषु च ॥ ५४ ॥ अभिवंद्य स्वगुर्वंतानभिवाद्यानानुक्रमात् ॥ ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिष्टलोचनः ॥ ५५ ॥ किंचिदुन्नामितशिरा दंतैर्दंतान्न संस्पृशेत् ॥ ५६ ॥ दंताग्रसंस्थितां जिह्वामचलां सन्निवेश्य च ॥ पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ॥ ५७ ॥

सम्पूर्ण परिश्रमसे रहित ॥ ५३ ॥ मृदु मनोहर आसन और समान पवित्रदेश, मृदुचम वस्त्र पहरे, मधु आदिसे युक्त शुभदायक आसन कल्पनाकर उसके ऊपर सुखसे बैठे पद्म स्वस्तिक आसनोंका अभ्यास करै ॥ ५४ ॥ अपने गुरु तथा दूसरोंको क्रमसे अभिवादन कर सीधी गर्दन सीधा शिर छाती ओष्ठ और नेत्र अधिक श्लिष्टतासे रहित ॥ ५५ ॥ कुछेक शिर झुकाये, दांतोंसे दांतोंको न छुवे ॥ ५६ ॥ दांतके अग्रभागमें स्थितकरी जिह्वाको अचल करके

---

[1] मृदुचर्मपरीधानं मध्वाद्यक्तं शुभं सुखम् । कल्पयित्वा समारुह्य समं स्थिरसुखं यथा ।

पार्ष्णिसे वृषणकी रक्षा करताहुआ तथा मेढ्रकी रक्षा करताहुआ ॥ ५७ ॥ जंघाके ऊपर यत्नसे तिरछी भुजा रखकर दक्षिण हाथका पृष्ठभाग वाम तलके ऊपर रखकर ॥ ५८ ॥ सहज २ पीठको उठाकर और आगेकी ओरसे हृदयको उठाकर अपनी नासिकाके अग्रभागको देखता हुआ दिशोंको न देखै ॥ ॥ ५९ ॥ प्राणका संचार रोक पाषाणके समान निश्चल हो अपनी देहके अन्तर पार्वती सहित शिवको ध्यानकर ॥ ६० ॥ हृदयकमलकी पीठिकामें ध्यान यज्ञसे शिवको पूजै; मूलमन्त्रसे नासिकाके अग्रभागसे नाभि कण्ठ वा तालुके रन्ध्रोंमें ॥ ६१ ॥ भौंके बीच मूलाधार ललाटमें वा शिरमें उनका ध्यान

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य बाहू तिर्यगयत्नतः ॥ दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपरि ॥५८॥ उन्नाम्य शनकः पृष्ठमुरो विष्टभ्य चाग्रतः ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५९ ॥ संभृतप्राणसंचारः पाषाण इव निश्चलः ॥ स्वदेहायतनस्यांतर्विचिंत्य शिवमं
बया ॥ ६० ॥ हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन प्रजयेत् ॥ मूले नासाग्रतो नाभौ कंठे वा तालुरंध्रयोः ॥ ६१ ॥ भ्रूमध्ये द्वारदेशे
वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेत् ॥ परिकल्प्य यथान्यायं शिवयोः परमासनम् ॥ ६२ ॥ तत्र सावरणं वापि निरावरणमेव वा ॥ द्विदले
षोडशारे वा द्वादशारे यथाविधि ॥ ६३ ॥ दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत् ॥ भ्रुवोरंतरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम् ॥ ६४ ॥
भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे ॥ विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके ॥ ६५ ॥ षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि
वै ॥ पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः ॥ ६६ ॥

करै; यथायोग्य शिवा शिवका परमासन कल्पित करके ॥ ६२ ॥ उसमें सावरण अथवा निरावरण दो दल सोलह दल अथवा बारह दलकी विधिपूर्वक कल्पना कर ॥ ६३ ॥ उस बारह छः अथवा चार दलमें शिवका स्मरण करै, भौंके अन्तरमें पद्म दो दल युक्त अथवा बिजलीके समान उज्ज्वल ॥ ॥ ६४ ॥ भौंके बीचमें कमलके दक्षिण उत्तर ओर बिजलीके समान वर्णवाले वर्णयुक्त पर्णके समान वर्णयुक्त वर्णावसानमें ॥ ६५ ॥ पत्तोंके जो सोलह

अरेहैं उन्हींमें सोलह स्वर स्थापित करै और कमलकी कन्दके मूलसे पूर्वादिके क्रमसे ॥ ६६ ॥ ककारको आदि लेकर टकारपर्यन्त वर्णोंको पर्णोंके अनुक्रमसे कल्पना करै, और भानुवर्णयुक्त पद्मके चारोंओर युक्त उन अक्षरोंको हृदयान्तरमें ध्यान करै ॥ ६७ ॥ वे अक्षर कमलके पर्ण जानने चाहिये और नाभिके ऊपरकी ओर पीठकी ओरसे गौके दूधकी समान डकारसे लेकर फकार पर्यन्त यथा क्रमसे रक्खै नीचेकी ओर कमलदलवाले कमलके छैः पत्तेहैं ॥ ६८ ॥ उसमें अंगारयुक्तवाले अक्षर वकारसे लकार पर्यन्तहैं मूलाधार कमल सुवर्णके समान कान्तिमान् है उसमें वकारसे लेकर सकारपर्यन्त

ककारादिटकारांता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात् ॥ भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्धृदयान्तरे ॥ ६७ ॥ * गोक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्ता यथाक्रमम् ॥ अधो दलस्याम्बुजस्य एतस्य च दलानि षट् ॥ ६८ ॥ विधूमांगारवर्णस्य वर्णा बाद्याश्च लान्तिमाः ॥ मूलाधारारविन्दस्य हेमाभस्य यथाक्रमम् ॥ वकारादिसकारान्ता वर्णाः पर्णमयाः स्थिताः ॥ ६९ ॥ एतेष्वथारविन्देषु यत्रैवाभिरतं मनः ॥ तत्रैव देवं देवीं च चिंतयेद्धीरया धिया ॥ ७० ॥ अंगुष्ठमात्रममलं दीप्यमानं समंततः ॥ शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ॥ ७१ ॥ इन्दुरेखासमाकारं तारारूपमथापि वा ॥ नीवारशूकसदृशं बिससूत्राभमेव वा ॥ ७२ ॥ कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम् ॥ क्षित्यादितत्त्वविजयं ध्याता यद्यपि वाञ्छति ॥ ७३ ॥ तत्तत्तत्त्वाधिपामेव मूर्तिं स्थूलां विचिंतयेत् ॥ सदाशिवांता ब्रह्माद्यभवाद्याश्चाष्टमूर्तयः ॥ ७४ ॥

पर्णमय वर्णहैं ॥ ६९ ॥ उन कमलोंमें जहां मन रमण करै वही धीरबुद्धिसे देव और देवीका चिन्तन करै ॥ ७० ॥ अंगुष्ठमात्र दीप्तिमान् निर्मल चारों ओर दीप्तिमान् शुद्ध दीपशिखाके समान आकारयुक्त अपनी शक्तिसे पूर्ण मण्डित ॥ ७१ ॥ चन्द्ररेखाके समान आकारयुक्त तथा तारारूप नीवारशूकके समान तथा कमलनालके जन्तुके समान ॥ ७२ ॥ कदम्ब गोलके समान आकार तुषार कर्णिकाके समान उत्तम क्षिति आदि तत्त्वके विजयरूप ध्यान करनेवाला जो इच्छा करै ॥ ७३ ॥ उसी उसी तत्त्वकी अधिपति मूर्तिका चिन्तन करै, सदाशिवको लेकर ब्रह्मादि जो शिवकी आठ मूर्ति हैं ॥ ७४ ॥

---

* वर्णाः पर्णानिपद्मस्य नामेरुपरिपृष्ठतः ।

वह शिवकी स्थूल मूर्ति हैं; ऐसा शिवशास्त्रमें निश्चय है; वह मूर्ति घोर मिश्र और प्रशान्त है उनको मुनीश्वरोंने ॥ ७५ ॥ फलकी अभिलाषाके सहित विचार किया है (कहीं 'फलाभिलाषरहितैः" पाठ है वहां वैसाही अर्थ करना) घोर मूर्तिकी चिन्तासे पापरोगका क्षय होता है ॥ ७६ ॥ सब सिद्धिको देनेवाली मिश्र और प्रशान्त मूर्ति शान्तिदायक है; घोर शरीरमें चिन्ता करनेसे शीघ्र सब सिद्धि सिद्ध होजातीहैं मिश्रमें दीर्घ कलामें सिद्धि सौम्य मूर्तिमें न शीघ्रतासे न विलम्बसे विशेषकर सौम्यमें मुक्ति होतीहै और शान्तिमें प्रज्ञा सिद्ध होती है ॥ ७७ ॥ क्रमसे इससे सिद्धि सिद्ध होजातीहैं इसमें सन्देह

शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिताः ॥ घोरा मिश्रा प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः ॥ ७५ ॥ फलाभिलाषरहितैश्चिन्त्या श्चिन्ताविशारदैः ॥ घोराश्चेच्चिंतिताः कुर्युः पापरोगपरिक्षयम्[1] ॥ ७६ ॥ चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि ॥ सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शांतिः प्रज्ञा प्रसिध्यति ॥ ७७ ॥ सिध्यंति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र संशयः ॥ ७८ ॥ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे योगगतौ विघ्नोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ उपमन्युरुवाच ॥ श्रीकंठनाथं स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धयः ॥ प्रसिध्यंतीति मत्वैके तं वै ध्यायंति योगिनः ॥ १ ॥ स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते ॥ स्थूलं तु निश्चलं चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्थिरम् ॥२॥ शिवे तु चिंतिते साक्षात्सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ॥ मूर्त्यंतरेषु ध्यातेषु शिवरूपं विचिंतयेत्[2] ॥ ३ ॥ लक्षयेन्मनसः स्थैर्यं तत्तद्ध्यायेत्पुनःपुनः ॥ ध्यानमादौ सविषयं ततो निर्विषयं जगुः ॥ ४ ॥

नहीं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ उपमन्यु बोले, श्रीकण्ठनाथको स्मरण करतेही शीघ्र सम्पूर्ण अर्थ सिद्धि होजाती हैं, सब सिद्धि प्रसिद्ध होतीहैं ऐसा कोई कहतेहैं उनको योगी ध्यान करतेहैं ॥ १ ॥ कोई मनकी स्थितिके निमित्त स्थूल ध्यान करना कहतेहैं जब स्थूलमें चित्त निश्चल होजाय तब सूक्ष्ममें प्राप्त हो स्थिर होता है ॥ २ ॥ शिवके चिन्तित करतेही सब सिद्धि उपस्थित होतीहैं और अन्य मूर्तियोंमें ध्यान करनेसे शैवी सिद्धि नहीं होती है; इसलिये अन्य मूर्तियोंके ध्यानमें शिवरूपका ध्यान करै ॥ ३ ॥ जो रुचि और आभा-

---

[1] सर्वसिद्धिप्रदा मिश्राः प्रशान्ताः शान्तिदायकाः । सिद्धयन्ति सिद्धयः शीघ्रं घोरे वपुषि चिन्तिते ॥ [2] रुच्यभ्यासादिना यद्यच्छिवरूपं विचिन्तयेत् ।

सादिसे शिवका रूप चिन्तन करता है, मनकी स्थिरताको देखता हुआ उसको बारंबार ध्यान करै, प्रथम सविषय फिर निर्विषय ध्यान करै ॥ ४ ॥ सत्पुरुषोंका यह भी सम्मत है कि निर्विषय ध्यानही नहीं है बुद्धिकी ही किसी सन्ततिका नाम ध्यान है ॥ ५ ॥ इससे निर्विषयवाली बुद्धि केवल निर्विषयमें ही प्रवृत्त होती है, इस कारण सविषय ध्यानवान् सूर्यकी क्रिरणोंके समान आश्रयवाला है ॥ ६ ॥ सूक्ष्म आश्रयकाही नाम निर्विषय है; इससे अधिक परमार्थसे ही दूसरा नहीं है अथवा सविषय ध्यान साकारके आश्रयवाला है ॥ ७ ॥ निराकार आत्माके जाननेहीका नाम निर्विषय है, निर्बीज अथवा सबीज जो हो सो ध्यान कहा है ॥ ८ ॥ निराकारके आश्रयसे साकार आश्रय युक्त होता है इस कारण प्रथम बीज सहित साकार ध्यान करै ॥ ॥ ९ ॥ अन्तमें सब सिद्धिके निमित्त बीजहीन निर्विषय ध्यान करै, प्राणायामद्वारा क्रमसे दिव्य शान्ति आदि सिद्ध होतीहैं ॥ १० ॥ शान्ति प्रशान्ति दीप्ति और प्रसाद सब आपत्तियोंकी शान्तिका नाम शम है ॥ ११ ॥ और अन्तर बाहर अन्धकारके नाशका नाम प्रशान्ति है, बाहर अन्तरके प्रकाशका नाम दीप्ति है ॥ १२ ॥ और बुद्धिकी स्वस्थताका नाम प्रसाद कहा है, बाह्य अभ्यन्तर सब कारण ॥ १३ ॥ बुद्धिके प्रसादसेही शीघ्र सिद्ध होजाते हैं;

तत्र निर्विषयं ध्यानं नास्तीत्येव सतां मतम् ॥ बुद्धेर्हि सन्ततिः काचिद्ध्यानमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते ॥ तस्मात्सविषयं ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम् ॥ ६ ॥ सूक्ष्माश्रयं निर्विषयं नापरं परमार्थतः ॥ यद्वा सविषयं ध्यानं तत्साकारसमाश्रयम् ॥ ७ ॥ निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं मतम् ॥ निर्बीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते ॥ ८ ॥ निराकाराश्रयत्वेन साकाराश्रयतस्तथा ॥ तस्मात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम् ॥ ९ ॥ अंते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीजं सर्वसिद्धये ॥ प्राणायामेन सिध्यंति देव्याः शांत्यादयः क्रमात् ॥ १० ॥ शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम् ॥ शमः सर्वापदां चैव शांतिरित्यभिधीयते ॥ ११ ॥ तमसोऽन्तर्बहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते ॥ बहिरन्तः प्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयते ॥ १२ ॥ स्वस्थता या तु सा बुद्धेः प्रसादः परिकीर्तितः ॥ कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यंतराणि च ॥ १३ ॥ बुद्धेः प्रसादतः क्षिप्रं प्रसन्नानि भवन्त्युत ॥ ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यद्वा ध्यानप्रयोजनम् ॥ एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत् ॥ १४ ॥

ध्याता ध्यान ध्येय और ध्यानका प्रयोजन यह चारों जानकर ध्याता ध्यान करै ॥ १४ ॥ ज्ञान वैराग्यसे सम्पन्न नित्य उद्यत मनवाला श्रद्धायुक्त प्रसन्न आत्मा ध्याता सत्पुरुषोंने कहा है ॥ १५ ॥ 'ध्यै–चिन्तायां' धातुसे ध्यान सिद्ध होता है कि शिवकी चिन्ता बारंबार करनी चाहिये ॥ १६ ॥ जैसा थोडा योगाभ्यास भी पापको विनाश करता है ऐसाही श्रद्धासे परमेश्वरका ध्यान करै तो क्षणमें पाप नाश होतेहैं ॥ १७ ॥ मनमें किसी प्रकारका विक्षेप न हो यही ध्यान है ॥ १८ ॥ इस प्रवाहरूप ध्यानका बुद्धि अवलम्बन है, जो ध्येय वस्तु है सो बुद्धिमानोंने अम्बासहित शिवका ध्यान कहा है ॥ १९ ॥

ज्ञानवैराग्यसंपन्नो नित्यमव्यग्रमानसः ॥ श्रद्धधानः प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृतः ॥ १५ ॥ ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि यथा पापं विनाशयेत् ॥ ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् ॥ १७ ॥ अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥ १८ ॥ बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यावलंबनम् ॥ ध्येयमित्युच्यते सद्भिस्तच्च सांबः स्वयं शिवः ॥ ॥ १९ ॥ विमुक्तिप्रत्ययं पूर्णमैश्वर्यं चाणिमादिकम् ॥ शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्तं प्रयोजनम् ॥ २० ॥ यस्मात्सौख्यं च मोक्षं च ध्यानादुभयमाप्नुयात् ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्नरः ॥ २१ ॥ नास्ति ध्यानं विना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः ॥ ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥ २२ ॥ ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्ज्जितम् ॥ योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिध्यति ॥ २३ ॥ प्रक्षीणाशेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः ॥ पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा ॥ २४ ॥ यथावह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ॥ तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात् ॥ २५ ॥

कि मुक्ति प्रत्ययके पूर्व जो अणिमादि ऐश्वर्य हैं, यही शिवध्यानका साक्षात् प्रयोजन कहा है ॥ २० ॥ जिस कारण कि ध्यानसे सुख और मुक्ति दोनों प्राप्त होतीहैं; इस कारण सब कुछ छोडकर मनुष्य ध्यानयुक्त हो ॥ २१ ॥ विना ज्ञानके ध्यान और अयोगिको ध्यान नहीं होता जिसको ध्यान और ज्ञान है वह भवसागरके पार हो चुका ॥ २२ ॥ प्रसन्न एकाग्रचित्त सम्पूर्ण उपाधिसे रहितका नाम ज्ञान है वह योगाभ्यास युक्त योगीकोही सिद्ध होता है ॥ २३ ॥ जब सब पाप क्षय होतेहैं तब ज्ञान ध्यानमें मति होती है; और पापयुक्त बुद्धिवालोंको उसकी वार्ता भी दुर्लभ है ॥ २४ ॥ जैसे महादीप्तिमान्

अग्नि सूखे गीले काठको जला देती है, इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मको ज्ञान नष्ट कर देता है ॥ २५ ॥ जैसे थोडा दीपक भी महाअन्धकार को दूर करता है, इसी प्रकार थोडा योगाभ्यास भी महापापको नष्ट करता है ॥ २६ ॥ जो क्षणमात्रसे भी श्रद्धापूर्वक परमेश्वरका ध्यान करता है उससे भी जितना कल्याण होता है उसका अन्त नहीं है ॥ २७ ॥ ध्यानके समान तीर्थ तप यज्ञ नहीं हैं इससे ध्यानही करै ॥ २८ ॥ जलपूर्ण तीर्थ और मृत पाषाणकी मूर्तिमें योगीजन इस कारण नहीं स्नान पूजन करते हैं कि उनको आत्मज्ञानकी प्राप्ति है ॥ २९ ॥ योगियोंका शरीर सूक्ष्म होकर ईश्वरप्रत्यय होजाता है,

अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयेत्तमः ॥ योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापं विनाशयेत् ॥ २६ ॥ ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया
परमेश्वरम् ॥ यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यांतो नैव विद्यते ॥ २७ ॥ नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः ॥ नास्ति ध्यानसमो
यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत् ॥ २८ ॥ तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान् ॥ योगिनो न प्रपद्यंते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ॥
॥ २९ ॥ योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ॥ यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ॥ ३० ॥ यथेहांतश्चरा राज्ञः
प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः ॥ तथांतर्ध्याननिरताः प्रियाश्शंभोर्न कर्मिणः ॥ ३१ ॥ बहिस्करा यथा लोके नातीव फलभोगिनः ॥ दृष्ट्वा
नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः ॥ ३२ ॥ यद्यंतरा विपद्यंते ज्ञानयोगार्थमुद्यतः ॥ योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गामिष्यति ॥ ३३ ॥
अनुभूय सुखं तत्र स जातो योगिनां कुले ॥ ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा संसारमतिवर्त्तते ॥ ३४ ॥

जो योगी नहीं हैं उनके निमित्त मृत पाषाणादिकी मूर्ति कल्पित कीजाती है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार राजाको अन्तरचारी प्रिय होतेहैं, उसप्रकार बाहिरके दूत प्रिय नहीं हैं, इसी प्रकार महाकर्मा शिवको अन्तर्ध्यान करनेवाले विशेष प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार याचनाके निमित्त हाथ फैलानेवाले बहुत फलके भागी नहीं होते और नरेन्द्रके घरके पूर्ण फलके भागी होतेहैं, इसी प्रकार यहांके भी समझने ॥ ३२ ॥ जो अन्तरसे ज्ञानयोगके निमित्त प्रवृत्त होतेहैं वे योगके उद्योगमात्रसे रुद्रलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥ वहां अनेक सुख अनुभव कर योगियोंके कुलमें जन्म पाता है, फिर ज्ञानयोगको प्राप्त हो

संसारसे पार होजाता है ॥ ३४ ॥ जिज्ञासु भी योगकी जिस गतिको प्राप्त होता है वह गति सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त होती ॥ ३५ ॥ वेदपाठी ब्राह्मणोंके कोटि पूजनका जो फल है वह फल शिव योगीको भिक्षामात्र प्रदान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जो यज्ञ अग्निहोत्र दानमें तीर्थ होममें जो फल है; वह समस्त फल योगियोंको अन्नदानसे मिलता है ॥ ३७ ॥ जो मूढ शिवयोगीकी निन्दा करते हैं, वह सुननेवालोंके साथ लयपर्यंत नरकमें पडते हैं ॥ ३८ ॥ श्रोता होकर वक्तासे योगीकी निन्दा सुने उससे वह श्रोता अधिक पापी है और उसका महान् दण्ड है, जो शिवयोगीका सदा भक्तिसे

जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः ॥ न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः ॥ ३५ ॥ द्विजानां वेदविदुषां कोटिं संपूज्य यत्फलम् ॥ भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिने ॥ ३६ ॥ यज्ञाग्निहोत्रदानेषु तीर्थहोमेषु यत्फलम् ॥ योगिनामन्नदानेन तत्समस्तं फलं लभेत् ॥ ३७ ॥ ये चापवादं कुर्वंति विमूढाशिशवयोगिनाम् ॥ श्रोतृभिस्ते प्रपद्यन्ते नरकेष्वामहीक्षयात् ॥ ३८ ॥ सति श्रोतारि वक्ता स्यादपवादस्य योगिनाम् ॥ तस्माच्छ्रोता च पापीयान्दण्डयस्सुमहतां मतः ॥ ये पुनः सततं भक्त्या भजंति शिवयोगिनः ॥ ३९ ॥ ते विदंति महाभोगानंते योगं च शांकरम् ॥ भोगार्थिभिर्नरैस्तस्मात्संपूज्याः शिवयोगिनः ॥ ४० ॥ प्रतिश्रयान्नपानाद्यैः शय्याप्रावरणादिभिः ॥ योगधर्मः ससारत्वादभेद्यः पापमुद्गरैः ॥ ४१ ॥ वज्रतंदुलवज्ज्ञेयं तथा पापेन योगिनः ॥ न लिप्यंते च तापौघैः पद्मपत्रं यथांभसा ॥ ४२ ॥ यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शिवयोगरतो मुनिः ॥ सोऽपि देशो भवेत्पूतः स पूत इति किं पुनः ॥ ४३ ॥

भजन करते हैं ॥ ३९ ॥ वे महाभोगोंको प्राप्त हो अन्तमें शिवयोगको प्राप्त होते हैं, इस कारण भोग और भोगार्थियोंको भी शिवयोगीका सत्कार करना चाहिये ॥ ४० ॥ उनके रहनेको घर आदि देना अन्न पान शय्या वस्त्रादिसे सत्कार करना साररूपी योगधर्म है इस कारण यह पापरूपी मुद्गरसे छेदन नहीं होता ॥ ४१ ॥ जैसे चावलसे वज्र नहीं टूटता इस प्रकार पापसे योगी भेदित नहीं होसकते, जैसे कमलपत्र जलसे लिप्त नहीं होता इस प्रकार योगी तापसे लिप्त नहीं होते ॥ ४२ ॥ जिस देशमें नित्य शिवयोगमें प्रीति करनेवाले मुनि निवास करते हैं, वह भी देश पवित्र होजाता है, फिर वह पवित्र

हो तो क्या कहना ॥ ४३ ॥ इस कारण चतुर पुरुष और सब कृत्योंको छोडकर सब दुःखके दूर करनेको शिवयोग करै ॥ ४४ ॥ योगफल सिद्ध हो जानेसे योगी लोकोंके हितकी कामनासे यथायोग्य भोगोंको भोगकर चाहै विहार करै वा साधारण वरतै ॥ ४५ ॥ अथवा विषय सुखोंको क्षुद्र मानकर इन्हैं छोड वैराग्ययोगसे अपनी इच्छासे कर्मको छोड दे ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य योगी अरिष्ट देखकर समीप आई मृत्युको जानै वह योगारम्भमें निरत हो शिवक्षेत्रका आश्रय ले ॥ ४७ ॥ वह उस क्षेत्रमें धीरतासे आतुरतासे निवास करताहुआ बिना रोगादिके ही प्राणोंको त्यागन करदे ॥ ४८ ॥ विधिपूर्वक

तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृत्यमन्यद्विचक्षणः ॥ सर्वंदुःखप्रहाणाय शिवयोगं समभ्यसेत् ॥ ४४ ॥ सिद्धयोगफलो योगी लोकानां हितकाम्यया ॥ भोगान्भुक्त्वा यथाकामं विहरेद्वात्र वर्ततास् ॥ ४५ ॥ अथ वा क्षुद्रमित्येव मत्वा वैषयिकं सुखम् ॥ त्यक्त्वा विरागयोगेन स्वेच्छया कर्म मुच्यताम् ॥ ४६ ॥ यस्त्वासन्नां मृतिं मर्त्यो दृष्टारिष्टं च भूयसा ॥ स योगारम्भनिरतः शिवक्षेत्रं समाश्रयेत् ॥४७॥ स तत्र निवसन्नेव यदि धीरमना नरः ॥ प्राणान्विनापि रोगाद्यैः स्वयमेव परित्यजेत् ॥ ४८ ॥ कृत्वाप्यनशनं चैव हुत्वा चांगं शिवानले ॥ क्षिप्त्वा वा शिवतीर्थेषु स्वदेहमवगाहनात् ॥ ४९ ॥ शिवशास्त्रोक्तविधिवत्प्राणान्यस्तु परित्यजेत् ॥ सद्य एव विमुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ ५० ॥ रोगाद्यैर्वाथ विवशः शिवक्षेत्रं समाश्रितः ॥ म्रियते यदि सोप्येवं मुच्यते नात्र संशयः[1] ॥ ५१ ॥

अनशन व्रतकर शिवाग्निमें हवन कर वा अवगाहनसे शिवतीर्थोंमें अपने देहको निक्षेप करै ॥ ४९ ॥ जो शिवशास्त्रके विधानसे अपने प्राणोंको त्यागन करता है; वह शीघ्र मुक्त होजाता है; आत्मघाती नहीं होता ॥ ५० ॥ अथवा शिवक्षेत्रमें आकर रोगादिसे विवश होकर मृत्युको प्राप्त होता है, वह भी मुक्त होजाता है, सन्देह नहीं; इसमें उत्तर मरण श्रेष्ठ है; निवृत्ति आदि कलाकी प्रतिष्ठाके वशसे देह भूतोंमें लीन होजाता है, विशेषकर शिवक्षेत्रमें अपनी इच्छासे मरण विशेष कहा है, यही सब मरणोंमें उत्तम मरण है, और उन्मनाके पदका देनेवाला है ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार अनशन व्रतसे मरना श्रेष्ठ कहा

---

[1] तथाविशिष्टं तत्रापि मरणं तूत्तरोत्तरम् । निवृत्त्यादिवशाद्देवो भूतेषु च विलीयते ॥१॥ स्वेच्छयोत्क्रम्य मरणं शिवक्षेत्रे विशेषतः।उत्तमं सर्वमरणादुन्मनापदयोगदम्॥२॥इत्येकस्मिन्पुस्तकेऽधिकौ ।

है उसी प्रकार शास्त्रके अनुसार धीरतासे करै व मनसे ध्यान करै ॥ ५२ ॥ शिवनिन्दा करनेवालोंको हत करके वा उनसे स्वयं पीडित होके जो अपने दुस्त्यज प्राणोंका त्यागन करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता ॥५३॥ और जो शिवनिन्दाकरनेवालोंके मारनेमें असमर्थ हो तो स्वयं मृतक होजाय वह इक्कीस कुलोंके साथ तत्काल ही मुक्त होजाता है ॥ ५४ ॥ जो शिव वा शिवके भक्तोंके निमित्त प्राणोंको त्यागन करता है वा शिवके आचार वा विद्याके निमित्त मृतक होता है उसके समान कोई प्राणी मुक्तिमार्गमें स्थित नहीं है ॥ ५५ ॥ इस कारण उसकी संसारमण्डलसे शीघ्र मुक्ति होजाती है,

यथा हि मरणं श्रेष्ठमुशंत्यनशनादिभिः ॥ शास्त्रविश्रंभधीरेण मनसा क्रियते यतः ॥ ५२ ॥ शिवनिन्दारतं हत्वा पीडितः स्वयमेव वा ॥ यस्त्यजेद्दुस्त्यजान्प्राणान्न स भूयः प्रजायते ॥ ५३ ॥ शिवनिन्दारतं हंतुमशक्तो यः स्वयं मृतः ॥ सद्य एव प्रमुच्येत त्रिःसप्तकुलसंयुतः ॥ ५४ ॥ शिवार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवभक्तार्थमेव वा ॥ न तेन सदृशः कश्चिन्मुक्तिमार्गस्थितो नरः ॥ ५५ ॥ तस्माच्छीघ्रतरा मुक्तिस्तस्य संसारमंडलात् ॥ एतेष्वन्यतमोपायं कथमप्यवलम्ब्य वा ॥ ५६ ॥ षडध्वशुद्धिं विधिवत्प्राप्तो वा म्रियते यदि ॥ पशूनामिव तस्येह न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ५७ ॥ नैवाशौचं प्रपद्येत तत्पुत्रादिर्विशेषतः ॥ शिवाचारार्थमथवा शिवविद्यार्थमेव वा ॥ खनेद्वा भुवि तद्देहं दहेद्वा शुचिनाग्निना ॥ ५८ ॥ क्षिपेद्वाप्सु शिवास्वेव त्यजेद्वा काष्ठलोष्टवत् ॥ अथैनमपि चोद्दिश्य कर्म चेत्कर्तुमीप्सितम् ॥ ५९ ॥

इनमेंसे किसी एक उपायको अवलम्बन कर ॥ ५६ ॥ षडध्व शुद्धिको विधिपूर्वक प्राप्त होकर यदि मृतक होजाय उसका पश्वादि जीवोंके समान और्ध्वदैहिक कर्म न करै ॥ ५७ ॥ और उसके पुत्रादिकोंको उसका शौच नहीं लगता है चाहैं उसके शरीरको गाडदें, चाहैं पवित्र अग्निमें जला दें ॥ ५८ ॥ वा पवित्र जलमें डाल दें, वा काष्ठ वा ढेलेकी समान फेंक दें और जो इसके उद्देशसे कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो ॥ ५९ ॥

मंगल करै और शिवभक्तोंको तृप्त करै, जो शैवी सन्तान हो तो उसके धनकी भागी हो सकती है;यदि ऐसी न हो तो शिवके निमित्त देदे पशु सन्तानको धन न दे ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे योगनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले, इस प्रकार वायुने श्रीकृष्णके प्रति क्रोध रहित उपमन्युके वर्णनकिये ज्ञानयोगको मुनियोंके प्रति वर्णन किया; तब प्रणामको प्राप्त हुए उन मुनियोंसे प्रकाशित परमात्मा स्वरूपवाले आकाशमें वह वायु सन्ध्याको अन्तर्धान होगये ॥ १ ॥ तब प्रातःकालमें नैमिषारण्यवासी तपोधनयज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करनेको आये ॥ २ ॥

कल्याणमेव कुर्वीत शक्त्या भक्तांश्च तर्पयेत् ॥ धनं तस्य भजेच्छैवः शैवी चेत्तस्य सन्ततिः ॥ नास्ति चेत्तच्छिवे दद्यान्नादद्यात्पशुसन्ततिः ॥ ६० ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तर खण्डे शैवयोगवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इति स विजितमन्योर्यादवेनोपमन्योरधिगतमभिधाय ज्ञानयोगं मुनिभ्यः ॥ प्रणतिमुपगतेभ्यस्तेभ्य उद्भावितात्मा सपदि वियति वायुः सायमन्तर्हितोऽभूत ॥ १ ॥ ततः प्रभातसमये नैमिषीयास्तपोधनाः ॥ सत्रान्तेऽवभृथं कर्तुं सर्व एव समुद्ययुः ॥ ॥ २ ॥ तदा ब्रह्मसमादेशाद्देवी साक्षात्सरस्वती॥ प्रसन्ना स्वादुसलिला प्रावर्तत नदी शुभा ॥ ३ ॥ सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा मुनयो हृष्टमानसाः ॥ समाप्य सत्रं प्रारब्धं चक्रुस्तत्रावगाहनम् ॥ ४ ॥ अथ संतर्प्य देवादींस्तदीयैः सलिलैः शिवैः ॥ स्मरन्तः पूर्ववृत्तान्तं ययुर्वाराणसीं प्रति ॥ ५ ॥ तदा ते हिमवत्पादात्पंततीं दक्षिणामुखीम् ॥ दृष्ट्वा भागीरथीं तत्र स्नात्वा तत्तीरतो ययुः ॥ ६ ॥ ततो वाराणसीं प्राप्य मुदितास्सर्व एव ते ॥ तदोत्तरप्रवाहायां गंगायामवगाह्य च ॥ ७ ॥

तब ब्रह्माकी साक्षात् सरस्वती देवी प्रसन्न जलको बहानेवाली प्रगट हुई ॥ ३ ॥ सरस्वती नदीको देखकर प्रसन्न चित्तवाले मुनि यज्ञ समाप्तकर उसमें अवगाहन करने लगे ॥ ४ ॥ उसके सुन्दर जलोंसे देवादि शिवको तृप्तकर पूर्व वृत्तान्त स्मरण करते काशीमें आये ॥ ५ ॥ तब वे हिमालयगिरिसे दक्षिणकी ओर बहनेवाली उस भागीरथीको देखकर वहां स्नानकर उसके तीरसे चलेगये ॥ ६ ॥ तब काशीमें प्राप्त होकर वे सब प्रसन्न हुए; वहां उत्तर बहनेवाली गंगामें

स्नान कर ॥ ७ ॥ अविमुक्तेश्वर लिंगको देख विधिसे पूजन कर चले तो आकाशमें एक उज्ज्वल तेज देखा ॥ ८ ॥ जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान
दिव्य महाअद्भुत तेज जिसने अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण आकाशको आच्छादित करलिया था ॥ ९ ॥ तब सिद्ध पाशुपत व्रतवाले शरीरमें भस्म लगाये सैंकडों
मुनि उसमें प्राप्त होकर लीन होगये ॥ १० ॥ इस प्रकार महात्मा तपस्वियोंके लीन होनेपर वह तेज शीघ्रही लीन होगया यह बडी अद्भुत बात हुई ॥
॥ ११ ॥ नैमिषारण्यवासी उस महा आश्चर्यको देखकर यह क्या है इस बातको न जानकर पूर्वोक्त ब्रह्मवनको गये ॥ १२ ॥ इनके जानेसे ही पहले

अविमुक्तेश्वरं लिंगं दृष्ट्वाभ्यर्च्य विधानतः ॥ प्रयातुमुद्यतास्तत्र ददृशुर्दिवि भास्वरम् ॥ ८ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं तेजोदिव्यं महाद्भुतम्॥
आत्मप्रभावितानेन व्याप्तसर्वदिगन्तरम् ॥ ९ ॥ अथ पाशुपताः सिद्धाः भस्मसञ्छन्नविग्रहाः ॥ मुनयोऽभ्येत्य शतशो लीनाः स्युस्तत्र
तेजसि ॥ १० ॥ तथा विलीयमानेषु तपस्विषु महात्मसु ॥ सद्यस्तिरोदधे तेजस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नैमि
षीया महर्षयः ॥ किमेतदित्यजानन्तो ययुर्ब्रह्मवनं प्रति ॥ १२ ॥ प्रागेवैषां तु गमनात्पवनो लोकपावनः ॥ दर्शनं नैमिषीयाणां संवा
दस्तैर्महात्मनः ॥ १३ ॥ शुद्धां बुद्धिं ततस्तेषां सांबे सानुचरे शिवे ॥ समाप्तिं चापि सत्रस्य दीर्घपूर्वस्य सत्रिणाम् ॥१४ ॥ विज्ञाप्य
जगतां धात्रे ब्रह्मणे ब्रह्मयोनये ॥ स्वकार्ये तदनुज्ञातो जगाम स्वपुरं प्रति ॥ १५ ॥ अथ स्थानगतो ब्रह्मा तुम्बुरोर्नारदस्य च ॥ पर
स्परं स्पर्द्धितयोर्गाने विवदमानयोः ॥ १६ ॥ तदुद्भावितगानोत्थरसैर्माध्यस्थमाचरन् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुखमास्ते निषेवितः ॥
॥ १७ ॥ तदानवसरादेव द्वाःस्थैर्द्वारि निवारिताः ॥ मुनयो ब्रह्मभवनाद्बहिः पार्श्वमुपाविशन् ॥ १८ ॥

लोकपावन पवनदेव नैमिषारण्यवासियोंके दर्शन और उनके सम्बादको ॥१३॥ तथा उनकी शुद्ध बुद्धि साम्बशिवमें देखकर यज्ञकी समाप्ति जो दीर्घकालसे
थी ॥ १४ ॥ यह सब जगत्के पति ब्रह्माजीसे कथनकर अपने कार्यको कहकर अपने पुरको गये ॥१५ ॥ तब ब्रह्माजीके स्थानमें तुम्बुरु और नारद
प्राप्त हुए, जो कि वे दोनों परस्पर गानेमें स्पर्धा करते थे ॥ १६ ॥ उनके गानेकी स्पर्धामें उनके निर्णय करनेको ब्रह्माजी मध्यस्थ हुए, गन्धर्वों और
अप्सराओंसे सेवित हो वहां स्थित थे ॥ १७॥ सो अनवसरमें प्राप्त होनेसे द्वारपालोंने मुनियोंको निवारण किया, तब वे मुनि ब्रह्मवनसे बाहरके पार्श्वभागमें

प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ तब गानेमें नारदजी तुम्बुरुकी समताको प्राप्त होकर सेवकोंसहित परमेष्ठी ब्रह्मासे आज्ञा लेकर ॥१९॥ परस्पर स्पर्धा छोड मित्रताको प्राप्त हो अप्सरा और गन्धर्वोंके साथ ॥२०॥ नकुलीश्वरदेवको वीणाद्वारा उपासना करनेको भवनसे ऐसे निकले जैसे मेघोंसे सूर्य निकलता है ॥२१॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजीको वह त्रिवेणीके षट्कुलोंमें उत्पन्नहुए ब्राह्मण प्रणाम करके कल्याण विधायि ब्राह्मण परम आदरसे जानेको अवसर पूँछने लगे ॥ ॥ २२ ॥ नारदजी बोले, यही अवसर है जाओ; यह कह कार्यान्तरमें चित्त लगे होनेके कारण नारदजी बहुत शीघ्रतासे चलेगये ॥२३॥ तब द्वारपालने

अथ तुंबुरुणा गाने समतां प्राप्य नारदः ॥ साहचर्येष्वनुज्ञातो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ १९ ॥ त्यक्त्वा परस्परस्पर्द्धां मैत्रीं च परमां गतः ॥
सह तेनाप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च समावृतः ॥ २० ॥ उपवीणयितुं देवं नकुलीश्वरमीश्वरम् ॥ भवनान्निर्ययौ धातुर्जलदादंशुमानिव ॥
॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा षट्कुलीयास्ते नारदं मुनिगोवृषम् ॥ प्रणम्यावसरं शंभोः पप्रच्छुः परमादरात् ॥ २२ ॥ स चावसर एवायमितो
तर्गम्यतामिति ॥ वदन्ययावन्यपरस्त्वरया परया युतः ॥ २३ ॥ ततो द्वारि स्थिता ये वै ब्रह्मणे तान्न्यवेदयन् ॥ तेन ते विविशुर्वेश्म
पिंडीभूयांडजन्मनः ॥ २४ ॥ प्रविश्य दूरतो देवं प्रणम्य भुवि दंडवत् ॥ समीपे तदनुज्ञाताः परिवृत्योपतस्थिरे ॥ २५ ॥ तांस्तत्राव
स्थितान् पृष्ट्वा कुशलं कमलासनः ॥ वृत्तांतं वो मया ज्ञातं वायुरेवाह नो यतः ॥ २६ ॥ भवद्भिः किं कृतं पश्चान्मारुतेंतर्हिते सति ॥
इत्युक्तवति देवेशे मुनयोऽवभृथात्परम् ॥ २७ ॥ गंगातीर्थेस्य गमनं यात्रां वारणसीं प्रति ॥ दर्शनं तत्र लिंगानां स्थापितानां सुरे
श्वरैः ॥ २८ ॥ अविमुक्तेश्वरस्यापि लिंगस्याभ्यर्चनं सकृत् ॥ आकाशे महतस्तस्य तेजोराशेश्च दर्शनम् ॥ २९ ॥

ब्रह्माके द्वारे स्थित मुनियोंका निवेदन किया, तब वे सब एकत्र मिलकर ब्रह्माके भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ प्रवेशकर दूरसे देवको देख पृथ्वीमें दण्डप्रणाम कर उनकी आज्ञासे समीपमेंही स्थित हुए॥२५॥ उनको बैठा देख ब्रह्मा उनकी कुशल पूँछकर कहनेलगे कि,तुम्हारा वृत्तान्त मैंने वायुसे सुनलिया है ॥२६॥ पवनके अन्तर्धान होनेके पीछे फिर तुमने क्या किया यह देवेशके कहनेपर मुनियोंने अवभृथ यज्ञके स्नानके पीछे ॥ २७ ॥ गंगातीर्थ जाना, वाराणसीकी यात्रा करना; वहां सुरासुरके स्थापित लिंगोंको देखना ॥२८॥ तथा अविमुक्तेश्वर लिंगका पूजन करना, आकाशमें महातेजराशिका देखना ॥ २९ ॥

मुनियोंका उसमें प्रवेश होना और तेजका अन्तर्धान होना उसका यथार्थ न जानकर विचार करना ॥ ३० ॥ यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक ब्रह्माजीको बारंबार प्रणामकर निवेदन करदिया, विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्माजी मुनियोंके वचन सुनकर ॥ ३१ ॥ कुछेक शिर कँपाकर गंभीरवाणीसे बोले, तुमको परलोककी सिद्धि निकट वर्तती है ॥ ३२ ॥ तुमने दीर्घसत्रसे बहुत कालतक प्रभुका आराधन किया है अब वह प्रसन्न हुए हैं; ऐसा उस तेजने तुमको सूचित किया है ॥ ३३ ॥ जो वाराणसीमें तुमने स्वर्गमें दीप्तिमान् तेज देखा है वह साक्षात् लिंग संज्ञावाला माहेश्वरका परमतेज है ॥ ३४ ॥

मुनीनां विलयं तत्र निरोधं तेजसस्ततः ॥ याथात्म्यवेदनं तस्य चिंतितस्यापि चात्मभिः ॥ ३० ॥ सर्वं सविस्तरं तस्मै प्रणम्याहुर्मुहुर्मुहुः ॥ मुनिभिः कथितं श्रुत्वा विश्वकर्मा चतुर्मुखः ॥ ३१ ॥ कंपयित्वा शिरः किंचित्प्राह गंभीरया गिरा ॥ प्रत्यासीदति युष्माकं सिद्धिरामुष्मिकी परा ॥३२॥ भवद्भिर्दीर्घसत्रेण चिरमाराधितः प्रभुः ॥ प्रसादाभिमुखो भूत इति भूतार्थसूचितम् ॥ ३३ ॥ वाराणस्यां तु युष्माभिर्यद्दृष्टं दिवि दीप्तिमत् ॥ तल्लिंगसंज्ञितं साक्षात्तेजो माहेश्वरं परम् ॥ ३४ ॥ तत्र लीनाश्च मुनयः श्रौतपाशुपतव्रताः ॥ मुक्ता बभूवुः स्वस्थाश्च नैष्ठिका दग्धकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ प्राप्यानेन यथा मुक्तिरचिराद्भवतामपि ॥ स चायमर्थः सूच्येत युष्मद्दृष्टेन तेजसा ॥ ३६ ॥ तत्र वः काल एवैष दैवादुपनतः स्वयम् ॥ प्रयात दक्षिणं मेरोः शिखरं देवसेवितम् ॥ ३७ ॥ सनत्कुमारो यत्रास्ते मम पुत्रः परो मुनिः ॥ प्रतीक्ष्यागमनं साक्षाद्भूतनाथस्य नंदिनः ॥ ३८ ॥ पुरा सनत्कुमारोपि दृष्ट्वापि परमेश्वरम् ॥ अज्ञानात्सर्वयोगीन्द्रमानी विनयदूषितः ॥ ३९ ॥ अभ्युत्थानादिकं युक्तमकुर्वन्नतिनिर्भयः ॥ ततोऽपराधात्क्रुद्धेन महोष्ट्रो नंदिना कृतः ॥ ४० ॥

उसमें श्रौत और पाशुपत व्रतवाले मुनि लीन होगये और नैष्ठिक दग्धपापवाले मुक्त होगये ॥३५॥ इसी मार्गके प्राप्त होनेसे शीघ्र तुम्हारी मुक्ति होजायगी, वही वार्ता तुमको उस तेजने सूचित की ॥ ३६ ॥ सो वह तुम्हारा समय दैवयोगसे स्वयं प्राप्त होगया है, तुम देवताओंसे सेवित मेरुके दक्षिण शिखरमें जाओ ॥ ३७ ॥ जहां हमारा पुत्र परममुनि सनत्कुमार है, वहां वह साक्षात् भूतनाथ नन्दिके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ३८ ॥ पहले सनत्कुमार भी परमेश्वरको देखकर अज्ञानसे सब योगीन्द्रोंमें अपनी आत्माको देखनेवाले होनेके कारण दुर्विनीत हो ॥ ३९ ॥ उनके आनेपर अभ्युत्थानादि कर्मको

न करके निर्भय स्थित रहे, तब इससे शुद्धहुए नन्दिने उसको महाउष्ट्र करदिया ॥ ४० ॥ तब उनके निमित्त बहुत समयतक शोच करतेहुए मैंने देव
देवीकी उपासना कर और नंदिको प्रसन्न कर ॥ ४१ ॥ किसी प्रकार बडे यत्नसे सनत्कुमारकी उष्ट्रता दूर की; तब सनत्कुमारने पूर्ववत् शरीर प्राप्त
किया ॥ ४२ ॥ तब महादेव हँसतेहुए गणाधिपतिसे बोले कि, हे नंदि ! हमारी अवज्ञासे तुमने नन्दिको ऐसा किया है ॥ ४३ ॥ हे पापरहित ! इससे
तुम हमारी याथात्म्यको इसके निमित्त कथन करो. कारण कि ब्रह्माका पूर्वजपुत्र यह मूढ नर है ॥ ४४ ॥ मैंने इस सनत्कुमारको शिष्यत्वमें दिया; इस
कारण इसके प्रति मेरा ज्ञान प्रकाश करो यह तुमको धर्माध्यक्षका अभिषेक करैंगे ॥ ४५ ॥ जिस समय सब भूतगणोंके अग्रणी नन्दिसे यह वचन कहे

अथ कालेन महता तदर्थे शोचता मया ॥ उपास्य देवं देवीञ्च नंदिनं चानुनीय वै ॥ ४१ ॥ कथंचिदुष्ट्रता तस्य प्रयत्नेन निवारिता
प्रापितो हि यथापूर्वं सनत्पूर्वां कुमारताम् ॥ ४२ ॥ तदाह च महादेवः स्मयन्निव गणाधिपम् ॥ अवज्ञाय हि मामेव तथाहंकृतवान्मु
निः ॥ ४३ ॥ अतस्त्वमेव यथात्म्यं ममास्मै कथयानघ ॥ ब्रह्मणः पूर्वजः पुत्रो मां मूढ इव संस्मरन् ॥ ४४ ॥ मयैव शिष्यस्ते
दत्तो मम ज्ञानप्रवर्तकः ॥ धर्माध्यक्षाभिषेकं च तव निर्वर्त्तयिष्यति ॥ ४५ ॥ स एवं व्याहृतो भूयस्सर्वभूतगणाग्रणीः ॥ यत्पुराज्ञा
पनं मूर्ध्ना प्रातः प्रतिगृहीतवान् ॥ ४६ ॥ तथा सनत्कुमारोऽपि मेरौ मदनुशासनात् ॥ प्रसादार्थं गणस्यास्य तपश्चरति दुश्चरम् ॥
॥ ४७ ॥ द्रष्टव्यश्चेति युष्माभिः प्राग्गणेशसमागमात् ॥ तत्प्रसादार्थमचिरान्नंदी तत्रागमिष्यति ॥ ४८ ॥ इति सत्वरमादिश्य
प्रेषिता विश्वयोगिना ॥ कुमारशिखरं मेरोर्दक्षिणं मुनयो ययुः ॥ ४९ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
नैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

तब उन्होंने प्रसन्न हो पतिकी आज्ञा शिरसे ग्रहण की ॥ ४६ ॥ और सनत्कुमार भी मेरुपर्वतमें मेरी आज्ञासे दुष्कर तपस्या गणेशजीके प्रसन्न होनेके
निमित्त करते हैं ॥ ४७ ॥ सो गणेश नन्दिके समागमसे पहलेही तुम सनत्कुमारका दर्शन करो. कारण कि, उनके प्रसन्न करनेको नन्दि बहुत शीघ्र जायँगे
॥ ४८ ॥ इस प्रकार विश्वयोनि ब्रह्माजीने आज्ञा दे उनको वहां शीघ्र भेजा तब वे मुनि मेरुके दक्षिण शिखरमें कुमारके देखनेको गये ॥ ४९ ॥
इति श्रीशिवमहापुराणभाषाटीकायां स० वा० सं० उत्तरखण्डे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतनैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सूतजी बोले, वहां सागरके समान मनोहर एक स्कन्दसरोवर है, अमृतके समान स्वादु और ठंढा अगाध हलका उसका जल है ॥ १ ॥ चारोंओर स्फटिकमणिके पर्वतोंसे युक्त है और सब दिशाओंमें फूलेहुए फूलोंसे व्याप्त है ॥ २ ॥ सिवार उत्पन्न कमल तारकाओंके समान कुमुद और मेघके समान तरंगोंसे मानो आकाशको आच्छादित कियेहुए कि पृथ्वीपरही आकाश आगया है ॥ ३ ॥ सुन्दर नीचे ऊपर जानेके मार्ग स्थूल नील शिलाके बनेहुए सीढियोंसे रुचिर आठों दिशाओंको सुन्दर करतेहुए हैं ॥ ४ ॥ जहां तहां नीचे ऊपर उतरनेके अनेक स्थान हैं और स्नानकर शुक्ल यज्ञोपवीत पहरे कौपीन वल्कल

सूत उवाच ॥ तत्र स्कंदसरो नाम सरस्सागरसन्निभम् ॥ अमृतस्वादुशिशिरस्वच्छागाधलघूदकम् ॥ १ ॥ समंततः संघटितं स्फटिको
पलसंचयैः ॥ सर्वर्तुकुसुमैः फुल्लैश्छादिताखिलदिङ्मुखम् ॥ २ ॥ शैवलैरुत्पलैः पद्मैः कुमुदैस्तारकोपमैः ॥ तरंगैरभ्रसंकाशैराकाश
मिव भूमिगम् ॥ ३ ॥ सुखावतरणारोहैः स्थलैर्नीलशिलामयैः ॥ सोपान मार्गैं रुचिरैश्शोभमानाष्टदिङ्मुखम् ॥ ४ ॥ तत्रावतीर्णैश्च
यथा तत्रोत्तीर्णैश्च भूयसा ॥ स्नातैः सितोपवीतैश्च शुक्लकौपीनवल्कलैः ॥ ५ ॥ जटाशिखायनैर्मुंडैस्त्रिपुंड्रकृतमंडनैः ॥ विरागविवशस्मे
रमुखैर्मुनिकुमारकैः ॥ ६ ॥ घटैः कमलिनीपत्रपुटैश्च कलशैः शिवैः ॥ कमण्डलुभिरन्यैश्च तादृशैः करकादिभिः ॥ ७ ॥ आत्मार्थं च
परार्थं च देवतार्थं विशेषतः ॥ आनीयमानसलिलमात्तपुष्पं च नित्यशः ॥ ८ ॥ अंतर्जलशिलारूढैर्नीचानां स्पर्शशंकया ॥ आचारव
द्भिर्मुनिभिः कृतभस्मांगधूसरैः ॥ ९ ॥ इतस्ततोऽप्सु मज्जद्भिरिष्टशिष्टैः शिलागतैः ॥ तिलैश्च साक्षतैः पुष्पैस्त्यक्तदर्भपवित्रकैः ॥
॥ १० ॥ देवाद्यमृषिमध्यं च निर्वर्त्य पितृतर्पणम् ॥ निवेदयेदभिज्ञेभ्यो नित्यस्नानगतान् द्विजान् ॥ ११ ॥

धारण किये ॥ ५ ॥ जटाओंकी शिखासे युक्त कोई मुण्डित, कोई त्रिपुंड्रसे शोभायमान वैराग्यसे उज्ज्वल मुखवाले मुनिकुमारोंसे युक्त ॥ ६ ॥ कमलिनीपत्रके दोनोंसे युक्त, घट तथा श्रेष्ठ कलश तथा दूसरे कमंडलु और करकादिसे युक्त ॥ ७ ॥ अपने पराये और विशेषकर देवताके निमित्त जल लाकर और पुष्प लाकर ॥ ८ ॥ अन्तर्जलको नीचोंके स्पर्शकी शंकासे शिलामें रक्खै आचारवाले मुनियोंसे युक्त, भस्म अंग धारणादिसे युक्त ॥ ९ ॥ इधर उधर जलमें मज्जन करते हुए, यजन करनेसे बचेहुए शिलामें प्राप्त तिल अक्षत पुष्प और त्यागेहुए दर्भ और पवित्रीसे उपलक्षित ॥ १० ॥ कहीं देवता

और ऋषि तर्पणको करचुकने उपरान्त नित्य स्नान करेहुए ब्राह्मणोंको निवेदन करके ॥ ११ ॥ स्थान स्थानमें अनेक बलिपूजा करनेपर पहले सूर्यको
अर्घ्य देकर फिर स्थंडिलमें पूजा आदि करके सम्पन्न ॥ १२ ॥ कहीं निमज्जन करते कहीं स्नान करके निकलते हुए हाथियोंसे व्याप्त, कहीं तृष्णासे
जातेहुए मृगी और मृगोंसे सम्पन्न ॥ १३ ॥ कहीं जल पीकर आतेहुए मोर और हाथी, कहीं परस्पर वृषभोंके तटाघातसे युक्त ॥ १४ ॥ कहीं कारंडव
पक्षियोंके शब्द कहीं सारसके शब्दोंसे युक्त; कहीं कोयल और पपीहा और भ्रमरोंकी झनकारसे सम्पन्न ॥ १५ ॥ स्नान पानादिके करनेसे अपनी सम्पत्से
जीनेवाले तथा प्रेमसे परस्पर सब प्राणियोंके वचनोंसे युक्त ॥ १६ ॥ किनारेके वृक्ष आदिपर कोकिला बैठेहुए मानो गरमीसे व्याकुल हुए सब जीवोंको

स्थानेस्थाने कृतानेकबलिपुष्पसमीरणैः ॥ सौरार्घ्यपूर्वं कुर्वद्भिःस्थंडिलेभ्यर्चनादिकम् ॥ १२ ॥ क्वचिन्निमज्जदुन्मज्जत्प्रस्रस्तगजयूथ
पम् ॥ क्वचिच्च तृषयायातमृगीमृगतुरंगमम् ॥ १३ ॥ क्वचित्पीतजनोत्तीर्णमयूरवरवारणम् ॥ क्वचित्कृततटाघातवृषप्रतिवृषोज्ज्वलम् ॥
॥ १४ ॥ क्वचित्कारंडवरवैः क्वचित्सारसकूजितैः ॥ क्वचिच्च कोकनिनदैः क्वचिद्भ्रमरगीतिभिः ॥ १५ ॥ स्नानपानादिकरणैः स्वसं
पद्द्रुमजीविभिः ॥ प्रणयात्प्राणिभिस्तैस्तैर्भाषमाणमिवासकृत् ॥ १६ ॥ कूलशाखिशिखालीनकोकिलाकुलकूजितैः आतपोपहतान्सर्वा
न्नामंत्रयदिवानिशम् ॥ १७ ॥ उत्तरे तस्य सरसस्तीरे कल्पतरोरधः ॥ वेद्यां वज्रशिलामय्यां मृदुले मृगचर्मणि ॥ १८ ॥ सनत्कु
मारमासीनं शश्वद्बालवपुर्द्धरम् ॥ तत्कालमात्रोपरतं समाधेरचलात्मनः ॥ १९ ॥ उपास्यमानं मुनिभिर्योगींद्रैरपि पूजितम् ॥ ददृशुर्नै
मिषेयास्ते प्रणताश्चोपतस्थिरे ॥ २० ॥ यावत्पृष्टवते तस्मै प्रोचुः स्वागतकारणम् ॥ तुमुलः शुश्रुवे तावद्दिवि दुंदुभिनिस्वनः ॥ २१ ॥
ददृशे तत्क्षणे तस्मिन्विमानं भानुसन्निभम् ॥ गणेश्वरैरसंख्येयैः संवृतं च समंततः ॥ २२ ॥

अपनी ओर बुलाते हैं ॥ १७ ॥ उस सरोवरके उत्तरकी ओर कल्पतरुके नीचे वज्रशिलाहीकी बनी वेदी और कोमल मृगचर्म उसपर बिछा हुआ ॥ १८ ॥
उसके ऊपर सदा बालकशरीरधारी सनत्कुमार बैठेहुए; वह अचलात्मा समाधिसे उसी समय उपरामको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ मुनि और योगीन्द्र उनकी
उपासना और पूजा करते थे; इस प्रकार नैमिषारण्यवासी मुनियोंने उनको देखा तौ प्रणामकर उनके निकट उपस्थित हुए ॥ २० ॥ तब पूँछनेपर उन्होंने
अपने आनेका कारण कहा, तब तक बडा भारी दुन्दुभिशब्द आकाशमें होता भया ॥ २१ ॥ उस समय सूर्यके समान विमान दिखाई दिया जो चारोंओर

असंख्य गणेश्वरोंसे व्याप्त था ॥ २२ ॥ अप्सराओंके समूहसे संकीर्ण, रुद्रकन्याओंसे व्याप्त, मृदंग, मुरज, वेणु, वीणाके शब्दोंसे सम्पन्न ॥ २३ ॥ चित्र रत्न और वितान आदिसे युक्त, मुक्तादामसे विराजित, सिद्ध गन्धर्व यक्ष चारण किन्नर आदिसे सम्पन्न ॥ २४ ॥ नाचते गाते और चारोंओरसे बजातेहुए वीर गो वृषके चिह्न और दिव्य विक्रमसे युक्त लकडी लिये हुए ॥ २५ ॥ विमानके ऊपर ध्वजा पताका फहराय रहीं, उस विमानके मध्यमें दो चामर स्थित थे ॥ २६ ॥ एक पवित्र छत्र जिसकी मणि जटित डंडी लगी थी दिव्य सिंहासनपर देवी सुयशाके सहित ॥ २७ ॥ शरीरकी कान्तिसे तथा तीनों

अप्सरोगणसंकीर्णं रुद्रकन्याभिरावृतम् ॥ मृदंगमुरजोद्घुष्टं वेणुवीणारवान्वितम् ॥ २३ ॥ चित्ररत्नवितानाढ्यं मुक्तादामविराजितम् ॥ मुनिभिस्सिद्धगंधर्वैर्यक्षचारणकिन्नरैः ॥ २४ ॥ नृत्यद्भिश्चैव गायद्भिर्वादयद्भिश्च संवृतम् ॥ वीरगोवृषचिह्नेन विद्रुमद्रुमयष्टिना ॥ २५ ॥ कृतगोपुरसत्कारं केतुना मान्यहेतुना॥तस्य मध्ये विमानस्य चामरद्वितयांतरे॥२६॥छत्रस्य मणिदंडस्य चंद्रस्येव शुचेरधः॥दिव्यसिंहासनारूढं देव्या सुयशया सह ॥ २७ ॥ श्रिया च वपुषा चैव त्रिभिश्चापि विलोचनैः ॥ प्राकारैरभिकृत्यानां प्रत्यभिज्ञापकं प्रभोः ॥ ॥ २८ ॥ अविलंघ्य जगत्कर्तुराज्ञापनमिवागतम् ॥ सर्वानुग्रहणं शंभोः साक्षादिव पुरःस्थितम् ॥ २९ ॥ शिलादतनयं साक्षाच्छ्रीमच्छूलवरायुधम् ॥ विश्वेश्वरगणाध्यक्षं विश्वेश्वरमिवापरम् ॥ ३० ॥ विश्वस्यापि विधातॄणां निग्रहानुग्रहक्षमम् ॥ चतुर्बाहुमुदारांगं चंद्ररेखाविभूषितम् ॥ ३१ ॥ कंठे नागेन मौलौ च शशांकेनाप्यलंकृतम् ॥ सविग्रहमिवैश्वर्यं सामर्थ्यमिव सक्रियम् ॥ ३२ ॥ समाप्तमिव निर्वाणं सर्वज्ञमिव संगतम् ॥ दृष्ट्वा प्रहृष्टवदनो ब्रह्मपुत्रः सहर्षिभिः ॥ ३३ ॥

नेत्रोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकार शिवाके कृत्योंका जाननेवाला ॥ २८ ॥ मानों जगत्के कर्ताकी लंघनके अयोग्य आज्ञाके कहनेको आये हुए अथवा साक्षात् सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवके साक्षात् आगे स्थितहुए ॥ २९ ॥ शिलादपुत्र श्रीमान् साक्षात् नंदी शूल हाथमें लिये विश्वेश्वरके गणोंके अध्यक्ष दूसरे विश्वेश्वरहीके समान स्थित ॥ ३० ॥ संसार और विधाताओंके निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ, चारभुजा, उदार शरीर, चन्द्ररेखासे विभूषित ॥ ३१ ॥ कंठके बीचमें नाग, माथेपर शोभित चन्द्रमासे अलंकृत मानो ऐश्वर्यका शरीर धारे सत्क्रियाकी मानो सामर्थ्य ॥ ३२ ॥ मुक्तिके समाप्तिरूप

अर्थात् पूर्णताको प्राप्त हुए सर्वज्ञताको प्राप्त हुए उनको देखकर सनत्कुमार महर्षियोंके सहित प्रसन्न मुख होकर ॥ ३३ ॥ हाथ जोडे उठकर खडे होगये;
और उनके निमित्त अपनी आत्माको अर्पण करतेहुए. जब वह विमान बहुत निकट पृथ्वीपर आगया ॥ ३४ ॥ तब दण्डवत् प्रणाम कर देवकी स्तुतिकर
मुनियोंकी विज्ञप्तिकी कि, यह षट्कुलवाले मुनि नैमिषारण्यक्षेत्रमें दीर्घसत्र करचुकेहैं; अब सब ब्रह्माकी आज्ञासे आपकी सेवा करने आयेहैं, ॥ ३५ ॥
नन्दी यह ब्रह्मपुत्रके वचन सुन दृष्टिमात्रसेही उन सबके बन्धन छेदनकर शिवधर्म ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान योग देकर शिवके समीप चलेगये ॥ ३६ ॥

तस्थौ प्राञ्जलिरुत्थाय तस्यात्मानमिवार्पयन् ॥ अथ तत्रांतरे तस्मिन्विमाने चावनिं गते ॥ ३४ ॥ प्रणम्य दंडवद्देवं स्तुत्वा व्यज्ञा
पयन्मुनीन् ॥ षट्कुलीया इमे दीर्घं नैमिषे सत्रमास्थिताः ॥ आगता ब्रह्मणादिष्टाः पूर्वमेवाभिकांक्षया ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्मपु
त्रस्य नंदी छित्त्वा पाशान्दृष्टिपातेन सद्यः ॥ शैवं धर्मं चैश्वरं ज्ञानयोगं दत्त्वा भूयो देवपार्श्वं जगाम ॥ ३६ ॥ सनत्कुमारेण च तत्स
मस्तं व्यासाय साक्षाद्गुरवे ममोक्तम् ॥ व्यासेन चोक्तं महितेन मह्यं मया च तद्वः कथितं समासात् ॥ ३७ ॥ नावेदविद्भ्यः कथनी
यमेतत्पुराणरत्नं पुरशासनस्य ॥ नाभक्तशिष्याय च नास्तिकेभ्यो दत्तं हि मोहान्निरयं ददाति ॥ ३८ ॥ मार्गेण सेवानुगतेन यैस्तद्दत्तं
गृहीतं पठितं श्रुतं वा ॥ तेभ्यः सुखं धर्ममुखं त्रिवर्गं निर्वाणमंते नियतं ददाति ॥ ३९ ॥ परस्परस्योपकृतं भवद्भिर्मया च पौराणिक
मार्ग्गयोगात् ॥ अतो गमिष्येऽहमवाप्तकामः समस्तमेवास्तु शिवं सदा नः ॥ ४० ॥

सनत्कुमारने वह सब ज्ञान हमारे गुरु व्यासदेवसे वर्णन किया है, व्यासजीने मुझसे और मैंने संक्षेपसे तुमको सुनाया है ॥ ३७ ॥ वह वेदके न जाननेवालेको
यह शिवशासन पुराणरत्न कहना उचित नहीं है; जो अभक्त हो शिष्य न हो नास्तिक हो उसे न देना चाहिये, यदि किसीको लोभसे दिवे तो नरकमें
जाता है ॥ ३८ ॥ जिसने सेवानुगत मार्गसे इसको दिया, ग्रहण किया, अथवा पढा सुना है, उन्हींके मुखसे सुनाहुआ धर्मादिक तीन (धर्म अर्थ काम)
स्वर्गको देकर अन्तमें मोक्ष देता है ॥ ३९ ॥ मैंने पौराणिकमार्गके योगसे आपका परस्पर उपकार किया है, इससे पूर्ण कामना होकर मैं जाता हूं तुम

सबका मंगल हो ॥ ४० ॥ जब ऐसा आशीर्वाद देकर सूतजी चलेगये, तब वे सब मुनि पूजनीय प्रयागमें अपना यज्ञ पूर्णकर कलियुगके विषयोंसे और स्थानोंको कलुषित देख काशीमें निवास करनेलगे ॥ ४१ ॥ तब वे सब पशु पाशसे छूटनेकी इच्छाकर स्वयं अपने किये पाशुपत व्रतके प्रभावसे सम्पूर्ण ज्ञानकी समाधिको प्राप्त हो निन्दारहित परममुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले, इस शिवपुराणको आदरसे पढना चाहिये, और इसी प्रकार यत्नसे सुनना चाहिये ॥ ४३ ॥ इसको नास्तिक श्रद्धाहीन, शठ, शिवके अभक्त धर्मध्वजी पाखण्डीको न देना चाहिये ॥ ४४ ॥ इसके एकबार सुननेसेही

सूते कृताशिषि गते मुनयः सुवृत्ता यागे च पर्यवसिते महति प्रयागे ॥ काले कलौ च विषयैः कलुषायमाणे वाराणसीपरिसरे वसतिं वितेनुः ॥ ४१ ॥ अथ च ते पशुपाशमुमुक्षयाखिलतया कृतपाशुपतव्रताः ॥ अधिकृताखिलबोधसमाधयः परमनिर्वृतिमापुरनिंदिताः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात् ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि ॥ ४३ ॥ नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च ॥ अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च ॥४४॥ एतच्छ्रुत्या ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात् ॥ अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक् ॥ ४५ ॥ पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिस्स्याच्च श्रुते पुनः ॥ तस्मात्पुनःपुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः ॥ ४६ ॥ पंचावृत्तिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया ॥ परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः ॥ ४७ ॥ पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः ॥ सप्तकृत्वस्तदावृत्त्यालभंत शिवदर्शनम् ॥ ४८ ॥ श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगानंते मुक्तिं लभेच्च सः ॥ ४९ ॥

पाप नष्ट होजातेहैं, अभक्त भक्त होता और भक्तकी समृद्धि बढती है ॥ ४५ ॥ फिर सुननेसे सद्भक्ति और फिर सुननेसे मुक्ति होती है, इस कारण मुमुक्षुओंको यह बारंबार सुनना चाहिये ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिसे इस पुराणकी पांच आवृत्ति करै तब उसको परमफल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥४७॥ पुरातन राजा ब्राह्मण तथा वैश्य इसकी सात आवृत्ति करके शिवका दर्शन पाचुकेहैं ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर इसको सुनता है, वह यहां

अनेक भोगोंको भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ यह शिवपुराण शिवको अत्यन्त प्यारा है, भुक्ति मुक्तिका देनेवाला, ब्रह्म संमित तथा भक्तिका बढानेवाला है ॥ ५० ॥ इस शिवपुराणके वक्ता श्रोताका सदा गणपति कार्त्तिकेय तथा पार्वतीसहित शिवजी मंगल करैं ॥ ५१ ॥

एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसंमितं भक्तिवर्द्धनम् ॥ ५० ॥ एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा ॥ सगणस्ससुतस्सांबश्शं करोतु स शंकरः ॥ ५१ ॥ इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे व्यासोपदेश श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीशिवमहापुराणं भाषाटीकायुतम् ॥ शुभमस्तु ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां मुरादाबादनिवासी पंडितसुखानन्दमिश्रसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायामुत्तरखण्डे व्यासोपदेशश्रीशिवपुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

दोहा—श्रीशंकर पदकमल युग, उमा सहित हिय लाय । वायुसंहिताको तिलक, कीन्हों पूर्ण बनाय ॥ १ ॥
पढै सुनै कर प्रेम जो, लहै पदारथ चार । तातें शिव सुमिरण करहु, जगजंजाल बिसार ॥ २ ॥
श्रोता वक्ताके भवन, मंगल होहिं अनेक । दृढभक्ती कर राखिये, शम्भुनाम की टेक ॥ ३ ॥
उन्निस सौ पैंसठ सुभग, संवत् आश्विन मास । शरदपूर्णिमा शुक्ल दिन, पूर्ण कियो सुखरास ॥ ४ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत नित शम्भुको, द्विज ज्वालापरसाद ॥ ५ ॥

इदं पुस्तकं खेमराज–श्रीकृष्णदास इत्यनेन स्वकीये “श्रीवेङ्कटेश्वर” (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा
प्रकाशितम् । संवत् १९६५, शके १८३०.

```
[OrderDescription]
,CREATED=20.12.19 14:00
,TRANSFERRED=2019/12/20 at 15:18:04
,PAGES=533
,TYPE=STD
,NAME=S0002374
,Book Name=1424
,ORDER_TEXT=
,[PAGELIST]
,FILE1=00000001.TIF
,FILE2=00000002.TIF
,FILE3=00000003.TIF
,FILE4=00000004.TIF
,FILE5=00000005.TIF
,FILE6=00000006.TIF
,FILE7=00000007.TIF
,FILE8=00000008.TIF
,FILE9=00000009.TIF
,FILE10=00000010.TIF
,FILE11=00000011.TIF
,FILE12=00000012.TIF
,FILE13=00000013.TIF
,FILE14=00000014.TIF
```

```
FILE15=00000015.TIF
,FILE16=00000016.TIF
,FILE17=00000017.TIF
,FILE18=00000018.TIF
,FILE19=00000019.TIF
,FILE20=00000020.TIF
,FILE21=00000021.TIF
,FILE22=00000022.TIF
,FILE23=00000023.TIF
,FILE24=00000024.TIF
,FILE25=00000025.TIF
,FILE26=00000026.TIF
,FILE27=00000027.TIF
,FILE28=00000028.TIF
,FILE29=00000029.TIF
,FILE30=00000030.TIF
,FILE31=00000031.TIF
,FILE32=00000032.TIF
,FILE33=00000033.TIF
,FILE34=00000034.TIF
,FILE35=00000035.TIF
,FILE36=00000036.TIF
,FILE37=00000037.TIF
```

```
FILE38=00000038.TIF
,FILE39=00000039.TIF
,FILE40=00000040.TIF
,FILE41=00000041.TIF
,FILE42=00000042.TIF
,FILE43=00000043.TIF
,FILE44=00000044.TIF
,FILE45=00000045.TIF
,FILE46=00000046.TIF
,FILE47=00000047.TIF
,FILE48=00000048.TIF
,FILE49=00000049.TIF
,FILE50=00000050.TIF
,FILE51=00000051.TIF
,FILE52=00000052.TIF
,FILE53=00000053.TIF
,FILE54=00000054.TIF
,FILE55=00000055.TIF
,FILE56=00000056.TIF
,FILE57=00000057.TIF
,FILE58=00000058.TIF
,FILE59=00000059.TIF
,FILE60=00000060.TIF
```

```
FILE61=00000061.TIF
,FILE62=00000062.TIF
,FILE63=00000063.TIF
,FILE64=00000064.TIF
,FILE65=00000065.TIF
,FILE66=00000066.TIF
,FILE67=00000067.TIF
,FILE68=00000068.TIF
,FILE69=00000069.TIF
,FILE70=00000070.TIF
,FILE71=00000071.TIF
,FILE72=00000072.TIF
,FILE73=00000073.TIF
,FILE74=00000074.TIF
,FILE75=00000075.TIF
,FILE76=00000076.TIF
,FILE77=00000077.TIF
,FILE78=00000078.TIF
,FILE79=00000079.TIF
,FILE80=00000080.TIF
,FILE81=00000081.TIF
,FILE82=00000082.TIF
,FILE83=00000083.TIF
```

```
FILE84=00000084.TIF
,FILE85=00000085.TIF
,FILE86=00000086.TIF
,FILE87=00000087.TIF
,FILE88=00000088.TIF
,FILE89=00000089.TIF
,FILE90=00000090.TIF
,FILE91=00000091.TIF
,FILE92=00000092.TIF
,FILE93=00000093.TIF
,FILE94=00000094.TIF
,FILE95=00000095.TIF
,FILE96=00000096.TIF
,FILE97=00000097.TIF
,FILE98=00000098.TIF
,FILE99=00000099.TIF
,FILE100=00000100.TIF
,FILE101=00000101.TIF
,FILE102=00000102.TIF
,FILE103=00000103.TIF
,FILE104=00000104.TIF
,FILE105=00000105.TIF
,FILE106=00000106.TIF
```

```
FILE107=00000107.TIF
,FILE108=00000108.TIF
,FILE109=00000109.TIF
,FILE110=00000110.TIF
,FILE111=00000111.TIF
,FILE112=00000112.TIF
,FILE113=00000113.TIF
,FILE114=00000114.TIF
,FILE115=00000115.TIF
,FILE116=00000116.TIF
,FILE117=00000117.TIF
,FILE118=00000118.TIF
,FILE119=00000119.TIF
,FILE120=00000120.TIF
,FILE121=00000121.TIF
,FILE122=00000122.TIF
,FILE123=00000123.TIF
,FILE124=00000124.TIF
,FILE125=00000125.TIF
,FILE126=00000126.TIF
,FILE127=00000127.TIF
,FILE128=00000128.TIF
,FILE129=00000129.TIF
```

```
FILE130=00000130.TIF
,FILE131=00000131.TIF
,FILE132=00000132.TIF
,FILE133=00000133.TIF
,FILE134=00000134.TIF
,FILE135=00000135.TIF
,FILE136=00000136.TIF
,FILE137=00000137.TIF
,FILE138=00000138.TIF
,FILE139=00000139.TIF
,FILE140=00000140.TIF
,FILE141=00000141.TIF
,FILE142=00000142.TIF
,FILE143=00000143.TIF
,FILE144=00000144.TIF
,FILE145=00000145.TIF
,FILE146=00000146.TIF
,FILE147=00000147.TIF
,FILE148=00000148.TIF
,FILE149=00000149.TIF
,FILE150=00000150.TIF
,FILE151=00000151.TIF
,FILE152=00000152.TIF
```

```
FILE153=00000153.TIF
,FILE154=00000154.TIF
,FILE155=00000155.TIF
,FILE156=00000156.TIF
,FILE157=00000157.TIF
,FILE158=00000158.TIF
,FILE159=00000159.TIF
,FILE160=00000160.TIF
,FILE161=00000161.TIF
,FILE162=00000162.TIF
,FILE163=00000163.TIF
,FILE164=00000164.TIF
,FILE165=00000165.TIF
,FILE166=00000166.TIF
,FILE167=00000167.TIF
,FILE168=00000168.TIF
,FILE169=00000169.TIF
,FILE170=00000170.TIF
,FILE171=00000171.TIF
,FILE172=00000172.TIF
,FILE173=00000173.TIF
,FILE174=00000174.TIF
,FILE175=00000175.TIF
```

```
FILE176=00000176.TIF
,FILE177=00000177.TIF
,FILE178=00000178.TIF
,FILE179=00000179.TIF
,FILE180=00000180.TIF
,FILE181=00000181.TIF
,FILE182=00000182.TIF
,FILE183=00000183.TIF
,FILE184=00000184.TIF
,FILE185=00000185.TIF
,FILE186=00000186.TIF
,FILE187=00000187.TIF
,FILE188=00000188.TIF
,FILE189=00000189.TIF
,FILE190=00000190.TIF
,FILE191=00000191.TIF
,FILE192=00000192.TIF
,FILE193=00000193.TIF
,FILE194=00000194.TIF
,FILE195=00000195.TIF
,FILE196=00000196.TIF
,FILE197=00000197.TIF
,FILE198=00000198.TIF
```

```
FILE199=00000199.TIF
,FILE200=00000200.TIF
,FILE201=00000201.TIF
,FILE202=00000202.TIF
,FILE203=00000203.TIF
,FILE204=00000204.TIF
,FILE205=00000205.TIF
,FILE206=00000206.TIF
,FILE207=00000207.TIF
,FILE208=00000208.TIF
,FILE209=00000209.TIF
,FILE210=00000210.TIF
,FILE211=00000211.TIF
,FILE212=00000212.TIF
,FILE213=00000213.TIF
,FILE214=00000214.TIF
,FILE215=00000215.TIF
,FILE216=00000216.TIF
,FILE217=00000217.TIF
,FILE218=00000218.TIF
,FILE219=00000219.TIF
,FILE220=00000220.TIF
,FILE221=00000221.TIF
```

```
FILE222=00000222.TIF
,FILE223=00000223.TIF
,FILE224=00000224.TIF
,FILE225=00000225.TIF
,FILE226=00000226.TIF
,FILE227=00000227.TIF
,FILE228=00000228.TIF
,FILE229=00000229.TIF
,FILE230=00000230.TIF
,FILE231=00000231.TIF
,FILE232=00000232.TIF
,FILE233=00000233.TIF
,FILE234=00000234.TIF
,FILE235=00000235.TIF
,FILE236=00000236.TIF
,FILE237=00000237.TIF
,FILE238=00000238.TIF
,FILE239=00000239.TIF
,FILE240=00000240.TIF
,FILE241=00000241.TIF
,FILE242=00000242.TIF
,FILE243=00000243.TIF
,FILE244=00000244.TIF
```

```
FILE245=00000245.TIF
,FILE246=00000246.TIF
,FILE247=00000247.TIF
,FILE248=00000248.TIF
,FILE249=00000249.TIF
,FILE250=00000250.TIF
,FILE251=00000251.TIF
,FILE252=00000252.TIF
,FILE253=00000253.TIF
,FILE254=00000254.TIF
,FILE255=00000255.TIF
,FILE256=00000256.TIF
,FILE257=00000257.TIF
,FILE258=00000258.TIF
,FILE259=00000259.TIF
,FILE260=00000260.TIF
,FILE261=00000261.TIF
,FILE262=00000262.TIF
,FILE263=00000263.TIF
,FILE264=00000264.TIF
,FILE265=00000265.TIF
,FILE266=00000266.TIF
,FILE267=00000267.TIF
```

```
FILE268=00000268.TIF
,FILE269=00000269.TIF
,FILE270=00000270.TIF
,FILE271=00000271.TIF
,FILE272=00000272.TIF
,FILE273=00000273.TIF
,FILE274=00000274.TIF
,FILE275=00000275.TIF
,FILE276=00000276.TIF
,FILE277=00000277.TIF
,FILE278=00000278.TIF
,FILE279=00000279.TIF
,FILE280=00000280.TIF
,FILE281=00000281.TIF
,FILE282=00000282.TIF
,FILE283=00000283.TIF
,FILE284=00000284.TIF
,FILE285=00000285.TIF
,FILE286=00000286.TIF
,FILE287=00000287.TIF
,FILE288=00000288.TIF
,FILE289=00000289.TIF
,FILE290=00000290.TIF
```

```
FILE291=00000291.TIF
,FILE292=00000292.TIF
,FILE293=00000293.TIF
,FILE294=00000294.TIF
,FILE295=00000295.TIF
,FILE296=00000296.TIF
,FILE297=00000297.TIF
,FILE298=00000298.TIF
,FILE299=00000299.TIF
,FILE300=00000300.TIF
,FILE301=00000301.TIF
,FILE302=00000302.TIF
,FILE303=00000303.TIF
,FILE304=00000304.TIF
,FILE305=00000305.TIF
,FILE306=00000306.TIF
,FILE307=00000307.TIF
,FILE308=00000308.TIF
,FILE309=00000309.TIF
,FILE310=00000310.TIF
,FILE311=00000311.TIF
,FILE312=00000312.TIF
,FILE313=00000313.TIF
```

```
FILE314=00000314.TIF
,FILE315=00000315.TIF
,FILE316=00000316.TIF
,FILE317=00000317.TIF
,FILE318=00000318.TIF
,FILE319=00000319.TIF
,FILE320=00000320.TIF
,FILE321=00000321.TIF
,FILE322=00000322.TIF
,FILE323=00000323.TIF
,FILE324=00000324.TIF
,FILE325=00000325.TIF
,FILE326=00000326.TIF
,FILE327=00000327.TIF
,FILE328=00000328.TIF
,FILE329=00000329.TIF
,FILE330=00000330.TIF
,FILE331=00000331.TIF
,FILE332=00000332.TIF
,FILE333=00000333.TIF
,FILE334=00000334.TIF
,FILE335=00000335.TIF
,FILE336=00000336.TIF
```

```
FILE337=00000337.TIF
,FILE338=00000338.TIF
,FILE339=00000339.TIF
,FILE340=00000340.TIF
,FILE341=00000341.TIF
,FILE342=00000342.TIF
,FILE343=00000343.TIF
,FILE344=00000344.TIF
,FILE345=00000345.TIF
,FILE346=00000346.TIF
,FILE347=00000347.TIF
,FILE348=00000348.TIF
,FILE349=00000349.TIF
,FILE350=00000350.TIF
,FILE351=00000351.TIF
,FILE352=00000352.TIF
,FILE353=00000353.TIF
,FILE354=00000354.TIF
,FILE355=00000355.TIF
,FILE356=00000356.TIF
,FILE357=00000357.TIF
,FILE358=00000358.TIF
,FILE359=00000359.TIF
```

```
FILE360=00000360.TIF
,FILE361=00000361.TIF
,FILE362=00000362.TIF
,FILE363=00000363.TIF
,FILE364=00000364.TIF
,FILE365=00000365.TIF
,FILE366=00000366.TIF
,FILE367=00000367.TIF
,FILE368=00000368.TIF
,FILE369=00000369.TIF
,FILE370=00000370.TIF
,FILE371=00000371.TIF
,FILE372=00000372.TIF
,FILE373=00000373.TIF
,FILE374=00000374.TIF
,FILE375=00000375.TIF
,FILE376=00000376.TIF
,FILE377=00000377.TIF
,FILE378=00000378.TIF
,FILE379=00000379.TIF
,FILE380=00000380.TIF
,FILE381=00000381.TIF
,FILE382=00000382.TIF
```

```
FILE383=00000383.TIF
,FILE384=00000384.TIF
,FILE385=00000385.TIF
,FILE386=00000386.TIF
,FILE387=00000387.TIF
,FILE388=00000388.TIF
,FILE389=00000389.TIF
,FILE390=00000390.TIF
,FILE391=00000391.TIF
,FILE392=00000392.TIF
,FILE393=00000393.TIF
,FILE394=00000394.TIF
,FILE395=00000395.TIF
,FILE396=00000396.TIF
,FILE397=00000397.TIF
,FILE398=00000398.TIF
,FILE399=00000399.TIF
,FILE400=00000400.TIF
,FILE401=00000401.TIF
,FILE402=00000402.TIF
,FILE403=00000403.TIF
,FILE404=00000404.TIF
,FILE405=00000405.TIF
```

```
FILE406=00000406.TIF
,FILE407=00000407.TIF
,FILE408=00000408.TIF
,FILE409=00000409.TIF
,FILE410=00000410.TIF
,FILE411=00000411.TIF
,FILE412=00000412.TIF
,FILE413=00000413.TIF
,FILE414=00000414.TIF
,FILE415=00000415.TIF
,FILE416=00000416.TIF
,FILE417=00000417.TIF
,FILE418=00000418.TIF
,FILE419=00000419.TIF
,FILE420=00000420.TIF
,FILE421=00000421.TIF
,FILE422=00000422.TIF
,FILE423=00000423.TIF
,FILE424=00000424.TIF
,FILE425=00000425.TIF
,FILE426=00000426.TIF
,FILE427=00000427.TIF
,FILE428=00000428.TIF
```

```
FILE429=00000429.TIF
,FILE430=00000430.TIF
,FILE431=00000431.TIF
,FILE432=00000432.TIF
,FILE433=00000433.TIF
,FILE434=00000434.TIF
,FILE435=00000435.TIF
,FILE436=00000436.TIF
,FILE437=00000437.TIF
,FILE438=00000438.TIF
,FILE439=00000439.TIF
,FILE440=00000440.TIF
,FILE441=00000441.TIF
,FILE442=00000442.TIF
,FILE443=00000443.TIF
,FILE444=00000444.TIF
,FILE445=00000445.TIF
,FILE446=00000446.TIF
,FILE447=00000447.TIF
,FILE448=00000448.TIF
,FILE449=00000449.TIF
,FILE450=00000450.TIF
,FILE451=00000451.TIF
```

```
FILE452=00000452.TIF
,FILE453=00000453.TIF
,FILE454=00000454.TIF
,FILE455=00000455.TIF
,FILE456=00000456.TIF
,FILE457=00000457.TIF
,FILE458=00000458.TIF
,FILE459=00000459.TIF
,FILE460=00000460.TIF
,FILE461=00000461.TIF
,FILE462=00000462.TIF
,FILE463=00000463.TIF
,FILE464=00000464.TIF
,FILE465=00000465.TIF
,FILE466=00000466.TIF
,FILE467=00000467.TIF
,FILE468=00000468.TIF
,FILE469=00000469.TIF
,FILE470=00000470.TIF
,FILE471=00000471.TIF
,FILE472=00000472.TIF
,FILE473=00000473.TIF
,FILE474=00000474.TIF
```

```
FILE475=00000475.TIF
,FILE476=00000476.TIF
,FILE477=00000477.TIF
,FILE478=00000478.TIF
,FILE479=00000479.TIF
,FILE480=00000480.TIF
,FILE481=00000481.TIF
,FILE482=00000482.TIF
,FILE483=00000483.TIF
,FILE484=00000484.TIF
,FILE485=00000485.TIF
,FILE486=00000486.TIF
,FILE487=00000487.TIF
,FILE488=00000488.TIF
,FILE489=00000489.TIF
,FILE490=00000490.TIF
,FILE491=00000491.TIF
,FILE492=00000492.TIF
,FILE493=00000493.TIF
,FILE494=00000494.TIF
,FILE495=00000495.TIF
,FILE496=00000496.TIF
,FILE497=00000497.TIF
```

```
FILE498=00000498.TIF
,FILE499=00000499.TIF
,FILE500=00000500.TIF
,FILE501=00000501.TIF
,FILE502=00000502.TIF
,FILE503=00000503.TIF
,FILE504=00000504.TIF
,FILE505=00000505.TIF
,FILE506=00000506.TIF
,FILE507=00000507.TIF
,FILE508=00000508.TIF
,FILE509=00000509.TIF
,FILE510=00000510.TIF
,FILE511=00000511.TIF
,FILE512=00000512.TIF
,FILE513=00000513.TIF
,FILE514=00000514.TIF
,FILE515=00000515.TIF
,FILE516=00000516.TIF
,FILE517=00000517.TIF
,FILE518=00000518.TIF
,FILE519=00000519.TIF
,FILE520=00000520.TIF
```

```
FILE521=00000521.TIF
,FILE522=00000522.TIF
,FILE523=00000523.TIF
,FILE524=00000524.TIF
,FILE525=00000525.TIF
,FILE526=00000526.TIF
,FILE527=00000527.TIF
,FILE528=00000528.TIF
,FILE529=00000529.TIF
,FILE530=00000530.TIF
,FILE531=00000531.TIF
,FILE532=00000532.TIF
,FILE533=00000533.TIF
,
```